भारतीय साहित्य-कोश

भारतीय साहित्य कोश

संपादक
डॉ. नगेन्द्र

सहायक संपादक
श्री महेन्द्र चतुर्वेदी : डॉ० महेन्द्र कुमार

संपादकीय

भारतवर्ष अनेक भाषाओ का विशाल देश है उत्तर-पश्चिम मे पजाबी, हिंदी और उर्दू, पूर्व मे उडिया, बगला और असमीया, मध्य-पश्चिम मे मराठी और गुजराती और दक्षिण मे तमिल, तेलुगु कन्नड तथा मलयालम, इनके अतिरिक्त कतिपय और भी भाषाए हैं जिनका साहित्यिक एव भाषावैज्ञानिक महत्व कम नही है—जैसे कश्मीरी, डोगरी, सिंधी, कोकणी, तूरू आदि। इनमे से प्रत्येक का—विशेषत पहली बारह भाषाओ मे से प्रत्येक का, अपना साहित्य है जो प्राचीनता, वैविध्य, गुण और परिणाम—सभी की दृष्टि से अत्यत समृद्ध है। यदि आधुनिक भारतीय भाषाओ के ही सपूर्ण वाङमय का सचयन किया जाये तो मेरा अनुमान है कि वह यूरोप के सकलित वाङमय से किसी भी दृष्टि से कम नही होगा। वैदिक सस्कृत, सस्कृत, पालि, प्राकृतो और अपभ्रशो का समावेश कर लेने पर तो उसका अनत विस्तार कल्पना की सीमा को पार कर जाता है। ज्ञान का अपार भाण्डार हिंद महासागर से भी गहरा, भारत के भौगोलिक विस्तार से भी व्यापक, हिमालय के शिखरो से भी ऊचा। इनमे प्रत्येक साहित्य का अपना स्वतत्र और प्रखर वैशिष्ट्य है जो अपने प्रदेश के व्यक्तित्व से मुद्राकित है। पजाबी और सिंधी, इधर हिंदी और उर्दू की प्रदेश-सीमाए कितनी मिली हुई हैं। किंतु उनके अपने-अपने साहित्य का वैशिष्टय कितना प्रखर है। इसी प्रकार गुजराती और मराठी का जन-जीवन परस्पर ओतप्रोत है किंतु क्या इन भाषाओ के बीच मे किसी प्रकार की भ्राति सभव है ? दक्षिण की भाषाओ का उदगम एक है सभी द्रविड परिवार की विभूतिया है, परतु क्या कन्नड और मलयालम या तमिल और तेलुगु के स्वारूप्य के विषय मे शका हो सकती है ? यही बात बगला, असमीया और उडिया के विषय मे सत्य है। बगला के गहरे प्रभाव को पचाकर असमीया और उडिया अपने स्वतत्र अस्तित्व को बनाये हुए हैं।

इन सभी साहित्यो मे अपनी-अपनी विभिन्न विभूतिया है। तमिल का सगम-साहित्य, तेलुगु के द्विअर्थी काव्य और उदाहरण तथा अवधान साहित्य, मलयालम के सदेश काव्य एव वीर गीत (किलिप्पाट्टु) तथा मणिप्रवालम शैली, मराठी के पवाडे, गुजराती के आख्यान और फागु, बगला का मगल काव्य, असमीया के बडगीत और बुरजी साहित्य, पजाबी के रम्याख्यान तथा वीरगीत, उर्दू की गजल और हिंदी का रीति-काव्य तथा छायावाद आदि, अपने-अपने भाषा साहित्य के वैशिष्टय के उज्ज्वल प्रमाण ह।

फिर भी कदाचित यह पार्थक्य आत्मा का नही है। जिस प्रकार अनेक धर्मो, विचारधाराओ और जीवन-प्रणालियो के रहते हुए भी भारतीय सस्कृति की एकता असदिग्ध है, इसी प्रकार और इसी कारण से अनेक भाषाओ तथा अभिव्यजना-पद्धतियो के रहते हुए भी भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता का अनुसधान भी सहज सभव है। भारतीय साहित्य का प्राचुर्य और वैविध्य तो अपूर्व है ही, उसकी यह मौलिक एकता और भी रमणीय है। यहा इस एकता के आधार-तत्त्वो का विश्लेषण करना आवश्यक है।

दक्षिण मे तमिल और उधर उर्दू को छोड भारत की लगभग सभी भारतीय भाषाओ का जन्म-काल प्राय समान ही है। तेलुगु साहित्य के प्राचीनतम ज्ञात कवि है नन्नय, जिनका समय है ईसा की ग्यारहवी शती। कन्नड का प्रथम उपलब्ध ग्रथ है 'कविराजमार्ग', जिसके लेखक है राष्ट्रकूट-वश के नरेश नृपतुग (814-877 ई०), और मलयालम की सर्वप्रथम कृति है 'रामचरितम' जिसके विषय मे रचना काल और भाषा-स्वरूप आदि की अनेक समस्याए है और जो अनुमानत तेरहवी शती की रचना है। गुजराती तथा मराठी का आविर्भाव-काल

लगभग एक ही है। गुजराती का आदि ग्रंथ 1185 ई० में रचित शालिभद्र भारतेश्वर का 'बाहुबलिरास' है और मराठी के आदिम साहित्य का आविर्भाव बारहवीं शती में हुआ था। यही बात पूर्व की भाषाओं के विषय में सत्य है। बंगला के चर्या-गीतों की रचना शायद दसवीं और बारहवीं शती के बीच किसी समय हुई होगी; असमीया-साहित्य के सबसे प्राचीन उदाहरण प्रायः तेरहवीं शती के अंत के हैं जिनमें सर्वश्रेष्ठ हैं हेम सरस्वती की रचनाएं 'प्रह्लादचरित्र' तथा 'हरगौरी-संवाद'। उड़िया भाषा में भी तेरहवीं शती में निश्चित रूप से व्यंग्यात्मक काव्य और लोकगीतों के दर्शन होने लगते हैं। उधर चौदहवीं शती में तो उत्कल-व्यास सारलादास का आविर्भाव हो ही जाता है। इसी प्रकार, पंजाबी और हिंदी में ग्यारहवीं शती से व्यवस्थित साहित्य उपलब्ध होने लगता है। केवल दो भाषाएं ऐसी हैं जिनका जन्मकाल भिन्न है—तमिल, जो संस्कृत के समान प्राचीन है (यद्यपि तमिलभाषी इसका उद्गम और भी पहले मानते हैं) और उर्दू, जिसका वास्तविक आरंभ शायद पंद्रहवीं शती से पूर्व नहीं माना जा सकता, यद्यपि उर्दू के इतिहासकार भी अब ग्यारहवीं-बारहवीं शती में ही उसके आविर्भाव की चर्चा करने लगे हैं।

जन्मकाल के अतिरिक्त, आधुनिक भारतीय साहित्यों के विकास के चरण भी प्रायः समान ही हैं। प्रायः सभी का आदिकाल पंद्रहवीं शती तक चलता है : पूर्व-मध्यकाल की समाप्ति मुगल वैभव के अंत अर्थात् सत्रहवीं शती के मध्य में तथा उत्तर-मध्यकाल की अंगरेजी सत्ता की स्थापना के साथ होती है और तभी से आधुनिक युग का आरंभ हो जाता है। इस प्रकार, भारतीय भाषाओं के अधिकांश साहित्यों का विकास-क्रम लगभग एक-सा ही है; सभी प्रायः समकालीन चार चरणों में विभक्त है।

इस समानांतर विकास-क्रम का आधार अत्यंत स्पष्ट है, और वह है भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन का विकास-क्रम। बीच-बीच में व्यवधान होने पर भी भारतवर्ष में शताब्दियों तक समान राजनीतिक व्यवस्था रही है। मुगल-शासन में तो लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम में घनिष्ठ संपर्क बना रहा। मुगलों की सत्ता खंडित हो जाने के बाद भी यह संपर्क टूटा नहीं। मुगल-शासन के पहले भी राज्य-विस्तार के प्रयत्न होते रहे थे। राजपूतों में कोई एकछत्र भारत-सम्राट तो नहीं हुआ, किंतु उनके राजवंश भारतवर्ष के अनेक भागों में शासन कर रहे थे। शासन भिन्न होने पर भी उनकी सामंतीय शासन-प्रणाली प्रायः एक-सी थी। इसी प्रकार, मुसलमानों की शासन-प्रणाली में भी स्पष्ट मूलभूत समानता थी। बाद में अंगरेजों ने तो केंद्रीय शासन-व्यवस्था कायम कर इस एकता को और भी दृढ़ कर दिया। इन्हीं सब कारणों से भारत के विभिन्न भाषा-भाषी प्रदेशों की राजनीतिक परिस्थितियों में पर्याप्त साम्य रहा है।

राजनीतिक परिस्थितियों की अपेक्षा सांस्कृतिक परिस्थितियों का साम्य और भी अधिक रहा है। पिछले सहस्राब्द में अनेक धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन ऐसे हुए जिनका प्रभाव भारतव्यापी था। बौद्ध धर्म के ह्रास के युग में उसकी कई शाखाओं और शैव-शाक्त धर्मों के संयोग से नाथ-संप्रदाय उठ खड़ा हुआ जो ईसा के द्वितीय सहस्राब्द के आरंभ में उत्तर में तिब्बत आदि तक, दक्षिण में पूर्वी घाट के प्रदेशों में, पश्चिम में महाराष्ट्र आदि में और पूर्व में प्रायः सर्वत्र फैला हुआ था। योग की प्रधानता होने पर भी इन साधुओं की साधना में, जिनमें नाथ, सिद्ध और शैव सभी थे, जीवन के विचार और भाव-पक्ष की उपेक्षा नहीं थी और इनमें से अनेक साधु आत्माभिव्यक्ति एवं सिद्धांत-प्रतिपादन दोनों के लिए कवि-कर्म में प्रवृत्त होते थे। भारतीय भाषाओं के विकास के प्रथम चरण में इन संप्रदायों का प्रभाव प्रायः विद्यमान था। इनके बाद इनके उत्तराधिकारी संत-संप्रदायों और नवागत मुसलमानों के सूफी-मत का प्रसार देश के भिन्न-भिन्न भागों में होने लगा। संत-संप्रदाय वेदांत दर्शन से प्रभावित थे और निर्गुण-भक्ति की साधना तथा प्रचार करते थे। सूफी धर्म में भी निराकार ब्रह्म की ही उपासना थी, किंतु उसका माध्यम था उत्कट प्रेमानुभूति। सूफी संतों का यद्यपि उत्तर-पश्चिम में अधिक प्रभुत्व था, फिर भी दक्षिण के बीजापुर और गोलकुंडा राज्यों में इनके अनेक केंद्र थे और वहां भी अनेक प्रसिद्ध सूफी संत हुए। इनके पश्चात् वैष्णव आंदोलन का आरंभ हुआ जो देश-भर में बड़े वेग से व्याप्त हो गया। राम और कृष्ण की भक्ति की अनेक मधुर पद्धतियों का देश-भर में प्रसार हुआ और समस्त भारतवर्ष सगुण ईश्वर के लीला-गान से गुंजरित हो उठा। उधर मुस्लिम संस्कृति और सभ्यता का प्रभाव भी निरंतर बढ़ रहा था। ईरानी संस्कृति के अनेक आकर्षक तत्त्व—जैसे वैभव-विलास, अलंकरण-सज्जा आदि भारतीय जीवन में बड़े वेग से घुल-मिल रहे थे और एक नयी दरबारी या नागर संस्कृति का आविर्भाव हो रहा था। राजनीतिक और आर्थिक पराभव के कारण यह संस्कृति शीघ्र ही अपना प्रसादमय प्रभाव खो बैठी और

जीवन के उत्कर्ष एव आनदमय पक्ष के स्थान पर रुग्ण विलासिता ही इसमे शेष रह गयी। तभी पश्चिम के व्यापारियो का आगमन हुआ जो अपने पाश्चात्य शिक्षा-सस्कार लाये और जिनके पीछे पीछे मसीही प्रचारको के दल भारत मे प्रवेश करने लगे। उन्नीसवी शती मे अगरेजो का प्रभुत्व देश मे स्थापित हो गया और शासक वर्ग सक्रिय रूप से योजना बनाकर अपनी शिक्षा, सस्कृति और उनके माध्यम से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे अपने धर्म का प्रसार करने लगा। प्राच्य और पाश्चात्य के इस सपर्क और सघर्ष से आधुनिक भारत का जन्म हुआ।

भारत के आधुनिक साहित्य का विकास-क्रम भी कितना समान है! विदेशी धर्म-प्रचारको और शासको के प्रयत्नो के फलस्वरूप पाश्चात्य सभ्यता तथा सस्कृति के साथ सपर्क एव सघर्ष—और उससे पुनर्जागरण युग का उदय, राष्ट्रीय आदोलन की प्रेरणा से साहित्य मे राष्ट्रीय-सस्कृति चेतना का उत्कर्ष, साहित्य मे नीतिवाद एव सुधारवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया और नयी रोमानी सौदर्य-दृष्टि का उन्मेष, चौथे दशक मे साम्यवादी विचारधारा के प्रचार से द्वद्वात्मक भौतिकवाद का प्रभाव, इलियट आदि के प्रभाव से नये जीवन की बौद्धिक कुठाओ और स्वप्नो को शब्द-रूप देने के नये प्रयोग, स्वतत्रता के बाद विश्व-कल्याण की भावना से प्रेरित राष्ट्रीय-सास्कृतिक चेतना का विस्तार और अत मे व्यापक सत्रास तथा मोहभग—यही सक्षेप मे आधुनिक भारतीय वाड्मय के विकास की रूपरेखा है जो सभी भाषाओ मे समान रूप से लक्षित होती है।

अब साहित्यिक पृष्ठाधार को लीजिए। भारत की भाषाओ का परिवार यद्यपि एक नही है, फिर भी उनका साहित्यिक रिक्थ समान ही है। रामायण, महाभारत, पुराण, भागवत, सस्कृत का अभिजात साहित्य—अर्थात् कालिदास, भवभूति, बाण, श्रीहर्ष, अमरुक और जयदेव आदि की अमर कृतिया, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रश में लिखित बौद्ध, जैन तथा अन्य धर्मो का साहित्य भारत की समस्त भाषाओ को उत्तराधिकार मे मिला है। शास्त्र के अतर्गत उपनिषद्, षडदर्शन, स्मृतिया आदि और उधर काव्यशास्त्र के अनेक अमर ग्रथ—'नाट्यशास्त्र', 'ध्वन्यालोक', 'काव्यप्रकाश', 'साहित्यदर्पण', 'रसगगाधर' आदि की विचार विभूति का उपयोग भी सभी ने निरतर किया है। वास्तव मे आधुनिक भारतीय भाषाओ के ये अक्षय प्रेरणा स्रोत है और प्राय सभी को समान रूप से प्रभावित करते रहे है। इनका प्रभाव निश्चय ही अत्यत समन्वयकारी रहा है और इनसे प्रेरित साहित्य मे एक प्रकार की मूलभूत समानता स्वत आ गई है। इस प्रकार समान राजनीतिक, सास्कृतिक और साहित्यिक आधारभूमि पर पल्लवित-पुष्पित भारतीय साहित्य मे जन्मजात समानता एक सहज घटना है।

अब तक हमने भारतीय वाड्मय की केवल विषय-वस्तुगत अथवा रागात्मक एकता की ओर सकेत किया है, किंतु काव्य-शैलियो और काव्य-रूपो की समानता भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। भारत के प्राय सभी साहित्यो मे सस्कृत से प्राप्त काव्य शैलिया—महाकाव्य, खडकाव्य, मुक्तक, कथा, आख्यायिका आदि के अतिरिक्त अपभ्रश-परपरा की भी अनेक शैलिया, जैसे चरितकाव्य, प्रेमगाथा-शैली, रास, पद-शैली आदि प्राय समान रूप मे मिलती है। अनेक वर्णिक छदो के अतिरिक्त अनेक देशी छद—दोहा, चौपाई आदि—भी भारतीय वाड्मय के लोकप्रिय छद है। इधर आधुनिक युग मे पश्चिम के अनेक काव्य-रूपो और छदो का—जैसे प्रगीत-काव्य और उसके अनेक भेदो, सबोधन-गीत, शोक-गीत, चतुर्दशपदी का, और मुक्त-छद, गद्य-गीत आदि का प्रचार भी सभी भाषाओ मे हो चुका है। यही बात भाषा के विषय मे भी सत्य है। यद्यपि मूलत भारतीय भाषाए दो विभिन्न परिवारो—आर्य और द्रविड परिवारो—की भाषाए है, फिर भी प्राचीनकाल मे सस्कृत, और प्राकृत अपभ्रशो के और आधुनिक युग मे अगरेजी के प्रभाव के कारण उनमे रूपो और शब्दो की अनेक प्रकार की समानताए सहज ही लक्षित हो जाती हैं। भारतीय भाषाए अपनी व्यजनात्मक तथा लाक्षणिक शक्तियो के विकास के लिए, चित्रमय शब्दो और पर्यायो के लिए तथा नवीन शब्द निर्माण के लिए निरतर सस्कृत के भाडार का उपयोग करती रही है और आज भी कर रही हैं। इधर वर्तमान युग मे अगरेजी का प्रभाव भी अत्यत स्पष्ट है। अगरेजी की लाक्षणिक और प्रतीकात्मक शक्ति बहुत विकसित है। पिछले आठ दस दशको से भारत की सभी भाषाए उसकी नवीन प्रयोग भगिमाओ, मुहावरो, उपचार-वक्रताओ को सचेष्ट रूप से ग्रहण कर रही है। उधर गद्य पर तो अगरेजी का प्रभाव और भी अधिक है, हमारी वाक्य-रचना प्राय अगरेजी पर ही आश्रित है। अत: इन प्रयत्नो के फलस्वरूप साहित्य की माध्यम भाषा मे एक गहरी आतरिक समानता मिलती है जो समान विषय-वस्तु के कारण और भी दृढ हो जाती है।

इस प्रकार, यह विश्वास करना कठिन नही है कि

"भारतीय वाङ्मय अनेक भाषाओं में अभिव्यक्त एक ही विचार है। देश का यह दुर्भाग्य है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति तक विदेशी प्रभाव के कारण अनेकता को ही बल मिलता रहा। इसकी मूलवर्ती एकता का सम्यक् अनुसंधान अभी होना है। इसके लिए अत्यंत निस्संग भाव से, सत्य-शोध पर दृष्टि केंद्रित रखते हुए, भारत के विभिन्न साहित्यों में विद्यमान समान तत्त्वों एवं प्रवृत्तियों का विधिवत् अध्ययन पहली आवश्यकता है। यह कार्य हमारे अध्ययन और अनुसंधान की प्रणाली में परिवर्तन की अपेक्षा करता है। किसी भी प्रवृत्ति का अध्ययन केवल एक भाषा के साहित्य तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए; वास्तव में इस प्रकार का अध्ययन अत्यंत अपूर्ण रहेगा। उदाहरण के लिए, मधुरा भक्ति का अध्येता यदि अपनी परिधि को केवल हिंदी या केवल बंगला तक ही सीमित कर ले तो वह सत्य ही शोध में असफल रहेगा। उसे अपनी भाषा के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में प्रवाहित मधुरा भक्ति की धाराओं में भी अवगाहन करना होगा। गुजराती, उड़िया, असमीया, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम सभी की तो भूमि मधुर रस से आप्लावित है। एक भाषा तक सीमित अध्ययन में स्पष्टतः अनेक छिद्र रह जायेंगे। हिंदी-साहित्य के इतिहासकार को जो अनेक घटनाएं सांयोगिक-सी प्रतीत होती है, वे वास्तव में वैसी नहीं है। आचार्य शुक्ल को हिंदी के जिस विशाल पद-साहित्य की परंपरा का मूलस्रोत प्राप्त करने में कठिनाई हुई थी वह अपभ्रंश के अतिरिक्त दक्षिण की भाषाओं में और बंगला में सहज ही मिल जाता है। सूर का वात्सल्य-वर्णन हिंदी-काव्य में घटनेवाली आकस्मिक या ऐकांतिक घटना नहीं थी; तमिल के आलवार भक्तों ने अनेक पदों में, गुजराती कवि भालण ने अपने आख्यानों में, पंद्रहवीं शती के मलयालम कवि ने कृष्णगाथा में, असमीया कवि माधवदेव ने अपने बड़गीतों में अत्यंत मनोयोगपूर्वक कृष्ण की बाल-लीलाओं का वर्णन किया है। भारतीय भाषाओं के रामायण और महाभारत काव्यों का तुलनात्मक अध्ययन न जाने कितनी समस्याओं को अनायास ही सुलझाकर रख देता है। रम्याख्यान-काव्यों की अगणित कथानक-रूढ़ियां विविध भाषाओं के प्रेमाख्यान-काव्यों का अध्ययन किये बिना स्पष्ट नहीं हो सकतीं। सूफी काव्य के मर्म को समझने फारसी के अतिरिक्त उत्तर-पश्चिम की भाषाओं—[illegible], सिंधी, पंजाबी और उर्दू—में विद्यमान तत्संबंधी [illegible] से अमूल्य सहायता प्राप्त हो सकती है। तुलसी 'रामचरित मानस' में राम के स्वरूप की कल्पना को हृदयगत किये बिना अनेक भारतीय भाषाओं के रामकाव्य का अध्ययन अपूर्ण ही रहेगा। इसी प्रकार, हिंदी के अष्टछाप कवियों का प्रभाव बंगाल और गुजरात तक व्याप्त था। वहां के कृष्ण-काव्य के सम्यक् विवेचन में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस अंतःसाहित्यिक शोधप्रणाली के द्वारा अनेक लुप्त कड़ियां अनायास ही मिल जायेंगी, अगणित जिज्ञासाओं का सहज ही समाधान हो जायेगा और उधर भारतीय चिंताधारा एवं रागात्मक चेतना की अखंड एकता का उद्‌घाटन हो सकेगा।

किंतु यह कार्य जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही कठिन भी है। सबसे पहली कठिनाई तो भाषा की है। अभी तक भारतीय अनुसंधाताओं का ज्ञान प्रायः अपनी भाषा के अतिरिक्त अंगरेजी और संस्कृत तक ही सीमित है। प्रादेशिक भाषाओं से उनका परिचय नहीं है। ऐसी स्थिति में डर है कि प्रस्तावित योजना कहीं पुण्य इच्छा मात्र होकर न रह जाये। पर यह बाधा अजेय नहीं है। व्यवस्थित प्रयास द्वारा इसका निराकरण करना कठिन नहीं है। कुछ भाषावर्ग तो ऐसे हैं जिनमें अत्यल्प अभ्यास से काम चल सकता है, जिनमें रूपांतर, यहां तक कि लिप्यंतर भी, आवश्यक नहीं है। जैसे बंगला और असमीया, या हिंदी और मराठी में, या तेलुगु और कन्नड़ में कुछ शब्दों अथवा शब्द-रूपों के अर्थ आदि लेकर काम चल सकता है। हिंदी, उर्दू और पंजाबी में लिप्यंतर और कठिन शब्दार्थ से समस्या सुलझ सकती है। यही हिंदी और गुजराती तथा तमिल तथा मलयालम के विषय में प्रायः सत्य है। अन्य भाषाओं के लिए अनुवाद का आश्रय लिया जा सकता है। साहित्यिक इतिहास, परिचय-लेख, तुलनात्मक अध्ययन, तुलनात्मक अनुसंधान, अंतः-साहित्यिक गोष्ठियों आदि की सम्यक् व्यवस्था द्वारा भी परस्पर आदान-प्रदान की सुविधा हो सकती है। इनके अतिरिक्त प्रस्तुत उद्देश्य की पूर्ति के लिए दो और महत्त्व-पूर्ण प्रयास किये जा सकते है—(1) संपूर्ण भारतीय साहित्य के समेकित इतिहास का प्रकाशन, तथा (2) भारतीय साहित्य-कोश का निर्माण।

आज देश में इस प्रकार की चेतना प्रवुद्ध हो गई है और कतिपय संस्थाएं इस दिशा में अग्रसर है। किंतु अभी तक यह अनुष्ठान आरंभिक व्यवस्था में ही है। इसके लिए जैसे व्यापक एवं संगठित प्रयत्न की अपेक्षा है, वैसा आयोजन अभी नहीं हो रहा। फिर भी 'भारतीय साहित्य' की चेतना की प्रवृद्धि ही अपने-आपमें शुभ लक्षण है। भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए सांस्कृतिक

एकता का आधार अनिवार्य है और सांस्कृतिक एकता का सबसे दृढ एव स्थायी आधार है साहित्य। जिस प्रकार अनेक निराशावादियो की आशकाओ को विफल करता हुआ भारतीय राष्ट्र निरतर अपनी अखडता मे उभरता आ रहा है, उसी प्रकार एक समजित इकाई के रूप मे 'भारतीय साहित्य' का विकास भी धीरे-धीरे हो रहा है। यदि मूलवर्ती चेतना एक है तो माध्यम का भेद होते हुए भी साहित्य का व्यक्त रूप भी भिन्न नही हो सकता।

□

कुछ शब्द प्रस्तुत कोश के विषय मे भी लिखना अप्रासगिक न होगा.

इस विराट् अनुष्ठान के समापन पर, हमे, स्वभावत एक महायज्ञ की पूर्ति के पुण्य-लाभ का अनुभव हो रहा है। वास्तव मे, इस प्रकार की परियोजना अपने-आपमे इतनी विस्तीर्ण और जटिल—श्रमसाध्य तथा व्ययसाध्य होती है कि बहुविध साधन-सपन्न सस्थाए ही इनका दायित्व वहन कर सकती हैं। फिर भी, हमने व्यक्तिगत स्तर पर कतिपय मित्रो के सहयोग और एकमात्र प्रकाशक के उत्साह के बल पर यह सकल्प किया और अनेक प्रकार की कठिनाइयो के बाद अत मे उसे पूरा कर लिया।

प्रस्तुत कोश मे 18 भाषाओ की साहित्यिक प्रविष्टियो का अतर्भाव है। इनमे सिंधी और कश्मीरी को मिलाकर 14 आधुनिक भाषाए और 4 प्राचीन भाषाए हैं—सस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रश। इनके अतिरिक्त काव्यशास्त्र तथा भाषाविज्ञान—इन दो विषयो का भी स्वतत्र रूप से समावेश किया गया है। सभी भाषाओ और विषयो की शब्दावली का प्रारभिक चयन अधिकारी विद्वानो ने किया है, इसके बाद विभिन्न भाषाओ के विशेषज्ञ लेखको ने उन पर टिप्पणिया तैयार की है। प्रविष्टियो को लेखक, कृति, पात्र, प्रवृत्ति तथा पारिभाषिक शब्दावली—इन पाच वर्गो मे विभक्त कर, प्रत्येक प्रविष्टि पर उसके साहित्यिक महत्त्व के अनुसार टिप्पणी प्रस्तुत की गयी है। लेखक सभी द्विभाषी है : हिंदी के विद्वान होने के अतिरिक्त वे सभी अपनी-अपनी भाषा के विशेषज्ञ भी है।—इस प्रकार, अपनी ओर से हमने कोशगत सामग्री को प्रामाणिक बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। किंतु यह कार्य इतना बिखरा हुआ है कि हमारे प्रयत्न के बावजूद अनेक त्रुटिया रह जाना सर्वथा सभाव्य है, जिनका परिहार हम विशेषज्ञो की सहायता से दूसरे संस्करण मे ही कर पायेंगे। कोश की उत्तर-सीमा योजना के आरभ वर्ष अर्थात् 1970 तक है। अतएव विगत दस वर्षो के लेखको और कृतियो का समावेश इसमे नही है। ग्रथ का मुद्रण 1976 मे ही आरभ हो गया था, पर अनेक प्रकार की बाधाओ के कारण यह अब पूरा हुआ है। इस अवधि मे विभिन्न भाषाओ के अनेक साहित्यकार दिवगत हो गये हैं। चूकि उनसे सबद्ध प्रविष्टिया पहले ही मुद्रित हो चुकी थी, इसलिए उनके निधन-वर्ष नही दिये जा सके। इन सभी रिक्तियो की पूर्ति अगले सस्करण मे ही हो सकेगी।

हम अपनी उपलब्धि की अपेक्षा कोश के अभावो के प्रति अधिक सतर्क है। इसलिए यह मानकर चलते हैं कि 'भारतीय साहित्य-कोश' का यह प्रथम प्रारूप मात्र है जिसे हम जिज्ञासु पाठको के समक्ष प्रस्तुत कर रहे है।

अत मे, मैं अपने दोनो सहयोगी सपादको—श्री महेन्द्र चतुर्वेदी और डॉ० महेन्द्र कुमार—को तथा अन्य विद्वान लेखको को हृदय से धन्यवाद देता हू। ग्रथ का समायोजन मैंने किया है, शेष सपूर्ण कार्य का श्रेय इन्ही को है। हिंदी की प्रसिद्ध प्रकाशन-सस्था नेशनल पब्लिशिंग हाउस और उसके स्वत्वाधिकारी भी साधुवाद के पात्र है जिन्होने इस बृहद योजना को मूर्त रूप देने मे विशेष साहस एव धैर्य का परिचय दिया है।

—नगेन्द्र

सुमित्रानदन पत, जयती
दिल्ली, 19 मई, 1981

संक्षेप-संकेत

अ०	असमीया
अप०	अपभ्रंश
उ०	उड़िया
उर्दू	उर्दू
क०	कन्नड़
कश्०	कश्मीरी
काव्य०	काव्यशास्त्र
गु०	गुजराती
त०	तमिल
ते०	तेलुगु
पं०	पंजाबी
पा०	पालि
प्रा०	प्राकृत
भाषा	भाषाविज्ञान
म०	मराठी
मल०	मलयालम
सं०	संस्कृत
सिं०	सिंधी
हिं०	हिंदी
+	
दे०	देखिए—अंतःसंदर्भ

सहयोगी

प्रविष्टि

असमीया	प्रो० हेम बरुवा (स्व०)
अपभ्रंश	डॉ० हरिवंश कोचर
उड़िया	डॉ० खगेश्वर महापात्र
उर्दू	डॉ० मोहम्मद हसन
कन्नड़	प्रो० एन० नागप्पा
कश्मीरी	श्री जानकीनाथ मान
काव्यशास्त्र	डॉ० सत्यदेव चौधरी
गुजराती	डॉ० चन्द्रकान्त मेहता
तमिल	डॉ० एम० वरदराजन (स्व०)
	डॉ० महालिंगम
तेलुगु	डॉ० पांडुरंग राव
पंजाबी	डॉ० हरभजन सिंह
पालि	डॉ० रामचन्द्र पांडेय
प्राकृत	डॉ० रामचन्द्र पांडेय
बंगला	डॉ० इन्द्रनाथ चौधुरी
भाषाविज्ञान	डॉ० भोलानाथ तिवारी
मराठी	डॉ० एम० ए० करन्दिकर
मलयालम	डॉ० ओ० एम० अनुजन
संस्कृत	डॉ० त्र्यं० म० माइनकर
सिंधी	डॉ० एम० के० जेतली
हिंदी	डॉ० निर्मला जैन

लेखन

असमीया	डॉ० रमानाथ त्रिपाठी
अपभ्रंश	डॉ० हरिवंश कोचर
उड़िया	डॉ० शिवप्रिया महापात्र
उर्दू	डॉ० सत्यपाल बेदार
	डॉ० रामदास नादार
	डॉ० राणा प्रताप सिंह गन्नौरी
कन्नड़	प्रो० एन० नागप्पा
	डॉ० दक्षिणमूर्ति
	डॉ० कृष्णमूर्ति
कश्मीरी	डॉ० जानकीनाथ मान
काव्यशास्त्र	डॉ० सत्यदेव चौधरी
	डॉ० कृष्णबल
	डॉ० प्रतिमा कृष्णबल
गुजराती	डॉ० सुरेश त्रिवेदी
	डॉ० श्रीराम नागर
	डॉ० रणधीर उपाध्याय
	डॉ० महेन्द्र दवे
तमिल	प्रो० राजगोपालन
	डॉ० जे० पार्थसारथी
	डॉ० के० ए० जमुना
तेलुगु	डॉ० पांडुरंग राव
	डॉ० सूर्यनारायण
	डॉ० हनुमच्छास्त्री अयाचित
	डॉ० भीमसेन निर्मल
	डॉ० जे० लक्ष्मी रेड्डी
पंजाबी	डॉ० महीपसिंह
	डॉ० ओम्प्रकाश शास्त्री
	डॉ० नरेन्द्र मोहन
	डॉ० ओम्प्रकाश शर्मा
	डॉ० रामप्रकाश
	डॉ० तिलकराज बढेरा
पालि	डॉ० रामसागर त्रिपाठी
प्राकृत	डॉ० रामसागर त्रिपाठी
बंगला	डॉ० इन्द्रनाथ चौधुरी
	डॉ० निरंजन चक्रवर्ती
	डॉ० सत्येन्द्र तनेजा
	डॉ० रामेश्वर मिश्र
भाषाविज्ञान	डॉ० भोलानाथ तिवारी

मराठी	डॉ० शांतिस्वरूप गुप्त
	डॉ० मनोहर काले
	डॉ० लक्ष्मीनारायण भारद्वाज
	कु० सुरेखा धोत्रेत्तर
मलयालम	प्रो० विश्वनाथ अय्यर
	डॉ० के० भास्करन नायर
	डॉ० ओ० एम्० अनुजन
	श्री नीलकठन नबूतिरी
संस्कृत	प्रो० राममूर्ति शर्मा
	डॉ० व्रजमोहन चतुर्वेदी
	डॉ० सत्यदेव चौधरी
	श्री विशालप्रसाद शर्मा
सिंधी	डॉ० एम० के० जेतली
हिंदी	डॉ० सत्यदेव चौधरी
	डॉ० रामदत्त भारद्वाज (स्व०)
	डॉ० जगदीश कुमार
	डॉ० हर गुलाल
	डॉ० ओम्प्रकाश सिंहल

भारतीय
साहित्य-कोश

अकीयानाट (अ० पारि०)

असमीया ही नही अपितु किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा मे सबसे पहले श्री शकरदेव (दे०) ने नाटको का प्रवर्तन किया था। इन्होने असम के बाहर के प्रदेशो मे रामलीला, यात्रा आदि का अभिनय देखकर उन्हे प्रचार के लिए अधिक प्रभावशाली समझा था। दूसरी ओर असम प्रदेश मे 'ओजापाली' (दे०) का अभिनय होता ही था। इसी को सस्कृत-नाटको के अनुरूप परिमार्जित कर इन्होने अकीयानाट लिखे। अकीयानाटो की ये विशेषताएँ है—(1) सूत्रधार की प्रधानता, (2) काव्यात्मक गीत-श्लोक और पयार छदो का प्रयोग, (3) व्रजावली अथवा ब्रजबुलि भाषा का प्रयोग, और (4) लयात्मक गद्य का व्यवहार। सूत्रधार का प्रयोग सस्कृत नाटको जैसा ही है, किंतु इन्होने दर्शको के अनुरूप कुछ परिवर्तन किये है। यहाँ सूत्रधार गायक, नर्तक, परिस्थितियो का व्याख्याता और अभिनय सचालय भी होता है। वह दर्शक और पात्रो का मध्यस्थ होता है। आधुनिक नाट्यकार मचीय निर्देशो द्वारा जो कार्य करता है, वह सूत्रधार स्वय करता है। अकीयानाट मे तीन प्रकार के गीतो का प्रयोग होता है (1) भक्तिप्रधान गभीर भटिमा (दे०) गीत (2) कथा के अगीभूत राग-ताल युक्त अनुभूतिशील गीत, (3) वर्णनात्मक पयार छद। शकरदेव ने ये अकीयानाट लिखे थे—'पत्नीप्रसाद' (दे०), 'कालियदमन', 'केलिगोपाल', 'रुक्मिणी हरण', 'पारिजात-हरण नाट' (दे०) और 'राम विजय' नाट (दे०)। इनके शिष्य माधवदेव (दे०) ने भी अकीयानाट लिखे थे।

अग (प्रा० कृ०)

जैन धर्म के वेद स्थानीय सर्वाधिक प्रामाणिक आगम (दे० जैन आगम) ग्रथ 'अग' कहलाते हैं। इनको द्वादशाग और गणिपिटक के नाम से भी अभिहित किया जाता है। इनकी भाषा अर्धमागधी, आर्ष या प्राचीन प्राकृत मानी जाती है। यह महावीर (दे०)-वाणी है और सुधर्मा प्रभृति गणधर (दे०)-प्रणीत मानी जाती है। इनकी सख्या 12 है जिसमे 14 पर्वो के विच्छिन्न भाग से निर्मित दिट्ठिवाद भी सम्मिलित है किंतु इसकी प्रामाणिकता सदिग्ध है। इन अगो मे गद्य, पद्य और मिश्रित सभी शैलियाँ प्रयुक्त हुई है। गद्य की अपेक्षा पद्य मे कलात्मकता अधिक पाई जाती है। 12 अग ये हैं—(1) 'आयारग' (आचाराग) इसके तीन भाग है—प्रथम श्रुतस्कध मे जैन साधुओ के लिए कठोर नियम बतलाये गये हैं। दूसरे भाग चूल (परिशिष्ट) के प्रथम दो भागो मे भिक्षाटन इत्यादि के नियम है और तीसरे भाग मे महावीर स्वामी की जीवनचर्या है। (2) 'सूयगडग' (सूत्रकृताग) यह सिद्धात निरूपण परक अग है। इसमे विभिन्न पाखडियो और नास्तिको के विभिन्न वादो का खडन किया गया है और धर्म मार्ग मे आनेवाले विभिन्न विघ्नो का निरूपण कर उनसे दूर रहने का उपदेश दिया गया है। (3) 'ठाणाग' (स्थानाग) और (4) 'समवायाग' इन दोनो अगो मे सख्या के आधार पर उपदेश दिये गये हैं—ठणाग मे 1 से 10 तक सख्याएँ है और समवायाग मे सख्या बहुत अधिक बढ जाती है। (5) 'भगवती वियाह-पन्नहि' (व्याख्या प्रज्ञप्ति) कही कही इसे केवल भगवती नाम से अभिहित किया जाता है। कुछ तो प्रश्नोत्तर रूप मे और कुछ प्रवचन (इतिहास-सवाद) के रूप मे लिखा हुआ यह ग्रथ सिद्धात प्रतिपादन, महावीर स्वामी की जीवनचर्या इतिहास, पुराण, कथा और देश वर्णन इत्यादि की दृष्टि से जैन अगो मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और इसमे कवित्व भी पर्याप्त मात्रा मे है। (6) 'नया धम्म कहाओ' (ज्ञात धर्मकथा) इसमे सभी प्रकार की छोटी-बडी, कथाओ, यात्रा-विवरणो, काल्पनिक कथाओ के माध्यम से सयम, तप इत्यादि का उपदेश दिया गया है। (7) 'उपासक दसाओ' (उपासक दशा)। (8) 'अतगडदसाओ' (अत-कृद्दशा) और (9) 'अणुत्तरोववायदसाओ (अनुत्तरोप-

पातिक दशा) : इन तीन ग्रंथों में जैन धर्मानुयायियों की कथाएँ है। (10) 'पण्हवागरणाङ' (प्रश्न व्याकरण): इसमें प्रश्नोत्तर न होकर 'आश्रव' (दे०) और 'संवर' (दे०) द्वारों का वर्णन किया गया है। पहले खंड में 'आश्रयद्वार' है और दूसरे में 5 'संवत् द्वार'। (11) 'विवागसुय' (विपाकश्रुत) : इसमें कर्म-विपाक का वर्णन है। (12) 'दिट्ठिवाद' (दृष्टि-वाद) : इसमें विभिन्न दृष्टियों से मतमतांतर का वर्णन है।

अंगदम् *(त० पारि०)*

यह एक काव्य-विधा है। इसके दो भेद हैं—एक जिनमें प्रत्यक्ष निंदा-वचन हों और दूसरा जिसमें निंदा ध्वनित होती हो। इस काव्य का वर्ण्य विषय ही निंदा है जो प्रकट या प्रच्छन्न रहती है। यह आधुनिक 'पैरोडी' या अन्य इसी प्रकार की हास्य-व्यंग्य रचना के समकक्ष काव्य-विधा है। यहाँ चरणों की संख्या अनिर्धारित रहती है। छंदःशास्त्र में इसका लक्षण तो दिया गया है परंतु कोई अच्छा उदाहरण प्राप्त नहीं होता।

अंचल, रामेश्वर शुक्ल *(हि० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

इनका जन्म-स्थान किशनपुर, जिला फ़तेहपुर (उ० प्र०) है। 1942 में एम० ए० करके 1945 में इन्होंने अध्यापन आरंभ किया। आजकल ये महाकौशल कला महाविद्यालय के प्राचार्य और जबलपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में वरिष्ठ प्राध्यापक हैं।

इन्होंने निबंध, कहानी और उपन्यास-साहित्य का सृजन भी किया है परंतु इनकी ख्याति का मुख्य आधार कविता है। इनकी दृष्टि विकासशील रही है। छायावादी (दे० छायावाद) रस-रोमांस के प्रभाव में आकर इन्होंने 'मधुलिका' और 'अपराजिता' का प्रणयन किया। 'किरण-बेला' और 'करील' की भावभूमि प्रगतिशील है। 'विराम-चिह्न' से ये 'अरविंद-दर्शन' की ओर उन्मुख हुए हैं। 'प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी' और 'अनुपूर्वा' इनके नये कविता-संग्रह हैं। भाव के धरातल पर इनकी कविता का केंद्रीय बिंदु प्रेम और सौंदर्य है। इनका प्रेम-निवेदन उन्मुक्त और सौंदर्य-चित्रण मांसल है। शिल्प की दृष्टि से ये उत्तर-छायावादी गीतकारों के निकट है।

अंडेरो गंडेरो टीचरी टेन *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

यह बाल नाटक, नृत्य और गीति-नाट्य है। एक बालक जबरदस्ती अंक और पहाड़े याद करने से तंग आ जाता है। वह स्वप्न देखता है और सारा नाटक उसके स्वप्न के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक के सारे अंगों—अभिनेयता, गति, दृश्यक्षमता, गीत, वेशभूषा, संवाद द्वारा निरूपित पात्र की विशेषता—इत्यादि का मधुर मेल है। बालक पहाड़े याद करते-करते सो जाता है, तब तीन के प्रतिनिधि-रूप में ब्रह्मा, विष्णु, महेश आते हैं, छह के प्रतिनिधि रूप में छह ऋतुएँ आती हैं। गुजराती के नाट्य-साहित्य में इस नाटक का विशिष्ट स्थान है।

अंतरपट *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1960 ई०]

'अंतरपट' गुजराती के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानीकार, आलोचक एवं शिक्षाशास्त्री श्री स्नेहरश्मि (दे०) का गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित उपन्यास है। इसे अर्ध आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है। इसमें हरिजन नायक और नायिका के माध्यम से हरिजनों की छुआछूत की समस्या के साथ अंचल का वातावरण और उसकी समस्याओं का विस्तृत निरूपण किया गया है। नायक तथा नायिका के स्थूल एवं सूक्ष्म प्रणय का चित्रण उन्होंने यथार्थ की भूमिका पर किया है। उपन्यास का कारुणिक अंत भी इसी अर्थ की परिपुष्टि करता है।

'अंतरपट' की रचना लेखक ने आधुनिक शैली में की है। उपन्यास का अधिकांश भाग आत्मकथात्मक शैली में है। अंतिम भाग में लेखक ने डायरी-शैली का आश्रय लिया है।

अंतरीक्षम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1943 ई०]

'अंतरीक्षम्' प्रसिद्ध समालोचक और शिक्षाविद् प्रो० जोज़फ़ मुंटश्शेरि (दे०) का समालोचना-ग्रंथ है। इस में मलयाळम के तीन यशस्वी आधुनिक कवियों (दे० कवित्रयम्) द्वारा तीन समानधर्मी कथावस्तुओं के आधार पर लिखे गये खंडकाव्यों का तुलनात्मक मूल्यांकन किया गया है। इस पुस्तक में समीक्षाहीन खंडकाव्य कुमारन् आशान् (दे०) की 'करुणा' दे०), वळ्ळत्तोळ् (दे०) की 'मग्द-लन मरियम्' (दे०) और उळ्ळूर् की 'पिंगळा' (दे०) हैं। तीनों के इतिवृत्त प्रख्यात हैं और तीनों में पश्चातापग्रस्त वेश्याओं के मन परिवर्तन और सद्गति की कथा चित्रित है। प्रो० मुंटश्शेरि अपने ग्रंथ में विस्तार से चर्चा करते हैं कि इन तीनों कवियों ने अपने-अपने संदर्भों को किस कुशलता के साथ निभाया है। उन्होंने प्रतिपादन किया है कि आशान् का काव्य इन तीनों में श्रेष्ठ है।

प्रख्यात काव्यो की तुलनात्मक समालोचना के क्षत्र मे 'अतरीक्षम्' सर्वप्रथम गभीर प्रयास था और इसी लेखक की अन्य कृति मार्टोलि' (दे०) ही इस ग्रथ के समकक्ष मानी जा सकती है। समालोचना म पश्चिमी और भारतीय मानदडो के समुचित समन्वय की दृष्टि से भी इस ग्रथ का बडा महत्व है।

अतर्जनम्, ललिताबिका *(मल० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

जन्म स्थान—कोट्टारक्करा।

'अतर्जनम्' का मतलब है केरलीय ब्राह्मण जाति की महिला। केरलीय ब्राह्मणो की पारिवारिक रुढि-रीतियो के बधन अत्यत जटिल और अहितकारी थे। बीसवी शती के सुशिक्षित नपूतिरि लोगो ने इसमे क्राति की। श्रीमती अतर्जनम सुशिक्षित पिता की लाडली बेटी थी। साहित्यिक, राजनीतिक आदि क्षत्रो मे प्रसिद्ध बधुजनो से उन्हे यथोचित प्रेरणा मिली। रूढि के कारण ये उच्च शिक्षा तो न पा सकी पर स्वाध्याय के द्वारा इन्होने पर्याप्त ज्ञानार्जन कर लिया। सयोग से अतर्जनम के पति भी साहित्य प्रेमी एव उदार हैं। अत गृहस्थी के व्यस्त जीवन मे अवकाश की घडियो का सदुपयोग कर वे कविता, कहानी आदि प्रस्तुत करती रही है। अब तक इनके नौ कहानी सग्रह, छह कविता-सकलन, एक लघु उपन्यास और दो बाल-साहित्य-ग्रथ निकल चुके हैं।

पद्रह वर्ष की अवस्था मे इनकी प्रथम कहानी 'पार्थसारथी' प्रकाशित हुई जिसकी पृष्ठभूमि मे राजनीतिक आदोलन का प्रसार था। आगे इन्होने नपूतिरि परिवारो की चहारदीवारी के अदर के ससार को—जिसमे कट्टर रूढियो का बोलबाला था, बहनो के आँसू और आहे थी—अपनी कहानियो का क्षेत्र बनाया। ये स्त्री सहज करुणा, सहानुभूति और आत्मीयता से प्रत्यक्ष चित्र प्रस्तुत कर सकी हैं। अतएव इस क्षेत्र की य ही अनन्य कहानी लेखिका हो गई है। 'मूटुपटतिल्','मनुष्यपुत्रि' आदि इसके उदाहरण हैं। अपने चारो ओर के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक वातावरण से प्रेरणा ग्रहण करके भी ये कहानियाँ लिखती आई हैं। इनका स्वर मानवता की प्रतिष्ठा के प्रति समर्पित रहा है। इनकी गद्य-शैली मे सहज आत्मीयता एव भाव प्रवणता है जो स्त्रीत्व की कोमलता से समन्वित होकर मन पर छाप छोडे बिना नही रहती।

अदमान कैदी *(त० कृ०)* [रचना-काल—1945 ई०]

यह तमिल के आरभिक प्रसिद्ध सामाजिक नाटको म से है। इसके रचयिता कु० चा० कृष्णमूर्ति हैं। कृष्णमूर्ति सफल नाटककार होने के साथ साथ कुशल अभिनेता भी थे। उनका यह नाटक पाठ्य भी है और अभिनेय भी। इस नाटक मे मुख्यतः अनमेल विवाह की समस्या का और समाज सुधारको के कष्टो का अकन किया गया है। नाटककार ने बाल विवाह का विरोध करत हुए प्रबल शब्दो मे प्रेम विवाह एव नारी के पुनर्विवाह का समर्थन किया है। 1952 ई० मे तमिल वळर्च्चि कषगम (तमिल विकास सभा) ने इस तमिल के श्रेष्ठ सामाजिक नाटक का पुरस्कार प्रदान किया। तमिल सगीत नाटक अकादमी ने इसके लेखक को अपने समय का श्रेष्ठ नाटककार घोषित किया। इस नाटक को चलचित्र के रूप मे भी प्रस्तुत किया जा चुका है। कु० चा० कृष्णमूर्ति ने समाज-सुधार-सबधी इस नाटक की रचना द्वारा नाट्य सभाओ को सामाजिक नाटको के विकास की दिशा मे प्रेरित किया।

अदाजे *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1949 ई०]

यह एक समीक्षा ग्रथ है। इसके रचयिता महान् साहित्यकार रघुपतिसहाय फिराक' गोरखपुरी (दे०) है। फिराक साहब अँग्रेजी साहित्य के विद्वान होने के अतिरिक्त उर्दू के एक महान् कवि और आलोचक हैं।

इस पुस्तक मे उन्होने कुछ सुप्रसिद्ध कवियो, लेखको तथा उनके काव्य और साहित्य की समीक्षा की है। इस पुस्तक की रचना का एकमात्र उद्देश्य स्वय लेखक के शब्दो मे यह है कि 'नयी पीढी को पुरानी साहित्य-निधि से अवगत कराया जाए ताकि हमारे समय के नवयुवक नये साहित्य तथा नयी काव्य-धाराओ मे बहकर पुराने साहित्य से अनभिज्ञ न रह जायें।' इस पुस्तक के द्वारा लेखक प्राचीन कवियो के काव्य मे विद्यमान सौंदर्य रस तथा आनद के समुचित प्रभाव को दूसरो तक पहुँचाना चाहता है और वैसी आनदानुभूति पाठको को भी कराना चाहता है जैसी स्वय उसने की है।

अपनी आलोचना दृष्टि को लेखक ने 'अनुमान' की सज्ञा दी है और इसी आधार पर इस पुस्तक का नाम 'अदाजे' रखा गया है। यह पुस्तक उर्दू साहित्य का बहुमूल्य ग्रथ है।

अदादि *(त० पारि०)*

तमिल मे प्राप्त 96 काव्यविधाओ मे एक है 'अदादि'। जहाँ किसी काव्य मे किसी पद के अतिम शब्द या शब्दाश की आवृत्ति दूसरे पद के आरभ मे होती है

उसे 'अंदादि' कहते हैं। इसे 'चोल तोडर निर्लै' भी कहा जाता है। जब एक ही पद के प्रथम चरण के अंतिम शब्द या शब्दांश की आवृत्ति दूसरे चरण के आरंभ में होती है तब उसे 'अंदादित्तोडै' कहते हैं। अंदादि शैली की यह विशेषता कलंबकम् (दे०), इरट्टैमणिमालै, मुम्मणिक्कोवै, नान्मणिमालै आदि अन्य काव्यविधाओं में भी प्राप्त होती है। अंदादि शैली का जन्म ईसा की दूसरी शती के आसपास हुआ था। पुरनानूरु (दे०), अकनानूरु (दे०), शिरुपाणाट्रुप्पडै, आदि प्राचीन कृतियों में इस शैली का प्रयोग हुआ है। इस शैली में रचित कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—कैलैपादि कासत्तिपादि अंदादि, शिवपेरुमान् तिरुवंदादि, अर्पुदतिरुवंदादि (दे०), पोन्वण्णत्तंदादि, मुदल, इरंडाम्, मून्राम तिरुवंदादि, तिरुनूट्रंदादि, तिरुत्तोंडर तिरुवंदादि, तिरुक्करुवै पदिट्रुप्पत्तु अंदादि आदि। अंदादि शैली के अन्य भेद हैं—वेण्बा अंदादि, कलित्तुरै अंदादि, पदिट्रुप्पत्तु अंदादि आदि।

अंधगळिर अंधकार *(उ० कृ०)*

यदि रवि पटनायक की श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों में हमारे आधुनिक जीवन की शून्यता एवं अर्थहीनता की ओर इंगित किया गया है। ये कहानियाँ लेखक द्वारा किए गए बहुविध भाषिक प्रयोगों की भी साक्षी हैं। इनमें हमारी सामाजिक वास्तविकता का विद्वत्तापूर्ण और तीखा अनुशीलन है जो अपनी सच्चाई के कारण रुक्षता की सीमा तक पहुँच गया है।

अंधा युग *(हिं० कृ०)*

धर्मवीर भारती (दे०) के इस काव्य-नाटक में काव्य और नाटक दोनों की शक्तियों का उत्कर्ष मिलता है। 'महाभारत' (दे०) की युद्ध-कथा का आधार लेकर कवि ने अपने युग की मूल्यांधता का सशक्त प्रतिपादन किया है। विशेषता यह है कि इस युग का प्रश्न द्वापर के सशक्त वातावरण मे उभारा गया है। प्रतिपाद्य के संबंध मे एक आपत्ति बार-बार उठाई गयी है और वह यह कि लेखक अंधेपन में कुछ ज्यादा उलझ गया है और फलतः कृष्ण का चरित्र भी विकृत हो गया है। वस्तुतः इस आपत्ति के मूल में लेखक की वह प्रक्रियागत अनास्था है जिसमें से गुजर कर वह ज्योति की परिणति पर पहुँचना चाहता है। कृष्ण को अंधों ने बुरा-भला कहा है जरूर, परंतु अंत में उनके महत्व को भी इन अंधों ने देख लिया है अपनी आँखों से। इतना ही नहीं, उनके अंतिम शब्द हैं—'जीवित और सक्रिय हो उठूंगा मैं बार-बार।' अंधे युग में आस्था की खोज का यह प्रयत्न बर्डेव आदि अस्तित्ववादियों से प्रभावित है। व्यंजक प्रतीक-विधान, व्यावहारिक भाषा, भावसघन संवाद और नये नाटकीय प्रयोगों के कारण यह रचना हिंदी-नवलेखन की एक विशिष्ट उपलब्धि है।

अँधेरे बंद कमरे *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1961 ई०]

यह मोहन राकेश (दे०) का पहला और अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। प्रस्तुत कृति में लेखक ने मधुसूदन, हरबंस, नीलिमा (दे०), शुक्ला आदि पात्रों के माध्यम से दिल्ली के आधुनिक जीवन को भारतीय नागरिक जीवन के प्रतीक-रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ दिल्ली के उच्च एवं निम्नमध्यवर्गीय जीवन को पृष्ठभूमि के रूप में अपनाते हुए कॉफ़ी हाउस तथा ला बोहीम में बैठकर सिगरेट के धुएँ एवं कॉफ़ी की चुस्कियों के बीच घुटन और निराशा से संत्रस्त रहनेवाले मध्यवर्गीय कुंठित व्यक्तियों के उस अंतर्मन को रूपायित किया गया है जो ट्रेंक्विलाइज़र्स, नींद की गोलियों तथा रात-भर शराब की बोतलों के सेवन के बावजूद अनिश्चय, बेबसी तथा अकेलेपन की भावना से निस्तार पाने में सर्वथा असमर्थ हैं। कॉफ़ी हाउस में बैठकर 'क्षण की अनुभूति' तथा 'अनुभूति के राज' पर लंबी बहस तथा हर किसी की निंदा करनेवाले असफल लेखकों, पत्रकारों, चित्रकारों एवं कलाकारों द्वारा काल्पनिक सुख की आशा में चारों ओर दौड़धूप करने के बावजूद मानसिक अशांति से छुटकारा पाने में सर्वथा असमर्थ मध्यवर्गीय व्यक्ति के सामाजिक संघर्ष तथा मानसिक अंतर्द्वंद्व और खोखली हँसी, बनावटी आँसू, औपचारिकता के बाँध पर टिकी ज़िंदगी के प्रत्यंकन के साथ-साथ स्वातंत्र्योत्तर भारत की सांस्कृतिक गतिविधियों, राजनीतिक दाँव-पेचों एवं पारिवारिक जीवन के अँधेरे-बंद कमरों को निर्ममतापूर्वक उजागर करने मे भी उपन्यासकार को पूर्ण सफलता मिली है। उपन्यास का कथानक अत्यंत शिथिल है और उसका प्रवाह बहुत धीमा है। प्रमुख पात्रों के विदेश-यात्रा-विषयक प्रकरण से कथानक गतिमान अवश्य हुआ है; किंतु यह ऐसा प्रकरण है जिसे छोड़ देने पर भी औपन्यासिक कथ्य को कोई विशेष क्षति नहीं पहुँचती। हरबंस तथा मधुसूदन का विषम परिस्थितियों के समक्ष घुटने टेकने तथा देश के साथ विश्वासघात करने के स्थान पर निरंतर संघर्ष के लिए तत्पर रहने से स्वाभिमानी भारतीय नागरिकों

का चित्र उजागर होता है। समग्रत स्वतत्र भारत के नागरिक जीवन को रूपायित करनेवाले उपन्यासो मे इस कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अबपालि *(प्रा० पा०)*

यह वैशाली नगर की अनिद्य सुदरी वेश्या थी। यह एक माली को आम के पेड के नीचे पडी मिली थी, इसीलिए इसका नाम अबपालि पडा था। बडी होकर जब यह अभूतपूर्व सुदरी बनी तब राजपुत्रो ने परस्पर सघर्ष मिटाने के लिए इसे रूपाजीवा जनपद-कल्याणी बनाया। यह एक रात के लिए 50 मुद्राएँ लेती थी। एक बार भगवान् के उपदेशो से प्रभावित होकर उन्हे शिष्यो सहित भोजन के लिए आमन्त्रित कर इसने अपना प्रमोद आराम प्रदान कर दिया। अपने पुत्र विमल कौडिन्य के प्रव्रजित होने पर स्वय प्रव्रज्या ले ली। थेरीगाथा' (दे०) मे इसने वृद्धावस्थाजन्य सौदर्य-परिवर्तन का बडा ही भावुक वर्णन किया है।

अबोपदेशम् *(मल० कृ०)*

इसके रचयिता मावेलिक्करा पुत्तन् कोट्टरत्तिल उदयवर्मा तपुरान है। इसका रचना काल बीसवी शती है।

अकनानूरु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से ईसा की दूसरी शती तक]

अष्ट पद्य सग्रहो मे 'अकनानूरु का बहुत महत्त्व है। तत्कालीन अकम् काव्यो मे सर्वाधिक विस्तृत होने के कारण इसे 'नेडुत्तोगै' कहा गया। इसमे विभिन्न कवियो द्वारा रचित 400 पद हैं जो अहवल छद मे रचित है। रचना के आरभ मे मगलाचरण के पद हैं जिसके रचयिता पेरुदेवनार हैं। सपूर्ण कृति कळिट्रियानैनिरै, मणिमिडै पवळम् और नित्तिलक्कोवै नामक तीन भागो मे विभाजित है जिनमे क्रमश 120, 180 और 100 पद हैं। ये पद 120 स लेकर 37 पक्तियो तक हैं। इसमें पाँचो भूभागो और उनके निवासियो के जीवन का विस्तृत वर्णन है। कुरिंजि (दे०)-सबधी पदो मे पूर्वराग, मुल्लै (दे०) नेयपल, (दे०) और पालै (दे०) सबधी पदो मे प्रेमी-प्रेमिका की विरहानुभूतियो और मरुदम (दे०)-सबधी पदो म सुखी वैवाहिक जीवन तथा उसमे आनेवाली बाधाओ का वर्णन है। कवियो ने विभिन्न भूभागो का और विभिन्न मनोभावो का वर्णन इतने सुदर, सजीव और मर्मस्पर्शी ढग से किया है कि हमे वे वर्णन कवि के व्यक्तिगत जीवन से सबधित प्रतीत होते हैं। पदो मे चित्रात्मकता है। उपमा अलकार का तथा साकेतिक शब्दावली का प्रयोग सौष्ठव दर्शनीय है। इसम प्राचीन तमिल लोगो की सभ्यता, सस्कृति, प्रथाओ का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। कुछ पदो मे द्रविडो के मौलिक विवाह-सस्कार का वर्णन है। अकनानूरु मे तत्कालीन प्रसिद्ध राजाओ और सामतो के शासनादि से सबधित पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती हैं। यह सामग्री तत्कालीन तमिल समाज का प्रामाणिक इतिहास तैयार करने मे सहायक सिद्ध होती है।

अकबर *(मल० कृ०)*

अकबर की यह जीवनी केरलवर्मा वलिय कोयितपुरान् (दे०) की रचना हैं। रचना-काल 1842 और 1915 ई० के बीच मे माना जाता है। अँग्रेज़ी से इसका अनुवाद किया गया है। कहा जाता है, इस ग्रथ को पूरा लिखने मे लेखक को बारह वर्ष लगे। फलत शैलीगत वैविध्य और वैभिन्न्य इसमे स्पष्ट परिलक्षित होता है।

'अकबर' इलाहाबादी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1846 ई०, मृत्यु 1921 ई०]

जन्म स्थान—मौज़ा बारा (जिला इलाहाबाद), नाम—सैयद अकबर हुसैन, उपनाम—'अकबर', लकब—लिसान-उल-अस्र (अपने युग का भाषा-मर्मज्ञ)। इन्होने साधारण क्लर्क के पद से उन्नति करते-करते न्यायाधीश का सम्मान प्राप्त किया था। तत्कालीन अँग्रेजी शासन ने इन्हे 'खान बहादुर' की उपाधि प्रदान की थी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय का 'फ़ेलो' भी नियुक्त किया था। ये हास्य और व्यग्य के क्षेत्र मे उर्दू साहित्य के अन्यतम कवि हैं। 'कुल्लियात ए-अकबर' (दे०) के नाम से इनका काव्य सकलन चार भागो मे प्रकाशित हो चुका है। हास्य-एव व्यग्य-प्रधान शैली मे कल्पना और बुद्धि का अपूर्व सामजस्य इनके काव्य की विशेषता है। इनका काव्य नैतिकता प्रधान होते हुए भी इतना मनोमुग्धकारी है कि पाठक चमत्कृत हुए बिना नही रहता। तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय परिस्थितियो का व्यग्यात्मक चित्रण इनके काव्य मे प्रचुर मात्रा मे हुआ है। ये प्राचीन सभ्यता एव सस्कृति के उपासक थे। अत पाश्चात्य सभ्यता के खोखलेपन की इन्होने खुलकर खिल्ली उडाई है, यहाँ तक कि सर सैयद अहमद खाँ के आदोलन का भी इन्होने यथाशक्ति विरोध किया था। ये

कला को जीवन के लिए उपयोगी मानने के पक्ष में थे, अतः इनका अपना काव्य भी आद्योपांत सोद्देश्य ही है।

अक्करॅच्चीमॅयिल् *(त० कृ०)*

इस शीर्षक का अर्थ है 'उस किनारे की भूमि में' और यह साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत यात्रा-संस्मरण-ग्रंथ है। लेखक 'चोमु' आकाशवाणी के मद्रास केंद्र के प्रमुख अधिकारी है तथा कवि, उपन्यासकार एवं निबंधकार के रूप में प्रसिद्ध हैं।

प्रस्तुत कृति (1969 ई० में तीसरा संस्करण) लेखक की छह महीनों की विदेश-यात्रा का वर्णन करती है। 'इंपीरियल रिलेशंस ट्रस्ट' नामक संस्था के प्रोग्राम के अंतर्गत पुस्तक-रचयिता ने इंग्लैंड, स्काड्लंड, आयरलैंड, फ्रांस, आस्ट्रिया, जर्मनी इत्यादि ग्यारह देशों का भ्रमण करते हुए वहाँ की सांस्कृतिक संस्थाओं से संबंध स्थापित किया तथा रेडियो-भाषण आदि दिये। लेखक ने इस यात्रा के अपने अनुभवों को चुटकीली शैली में प्रस्तुत किया है और अन्य देशों की संस्कृति की विशिष्टताओं को तमिल-भाषियों के रहन-सहन की पृष्ठभूमि में रखकर अपने वर्णनों को और रोचक बना दिया है।

अक्का *(ते० पा०)*

यह महाकवि तेनालि रामकृष्ण (दे०) (1500-1570 ई०) द्वारा रचित प्रौढ़ प्रबंधकाव्य 'पांडुरंग महात्म्यमु' (दे०) के निगमशर्मोपाख्यानमु की एक प्रधान पात्र है। 'पांडुरंग महात्म्यमु' अनेक भक्तों एवं तीर्थ-स्थानों की महिमा का वर्णन करनेवाला उत्तम काव्य है।

'अक्का' का अर्थ है बड़ी बहिन। यहाँ अक्का ब्राह्मण होकर भी नाना (दे०) व्यसनों में पड़कर स्वेच्छा-चार करनेवाले निगम शर्मा की बड़ी बहिन है। कवि ने उसका कोई नाम नहीं दिया है। अतः वह अपने प्रभावोत्पादक व्यक्तित्व के कारण 'अक्का' नाम से विख्यात हुई है और घर-घर से उसका स्मरण किया जाता है।

'अक्का' अपने छोटे भाई के दुराचरण से खिन्न होकर उसे उस मार्ग से विरत करने के लिएपति एवं संतान के साथ मायके आती है, दुःखी माता-पिता को सांत्वना देती है, घर की धन-संपत्ति को नष्ट होने से बचाने के लिए उचित प्रबंध करती है, पशु, शिशु, नौकर, चाकर आदि को संतुष्ट करती है, धूल से लिपटी हुई घर की वस्तुओं को सजाती है और भाई की पत्नी के दुःख को दूर करने के लिए तथा भाई को उचित मार्ग पर लाने के लिए बड़ी चतुराई एवं सूझबूझ से काम लेती है। भाई को वह अनेक प्रकार के दृष्टांत देकर, वंश की प्रतिष्ठा, सदाचरण, सामाजिक प्रतिष्ठा, आत्मोन्नति, काम-प्रवृत्ति का सच्चा स्वरूप आदि अनेक विषयों के संबंध में अत्यंत सद्भावना एवं सौहार्द के साथ समझाकर अनुभव करती है कि वह अपने आपको सुधारे और धर्मपत्नी, पिता एवं माता के प्रति अपना कर्तव्य निभाये। 'अक्का' का यह प्रयास सफल नहीं हुआ किंतु आंध्र के प्रत्येक सहृदय के हृदय में उसके लिए सम्माननीय स्थान बन गया है।

अक्कित्तम् *(मल० ले०)* [*जन्म—1926 ई०*]

इनका पूरा नाम है अक्कित्तम् नंपूतिरि। इनका जन्म कुमरनल्लूर् नामक गाँव में हुआ था। प्रारंभ में इन्होंने परंपरागत वेदाध्ययन किया। बाद में संस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। बीच में इन्होंने संगीत एवं ज्योतिष का सामान्य ज्ञान भी प्राप्त किया। कथकलि का इन्हें खास शौक रहा है। शारीरिक अस्वस्थता के कारण कालिजीय शिक्षा थोड़े दिनों के बाद स्थगित हो गयी थी।

अक्कित्तम् की कारयित्री प्रतिभा बड़ी सशक्त एवं सक्रिय रही है। इनकी 'वीरवादम्', 'मनोरथम्' आदि प्रारंभिक रचनाओं का संग्रह अब 'अरंङेट्टम्' नाम से नये सिरे से प्रकाशित है। इनके 22 ग्रंथ संकलित हैं जिनमें प्रसिद्ध हैं—'मधुविधु', 'पंचवर्णक्किळिकळ', 'इरुपताम्-नूट्टांटिटे इतिहासम्' (दे०) और 'ओरु कुला मुंतिरिङ्ङा'। इन्होंने कुछ बालोपयोगी रचनाएँ भी लिखी हैं। अब ये कोषिक्कोड के आकाशवाणी केंद्र में साहित्यिक लेखन का कार्य कर रहे हैं।

सनातनी विचारों के लिए प्रसिद्ध नंपूतिरि परिवार में जन्मे श्री अक्कित्तम् के विचार अत्यंत प्रगतिशील रहे हैं। संसार की परिवर्तनशील युगचेतना से जो क्रांति मचती आई है उसका इतिहास इनकी 'इरुपताम्-नूट्टांटिटे इतिहासम्' (बीसवीं सदी का इतिहास) में वर्णित है। 'पंटत्ते मेशांति' (भूतपूर्व पुजारी) इनकी प्रसिद्ध एवं प्रगतिशील रचना है। इसमें यह दर्शाया गया है कि जहाँ पहले अभिजात समाज के श्रेष्ठ केंद्र मंदिर आदि थे वहाँ अब व्यापार-भवन और कारखाने ही उनकी जगह लेते हैं। अक्कित्तम् मलयाळम की नयी कविता के सशक्त समर्थकों एवं समीक्षकों में अन्यतम हैं। इन्होंने मलयाळम कविता के नये भाव, रूप, गीतितत्त्व, ताल, लय आदि की व्याख्या एवं समर्थन बराबर सशक्त रूप से किया है। ये कभी उथले नहीं रहे। इनके विचार एवं स्थापनाएँ गहरी विद्वत्ता के

प्रमाण है।

अक्तेयन् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

ओ० एम० अनुजम् (दे०) की चार सुदीर्घ कविताओं का संग्रह। इन कविताओं की विषय-वस्तु प्राचीन यूनानी साहित्य के पात्रों और यूनानी पुराण-पुरुषों की कथा है।

'अक्तेयन्' की कविताओं मे यूनानी कथाओं का विकास और पात्रों का चरित्र-चित्रण भारतीय वातावरण मे हुआ है। कुछ पात्रों मे भारतीय महाकाव्यों के पात्रों की छाया दर्शनीय है—यथा सूर्यपुत्र कर्ण और अपोलोनंदन 'अक्तेयन्' की समातर कथा आदि। यूनानी सभ्यता को भारतीय पृष्ठभूमि मे समझने के लिए यह काव्य-संग्रह अत्यधिक उपयोगी है और इस दृष्टि से मलयाळम मे इसका ऊँचा स्थान है।

अक्षरमाला *(क० पारि०)*

कन्नड मे कुछ ऐसे काव्य हैं जिनमे अकारादि क्रम से पद्यों की रचना हुई है। ऐसे काव्यों को 'अक्षर-माला' कहते है। इन काव्यों मे चमत्कार के अतिरिक्त कवि प्रतिभा भी प्रकट हुई है। रत्नत्रय (पप, पोन्न और रन्न) मे प्रसिद्ध पोन्न की 'जिनाक्षरमाला' इसका उदाहरण है। इसमे 39 पद्यों मे जिनकी स्तुति प्रस्तुत की गई है। सत्रहवी शती के कवि चिचकुपाध्याय की रचना 'अक्षर-मालिका सागत्य' भी इसी प्रकार का काव्य है। उसमे 103 पद्यों मे भगवान् रगनाथ की स्तुति की गयी है। कन्नड मे ऐसे काव्य और भी है।

अख्तरिस्तान *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1946 ई०]

किताब मजिल लाहौर द्वारा प्रकाशित यह कृति अख्तर शीरानी (दे०) का द्वितीय काव्य-सग्रह है। शृगार रस से परिपूर्ण इस कृति मे गजलो और गीतो की भरमार है। बडी नज्मे भी देखने मे आती हैं। प्रेम, यौवन, सौंदर्य, सगीत, नारी और प्रकृति-चित्रण इस कृति के मुख्य विवेच्य विषय हैं। 'सिलमा' के सौदर्य का अखड उपासक 'अख्तर' शीरानी इस कृति मे अपनी समस्त अतृप्त कुठाओ के साथ मार्मिक स्वर मे अपने शृगारिक मनोभावो की अभिव्यक्ति करता हुआ दिखाई देता है। इस दृष्टि से उसकी—'जमाल-ए-सिलमा', 'सिलमा' (नूरजहाँ के मजार पर), 'वक्त की कद्र' (बहार बीतने वाली है आ भी जा सिलमा), 'इतजार' (सुना है मेरी सिलमा रात को आएगी वादी मे), और 'सिलमा' आदि शीर्षक कविताएँ अत्यत भावुकतापूर्ण है। इन कविताओ के अतिरिक्त—'ओ देस से आनेवाले बता', 'गुजरी हुई रातें', 'जहाँ रेहाना रहती थी', 'एक हादसा', 'ईद का चाँद', 'प्यारी चली जाओगी क्या ?', 'दुनिया की बहारें', 'औरत' आदि शीर्षक कविताएँ भी पूर्णत. शृंगार रस मे डूबी हुई हैं। सगीतात्मकता इस काव्य-कृति की प्रमुख विशेषता है। नून मीम राशिद के अनुसार अख्तर शीरानी उर्दू का कीट्स है और इसी सदर्भ मे इस कृति को देखा जाना चाहिए। सगीत, नृत्य और उद्दाम मादकता का सचार इस कृति की प्राय प्रत्येक कविता मे हुआ है।

अख्तरुल ईमान *(उर्दू० ले०)*

समसामयिक कवियो मे अख्तरुल ईमान की शायरी का बडा महत्त्व है। इनकी शायरी मे जिंदगी की विविध अवस्थाओ का निरूपण हुआ है और इनकी कविता कही-कही आत्मकथा के निकट आ जाती है। यहाँ कवि के बचपन की झलक भी है, जवानी का रग-रूप भी। अख्तरुल ईमान बिजनौर के एक गाँव मे पैदा हुए, मुश्किलो मे बचपन बीता, शिक्षा के लिए इधर-उधर भटकते रहे, साहित्य-जगत् मे कदम रखा तो भी शोषित हुए—दूसरो के नाम से भी लिखना पडा। पर कभी स्वाभिमान, प्रेम और मानवता का दामन नही छोडा। जिंदगी की ऊँच-नीच के साथ ही समाज की कुरीतियो-कुव्यवस्था के भी सबल सकेत इनमे मिलते है। मौजूदा आर्थिक व्यवस्था पर तो इन्होने भरपूर चोटें की है। नज्मनिगार की हैसियत से इस दौर मे इनसे बेहतर कवि कम ही होगे। 'गरदाब', 'तारीक सितारा', 'आबजू', 'सबरग', 'यादें', 'बिनते लमहात' इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ है। 'यादें' (दे०) साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत कृति है।

अखाड़ा घरर बैठक *(उ० कृ०)*

'झकार' मासिक पत्रिका मे श्री कृष्ण प्रसाद बसु (दे०) का जात्रा (दे०)-साहित्य का आधुनिक इतिहास 'अखाडा घरर बैठक' के नाम से प्रकाशित हुआ था। यह इतिहास उडिया-गद्य का सशक्त रूप प्रस्तुत करता है। इनकी शैली उच्च कोटि की है। इसमे ग्राम्य एव शिष्ट भाषा का सुदर सम्मिश्रण मिलता है—वाक्यो मे आश्चर्यजनक सावलीलता एव अपूर्व वर्णन-क्षमता मिलती है। सूक्ष्म हास्य रस से ओतप्रोत इनकी गद्य शैली अत्यत सुखपाठ्य है।

अखिलन् *(त० ले०)* [जन्म— 1922 ई०]

अखिलन् का जन्म तिरुच्चि जिले में स्थित पेरुंगळूर में हुआ। इनका पूरा नाम पी० वी० अखिलांडम् है। अखिलन् को तमिल के साथ-साथ अँग्रेजी भाषा और साहित्य का भी अच्छा ज्ञान है। इन्होंने लगभग 30 कृतियों की रचना की जिनमें 'पावै विळक्कु' (दे०), 'पोन मलर्', 'पुदु वेळ्ळम्', 'वेंगैयिन् मैंदन' आदि (उपन्यास), 'निलविनिले' (कहानी-संग्रह), 'वाळ्विल इंदम' (नाटक), 'इळैंज्जवर्कु' (निबंध-संग्रह), 'तंग नगरम' (बाल साहित्य) आदि अधिक प्रसिद्ध है। इन्होंने 'आस्कर वाइल्ड' के उपन्यास 'सालोम' का 'दाहम्' नाम से और मोपासाँ की कहानियों का 'मुळ् निलवु' नाम से अनुवाद किया। 'स्नेहिदी' और 'पेण्' नामक इनके उपन्यास हिंदी, कन्नड़, बँगला और मलयाळम में, 'पोन मलर्' कन्नड़ और मलयाळम में, 'नेञ्जिन अलैकळ' कन्नड़ में अनूदित हो चुके हैं। 'पावै विळक्कु' और 'वाळवुएंगे' नामक उपन्यासों के आधार पर चलचित्र बन चुके हैं। इनके 'पेणु', 'नेञ्जिन अलैकळ' और 'वेंगैयिन मैंदन' उपन्यास पुरस्कृत हो चुके है। अखिलन् की अनेक कहानियाँ रूसी, जर्मन, चेक, अँग्रेजी, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं मे अनूदित हो चुकी हैं। अखिलन् की रचनाओं की मूल विशेषताएँ हैं भाषा की सरलता, विचारों की गंभीरता और स्पष्ट चिंतन। ये रोमांटिक धारा के लेखकों में से हैं। आजकल अखिलन् आकाशवाणी के मद्रास केंद्र में वार्ता-संयोजक के रूप में कार्य कर रहे है। ये वर्तमान प्रसिद्ध तमिल साहित्यकारों में गिने जाते है।

अखे गीता *(गु० कृ०)* [रचना-काल—सत्रहवीं शती]

गुजराती के मध्ययुगीन निर्गुणवादी, ज्ञानी व संत कवि 'अखो' (दे०) की रचना 'अखे गीता' वेदांतपरक रचना है। ज्ञान, वैराग्य, निर्गुण का निरूपण, झूठे आडंबरों का विरोध, सुधार-भावना तथा बाह्याचार पर प्रखर प्रहार आदि अखो की विशेषताएँ है।

विष्णुप्रसाद त्रिवेदी तथा ब्रजराज देसाई संपादित 'अखे गीता' का प्रथम संस्करण 1957 में गुर्जर ग्रंथ कार्यालय, अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ था

चालीस कड़वकों में रचित इस रचना में हरि गुरु-संत की स्तुति, वेदांती कवियों की स्तुति, प्राचीन अधिकारी श्रोता-वक्ता, अज्ञानी जीव की दुर्दशा, जीव को माया से प्राप्त धोखा, मायाविष्ट, जीव का संसार-बंधन, माया से ब्रह्मांड की उत्पत्ति, बंधन-मुक्ति के लिए सद्‌गुरु की उपासना, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का माहात्म्य, प्रेम-लक्षणा भक्ति, गुरुकृपा से ज्ञान-प्राप्ति, जीवन्मुक्तावस्था, जीवन्मुक्त की महिमा, ब्रह्म-निरूपण, जीव-ब्रह्मैक्य, शिव में जीव का आत्मसात् होना, जीव और मन, ईश्वर और जीव, ज्ञाता-ज्ञेय व ज्ञान का अभेद, परब्रह्म का भेद, शून्यवादी का वितंडावाद, ज्ञानी का अनुभव, विदेही के लक्षण, महापद-वर्णन, षड्‌दर्शन, षड्शास्त्र, षड्-उपशास्त्र, सत्संग का फल, अद्वैतपद, अखे गीता का माहात्म्य, आदि अनेक वेदांत-विषयक विषयों का पद्यात्मक निरूपण है।

अखो वेदांती एवं ज्ञानी कवि थे। कबीर की भाँति ब्रह्मवादी, अद्वैतवादी होने से वह भी पूजा, जपमाला, छाया-तिलक, कंठी आदि बाह्य विधि-विधानों के भंजक व प्रखर विरोधी थे।

गुजराती भक्ति-साहित्य की निर्गुण परंपरा में 'अखे गीता' एक महत्त्वपूर्ण रचना है। अखो की वेदांती विचारधारा तथा दार्शनिक मान्यताओं को यह रचना भली भाँति प्रकट करती है।

अखो *(गु० ले०)* [समय—1591-1656 ई०]

गुजराती के ज्ञानमार्गी, निर्गुणवादी संत व वेदांती कवि 'अखो' अहमदाबाद के निवासी सुनार थे। अपनी जन्मभूमि जेतलपुर को छोड़कर ये 16 वर्ष की ही अवस्था में पिता के साथ अहमदाबाद आ गये। बचपन में ही ये मातृहीन हो गये थे। पिता भी इन्हें बीस वर्ष का छोड़ चल बसे थे। बहन की मृत्यु, क्रमशः दो पत्नियों की असामयिक मृत्यु, धर्म-भगिनी का अविश्वास एवं बादशाह की टकसाल में प्रतिद्वंद्वियों का इनके विरुद्ध षड्‌यंत्र—इन घटनाओं ने 'अखो' के हृदय में वैराग्य उत्पन्न कर दिया और ये घर छोड़कर निकल पड़े।

श्री वल्लभाचार्य के चतुर्थ पुत्र श्री गोकुलनाथ जी से इन्होंने मंत्र-दीक्षा ली किंतु वैष्णव भक्ति में मन रमा नहीं। फलतः ज्ञानमार्ग ग्रहण कर लिया। काशी में मणिकर्णिका घाट पर एक झोंपड़ी के बाहर बैठकर संन्यासी का उपदेश ग्रहण करते थे। कहते हैं वे ही उनके गुरु हुए। अखो के नाम से प्राप्त कृतियाँ है—अखेगीता, अनुभव-बिंदु, कैवल्य गीता, गुरु-शिष्य-संवाद, पंजीकरण, ब्रह्म-लीला, संतप्रिया।

इन रचनाओं में अध्यात्मज्ञान, अधिकतम बौद्धिकता, आत्म की सूझबूझ एवं ब्रह्मविषयक चिंतन की प्रधानता है। कवित्त, छप्पय, दोहा, परजिया-दूहा, पद

आदि का इनकी रचनाओ मे प्रयोग किया गया है। गुरु की महत्ता वे सर्वत्र स्वीकार करते है। इनकी 'सतप्रिया' और 'ब्रह्मलीला' हिंदी मे रचित हैं।

विषय की दृष्टि से इनकी रचनाओ मे निर्गुण ब्रह्म व वेदात चितन की अधिकता है। भक्ति के क्षेत्र मे इन्होंने गोपी भाव को ही आदर्श स्वीकार किया है।

कबीर की भाँति इनकी रचनाओ मे भी 'गुरु को अग', 'साखी को अग', 'निह्‌करमी पतिव्रता को अग' आदि अगो की व्यवस्था पाई जाती है।

अख्तर मुहीउद्दीन *(कश० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

भारत पाक-विभाजनोत्तर काल के कश्मीरी सास्कृतिक नवजागरण के आदोलन की लपेट मे आकर इन्होंने 1954-55 से कश्मीरी भाषा म लिखना आरभ किया। कश्मीरियो के सामाजिक जीवन पर इन्होने अनेक कहानियाँ लिखी है। इनके कहानी सग्रह 'सत सगर' (सात चोटियाँ) पर इन्हें 1857 ई० मे साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला। कश्मीरी गद्य को समृद्ध करने वाले इनके अन्य दो उपन्यास हैं 'सोजल' (इद्रधनुष) तथा 'दोद दग' (दर्द और कसक) जो अपने साहित्यिक मूल्यो के कारण बहुत ही सराहनीय है। अख्तर साहब की लेखनी मे ओज है, और ये मनोवैज्ञानिक आधार के कथाकार हैं। इनकी भाषा मे प्रवाह है और इन्होने पहली बार चलती भाषा या बोल चाल की भाषा, मुहावरो आदि का प्रयोग किया है। इनकी शैली मौलिक एव मार्मिक है। इन्होने कई नाटको का भी कश्मीरी मे अनुवाद किया है, जिनमे से 'इबसन' के एक नाटक का अनुवाद 'छाया' नाम से प्रकाशित हुआ है।

अख्तर शीरानी *(उर्दू० ल०)*

इनका नाम अख्तर खाँ और तखल्लुस अख्तर' है। इनके पिता का नाम हाफिज महमूद खाँ शीरानी था। ये रियासत टोंक मे पैदा हुए थे किंतु होश लाहौर मे सँभाला। ये खालिस रोमानी शायर है। इनके काव्य मे आत्म-विस्मृति का भाव पाया जाता है। इनकी नज्म अधिकतर सवेदनात्मक शैली मे होने के कारण मन को मोह लेती हैं। इनकी नज्में एक मधुर सगीत लिए होती हैं किंतु उनमे ऐसा गाभीर्य नही होता जो शाश्वत हो सके। इनकी भावनाओ म कोई विह्वल कर देनेवाला तूफान नही है। इनकी नज्मे श्रम-साध्य प्रतीत होती है, सहज नही। 'अख्तर' की शायरी मे दर्द और निराशा नही, भावुकता और आशा का तीव्र स्वर है। कवि अलमस्ती और भावुकता का पुजारी है। 'शैरिस्तान', 'सुबह ए बहार', 'नग्म ए-हरम', 'तयूर ए-आवारा', 'अख्तरिस्तान' (दे०) और 'लाल-ए-तूर' के नाम से इनके विभिन्न काव्य सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

'अख्तर' वाजिद अली शाह *(उर्दू० ल०)*

दे० वाजिद अली शाह।

अगमनिगम *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1959 ई०]

'अगमनिगम' गुजराती के रहस्यवादी लेखक यशोधर मेहता के रहस्यपरक निबधो का एक सग्रह है। इस ग्रथ के भूमिका-लेखक प्रसिद्ध गाधीवादी मगनभाई देसाई है जिनकी भूमिका से यह स्पष्ट होता है कि इस सग्रह मे सग्रथित अधिकाश लेख समाचारपत्रो म प्रकाशित हो चुके हैं। 32 लेखो के इस सग्रह मे लेखक ने उस मार्ग का स्पष्टीकरण किया है जो गूढ है और अतर का है, एकात का है—सर्वव्यापी चेतना की 'वेवलेंग्थ' पकडने का मार्ग है। यही कारण है कि लेखक ने चार्वाक जैसे नास्तिक दर्शन से लेकर अभिनवगुप्त, गौतम, महावीर तथा श्रीकृष्ण तक सभी विचारको के विचारो मे—यहाँ तक कि इस्लाम और जरथुस्त्र के विचारो मे भी—उस परम चेतना को ही देखा है और सभी की समान भूमियो को स्पष्ट करने का उपक्रम किया है। 'अगमनिगम' के भीतर ही श्रेयस् और प्रेयस् की भी चर्चा उठाई गयी है। इन सभी निबधो म लेखक की स्पष्ट विचारधारा के दर्शन होते है, उलझाव कही नही है। भाषा सरल और कही कही लेखक की प्रकृति के अनुकूल उच्छ्‌वासमय हो गयी है।

अगरा *(प० ले०)* [समय—अठारहवी शती का अतिम चरण]

यह कवि 1796 ई० मे विद्यमान था। कवि की जाति सेठी खत्री थी पर जीवन-सामग्री के सबध मे कुछ पता नही चलता। इस कवि ने 'हकीकत राय दी वार' (दे०) पुस्तक लिखी है। पुस्तक की भाषा ठेठ पजाबी है, इससे अगरा का लाहौर क्षेत्र-वासी होना सभावित है। अगरा पजाबी साहित्य मे वार-साहित्य के सर्वप्रथम लेखक माने जाते है।

अग्नि-परीक्षा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1937 ई०]

दडिनाथ कलिता (दे०) के इस नाटक की कथावस्तु वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) से ली गयी है, किंतु

कृत्तिवासी 'बँगला रामायण' (दे०) और 'भट्टिकाव्य' (दे०) का भी इस पर प्रभाव है। इसमें सीता-स्वयंवर से लेकर सीता की अग्नि-परीक्षा और राम के अयोध्या-प्रत्यावर्त्तन तक की कथा का वर्णन हुआ हुआ है। चरित्र-चित्रण में मौलिकता का प्रयास दिखाई पड़ता है। रावण को अहंकार और गांभीर्य की प्रतिमूर्ति तथा मेघनाद को साहसी और देशभक्त दिखाया गया है। राम-लक्ष्मण का चरित्र परंपरागत है। छंदोबद्ध संवादों में काव्य-गुण है किंतु नाट्य-गुण नहीं है। इसे पौराणिक नाटक कहा जाना चाहिए।

अग्निपुराण *(सं० कृ०)*

महर्षि वेदव्यास (दे० व्यास, बादरायण) के नाम से प्रणीत अठारह पुराणों में 'अग्निपुराण' का सर्वाधिक महत्त्व इस दृष्टि से है कि यह महान् ग्रंथ भारतीय संस्कृति, सभ्यता तथा साहित्य का विश्वकोश है। इसमें अठारह विद्याओं का वर्णन है। इसमें 382 अध्याय है, और श्लोक-संख्या लगभग 15,000 है। इस पुराण की जो विषय-सूची 'नारदीय पुराण' में दी गयी है, वह इसके उपलब्ध संस्करण के अनुकूल है। इसमें आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, अर्थशास्त्र, दर्शन, व्याकरण, कोश आदि के अतिरिक्त काव्यशास्त्रीय सामग्री भी अत्यधिक मात्रा में (11 अध्यायों—337 से 347 तक) में प्रस्तुत की गयी है। इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि ऐसे अनेक काव्यांग विद्वानों की चर्चा के विषय बने हुए थे, जिनका उल्लेख अन्य काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में प्रायः नहीं मिलता। इसके कुछ अंश भोजराज (दे० भोज) प्रणीत 'सरस्वतीकंठाभरण' में अवश्य मिल जाते हैं। इस पुराण में छंदःशास्त्र पर भी विचार किया गया है। इसमें 'रामायण' (दे०) 'महाभारत' (दे०) आदि के अतिरिक्त 'हरिवंश' आदि ग्रंथों का सार भी प्रस्तुत किया गया है।

अग्निबीणा *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1922 ई०]

'अग्निबीणा' नज़रुल इस्लाम (दे०) का प्रथम एवं श्रेष्ठ काव्य-ग्रंथ है। इस काव्य-ग्रंथ की 'विद्रोही', 'प्रलयोल्लास', 'कमालपाशा', 'आनोवार', 'कोरबानी','खेया-पारेर तरणी', 'शातिल आरब', 'मोहर्रम' आदि कविताओं के कारण संपूर्ण बँगला प्रदेश में इसे अभूतपूर्व जनप्रियता प्राप्त हुई। खिलाफत एवं गांधीजी के असहयोग आंदोलन के परिवेश में इन कविताओं की रचना हुई थी। सब प्रकार के बंधनों के विरुद्ध इसमें मुक्त जीवन का उच्छल स्वर ध्वनित है। 'अग्निबीणा' की 'धूमकेतु' कविता को लेखक ने उसी वर्ष प्रकाशित 'धूमकेतु' पत्रिका (पाक्षिक) में स्थान दिया जिसके फलस्वरूप कवि को एक वर्ष का कारावास भोगना पड़ा।

'अग्निबीणा' शीर्षक कवि ने रवींद्रनाथ (दे०) के एक गीत से चुना था। उनके इन गीतों की उद्दाम दाह-शक्ति, स्वतःस्फूर्तता एवं सुस्पष्ट स्वातंत्र्य-भावना ने भाव-प्रवण बंगाली के मन को सरलता से जीत लिया। जो कुछ निर्जीव है, निश्चेष्ट है, निष्पेषित है, उसके विरुद्ध प्राणवान् चित्त की असहिष्णुता प्रकट हुई है इन गीतों में। 'अग्नि-बीणा' में कुल मिलाकर 22 गीत हैं और यह ग्रंथ उस युग के स्वदेश आंदोलन के वीरपुत्र बारींद्रकुमार घोष को समर्पित है। इन गीतों में धर्मनिर्विशेष भारत माता का जय-गान है, इसीलिए 'रक्तांबर-धारिणी मां' एवं 'आगमनी' के साथ-साथ 'कोरबानी' एवं 'मोहर्रम' पर कविताएँ इकट्ठी संकलित करने में कवि ने संकोच अनुभव नहीं किया है। यहीं से नजरुल को 'विद्रोही कवि' की उपाधि मिली। 'अग्नि-बीणा' के गीतों में आवेगमय विद्रोह का स्वर है, यह स्वर बीणा का नहीं रणभेरी का है। कदाचित् समय की कसौटी पर कविताएँ इतनी महत्त्वपूर्ण प्रमाणित न हों परंतु इससे इनके अवमूल्यन की कोई आशंका नहीं है।

अग्निमित्र *(सं० पा०)*

अग्निमित्र कालिदास (दे०) के प्रसिद्ध नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' (दे०) का नायक है। यह एक ऐतिहासिक पात्र है। अग्निमित्र प्रथम शती ई० पू० में समूचे उत्तर भारत पर शासन करता था। इसके पिता 'पुष्यमित्र' शुंग मौर्यों के मुख्य सेनापति थे। पुष्यमित्र मौर्यवंश के अंतिम शासक बृहद्रथ को मारकर स्वयं शासक बन बैठा था। इसने अपनी राजधानी पाटलिपुत्र से हटा-कर विदिशा में स्थापित कर ली थी।

अग्निमित्र एक धीरोदात्त नायक है पर कला-पारखी भी है। यद्यपि उसे एक शृंगारी नायक के रूप में चित्रित किया गया है पर वह बहुत ही नीति-निपुण प्रतीत होता है। कवि यही दिखाना चाहता है कि अंतःपुर में विद्यमान मालविका के प्रति उसका प्रणय-व्यापार उसके गंभीर व्यक्तित्व की क्रीड़ामात्र है। देश की सुरक्षा एवं प्रजापालन में ही उसकी गहन निष्ठा है। अग्निमित्र के समय में यवनों का आक्रमण हुआ था तथा उत्तर के शासक भी विद्रोह कर उठे थे। स्वयं पुष्यमित्र उत्तर की विजय के लिए गया था तथा यवनों को अग्निमित्र के पुत्र वसुमित्र ने

पराजित किया था । अग्निमित्र ने अश्वमेध यज्ञ भी किया जिसका उस समय के राजनीतिक परिवेश मे बहुत महत्व था । इस प्रकार अग्निमित्र एक कुशल राजनीतिज्ञ, वीर योद्धा एव रसिक नायक के रूप मे चित्रित हुआ है ।

अग्रवाल, वासुदेवशरण *(हिं० ले०)* [जन्म—1904 ई०, मृत्यु—1972 ई०]

भारतीय साहित्य, सस्कृति, पुरातत्त्व आदि विषयो पर मौलिक चिंतन करने वालो मे इनका नाम अग्रगण्य है । विचारो को आत्मीयता के रस मे पाग कर तथा भारतीय ज्ञान-बोध से सयुक्त करके सरल किंतु तत्सम-प्रधान भाषा के माध्यम से व्यक्त करना इनकी शैलीगत विशिष्टता है । 'पृथ्वी पुत्र', 'कला और सस्कृति', 'पाणिनि कालीन भारतवर्ष', 'कादवरी एक सास्कृतिक अध्ययन' इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं ।

अचला *(बँ० पा०)*

बाह्य धर्मावलबी अचला ने बाह्मण महिम से अपने पिता के विरोध के बावजूद प्रेम किया था । प्रेम की शक्ति के आधार पर उसने महिम से विवाह किया । महिम का चरित्र निस्तरग प्रशाति की मौन महिमा से युक्त था । एक ही साथ अचला का मन सुरेश के प्रति भी अनुराग-सिक्त हुआ था । परतु सुरेश की उद्दामता अचला के प्रेम को जीत न सकी । फिर भी अचल के अतर मे जिस प्रकार महिम को स्थान मिला था उसी प्रकार सुरेश भी सर्वथा अवहेलित नही हुआ । अनुराग की शय्या मे महिम और सुरेश दोनो को ही उसने चाहा था । परिणामस्वरूप विवाहिता अचला सुरेश की भोगतृष्णा के सम्मुख सहज ही आत्म-समर्पण करती है । अचला का प्रेम-सौध भस्मीभूत हो जाता है, महिम का भी । सुरेश के आवेग-उद्दामता के आश्रय मे अचला आती है । सुरेश की आकस्मिक मृत्यु ने उसे महिम के द्वारप्रात मे ला उपस्थित किया है । आत्मसमीक्षा-मग्ना अचला की परिणति का सकेत लेखक ने दिया है । अचला की चित्तवृत्ति की परिणति को अनुताप के द्वारा परिशुद्ध करने का प्रयत्न किया गया है । वहाँ मानो प्रेम एव काम के द्वद्व की परिणति सहज ही प्रकट हुई है । जीवनाग्नि के दारुण दाह ने आत्मा के स्वरूप को सुगभीर प्रशाति की महामौन महिमा से सुचिह्नित किया है ।

अच्च तेलुगु रामायणमु *(तें० कृ०)*

गगनामात्य और लच्चमावा के पुत्र कवि सार्वभौम कूचिमचि तिम्मकवि (दे०) (1648-1757 ई०) गोदावरी जिले मे पिठापुर रियासत के कदराडा नामक गाँव के निवासी थे । युग-प्रभाव के अनुरूप तिम्मकवि ने श्लेष, यमकानुप्रासयुक्त चित्ररचना, गर्भ कविता आदि की हैं ।

पडिताऊ शैली को अपनाने पर भी तिम्मकवि के वर्णन बडे सरस और मृदु मधुर है । राजाओ के आश्रय मे न रहकर, इन्होने अपनी रचनाएँ कुक्कुटेश्वर को समर्पित की है ।

तिम्मकवि की रचनाओ मे 'अच्च तेलुगु रामायणमु' (दे०) 'नीलासुदरी परिणयमु' (दे०), 'सर्वलक्षण सार सग्रहमु' (1750) प्रसिद्ध है ।

'अच्च तेलुगु-रामायणमु' ठेठ तेलुगु मे तत्सम शब्दो से मुक्त काव्य है ।

इनकी अन्य रचनाएँ ये है 'राजशेखर विलासमु', 'रुक्मिणी परिणयमु', 'सिंहाचल माहात्म्यमु', 'सारगधर चरित्रमु, 'सागरसग माहात्म्यमु', 'रसिक जन मनोभिराममु', 'सर्पपुर माहात्म्यमु', 'शिवलीला विलासमु', 'कुक्कुटेश्वर शतकमु' ।

अच्छनुम् मकळुम *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1940 ई०]

इसके *वळ्ळत्तोळ्* (दे०) आधुनिक मलयाळम कवियो की बृहत्त्रयी मे अन्यतम है । आभिजात्य प्रवृत्ति को क्रमश छोडकर स्वच्छदतावादी मलयाळम शब्दावली, द्राविडी छद और नये सामाजिक विचारो का समन्वय *वळ्ळत्तोळ्* की कविता मे विशेषत दर्शनीय है ।

अच्छनुम् मकळुम् पिता और पुत्री पौराणिक कथावस्तु पर आधारित लघु खड-काव्य है । इसमे पिता विश्वामित्र हैं और पुत्री शकुतला । पति-तिरस्कृता शकुतला के कश्यपाश्रम-निवास के दिनो मे एक दिन विश्वामित्र शिष्य सहित सयोग से वहाँ आ पहुँचे । जब शकुतला और विश्वामित्र एक-दूसरे का वास्तविक परिचय पा सके तब दोनो के तन-मन पुलकित हो उठे । पुत्री की दीन दशा के प्रतिशोध के लिए अत्याचारी पर वार करने को पराक्रमी ऋषि की भुजाएँ फडक उठी । परतु शकुतला का यह प्रत्युत्तर सुनकर कि वह भूल की आवृत्ति भर थी विश्वामित्र शात हो गये । विश्वामित्र भी कभी मेनका के रूप पर मोहित होकर अपने सयम से हाथ धो बैठे थे और कर्त्तव्यपूर्ति के बजाय उन्होने कातर की तरह मुँह मोड लिया था । दुष्यत ने दूसरे ढग से यही किया था । विश्वामित्र ग्लानि-पीडित हो उठे । अपने अप्रकृत व्यवहार

पर उन्हें पश्चात्ताप और लज्जा की अनुभूति होती है और वे मेनका व उनकी कन्या से क्षमा-याचना करते है।

काव्य के लघु होने पर भी पात्रों की मानसिक भाव-तरंगों का ज्वार-भाटा दर्शाने में कवि ने पारंगति का परिचय दिया है। कई भावपूर्ण शब्द-चित्र बहुत स्तुत्य बन पड़े हैं। पिता तथा पुत्री की ममता का अनुपम चित्र इस रचना में अंकित है। इसमें पौराणिक पात्र केवल कथा-दृष्टि से पौराणिक हैं। उन्हें समसामयिक समाज में भी आसानी से ढूंढ़ा-पहचाना जा सकता है। यौवन-सुलभ विषय लोभ के कारण संयम को तिलांजलि देना और बाद में अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के विचार से अपने स्खलन को नकारना स्वार्थी समाज के सहज-सामान्य अनुभव की बात है। कवि ने महर्षि विश्वामित्र तक को वात्सल्य-आर्द्र दिखाकर यह प्रमाणित करना चाहा कि नैसर्गिक प्रेरणाओं का दमन कर कृत्रिम संतता की सिद्धि का प्रयास सफल नही हो सकता।

'अच्छनुम् मकळुम्' कविता की क्लासिक परंपरा से स्वच्छंदतावादी परंपरा की ओर प्रयाण का प्रमाण है। इसी तरह की अन्य वळ्ळत्तोळ्-कविताएँ 'बंधन रूप नाम', 'अनिरुद्धन' एवं 'शिष्यनुम्मकलुम्' है। ललित शब्दावली, वैदर्भी रीति आदि वळ्ळत्तोळ काव्य की जो विशेषताएँ हैं वे इस खंड-काव्य में भी प्राप्त है। इस लघ्वाकार काव्य मे प्रयुक्त 'केका' छंद द्राविड़ी छंदों में प्रमुख है।

अच्युतानंददास *(उ० ले०)* [समय—सोलहवीं शती ई०]

अच्युतानंददास, जिन्होंने प्रताप रुद्रदेव के शासन-काल को गौरवान्वित किया था, पंचसखाओं में से थे। इनका जन्म कटक जिले में नेपाल के पास तिलकणा ग्राम में हुआ था। पिता का नाम दीनबंधु खुंटिया व माता का नाम पद्मावती था। आज भी नेपाल में इनका मठ है और इनके वंशज क्रमशः उसके महंत होते आ रहे है। बाल्यावस्था से ही भक्ति की ओर इनका झुकाव था।

इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है 'शून्य-संहिता'। यहाँ शून्य रिक्तता का सूचक नहीं है, वरन् समस्त सर्जना का उद्गम है। शून्यवादी होते हुए भी इन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम-तत्त्व को शून्यवाद में रूपायित किया है। यह काव्य दार्शनिक विचारों व नीति-सिद्धांतों से परिपूर्ण है। 'हरिवंश', 'गुरुभक्ति गीता' आदि इनकी अन्य रचनाएं हैं। अपनी रचनाओं मे ये कवि की अपेक्षा तत्त्व-विवेचक अधिक रहे हैं। अतः इनकी रचनाओं मे विचार-विश्लेषण की शुष्कता मिलती है। केवल 'गोपालक ओगाळओं लउड़ी खेळ' काव्य इसका अपवाद है, जिसमें कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं का सरस चित्रण हुआ है। यह कृति इनकी संगीतात्मक क्षमता को प्रकट करती है। इनके द्वारा रचित 'अच्युतानंद माळिका' विगत 400 वर्षों से उड़ीसा के जन-जीवन को विशेष रूप से प्रभावित करती आ रही है।

अज़मतुल्ला खाँ *(उ० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1927 ई०]

जन्म-स्थान : दिल्ली, पूरा नाम : मुहम्मद अज़मतुल्ला खाँ। सर सैयद अहमद खाँ, मुफ़्ती सदरुद्दीन आज़ुर्दा, मौलाना रशीदुद्दीन खलीफ़ा, शाह अब्दुल अज़ीज़ और मौलवी समीउल्ला खाँ इन्ही के पूर्वज थे। राजनीति, पत्रकारिता और साहित्य-सेवा इनका कार्य-क्षेत्र था। कुछ वर्षों के पश्चात् इन्होंने राजनीति में सक्रिय योगदान बंद कर दिया था और स्थायी रूप से अपना ध्यान साहित्यिक और शैक्षिक सेवाओं पर केंद्रित कर दिया। हैदराबाद से एक पत्रिका 'जाम-ए-जमशेद' निकाली; फिर एक और पत्रिका 'नुमायश' का संपादन किया। यह पत्रिका इनके जीवनकाल में निकलती रही। ये एक सरकारी पत्रिका 'अलमुअल्लग' के सहायक संपादक भी रहे। जामिया उसमानिया में 'दार-उल-तर्जुमा' और 'दार-उल-तबा' की स्थापना में इनका विशेष योगदान था। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। इन्होंने अँग्रेज़ी, फ़ारसी और अरबी के अतिरिक्त हिंदी, बँगला और फ्रांसीसी भाषाओं में भी यथेष्ट अभिरुचि का परिचय दिया। इन भाषाओं के साहित्य और संगीत कला की जानकारी से ये अपने कार्य-क्षेत्र में पर्याप्त लाभान्वित हुए। उर्दू-काव्य और छंद-विधान-विषयक इनके सुझाव प्रगतिशील हैं। हिंदी के अनुकरण में उर्दू में गीत लिखने का इन्होंने प्रयास किया। हिंदी के मात्रिक छंदों को अपनाने के लिए इनका विशेष आग्रह रहा है। इस संदर्भ में इनकी कृति 'सुरीले बोल' (दे०) अत्यंत महत्त्वपूर्ण रचना है। गद्य-लेखन में भी इन्होंने अनेक प्रयोग किए है। मनोवैज्ञानिक विषयों को भी अनूठी और प्रभावशाली शैली से उर्दू मे प्रस्तुत करने का श्रेय इन्हें प्राप्त है। इनकी अन्य कृतियों में 'इंतखाब-ए-मज़ामीन-ए-अज़मत', 'ड्रामा और अफ़साने', 'हज़रत ख्वाजा मीर दर्द', 'बच्चों की अज़मत', 'मरीज़-ए-वहम', 'इल्मदोस्त खवातीन' और 'पस-ए-पर्दा' आदि उल्लेखनीय हैं।

अजवाणी, लालसिंह हरिसिंह *(सिं० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

इनका जन्म-स्थान खैरपुर मीरस (सिंध) है।

सिंधी के साथ साथ ये अँग्रेजी साहित्य के भी माने हुए विद्वान है। इनके जीवन का अधिक भाग कालेजो मे अध्यापन कार्य करने मे व्यतीत हुआ है। नेशनल कालेज बबई मे भी कई वर्षों तक ये मुख्याध्यापक के नाते कार्य करते रहे है। इन्होने सिंधी साहित्य मे आलोचक और निबधकार के रूप मे अधिक ख्याति प्राप्त की है। इनके लिखे हुए निबध सिंधी गद्य मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। इसकी सर्वोत्तम कृति है —अँग्रेजी भाषा मे लिखा हुआ सिंधी साहित्य का इतिहास, जिसे साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली ने 1970 ई० मे प्रकाशित किया था। सिंधी साहित्य के इतिहास पर अपनी पूर्ववर्ती रचनाओ से यह निराले ढग की कृति है। सिंधी-गद्य के विकास मे इनका योगदान अविस्मरणीय है।

अजातशत्रु *(हिं० कृ०)* [रचना काल—1922 ई०]

बौद्धकालीन सामग्री को समेटे 'अजातशत्रु' प्रसाद (दे०) जी की प्रारंभिक कृति है। इससे पूर्व 'राज्यश्री' और विशाख' का प्रकाशन हो चुका था। जिस तरह 'राज्यश्री' और 'विशाख' के प्रथम और द्वितीय सस्करणो मे भेद है, उसी तरह 'अजातशत्रु' के द्वितीय सस्करण मे नाटककार ने कथा प्रवाह के अवरोधक कुछ गीतो को हटा दिया है।

'अजातशत्रु' का समग्र कथानक तीन स्थानो पर घटित होता है—मगध, कोशल और कौशाबी। इस दृष्टि से इन तीनो स्थानो से सबधित कथानक नाटक के आदि, मध्य और अत भाग की ससृष्टि करते है। ये तीनो भाग एक-दूसरे से विशृखलित न होकर एक ही मुख्य कथा के अग हैं और परस्पर सुसबद्ध है। मगध मे सम्राट बिंबसार (दे०) बौद्ध धर्म से प्रभावित होकर महात्मा बुद्ध के कहने से अपना सारा राज्य उद्धत युवराज अजात (दे० अजातशत्रु) को सौंपकर स्वय सन्यास ग्रहण कर लेते हैं। इनकी प्रतिक्रिया कोशल और कौशाबी मे होती है। कोशल मे युवराज विरुद्धक अपने पिता प्रसेनजित के विरुद्ध विद्रोह का झडा उठा लेता है और कौशाबी मे मागधी का प्रभाव उदयन और पद्मावती को कुछ समय के लिए अलग कर दता है। बुद्ध के विचारो के समर्थक बिंबसार, वासवी, प्रसेनजित, मल्लिका और उदयन तथा विरोधी छलना (दे०), अजात, शक्तिमती, विरुद्धक और मागधी आदि का घात-प्रतिघात, एक दूसरे को परास्त करने के लिए विरोधी चाले, प्रतिहिंसा, स्पर्धा आदि नाटक की मूल शक्ति है। अतर्द्वंद्व सारे नाटक का सपोषक तत्त्व है। यह भी दो प्रकार का है—एक बिंबसार का वैचारिक मानसिक सघर्ष और दूसरा स्वार्थों के टकराव से उत्पन्न राजनीतिक सघर्ष। सारा नाटक राजनीतिक अधड मे तिनके की तरह उडा-उडा फिरता है, परतु प्रसाद की सयोजन-शक्ति ने सब कुछ शात कराके विरोधी और उद्धत पात्रो को पूर्ण मनुष्य बना दिया है। अजातशत्रु बजिरा से विवाह बधन मे बँधकर माता पिता से अपने अपराध के लिए क्षमा माँग लेता है और इस तरह राज्य तथा पुत्रादि फल का उपभोक्ता बनता है। विरुद्धक भी उसी के चरण-चिह्नो पर चलता है और कौशाबी मे भी बिंबसार की पुत्री पद्मावती को अपना पूर्व स्थान प्राप्त हो जाता है।

आलोचक इसके अतर्द्वंद्व मे पश्चिमी नाटको का प्रभाव खोजते है। इसके शातिपरक पर्यवसान मे निश्चय ही सस्कृत नाटको का प्रभाव प्रमुख हो उठा है। तीन स्थानो पर कथानक के विभक्त होने पर इसका स्थान ऐक्य थोडा-सा बाधित होता है, वरना सकलन-त्रय की दृष्टि से इसका काल-ऐक्य और गति-ऐक्य बेजोड है। समग्र नाटक असत् के ऊपर सत् की विजय का प्रतीक है और बौद्ध धर्म के दया, करुणा, अहिंसा आदि सिद्धातो की सफल अभिव्यजना की दृष्टि से यह बेजोड है एव अपनी कोटि के सारे नाटको का मार्गदर्शक है।

अजातशत्रु *(हिं० पा०)*

यह जयशकर प्रसाद (दे०) के नाटक 'अजातशत्रु' का नायक तथा मगध नरेश बिंबसार (दे०) का पुत्र है। स्वतत्र विचार तथा कर्तृत्व से विहीन इस पात्र के चरित्र मे क्रूरता, कठोरता दुर्विनीतता सस्कारगत एव ससर्गजन्य दुर्बलताएँ है। अपनी क्रूरता तथा कठोरता के कारण यदि यह घायल तथा पराजित प्रसेनजित को मार डालना चाहता है तो दुर्विनीतता के कारण पिता, विमाता तथा ज्येष्ठा भगिनी का अपमान करने से भी नही चूकता। लेकिन इन दुर्बलताओ के होते हुए भी इसमे सात्त्विक अश का सवथा अभाव नही है। इसीलिए तो यह मल्लिका के माधुर्यपूर्ण व्यक्तित्व के समक्ष नतमस्तक हो जाता है। यह शूरवीर तथा पराक्रमी भी है। अपनी शूरवीरता के कारण ही यह प्रसनजित को पराजित कर पाता है तथा दीर्घकारायण तथा मर्यादा का उल्लघन करने पर द्वद युद्ध के लिए चुनौती देता है। एक बार ग्लानि का अनुभव कर लेने के बाद यह अपनी भूला के स्वीकारता हुआ सारी कुटिलता एव क्रूरता को तिलाजलि देकर पिता, विमाता तथा बहिन पद्मा से क्षमा-याचना करता है तथा पूर्ण मनुष्यत्व को प्राप्त कर सबके स्नेह का पात्र बन जाता है। समग्रत अजातशत्रु के सहज एव स्वाभाविक चरित्र-निरूपण मे प्रसादजी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

अजितनाथपुराण (क० कृ०)

'अजितनाथपुराण' कन्नड़ के रत्नत्रय में से एक कविवर रत्न (दे०) की महान कृति है। इसमें द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ की कथा चंपूशैली में वर्णित है। इसमें द्वितीय चक्रवर्ती सगर की कथा भी है। इसे तत्कालीन दानचिंतामणि जैन साध्वी अतिमब्बे ने लिखवाया था। उसके गंगा के समान पवित्र निर्मल चरित्र का अत्यंत मार्मिक चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है। इस पुराण की एक विशेषता यह है कि इसमें भावावलियों की उलझन नहीं है। अजितनाथ के केवल एक पूर्व-जन्म की कथा यहाँ आती है। मार्मिक सन्निवेशों व पात्रों के अभाव में यह कृति बहुत प्रभावशाली तो नहीं बन पड़ी, फिर भी अजितनाथ के वैराग्य-वर्णन में कवि ने कमाल किया है। वह अपने पूर्वजन्म में विमल वाहन नामक राजा थे। दर्पण में अपने चेहरे के सफ़ेद बाल देखकर वे विरक्त हो जाते हैं। इस संदर्भ में रत्न ने वैराग्य का एक गीतिकाव्य ही रच दिया है। इससे बढ़कर वैराग्य-वर्णन संपूर्ण कन्नड़ साहित्य में दुर्लभ है। अपने साठ हज़ार पुत्रों को खोने वाले सगर चक्रवर्ती का चित्रण भी मार्मिक है। इस तरह 'अजितनाथपुराण' शांत रस-प्रधान है। विद्वानों का कहना है कि यह रत्न की परिपूर्ण कृति नहीं है फिर भी वैराग्य-निरूपण में उनकी भावतीव्रता एवं गाढ़ जीवनस्पर्श की अवहेलना नहीं की जा सकती।

अज़ीज़, लेखराज किशिनचंद मीरचंदाणी (सिं० ले०) [जन्म—1897 ई०; मृत्यु—1971 ई०]

'अजीज' साहब का जन्म हैदराबाद सिंध के एक ज़मींदार वंश में हुआ था। बचपन से ही इनकी रुचि साहित्य के प्रति थी। सिंधी और अँग्रेज़ी के साथ-साथ ये फ़ारसी और अरबी के भी बड़े विद्वान थे। ये अपनी ज़मीनों की देखभाल करने के साथ-साथ साहित्य-सेवा में सतत लीन रहे थे। देश-विभाजन के पश्चात् ये बंबई में स्थायी रूप से रहने लगे थे और वहाँ कुछ वर्षों तक इन्होंने सिंधी प्राध्यापक के रूप में एक कालेज में सिंधी पढ़ाने का कार्य किया था। इनकी मुख्य मौलिक रचनाएँ इस प्रकार हैं—**कविता**: कुल्लियात-अज़ीज़, गुलजार अज़ीज़, शाहराणी शमा, पैग़ास-अज़ीज़, आबशार, सुराही; **नाटक**: मिस्टर मजनू, गरीबांमार, कुमार अजीतसिंह; **निबंध**: अदबीआईनो; **आलोचना**: गुल व खार, सामी। सिंधी-साहित्य में इनको नाटककार की अपेक्षा एक कवि और निबंधकार के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त हुई है। 1967 ई० में इनको 'सुराही' नामक कविताओं के संग्रह पर साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली से पाँच हज़ार रुपये का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इनकी अधिकांश कविताएँ फ़ारसी काव्य-शैली से प्रभावित और शृंगार रस से पूर्ण हैं। इन्होंने समय के अनुसार राष्ट्रीय चेतना, देश-प्रेम, दलित वर्ग से सहानुभूति, सिंध देश की स्मृति आदि विषयों को भी अपनी कविताओं में उचित स्थान दिया है। कला की दृष्टि से इनकी कविताएँ उत्तम श्रेणी की रचनाएँ हैं।

अजीत कौर (पं० ले०) [जन्म—1931 ई०]

पंजाबी की कथा-लेखिकाओं में अपने कथ्य में यौन-विषयों के चयन की साहसिकता को लेकर अजीत कौर की विशेष ख्याति है। इनकी कहानियों की पीड़ित नारी युग के अभिशाप को भावनात्मक स्तर के साथ ही साथ शारीरिक स्तर पर भी झेलती है।

अजीत कौर की अधिकांश कहानियों की नायिका प्रेम-प्राप्ति की उत्कट लालसा में डूबी हुई परित्यक्ता या प्रवंचिता नारी है जिसे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अनेक पुरुषों के बीच भटकना पड़ता है।

लेखिका के अभी तक तीन कहानी-संग्रह—'गुलबानो' (दे०), 'बुतकिशन', 'मलिक दी मौत' और एक लघु उपन्यास 'धूप वाला शहर' प्रकाशित हुए हैं।

अज़ीम बेग चुग़ताई (उर्दू० ले०) [मृत्यु—1941 ई०]

हास्य रस की कहानियाँ लिखने वालों में अजीम बेग चुग़ताई का विशिष्ट स्थान है। ये पुरानी रीतियों के कटु आलोचक हैं। इनकी कहानियों के प्लाट विशेष रोचक होते है। इनके पात्र बड़े सक्रिय दिखाई पड़ते हैं पर कहीं-कहीं स्वाभाविकता से हटे हुए भी प्रतीत होते हैं। चुगताई अपनी कहानियों के माध्यम से शादी-ब्याह, तलाक़ तथा पर्दा आदि की रस्मों को सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहे। 'कुरान और पर्दा' जैसी गंभीर कृति लिखकर भी इन्होंने इसी उद्देश्य की पूर्ति चाही है। 'शरीर बीवी' और 'कोलतार' इनकी ख्याति का आधार हैं। भाषा और मुहावरे का इन्होने विशेष ध्यान नहीं रखा किंतु कथानक तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इनका उच्च स्थान है। चुग़ताई का प्लाट ही हमारे हृदयों में हास्य का रस घोल देता है। इनकी पुस्तकों की सूची बहुत लंबी है।

अज़ीम बेग चुग़ताई रियासत जोधपुर के चीफ़ जस्टिस भी रहे थे। यक्ष्मा के रोगी रहे, और इसी रोग से इनकी मृत्यु हुई।

अज्ञेय', सच्चिदानद हीरानद वात्स्यायन *(हि० ले०)*
[जन्म सन् 1911 ई०]

इनका जन्म स्थान कसया, जिला देवरिया है। इनके पिता पुरातत्त्व विभाग मे एक उच्च पदाधिकारी थे। फलत इनका शैशव अनेक नगरो मे बीता। लाहौर से बी० एस सी० करने के पश्चात इन्होने एम० ए० (अंग्रेजी) मे प्रवेश लिया परतु क्रातिकारी आदोलन से सबद्ध हो जाने के कारण उसे बीच मे छोडकर जेलयात्रा की और नजरबद भी रहे। 'विशाल भारत', 'प्रतीक', 'दिनमान' आदि पत्रो का सपादन कर चुके है। राजसेवा और विदेश-यात्रा के अनेक अनुभव इन्हे उपलब्ध है।

ये बहुज्ञ और बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। कवि और कथाकार के रूप मे इन्हे विशेष ख्याति मिली है। इतर विधाओ मे यात्रा सस्मरण, ललित निबध और आलोचना साहित्य की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इनकी कथा-कृतियो मे 'शेखर एक जीवनी' (दे०), 'नदी के द्वीप' (दे०) और 'अपने अपने अजनबी' वस्तु और शिल्प की दृष्टि से क्रातिकारी रचनाएँ है। 'शेखर' मे विद्रोही व्यक्तित्व का अध्ययन है, 'नदी के द्वीप' मे प्रेम और विवाह की समस्या है तथा 'अपने अपने अजनबी' मे मृत्यु का साक्षात् अनुभव है।

कवि अज्ञेय ने छायावादी सस्कारो मे लिखना आरभ किया था परतु शीघ्र ही वे नयी राहो की खोज कर प्रयोगवाद (दे०)के प्रवर्तक रूप मे प्रतिष्ठित हो गये। हरी घास पर क्षणभर' (दे०)नयी पद्धति की प्रथम उल्लेखनीय रचना है। तत्पश्चात् 'इद्रधनु रौदे हुए ये', 'अरी ओ करुणा प्रभामय', आँगन के पार द्वार', 'क्योकि मैं उसे जानता हूँ आदि सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

आधुनिक काल के अहवादी साहित्यकारो मे ये शीर्षस्थ हैं। इनका अह परिष्कृत और उन्नत है, और सामाजिक यथार्थ की नितात उपेक्षा इन्होने नही की है। ये अपने कवि व्यक्तित्व को उस सेतु के समान मानते हैं जो व्यक्ति को व्यक्ति से जोडता है। कथ्य के अन्वेषण की अदम्य प्रवृत्ति ने इन्हे नवरहस्यवाद की ओर भी उन्मुख किया है जिसके अतर्गत इन्होने बौद्धिक धरातल पर, भारतीय अध्यात्मवाद और पाश्चात्य अस्तित्ववाद (दे०) के अनेक तत्त्वो का समन्वय करने का प्रयत्न किया है।

बौद्धिक निर्लिप्तता और कलात्मक सयम इनके शिल्प की प्रमुख विशेषताएँ है। शब्द चयन, छद-विधान और अप्रस्तुत योजना मे इन्होने महत्त्वपूर्ण नये प्रयोग किये हैं। इनकी लघु कविताएँ साहित्यिक महत्त्व मे अद्वितीय हैं। 'अज्ञेय' आधुनिक हिंदी-साहित्य के अग्रणी कलाकार है।

अटठकथा *(पा० कृ०)*

त्रिपिटक' (दे०) पर जो अर्थ (व्याख्या)-परक साहित्य लिखा गया था उसकी कथा (विवेचन) को इस सज्ञा से अभिहित किया जाता है। यह साहित्य लका मे अनुराधपुर के महाविहार मे सुरक्षित रहा और परवर्ती साहित्यकारो ने उसका आश्रय लेकर बौद्ध धर्म की व्याख्या की। भारत मे त्रिपिटको की सत्ता स्वीकार की जाती थी किंतु 'अट्ठकथा का होना अनुराधपुर मे ही प्रसिद्ध था। वहाँ की परपरा के अनुसार प्रथम सगीत के बाद ही त्रिपिटक' पर व्याख्या और व्याख्या की व्याख्या लिखी गयी। त्रिपिटक क साथ ही ये समस्त व्याख्याएँ लका पहुँची। पाली से सिंहली भाषा मे उनका अनुवाद किया गया और उसे अनुराधपुर के महाविहार मे सुरक्षित रखा गया। बाद वे लेखको ने सिंहली से पुन पालि मे उसकी अवतारणा की। लका के साहित्य मे पालि का त्रिपिटक की भाषा के लिए और सिंहली का अटठकथा की भाषा के लिए प्राय प्रयोग होता है किंतु यह विश्वास करना कठिन है कि यह सारा साहित्य त्रिपिटक के साथ ही लका गया और प्रथम सगीत के बाद ही इसकी रचना की गयी। यद्यपि यह माना जा सकता है कि इतने प्राचीन काल मे भी कुछ न-कुछ व्याख्या-परक साहित्य लिखा ही गया होगा किंतु बाद मे परिवर्तन परिवर्धन भी बहुत हुआ होगा और लका के भिक्षुओ का भी इस दिशा मे योगदान रहा होगा। बुद्धघोष ने 'त्रिपिटक की व्याख्याएँ इसी आधार पर प्रस्तुत की हैं तथा अन्य भी अनेक कृतियाँ सामने आयी। गद्य भाग का ही सिंहली मे अनुवाद हुआ, गाथाएँ तो सभवत अपने मूल रूप मे ही बनी रही ('त्रिपिटक' की कई पुस्तको का उद्धार भी इसी (अट्ठकथा) आधार पर हुआ—जैसे जातक कथाएं जातकत्थवण्णना' के आधार पर लिखी गयी।) इनमे पौराणिक कथाओ के साथ ऐतिहासिक सामग्री भी पर्याप्त मात्रा मे मिली है। लका की परपरा क अनुसार राक्षसो और सर्पो आदि से भरी हुई लका मे स्वय भगवान बुद्ध इस धर्म को लाये थे। अब मूल अटठकथाएँ अस्त व्यस्त हो गयी हैं किंतु उनका कुछ परिचय पालि अनुवादो से प्राप्त किया जा सकता है।

अट्ठसालिनी *(पा० कृ०)*

यह 'अभिधम्मपिटक' (दे०) के प्रथम खड 'धम्मसगनी' की व्याख्या है। इसकी रचना बुद्धघोष (दे०) ने की थी। जनश्रुति के अनुसार यह रचना बुद्धघोष ने भारत से लका जाने के पहले ही की थी किंतु इस पुस्तक मे 'विसुद्धिमग्ग' (दे०)का भी नाम आता है जो लका मे लिखा

अण्णामलै रेड्डियार *(त० ले०)* [समय—उन्नीसवीं शती]

ये तिरुनेलवेलि जिले के 'चेट्टूर' 'ऊट्रुमलै' जमींदारों के आश्रित 'आस्थान' (दरबारी)-कवि थे। इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृति 'कुळ्कुमलै' नामक पर्वतीय मंदिर पर संस्थित स्कंद (अथवा सुब्रह्मण्य) भगवान की स्तुति के रूप में रचा गया 'कावटिच्चिंतु' नामक गीत है। इस गीत की शैली एक विशेष लोक-परंपरा की अनुगामिनी है। आज भी स्कंद देव के भक्तजन 'स्कंदषष्ठी' आदि विशेष पर्वों पर 'कावटि' (काँवर) अपने कंधों पर लेकर कूदते-गाते हुए मंदिरों को पैदल जाया करते हैं और मार्ग में इष्टदेव के स्तुति-गीत गाते चलते हैं। ऐसी पदयात्राओं में गाने के उपयुक्त गीतों के रूप में 'कावटिच्चिंतु' की गीत-विधा उत्पन्न हुई है। सामान्यत: इस गीत-विधा में उपलब्ध भक्ति तन्मयता तथा सरल लोकरंजक अभिव्यंजना के तत्त्व प्रस्तुत गीत में आकर्षक ढंग से हमारे सामने आते हैं। इनके अतिरिक्त इसकी अपनी विशेषता कूद-कूद कर चलने वाली 'कावटि' पद-यात्रा का स्मरण दिलाने वाले लयबद्ध छंद का विधान है। लेखक की अन्य दो पद्य-रचनाएँ 'शंकर-नारायणन् कोयिर तिरिपंतांति' तथा 'नवनीत किरुट्टि-नन्पिळ्ळैतमिल' हैं। ये दोनों दो प्रसिद्ध मंदिरों के संबंध में स्तुति-गीत हैं।

अण्णाराव, मिर्जी *(क० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

कन्नड के विख्यात उपन्यासकार श्री अण्णाराव का जन्म बेलगाँव जिले में शेडवाल में 1918 ई० में हुआ। संस्कृत, प्राकृत हिंदी, मराठी आदि इन्होंने अपने स्वाध्याय से सीखीं। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'निसर्ग', 'राष्ट्रपुरुष', 'अशोकचक्र', 'प्रतिसरकार', 'भस्मासुर' आदि प्रमुख हैं। 'निसर्ग' आपका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। 'राष्ट्र-पुरुष' स्वातंत्र्य-संग्राम की पृष्ठभूमि में लिखा बृहत् उपन्यास है। 'दत्तवाणी' में आपने कन्नड के महाकवि श्री बेंद्रे (दे०) के कृतित्व की आलोचना की है। 'भस्मासुर' एक राजकीय विडंबनात्मक उपन्यास है। 'प्रतिसरकार' में भी आपने स्वतंत्रता-संग्राम का चित्रण किया है। 'श्रेणिक' आपका ऐतिहासिक उपन्यास है। 'मुहम्मद पैगंबर' प्रसिद्ध जीवनी है। इसके अतिरिक्त आपने बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं। 'विमर्श' आलोचना का सैद्धांतिक ग्रंथ है। 'जैनधर्म' आपका एक बृहत् ग्रंथ है जिसमें जैन धर्म का ऐतिहासिक एवं अन्य धर्मों के संदर्भ में तुलनात्मक विवेचन है। अण्णाराव हमारे वैचारिक उपन्यासकारों में प्रमुख हैं। उनका 'निसर्ग' कन्नड की एक प्रतिनिधि रचना है।

अतरसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

प्रो० अतरसिंह की गणना नई पीढ़ी के मूर्द्धन्य आलोचकों में होती है। प्रो० संतसिंह सेखों (दे०) की आलोचनात्मक पद्धति को आधार बनाकर, पूर्व-सेखों आलो-चकों के साथ स्वर मिलाते हुए, अतरसिंह ने मध्यकालीन और आधुनिक पंजाबी साहित्य-संबंधी विषयों को अपनी आलोचना का विषय बनाया है। इस युग की विविध वैज्ञानिक सुविधाओं के परिणामस्वरूप उपलब्ध विश्व-दृष्टि को अपना कर अपने देश की साहित्यिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करने की इनके मन में प्रबल आकांक्षा है; इनके आलोचनात्मक निबंध इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। प्रसिद्ध आलोचक होने के साथ-साथ आप पंजाबी के ख्याति-प्राप्त अध्यापक हैं। आपने 'आधुनिक पंजाबी काव्य में इहलोकवादी भावना' विषय पर दिल्ली विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है।

'काव्य-अध्ययन', 'दृष्टिकोण' (दे०) आपकी प्रसिद्ध आलोचना-कृतियाँ हैं। आजकल आप पंजाब विश्व-विद्यालय के अंग्रेज़ी-पंजाबी कोश-विभाग के मुख्य संपादक हैं।

अतियथार्थवाद *(हिं० पारि०)*

प्रथम विश्व-युद्ध के बाद रूढ़ि के बंधनों को तोड़ने की जो नकारात्मक प्रवृत्ति दादावाद में अभिहित हुई, उसी ने फ़्रांस में अतियथार्थवाद को जन्म दिया। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग आपोलिनेर ने किया, पर उसकी निश्चित अर्थ और उसकी सम्यक् व्याख्या (1924 ई०) करने का श्रेय आन्द्रे ब्रेतों को है। बर्गसाँ के रचनात्मक विकास, फ़ायड के अचेतन मन, और मार्क्स के इतिहास की व्याख्या के सिद्धांतों और तत्त्वों को समाहित करने वाला अतियथार्थवाद चेतन मन के स्थान पर अवचेतन मन को महत्त्व देता है। यह प्रचलित नैतिक मान्यताओं को खोखला बनाता है तथा कलात्मक अभिव्यक्ति की मान्य परंपराओं का तिरस्कार कर अभिव्यक्ति की स्वच्छंदता की माँग करता है। प्रकृतवाद (दे०) के समान यह भी मनुष्य को पशु मानता हुआ इस बात की सिफ़ारिश करता है कि मनुष्य के आवेगों को यथासंभव स्वतंत्रता दी जाये। अतियथार्थ-

वादी साहित्य कृत्रिमता के आवरण को हटाकर समाज और मानव को उसके यथार्थ, कहीं-कहीं नग्न रूप मे उद्घाटित करता है। मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद (दे०) के समान यह मानव-दुर्बलताओं के प्रति अरुचि उत्पन्न न कर रस ले-लेकर उनका चित्रण करता है जिससे कहीं-कहीं यह बीभत्स और जुगुप्साकारक हो उठता है।

अतिविशाल महिलाए (म० पा०)

पु० ल० देशपांडे (दे०) ने अपने नाटक, 'तुझे आहे तुज पाशी' (दे०) मे आधुनिक महिलाओ की मिथ्या प्रदर्शन और आडबरप्रियता को 'अतिविशाल महिलाए' के चरित्र मे निरूपित किया है। सादा जीवन और उच्च विचार की प्रबल समर्थक ये आधुनिकाएँ किस प्रकार सादा जीवन व्यतीत करती हैं और उनके उच्च विचार किस स्तर के हैं, इन नारी-चरित्रो के द्वारा सहज स्पष्ट हो जाता है। परनिंदा इन आधुनिकाओ के उच्च विचार हैं तथा 'फैसी-ड्रेस' इनके सादा जीवन के प्रतीक है। अपने थोथे अभिमान के कारण ये स्वय को उपहासास्पद स्थिति मे पाती हैं। मिथ्या-डबर एव दूसरो के चरित्रो मे छिद्रान्वेषण इनके चरित्र के प्रधान गुण है—नाच गाने तथा मात्र लबे-लबे भाषण-प्रवचन आदि जीवन के सहज अग है। समसामयिक नारी-समाज मे 'कथनी-करनी' मे अतर रखने वाली विचार-धारा पर कटु व्यग्य करने की दृष्टि से ही नाटककार ने 'अतिविशाल महिलाए' की चारित्रिक सृष्टि की है। निवृत्ति की सयोजना के लिए ही 'अतिविशाल महिलाए' के चरित्र का नाटककार ने समावेश किया है।

अतिशयोक्ति (स०, हि० पारि०)

'अतिशयोक्ति' काव्य मे उपमेय के प्रकर्ष की स्थापना के लिए उपमेय तथा उपमान के मध्य परस्पर अभेद की कल्पना पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण अर्थालकार है। इसका शाब्दिक अर्थ है अतिशयतापूर्ण कथन—दूसरे शब्दो मे उपमेय का उत्कर्ष प्रतिपादित करने के लिए लोक-सीमा का अतिक्रमण करने वाली कथन-भगिमा। सामान्यत प्रत्येक अलकार के मूल मे वैचित्र्य सृष्टि की भावना विद्यमान रहती है, इसलिए आलकारिको ने अतिशयोक्ति का प्रयोग उक्ति-सौंदर्य के व्यापक अर्थ मे करते हुए इसे समस्त अलकारो का मूल माना है। भारतीय अलकार शास्त्र मे अतिशयोक्ति के अर्थ मे क्रमिक परिवर्तन हुआ है। भामह (दे०) ने इसका प्रयोग केवल लोकसीमा को अतिक्रात करने वाली कथन शैली के अर्थ मे किया है (काव्यालकार 2-81)। क्रमश इसका सीमा क्षेत्र सकुचित होता गया। सक्षेप मे, इसके लिए (1) उपमान द्वारा उपमेय को अपने मे निगीर्ण कर लिया जाना, (2) किसी असभावित अर्थ की प्रकल्पना तथा (3) कारण कार्य के मध्य उपस्थित पूर्वापर-क्रम की विपरीतता, आदि तत्त्व आवश्यक है। सस्कृत-काव्यशास्त्र मे अतिशयोक्ति के छह भेद निरूपित हैं अक्रमातिशयोक्ति, चपलातिशोक्ति, अत्यतातिशयोक्ति, सबधातिशयोक्ति, भेदकातिशयोक्ति तथा रूपकातिशयोक्ति।

अतीत के चलचित्र (हिं० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष 1941 ई०]

यह महादेवी वर्मा (दे०) के रेखाचित्रो का प्रथम उल्लेखनीय सग्रह है जिसमे ग्यारह रचनाएँ सकलित है। यद्यपि इस कृति के साहित्य रूप के सबध मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद रहा है और समय समय पर इसे सस्मरण, वैयक्तिक निबध आदि की सज्ञा दी जाती रही है, किंतु आज अधिकाश विद्वान इसे सस्मरणात्मक रेखाचित्रो का सकलन ही मानते हैं। लेखिका ने अपनी इस रचना मे रामा, भीसा, लछमा, रधिया, बदलू अलोपी आदि शब्दों से भारतीय समाज के सर्वहारा वर्ग के दु ख दैन्य की अत्यत करुण झाँकी प्रस्तुत की है। महादेवी जी मूलत कवयित्री हैं और उनके सवेदनशील भावुक मन की झलक इस कृति मे भी यथास्थान परिलक्षित है। भावानुकूल, कवित्वपूर्ण एव चित्रोपम भाषा इस कृति की शिल्पगत विशेषताएँ है।

अतुकात छद (हिं० पारि०)

यह अँग्रेज़ी के प्रसिद्ध 'ब्लैक वर्स' का हिंदी-अभिधान है। यह पांच आघातो से युक्त चरणो के 'आय-म्बिक पेंटामीटर' छद का तुकविहीन (दे० तुक) रूप होता है। अंग्रेजी के 'हीरोइक' छद का तुकविहीन रूप भी 'ब्लैक वर्स' मे सम्मिलित किया जाता है, किंतु बहुत ही कम। अत्यानुप्रास से मुक्त होने के कारण अतुकात छद का प्रवाह अन्य छदो की अपेक्षा अधिक तरल और लोच-पूर्ण होता है। इसमे कथ्य भाव और विचार के एक बिंदु का विस्तार एक ही चरण तक न होकर अनेक चरणो तक रहता है। विराम-चिह्नो की योजना चरणात मे न होकर भाव-खड की समाप्ति पर ही होती है, इसलिए इसमे अतर्यति का महत्व अधिक है। इस प्रकार की कविता

अण्णामलै रेड्डियार *(त० ले०)* [समय—उन्नीसवीं शती]

ये तिरुनेल्वेलि जिले के 'चेट्टूर' 'ऊट्रुमलै' जमींदारों के आश्रित 'आस्थान' (दरबारी)-कवि थे। इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृति 'कुळुकुमलै' नामक पर्वतीय मंदिर पर संस्थित स्कंद (अथवा सुब्रह्मण्य) भगवान की स्तुति के रूप में रचा गया 'कावटिच्चिंतु' नामक गीत है। इस गीत की शैली एक विशेष लोक-परंपरा की अनुगामिनी है। आज भी स्कंद देव के भक्तजन 'स्कंदषष्टी' आदि विशेष पर्वो पर 'कावटि' (काँवर) अपने कंधों पर लेकर कूदते-गाते हुए मंदिरों को पैदल जाया करते हैं और मार्ग में इष्टदेव के स्तुति-गीत गाते चलते हैं। ऐसी पदयात्राओं में गाने के उपयुक्त गीतों के रूप में 'कावटिच्चिंतु' की गीत-विधा उत्पन्न हुई है। सामान्यतः इस गीत-विधा में उपलब्ध भक्ति तन्मयता तथा सरल लोकरंजक अभिव्यंजना के तत्त्व प्रस्तुत गीत में आकर्षक ढंग से हमारे सामने आते हैं। इनके अतिरिक्त इसकी अपनी विशेषता कूद-कूद कर चलने वाली 'कावटि' पद-यात्रा का स्मरण दिलाने वाले लयबद्ध छंद का विधान है। लेखक की अन्य दो पद्य-रचनाएँ 'शंकर-नारायणन् कोयिर तिरिपंतातिं' तथा 'नवनीत किरुट्टि-नन्पिळ्ळै तमिल' हैं। ये दोनों दो प्रसिद्ध मंदिरों के संबंध में स्तुति-गीत है।

अण्णाराव, मिर्जी *(क० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

कन्नड के विख्यात उपन्यासकार श्री अण्णाराव का जन्म बेलगाँव जिले में शेडवाल में 1918 ई० में हुआ। संस्कृत, प्राकृत हिंदी, मराठी आदि इन्होंने अपने स्वाध्याय से सीखीं। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों मे 'निसर्ग', 'राष्ट्रपुरुष', 'अशोकचक्र', 'प्रतिसरकार', 'भस्मासुर' आदि प्रमुख है। 'निसर्ग' आपका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। राष्ट्र-पुरुष' स्वातंत्र्य-संग्राम की पृष्ठभूमि में लिखा बृहत् उपन्यास है। 'दत्तवाणी' में आपने कन्नड के महाकवि श्री बेंद्रे (दे०) के कृतित्व की आलोचना की है। 'भस्मासुर' एक राजकीय विडंबनात्मक उपन्यास है। 'प्रतिसरकार' में भी आपने स्वतंत्रता-संग्राम का चित्रण किया है। 'श्रेणिक' आपका ऐतिहासिक उपन्यास है। 'मुहम्मद पैगंबर' प्रसिद्ध जीवनी है। इसके अतिरिक्त आपने बहुत-सी कहानियाँ लिखी हैं। 'विमर्श' आलोचना का सैद्धांतिक ग्रंथ है। 'जैनधर्म' आपका एक बृहत् ग्रंथ है जिसमें जैन धर्म का ऐतिहासिक एवं अन्य धर्मों के संदर्भ में तुलनात्मक विवेचन है। अण्णाराव हमारे वैचारिक उपन्यासकारों में प्रमुख हैं। उनका 'निसर्ग' कन्नड की एक प्रतिनिधि रचना है।

अतरसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

प्रो० अतरसिंह की गणना नई पीढ़ी के मूर्द्धन्य आलोचकों में होती है। प्रो० संतसिंह सेखों (दे०) की आलोचनात्मक पद्धति को आधार बनाकर, पूर्व-सेखों आलोचकों के साथ स्वर मिलाते हुए, अतरसिंह ने मध्यकालीन और आधुनिक पंजाबी साहित्य-संबंधी विषयों को अपनी आलोचना का विषय बनाया है। इस युग की विविध वैज्ञानिक सुविधाओं के परिणामस्वरूप उपलब्ध विश्व-दृष्टि को अपना कर अपने देश की साहित्यिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करने की इनके मन में प्रबल आकांक्षा है; इनके आलोचनात्मक निबंध इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। प्रसिद्ध आलोचक होने के साथ-साथ आप पंजाबी के ख्याति-प्राप्त अध्यापक हैं। आपने 'आधुनिक पंजाबी काव्य में इहलोकवादी भावना' विषय पर दिल्ली विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है।

'काव्य-अध्ययन', 'दृष्टिकोण' (दे०) आपकी प्रसिद्ध आलोचना-कृतियाँ हैं। आजकल आप पंजाब विश्व-विद्यालय के अँग्रेज़ी-पंजाबी कोश-विभाग के मुख्य संपादक हैं।

अतियथार्थवाद *(हिं० पारि०)*

प्रथम विश्व-युद्ध के बाद रूढ़ि के बंधनों को तोड़ने की जो नकारात्मक प्रवृत्ति दादावाद में अभिहित हुई, उसी ने फ्रांस में अतियथार्थवाद को जन्म दिया। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग आपोलिनेर ने किया, पर उसको निश्चित अर्थ और उसकी सम्यक् व्याख्या (1924 ई०) करने का श्रेय आन्द्रे ब्रेंतों को है। बर्गसाँ के रचनात्मक विकास, फ्रायड के अचेतन मन, और मार्क्स के इतिहास की व्याख्या के सिद्धांतों और तत्त्वों को समाहित करने वाला अतियथार्थवाद चेतन मन के स्थान पर अवचेतन मन को महत्त्व देता है। यह प्रचलित नैतिक मान्यताओं को खोखला बनाता है तथा कलात्मक अभिव्यक्ति की मान्य परंपराओं का तिरस्कार कर अभिव्यक्ति की स्वच्छंदता की माँग करता है। प्रकृतवाद (दे०) के समान यह भी मनुष्य को पशु मानता हुआ इस बात की सिफ़ारिश करता है कि मनुष्य के आवेगों को यथासंभव स्वतंत्रता दी जाये। अतियथार्थ-

वादी साहित्य कृत्रिमता के आवरण को हटाकर समाज और मानव को उसके यथार्थ, कहीं-कहीं नग्न रूप में उद्घाटित करता है। मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद (दे०) के समान यह मानव दुर्बलताओं के प्रति अरुचि उत्पन्न न कर रस ले-लेकर उनका चित्रण करता है जिससे कहीं-कहीं यह बीभत्स और जुगुप्साकारक हो उठता है।

अतिविशाल महिलाए (म० पा०)

पु० ल० देशपांडे (दे०) ने अपने नाटक, 'तुझे आहे तुज पाशी' (दे०) में आधुनिक महिलाओं की मिथ्या प्रदर्शन और आडंबरप्रियता को 'अतिविशाल महिलाए' के चरित्र में निरूपित किया है। सादा जीवन और उच्च विचार की प्रबल समर्थक ये आधुनिकाएँ किस प्रकार सादा जीवन व्यतीत करती हैं और उनके उच्च विचार किस स्तर के हैं, इन नारी चरित्रों के द्वारा सहज स्पष्ट हो जाता है। परनिंदा इन आधुनिकाओं के उच्च विचार हैं तथा 'फैंसी-ड्रेस' इनके सादा जीवन के प्रतीक हैं। अपने थोथे अभिमान के कारण ये स्वयं को उपहासास्पद स्थिति में पाती हैं। मिथ्याडंबर एवं दूसरों के चरित्रों में छिद्रान्वेषण इनके चरित्र के प्रधान गुण हैं—नाच गाने तथा मात्र लंबे-लंबे भाषण-प्रवचन आदि जीवन के सहज अंग हैं। समसामयिक नारी-समाज में 'कथनी-करनी' में अंतर रखने वाली विचार-धारा पर कटु व्यंग्य करने की दृष्टि से ही नाटककार ने 'अतिविशाल महिलाए' की चारित्रिक सृष्टि की है। निवृत्ति की संयोजना के लिए ही अतिविशाल महिलाए' के चरित्र का नाटककार ने समावेश किया है।

अतिशयोक्ति (सं०, हिं० पारि०)

'अतिशयोक्ति' काव्य में उपमेय के प्रकर्ष की स्थापना के लिए उपमेय तथा उपमान के मध्य परस्पर अभेद की कल्पना पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण अर्थालंकार है। इसका शाब्दिक अर्थ है अतिशयतापूर्ण कथन—दूसरे शब्दों में उपमेय का उत्कर्ष प्रतिपादित करने के लिए लोक-सीमा का अतिक्रमण करने वाली कथन भंगिमा। सामान्यतः प्रत्येक अलंकार के मूल में वैचित्र्य सृष्टि की भावना विद्यमान रहती है, इसलिए आलंकारिकों ने अतिशयोक्ति का प्रयोग उक्ति सौंदर्य के व्यापक अर्थ में करते हुए इसे समस्त अलंकारों का मूल माना है। भारतीय अलंकार शास्त्र में अतिशयोक्ति के अर्थ में क्रमिक परिवर्तन हुआ है। भामह (दे०) ने इसका प्रयोग केवल लोकसीमा को अतिक्रांत करने वाली कथन शैली के अर्थ में किया है (काव्यालंकार 2-81)। क्रमशः इसका सीमा-क्षेत्र संकुचित होता गया। संक्षेप में, इसके लिए (1) उपमान द्वारा उपमेय को अपने में निगीर्ण कर लिया जाना, (2) किसी असंभावित अर्थ की प्रकल्पना तथा (3) कारण-कार्य के मध्य उपस्थित पूर्वापर क्रम की विपरीतता, आदि तत्त्व आवश्यक हैं। संस्कृत-काव्यशास्त्र में अतिशयोक्ति के छह भेद निरूपित हैं अक्रमातिशयोक्ति, चपलातिशयोक्ति, अत्यंतातिशयोक्ति, संबंधातिशयोक्ति भेदकातिशयोक्ति तथा रूपकातिशयोक्ति।

अतीत के चलचित्र (हिं० कृ०) [प्रकाशन वर्ष 1941 ई०]

यह महादेवी वर्मा (दे०) के रेखाचित्रों का प्रथम उल्लेखनीय संग्रह है जिसमें ग्यारह रचनाएँ संकलित हैं। यद्यपि इस कृति के साहित्य-रूप के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है और समय समय पर इसे संस्मरण, वैयक्तिक निबंध आदि की संज्ञा दी जाती रही है, किंतु आज अधिकांश विद्वान इसे संस्मरणात्मक रेखाचित्रों का संकलन ही मानते हैं। लेखिका ने अपनी इस रचना में रामा, घीसा, लछमा रधिया, बदलू अलोपी आदि शीर्षकों से भारतीय समाज के सर्वहारा वर्ग के दुःख-दैन्य की अत्यंत करुण झाँकी प्रस्तुत की है। महादेवी जी मूलतः कवयित्री हैं और उनके संवेदनशील भावुक मन की झलक इस कृति में भी यथास्थान परिलक्षित है। भावानुकूल, कवित्वपूर्ण एवं चित्रोपम भाषा इस कृति की शिल्पगत विशेषताएँ हैं।

अतुकांत छंद (हिं० पारि०)

यह अँग्रेजी के प्रसिद्ध 'ब्लैंक वर्स' का हिंदी-अभिधान है। यह पाँच आघातों से युक्त चरणों के 'आयम्बिक पेंटामीटर' छंद का तुकविहीन (दे० तुक) रूप होता है। अँग्रेजी के हीरोइक' छंद का तुकविहीन रूप भी 'ब्लैंक वर्स' में सम्मिलित किया जाता है किंतु बहुत ही कम। अत्यानुप्रास से मुक्त होने के कारण अतुकांत छंद का प्रवाह अन्य छंदों की अपेक्षा अधिक तरल और लोच-पूर्ण होता है। इसमें कथ्य, भाव और विचार के एक बिंदु का विस्तार एक ही चरण तक न होकर अनेक चरणों तक रहता है। विराम चिह्नों की योजना चरणांत में न होकर भाव-खंड की समाप्ति पर ही होती है, इसलिए इसमें अंतर्यति का महत्त्व अधिक है। इस प्रकार की कविता

'पदांतरप्रवाही' का रूप धारण कर लेती है; एक पंक्ति दूसरी पंक्ति से जा मिलती है। फलतः चरण के अंत में न तो भाव-प्रवाह बाधित होता है और न उसका नैरंतर्य ही भंग होता है।

अतुकांत छंद अँग्रेजी-साहित्य का अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रिय छंद है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग सरे ने इतालवी छंद 'वर्सी स्किओल्ती' से परोक्ष प्रभाव ग्रहण कर सन् 1940 में किया था। बाद में मार्लो और शेक्सपियर ने बहु-प्रयोग द्वारा इसका रूप-संस्कार किया। इसके बाद तो असंख्य रचनाकारों ने कथाओं और नाटकों में इसका प्रयोग किया। मिल्टन, वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शैले, टेनीसन, ब्राउनिंग, स्विनबर्न, टी० एस० इलियट, वाल्ट ह्विटमैन और फ़्रॉस्ट इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के काव्य में भी अतुकांत छंद का बहुत प्रयोग हो रहा है, किंतु यहाँ का अतुकांत छंद केवल 'हीरोइक' या 'आयम्बिक पेंटामीटर' तक ही सीमित नहीं है, वह किसी भी छंद का अतुकांत रूप हो सकता है।

अत्रे, प्र० के० *(म० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

ये बहुमुखी प्रतिभा के नाटककार हैं। इन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से सवाक् चित्रपटों की चकाचौंध से दिग्भ्रमित दर्शकों के मन में मराठी रंगमंच के प्रति औत्सुक्य एवं ममत्व उत्पन्न किया है। दैनंदिन जीवन के असंगतिपूर्ण घटना-प्रसंगों को इन्होंने अपने नाटकों और प्रहसनों में उरेहा है। 'प्रह्लाद', 'गुरुदक्षिणा', 'वीरवचन', 'साष्टाग नमस्कार' (दे० रावबहादुर शेषाद्रि, भद्रायु भाटकर), 'भ्रमाचा भोपळा', 'पराचा कावळा', 'लग्नाची बेडी', (दे० रश्मि), 'पाणिग्रहण', 'घराबाहेर', 'उद्याचा संसार', (दे०) और 'जगकाय म्हणेल' इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। अपने नाट्य-साहित्य के माध्यम से इन्होंने सामाजिक कुरीतियों का भंडाफोड़ किया है। 'साष्टाग नमस्कार' में ज्योतिष एवं काव्य के प्रति दुराग्रही व्यक्ति की सनक का उल्लेख है तो 'लग्नाची बेडी' में वैवाहिक बंधनों की अनिवार्यता का निरूपण। 'पाणिग्रहण' अंग्रेजी भाषा के अल्पज्ञान के कारण अशुद्ध भाषा का सतत प्रयोग करने वालों पर कटु व्यंग्य है, 'घराबाहेर' में पुत्र के प्रति माँ के ममत्व का उल्लेख है, 'उद्याचा संसार' में मातृत्व का जय-घोष है, 'वंदेमातरम्' में हिंदुओं में ऐक्य-भावना की उपेक्षा का चित्रण है तथा 'मी उभा आहे' में मतदान तथा संवैधानिक संरचना पर कटु व्यंग्य है। समाज के विविध वर्गों सहित विभिन्नस्तरीय पात्रों एवं मार्मिक घटना-प्रसंगों का निरूपण इन्होंने अपने नाटकों में किया है, परंतु कहीं-कहीं संवादों में अश्लीलता अवश्य आ गई है। कथा की सरलता को दूर करने के लिए हास्यादि अवांतर कथा-प्रसंगों की संश्लिष्ट योजना इनकी रचनाओं में आयासलब्ध बनकर उपस्थित हुई है। कथा-विकास हेतु जहाँ पाश्चात्य नाटकों के संघर्ष-तत्त्व का आधार लिया गया है, वहां दूसरी ओर पात्रों का चारित्रिक निरूपण भी मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर हुआ है। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य नाटकों का-सा अंक-विधान तथा कथा का दुःखमय पर्यवसान भी इनके नाट्य-तंत्र पर पाश्चात्य नाट्य-शिल्प के प्रभाव का परिचायक है। नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने 'कऱ्हेचे पाणी' (दे०) नाम से आठ खंडों में आत्मकथा लिखने की योजना बनाई थी जो इनके देहांत के कारण अपूर्ण रह गई। 'झेंडूची फुलें' (दे०) नामक विडंबना-काव्य भी इन्होंने लिखा है। यह मराठी का प्रथम विडंबना-काव्य समझा जाता है।

अथर्वणाचार्युडु *(ते० ले०)* [समय—अनुमानतः तेरहवीं शती ई०]

समालोचकों के अनुसार ये कविब्रह्म तिक्कना (दे०) के समकालीन थे और कदाचित् जैनधर्मावलंबी थे।

कृतियाँ : 1—संस्कृत महाभारत (दे०) का काव्यानुवाद; तथा 2—विकृतिविवेकमु।

संस्कृत महाभारत के काव्यानुवाद के कतिपय छंद ही अब उपलब्ध हैं। ये छंद परवर्ती रीतिकवियों द्वारा लक्षण-ग्रंथों में उदाहरण रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। इनसे पता चलता है कि अथर्वणाचार्युडु ने 'महाभारत' का काव्यानुवाद संस्कृतनिष्ठ एवं समासजटिल भाषा में किया था। काव्य-शैली ओज-प्रधान है। 'विकृतिविवेकमु' संस्कृत भाषा में सूत्र शैली में निबद्ध तेलुगु का व्याकरण-ग्रंथ है परंतु अनेक समालोचकों के अनुसार यह इनकी कृति नहीं है।

अदबे-लतीफ़ *(उर्दू० पारि०)*

'अदबे-लतीफ़' की तहरीक एक विशेष मानसिक प्रवृत्ति का परिणाम है। इसकी विशेष शैली है। इस तह-

रीक के अनुयायी 'अदब बराए अदब' अथवा 'कला कला के लिए' के समर्थक हैं।

'अदबे लतीफ' की तहरीक पारिभाषिक दृष्टि से उस आंदोलन को कहते है जिसमे न पश्चिमी मूल्यो की दासता थी और न ही पूर्वी सभ्यता व संस्कृति का अधाधुध अनुकरण। हर उस 'तहरीक' को 'अदबे-लतीफ' कहा गया जिसका 'ज़िक्र व फलसफा' अर्थात् चिंतन एव दर्शन' से कोई संबंध न था और 'जो सौदर्य-भावना' की पोषक थी।

'अदबे-लतीफ' के लिखने वाले सौदर्य के पुजारी थे। उनकी सौदर्यप्रियता उस जमाने के उपयोगितावादी दृष्टिकोण की प्रतिक्रिया मात्र थी जो कभी साहित्य व भाषा पर बुरी तरह छाया हुआ था। 'अदबे लतीफ' और इसकी सुदरता का सबध रूमानियत से है। यह रुमानियत सर्जनात्मक या क्रातिकारी न होकर पलायनवादी है।

अदियमान् (त० पा०)

अदियमान् सेलम जिले के उत्तरी भाग मे स्थित तहडूर नामक समृद्ध राज्य का शासक था। इसका वास्तविक नाम अजि था। यह आदियर कुल मे उत्पन्न होने के कारण अदियमान और इस वश के राजाओ मे सर्वश्रेष्ठ होने के कारण अदियमान नेडुमान अजि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसकी गणना सघकालीन सात प्रसिद्ध दानी राजाओ मे होती है। इसकी वीरता और दानशीलता का वर्णन अव्वैयार (दे०), भरणर्, पेरुशित्तिनार्, नल्लूर् नत्तनार आदि सघकालीन कवियो ने किया है। इसकी दानशीलता का वर्णन करती हुई अव्वैयार कहती है कि अदियमान् पुरस्कार लेने मे चाहे विलब कर दे परतु वह पुरस्कार देने मे कभी नही चूकता। सघकालीन कवियो ने उसके शारीरिक सौदर्य, वीरता, पराक्रम, शौर्य, युद्ध-कौशल आदि का, उसकी विशाल चतुरगिणी सेना का विस्तृत वर्णन किया है। विभिन्न पदो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसने अनेक युद्धो मे विजय प्राप्त की थी।

अदियमान् कलाकारो का बहुत सम्मान करता था। प्रसिद्ध तमिल कवयित्री अव्वैयार का अधिकाश समय इसके दरबार मे ही बीता था। प्रसिद्ध है कि इसने बडी कठिनता से प्राप्त शक्तिदायक, आयुवर्द्धक आँवले का फल स्वय न खाकर अव्वैयार को दे दिया था। अव्वैयार द्वारा आँवला खा चुकने पर अदियमान् ने उस दुर्लभ फल के गुणो का वर्णन किया और कहा कि ससार कलाकारो के ज्ञान के बल पर ही जीवित है, उनका सदा के लिए रहना आवश्यक है। इसी से उसने वह आयुवर्द्धक फल उन्हे दिया था। अदियमान् की मृत्यु पर अव्वैयार द्वारा रचित करुण रस-प्रधान गीत पढ़ने से ज्ञात होता है कि वह एक आदर्श राजा था। अपनी वीरता और दानशीलता के कारण वह जन-जन के मन मे बस गया था। तमिल मे इसके चरित्र को लेकर अनेक कविताएँ, नाटक, कहानी, निबध आदि लिखे जा चुके है जिनमे प्रसिद्ध है प० गोविन्दन कृत 'कोडै मन्नर पनुवल' नामक काव्यकृति।

अदिवीररामपाडियन् (त० ले०)

सोलहवी शती ई० के आसपास तमिल प्रदेश के पाड्य राजा अपनी पुरानी राजधानी 'मतुरै' (मधुरै) छोडकर तिरुनेल्वेलि जिले के दक्षिण काशी के अर्थवाले 'तेंकाचि' नामक स्थान पर रहकर सीमित क्षेत्र का शासन करने लगे थे। इन्ही राजाओ म से अधिक प्रसिद्ध नरेश 'अदिवीररामपाडियन' है। ये सस्कृतज्ञ और सिद्ध तमिल-कवि भी थे। इनकी पद्य-रचनाओ मे कुछ सस्कृत-साहित्य और धर्मग्रथो के अनुवाद है, और कुछ नीति एव भक्ति विषयक है। इन्होने सस्कृत 'नैषध' काव्य का सुदरतम तमिल प्रतिरूप 'नैटतम' प्रस्तुत किया है। इसमे मूल काव्य की अलकारमयी शैली तथा शृ गार-वर्णन-पद्धति का पूर्णत निर्वाह किया गया है। 'काचिक्काण्टम्' नामक रचना काशी तीर्थस्थान के माहात्म्य का छदबद्ध वर्णन है। 'लिंक-पुराण', 'भागपुराण' आदि रचनाएँ सस्कृत पुराणो के तमिल रूप है। वेररिवेरवे' जीवनोपयोगी शाश्वत नीतियो को सुकठ्य छद मे प्रस्तुत करती है। लेखक का व्यक्तिगत भक्ति-भावातिरेक और भगवान के समक्ष आत्मसमर्पण की भावना करुवैप्पतिरप्पततादि' नामक स्तुति-गीत मे प्रस्फुटित हैं। 'करुवै' नामक स्थान के मदिर के शिव भगवान पर अनन्य भक्ति का प्रकाशन इस गीत मे द्रष्टव्य है। पाठक को द्रवीभूत करने की शक्ति के कारण इसे 'लघु तिरुवाचकम्' कहा जाता है।

अदीब (उर्दू० ले०)

[दे० मसऊदहसन रिजवी]

अद्दंकि गगाधर कवि (त० ले०)

केदारगुरु के शिष्य, गोलकोडा के निवासी गगाधर कवि (सोलहवी शती उत्तरार्द्ध) ने 'तपतीसवरणोपाख्यानमु' नामक शृ गार-प्रधान प्रबध-काव्य की रचना की

थी। पाँच आश्वासों के इस काव्य की शैली प्रौढ़, अलंकृत एवं प्रवाहयुक्त है। सरस, सुंदर कल्पनाओं से युक्त इस काव्य में तपती का संवरण के पास कीर को दूत बनाकर भेजने का प्रसंग अति रमणीय है।

यह काव्य गोलकोंडा के बादशाह इब्राहीम कुली कुतुबशाह को (शासन-काल 1550-80 ई०) समर्पित किया गया है। किसी मुसलमान बादशाह को समर्पित किया गया यह प्रथम तेलुगु काव्य है।

अद्दहमाण (अब्दुल रहमान) *(अप० ले०)* [समय—बारहवीं शती ई० के लगभग]

अद्दहमाण पश्चिम में पूर्वकाल के प्रसिद्ध मलेच्छ नामक देश के वासी मीरसेन नामक तन्तुवाय (जुलाहे) का पुत्र था। यह प्राकृत-काव्य और गीतों की रचना में प्रसिद्ध था; संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का विद्वान था। इसने मध्यवर्गीय पात्रों के लिए 'संदेश रासक' की रचना की थी। अपनी कृति में एक स्थान पर इसने प्राकृत-काव्य और वेद का उल्लेख किया है। इसी प्रकार इसने 'नलचरित्र', 'भारत', 'रामायणादि' का उल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि अद्दहमाण को भारतीय साहित्य का ज्ञान था। इसने बड़ी सहृदयता के साथ हिंदुओं के तीर्थ-स्थानों, सामाजिक प्रथाओं, उत्सवों, स्त्रियों के आभूषणों तथा अनेक शास्त्रीय तथा लौकिक बातों के उल्लेख किए हैं, जिनसे अनुमान किया जा सकता है कि यह पहले हिंदू रहा होगा, या समन्वयकारी उदारहृदय मुसलमान होगा। 'संदेश-रासक' (दे०) में किए गए नाना स्थानों के उल्लेखों से अनुमान किया गया है कि कृतिकार मुलतान का रहने वाला था।

उपलब्ध अपभ्रंश ग्रंथों में से यही एक ग्रंथ है जो एक मुसलमान का लिखा हुआ है। इससे प्रतीत होता है कि इस युग तक मुसलमान इस देश की भाषा से पूर्णरूपेण परिचित ही नहीं थे, अपितु उसमें काव्य-रचना भी करते थे। अद्दहमाण की किसी अन्य कृति का पता नहीं लगा है।

अद्भुत परिणाम *(उ० कृ०)*

मृत्युंजय रथ (दे०) कृत 'अद्भुत परिणाम' उपन्यास में उन्नीसवीं शताब्दी के बीच उड़ीसा में मिशनरियों द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार के परिणाम का चित्रण हुआ है। दरिद्र हिंदुओं को अनेक प्रकार के प्रलोभनों द्वारा ईसाई बना लिया जाता था किंतु क्या परिस्थितिवश धर्म-परिवर्तन कर लेने के बाद भी वे उसे मन से स्वीकार कर पाते हैं?—यही दर्शाना लेखक का उद्देश्य है।

मोहन हिंदू माता-पिता का एकमात्र पुत्र है। वह उच्च शिक्षा के लिए कटक आता है। बेन नामक एक अँग्रेज पादरी के प्रभाव से वह लिली नामक क्रिश्चियन लड़की से शादी कर लेता है। दो बच्चे होते हैं। धीरे-धीरे उसके मन में ईसाई धर्म के प्रति प्रतिहिंसा जाग्रत होती है। एक दिन समुद्र दिखाने के बहाने वह लिली एवं दोनों बच्चों को समुद्र में ढकेल देता है। दैवयोग से लिली एवं एक बच्चे की जान बच जाती है। हत्या के अपराध में मोहन को आजीवन कारावास मिलता है।

अद्वैतसिद्धि *(सं० कृ०)* [रचना-काल—1600 ई०]

'अद्वैतसिद्धि' वेदांत सिद्धांत का अत्यंत प्रौढ़ ग्रंथ है। इसके लेखक मधुसूदन सरस्वती हैं। इस ग्रंथ पर गौड़ ब्रह्मानंद ने 'लघु चंद्रिका' नामक टीका लिखी है।

'अद्वैतसिद्धि' में वृत्ति एवं जगन्मिथ्यात्व से संबंधित सिद्धांतों का अत्यंत मौलिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। आध्यात्मिक वृत्ति का निरूपण करते हुए 'अद्वैत-सिद्धि' में कहा गया है कि जिस प्रकार योद्धा को देखकर भीरु भट भाग जाता है, उसी प्रकार वृत्ति की उत्पत्ति होने पर अविद्या का आवरण नष्ट हो जाता है। जगत् के मिथ्यात्व के संबंध में भी 'अद्वैतसिद्धि' में यह मौलिक उद्भावना की गई है कि अद्वैत-तत्त्व की सिद्धि के लिए मिथ्यात्व के भी मिथ्यात्व की आवश्यकता है। अद्वैतसिद्धिकार का कथन है कि केवल जगत का मिथ्यात्व प्रतिपादन करने से जगत का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है। अतः मिथ्या जगत के मिथ्यात्व के मिथ्यात्व का प्रतिपादन आवश्यक है।

'अद्वैतसिद्धि' का विषय-विवेचन एवं भाषा-शैली दोनों ही दुरूह हैं। वेदांत एवं न्याय का प्रौढ़ विद्वान ही इस ग्रंथ-रत्न से दीप्ति ग्रहण कर सकता है।

अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों का जैसा सूक्ष्म विवेचन 'अद्वैतसिद्धि' में उपलब्ध है, वैसा अन्यत्र नहीं।

अध्यात्मरामायणम् किळिप्पाट्टु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

यह तुंचत्त एषुत्तच्छन् (दे०) रचित राम-काव्य है और मलयाळम का सर्वप्रमुख गौरव-ग्रंथ। यद्यपि

यह संस्कृत के 'अध्यात्मरामायण' का स्वतंत्र अनुवाद है, तो भी 'वाल्मीकि-रामायण' (दे०) और 'रघुवंश' (दे०) आदि अन्य अनेकों रामकाव्यों और मलयाळम के ही 'कण्णश्श रामायण' (दे० निरणम, राम, पणिक्कर) से भी कवि ने अपनी रचना के लिए प्रेरणा ग्रहण की है। प्रत्येक कांड के आरंभ में कवि शुकी से रामकथा-कथन की प्रार्थना करता है, और तदनुसार शुकी गान (किळिप्पाट्टु) (दे०) के रूप में कथा विकसित होती है। 'रामायण' की संपूर्ण कथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से वर्णित है और पाठकों में भक्ति रस उद्दीप्त करने के लिए उद्दिष्ट है।

सोलहवीं शताब्दी में समस्त भारत में जो भक्ति-आंदोलन प्रचलित हुआ था उसी के अंतर्गत इस राम-काव्य की भी रचना हुई है। अन्य भक्त कवियों की तरह एषुत्तच्छन् ने भी यह उचित समझा था कि जनता की भाषा में ही काव्य रचना होनी चाहिए जिससे कि अधिक से-अधिक लोगों को दैवी मार्ग पर लाया जा सके। न केवल एषुत्तच्छन् अपने प्रयत्न में सफल हुए, वरन भविष्य के लिए काव्य-भाषा का मानक रूप भी निर्धारित हो गया।

'अध्यात्मरामायणम्' की काव्य शैली और अलंकार-योजना भक्ति-रस की निष्पत्ति के लिए अभिलक्षित है। उनके आध्यात्मिक विचार सुस्पष्ट और बोधगम्य हैं और भक्ति मार्ग के प्रेरक हैं। औचित्यादि काव्यगुणों के पौष्कल्य से भी इसका अत्यधिक महत्त्व है।

'अध्यात्मरामायणम्' साहित्यिक और धार्मिक महत्व की दृष्टि से मलयाळम के सभी काव्यों में अन्यतम है। यह काव्य भारतीय वाङमय में 'रामचरितमानस' (दे०) और 'कम्बरामायणम्' (दे०) के समकक्ष है।

अध्यात्मरामायणमु (ते० कृ०)

'अध्यात्मरामायणमु' के रचयिता मुनिपल्लि सुब्रह्मण्य कवि अठारहवीं शती ई० के मध्य काल में कालहस्ति में वहाँ के स्थानीय राजा के आश्रय में विराजमान थे। ये तिरुपति वेंकटेश्वर के परम भक्त थे। इनके पूर्वज तंजोर जिले के मुनिपल्लि नामक ग्राम के निवासी थे। ये मुलिकिनाटि ब्राह्मण थे।

'अध्यात्मरामायणमु' की प्रशस्ति तेलुगु जनता में बहुत है—विशेषकर स्त्रियों में इस काव्य का प्रचार सर्वाधिक है। कवि ने संस्कृत-'अध्यात्मरामायण' के आधार पर मौलिक रूप से पदों में इस कृति की रचना की। भक्ति-भाव से विभोर होकर ये इन पदों को सुष्ठु संगीत-पद्धति से गाया करते थे। इन्होंने अपनी कृति का समर्पण बालाजी वेंकटेश्वर भगवान के श्रीचरणों में किया है।

'अध्यात्मरामायणमु' के पद तेलुगु के लोकसाहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गए हैं। उपलब्ध कीर्तनों की संख्या 104 है। लगता है इनकी संख्या अवश्यमेव अधिक होनी चाहिए। युद्धकाण्ड में सर्वाधिक पद हैं। इस कृति की विशेषता यह है कि इसमें संगीत तथा शिष्ट साहित्य का अच्छा सम्मिश्रण पाया जाता है। सभी रसों का सम्यक् परिपाक इसमें पाया जाता है। इनकी रचना शैली श्रुति-सुभग है और अनुप्रास की छटा से ओतप्रोत है। इन संगीतप्रवण कीर्तनों को तेलुगु कन्याएँ क्रमबद्धता से सीखती हैं। इस कृति का प्रचार और महत्त्व इस बात से स्पष्ट होता है कि कुछ परिवार इनके गायन मात्र से ही अपनी जीविका चलाते हैं। इसकी कोमलकांतपदावली लुभावनी है अतः जनता इनकी ओर आकृष्ट होती है। 'विनवे शौरि चरितमु गौरी सुकुमारि गिरिवरकुमारी" आदि पदों की पल्लवियाँ बहुत ही मनमोहक होती हैं। ये पद अपनी प्रांजल भाषा, भावशुद्धि तथा प्रवाहमयी शैली के लिए प्रसिद्ध हैं।

अनगहर्ष (सं०ले०) [समय—आठवीं शताब्दी का उत्तरार्ध]

अनगहर्ष 'तापसवत्सराज' नामक नाटक के रचयिता थे। इनका दूसरा नाम मातृराज था। इनके पिता का नाम नरेन्द्रवर्धन था।

राजशेखर (दे०) की एक स्तुति के अनुसार इनका समय आठवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ठहरता है।

'तापसवत्सराज' इनकी एकमात्र कृति है। उदयन विषयक रूपकों में इसका पाँचवाँ तथा अतिष्ठ स्थान है।

उक्त रूपक काव्य-सौष्ठव एवं नाट्यकला की दृष्टि से उत्कृष्ट है। यही कारण है कि लगभग सभी प्रमुख आलंकारिकों ने अपने ग्रंथों में इसके पद्य उद्धृत किए हैं। कुंतक (दे०) तथा अभिनव गुप्त (दे०) ने तो इसके आख्यान का भी अपने ग्रंथों में विश्लेषण किया है। इसकी कथावस्तु बड़ी ही रोचक तथा हृदयस्पर्शी है। उदयन (दे०) वासवदत्ता (दे०) के जल जाने की खबर पाकर तापस बन जाता है और प्रयाग में आत्महत्या करने को उद्यत हो जाता है। किसी प्रकार उसे इससे रोका जाता है। वह घूमता हुआ आश्रम में पहुँचता है। वहाँ उसकी भेंट वासवदत्ता से हो जाती है। अंत में मगध की राज-

कुमारी पद्मावती के साथ उसका विवाह हो जाता है।

इसकी भाषा अत्यंत सुबोध तथा सरल है।

अनंत *(म० ले०)*

इनका गाँव था 'मेथवड' जो कि सतारा ज़िले में है। ये रामदास (दे०) संप्रदाय के अनुयायी और विट्ठल के भक्त थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ—'सुलोचनाख्यान', 'रामदासस्तुति'—भक्ति-भावना से ओत-प्रोत हैं। इनके कुल मिलाकर 1500 पद उपलब्ध हैं।

अनंतकृष्ण शर्मा राल्लपल्लि *(तें० ले०)* [जन्म—1893 ई०]

ये समालोचक एवं कवि हैं। योगी 'वेमना' (दे०) की कविता पर इनके समीक्षात्मक ग्रंथ ने इनको साहित्य-जगत में उत्तम समालोचक के रूप में प्रतिष्ठित किया था। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'नाटकोपन्यासमुलु', 'सारस्वतावलोकनमु' आदि सुंदर समालोचनाएँ लिखी है। 'तारादेवी' और 'मीराबाई' इनके काव्य हैं। 'गाथा सप्तशती' (दे० 'गाहासत्तसई') का इन्होंने तेलुगु में अनुवाद किया है। ये संगीत के भी अच्छे ज्ञाता है। अतः तेलुगु की संगीतपरक रचनाओं के विषय में ये अधिकारी विद्वान माने जाते हैं।

अनंतनाथपुराण *(क० कृ०)*

यह जन्न (दे०) की एक महान कृति है जो चंपूशैली में रची गई है। इसमें चौदहवें तीर्थंकर अनंतनाथ की कथा चौदह अध्यायों में कही गई है। संस्कृत का उत्तर-पुराण, कन्नड का चावुंडराय-पुराण इसके आधार-ग्रंथ रहे होंगे। 'चंपूकाव्य' के अष्टादश वर्णनों व जैन पुराण की अष्टांग रूढ़ियों से यह ओतप्रोत है। बीच-बीच में जन्न की कविता-शक्ति अवश्य झलक मारती है। 'अनंतनाथपुराण' का सार है चंडशासन का कथानक, जिसके कारण इस पुराण का महत्त्व बढ़ा है। एक बार चंडशासन अपने मित्र वसुदेव के घर जाता है और उसका आतिथ्य पाता है; उसकी पत्नी सुनंदा पर मोहित होता है और धोखे से उसे घर ले जाता है। भाँति-भाँति से उसे अपने प्रति अनुरक्त करने का प्रयत्न करता है किंतु वह साध्वी डिगती नहीं। अंत में वह जादू से वसुदेव का कटा सिर उसके सामने उपस्थित कराता है जिसे देखकर वह मर जाती है। किंतु चंडशासन का मोह यहीं समाप्त नहीं होता। वह स्वयं सुनंदा के शव के साथ जल मरता है। तब युद्ध के लिए आया हुआ वसुदेव वैराग्य ग्रहण कर लेता है। काम कितनी अप्रतिहत शक्ति है—इसे विशिष्ट दृष्टि से जन्न ने यहाँ चित्रित किया है।

अनंतनारायण, एस० *(क० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

श्री एस० अनंतनारायण जी का जन्म 1925 ई० में मैसूर में हुआ। इनका साहित्य-सृजन छात्र-जीवन से ही आरंभ हो गया था। 'पयणद हादियल्लि', 'मुरुक मंटप' आदि आपके उपन्यास है। आपकी कविताएँ स्वच्छंदतावादी हैं तथा देश-प्रेम एवं प्रकृति-प्रेम से ओतप्रोत हैं। 'मंगलारती' आदि आपके नाटक रंगमंच पर सफल बने हैं। 'मैथिली' में आपकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। इनके अतिरिक्त आपने निबंध भी लिखे हैं। 'मुन्तुहवल' नामक एक निबंध-संकलन आपने तैयार किया है। बाबू राजेन्द्रप्रसाद की जीवनी भी इन्होंने लिखी है। भास के 'स्वप्नवासवदत्ता' का कन्नड अनुवाद भी आपने किया है। 'होस कन्नड कवितेय मेले इंग्लीष प्रभाव' (आधुनिक कन्नड कविता पर अँग्रेज़ी प्रभाव) आपका एक श्रेष्ठ शोध-प्रबंध है। आपकी भाषा ओजवती है।

अनंतफंदी *(म० ले०)* [जन्म—1744 ई०,
मृत्यु—1819 ई०]

कहा जाता है कि होळकर प्रदेश की महारानी अहिल्याबाई होळकर के उपदेश के प्रभावस्वरूप ये तमाशा-प्रदर्शन का कार्य छोड़कर कीर्तनकार बन गये थे।

'माधवग्रंथ' या 'माधवनिधन' ओवी-छंदोबद्ध ग्रंथ में माधवराव पेशवा के निधन के उपरांत राज्याधिकारी के चुनाव के प्रश्न पर जो तनावपूर्ण वातावरण उपस्थित था, उसका चित्रण है।

'अनंतफंदी' मराठा शासन के पतनोन्मुख युग के कवि हैं। सवाई माधवराव पेशवा के दरबार में इन्हें सम्मानित स्थान प्राप्त था। अतः दरबारी कवि की मनोवृत्ति के अनुकूल इन्होंने पेशवा दरबार के अनेक पराक्रमी तथा साहसी योद्धाओं पर पोवाड़े लिख उनको गौरव दिया है। यथा 'नाना फडणवीसाचा-पोवाडा', 'खर्ड्यां ची लढाई' आदि।

इनकी लावणियों में चन्द्रावल की लावणी तमाशबीनों में अत्यंत लोकप्रिय है। 'बारवरस का पट्ठा देखा' 'छान छबेली अजबरंगेली, मुख में चावे पानविडा' जैसी

मराठी-प्रकृति के अनुकूल लिखी कुछ हिंदी लावणियाँ भी मिलती हैं।

भावावेश के प्रबल क्षणो मे कवि अभिव्यक्ति के लिए शब्द या अलकार नही खोजता वरन् उसे तत्काल सहज अनलकृत रूप मे निर्भीकता से व्यक्त करता है। इसमे एक तडप है, जिसकी स्वाभाविकता मे ही अपूर्व सौंदर्य है।

अनंतमूर्ति, यू० आर० *(क० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

कन्नड के प्रतिभाशाली युवा साहित्यकारो मे अनतमूर्ति का मूर्द्धन्य स्थान है। आपने महाराजा कालेज से अँग्रेज़ी मे एम० ए० किया, फिर इँगलैंड से पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। आपकी रचनाओ मे प्रमुख है—'सस्कार' (उपन्यास), 'प्रश्ने', 'एदुमगियद कत्ते' (कभी न खत्म होनेवाली कहानी), 'हदिनैंदु पद्यगळु' (कविता), 'आवाहने' (नाटक) तथा 'प्रज्ञेमत्तु परिसर' (आलोचना)। इनके उपन्यास 'सस्कार' ने कन्नड साहित्य मे एक युगातर उपस्थित कर दिया था। यथार्थवाद, तीव्र साकेतिकता, सरल किंतु प्रभावी भाषा इनके लेखन की विशेषता है। इन्हे होमी भाभा फेलोशिप भी मिली।

अनतराय रावल *(गु० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

समीक्षक प्रो० अनन्तराय मणिशकर रावल सुदीर्घ अवधि तक गुजरात राज्य व भूतपूर्व बबई राज्य के शिक्षा-विभाग मे विभिन्न पदो पर—प्रमुखत प्राध्यापक पद पर—रहे हैं। सम्प्रति ये गुजरात यूनिवर्सिटी के गुजराती विभाग के प्रोफेसर एव अध्यक्ष-पद पर आसीन है। विगत लगभग चार दशको से प्रो० रावल अपनी समीक्षाओ द्वारा गुजराती साहित्य की अनवरत सेवा कर रहे है।

'साहित्य-विहार', 'गधाक्षत', 'साहित्य निकष', 'साहित्य-विवेचन', 'समालोचना', 'राई नो पर्वत नु विवेचन', 'मध्यकालीन गुजराती साहित्य', 'मदनमोहना', 'कलापी नो काव्य कलाप', 'प्रेमानद-कृत नलाख्यान' आदि इनके समीक्षा ग्रथ व सपादित ग्रथ हैं।

ये शिष्ट, सतुलित, समन्वयवादी समीक्षक है। मध्ययुगीन गुजराती साहित्य एव भाषा के ये सम्यक् अध्येता है। दोष दर्शन कराने की इनकी प्रवृत्ति सौम्य व रुचिकर है। स्वपक्ष-समर्थन की उग्रता तथा टीका टिप्पणी की वृत्ति इनमे नही है। तत्वनिष्ठा व सत्य के प्रति आग्रह इनकी विशिष्टता है। जनपदीय एव शिष्ट गुजराती का मिश्र प्रयोग, आडबरहीन कथन-पद्धति, सटीक व सुग्राह्य समीक्षा इनकी उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

अनजोड *(प० कृ०)*

प्रस्तुत रचना नाटककार हरचरणसिंह (दे०) की एक लोकप्रिय नाट्यकृति है। इसे अनेक बार रगमच पर अभिनीत किया जा चुका है। इसमे अनमेल विवाह की समस्या सामाजिक सदर्भ मे प्रस्तुत की गई है। लेखक ने इस समस्या को त्रासदी के रूप मे ढालने का यत्न किया है और उसका प्रभाव अतिरजित है, फलस्वरूप गहरी करुणा की टीस दर्शक को अभिभूत करती है। नाटक मे नाटकीयता अथवा नाट्य-कौशल का कुशल सयोजन नही हो पाया, इसलिए यह रचना परिपक्व साहित्यिक रुचि के पाठको को आकर्षित करने मे सफल नही हो सकी।

अनत्तन *(पा० पारि०)*

[स० अनात्मन्] यह एक बौद्ध सिद्धात है जिसमे आत्मा की सत्ता का प्रतिषेध किया गया है। भगवान बुद्ध के मत मे ऐसा कोई तत्त्व नही है जो सर्वदा विद्यमान रहे और शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट न हो तथा मृत्यु के बाद एक शरीर से दूसरे शरीर मे सक्रात होता जाए। आवागमन से मोक्ष का सिद्धात भी भगवान बुद्ध को मान्य नही। इनके मत मे सभी पदार्थ क्षणिक हैं किंतु उनकी परपरा बनी रहती है जिससे उसकी एकता का मिथ्या प्रतिभास होता रहता है। रात भर जलने वाली दीपशिखा एक नही है, प्रतिक्षण बदलने वाली दीपशिखा एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। इसी प्रकार एक दीपशिखा से दूसरी प्रज्वलित कर ली जाती है और उसकी परपरा बनी रहती है। जिस प्रकार रथ चक्र, दण्ड, धुरी इत्यादि का समूह है, उसी प्रकार मनुष्य भी शरीर-क्रिया, चित्त इत्यादि से भिन्न और कुछ नही। बौद्धो के मत मे स्कध-पचक से भिन्न कोई आत्मा नही—(1) रूपस्कध अर्थात् शरीर के विभिन्न अवयव, (2) वेदना-स्कध अर्थात् सुख दुःख की अनुभूति, (3) सज्ञा स्कध अथवा बोध, (4) सस्कार स्कध अथवा स्मृति, और (5) विज्ञान-स्कध या चेतना। यही नाम रूप आत्मा है।

अनस्तिकाय *(प्रा० पारि०)*

जैन मतानुयायी काल को 'अनस्तिकाय' तत्त्व

मानते हैं, क्योंकि न यह दिखाई पड़ता है, न विभाजित किया जा सकता है और न स्थानकृत दूरी में यह घटता-बढ़ता है। सभी स्थानों पर हर समय एक ही काल उपस्थित रहता है और अनुमान के द्वारा जाना जाता है। यही ऐसा तत्त्व है जिससे द्रव्य की निरंतरता, परिवर्तनशीलता, नवीनता-प्राचीनता इत्यादि संभव हो सकती है। द्रव्यों में गुणों का उदय-अस्त भी काल के अधीन होता है। जैन लेखकों ने काल के दो भेद किए हैं—पारमार्थिक काल और व्यावहारिक काल। इस दूसरे भेद को ही ये लोग 'समय' शब्द से अभिहित करते हैं। निरंतरता और वर्तना पारमार्थिक काल के लक्षण है जबकि सभी प्रकार के परिवर्तन व्यावहारिक काल अथवा समय की विशेषता हैं। घंटा, मिनट, सेकंड, दिन, मास, वर्ष, क्षण, इत्यादि रूप में विभाजन समय का ही होता है। पारमार्थिक काल सर्वदा एकरूप अविभाज्य है। पारमार्थिक काल में घंटा, मिनट इत्यादि का आरोप करके ही व्यावहारिक काल की कल्पना की जाती है।

अनहद नाद *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष 1964 ई०]

डाक्टर गोपालसिंह (दरदी) (दे०) को इस कविता-संग्रह पर राष्ट्रीय साहित्य अकादेमी से पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। आधुनिक जीवन की विडंबनाओं पर आलोचनात्मक टिप्पणी करते हुए स्वस्थ नैतिक और वैज्ञानिक मूल्यों को पुनःस्थापित करना इन कविताओं का विषय है। दृष्टिकोण की उदारता एवं सार्वभौम मूल्यों का विवेचन इसकी मुख्य विशेषता है। इन कविताओं से भारतीयता का विराट् संकल्प उभरता है; संभवतः इसीलिए पंजाबी भाषा के क्षेत्र से बाहर भी इसे प्रशस्ति प्राप्त हुई है। 'रब्बी लीला' इस संग्रह की अत्यंत प्रभावशाली कविता है जिसे कवि ने 'दांते' की 'डिवाइन कामेडी' की रूप-विधि में रचा है। 'अनस्ट्रक मैलोडी' शीर्षक से इस कविता-संग्रह का अँग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है।

अनारकली *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल 1922 ई०]

यह उर्दू का सुप्रसिद्ध नाटक है। इसके लेखक सैयद इम्तियाज अली 'ताज' (दे०) हैं। इसकी नायिका एक नर्तकी नादिरा बेगम है जिसे अकबर ने 'अनारकली' (दे०) की उपाधि प्रदान की थी। शाहज़ादा सलीम अनारकली के प्रेम-पाश में फँस गया था। एक दिन अकबर बादशाह ने उसे सलीम के साथ संकेतों में बातें करते देख लिया। अनारकली को बंदी बना दिया गया और बाद में उसे जीवित ही दीवार में चिनवा दिया गया। सलीम उसके वियोग में विक्षिप्त-सा हो गया। बाद में अकबर को जब अनारकली के प्रति अपने बेटे के वास्तविक प्रेम का ज्ञान हुआ तो उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ।

नाटक बहुत हृदयग्राही है। भाषा प्रौढ़ तथा संवाद सजीव हैं। कहीं-कहीं तो शब्द मर्म की गहराइयों में उतर जाते हैं। लेखक अनारकली को ऐतिहासिक पात्र नहीं मानता; उसने तो केवल सुनी-सुनाई कथा के आधार पर इस नाटक की रचना की है।

उर्दू-साहित्य में 'अनारकली' नाटक का एक विशेष स्थान है।

अनारकली *(उर्दू० पा०)*

अनारकली सैयद इम्तियाज़ अली 'ताज' (दे०) के सुप्रसिद्ध नाटक 'अनारकली' (दे०) की नायिका है। इसका वास्तविक नाम नर्तकी नादिरा बेगम है। अकबर बादशाह ने ही उसे 'अनारकली' की उपाधि प्रदान की थी। कुछ लोगों को अनारकली के एक ऐतिहासिक पात्र होने में संदेह है। अन्य लोग इसे एक ऐतिहासिक पात्र मानते हैं और उनका कथन है कि अकबर ने नर्तकी नादिरा बेगम को 'अनारकली' की उपाधि इसलिए प्रदान की थी कि वह इतनी सुंदर एवं आकर्षक प्रतीत होती थी कि उसे अनार की खिली कली की संज्ञा दी जा सकती थी।

नाटककार 'अनारकली' का एक नायिका के रूप में सुंदर चरित्र-चित्रण करने में पूर्ण सफल हुआ है। उसके मुख से निकले शब्द मर्म को छूते हैं।

अनार्यना अडपलां *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष 1955 ई०]

गुजराती साहित्य के गद्य एवं पद्य दोनों क्षेत्रों में पारसियों की सेवा उल्लेखनीय है। 'अनार्यना अडपलां' गुजराती के पारसी लेखक व समीक्षक श्री जहाँगीर संजाणा (दे०) के समीक्षात्मक लेखों का संग्रह है। इस संग्रह में संकलित समीक्षात्मक लेखों में लेखक का गांभीर्य, सूक्ष्म विवेचन, बहुत ही सूक्ष्म निरीक्षण तथा व्यंग्यपूर्ण शैली एवं परिहासमूलक कटाक्ष स्पष्ट प्रकट होता है।

'अनार्य' श्री संजाणा का उपनाम है। 'अनार्यना

अडपला का अर्थ है 'अनार्य की छेडखानी'।

इसमे सकलित लेख हैं—(1) अनार्यना अडपला, (2) तीस वर्ष पूर्व की एक छद चर्चा, (3) पारसी व गुजराती भाषा, (4) 'उगती जुवानी' की पारसी बोली, (5) पारसी गुजराती और साक्षरी गुजराती, (6) आधुनिक गुजराती साहित्य, (7) साहित्य का ध्येय, (8) गुजराती और सस्कृत, (9) विविध विचार, (10) फलिका और प्रयत्न-बध, (11) कवि खबरदार (दे०) का महाछद, (12) नर्मद साहित्य सभा के साथ पत्र व्यवहार, (13) छबि छबी का शब्दार्थ, (14) विक्रमादित्य।

इन लेखो मे श्री सजाणा का सस्कृत प्रेम, सस्कृत का गभीर ज्ञान, *छदशास्त्र का गहन अध्ययन*, विविध विषयो के प्रति रुचि एव जिज्ञासा अभिव्यक्त हुई है। विशुद्ध ज्ञानोपासक, निर्भय समीक्षक का व्यग्य-विनोदपूर्ण रूप क्या हो सकता है—इसका परिचय इन समीक्षात्मक लेखो मे मिल जाता है।

एक पारसी गुजराती समीक्षक के महत्त्वपूर्ण समीक्षा ग्रथ के रूप मे यह ग्रथ विशेष उल्लेखनीय है।

अनिल, आत्माराम रावजी देशपांडे *(म० ले०)*
[जन्म—1901 ई०]

अनिल आधुनिक मराठी कविता को व्यक्ति-निष्ठ वैयक्तिक प्रेम-कविता से समाज-प्रेम एव मानवता-वाद की ओर ले जाने वाले कवि हैं।

अनिल की काव्य चेतना की प्रवृत्ति शृगारात्मक प्रगीतो से क्रातिकारी गीतों की ओर रही है। इनका 'फुलवात' काव्य-सग्रह व्यक्तिगत प्रेम-गीतो का सग्रह है। इनके प्रेम मे एकनिष्ठा है, इस कारण उसमे उच्छृखलता नही, भावोत्कटता है।

'भग्नमूर्ति', 'निर्वासित चीनी मुलास', और 'पेर्तेव्हा' इनके तीन खडकाव्य है। इनकी कविता मे विचार तथा भावना का सुदर मिश्रण है।

मराठी कविता मे ये मुक्त छद (दे०) के जनक एव सफल प्रयोक्ता हैं। 'भग्नमूर्ति' और 'निर्वासित चीनी मुलास' खडकाव्यो की रचना मुक्त छद मे कर इन्होने आधुनिक खडकाव्यो की रचना मे छद-विषयक नवीन प्रयोग किया है। मान्य ग्यारह रसो के अतिरिक्त अनिल 'प्रक्षोभ' को बारहवाँ रस मानते हैं।

अनीस *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1800 ई०, मृत्यु—1874 ई०]

इनका पूरा नाम मीर बब्बर अली और उपनाम 'अनीस' था। इनका जन्म फैज़ाबाद, मुहल्ला गुलाबबाडी, मे हुआ। बाद मे ये लखनऊ चले गए। ये बहुत स्वाभिमानी व्यक्ति थे और अपने परिवार की मान-मर्यादा का बहुत ध्यान रखते थे—बिना बुलाए कभी किसी के पास नही गए। काव्य-गुण इनकी पैतृक धरोहर थी और योग्य तथा उच्च कोटि के कवि जितने इनके परिवार मे हुए, उतने और किसी मे नही हुए। इसलिए इनका अपने परिवार पर गर्व करना स्वाभाविक था। अनीस ने बाल्यकाल मे ही काव्य-रचना आरभ कर दी थी। पहले 'हज़ी' उपनाम से और *बाद म 'अनीस' उपनाम से।*

मरसिया (शोक गीत) (दे० मरसि ए-अनीस) लिखने मे इनका कोई जवाब नही। इन्होने हज़ारो मरसिये, सलाम, किलआत, रुबाइयाँ आदि लिखी। इनका काव्य-सग्रह अभी पूरा प्रकाशित नही हुआ। फिर भी जो छपा है वह पाँच भागो म है। प्रसिद्ध है कि इन्होने कोई ढाई लाख पद लिखे हैं जिनमे कुछ गजलें भी है। इनकी कविता-पाठ की शैली भी निराली थी जिसे सुनकर श्रोताओ की भीड इकट्ठी हो जाती थी।

अनीस का काव्य सतुलित तथा समतल है। ये उर्दू साहित्य मे प्रथम श्रेणी के कवि माने जाते हैं। इनकी भाषा दिल्ली तथा लखनऊ की प्रामाणिक भाषा है। ये युद्ध का वर्णन बडे ही मार्मिक ढग से करते है। प्राकृतिक दृश्यो का चित्रण और मानवीय मनोवेगो की अभिव्यक्ति मे इनकी तुलना किसी अन्य से करना कठिन है। भाषा सरल, सजीव तथा स्पष्ट होती है। विषय पुराना होने पर भी हर बार नया प्रतीत होता है। ये ऊहाओ से काम नही लेते। बात को सीधे-सादे ढग से कहना ही इनकी विशेषता है।

अनुकरण *(हिं० पारि०)*

यह ग्रीक 'मिमेसिस' का हिंदी पर्याय है। ग्रीक विद्वान कला सृजन की प्रक्रिया को अनुकरण मानते थे। प्लेटो के शब्दो मे वह 'प्रकृति के सामने दर्पण रख देने' की क्रिया मात्र है और चूँकि कलाकार कृति मे सत्य की छाया की छाया मात्र प्रस्तुत करता है, अत कला (दे०) मूल्यहीन एव त्याज्य है। अरस्तू ने 'अनुकरण' शब्द मे नया अर्थ भरा। अनुकरण से उसका अभिप्राय स्थूल भौतिक

प्रकृति का अनुकरण न होकर प्रकृति के उन आंतरिक नियमों का अनुकरण है जिनके अनुसार प्रकृति सृजन करती है। कलाकार प्रकृति के अधूरे काम को पूरा करता है, वस्तु के सार्वभौम एवं आदर्श रूप को प्रस्तुत करता है और ऐसा करने में संवेदना, अनुभूति, कल्पना (दे०) और आदर्श का प्रयोग करता है। इसी प्रकार वह मानव को नहीं 'कार्यरत मानव' को अनुकरण का विषय बताता है। अतः अरस्तू के अनुकरण का अर्थ किया गया कल्पनात्मक पुनःसृजन, रचनात्मक प्रक्रिया, जीवन का पुनर्निर्माण। परवर्ती यूनानी तथा रोमानी अलंकारशास्त्रियों ने 'अनुकरण' का अर्थ माना प्राचीन महान कृतियों का अनुकरण। केवल लोंजाइनस ने अनुकृति या निर्देश देते समय प्राचीन महान साहित्यकारों की अंतर्दृष्टि और दिव्य विशेषताओं को आत्मसात् करने और उनसे तादात्म्य स्थापित करने की बात कही। अठारहवीं शताब्दी तक पूर्वस्थित आदर्शों के अनुकरण पर ही बल दिया जाता रहा। अठारहवीं शती में डा० जॉनसन ने इस सिद्धांत को पुनः नया आयाम देते हुए कहा कि अनुकरण विशिष्ट का न होकर सामान्य एवं सार्वभौम प्रकृति का होना चाहिए। उन्नीसवी शती में गद्य-कृतियों को केंद्र मानकर यथार्थवाद (दे०) और प्रकृतवाद (दे०) का समर्थन किया गया। अनुकरण-सिद्धांत की नवीनतम व्याख्या में कलाकृति की अंतस्संगति पर विशेष बल दिया जा रहा है। प्राचीन संस्कृत-काव्यशास्त्र में भी काव्य-सृजन के मूल में अनुकरण को स्वीकार किया गया है, पर वहाँ जिन शब्दों 'अनुव्यवसाय' और 'अनुकीर्तन' का प्रयोग हुआ है, उनसे स्पष्ट है कि वे यांत्रिक अनुकरण को न मानकर कल्पनात्मक पुनःसृजन को ही काव्य-रचना की प्रक्रिया का मूलाधार मानते थे।

अनुजन्, ओ० एम० *(मल० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

ओट्टपालम् में प्रसिद्ध ओळप्पमण्णा मना (नंपूतिरि परिवार) में इनका जन्म हुआ। डा० अनुजन् प्रमुखतः कवि है। उनकी रचनाओं में प्रमुख हैं—(1) मुकुळम्, (2) चिल्लुवातिल्, (3) अगाधनीलिमकळ्, (4) वैशाखम्, (5) सृष्टि और (6) अक्तेयन्(दे०) हैं। 'मलयाळिच्चि' तथा 'मधुवुमुरमयुम् राजावुम्' छोटे खंडकाव्य हैं। इनका 'मेघम्', 'मेघसंदेश' का संक्षिप्त भावानुवाद है। अनुजन् की काव्य-रचना का प्रारंभिक काल श्री चड्ङंपुषा (दे०) की कीर्ति का काल रहा। उन दिनों सभी कवि यथासंभव संस्कृत के प्रभाव से बचे रहना चाहते थे और विषय-वस्तु की पुरानी धारा के कट्टर आलोचक होते थे। अनुजन् भी रूढ़िवादी धनी नंपूतिरि परिवार की संतान होने के बावजूद पुरानी अर्थ-व्यवस्था एवं समाज-व्यवस्था की कठोर आलोचना अपनी रचनाओं में करते आए हैं। इस विचारशील कवि की रचनाओं में कोरी भावुकता की जगह बौद्धिकता भी है।

अनुप्रास *(सं०, हिं० पारि०)*

अनुप्रास काव्य में वर्ण-संगीत एवं नाद-सौंदर्य की सृष्टि करने वाला एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण शब्दालंकार है। 'अनु' और 'प्र' उपसर्ग तथा √ अस् के संयोग से व्युत्पन्न अनुप्रास अलंकार का पूर्व-इतिहास अत्यधिक प्राचीन है। अनुप्रास का शब्दार्थ है—काव्य मे वर्णनीय रस की प्रकृति के अनुकूल वर्णों (व्यंजनों) का पुनःपुनः परस्पर समीप विन्यास (अनु=वर्णनीय रस के अनुकूल; प्र=समीपता; आस=बार-बार रखा जाना)। दूसरे शब्दों में इस शब्दालंकार का आधार वर्ण-साम्य तथा व्यंजना की आवृत्ति है। अनुप्रास में रसानुकूल वर्णावृत्ति में स्वर की समानता का कोई प्रतिबंध नहीं है। संस्कृत-काव्यशास्त्र में अनुप्रास के पांच भेदों का उल्लेख है—छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास, श्रुत्यनुप्रास, लाटानुप्रास और अंत्यानुप्रास। रुद्रट (दे०), मम्मट (दे०) आदि ने इसका विस्तार से निरूपण किया है।

अनुभव मुकुर *(क० कृ०)*

इसका एक अन्य नाम 'मोहानुभव मुकुर' है। यह स्मरतंत्र या कामशास्त्र-संबंधी एक छोटा-सा ग्रंथ है जिसमें एक सौ नौ छंद हैं। इसे एन० एस० सुब्रह्मण्य शास्त्री ने प्रकाशित किया है। इसमें तोटक, कलकंठ आदि विविध छंद हैं। कवि ने इसमें नायिकाभेद के वर्णन के बदले स्त्री-रूप की प्रशंसा, स्त्री-भोग के महत्त्व आदि पर जोर दिया है। कवि का दावा है कि स्त्री से सर्वसौख्य प्राप्त होंगे—यहाँ तक कि मोक्ष भी प्राप्त होगा। संसार में रम्यतम वस्तु नारी है। प्रसंगतः कवि ने रसों की चर्चा करते हुए तेरह रस बताए हैं। नये रस हैं—वात्सल्य मोहरस, भक्ति रस तथा आनंद रस। स्त्रियों की विकृतियों के ज्ञाता को कवि ने सर्वज्ञ माना है। इस तरह कुछ नयी बातों के होने पर भी ग्रंथ साधारण है। शैली में काफ़ी सरसता है।

अनुभवामृत (क० कृ०)

इसके लेखक महलिग रग या रगनाथ हैं जिनका समय 1675 ई० ठहराया गया है। कन्नड मे इससे पहले जैन, वीरशैव, माध्व एव श्रीवैष्णव कवियो ने विशेप रूप से काव्य-रचना की थी। अद्वैत तत्व निरूपक ग्रथ नही के बराबर थे और इस अभाव को यह ग्रथ पूरा करता है। इसमे कन्नड की भक्ति बहुत सुदर ढग से गाई गई है। इस ग्रथ मे अधिकार-लक्षण, वैराग्य त्वपद, तत्पद, असित-पद, सप्तभूमिकाएँ, परमात्मा, मायावाद, जीवत्रय, जीवन मुक्ति, निर्गुणराधना आदि का निरूपण एव स्वतन्त्र अध्याय मे हुआ है। सस्कृत से अनभिज्ञ लोगो के लिए अद्वैतमत बोधक ग्रथ इस से सरल एव सुबोध और कोई नही। दृष्टात सपत्ति इसकी सबसे बडी विशेषता है। विपुल लोक दृष्टातो के कारण अत्यत गहन दार्शनिक बातें भी सुबोध बन गई है। भगवद्गीता, महाभारत, रामायण, एव शकर-भाष्य से कवि ने सामग्री अवश्य ली है किंतु फिर भी उसका लोकानुभव विस्तृत है, प्रतिभा काफी प्रखर है। यह ग्रथ 'भामिनी षट्पदी' म लिखा गया है। शैली अत्यत सरल एव प्रसादगुण से परिपूण है।

अनुभाव (स०, हिं० पारि०)

भरत (दे०) मुनि के प्रसिद्ध रस-सूत्र मे निर्दिष्ट एक सर्वमान्य रसावयव है 'अनुभाव'। जैसा कि नाम से स्वत व्यक्त है रस-प्रक्रिया मे अनुभावो की स्थिति भाव की अनुवर्तिनी होती है। अत यदि विभाव रस प्रतीति के कारण रूप है तो अनुभाव कार्यरूप। सस्कृत काव्यशास्त्रियो के अनुभाव वाणी एव अग सचालन आदि वे वे व्यापार विशेष हैं जो आलबन, उद्दीपन आदि के कारण आश्रय के मन मे उद्बुद्ध भावो का बाह्य प्रकाशन करते हैं (साहित्य-दर्पण 3/132)। मन, शरीर, वेशभूषा तथा वाणी आदि से सबद्ध ये अनुभाव सामान्यत —कायिक, मानसिक, आहार्य, वाचिक तथा सात्त्विक—पाँच प्रकार के माने गए है।

अनुरुद्ध (पा० ले०) [समय—बारहवी शताब्दी का अत]

इनके जीवन-वृत्त के विपय मे केवल इतना ही ज्ञात है कि इनका कार्य स्थान ब्रह्मदेश था और वही इन्होने साहित्य रचना की थी। वस्तुत 'अभिधम्म पिटक' (दे०) इनकी लिखी हुई एक अत्यत महत्त्वपूण रचना है, जिसमे मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक तत्त्वो का उच्चकोटि का सग्रह किया गया है और 'अभिधम्म' की जटिलताओ को सरल करने की चेष्टा की गई है। आज भी लका और ब्रह्मा मे इस अभिलेख को सर्वाधिक महत्व की दृष्टि से देखा जाता है। इस पुस्तक की महत्ता इसी से सिद्ध होती है कि इसकी जितनी टीकाएँ प्रकाशित हुई है उतनी किसी अन्य पुस्तक की नही। इस पुस्तक के अनुवादो की सख्या भी बहुत है। इनका एक दार्शनिक काव्य 'नामरूप परिच्छेद' भी प्रसिद्ध है जिसमे 1855 पद्य है।

अनुरूपा देवी (बँ० ले०) [जन्म—1882 ई०, मृत्यु—1958 ई०]

अनुरूपा देवी का व्यक्तित्व एव कृतित्व समृद्ध है। उनकी रचनाओ का उत्तरोत्तर विकास एव विस्तार तो हुआ ही, उनकी कथाभूमि भी कम व्यापक नही है। ऐतिहासिक उपन्यासो मे 'त्रिवेणी' उल्लेखनीय रचना है। इन उपन्यासो मे लेखिका प्राचीन मूल्यो की प्रतिष्ठा के लिए ही प्रयत्नशील रही है परतु तत्कालीन सघर्ष एव उत्तेजना को प्रस्तुत करने मे वह अधिक सफल रही है। अनुरूपा देवी ने सामाजिक उपन्यास मे पारिवारिक समस्याओ के विभिन्न पहलुओ को उठाया है। 'माँ' उनका सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास है परतु साहित्यिक उत्कर्ष की दृष्टि से 'मन्त्रशक्ति' अन्यतम उपलब्धि है। परवर्ती रचनाओ मे प्रतिभा का ह्रास ही हुआ है।

अनुरूपा देवी के उपन्यासो का केंद्र-बिंदु है नारी। पाश्चात्य प्रवाह के दूषण से बचाकर लेखिका नारी को त्याग एव भक्ति-पूजा के शातिमय वातावरण मे रखना चाहती ह। धर्मानुष्ठान के प्रति मोह तो है ही, साथ मे वैसे ही पात्रो की कल्पना की गई है। इनकी रचनाएँ नारी-स्पर्श से स्निग्ध है और नारी हृदय के सूक्ष्म एव सजीव चित्राकन के कारण चिरस्मरणीय रहेगी।

अनोखे ते अकल्ले (प० कृ०) [प्रकाशन वर्ष 1940 ई०]

'अनाखे ते अकल्ले' गुरुबख्शसिह 'प्रीतलडी' (दे०) का कहानी सग्रह है जिसमे उनकी सात कहानियो और सात पाश्चात्य लेखको की रचनाओ के अनुवाद सकलित हैं। इन कहानियो की मूल चेतना 'प्रीत' का प्रचार है। सृष्टि-सरचना के प्रारभ से पदार्थों, सबधो एव मान्यताओ के महत्व मे परिवर्तन होता रहा है लेकिन आज तक

मनुष्य के 'प्रीत-हृदय' में कोई भी परिवर्तन लक्षित नहीं हुआ है। इनमें जीवन में घटित होने वाली विविध प्रकार की घटनाओं का 'प्रीत' से संबंध स्थापित करते हुए पात्रों के आचरण तथा चरित्र में जो परिवर्तन दिखाया गया है वह धर्म-परिवर्तन से कम नहीं है। पात्रों का चरित्र-चित्रण इन कहानियों में एकांगी एवं आदर्शवादी है। सभी कहानियों का मूल स्वर प्रगतिशील समाज की स्थापना है। जीवन को स्वच्छ, पवित्र और प्रसन्न बनाने के जो संकेत इन कहानियों से व्यक्त होते हैं उनमें कहानीकारों का आदर्शवादी दृष्टिकोण प्रतिफलित हुआ है।

अन्ननटा *(मल० पारि०)*

मलयाळम कविता में प्रयुक्त एक द्राविड छंद। इसमें दो पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में गुरु और लघु के क्रम से दो-दो अक्षरों के छह गण होते हैं। तुंचत्तु एषुत्तच्छन (दे०) के 'महाभारत' के कर्णपर्व और मौसलपर्व इस छंद में निबद्ध हैं। 'किळिप्पाट्टु' (दे०) शैली की शोभा बढ़ाने वाला यह छंद आधुनिक कवियों में भी काफी लोकप्रिय है।

अन्नदामंगल *(बँ० कृ०)*

भारतचन्द्र (दे०) का 'अन्नदामंगल' बँगला साहित्य की एक स्मरणीय संपत्ति है। 'अन्नदामंगल' तीन अंशों में विभक्त है। पहले अंश में शिव-संकीर्तन एवं देवीमंगल, दूसरे भाग में कालिकामंगल अर्थात् विद्यासुंदर का प्रणयोपाख्यान, एवं अंतिम भाग में मानसिंह-प्रतापादित्य-भवानन्द की कहानी है तथा कवि के आश्रयदाता अशेषगुणग्राही महाराज कृष्णचन्द्र राय की वंश-प्रशस्ति है।

यह ठीक है कि मंगल-काव्य के भावाकाश के बीच ही यह काव्य प्रसारित है किंतु यह बात भी सही है कि इसकी ग्रंथि दृढ़बद्ध नहीं है। दैव-निर्भरता का युग उस समय अपनी महिमा से विच्युत होकर आघात-वेदना से विपण्ण दिखाई पड़ रहा था। उस विपण्णता की गहराई में मानवीयता की पदध्वनि ने भारतचंद्र को आलोड़ित किया था। इसीलिए मंगलकाव्य की नूपुर-ध्वनि 'अन्नदामंगल' में सुनाई पड़ने पर भी उसका प्राधान्य-विस्तार यहाँ नहीं हो पाया है। यही 'अन्नदामंगल' का वैशिष्ट्य है।

अन्नमाचार्युलु *(ते० ले०)* [समय—1424-1503 ई०]

जन्म से स्मार्त, संस्कार से वैष्णव और साधना से संगीतकार ताल्लपाक अन्नमाचार्युलु तेलुगु साहित्य में भक्ति और शृंगार से युक्त गीतों (पदों) की रचना के एक अभिनव मार्ग का उन्मेष करके 'पदकविता-पितामह' के रूप में प्रसिद्ध हुए। सोलह साल की किशोर अवस्था से ही अन्नमाचार्युलु ने तिरुपति के अधिष्ठाता भगवान बालाजी के गुणगान में गीत लिखना शुरू कर दिया था। कहते हैं कि इन्होंने कुल मिलाकर बत्तीस हज़ार गीत रचे और उन्हें ताम्रपत्रों में खुदवाकर भगवान को समर्पित कर दिया, जो भगवान के मंदिर के एक विशिष्ट मंडप में सुरक्षित हैं। पर आज केवल डेढ़ हज़ार पद उपलब्ध हैं। 'अन्नमाचार्युलु' के गीत 'आन्ध्रवेद' के रूप में प्रख्यात हुए। भक्त अपने आपको नायिका के रूप में प्रस्तुत करके भगवान के प्रति अपनी अनन्य भावना और अनुराग की निष्ठा को कई प्रकार से प्रकट करता है। इन पदों में भगवान की अनेक लीलाओं का हृदयग्राही वर्णन मिलता है। अध्यात्म और शृंगार के इन पदों के अतिरिक्त अन्नमाचार्युलु ने दो और रचनाएँ की थीं। 'शृंगारमंजरी' में परम प्रेमरूपा भक्ति का वर्णन किया गया है और दूसरी रचना 'वेंकटेश्वरशतकमु' में बाला जी और उनकी आह्लादिनी शक्ति अलवेलुमंगा का आत्मनिवेदन वर्णित है।

अन्निमिञ्जिली *(त० पा०)*

संघ साहित्य के अनुसार अन्निञ्जिली एक ग्वालिन थी जिसने राजा तिदियन् की सहायता से कोशर् का वध कर अपने निर्दोष पिता की हत्या का बदला लिया था। वर्तमान काल में शालै इळन्तिरैयन-कृत कथाकाव्य 'अन्निमिञ्जिली' में इसका रूप झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का-सा है। वह पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए स्वयं रणक्षेत्र में कूद पड़ती है। तमिल में 'अन्निमिञ्जिली' के चरित्र से संबंधित अनेक साहित्यिक कृतियाँ हैं।

अन्नैक्कु *(त० कृ०)*

यह डा० मु० वरदराजन (दे०) के निबंधों का संग्रह है। ये सभी निबंध पुत्र एषिल द्वारा अपनी माँ के नाम लिखे गए पत्रों के रूप में हैं। विभिन्न निबंधों में तमिलनाडु में होने वाले परिवर्तन, दो पीढ़ियों की विचार-

धारा मे अतर, वर्तमान समाज मे सयुक्त परिवार प्रथा की अमान्यता आदि विषय वर्णित हैं। इन निबधो के माध्यम से निबधकार ने यही बताने का प्रयास किया है कि पुराने विचार पुराने समाज के लिए भले ही उपयोगी रहे हो किंतु नये समाज के लिए पूर्णत. उपयोगी नही हो सकते तमिल मे निबध नामक साहित्य-विधा विशेष विकसित नही है। इस दृष्टि से डा० वरदराजन के इन निबधो का तमिल के निबध-साहित्य मे विशिष्ट स्थान है।

अन्योक्ति *(स०, हि० पारि०)*

जहाँ उपमान के कथन से उपमेय का ज्ञान हो उसे अन्योक्ति कहते हैं। कई आलकारिक इसे अप्रस्तुत प्रशसा अलकार का एक भेद मानते है।

जैसे—

सतुष्ट आज पर नित्य रहो सहर्ष,
हे ग्रीष्म, सन्तन करो उसका प्रकर्ष।
है कौन हेतु पर होकर जो कराल,
हो नष्ट भ्रष्ट करते तुम ये तमाल॥

—सियारामशरण गुप्त

यहाँ प्रस्तुत व्यक्ति वह है जो किसी अनधिकारी अनुचर पर तो कृपा कर रहा है और अधिकारी अनुचर पर अकारण कुपित हो रहा है।

अन्योक्ति रूपक *(हि० पारि०)*

इस शब्द का सर्वप्रथम व्यवहार भाषणशास्त्र मे हुआ, जहाँ इसका अर्थ था व्यग्यपूर्ण शब्दावली मे बात कहना। भारतीय काव्यशास्त्र मे पहले अन्योक्ति एक अलकार मात्र माना जाता था जिसमे प्रत्यक्ष अर्थ के साथ-साथ कोई अन्य अर्थ भी जुडा होता है। बाद मे अन्योक्ति शब्द का प्रयोग ऐसी सपूर्ण कलाकृति के लिए भी किया जाने लगा जिसकी प्रत्यक्ष कथा नीति और उपदेश भी दे। अन्योक्ति-रूपक (एलेगरी) से आज अभिप्राय है उस द्व्यर्थक कथा-काव्य से जिसमे प्रस्तुत कथा स्थूल और भौतिक घटनात्मक होती है तथा अप्रस्तुत कथा सूक्ष्म-सैद्धातिक। सस्कृत का 'प्रबोध-चन्द्रोदय' (दे०), अँग्रेजी के 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' तथा 'फेयरी क्वीन' अन्योक्ति-रूपक के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

अपभ्रंश *(भाषा—पारि०)*

एक मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा, जिसका काल मोटे रूप से 500 ई० से 1000 ई० तक है। पर साहित्य मे इसका प्रयोग और बाद तक भी होता रहा है। 'अपभ्रंश' का अर्थ है 'बिगडा हुआ'। सस्कृत के शब्दो और रूपो (तत्सम) के जनता मे प्रयुक्त परिवर्तित या विकसित रूप अपभ्रश या अपभ्रष्ट कहलाए और उसी आधार पर भाषा के उस रूप को 'अपभ्रंश' या 'अवहट्ट' नाम से अभिहित किया गया। अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भाषाओ के बीच की कडी है। अपभ्रश के क्षेत्रीय रूप कम-से-कम उतने तो अवश्य रहे होगे, जितने प्राकृत के थे। इन्ही रूपो से आधुनिक आर्य-भाषाएँ विकसित हुई हैं ब्राचड से सिंधी, पैशाची से लहँदा और पजाबी, शौरसेनी से गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी और पहाडी, महाराष्ट्री से मराठी, अर्धमागधी से पूर्वी हिंदी तथा मागधी से बिहारी, असमिया, बँगला और उडिया। अपभ्रंश साहित्य मे अपभ्रंश के मुख्यत केवल दो ही रूप मिलते हैं पश्चिमी और पूर्वी। अपभ्रंश के इन दोनो रूपो मे पर्याप्त साहित्य मिलता है।

अपरान्हर आकाश *(उ० कृ०)*

'अपरान्हर आकाश' ज्ञानीन्द्र वर्मा (दे०) का सामाजिक उपन्यास है। इसमे जमीदारी-उन्मूलन का चित्रण है। लेखक ने बडी सहानुभूति और सवेदना के साथ सामतीय प्रथा के दुर्गुण एव सद्गुणो पर प्रकाश डाला है। जमीदार घराने का आभिजात्य, शालीनता, उदारता, क्षमाशीलता, सास्कृतिक गौरव-रक्षा की वृत्ति के साथ उनके द्वारा अपव्यय, जन शोषण और लौह-शासन का भी चित्रण हुआ है।

अपु *(बँ० पा०)*

विभूतिभूषण बद्योपाध्याय (दे०) के 'पथेर पाचाली' (दे०) एव 'अपराजित' उपन्यासो का नायक अपूर्व या अपु है। इस चरित्र का स्वरूप सधान विश्लेपण के द्वारा नही, केवल अनुभूति के द्वारा ही सभव है। प्रकृति की पटभूमिका मे जीवन के समस्त आनंद, सविस्मित मुग्धता एव अनत वेदना के सुचिस्निग्ध सौरभ का आस्वाद इससे पहले बँगला साहित्य मे नही मिला था। जीवन-पथ

के विचित्र गाथाकार विभूतिभूषण ने अपु के चरित्र के माध्यम से शैशव जीवन के रस-रहस्य की दीपावली को उज्ज्वलतर बनाकर प्रकट किया है एवं उसी के क्रम-विवर्तन का चित्र खींचते हुए कौतूहल से भरे कैशोर जीवन की विचित्रता का अंकन निपुण शिल्पी की अपरिमेय शक्ति से किया है। मनसापोत गाँव को छोड़कर अपु जब काशी की समस्याकीर्ण गली में निष्ठुर यथार्थ के विचित्र अनुभवों से परिचित होता है तब कैशोर-चेतना विचित्र अभिज्ञता के आवर्त में वेदना-चंचल हो उठी है किंतु दिशाहीन नहीं। फिर प्रकृति की निःसीम शांति के कमलकुंज में उसके जीवन का अभिसार दिखाया गया है। प्रकृति की वाणी ही उसके अंतर की वाणी है। प्रकृति-मंत्र से दीक्षित अपु ने महा-जीवन के आह्वान को ग्रहण किया है। राजधानी कलकत्ते की जीवन-तरंग उसके बहिर्जीवन को द्रुतगति से असहनीय दारिद्र्य की ओर खींच ले गई है। माँ की मृत्यु ने उसे शोक-स्तब्ध कर दिया है तो दूसरी ओर युवक अपूर्व की बाल्यसंगिनी लीला ने उसे मुग्ध किया है। अपर्णा के आगमन से अननुभूत जीवनचर्या नवछंद में स्पंदित हो उठी है। अपर्णा की अकाल मृत्यु एवं संतान काजल के प्रति अपु की मनोग्रंथि नये आवेग एवं नये आलोक में स्पंदित हुई है। विरक्त मन रास्ते में निकल पड़ा है अपने को ढूंढ़ने; किंतु उसे आश्रय मिला है वहीं निश्चिंतपुर की परमप्रकृति में। प्रकृति के साथ प्राण के नित्यकाल के संबंध को अपु के चरित्र में वाणीमूर्ति प्राप्त हुई है।

अप्पकवीयमु *(ते०कृ०)* [समय—सत्रहवीं शती ई०]

काकुनूरि अप्पकवि, पंडित-वंश में पैदा हुए तथा इनकी परवरिश बचपन में इनके मातामह के ग्राम कामेपल्ली में हुई। इन्होंने संस्कृत, प्राकृत, एवं तेलुगु में असाधारण पांडित्य प्राप्त किया। कोंडूरि गिरय्या के पास व्याकरण की शिक्षा पायी, कोलिचेल सिंगन्ना से पौरोहित्य के स्मार्त कर्मों का मर्म सीखा तथा मंचिकंटि ओबन्ना से लक्षणग्रंथों का अध्ययन किया। इस प्रकार अप्पकवि कई विषयों के मर्मज्ञ पंडित हुए। इन्होंने 'आपस्तंबषट्कर्मनिबंधनम्' नामक स्मार्त ग्रंथ की रचना संस्कृत में की। 'कालामृत' नामक संस्कृत के ज्योतिष-ग्रंथ पर 'कालवालार्णवसंहिता' नामक व्याख्या रची। इनकी अन्य कृतियों में 'अम्बिकावादमु' नामक यक्षगान तथा 'अनंतव्रतकल्प' नामक काव्य का भी जिक्र है। परंतु खेद का विषय है कि इनमें से कोई ग्रंथ अब उपलब्ध नहीं है।

इनके साहित्यिक यश का आधारभूत ग्रंथ अब एकमात्र 'अप्पकवीयमु' नामक लक्षण-ग्रंथ है। इसमें भी आठ आश्वासों के स्थान पर आज केवल पाँच आश्वास मिल रहे हैं। 'अप्पकवीयमु' की रचना की पृष्ठभूमि कवि के अनुसार एक प्रेरणा-प्रसंग था। कृष्णाष्टमी के दिन व्रत एवं पूजा करके वे सारी रात पुराण-श्रवण में बिता रहे थे। पर बीच में कुछ समय गहरी नींद आ गई। उसमें कृष्ण से साक्षात्कार हुआ। कवि को नन्नय भट्टु (दे०) कृत 'आंध्रशब्दचिंतामणि' (दे०) का अनुवाद करने का आदेश मिला। तदनुसार अप्पकवि ने इसका अनुवाद किया। वास्तव में यह कोई अनुवाद नहीं, परंतु एक बृहद् व्याख्या-ग्रंथ माना जा सकता है। मूल ग्रंथ में केवल बयासी आर्या छंद थे। अनुवाद में छंदों की कुल संख्या, प्राप्त पुस्तक में 1602 है। इस अंश के मूल छंद केवल पचास थे। 'अप्पकवीयमु' का रचनाक्रम इस प्रकार है :

प्रथमाश्वास में 1. प्रामाणिक लक्षण ग्रंथों की सूची, 2. लक्षणवेत्ताओं का वर्गीकरण, 3. 'विश्वश्रेयः काव्यम्' इस सूत्र का विवरण, 4 कविकर्म के लिए योग्यताओं का उल्लेख, 5. शब्द और अर्थ का विवेचन, 6. चतुर्विध कविताओं का विवरण, 7. अलंकारों एवं रसों का वर्णन आदि समाविष्ट हुए हैं। द्वितीय आश्वास में वर्ण-परिच्छेद का विस्तृत वर्णन मिलता है। उच्चारण तथा वर्तनी-संबंधी नियमों की बड़ी सूक्ष्मता के साथ इसमें चर्चा मिलती है। तृतीय आश्वास में तेलुगु के छंदो-विधान पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। तेलुगु के छंदों की विशेषता यह है कि इसके वर्णवृत्तों में प्रास और यतिमैत्री का पालन अनिवार्यतः करना पड़ता है। किसी चरण का द्वितीयाक्षर प्रास माना जाता है। यति चरण का प्रथमाक्षर है। इकतालीस यतिमैत्री भेदों का वर्णन इसमें है। सत्रह प्रास-भेदों का वर्णन भी है।

चौथे आश्वास में छंद-प्रस्तार तथा मुख्य छंदों के लक्षण आदि का विवेचन किया गया है। इसमें कवि ने 186 समवृत्तों का वर्णन दिया है।

पाँचवें आश्वास में संधि के विविध रूपों का जिक्र है। यह संधि-परिच्छेद कहलाता है। 'अप्पकवीयमु' का प्रभाव तेलुगु पंडितों पर आज भी अक्षुण्ण है। इसके एक-मात्र अध्ययन से तेलुगु के व्याकरण तथा छंदों का सम्यग् ज्ञान प्राप्त होता है।

अप्पय दीक्षितुलु *(सं० एवं तें० ले०)* [जन्म—1525 ई०, मृत्यु—1598 ई०]

'अद्वैतमुकुर', 'विवरणदर्पण' के रचयिता रंगराजाध्वरी के पुत्र अप्पयदीक्षित का जन्म तमिलनाडु के कांचीपुर के निकटस्थ अडयप्पलम में हुआ था। दीक्षित ने कुल मिलाकर 104 ग्रंथ लिखे हैं जिनमें काव्य, नाटक, व्याख्याएँ, लक्षण ग्रंथ और वेदांत-ग्रंथ हैं। इनमें 'आत्मार्पणस्तुति' नाम से प्रसिद्ध 'शिवपंचाशिका', 'आर्याशतक', 'शिवकर्णामृत', 'वैराग्यशतक', 'आनन्दलहरी', 'वसुमती-चित्रसेनविलासम्' (नाटक), वेदांत देशिक के काव्यों, गोविन्द दीक्षित के 'हरिवंशसारचरित', कृष्ण मिश्र के 'प्रबोधचन्द्रोदय' (दे०) की व्याख्याएँ उल्लेखनीय हैं।

'कुवलयानंद' (दे०) तथा 'चित्रमीमांसा' काव्य-शास्त्र के ग्रंथ हैं। शब्दार्थ-संबंध का विवेचन करनेवाला ग्रंथ 'वृत्तिवार्तिक' है। 'मीमांसक-मूर्धन्य' की प्रशंसा प्राप्त करने वाले दीक्षित ने 'पूर्वमीमांसा-विषयक संग्रह दीपिका', 'धर्म-मीमांसा-परिभाषा', 'विधिरसायन', 'मयूखावली', 'चित्रपट' आदि पूर्वमीमांसा को प्रतिपादित करने वाले ग्रंथ भी लिखे हैं। स्मार्त होते हुए भी इन्होंने शैव-वेदांत की व्याप्ति के लिए प्रयास किया है। 'शिवार्क-मणिदीपिका' 'शिवाद्वैत-निर्णय' आदि में शैव-विशिष्टाद्वैत को प्रतिपादित किया है। इनके दर्शन ग्रंथों में 'न्यायरक्षामणि', 'वेदांतकल्पतरुपरिमल', 'सिद्धांत-लेश संग्रह' प्रधान हैं। सर्वतोमुखी पांडित्य तथा अद्वितीय प्रतिभा से युक्त अप्पय दीक्षित ने अपनी मातृभाषा तमिल होते हुए भी, यह कहकर कि 'आंध्रत्वमांध्रभाषात्र नाल्पस्य तपस फलम्' आंध्रत्व और आंध्र भाषा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

अप्पर *(त० ले०)* [समय—ईसा की सातवीं शताब्दी]

तमिल प्रांत में आविर्भूत 63 शैव संतों (नायन्मारों) में अप्पर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्हें तिरुनावुक्करशर् अर्थात् 'पवित्र वाणी का अधिपति' भी कहा जाता है। वस्तुत इनकी वाणी में अपार शक्ति थी। बचपन से ही मातृ पितृ स्नेह से वंचित अप्पर अपनी शिव-भक्त बहिन तिलकवती को छोड़कर जैन बन गए थे। कालांतर में घोर शारीरिक कष्ट सहने के उपरांत इन्होंने शैव धर्म अपना लिया था। अपने दीर्घकालिक जीवन में इन्होंने विविध अनुभव प्राप्त किये। विभिन्न शिव-मंदिरों का भ्रमण करते हुए इनके द्वारा रचित 311 पद 'तेवारम्' नामक कृति में संगृहीत हैं। तेवारम् का शाब्दिक अर्थ है 'व्यक्तिगत उपासना'। विभिन्न पदों में इन्होंने अपनी भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति की है। इनकी भक्ति दास्य-भाव की थी। इन्होंने व्यक्तिगत सत्य द्वारा तथा पदों के गायन द्वारा प्रभु की उपासना पर बल दिया है। इनमें धार्मिक सहिष्णुता थी। शैव धर्म की महिमा का प्रतिपादन करते हुए भी इन्होंने अन्य धर्मों की निंदा नहीं की। एक पद में इन्होंने शिव के उस रूप का वर्णन किया है जिसमें शिव के शरीर में ही विष्णु के दर्शन भी होते हैं। प्रभु के इस रूप को हरिहर रूप कहते हैं। अप्पर की रचनाओं में उनका पांडित्य और कवित्व झलकता है। अप्पर शब्द-चित्र प्रस्तुत करने में पटु थे। इन्होंने विरुत्तम्, तिरुनेरिशै, तिरुत्तांडकम् आदि छंदों का सुंदर-सफल प्रयोग किया है। तमिलनाडु में आविर्भूत शैव संत कवियों में अप्पर अग्रगण्य हैं।

अप्पाराव, गुरजाडा *(तें० ले०)* [जन्म—1862 ई०; मृत्यु—1915 ई०]

विशाखापट्टणम् ज़िले के रायवरम् नामक गाँव में गुरजाडा अप्पाराव का जन्म हुआ। एक सफल सुधारक तथा उच्चकोटि के लेखक का जीवन बिताने के बाद 53 साल की अवस्था में इनकी मृत्यु हो गई। अध्यापक-वृत्ति के अतिरिक्त इन्होंने कई अन्य विभागों में नौकरी की। इनकी उन्नति में विजयनगर के जमींदार आनंद गजपति महाराजा का बड़ा हाथ था। अप्पाराव की रचनाएँ इस प्रकार हैं—'पूर्णम्मा' (दे०), 'डामन-पिथियस', 'कन्यका' और 'लवणराजु कला' आदि कथात्मक, 'दिद्दुबाटु' (भूल-सुधार), 'नी पेरेमिटि ?' (तुम्हारा नाम क्या है ?), 'मेटिलडा' तथा 'संस्कर्ताहृदयमु' (सुधारक का हृदय) आदि कहानियाँ, 'कन्याशुल्कमु, (दे०) (संपूर्ण), 'कोंडुभट्टीयमु और 'बिल्हणीयमु' (अपूर्ण) नामक नाटक, 'मुत्यालसरालु' (कविता संग्रह) (दे०), लेख तथा कई देशभक्तिपरक गीत आदि।

इनकी रचनाओं में भाषा, भाव, कथानक तथा रचना से संबद्ध स्वतंत्र दृष्टि पग पग पर देखने को मिलती है। 'कन्याशुल्कमु' जैसी रचनाओं के द्वारा इन्होंने सरल तथा सजीव बोलचाल की भाषा को साहित्य में प्रतिष्ठित किया। और अँग्रेज़ी साहित्य का परिचय प्राप्त कर साहित्य में नये-नये प्रयोग किये। चरित्र चित्रण में भी ये सिद्धहस्त हैं। 'पूर्णम्मा' तथा 'कन्याशुल्कमु' नाटक में गिरीशम (दे०) आदि पात्रों के चित्रण इसके उदाहरण हैं। 'दिद्दुबाटु',

'नी पेरेमिटि' आदि के द्वारा इन्होंने तेलुगु में कहानी-रचना का भी श्रीगणेश किया। इनकी रचनाओं में नवीनता के साथ विविधता है तथा सरलता के साथ सजीवता। अप्पाराव की प्राय: सभी रचनाएँ तत्कालीन समाज की किसी-न-किसी स्थिति-विशेष को लेकर सुधारात्मक दृष्टि से ही लिखी गई हैं। इस दिशा में कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु (दे०) इनके मार्गदर्शक थे।

परंपरानुयायी साहित्य को एक नई दिशा की ओर मोड़ने तथा उसे जनजीवन के साथ घनिष्ठ रूप में संबद्ध करने में अप्पाराव का योग अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसीलिए आधुनिक तेलुगु साहित्य के युग-प्रवर्तकों में इनका प्रमुख स्थान है।

अप्फंटे मक्ळ् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

मूत्तिरिञ्ञोट्टु भवत्रातन् नम्पूतिरिप्पाड (दे०) का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास। इसमें समसामयिक नम्पूतिरि-समाज में विद्यमान कुरीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने के साथ-ही-साथ एक प्रणय-कथा भी अंतर्ग्रथित है।

मलयाळम के सामाजिक उपन्यासों के इतिहास में चंतुमेनन् (दे०) के उपन्यासों के बाद, नवयुग के आरंभ काल से पहले की कृतियों में 'अप्फंटे मक्ळ्' सर्वप्रमुख है। इसके प्रकाशन के समय लेखक के प्रगतिवादी आदर्शों के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी हुई थी, परंतु बाद के उपन्यासकारों के लिए उनका मार्ग प्रेरणादायक सिद्ध हुआ। इस उपन्यास की भाषा सरल, प्रवाहमय और प्रभावशाली है।

अप्रतिम वीरचरित (क० कृ०)

इसके रचयिता मैसूर-नरेश चिक्कदेवराज ओडेयर के अमात्य तथा दरबारी कवि तिरुमलार्य हैं। 'अप्रतिम वीरचरित' एक अलंकार-ग्रंथ है जिसमें काव्य-निरूपण, रीतिशय्यादि-निरूपण, अर्थालंकार-निरूपण तथा नवीनालंकार-निरूपण—ये चार प्रकरण हैं। 'अलंकार-निरूपण' सबसे बड़ा प्रकरण है। अप्पय दीक्षित (दे०) के 'कुवलयानंद' (दे०) के आधार पर उसी सरणि में वहाँ प्रोक्त अलंकार तथा रसालंकारों का निरूपण किया गया है। तिरुमलार्य का प्रधान उद्देश्य अलंकार-निरूपण है, न कि समग्र काव्य-लक्षण-निरूपण, अत: ध्वनि, रसमीमांसा, दोष-निरूपण आदि की इसमें चर्चा नहीं है। कवि ने हिंदी के रीति-कवियों की भाँति अपने आश्रयदाता के शौर्य-औदार्य का वर्णन किया है। उदाहरण काफ़ी सरस हैं किंतु काव्य के जीव-स्वरूप रस, ध्वनि, आदि को छोड़कर कवि केवल अलंकारों में उलझ कर रह गया है जिससे इस ग्रंथ का महत्त्व घट गया है।

'अफ़ज़ल' झंझानवी *(उर्दू ले०)* [जन्म—1665 ई०, मृत्यु—1725 ई०]

मुहम्मद अफ़ज़ल इनका नाम और 'अफ़ज़ल' तख़ल्लुस था। ये झंझाना, जिला मेरठ में उत्पन्न हुए थे। झंझाना के संदर्भ से ही ये झंझानवी कहलाए। 'अफ़ज़ल' झंझानवी ने अकबर और जहाँगीर का शासन-काल देखा था। ये किसी हिंदू स्त्री के प्रेम-पाश में बँध गए थे। इन्होंने अपनी प्रणय-गाथा एक लंबी मसनवी के रूप में बड़े मार्मिक ढंग से लिखी है। इन्होंने एक बारहमासे की रचना भी की थी।

'अफ़सोस' *(उर्दू ले०)* [जन्म—1732 ई०, मृत्यु—1809 ई०]

मीर शेर अली 'अफ़सोस' दिल्ली में जन्मे थे। इनके पिता का नाम मीरअली मुज़फ़्फ़र ख़ाँ था। ये अपने पिता के साथ पटना तथा लखनऊ में भी रहे। लखनऊ से कर्नल स्कॉट ने इनको फ़ोर्ट विलियम कालेज की नौकरी के लिए कलकत्ते भेजा। इन्होंने वहाँ अनुवाद का सराहनीय कार्य किया। शेख सादी की 'गुलिस्तान' (फ़ारसी) का 'बाग़े-उर्दू' के नाम से उर्दू में अनुवाद किया। इन्होंने इसमें भाषा की सरलता तथा अनुवाद की सहजता को बड़ी सफलता से बनाए रखा है। 'आराइशे महफ़िल' इनकी अन्य महत्वपूर्ण कृति है जो भारत के इतिहास तथा भूगोल से संबंधित है और हैदरी (दे०) की 'आराइशे महफ़िल' से पूर्णतया भिन्न कृति है। इन्होंने 'सौदा' के 'कुल्लियात' (पूरा संग्रह) को शुद्ध करके पुनः प्रकाशित किया था। ये स्वयं भी अच्छे कवि थे। इनका अपना दीवान इनकी यादगार है।

'अवधूत' *(बँ० ले०)*

'अवधूत' छद्मनाम से पाँचवें दशक में एक लेखक 'मरुतीर्थ हिंगलाज' (दे०) (1955), 'उद्धारण पुरेर घाटे' (1956), 'पियारी' (1962), 'वशीकरण', 'भूमिकालिपि पूर्ववत्' (1963) आदि उपन्यासों एवं कहानी-संग्रहों की रचना कर रातों-रात ख्याति के चरम शिखर पर पहुँच गए थे। इनकी रचनाओं में धर्म-जीवन, धर्म-

पर्यटित सन्यासी, तीर्थयात्री, गुरु-प्रभृति मनुष्यो की गाथाएँ लिपिबद्ध हैं। 'मरुतीर्थ हिंगलाज' को छोड इनकी बाकी रचनाओ मे धर्माचारियो की आत्म प्रवचना, अवरुद्ध यौन-कामना, प्रतिष्ठा लोलुपता आदि मानव की गोपन दुर्बलताओ का ही अधिक चित्रण हुआ है। बीभत्स एव भयानक भावो के आश्रय से लेखक ने साधुओ के गोपन मार्ग एव श्मशान-साधना के नए कथा-रूपों को इस ढग से प्रस्तुत किया है कि ऐसा प्रतीत होता है कि धर्मगत कृच्छ्र साधना के साथ इद्रिय विकार अभेद्य रूप से जुडा हुआ है। निर्मल धर्म साधना के चित्र इनके उपन्यासो मे कम ही मिलते हैं।

'अवधूत' के उपन्यासो से ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन का इन्हे गहरा अनुभव है परतु ये अनुभव अधिकतर कदर्थ रुचि विरोधी है यद्यपि उसकी अभिव्यक्ति मे निश्चय ही एक मादकता है जो निषिद्ध वस्तु की तरह प्रबल रूप से आकर्षित करती है। क्लेदाक्त जीवन एव अनुभव के प्रति इनका भी आकर्षण तीव्र है, परतु इस आकर्षण मे भी इनकी उदासीनता एव निश्चित मनोवृत्ति रचना को एक अपूर्व सार्थकता प्रदान करती है। इनकी तीक्ष्ण रचना शक्ति के बारे मे किसी को कोई सशय नही है परतु यदि ये क्रमागत धर्म-जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म असगतियो का उद्घाटन कर एकरसता का प्रचार करते रहेंगे तो निश्चय ही रसिक पाठक-गोष्ठी इन्हे भुलाने मे देरी नही करेगी।

अबधूतस्वामी, नारायणानद *(उ० ले०)* [समय—अनुमानत. चौदहवी शती ई०]

इनकी प्रसिद्ध कृति है 'रुद्रसुधानिधि' (दे०) जो प्राचीन गद्य साहित्य की महत्त्वपूर्ण रचना है। नारायणानद अबधूतस्वामी सारलादास (दे०) के पूर्ववर्ती लेखक हैं। विद्वानो का मत है कि स्वामीजी भुवनेश्वर के एक प्रसिद्ध योगी, घुमक्कड साधु व शिक्षक थे। इन्होने अपनी तपस्या से शिव पार्वती को सतुष्ट कर लिया था तथा वरदान भी पाया था। इन्हे वेद, शास्त्र, व्याकरण, पुराण, गीता, स्मृति, नाटक, वैद्यकशास्त्र, तत्र, मत्र आदि का अगाध ज्ञान था। युद्ध-विद्या मे भी ये निपुण थे। 'रुद्रसुधानिधि' इनकी युवावस्था की रचना है।

यह कृति लेखक के अगाध पाडित्य एव उडिया साहित्य मे उनकी आश्चर्यजनक दक्षता की द्योतक है। इसमे गद्य और पद्य का सुमधुर समन्वय हुआ है। 'रुद्रसुधानिधि' आलकारिक छदोमय गद्य ग्रथ है, जिसमे योग, तत्र, मत्र तथा दार्शनिक तथ्यो का सरस, मधुर, प्रवाहमयी शैली मे विद्वत्तापूर्ण विवेचन हुआ है। ग्रथ मे प्रतिपादित शैवधर्म की महिमा एव भाषा की प्राचीनता को देखते हुए विद्वान इसके रचयिता को चतुर्दश शताब्दी का कवि मानते है।

अबलोकन *(उ० कृ०)*

'अबलोकन' उदीयमान कवि श्री बिजयकुमार दास (दे०) की एक उत्कृष्ट काव्य कृति है। सन् 1972 ई० मे प्रकाशित इस रचना मे 32 कविताओ का सकलन है। कवि का युगबोध गहरा है। उसने युगीन सवेदना की जटिलता को उसकी सूक्ष्मता के साथ ग्रहण किया है। किंतु यह एक बौद्धिक प्रक्रिया होकर नहीं रह गई हैं, वरन् कवि की तरल अनुभूति बन गई है। यही कारण है कि उसके कथन मे दुर्बोधता कही नही है।

कवि की सरल सावलील प्रकाशभगी के अतर मे अनेक प्रकार के द्वद्व और सघात से पीडित कवि मानस देखा जा सकता है। यह द्वद्व केवल कवि का नही है, यह आधुनिक मानव व साप्रतिक युग का द्वद्व है और इस द्वद्व का क्षेत्र-विस्तार अत्यत व्यापक है। युग-चेतना अपनी मुक्ति के लिए छटपटा रही है, किंतु क्या अभिमन्यु चक्रव्यूह से निकल सकेगा? इस युग की अव्यक्त यत्रणा ही इस युग का असहाय शून्यता बोध है, अकेलापन और निस्सगता की अनुभूति है, स्वप्नभग की हताशा है। आज मानव ने अपने आपको खो दिया है, किंतु कहाँ? वह स्वय नही जानता।

अप्रतिहत लय योजना के कारण इसमे मुक्त छंद का सफल प्रयोग हुआ है। कवि के चित्रकल्प की सशक्त रेखाएँ सुदक्ष-तालिका से अकित हैं, इसमे सदेह नहीं। कही कही 'कॉस्मिक इमेजरी' मिलती है। मुहावरो के सटीक प्रयोग तथा यत्र तत्र उर्दू पदावली के प्रयोग से भाषा मे अपूर्व कथन-भगिमा आ गई है।

अब्दुर्रहमान *(गु० ले०)* [समय—पद्रहवी शती ई०]

प्राचीन गुजराती के सर्वप्रथम जैनेतर मुसलमान कवि अब्दुर्रहमान (अद्दहमाण—दे०) मीर हुसैन के पुत्र थे। कवि ने स्वय ही मुलतान को अपना मूल स्थान बताया है। कुछ विद्वान इन्हे मोडासा ग्रामवासी बताते है।

'सदेश रासक' या 'सदेशक रास' (दे०) अब्दुर्-

हमान की प्रसिद्ध कृति है। ग्रंथ से पता चलता है कि कवि भारतीय संस्कृति तथा भारतीय काव्य-परंपराओं से घनिष्ठ रूप से संबद्ध व परिचित रहा है। इस दूत-काव्य में कवि का वर्णन-कौशल व विरह-निरूपण बराबर पाठक का ध्यान आकृष्ट करता रहता है। अवहट्ट भाषा की ओर रचनाकार का विशेष झुकाव है। अपने समसामयिक जीवन को प्रतिबिंबित करने में यह कवि अत्यंत सफल हुआ है।

अब्दुर्रहमान बिजनौरी *(उर्दू ले०)*

डा० अब्दुर्रहमान बिजनौरी उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में साहित्य की सेवा करते रहे। इन्होंने अलीगढ़ में शिक्षा प्राप्त की और उच्चतर शिक्षा के लिए यूरोप-यात्रा भी की तथा अँग्रेज़ी एवं फ़्रांसीसी साहित्य का गहरा अध्ययन किया।

लेखन-कौशल इनका अपना निराला ही था। इनके लेख पांडित्यपूर्ण हैं। फ़ारसी तथा अरबी वाक्यावली का प्रयोग करने में ये सिद्धहस्त हैं। ग़ालिब (दे०) को नये सिरे से सामने लाने में इनका विशेष योगदान है और हाली (दे०) के पश्चात् इनकी गणना की जा सकती है। 'मुहसिन-ए-कलामे-ग़ालिब' (दे०) इनकी प्रसिद्ध पुस्तक है जो इनकी प्रभाववादी समीक्षा-पद्धति की परिचायक है। इनकी दूसरी ऐतिहासिक पुस्तक 'वाक़ियात-ए-बिजनौरी' है जो इनके लेखों, पत्रों तथा कविताओं का अनूठा संकलन है। यह पुस्तक इनकी मृत्यु के बाद रशीद अहमद सिद्दीक़ी (दे०) के दीवानों के साथ प्रकाशित हुई है। उर्दू आलोचकों में इनका विशेष स्थान है। पश्चिमी आलोचना का इन पर पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

अब्दुल ख़ालिक़ टाक जैनागीरी *(कश्० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

इन्हें उर्दू, फारसी और अँग्रेजी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। इन्होंने प्रारंभ में कश्मीरी भाषा में ग़ज़ल और रुबाइयाँ लिखीं जो कई पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। इनके 'अज़िच्य कशीर' नाम के रचना-संग्रह के दो भाग भी प्रकाशित हुए हैं। टाक जैनागीरी साहब की कश्मीरी भाषा और भाषाविज्ञान-संबंधी अनुसंधान की महान कृति है 'काशिरयुक अलाक:वादफेर: त काशिर ज़बान' जो अपने ढंग की प्रथम स्तुत्य रचना है। इस रचना के चार भाग हैं—(1) कश्मीरी भाषा का स्रोत—जिसमें विद्वान् लेखक का प्रतिपादन विवादास्पद है; (2) तहसीलवार बोली जाने वाली कश्मीरी के भेद-प्रभेद; (3) कश्मीर घाटी के चारों ओर के द्विभाषा-भाषी क्षेत्रों की कश्मीरी; और (4) बढ़ई, राज, लोहार, जुलाहे आदि शिल्पियों द्वारा बोली जानेवाली भाषा एवं उनके औजारों आदि के नाम। विद्वान् लेखक का काम निश्चय ही शोधपूर्ण है। कश्मीरी शब्दों के उच्चारण, उनके इतिहास, उनकी शाखा-प्रशाखाओं के भेद तथा उसकी अनेक बोलियों के रूप तथा पर्यायवाची शब्दों आदि की यह बहुमूल्य कृति अकादमी द्वारा पुरस्कृत भी हुई है। इनकी भाषा में फारसी का ख़ासा गाढ़ा पुट रहता है। संप्रति ये जम्मू-कश्मीर राज्य के राजस्व विभाग में काम कर रहे हैं।

अब्दुलग़फ़्फ़ार, क़ाज़ी *(उर्दू ले०)*

इनका जन्म-स्थान उत्तर प्रदेश है। पत्रकारिता के माध्यम से मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद' (दे०), मौलाना मुहम्मद अली, और हकीम अजमल ख़ाँ के साथ इन का घनिष्ठ संपर्क रहा था। हैदराबाद में इन्होंने 'पयाम' नामक दैनिक समाचार-पत्र का संचालन कर कांग्रेस को सक्रिय योग प्रदान किया था। पत्रकारिता के क्षेत्र में न्याय और सत्य का मार्ग अपना कर इन्होंने एक क्रांति पैदा कर दी थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् ये अंजुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दू के कर्णधार के रूप में सामने आये और उर्दू के प्रचार तथा प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनकी दो प्रसिद्ध कृतियाँ—'मजनूँ की डायरी' और 'लैला के ख़तूत' (दे) उर्दू साहित्य की श्रेष्ठ कृतियां हैं। इनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व से इनकी प्रगतिशीलता तथा प्रगतिवादी दृष्टिकोण के प्रति अगाध श्रद्धा स्पष्ट परिलक्षित होती है। राष्ट्रीय चेतना और राजनीतिक जागरण की दृष्टि से इस कुशल गद्य-लेखक ने स्तुत्य कार्य किया है। इनकी भाषा-शैली तथा अभिव्यंजना-पद्धति अत्यंत सशक्त एवं मार्मिक है।

अब्दुल वदूद, क़ाज़ी *(उर्दू ले०)* [जन्म—1897 ई०]

इनका जन्म सन् 1897 में पटना में एक धार्मिक विचारों वाले घराने में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा अरबी से आरंभ हुई। बाद में अँग्रेज़ी भी पढ़ी और बैरिस्टरी पास करने विलायत गये किंतु स्वास्थ्य ख़राब होने के कारण

वापस लौट आये और फिर सारा जीवन लिखने पढने मे लगा दिया ।

काजी अब्दुल वदूद का उर्दू के वर्तमान अनुसधान-कर्त्ताओ मे एक विशिष्ट स्थान है । देश भर मे उनकी विद्वत्ता और योग्यता का लोहा माना जाता है । फारसी भाषा पर गौरवपूर्ण कार्य करने के लिए 1964 ई० मे इन्हे राष्ट्रपति पुरस्कार भी मिल चुका है । इन्होने अनेक कवियो तथा साहित्यकारो के विवरण दिए है और पुस्तको पर समीक्षाएँ लिखी हैं । इनका एक विस्तृत निबध 'गालिब बहैसियत मुहक्किक' कम से-कम ढाई सौ पृष्ठो मे पूरा हुआ है । इनकी आलोचनात्मक कृतियाँ 'अमीरिस्तान और 'उस्तुर व सोजन' प्रकाशित हो चुकी हैं । इन्होने कुछ पुस्तको को उपयोगी एव पाडित्यपूर्ण भूमिकाओ के साथ प्रकाशित किया है जिनमे 'दीवान-ए जोशिश', 'इब्ने तूफाँ' कृत तज किरा ए शोरा', 'दीवान-ए-दिलदार आदि उल्लेखनीय हैं ।

शोध कार्य का क्षेत्र विस्तृत करने मे इनकी विशेष रुचि एव योगदान है ।

अब्दुल वहाब परे 'वहाब' हाजिन *(कश्० ले०)* [जन्म—1845 ई०, मृत्यु—1914 ई०]

कश्मीर-स्थित गाँव हाजिन के एक मध्यवर्गीय परिवार मे इनका जन्म हुआ । इन्होने अनेक फारसी रचनाओ का कश्मीरी छदो मे अनुवाद किया जिनमे उल्लेखनीय है फिरदौसी का 'शाहनामा' और हमीदुल्लाह का 'अकबर-नामा' । इनकी मौलिक कृतियो मे से उल्लेखनीय हैं 'हपन किस्सा मकरेजन', 'किस्सा ए-चहारदरवेश', 'किस्सा-ए बहरामगर', 'सैलाबनामा' और 'कारिफटवार' । वहाब साहब का एक दीवान भी है जिसमे कश्मीरी भाषा मे लिखे गये 767 मुक्त छदो के उदात्त गीतिकाव्य या सबोधगीति हैं । इनको कश्मीरी साहित्य का फिरदौसी कहा जाता है । शायद ही ऐसा कोई रस होगा जो 'वहाब' की लेखनी से अछूता रह गया हो । भाषा, भावाभिव्यक्ति, रसमर्मज्ञता, अलकार प्रयोग आदि मे इन्हे कमाल हासिल था । कश्मीरी साहित्य के कई इतिहासज्ञो के अनुसार यह 'वहाब खार' के नाम से भी प्रसिद्ध थे ।

अब्दुल हक *(उर्दू ले०)*

डा० अब्दुल हक ने दकन मे साहित्यिक अनु-सधान का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । यद्यपि इनकी लिखी हुई कोई बडी पुस्तक हमारे सामने नही आई तथापि जो भूमिकाएँ अनेक पुस्तको मे इन्होने लिखी हैं वे किसी भी बडी और महत्त्वपूर्ण पुस्तक से कम नही हैं । अब ये भूमि-काएँ दो भागो मे प्रकाशित हो चुकी हैं । उनके पढने से ज्ञात होता है कि इनके ज्ञान का विस्तार बहुमुखी है ।

डा० अब्दुल हक के गद्य की भाषा दिल्ली की टकसाली भाषा है । शैली सादा तथा प्रवाहमयी है । सीधे-सादे शब्दो से ही बात मे जोर पैदा कर देना इनकी शैली की विशेषता है । विशेष स्थलो पर अवसरानुकूल अरबी, फारसी तथा हिंदी के शब्द भी प्रयुक्त करते हैं ।

'उर्दू उनके द्वारा सपादित पत्र है जो उर्दू की साहित्यिक एव इल्मी खोज से भरा रहता है । इस पत्र ने उर्दू प्रेमियो की जानकारी मे भारी वृद्धि की है ।

सन् 1937 ई० मे इनकी सेवाओ के कारण इलाहाबाद विश्वविद्यालय ने अपनी स्वर्णजयती के अवसर पर इन्हे डाक्टर ऑफ लिट्रेचर की मानार्थ उपाधि प्रदान की ।

भूमिकाओ के अतिरिक्त इनकी कुछ समीक्षाएँ 'चद तन्कीदाते अब्दुल हक' और 'खुतबाते अब्दुल हक' के नाम से छप चुकी हैं । अब ये पाकिस्तान के नागरिक है और कराची मे रहते है ।

अभिज्ञानशाकुतलम् *(स० कृ०)* [समय—अनुमानत प्रथम शताब्दी ई० पू०]

'शाकुतलम्' सस्कृत साहित्य की अमूल्य निधि और कालिदास (दे०) की सर्वोत्कृष्ट नाट्यकृति है । कालि-दास की अत्यत प्रौढ रचना होने के नाते इसमे उनकी नाट्य-कला का पूर्ण विकास हुआ है ।

इसकी मूलकथा 'महाभारत' से ली गई है । पर कालिदास ने यथास्थान इसमे परिवर्तन कर लिया है । शिकार खेलता हुआ दुष्यत कण्व (दे०) ऋषि के आश्रम के पास पहुँचता है । आश्रम के भीतर जाकर वह तापस-कन्या शकुतला (दे०) को देखकर उसके रूप पर मुग्ध हो जाता है तथा उससे गान्धर्व विवाह कर लेता है । महर्षि कण्व उस समय तीर्थ-यात्रा पर गए हुए हैं । लौटकर वे वस्तुस्थिति से अवगत होते है तो अप्रसन्न नही होते । वे शकुतला को महाराज दुष्यत के पास भेजते है पर दुष्यत दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण शकुतला को पहचान नही पाता । शकुतला निराश होकर दरबार से जाने लगती है तो उसकी माता मेनका उसे साथ ले जाती है । बाद मे

दुष्यंत को याद आती है तो वह शकुंतला को प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो जाता है। अंत में इंद्र की सहायता करके लौटते हुए वह महर्षि मारीच के आश्रम में अपने पुत्र सर्वदमन के साथ शकुंतला को पुनः प्राप्त करता है।

नाटक दुष्यंत के साथ शकुतला के प्रेम से आरंभ होकर उसी बिंदु पर समाप्त भी होता है। इसमें वस्तु, नेता तथा रस तीनों का सुंदर विनियोग हुआ है। इसका नायक उदात्त चरित्रवाला दुष्यंत है और नायिका निःसर्ग कन्या शकुंतला। दोनों के चरित्र कालिदास की लेखनी के चमत्कार से निखर उठे हैं। अन्य चरित्रों का भी कालिदास ने बड़ी कुशलता से निर्वाह किया है। 'शाकुंतलम्' का अंगी रस है—शृंगार। साथ ही अन्य रसों का भी इसमें समुचित परिपाक हुआ है।

'शाकुंतलम्' कालिदास की नाट्यकला का चरम उत्कर्ष है। अपने भाषा-लालित्य, कल्पना-वैभव तथा मनोवेगों के मार्मिक विश्लेषण आदि के कारण इसका स्थान विश्व की मूर्धन्य कृतियों में है। आज विश्व की शायद ही कोई ऐसी भाषा हो जिसमें 'शाकुंतलम्' का अनुवाद न हो गया हो।

अभिधम्मपिटक *(पा० कृ०)*

यह 'त्रिपिटक' (दे०) का अंतिम तथा परवर्ती भाग है। प्रथम संगीति में इसकी सत्ता प्राप्त नहीं थी। इस ग्रंथ की पूर्ति तृतीय संगीति के अवसर पर पाटलिपुत्र में तिस्सा 'मोग्गलिपुत्त' की अध्यक्षता में हुई। इसमें बुद्ध के अतिरिक्त अन्य लेखकों की कृतियाँ भी सन्निविष्ट हो गई हैं। जिनमें मोग्गलिपुत की 'कथावत्थु' भी सम्मिलित है और कच्चान (दे० कच्चायन) की भी दो कृतियाँ बाद में जुड़ गईं। अभिधम्म का अर्थ है उच्चकोटि का धर्म। यह 'सुत्तपिटक' (दे०) के बाद की रचना है और इसमें धार्मिक विषयों को अधिक विद्वत्ता, अधिक शास्त्रीयता, अधिक मनोवैज्ञानिकता और अधिक दार्शनिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। मुख्य प्रवृत्ति वर्गीकरण और परिभाषा प्रस्तुतीकरण की है और शब्दों के पर्याय संकलित करने पर अधिक बल दिया गया है तथा नैतिकता की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई है। किंतु इसे आधुनिक अर्थ में न तो वैज्ञानिक परीक्षण कहा जा सकता है और न दार्शनिक या आध्यात्मिक विवेचन ही कहना उचित जँचता है।

इसमें सात खंड हैं—(1) अभिधम्म संगनी में धर्म की परिभाषा दी गई है। विद्वानों ने इसे मनोवैज्ञानिक नैतिकता का संग्रह कहा है; (2) 'विभंग' प्रथम खंड की परंपरा में है; (3) 'धातुकथा' में तत्वों का विवेचन और उनके पारस्परिक संबंध पर विचार किया गया है; (4) 'पुग्गल पन्नहि' का विषय मानव-व्यक्तित्व है, (5) 'कथावत्थु' तिस्सामोग्गलिपुत्त की रचना है जो बौद्ध धर्म के इतिहास की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है; (6) 'यमक' में प्रश्न और उत्तर दो रूपों में प्रस्तुत किए गए हैं; और (7) 'पत्थानपकरण' या 'महापकरण' के दो भाग हैं: एक को 'टीकापत्थान' कहा जाता है और दूसरे को 'दुःखपत्थान'। दोनों भागों में कारणवाद की व्याख्या की गई है।

'अभिधम्मपिटक' को बौद्ध धर्म के सभी संप्रदाय प्रामाणिक नहीं मानते किंतु जो लोग प्रामाणिक मानते हैं उनकी दृष्टि में इसका महत्त्व बहुत अधिक है। अभिधम्म को सुना देना ही अनेकशः विद्वत्ता का लक्षण माना गया है और इस पर अनेकों पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। बर्मा में इसका अध्ययन अब भी चल रहा है।

अभिनवदशकुमारचरित *(क० कृ०)* [समय—लगभग 1100 ई०]

इसके रचयिता 'चौंडरस' नामक एक ब्राह्मण कवि हैं जिनका समय 1100 ई० ठहराया गया है। यह दंडी के संस्कृत गद्य-ग्रंथ का कन्नड रूप है जो चंपू शैली में है। मूलानुसारी होने पर भी कवि ने यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन एवं परिवर्धन भी किए हैं। यहाँ आनेवाले राजवाहन, सोमदत्त, पुष्पोद्भव, उदय वर्मा आदि राजकुमारों की कहानियाँ कुछ सरस हैं। चोरी, डाका, हत्या, व्यभिचार आदि यहाँ कथा की पृष्ठभूमि में आते हैं जो दंडीकालीन सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालते हैं। चौदहवें आश्वास में विश्रुत की कथा में वह पंढरपुर जाकर विट्ठल के दर्शन करते हैं। यहाँ कवि विश्रुत के बहाने अपने इष्टदेव का वर्णन करता है। इन पद्यों में कवि की स्वानुभूति मुखर हो उठी है। 'कादंबरी' के कन्नड अनुवाद में जो काव्यमयता है, सिद्धि है, वह इसमें नहीं है। वैसी प्रौढ़िमा एवं लालित्य इसमें नहीं है। प्राचीन कन्नड एवं मध्यकालीन कन्नड की संक्रमणावस्था के दर्शन इसकी भाषा में होते हैं। चौंडरस की कविता-शक्ति मध्यम श्रेणी की है। उद्देश्य की एकता के अभाव के कारण वह एक महान कृति नहीं बन सकी।

अभिधा *(सं०, हिं० पारि०)*

'अभिधा' शब्द की प्राथमिक शक्ति है। 'अभिधा' शब्दार्थ है। यह शक्ति वर्ण्य वस्तु, दृश्य अथवा व्यक्ति का बिंब प्रस्तुत कर पद और पदार्थ के पारस्परिक संबंध का ज्ञान कराती है। अभिधा शब्द के साक्षात् संकेतित मुख्यार्थ का बोधक व्यापार है। इस शक्ति के द्वारा व्याकरणशास्त्र में वर्णित रूढ, यौगिक और योग-रूढ—तीन प्रकार के शब्दों का अर्थबोध होता है। प्रकृति और प्रत्यय की दृष्टि से जिन शब्दों के सार्थक खंड नहीं किए जा सकते वे रूढ शब्द हैं (जैसे घोड़ा, घर, वृक्ष आदि), प्रकृति-प्रत्यय रूप में जिनका खंड विभाजन संभव है वे यौगिक शब्द हैं, (जैसे 'भूपति' शब्द का विभाजन भू और पति खंडों में किया जा सकता है), और जो मूलत यौगिक होते हुए भी किसी विशेष अर्थ में रूढ हो जाते हैं, वे योगरूढ कहलाते हैं (जैसे 'पीताम्बर' शब्द पीत और अम्बर पृथक् पृथक् शब्दों के योग से निर्मित होता हुआ भी श्रीकृष्ण के अर्थ में रूढ हो गया है)। संदर्भ के अनुरूप एक से अधिक अर्थों का बोध कराने वाले श्लिष्ट शब्द के सभी अर्थ अभिधार्थ ही कहलाते हैं, क्योंकि वे सभी अर्थ कवि को समान रूप से अभीष्ट होते हैं। काव्य के अंत प्रेरित अनलंकृत रसात्मक शब्द प्रयोगों के मूल में अभिधा शक्ति ही कार्य करती है।

अभिधानचिन्तामणि *(त० कृ०)* [रचना-काल—1910 ई०]

विषयवस्तु और आकार की दृष्टि से यह तमिल का प्रथम महत्त्वपूर्ण 'कलै कळञ्जियम्' (शब्दकोश) है। इसके रचयिता आ० शिंगारवेलु हैं। लेखक ने 'पुराणचन्द्रिका' नामक कृति से प्रेरणा ग्रहण कर सन् 1890 ई० में इसकी रचना आरंभ की थी और इसे 'पुराण नामावली' नाम दिया था। कालांतर में विविध विषयों का वर्णन करने वाली इस विशालकाय कृति को 'अभिधान-चिन्तामणि' नाम दिया गया। इसमें 1048 पृष्ठ हैं। आरंभिक 940 पृष्ठों में विभिन्न विद्वानों, वस्तुओं, देवी देवताओं, राग-रागिनियों आदि का वर्णन है। इसके उपरांत कुछ पृष्ठों में शिवक्षेत्र और विष्णुक्षेत्र की महिमा का वर्णन किया गया है। अंत में 'अनुबंध' शीर्षक एक अध्याय है। इसकी रचना लेखक ने बाद में की थी। इस अध्याय के आरंभ में कुछ छूटे हुए शब्दों को लिया गया है। इसके बाद राजाओं की परंपरा, आळ्वार नायन्मार, दक्षिण में स्थापित विभिन्न मठादि से संबंधित विवरण हैं। अंत में शिलालेख, हस्तलिखित कृतियों के आधार पर राजवंश से संबंधित विवरण दिए गए हैं। विभिन्न शब्दों के स्वरूप का विवेचन करते हुए लेखक ने अपने अथक परिश्रम का परिचय दिया है। 'स्वदेश आचार विवहारम्' शीर्षक के अंतर्गत देश के विभिन्न प्रांत के लोगों के आचार-व्यवहार संबंधी कुछ मनोरंजक विवरण दिए गए हैं। मदंगळ् शीर्षक के अंतर्गत विभिन्न मतों का उल्लेख करने के साथ-साथ उनके प्रमुख सिद्धांत, विभिन्न मतानुयायियों के निवास-स्थल, उनके रीति रिवाज आदि का वर्णन है। इसमें प्राचीन एवं मध्यकालीन साहित्यकारों और साहित्यिक कृतियों से संबंधित विस्तृत विवेचन है। संपूर्ण कृति अत्यंत सरस सरल शैली में रचित है। 'अभिधान-चिन्तामणि' की विशिष्टता इस बात में है कि यह एक व्यक्ति की रचना है।

अभिधावृत्तिमातृका *(सं० कृ०)* [समय—900 ई० के आसपास]

संस्कृत साहित्यशास्त्र के कुछ ग्रंथ विशुद्ध रूप से शब्दशक्तियों का ही विवेचन करते हैं। 'अभिधावृत्तिमातृका' उन सबका नेतृत्व करती है। इसके कर्ता मुकुलभट्ट प्रसिद्ध मीमांसक हैं। ये अभिनवगुप्त (दे०) के साहित्य-गुरु प्रतिहारेंदुराज (दे०) के गुरु रहे हैं। अत इनका समय नवम शती का अंतिम भाग है।

'अभिधावृत्तिमातृका' बहुत ही लघुकृति है। इसमें कुल 15 कारिकाएँ तथा उन पर पर्याप्त वृत्ति है जिसमें अभिधा एवं लक्षणा का विवेचन गहन शास्त्रीय पद्धति पर हुआ है। मुकुल भट्ट के अनुसार लक्षणा अभिधा का ही एक अंग है। अभिधा एवं लक्षणा के भेद का मुख्य आधार एक का शब्द-व्यापार तथा दूसरे का अर्थ व्यापार होना है। शब्द के मुख्य व्यापार के चार प्रकार तथा गौण व्यापार लक्षणा के छह प्रकार होते हैं। इससे ही दस प्रकार का अभिधावृत्त कहा है।

मुकुल भट्ट मीमांसक होते हुए भी ध्वनि (दे०) के विरोधी नहीं हैं। यद्यपि उन्होंने अपनी इस कृति में अपनी व्यंजना का निरूपण नहीं किया है तथापि उनका कहना है कि लक्षणा का यह सारा प्रपंच मैंने ध्वनि को समझाने के लिए ही किया है। ग्रंथकार ने वृत्ति में उद्भट (दे०), कुमारिल भट्ट (दे०) आनन्दवर्धन (दे०), भर्तृमित्र, विज्जवा और वृत्तिर स्वामी जैसे ग्रंथकारों एवं 'महाभाष्य'

(दे०) तथा 'वाक्यपदीय' (दे०) प्रभृति कृतियों की चर्चा की है। 'अभिधावृत्तिमातृका' शब्द-शक्ति के विषय में एक प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करती है।

अभिनयदर्पण *(सं० कृ०)* [समय—अनुमानतः दूसरी-तीसरी शताब्दी ई०]

आचार्य नंदिकेश्वरकृत 'अभिनयदर्पण' अपने विषय का मौलिक ग्रंथ है। यद्यपि भरत (दे०) के 'नाट्य-शास्त्र' (दे०) एवं 'भरतार्णव' में अभिनय-संबंधी विशद विवेचन प्राप्त है फिर भी अभिनय-संकेतों, अभिनय-सिद्धांतों आदि की मौलिक व्याख्या के कारण 'अभिनय-दर्पण' का अपना स्वतंत्र महत्त्व है।

यह ग्रंथ ईसवी दूसरी-तीसरी शती के मध्य का लिखा होने पर भी शताब्दियों तक इसका कोई ज़िक्र नहीं मिलता। तेरहवीं शती में शार्ङ्गदेव ने इसे अतिप्राचीन कहकर इसका स्मरण किया। मद्रास, अडियार और शांति-निकेतन के संग्रहालयों में इस ग्रंथ की पाँच हस्तलिखित प्रतियाँ तेलुगु लिपि में उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री मनोमोहन घोष ने उक्त पांचों पांडुलिपियों का अनुशीलन कर देवनागरी लिपि में इस ग्रंथ का संस्करण सन् 1934 में प्रकाशित कराया था।

अभिनव काव्यप्रकाश *(म० कृ०)*

लेखक हैं—श्री रा० श्री जोग। यह रचना प्रथम बार 1930 ई० में प्रकाशित हुई थी और अब तक इसकी छह आवृत्तियां हो चुकी हैं। इसमें मराठी काव्य के संदर्भ में संस्कृत-काव्यशास्त्र के सिद्धांतों की पुनर्व्याख्या का प्रयत्न किया गया है। लेखक की दृष्टि संतुलित है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र की मान्यताओं का भी कहीं-कहीं व्याख्या में उपयोग किया गया है। ग्रंथ में काव्यशास्त्र के प्रायः सभी अंगों की मीमांसा की गई है। चूंकि अधिकांश उदाहरण मराठी-काव्य से प्रस्तुत किए गए हैं इसलिए इनके सैद्धांतिक चिंतन का धरातल प्रायः व्यावहारिक ही रहा है।

अंत में मराठी में प्रचलित प्रायः सभी काव्य-प्रकारों के स्वरूप और उनकी विशेषताओं का विवेचन किया गया है और नई कविता के मूल्यांकन का भी प्रयत्न है।

अभिनवगुप्त *(सं० ले०)*

ये कश्मीर शैवदर्शन (प्रत्यभिज्ञा अथवा त्रिक-शास्त्र) के प्रमुख आचार्य थे। इनका आविर्भाव-काल 950 ई० के आस-पास तथा सर्जन-काल 990-91 से 1014-15 तक माना जाता है। इनके पिता का नाम नरसिंह गुप्त (चखुलक) तथा माता का नाम विमलकला था। इनका परिवार शैव-आस्थावादी था। इनके आदि पूर्वज अत्रिगुप्त मूलतः कन्नौज (उ० प्र०) के निवासी थे। इनको कश्मीर नरेश ललितादित्य आठवीं शताब्दी में कश्मीर लाये। इसी परिवार में जन्मे वराहगुप्त इनके पितामह थे। इनके दादा तथा पिता संस्कृत के उद्भट विद्वान थे। होनहार बालक अभिनव ने अपने पूर्वजों में प्राप्त रिक्थ को निभाया और संस्कृत-जगत् में नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की धाक जमाई। एक परंपरा के अनुसार ये एक दिन अपने 1200 शिष्यों के साथ भैरवगुफा में प्रविष्ट हो गए और फिर कभी बाहर नहीं निकले। यह आचार्य शंकर के (दे० शंकराचार्य) के समकालीन (कामरूप-निवासी शाक्त) अभिनवगुप्त से सर्वथा भिन्न थे।

कुल मिलाकर इनकी इकतालीस कृतियां उप-लब्ध होती हैं। इनमें 'ध्वन्यालोकलोचन', 'अभिनवभारती', 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी', 'तन्त्रालोक' (दे०), 'तन्त्रसार', 'परमार्थसार', 'मालिनीविजयवार्तिक', 'परात्रिंशकाविवृति' तथा 'भगवद्गीतार्थसंग्रह' प्रमुख हैं। भारतीय समीक्षा के क्षेत्र में इनकी प्रतिष्ठा इनके 'लोचन' तथा 'अभिनव-भारती' के कारण तथा दर्शन के क्षेत्र में 'प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' और 'प्रत्यभिज्ञाविवृतविमर्शिनी' के कारण हुई।

इनकी बहुमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर कांतिचन्द्र पांडेय (दे०) ने इनको 'विश्वकोशात्मक व्यक्तित्व' की संज्ञा से विभूषित किया (अभिनवगुप्त—ए हिस्टॉरिकल ऐंड फिलसॉफ़िकल स्टडी)। इनकी लेखनी काव्यशास्त्र तथा प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के क्षेत्र में समान रूप से चली। शैवागमों एवं तंत्रों से प्रस्फुटित कश्मीर शैव-दर्शन की तीनों शाखाओं—क्रम, त्रिक तथा कुल पर क्रमशः चिंतन करके इन्होंने अत्यंत प्रौढ़ ग्रंथ प्रदान किए। 'विमर्शिनी' की रचना इन्होंने सामान्य जन को प्रत्यभिज्ञा-दर्शन का सरल ढंग से बोध कराने के लिए की और 'विवृति-विमर्शिनी' की रचना उत्पल (दे०)-देव के प्रत्यभिज्ञा-सिद्धांतों की विशद व्याख्या के लिए। प्रत्यभिज्ञादर्शन एवं समीक्षाशास्त्र को इनकी देन अमूल्य है। प्रत्यभिज्ञादर्शन का ज्ञान तो, वस्तुतः, इनकी व्याख्याओं के अभाव में

संभव ही न होता।

अभिनवपंप (क० ले०) [समय—बारहवीं शती पूर्वार्द्ध]

बारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध कविवर नागचंद्र को इसलिए 'अभिनवपंप' अथवा 'पंप द्वितीय' के नाम से समादृत किया गया कि इनकी वाणी में महाकवि पंप के वैभव, गरिमा और कल्पना शक्ति का पुनरुज्जीवन हुआ। इन्होंने वैष्णव राजा (होयसळ-नरेश) विष्णुवर्धन (1104-1141 ई०) के आश्रय में रहते हुए 'मल्लिनाथपुराण' और 'रामचंद्रचरितपुराण' का प्रणयन किया। 'मल्लिनाथ-पुराण' में उन्नीसवें तीर्थंकर की कथा है। 'रामचंद्रचरित्र-पुराण' 'पंपरामायण' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इन कृतियों में 'पुराण' शब्द का प्रयोग धार्मिक दृष्टि से नहीं वरन् कथाधार के संदर्भ में किया गया है। इन कृतियों पर 'अभिनवपंप' के रचना-कौशल, वाणी पर उनके अद्भुत अधिकार और समग्र कथा को एकान्वित सूत्र में बाँध पाने के समाहार-कौशल की स्पष्ट छाप है।

अभिनेता (हिं० पारि०)

नाटक में पात्र विशेष का अभिनय कर जो नट अनुकार्य और प्रेक्षक के बीच संबंध स्थापित करता है प्रेक्षक को रसास्वादन कराता है, वह अभिनेता कहलाता है। इसके लिए सफल अभिनय आवश्यक है और सफल अभिनय के लिए आवश्यक है कि वह नाटक और पात्र को पूर्ण रूप से समझे। इसके लिए वह कवि प्रणीत अनुकार्य के चरित्र को पढ़ता है, इसके विषय में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करता है। अनुकार्य के चरित्र एवं कृतित्व की मीमांसा करता हुआ वह उसके साथ तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करता है। वह अनुकार्य की स्थिति में अवबोध के लिए परंपरा-गत ज्ञान और लोक-व्यवहार की भी सहायता लेता है। इसके बाद वह अभिनय का अभ्यास करता है और चार प्रकार के अभिनय—आंगिक, आहार्य, वाचिक और सात्त्विक—के द्वारा पात्र के व्यक्तित्व को यथार्थ रूप प्रदान करता है, उसे सजीव एवं जीवंत रूप में प्रस्तुत करना है। अभिनेता के अभिनय को सफल बनाने में स्वयं उसकी प्रतिभा (दे०), मानव स्वभाव का ज्ञान, रंगमंच शिल्प से परिचय तो सहायक होते ही हैं, निर्देशक का निर्देशन, जो समग्र नाट्यप्रभाव के अनुरूप विविध पात्रों के अभिनय की योजना करता है, भी पर्याप्त उपयोगी होता है।

अभिमन्यु (सं० पा०)

यह पाँच पांडव-भ्राताओं में से दूसरे भ्राता अर्जुन (दे०) का पुत्र था। इसकी माता का नाम सुभद्रा था। इसकी अस्त्रविद्या की शिक्षा अर्जुन की देखरेख में हुई। यह अति पराक्रमी और अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग में अति निपुण था। महाभारत के युद्ध में जब द्रोण ने बड़ी कुशलता से अर्जुन को अन्य पांडवों से विलग कर दिया तो युधिष्ठिर (दे०) को चिंता हुई कि कौरवों के चक्रव्यूह का भेद कैसे किया जाएगा! अभिमन्यु को जब यह ज्ञात हुआ तो वह भीम (दे०) की सहायता से यह कार्य करने को तैयार हो गया। उसे व्यूह में प्रवेश करने की विधि तो ज्ञात थी, पर उससे बाहर आने की विधि ज्ञात न थी। फिर भी उसने धैर्य न छोड़ा। अभिमन्यु शत्रु-सैन्य की पंक्तियों को तोड़ता हुआ तथा शत्रुओं का संहार करता हुआ आगे बढ़ता चलता गया, यहाँ तक कि भीम आदि भी बहुत पीछे रह गए। अब व्यूह में उसे अकेला देखकर द्रोण, कृप, कर्ण जैसे महारथी इस पर टूट पड़े और बड़ी कठिनता से इसे विरथ किया। अभिमन्यु ढाल और तलवार लेकर युद्ध करने लगा, पर द्रोण ने इन्हें भी तोड़ डाला। तभी दुःशासन (दे०) के पुत्र के साथ उसे गदा युद्ध करना पड़ा। लड़ते लड़ते जब वह श्रांत हो गया तो उस पर मूर्च्छा छाने लगी। उस पर इसी अवस्था में ही दुःशासन ने गदा का प्रहार किया और इसका वध कर दिया।

अभिमन्यु-बध (अ० कृ०) [रचना-काल—1875 ई०]

रमाकांत चौधरी (दे०) का यह असमीया भाषा में रचित सर्वप्रथम काव्य है, जिसमें अतुकांत छंदों का प्रयोग हुआ है। इस पर बंगाल के मधुसूदन दत्त (दे०) का प्रभाव है। इसकी कथा 'महाभारत' (दे०) से ली गई है किंतु शिल्प नवीन है। लेखक की मौलिकता एवं सहज अभिव्यक्ति के दर्शन इस कृति में मिलते हैं।

अभिरामि अदादि (त० कृ०) [समय—17वीं-18वीं शती]

'अभिरामि' उमादेवी के नामों में से एक है और 'तिरुक्कटवूर' नामक गाँव के मंदिर में विराजमान मूर्ति-विशेष के लिए प्रयुक्त है। यह गाँव तमिल प्रदेश के तंजा-

वूर जिले में कावेरी नदी के सागर-संगम के समीप स्थित है। इस स्थल का विशेष माहात्म्य इसलिए माना जाता है कि यहाँ पर शिव ने लिंगमूर्ति से प्रकट होकर मार्कंडेय की रक्षा की थी। आलोच्य कृति 'अभिरामि' देवी पर उनके अनन्य उपासक 'अभिरामभट्टर' द्वारा रचित स्तुति-गीत है। इसमें 'कट्ळै कलित्तुरै' छंद में रचित 102 पद्य हैं और 'अंदादि' काव्य-विधा के अनुसार पूर्ववर्ती पद्यों के अंतिम शब्द या शब्दांश से परवर्ती पद्यों का आरंभ होता है।

अभिरामि 'नारायणी', 'वैष्णवी', 'भैरवी', 'शांभवी', 'शिव-शक्ति' आदि नामों से अभिहित तत्त्व है जिसकी एकमात्र सत्ता स्वीकारने के पश्चात् गीत-रचनाकार अन्य देवता पर ध्यान देना असह्य मानते हैं। वे 'अभिरामि-धर्म' के ही अनुयायी हैं। उनकी भक्ति-तल्लीनता तथा आत्मसमर्पण की भावनाएँ इस लघु काव्य में अत्यंत मर्मस्पर्शी रूप में प्रकट हुई हैं। कहा जाता है कि तत्कालीन 'तंजावूर' रियासत के मराठा राजा ने पहले इस महाभक्त रचनाकार की उपेक्षा की थी पर साक्षात् देवी द्वारा एक स्वप्न में वस्तुस्थिति समझाए जाने पर वे इनका आदर करने लगे थे।

अभिव्यंजनावाद *(हिं० पारि०)*

यह बीसवीं शताब्दी के इतालवी आत्मवादी दार्शनिक एवं सौंदर्यशास्त्री क्रोचे द्वारा प्रतिपादित कला का एक विशिष्ट सिद्धांत है। इसके अनुसार आत्मा की एक अलौकिक शक्ति—सहजानुभूति (दे०)—कलाकार को क्षण-भर में किसी भाव, अनुभूति या पदार्थ का समग्र मानस-दर्शन कराती है। यह सहज-ज्ञान सहज ही घट में उतर कर प्रभावों और बिंबों की सृष्टि करता है। यह सहज संवेदन से भिन्न होता है क्योंकि संवेदन अरूप और अमूर्त होते हैं, वे अभिव्यक्त नहीं होते जबकि सहजानुभूति अभिव्यंजना होती है। क्रोचे के अनुसार सहजानुभूति अभिव्यंजना है और अभिव्यंजना ही कला है; इस सहजानुभूति को शब्द, रंग, रेखा, स्वर-ग्राम, पत्थर की सहायता से मूर्त रूप देना आवश्यक नहीं। अनुभूति के बाह्य प्रकाशन तो, जिसे सामान्य जन कला कहते हैं, वह अतिरिक्त क्रिया या स्मृति की सहायक वस्तु है जिसका केवल व्यावहारिक उपयोग है; अभिव्यंजना ज्ञान-रूप है और काव्य-कृति कर्म-रूप। यह कला को नैतिक एवं सामाजिक दायित्व से मुक्त मानता है और संप्रेषण के प्रति उदासीन है।

अभिव्यंजनावाद कला-सिद्धांत के रूप में दोषपूर्ण है क्योंकि व्यावहारिक दृष्टि से कलाकार संप्रेषण और समाज के प्रति दायित्व की अवहेलना नहीं कर सकता, उसे कला-जगत में अराजकता और अव्यवस्था फैलाने का भय है। इसलिए बाद में क्रोचे को भी अपने मत में कुछ परिवर्तन करने पड़े।

अमड़ाबाट *(उ० कृ०)*

यह वसंतकुमारी पटनायक (दे०) का सामाजिक उपन्यास है। इसकी प्रधान पात्र माया (दे०) उच्च शिक्षिता लड़की है। उसका जन्म एवं लालन-पालन सुशिक्षित परिवार में हुआ है। उसकी भाभी भी उच्च शिक्षिता है। सभी की प्रशंसा व आदर पाकर भी अपनी नीच मनोवृत्ति के कारण वह पारिवारिक सुख-शांति को नष्ट कर देती है। और माया—लज्जा-संकोचविहीना वह मर्दानी लड़की—प्रकट होती है एक निष्ठावती सुगृहिणी के रूप में। आधुनिक उड़िया उपन्यासों में यह एक उल्लेखनीय कृति है, जिसमें उच्च शिक्षा प्राप्त नारी की समस्या को प्रधान रूप से उठाया गया है।

अमरकोष *(सं० कृ०)* : [रचना-काल—पहली शताब्दी ई० पू०; लेखक : **अमरसिंह**]

'अमरकोष' को ही 'नामलिंगानुशासन' भी कहते हैं। 'अमरकोष' में स्वरादिकाण्ड, भूम्यादिकाण्ड तथा सामान्यकाण्ड, ये तीन काण्ड हैं। प्रत्येक काण्ड वर्गों में विभक्त है। प्रथम काण्ड में 13 वर्ग, द्वितीय काण्ड में 11 तथा तृतीय काण्ड में 7 वर्ग हैं। 'अमरकोष' पर 50 से भी अधिक टीकाएँ लिखी गई हैं। इनमें भट्टक्षीर स्वामी की टीका अत्यंत महत्वपूर्ण एवं प्रख्यात है।

'अमरकोष' में स्वर्ग आदि शब्दों के अधिकाधिक प्रामाणिक पर्याय दिये गये हैं। उदाहरण के लिए, इस ग्रंथ में स्वर्ग के 'स्वः' आदि नौ तथा देव के 'अमर' आदि 26 पर्याय दिए गए हैं। इस प्रकार भारतीय भाषाओं के अध्येता के लिए अमरकोष का अध्ययन परम आवश्यक है। 'अमरकोष' का महत्व समझ कर ही इसे 'जगत्पिता' कहा जाता है—'अमरकोषो जगत्पिता'। 'अमरकोष' का छंद अनुष्टुप् होने के कारण इस ग्रंथ की शैली सरल बन पड़ी है।

अमरत (गु० पा०)

ईश्वर पेटलीकर (दे०) की 'लाहीनी सगाई एक सुप्रसिद्ध कहानी है जिसमे मगु नामक एक पगली लड़की की माता अमरत काकी है। काकी ही कहानी की मुख्य पात्र हैं। अमरत काकी का पगली मगु पर असीम स्नेह है। वे घर के किसी कार्य मे मन नही लगाती। पगली बेटी मगु की सेवा-शुश्रूषा करना, उसका साज शृगार करना, उससे तरह-तरह की बाते करना और सयानी की तरह उससे व्यवहार करना—यही अमरत काकी की जीवन-चर्या है। मगु काफी बडी है, उसके पागलपन के बेहूदे काम सारे परिवार को तग करते है, पर अमरत काकी का मातृहृदय उससे तनिक भी कष्ट का अनुभव नही करता। लेखक ने इस पात्र द्वारा माँ की ममता का बडा ही प्रभावपूर्ण चित्रण किया है।

जब मगु की करतूतें असह्य हो जाती है तब उसे पागलखाने मे रखने का निर्णय किया जाता है। इस निर्णय से अमरत काकी पर कुठाराघात होता है। वह सहमति नही देती। ईश्वर पेटलीकर यहाँ अमरत काकी के अत द्वद्व का बडी ही कुशलता से उद्घाटन किया है जो जितना प्रतीतिजनक है, उतना ही हृदयस्पर्शी भी है। काकी की अतर्वेदना की परिसीमा तो उस समय आती है जब मगु पागलखाने मे रखी जाती है। भग्नहृदय अमरत काकी हृदय कठोर बनाकर वहाँ की परिचारिका को मगु की प्रकृति, रुचि और दिनचर्या का विस्तृत परिचय देती हैं, उसकी आवश्यकताओ और सुविधाओ का ध्यान रखने की सूचनाएँ देती है। इस मार्मिक प्रसग को पढते पढते कठोरहृदय पाठक भी *द्रवित हो जाता है।* अत मे हृदय की घनीभूत पीडा के असह्य भार से अमरत काकी स्वय पागल हो जाती हैं और कहानी का शोक मे पर्यवसान होता है। अमरत काकी यथार्थत वात्सल्यमयी माता हैं।

अमरुशतक *(स० कृ०)* [समय—सातवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध या आठवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध]

कवि अमरु या अमरुक की कविता से तो सस्कृत-जगत सुपरिचित है पर उनके जीवनवृत्त पर कोई भी प्रामाणिक तथ्य आज तक सामने नही आया। आचार्य वामन (दे०) तथा आनन्दवर्धन (दे०) ने अपने ग्रथो मे इनके पद्य उद्धृत किए है, अत इनका समय निश्चित रूप से पूर्व का रहा होगा।

'अमरुशतक' के विभिन्न सस्करणों मे इसके पद्यों की सख्या 90 से 105 तक मिलती है। यह शतक मूलत प्रेम-चित्रो का सग्रह है। भर्तृहरि (दे०) अपने शृगार-शतक (दे० 'भर्तृहरिशतक') मे प्रेम के सामान्य पक्षो तथा स्त्रियो का जीवन के अगभूत रूप मे वर्णन करते है, जबकि अमरुक प्रेमियो के सबध को चित्रित करते है और जीवन के अन्य पक्षो के सबध मे कोई विचार नही करते।

आचार्य आनन्दवर्धन अमरुक के पद्यो की मुक्त कठ से प्रशसा करते हैं। अमरुक ने अपने पद्यो मे भावो की वह विभूति भर दी है जो अन्यत्र दुर्लभ है। एक एक पद्य अनुभूतियो के आगार है। इन्हें पढकर पाठक का हृदय शृगार रस मे सराबोर हो जाता है। इन्होने कामी तथा कामिनियो की विभिन्न अवस्थाओ तथा विभिन्न मनो-वृत्तियो का सूक्ष्म सुदर विवरण प्रस्तुत किया है।

आलोचको ने इन पद्यो को साहित्य की कसौटी पर कसकर इन्हे खरा सोना पाया है। ये पद्य ध्वनि-काव्य के सुदर नमूने हैं। इन्होने अमरुक को उच्च कोटि के कवियो की पक्ति मे लाकर खडा कर दिया है।

'अमानत' *(उर्दू ले०)* [जन्म—1805 ई०]

नाम—सैयद आगा हुसैन, उपनाम—'अमानत', पिता का नाम—मीर आगा रजवी। ये दिलगीर' के शिष्य थे। बीस वर्ष की आयु मे दुर्भाग्यवश ये अपनी वाणी खो बैठे थे। कहा जाता है कि दस वर्ष पश्चात् इनका यह रोग स्वत जाता रहा। इनकी प्रसिद्धि का कारण इनके उर्दू नाटक 'इदर सभा' (दे०) और 'वासोख्त' हैं। इनके काव्य मे लखनवी शैली के दर्शन होते है। शब्दाडबर और शब्दा-लकारो के प्रति इनका अत्यधिक मोह था। यही कारण है कि इनका काव्य शब्दो की प्रदर्शनी मात्र बनकर रह गया है। शुद्ध, स्पष्ट, सरल और सरस पद भी इनके काव्य मे हैं, परतु बहुत कम।

अमाबास्यार चद्र *(उ० कृ०)*

यह गोविन्ददास (दे०) का उपन्यास है। इसके चन्द्र काउल को समझना आशान्वित नारियो के लिए जैसा कठिन है, वैसा ही पाठक तथा लेखक के लिए भी। उपन्यासकार ने एक रहस्यमय परिवेश मे काउल (दे०) का प्रवेश जैसे कराया है उसे वैसे ही हटा भी लिया है। किंतु इसके कारण इसकी कथावस्तु विघटित नही हुई

है। काउल यद्यपि शराबी और असामाजिक है, तथापि वह मनुष्य है।

अमासना तारा *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1953 ई०]

किशनसिंह चावडा (दे०) की यह कृति तथ्य और शिल्प की नवीनता के कारण गुजराती साहित्य में विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी है। इसमें प्रस्तुत प्रसंगों को रेखाचित्र भी कहा जा सकता है और संस्मरण भी। इसमें वर्णित सारी घटनाएँ और व्यक्ति लेखक के साथ अभिन्नरूपेण संपृक्त हैं, अतः प्रकारांतर से इस रचना को लेखक के निजी जीवन-प्रसंगों का मर्मस्पर्शी चित्रण भी कहा जा सकता है।

'अमास' यानी अमावस्या, घनघोर रात्रि, जबकि चंद्रमा का प्रकाश नहीं होता और छोटे-छोटे तारे अपने सीमित तेज से तिमिर को दूर कर आकाश को दीप्तिमान बनाते हैं। चावडा के 'अमासना तारा' में चंद्र के समान प्रकाशपूर्ण व्यक्तित्व नहीं है, पर नक्षत्रों के-से ऐसे नर-पुंगव इसमें अवश्य हैं जो सर्वत्र शुभ्रता, उज्ज्वलता और पवित्रता का प्रसारण करते हैं। नन्नु उस्ताद, फ़ैयाज़खाँ, हाजी मुहम्मद, अफ़लातून, फक्कड़ चाचा, अमृता, नर्मदा बा इत्यादि अमावस्या के ऐसे तारे है जो अगणित दोषों और भ्रष्टाचारों के अंधकार से ढके हुए समाज को आशा, श्रद्धा और स्नेह का प्रकाश देते हैं। इन्हीं के कारण हमारा समाज अविभक्त और विकासोन्मुख है। इस कृति के सभी प्रसंग और पात्र पावनकारी और प्रेरणादायी हैं। लेखक ने 'अमासना तारा' में गद्यकाव्य की शैली का सुंदर प्रयोग किया है। इसके रेखाचित्र 'हृदय के गीत' हैं जो पाठक को भावविभोर कर देते हैं। इसका आकर्षण इसकी चित्रात्मक शैली और मर्मस्पर्शी संस्मरण हैं। सभी दृष्टियों से 'अमास-ना तारा' गुजराती में विशिष्ट रचना मानी जाती है।

अमितराय *(बं० पा०)*

रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दे०) के उपन्यास 'शेषेर कविता' (दे०) में अमितराय, विकल्प से 'अमिट राये', एक स्वतंत्र भाव-मूर्ति में प्रतिष्ठित है। 'शेषेर कविता' के काव्य-सरोवर में अमितराय कवि-हृदय का सहस्रदल कमल है एवं अमितराय के हृदय-सरोवर में लावण्य नित्य-कालीन स्वर्ण-शतदल के रूप में विकसित है। प्रत्येक मनुष्य की अपार भावकल्पना का माधुर्य एवं स्नेह अमित के चित्त को घेर कर कलगुंजन में मुखर है। यह काव्य-मूर्ति मुहूर्त के सत्य का महिमामय रूप में आविष्कार कर आनंद-मग्न होती है। जीवन के चंचल मुहूर्त शांत-संयत होने का अवकाश नहीं देते हैं। अमित तेज बुद्धि के चातुर्य से आश्चर्यजनक सुंदर भाषा में कवि-प्राण के सहयोग से पाठक के चित्तलोक में बिजली की चमक जगाता है परंतु इसमें संदेह नहीं कि वह विद्युत् की क्षणदीप्ति मात्र है। इस क्षणिक दीप्ति का भाव-स्फुलिंग ही अमित के चित्त का मर्म-संगीत है। विवाहबद्ध प्रेम के जगत में इसीलिए उसका कोई स्थान नहीं है। प्रेम की उदारता में, व्याप्ति में, विरह-वेदना में उसकी निःसीम सान्त्वना प्रकट हुई है। प्रतिदिन की मौत के ऊपर इस प्रेम ने जीवन को महाजीवन की अपरूप शिल्पमहिमा की सार्थकता प्रदान की है।

अमित्राक्षर छंद *(बं० पारि०)*

'ब्लैंक वर्स' के लिए रूढ़ार्थ में 'अमित्राक्षर' शब्द का प्रयोग होता है। बँगला में माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) ने इस छंद का आविष्कार किया। यह अतुकांत छंद है। पयार छंद (14 अक्षर) में अमित्राक्षर (अतुकांत) तथा यति-अनिश्चय को लेकर यह छंद बना है। इस छंद की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि एक विचार के समाप्त होने पर इसमें यति पड़ती है। अमित्राक्षर छंद ने बँगला में मुक्त छंद के लिए मार्ग प्रशस्त किया। बँगला में मुक्त छंद का प्रवर्तन गिरीश घोष ने किया था। मुक्त छंद में तुकों का न कोई विचार है और न चरणों में नियत मात्रा का आग्रह। मुक्त छंद से भिन्न मुक्त गीत है जिसे 'बलाका छंद' भी कहा जाता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दे०) इसके प्रवर्तक हैं। मुक्त गीत वास्तव में असमपदी मित्राक्षर (तुकयुक्त) छंद है। बँगला में, इस प्रकार, छंदों के नये रूपों के प्रवर्तन में अमित्राक्षर छंद की देन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

अमीर-उल-लुग़ात *(उर्दू कृ०)* [रचना-काल—1891 ई०]

लेखक एवं संपादक—अमीर अहमद साहब 'अमीर' मीनाई (दे०) लखनवी। उर्दू भाषा के इस सुवि-स्तृत शब्दकोश के संबंध में सर सैयद अहमद खाँ का कथन है कि उर्दू का ऐसा विशद तथा सर्वांगपूर्ण शब्द-कोश इससे पूर्व नहीं रचा गया है। विद्वान लेखक का परिश्रम अत्यंत स्तुत्य एवं प्रशंसनीय है। वृहद् आकार के

इस शब्दकोश मे उर्दू मे प्रयुक्त अरबी, फारसी, तुर्की, हिंदी, अँग्रेजी और सस्कृत के शब्दो का विशद विवेचन है। प्रत्येक शब्द को व्याकरण की विशेषताओ, उपमाओ, मुहावरो, लोकोक्तियो, उदाहरणो के सदर्भ मे विस्तारपूर्वक वर्णित किया गया है। इसे देखने से उर्दू भाषा की व्यापकता और समृद्धि का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। इसमे यथावसर शब्दो के पारस्परिक विरोध एव उनकी उस भिन्नता का भी सम्यक् विश्लेषण किया गया है जो प्राय लखनऊ और दिल्ली की उर्दू मे विद्यमान है। प्रत्येक तथ्य को प्रमाणित करने के निमित्त सुप्रसिद्ध कवियो के तत्सबधी उदाहरण भी दिये गये हैं, नई और पुरानी उर्दू का अतर भी सर्वत्र स्पष्ट किया गया है। कवियो और साहित्यकारो के लिए इस शब्दकोश की उपादेयता स्वयसिद्ध है। वैज्ञानिक शैली मे लिखित उर्दू का यह प्रथम उपयोगी शब्दकोश आज भी अत्यत महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक ग्रथ है।

अमीर खुसरो *(उर्दू एव हिं० ले०)* [जन्म—1255 ई०, मृत्यु—1325 ई०]

हजरत अमीर खुसरो तेरहवी शताब्दी मे पटियाली, जिला एटा (उत्तर प्रदेश) मे पैदा हुए। इनका असली नाम था अबुल हसन। ये उर्दू भाषा के सर्वप्रथम कवि माने जाते हैं। इनका फारसी काव्य भी प्रसिद्ध है। ये अरबी, फारसी, तुर्की, हिंदी अनेक भाषाओ के विद्वान् थे। इन्हे 'तूती-ए-हिंद' की उपाधि से भी विभूषित किया गया था। सबसे पहली गजल का रचयिता इन्हे ही माना जाता है। इनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ, दोहे आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। कुछ रचनाएँ ठेठ हिंदी मे लिखी गई है जो सस्कृत छदो मे है। इन्होंने यो तो कई पुस्तकें लिखी पर 20-22 प्राप्य है। जिनम 'खालिकबारी' और 'चहारदरवेश' विशेष उल्लेखनीय हैं। तुर्की, अरबी, फारसी और हिंदी का एक पर्यायकोश भी प्रसिद्ध है।

अमीर खुसरो दिल्ली के विभिन्न बादशाहो के दरबार म उच्च पदो पर नियुक्त रहे। उनके गुरु प्रसिद्ध सूफी सत हजरत निजामुद्दीन औलिया थे। उनके स्वर्गवास के कुछ ही दिन बाद उनके शोक मे अमीर खुसरो का भी स्वर्गवास हो गया। बलबन बादशाह उनकी बडी कद्र करता था और उनके काव्य का बडा प्रेमी था। अमीर खुसरो उर्दू भाषा के विख्यात कवि एव साहित्यकार ही नही, वे उर्दू भाषा के निर्माता भी हैं। हिंदी साहित्य के इतिहास मे भी इनके नाम का उल्लेख बडे आदर के साथ किया जाता है।

'अमीर' मीनाई *(उर्दू ले०)* [जन्म—1828 ई०, मृत्यु—1900 ई०]

नाम—अमीर अहमद, उपनाम—'अमीर'; पिता का नाम—करम मुहम्मद। जन्मस्थान—लखनऊ। ये विनयशील प्रकृति के साधुस्वभाव और ईश्वर-भक्त व्यक्ति थे। दाग देहलवी (दे०) के साथ ये रामपुर के अतिरिक्त अल्पकाल के लिए हैदराबाद मे भी रहे थे। ये उच्चकोटि के कवि थे। 'मसनवी', 'नूर तजल्ली', 'दीवान-ए-मरातुल गैबे', 'सनमखाना-ए-इश्क', 'अब्र ए-करम', 'शाम ए-अवद' और मुसद्दस सुबह-ए-अज़ल' इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। लखनऊ की टकसाली भाषा मे इन्होने सौदर्य एव प्रेम के भावो का बहुत सजीव चित्रण किया है। इनका कल्पनाजगत विराट, गभीर एव मनोरम है। इनके काव्य मे सूफी तत्त्व भी विद्यमान है। गजल लेखन मे ये विशेष रूप से सिद्धहस्त थे। इन्होने उर्दू शब्दकोश 'अमीर-उल-लुगात' (दे०) का भी सकलन सपादन आरभ किया था किंतु उसके केवल दो भाग प्रकाशित हो सके।

अमीर-हमज़ा *(उर्दू पा०)*

अमीर हमज़ा 'दास्तान ए-तिलिस्म ए होशरुबा' (दे०) का नायक है। इसके व्यक्तित्व में वीरता तथा मानवता का सुदर समन्वय है। यह एक वैभवशाली वीर शासक है जो अनेक बलिदानी सामतो द्वारा घिरा हुआ है। यह 'कोह काफ' (एक पर्वत) पर चढाई करता है और अपने निपुण गुप्तचर विभागाध्यक्ष उमरो ऐयार (दे०) के प्रयत्नो तथा वीर सहयोगियो के साहस के बल पर सारे कोह काफ को जीत लेता है। होशरुबा नाम की तिलिस्मी नगरी को जीतने मे यह अपने ऐयार साथियो की कर्मठता के कारण सफल होता है। इस की जीत बुराई पर भलाई की जीत का प्रतीक है।

अमीर हमज़ा दीन हीन जन को प्रश्रय प्रदान करना अपना कर्तव्य समझता है। अनेक देशो मे इस्लाम धर्म का प्रकाश फैलाता हुआ इतना बडा साम्राज्य स्थापित करता है कि जिसकी कल्पना भी कठिन है। अमीर हमज़ा और उसके सामत नेकी के पुतले हैं तथा उनके विरोधी 'अफरासियाब' और 'लका' तथा उनके साथी बदी अर्थात्

बुराई के प्रतीक हैं। नेकी का बदी से युद्ध होता है जिसमें नेकी की जीत होती है। अमीर हमजा अनेक मानसिक, शारीरिक तथा नैतिक गुणों से युक्त है। इसके पास 'हस्म-ए-आज़म' तथा 'हर्ज-ए-हेकल' नाम के दो ऐसे युद्धास्त्र हैं जिन पर जादू का प्रभाव नहीं हो सकता। इसका चरित्र वैयक्तिक भी है और प्रातिनिधिक भी। यह वीर, निडर, अद्वितीय योद्धा, उदार स्वाभिमानी तथा अतिथिपरायण है। अरबी वीरों के परंपरागत गुणों के साथ-साथ इसमें भारत की लखनवी सभ्यता की विलासिता के लक्षण भी हैं।

अमुदवल्ली *(त० पा०)*

पुरट्शि कवि तमिल के क्रांतिकारी कवि भारतीदासन (दे०) की प्रसिद्ध रचना है। अमुदवल्ली इस कथा-काव्य की नायिका है। तमिल भाषा के प्रति अनन्य प्रेम होने के कारण वह अपने तमिल शिक्षक उदारन् की ओर आकृष्ट होती है। इसे बहका दिया जाता है कि उदारन् अंधा है। एक दिन पर्दे के पीछे खड़े उदारन् के मुख से चाँदनी रात के सौंदर्य का वर्णन सुन अमुदवल्ली अपने मन का संदेह मिटाने के लिए उसके पास जाती है और उसके रूप-लावण्य पर मुग्ध हो जाती है। अमुदवल्ली और उदारन् के प्रेम के विषय में जानकर राजा कुपित होता है और उन्हें प्राण-दंड देता है। अमुदवल्ली अपने प्रेमी के साथ मरने के लिए तैयार हो जाती है। भारतीदासन ने अमुदवल्ली के रूप में एक आदर्श प्रेमिका का चित्रण करने के साथ-साथ उसके माध्यम से अपने तमिल भाषा-प्रेम की सफल अभिव्यक्ति की है।

अमृतमति *(क० पा०)*

यह जन्न (दे०) की श्रेष्ठ कृति 'यशोधरचरिते' (दे०) की नायिका है। उसके एक अन्य कारुणिक नायक चंडशासन के समान यशोधर राजा की पत्नी अमृतमति भी काम-विकृति को बिंबित करनेवाला एक दुरंत चरित्र है। वह एक दिन राजमहल के कोढ़ी महावत के गायन पर रीझकर उसे अपना दिल दे बैठती है। राजा के सो जाने पर वह रात्रि में कोढ़ी से मिलती है। एक रात राजा उसका पीछा करता है। वहाँ देर से आने के कारण महावत अमृतमति को कोड़े से मारता है। वह मार भी उसे सहन हो जाती है। राजा का मन वैराग्य से भर उठता है। मनसिज की माया वीचिविलास का सहयोग पाएगी तो क्या वह मानव को मारकर हुंकार नहीं भरेगी ? कवि के इस प्रश्न में अप्रतिहत काम एवं दुर्विचार इन दोनों के बीच फँसी एक अबला का चित्र उपस्थित होता है। अमृतमति का मोह असाधारण, असामान्य एवं विकृत है। काम के इस नग्न एवं भग्न चित्रण में कवि ने अप्रतिम शक्ति दिखाई है। वादिराज के प्रति कवि अवश्य ऋणी है पर फिर भी अमृतमति जन्न की अपनी विशिष्ट सृष्टि एवं देन है।

अमृतराय की कविता *(म० कृ०)*

कवि अमृतराय विदर्भ के साखरखेडा नामक देहात के निवासी थे। कीर्तन के माध्यम से भक्ति-भावना का प्रचार करने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने नाद-मधुर सरस पदों की रचना की है। ये आशु कवि थे और कीर्तन करते समय ही पदों का निर्माण कर लेते थे। 'कटाव' छंद में पद-रचना करके मराठी के पद-साहित्य को इन्होंने समृद्ध किया है। हिंदी में भी इनके नाद-मधुर अनेक पद मिलते है। इन्होंने हिंदी में 'शुकचरित्र', 'सुदामाचरित्र', द्रौपदीवस्त्रहरण', 'जीवदशा,' 'रामचन्द्र-वर्णन' आदि लंबी वर्णनात्मक कविताएँ रची हैं। सानुप्रासिक शब्द-योजना इनके पदों की विशेषता है।

अमृत लहरां *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

यह अमृता प्रीतम (दे०) का दूसरा कविता-संग्रह है। इससे पूर्व इन का एक कविता-संग्रह 'ठंडियां किरनां' सन् 1935 में प्रकाशित हो चुका था। इस संग्रह में अमृता प्रीतम की प्रारंभिक कविताएँ है। ये कविताएँ उन्होंने अपने पिता के संरक्षण और निर्देशन में लिखी थीं और यही कारण है कि इनमें धार्मिक संदेश और उपदेश अधिक हैं और इसी कारण इतिवृत्तात्मकता भी है। इन कविताओं की शैली भी पुरानी और परिपाटीबद्ध है। कवयित्री ने प्रायः दोहा, चौपाई, कवित्त और रूबाई आदि छंदों में ये कविताएँ लिखी हैं। विषयवस्तु, संवेदना और भाषा-शैली की दृष्टि से ये कविताएँ परंपरावादी ही हैं। इस संग्रह को कवयित्री की काव्य-चेतना का पहला चरण कह सकते हैं। यह संग्रह कवयित्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व और काव्य-प्रतिभा का कोई विशेष परिचय नहीं देता।

अमृत-सतान *(उ० कृ०)*

'अमृत-सतान' श्री गोपीनाथ महाति (दे०) का उपन्यास है। इसमे दर्शाया गया है कि पृथ्वी के आदिम शिशु, बनवासी आदिवासी, ही अमृत सतान हैं क्योंकि वे अमृतोपम गुणो से विभूषित अमर जीवन लिये हैं किंतु प्रगति के नाम पर आज मानव उससे बहुत दूर जा पडा है और दूर होता जा रहा है। सभ्य दुनिया से दूर, प्रगति से अनभिज्ञ, जगली आदिवासी अब भी उस अमृत-तत्त्व के निकट है, कम-से-कम वह सभ्य मानव के समान इतनी दूर नही चला गया है, जहाँ मानव पदार्थो मे बदल जाता है। उसकी आरण्यक प्रकृति, आदिवासियो की सरल सुदर, रोमानकारी विचित्र जीवनधारा गहन और मनोरम है। इस उपन्यास की कथा इस प्रकार है—

चार हजार फुट ऊँचे शिखर पर स्थित पल्ली मे बैठा है सरबु साउँता दूर उसकी दृष्टि न जाने कहाँ खो गई है। यह कुल-वृद्ध इस गाँव का मुखिया है। इसकी भाषा अति प्राचीन कुमी है, और उसका गोत्र है मणिआकी। उसके गाँव का नाम है मणिआपायू। शरीर पर वस्त्र के नाम पर केवल लँगोट, सिर पर हवा मे उडते हुए ताँबे से बाल, ओठो के किनारो से अविराम गिरती तम्बाकू की थूक की धार, यही है उसका रूप, और यही है उसका परिचय। फिर भी वह सरदार है—जिलाने को, मरवाने को। राजा छोटा भाई, कध बडा भाई, प्रजा बडा भाई। सभ्यता का यह लाल रास्ता न जाने किस खतरे की सूचना देता है।"'अब वे स्वाधीन नही रह सकते" सभ्यता की यह सडक उस बीहड वन-प्रदेश मे जा पहुँची है। उसकी सरलता शोषित है, उसका स्वप्न आज व्यतीत है, उसके जीवन-सगीत की अतिम स्वर-लहरी की भाँति शून्य मे विलीन होती हुई मद, फीकी अनुगूँज मात्र है।

दिउड साउँता सरबु का लडका है पीयू उसकी कुलवधू। समय बदलता है। दिउड साउँता दूसरी स्त्री कर लेता है। पीयू का सरल विश्वास न जाने कहाँ भटक जाता है। वह गृह-त्यागिनी बन जाती है।

किंतु पाडुसारिका को यह मजूर नही। प्राचीन मूल्यो पर उसकी अब भी आस्था है। दोषी दडित होना चाहिए, निर्दोष पीयू क्यो? इतना दुःख क्यो? आनद के लिए हमारा जन्म है किंतु पाडुसारिका तो जीवन-यात्रा मे पिछड गया है।

छोटे बच्चे को डिसारी के घर मे छोडकर पीयू निकल पडती है। सामने न जाने सब क्या हुआ जा रहा है—नया युग, नयी दुनिया। किंतु यह द्वद्व क्यो? यह कोलाहल क्यो?"'नही, नही, जीवन मे स्वाद है—मरण नही, दुख नही!

आधुनिक उडिया साहित्य मे उपन्यास-रचना की दृष्टि से फकीरमोहन सेनापति (दे०) जितने समादृत हैं, गोपीनाथ महाति उतने ही अविस्मरणीय हैं। ऊबड-खाबड जीवन, पथरीली भाषा, पहाडी नदी-सी शैली आदि बातें उनके युगातरकारी औपन्यासिक व्यक्तित्व की सूचक है। पीयू-पुबलि नारियाँ, देउड एव लेंजु जैसे पुरुष उनके उपन्यास को सक्रियता प्रदान करते हैं। भाषा सहज सरल है। वाक्य छोटे, आकर्षक एव शक्तिशाली है। सवाद जीवत एव मार्मिक हैं। सन् 1957 ई० मे भारतीय साहित्य अकादमी ने इसे पुरस्कृत कर इसका समुचित सम्मान किया था।

अमृता प्रीतम *(प० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

पजाबी की सुप्रसिद्ध कवयित्री अमृता प्रीतम का प्रथम कविता सग्रह 'ठडिया किरना' (दे०) सन् 1935 मे प्रकाशित हुआ था जिसमे धार्मिक सदेश और उपदेश अधिक है। इसके बाद 'अमृतलहरा' (36) (दे०) की प्रारभिक कविताओ मे कवयित्री की किशोर भावनाएँ व्यक्त हुई है। इन की काव्य-कला उत्तरोत्तर विकसित होती गई है। 'जीऊदा जीवन' (39), 'लोकपीडा' (44), 'पत्थर गीटे' (46), 'लेम्मियाँ वाटा' (49), 'मै तवारीख हा हिन्द दी' (49)', 'सरघी वेला' (51) इन के महत्त्वपूर्ण कविता-सग्रह है। 'सुनेहडे', 'अशोका चेनी', और 'कस्तूरी' भी इन की विशिष्ट काव्य-कृतियाँ है। 'सुनेहडे' (दे०) पर इन्हे साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

अमृता प्रीतम की कविताएँ आत्मानुभूति की कविताएँ है। पर इनका 'आत्म' व्यक्तिबद्ध न होकर 'पर' या 'लोक' से जुडा हुआ है। इनका काव्य मूल रूप से प्रेम का काव्य है। प्रेम के विविध रूपो का चित्रण इन्होने पूरी सवेदनात्मकता के साथ किया है।

'मैं तवारीख हा हिन्द दी' देश विभाजन के विषय पर लिखी हुई एक उच्च कोटि की रचना है। 'सरघी वेला' उत्कृष्ट कविताओ का सग्रह है जिसमे अधिकतर प्रेम के कोमल गीत सगृहीत हैं। 'सुनेहडे' की कविताओ मे निजी पीडा और विषाद का स्वर है जिसे कवयित्री ने व्यापक मानवीय सदर्भ देने का प्रयत्न किया है।

अमृता प्रीतम की काव्य-प्रतिभा निरतर विकास-

मान है। इन्होंने बदलते हुए संबंधों की विडंबना और मूल्यमूढ़ता को अपनी इधर की कविताओं में सफलता-पूर्वक व्यक्त किया है।

अमे वधां *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1934 ई०]

'अमे वधां' गुजराती साहित्य के हास्यरस के सुप्रसिद्ध लेखक श्री ज्योतीन्द्र दवे (दे०) तथा श्री धनसुखलाल महेता (दे०) का उत्तम हास्य-प्रधान उपन्यास है।

सूरत के इस लेखक-युगल के उपन्यास में नायक विपिन आत्मकथात्मक शैली में हास्य रस में अपने जन्म से लेकर अपनी शादी तक की कथा कहता है। किंतु लेखकों का उद्देश्य इस शताब्दी के प्रथम पच्चीस वर्ष के सूरत का जीवन निरूपित करना है और अपने इस उद्देश्य में उन्हें बहुत सफलता मिली है। हास्य एवं व्यंग्य द्वारा गत पीढ़ी की लुप्त होती जीवन-प्रणालियों और जीवन-रीतियों का यथावत् चित्र इसमें दिखाया गया है। इसमें कथानायक तथा कथा-तत्त्व दोनों ही गौण है किंतु स्थल और काल का विशेष महत्त्व है। इस स्थल और काल का यहाँ हास्यपरक चित्रण किया गया है जिससे कृति की विशेषता बढ़ गई है।

अम्मन देहलवी, मीर *(उर्दू ले०)*

इनके पूर्वज सम्राट हुमायूँ के समय से मुगलिया शासन से संबद्ध थे। शासन की ओर से इन्हें जागीर भी मिली हुई थी। जिन दिनों अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण हुए उन दिनों इनका घर भी लूटा गया था। आक्रमण-कारियों द्वारा इनकी जागीर जब्त कर ली गई थी। तब इन्हें अपनी जन्मभूमि छोड़ कुछ समय के लिए अजीमाबाद और तदुपरांत कलकत्ता को अपना निवास-स्थान बनाना पड़ा था। कलकत्ता में मीर बहादुर अली हुसैन ने डा० गिलक्राइस्ट से इनका परिचय कराया था। परिणामस्वरूप फ़ोर्ट विलियम कालेज (दे०) में इनकी नियुक्ति हो गई थी। वहाँ इन्हें 'किस्सा-चहार दरवेश' को सरल गद्य में लिखने का कार्य सौंपा गया था। यह अनुवाद 'बाग़-ओ-बहार' (दे०) के नाम से अत्यधिक लोकप्रिय हुआ। यह अनुवाद पहले के सभी अनुवादों से अनेक दृष्टियों से अधिक महत्त्वपूर्ण था। इसमें यथातथ्यता, उद्देश्य-संगति और प्रवाहमयी भाषा की विशेषताएँ सर्वत्र देखने को मिलती हैं। सरलता और सरसता के साथ-साथ इनकी भाषा बड़ी मुहावरेदार और सप्रवाह है। कहीं भी फ़ारसी और अरबी के क्लिष्ट शब्दों की भरती नहीं की गई। कथोपकथन की स्वाभाविकता से ओतप्रोत यह कृति अत्यधिक रोचक एवं विद्वत्तापूर्ण है। उर्दू को लोकप्रिय बनाने में इस कृति ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मीर अम्मन की दूसरी कृति 'गंज-ए-खूबी' है, जो 'अनवार सहेली' का अविकल अनुवाद है। परंतु इस कृति को 'बाग़-ओ-बहार' जैसी प्रसिद्धि प्राप्त नहीं हो सकी।

अम्मूवनार् *(त० ले०)* [समय—प्रथम शताब्दी ई०]

इनका वास्तविक नाम 'मूवन्' है; 'अम्' प्राशस्त्य-बोधक विशेषण है। इनकी रचनाओं से प्रतीत होता है कि ये भारत के पश्चिमी समुद्र-तट के निवासी थे। चेरदेश (वर्तमान केरल) के अनेक प्राचीन नगरों के नाम इनकी रचनाओं में प्राप्त होते हैं। समुद्र-तट का वर्णन करने में तत्कालीन प्रसिद्ध दो कवियों में 'उलोच्चनार्' के साथ इनका भी आदर के साथ उल्लेख किया जाता है। 'ऐङ्कुरु-नूरु'—'लघुपद्यपंचशती'—नामक संकलन में इनके द्वारा रचित एक सौ पद्य उपलब्ध हुए हैं तथा अन्य संकलन-ग्रंथों में 27 पद्य।

एक उदाहरण : "हे प्रियतम! दक्षिणावर्त शंखकीट जहाँ के तट पर सिकता को जोतते रहते हैं और जहाँ पर बिखरे उज्ज्वल किरणवाले मोती चमककर अंधकार मिटाते रहते हैं, ऐसे समुद्र-तट के हे निवासी! तुम तो ये दो कंकण पुन: लाकर मुझे दे रहे हो! क्या ये ऐसे कंकण हैं कि विरह में फिर कभी खिसककर कहीं गिर न जाएँगे!'

अयल्कार *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

'अयल्कार' पी० केशवदेव (दे०) का विस्तृत उपन्यास है जो साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत हो चुका है। इसमें दो पड़ोसी परिवारों में पीढ़ियों तक चलनेवाले परस्पर वैर के फलस्वरूप दोनों परिवारों के पतन की कथा चित्रित है।

'अयल्कार' में बीसवीं सदी के आरंभ से केरलीय सामाजिक जीवन के क्रमिक विकास का प्रामाणिक और सरस वर्णन है। लेखक ने दर्शाया है कि व्यक्तियों, परिवारों और जातियों के पारस्परिक संघर्षों के दौरान, मान्यताएँ और प्रतिष्ठाएँ कैसे मिट्टी में मिलती हैं और इस

दुखदायी विघटन के बीच सौहार्द और मानविकता की झलक भी उपन्यास मे यत्र-तत्र दर्शनीय है।

मलयाळम के सामाजिक उपन्यासो मे समग्रता और प्रामाणिकता की दृष्टि से 'अयल्कार' का स्थान प्रमुख है।

अय्यगार, गोरूरु रामस्वामी *(क० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

कन्नड के सुप्रसिद्ध रेखाचित्रकार एव ग्राम-साहित्य के मर्मज्ञ गोरूरु रामस्वामी अय्यगार का जन्म 1904 ई० मे हासन ज़िले के गोरूरु ग्राम मे हुआ । ये अपने विद्यार्थी जीवन के दौर मे ही गाधीजी के असहयोग आदोलन मे कूद पडे। फलत कई बार जेल गये । इनके सुपुत्र भी देश-प्रेम की बलि चढ गये । ये गाधीजी के सच्चे अनुयायी, खद्दरप्रेमी तथा गाधीवादी साहित्यकार हैं। गाँव मे रहकर रचनात्मक कार्य कर रहे हैं। 'नम्मूरि-नरसिकर' आपके सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्रो का सग्रह है जिसमे आपने गाँव के लोगो का सरस चित्र प्रस्तुत किया है। आप कन्नड के श्रेष्ठ हास्य-साहित्यकारो मे हैं। 'हेमावती' आपका प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमे सत्याग्रह की भूमिका मे हरिजन-समस्या आदि का चित्रण है। एक हरिजन कन्या के साथ ब्राह्मण का विवाह कराके इस उपन्यास मे आपने अपनी गाधीवादी निष्ठा व्यक्त की है। 'हेमावतिय तीर-दल्लि', 'वैयारि' आदि आपकी अन्य कृतियाँ हैं जिन सबमे ग्राम्य जीवन की मधुर झाँकी है। आप एक सफल कहानीकार भी है। 'विमेयमनन्ने हेदरिसितु' (बीमा ने मन को ही डराया) आपकी एक श्रेष्ठ कहानी है। निबध-रचना मे भी आपको विशेष सफलता मिली है। 'मडि' आपका एक श्रेष्ठ निबध है। आपने शापेनहावर के लेखो का एक अनुवाद-सग्रह प्रकाशित किया है। के० एम० मुशी जी के 'भगवान कौटिल्य' का कन्नड अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। आपकी भाषा मे चलबुलाहट है, और हँसने की अद्भुत शक्ति है।

अय्यप्पन् *(मल० पारि०)*

केरल मे 'शबरीमला' नामक एक तीर्थस्थान है। वहाँ की एक आराध्य मूर्ति अय्यप्पन् है। इसके विषय मे कई दतकथाएँ प्रचलित हैं और उन कथाओ के आधार पर कई कविताएँ भी लिखी गयी हैं। भक्तप्रवर के० जी० मेनन की कविता रसपूर्ण है। कहा जाता है कि 'अय्यप्पन्' के दर्शन करके प्रसन्न हो उनके भक्ति-स्वर फूट उठते थे।

अय्यर, के० वी० *(क० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

कोलार वेंकटेश अय्यर का जन्म 1898 ई० मे कोलार मे हुआ। ये उत्कृष्ट नाटककार तथा उपन्यासकार हैं। 'शातला' (दे०) तथा 'रूपदर्शी' (दे०) आपकी श्रेष्ठ उपन्यास-कृतियाँ हैं। 'शांतला' मे आपने होयसळ सम्राज्ञी नाट्यसरस्वती शातला देवी के जीवन को लेकर एक सरस ऐतिहासिक चित्र प्रस्तुत किया है। होयसळयुगीन सस्कृति के चित्रण मे यह अत्यत सफल कृति मानी जाती है। आपकी भाषा अत्यत सयत किंतु विषयानुकूल है। सुरुचिपूर्णता आपकी कृतियो की विशेषता है।

अय्यर, कोमार अप्पा सुब्रह्मण्य *(स० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

प्रो० के० अ० सुब्रह्मण्य अय्यर का जन्म केरल के पालघाट अचल मे 7 सितम्बर, 1896 को एक तमिल ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। इनके पूर्वज मूलत तंजौर (तमिलनाडु) के रहने वाले थे और चार-पाँच शताब्दी पूर्व केरल मे आकर बस गये थे। इसीलिए केरलवासी इनको परदेशी कहते है। ये लोग द्विभाषी हैं अर्थात् घर तमिल और बाहर मलयाळम बोलते हैं। प्रो० अय्यर का बाल्यकाल धार्मिक सप्रदायो के बीच मे व्यतीत हुआ। पितृ-पक्ष की ओर से ये शैव थे और मातृ-पक्ष की ओर से वैष्णव। इस समन्वयवादी दृष्टि का परिणाम यह हुआ कि इन्होने अपना विवाह पोलैंड की एक महिला से किया।

इनकी प्राथमिक शिक्षा पालघाट और माध्यमिक शिक्षा कालिकट मे हुई। साथ ही ये अपने पिता के मित्र श्रीनारायण शास्त्री से सस्कृत की शिक्षा भी लेते रहे। लेकिन इनकी उच्च शिक्षा पेरिस तथा जर्मनी मे ही हुई।

यूरोप से लौटते ही 19 जुलाई, 1921 को इनकी नियुक्ति लखनऊ विश्वविद्यालय मे सस्कृत विभाग मे रीडर तथा अध्यक्ष के पद पर हुई। बाद मे ये इस विश्वविद्यालय के कुलपति बने और 1960 मे यहाँ का कुलपति-पद छोडने के बाद वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय का कुलपति पद सुशोभित किया।

प्रो० अय्यर इतने निष्ठावान अध्यापक तथा प्रशासनिक कार्यो मे इतने दत्तचित्त रहे कि अपने सक्रिय जीवन में इन्होंने कोई ग्रथ नही लिखा। अवकाश प्राप्त

करने के उपरांत इन्होंने भर्तृहरि के 'वाक्य-पदीय' का आठ खंडों में जो प्रामाणिक अनुवाद तथा समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है वह अद्वितीय है। इसके अतिरिक्त मण्डन मिश्र (दे०) की 'स्फोटसिद्धि' का अँग्रेजी अनुवाद तथा व्याख्या भी अप्रतिम है। उत्पल की 'ईश्वर प्रत्यभिज्ञा-विमर्शिनी' का 'भास्करी टीका' सहित डा० कांतिचन्द्र पाण्डेय (दे०) के साथ संपादन तथा प्रकाशन भी इनका अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके अतिरिक्त अनेक देशी तथा विदेशी शोध-पत्रों में इनके भाषा एवं भाषाशास्त्र-विषयक निबंध समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। आज भी ये सक्रिय रूप से व्याकरण-दर्शन के शोध-कार्य में लगे हुए हैं।

अरण्यफसल *(उ० कृ०)*

'अरण्यफसल' श्री मनोरंजन दास (दे०) का सफल एवं सशक्त नाटक है। नाम प्रतीकात्मक है। सभ्यता की खोज में आदिम मानव ने 'अरण्य जीवन' को छोड़ दिया था, अणुयुग का मानव आत्मप्रकाशन के लिए 'अरण्य जीवन' को लौट जाना चाहता है। मानव मन 'अरण्य' है जहाँ चिन्ताओं की फसल है।

इस अपार्थ नाटक (एब्सर्ड ड्रामा) में मानव की अवस्था एवं उसकी अनुभूति की व्याख्या की चेष्टा मिलती है। इसमें मानव को, उसकी चिर-अतृप्त यौन आकांक्षा को, मूल रूप में समझने का प्रयास मिलता है। जीवन इतना छलनामय हो गया है कि बाहर से दुर्बोध एवं विचित्र दिखाई पड़ता है। हमारी प्रतिदिन व्यवहृत भाषा में संगतिहीनता, निरर्थकता और अनुपयुक्तता मिलती है। यह असंलग्नता व चेतनारहितता ही हमारे भीतर संयोग-स्थापना के लिए प्रयुक्त भाषा है।

मानव अभिनेता है और वह पृथ्वीरूपी मंच पर अभिनय करता है। वह कई बार मरता है, किन्तु अचेतन रूप से। जिस समय उसके मन में जीवन की जिज्ञासा प्रबल हो उठती है, वह दार्शनिक हो जाता है, आत्महत्या कर लेता है, जिस प्रकार नाटक मे संग्राम ने किया है। वह मरकर भी नहीं मरता। बेनी जीवित रहकर भी कई बार मर चुकी होती है। नाटक के अंत में बेनी के व्यक्तित्व की मृत्यु हो जाती है एवं उससे बहुत पूर्व उसके आदर्शों की मृत्यु हो चुकती है। नाटक के अंत में संग्राम की मृत देह पकड़ कर वह चीख उठती है—ना···ना···ना···ना! अर्थात् संग्राम नहीं मरा है। इस नाटक की वास्तविक नाटकीयता वहाँ से प्रारंभ होती है जहाँ नाटक समाप्त होता है।

अर नाषिक नेरम् *(मल० कृ०)* [रचयिता : पारप्पुरत्तु (दे०)]

'अर नाषिक नेरम्' का मतलब है आधी घड़ी। इसमें नब्बे वर्ष की अवस्था के ग्रामीण गृहस्थ 'कुञ्ञो-नाच्चन्' की कथा है जो खटिया पर लेटे आधी घड़ी में ईसा मसीह का बुलावा सुनने का इंतजार कर रहे हैं। जीवन के अखाड़े में नब्बे वर्ष तक का पूरा पुरुषार्थ आजमाने और सुख-दुःख देखने के बाद अब यह विशाल वटवृक्ष अपनी छाया में कई परिवारों को विकसित होते देखकर खुश है। बुढ़ापे में 'कुञ्ञोनाच्चन्' के संगी सिर्फ दो हैं—अफ़ीम और अफ़ीम लाने वाला कुरुप। इस गृहस्थ में हम मध्य-केरल के परिश्रमी, चतुर, जीवन के सुख-दुःख के लिए तैयार और रविवार के दिन गिरजाघर जाने तथा बात-बात पर बाइबिल उद्धृत करने की प्रवृत्ति से युक्त मध्य-वर्गीय ग्रामीण ईसाई सज्जन को पाते है।

उपन्यास का विशाल पट बुनने में लेखक ने घटनाओं और पात्रों के ताने-बाने से खूब काम लिया है। कुञ्ञाचेरुक्कन्, कुट्टियम्मा, कुरुप, दीनाम्मा, गीवर्गीस आदि पात्र केवल जाति-पात्र नहीं है, व्यष्टि-पात्र हैं और इसीलिए कभी भुलाये नहीं जा सकते। इसमें तीन-तीन पीढ़ियों की कथा है, पर वह बोझिल नही लगती। विगत कथांशों को 'फ़्लैश-बैक' की शिल्पविधि से प्रस्तुत करने के कारण वह बोझिल होने से बच गयी है। आदर्शों की दीवारें उस गृहस्थ के देखते-देखते ढहती जा रही थीं। उनकी प्यारी बहू दीनाम्मा के सतीत्व-त्याग ने उनके हृदय पर सबसे गहरा आघात किया। वे उसका भंडाफोड़ तक नही कर सके क्योंकि कुरुप ने, जो कि इस प्रेम-नाटक का नायक था, अफ़ीम में जहर मिला दिया था।

पारप्पुरत्तु की कथाख्यान-शैली कभी बोझिल या कृत्रिम नही होती। ईसाई लोगों के पारिवारिक जीवन का वातावरण सुरक्षित रखते हुए ठेठ उन्हीं की बोली का व्यवहार इस ग्रंथ में लेखक की विशेष प्रवृत्ति है।

अरप्पळीसुर शतकम् *(त० कृ०)* [समय—अठारहवीं शती ई०]

'यह 'शतकम्' (शतक) पद्धति की रचना है, जिसमें नीति, उपदेश, स्तुति आदि विविध विषयों पर सौ

पद्य 'आचिरिय विरुत्तम्' छंद में रचित होते हैं। रचनाकार 'अम्पलवाणकविरायर' प्रसिद्ध 'इरामनाटकम्' (दे०) के प्रणेता 'अरुणाचलकविरायर' (दे०) के सुपुत्र थे। सौ पद्यों वाली अपनी कृति में प्रत्येक पद्य में इन्होंने अपने आश्रयदाता 'मतवेळ' और उनके उपास्यदेव 'कोलुलि', पर्वत स्थित 'अरप्पळळी' मंदिर के विग्रह-रूपी शिव दोनों के नामों का उल्लेख संबोधन में किया है। काव्य की प्रसिद्धि का मुख्य कारण उसमें व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन-संबंधी नाना प्रकार की ज्ञान-सामग्री का आकर्षक रूप से छंदोबद्ध होना है—यथा मनुष्य जन्म का सुकृत, उत्तम पत्नी, पुत्र, भ्राता, गुरु, शिष्य, आदि के लक्षण, धनार्जन एवं व्यय का आदर्श, पुण्यात्मा और पापात्मा लोगों के स्वभाव, अच्छे-बुरे नगर और शकुन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा कृषक जातियों के धर्म एवं स्वभाव इत्यादि। लेखक वैदिक धर्म और मनु धर्मशास्त्र के अनुयायी हैं। पचपनवें पद्य में इन्होंने ब्राह्मण जाति तथा संस्कृत भाषा को सर्वश्रेष्ठ कहा है।

अरब-ओ हिन्द के तअल्लुकात *(उर्दू कृ०)* [रचना-काल—1929 ई०]

हिंदुस्तानी एकेडेमी (उत्तर प्रदेश) इलाहाबाद से प्रकाशित इस महान् कृति में लेखक मौलाना सैयद सुलेमान नदवी के उन भाषणों को संगृहीत किया गया है जो उन्होंने 22 तथा 23 मार्च, सन् 1929 ई० को हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद के समक्ष दिए थे। इस कृति के प्रकाशन में लेखक का दृष्टिकोण ज्ञान-वृद्धि के अतिरिक्त भावात्मक और सांप्रदायिक एकता भी रहा है। संगृहीत लेखों में हिंदुओं और मुसलमानों को उस स्वर्ण युग का स्मरण कराया गया है जबकि अरब और भारतवर्ष में अनेक दृष्टियों से परस्पर मैत्री, सौहार्द, आत्मीयता और एकता की विभिन्न शृंखलाएँ विद्यमान थीं। उस अतीत का गौरव गान लेखक ने ठोस तथ्यों और प्रामाणिक तत्त्वों के आधार पर किया है। इस कृति में उल्लिखित सभी तथ्यों एवं घटनाओं का आधार अरबी भाषा की विश्वस्त, ऐतिहासिक और प्रामाणिक पुस्तकें हैं। कहीं-कहीं अंग्रेजी और फारसी पुस्तकों से भी लाभ उठाया गया है। यह कृति पाँच अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय का विवेच्य विषय है—संबंधों का प्रारंभ और हिंदुस्तान के अरब पर्यटक। द्वितीय अध्याय में व्यापारिक संबंध, तृतीय अध्याय में शैक्षिक संबंध, चतुर्थ अध्याय में धार्मिक संबंध और पंचम अध्याय में—हिंदुस्तान में मुसलमानी विजयों से पूर्व की परिस्थितियों का विवेचन विश्लेषण किया गया है। ऐतिहासिक महत्त्व की यह पुस्तक निष्पक्ष निर्णयों और निष्कपट निष्कर्षों पर आधृत है। इस कृति में भारत और अरब के अतीत का गौरव गान तथ्यों के आलोक में बड़ी तन्मयता के साथ किया गया है। इस प्रकार अँग्रेजी शासन काल में हिंदू-मुस्लिम एकता का सुदृढ़ आधार प्रस्तुत कर अत्यंत स्तुत्य कार्य किया गया।

अरबिप्पोन्नु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

'अरबिप्पोन्नु' एम० टी० वासुदेवन (दे०) नायर और एन० पी० मुहम्मद के संयुक्त कर्तृत्व में प्रकाशित उपन्यास है। इसमें मलाबार के समुद्र-तटों में वर्षों से चलने वाली सोने की तस्करी की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। अंतर्राष्ट्रीय तस्करीय संघों द्वारा अरब देशों से देशी नौकाओं में चोरी छिपे लाए जाने वाले सोने का व्यापार केरल के लिए एक अभिशाप है। इस समस्या पर लिखे गए उपन्यास के रूप में तथा दो लेखकों के संयुक्त प्रयास के रूप में यह एक नूतन रचना है।

अरमुग़ान ए-हिजाज़ *(उर्दू कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1938 ई०]

'अरमुग़ान ए हिजाज़' डा० इकबाल (दे०) की अंतिम कृति है। यह कृति उनके निधन के पश्चात् प्रकाशित हुई। इसमें कुछ फारसी काव्य भी संकलित है और कुछ भाग उर्दू का भी है। इसमें प्रेम (इश्क), रसूल (पैगंबर) तथा सफ़र-ए-हिजाज़ के शौक के बारे में शेर अधिक संख्या में हैं। उर्दू भाग में 'इब्लीस की मजलिस ए शोरा' एक महत्त्वपूर्ण कविता है जिसमें इब्लीस अर्थात् शैतान की कारिस्तानियों का विचित्र शैली में वर्णन किया गया है।

धार्मिकता, दार्शनिकता तथा भाषा की जटिलता इस काव्य संग्रह की विशेषताएँ हैं।

अरळु मरळु *(क० कृ०)*

यह आधुनिक कन्नड के महान् कवि द० रा० बेंद्रे (दे०) की उत्तरकालीन कविताओं का संग्रह है। 'अरळु मरळु' उनके पाँच कविता संकलनों का गुच्छ है। ये संकलन हैं—सूर्यपान, हृदय समुद्र, मुक्त कंठ, चैत्यालय तथा जीवलहरी। इस ग्रंथ को साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला है। बेंद्रेजी ने अपने 'गरि' (पंख) 'उय्याले' (झूला)

'नादलीला' आदि कविता-संकलनों द्वारा कन्नड कविता में अपूर्व माधुरी घोल दी है, एक नया आयाम जोड़ दिया है। इनकी कविताओं की विकास-यात्रा का अध्ययन कन्नड कविता की विकास-परंपरा का अध्ययन करना है। इनके 'गरि', 'उय्याले', 'सखीगीत', 'नादलीला' आदि में रोमांटिक कविताएँ हैं। इनकी अर्थ एवं नाद-माधुरी चकित करने वाली है। ये हमारे सर्वश्रेष्ठ रोमांटिक कवि हैं। 'हृद्वीणे', 'मुत्तिनचीले', 'अंशावतार' आदि में वे प्रगतिवादी बनकर आते हैं। 'सच्चिदानंद', 'लावण्य' आदि उनकी रहस्यवादी कविताएँ हैं। बेंद्रेजी अरविंद दर्शन से प्रभावित हैं। 'अरळु मरळु' में यही अध्यात्मवाद प्रधान स्वर है। इसकी दृष्टि आर्य दृष्टि है। 'अरळु मरळु' कन्नड में सठियाने को कहते हैं। साठ वर्ष की देहली पर की कविताएँ यहाँ हैं। आनंद की दृष्टि से ही यहाँ विश्व एवं निसर्ग का सौंदर्य दर्शित है। बेंद्रेजी की कविता की सबसे बड़ी विशेषता है लोकतर्ज़। उनके गीत लोक-गीतों की तर्ज में हैं, लोक-साहित्य का लालित्य एवं गाढ़ जीवन-स्पर्श उनमें है। वे हमारी लोकगीत-शैली के सम्राट् हैं। 'हृदय-समुद्र' उनकी इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कविता है। 'महाप्रस्थान', 'इन्द्र-जाल', 'चैत्यालय' आदि में एक नवीन अंतर्दृष्टि है। 'रमणहृदय', 'अमृतानुभव', 'आनंदलहरी' आदि उनके श्रेष्ठ अनुवाद हैं। उनकी कुछ विडंबनात्मक कविताएँ भी है। 'सप्तकला', 'स्वप्न नौके' आदि में ताल एवं लय का एक नया स्रोत उमड़ता है। 'संख्यांकिता' में सांख्य को ही एक उत्तम काव्य बनाया गया है। रूपक बेंद्रेजी के लिए द्वितीय भाषा है। श्लेष—सभंग एवं अभंग—समान रूप से अपने आप फूट पड़ते हैं। किंतु बेंद्रेजी की प्रारंभिक कविताओं में जो भाव-पुष्टि, जो ताजगी है वह इसमें नहीं है। इसमें चमत्कार एवं बौद्धिकता-दार्शनिकता की प्रधानता है। फिर भी बेंद्रे का स्पर्श तो है ही।

अरहत् *(पा० पारि०)* [सं० अर्हत्]

यह शब्द अर्ह धातु से बना है जिसका अर्थ होता है योग्य होना, पूजनीय होना आदि। बौद्ध धर्म में जब कोई व्यक्ति आर्य मार्ग पर चल कर दुःखों से पूर्ण विमुक्ति प्राप्त कर लेता है तथा निर्वाण पदवी पर आरूढ़ हो जाता है—जोकि इस जीवन में ही होता है—तब वह अरहत् कहा जाता है। हीनयान (दे०) शाखा में यह जीव की सर्वोच्च दशा मानी जाती है जबकि महायान (दे०) में इस पद के अधिकारी को बोधिसत्व (दे०) कहा जाता है। यह पद स्वयं साधना से प्राप्त होता है, किसी की कृपा से नहीं। इसकी चार अवस्थाएँ होती हैं—(1) सोतापन्न अर्थात् अर्हत् पद प्राप्त करने की धारा में पड़ जाने वाला व्यक्ति। यह तीन बंधनों से रहित हो जाता है—आत्मा का मोह, संदेह और मिथ्या विश्वास। यह कभी नरक, पशु योनि या प्रेत योनि में जन्म नहीं लेता। (2) सकदागमी (एक बार पुनर्जन्म लेने वाला)—यह चेतना-मोह और दुर्भावना इन दो बंधनों से रहित हो जाता है। (3) अनागमी—यह भौतिक जीवन के अनुराग तथा भावी जीवन की आकांक्षा से रहित हो जाता है और कभी आकांक्षा-जगत् में जन्म नहीं लेता। (4) अरहत्—जो शेष तीन दोषों, अर्थात् अभिमान, आत्मौचित्य की भावना और अज्ञान, से रहित होकर जन्म की संभावना से मुक्त हो जाता है।

अरिच्चन्दिरपुराणम *(त० कृ०)* [रचना-काल—1523 ई०]

इसके रचयिता वीरकविरायर हैं। इसमें इतिहास-प्रसिद्ध सत्यनिष्ठ राजा हरिश्चंद्र की कथा वर्णित है। संपूर्ण काव्यकृति दस कांडों में विभाजित है। विवाहकांडम्, इंद्रकांडम्, वंजनैवकांडम् वेट्टंशेय कांडम्, शूळविनैक्कांडम्, नगरनीगिय कांडम्, काशीकांडम्, भयानक कांडम्, मीट्शिकांडम् और उत्तरकांडम् शीर्षक दस कांडों में कोशलराज हरिश्चन्द्र की वीरता, धीरता, शासन-पटुता आदि गुणों का, कन्नौजराज की पुत्री चंद्रमती से उसका विवाह, इंद्रलोक में वसिष्ठ मुनि का हरिश्चंद्र को भूलोक का सर्वश्रेष्ठ राजा घोषित करना, विश्वामित्र द्वारा इस बात को नकारा जाना, इंद्र का आदेश पा हरिश्चंद्र की परीक्षा लेना, परीक्षा में राजा हरिश्चंद्र की विजय, देवताओं द्वारा उसकी जयजयकार आदि घटनाएं वर्णित हैं। शैवमतानुयायी होने के कारण कवि ने ग्रंथारंभ में गणपति, शिव, काली, पार्वती आदि देवी-देवताओं की वंदना की है। नगर-वर्णन, प्रकृति-वर्णन आदि में कवि को विशेष सफलता मिली है। विभिन्न प्रसंगों में वीर, शृंगार, हास्य, करुण आदि रसों की व्यंजना हुई है। संपूर्ण कृति सरस, कोमलकांत पदावली में रचित है। शब्द-योजना भावानुरूप है। यत्र-तत्र संस्कृत शब्दों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। यह कृति वेण्बा छंद में रचित है परंतु कुछ प्रसंगों में कवि ने विविध छंदों का प्रयोग किया है। यथास्थान अलंकारों का सफल प्रयोग दृष्टिगत होता है। भाव एवं भाषा-सौंदर्य, कल्पना-वैभव, छंद-योजना सभी दृष्टियों से कृति का निजी महत्व है। इसे तमिल की शिलप्पधिकारम् (दे०) कही जाने वाली

कृतियो मे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

अरिजमाल *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानत 1750-52 ई०, मृत्यु—अनुमानत *1800* ई०]

अद्‌भुत सौंदर्य और प्रखर बुद्धि की धनी अरिजमाल का जन्म कुलीन कश्मीरी पडित परिवार मे हुआ था। ये शैशव से ही विचारशील और भावुक थी। पिता के घर पर ही शिक्षा-दीक्षा हुई। श्रीनगर स्थित रैणा-वारी के विद्वान काचरू-परिवार के मुशी भवानीदास काचरू 'निक्कू' से इनका विवाह हुआ। मुशी जी मे जहाँ बहुमुखी प्रतिभा थी वहाँ वे भ्रमर प्रकृति के रसिक भी थे। अरिजमाल उन पर इतनी रीझ गईं कि उनका दाम्पत्य-प्रेम पिया पुजारिन या प्रेयसी प्रियतम की आसक्ति मे परिणत हो गया। नये वातावरण मे अरिजमाल की वाणी और स्वर का अद्‌भुत सगम 'लोल' (प्रेम) गीतो मे फूट पडा। किंतु जल्दी ही मुशी जी की रसिकता ने नये गुल खिलाए, तब इस विवश पतिव्रता कश्मीरी हिंदू नारी की विरह-वेदना दर्द-भरे गीतो मे प्रस्फुटित हुई। इनकी उपमाएँ ठेठ कश्मीरी की हैं और कश्मीरी गीतो-गज़लो पर इनकी शैली की छाप सदा अमिट रहेगी। शब्द-चयन, भाषा-सौष्ठव भाव-सरलता, प्रवाह और शैली की दृष्टि से अरिजमाल का स्थान अनुपमेय है। अरिजमाल को कश्मीरी साहित्य म प्रेम-सुधि-परम्परा (लोल काल) की प्रवर्त्तिका कहा जा सकता है।

अरुणगिरि नादर *(त० ले०)* [समय—पन्द्रहवी शती ई० का पूर्वार्ध]

प्रसिद्ध शैव भक्त अरुणगिरि नादर का जन्म तिरुवण्णामलै नामक स्थान मे हुआ। इन्होन 'तिरुप्पुहळ', 'कन्दर अन्दादि', 'यमक अन्दादि', 'कन्दर अलकारम्', 'कन्दर अनुभूति' नामक कृतियो की रचना की। 'तिरुप्पुहळ' और 'कन्दर अनुभूति' मे भगवान सुब्रह्मण्य की महिमा का गान है। 'कन्दर अन्दादि', 'कन्दर अलकारम्' भक्तिरसात्मक रचनाएँ हैं। इन रचनाओ मे उर्दू, सस्कृत के अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'तिरुप्पुहळ' है।

अरुणाचलक्कविरायर *(त० ले०)* [समय—अठारहवी शती]

ये 'तजावूर' जिले के 'चीरकाळि' नामक तीर्थ-स्थान के निवासी थे और उसी स्थान के विख्यात मदिर का माहात्म्य-गान एव उसमे विराजमान शिव-मूर्ति की स्तुति 'चीरकाळिप्पुराणम्' तथा 'चीरकाळिक्कोवै' नामक दो पद्य रचनाओ मे इन्होने प्रस्तुत किया है। इनकी तीसरी रचना रामनाटकक्कीर्त्तनै' रामायण के कथा-प्रसगो को गेय पदो द्वारा प्रस्तुत करती है। यह कर्नाटक सगीत के रागो के अनुकूल निबद्ध गेय कृति है और इसम नाटकोचित सवादो और प्रसगो का सशक्त प्रस्तुतीकरण है। इस विलक्षणता के कारण इस रचना की प्रतिष्ठा एव प्रसिद्धि स्थिर हो चुकी है।

अरुणाचलम्, के० सी० एस० *(त० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

इनका जन्म कोयम्बतूर जिले के पोळ्ळाच्चि नामक स्थान मे हुआ था। इन्होंने सन् 1940 मे साहित्य-जगत् मे प्रवेश किया था। इन्होने पत्र-पत्रिकाओ के लिए कविता, कहानी, निबध आदि की और रेडियो के लिए एकाकी नाटको की रचना की थी। सन् 1968 मे इन्हे अपने प्रथम कविता सग्रह 'कविदैयन् कैवाळ्' पर सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'पूर्वीग सोत्तु' इनका प्रसिद्ध कहानी-सग्रह है। इन कहानियो मे कोयम्बतूर के कृषको के जीवन का सजीव चित्रण है। कुछ कहानियो का आधार समकालीन काव्यकृतियाँ हैं। 'महायात्तिरै', 'यमलोक लजम्' नामक इनके प्रसिद्ध नाटक अनेक बार अभिनीत हो चुके हैं। श्री अरुणाचलम 'मादमणि', 'अमुदम्', 'मनोरजिदम्' नामक साहित्यिक पत्रिकाओ और 'नीदि' नामक राजनीतिक पाक्षिक पत्रिका के सपादक रह चुके हैं। इन्होने कुछ समय तक साम्यवादी दैनिक पत्र 'जनशक्ति' के सहसपादक के रूप मे भी कार्य किया था। आजकल ये 'सोवियत पलकणि' नामक पत्रिका के सपादक-मडल के सदस्य हैं। श्री अरुणाचलम् तमिल साहित्य मे मूलत कवि के रूप मे विख्यात हैं।

अरुणोदय *(म० कृ०)* [रचना काल—1854 ई०]

यह बाबा पद्मनजी (दे०) द्वारा लिखित आत्म-चरित्र है। बाबा पद्मनजी हिंदू थे पर मिशनरियो से प्रभा-वित होकर ईसाई बन गए थे, अपने इसी धर्म-परिवर्तन के कारण को स्पष्ट करने के लिए इन्होने 'अरुणोदय' आत्म-चरित्र लिखा था।

इसमें हिंदू धर्म के दोषदर्शन तथा ईसाई धर्म के गुणों का गान किया गया है। मराठी के आद्यकथाकार बाबा पद्मनजी ने अपनी 'यमुना पर्यटण' (दे०) नामक कथात्मक कृति में जैसे हिंदू धर्म के केवल दोषों का उद्घाटन किया है वैसे ही उनके आत्मचरित्र में हिंदू धर्म के गुण तथा ईसाई धर्म के दोष उनकी दृष्टि से सर्वथा ओझल हैं। निश्चय ही आत्मचरित्र-लेखन में लेखक का यह एकांगी दृष्टिकोण दोषपूर्ण है।

आधुनिक काल के आरंभ में नवीन पद्धति से रचित आत्मचरित्र होने के कारण ही इसका महत्त्व है। अरुणोदय से अभिप्राय ईसाई धर्म रूपी अरुण के उदय से है।

अर्जुन *(सं० पा०)*

यह 'महाभारत' (दे०) का महत्त्वपूर्ण पात्र है। इसके पिता का नाम पांडु और माता का नाम कुंती (दे०) था। कुंती का यह तीसरा पुत्र था। इसके गुरु द्रोणाचार्य थे जो सभी कौरवों और पांडवों को शस्त्रविद्या सिखाते थे। इसके शस्त्र-कौशल के कारण द्रोण का इस पर सर्वाधिक स्नेह था। अर्जुन का पराभव कोई भी न कर सके इसलिए द्रोण ने एकलव्य का अँगूठा माँग लिया था। इसके शस्त्र-कौशल की अनेक घटनाएँ प्रसिद्ध हैं। एक बार इसने लगातार पाँच बाण ऐसे छोड़े कि पाँचों मिलकर एक ही बाण नजर आए। एक लटकते और हिलते सींग में इसने इक्कीस बाण भर दिए। प्रसिद्धि है कि अर्जुन ने पंद्रह वर्ष की आयु में दिग्विजय की। इसने द्रौपदी (दे०) के स्वयंवरार्थ लगाए गए मत्स्य-यंत्र का भेदन किया तथा द्रौपदी ने अर्जुन का वरण किया।

अर्जुन ने तीर्थाटन-काल में कौरव्य नाग की उलूपी नामक कन्या से पाताल में विवाह किया। इसके बाद यह हिमालय और बिंदुतीर्थ गया। फिर उसने उत्पलिनी नदी, नंदा, अपरनंदा, कौशिकी, महानदी, गया और गंगा नामक तीर्थस्थान देखे। फिर अंग, वंग, कलिंग देश देखे। फिर महेन्द्र पर्वत से होता हुआ मणिपुर राज्य में प्रविष्ट हुआ, जहाँ इसने मणिपुर के राजा चित्रवाहन की चित्रांगदा नामक कन्या से विवाह किया। वहाँ से गोकर्ण गया; वहाँ से प्रभास क्षेत्र में जाने पर इसका कृष्ण (दे०) से मिलन हुआ। वहाँ से द्वारका जाकर इसने कृष्ण की सहायता से सुभद्रा का हरण किया।

अर्जुन ने अपनी दिग्विजय में कुलिंद-देश के राजा को जीता, आनर्त और कालकूट देशों पर सत्ता स्थापित की, सुमण्डल राजा को हराया। फिर शाकलद्वीप और प्रतिविन्ध्य, सप्तद्वीप, प्राग्ज्योतिष, उलूक, गंधर्व, हरिवर्ष, चौल आदि देशों के राजाओं को जीता।

इसने किरात वेशधारी शंकर से युद्ध कर उनसे पाशुपत अस्त्र ग्रहण किया। स्वर्ग में जाकर इंद्र से इसने अनेक अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की। वहाँ उर्वशी (दे०) की संभोग-याचना को ठुकराने पर शापवश इसे एक वर्ष तक बृहन्नला नाम से नपुंसकत्व ग्रहण करना पड़ा और अपने को द्रौपदी की परिचारिका प्रसिद्ध किया। इस स्थिति में भी इसने सारथि रूप में विराट् की सहायता की तथा पुरस्कार-स्वरूप उत्तरा को अपने पुत्र अभिमन्यु (दे०) के लिए स्वीकार किया।

महाभारत के युद्ध के लिए अर्जुन ने कृष्ण की दशकोटि गोपालों की नारायणी नामक सेना न चुनकर निरशस्त्र कृष्ण को सारथि-रूप में चुना और उक्त सेना दुर्योधन (दे०) को मिली। कृष्ण ने सारथि-रूप में युद्ध-भूमि में अर्जुन को कर्तव्य-च्युत होने से परावृत्त करने के लिए जो उपदेश दिया वह 'भगवद्गीता' (दे० गीता) नाम से विश्व-विख्यात है। इस युद्ध में अर्जुन ने सर्वाधिक पराक्रम दिखाया, यहाँ तक कि शिखण्डी को भीष्म के आगे रखकर उन्हें इसने ही नीचे गिराया, तथा उनके लिए तीन बाणों का तकिया तैयार किया और भूमि में बाण मारकर उनके लिए जल प्राप्त कराया। इसने जयद्रथ-वध द्वारा अभिमन्यु की मृत्यु का बदला लिया। इसने कर्ण (दे०) का बध किया। महाभारत-युद्ध की समाप्ति पर युधिष्ठिर (दे०) ने अर्जुन की देखरेख में अश्वमेध का अश्व छोड़ा। इस प्रकार अर्जुन को 'महाभारत' में अपने समय के एक महान् पराक्रमी व्यक्ति के रूप में वर्णित किया गया है। जब पांडव हिमालय पर जा रहे थे तो इसकी मृत्यु 106 वर्ष की आयु में हुई। अर्जुन और द्रौपदी से उत्पन्न श्रुतिकीर्ति की मृत्यु महाभारत युद्ध में हुई। सुभद्रा से उत्पन्न पुत्र अभिमन्यु चक्रव्यूह में मारा गया, और चित्रांगदा का पुत्र बभ्रुवाहन मणिपुर का राजा बना। उलूपी का पुत्र इरावत भी युद्ध में मारा गया। अंततः अर्जुन का पौत्र परीक्षित् राजा बना।

अर्जुनदेव, गुरु *(पं०ले०)* [जन्म—1563 ई०, मृत्यु—1606 ई०]

ये सिख-पंथ के पाँचवें गुरु थे। इनका जन्म गुरु रामदास जी के घर, बीबी भानी के गर्भ से गोइंदवाल

नामक स्थान पर हुआ। 16 वर्ष की आयु मे कृष्णचन्द्र की पुत्री गगादेवी से इनका विवाह हुआ। इनके सुपुत्र हरगोविन्द जी सिख-पथ के छठे गुरु कहलाए।

गुरु अर्जुनदेव 2 सितम्बर सन् 1581 को गुरु-गद्दी पर विराजमान हुए। इन्होने पथ की कार्य-प्रणाली को व्यवस्थित रूप दिया। तरनतारन, सतोख सर, करतारपुर तथा रामसर इनके जीवन स्मारक है। इन्होने सन् 1604 ई० मे 'गुरु ग्रथ साहब' की प्रथम हस्तलिखित प्रति तैयार करवाई और उसी वर्ष उसे सिख धर्म के पवित्र ग्रथ के रूप मे हरिमन्दिर (अमृतसर) मे प्रतिष्ठित करके बाबा बुड्ढा जी को पहला ग्रथी बनाया। इस प्रकार पौने पच्चीस वर्ष तक पथ की अनेकविध सेवा और गुरु-मत के नियमो की रक्षा करते हुए 43 वर्ष तक की आयु मे इन्होने रावी के तट पर शरीर-त्याग किया।

गुरु अर्जुनदेव न केवल महान धार्मिक नेता, सात्त्विक सत एव कुशल जाति-सगठक थे अपितु एक उत्कृष्ट कवि, राग एव छदविद्या निष्णात तथा साहित्य और सस्कृति के सच्चे साधक भी थे। 'गुरु ग्रथ साहब' मे इनकी वाणी इन शीर्षकों के अतर्गत प्राप्त है—बावन-अक्खरी (दे०), जैत सरीदी वार, सुखमनी (दे०) साहिब, गाथा, फुनहे (दे०), मारू, डरवणं (दे०), अठवारा, राग माझ सहस्क्रती, अष्टपदियाँ (दे०), और शबद (दे०) आदि। इनके काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति वैराग्य, मानव-सेवा और शाति है और भाषा मे भावानुकूल शब्द चयन का कौशल परिलक्षित होता है।

अर्जुन-भजन *(अ० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवी शताब्दी] (दे०)

इस नाटक की कथावस्तु 'भागवतपुराण' और 'विल्वमगलस्रोत' से ली गई है। यशोदा उबलते हुए दूध को उतारने के लिए कृष्ण को गोद से उतार कर दौडी जाती है। इससे रुष्ट होकर कृष्ण मटकी फोड देते हैं। वे मक्खन खाते हैं और बदरो को बाँट देते हैं। यशोदा उन्हे उलूखल से बाँध देती हैं। जैसे ही वे दो अर्जुन वृक्षो के पास पहुँचते है, वृक्ष टूट कर गिर पडते हैं। नाटककार माधवदेव के अन्य नाटको के समान इस नाटक का उद्देश्य भी कृष्ण की बाललीलाओ का चित्रण करना है। यह असमीया के प्राचीन नाटको मे एक है।

अर्णोस पातिरि *(मल० ले०)*

वास्तविक नाम जोण एरणस्तस है। ये हगरी देश के मूल निवासी हैं और सन् 1622 मे केरल आए। सन् 1732 मे इनकी मृत्यु मध्य केरल मे हुई। नपूतिरि समुदाय के पडितो से इन्होने सस्कृत का अध्ययन किया। फिर मलयाळम पढकर उस भाषा मे अनेक ग्रथ लिखे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'पत्तन पाना' मे ईसा मसीह का चरित्र लिखा गया है। पूतानम् (दे०) की 'ज्ञानप्पाना' (दे०) नामक कृति से प्रभावित होकर इन्होने प्रस्तुत ग्रथ की रचना की है। लोक सृष्टि से लेकर ईसा के स्वर्गारोहण तक की कथा इसमे वर्णित है। इनके अतिरिक्त 'मरणपर्वम्', 'विधिपर्वम्', 'नरकपर्वम्', 'मोक्षपर्वम्', 'उमापर्वम् अथवा 'देवमातृचरितम्' जैसी कविताएँ भी इन्होने लिखी। विदेशी होने पर भी केरली का अध्ययन कर उसमे सहज काव्य रचना करना इनकी विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है।

अर्थप्रकृतियाँ *(स० पारि०)*

नाटक की कथावस्तु मे फल सिद्धि के साधनो की दृष्टि से सस्कृत नाट्यशास्त्र मे वस्तु को पाँच अवस्थाओ मे विभक्त किया जाता है, जिनका शास्त्रीय अभिधान 'अर्थप्रकृति' है। पाँच अर्थप्रकृतियाँ हैं बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य। 'नाट्यदर्पण' (दे०) म अर्थप्रकृति को कारण मानकर 'उपाय' की सज्ञा दी गई है। धनिक और विश्वनाथ (दे०) के अनुसार ये नाटक मे प्रयोजन सिद्धि की हेतु है (प्रयोजन सिद्धि हेतव)।

'बीज' वस्तुत कथानक का बीज है जिसमे फल की सपूर्ण सभावनाएँ पहले से ही निहित रहती हैं। प्रारभ मे ही अकुरित होकर नाटक के विकास के साथ-साथ यह क्रमश: वस्तु-वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। 'बिंदु' की प्रकल्पना मे तैलबिंदु का रूपक है। जिस प्रकार जल के धरातल पर तेल की बूंदें स्वत विस्तार प्राप्त कर लेती है उसी प्रकार नाट्य-प्रयोजन की सिद्धि का यह दूसरा हेतु नाटकीय वस्तु पर छा जाता है। पताका' व्यापक, किंतु प्रासगिक इतिवृत्त है जिससे प्रधान फल की सिद्धि मे सहायता मिलती है। 'प्रकरी' कुछ कम व्यापक इतिवृत्त है, जिसके नायक के समस्त कार्यकलाप अपने 'फल' की सिद्धि के लिए न होकर 'आधिकारिक' वस्तु के नायक के लिए उद्दिष्ट होते है। 'कार्य-बीज' के रूप मे उपक्षिप्त नायक

के मूल उपाय की अंतिम परिणति है। इस अवस्थान में नाटक के सुदीर्घ कलेवर में परिव्याप्त विभिन्न साधनों और कार्यकलापों को पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है। इसका संघटन 'निर्वहण' संधि (दे० नाट्यसंधियाँ) और 'फलागम' के समानांतर होता है।

अर्थविज्ञान *(हिं० पारि०)*

अर्थविज्ञान भाषाविज्ञान की एक प्रमुख शाखा है जिसमें भाषा के अर्थ-पक्ष का अध्ययन होता है। भाषा के अन्य पक्षों की तरह अर्थ का अध्ययन भी वर्णनात्मक, तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक तीनों प्रकार का हो सकता है। साथ ही यह अध्ययन सैद्धांतिक भी हो सकता है और प्रायोगिक भी। अर्थविज्ञान के अंतर्गत जिन विषयों का अध्ययन होता है उनमें कुछ प्रमुख हैं : शब्द और अर्थ का संबंध; किसी शब्द, शब्दबंध, पद, पदबंध, उपवाक्य या वाक्य आदि का अर्थ-निर्धारण; अभिधार्थ तथा लक्ष्यार्थ-व्यंग्यार्थ, अनेकार्थी शब्दों का अर्थ-वितरण; अर्थ-परिवर्तन—उसके कारण और दिशाएँ [(अर्थ-संकोच (दे०), अर्थविस्तार (दे०), अर्थादेश (दे०)], पर्यायवाची शब्द, विलोम शब्द आदि।

अर्थ-विस्तार *(हिं० पारि०)*

किसी भाषा में सभी शब्दों का अर्थ हमेशा एक-सा नहीं रहता। उसमें परिवर्तन होता रहता है। 'अर्थ-विस्तार' अर्थ-परिवर्तन की एक मुख्य दिशा है। अर्थ-विस्तार का अर्थ है किसी शब्द के अर्थ में विस्तार हो जाना। उदाहरण के लिए 'स्याही' शब्द का मूल अर्थ 'काली स्याही' है, क्योंकि 'स्याह' का अर्थ 'काला' है, किंतु अब हरी, नीली, लाल स्याहियों को भी स्याही ही कहते है। इस तरह इस शब्द के अर्थ में विस्तार हो गया है। इसी तरह संस्कृत 'कल्य' का अर्थ था 'आने वाला कल' किंतु 'कल्य' से ही निकला हिंदी शब्द 'कल' आने वाले तथा बीते हुए दोनों 'कल' का द्योतक है। यों शब्दों में अर्थ-विस्तार अपेक्षाकृत कम होता है।

अर्थशास्त्र *(सं० कृ०)* [लेखक कौटिल्य (दे०), रचना-काल—300 ई० पू०]

डा० काणे ने अर्थशास्त्र का रचना-काल 300 ई० पू० माना है। डा० जॉली विंटरनित्ज तथा कीथ (दे०) कौटिल्य को अर्थशास्त्र का लेखक नहीं मानते।

अर्थशास्त्र राजनीति का अद्भुत ग्रंथ है। अर्थशास्त्र में 'अर्थ' शब्द का आशय राजा और प्रजा से है। इस प्रकार अर्थशास्त्र का उद्देश्य राजा और राष्ट्र दोनों को समृद्ध बनाना है। अर्थशास्त्र के अधिकरण-क्रम से प्रमुख विषय—विनयाधिकारिक, अध्यक्षप्रचार, धर्मस्थीय, कण्टकशोधन, योगवृत्त, मण्डलयोनि, षाड्गुण्य, व्यसनाधिकारिक, अभियास्यत्कर्म, सांग्रामिक, संघवृत्त, आबलीयस, दुर्गलम्भोपाय, औपनिषदिक तथा तन्त्रयुक्ति आदि हैं। विनयाधिकारिक के अंतर्गत राजर्षि, अमात्य, गुप्तचर तथा राजदूतों की नियुक्ति आदि का वर्णन है। अध्यक्ष-प्रचार के अंतर्गत दुर्गविधान, सुवर्णाध्यक्ष के कार्य तथा शुल्काध्यक्ष आदि का विवेचन है। धर्मस्थीय के अंतर्गत दीवानी-फ़ौजदारी संबंधी विवादों का उल्लेख है। कण्टक-शोधन के अंतर्गत भ्रष्टाचार मिटाने, कन्या-संबंधी अपराध आदि का वर्णन किया गया है। योगवृत्त में राजकोष बढ़ाने के उपाय तथा भृत्यों के भरण-पोषण की विधि का वर्णन है। मण्डलयोनि के अंतर्गत राजा तथा मंत्री आदि का वर्णन है। व्यसनाधिकारिक के अंतर्गत राज्य पर आने वाले संकटों, अभियास्यत्कर्म के अंतर्गत सेना की तैयारी आदि, सांग्रामिक के अंतर्गत व्यूह और प्रतिव्यूह आदि, संघवृत्त के अंतर्गत भेद प्रयोग आदि, आबलीयस के अंतर्गत राजदूत के कर्म आदि, दुर्गलम्भोपाय के अंतर्गत विजित प्रांतों में शांति-स्थापना आदि औपनिषदिक के अंतर्गत औषधि प्रयोग आदि तथा तन्त्रयुक्ति के अंतर्गत अर्थशास्त्रीय शब्दों की परिभाषा प्रस्तुत की गई है।

वस्तुतः अर्थशास्त्र प्राचीन राजनीति-विषयक ग्रंथों का सारभूत ग्रंथ है। अर्थशास्त्र में समाज-कल्याण एवं व्यक्तिगत त्याग की समुचित योजना प्रस्तुत की गई है।

अर्थ-संकोच *(हिं० पारि०)*

भाषाओं में अनेक शब्दों के अर्थ परिवर्तित होते रहते है। जब किसी शब्द का अर्थ पहले की तुलना में संकुचित हो जाता है तो उस अर्थ-परिवर्तन को 'अर्थ-संकोच' कहते है। अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति सभी भाषाओं में अपेक्षाकृत बहुत अधिक मिलती है। उदाहरण के लिए 'मृग' का पुराना अर्थ था पशु (मृगराज)=पशुओं का राजा, शाखामृग=शाखा पर रहने वाला पशु अर्थात् बंदर, मृगया=पशुओं का शिकार) किंतु हिंदी में यह केवल एक

पशु 'हिरन' का वाचक है। इसी तरह मुर्ग (शुतुरमुर्ग=ऊँट जसी (गर्दन वाला) पक्षी, मुर्गाबी=पानी का पक्षी) मूलत सभी पक्षियो का वाचक है किंतु अब यह केवल एक पक्षी का नाम है। पकज, जलज, वेदना आदि अनेक अन्य शब्दों मे भी 'अर्थ-सकोच' की प्रक्रिया देखी जा सकती है।

अर्थादेश *(हिं० पारि०)*

कभी-कभी कुछ शब्दो का अर्थ कुछ-से कुछ हो जाता है। अर्थ के ऐसे परिवर्तन को 'अर्थादेश' कहते हैं। उदाहरण के लिए मूलत 'हरिजन' शब्द भक्त का पर्याय है किंतु अब यह 'अछूत' का समानार्थी हो गया है। इसी तरह सस्कृत का 'वाटिका' शब्द बँगला मे मकान का द्योतक 'बाडी' हो गया है। दूल्हा (मूलत दुर्लभ=जिसका मिलना कठिन हो),पाखड (मूलत पाषड=एक सप्रदाय) बुद्धू (मूलत बौद्ध) तथा भद्दा (मूलत भद्र=अच्छा, भला) आदि भी इसी के उदाहरण हैं।

अर्थानुरणन *(आनोमेटोपोइया) (हिं० पारि०)*

भाषाशास्त्र के अनुसार यह भाषा की एक विशेषता है तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र म यह काव्यालकार कहा गया है। ध्वनि के आधार पर सार्थक शब्दो का निर्माण तथा ध्वनि के अनुकरण पर वस्तुओ, भावो और विचारो का नामकरण 'अर्थानुरणन' है। काव्य में इसके प्रयोग का आशय है ध्वनि निर्मित चित्र अर्थात् ध्वनि के माध्यम से ऐसे चित्र का निर्माण जो अर्थोद्बोधन तथा भावोद्बोधन मे पूर्णत समर्थ हो, जैसे—नूपुर का काव्यात्मक चित्रण 'रणन रणन' शब्दो के द्वारा तथा प्रचड अग्नि का अर्थ-बोधन 'दहक' शब्द के द्वारा किया जाता है। भाषा के बहुत से शब्दो की रचना अनुरणन के सिद्धात के आधार पर हो जाती है, जैसे 'पुचकारना', 'छलकाना' (छलकना), 'सरपट दौडना', 'झटपट' इत्यादि। वस्तुओ की स्वरूपगत विशेषता की अतिसार्थक व्यजना भी इसी प्रकार के शब्दो द्वारा की जाती है, जैसे—'सपाट'। यह शब्द सडक और मैदान के लिए तो सार्थक है ही, विचारो और चरित्रो के लिए भी प्रयुक्त हो सकता है। अर्थानुरणनपूर्ण शब्दो के निर्माण का आधार मूलत ऐंद्रिय है। काव्य म इसके प्रयोग द्वारा एक ओर नाद-सौंदर्य की सृष्टि तथा दूसरी ओर अर्थ-व्यजना-सामर्थ्य की सवृद्धि होती है।

अर्द्धनेमिपुराण *(क० कृ०)*

इसके रचयिता नेमिचद्र हैं जिनका समय 1200 ई० के करीब माना जाता है। इनकी दूसरी प्रसिद्ध कृति है 'लीलावती'। यह बाईसवे तीर्थंकर नेमिनाथ पर लिखा गया एक 'चपूग्रथ' है। इस जिनकथा मे कवि वसुदेवाच्युत एव कदर्प की कथा भी सँजोई गई है। आठवे आश्वास के अत तक अर्थात कसवध प्रकरण तक यह काव्य उपलब्ध है। शेष अश अनुपलब्ध है। अनुमान किया जाता है कि कवि इसे अपूर्ण छोडकर ही दिवगत हो गया होगा, अत इस काव्य का नाम 'अर्द्धनेमिपुराण' पडा है। इसमे नेमि तीर्थंकर के पूर्वजन्मो की कहानी थोडी सी आती है, उपकथाएँ बहुत-सी हैं जिनके निरूपण म कवि को सफलता मिली है। प्राप्तांश म कृष्णचरित्र ही प्रधान है। कृष्ण यहाँ अन्य आख्यानो के समय देवताओ की सहायता से प्रवर्द्धमान बालक नही है स्वार्जित यश मडित शूर है। वामनावतार मे आने वाले त्रिवि का वर्णन अत्यत भव्य है। चाणूर एव कृष्ण मल्लयुद्ध तथा कसवध अत्यत सरस प्रसग है। यहाँ के वसुदेव एव कृष्ण आदि परिवेश मे नही ढले गये है। वसुदेव केवल विलासी नही है, वीर है। कस केवल दुष्ट नहीं है, उसम भय, स्नेह गुरुभक्ति आदि अन्य गुण भी हैं। इस प्रकार चरित्र निर्माण म कवि ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इसके वर्णन भी प्रसगोचित एव भावदीप्त हैं। अलकार भी सहज रूप मे आए है। इसमे महाकाव्य का सत्त्व अवश्य है किंतु सिद्धि नही है। इसकी मृदुपद-बधुरता तथा प्रौढिमा श्लाघ्य है। इस दृष्टि से यह 'लीलावती से श्रेष्ठ कृति है।

अर्द्धशताब्दीर ओडिशा ओ तहिरे मो स्थान *(उ० कृ०)*

अनुभूति की निष्कपट सरस अभिव्यक्ति सरल, चित्ताकर्षक भाषा-शैली, रोमाचक अभिज्ञता आदि की दृष्टि से श्री गोदावरीश मिश्र (दे०) की 'अर्द्धशताब्दीर ओडिशा ओ तहिरे मो स्थान' आत्मजीवनियो मे अत्यत महत्त्वपूर्ण है। इसकी भूमिका मे ग्रथकार ने लिखा है—

"क्या लिखूँ? मेरे जीवन मे रोमाचकारी घटनाएँ नही हैं। मेरी लेखन परिपाटी बहुत ज्यादा न होते हुए भी अत्यल्प भी नहीं है। यह तो नही है किंतु उसके बल पर लिखना शुरू करूँ, तो उपन्यास ही लिखूँगा, आत्मजीवनी नही। फलत परिपाटी छोडकर मुझे केवल साधारण दुखी जीवन की घटनावलियो का

वर्णन ही करना पड़ेगा।

मरे हुए धान से चावल कम ही निकलता है, भूसी अधिक निकलती है। अतः इस लेख में मेरे लिए छिलका निकालकर फेंक देने का रास्ता नहीं है, क्योंकि ऐसा करने पर शायद सभी फेंक देना पड़ेगा। किंतु जिस धान में थोड़ा-थोड़ा चावल होता है, उससे खीलें बनती हैं, जो गरीबों का भोजन है। मेरे समान अनेक दीन एवं दरिद्र समाज के निम्न स्तर पर निरंतर जीवन-संग्राम में संलग्न हैं। उन्हीं लोगों को शायद इस लेख से उपादान मिले। वैभवशाली एवं सुविधाभोगियों के लिए यह नहीं है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस आत्मस्वीकृति में उपर्युक्त रचना की समस्त विशेषताएँ अंतर्निहित हैं। लेखक जातीयतावादी है; इसीलिए विषयवस्तु एवं अभिव्यंजना में गणचेतना अभिव्यक्त हुई है। इस ग्रंथ की भाषा यद्यपि सर्वजनसुलभ है तथापि शैली में प्रांजलता, और अपूर्व भंगिमा के दर्शन होते हैं।

यह आत्मचरित असमाप्त होते हुए भी साहित्य अकादमी पुरस्कार से पुरस्कृत है। इसका प्रकाशन सन् 1962 में मिश्र जी की मृत्यु के बाद हुआ था।

अर्बुदत्तिरुवंदादि *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की छठी शताब्दी]

यह प्रसिद्ध शिवभक्त कवयित्री कारैक्काल अम्मैयार की स्फुट कविताओं का संग्रह है। विद्वानों ने इनका समय ईसा की छठी शताब्दी माना है। विभिन्न कविताओं में कवयित्री ने अपने रहस्यात्मक अनुभवों का वर्णन किया है। भगवान शिव में अनन्य भाव से अनुरक्त होने के कारण कवयित्री अपनी एक कविता में कहती हैं कि वे बचपन से ही अपने प्रियतम शिव के वियोग में तड़प रही हैं। इस कृति के विभिन्न पदों में भगवान शिव के रूप का जो वर्णन मिलता है उसको पढ़ने से यह सिद्ध हो जाता है कि उस समय तमिलनाडु में कापालिक शैवों की परंपरा विद्यमान थी। संपूर्ण कृति वेण्बा छंद में रचित है। जिन पदों में कवयित्री ने श्मशान भूमि में शिवजी के नृत्य का वर्णन किया है वे संगीतात्मकता की दृष्टि से अति सुंदर बन पड़े हैं। शैव-मतानुयायी बड़े आदर के साथ इन पदों का पाठ करते हैं। ये पद शैव-मतानुयायियों के पावन धर्मग्रंथ 'तिरुमुरै' के ग्यारहवें खंड में संगृहीत है। अंतादि तमिल की 16 गौण काव्य-विधाओं में से है। इसे अंतादि विधा में रचित आरंभिक कृतियों में परिगणित किया जाता है।

अर्वाचीन कविता *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1946 ई०]

काव्य-सर्जन के विषय में कवि का निजी प्रत्यक्ष अनुभव उसे कविता के अंगोपांगों की विवेचना करने में महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान करता है। कवि सुंदरम् (दे०) के समीक्षा-ग्रंथ 'अर्वाचीन कविता' का अध्ययन करने पर यह बात अक्षरशः सत्य सिद्ध होती है। सुंदरम् ने 'अर्वाचीन कविता' में अर्वाचीन युग के सभी कवियों की लगभग ग्यारह सौ काव्यकृतियों का बड़ी गहराई से अध्ययन कर और उनके गुण-दोषों का विश्लेषण कर बड़ी तटस्थता, निर्भीकता और स्पष्टता से सबका यथोचित मूल्यांकन किया है। इसीलिए यह ग्रंथ अत्यंत मूल्यवान और प्रामाणिक माना जाता है। इसमें बालाशंकर, नानालाल इत्यादि की कृतियों का परंपरागत मानदंडों के आधार पर विवेचन नहीं हुआ है। इसलिए इस विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पर काव्य के आभ्यंतर तत्त्वों को आधारभूत बनाकर अर्वाचीन गुजराती कविता की जो विकास-रेखा इस ग्रंथ में अंकित की गई है, वह गुजराती समीक्षा साहित्य को सुंदरम् का स्थायी योगदान है।

अर्वाचीन काव्य साहित्यनां वहेणो *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1939 ई०]

इसके रचयिता श्री रामनारायण पाठक (1887-1955 ई०) (दे०) ने बंबई विश्वविद्यालय की ठक्कर माधवजी वसनजी व्याख्यानमाला में 1936 ई० में पाँच व्याख्यान दिए थे जिनका प्रकाशन 1939 ई० में बंबई विश्वविद्यालय से हुआ। इन व्याख्यानों में उन्होंने अंग्रेजी कविता के प्रभाव से नई कविता के उद्भव से लेकर 1935 ई० तक की कविता की आलोचना की है। इस पुस्तक में उन्होंने काव्य-विषय, छंद, अलंकार, काव्यशिल्प, भाव, रस और भाषा आदि की दृष्टि से कविता की आलोचना की है और प्रत्येक दृष्टि से काव्य का विकास-क्रम दिखाया है। गुजराती काव्य-विवेचन में यह पुस्तक नए मापदंड प्रस्तुत करती है। कौन-से परिवेश और परिस्थितियाँ काव्यधारा को नए-नए मोड़ देने में सक्रिय थीं—इसका विद्वत्तापूर्ण विश्लेषण लेखक ने किया है। गुजराती साहित्यालोचना में इस पुस्तक का बड़ा महत्त्व है।

उन्होने आलोचना मे भारतीय और पश्चिम के काव्य-सिद्धातो का समन्वित उपयोग किया है और काव्य-विवेचन को नई दिशा दिखाई है।

अर्वाचीन चरित्रकोश *(म० कृ०)*

इसके सपादक सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव है। इसमे सन 1818 से 1945 तक के प्रसिद्ध आधुनिक व्यक्तियो के चरित्रो का उल्लेख है।

लेखक ने तीन खडो मे चरित्रकोशो के निर्माण की जो योजना बनाई थी वह प्राचीन, मध्यकालीन और तदुपरात, अर्वाचीन चरित्रकोश की निर्मिति के साथ समाप्त हुई।

यह सदर्भ-ग्रथ की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। यह कोश आधुनिक पात्रो के चरित्र का विश्लेषण करता हुआ उनके ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डालता है।

अलकार *(स०, हि० पारि०)*

'अलकार' का सामान्य अर्थ है भूषण या भूषित करने वाला, सज्जा या सज्जित करने वाला। भारतीय काव्यशास्त्र मे अलकार को काव्य का उत्कर्ष विधायक तत्त्व स्वीकार किया गया है, अलकारवाद के अनुसार अलकार काव्य का प्राणतत्त्व है।

'अल' (भूषण) और 'कार' के योग से निर्मित अलकार शब्द की तीन व्युत्पत्तियाँ प्रसिद्ध हैं (1) 'अलकरोतीति अलकार' (2) 'अलक्रियतेऽनेन इति अलकार', (3) 'अलंकारण इति अलकार'। प्रथम व्युत्पत्ति मे अलकार काव्य-सौंदर्य का कारक धर्म है, द्वितीय मे उसकी प्रकल्पना केवल साधन-रूप मे की गई है और तृतीय मे उसे एक स्वतत्र धर्म का रूप दे दिया गया है। सस्कृत काव्यशास्त्र की परपरा मे काव्य-सौंदर्य के 'कर्त्ता और 'साधन'—अलकार के इन दो रूपो को लेकर विवाद रहा है। भामह (दे०), दण्डी (दे०), उद्‌भट (दे०), रुद्रट (दे०), रुय्यक (दे०), तथा जयदेव (दे०) आदि शुद्ध अलकार-वादियो की दृष्टि मे अलकार काव्य शोभा का कारण ही नही, प्रत्युत काव्यात्मा है। दूसरी ओर, ध्वनिवादी आनद-वर्धन (दे०), वामन (दे०), कुन्तक (दे०), मम्मट (दे०), विश्वनाथ (दे०), तथा जगन्नाथ (दे०) ने अलकार को महत्त्व प्रदान करते हुए भी उसे काव्य सौंदर्य का साधन मात्र माना है।

अलकार का शास्त्रीय स्वरूप विश्लेषण प्राय सभी प्रमुख आचार्यों ने किया है। भारतीय काव्यशास्त्र मे अलकार के दो रूप प्रचलित रहे हैं - विभूषक अथवा शोभाकारक धर्म तथा काव्य सौंदर्य। वामन ने इसके लिए 'सौंदर्य' तथा महिम भट्ट (दे०) ने 'चारुत्व' शब्द का प्रयोग किया है। भामह के अनुसार 'वक्र' शब्द और अर्थ का प्रयोग ही अलकार हैं (काव्यालकार, 1/36)। यहाँ 'वक्र' का अर्थ है विचित्र अर्थात् साधारण से भिन्न। दूसरे शब्दो मे, शब्दार्थ का विचित्र एव असाधारण प्रयोग ही अलकार है। दण्डी के अनुसार अलकार 'काव्य के सौंदर्य-कारक धर्म' (काव्यादर्श, 2/1) तथा उद्‌भट के अनुसार 'चारुत्व के हेतु' हैं। मम्मट के मतानुसार 'अलकार हार आदि की भाँति आभूषण के समान हैं तथा रस का उपकार करते हैं' (काव्यप्रकाश, 8/67)। विश्वनाथ ने इन्हे 'काव्य के सौंदर्य और रस का उत्कर्ष करने वाले अस्थिर धर्म' माना है।

अलकार निश्चय ही काव्य का अत्यत महत्त्व-पूर्ण तत्त्व है। इसके द्वारा अभिव्यक्ति मे सौंदर्य चमत्कार, मार्मिकता, सार्थकता, पैनापन व अनूठापन आता है। इस प्रकार यह भाव-सप्रेषण का एक महत्त्वपूर्ण—कदाचित् सर्वा-धिक महत्त्वपूर्ण—उपकरण, साधन है। किंतु इसे काव्य-सर्वस्व अथवा काव्यत्व का आधार भी नही माना जा सकता।

अलकार दो प्रकार के माने गए है शब्द द्वारा सौंदर्य का उत्कर्ष करने वाले 'शब्दालकार' तथा अर्थ के उत्कर्ष द्वारा चमत्कार उत्पन्न करने वाले 'अर्थालकार'। जिन उक्तियो के सौंदर्य मे शब्द और अर्थ दोनो के अल-कारो का समान योग होता है, उन्हे उभयालकार कहा जाता है। अलकार की सख्या अनिश्चित है, आचार्यों ने समय-समय पर अपनी उद्‌भावनाओ द्वारा इनकी सख्या मे निरतर वृद्धि की है। अलकारो का वर्गीकरण भी अनेक आचार्यों ने किया है। इनमे सवप्रथम उल्लेखनीय रुद्रट है, जिन्होने वैज्ञानिक आधार पर अलकारो के चार वर्ग निश्चित किए वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष। रुय्यक द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण भी बहुत समय तक मान्य रहा सादृश्य-गर्भ, विरोध गर्भ, शृखलाबद्ध, न्याय-मूल, गूढार्थ प्रतीतिमूल।

अलकारमजूषा *(म० कृ०)*

इस ग्रथ का रचना-काल सन् 1931 है। लेखिका है कु० वाळूताई खरे। इसमे शब्दालकारो तथा

अर्थालंकारों का विस्तृत विवेचन है और आरंभ में अलंकारों की उत्पत्ति व उनके विकास का इतिहास दिया गया है। प्रत्येक अलंकार के लक्षण और स्वरूप के निर्देशन में भामह (दे०) से लेकर आचार्य जगन्नाथ (दे०) तक की विशिष्ट मान्यताओं का उल्लेख है।

अलंकारसर्वस्व *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शती मध्य]

'अलंकारसर्वस्व' के रचयिता राजानक रुय्यक (दे०) हैं। इस ग्रंथ का दूसरा नाम 'अलंकारसूत्र' भी है। रुय्यक की कीर्ति का यही एकमात्र आधार है। अलंकार-निरूपण के लिए यह बड़ा प्रौढ़ तथा प्रामाणिक ग्रंथ है। इसमें दो नवीन अलंकारों—विकल्प और विचित्र—का समावेश भी किया गया है। रुय्यक ध्वनि-सिद्धांत के अनुयायी हैं तथा ग्रंथारंभ में उन्होंने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों की सारगर्भित समीक्षा की है। इनकी अलंकार-संख्या मम्मटाचार्य (दे० मम्मट) से अधिक तथा अधिक व्यापक एवं विस्तृत है। विश्वनाथ (दे०) कविराज, अप्पयदीक्षित (दे०) तथा विद्याधर आदि पिछले आलंकारिकों ने रुय्यक के इस मान्य ग्रंथ से प्रेरणा प्राप्त कर स्वमत-पुष्टि के लिए इसके उदाहरण दिए हैं।

अळकिन् शिरिप्पु *(त० कृ०)*

यह भारतीदासन् (दे०) की कविताओं का संग्रह है। इन कविताओं में कवि ने विभिन्न प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन किया है जैसे लहरीला समुद्र, शीतल मंद दाक्षिणात्य पवन, पहाड़ी के पीछे छिपता हुआ सूर्य, कमलों से युक्त तड़ाग आदि। कुछ कविताओं में मनुष्य एवं मनुष्येतर प्राणियों के क्रियाकलापों का वर्णन है जैसे कमल-तड़ाग में युवतियों का स्नान करना, नदी में जल-प्रवाह के बढ़ जाने पर शिशुओं का प्रसन्न होकर अपने माता, पिता, मामा, दादा आदि को पुकारना, बंदरों का पेड़ों पर उछलना, भौंरों का गुंजार आदि। अंतिम कविता में कवि ने स्वयं को भौंरे के रूप में और संपूर्ण सृष्टि को पुष्पों के उद्यान के रूप में चित्रित किया है। जिस प्रकार भौंरा विविध पुष्पों से रसपान करता है ठीक उसी प्रकार कवि सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ से रस प्राप्त करता है। इनमें प्राचीन तमिल गीतों के भाव-सौंदर्य के दर्शन होते हैं। विभिन्न कविताओं में प्राप्त कल्पना-चित्र अत्यंत प्रभावशाली है। ये कविताएँ सरल शैली में रचित है। इस कृति में कवि ने अपने इस नवीन दृष्टिकोण को व्यक्त किया है कि सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में सौंदर्य है। उस सौंदर्य के अनुभव की तीव्र इच्छा होने पर हम उसका अनुभव कर सकते हैं।

अपगिरिसामी, कु० *(त० ले०)* [जन्म—1923 ई०, मृत्यु—1970 ई०]

इनका जन्म तिरुनेलवेली जिले में स्थित इडैशेवल नामक स्थान में हुआ। इनके उपनाम हैं—*सारसांगी, जी० चेल्लैया और कुवळै*। अपगिरिसामी तमिल और अँग्रेजी भाषा के पंडित हैं। इन्होंने लगभग पच्चीस कृतियों की रचना की जिनमें 'कर्पक वृक्षम्', 'दैवम पिरन्ददु' (कहानी-संग्रह), 'कविच्चक्रवर्ती', 'वैकुण्डत्तिल वाल्मीकि-कम्बर' आदि (रंग-मंचीय नाटक), 'मुक्कुडळ पळ्ळु', 'विल्लिभारदम्' (नृत्य नाटक), 'तमिल तन्द कवियमुदम' (निबंध-संग्रह), 'मुरुग-पिळ्ळै हळ्' (बाल-साहित्य) आदि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने ग्यारह अँग्रेजी रचनाओं का तमिल में अनुवाद किया। अपगिरिसामी ने कुछ पत्र-पत्रिकाओं के संपादक और गांधी साहित्य प्रकाशन समिति में सह-संपादक के रूप में भी कार्य किया है। ये गांधीवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक हैं। इनकी कुछ कहानियाँ देशी-विदेशी भाषाओं में अनूदित हो चुकी है। इन्हें 'अन्बळिप्पु' (कहानी-संग्रह) पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिल चुका है।

अलाहुणीयाँ *(पं० पारि०)*

यह शोकपूर्ण लोकगीत है। किसी की मृत्यु पर *स्त्रियाँ मिलकर इसे गाती हैं। एक स्त्री (प्राय: नाइन)* इसे गाती जाती है और समूह की शेष नारियाँ इसकी एक तुक विशेष को बार-बार दुहराकर छाती पीटती हैं। *गुरु ग्रंथ साहिब* में वडहंस राग में रचित कुछ अलाहुणीआं संगृहीत हैं।

उदाहरण :

मस अजे न फुट्टी, शेर सरूं जेहा
हाय हाय, शेर सरूं जेहा ॥
पुट्टी पे मैं पुट्टी, शेर सरूं जेहा।
हाय हाय शेर सरूं जेहा ॥
रोवें चूड़े वाली, शेर सरूं जेहा
हाय हाय शेर सरूं जेहा ॥

अळिदमेले *(क० कृ०)*

यह कन्नड के महान् उपन्यासकार श्री शिवराम कारंत (दे०) के श्रेष्ठ उपन्यासों में से है। यह उनकी अद्यतन कृतियों में है। कारंत की जीवन दृष्टि उनकी हाल की कृतियों में अधिक स्पष्ट और मुखर रूप में प्रकट हुई है। उनके सारे नवीन उपन्यास मनुष्य के पुरुषार्थों का मूल्यांकन करने वाले हैं।

'अळिदमेले' (मरने पर) उपन्यास की शिल्प-विधि अनोखी है। कथानायक को छोड़कर बाकी सब चरित्र गौण हैं। कथानायक यशवंतराव अपने अवसान के समय अपने पास बचे पंद्रह हज़ार रुपये तथा एक आत्मवृत्तपूर्ण पत्र अपने एक मित्र के पास छोड़ गए हैं। इस तरह कथानायक के अंत से कहानी का आरंभ होता है। उस पत्र में धन का विनियोग कैसे हो—इस बारे में भी निर्देश है। उस मित्र को यशवंतराव के जीवन के कुछ ही अंश मालूम हैं। वे एक बड़े चित्रकार थे, अपनी गृहिणी एवं गृहस्थी छोड़कर वे बंबई आ बसे थे। दादा तथा रीमा जैसे अपरिचित व्यक्तियों से संबंध स्थापित किया था। यह मित्र उस पत्र के आदेशानुसार उन व्यक्तियों की खोज में चल पड़ता है। जैसे-जैसे वह खोज करते जाता है वैसे वैसे कथा बढ़ती है। यशवंतराव के व्यक्तित्व के अन्य सूत्र आ जुड़ते हैं। यशवंतराव का चरित्र इस तरह वैयक्तिक संबंधों के द्वारा पुनर्निर्मित होता है। बहुत से लोगों की सद्भावना उनके प्रति नहीं है। उनकी पत्नी, पुत्र, सगे संबंधी उनकी संपत्ति पर आँखें लगाये बैठे हैं। उनकी दृष्टि में यशवंतराव अपव्ययी, फक्कड़ तथा पथभ्रष्ट व्यक्ति थे। उनके दामाद मजैया, पुत्री जलजाक्षी, प्रेयसी धारेश्वर सरसी की इंदुमती, मित्र विष्णुपंत घाटे आदि पात्र अपने स्वभाव का परिचय देते हुए यशवंतराव का चरित्र-निर्माण करते हैं। उनकी दैनिकी तथा मित्र यही बताते हैं कि संसार में वैयक्तिक संबंध से बड़ा कुछ भी नहीं है। जीवन में प्रीति ही एकमात्र सार्थक वस्तु है। जीवन की हर वस्तु उन्हें प्यारी है।

यशवंतराव जी का चित्र इस प्रकार अत्यंत मानवीय है। जीवन और मरण में उनकी दृष्टि में एकमात्र शाश्वत सत्य है मानवता। मानवता को छोड़कर सत्य भी उनके लिए अनावश्यक है। इस तरह मानवतावाद की यह एक विराट् कृति है। मानवतावाद को दर्शन की कसौटी पर कसने पर उठनेवाली सारी उलझनें यहाँ भी हैं। लेखक यशवंतराव के व्याज से नैतिकता और अनैतिकता की छानबीन करने लगते हैं। किंतु उपन्यास में द्वंद्व सत् तथा असत् के बीच नहीं, स्वतंत्र दृष्टि तथा रूढ़िवाद के बीच है। यशवंतराव के प्रियजनों में रूढ़िवादी भी हैं किंतु मानवतावाद ही उनकी प्रिय वस्तु है। किंतु क्या मानवतावाद ही हमारी नैतिक समस्याओं का उत्तर बता सकेगा? यही एक प्रश्न है जिसका उत्तर देने में लेखक विफल है। अभिव्यंजना-कौशल, पात्र-निर्माण आदि में लेखक को अद्भुत सफलता मिली है।

अलीगढ़ तहरीक *(उर्दू पारि०)*

'अलीगढ़ तहरीक' के प्रवर्तक सर सैयद अहमद (दे०) थे। उन्होंने मुसलमानों को अँग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त करने की प्रेरणा दी। 'अलीगढ़ तहरीक' एक व्यापक तहरीक थी जिसने लोगों के विचारों और अमल को प्रभावित किया। 'तहज़ीबुल इख़लाक़' और 'इन्स्टीट्यूट गज़ट' नामक पत्रिकाएँ जारी की गईं जिन्होंने जहाँ मुसलमानों में आर्थिक सुधारों एवं नैतिकता के बीज बोए वहीं शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से उर्दू गद्य के लिए स्वस्थ और गंभीर मानदंड भी स्थापित किए। इससे भाषा में सादगी, गांभीर्य, लोच और शक्ति उत्पन्न हुई।

1862 ई० में सैयद साहब ने 'साइंटेफ़िक सोसाइटी' की नींव रखी। इस सोसाइटी की स्थापना का उद्देश्य यह था कि प्रसिद्ध और विश्वस्त पुस्तकों का अँग्रेज़ी से उर्दू में अनुवाद कराया जाए ताकि मुसलमान पाश्चात्य विचारधारा से अवगत हो सकें। 1864 में जब सर सैयद अलीगढ़ पहुँचे तो यह सोसाइटी भी उनके साथ अलीगढ़ आ गई। धार्मिक अंधविश्वासी लोगों ने सर सैयद का ख़ूब विरोध किया। इनकी मासिक पत्रिका 'तहज़ीबुल इख़लाक़' ने भारतीय मुसलमानों के विचारों में एक क्रांति पैदा कर दी और इससे उनके धार्मिक विचारों में विस्तार एवं सुधार हुआ।

अली डोसो *(गु० पा०)*

धूमकेतु (दे०) कृत 'तणखा मंडल' (दे०) भाग एक की पहली कहानी 'पोस्ट ऑफ़िस' का मुख्य पात्र 'अली डोसा' है। इसी के द्वारा धूमकेतु यह प्रतिपादित करते हैं कि 'मनुष्य अपनी दृष्टि छोड़कर दूसरों की दृष्टि से देखे तो आधा जगत शांत हो जाय।' अली एक कार्यमुक्त वृद्ध कोचमैन है जिसकी पुत्री मरियम शादी करके ससुराल गई है। कई साल बीतने पर भी उसका कोई पत्र नहीं आता।

इसीलिए अली चिंता, पीड़ा और बेचैनी का शिकार बना रहता है। कहानीकार ने उसे बड़े कलात्मक ढंग से अंकित किया है। इसी के साथ अली का यौवनावस्था का शक्ति-संपन्न व्यक्तित्व चित्रित किया गया जो उसकी वर्तमान वृद्धावस्था को विशेष दयनीय बनाता है। प्रतिदिन प्रातः-काल बूढा अली पोस्ट आफ़िस जाता है और बेटी की चिट्ठी की आशा में खिड़की के पास बैठता है। पांच-छह घंटों के बाद पोस्ट आफिस की खिड़की खुलती है और डाकिया उसे बेटी का पत्र न आने की सूचना देता है। वह निराश होकर घर लौटता है। इस दैनिक कार्यक्रम के कारण डाक-कर्मचारी उसे पागल मानते हैं और उसका मजाक किया करते हैं। पर अली की दिनचर्या में कोई परिवर्तन नहीं होता। वार्द्धक्य के कारण अली का शरीर क्षीण हो जाता है, हाथ-पैर काँपने लगते हैं; चलना-फिरना कठिन हो जाता है। एक दिन वह पोस्ट आफ़िस के लक्ष्मीदास नामक क्लर्क को पाँच गिनी देकर यह प्रार्थना करता है कि इस जर्जरित शरीर से अब मैं तो डाकघर नहीं आ पाऊँगा। मौत नज़दीक है, अगर मरियम की चिट्ठी आ जाए तो उसे मेरी क़ब्र पर रखवा देना। यों कहकर अली चला जाता है और फिर कभी नहीं आता।

इधर वह पोस्ट मास्टर चिंतित रहता है जो अली के साथ अशिष्ट व्यवहार करता था। उसे भी उसकी शादी-शुदा बेटी का कुशल-पत्र प्राप्त नहीं होता। एक दिन अली कोचमैन की बेटी का पत्र आता है। पोस्ट मास्टर पितृ-हृदय की वेदना को स्वयं अनुभव करने के कारण अली के प्रति सहानुभूति रखता है। लक्ष्मीदास को वह पत्र देता है। लक्ष्मीदास जब अली के यहाँ जाता है तब ज्ञात होता है कि अली का तीन मास पूर्व निधन हो चुका है। पोस्ट मास्टर और लक्ष्मीदास दोनों अली की क़ब्र पर पत्र रख देते हैं। इस प्रकार अत्यंत गंभीर और विषादमय वातावरण में 'पोस्ट आफ़िस' कहानी पूरी होती है और अली की मूक वेदना और अंतःस्पर्शी वाणी से पाठक अभिभूत हो जाता है। वस्तुतः 'अली डोसा' साकार कारुण्य-मूर्ति है।

अली मुहम्मद लोन *(कश्० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

ये बाल्यकाल के मेधावी छात्र और आज एक परिश्रमी लेखक और पैनी दृष्टि के विश्लेषक हैं। कश्मीरी भाषा का उपन्यास 'अंसि ति छि इनसान' (हम भी इनसान हैं) प्रकाशित हुआ है। 'विज छः सॉनी' (अब हमारी बारी है) नाटक लिखकर इन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का प्रमाण दिया है। इन्होंने रवींद्र ठाकुर के प्रसिद्ध नाटक 'मुक्तधारा' का कश्मीरी भाषा में अनुवाद किया और सुय्या (अवन्तिवर्मन के दरबारी इंजीनियर) के जीवन से संबद्ध एक नाटक भी लिखा।

अलै ओशै *(त० कृ०)* [रचना-काल—1953 ई०]

'अलै ओशै' कृष्णमूर्ति कल्कि (दे०)-कृत एक विशालकाय उपन्यास है। यह उपन्यास तीन भागों में विभाजित है। यह मूलतः कल्कि नामक मासिक पत्रिका में धारावाहिक कहानी के रूप में प्रकाशित हुआ था। यह एक सामाजिक उपन्यास है जिसमें ललिता, सीता, तारिणी, सूरिया, सौंदर राघवन आदि की कथा वर्णित है। कथा की पृष्ठभूमि में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन है जिसमें सन् 1930 से 1947 तक देश में घटित विभिन्न घटनाएँ वर्णित हैं। कल्कि ने गांधी जी के असहयोग आंदोलन, अहिंसा-नीति आदि का वर्णन भी किया है। 'अलै ओशै' वस्तुतः तमिल की आवाज है, उसका जय-घोष है। इसमें हमारी संस्कृति, शिक्षा, रीति-रिवाज, देशीय आंदोलन, न्याय, ईश्वर, विश्वास, विभिन्न मतवाद, ग्रामीण एवं नागरिक जीवन आदि की चर्चा है। लेखक ने उत्तरी भारत के कुछ प्रमुख नगरों का ऐतिहासिक महत्त्व स्पष्ट किया है। इसमें ईश्वरभक्ति, जेल में कैदियों की दशा, निम्न एवं मध्यवर्गीय लोगों का जीवन, दांपत्य जीवन के सुख-दुःख, ईर्ष्या, द्वेष, प्रेम आदि भावनाओं के स्वरूप आदि पर विस्तार से विचार किया गया है। उपन्यास में अनेक पात्र हैं। उनकी प्रवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। अधिकांश पात्र धर्म, नीति, सदाचार, न्याय भक्ति आदि के आदर्श हैं। पात्रों में सजीवता है। इसमें विविध घटनाओं का सजीव चित्रण है। कथोपकथन प्रभावशाली हैं। उपन्यास में वातावरण की सजीवता है। मूल कथा का वर्णन करते हुए लेखक ने पृष्ठभूमि में स्वदेश में हुए संघर्षों का चित्रण किया है। उपन्यास की शैली सरस, सरल और प्रभावशाली है। 'अलै ओशै' कल्कि के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ है। इसकी गणना तमिल के प्रसिद्ध उपन्यासों में होती है।

अल्पजीवि *(ते० कृ०)*

'अल्पजीवि' राचकोंडा विश्वनाथ शास्त्री (दे०) का उपन्यास है। यह तेलुगु के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में एक विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें मध्यवर्ग के एक नौकरी-

पेशा व्यक्ति के जीवन की असमर्थता, विवशता तथा भीरुता का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। बचपन मे जब वह गुडो द्वारा अपने पिता को अँधेरे मे पिटता देखते है तब से उसमे भय दृढ रूप से घर कर लेता है और अत तक उसकी समस्त प्रतिक्रियाओ मे केंद्र रूप मे वह प्रस्तुत रहता है। उसके भय का कारण घर के बाहर का समाज ही नही, घर के अदर स्वय उसकी पत्नी भी है, जिसके सामने वह कभी आत्मविश्वास के साथ बात नहीं कर सकता। इस प्रकार भय के बोझ से दबकर, अपनी असमर्थता की निंदा करता हुआ अपने चारो ओर दिखाई देने वाले व्यक्तियो के सबध में नाना प्रकार की कल्पनाएँ करता हुआ वह दयनीय जीवन व्यतीत करता है।

अल्लम प्रभु *(क० ले०)* [आविर्भाव काल—बारहवी शती ई०]

अल्लम प्रभु या प्रभुदेव कन्नड के महान् सत है। बारहवी शती ई० मे कर्नाटक के धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र मे वीरशैव सतो की वाणी ने एक बहुत बडी क्राति उपस्थित कर दी थी। इस क्राति के अगुआ थे सत बसवेश्वर (दे०)। प्रभुदेव बसवेश्वर के गुरु माने जाते है। 'हठयोग प्रदीपिका' के नाथो की सूची मे इनका नाम भी है। इनके जीवन, शिक्षा-दीक्षा आदि के बारे मे कुछ विशेष बातें ज्ञात नही है।

वीरशैव होने पर भी ये समयनिरपेक्ष थे। ये सत्य के भूखे थे, जहाँ भी सत्य के दर्शन हुए इन्होने उसकी पूजा की, असत्य और अन्याय पर इनकी वाणी वज्रपात करती थी। बसवेश्वर द्वारा सस्थापित 'अनुभव-सत्य' के अध्यक्ष बनकर इन्होने तत्कालीन सतो का मार्गदर्शन किया था। इस महान् सत पर कन्नड के पुराण और चरितकाव्य लिखे गए हैं जिनमे चामरस (दे०) का 'प्रभुलिंगलीले' प्रमुख है। इनका व्यक्तित्व और कृतित्व विश्वसाहित्य के लिए कन्नड की अनुपम देन है।

वीरशैव सतो ने अपनी अनुभूतियो को सरल व सुदर गद्य के द्वारा अभिव्यक्त किया है। यह गद्य 'वचन' कहलाता है। प्रभुदेव की बानियो मे रहस्यवाद, समाज विडबन तथा निर्गुण एव शून्य का वर्णन है। इनके वचन तथा पद सहस्राधिक हैं। इनके प्रत्येक 'वचन' मे 'गुहेश्वर' अकित मिलता है। इनकी बानियाँ कबीर आदि सतो की बानियो के समान प्रखर हैं। इनकी बानियो मे रूपको की प्रधानता है, एक विलक्षण मस्ती और अल्हडपन है। इनकी सैकडों बानियाँ उलटबाँसियो की भाँति हैं जो 'बेडगिन वचन' कहलाती है। इनमे सध्याभाषा की शैली मे सूक्ष्म को स्थूल का बाना पहनाने का प्रयत्न है, जहाँ 'शून्य', 'सहज' आदि योगमार्ग के पारिभाषिक शब्दो का विशेष प्रयोग हुआ है।

इनके नाम पर मिलने वाली एक और कृति है 'शून्य सपादने'। किंतु यह उनकी कृति नही है। यह प्रभुदेव तथा अन्य समकालीन वचनकारो को मँजोकर सवाद शैली मे लिखा एक चरितकाव्य है जिसके रचयिता पद्रहवीं व सोलहवी शती के गुळूरु सिद्ध वीरणाचार्य हैं। प्लेटो के सवादो की भाँति इसमे इनके व्यक्तित्व का भव्य निरूपण है। प्रभुदेव ही इसकी केंद्रीय विभूति हैं और उन्ही की वाणी की इसमे प्रधानता है।

प्रभुदेव पर लिखे ग्रथो मे प्रभुदेव तथा गोरक्षनाथ के बीच हुए वाद-विवाद का वर्णन है जिसमे प्रभुदेव शून्य को वज्र से भी श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं। मध्ययुगीन धर्मसाधना के इतिहास मे प्रभुदेव का स्थान अविस्मरणीय है।

अळ्ळूर नन्मुल्लै *(त० ले०)* [समय—ईसा की पहली दूसरी शताब्दी]

अळ्ळूर नन्मुल्लै सघकालीन प्रसिद्ध कवयित्रियो मे से हैं। इनकी कविताएँ अहनानूरु, पुरनानूरु, कुरून्तोगै आदि प्रसिद्ध सघकालीन कृतियो मे सगृहीत है। इनकी कविताओ मे प्रेम एव पारिवारिक जीवन की समस्याओं का चित्रण है। इनकी कविताओ की नायिकाएँ सघकालीन नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती हैं जिसके अधिकार अत्यत सीमित है। इन्होने एक गृहिणी की दृष्टि से ही नारी के जीवन का चित्रण किया है जो कि समसामयिक सामाजिक नियमो का विरोध करना चाहती है परतु ऐसा करने मे अपने आपको असमर्थ पाती है। इनकी कविताओ मे निराशा का स्वर प्रबल है। अधिकाश कविताओ मे प्रेमी या पति के प्रवास पर नायिका की विरह-वेदना की अभिव्यक्ति हुई है। इनकी कविताओ मे दस अहम से और एक पुरम से सबधित है। पुरनानूरु में प्राप्त इनकी पुरम सबधी कविता से यह बात प्रमाणित हो जाती है कि सघकाल में वीर योद्धाओ की याद मे नडुक्कल या वीरक्कल गाडे जाने की और उसके पूजे जाने की प्रथा विद्यमान थी। अळ्ळूर नन्मुल्लै अपने नारी जीवन के सजीव चित्रण के लिए विख्यात है।

अवधान कविता *(ते० प्र०)*

यह तेलुगु की साहित्यिक परपरा मे एक विलक्षण

प्रवृत्ति है, जो किसी भी अन्य साहित्य में प्राप्त नहीं होती। 'अवधान' में कवि की चमत्कारी धारणाशक्ति की परीक्षा होती है। उसको एक ही साथ अनेक वस्तुओं को स्मृति में रखकर विभिन्न विषयों में आशु कविता रचनी पड़ती है।

'अवधान' मुख्यतः दो प्रकार का होता है—अष्टावधान और शतावधान। सहस्रावधान का भी प्रचलन है, किंतु कम। अष्टावधान करने वाले व्यक्ति (जिसे अष्टावधानी कहा जाता है) के चारों ओर आठ विद्वान पृच्छक (प्रश्न-कर्ता) बैठते हैं। उनमें से एक अवधानी को कोई एक विषय देकर उस पर कविता करने के लिए कहता है। दूसरा कोई एक समस्या देता है। तीसरा चार असंबद्ध शब्दों को देकर उनका प्रयोग करते हुए कविता करने के लिए कहता है। चौथा किसी एक पुराण का पाठ करके, उसकी व्याख्या करने के लिए कहता है। पाँचवाँ पीछे से बीच-बीच में घंटी बजाता रहता है या अवधानी पर फूल फेंकता रहता है, जिनको अवधानी गिनकर अंत में उनकी संख्या बताता है। छठा कोई-न-कोई असंबद्ध प्रलाप करके, अवधानी के मस्तिष्क की एकाग्रता भंग करने का प्रयत्न करता है। सातवाँ किसी विषय पर जब अवधानी कविता कहने लगता है, तो एक अक्षर के बाद अगले अक्षर के रूप में किसी एक अक्षर को निबद्ध करता रहता है और आठवाँ साहित्यिक चर्चा करता रहता है। अवधानी को अंत तक इन सभी का ध्यान रखकर बीच-बीच में एक-एक पृच्छक को एक-एक कविता की पंक्ति आशु रूप में कहते हुए अंत में सारी कविताओं को दुहराना होता है। शतावधान में भी इसी प्रकार सौ पृच्छकों को आशु रूप में सौ छंद सुनाने पड़ते हैं। यह अवधानी की विद्वता, कठोर साधना एवं धारणा-शक्ति से ही संभव होने वाला साहित्यिक इंद्रजाल है।

अवधी *(हिं० पारि०)*

अवधी पूर्वी हिंदी वर्ग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बोली है। इस बोली का 'अवधी' नाम 'अवध' के आधार पर पड़ा है। 'अवध' शब्द 'अयोध्या' का तद्भव रूप है। अवधी नाम का प्राचीनतम प्रयोग अमीर खुसरो के 'नूहसियर' ग्रंथ में मिलता है। अवधी का विकास ग्रियर्सन (दे०) ने अर्धमागधी से माना था, किंतु डा० बाबूराम सक्सेना (दे०) के अनुसार अर्धमागधी की तुलना में पालि से इसकी अधिक समानता है। वस्तुतः इस प्रश्न का अभी कोई अंतिम निर्णय नहीं हुआ है। अवधी का क्षेत्र ठीक अवध प्रदेश नहीं है। एक ओर तो अवध के कुछ भाग (जैसे हरदोई जिला) में अवधी नहीं बोली जाती तो दूसरी ओर फ़तेहपुर, इलाहाबाद आदि अवध के बाहर हैं, किंतु वहाँ भी अवधी बोली जाती है। इसका मुख्य क्षेत्र लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, फ़ैजाबाद, गोंडा, बहराइच, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी आदि हैं। अवधी की उत्पत्ति 1000 ई० के आसपास हुई थी। चौदहवीं सदी से इसका प्रयोग साहित्य में होने लगा था। अवधी के मुख्य कवि मुल्लादाऊद, लालचदास, कुतुबन, जायसी, तुलसी, उसमान आदि हैं। तुलसी आदि कुछ कवियों को छोड़ दें तो अवधी का प्रयोग मुख्यतः मुसलमान कवियों द्वारा प्रेमाख्यानक काव्यों की रचना में हुआ है। हिंदी के मध्यकालीन साहित्य में ब्रजभाषा के बाद सबसे अधिक ग्रंथ अवधी में ही लिखे गए हैं जिनमें तुलसी का 'रामचरितमानस' सर्वश्रेष्ठ है।

अविमारक *(सं० कृ०)* [समय—तीसरी शताब्दी ई०, ले० भास (दे०)।

'भासनाटकमृक्रम' में 'अविमारक' को बारहवाँ स्थान दिया गया है।

'अविमारक' छह अंकों का नाटक है। इसका वृत्त किसी लोककथा पर आधृत है। इसमें राजकुमार अविमारक का कुंतिभोज की पुत्री कुरंगी के साथ प्रणय का वर्णन है। राजकुमार होते हुए भी अविमारक शापवश किसी अंत्यज के यहाँ रह रहा है; अतः पहले तो दोनों के विवाह में कुछ कठिनाइयाँ आती हैं। पर अंत में नारद द्वारा रहस्योद्घाटन करने पर जब अविमारक के सही कुल का पता चलता है तो प्रणय-बंधन परिणय-बंधन में परिणत हो जाता है।

'अविमारक' प्रणय-कथा पर आधृत एक सुंदर नाटक है पर इसमें अभिव्यंजना तथा घटना अप्रौढ़ है और भावावेश इतना अधिक है कि नाटक का सौंदर्य विकृत हो गया है। 'अविमारक' शृंगार-प्रधान नाटक है। अन्य नाटकों की भाँति यहाँ भी भास क्षिप्र व्यापारों के प्रति अधिक आकृष्ट प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार घटनाओं और स्थितियों की आवृत्ति भी स्पष्ट नजर आ जाती है। नायक दो बार आत्महत्या करना चाहता है तथा नायिका एक बार। चरित्रों के अंकन में वे यहाँ विदूषक को काफ़ी ऊँचा उठा देते हैं। उसका चरित्र इस नाटक में एक स्थिर स्वरूप प्राप्त करता है। भाषा विषयानुकूल तथा संवाद सशक्त हैं। कुल मिलाकर यह एक मनोरंजक नाटक है।

अव्यय (हिं० पारि०)

'अव्यय' का शब्दार्थ है 'जो व्यय न हो'। व्याकरण मे अव्यय प्राय उन शब्दो को कहते हैं जिनमे विकार या परिवर्तन न हो। इस तरह 'व्यय' का अर्थ यहाँ 'परिवर्तन' या 'विकार' है। सस्कृत का प्रसिद्ध श्लोक है 'सदृश त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु, वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्'। आधुनिक भाषाओ मे क्रियाविशेषण, सयोजक, सबधबोधक तथा विस्मयादिबोधक इन चारो को अव्यय के अतर्गत रखते है। यह ध्यान देने की बात है कि 'अव्यय' नाम रूप-रचना पर आधृत है, अर्थात् इस नाम के अधिकारी वे शब्द है जिनमे लिंग, वचन, कारक के कारण परिवर्तन न हो। इसीलिए आधुनिक भाषाओ मे 'अव्यय' सज्ञा बहुत उपयोगी नही रह गई है। हिंदी की ही बात लें। हिंदी मे एक ओर तो बहुत से क्रियाविशेषण ऐसे हैं जिनमे परिवर्तन होता है (राम दौडता आया, सीता दौडती आई, लडके दौडते आए), दूसरी ओर ऐसे बहुत से सज्ञा शब्द (कोदो, रासो) तथा विशेषण (सुदर लडका, सुदर लडकी, सुंदर लडके) हैं जिनमे परिवर्तन नही होता। इस तरह हिंदी में एक तरफ तो कुछ क्रियाविशेषण भी अव्यय नही है, यद्यपि सामान्यत सभी क्रियाविशेषण इसी के अतर्गत माने जाते हैं, और दूसरी ओर कुछ सज्ञा या विशेषण शब्द ऐसे है जो अपनी 'अव्ययता' के कारण इस वर्ग मे रखे जाने के अधिकारी हैं, यद्यपि सज्ञा या विशेषण कभी भी इस वर्ग मे नही रखे जाते। वस्तुत प्राचीनकालीन सयोगात्मक भाषाओ के प्रसग मे ही अव्यय नाम अधिक सार्थक था।

अव्वैयार (सघकाल) *(त० ले०)* [समय—अनुमानत ईसापूर्व दूसरी शती से ईसा की दूसरी शती तक]

अव्वैयार तमिल की प्रसिद्ध कवयित्रियो मे से हैं। इनका वास्तविक नाम अव्वैयार ही था या लोगो ने इन्हे इस नाम से पुकारना आरभ कर दिया था, इस विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है। अव्वैयार द्वारा रचित उनसठ कविताएँ उपलब्ध है जिनमे से चार 'अकनानूरु' (दे०), पद्रह 'कुरुन्तोगै' (दे०), सात 'नाट्रिणै' और तेंतीस 'पुरनानूरु' (दे०) नामक कृतियो म सगृहीत हैं। इन्हें चेर, चोल और पाड्य तीनो राजवशो से सबधित राजाओ के यहाँ पर्याप्त सम्मान प्राप्त हुआ था। इनका अधिकाश समय पाड्य राजा अदियमान् नेडुमान् अजि के यहाँ व्यतीत हुआ था। अपने अधिकाश पदो में इन्होने अदियमान् की वीरता, दानशीलता, उदारता, युद्ध-कौशल आदि की प्रशसा की है। इन्हे अपनी कला-चातुरी पर गर्व था। एक बार अदियमान् द्वारा पुरस्कार देने मे विलब किए जाने पर ये कह उठी थी—'कलाकार अपनी कला के बल पर कही भी जी सकता है।' अदियमान् की मृत्यु पर इनके द्वारा रचित करुण रस-प्रधान कविता अत्यत मार्मिक एव प्रभावशाली है। इसका तमिल के कारुणिक गीतो मे विशिष्ट स्थान है। अव्वैयार की कविताओ मे कुछ 'अहम्' अर्थात् जीवन के आतरिक पक्ष से और कुछ 'पुरम्' अर्थात् जीवन के बाह्य पक्ष से सबद्ध हैं। अहम् कविताओ मे गभीर शैली मे बड़े विस्तार के साथ कन्या के मन मे उठने वाली भावनाओ का वर्णन किया गया है। 'पुरम्' कविताओ मे प्राय अदियमान् के जीवन से सबद्ध नाना घटनाएँ वर्णित हैं। इनकी कविताओं मे इनका प्रकृति-प्रेम और व्यापक दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। इनमे भाव-सौदर्य और कला-सौदर्य का अपूर्व समन्वय है। अव्वैयार और उनकी कविताओ का तमिल साहित्य मे विशिष्ट स्थान है।

अव्वैयार *(त० ले०)* [समय—ईसा की बारहवी-तेरहवी शताब्दी]

सघकालीन अव्वैयार के समान मध्यकाल मे भी अव्वैयार नामक एक कवयित्री थी। इनके वास्तविक नाम, जन्म, माता-पिता आदि के विषय मे कुछ भी ज्ञात नही है। सघकालीन अव्वैयार के समान इनके सबध मे भी समाज मे अनेक विनोदपूर्ण काल्पनिक कथाएँ प्रचलित है। इन कथाओ मे सत्य का अश है अथवा नही, और यदि है तो कितना है—इस विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इनकी प्रमुख कृतियाँ है—'आत्तिशूडि', 'कोन्रैवेंदन्', 'मूदुरै या वाक्कुण्डाम्', 'नल्वऴि', अव्वैक्कुरळ्', 'विनायकर् अकवल्', 'ज्ञानक्कुरळ्' आदि। इनके अतिरिक्त इन्होने अनेक स्फुट गेय पदो की रचना की है। 'आत्तिशूडि' और 'कोन्रैवेंदन्' उपदेशात्मक रचनाएँ हैं। विषय-वस्तु और रचना शैली की दृष्टि से इन्हे सूक्ति-सग्रह कहा जा सकता है। ये सूक्तियाँ समाज मे लोकोक्तियो के रूप मे प्रसिद्ध हैं। 'वाक्कुण्डाम्', 'नल्वऴि' और 'अव्वैक्कुरळ्' नीति-ग्रथ हैं। विषय का प्रतिपादन करते हुए इनमे जीवन से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। 'नल्वऴि' की गणना तमिल के प्रसिद्ध नीति ग्रथो मे होती है। 'विनायकर् अकवल्' मे भक्तिरसपूर्ण स्फुट गेय पद सगृहीत हैं। ज्ञानक्कुरळ् मे तमोमहिमा, ज्ञानी के अनुभव आदि

का वर्णन है। अव्वैयार ने स्फुट गेय पदों में अपने जीवनानुभवों का वर्णन किया है। अव्वैयार सामान्य जनता के दुःख-सुख से परिचित थीं। इनके पदों में समकालीन राजाओं, वीरों और महापुरुषों से संबंधित विवरण प्राप्त होते हैं। सरस और आकर्षक शैली में गंभीर विचारों की अभिव्यक्ति में सक्षम अव्वैयार का तमिल साहित्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

अशांत इलेक्ट्रन *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

सौरभ चलिहा (दे०) के इस संग्रह की कहानियों के पात्रों के मन में अनेक प्रश्न उठते है, उत्तर खोजने का प्रयास किया जाता है, किंतु समाधान नहीं मिलता। एक का दृष्टिकोण दूसरे से नहीं मिलता। हमारा जीवन मानो एक-एक सौर-जगत् है। कहानियों में कोई गंभीर सत्य निहित नहीं है, किंतु वैज्ञानिक दृष्टि का प्रवेश दिखाई देता है। लेखक की दृष्टि यथार्थवादी है। इनकी 'ज्यामिति' कहानी में पात्रों के नाम क, ख, ग देकर रोमांटिक कहानी का बौद्धिक विश्लेषण किया गया है। ये वैज्ञानिक चिंतन की कहानियाँ हैं और असमीया साहित्य में इनका विशेष स्थान है।

अशोक *(उ० पा०)*

'बनहंसी' में नाटककार मनोरंजन दास (दे०) ने आधुनिक मानव के जटिल व्यक्तित्व को उजागर करने की कोशिश की है। मनोवृत्तियों के उलझे लोक में पहुँचकर लेखक अशोक के माध्यम से कहता है—"इतने शब्द—भाषा—बातें—आदि के बाद भी व्यक्ति व्यक्ति को नहीं पहचान पाता है···एक दूसरे को समझ नहीं पाते है···एक दूसरे को ग़लत समझते हैं···शांति नहीं मिलती।"

अशोक इस नाटक का छाया-चरित्र (शैडो कैरेक्टर) है। यद्यपि वह हमारे सामने कभी नहीं आता पर नाटक के अंतःस्वर को सबसे शक्तिशाली रूप से वही मूर्त करता है।

आधुनिक स्त्री-पुरुष के वास्तविक संबंधों का एक ग्लानिजनक चित्र है 'बनहंसी'। इस नाटक का हर पात्र मानसिक रूप से एक रोगी है। डा० प्रवीर चौधुरी और उषा की प्रेम-कहानी, मतभेद, उषा का संतोष शर्मा के साथ विवाह, एक मोटर-दुर्घटना में संतोष शर्मा की मृत्यु, उषा का अंतर्द्वंद्व, डा० प्रवीर चौधुरी के पास पुनः उसका प्रत्यावर्तन, एवं उनके पास से पुनः पलायन आदि बातों की पुनरावृत्ति होती है डा० प्रवीर चौधुरी के पुत्र राजीव, एवं उषा की प्रणय-कथा में।

राजीव एवं गीता के संबंधों के बीच जब गीता को मालूम पड़ता है कि उसकी माँ और डा० चौधुरी के बीच प्रेम संबंध था, तो वह परेशान हो उठती है और राजीव को छोड़कर पहुँचती है अशोक के पास। पर वहाँ भी वह संशयरहित नहीं हो पाती। अशोक संगी-साथियों में बदनाम है। सभी उससे घृणा करते हैं। प्रथम परिचय में गीता उससे पूछती है—"···अशोक, तुम बदनाम हो···क्या मैं तुम पर विश्वास कर सकूँगी?" अशोक कहता है—"तुम दूसरों की बातों पर क्यों विश्वास करती हो?" कुछ दिनों के संपर्क के बीच अशोक गीता का कभी अनादर नहीं करता। परिचय प्रगाढ़ होता जाता है। दौरे से वापस आते ही दोनों का विवाह हो गया होता पर नहीं, लौटती राह पर गीता गाड़ी को जानबूझकर दुर्घटनाग्रस्त कर देती है। अशोक को राजीव की क्लिनिक में लाया जाता है। ऑपरेशन टेबिल पर जब अशोक का निर्जीव शरीर पड़ा होता है तब उसका प्रेत संतोष शर्मा के प्रेत को अपना क्षणवादी जीवन-दर्शन समझाता है—"जीवन में मैंने कभी आपत्ति नहीं की है। भविष्य पर मुझे विश्वास नहीं है। वर्तमान ही मेरा सभी कुछ है।" अशोक को मालूम था कि गीता एक्सीडेंट करेगी, पर फिर भी उसने गाड़ी की गति को कम करने को नहीं कहा। कारण, वह समय था उनके लिए 'वर्तमान'। उस समय अशोक को बड़ा अच्छा लग रहा था। "बेपरवाही से गाड़ी चलाने में गीता को आनंद आ रहा था। उनकी खुशी में मैंने कभी बाधा नहीं डाली।"

अशोक पाप में विश्वास करता है तथा अपने और गीता के बीच किसी और की उपस्थिति पसंद नहीं करता। अशोक के मर जाने पर गीता कहती है—"अशोक के जीवित रहने पर मैं यहाँ शांति से जीवित रह सकती थी····" पुनश्च: "···अशोक के चले जाने के बाद लगता है मेरे लिए समय बहुत दूर चला गया है—लगता है सभी कुछ मेरी ही भूलें हैं···सब पाप हैं···तुम, मैं, हम, यहाँ सभी कुछ पाप है।"

अशोक के फूल *(हिं० कृ०)*

यह आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०) के निबंधों का एक उल्लेखनीय संग्रह है जिसमें उन्होंने 'अशोक के फूल', 'वसंत आ गया है', 'आलोचना का स्वतंत्र मान', 'भारतीय संस्कृति की देन', 'हमारी राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली'

आदि सास्कृतिक, साहित्यिक, शैक्षिक एव अन्य अनेक विषयो को कथ्य के रूप मे सकलित करते हुए अपनी स्वच्छद कल्पना-शक्ति, व्यापक दृष्टिकोण एव अध्ययन-क्षेत्र की विविधता का अत्यत पुष्ट परिचय दिया है। अत्यत सामान्य एव सक्षिप्त से प्रतीत होने वाले विषय को इतिहास, सस्कृति, लोक-जीवन, धर्म, पुरातत्त्व आदि के द्वारा वैशिष्ट्य प्रदान करते हुए कथा-साहित्य की-सी रोचकता तथा वैयक्तिकता की छाप से मडित कर देने मे लेखक को कमाल हासिल है। ये निबध लेखक के मानवतावादी दृष्टिकोण तथा प्राचीन भारतीय सस्कृति मे उसकी अडिग आस्था को भी रूपायित करते है। तत्सम शब्दो का अत्यधिक प्रयोग करते हुए भी लेखक ने उर्दू, अँग्रेजी आदि के शब्दो का सर्वथा बहिष्कार नही किया है और इस प्रकार अपनी रचना के प्रवाह को बनाए रखा है।

अश्क, उपेंद्रनाथ *(हिं० ले०)* [जन्म—14 दिसबर, 1910 ई०]

इनका जन्म पजाब प्रात के जालधर शहर मे एक मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार मे हुआ। इन्होने सन् 1931 मे डी० ए० वी० कालेज, जालधर से बी० ए० की परीक्षा पास की। बाल्यावस्था से ही ये अध्यापक, लेखक, सपादक, वक्ता, वकील, अभिनेता और डायरेक्टर बनने तथा फिल्मो मे काम करने के स्वप्न देखते रहते थे। यही कारण था कि बी० ए० पास करते ही ये जालधर के ही एक स्कूल मे अध्यापक हो गये। लेकिन इन्होने अध्यापन-कार्य दो वर्ष तक ही किया, तदनतर ये 'भूचाल' पत्रिका का सपादन करने लगे। एक वर्ष तक सपादन-कार्य करने के बाद ये सब कुछ छोडछाडकर लॉ कालेज मे दाखिल हो गए तथा सन् 1936 मे एल एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी वर्ष इनकी पत्नी का देहात हो गया। तदुपरात इनके लेखकीय जीवन का अत्यत महत्त्वपूर्ण एव उर्वर युग प्रारभ हुआ। दो-ढाई वर्ष के अत्यल्प समय मे ही इन्होने दो नाटक, सात-आठ एकांकी, एक काव्य-सग्रह, 'पिंजरा' कहानी-सग्रह की सभी रचनाएँ तथा 'छीटे' कहानी-सग्रह की कुछ रचनाएँ लिखी। यद्यपि अश्कजी ने साहित्य की सभी विधाओ को अपने लेखन से समृद्ध किया है किंतु इनका प्रमुख प्रदेय नाट्य-रचना के क्षेत्र मे है। 'छठा बेटा', 'अजो दीदी', 'कैद', 'उडान' आदि इनके प्रसिद्ध नाटक है तो 'तूफान से पहले', 'देवताओ की छाया मे', पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ' इनके प्रसिद्ध एकांकी-सग्रह है। सजीव चरित्र-सृष्टि, सरल, मर्मस्पर्शी तथा विषयानुरूप सवाद योजना और रगमचोपयुक्त शिल्प विधान इनकी नाट्यकला की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

अश्लील *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1959 ई०]

पद्म बरकटकी (दे०) के इस असमीया गल्प-सग्रह मे बारह स्केच कहानियाँ हैं। अश्लील नाम एक व्यक्ति-वाचक सर्वनाम का पर्याय है। कहानियो मे अश्लीलता नही है। कहानी मे शिल्प की अपेक्षा यथार्थ जीवन की क्रूर नग्नता के चित्रण की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। कहानियो मे व्यग्य निहित है।

अश्वघोष *(स० ले०)* [78 ई०]

महाकवि अश्वघोष सम्राट कनिष्क के समकालीन थे। ये जन्म से ब्राह्मण थे और बाद मे बौद्ध हो गये थे। इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था और इनका जन्म साकेत मे हुआ था। ये वैदिक साहित्य के साथ ही 'महाभारत' (दे०) तथा 'रामायण' (दे०) के मर्मज्ञ विद्वान् थे। डा० कीथ (दे०) तो इनको लौकिक सस्कृत का प्रथम कवि मानते है।

अश्वघोष की तीन प्रामाणिक कृतियाँ है—'बुद्धचरित' (दे०), 'सौंदरनद' (दे०) तथा 'शारिपुत्रप्रकरण' (दे०)। इनमे प्रथम दो महाकाव्य है तथा अतिम रूपक। इसके अतिरिक्त बौद्ध दार्शनिक होने के नाते इनके नाम के साथ चार बौद्ध ग्रथ भी जोड दिए जाते हैं—(1) महायान श्रद्धोत्पादसग्रह, (2) वज्रसूची, (3) गण्डीस्तोत्रगाथा, तथा (4) सूत्रालकार। पर ये चारो विवादास्पद हैं।

'बुद्धचरित' महात्मा बुद्ध के निर्मल सात्त्विक जीवन का सरल तथा सरस विवरण है। 'सौंदरनद' मे उनके छोटे सौतेले भाई सुदरनद के प्रव्रज्या-ग्रहण का वर्णन है। 'शारिपुत्रप्रकरण' मे तथागत के पट्टशिष्य शारिपुत्र के बौद्ध धर्म मे दीक्षित होने की कथा है। इस प्रकार इन तीनो ग्रथो का मूल स्रोत एक है। इन तीनों मे केवल 'सौंदरनद' ही पूरा उपलब्ध है। 'बुद्धचरित' का केवल आधा भाग ही मूल सस्कृत मे मिलता है और 'शारिपुत्रप्रकरण' के कुछ अधूरे पृष्ठ ही।

अश्वघोष की कविता मे स्वाभाविकता एव सहज प्रवाह है। कवि एक विशेष उद्देश्य से तत्त्वज्ञान से हटकर कोमल काव्यकला का आश्रय लेता है और उसमे वह पूर्ण

सफल है। तथागत के चरित्र के प्रति कवि की आस्था बड़ी प्रबल है, साथ ही संसार की अनित्यता की भावना भी बड़ी बलवती है—यही कारण है कि वह इन काव्यों के धार्मिक अंशों की रचना में बड़ा उत्साह दिखाता है।

अश्वघोष में तीन गुण हैं। स्वभाव से वे कवि हैं, शिक्षा द्वारा मर्मज्ञ मनीषी और आस्था के कारण धार्मिक व्यक्ति। इनकी कविता में इन तीनों पक्षों का सही समन्वय उपलब्ध होता है। इनकी कविता में प्रबल जीवनी-शक्ति है। छोटे-छोटे चुने हुए रमणीय शब्दों द्वारा अपने धार्मिक संदेश को काव्य का रूप देने में ये सिद्धहस्त हैं।

अश्वति तिरुनाळ् *(मल० ले०)* [जन्म—1031 ई०, मृत्यु—1077 ई०]

पूरा नाम—अश्वति तिरुनाळ् इळय तंपुरान्। इनका जन्म राजवंश में हुआ था और ये संगीत तथा साहित्य में निष्णात और संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। इनकी कृतियाँ हैं : 'वंचीश-स्तवम्'—महाविष्णु तथा अपने मातुल के प्रति लिखित स्तोत्र-ग्रंथ; (2) 'कार्त्तवीर्यविजयम् चंपु'; (3) 'संतानगोपालम् चंपु'; (4) 'श्रृंगार सुधाकरम् भाणम्'; (5) 'रुक्मिणीपरिणयम् नाटकम्'—जो कवि की सबसे उत्तम रचना है; और (6) 'दशावतारदंडकम्' जिसमें विष्णु के दस अवतारों का वर्णन है। ये कथकलि साहित्य के प्रथम श्रेणी के कवि हैं और उन्होंने इस विधा के लगभग चालीस ग्रंथों की रचना की है जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं—'नरकासुरवधम्' (उत्तर भागम्), 'रुक्मिणी-स्वयंवरम्', 'पूतनामोक्षम्', 'अंबरीषचरितम्' आदि। ये बड़े भक्त और ज्ञानी थे। इनकी अधिकांश कृतियाँ केरली भाषा एवं साहित्य की अमूल्य निधियाँ है।

अश्वत्थ *(क० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

'अश्वत्थ' उपनामधारी अश्वत्थ नारायण राव, बी० ई० कन्नड के प्रसिद्ध कथाकार तथा नाटककार हैं। ये मैसूर में रहते हैं। 'सण्णकथेगलु' नाम से इनकी कहानियों के चार खंड प्रकाशित हुए हैं। नवीनता-बोध की दृष्टि से इनकी कहानियाँ उत्कृष्ट कही जा सकती हैं। उनमें केवल कर्नाटक के जनजीवन का वर्णन नहीं है अपितु भारत के अन्यान्य प्रदेशों के विषय भी विद्यमान हैं। कला की दृष्टि से इनकी कहानियां अपनी ही विशिष्टताएँ रखती हैं। इनके 'मुनियन मादरि' (मुनिया का आदर्श), 'मर्यादे महलु' (मर्यादा का महल) और 'रंगनायकी' अच्छे उपन्यास हैं। इन्होंने 'मगु' (बच्चा) और 'बहुमान' आदि नाटक भी लिखे हैं।

अश्वत्थामन् *(क० कृ०)*

यह आधुनिक कन्नड-साहित्य के नवोदय के पुरोधा एवं मंत्रदाता स्व० श्रीकण्ठय्या (बे०) का लिखा एक दुःखद नाटक है। यह ग्रीक कवि सोफोक्लीज़ के 'एजाक्स' का भारतीयकरण है। ट्राय-युद्ध में मृत एचिलीज के शस्त्र इसे देने के बदले यूनानियों ने ओडिसियस को दे दिए जिससे एजाक्स अपमानित अनुभव करता है। बदला लेने के प्रयत्न में असफल होकर अपनी ही तलवार पर गिरकर वह आत्महत्या कर लेता है। उसके शवसंस्कार में भी बाधा पड़ती है। उसके उपरांत उसका सौतेला भाई आकर केनिलेयस तथा अगमेमनॉन का सामना करता है। इतने में ईडिपस आता है, अगमेमनॉन को सांत्वना देकर ले चलता है, उत्तर क्रियाओं के साथ नाटक समाप्त होता है।

महाभारत में अश्वत्थामा की कहानी इससे मिलती-जुलती है। नाटक की उदात्तता, उसकी अतिरोषी मनोवृत्ति, विधिविलास, विधि का उल्लंघन करने के कारण होने वाले युद्ध आदि की दृष्टि से दोनों कथाओं में अपूर्व साम्य है। लेखक ने अश्वत्थामा के जीवन में दुःखांत तत्त्व पहचाना है तथा उसे एक अत्यंत सफल दुःखांत नायक के रूप में चित्रित किया है। उसके लिए कुछ परिवर्तन भी किए गए हैं। महाभारत का ब्रह्मचारी अश्वत्थामा यहाँ विवाहित है। उसके एक पुत्र भी है। और भी अनेक भारतीय एवं यूनानी पात्रों को समानांतरता के साँचे में ढालने का प्रयत्न किया गया है। कवि की कल्पना है कि अश्वत्थामा तथा एकलव्य कर्नाटक के वीर थे जो उत्तर में जाकर महाभारत युद्ध में लड़े थे। अश्वत्थामा के व्यक्तित्व में ही 'ट्रैजेडी' के बीज निहित हैं। वह महान् वीर है किंतु हठी है। उसका हठ उसे विचारांध बना देता है। दैव-विरोधी कार्य करने के कारण वह असफल होता है। अंत में अपनी करनी पर वह पछताता है। किंतु केवल पश्चात्ताप से उसे तृप्ति नहीं होती। अतः वह आत्महत्या करने की ठानता है। उसका पुत्र उसके पास आता है, उसे आशीर्वाद देकर वह उसे अपने अस्त्र देता है, एकलव्य को उसका रक्षक नियुक्त करता है और अंत में तीर्थयात्रा का बहाना बनाकर वहाँ से चला जाता है। अंत में चिरंजीवी अश्वत्थामा यहाँ अभिमन्यु-प्रदत्त खड्ग को टेककर उस पर गिर पड़ता है और इस प्रकार आत्महत्या

में उसका अंत होता है। उसके उपरांत एकलव्य अपने गुरुपुत्र की खोज में आता है। उसका शव-संस्कार करने का प्रयास करता है। किंतु भीम उसे रोकता है, एकलव्य और भीम के बीच झगड़ा बढ़ता है। अंत में श्रीकृष्ण आकर अश्वत्थामा का गुणगान करते हैं और भीम को शव-संस्कार-विरोध से विरत करते हैं। अश्वत्थामा का पतन तथा पुनरुद्धार इस नाटक की प्रधान वस्तुएँ है। महापुरुष अश्वत्थामा में हठ एक दुरंत दोष है जिसके कारण उसका सर्वनाश होता है। अंत में वह आत्माहुति से परिशुद्ध बनता है। महाभारत में वह चिरजीवी है, किंतु उसकी चिरजीविता उसके लिए शाप बन जाती है।

'अश्वत्थामन्' एक श्रेष्ठ नाट्य कृति है। इसकी भाषा प्राचीन कन्नड है जो बहुत ही ओजमय है। ट्रैजेडी, कल्पना तथा दुःखांत तत्त्व के निरूपण के लिए एक सफल माध्यम बनाकर स्व० बी० एम० श्रीकंठय्याजी ने कन्नड को एक अद्भुत कृति दी है।

अश्वथतमन् *(क० पा०)*

अश्वत्थामन्' स्व० बी० एम० श्रीकंठय्याजी (दे०) की महान् नाट्य-कृति 'अश्वत्थामन्' (द०) का नायक है। वह दुखांत नायक है। दो प्राचीन इतिहासों के मेल से जन्मे अश्वत्थामा का चरित्र दोनों का सार ग्रहण कर अधिक जीवंत बना है। महाभारत के अनुसार वह अपने सर्वस्वभूत जीवरत्न को खोकर हजारों सालों तक भटकता रहता है। वही यहाँ आत्महत्या के द्वारा अपने कलंक का क्षालन कर मनुष्यत्व से देवत्व प्राप्त करता है। वह तीरश्री के मंगलकलश द्रोण का एकमात्र पुत्र है। बालपन में ही उसने अपनी माँ को खोया। गरीबी से दर-दर भटकने वाले पिता के साथ रहकर अस्त्र-विद्या-पारंगत बना, वह अप्रतिम शूर है, आत्मपौरुष से युक्त है, महान् रणयोद्धा है, रुद्रावतार है।

पिता के साथ कुरुक्षेत्र आकर वह दुर्योधन का आश्रय ग्रहण करता है। महाभारत युद्ध में पराक्रम के साथ लड़ता है, किंतु उससे वही सुखी नहीं हुआ। पांडवों से और विशेषतः कृष्ण और भीम से प्रतिशोध लेने के प्रयत्न में वह अपकीर्ति के सागर में डूब जाता है। अंत में वह अपनी जन्मभूमि कर्णाटक में जाकर मर भी नहीं सकता क्योंकि अपकीर्तियुत वह वहाँ लौटने से हिचकिचाता है। द्रोण का पुण्य भी उसकी रक्षा नहीं कर सका। वह सर्वत्र हताश है। जीवन से हताश है, मित्रों से हताश है, दैव से हताश है। इस तरह सर्वत्र हताश हो वह आत्महत्या कर लेता है। अश्वत्थामा के दैव-प्रताड़ित जीवन को कवि ने अत्यंत आत्मीयता के साथ चित्रित किया है। उसके प्रति पाठकों की अजस्र सहानुभूति उमड़ पड़ती है। दैव के हाथ में पड़कर अपनी समस्त शक्ति खोने वाले महान् तेजस्वी का पतन पाठक के मन को करुणा और सहानुभूति से भर देता है। इस तरह दो परंपराओं एवं संस्कृतियों के सार-तत्त्व से अनुप्राणित अश्वत्थामा का चरित्र कन्नड के अन्यतम चरित्रों में है।

अषीक्कोड, सुकुमार *(मल० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

मलयालम के इस प्रतिभासंपन्न और निर्भीक समालोचक का कार्यक्षेत्र पत्रकारिता और अध्यापन रहा है। आजकल ये कालिकट विश्वविद्यालय में आचार्य हैं। 'रमणनुम् मलयाळकवितयुम्', 'आशांटे सीताकाव्यम्', 'जी० शंकर कुरुप्प् विमर्शिक्कप्पेट्टुन्नु' आदि इनके समीक्षात्मक ग्रंथ हैं। इन्होंने अपने समालोचनात्मक लेखन में सदा ही नूतन और मौलिक मत प्रस्तुत किए हैं। जी० शंकर कुरुप (दे०) की खंडनात्मक आलोचना करते हुए इन्होंने जो उपर्युक्त कृति रची वह साहित्यकारों के बीच सुदीर्घ चर्चा का विषय रही है। नई पीढ़ी के समालोचकों में इनका प्रमुख स्थान है।

अष्टछाप *(हिं० ले० वर्ग)*

कृष्णकाव्य के अंतर्गत पुष्टि मार्ग के संस्थापक महाप्रभु वल्लभाचार्य के चार और उनके पुत्र विट्ठलनाथ के चार प्रधान शिष्य भक्तकवि क्रमशः कुंभनदास, सूरदास (दे०), कृष्णदास, परमानंददास (दे०), गोविंदस्वामी, छीतस्वामी, नंददास (दे०) और चतुर्भुजदास 'अष्टछाप' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस संप्रदाय के इष्टदेव श्रीनाथ जी हैं। अपने इष्टदेव के अत्यंत निकटवर्ती ये कीर्तनकार भक्त कवि सखा भाव से उनकी प्रेमभक्ति में इतने अनुरक्त रहते थे कि श्रीनाथ जी के अष्टसखा भी कहे गए हैं। अष्टछाप के भक्तकवि विभिन्न जातियों और वर्गों के थे, लेकिन सभी अच्छे गायक थे। ये भक्तकवि सांसारिक जीवन में पूर्ण निर्द्वंद्व और निःस्पृह थे।

अष्टछाप काव्य प्रधानतः स्फुट और गीतिकाव्य है। लगभग सभी कवियों ने मंगलाचरण, गुरुमहिमा, नाम-माहात्म्य, यमुना एवं ब्रज-माहात्म्य आदि से संबंधित पद

रचे हैं। इन कवियों ने तानपूरा पर श्रीनाथ के मंदिर में कीर्तन के समय आत्मा की मधुरतम उद्वेलित होने वाली भावलहरियों को गा-गाकर जीवन के परे जो सत्य और सुंदर है उसे बहुत ही सहज भाव से उद्घाटित किया है। कृष्ण को काव्य का आलंबन बनाकर इन कवियों ने समाज को एक नई दिशा दी थी। निश्चय ही इन्होंने जीवन और साहित्य दोनों क्षेत्रों में मानवता के नवीन मूल्यों की स्थापना करके 'अलख' की पुकार लगाने वालों को जिस ढंग से निष्क्रिय और निरुत्तर किया था वह सदैव स्मरण किया जाता रहेगा।

अष्टदिग्गज *(ते० ले०-वर्ग)* [समय—सोलहवीं शताब्दी ई०]

विजयनगर राज्य के शासक श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) के आठ सभाकवि 'अष्टदिग्गज' के नाम से विख्यात हुए। श्रीकृष्णदेवरायलु 'आंध्रभोज' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके दरबार की कवि-पंडित-सभा का नाम ही 'भुवन-विजयमु' (दे०) है। इस सभा की आठों दिशाओं में आठ विशिष्ट स्थान आयोजित रहते थे तथा उन पर आठ प्रसिद्ध कवि आसीन रहते थे। पृथ्वी का भार धारण करने में आठों दिशाओं के हाथियों की तरह कविता-जगत् की प्रतिष्ठा के लिए ये आठ कवि आधार माने जाते थे। इसीलिए ये 'अष्ट-दिग्गज' के नाम से विख्यात थे।

'अष्टदिग्गज' नाम से विख्यात कवि कौन-कौन थे, इस विषय में साहित्य के इतिहासकारों में मतभेद है। अल्ल-सानि पेद्दना (दे०), नंदि तिम्मना (दे०), धूर्जटि (दे०), अय्यलराजु-रामभद्रुडु (दे०), मादय्यगारि मल्लना (दे०) नामक पाँच तेलुगु-कवियों को अष्टदिग्गजों के अंतर्गत मानने में वे प्रायः सहमत हैं। पर भट्टुमूर्ति (राजराजभूषणुडु (दे०) इनका दूसरा नाम है), तेनालि रामकृष्ण कवि (दे०) तथा पिंगाळि सूरना (दे०) नामक तीन कवियों के बारे में विवाद है। कारण, श्रीकृष्णदेवरायलु का शासन-काल 1509 ई० से लेकर 1530 ई० तक था और उपर्युक्त तीनों कवि 1530 तक तरुण अवस्था के थे। अधिकांश आलोचकों का मत है कि भट्टुमूर्ति तथा तेनालि रामकृष्ण युवक कवियों के रूप में श्रीकृष्णदेवरायलु के दरबार में सम्मानित रहे और अष्टदिग्गज के अंतर्गत इन दोनों की गणना की जा सकती है। दूसरा मत यह है कि अष्टदिग्गजों के अंतर्गत तेलुगु कवियों के अतिरिक्त कन्नड, तमिल आदि अन्य भाषाओं के कवि भी सम्मिलित रहे होंगे।

अष्टदिग्गजों में अल्लसानि पेद्दना का स्थान सर्वोपरि है। ये 'आंध्र-कवितापितामह' की उपाधि से विभूषित थे। इनके काव्य का नाम 'मनुचरित्र' (दे०) है। इसमें वर्णन, रचना-पद्धति तथा चरित्र-चित्रण इतने मार्मिक हैं कि इससे प्रभावित तेलुगु कवि शताब्दियों तक इसी प्रकार की रचनाएँ करते रहे थे। तेलुगु में इस प्रकार का काव्य 'प्रबंध' कहलाता है। उपर्युक्त आठों कवियों की प्रशस्ति का प्रमुख कारण प्रायः उनके द्वारा लिखे गए प्रबंध ही हैं। इनसे प्रभावित होकर श्रीकृष्णदेवरायलु ने भी 'आमुक्त-मालयदमु' (दे०) नामक एक प्रबंध लिखा। तिम्मना-कृत 'पारिजातापहरणमु' (दे०), भट्टुमूर्ति-कृत 'वसुचरित्र' (दे०), रामकृष्ण-कृत 'पांडुरंगमाहात्म्यमु' (दे०), धूर्जटि-कृत 'कालहस्तिमाहात्म्यमु' (दे०) नामक प्रबंध (काव्य) उच्च-कोटि के साहित्यिक महत्त्व के हैं। सूरना-कृत 'कलापूर्णोदयमु' (दे०) का कथानक कल्पित है। कल्पना तथा रचना संबंधी चमत्कार के लिए ये अत्यंत प्रसिद्ध हैं। उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त रामचंद्र कवि ने 'रामाभ्युदयमु' (दे०) तथा मादय्यगारि मल्लना ने 'राजशेखरचरित्र' नामक प्रसिद्ध काव्यों की रचना की।

'अष्टदिग्गज' नाम से विख्यात उपर्युक्त कवियों तथा उनके आश्रयदाता श्रीकृष्णदेवरायलु के द्वारा लिखे गए इन उत्कृष्ट प्रबंधों (काव्यों) के कारण 'प्रबंधयुग' का अवतरण हुआ तथा यह तेलुगु-साहित्य का 'स्वर्ण-युग' भी कहलाने लगा। पेद्दना, तिम्मना और भट्टुमूर्ति आदि के प्रबंध आंध्र-साहित्य रूपी नंदनोद्यान के कल्पवृक्ष हैं।

अष्टपदी *(उ० कृ०)*

'अष्टपदी' श्री सीताकांत महापात्र (दे०) का कविता-संग्रह है। इसका समग्र स्वर प्रभु, स्वर्ग, श्मशान, यमदंड आदि से परिपूरित है। इसकी 'सोयन' कविता में एक विजन सामुद्रिक द्वीपवासी की निस्संग परिपूर्णता का चित्रण है। समुद्र के साथ आत्मा के संपर्क के लिए आत्मा द्वारा एक उन्मुक्त ऐश्वर्यपूर्ण जीवन का संधान आवश्यक है। इसकी विभिन्न कविताओं के नायक आधुनिक नरक की अग्नि से दग्धीभूत हैं, जहाँ न तो जीवन है और न मृत्यु—एक ऐसी अवस्था है जहाँ पाप-पुण्य की अनुभूति भ्रष्ट और विपर्यस्त है। इस आशंका में कवि ने गहरी चिंता व्यक्त की है।

अष्टपदी (प० पारि०)

आदिग्रथ (दे०) मे दुपदे, तिपदे, चउपदे, पचपदे, छिपदे, अष्टपदे तथा सोलहे शीर्षकों से अनेक पद सकलित हैं। इनमे सख्या और विषय की दृष्टि से अष्टपदियाँ महत्त्वपूर्ण हैं। सिद्धाततः आठ मुक्तक पदो के एकक को अष्टपदी माना जाता है परतु 'आदिग्रथ' की अनेक अष्टपदियो मे आठ से अधिक पद सकलित हैं। उनमे प्रतिपद चरण सख्या अथवा प्रति अष्टपदी पदसख्या भी भिन्न-भिन्न है। ये अष्टपदियाँ विविध छदो और विभिन्न रागो मे निबद्ध हैं। अत कहा जा सकता है कि 'आदिग्रथ' की अष्टपदियाँ बधनमुक्त है और इस सज्ञा की सार्थकता गुरु-विवक्षा पर ही निर्भर है। इनका विषय गुरु, प्रभु नाम, सत्य आदि का उपदेशात्मक महिमा-गान है। विद्वानो के अनुसार चउपदो मे विरह की मार्मिकता की व्यजना रहती है और साधना मार्ग का निर्देशन अष्टपदियो का वर्ण्य विषय है। गुरुओ के अतिरिक्त कबीर आदि भक्तो द्वारा लिखित अष्टपदियाँ भी उपलब्ध होती है।

अष्ट प्रबन्धम (त० कृ०) [रचना काल—बारहवी शताब्दी ई०]

यह श्रीरगम के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त और तमिल एव सस्कृत के विद्वान् दिव्यकवि' पैरुमाळ् अय्यगार विरचित आठ 'प्रबध' कृतियो का सकलन है। 'अष्ट-प्रबध' नामकरण बाद के किसी सकलनकर्ता ने किया है। 'प्रबध' तमिल-काव्य की एक विधा है। इसमे सकलित प्रबध है—(1) 'श्रीरग वलबकम्' (100 पद्य) जिसमे श्रीरगनाथ के प्रति भक्त के प्रणयभाव की अभिव्यक्ति और माधुर्य भक्ति की विविध दशाओं का चित्रण है, (2) 'श्रीरग-माला' (111 पद्य) जिसमे भगवान के प्रति आत्मनिवेदन है, (3) 'श्रीरग अन्तादि' (100 पद्य), अन्तादि' का अर्थ है पद्यो की इस प्रकार योजना कि एक पद्य के अतिम चरण का अतिम भाग अगले पद्य के प्रारभ मे हो, इस कृति मे यमक और श्लेष की अद्भुत छटा है, (4) श्री रगनायक डोलिका' (झूला) (32 पद्य), (5) श्री वेंकटेशमाला' (100 पद्य) तिरुपति के मदिर में विराजमान वेंकटेश्वर के प्रति आत्मनिवेदन और भक्तिभाव के उद्गार, (6) 'श्रीवेंकटेश अन्तादि' (100 पद्य), (7) 'अळकर् अन्तादि' (मदुरै के पास एक प्रसिद्ध वैष्णव तीर्थ-स्थान मे स्थित) भगवान का वर्णन, (8) 'अष्टोत्तरशत तीर्थ' (108 पद्य)—वैष्णवो मे मान्य एक सौ आठ तीर्थ-स्थानो का वर्णन।

यमक, श्लेष आदि अलकारो की (जिन्हे तमिल काव्यशास्त्र मे छद की विशेषता माना गया है) विशेषताओ के लिए यह कृति तमिल जगत मे अत्यत प्रसिद्ध है। आळ्वार तमिल-सतो की रचना-परपरा मे 'अष्टप्रबन्धम्' का प्रमुख स्थान है और विशिष्टाद्वैत दर्शन मे भी इसका बडा महत्त्व है।

अष्टाध्यायी (स० कृ०) [रचना-काल—600 ई० पू० लेखक पाणिनि (दे०)]

अष्टक, शब्दानुशासन और वृत्तिसूत्र अष्टाध्यायी' के ही दूसरे नाम है। चीनी यात्री इत्सिग ने 'अष्टाध्यायी' के लिए 'वृत्तिसूत्र' नाम का प्रयोग किया है।

जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है, 'अष्टाध्यायी' के अतर्गत आठ अध्याय हैं। 'अष्टाध्यायी' के सूत्र ही समस्त पाणिनीय व्याकरणशास्त्र के मूल आधार है। यद्यपि पाणिनि ने अपने पूर्ववर्ती समस्त व्याकरणशास्त्र का उपयोग अष्टाध्यायी' की रचना के सबध मे किया है, परतु पाणिनीय व्याकरण का प्रधान आधार आपिशल व्याकरण ही कहा जाएगा। पाणिनि ने 'अष्टाध्यायी' की रचना मे शब्दलाघव तथा अर्थलाघव को विशेष महत्त्व दिया है। 'अष्टाध्यायी' के अतर्गत वर्णित 'टि' तथा 'घु' सज्ञाएँ पाणिनि की लाघव शैली की परिचायक है। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' मे अनेक सूत्र यथावत् प्राचीन व्याकरण मे लिये गए हैं। यह 'अष्टाध्यायी' की समन्वयात्मक शैली है।

'अष्टाध्यायी' व्याकरणशास्त्र के क्षेत्र म एक महान् देन है। 'अष्टाध्यायी व्याकरणशास्त्र का प्रमुख द्वार है जिसमे प्रवेश किए बिना व्याकरणशास्त्र का बोध असभव है।

असग (स० ले०) [समय—450 ई०]

असग की प्रमुख रचना 'योगाचारभूमिशास्त्र' है। असग योगाचार विज्ञानवाद के प्रधान आचार्य हैं। विज्ञानवादी बौद्धो ने जब योग का अभ्यास आरभ कर दिया था तो वे योगाचार कहलाने लगे थे, ऐसा अनेक विद्वानो का विचार है।

असग के मतानुसार बाह्य विषयो की सत्यता का निषेध किया गया है। बाह्य विषयो को असग विज्ञान मात्र

कहते हैं। विज्ञानवादी असंग के अनुसार बाह्य विषय अनमिलाद्य तथा निःस्वभाव हैं। बाह्य विषयों के बोध का कारण 'आलयविज्ञान' है।

असंग ने परिकल्पित सत्ता, परतंत्र सत्ता तथा परिनिष्पन्न सत्ता के रूप में तीन प्रकार की सत्यता का निरूपण किया है। इनमें परिनिष्पन्न सत्ता तथ्यता-रूप है। यही परिनिष्पन्न सत्ता विज्ञानवादी का सर्वोच्च सत्य है। असंग के अनुसार यह सर्वोच्च सत्य 'विज्ञप्तिमात्रता' के रूप में वर्णित हुआ है। असंग की प्रमुख देन चित्तविज्ञान का निरूपण है। समस्त सांसारिक विषयों का आधार, असंग के अनुसार, चित्त ही है।

असंलग्न *(उ० ले०)*

'असंलग्न' श्री यतींद्रकुमार महापात्र (दे०) का चेतनाप्रवाहमूलक उपन्यास है तथा नूतन सरणि की पुस्तकों में अन्यतम है। इसका नायक विजय शैशव से पृथ्वी का आविष्कार करता चलता है। अवाक् विस्मित नेत्रों से संवेदनशील हृदय को पाथेय कर आयु की राह पर वह चलता ही जा रहा है। जितना वह आगे चलता जाता है, उतना ही अधिक वह अपना अन्वेषण करता जाता है। झील के समान गहरा और समुद्र के समान रहस्यमय है उसका मानस। आंग्लोइंडियन समाज की प्रतिनिधि डरोथी, कैथोलिक फ़ादर, संस्कृत पंडित, नन इमा, पुलिस साहेब की स्त्री, सभी उसके सम्मुख एक-एक विभक्त व्यक्तित्व लिये विशिष्ट चरित्र के रूप में प्रकट होते जाते हैं।

असग *(क० ले०)* [समय—853 ई०]

पंपपूर्व युग के इस कवि का समय 853 ई० ठहराया गया है। इनकी प्रशंसा बहुत-से कन्नड कवियों ने की है। इन्होंने संस्कृत में 'शांतिपुराण' तथा 'वर्धमानपुराण' की रचना की है। दसवीं शती के अपभ्रंश कवि धवल ने अपने 'हरिवंश पुराण' में असग की प्रशंसा यों की है—

"असगु महकइ जें सुमणोहर।
वीर जिणेन्द्र चरिउ किलु सुंदर।
केतिय कहमि सुकइ गण आयर।
गेम कव्व जहि विरहम सुंदर॥"

इनके 'शांतिपुराण' एवं कन्नड कवि पोन्न के 'शांतिपुराण' में बहुत साम्य है। जयकीर्ति (900 ई०) ने अपने छंदानुशासन नामक संस्कृत ग्रंथ में इसका उल्लेख किया है कि असग ने 'कर्णाटक कुमारसंभव' नामक अपने काव्य में कई कन्नड वृत्तों का प्रयोग किया है। इसी 'कुमारसंभव' के कई पद्य नागवर्मा के काव्यावलोकन में उद्धृत हुए हैं। केशिराज ने अपने 'शब्दमणिदर्पण' में प्रमाणभूत कवियों के रूप में इसकी गणना की है।

असग़र गोंडवी *(उर्दू ले०)* [जन्म—1884 ई०, मृत्यु—1936 ई०]

गोंडा में जन्मे, प्रारंभिक शिक्षा सामान्य रही, कुछ अँग्रेज़ी भी पढ़ी किंतु मैट्रिक की परीक्षा न दे सके। फिर भी नैसर्गिक प्रतिभा के बल पर इतना ज्ञानार्जन कर लिया कि स्वतंत्र रूप से अरबी, फ़ारसी और अँग्रेज़ी साहित्य पढ़ने, समझने और उससे आनंद-लाभ करने की क्षमता आ गई। संयमी और इंद्रियनिग्रही होते हुए भी स्वभाव में रंगीनी और विनोदप्रियता थी तथा 'तसव्वुफ़ से विशेष प्रेम था। नौकरी के सिलसिले में इलाहाबाद रहे और हिंदुस्तानी एकेडमी की पत्रिका 'हिंदुस्तानी' का संपादन करते रहे।

इनकी भाषा, भाव और शैली में अनूठापन है। प्रारंभ में अनुकरण के तत्त्व विद्यमान थे, किंतु कालांतर में इनका एक स्वतंत्र स्वर उभरने लगा। असग़र की प्रमुख विशेषता इनके स्वर की वह रंगीनी है जो पाठक को एक सुखद ढंग से छेड़ती और प्रभावित करती है। दूसरी विशेषता स्थिरता और व्याकुलता का समन्वय है। प्रेमी-प्रेमिका के परस्पर अंतर्द्वंद्व और मानवीय भावनाओं का अभाव है जो आधुनिक ग़ज़ल का एक सामान्य अभाव बन गया है। इनके समस्त काव्य में आनंद और उन्माद की स्थिति विद्यमान है। इनके वे शेर विशेष रूप से सुंदर बन पड़े हैं जिनमें जड़ पदार्थों को चेतन मान लिया जाता है। उपमा तथा अलंकारों के प्रति कवि विशेष रूप से सजग है किंतु उसमें भी सामान्य तथा घिसे-पिटे अलंकारों से हटकर ऐसी नवीनता ले आता है कि काव्य का सौंदर्य द्विगुणित हो जाता है।

आशावादिता, युक्तियुक्तता और रंगीनी असग़र के काव्य के वे अनिवार्य तत्त्व हैं जो न केवल इनके विचारों में वरन् इनकी शैली में भी दृष्टिगत होते हैं। इनके यहाँ तथ्य से अधिक महत्त्व शैली का है। इनमें एक विशेष प्रकार का सौंदर्य-बोध है जिसका उर्दू के अन्य कवियों में अभाव है। उर्दू काव्य की उदासी, विषाद और नैराश्य को

दूर करने मे असगर का अपना योगदान रहा है। 'निशाते-रूह' इनका प्रसिद्ध सग्रह है।

असमर्थुनि जीवितयात्रा (ते० कृ०)

'असमर्थुनि जीवितयात्रा' गोपीचदुडु (दे०) का सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास है। समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे नैतिकता, सत्य एव न्याय को देखने की आशा रखने वाले इस उपन्यास के नायक को हर क्षण निराशा एव वितृष्णा का ही अनुभव होता है। वास्तविक जीवन के सग्राम मे दिखाई देने वाले स्वार्थ, कपट, मिथ्या आडबर आदि से क्षुब्ध होकर वह अपनी अत्यल्प शक्ति से इनके विरुद्ध विद्रोह करना चाहता है और समाज मे धर्मात्माओ के रूप मे प्रतिष्ठित व्यक्तियो के जीवन की वास्तविकता का भडाफोड भी करना चाहता है किंतु उस असमर्थ का विद्रोह अतत एक विक्षिप्त का हास्यास्पद प्रलाप मात्र बनकर रह जाता है। उसके विचारो का आदर नही होता और वह ससार मे अकेला पड जाता है। इसके उपरात ज्यो-ज्यो उसका आक्रोश बढता जाता है, त्यों-त्यो समाज के विरुद्ध उसका प्रलाप बढता जाता है। इसी प्रक्रिया मे उसकी दयनीय जीवन-लीला समाप्त हो जाती है और उसकी क्राति का कोई अवशेष बच नही पाता। इस प्रकार इस उपन्यास मे समाज मे बहुतायत से पाये जाने वाले उदारचेता किंतु समाज की क्रूरताओ को सहने की दृष्टि से अल्प एव असमर्थ व्यक्तियो के एक प्रतिनिधि का मार्मिक चित्रण किया गया है। प्राय सभी साहित्यकार केवल जीवन मे सफलता पाने वाले समर्थ चरित्रो का वर्णन करते हैं। किंतु गोपीचदुडु ने यहाँ जीवन के सघर्ष मे छिन्न भिन्न होने वाले असमर्थों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।

'असर (उर्दू ले०) [जन्म—1885 ई०]

जन्म स्थान—लखनऊ, पिता का नाम—हकीम मिर्जा अफजल हुसैन खाँ। 1919 ई० मे ये डिप्टी कलक्टर के पद पर नियुक्त हुए थे। उर्दू के श्रेष्ठ कवियो मे इनका नाम बडे आदर के साथ लिया जाता है। इनकी कविताओ का सग्रह 'रगबस्त सन् 1944 ई० मे प्रकाशित हुआ था। इस सग्रह से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ये गजल और नज्म दोनो के शहसवार हैं। इनकी कविताओ मे ओजगुण के साथ साथ सशक्त भाषा शैली के दर्शन होते है। इनकी काव्य-शैली पर मीर' (दे०) की छाया दीखती है। कवि के अतिरिक्त ये अच्छे आलोचक भी हैं। 'छानबीन और 'मीर अनीस की मरसियानिगारी' इनकी आलोचना कृतियाँ है।

असले ते ओहले (प० कृ०) [प्रकाशन वर्ष—1955 ई०]

डा० जसवतसिंह नेकी (दे०) के इस प्रथम काव्य सग्रह के प्रकाशन से पजाबी आलोचना-जगत मे वाद विवाद उठ खडा हुआ। इसमे कवि का बल शैली शिल्प की अपेक्षा चिंतन के नये आयाम प्रस्तुत करने की ओर अधिक रहा है। एक ओर वैज्ञानिक दृष्टिकोण और दूसरी ओर व्यक्तिगत नैतिक मूल्यो के द्वद्व मे जी रहे आज के मनुष्य के अनुभव को काव्यबद्ध करने मे डा० नेकी को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। इस कविता मे 'टिब्बे', 'पब्बा दे नकश', थल' आदि बिंब हमारी लोक सस्कृति के अनुभव को रूपायित करते हैं जो आज भी आधुनिक मनुष्य के जीवन मे जीवित है और इनके साथ-साथ अणु परमाणु के नवीन बिंब आधुनिक मनुष्य की दुश्चिता और सकट को प्रकट करते हैं। नवीन पजाबी कविता मे यह रचना विशेष महत्व की अधिकारिणी है।

असाइत (गु० ले०) [समय—चौदहवी शती का उत्तरार्द्ध]

मध्यकालीन गुजराती के सर्वप्रथम जैनेतर कवि, गायक, वक्ता कथाकार, असाइत ठाकर (समय—लगभग 1370 ई०] सिद्धपुर ग्रामवासी राजाराम ठाकर के पुत्र थे।

अपने उभा-निवासी यजमान की रूपवती कन्या गगा को मुसलमान सरदार जहानरोज से छुडाने के लिए, उसे अपनी भानजी घोषित कर, इन्होने एक ही थाली मे उसके साथ भोजन किया। तब से ये अपने तीनो पुत्रो—माडण, जयराज और नारण—समेत जाति से बहिष्कृत हुए और उभा मे जा बसे। इन्ही से आगे 'तरगाला' जाति का विकास हुआ जो आज भी भवाई व रामलीला खेलती है।

इनकी प्रसिद्ध रचना है 'हसाउली'। इन्होने भवाई के 360 वेश भी लिखे। 'हसाउली' चार खडो मे है। प्रथम खड मे हसावली तथा नरवाहन का विवाह तथा शेष तीन खडो मे उनके दोनो पुत्रो—हसराज और बच्छराज—का पराक्रम वर्णित है। हसराज की मृत्यु पर बच्छराज का करुण विलाप बडा हृदयस्पर्शी है। कवि के कवित्व का यथार्थ दर्शन यही होता है।

गुजराती 'लोक-नाट्य' भवाई के आदि प्रवर्तक के रूप में इनका विशेष महत्त्व है।

'असीर' *(उर्दू ले०)* [जन्म—1800 ई०, मृत्यु—1881 ई०]

नाम—सैयद मुज़फ़्फ़र अली खाँ, उपनाम—'असीर'; पिता का नाम—सैयद इमदाद अली। ये 'मुसहफ़ी' (दे०) के शिष्य थे। वाजिद अली शाह के निकट संपर्क में ये आठ-नौ वर्ष तक रहे थे। उन्हीं के द्वारा ये 'तद्बीर-उद्-दौला' तथा 'मुक़द्दर-उल-मुल्क' की उपाधियों से अलंकृत किए गए थे। प्रथम स्वाधीनता-संग्राम के बाद नवाब कलब अली खाँ और फिर उनके सुपुत्र नवाब यूसुफ़ अली खाँ ने इनका संरक्षण किया था। इन्हें 'अमीर' मीनाई (दे०) के काव्यगुरु होने का श्रेय भी प्राप्त था। इनके छह दीवान (काव्य-संग्रह) हैं। इन काव्य-संग्रहों के अतिरिक्त इनका एक काव्य-संग्रह फ़ारसी में भी है। छन्दःशास्त्र और भाषा पर इन्हें अधिकार था। मरसिया और कसीदा लिखने में भी ये सिद्धहस्त थे। अपने काव्य-सृजन में ये लखनवी शैली का अनुसरण किया करते थे।

असुरवित्तु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

यह एम० टी० वासुदेवन् नायर (दे०) का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। इसमें मलाबार के एक मध्यवर्गीय युवक की कहानी है जो समाज के तिरस्कार का पात्र बनता है—आसुर बीज से उत्पन्न कहलाता है। परंतु विपत्ति के समय में गाँव वालों के लिए वही एकमात्र सहारा बन जाता है।

इस उपन्यास में लेखक ने अपनी सहज प्रवाहयुक्त शैली में मलाबार के ग्राम्य जीवन का सुंदर चित्रण किया है। यद्यपि गाँव का वातावरण असहायों को धोखा देने वाले धनिकों और मनुष्य को परस्पर लड़ाने वाले सांप्रदायिकतावादियों के दुष्कर्मों से कलुषित है फिर भी मानव के मौलिक सद्भाव की धारा कभी नहीं बुझती, यही तथ्य इस उपन्यास का मुख्य संदेश है। वासुदेवन् नायर के उपन्यासों में इसका मुख्य स्थान है।

अस्तिकाय *(प्रा० पारि०)*

जैन-सिद्धांत के अनुसार द्रव्य दो प्रकार का होता है—विकासशील और विकासहीन। दूसरे प्रकार का द्रव्य तो केवल 'काल' होता है; शेष सभी द्रव्य विकासशील होते हैं जिन्हें सशरीर या शरीरवत् होने के कारण 'अस्तिकाय' कहा जाता है। ये अस्तिकाय द्रव्य दो प्रकार के होते हैं—जीव और अजीव। जीव अनंत शक्ति, ज्ञान और आनंद का अक्षय भांडार होता है, किंतु कर्मजन्य बंधन उसकी सर्वज्ञता और सर्वप्रमुख विशेषता 'चेतना' को उसी प्रकार सीमित कर देते हैं जैसे सूर्य का अनंत प्रकाश बादलों से ढक जाता है। उस समय जीव कर्मजन्य शरीर से आवृत रूप में ही प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार प्रकाश आवरणीय द्रव्य में समा जाता है और उसी की आकृति धारण कर लेता है उसी प्रकार जीव शरीर के प्रत्येक अवयव में समाया होता है और उसकी वृद्धि के साथ उसके शरीर को पेरता जाता है। मिट्टी, पत्थर, वृक्ष, पौधे इत्यादि के एकेंद्रिय जीव हैं क्योंकि इनमें 'स्पर्श' की ही इन्द्रिय होती है। इन एकेंद्रिय जीवों को 'स्थावर' जीव कहा जाता है। जिन जीवों में एक से अधिक इंद्रियाँ होती हैं उन्हें 'त्रस' जीव की संज्ञा प्राप्त होती है। कीड़ा इत्यादि स्पर्श और रस की दो इंद्रियों वाले जीव होते हैं; चींटी इत्यादि स्पर्श, रस और गंध की तीन इंद्रियों के जीव होते हैं, मक्खी इत्यादि में स्पर्श, गंधरस, गंध और रूप की चार इंद्रियाँ होती हैं और पक्षी, पशु, मनुष्य इत्यादि बड़े जीवों में श्रवण के सहित चार इंद्रियाँ होती हैं। ये सभी बद्धजीव हैं। जैन वचनों पर विश्वास और उन पर आचरण से कर्मबंधन ढीले पड़ते जाते हैं। तब धीरे-धीरे जीव को पूर्ण प्रकाश की अवस्था प्राप्त हो जाती है। ये सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, आनन्दघनजीव, 'मुक्तजीव' कहे जाते हैं। जैन धर्म में इन्हें ही तीर्थंकर (दे०) कहा जाता है। इनसे भिन्न कोई ईश्वर नहीं होता। इस प्रकार सब से अधिक स्थूल रूप निचली सीमा से ऊपर उठाकर ईश्वर बना देने तक का आश्वासन जैन धर्म की सबसे बड़ी विशेषता है। ये सब जीव पदार्थ हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय अजीव पदार्थ भी होते हैं। विकास के लिए तथा अपने को प्रकट करने के लिए जीव को इनकी आवश्यकता पड़ती है। ये हैं—पुद्गल या शरीर-रचना के उपकरण प्रकृति तत्त्व, आकाश और वस्तु। धर्म-अधर्म जीव को कर्म का अवसर उसी प्रकार देता है जिस प्रकार जल मछली को तैरने का अवकाश प्रदान करता है। ये सभी तत्त्व अस्तिकाय कहलाते हैं।

अस्तित्ववाद *(हि० पारि०)*

'अस्तित्ववाद' उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध और वर्तमान शती के पूर्वार्द्ध में विकसित एक व्यक्तिवादी

पाश्चात्य दार्शनिक अवधारणा है जिसके अनुसार मनुष्य का वैयक्तिक अस्तित्व ही समस्त जागतिक व्यापार का केंद्रीय सत्य है। यद्यपि संत आगस्तीन एवं सुकरात जैसे प्राचीन तथा पास्कल जैसे मध्ययुगीन विचारकों के चिंतन मे भी अस्तित्ववादी विचारधारा का आभास खोजा जा सकता है, किंतु एक चिंतन-पद्धति और साहित्यिक मतवाद के रूप मे इसका विकास अपेक्षाकृत एवं आधुनिक घटना है, जिसके साहित्यिक आंदोलन मे अनेक डेनिश, जर्मन, फ्रेंच, रूसी, अमरीकी और अँग्रेज लेखको ने विवेचनात्मक और सर्जनात्मक दोनो रूपो मे योगदान किया।

अस्तित्ववाद के अनुसार मनुष्य के लिए एक-मात्र महत्त्वपूर्ण एवं केंद्रीय सत्य सामाजिक गतिविधान, नियमो, अनुशासनो, धारणाओ तथा गतानुगतिक एवं पूर्व-निर्मित संस्कारो आदि से पूर्णतया निरपेक्ष उसका निजी अस्तित्व है, जिसका निर्वचन अथवा विश्लेषण पहले से बन बनाई चिंतनात्मक अथवा वैज्ञानिक शब्दावली मे नही किया जा सकता। 'अस्तित्व' की स्थिति तत्त्व से पूर्व की है, नितांत निजी अस्तित्व का स्वामी व्यक्ति किसी पूर्व प्रतिष्ठित संसार एवं सुनिर्धारित स्थिति मे आविर्भूत नही होता, बल्कि वह स्वयं अपने 'स्वतंत्र' संसार के निर्माण के लिए निरंतर क्रियाशील रहता है और अंत मे जब यह निज' का स्वनिर्मित 'स्वतंत्र' 'संसार' पूर्णतया मूर्त हो जाता है तो वह व्यक्ति उसके लिए 'प्रामाणिक', बल्कि एक-मात्र प्रामाणिक वस्तु बन जाता है। व्यक्ति के लिए उसकी अपनी अस्मिता के वृत्त मे ही सार्थकता है। अपने अस्तित्व के वैयक्तिक वृत्त मे व्यक्ति पूर्णतः स्वतंत्र एवं दायित्व-पूर्ण है, किंतु उसकी यह स्वतंत्रता एवं दायित्व-भावना केवल उसके अपने लिए है।

अस्तित्ववादियो के अनुसार मनुष्य के इस वैयक्तिक अस्तित्व को अपनी सत्ता और स्वरूप की अक्षुण्णता की रक्षा के लिए 'समूहवाद', सिद्धांतवाद, वस्तुवाद, निर्वैयक्तिकता, सामाजिकता और रीतिबद्ध चिंतन-पद्धति आदि से निरंतर संघर्षशील रहना पड़ता है (अस्तित्ववाद के शास्त्र मे संघर्ष के लिए 'एंगेजमेंट' शब्द का व्यवहार किया गया है)। व्यक्ति के निजी अस्तित्व को बनी-बनाई लीक तथा सुनिश्चित 'विवेक-सम्मत' आधार पर समझने का प्रयास व्यर्थ है। इस प्रकार अस्तित्ववाद मनुष्य के लिए बाहर के अशुद्ध प्रभावो से सुरक्षित वैयक्तिक अस्तित्व का एक अलग अनुभव संसार बनाने मे विश्वास करता है। इन अनुभवो मे यंत्रणा, संत्रास, अपराध-भाव और मृत्यु-बोध का विशेष स्थान है, जो 'अस्तित्व' के रक्षण के लिए व्यक्ति को विशेष सजग, दायित्वपूर्ण और क्रियाशील रखते है।

अस्तित्व की दो धाराएँ हैं ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी। ईश्वरवादी अस्तित्ववाद (पाश्चात्य समीक्षा मे इसका एक बहुप्रचलित अभिधान है क्रिश्चियन एग्जिस्टेंशियलिज्म) के अनुसार मनुष्य का वैयक्तिक अस्तित्व और उससे संबद्ध संघर्षशीलता अनिवार्यतः ईश्वरीय पथ की अनुगामी है। अस्तित्ववाद के इन दोनो रूपो को अलग-अलग कारणो से मार्क्सवाद और धार्मिक मतवादो का विरोध सहना पड़ा है। आधुनिक भारतीय साहित्य मे अस्तित्ववाद का प्रभाव प्रायः 'बौद्धिक' चर्चाओ तक ही सीमित है, नये सर्जनात्मक कथा एवं कथा-साहित्य पर इसका कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है किंतु वह अधिकांशतः आरोपित है, वास्तविक जन-जीवन के भीतर से उद्‌भूत नही।

अस्पष्ट-आख्यान *(उ० कृ०)*

डा० मन्मथनाथ दास (दे०) कृत यह नाट्य उपन्यास (ड्रामा नॉवेल) उड़िया उपन्यास-जगत् मे एक प्रयोग है। डा० प्रकाश (दे०) मानव का अध्ययन करने के प्रयास मे अपने अंतरंग एवं निकटतम व्यक्ति को समझने मे असमर्थ सिद्ध होते हैं। जिस गवेषणा के पीछे वे जीवन का समस्त सुख छोड़कर अनुसंधानरत रहते हैं, वह अंततो गत्वा दयनीय रूप से मिथ्या प्रमाणित होती है। इस गवेषणा के द्वारा किसी भी सिद्धांत या निष्कर्ष पर पहुँचना संभव नही है, यह सदा से एक अस्पष्ट आख्यान रहा है और रहेगा।

अस्बाब-ए-बगावत-ए-हिन्द *(उर्दू ले०)* [रचना काल—1958 ई०]

'अस्बाब ए-बगावत ए-हिन्द' सर सैयद अहमद खाँ (दे०) की रचना है। इसमे सन् 1857 के युद्ध के कारणो पर प्रकाश डाला गया है। अँग्रेज सरकार की त्रुटियो और अनियमितताओ को ही इसके लिए उत्तरदायी ठहराते हुए उसके समस्त अनाचार गिनाए गए हैं।

सर सैयद ने लिखा है कि भारत के लोग और सेना सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र मे रत नही थे बल्कि वर्षों से ऐसी बातें हो रही थी जिन से लोगो का दिल भारत सरकार से फटता जा रहा था। इसका मुख्य कारण यह था कि भारत के शासन एवं संविधान के निर्माण मे भारतीयो को कोई स्थान एवं महत्त्व प्राप्त न था। लोग सर-

कार के इरादों को समझ न सकते थे और उन्हें समझाने की कोई व्यवस्था नहीं थी। एक तो सरकार भारतीयों का शोषण कर उन्हें दीन-हीन बनाना चाहती थी और दूसरे उनके धर्म में हस्तक्षेप कर उन्हें ईसाई बनाना चाहती थी। इन्हीं सब तत्वों से मिलकर 1857 ई० की क्रांति का विस्फोट हुआ था।

सर सैयद की यह रचना इस क्रांति की पृष्ठ-भूमि प्रस्तुत करने वाली एक महत्वपूर्ण रचना है। इसके आधार पर एक ओर उन्हें भारतीयों का हितचिंतक और दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार का ग़द्दार कहा जाने लगा था।

अहद जरगर *(कश्० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

इनकी कविता के विषय हैं तसव्वुफ़ और ऐहिक प्रेम। शैली सामान्य किंतु व्यंग्य और हास्य से पूर्ण है। इनकी कृतियाँ हैं: 'कलाम-ए-अहद जरगर' (दस खंडों में), 'अकनन्दुन कलान', 'गुल-ओ-सनोबर' और 'मौलवीनामा'। इसके अतिरिक्त इनका सूफ़ियाना कलाम भी प्रकाशित हुआ है। इनकी भाषा में प्रवाह है और इनकी रचनाओं की विशेषता है शब्द की लक्षणा शक्ति। आधुनिक युग में सूफ़ी संत-परंपरा को निभाने वाले यह विरले कवि हैं।

अहनानूरु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा पूर्व दूसरी शती से ईसा की दूसरी शताब्दी तक]

अष्ट पद्य-संग्रहों में अहनानूरु का बहुत महत्त्व है। तत्कालीन अहम् काव्यों में सर्वाधिक विस्तृत होने के कारण इसे नेडुन्तोगै कहा गया। इसमें विभिन्न कवियों द्वारा रचित 400 पद है जो अहवल् छंद में रचित है (रचना के आरंभ में मंगलाचरण के पद है जिसके रचयिता पेरुदेवनार हैं)। संपूर्ण कृति कलिट्रियानैनिरै, मणिमिडै पवलम् और नित्तिलक्कोवै नामक तीन भागों में विभाजित है जिनमें क्रमश: 120, 180 और 100 पद हैं। ये पद 13 से लेकर 37 पंक्तियों तक के हैं। इसमें पाँचों भू-भागों और उनके निवासियों के जीवन का विस्तृत वर्णन है। कुरिंजि संबंधी पदों में पूर्वराग, मुल्लै, नेयदल, और पालै-संबंधी पदो में प्रेमी-प्रेमिका की विरहानुभूतियों और मरुदम-संबंधी पदों में सुखी वैवाहिक जीवन तथा उसमें आने वाली बाधाओं का वर्णन है। कवियों ने विभिन्न भू-भागों का और विभिन्न मनोभावों का वर्णन इतने सुंदर, सजीव और मर्मस्पर्शी ढंग से किया है कि हमें वे वर्णन कवि के व्यक्तिगत जीवन से संबंधित प्रतीत होते हैं। पदों में चित्रात्मकता है। उपमा अलंकार का तथा सांकेतिक शब्दावली का प्रयोग-सौष्ठव दर्शनीय है। इसमें प्राचीन तमिल लोगों की सभ्यता, संस्कृति, प्रथाओं का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। कुछ पदों में द्राविड़ों के मौलिक विवाह-संस्कार का वर्णन है। अहनानूरु में तत्कालीन प्रसिद्ध राजाओं और सामंतों के शासनादि से संबंधित पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है। यह सामग्री तत्कालीन तमिल समाज का प्रामाणिक इतिहास तैयार करने में सहायक सिद्ध होती है।

अहप्पोरुळ् *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य दो भागों में विभाजित है—'अहम्' और 'पुरम्'। अहम् साहित्य में व्यक्तिगत जीवन और पुरम् साहित्य में सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का वर्णन होता है। नायक-नायिका के परस्पर समान प्रेम से उत्पन्न भावनाओं, उनके व्यक्तिगत आनंद, वैवाहिक जीवन, कालांतर में उत्पन्न उनके मानसिक प्रेम आदि का वर्णन 'अहप्पोरुळ्' कहलाता है। अहप्पोरुळ् के तीन भाग है—कैक्किळै, ऐंतिणै और पॆरुतिणै। कैक्किळै से तात्पर्य है एकपक्षीय प्रेम। नायक-नायिका में से किसी एक के मन में प्रेम का उदय, उनका विवाह, वैवाहिक जीवन आदि का वर्णन कैक्किळै के अंतर्गत आता है। कुल, गुण, रूप, धन, यौवन, प्रेम-भाव आदि की दृष्टि से समान नायक-नायिका का स्वयमेव मिलन, विवाह, वैवाहिक जीवन आदि का वर्णन ऐंतिणै के अंतर्गत आता है। समान प्रेम-रहित नायक-नायका का मिलन, माता-पिता द्वारा उनकी इच्छानुसार या इच्छा विरुद्ध विवाह, वैवाहिक जीवन आदि का वर्णन पॆरुतिणै के अंतर्गत आता है। यहाँ नायक-नायिका में ऐंद्रिय प्रेम की प्रधानता होती है और उनकी आयु में भी पर्याप्त अंतर होता है। साहित्यकारों ने ऐंतिणै के अंतर्गत वर्णित विवाह-पद्धति और वैवाहिक जीवन को सर्वश्रेष्ठ माना है। अहम् साहित्य में मुख्यतः उरिप्पारुळ् का ही वर्णन होता है। इसमें तलैवन् (नायक) और तलैवी (नायिका) के आवश्यक लक्षणों का निर्देश भी है। अहप्पोरुळ् के दो भाग हैं—कळवु अर्थात् विवाह-पूर्व उत्पन्न प्रेम और कर्पु अर्थात् दाम्पत्य जीवन। इनका वर्णन भी अहम् साहित्य में होता है।

अहमद नदीम कासिमी *(उर्दू ले०)* [जन्म—1916 ई०]

जन्म-स्थान—अगा ग्राम, जिला—शाहपुर (पजाब)। इन्होने सन् 1935 मे बी० ए० पास किया था। सन 1939 ई० मे मुलतान के सिंचाई विभाग मे तीन वर्ष तक काम करते रहे। तदुपरात ये सन् 1942 मे 'फूल' और 'तहज़ीब-ए-नसवाँ' के सपादक बने थे। इसके अनतर शीघ्र ही कुछ समय के लिए 'अदब-ए-लतीफ' के सपादक हो गए थे। ये 'पाकिस्तान लेखक सघ' के सचिव के रूप मे भी कार्य करते रहे हैं। आजकल ये लाहौर मे शुद्ध शैक्षिक एव साहित्यिक जीवन व्यतीत कर रहे है।

प्रगतिवादी कवि के रूप मे इन्होने उर्दू साहित्य मे विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। ये पद्य-रचना के अतिरिक्त गद्य-लेखन भी करते हैं। गज़ल और नज़्म इनकी विशिष्ट काव्य-विधाएँ हैं। भाव और कल्पना का सुदर समन्वय इनकी कृतियो की विशेषता है। इनकी तीन कृतियाँ—'जलाल-ओ-जमाल', 'शोला ए-गुल' और 'रिम झिम' उर्दू जगत मे यथेष्ट लोकप्रिय हो चुकी है। इनकी सबोधन शैली अत्यत चित्ताकर्षक और हृदयस्पर्शी है। अरबी फारसी से अधिक प्रभावित होने पर भी इनकी भाषा मुहावरेदार और टकसाली है। सशक्त अभिव्यजना-शैली ने इनकी कृतियो को सर्वत्र नवीनता और प्रभविष्णुता प्रदान की है। भावुकता की अतिशयता इनकी स्वभावगत विशेषता है जिसके कारण इनके काव्य मे सच्ची आत्मीयता और उद्दाम उत्साह दोनो के तत्त्व प्रभूत मात्रा मे मिलते हैं। इनकी गज़लो मे प्राकृतिक तत्त्व अधिक है और शृगारिकता तथा प्रेम निरूपण अपेक्षाकृत कम है।

अहमदयार *(प० ले०)* [जन्म—1768 ई०, मृत्यु—1845 ई०]

अपनी रचनाओ की विशाल सख्या के प्रति गर्व सजग कवि अहमदयार का जन्म जिला गुजरात (अब पाकिस्तान) के एक कृषक-परिवार मे हुआ। ये बाल्यकाल से ही अध्ययनशील थे। स्वरचित 'हातमनामा' मे इन्होने अपने को चौदह विद्याओ और चौदह लिपियो का ज्ञाता कहा है परतु इनके कृतित्व मे अरबी-फारसी का ज्ञान ही मुखरित हुआ है। लगभग पचास वर्षों के सक्रिय साहित्यिक जीवन मे इन्होने 'हीर-राँझा', 'सस्सी-पुन्नू', 'लैला-मजनूँ', 'सोहणी-महीवाल', 'कामरूप', 'चदरबदन-महियार','राज बीबी-नामदार', 'अहसनुलकसिस', 'हातमनामा','वफातनामा','मैराजनामा', 'जग अहमद', 'जगबदर', 'सैफुल मुलुक', 'तमीम असारी', 'किस्सा तीतर' प्रभृति पचास से भी अधिक प्रेमाख्यानक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक ग्रथो की रचना की। इनकी अनेक कृतियो का स्रोत इस्लाम का धार्मिक साहित्य और फारसी मसनवियाँ है। रचना-पद्धति मे भी इन्ही का अनुकरण किया गया है। 'यूसुफ जुलेखा' के वृत्त पर आधारित 'अहसनुलकसिस' मे इन्होने कुरान और हदीसो के उद्धरणो को छदोबद्ध किया है, फलस्वरूप काव्य-सौदर्य और छदप्रवाह बाधित हुए हैं। इनकी भाषा फारसी शब्दावली से बोझिल है। काव्य के भाव पक्ष अथवा कला पक्ष की अपेक्षा कवि की रुचि घटना-वैचित्र्य की योजना मे है। इनकी विद्वत्ता और ख्याति से प्रभावित होकर सन् 1840 के आसपास काश्मीर नरेश महाराजा गुलाबसिंह ने इनसे सिक्ख-इतिहास लिखने का आग्रह किया परतु किन्ही कारणो से यह योजना क्रियान्वित न हो सकी। रचनाओ की विशाल सख्या, विविध विषयात्मकता और धार्मिक ज्ञान के कारण कवि अपने समय मे प्रख्यात और लोकप्रिय थे।

अहमदशाह गुज्जर *(प० ले०)* [समय—सत्रहवी शताब्दी ई०]

पजाबी मे हीर-राँझा की प्रेमकथा को छदोबद्ध करने वाले ये प्रथम मुसलमान कवि है। जनश्रुति के अनुसार ये गूजर थे। इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'हीर अहमद' (रचना काल—1692 ई०) मे कुल 183 छद हैं। हीर और राँझा के आकर्षण, हीर के विवाह, ससुराल-गमन और वहाँ से राँझा के साथ पलायन पर आधारित कहानी की जो रूपरेखा अहमद ने निर्धारित की, वह इनके पूर्ववर्ती दमोदर (दे०) से पर्याप्त भिन्न थी फिर भी परवर्ती मुसलमान कवियो ने उसे ही अपनाया। प्रबध परिकल्पना की दृष्टि से साधारण होते हुए भी हीर काव्य के मुख्य गुण—लौकिक शृगार की प्रमुखता, सवादात्मकता और सामती मूल्यो के प्रति असतोष—इस रचना मे सन्निविष्ट हो गए हैं। इसके अतिरिक्त पजाबी किस्सा-काव्य मे बैत छद के पहले प्रयोगकर्ता होने के नाते भी अहमदशाह का उल्लेख आवश्यक है।

अहलिके (अहल्या) *(स०, त० पा०)*

अहल्या पौराणिक नारी पात्रो मे से है। वाल्मीकि रामायण (दे०) मे अहल्या शाप-मोचन प्रसग को लेकर

तमिल में अनेक कृतियों की रचना हुई है जिनमें प्रसिद्ध हैं—कम्बर् कृत 'कम्ब रामायणम्' (दे०), वे० प० सु० मुदलियार् कृत 'अहलिकै वेण्पा' (दे०), श० तु० सु० योगियार् कृत 'अहल्या' और पुदुमैप्पित्तन् कृत दो कहानियाँ 'अहल्यै' और 'शापविमोचनम्'।

वाल्मीकि की अहल्या साधारण नारी है जो अपराध करती है और प्रायश्चित कर अपराध से मुक्त हो जाती है। कम्बर् ने अहल्या को कामुक नारी के रूप में चित्रित किया है। 'अहलिकै वेण्पा' में अहल्या ऐसी नारियों का प्रतिनिधित्व करती है जो कि अपनी अबोधता के कारण पुरुषों की कामुक वृत्ति का शिकार बनती हैं। 'अहल्या' नामक शिरुकाप्पियम् (दे०) (लघु महाकाव्य) में योगियार् (दे०) ने अहल्या को सतीत्व की रक्षा करने वाली नारी कहा है। उन्होंने नारियों का पक्ष लेकर पुरुष-वर्ग को फटकारा है। काव्य में राम गौतम से कहते हैं कि अहल्या ने अपनी आँखों से तुझे देखा, इंद्र को नहीं। उसने तेरा ही ध्यान धरा, इंद्र का नहीं, अत वह पवित्र है। योगियार् के मत में यदि व्यक्ति का मन पवित्र है तो उसका तन भी पवित्र है। इस प्रकार उन्होंने अहल्या को तन-मन से पवित्र एक सती नारी घोषित किया है। 'अहल्यै' कहानी में अहल्या तन-मन से पवित्र पतिव्रता नारी के रूप में चित्रित की गई है। 'शापविमोचनम्' में अहल्या राम की चरण-धूलि के स्पर्श से शाप-मुक्त होकर भी अपने को अपराधिनी मानती है और अंत में पुनः शिला-रूप धारण कर मानसिक व्यथा से मुक्ति पा लेती है। यहाँ लेखक ने इस बात पर बल दिया है कि व्यक्ति तब तक अपने अपराध के भार से मुक्त नहीं हो सकता जब तक संसार उसके अपराध को न भुला दे।

तमिल की इन विभिन्न कृतियों में अहल्या के माध्यम से विभिन्न युगों की स्थिति और सतीत्व के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

अहलिकै वेण्पा (त० कृ०)

यह वे० प० सुप्पिरमणिय मुदलियार् का खंड-काव्य है। अहल्या के आख्यान का नवीकरण इस काव्य के तीन कांडों में प्रस्तुत है जिसके अनुसार वह मनोमालिन्य-रहित सती महिला थी जिसे इंद्र का अत्याचार सहना पड़ा। मुख्य घटना—अहल्या का शील-भंग—मध्यवर्ती कांड में है और उसकी प्रारंभिक और परिणाम-रूपी स्थितियाँ प्रथम और तृतीय कांडों में वर्णित है। केंद्रीभूत दूसरे कांड में अहल्या-इंद्र के संवाद का नाटकोचित ढंग से निर्वाह किया गया है। सती अहल्या इंद्र के सामने कई तर्क रख देती है; उसे रोक देती है; धिक्कारती है पर कामातुर देव ज्यादती कर ही देता है। गौतम मुनि को उसके निर्दोष होने का विश्वास होने पर भी इस कलंक के लिए उसे पत्थर बनाना पड़ता है। काव्य प्रौढ़ आभिजात्यपूर्ण 'वेण्बा' छंद में रचित होकर 'कुरळ्', 'कम्बरामायणम्' आदि पूर्ववर्ती श्रेष्ठ तमिल काव्यों का प्रभाव लिये हुए है। 'नलवेण्पा' की प्रसिद्ध कृति का 'वेण्बा' छंद-विधान इस काव्य का आदर्श अवश्य रहा होगा। (दे० 'पुहळेन्ति') कथावस्तु-योजना तथा शैली में भी अँग्रेजी कवि शेक्सपियर की 'लुक्रीस का शील-भंग' नामक प्रसिद्ध काव्य का यथोचित अनुकरण भी हुआ है। समग्र दृष्टि से इस काव्य को प्राचीन तमिल साहित्यिक परंपरा की एक सफल आधुनिक उपलब्धि कहा जा सकता है।

अहल्यासंक्रंदनमु (ते० कृ०) [रचना-काल—अठारहवी शताब्दी ई०]

इस काव्य के लेखक समुखं वेंकट कृष्णप्प नायकुडु है। ये मधुरा के शासक विजयरंग चोक्कनाथुडु (शासन-काल 1704-1731 ई०) के सेनाध्यक्ष थे। इन्होंने कुछ गद्य-काव्यों के अतिरिक्त 'अहल्यासंक्रंदनमु' नामक तीन आश्वासों का एक शृंगार-काव्य भी लिखा था। गौतम की पत्नी अहल्या के साथ इंद्र का समागम, उनके अनुचित शृंगार आदि से संबद्ध कथा ही इसका प्रधान विषय है। पुराण, इतिहास आदि से इस प्रकार की अनुचित शृंगार से संबद्ध कथाएं लेकर मधुरा के कवियों ने अनेक काव्य लिखे। इस वर्ग के अन्य शृंगार-काव्यों की तरह प्रस्तुत कृति में भी सरस रचना तथा मुहावरेदार भाषा जैसे उत्तम कविता के गुण प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। परंतु 'ताराशशांक विजयमु' जैसे काव्यों में शृंगार-वर्णन औचित्य की सीमा के बाहर हो गए है तो 'अहल्यासंक्रंदनमु' में वे अपेक्षाकृत सीमा के भीतर ही है। इसकी कथा अत्यंत प्रचलित है। मधुरा के शृंगार-काव्यों के अंतर्गत औचित्य की दृष्टि से अपेक्षाकृत 'अहल्यासंक्रंदनमु' श्रेष्ठ माना जा सकता है।

अहल्यै (क० कृ०)

यह श्री पु० ति० नरसिंहाचार्य (दे०) का सर्वश्रेष्ठ गीतिनाटक है। श्री नरसिंहाचार्य कन्नड़ के श्रेष्ठ

कवियो मे है। उन्होने रामायण की अभिशप्ता अहल्या के वृत्त के आधार पर यह गीतिनाटक लिखा है। सगीत मे भी लेखक की बडी गति है। अत इसके गीत राग-तालबद्ध हैं। सगीत एव साहित्य का अप्रतिम संगम इसमे हुआ है। कवि ने मूल का ज्यो का त्यो अनुकरण नही किया है बल्कि नवीन उद्भावनाएँ भी की हैं। मूल कथा के अनुसार अहल्या निर्दोष है, इद्र गौतम के रूप मे आकर उसका सतीत्व हरता है। इसमे अहल्या को ज्ञात है कि आनेवाला इद्र है। गौतम प्रवृत्तियो का दमन करके अपनी पत्नी की अभिलाषाओ की ओर से आँखें मूँदे तपस्या मे लीन रहते हैं। अहल्या सुदरी है तरुणी है। उसकी काम की भूख अतृप्त है। काम उसे चचल बनाता है। अत मे इद्र को देखकर उसकी समस्त लालसाएँ अनायास जाग पडती हैं। वह आत्मसमर्पण कर बैठती है। अत मे अपने क्षणिक दौर्बल्य पर पश्चात्ताप प्रकट करती है। पश्चात्ताप से जब उसकी आत्मा परिपूत बनती है, तब राम की कृपा होती है और पति का शापविमोचन होता है। पाषाणी अहल्या का पुनरुद्धार होता है। प्रवृत्ति निवृत्ति के सतुलन का सदेश कृतिकार ने दिया है। अहल्या का चरित्र अत्यत मनोवैज्ञानिक है, उसके प्रति पाठको की अजस्र सहानुभूति रहती है। गौतम का चरित्र भी सुदर बन पडा है। काम जीवन म वर्ज्य नही है। इद्र जैसे व्यक्ति आज भी मिलते हैं। उसका चरित्र भी अत्यत यथार्थ बन पडा है। नाटकीयता, गेयता एव कलात्मकता की दृष्टि से यह अत्यत सुदर नाटक है और कन्नड की प्रतिनिधि कृतियो मे से है।

अहल् विळक्कु *(त० कृ०)* [रचना काल—1962 ई०]

अहल् विळक्कु मु० वरदराजन (दे०) कृत चरित्र प्रधान सामाजिक उपन्यास है। इसमे समकालीन समाज की ज्वलत समस्याओ का अकन किया गया है। इसके पुरुष एव नारी पात्र क्रमश तत्कालीन समाज मे प्राप्त भिन्न भिन्न प्रवृत्तियो वाले स्त्री पुरुषो का प्रति निधित्व करते हैं। चन्द्रन् उन व्यक्तियो मे से है जो अपनी बुद्धिमानी के कारण आरभ मे उन्नति करते हैं और लोगो की प्रशसा के पात्र बनते हैं परतु शीघ्र ही वैयक्तिक दुर्बलताओ के कारण पतन की ओर उन्मुख होते हैं। वेलैयन् सामान्य व्यक्ति है। वह परिश्रम के बल पर ऊँचा उठता है। जीवन मे असफल होने पर भी हिम्मत नही हारता। मालन् स्वार्थी व्यक्तियो का प्रतीक है। नारी पात्रो मे पाक्कियम्मा आदर्श नारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। अल्पायु मे ही विधवा हो जाने पर, आर्थिक दृष्टि से स्वतत्र जीवन व्यतीत करने की इच्छा से, वह बच्चो का एक स्कूल चलाती है। इस प्रकार वह आत्मोद्धार करने के साथ-साथ दूसरो का मार्गदर्शन भी करती है। हिमावती पाश्चात्य सभ्यता के रँग मे रँगी हुई नारी का प्रतिरूप है। मणिमेखलै महत्त्वाकाक्षी नारी है। लेखक की दृष्टि मे उपन्यास के नाना पात्रो मे वेलैयन् आदर्श पात्र हैं। उन्होने चन्द्रन् और वेलैयन् को क्रमश. 'कुत्तु विळक्कु' (पीतल का दीया) और 'अहल् विळक्कु' (मिटटी का दीया) कहा है। पीतल का दीया सतत जलते रहने पर अपना सौदर्य खो बैठता है और मिट्टी का दीया सदा एक-सा रहता है। ठीक इसी प्रकार चन्द्रन् जैसे शिक्षित किंतु गुणहीन व्यक्ति आरभ मे प्रशसित होते हैं परतु बाद मे लोगो की निंदा के पात्र बनते हैं। और वेलैयन् जैसे अल्पशिक्षित किंतु गुणी व्यक्ति सदा लोगो की प्रशसा के पात्र बनते है। लेखक ने इस बात पर भी बल दिया है कि नैतिकता जीवन के लिए अनिवार्य है। यह मु० वरदराजन् के प्रसिद्ध उपन्यासो मे से है। उन्हे इसी उपन्यास पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। तमिल के उपन्यास साहित्य मे 'अहल् विळक्कु' का विशिष्ट स्थान है।

'अहसन' लखनवी *(उर्दू ले०)*

सैयद मेहदी हसन 'अहसन' लखनवी नवाब मिर्ज़ा शौक लेखक 'जहर-ए-इश्क' (दे०) व 'बहार-ए इश्क' के दौहित्र थे। 'अल्फ्रेड ड्रामेटिक कपनी' के सर्वप्रथम नाटककार ये ही थे। ये न केवल एक योग्य नाटककार थे बल्कि एक प्रसिद्ध कवि एव अच्छे सगीतज्ञ भी थे। इनके नाटको की भाषा परिमार्जित एव मुहावरेदार होती थी। भाषा पर इन्हे पूर्ण अधिकार प्राप्त था। इनकी एक कृति 'वाकिआत-ए-अनीस' है जिसमे मीर अनीस के जीवन का वृत्तात अत्यत सुदर एव प्रभावशाली ढग से लिखा गया है। इनकी नाट्य-रचनाओ मे 'फिरोज ए गुलजार', 'चन्द्रावली', 'दिलफरोश', 'भूलभुलया', 'बकावली' तथा 'चलता पुर्जा' विशेष उल्लेखनीय हैं।

अहोबल पडितुडु *(तें० ले०)*

अहोबल पडित सत्रहवी शती मे जीवित थे। इनका रचना-काल ई० 1658-1668 के मध्य माना जाता है। इनका असली नाम ओबलय्य अथवा औबल पडित था

जिसका संस्कृतीकरण अहोबल के रूप में किया गया है।

अहोवल पंडित ने नन्नय भट्टु (दे०) कृत 'आंध्रशब्दचिंतामणि' (दे०) के लिए 'कवि शिरोभूषणम्' नाम से संस्कृत में समग्र और विस्तृत व्याख्या लिखी है। संस्कृत में अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य का जो संबंध है, वही संबंध 'चिंतामणि' और 'कवि शिरोभूषणम्' का है। यह व्याख्या ग्रंथ अपने लेखक के नाम पर 'अहोबल पंडितीयमु' के नाम से प्रख्यात है। इस ग्रंथ की रचना कर इन्होंने आंध्र भाषा की अपूर्व सेवा की है। इनकी शैली मृदु-मधुर, सरल तथा प्रसाद गुणयुक्त है।

आंचलिक उपन्यास *(हिं० प्र०)*

हिंदी आंचलिक उपन्यास स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की उपलब्धि है। यद्यपि 'आंचलिक उपन्यास' हिंदी में फणीश्वरनाथ 'रेणु' (दे०) के 'मैला आँचल' (दे०) 1954 के प्रकाशन के उपरांत ही प्रचलित हुआ तथापि उसका अभ्युदय नागार्जुन के 'बलचनमा' से माना जाता है और आंचलिकता का आभास उससे भी पूर्व प्रेमचन्द (दे०), वृन्दावनलाल वर्मा (दे०), अमृतलाल नागर (दे०) की कतिपय कृतियों में मिलता है।

आंचलिक उपन्यास में देश, काल, परिस्थिति और प्रकृति का चित्रण साधन रूप में न होकर साध्य रूप में होता है। उपन्यासकार उसमें प्रदेश-विशेष की भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, रीति-नीति, रहन-सहन, वेशभूषा, धार्मिक रूढ़ियों, त्योहार, पर्व, मेले-तमाशे, नृत्य-गीत, बोली-बानी, राजनीतिक चेतना, आर्थिक कठिनाइयों आदि का सूक्ष्म निरीक्षण कर स्वानुभव से उनका चित्रण करता है। उसका कथानक और पात्र अंचल की देन होते हैं—पात्र धरती-पुत्र होते हैं और पाठक उसे पढते समय मिट्टी की सोंधी महक और ताजगी का अनुभव करता है। उपन्यासकार विशिष्ट काल-खंड को चुन केवल स्थितियों का ही यथार्थ चित्र प्रस्तुत नहीं करता, उनके प्रति सजग जनता की प्रतिक्रिया, उत्क्रांति की लहर और नई चेतना का भी वर्णन करता है।

हिंदी में आचलिक उपन्यास आरंभ करने का श्रेय बिहार के साहित्यकारों—नागार्जुन, फणीश्वरनाथ रेणु आदि को है। नागार्जुन के 'बलचनमा' और 'वरुण के बेटे', रेणु के 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' (दे०), रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ', उदयशंकर भट्ट (दे०) का 'शेष-अशेष', देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये', रामदरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर', शैलेश मटियानी का 'होलदार' प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास हैं। इस परंपरा में राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित' का 'सूरजकिरण की छाँह', हिमांशु श्रीवास्तव का 'नदी फिर बह चली', बलभद्र ठाकुर के 'आदित्यनाथ', 'मुक्तावली' और 'नेपाल की बेटी' भी उल्लेखनीय हैं।

आंचलिक उपन्यास पाठकों को अंचल-विशेष की संस्कृति, सामाजिक व्यवस्था, राजनीतिक चेतना और भौगोलिक विशेषता से तो परिचित कराता ही है, भारत की विभिन्न आंचलिक संस्कृतियों के भेद में अभेद दिखाकर सांस्कृतिक एकीकरण और भावात्मक एकता का भी स्तुत्य प्रयास करता है। उनकी सीमाएँ भी प्रत्यक्ष हैं। अपनी जाति-वर्ग और धर्म-संस्कृति के प्रति कट्टरता और अंध-मोह के कारण लेखक की दृष्टि संकुचित हो समाज में विघटन के बीज बो सकती है, भाषा के कारण उसकी संप्रेषणीयता उस अंचल-विशेष के पाठकों तक ही सीमित रह सकती है, उपन्यास स्थानीय बोलियों का व्यवस्थाहीन जमघट मात्र बन सकता है, गीत-नृत्य के अनुपातहीन वर्णन और यथार्थ लाने की उमंग में निरर्थक ध्वनियों को ज्यों-का-त्यों उतार देने का मोह औपन्यासिकता को आघात पहुँचा सकता है। हिंदी में आंचलिक उपन्यासों में ये दोष मिलते हैं। अनेक उपन्यासों में शब्दों के अर्थ पाद-टिप्पणियों में दिए जाने पर भी दुरूहता और बोझिलता आ गई है, पात्रों की भावुकता और आदर्शवादिता यथार्थ-बोध को आघात पहुँचाती है, उनमें ऐसे पात्रों की सृष्टि नहीं हुई है जो देशकाल की उपज होकर भी सार्वभौम बन सकें, और पाठक की चेतना पर छा सकें। उनमें प्रायः गंभीर तात्त्विक विवेचन का भी अभाव है जिसके बिना कोई रचना महान् नहीं बन सकती।

आंचलिक उपन्यास के संबंध में अनेक प्रश्न उठाए गए हैं—क्या आंचलिक उपन्यास ग्रामीण अंचल से ही संबद्ध होता है या वह नगर के अंचल पर भी लिखा जा सकता है? क्या वह पश्चिम की प्रेरणा का फल है अथवा शुद्ध भारतीय विधा है? सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास से उसका क्या भेद है? हमारा मत है कि नगर के अंचल से संबद्ध उपन्यास में भी यदि वे ही विशेषताएँ हों जो ग्रामीण अंचल से संबद्ध उपन्यास में, तो उसे आंचलिक कहने में कोई आपत्ति नहीं क्योंकि शहर के उपनगरों अथवा मुहल्लों में बसने वाली जाति (जन्मगत अथवा व्यवसायगत) की भी अपनी संस्कृति, बोली-बानी और नितांत अपनी समस्याएँ हो सकती हैं। विदेशों में स्थानीय रंग और प्रादेशिक स्पर्श वाले उपन्यास तो हैं, पर आज जिसे आंचलिक उपन्यास कहते हैं वह पश्चिम में विशेषतः अमरीका में इधर

की ही वस्तु है, अत. उसे विशुद्ध भारतीय विधा कहने मे हमे कोई सकोच नही । वह व्यक्तिवादी मनोवैज्ञानिक उपन्यास की प्रतिक्रिया का परिणाम भी नही है क्योकि हिंदी का आचलिक उपन्यास प्रेमचन्द और वृदावनलाल वर्मा के उपन्यासो मे प्राप्त आचलिकता का ही विकसित रूप है जो स्वतन्त्रता के बाद अपनी सस्कृति के प्रति बढते ममत्व का खाद-पानी पाकर पुष्ट हुआ । सामाजिक उपन्यास और आचलिक उपन्यास के पीछे दृष्टि-भेद ही नही होता, उनके प्रणयन की प्रेरणा और सृजन-प्रक्रिया भी भिन्न होती है। ऐतिहासिक उपन्यास पुस्तकीय ज्ञान अथवा अनुमान पर आधारित होता है जबकि आचलिक उपन्यास के लिए लेखक का सूक्ष्म निरीक्षण, स्वानुभव और अचल के प्रति आत्मीयता आवश्यक हैं। ऐतिहासिक उपन्यासो मे आचलिकता हो सकती है जैसे वृदावनलाल वर्मा के उपन्यासो मे, पर वे आचलिक नही हैं। अतः आचलिक उपन्यास एक स्वतत्र विधा है।

आजनेयुलु, कुर्दुति *(तें० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

कामय्या और वेंकटनरसम्मा के पुत्र आजनेयुलु का जन्म सन् 1922 ई० को गुटूर जिले मे हुआ। आध्र क्रिश्चियन कालेज, गुटूर से बी० ए० (अर्थशास्त्र) करने के बाद, सन् 1946 से 1956 तक ये गुटूर मार्केटिंग कमेटी के 'सुपरिटेंडेंट' के पद पर रहे। उसके बाद से आध्र प्रदेश के सूचना तथा जनसपर्क विभाग मे वरिष्ठ अनुवादक के रूप मे काम कर रहे हैं। कुछ समय के लिए ये नव्य कला-परिषद् के अध्यक्ष रहे। ये अभ्युदय रचयितल-सघ नव्य साहित्य-परिषद् आदि साहित्यिक सस्थाओ के भी सदस्य है। ये कवि-सम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण और गुर्रम् जोषुवा (दे०) के विद्यार्थी रहे। अत उनका इन पर गहरा प्रभाव पडा है।

क्लासिकल कविता से प्रगतिवाद की ओर उन्मुख होकर, वचन कविता (मुक्त छद) आदोलन के अगुआ बनकर वचन-कविता को सुस्थिर रूप देने के लिए इन्होने सफल प्रयास किया। 'सौप्तिकम्' और 'ना प्रेयसी' नामक क्लासिकल पद्धति मे लिखी कविताओ को स्वय ही नष्ट कर दिया। इन्होने बेल्लकोडा रामदासु एल्चूरि सुब्रह्मण्यमु के साथ मिलकर 'नयागरा' नामक काव्यसग्रह मे वचन-कविता को सर्वप्रथम प्रस्तुत किया था। अष्टादश पर्वो (प्रस्तावना, सिहासन, बीजोत्पन्न, सघोदय, प्रजोद्यम, दौत्य, बहिष्कार, अज्ञात, मानभग, गृहदहन, प्रनिघटना, दिग्विजय, भूमिदान, न्यायदान, रजाकार, दुरागत (आत्माचार), आक्रमण, उपसहार) से युक्त तेलगाणा' नामक (वचन) काव्य मे इन्होने निजाम के विरुद्ध मजदूर-किसानो के लिए किए गए सघर्ष का सजीव चित्रण किया है। इस काव्य मे 'सघ' कम्युनिस्ट पार्टी का प्रतीक है। वचन कविता को प्रतिष्ठा प्रदान करने वाला यह प्रथम महाकाव्य है। इन्होने 'आशा' (नाटक) की रचना भी वचन कविता मे की है। 'युगे-युगे', 'नगर लो वाना' (नगर मे वर्षा), 'ना लोनि नादालु' (मेरे भीतर के स्वर) इनकी वचन कविताओ के सकलन है। नगर लो वाना' साहित्य अकादमी की ओर से पुरस्कृत है। वचन-कविता के समर्थन मे इन्होने कई लेख लिखे है। 'वचन विनय' नामक एक पुस्तक का सपादन भी इन्होने किया है। इसमे वचन-कविता से सबधित लेख सकलित है।

आजनेयुलु, कोडालि *(तें० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

ये कृष्णा जिले के निवासी प्रसिद्ध पत्रकार तथा कवि हैं। स्वतत्रता सग्राम मे इनको कई बार जेल-यात्रा भी करनी पडी थी। इन्होने नौकरी छोडकर असहयोग आदोलन मे भाग लिया। इनकी रचनाएँ हैं—पेंड्लिकूतुरु', 'जैलुलो चदामामा' आदि काव्य ग्रथ और 'हिस्टरी ऑफ द काग्रेस' तथा 'गाधी ऐंड गाधिज्म' के तेलुगु अनुवाद। अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओ और अनुभवो के बल पर इन्होने मार्मिक कविताएँ रची हैं।

आडाळ *(त० ले०)* [समय—ईसा की आठवी शती का पूर्वार्द्ध]

वैष्णव भक्त कवियो के वर्ग मे आडाळ एकमात्र नारी है। इन्हे पेरियाळवार की पोष्य पुत्री कहा जाता है। कुछ विद्वानो के अनुसार आडाळ पेरियाळवार की कल्पना सृष्टि है। आडाळ के अन्य नाम हैं—कोदै या गोदा, शूडिक्कोडुत्त नाच्चियार, आदि। किंवदती है कि आडाळ के विवाह-योग्य हो जाने पर पेरियाळवार, उनके आदेश पर, उन्हे श्रीरगम ले गए और वे रगनाथन की मूर्ति मे विलीन हो गइ। आडाळ की दो रचनाएँ हैं · तिरुप्पावै और नाच्चियार तिरुमोळि। तिरुप्पावै मे गौरी-व्रत के समान एक व्रत विशेष का वर्णन है जिसे पावै नोन्बु कहते है। इस व्रत का साम्य भागवत पुराण मे वर्णित कात्यायनी व्रत से है। तिरुप्पावै आडाळ की कल्पना-शक्ति का द्योतक है। इसमे वे अपनी कल्पना शक्ति के बल पर

काल एवं स्थान की परिधि पार कर कृष्ण-लोक पहुँच जाती है और गोपीकृष्ण-लीला का आस्वादन करती है। आंडाळ ने श्रीरंगनाथ (कृष्ण) को अपना पति मानकर जिन सरल एवं मधुर पदों की रचना की वे ही नाच्चियार तिरुमोळि में संगृहीत है। आंडाळ की इन दोनों रचनाओं का धार्मिक एवं साहित्यिक महत्त्व अक्षुण्ण है। वैष्णव परिवार में विवाह के अवसर पर स्वप्न में आंडाळ के नारायण से विवाह-के पदों का गायन होता है।

आंध्रपुराणमु *(ते० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—पूर्वार्द्ध 1954 ई० तथा उत्तरार्द्ध 1964 ई०]

इसके लेखक मधुनापंतुल सत्यनारायण शास्त्री (दे०) हैं। ये संस्कृत के अच्छे विद्वान है। इन्होंने तेलुगु कवियों का इतिहास भी लिखा है। 'आंध्रपुराणमु' आंध्र जाति के इतिहास से संबद्ध काव्य-रचना है। इसके पूर्वार्द्ध के अंतर्गत उदयपर्व, सातवाहनपर्व, चालुक्यपर्व तथा काकतीय नामक चार पर्व है और उत्तरार्द्ध के अंतर्गत पुन. प्रतिष्ठापर्व, विद्यानगरपर्व, श्रीकृष्णदेवरायपर्व, विजयपर्व तथा नायक-राजपर्व नामक पाँच पर्व हैं। आदि से लेकर आधुनिक युग तक आंध्र जाति के इतिहास का वर्णन प्रस्तुत करना ही इस काव्य का ध्येय है। अन्य बातों के साथ-साथ साहित्यिक क्षेत्र में आंध्रों की उन्नति को भी दृष्टि में रखकर इस ग्रंथ के अंतर्गत रचना-संबंधी योजना बनाई गई है। आंध्र जाति के इतिहास से संबद्ध विशिष्ट घटनाओं अथवा परिस्थितियों के नाम न लेकर उनसे संबद्ध प्रमुख राजवंशों के नाम लिये गए हैं। एक-एक राजवंश से संबंद्ध इतिहास विवादपूर्ण है। इससे संबंद्ध विषय उदयपर्व में है। ईसा से पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर ईसा के बाद तीसरी शताब्दी तक लगभग साढ़े चार सौ साल आंध्र शातवाहन राजाओं का शासन-काल रहा, जिसका इतिहास अत्यंत उज्ज्वल है। पूर्वचालुक्य राजाओं के प्रोत्साहन से ही आंध्र साहित्य का श्रीगणेश किया गया था। काकतीय नरेशों के राज्य-काल के अंत तक धार्मिक अव्यवस्था तथा कुछ अन्य हेतुओं से आंध्र-जाति की उन्नति में बाधा पड़ गई थी। ऐसे समय पर रेड्डि-राजाओं ने उसकी पुन: प्रतिष्ठा की। यही 'पुन: प्रतिष्ठापर्व' के अंतर्गत वर्णित है। आंध्रों के इतिहास में विजयनगर राज्य की स्थापना, श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) का राज्याभिषेक और उनकी राजनीतिक तथा साहित्यिक उपलब्धियों आदि का विशेष महत्त्व है। कृष्णदेवरायलु ने दूर दक्षिण तक अपने राज्य का विस्तार करके उन प्रांतों में अपने आश्रितों को शासक बना दिया था। तंजावूर का शासन-भार नायक राजाओं को सौंप दिया गया था। उन्होंने कृष्णदेवरायलु के अनुकरण पर तेलुगु साहित्य की उल्लेखनीय सेवा की। उसके बाद अंग्रेज़ी हुकूमत की स्थापना के समय तक किसी शक्तिशाली राजवंश का नाम विशेष रूप से लेने योग्य नहीं रहा।

'आंध्रपुराणमु' के नाम से अभिहित होने पर भी प्रस्तुत रचना पुराण नहीं है। इसे एक ऐतिहासिक काव्य कहा जा सकता है। ऐतिहासिक विवरणों का चयन करने में तथा उनको काव्य-रूप देने में लेखक का प्रयास सफल तथा प्रशंसा योग्य है।

तेलुगु के ऐतिहासिक काव्य-साहित्य के अंतर्गत 'आंध्रपुराणमु' विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आंध्रभाषाविकासमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1947 ई०

इसके लेखक प्रसिद्ध भाषाशास्त्री गंटिजोगि सोमयाजी (दे०) हैं। काल्डवेल जैसे पश्चिमी विद्वानों के शोधकार्य के फलस्वरूप यह प्रमाणित कर दिया गया है कि तेलुगु द्रविड़ भाषा-परिवार से संबद्ध है जो आर्यभाषा-परिवार से भिन्न तथा स्वतंत्र है। तेलुगु मूल द्रविड़ भाषा से अलग होकर उसी से उत्पन्न तमिल, कन्नड़, मलयाळम आदि अन्य भाषाओं से कुछ समानता तथा कुछ भिन्नता भी रखती है। वह संस्कृत, अँग्रेज़ी आदि के भाषा-साहित्यों के संपर्क में क्रमश: विकसित होती आई है। इन सभी बातों का स्पष्ट तथा सैद्धांतिक विवरण देना ही इस ग्रंथ का लक्ष्य है। तेलुगु के भाषाशास्त्र-संबंधी ग्रंथों में इसका स्थान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आंध्रमहाभारतमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—ग्यारहवीं से तेरहवीं शताब्दी ई० के बीच]

'आंध्रमहाभारतमु' तेलुगु की सर्वप्रथम काव्य-कृति है। इसके पहले का साहित्य पुस्तकाकार नहीं मिलता। नन्नयभट्टु, (दे०), तिक्कन सोमयाजी (दे०) और एर्राप्रगड (दे०) नामक तीन कवियों के सम्मिलित प्रयास से इसकी रचना हुई है। इन तीन कवियों में नन्नयभट्टु सर्वप्रथम थे जिन्होंने ग्यारहवीं शती में इस रचना का प्रारंभ किया था। आदिपर्व, सभापर्व और वनपर्व का कुछ अंश इनके द्वारा लिखा गया था। बाद में तेरहवीं शती में तिक्कन सोमयाजी ने वनपर्व के बाद के पंद्रह पर्वों की

रचना कर ग्रथ को समाप्त तो कर दिया था, पर वनपर्व अधूरा ही रह गया था। वनपर्व के इस शेष भाग की रचना बाद मे चौदहवी शती मे एर्राप्रगड नामक कवि ने की और 'आध्रमहाभारतमु' को समग्र रूप दिया। इस प्रकार यह ग्रथ तीन विभिन्न शताब्दियो मे तीन प्रसिद्ध कवियो के अलग अलग किंतु परस्पर सबद्ध प्रयास का परिणाम है। इन तीन कवियो को सम्मिलित रूप मे कवित्रय कहा जाता है। भिन्न-भिन्न रुचियो के तीन महाप्राण कवियो की साधना का सार लेकर भी यह रचना एक अद्भुत कलात्मक सौष्ठव और एकनिष्ठता का आदर्श प्रस्तुत करती है। विशेषकर, एर्राप्रगड ने वनपर्व के शेष भाग की रचना करते समय अपनी शैली को एक ऐसा रूप दे दिया है कि वह अपने पूर्ववर्ती नन्नयभट्टु से भी मिलती जुलती है और परवर्ती तिक्कनार्य से भी।

'आध्रमहाभारतमु' यो तो सस्कृत के महाभारत' (दे०) का ही रूपातर है पर वास्तव मे यह स्वतत्र रचना सी लगती है। मूल कथा-विधान मे किसी प्रकार का विपर्यय किये बिना औचित्य का पालन करते हुए आवश्यक विस्तार या सक्षेप के द्वारा मौलिक सौंदर्य का अपनी भाषा मे अनुसृजन करना ही इन तीनो का आदर्श रहा है। इसमे न तो मूल का अंधानुकरण है और न मूल से दूर हो जाने वाली स्वच्छदता। सस्कृत का 'महाभारत' पुराण या इतिहास है जबकि तेलुगु का महाभारत' काव्यमजरी के रूप मे प्रस्तुत है। स्तोत्र, उपदेश, नामगणना आदि को जहाँ तक हो सका है काव्योचित और सरम बनाने का प्रयास किया गया है। फिर भी मूल की वस्तु व्यजना, दार्शनिक गभीरता ज्यो-की-त्यो और कही कही मूल से भी अधिक सुदर बन पडी है। तेलुगु-भाषी समाज मे 'आध्रमहाभारतमु' अत्यत लोकप्रिय है। तेलुगु मे एक कहावत है "पढना हो तो (महा) भारत पढो और खाने हो तो बडे खाओ।"

आध्रविज्ञानसर्वस्वमु *(ते० कृ०)*

यह 16 भागो मे प्रकाशित बृहत् विश्वकोश है। विश्व के प्राचीन एव आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को साधारण जनता तक पहुँचाने के उद्देश्य से श्री कोमर्राजु लक्ष्मणरावु (दे०) ने सन् 1915 मे अकारादि अक्षरक्रम से 'आध्रविज्ञानसर्वस्वमु' का प्रकाशन आरभ करके 1917 तक प्रथम तीन भागो का (अ से अहि तक) प्रकाशन कर लिया था। चौथे भाग के प्रकाशन से पहले ही 1923 मे उनका निधन हो गया। उसके उपरात श्री काशीनाथुनि नागेश्वर रावु ने इस योजना के पुनरुद्धार का यत्न किया। परतु 1928 मे वे भी दिवगत हो गये। फलत यह कार्य स्थगित हो गया। 1947 मे मद्रास मे 'तेलुगु समिति' की स्थापना हुई और उसने इस विराट योजना को अपने हाथो मे लिया। इस समिति ने दो कारणो से अक्षरक्रम को अधिक लाभदायक नही समझा। पहला कारण यह था कि उस स्थिति मे जब तक सपूर्ण विश्वकोश का प्रकाशन नही हो जाता, तब तक उसकी उपयोगिता अत्यत सीमित रहेगी। दूसरा कारण यह था कि जब तक भारतीय भाषाओ के माध्यम से सारी शिक्षा नही दी जायेगी और सभी विषयो के सुनिश्चित पारिभाषिक शब्दो का निर्माण नही होगा, तब तक उस प्रकार की योजना सफल नही होगी।

अत इस विश्वकोश का निर्माण विषयानुक्रम से किया गया है। इसके प्रत्येक भाग के प्रथम खड मे उस भाग से सबधित सभी विषयो का पूरा विवरण पाठ्यपुस्तक की पद्धति मे दिया गया है और उसके दूसरे खड मे उन विषयो के विविध विवरण विश्वकोशो की परिपाटी के अनुरूप अक्षरक्रमानुसार दिए गए हैं। इस प्रकार विषयानुक्रम मे विश्वकोश का प्रकाशन किसी भी भारतीय भाषा मे नही हुआ है।

आध्रशब्दचितामणि *(ते० कृ०)*

यह 'आध्रमहाभारतमु' (दे०) के प्रणेता 'कवित्रय' मे से एक महाकवि नन्नयभट्टु (दे०) (ग्यारहवी शताब्दी) द्वारा रचित तेलुगु का प्रथम व्याकरण है। तेलुगु मे नन्नय से पूर्व की कोई साहित्यिक रचना अभी तक उपलब्ध न होने के कारण ये तेलुगु के 'आदिकवि' माने जाते हैं। इन्होने व्यासरचित 'महाभारत' (दे०) के आदि एव सभा पर्वो तथा अरण्यपर्व के कुछ अश का स्वतत्र रूप से अनुवाद किया है और यह तेलुगु की श्रेष्ठतम रचनाओ मे से है।

'आध्रशब्दचितामणि' के कर्तृत्व के सबध मे विद्वानो मे पर्याप्त मतभेद है और बाल सरस्वती (1575-1625 ई०) के द्वारा इसकी टीका की रचना होने से पहले इसके अस्तित्व का परिचय विद्वानो को नही था। अधिकाश विद्वानो का मत है कि अपने साहित्य-सर्जन का आरभ करने से पहले नन्नय ने तेलुगु भाषा मे व्यवस्था एव स्थिरता लाने के उद्देश्य से इसकी रचना की थी। तेलुगु भाषा को एक निश्चित व्याकरणिक व्यवस्था प्रदान करने का श्रेय इसी रचना को है। नन्नय के समय मे सस्कृत का ही

बोलबाला था और तेलुगु में रचना करना किसी कवि के लिए गौरव की बात नहीं मानी जाती थी। फिर भी नन्नय ने अत्यंत साहस एवं दूरदृष्टि से तेलुगु में रचना की और परवर्ती कवियों के लिए मार्गदर्शक बन गये।

आँसू *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1925 ई०]

जयशंकर प्रसाद (दे०) की इस पहली महत्त्वपूर्ण कृति का दूसरा संस्करण पर्याप्त परिवर्तित रूप में 1933 ई० में प्रकाशित हुआ। यह परिवर्तन छंदों की संख्या और क्रम में ही नहीं, प्रतिपाद्य में भी दिखाई देता है। वर्तमान रूप में उसका स्वर उतना निराशापूर्ण नहीं रहा है। 'आँसू' का आलंबन भी 'झरना' (दे०) और 'लहर' (दे०) की अनेक रचनाओं के समान निर्दिष्ट नहीं है। अधिकांश आलोचक उसे व्यक्तिगत अनुभूति से प्रेरित विप्रलंभ-श्रृंगार का काव्य मानते है। मूल अनुभूति लौकिक रही हो तो भी प्रसाद की प्रबुद्ध सांस्कृतिक चेतना का स्पर्श पाकर वह रहस्यमय हो गई है। शिल्प की दृष्टि से उसकी कल्पनाएँ मनोरम हैं और चित्र-विधान व्यंजक है। उक्तियों में अलंकारों का चमत्कार और लक्षण का वैचित्र्य है। मसृण पदावली का विन्यास भावावेग के अनुकूल प्रवाहमय और प्रसन्न है।

आईना-ए-बलाग़त *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1937 ई०]

'आईना-ए-बलाग़त' मिर्ज़ा मुहम्मद असकरी लखनवी की कृति है। यह पुस्तक उर्दू-काव्यशास्त्र की महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें उर्दू गद्य तथा पद्य के विभिन्न भेदोपभेदों तथा विभिन्न अलंकारों का उल्लेख वर्णमालाक्रम से किया है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में उर्दू बह्र (छंदों) पर भी विस्तार से विचार किया गया है। पुस्तक के अंत में गद्य एवं पद्य-संबंधी पारिभाषिक शब्दावली फ़ारसी तथा अँग्रेज़ी भाषाओं में दी गई है। इसका उद्देश्य अँग्रेज़ी तथा उर्दू फ़ारसी काव्य में पाई जाने वाली समानताओं का उल्लेख करना है। अलंकार समझाने के लिए फ़ारसी तथा उर्दू काव्य से उदाहरण दिए गए हैं।

'आईना-ए-बलाग़त' में बहुत ही लाभप्रद जानकारी अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत की गई है। लेखक ने घिसी-पिटी परंपरा से हटकर अलंकार-शास्त्र-विषयक ज्ञातव्य बातों को अधिक बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया है। उदाहरणों की भरमार करने की प्रवृत्ति को लेखक ने त्याग दिया है, बल्कि यथास्थल तालिकाएँ देकर अपने कथन को अधिक स्पष्ट तथा सशक्त एवं रोचक बना दिया है।

आखड़ाइ तथा हाफ़-आखड़ाइ *(बँ० पारि०)*

'आखड़ाइ गान' बैठक में गाया जाने वाला गायन है। लगभग 300 वर्ष पूर्व जब शांतिपुर के कतिपय भद्र-पुरुषों ने आखड़ाइ गान का सूत्रपात किया तब टप्पा (दे० टप्पा) के स्वर में अश्लील श्रृंगारात्मक गायन या तुकबंदी की ही पद्धति थी। बाद में राजा नवकृष्ण सेन की पृष्ठपोषकता में कुलुइचंद्र सेन एवं रामनिधि गुप्त (निधुबाबू) ने आखड़ाइ को स्वतंत्र मर्यादा दी। संगीतज्ञ एवं मार्जित रुचि के भद्रजनों की बैठकों में विशेष भावमूलक शब्दबद्ध तथा स्वर-समृद्ध रचना के रूप में आखड़ाइ गायन की पद्धति चल पड़ी। इसके तीन भाग हैं—पहले मालसी अर्थात् देवी-विषयक, उसके बाद प्रणयगीत एवं अंत में प्रभाती। इनमें ध्रुपद-ख़याल की तरह राग का आलाप एवं स्वर का वैचित्र्य दीर्घ-विलंबित होता है। आखड़ाइ गायन में बाजे एवं संगीत की विशेष परिपाटी रही है। यहाँ भी दो दलों में गायन होता है यद्यपि प्रतिद्वंद्वी दलों में उत्तर-प्रत्युत्तर की रीति नहीं अपनाई जाती। जिस दल का गायन, वाद्य एवं स्वर श्रेष्ठ प्रमाणित होता है उसे ही विजयी घोषित किया जाता है।

आभिजात्यपूर्ण रूप के कारण एवं जनसाधारण के आनुकूल्य के अभाव में तथा सर्वोपरि कविगान आदि की जनप्रियता के फलस्वरूप जब आखड़ाइ गायन की जनप्रियता एकदम समाप्त होने लगी तब निधु बाबू के शिष्य मोहनचांद बसु ने कविगान के कतिपय अंगों को जोड़कर और आखड़ाइ-गायन के कतिपय अंगों को तोड़कर 'हाफ़-आखड़ाइ' की स्थापना की। 'हाफ़-आखड़ाइ' में गायन के स्वर एवं रागों की परिपाटी कम है। इसमें हल्की तानों का प्रयोग होता है और वाद्य का प्रयोग कम होता है। 'कविगान' (दे०) की तरह इसमें उत्तर-प्रत्युत्तर का प्रवर्तन किया गया एवं 'कविगान' के छंद तथा गीतक्रम का भी अनुसरण हुआ—केवल 'कविगान' से भिन्न इसके गीतक्रम में 'फुका' के स्थान पर 'डबल फुका' रहता है और अंतरा अनुपस्थित रहता है। मोहनचांद बसु श्रेष्ठ 'हाफ़-आखड़ाइ-कार' माने जाते हैं।

आख्यायिका *(स० पारि०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र के अनुसार गद्य काव्य के दो भेदो मे से एक। दूसरे भेद का नाम कथा है। संस्कृत-काव्यशास्त्र मे दण्डी (दे०) ने सर्वप्रथम आख्यायिका का विवेचन किया है किंतु उन्होने गद्य-काव्य के आख्यायिका (दे०) और कथा नामक दो अवांतर भेदो का केवल उल्लेख ही किया है—उनके बीच के स्वरूपगत और तात्त्विक अंतर को स्पष्ट नही किया। विश्वनाथ (दे०) ने कथा और आख्यायिका के मध्य क्रमश 'सरस इतिवृत्त' और स्वय कवि के वश के अनुकीर्तन का अंतर माना है। आधुनिक शब्दावली मे इसका अर्थ यह हुआ कि कथा का इतिवृत्त काल्पनिक और आख्यायिका का कथानक वास्तविक एव इतिहास-सम्मत होना चाहिए। संस्कृत-वाङमय की परपरा मे 'कादम्बरी' (दे०) और 'हर्षचरित' (दे०) को क्रमश कथा और आख्यायिका का उदाहरण माना जाता है। अमरकोष'(दे०) के अनुसार आख्यायिका 'ज्ञात अथवा उपलब्ध' विषय पर आधृत गद्यकाव्य है (आख्या-*यिकोपलब्धार्था···1/9)। आचार्य विश्वनाथ ने आख्यायिका* के परिच्छेद-विभाजन और छद विधान को भी शास्त्रबद्ध करने की चेष्टा की है। उनके अनुसार परिच्छेदो का नाम 'आश्वास' होना चाहिए तथा उसके आरभ मे आर्या, वक्त्र, अपवक्त्र छदो मे से किसी एक के द्वारा वर्ण्य विषय की सूचना भी दी जानी चाहिए। आधुनिक भारतीय साहित्य मे संस्कृत आचार्यो द्वारा निरूपित लक्षणो से युक्त आख्या-*यिका-लेखन की परपरा नही है।*

आग का दरिया *(उर्दू० कृ०)*

'आग का दरिया' कुर्रतुलऐन हैदर का एक सदर साहित्यिक उपन्यास है। इस उपन्यास मे 2500 वर्ष पूर्व की और वर्तमान सभ्यता की तुलना की गई है। *भारतीय सभ्यता किन-किन स्थितियो से गुजरती आई है—* इस उपन्यास मे इसका विद्वत्तापूर्ण प्रतिपादन किया गया है। इस सभ्यता को वर्तमान रूप तक पहुँचने मे एक 'आग का दरिया' पार करना पडा है—यह भाव ही इस उपन्यास का मूलभाव है और इसकी सार्थकता का द्योतक है।

प्रस्तुत उपन्यास लगभग 500 पृष्ठ की बृहत् कृति है। *इसकी भाषा रसीली तथा सशक्त है। ग्रथ उर्दू* साहित्य की एक मूल्यवान कृति है।

लेखिका सैयद सज्जाद हुसैन मलदरम (दे०) की बेटी हैं। इन्हे अँग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान है तथा *भारतीय सस्कृति और इतिहास की खूब जानकारी* है।

'आग का दरिया' नामक उपन्यास भारतीय सभ्यता के विकास की विश्वस्त जानकारी प्रदान करता है। इस उपन्यास के फलस्वरूप लेखिका को पाकिस्तान के विदेश-विभाग मे अपने उच्च पद से हाथ धोना पडा था।

आगगाडी *(गु० कृ०)* [रचना-काल—1934 ई०]

चद्रवदन मेहता (दे०) का 'आगगाडी' नाटक गुजराती का सबसे पहला यथार्थवादी नाटक है जो अभिनेयता के भी गुणो से समलकृत है। इसके कई प्रयोग हो चुके है। गुजराती साहित्य मे सर्वप्रथम इस नाटक मे चद्रवदन मेहता ने निम्नस्तर के दरिद्र श्रमजीवी लोगो को पात्रो के रूप मे प्रस्तुत किया है। इसका नायक बाघरजी रेलवे का गरीब *आगवाला है जिस पर एक ही दिन मे एक साथ* तीन मुसीबते टूट पडती है। बारह घटे की नौकरी के बाद थका-माँदा बाघरजी जब घर आता है तो लाट साहब की स्पेशल के साथ उसे पुन विवश होकर जाना पडता है। उसका दुश्मन शराबी जोन्स, जो रेल का ड्राइवर है, उसकी हत्या करता है। उसी समय रेलगाडी को सिग्नल देने के लिए खडे हुए बाघरजी के बेटे बारणजी की सर्पदश से मृत्यु *होती है और उसी गाडी से बाघरजी की गाय कट जाती* है। इस प्रकार यह नाटक शोक-पर्यवसायी है। विषाद की घनीभूत छाया आद्योपात छाई रहती है। इसमे अकिंचनो और प्रपीडितो के प्रति सहानुभूति शाब्दिक या प्रचारात्मक नही है वरन् कृति के अतर्भूत अग के रूप मे विद्यमान है। कृतिकार की निस्सगता और तटस्थता श्लाघनीय है।

'आगगाडी' मे रेलवे से सबद्ध व्यक्तियो के व्यवहार, यात्रियो की असुविधाओ, कर्मचारियो की घूसखोरी, रेलवे के बाबुओ की उच्छृखलता और अहकार आदि का बडी ही यथार्थता के साथ निरूपण हुआ है। बाघरजी, जोन्स और रामचरण भैया का चरित्राकन औचित्यपूर्ण एव प्रतीतिजनक है। भाषा शैली, सवाद-योजना, सघर्ष-तत्त्व का निवाह, कार्य व्यापार मे सक्रियता इत्यादि *सब कुछ कुशलतापूर्वक सयोजित है। वस्तुत 'आगगाडी'* एक अच्छा यथार्थवादी नाटक है।

आगरकर, गोपाल गणेश *(म० ले०)* [जन्म—1856 ई०, मृत्यु—1895 ई०]

आगरकर का जन्म सतारा ज़िले के टेमू गाँव के एक निर्धन परिवार में हुआ था। इन्होंने आत्मबल से एम० ए० तक शिक्षा प्राप्त की थी पर बाद में अपने जीवन को लोकहिताय अर्पित कर दिया था।

ये राजनीतिक नेता और समाज-सुधारक थे। अपने जीवन-काल में इन्हें कृष्ण शास्त्री चिपळूणकर (दे०) और बालगंगाधर टिळक (दे०) जैसे विचारकों का सहयोग प्राप्त हुआ। सन् 1880-1887 तक इन्होंने 'केसरी' पत्रिका का संपादन किया। पर टिळक से वैचारिक मतभेद होने पर स्वतंत्र रूप से 'सुधारक' पत्र निकाला। 'इष्ट कहना और संभाव्य कर दिखाना, 'सुधारक' का उद्देश्य था, इसी बल पर इन्होंने तर्कसंगत समाज-सुधारों का समर्थन किया था।

मराठी साहित्य के क्षेत्र में आगरकर क्रांतिकारी निबंधकार के रूप में प्रख्यात हैं। इनके निबंध सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं।

आगरकर के निबंध चार भागों में संगृहीत हैं। निबंधों के अतिरिक्त इन्होंने 'विकारविलसित' (दे०) नाम से शेक्सपियर के 'हेमलेट' का अनुवाद भी किया है।

सहशिक्षा, बालविवाह, विधवा-विवाह, अस्पृश्यता-निवारण, स्त्री-अधिकार जैसे ज्वलंत विषयों पर इन्होंने स्वच्छंदतापूर्वक भावावेशपूर्ण शैली में लिखा है। इनकी शैली ओजस्वी और तर्कनिष्ठ है।

इनके निबंधों में विचारों की प्रौढ़ता और शैली की प्रगल्भता है। समाज में प्रचलित रूढ़ियों पर इन्होंने कठोर व्यंग्य किया है। इनकी निबंध-शैली भाषण-कर्ता जैसी है जिसमें जोशपूर्ण शब्द, लंबे वाक्य-विन्यास हैं। लेखक की कसमसाहट इनके द्वारा पूर्णतः अभिव्यक्त हुई है।

आगरवाला, आनंदचंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1874 ई०, मृत्यु—1940 ई०]

जन्मस्थान : तेजपुर कलंपुर, मौजा बरंगाबारी। ये एफ़० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सके थे। इन्होंने क्रमशः इन पदों पर कार्य किया—शिक्षक, कांस्टेबिल, पुलिस सब-इंस्पेक्टर, डिप्टी सुपरिंटेंडेंट, प्रिंसिपल (पुलिस ट्रेनिंग स्कूल), पुलिस सुपरिंटेंडेंट। इन्हें क्रमशः रायसाहब और रायबहादुर उपाधियाँ मिली थी। अनेक पत्र-पत्रिकाओं के संपादन में ये सहयोग देते रहे। इन्होंने 'श्रीहर्ष' नाम से 'जोनाकी' पत्रिका में कविताएँ भी लिखी थीं।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'कोमल पाठ' (1910), 'आदिपाठ' (1920), 'जिलिङनि' (1920), इनके अनेक ग्रंथ अप्रकाशित हैं। इनका 'कामरूपर पुरावृत्त' 'बांही' पत्रिका और 'अरुंधती-उपाख्यान' लेख 'जयंती' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

'कोमलपाठ' और ,अपाठ' शिशु-साहित्य के अंतर्गत आते हैं। इनकी एकमात्र कविता पुस्तक 'जिलिङनि' है। इनकी कविताओं में मनोरम अनुभूति और सावलील प्रकाश-भंगिमा का परिचय तथा लोकगीतों की गूँज मिलती है। इन्हें मौलिक कविताओं से अनूदित कविताओं में अधिक सफलता मिली है—विदेशी कविता के सौंदर्य की रक्षा करते हुए इन्होंने अनुवाद कर असमीया साहित्य-जगत् में ख्याति पाई है। इनकी अनेक अनूदित कविताएँ असमीया काव्य की मौलिक संपत्ति समझी जाएँगी।

इन्होंने कविताएँ कम लिखी हैं किंतु आधुनिक असमीया कविता की परंपरा-सृष्टि में इनका योगदान कम नहीं है।

आगरवाला, चंद्रकुमार *(अ० ले०)* [जन्म—1867 ई०, मृत्यु—1938 ई०]

जन्मस्थान : तेजपुर। कालेज स्तर तक की शिक्षा प्राप्त कर इन्होंने छापेखाने का व्यवसाय चलाया था। ये प्राचीन असमीया साहित्य के प्रकाशक श्री हरिविलास आगरवाला के द्वितीय पुत्र थे। 'जोनाकी' नामक पत्रिका के ये प्रथम संपादक थे। इन्होंने अनेक पत्रिकाओं की सहायता की थी। इनके प्रेस ने अनेक लेखकों को सुविधाएँ प्रदान की थीं।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'प्रतिमा' (दे०) (1914), 'बीणा बरागी' (1923)।

ये असमीया रोमांसवादी कविता के प्रथम होता कहे जाते हैं। 'जोनाकी' में प्रकाशित 'वनकुंवरी' इनकी प्रथम रोमांटिक कविता है। श्री आगरवाला ने अपनी कविता में विश्व-प्रकृति के प्रेममय रूप और निर्मम निरंतनता की उपलब्धि की थी। अँग्रेज़ी कवि शैली से इनका साम्य है। इनकी कविता में दार्शनिक तत्त्व और लोकगीत-सौंदर्य एक साथ मिलता है। 'बीण बरागी' देशभक्तिपूर्ण उच्च-

स्तरीय कविताएँ है। इनकी कविताओ की उपलब्धि है—सौंदर्य की खोज, मानव प्रीति, वेदात-प्रभाव, नूतन समाज का आह्वान और आशावाद।

आगरवाला, ज्योतिप्रसाद *(अ० ले०)* [जन्म—1903 ई०, मृत्यु—*1951 ई०*]

जन्म-स्थान तमोलवाडी, डिब्रूगढ। शैशवावस्था से ही ये राष्ट्रीय आदोलनो मे भाग लेते रहे थे। सन् 1922 मे इन्होने प्रेस का कारोबार किया। 1926 ई० मे ये विलायत गए। एडिनबरा विश्वविद्यालय मे पढ कर 1927 मे बर्लिन जाकर इन्होने चलचित्र-कला की शिक्षा ग्रहण की। 1932 मे ये काग्रेस-सेवक-वाहिनी के अधिनायक बने और इन्हे 15 महीने का कारावास हुआ। *1934* मे इन्होने *चित्रलेखा मूवीटोन* की स्थापना की। 1937 मे इन्होने जोनाकी सिनेमा हाल का सचालन किया। ये कलकत्ता मे अज्ञातवास करते हुए शातिवाहिनी के अधिनायक के रूप मे कार्य करते रहे।

प्रकाशित रचनाएँ—नाटक 'शोणित कुँवरी' (दे०) (1925), 'करेङ्र लिगिरी' (1934), 'लभिता' (दे०) (1948), 'रूपालीम' (मरणोपरात प्रकाशन, 1961), प्रबधसग्रह 'ज्योतिर्धारा' (मरणोपरात प्रकाशन, *1961*)। इनकी कई रचनाएँ अप्रकाशित है।

'उषा-अनिरुद्ध' की कथा पर आधारित प्रथम नाटक 'शोणित कुँवरी' मे नाटकीय तत्त्व है। अल्पायु मे लिखित इस पौराणिक नाटक मे आधुनिक भावो का चित्रण है। 'करेङर लिगिरी' मध्ययुगीन चरित पर लिखित है किंतु इसमे परपरा और अधविश्वासो का विरोध है। 'लभिता' मे भारतीय स्वातत्र्ययुद्ध और भारतीय नारी के गौरव का वर्णन है। रूपालीम' नाटक का विषय प्रेम है।

इन्होने कविताएँ भी लिखी थी जिनमे अतीत से प्रेरणा लेकर असम की सर्वप्रकार की उन्नति करने के लिए युवको का आह्वान किया गया है। इनके निबध-सग्रह मे असम के इतिहास और सभ्यता का अध्ययन है।

आग़ा 'हश्र' काश्मीरी *(उर्दू० ले०)* [*जन्म—1879 ई०*, मृत्यु—1935 ई०]

जन्म स्थान बनारस। ये गद्य और पद्य दोनो के समर्थ लेखक थे और काव्य-सृजन तथा नाटक-लेखन दोनो मे इन्हे यथेष्ट यश प्राप्त हुआ। इस दृष्टि से इन्हे उर्दू भाषा का शेक्सपियर कहा जाता है। प्रारभ मे ये न्यू अल्फ्रेड थिएट्रिकल कपनी से सबद्ध रहे परतु बाद मे इन्होने अपनी शेक्सपियर थिएट्रिकल कपनी की स्थापना कर ली थी। इस कपनी के विघटन के बाद ये कलकत्ता चले गए और वहाँ फिल्मी नाटको का प्रणयन करने लगे। इनके उर्दू नाटको मे 'शहीद-ए-नाज़, 'असीर-ए-हिर्स', 'खूबसूरत बला', तुर्की हूर' और 'सफेद खून' अत्यधिक प्रसिद्ध है। 'सीता बनवास' और 'गगावतरण' आदि कतिपय हिंदी नाटक रचने का श्रेय भी इन्हे प्राप्त है। इनका पहला नाटक 'आफताब ए-मुहब्बत' के नाम से प्रकाशित हुआ था। यह बहुत लोकप्रिय हुआ। इन्होने अनेक विदेशी नाटककारो की प्रसिद्ध कृतियो के उर्दू अनुवाद भी किए थे। उमर खैयाम की रुबाइयो का उर्दू पद्यानुवाद इनकी कवित्व-प्रतिभा का ज्वलत उदाहरण है। इनकी मौलिक रचनाओ मे 'शुक्रिया योरुप' नामक कविता राष्ट्रीय एव राजनीतिक कविता है जिसमे सर्वत्र वीर रस उमडा पडता है। नाटकीय शैली मे लिखित इस कविता मे उपमाओ, प्रतीको और अलकारो की प्रभविष्णुता, सुगठित पद-विन्यास और शैली का औदात्य देखते ही बनता है। इसके अतिरिक्त 'मौज-ए ज़मज़म' इनकी अत्यत सफल कविता है। आगा हश्र अनेक पत्रिकाओ के सपादक-मडलो के सक्रिय सदस्य भी रहे हैं।

आघोनी बाइ *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1950 ई०, लेखक बीणा बरुआ (बिरिंचिकुमार बरुआ (दे०) का छद्म नाम)]

इस कहानी सग्रह मे ग्राम्य जीवन के सुख-दुःख और विरह-व्यथा मिश्रित यौन-जीवन का चित्रण है। 'आघोनी बाइ' एक ऐसी ग्रामीण महिला की कहानी है जो स्वय कष्ट उठाकर दूसरो की सहायता करती है। कहानियाँ यथार्थवादी हैं, इनके चरित्र स्पष्ट हैं। घटनाओ के घात-प्रतिघात द्वारा चरित्रो का अतर्द्वद्व दिखाने की चेष्टा नही है।

आचार्य आत्रेय *(ते० ले०)*

ये तेलुगु के श्रेष्ठ एकाकीकार है। यथार्थ को सदा दृष्टि मे रखकर, जीवन का वास्तविक चित्रण इन्होने अपने एकाकियो मे प्रस्तुत किया है। नित्य हमारी आँखो के

सामने दिखाई देने वाले मध्यवर्ग का यथातथ्य चित्रण इनका प्रमुख उद्देश्य रहा है। समाज में सर्वत्र दृष्टिगत होने वाली आर्थिक विषमता का विनाश करके, समता एवं विश्व-शांति की स्थापना करने का संदेश इनकी रचनाओं में व्यक्त होता है। रोचक कथा-निर्माण, चरित्रों का सहज स्वाभाविक चित्रण तथा पात्रानुकूल भाषा, इनके एकांकियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इनकी बहुचर्चित रचनाएँ हैं—'वास्तवम्', 'प्रगति', 'विश्वशांति', 'गुमास्ता' आदि।

आचार्य पोफळे गुरुजी *(म० पा०)*

पु० ल० देशपांडे (दे०) के प्रसिद्ध नाटक 'तुझं आहे तुजपाशी' (दे०) में आचार्य पोफळे गुरुजी सर्वोदयी सिद्धांतादर्शों के प्रतिपादक है। महात्मा गांधी द्वारा निर्धारित सिद्धांतादर्शों को व्यक्तिगत जीवन में उतारने की महती भावना के कारण ही ये आश्रम में रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए जीवन-यापन करते हैं। जीवन-पर्यन्त सिद्धांतों के प्रति अपनी अडिग आस्था एवं विश्वास के कारण इन्हें अपने सहयोगियों का कोप-भाजन होना पड़ता है। सिद्धांतादर्शों से लोगों को विमुख होते देखकर इन्हें अत्यधिक दुःख होता है, इसी से इनका स्वभाव क्रोधी एवं चिड़चिड़ा-सा है। नियम-उपनियमों के प्रति अत्यधिक कठोर होते हुए भी ये सरल एवं उदार-हृदय हैं। अपनी इन्ही उदार भावनाओं के कारण ये अपने मित्र की अनाथ कन्या का पालन-पोषण करते है। यह बात दूसरी है कि इनके कठोर नियंत्रण के कारण उस कन्या का व्यक्तित्व संकुचित-सा हो गया है। मतवैभिन्न्य के कारण ही अन्यायी लोगों से इनकी पटरी नहीं बैठती। इसी से जब-तब अप्रिय घटनाएँ घटित हो जाती हैं। जीवन के उतार पर जब ये अपने विचारों का पुनर्निरीक्षण करते है तब सोचते हैं कि त्यागमय जीवन के महत् आदर्श सामान्य लोगों के लिए नहीं है, ये सिद्धांतादर्श तो गौतम बुद्ध सरीखे विशिष्ट लोगों के लिए ही हैं। इस वैचारिक दिशा-परिवर्तन के उपरांत भी ये व्यावहारिक जीवन में इस नूतन परिदृष्टि को अंगीकार करने में नितांत असफल रहते है। यद्यपि अपने इन आदर्शवादी सिद्धांतों के कारण जीवन की विफलता का इन्हें घोर पश्चात्ताप भी होता है। तथापि अंत में गीता को मंगलमय भविष्य का आशीर्वाद देकर ये एकाकी अपने जीवन-पथ पर बढ़ जाते हैं। समसामयिक परिस्थितियों के बदलते जीवन-मूल्यों की स्पर्द्धा में परंपरा-प्राप्य जीवनादर्शों की स्थिति की सहजाभिव्यक्ति इनके चरित्र में हुई है। पूर्वनिश्चित सिद्धांतादर्शों के संवहन के कारण आचार्य पोफळे गुरुजी का चरित्र नाटककार द्वारा ही परिचालित हुआ है।

आचार्य, शांतनुकुमार *(उ० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

श्री शांतनुकुमार आचार्य उड़िया के यशस्वी उपन्यासकार हैं। सांप्रतिक मानव का बौद्धिक संकट, मानसिक, विश्लेषण, तकनीकी सभ्यता की विडंबना आदि का चित्रण इनकी रचनाओं में हुआ है। भाषा व शैली मे आधुनिक दृष्टि-भंगी मिलती है। सन् 1962-63 में उपन्यास 'नर किन्नर' पर इन्हें उड़ीसा राज्य साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला था। विज्ञान के विद्यार्थी होने के कारण इनकी गद्य-भाषा में वैज्ञानिक बिंब एवं प्रयोगशाला के प्रतीकों का प्रयोग हुआ है। इनकी अन्य प्रमुख रचनाएँ है—'शताब्दीर नचिकेता' (उप०) 'तिनोटि रात्रिर सकाल, (उप०) (दे०), 'दुर्वार' (कहानी), 'शेष संवाद' (कहानी), 'मन-मर्मर' (कहानी) आदि। संप्रति ये रसायन-शास्त्र के अध्यापक हैं।

'आज़ाद' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1831 ई०, मृत्यु—1910 ई०]

इनका पूरा नाम मौलवी मुहम्मद हुसैन और उपनाम 'आज़ाद' था। इनके पिता मुहम्मद बाकर दिल्ली के राजमान्य व्यक्तियों में से थे। आज़ाद ने दिल्ली कालेज में अरबी, फ़ारसी का अध्ययन किया। विद्यार्थी-काल में ही इन्हें कविता और निबंध लिखने का शौक हो गया था। इन्होने सन् 1876 में दिल्ली से सर्वप्रथम उर्दू-समाचार-पत्र प्रकाशित किया। अपने काव्य का संशोधन यह उस्ताद 'ज़ौक़' से कराते थे। सन् 1857 की क्रांति के पश्चात् 'आज़ाद' हैदराबाद दक्कन चले गए और फिर वहाँ से लाहौर आ गये और शिक्षा-विभाग में नौकरी कर ली। कुछ वर्षों तक सरकारी समाचार-पत्र का संपादन भी किया। इसके बाद ये काबुल भी गये और वहाँ से लौट कर लाहौर के राजकीय कालेज में प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1857 में इन्हें 'शम्सुल-उलमा' की उपाधि प्रदान की गई। 'आज़ाद' को फ़ारसी के अतिरिक्त अंग्रेज़ी तथा हिंदी का भी अच्छा ज्ञान था।

उर्दू गद्य में इनकी शैली का अपना अलग स्थान है। उर्दू में ये आधुनिक काव्य तथा निबंध-लेखन के प्रवर्तक

माने जाते है। 'उर्दू का कायदा', 'उर्दू की पहली-दूसरी किताब', 'जामिअ-उल-कवायद', 'आब-ए-हयात (दे०), दरबार ए-अकबरी', (दे०) 'सुखनदान-ए-फारस' (दे०) तथा नैरंग-ए-खयाल (दे०) आदि इनके अमूल्य ग्रथ है। इनकी शैली मनोहर व्यग्य से ओतप्रोत तथा काव्यमय है। हास्य का पुट भी वे यदा-कदा देते चलते हैं। 'आब-ए-हयात' इनका अमर ग्रथ है।

आज़ाद *(उर्दू० पा०)*

आजाद प० रतन नाथ 'सरशार' (दे०) के 'फसाना ए-आज़ाद (दे०) का नायक है। सारा कथानक इसी पात्र के चारो ओर घूमता है। आज़ाद घुमक्कड प्रकृति का व्यक्ति है। यह जहाँ जाता है अपनी लच्छेदार बातो से लोगो को मोह लेता है। इसकी वश-परपरा का सरशार ने कोई परिचय नही दिया, केवल इतनी सूचना दी है कि इसका एक कश्मीरी मुस्लिम घराने से सबध है।

आज़ाद का चेहरा-मोहरा कुछ इस तरह का है—भरे हुए गाल, लबा कद, हृष्ट-पुष्ट शरीर, सेब की तरह दमकता हुआ चेहरा, बडी-बडी मूँछे, सिर पर तुर्की टोपी, पाँव मे लखनवी नक्केदार जूती, पाजामा, शेरवानी या कभी-कभी लखनवी ढग का अँगरखा पहने हुए दिखाई देता है। 'सरशार' आज़ाद का रूप धर कर स्वय भागते-दौडते हुए प्रतीत होते है।

आजाद स्वभाव से प्रगतिशील है, दृढनिश्चयी है। यह मौलवियो के पास गडे-तावीज लेने नही जाता, छीक आने या बिल्ली के रास्ता काट जाने पर लक्ष्य सिद्धि के प्रयत्न से विरत नही होता। यह मुल्लाओ और पडितो को प्रमाद मुक्त देखना चाहता है। यह प्रारभ से ही स्त्री-शिक्षा का प्रचारक है। समाज की गदगी को छिपाना उसे रुचिकर नही। यह सब कुछ होते हुए भी वह एक अनपढ और आवारा व्यक्ति है। अत इसका चरित्र-चित्रण अस्वाभाविक-सा लगता है। यह पढा-लिखा नही, फिर भी देश की चार-पाँच भाषाओ से परिचित है। यह अपने मुसलमान भाइयो के हित-साधन के लिए तुर्की भी जाता है किंतु वापस लौटता है तो इसकी पहली वाली स्फूर्ति इसके साथ नही लौटती। खोजी' (दे०) इसका एक मसखरा साथी है।

'आज़ाद', मौलाना अबुल कलाम *(उर्दू० ले०)* [जन्म—188१ ई०, मृत्यु—1956 ई०]

मौलाना आज़ाद न केवल उर्दू के मूर्धन्य साहित्यकार और ओजस्वी वक्ता थे वरन् अपने समय मे राजनीतिक क्षेत्र के शीर्षस्थ महारथी भी थे। यौवनावस्था मे ही इन्होने काग्रेस पार्टी मे सम्मिलित होकर मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए अत्यत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। 1942 ई० मे ये अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के प्रधान बनाए गए थे। जीवन-भर ये काग्रेस पार्टी से सबद्ध रहे और पाकिस्तान के निर्माण का अत तक घोर विरोध करते रहे थे। उर्दू के अतिरिक्त ये अरबी और फारसी के भी बहुत बडे विद्वान् थे। कलकत्ता से प्रकाशित 'अलहिलाल' नामक साप्ताहिक पत्रिका द्वारा इन्होने अपनी बहुज्ञता और विद्वत्ता का सिक्का देश भर मे जमा दिया था। खिलाफत आदोलन के युग मे ये मुसलमानो के अन्य-तम नेता थे। इन्होने राजनीति को और साहित्य को सदैव अलग रखा था। इनके द्वारा प्रणीत अनेक कृतियो मे से 'गुबार-ए-खातिर' (दे०), मजामीन-ए-अबुलकलाम', कुर्बानी' 'कारवान ए-खयाल', 'ताजा मजामीन-ए-अबुलकलाम' 'तर्जु-मान-ए-कुरान' अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी साहित्यिक, धार्मिक, शैक्षिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक सूझबूझ उच्च कोटि की थी। काव्य के प्रति इनकी अत्यधिक श्रद्धा थी। आरभिक जीवन मे इन्होने कुछ काव्य-साधना भी की थी परतु बाद मे स्थायी रूप से गद्य को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। इनकी स्मरण शक्ति इतनी विल-क्षण थी कि इन्हे उर्दू, फारसी और अरबी के सहस्रो उत्कृष्ट पद आद्योपात कठस्थ थे। स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् ये भारत के शिक्षा-मत्री के महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन रहे। राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय जागरण के कर्ण-धारो मे इनका नाम सदा आदर के साथ लिया जाएगा।

'आज़ाद', अब्दुल अहद *(कश० ले०)* [जन्म—1902 ई०, निधन—अप्रैल, 1948 ई०]

कश्मीर के बडगाम तहसील मे स्थित रागर (रागल) नाम के गाव मे जन्मे 'आजाद' क्रातिकारी स्रष्टा और सास्कृतिक नवजागरण के प्रमुख स्तभ थे। इनके पिता का नाम सुल्तान दरवेश था जो स्वय साहित्यिक जगत् मे प्रसिद्ध थे। इन्हे अँग्रेज़ी का ज्ञान नही था और न यह महजूर साहब (दे०) की तरह

कश्मीर से बाहर रहे थे, और न इन्हें दुनिया की हवा लगी थी। मौलाना हफ़ीज और रूमी के महान् ग्रंथों और पिता की धार्मिक प्रवृत्तियों से प्रभावित थे, अतः प्रारंभ में इनका जीवन बहुत ही धार्मिक रहा। प्रारंभ में इनका उपनाम 'अहद' था जिसे बदलकर इन्होंने बाद में 'जांबाज' कर लिया। पुत्र-शोक के आघात से कवि का हृदय टूट गया और यहीं से इनका दृष्टिकोण भी बदला। यह निराशावादी बने, फिर तार्किक और बारीकी से देखा जाये तो अपने अंतिम दिनों में यह आस्तिकता-नास्तिकता से बहुत दूर रहे। अब इन्होंने 'आज़ाद' उपनाम से काव्य-रचना की। सन् 1942 में 'समाजवादी' दृष्टिकोण के संपर्क में आकर इनके कवित्व का स्रोत फूटा। आज़ाद साहब सभी दकियानूसी अंधविश्वासों, सिद्धांतों, पूर्व-धारणाओं से मुक्त हो गये। इन्होंने तथाकथित धर्म, धर्मशास्त्रों और ईश्वरवादी विचारावली को भी चुनौती दी। सामाजिक शासनतंत्र के प्रति विद्रोह किया और पूरे क्रांतिकारी बने। इनकी रचनाओं को तीन श्रेणियों या भागों में विभक्त किया जा सकता है—(1) प्रेम-गीत एवं भक्ति गीत, जिन पर उर्दू-फ़ारसी कवियों का प्रभाव है; (2) प्रकृति के सौंदर्य की प्रशंसा में—यहाँ इन पर महजूर की कविताओं का प्रभाव मालूम देता है; और (3) द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी एवं क्रांतिकारी मूर्तिभंजक। इनके कई प्रकाशित एवं अप्रकाशित गीतों का संग्रह अब अकादेमी ने प्रकाशित किया है। शैली, भाव एवं भाषा की दृष्टि से 'आज़ाद' का बहुत ऊँचा स्थान है और इन्हें कश्मीरी साहित्य के आधुनिक युग का एक प्रमुख सूत्रधार कहा जा सकता है। इन्होंने जीवन के अंतिम क्षणों में कश्मीरी साहित्य के इतिहास पर उर्दू भाषा में 'कश्मीरी ज़बान और शायरी' की रचना की जो तीन खंडों में प्रकाशित हुई है।

आज़ाद, अवतारसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

आज़ाद की काव्य-कृतियाँ हैं—'शांत बूंदां', 'सावण पीघां', 'विश्वी वेदना', 'कन सोआं', 'सोन सवेरा' और 'जीवन नाद'। इनकी कविताओं पर स्वतंत्रता-आंदोलन का गहरा प्रभाव है जिनमें समग्र सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना अभिव्यक्त हुई है। इनकी कविता का मूल स्वर आशा और आस्था का है। इन्होंने तीन महाकाव्य भी लिखे हैं—'मरद अगंमड़ा' (दे०) 'विश्व नूर', तथा 'महाबली'।

आज़ाद ने पंजाबी कविता को जन-जीवन से जोड़ा है और उसमें यथार्थ को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य पैदा की है।

आज़िम, मुज़फ़्फ़र *(कश्० ले०)* [जन्म—1934 ई०]

इनका जन्म कश्मीर के बारहमूला जिले के गोटलीपुरा गाँव में सन् 1934 ई० में हुआ। कच्ची आयु में मानव की पशुता का अनुभव हुआ और उपचेतन मन के आघात को 20-21 वर्ष की आयु में वाणी मिली। तभी से सामाजिक अन्याय और मनुष्य की पाशविक भावनाओं के प्रति आक्रोश की ज्वाला फूटी। इनकी रचनाओं में जहाँ दर्द और भावुकता है वहाँ अभिव्यक्ति ओजमयी है। इनकी शैली मार्मिक है और उसमें ठेठ कश्मीरी भाषा का प्रयोग हुआ है। 'ज़ोलानः' (बेड़ियाँ) नाम के इनके कविता-संग्रह पर इन्हें 'कश्मीर कल्चरल अकादेमी' की ओर से पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

आजिर मानुह *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1952]

हितेश डेका (दे०) के 'आजिर मानुह' (आज का मनुष्य) उपन्यास में वर्तमान जीवन और भूमि-संबंधी समस्याओं का वर्णन है। इसमें मानव के अधिकारों के मूल्य-निर्धारण का प्रयास है। यह लेखक का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।

आज्ञा-पत्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1716 ई०]

कोल्हापुर के श्री राजा शंभु छत्रपति की प्रेरणा से उनके अमात्य रामचंद्र पंत ने इसकी रचना की थी। इसमें कुल प्रकरण हैं—नौ। प्रथम प्रकरणों में शिवाजी द्वारा स्वराज्य की स्थापना और संभाजी तथा राजाराम द्वारा उसके संरक्षण-स्थिरीकरण की चर्चा है। तीसरे प्रकरण से राजनीतिशास्त्र से सम्बद्ध गंभीर-यथार्थ विवेचन आरंभ होता है। इसमें राजा के गुणों उत्तरदायित्वों की चर्चा है। चौथे प्रकरण में राजा के प्रधान सचिव के महत्व, उसके गुण-अवगुणों की मीमांसा अधिक यथार्थ रूप में अवतरित हुई है क्योंकि रचनाकार स्वयं इसी पद पर दीर्घ काल से कार्यरत रहा था। पाँचवें में सेठ-व्यापारियों के प्रति राजा के दृष्टिकोण की मार्मिक चर्चा है। छठे-सातवें में तत्कालीन देशमुख, कुलकर्णी, पाटिल आदि जागीरदारों के साथ राज-व्यवहार का विवेचन है, राज्य-संरक्षण की

दृष्टि से इन्हे भूमिदान देने की अपेक्षा द्रव्य दान को ही अधिक उचित ठहराया गया है। आठवें मे दुर्ग निर्माण तथा उसके सरक्षण की विधि का विवेचन है तथा नौवें प्रकरण मे नौ-सेना (आरमार) की तैयारी और उसके महत्त्व का निरूपण है। रामचद्र पत के उपर्युक्त विवेचन मे सर्वत्र स्वानुभव का पुष्ट आधार है। श्री शिवाजी, सभाजी तथा इनके परवर्ती अनेक मराठा शासको के प्रशासन को नज़दीक से जानने-परखने का इन्हे अवसर प्राप्त हुआ था। तत्कालीन राजनीतिशास्त्र का यह अत्यन्त मौलिक और सर्वांग सुदर ग्रथ है।

आट्टक्कथा *(मल० पारि०)*

यह विश्व-प्रसिद्ध नृत्यकला रूप कथकलि का आधार-साहित्य है। आट्टक्कथाएँ मलयाळम के दृश्यकाव्य होते हैं। इन काव्यो की विषय-वस्तु प्राय पुराण-प्रसिद्ध कथाएँ होती है। कथाश सक्षेप रूप मे श्लोको मे दिए होते हैं जिनका अभिनय से प्राय सबध नही होता। श्लोक के बाद सगीतबद्ध पद हैं जिनका गायन पार्श्वगायक करते हैं और उसके अनुसार अभिनेता आगिक अभिनय करते हैं। 'गीतगोविंद' (दे०) की श्लोक पद पद्धति का प्रभाव आट्टक्कथा मे दर्शनीय है।

आट्टक्कथा-साहित्य का मलयाळम के साहित्येतिहास मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। सोलहवी सदी ई० के कोट्टारक्करा तपुरान प्रथम आट्टक्कथा लेखक हैं जिन्होंने 'रामायण' (दे०) को आठ भागो मे प्रस्तुत किया था। कोट्टयत्तु तपुरान (दे०), उणायि वारियर (दे०), इरयिम्मन् (दे०) तपि आदि मुख्य आट्टक्कथाकार हैं। महाकवि वळ्ळत्तोळ् (दे०) द्वारा कथकलि का पुनरुद्धार करने के बाद इन आट्टक्कथाओ का महत्त्व और बढ गया है।

आट्टप्रकारम् *(मल० कृ०)*

सस्कृत नाटको के प्राचीन रगमचीय रूप 'कुटियाट्टम' के अभिनय की विधि को व्यक्त करने वाले ग्रथो की परपरा। 'मत्राकम्', 'मत्तविलासम्', शूर्पणखाकम्', 'अशोकवनिकाकम्' आदि इसके कई भाग हैं। परपरागत रूप से इसे राजा कुलशेखर वर्मा के सभासद् तोलन (दे०) द्वारा रचित माना जाता है, परतु विद्वानों के मत मे इसके भिन्न भिन्न भाग भिन्न भिन्न व्यक्तियो के द्वारा रचित हैं और नवी से पद्रहवी सदी तक के बीच मे लिखे गए हैं। इनकी भाषा को तमिल और सस्कृत के सतुलित मिश्रण से विकसित मानक भाषा मान सकते हैं।

आट्रुप्पडै *(त० पारि०)*

आट्रुप्पडै का शाब्दिक अर्थ है मार्ग-निर्देशक कविताएँ। सघकालीन दस दीर्घ कविताओ (पत्तुप्पाट्टु) मे पाँच 'आट्रुप्पडै' हैं। इनमे किसी दानी आश्रयदाता से पुरस्कार प्राप्त कर लौटता हुआ कलाकार अपने किसी निर्धन मित्र से मिलने पर उसे उस आश्रयदाता तक पहुँचने का मार्ग बताता है। उसे लगता है कि आश्रयदाता की राजधानी तक पहुँचाने वाले मार्ग का प्रत्येक पदार्थ उसका स्वागत-सत्कार कर रहा है, अत वह उसका वर्णन उसी रूप मे करता है। कवि या कलाकार को सपूर्ण सृष्टि मे उस दानी एव उदार आश्रयदाता की झलक दीख पडती है। इन कृतियो मे कवि राजा या सामत की उदारता का वर्णन करने के लिए पाँचो भू-भागो का वर्णन भी करता है। कविता के अत मे नगर के सौंदर्य, आश्रयदाता के अपूर्व प्रेम, राजमहल मे आयोजित प्रीति-भोज, आश्रयदाता द्वारा कलाकार का स्वागत, उसको दिये गय नाना उपहार और अतिम विदाई का वर्णन होता है। पुरनानूरु के कुछ मुक्त पदो मे तथा परवर्ती युग की स्फुट कविताओ मे आट्रुप्पडै का एक तत्त्व—राजा या आश्रयदाता की उदारता का वर्णन—प्राप्त होता है।

आडुगापट्टि अम्मैयप्प पिळ्ळै *(त० पा०)*

अम्मैयप्प पिळ्ळै तमिल मे रचित दूसरे और पी० आर० राजम अय्यर के एकमात्र उपन्यास 'कमलाबाल चरित्तिरम' (दे०) के प्रमुख पात्रो म से है। इसका सम्बन्ध उपन्यास के प्राय सभी प्रमुख पात्रो एव घटनाओ से है। अम्मैयप्प पिळ्ळै आडुगापट्टि नामक गाँव के रहने वाले थे और मदुरै की एक पाठशाला मे तमिल प्राध्यापक के रूप मे कार्य कर रहे थे। उनकी आयु 50 वर्ष के लगभग थी। शरीर गठा हुआ था। वे अत्यन्त बुद्धिमान और तर्क-पटु थे। उनका तमिल-ज्ञान अपार था। वे सगीत प्रेमी थे। तर्क करते समय प्राय गीतो द्वारा अपने विरोधियो का मुह बद किया करते थे। अम्मैयप्प पिळ्ळै गम्भीर प्रकृति के सज्जन थे। भोले स्वभाव के कारण वे अपनी कमियो को गुण मानकर जी रहे थे। उनके चारित्रिक गुणो को स्पष्ट करने के लिए

तज्जन्य विकास का वर्णन किया गया है। चौथे भाग 'जीवन-संग्रह' में 1924 से 1935 ई० तक की घटनाएँ वर्णित हैं। विदेश यात्राएँ, असफल वैवाहिक जीवन, पत्नी की मृत्यु, सरदार व गांधीजी के मतभेद आदि प्रमुख घटनाएँ हैं।

एक निर्भीक साहित्यकार व अच्छे शैलीकार के रूप में गुजराती साहित्य में इंदुलाल की प्रतिष्ठा इस आत्मकथा व अन्य रचनाओं के कारण है।

आत्मकथा (*हिं० पारि०*)

जीवन-चरित्र के दो रूप हैं—जीवनी (दे०) और आत्म-कथा। लेखक के अपने जीवन से संबंधित ब्यौरेवार विवरण, संस्मरण (दे०), डायरी, पत्रावली आदि सभी आत्म-कथा के अन्तर्गत आती हैं, पर आत्म-कथा प्राय: उसी पुस्तक को कहते हैं जिसमें लेखक स्वयं अपने संपूर्ण जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत करता है, भले ही उसमें आन्तरिक जीवन या चरित्र पर अधिक बल दिया गया हो। कार्लाइल के शब्दों में, 'सफल चरित्र का लिखना उतना ही कठिन है जितना सफल जीवन का अपने जीवन में निभाना; आत्म-कथा लिखना तो और भी दुष्कर है क्योंकि प्रथम तो व्यक्ति की स्मृति सदा विश्वसनीय नहीं होती; दूसरे कटु सत्यों का उद्घाटन करना, अपने दोषों और चारित्रिक छिद्रों को प्रस्तुत करना कठिन है और तीसरे अपना पौरुष और महत्व जताने का लोभ संवरण करना दुष्कर होता है। फिर भी विश्व-वाङ्मय में अनेक प्रामाणिक आत्म-कथाएँ—जैसे रूसो तथा गांधी की आत्म-कथाएँ—लिखी गयी हैं जो रोचक होने के साथ-साथ प्रामाणिक भी हैं।

आत्मचरित (*म० कृ०*)

यह कवयित्री बहिणाबाई की रचना है। इसमें लगभग सात सौ कविताएँ हैं। इनकी कविताओं का प्रथम संकलन 1913 ई० में और दूसरा 1926 में प्रकाशित हुआ था। इस आत्मचरित का विशेष महत्व है। संत तुकाराम (दे०) का सान्निध्य और साक्षात्कार कवयित्री को प्राप्त था अत: इसमें उपलब्ध संत तुकाराम के विषय में जानकारी प्रामाणिक और महत्त्वपूर्ण है। इसकी रचना अभंग छंद में हुई है। भक्ति-भावना की उत्कटता की दृष्टि से भी इसका महत्त्व है।

आत्मचरित्र (*म० कृ०*)

राजनीति के क्षेत्र के सजग कार्यकर्ता नाना फडणवीस ने अपना आत्मचरित लिखा था। नाना फडणवीस का जन्म सन् 1742 में हुआ था और मृत्यु सन् 1800 में। लेखक ने बाल्यकाल से सन् 1761 तक के अपने जीवन को आत्मचरित में लिया है। यह आत्मवृत्त रूपाकार की दृष्टि से अत्यंत लघु है। इसकी रचना कब हुई यह निश्चित नहीं कहा जा सकता।

मूल कृति मोडी लिपि में थी। प्रकरण के प्रारंभ में श्रीकृष्ण ने प्रसन्न शीर्षक तथा श्रीसांबसदाशिवाला को नमस्कार कर लिखना प्रारंभ किया गया है। नाना फडण-वीस की उत्तर प्रदेश यात्रा, पानीपत प्रसंग, पूना में आग-मन आदि इस ग्रंथ के मुख्य भाग हैं। इसमें इनके वैयक्तिक-कौटुंबिक जीवन के संस्मरणों का विशेष उल्लेख नहीं हुआ है।

नाना फडणवीस स्वयं कवि या लेखक नहीं थे। वे तो एक कूटनीतिक राजनीतिज्ञ ही थे। परंतु उनकी साहित्य-लेखन-शैली वैशिष्ट्यपूर्ण है। ग्रंथारंभ में पहले आध्यात्मिक विचार व्यक्त कर मानव-देह की घृणास्पद स्थिति चित्रित कर अपनी देह के संबंध में आत्मनिवेदन आरंभ किया गया है। सब वर्णन वास्तविक हैं उनमें कहीं चमत्कार अथवा वैचित्र्य नहीं है।

अभिव्यक्ति में प्रांजलता तथा अत्यंत आत्मीयता है। चरित्रकार ने अपने प्रति ईमानदार रहकर ईमानदारी से इसका लेखन किया है—व्यक्ति-विषयक उद्गार, विविध जीवनानुभव, अंतर्द्वंद्व तथा गुण दोषों का संतुलित विवेचन उपस्थित किया है। इसकी भाषा सीधी-सादी तथा अनलंकृत है।

इस प्रकार लघु आकार वाला यह अपूर्ण ग्रंथ महत्वपूर्ण है।

आत्मजीवनी (बं० कृ०) [रचना-काल—1898 ई०]

ब्राह्मधर्म प्रचार-आंदोलन के पुरोधा महर्षि देवेंद्रनाथ (दे०) की 'आत्म-जीवनी' नाना कारणों से बंगला साहित्य का एक अविस्मरणीय ग्रंथ है। इस ग्रंथ में हृदय का समस्त कलकोलाहल निविड शांति का परमाश्रय पाकर गहरी-गंभीर ध्यानमग्नता में अपनी पूर्णता की उप-लब्धि करता है। मनोजगत् तथा अध्यात्मजगत् का एक अपरूप रेखांकित मानचित्र मनोदर्पण पर सहज ही प्रति-

भासित होता है। जीवन एव जीवन-रहस्य की गभीरता इस ग्रथ की विशेषता है। ग्रथ की अनायास-सुदर, शिल्प-सुषमावित एव अपरूप वर्णनाभगी इस ग्रथ के पाठकचित्त को सहज ही सानद मुग्धता से विस्मित कर देती है। समकालीन समाज धर्म एव जीवन के वास्तविक रूप का गहन-गभीर अन्वेषण एव उसके मुक्तिपथ का नव निर्देश इस ग्रथ के सकल ऐश्वर्य का चिरतन उत्स है। देवेन्द्रनाथ के भक्त एव कवि-हृदय का निविड सान्निध्य इस ग्रथ मे सर्वत्र देखा जा सकता है।

आदक, रामदास *(बँ० ले०)* [समय—सत्रहवी शती के तीसरे दशक से सातवें आठवें दशक तक]

रामदास आदक का जन्म हुगली जिला के हायातपुर ग्राम मे अनुमानत सन् 1920 30 के मध्य हुआ था। इनके पिता का नाम रघुनदन था और ये जाति के केवट थे।

इन की कृति 'अनादि मगल' (अनाद्य मगल) अथवा 'धर्मपुराण' है। 1962 ई० मे यह कृति पूर्ण हुई। धर्मठाकुर के आदेश से कवि ने धर्म मान रचना प्रारभ की। कवि मे कवित्व शक्ति भी धर्मठाकुर के आशीर्वाद से ही प्रकट हुई।

ग्रथ मे कवि का आत्म परिचय भी पूर्ववर्ती धर्ममगल काव्य के कवियो के अनुकरण पर मिलता है जो नाना वैचित्र्यपूर्ण अद्भुत घटनाओ से युक्त है। रूपराम तथा अन्य धर्ममगल काव्यो का प्रभाव इस ग्रथ मे यथेष्ट है।

कहानी एव चरित्र-चित्रण मे रचना कौशल एव सतत प्रवाह है। स्निग्ध पद-लालित्य गुणो से युक्त कृति मे कवि की कवित्व-शक्ति प्रकट होती है। ग्रथ की भाषा सरल है। सस्कृत पुराण तथा काव्य-शास्त्र मे कवि की गति थी—यह निर्विवाद स्वीकार करना होगा।

आदर्श पीठ *(अ० कृ०)* [रचना काल—अज्ञात, लेखक—देवचद्र तालुकदार (दे०)]

यह उपन्यास इस शताब्दी के चतुर्थ दशक के शेष भाग मे 'आह्वान' पत्रिका मे खडश प्रकाशित हुआ था। यह पुस्तकाकार प्रकाशित नही हो सका। इसमे एक आदर्शवादी युवक के समाज सुधार और स्वावलबी उद्योग की शोकपूर्ण परिणति दिखायी गयी है। जैसे ऊसर भूमि पर बीज का बोना निष्फल जाता है उसी प्रकार शिक्षा और ज्ञान का प्रकाश किए बिना समाज का सुधार करना निष्फल होता है। उपन्यास का कथा-भाग दुर्बल है। कहानी के मध्य व्यावहारिक ज्ञान से रहित अति-उत्साही आदर्शवादी युवक की सफलता ही प्रकट होती है। इस युवक मे गभीर निष्ठा आत्म-विश्वास और दृढ सकल्प का अभाव है।

आदर्शवाद *(हि० पारि०)*

भारत तथा यूनान देशो मे यह विचार अत्यन्त प्राचीन है कि साहित्य का सर्वप्रथम प्रयोजन शिक्षा देना है। पश्चिम मे प्लेटो से भी पूर्व एरिस्टोफेनीज़ ने कहा था कि कवि-विशेष यश का अधिकारी तभी हो सकता है जब उसका परामर्श सत् हो और वह मानव को उत्कृष्टतर बनाकर राष्ट्र के उत्थान मे सहायक हो। आरभिक मॉसयस, हेसिप्रोड और हेराक्लिटस ने भी इसी बात पर बल दिया कि महान् कवि का कार्य प्रौढो को परामर्श देना तथा अपनी रचना द्वारा मानव को सभ्य तथा उदात्त बनाना है। रोमन आचार्यो ने भी आदर्श स्थापना पर बल दिया। होरेस ने काव्य का उद्देश्य आनद प्रदान करने के साथ-साथ शिक्षा देना भी माना। इस विचारधारा का प्रभाव नवशास्त्रवादी युग से होता हुआ आज भी किसी-न किसी रूप मे पाया जाता है। ड्राइडन ने आनद के बाद शिक्षा को दूसरा स्थान दिया, जानसन ने ससार को पहले से अधिक सुदर बनाना कवि का कर्त्तव्य माना, स्वच्छदतावादी वर्ड्सवर्थ तक ने कवि का कर्त्तव्य पाठक की भावनाओ का परिष्कार कर उसकी सवेदना का विस्तार करना कहा। आधुनिक युग मे रिचर्ड्स ने कला और नीति का परस्पर सबध स्वीकार किया—यद्यपि उनका नैतिकता सबधी दृष्टिकोण न आध्यात्मिक है और न आधिदैविक ही। भारत मे भी प्रारभ से ही काव्य का प्रयोजन व्यवहार ज्ञान, शिवेतर से रक्षा, कातासम्मित उपदेश बताकर कला के आदर्शवादी सिद्धात पर बल दिया गया और यह मत प्रेमचद (दे०) के कथन, ' ' कला को भी उपयोगिता की तुला पर तोलता हूँ' शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचन्द्र) जी के 'लोकमगल की साधना' पर बल तथा प्रसाद (दे०) जी की उक्ति 'श्रेय की प्रेममय अभिव्यक्ति' मे भी विद्यमान है। कला के आदर्शवादी सिद्धात की मान्यताएँ हैं—कला मे नीति सबधी मूल्यो का पालन अनिवार्य है, उसमे मानव का यथार्थ चित्र उपस्थित न

कर उसके भव्य गुणों का निरूपण होना चाहिए ; मानव-भविष्य की उज्ज्वल संभावनाओं के प्रति आस्था रखते हुए उसका चित्रण होना चाहिए।

आदवाणी, कल्याण बूलचंद (*सि० ले०*) [जन्म–1911 ई०]

इनका जन्म हैदराबाद सिंध में हुआ था। सिंध में ये प्राध्यापक थे और विभाजन के पश्चात् बंबई के जय-हिंद कालेज में अध्यापन-कार्य करने लगे थे। आजकल भी ये उसी कालेज में है। ये सिंधी के साथ-साथ अँग्रेज़ी और फ़ारसी के भी अच्छे विद्वान् हैं। इनकी कविताओं का एक संग्रह 'राज़ व न्याज़' नाम से प्रकाशित हो चुका है। सिंधी-साहित्य-जगत में कवि की अपेक्षा आलोचक और निबंधकार के रूप में अधिक विख्यात हैं। शाह-लतीफ़, सचल और सामी पर इनकी आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। 'शाह जो रिसालो' (दे०) नाम से सिंध के प्रसिद्ध सूफ़ी संत कवि के काव्य का आलोचनात्मक संस्मरण तैयार करने पर इन्हें साहित्य अकादमी से सन् 1968 में पाँच हज़ार रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

आदवाणी, भेरुमल महिरचंद (*सि० ले०*) [जन्म—1875 ई०, मृत्यु—1950 ई०]

भेरुमल का जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है। बीस वर्ष की आयु में ये सरकारी विभाग में नियुक्त हुए थे और उस पद पर रहकर इन्होंने सिंध का काफ़ी भ्रमण किया था। 1924 ई० में ये कराची के दयाराम जेठमल सिंध कालेज में सिंधी प्राध्यापक के रूप में कार्य करने लगे थे। देश-विभाजन के पश्चात् ये पूना में जाकर रहे थे और वहीं इनका देहावसान हुआ। इन्होंने कुछ कविताएँ लिखी है जो सिंधी पाठ्य-पुस्तकों में सम्मिलित की गई है और काफ़ी लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं। परंतु कवि की अपेक्षा ये सफल गद्य-लेखक के रूप मे अधिक प्रसिद्ध हैं। गद्य मे कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनचरित्र, निबंध, आलोचना, यात्रा-वर्णन और संस्मरण के क्षेत्र में भेरुमल जी की रचनाएँ मिलती हैं। सिंधी साहित्य में इन्हें सबसे अधिक ख्याति 'सिंधी बोली, अजी तारीख़' (दे०) नामक पुस्तक लिखने के कारण प्राप्त हुई है। अनुसंधान के क्षेत्र में इनकी रुचि अधिक थी। इनकी प्रसिद्ध रचनाओं में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—लतीफ़ी सैर (शाह लतीफ़ के काव्य का भौगोलिक दृष्टि से अध्ययन); सिंध जो सैलानी (सिंध की यात्रा का वर्णन); गुलकंद (सिंधी मुहावरों और कहावतों का संग्रह); हिंदुनि जी तारीख़ (दो भागों में); क़दीम सिंध (प्राचीन सिंध का इतिहास)। इनकी भाषा सरल, मुहावरेदार और ओजपूर्ण है। इनकी रचनाओं से इनके गंभीर अध्ययन की स्पष्ट झलक मिलती है।

आदवाणी, हीरानंद शौकीराम (*सि० ले०*) [जन्म—1863 ई०, मृत्यु—1893 ई०]

हीरानंद का जन्म हैदराबाद सिंध में हुआ था। वे बचपन से ही बड़े निर्भीक, सत्यवादी और धार्मिक वृत्ति के थे। हीरानंद और इनके बड़े भाई नवलराय सिंध में ब्रह्मसमाज के प्रमुख प्रचारक थे। हीरानंद ने सन् 1890 ई० में हैदराबाद से सिंधी में मासिक पत्रिका 'सरस्वती' शुरू की थी। यह सिंधी भाषा में पहली मासिक पत्रिका है। इस पत्रिका में हीरानंद साहित्यिक, शैक्षणिक, सामाजिक तथा नैतिक विषयों पर लिखा करते थे। हीरानंद की कहानियों का संग्रह उनकी मृत्यु के पश्चात् 'हीरे जूं कण्यूं' (हीरों के टुकड़े) नाम से 1926 ई० में भेरुमल महिरचंद आदवाणी (दे) ने प्रकाशित किया था। हीरानंद की गद्य-शैली सरस, बोलचाल की तथा मुहावरेदार है। समाज-सुधार आदि कार्यों के अतिरिक्त सिंधी-गद्य के क्षेत्र में इनका योगदान हमेशा याद रहेगा।

आदि उला (*त० कृ०*) [रचना-काल—ईसा की नवीं शताब्दी]

'आदि उला' शीर्षक का शाब्दिक अर्थ है प्रथम उला काव्य। इसके रचयिता चेरमान पेरुमाळ हैं। इन्हें नवीं शताब्दी के शैव भक्तों में परिगणित किया जाता है। संपूर्ण कृति में भगवान् शिव की स्तुति की गई है। लेखक ने शिवजी को सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी सत्ता के रूप में चित्रित किया है। इस कृति के विभिन्न पदों में शिवजी का अपने भक्तों को आशीर्वाद देने के लिए अन्य अनेक देवताओं और किन्नरों के साथ नगर-भ्रमण का वर्णन है। ज्ञान-संबंधी विभिन्न विषयों की चर्चा होने के कारण इसे 'ज्ञान उला' भी कहा जाता है। आदि उला के पद शैवमतानुयायियों के पावन धर्मग्रंथ 'तिरुमुरै' के ग्यारहवें खंड में संग्रहीत हैं। चेरमान पेरुमाळ की अन्य प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—पोन वण्णत्तु अंतादि और तिरुवारूर मुम्मणिक्कोवै।

आदिकवि वाल्मीकि *(क० कृ०)*

यह कन्नड के कहानी-सम्राट् डा० मास्ति वेंकटश अय्यगार (दे०) का आलोचनात्मक ग्रथ है। हमारे आदिकाव्य रामायण तथा उसके प्रणेता वाल्मीकि के व्यक्तित्व एव कृतित्व की अत्यत सरस विवेचना इसमे है। मास्ति जी ने इसमे यह सिद्ध किया है कि रामायण पहले काव्य है पीछे मतवादी ग्रथ। मतवादी ग्रथ बनने के कारण उसका क्षेत्र कैसे सीमित हुआ—यह बताते हुए मास्ति जी कहते हैं इस कारण जिसे सब लोगो मे प्रसारित होना था, वह एक देश मात्र के लिए सीमित होकर रह गया, जिसे सम्राट् बनना था, वह एक राज्य का राजा मात्र बना, जिसे एक देश का राजा बनना था वह केवल एक गाँव का मुखिया बना। रामायण की महत्ता की चर्चा करते हुए मास्ति जी उसके उदय की सुदर कहानी देते हैं। 'रामायण उपोद्घात' इस ग्रथ का एक सुदर अध्याय है। इसके बाद रामायण के क्षेपको की चर्चा है, प्रामाणिकता की कसौटी पर उसे कसा गया है। अत मे इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि सातवाँ काड क्षेपक है। बालकाड के आरभ मे मरने वाले ऋष्य श्रृग वृत्तात, भरद्वाज के आश्रम मे राम का जाना, रामावतार की बातें, विष्णु तथा शिवपारम्य बोधक प्रसग तथा बातें आदि प्रक्षिप्त हैं। किंतु यह चाहे प्रक्षिप्त हो या न हो रामायण की महिमा इसी मे है, वाल्मीकि की कविता का शिखर यही है। इसी भाग मे रामायण ससार की समस्त साहित्य-सपदा मे श्रेष्ठ है। इसके उपरात अयोध्या काड की दीर्घ चर्चा एव आलोचना है। मास्ति जी का विचार है कि अयोध्याकाड सर्वश्रेष्ठ काड है क्योंकि उसमे जीवन-लीला का जितना विस्तृत वर्णन है उतना विश्व-साहित्य की किसी भी कृति मे नही है। चरित्र चित्रण मे वाल्मीकि विश्व साहित्य मे बेजोड हैं। बाली-वध प्रसग को लेकर विद्वानो मे तरह-तरह की बातें फैली है। बाली-वध, सीता का अग्नि प्रवेश तथा उसका निर्वासन—ये तीन प्रसग बहुत ही विवादास्पद रहे है। मास्ति जी ने इनका समाधान देने का प्रयास किया है। सीता का अग्नि प्रवेश, वन-गमन आदि बातो को मास्ति जी ने प्रक्षिप्त बताया है। राम देवकल्प हैं, पर मनुष्य है। अत उनके अनेक गुणो के समक्ष यह दोष नगण्य है। राम सभ्य थे। एक असभ्य शाखमृग बाली के साथ ऐसा ही बरताव करना है—ऐसा नियम कहाँ है ? इस प्रकार उन्होने इसका उत्तर उदारतावादी दृष्टिकोण से दिया है। फिर भी वह उतना सतोषजनक नही है। सीता पवित्र है उसे आग भी जला नही सकती—इस प्रकार का विश्वास राम मे था। अत उन्होने उसके शील को प्रमाणित करने के लिए उससे अग्नि-प्रवेश करने को कहा। वस्तुत सीता परित्याग की समस्या का उत्तर उतना सरल नही है। पात्र-परिशीलन मास्ति जी ने बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढग से किया है। वाल्मीकि के प्रकृति चित्रण, कथन-कौशल आदि की सुदर चर्चा है। सस्कृति के अतरग को दिखाने मे मास्ति जी सिद्धहस्त है। 'केलवु समस्येगळु' मे मास्ति जी ने राम की ऐतिहासिकता, पुष्पक विमान, दशशिर, कपि आदि की चर्चा कर उनका वास्तविक तात्पर्य समझाया है। अत मे मास्ति जी ने यह सिद्ध किया है कि वाल्मीकि ऐतिहासिक दृष्टि से ही नही योग्यता मे भी भारतवर्ष के आदिकवि हैं, कविगुरु है।

मास्ति जी कन्नड के कहानी-सम्राट है—उनका यह आलोचनात्मक ग्रथ भी कथा ग्रथ के समान रोचक बन गया है।

आदि ग्रथ *(प० कृ०)* [स्थापना-वर्ष—1604 ई०]

प्रथम सग्रहकर्ता गुरु अर्जुन देव (दे०), तदनतर भाई गुरुदास (दे०) सपादक।

इसमे गुरुओ की वाणियो के अतिरिक्त फरीद, कबीर (दे०), जयदेव (दे०), नामदेव, त्रिलोचन परमानद, सदना वेणी, रामानद, धन्ना जाट, पीपा, सैन, रविदास, मीराबाई (दे०), पाखन तथा सूरदास (दे०) जैसे भक्तो एव भट्ट समुदाय के मथुरा, जालप, वल्ह, हरिवश, तल्ह, सल्ह, जल्ह, भल्ह, कल्ह, सहार कल्ह, जल्लण, नल्ह, कीरत, दास गयद, सदरग तथा भिखा आदि की रचनाएँ सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त सुदर, मरदाना सत्ता और बलचद्र की वाणी भी इसमे सकलित है।

सिक्ख धर्मावलबियो के सभी धार्मिक तथा दार्शनिक विचार इसी ग्रथ से अनुप्राणित हैं। इस ग्रथ मे 1430 पृष्ठ हैं। सन् 1604 ई० मे आदि ग्रथ की स्थापना हर मदिर अमृतसर मे की गई थी। इस ग्रथ का पूरा नाम 'आदि श्री गुरु ग्रथ साहब जी' है और 'गुरु ग्रथ साहिब' भी इसी की सज्ञा है। भाई गुरुदास द्वारा सपादित आदि ग्रथ की प्रति को करतारपुर वाली प्रति माना जाता है। दूसरा सस्करण भाई मनीसिंह द्वारा सपादित 'दमदमा' वाला है। अर्नेस्ट ट्रम्प, मैकालिफ तथा साहिबसिंह ने आधुनिक काल मे आदि ग्रथ के सपादन-कार्य मे अपना योग दिया है। आदि ग्रथ मे तत्कालीन धार्मिक-सामाजिक जीवन का सुदर चित्रण है, परतु भक्ति का ही स्वर प्रधान है और

नाम-जप को महत्त्व दिया गया है। इसकी भाषा पंजाबी एवं व्रजभाषा-मिश्रित सधुक्कड़ी है और लहंदी पोठोहारी, माझी आदि पंजाबी की विविध बोलियों के शब्द भी इसमें उपलब्ध हैं।

आदि जुगादि *(पं० कृ०)*

'आदि जुगादि' प्रीतमसिंह 'सफ़ीर' (दे०) का चौथा काव्य-संकलन है। इस संग्रह में कवि ने अपनी अध्यात्मवादी तथा प्रगतिवादी कविताएँ प्रस्तुत की हैं। कुछ कविताओं में आदर्शवादी प्रेम की भावना व्यक्त हुई है। कवि ने प्रगतिवादी चेतना को भी अपनी कविता में व्यक्त किया है। प्रगतिवादी चेतना का प्रतिनिधित्व करने वाली उसकी कुछ कविताओं के नाम हैं—'नील' (नदी का नाम), 'हिरोशीमा नागासाकी', 'अमन' (शांति), 'सल्तनत' तथा 'कुआर गंदल' (एक पौधे का नाम) आदि।

आदिपुराण *(क० कृ०)*

कन्नड़ के आदिकवि पंप (दे०) (940 ई०) ने दो काव्य लिखे : एक लौकिक, दूसरा धार्मिक। उनकी धार्मिक या आगमिक कृति है 'आदिपुराण' जो चंपूशैली में है। जिनसेनाचार्य का संस्कृत 'पूर्वपुराण' इसका आकर-ग्रंथ है। उसमें वर्णित प्रथम तीर्थंकर की कथा ही इसकी कथ्य वस्तु है। कथावस्तु, भावसंपत्ति तथा मततत्त्व इन सबमें आदिपुराण 'पूर्वपुराण' का ऋणी है। इतना होते हुए भी आदिपुराण अपने काव्य-कौशल के कारण एक स्वतंत्र कृति है। पूर्वपुराण में काव्य की अपेक्षा पुराण-दृष्टि अधिक है तो 'आदिपुराण' में काव्यत्व अधिक है। पहला एक सरल पद्य-काव्य है तो दूसरा प्रौढ़ चंपू-काव्य है। पहले का विस्तार दूसरे में नहीं है। आदिपुराण में भवावलियों में भटककर, उनसे तंग हो भोग से त्याग की ओर आकृष्ट हो, अपना कर्म-क्षालन कर अंत में वैराग्य-परिणति के कारण केवल ज्ञान एवं मुक्ति को प्राप्त करने वाले प्रथम तीर्थंकर या आदिदेव की मनुजयात्रा की, परम सिद्धि की, मनोरम कथा है।

पंप ने अपने काव्य में स्वयं घोषित किया है कि 'आदिपुराण' में काव्य-धर्म एवं मत-धर्म का समन्वय है। यह यथार्थ है। दर्शन और काव्य दोनों दृष्टियों से आदिपुराण कन्नड़ की एक अक्षय निधि है। 'पंपभारत' (दे०) आदिपुराण से भी श्रेष्ठ माना जाता है किंतु भव्यता की दृष्टि से यह पंपभारत से श्रेष्ठतर है। आदिपुराण मार्गी-शैली का श्रेष्ठ काव्य है। इसमें संस्कृत समास-शैली की ही भरमार है। फिर भी कन्नड़ के अपने छंदों का भी स्तुत्य प्रयोग है। शास्त्रीय अंश, धार्मिक होने के कारण अनिवार्यतः आ गये हैं किंतु उनके बावजूद यह एक महाकाव्य है, एक महान् कृति है। यह कन्नड़ की प्रतिनिधि कृतियों में है।

आदिल मंसूरी *(गु० ले०)* [जन्म—1935 ई०]

स्वातंत्र्योत्तर काल में जिन लेखकों ने अपनी प्रतिभा एवं सर्जक शक्ति से गुजराती साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है, उनमें आदिल का स्थान प्रमुख है। अब तक इनके चार काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें मुक्तक और ग़ज़ल में इनको विशेष सफलता मिली है। इन्होंने जापानी काव्य-प्रकार 'हाइकू' का भी प्रणयन किया है। इनकी कविताएँ प्रायः अछांदस हैं।

इनकी कविता में क्रांति के स्वरों को वाणी मिली है किंतु मुख्यतः उसमें जीवन की उस हताशा की ही अभिव्यक्ति हुई है जिसमें मृत्यु के प्रति अत्यंत तीव्र आकर्षण होता है।

कविता के अतिरिक्त इन्होंने 'एब्सर्ड' एकांकी भी लिखे हैं। 'मारा हाथ पग बँधायला छे' नामक संग्रह में इनके पाँच एकांकी संगृहीत हैं जिनमें आधुनिक जीवन की विच्छिन्नता, दंभ तथा दुराव इत्यादि का आलेखन किया गया है।

समग्रतया गुजराती कविता और नाट्य साहित्य में नयी पीढ़ी की भावनाओं को अभिव्यक्ति देने वाले प्रयोगशील लेखक के रूप में इनका विशिष्ट स्थान है।

आधुनिक ओड़िआ साहित्यर गतिपथ *(उ० कृ०)*

यह विभिन्न विषयों पर डा० गोपाळचंद्र मिश्र (दे०) के दस साहित्यिक आलोचनात्मक निबंधों का संकलन है। लेखक ने वर्ण्य विषय को उसके व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है। इसमें संगृहीत दस निबंधों में इन्होंने आधुनिक उड़िया-साहित्य के जिन प्रमुख पक्षों पर प्रकाश डाला है, उससे आधुनिक उड़िया-साहित्य की एक सामान्य धारणा अवश्य बन जाती है। समय के विकास-क्रम में संपूर्ण भारतीय साहित्य को उड़िया साहित्य का जो अवदान है, उसका भी परिचय मिलता है। तुलनात्मक एवं

व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। भाषा प्रसादगुणमयी है।

आधुनिकतार क ख ओ अन्यान्य आलोचना *(उ० कृ०)*

'आधुनिकतार क ख ओ अन्यान्य आलोचना' मे चितामणि बेहेरा (दे०) के निबध हैं। इनमे आधुनिक साहित्य के विभिन्न पक्षो पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम कुछ निबधो मे लेखक ने आधुनिकता को परिभाषित किया है और रोमाटिक सवेदना की अपेक्षा आधुनिक सवेदना को सिद्ध करने का प्रयास किया है। कतिपय महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियो के विस्तृत विवेचन द्वारा उन्होंने अपनी बात की भलीभाँति स्थापना की है। इस पुस्तक मे सस्कृति के प्रति उनकी गहरी चिंता, उनका उदात्त मानवीय दृष्टिकोण तथा सूक्ष्म विवेचना बुद्धि आदि को सफल अभिव्यक्ति मिली है।

आधुनिक पजाबी कविता *(प० कृ०)* [प्रकाशन—1941 ई०]

अपनी इस कृति मे डा० मोहनसिह (दे०) ने काव्य-रचना सबधी कुछ विषयो पर प्रकाश डालने के अनतर उन्नीसवी-बीसवी शताब्दी की पजाबी कविता के कुछ अश परिचयात्मक टिप्पणियो सहित प्रकाशित किए हैं। इसके प्रथम भाग मे आधुनिक कविता की उन विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है जिनके कारण उसे मध्ययुगीन कविता से पृथक् किया जा सकता है। भारतीय साहित्य, विशेष रूप से उर्दू एव हिंदी साहित्य, के सदर्भ मे नई पजाबी कविता के वैशिष्ट्य पर अत्यत सुदर सतुलित रीति से विचार प्रकट किए हैं। दूसरे भाग मे भिन्न-भिन्न धाराओ मे आधुनिक काव्य के कुछ अशो का सकलन और उन पर परिचयात्मक टिप्पणियाँ है। इसमे कुछ कवि ऐसे भी हैं जिनसे पजाबी पाठक का परिचय पहली बार हुआ। इस प्रकार ज्ञान एव सूचना की दृष्टि से यह रचना अपने समय की बहुचर्चित कृति रही है।

आनद *(क० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

कन्नड के श्रेष्ठ कहानीकार श्री आनद जी का वास्तविक नाम है अज्जपुर सीताराम। इनका जन्म मैसूर राज्य के अज्जपुर मे एक सभ्रात ब्राह्मण परिवार मे 1904 ई० मे हुआ। कुछ समय तक नौकरी करने के बाद वे साहित्य-रचना मे लग गए। कन्नड साहित्य मे श्रेष्ठ कहानीकार के रूप मे वे सदैव स्मरणीय रहेंगे। 'माटगाति', 'सरिसिय गोबे', 'वेबुबेल्ल' आदि आपके विख्यात कहानी-सकलन हैं। आप सुकुमार वृत्तियो के शिल्पी है। आपकी कहानियो मे कौटुबिक जीवन के सुदर एव सरल चित्र मिलते हैं। 'ना कोदहुडुगि' (लडकी जिसे मैंने मारा) देवदासी प्रथा पर लिखी आपकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। 'हेडतिया कागद' (पत्नी की चिट्ठी) कला की दृष्टि से अतीव उत्कृष्ट एव मार्मिक कृति है। आनद कन्नड के रोमाटिक कहानीकार है। 'आनदलहरी' मे आपके रेखाचित्रो व निबधो का सकलन है। 'पक्षिगान' इनका गद्यकाव्य-सकलन है। 'राबिंसन क्रूसो, 'उग्रपरीक्षे' तथा 'ईसाप की कहानियाँ' आदि अनूदित कृतिया हैं। इनकी शैली अत्यत रोचक है और भाषा विषयानुकूल।

आनद *(पा० पा०)*

आनद बुद्ध के पितृव्य शुक्लोदन के पुत्र तथा बुद्ध के सर्वाधिक निकटवर्ती शिष्य थे। इन्होने भगवान् से प्रव्रज्या ली और उनके जीवन के अतिम 25 वर्ष पर्यंत उनके उपस्थापक (सेवक) रहे। बाद मे आर्हत (दे० अरहत्) पद ग्रहण किया। ये बौद्ध धर्म प्रतिपादित समस्त गुणो के आकर तथा बौद्ध धर्म के अनन्य अन्वाख्याता थे। भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद त्याग वृत्ति के कारण ही उनके स्थानापन्न नही बने। सुदरियो के जाल को 'कुशल मृग' की भाँति बचा जाते थे। भगवान् बुद्ध को इन्होने ही भिक्षुणी सघ-स्थापना के लिए बाध्य कर दिया था।

आनदतनय *(म० ले०)*

ये दक्षिण भारत मे स्थित तजौर के अरणी ग्राम के निवासी थे। पिता का नाम था आनदराव। इन्होने लगभग बीस आख्यान काव्यो की रचना की जिनमे 'सीता स्वयवर', 'राधा-विलास', 'पूतना-वध' उत्कृष्ट हैं। इनकी रचनाओ मे अलकारो की प्रचुरता है अर्थ चमत्कृति की अपेक्षा शब्द-चमत्कृति पर अधिक बल है। सर्वत्र भक्ति रस की प्रधानता है।

आनंद मठ *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1882 ई०]

यह बंकिमचंद्र (दे०) का लोकप्रिय उपन्यास है। मुसलमान शासक अकर्मण्य, विलासी तथा प्रजाहित की भावना से वंचित थे। इन विकट परिस्थितियों में संतान-संप्रदाय का उदय हुआ। इनका एक व्यापक प्रशिक्षित दल है जिसकी गतिविधियाँ गुप्त एवं रहस्यमय हैं। इनके शत्रु हैं मुसलमान जिनके अत्याचारों एवं शोषण से हिंदू पीड़ित हैं। संतान संप्रदाय का अँग्रेज़ों से कोई विरोध नहीं। अँग्रेज़ों के संपर्क से हिंदुओं का बहिर्ज्ञान बढ़ेगा, नवीन वातावरण मिलेगा, वे सुधरेंगे और जागेंगे। संतान संप्रदाय की शक्ति का स्रोत है सत्यानंद। जीवानंद और भवानंद की मानसिक उथल-पुथल प्रभावशाली है। संतान संप्रदाय के बाहर के तीन पात्र हैं—महेंद्र, कल्याणी, शांति। तीनों का चित्रांकन बहुत सजीव और स्वाभाविक हुआ है।

इस उपन्यास की उपलब्धि है भक्ति और मुक्ति। भक्ति सनातन धर्म के प्रति और मुक्ति है जातीय उत्थान के लिए स्वराज्य। इसकी राष्ट्रीय भावना 'वन्दे मातरम्' के गीत से मुखरित हुई जिसे बाद में राष्ट्रीय गान बनने का उपयुक्त गौरव प्राप्त हुआ।

आनंद, यादव *(म० ले०)* [जन्म—1935 ई०]

पूना के श्री आनंद व्यवसाय से अध्यापक हैं। एम० ए० करने के बाद आजकल ये पी-एच० डी० की उपाधि के लिए शोध-कार्य कर रहे हैं। इनके उपन्यासों का विषय ग्रामीण जीवन है। यांत्रिक खेती के आगमन से ग्रामीण जीवन पर, वहाँ के रहन-सहन, सभ्यता और संस्कृति पर पड़ने वाले कुप्रभाव का चित्रण इनके उपन्यासों का विषय है। 'गोतावळा' उपन्यास में ट्रैक्टर के आगमन से गाँव में बेकारी के फैलने की समस्या का चित्रण है। उपन्यासों के अतिरिक्त रेखाचित्र, कहानियाँ तथा बाल-साहित्य भी इन्होंने लिखा है। बँगला ने इनकी कहानियों का अनुवाद कर इनका सम्मान किया है।

आनंदवर्धन *(सं० ले०)* [समय—लगभग 855-880 ई०]

काश्मीर-नरेश 'अवन्ति वर्मा' के सभासद आचार्य आनंदवर्धन कवि और आलोचक दोनों रूप में अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

स्वयं आनंदवर्धन के उल्लेख के अनुसार इनकी चार कृतियाँ थीं—'अर्जुन चरित', 'विषमबाणलीला' तथा 'देवीशतक' नामक तीन काव्य एवं 'ध्वन्यालोक' (दे०) नामक ग्रंथ जो साहित्यशास्त्र पर अद्भुत कृति है तथा केवल यही उपलब्ध भी है।

'ध्वन्यालोक' संस्कृत-साहित्यशास्त्र के इतिहास में एक ऐसी क्रांतिकारी रचना है जिसने आनंदवर्धन को अमर कर दिया। इसमें ध्वनि-सिद्धांत (दे० ध्वनि) का प्रतिपादन किया गया है। आनंदवर्धन ही ध्वनिसिद्धांत के उद्भावक हैं। इनकी स्थापना है कि काव्य की आत्मा उसकी व्यंजनीयता में है, न कि गुण या अलंकार में। रस ही काव्य का अंगी तत्व है जिसकी निष्पत्ति व्यंजना से होती है। जिस काव्य में व्यंग्य अर्थ की प्रधानता होती है अर्थात् वाच्य की अपेक्षा वह चारुतर होता है, उसे ध्वनि कहते हैं। व्यंग्य के तीन प्रकार होते हैं—वस्तु, अलंकार तथा रस। इनमें रस ही मुख्य है। व्यंजना शब्द एवं अर्थ की एक शक्ति है।

यद्यपि आनंदवर्धन ने ध्वनि को ही शब्द की आत्मा कहा है पर काव्य के आधायक तत्त्वों में रस को सर्वोपरि माना है जो मात्र व्यंग्य ही होता है। गुण रस के धर्म हैं जो रस में ही पाये जाते हैं तथा अलंकार काव्य के शरीरभूत तत्त्व शब्द और अर्थ में रहकर भी रस की ही शोभा बढ़ाते हैं। उन्हें अलंकार इसीलिए कहते हैं कि वे दूसरों की शोभा बढ़ाने का काम करते हैं। इनके द्वारा जो अलंकार्य है वही काव्य का सर्वस्व है और वह रस ध्वनि ही है। काव्य-दोषों का संबंध अंशतः रस से ही होता है। पद, पदांश, वाक्य या अर्थ दोष अंग के द्वारा अंगीरस का ही अपकर्ष करते हुए दोष कहे जाते हैं। इनसे जहाँ रस का अपकर्ष नहीं होता वे दोष नहीं माने जाते। आचार्य की मान्यता है कि औचित्य का ठीक-ठीक निर्वाह ही रस-निष्पत्ति का रहस्य है। जहाँ वह नहीं हो पाता है उसे अनौचित्य कहते हैं और वहाँ रस भंग होता है। इसीलिए अनौचित्य ही मुख्य दोष है, शेष गौण।

व्यंजना काव्य की एक अद्भुत शक्ति है जो शब्द की अभिधा एवं लक्षणा नामक वृत्तियों से सर्वथा भिन्न है। यह व्यंजनावृत्ति ही ध्वनि सिद्धांत का प्राण है। इसकी उद्भावना व्याकरण के स्फोट के सिद्धांत से हुई है जिसका श्रेय आचार्य आनंदवर्धन को ही है। आनंदवर्धन का ध्वनि-सिद्धांत संस्कृत-साहित्य-शास्त्र में मूर्धन्य माना जाता है। इस सिद्धांत के अनुसार काव्य के सभी तत्त्वों की व्याख्या सुचारु रूप से हो जाती है। आचार्य की मान्यता है कि सहृदय-हृदयाह्लादरूप आनंद ही काव्य का

परम प्रयोजन है तथा कवि की जन्मजात प्रतिभा ही काव्य का मुख्य हेतु है ।

आनदवर्धन के ध्वनिसिद्धात के विरोधी भी हुए हैं जिनमे भट्टनायक (दे०) एव महिमभट्ट (दे०) दो मुख्य हैं तथा दोनो ही रसवादी हैं ।

आनदवृ दावन चपू *(स० कृ०)* [समय—सोलहवी शताब्दी ई०] ।

इस चपू की रचना कविकर्णपूर ने की है । यह कृष्णकथा को लेकर लिखा गया अत्यत मनोहारी काव्य है । इसमे श्रीकृष्ण, राधा, चद्रावली, ललिता, एव श्यामा प्रमुख पात्र हैं । इसका प्रधान रस श्रृगार है तथा इसमे विभिन्न रास नृत्यो का सजीव वर्णन किया गया है । गद्य-भाग मे यमकालकार का बाहुल्य कृत्रिम-सा प्रतीत होता है ।

आनदशकर बापूभाई ध्रुव *(गु० ले०)* [जन्म—1869 ई०, मृत्यु—1942 ई०] ।

आनदशकर ध्रुव का जन्म अहमदाबाद मे सन् 1869 मे हुआ था । उन्होने एम० ए० एल एल० बी० तक विधिवत् अध्ययन बबई विश्वविद्यालय मे किया । तदुपरात मिथिला के पडितो से भारतीय षड्दर्शना से सबद्ध सस्कृत ग्रथो का अध्ययन किया । गुजरात कॉलेज, अहमदाबाद के सस्कृत प्राध्यापक कोथवटे के नौकरी से निवृत्त होने पर ये उनके स्थान पर नियुक्त हुए । इसके बाद सन् 1920 मे महामना मालवीय जी की माँग पर गाधी जी ने इन्हें काशी हिंदू विश्वविद्यालय मे समकुलपति के पद पर कार्य करने के लिए भेजा था । सन् 1928 मे ये गुजराती साहित्य परिषद् तथा चौथी फिलॉसोफीकल काग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए । ध्रुवजी इण्टर यूनिवर्सिटी बोर्ड के अध्यक्ष भी रहे थे । मणिलाल नभुभाई (दे०) की मृत्यु के बाद इन्होने कुछ समय तक 'सुदर्शन' पत्र का सचालन किया ।

आनदशकर ध्रुव स्वभाव से सस्कृत-प्रेमी, स्वदेशवत्सल, धर्मचितक तथा सौम्य, सरल और स्वस्थ व तटस्थ रहकर वस्तुओ के व्याख्यान करने की क्षमता से सपन्न व्यक्ति थे । 'वसत' पत्र मे प्रकाशित, साहित्य, शिक्षा व समाज-सबधी प्रश्नो पर शाश्वत मूल्यो से युक्त इनके समीक्षात्मक लेखो के सग्रह इस प्रकार है—काव्यतत्त्व-विचार' (दे०), 'साहित्य विचार', 'दिग्दर्शन', विचार-माधुरी' । इनके द्वारा रचित 'नीतिशिक्षण', 'धर्मवर्णन' तथा 'हिंदू धर्मनी बालपोथी' आदि ग्रथ सभी धर्मो व प्राचीन हिंदू धर्म से सबद्ध आकर ग्रथ हैं । गुजरात की धर्म-सबधी चिता-धारा मे इनका योग बडा ही महत्त्वपूर्ण है । इनमे वस्तुओ के पुनराख्यान करने की क्षमता इतनी विलक्षण थी कि ये विविध धारणाओ मे भी विरोध का परिहार कर उनमे निहित समानताओ की ओर सकेत करते हुए समन्वय स्थापित करने मे समर्थ हो जाते थे । इनकी साहित्य चिता एकागी नही थी, पूर्व और पश्चिम की समादृत धारणाओ का उसमे समन्वय था । इन्होने काव्य नाटकादि साहित्यागो को विशाल भूमिका पर रख कर परखा है । इनकी आलोचनाएँ इतिहास और तत्त्वज्ञान-रूपी कूलो को स्पर्श कर प्रवाहित होने वाली धाराओ के समान है । जटिल और उलझे हुए तथ्यो मे से सत्य को ढूँढ लाने की इनमे प्रवृत्ति लक्षित होती है। गुजरात की धर्म-चिता और साहित्य-तत्त्व-विवेचना के क्षेत्र मे इनका स्थान अद्वितीय है ।

आनद, स्वामी *(गु० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

इन्होने सन्यास ले लिया था, इसीलिए इनके नाम से पहले स्वामी शब्द जोडा गया है । गाधी जी 1915 ई० म भारत आये और तभी से स्वामी आनद गाधी जी के साथ रहे हैं । उनके साप्ताहिक 'नवजीवन' के सपादक भी वे बहुत समय तक रहे । उन्होन गाधी जी की मृत्यु के बाद हिमालय मे अल्मोडा के पास कौसानी मे पहाडी प्रदेश के लोगो की सेवा की और पिछले आठ वर्षो से उन्होंने दक्षिण गुजरात मे आदिम जातियो के लिए आश्रम स्थापित किया हुआ है । उनकी चौदह पुस्तकें अब तक प्रकाशित हुई हैं । इनमे से कूलगाथाओ' (दे०) को 1969 का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था और 'गुजराती साहित्य परिषद्' का श्रेष्ठ कृति का पुरस्कार भी मिला था, लेकिन सन्यासी होने के नाते उन्होने पुरस्कार अस्वीकृत कर दिये । उनकी पुस्तको मे प्रवास-वर्णन है, विचारात्मक निबध है, स्वानुभाव के रोचक प्रसग हैं, और बडे परिवार के बलिदान तथा मानवता की घटनाएँ हैं, और अतीत के गौरव के विस्तृत प्रसग नये ढग से प्रस्तुत किये गये है । उन्होने शिष्ट साहित्य मे लोकबोली का प्रयोग किया है ।

आपणो धर्म *(गु० कृ०)* [प्रकाशन—1916 ई०]

'आपणो धर्म' नामक ग्रथ आचार्य आनदशकर

'बापूभाई ध्रुव (दे०) के धर्म और तत्वज्ञान को लेकर लिखे गए सभी लेखों का संग्रह है। आर० आर० शेठ कम्पनी, बम्बई द्वारा प्रकाशित इस संग्रह में विद्वान् लेखक के सिद्धांत-निरूपण संबंधी चौबीस निबंध हैं, 'सिद्धांत-निरूपण : वार्तिको' शीर्षक के अंतर्गत चौदह अन्य निबंध संकलित हैं। इनके अलावा 17 निबंध' शास्त्र-चर्चा', 13 निबंध 'ग्रंथावलोकन', 19 निबंध 'प्रासंगिक चर्चा अने नोंध' तथा 11 'व्याख्यानो' नामक शीर्षकों के अंतर्गत प्रस्तुत हैं। उक्त सभी निबंधों के विषय में लेखक ने प्रथम आवृत्ति की प्रस्तावना में ठीक ही कहा है कि यह पुस्तक अपने धर्म का प्रकरणबद्ध ग्रंथ नहीं है और न अपने इस धर्म को ही लेकर व्यवस्थित रूप से लिखे गए निबंधों की माला है। समय-समय पर 'वसंत' तथा 'सुदर्शन' नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों को इस संग्रह में यथासंभव व्यवस्था देने का प्रयत्न किया गया है। आनंदशंकर स्वभावतः स्वदेश-प्रेमी, संस्कृत-प्रेमी और धर्म-चिंतक थे—अतः इस ग्रंथ में समाविष्ट लेखों के द्वारा उन्होंने स्वधर्म की महिमा पुनः स्थापित करने की चेष्टा की है। भारतीय दर्शन तथा धर्मादि पर समय-समय पर जो गंभीर आरोप लगाए गए उनका निराकरण करते हुए उन्होंने धर्म की विशाल व्याख्या देकर उसे जीवन की सभी प्रवृत्तियों के केंद्र में स्थित किया है। प्रस्तुत निबंधों के पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक में वस्तु को विशाल फलक पर रखकर उसका सूक्ष्मता से पोस्टमार्टम करने और समभाव से न्याययुक्त बात कह डालने की अद्भुत शक्ति और तटस्थता वर्तमान थी। समस्त दार्शनिक चिंता लेखक की केवलाद्वैत संबंधी श्रद्धा को ही व्यक्त करती है; सभी दार्शनिक चर्चा का निगमन-स्थान अद्वैत है। 866 पृष्ठ की इस पुस्तक में सभी स्थानों पर विषय-निरूपण स्पष्ट और प्रमाणपुष्ट है।

आपटे, नारायण हरि *(म० ले०)* [जन्म—1889 ई०]

इनका उपन्यास-साहित्य जितना विपुल है उतना ही वैविध्यपूर्ण। इन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक, रम्याद्भुत और कल्पनारम्य उपन्यास लिखे हैं। ये पाठकों की रुचि को ध्यान में रखकर उपन्यास लिखते थे, अतः कुछ प्रौढ़ाओं के लिए हैं तो कुछ युवतियों के लिए और कुछ विद्यार्थियों के लिए। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों का विषय है—मराठी एवं राजपूत काल का शौर्य एवं पराक्रम, परंतु इनमें इतिहास बहुत कम, कल्पना और मनोरंजन तत्व अधिक है। इनमें जीवंत भावना के स्थान पर बाह्य अलंकरण अधिक है, ऐतिहासिक ज्ञान कला से एकात्म नहीं हो पाया है। कथानक-शिल्प एवं पात्र-रचना की दृष्टि से ये सभी उपन्यास एक जैसे हैं। सभी में अनैतिहासिक एवं अद्भुत तत्त्व, कल्पना और उत्कट शृंगार है; इनके नायक तरुण, शूरवीर, नायिकाएँ सौंदर्यवती, कोमल पर वीर, सेवक स्वामिनिष्ठ और कर्मठ तथा खलनायक दुर्गुणों के भंडार हैं। सामाजिक उपन्यासों के कथानक एवं पात्र-रचना में भी यही यांत्रिकता है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति में रँगे पात्रों को अंत में राष्ट्रीय भावना तथा भारतीय संस्कृति का भक्त दिखाकर लेखक ने भारतीयता के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की है, दूसरी ओर नायिकाओं को विद्रोह का झंडा खड़े करते दिखाकर क्रांतिकारी विचारों के साथ सहानुभूति व्यक्त की है। उपदेश देने की वृत्ति उनकी सभी कृतियों में है जिससे कला को आघात पहुँचा है। इन्होंने कहानियाँ तथा समीक्षात्मक ग्रंथ भी लिखे हैं।

प्रमुख ग्रंथ अजिंक्यतारा, लांछित चंद्रमा, संधिकाल, दुरंगी दुनिया, अर्वाचीन रामराज्य, सुखाचा मूलमंत्र, अमर संग्राम, पांच ते पांच, न पटणारी गोष्ट आदि उपन्यास; 'विदग्ध वाङ्मय', 'मराठी वाङ्मयाचा अभ्यास' आदि आलोचनात्मक ग्रंथ।

आपटे, हरिनारायण *(म० ले०)* [1864—1919 ई०]

पूना निवासी, 'उपन्यास-सम्राट्' उपाधि से विभूषित हरिनारायण आपटे मराठी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार एवं कहानीकार हैं। बचपन से ही माँ की मृत्यु हो जाने के कारण ये दादी की स्नेह-छाया में पले। 1880 ई० में इन्होंने 'न्यू इंग्लिश स्कूल' में प्रवेश लिया और बाद में डेकन-कॉलेज में अध्ययन किया। बचपन में ही इनका विवाह हो गया था। छात्रावस्था में उन पर विष्णु शास्त्री चिपळूणकर (दे०) का और बड़े होने पर 'कानिटकर दंपति' का प्रभाव पड़ा। इनका अध्ययन व्यापक था। मिल-स्पेंसर के स्त्री-स्वातंत्र्य-संबंधी विचारों का भी इन पर प्रभाव पड़ा। सामाजिक विचारों में ये सुधारवादी गो० ग० आगरकर (दे०) से और राजनीतिक विचारों में लोकमान्य टिळक (दे०) से प्रभावित थे। इनके मुख्य ग्रंथ हैं : सामाजिक उपन्यास—'गणपतराव', 'भयंकर दिव्य' (दे० प्रो० डंडी), 'विधवा-कुमारी' (दे०) 'पण लक्षांत कोण' 'घेतो' (दे०) (कौन ध्यान देता है ?), 'मी' (दे० ताई भावानंद)। ऐतिहासिक उपन्यास—'उषःकाल' (दे०), 'गड आला पण सिंह गेला (दे० उदयभान, जगतसिंह; कमलकुमारी) (गढ़ मिला,

पर सिंह मारा गया), 'सूर्योदय', 'रूपनगर ची राजकन्या' 'चन्द्रगुप्त', 'वज्राघात'। इनके ऐतिहासिक उपन्यासो का लक्ष्य था पाठको मे स्वराज्य की प्राप्ति और सरक्षण की चेतना जगाना, अत इन्होने इतिहास की उतनी ही सहायता ली जो इनके इस ध्येय की पूर्ति कर सके। इतिहास के अतिरिक्त दतकथाओ, लोककथाओ, स्वामी रामदास (दे०) के ग्रथो आदि का भी इन्होने उपयोग किया। केवल इतिहास के महान् व्यक्तियो का ही चित्रण इनके उपन्यासो मे नही है, साधारण जन के सुख-दु ख, सौंदर्य एव कुटिलता का भी चित्रण है। इनके उपन्यासो मे भी रम्याद्भुत तत्त्व हैं पर वह केवल सुखवादी और रोमाचकारी न होकर जीवन की कठिनाइयो से टक्कर लेकर दु ख को सुख मे बदलने के प्रयत्नो से उत्पन्न अद्भुत रस है। वातावरण निर्मिति के लिए आपटे ने युग से तादात्म्य ही स्थापित नही किया, युगानुरूप एव पात्रानुरूप विचारधारा एव भाषा का भी प्रयोग किया है।

इन्होने अपने सामाजिक-राजनीतिक उपन्यासो मे युगीन समस्याओ—विवाह से सबधित दहेज आदि समस्याओ, विधवा की दयनीय स्थिति, स्त्री परतत्रता, अशिक्षा, सामाजिक अनाचार, ढोग, राजनीतिक क्षेत्र मे शिथिलता आदि का चित्रण तो किया ही है, साथ ही उनसे मुक्त होने की प्रेरणा भी दी है। इसीलिए कहा गया है कि इन्होने अपने उपन्यासो द्वारा आगरकर और लोकमान्य टिळक के कार्य मे सहायता दी।

आब ए हयात *(उर्दू० ले०)* [रचना-काल—1878 ई०]

'आब ए-हयात' मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आजाद' (दे०) की रचना है। उसमे उर्दू शायरो की परिस्थितियो की विस्तार से चर्चा की गई है। विशेष तौर पर कवियो की नोक-झोक, व्यक्तिगत-रोष स्वभाव और चरित्र-सबधी चुटकुले बडे अन्वेषण के बाद जुटाकर लिखे गए है जिनके स्रोत पूर्ववर्ती ग्रथ और व्यक्ति दोनो है।

आजाद का गद्य सरल-सुबोध एव सशक्त है। गद्य मे पद्य की-सी मनोहारिता है। इस ग्रथ का गद्य सजीव, मुहावरेदार, काव्यात्मक पदावली और नूतन कल्पना से पुष्ट है। आजाद की अपनी विशिष्ट शैली है जो उर्दू मे बेजोड है। शब्द-औचित्य, हास्य, सहज आलकारिकता एव प्रभावशालिता उनके गद्य की विशेषताएँ हैं। उनके गद्य मे प्राचीन एव नवीन दोनो रगो का सामजस्य पाया जाता है। कही कही अँग्रेजी शब्दो का भी प्रयोग हुआ है।

'आब-ए-हयात' मौलाना की सर्वश्रेष्ठ कृति है जिसने उन्हे अमरत्व प्रदान कर दिया है। इसे पढकर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि सम्मेलन एव साहित्यिक गोष्ठियाँ हमारी आँखो के सामने हो रही हैं और कविगण आ जा, उठ-बैठ और हँस-बोल रहे है, कविता पाठ कर रहे हैं। दा दे रहे हैं।

'आब-ए-हयात के रचयिता पर एक आरोप यह लगाया गया है कि कवियो के वृत्तात लिखने मे उसने पक्षपात से काम लिया है और जौक (दे०) का वृत्तात सबसे अधिक विस्तार से लिखा है किंतु इस प्रकार की रचनाओ मे थोडी बहुत व्यक्तिपरकता क्षम्य होती है।

आबरू *(उर्दू० ले०)*

नाम—शाह नज्मुद्दीन उर्फ शाह मुबारक, उपनाम—'आबरू', जन्म स्थान—ग्वालियर। ये शेख मुहम्मद गौस ग्वालियरी के वशज थे। इनका बचपन दिल्ली मे बीता था। ये उच्चकोटि के उर्दू कवि थे। सिराजुद्दीन अली खान 'आरजू का सान्निध्य इन्ह प्राप्त हुआ था और अपनी काव्य साधना मे उन्ही से ये पथ प्रदर्शन प्राप्त करते रहे थे। इनका एक काव्य सग्रह दिल्ली मे विनष्ट हो गया था। 'आराइश ए-माशूक' नामक मसनवी इनकी महत्त्वपूर्ण रचना है। इनके काव्य मे शब्दालकारो तथा उपमाओ की उत्कृष्टता दर्शनीय है। मुहावरेदार, सरल, स्पष्ट और प्रभावशाली भाषा का प्रयोग इनके काव्य की विशेषता है।

आबिद सुरती *(गु० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

श्री आबिद सुरती स्वातत्र्योत्तर काल के क्रातिकारी लेखक तथा सशक्त व्यग्यकार हैं। वे यशस्वी व्यग्यचित्रकार भी हैं। उनके दस उपन्यास प्रसिद्ध है। उनके उपन्यासो मे यौन सबध को महत्त्व दिया गया है। सुरती ने अपने उपन्यासो मे समाज की सडी-गली मान्यताओ तथा आधुनिक स्वच्छद समाज की विकृतियो पर गहरे वार किये हैं। उन्होने दिखाया है कि एक ओर तो हमारा समाज पश्चिम की अधाधुध नकल करने मे लगा हुआ है, दूसरी ओर हमारे सस्कारो ने हमे कही गहरे मे आज भी जकड रखा है—इस द्वद्व के फलस्वरूप हम कही के भी नही रह गय है। 'दीवरा के दीपडा', 'महापुरुष कापुरुष' उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। उनकी कुछ कृतियाँ हिंदी मे भी अनूदित हुई हैं।

आबिद हुसैन *(उर्दू० ले०)*

डा० सैयद आबिद हुसैन जामिया मिलिया इस्लामिया में प्रोफ़ेसर थे और अब सेवा-निवृत्त हो चुके हैं। वह एक प्रख्यात नाटककार हैं। उन्होंने गांधी जी की पुस्तकों के 'लाशेहक़' और 'तारीख़-ए-फ़लसफ़ा-इस्लाम' के नाम से अनुवाद किए हैं जिससे उन्हें प्रसिद्धि और ख्याति मिली है। 'पर्दा-ए-ग़फ़लत' (दे०) इनका प्रसिद्ध नाटक है। इसमें मुसलमान परिवारों की अर्थ-व्यवस्था एवं रहन-सहन का वास्तविक चित्रण हुआ है। रस्मो-रिवाज के कारण निर्धन लोगों पर जो विपत्तियाँ आती हैं उन्हें चित्रित करने में उन्होंने कमाल कर दिया है। डा० आबिद हुसैन ने जर्मनी के प्रसिद्ध लेखक 'गेटे' के 'फ़ाऊस्ट' का अनुवाद भी बड़ी कुशलता से किया है। उर्दू के क्षेत्र में वे एक सफल शैलीकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

आबोल-ताबोल *(बँ० प्र०)*

आधुनिक युग में शिशु साहित्य के अंतर्गत एक नए ढंग की काव्य-रचना का क्रम शुरू हुआ है जिसे 'आबोल-ताबोल' कहा जाता है। बच्चों के मनोविनोद के लिए, बँगला 'छड़ा' (दे०) के अनुरूप आबोल-ताबोल की रचना की जाती है। भेद केवल इतना है कि छड़ा में तर्कबुद्धि का योग रहता है और आबोल-ताबोल तर्कसंगत नहीं होता। इसमें असंबद्ध भाव एवं बुद्धिहीनता के आधार पर कविता रची जाती है जो गेय न होकर अंत्यानुप्रास-युक्त होती है और एक विशेष लहजे में इसकी आवृत्ति की जाती है जिसे सुनकर हास्यानुभूति उत्पन्न होती है।

'आबोल-ताबोल' का अर्थ दुर्बोध तुकबंदी नहीं है। जिन कविताओं का कोई अर्थ ही न हो (दुर्बोध गीत में अर्थ तो होता है) उन्हें ही आबोल-ताबोल कहा जाता है। इसीलिए आबोल-ताबोल की रचना काफ़ी कठिन है क्योंकि हास्य और अद्भुत के मणिकांचन योग से इसकी रचना होती है और साथ ही उसे अर्थहीन होना पड़ता है। उसकी कविता में प्राकृतिक जगत् एवं यथार्थ जीवन का विरोध होता है। वहां सब कुछ अर्थहीन है। यदि अर्थ है भी तो मानो एक विशेष परिहास के लिए उसे कविता में संबद्ध किया गया है। एक अर्थहीन जगत के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता जिसे पढ़ते हुए बच्चे खुश होते हैं और प्रौढ़ यह सोचते हैं कि सचमुच क्या हम इतने ही मूर्ख हैं। बँगला में सुकुमार राय (दे०) आबोल-ताबोल के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं जिनके गीतों में फूल 'ठासठास द्रम द्राम' जैसे पटाके की आवाज करते हुए खिलते हैं और उनकी खुदादू तीर की तरह शनशन करती हुई भागती चलती है।

आब्दुल मालिक *(अ० ले०)* [जन्म—1909 ई०; जन्म-स्थान—देवगाँव नाहरणि]

इन्होंने गौहाटी विश्वविद्यालय से 1951 ई० में असमीया में एम० ए० किया था। कई संस्थाओं में इन्होंने अध्यापन किया था। ये आकाशवाणी में प्रोग्राम असिस्टेंट भी रहे। श्री मलिक ने 1945-46 में 'पायगाम' का संपादन किया था। प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य :** बेदुइन (1948)। **कहानी-संग्रह :** परशमणि (1945), ए जनी नतुन छोवाली (1952), रड़ा गड़ा (1953), मरहा पापरि (1954)। **उपन्यास :** रथर चकरि घुरे (1958), बन जुइ (1958), छबिघर (1959), जीयाजुरिर घाट (1960), सूरजमुखीर स्वप्न (दे०) (1960), कंठहार (1961), *अन्य आकाश अन्य तारा* (1962), *रूपतीर्थर यात्री* (1963)। **नाटक :** राजद्रोही (1958)।

इनकी कविताओं में जनता का स्वर मिलता है। कहानियों में शब्दचयन आकर्षक है, यौनक्षुधा से लेकर शोषित समाज की अनेक समस्याओं तक पर इन्होंने लिखा है। उपन्यासों में रोमांसवाद और सामाजिक समस्याओं का चित्रण है। शिल्प की दृष्टि से इनके नाटक सफल नहीं हैं। कथाकार के रूप में ही इनकी ख्याति अधिक है। 'अघरी आत्मार काहिली' पुस्तक साहित्य अकादमी द्वारा (1973) पुरस्कृत हुई थी।

आभिजात्यवाद *(हि : पारि०)*

आभिजात्यवाद पाश्चात्य साहित्य में बहुचर्चित शब्द 'क्लासिसिज़म' का हिंदी रूपांतर है। यह वस्तुतः साहित्य के संदर्भ में एक ऐतिहासिक, सैद्धांतिक और दार्शनिक अवधारणा है। ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन यूनानी-रोमी साहित्य के आदर्श पर स्थायी कलात्मक मूल्यों, उदात्त विचारों, उच्च जीवनादर्शों और विशिष्ट प्रकार के भव्य संस्कारों से युक्त साहित्य की रचना जिन कालों में हुई वे सभी आभिजात्यवादी युग कहे जाने चाहिए, जैसे होमर, प्लेटो, अरस्तू का प्राचीनतम यूनानी साहित्य-युग तथा ई०

पू० 320 से लेकर 330 ई० तक के हेलेनिस्टिक लेखकों का वर्ग जिसने होमर और अरस्तू आदि के आदर्श पर साहित्य-रचना की। प्राचीन यूनानी साहित्य से प्रेरित ऑगस्टन युग के रोमी साहित्य को भी आभिजात्यवादी युग ही कहा जायेगा। इसके पश्चात् इटली, फ्रांस और इंग्लैंड के पुनर्जागरण-युग और नव्यशास्त्रवादी (दे०) युग भी प्रकृत्या आभिजात्यवादी युग ही थे। इटली में इसका समारंभ पंद्रहवीं शताब्दी के अंत और सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में यूनानी विद्वानों के आगमन के साथ हुआ। अरस्तू के अमर ग्रंथ 'पेरि पोइतिकेस' की स्केलिजर और कास्तेलवेत्रो द्वारा की गई व्याख्याओं के प्रकाशन के प्रभावस्वरूप फ्रांस में सत्रहवीं शताब्दी में आभिजात्यवाद ने साहित्य और कला (दे०) दोनों क्षेत्रों में अपनी जड़ें जमा लीं। इसके प्रबलतम प्रवक्ता बुअलो ने 1674 ई० में प्रकाशित अपनी कृति 'आर्त पोएतीक' में यूनानी साहित्य-सिद्धांतों की बहुत सशक्त और प्रांजल व्याख्या की। फ्रांसीसी आभिजात्यवाद का प्रभाव अँग्रेजी साहित्य पर भी पड़ा। ड्राइडन और लॉक ने अँग्रेजी आभिजात्यवाद की भूमि का निर्माण किया। इसके पश्चात् एडीसन, डा० जॉन्सन और पोप ने इसके उत्थान में सक्रिय योग दिया। लगभग इसी समय जर्मन साहित्य में भी आभिजात्यवाद का आविर्भाव हुआ जिसका पल्लवन प्राचीन यूनानी साहित्य-मूल्यों से किंचित् भिन्न और स्वतंत्र अपने ही देशकाल के अनुरूप साहित्य के चिरंतन मूल्यों के आधार पर हुआ। लेसिंग, हर्डर, वॉस, वुल्फ आदि के प्रयत्नों से अभिनव जर्मन आभिजात्यवाद का जन्म हुआ। होल्डरलीन जर्मन आभिजात्यवाद के समर्थतम कवि हैं।

सैद्धांतिक रूप में आभिजात्यवाद प्राचीन यूनानी-रोमी साहित्य-मूल्यों और जीवनादर्शों को आदर्श मानता है। इसके अनुसार साहित्य में विचार, संवेदना और शिल्प आदि के सभी धरातलों पर औदात्य और भव्यता के साथ उच्चतम एवं चिरंतन मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा होना आवश्यक है। इन गुणों से संपन्न साहित्य की रचना इतिहास के युगों से निरपेक्ष रूप में की जा सकती है क्योंकि आभिजात्यवाद के अनुसार आभिजात्य का अर्थ ही साहित्य का कालजयी होना है।

दार्शनिक दृष्टि से आभिजात्यवाद चिंतन और जीवनानुभव के उच्चतम स्तरों का स्पर्श करने का प्रयत्न करता है। 'उच्चता', 'भव्यता' और 'औदात्य' आदि की दार्शनिक भूमियों पर ऐकांतिक बल दिए जाने के कारण ही संभवतः पाश्चात्य साहित्य के स्वच्छंदतावादी युग में इसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया हुई और स्वच्छंदतावादियों ने आभिजात्यवाद को 'प्रतिक्रियावादी', 'प्रगति-विरोधी', 'अनुकरणमूलक' और 'सामंतवादी' आदि कहकर उसकी भर्त्सना की।

आमच्चा आयुष्यातील कांही आठवणी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1910 ई०]

देशसेवक तथा समाजसुधारक न्यायमूर्ति म० गो० रानडे की सहधर्मिणी रमाबाई रानडे ने 'आमच्चा आयुष्यातील कांही आठवणी' नामक आत्मचरित्र की रचना की थी। इसमें रानडे तथा लेखिका के जीवन की वैयक्तिक तथा पारिवारिक घटनाओं की स्मृतियों का प्रत्यांकन है। इसके पाँच संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

रानडे भारत के राष्ट्रोन्नति-आंदोलन के प्रमुख कार्यकर्ता थे। कुशाग्र बुद्धि, विद्वत्ता तथा अटूट देशभक्ति-भाव के कारण इनकी गणना देश की ही नहीं वरन् विश्व की महान् विभूतियों में की जाती है। लेखिका ने जीवन के सत्ताईस वर्ष इस महान् विभूति के साथ बिताए थे। इस आत्मचरित्र-लेखन में पूज्यबुद्धि तथा विभूति-पूजा का भाव है, परंतु लेखिका की दृष्टि सर्वत्र तटस्थ एवं संतुलित रही है।

रमाबाई रानडे ने अपने पति के स्वभाव का हूबहू वर्णन किया है—पति की स्वभाव-संबंधी न्यूनताओं का मार्मिक उद्घाटन भी इसमें किया गया है। इस आत्मचरित्र को पढ़कर रानडे का चरित्र जितना स्पष्ट होता है उतना रमाबाई रानडे का भी।

इस कृति की भाषा सीधी सादी, प्रवहमान, परंतु अत्यंत हृदयहारी है। इसमें सर्वत्र आत्मीयतापूर्ण शैली का निर्वाह हुआ है। पत्नी की ओर से पति के चरित्र का वर्णन प्रस्तुत करने वाला यह पहला मराठी ग्रंथ है।

आमुक्तमालयदा *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1520-25 ई० के लगभग]

इसके लेखक विजयनगर राज्य के शासक कृष्णदेवरायलु (दे०) (शासन-काल—1509-1530 ई०) हैं। ये संस्कृत तथा तेलुगु के बड़े विद्वान् तथा कवि थे। इनके द्वारा लिखे गये अनेक संस्कृत काव्यों का उल्लेख पाया जाता है। किंतु इनके द्वारा विरचित ग्रंथों में 'आमुक्तमालयदा' ही अब उपलब्ध होता है। इसका दूसरा नाम

'विष्णुचित्तीयमु' है। यह पाँच आश्वासों का तेलुगु प्रबंध (काव्य) है। इसका कथानक इस प्रकार है : श्रीविल्लिपुत्तूरु में विष्णुचित्तुडु नामक एक अर्चक था। वह अत्यंत निष्ठा के साथ भगवान् विष्णु की सेवा करता था। एक समय पांड्य देश के राजा ने अपने दरबार में उपस्थित विद्वानों से मोक्ष-प्राप्ति का उपाय पूछा। वटपत्रशायी ने अपने अर्चक विष्णुचित्तुडु को राजसभा में जाने तथा विष्णु-भक्ति की विशिष्टता स्थापित करने को प्रोत्साहित किया। विष्णु की महिमा से विष्णुचित्तुडु ने राज्यसभा में अन्य विद्वानों को परास्त कर विष्णुभक्ति की सर्वोच्चता स्थापित कर दी। राजा भी विष्णुभक्त बन गया।

विष्णुचित्तुडु की पुत्री गोदादेवी (दे०) भगवान् विष्णु को ही पति मानकर उनके विरह में संतप्त हो जाती थी। वटपत्रशायी की आराधना के लिए उसका पिता जो माला गूँथकर रखता था उसे वह पहले ही पहन कर रख देती थी। वही माला बाद में भगवान् को अर्पित की जाती थी। इसी से गोदादेवी आमुक्तमालयदा कही गई है और काव्य भी उसी नाम से अंकित किया गया। अपनी कन्या की स्थिति से चिंतित विष्णुचित्तुडु को भगवान् की महिमा से यह मालूम हुआ कि गोदादेवी भूदेवी का अवतार है तथा वह विष्णु को अपना पति बनाने के लिए विह्वल है। भगवान् के आदेशानुसार वह अपनी कन्या को श्रीरंगस्थित रंगनाथ स्वामी के पास ले गया। अंत में गोदादेवी तथा श्री रंगेश का विवाह संपन्न हो गया। इस काव्य में जगह-जगह पर प्रसंग के अनुसार विष्णुभक्ति की महिमा तथा भक्तों की कथा भी वर्णित की गई। 'खांडिक्य केशिध्वजोपाख्यानमु,' 'यामुनाचार्य-चरित्र' तथा 'मालदासरि-कथा' आदि इसी प्रकार के प्रसंग है। इनकी रचना पांडित्यपूर्ण है पर वर्णन सहज और सुदर तथा चरित्र-चित्रण मार्मिक हैं। संस्कृत पंच-काव्यों की तरह तेलुगु मे प्रसिद्ध पाँच काव्यों मे 'आमुक्त-मालयदा' भी एक है। इसकी रचना के द्वारा ही राजकवि कृष्णदेवरायलु कविराज की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके।

आमेरिका अनुभूति *(उ० कृ०)*

यह श्री गोळख बिहारी धळ (दे०) द्वारा विरचित भ्रमण-कहानी है जो उड़िया में लिखित भ्रमण कहानियों में सर्वाधिक लोकप्रिय है। श्री धळ की गद्य-रचना-शैली एकांत रूप से निजी है तथा पाठक को संपूर्ण रूप से अभिभूत कर लेने की उसमें शक्ति है। श्री धळ के अमरीका प्रवास के समय कौतूहल जाग्रत करनेवाली उनकी अनुभूतियों को रूप देने वाली यह पुस्तक अत्यंत सुख-पाठ्य है।

आयन शिर्पी *(त० पा०)*

आयन शिर्पी कृष्णमूर्ति 'कल्कि' (दे०) के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास 'शिवकामियिन शपदम' (दे०) के प्रसिद्ध पात्रों में से है। इतिहास की पृष्ठभूमि में कुछ ऐतिहासिक और काल्पनिक पात्रों की सहायता से लेखक ने इस उपन्यास की रचना की है। इस उपन्यास की मूल घटना है शिवकामी द्वारा वादापी के नाश की प्रतिज्ञा। आयन शिर्पी नायिका शिवकामी का पिता है। उपन्यास के काल्पनिक पात्रों में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह एक मूर्तिकार और कला-प्रेमी है। इसके कला-प्रेम को देखकर पाठक विस्मय-विमुग्ध रह जाता है। अजंता की गुफाओं में प्राप्त चित्रों का विवरण सुनकर उनके मन में उन्हें देखने की तीव्र इच्छा जाग्रत होती है। जब वह पिछले नौ वर्षों से वादापी के किले में कैद हुई अपनी कन्या को लेकर लौटता है उस समय इसके मन में कन्या को सुरक्षित घर पहुँचाने की नहीं अपितु अजंता की गुफ़ाओं के चित्र को देखने की इच्छा बलवती हो उठती है। परंतु इसका कला-प्रेम अनुचित नहीं प्रतीत होता। लेखक ने कारणवश ही इसे कला के पीछे पागल प्रदर्शित किया है। इसके कलाप्रेम के कारण ही उपन्यास की प्रमुख घटनाएँ घटित होती हैं। इसी कारण इस उपन्यास का खलनायक अपने उद्देश्यों में सफल होता है। वह इसकी पुत्री शिवकामी को पा लेता है। कथा में आने वाले नाना मोड़ों का कारण इसका कला-प्रेम ही है। इसी कारण खलनायक नाहनंदी (दे०) अपने षड्यंत्रों में सफल होता है। आयन शिर्पी लेखक की कल्पना-सृष्टि है। इसका नाटक के विकास में विशिष्ट योगदान है।

आयरे, ला० कृ० *(म० ले०)*

जमीदारों के चंगुल में फँसे अपढ़ ग्रामीणों की व्यथा-कथा को ला० कृ० आयरे ने अपने नाटकों में उरेहा है। 'मायेचा संसार', 'फिर्याद', 'जुलूम', 'मंगलदिव्य', 'वडील माणसे', 'बुद्धिभेद', 'लाखमाणूस' आदि इनकी महत्त्वपूर्ण नाट्यकृतियाँ हैं। जमीदारों के अमानुषीय अत्याचारों की व्यथा-कथा 'जुलूम' में तथा भूमि के बँटवारे के लिए मुकदमेबाजी में बरबाद हुए कौटुम्बिक व्यक्तियों के जमींदार के चंगुल में फँसने का उल्लेख 'फिर्याद' में हुआ

है। कथा के विन्यस्त प्रारूप की अपेक्षा कथ्य-केंद्रित दृष्टि के कारण इनके नाटकों मे चारित्रिक विकास प्राय उपेक्षित ही रह गया है, परतु परवर्ती रचनाएँ इस आक्षेप से किसी सीमा तक मुक्त अवश्य रही हैं। शेक्सपीयरी पद्धति पर आधारित इनके नाटको मे श्रमिक-वर्ग की समस्याओ का चित्रण हुआ है, इसी से जन-साधारण मे वे अत्यधिक लोकप्रिय भी हुए हैं।

आयेषा (बँ० पा०)

बकिमचद्र (दे०) के प्रथम उपन्यास दुर्गेशनदिनी (दे०) के दो मुख्य नारी-चरित्र हैं—तिलोत्तमा एव आयेषा। आयेषा की विद्युद्दीप्ति का अविस्मरणीय समुन्नत प्रकाश पाठकचित्त को विस्मयविमूढ कर देता है। आयेषा की धीर महिमा एव सुगभीर आत्मसयम पाठक की श्रद्धा एव प्रीतिबोध को नवतर महिमा मे सुप्रतिष्ठित करता है। तिलोत्तमा की शात यौवनश्री के विपरीत आयेषा का चरित्र बिजली के समान है परतु वह अतर को जलाती नही, अतर को नये आवेग एव प्रणय के द्वारा एक नया शिल्प-रूप प्रदान कर समुन्नत महिमा मे प्रतिष्ठित करती है। दुर्गेशनदिनी की आयेषा इसीलिए बँगला उपन्यास के क्षेत्र मे काफी समय तक अपना प्रभाव बनाए रखने मे समर्थ हुई थी। बकिमचद्र ने अपनी कवि-भावना की प्रेरणा से मुसलमानी आयेषा एव हिंदू जगतसिंह के बीच प्रेम का निरूपण किया था, इसीलिए आयेषा अनन्य साधारण कवि-प्रतिभा के रूप मे सार्थकता प्राप्त कर सकी है।

आरज़ू लखनवी, सैयद अनवर हुसैन (उर्दू० ले०) [जन्म—1872 ई०, मृत्यु—1951 ई०]

लखनऊ मे इनका जन्म हुआ, पाँच वर्ष की आयु से शिक्षा प्रारभ हुई और फारसी तथा अरबी पढी। बारह वर्ष की आयु से शेर कहने लगे। इन्होने कविता के साथ गद्य मे भी नाम कमाया और 'मतवाली जोगन', 'दिलजली बैरागन' आदि नाटको की रचना की। आर्थिक कठिनाइयो के कारण कलकत्ता और बबई के थियटरो के लिए नाटक भी लिखे। 'निज़ाम-ए-उर्दू' नामक पुस्तिका उर्दू व्याकरण पर लिखी। ग़ज़ल, कसीदा, मसनवी और रुबाई के अतिरिक्त सलाम और मर्सिए भी बहुत लिखे किंतु विशेष ख्याति इनकी गज़ल के कारण ही हुई। इनके काव्य मे विषाद और निराशा की भावना बडी प्रभावशाली शैली मे अभिव्यक्त हुई है। सुदर छद, कोमल और मधुर शब्दावली, आकर्षक तरकीबों के साथ सोज़-गुदाज़ का तत्व इनके शेर को बहुत प्रभावशाली बना देता है। भाषा सुथरी और मधुर है—हिंदी शब्दो के प्रयोग से कविता मे और भी आकर्षण पैदा हो जाता है। ज़ौक' की तरह इन्हे कहावतो और मुहावरो के प्रयोग का भी शौक है। इन्होने अरबी, फारसी से बचते हुए केवल उर्दू के मुहावरो का प्रयोग बडी सफलता से किया है। इनका उद्देश्य उर्दू गज़ल को सरल बनाना तथा हिंदी उर्दू की दूरी को कम करना था।

ये भाषाविज्ञान के अधिकारी विद्वान् और लखनऊ की भाषा के विशेषज्ञ माने जाते थे। इनके चार कवितासग्रह 'फुगान-ए आरज़ू','जहान-ए-आरज़ू','बयान-ए आरज़ू,' और 'सुरीली बाँसुरी' (दे०) प्रकाशित हो चुके हैं।

आरण्यक (उ० कृ०)

मनोज दास (दे०) के कहानी सग्रह 'आरण्यक' की विभिन्न कहानियो मे मनुष्य के अतरग को विभिन्न कोणो से देख लेने व समझ लेने का प्रयास मिलता है। 'आरण्यक' इस पुस्तक की पहली कहानी है। लेखक ने इसमें अतरिक्ष-युग के गर्वोन्नत मानव के स्खलन क्षयी रूप का पर्दा फाश किया है। बाहर से सभ्य दीखने वाला यह मनुष्य अदर से कितना जगली, कितना खूँख्वार है यह देखकर स्तब्ध रह जाना पडता है। पहले जगलीपन आवश्यकता से प्रेरित था, किंतु आज ' वह चित्तविनोद है। 'जह्नरातिर गल्प' मे एक ऐसे कलाकार का चित्रण है जो चद्रज्योत्स्ना से प्रभावित अपने दुर्बोध्य अतर की अबूझ अनुभूति को अभिव्यक्ति न दे पाने के कारण उसी विक्षिप्ति एव अकुलाहट मे खो जाता है। 'रायसिहर डायरी' मे पुरुष का अहकार व उसकी हिंस्र ईर्ष्या वर्णित है जो पर-पीडन मे क्रूर आनद का अनुभव करती है। 'सगोपन कहानी' मे मानव की सुप्त एव गोपनीय इच्छाएँ चित्रित हैं। समय बीत जाने के बाद व्यक्ति उन्हे पुन पा लेना चाहता है। अतीत मे जी लेने को वह अकुला उठता है। किंतु सामाजिक परिवेश इसकी छूट नही देता। शरत बाबू वृद्ध हो जाने पर लुक छिपकर अपने अतीत को जी लेना चाहते हैं, किंतु अततोगत्वा असफल होते हैं। 'उपग्रह' मे वैज्ञानिक सफलताओ द्वारा परपरागत रागात्मक आस्थावादी सरल जीवन-मूल्यों पर हुए आघात का चित्रण है।

आरण्यक (बँ० कृ०) [रचना-काल—1938 ई०]

'आरण्यक' उपन्यास की परिकल्पना एकदम नूतन है। प्रकृति की सूक्ष्म कवित्वपूर्ण अनुभूति को यहाँ परिपूर्णता मिली है। अरण्य-प्रकृति की विचित्र रहस्यात्मक पटभूमिका में बिभूतिभूषण बंद्योपाध्याय (दे०) ने मानव-चरित्रों की प्रतीक-व्याख्या की है। सारल्य, प्रकृति-मुग्धता, विश्वबोध एवं जीवन-रहस्य-बोध इस उपन्यास का उपजीव्य है। प्रकृति के साथ मानव-मन के इस प्रकार के अंतरंग संपर्क की कहानी बँगला के और किसी उपन्यास में नहीं है।

'आरण्यक' के नायक की अरण्य के प्रति असीम श्रद्धा है—अरण्य उसे मुग्ध करता है, इस मुग्धता-बोध में उसे परिपूर्णता मिली है। विस्तीर्ण वनांचल में बस्ती बसाने का दायित्व लेकर लेखक अरण्यांचल में आ उपस्थित हुआ है और तभी लेखक 'अपूर्व सुंदरी वन्यनायिका' से प्रेम करने लगा है। अरण्य के अपरिसीम रहस्य के बीच लेखक ने नाना प्रकार के मनुष्यों को देखने और समझने का प्रयत्न किया है। ये सब मनुष्य जीविका-संलग्न नहीं, अरण्य जीवन-संलग्न है। अरण्य की प्रकृति एवं वैचित्र्य की छाया आरण्यक के इन नाना चरित्रों पर फैली हुई है। बस्ती बसाने के काम में लेखक ने नाना प्रकार से विलम्ब किया है जिससे प्रकृति का स्वप्नकुंज नष्ट होने से बच सके परंतु वे अरण्य की मृत्यु को रोक नहीं पाए। मनुष्य की अर्थ-तृष्णा के विरुद्ध प्रकृति का निष्क्रिय प्रतिरोध विजयी नहीं हो सकता, यह जान कर एक दिन अरण्य को छोड़कर वह चला आता है।

उपन्यास में प्रारंभ से लेकर अंत तक आरण्य प्रकृति का विशाल रहस्य व्याप्त है। लेखक ने यहाँ जीवन के समस्त विक्षोभ एवं जटिलता से दूर आकर आश्रय लिया था और प्रकृति ने अपने रहस्य से विस्मयाभिभूत करते हुए लेखक को जीवन की नयी संज्ञा दी थी और इसी में उसने जीवन की समग्रता का अनुभव किया।

आरण्यक (सं० कृ०) [रचना-काल—लगभग 2000 ई० पू०]

आरण्यकों के अंतर्गत विभिन्न ऋषियों के ऐसे अनुभव वर्णित हुए हैं जिनमें याज्ञिक प्रक्रियाओं से संबद्ध आध्यात्मिक तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है। आरण्यकों का अध्ययन अरण्य में रहने वाले वानप्रस्थों के लिए निश्चित था इसीलिए इन्हें आरण्यक कहा जाता है। आरण्यकों ने उपनिषदों (दे० उपनिषद्) को पूर्ववर्ती वैदिक साहित्य से जोड़ने का महान् कार्य किया है। 'ऐतरेय,' 'बृहदारण्यक,' 'तैत्तिरीय आरण्यक' और 'तलवकार आरण्यक' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

आरण्यकों का पक्ष दर्शन-प्रधान है। आरण्यकों में प्राण-विद्या का विवेचन भी उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त आरण्यकों में ब्रह्म-संबंधी विवेचन भी मिलता है। उदाहरणार्थ, तैत्तिरीय आरण्यक में ब्रह्म के तीन स्वरूप निर्दिष्ट हुए हैं : पृथ्वी आदि के रूप में स्थूल, मनस आदि के रूप में सूक्ष्म एवं प्रणव के रूप में शुद्ध भेद से ब्रह्म के तीन स्वरूप-भेद हैं। आरण्यकों के अनुसार ब्रह्म सत् एवं अज्ञानियों के लिए असत् है। प्रणवस्वरूप ब्रह्म में समस्त जगत का लय हो जाता है तथा उसी से पुनः जगत की उपलब्धि होती है।

यहाँ यह विशेष रूप से निर्देश करने योग्य है कि आरण्यकों में ब्रह्म शब्द का प्रयोग ब्राह्मणों की तरह देवता के अर्थ में नहीं हुआ है। आरण्यकों में प्रयुक्त ब्रह्म शब्द वेदांत-दर्शन में प्रयुक्त ब्रह्म शब्द के पर्याप्त समीप है। इस प्रकार आरण्यक-साहित्य ब्रह्म शब्द क्रमिक विकास की दिशा को पूर्णतया स्पष्ट करता है।

आरसी प्रसाद सिंह *(हिं० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

इनका जन्मस्थान ऐरौत, रोसड़ा, जिला दरभंगा (बिहार) है। ये कोशी कालिज, खड़गिया (मुंगेर) में प्राध्यापक और आकाशवाणी में हिंदी कार्यक्रम के आयोजक रहे हैं। इनकी रचनाएँ छायावादी (दे० छायावाद) ढंग की हैं जो 'कलापी' 'शतदल' आदि में संगृहीत हैं। प्रकृति का चित्रण करने या मार्मिक वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करने में ये कुशल हैं। इनके गीतों की भाषा कोमल, मधुर और अलंकृत है। उत्तर-छायावादी गीतकारों में इनका विशेष स्थान है।

आरिफ़, किशन सिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1836 ई०, मृत्यु—1900 ई०]

इनके पिता भाई नरैण सिंह अमृतसर में पुस्तक-विक्रेता थे। पिता की दुकान पर उपलब्ध विविध ग्रंथों के अध्ययन द्वारा कवि की विचार-शक्ति में प्रांजलता और कल्पना में औदात्य का समावेश हुआ। ये पंजाब के प्रसिद्ध अद्वैतवादी संत गुलाब दास (1809-1873) के शिष्य थे

जिनके प्रभावस्वरूप कवि की रचनाओ मे भाव पक्ष की अपेक्षा विचार-पक्ष प्राय प्रबल हो गया है। इनकी लगभग 26 कृतियाँ प्राप्त होती हैं जिनमे 'शीरी फरहाद', 'पूरन भगत', 'राजा भरथरी', 'राजा रसालू', 'दुल्ला भट्टी', और 'हीर राँझा' आदि किस्सा कृतियो के अतिरिक्त 'बारामाह', 'सतवार', 'पैंती अखरी', 'बिबेकाबाल', 'ज्ञान चरखा', 'जीव सियापा', 'निशन कटार' आदि धर्म, दर्शन और सदाचार सबधी अनेक रचनाएँ है। 'दुल्ला भट्टी' की वीररस प्रधान कथा को सर्वप्रथम काव्यबद्ध कर इन्होने बडी लोकप्रियता अर्जित की। इनकी रचना 'हीरा राँझा' (1889 ई०) अपने क्षेत्र मे प्रसिद्ध रही है। किस्सा-काव्य के शृगार प्रधान स्वरूप मे नैतिकता, आध्यात्मिकता तथा अद्वैतवादी विचारधारा का सन्निवेश कवि का विशिष्ट योगदान है।

आख्द्रा *(ते० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

ये तेलुगु 'अभ्युदयमु' (प्रगतिवादी) काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। समाज मे व्याप्त विषमता एव शोषण का अत करके, सबको न्याय दिलाकर मानव की गरिमा को प्रतिष्ठित करने के लिए आतुर रहने वाली सूक्ष्म एव तीव्र सामाजिक चेतना इनकी सभी रचनाओ मे प्रतिफलित हुई है। प्राय इनके सभी विषय आधुनिक है। इनकी प्रमुख रचनाएँ 'त्वमेवाहम्' (दे०), 'गायालु-गेयालु', 'ग्रामायणमु' आदि है। 'त्वमेवाहम्' इनकी 'अभ्युदय' कविताओ की प्रतिनिधि रचना है। 'ग्रामायणमु' रामायण के पात्रो को एक सामान्य किसान परिवार के पात्रो के समानातर बनाकर उनके सामाजिक जीवन को चित्रित करने वाला उपन्यास है। इनकी रचनाओ मे सदा एक चमत्कार एव एक प्रकार की ताजगी व्यक्त होती रहती है। अपने भावो को चुभने वाली रीति से ये अभिव्यक्त करते हैं। इनपर अँग्रेज़ी साहित्य का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। आजकल चलचित्रो के गीत लेखक के रूप मे भी इनको ख्याति मिली है।

आरुमुह नावलर *(त० ले०)* [जन्म—1823 ई०, मृत्यु—1879 ई०]

इनका जन्म लका-स्थित नल्लूर मे हुआ था। ये अपने समय के श्रेष्ठ वक्ता थे। इसी से तिरुवावड्डुरै मठ के अधिकारियो ने इन्हे नावलर (श्रेष्ठ वक्ता) की उपाधि प्रदान की थी। इन्होने तिरुक्कुरळ, तोलकाप्पियम्, तिरुक्कोवैयार, पुरिय पुराणम्, कदपुराणम, चूडामणि निघण्टु, नन्नूल विरुत्ति उरै आदि प्राचीन कृतियो का सपादन करने के साथ साथ उन पर टीकाएँ भी लिखी थी। इनकी प्रमुख रचनाएँ है—बाल पाडम् (चार भाग), शैव विनाविडै, इलक्कण शुरुक्कम, इलगै भूमि शास्त्रम, चिदम्बर मान्मिय वचनम्, आदि। इन्होने अनेक निबधो की रचना की थी जो 'उदय तारकै' और 'इलगै नेशन्' नामक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। इन्होंने कोयिल पुराणम्, शैव समयनेरि, वाक्कुण्डाम नलवळि, नन्नेरि आदि कृतियो पर भाष्य लिखे थे। इन्होने रेवरेंड पेरसीवल के साथ मिलकर अँग्रेज़ी बाइबिल का तमिळ मे अनुवाद किया था। यह बाइबिल का प्रथम प्रामाणिक तमिळ अनुवाद माना जाता है। ये कट्टर शैव थे। ईसाई धर्म को तेज़ी से फैलता देख इन्होने शैव धर्म के प्रचार के लिए नाना कृतियो की रचना की थी। इन्होने अँग्रेजी स्कूलो के 'मॉडल' पर जाफना, चिदम्बरम् आदि स्थानो पर स्कूल खोले थे। इन स्कूलो मे बालको का परिचय भारतीय सभ्यता और सस्कृति से कराया जाता था। ये जीवन भर अविवाहित रहे। इन्होने अपना सपूर्ण जीवन तमिळ भाषा और शैव धर्म के प्रचार-प्रसार मे लगा दिया था। प्राचीन साहित्यिक कृतियो के सपादन और प्रकाशन करने वालो मे ये अग्रगण्य है। ये तमिळ गद्य के जनक कहे जाते हैं। ये पाठ्यक्रमोपयोगी कृतियो की रचना करने वाले प्रथम साहित्यकार हैं।

आरोग्य-निकेतन *(बँ० कृ०)*

साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत ताराशकर बद्योपाध्याय (दे०) का यह एक उत्कृष्ट उपन्यास है। इसमे जीवन की चरम परिणति मृत्यु के गहन रहस्य को प्रकट करने वाले जीवन महाशय की जीवनी अकित की गई है। इस उपन्यास की नायिका है रहस्यमयी मृत्यु जिसको लेकर विविध एव विचित्र प्रतिक्रियाएँ इस कथा का ताना बाना बुनती हैं। इन्ही के परिप्रेक्ष्य मे नायक के विगत जीवन के प्रभावशाली प्रसगो को उठाया गया है। उपन्यास की मूल समस्या है प्राचीन नवीन चिकित्सा-प्रणाली मे अतर। आयुर्वेद मे कविराज परा-अपरा विद्या को एकात्मक भाव से ग्रहण करता है और उसकी सफलता आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि, ध्यानोपलब्धि, कल्याण-कामना आदि पर निर्भर करती है। एलोपैथी बहिर्मुखी एव व्यावसायिक है। विज्ञान को अतिम कसौटी एव सत्य मानने

के कारण यहाँ आंतरिक मूल्यों का महत्व नहीं है। इस तरह लेखक ने दूसरे स्तरों पर भी नयी-पुरानी पीढ़ी की भिन्न जीवन-दृष्टि का प्रश्न उठाया है। इस रचना का सप्राण एवं अद्वितीय पात्र है जीवन महाशय जिसके माध्यम से ताराशंकर अंततः आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। नवीन समस्या तथा सजीव प्रस्तुति के कारण यह रचना लेखक की विशिष्ट उपलब्धि है।

आर्या भारत *(म० कृ०)*

यह व्यास (दे० व्यास, बादरायण) 'महाभारत' (दे०) का आधार लेकर आर्यावृत्त में लिखित प्रबन्ध-काव्य है। कवि ने काव्य के आरंभ में ही स्पष्ट कर दिया है कि उसका हेतु अति विशाल 'महाभारत' का सरस संक्षिप्तीकरण करना है। मूल 'महाभारत' में एक लाख श्लोक हैं तो इस काव्य में 17000 आर्यावृत्त हैं। इस काव्य को पढ़ने से स्पष्ट होता है कि यह संस्कृत का मराठी में भाषांतरण मात्र नहीं है वरन् इसमें कवि मोरोपंत की निजी मौलिकता के विशेष क्षेत्र हैं—कथा-निरूपण की पद्धति, पात्रों के संवाद, तथा उनके चरित्र-चित्रण। वीर, रौद्र, भयानक, शृंगार, हास्य, शांत आदि रसों का प्रसंगानुरूप परिपुष्ट वर्णन किया गया है जिनमें भक्ति की अंतर्धारा सर्वत्र व्याप्त है। सामान्यतः इसमें मूल काव्य का कलात्मक संक्षिप्तीकरण ही है, कहीं-कहीं कलात्मक विस्तार भी किया गया है; इसलिए इसे मौलिक प्रबंधकाव्य मानने में भी कोई विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए। भाषा और शैली दोनों पर कवि-व्यक्तित्व की गहरी छाप है। अलंकार-योजना सरस और सहज है। मोरोपंत की प्रतिभा, पांडित्य और अध्यवसाय का इस काव्य में अद्भुत समन्वय मिलता है।

आर्यासप्तशती *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शताब्दी]

संस्कृत-गीति-काव्यधारा में गोवर्धनाचार्य द्वारा रचित 'आर्यासप्तशती' का विशिष्ट स्थान है। गोवर्धन बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन (1116 ई०) के आश्रित कवि थे।

इस रचना में शृंगार-विषयक सौ मुक्तक पद्य आर्याछंद में अकारादि-क्रम से दिए गए हैं। इसकी रचना की प्रेरणा आचार्य गोवर्धन को प्राकृत भाषा में लिखी सातवाहन हाल की 'गाथा सप्तशती' (दे०) से मिली थी। इसको इन्होंने कई भागों में बाँट रखा है, जिनका नाम इन्होंने 'व्रज्या' रखा है।

गोवर्धन आर्या की रचना में अत्यंत निष्णात हैं। इनके पूर्व किसी भी कवि ने इस छंद की इतनी सफल रचना नहीं की थी। इनमें शृंगार की नाना अवस्थाओं का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। नागरिक बालाओं की शृंगारिक चेष्टाएँ जितनी रसमयी हैं उतनी ही ग्रामीण युवतियों की स्वाभाविक उक्तियाँ भी। कवि मानव-वृत्तियों का सच्चा पारखी है। निष्कर्ष यह कि आर्या जैसे छोटे छंद में भावों का विशाल भंडार भर कर इन्होंने संस्कृत-साहित्य में विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है।

आलम *(हिं० ले०)*

ये मुग़ल बादशाह अकबर के समकालीन थे। भ्रमवश कुछ लोग दूसरे आलम का अस्तित्व औरंगज़ेब के पुत्र मुअज्जमशाह के समय में भी निर्धारित करते हैं। इनके द्वारा रचित तीन कृतियाँ प्रामाणिक मानी जाती हैं—1. माधवानलकामकंदला (दे०), 2. श्यामसनेही, तथा 3. आलम के कवित्त या आलमकेलि। प्रथम ग्रंथ में सूफी प्रभाव के साथ माधवानल और कामकंदला का पारस्परिक प्रेम, द्वितीय ग्रंथ में दोहा-चौपाई में रुक्मिणी-विवाह की कथा हैं तथा 'आलम केलि' रीतिशैली के स्फुट पद्यों का संग्रह है। ब्रज भाषा के मुसलमान कवियों एवं रीतिमुक्त (दे० रीतिमुक्त काव्य) प्रेमी कवियों में आपका स्थान महत्वपूर्ण है। भिखारी दास (दे०) ने 'काव्यनिर्णय' (दे०) में आलम को रहीम, (दे०) रसखान (दे०) और रसलीन (दे०) से भी पूर्व गिनाया है।

आलम प्रारंभ से ही एक विख्यात कवि रहे हैं। कहते हैं कि 'गुरु-ग्रंथ साहब' (दे०) के अंतिम भाग में दी हुई 'रागमाला' इनके ग्रंथ 'माधवानल कामकंदला' का अंश है। आलम की ख्याति अधिकतर मुक्तकों के कारण मानी जाती है। कवि ने कवित्तों के माध्यम से 'आलमकेलि' में भावात्मक तीव्रता को सूफ़ीकाव्य (दे०) की प्रकृति के परिवेश में अतिशयता के साथ उभारा है। कवि के भीतर प्रेम-पिपासा के साथ-साथ उत्सर्ग-भावना और तन्मयता का जो स्वरूप पाया जाता है वह कवि की निजी विशेषता है। कवित्त (दे०) सवैया (दे०) की पद्धति में आलम का विशेष स्थान है, रीतिमुक्त कवियों में वे हमेशा सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते रहेंगे।

आलमगीर *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1921 ई०]

क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद (दे०) के ऐतिहासिक नाटकों मे ही नही, समस्त नाट्य साहित्य मे 'आलमगीर' उल्लेखनीय रचना है। कथा का केंद्रबिंदु है आलमगीर औरगजेब। इसमे दो धाराएँ समानातर चलती है—आलमगीर उदिपुरी की तथा राजसिंह-भीमसिंह-जयसिंह की। दोनो का विकास अवश्य हुआ है परतु परस्पर तारतम्य नही बन पाया। वास्तव मे क्षीरोदप्रसाद का वस्तु-विन्यास तथा गठन-कौशल सफल नही रहा। इसीलिए वे असभवप्राय कल्पना के द्वारा कथानक को सँभालते है। शील निरूपण की दृष्टि से आलमगीर का अद्वितीय रेखाकन हुआ है। उसका मानसिक सघर्ष एव उथल पुथल सजीव है। वह स्वय अपने अच्छे बुरे कार्यों का आलोचक है। उदिपुरी का व्यक्तित्व अधिक सहज स्वाभाविक होने के कारण सशक्त है। अधिकाश पात्र भाव-प्रवण हैं। इस नाटक को नई गरिमा प्रदान करने का श्रेय शिशिर कुमार भादुडी की असाधारण अभिनय-क्षमता को है। उनके अभिनय-कौशल ने तत्कालीन समाज को मुग्ध कर दिया था। इससे आलमगीर के दोष छिप गए तथा इसकी नाटकीय क्षमता एव शक्ति को नई दिशा मिली।

द्विजेंद्रलाल राय (दे०) से अनुप्रेरित होकर क्षीरोदप्रसाद ने आलमगीर का रेखाकन किया परतु वह यथेष्ट प्रभावशाली नही बन पाया। राय का नाट्य कौशल यहाँ नही है परतु अभिनय की दृष्टि से इसकी प्रसिद्धि क्षीरोदप्रसाद की सफलता की दृष्टि से ही नही, युग ख्याति की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है।

आलाओल सैयद, *(बँ० ले०)* [जन्म—लगभग 1592,—निधन—1673 ई०]

सैयद आलाओल पूर्व बगाल के चट्टग्राम (चटगाँव) के निकट स्थित आरकान राज्य की राजधानी रोसाग के राजा श्रीचद्र सुधर्मा के राज-कवि थे। आलाओल मूलत अनुवादक कवि हैं। अरबी, फारसी तथा हिंदी काव्य-कहानियो को लेकर इन्होंने छह काव्य-ग्रथो की रचना की। 'पद्मावती' (1646 ई० के आसपास रचित), 'लोरचद्रानी उत्तराश' (1659), 'सयफुलमुलुक—बदिउज्जमाल' (1658 से 70 के बीच), सप्त (दृप्त) पयकर (1660) तोह्फा (1663 69), सेकेंदारनामा (167)। पद्मावती', हिंदी के सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत' काव्य का अनुवाद है। उनके बाकी चार काव्य ग्रथ मुसलमान पुराण या धर्मग्रथ हैं।

आलाओल की कई भाषाओ मे गति थी और हिंदू तथा सूफी मतादि से काफी घनिष्ठ परिचय था। 'पद्मावत' जैसे दुरूह काव्य ग्रथ का अनुवाद कर उन्होंने अपनी अभिनिवेश क्षमता का प्रमाण दिया है। उनकी पुस्तको से उनके सस्कृत-ज्ञान का भी परिचय मिलता है। 'पद्मावत' का अनुवाद कही अक्षरश, कही भावानुगत, तो कही स्वाधीन है। आलाओल ने ग्रथ के प्रारभ मे जायसी को प्रणाम करते हुए कहा भी है कि कही कही मैं अपनी बात भी कहना चाहता हूँ। 'पद्मावती' मे नाना स्थानो पर कवि ने जायसी के अनुरूप सूफी प्रेम साधना के बारे मे गहरी तथा रसगर्भित उक्तियाँ की हैं। आलाओल ने अपने काव्य ग्रथ मे अरबी-फारसी के शब्दो का कम-से कम प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त राधाकृष्ण-लीलाविषयक कतिपय पद कविताओ की रचना कर बगाली-प्रेम स्वभाव का सार्वजनीन स्वरूप भी प्रकट किया है। उनकी रचनाओ मे पाडित्य और शब्दाडबर तो है, अवातर कहानियाँ भी भरी पडी हैं किंतु उनमे प्राजलता तथा स्वाभाविकता का अभाव है।

आलालेर घरेर दुलाल *(बँ० कृ०)* (रचना काल—1858 ई०)

'आलालेर घरेर दुलाल' प्यारी चाँद मित्र (दे०) (छद्मनाम टेकचाद ठाकुर) रचित बँगला साहित्य का प्रथम उपन्यास है। इससे पहले 1821 ई० मे 'समाचार-दर्पण' मे 'बाबु' प्रकाशित हुआ था अथवा प्रमथनाथ शर्मा के 'नबबाबु बिलास' (दे०) का उल्लेख किया जा सकता है परन्तु उन्हे उस समय के जीवन का चित्ररूप (नक्शा) कहा जा सकता है—उपन्यास नही। इसी प्रसग मे हाल ही मे प्रकाशित कैथारिन म्यूलेंस रचित 'फूलमणि ओ करुणारविवरण' (1852 ई०) का उल्लेख किया जा सकता है। परतु इनमे से किसी को भी सार्थक उपन्यास की कोटि मे नही रखा जा सकता। 'आलालेर घरेर दुलाल' मे नाना प्रकार के दोषो के रहते हुए भी उपन्यास की दृष्टि से सार्थकता अधिक है।। प्यारी चाद मित्र का यही सर्वश्रेष्ठ ग्रथ है। इस ग्रथ के एक चरित्र 'ठक चाचा' (दे०) के अनुरूप कोई अन्य चरित्र बँगला साहित्य मे दुर्लभ है। इस ग्रथ मे समसामयिक समाज जीवन का सार्थक प्रतिफलन हुआ है। साधुभाषा तथा कथ्यभाषा के परीक्षामूलक सम्मिश्रण

का प्रयास इस ग्रंथ का अन्यतम वैशिष्ट्य है।

आलूरू वेंकटराव *(क० ले०)* (समय —1880-1964 ई०)

'कर्णाटक कुलपुरोहित' नाम से विख्यात आलूरू वेंकटराव कर्णाटक के प्रातःस्मरणीय व्यक्तियों में हैं। कर्णाटक की जनजागृति में उनका योगदान महत्वपूर्ण रहा है। इनका जन्म 12 जुलाई, 1880 ई० को उत्तर कर्णाटक के बीजापुर में हुआ। प्रारंभिक शिक्षा धारवाड़ में पाकर आपने पूना के फ़र्गुसन कालेज से बी० ए०, एल एल०बी० किया। वहीं आपका परिचय वीर सावरकर, सेनापति बापट आदि क्रांतिकारियों से तथा लोकमान्य टिळक से हुआ। आपने टिळक के 'गीता रहस्य' का कन्नड़ अनुवाद भी प्रस्तुत किया। टिळक के साथ आपकी मैत्री आजीवन रही। कर्णाटक के लिये आपने एक अलग होमरूल तथा कांग्रेस की स्थापना की। 1906 ई० में आपने कर्णाटक-जनजागृति के लिए 'वाग्भूषण' नामक एक मासिक पत्र निकाला। 1907 ई० में आपने 'श्री विद्यारण्य चरित्रे' नामक पुस्तक लिखी। 1917 ई० में आपने 'कर्णाटक गत-वैभव' नामक पुस्तक प्रकाशित की। इसने कर्णाटक के जनजागृति में अद्भुत काम किया। कर्णाटक काव्य-साहित्य, इतिहास, राजनीति, एवं संस्कृति का यह रत्नदर्पण है। इन्हीं के परिश्रम से 1915 ई० में बेंगलूर 'कर्णाटक साहित्य परिषद्' की स्थापना हुई। 1915 ई० में आपने 'भ्रमनिरसन नामक नाटक लिखा। 'कर्णाटक गत वैभव' ने आधुनिक गद्य-साहित्य का पथ प्रशस्त किया। उसकी शैली अत्यंत ओजोमय है। 'कर्णाटक वीर रत्नगळु' में इन्होंने कर्णाटक की वीरपरंपरा का परिचय दिया है। 'गीता प्रकाश', 'गीता परिमल', 'गीत संदेश, 'गीता कुसुममंजरी' इनके मौलिक चिंतन के फल हैं। 1920 ई० में इन्होंने जय कर्णाटक' नामक पत्रिका शुरू की। कर्णाटक के सांस्कृतिक पुनरुत्थान में इनका योगदान अद्भुत है। फ़रवरी 25, 1964 ई० को आपका स्वर्गवास हुआ। वेंकटराव एक व्यक्ति नहीं, शक्ति थे। आपकी अर्धशताब्दी से भी अधिक की तपस्या ने कर्णाटक के सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व जागृति पैदा की। ये कन्नड़ के श्रेष्ठ गद्यकारों में परिगणित हैं।

आले अहमद 'सरूर' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

जन्म-स्थान : बदायूं। इन्होंने—1932 ई० में सेंट जान्स कालेज से बी० एस-सी० और तदुपरांत अलीगढ़ से 1934 ई० में एम० ए० की परीक्षाएं उत्तीर्ण की थीं। दो वर्ष तक इन्होंने अलीगढ़ कालेज में अंग्रेजी प्राध्यापक के रूप में कार्य किया था परंतु उसके पश्चात् उर्दू विभाग में नियुक्ति प्राप्त कर ली थी। कुछ समय तक यहाँ कार्य करने के पश्चात् लखनऊ विश्वविद्यालय में रीडर होकर चले गए थे और 1955 ई० में प्रोफ़ेसर के रूप में फिर मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ में चले आये थे। इन्होंने विज्ञान और अंग्रेजी की जानकारी के फलस्वरूप उर्दू साहित्य को व्यापक और वैज्ञानिक रूप देने में अत्यंत स्तुत्य भूमिका निभाई है। कवि से अधिक आलोचक के रूप में इन्होंने विशिष्ट ख्याति प्राप्त की है। इनकी कृतियों में—'तन्क़ीदी इशारे', 'तनकीद क्या है' ? 'अदब और नजरिया', तथा 'नये और पुराने चिराग़' उच्च कोटि की आलोचना का सुंदर उदाहरण है। इनकी तर्क-शैली बड़ी प्रभावशाली है। प्रतिपाद्य विषय का स्पष्टीकरण बड़ी कलात्मकता से ही नहीं, अपितु तथ्यों के आलोक में बड़ी निर्भीकता से भी करते है। धाराप्रवाह और प्रसाद-गुण-सम्पन्न शैली में अपने मंतव्य को स्पष्ट करने में ये पूर्णतः समर्थ हैं। इन्होने अपने लेखों में कवित्वपूर्ण अभिव्यंजना और भावुकतापूर्ण वर्णन-शैली का न तो सहारा लिया है और न इसकी कहीं वकालत ही की है। इनके यहाँ कविता की पंक्तियों के उद्धरणों की अतिशयता नहीं मिलती परंतु उन पंक्तियों के संदर्भ, कृतियों के नाम, साहित्यिक व्यक्तियों की परिचर्चा, साहित्यिक आंदोलनों से संबद्ध संकेत आदि से इनकी आलोचना उत्कर्ष को प्राप्त करती हुई चलती है।

आल्हखंड *(हि० कृ०)*

इस ग्रंथ के लेखक जगनिक हैं जोकि महोबे के राजा परमर्दिदेव के आश्रित कवि थे। इन्होंने परमाल के दो सामंतों आल्हा और ऊदल नामक बनाफर क्षत्रियों के वीर चरित्र का विस्तृत वर्णन एक वीरगीतात्मक काव्य के रूप में लिखा था। ये गीत 'आल्हा' अथवा 'आल्हखण्ड' नाम से प्रसिद्ध हैं, और प्रायः उत्तर-भारतीय ग्रामों में गाये जाते है। परंतु इस समय जो आल्हा की प्रति मिलती है वह जगनिक की कृति न होकर उसी के आधार पर अथवा अनुकरण पर लिखी गयी रचना प्रतीत होती है। भाषा, भाव, शब्द आदि सभी बदले हुए हैं। असली प्रति का पता नहीं चलता। उपलब्ध प्रति का 'आल्हखंड' नाम इस तथ्य का सूचक प्रतीत होता है कि यह भाग किसी विशालकाय

प्रबध-काव्य का एक खड होगा। उपलब्ध आल्ह खड' को फर्रुखाबाद के डिप्टी कमिश्नर मि० चार्ल्स इलियट ने 1967 मे लोक-गीतो से सगृहीत कर छपवाया था।

'आशा' दयाल *(सिं० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

इनका जन्म-स्थान खैरपुर मीरस (सिंध) है। इन्होने विभाजन के पश्चात् उच्च शिक्षा महाराष्ट्र मे प्राप्त की। ये उल्हासनगर मे रहते हैं और वहाँ के चाँदीबाई कालेज मे सिंधी विभाग के अध्यक्ष एव प्राध्यापक है। इनकी प्रमुख रचनाएँ है—देशु पुकारे थो, पुष्प पखुड्यू (कविता-सग्रह), लालबहादुर शास्त्री (जीवनचरित)। इन्हे जिन रचनाओ पर पुरस्कार प्राप्त हुए हैं उनके नाम है—बापुअ जे बाग मा, लाल बहादुर शास्त्री, शाल अहिडा लाल जमीन, मुश्कदड मुखिड्यू। इन्होने कालिदास के प्रसिद्ध नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' का सिंधी मे सुदर अनुवाद भी किया है। कवि होने के साथ साथ ये अच्छे गायक भी हैं और अपने रचित गीतो को मधुर स्वर मे गाकर श्रोताओ को मत्रमुग्ध कर लेते है। सिंधी साहित्य मे ये कवि, निबधकार और बाल साहित्य-रचयिता के रूप मे अधिक प्रसिद्ध हैं।

आशान, अय्यिप्पिळळ *(मल० ले०)* [जीवन काल—पद्रहवी सदी ई०]

तमिल मिश्रित मलयाळम मे लिखे गए दाक्षिणात्य गीतो (तेक्कन् पाटटुकळ्) के अतर्गत प्रसिद्ध कृति 'रामकथप्पाट्टु' (दे०) के रचयिता। इनका जन्म स्थान त्रिवेंद्रम के पास आवाटु तुरा है। इनकी काव्य-भाषा दक्षिण केरल की बोलचाल की भाषा का उदाहरण है।

आशान् कुमारन् *(मल० ले०)* [जन्म—1873 ई०, मृत्यु—1925 ई०]

ये मलयाळम की आधुनिक काव्यधारा के प्रवर्तक महाकवि हैं। कलकत्ता मे सस्कृत पढते हुए इन पर बगाल के आध्यात्मिक और सामाजिक सुधारको और बकिमचद्र (दे०), रवीन्द्र नाथ (दे०) आदि भारतीय एव शैली, कीट्स, टेनीसन आदि पाश्चात्य साहित्यकारो का गहरा प्रभाव पडा। ये केरल के सामाजिक और आध्यात्मिक नेता श्रीनारायण गुरु के शिष्यत्व मे अपनी अस्पृश्य जाति के समुत्थान के लिए सेवारत रहे। इनका निधन अल्पायु मे ही दुर्घटनावश हुआ था।

आशान् के खडकाव्य 'नळिनी', (दे०) चिताविष्टयाय सीता' (दे०) 'लीला', 'प्ररोदनम्', 'दुरवस्था' (दे०) 'चडाल भिक्षुकी' और 'करुणा' (दे०) है। इनकी अन्य कविताएँ, गीत, एव स्तोत्र 'वीणापूव', (दे०), 'वनमाला,' 'मणिमाला', पुष्पवाटी' इत्यादि मे सगृहीत है। 'बालरामायणम्' बालोपयोगी काव्य है। बुद्धचरितम' (लाइट आफ एशिया) और प्रबोधचद्रोदयम्' अनूदित ग्रथ हैं।

आशान् ने मलयाळम मे स्वच्छदतावादी आदोलन प्रचलित करके कविता मे नवयुग का उद्घाटन किया था। इनकी कविता मानवता के गरिमामय भावो को दार्शनिक पृष्ठभूमि मे अभिव्यक्त करती है। ये स्नेहगायक के नाम से प्रसिद्ध है। जातिभेद से कलुषित सामाजिक व्यवस्था को इन्होने अपनी कविताओ मे चुनौती दी है और सामाजिक नियमो को बदल देने का आह्वान किया है। इन्होने सीता जैसे पौराणिक कथापात्रो को नवीन मनोवैज्ञानिक परिवेश मे प्रस्तुत किया है।

कौतूहलपूर्ण उक्ति वैचित्र्य के अलावा और कुछ न मानने वाली प्रवृत्ति से मलयाळम-काव्य को बचाकर मानवीय भावनाओ को सर्वोच्च स्थान प्रदान करने वाली नई धारा के प्रवर्तक के रूप मे आशान का स्थान अद्वितीय है।

आशापूर्णा देवी *(बँ० ल०)*

स्वातत्र्योत्तर लेखिकाओ मे सही अर्थों मे आधुनिक तथा अग्रणी लेखिका होने का गौरव आशापूर्णा देवी को प्राप्त है। इसमे कोई सदेह नही कि इनका कथा-पटल पारिवारिक जीवन तथा कद्रबिंदु नारी है। फिर भी, इनकी अतर्दृष्टि कही अधिक सूक्ष्म तथा साधारण सी दिखाई देने वाली पर प्रभाव मे बडी एव गहरी और घटनाओ एव प्रसगो के चुनाव तथा रेखाकन मे सफल रही है। नर नारी मे समानता की माँग कोमलता और भावुकता से मुक्ति, आत्मनिर्भरता तथा स्वच्छदता की ललक, रोमास के स्थान पर व्यावहारिक लाभ के परिप्रेक्ष्य मे उभर रही विकृतियो और बिसगतियो की प्रस्तुति से आशापूर्णा देवी की रचनाएँ प्रभावशाली हो गई हैं। इन्होने कई उपन्यास लिखे हैं परन्तु 'आशिक', 'छाड पत्र, 'उन्मोचन' श्रेष्ठ रचनाएँ हैं। शिल्प की दृष्टि से भी लेखिका ने कई सफल प्रयोग किए है। वास्तव मे नारी जीवन के बदलते परिवेश और जटिल जीवन की सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति के कारण आशापूर्णा देवी का स्थान अग्रणी रहेगा। इनसे

पूर्ववर्ती लेखिकाएँ परंपरा-मोह से मुक्त नहीं हो सकीं।

आश्रव *(प्रा०पारि०)*

प्राकृतिक परमाणुओं का वस्तु-जगत् में पुंजीभाव जैन दर्शन में 'आश्रव' कहलाता है। क्रोध, मान, माया लोभ-ये कषाय (चिपकाने वाले तत्त्व) हैं जिनसे आत्मा में प्राकृतिक तत्त्व चिपक कर प्रकृति में आत्मभाव उत्पन्न करते हैं। कर्म परमाणुओं को आकृष्ट करते हैं; कषाय संयोजित करते हैं और उनका आश्रव (पुंजीभाव) कार्य-रूप में वस्तु-जगत् की रचना करता है। यह दो प्रकार का होता है—भावबंध या आंतरिक बुरे विचार और द्रव्य-बंध या प्राकृतिक तत्त्वों का बाह्य संघात जो आत्मा को बंधन में डालते हैं।

आषाढ़ का एक दिन *(हिं० कृ०)*

यह मोहन राकेश (दे०) की अत्यधिक लोकप्रिय एवं रंगमंचीय दृष्टि से पूर्णतः सफल नाट्यकृति है जिसमें कालिदास के समग्र जीवन को रूपायित किया गया है। नाटक का प्रारंभ तथा अंत दोनों आषाढ़ मास के प्रथम दिन से जुड़े हुए हैं और इसीलिए इसका नाम 'आषाढ़ का एक दिन' रखा गया है। अतीत को वर्तमानयुगीन संदर्भों से जोड़कर तथा अंक-विभाजन की प्राचीन भारतीय नाट्य-पद्धति को अपनाते हुए भी संकलन-त्रय का समुचित निर्वाह करके नाटककार ने नाट्य-शिल्प के क्षेत्र में नूतन प्रयोग करते हुए अपनी नाट्य-प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया है।

आसार-उस्सनादीद *(उर्दू०कृ०)* [प्रकाशन-काल 1847 ई०]

'आसार-उस्सनादीद' सर सैयद अहमद (दे०) की रचना है। इसमें देहली के भवनों का विशद वर्णन है। इसमें नगर के बाह्य-क्षेत्र के भवनों, लाल क़िले तथा उसके अंदर के भवनों, देहली शहर के भवनों—हवेलियों, मस्जिदों, मंदिरों, बाज़ारों, बावलियों, कुओं आदि तथा उनके नक़्शे, चित्र, कुतबे, देहली के प्राचीन दुर्गों एवं प्रासादों के वर्णन के अतिरिक्त देहली की विभूतियों—शेखों उलेमाओं, फ़क़ीरों, कवियों, चित्रकारों और संगीतज्ञों का उल्लेख है।

'आसार-उस्सनादीद' सर सैयद की एक अद्भुत कृति है और उर्दू में यह अपनी तरह की पहली रचना है। लेखक ने इसे बड़े परिश्रम और साधना से लिखा है। अधिकतर भवनों के परिमाप प्राप्त करना, अभिलेखों के चरबे उतारना, टूटी-फूटी इमारतों के नक़्शे खिचवाना और इस प्रकार सवा सौ से अधिक भवनों के विषय में अनुसंधान करना निश्चय ही कठिन काम था। प्रथम संस्करण की भाषा-शैली कुछ कठिन, तुकांतमयी और दुरूह हो गई थी जिसे द्वितीय संस्करण में सरल और सुबोध बना दिया गया था।

यह कृति ऐतिहासिक तथा पुरातत्व-ज्ञान के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण है। साहित्यिक दृष्टि से भी इसका अपना महत्त्व है।

आसिय जोति *(त०कृ०)* [प्रकाशन—1941 ई०]

यह तमिल के प्रसिद्ध कवि देशिक विनायकम् पिळ्ळै द्वारा विरचित खंड काव्य है। यह अँग्रेज़ी में 'एडविन आर्नल्ड'-विरचित 'लाइट ऑफ़ एशिया' की अनुकृति है। इसका प्रथम प्रकाशन 1941 ई० में हुआ था। इसमें भगवान बुद्ध के जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन है। बुद्ध-अवतार, करुणा का अधिकार, प्रेम-उदय की कहानी, सिद्धार्थ का सुना हुआ देव-गीत, सिद्धार्थ का त्याग, बुद्ध तथा दरिद्र बालक, करुणा का समुद्र, बुद्ध तथा सुजाता, बुद्ध तथा पुत्र की खोई माँ—इन शीर्षकों के अंतर्गत विविध छंदों में रचित गीत हैं। चलती, सरल तथा लयात्मक भाषा में करुण प्रसंगों का मार्मिक चित्रण इस काव्य की विशेषता है। कवि की अनेक रचनाओं में यह मूर्धन्य कृति है तथा अनेक अन्य कवियों तथा विद्वानों के द्वारा प्रशंसित है।

'आसी', अब्दुल सत्तार *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1882-85 ई०; मृत्यु—1951 ई०]

श्रीनगर के एक गुज्जर परिवार में इनका जन्म हुआ। उन्होंने केवल कुछ धार्मिक शिक्षा और प्रारंभिक कक्षाओं की शिक्षा ही पाई थी। शैशव से ही ये मेधावी थे और परिस्थितियों के प्रति इनका क्रांतिपूर्ण दृष्टिकोण था। प्रारंभ में इन्होंने फ़ारसी ग़ज़लों की रचना की। 'विधवा' गीत की रचना करके इन्होंने विशेष प्रसिद्धि पाई। इनकी 47 प्रमुख रचनायें हैं। यह 'बज़्मे कश्मीर' के अध्यक्ष-पद पर भी रहे। श्रीनगर (कश्मीर) में सन् 1947 के तुरंत बाद बने 'नेशनल कलचरल फ्रंट' (राष्ट्रीय सांस्कृतिक मोर्चा) के मंच से जनकवि के रूप में इन्हें प्रसिद्धि मिली। 'कश्मीर छोड़ो' आंदोलन में 'सियासी क़ैदी' कविता की रचना पर

वदी भी बनाये गये। पेशे से ये हम्माल थे और मजदूरों, हम्मालों, कुलियों, पत्थर ढोने वाले मजदूरों, हाजियों आदि का, यों कहना चाहिए कि सर्वहारा वर्ग का, प्रतिनिधित्व करते रहे। ईश्वर मे इनका अडिग विश्वास और मनुष्य मे अटूट श्रद्धा थी। इनकी रचनाओ मे सुदर पदो एव ठेठ कश्मीरी भाषा का प्रयोग हुआ है। इनकी कविता मे दार्शनिक की सी पैनी दृष्टि मिलती है।

आहग *(उर्दू० कृ०)* [रचना काल—1952 ई०]

लेखक (असरार-उल हक) मजाज़' लखनवी (दे०)। आज़ाद किताबघर, कला महल, देहली द्वारा प्रकाशित यह काव्य-कृति शृगार रस और वीर रस की श्रेष्ठ कविताओ का सकलन है। इन कविताओ के रचयिता 'मजाज़ लखनवी अपन युग के अत्यत लोकप्रिय कवि थे। उनकी इस कृति मे 'शमशीर' की झनझनाहट, 'साज़' की सगीतात्मकता और 'जाम' की मादकता का सुदर समन्वय हुआ है। यही कारण है कि उनके काव्य मे कही भी क्लाति और श्राति की अनुभूति नही होती। प्रत्येक स्थल पर मादकता ही मादकता है, आशावादिता ही आशावादिता है। श्रेष्ठ प्रगतिवादी कवि होने के नाते 'मजाज़' की बहुत सी कविताएँ क्रातिकारी भावनाओ से ओतप्रोत हैं। परतु फ़ैज़ अहमद फ़ैज़' (दे०) के अनुसार उनकी क्रातिकारिता अन्य क्रातिकारी कवियो से सर्वथा भिन्न है। वे सामान्य क्रातिकारी क्राति के लिए गजत हैं, ललकारते हैं, छाती कूटते हैं, परतु क्राति के लिए गा नही सकते। वे केवल क्राति की भयानकता को देखते हैं, उसके सौंदर्य को नही पहचानत। 'मजाज़' इस प्रकार के कवियो से सर्वथा भिन्न क्राति मे सौंदर्य ही नही देखत, बल्कि क्राति के सौंदर्य की अभिव्यक्ति म भी पूर्णत समर्थ हैं। वे क्राति के ढिंढोरची नही, क्राति के अमर गायक हैं। भाषा, भाव, कल्पना और शैली—हर दृष्टि से यह कृति उर्दू साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

इदर सभा *(उर्दू० कृ०)*

लेखक 'अमानत (दे०)। यह उर्दू भाषा का पहला नाटक है जो 1853 ई० मे लिखा गया था। लखनऊ मे उन्नीसवी शती मे हिंदू मुसलमानो के मेलजोल के फलस्वरूप जो मिश्रित सभ्यता उभरी थी, यह नाटक उसी का प्रतीक है। इसम इद्र को इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है मानो वह कोई ईरानी या मुगल सम्राट हो, ईरान के देव राक्षसो का रूप धारण करते हैं और अप्सराएँ परियाँ बन जाती हैं और मुसलमान महिलाओ के वस्त्र पहनकर मच पर आती हैं। इसमे गज़लो के साथ-साथ गीत और ठुमरियाँ भी है। नाटक का नायक गुलफाम अपने आहार-व्यवहार और बातचीत म अवध का कोई राजकुमार जान पडता है। इसकी भाषा सरल, गीत मधुर और कथा रोचक हैं। सगीत और नृत्य पर आधारित यह काव्य रचना विशेष ऐतिहासिक महत्त्व की है।

मदारीलाला (दे०) ने भी 'इदर सभा' के नाम से एक रचना की है। मदारीलाल लखनऊ से दस कोस दूर कस्बा मोहान का रहने वाला एक ऐसा लेखक था जिसका साहित्यिक जगत मे कुछ विशेष नाम न था। इस 'इदर सभा' का रचनाकाल ज्ञात नही। इस कृति के दो सस्करण क्रमश 1862 ई० मे आगरा से और 1863 ई० मे लखनऊ से प्रकाशित हुए।

मदारीलाल की इदर सभा के सवाद बहुत लबे तथा पात्र अत्यत वाचाल हैं। एक एक बात को दोहो छदो, शेरो, ग़ज़लो और मुसद्दसो मे कहते ही चले जात हैं। यह बात गभीर पाठक को खटकती है। मदारीलाल की 'इदर-सभा लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के सामने भी खेली गई थी। अमानत की 'इदर सभा' की तुलना मे इसका कोई महत्व नही। इस कृति का असल नाम 'माह मुनीर मारुफ व इदर सभा है अर्थात असल नाम माहे मुनीर' है किंतु लोग इसे 'इदर सभा कहत हैं। अनपढ जनसाधारण के लिए यह कृति विशेष रुचिकर है। सैयद मसऊद हसन रिज़वी लिखते हैं— मदारीलाल की इदर सभा इब्तदा मे (प्रारभ मे) चद बार एक मुस्तकिल किताब की हैसियत से तनहा (अलग) छापी गई लेकिन बाद को वह अमानत की इदर सभा के साथ हाशिए पर छपती रही।'

इंदिरा *(म०कृ०)*

'इदिरा काव्य की रचना श्री कान्होबा रणछोड-दास कीर्तिकर ने सन् 1884 ई० म की थी। यह कृति अंग्रेजी कवि टेनिसन की 'प्रिंसेस' रचना पर आधारित है।

मूल कथा सक्षेप म इस प्रकार है—राजकुमारी तथा उसकी शिक्षिका पुरुष द्वेषी थी। एक राजकुमार राज-कुमारी स प्रेम करता था, परतु प्रत्युत्तर मे उस अवहेलना ही मिली थी। राजकुमार ने मित्रो के सहयोग स राजकुमारी के राज्य पर आक्रमण किया। राजकुमारी के राज्य म पुरुष-

वेश में जाने का अर्थ था प्राणों से हाथ धोना। अतः राजकुमार अपने साथियों के साथ स्त्री-वेश में गया और अपने अभियान में सफल हुआ।

कीर्तिकर ने भारतीय समाज को दृष्टि-पथ में रख उक्त कथा में यत्र-तत्र परिवर्तन किए हैं। 'इंदिरा' काव्य में महिलाओं के समानाधिकार का समर्थन और पुरुष-जाति की अहम्मन्यता की विगर्हणा कर दलित, पीड़ित, अत्याचारों को सहने वाले नारी-वर्ग की शोचनीय अवस्था का करुण चित्र अंकित किया गया है।

गेय छंदों में रचित होने के कारण यह कृति विशेष प्रसिद्ध हुई है। इसका महत्त्व एक अन्य कारण से भी है और वह यह कि इसके द्वारा मराठी काव्य में समाज-सुधार-विषयक काव्य लिखने की परंपरा का शुभारंभ हुआ है।

इंदिरा, एम० के० *(क०लें०)* [जन्म—1917 ई०]

सुश्री एम० के० इंदिरा कन्नड़ के उपन्यास-क्षेत्र के प्रतिभावान हस्ताक्षरों में से हैं, यद्यपि उन्होंने साहित्य क्षेत्र में विलंब से पदार्पण किया। आपका जन्म 1917 ई० में मलेनाडु की सुरम्य भूमि तीर्थहळ्ळी में हुआ। तीर्थहळ्ळी के प्राकृतिक सौंदर्य ने अपनी अमिट छाप आपकी कृतियों पर छोड़ी है। आपके पिता कृष्णराव एक संपन्न तथा सुसंस्कृत घराने के थे। कन्नड़ के प्रसिद्ध शिशुसाहित्य-लेखक 'होयसळ' आपके बंधुओं में एक थे जिनसे आपको लिखने की प्रेरणा मिली। हाई स्कूली शिक्षा के पश्चात् आप गृहिणी बनकर गृहस्थी में जुट गयीं किंतु स्वाध्याय से आपने हिंदी आदि भाषाएँ सीखीं, प्रेमचंद आदि लेखकों से प्रभावित हुई। आपके अब तक बीस उपन्यास छप चुके हैं जिनमें प्रमुख हैं—'गेज्जेपूजे', 'सदानंद', 'नागवीणा'। 'गेज्जेपूजे' में वेश्या-जीवन की समस्याओं का मार्मिक चित्रण है। इसकी नायिका चंद्रा कन्नड़ के अन्यतम चरित्रों में एक है। आपके दो कहानी-संग्रह भी निकल चुके हैं। अन्य कृतियों में मध्यवर्गीय जीवन की समस्याओं आशाओं व आकांक्षाओं के चित्रण में आपको अद्भुत सफलता मिली है। नारी के अंतरंग के पारदर्शी चित्रण में आप सिद्धहस्त हैं। आपकी भाषा में विलक्षण रोचकता है। आपने कहानी तथा निबंधों के क्षेत्र में भी अपनी लेखनी सफलतापूर्वक आज़माई है।

इंदु *(हिं० पत्रिका)*

अपने कवि-जीवन का प्रारंभ करते हुए जयशंकर प्रसाद (दे०) ने एक मासिक पत्र के प्रकाशन की व्यवस्था की और उसके संपादन का भार अपने भानजे अंबिका-प्रसाद गुप्त को सौंपा। इसका प्रथम अंक कला 1, किरण 1, श्रावण शुक्ल द्वितीया संवत् 1966 (सन् 1909) को प्रकाशित हुआ। इसका लक्ष्य बताते हुए कहा गया : 'काव्य महोदधि ते प्रकट्यो रस रीति कला वृत पूरण इंदु है।' इसी अंक में प्रसाद की ब्रजभाषा में लिखित कविता 'शारदाष्टक' तथा 'प्रकृति-सौंदर्य' लेख प्रकाशित हुए। 'इंदु' का महत्व इस दृष्टि से है कि उसके साथ ही प्रसाद के जीवन की साहित्य-साधना का विकास हुआ। आरंभ में भक्तिपूर्ण ब्रजभाषा के कवित्त पौराणिक आख्यानों पर 'वनवासिनी बाला', 'अयोध्योद्धार', 'सत्यव्रत', 'भारत' आदि कविताएँ, प्रणयगीत और रीतिकालीन विषयों पर कविताएँ लिखीं। 'भारत' में राष्ट्रीय भावना और 'राजराजेश्वर' में राजभक्ति का स्वर भारतेंदु (दे०) की याद दिलाता है।

धीरे-धीरे ब्रजभाषा छूट गयी। खड़ी बोली में काव्य-रचना के साथ-साथ प्रसाद जी ने जड़ में चेतन का आरोप, अहं का इदं से समन्वय, रहस्योन्मुखता, प्रेम, करुणा आदि से अपने स्वतंत्र जीवन-दर्शन का निर्माण किया। 'विस्मृत प्रेम' में कवि ने अपने प्रेम-दर्शन का प्रतिपादन किया। 'महाक्रीड़ा' से रहस्यवादी प्रवृत्तियों का आभास मिलता है। 'कल्पना सुख' कविता में अन्य छायावादी कवियों के समान कल्पना का स्तवन किया गया है। अतुकांत कविता के आरंभ का श्रेय भी 'इंदु' को है। एक ओर यदि 'महाराणा का महत्व' तुकविहीन प्रबंध-काव्य है, तो दूसरी ओर जिज्ञासा, रहस्य और स्वच्छंदता की ओर भी प्रसादजी अतुकांत कविताओं द्वारा बढ़े। 'रमणी हृदय' और 'सोलो द्वार' सानेट के आधार पर लिखे गये काव्य-प्रयोग हैं।

'इंदु' की फाइलों का अनुशीलन करने से प्रसाद जी की मानसिक स्थिति का भी पता लगता है। कला 2 किरण 1 में छपी 'शंकर की वंदना' में कवि का आत्म-समर्पण-परिस्थितिजन्य भक्ति-भावना का निदर्शन है। प्रसाद के नाटक—सज्जन, करुणालय, प्रायश्चित्त, राज्यश्री भी पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित होने से पूर्व 'इंदु' में ही छपे। इसी प्रकार उनकी पहली पौराणिक कथाएँ—ब्रह्मर्षि, पंचायत और बभ्रुवाहन तथा सामाजिक कहानियाँ—'ग्राम' और 'चंदा' प्रकाशित करने का श्रेय भी 'इंदु' को ही है। उनके अनेक लेख, जिनमें से कुछ का ऐतिहासिक तथा सैद्धांतिक महत्व अक्षुण्ण है, इसी पत्रिका द्वारा प्रकाश में आये। 'कवि और कविता', 'कविता-रसास्वाद' तथा 'कविता का विकास' लेख उनके कविता-संबंधी मौलिक

चिंतन एव क्रांतिकारी दृष्टि के परिचायक है।

समय के साथ 'इंदु' ने पर्याप्त ख्याति प्राप्त की। 'इदु' के द्वारा अपने साहित्य का प्रचार करना प्रसाद जी का उद्देश्य नही था, पर आरंभ मे प्रकाशन-सामग्री की कठिनाई के कारण उन्हे अपनी ही रचनाएँ प्रकाशित करनी पडी। बीच-बीच मे 'इंदु' को बंद भी करना पडा। श्रावण-भाद्र संवत् 1968 (1911 ई०) का अक नही छपा। अगस्त, 1915 के बाद एक वर्ष तक बद रहने के उपरात प्रसाद ने पुन. सितंबर, 1916 मे उसका प्रकाशन कराया। अक्टूबर-नवबर 1916 के अक के बाद वह फिर 10 वर्ष तक तिरोहित रही। पुन. प्रसाद जी के प्रयत्नो से निकली और मार्च 1927 के बाद सदा को अतर्धान हो गयी।

'इदु' की फाइलो मे प्रसाद के व्यक्तित्व-विकास का इतिहास छिपा है। उसके साथ छायावाद युग का आरभ होता है। इन दो दृष्टियो से उसका महत्व अविस्मरणीय है।

इदु-बिंदु *(म० पा०)*

रामगणेश गडकरी (दे०) के 'भावबधन' नाटक मे इदु बिंदु के चरित्र की सृष्टि हास्य-प्रसगो के सयोजनार्थ हुई है। इदु-बिंदु शारीरिक दृष्टि से दीन-हीन है। अत्यधिक कुरूप होने के कारण ही वह चाहकर भी वैवाहिक बधनो मे नही बँध पाती। अपनी इस अतृप्त आकाक्षा की परिपूर्ति हेतु वह नानाविध प्रयत्नशील रहती है। किसी पुरुष-हृदय को जीतकर यह वैवाहिक जीवन मे पदार्पण करना चाहती है और इसके लिए वह नाना प्रकार की चेष्टा-कुचेष्टा करती है, परतु इसकी कुरूपता के कारण ही इसके सपर्क मे आने वाला प्रत्येक पुरुष दूरी बनाए रखता है। इसके माध्यम से अतृप्त नारी-जीवन का मनोहारी चित्रण हुआ है। इदु-बिंदु के मन की विविध अतर्दशाओ मे विविधता एव विदग्धता का सहज समावेश हो गया है। मराठी चरित्र सृष्टि मे इदु-बिंदु कुरूपता का पर्यायवाची बन गया है।

इदुलेखा *(मल० कृ०)* [रचना काल—1889 ई०]

इसके लेखक श्री ओय्यारत्तु चतुमेनन (दे०) का जन्म मलाबार के तलश्शेरी तालुके मे हुआ। शिक्षा-दीक्षा के सामान्य होते हुए भी इन्होने अपने अध्यवसाय के कारण पदोन्नति की। कानून की बारीकियो मे इनकी विलक्षण पैठ थी। अँग्रेजी उपन्यास पढने का इन्हे बडा शौक रहा। किसी अनुवाद की अपूर्णता और जटिलता से खिन्न होकर श्री मेनन को सूझा कि अँग्रेज़ी के ढग पर मलयाळम मे एक रचना क्यो न प्रस्तुत की जाये। इसी अभिलाषा के फलस्वरूप 'इदुलेखा' की रचना हुई।

मातृसत्तावादी प्राचीन अभिजात नायर परिवार के बुजुर्ग वृद्ध पचुमेनन हृदय से निष्कपट, किंतु ऊपर से बड़े क्रोधी और वाणी से उग्र व्यक्ति थे। उनकी छोटी भानजी इदुलेखा ही वात्सल्य के कारण उनके क्रोध से बची थी। 'इदुलेखा' सौदर्य की मूर्ति, प्रतिभा की धनी, तर्कशक्ति मे पटु और अत्यत सयतचरित्र की कन्या थी। उसे उसी परिवार के 'माधवन्' से प्रेम था जो हर तरह से उसके लायक था—ऊँची उपाधि, रूप, पुरुषार्थ, आदर्श चरित्र और अभिजातता सब कुछ उसमे था। उनका ब्याह पंचुमेनन तक को स्वीकार था। किसी छोटी बात पर क्रुद्ध पचुमेनन ने प्रतिज्ञा की कि इंदुलेखा माधवन् को नही दूँगा। उन्होने बड़े धनी-मानी, पर अधेड और बहुपत्नीक, सूरिनपूतिप्पाड् (दे०) को अपनी कन्या स्वीकार करने के निमित्त निमत्रित कर डाला। उन्हे इदुलेखा से डर भी था। इंदुलेखा ने सूरिनंपूतिप्पाड को ऐसा करारा जवाब दिया कि वे लज्जित हुए पर प्रतिष्ठा के विचार से वे चुपचाप उस घर की नौकरानी की बेटी को वधू-रूप मे स्वीकार कर चले गये।

मद्रास-स्थित माधवन् ने गाँव लौटते वक्त रास्ते मे ये बातें सुनी तो गलतफहमी के कारण एकदम निराश हुआ। अत मे कथा की परिणति इदुलेखा माधव के विवाह मे हो जाती है।

इस उपन्यास मे आधुनिक क्रियाकल्प या कोई और चमत्कारपूर्ण बात नही। फिर भी, इसके कथापात्रो के प्रति हमारे मन मे विशेष ममता रहती है। इसका सूरिनपूतिरप्पाड् प्रसग अतिविस्तृत परतु बहुत ही हास्यपूर्ण है। मलयाळम साहित्य मे यह पात्र अमर हो गया है। 'इदुलेखा' की गणना अब भी लोकप्रिय उपन्यासो मे की जाती है।

इंद्रनाथ *(बँ० पा०)*

इद्रनाथ (दे० 'श्रीकात' उपन्यास) हमारी जागृत चेतना का मूर्त प्रकाश है। केवल शरत् साहित्य मे ही नही, अन्यत्र भी इद्रनाथ के अनुरूप आश्चर्य-सुदर बलिष्ठ चरित्र दूसरा नही है। इस किशोर के चित्ततट पर सत्य-समुद्र का कलगान नित्य-ध्वनित है। हृदयबोध के राज्य मे उसका

निरंतर अभिषेक होता है। मानवता-बोध का जयोच्चारण-मंत्र ही उसका प्राणमंत्र है। जिस श्रीकांत की रक्षा के लिए इंद्रनाथ का प्रथम आविर्भाव हुआ था वह श्रीकांत तत्कालीन समाज के प्रत्येक साधारण मनुष्य का प्रतीक है, जो मनुष्य समाज के शत-सहस्र अनुशासन के द्वारा निरंतर परिबद्ध है। इंद्रनाथ इस प्रकार की दलित-निपीड़ित मानवात्मा का रक्षक है। वह प्रत्येक के हृदय में प्रदीप्त प्राणवह्नि संचारित करता है। डर किसे कहते हैं—वह यह नहीं जानता। मरण उसके सामने तुच्छ है। जीवन में जागृति का छंद उसके चित्रलोक की अमृतवाणी है। बाँसुरी के स्वर में, रात्रि के अभिमान में वह कवि एवं दुःसाहसी है। इंद्रनाथ का किशोर-प्राण अन्नदा दीदी की दृष्टि के आलोक में बहुत ही अधिक स्वच्छ है। इस महत्-प्राण की महिमा पाठक-चित्त को चकित विस्मय से, श्रद्धा से, प्यार से एवं स्नेह-ममत्व से एकदम संपूर्ण रूप से आत्मसात् कर लेती है। इसीलिए इंद्रनाथ सर्वकाली, जागृत-चित्त का सार्थक प्रतीक है।

इंद्र, राजा *(उर्दू० पा०)*

इंद्र हिंदू-देवमाला के सर्वश्रेष्ठ, सशक्त योद्धा, दीनों के रक्षक तथा दुष्टों के संहारक देवता हैं। अपने इन उदात्त गुणों के कारण यह एक वैभवशाली शासक अथवा राजा के प्रतीक हैं। इंद्र इंद्रपुरी के राजा हैं। लावण्यमयी परियाँ उनके अखाड़े की शोभा हैं। इसी राजा इंद्र के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करने वाला 'अमानत' (दे०) द्वारा उर्दू में लिखित 'इंदर सभा' नाटक का नायक है इंद्र।

'इंदर सभा' में राजा इंद्र सिंहलद्वीप का राजा बताया गया है। वह बड़ा समृद्ध तथा वैभवशाली है। उसके आदेश पर विभिन्न परियाँ—जैसे पुखराज, नीलम और लालपरी आदि बारी-बारी उसके सामने नृत्य-संगीत प्रस्तुत कर उसका मनोरंजन करती हैं। अंत में 'कोह-काफ़' की परियों की सरदार (नायिका) 'सब्जपरी' (दे०) भी आती है और अपने मादक रूप तथा मोहक नृत्य-संगीत से राजा इंद्र का मन बहलाती है।

राजा इंद्र का तेज तथा क्रोध विख्यात है। उनकी परियों के अखाड़े में सर्वसाधारण का पहुँचना संभव नहीं। जब 'गुलफ़ाम' परियों का नाच देखने के लिए उनके अखाड़े में जा पहुँचता है तो इंद्र की आज्ञा से वह दंडित किया जाता है। 'गुलफ़ाम' को काफ़-पर्वत स्थित भयानक ँ में बंदी बना दिया जाता है और उसे लाने वाली 'सब्जपरी' के बाल और पर नोच कर उसे अखाड़े से निकाल दिया जाता है। जोगिन बनी हुई सब्जपरी का करुणगान सुनकर राजा इंद्र उसे पुरस्कृत करना चाहता है। जब वह गुलफ़ाम की मुक्ति का प्रस्ताव करती है तो क्षमाशील इंद्र उसे मुक्ति प्रदान करता है।

इंद्रवज्रा *(हिं० पारि०)*

इंद्रवज्रा छंद के प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण—दो तगण, एक जगण और दो गुरु के क्रम से—रहते हैं। उदाहरण—

मैं जो नया ग्रन्थ विलोकता हूँ,
भाता मुझे सो नव मित्र-सा है।
देखूँ उसे मैं नित नेम से ही,
मानो मिला मित्र मुझे पुराना।

(हरिऔध)

इस पद्य के प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण और दो गुरु के क्रम से ग्यारह वर्ण हैं।

इंशा *(उर्दू० ले०)* [जन्म—अठारहवीं शती का उत्तरार्द्ध, मृत्यु—1818 ई०]

इनका पूरा नाम इंशा अल्ला खाँ और उपनाम 'इंशा' था। इनके पिता का नाम माशा अल्ला खाँ था। दिल्ली के पतन के समय इनके पिता को मुर्शिदाबाद जाना पड़ा। वहीं इनका जन्म हुआ था। इनके पिता ने इनके लालन-पालन तथा शिक्षा में बहुत रुचि ली और इन्हें विभिन्न कलाओं की शिक्षा दिलाई। इंशा दिल्ली तथा लखनऊ दोनों ही स्थानों में रहे। इन्होंने जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव देखे और जीवन के अंतिम दिनों में बहुत कष्ट सहन किए तथा उसी अवस्था में इनका देहावसान हुआ।

सयद इंशा को अरबी, फ़ारसी, हिंदी और भारत की अन्य कई भाषाओं का पूरा ज्ञान था। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। इन्हें भारत की प्राचीन संस्कृति से विशेष प्रेम था। हास्य और विनोद इनके स्वभाव के अभिन्न अंग थे। इनकी ये 11 मुख्य रचनाएँ हैं—

(1) उर्दू गजलों का दीवान, (2) दीवान-ए-रेख़्ती, (3) कसीदे, (4) दीवान-ए-फ़ारसी, (5) दीवान-ए-बे-नुक्त, (6) फ़ारसी मसनवी बे-नुक्त, (7) मसनवी आशिकाना, (8) हाथी और चंचल प्यारी हथनी की शादी, (9) मुर्गनामा, (10) फ़ारसी मसनवी शेरो-बिरंज (इसमें

मौलाना रूमी की शैली पर धार्मिक तथा सूफी सिद्धातो का हास्य शैली मे वर्णन है), (11) शिकारनामा—इसमे पिडो, खटमलो, मक्खियो तथा मच्छरो की निंदा मे कई हिज्व लिखी गई हैं। इनके अतिरिक्त इन्होने पहेलियो आदि की भी रचना की। एक कहानी शुद्ध हिंदी मे भी लिखी जिसमे उर्दू-फारसी का एक भी शब्द नही आया। उर्दू का प्रथम व्याकरण ग्रथ 'दरया-ए-लताफत' भी इन्ही की रचना है। हिंदी के आदि गद्यकारो मे इनका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनकी 'रानी केतकी की कहानी' (दे०) हिंदी की आदि गद्यशैली का नमूना प्रस्तुत करती है और अपनी रवानगी के लिए अन्य समकालीन गद्यकृतियो से सर्वथा भिन्न और विशिष्ट है।

यद्यपि साहित्यकार और कवि के रूप मे इनका बहुत ऊँचा स्थान है तथापि प्रहसनो की दृष्टि से ये अत्यत साधारण कोटि मे आते हैं। इनकी प्रवृति हिंदी की ओर अधिक थी। वह काव्यविधाओ के नाम अरबी से हिंदी मे बदल देना चाहते थे इसीलिए 'मुसल्लस' का नाम 'दुकडा' तथा 'मुरब्बअ' का नाम 'चौंकडा' रख दिया। इसी प्रकार इन्होने अरबी के पारिभाषिक शब्दो के स्थान पर हिंदी शब्द प्रयोग करने का प्रयास किया।

गद्य लेखन मे भी कई चीजें इनकी देन हैं। मौलाना आजाद (दे०) ने अपनी पुस्तक 'आबे-हयात' मे इन्हे उर्दू का अमीर खुसरो कहा है।

इकबाल *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1876 ई०, मृत्यु—1938 ई०]

इनका पूरा नाम मुहम्मद इकबाल और उपनाम 'इकबाल था। इनका जन्म सियालकोट मे हुआ और वही आरभिक शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् उच्च शिक्षा के लिए इन्हे लाहौर आना पडा। कुछ समय ये यहाँ के राजकीय कालेज मे प्राध्यापक भी रहे। सन् 905 ई० मे ये इंग्लैड गए और वहाँ से वकालत तथा दर्शन मे पी एच० डी० की डिग्री प्राप्त की

बाल्यावस्था से ही इकबाल का काव्य-रचना मे रुचि थी। ये हजरत दाग़ (दे०) के शिष्य थे और उनसे अपने काव्य का सशोधन कराते थे। इनकी भाषा पर दाग का प्रभाव स्पष्ट है। इनकी प्रतिभा ने शीघ्र ही इन्हे एक सर्वप्रिय कवि बना दिया। भाषा के माधुर्य गुण के साथ कल्पना की ऊँची उडान इनकी विशेषता है।

इनके काव्य मे निराश लोगो के लिए कर्मण्यता देशभक्ति तथा स्वाभिमान का सदेश है। इन गुणो के कारण इनकी ख्याति केवल भारत तक ही सीमित न रही बल्कि अन्य देशो—जैसे अफगानिस्तान, ईरान, अमरीका तथा इँगलैंड—मे भी पहुँच गई। इकबाल ने उर्दू काव्य को नए विचार और नया मोड प्रदान किया। दृश्य चित्रण में ये दक्ष चित्रकार प्रमाणित हुए। इनकी कविताओ मे विचारो की गहनता के साथ साथ सगीतात्मकता भी विद्यमान है। इन्हे उर्दू, फारसी, अरबी, तथा अँग्रेजी पर पूरा अधिकार प्राप्त था। उर्दू मे 'बाँग ए दरा' (दे०), 'बाले जिब्रील' (दे०), 'जर्बे-ए-कलीम' (दे०), इनके काव्य सग्रह हैं और फारसी मे मसनवी इसरारो रमूज', 'पयामें मशरिक', 'जबूरे अजम', 'जावेदनामा, 'मनसवी पस चे बायद कर्द', 'मसनवी मुसाफिर' और 'अर्मुगान ए-हिजाज' प्रसिद्ध है। इकबाल ने कुछ अँग्रेजी कविताओ का उर्दू में अनुवाद भी किया।

'इक म्यान दो तलवारां' *(प० कृ०)* [प्रकाशन—1960 ई०]

नानकसिंह (दे०) विरचित 'इक म्यान दो तलवारां' एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसके माध्यम से सन् 1914-15 के 'गदर' मे उल्लेखनीय योग देने वाले शहीदो की स्मृति को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास किया गया है। स्वतत्रता सग्राम मे पजाब के वीरो ने जो साहसिक काय किए, और पजाब की धरती पर जो घटनाएँ घटित हुई उन्ही को नानकसिंह ने इस कृति का आधार बनाया है। इसमे जिन घटनाओ एव व्यक्तियो का चित्रण किया गया है वे सभी ऐतिहासिक रिपोर्टों तथा टिप्पणियो पर आधृत है। 'करतारसिंह सराभा' देश प्रेम एव पराधीनता विरोधी भावना से अनुप्राणित हैं। सुखदेवसिंह सोढी के द्वारा तत्कालीन सामतशाही और धार्मिक नेतृत्व की भावना को प्रस्तुत किया गया है। घटनाओ एव विवरणो पर अधिक बल देने के कारण पात्रो का चरित्र-चित्रण उभर नही सका है। इसमे जनजीवन का समुचित चित्रण नही हुआ है और देश-काल की असगतियो का स्पष्ट आभास होता है। ऐतिहासिक उपन्यास मे शोध दृष्टि तथा कल्पना प्रवणता की अपक्षा होती है जिसका इसमे अभाव परिलक्षित होता है। अकाली लहर से प्रभावित इस कृति मे सिख जाति मे व्याप्त कुरीतियो एव अधविश्वासो के खडन का प्रयास भी मिलता है। लेखक का साहित्य एकादमी की ओर से इस कृति पर पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

इच्छावती *(उ० कृ०)*

यह धनंजय भंज (दे०) कृत श्रृंगार-काव्य है जो छोटे-छोटे दस छंदों में विरचित है। इसमें शापग्रस्त एवं स्वर्गच्युत गंधर्व कलावत एवं अप्सरा कलावती के मर्त्य जीवन का चित्रण है। काव्य के मध्य में प्राचीन परंपरा के अनुसार विरह एवं प्रेम-विह्वलता का चित्रण है। काव्य सुखांत है। इसमें संस्कृत के 'पंचाशिका' एवं बिल्हण कृत 'चौरपंचाशिका' (दे०) नामक दो ग्रंथों का अनुवाद हुआ है। प्रथम छंद से पंचम छंद तक कवि की अपनी रचना है। शेष समस्त श्लोक अनूदित हैं। अनुवाद सुंदर हुआ है।

इच्छावरण *(उ० कृ०)*

यह कमलाकांत दास (दे०) का सामाजिक उपन्यास है, जिसमें मुख्य रूप से प्रेम विवाह की समस्या उठाई गई है। लेखक ने बड़ी तटस्थता और सहानुभूति के साथ इसकी अच्छाइयों और बुराइयों पर प्रकाश डाला है। शहरीकरण का हमारे सामाजिक जीवन पर पड़ने वाला कुप्रभाव भी इसमें चित्रित है। आज की आर्थिक समस्या भी उठाई गई है—तेजी से गिरती आर्थिक स्थिति तथा आज की अर्थप्रधान जटिल सभ्यता, तज्जनित चारित्रिक, एवं नैतिक पतन आदि का सफल चित्रण हुआ है। नारी-मुक्ति की भ्रांत धारणा और उसके कुपरिणाम की ओर भी लेखक ने संकेत किया है। नारी की शक्ति और साहस का भी चित्रण हुआ है। जीवन की भूल-चूक पर मानवीय संवेदना की विजय बताई गई है।

इछामती *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1939 ई०]

'इछामती' विभूतिभूषण (दे०) की अंतिम महत् सृष्टि है। अपने गाँव के निकटवर्ती मोल्लाहाटि की पुरानी नीलकुटि के ध्वंसावशेष को देखकर लेखक के मन में 'इछामती' रचना की प्रेरणा जगी थी। उस युग के अत्याचारी, धनवान नील-व्यवसायी—अँग्रेज साहब-मेमों के अल्पस्थायी औज्ज्वल्य के साथ इछामती नदी के किनारे की शाश्वत जीवन-धारा को प्रकट करने के अभिप्राय से ही इस उपन्यास की रचना हुई थी।

इसमें भारतवासी अँग्रेजों के दोष-गुण, अभ्यास तथा चिंतन-धारा का यथासाध्य विश्वसनीय परिचय दिया गया है। अँग्रेजों की अपेक्षा अँग्रेजों के कर्मचारी दीवान, कारिंदे, मुख्तार, वैरे, साईस, रसोइये आदि चरित्रों का वर्णन ही इसमें अधिक है। इन कर्मचारियों के अत्याचार, अर्थ-लोभ एवं धूर्तता के साथ-साथ इनके व्यक्तिगत जीवन में हिंदू आचार-आचरण की निष्ठा का विरोधाभासात्मक वर्णन है और साथ ही इनके आश्रित गाँव के निष्क्रिय भद्र-समाज का असहनीय वर्णन है। जशोर के ग्रामांचल की दुःख-दुर्दशा का वर्णन करते हुए क्रमशः किसान-संप्रदाय का संघबद्ध आंदोलन एवं उसी के प्रभाव-स्वरूप कलकत्ते में सभा-समितियों का आह्वान एवं अँग्रेज-शासकों की उद्विग्नता को लेखक ने बहुत ही हृदयग्राही ढंग से प्रस्तुत किया है। परंतु उपन्यास के विशिष्ट चरित्र भवानीचरण के सम्मुख नीलकुटि का चित्र गौण हो जाता है। विषय-लोभ-जटिल नीलकुटि की जीवनधारा की अभिव्यक्ति वस्तुतः भवानीचरण के उच्च मानसिक गौरव को प्रकट करने के लिए ही की गई है। भवानीचरण लेखक की भावकल्पना का पूर्णविग्रह है और उपन्यास को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि बृहत् समाज-जीवन की अपेक्षा वह भवानीचरण एवं उसकी गृहस्थी के माध्यम से आदर्श मानवत्व का परिचय देना चाहता है। कहना न होगा कि इसमें उसे पूर्ण सफलता मिली है।

इज़ाफ़ियत *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1940 ई०]

इसके लेखक हैं डा० रज़ी-उद्-दीन सिद्दीक़ी (प्रो० जामिया उसमानिया, गणित विभाग)। अंजुमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू (हिंद) दिल्ली द्वारा प्रकाशित इस कृति में प्रसिद्ध दार्शनिक 'आइन्स्टाइन' के दृष्टिकोण को सरल-सुबोध शैली में वर्णित किया गया है। लेखक का कथन है कि उर्दू के अन्यतम कवि डा० इक़बाल (दे०) की हार्दिक इच्छा की पूर्ति के लिए इस पुस्तक का प्रणयन किया गया है। मौलवी अब्दुलहक़ साहब (दे०) की प्रेरणा का भी इसमें यथेष्ट योगदान रहा है। दर्शन और विज्ञान से संबद्ध इस कृति के आरंभिक तीन अध्याय किंचित् दुर्बोध, शुष्क और क्लिष्ट हैं, परंतु चतुर्थ अध्याय से यह यथेष्ट सरल, सुबोध और रोचक हो जाती है और इस भाग को समझ लेने के पश्चात् आरंभिक भाग के पुनः अध्ययन और मनन में किसी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। इस कृति में पारिभाषिक शब्दों, गणित के चिह्नों अथवा प्रमेयों के प्रयोग यथासंभव नहीं किए गए हैं। कहीं-कहीं ऐसे पारिभाषिक शब्द अवश्य दिए गए हैं जो प्रायः समाचार-पत्रों और लेखों में प्रयुक्त होते रहते हैं। फिर भी

प्रत्येक स्थान पर पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या इतनी विस्तृत और सुस्पष्ट कर दी गई है कि उन्हे समझने मे कोई कठिनाई नही होती। यह महत्त्वपूर्ण कृति 11 अध्यायो मे लिखित है। इसके अत मे प्रयुक्त उर्दू पारिभाषिक शब्दो मे अँग्रेजी पर्याय भी दे दिए गए है।

इट्टश्शेरि, गोविंदन नायर *(मल० ले०)* [जन्म—1906 ई०, मृत्यु—1974 ई०]

ये मलयाळम के कवि तथा नाटककार है। जन्म दरिद्र परिवार मे हुआ और पहले एक वकील के गुमाश्ते बने। बाद मे ये स्वय वकील बने। स्वतत्रता-आदोलन मे भी इन्होने भाग लिया है।

इट्टश्शेरि के कविता-सग्रह 'काविले पाट्टु' (दे०) को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला है। 'अळकावली', 'करुत्त चेट्टिच्चिकेळ', 'ओरुपिटि मेळ्ळिक्का आदि अन्य कविता सग्रह है। 'कूट्टुकृषि (दे०) आदि छह नाटको की भी इन्होने रचना की है।

इट्टश्शेरि की कविता की मुख्य धारा मानव प्रेम की है। मानवीय अनुभूतियो की तीव्रता इनकी कविता मे प्रकाशित होती है। इनके नाटक सामाजिक समस्याओ का हल ढूँढते हैं।

कवि और नाटककार के रूप मे मलयाळम साहित्य मे इट्टश्शेरि गोविंदन नायर का विशेष स्थान है।

इडा *(हिं० पा०)*

इस नारी पात्र का चित्रण 'कामायनी' (दे०) मे वैदिक सूत्रो के आधार पर प्रतीक रूप मे किया गया है। 'शतपथब्राह्मण' (दे० ब्राह्मण) के अनुसार उसका जन्म मनु (दे०) के पाकयज्ञ से हुआ था। उस पर पूर्णाधिकार करने के इच्छुक मनु को देवताओ का कोपभाजन होना पडा। ऋग्वेद (दे० सहिता) के अनुसार वह भारती और सरस्वती के समान एक प्रमुख देवी है जो चेतना प्रदान करती है। इन्ही सूत्रो को लेकर प्रसाद (दे०) ने उसका प्रत्यक्ष और प्रतीकात्मक वर्णन किया है। प्रत्यक्ष रूप मे वह तर्कमयी ज्ञान-विज्ञान का विकास करती हुई सुख साधनो की वृद्धि करती है। इस कल्याणमयी की असफलता प्रजा की भेदबुद्धि और प्रजापति मनु की अतृप्ति के विकास मे है। श्रद्धा (दे०) के सपर्क मे आकर वह अपनी दुर्बलता से अवगत हो जाती है और श्रद्धामय मननशील मानव को साथ लेकर पुन प्रजापालन मे सलग्न होती है। श्रद्धा के आशीर्वाद से समरसता का प्रचार करती हुई सतापमुक्त होकर वह गैरिकवसना प्रजासहित मानसरोवर पहुँच जाती है। स्पष्ट है कि प्रसाद (दे०) ने इडा (दे०) को बुद्धवाद या विवेकवाद का प्रतीक बनाया है। उनकी मान्यता के अनुसार यह विवेकवाद अपने चरम रूप मे कल्याणकर होते हुए भी व्यावहारिक धरातल पर दुख उत्पन्न करता है, इसलिए उस पर श्रद्धा या आनदवाद का शासन आवश्यक है।

इदय ओलि *(त० कृ०)* [रचना-काल—1941 ई०]

इदय ओलि टी० के० चिदबरनाथ मुदलियार के बीस निबधो का सग्रह है। निबधो मे वर्णित विषय है—सौंदर्य प्रेरित वीरता, तमिल-प्रेम, शिक्षा-प्रणाली, कवि और विचार, कवि और रूप सगीत और साहित्य आदि। कुछ निबधो मे 'त्यागराज विलासम' 'कुट्राल कुरेवजि' आदि तमिल की साहित्यिक कृतियो का विवेचन है। एकाध निबधो मे तिरुवळ्ळुवर (दे०) जैसे प्रसिद्ध साहित्यकारो के कृतित्व का विवेचन है।

चिदबरनाथ मुदलियार ने जब इन निबधो की रचना की उन दिनो साहित्यकारो और उच्च वर्ग के लोगो मे बहुत दूरी थी। विविध विषयो से सबद्ध इन निबधो की रचना द्वारा लेखक ने उस दूरी को मिटाने और उच्च वर्ग के लोगो को साहित्य की ओर आकृष्ट करने का सफल प्रयास किया। ये निबध लेखक के व्यापक अनुभव के परिचायक है। इसमे हास्य और व्यग्य का पुट है। सभी निबध सरस सरल शैली म रचित है। इन निबधो का तमिल निबध साहित्य मे विशिष्ट स्थान है।

इदयनादम्, चिदबर सुब्रह्मण्यम *(त० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1952 ई०]

इदयनादम् का यह उपन्यास आधुनिक तमिल साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि है। इसके शीर्षक का अर्थ 'हृदय-नाद' है और कृति सगीतकारो की आत्मानुभूति का परिचय देती है। तजावूर जिले के एक गाँव का बालक 'किरुष्णन (कृष्ण) जन्म से ही सगीत-प्रेमी है। मामूली पढाई मे मन न लगने से वह पास वाले गाँव मे भाग जाता है जहाँ वह एक प्रसिद्ध सगीतकार (तमिल शब्द 'पाकवतर्) के शिष्य के रूप मे जमकर दीर्घकालीन

गुरुकुलाभ्यास करता है। वह अपने गुरु परिवार का अभिन्न अंग बनकर उनकी एकमात्र पुत्री से विवाह भी कर लेता है। गुरु का देहांत होने पर वह स्वयं पुत्रवत् उसके दाह-संस्कार और अन्य क्रियाएँ संपन्न करता है। इस प्रसंग पर लेखक ने जलती चिता तक का मार्मिक वर्णन किया है। गुरु के निधन के बाद वह 'किरुष्णपाकवतर्' के नाम से संगीत-जगत का सम्राट बनकर स्थान-स्थान पर अपनी गायन-सभाओं द्वारा संगीत-रसिकों को आनंद-विभोर करता आता है। इस प्रकार संगीतोपासक कलाकार अपनी साधना की चोटी पर पहुँचता है किंतु अकस्मात् वह एक विचित्र आघात का शिकार बन जाता है। एक गायन-सभा में राग आलापते-आलापते, जिस मधुर स्वर के लिए उसकी जगत्प्रसिद्धि है, वह धीमा पड़ जाता है और उसका कंठ बैठ जाता है। किंतु इससे वह निराश नहीं होता। वह ईश्वरीय प्रेम एवं सेवा के लिए अपने आपको अर्पित कर देता है।

इस उपन्यास में वस्तु-विन्यास की चमत्कारिता नहीं है। इसकी मुख्य विशेषताएँ 'तंजावूर' जिले के ब्राह्मण-परिवारों का सादगीपूर्ण पर आदर्शनिष्ठ जीवन का जीता-जागता चित्रण, और उससे संलग्न उस अंचल का ग्राम-वातावरण, बोलीविशेष आदि का यथार्थपरक प्रस्तुतीकरण है। लेखक के कथनानुसार इसकी कथा उन्हीं के संगीतोपासक परिवार की पूर्वघटित आत्म-कथा है। इसका हिंदी रूपांतर भी हो चुका है।

इनामदार ना० सं० *(म० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

आधुनिक मराठी उपन्यासकारों में जिन्होंने थोड़ा लिखकर महान् ख्याति प्राप्त की है उनमें श्री इनामदार अग्रण्य है। आरंभ में ये कहानी-लेखक थे, बाद में उपन्यास-लेखन की ओर मुड़े। अब तक इनके 6 कहानी-संग्रह तथा 3 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। तीनों उपन्यासों पर इन्हें महाराष्ट्र-शासन से पुरस्कार मिल चुका है।

मुख्यकृतियाँ—झुंज, मंत्रावेगळा तथा झेंप।

इफ़ादात-ए-मेंहदी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1899-1919 ई०]

यह ग्रंथ सुप्रसिद्ध निबंधकार एम० मेंहदी हसन (दे०) का निबंध-संग्रह है। इसे मेहदी बेगम ने संकलित किया है और प्राक्कथन-लेखक हैं मौलाना अब्दुल माजिद साहब। इस पुस्तक में मेंहदी साहब के वे निबंध संकलित हैं जो उन्होंने 1899 से 1919 तक के बीस वर्ष के समय में लिखे थे। कुछ निबंधों के शीर्षक ये हैं: (1) शेरल-अज़्म पर एक फ़लसफ़ाना नज़र, (2) उर्दू लिट्रेचर के अनासिरे ख़मसा, (3) हैदराबाद की बज़्मे-अदब, (4) आधा घंटा अल्लामा शिबली के साथ, (5) मग़रिब और इंशापरदाज़ी का दौर-ए-जदीद, (6) इस्तक़ा-ए-उर्दू अदब।

निबंध यद्यपि आकार में छोटे हैं किंतु साहित्यिक दृष्टि से अनमोल हैं। इनके निबंधों से इनके पत्र अधिक मूल्यवान हैं। उनकी एक-एक पंक्ति में साहित्य का गौरव अंतर्भूत है। यह ग्रंथ उर्दू साहित्य की एक बहुमूल्य निधि है।

इनामदार, वी० एम० *(क० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

कन्नड़ के विख्यात उपन्यासकार श्री वेंकट माधूराव इनामदार का जन्म उत्तर कर्नाटक में 1913 ई० में एक संभ्रांत ब्राह्मण परिवार में हुआ। अंग्रेज़ी में एम० ए० करके ये प्राध्यापक बन गये। अब तक इन्होंने एक दर्जन से अधिक उपन्यास लिखे हैं जिनमें प्रमुख हैं 'शाप', 'कनसिनमने', 'मूराबट्टे', 'उर्वशी', 'ई परिय सरेवगु', 'कट्टिदमने', 'बाडिदहू' आदि। इनके उपन्यासों में सुशिक्षित जीवन की समस्याओं का अतीव मार्मिक चित्रण है। कथा-रचना का चमत्कार, मनोविश्लेषण, मोहक संभाषण और परिष्कृत भाषा आपकी विशेषताएँ हैं। 'मूराबट्टे' उपन्यास में विवाहित नारी अपनी ससुराल की रस्मों से तथा पति से स्वतंत्र रहने की इच्छा से किस प्रकार पथभ्रष्ट होती है—इसका स्पष्ट चित्रण है। कहीं-कहीं उनके चित्र अवास्तविकता एवं भावातिरेक से धूमिल बन गए हैं। 'शाप' में माँ-बाप का दूषित जीवन बच्चों के लिए कैसे अभिशाप बन सकता है—इसका चित्रण है। कन्नड़ उपन्यासों में मनोविज्ञान का अतीव सरस निरूपण आपकी कृतियों में ही हुआ है। विषम दांपत्य के चित्रण में श्री इनामदार अत्यंत तटस्थ किंतु सहानुभूतिपूर्ण हैं। आधुनिक समाज की सूक्ष्मातिसूक्ष्म समस्याओं के प्रति वे खूब सजग हैं।

इब्न-उल-वक्त *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1880 ई०]

'इब्न-उल-वक्त' मौलवी नज़ीर अहमद (दे०) का अपने ढंग का उपन्यास है। इसमें अंग्रेज़ी सभ्यता के अंधा-

नुकरण के परिणाम चित्रित किए गए है—ऐसा व्यक्ति (इब्न-उल-वक्त जैसा) न तो अँग्रेज ही बन सकता है और न भारतीय रह जाता है ।

'इब्न-उल-वक्त' इस उपन्यास का नायक है । वह एक अँग्रेज मि० नोबल के प्रभाव मे आकर अपना भारतीय ढग का रहन-सहन छोड अँग्रेजी चाल-ढाल अपनाता है । कुछ लोगो को 'इब्न-उल-वक्त' पर सर सैयद की छाप दृष्टिगोचर हुई हे ।

लेखक ने शुद्ध देहलवी भाषा का प्रयोग किया है । हास्य-व्यग्य का पुट उसकी रचना शैली की विशेषता है ।

इब्न-उल-वक्त *(उर्दू० पा०)*

इब्न-उल-वक्त नजीर अहमद साहब के उपन्यास इब्न-उल-वक्त (दे०) का नायक है । उपन्यास मे उसके व्यक्तित्व का केंद्रीय स्थान है । अन्य सभी पात्र उसके चरित्र के पोषक हैं । इब्न-उलवक्त एक सजीव पात्र है जो अपने परिवेश से प्रभावित होता है, उसमे परिवर्तन आता है । और वह आगे बढता है व उभरता है । मौलवी नजीर अहमद इब्न-उलवक्त को खुदा का बेटा समझते है और उससे प्यार करते हैं ।

नाम से तो इब्नुल बेपेंदे का लोटा एव सिद्धातहीन दिखाई देता है किंतु वास्तविकता यह नही । वह अपने आप को जाति-हितैषी समझता है और मुसलमानो का भला चाहता है । वह नेक, साहसी और सवेदनशील है, सिद्धात का पक्का एव कर्तव्यपरायण है, न किसी से वह डरता है, न दबता है । वह अपने पद का भी अनुचित लाभ नही उठाता और न किसी को हानि पहुँचाता है । उसका घरेलू जीवन सर्वथा बेदाग है । अपने आदर्श के लिए बडे से बडा त्याग करने को वह सदा तत्पर रहता है । उसमे आत्मविश्वास एव अन्य सभी गुण मौजूद है किंतु सौ बुराइयो की बुराई यह है कि वह पाश्चात्य सभ्यता का अनुरागी एव समर्थक है । अपने धार्मिक विश्वासो की अपेक्षा बुद्धि तथा विज्ञान की ओर उसकी अधिक प्रवृत्ति है ।

इब्न-ए-निशाती *(उर्दू० ले०)*

आरभ मे ये गद्य-लेखक थे परतु बाद मे काव्य साधना की ओर प्रवृत हो गए थे । इसी काव्य-साधना के बल पर इन्हे अमरत्व प्राप्त हुआ । 'फूलबन' (दे०) नामक मसनवी इनका कीर्तिस्तभ है । यह मसनवी भाषा की उत्कृष्टता और अभिव्यजना-सामर्थ्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है । इसमे तत्कालीन जीवन के रीति-रिवाज, सभ्यता तथा परपरा का भी सजीव वर्णन हुआ है । दक्षिण भारत के प्राचीन उर्दू कवियो मे 'इब्न-ए-निशाती' का नाम बडे आदर से लिया जाता है ।

इमामबख्श *(प० ले०)* [जन्म—1778 ई०, मृत्यु—1863 ई०]

इनका जन्म जिला सियालकोट ग्राम पसियावाला के सैयद कुल मे हुआ और लाहौर के मियाँ बड्डा नामक सूफी फकीर से इन्होंने शिक्षा ग्रहण की । जीविकोपार्जन के लिए ये बढई का काम करते थे और बच्चो को कुरान शरीफ पढाते थे । इनकी प्रसिद्धतम रचना 'शाह बहराम हुसन बानो' (दे०) मे एक नवीन और चमत्कारपूर्ण विदेशी कथा काव्यबद्ध की गई है । इसके अतिरिक्त इन्होंने 'लैला मजनूँ', 'मलिकजादा शाहपरी', 'गुलसनोबर', 'गुलबदन', 'चदरबदन महियार' प्रभृति प्रेमाख्यानक और 'मुनाजात मियाँ बड्डा', 'बदीउल जमाल' आदि आचार-प्रधान कृतियाँ भी रची । इनकी रचनाओ का उद्देश्य इस्लाम का प्रचार है और स्रोत फारसी साहित्य । 'लैला मजनूँ' (1830 ई०) मे निजामी और खुसरो के अनुकरण को स्पष्टत स्वीकार किया है । 'मलिकजादा शाहपरी' मे भी फारसी की किसी मसनवी के अनुकरण की स्वीकृति है । इस रचना की कथा हिंदी कवि कुतबनकृत 'मृगावती' (1503 ई०) से मिलती है । प्राय सभी रचनाओ मे फारसी की मसनवी-पद्धति का अनुकरण है और शीर्षक भी फारसी मे ही है । भाषा की क्लिष्टता और वातावरण की अभारतीयता के कारण इनकी अधिकाश कृतियाँ एक वर्ग-विशेष तक ही सीमित रही ।

इम्तियाज अली 'ताज' *(उर्दू० ले०)*

सैयद इम्तियाज अली 'ताज' आधुनिक उर्दू-साहित्य के प्रामाणिक नाटककार और उपन्यासकार है । सुप्रसिद्ध नाटक 'अनारकली' (दे०) इनकी अमर कृति है । इस कीर्ति-स्तभ का प्रणयन इन्होने सन् 1922 ई० मे किया था । उर्दू नाट्य-साहित्य मे इस नाटक का स्थान बहुत ऊँचा है । इसमे भावानुकूल भाषा-शैली, सशक्त कथोपकथन, उद्देश्य-सगति और सजीव वातावरण की अवतारणा कलात्मक ढग से हुई है । आगा 'हश्र' काश्मीरी (दे०) ने इस नाटक का यथेष्ट गुणगान किया है । 'अनारकली'

के प्रणयन के उपरांत इन्होंने कोई ऐसा नाटक नहीं लिखा जिसे पूर्णतः रंगमंचीय नाटक कहा जा सके। किंतु रेडियो-रूपक और एकांकी नाटक इन्होंने विपुल मात्रा में लिखे हैं। इन नाटकों में कुछ तो पूर्णतः मौलिक हैं और कुछ अविकल अनुवाद मात्र। कलात्मक दृष्टि से इन सभी रूपकों का स्तर उच्च कोटि का है। फ़िल्मी कहानियों एवं फ़िल्मी कथनोपकथन के लेखन में भी इन्होंने सफलता प्राप्त की है। ये निदेशक बनकर चित्रपट-निर्माण में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दे चुके हैं। स्वातंत्र्य-पूर्व युग में पंचोली फ़िल्म कंपनी, लाहौर के लिए 'धमकी' और 'शहर से दूर' आदि चित्रों का निर्माण इन्होंने ही किया था। पाकिस्तानी फिल्मों में इनके द्वारा निर्मित 'गुलनार' नामक फ़िल्म का एक विशिष्ट स्थान है। उच्चस्तरीय समालोचनाओं द्वारा भी इन्होंने नाट्य साहित्य की सेवा की है।

इयल *(त० पारि०)*

तमिल विद्वानों ने साहित्य के तीन प्रकार माने हैं—इयल (काव्य), इशै (संगीत) और नाडहम् (नाटक एवं नृत्य)। इयल के दो भेद हैं—इलक्कणम् (व्याकरण ग्रंथ या लक्षण ग्रंथ) तथा इलक्कियम् (लक्ष्य ग्रंथ)। इलक्कणम् में अक्षरों की संख्या, उनके स्वरूप, शब्दों की व्युत्पत्ति, शब्दों के प्रकार, काव्य के विविध विषय, छंदों एवं अलंकारों की संख्या तथा उनके लक्षणादि का वर्णन होता है। इलक्कियम् के अंतर्गत समस्त साहित्यिक कृतियों की चर्चा होती है। तमिल में साहित्यिक कृतियों के साथ-साथ व्याकरण-ग्रंथ भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं। कुछ प्रसिद्ध व्याकरण-ग्रंथ हैं—तोलकाप्पियम् (दे०), अहप्पोरुळ इलक्कणम्, याप्परुंगलम्, याप्परुंगलकारिकै, नन्नुल, वीर चोळियम्, आदि। प्राचीन इयल कृतियाँ पद्य में हैं। ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के बाद व्याकरण-ग्रंथों एवं साहित्यिक कृतियों की रचना गद्य में भी होने लगी थी।

इयारुइंगम *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

लेखक : बीरेन्द्रकुमार भट्टाचार्य (दे०)। इस विशाल उपन्यास में टांगखुल नगाओं का वर्णन है। नगा पहाड़ियों से जापानियों की वापसी से कथा का आरंभ होता है। युद्ध के तुरंत पश्चात् की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों का इसमें चित्रण है। लेखक ने नगाओं की समस्या को मनोवैज्ञानिक एवं सहानुभूतिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया है। इसमें प्रेम-प्रीति, विरह-मिलन, शासन-शोषण सभी कुछ का वर्णन किया गया है। इस उपन्यास पर लेखक को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। श्री चित्र महंत ने इसका हिंदी अनुवाद किया है।

इरट्टैयर *(त० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती का मध्य भाग]

यह नाम दो ऐसे कवियों के लिए प्रचलित है जो संयुक्त जीवन बिताते हुए एक दूसरे के शारीरिक अशक्तता-अभाव की पूर्ति करते थे। इनमें एक अंधा था और दूसरा पंगु। नेत्रहीन कवि गतिहीन भाई को अपने कंधे पर बैठाकर उसके पथ-प्रदर्शन के अनुसार चलता था। पारस्परिक सहयोग से दोनों ने तमिल प्रदेश के विभिन्न स्थानों की यात्रा की थी और मंदिर-दर्शन, आश्रयदाताओं की प्रशंसा तथा खल-निंदा आदि से संबद्ध अनेक पद्यात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की थी। 'इरट्टैयर' 'कलंबकम्' नामक पद्य-रचनाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। इनमें तमिल के विभिन्न छंदों का मिश्रण एक विचित्र का चमत्कार उत्पन्न करता है। तदनुकूल 'मिश्रित फूलों की माला' के अर्थ में इस काव्य-विधा का नामकरण किया गया है। कविद्वय की मुख्य रचनाएँ हैं—'तिरुवामात्तूरक्कलंबकम्,' 'तिल्लैक्कलंबकम्' (दो पुण्य तीर्थों में विद्यमान शिव भगवान की स्तुति) तथा 'एकाम्बर नातरुला' (कांचीपुरम् के शिवजी की सवारी का स्तुतिपरक वर्णन)।

इरयिम्मन तंपि *(मल० ले०)* [जन्म—1782 ई०, मृत्यु—1856 ई०]

ये मलयाळम के कवि और गीतकार हैं। तंपि त्रावनकोर के राजपरिवार के निकट संबंधी थे और महाराजा स्वाति तिरुनाळ् के दरबार में राजकवि थे। तीन आट्टक्कथाएँ (दे०)—'कीचकवधम्', 'उत्तरास्वयंवरम्' एवं 'दक्षयागम्' इनकी रचनाओं में मुख्य हैं। इनके अलावा अनेक गीतों और मुक्तकों की रचना भी उन्होंने की है।

तंपि की आट्टक्कथाएँ औचित्यादि साहित्यिक गुणों की पुष्कलता के कारण कथकलि के आस्वादकों में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। इनकी कृतियों ने इस चिरप्रतिष्ठित नृत्यविद्या के महत्त्व को बढ़ाया है। लोक-शैली और कर्नाटक शैली के गान-रचयिताओं में भी उनका स्थान समुन्नत है।

इरामनाटकम् *(त० कृ०)* [समय—अठारहवी शती ई०]

यह रामायण कथा-प्रसगो को सुदर नाटक-ताव-युक्त गीतो द्वारा प्रस्तुत करने वाली कृति है। इसकी लोक-प्रियता के दो कारण हैं—एक, नाटकीय सवादो के रूप मे गीतो का प्रणयन-जैसे राम द्वारा लक्ष्मण, विभीषण आदि के प्रति सबोधन, दूसरा, गीतो का आकर्षक गेय स्वरूप जिसे तमिल मे 'कीर्त्तनै' कहते हैं। ये गीत कर्नाटक सगीन मे गाने के अनुकूल लय के साथ रचे हुए है। भाषा भी अत्यत हृदयग्राही स्वच्छद भाव सप्रेषण तथा पिष्टपषित काव्य रूढियो से मुक्त सरल सीधी अभिव्यक्ति से इस कृति को तमिल साहित्य-इतिहास के आधुनिक चरणो का सूत्र-पात करने का श्रेय दिया जाता है। इसके रचयिता 'अरुणाचलक्कविरायर' है।

इरुपता नूट्टाँटिटे इतिहासम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1955 ई०]

यह आक्कत्तम् (दे०) का प्रसिद्ध खडकाव्य है। इसका नायक बीसवी सदी का एक भावुक पुरुष है जो अन्यायो और अत्याचारो के विरुद्ध सघर्ष करने के लिए साम्यवादी मार्ग ग्रहण कर लेता है। वैयक्तिक सबधो, मधुर भावनाओ और मानवीय नैतिकताओ की बलि देते हुए सहस्रो निरीह सहजीवियो को काति की आग मे झाक देने वाले इस आदोलन से हताश होकर वह बीसवी सदी के इस सर्वाधिक दु खद मोहभग पर आँसू बहाता है।

यह काव्य आदर्शों की चकाचौंध से आकृष्ट होकर सत्यदर्शन के लिए असमर्थ हो जान वाले मनुष्य का भावपूर्ण और विचारोत्तेजक हृदयालाप है। कवि के अनु-सार इस युग के भावुक मनुष्य की कुठा का मुख्य हेतु मोहक प्रतीत होने वाले साम्यवादी सिद्धातो की पराजय है। यह काव्य उनके व्यक्तिगत जीवन की अनुभूतियो का भी दर्पण है। मलयाळम के आधुनिक काव्यो मे इसका स्थान अद्वितीय है।

इर्गप्प हेग्गडेय प्रहसन *(क० कृ०)*

इसके रचयिता वेंकटरमण शास्त्री विघ्नेश्वर शास्त्री सूरि हैं (1852-1892 ई०)। इनका जन्म उत्तर कन्नड के कर्कि ग्राम मे हुआ। 'इर्गप्प हेग्गडेय प्रहसन' आपके द्वारा रचित एक यथार्थवादी कृति है। इसकी रचना 1887 ई० म हुई। इसमे कन्याविक्रय प्रथा पर मार्मिक कटाक्ष है। घरेलू बोली मे लिखा इतना प्रभावी नाटक कन्नड मे दूसरा नही है। उन्नीसवी शताब्दी के अतिम चरण मे एक ब्राह्मण के द्वारा ऐसी क्रातिकारी रचना सचमुच एक आश्चर्य है। नाटक मे अद्भुत गति है।

इलगेश्वरन *(त० कृ०)* [रचना-काल —1945 50 ई० के मध्य]

यह तुरैयूरमूर्ति का प्रसिद्ध पौराणिक नाटक है। रामायण पर आधृत इस नाटक म नाटककार न रावण के चरित्र को सर्वथा नवीन रूप म प्रस्तुत किया है। तमिलनाडु मे द्रविड कषग के आदोलनो ने जनता मे रामायण-विरोधी भावनाएँ जगा दी थी। उस समय समाज मे एक ऐसा वर्ग भी था जो जनता की रामायण विरोधी भावनाओ को नष्ट करने के लिए प्रयत्नशील था। इस वर्ग के व्यक्तियो ने एक ओर रामचन्द्र जी की चारित्रिक दुर्बलताओ का उद्घाटन किया, दूसरी ओर रामायण की कथा मे परिवर्तन किए बिना असुर कहे जाने वाले पात्रो के चरित्र का उद्घाटन किया। उन्हे निजी व्यक्तित्व-सम्पन्न मानव के रूप मे चित्रित किया।

इस नाटक मे नाटककार ने रावण को सतप्त नायक के रूप मे चित्रित किया है। इस नाटक के अनुसार रावण का बहनोई अर्थात् शूपर्णखा का पति रावण को एक दुर्घटना से बचाते हुए प्राण त्याग देता है। उस दिन से रावण शूपर्णखा से अधिक प्रेम करने लगता है और भावुक प्रकृति का व्यक्ति बन जाता है। शूपर्णखा की चालबाजियो म आकर ही रावण सीता हरण जैसा निदनीय कर्म करता है और समाज की नजरो मे गिर जाता है। इस नाटक मे इलगेश्वरन (लकाधिपति) का जो चरित्र चित्रण किया गया है वह यद्यपि तर्कसगत एव पूर्ण नही तथापि वह द्राविडी मूल की भावनाओ और विचारो स विशेष लगाव रखने वाले व्यक्तियो को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। इस नाटक का तत्कालीन तमिल नाटको मे विशेष स्थान है। तमिलनाडु मे और उसके बाहर भी इसका अभिनय अनेक बार हो चुका है।

इलगैयरकोन् *(त० ले०)* [जन्म—1915 ई०, मृत्यु—1961 ई०]

इलगैयरकोन् उपनाम स विख्यात शिवज्ञान

सुन्दरम् का जन्म जाफना (लंका) के एक गांव में हुआ था। इन्होंने 18 वर्ष की अल्पायु में साहित्य-जगत में प्रवेश किया। कुछ वर्षों तक इन्होंने लंका की सरकारी न्यायपालिका में कार्य किया। सरकारी कर्मचारी के रूप में इन्हें लंका-भ्रमण का अवसर मिला जिससे इन्हें साहित्य-रचना करने के लिए नवीन विचार भी मिले और प्रेरणा भी। इनकी साहित्यिक कृतियों के तीन वर्ग हैं—अनुवाद, कहानियाँ और नाटक। इन्होंने प्राय: अँग्रेजी कहानियों का तमिल में अनुवाद किया है। कुछ रूसी कहानियों का अनुवाद भी किया है। इनकी अनूदित कृतियों का संबंध तमिल साहित्य के पुनरुत्थान-काल (सन् 1935 ई० से—1945 ई० तक) से है। इनकी कहानियों का संग्रह है—वेळ्ळिपादसरम्। इलंगैयरकोन् ने अनेक अभिनेय नाटकों की रचना की है। इनके नाटक अनेक बार अभिनीत हो चुके हैं। मिस्टर गुहदासन् और माधवी मडंदै नामक इनके दो नाटक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं। अपने जीवन-काल में इन्होंने 'वसन्त गान सभै' नामक नाट्य मंडली को प्रोत्साहन दिया था और उसके लिए हरिश्चंद्र कथा पर आधृत एक नाटक लिखा था। लंका में इस नाटक का अभिनय एक सहस्र से अधिक बार हो चुका है। लंका रेडियो ने दो वर्ष से अधिक समय तक इनके रेखाचित्रों का प्रसारण किया था। इन्होंने प्राचीन तमिल काव्यों को आधार बनाकर कुछ नाटकों और एकांकियों की रचना की थी। इलंगैयरकोन् मूलत: कहानीकार हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में समकलीन जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। लंका में प्राप्त तमिल साहित्य में यथार्थवादी विचारधारा के समावेश का श्रेय इन्हीं को है। इलंगैयरकोन् लंकानिवासी तमिल कहानीकारों में अग्रगण्य हैं।

इळंगोवडिहळ् *(त० ले०)* [समय—ईसा की दूसरी शताब्दी]

इळंगोवडिहळ् चेर सम्राट् शेंगुट्टुवन के छोटे भाई थे। शेंगुट्टुवन वैष्णव थे और इळंगो जैन। मूलत: जैन होते हुए भी इळंगो ने सभी प्रकार के धार्मिक बंधनों से मुक्त होकर, उदारतापूर्वक विभिन्न देवी-देवताओं की महिमा का गान किया है। इळंगो की प्रसिद्ध कृति है 'शिलप्पदिकारम्' (दे०)। तमिल का प्रथम महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' पुहारक्कांडम्, मदुरैक्कांडम् और वंजिक्कांडम् नामक तीन कांडों में विभाजित है। इनमें क्रमश: चोल, पांड्य और चेर राज्यों का विस्तृत वर्णन है। इस महाकाव्य के नायक-नायिका कोवलन और कण्णकि हैं। इसमें कवि ने तमिल समाज का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। विभिन्न कांडों में शृंगार, करुणा और वीर रस की अभिव्यंजना हुई है। तमिल विद्वानों द्वारा मान्य साहित्य के तीनों अंगों—इयल (काव्य), इशै (संगीत) और नाडहम् (नाटक, नृत्य)—का इसमें समावेश है। वर्णनात्मक काव्य होते हुए भी शिलप्पदिकारम् प्रगीति-काव्य की विशेषताओं से युक्त है। इसकी भाषा सरस, सरल, और परिष्कृत है। शैली प्रवाहमयी है। कहीं-कहीं लोकगीतों की शैली का प्रयोग द्रष्टव्य है। शिलप्पदिकारम् पर अनेकानेक टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। तमिल एवं तमिलेतर विद्वानों ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। यह महाकाव्य अँग्रेजी, फ्रेंच और बँगला में अनूदित हो चुका है। अमृतलाल नागर के उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' का आधार यही महाकाव्य है। इळंगोवडिहळ् को तमिल का प्रथम महाकाव्यकार होने का गौरव प्राप्त है।

इळंपूरणर् *(त० ले०)* [समय—अनुमानतः बारहवीं शताब्दी]

तमिल के व्याख्याताओं या भाष्यकारों की परंपरा बारहवीं शताब्दी से प्रारंभ हुई थी और बारहवीं तथा पंद्रहवीं शती के मध्य में अनेक व्याख्याताओं ने तमिल के कई लक्षण-ग्रंथों और महाकाव्यों की व्याख्याएँ प्रस्तुत की थीं। इळंपूरणर् ऐसे भाष्यकारों में अन्यतम थे। 'तोलकाप्पियम्' पर इनका पूरा भाष्य उपलब्ध हुआ है। 'तोलकाप्पियम् की पाँच उपलब्ध व्याख्याओं में यह सबसे प्राचीन प्रतीत होती है क्योंकि अन्य व्याख्याओं ने इनके मत का उल्लेख किया है। इळंपूरणर् की भाषा सरल, अर्थवान तथा प्रवाहमय है। इन्होंने प्राचीन तमिल के अनेक ऐसे उदाहरण दिए हैं जिनके स्रोत-ग्रंथ अब अनुपलब्ध हैं; अतएव इनकी व्याख्या का शोधात्मक महत्व है। तमिल गद्यशैली के विकास में इनका योगदान अत्यंत मूल्यवान है।

इलबन *(उर्दू० कृ०)*

इसका लेखक है इब्न-ए-निशाती (दे०)—सत्रहवीं शताब्दी का, कुतुबशाही युग का, प्रमुख कवि जो फ़ारसी भाषा का ज्ञाता और काव्यशास्त्र का पंडित था।

प्रस्तुत रचना फ़ारसी शैली की मसनवी है। इसमें भारतीय पृष्ठभूमि पर लिखी गयी यह एक प्रेम-कथा है जिसमें तत्कालीन सामाजिक स्थिति, रहन-सहन और

रीति-रिवाजो का बडा सुदर चित्रण किया गया है।

इळमै विरुदु *(त० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1937 ई०]

यह गद्य ग्रथ विशेषत युवको के प्रति उद्बोधन-भाषणो का सग्रह है। इसके रचयिता है स्व० तिरु० वि० कल्याणसुदर मुदलियार जो पत्रकार, कांग्रेसी नेता, स्वतत्र चितक तथा मजदूर-सगठनकर्ता आदि के रूप मे विख्यात हैं।

प्रस्तुत कृति मे तमिल भाषा, प्रदेश एव सभ्यता का गौरव-वर्णन है जिसके अतर्गत वर्तमान जीवन के ज्वलत प्रश्नो—जैसे महिला-सम्मान, शिक्षा-महिमा—का भी विवेचन हुआ है। ये भाषण प्रभावोत्पादक साहित्यिक शैली मे लिखे गए है। यह कृति विद्यालयो मे पाठ्य पुस्तक रही है।

इलहामात-ए-शाद *(उर्दू० कृ०)*

सपादक—अब्दुल मालिक आरवी। 'शाद' अजीमाबादी (दे०) के जीवन-चरित और काव्य-विवेचन से सबद्ध यह कृति एक ऐतिहासिक और साहित्यिक आलोचना की द्योतक है। इसमे 'शाद' से सबद्ध अनेक तथ्यो—यथा बिहार स्कूल, नाम-धाम, जन्म, जन्मस्थान, शिक्षा दीक्षा आदि के अतिरिक्त उसकी कृतियो, काव्य-प्रतिभा, फारसी कवियो का प्रभाव, उर्दू कवियो से लाभान्विति, सफीर-ओ-शाद, शाद की करुणारस और हास्य रस की शायरी, विस्तृत छद और शाद की भाषा आदि शीर्षको के अतर्गत अनुसधान—लेख लिखे गए हैं। अत मे कवि की प्रतिनिधि गजलो को भी इस कृति मे सगृहीत कर दिया गया है। इसमे अनेक उदाहरणो के माध्यम से सिद्ध किया गया है कि 'शाद' के काव्य पर हाफिज, रूमी और खुसरो जैसे शीर्षस्थ फारसी कवियो का प्रभाव है। 'शाद' ने अपने काव्य मे जो सदेश दिया है। वह यह है कि मनुष्य को परम पिता परमात्मा के प्रति अटल विश्वास रखना चाहिए और उसे अन्य सभी सहारे त्याग देने चाहिए।

इशैनाटकम् *(त० पारि०)*

यह तमिल साहित्य की नाटक-विधा है जिसमे गीत का प्राधान्य होता है। पाश्चात्य साहित्य की 'ऑपेरा' शैली की यह अनुकृति है। यद्यपि भारत के नाटको मे भी सवादो के अतिरिक्त गीत, पद्य आदि की योजना होती थी किंतु ऑपेरा' की शैली मे पात्रो के सवाद के स्थान पर वाद्य-गीत की ध्वनि नेपथ्य मे से और किसी व्यक्ति के द्वारा सुनाई जाती है। ग्रीक नाटको की यह एक शैली थी। फिर सत्रहवी शताब्दी ई० मे इताली मे ऐसे गीति-नाट्यो की रचना हुई। पहले शेक्सपियर जैसे नाटककारो की कथावस्तु लेकर प्रेम और युद्ध-प्रधान गीति-नाट्य रचे गए, फिर हास्य-विनोद-प्रधान गीति नाट्य लिखे जाने लगे जिन्हे 'वोदवील्' (vaudeville) कहा गया।

तमिल प्रदेश मे भरतनाट्य-पद्धति मे रगमच पर अभिनयात्मक नृत्य और नेपथ्य मे घटना-वर्णन युक्त गीतो का गायन सम्मिलित रूप मे चलता है। यह एक ही व्यक्ति के द्वारा किया जाने वाला विविध प्रकार का अभिनय है किंतु अनेक प्रबधात्मक गेय पदो का प्रयोग लोगो ने भरतनाट्यम मे किया है।

सत त्यागराज-कृत 'प्रह्लादजयम्' तथा 'नौका चरित्रम्' गीति-नाट्य कहे जा सकते है (अठारहवी शती ई०)। उन्नीसवी शती मे गोपालकृष्ण भारती ने 'नदनार-चरित्रोरम्' तथा अरुणाचलक्कविराय ने 'रामनाटकम्' गीति-नाट्य शैली मे लिखा था। परतु पाश्चात्य देशो के समान तमिल गीति-नाट्य का विकास नही हो सका।

इस्मत चुगताई *(उर्दू० ले०)*

इस्मत चुगताई वर्तमान युग की सबसे लोकप्रिय लेखिका है। ये जोधपुर की रहने वाली हैं। अलीगढ मे इन्होने शिक्षा प्राप्त की थी और अब बबई के फिल्मी जगत मे लेखिका के रूप मे कार्य कर रही हैं। अपनी पहली ही दो-तीन कहानियो से इन्होने पाठको को चौका दिया था। इनके विषय तथा शैली दोनो मे नूतनता पाई जाती है। ये अपनी कहानियो मे जीवन की उलझनो को प्रस्तुत करती है। मजनूं गोरखपुरी (दे०) लिखते है—'यदि उन्होने केवल यही दो कहानियाँ ('डायन' और 'बचपन') ही लिखी होती तो भी वह उर्दू कहानी मे एक नए शीर्षक एव अध्याय की वृद्धि समझी जाती'।

इस्मत मध्यम वर्ग के मुसलमान-परिवारो के आतरिक जीवन की इतनी जानकारी रखती है कि इनकी कहानियाँ पढकर उस श्रेणी के परिवारो का नैतिक, आर्थिक और मानसिक जीवन आँखो के सामने आ जाता है। यौन-सबधी यथार्थ चित्रण के कारण इस्मत की प्रारभिक कहानियो पर अश्लीलता का आरोप लगाया जाता है। 'पर्दे के पीछे', 'लिहाफ', 'गेदा', 'खिदमतगार' इस्मत की

यथार्थवादी कहानियाँ हैं। इनसे लेखिका के एक साहसिक विद्रोही होने का प्रमाण मिलता है। महिलाओं की बोल-चाल, उनका रहन-सहन, उनकी इच्छाओं और कामनाओं का चित्रण इस्मत से अच्छा कोई और नहीं कर सका है। इस्मत ने समाज के ठेकेदारों पर निर्भीक चोटें की हैं। 'कलियाँ', 'चोटें, 'एक बात', 'छुई-मुई' और 'दो हाथ' इस्मत के कहानी-संग्रह हैं।

ईरटि *(मल० पारि०)*

एक द्रविड़ वृत्त। दो चरणों में यह वृत्त पूरा हो जाता है।

ईश्वरचंदर *(सिं० ले०)*

विभाजन के पश्चात् ये स्थायी रूप से अजमेर में रहते है और सरकारी विभाग में कार्य करते है। सिंधी में इनकी लगभग सौ कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी कहानियों के दो संग्रह प्रकाशित हुए हैं—'थधा चप' और 'मुअलु माकोड़ो।' इन्होंने अपनी कई कहानियों में प्रतीकों का सुंदर ढंग से प्रयोग किया है। नयी कहानी के क्षेत्र में भी इन्होंने सफल प्रयोग किए हैं। आधुनिक सिंधी कहानी के विकास में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी कुछ कहानियों के अन्य भाषाओं में अनुवाद भी हो चुके है।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर *(बँ० ले०)* [जन्म—1820 ई०, मृत्यु—1891 ई०]

राजा राममोहन राय (दे०) ने बँगला गद्य को प्रौढ़ बनाने की दिशा में अनायास जो कार्य किया था, ईश्वर-चंद्र विद्यासागर ने सचेष्ट होकर वही कार्य किया और बँगला गद्य को कैशोर्य की अनिश्चितता तथा अस्थिरता से मुक्त कर उसे पूर्ण साहित्यिक रूप प्रदान किया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर उन्नीसवीं शती के बंगाली साहित्यिकों मे सबसे अधिक ख्यातिमान व्यक्ति हैं। अपार पांडित्य, दुःख-जयी पौरुष तथा कोमल मन उनके व्यक्तित्व के विविध उपादान हैं। फोर्ट विलियम कालेज में उन्होंने बँगला के प्रधान पंडित (सन् 1841) तथा संस्कृत कालेज में अध्यक्ष (सन् 1850) के रूप में सम्मान के साथ कार्य किया। भाषा, शिक्षा तथा समाज-सेवाव्रती विद्यासागर ने जहाँ 'लोकशिक्षा' के लिए अँग्रेज सरकार से विद्यालय खुलवाए, वहाँ विधवा-विवाह के पक्ष में दो पुस्तिकाओं की रचना की और भाषा के क्षेत्र में 'वर्ण परिचय' (1854) तथा 'कथामाला' (1856) की रचना कर हमेशा के लिए बँगला वाङ्मय में अपना स्थान बना लिया।

विद्यासागर की पहली पुस्तक (सन् 1847) 'बेताल पंचविंशति' (दे०) हिंदी 'बेताल पचीसी' से संगृहीत है। उनके अनुवाद 'शकुंतला' सन् 1854 तथा 'भ्रांति विलास' सन् 1856 में प्रकाशित हुए। बँगला परि-वेश में शेक्सपियर की 'कामेडी ऑफ एरर्स' का यह रूपांतर बहुत ही प्रसिद्ध है। उनका निबंध-संग्रह 'बोधोदय' सन् 1852 में प्रकाशित हुआ जिसमें ऐसा एक भी निबंध नहीं जो मनुष्य के सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक न हो। 'आख्यात मंजरी' (1863-68) में कहानी के द्वारा वक्तव्य को रसोज्ज्वल किया गया है। 'सीतार वनवास' (दे०) (सन् 1860) के उपाख्यान के चयन में विद्यासागर ने भवभूति का आश्रय लिया है। 'प्रभावती संभाषण' एक (सन् 1891) शोकोच्छ्वासपूर्ण पवित्र गद्य-काव्य है। उनकी अपूर्ण 'आत्मजीवनी' सन् 1891 में प्रकाशित हुई जिसकी भाषा आज भी बँगला की आदर्श गद्य भाषा है।

विद्यासागर ने अपने मनुष्यत्व, ओज तथा ज्ञान से बँगला गद्य-साहित्य में अपनी रचनाओं के द्वारा नये युग की प्रतिष्ठा की है।

ईश्वर पेटलीकर *(गु० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

साहित्यकार एवं समाज-सुधारक श्री ईश्वर पेटलीकर पेटली गाँव के निवासी हैं। पटेल जाति के श्री पेटलीकर ने स्व-जाति-सुधार के लिए अथक परिश्रम किया है। 'संसार' नामक पत्रिका का ये संपादन करते हैं। एक प्रखर समाज-सुधारक के रूप में इनकी विशेष ख्याति है।

'जनमटीप', 'लख्यालेख', 'कलियुग', 'भवसागर' 'मारी हैं या सणड़ी,' 'पंखीनो मेंअने पाताळ कूवो', 'आग-पंखी' भा० 1-2, 'तरणा ओथे डुंगर', 'काजळ कोटडी', 'मधलाळ', 'कल्पवृक्ष' आदि उपन्यास 'ताणावाणा', 'मागता', 'काशी नुं करवत', 'पारसमणि', 'चिनगारी', 'लोहीनी सगाई', 'अभिसारिका', लोक सागर ने तीरे-तीरे' आदि रेखाचित्र; जीवनदीप पटलाई ना पेच, कंकु अने कन्या आदि सुधार-संबंधी इनकी रचनाएँ हैं।

इनकी 'जनमटीप' व 'लोहीनी सगाई' बहुत ही प्रसिद्ध लोकप्रिय एवं कलापूर्ण रचनाएँ है। लोहीनी सगाई कहानी अंतर्राष्ट्रीय कहानी-प्रतियोगिता में पुरस्कृत

भी हुई है।

ग्राम-जीवन के यथार्थ निरूपण मे ये पर्याप्त सफल हुए है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मे इन्हे बहुत कौशल प्राप्त है। गुजराती के आचलिक-साहित्य मे तथा समाज-सुधार के क्षेत्र मे इनका गौरवपूर्ण स्थान है।

ईसरदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1538 ई०, मृत्यु—1618 ई०]

जोधपुर-राज्य के भाद्रेस नामक ग्राम मे रोहडिया चारण-परिवार मे इनका जन्म हुआ था। इनकी माता का नाम अमरबाई तथा पिता का नाम सूजाजी था। ये सस्कृत भाषा तथा पुराणो के अच्छे ज्ञाता थे। लगभग 40 वर्ष ये जामनगर मे रहे थे। इन्होने डिंगल मे 12 ग्रथो की रचना की है, जिनमे 'हरिरस' तथा 'हालाँ-झालाँरा कुडलियाँ' (दे०) अधिक प्रसिद्ध है। प्रथम ग्रथ मे भक्ति और द्वितीय मे वीरता का चित्रण है। वीर रस और भक्ति का अद्भुत गायक यह कवि राजस्थान मे अपनी अनूठी भाव-व्यजना के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध है। भाषा पर ईसरदास का सहज अधिकार परिलक्षित होता है।

ईसवीखाँ *(उर्दू० ले०)* [समय—अनुमानत अठारहवी शती]

दे० 'किस्सए-महर अफरोज-व-दिलवर'।

ईहामगोई *(उर्दू० पारि०)*

'ईहामगोई' उर्दू-काव्यशास्त्र मे अर्थालकार का एक भेद है। इसका शाब्दिक अर्थ 'वहम मे डालना' है। पारिभाषिक दृष्टि से इससे अभिप्राय वह काव्य है जिसमे ऐसे शब्दो का प्रयोग किया जाता है जिसके दो अर्थ होते है। एक अर्थ समीप का अथवा प्रसिद्ध तथा दूसरा अर्थ दूर का अथवा अप्रसिद्ध होता है किंतु दोनो अर्थ अवसरानुकूल होते हैं। इसके दो भेद 'ईहाम तनासुब' तथा 'ईहाम तज़ार' है। 'ईहाम तनासुब' मे सादृश्य के कारण वहम होता है तथा 'ईहाम तज़ार' मे विरोध या विपरीत अर्थों के कारण।

उग्र, पाडेय बेचन शर्मा *(हिं० ले०)* [जन्म—1900ई०, मृत्यु—1967 ई०]

मिरजापुर जिले के चुनार नामक स्थान मे जन्मे पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र' कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विविध साहित्य-विधाओ के लेखक होते हुए भी मुख्यत उपन्यासकार के रूप मे ही प्रख्यात है। 'चद हसीनो के खतूत', 'दिल्ली का दलाल', 'सरकार तुम्हारी आँखो मे', 'बुधुआ की बेटी' आदि इनकी कतिपय प्रसिद्ध रचनाएँ है। हिंदी साहित्य के इतिहास मे ये अपने उग्र स्वर तथा यथार्थ-वादी दृष्टि के लिए प्रख्यात है। समाज की अप्रकृत वासनाओ तथा कुत्सित वृत्तियो का निर्ममतापूर्वक पर्दाफाश करने मे ये बेजोड है। सजीव एव सशक्त पद-विन्यास और व्यावहारिक तथा प्रवाहपूर्ण भाषा-प्रयोग इनकी शैलीगत विशेषताएँ है।

उज्ज्वलनीलमणि *(स० कृ०)* [समय—पद्रहवी-सोलहवी शती]

पद्रहवी-सोलहवी शताब्दी के प्रसिद्ध आचार्य श्री रूपगोस्वामी (दे०)-कृत 'उज्ज्वलनीलमणि' एक ऐसी महत्वपूर्ण रचना है जिसमे भक्ति-तत्त्व का प्रथम बार सूक्ष्म एव सैद्धातिक विवेचन हुआ है। 15 प्रकरणो के इस विशाल ग्रथ मे नायक-भेद, नायक-सहायक-भेद, हरिवल्लभा श्रीराधा, नायिका-भेद, यूथेश्वरी-भेद, दूती-भेद, सखी-भेद, आलबन, उद्दीपन, अनुभाव, सात्विक भाव, व्यभिचारी भाव, स्थायी भाव तथा सयोग एव विप्रलभ शृगार के विस्तृत विवेचन द्वारा मधुर रस को एक स्वतत्र रस के रूप मे सिद्ध कर उसको भक्तिरसराट् की उपाधि से विभूषित किया गया है। उक्त ग्रथ मे 'उज्ज्वल' शब्द अलौकिक मधुर भक्ति के लिए व्यवहृत किया गया है जिसमे शृगार का पूर्णत अतर्भाव दिखाया गया है। 'उज्ज्वल' के साथ 'नीलमणि' शब्द तो है ही घनश्याम श्रीकृष्ण का स्पष्ट वाचक। अत राधाकृष्ण इस उज्ज्वल रस के आलबन है और ब्रज-वल्लभाएँ उसका आश्रय। उक्त ग्रथ की दो टीकाएँ प्रसिद्ध है—जीवगोस्वामी-कृत लोचनरोचनी, और विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत आनदचद्रिका या उज्ज्वलनील-मणिकिरण।

उण्णिनीलि *(मल० पा०)*

सदेश काव्यो मे 'उण्णुनीलीसदेशम्' (दे०) का स्थान महत्वपूर्ण है। नायिका उण्णिनीलि है। रचना-काल तथा रचयिता के सबध मे मतभेद है। प्रसिद्ध आलोचक उळ्ळूर् (दे०) का मत है कि इसके रचयिता वटक्कुमकूर्

राज्य के राजा मणिकंठ हैं और उण्णिनीलि उन्हीं की पुत्री है। रचना-काल चौदहवीं शती है। नायिका की विरह-व्यथा तथा नायक के संदेश आदि प्रसंग मर्मस्पर्शी हैं। भक्ति रस के साथ शृंगार का पुट कौशल के साथ दिया गया है।

उण्णियच्ची *(मल० पा०)*

मलयाळम के प्रारंभिक चंपूकाव्य 'उण्णियच्चीचरितम्' (दे०) की नायिका उण्णियच्ची (दे०) तिरुमरुतूर मंदिर की देवदासी है और उसका सौंदर्य न केवल इस संसार में प्रसिद्ध है बल्कि उसके दर्शक गंधर्वलोक से भी आते हैं। प्रस्तुत चंपू में ऐसे ही एक गंधर्व का आगमन-वृत्तांत है।

उण्णियच्ची मलयाळम के संस्कृत-प्रभाव काल के आरंभ में केरल में प्रचलित सामंतवादी समाज-व्यवस्था का परिचय देती है। उण्णियाटी, उण्णिच्चितेवी जैसे अन्य पात्र भी इस प्रकार के काव्यों की नायिकाएँ हैं। उण्णियच्ची के चरित्र-चित्रण में शृंगार के उदात्त भाव का दर्शन कराना ही कवि का ध्येय रहा है।

उण्णियच्चीचरितम् *(मल० कृ०)*

तेरहवीं सदी ई० के उत्तरार्ध में श्रीकुमान् नामक कवि द्वारा रचित प्रथम मलयाळम चंपू-काव्य। इसमें तिरुमरुतूर मंदिर की देवदासी उण्णियच्ची (दे०) के सौंदर्य के आस्वादनार्थ आने वाले एक गंधर्व की कथा है। इसमें नायिका-वर्णन, नगरवर्णन आदि के अलावा समसामयिक समाज का चित्र भी प्राप्त होता है। मणिप्रवाळ (दे०) शैली के प्राचीन ग्रंथों में इस चंपू का प्रमुख स्थान है।

उण्णुनीलीसंदेशम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल चौदहवीं सदी ई०]

यह मलयाळम का एक प्राचीन मणिप्रवाळ (दे० मणिप्रवाळम्) काव्य है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है और अधिकतर इतिहासकार कवि को ही काव्य का नायक मानते हैं। यक्षिणी के पीड़न के कारण अपनी प्रिया उण्णुनीली (दे०) से विरहित नायक द्वारा अपने मित्र के हाथों भेजा गया संदेश इस काव्य की विषय-वस्तु है। काव्य में त्रिवेंद्रम् से कटुत्तुरुत्ति तक के प्रदेशों का सुंदर वर्णन है।

'उण्णुनीलीसंदेशम्' 'मेघदूत' (दे०) की शैली में रचित सुंदर संदेश-काव्य है। इसके मार्ग-वर्णन में केरल के अनेक स्थानों, मंदिरों, स्त्री-पुरुषों का इतना स्वाभाविक और चमत्कारपूर्ण वर्णन है कि 600 वर्ष पूर्व के केरल का सजीव चित्र सामने आ जाता है। विरह-व्यथा का चित्रण और संदेश-वाक्य की मार्मिकता भी प्रशंसनीय है। 'उण्णुनीलीसंदेशम्' मलयाळम का एक मुख्य संदेश-काव्य है।

उत्कळ-प्रकृति *(उ० कृ०)*

'उत्कळ-प्रकृति' शशिभूषण राय (दे०) की उत्कलप्राणता एवं सौंदर्यप्रेम की अभिव्यक्ति है। इसका समर्पण भी कलाप्राण शशिभूषण ने उत्कल-जाह्नवी महानदी को किया है। शशिभूषण का प्रकृति के प्रति आत्मिक प्रेम था, इसलिए ये नागरिक जीवन का त्याग कर अपना अधिकाश समय महानदी के निकट प्रसारित, शांत, श्यामल, मनोरम द्वीप 'धवळेश्वर' में अपने निवास-स्थान निभृति-निळय पर बिताते थे। संपूर्ण उड़ीसा का कई बार भ्रमण करने के कारण उड़ीसा की प्रकृति से इनका घनिष्ठ एवं प्रत्यक्ष परिचय था और यही कारण है कि इनके साहित्य में प्रकृति के चित्र इतने प्राणवंत हैं।

'उत्कळ-प्रकृति' में शशिभूषण ने कहा है कि 'प्रकृति-वर्णन के साथ मन के नाना प्रकार के भाव इसमें समाविष्ट हैं। इसमें शृंखलाबद्ध चित्रण नहीं है। प्रभात, मध्याह्न, गोधूळि, संध्या, ज्योत्स्ना, अंधकार—इन छह कालों के अनुसरण पर पंद्रह स्थानों के विभिन्न प्राकृतिक दृश्य चित्रित हैं।'

इस पुस्तक के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचा जा सकता है: (1) प्रकृति के साथ लेखक की वास्तविक एवं प्रत्यक्ष अनुभूति, (2) राधानाथ राय (दे०)-साहित्य के प्रकृति-चित्रण का विशदीकरण, (3) दार्शनिक चिंतन तथा जीवन-विश्लेषण, (4) सौंदर्यानुभूति के साथ दर्शन का मधुर समन्वय, (5) कवि-कल्पना तथा गंभीर पांडित्यपूर्ण चिंतन, (6) प्राकृतिक दृश्य-वर्णन तथा भौगोलिक परिवेश के साथ अप्रत्यक्ष रूप से वहाँ के इतिहास का उल्लेख।

सौंदर्य-बोध, आत्मचिंतन, जीवन-विश्लेषण, प्रकृति के रूप का चित्रण, इन सभी बातों की सामूहिक रसपरिणति इस पुस्तक में हुई है। भाषा की गुरुता एवं गांभीर्य, अभिव्यक्ति की स्वच्छता एवं कमनीयता, काव्य-भाषा का आवेग एवं संगीतमयता आदि विशेषताएँ इस पुस्तक के निबंधों

को आकर्षण प्रदान करती है। निबध-साहित्य की कलात्मक परिपाटी, भावो की सयत सुषमा के भीतर से अभिव्यक्ति की मजुलता का प्रस्फुटन, चिंतन की स्वच्छता के साथ आत्म-प्रकाशन का गुरु गभीर परिवेश आदि बातें शशिभूषण की गद्य-शैली की विशेषताएँ हैं।

उत्तम *(सिं० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

इनका जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है। इनका पूरा नाम आसन जेठानद उत्तमचदाणी है, परतु ये 'उत्तम' उपनाम से ही लिखा करते है। इन्होंने बम्बई विश्वविद्यालय से एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। सिंधी साहित्य मे प्रगतिशील विचारधारा को लाने वाले साहित्यकारो मे इनका मुख्य स्थान है। ये सिंधी मे प्रगतिशील साहित्यकारो के मासिक मुखपत्र 'नई दुनिया' के सपादक हैं, जो बम्बई से प्रकाशित होता है। इन्होने निबधकार आलोचक और पत्रकार के रूप मे अधिक ख्याति प्राप्त की है। इनकी प्रमुख मौलिक रचनाएँ है—सरहद जो गाधी (1945), नओ चीन (1953), सोवियत सर्गु (1954), भारत रूस दोस्ती (1965)। भारत मे स्वातत्र्योत्तर सिंधी साहित्य के विकास पर इनके आलोचनात्मक निबधो का सग्रह हाल ही मे 'सिंधी साहित्य' नाम से प्रकाशित हो चुका है। ये अपनी पत्रिका द्वारा कई नए सिंधी लेखको को प्रोत्साहित कर उन्हे सिंधी साहित्य के क्षेत्र मे लाने मे सफल हुए है। भारत और पाकिस्तान के सिंधी साहित्य के बीच सपर्क स्थापित करने मे इन्होंने प्रशसनीय प्रयत्न किए है। सप्रति ये बम्बई से प्रकाशित होने वाले 'सिंध समाचार' दैनिक सिंधी समाचारपत्र के सहयोगी सपादक के रूप मे भी कार्य कर रहे है। सिंधी साहित्य के विकास मे इनकी देन हमेशा याद रहेगी।

उत्तमचदाणी, सुदरी *(सिं० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

इनका जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है और इन्होंने एम०ए० तक शिक्षा प्राप्त की है। इन्होंने सन् 1947 में सिंधी साहित्य के क्षेत्र मे पदार्पण किया था और थोड़े ही समय मे ये सिंधी साहित्य मे प्रमुख स्थान प्राप्त करने मे सफल हो गई। सिंधी उपन्यास और कहानियो के क्षेत्र मे इनका योगदान अविस्मरणीय है। इन्होंने दो उपन्यास लिखे हैं—'किरन्दड दीवारू' (1953) और 'प्रीति पुराणी रीति निराली' (1956)। इन दोनो उपन्यासो ने काफी प्रसिद्धि प्राप्त की है। पहले उपन्यास के उर्दू, हिंदी और बँगला भाषाओ मे अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने लगभग 100 कहानियाँ लिखी है, जिनमे से कई का सिंधी मे ऊँचा स्थान है। ये भी अपने पति 'उत्तम' (दे०) की तरह प्रगतिशील विचारधारा मे विश्वास रखती है। इनकी रचनाओ मे प्रगतिवाद के सिद्धातो की झलक यत्र-तत्र मिल जाती है। कोमल मनोभावो को मनोवैज्ञानिक ढग से अभिव्यक्त करने मे ये सिद्धहस्त हैं। इनकी अधिकाश रचनाओ मे सिंधियो की घरेलू जिंदगी और विभाजन के पश्चात् भारत मे सिंधी समाज की समस्याओ के वास्तविक और सजीव चित्र मिलते है। इन्होंने कुछ एकाकी नाटक भी लिखे है, परतु इन्हे उपन्यास और कहानी-लेखिका के रूप मे ही अधिक ख्याति प्राप्त हुई है।

उत्तरकुमार (क० पा०)

'कुमारव्यास भारत' (दे०) कन्नड साहित्य की निधि और प्रतिनिधि कृतियो मे से है। वह उज्ज्वल चरित्रो का एक महान कातार है किंतु उसमे गभीर चरित्र ही नही, उत्तरकुमार जैसे हास्य प्रधान चरित्र भी है। कुमारव्यास ने प्रत्येक चरित्र के पीछे कोई तत्त्व देखा है। यदि भीम वीरत्व का पुरुष-रूप है तो द्रौपदी उसका नारी-रूप। उत्तरकुमार वाग्वीरता का प्रतीक है। इस प्रकार उसके प्रमुख पात्र किसी गुण या रस की साकार मूर्तियाँ है। फिर भी वे केवल प्रतिनिधि नही हैं, उनमे मनुष्य सहज वैयक्तिक रागद्वेष आदि का अत्यत मार्मिक स्वाभाविक चित्रण मिलता है। प्रो० बेंद्रे (दे०) के अनुसार कुमारव्यास का 'उत्तर' कन्नड साहित्य की अद्वितीय कृति है। उत्तर अपूर्व है। वह अतपुर मे बैठा स्त्रियो के साथ अपनी सामर्थ्य की डीग हाँकता रहता है। उसे केवल इस बात की चिंता है कि उसके योग्य साथी नही है अन्यथा वह देवेंद्र को भी हरा सकता था, कौरव किस खेत की मूली है! किंतु उसके पौरुष के निकष-रूप मे बृहन्नला उसका सारथी बनने के लिए तैयार हो जाता है। जब वह युद्ध-क्षेत्र मे जाता है तो सागर-सदृश अपार सेना देखकर उसके छक्के छूट जाते है। वह थरथर काँप उठता है, रथ से कूद कर भागने लगता है। अत मे वह स्वय अर्जुन का सारथी बनता है। इस तरह उत्तर अपने आचरण एव वाणी के द्वारा हास्य की धारा बहाता है। कुमारव्यास की इस अद्भुत चरित्रचित्रण-कला के कारण उत्तर कर्णाटक के लोगो के

हृदय में बैठ गया है। 'उत्तर पंथ' 'उत्तरप्रतिज्ञा' कन्नड़ में एक कहावत बन गई है।

उत्तररामचरित *(सं० कृ०)* [समय—आठवीं शताब्दी]

'उत्तररामचरित' भवभूति (दे०) की अत्यंत प्रौढ़ नाट्यकृति है।

सात अंक के इस नाटक में रामचरित के उत्तरार्द्ध भाग का विनियोग किया गया है। राम के वन से वापस लौटने से लेकर सीता-परित्याग तक की, एवं उनको अयोध्या लाने के पुनर्प्रयास आदि की घटनाएँ, कुछ कल्पना-प्रसूत घटनाओं के साथ बड़ी कुशलता के साथ पिरो दी गई है।

'उत्तररामचरित' की कथावस्तु में नाटकीय प्रविधि तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भवभूति के अन्य दो नाटकों की अपेक्षा अधिक परिपक्वता एवं प्रौढता है। यद्यपि इसका स्रोत 'रामायण' (दे०) का उत्तरकांड है, पर भवभूति ने उस कथा को नाट्यानुकूल बनाने के लिए अनेक मौलिक परिवर्तन किए हैं। वाल्मीकि (दे०) की राम-कथा विषादोन्मुखी है क्योंकि उसका अंत परित्यक्ता सीता के पातालगमन से होता है जबकि भवभूति ने इसे हर्षोन्मुखी बनाने की चेष्टा की है। प्रथम अंक में चित्रदर्शन का दृश्य, दूसरे में राम का पुनः दण्डकारण्य में आना तथा वनदेवता बासंती (दे०) से भेंट करना, तीसरे में छाया-सीता की सृष्टि तथा सातवें के गर्भांक-दृश्य आदि सभी भवभूति की मौलिक उद्भावनाएँ है।

भवभूति ने 'उत्तररामचरित' में बेजान पत्थरों तक को रुला दिया है (अपि ग्रावा रोदिति)। इसी से नाटक की सफलता का अनुमान किया जा सकता है। इस कृति में इनकी नाट्य एवं काव्यप्रतिभा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। वस्तुतः उनका कवि उनके नाटककार पर हावी हो गया है, इसीलिए कतिपय आलोचक इसमें नाट्य-व्यापार की कमी महसूस करते है। भवभूति एक गंभीर एवं भावुक कलाकार थे—यही कारण है कि 'उत्तररामचरित' एक गीति-नाट्य बन गया है। काव्य-कला की दृष्टि से यह निस्संदेह भवभूति की सर्वश्रेष्ठ कृति है पर इसमें भी इनका कला-पक्ष प्रधान है। चरित्रचित्रण में भवभूति सिद्धहस्त है। अपनी गंभीर प्रकृति के अनुरूप ही इन्होंने राम और सीता जैसे पावन चरित्रों को अपने इस रूपक के लिए चुना है जो इनकी लेखनी के सहारे और भी ऊँचे हो गये हैं। भवभूति दाम्पत्य प्रणय के पवित्र आदर्श एवं जीवन की उदात्तता के पक्षधर हैं; अतः अपने पूर्ववर्ती अन्य नाटककारों की अपेक्षा यह मुक्त प्रणय की ओर उन्मुख नहीं होते। 'उत्तरराम-चरित' में भवभूति के पांडित्य, प्रतिभा तथा अनुभूति का समुचित समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

उत्तररामायणमु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—सत्रहवीं शती का आरंभ]

यह कंकटि पापराजु (दे०) द्वारा रचित आठ आश्वासों में विभक्त 3000 गद्य-पद्यों से युक्त रचना है। प्रबंधकाव्य-शैली के अनुरूप विविध वर्णनों से युक्त इस काव्य में शृंगार, वीर और करुण रसों का निर्वाह हुआ है। संवाद-चातुर्य में पापराजु ने अपनी विशिष्टता का प्रदर्शन किया है। राम, लक्ष्मण, सीता और वाल्मीकि का चरित्र-चित्रण भी सजीव तथा प्रभावशाली हुआ है।

इस काव्य में सीताजी के शोक का वर्णन अत्यंत हृदयद्रावक है और इसी कारण से यह काव्य यशस्वी बना हुआ है।

उत्तरहरिवंशमु *(तें० कृ०)*

'उत्तरहरिवंशमु' काव्य के रचयिता नाचन सोमन्ना (दे०) महाकवि थे जो चौदहवीं शती ई० के मध्य काल में विद्यमान थे। इनके समय के संबंध में पंडितों में भारी मतभेद है परंतु अधिकांश यह मानते है कि ये एर्राप्रग्गड (दे०) महाकवि के या तो समकालीन थे या निकट पश्चाद्वर्ती। इनकी अन्य काव्यकृतियों में 'वसंतविलासमु' नामक काव्य का स्मरण किया जाता है परंतु वह उपलब्ध नहीं हो सका। अतः सोमन्ना महाकवि का यशस्तंभ 'उत्तरहरिवंशमु' महाकाव्य ही है।

'उत्तरहरिवंशमु' नाम से यह 'हरिवंश' काव्य का उत्तर भाग-सा लगता है परंतु अब तक यह पता नहीं चला कि इसका आधारभूत संस्कृत ग्रंथ कोई है अथवा नहीं। उपलभ्यमान संस्कृत 'हरिवंश' तथा इस काव्य की कतिपय कथाओं में आनुपूर्विका में भारी अंतर दिखाई देता है। उदाहरणार्थ, हंसडिभक उपाख्यान संस्कृत हरिवंश में प्रथम में है तो इसमें चतुर्थ आश्वास में है। कुछ विद्वानों के अनुसार सोमन्ना ने 'पूर्वहरिवंशमु' की भी रचना की थी जो कालाव-लित हो चुका है परंतु इस विचार के पीछे कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है। अतः यही मानना उचित होगा कि कवि ने 'हरिवंश' के कुछ रोचक प्रसंगों को लेकर अपनी मौलिक प्रतिभा के

आधार पर काव्य की सर्जना की । चूंकि एर्रप्रग्गड की कृति 'हरिवश' नाम से प्रसिद्ध हो चुकी थी और उसकी कृति बाद की है, इसलिए कवि ने अपने काव्य को 'उत्तरहरिवशमु' नाम से अभिहित किया होगा । अस्तु ।

उपलब्ध काव्य मे छह् आश्वास है। प्रथम आश्वास मे नरकासुरवध का ओजस्वी वर्णन है। परवर्ती कवि बम्मेर पोतन्ना (दे०) ने अपने 'महाभागवतमु' (दे०) महाकाव्य मे सोमन्ना के अनुकरण पर कई छद लिखे—विशेषकर वे छद उल्लेखनीय हैं जिनमे सत्यभामा युगपद्भाव से अपने प्रियतम श्रीकृष्ण तथा वैरी नरकासुर की ओर देखते हुए युद्ध करती हैं। इन छदो मे शृगार तथा वीर रसो की आयोजना युगपद् भाव से हुई है जो किसी भी साहित्य के लिए गर्व का कारण हो सकती है। सत्यभामा को तेलुगु साहित्य मे एक गरिमामडित स्थान प्रदान करने का श्रेय सर्वप्रथम नाचन सोमन्ना ही को है। द्वितीय आश्वास मे विप्रकुमार रक्षण की कथा प्रधान है। तृतीय मे पोण्डक वासुदेव की, चतुर्थ आश्वास मे हसडिभक की कथा, पचम आश्वास मे उषा तथा अनिरुद्ध की कथा एव षष्ठ आश्वास मे बाणासुर तथा श्रीकृष्ण का युद्ध, शिवकेशव युद्ध आदि प्रधान रूप से अभिवर्णित हुए है। इस आश्वास मे शिवज्वर का प्रयोग वैष्णवो पर तथा विष्णुज्वर का प्रयोग शैवो पर किया गया है जिससे तत्कालीन शैव-वैष्णव धर्मों के पारस्परिक सघर्ष का पता चलता है।

काव्य मे सम्यगवलोकन से निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते है · 1—काव्य मे अनिवार्य रूप से युद्धो का वर्णन प्रत्येक आश्वास मे किया गया है जिससे काव्य मे ओज-गुण तथा वीररस का प्राधान्य हो गया है। काव्यशैली की दृष्टि से भी सारा काव्य ओजपूर्ण है। कवि की समास-भूयिष्ठ रचना से यह तथ्य प्रमाणित होता है। 2—इनकी पदयोजना निराली है जिससे भाषा पर इनका अधिकार स्पष्ट होता है। 3—विचारधारा की दृष्टि से ये हरिहर-नाथीय अद्वैत भावना के थे, अतएव अपनी कृति का समर्पण हरिहरनाथ के चरणो मे किया था। 4—तेलुगु मे चित्र-कविता के छद इन्होने सर्वप्रथम लिखे। अत ये तेलुगु के चित्रकविता-प्रवर्त्तक माने जा सकते हैं।

वास्तव मे नाचन सोमन्ना तेलुगु साहित्य के इतिहास मे ऐसे समय आये थे जब पौराणिक कविता को छोडकर प्रबध कविता द्वार मे तेलुगु कविता-कन्या पदार्पण करने वाली थी। 'उत्तरहरिवशमु' काव्य के द्वारा प्रवेशमार्ग प्रशस्त हो सका।

उत्ति *(त० पारि०)*

तमिल भाषा के प्राचीनतम लक्षण-ग्रंथ 'तोल्-काप्पियम्' के अतिम अध्याय 'मरपियल्' मे तमिल भाषा एव साहित्य की परपरा मे मानी गयी कुछ रूढ बातो पर विचार प्रस्तुत किये गये है। इनमे से एक 'नूल्' अर्थात् शास्त्रीय ग्रथ के बारे मे है। 'नूल्' ग्रथो की दो विधाएँ—मूल एव अनुवर्ती—मानी गयी है। 'नूल्' के विशिष्ट लक्षण बताए गए है कि वह सूत्र एव सुबोध व्याख्या-शैली मे दस दोषो से रहित तथा बत्तीस 'उत्तियो' से युक्त हो।

'मरपियल्' के अतिम सूत्र 110 मे बत्तीस 'उत्तियो' की सूची मिलती है। 'उत्ति' सस्कृत पारिभाषिक शब्द 'तत्र-युक्ति' का तद्भव रूप है। महाविद्वान् रा० राकवैयकार् ने (तमिळवरलारु, पृ० 321-3) इस ओर ध्यान आकर्षित किया है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे उल्लिखित तत्र-युक्तियो के साथ तमिल 'उत्तियो' की प्राय एकरूपता है। बत्तीस मे से अट्ठाइस 'उत्तियाँ कौटिल्य की युक्तियो से अभिन्न मालूम होती है। ये अधिकरण, विधान, उद्देश्य, निर्देश, अर्थापत्ति, अनागतावेक्षण, अधिक्रातवेक्षण, अपवर्ग, उपमान, एकात, उपदेश, प्रसग, अनुमत, प्रदेश, स्वसज्ञा, सशय, योग, नियोग, विकल्प, समुच्चय, उत्तरपक्ष, पूर्वपक्ष, व्याख्या, विपर्यय, वाक्यशेष, अतिदेश, अपदेश तथा ऊहा है। इसकी सभावना भी है कि 'तोल्काप्पियम्' और 'अर्थशास्त्र' दोनो रचनाएँ एक और मूल परपरा की ऋणी है जो आज लुप्त हो चुकी हो।

उत्पल *(स० ले०)* [समय—अनुमानत नवी शताब्दी]

काश्मीर शैवदर्शन के आचार्यों मे उत्पल का प्रमुख स्थान है। ये आचार्य सोमानद (दे०) के पुत्र एव शिष्य थे। वास्तव मे शैवागम-शास्त्र को दर्शन के रूप मे प्रस्तुत करने का श्रेय सोमानद को ही है। इन्ही के चरणो मे बैठकर उत्पल ने इस शास्त्र का अध्ययन किया, अत आगे चलकर इन्होने अपने ग्रथो मे इस शास्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा की। वस्तुत इस शास्त्र को 'प्रत्यभिज्ञा' नाम इन्होने ही दिया।

इनके द्वारा रचित ग्यारह ग्रथो का उल्लेख मिलता है। उनमे से प्रमुख है—(1) ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-कारिका, (2) ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-वृत्ति, (3) ईश्वर-प्रत्यभिज्ञा-टीका, (4) स्तोत्रावली, (5) परमेशस्तोत्रावली।

उक्त सभी कृतियो की विषयवस्तु प्राय एक

है। इनमें भगवान शंकर के गुणों की महिमा का बड़े सुंदर ढंग से बखान किया गया है। इन पद्यों के भाव अत्यंत उच्चकोटि के हैं। भगवान शंकर से संपर्क रखने वाली न्यूनातिन्यून वस्तु भी कवि को प्रिय है, पर उनके संबंध से रहित किसी भी वस्तु के प्रति उनके हृदय में कोई आकर्षण नहीं। दार्शनिक कृतियों में शिवस्तवन के साथ ही साथ शिवाद्वैतवाद का गंभीर विवेचन किया गया है। इनकी विशेषता एवं गंभीरता से हम तब परिचित होते है जब उन पर अभिनवगुप्त (दे०) आदि परवर्ती विद्वानों की विशद व्याख्याएँ पढते है।

उत्पलदत्त *(बँ० ले०)*

आधुनिक बँगला रंगमंच के नाट्य-निदेशक एवं यशस्वी अभिनेता उत्पलदत्त की ख्याति एक अच्छे नाट्यकार के रूप में भी काफी है। साम्यवादी चेतना-संपन्न नाट्यकार के रूप में उन्होंने जहाँ यथार्थ जीवन के सुख-दुःख, आशा-निराशा तथा गहरी वेदना को रूप दिया है वहाँ मानवीय धरातल पर आस्था और विश्वास की बात कहना भी नहीं भूले है। उनके प्रसिद्ध नाटकों में 'छायानट', 'अंगार' 'फेरारी फौज' 'कल्लोल' 'टिनेर तलबार' आदि उल्लेखनीय है।

'छायानट' में लेखक ने सिनेमा में काम करने वाले नायक-नायिका तथा अन्य अभिनेताओं की आशा-आकांक्षा, प्रेम-वंचना को कौतुक रस में डुबोकर इस ढंग से व्यक्त किया है कि कहानी में अंतर्निहित वेदना के स्वर को पहचानने में कठिनाई नही होती। उत्पलदत्त को 'अंगार' नाटक के लिए सर्वाधिक ख्याति मिली है। आसनसोल की कोयला-खानों मे काम करने वाले खनिकों के जीवन के यथार्थ को इसमें बड़ी निर्ममता के साथ प्रकट किया गया है। परिच्छन्न चेतना, मर्मलब्ध जीवन-बोध एवं वैज्ञानिक दृष्टि-भंगी का बहुत ही सुंदर परिचय इस नाटक में मिलता है। 'फेरारी फौज', 'कल्लोल', 'बर्गी एल देशे', 'अजेय वियेतनाम', 'तीर' आदि नाटकों में लेखक ने राजनीतिक धरातल पर अपने साम्यवादी विचारों की अभिव्यक्ति की है। ये नाटक सरल प्रभविष्णु बन पड़े हैं।

हाल के उनके 'ठिकाना' नाटक में बाँगला देश की उत्पीडित जनता की चेतना के विभिन्न स्तरों की अभिव्यक्ति की गई है। इधर का उनका सबसे प्रसिद्ध नाटक है 'टिनेर तलवार'। उत्पलदत्त के नाटकों मे जनता की जीवंत चेतना का स्पंदन ही मुख्य है।

उदयन *(सं० पा०)*

संस्कृत-साहित्य में उदयन का नाम अनेक कृतियों में नायक के रूप में आया है। भास (दे०) के 'प्रतिज्ञा-यौगंधरायण' (दे०) एवं 'स्वप्नवासवदत्तम्' (दे०) नामक नाटकों का नायक उदयन ही है। 'श्रीहर्ष' (दे०)-रचित 'रत्नावली' नाटिका का भी नायक उदयन ही है। इनके अतिरिक्त कालिदास (दे०) के 'मेघदूत' (दे०) एवं बाणभट्ट की 'कादंबरी' (दे०) में भी उदयन का उल्लेख हुआ है। सोमदेव-कृत 'कथासरित्सागर' (दे०) एवं क्षेमेंद्र (दे०) की 'बृहत्कथामंजरी' (दे०) में उदयन एवं वासवदत्ता के प्रणय की कहानी कही गई है।

उदयन वत्स का राजा था जिसकी राजधानी कौशांबी थी। वह एक उच्चकोटि के वीणावादक साहसिक युवक के रूप में सामने आता है जिसे हाथियों को पकड़ने का बड़ा शौक है—यहाँ तक कि वह प्रसिद्ध मालव-नरेश प्रद्योत के द्वारा पकड़वा लिया जाता है। वहीं कारागार में इसके पास प्रद्योत की अनिंद्य सुंदरी पुत्री वासवदत्ता को वीणा सीखने के लिए भेजा जाता है जिसकी परिणति प्रेम में हो जाती है और दोनों किसी तरह निकल भागते है।

उदयन का दूसरा विवाह मगधराज की पुत्री पद्मावती से भी होता है जिसे वह वासवदत्ता की प्रचारित मृत्यु के कारण स्वीकार करता है। पर वासवदत्ता को भुला नहीं पाता।

उदयन के चरित्र की विशेषता उसके प्रति मंत्रियों की असीम आस्था से प्रकट होती है। यौगंधरायण (दे०) एवं समण्वान उसके लिए प्राणोत्सर्ग करने को सतत प्रस्तुत रहते है। भास और श्रीहर्ष की लेखनियों मे उदयन के चरित्र का चित्रण प्रखर प्रेमी के रूप में हुआ है। राजा होते हुए भी वह शंकालु स्वभाव का नही है। यही कारण है कि उसके परिजन अत्यंत विश्वासपात्र हैं। प्रेम और विश्वास की कहानी ही उदयन की कहानी है।

उदयनाचार्य *(सं० ले०)* [स्थितिकाल—1000 ई०]

उदयनाचार्य का जन्म मिथिला के 'करिओन' नामक ग्राम मे हुआ था और उदयनाचार्य रचित ग्रंथो में प्रमुख 'तात्पर्यटीका' पर 'तात्पर्यटीका-परिशुद्धि', 'किरणावली' (दे०), 'न्यायकुसुमांजलि' तथा 'आत्मतत्त्वविवेक' है। उदयनाचार्य की 'न्यायकुसुमांजलि' पर वर्धमान की 'प्रकाश-

टीका' तथा रुचिदत्त की 'मकरद टीका' (जो प्रकाशटीका की टीका है)—दो अत्यत महत्वपूर्ण टीकाएँ भी लिखी गई है।

आचार्य उदयन ने 'आत्मतत्त्वविवेक' के अतर्गत बौद्ध सिद्धातो का खडन किया है। इस ग्रथ में इस उद्भट विद्वान ने आत्मा-सबधी न्यायदर्शन सम्मत सिद्धात की प्रतिष्ठा का प्रयत्न किया है। 'न्यायकुसुमाजलि' एक अत्यत महत्वपूर्ण ग्रथ है। इस ग्रथ मे उदयनाचार्य ने ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया है। 'न्याय-कुसुमाजलि' के अतर्गत भी बौद्धो का खडन किया गया है। उदयनाचार्य के ग्रथो की भाषा-शैली वैज्ञानिक होते हुए भी दुरूह ही है।

उदयभान, जगत्सिंह *(म० पा०)*

हरिनारायण आपटे (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गड आला पण सिंह गेला' (गढ तो जीत लिया पर सिंह मर गया) के ये पात्र परस्पर-विरोधी है। उदयभान उन स्वार्थी, सुखलोलुप राजपूत सरदारो का प्रतिनिधि है जो सासारिक वैभव एव सुख के लिए अपना धर्म त्यागने और मुसलमान बनने मे सकोच नही करते थे। इसके विपरीत जगत्सिंह उन निष्ठावान राजपूतो का प्रतीक है जो भारी से भारी सकट, क्लेश और दुख झेलने को प्रस्तुत थे, पर धर्म-परिवर्तन करने के लिए सहमत नही होते थे। कदाचित् धर्मातरित और निष्ठावान राजपूतो मे भेद बताने और जगत्सिंह जैसे वीर, निष्ठावान क्षत्रियो का अभिनदन करने के लिए ही इन दो पात्रो की सृष्टि की गयी है। उदयभान ऐतिहासिक पात्र है। धर्म-परिवर्तन के बाद औरगज़ेब ने उसे सिंहगढ का किलेदार बना दिया था। इसके विपरीत जगत्सिंह काल्पनिक पात्र है। वह उपन्यास की नायिका कमलकुमारी (दे०) की सहेली देवलदेवी का पति है, निष्ठावान, देशभक्त, जाति और धर्म के लिए मर मिटने वाला शूरवीर है तथा कमलकुमारी और ताना जी की समय पर सहायता करता है। अपनी पत्नी देवलदेवी के आत्मघात कर लेने पर स्वय भी प्राण त्याग देता है। अत उसके रूप मे एक आदर्श राजपूत वीर की प्रतिष्ठा की गयी है।

उदयम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1969 ई०]

'उदयम्' जी० अप्पुलिगम् 'वलैवाणन्' कृत एक कथाकाव्य है। 29 कथाखडो मे विभाजित इस कथाकाव्य मे युगपुरुष महात्मा गाधी का जीवन-चरित प्रस्तुत किया गया है। काव्य का आरभ बडे नाटकीय ढग से हुआ है। कवि ने यथास्थान भारतीय महापुरुषो, वेदादि प्राचीन कृतियो तथा भारतीय सभ्यता और सस्कृति का गौरव-गान किया है। कथा की पृष्ठभूमि मे भारतीय स्वतत्रता सग्राम से सबधित विविध घटनाएँ प्रस्तुत है जिससे यह काव्य अत्यत प्रभावशाली हो उठा है। इसमे कवि ने अपनी देश-भक्ति और गाधीवादी विचारधारा की सफल अभिव्यक्ति की है। इसमे इतिहास एव कल्पना का अपूर्व समन्वय हुआ है। प्रकृति के अनेक सुदर चित्र है। 'उदयम्' मे भावानुकूल सरल भाषा का प्रयोग है। भाषा मे सगीतात्मकता का गुण है। यह कृति 'विरुतप्पा' छद मे रचित है। विभिन्न स्थलो पर रूपक-तत्त्व का प्रयोग किया गया है। इसके माध्यम से कवि गाधीजी के जीवन-चरित को प्रस्तुत करने के साथ-साथ भारतवासियो मे देश प्रेम की भावना को जगाने मे सफल हुआ है।

उदात्त तत्त्व *(हिं० पारि०)*

'उदात्त तत्त्व' प्रसिद्ध प्राचीन यूनानी आचार्य लाजाइनस द्वारा प्रतिपादित काव्य-तत्त्व 'सब्लाइम' का हिंदी रूपातर है। यो 'उदात्त पाश्चात्य रीतिकारो द्वारा निरूपित काव्य के चार मूलभूत भावो मे भी है—अन्य भाव है सुदर, करुणा और हास्य, किंतु साहित्यालोचन मे उदात्त तत्त्व का आशय प्राय लाजाइनस-प्रतिपादित काव्य-तत्त्व विशेष ही होता है। लाजाइनस ने उदात्त तत्त्व का निरूपण अपने ग्रथ पेरिइप्सुस' मे किया है जो अँग्रेजी मे 'ऑन द सब्लाइम' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। मूल ग्रथ का अब केवल दो तिहाई अश ही उपलब्ध है। यद्यपि इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषय उदात्त शैली के आधारभूत तत्त्वो का ही विश्लेषण है तथापि विवेचन-क्रम मे उनकी उदात्त-तत्त्व विषयक अवधारणा भी बहुत स्पष्टता के साथ उभरी है।

लाजाइनस ने यद्यपि उदात्त की कोई सुनिश्चित परिभाषा नही दी, तथापि उनके विवेचन से यह स्पष्ट है कि उदात्त से उनका तात्पर्य मूलत भव्य, गरिमापूर्ण एव समुन्नत भाव ही था। अपने ग्रथ के आठवें परिच्छेद मे उन्होने औदात्य के पाँच विधायक तत्त्वो का निरूपण किया है। इनमे से प्रथम दो उसके अतरग से सबद्ध है तथा शेष तीन अभिव्यजना शिल्प से। लाजाइनस अतरग तत्त्वो मे विचारगत भव्यता को सर्वाधिक महत्व देतेहैं। दूसरा

अंतरंग तत्त्व है आवेगों का उद्दाम और प्रेरणास्फूर्त चित्रण। शैलीगत तत्त्वों में सर्वप्रथम है भव्य अलंकार-विधान; द्वितीय के अंतर्गत उपयुक्त शब्द-चयन एवं रूपक आदि अलंकरण-सामग्री से युक्त गरिमामयी काव्य-भाषा का प्रयोग आता है तथा उदात्त का अंतिम तत्त्व है समुन्नत और भव्य रचना-विधान। लांजाइनस ने काव्य में औदात्त्य के कुछ विघातक तत्त्वों का उल्लेख किया है जो इस प्रकार है : बचकानापन, चपलता, भव्यता एवं अनुशासन का अभाव और क्षुद्र अभिव्यक्ति आदि। रुचिहीन वाग्विस्तार और भावों एवं शब्दों के आडंबर को भी उन्होंने शैली के औदात्त्य का विघातक माना है। वे उदात्त काव्य-रूप को ही श्रेष्ठ मानते थे। इसके महत्व को रेखांकित करने के लिए ही उन्होंने एक अन्य काव्य-रूप 'उपहास्य' ('ल्यूडीक्रस') का विवेचन किया है जो उनकी दृष्टि में अत्यंत निकृष्ट है।

भारतीय काव्यशास्त्र में उदात्त तत्त्व का यथावत् विवेचन तो नहीं है, तो भी नायक (दे० नेता) के धीर एवं उदात्त चरित्र की कल्पना, वीर और अद्भुत रसों के उदात्त स्वरूप तथा ओजगुण आदि में औदात्त्य का अभाव नहीं है। 'उदात्त' अभिधान का एक प्राचीन गूढार्थ-प्रतीतिमूलक अर्थालंकार भी है जिसकी स्थिति मम्मट (दे०) के अनुसार वस्तु की समृद्धि और महान् व्यक्तियों के समायोग के चित्रण में होती है।

उदारन् *(त० पा०)*

उदारन् भारतीदासन् (दे०)-कृत पुरट्शि कवि नामक कथाकाव्य का नायक है। वह नायकोचित नाना गुणों से संपन्न है। नायिका अमुदवल्ली (दे०) के शब्दों में यह 'शब्दों का कुशल प्रयोक्ता' है। इसका तमिल-भाषा-प्रेम उल्लेखनीय है। ज्ञानी होने के नाते यह सहसा अमुदवल्ली के प्रेम को स्वीकार नहीं कर पाता है। धीरे-धीरे उनके प्रेम का विकास होता है। अमुदवल्ली और उदारन् के प्रेम के विषय में जानकर राजा कुपित होता है और दोनों को प्राणदंड का आदेश दे देता है। मरने के पूर्व उदारन् जनता में जागृति उत्पन्न करने के लिए एक प्रभावशाली भाषण देता है। इसका यह भाषण शेक्सपियर-कृत नाटक 'जूलियस सीज़र' में मार्क एंटनी के भाषण के समान अत्यंत प्रभावशाली है। उदारन् प्रजातंत्र की स्थापना के लिए जनता को राजतंत्र के विरुद्ध क्रांति करने की प्रेरणा देकर प्राण त्यागने के लिए तैयार होता है। अंत में इसका स्वप्न पूर्ण होता है। राजतंत्र के स्थान पर प्रजातंत्र की स्थापना हो जाती है। उदारन् वस्तुतः क्रांतिकारी कवि भारतीदासन् का प्रतिरूप है। इसके माध्यम से कवि ने अपनी क्रांतिकारी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है।

उदाहरण वाङ्मयमु *(ते० पारि०)*

लघुकाव्यों के अंतर्गत आने वाला 'उदाहरण' संस्कृत में बहुत कम पाया जाता है। पालकुरिकि सोमन के 'बसवोदाहरण' के साथ तेलुगु में उदाहरण-काव्य का आरंभ होता है। आंध्र के विद्यानाथ (दे०) नामक आलंकारिक ने अपने संस्कृत लक्षण-ग्रंथ 'प्रतापरुद्रीयम्' में इसका समग्र लक्षण भी दिया है। इसका लक्षण इस प्रकार है—सातों नाम-विभक्तियों के लिए अलग-अलग एक-एक, संबोधन के लिए एक, सातों विभक्तियों के लिए समष्टि में एक तथा अंत में कृति और कृतिकार के बारे में एक—इस तरह कुल दस भाग रहते हैं। इसमें वर्णिक तथा मात्रिक छंदों का मिश्रण है। नाम-विभक्ति वाले प्रत्येक भाग में क्रमशः एक वर्ण-छंद, कलिका, उत्कलिका नामक दो मात्रिक छंद रहते हैं। वर्ण-छंद के अंत में, कलिका के प्रत्येक चरण के अंत में तथा उत्कलिका के अंत में नाम-विभक्ति रखी जाती है। उपलब्ध तेलुगु उदाहरण अधिकांशतः भक्तिपरक अथवा स्तुतिपरक हैं। इस प्रकार की रचना की विशेषताएँ ये हैं—नाम-विभक्तियों की योजना से क्रमबद्धता तथा शब्दालंकार संबंधी-श्राव्यता, ताल-प्रधान मात्रिक-छंदों के प्रवेश से साहित्य तथा संगीत का समन्वय और संक्षिप्तता। तेलुगु साहित्य में 'बसवोदाहरण', 'वेंकटेश्वरोदाहरण' आदि देवस्तुतिपरक तथा 'वीरेशलिंगोदाहरण' जैसे महापुरुषों से संबद्ध उदाहरण प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

अधिक संख्या में न लिखे जाने पर भी सरस तथा संक्षिप्त लघुकाव्य के रूप में तेलुगु साहित्य के अंतर्गत 'उदाहरण' का एक विशेष स्थान है।

उदेरोलाल *(सिं० पा०)*

सिंधी साहित्य में 'उदेरोलाल' का अनोखा स्थान है। सिंधी हिंदू इन्हें वरुण का अवतार मानते हैं और सिंधी मुसलमान इन्हें ख्वाजा खिज़्र या जिंदा पीर के नाम से याद करते हैं। उदेरोलाल का जन्म सन् 950 ई० में सिंध

के नसरपुर शहर मे हुआ था। इनके पिता का नाम राइ रतनचन्द और माता का नाम देवकी था। सिंध में ठट्टो नगर के मुसलमान हाकिम मरखशाह ने हिंदुओ पर बहुत अत्याचार किए थे। उदेरोलाल ने बडे होकर मरखशाह को जुल्म करने से रोका और सिंध मे धर्मसहिष्णुता और शाति का राज्य स्थापित किया। चैत्रमास मे उदेरोलाल के जन्म दिवस 'चेटीचडु' से सिंधी हिंदू नए वर्ष का आरभ मानते हैं और इस दिन को अब भारत मे राष्ट्रीय पर्व के रूप मे मानते है। उदेरोलाल की स्तुति मे रचित कविताएँ 'पजकिडा' नाम से प्रसिद्ध है। सिंधी ठक्कुरो ने उदेरोलाल के पीछे 'दरियापथ' शुरू किया है। कई हिंदू इसके अनुयायी है। उदेरोलाल 'लाल साई' 'अमरलाल' 'झूलेलाल' नामो से भी प्रसिद्ध है। सिंधी साहित्य मे यत्र-तत्र उदेरोलाल का उल्लेख मिलता है।

उद्धवगीता *(म० कृ०)* [रचना काल—1309 ई० के आस पास]

इसका आधार-ग्रथ है 'मूर्तिप्रकाश' जो केशव व्यास ने सन् 1298 मे लिखा था। इसमे श्रीकृष्ण का उद्धव के लिए उपदेश है, अत इसका नाम रखा गया—'उद्धवगीता'। भगवान कृष्ण ने उद्धव को ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का मार्मिक उपदेश दिया है। श्रीमद्भागवत (दे० भागवत) के एकादश स्कध की कथा ही इस गीता की मूल वस्तु है। कवि ने इसमे अनेक रसो का सुदर परिपाक किया है परतु प्रधानता शातरस को ही दी है। महानुभाव पथ मे दीक्षित होकर ही कवि ने उसकी रचना की थी।

उद्धवशतक *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1929 ई०]

'उद्धवशतक' कवि रत्नाकर (दे०) की मार्मिक अनुभूतियो की कलापूर्ण अभिव्यक्ति है। 118 घनाक्षरियो का काव्य लिखकर उन्होने हिंदी साहित्य को मानो 118 रत्न प्रदान किये है। इस प्रबध-मुक्तक दूतकाव्य की कथा श्रीमद्भागवत (दे० भागवत) के छियालीसवे और सैंतालीसवें अध्याय से ली गई है। उद्धव गोपियो के समक्ष निर्गुण का ज्ञान बघारते है और कृष्ण मे अनुरक्त पूर्णत जागरूक गोपियाँ तर्कों के अमोघ बाणो से उद्धव को निरुत्तर कर सगुण भक्ति का महत्त्व उपस्थापित करती है। यही इस ग्रथ का प्रतिपाद्य है। शृगार एव भक्ति से परिपूर्ण यह चित्रोपम काव्य लक्षणा और व्यजना का सुदर सगम है तथा इसमे सरसता, अर्थगौरव और मृदुल पदावली की मधुरता कूट-कूट कर भरी है।

उद्धवशतक का भावपक्ष भक्तिकाल और कला-पक्ष रीति-काल की कविता से प्रभावित है। उद्धवशतक की भाषा अलकृत ब्रज भाषा है। इस ग्रथ मे कवि ने अलकारो का खुलकर प्रयोग किया है पर वे न तो कही अर्थबोध म व्याघात उत्पन्न कर पाये है और न कही कथा-प्रवाह को ही अवरुद्ध कर सके है। निश्चय ही भक्ति-कालीन भावुकता के साथ रीतिकालीन चमत्कार का अगर कही सुदर समन्वय है तो वह उद्धवशतक' मे है। कवि न कृष्ण और गोपियो को एक-दूसरे के प्रेम मे विह्वल दिखलाकर जिस उभयपक्षीय प्रेम की अभिव्यजना की है वह उसकी मौलिकता की परिचायक है। इस ग्रथ मे एक साथ ही गोपियो के प्रेम की अनन्यता, उद्धव के परमज्ञानी रूप की बोझिल दार्शनिक उक्तियाँ, गोपियो के विरह-निवेदन की कातरता, उद्धव के अकाट्य तर्कों को निष्फल बनाती गोपियो के प्रेम की साद्रता एव प्रेमी के मनोभावो से अपने को एकाकार करती गोपियो की विश्वासपरक आत्म-रति के दर्शन होते है। कही कही रसायन, वेदात तर्क, योग और विज्ञान सबधी कथन कवि की बहुज्ञता के परिचायक है।

उद्भट *(स० ले०)* [समय—लगभग 800 ई०]

काश्मीर नरेश जयापीड के दरबार मे पडितो की सभा के अध्यक्ष भट्टोद्भट सस्कृत-साहित्यशास्त्र के अन्य तम आचार्य है।

आचार्य उद्भट मूल ग्रथ लेखक एव टीकाकार दोनो है। इनकी ग्रथात्मक कृति 'काव्यालकारसारसग्रह' (दे०) अलकारो के स्वरूप एव लक्षण के विषय मे उत्तर-वर्ती आचार्यो द्वारा अत्यत प्रामाणिक मानी गई है। यह कृति विशुद्ध रूप से अलकारो का ही विवेचन करती है। इसमे 41 अलकारो का निरूपण 79 कारिकाओ को छह वर्गों मे विभक्त कर किया गया है। इस ग्रथ की टीका प्रति-हारेन्दुराज (दे०) ने की है जो मुकुलभट्ट के शिष्य थे।

भामह के 'काव्यालकार' (दे०) नामक ग्रथ की टीका भामह विवरण' के नाम से उद्भट ने की थी जो अनुपलब्ध है। उसके उद्धरण अवश्य मिलते है।

अर्थ-भेद से शब्दो का भिन्न होना, श्लेष अलकार की प्रबलता, तीन प्रकार का अभिधा-व्यापार

तथा गुणों का संघटना धर्म होना'—ये भट्टोद्भट की संस्कृत काव्यशास्त्र को देन हैं ।

उद्भटकाव्य *(क० कृ०)*

इसके रचयिता वीरशैव कवि सोमराज हैं जिनका समय 1225 ई० के लगभग है । यह एक चंपूकाव्य है जिसमें कंद छंद की ही प्रधानता है । 'उद्भटकाव्य' का दूसरा नाम 'शृंगारसार' है । यह मूलतः एक प्रेमाख्यान है किंतु उसे भक्ति का मोड़ दिया गया है । महाकवि हरिहर के 'उद्भटरगळे' से इसकी कथावस्तु ली गई है । प्रौढ़काव्य के सामयिक वर्णनों से भरपूर इस काव्य में बारह आश्वास हैं । इसमें कुमारपाल गुर्जर अथवा उद्भट की कथा है । इसका पूर्वभाग कादंबरी आदि प्रेमाख्यानों से प्रभावित है । विस्तार यहाँ बहुत अधिक है । मुख्य कथा ग्यारहवें अध्याय से शुरू होती है । प्रकृति-वर्णन कहीं-कहीं रमणीय बन पड़ा है । शैली काफ़ी सरस-सरल है ।

उद्भट नाट्य-परंपरा *(उ० कृ०)*

रत्नाकर चइनी (दे०)-कृत इस पुस्तक में आधुनिक रंगमंच की बहुचर्चित विधा—उद्भट नाटक—का विवेचन किया गया है । यह तीन खंडों में है । प्रथम खंड में लेखक ने उद्भट का इतिहास प्रस्तुत किया है तथा इस शब्द का तदर्थ अर्थ भी प्रस्तावित किया है । दूसरे खंड में, जो संभवतः सर्वोत्तम है, वर्तमान भारतीय नाटक की एक समानांतर विधा को रेखांकित किया गया है । बादल सरकार (दे०), विजय तेंदुलकर (दे०), मोहन राकेश (दे०), गिरीश कर्नाड इत्यादि की कृतियों का विशद विवेचन मिलता है । चइनी के मत में इन दिग्गजों का प्रयोगात्मक रंगमंच न केवल भारतीय नाट्य-परंपरा के लिए उल्लेखनीय प्रदेय है वरन् वह सांप्रतिक भारतीय स्थिति के लिए अत्यंत समीचीन है । तृतीय खंड में उड़िया नाटक में मनोरंजनदास (दे०), विजयकुमार मिश्र (दे०), विश्वजीत दास, कार्तिक रथ तथा रत्नाकर चइनी के द्वारा किए गए प्रयोगों का विवेचन है । इन नाटककारों के प्रयासों के फलस्वरूप उड़िया नाटक में पिछले एक दशक में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं तथा इस क्षेत्र में हुए प्रयोगों का स्वागत भी हुआ है । लेखक ने इन प्रयोगों का सूक्ष्म विवेचन उद्भट विधा की दृष्टि से किया है । उड़िया भाषा में यह अपने प्रकार की एकमात्र पुस्तक है ।

उद्याचा संसार *(म० कृ०)* [प्रकाशन-काल—1935 ई०]

पारिवारिक दायित्वों के प्रति बढ़ती उपेक्षा-वृत्ति के कारण टूटते हुए भारतीय परिवार की व्यथा-कथा पर आधारित प्रह्लाद केशव अत्रे (दे०) का यह समस्या-प्रधान नाटक है । श्वसुर की अतुल संपत्ति को प्राप्त कर विश्राम का नैतिक पतन होता है । पति एवं पिता के अपने दायित्वों को भूलकर वह एक फ्रेंच महिला से विवाह कर स्वदेश लौटता है । पुत्री के गार्हस्थ्य जीवन की शांति के लिए चालीस हजार रुपए व्यय कर फ्रेंच महिला के स्वदेश लौटने की व्यवस्था तो कर देता है, परंतु उसका नैतिक सुधार नहीं होता । विश्राम की उपपत्नी नयना नामक पुत्री को जन्म देकर स्वर्ग सिधार जाती है, परंतु विश्राम ने इस कन्या को पुत्री रूप में स्वीकार नहीं किया । स्वच्छंद पारिवारिक परंपराओं के कारण विश्राम की औरस संतान पथभ्रष्ट हो जाती है । उसकी अविवाहित गर्भवती पुत्री शैला और अनजाने में अपने पिता की उपपत्नी की पुत्री से प्रणय-संबंध में असफल पुत्र शेखर दोनों घर छोड़कर चले जाते हैं । परिवार को इस प्रकार भग्न होते जानकर उसकी पत्नी करुणा की आत्म-हत्या से नाटक की परिसमाप्ति हुई है । इस प्रधान कथा के साथ ही गौतम तथा उल्लास की प्रासंगिक कथा की संयोजना भी हुई है । आधुनिक समस्या-नाटकों के पात्रों के अनुरूप करुणा, नयना, शैला, उल्लास आदि के चरित्रों का विकास आत्मविश्लेषणात्मक पद्धति से होने के कारण सहज स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक है । कथा-विकास पाश्चात्य नाट्य-तंत्र के अनुरूप संघर्ष के माध्यम से हुआ है । अंतः एवं बाह्य-द्वंद्व के अनेक भव्य चित्र करुणा, विश्राम, नयना, शैला के संवादों में परिलक्षित होते हैं । पात्र एवं प्रसंगानुकूल भाषा से युक्त संवाद प्रभावान्विति की दृष्टि से सजीव एवं सटीक हैं । मराठी के समस्या नाटकों की समृद्ध परंपरा में 'उद्याचा संसार' कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से मानक कृति है ।

उद्योगविजयमुलु *(ते० कृ०)*

तिरुपति शास्त्री (1871-1919) (दे० तिरुपति वेंकट कवुलु) तथा वेंकटशास्त्री (1870-1950) (दे० तिरुपति वेंकट कवुलु) ने सम्मिलित रूप से रचनाएँ की हैं । ये अत्यंत प्रतिभावान कवि थे और समस्त आंध्र देश

मे इन्होंने साहित्यिक दिग्विजय करके साहित्य-जगत् मे अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित की थी। ये तेलुगु की पुरानी काव्यधारा के अतिम प्रतिभावान कवि थे और नवीन युग के लिए भूमिका इन्ही की रचनाओ द्वारा बनी।

इन्होने बीसो काव्यकृतियो एव नाटको की रचना की है जिनमे उपर्युक्त कृति के अतिरिक्त 'बुद्धचरितमु,' 'देवीभागवतमु', 'प्रभावती प्रद्युम्नमु' आदि प्रमुख है।

'उद्योगविजयमुलु' महाभारत (दे०) की कथा-वस्तु के आधार पर रचे गये दो नाटक है। इनमे पाडवो के दूत के रूप मे कृष्ण का हस्तिनापुर जाने और कौरवो से पाडवो का राज्य लौटाने का अनुरोध करके युद्ध को रोकने का यत्न करने की घटना तथा कर्ण को उसके जन्म का रहस्य बताकर उसे पाडव-पक्ष मे सम्मिलित कर लेने के कृष्ण के यत्न तथा युद्ध मे पाडवो की विजय आदि घटनाओ का ओजपूर्ण प्रस्तुतीकरण हुआ है। ये नाटक समस्त आध्र मे शतशत बार प्रदर्शित हुए और सर्वत्र इनका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। तेलुगु के श्रेष्ठतम नाटको मे इनका स्थान है। तेलुगु मे नाटक-रचना की परपरा को बल प्रदान करने की दृष्टि से भी इनका ऐतिहासिक महत्व है। इन नाटको की अपूर्व सफलता ने अनेक अन्य साहित्यकारो को भी नाटक-रचना की ओर प्रवृत्त किया।

उन्नयन *(गु० कृ०)* [प्रकाशन—1950 ई०]

'उन्नयन' प्रसिद्ध कवि सुन्दरम् (दे०) का कहानी सग्रह है जिसके द्वारा उन्होने गुजराती कहानी को यथार्थ का दर्शन कराया। सुन्दरम् को गभीर तथा हास्यरस-प्रधान दोनो प्रकार की कहानी-रचना मे सफलता मिली है। सग्रह की 'मा की गोद मे', 'पेकाडंनो प्रवास', 'आशा', 'नरसिंह' तथा 'खोलकी' प्रभृति कहानियाँ विविध भावभूमियो का सस्पर्श करती है।

मानव-मन के वैविध्यपूर्ण चित्रण के साथ इनकी कहानियो की शैली भी विविधता लिए है। वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पूर्वदीप्ति तथा डायरी प्रभृति शैलियो का इसमे सफल प्रयोग हुआ है।

उन्नैप्पोल ओरुवन् *(त० कृ०)*

जयकान्तन (दे०)-कृत इस लघु उपन्यास की नायिका तगम है। शिट्टी उसका अवैध पुत्र है। काफी वर्षों बाद तगम द्वारा माणिक्कम् को घर लाये जाने पर शिट्टी घर से भाग जाता है। तगम को दुखी देखकर माणिक्कम् शिट्टी को ढूँढने निकलता है। स्वय कभी न लौटने की प्रतिज्ञा कर उससे घर लौटने की प्रार्थना करता है। अपनी नवजात पुत्री को स्वाभिमानी शिट्टी के हाथ सौपकर तगम निश्चित हो सदा के लिए आँखे मूँद लेती है। इस सामाजिक उपन्यास का सबसे अधिक प्रभावशाली पात्र शिट्टी है। इस कथा के माध्यम से लेखक ने यही बताना चाहा है कि तगम जैसी युवतियो को नीच व्यक्तियो के अत्याचार से बचाने के लिए, उनका उद्धार करने के लिए आज समाज को शिट्टी जैसे स्वाभिमानी पुत्रो की, भाइयो की, आवश्यकता है।

उपदेशरसायनरास *(अप० कृ०)*

यह जिनदत्त (दे०) सूरि द्वारा रचित 80 पद्यो की रचना है। इसमे मनुष्य-जन्म का महत्व तथा आत्मा के उद्धार पर बल दिया गया है। एतदर्थ सुगुरु की आवश्यकता बताई गई है। लेखक के विचार मे गुरुरूपी नौका से ही ससार-सरिता को पार किया जा सकता है। कृति मे धार्मिको के कृत्यो के साथ नाना चैत्य-धर्मों एव कर्मो का निर्देश किया गया है। गृहस्थो के लिए उपयोगी अनेक प्रकार के सदुपदेश इस कृति मे प्राप्त होते हैं। इसमे पज्झटिका छद का प्रयोग हुआ है।

उपनिषद् *(सं० कृ०)* [रचना-काल—लगभग 2000 ई० पू०]

उपनिषदो के रचयिता विभिन्न ऋषि हैं। 'उपनिषत्' शब्द का अर्थ रहस्यपूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए शिष्य का गुरु के समीप बैठना है। ब्रह्म-प्राप्ति की साधक होने के कारण ही ब्रह्मविद्या को 'उपनिषद्' कहते हैं। उपनिषदो की सख्या 220 है। ये उपनिषद् उपलब्ध है। इनमे ईशादि दस उपनिषद् सर्वाधिक प्रामाणिक एव प्राचीन हैं।

उपनिषदो का विषय प्रधानतया दार्शनिक है। वैविध्य होने पर भी प्राचीन एव प्रामाणिक उपनिषदो मे कुछ ऐसे दार्शनिक सिद्धात मिलते हैं जिनमे एकरूपता है। प्राचीन उपनिषदों मे जगत् की ब्रह्मरूपता एव आत्मवाद के विचार प्रमुख रूप से मिलते है। इन दार्शनिक विचारो के अतिरिक्त उपनिषदो मे मनोविज्ञान, तत्वज्ञान, मृतक-ज्ञान, मोहिनी-विद्या, रोगनिवारण-विद्या तथा इद्रजालविद्या का निरूपण भी मिलता है।

यद्यपि उपनिषद् वैदिक है, परंतु इनकी भाषा लौकिक संस्कृत है। उपनिषदों की विश्लेषण-पद्धति सूत्रात्मक तथा विश्लेषणात्मक दोनों प्रकार की है।

उपनिषद्-दर्शन के प्रमुख तत्त्व—'ब्रह्म' का निरूपण उपनिषदों में कहीं सत्-असत् रूप में, कहीं चित् रूप में और कहीं आनंद रूप में किया गया है। उपनिषदों के अनुसार आत्मा एक ऐसा भावात्मक, सर्वव्यापी एवं शाश्वत तत्त्व है जो सूक्ष्म से सूक्ष्म और विशाल से भी विशाल है। 'तत्त्वमसि' के विवेचन के द्वारा उपनिषदों में जीव और ब्रह्म की अद्वैतता का प्रतिपादन किया गया है। 'नेति नेति' की व्याख्या के द्वारा भी एकात्मवाद का ही प्रतिपादन किया गया है।

उपनिषद् साहित्य समस्त भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं का स्रोत है। सांख्य एवं वेदांतादि सभी दार्शनिक संप्रदायों के बीज उपनिषदों में उपलब्ध हैं। अनेकानेक विदेशी दार्शनिकों ने भी उपनिषदों से प्रेरणा ग्रहण की है। जर्मन दार्शनिक शॉपेनहावर तो उपनिषदों पर अत्यंत मुग्ध था।

उपन्यास *(हि० पारि०)*

'उपन्यास' गद्य में रचित दीर्घ कलेवर का कथात्मक साहित्य-रूप है जिसका उल्लेख प्राचीन भारतीय अथवा पाश्चात्य साहित्यशास्त्रों में नहीं है। कुछ विद्वानों ने 'उपन्यास' शब्द के 'उप' एवं 'नि' उपसर्गों तथा √अस् से निष्पन्न होने का उल्लेख किया है। यह सर्वथा असंगत है। भरत (दे०) के 'नाट्यशास्त्र (दे०) में भी यद्यपि यह शब्द उपलब्ध होता है, किंतु वहाँ भी यह प्रतिमुखसंधि (दे० नाट्य-संधियाँ) के अवांतर भेद के रूप में ही है, कथा-साहित्य के रूप में नहीं। पश्चिम में इसका जन्म पुनर्जागरण युग में हुआ। प्रारंभ में इसके इतालवी नाम 'नोवेला' तथा अँग्रेजी नाम 'नॉविल' के शाब्दिक अर्थों—क्रमशः 'समाचार' और 'नवीन'—के अनुरूप ही किसी भी प्रकार की नई और ताजी, प्रायः कल्पित, सुविस्तृत और सांगोपांग कहानी को उपन्यास के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता था। बाद में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप निरंतर वर्द्धमान जीवन की जटिलताओं तथा मानसिक और भौतिक स्तरों पर घटित होने वाले व्यष्टि और समष्टि के जीवन-संघर्षों के चित्रण से वहाँ के उपन्यास में यथार्थ का रंग गहरा होने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में बँगला साहित्य के द्वार से उपन्यास ने भारत में प्रवेश किया तो यहाँ भी उसके प्रारंभिक चरण क्रमशः रोमानी, प्रेमाख्यानात्मक, घटना-प्रधान और समाज-सुधार-विषयक मार्गों पर बढ़ते हुए अब यथार्थ की भूमि में प्रवेश कर चुके है। आज का भारतीय उपन्यास व्यक्तिवादी है और उसमें गहन मनोवैज्ञानिक स्तर पर व्यक्ति के अंतर्मन का निगूढ़ बौद्धिक चित्रण रहता है।

उपन्यास के प्रमुख तत्त्व हैं : कथानक, चरित्रांकन और भाषा-शैली। कथानक में रंग भरने के लिए देशकाल तथा उपन्यास के कथ्य को विशिष्ट और सार्थक आयाम में प्रस्तुत करने के लिए उद्देश्य को भी महत्वपूर्ण तत्त्व माना गया है। इनमें कथानक और चरित्रांकन एक दूसरे के पूरक और अन्योन्याश्रित हैं। कथानक के विकास का एकमात्र साधन कुशल घटना-विधान चरित्रों के अंकन के बिना संभव नहीं है और चरित्र-विकास के अंकन के लिए घटना-विधान अपरिहार्य है। यदि केवल तर्क के लिए 'साहित्यिकता' और 'लोकप्रियता' को परस्पर-विरोधी मान लिया जाए तो कहा जा सकता है कि 'साहित्यिक' उपन्यासों में निगूढ और सूक्ष्म चरित्रांकन पर अधिक जोर रहता है और 'लोकप्रिय' उपन्यासों में मनोरम घटना-विधान पर। उपयोगितावादी अथवा लोकमंगलकारी उपन्यासकार की दृष्टि 'उद्देश्य' पर केंद्रित रहती है किंतु उपन्यास में इसी एक तत्त्व की प्रधानता हो जाने से कलात्मकता की क्षति होती है। शैली के विषय में उपन्यासकार की दृष्टि वस्तुमुखी अथवा व्यक्तिवादी हो सकती है। आज का औपन्यासिक लेखन अधिकाधिक व्यक्तिवादी होता जा रहा है। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से उपन्यास की श्रेष्ठता और सार्थकता का सर्वप्रमुख निकष उसमें चित्रित यथार्थ है जो आज के जीवन-संदर्भ में सामाजिक भी हो सकता है और वैयक्तिक भी।

उपन्यासों में चित्रित जीवन और प्रतिपादित विषयों के अनुसार उनका वर्गीकरण किया जाता है। प्रमुख प्रकार है : (क) सामाजिक; सामाजिक-आर्थिक; आर्थिक राजनीतिक; (ख) साहसिक; जासूसी-रहस्यपूर्ण; रोमांचकारी-अपराधमूलक; (ग) ऐतिहासिक-पौराणिक; (घ) जीवनीमूलक-आत्मकथात्मक; (ङ) रोमानी-प्रेमाख्यानात्मक। शैली की दृष्टि से प्रमुख प्रचलित प्रकार हैं : (क) समस्यामूलक या समस्या-प्रधान; (ख) आंचलिक; (ग) महाकाव्यात्मक; (घ) लोकवादी या जनवादी; (ङ) संवाद-शैली; (च) पत्र-शैली में रचित; (छ) चेतना-प्रवाही।

उपमा *(हि० पारि०)*

भारतीय वाङ्मय मे 'उपमा' शब्द के प्रयोग तथा उसके सादृश्यमूलक अर्थ का पूर्व-इतिहास ऋग्वेद (दे० सहिता) जैसे आदि ग्रथ मे खोजा जा सकता है। भरत (दे०) के पूर्ववर्ती यास्क आदि वैयाकरणो ने भी उपमा शब्द का प्रयोग सादृश्य के अर्थ मे ही किया है, किंतु यह सादृश्य दो परस्पर समान रूपाकृति अथवा धर्म वाली वस्तुओ का साम्य नही है जबकि अलकारशास्त्र का उपमा अलकार निर्भ्रांत रूप से दो समान वस्तुओ के रूपाकार, गुण, धर्म अथवा प्रभाव आदि के पारस्परिक साम्य को ही प्रदर्शित करता है। उपमा अलकारशास्त्र मे निरूपित कदाचित् सर्वाधिक महत्वपूर्ण अलकार है क्योकि अलकार मात्र के वैचित्र्य-कथन का प्रमुख आधार सादृश्य है और उपमा समस्त सादृश्यगर्भ अलकारो का प्राणभूत अलकार है। सस्कृत आचार्यो की उपमा-विषयक अनेक प्रशस्तियाँ इसका प्रमाण है। राजशेखर (दे०)ने उपमा को समस्त अलकारो मे शिरोभूषण के समान काव्य की सपत्ति और कविवश की माता कहा है—(अलकारशिरोरत्न सर्वस्व काव्यसम्पदाम्। उपमा कविवशस्य मातैवेति मतिर्मम।' रुय्यक (दे०) ने अनेकरूप वैचित्र्य के कारण उसे समस्त अलकारो का बीजरूप घोषित किया है। इस प्रकार उपमा एक साम्यमूलक अलकार है और यह साम्य तीन प्रकार का हो सकता है—रूपाकारगत (सादृश्य), गुण-धर्मगत(साधर्म्य)तथा प्रभावगत। उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक शब्द—उपमा के ये चार अग है। इनके एक साथ उपस्थित रहने पर पूर्णोपमा होती है और जहाँ इनमे से किसी का अभाव होता है वहाँ लुप्तोपमा।

'उपवासी', भोगीलाल गाधी *(गु० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

इनका जन्म साबरकाठा के भोडासा गाव मे हुआ था। सन् 1930 मे गुजरात विद्यापीठ से स्नातक होकर सन् '35 मे इन्होने गुजरात प्रगतिशील लेखक-मडल की स्थापना की थी। इसी बीच इन्होने कांग्रेस समाजवादी पक्ष के राज्यकार्य मे भी भाग लिया था। सन् '28 से '51 तक की समयावधि मे इन्हे सात बार जेल जाना पडा था।

ये बहु-अधीत है। सन् '30 के आस पास इनका स्थान प्रमुख कवियो मे था। इनकी कविताओ मे साम्यवाद के प्रति भक्ति होते हुए भी उनके केंद्र मे मानव-प्रेम है। इन्होने डा० जिवागो का सक्षिप्त रूपातर, मार्क्सवादी जीवन-दृष्टि का सक्षिप्त किंतु सरल परिचय तथा विनोबा जी की जीवन-दृष्टि को समझने मे सहायक सग्रह प्रकाशित किए है। इनकी आलोचना मूलगामी होने के साथ ही कृति के मर्म को भी पकडती है। बँगला से इन्होने रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दे०) तथा शरत्चद्र (दे०) की कृतियो के समर्थ अनुवाद किए हैं। समग्रतया इन्होने ग्यारह मौलिक कृतियाँ, दो रूपातर, छह सपादन-ग्रथ, बँगला से तीन अनुवाद तथा अँग्रेज़ी से सात अनुवाद किए है। इसके अतिरिक्त ये पाच पत्रिकाओ का सपादन कर चुके है। आजकल ये गुजरात मे असाधारण प्रतिष्ठा प्राप्त 'विश्व-मानव' नामक द्वैमासिक के सपादक है।

उपसपदा *(पा० पारि०)*

पाली मे इस शब्द का प्रयोग होता है किंतु सस्कृत मे कही-कही उपसपद् शब्द भी आता है। इसका अर्थ होता है प्राप्ति। बौद्धधर्म मे दीक्षा लेने वाला व्यक्ति पहले प्रव्रज्या धारण करता है, फिर उपसपदा लेता है और बाद मे भिक्षुभाव या भिक्षुणीभाव को प्राप्त होता है। उपसपदा 4 प्रकार की होती है—(1) स्वाम् (सभवत स्वयम्)-जो एक व्यक्ति लेता है, (2) एहिभिक्षुका जिसमे यह सबोधन किया जाता है, (3) दशवग्ग जिसमे दस व्यक्ति मिलकर उपसपदा लेते है और (4) पचवग्ग जिसमे पाँच व्यक्ति मिलकर उपसपदा लेते है।

उपसर्ग *(स० पारि०)*

'उपसर्ग' उस भाषिक इकाई को कहते है, जो भाषा मे स्वतत्र रूप से नही आती तथा जो किसी शब्द के प्रारभ मे जुडकर शब्द के अर्थ को परिवर्तित करती है। वैदिक सस्कृति मे उपसर्ग मूल शब्द से अलग भी आते थे। हर भाषा के अपने उपसर्ग अलग होते है। उदाहरण के लिए यह आवश्यक नही कि किसी सस्कृत शब्द का उपसर्ग हिंदी मे भी उस शब्द मे उपसर्ग माना ही जाये। इसके लिए आवश्यक है कि उस भाषा म उपसर्ग को अलगाने पर जो शेष बचे उसका स्वतत्र भाषिक इकाई के रूप मे उस भाषा मे उससे सबद्ध अर्थ मे प्रयोग हो। दो शब्द लें प्रयत्न, प्रसन्न। सस्कृत मे दोनो मे 'प्र' उपसर्ग है, किंतु हिंदी मे 'प्रयत्न' मे तो 'प्र' उपसर्ग है, किंतु 'प्रसन्न' मे 'प्र' उपसर्ग नही है, क्योंकि हिंदी मे प्रसन्न यौगिक न माना जाकर रूढ शब्द माना जाएगा।

उपाध्याय, बलदेव *(सं० ले०)*

इनका जन्म सोनवरसा नामक ग्राम (ज़िला बलिया, उत्तर प्रदेश) में सन् 1899 ई० में हुआ। इन्होंने हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी में 38 वर्ष अध्यापन किया तथा इसके उपरांत भी अद्यावधि अध्ययन-अध्यापन में संलग्न हैं। हिंदी में इनके द्वारा रचित ग्रंथ हैं—भारतीय दर्शन, बौद्ध दर्शन-मीमांसा, भारतीय साहित्यशास्त्र, काव्यानुशीलन, आर्य संस्कृति, वैदिक साहित्य और संस्कृति, संस्कृत साहित्य का इतिहास, संस्कृत आलोचना, संस्कृत वाङ्मय, धर्म और दर्शन, भागवत संप्रदाय, आचार्य सायण और माधव, आचार्य शंकर, भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा, पुराण-विमर्श आदि। संस्कृत में इन्होंने 'देवभाषा निबंधावली' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ लिखा। इनके द्वारा संपादित ग्रंथ हैं—वेदभाष्यभूमिका-संग्रह, अग्निपुराण, कलिका-पुराण, भक्तिचंद्रिका, शंकरदिग्विजय, प्राकृत-प्रकाश, नाट्यशास्त्र, काव्यालंकार (भामह), नागानंद आदि। इन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक और डालमिया पुरस्कार के अतिरिक्त राष्ट्रपति-पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है। इनकी प्रमुख विशिष्टता है सहज-सुबोध शैली में विवेच्य विषय का विशुद्ध प्रतिपादन।

उपाध्याय, भगवतशरण *(हिं०ले०)* [जन्म—1910 ई०]

इनका जन्म बिहार प्रांत के बलिया ज़िले में हुआ था। इनका सर्वाधिक महत्व प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व, एशियाई तथा भारतीय संस्कृति-साहित्य आदि विषयों पर स्वतंत्र एवं मौलिक चिंतन-मनन करने की दृष्टि से है, यद्यपि इन्होंने संस्मरण, फ़ीचर और निबंध-साहित्य की श्रीवृद्धि में भी योग दिया है। आलंकारिकता तथा भाव-प्रवणता इनकी शैलीगत विशेषताएँ हैं। अब तक इनकी शताधिक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें 'कालिदास का भारत', 'विश्व को एशिया की देन', 'विमेन इन ऋग्वेद' (अँग्रेजी में) प्रमुख है।

उपाध्याय, रामचरित *(हिं० ले०)* [जन्म—1875 ई०; मृत्यु—1938 ई०]

ये गाज़ीपुर के थे। इन्होंने संस्कृत का विशेष अध्ययन किया और खड़ीबोली तथा ब्रजभाषा पर समान अधिकार प्राप्त किया। खड़ीबोली में इनकी स्फुट कविताएँ 'सरस्वती' (दे०) तथा अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं। इनकी प्रशस्त सूक्तियाँ इनकी 'सूक्ति-मुक्तावली' में गंफित है। इन्होंने 'महाभारत' (दे०) के आधार पर 'देवी द्रौपदी' नामक उपन्यास लिखा, और अपने महाकाव्य 'रामचरित-चिन्तामणि' में श्रीराम को मानव के रूप में चित्रित कर राजनीतिक दृष्टिकोण को उपस्थित किया है। खड़ीबोली के विकास तथा राष्ट्रीय जागरण में इनका योगदान है।

उपायन *(गु० कृ०)* [प्रकाशन—1962 ई०]

'उपायन' गुजराती के मान्य विद्वान एवं सुप्रसिद्ध आलोचक श्री विष्णुप्रसाद त्रिवेदी (दे०) द्वारा रचित एवं उन पर लिखे गए लेखों का संग्रह है। अभिनंदन ग्रंथ-रूप इस संग्रह का प्रकाशन श्री त्रिवेदी की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर किया गया था।

चार खंडों में विभक्त इस ग्रंथ के प्रथम भाग में विष्णुप्रसाद के साहित्य-विषयक तात्त्विक लेख हैं। दूसरे खंड में उनके 'गुजरातनो चिंतनात्मक गद्य' नामक पुस्तक के लेख संगृहीत है। तीसरे तथा चौथे खंड में क्रमश: उनके समीक्षात्मक और उनके जीवन के विविध पहलुओं पर लिखे लेख संकलित हैं। आलोच्य संग्रह में संगृहीत उमाशंकर जोशी (दे०) के लेख में उनकी विवेचन-प्रवृत्ति का समुचित मूल्यांकन किया गया है। एक अन्य लेख इनके समग्र साहित्य का परिचय देने की दृष्टि से अत्यंत मूल्यवान है। श्री विष्णुप्रसाद जी के 68 लेखों का अकादमी पुरस्कार-प्राप्त यह ग्रंथ इनकी संपूर्ण साहित्य-प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराने वाला महत्वपूर्ण प्रकाशन है।

उपालि *(पा० पारि०)*

यह पाटलिपुत्र का नापित कुमार था जो शाक्य-राजकुमारों के साथ भगवान् बुद्ध से प्रव्रज्या लेने गया था। इसके माता-पिता ने भिक्षुक व्यवसाय को सर्वसरल समझ कर इस वृत्ति को स्वीकार करने का आदेश दिया था। भगवान् ने इसे स्वयं 'विनयपिटक' (दे०) पढ़ाया था। 'विनय' में इसकी गति अप्रतिहत थी और उसमें इसे सर्वाधिक प्रामाणिक माना जाता था। अंतर्दृष्टि विकसित कर लेने के कारण इसे अरहंत (दे० अरहत्) पद प्राप्त हुआ था। प्रथम संगीति में इसने महत्वपूर्ण योगदान दिया था और यह स्वयं कई उदानों के प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध है।

उमयम्मराणी *(मल० पा०)*

महाकवि उळ्ळूर् (दे०) का ऐतिहासिक महाकाव्य 'उमाकेरळम्' (दे०) उमयम्मराणी तथा केरल-वर्मा की कथा के आधार पर रचा गया है। इस काव्य का अवलब अशत जनश्रुति है। 'उमा' रानी अठारहवी शताब्दी के त्रावनकोर-नरेश आदित्य वर्मा की दृढचित्त बहन थी। आदित्य वर्मा को कुछ छलप्रपचियो ने षड्यंत्र करके मार डाला। तब रानी को शासन की बागडोर सँभालनी पडी। राजा की हत्या के बाद कपटियों ने रानी की पाँच नन्ही सतानो को भी छल से मार डाला। तब, रानी सुरक्षा की खातिर दूर-दूर और बचकर रहने लगी। इसी समय एक राज्यलोभी मुगल ने देश पर धावा बोला। इस पर रानी ने सच्चे हितकारी मत्री तपान की मदद से उत्तर केरल के वीर केरल वर्मा को सहायतार्थ बुलाया। रानी की रूपसी भानजी का आक्रमणकारी मुगल द्वारा हरण नयी विपत्ति का कारण बना। मगर उस राजकुमारी की सूझबूझ और वीरता ने मुगल की जीवनलीला समाप्त कर दी। केरल वर्मा की धाक से देश मे शाति स्थापित हुई। रानी ने अब नवागतुक अँग्रेज कपनी को जरूरी सुविधाएँ देकर देश का वैभव बढाया।

इस काव्य मे उमयम्मराणी का चित्रण एक श्रेष्ठ कुलागना और माता के रूप मे किया गया है। त्रावनकोर राजवश की किसी अन्य रानी को कथा का मुख्य पात्र बनाते हुए काव्य रचने का प्रयास इसके पहले नही हुआ।

उमर अलीशा *(ते० ले०)* [जन्म—1885 ई०, मृत्यु—1945 ई०]

मोहिउद्दीन और चाँद बीबी के पुत्र उमर अलीशाह ने मातृभाषा उर्दू होते हुए भी, तेलुगु मे लगभग 50 पुस्तकें लिखी हैं। वे सोलहवें वर्ष से ही लिखने लग गए थे और अठारह वर्ष की अवस्था मे इनका 'मणिमाला' नामक नाटक प्रकाशित हो चुका था। ये स्वतत्र स्वभाव के व्यक्ति थे, अत कही कोई नौकरी नही की। 1934 से अखिल भारतीय शासन परिषद् के सदस्य मनोनीत हुए और आजीवन सदस्य बने रहे। 1939 मे इटरनेशनल अकेडेमी आफ अमेरिका की ओर से डी०लिट्० की उपाधि से गौरवान्वित हुए। उमर अलीशा प्रभावशाली वक्ता थे और उनका भाषा पर पूर्ण अधिकार था।

इनके नाटको मे 'मणिमाला', 'विचित्र बिल्हणीयमु', 'चद्रगुप्त', 'महाभारत कौरवरगमु', 'अनसूया देवी' और काव्यो मे 'उमरखैयाम', 'पैगम्बर मुहम्मद की जीवनी', 'सूफी-वेदात दर्शन', 'सर्गमाता', 'ब्रह्मिणीदेवी', 'श्रीमद्वाल्मीकि रामायण' (वाल्मीकि रामायण का अनुवाद) उल्लेखनीय हैं।

उमर अलीशा की कविता सरस, मनोहर तथा प्रवाहयुक्त होती है। इस मुसलमान कवि ने तेलुगु साहित्य की अपूर्व सेवा की है।

उमरवाडिया, बटुभाई *(गु० ले०)* [जन्म—1899, मृत्यु—1950 ई०]

बटुभाई उमरवाडिया गुजराती साहित्य के सर्वप्रथम एकाकीकार थे जिन्होने 1922 मे 'लोमहर्षिणी' नामक एकाकी लिखकर गुजराती साहित्य मे एक सर्वथा नयी विधा का श्रीगणेश किया। इसके पश्चात् पाँच वर्ष की अवधि मे इन्होने 'मत्स्यगधा अने बीजा नाटको' तथा 'मालादेवी अने बीजा नाटको' नामक दो एकाकी-सग्रह साहित्य-जगत को और भेंट किए। मत्स्यगधा' को छोडकर शेष सभी एकाकियो की कथावस्तु काल्पनिक है। इनके सभी नाटको मे इनकी सौंदर्यप्रियता और रोमानी प्रकृति के दर्शन होते है। इनके नारी पात्र अधिक गतिशील और आकर्षक है पर पुरुष पात्रो की अपेक्षा अधिक उदात्त नही है। इब्सन की भाँति कथावस्तु मे चमत्कारपूर्ण विचार से आकस्मिक परिवर्तन लाने का कौशल इनके एकाकियो मे सर्वत्र दिखाई देता है। एकाकी नाटको के अतिरिक्त बटुभाई ने 'रसगीतो', 'वातोनु वन', 'गुजरातना महाजनो' और 'कीर्तिदाने कमलना पत्रो' नामक ग्रथो मे काव्य, कहानी, रेखाचित्र तथा विवेचन प्रस्तुत कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। इन्होंने 1927 मे अचानक लिखना बद कर दिया किंतु फिर भी गुजराती एकाकी के क्षेत्र मे इन्होने जो सफल प्रयोग किए उनके कारण इनका नाम गुजराती नाटको के विकास-कर्ताओ मे सदा लिया जाता रहेगा।

उमराव-जान-अदा *(उर्दू० कृ०)*

उमराव जान अदा एक वेश्या थी। वह काव्य-प्रेमी होने के अतिरिक्त बहुत रसिक स्वभाव की युवती थी। मिर्जा रुसवा का यह उपन्यास उसी वेश्या उमराव जान अदा को केंद्र-बिंदु बनाकर लिखा गया है। उमराव जान अदा की भेंट मिर्जा रुसवा से एक कवि-सम्मेलन मे

हुई। अपने संबंध में जो कुछ उमराव जान अदा ने मिर्ज़ा रुसवा को बताया, उसे लेखक ने वैसा ही लिख लिया और बाद में उसे एक औपन्यासिक कृति का रूप दे दिया।

उमराव जान अदा फ़ैज़ाबाद के किसी मुहल्ले में रहती थी। उसके पिता बहू बेगम के मक़बरे पर नौकर थे और लोग उन्हें जमादार कहते थे।

इस कृति में वेश्या-वृत्ति के परिणामों को उजागर करने का प्रयत्न किया गया है। एक वेश्या के मुँह से ही उसकी जीवन-गाथा औपन्यासिकता का परिधान देकर कहलाई गई है। कृति की भाषा परिमार्जित, मुहावरेदार तथा रसीली है। कहीं-कहीं संवाद भी हैं जिनमें तीखे व्यंग्य का विधान है—वेश्या-जीवन की विवशता और असहायता तथा लाचारी में इस नरक में पड़ी हुई स्त्री की मनःस्थिति का मार्मिक चित्रण इस रचना में हुआ है।

उमराव-जान-'अदा' *(उर्दू० पा०)*

'उमराव-जान-'अदा' मिर्ज़ा रुसवा के प्रसिद्ध उपन्यास 'उमराव-जान-अदा' की नायिका है जो अपनी व्यथा-गाथा स्वयं सुनाती है। इसका जन्म फ़ैज़ाबाद के एक सच्चे, सीधे और शरीफ़ मुसलमान-परिवार में हुआ है। इसका बचपन का नाम अमीरन था। दिलावर खाँ नामी बदमाश द्वारा अपहृत की गई आठ वर्षीया अमीरन लखनऊ की प्रसिद्ध वेश्या खानम के यहाँ बेच दी गई थी। खानम ने ही इसका नाम अमीरन से उमराव-जान कर दिया था। शायरा अथवा कवयित्री होने के नाते 'अदा' इसका तख़ल्लुस (उपनाम) था। शरीफ घराने की भोली-भाली लड़की अमीरन, जिसका विवाह तय हो चुका था, भविष्य के मीठे-मीठे सपने सँजोती हुई अनायास पतन के इस गर्त में आ गिरी थी।

खानम के घर उमराव जान को संगीत की शिक्षा मिली और काव्य-कला के प्रति रुचि विकसित हुई। ख़ानम के चकले पर अपने एक हमजोली गौहर मिर्ज़ा के प्रति इसके मन में अनायास ही मधुर भाव जाग उठे थे। यह वेश्या बन गई थी पर इसका स्वभाव वेश्याओं जैसा नहीं था। पर यह पूर्णतया सफल गृहिणी भी नहीं बन सकी थी। इसके स्वभाव में रुचियों के विरोधाभास पाए जाते है। यह अपने इस बाजारी जीवन से असंतुष्ट रहती थी। फ़ैज़ू के साथ इसका पलायन इसके मन की घुटन की प्रतिक्रिया है। यह फिर लखनऊ लौट आती है।

उमराव जान ने दुनिया देखी है। उसके अनुभव विकसित-व्यापक और परिपक्व हैं। यह अपने आपको दलित, घृणित एवं पतित अनुभव करती है। आत्म-सम्मान, दार्शनिक तथा धार्मिक भाव इसके चरित्र के आभूषण हैं। यह सहानुभूति की पात्र है।

उमरुप्पुलवर *(त० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती ई०]

तमिल साहित्य के परवर्ती काल में विकसित मुस्लिम धारा के लेखकों में इनका नाम प्रमुख है। ये तमिलनाडु के 'रामनाथपुरम्' नगर के पास 'कीळैक्करै' गाँव में रहते थे। इस गाँव के प्रसिद्ध दानी मुस्लिम-सामंत 'चीतक्काति' इनके आश्रयदाता थे जिनके बारे में यह लोकोक्ति प्रचलित है कि 'मरने के बाद भी ये याचकों को दान देते रहे'। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'एट्टयापुरम्' के ज़मींदार से भी संभवतः आश्रय पाया था क्योंकि इस ज़मींदार के एक दरबारी कवि 'कटिकैमुत्तु' इनके गुरु माने जाते हैं।

इनकी महत्त्वपूर्ण काव्य-रचना 'चीराप्पुराणम्' है जो मुहम्मद नबी के जीवन-वृत्तांत को महापुराण के आकार में प्रस्तुत करती है। तमिल भाषा के सुप्रसिद्ध महाकाव्यों की शैली में इसकी रचना की गई है। इसमें कुल 5026 पद्य हैं जो तीन कांडों में विभाजित हैं। अरबी संस्कृति से संबंधित शब्द यथेष्ट मात्रा में इस काव्य में मिलते हैं पर साथ ही तमिल के प्रादेशिक वातावरण और रीति-नीतियों का उल्लेख भी इसमें द्रष्टव्य है। पूर्ववर्ती तमिल काव्यों से, विशेषकर 'कुरळ' एवं 'कंबरामायणम्' से, प्रभाव-ग्रहण स्पष्टतः परिलक्षित है। उदाहरण के लिए मुहम्मद से शादी करने के पहले खदीजा बीबी के हृदय में 'पूर्वराग' जागृत होता है और प्रेमविह्वल नायिका के रूप में उसका सुंदर चित्रण हुआ है। यह प्रसंग विशुद्ध रूप से तमिल साहित्य की परंपरा के अनुकूल बैठता है।

'एक पंगु की आत्मकथा' के रूप में रचित 'नोणटि नाटकम्' (नृत्य के लिए योग्य पद्य-रचना) भी इनकी लिखी कही जाती है पर विद्वानों ने इसे प्रामाणिक नहीं माना।

उमरो-ऐयार *(उर्दू० पा०)*

आधुनिक राजनीति में जिसे गुप्तचर्या कहते हैं पुरानी दास्तानों में उसी का नाम ऐयारी था। तरह-तरह के रूप बदलकर शत्रु के संबंध में महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त करने तथा शत्रु की योजनाओं को विफल करने में

सिद्धहस्त पात्र ऐयार कहलाते थे ।

'तिलिस्म-ए-होशरुबा' में कार्य कर रहे गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष है उमरो-ऐयार । 'चालाक', 'बर्क', 'मेहतर कुरआन', 'जाँसोज-बिन-कुरआत' और 'जरगाम' सब इसके सहयोगी हैं। ये सब लोग वही काम करते हैं जो प्रथम महायुद्ध में हिटलर के प्रतिनिधि करते थे ।

उमरो-ऐयार अपने साथियो के साथ अमीर हमज़ा की विजयो का मार्ग प्रशस्त करता रहता है । उमरो-ऐयार एक सफल कूटनीतिज्ञ है। यह बडी होशियारी से सम्राट 'कोक्व' को अपनी ओर गाँठ लेता है और उसकी सहायता से सेनापति 'असद' को शत्रु की कैद से मुक्त करता है। उमरो को अमीर-हमजा तथा उसकी सतान से हार्दिक प्रेम है । यह सदा उनका हित-साधन करता है । उसकी कल्पना अत्यत उर्वर है जिससे वह नई-नई उद्भावनाएँ करता है । उसका चरित्र विरोधाभासपूर्ण है । उसमें हास्य भी है, गाम्भीर्य भी, कायरता भी है, साहस भी, निष्ठुरता भी है, मृदुता भी । कभी-कभी वह ऐसी चेष्टाएँ करता है कि सारा सम्मान नष्ट कर बैठता है और कभी ऐसा तेजस्वी रूप दिखाता है कि दिलो पर छा जाता है ।

उमा *(त० पा०)*

'उमा' अखिलन् (दे०) कृत 'पावैविळक्कु' (दे०) नामक चरित्र-प्रधान उपन्यास की नायिका है। उपन्यास का शीर्षक पावैविळक्कु (दीपधारिणी) उमा की ओर ही सकेत करता है। उमा एक आदर्श नारी है। वह कलाप्रिय है। कला के लिए अपना सर्वस्व त्यागने के लिए तत्पर हो जाती है। कलाकार तणिकाचलम् की कृतियो के माध्यम से वह उनकी ओर आकृष्ट होती है। धीरे-धीरे उनका प्रेम-सबध दृढ होता जाता है। अत मे यह तणिकाचलम् को पति-रूप मे पा लेती है। सुहागरात के समय वह अपने पति से कहकर कि 'आज मेरा जीवन सफल हो गया', अपने प्राणो का त्याग कर देती है। उमा आदर्श प्रेमिका है। उसका प्रेम मासल एव स्थूल नही अपितु अतीन्द्रिय एवं सूक्ष्म है। उमा के चरित्र के माध्यम से लेखक ने यह बताना चाहा है कि भावुकता के बल पर प्राप्त सफलता अल्पकालिक होती है। उमा के रूप मे अखिलन् ने एक आदर्श प्रेमिका, कला-प्रेमी और त्यागमयी नारी का चरित्र प्रस्तुत किया है।

उमाकेरळम् *(मल० कृ०)*

इसके रचयिता उळ्ळूर् (दे०) एस० परमेश्वरय्यर् है और प्रकाशन वर्ष 1914 ई० । मलयाळम के उत्तम महाकाव्यो मे परिगणित तथा इतिहास के आधार पर रचित यह प्रथम महाकाव्य है। कवि ने ऐतिहासिक घटनाओ के मार्मिक वर्णन की अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है। घटनाओ की विशेषता, भावना की विदग्धता, अलकार-प्रयोग आदि मे इसका स्थान अग्रणी है। कथा के चयन मे भी कहीं-कही कवि ने स्वतत्र चेतना का प्रमाण दिया है। वर्णनाओ मे विविध रसो का परिपाक दृष्टिगोचर होता है। इसके उन्नीस सर्ग, आदि से अत तक आकर्षक है। इसकी रचना मणिप्रवाळ (दे०) शैली मे हुई है। सस्कृत महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' (दे०) के समान प्रस्तुत कृति भी काव्य-मडल मे अपनी आभा से प्रकाशमान है।

उम्माच्चु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1952 ई०]

यह उरूब (दे०) का लोकप्रिय सामाजिक उपन्यास है। इसका कथानक एक मध्यवर्गीय मुस्लिम गृहिणी उम्माच्चु (दे०) के सघर्षमय जीवन पर केंद्रित है। उम्माच्चु का विवाह उसके इष्ट पुरुष मायन् (दे०) से न होकर एक अन्य पुरुष से हो जाता है। बाद मे उसके सहयोग से मायन् उसके पति की रहस्यपूर्ण हत्या करता है और उससे विवाह कर लेता है। परतु मायन् को जब यह पता लग जाता है कि उम्माच्चु के पिछले दापत्य से उत्पन्न पुत्र अपने पिता की हत्या का रहस्य जानता है तो वह आत्महत्या कर लेता है। उम्माच्चु के पुत्र आपस मे लडते है और उसका जीवन दूभर हो जाता है।

यह उरूब का सबसे महत्वपूर्ण उपन्यास है। यद्यपि इसकी कथावस्तु उपन्यासकारो के प्रिय विषय प्रेम-त्रिकोण पर आधारित है तथापि मानवीय पहलुओ पर इतना प्रकाश डालने वाले उपन्यास मलयाळम मे दुर्लभ है। अन्तर्द्वंदो मे उलझे हुए व्यक्तियो के कष्टमय जीवन का प्रभावशाली चित्रण इसमे किया गया है। इसकी सहज सरल भाषा-शैली भी पुस्तक की लोकप्रियता का एक मुख्य कारण है। मलाबार के बहुरगी ग्राम-जीवन का भी इसमे सुदर चित्रण हुआ है।

मलयाळम मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित उपन्यासो मे यह सर्वप्रथम है और प्रकाशन की इस विधा मे अनेक महत्वपूर्ण उपन्यासो के लिए पथ-प्रदर्शक भी है।

इसका फिल्मीकरण भी हुआ है ।

उम्माच्चु *(मल० पा०)*

यह उरूब (दे०) के इसी नाम के उपन्यास (दे०) की प्रमुख स्त्री-पात्र है । इसका लगाव मायन् (दे०) से है, पर इसका विवाह बीरान से हो जाता है । यह पति से विमुख होकर सारा स्नेह अपने पुत्र अब्दु को अर्पित करती है । मायन् इसकी सहायता से बीरान की हत्या करता और इससे विवाह करता है । बाद में वह अपनी अपराध-भावना का शिकार होकर आत्महत्या कर लेता है । यह दोनों पतियों से उत्पन्न संतानों की घृणा की पात्र बनती है । पुत्र आपस में लड़ते हैं और इसको चैन नहीं मिल पाता ।

यह नारी-जीवन के अनंत कष्टों का प्रतीक है। इसके भाग्य में सुख नहीं है । सुखद समझकर किए जाने वाले कार्य बाद में दुःखद सिद्ध होते हैं । हर दिशा से इस पर अविश्वास-भरी दृष्टियाँ पड़ती हैं । इसके मन को कभी भी शांति नहीं मिलती ।

उयिरोवियम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1948 ई०]

'उयिरोवियम्' (सजीव चित्र) नारण दुरै कण्णन्-कृत एक सामाजिक नाटक है। लेखक ने मूलतः इसकी रचना उपन्यास के रूप में की थी । 1948 ई० में उन्होंने इसे नाटक का रूप दिया था । इसमें प्राचीन तमिल साहित्य में वर्णित नर-नारी के स्वतंत्र प्रेम को वर्तमान समाज के अनुरूप परिवर्तित कर प्रस्तुत किया गया है। नायिका कर्पकम् सामाजिक बंधनों के कारण नडराजन के प्रति अपने प्रेम को माता-पिता के सम्मुख नहीं अभिव्यक्त कर पाती है । चंद्रशेखर से विवाह हो जाने के उपरांत भी वह नडराजन को नही भुला पाती है । कर्पकम् और नडराजन के सच्चे प्रेम को देखकर चंद्रशेखर उन दोनों के मध्य से हट जाने का यत्न करता है । कर्पकम् के सम्मुख समस्या है कि अब वह क्या करे ? लेखक ने युवा दंपति द्वारा भाई-बहिन के रूप में रहने की प्रतिज्ञा कराके समस्या का नवीन समाधान प्रस्तुत किया है। इस नाटक के दो प्रभावशाली पात्र है—कर्पकम् और चंद्रशेखर। नाटक के कलेवर मे द्रौपदी नामक अन्य लघु नाटक का समावेश कर लेखक ने अपने रचना-कौशल का परिचय दिया है । इस नाटक मे अनेक दृश्य हैं परंतु वे लघु एवं सरस है । इसमें अनेक विनोदपूर्ण स्थल हैं । नाटक में प्राप्त गीतों की रचना कु० चा० कृष्णमूर्ति ने की है। इसमें तत्कालीन तमिल समाज में प्रचलित अंग्रेज़ी मिश्रित तमिल भाषा का प्रयोग किया गया है । नाटक का अंत बहुत प्रभावशाली है। इसके माध्यम से लेखक ने यही बताना चाहा है कि कन्या की इच्छा के विरुद्ध किसी युवक से उसका विवाह कर दिए जाने से उसका जीवन नष्ट हो जाता है। तमिल नाटक साहित्य में 'उयिरोवियम्' का विशिष्ट स्थान है ।

उरिप्पोरुळ् *(त० पारि०)*

तमिल काव्य-परंपरा के उद्‌गम-काल से उसके दो बृहत् विभाग चले आ रहे हैं—एक 'अहम्' (शृंगार तथा तत्संबंधी विषय) और दूसरा 'पुरम् (शृंगार तथा तत्संबंधी विषयों से इतर क्षेत्र) । इनका विवेचन प्राचीनतम 'तोलकाप्पियम्' नामक व्याकरण-ग्रंथ में 'पोरुळ्' शाखा के अंतर्गत मिलता है (दे० अहप्पोरुळ्) ।

ये दोनों विभाग, सात-सात उपविभागो में बाँट दिये जाते हैं । शृंगार-संबंधी उपविभागों के काव्य-लक्षणों के विवेचन 'मुतल पोरुळ्' (उपविभाग से संबंधित प्रदेश और समय) 'करुप्पोरुळ्' (संबंधित देवता, पशु-पक्षी,, इत्यादि) और 'उरिप्पोरुळ्' (नायक-नायिकाओं के आचरण विशेष) इन तीनों का पर्याप्त परिचय मिलता है ।

'अहम्' के सात उपविभागों के लिए नायक-नायिकाओं के आचरण विशेष इस प्रकार हैं—

उपविभाग	आचरण-विशेष
1. कैक्किळै	एकपक्षीय प्रेम जो बहुधा पुरुष द्वारा काम-वासना रहित बाला के प्रति अथवा अपने योग्य सुंदरी के प्रति पहली भेंट में जागता है ।
2. पेरुंतिणै	अनुचित प्रेम जो पुरुष के विशेष प्रकार के आत्मघात—'मडलेरुतल्'—में अथवा हिंसा-जन्य मिलन इत्यादि में परिणत होता है ।
3. कुरिंचि	पर्वतीय प्रदेश में प्रेमियों का मिलन और कामोपभोग ।
4. पालै	मरुभूमि में प्रेमियों का वियोग ।
5. मुल्लै	घरों से संबद्ध बगीचे आदि आराम-भूमि में प्रेमिका द्वारा गार्हस्थ्य जीवन का वियोग सहन ।
6. नेय्तल्	समुद्र-तटवर्ती प्रदेश में प्रेमिका द्वारा वियोग-जन्य दुःख की अभिव्यक्ति अथवा विलाप ।

7 कृषक भूमि मे प्रेमीजनो के गार्हस्थ्य जीवन-गत पारस्परिक मनस्ताप ।

इन सात उपविभागो को आर्यजाति की आठ प्रकार की विवाह्-पद्धतियो के समानातर बताया गया है। प्रथम विभाग मे ऐसे आचरण हैं जो आसुर, राक्षस तथा पैशाच विवाह प्रथाओ के अनुकूल हैं। दूसरे मे ऐसे कृत्य है जो ब्रह्म, प्राजापत्य आर्य तथा दैव वैवाहिक प्रथाओ के अनुकूल हैं। शेष पाँच उपविभाग, जो 'ऐतिणैं' कहलाते हैं, पारस्परिक प्रेम से सबधित होकर गधर्व-विवाह पद्धति के समकक्ष हैं। 'कैक्किळै' तथा 'पेरुनिणैं' दोनो असाधारण प्रेम से सबधित हैं और तमिल कविता मे इन पर बहुत कम पद्य मिलते हैं।

अधिकाश कविताओ का विषय पारस्परिक प्रेम के पाँच उपविभागो से जुडा हुआ है। 'मुतल्', 'करु' तथा 'उरिप्पोरुळ्'—ये तीनो लक्षण इन पाँच उपविधाओ पर नियमत लागू होते हैं। प्रेमियो का सुखानुभव 'कुरिंचि' के पर्वतीय वातावरण मे प्रस्तुत किया जाता है। उनका बिछोह जलती मरुभूमि पर चित्रित होता है। 'मुल्लै' नामक लघु-वनो की पृष्ठभूमि मे प्रेमिका के गृहस्थ-जीवन एव वियोग सहन का वर्णन किया जाता है।

समुद्र तथा उसका आवरण-रूप तट चाँदनी एव अधकार के सदृश लगते है और प्रेमिका का विरह दुख बढाते हैं। कृषक भूमि प्रेम-जीवन के वैवाहिक सुख तथा उसमे निहित साधारण कलह-विवादो का स्थान है। स्पष्ट है कि पाँचो उपविभागो मे निहित प्रेमी-जीवन के जलवाता नुकूल आचरण-विशेषो का समायोजन अत्यत प्राचीनकाल मे ही हो गया था जो अततोगत्वा रूढ बनकर काव्य-लक्षण के रूप मे व्याकरण ग्रथो मे भी प्रतिष्ठित हुआ। 'उरिप्पोरुळ्' के नियम तमिल की स्वतत्र परपरा मे उद्दीपन की सुगठित योजना के परिचायक हैं।' 'तोलकाप्पियम्' ने स्पष्टत इन नियमो को 'कविसमय' के रूप मे ग्रहण किया है जो साहित्यिक परपरा तथा लोकव्यवहार दोनो पर आधारित है।

उरुभग (स० कृ०) [समय—तीसरी शताब्दी ई०]

महाकवि भास (दे०) की तेरह नाट्यकृतियो मे 'उरुभग' भी एक है। 'उरुभग' एकाकी है जो 'उत्सृष्टिकाक की कोटि मे आता है। इसमे नाटककार ने समय और स्थान की अन्विति का पालन किया है। सस्कृत-नाट्य परपरा मे दुखात नाटक के लिए स्थान नही है, पर भास ने यह एकाकी लिखकर उस परपरा का अतिक्रमण किया है।

'उरुभग' मे भीम और दुर्योधन के भयकर गदा-युद्ध की कथा वर्णित है। भीम द्वारा दुर्योधन की जघाओ का भजन ही इस नाटक का प्रतिपाद्य है। उरुभग का दृश्य बडा लोमहर्षक है। दुर्योधन की करुण मृत्यु पर उसके पुत्र एव पत्नियो का विलाप बडा ही हृदयद्रावक एव करुणोत्पादक है।

सस्कृत मे एकाकी परपरा का यह प्रथम रूपक है। इससे परवर्ती नाटककारो को एकाकी रचना की प्रेरणा मिली।

उरूब (मल० ले०) [जन्म—1915 ई०]

मलयाळम के प्रसिद्ध कहानीकार, उपन्यासकार और कवि पी०सी० कुट्टिकृष्णन् बाद मे 'उरूब' के नाम से प्रसिद्ध हुए। आजकल ये 'कुकुमम्' साप्ताहिक के सपादक हैं।

उरूब का उपन्यास 'सुदरिकळुम्' सुदरन्मारुम्' (दे०) साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत रचना है। 'उम्माच्चु' (दे०) दूसरा मुख्य उपन्यास है। 'कुञ्ञम्मयुम् कूट्टुकारुम्', 'मिंटाप्पेण' आदि उपन्यास, 'तेन्मुळ्ळुकळ', 'कतिर्कट्ट' आदि कहानी सग्रह और 'पिरनाळ्' कविता सग्रह इनकी अन्य उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इनके कई उपन्यास और कहानियो का फिल्मीकरण भी हुआ है।

सामाजिक जीवन की विशाल पृष्ठभूमि मे मानवीय प्रकृति के गहरे भावो को काव्य-भगिमा के साथ चित्रित करने मे उरूब सफल हुए हैं। उरूब की कहानियो के पात्र मलाबार के मध्यवर्गीय समाज के सदस्य हैं। सहज और अकृत्रिम रचना-शैली इनके लेखन का वैशिष्ट्य है। ग्रामीण वार्तालापो द्वारा घटनाओ के अतस्तल तक पहुँचने की इनकी क्षमता बेजोड है। अनेक कहानीकारो और उपन्यासकारो के लिए ये पथ-प्रदर्शक रहे हैं।

उर्दू-ए-मुअल्ला (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1869 ई०]

'उर्दू-ए-मुअल्ला' मिर्जा-असदउल्लाह्-खाँ 'गालिब' (दे०) के पत्रो का दूसरा सग्रह है। यह मिर्जा के देहात के पश्चात् दो खडो मे प्रकाशित हुआ था। प्रथम खड 1869 ई० मे मिर्जा के निधन के केवल 19 दिन बाद छपा था। यही खड दूसरी बार 1891 ई० मे प्रकाशित हुआ था। इसमे 464 पृष्ठ थे। दूसरा खड 1899 ई० मे प्रकाशित हुआ था। इस खड को मौलाना 'हाली' (दे०) पानीपती

ने व्यवस्थित रूप दिया था। इसमें कुल 56 पृष्ठ हैं। इस खंड में विशेषकर वे पत्र संगृहीत है जिनमें उन्होंने शिष्यों को इसलाहें दी हैं या काव्य-संबंधी मार्ग-दर्शन प्रदान किया है अथवा कोई विशेष उल्लेखनीय बात कही है। इसके अतिरिक्त कुछ पुस्तकों की भूमिकाएँ तथा समीक्षाएँ भी हैं।

सन् 1929 ई० मे लाहौर से शेख मुबारिक अली ने दोनों खंडों को इकट्ठा करके प्रकाशित किया था। इसके अंत में एक परिशिष्ट भी सम्मिलित किया गया था जिसमें 23 अप्रकाशित पत्र थे।

मिर्जा 'ग़ालिब' के पत्रों का उर्दू-गद्य में महत्व-पूर्ण स्थान है। 'गालिब' मौलिक शैली के प्रवर्तक थे। उनकी पत्र-लेखक की निजी शैली है जिसका अनुकरण कोई अन्य लेखक नहीं कर सका। संवादात्मकता, सहजता, जीवन का प्रतिनिधित्व, हास्य तथा विदग्धता 'गालिब' की शैली के विशेष गुण हैं। उन्होंने प्रचलित शैली के दीर्घ संबोधन त्याग दिए और हजरत, भाई, यार, मियाँ, आदि शब्दों से संबोधन कर आशय व्यक्त कर देने की शैली अपनाई। ग़ालिब अपने पत्रों के कारण अमर रहेंगे।

उर्दू जबान और फ़नेदास्ताँगोई *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1944 ई०]

'फ़नेदास्तांगोई' सुप्रसिद्ध लेखक कलीमुद्दीन अहमद (दे०) की उत्कृष्ट पुस्तक है। इस पुस्तक में सबसे पहले कथा-साहित्य की आलोचना की गई और कथा-साहित्य के विभिन्न पहलू उजागर किए गए हैं तथा कथा-साहित्य के विभिन्न स्वरूपों पर विचार किया गया है। यह पुस्तक लेखक की अनुसंधानात्मक सूझ-बूझ एवं आलोचनात्मक दृष्टि का संकेत देती है।

उर्दू ड्रामा और स्टेज *(उर्दू कृ०)* [प्रकाशन-काल—1957 ई०]

'उर्दू ड्रामा और स्टेज' सैयद मसऊद हसन रिजवी 'अदीब' (दे०) की रचना है। जैसाकि इस पुस्तक के नाम से प्रकट होता है इसमें उर्दू नाटक तथा रंगमंच के विकास का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। यह कृति उर्दू साहित्य के इतिहास मे एक मूल्यवान योगदान है। 'उर्दू ड्रामा और स्टेज' पुस्तक के दो भाग है। प्रथम भाग है 'लखनऊ का शाही स्टेज' और दूसरा भाग है 'लखनऊ का अवामी स्टेज—अमानत और इंदर सभा'।

इस पुस्तक में लखनऊ के नाट्य-रंगमंच के प्रवर्तक मिर्जा वाजिद अलीशाह (दे०) का संक्षिप्त परिचय तथा कला-संरक्षण, उर्दू नाटक का प्रारंभ, रामलीला, रहस, भाँडों की नक़्लों आदि का उल्लेख, रंगमंच का क्रमिक विकास, वाजिद अलीशाह द्वारा आयोजित विभिन्न जलसों का वर्णन, उर्दू का प्रथम नाटक, वाजिद अलीशाह द्वारा रचित 'राधा कन्हैया का किस्सा', अमानत तथा उसकी 'इंदर सभा' का उल्लेख विस्तार से किया गया है।

उर्दू तनक़ीद पर एक नजर *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1942 ई०]

स्वच्छंद समीक्षकों में कलीमुद्दीन अहमद (दे०) का नाम अग्रगण्य है और उनकी उत्कृष्ट कृति है 'उर्दू तनक़ीद पर एक नजर'। इस ग्रंथ के प्रारंभिक वाक्य में कलीमुद्दीन ने यह कहकर लोगों को चौंका दिया कि उर्दू साहित्य के अंतर्गत जैसे पहले कविता केवल तफ़रीह का साधन थी, उसी प्रकार आलोचना भी महज गप का साधन है। किंतु उनका अभिप्राय केवल यह बताना था कि उर्दू में असली तनक़ीद पश्चिम से आई है। प्रस्तुत पुस्तक उर्दू आलोचना की एक महत्वपूर्ण कृति है।

इसके दूसरे, तीसरे और चौथे अध्यायों में उर्दू की प्राचीन आलोचना और तजकिरों के गुण-दोष का विवेचन है। पुराने तथा नये तजकिरे का अंतर स्पष्ट किया गया है। 'आबेहयात' (दे०) के संबंध में यह उक्ति ध्यान देने योग्य है: 'आबेहयात तनक़ीदी कारनामा नहीं महज तज़किरा है'। पाँचवें से सातवें अध्याय तक उर्दू के आधुनिक आलोचकों की समीक्षा-पद्धति पर विचार किया गया है। उसमें हाली (दे०), शिबली, (दे०) आजाद (दे०) और रशीद अहमद सिद्दीकी (दे०) के आलोचना-सिद्धांतों के गुण-दोष की चर्चा है। आठवें अध्याय मे पाश्चात्य प्रभाव से समन्वित डा० ज़ोर (दे०) की पुस्तक 'रूहे तनक़ीद', और अब्दुल कादिर सरवरी की 'दुनियाए अफ़साना' के दोषों की ओर कड़ी नजर डाली गई है। नवें अध्याय मे प्रगतिशील समीक्षकों की आलोचना-पद्धति का मूल्यांकन है। इससे पूर्व शायद ही किसी ने मार्क्स और लेनिन की इतनी कड़ी आलोचना की हो।

उर्दू के तीन प्रगतिशील समीक्षकों—अख्तर हुसैन रायपुरी, मजनूं गोरखपुरी और सैयद एहतेशाम हुसेन (दे०) की समीक्षा-पद्धति पर भी विचार किया गया है। कहीं-कहीं ऐसा लगता है पूर्वाग्रह-ग्रस्त दृष्टि से देखने

के कारण इन आलोचकों की आलोचना का एक ही लक्ष्य उभर कर सामने आया है। प्रगतिवादी आदोलन की अधाधुध नक्ल पर कलीमुद्दीन काफी रुष्ट हैं। अगले अध्यायो मे प्रभाववादी समीक्षा की कडी से कडी आलोचना की गई है। इस ग्रथ की रचना मे कलीमुद्दीन के दो उद्देश्य प्रतीत होते है।'

(1) उर्दू तनकीद की कमी सामने आ जाये जिसमे उर्दू के विचारक उसे सही दिशा मे बढाने के लिए प्रयत्नशील हो सकें।

(2) पश्चिमी काव्य-रूपो से तुलना (जैसे उर्दू की गजल और अँग्रेजी की ओड), जिससे लोग उर्दू मे प्रबधात्मक रचना मे प्रवृत्त हो।

इस पुस्तक के अध्ययन से कलीमुद्दीन की आलोचना विषयक मौलिक प्रतिभा के दर्शन होते है। यह उर्दू के आलोचना साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृतियो मे से है।

उर्दू शहपारे *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1929 ई०]

यह पुस्तक प्राचीन दक्कनी उर्दू साहित्य (पद्य व गद्य) का एक प्रकाशित इतिहास है। इसे सैयद मुहीउद्दीन कादिरी 'जोर' (दे०) ने सकलित करके 1929 ई० मे हैदराबाद से प्रकाशित किया था। उर्दू साहित्य मे इसका एक विशिष्ट एव महत्वपूर्ण स्थान है। लेखक को इसकी रचना करने के लिए विभिन्न पाडुलिपियो का गहराई से अध्ययन करना पडा और कितने ही हस्तलिखित कवि-वृत्तात पढने पडे। डा० जोर ने यह पुस्तक लिखकर दक्कनी उर्दू साहित्य की बहुत बडी सेवा की है।

पुस्तक मे उन्होंने कई प्रामाणिक चित्र भी प्रकाशित किए है और मुहम्मद कुली कुतुबशाह की कतिपय गज़लो के सुदर चित्र भी छापे है जिनसे पुस्तक के गौरव की वृद्धि हुई है। 'उर्दू शहपारे' मे उर्दू साहित्य के प्रारभ से कवियो तथा गद्य-लेखको की महत्वपूर्ण कृतियों के सुदर अश चयन करके छापे गए है। पुस्तक के आरभ मे एक प्राक्कथन भी है जिसमे लेखक ने उन कठिनाइयो का वर्णन किया है जिनका सामना सामग्री एकत्र करने मे उसे करना पडा। सारी पुस्तक चार अध्यायो मे विभक्त है। यह कृति 'शहपारे' उर्दू साहित्य-प्रेमियो मे बहुत लोकप्रिय हुई।

उर्दू शायरी पर एक नजर *(उर्दू कृ०)*

उर्दू शायरी पर यह श्री कलीमुद्दीन अहमद की आलोचनात्मक पुस्तक है जिसमे उर्दू शायरी को आधुनिक ढग से देखा-परखा गया है। एक नई शैली म उर्दू शायरी की समालोचना इस पुस्तक मे प्रस्तुत की गई है। शायरी को परखने के लिए इसमे भारतीय और पश्चिमी दोनो ही दृष्टियो के समन्वय का सुदर प्रयास किया गया है। शायरी के विभिन्न अगो तथा रूपो, भाव, भाषा, शैली तथा मुहावरे आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है।

इसकी शैली सहज सरल है। भाषा मे सुबोधता है। उर्दू शायरी के जिज्ञासुओ के लिए यह एक सुदर पुस्तक है और इस दिशा मे उनका पथ प्रदर्शन कर सकती है।

उर्मिला *(क० पा०)*

रामायणदर्शन (दे०) महाकाव्य के यशस्वी कवि श्री कुवेपु (दे०) ने रामायण के अनेक 'काव्येर अनादर' का निराकरण करते हुए अनेक पात्रो मे प्राण भर दिये है जिनमे मुख्य है उर्मिला तथा मथरा। यदि हिंदी साहित्य मे चित्रित उर्मिला विरहिणी है तो कुवेपु की उर्मिला तपस्विनी है। वह आशका प्रतीक्षा भीति, खिन्नता तथा हताशा इन पचाग्नियो के बीच तपस्या कर रही है। रामानुगामी होकर लक्ष्मण के वनगमन से लेकर उनके लौटने तक वह सरयू के किनारे पर्णकुटी बनाकर अपनी तपस्या की रक्षा दे रही है लक्ष्मण, राम और सीता को। वह पति से खुद तपस्या की दीक्षा लेती है। उर्मिला के अचल व्यक्तित्व के समक्ष देवमानव सस्तुत सीता भी झुक जाती हैं। शापग्रस्ता अहल्या के पीछे अचेतनता की रक्षा थी किंतु यहाँ वह भी नही। वह मूक सती है। साकेत की उर्मिला करुणा का पात्र बनती है तो यहाँ वह श्रद्धा एव पूजार्ह बनी है। वह भारतीय नारी की जीवत प्रतिमा है। कुवेपु के अनुसार उर्मिला गोचरातीता है। उसे मथरा के विषचक्र का दुष्परिणाम भोगना पडा। गुप्तजी की भाँति कुवेपु ने भी उर्मिला एव लक्ष्मण के सरस-कोमल जीवन की कल्पना की है। पुष्पवाटिका मे सीता के साथ उर्मिला को भी कवि न दर्शाया है। प्रेमकातरा सीता के आँसू पोछ कर वह उसे सात्वना देती है। उर्मिला का तप-त्याग कुवेंपु के इस काव्य का एक रमणीय रसस्थान है। साकेत की उर्मिला अपने गतयौवन की चिंता कर रही है किंतु कुवेंपु की उर्मिला दैहिक भूमिका से ऊपर उठी है। उर्मिला की चेतना सर्वव्यापी बनकर रामायण की सारी घटनाओ पर प्रभाव डालती है। यह 'रामायणदर्शन' की एक बडी विशे-

षता है। उर्मिला की तपशक्ति राम, लक्ष्मण एवं सीता के लिए यहाँ वज्ररक्षा बनती है, लक्ष्मण जब मूछित होकर गिर पड़ते हैं तब यही तपोलक्ष्मी उनकी रक्षा करती है। 'रामायणदर्शन' में उर्मिला का रोना-धोना नहीं है, यह तो एक परम उदार—गंभीर पात्र है।

उर्मिला *(म० पा०)*

मामा वरेरकर (दे०) के पौराणिक नाटक 'भूमिकन्या सीता' (दे०) का यह चरित्र उपेक्षिता नारियों का प्रतिनिधित्व करता है। नाटककार ने परंपरा-प्राप्त उर्मिला के चरित्र में युगानुरूप कतिपय बौद्धिक परिवर्तन कर इसे तर्कशीला बना दिया है यह अपने पति से अपनी सतत उपेक्षा का स्पष्टीकरण माँगती है। सीता की अग्नि-परीक्षा प्रसंग पर इसका नारी-हृदय चीत्कार कर उठता है। पुरुष की शंकालु वृत्ति नारी-जीवन के लिए अभिशाप क्यों बने, इसके लिए यह गुरुजनों से तर्क करती है। अपने गत यौवन की चर्चा मात्र से इसका हृदय सिहर उठता है। और राम द्वारा सीता के परित्याग के दुःखद समाचार से अवगत हो यह राम-लक्ष्मण को अपने तर्कों से निरुत्तर कर देती है। इसका यह तर्क-वितर्क नारी के सहज अधिकारों के हेतु हैं, इसीलिए यह कह उठती है—निरंतर विडम्बना हो रही है—राम की पत्नी की नहीं, जनकसुता की नहीं, अयोध्या की रानी की नहीं, मेरी लाडली बहन की भी नहीं। क्यों हो रही है यह स्त्री जाति की विडम्बना? संदेह! संदेह! केवल स्त्री-जाति पर ही क्यों संदेह किया जाता है? उर्मिला के चरित्र के माध्यम से नाटककार ने नारी-नवोत्थान की महत्ती भावनाओं को वाणी प्रदान की है। पूर्वनिश्चित प्रारूप में विकसित होने के कारण उर्मिला का चरित्र नाटककार के द्वारा ही परिचालित हुआ है।

उर्मिला *(हिं० पा०)*

मैथिलीशरण गुप्त (दे०) के महाकाव्य 'साकेत' (दे०) की नायिका उर्मिला है। उसी के उपेक्षित चरित्र का उद्‌घाटन करने के लिए 'साकेत' का सृजन हुआ है। कवि ने उसके त्यागमय जीवन का ऐसा भव्य चित्रण किया है कि उसकी तपस्या के सामने राम को अपना वनवास फीका लगता है। उसका यह त्याग संस्कारजन्य न होकर परिस्थितिजन्य है। एक आदर्श कुलवधू के समान उसने कर्तव्य-पालन के लिए अपनी भोगवृत्ति का संयमन किया है। इसी भोगवृत्ति से उसके विरह में भी 'यौवन-सुलभ विकलता और चंचलता' का समावेश हो गया है। कवि ने युग की माँग के अनुरूप उसके वीरांगना-रूप की कल्पना भी की है। संपन्न-सांस्कृतिक परिवार की पृष्ठभूमि में उसके चरित्र का विकास और मनःस्थिति का विश्लेषण इतनी सिद्ध लेखनी से किया गया है कि राम सीता के रहते हुए भी 'साकेत' उर्मिला-प्रधान काव्य बन गया है।

उर्वशी *(सं० पा०)*

'ऋग्वेद' (दे० संहिता) में उर्वशी शब्द का प्रयोग अनेक बार व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में हुआ है। इस वेद के दशम मंडल में 'उर्वशी-पुरुरवा' संवाद है। सातवें मंडल में बताया गया है कि इससे वसिष्ठ उत्पन्न हुआ। पद्मपुराण, मत्स्यपुराण आदि में भी इससे वसिष्ठ और अगस्त्य की उत्पत्ति बतायी गयी है। नारायण की उरु (जंघा) से उत्पन्न होने के कारण इस अप्सरा का नाम उर्वशी पड़ा। अनेक पुराणों में उर्वशी और पुरुरवा (दे०) के प्रणय एवं विरह की गाथा विविध-रूपों में वर्णित है। इसके अतिरिक्त पुराणों में अनेक कथाओं के माध्यम से यह बताया गया है कि इंद्र ने मर्त्यलोक के अनेक ऋषियों को मोह जाल में फँसाने के लिए उर्वशी की सहायता ली। इंद्रलोक में एक बार अर्जुन (दे०) ने उर्वशी की भर-लालसा की अवहेलना की तो उर्वशी ने उसे एक वर्ष तक नपुंसक बनकर रहने का शाप दे दिया।

उर्वशी *(हिं० पा०)* [प्रकाशन-काल—1961 ई०]

छायावादोत्तर काल के इस बहुप्रशंसित प्रेमाख्यानक काव्य-नाटक का सृजन डा० रामधारीसिंह 'दिनकर' (दे०) ने उर्वशी (दे०) और पुरुरवा की प्रेमकथा के आधार पर किया है। संयोग और वियोग के अनेक अनुभवों का उद्दाम और उदात्त चित्रण यहाँ सशक्त भाषा में हुआ है। संयोग पक्ष में काव्य के सभी प्रेमी पात्र उर्वशी के प्रकृत और निर्द्वंद्व भोग-सिद्धांत का समर्थन करते हैं। वियोग की विकट स्थिति तीन पात्रों के सामने आती है। उर्वशी उसे मर्त्यलोक का नियम मानकर स्वीकार करती है। पुरुरवा को उसे स्वीकार करने की मंत्रणा चन्द्रगुप्त का प्रारब्ध देता है। औशीनरी को सुकन्या समझाती है कि 'उन्मूलित वाटिका' के लिए आत्म-उत्पीड़न व्यर्थ है। जो 'नया पादप' मिल गया है, उसे देखकर जीना चाहिए।

इस प्रकार प्रेमी पात्रो का अनुभव यह है कि लब्धि के भोग और लुप्ति के सहन मे ही जीवन की सार्थकता है। जहाँ तक सहिष्णुता की प्रक्रिया का सबध है, कवि ने दो विकल्प रखे है। उर्वशी और औशीनरी जागतिक स्थितियो का निर्वाह करते हुए स्नेह-स्मरण का सकल्प लेती है। पुरुरवा अतर्मुखी होने से सन्यास ग्रहण करता है। ये दोनो विकल्प क्रमश भारतीय अद्वैतदर्शन की कर्मयोग और सन्यास नामक निष्ठाओ के प्रतीक है, जिनमे से किसी एक की ओर व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुसार झुक जाता है।

उर्वशी (*हि० पा०*)

यह पौराणिक स्त्री पात्र दिनकर के काव्य-नाटक 'उर्वशी' (दे०) की नायिका है। कवि ने उसके प्रख्यात प्रेमिका रूप का चित्रण करते हुए उसके माध्यम से अपनी जीवन-दृष्टि को भी व्यजित किया है। अपने समस्त रूप वैभव के साथ पराक्रमी पुरुरवा के अक मे अवतरित होकर वह निर्द्वंद्व भोग का सदेश देती है। इस भोग के फल-स्वरूप उत्पन्न होने वाली बाधाओ (प्रजनन द्वारा काति-हरण और विरह-दुख) को वह धरती का नियम मानकर स्वीकार करती है। पुत्र की हित-कामना से किए गए त्याग ने उसे मातृत्व की दिव्यता से मडित पूर्ण मानवी बना दिया है। यह त्याग निर्द्वंद्व न होने से सहज मानवीय है। इस प्रकार कवि ने अपने चित्रण-कौशल से इस प्रख्यात सामान्या को उसके प्रगल्भत्व की रक्षा करते हुए तन्मय प्रेमिका और उत्सर्गमयी जननी का प्रभावशाली व्यक्तित्व प्रदान कर दिया है। फलत वह धरती की 'सनातन' ही नही पूर्ण नारी का भव्य प्रतीक बनने मे समर्थ है।

उलहम् ओरु कुडुबम् (*त० कृ०*) [रचना-काल—1963 ई०]

इसमे शालै इळतिरैयन् 25 निबध सगृहीत हैं जिनमे प्रसिद्ध है—वळि वळि मक्कळ् उलहम् ओरु कुडुबम्, शण्डैहळ, तलुम्बुहळ, सोन्द कुरल्, विळुदु वेरकळ्, एल्ले, मनिदन् ओरु कलै और एट्टाद उयरम्। इन निबधो मे मानव-जीवन के विभिन्न पक्षो का चित्रण है। लेखक के मत मे मानवतावाद और विश्व बधुत्व की भावना द्वारा ही सुखी ससार का निर्माण किया जा सकता है। आरभिक कुछ निबधो मे वह कहता है कि दिन प्रतिदिन विकसित होने वाले मानव समाज के विकास मे प्रत्येक व्यक्ति को योग देना चाहिए ताकि वह भावी पीढी को एक विकसित समाज सौप सके। कुछ निबधो मे समाज के विकास मे बाधक मनुष्य की अनजाने की गई भूलो की चर्चा है। कुछ निबधो मे वह कहता है कि मनुष्य को वातावरण के अनुकूल अपने को ढालते हुए जीवन के प्रति अपनी मौलिक धारणा परिवर्तित कर लेनी चाहिए। अतिम दो निबधो मे उसने निबध की शैली और विषय को लेकर नूतन प्रयोग किए है। इस कृति का तमिल निबध साहित्य मे विशिष्ट स्थान है। इसमे प्रथम बार गभीर विचारो को सरल शैली मे प्रस्तुत किया गया है।

उलहवळक्कु (*त० पारि०*)

पारिभाषिक अर्थ मे इस उक्ति का उपयोग तमिल के व्याकरण-ग्रथो मे, उनसे सबधित टीका-टिप्पणियो मे तथा अन्य समालोचनात्मक लेखन मे किया जाता है।

तमिल व्याकरण-परपरा का प्रथम परिचय देने वाले अति प्राचीन ग्रथ 'तोलकाप्पियम्' मे 'पोरुळ्' (काव्य-विषय) अध्याय के तिरेपनवें सूत्र मे कहा गया है कि 'अहम्' (शृगार) कविता की कल्पनात्मक साहित्यिक पद्धति की आधार भूमि नाटक एव सामाजिक व्यवहार है। मूल तमिळ पक्तियें ये है—

'नाटक वलक्किनुम उलकियल् वळक्किनुम्
पाडल् चानृर पुलनेरि वळक्कम्।

यहाँ 'नाटक' शब्द का अर्थ 'नृत्य अथवा गेय काव्य' की परपरा ग्रहण करना चाहिए। 'उलहियल वळक्कु' का (जो 'उलह वळक्कु से भिन्न नही है) तात्पर्य 'मानव-जगत का व्यवहार' है। आशय यह कि तत्कालीन समाज मे प्रतिष्ठित रीति-नीति तथा आचरण-विशेष के अनुकरण पर तथा कविता-परपरा के पूर्व प्रमाण के बल पर तमिल साहित्य की कल्पनात्मक वर्णन-पद्धति का निर्माण हुआ है।

'तोलकाप्पियम्' के एक और प्रसग मे (पोरुळ', सूत्र 647) तत्कालीन काव्य एव लोक भाषा के शब्द-प्रयोगो का आधार 'वळक्कु' बताया गया है। यह 'वळक्कु' (अर्थात् 'उपयोग') शिष्टजनो का व्यवहारगत उपयोग माना गया है।

इस प्रकार 'उलहवळक्कु' स तीन बातें अभिप्रेत है—

1 सामाजिक व्यवहार अथवा आचरण,

2 इस व्यवहार अथवा आचरण का शिष्ट-

जनों से संबंधित होना;

3. काव्यगत कल्पनात्मक वर्णन तथा कथन-पद्धतियों का प्रथम दोनों पर आधारित होना।

उला *(त० पारि०)*

तमिल की 96 काव्यविधाओं में एक है उला, जिसका मूल प्रतिपाद्य प्रेम है। उला में लेखक नगर की वीथियों मे विचरण करते हुए राजा या स्वयं ईश्वर के प्रति विभिन्न आयु की कन्याओं के प्रेम की अभिव्यक्ति करता है। आरंभिक उला-कृतियों में परमात्मा के प्रति जीवात्माओं के प्रेम का वर्णन है। भक्ति की सात स्थितियों का दिग्दर्शन कराने के लिए कवियों ने सात विभिन्न आयु की कन्याओं को नर-रूप में अवतरित ईश्वर पर अनुरक्त होते दिखाया है। परवर्ती काल में राजाओं की महिमा का गान करने के लिए यह शैली अपनाई गई। कवियों ने राजा के अपूर्व सौंदर्य को देखकर कन्याओं के मन और शरीर में होने वाले परिवर्तनों का वर्णन किया है। नवीनतम उला-कृतियों में ईश्वर को राजा या सुंदर युवक का प्रतिरूप माना गया है। तमिल की कुछ प्रसिद्ध उला कृतियाँ हैं—'तिरुकैलायज्ञान उला', 'मूवर उला', 'तिरुप्पूवणानादर उला', 'तिरुवानैका उला' आदि।

उळिञै *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' काव्य-विभाग का उपविभाग है और 'वंचि' के बाद इसका स्थान है। 'तोलकाप्पियम्' के अनुसार इसके मुख्य विषय दुर्ग पर धावा तथा रक्षा दोनों है। धावा तथा रक्षा दोनों पक्षों के लिए चार-चार प्रकरण उल्लिखित हुए है। इनके अलावा बारह प्रकरण दोनों के लिए समान बताये गये हैं। इन प्रकरणों के उल्लेख से तत्कालीन दुर्ग-युद्ध के संचालन और परवर्ती आचरण का आभास मिलता है, यथा आक्रामक राजा द्वारा शत्रु-देश को जीता हुआ मानकर अपने पक्षवालो को भेंट कर देना, चमड़े के आयुध धारण करना तथा दूतों द्वारा अपनी अपार शक्तियों का परिचय करवाना, इत्यादि। वर्ण्य विषयों में से कुछ प्रतिरक्षाकारी राजा की विशेष संपत्तियाँ, दुर्ग की श्रेष्ठता आदि है। दुर्गयुद्ध की विभिन्न अवस्थाएँ (यथा दीवार पर तथा खाई के दोनों ओर के युद्ध), प्रतापी छत्र एवं खड्ग का विजयाभिषेक, तथा विजयी वीर-सेनाओं का सम्मान आदि बातों का भी उल्लेख है।

'तोलकाप्पियम्' की परवर्ती रचना 'वेण्पामालै' में (जो 'अगत्तियम्' की व्याकरण-परंपरा की कही जाती है) इस उपविभाग 'उळिञै' को केवल दुर्ग पर धावे के पक्ष तक सीमित किया गया है और दुर्ग-रक्षा को अलग शीर्षक 'नोच्चि' में रखा गया है।

उवंग (उपांग) *(प्रा० कृ०)*

जैन आगमों (दे०) में इनकी गणना होती है। 12 अंगों के समान इनकी संख्या भी 12 है किंतु संख्या-साम्य के अतिरिक्त इनका कोई संबंध नहीं। इनका आगमन सीधा गणधारों से नहीं किंतु स्थविरों के माध्यम से हुआ है। इसीलिए इन्हें उपांग कहा जाता है। 12 उपांग ये हैं—(1) **'उववाइय'** (औपपातिक) : इसके प्रथम खंड में चम्पा में महावीर स्वामी के भिम्भसार पुत्र कुणिअ के साथ और द्वितीय खंड में गोमय इंदभूति के साथ प्रश्नोत्तर का वर्णन है। ये प्रश्नोत्तर उपपात अच्छे-बुरे कर्मों से विभिन्न लोकों की प्राप्ति के विषय में हैं इसलिए यह नामकरण हुआ है। (2) **'रायपसेणइय'** (राजप्रश्नीय) : इसमें प्रथम खंड में सूर्याभ के महावीर के पास जाने की कथा और दूसरे खंड में केशीकुमार और श्रावस्ती के राजा प्रदेशी के मध्य आत्मा संबंधी संवाद का वर्णन है। (3) **'जीवाजीवाभिगम'** : इसमें गोयम के प्रश्न और महावीर के उत्तरों में जीवन और अजीव का वर्णन है। अजीव वर्णन में भौगोलिक वर्णन आ गया है। (4) **'पन्नवणा'** (प्रज्ञापना) इसमें भी गोयम और महावीर के प्रश्नोत्तर है। इसके लेखक का नाम आर्यश्याम दिया हुआ है। यह विशाल ग्रंथ है और इसमे पृथ्वी, जल इत्यादि पदार्थों, विभिन्न आर्य-अनार्य जातियों, विभिन्न कर्मो इत्यादि का वर्णन है। (5) **'सुरियपन्नति'** (सूर्य प्रज्ञप्ति)। (6) **'जंबुद्दीवपन्नति'** (जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति); और (7) **'चंदपन्नदि'** (चंद्रप्रज्ञप्ति) : ये तीन पुस्तकें विज्ञानपरक है जिनमें गणित, ज्योतिष, भूगोल इत्यादि वैज्ञानिक तत्त्व दिखलाए गए हैं। 'चंद-पन्नति' और 'सुरियपन्नति' दोनों में एक-जैसा ही खगोल का वर्णन है। 'जंबुद्दीवपन्नति' में पौराणिक शैली में भूगोल दिखलाया गया है। 8 से 12 तक उपांग पौराणिक शैली के कथानकों से ओत-प्रोत है (8) **'निरयावलिया'** में चंपा के कुणिय या अजातशत्रु के 10 भाइयों का नरक-गमन। (9) **'कप्पवडंसिया'** (कल्पावतंसिका) में उसी वंश के 10 राजकुमारों का स्वर्ग-गमन, (10)

'पुप्फिया' (पुष्पिका) मे 10 देवों और देवियो का महावीर की पूजा के लिए पुष्पक विमान पर स्वर्ग से आगमन, (11) 'पुप्फचूलियाओ' (पुष्पचूलिका) मे उसी प्रकार की 10 अन्य कथाये, और (12) 'वण्हिदसाओ' (वृष्णिदशा) मे वृष्णिवश के 12 राजकुमारो को अरिष्ट नेमि द्वारा दीक्षा देना वर्णित है। पहले 'निरयावलीसुत' नाम से ये ग्रथ एक ही थे। बाद मे 12 की सख्या पूरी करने के लिए इन ग्रथो को 5 ग्रथो के रूप मे विभाजित कर दिया गया।

उवएस माल कहाणय छप्पय *(अप० कृ०)* [रचना-काल —बारहवी-तेरहवी शती ई०]

'उपदेश माल कथानक छप्पय' विनयचद्र कृत 81 पद्यो की कृति है। इसमे प्राचीन तीर्थंकरो एव धार्मिक पुरुषो के उदाहरण देते हुए धर्माचरण का उपदेश दिया गया है। जैसाकि कृति के नाम से प्रकट है इसमे छप्पय छद का प्रयोग किया गया है।

उशनस *(गु० ले०)* [जन्म—सन् 1920 ई०]

इनका पूरा नाम है नटवरलाल पण्ड्या 'उशनस'। अध्ययन—बडौदा कालेज। बबई विश्वविद्यालय से गुजराती तथा सस्कृत मे एम० ए० करके नवसारी कालेज मे प्राध्यापक हुए और तदुपरात बलसाड कालेज मे गुजराती के प्राध्यापक एवं आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित हुए।

कालेज-जीवन मे ही ये काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त हो गए थे तथा अपनी काव्यकृतियो से इन्होंने नई तथा पुरानी दोनो पीढियो का ध्यान आकर्षित किया था। अब तक इनके सात काव्य-सग्रह तथा दो आलोचना-सग्रह प्रकाशित हो चुके है। कविता मे इन्होने गीत, मुक्तक, सॉनेट तथा वर्णनात्मक प्रभृति काव्य-रचनाएँ की है। बौद्धिक आग्रह के कारण इनकी कतिपय रचनाओ मे सवेदनशीलता दब गई है। 'नेपथ्य' नामक सग्रह मे इन्होने पौराणिक पात्रो को लेकर सवाद-काव्य लिखे है जिनपर रवीद्रनाथ ठाकुर (दे०) के सवाद-काव्यो का प्रभाव लक्षित होता है।

इनकी आलोचना मे अध्ययनशीलता जितनी दृष्टिगत होती है उतनी मौलिक दृष्टि नही दिखाई देती। हाँ, नाट्य-साहित्य विषयक समीक्षा मे इनकी मौलिकता असदिग्ध है।

उष:काल *(म० कृ०)* [रचना-काल 1895-1897]

शिवाजी-स्मारक के लिए चदा एकत्र करने के लिए लोकमान्य टिळक (दे०) के आदोलन और रायगढ के किले पर 1896 ई० मे मनाए गए शिवाजयती-समारोह से अनुप्रेरित हो हरिनारायण आप्टे (दे०) ने शिवाजी-सबधी जो ऐतिहासिक उपन्यास लिखे है उनमे पहला उपन्यास 'उष:काल' ही है। इसके द्वारा लेखक ने शिवाजी की व्यक्ति-रेखाओ को तो पाठको के सम्मुख भास्वर किया ही है, शिवाजी-काल को भी साकार कर दिया है। इसके द्वारा लेखक ने पाठको के मन मे अतीत के प्रति गौरव-भाव और वर्तमान के प्रति क्षोभ जगाकर स्वातत्र्य-प्राप्ति की उत्कट आकाक्षा जगाई है। उपन्यास पढते समय पाठक का ध्यान मुगल-शासन मे मराठो की दुर्दशा तथा उससे उत्पन्न नवजीवनोन्मेष के प्रति सहज ही आकृष्ट हो जाता है। नानासाहेब के कुटुम्ब की अवस्था द्वारा तत्कालीन मराठी कुटुम्बो की अवस्था, उनके क्षीण होते वैभव और शौर्य का वर्णन किया गया है तो देशमुख की विक्षिप्त पुत्रवधू के माध्यम से मुगलो की सनक, दुष्कर्म एव अत्याचारो का सकेत दिया गया है। मराठो मे उस समय भी स्वामिभक्ति की भावना कितनी प्रबल थी, वे स्वामी के लिए अपनी सतान और अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए तत्पर रहते थे, इसका आभास भी उपन्यास मे मिलता है। उपन्यास मे शिवाजी का चरित्र तो स्मरणीय है ही, सावळया (दे०) की व्यक्ति-रेखा भी स्मृति-पटल पर बहुत काल तक अकित रहती है। चरित्र-चित्रण मे लेखक ने विरोध-पद्धति का आश्रय लिया है। नानासाहेब के दोषो—अस्थिरता, अधैर्य, अविवेक, आवेश के सम्मुख शिवाजी के गुण-शातवृत्ति, विवेक, नेतृत्व-शक्ति और भी प्रभावशाली बन जाते है। यद्यपि उपन्यास मे अलौकिक घटनाओ, प्रसगो और रहस्यमय स्थानो का उल्लेख है फिर भी लेखक ने उन्हे इस प्रकार आयोजित किया है कि वे शिवा-काल से तद्रूप हो उठने के कारण अस्वाभाविक नही लगते। प्रारभिक मराठी ऐतिहासिक उपन्यास-साहित्य का यह उत्कर्ष-बिंदु है।

उसमान *(हिं० ले०)* [अस्तित्व-काल—सत्रहवी शती]

उसमान गाजीपुर निवासी शेखहुसेन के पुत्र थे। ये चिश्ती सप्रदाय के बाबा हाजी के शिष्य थे। इनकी एकमात्र रचना 'चित्रावली' (दे०) के अध्ययन से पता चलता है कि उसमान विनयी, गुणी तथा उदार थे। इन्होंने

अपनी कृति में शाहे-वक्त जहाँगीर, अंग्रेजों, तत्कालीन उत्सवों, समाज, रीति-रिवाज, अनुष्ठान आदि का वर्णन किया है। 'चित्रावली' के प्रत्येक पद में कवि की काव्य-प्रतिभा, वाग्वैदग्ध्य, और रचना-कौशल का परिचय मिलता है। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है—'एक एक वचन मोति जनु पोवा। कोऊ हँसा कोउ सुनि रोवा'। हिंदी के सूफ़ी कवियों में इन्हें जायसी (दे०) के बाद स्थान दिया जा सकता है।

उळ्ळूर, परमेश्वरय्यर *(मल० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1948 ई०]

इन्होंने एम० ए०, बी० एल० परीक्षाएँ पास कर सरकार के विविध विभागों में सेवा की। ये त्रावनकोर विश्वविद्यालय के पौरस्त्य भाषा-विभागों के संकायाध्यक्ष थे। इनकी प्रसिद्ध कृतियों के नाम इस प्रकार हैं—'वंचीशगीति'; 'मंगळ मंजरी' (स्तोत्र-ग्रंथ); 'वर्णभूषणम्' (दे०) काव्य; 'पिंगळा' (दे०) (वेश्या पिंगळा (दे०) पर रचित काव्य); 'भक्तिदीपिका' (दे०) (कविता); 'चित्रशाला' (भारतीय वनिताओं के महत्व पर लिखित कविता), 'कविता संग्रह' (ताराहारम् किरणावलि, रत्नमाला, मणिमंजुषा, हृदयकौमुदी, तरंगिणी, कल्पशाखी अमृतधारा, दीपावलि) और 'उमाकेरलम्' (दे०) (महाकाव्य)। 'केरल-साहित्य चरित्रम्' (दे०) (पाँच भाग) केरली भाषा और साहित्य का सर्वांगपूर्ण गवेषणात्मक इतिहास है जिसके समकक्ष अभी तक और कोई ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ। आर्ष संस्कारों के प्रति इनके मन में अटूट श्रद्धा थी—जीवन-भर ये सरस्वती की पूजा करते रहे।

ऊद-ए-हिंदी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1861 ई०]

'ऊद-ए-हिंदी' मिर्जा असद-उल्लाह खाँ 'ग़ालिब' (दे०) की रचना है। इसका प्रकाशन 1868 ई० में हुआ था।

'ऊद-ए-हिंदी' मिर्ज़ा ग़ालिब के 137 पत्रों का संग्रह है। ये पत्र मिर्ज़ा ने समय-समय पर अपने शिष्यों तथा इष्ट मित्रों को लिखे थे। इन पत्रों के अतिरिक्त इस पुस्तक में कुछ तक़रीजें (समीक्षाएँ) तथा तीन पुस्तकों की भूमिकाएँ भी सम्मिलित है। इस पत्र-संग्रह के प्रकाशन के 4 मास पश्चात् फ़रवरी, 1869 ई० में मिर्जा का देहांत हो गया था।

'ऊद-ए-हिंदी' 88 पृष्ठों में छपी है। प्रारंभ में मुंशी मुमताज अली खाँ की लिखी भूमिका है और अंत में हकीम गुलाम मौला साहब 'कलक' मेरठी की सम्मति तथा चार विभिन्न व्यक्तियों के कहे हुए चार तारीखी 'क़तए' (दे०) हैं। ये क़तए ऐसे हैं जिनके शब्दों के निश्चित मान अंकों में गिनकर सन्-विशेष निकाला जाता है।

मिर्जा की-सी शैली के दर्शन अन्य किसी भी लेखक के यहाँ नहीं होते। मिर्ज़ा के ये पत्र उनके जीवन का दर्पण है। सहजता इनका विशेष गुण है। इनके एक-एक शब्द में एक जीवंत व्यक्तित्व बोलता है। मिर्जा के पत्रों को पढ़कर लगता है जैसे कोई सामने बैठा बातें कर रहा है। मिर्जा ने स्वयं लिखा है—'मैं चाहता हूँ तहरीर (लेख) तक़रीर (वक्तव्य) से कम न हो।' ग़ालिब के पत्रों की एक अन्य विशेषता है उनकी शोखी तथा हास्य का पुट। प्रयत्न करने पर भी ग़ालिब की शैली का अनुकरण कोई लेखक नहीं कर सका।

ऋतुसंहार *(सं० कृ०)* [समय—प्रथम शताब्दी ई० पू०]

'ऋतुसंहार' कालिदास (दे०) की सर्वप्रथम रचना है। यह गीतिकाव्य है जिसमे षड्ऋतुओं का सुंदर वर्णन किया गया है।

कुछ विद्वान् इसे कालिदास की कृति नहीं मानते क्योंकि मल्लिनाथ ने कालिदास के अन्य सभी ग्रंथों पर टीका की है, पर इस पर नहीं की। इसके अतिरिक्त साहित्यशास्त्रियों द्वारा इसका कोई भी पद्य उद्धृत नहीं किया गया। पर अब यह धारणा निर्मूल हो चुकी है तथा इसे सभी अब कालिदासकृत ही मानने लगे है।

6 सर्गों में उपनिबद्ध इस काव्य में 144 छंद हैं। इसमें 'ग्रीष्म' से लेकर बसंत तक षड्ऋतुओं का बड़ा स्वाभाविक, अकृत्रिम तथा सजीव वर्णन उपस्थित किया गया है। प्रत्येक ऋतु के वर्णन में उस ऋतु का वृक्षों, लताओं और पशुपक्षियों पर होने वाला प्रभाव तथा उसके कारण कामीजनों की चित्तवृत्ति और व्यवहार में दिखाई देने वाले परिवर्तन तथा उनके हृदयों में उठने वाले तरह-तरह के विचारों आदि का बड़ा व्यवस्थित क्रम दृष्टिगोचर होता है।

यह काव्य यद्यपि उच्चकोटि का नहीं है किंतु इसे देखकर पाठक के हृदय में कवि के सृष्टि-निरीक्षण की शक्ति तथा विकासोन्मुख कलानैपुण्य की कल्पना स्वतः आ जाती है।

ऋतुसहारमु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

'ऋतुसहारमु' विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का एक अल्पकाय काव्य-ग्रथ है जिसमे कालिदास (दे०) के 'ऋतुसहारम्' (दे०) की प्रेरणा से इन्होंने आध्र मे प्रकट होने वाली छह ऋतुओ एव आध्र के ग्रामीण एव नागरिक जीवन के सौंदर्य का वर्णन किया है। जीवन एव प्रकृति की एकरूपता एव सामजस्य को यह काव्य साठ 'सीसपद्यो' (तेलुगु का एक छद) मे प्रस्तुत करता है। ऋतु वर्णन जैसे घिसे पिटे विषय को भी रोचक एव नवीन रूप मे प्रस्तुत करना प्रतिभावान् कवि के लिए ही सभव है। आध्र के पूजा-त्यौहार, वहाँ के कृषक, युवक एव युवतियाँ, कारीगर, वर्षा मे बच्चो का खेलकूद आदि अनेक ग्रामीण चित्र इसमे जीवत होकर हमारे सामने प्रकट होते है।

एकि *(तें० पा०)*

एकि श्री नडूरि सुब्बाराव (दे०) के 'प्रसिद्ध' 'एकिपाटलु' (दे०) की नायिका है। यह अशिक्षित, निष्कपट और भोली-भाली ग्रामीण महिला है। यह प्रेमैक मयी है जो नदी के किनारे एकात मे अपने प्रियतम के साथ मिलकर खेतो मे काम करने तथा उसके सागत्य-सुख मे तल्लीन रहती है। अपने प्रियतम से अलग किसी ससार को यह नही जानती। इसका अबोध हृदय अपने प्रियतम के साथ किए गए पिछले जन्म के प्रेम-व्यवहारो की कल्पना करके लज्जावनत हो जाता है और अगले जन्म मे वियोग की आशका से भय एव शोक से कपित हो जाता है। यह विशुद्ध प्रेम, ममता और विश्वास का प्रतिनिधित्व करने वाली सनातन भारतीय नारी का प्रतिरूप है।

एकिपाटलु *(तें० कृ०)* [लें०—नडूरि सुब्बाराव (दे०) रचना काल—1930 ई०]

तेलुगु साहित्य मे यह एक युगातरकारी रचना है। यह परपरागत साहित्य के विषय, विधान, छद आदि सभी अगो मे आमूल परिवर्तन लेकर उपस्थित हुई थी। इसमे अत्यत सरस और मर्मस्पर्शी लोकगीत है जिनकी सख्या लगभग एक सौ है। इनमे कोई कथासूत्र नही है। वाक्य रसात्मकम् काव्यम' की उक्ति को सार्थक करता हुआ एक-एक गीत एक एक काव्य के समान रसमय है। इन गीतो मे 'एकि' (दे०) और 'नायुडु' दो ही प्रमुख पात्र है। इन दोनो का निवास नदी के किनारे का बगीचा है। परस्पर अनन्य अनुराग ही इनके जीवन का आधार है। इस प्रेमी-युगल के अत्यत सीमित जीवन के छोटे-छोटे किंतु अतिमोहक चित्र इसके एक-एक गीत मे प्रस्तुत किये गये है। इतने थोडे से सरल-साधारण शब्दो मे इतनी मर्मस्पर्शी भावना को व्यजित करना किसी महाकवि के लिए ही सभव हो सकता है।

इन लोकगीतो मे इन दो पात्रो द्वारा ग्रामीण जीवन के सुख-दुख, स्नेह प्रेम, आशा-निराशा, अबोधता आदि का स्मरणीय चित्रण कवि ने किया है। इन गीतो की भाषा भी विषय के अनुकूल अत्यत साधारण ग्रामीण ही है। छोटे-छोटे और सीधे-सादे शब्दो मे विशाल भाव-राशि का नर्तन कवि ने प्रदर्शित किया है। इस काव्य के अनु-करण मे किसी कवि को सफलता नही मिली। इन गीतो की सफलता ने उस समय सरल व्यावहारिक भाषा को साहित्य-रचना के योग्य सिद्ध करने के आदोलन को जितना बल दिया, उतना और किसी काव्यकृति ने नही दिया। यह तेलुगु साहित्य की अमर कृति है।

एकइ कि बोले सभ्यता *(बँ० कृ०)* [रचना काल—1860 ई०]

माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) की नाट्य प्रतिभा का विकास एव निखार प्रहसनो मे और उनमे भी 'एकइ कि बोले सभ्यता' मे हुआ है। इस प्रहसन के नव-कुमार तथा कालीनाथ ऐसे ही युवक है जो नवीनता और आधुनिकता के मोह मे पडकर पश्चिमी रहन-सहन की नकल करते है। इन युवको के लिए हर पुरानी चीज निर-र्थक है, इसीलिए गृहस्वामी और बाबा जी का धर्माचरण, परिवार वालो का सरल-स्निग्ध व्यवहार दकियानूसी लगता है। इनकी ज्ञानतरगिणी सभा परपराओ और रूढियो से स्वाधीनता एव स्वच्छदता अवश्य चाहती है परतु यह स्वाधीनता सुरा सुदरी के उन्मुख व्यवहार तक ही सीमित है।

प्रहसन के दो अक और प्रत्येक अक के दो गर्भाक है। कथा मे सघर्ष तथा प्रसग-योजना मे लेखक को सफलता मिली है। अतिम दृश्य की योजना से नाटक-कार नई सभ्यता की कृत्रिमता और खोखलेपन को दिखा सका है। व्यग्य का स्वरूप तीखा है जो कही शब्दो द्वारा ध्वनित हुआ है तो कही आचरणगत विसगतियो के द्वारा। सवाद चुस्त तथा चुटीले है। भाषा सहज एव पात्रानुसार

है। व्यंग्य का प्रहार तीव्र करने के लिए अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग किया गया है। अभिनय की दृष्टि से यह प्रहसन लोकप्रिय रहा है।

यह प्रहसन मांइकेल का ही नहीं, प्रथम चरण का सर्वश्रेष्ठ प्रहसन है। परवर्ती अधिकांश नाटककारों ने माइकेल से अनुप्रेरित एवं अनुप्राणित होकर इस समस्या को उठाया। यह रचना युग की उपलब्धि है।

एक उन्दर अने जदुनाथ *(गु० कृ०)* [प्रकाशन—1964 ई०]

'एक उन्दर अने जदुनाथ' भूखी पीढ़ी के गुजराती संस्करण 'रे' मठ के प्रसिद्ध कवि और लेखक सर्वश्री लाभशंकर ठाकर (दे०) और सुभाष शाह का त्रि-अंकी नाटक है। नाटक के अंत में अँग्रेजी में एक छोटा सा वक्तव्य है: 'यह नाटक सभी के लिए नहीं है।' कुछ विशिष्ट लोगों के लिए लिखे गए इस 35 पृष्ठीय नाटक का प्रकाशन भी 'रे' मठ से ही हुआ है। वस्तुतः इस नाटक में दो ही अंक हैं: पहला और तीसरा; दूसरा अंक तो केवल अंतराल की व्यवस्था करता हुआ प्रतीत होता है और है भी अर्द्ध-पृष्ठीय। नाटक के पात्र 'अनआइडेंटीफ़ाइड' 'अ' और 'ब' हैं। दोनों का ही लगभग अंत तक संवाद चलता है तो बीच-बीच में बेतुके संवाद और अभिनय हैं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि जेम्स ज्वायस की चेतना-प्रवाह वाली धारणा का नाटकीकरण कर दिया गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अफ़ीमचियों के समान दिखाई देने वाले संवादों और अभिनयों में कहीं जीवन के गंभीर स्वर वर्तमान ही नहीं है! परिस्थितियों से मुक्त होने की व्याकुलता; न हो सकने की बिफलताजन्य निराशा; मृत्यु और भय की मानसिक स्थितियों का प्रकाशन तथा अस्तित्व के स्वातंत्र्य को लेकर उत्पन्न वेदना आदि के स्वर इतस्ततः विद्यमान हैं। डा० मीनु कापडिया द्वारा नाटक अभिनीत हो चुका है। संभव है कुछ विशिष्ट वर्गों पर समग्रतः प्रभाव डालने में समर्थ भी हुआ हो। इसके मुद्रण की एक विशेषता है कि दोनों पात्रों के संवाद अलग-अलग स्याही में अंकित है। आवरण-चित्र में भी नवीनता है।

एक गधे की सरगुजश्त *(उर्दू० कृ०)*

'एक गधे की सरगुज़श्त' उर्दू के लोकप्रिय कथाकार कृश्नचंदर (दे०) का व्यंग्य-प्रधान उपन्यास है। यही उपन्यास हिंदी में भी 'एक गधे की आत्मकथा' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

इस उपन्यास में लेखक ने गधे के माध्यम से समाज के विभिन्न वर्गों पर तीखे व्यंग्य किए हैं। इसमें संकीर्ण एवं साम्प्रदायिक हिंदू-मुसलमानों, पुलिस कर्मचारियों, कर्तव्य-विमुख अधिकारियों, पाश्चात्य सभ्यता के उपासकों, सौंदर्य-प्रतियोगिताओं के आयोजकों, समाज की निष्ठुर पूंजीवादी-व्यवस्था तथा नौकरशाही का व्यंग्यपूर्ण शैली में अत्यंत रोचक चित्र प्रस्तुत किया गया है। लेखक का उद्देश्य यह दिखाना है कि समाज में पीड़ितों की सुध लेने वाला कोई भी नहीं।

कृश्नचंदर की भाषा भावपूर्ण, सरल, स्वाभाविक तथा सुमधुर है। प्रवाह तथा विषयानुकूलता उनकी भाषा की प्रमुख विशेषताएँ हैं। 'गधा' शब्द जगह-जगह लाक्षणिक अर्थों में बड़ी सुंदरता से प्रयुक्त किया गया है। कृश्नचंदर की शैली रोचक तथा उद्देश्य जनता का कल्याण है।

एक चादर मैली सी *(उर्दू० कृ०)*

यह सुप्रसिद्ध लेखक राजेन्द्रसिंह बेदी का उपन्यास है। इसकी मूल भावना प्रगतिशील है। लेखक ने इसमें यह दर्शाने का प्रयास किया है कि किस तरह दबी-कुचली जाति अपने लिए लड़ सकती है तथा अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकती है। उच्च जाति द्वारा उपेक्षित दबी-कुचली जाति अपने अस्तित्व का परिचय देने के लिए क्या कुछ नहीं कर गुजरती! और उसे कितना जूझना पड़ता है। इस उपन्यास का केंद्र-बिंदु एक स्त्री है जो उपेक्षित और समाज द्वारा तिरस्कृत है। वह दृढ़ स्वभाव की स्त्री है। उसके विचार गहरे और दार्शनिक है। पंजाब का जनजीवन उसमें बड़ी खूबी से उभारा गया है। उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल है। कोई बँधी-बँधाई भाषा नहीं है। पात्र अपने विचार व्यक्त करने के लिए भाषा स्वयं चुन लेते हैं।

एकनाथ *(म० ले०)* [जन्म—1548 ई०; मृत्यु—1599 ई०]

इनका जन्म 'पैठण' में हुआ था। इनके पिता का नाम सूर्यनारायण और माता का रुक्मिणी था। इनकी बाल्यावस्था में ही माता-पिता का स्वर्गवास हो गया था। जनार्दन स्वामी से इन्होंने शिक्षा-दीक्षा ली थी। श्रीमद्-

भागवत (दे० भागवत) के दशमस्कध के आधार पर इन्होंने 'एकनाथी भागवत' (दे०) की रचना सन् 1573 मे वाराणसी मे पूर्ण की थी। उन दिनो काव्य-रचना की माध्यम भाषाओ—सस्कृत-मराठी—मे द्वद्व चल रहा था। एकनाथ ने मराठी का आश्रय लिया था। सस्कृत-पडितो को भी इनकी भाषा तथा काव्य-रचना के गुणो की मुक्तकठ से प्रशस्ति करनी पडी थी। 'भावार्थ रामायण' (दे०) के अतिरिक्त 'रुक्मिणी स्वयवर' भी इनका प्रसिद्ध काव्य है। दूसरा महत्वपूर्ण कार्य इन्होंने सत ज्ञानेश्वर (दे०) की रचना 'ज्ञानेश्वरा' (दे०) के सशोधन का बडी निष्ठा के साथ पूर्ण किया था। सन् 1584 मे ज्ञानेश्वरी की एक सशोधित प्रति उन्होंने तैयार की थी। इनके स्फुट पदो और 'अभगो' की सख्या भी विपुल है। एकनाथ स्वय एक श्रेष्ठ सत थे। एक ओर आध्यात्मिक साहित्य की रचना इन्होंने की थी तो दूसरी ओर ललित साहित्य की भी। भाषा-शैली मे सर्वत्र प्रसारात्मकता और सरसता है। इन्होने सासारिक और पारमार्थिक जीवन मे अद्भुत मिलन कर दिखाया था। सतभक्त, पुरुष, सत्कवि और सशोधक के रूप मे एकनाथ का योगदान अत्यत सराहनीय है।

एकलव्य *(क० पा०)*

यह राष्ट्रकवि कुवेंपु (डा० के० वी० पुट्टप्पा) (दे०) के 'बेरळ्गे कोरळ्' नामक नाटक का अविस्मरणीय पात्र है। नाटक के अर्थगर्भित तीन दृश्य 'गुरु' 'कर्म और 'यज्ञ' इसके व्यक्तित्व की महानता के तीन सोपान हैं। प्रथम दृश्य मे इसकी गुरुभक्ति और इसकी माता के विशुद्ध प्रेम का परिचय मिलता है। यह माता की ममता की साकार मूर्ति है। यह गुरु को साक्षात् परब्रह्म मानने वाला है। इसे अश्वत्थामा की मैत्री प्राप्त होती है और इसकी धनुर्विद्या सीखने की इच्छा पूर्ण होती है। अर्जुन ने द्रुपद को बाँधकर द्रोण पर एहसान किया था। इस एहसान के कारण उन्होने अर्जुन को वचन दे दिया था कि तुम्हे अद्वितीय धनुर्धारी बनाऊँगा। इस कारण वे अब व्यथित होते है क्योकि इसका अँगूठा काटकर उस रक्तपक मे अर्जुन का कीर्ति-पकज खिलाना है। वे जानते हैं कि उनका पुत्र अश्वत्थामा इसे स्वीकार नही करता। पर कर्म-पाश को कौन काट सकता है? वे अर्जुन की मत्सराग्नि के लिए इसके अँगूठे की आहुति लेने को बाध्य होते है। गुरु अत्यत दुख से गुरुदक्षिणा माँगते है तो शिष्य बडी ही प्रसन्नता से अपना अँगूठा काटकर दे देता है। यह पहले जो स्वप्न देख चुका था, उसमे अपने सम्मुख प्रकट हुए नीलदेहधारी परमात्मा को सर्वस्व समर्पित करने के लिए तैयार रहता है। अब क्या एक अँगूठा नही दे सकता! रक्त के पक मे पडे हुए इसके अँगूठे को जब गुरु द्रोण झुककर देखते है तो उनको उसमे सिर-रहित धड दिखाई पडता है। एकलव्य के अँगूठे के बदले अपना सिर देना पडेगा, यह भविष्य उनके सम्मुख प्रकट होना है। इसके साथ ही एकलव्य की माता का शाप भी मिल जाता है। नाटक का नामकरण 'बेरळ्गे कोरळ्' (अँगूठे के लिए सिर) सार्थक हो जाता है।

एकनाथी भागवत *(म० कृ०)*

यह श्रीमद्भागवत (दे० भागवत) के ग्यारहवे स्कध की टीका है जिसम कुल 18800 ओवियाँ है। सत एकनाथ (दे०) ने इसकी रचना पैठण मे आरभ की थी और समाप्ति वाराणसी म की। वारकरी सप्रदाय मे ज्ञानेश्वरी (दे०) के बाद इसी ग्रथ की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। इस ग्रथ मे आध्यात्मिक विचारो का काव्यमयी शैली मे अत्यत सरस और मार्मिक प्रतिपादन है। इसमे भागवत-धर्म को अधिक उदार और मानवतावादी सिद्ध किया गया है "सब प्राणियो मे भगवद्भाव का अनुभव करना भागवत-धर्म की आत्मा है। अत सब से मैत्री करो प्रेम रखो और सबको समान समझो।' इसी मूल भावना को एकनाथ ने अपनी रचना द्वारा अभिव्यक्त किया है। सच्चे भक्त का स्वरूप, हरि-कीर्तन, नाम-स्मरण, साधना, निष्काम कर्म-योग, ज्ञानोत्तर भक्ति, आत्मज्ञान आदि अनेक आध्यात्मिक विषयो का इसमे अत्यत सरल-सुबोध शैली मे निरूपण-प्रतिपादन है। इस ग्रथ का काव्य सौदर्य भी अप्रतिम है। इसमे कल्पना-वैभव और कथन-कौशल अपने उत्कर्ष पर हैं। रूपको का अध्यात्मपरक प्रयोग करने मे एकनाथ की समता शायद ही कोई अन्य कवि कर सका हो। भाषा अत्यत प्रवाहमयी है। यह ग्रथ आध्यात्मिक विचारो मे जितना परिपूर्ण और समृद्ध है उतना ही काव्य-गुणो से भी ओतप्रोत है। टीका होने पर भी इसमे विचारो और काव्य गुणो की मौलिकता सर्वत्र दिखाई देती है।

एकवीरा *(तं० कृ०)* [रचना-काल—1919 ई०]

'एकवीरा' दक्षिण के मध्ययुगीन सामतीय वाता-

वरण की भूमिका पर रचा गया श्री विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का ऐतिहासिक उपन्यास है। तत्कालीन भारत विदेशी व्यापारियों तथा मसीही-धर्म के प्रचार कोंसे संत्रस्त था। इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य प्रेम और विवाह, अनुरक्ति एवं कर्तव्य के बीच के संघर्ष का चित्रण करके भारतीय दांपत्य-जीवन की मर्यादा की प्रतिष्ठा करना ही है। विधि-विधान से कुट्टानुडु का विवाह उसके अभिन्न मित्र वीरभूपति की प्रेमिका एकवीरा (दे०) के साथ और वीरभूपति का विवाह कुट्टानुडु की प्रेमिका मीनाक्षी के साथ हो जाता है। वे चारों व्यक्ति अपने विफल प्रेम के कारण बहुत दुःखी रहते है और वास्तविक स्थिति से समझौता कर लेने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इस प्रकार इनमें तीव्र मानसिक संघर्ष चलता रहता है।

एक आकस्मिक घटना के कारण एकवीरा से वीरभूपति का मिलन होता है। प्रेम के उत्ताप में दोनों एक दूसरे के आलिगन में बँध जाते हैं। इस आलिंगन के कारण एकवीरा अपने को लोकधर्म की दृष्टि से घोर पापी मानती है और वैगै नदी में कूद कर प्राण त्याग देती है।

इस उपन्यास में सभी उदात्त चरित्र है। संघर्ष का कारण कोई बाहर का खलनायक न होकर अंतर की दो भिन्न प्रवृत्तियाँ है जिनमें से एक आत्मपरितोष का तथा दूसरा सामाजिक धर्म का प्रतिनिधित्व करती है। पचास वर्ष पूर्व लिखे जाने पर भी यह उपन्यास अभी तक लोकप्रिय बना हुआ है।

एकवीरा *(ते० पा०)*

यह श्री विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) द्वारा रचित 'एकवीरा' (दे०) नामक बहुचर्चित ऐतिहासिक उपन्यास का प्रधान पात्र है। 'एकवीरा' जिस पुरुष को अपने जीवन-नायक के रूप में पाने की कामना करती है, उस व्यक्ति से इसका विवाह न होकर उसके एक परम मित्र से हो जाता है, जो स्वयं किसी अन्य सुंदरी में अनुरक्त है और उस सुंदरी का विवाह एकवीरा के प्रियतम के साथ हो जाता है। किंतु इस स्थिति का ज्ञान किसी को नहीं होता। एकवीरा और उसका पति पूर्व के अपने एकनिष्ठ प्रेम को भुला नहीं पाते और एक दूसरे से दूर रहकर अपने जीवन को तीव्र अंतर्द्वंद्व एवं वेदना से भर लेते है। अंत मे जब एक आकस्मिक घटना के कारण एकवीरा का साक्षात्कार अपने प्रियतम से हो जाता है तो भावावेश एवं अतृप्त प्रेम की तीव्र वेदना से वह उसके आलिगन में बँध जाती है। क्षणिक आवेग में अपने वैवाहिक धर्म से च्युत होने के कारण उत्पन्न ग्लानि एवं परिताप से यह आत्महत्या कर लेती है। एकवीरा के चरित्र में प्रेम और विवाह, आत्मसुख एवं लोकधर्म के बीच संघर्ष ही प्रमुख है।

एकांकी *(हिं० पारि०)*

उपन्यास, कहानी आदि अन्य गद्य-रूपों के समान एकांकी भी भारतीय साहित्यों को पश्चिम की देन है। उन्नीसवीं शती के अंतिम और बीसवीं के प्रथम चरण मे 'प्रायोगिक' नाटकों एवं लघु नाट्यों के आंदोलन ने एकांकी को एक समृद्ध नाट्यरूप में विकसित होने में बहुत सहायता दी। एकांकी का कभी भी पूर्ण नाटक के अंग के रूप में अस्तित्व नहीं रहा। उसका जन्म स्वतंत्र रूप में हुआ और अपनी अंतरंग शक्ति से उसने सदा अपना अलग और विशिष्ट स्थान बनाये रखा। जीवन के किसी एक पक्ष अथवा एक घटना या पात्र-वैशिष्ट्य को रेखांकित करने के कारण उसमे बड़ी नम्यता और विविधता होती है। कहानी की तरह इकहरापन और प्रभावान्विति एकांकी का भी वैशिष्ट्य होता है। भारतीय भाषाओं में एकांकी का आरंभ प्रायः तीसरे दशक मे या इससे कुछ आगे-पीछे हुआ। हिंदी में प्रथम एकांकी किसने लिखा—इसका निर्णय करना कठिन है। कुछ इतिहासकारों ने इसके प्रवर्त्तन का श्रेय डा० रामकुमार वर्मा को दिया है और कुछ ने भुवनेश्वर प्रसाद को।

एकांत सेवा *(ते० कृ०)* [ले०—वेंकट पार्वतीश्वर कुवुलु (दे०) अर्थात् वेंकटराव तथा पार्वतीशमु; रचना-काल—1922]

'एकांतसेवा' तेलुगु की 'गीतांजलि' (दे०) मानी जाती है और इसी से तेलुगु कविता में एक अभिनव रीति का सूत्रपात्र हुआ था। तत्त्वचिंतन में लौकिक व्यथाओं का विस्मरण करने के लिए तथा भगवत्-प्रेम के रसायन से जगत की व्यथा के घावों की चिकित्सा करने के लिए इसकी रचना की गयी है। हिंसा, स्वार्थ एवं मात्सर्य से दूषित वातावरण से यह रचना पाठक को किन्हीं दिव्य लोकों में ले जाती है। यह एक रससिक्त मृदु-मधुर कृति है जिसमें भक्ति की तन्मयता में अपने स्वामी परमात्मा को संबोधित करके भक्त के द्वारा गाये गये प्रणय-गीत हैं। इतनी स्वच्छता, कोमलता एवं माधुर्य के साथ तेलुगु शब्दावली का प्रयोग किसी अन्य कवि ने नहीं किया है। अत्यंत सहज एवं

सरल भाषा मे गभीर भावो की अभिव्यक्ति पाठक को अपने प्रभाव में अभिभूत कर लेती है।

एकाकी *(उड़ि० कृ०)*

ले० रबिनारायण महापात्र (दे०) सकल्प एव निर्णय व्यक्ति के जीवन मे कठिनतम परीक्षा के क्षण है। व्यक्तिगत ही क्यो सामाजिक जीवन मे भी ऐसे क्षण चुनौती बनकर आते है। इस चुनौती को स्वीकार करने मे ही वैयक्तिक एव सामाजिक कल्याण एव उत्थान सभव है। पर इसके लिये आवश्यक है—आत्म-विश्वास, दृढ इच्छाशक्ति, साहस एव सजग सामाजिक चेतना। आज युवावर्ग के सामने ज्ञानेन्द्र (दे०) एक प्रश्न-वाचक चिह्न बनकर खडा है। क्या एकाकी सकल्प व निर्णय लेने का मनोबल उनमे है ? और क्या दृढ कदमो से उस दुर्गम पथ पर अकेले चलने का साहस भी ?

एकावली *(स० कृ०)* [समय—लगभग 1280-1301 ई०]

'एकावली' सस्कृत-अलकारशास्त्र की अन्यतम कृति है। इसके रचयिता विद्याधर है जो उत्कल-नरेश नरसिंह के दरबार मे राज्याश्रय पाकर रहते थे। फलत इनका समय तेरहवी शताब्दी का अत तथा चौदहवी का आरभ है। 'एकावली' मम्मट(दे०)के 'काव्यप्रकाश' (दे०) की सरणि पर रचित है जिसमे सकलन अधिक मौलिकता कम है। इस ग्रथ मे आठ अध्याय है जिनमे काव्यस्वरूप, वृत्तिविचार, ध्वनिभेद, गुणीभूत-व्यग्य, गुणरीति, दोष तथा शब्दार्थालकारो का विवेचन हुआ है। इसमे अलकारो का निरूपण जहाँ रुय्यक (दे०) कृत अलकारसर्वस्व (दे०) के आधार पर हुआ है वहाँ शेष विषय 'काव्यप्रकाश' के विवेचन पर निर्भर हैं। इस ग्रथ की अपनी विशेषता यह है कि इसमे उदाहृत सभी पद्य ग्रथकार के स्वरचित है जो अपने आश्रयदाता की स्तुति मे लिखे गये है।

'एकावली' पर उपलब्ध एकमात्र टीका 'तरला' है जिसके कर्ता महाकाव्यो के प्रसिद्ध टीकाकार 'मल्लिनाथ है। यही कारण है कि मल्लिनाथ ने महाकाव्यो की टीका मे यत्रतत्र एकावलीकार-कृत लक्षणो को ही उद्धृत किया है।

एच्चमनायक *(क० पा०)*

एच्चमनायक कन्नड के सुप्रसिद्ध नाट्यकार स्व० हिरियण्णैय्याजी के ऐतिहासिक नाटक 'एच्चमनायक' का नायक है। इसमे विजयनगर साम्राज्य के अतिम दिनो का चित्रण है। विजयनगर-पतन के बाद राजवश के लोग चद्र-गिरि मे आकर बसते है। वहाँ का निस्सतान राजा अपने भतीजे चिक्कराम को अपना उत्तराधिकारी घोषित करता है। एच्चमनायक उसका आत्मीय वीर सरदार है—स्वामि-निष्ठ, कर्त्तव्यपरायण। उसका देश-प्रेम अनुपम है। अपने ससुर के षड्यत्र को विफल कर वह अपनी राजभक्ति का परिचय देता है और अनेक प्रलोभनो के बीच भी किसी तरह अपने पथ से विचलित नही होता। जब राजद्रोह अपने पूरे जोरो पर होता है और अनेक मत्री और सेनानी साथ छोड जाते है तब भी पराक्रमी एच्चमनायक अपनी निष्ठा मे अडिग रहता है। वह एक धीरोदात्त-चरित्र है और अपनी निष्ठावत्ता मे अद्वितीय है।

एट्टुवीट्टिल् पिळ्ळमार् *(मल० पा०)*

आठ घरो के नायर समाज के प्रधानो को 'एट्टुवीट्टिल् पिळ्ळमार्' कहते है। मार्त्ताण्डवर्मा के राजत्व-काल मे इन लोगो ने एक दल बाँधकर उन्हे सिंहा-सन से उतारने का सम्मिलित यत्न किया। राजा के मातुल के पुत्र को नेता बनाया गया था। 'मार्त्ताण्डवर्मा' (दे०) नामक उपन्यास मे इनके बारे मे खूब लिखा गया है।

एतुका *(मल० पारि०)*

एक विशेष शब्दालकार है। श्लोक के प्रत्येक पद का दूसरा अक्षर जहाँ समान होता है वहाँ यह अलकार होता है। इसका दूसरा नाम है द्वितीयाक्षरप्रास।

एदिरपाराद मुत्तम् *(त० कृ०)*

यह भारतीदासन (दे०) कृत कथाकाव्य है। इसमे निर्धन वणिक्-पुत्र पोनमुडि और अमीर वणिक-पुत्री पूकोदै की प्रेम-कथा वर्णित है। इसमे कवि की कल्पना-शक्ति का परिचय मिलता है। इसमे अनेक सुदर शब्द-चित्र हैं। रूपक, उपमा आदि अलकारो का सफल प्रयोग है। सरस, सरल शैली मे रचित यह कृति कवित्व की दृष्टि से कवि की सवश्रेष्ठ रचनाओ मे परिगणित की जाती है। दु खात प्रेम-कथा का आश्रय लेने के कारण ही यह कृति प्रभावशाली बन पडी है।

एन कदै *(त० कृ०)* [रचना-काल—1944 ई०]

'एन कदै' तमिल के प्रसिद्ध कवि नामक्कलकविज्ञर का आत्मचरित है। यह आत्मचरित रोचक निबंध के रूप में रचित है। कृति की भूमिका में नामक्कल कविज्ञर ने कहा है कि जीवनी प्रायः वे विद्वान लिखते हैं जो लोगों के आदर्श रहे हों तथा जिन्होंने लोगों के लिए अनुकरणीय महान कार्य किये हों। उन्होंने अपनी इस कृति में अपने जीवन-संबंधी ऐसी घटनाओं का वर्णन किया है जो पाठकों का मनोरंजन कर सकें। वस्तुतः लेखक ने अपने जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन अत्यंत सरल एवं रोचक शैली में किया है। प्रत्येक घटना स्वतंत्र कहानी के रूप में वर्णित है। नामक्कल कविज्ञर मूलतः कवि थे, अतः इस कृति में भी उनकी शैली अनेक स्थलों पर काव्यमय हो उठी है।

इस कृति में कृतिकार ने सन् 1900 से 1935 तक के अपने जीवनकाल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन करने के साथ-साथ इस कालावधि में अपने संपर्क में आये तमिलनाडु के राजनीतिक एवं सामाजिक नेताओं के जीवन का संक्षिप्त परिचय भी दिया है। इस प्रकार इस कृति का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों से विशेष महत्व है।

एन चरित्तिरम् *(त० कृ०)*

यह तमिल के प्रसिद्ध शोधकर्ता डा० उ० वे० सामिनाथ अय्यर की आत्मकथा है। तमिल-साहित्य के इतिहास में इसका अनेक दृष्टियों से अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उन्नीसवीं शताब्दी में तमिल भाषा तथा साहित्य के विकास के प्रेरक दो महान् व्यक्ति हुए—सामिनाथ अय्यर और सुब्रह्मण्य भारती। श्री अय्यर ने डाक्टर ऑफ़ लिटरेचर, महामहोपाध्याय, दाक्षिणात्य-कलानिधि इत्यादि अनेक उपाधियाँ तथा विरुद प्राप्त किये थे जो उनके साहित्यिक कार्यों के प्रमाण हैं। श्री अय्यर की जीवनी उस समय के तमिल-समाज, तमिल-साहित्य तथा साहित्य-विकास में निरत विभिन्न संस्थाओं का अत्यंत रोचक चित्रण प्रस्तुत करती है। तमिल के प्राचीन साहित्य के अनेक ग्रंथ, जो तालपत्रों में लिखित थे, उनके पढ़ने वालों के अभाव से उपेक्षित होकर दीमकों का भोजन बन रहे थे। श्री अय्यर ने गाँव-गाँव घूमकर अनेक व्यक्तियों के घर से खोज-खोजकर ऐसे अमूल्य ग्रंथों को प्राप्त कर प्रकाशित कराया था। ऐसे साहित्यिक अभियानों का रोमांचकारी वर्णन इस जीवनी की एक विशेषता है।

बचपन से ही श्री अय्यर में तमिल के प्रति अनुराग था; पहले अपने पिता से उन्होंने तमिल-साहित्य का अध्ययन आरंभ किया; फिर स्थान-स्थान पर जाकर अनेक विद्वानों से तालपत्र में अंकित किसी कृति का, या छंद-व्याकरण आदि के किसी ग्रंथ का अध्ययन किया था। अंत में मीनाक्षिसुन्दरम् पिळ्ळै के अंतेवासी शिष्य रहकर इन्होंने तमिल-साहित्य का अध्ययन किया। श्री मीनाक्षिसुन्दरम् तमिलनाडु के 'तिरुवावडुतुरै' नामक स्थान में स्थित प्रसिद्ध शैवमठ के 'आस्थान-कवि' थे। श्री अय्यर भी उसी मठ के आश्रय में रहे। बाद में मद्रास सरकार द्वारा ये स्नातक कक्षाओं में तमिल पढ़ाने के लिए नियुक्त किए गए थे—पहले 'कुंभकोणम्' के कालेज में और फिर मद्रास के प्रेसिडेंसी कालेज में।

श्री अय्यर ने 'जीवन-चिन्तामणि' 'शिलप्पदिकारम्', 'मणिमखलै' जैसे प्राचीन ग्रंथों के पाठ-शोधन तथा नवीन संस्करण निकाले हैं। यद्यपि वे अंग्रेजी आदि भाषाओं से अनभिज्ञ थे तथापि जिस वैज्ञानिक ढंग से इन प्राचीन तालपत्रस्थ ग्रंथों का संपादन उन्होंने किया, वैसा किसी संस्था के द्वारा भी शायद ही संभव हो। इन ग्रंथों की भूमिकाएँ, इंडेक्स, टिप्पणियाँ, इत्यादि उनके अथक परिश्रम, गहन पांडित्य तथा वैज्ञानिक दृष्टि के प्रमाण हैं। आज का तमिल साहित्य उनका चिर-ऋणी है। यदि वे न होते तो आज के लोगों के सामने तमिल के अतिप्राचीन ग्रंथ भी प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत न होते।

श्री अय्यर अच्छे कवि, तथा गद्यकार भी थे। उनकी शैली सरल, सरस तथा प्रवाहमयी है। उनके द्वारा रचित तथा संपादित ग्रंथों में पाँच महाकाव्य, तेरह पुराण, बयालीस लघु-प्रबंध, चार व्याकरण-ग्रंथ तथा उन्नीस गद्य-ग्रंथ हैं। गद्यकृतियों में उनकी आत्मकथा 'एन चरित्तिरम्' का विशिष्ट स्थान है।

ए बेलार नाट *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1955 ई०]

बीणा बरुवा बिरिंचिकुमार बरुवा (दे०) का छद्म नाम है। इस नाटक में आधुनिक युग के पारिवारिक संघर्ष का चित्रण है। इसे पीढ़ियों का संघर्ष भी कहा जा सकता है। पिता रक्षणशील एवं आदर्शवादी है और पुत्र आस्थाहीन, वाक्पटु और उद्धत। इस द्वंद्व और बढ़े हुए रक्तचाप के कारण पिता की मृत्यु हो जाती है। लेखक ने आधुनिक अकर्मण्य और स्वार्थी युवकों तथा गृहस्थी के प्रति उदासीन

प्रगतिवादी नारियो पर कटाक्ष किया है। सवादो मे बुद्धि-दीप्त वाक्-चातुर्य है।

एम० आर० के० सी० *(मल० ले०)* [जन्म—1882 ई०, मृत्यु—1940 ई०]

मलयाळम मे पश्चिमी शैली की कहानियो के प्रमुख प्रवर्तक चेंकुलत्तु कुञ्ञिराम मेनन का उपनाम विलोम क्रम मे लिखे गए उनके नाम के आद्यक्षर थे। वे राजनीतिक पत्र 'केरलपत्रिका' के सपादक और केरल-कल्पद्रुमम् प्रेस के सस्थापक भी थे। कुछ कहानी-सग्रहो के अलावा 'वळ्ळुवक्कम्मारन्' (उपन्यास), 'रघुवशचरित्रम्', 'कबरामायणम्' (अनुवाद) आदि उनकी रचनाएँ हैं।

एम० आर० के० सी० ने अपनी कहानियो को केरलीय जीवन और इतिहास की पृष्ठभूमि मे ढाला है। कथानक चाहे कल्पित हो अथवा किसी अँग्रेजी कथा से आयातित, पाठको के समक्ष प्राचीन केरलीय वातावरण को पुनरुज्जीवित करने का उनका कौशल स्तुत्य रहा है। मलयाळम मे कहानी-साहित्य की प्रगति को देखते हुए इस नवीनविधा के प्रवर्तक एम० आर० के० सी० का स्थान महत्वपूर्ण और अग्रगण्य है।

एम० आर० बी० *(मल० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

मुळ्ळमगलम् रामन् भट्टतिरिप्पाड्' केरल के प्रमुख समाज-सुधारक हैं। उनके नाटक 'मरक्कुटक्कुळ्ळले महानरकम्' मे नम्पूतिरि-वनिताओ की दुर्दशा का चित्रण है। एक कहानी-सग्रह और कई निबध-सग्रह भी प्रकाशित है। एम० आर० बी० की सरल और काव्यात्मक गद्यलेखन-शैली बहुत लोकप्रिय है। लघुयात्रा-विवरणो के लेखन मे वे सिद्धहस्त है।

एर्राप्रगड *(तै० ले०)* [समय तेरहवी-चौदहवी शताब्दियो के बीच]

'आध्रमहाभारतमु' (दे०) के तीन प्रसिद्ध कवियो मे से एक एर्राप्रगड पोतमांबा और सूरनार्य के पुत्र थे। शिव के अनन्य भक्त होने के कारण इनको शभुदास कहा जाता था। रचना-कौशल के कारण ये 'प्रबधपरमेश्वरुडु' की उपाधि से भी विभूषित थे। 'आध्रमहाभारतमु' के अरण्य (वन) पर्व के उत्तरार्द्ध की रचना इनके द्वारा हुई जबकि प्रारभ से वन पर्व के पूर्वार्द्ध की रचना नन्नयभट्टु (दे०) ने की थी और बाकी पद्रह पर्वो की रचना तिक्कना सोमयाजी (दे०) ने की थी। यद्यपि 'आध्रमहाभारतमु' की रचना मे एर्राप्रगड का योगदान परिमाण की दृष्टि से बहुत कम था, फिर भी दो महाप्राण कवियो की साधना मे सधायक के रूप मे अपनी शैली को दोनो की शैलियो के मजुल सामजस्य से सँवारकर इस महान ग्रथ की रचना को समग्र रूप देना कोई साधारण कार्य नही था। इनका जन्मकाल 1280 ई० के आसपास माना जाता है। 'आध्रमहाभारतमु' की रचना के अतिरिक्त 'रामायणमु', 'हरिवशमु' (दे०) 'नृसिंहपुराणमु', और 'कविसर्पगारुडमु' नाम की चार रचनाएँ और इस कवि की लिखी हुई बताई जाती हैं। पर पहली और अतिम रचनाएँ अप्राप्य है। 'हरिवशमु' और 'नृसिंहपुराणमु' इनकी प्राप्त प्रसिद्ध रचनाएँ है। 'हरिवशमु' नामक काव्य वेमारेड्डी के नाम समर्पित था और 'नृसिंहपुराणमु' अहोबिल के स्वामी नृसिंह देव के प्रति। इनके द्वारा रचित वनपर्व के उत्तरार्द्ध मे रामायण का प्रसग आता है। इस खड की रचना देखकर पाठक के मन मे उनकी स्वतत्र रचना 'रामायणमु' को पढने का कुतूहल सहज ही पैदा होता है परतु लक्षण-ग्रथो मे उसके कुछ उद्धरण मात्र मिलते है।

एशिया दा चानन *(प० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1946 ई०]

यह एडविन आर्नल्ड के 'लाइट आफ एशिया' का पजाबी मे काव्यानुवाद है। इसका अनुवाद प्रो० मोहन-सिंह (दे०) ने सात वर्षों मे पूरा किया। काव्य-कृति आठ खडो मे विभक्त है। इसका प्रयोग-खड ऐसा लगता है मानो एक स्वत पूर्ण कृति हो। इसका प्रधान छद दोहा है। अन्य छदो मे से सिरखडी का प्रयोग अधिक है। यह वार्तालाप एक चित्रण-शैली का सफल अनुवाद है। महात्मा बुद्ध के जीवन पर आधारित काव्य होने पर भी इसमे तत्कालीन रीति-रिवाज, धार्मिक एव सामाजिक जीवन का सफल चित्रण किया गया है। अनुवाद होते हुए भी यह रचना मौलिक कृति का सा आनद देने मे समर्थ है।

एषुत्तच्छन्, तुंचत् *(मल० ले०)* [जीवन-काल सोलहवी सदी ई०]

ये मलयाळम साहित्य के जनक कहे जाते हैं तथा

सोलहवीं सदी में भारत-भर में प्रवर्तित भक्ति-आंदोलन के प्रमुख कवि थे। ये जाति से शूद्र थे और अपने ही ज्येष्ठ भ्राता के शिष्य थे— इतना अंतस्साक्ष्य और जन-श्रुति दोनों से पुष्ट होता है। कहा जाता है कि इनका व्यवसाय अध्यापन था, इन्होंने तीर्थयात्रा और ज्ञानार्जन-हेतु देश-भ्रमण किया था और केरल में लौटकर चिट्टूर नामक स्थान पर एक गुरुमठ की स्थापना की थी। यह मठ और 'तुंचन् परम्पु' नामक कवि का जन्मस्थान आज भी साहिती-भक्तों का तीर्थ स्थान है।

ए.पुत्तच्छन् की सर्वप्रसिद्ध कृति 'अध्यात्म रामायणम् किळिप्पाट्टु' (दे०) है जो 'रामचरितमानस' (दे०) की तरह सभी घरों में पढ़ी जाती है। काव्य-गुणों में 'महाभारतम् किळिप्पाट्टु' (दे०) 'रामायणम्' से भी उत्कृष्ट माना जाता है। 'श्रीमद्भागवतम्', 'ब्रह्मांड-पुराणम्, 'देवीमाहात्म्यम्', 'हरिनाम कीर्त्तनम्' (दे०) 'रामायणम् इरुपत्तिनालुवृत्तम्' (दे०) आदि भी इनके द्वारा रचित माने जाते है, यद्यपि इनमें किसी-किसी के बारे में इतिहासकार एकमत नहीं है।

ए.पुत्तच्छन् भारतीय संत-कवियों की परंपरा में प्रमुख हैं। ये अद्वैत वेदांत के अनुयायी थे और इन्होंने जनता में रामभक्ति संचारित की थी। धार्मिकता और नैतिकता की स्थापना में इनका योगदान ऐतिहासिक है। इन्होंने किळिप्पाट्टु (दे०)-शैली को प्रवर्तित करके और भाषा के एक मानक रूप को प्रस्तुत करके आगे के कवियों के लिए आदर्श स्थापित किया जिसका आज के कवि भी अनुसरण करते है। इन्होंने पांडित्य-प्रकर्ष के प्रदर्शन के लिए कभी कलम नहीं चलायी, भक्ति-रस का जागरण ही इनका लक्ष्य था।

मलयाळम की काव्य-भाषा के वर्तमान रूप के स्थापक, साहित्य-जगत में नए लक्ष्य-बोध के द्रष्टा तथा प्रतिभाशाली कवि-मूर्धन्य के रूप में ए.पुत्तच्छन् का स्थान मलयाळम के साहित्यकारों मे सर्वप्रथम है।

ए.पुत्तच्छन्, सूर्यनारायणन् *(मल० ले०)* [जीवन-काल सोलहवी सदी ई०]

तुचत्तु एपुत्तच्छन् द्वारा स्थापित गुरुकुल 'चिट्टूर मठम्' की गुरु-परंपरा के एक प्रमुख आचार्य। अपने शिष्यों को योगविद्या और अध्यात्मविद्या की शिक्षा देने के अलावा उन्होंने आध्यात्मिक ग्रंथों की भी रचना की है। 'स्कंदपुराणम्' और 'तत्वज्ञानामृतम्' उनकी कृतियां समझी जाती थी, परंतु आधुनिक शोधों से इस मत का खंडन हो गया है।

एहतिशाम हुसैन *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

जन्म-स्थान : कस्बा माहल, जिला आजमगढ़। आधुनिक उर्दू साहित्य के शीर्षस्थ आलोचकों में इनकी गणना होती है। इन्होंने इलाहाबाद से एम० ए० पास कर सन् 1938 ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय में उर्दू प्राध्यापक के रूप में अपनी आजीविका प्रारंभ की थी। तब से इन्होंने अपने लेखों और उपन्यासों के द्वारा उर्दू साहित्य की श्रीवृद्धि में मनोयोगपूर्वक सक्रिय सेवा का व्रत लिया हुआ है। इन्होंने पाश्चात्य साहित्य का गहन अध्ययन कर उर्दू साहित्य को प्रगतिशील बनाने का स्तुत्य कार्य किया है। इनकी प्रसिद्ध आलोचनात्मक कृति 'तनक़ीदी जायज़े' उर्दू के आलोचना साहित्य की अमूल्य निधि है। इनकी अन्य कृतियों में 'अदब और समाज', 'वीराने' (उपन्यासों का संकलन), 'रिवायत और बगावत', 'तनक़ीद और अमली तजक़ीद' और 'उर्दू लिसावियात का खाका' उल्लेखनीय हैं। इनकी एक और कृति 'साहिल और समंदर' के नाम से भी प्रकाशित हुई है, जिसमें उन्होंने अमरीका और ब्रिटेन की यात्रा के अपने अनुभव व्यक्त किए है और आंखो देखा हाल भी लिखा है। इनका अभिव्यंजना-कौशल न केवल परिमार्जित और परिष्कृत है अपितु एक विशिष्ट नवीनता, सूक्ष्मता और रोचकता का द्योतक भी है।

'एहसान' दानिश *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

जन्म-स्थान—कांधला (जिला मुजफ़्फ़रनगर); पूरा नाम—एहसान-उल-हक़, पिता का नाम—क़ाज़ी दानिश अली। इनका वास्तविक निवास-स्थान बाग़पत (जिला मेरठ) था। उर्दू के प्रगतिवादी कवियों में इनका ऊंचा स्थान है। इनके काव्य पर डा० इकबाल की अभिव्यंजना-शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है। ये उर्दू के प्रथम मज़दूर शायर हैं। इनका आरंभिक जीवन बहुत कठिनाइयों एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में व्यतीत हुआ। इनके पिता इनके बचपन में ही अत्यंत निर्धन हो गए थे। अतः इन्हें अपनी शिक्षा का क्रम त्याग कर मजदूरी करनी पड़ी तथा नगरपालिका में चपरासी का काम भी करना पड़ा। परंतु उच्च पदाधिकारियों के दुर्व्यवहार के कारण नौकरी छोड़ देनी पड़ी। तदुपरांत ये लाहौर पहुंचे और वहां मज़दूरी करने लगे। बाद में वहां गेलानी बुक डिपो में नौकरी प्राप्त

करने मे सफल हो गए। अपनी स्वाध्यायशील प्रवृत्ति के बल पर इन्होंने उर्दू काव्य-जगत मे काफी नाम पैदा किया है। इनकी कृतियो मे 'नवा-ए-कारगर', 'आतिश-ए-खामोश', 'जादा-ए-नौ', 'नफ़ीर-ए-फितरत' और 'चिरागाँ' महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय हैं।

ऐंकुरुनूरु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से ईसा की दूसरी शताब्दी तक]

'ऐंकुरुनूरु' की गणना सघकालीन अष्ट गद्य-सग्रहो (एट्टुत्तोगै) मे होती है। इसमे तीन से लेकर छह पक्तियो तक के 500 पद सग्रहीत है। कृति पाँच भागो मे विभाजित है जिनके रचयिता क्रमश ओरपोगियार, अम्मूवनार, कपिलर (दे०), ओदलआदैयार और पेयनार है। मगलाचरणात्मक पद के रचयिता पेरुदेवनार है। विभिन्न कवियो के पदो का सग्रह पुलत्तरै मुट्रिय कूडळूर विळार नामक कवि ने किया। ऐंकुरुनूरु की गणना सघकालीन अहम काव्यो मे होती है। इसके पाच भागो मे क्रमश अहम काव्यो मे वर्णित कुरिंजि, मुल्लै, मरुदम्, पालै और नेयदल नामक भूभागो का और उनसे सबधित मन स्थितियो का वर्णन है। विभिन्न भूभागो का वर्णन करते समय कवियो ने उस भूभाग-विशेष मे स्थित नगरो, वहा के मुखियो तथा सामान्य जनता का वर्णन किया है। कवियो ने प्रदेश-विशेष के प्राकृतिक सौंदर्य, सामाजिक प्रथाओ, उत्सवो एव पर्वो, वृक्षो, लताओ, पुष्पो, देवी-देवताओ आदि का वर्णन किया है। सपूर्ण कृति 'अह्‌वल' छद मे रचित है। ऐंकुरुनूरु के अध्ययन से तत्कालीन तमिल समाज की विभिन्न प्रथाओ एव उत्सवो-जैसे किसी वीर योद्धा की यादगार मे शिला गाडा जाना, इद्रोत्सव, नारियो की देवी की पूजा, देवी-व्रत, पावै नोन्बु,, नारियो के विविध आभूषणो, बालको की क्रीडाओ आदि-का ज्ञान प्राप्त होता है।

ऐतिहासिक उपन्यास *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-काल—1857 ई०]

भूदेव मुखोपाध्याय (दे०) के 'ऐतिहासिक उपन्यास' ग्रथ से बँगला साहित्य मे ऐतिहासिक उपन्यास-रचना का सूत्रपात हुआ। 'सफल स्वप्न' तथा 'अगुरीय विनिमय' के नाम से दो कहानियाँ इसमे लिपिबद्ध हैं। 'अगुरीय विनिमय' के आख्यान मे ऐतिहासिक उपन्यास का रूपविधान एव मूल-चेतना का प्रयोग किया गया है। शिवाजी, औरगजेब, शाहजहाँ, रोशिनारा, जयसिंह, रामदास स्वामी आदि इतिहास-प्रसिद्ध चरित्रो के माध्यम से जिस कहानी का विन्यास किया गया है, उसके साथ कल्पना का बहुत ही सुदर सामजस्य है। यह अनुमान किया जाता है कि भूदेव की इस ऐतिहासिक आख्यान-वस्तु का बकिमचद्र (दे०) पर परोक्ष प्रभाव पडा था। यह निश्चित है कि रमेशचद्र दत्त (दे०) पर निश्चय ही इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पडा था। भूदेव मुखोपाध्याय की इन दोनो कहानियो का आधार-स्थान है कन्टार का 'रोमास ऑफ हिस्ट्री—इडिया'। गठन एव विन्यास की दृष्टि से भूदेव बाबू की विशेषता इसमे स्पष्ट है।

ऐतिहासिक पत्रव्यवहार *(म० कृ०)*

विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे (दे०) द्वारा सकलित 'मराठ्याच्या इतिहासाची साधनें' ग्रथ के 21 खड है। लगभग 5500 पृष्ठो मे लिखित इन 21 खडो मे 4417 ऐतिहासिक पत्र उद्धृत है जिनका अभूतपूर्व महत्व है।

इसमे सहस्रो ऐतिहासिक पत्रो को खोज कर तथा उनका सपादन कर मराठो के इतिहास के अध्ययन तथा लेखन के लिए प्रामाणिक सूत्र उपलब्ध कराए गए है। इन महत्वपूर्ण तथा दुर्लभ ऐतिहासिक पत्रो की उपलब्धियो के लिए राजवाडे जी को अनिकेत होकर सपूर्ण हिंदुस्तान का भ्रमण करना पडा था। उन्होने निष्ठापूर्वक इन पत्रो को हस्तगत किया था। इस कार्य के लिए उन्हे जन्मकाल मे तो विशेष ख्याति न मिली थी परतु मरणोपरात उनकी गणना भारत के गण्यमान्य इतिहासकारो मे हो गई।

'ऐतिहासिक कागदपत्रे' नामक उनका विशाल सग्रह है जिसमे महाराष्ट्र के इतिहास-पट पर उदित हुए अनेक कर्मठ कुटुम्बो और घरानो से सबधित पत्र सकलित है। महाराज शिवाजी, नाना साहब पेशवा, मल्हारराव होळकर, नाना फडणीस आदि अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तियो के पत्र है। इस ग्रथ की सामग्री इतनी विपुल है कि इस पर कई शोध-प्रबध लिखे जा सकते है।

इस प्रकार मराठो का शुद्ध इतिहास देने के प्रयास मे राजवाडे ने जो कार्य किया वह ऐतिहासिक शोध के इतिहास मे केवल अभूतपूर्व ही नही, विशिष्ट भी है।

ऐतिहासिक पोवाडे *(म० कृ०)*

यशवंत नरसिंह केळकर ने प्राचीन ऐतिहासिक पोवाडों का बड़े परिश्रम से अनुसंधान किया है। अपनी खोज से उपलब्ध संपूर्ण पोवाडों को उन्होंने तीन खंडों में प्रकाशित किया है। प्रथमखंड का प्रकाशन-काल है—1928 ई०। इसकी प्रस्तावना 97 पृष्ठों की है, जो पोवाडों की सर्वांगीण समीक्षा की दृष्टि से बहुत मूल्यवान है। उपलब्ध पोवाडों की संख्या लगभग 300 है, इनमें से शिवाजी से लेकर प्रथम शाहू महाराज तक के सात, पेशवाओं के समकालीन 150 और शेष अँग्रेज़ों के आरंभिक काल से संबद्ध है। इन्होंने पोवाडों का संग्रह मात्र नहीं किया है वरन् इनके पाठ-संशोधन में भी बहुत गंभीर कार्य किया है। प्राचीन पोवाडों की लिपि 'मोडी' थी, इसका देवनागरी में परिवर्तन किया है; कठिन शब्दों के अर्थों का निर्देश किया है। अन्य ऐतिहासिक साधनों से इनकी प्रामाणिकता की परीक्षा की है। यह संग्रह एक तथ्य को प्रमाणित कर देता है: जैसे इतिहास में काव्यत्व की अवस्थिति संभव है वैसे ही काव्य में इतिहास की उपलब्धि भी सर्वथा संभव है। द्वितीय खंड का प्रकाशन-काल है सन् 1944 ई०। इसमें संकलित पोवाडों की संख्या है—26। विशेष उल्लेखनीय पोवाडे है—'सेखोजी आंग्रे' 'नाना फडणीस' 'महादजी शिंदे' 'अहिल्याबाई होळकर', 'गायकवाड' आदि। तृतीय खंड का प्रकाशन-काल है सन् 1969 ई०। इसमें कुल मिलाकर 131 पोवाडे संकलित हैं। इनमें निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्तियों से संबद्ध पोवाडे अधिक महत्वपूर्ण हैं—'संभाजी महाराज', 'दौलतराव शिंदे', 'यशवंतराव होळकर', 'टीपू सुल्तान', 'प्रतापसिंह महाराज', 'खंडेराव गायकवाड़' आदि।

ऐतिह्यमाला *(मल० कृ०)*

इसके आठ भाग हैं और रचयिता कोट्टारत्तिल् (दे०) शंकण्णि हैं। रचना-काल सन् 1832 और सन् 1937 के बीच में माना जाता है। देवालय की स्थापना, देश का इतिहास, महानों की जीवनियाँ आदि कई विषयों पर इस ग्रंथ में लिखा गया है। भाषा सहज-सुंदर है।

ऐ वे मध्य बंचिछि *(उ० कृ०)*

श्री गोदाबरीश महापात्र (दे०) के इस कहानी-संकलन में आधुनिक भारतीय जीवन की अनेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ सामने आई हैं। पश्चिम के अंधानुकरण पर भारत ने जिस तकनीकी सभ्यता, यांत्रिक संस्कृति को अपनाया है, वह उसके लिए कितनी ग्राह्य है, इसे समझने का प्रयास इसमें दिखाई पड़ता है। भारत की अर्थव्यवस्था, भारतीय समाज की संरचना यहाँ की मिट्टी-पानी से उद्भूत होकर ही हमारे लिये उपयोगी हो सकती है, अन्यथा मागुणि की मृत्यु के समान भारतीय जीवन का भी करुण अंत होगा। भारतीय संदर्भ में गोदावरीश महापात्र ने विश्वजनीन समस्या उठाई है। अमानवीय यान्त्रिक सभ्यता के दानवी पंजों में फँसकर मानव की बृहत उपलब्धि किस प्रकार चकनाचूर हो रही है, इसकी भी स्पष्ट झनझनाहट सुनाई पड़ती है।

ऐह हमारा जीवना *(पं० कृ०)*

दलीपकौर टिवाणा के इस उपन्यास में नारी-जीवन की करुणा को सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास की नायिका भानी के जीवन-क्रम में यह करुणा व्यक्त होती है। उपन्यास की विशेषता इस बात में है कि लेखिका नायक के बिंब-चित्रण द्वारा मानवीय भावों को व्यक्त करती है। इस उपन्यास में मानव-भाषा की बजाय चरित्रों के हाव-भाव तथा उनका मूक व्यवहार अधिक व्यंजक है।

यह उपन्यास साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत है।

ओंकार *(पं० पारि०)*

प्रणव। आद्य बीजमंत्र। बीजमंत्र में परमात्मा का गुणवाचक दूसरा शब्द 'ओंकार' है। 'आदि ग्रंथ' में इसे 'एकंकार' तथा 'ओ अंकार' रूप में संबोधित किया गया है: 'आंनक भाँति होइ पसरिआ नानक एकंकार'। पातंजलि के 'योगसूत्र' में परमात्मावाची शब्द 'प्रणव' की भाँति ही गुरु नानक देव ने 'ओंकार' शब्द को माना है। यह परमात्मा का प्रतीक पद है। गुरु नानक ने ओंकार से सृष्टि का जन्म-पालन माना है—

"ओ आंकारि सबदि उपरे ओं अकारि गुरमुखि तरे।
ओनम अखर सुणहु बीचारु, ओनम अखरु त्रिभवण सारु॥"

गुरु अर्जुन देव (दे०) ने भी सारी सृष्टि की रचना

ओंकार से ही मानी है । उनकी उक्ति है—'एककार एक पासारा, एकै अपरअ पारा ।

ओगाळ *(उ० पारि०)*

ओगाळ का अर्थ है पथ-अवरोध । इस प्रकार की कविताओ मे अनेक प्रकार के तात्विक एव कौतुकपूर्ण प्रश्न एव उत्तर रहते हैं । सस्कृत-साहित्य मे कवियो के काव्य विवाद मे इस प्रकार प्रश्नोत्तर दिखाई पडते हैं । अच्युतानन्द दास (दे०) विरचित ओगाळ इसका एकमात्र दृष्टात है।

ओजापाली *(अ० पारि०)*

असम मे यह अनुष्ठान 10वी-11वी शताब्दी के पश्चात् प्रचारित हुआ था । कालिकापुराण मे पाचालिका बिहार एव शिशु-कौतुक के आयोजन द्वारा देवी को प्रसन्न करने का विधान है । पाचालिका शब्द कठपुतली के नाच की ओर सकेत करता है । इधर यह भी ध्यान देने योग्य है कि ओजापाली मे जो कथा प्रस्तुत की जाती है उसे 'पाचाली' कहते हैं । ओजापाली दो प्रकार की होती है एक मे 'महाभारत' (दे०) और 'रामायण' (दे०) के गीत गाये जाते हैं, दूसरे मे मनकर, दुर्गावर आदि के पद्मपुराण के । ओजापाली मे कम-से-कम पाँच व्यक्ति रहते है—एक ओजा, एक दाइना पाली और तीन साधारण पाली । ओजा सिर पर पगडी, पैरो मे नूपुर, शरीर पर चोला-चद्दर, माथे पर चदन और कान मे बाला धारण करता है। ओजा ही गा-गा कर कथा आगे बढाता है, हाथ की मुद्रा और पैरो की ताल के साथ । पाली के लोग मँजीरा बजाते हैं । कभी-कभी वह दाइनापाली के साथ सलाप करता है। इस प्रकार ओजापाली मे गीत, नृत्य, मुद्रा, सलाप आदि नाट्याग की अभिव्यक्तियाँ होती हैं । इसका प्रचार किसी-न किसी रूप मे बगाल मे भी रहा है । श्री शकर-देव (दे०) ने ओजापाली को सस्कृत नाटको के अनुरूप परिमार्जित कर अकीयानाट (दे०) मे परिवर्तित किया था ।

ओझा, गौरीशकर हीराचद *(हिं० ले०)* [जन्म—1863, निधन—1947 ई०]

इतिहास, पुरातत्त्व, प्राचीन लिपि, तथा अनेक भाषाओ के विद्वान म० म० प० ओझा जी पहले उदयपुर के राजकीय पुरातत्त्व-विभाग के अध्यक्ष तथा बाद मे राजपूताना म्यूज़ियम, अजमेर के क्यूरेटर थे । आपने दो दर्जन से अधिक अत्यत महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखी या सपादित की जिनमे मुख्य 'प्राचीन लिपि माला', 'नागरी अक और अक्षर', 'भारतीय प्राचीन लिपि-माला', 'अशोक की धर्म-लिपियाँ', 'मध्यकालीन भारतीय सस्कृति', 'राजपूताने का का इतिहास' (चार खड), 'पद्यरत्नमाला', 'गद्यरत्नमाला', 'जयानक प्रणीत पृथ्वीराज विजय महाकाव्य' (सटीक) आदि है । प्राचीन लिपि माला, अतर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त ग्रथ है जिसमे ब्राह्मी, खरोष्ठी, गुप्त, कुटिल, नागरी, शारदा, बँगला, पश्चिमी, मध्य प्रदेशी, तेलुगु कन्नड, ग्रथ कलिंग, तमिल आदि लिपियो की उत्पत्ति और उनका क्रमिक विकास प्रामाणिक सदर्भों के आधार पर दिखाया गया है । भारतीय लिपियो पर आज भी यही सबसे प्रामाणिक ग्रथ है । इतिहास भाषा और लिपि का सहारा लेते हुए ओझा जी ने 'पृथ्वीराज रासो (दे०) को अप्रामाणिक ग्रथ सिद्ध किया था ।

ओटक्कुषल् *(मल० कृ०)*

'ओटक्कुषल् कवि जी० शकर कुरुप (दे०) की लिखी कविताओ का सग्रह है । इनका रचना-काल सन् 1920 और सन् 1950 के बीच मे है । साठ कविताएँ इसमे सगृहीत है । भारतीय ज्ञानपीठ का एक लाख रुपये का पुरस्कार सबसे पहले इसी ग्रथ पर दिया गया । 'ओटक्कुषल्' (वशी) इस ग्रथ की पहली कविता है । इसकी कविताएँ विचार और भाव की समृद्धि की दृष्टि से महाकवि के साहित्यिक व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करती है ।

ओटयिल् निन्नु *(मल० कृ०)*

यह पी० केशवदेव (दे०) का प्रसिद्ध उपन्यास है । इसमे एक रिक्शा वाले पप्पु (दे०) की कथा वर्णित है जिसका बाहरी व्यवहार रुक्ष है, पर जो एक निरीह लडकी के पालन-पोषण मे अपना सब कुछ समर्पित कर देता है । उस लडकी का विवाह उसके इष्ट कामुक से करवाकर राजयक्ष्मा से पीडित पप्पु खाँसते-खाँसते राजमार्ग मे अन्तर्धान हो जाता है ।

इस उपन्यास म मज़दूर पर किए जान वाले अत्याचार और मज़दूरो के वर्ग-सघर्ष की समस्या उठाकर यद्यपि प्रगतिवादी विचार प्रकट किए गए हैं तो भी मुख्य

धारा दरिद्र मानव में अंतर्लीन उच्च मानवता का प्रकाशन ही है। मलयाळम उपन्यास की नवीन दशा के आरंभ में निकलने वाली कृतियों में 'ओटयिल् निन्नु' का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

ओट्टकूत्तर *(त० ले०)* [समय—ईसा की बारहवीं शताब्दी]

ओट्टकूत्तर तमिल के प्रसिद्ध कवियों में गिने जाते हैं। इनकी अपार कवित्व-शक्ति से प्रभावित होकर विद्वानों ने इन्हें 'कवि-राक्षस', 'कवि-चक्रवर्ती', 'सर्वज्ञ कवि' आदि उपाधियाँ प्रदान की। ओट्टकूत्तर की कृतियों के नाम इस प्रकार हैं—ईट्टि एगुपदु, मूवर उला, तक्कयाग परणि, अरुंबै, तोळ्ळायिरम्, गांगेयन नालायिर कोवै, कुलोत्तुंगन्चोळ्न पिळ्ळैतमिल (दे०) आदि। अधिकांश विद्वानों का मत है कि 'कंबरामायणम्' के उत्तरकांड की रचना ओट्टकूत्तर ने की थी। ईट्टि-एपुपदु में कवि ने अपनी जाति का वर्णन किया है। 'मूवर उला' उला (दे०) शैली में रचित है। इसमें विक्रम चोळ, उसके पुत्र कुलोत्तुंग चोळ द्वितीय और उसके पुत्र राजराज चोळ द्वितीय से संबंधित कुछ विवरण प्राप्त होते हैं। 'तक्कयाग परणि' 'भरणी' नामक काव्य-शैली में रचित है। यह एक युद्ध-काव्य है। इसमें दक्ष प्रजापति के यज्ञ तथा शिवजी के तांडव-नृत्य का वर्णन है। 'अरुंबै तोळ्ळायिरम्' और 'गांगेयन नालायिर कोवै' नामक कृतियाँ अप्राप्य है। 'कुलोत्तुग चोपन पिळ्ळेतमिल' में चोळ राजा कुलोत्तुंग के युद्धों एवं विजयों का वर्णन है। यद्यपि ओट्टकूत्तर से पूर्व पेरियाळवार ने कृष्ण की बाललीलाओं से संबंधित अनेक पदों की रचना की तथापि पिळ्ळैतमिल (दे०)-शैली में एक रचना प्रस्तुत करने का श्रेय इन्हीं को है। ओट्टकूत्तर की रचनाओं में चोळ राजाओं के काल के उत्तरार्द्ध से संबंधित पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है।

ओट्टन् तुळ्ळल् *(मल० पारि०)*

यह कुंचन् (दे०) नम्पियार रचित तुळ्ळ कथाओं के तीन प्रकार-भेदों में एक है। अन्य दो प्रकारों की अपेक्षा इसमें द्रुत-गान के लिए योग्य छंदों का प्रयोग हुआ है, यथा तरंगिणी, अर्धकेका, वक्त्र, स्वागता, सुमंगला, शिताग्रा, अजगरगमन आदि। मलयाळम में 'ओट्टम्' का अर्थ दौड़ अथवा तीव्र गति है जो शायद इन छंदों के गुण की ओर संकेत करता है। इन कथाओं के आख्याता नर्तक हरे रंग से मुख-सज्जा करते हैं और मुकुट पहनते हैं। नम्पियार की कथाएँ अधिकतर इसी विधा में है और अन्य दोनों विधाओं के स्थान पर भी सामान्य रूप से इसी विधा का नाम लिया जाता है, अर्थात् तुळ्ळल् के पर्याय के रूप में भी ओट्टन तुळ्ळल् शब्द का प्रयोग होता है।

ओड़िआ गीतिकाव्य *(उ० कृ०)*

इन गवेषणामूलक पुस्तक के रचयिता डा० जानकीवल्लभ महान्ति (भारद्वाज) (दे०) हैं। इसमें प्राचीन साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक उड़िया गीतिकाव्य-परंपरा एवं उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। उदाहरणों से समृद्ध यह रचना उड़िया-साहित्य पर एक उपादेय रचना है।

ओड़िया भाषा तत्व *(उ० कृ०)*

'ओड़िया भाषा तत्त्व' श्री गोपीनाथ नन्दशर्मा की (दे०) उड़िया-साहित्य को महत्वपूर्ण देन है। इसमें उड़िया भाषा का पांडित्यपूर्ण विवेचन मिलता है। यद्यपि लेखक संस्कृत के ही विद्वान थे, अँग्रेजी उन्हें नहीं आती थी, किंतु भाषा-विज्ञान के विवेचन में उन्होंने जिस सूक्ष्मता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय दिया है, वह असाधारण है तथा उनकी पैनी प्रतिभा और मौलिक सूझबूझ का परिचायक है। यह ग्रंथ अन्य भारतीय भाषाओं के एतत्संबंधी गिने-चुने ग्रंथों में से एक है।

ओड़िया भाषार उत्पत्ति ओ क्रमविकाश *(उ० कृ०)*

'ओड़िया भाषार उत्पत्ति ओ क्रमविकाश' श्री बंशीधर महान्ति (दे०) की विद्वत्तापूर्ण गवेषणात्मक रचना है। इसमें विभिन्न भारतीय भाषा-गोष्ठियों का परिचय देते हुए उड़िया भाषा की उत्पत्ति और विकास पर प्रकाश डाला गया है। उड़िया भाषा की निजी विशेषताएँ, उसका विशिष्ट स्वरूप, उसकी समाहार-शक्ति, उसकी रक्षण-शीलता, आदिवासी, द्रविड़, मुसलमानी तथा अन्य यूरोपीय भाषाओं के प्रभाव के बावजूद, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश से उसका क्रमिक विकास, प्राचीन शब्दों का अपरिवर्तित रूप तथा इनके कारण उसका विशाल शब्द-भांडार, (आर्कायिक कैरेक्टर) आदि का इसमें पांडित्यपूर्ण विवेचन हुआ है। उड़िया लिपि का उद्भव और विकास तथा उसकी विशेषताओं का भी

परिचय इसमे मिलता है। अत मे आजकल की भाषा-सबधी कतिपय समस्याओ पर भी प्रकाश डाला गया है। उडिया भाषा पर यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

ओडिआ लोकगीत ओ कहाणी *(उ० कृ०)*

'ओडिया लोकगीत ओ कहाणी' डा० वृज-बिहारी दास (दे०) के विशाल अध्ययन एव गभीर मनन का परिचायक है। यह बृहदाकार ग्रथ केवल उडिया लोक-गीतो के स्वरूप, उद्भव और विकास पर ही प्रकाश नही डालता, वरन् साथ ही भारतीय पृष्ठभूमि मे भी उडिया लोक गीतो का अध्ययन करता है। इस व्यापक परिप्रेक्ष्य के कारण जहाँ उडिया लोक-गीतो का वैशिष्ट्य प्रकट हो जाता है, वही व्यापक भारतीय सदर्भ मे उसके स्वतत्र योग-दान का परिचय भी मिल जाता है।

ओड्या साहित्यर इतिहास *(उडि० कृ०)*

यह ग्रथ उडिया साहित्य के इतिहास के क्षेत्र मे प० सूर्यनारायण दास (दे०) का स्तुत्य प्रयत्न है। अभी तक इसके बृहदाकार चार भाग प्रकाशित हो चुके है। इसका विषय-प्रतिपादन विशद एव सर्वागीण है। युगीन परिस्थिति के साथ साहित्यिको एव उनकी कृतियो का इसमे विस्तृत विवरण मिलता है। इतिहासकार की तटस्थता इस ग्रथ की विशेषता है। यदाकदा जहा पर इतिहासकार की ओर से टिप्पणियाँ अथवा समीक्षात्मक वैयक्तिक धारणायें व्यक्त हुई है, वे इतिहासकार की तटस्थ विवेचना ही प्रस्तुत करती है। इसकी भाषा प्रसादगुण मयी है तथा शैली अत्यत ऋजु-सरल है। यह ग्रथ आलो चनात्मक नही है—विवरणात्मक ऐतिहासिक ग्रथ है।

इस प्रकार के विराट् ग्रथो मे विचारो की जितनी गूढ गुफित परपरा होनी चाहिए, भाषा मे जितनी कसावट व शैली मे जितनी सामासिकता होनी चाहिए वह इसम नहीं हैं। वर्णन विस्तार के कारण यह ग्रथ बोझिल हो गया है।

फिर भी उडिया साहित्य मे इस ग्रथ का बडा महत्व है। इस क्षेत्र मे अब तक जो भी काम हुआ है वह अत्यल्प है। इस विषय मे अन्य ग्रथ इतने समग्र एव व्यापक भी नही हैं। उडिया साहित्य के इतिहास की सर्वागीण रूप-रेखा देने के लिए यह ग्रथ मील के पत्थर के समान है।

प० सूर्यनारायण दास की योजना इसके दस भाग लिखने की है। इस कार्य का सपादन हो जाने पर, यह निश्चित है कि, पाठक को उडिया साहित्य के इतिहास के परिचय के लिए भटकना नही पडेगा। एकाकी प्रयास से इतने भागो मे इस ग्रथ की रचना लेखक के अध्यवसाय एव लगनशीलता की सूचक है।

ओडिया साहित्यर इतिहास *(उ० कृ०)*

श्री बिनायक मिश्र (दे०) कृत ओडिआ साहित्यर इतिहास' एक गभीर गवेषणात्मक ऐतिहासिक रचना है। श्री बिनायक मिश्र पुरातात्त्विक गवेषणा एव ताम्रशासन की सपादना से उडीसा के इतिहास एव उडिया-साहित्य के इतिहास के विवेचन मे अनेक नवीन तत्त्वो का समावेश कर गये है। सूक्ष्म गवेषणामूलक अतर्दृष्टि के कारण उनका ऐतिहासिक विवेचन अधिक यथार्थ, तलस्पर्शी एव यथार्थपूर्ण हो सका है। इसकी शैली सस्कृतनिष्ठ एव पाडित्यपूर्ण है।

ओफाइदा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1952 ई०]

लक्ष्मीनाथ फुकन के इस कहानी सग्रह मे मध्यवित्त वर्ग के जीवन के सुख-दु ख का चित्रण व्यग्य एव करुणासिक्त हास्य के साथ हुआ है। इसमे छह लघु-कथाएँ है। 'महिमामयी कहानी मे क्लर्क की एक कजूस पत्नी का वर्णन है जो अपने सबधी के द्वारा ठगी जाती है। एक अन्य कहानी मे एक टाइपिस्ट की मृत्यु हो जाने पर उसके आफिस मे 300 रु० का उसका चित्र टाँगा जाता है, यदि इस धनराशि का एक तिहाई भाग भी उसे दे दिया जाता तो उसकी मृत्यु न होती। कहानियो मे बोलचाल की भाषा के शब्दो एव मुहावरो का प्रयोग है जो पाठको पर सीधा प्रभाव डालते है।

ओरुविलापम् *(मल० कृ०)*

दो कवियो ने एक ही नाम से दो विलाप-काव्य लिखे है। एक के रचयिता सि० एस० सुब्रह्मण्यन् पोट्टि ने अपनी प्रिय सतान के असामयिक निधन पर इसकी रचना की और इसका प्रकाशन सन् 1903 मे हुआ। दूसरी कृति वि०सि० बालकृष्ण पणिक्कर (दे०) की है और विलाप-कृतियो मे सर्वोत्कृष्ट मानी जाती है। सन् 1905 की 'कवन कौमुदी' नामक पत्रिका मे इसका प्रकाशन हुआ। पाठको का मर्मस्पर्श करने मे यह कृति पूर्णत सफल हुई है।

इसका प्रत्येक छंद एक साथ सहृदय पाठक का मन शोक सागर की तरंगों में गहरे डूबता चला जाता है। यह कृति अपनी विधा में सचमुच बेजोड़ है।

ओळप्पमण्णा *(मल० ले०)*

ओळप्पमण्णा सुब्रह्मण्यन् नंपूतिरि का जन्म सन् 1923 ई० में मलाबार के वेल्लिनेषि नामक गाँव में हुआ था। इनका परिवार भूस्वामिता एवं कवि-प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध रहा है। छोटी अवस्था में ही इनकी काव्य-प्रतिभा प्रस्फुटित होने लगी थी। विश्वविद्यालय की शिक्षा पूरी करने और सरकारी सेवा करने की धुन छोड़कर इन्होंने उद्योग और व्यापार का स्वतंत्र क्षेत्र चुना, और उसमें ये सफल भी हुए हैं। परंतु इनका मनोरंजन तो साहित्य के अध्ययन एवं काव्य-सृजन से ही होता है। 'कथकलि' में इनकी विशेष रुचि रही है।

प्रारंभ में ये काव्य के बाहरी सौंदर्य-विधान पर मुग्ध थे किंतु बाद मे ये काव्यगत संवेदना के पक्षपाती हो गये। समसामयिक जीवन के ताल व सम इनकी कविताओं में गूँज उठते हैं। वर्तमान नागरिक जीवन के खोखलेपन का भी इन्होंने उद्घाटन किया है। प्राचीनता के जो पक्षपाती नयी रचनाओं की विलक्षणता एवं दुरूहता पर कटाक्ष व टीका करते हैं, उन्हें आक्रोशपूर्वक चुनौती देने में ये पीछे नहीं। इनके छोटे काव्यों में नङ्ङेमक्कुट्टि (दे०) कथा-नूतनता व भाव-तीव्रता के लिए प्रसिद्ध है। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—इलताळम्, पांचालि कथा-कवितकळ्।

औचित्य *(हिं० पारि०)*

'उचित' के भाव को औचित्य कहते हैं—'उचितस्य भाव: औचित्यम्', तो उचित के अभाव को अनौचित्य। व्यक्ति, देश काल आदि से संबद्ध किसी प्रकार की अनुचितता यदि सहृदय के आह्लाद मे बाधा उपस्थित करती है तो वह त्याज्य है। आनंदवर्धन (दे०) के शब्दों में अनौचित्य से बढ़कर और कोई (तत्व) रसभंग का कारण नहीं है—'अनौचित्यादृते नान्यद् रसभंगस्य कारणम्।' (ध्वन्या० 3.24 वृत्ति)। क्षेमेन्द्र (दे०) ने औचित्य-सिद्धात का प्रवर्तन करते हुए औचित्य के 27 भेदों के उदाहरण प्रस्तुत करने के साथ-साथ इनके प्रत्युदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। अत: प्रकारांतर से अनौचित्य के भी 27 भेद मान सकते हैं। क्षेमेन्द्र के शब्दों में रसों के पारस्परिक संयोजन से औचित्य की रक्षा करनी चाहिए, अनौचित्य से स्पृष्ट रसों का संकर रुचिकर नहीं होता। (औचित्य-विचारचर्चा, 18)। महिमभट्ट (दे०) ने 'दोष' शब्द का प्रयोग न करते हुए 'अनौचित्य' शब्द का प्रयोग किया है तथा इसके प्रमुख भेद माने है—अंतरंग (अर्थ-विषयक) और बहिरंग (शब्द-विषयक)। अंतरंग अनौचित्य का कारण है—रसों में विभाव, अनुभाव (दे०) और व्यभिचारिभावों (दे०) का अनुचित विनियोग (प्रयोग)। बहिरंग अनौचित्य के अंतर्गत उन्होंने निम्नोक्त पाँच दोष गिनाये गये हैं—विधेयामर्श, प्रक्रम-भेद, क्रम-भेद पौनरुक्त वाच्यावचन। नाट्यदर्पण (दे०)-कार रामचंद्र-गुणचंद्र ने रस-दोषों में प्रथम दोष अनौचित्य गिनाया है जिसका लक्षण है: वह कर्म जो सहृदयों के मन में विचिकित्सा (शंका अथवा (संदेह) का कारण बने उसे 'अनौचित्य' कहते हैं—'सहृदयानां विचिकित्सा हेतु कर्मानौचित्यम्' मम्मट (दे०) और विश्वनाथ (दे०) के अनुसार रसाभास (दे०) और भावाभास तभी माने जाते हैं जब क्रमश: रस और भाव का अनौचित्य रूप से वर्णन किया जाए—अनौचित्य-प्रवृतत्व आभासो रसभावयो:। (सा० द० 3.262) उदाहरणार्थ, नायिका का नायकेतर पुरुषों में अनुराग रसाभास का विषय है तो वेश्यादि में लज्जा आदि का वर्णन भावाभास का, आदि। इसी प्रकार तिर्यग्योनिगत रति में भी रसाभास माना जाता है।

औचित्यविचारचर्चा *(सं० कृ०)* [समय अनु०—1050-75 ई० के बीच]

'औचित्यविचारचर्चा' के लेखक क्षेमेन्द्र (दे०) हैं। क्षेमेन्द्र का साहित्यिक काल ग्यारहवी शताब्दी का द्वितीय और तृतीय चरण है। अनुमान है कि 'औचित्य विचारचर्चा' की रचना ग्यारहवीं शती के तृतीय चरण में हुई होगी।

'औचित्यविचारचर्चा' में काव्य-तत्वों का सैद्धांतिक विवेचन नहीं। इसे एक प्रकार से व्यावहारिक समीक्षा का ग्रंथ कहना चाहिए। इस ग्रंथ में क्षेमेन्द्र की निजी वृत्ति सहित कारिकाएँ दी गई हैं। इसमें अनेक लेखकों तथा रचनाओं से उदाहरण लिए गए हैं जिनमें कुछ तो क्षेमेन्द्र की अपनी ही रचनाओं में हैं। उनका कथन है कि औचित्य रस का जीवित है तथा चमत्कार का कारण है। औचित्य की परिभाषा इस प्रकार की गई—'उचितं प्राहुराचार्या: सदृशं किलयस्ययत्। उचितस्य च यो

भावस्तदौचित्य प्रचक्षते'। काव्य के समग्र तत्त्वो का महत्व उनके उचित विधान (औचित्य) के कारण ही है। काव्य मे रमणीयता तभी आ सकती है जबकि उसके तत्त्वो—रस, गुण, अलकार आदि—का उचित प्रयोग किया जाए। औचित्य के नियम का अनुपालन काव्य मे सर्वत्र अपेक्षित है। लेखक ने औचित्य के प्रयोग के प्रभूत उदाहरण दिए हैं और उसका सबध पद, वाक्य, प्रबधार्थ, गुण, अलकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, उपसर्ग, काल, देश आदि 27 तत्त्वो से प्रदर्शित किया है। इस विवेचन की विशेषता यह है कि लेखक ने उपर्युक्त प्रत्येक विषय के सबध मे पहले तो उपयुक्त उदाहरण (जिसमे औचित्य का पालन किया गया है) दिए है और उसके बाद अनुपयुक्त (औचित्य-रहित) उदाहरण प्रस्तुत किए गए है। क्षेमेन्द्र की औचित्य-सबधी मूल प्रेरणा 'ध्वन्यालोक' (दे०) के रसौचित्य प्रसग से प्राप्त हुई जो इस प्रकार है—अनौचित्यादृते नान्यद्रसभगस्य कारणम्। प्रसिद्धौचित्यबधस्तु रसस्योपनिषत्परा'। लेखक ने इसी मूल सूत्र को अत्यत व्यापक रूप प्रदान कर दिया।

काव्यशास्त्र मे क्षेमेन्द्र तथा उनके औचित्य सिद्धात का योगदान बहुत अधिक नही है तथा इसका प्रभाव भी काव्यशास्त्र पर अधिक नही पडा। यह कोई पृथक् सिद्धात न होकर विभिन्न काव्यागो को परिष्कृत तथा उपादेय बनाने का हेतुमात्र है। औचित्य की विशेषता यह है कि इसमे अलकार के परपरागत सैद्धातिक विवेचन के मार्ग से हटकर वास्तविक समीक्षा की व्यावहारिक प्रवृत्ति दिखाई देती है जो सस्कृत मे प्राय दुर्लभ है। क्षेमेन्द्र ने कवियो की प्रशसा या निदा की है और किसी भी कवि के साथ पक्षपात नही दिखाया।

औचित्य सप्रदाय *(स० पारि०)*

सस्कृत-काव्यशास्त्र के पाँच प्रसिद्ध काव्य-सप्रदायो—रस (दे०), अलकार (दे०), रीति (दे०), ध्वनि (दे०) और वक्रोक्ति (दे०) के अतिरिक्त आचार्य क्षेमेन्द्र (दे०) (ग्यारहवी शती का उत्तरार्द्ध) द्वारा एक स्वतत्र सार्वभौमिक सिद्धात के रूप मे प्रतिपादित 'छठा काव्य-सप्रदाय। यद्यपि क्षेमेन्द्र से पूर्व भी भरत (दे०), भामह (दे०), रुद्रट (दे०) आदि ने प्रकारातर से तथा आनदवर्धन (दे०), अभिनवगुप्त (दे०) आदि ने प्रत्यक्षत काव्य मे औचित्य का महत्व स्वीकार किया है तथापि औचित्य-सिद्धात को काव्य के व्यापक सिद्धात एव समीक्षा मूल्य के रूप मे प्रकल्पित करने तथा उसे एक व्यापक काव्य-सप्रदाय के रूप मे प्रतिष्ठित करने का श्रेय वस्तुत आचार्य क्षेमेन्द्र को ही है। औचित्य की स्वरूप-व्याख्या करते हुए उन्होने कहा है कि 'आचार्यों' ने उसे ही उचित कहा है जो जिसके अनुरूप हो। इसी उचित का भाव औचित्य कहलाता है' (—'उचित प्राहुराचार्या सदृश किल यस्य यत्। उचितस्य च यो भावस्तदौचित्य प्रचक्षते।'—औचित्य विचार-चर्चा 1/7)। साराशत आचार्य क्षेमेन्द्र के औचित्य-सप्रदाय के अनुसार काव्य का स्थिर जीवित औचित्य ही है, अलकार, गुण, रीति आदि काव्य-तत्त्वो का सौंदर्य औचित्य पर आश्रित है तथा काव्य की चारु चर्वणा का हेतु औचित्य ही है। क्षेमेन्द्र ने पद, वाक्य, प्रबधार्थ, गुण, अलकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण और उपसर्ग आदि औचित्य के विभिन्न प्रभेदो की चर्चा की है।

कक भट्ट *(म० पा०)*

यह कृ० प्र० खाडिलकर (दे०) के नाटक 'कीचक वध' का पात्र है। इसके चरित्र विकास मे तत्कालीन परिस्थितियो ने योग दिया है। दूसरे शब्दो मे इसका चरित्र समसामयिक परिस्थितियो की प्रतिक्रिया का नमूना है। यह गाधीवादी विचारधारा का प्रतीक है। इसी से वल्लभ (दे०), (भीम) तथा सैरध्री (दे०) (द्रौपदी) द्वारा कीचक की असहनीय उद्दडता का प्रतिकार करने को सतत प्रोत्साहित करने पर भी शाति का उपदेश देता है। कीचक द्वारा सैरध्री पर बल प्रयोग देख कर भी इसका सत्यवादी मन प्रतिशोध की भावना से आलोडित नही होता। यहाँ तक कि वल्लभ द्वारा कीचक-वध की सौगध खाने पर भी यह उसे महाराज विराट के उपकारो का स्मरण दिलाता है। इसके जीवन की उद्योगशीलता और चरित्र की महानता का द्योतक है। इस प्रकार इसका चरित्र उदात्त, समुन्नत एव मानवतावादी आधारो पर विकसित होने के कारण चारित्रिक विकास के जगत मे ठिठका सा दिखाई पडता है।

सक्षेप म, कक भट्ट का चरित्र गाधीवादी अहिंसा-दर्शन के आधार पर गढा होने पर भी अकर्मण्य और निष्क्रिय नही हो पाया है।

कंकाबती *(बँ० कृ०)*

बँगला उपन्यास मे त्रैलोक्यनाथ मुखोपाध्याय (दे० मुखोपाध्याय, त्रै०) ने पहले-पहल अद्भुत कल्पना के आश्रय मे भौतिक (भूत प्रेत-सबधी) एव मानवीय घटनाओ के सम्मिश्रण के द्वारा हास्यरस-प्रधान कहानी का

प्रवर्तन किया था। बँगला साहित्य में अद्भुत रस के स्रष्टा के रूप में त्रैलोक्यनाथ का एक विशिष्ट स्थान है। उनके उपन्यास 'कंकावती' में यथार्थ एवं कल्पना-जगत् के संभव एवं असंभव को विशेष कौशल के साथ चित्रित किया गया है। 'कंकावती' का पहला खंड गार्हस्थ्य-जीवनमूलक है एवं द्वितीय खंड एकदम अवास्तव कल्पनाश्रित है। अंत में 'कंकावती' के ज्वरविकार के साथ उसके अप्राकृत अनुभवों को संपृक्त कर ग्रंथ की मनोवैज्ञानिक मर्यादा की रक्षा की गई है। इस उपन्यास की विशेषता यह है कि अवास्तव भौतिक (भूत-प्रेत-संबंधी) कथावस्तु के होते हुए भी इसमें पात्र अपना चारित्रिक वैशिष्ट्य नहीं खोते। लेखक ने प्राकृत और अप्राकृत घटनाओं के सम्मिश्रण के द्वारा अद्भुत उद्भावना-शक्ति का परिचय दिया है।

कंकाल (*हिं० कृ०*) [प्रकाशन-काल—1929 ई०]

यह हिंदी के सर्वतोमुखी प्रतिभासंपन्न कलाकार जयशंकरप्रसाद (दे०) की चरित्र-प्रधान औपन्यासिक कृति है जिसमें विजय, महंत निरंजनदेव, मंगल, सेठ श्रीचंद, पादरी बाथम, घंटी, यमुना, किशोरी, गाला आदि पात्रों के माध्यम से अत्यंत कलात्मक शैली में प्रयाग, काशी, हरिद्वार, मथुरा, वृंदावन आदि धार्मिक स्थानों पर पल रहे पापाचार, धर्म के ठेकेदारों द्वारा किए जाने वाले घृणित कार्यों, वर्तमान भारतीय समाज में नारी की स्थिति आदि का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए कृत्रिम सामाजिक मूल्यों पर अत्यंत निर्मम प्रहार किया गया है। लेकिन पात्रों को मनमानी स्थितियों में डालते रहने तथा घटनाओं की बहुलता के फलस्वरूप इसके औपन्यासिक शिल्प को क्षति पहुँची है तथा अनेक स्थलों पर कथाक्रम अत्यंत शिथिल एवं विशृंखल हो गया है। उपदेशात्मक शैली के स्थान पर व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग इसकी शैलीगत विशेषता है। समग्रतः यह सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण करने वाला एक मार्मिक उपन्यास है।

कंटा ओ फुल (उ० का०)

गोदावरीश महापात्र (दे०) सत्यवादी (दे० सत्यवादी साहित्य) काव्य-धारा के कवि हैं। उनके संपूर्ण साहित्य में हम देशात्मबोध एवं जातीयतावाद का प्रसार पाते हैं। 'कंटा ओ फुल' उनकी प्रमुख रचना है। यह उनकी गीति कविताओं का संकलन है। यद्यपि ये कविताएँ रोमांटिकधर्मी हैं, तथापि इनमें महापात्र जी की जातीय एवं राष्ट्रीय चेतना ही प्रमुख रूप से प्रतिफलित हुई है। भाषा सहज, प्रतिदिन बोली जाने वाली है। शैली व्यंग्यात्मक और ओजपूर्ण है।

व्यंग्योक्तियों के माध्यम से गोदावरीश महापात्र सामाजिक दुर्बलता, नेतृत्व-पराङ्मुखता, व्यक्ति की निस्सहायता को प्रकाशित करना चाहते हैं। इनकी 'मेरा जीवन केंद्रापडा रास्ता' ऐसी ही रचना है जिसमें केंद्रापड़ा रास्ता महत्वपूर्ण होते हुए भी सदा से अवहेलित रहा है। इसमें वैयक्तिक जीवन तो रूपायित है ही, किंतु उससे भी महत्त्वपूर्ण है सामाजिक स्थिति का संकेत। इस इंगितधर्मी गूढ़ व्यंजना के कारण उनकी सहज, सरल भाषा प्राणस्पर्शी हो गई है।

'कंटा ओ फुल' की कविताओं में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक अवस्था की आलोचना है। किंतु यह प्रचारात्मक नहीं है। हास्य एवं व्यंग्य के अंतराल से जीवन के अनेक कठोर सत्य इसमें उद्भासित हो उठते हैं। उनकी राष्ट्रीय कविताओं में यह दुर्दमनीयनद-प्रवाह है, जो पाठक को बहा ले जाता है। उनकी कविताएँ छंदोबद्ध एवं कलात्मक हैं। उन्हें गद्य-गीत नहीं कहा जा सकता।

शुद्ध कविता की दृष्टि से अवश्य ही इन कविताओं को उच्च स्थान नहीं दिया जा सकता, किंतु उड़िया कविता के विकास की दृष्टि से ये महत्वपूर्ण हैं। इस मनस्वी कलाकार की आवेशमयी वाणी स्वतः ही कविता बन गई है।

कंदली, माधव (अ० ले०) [जीवन-काल—चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी]

जन्मस्थान : नौगाँव जिले का कोई गाँव। ये ब्राह्मण थे और इन्होंने किसी महामाणिक्य नामक अथवा उपाधिधारी बराली राजा के अनुरोध से 'रामायण' की रचना की थी। रचनाएँ—असमीया रामायण, देवजित, ताम्रध्वज। इनकी रामायण के मूल पाँच कांड प्राप्त हैं। श्री शंकरदेव (दे०) ने स्वयं उत्तरकांड लिखकर और अपने शिष्य माधवदेव (दे०) से आदि कांड लिखाकर इसमें जोड़ दिया था। आज असम में यही सप्तकांडीय रामायण प्रचलित है। कंदली ने वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) का शब्दशः अनुवाद नहीं किया है; उसे पढ़कर इन्होंने अपने ढंग से लिखा है। लेखक पर 'अध्यात्म-रामायण' (दे०) का भी प्रभाव है। ये राम के भक्त थे।

रामायण के मर्मस्पर्शी स्थलो की इन्हे पहचान थी । कथा-वर्णन के मध्य कही-कही स्थानीय लोकरीतियो, उपमाओ, वनस्पति एव जीव-जतुओ का परिचय भी मिल जाता है। पूर्वांचलीय रामकथाकारो के मध्य कदली ही ऐसे लेखक है जिन्होंने रामकथा-लेखन मे वाल्मीकि के वर्णन से बहुत दूर न जाने की चेष्टा की है। 'देवजित' मे अर्जुन और इन्द्र के युद्ध का वर्णन है। 'ताम्रध्वज' जैमिनी महाभारत का अनुवाद है। ये दोनो रचनाएँ माधव कदली की नही लगती। हो सकता है किसी अन्य माधव कदली ने इनकी रचना की हो।

ये असमीया के प्रथम एव प्रतिभा सपन्न रामायण लेखक हैं।

कदली, श्रीधर (अ० ले०) [काल—अनुमानत सोलहवी शताब्दी]

इनका जन्म गौहाटा से 16 मील दूर हाजो गाँव मे हुआ था। ये वैष्णव कवि थे।

रचनाएँ—काव्य 'घुनुचा', कानखोवा, 'अश्वमेघपर्व' का अनुवाद।

'घुनुचा' काव्य म इद्रद्युम्न की कन्या घुनुचा (गुडिचा) की कथा है। यह कथा 'स्कदपुराण के उत्कल खड मे है। श्री कदली के काव्य मे घुनुचा के प्रति रुक्मिणी का सौतिया डाह तथा कृष्ण के प्रति क्रोध का सजीवता के साथ वर्णन किया गया है। इसमे ग्राम्य स्त्री-कलह का प्रतिबिंब मिल जाता है। कदली की महत्वपूण कृति है 'कानखोवा' (कानखाने वाला, कनकटा)। यशोदा कृष्ण को डराने के लिए कहती है, 'सो जा रे कन्हाई, कनकटा आ रहा है। कृष्ण डर कर पूछते हैं यह कनकटा कौन है ? मैंने तो किसी अवतार मे उसे नही देखा। यशोदा भीत कृष्ण को देख दु खी होती है और कृष्ण लपककर उनकी गोद मे चढकर दूध पीने लगते है। सूरदास (दे०) की यशोदा भी कृष्ण को 'हाऊ' से डरवाती हुई कहती है— 'कान तोरि वह लेत सबनि के लरिका जानत जाहि । यहा भी कृष्ण अपने अवतारो का उल्लेख कर हाऊ का परिचय पूछते हैं। कदली ने इस प्रसग पर अधिक ध्यान दिया है। इनकी कृति एक प्रकार से लोरी-काव्य है।

कँवर (सि० कृ०)

'कँवर' सिंधी के प्रसिद्ध गद्यलेखक तीर्थ वसत (दे०) की अमर कृति है। इस पर उन्हे सन् 1959 ई० मे साहित्य अकादमी से पाँच हजार रुपये का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इस पुस्तक मे बीसवी शताब्दी ई० के प्रसिद्ध भक्त कवि कँवर (कमल) साहिब का जीवन-चरित्र अति रोचक और कलात्मक ढग से प्रस्तुत किया गया है। भक्त कँवर का इस शताब्दी के सिंधी सत कवियो मे प्रमुख स्थान है। वे सिंध के गाँव गाँव मे जाकर लोगो के हृदय म भक्तिभावना भरते थे और अपन मधुर गीतो से जनता को मत्रमुग्ध कर देते थे। हिंदू और मुसलमान इस भक्त कवि के व्यक्तित्व और मधुर स्वर से प्रभावित थे। खेद है कि ऐसे महान् सत को दिसबर 1939 ई० मे एक दिग्भ्रात मुसलमान ने गोली का निशाना बनाकर मार डाला था। तीर्थ वसत ने अपनी कृति मे कँवर का जीवन-चरित्र और उसके भजन तथा गीत भी दिए है। इनके साथ साथ उन्होने इस महान भक्त के प्रति अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति भी की है। यह कृति लेखक के सशक्त गद्य और रोचक शैली का उत्तम उदाहरण है।

कँवल जसवतसिंह (प० ले०) [जन्म—1919 ई०]

नानकसिंह (दे०) के पश्चात् पजाबी उपन्यास-कारो की जो पीढी उभरी, उसमे जसवतसिंह कँवल का नाम सबमे पहले लिया जाता है। कँवल प्रगतिशील विचार-धारा के लेखक है और पजाब का ग्रामीण जीवन उनकी अभिव्यक्ति का प्रेरणा स्रोत है। उस जीवन म उभरते हुए जन जागरण का बडा गहरा और सूक्ष्म विश्लेपण इनके कथा-साहित्य मे हुआ है।

'सच नू फाँसी' और 'पाली' लेखक के प्रारभिक उपन्यास है। इन्ह विशेष प्रसिद्धि अपने तीसरे उपन्यास 'पूरनमाशी' (दे०) स प्राप्त हुई। पजाब के खेतो, मेलो, ऋतुओ तथा लोक-जीवन का निरूपण उपन्यास के कथा-ततुओ मे बडी सहजता स गुँथा हुआ है।

'कँवल' एक सफल कहानीकार भी है। कडे', जिंदगी दूर नही' सधूर आदि इनके कहानी सग्रह है।

कठीरवनरसराजविजय (क० कृ०) [लेखन-काल—लगभग 1650 ई०]

इसके रचयिता गोविदवैद्य नामक एक ब्राह्मण कवि माने जाते हैं जो मैसूर-नरेश कठीरवनरसराज ओडेयर के समय मे विद्यमान थे। यह सागत्य (दे०) छद

में लिखा कन्नड़ का सर्वप्रथम ऐतिहासिक काव्य है। इसके रचयिता गोविंद वैद्य हैं या भारतीकंज—इस बारे में काफी विवाद है। यह भी हो सकता है कि भारतीकंज इसके वाचक रहे हों। यह सच्चे अर्थ में रासो शैली में लिखा गया वीरकाव्य है। इसमें मैसूर-नरेश कंठीरवनरस-राज थोडेयर के शौर्य और औदार्य का वर्णन है। कवि का दावा है कि कनरसराज नृसिंह के अवतार हैं। कनरसराज का राज्य, उनका वंश, उनकी राजधानी श्री रंगपट्टण, उसके दुर्ग आदि का बहुत ही सजीव वर्णन इसमें हुआ है। शृंगार-प्रसंग मदनमोहिनी की सृष्टि करके जोड़ दिया गया है। इस काव्य की महत्ता उसमें चित्रित जनजीवन एवं राजनीतिक जीवन के वास्तविक चित्रण में है। कर्णाटक पर चढ़ आनेवाले रणदुल्लाखाँ तथा उसका सामना कर उसे पराजित करने वाले कंठीरवनरसराज के पौरुष का अत्यंत ओजोमय वर्णन इसमें हुआ है। मुसलमानी सेना के द्वारा रास्ते में होने वाले अत्याचार, लोगों की घबराहट आदि का आँखों देखा वर्णन भी इसमें है। मुसलमानी वातावरण के निर्माण में कवि ने अरबी-फ़ारसी शब्दों का यथेष्ट प्रयोग किया है। दुर्गयुद्ध का इतना सजीव चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। काव्य-साहित्य में इस ग्रंथ का अपना एक विशिष्ट स्थान है।

कंति *(क० ले०)* [समय—1100 ई०]

कन्नड़ की प्रथम कवयित्री कंति का समय 1100 ई० माना जाता है। यह कवि नागचन्द्र (दे० अभिनव पंप) की समसामयिक थीं। सोलहवीं शदी के बाहुबलि (दे०) नामक कवि ने अपने 'नागकुमारचरित्र' में 'अभिनव वाग्देवी' कंति का स्मरण किया है। देवचन्द्र (1838 ई०) ने अपनी 'राजावली-कथे' में इसकी कथा दी है। 'कंति-हंपन समस्येगळु' नामक एक समस्यापूर्ति काव्य-संकलन मिला है। नागचन्द्र ने कंति का उल्लेख कहीं नहीं किया है। अतः विद्वानों ने कंति के अस्तित्व पर शंका की है। इस ग्रंथ की भाषा नागचन्द्र के समय की नहीं है। हो सकता है कि परवर्ती प्रतिलिपिकारों के हस्तक्षेप के कारण भाषा पर आधुनिकता का रंग चढ़ गया हो। उसमें कविता से अधिक चमत्कार की प्रधानता है। किंतु इस संबंध में निश्चित रूप में कुछ भी बताना कठिन है।

कंदपुराणम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी]

इसके रचयिता श्री कच्चियप्प शिवाचारियार हैं। 'कंदपुराणम्' सात खंडों में विभक्त है जिनमें भगवान मुरुगन का जन्म, उनकी बाल-लीलाएँ, उनके द्वारा देवों के घोर शत्रु सूरपद्मन का वध और देवों की संकट-मुक्ति, वळ्ळी और देवयानै नामक युवतियों से भगवान मुरुगन के विवाह आदि घटनाओं का वर्णन है। 'कंदपुराणम्' में कवि ने शैव धर्म के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। उसका काव्यत्व अक्षुण्ण है। संस्कृत स्कंदपुराण में प्राप्त भगवान सुब्रह्मण्य के जीवन-चरित को आधार-रूप में ग्रहण करते हुए कवि ने जहाँ-तहाँ मौलिक पुट देने का सफल प्रयास किया है। सोलह सहस्र से अधिक पदों से युक्त यह कृति तमिल के बृहत्काव्यों में परिगणित की जाती है। (दे० कच्चियप्पर)

कंदसामी पिळ्ळै *(त० पा०)*

कंदसामी पिळ्ळै पुदुमैप्पित्तन् (दे०)-कृत 'कडवुलुम् कंदसामी पिल्लैयुम्' शीर्षक कहानी का नायक है। इस कहानी की रचना का मूल उद्देश्य कंदसामी के चरित्र का स्पष्टीकरण है। कंदसामी पिळ्ळै एक वर्ग-पात्र है। यह वर्तमान समाज में मध्यवित्त वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। लेखक ने मध्यवर्गीय व्यक्तियों में जो प्रवृत्तियाँ देखी हैं उन्हें कंदसामी पिळ्ळै के माध्यम से प्रस्तुत कर दिया है। मध्यवर्गीय व्यक्ति जीवन में आनंद चाहता है परंतु आनंद-प्राप्ति के लिए धन का व्यय उसे सह्य नहीं है। ठीक इसी प्रकार कंदसामी पिळ्ळै बिना टिकट बस में सफ़र करना चाहता है। ईश्वर से भेंट होने पर चाहता है कि वे ही होटल का बिल चुका दें और रिक्शे का किराया दे दें। मध्यवर्गीय व्यक्ति अपनी दुर्बलता दूसरे पर व्यक्त नहीं होने देता। कंदसामी पिळ्ळै अपनी दुर्बलता अपनी पत्नी के सम्मुख भी प्रकट नहीं होने देता है। वह ईश्वर से कहता है कि वे घर जाकर उसकी पत्नी के सम्मुख अपने को ईश्वर न बतायें अन्यथा वह उन्हें पागल समझ लेगी। वैद्य के रूप में इसके इलाज का ढंग भी निराला है। उसका सिद्धांत है न रोगी मरे, न रोग दूर हो ताकि उसे निरंतर धन मिलता रहे। मध्यवर्गीय व्यक्तियों के समान कंदसामी पिळ्ळै बड़े-बड़े अमीरों से संबंध बनाये रखता है ताकि उसे समय-समय पर लाभ होता रहे। वह जीवन में किसी

भी प्रकार का परिवर्नन नही चाहता । यह जिस स्थिति मे है उसी स्थिति मे सदा रहना चाहता है । कदसामी पिळ्ळै पुदुमैप्पित्तन् की अमर कल्पना सृष्टि है । इसके चरित्र-चित्रण मे लेखक को अपार सफलता मिली है । यह आधुनिक समाज मे मध्यवर्गीय व्यक्ति का सच्चा प्रतिनिधि है।

कबर (त०ले०) [समय—ईसा की नवी शताब्दी से बारहवी शताब्दी के बीच, अधिकाश के मत मे बारहवी शताब्दी]

कबर का जन्म चोलनाडु तिरुवपुन्दूर नामक स्थान मे एक वैष्णव परिवार मे हुआ था। कबर के जन्म उनके माता पिता, जाति, आदि के सबध मे अनेक किंवदतियाँ है। तिरुवेण्णेयनल्लूर के शडैयप्प वळ्ळल इनका बहुत सम्मान करते थे । इन्होंने अपनी रामायणम् मे उनकी प्रशसा मे दस पद लिखे है । इनके द्वारा रचित प्रमुख कृतियाँ हैं—'रामायणम्' (दे०), 'शठकोपरदादि', 'एर एपुपदु, 'शिलै एपुपदु', 'तिरुक्कैवपक्कम्', 'सरस्वतीअदादि' आदि। इनकी कीर्ति का आधार है 'रामायणम्' जो कि तमिल साहित्य मे 'कवरामायणम्' (दे०) के नाम से विख्यात है। यद्यपि इन्होंने वाल्मीकि-रामायण को अपनी कृति का आधार बनाया था तथापि अपनी मौलिक प्रतिभा, प्रखर कल्पना-शक्ति और अपूर्व पाडित्य के बल पर उसे सर्वथा नवीन रूप दे दिया । तमिल मे इनसे पहले और इनके बाद जिन रामायणो की रचना हुई वे 'कबरामायणम्' की तुलना मे नही ठहर पाती है। 'शठकोपरदादि' मे इन्होंने शठकोपर (नम्माळवार दे०) की महिमा का गान किया है। ये तमिल के ही नही अपितु सस्कृत के भी प्रकाड पडित थे । इन्होंने अपनी रामायणम् मे सस्कृत और तमिल काव्य-शैलियो का समन्वय किया है । अपने बहुभाषा ज्ञान के बल पर इन्होने तमिल की अभिव्यजना-शक्ति की श्रीवृद्धि कर उसे नवीन सौष्ठव और सौंदर्य प्रदान किया । अपनी अपूर्व प्रतिभा के कारण ये कविचक्रवर्ती, ज्ञानसागर आदि उपाधियो से भूषित किए गए थे । तमिल के महाकवियो मे इनकी गणना की जाती है ।

कबरामायणम् (त० कृ०) [रचना काल—ईसा की नवी शताब्दी से बारहवी शताब्दी के बीच]

'कबरामायणम्' कबर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। कबर ने इस कृति को 'रामावतार' नाम दिया था परतु परवर्ती काल मे इसे 'कबरामायणम्' कहा गया। कबरामायणम् बालकाडम्, अयोध्याकाडम्, आरण्यकाडम्, किष्किधाकाडम्, सुदरकाडम् और युद्धकाडम् नामक छह काडो और 113 पडलमो (अध्यायो) मे विभाजित है । इसमे 10,500 पद है। कबर ने यद्यपि वाल्मीकि रामायण से कथा ग्रहण की तथापि अपनी अपूर्व प्रतिभा और प्रखर कल्पना शक्ति के बल पर, तमिल सभ्यता और सस्कृति के अनुरूप इसकी कथा मे परिवर्तन किये। 'कबरामायणम्' मे प्राप्त कुछ मौलिक प्रसग इस प्रकार है—धनुष-यज्ञ से पूर्व राम सीता की भेंट एव उनका पूर्वानुराग, अगस्त्य के आश्रम से निकलकर पचवटी के लिए प्रस्थान करते समय मार्ग मे जटायु से मिलन, रावण का पर्णशाला समेत सीता जी का अपहरण, राम द्वारा कैकेयी निदा आदि । यह कृति नाटकीय सौंदर्य से युक्त है। कबर ने पात्र एव प्रसग के अनुकूल स्वाभाविक सवादो की योजना की है। कबर की वर्णन पटुता का परिचय उलावियर पडलम्, पूक्कोय पडलम्, नीर विलैयाट्टुपडलम् कळियाट्टु पडलम् आदि से मिलता है। चरित्र-चित्रण मे कबर अद्वितीय हैं । उन्होने बडी सजगता से पात्रो के स्वभाव, मनोभाव, गुण-दोष आदि का विवेचन किया है। कबर प्रकृति प्रेमी थे। 'कबरामायणम्' मे चराचर प्रकृति के अनेक मनोरम चित्र है। कबर का तमिल भाषा-ज्ञान अद्वितीय था। उन्होने विषयानुकूल शब्दो का तथा प्रसग एव विषय के अनुकूल छदो का प्रयोग किया है। इस कृति मे अलकारो का सुदर सफल प्रयोग हुआ है। 'कबरामायणम' कबर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसकी गणना तमिल के श्रेष्ठ महाकाव्यो मे होती है ।

कंसा-कबाट (उ० कृ०)

यह ब्योमकेश त्रिपाठी (दे०) का सामाजिक नाटक है। स्वतत्रता के बाद राज्यो का विलयन होता है और यह परिवार अपनी प्रभुता एव ऐश्वर्य से वचित हो जाता है। सुबीर, तत्कालीन महाराजा तथा महारानी इस परिवर्तन के साथ चलने का प्रयत्न करते हैं, किंतु छोटा भाई प्रवीर परपरागत राजसी हुकूमत एव दुर्गुणो का शिकार बना रहता है। उसके कारण सारा परिवार बिखर जाता है। इस ध्वसावशेष जन्य उत्थान-पतन के बीच महाराज का परिवार एक सामान्य कुलीन सभ्रात परिवार के रूप मे उभर कर आता है।

इसमे राष्ट्रीय चेतना तथा उदार मानवतावाद का सदेश है, क्षुद्र स्वार्थ और बेईमानी पर तीखा व्यग्य

है तथा स्त्री-शिक्षा का महत्व दर्शाया गया है और बहु विवाह-प्रथा के दुष्परिणामों का निरूपण है।

रंगमंच की दृष्टि से यह एक सफल नाटक है।

क.पंथा (अ० कृ०) [रचना-काल—1934 ई०]

कमलाकांत भट्टाचार्य (दे०) के इन निबंधों में लेखक के गंभीर विचार और मनीषा का परिचय मिलता है। इनमें देश और संस्कृति-प्रेम की छाप भी उपलब्ध होती है। संस्कृत भाषा के शब्दों का बहुप्रयोग न कर गुरु-गंभीर भावों के लिए भी असमीया जन-भाषा का प्रयोग किया गया है।

कच-सच (पं० कृ०) [प्रकाशन-काल—1950 ई०]

यह मोहन सिंह (दे०) की एक प्रौढ़ रचना है जो सन् 1950 में प्रकाशित हुई थी। इस कविता-संग्रह की कविताओं द्वारा कवि ने अपने निजी अनुभव के संसार को अधिक व्यापक बनाया है। यह कविता-संग्रह उनकी काव्य-यात्रा के तीसरे पड़ाव का द्योतक है जहाँ वे अपनी कविता को भौतिक और यथार्थवादी धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं—भावुक आदर्शवादी ढंग से नहीं, बल्कि तर्कसंगत और यथार्थपरक ढंग से। 'कच' से आशय मानव-प्रेम से है और 'सच' से क्रांतिकारी सिद्धांतों से। इस संग्रह की ज्यादातर कविताएँ मानव-प्रेम से संबद्ध हैं। ऐसी कविताएँ बहुत थोड़ी है जो क्रांतिकारी विचारों से जुड़ी हुई हों पर थोड़ी होने के बावजूद ये कविताएँ कवि के प्रगतिवादी रुझान को स्पष्ट कर देती हैं। 'लोहा' कवि की प्रगतिवादी चेतना की प्रतिनिधि रचना मानी जा सकती है।

इस संग्रह में कवि ने प्रेम-संबंधी वैयक्तिक अनुभूतियों को सामाजिक संदर्भ में रखकर व्यक्त किया है। प्रेमानुभूतियों को सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों में रखकर कवि ने प्रेम-भाव का मार्मिक चित्रण किया है।

इस संग्रह में आकर वे निजी पीड़ा के कवि ही नहीं रहे है, मानव-मात्रकी पीड़ा के कवि बन गए हैं।

कच्चायन (पा० ले०) [समय—ई० पू० चौथी शताब्दी]

इनको कच्चान, महाकच्चान, महाकच्चायन नामों से भी अभिहित किया जाता है। ये महावैयाकरण वार्तिककार कात्यायन से अभिन्न प्रतीत होते हैं। इनके नाम पर गोत्र भी चलता है और बौद्ध साहित्य में कई व्यक्तियों का कच्चायन गोत्र बतलाया गया है। इन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। सबसे पहले इन्होंने ही बुद्ध-वचनों की व्याख्या की। इन्होंने 'नेहिपकरण' नामक ग्रंथ की रचना की जिसे 'नेहिगंध' और केवल 'नेहि' नाम से भी पुकारा जाता है। यही पहली रचना है जिसमें बुद्ध के उपदेशों को सुसंबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। त्रिपिटक (दे०) की कई पुस्तकों से भी यह प्राचीन रचना है और 'मज्झिम-निकाय' (दे० सुत्तपिटक) में कच्चान को बुद्धवचनों का व्याख्याता बतलाया गया है। 'नेहि' की परंपरा को सुरक्षित रखते हुए इन्होंने 'पिटकोपदेश' (दे० 'पेटकोपदेस') की भी रचना की। बाद में श्रीलंका में इन दोनों पुस्तकों को भी 'त्रिपिटक' में सम्मिलित कर लिया गया।

कच्चियप्पर (त० ले०)

कुछ विद्वानों के अनुसार इनका समय बारहवीं ई० शती है पर डा० मीनाक्षिसुंदरम् जैसे अधिकारी विद्वान सत्रहवीं सदी ई० के पक्ष में हैं। 'कच्चियप्पर' अपनी वंश-वृत्ति के अनुसार मंदिरों में भगवान शिव के पुजारी थे।

अपने आराध्यदेव 'स्कंद' के पौराणिक वृत्तांतों को लेकर इन्होंने एक बृहत्-काव्य की रचना की थी। यह काव्य मूल संस्कृत 'शंकर-संहिता' में उपलब्ध वृत्तांतों का पद्यबद्ध अनुवाद होकर 'कंदपुराणम्' (दे०) के नाम से तमिलभाषी जनता में (और उससे भी अधिक लंका के शैव-धर्मावलंबी समाज में) प्रचलित हो चुका है। छह कांडों में विभक्त इस पुराण में 10,346 पद्य हैं। लेखक के शिष्य 'कोनेरियप्प मुदलियार' द्वारा रचित सातवाँ कांड बाद में जोड़ा गया था।

तमिल के नौ पुराण-रत्नों में से एक 'कंद-पुराणम्' है। इसकी विशेषताएँ बृहत् आकार, महाकाव्यो-चित अलंकारादि-युक्त शैली-सौष्ठव, यत्र-तत्र शैव-सिद्धांत-तत्त्वों का प्रतिपादन इत्यादि है। वैयापुरिप्पिळ्ळै, मीना-क्षिसुंदरम् आदि पारखी विद्वानों ने कहा है कि इस काव्य की कथा-योजना एवं शैली में तमिल काव्य-विधा की अन्य-तम उपलब्धि 'कंबरामायणम्' (दे०) का अनुकरण स्पष्टतः द्रष्टव्य है। यद्यपि 'कंबरामायणम्' का साहित्यिक गौरव इस ग्रंथ को मिल नहीं सकता, तो भी इसका अपना विशिष्ट स्थान है।

'कदपुराणम्' के सबध मे किवदती है कि खुली विद्वत्सभा मे काव्य के प्रस्तुतीकरण के समय एक विवादास्पद शब्द 'तिकटचक्करम्' का सधि-नियम (जिसके अनुसार 'ळ' और 'त' 'ट' मे परिवर्तित हुए) स्वय भगवान स्कद द्वारा स्पष्ट किया गया था।

कच्छ नु सास्कृतिक दर्शन (गु० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1958 ई०]

श्री रामसिह जी राठौर-रचित यह ग्रथ कच्छ की सस्कृति पर पामाणिक रचना है। सन् 1958 ई० मे उसका प्रथम सस्करण निकला था। भूमिका आदि के उपरात 301+54 पृष्ठो का यह ग्रथ कच्छ के विषय मे 'एनसाइक्लोपीडिया' के समान है।

इस ग्रथ मे कच्छ का शिल्प, स्थापत्य, उद्योग, बुनाई-गुँथाई, कढाई, चित्रकला, सगीत, गायकी (विशेष गाने की पद्धति), लोक-समाज, प्रकृति-सृष्टि-सौदर्य, वनस्पति वैभव, पशु-पक्षी, वन्य प्राणी, जहाजी-व्यापार खनिज, काठी वीरो का वीरत्व, भूस्तर-रचना, जलवायु, भौगोलिक विस्तार, दर्शनीय स्थल, कच्छ का इतिहास, मदिर, ऐतिह्य लेख, लोक-साहित्य, अध्ययन-सामग्री आदि का सचित्र विवरण है। नारायण सरोवर, कोटेश्वर मदिर, भद्रेश्वर, गुतरी, व्रजवाणी, माता नो गढ, मणियारो गढ, रो नो गढ आदि अनेक स्थानो का महत्व, इतिहास वगैरह सचित्र वर्णित है। कच्छी भाषा, लिपि, साहित्य, कला, काव्य आदि का भी इसमे सोदाहरण रसास्वाद कराया गया है। कच्छ की लोककथाएँ, स्थानो के इतिहास की नीव मे पडी दतकथाएँ आदि भी यथास्थान एव यथावसर बताई गई है।

युद्ध, इतिहास, भूगोल, सस्कृति, कला, धर्म, दर्शन आदि के क्षेत्र मे कच्छ का महत्व, योगदान स्पष्ट करने मे यह ग्रथ काफी सफल हुआ है।

भारतीय—विशेषत गुजरात के—इतिहास एव सस्कृति के क्षेत्र मे इस ग्रथ का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

कटक-बिजय (उ० कृ०)

'कटक-बिजय' भिखारीचरण पटनायक (दे०) का ऐतिहासिक नाटक है, जिसमे सन् 1803 ई० मे उडीसा पर अँग्रेजी राज्य की स्थापना का चित्रण हुआ है। इसमे ऐतिहासिक कथा-वस्तु अत्यल्प है। चरित्र-चित्रण, ऐतिहासिक परिवेश-चित्रण, संवाद, प्रयुक्त गद्य आदि की दृष्टि से इसकी सीमाएँ स्पष्ट है, किंतु यह मानना पडेगा कि इससे नाटक के एक विशेष अग की पुष्टि हुई है तथा प्रारभिक रचना की दृष्टि से यह उपेक्षणीय नही है।

कट्टक्कयम् चेरियान् माप्पिळा (मल० ले०) [जन्म—1859 ई०, मृत्यु—1936 ई०]

ये मलयाळम के प्रतिभाशाली महाकवि है। प्रसिद्ध पत्रकार और साहित्य-पोषक कटत्तिल् वर्गीस माप्पिळा (दे०) के प्रोत्साहन से इन्होने साहित्यसर्जना प्रारभ की थी। उस युग मे काव्य-जगत मे प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए कवि-प्रतिभा के अलावा आभिजात्य भी अपेक्षित था। ईसाई होने पर भी चेरियान् माप्पिळा साहित्याचार्यो के समाज मे सुप्रतिष्ठित बन गए थे।

कट्टक्कयम् की मुख्य कृति 'श्रीयेशुविजयम्' महाकाव्य है। चार रूपक, तीन खडकाव्य और एक आट्टक्कथा (दे०) की भी इन्होने रचना की है।

बाइबिल पर आधारित मलयाळम-काव्यो की रचना के मार्गदर्शक कट्टक्कयम् है। 'श्रीयेशुविजयम्' मे नए टेस्टामेट का इतिवृत्त प्रसन्न-मधुर भाषा मे वर्णित है। यह मलयाळम की एक महत्वपूर्ण कृति है। इन्होने मलयाळम के क्लासिक शैली के काव्यो मे एक नई कडी जोड दी है।

'कट्टी होई पतंग' (प० कृ०) [प्रकाशन-काल—1952 ई०]

नानकसिह (दे०) का यह उपन्यास सामाजिक यथार्थ पर आधृत है। प्रस्तुत कृति मे अनमेल विवाह की समस्या को आर्थिक विषमता के प्रश्न के साथ जोडकर नारी को आर्थिक दृष्टि से स्वतत्र और अपने अधिकारो के प्रति सहज होने की प्रेरणा दी गई है। सुशिक्षित कामनी (दे०) अपने दुराचारी पति ब्रजमोहन से अपमानित एव प्रताडित होकर गीतकार सुखबीर की सहायता से एक सफल फिल्म-अभिनेत्री बन जाती है। बबई मे कामनी श्रमिक आदोलन मे सक्रिय रूप से भाग लेती है और आर्थिक दृष्टि से उनकी सहायता करती है। कामनी, सुखबीर, ब्रजमोहन, आदि पात्र परिस्थितियो के प्रवाह मे बहते हुए अस्थिर चरित्र हैं। कही-कही सहसा परिवर्तन से उनमे अस्वाभाविकता की प्रतीति भी होती है। नानकसिह ने नारी की स्थिति एक कटी हुई पतग के समान लक्षित करते हुए उसे सबल, अपने अधिकारो के प्रति प्रबुद्ध, और पुरुष के स्वार्थी तथा लोलुप स्वभाव से मुक्त रूप मे चित्रित किया है।

कड़वक (अप० पारि०)

संस्कृत प्रबंध-काव्यों में सर्गबद्ध रचना होती थी। महाकाव्य के लक्षणों मे 'सर्गबद्धो महाकाव्यम्' कहकर महाकाव्य में कथा का अनेक सर्गों मे विभाजन आवश्यक माना गया है। प्राकृत-महाकाव्यों में कथा अनेक आश्वासों में विभक्त की जाती थी। संस्कृत के सर्ग शब्द के स्थान पर प्राकृत में आश्वास शब्द का प्रयोग किया गया। संस्कृत की सर्गबद्ध शैली के समान अपभ्रंश के प्रबंध-काव्य अनेक संधियों मे बद्ध होते है। प्रत्येक संधि अनेक कड़वकों से मिलकर बनती है। कड़वक की समाप्ति 'घत्ता' (दे०) से होती है। दो कड़वकों का विभाजन 'घत्ता' से होता है। कहीं-कहीं संधि के आरंभ में 'दुवई' या 'घत्ता' भी मिलता है, इसमें संक्षेप से संधि का सार अभिव्यक्त होता है। संधियों की संख्या का कोई निश्चित नियम नही। नरसेन की 'सिद्धचक्ककहा' में दो संधियाँ है तो धाहिल (दे०) के 'पउमसिरीचरिउ' (दे०) में चार संधियाँ है। पुष्पदंत (दे०) के 'महापुराण' में 102 संधियाँ है और धवल के 'हरिवंशपुराण' मे 122 संधियाँ हैं। कई महाकाव्यों का विभाजन कांडों में मिलता है। प्रत्येक कांड कई संधियों से मिलकर बनता है। कड़वक का मूलभाग पज्झटिका, पादाकुलक, वदनक, पाराणक, अलिल्लह आदि छंदों से निर्मित होता है। कड़वक में प्रयुक्त छंद की संख्या का कोई निश्चित नियम नही। कड़वकों के प्रयोग से विभक्त कथा-वस्तु कड़वकबद्ध शैली की रचना मानी जाती है। कड़वक किसी छंद का नाम नही, एक विशिष्ट रचना-प्रक्रिया है। यद्यपि अपभ्रंश-काव्य संधियों मे कड़वकबद्ध मिलते है, किंतु कडवक की रचना में पंक्तियों की संख्या के नियम का परिपालन नहीं दिखाई देता। यद्यपि स्वयंभू (दे०) के अनुसार एक कड़वक में 8 यमक एवं 16 पंक्तियाँ होनी चाहिए, किंतु इस नियम का पालन कवियो ने नही किया। इसी प्रकार प्रबंधकाव्य में या एक संधि में कितने कड़वक हों, इसका भी कोई निश्चित नियम नहीं।

कड़वक की रचना मे कवियों ने 16 से कम या अधिक पंक्तियों का इच्छानुसार प्रयोग किया है। कड़वक के मुख्य भाग में भी पद्धड़िया के अतिरिक्त अन्य छंदों का भी प्रयोग होता रहा है। कड़वक के अंत में भी घत्ता-रूप मे नाना छंदो का प्रयोग होता रहा। संधि के आरंभ में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न छंदों को ध्रुवक कहते है, परंतु कड़वक के आरंभ में प्रयुक्त होने वाले स्वतंत्र छंद का कोई विशेष नाम नहीं—विभिन्न छंद अपने ही नाम से प्रयुक्त होते हैं।

कणाद (सं० ले०) [स्थिति-काल—150 ई०]

विद्वानों का कथन है कि गिरे हुए दानों (कणों) को खाकर जीवन बिताने के कारण ही इनका नाम कणाद पड़ गया था। इन्होंने 'वैशेषिक-सूत्र' की रचना करके वैशेषिक दर्शन की प्राणप्रतिष्ठा की है। वैशेषिक दर्शन का ही दूसरा नाम 'औलूक्य दर्शन' भी है। वैशेषिक सूत्र में 10 अध्याय है तथा प्रत्येक अध्याय में दो-दो आह्निक हैं।

कणाद के अनुसार जिससे लौकिक सुख तथा निःश्रेयस (पारलौकिक सुख) दोनों की सिद्धि होती है, वही धर्म है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्रव्य, गुण एवं कर्म—इन तीन पदार्थों तक दृष्ट हेतुओं का प्रवेश है, अन्यत्र अदृष्ट आश्रय लिया गया है। कणाद ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ये छह पदार्थ माने है। इन्हीं छह पदार्थों के ज्ञान से वैशेषिक मत में मुक्ति की प्राप्ति बतलाई गई है। वैशेषिक दर्शन के अंतर्गत अविद्या के संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय तथा स्वप्न—ये चार भेद स्वीकार किए हैं। इसी प्रकार वैशेषिक में चार प्रकार की विद्या है। विद्या के भेद—प्रत्यक्ष, अनुमान, स्मृति तथा आर्ष हैं। वैशेषिक दर्शन में सत्प्रत्ययकर्म, असत्प्रत्यय कर्म तथा अप्रत्यय कर्म रूप से कर्म के तीन विशेष रूप प्रदर्शित किए गए हैं। 'सत्प्रत्यय कर्म' प्रयत्न से और 'असत्प्रत्ययकर्म' बिना प्रयत्न से होते हैं। जो कर्म पृथिवी आदि महाभूतों में बिना किसी प्रयत्न के होते है, वे अप्रत्यय-कर्म है। वैशेषिक में ईश्वर को न मानकर अदृष्ट के द्वारा परमाणुओं की गति आदि की समस्या का समाधान किया गया है।

वैशेषिक दर्शन का यह वैशिष्ट्य है कि इसमें ईश्वर को अस्वीकार करते हुए भी आत्मा को स्वीकार किया गया है।

कणामांमु (उ० कृ०)

'कणामांमु' लक्ष्मीकांत महापात्र का उपन्यास है और कणामांमु (दे०) इसका विलक्षण पात्र है। संपूर्ण उपन्यास में इसका चरित्र यद्यपि पूर्णरूप से विकसित नहीं हो सका है, तथापि जितना भी प्रकाशित हुआ है, वह अद्भुत है। इसकी कथा इस प्रकार है—

कणामांमु का नाम पहिले किणा था। पटाके से एक आँख नष्ट हो जाने से किणा कणा (काना) में बदल

गया था । कानेपन के कारण विवाह-मडप मे इसका विवाह रुक जाता है । यह दादा, पिता, अथवा पुत्र सबका, चदा मामा की तरह, जगत मामा है । इसकी उम्र का न तो किसी को पता है और न इस के शरीर पर ऐसा चिह्न ही है जिससे उसका अनुमान लगाया जा सके । चिर-नवीनता, चिरयौवन, चिरस्फूर्ति, सदाबहार—इन शब्दावलियो की रचना स्यात् इसके लिए ही हुई है । सारा गाँव इसका घर है । इसका बाह्य रूप यद्यपि भयकर है, किंतु भीतर से यह साहस, वीरत्व, परोपकार, उग्र देशभक्ति आदि गुणो का भडार हे । जात्रा, सर्कस, थियेटर, सगीत सभी से इसका परिचय है—केवल लिखने पढने से इसका कोई सबध नही है । इसने एक अखाडा खोला है जहाँ दड, बैठक, लाठी, कुश्ती, तलवार, सगीत आदि की शिक्षा दी जाती है । स्वय उस्ताद है । अखाडे से सच्चा देश-सेवक उत्पन्न करना ही इसका उद्देश्य है । विदेशी सरकार और उसके पिट्ठू इस अखाडे के दल को आतकवादी घोषित कर देते है । गद्दार मुशी जी को स्वय तमाचा जडकर यह गायब हो जाता है ।

दूसरी ओर पटनायक की नीचता से विवाह टूट जाने के कारण प्रधान की बेटी अन्नू तालाब मे कूदकर प्राण त्याग देना चाहती है, किंतु यह कही से आकर उसे निकाल लेता है तथा अपने अखाडे के युवक अभिराम से उसका विवाह करा देता है । अभिराम के घर आग लगने पर हवा के तेज झोके के समान यह पुन कही से आ जाता है और जलते हुए घर से उसकी भानजी को निकाल लेता है । इसका चिरवसत शरीर बुरी तरह झुलस जाता है । फिर भी अभिराम को इसका उपदेश है—

'देश मे अधर्म, अनाचार के घने बादल घिर आये हैं । सात समदर पारकर विदेशी हमारे सिर पर आसीन है । धर्म डूब गया है । अपने घर के मालिक हम स्वय होगे । इसके लिए सन्यासी बनना होगा । तिलक, जटा, गेरुआ वस्त्रधारी सन्यासी नही वरन् जिसे कहते है सच्चा त्यागी । काम सरल नही है—जीवन लेना होगा, जीवन देना होगा । मार-पीटकर, खून की नदी बहाकर, इसे निकाल बाहर करना होगा ।''

पुलिस यद्यपि इसे थाने मे ले जाती है जहाँ इसका उपचार होता है किंतु कुछ दिनो बाद गाँव के चौकीदार स पता चलता हे कि मामा जेल स भाग गये हैं । इसके बाद इसका किसी को पता नही चल पाता ।

कणामामुं *(उ० पा०)*

कणामामुँ श्री लक्ष्मीकात महापात्र (दे०) के उपन्यास 'कणामामुँ' (दे०) का महत्वपूर्ण पात्र है । शिशु-चपल-मन, नि स्वार्थ व्यक्तित्व, उदार-करुण हृदय, वीरता-पूर्ण देशभक्ति, उच्छल भाव-राशि, सूक्ष्म चिंतना—इन्ही उपकरणो से यह निर्मित है । इसके मन मे न गर्व है, और न आहे, न मोह है और न अनासक्ति ही । ग्रामीण परिवेश की उन्मुक्तता एव अनगढपन एव उद्दड सरलता इसके व्यक्तित्व मे अतर्निहित है । यह जगत्-मामा है । यह वृद्ध है या जवान, कौन जाने ? सदाबहार रहना ही इसकी विशेषता है । यह अनेक विद्याओ मे पारगत है—सगीत, थियेटर, जात्रा, सर्कस, कसरत आदि । केवल पढने लिखने के साथ इसका कभी कोई सबध नही रहा । इसके शरीर मे असीम बल है, और मन मे अद्भुत साहस । यह 'किणा' से 'कणा' (काना) कैसे बना, लेखक इसका वर्णन करता हुआ कहता है—'प्राणी मे प्राकृतिक नियमानुसार बदर के पूँछ गिराकर मनुष्य बनने के समान 'किणा मामूँ ने मात्रा काटकर 'इवोल्यूशन' की सीढियाँ ही पार की है ।' इस कानेपन के कारण ही यह विवाह नही कर पाता । इसके पितृकुल मे कोई न था । वासु पटनायक ने इसे रखा था । यह वासु पटनायक के बहनोई के मामा का साला लगता है ।

कणामामुँ अपने जीवन-काल मे ही किंवदती बन जाता है । इसके बारे मे अनेक कहानियाँ प्रचलित हो जाती हैं । यह परदु सकातर है, बहुकर्मी है । प्रधान की पुत्री को यह आत्महत्या से बचाता हे तथा अपने शिष्य अभिराम से उसका विवाह करा देता है । एकबार अभिराम की भानजी को भी जलते हुए घर से बचाने मे स्वय भी बुरी तरह झुलस जाता है । मुमूर्ष अवस्था मे भी राष्ट्र के प्रति उत्सर्जित हो जाने का उपदेश यह देता हे । स्वय भी देश के लिए मरने मारने को सदा प्रस्तुत रहता है । अखाडा-घर खोलकर ऐसे स्वस्थ पुष्ट युवा-वर्ग का निर्माण करना चाहता है जो देश के लिए जिए, देश के लिए मरे । देशद्रोही मुशी जी को भरपूर तमाचा जडता है पर पुलिस इसे कभी नही पकड पाती । बुरी तरह जला होने पर यदि पकड भी ले जाती है, तो तनिक अच्छा होने पर यह फरार हो जाता है । गाँव का युवक-वर्ग सबसे अधिक इसी से भयभीत रहता है—यद्यपि वह इसके आतरिक स्नेह का अधिकारी होता है । अपनी कुरूपता के कारण समाज के हर क्षेत्र मे उपेक्षित एव

अपमानित होता हुआ भी यह व्यक्ति निराश या कुंठित नहीं है। इसी निर्मम, अनुदार, संकीर्ण समाज पर ही यह अपने स्नेह की वर्षा करता रहता है। उपन्यास के असमाप्त होने के कारण इसके चरित्र की अंतिम परिणति हम जान नहीं पाते हैं, किंतु फिर भी जो कुछ प्रत्यक्ष है, वह अनुपम है, अद्भुत है।

कणैक्कळ इरुंपोरै *(त० पा०)*

चेर-सम्राट कणैक्कळ इरुंपोरै सूर्यनारायण शास्त्री (दे०)-कृत ऐतिहासिक नाटक 'मानविजयम्' (दे०) का नायक है। इसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसने 'मान' को प्राणों से भी बढ़कर माना है और मानहानि होने पर प्राणों को त्याग देता है। इसके द्वारा रचित एक पद 'पुरनानूरु' (दे०) में है। उसमें यह कहता है कि 'हमारे सभी वंशजों ने वीरों की तरह प्राण त्यागे हैं। स्वाभाविक रूप से मृत्यु को प्राप्त होने पर, अपाहिज होने पर भी उसे अस्त्र से काट कर ही गाड़ा जाता है।'

कण्णकि *(त० पा०)*

कण्णकि तमिल के प्रसिद्ध महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) की नायिका है। यह कावेरिप्पूंपट्टिनम् के मानायकन् नामक व्यापारी की पुत्री और कोवलन् नामक वणिक-पुत्र की पत्नी है। कण्णकि आदर्श पत्नी है। इसका पति कोवलन् वेश्या माधवी के आकर्षण में पड़कर अपना सर्वस्व खोकर इसके पास लौटकर आ जाता है। यह अतीत की सभी बातों को भुलाकर सहर्ष उसका स्वागत करती है। अपने आभूषणादि देकर उसकी सहायता के लिए तत्पर होती है। दैववशात् दोनों मदुरै पहुँचते है और एक ग्वालिन के घर ठहर जाते हैं। इस बीच पाड्य रानी का नूपुर चोरी हो जाता है। कण्णकि के नूपुर सहित बाजार मे भटकता हुआ कोवलन् पांड्य राजा के सिपाहियों द्वारा पकड़ लिया जाता है। राजा उसे अपराधी जानकर उसका वध करवा देता है। ग्वाल-बस्ती में अपशकुन होते है। निरपराध कोवलन् के वध का समाचार पाकर क्रुद्ध कण्णकि पाड्य राजा के दरबार में पहुँचती है। प्रबल प्रमाणों के आधार पर वह कोवलन् को निरपराध सिद्ध करती है और राजा के निर्णय को अन्यायपूर्ण घोषित करती है। अपनी भूल का ज्ञान होने पर पांड्य राजा और उसकी पत्नी प्राण त्याग देते हैं। सती कण्णकि अपने शाप से संपूर्ण मदुरै नगरी को भस्म कर देती है। जनता इसके सतीत्व की शक्ति से परिचित हो जाती है। कालांतर में चेर-सम्राट् शेंगुट्टुवन् हिमालय से लाये गये पत्थरों से कण्णकि की प्रतिमा का निर्माण करवाता है। पत्नी देवी के रूप में कण्णकि की उपासना होने लगती है। आज भी दक्षिण भारत एवं लंका में स्थान-स्थान पर पत्नी देवी के रूप में सती कण्णकि की उपासना होती है।

वर्तमान काल में कण्णकि के चरित्र को लेकर अनेक काव्य, नाटक, निबंध आदि रचे जा चुके हैं। इनमें सर्वप्रसिद्ध है भारतीदासन् (दे०)-कृत महाकाव्य 'कण्णकि-पुरट्चि'। इसमें कवि ने 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) की कथा को अपने क्रांतिकारी नूतन दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है; साथ ही कण्णकि के चरित्र को उभारा है। विभिन्न साहित्यिक कृतियों में कण्णकि के चरित्र के माध्यम से आदर्श पत्नी (पत्नी देवी) के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

कण्णदासन् *(त० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

इनका जन्म रामनादपुरम जिले के शिरुकूडल-पट्टि में हुआ। कण्णदासन् तमिल साहित्य-जगत में मूलतः कवि के रूप में विख्यात है। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है—ईपृत्तु राणी (कहानी-संग्रह), आयिरम् दीवु अंगयर्कण्णी (उपन्यास), कण्णदासन् कविदैहळ् (कविता-संग्रह), तैपावै, मांकणी (कथा-काव्य), कविताजलि (काव्य-रूपक), वनवासम् (संस्मरणात्मक निबंध) आदि। कण्णदासन् ने 'कण्णदासन्' नामक मासिक और 'तेन्रल्' नामक साप्ताहिक पत्रिका का संपादन किया। राजनीति में इनकी विशेष रुचि है। अपने 'कडिदम्' नामक राजनीतिक दैनिक पत्र में ये अपने राजनीति-विषयक विचारों की अभिव्यक्ति करते है। तमिलनाडु के 'स्वमर्यादा आंदोलन' से इनका संबंध रहा है। कण्णदासन् तमिल के सजग, सशक्त साहित्यकारों में से हैं।

कण्णन्, प० *(त० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

इनका जन्म सेलम् जिले में स्थित जलकंडपुरम् में हुआ था। सन् 1930 ई० से इनका संबंध 'स्वमर्यादै इलक्कम्' (सेल्फ़रेस्पेक्ट मूवमेंट) से है। अल्पायु से ही

अभिनय, सगीत और कविता-रचना में इनकी रुचि थी। कण्णन् मूलत अपने नाटको—ऐतिहासिक नाटको—के लिए प्रसिद्ध है। ये कुशल नाटककार होने के साथ साथ कुशल अभिनेता और कुशल निर्देशक भी है। इसी से तमिलनाडु की सगीत नाटक अकादमी ने इन्हे 'नाडह कलैमामणि' की उपाधि दी थी। इनके प्रसिद्ध नाटक हैं—वीर वाली, पाण्डिय मकुडम् और नदिवर्मन्। चलचित्र के रूप में प्रदर्शित इनके नाटक है—जमीदार पास वलै, भोजन (राजा भोज) आदि। कण्णन् बाल-साहित्य की रचना करने वालो में प्रसिद्ध है। इन्होने अपनी रचनाओ में सामाजिक कुरीतियो की निदा की है। इनके नाटको और कुछ कहानियो में यथार्थवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। कण्णन् पर मार्क्सवाद का प्रभाव भी है। कण्णन् मूलत नाटककार है। य आजकल सगीत और नाटक के प्रचार प्रसार से सबद्ध एक सस्था 'वळ्ळुवर कलैयहम्' के स्वत्वधारी और निर्देशक हैं।

कण्णन् पाट्टु (त० कृ०) [रचना-काल—1917 ई०]

कण्णन्पाट्टु भारतियार (सुब्रह्मण्य-भारती दे०) की प्रसिद्ध कृतियो में से है। इसमें उनकी 23 कविताएँ सगृहीत है। इन कविताओ में भारती ने भक्त कवियो के समान इष्टदेव कन्हैया (कण्णन) की महिमा गाई है। भक्त भगवान से नाना प्रकार के सबधो की कल्पना करता है, ठीक इसी प्रकार भारती ने भी कण्णन' को माता, पिता, गुरु, मित्र, स्वामी, सेवक, बालक, प्रेमी प्रेमिका आदि रूपो में देखा है। 'कण्णन्पाट्टु' शीर्षक स सगृहीत 23 कविताओ में भारती ने आदर्श माता, पिता, गुरु, मित्र, प्रेमी, प्रेमिका आदि के रूपो को अकित किया है। भक्त भगवान से जिन सबधो की स्थापना करता है उनमें सर्वप्राचीन एव लोकप्रिय सबध है प्रेमी प्रेमिका का सबध। भक्त और भगवान के इस प्रेम-भाव की अभिव्यक्ति करते हुए भारती ने पराभक्ति का वर्णन न कर लौकिक प्रेम का ही वर्णन किया है। 'कण्णम्मा एन् रुपदै' कविता के माध्यम से पाठको मे भक्ति भावना जगाने का सफल प्रयास किया गया है। कण्णन् सबधी ये कविताएँ अत्यत सरस है। उनमें सगीतात्मकता है। विभिन्न कविताओ में शृगार, अद्भुत, भयानक, रौद्र, करुण, आदि रसो की अभिव्यजना हुई है। इन कविताओ मे अनेक सुदर शब्द-चित्र हैं। इनमे से कुछ कविताएँ 'नोडि चिदु' नामक साधारण शैली मे रचित है। कुछ कविताएँ 'आशिरियप्पा' छद मे रचित है। 'कण्णन् पाट्टु' मे महाकवि भारती की प्रखर कल्पना-शक्ति और भक्ति-भावना का सम्मिलन दीख पडता है। इन कविताओ में पाठको को हठात् आकृष्ट करने की शक्ति है।

कण्णुनीर्त्तुळ्ळि (मल० कृ०)

'कण्णुनीर्त्तुळ्ळि' (आँसू की बूँद) के रचयिता श्री नालप्पाट्टु नारायण मेनन (दे०) मलयाळम के प्रमुख स्वच्छतावादी कवि थे। अँग्रेज़ी उपन्यासो के सफल अनुवादक के रूप मे भी इनको अपार यश प्राप्त था। इन्होने अँग्रेज़ी साहित्य की इन विशेष प्रवृत्तियो से यशस्वी मलयाळम कवि वळ्ळत्तोळ् (दे०) को परिचित कराया था। वळ्ळत्तोळ् के सत्सग से इन्हे काव्य सृजन का प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

कण्णुनीर्त्तुळ्ळि श्री मेनन के व्यक्तिगत जीवन से सबधित व्यथापूर्ण कथा की छदोमय अभिव्यक्ति है। प्रसवकाल में अपनी बाल सखी और प्राणप्रिय पत्नी के निधन जन्य भीषण एकात तथा चिरतन विरह-व्यथा की काव्याभिव्यक्ति इस कृति में हुई है। माया मोह को छुडाने वाली दार्शनिकता कवि का दिल हल्का नही कर पा रही थी। इस बोझ को उतारने के लिए कवि ने अपने मन के उद्गार कविता के रूप मे सुनाये है। उचित ही था कि इस रचना का नाम 'आँसू की बूँद' रखा गया।

दु खावेग से कवि हृदय में बिना किसी क्रम या अकुश के जो विचार उठते है, वे ही काव्य में ढल गये है। इस शोकगीत की विशेषताएँ है अनुभूति एव पीडा की तीव्रता तथा मौलिक अभिव्यजना। गहरी दार्शनिकता की व्यापक पृष्ठभूमि इसे गभीर बनाती है। भावो के योग्य तत्सम प्रौढ भाषा काव्य का महत्व बढाती है। एक एक पद्य एक एक स्वतत्र छद है—आँसू की बूँद का मोती है, मानो प्रत्येक छद मे एक एक भाव रत्न निहित है। हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि प्रसाद (दे०) जी के छायावादी शोकगीत 'आँसू' (दे०) से इस काव्य की तुलना कुछ-कुछ की जा सकती है।

कण् तिरक्कुमा (त० कृ०) [रचना-काल—1956 ई०]

विंदन (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यासो में परिगणित। यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसमे तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण है। उपन्यासकार के मत

में समाज में सभी अवसरवादी और स्वार्थी हैं। समाज में पर-उपदेश-कुशल व्यक्तियों की संख्या अधिक है। जो उनका विरोध करते है उन्हें वे बड़ी चातुरी से अपने पक्ष में कर लेते है। उपन्यासकार प्रश्न करता है क्या लोगों की आँखें खुलेंगी ? (कण् तिरक्कुमा ?)। गांधी जी के सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए लेखक इस बात पर बल देता है कि यदि समाज में सभी दूसरों को उपदेश न देकर अपने आपको सुधारने का यत्न करें तो सारा समाज अपने आप सुधर जाएगा।

इस उपन्यास में डायरी-शैली और पत्र-शैली का प्रयोग किया गया है। इसे तमिल के प्रभावशाली सामाजिक उपन्यासों में परिगणित किया जाता है।

कण्व *(सं० पा०)*

कण्व किसी की कल्पना नहीं अपितु वास्तविक व्यक्ति थे। 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' (दे०) में कालिदास (दे०) ने इनका चित्रण कुलपति के रूप में किया है। हिमालय की तराई में मालिनी नदी के तट पर इनका आश्रम था जो वर्तमान रानीखेत के आसपास का प्रदेश है। सहशिक्षा इनके आश्रम की एक विशेषता थी।

ऋषि कन्व आबाल ब्रह्मचारी थे पर जीवन के सभी पहलुओं से पूर्ण रूप से अभिज्ञ थे। कालिदास के संकेतों के अनुसार वे त्रिकालज्ञ थे। शकुंतला (दे०) के प्रति उनका विशेष स्नेह उसके गुणों के कारण था। उसके ये धर्मपिता थे तथा उसकी विदाई पर उन्हें किसी भी पिता से कम कष्ट नहीं हुआ। उनके आश्रम का वातावरण सौम्य एवं सहृदयतापूर्ण था। व्यक्तित्व के विकास के लिए वहाँ समुचित अवसर था। कण्व एक मनीषी थे। राजा भी उनके तेज से डरता था और उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करना कर्तव्य समझता था। कालिदास ने इन्हें त्रिकालज्ञ महर्षि के रूप में चित्रित किया है।

कण्हपा (कृष्णपाद) *(अप० ले०)*

चौरासी सिद्धों में कण्हपा या कृष्णपाद का भी प्रमुख स्थान है। कर्णाटक देश मे एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने के कारण कण्हपा को कर्ण पा और श्याम शरीर होने के कारण कण्ह पा या कृष्ण पा कहते है। विनयतोष भट्टाचार्य के अनुसार ये जुलाहे थे। कवित्व और विद्या की दृष्टि से चौरासी सिद्धों में ये सबसे बड़े सिद्ध माने जाते थे। इनके अनेक शिष्य थे। इनके दर्शन पर लिखे छह और तंत्र पर लिखे चौहत्तर ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। इनमें से 'काण्हपादगीतिका,' और 'दोहाकोश' (दे०) अपभ्रंश में लिखित है। इनके गुरु जालंधरपाद थे। जालंधरपाद और कृष्णपाद की शैव सिद्धों में भी गणना की जाती है। इससे प्रतीत होता है कि सिद्धों में इनकी पहले प्रतिष्ठा थी।

इन्होंने आगम, वेद, पुराण और पंडितों की निंदा की है। मन को निश्चल कर सहज मार्ग पर चलने का उपदेश दिया है। यह मार्ग कठिन है इसलिए मार्ग-दर्शन के लिए गुरु की महत्ता का प्रतिपादन किया है।

क़तआ *(उर्दू० पारि०)*

'क़तआ' का शाब्दिक अर्थ है टुकड़ा। साहित्यिक अर्थों में 'क़तआ' मुक्तक का पर्यायवाची है। यह विधा अपने आप में सार्थक होती है। प्रबंध-काव्य की-सी विशदता एवं विस्तार इसमें नहीं होता।

'क़तआ' दो शेरों का भी हो सकता है और दो से अधिक का भी किंतु इसमें कम-से-कम दो शेर अवश्य होते हैं। क़तए में दूसरे, चौथे और छठे अर्थात् सम चरणों में तुक होती है। कुछ कवियों ने पहले और दूसरे चरणों में भी तुक रखने का समर्थन किया है: जैसे 'जिगर' मुरादाबादी का यह कतआ 'रुबाई' जैसा है—

> मस्त-ए-जाम-ए-शराब होना था,
> बेख़ुद-ए-इज़तराब होना था।
> तेरी आँखों का कुछ कसूर नहीं,
> हाँ, मुझी को ख़राब होना था॥

'रुबाई' (दे०) और 'क़तआ' में सीधा और स्पष्ट अंतर यही है कि रुबाई में पहले और दूसरे चरणों मे तुक अनिवार्य है जबकि क़तए में ऐसा बंधन नहीं है। फिर रुबाई में 24 छंद निश्चित है जबकि क़तए के लिए छंद का कोई बंधन नहीं।

क़तए के लिए विषय का भी कोई बंधन नहीं है। शृंगार, नीति, दर्शन, स्तुति, निंदा, आदि सभी क़तए के विषय बन सकते हैं। रुबाई की तरह क़तए का आख़िरी मिसरा (अंतिम चरण) सशक्त होना चाहिए ताकि पाठक पर प्रभाव छोड़े।

कत्रे, सुमित्र मगेश [जन्म—1906 ई०]

डा० कत्रे बहुत दिनो तक डकन कालिज, पूना के निदेशक रहे हैं। इनके मुख्य विषय भाषाविज्ञान तथा पाठविज्ञान हैं। इनके मुख्य ग्रथ 'फार्मेशन आफ कोकणी', 'सम प्रॉब्लम्स आफ हिस्टॉरिकल लिग्विस्टिक्स इन इडो-आर्यन', 'प्राकृत लैंग्वेजिज ऐंड देयर काट्रीब्यूशन टु इडियन कल्चर', 'इट्रोडक्शन टु इडियन टेक्स्चुअल क्रिटिसिज्म', 'इट्रोडक्शन टु मॉडर्न इडियन लिग्विस्टिक्स' तथा 'लैक्सिकोग्राफी' आदि हैं। डा० कत्रे के निर्देशन मे ही भारत सरकार की सहायता से सस्कृत के वृहद् ऐतिहासिक कोश का आरभ हुआ था। इस कोश का कार्य चल रहा है। पूरा होने पर यह कोश विश्व मे अपने ढग का पहला कोश होगा। 1950 ई० के बाद भारत मे आधुनिक भाषा विज्ञान के प्रचार तथा प्रशिक्षण मे डा० कत्रे का मुख्य योगदान रहा है।

कथा *(हिं० पारि०)*

भामह (दे०) के अनुसार कथा उस (गद्यबद्ध) रचना को कहते हैं जो सस्कृत, प्राकृत अथवा अपभ्रश मे लिखित हो, जिसमे अवसर के अनुकूल छदो का प्रयोग हो, किंतु वक्त्र, अपरवक्त्र छद का प्रयोग न हो, जिसमे उच्छ्वास न हो, जिसमे किसी अन्य के द्वारा नायक का चरित्र-वर्णन हो। (काव्यालकार 1, 28-29)। इन्होने कथा और आख्यायिका (दे०) मे भेद माना है। किंतु दडी (दे०) के अनुसार इन दोनो मे वस्तुत कोई भेद नही है। कथा मे किसी भी छद का प्रयोग हो सकता है। नायक स्वय भी अपने चरित्र का वर्णन कर सकता है। यदि यह माना जाये कि नायक अपना चरित्र-वर्णन करते समय अपना गुण-कथन भी करने लगेगा तो किसी सत्य घटना के वर्णन म स्वय उसका गुण-कथन हो भी जाए तो इसमे कोई दोष नही है। स्वय भामह ने आख्यायिका के लक्षण मे यह कहा है कि इसम नायक अपना वृत्तात स्वय कहता है, तो अपने मुख से गुण-कथन तो आख्यायिका मे भी सभव है। इसी प्रकार कथा मे सर्गबध (महाकाव्य) (दे०) (तथा आख्यायिका) के ही समान कन्याहरण, युद्ध, विप्रलम्भ आदि का वर्णन भी हो सकता है। इसी प्रकार कथा मे अन्य छदो के समान वक्त्र-अपवक्त्र (अपरवक्त्र) छद का भी प्रयोग हो सकता है। कथा मे यदि कथानक का विभाजन लम्भ नाम से किया जाता है तो उच्छ्वास नाम से कर देने मे भी कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। अत कथा और आख्यायिका दोनो की विशेषताओ को एक ही मानते हुए ऐसी रचना को दोनो नाम दे सकते हैं। (का० अ० 1 24 30) विश्वनाथ (दे०) के अनुसार कथा मे सरस विषय गद्य मे कहा जाता है। इसमे कही कही आर्या छद और कही वक्त्र अथवा अपवक्त्र छद होते हैं। प्रारभ मे पद्यमय नमस्कार और खल आदि का चरित्र निबद्ध रहता है—जैसे कादबरी (दे०) (सा० द० 6 332 333)

कथा-ओ कहानी *(बँ० कृ०)*

यह 'कथा' तथा 'कहानी' नाम से सन् 1899 ई० मे अलग-अलग प्रकाशित रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दे०) के काव्य सग्रह हैं। सन् 1905 मे दोनो सग्रहो को मिलाकर 'कथा-ओ-कहानी' नाम से एक सग्रह प्रकाश मे आया था।

देशात्मबोध को जाग्रत करने के लिए कवि ने भारतवर्ष के इतिहास एव पुराण से ऐसी कथाओ का चयन किया है जो अपूर्व स्वार्थ त्याग मे युक्त थी, जिनमे वीर-धर्म का पालन शत्रु को क्षमा, सत्य एव धर्म के लिए प्राण दान आदि के आदर्श थे।

बौद्ध साहित्य, राजपूत, सिख एव मरहठो के इतिहास से भी ऐसी कथाओ का चयन कर कवि ने इन्हे काव्य-रूप दिया था। महान आदर्शो की स्थापना एव मनुष्यत्व का श्रेष्ठ प्रकाश इन कथाओ एव कहानियो का लक्ष्य है। गाथा एव गाथागीत जाति की ये कविताएँ है। अनेक कविताओ म कवि ने कल्पना का आश्रय लिया है। य कविताएँ अत्यत सुबोध भाषा म लिखी गई हैं।

कथागीता *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1598-99 ई०]

लेखक भट्टदेव (दे०) (कविरत्न वैकुठनाथ भट्टाचार्य)।

गुरु दामोदर की प्रेरणा से लेखक ने शूद्रा और स्त्रियो के प्रयोग के लिए गीता का गद्यानुवाद 'कथागीता' नाम से किया था। वस्तुत यह अनुवाद नही है, मूलग्रथ के भावो को आत्मसात् कर लेखक ने उन्हे अपने ढग स प्रस्तुत किया है। इसम तर्कपूर्ण किंतु बोधगम्य शैली मे गहन तत्त्वो का विवेचन है। कवि ने दार्शनिक तत्त्वो को समझाने के लिए जन-प्रचलित उपमाओ का प्रयोग किया है। सस्कृत-शब्दो के साथ कथ्य भाषा से भी शब्द लिए गए हैं। भाषा सरस, मधुर

और ओजस्वी है। श्री शंकरदेव (दे०) के व्रजबुलि गद्य के पश्चात् शुद्ध असमीया गद्य का प्रयोग सर्वप्रथम भट्टदेव की पुस्तकों में हुआ है। आचार्य प्रफुल्ल राय ने कथागीता के गद्य को अमूल्य निधि बताते हुए कहा है कि सोलहवीं शताब्दी में इंगलैंड के हुकर और लेटिमर के पश्चात् विश्व में बस यही लेखक सामने आता है। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी (दे०) ने भी भट्टदेव के गद्य की प्रशंसा की है।

कथानक *(सं०, हिं० पारि०)*

सभी प्रकार के कथात्मक साहित्य-रूपों की वस्तु का एक सुनिश्चित योजना एवं क्रम के अनुसार युक्तियुक्त कार्य-कारण-श्रृंखला में सुगंबद्ध नियोजन कथानक है। पाश्चात्य साहित्यालोचन में इसके लिए 'प्लॉट' शब्द का प्रयोग होता है। नाटक (दे०), उपन्यास (दे०), कहानी (दे०), और महाकाव्य (दे०) की कथा-वस्तु उसका अंतरंग तत्त्व होता है, किंतु कथानक वस्तुतः उसके शिल्प-तंत्र से संबद्ध अपेक्षाकृत एक बहिरंग तत्त्व है। यह वस्तु का कथन न होकर उसके मध्य की घटनाओं और स्थितियों का कलात्मक एवं कुशल विन्यास है। इसके विधान की कला का चरित्रांकन से प्रत्यक्ष संबंध है। घटनाओं के कुशल संयोजन द्वारा ही पात्रों की मनःस्थितियों और सूक्ष्मातिसूक्ष्म चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन संभव है।

कथा-साहित्य में कथानक को साहित्यालोचन की प्राचीनतम परंपरा से लेकर मध्ययुग तक कृति का मेरुदंड होने का गौरव प्राप्त था। अरस्तू ने कथानक को त्रासदी (दे०) की आत्मा घोषित कर चरित्र-चित्रण को उसकी अपेक्षा गौण स्थान दिया था। उन्होंने घटना-विधान में सुनिश्चित प्रारंभ, मध्य और अंत से युक्त कार्य की एकता को सर्वाधिक महत्व दिया था। आगे नव्यशास्त्रवाद (दे०) के आचार्यों ने कार्य की एकता के साथ देश और काल की एकता को जोड़कर 'संकलन-त्रय' (दे०) की अवधारणा प्रस्तुत की। किंतु उन्नीसवीं शती के प्रारंभ में कथानक के महत्व के प्रति शंकाएँ उठाई जाने लगीं और उसकी अपेक्षा चरित्र-चित्रण को अधिक महत्व देने की प्रवृत्ति बढ़ी। आधुनिक कथाकारों और समालोचकों का एक वर्ग कथानक को अब सर्वथा नगण्य मानने लगा है।' 'शुद्ध उपन्यास' के आंदोलन के प्रवर्तक आंद्रे जीद तथा वर्जीनिया वुल्फ, मातर्लिंक और स्ट्रिंडबर्ग आदि आधुनिक लेखक भी कथानक को सर्वथा अवांछनीय मानते हैं। 1960 ई० के बाद से तो 'कथानक-विहीन' कथा-साहित्य का प्रचार बहुत बढ़ गया है। अब तो बिना कथानक के ही किसी विशेष संवेग, मनःस्थिति, भाव (दे०), यहाँ तक कि अरूप संवेदनाओं को ही कथा-साहित्य में विशृंखलित रूप में व्यक्त करना काफ़ी मान लिया जाता है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के अधुनातन कथा-साहित्य में भी अब यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ने लगी है। 'मुक्त-चेतना-प्रवाह' (दे० चेतना-प्रवाह) तथा प्रकृतवादी (दे० प्रकृतवाद) चित्रण-प्रणालियों ने इसमें सहयोग दिया है किंतु सामान्य पाठक के स्तर पर सुनिश्चित मूर्त घटना-विधान अब भी आकर्षण की वस्तु बना हुआ है।

कथासरित्सागर *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शताब्दी]

'कथासरित्सागर' सोमदेव द्वारा रचित प्रसिद्ध लोककथा-संग्रह है। सोमदेव क्षेमेंद्र (दे०) के समकालीन तथा काश्मीर-नरेश अनंत के आश्रित थे। इसका रचना-काल 1037 ई० है।

यह कथा-संग्रह गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' (दे०) का संस्कृत रूपांतर है। विश्व-कथा-साहित्य में यह विशालतम संग्रह है तथा कथा की सुव्यवस्थित योजना के कारण बृहत्कथा के अन्य संस्कृत रूपांतरों की अपेक्षा इसका महत्व अधिक है।

इसमें चौबीस हज़ार श्लोक हैं। यह पूरा ग्रंथ 18 खंडों और 24 उपखंडों में विभक्त है। इसमें मूर्ख, धूर्त एवं शठ पात्रों की कहानियों के अतिरिक्त कुछ आश्चर्य-जनक घटनाओं पर आधृत कहानियाँ हैं।

'कथासरित्सागर' की शैली बहुत ही सुंदर प्रवाह-मयी तथा वस्तुप्रधान है। इसमें कथाकार अपने छोटे-छोटे शब्दों को अलंकृत करने में दत्तचित्त नहीं है, प्रत्युत कथानक को सुंदर ढंग से कहना ही उसका लक्ष्य प्रतीत होता है। इसमें बाह्य आडंबर की अपेक्षा मूलवस्तु की रक्षा का ही विशेष उद्योग है। कथा कहने का इसका ढंग बड़ा ही रोचक है। बीच-बीच में प्राकृतिक दृश्यों के सजीव एवं मनोरम चित्रण इसे और रमणीय बना देते हैं।

कथोपकथन *(गु० कृ०)* [प्रकाशन—1969 ई०]

'कथोपकथन' अद्यतन गुजराती साहित्य के अग्रणी आलोचक श्री सुरेश जोशी (दे० जोशी) की उपन्यास तथा कहानी-विषयक समीक्षाओं का संग्रह है। लेखक ने

गुजराती उपन्यास-साहित्य एव तद्विषयक समीक्षा की भी समीक्षा की है। उपन्यास तथा उससे सबधित अधुनातन पश्चिमी विवेचना से अवगत लेखक गुजराती मे उपन्यास-साहित्य की प्रगति पर सतोष व्यक्त करता हुआ कहता है कि गुजराती मे उत्कृष्ट औपन्यासिक साहित्य का प्रणयन हुआ है। किंतु यही वह गुजराती उपन्यास साहित्य की मानक कही जाने वाली कृति 'सरस्वतीचद्र' (दे०) के औपन्यासिक रूप पर प्रश्नचिह्न लगा देता है। अब तक इसे सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहने की जो भावना रही है उस सबध मे लेखक का स्पष्ट मतव्य है कि अब तक आलोचको के पास उपन्यास की आलोचना का कोई निश्चित मापदड नही था।

कथोपकथन *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1801 ई०]

विलियम केरी बँगला भाषा चर्चा के इतिहास मे विदेशी भारत-प्रेमियो के पुरोधा है। 'कथोपकथन ग्रथ उनकी उल्लेखनीय सृष्टि है। यह पुस्तक 'डायलॉग या कॉलोक्वीइज' के नाम से भी प्रसिद्ध है। केरी ने बँगला मे इस ग्रथ को नाम दिया था—'कथोपकथन'। बगाली-रचित प्रथम मुद्रित गद्य-ग्रथ रामरामबसु(दे०) के 'प्रतापादित्य चरित्र' से यह पुस्तक एक महीने पहले प्रकाशित हुई थी। इस ग्रथ मे बगालियो के दैनदिन जीवन की विचित्रता का परिचय दिया गया है। इसमे सलापमय चलित भाषा का प्रयोग किया गया है। बँगला मुहावरे तथा प्रवचन के प्रयोग मे भी इस ग्रथ ने विशिष्टता प्राप्त की है। इस ग्रथ मे उस युग की सामाजिक एव व्यावहारिक रीति नीति का स्वाभाविक चित्रण है। सिफारिश, औरतो की लडाई, विवाह के मामले में नाइयों का काम आदि विचित्र विषयो मे रचनाकार का असाधारण नैपुण्य प्रकट हुआ है। प्राचीन बँगला गद्य के इतिहास मे कथोपकथन' विशेष उल्लेखनीय ग्रथ है।

कदमकलि *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1913 ई०]

इस सग्रह मे कवि लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०) की रोमाटिक कविताएँ उच्च स्तर की हैं। पुराने लोक-गीतो के आधार पर लिखे प्रेमगीत इसमे सगृहीत है। 'धनबर रतनी इस सग्रह की एक लोकप्रिय रचना है। 'प्रेम और 'प्रियतम' शृगारिक रचनाएँ है। कवि ने कृपा वर बरुआ नाम से अनेक व्यग-कविताएँ लिखी थी, ये भी इस पुस्तक मे समाविष्ट है। हास्य-कविताओ मे कवि को विशेष सफलता नही मिली, किंतु प्रेम और देशभक्ति की रचनाएँ उच्च कोटि की हैं। कविताओ मे दुख और निराशा का वर्णन नही मिलेगा। असमीया की रोमाटिक कविताओ मे इस काव्य सग्रह का विशेष स्थान है।

कदमराव और पदम *(उर्दू० कृ०)*

'कदमराव और पदम' दकन के प्रसिद्ध शायर 'निज़ामी' की एक मसनवी (दे०) है जो सुलतान अला उद्दीन बहमनी के शासन-काल मे लिखी गई। इसकी भाषा प्राचीनतम तथा प्रारभिक दकनी उर्दू है। नियमानुसार इस मसनवी मे भी सर्वप्रथम ईश-स्तुति, तत्पश्चात् शासक (अलाउद्दीन बहमनी की) प्रशस्ति और तब कथा वर्णन है। इस मसनवी मे अरबी-फारसी की अपेक्षा हिंदी शब्दो का प्रयोग अधिक है किंतु भाषा प्राचीन होने के कारण कुछ जटिल है। इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि निजामी अपने युग का श्रेष्ठ कला कुशल कवि था।

कदिरं वेर पिळ्ळै, बा० *(त० ले०)* [जन्म—1844, मृत्यु—1907 ई०]

श्रीलका के 'याल्पाण' नाम से विख्यात (तमिल) प्रदेश मे इनका जन्म हुआ था। ये शैव-सप्रदाय के अनुयायी वेलाल' (भूस्वामी) जाति के थे। इन्होंने सस्कृत तथा तमिल का अच्छा अध्ययन किया था। 'अवधान' नामक विद्या (एक साथ आठ-आठ कार्य करने की विद्या) मे ये निपुण थे। इनके ग्रथो शैवचद्रिका', 'शैव-सिद्धात सग्रह', 'सुब्रह्मण्यपराक्रम', 'नैषध व्याख्या' आदि प्रसिद्ध है। 'याल्पाण अकारादि नामक शब्दकोश का निर्माण इन्होंने ही किया था।

कनकदास *(क० ले०)* [समय— सोलहवी शती ई०]

कनकदास के जीवन एव समय के विषय मे निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। कहा जाता है कि ये विजयनगर सम्राट कृष्णदेवराय के गुरु व्यासतीर्थ के शिष्य थे। इस आधार पर अनुमान लगाया गया है कि ये 1550 ई० के लगभग विद्यमान रहे होगे। ये उत्तर कर्णाटक के धारवाड जिले के बाड नामक गाँव मे एक गडरिए के कुल मे पैदा हुए थे। कहा जाता है कि ये दडनायक थे। किसी

युद्ध के कारण इनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। ये 'कागिनेले' नामक ग्राम के 'आदिकेशव' के भक्त थे। विरक्त होने पर ये अपना सर्वस्व गरीबों में लुटाकर सद्गुरु की खोज में विजयनगर जाकर व्यासतीर्थ के शिष्य बन गए। कुछ लोग इन्हें श्रीवैष्णव मानते हैं जबकि कुछ अन्य विद्वान इन्हें माध्वाचार्य का अनुयायी कहते हैं। पर वास्तव में ये एक सारसंग्रही हरिहराद्वैती थे।

कनकदासजी ने सैकड़ों गेय पदों की रचना की है। इन पदों के अतिरिक्त इन्होंने कई प्रबंधकाव्य भी रचे हैं। 'हरिभक्तिसार' हरिभक्ति-प्रतिपादक 110 षट्पदी छंदों का संग्रह है। 'रामध्यानचरित्रे' (दे०) 'नलचरित्रे' (दे०), 'मोहनतरंगिणि' (दे०) इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। 'नृसिंहस्तव' भी इनकी एक अन्य कृति मानी जाती है। इन रचनाओं मे 'रामध्यानचरित्रे' एक कल्पित कथा है जिसमें यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि ईश्वर दीनबंधु और भक्तवत्सल है। कथा इस प्रकार है—'रागी' (एक प्रकार का अनाज जो सरसों जैसा होता है और जिसका प्रयोग गरीब लोग ही अधिक करते हैं) तथा धान के बीच झगड़ा होता है कि उनमें कौन बड़ा है। वे अपनी-अपनी महिमा का बखान करते है और अंत मे निर्णय के लिए श्रीराम के पास जाते हैं। रामचंद्र जी उन दोनों को एक भंडार में रख देते हैं। छह महीने बाद देखा जाता है तो धान सड़ जाता है और रागी ठीक रहता है। खुश होकर राम उसे अपना नाम राघव→राघी→रागी दे देते हैं।

'नलचरित्रे' (दे०) नलदमयंती की विख्यात कहानी है। प्रेमाख्यान होने पर भी उसमें भक्ति का महत्व प्रतिपादित है। राज्यभ्रष्ट दंपति के कष्टकंटकों तथा उनके चरित्र की उदात्तता का इसमें मार्मिक चित्रण है। कवि ने मूलकथा में कहीं-कहीं यथोचित परिवर्तन भी किये हैं। यह षट्पदी (दे०) छंद का एक सफल प्रबंध-काव्य है।

'मोहन तरंगिणि' (दे०) आकार तथा गुण में 'नलचरित्रे' से भी बड़ा है। महाभारत तथा भागवत में निरूपित कामदहन, उषा-अनिरुद्ध-प्रणय तथा कृष्ण-बाणासुर-युद्ध आदि के बाद हरिहर-समानता के प्रतिपादन के साथ इसकी कथा समाप्त होती है। यह सांगत्य (दे०) छंद में है। संवादशैली में लिखित इस काव्य में भारतीय कथानक-रूढ़ियों की भरमार है। कवि ने इसकी कथा को 'कृष्णकथा' कहा है जिस पर कुछ विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि इसमें विजयनगर सम्राट् कृष्णदेवराय की कथा अन्योक्ति-क्रम मे कही गयी है। राजनीतिक ध्वनि तथा समकालीन जीवन के चित्रण मे इसे अद्‌भुत सफलता मिली है। इसकी शैली अत्यंत सरस और प्रांजल है। पौराणिक कथा के व्याज से समकालीन जीवन का चित्रण कर भक्ति का संदेश देने में यह कृति सफल रही है।

कनकदास की 'भक्तितरंगिणि' कीर्तन या गेय-पदों में उमड़कर बही है। ये पहले भक्त हैं, पीछे कवि। इनकी भक्ति संकीर्ण नहीं है। यहाँ आत्मसमर्पण की प्रधानता है। कृष्ण तथा गोपिकाओं के बारे में इन्होंने बीसियों गीत रचे हैं जो अपनी नादमाधुरी तथा वर्णन-कौशल के कारण जनता के कंठहार हैं।

कनकदास ने कूटकाव्य जैसे कुछ पद भी रचे हैं जो 'मुंडिगे' कहलाते हैं। 'उलटवासियों' की भाँति ये विरोधमूलक अर्थ देने वाले कूटकाव्य हैं। इनकी भाषा जनभाषा के अधिक निकट है। संस्कृत तथा कन्नड़ शब्दों का मणिकांचन योग इनके प्रबंधकाव्यों की भाषा में है। महाकवि कनकदास कर्णाटक संस्कृति के रत्नदीपों में से हैं।

कनकलता *(उ० कृ०)*

'कनकलता' नंदकिशोर बळ (दे०) का सामाजिक समस्यामूलक उपन्यास है। सामाजिक परंपराओं में जकड़े हुए व्यक्ति की असहायता एवं करुण अंत की यह कहानी है। उमा एवं राजेंद्र के जीवन की बर्बादी हमारी सामाजिक व्यवस्था पर एक प्रश्नवाचक चिह्न है। सामाजिक सुधार के नेता भी समय आने पर किस प्रकार पीछे हट जाते हैं, सामाजिक विरोध का सामना करने का साहस अपने में नहीं जुटा पाते, धनंजय के आचरण से यह स्पष्ट हो जाता है। ऐसे दुर्बलमन नेताओं से भला कोई भी बड़ा कार्य कैसे संपन्न हो सकता है? विचार एवं क्रिया की एकता के बिना कुसंस्कार दूर करने का अभियान सफल नहीं हो सकता। राजेंद्र एवं धनंजय के चरित्रों द्वारा लेखक ने यथार्थ क्रांतिकारी एवं कृत्रिम सुधारक का पर्दाफाश किया है।

हीरापुर के जमींदार व्रजधर हरिचंदन के चार पुत्र एवं एक कन्या है। कनिष्ठपुत्र राजेंद्र बी० ए० का विद्यार्थी है। बेटी कनकलता सुंदर होने के साथ गुणवती एवं सुशिक्षिता भी है।

मोतीभर के जमींदार इंद्रजित के पुत्र धनंजय वकील होते हुए भी देश-सेवा को प्रधानता देते हैं। कनकलता का विवाह धनंजय से होता है। धनंजय की बहन उमा बालविधवा सुंदरी युवती है। राजेंद्र उसके साथ विवाह का प्रस्ताव धनंजय के समक्ष रखते हैं। किंतु धनं-

जय को ऐसा क्रातिकारी समाज विरोधी कदम उठाने मे हिचक होती है। वे राजेंद्र से कुछ दिन और प्रतीक्षा करने को कहते हैं। इसी बीच उमा की मृत्यु हो जाती है, राजेंद्र सन्यासी हो जाते हैं।

प्रसगानुकूल लेखक ने राजेंद्र के द्वारा रूढि, परपरा, कुसस्कार, दहेज-प्रथा आदि पर प्रहार किया है।

कनक सेंदिनादन *(त० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

इनका जन्म जाफना (लका) मे हुआ। सन् 1940 ई० से ये लका के सरकारी महाविद्यालय मे तमिल-प्राध्यापक के रूप मे कार्य कर रहे हैं। इन्होने अपने साहित्यिक जीवन का आरम कहानी रचना से किया। इनका प्रथम कहानी सग्रह है—कडवुळ् तीर्पु। इनकी अन्य प्रसिद्ध कृतियाँ है—ईषत्तु कवि मलरहळ् (कविता सग्रह), ईषत्तु इलक्किय वळर्च्चि (साहित्य का इतिहास), वेण्ड्रमु (कहानी सग्रह) आदि। इन्होने रेडियो के माध्यम से श्रीलका के प्रसिद्ध तमिल कवियो और साहित्यकारो का परिचय प्रस्तुत किया है। इस पर इन्हे 'रसिकमणि' की उपाधि मिली। इन्होने कुछ पाठ्य पुस्तको की रचना भी की है। बाल-साहित्य के क्षेत्र मे इनका योगदान उल्लेखनीय है। इनकी कुछ कहानियाँ अंग्रेजी, रूसी आदि भाषाओ मे अनूदित हो चुकी है। कनक सेंदिनादन साहित्य एव समालोचना की विभिन्न सस्थाओ से सबद्ध है। ये लका के तमिल आलोचको मे सर्वप्रमुख है।

कन्नड कैपिडि *(क० कृ०)*

यह मैसूर विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित कन्नड भाषा तथा साहित्य की एक लघु पुस्तिका है। इसके दो सपुट हैं। प्रथम सपुट म प्राचीन कन्नड का व्याकरण, प्राचीन कन्नड वैयाकरणो के अनुसार, आधुनिक कन्नड मे दिया गया है। द्वितीय भाग मे कन्नड पिंगल का निरूपण है। इसमे सस्कृत के वर्णवृत्तो एव मात्रावृत्तो तथा कन्नड के अपने 'अश गण' छद की चर्चा है। पहली बार यह सिद्ध किया गया है कि कन्नड का छद न तो मात्रा गण है, न वर्णवृत्त बल्कि वह 'अश गण' है अर्थात् उसमे प्रत्येक अक्षर की मात्रा नियत नही है। इसके तीसरे भाग मे अलकारो की चर्चा, सस्कृत के विविध सप्रदाय, काव्य-विभाग, स्थायी, सचारी, रस आदि तथा रीति, शैया, पाक, काव्यदोष, गुण, कवि समय आदि इस प्रकार काव्य की सर्वांगीण विवेचना है। उदाहरण प्राचीन कन्नड के ग्रथो से दिए गये है। चौथे भाग मे कन्नड भाषा का वैज्ञानिक इतिहास है। कन्नड की वर्णमाला की चर्चा करते हुए यह दिखाया गया है कि महाप्राण कन्नड की अपनी ध्वनियाँ नही हैं, शब्द-प्रकरण के अतर्गत, तद्भव, तत्सम तथा देश्य का विवेचन है। सर्वनाम एव विभक्तियो का वैज्ञानिक विवेचन है। क्रिया की चर्चा करते हुए यह दिखाया गया है कि कन्नड मे वास्तव मे क्रिया है ही नही, वर्तमान काल भी नही है। अत मे अव्ययो का सम्यक् विवेचन है। कन्नड भाषा का अत्यत प्रामाणिक एव वैज्ञानिक विवेचन इसमे मिलता है। इसके द्वितीय सपुट मे कन्नड साहित्य का इतिहास है जिसके लेखक है कन्नड के विख्यात कवि प्रो० बी० एम० श्रीकठय्या (दे०)। इसमे केवल कन्नड साहित्य के आदिकाल का विवेचन है। इसमे साहित्य के इतिहास से सबधित कई मौलिक उद्भावनाएँ है।

कन्नड-ग्रथ-सपादने *(क० कृ०)*

यह डा० डी० एल० नर्रासहाचार्य (दे०) की पाठानुसधान विषयक शास्त्रीय कृति है। प्रो० नरसिहाचार्य कन्नड के मूर्धन्य विद्वानो मे से थे। वे कन्नड के 'जगम-कोश' कहे जाते थे। प्राचीन कन्नड साहित्य के तलस्पर्शी अध्ययन, पाठसशोधन, अनुसधान आदि मे उन्होने अपना सपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया था। उक्त ग्रथ उनकी अर्धशताब्दी की सारस्वत तपस्या का फल है। कन्नड पाठालोचन की इस पुस्तक मे बारह परिच्छेद है। प्रथम मे पाठानुसधान का इतिहास है। 'लेखनसामग्री' नामक द्वितीय अध्याय मे लेख्यवस्तुओ जैसे भूर्जपत्र, ताडपत्र, कागज आदि की चर्चा है। तीसरे मे लिपिकार तथा उनके आदर्श का परिचय है। चौथे मे पाडुलिपियो के स्वरूप तथा वर्गीकरण का विवेचन है। पाठातरो का सकलन कैसा हो, क्षेपक, पाठभेद आदि की चर्चा आगे के प्रकरणो मे है। आगे पाडुलिपियो के बीच के पारस्परिक सबध तथा उनकी पीढ़िया आदि की अत्यत सुदर विवेचना है। पाठ सस्करण नामक अध्याय मे उसके प्रकारो का सोदाहरण परिचय दिया गया है। दुष्टपाठ, पाठग्रथि आदि की सोदाहरण चर्चा भी है। दसवें अध्याय मे ग्रथ सपादक को दृष्टि मे रखकर कई सूचनाएँ दी गयी है। ग्यारहवें मे मुद्रित ग्रथो के सपादन की समस्याओ की चर्चा है। इन विषयो की चर्चा करते हुए साहित्यालोचन एव पाठालोचन के बीच क्या सबध है ?—इसकी सरस विवेचना है। नर्रासहा

चार्य जी ने संस्कृत-कन्नड-अँग्रेजी आदि ग्रंथों से प्रभूत मात्रा में उदाहरण देते हुए इस ग्रंथ की रोचकता एवं महत्ता बढ़ाई है। उनके दिए उदाहरण अत्यंत सरस हैं। उनके द्वारा सुझाए गए पाठ सतर्क एवं सटीक हैं। ग्रंथ में पग-पग पर उनकी पैठ, परिश्रम एवं प्रगाढ़ ज्ञान का परिचय मिलता है। कन्नड में अपनी तरह का इतना सुंदर ग्रंथ एकमात्र यही है। नरसिंहाचार्य जी की भाषा में वैज्ञानिक विषय को भी रोचक एवं सरस बनाने की अद्भुत शक्ति है।

कन्नडदल्लिभावगीते *(क० कृ०)*

यह डा० प्रभुशंकर का शोध-प्रबंध है। इसमें गीति-काव्य (lyric) के उद्गम तथा विकास एवं कन्नड में उसके प्रसार का गवेषणात्मक निरूपण है। 33 अध्यायों वाले इस वृहत् ग्रंथमे गीतिकाव्य की व्याख्या, उसकी प्रगति तथा विकास की विस्तृत चर्चा है। उसके विविध प्रकार तथा उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। ऋग्वेद, उपनिषद्, तथा श्रीमद्भगवद्गीता आदि धार्मिक ग्रंथों में गीतिकाव्य के तत्त्वों को ढूँढकर उदाहरण प्रस्तुत किए गए है। व्यक्ति-निष्ठता, गेयता, संक्षिप्तता एवं ध्वनिरम्यता को गीति-काव्य की प्रेरणा माना गया है; संस्कृत के स्तोत्र-साहित्य से गीति-तत्त्वों का उदाहरण देकर यह बताया गया है कि गीतिकाव्य हमारे लिए नया नहीं है। कन्नड के चंपूकाव्य में गीति-तत्त्व कितना है—इसकी सुंदर आलोचना है। जैन कवियों की कविताओं में विद्यमान गीति-तत्त्व का भी उल्लेख हैं। वचन यद्यपि गद्य में लिखे गए है तथापि उनमें भी गीतितत्त्व, भावतीव्रता, गेयता आदि विद्यमान है—इस तथ्य को सप्रभाव सिद्ध किया गया है। हरिदासों के गेयपद तो श्रेष्ठ गीतिकाव्य हैं ही। निजगुण-शिवयोगी (दे०), षड्क्षरी (दे०) आदि वीरशैव-गीतकारों के गेय पदों की सुंदर आलोचना है। लोकगीतों में गीति तत्त्व, एक बहुत ही सुंदर अध्याय है। इसके उपरांत आधुनिक कन्नड कविता में नवोदय की चर्चा करते हुए स्व० बी० एस० श्रीकंठय्याजी (दे०)के 'इंगलीष गीतेगळु' आदि ने जो नये तार हिलाए, उनकी चर्चा की गई है। नवोदयकालीन अन्य कवि कुवेंपु (दे०), बेंद्रे (दे०) आदि के गीतिकाव्यों की भी चर्चा है। प्रकृति गीत, प्रेम गीत, कौटुंबिक गीत, सामाजिक गीत, देश एवं भाषा-प्रेम के गीत, गण्य-व्यक्ति-गीत, हास्य गीत, तत्त्व-चिंतन, अध्यात्मगीत—इस प्रकार आधुनिक गीति-काव्यों के विषम-वैविध्यपूर्ण छंदों, विविधताओं आदि की चर्चा है। 'कन्नड की प्रयोगवादी कविता में गीतितत्त्व' बहुत ही उपादेय अध्याय है। इस प्रकार लेखक ने इस ग्रंथ में गीति-काव्य की सर्वांगीण विवेचना की है। उनकी शैली की मधुरिमा ने विषय-निरूपण में भी माधुर्य घोल दिया है। गीति-काव्य आधुनिक भारतीय भाषाओं की निधि है। उसने हमारे साहित्य की गहराई एवं व्यापकता बढ़ाई है। इसके विश्लेषण एवं अनुशीलन में लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है।

कन्नडभगवद्गीते *(क० कृ०)* [रचना-काल—1650 ई० के लगभग]

इसके रचयिता नागरस नामक ब्राह्मण कवि हैं जिनका समय 1650 ई० अनुमानित किया गया है। इनके जन्म-स्थान आदि के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। ये भागवत संप्रदाय के स्मार्त थे। इन्होंने 'भगवद्गीता' का अनुवाद भामिनी-षट्पदी छंद में किया है। भगवद्गीता के मूल मे जहाँ कुछ बातें स्पष्ट नहीं है वहाँ अनुवाद में शंकराद्वैत की बात जोड़ दी गयी है। नागरस का अनुवाद बहुत ही संवेद्य है। भगवद्गीता का यही प्रथम कन्नड अनुवाद है। गीता के प्रत्येक श्लोक का सम्यक् मनन कर उसे स्वच्छ कन्नड के छंदों में ढालने का सफल प्रयास किया गया है। कुल मिलाकर इसे हम एक सफल ग्रंथ कह सकते है।

कन्नड़ भागवत *(क० कृ०)*

इस ग्रंथ के कवि के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। 'कविचरिते' के लेखक स्व० रा० नरसिंहाचार्य (दे०) जी के अनुसार इसके लेखक 'चाटुविट्ठलनाथ' नामक कवि है जो 1530 ई० के करीब विद्यमान थे। इन्होंने 'महाभारत' का भी एक भाग कन्नड में अनूदित किया था। किंतु श्री बेटगेरी कृष्ण शर्मा (दे०) जी का विचार है कि इस भागवत का लेखक कोई एक व्यक्ति नहीं है—नित्यात्मनाथ, विद्यानाथ, सदानंदयोगी, निर्वाणनाथ तथा चाटुविट्ठलनाथ नामक पाँच लोग इसके भिन्न-भिन्न भागों के प्रणेता है। इन सबको एकत्रित करने का श्रेय चाटु-विट्ठलनाथ को ही है। श्री बेटगेरीजी का कथन है कि ये सब संन्यासी थे और नाथ पंथ के अनुयायी थे। वर्तमान रूप में यह ग्रंथ भामिनी-षट्पदी नामक छंद में लिखा गया है। इसमें 12 हजार से भी अधिक छंद हैं, 280 संधियाँ या अध्याय है।

इसमें लेखक ने तुलसी (दे०) जैसी हरिहर-ऐक्य-

दता दिखाई है। यह विराट् ग्रथ एक दृष्टि से हरिभक्ति-कोश है। कृष्णकथा-निरूपण मे मूल भागवत का ही निष्ठा के साथ अनुगमन किया गया है। कवि का कथन है कि हरि-गुण चरित के वर्णन मे भाषा भेद की बाधा नही है। प्रथम दो स्कध पीठिका-रूप मे हैं। तृतीय स्कध से ठीक तरह से भागवत का आरभ होता है। तृतीय से दशम तक ब्रह्मा का उदय, जय विजय की कथा, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, प्रियव्रत, जडभरत, अजामिल, वृत्रासुर, प्रह्लाद, त्रिपुरासुर, गजेंद्र, समुद्र मथन, मोहिनी, वामन, मत्स्य आदि की कथाएँ है। नवम मे अबरीष, भगीरथ, राम, परशुराम आदि की कथाएँ है। दशम स्कध मे कृष्ण की कथा विस्तृत रूप मे वर्णित है। ग्यारहवें स्कध मे कृष्ण के निर्वाण की कथा है। बारहवें सर्ग मे भविष्यत् राजा का वर्णन है। इसका कवि समर्थ अनुवादक है। वह तुलसी की भाँति अत्यत विनयी है। इसके अनुसार काव्य का फल काव्य ही है। व्यास और शुक इन दोनो को छोडकर और किसी की स्तुति इसमे नही है। कवि ने अपने काव्य मे मूल का अनुसरण करते समय कही कही परिवर्धन व परिवर्धन भी किये है। भागवतो की कहानियो के निरूपण म तो कवि ने बहुत उत्साह दिखाया है। रास-क्रीडा, बाल लीला आदि प्रसगो का मार्मिक निरूपण है। कस भी यहाँ वैर से कृष्ण का नामस्मरण अहर्निशि करने वाले भक्त के रूप मे आया है। यह उसकी नूतन कल्पना है। कवि का काव्य प्रसाद गुण-सपन्न है, अनावश्यक वर्णन अलकार आदि के लिए यहाँ स्थान नही है। भाषा कहावतो और मुहावरो से पुष्ट और प्रवाहमयी है।

कन्नड शासनगळु सांस्कृतिक अध्ययन *(क० कृ०)*

यह डा० चिदानद मूर्ति का शोध प्रबध है। इसम उन्होंने 450 ई० से 1150 ई० तक उपलब्ध कन्नड के अभिलेखो का अध्ययन प्रस्तुत किया है। कर्नाटक मे शिला-लेखो की प्रभूत सपदा है। उन्ह खोज निकालकर प्रकाशित करने का श्रेय फ्लीट, राइस, रा० नरसिंहाचार्य, एम० एच० कृष्ण, आर० ए० पचमुखी आदि विद्वानो को है। ये शिलालेख इतिहास की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, इनका साहित्यिक सौदर्य भी कम नही है। डा० मूर्ति ने अपने कठोर अध्यवसाय से उनका गभीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमे चौदह अध्याय हैं। प्रथम तीन मे शासनो के महत्व, विषय आदि की चर्चा है। चौथे मे कर्णाटक मे जैन धर्म के आगमन तथा विकास पर शिलालेखो के आधार पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। पाँचवे मे बौद्ध धर्म का इतिहास है। छठे तथा सातवें मे शैव धर्म तथा वैष्णव धर्म का इतिहास है। आठवें मे एक सामाजिक सस्था के रूप मे देवमदिरो के महत्व तथा योगदान पर प्रकाश डाला गया है। नवें मे शिक्षा का इतिहास है। दसवें मे युद्ध-कला पर बहुत ही सुदर सामग्री प्रस्तुत की गई है। ग्यारहवें मे कर्णाटक की कुछ वीर प्रथाओ, यथा सती आदि का परिचय है। बारहवें मे राज्य व्यवस्था का परिचय है। तेरहवें मे आर्थिक व्यवस्था, कर आदि की चर्चा है, चौदहवें मे सामाजिक स्थिति—स्त्री-शिक्षा, उनके स्थान मान आदि—की चर्चा है। कला पर एक अनुबध है। डा० मूर्ति एक आदर्श अनुसधित्सु है। उनकी दृष्टि कही भी पूर्वाग्रह दूषित नही है और शैली सहज तथा सतुलित है।

कन्नड-साहित्य-चरित्रे *(क० कृ०)*

इसके लेखक है डा० र० श्री० मुगली (दे०)। इसे साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिल चुका है। यह कन्नड साहित्य का सर्वप्रथम आलोचनात्मक इतिहास है। इसके पहले कन्नड मे रा० नरसिंहाचार्य (दे०) जी का 'कविचरिते' तथा बी० एम० श्रीकठय्या (दे०) जी का 'कन्नडसाहित्य चरित्रे' (आदिकाल)—केवल ये दो ग्रथ उपलब्ध थे। रा० नरसिंहाचार्य जी के ग्रथ मे लेखको की आलोचना प्रधान विषय नही है। लेखको के देशकाल आदि की छानबीन कर उन्हे सही परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य था। यहाँ उनका आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मुगली जी ने रा० नरसिंहाचार्य जी के काल-विभाजन को स्वीकार नही किया। रा० नरसिंहा-चार्यजी ने धर्म के आधार पर जैनयुग वीरशैवयुग ब्राह्मण युग—इस प्रकार वर्गीकरण किया था। मुगली जी न इसे स्वीकार नही किया और युगप्रवर्तक कवियो के आधार पर वर्गीकरण किया है। इसके अनुसार कन्नड साहित्य का वर्गीकरण यो हुआ—पपयुग (दे०), बसवयुग (दे०), कुमारव्यास युग (दे०)। मुगली ने इसमे केवल प्राचीन एव मध्यकालीन कन्नड साहित्य का इतिहास लिखा है, आधुनिक युग का नही। साहित्य अकादमी की ओर से उन्होंने जो कन्नड साहित्य का इतिहास लिखा है, उसमे आधुनिक युग की चर्चा भी है। उन्होने अपने विवेचन म उपलब्ध सामग्री को अद्यतन बनाया है। निर्णय लेने मे वे बहुत ही तटस्थ एव सयत रहे है। कन्नड साहित्य की प्राचीनता आदि की चर्चा करते समय उन्होंने निस्सग दृष्टि मे काम

लिया है। 'कन्नड-साहित्य-चरित्रे' एक युगांतरकारी कृति है।

कन्निक्कोयृत्तु *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-काल—1949 ई०]

यह वैलोप्पिळ्ळि श्रीधर मेनन (दे०) का प्रथम कविता-संग्रह है। इसमें माम्पपम्, 'सह्यन्टे मकन्', 'कन्निक्कोयृत्तु', 'पश्चिम समुद्रम्', 'आसाम पणिक्कार' जैसी कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ संगृहीत हैं। 'माम्पपम्' में पुत्र की मृत्यु से तप्त मातृहृदय का और 'सह्यन्टे मकन्' में अपने अतीत की स्मृति से उन्मत्त गजराज की मानसिक स्थिति का चित्रण है। 'कन्निक्कोयृत्तु' में मनुष्य के सृष्टि-परिणाम के वैज्ञानिक बोध से संबद्ध दार्शनिक तत्त्वों का विश्लेषण है।

मलयाळम में कवित्रय (दे० कवित्रयम्) के उत्कर्ष-काल के बाद जहाँ जी० शंकर कुरुप्प (दे०) की प्रतीकवादी दार्शनिकता और चङ्ङंपुपा (दे०) की अति-भावुकता मलयाळम-कविता की दो प्रवृत्तियाँ थीं, वहाँ वैलोप्पिळ्ळि के इस संग्रह की कविताओं ने वैज्ञानिक दृष्टि-कोण और मानवीय महत्व का स्वर मुखरित किया। उनकी नवीन धारा का साहित्य-जगत में भव्य स्वागत हुआ और इस कविता-संग्रह को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

कन्याशुल्कमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1897 ई०]

इसके लेखक का नाम गुरजाडा अप्पाराव (दे०) है। तेलुगु साहित्य के आधुनिक-युग-प्रवर्तक कंदुकूरि वीरे-शलिंगमु पंतुलु (दे०) की तरह ये भी सुधारक थे। इन्होंने समाज-सुधार के लिए सशक्त उपकरणों के रूप में अपनी रचनाओं का निर्माण किया था। 'कन्याशुल्कमु' इसी लक्ष्य से प्रेरित होकर लिखा गया एक सामाजिक नाटक है। इसके द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना में अप्पाराव ने लिखा था कि समाज-सुधार-संबंधी आंदोलन को शक्तिसंपन्न बनाना तथा तेलुगु भाषा की नाटकरचनोपयोगिता को प्रमा-णित करना—ये दोनों इस नाटक की रचना में प्रमुख प्रेरणाएँ थीं। विवशता के कारण बूढ़े दूल्हों के साथ छोटी-सी लड़कियों की शादी करने की सामाजिक दुःस्थिति तथा उसके परिणामों का मार्मिक चित्रण ही इस नाटक का प्रधान लक्ष्य है। दहेज देकर जैसे कन्या के लिए वर को लाते हैं वैसे ही पैसे देकर वर के लिए कन्या को लाने की प्रथा भी थी। आर्थिक दुःस्थिति तथा अन्य कारणों से विवश होकर कहीं-कहीं माँ-बाप पैसे लेकर अपनी कन्या को किसी बूढ़े को दे देते थे। यही 'कन्याशुल्क' कहा जाता है। कन्याशुल्क लेने वालों की तथा उक्त प्रकार के पति-पत्नी के दांपत्य जीवन की विकट परिस्थितियों का संपूर्ण तथा स्पष्ट चित्रण इस नाटक में पाया जाता है। इस निंद्य परंपरा के कारण स्त्री के जीवन में भयानक आघात होते हैं। बुच्चम्मा तथा मीनाक्षी नामक पात्रों के चित्रण के द्वारा लेखक ने इसका मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। इस नाटक के पात्र सजीव हैं, संभाषण सहज तथा मार्मिक हैं और शैली व्यावहारिक तथा सरस है। अँग्रेजी शब्दों का भी इसमें प्रचुर प्रयोग किया गया है और यह मिश्रण शैली एक प्रकार के चमत्कार का कारण बन गया है। इसमें हास्यरस का सुंदर समावेश है। सुधारात्मक दृष्टिकोण की प्रमुखता के कारण कहीं-कहीं संभाषण दीर्घ हो गए हैं। नाटक-रचना के लिए इस प्रकार के दीर्घ भाषण अनुकूल नहीं हैं। पर इनके द्वारा पात्रों के स्वरूप-स्वभाव आदि का संपूर्ण चित्र प्रस्तुत करने में अधिक सहायता मिली है। इस नाटक के दो पात्र—गिरीशमु (दे०) तथा मधुरवाणी (दे०)—तेलुगु साहित्य के अंतर्गत अमर रहेंगे। सरस व्यावहारिक शैली का एक आदर्श प्रस्तुत करने में भी उक्त नाटक की सफलता कुछ कम महत्व की नहीं है। तेलुगु के मौलिक सामाजिक नाटकों में 'कन्याशुल्कमु' का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी *(गु० ले०)* [समय—1887-1971 ई०]

भड़ौच के भार्गव ब्राह्मण कन्हैयालाल माणिक-लाल मुंशी के जीवन के प्रथम चरण में इनके आप्तजनों को यह कल्पना भी नहीं थी कि ये एक दिन भारत के महान् सांस्कृतिक एवं राजनीतिक नेता, समर्थ संविधान-शास्त्री, सफल शिक्षा-शास्त्री एवं गुजराती भाषा के मूर्धन्य साहित्यकार बनेंगे। अपनी असाधारण प्रतिभा और कार्य-दक्षता से इन्होंने सभी क्षेत्रों में यशोपार्जन किया। भड़ौच से मैट्रिक किया, बड़ौदा से बी० ए० और बंबई से एल-एल० बी० की परीक्षा पास कर ये भूलाभाई देसाई के अधीन एडवोकेट के रूप में कार्य सीखने लगे। मुंशीजी को अपने जीवन में श्री अरविंद, महात्मा गांधी, सर चिमन-लाल सेतलवाड़, भूलाभाई देसाई, सरदार पटेल, प्रभृति महानुभावों के निकट संपर्क में आकर जीवन-निर्माण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आध्यात्मिक ग्रंथों ने भी

इन्हे प्रभावित किया था। भारतीय विद्या भवन मुशीजी का अमर स्मारक है।

क० मा० मुशी की साहित्य-साधना का श्रीगणेश बबई मे सन् 1915 मे हुआ जबकि उन्होने 'घन-श्याम' उपनाम से पहला उपन्यास 'वेरनी वसूलात' गुजराती साप्ताहिक पत्र 'वीसमी सदी' मे क्रमश. छपवाना शुरु किया। तत्पश्चात् इन्होने 'पाटणनी प्रभुता' (दे०), 'गुजरातनो नाथ', 'राजाधिराज', 'जय सोमनाय', पृथ्वीवल्लभ', 'भगवान परशुराम' इत्यादि कई श्रेष्ठ उपन्यासो की रचना की। यद्यपि मुशीजी ने व्यग्य-विनोदपूर्ण शैली मे 'समालोचना' मे कई आख्यायिकाएँ भी प्रकाशित कराई, पर उनकी प्रतिभा का चरम उत्कर्ष उनके उपन्यासो मे ही देखा जाता है। उनकी उपन्यास-रचना-शक्ति गुजराती मे अतुलनीय है।

कन्हैयालाल मुशी ने पौराणिक एव सामाजिक नाटको का प्रणयन भी किया है जिनका रूप-विधान, वस्तु-विधान अत्यत कलात्मक तथा रसात्मक है। किसी भी वस्तु या व्यक्ति के अंतर्लोक मे प्रवेश कर उसकी सूक्ष्मतम विशिष्टताओ को उजागर करने मे नाटककार मुशी सिद्धहस्त है। 'काकानी शशी', 'ब्रह्मचर्याश्रम', 'पीडाग्रस्त प्रोफेसर', 'छीए तेज ठीक' आदि सामाजिक नाटको मे हास-उपहास द्वारा तथा 'तर्पण', 'अविभक्त आत्मा', 'लोपामुद्रा', 'पुत्रस-मोवडी' इत्यादि पौराणिक नाटको मे प्रौढ-गम्भीर शैली द्वारा इन्होने मानव के 'आभ्यतर जीवन' को रूपायित किया है। आत्मकथा, इतिहास, समालोचना, विविध-विषय निबध आदि की सृष्टि मे भी क० मा० मुशी सफल हुए हैं। वे वस्तुत भारतीय सस्कृति के उद्गाता थे।

कपालकुंडला *(बं० कृ० पा०)*

'कपालकुडला'—उपन्यास एव चरित्र दोनो ही—उपन्यासकार बकिमचंद्र पर कवि बकिमचद्र की आधिपत्य-प्रतिष्ठा के स्मारक हैं। बकिमचद्र ने एक विशेष तत्व की प्रतिष्ठा की कामना से इस चरित्र की कल्पना की थी। शकुतला एवं मिराडा के चरित्रो के शिल्पकौशल ने उन्हे मुग्ध किया था और इसी मुग्धता की अपरूप अभिव्यक्ति हुई है कपालकुडला उपन्यास एव कपालकुडला चरित्र मे। शकुतला आश्रम-जीवन मे प्रतिपालित हुई थी और मिराडा पितृ-हृदय की सरसता से स्निग्ध थी। वस्तुत शकुतला प्रकृति की गोद मे ही पली थी तथा दैव-शक्ति के नियत्रण मे थी। स्वस्थ, स्वाभाविक मानव-समाज से कपालकुडला अपरिचित है। कापालिक मानवसमाज का व्यतिक्रम है। कपालकुडला का जगत प्रकृति-जगत है, जिस जगत मे अरण्य की मर्मर तान एव समुद्र का कल गर्जन नित्य-स्पदित है। यह स्पद 'कपालकुडला' का आतर-स्पदन भी है।

नवकुमार से विवाह होने के उपरात प्रकृति के अरण्य से कपालकुडला जीवन के अरण्य मे उपस्थित होती है। इस उन्मूलित तरु की आत्मकहानी को ही बकिमबाबू ने 'कपालकुडला' उपन्यास मे प्रकट किया है। प्रकृतिपालिता कपालकुडला स्वभावत ससार से अनभिज्ञ है। उसके चरित्र की स्नेहपरायणता, परदुखकातरता, विषयभोगराहित्य एव भक्ति-भाव प्रकृति के प्राणरस से धन्य है। इसीलिए नवकुमार की स्त्री होने पर भी कपालकुडला बधनहीन है, लौकिक अनुशासन के स्पर्श से वह मुक्त है। 'ब्राह्मण-वेशधारी' के साथ मिलने मे उसके मन मे कोई बाधा नही है और फिर मति बिबि कीप्रार्थना पर सहज ही स्वामी को छोडने का सकल्प कर लेती है।

कपालकुडला का चरित्र बकिम बाबू की एक विशिष्ट चरित्र-सृष्टि है। समुद्र की तटभूमि से उठाकर जिसे उन्होने जीवन के मरुद्यान मे प्रतिष्ठित किया था उस मूर्ति की स्वाभाविक परिणति दिखाने के लिए लेखक ने अत मे उसे गगा की गोद मे समर्पित कर दिया है।

कपिल *(स० ले०)* [स्थिति-काल—400 ई०, रचना—साख्यसूत्र]

यो तो, 'श्वेताश्वतर' उपनिषद् के अतर्गत कपिल के नाम का उल्लेख हुआ है, परतु इससे इन्हे बुद्ध (दे०) का पूर्ववर्ती नही माना जा सकता। 'श्वेताश्वतर' उत्तरकाल की रचना मानी गई है। 'श्रीमद्भागवत्' (दे०) मे कपिल को 24 अवतारो मे बतलाया गया है। कपिल के पिता का नाम कर्दमऋषि तथा माता का नाम देवहुति बतलाया जाता है।

औपनिषद दर्शन की तरह कपिल का दर्शन आत्मवाद का पोषक नही है। चेतन पुरुष एव जड प्रकृति—ये दो साख्य दर्शन के प्रमुख तत्त्व है। प्रकृति का दूसरा नाम साख्य दर्शन मे प्रधान है। जगत की समस्त वस्तुएँ नित्य प्रकृति के विकार-रूप है। इसीलिए साख्यदर्शन कार्य-कारणवाद की विचारधारा के सबध मे परिणामवाद या विकारवाद का समर्थन करता है। इस सिद्धात के अनुसार कार्य की सत्ता कारण से पृथक् नही है। यद्यपि कार्य और कारण पृथक् सत्ता धारण करते है, परतु कारण मे कार्य की सत्ता अव्यक्त रूप से वर्तमान रहती है। जीव के स्थान

पर कपिल पुरुषबहुत्ववाद सिद्धांत के समर्थक थे। कपिल का विचार है कि पुरुष के सामीप्य मात्र से ही प्रकृति में क्रिया उत्पन्न होती है। इसी क्रिया के द्वारा विश्व की वस्तुओं की उत्पत्ति तथा विनाश होता है।

प्रकृति एवं पुरुष के संबंध की योजना, कारण में कार्य की सत्ता का निर्धारण एवं पुरुषबहुत्ववाद सिद्धांत की स्थापना कपिल के दर्शन की मुख्य देन है।

कपिलर *(त० ले०)* [समय—ईसा-पूर्व दूसरी शती से ईसा की दूसरी शती के बीच]

कपिलर की गणना संघकालीन प्रसिद्ध कवियों मे होती है। इनका जन्म तिरुवादवूर में एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। इनकी बुद्धि अत्यंत तीक्ष्ण थी। समयानुसार कपिलर ने तमिल साहित्य और व्याकरण का अध्ययन किया और तृतीय संघ के सदस्य बन गये थे। संघ के सदस्य के रूप मे इनका परिचय अव्वैयार, भरणर जैसे महान् कवियों से हुआ। इन्होंने अपने समय के कुछ राजाओं और आश्रयदाताओं का यशोगान कर जीविकोपार्जन किया। इन राजाओं में प्रसिद्ध है पारि। इनके पद संघकालीन 'एट्टुत्तोगै' (अष्टपद्यसंग्रह), 'पत्तुप्पाट्टु' (दस दीर्घ कविताएँ) और 'पदिनेण् कीप् कणक्कु' (अठारह गौण रचनाएँ) में संगृहीत है। इन पदों के अध्ययन से इनकी अपार कवित्व-शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। ये पर्याप्त समय तक विद्याप्रेमी सम्राट् पारि के दरबार में रहे थे। तदुपरांत ये कलनाडु पहुँचे। कलनाडु के राजा वेलपेगन ने अपनी पत्नी को त्याग दिया था। वह किसी वेश्या में अनुरक्त था। इनके पदों को सुनकर राजा को अपनी भूल मालुम हुई और उसने वेश्या को त्याग दिया। इन्होंने तिरुक्कोइलूर के राजा कारि के दरबार में भी कुछ समय व्यतीत किया था। कहा जाता है कि पारि की मृत्यु के उपरांत इन्होंने उसकी दो कन्याओं का विवाह तिरुक्कोइलूर के राजा के पुत्रों से करा दिया था और सतत उपवास द्वारा अपने प्राणों का अंत कर दिया था। कपिलर अपने समय के लोकप्रिय कवियों में से है। इनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि नक्कीरर् (दे०) जैसे दर्पपूर्ण कवि ने भी इनकी विद्वत्ता और कवित्व-शक्ति की प्रशंसा की है। प्रसिद्ध है कि इन्होंने 'कुरिंजिपाट्टु' की रचना आर्य राजा बृहत्तन को तमिल संस्कृति और सभ्यता से परिचित कराने के लिए की थी। यद्यपि इन्होंने अपने पदों में पाँचों भू-भागों का वर्णन किया है तथापि ये कुरिंजि (दे०) प्रदेश से संबंधित विवरण के लिए प्रसिद्ध हैं। संघकालीन कवियों में इन्हें विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

कपिली परीया साधु *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1954 ई०]

नवकांत बरुवा (दे०) के इस उपन्यास में नदी-तटवर्ती मानव के हास्य-क्रंदन का चित्रण है। नदी कवि-कल्पना की मनोरम भूमि है तो कभी वह अभिशाप भी बन जाती है। फिर भी मनुष्य उसका त्याग नहीं कर पाता। नदी और मनुष्य का संग्राम चिरंतन है। उपन्यास का मुख्य पात्र रूप ही है। जब वह अपने पिता धीरसिंह का श्राद्ध नहीं कर पाता तो कहानी चरमसीमा पर पहुँच जाती है। श्री हेम बरुवा (दे०) के शब्दों में यह 'तरल सौंदर्य का उपन्यास' है।

कपूर सिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

पंजाबी निबंध-रचना के क्षेत्र मे सरदार कपूर सिंह के प्रवेश से चिंतन-प्रधान गद्य की श्रीवृद्धि हुई। पंजाबी गद्य में चिंतन की कमी बड़ी तीव्रता से अनुभव की जा रही थी। उसी को दृष्टि मे रखकर सरदार कपूर सिंह ने लिखना आरंभ किया। उनके निबंध पृथक्-पृथक् आयु-वर्ग और बौद्धिक स्तर के पाठकों को दृष्टि में रखकर लिखे गए है। कई निबंधों मे तो कुछ सूचनाएँ मात्र होती है और कइयों में परंपरा-प्राप्त ज्ञान-सामग्री का एकत्रीकरण। भारतीय सभ्यता की उदात्तता और विशालता का प्रशंसापूर्ण आख्यान करके वे पूर्वजों के प्रति श्रद्धा-भावना अभिव्यक्त करते है। उनकी व्याख्यात्मक गद्य-शैली में प्रायः भारीपन और थकावट की अनुभूति होती है। साहित्य-सिद्धांत, धर्म, इतिहास, भारतीय दर्शन आदि विषयों पर आपके विचार विद्वत्तापूर्ण और गांभीर्य से ओतप्रोत हैं।

'सप्तशृंग', 'पुंडरीक' आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

कवच *(उ० पारि०)*

'कवच' का अर्थ है अभेद्य आवरण या 'ढाल'। दुर्भाग्य से बचने के लिए भगवद्भक्तिमूलक संगीत रचनाएँ 'कवच' के रूप में प्रसिद्ध हैं। 'कवच' मंत्र या साधारण स्तोत्र से भिन्न है। इसका अपना स्वतंत्र स्वरूप है।

उडिया-साहित्य मे दो कवच-रचनाएँ मिलती है—अच्युतानद दास (दे०)-कृत 'अभय कवच' तथा दीनकृष्ण दास (दे०)-कृत 'राधा कवच'।

कबर आर ककाल *(उ० कृ०)*

स्वातत्र्योत्तरकालीन लेखक कुमार किशोर ने अपने इस ऐतिहासिकता पर आधारित काल्पनाप्रवण उडिया-उपन्यास मे इतिहास, कर्मवाद और आधुनिकता को एक साथ जोडा है।

कबि *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1942 ई०]

रोमानी भावापन्न उपन्यास 'कवि' मे ताराशकर बन्द्योपाध्याय (दे०) ने बगाल मे ग्रामाचल के 'कविआलो' (ग्राम्य कवि—कविता ही जिनकी जीविका होती है) को लेकर इस उपन्यास की रचना की है। कविआल-सप्रदाय की जीवन-यात्रा के परिवेश मे लेखक ने रोमाटिक प्रेम का चित्र उपस्थित किया है। निम्न श्रेणी का युवक निताइ एक कविआल है जिसकी कवित्व-शक्ति से आकर्षित होकर दो स्त्रियो ने उससे प्रेम किया है। इस प्रेम वर्णन मे लेखक ने नैतिक चितन-धारा की कोई परवाह नही की है। कवि निताइ किसी प्रकार के नीति-बोध या श्रेय-बोध से परिचालित नही है। उसके उन्मुक्त प्रेम के सम्मुख समाज-नीति का कोई मूल्य नही। निताइ के लिए कविता ही सबसे बडी चीज है और इन दोनो स्त्रियो ने अपने प्रेम के द्वारा उसकी कवित्व-शक्ति का ही विस्तार किया है। अपनी कवित्व-शक्ति के लिए उसे स्त्रियो के प्रेम की आवश्यकता होती है। इस तरह वह स्वत स्फूर्त आवेग मे बहता चलता है और यहाँ यदि कही समाज-नीति ने आकर अवरोध-सृष्टि की है तो लेखक ने समाज को ही दोषी ठहराया है। प्रेम की उच्छलता पर विहित यवनिकापात होता है—निताइ की दोनो ही प्रेमिकाओ की मृत्यु हो जाती है। परतु कवि निताइ को अपना जीवन अर्थहीन या शून्य प्रतीत नही होता। इन स्त्रियो से उसे जो मिला है, उसी महती प्राप्ति के आनद मे वह नित्य-आनदित है। उपन्यास मे इस प्रकार निम्न श्रेणी के प्रतिनिधि के माध्यम से कवित्व-शक्ति-स्फुरण की कहानी का विस्तार हुआ है।

कविकंकन *(बँ० ले०)*

दे० चक्रवर्ती, मुकुदराम

कबिगान *(बँ० प्र०)*

सन् 1760 अर्थात् भारतचद्र (दे०) के तिरोधान से लेकर आगामी एक सौ वर्ष तक बँगला साहित्य क्षेत्र मे भारतचद्र द्वारा प्रवर्तित निम्नरुचि की धारा के अनुसरण पर गेय तुकबदी के एक ग्रामीण सस्करण का विशेष प्रचलन हुआ जिसे 'कबिगान' कहा जाता है। कवियो के दो दलो के बीच उत्तर-प्रत्युत्तर के माध्यम से पहले-पहल राधा-कृष्ण-विषयक प्रेम-गीतो की रचना के द्वारा ही कबिगान का सूत्रपात हुआ था। इस 'कबिगान' मे उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप मे पहले गुरु एव देवीबदना, फिर 'सखी-सवाद' (श्रीकृष्ण के जीवन से युक्त घटनावली), उसके उपरात 'विरह' (भद्ररुचि-सम्मत नरनारियो की प्रेम-कथा) एव अत मे खेउड' (प्रश्नोत्तर-मूलक श्रृगार-रसाश्रित अश्लील गान) गाने की पद्धति थी।

उन्नीसवी शती के पहले चरण मे कबिगान की विषयवस्तु एव रूप दोनो मे ही परिवर्तन हुआ। उस समय कबिगान का नया नामकरण हुआ 'दाँडाकबि' (खडे होकर कविता करने वाले कवि अथवा प्रचलित पद्धति)। सभास्थल पर खडे होकर पौराणिक, सामाजिक प्रणय-घटित अथवा सामयिक घटना को ले कर के सद्य तुकबदी करना ही दाँडाकबि की विशेषता थी। पहले 'मालसी' या भवानी-विषयक गान, फिर ब्रजलीला-विषयक सखी-सवाद एव अत मे 'खेउड' गाया जाता था। यह खेउड ही कबिगान-श्रोताओ का श्रेष्ठ आकर्षण था जो उत्तर-प्रत्युत्तर से गुजर कर गाली-गलौज तक पहुँच जाता था। अठारहवी शती के बीच से उन्नीसवी शती के मध्य भाग तक 'कवियोआलाँ' (कविगान करने वाले) का स्वर्णयुग था जिनमे रामबसु, हरु ठाकुर, नरसिंह, निताइ, बैरागी, भोला मयरा, एटनि फिरिंगी, यज्ञेश्वरी आदि उल्लेखनीय है। इनमे रामबसु ही सबसे अधिक शक्तिशाली थे। इन्होंने ही सभास्थल मे खडे होकर गाने के द्वारा प्रश्न एव उत्तर देने की प्रथा का प्रवर्तन किया। वाक्चातुरी तथा शब्दालकार के प्राणवान् प्रयोग इन कवियो की विशेषता थी।

कविताबळी *(उ० कृ०)*

'कविताबळी' की कविताएँ आधुनिक कविता की आद्य प्रतिनिधि है। आधुनिक शिक्षा के कारण जिस नूतन लोकरुचि का विकास हुआ, उसी का वाह्य प्रकाशन

राधानाथ राय (दे०) और मधुसूदन राओ (दे०) की 'कबितावळी' है। राधानाथ एवं मधुसूदन आधुनिक कविता के जनक, प्रवर्त्तक एवं प्रतिष्ठापक है। पुरातन एवं आधुनिक युग के संधिकाल में प्रकट होने का सौभाग्य प्राप्त करने के कारण ये दोनों पुरातन का संस्कार एवं आधुनिकता का प्रवर्त्तन करने को बाध्य हुए थे। पाश्चात्य साहित्य की भावधारा एवं कलाभिव्यक्ति सर्वप्रथम इनकी 'कबितावळी' की कविताओ में प्रस्फुटित हुई थी तथा भविष्य की काव्यधारा को इन्होंने एक सुदृढ़ पृष्ठभूमि प्रदान की थी। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1876 ई० मे दोनों के सहयोग से हुआ था। उस समय की सैकड़ों पाठ्य पुस्तकें आज हमारे सामने से लुप्त हो गई है, परन्तु पाठ्य पुस्तक होने पर भी 'कबितावळी' अपनी साहित्यिक गंभीर उपलब्धियो के कारण आज भी महत्वपूर्ण बनी हुई है। इस पुस्तक की कविताएँ भाव और शैली की दृष्टि से सर्वथा नूतन, स्वतंत्र और मौलिक काव्यप्रतिभा की द्योतक है।

राधानाथ की 'वेणीसंहार' कविता पुरानी रीति पर लिखित होने पर भी प्रांजल भाषा, सुनियंत्रित यति आदि की दृष्टि से विशिष्ट है। 'अलेकजेंडर सेल कार्क' नामक अँग्रेजी कविता पर आधारित मधुसूदन की 'निर्वासितर बिळाप' कविता को अपनी शब्दयोजना, ललित स्वर-झंकार और भावाभिव्यक्ति की स्वाभाविकता के कारण विशेष गौरव प्राप्त है। इसमें प्राचीन छंदों के आधार पर कुछ सरल छंदों के साथ-साथ, अँग्रेजी छंदो (जैसे 'आकाश-प्रति', 'एकातर मित्र' और 'निशीथ चिता' मे)', 'स्पेंसीरियन स्टेंजा' का अनुसरण किया गया है। राधानाथ की 'भारतेश्वरी' कविता में तुकांत पदों का आग्रह मिलता है, फिर भी वह अँग्रेजी छंदों से प्रभावित है। मधुसूदन की कविता 'भारतीबंदना' का रूपगत तथा छंदगत वैचित्र्य उड़िया साहित्य में एक बिलकुल नयी चीज है।

'कबितावळी' की कविताओं का भावपक्ष तो और भी महत्वपूर्ण है। श्रृंगारबहुल मध्ययुगीन उड़िया-साहित्य मे कहीं-कहीं वीर रस की झलक मिल जाती है; किंतु लघु कविता में इसका सम्यक् विकास राधानाथ की 'वेणी संहार' एवं 'शिवाजिक उत्साहवाणी' कविताओं में दिखाई पड़ता है। मध्ययुगीन साहित्य में करुण रस श्रृंगार रस के आधीन था। किंतु 'निर्वासितर बिळाप', 'सीता बनवास' में इसकी स्वतंत्र प्रतिष्ठा हुई है। 'जिवनचिंता' में ब्राह्म मत से परिपुष्ट भारतीय धार्मिक चिंता दिखाई पड़ती है। 'शरत् प्रभात' में ग्रामीण विषयवस्तु की प्रतिष्ठा है।

वस्तुतः यह आधुनिक उड़िया काव्यक्षेत्र का प्रथम और सार्थक अवदान है। इसका आधुनिक उड़िया-काव्य-साहित्य में वही स्थान है जो वर्ड्सवर्थ एवं कोलरिज की सम्मिलित कृति 'पेस्टोरल वैलड' का अंग्रेजी साहित्य मे है।

कबित्त (पं० पारि०)

यह चार चरणों का पंजाबी छंद है और चारो चरणों की तुक मिलती है। प्रत्येक चरण चार भागों मे विभक्त होता है। पहले तीन में प्रत्येक में आठ-आठ अक्षर और अंतिम मे प्राय. सात और कभी-कभी आठ अक्षर होते है। इस प्रकार प्रत्येक चरण 31-32 व्यंजनों का होना है। कवियों ने नाद-सौंदर्य के लिए इसके कई और नियम भी तय किए है। उदाहरण :

हाए रब्बा मेरिया तूं शीशा ही बणाए दें दीं।
मैंनू मेरे यार दा मैं; होंदा किसे कार दा।
उत्थे ही खड़ो रहिंदा, कंध नाल लग के मैं।
जित्थे मैंनू आप जाणी, फड़ के सल्हार दा।
चढ़दा उमाह मैंनू, रीझ सारी लहि जादी।
हुंदा जदों चाअ उहनू, हार ते सिंगार दा।
सारी उमर इडदाना, महिंदी वाले हत्थ कदी,
सड़ी होई हिक्क नूं मैं, रज्ज रज्ज ठारदा।
(शरफ क्वी)

कवींद्र परमेश्वर (बँ० ले०)

कवींद्र परमेश्वर का कोई परिचय नहीं मिलता। अनुमान है कि इनका नाम था परमेश्वर, उपाधि थी 'कवींद्र'। किसी के मत से इनका नाम श्रीकरनंदी था। गोपीनाथ शास्त्री के मतानुसार इनका नाम वाणीनाथ था और कवींद्र उपाधि थी। ये कूच-बिहार राज्य मे मंत्री थे और मूलतः चटगाँव के निवासी थे।

'पांडव विजय' अथवा 'विजय पांडव' इनकी कृति है। हुसेनशाह के सेनापति लस्कर परागलखान ने चटगाँव-विजय कर इन्हें 'महाभारत' की कथा लिखने का आदेश दिया था।

'पांडव-विजय' 'महाभारत' की समस्त कथा का अनुवाद है। यह 'महाभारत' का प्राचीनतम अनुवाद है। अनुमान है कि इसका रचना-काल सोलहवीं शताब्दी का दूसरा या तीसरा दशक है। उत्तर बंग में इनका 'महाभारत' अत्यंत लोकप्रिय है।

कबीर *(हिं० ले०)* [1398—1518 ई०]

कबीर का आविर्भाव ऐसे समय हुआ जब भारत मे राजनीतिक, सामाजिक एव धार्मिक सुव्यवस्था न थी। 'कबीर-चरित्र-बोध' के अनुसार उनका जन्म ज्येष्ठ पूर्णिमा सोमवार 1455 वि० (अर्थात् 1398 ई०) को हुआ, जो गणना से ठीक है। अनतदास कृत 'श्री कबीर साहब की परिचई' के अनुसार वे काशी के जुलाहे बघेल राजा वीरसिह (दे०) के समकालीन तथा आचार्य रामानद के शिष्य थे। उन्होने एक मत से 96 वर्ष की और दूसरे से 120 वर्ष की आयु पाई। जनश्रुति है कि 1518 ई० मे वे मगहर गये। मूर्ति-भजक, कट्टर मुसलमान शाह सिकदर लोदी ने उन्हे अनेक कष्ट दिए और उन्होने अनेक चमत्कार दिखाए थे।

'मसिकागद छूयो नही कलम गही नहिं हात'— इस उक्ति के आधार पर यह धारणा है कि कबीर निरक्षर थे। परतु प्रश्न है कि उन्होने वर्णक्रम से ज्ञान चौंतीसा कैसे लिख दिया और यह कैसे कह दिया कि 'ढाई अक्षर प्रेम का पढे सो पडित होइ'? उन्होने देश भ्रमण खूब किया था और उनका ज्ञान विस्तृत था। अत एव उनकी सधुक्कडी भाषा मे पूर्वी जनपदी अवधी भोजपुरी, खडी बोली का मिश्रण है। कभी कभी वह उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टात, यमक आदि से अलकृत भी है। रूपको प्रतीको और उलटबाँसियो के कारण उनकी अभिव्यक्ति अत्यत सशक्त है। उनके विचार सबदो और साखियो मे व्यक्त हैं।

कबीर ने हिंदू-मुसलमान दोनो के बाह्याडबरो की आलोचना की है। ऐसी धारणा है कि उन्होने वेद, अवतार, मूर्तिपूजा का खडन किया। किंतु 'कबीर बीजक के विद्वान् टीकाकार श्री ब्रह्मलीन मुनि ने अत साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि कबीर स्वय अवतार थे, वेदादि तथा अवतारो मे उनकी अनास्था न थी, वे ब्राह्मण-विरोधी न थे, और मूर्ति-पूजा के मितमूल्य को समझते थे किंतु अद्वैतवादी होने के कारण वे सगुण की अपेक्षा निगुण को अधिक महत्व देते थे। आडबर की अपेक्षा वे आभ्यतर भक्ति को अधिक श्रेयस्कर समझते थे। कबीर का ब्रह्म निर्गुण-सगुण से परे एक है द्वितीय नही। जो कुछ दृश्यमान है वह माया और मिथ्या है। कामिनी और काचन पथभ्रष्ट करते है। ब्रह्मोपासना योग द्वारा, विशेषकर भक्ति से, की जा सकती है। ब्रह्म को गुरु, राजा, स्वामी, पिता, पति किसी भी रूप मे देखा जा सकता है। यदि परमात्मा पति है तो जीवात्मा पत्नी है। कबीर का रहस्यवाद उक्त प्रियतम और प्रेयसी के दाम्पत्य-प्रेम मे निहित है। हिंदी जगत मे भागवत (दे०) की मधुरा भक्ति कबीर मे अकुरित होकर वैष्णव साहित्य मे पल्लवित हुई।

कबीर के सत सप्रदाय मे दादूदयाल (दे०) सुदरदास (दे०), गरीबदास और चरणदास प्रसिद्ध है।

कबीर-बाणी *(उर्दू० कृ०)*

'कबीर बाणी' का सपादन उर्दू के प्रसिद्ध प्रगतिवादी कवि अली सरदार जाफरी (दे०) ने किया है। यह कृति हिंदुस्तानी बुक ट्रस्ट, बबई से प्रकाशित हुई है। इसका प्रकाशन अगस्त 1965 मे हुआ।

इस पुस्तक मे प्रारम्भ मे कबीर की जन्म-तिथि, जन्म स्थान निधन-काल तथा स्थान का उल्लेख है। प्रथम 65 पृष्ठो मे विस्तृत भूमिका है उसके पश्चात् 235 पृष्ठ तक कबीर के 128 पद अर्थ सहित छाप गए है। पुस्तक की विशेषता यह है कि एक पृष्ठ पर उर्दू लिपि मे तथा उसके सामने के पृष्ठ पर देवनागरी लिपि मे छपाई की गई है। पुस्तक के अतिम 70 72 पृष्ठो मे टिप्पणियाँ है। इस पुस्तक के प्रकाशन का उद्देश्य उर्दू के पाठको को कबीर के हिंदी-काव्य का रसास्वादन कराना है।

कब्बिगर काव *(क० कृ०)*

यह कन्नड के जैनकवि आडय्या (1225 ई०) का लिखा चपूकाव्य है। आडय्या कन्नड के क्रातिकारी कवियो मे से है। उन्होने कन्नड मे सस्कृत शब्द मिलाने के विरुद्ध आवाज उठाई। इस काव्य मे उन्होने यह प्रतिज्ञा की कि वे इसमे एक भी सस्कृत-शब्द का प्रयोग न करेंगे। किंतु सस्कृत शब्दो के बदले उन्होने प्राकृत शब्दो को अपनाया। कब्बिगर काव जिन कथा नही है। ऊपरी तौर पर वह एक प्रेमाख्यान है। उसके आरभ मे कामदेव की स्तुति है। लोकजीवन के प्रेरक काव्य, उससे अतीत जिन-मुनि, उससे पराश्रित शिव—इन तीनो से युक्त यह एक ध्वनिकाव्य है। लौकिक और आगमिक इन दोनो को एक ही काव्य मे कवि ने साधा है। शिव ने काम के परिवार के सदस्य चद्रमा का हरण किया है। उसे वापस देने के लिए काम सधान करता है। वह शिवजी पर चढाई करता है, उन्हे हराकर अर्द्धनारी बनाता है। शिव भी उसे शाप देते

है जिसके कारण उसे अज्ञातवास करना पड़ता है। किंतु यही काम शिव पर आक्रमण करने के लिए जाते समय राह में मिले एक श्रवण को सताने के बाद स्वयं उससे डर कर उसके चरणों मे पड़ता है। यह कहानी कवि की अपनी है, कल्पित है। वैदिक एवं जैन-परंपरा की कई बातें यहाँ गुंफित हैं। यहाँ काम शिव को जीतने वाला है, किंतु जैन श्रमण के आगे वह मात खा जाता है। इस प्रकार श्रमण को शिव से भी बड़ा दिखाने का प्रयत्न किया गया है। चंद्रमा का अपहरण कलह का बीज हुआ—यह बात भारतीय साहित्य मे ही नई एवं मनोहर है। यह सारी कथा कामदेव के प्रेमाख्यान से संगुफित है। कामदेव की सेना, शस्त्रास्त्र, रण-प्रयाण आदि का अतीव मार्मिक वर्णन इसमें है। आंडय्या कदंबराजा कामदेव का आश्रित था। अतः उसने अपने आश्रयदाता की कहानी ही समासोक्ति के रूप में लिखी है। कवि बेंद्रे (दे०) का कहना है कि यह सारा काव्य एक रूपक है जिसमें काम है रति, श्रमण है विरक्ति, शिव है शक्ति। इस त्रिकूट का द्वंद्व ही इसका उद्देश्य है। काम की विजय ही काव्य-तत्त्व है, शिव की जीत ही सृष्टि-तत्त्व है और श्रमण की विरक्ति मुक्ति-तत्त्व है।

आडय्या की सबसे बडी विशेषता है उनकी भाषा-शैली। संस्कृत शब्दावली-परिहार के लिए उन्होंने कहीं-कहीं शब्दों को तोड़ा है, मरोड़ा है और नये-नये शब्द गढ़े है। उनकी 'देशी'-प्रचुर शैली कहीं-कहीं कृत्रिम लगने पर भी समष्टि-रूप में अत्यंत हृदयहारी है और उसका प्रभाव आगे चलकर अन्य कवियों पर भी पडा।

कमल (गु० पा०)

शिवकुमार जोशी (1916 ई०) रचित 'आपरूवे रानी नवलखधारे' उपन्यास की नायिका। गुजराती उपन्यास में यह प्रथम परप्रांतीय नायिका है जिसने गुजराती से विवाह किया है। उसका पति उसके विवाह की बात प्रकट करने के लिए तत्पर नही है तो वह पति-धर्म का पालन करते हुए जब तक उसका पति प्रकट रूप मे उसे स्वीकार न करे तब तक उसके साथ रहने के लिए तैयार नही होती। अंत मे पति को झुकना पड़ता है, पर उसी समय उसकी मृत्यु हो जाती है। वह आधुनिक बंगाली युवती है जो एक ओर समाज का विरोध करती है तो दूसरी ओर अपने पति की पलायनशीलता का। उसकी पति-प्रेम-भावना परंपरागत होते हुए भी वह अपना आत्मसम्मान बनाये रखती है और नारी-स्वातंत्र्य की भावना का ध्यान रखती है। अन्याय के सामने वह झुकने के लिए तैयार नहीं। इस दृष्टि से यह नारी-पात्र अपने वैशिष्ट्य की महिमा से मंडित है।

कमलकुमारी (म० पा०)

हरिनारायण आपटे (दे०) के सुपरिचित ऐतिहासिक उपन्यास 'गड आला पण सिंह गेला' की यह नायिका एक काल्पनिक पात्र है। उसकी सृष्टि आदर्श क्षत्राणी के रूप में की गयी है। काल्पनिक और आदर्श होते हुए भी उसमें उन्हीं गुणों की प्रतिष्ठा की गयी है जो सामान्यतः मध्यकाल की राजपूत वीरांगनाओं में पाये जाते थे। वीर राजपूत, पतिव्रता नारी के समान वह भी पति की मृत्यु पर सती होना चाहती है पर उदयभान (दे०) की कामलिप्सा के कारण सिंहगढ़ में बंदी बनाकर रखी जाती है। उदयभान उसके साथ ज़बर्दस्ती निकाह पढ़ना चाहता है पर ऐन मौके पर तानाजी के आक्रमण के कारण यह नहीं हो पाता और अंत में कमलकुमारी सती हो जाती है।

कमलम्मा (क० पा०)

यह कन्नड-नाटककार कैलासम् (दे०) के 'अम्मावगंड' (माँ जी का पति) नामक नाटक के पात्रों में मुख्य है। कमलु और सरोजा सहपाठिनें हैं। सरोजा सुब्बण्णा से विवाह कर शालीन जीवन व्यतीत करने लगती है। 'लेडीज एसोसिएशन' की प्रेसिडेंट होकर स्त्रियों के उद्धार का बीड़ा उठाती है। पति के प्रति किंचित् भी आदर प्रदर्शित नही करती। इसके विपरीत कमलु बी० ए० पास करके नरसिंह की पत्नी और तीस वर्ष की ही आयु में सात बच्चों की माँ बनती है। इसका पति नरसिंहय्या सार्थक नामवाला है जो नर-रूप सिंह ही है। इसके हाथ में उसके परिजन पिस जाते हैं। परंतु इसकी कोमलता और सद्व्यवहार से वह बदल जाता है। वह सरोजा के साथ अपनी पत्नी की तुलना कर, और सरोजा अपने पति के साथ नरसिंहय्या की तुलना कर दोषपूर्ण मार्ग से विरत होते हैं। इसके द्वारा लेखक ने यह दिखाया है कि स्त्री कोमलता के बल पर पति को सन्मार्ग पर ला सकती है एवं पारिवारिक जीवन को सुखमय बना सकती है। इसके विषय में आलोचकों का कथन है कि 'यह कन्नड़ महिला-लोक की महारानी है।'

कमलाबाल चरित्तिरम(त० कृ०) [रचना-काल—1893 ई०]

तमिल के आरभिक प्रसिद्ध उपन्यासो मे परिगणित। रचयिता पी० आर० राजम अय्यर (1872 ई०—1898 ई०)। यह उपन्यास सर्वप्रथम सन् 1893 ई० मे 'विवेक चितामणि' नामक पत्रिका मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। सन् 1897 ई० मे इसका पुस्तक-रूप मे प्रकाशन हुआ।

उपन्यास की मूल कथा कल्याणी एव श्रीनिवास नामक आदर्श दपति के जीवन से सबद्ध है। किसी सती नारी के सतीत्व पर सदेह करने से उसके परिवार पर क्या-क्या कठिनाइयाँ आती हैं—इसी का विस्तृत वर्णन इस उपन्यास मे है। पात्रो का चरित्र-चित्रण इस उपन्यास की मूल विशेषताओ मे से है। विभिन्न पात्रो का चरित्र-चित्रण सजीव एव प्रभावशाली बन पडा है। उपन्यास का सबसे प्रभावशाली पात्र है आड्डुशापट्टि अम्मैयप्प पिळ्ळै। यह उन्नीसवी शती के उत्तरार्द्ध के तमिल पडितो एव तमिल प्राध्यापको का प्रतिनिधित्व करता है। उपन्यास की शैली अत्यत सरस, सरल एव कवित्वमय है। इसमे तमिल-प्रेम और दार्शनिक ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। विभिन्न स्थलो पर गुरु-शिष्य-सबध, चिदबर-रहस्य, ज्ञान-प्राप्ति के आनद की अनुभूति आदि का वर्णन है। यह तमिल मे रचित दूसरा उपन्यास है। वर्तमान तमिल उपन्यासो का मूल रूप सर्वप्रथम इसी मे दीख पडता है।

कमलाकात (बँ० पा०)

बकिमचद्र (दे०) द्वारा रचित 'कमलाकात का दफ्तर' (कमलाकातेर दफ्तर) हमेशा रसिकचित्त को आकर्षित करता है, उस पर आघात करता है, उसे असमजस मे डालता है परतु उसे विरक्ति नही होती क्योकि कमलाकात कोई व्यक्ति-विशेष नही है, वह एक भावना का रससुदर शाश्वत प्रतीक है। यह भावना हमारी राष्ट्रीय चितन-भावना की द्योतक है। आत्मानुसधान ही कमलाकात का मनोधर्म है एव उसका जीवन-दर्शन है। यह जीवन-दर्शन जीवन को महाजीवन मे रूपातरित करता है। व्यग्य-मुखर कमलाकात के विकट शब्दबाण की तीक्ष्णता एव तीव्रता मर्मभेदी है। अफीम खाना उसके लिए आवरण-मात्र है जिसके नशे मे की गई बाते सामान्य हास्य प्रतीत होने पर भी विद्रूप का ही भिन्न रूप है। मूढता, नीचता, क्षुद्रता के विरुद्ध मर्मभेदी शाणित शब्द-बाण का अविराम क्षेपण केवल आत्मानुसधान एव जीवन से महाजीवन के परमराज्य मे पहुँचने का अमोघ पथ-निर्देश है। मदिर मनोमदिर मे, धर्म मानव-धर्म मे परिणति प्राप्त कर धन्य हुए है। इसीलिए बकिम का कमलाकात क्रातदर्शी ऋषि की तरह श्रद्धा एव प्रेम से नित्य-अभिनदित है।

'कमलाकातेर दप्तर' (बँ० कृ०)

बकिमचद्र (दे०) की रचनाओ मे हास्य-व्यग्य के रगीन चित्र कई स्थानो पर मिलते है परतु इस प्रवृत्ति की सशक्त अभिव्यक्ति 'कमलाकातेर दप्तर' मे हुई है। इसमे जीवन के विविध रगो के चित्र है। 'मनुष्य फल', 'पतग', 'बड बाजार', 'बिडाल', 'बागालीर मनुष्यत्व' मे अनुभूति की तीव्रता के साथ रगीन कल्पना का कोमल प्रवाह है। 'बसतेर कोकिल', 'फूलेर विवाह', मे उच्छ्वास-पूर्ण कल्पना का व्यापक क्षेत्र है। 'आमार दुर्गोत्सव' तथा 'एकटि गीत' का स्वर राष्ट्रीय है। लेखक की प्रतिभा का परिचय कही नवीन हास्यपूर्ण प्रसगो की कल्पना मे है, कही कटाक्ष परिहास मे और कही तीव्र व्यग्य एव विद्रूप मे। सरस चुटीली भाषा तथा सटीक उपमा एव सादृश्य-विधान ने इस रचना को नई भगिमा प्रदान की है। विषयगत एव भावगत अन्विति नही है परतु वक्ता कमलाकात का सप्राण व्यक्तित्व चरित्रगत एकता लाने मे सफल रहा है। दार्शनिकता, नैतिकता और समसामयिक राजनीति के परिप्रेक्ष्य मे उसका स्वरूप उभरा है। डिक्स के 'पिकविक' के समान कमलाकात बकिम की अमर सृष्टि है। जीवन के सामान्य सघर्ष तथा घात-प्रतिघात का सजीव रेखाकन करने के कारण यह रचना अपनी सीमाओ मे सफल एव हास्य-रस-प्रधान है।

कमळायन (उ० कृ०)

डॉ० मायाधर मानसिंह(दे०)लिखित 'कमळायन' महाकाव्य विषयवस्तु एव अभिव्यक्ति दोनो ही दृष्टियो से एक अभिनव कृति है। कवि के युगीन जीवनबोध एव मानवात्मा के वेदनाबोध का बृहत्तर चित्र हम इसमे पाते है। नवयुग की आशा, आकाक्षा, आनद-वेदना का यह जीवत प्रतीक है। इसमे वेदनाविद्ध मानवात्मा का सजल सगीत प्राणो को झकझोर देता है। आज की सृष्टि विशृखलताओ को नष्ट कर देने का यह मौन आह्वान और मूक निर्देश है।

दलित मानवता के प्रति सहानुभूतिशील कवि का शिल्पी-प्राण स्वयं भी निःशेष हो जाना चाहता है। कवि की संवेदनशील आत्मा एवं सजग बौद्धिक चेतना भौगोलिक परिवेश से मुक्त मानवात्मा की मुक्ति का संधान करती है।

इस काव्य में नायक और नायिका, कमल एवं करुणा, के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम का अतीत एवं वर्तमान एवं विपर्यस्त विश्व-जीवन के वर्तमान एवं भविष्य का चित्रण हुआ है। प्रथम भाग में कमल एवं करुणा न्यूयार्क-जीवन से वापस आकर भारत-ग्राम-उन्नयन में प्राण-विसर्जन करते हैं। द्वितीय भाग में उनकी एकमात्र संतान कन्या विश्वमित्रा की आक्सफोर्ड में शिक्षा, यूक्रेनियन तरुण सेपिलको के साथ प्रणय एवं सन् 1956 ई० में कम्युनिस्ट साम्राज्यवाद के विरोध मे होने वाले हंगेरियन विप्लव में सेपिलको का उत्सर्ग, हंगेरियन नेता की स्त्री मेरिया से विश्वमित्रा के नाम दीर्घ-करुण पत्र आदि का चित्रण हुआ है। यथार्थ की इन्हीं विशेषताओं के कारण 'कमळायन' काव्य समसामयिक लोकतंत्रीय मानवतावाद का महाकाव्य बन सका है।

विषय-वस्तु की उदात्तता के साथ उदार चरित्र, गरिमामयी भाषा-शैली, उपयुक्त छन्द-योजना रचना को महाकाव्योचित गंभीरता एवं गुरुता प्रदान करने में समर्थ है। भाषा पर मानसिंह का असाधारण अधिकार है। कवि के गहन एवं विस्तृत अध्ययन एवं मनन का प्रभाव उनकी वर्णन-शैली पर दिखाई पड़ता है। प्रकृति का चित्रमय सौंदर्य मानसिंह के काव्य को चित्रमय मनोज्ञता प्रदान करता है।

'कमळायन' आधुनिक ,महाकाव्य के क्षेत्र में एक प्रयोग है। इसमें विश्व-जीवन का वर्तमान एवं भविष्य दोनों रूपायित है।

करंदीकर, गोविंद विट्ठल *(म० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

जन्मस्थान : रत्नगिरी, व्यवसाय : प्राध्यापक। ये प्रतिष्ठित नये कवि हैं। साहित्य-क्षेत्र में ये विंदा करंदीकर नाम से जाने जाते हैं। 'स्वेदगंगा' नामक इनका एकमात्र काव्यसंग्रह है। विषय-चयन की दृष्टि से इनकी कविता वैविध्यपूर्ण है। 'आवाहन', 'विजयी-भारत', 'उठाउठा तयार व्हा' आदि इनकी कुछ राष्ट्र-प्रेम संबंधी ओजस्वी कविताएँ हैं और 'नारद', 'वागुलबुवा' जैसे इनके शिशुगीत है। इसी संग्रह की 'मजूर', 'कीर्तन', 'साक्षात्कार' आदि कविताएँ अत्यंत शक्तिशाली हैं। इन कविताओं में नयी कविता का स्वर उभरा है। सामाजिक विषमता के विरुद्ध नये कवियों के समान ही इन्होंने आवाज उठाई है। इस प्रकार इनके काव्य में समाजवादी स्वर उभरा है।

नये कवि होते हुए भी ये आशावादी है। नयी कविता की दुर्बोधता एवं अस्पष्टता इनके काव्य में नहीं है। नवीन प्रतिमानों के प्रयोगों के कारण कहीं-कहीं इनकी कल्पनाएँ विद्रूप एवं विक्षिप्त हो गई हैं। ऐसे स्थलों पर पाठक की बुद्धि चमत्कृत हो जाती है। वहाँ बुद्धि-चातुर्य प्रधान हो गया है, और अनुभूति गौण। इन्होंने मुक्तछंद (दे०) मे काव्य-रचना की है।

करंदै *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे०) काव्य-विभाग का उपविभाग है और 'वेट्चि' (दे०) के पश्चात् रखा जाता है। प्रसिद्ध लक्षण ग्रंथ 'तोलकाप्पियम्' (दे०) ने इस उपविभाग का पृथक् उल्लेख नहीं किया है और 'वेट्चि' में ही इसे समाविष्ट कर दिया है। परवर्ती काल के 'पुरप्पोरुळ् (दे०) वेण्पामालै' नामक लक्षण-ग्रंथ में यह पृथक् उपविभाग के रूप में प्रस्तुत है। विश्वास है कि इसमें 'तोल्काप्पियम्' से पहले की 'अगत्तियम्'-व्याकरण-परंपरा का अनुसरण किया गया। 'वेट्चि' (दे०) में युद्धारंभ-सूचक गोमंडलियों के अपहरण के प्रकरण है पर इस 'करंदै' में गोमंडलियों को छुड़वाकर वापस ले जाने के प्रकरण हैं। 'वेट्चि' के अंतर्गत जितने प्रकरण बताये गये हैं, वे 'करंदै' के लिए भी प्रसंगानुकूल परिवर्तनों के साथ लागू किये जा सकते हैं।

करकंडुचरिउ (करकंडु-चरित) *(अप० कृ०)* [रचनाकाल—1065 ई०]

'करकंडुचरिउ' मुनि कनकामर (दे०) द्वारा दस संधियों में रचित काव्य है। करकंडु जैनों के दोनों संप्रदायों में मान्य हैं। बौद्ध धर्म में भी ये आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। इस ग्रंथ में करकंडु के चरित्र के आधार पर पंचकल्याण-विधान नामक व्रतोपवास की महत्ता प्रदर्शित की गयी है।

चंपाधिपति धाड़ीवाहन और उसकी रानी पद्मावती से विचित्र परिस्थिति में एक श्मशान में करकंडु का जन्म हुआ। उसके हाथ में कंडु होने के कारण बालक का नाम करकंडु रखा गया। आगे चलकर करकंडु के नाना

विवाहो और अनेक देशो पर उसकी विजय का वर्णन है। चिरकाल तक राज्य-सुख का उपभोग कर वह अत मे ससार से विरक्त हुआ और घोर तपश्चर्या द्वारा उसने केवल ज्ञान और मोक्ष प्राप्त किया। कृति मे चरित नायक की प्रधान कथा के अतिरिक्त नौ अवातर कथाएँ भी है। 'करकडु-चरिउ' अनेक अलौकिक और चमत्कारपूर्ण घटनाओ से युक्त है।

इस कृति मे मानव-जगत् और प्राकृतिक जगत् के अनेक सुदर वर्णन उपलब्ध होते है। प्रसगानुकूल रति, उत्साह और निर्वेद के सरस वर्णन मिलते है। भाषा मे भावानुकूल शब्दो की योजना है। स्थान-स्थान पर ध्वन्यात्मक शब्दो की योजना द्वारा भाषा को भावानुकूल बनाया गया है। बीच-बीच मे अलकार भी प्रयुक्त हुए है। भाषा मे छोटे-छोटे हृदयस्पर्शी वाक्य और सुभाषित भी गुँथे हुए है। कृति मे प्रधान छद प्रज्झटिका और घत्ता (दे०) है।

ग्रथ मे प्रयुक्त अनेक कथाएँ सभवत तत्कालीन समाज मे लोक-कथाओ के रूप मे प्रचलित रही होगी। इनमे से अनेक कथाएँ प्राकृत और सस्कृत साहित्य मे उपलब्ध होती है। कथानक रूढियो के अध्ययन की दृष्टि से यह ग्रथ अतीव महत्वपूर्ण है।

करण घेलो *(गु० कृ०)* [रचना काल—1866 ई०]

श्री नदशकर तुळजाशकर मेहता (1835-1905 ई०) (दे०) रचित 'करण घेलो' गुजराती का प्रथम उपन्यास है। गुजराती मे ऐतिहासिक उपन्यासो की परपरा भी इसी उपन्यास से शुरू होती है।

शिक्षा विभाग के तत्कालीन अधिकारी मि० रसेल से सर वाल्टर स्कॉट जैसे ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की प्रेरणा प्राप्त कर लेखक ने इसे लिखा था। उपन्यास म गुजरात के वाघेला वश के अतिम राजपूत राजा करणदेव' की विलासिता, पापाचार, तज्जन्य दुष्परिणाम तथा करणदेव का पतन और करुण अत का निरूपण है। इस कृति के द्वारा लेखक अपनी सुधार-वृत्ति एव सोद्देश्यता भी सिद्ध करता है। 'पाप की पराजय तथा पुण्य की विजय'—यह सिद्धात निरूपित करना लेखक का लक्ष्य प्रतीत होता है। समसामयिक जीवन का सफल चित्राकन, उत्तम वर्णन, सरल सुदर व प्रासादिक गद्य-शैली का अभिनिवेश—ये सब इस उपन्यास की उपलब्धियाँ है। शिथिल वस्तु-सगठन, दुर्बल चरित्राकन और निर्जीव से सवाद व कही-कही निबध शैली का विस्तृत गद्य इस रचना की सीमाएँ है किंतु आज से शताधिक वर्ष पूर्व की रचना के रूप म इस पर विचार करने पर ये सीमाएँ गौण बन जाती है। ट्रैजेडी का आस्वाद इसमे सहज ही उपलब्ध है।

गुजराती उपन्यास व गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यासो के विकास की दृष्टि से प्रस्तुत रचना का महत्व अक्षुण्ण है।

करणीदान *(हि० ले०)*

ये मेवाड के अतर्गत सूलवाडा ग्राम के निवासी और जोधपुर नरेश अभयसिंह के आश्रित कवि थे और अठारहवी सदी के दूसरे चरण मे इनका जन्म हुआ था। इन्होने 'सूरजप्रकाश' तथा 'विडद सिणगार' नामक ग्रथो की रचना की है। 'सूरजप्रकाश 7500 छदो मे लिखित डिंगल का उत्कृष्ट ग्रथ है। विडद सिणगार' 'सूरजप्रकाश' का सक्षिप्त रूप है जो महाराजा को सुनाने के लिए 126 पद्धरी छदो मे लिखा गया था। दोनो काव्यो मे महाराजा की वीरता का चित्रण है। युद्ध का सजीव वर्णन, तदनुकूल वीर रस पूर्ण भाव-व्यजना तथा अत्यत प्रभावशाली शब्द चयन इन काव्य कृतियो की प्रमुख विशेषताएँ है। 'सूरज प्रकाश का विषय वीरभाण कृत 'राजरूपक से मिलता है, परतु करणीदान ने अपनी कृति मे इतिहास की अपेक्षा काव्य के भाव-पक्ष पर विशेष बल दिया है।

करबल-कथा *(उर्दू कृ०)*

फज्ल-अली फज्ली ने करबल-कथा' की रचना 1732 33 ई० मे की थी किंतु सन 1748-49 ई० मे इसे वर्तमान रूप दिया गया।

करबल-कथा' फारसी के प्रसिद्ध ग्रथ रोजातुश शोहदा' का उर्दू भावानुवाद है। हजरत इमाम हुसैन तथा उनके साथियो पर करबला के रणक्षेत्र म जो नृशम अत्याचार किए गए, उन्ही का मार्मिक वर्णन इस पुस्तक म किया गया है। मुहर्रम के दिनो मे मजलिस-ए इअज्जा (शोक-सभा) मे 'रोजातुलशोहदा' का पाठ किया जाता है जिसे सुनकर सहृदय श्रोता फूट फूट कर रोते है और इस प्रकार हजरत इमाम हुसैन के प्रति अश्रु-पुष्पो की श्रद्धाजलि अर्पित करते है।

'रोजातुश्शोहदा की कथा सुनकर प्राय लोग कहा करते थे 'सदहैफ ओ सदहजार अफसोस जो हम कमनसीब इबारत-ए-फारसी नही समझते और रोने के सवाब (पुण्य) से बेनसीब रहते है। ऐसा कोई साहिब-ए-शऊर (प्रतिभावान) होवे कि किसी तरह हम से बेसमझा

को समझाकर रुला दे'।

अतः 'फ़ज्ली' ने इस परम पुनीत कार्य को संपन्न किया। उसने 'रोजातुलशोहदा' का सरल-सुबोध उर्दू में भावानुवाद किया और करबला की घटनाओं का वृत्तांत होने के कारण इसका नाम 'करबल-कथा' रखा। 'करबल-कथा' उत्तरी भारत में उर्दू गद्य की प्राचीनतम कृति है। इसमें देहलवी भाषा का सर्वप्रथम रूप प्राप्त होता है। इसका रचयिता 'फ़ज्ली' मुहम्मदशाह रंगीले का समसामयिक था।

कर, बिमल *(बँ० ले०)*

नैराश्य, विच्छिन्नता-बोध एवं विषाद बिमल कर के कथा-साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। चार खंडों में विस्तीर्ण लेखक के सर्वप्रसिद्ध उपन्यास 'देओयाल' (1956-60) में द्वितीय विश्वयुद्ध की पटभूमिका में रचित मनुष्य के दुःख, उसकी वेदना, एवं नानाविध प्रकृतियों का उल्लेख किया गया है, जिनका निराकरण मनुष्य की शक्ति के बाहर है। जीवन-दुःख के गहरे उत्स का संधान करते हुए लेखक ने युद्धकालीन परिवेश का अतिक्रमण कर ईश्वर, नियति, मृत्यु आदि विषयों पर उपन्यास लिखना शुरू किया है। 'खडकुटो', 'पूर्ण-अपूर्ण', 'ग्रहण', 'परिचय', 'यदुवंश', आदि उपन्यास इन विषयों से आलोडित है। इनकी रोमानी विषादमयता के मूल से इनके जीवन-रहस्य-अन्वेषी शिल्पी-मन का यह रूप ही प्रकट हुआ है। 'बालिका-बधु' के नाम से इन्होंने एक सुंदर 'उपन्यासिका' की रचना की है। मल्लिका (1960) उपन्यास में लेखक ने मध्यवित्त बंगाली समाज के अर्थसंकट एवं मिथ्या संभ्रम-बोध की अस्वस्थकर परिणति का निरूपण किया है।

कहानियों की रचना में बिमल बाबू ने मनन-प्रधान लेखक के आत्मप्रकाश को तीव्रता से प्रतिष्ठित किया है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता है स्वोपार्जित ख्याति एवं प्रतिष्ठा को छोड़कर नये क्षेत्र के आविष्कार के प्रति हमेशा सचेत रहना। 'आत्मजा', 'दरजा', 'सुधामय', 'निषाद', 'पितृघ्न', 'पलाश', 'उद्‌भिद' आदि कहानियों में लेखक ने अंतर-उन्मोचन का दुःसाहस किया है। कहानियों में मनन को, तीव्र-तीक्ष्ण निर्मोह तथा चिर-अतृप्त जीवन-जिज्ञासा को, प्रधानता मिली है। मनुष्य के अंतर की जो जटिलता है, अंतर-बाह्य का जो सूत्र-संबंध है, स्वप्न एवं चिंतन में उसका जो अद्‌भुत प्रकाश है, निःसंग अंतरजीवन की जो वेदना एवं असहायता-बोध है उसी की अभिव्यक्ति के द्वारा इन्होंने कहानियों में अपने स्वतंत्र-शिल्पी मन को प्रकट किया है। छठे दशक में बँगला कहानी को नया रूप प्रदान करने वालों में इनका नाम सबसे पहले आता है।

कर, बिश्वनाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1864; मृत्यु—1934 ई०]

ये ब्राह्मण थे। मधुसूदन राओ (दे०) के प्रभाव से इन्होंने ब्राह्मधर्म स्वीकार कर लिया था। संपादक बिश्वनाथ कर प्रायः 50 वर्षों तक आधुनिक उड़िया-साहित्य के केंद्रबिंदु रहे हैं। 'उत्कल-साहित्य' मासिक पत्रिका के संपादक के रूप में इन्होंने तीन पीढ़ियों के साहित्यकारों को प्रभावित किया है। ये मधुसूदन, राधानाथ राय (दे०) और फकीर मोहन सेनापति (दे०) के मित्र, समालोचक और प्रकाशक थे। उनके अतिरिक्त सन् 1930 ई० तक उड़िया साहित्य के प्रमुख कवि एवं लेखकों के भी ये मित्र, समर्थक और समीक्षक थे। 'उत्कल साहित्य' के संपादकीय में प्रकाशित बिश्वनाथ जी के निष्पक्ष, निर्भय विचार, सदा आदृत रहे है। ये विचार इनकी मौलिक चिंतना एवं स्वतंत्र विचारणा के द्योतक है। इन्होंने नये कवियों को प्रोत्साहन दिया तथा उन्हें प्रकाश में लाये। 'विविध प्रबंध' इनकी एकमात्र पुस्तक है। उसमें चिंतन-प्रधान विचारोत्तेजक कुछ ऐसे निबंध है, जो अन्यत्र दुष्प्राप्य हैं। उपेंद्र भंज (दे०) पर इनके निबंध अन्यतम हैं। इनकी गद्य-शैली अयत्नज, निरलंकृत, तर्क-सिद्ध, स्पष्ट एवं प्रभावशालिनी है।

करसनदास माणेक *(गु० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

रोमानी प्रकृति और शैली के कवि करसनदास माणेक अपने मुक्त शृंगार और हास्य-निरूपण के लिए प्रसिद्ध है। अब तक इनके चार कविता-संग्रह प्रकाश में आ चुके है। 'आलबेल', 'वैशम्पायननी वाणी', 'महोबतने माडवे' और 'मध्याह्न' (दे०)। इन्होंने वैशम्पायन बनकर आख्यान-शैली में नये विषयों को हल्के ढंग से किंतु हास्य-कटाक्षमय वाणी में व्यक्त किया। इनकी कविताओं से देशभक्ति, युयुत्सा और साम्यवादी विचारधारा का परिचय मिलता है। हल्के-फुल्के और गंभीर भावों को अभिव्यक्त करने में करसन माणेक जी ने गीत, भजन, गजल और आख्यानप्रधान देशी शैली को अपनाया। 'नचिकेता' मासिक में इन्होंने अनेक अंग्रेज़ी और संस्कृत कृतियों के अनुवाद प्रस्तुत किए। इनकी कविता में

रूपाकृति मुक्त प्रणय चेष्टा और रोमानी दृष्टि आकर्षक बिंदु हैं। बेलाग बातों के धनी करसन जी अपने हास्य-व्यंग के कारण और आख्यानकार के रूप मे इस पीढी के सबसे समर्थ कवि है।

करहले *(प० पारि०)*

'करहले' शीर्षक से गुरवाणी मे कुछ शब्द (दे०) सगृहीत हैं। करहले का शाब्दिक अर्थ 'हल्ला करना' या 'हलाशेरी' (उत्साह) देना है। एक अन्य व्युत्पत्ति मे इस शब्द का कोशार्थ 'ऊँट' बताया जाता है। इन शब्दो मे शीघ्रता, बेसब्री मे भटकते जीव की ओर सकेत है जो गुरुशरण प्राप्त कर भटकाव से मुक्त हो जाता है।

करुणा *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1924 ई०]

यह कुमारन् आशान् (दे०) का अतिम काव्य है। बौद्ध भिक्षु उपगुप्त द्वारा वारागना वासवदत्ता को प्रदत्त जीवन्मुक्ति की कथा इसमे वर्णित है। वासवदत्ता उपगुप्त पर अनुरक्त होती है, परतु उपगुप्त यथासमय आने का वचन मात्र देकर चला जाता है। वासवदत्ता को एक हत्या के अभियोग मे मृत्यु दड मिलता है और उसे हाथ-पैर काटकर श्मशान मे फेका जाता है। उपगुप्त यथासमय पहुँच जाता है और वासवदत्ता को मुक्तिमार्ग का उपदेश देकर इहलोक से विदा करता है। उसकी चिता भस्म मे भिक्षु के अश्रुओ की दो बूँदें गिर जाती है।

आशान् की दार्शनिक और भावोत्तेजक प्रतिपादन शैली की चरम सीमा 'करुणा' मे देखने को मिलती है। वासना के अपार्थिव प्रेम के रूप मे परिवर्तित होने की प्रक्रिया को कवि ने सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। जीवकारुण्य पर आधारित बौद्धदर्शन का प्रभाव इस काव्य मे स्पष्ट है। 'करुणा' मलयाळम साहित्य की एक अमूल्य रचना है।

करुणानिधि *(त० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

करुणानिधि का जन्म तमिलनाडु के तिरवारूर नामक स्थान मे हुआ। सन् 1937 मे हिंदी विरोधी आदोलन मे भाग लेने से इनके राजनीतिक जीवन का आरभ हुआ। करुणानिधि द्र० मु० क० दल के नेता है। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—तूक्कु मेडै, मणिमकुडम (नाटक), पुदैयलै, वेळ्ळिक्किऴमै, रोमापुरी पाण्डियन (उपन्यास), पपक्कूडै, वापमुडियादवरहळ (कहानी), आर माद कड्कावल (डायरी), मेडैयिले वीशुम मेल्लिय काट्र (निबध), कवियरगिल कलैञ्जर (अतुकात छदो का सग्रह), नेंजुक्कु नीदि (आत्म-कथा) आदि। करुणानिधि ने चलचित्रो के लिए कहानी और सवाद भी लिखे है।

इनकी विभिन्न रचनाओ मे रूढ धार्मिक परपराओ के प्रति विरोध प्रकट किया गया है। उपन्यास, नाटक और कहानियो मे अछूतोद्धार, वर्गभेद, जातिभेद, आर्थिक वैषम्य आदि सामाजिक समस्याओ का सजीव चित्रण है। इनमे समाज-सुधार का स्वर प्रबल है और भावुकता की प्रधानता है।

करुणानिधि कुशल राजनीतिज्ञ और उच्चकोटि के साहित्यकार है। तमिल नाटक और रगमच तथा चलचित्रो के विकास मे इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

करुत्तम्मा *(मल० पा०)*

तकषि (दे०) शिवशकर पिळ्ळा के सामाजिक उपन्यास 'चेम्मीन' (दे०) की नायिका का नाम करुत्तम्मा है वह बचपन मे ही परीक्कुट्टि नामक मुसलमान से प्यार करती है। दोनो के धर्म भिन्न भिन्न होने के कारण समाज उन दोनो के विवाह मे बाधा डालता है। करुत्तम्मा को अपनी जाति के एक पुरुष से विवाह करना पडता है। अत मे दोनो सागर मे कूदकर एक दूसरे के प्रति प्रेम का निर्वाह करते हैं। करुत्तम्मा के सदर्भ से मछुए जाति की जीवन-झाँकी इस उपन्यास मे प्रस्तुत की गई है।

करुप्पोरुळ् *(त० पारि०)*

यह 'अकम्' अथवा शृगारी कविता के लक्षणो मे से एक है। अन्य लक्षण 'मुतर्पोरुळ्' तथा उरिप्पोरुळ् (दे०) है।

'करुप्पोरुळ्' से तात्पर्य 'अकम्' कविता के उप विभागो के अनुकूल उल्लेखनीय देवता, पशु पक्षी, फूल, वृत्ति इत्यादि से है। हर एक उप विभाग के लिए उचित वातावरण की व्यवस्था और उद्दीपन की योजना इन लक्षणो मे हम देख सकते है।

'कुरिंचि' की कविताएँ पर्वतीय प्रदेश के वातावरण से प्रभावित है। इनमे उल्लेख करने योग्य देवता 'चेयोन' अथवा 'मुरुगन्' (स्कद देव) और अदृश्य देववनिताएँ है। एक विशेष फूल 'कुरिंचि' है जो बारह साल

में एक बार खिलता है। व्याघ्र, हाथी, मर्कट, हरिण, कोयल आदि का वर्णन प्रसंगानुसार किया जाता है। प्रेमियों के मिलन के उपयुक्त पर्वतीय वातावरण में चंदन, अशोक, आम, कटहल, आदि का उल्लेख है।

'मुल्लै' (दे०) की कविताओं के उपयुक्त वातावरण वन तथा बस्तियों से संलग्न उपवन इत्यादि प्रदेश हैं। यहाँ लोग गाय-बकरी चराते हैं। इस प्रदेश के रहने वाले चरवाहों के देवता 'तिरुमाल' अथवा 'विष्णु भगवान' हैं।

'मरुदम्' (दे०) उपविभाग का संबंध कृषक-भूमि और जलाशयों से समृद्ध जल-वितरण-परिपुष्ट कृषि-वातावरण से है। भैंस, गाय, घोड़े इत्यादि के साथ जलाशयों में पनपने वाले विशेष फूलों—कमल, कांचि, मरुदम् आदि—का उल्लेख है। इस भूमि के देवता इंद्र हैं।

'नेयदल्' (दे०) वरुण देवता के अधीन है और समुद्र तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश होने से यहाँ के लोग मछुए हैं। इनका व्यवसाय समुद्रगत आखेट है और इन बस्तियों में तिमिंगल (ह्वेल) मछली आदि धूप रोने के के लिए पड़ी रहती थी। नमक व्यापारी ('उमणर्') इस प्रदेश से अपना माल ले आया करते थे। समुद्रतट-प्रदेश प्रेमिकाओं के वियोग को तीव्रतर बनाते थे।

'पालै'(दे०) की भूमि वस्तुतः 'मुल्लै' के जंगल और 'कुरिंचि के पहाड़ मिल जाने से उत्पन्न बंजर प्रदेश है जहाँ धूप की उग्रता से सूखे जलाशय, तथा नष्टप्राय वृक्ष-गुल्म दृष्टिगोचर होते है। यहाँ के रहने वाले धनुर्धारी लुटेरे है जो इस मरुभूमि को भूल-भुलैयों जैसे मार्गोंपर पथिकों को निर्मम भाव से लूटते हैं। मृतकों पर टूट पड़ने वाली चीलें और सियार इस प्रदेश की विशेषताओं में से हैं। इस वातावरण में हिरन एवं हिरनी तथा हाथी एवं हथिनी के युगलों का प्रेम-वर्णन भी प्रस्तुत किया जाता है। 'कोरवै' (काली) इस प्रदेश की देवी है।

'कैक्किळै' तथा 'पेरून्तिणै' के लिए वातावरण-गत लक्षणों का बंधन नहीं है। इन दोनों की कविता में शेष पांच उपविभागों के देवता, पशु-पक्षी, वृत्ति, और लक्षण यथोचित रूप में आ सकते हैं।

कर्कशराव *(म० पा०)*

शंकर परशुराम जोशी कृत 'षडाष्टक' नाटक का यह पात्र महाराष्ट्र के पश्चिमी किनारे के लोगों के एक वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। नाटक के इस पात्र की स्थिति नायिका के पितामह के रूप में चित्रित की गई है। यह अत्यंत उदारहृदय एवं स्नेहशील व्यक्ति है परंतु इसकी वाणी अत्यधिक कर्कश है। परिणामतः प्रत्येक व्यक्ति इसके कठोर व्यक्तित्व से अभिभूत रहता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य को अपने कठोर अनुशासन में रखने की इसकी बलवती इच्छा है और इसी से यह सभी सदस्यों को परिवार की मानमर्यादा के अनुकूल बनाए रखने का नानाविध उपाय भी करता है। पारिवारिक उत्तर-दायित्व के प्रति अपनी पुत्रवधू के सर्वथा उदासीन रहने के कारण विवश होकर समस्त पारिवारिक कार्यों के सूत्र-संचालन को अपने हाथ में ले लेता है। कविश्वर एवं गौरी को वैवाहिक बंधनों में बाँधने के लिए बहुविध उपाय करता है और अंत में दोनों के विवाह-सूत्र में बंधते ही यह उन्हें आदर्श गृहस्थ के उपदेश देकर अपने कार्य से कृत-कार्य हो जाता है। नाटककार के पूर्वनिश्चित सिद्धांतादर्शों के संवहन के कारण यद्यपि कर्कशराव का चरित्र निश्चित प्रारूप में ही विकसित हुआ है तथापि यह अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण ही दर्शकों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ने में सफल हुआ है।

कर्ण *(सं० पा०)*

'महाभारत' (दे०) के अनुसार कर्ण कुंती (दे०) का सूर्य से उत्पन्न पुत्र था तथा जन्मते ही उसने इसे नदी में फेंक दिया था, किंतु धृतराष्ट्र के सारथि अधिरथ ने इसे निकालकर पुत्रवत् पाला। जन्म से ही कर्ण अमृत से बने कवच और कुंडल धारण किये था, अतः वह नदी में नहीं डूबा। द्रोणाचार्य से इसने अस्त्रशस्त्र-विद्या सीखी, किंतु यह अर्जुन (दे०) से कहीं बढ़ न जाए अतः द्रोण से इसे ब्रह्मास्त्र-प्राप्ति नहीं हुई। अर्जुन की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करने की आकांक्षा से इसने क्षत्रिय-द्वेष्टा परशुराम से यह झूठ बोलकर कि वह क्षत्रिय नहीं, ब्राह्मण है, ब्रह्मास्त्र-विद्या सीखी। एक बार इसने अर्जुन को द्वंद्व-युद्ध के लिए ललकारा तो इसके जन्म तथा लालन-पालन के विषय में ज्ञात होने पर इसे सूत-पुत्र आदि कहकर अपमानित किया गया। किन्तु दुर्योधन (दे०) ने अपने पक्ष में मिलाने के लिए अंगदेश का राज्य देकर सम्मानित किया और कर्ण ने आमरण हर स्थिति में कौरवों का साथ दिया। मल्लयुद्ध में इसने जरासंध का जोड़ ढीला कर दिया था, अतः जरासंध ने इसे मालिनी नगर देकर सम्मानित किया। 'महाभारत'

के युद्ध मे अर्जुन कही कर्ण से परास्त न हो जाए, अत. इंद्र ने छद्म रूप मे ब्राह्मण बनकर इससे कवच-कुडलो का दान माँगा तो कर्ण ने तुरंत इन्हे देकर उदारता का परिचय दिया। इंद्र ने इसे अमोघ शक्ति प्रदान की। इसका प्रयोग कर्ण ने कौरव-शत्रु घटोत्कच पर करके उसका वध किया। द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद कर्ण ने ही प्रधान सेनापति का कार्य-भार सँभाला था। अत मे अर्जुन के साथ युद्ध करते समय शापवश इसके रथ का पहिया भूमि मे धँस जाने के फलस्वरूप इसकी मृत्यु हो गयी।

कर्णपार्य *(क० ले०)* [समय—अनुमानत बारहवी शती]

इस नाम के दो कवि हुए हैं। इनमे एक का उल्लेख दुर्गसिह (दे०) (1030 ई०) ने किया है जिसके 'मालती-माधव' नामक नाटक का उल्लेख मिलता है किंतु ग्रथ उपलब्ध नही है। प्रस्तुत कर्णपार्य का समय 1150 ई० माना जाता है। यह शिलाहारवशी राजा विजयादित्य के मत्री लक्ष्मण का आश्रित था। इसने 'नेमिनाथपुराण' चपू की रचना की है। इसमे हरिवश-कुरुवश एव नेमितीर्थंकर का चरित है। कथा जैन-परपरा के अनुसार है। सस्कृत मे गुणभद्र-कृत 'उत्तरपुराण' तथा कन्नड का 'चावुडरायपुराण' (दे०) इसके आधार-ग्रथ है। कवि पप(दे०) से विशेष रूप से प्रभावित हुआ है। उसी के पद-प्रयोग, सदर्भ-सन्निवेश, तथा अलकार भी जहाँ-तहाँ मिलते है। कथासरणि भावावलियो के भार से दब-सी गई है। सरल चपू की गति इसमे अवश्य है। अष्टादश-वर्णन इसमे नही मिलते। शैली मे पाडित्य की प्रौढिमा नही है—सरलता है, सहजता है।

कर्णभार *(स० कृ०)* [समय—तीसरी शताब्दी ई०]

'कर्णभार' भासनाटकचक्रम् का सातवाँ पुष्प है। यह उत्सृष्टिकाक भास (दे०) के नाट्य-प्रयोगो का उपन्यास-निदर्शन है। इसका स्रोत 'महाभारत' (दे०) है। इसमे भास ने कर्ण के द्वारा ब्राह्मण-वेशधारी इद्र को अपना कवच और कुडल देने की घटना का चित्रण बडी ही मार्मिक एव कलात्मक शैली मे किया है।

कर्ण के उज्ज्वल चरित्र एव दानशीलता का जितना उदात्त तथा प्रभावशाली वर्णन इस एकाकी मे मिलता है उतना अन्यत्र नही। भास की नाट्यकला इस रूपक मे और भी निखरे रूप मे अभिव्यक्त हुई है।

कर्णभूषणम् *(मल० कृ०)*

इसके रचनाकार हैं महाकवि उळ्ळूर् (दे०) परमेश्वर अय्यर। आधुनिक मलयाळम साहित्य के पडित कवि के खडकाव्यो मे सबसे लोकप्रिय 'कर्णभूषणम्' महाभारत (दे०) के एक कथा-प्रसंग के आधार पर रचा गया है। कवि ने 'तब और अब' शीर्षक मुक्तक कविता मे महादानी कर्ण को अपना विषय बनाया था। उसी का विस्तृत रूप है 'कर्णभूषणम्'।

कवि एक सुनहरे प्रभात की घडियो का अलंकारपूर्ण वर्णन करता हुआ हमे कर्ण के गगनचुबी राजप्रासाद पर ले जाता है। यहाँ ज्योतिर्मय आदित्य विप्ररूप मे प्रवेश करते है। कर्ण उस अतिथि को अर्घ्य आदि से सम्मान देते हुए आगमन का प्रयोजन पूछते हैं। भगवान भास्कर उन दोनो का सच्चा सबध बताने लगते है किंतु कर्ण के मुख की काति न बढती है, न कुम्हलाती है। वे उन्हे प्राण-रक्षक कवच-कुडल देकर चेतावनी देते हैं कि इन्हे कभी दान मे न दें। उधर इद्र की ठीक यही योजना थी। कर्ण सूर्य की चेतावनी या अपने जीवन की क्षणिकता से तनिक भी चिंतित नही होते। वे पाडवो द्वारा अपने अपमान एव दुर्योधन की सहायता से अग-राज्य पर अपने अभिषेक की घटना का उल्लेख करते हुए शपथ लेते है कि कवच-कुडल तो क्या, योग्य व्यक्ति के माँगने पर मैं अपना सर्वस्व दे देने को तैयार हूँ। इंद्र जैसा याचक मिलने पर वे 'नही' करना नही चाहते थे।

पिता-पुत्र के इस सवाद के प्रसग पर सूर्य तथा कर्ण के शब्दो के माध्यम से कवि ने कितने ही पौराणिक अवतरण, बिंब व प्रतीक प्रस्तुत किये है। चूँकि इसमे कथा-वस्तु अपेक्षाकृत क्षीण है, इसलिए कवि ने प्रत्येक पक्ति मे अलकारो की वर्षा-सी कर दी है। कवि को उज्ज्वल-शब्दाढ्य तथा उल्लेख-चतुर के जो विशेषण दिये गये, वे इस काव्य मे सार्थक निकले हैं। 'कर्णभूषणम्' तथा 'दिनकर' (दे०) कृत 'रश्मिरथी' की अशत तुलना हो सकती है।

कर्णाटक अभिज्ञानशाकुंतलम् *(क० कृ०)*

भारत की सभी आधुनिक भाषाओ के समान कन्नड नाटक का आरभ अनुवाद से—मुख्यत सस्कृत नाटको के अनुवाद से—हुआ। मैसूर सस्कृति-ज्ञान का केंद्र था और राजदरबार मे कन्नड और सस्कृत दोनो का सम्मान

था। फ़ारसी थियेटरों के मुकाबले में भारतीय रंगमंच-पद्धति भी विकसित होने लगी थी। विद्वानों ने संस्कृत के सभी नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत किया।

कविकुलगुरु कालिदास (दे०) के 'शाकुंतलम्' का अनुवाद विशेष जनप्रिय रहा। 'शाकुंतलम्' का अनुवाद कन्नड में सात व्यक्तियों ने किया। उनमें चार के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं : बसप्प शास्त्री, नरहरि शास्त्री, शेषगिरिराव और बी० कृष्णप्पा। इनमें कृष्णप्पा ने गद्य और आधुनिक कन्नड में शकुंतला का रूपांतर मात्र प्रस्तुत किया। अतः यह 'रंगमंच' के लिए विशेष अनुकूल नहीं। नरहरि शास्त्री का अनुवाद भी केवल रूपांतर है जिसमें मूल श्लोकों को कन्नड रूप देने का प्रयास किया गया है परंतु उसमें कालिदास का पद-लालित्य और प्रौढ़ता दिखाई नहीं देती। शेषगिरिराव के अनुवाद की प्रशंसा हुई है परंतु बसप्प शास्त्री का अनुवाद सर्वश्रेष्ठ है। शास्त्री जी संस्कृत के प्रकांड पंडित होने के साथ-साथ सहृदय कवि और सफल अभिनेता थे। उन्हें राज्याश्रय भी मिला और शकुंतला के अभिनय के अनुकूल रंगमंच भी। शास्त्री जी ने मूल नाटक के गद्य को गद्य के रूप में और पद्य को पद्य के रूप में सुललित और सुमधुर तथा प्रांजल कन्नड भाषा में अनुवाद किया। शास्त्री जी के इस अनुवाद से संस्कृत से अनभिज्ञ लोगों ने भी 'शाकुंतलम्' का सही रसास्वादन किया। उन्होंने शाकुंतलम् को आत्मसात् करके अनुवाद प्रस्तुत किया है। राजदरबार ने उन्हें 'अभिनव कालिदास' अथवा 'कन्नड नाटक के पितामह' की उपाधियों से सम्मानित किया। 'शाकुंतलम्' के इस अनुवाद ने अनुवाद का एक सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया और भविष्य में आने वाले नाटकों के अनुवादों का मार्गदर्शन किया।

कर्णाटक कविचरिते *(क० कृ०)*

यह कर्णाटक के महान् विद्वान महामहोपाध्याय रावबहादुर रा० नरसिंहाचार्य (दे०) की महान् कृति है। नरसिंहाचार्य जी ने इसके तीन भागों में कन्नड साहित्य का सर्वप्रथम इतिहास प्रस्तुत किया है। इसका प्रथम भाग 1907 ई० में प्रकाशित हुआ। द्वितीय भाग 1919 ई० में तथा तृतीय भाग 1929 ई० में। इसके प्रारंभ में उन्होंने कन्नड भाषा का, तथा उसकी प्राचीनता का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया है। उन्होंने अंग्रेज़ी में भी अलग-अलग कन्नड भाषा और कन्नड साहित्य के इतिहास लिखे हैं। प्रथम संपुट में कन्नड साहित्य के आरंभ से लेकर चौदहवीं शती तक का इतिहास है, द्वितीय में सत्रहवीं शती के अंत तक का तथा तृतीय में अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शती के अंत का इतिहास है। इस ग्रंथ के निर्माण में आचार्य जी ने हजारों शिलालेखों तथा ताड़पत्रों का अवलोकन किया है। प्रत्येक कवि का ज़िक्र करते समय उसका समय-निर्धारण, उससे संबंधित जनश्रुतियों-किंवदंतियों आदि का हवाला देते हुए उस सामग्री का विश्लेषण अत्यंत प्रामाणिकता के साथ किया गया है। अंतःसाक्ष्यों और बहिःसाक्ष्यों के आधार पर कवियों के देश, वंश, मत, गुरु, पोषक, विरुद आदि का उल्लेख भी है। कवि के ग्रंथ का परिचय देते समय उसका स्वरूप, प्रतिपाद्य विषय, कथागर्भ, आश्वास-संख्या, इष्टदेवता-स्तुति, गुरु-परंपरा, ग्रंथरचना का कारण, आदि लिखकर आश्वासगत में प्राप्त गद्य के भी उद्धरण दिये हैं। इस तरह यह बहुत ही परिश्रमसाध्य ग्रंथ अकेले एक ही व्यक्ति ने लिखा—यह सचमुच आश्चर्य की बात है। उसके पहले किसी ने भी कन्नड में कन्नड साहित्य का इतिहास नहीं लिखा था। श्री नरसिंहाचार्य कन्नड, तेलुगु, तमिल, संस्कृत आदि भाषाओं के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने सर्वप्रथम यत्र-तत्र मठ-मंदिरों में बिकीर्ण कन्नड साहित्य की रत्नराशियों को संगृहीत कर हमारे समक्ष रखा। उनकी प्रतिभा ने विद्वानों को चकित भी किया, आकृष्ट भी। इसका प्रकाशन ही एक ऐतिहासिक घटना है। रा० नरसिंहाचार्य सुरुचिसंपन्न थे, विलक्षण प्रतिभा वाले थे। उनकी भाषा संयत, संतुलित और उत्कृष्ट है।

कर्णाटक कादंबरी *(क० कृ०)* [रचना-काल—लगभग दसवीं शती]

यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है कि नागवर्मा प्रथम (दे०) ही 'कर्णाटक-कादंबरी' का लेखक है। इतिहासकारों का कथन है कि दसवीं शताब्दी के आरंभ में उसने इसकी रचना की होगी। वह पंप (दे०) के समान लेखनी तथा तलवार दोनों का धनी था परंतु वह वैदिक ब्राह्मण था। उसने अपने समकालीन या पूर्व-कवियों के समान कोई धार्मिक विषय नहीं चुना। 'कर्णाटक कादंबरी' के अतिरिक्त उसका दूसरा प्रसिद्ध शास्त्र ग्रंथ 'छंदोम्बुधि' (दे०) है। 'कर्णाटक कादंबरी' बाण (दे०) की कादंबरी का कन्नड रूपांतर है। बाण की कादंबरी संस्कृत गद्य की श्रेष्ठतम रचना है। उसका कन्नड रूपांतर प्रस्तुत करना साहस का कार्य है। नागवर्मा ने इस

कार्य मे आशातीत सफलता मिली है। पूर्णत गद्यात्मक मूल को गद्य पद्य-मिश्रित चपू-रूप मे बदलने की उसकी प्रवृत्ति का परिणाम बहुत सफल हुआ है। यह रूपातर मूल से बहुत दूर भी नही है और शब्दश अनुवाद भी नही है। नागवर्मा ने मध्यम मार्ग अपनाकर अनुवाद-कला का एक अनोखा रूप प्रस्तुत किया है। उसने जहाँ उचित प्रतीत हुआ, वहाँ मूल के कुछ भागो को छोड दिया है, कुछ का सक्षेप किया है और कुछ का मूल के आधार पर अपनी कल्पना से विस्तार कर दिया है। कही-कही समर्थ रूपातरकार की तरह मूल से भी सुदर भाव व्यक्त किये गये है।

इसकी भाषा बहुत मधुर है, वह गगा के गभीर प्रवाह के समान चलती है। सामान्यत उसने मूल के सस्कृत शब्दो को अधिक नही लिया और अपनी ओर से सस्कृत शब्द मिलाकर शैली को उलझाया नही है। आलोचको का यहाँ तक कहना है कि नागवर्मा की भाषा का क्रम मूल से अधिक माधुर्य प्रदान करता है। निश्चित रूप से कन्नड साहित्य मे कादबरी जैसा उच्च कोटि का रूपातर दूसरा नही है।

कर्णाटक भाषाभूषण *(क० कृ०)*

इसके रचयिता नागवर्मा द्वितीय (दे०) है जिनका समय 1150 ई० के करीब माना जाता है। यह सस्कृत मे लिखा कन्नड भाषा का व्याकरण है। इसके सूत्र तथा वृत्तियाँ सस्कृत मे है। उदाहरण कन्नड के पूर्व-कवियो के काव्यो से दिये गये है। इनमे कुल मिलाकर 280 सूत्र है। सज्ञा, सधि, विभक्ति, कारक, शब्द-रीति, समास, तद्धित, आख्यात, नियम, अव्यय-निरूपण एव निपात-निरूपण—कुल दस परिच्छेद है। इन्होने अपने दूसरे ग्रथ 'शब्दस्मृति' मे जो बातें कही है उससे भी अधिक विस्तृत ढग से व्याकरण-प्रक्रिया यहाँ बताई गई है। शैली सरल एव समासबद्ध है। आगे चलकर इसी ग्रथ की प्रेरणा से भट्ट अकलक ने सस्कृत मे (कर्नाटक) 'शब्दानुशासन' (दे०) नामक एक व्याकरण की रचना की। पूर्व कवियो के उदाहरण देने के कारण कवियो के काल निर्णय मे इसका ऐतिहासिक महत्व भी है।

कर्णाटक शब्दानुशासन *(क० कृ०)*

इसके रचयिता भट्ट अकलक है जिनका समय 1604 ई० के करीब माना गया है। 'कर्णाटक शब्दानुशासन' प्राचीन कन्नड का एक प्रामाणिक ग्रथ है जो पाणिनि के ढग पर लिखा गया है। भट्ट अकलक ने सस्कृत के द्वारा कन्नड की महिमा का प्रसार किया। कन्नड की महानता एव इसकी प्राचीन कृतियो पर उन्हे गर्व है। उनका दावा है कि कन्नड शास्त्रानुपयोगिनी नही है। उसमे 'चूडामणि' जैसे 17,000 ग्रथ-परिमाण की कृतियाँ विद्यमान हैं। भट्ट अकलक तर्क, नाटक, अलकार आदि शास्त्रो के परम पडित थे। वे जैन धर्मावलबी थे और सस्कृत, प्राकृत, कन्नड, अर्द्धमागधी आदि भाषाओ के पडित थे। 'कर्णाटक शब्दानुशासन' मे 593 सूत्रो मे कन्नड का व्याकरण है। इस पर उन्होने 'भाषामजरी' नामक वृत्ति की भी रचना की और 'मजरीमकरद' नामक एक व्याख्या भी सस्कृत मे लिखी। भट्ट अकलक ने पूर्व-कवियो से यथेष्ट उदाहरण लिए है जिसके कारण इसका ऐतिहासिक महत्व तो है ही, साथ ही कर्णाटक की नाट्य सगीत आदि कलाओ के इतिहास निर्माण मे भी इसका योगदान महत्वपूर्ण है।

कर्णाटक सस्कृति समीक्षे *(क० कृ०)*

यह डा० एच० तिप्पेरुद्रस्वामी की प्रौढ कृति है जिस पर उनको 1969 ई० का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था। दस अध्याय वाले इस बृहत् ग्रथ के प्रथम अध्याय मे पृष्ठभूमि के रूप मे भारतीय सस्कृति का परिचय है जिसमे सैधव सस्कृति, वेदयुग, उपनिषद्, इतिहास, पुराण, स्मृति तथा आगमो का विवेचन करते हुए उसकी समन्वयात्मिका प्रवृत्ति पर जोर दिया गया है। द्वितीय अध्याय मे कर्णाटक राज्य की प्राचीनता का प्रतिपादन है। तीसरे मे कन्नड जनपद के अतर्गत राज्यशासन, धार्मिक परिस्थिति, सामाजिक जीवन-विकास आदि का सर्वेक्षण है। चौथे मे कन्नड शिलालेखो का सास्कृतिक अध्ययन है। पाँचवें मे आरभ से लेकर आज तक के कन्नड साहित्य का स्थूल विवेचन है। छठा अध्याय कन्नड के लोकसाहित्य पर है। इसमे लोक-साहित्य मे बिंबित लोक-जीवन, कार्मिकता, गार्हस्थ्य जीवन, आदि का विवेचन है। लोक-साहित्य के सौदर्य का मर्मोद्घाटन है, कहावतो के सौंदर्य का काफी व्यापक विवेचन है। सातवें अध्याय मे कर्णाटक के वास्तुशिल्प एव शिल्प का विवेचन है। इसके अतर्गत चालुक्य युग, होयसळ शैली, विजयनगर का वास्तुशिल्प, मुस्लिम शैली, मूर्तिशिल्प आदि का विस्तृत विवेचन है। आठवें मे सगीत और नृत्यकलाओ का परिचय देते हुए कर्णाटक के योगदान पर विचार किया गया है।

नवें अध्याय में भारतीय चित्र-परंपरा तथा उसमें कर्णाटक के योगदान का परिचय है। दसवां अध्याय समारोहों पर है। इस बृहत् सर्वेक्षण मे भरती की सामग्री भी बहुत है। भापा में पकड़ कम है, नीरस इतिवृत्तात्मकता अधिक।

कर्णाटक हरिरासु *(क० कृ०)*

यह डॉ० एच० के० वेदव्यासाचार्य का शोध-ग्रंथ है। इसमें कर्णाटक के महान् आचार्य माध्व के द्वैत-वेदांत के प्रमेय तथा उनके अनुयायी वैष्णव भक्तों की, जो 'हरिदास' कहलाते हैं, कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन है। प्रारंभ में भक्ति एवं रहस्यवाद की चर्चा करते हुए प्राच्य एवं पाश्चात्य दार्शनिकों का हवाला देते हुए द्वैत-दर्शन का महत्व प्रतिपादित किया गया है। इसके उपरांत माध्व, जयतीर्थ, व्यासतीर्थ, आदि संस्कृत ग्रंथकर्ताओं की चर्चा है। उसके बाद कन्नड में गेयपदों की रचना करने वाले हरिदासों—जिनमें श्रीपादराज व्यासराज, पुरंदरदास (दे०), कनकदासों (दे०), विजयदासों (दे०), आदि सैकड़ों हरिदासों—का आलोचनात्मक परिचय है। हरिदासों ने कन्नड में वैष्णव भक्ति का आंदोलन चलाया। उनकी प्रतिपाद्य वस्तु, क्षेत्रस्थ देवताओं की स्तुति, तार-तम्य, जगत् का सत्यत्व, हरिदासों द्वारा वर्णित कृष्णभक्ति का स्वरूप, उनके पदों की गेयता, उनके द्वारा संपन्न समाज-सुधार आदि का गंभीर विवेचन है। कर्णाटक संस्कृति को उनकी देन, भारतीय संस्कृति मे उनका योगदान, आदि पर भी कई तथ्य मिलते है। कर्णाटक के हरिदासों का इतना गंभीर एवं व्यापक अध्ययन अन्यत्र दुर्लभ है। ग्रंथ-कार ने कई अप्रकाशित ग्रंथों का भी उपयोग किया है। आधुनिक युग में वेदव्यासाचार्य जी के इस प्रयत्न में संस्कृत एवं कन्नड दोनों के वैदुष्य और स्वारस्य का समन्वय परि-लक्षित होता है।

कर्णिक, मधुमंगेश *(म० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

इनका जन्म रत्नगिरी जिले के कणकवली नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने केवल मैट्रिक परीक्षा पास की थी। आजकल ये महाराष्ट्र स्टेट रोड ट्रांसपोर्ट कारपोरेशन में नौकरी करते है।

ये स्वातंत्र्योत्तर काल के बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं। 'कोकणी ग वस्ती', 'पारक', 'गुंजा', 'डोलकाठी', 'भईचाफा', 'मांडव' आदि इनके लघु कथा-संग्रह है। 'माहीमची खाडी' औपन्यासिक शैली का कथा-संग्रह है जिसमें झोपड़ियों में रहने वाले दलित वर्ग का यथार्थ बीभत्स चित्रण है। इस कथा-संग्रह पर महाराष्ट्र राज्य ने इन्हें पुरस्कार प्रदान किया था। 'सूर्यफूल' और 'देवकी' उपन्यास है तथा 'देवकी' नामक नाटक भी है। 'लागेबांधे' में व्यक्तियों के रेखाचित्र हैं।

कपियल् *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य अहम् और पुरम् नामक दो भागों में विभाजित है जिनमें क्रमश: जीवन के आंत-रिक और बाह्य पक्षों का वर्णन प्राप्त होता है। अहम् साहित्य में कलवु—विवाह पूर्व उत्पन्न प्रेम, और कर्पु—दांपत्य जीवन, का वर्णन भी प्राप्त होता है। कर्पु से तात्पर्य है वैवाहिक जीवन। परस्पर एक दूसरे में अनुरक्त, कुल, आयु, गुण, रूप, धन आदि की दृष्टि से समान नायक-नायिका के स्वयं विवाह कर लेने पर अथवा माता-पिता द्वारा उनका विवाह कर दिये जाने पर उनके दांपत्य जीवन का आरंभ होता है। दांपत्य जीवन में पदार्पण करने के लिए विवाह आवश्यक समझा गया है। साहित्य में दांपत्य जीवन के दो रूप वर्णित हैं। कळविन् वळि वंद कर्पु—विवाह-पूर्व प्रेम, विवाह और दापत्य जीवन का आरंभ। कळविन् वळि वारा कर्पु—विवाह के उपरांत प्रेममय दांपत्य जीवन का आरंभ। साहित्यकारों ने दांपत्य जीवन का वर्णन करते हुए नायक-नायिका के संयोग, वियोग, मान आदि का वर्णन किया है। नायक-नायिका के वियोग के अनेक कारण हैं; जैसे—शत्रु द्वारा देश पर आक्रमण, नायक द्वारा शत्रु-देश पर आक्रमण, नायक का राजदूत बनकर जाना, जीविको-पार्जन के लिए परदेश-गमन, नायक की वेश्या या परनारी में अनुरक्ति, आदि। साहित्यकारों ने कुल-नारी को सदा पतिव्रता के रूप में चित्रित किया है। माता-पिता और कुल वृद्धों के इच्छानुसार किये जाने वाले विवाह और विवाह-परवर्ती दांपत्य जीवन का वर्णन भी 'कर्पु' के अन्त-र्गत आता है। कर्पु की चर्चा करते हुए साहित्यकारों ने शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति और आदर्श गृहस्थ-जीवन-यापन के उपाय भी बताए हैं।

'कर्पूरमंजरी' *(सं० कृ०)* [समय—दसवीं शताब्दी]

'कर्पूरमंजरी' संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार तथा काव्यशास्त्रकार राजशेखर (दे०) की महत्वपूर्ण कृति है।

इसकी रचना प्राकृत भाषा मे हुई है। इस सट्टक मे भैरवानद नामक तात्रिक की तत्रविद्या के चमत्कार तथा अनिन्द्य सुदरी कर्पूरमजरी की प्रणयगाथा एव उस समय के एक राजा के अत पुर की अठखेलियों का वर्णन है। अनेक व्यवधानो के बाद राजा भैरवानद की तत्रविद्या की सहायता से घनसार मजरी के रूप मे कर्पूरमजरी को प्राप्त कर लेता है।

कर्पूरमजरी की प्रस्तावना मे राजशेखर अपने को सर्वभाषाचतुर (सब्बभासा चउरो) मानते है। वे कहते है कि पुरुष की भाँति परुष सस्कृत की अपेक्षा प्राकृत नारी की भाँति सुकुमार है। इसीलिए उन्होने प्रस्तुत कृति मे इसे अपना माध्यम बनाया है। राजशेखर छदो के बडे कलात्मक एव विविध प्रयोग करते है। कर्पूरमजरी के कुल 144 छदो मे 17 प्रकार के छद है। भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है। उनको शब्दो का ऐन्द्रजालिक कहे तो अत्युक्ति न होगी। वे विविध जनभाषाओ के शब्दो का प्रयोग कर्पूरमजरी मे स्वच्छदतापूर्वक करते हैं पर कही-कही शौरसेनी तथा मराठी मे ठीक ठीक भेद नही कर पाते। 'कर्पूरमजरी' मे राजशेखर की अभिव्यजना-शक्ति विलक्षण है।

कर्पूरमजरी मे पात्रो के चयन मे तो वैविध्य है, पर कही कही उनके पात्र शिथिल है। कही-कही अभिनय-दोष भी है। खास तौर से पात्रो का प्रवेश तथा निष्क्रमण इतना अव्यवस्थित एव अनियोजित है कि उसे मचायित करने मे कठिनाई हो सकती है।

कर्पूरवसतरायलु *(ते० कृ०)* [कृतिकार—सी० नारायण रेड्डी (दे०), रचना काल—1958 ई०]

नारायण रेड्डी तेलुगु के प्रमुख युवक कवियो मे से है। ये मुख्य रूप से प्रणय एव शृगार के कवि है तथा आध्र के प्राचीन इतिहास एव सस्कृत के प्रति विशेष रूप से अनुराग रखने वाले है। 'कर्पूरवसतरायलु' इनका एक लघु प्रबध-काव्य है जिसमे इन्होने आध्र के एक विख्यात शासक 'कर्पूरवसतरायलु' की प्रणयकथा का वर्णन अत्यत मधुर एव प्रभावशाली शैली मे किया है। इसमे तत्कालीन आध्र की सामाजिक एव सास्कृतिक परिस्थितियो का सुदर प्रतिपादन हुआ है। ये मुख्य रूप से गेय कवि हैं। अत इस काव्य की रचना इन्होंने शास्त्रीय छदो मे न करके मात्रा, लय एव ताल के नियमो से आबद्ध गेय रूप मे की है। प्रणय-काव्यो मे इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

कर्म *(पा० पारि०)*

अन्य भारतीय विचारधाराओ की भाँति बौद्ध धर्म मे भी कर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। बौद्ध धर्म के सापेक्षिक कारणतावाद के अनुसार वर्तमान जीवन अतीत का कार्य और भविष्य का कारण है। कर्म दो प्रकार का होता है—कुशल और अकुशल। जिस प्रकार यज्ञ मे प्रयोज्य कुश अविधि प्रयोग करने पर प्रयोक्ता के हाथो को दोनो ओर से काट देते हैं तथा विधिपूर्वक प्रयोग करने पर ठीक स्थान पर काटने का काम करते है, उसी प्रकार कुशल कर्म ठीक रूप मे किये जाने पर क्लेशो और बुरी इच्छाओ को भी काटते है और सत्ता को काटकर मोक्ष प्रदान करते हैं। अकुशल कर्म दो प्रकार के होते है—वस्तुकाम और क्लेशकाम। वस्तुकाम मे पाँचो इन्द्रियो के विषयो की कामना सन्निहित रहती है, इसलिए इसे पाँच प्रकार का माना जाता है। वस्तुकामकर्मा मे वस्तु की आसक्ति का भाव होता है जबकि क्लेशकामकर्मा मे सत्ता की आसक्ति का भाव रहता है। दोनो प्रकार के अकुशल कर्म मिलकर कायावचर कर्म कहलाते है। बौद्ध धर्म मे कायावचर कर्मो की 11 अवस्थाएँ बतलाई गई है। कुशल और अकुशल से भिन्न कर्म अव्याकृत कर्म कहलाते हैं।

कर्वे, इरावती *(म० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

इनका जन्म ब्रह्मदेश मे हुआ था। इन्होने बर्लिन से पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। इनके प्रबध का विषय 'समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र' पर आधारित था। इन्होने प्राणिशास्त्र, तत्त्वज्ञान तथा सस्कृत भाषा मे प्रावीण्य पाया है। सन् 1926 मे इनका पाणिग्रहण सस्कार डा० दिनकर धोडो कर्वे से हुआ था। सन् 1931 मे ये ठाकरसी महिला विद्यापीठ की रजिस्ट्रार थी और सन् 1939 मे पूना के डेक्कन कॉलेज के पोस्ट-ग्रेजुएट इस्टिट्यूट मे समाज तथा मानवशास्त्र-विभाग मे रीडर के पद पर थी।

सन् 1949 ई० मे प्रकाशित इनका 'परिपूर्ति' नामक लघु निबधो का सग्रह है। इस सग्रह के प्रकाशन के साथ इन्होने साहित्य क्षेत्र मे पदार्पण किया था और इनका यह पहला कदम ही अत्यत प्रबल एव पटु रहा। इन निबधो मे व्यक्त भावनाएँ सयत हैं और विचार समाजशास्त्र के अध्ययन से परिष्कृत है।

'मराठी लोकाची सस्कृति' नामक इनके अन्य

ग्रंथ में महाराष्ट्र के सांस्कृतिक जीवन का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

करहेचे पाणी *(म० कृ०)*

आचार्य प्र० के० अत्रे (दे०) ने 'करहेचे पाणी' शीर्षक से सात-आठ खंडों में बृहद् आत्मकथा लिखने का निश्चय किया था। पहला खंड 1963 ई० में प्रकाशित हुआ था तथा दूसरा 1964 में। इन दो खंडों के प्रकाशन के उपरांत कुछ ही वर्षों में अत्रे जी का देहांत हो गया जिससे आत्मकथा-लेखन का यह स्तुत्य प्रयास अधूरा ही रह गया।

सन् 1953 में इन्होंने 'मी कसा झालो' शीर्षक आत्मचरित लिखा था जिसमें इनके जीवन के किन्हीं गिने-चुने पहलुओं एवं घटनाओं का वर्णन है। 'करहेचे पाणी' आत्मचरित में अपने कुल का प्रारंभ देकर, अपने बाल्यकाल, विद्यालय एवं महाविद्यालय की अपनी शिक्षा तथा व्यावसायिक जीवन का सर्वांगपूर्ण निवेदन करने की इनकी योजना थी।

प्रकाशित दोनों खंड स्वतंत्र रूप से लगभग 400 पृष्ठों में हैं। पहले खंड मे प्रारंभिक तीस वर्षों का इतिहास है और दूसरे खंड में अगले दस वर्षों का। इनकी लेखन-शैली विनोदी, भावपूर्ण तथा प्रसन्न है।

कलं आजि ओ बय *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०, ले०—वीरेंद्रकुमार भट्टाचार्य (दे०)]

उपन्यास-शैली में लिखी इस लंबी कहानी मे कलं नदी के तटवासी मानवों के अनवरत संघर्ष और उनकी वेदना की गाथा है। नदी, रोग तथा अन्य प्राकृतिक विनाशों के कारण ठगीराम आदि ग्रामवासी विद्रोह कर देते हैं। अनेक गोली के शिकार होते हैं, कई गिरफ़्तार कर लिए जाते हैं। स्वतंत्रता मिलती है, किंतु आर्थिक कठिनाइयाँ पहले के ही समान रहती है। नदी बहती रहती है और इसी प्रकार मानव-जीवन भी प्रवाहित होता रहता है।

कलंबकम् *(त० पारि०)*

'कलंबकम्' तमिल में प्राप्त एक साहित्य-विधा है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'विभिन्न पुष्पों से गूँथी गई माला'। 'कलंबकम्' में साहित्यिक और लोक-गीतों की शैली का मिश्रण पाया जाता है। इस शैली में रचित प्रसिद्ध कृतियाँ है—नंदिकलंबकम् (दे), तिरुक्कलंबकम्, तिल्लैक्कलंबकम्, मुदुरै कलंबकम्, नाकैक्कलंबकम्, सिरुरंग कलंबकम्, आदि। आरंभ में कवियों ने कलंबकम् की रचना साहित्यिक और लोक-गीतों की शैली का मिश्रण करने की दृष्टि से की थी। बाद में इस विधा के प्रचलित हो जाने पर भक्तों ने अपने इष्टदेव की महिमा का गान करने के लिए इस विधा का उपयोग किया। इस विधा में रचित सर्वप्रसिद्ध कृति 'नंदिकलंबकम्' (दे०) है।

कलभाषिणी *(ते० पा०)*

यह पिंगळिसूरना (दे०) के प्रसिद्ध प्रबंध-काव्य 'कलापूर्णोदयमु' (दे०) का एक प्रमुख पात्र है। पिंगळिसूरना की अद्भुत कथा-कल्पना-शक्ति इस युग के किसी कवि में नहीं मिलती। इसमें कलभाषिणी सहज सुंदरी, संगीत-नृत्यादि कलाओं में निपुण, प्रेम-लोलुप एवं त्यागशील एक विलक्षण वेश्या है। वह सम्मोहक गान-विद्या मे पारंगत एवं कवि मणिकंधर में तीव्र रूप से अनुरक्त होकर उससे सांगत्य-सुख पाने के लिए लालायित रहती है। फिर भी बीच ही में नलकूबर के अलौकिक सौंदर्य को देखकर उस के प्रति भी कलभाषिणी में प्रबल कामना जागृत हो जाती है। नारद द्वारा प्राप्त कामरूप-धारण-शक्ति से वह नलकूबर की प्रेयसी रंभा के रूप में उसका सामीप्य पाती है। परंतु बेचारी का दुर्भाग्य, और विधि का परिहास! वह नलकूबर के रूप मे उसका पुराना प्रेमी मणिकंधर ही निकलता है। मणिकंधर इस प्रकार कलभाषिणी की मनोकामना को विफल करता है और स्वयं नलकूबर के रूप में रंभा से सुख भोगता है। फिर भी कलभाषिणी यह सब सह लेती है। वह रंभा से ईर्ष्या नहीं करती, न उसकी निंदा ही करती है। वह नलकूबर को रंभा के लिए त्याग भी देती है। अंत में नलकूबर के प्रति अपने प्रेम को भी त्यागकर भावी जन्मों में उसे पाने की आशा करती है। मणिस्तंभ के भाग्योदय के लिए अपना सिर कटवाने को निर्भयतापूर्वक तैयार होकर वह त्यागशीलता का भी परिचय देती है।

कलभाषिणी पिंगळिसूरना की एक विचित्र सृष्टि है। वह मानव-मनोविज्ञान में कवि की अंतर्दृष्टि की परिचायक भी है।

कलम का सिपाही *(हिं० कृ०)* [लेखक—अमृतराय, प्रकाशन-वर्ष 1968 ई०]

प्रस्तुत कृति मे प्रेमचद (दे०) के सुपुत्र अमृत-राय ने पिता-पुत्र के सबध को यथासभव बचाते हुए अत्यत तटस्थतापूर्वक प्रेमचद-विषयक पत्रो, सस्मरणो तथा युगीन सदर्भो के परिवेश मे प्रामाणिक तथ्यो और विवरणो के आधार पर मुहावरेदार व प्रवाहपूर्ण भाषा तथा सस्मणात्मक-रेखाचित्रपरक शैली मे प्रेमचद के जीवन और युग का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। जीवनी लिखते समय लेखक ने स्थूल प्रत्यकन के स्थान पर विशृखलित सूत्रो के सधान तथा सयोजन द्वारा प्रेमचद के जीवन के पुन सृजन का सफल एव स्तुत्य प्रयास किया है। इस कृति का महत्व केवल इस दृष्टि से ही नही है कि इसके माध्यम से हमे प्रेमचद की रचना-प्रक्रिया, उनके भावनात्मक विकास एव वैचारिकता को सोचने-समझने मे सहायता मिलती है अपितु इसलिए भी है कि इसमे प्रेमचदयुगीन भारत की राष्ट्रव्यापी हलचल का सप्राण प्रत्यकन है।

कलम दी करामात *(प० कृ०)*

डा० बलबीर सिंह (दे०) रचित 'कलम दी करामात' मे विभिन्न अवसरो पर लिखे गये आलोचनात्मक लेख, रेडियो-वार्ताएँ और भाषण सगृहीत है। सिख इतिहास, आध्यात्मिक कविता, साहित्य-दर्शन, कलाशास्त्र आदि विभिन्न विषयो पर लिखे गये इन लेखो का क्षेत्र पर्याप्त विस्तृत है। पजाबी की रोमाचक कविता के अतिरिक्त इस रचना मे सिख गुरु काव्य, सूफी-काव्य और भाई वीर सिंह (दे०) के काव्य की भी, विशाल पृष्ठभूमि देकर, समीक्षा की गई है। 'भाई वीर सिंह के काव्य मे कुदरत' शीर्षक लेख मे पश्चिमी रोमाचक प्रकृति-काव्य के सदर्भो को दृष्टि मे रखते हुए वीर सिंह के प्रकृति-काव्य का महत्व निरूपित किया गया है। गुरु नानक (दे०) की कविता के दार्शनिक और सामाजिक पक्ष को भी विशाल परिप्रेक्ष्य के अतर्गत स्थापित कर देखने का यत्न किया गया है। विचारो की स्पष्टता, गहन विद्वत्ता तथा सूक्ष्म दार्शनिक बिंदुओ की गभीर व्याख्या इन लेखो के उल्लेखनीय गुण है।

कळविपल् *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य 'अहम्' और 'पुरम्' नामक दो भागो मे विभाजित है जिनमे क्रमश जीवन के आतरिक और बाह्य पक्षो का वर्णन प्राप्त होता है। अहम् साहित्य मे कलवु—विवाह-पूर्व प्रेम, और कर्पु—दाम्पत्य जीवन का वर्णन भी प्राप्त होता है। 'कलवु' का शाब्दिक अर्थ है चोरी। नायक नायिका का बिना माता-पिता की अनुमति के चोरी-छिपे एक दूसरे से मिलन, प्रेमोदय, प्रेम का विकास आदि कलवु के अतर्गत आते है। प्राचीन तमिल समाज मे इस स्वच्छद प्रेम को अनुचित नही समझा गया क्योकि परस्पर एक-दूसरे मे अनुरक्त नायक-नायिका प्राय विवाह-सूत्र मे बँध जाया करते थे। कलवु की चार अवस्थाएँ हैं। समान प्रेम वाले नायक नायिका का दैव-वशात् एक-दूसरे से मिलन 'इयर्कै पुणर्च्चि' कहलाता है। एक बार मिलने के उपरात दोनो के मन मे पुर्नमिलन की इच्छा जागृत होती है। उनका यह पुर्नमिलन 'इडत-लैप्पाडु' कहलाता है। कभी कभी नायक नायिका स्वयमेव एक-दूसरे से नही मिल पाते तब वे अपने सखा या सखी की सहायता से एक-दूसरे से मिलते है। सखा की सहायता से सपन्न उनका मिलन 'पागर्कूट्टम' और सखी की सहायता से सपन्न मिलन 'पागियर्कूट्टम' कहलाता है। नायक-नायिका के प्रेम के विकास मे इन चारो अवस्थाओ का होना आवश्यक नही। जब परस्पर अनुरक्त नायक-नायिका का स्वयमेव मिलन या पुर्नमिलन सभव नही होता तो वे अपने सखा या सखी की सहायता से एक-दूसरे से मिलते है और उनका प्रेम विकसित होता है। इस प्रकार नायक-नायिका के प्रेम-विकास मे नायक के सखा और नायिका की सखी का विशेष योगदान रहता है।

कळसा चउतिशा *(उ० कृ०)*

उपलब्ध चउतिशाओ (दे० चउतिशा) मे बच्छादास (दे०)-कृत 'कळसा चउतिशा' प्राचीनतम है। मादळापाजी (दे०) के समान यह भी विवादास्पद है। सारळादास के महाभारत (दे० सारळामहाभारत) मे इसका उल्लेख हुआ है।

यह 'रुद्रसुधानिधि' (दे०) एव 'सोमनाथ व्रत-कथा' के समान शैव काव्य है। इसकी भाषा उडिया है तथा अगीरस हास्य है। इसका विषय है वृद्ध शिव का हिमवत-नदिनी सुदरी उमा के साथ विवाह।

वस्तुत यह जातीय साहित्य के प्रारभ का सूचक है। छोटे-छोटे वैयक्तिक दु ख-सुख की इसमे अभिव्यक्ति हुई है। इसका राग निर्दिष्ट नही है। परवर्ती युग मे

इसका पर्याप्त अनुकरण हुआ तथा इसमें प्रयुक्त राग को कळसा-राग कहा गया। कळसा-राग की अनेक कविताएँ उड़िया साहित्य में मिलती है।

गौरी को विवाह-योग्य समझकर हिमवंत शिव के साथ उनका विवाह निश्चित करते हैं। शिव वृद्ध के छद्मवेश में आते हैं। उन्हें विवाह-मंडप पर देखकर सभी का मन फीका पड़ जाता है। उमा, उनकी सखियाँ, उनकी माँ सभी क्रंदन करने लगती हैं। सभी हिमवंत को दोषी ठहराती हैं। हिमवंत के बहुत समझाने के बाद विवाह होता है। शिव छद्मवेश का परित्याग कर देते है। सभी को संतोष होता है।

इसमें जिन भावों का निरूपण हुआ है, वे उड़िया जातीय जीवन के चिरपरिचित भाव हैं। इसकी भाषा सरल एवं लोक-प्रचलित है।

कला *(हिं० पारि०)*

'कला' शब्द का मौलिक अर्थ है कौशल अथवा हुनर : किसी कार्य के निष्पादन में मनुष्य द्वारा व्यवहृत एवं प्रदर्शित दक्षता, प्रवीणता अथवा विशेषज्ञता, जिसकी प्राप्ति अभ्यास, अध्ययन, पर्यवेक्षण और प्रशिक्षण से होती है। पश्चिम मे काव्य, नाट्य, संगीत, चित्र, मूर्ति-शिल्प और स्थापत्य के साथ ही वक्तृता आदि को भी कलाओं में समाविष्ट किया जाता है। प्राचीन भारतीय दृष्टि के अनुसार कला एक हीनतर विद्या या उपविद्या है, जिसकी सर्जना प्रशिक्षण और अभ्यास के आधार पर मात्र मनोरंजन के उद्देश्य से की जाती है। उसमें प्रतिभा (दे०) और कल्पना (दे०) का योग नही रहता। पश्चिम में भी अठारहवी शताब्दी तक कला को लगभग इसी अर्थ में मान्यता प्राप्त थी। किंतु अपने आधुनिक अर्थ में 'कला' मानवीय अनुभूति के सूक्ष्मतम रूपों, प्रगाढ़ जीवनानुभूति और उत्कृष्ट भावबोध की सुंदर अभिव्यक्ति है, जिसकी प्रक्रिया में प्रातिभ सर्जनात्मकता तथा स्वरूप में सौंदर्यानुभूति का अनिवार्य योग रहता है। कलास्वाद रसानुभूति (दे० 'रस') और आत्मास्वाद के समतुल्य है। इसका प्रयोग आनंद और सौंदर्य की सृष्टि है।

सृजन से लेकर उसके आस्वादन तक 'कला' की समस्त प्रक्रिया आनंद और सौंदर्यानुभूति से तरंगायित रहती है। यह स्रष्टा के अंतर्मन के संवेगों-संवेदनों, विचारों-कल्पनाओं के अभिमूर्त्तन और बिंबन की प्रक्रिया है जिसके संख्यातीत माध्यम हो सकते है : शब्द-अर्थ (काव्य), रेखा-रंग (चित्र), स्वर (संगीत), मंच (नाट्य) और प्रस्तर-खंड (मूर्ति) आदि। यह मूलतः आत्माभिव्यक्ति है।

'कला' के प्रयोजन को लेकर उसके जीवन-संदर्भ और जीवनोपयोग के विषय में सदा से ही संदेह प्रकट किये जाते रहे है। इससे दो अतिवादों का जन्म हुआ है—एक है कला को जीवन से असंपृक्त शुद्ध कल्पना-प्रसूत सूक्ष्म-अमूर्त मानसिकता मान लेने की प्रवृत्ति का प्रचलन और दूसरे कलात्मक सृजन में 'भावपक्ष' और संवेद्य से पृथक् एवं स्वतंत्र 'कलापक्ष' कल्पित करने की भ्रांति का जन्म। वास्तव में यह न तो जीवन-निरपेक्ष है और न जीवनातीत।

'कला' के दो वर्ग किये गये है : ललित कला और उपयोगी कला। ललित कलाओं में कलाकार की प्रतिभा से युक्त सर्जनात्मकता और कल्पना-शक्ति का योग रहता है। वे एक प्रकार से शुद्ध सौंदर्यकर्म हैं। उपयोगी कलाएँ जीवन के व्यवहार-पक्ष से प्रत्यक्षतः संबद्ध होती हैं। जीवन के लिए सुख-सुविधा का उपार्जन ही इनका मुख्य प्रयोजन है। वे भी, यद्यपि अपने स्रष्टा की प्रतिभा और कल्पना से सर्वथा रिक्त नहीं होतीं, तथापि वे अभ्यास पर अधिक अवलंबित होती है। ललित कलाओं के अंतर्गत काव्य, संगीत, वास्तु, स्थापत्य, मूर्ति, चित्र और नाट्य को समाविष्ट किया जाता है और उपयोगी कलाओं में भवन-निर्माण और पाक-विद्या से लेकर फ़र्नीचर बनाने तक के सभी व्यापार आ जाते हैं। प्राचीन भारतीय परम्परा में वर्णित चौंसठ कलाओं में से अधिकांश उपयोगी कलाएँ ही हैं।

कलापमु *(ते० पारि०)*

आंध्र का एक प्रकार का नृत्य-रूपक ही 'कलापमु' के नाम से प्रसिद्ध है। सत्रहवीं शताब्दी ई० में विद्यमान सिद्धेंद्र योगी इसके प्रवर्तक थे। इनका नृत्य-प्रदर्शन देखकर गोलकोंडा के बादशाह ने कूचिपूडि नामक एक गाँव इन्हें पुरस्कार के रूप में दिया था। तब से सिद्धेंद्र योगी तथा उनके अनुयायियों के ये प्रदर्शन 'कूचिपूडि भागवतमु' के नाम से प्रसिद्ध हुए। 'कलापमु' नामक यह नृत्य-रूपक 'भामा-कलापमु' तथा 'गोल्लकलापमु' के नाम से दो प्रकार का होता है। 'भामाकलापमु' में भरतनाट्य-संबंधी शास्त्रीय नियमों का अनुसरण किया जाता है। इसमें भामा शब्द का अर्थ सत्यभामा है। इसका कथानक पारिजात की कथा से संबद्ध है। नारद स्वर्ग से पारिजात का कुसुम लाकर कृष्ण को देते है। कृष्ण भी उसे पास बैठी हुई रुक्मिणी को दे देते हैं। यही मानिनी सत्यभामा के क्रोध का कारण

बन जाता है। सत्यभामा का विरह, स्वप्न प्रसग, सखियो से दुख निवेदन, नायक के पास सखी को भेजना तथा बाद मे सपत्नी रुक्मिणी के साथ झगडा आदि इसमे प्रधान हैं। इसमे तीन ही पात्र होते है—नायक, नायिका तथा सखी। रचना श्रृंगार-प्रधान है। 'भामाकलापमु' की अपेक्षा 'गोल्लकलापमु' कुछ अर्वाचीन है। 'गोल्लकलापमु' दो प्रकार का होता है। एक मे गोपी (ग्वालिन) पात्र के द्वारा पिंडोत्पत्ति से लेकर अनेक दार्शनिक विषयो का विवरण दिया जाता है तथा दूसरे मे समुद्र-मथन की कथा पाई जाती है। इसमे 'सुकरि कोडडु' नामक पात्र के द्वारा हास्य-रस का पर्याप्त प्रयोग किया जाता है।

वीथि भागवतमु तथा यक्षगानमु (दे०) के रूप मे प्रचलित देशी अभिनय रूपो मे भरत-नाट्य सबधी शास्त्रीय पद्धतियो का समावेश करके सिद्धेंद्र योगी ने 'कलापमु' की सृष्टि की थी। उस समय से लेकर इन प्रदर्शनो का स्तर ऊँचा होने लगा तथा इनकी रचना प्रौढ होने लगी। 'भामाकलापमु' भरत-विद्या के तथा 'गोल्लकलापमु पट्-शास्त्रो के आकर होते हैं। कुछ परिवर्तन होने पर भी 'यक्षगान' मे प्रयुक्त देशी छद, कथोपकथन आदि 'भामा कलापमु' मे भी प्रयुक्त होते है। अतर यह है कि अधिकतर साधारण जनता के बीच प्रचलित प्रदर्शन-रूपो को इन मे शास्त्रानुगामी तथा नियमबद्ध बना दिया गया। स्वरूप तथा स्वभाव की दृष्टि से 'कलापमु' को केवल साधारण देशी-अभिनय तथा पूर्ण रूप से शास्त्रानुगामी रूपक के बीच रखा जा सकता है।

प्रदर्शन की दृष्टि से 'भामाकलामु मे भामा' (सत्यभामा) की भूमिका अत्यत आकर्षण तथा महत्व की होती है। एक पुरुष ही इस स्त्री-पात्र की भूमिका का निर्वाह करता है। यह 'माधवी' नाम से प्रसिद्ध है। वैसे ही 'गोल्लकलापमु' मे 'सुकरि कोडडु' नामक हास्य पोषक पात्र अत्यत लोकप्रिय रहता है। प्रदर्शन सबधी लोकप्रियता के साथ-साथ शास्त्रानुगामी होने के कारण 'कलापमु' नामक यह नृत्य-रूपक साहित्य-क्षेत्र मे भी गणनीय स्थान प्राप्त कर चुका है।

कलापी *(गु० ले०)* [समय—1874-1900 ई०]

'कलापी' का पूरा नाम सुरसिंह जी तख्तसिंह जी गोहेल था। वे सौराष्ट्र के अतर्गत लाठी नामक छोटे-से राज्य के राज-परिवार मे पैदा हुए थे। अठारह वर्ष की आयु मे उन्होंने काव्य सर्जना की। 1889 ई० मे उन्होंने राजकुमारी रमा के साथ विवाह किया जिसके साथ शोभना नाम की एक दासी भी आई। कलापी उसके सौंदर्य पर मुग्ध हुए और धीरे-धीरे उसके साथ प्रणय सबध मे बँध गये। इस प्रणय त्रिकोण ने कलापी के जीवन मे भीषण सघर्ष और तीव्र मनोमथन पैदा किया जिसे इन्होंने 'हृदय त्रिपुटी' कविता मे शब्दबद्ध किया है। इसमे कवि का 'भावप्रवाह स्वाभाविक स्रोत मे प्रवहमान' है। आठ-नौ वर्ष की कठोर यातना के परिपाक रूप उनका 'कलापीनो केकारव' (दे०) (1903) प्रकाशित हुआ। इस प्रणयाकाक्षी कवि के 'केकारव' मे 'हृदय के अपक्व-अर्द्धपक्व स्नेहोद्गार' है। 'काश्मीर नो प्रवास', 'मालामुद्रिका', 'हमीरजी गोहेल', 'कलापीनी पत्र-धारा' (दे०) इत्यादि कवि कलापी की अन्य कृतियाँ है।

इस कवि पर वर्ड्सवर्थ और शैली का प्रभाव विशेष रूप से पडा है। 'केकारव' की कतिपय रचनाओ मे इन दोनो अँग्रेज़ी कवियो के प्रकृति वर्णनो की छाप है। कलापी के प्रकृति काव्यो मे से कुछ आध्यात्मिकता एव रहस्यात्मकता के तत्त्वो से ओतप्रोत है। 'बिल्व-मगल','भरत', 'महात्मा मूलदास', 'वीणानो मृग', 'कन्या अने ऋँच' इत्यादि इनके प्रभावशाली खडकाव्य है। कलापी प्रधानत वियोग के गायक हैं। इनके पद्यात्मक प्रेमोद्गार गुजरात के शिक्षित वर्ग मे बहुत लोकप्रिय है।

कलापीनी पत्रधारा *(गु० कृ०)*

गुजराती के रोमानी व प्रणय-कवि 'कलापी' (दे०) (लाठी नरेश सुरसिंह जी तख्तसिंह जी गोहेल) द्वारा लिखे गये अनेक पत्रो मे से 535 पत्र उनके पुत्र जोरावरसिंह जी की सक्षिप्त प्रस्तावना सहित सन् 1931 ई० म प्रथम बार 'कलापीनी पत्रधारा' (दे०) नाम से प्रकाशित हुए। ये पत्र जिन्हे लिखे गये है वे व्यक्ति है—

सर्वश्री मणिलाल नभुभाई द्विवेदी, शोभना (उनकी प्रेमिका), उनकी रानी, उनकी दूसरी रानी रमा, वाजसुरवाला, रूपशकर ओझा, सरदारसिंह, आनदराय देव, जन्म शकर बुच, गोवर्द्धनराम त्रिपाठी (दे०), गिरधरदास देसाई, कैप्टन ओल्डफील्ड, हरिशकर पड्या, विजयसिंह, मोरबी-नरेश।

पत्नियो, प्रेमिकाओ, मित्रो, सगे सबधियो, साहित्यकारो आदि को लिखे गये इन पत्रो मे कलापी के व्यक्तित्व के विविध रूपो के दर्शन होते है। गुरु-प्रेम, पत्नी-प्रेम, प्रेमिका के प्रति अपूर्व स्नेह, साहित्य व अध्यात्म प्रेम, मित्र के प्रति सच्ची ममता, अँग्रेजी के वर्ड्सवर्थ, टेनिसन,

शैली, कीट्स तथा संस्कृत के समर्थ कवि कालिदास, भवभूति आदि की कृतियों के प्रति अगाध आदर व निष्ठा से ये पत्र ओतप्रोत है।

अनन्य प्रणयी, मस्त कवि, सौजन्यशील पति, सन्मित्र, सच्चे साहित्य-प्रेमी व सेवी—ये कलापी के व्यक्तित्व के कुछ रूप हैं जो इन पत्रों में उभर कर आते है। गुजराती पत्र-साहित्य की यह अमूल्य निधि हैं।

कलापीनो केकारव *(गु० कृ०)*

इसके रचयिता कलापी (दे०) का वास्तविक नाम श्री सुरसिंह तख्तसिंह गोहेल है और उनका समय है 1874-1900 ई०। कवि लाठी नाम की रियासत के राजा थे। इनकी इस पुस्तक का प्रकाशन 1924 ई० में हुआ। कलापी के काव्य ने गुजराती कविता को रोमानी तत्त्व दिया। कलापी का जीवन अत्यंत करुण जीवन था, और उनकी करुणा का विषय उनका प्रणय था। उन पर सूफ़ीवाद का प्रभाव भी विशेष था। करुण-कोमल भावों का निरूपण कवि ने अत्यंत रोचक ढंग से किया है। कवि का काव्य प्रणय और भक्ति दोनों भागों में बाँटा जा सकता है। ग़ज़ल कवि की अत्यंत प्रिय काव्य-विधा है। उनके भक्ति-काव्यों पर सूफ़ीवाद का गहरा प्रभाव है। प्रणय-काव्यों में प्रणय-त्रिकोण का निरूपण है। कोमल भावों का निरूपण कवि की विशेषता है। निराशा, अवसाद, कुंठा इत्यादि भाव कवि ने रोचकता के साथ निरूपित किये हैं।

कलापूर्णोदयमु *(ते० कृ०)* [ले०—पिंगळिसूरना (दे०) रचना-काल—1550 ई०]

यह काव्य आंध्र-जनता द्वारा अत्यंत समादृत हुआ है। इसमें कवि की अपूर्व कथा-कल्पना का चमत्कार विशेष रूप से द्रष्टव्य है। प्रबंध काव्य के लिए स्वतंत्र और मौलिक कथा की सृष्टि करने वाले ये सर्वप्रथम कवि थे। इस कारण से इस काव्य को 'कृत्रिम रत्न' होने का आक्षेप भी सहना पड़ा। यह आठ सर्गों का एक अद्भुत काव्य है जिसमें शृंगारिक जीवन के अनेक पहलुओं का चित्रण किया गया है। कलभाषिणी (दे०) नामक वेश्या तथा मणिकंधर का प्रणय इसकी मूल कथा-वस्तु है। कलभाषिणी के रूप में कवि ने तेलुगु साहित्य में एक विशिष्ट पात्र की सृष्टि की है। इस काव्य का शृंगार शास्त्र-निर्दिष्ट नियमों का अनुसरण करने वाला नहीं, संसार में सहज रूप से साक्षात् दिखाई देने वाला है। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि शृंगार रस की उत्पत्ति ब्रह्मलोक में ब्रह्मा और सरस्वती की हृदय-लीलाओं में हुई है, और वह अमृतरस का प्रवाह उस दिव्यलोक से निकलकर गंधर्वलोक, मर्त्यलोक, तथा पाताललोक तक प्रवाहित होता हुआ उन लोकों के स्वभाव तथा आलंबन के अनुरूप पवित्रता एवं स्वाद की दृष्टि से परिवर्तित होता है और अंत में कलुषित भी हो जाता है। इस प्रकार वासनाहीन दिव्य लीला से राक्षस कामभोग तक की अवस्थाएँ इस काव्य में चित्रित हुई हैं।

पाठक को सदा उत्कंठित रखती हुई, पात्रों के वश में रहकर विकसित होने वाली कथा, पात्रोचित भाषा, मनोहर कथा-प्रसंग आदि अनेक गुणों से युक्त होकर यह काव्य 'कला की परिपूर्णता' के रूप में प्रकट हुआ है। कथाकथन में कवि ने परंपरागत काल-क्रम की पद्धति का अनुसरण नहीं किया है। आधुनिक उपन्यास के समान कार्य-कारण-पद्धति का अनुसरण करके कथा के मध्य वृत्तांत से कवि ने इस काव्य का आरंभ किया है। तेलुगु साहित्य की यह एक अमर कृति है।

कलावती *(त० कृ०)* [रचना-काल—1957 ई०]

सूर्यनारायण शास्त्री (दे०)-कृत इस नाटक में चोळ राजकुमारी कलावती की कथा वर्णित है। इस नाटक के सभी पात्र काल्पनिक है परंतु वातावरण ऐतिहासिक है। मूलतः गद्य में रचित इस नाटक में बीच-बीच में पद्यों का समावेश किया गया है। इसमें भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्य-शैलियों का समन्वय दृष्टिगत होता है। चंद्रोपालंभ, वसंत-वर्णन आदि भारतीय काव्य-रूढ़ियों का भी प्रयोग किया गया है। चरित्रों के स्वाभाविक विकास, पात्रानुकूल भाषा-प्रयोग आदि के कारण यह नाटक प्रभावशाली बन पड़ा है।

कळा संस्कृति ओ साहित्य *(उ० कृ०)*

इसमें वैष्णव चारण सामल के कला, संस्कृति और साहित्य से संबंधित उन्नीस समीक्षात्मक निबंधों का संकलन है। लेखक ने वर्ण्य-विषय का विवेचन समग्रता एवं गहराई से किया है। मुख्य रूप से तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। जहाँ भी आवश्यकतानुसार वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है वह स्मरणीय है और विषयवस्तु का परिचय रोचक ढंग से देती है। भाषा सुबोध

एव वैचारिक निबधो के अनुरूप है। फलत ये निबध सुग्राह्य हैं।

कळिंग कविसम्राट् ओ कळिंग-भारती *(उ० कृ०)*

'कळिंग कविसम्राट् ओ कळिंग-भारती' मे श्री बिच्छदचरण पटनायक (दे०) ने कवि-सम्राट् उपेन्द्रभज (दे०) के साहित्य एव उसकी महान उपलब्धियो पर विचार किया है। कवि-सम्राट् की महान् साधना, अनुपम प्रतिभा, अगाध पाडित्य ने उडिया भाषा को सस्कृत की समकक्षता दी है, उडिया-साहित्य को महान् साहित्य की योग्यता प्रदान की है, तथा उसे काव्य-कला की वह स्थायी आधार-भूमि दी है कि वह किसी भी उन्नत भाषा की समकक्षता कर सकता है। उनके साहित्य के विवेचन मे इन्ही तत्त्वो की ओर दृष्टि आकर्षित की गई है। विषय की प्रतिपादन शैली पाडित्यपूर्ण है।

कलिंगत्तुप्परणी *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की बारहवी शती का पूर्वार्द्ध]

जयकोडार की कृति 'कलिंगत्तुप्परणी' एक प्रकार का वीर-काव्य है जिसमे 'भरणी-काव्य' की सभी विशेषताएँ प्राप्त होती है। इस कृति मे राजा कुलोत्तुग प्रथम की कलिंग-विजय का वर्णन है। इस कृति की एक विशेषता यह है कि इसका नामकरण विजयी राजा के स्थान पर पराजित राजा के नाम के आधार पर हुआ है। ईश-वदना से काव्य का आरभ होता है। तदुपरात कुछ पदो मे कथा की भूमिका प्रस्तुत की गई है। इन पदो मे स्थूल शृगारिक वर्णनो की प्रधानता है। इसके बाद मरुभूमि और काली देवी के मदिर का वर्णन किया गया है। कलिंगत्तुप्परणी के विभिन्न पदो मे वीरता, भय, क्रोध, हास्य, करुणा, शृगार, आदि भावो तथा वीर रस की सरस अभिव्यजना हुई है। कवि ने रसो और भावो के अनुकूल कही ललित कोमल कात पदावली का, तो कही परुष शब्दावली का प्रयोग किया है। कवि का शब्द-चयन अनूठा है। इस कृति की शैली सरल, सरस और प्रवाहपूर्ण है। शैली मे सगीतात्मकता का भी गुण है। विभिन्न पदो मे लक्षणा तथा व्यजना शक्तियो का प्रयोग दर्शनीय है। इसमे कवि ने विषयानुकूल छदो का प्रयोग किया है। इसमे कवि की प्रखर कल्पना और अद्भुत कवित्व-शक्ति के दर्शन होते हैं। काव्य मे भावपक्ष और कलापक्ष का अपूर्व समन्वय हुआ है। इतिहास मे 'द्वितीय स्वर्ण युग' कहे जाने वाले परवर्ती चोळ राजाओ के राज्य-काल से सबधित शोध के लिए यह कृति बहुत उपयोगी है। 'कलिंगत्तुप्परणी' तमिल के भरणी काव्यो मे सबश्रेष्ठ मानी जाती है।

कलिंग-शिल्पी *(उ० कृ०)*

'कलिंग शिल्पी' राजकिशोर राय (दे०) की अनुपम कृति है। कलिंग-शिल्पी उत्कल की कलामयी धरती की अतश्चेतना को समझ लेना चाहता है, उस कलाप्रेरणा को मूर्त कर देना चाहता है जो उसके कलात्मक उत्कर्ष की विधायिका है। विध्या (दे०) की लास्यमयी मूर्ति ओठो पर रहस्यमयी मुस्कान लिए खडी है—कितनी सुदर! कितनी अबूझ!

उत्कल के गहन वनप्रातर से उसके निराश-चरणो की पगध्वनि आज भी सुनाई पड रही है। ध्वस और विनाश पर वह आज भी जीवन की लाली बिखेर देने को आतुर है। पर कौन उसे आश्रय देगा? वह कला-मयी है, कला से ही चरितार्थ होगी। जीवन मे रूपायित होने की उसकी स्पृहा एक दुर्लभ कल्पना-विलास मात्र है। महाराज के यहाँ से वह विफल मनोरथ लौट जाती है। शायद उसी के साथ मानव की जीवन चेतना भटक गई है—किस अरण्य प्रदेश मे, कौन जाने?

क्या आज की युद्ध त्रस्त वसुधा उसे ढूंढ सकेगी?

कलिता, दडिनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1890 ई०, मृत्यु—1950 ई०। जन्म-स्थान—तेजपुर का एक गाँव।]

ये बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त कर तेजपुर सरकारी हाई स्कूल मे अध्यापन करते थे। 'साधना' उपन्यास पर इन्हे असम-साहित्य सभा का श्रेष्ठ उपन्यास-पुरस्कार मिला था। इन्होने दर्जनो पुस्तकें लिखी हैं, जिनमे कई अप्रकाशित हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** 'रहधरा' (1916), 'रगर' (1922), 'बहुरूपी' (1926), 'असम सन्ध्या' (1949), **नाटक** 'सतीर तेज' (1927), 'अग्नि-परीक्षा' (दे०) (1937), 'कीचकबध' (1950), 'पोहनीया कुकुर' (1946), **कहानी** 'सतसरी' (1925), **उपन्यास** 'फूल' (1908), 'साधना' (दे०) (1928), 'हत्याकारी कौन ?' (1947), परिचय', 'आविष्कार' (1950), 'गणविप्लव' (1951)।

व्यंग्य-कवि श्री कलिता का व्यंग्य सामाजिक अधिक है। 'असम सन्ध्या' राजा चंद्रकांत सिंह पर लिखित खंडकाव्य है। इन्होंने छात्रावस्था में 'फुल' जैसा कोमल उपन्यास लिखा था। इनके उपन्यास 'साधना' पर गांधी-वादी प्रभाव है। इसकी तुलना श्री प्रेमचंद (दे०) के 'प्रेमाश्रम' से की जा सकती है। 'हत्याकारी कौन ?' जासूसी उपन्यास है। श्री कलिता कवि, नाट्यकार और कथाकार थे।

कलित्तोगै *(त० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शताब्दी से ईसा की दूसरी शताब्दी तक]

'कलित्तोगै' को भी संघकालीन अष्ट-पद्य-संग्रहों में परिगणित किया जाता है। इसमें कलि छंद में रचित 149 पद है। यह कृति पाँच भागों में विभाजित है। तमिल विद्वानों के अनुसार कुर्रिजिक्कलि (दे० कुरिंजि), मुल्लै-क्कलि (दे० मुल्लै), मरुदक्कलि (दे० मरुदम्), पालैक्कलि (दे० पालै) और नेयदल (दे०) कलि नामक पाँच भागों के रचयिता क्रमशः कपिलर (दे०), चोषन् नल्लुरुत्तिरन्, मरुदनिळ नागनार, पेरुंकडुंको (दे०) और नल्लन्दुवनार हैं। इस कृति का मूल प्रतिपाद्य प्रेम है तथा इसमें कुछ नैतिक उपदेश भी हैं। 'कलित्तोगै' के विभिन्न पदों में कवियों ने पाँच भूभागों के निवासियों के रहन-सहन, स्वभाव, प्रथाओं आदि का विस्तृत एवं सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। कुछ पदों में तत्कालीन समाज में प्रचलित विवाह की विशिष्ट रीतियों का वर्णन है। इसमें प्राचीन तमिल समाज की 'तैनी-राडल' प्रथा की ओर संकेत किया गया है। एक पद में तमिल संघ का उल्लेख है। कुछ पदों में ऐतिहासिक तथ्यों और पौराणिक प्रसंगों की ओर संकेत किया गया है। 'कलित्तोगै' में अनेक शब्दचित्र प्राप्त होते हैं। कविगण व्यक्ति के आंतरिक तथा बाह्य जीवन के सुंदर और सजीव चित्र प्रस्तुत करने मे विशेष सफल हुए हैं। इस वर्ग की अन्य कृतियाँ नाटकीय एकपक्षीय वार्तालाप के रूप मे रचित हैं परंतु 'कलित्तोगै' की रचना कथोपकथन-शैली में हुई है। तोलकाप्पियम् में वर्णित प्रेम के दो प्रमुख रूप कैक्किलै और पेरुंतिणै के यथार्थ रूप का परिचय 'कलित्तोगै' में ही प्राप्त होता है। विभिन्न वैयाकरणों ने इस कृति को अपने विवेचन का आधार बनाया है।

कलियच्छन् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1954 ई०]

महाकवि पी० कुन्ञिरामन् नायर का विख्यात कविता-संग्रह है 'कलियच्छन्'। इसकी कविताएँ कुन्ञिरामन् नायर की रचनाओं में एक नये मोड़ और युगांतर का प्रतिनिधित्व करती है। आध्यात्मिक गीतों की रचना करके 'भक्त कवि' का नाम अर्जित करने के उपरांत वे और अधिक दार्शनिकता-समन्वित कविताओं की रचना करने लगे। उदात्त मानव-प्रेम और केरलीय जीवन का चित्रण उनके भक्ति-रस और आध्यात्मिकता को अधिक सहृदय-संवेद्य बनाते हैं। 'कलियच्छन्' महाकवि की सर्वप्रमुख रचना और मलयाळम साहित्य की एक महत्वपूर्ण निधि है।

कळुवे वीरराजु *(ते० ले०)*

ये सत्रहवीं शती के अंतिम भाग में जीवित थे। ये यादव-वंशी क्षत्रिय थे तथा मैसूर के चिक्कदेवरायलु के मंत्री तथा सेनापति थे। ये वीर और अनेक भाषाओं के विद्वान थे। इन्होंने संस्कृत और कन्नड भाषाओं में रचनाएँ की हैं। तेलुगु साहित्य को इनकी सबसे बड़ी देन 'महाभारत' (दे०) का वचन (गद्य) रूप है। यह तेलुगु की प्रथम समग्र गद्य-रचना है और कलुवे ग्राम में स्थित भगवान गोपालकृष्ण को समर्पित है। इस रचना में तुपाकुल अनंतभूपाल ने इनकी सहायता की है। संप्रति इसके सभापर्व तथा भीमपर्व ही उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने कन्नड में 'वैद्यसंहितासारार्णव' तथा 'वीरराजोक्ति-विलासमु' नामक दो वैद्यक ग्रंथों की रचना की है। 'महाभारत' का अनुवाद मूलानुसारी है और बहुत शुद्ध है। लंबे-लंबे वाक्य तथा समासों से युक्त शैली उस युग की विशेषता है। किंतु इस प्रभाव के होते हुए भी इनकी शैली मृदु, मधुर और मोहक है।

इनके पुत्र नंजराजु भी संस्कृत, तेलुगु और कन्नड भाषाओं के विद्वान् तथा पंडितों-कवियों के आश्रयदाता थे। नंजराजु ने संस्कृत में 'नंजराजयशोभूषणमु' नामक अलंकारशास्त्र की रचना की थी।

कल्कि *(त० ले०)* [जन्म—1899 ई०, मृत्यु—1954 ई०]

रा० कृष्णमूर्ति 'कल्कि' का जन्म पुत्तमंगलम् नामक स्थान में हुआ था। इंटर पास करने के उपरांत शिक्षा का त्याग कर ये गांधी जी के असहयोग आंदोलन में कूद पड़े। कुछ समय तक कांग्रेस कार्यालय में कार्य करने के उपरांत ये तमिल साहित्य की ओर आकृष्ट हुए। इन्होंने 'नवशक्ति' नामक पत्रिका के सहसंपादक के रूप मे

अपना साहित्यिक जीवन आरभ किया। कल्कि मद्य-निषेध प्रचार के लिए आरभ की गई 'विमोचनम्' नामक पत्रिका के सपादक भी रह चुके हैं। इन्होने अपनी 'आनद विकटन' पत्रिका द्वारा तमिल भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार मे विशेष योग दिया है, जनता को व्यग्य वचनो की शक्ति से परिचित कराया है तथा उसमे देश-प्रेम की भावना जाग्रत की है। कुछ वर्ष बाद इन्होने अपने उपनाम 'कल्कि' से एक मासिक पत्रिका भी आरभ की थी। कल्कि बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे परतु इन्हे उपन्यासकार के रूप मे सर्वाधिक प्रसिद्धि मिली। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं—'कळ्वनिन् कादली', 'पार्थीपन् कनवु', 'शिवकामीयिन् शपदम्', 'अलै ओशै', 'पोन्नियिन् चेल्वन्' आदि। कल्कि ने गाधी जी और राजा जी की जीवनी लिखी है। कविवर भारती (दे०) के यश के प्रसार मे इनका विशेष हाथ रहा है। कल्कि का सबध तमिल सगीत-आदोलन से रहा है। इनकी 'सगीतयोगम्' नामक कृति मे तमिल सगीत और तत्कालीन तमिल सगीत-सभाओ से सबधित हास्य-व्यग्य शैली मे चरित्र-निबध सगृहीत है। तमिल साहित्य-जगत मे ये अपने ऐतिहासिक उपन्यासो के लिए प्रसिद्ध है। तमिल भाषा और साहित्य के प्रति सामान्य जनता की रुचि जगाने मे इनका विशेष हाथ रहा है।

कल्पना *(हिं० पारि०)*

'कल्पना' अँग्रेजी के 'इमेजिनेशन' शब्द का पर्याय है और 'इमेज' से बना है। 'इमेज' का अर्थ है चित्र अथवा छवि। आधुनिक साहित्यालोचन मे इसके लिए 'बिब' (दे०) शब्द का प्रयोग किया जाता है। अत काव्य के सदर्भ मे कल्पना का अर्थ हुआ बिब-सृष्टि अथवा रूप-सृष्टि करने मे समर्थ कवि की उद्भावना-शक्ति। भारतीय काव्य-शास्त्र मे कल्पना को प्रतिभा (दे०) का गुण माना गया है। प्रतिभा को अपूर्व वस्तु का निर्माण करने वाली प्रज्ञा अथवा 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा' कहा गया है जो पाश्चात्य साहित्यालोचन मे प्रतिपादित 'सर्जनात्मक कल्पना' (क्रिएटिव इमेजिनेशन) तथा 'उद्भावना-शक्ति' (इन्वेंटिव फैकल्टी) के समकक्ष है। कल्पना नूतन उद्भावना तो करती है, वह विशृखलता मे सामजस्य और विसगति मे सगति भी स्थापित करती है। कल्पना के अन्य कार्य है अमूर्त को मूर्त एव निर्जीव को सजीव बनाना, पूर्वपरिचित विषयो का नव-सस्कार तथा प्रचलित उपकरणो का नवीन प्रयोग। काव्य-सृजन के सदर्भ मे कल्पना-शक्ति कवि को अभिव्यजना-वक्रता, चारुत्व, कौशल और अप्रस्तुत-विधान की सामर्थ्य प्रदान करती है। काव्य-भाषा का विशिष्ट और सटीक प्रयोग भी कवि की उर्वर कल्पना का परिणाम होता है। काव्यास्वादन के लिए प्रमाता मे भी कल्पना-शक्ति का होना आवश्यक है क्योकि इसके बिना वह काव्य मे निहित सूक्ष्म अर्थ-व्यजनाओ और वक्रताओ को ग्रहण नही कर सकता। इस प्रकार कल्पना के कर्म-क्षेत्र का प्रसार काव्य-सृजन से लेकर काव्यास्वादन तक है।

यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र मे कल्पना का विवेचन प्रतिभा के अतर्गत ही हुआ है, स्वतत्र रूप से नही, तथापि न तो उसका महत्व कभी विवाद का विषय रहा है और न उसे कभी हेय वस्तु ही माना गया है। पश्चिम मे प्रारभ से ही कल्पना को शका की दृष्टि से देखा जाता रहा है। प्लेटो ने उसे 'फेटेसी' (मूल शब्द फेटेसिया) अभिधान देकर मिथ्याभास उत्पन्न करने वाली विकृत मन की दुष्ट क्रिया कहा तो दान्ते आदि कुछ आलोचको को छोडकर मध्य युग तक कल्पना को माया, छल, भ्राति आदि कहकर तिरस्कृत किया जाता रहा। पुनर्जागरण काल मे भी कल्पना को प्राय विवेक-सम्मत जीवन-मूल्यो के लिए घातक माना जाता रहा। सत्रहवी शती के 'प्रत्यक्षवाद' ('एपिरिसिज्म') और 'तर्कवाद' ('रैशनेलिज्म') से भी कल्पना को काफी चोट पहुँची। इस युग मे ड्राइडन (सन् 1631 ई०-1700 ई०) ही पहले समालोचक थे जिन्होने प्रबल शब्दो मे काव्य-क्षेत्र मे कल्पना की महत्व-प्रतिष्ठा की। पाश्चात्य समालोचना के परवर्ती युग को कल्पना की दृष्टि से स्वर्ण-युग कहा जा सकता है। एडिसन, केम्स, डैल्यू ले और एलिसन आदि ने इसके महत्व का प्रतिपादन और शास्त्रीय विवेचन किया। अठारहवी शती के अत और उन्नीसवी शती के प्रारभ मे प्रादुर्भूत स्वच्छदतावाद (दे०) ने इसे सर्वाधिक महत्व दिया। कोलरिज, वर्ड्सवर्थ, शेली और कीट्स के काव्य मे कल्पना का स्थान सर्वोपरि है। वाल्टर पेटर, ब्रैडले और कोलरिज आदि ने साहित्यालोचन तथा काट, हीगेल और शिलर आदि ने सौदर्यशास्त्र के सिद्धात-निरूपण मे कल्पना-तत्त्व का अत्यधिक उपयोग किया। ब्लेक आदि कुछ कवियो ने कल्पना को दोहरी अतर्दृष्टि कहकर उसे प्रत्यक्ष और वैज्ञानिक तत्त्वो से भी महत्तर वस्तु घोषित किया। आधुनिक भारतीय साहित्य म हिंदी के छायावादी काव्य (दे० छायावाद) मे कल्पना ने अपने उत्कर्ष के चरमबिंदु का स्पर्श कर लिया।

'कल्पना' मोहन, बूलचंद लाला *(सिं० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

इनका जन्म सिंध के कोटड़ी नामक शहर में हुआ था। विभाजन के पश्चात् ये स्थायी रूप से उल्हास नगर (महाराष्ट्र) में रहते हैं। इन्होंने सिंधी साहित्य में कहानीकार के रूप में प्रवेश किया था और बाद में ये उपन्यास भी लिखने लगे थे। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—**उपन्यास** : 'आवारा', 'लगन', 'औरत', 'जिंदगी', 'विश्वासु', 'पथर जो जिगरू', 'मेणु जी दिलि'; **कहानी-संग्रह** : 'मोही-निर्मोही', 'चाँदनी रों जहरु', 'फ़रिश्तनि जी दुनिया'; **निबंध** : 'सिंधी लेखकनि में नज़रयाती कशमकश'। इनकी गिनती सिंधी के प्रमुख उपन्यासकारों और कहानीकारों में होती है। आरंभ में ये प्रगतिशील विचारधारा से अधिक प्रभावित थे, परंतु बाद में रोमानवाद की ओर झुक गये थे। इनकी कई रचनाएँ पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से उत्तम श्रेणी की मानी गई है। हाल ही में इन्होंने नई कविता लिखने के भी सफल प्रयोग किये हैं।

कल्पसूत्र *(सं० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० 600-300]

कल्पसूत्रों के अंतर्गत कल्प नामक वेदांग से संबंधित सूत्र आते हैं। प्रधानतया कल्पसूत्रों का संबंध यज्ञ एवं अन्य धार्मिक कृत्यों से है। कल्पसूत्रों में श्रौत-सूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र तथा शुल्बसूत्र आते हैं।

कल्पसूत्रों के अंतर्गत यज्ञ संबंधी अनेकानेक विधियों एवं यज्ञवेदी के निर्माण आदि का निरूपण मिलता है। उदाहरणार्थ, कल्पसूत्रों के अंगरूप श्रौतसूत्रों में श्रुति (ब्राह्मणग्रंथ)-सम्मत-यज्ञसंबंधी अनुष्ठानों का वर्णन है। श्रौतसूत्रों में आश्वलायन आदि श्रौतसूत्र आते हैं। कल्पसूत्रों के ही दूसरे अंग गृह्यसूत्रों के अंतर्गत गृहस्थ के द्वारा बिना पुरोहित के संपादित होने वाले सरल दैनिक यज्ञों के विधि-विधान का वर्णन है। कल्पसूत्र के तीसरे अंग धर्म-सूत्रों के अंतर्गत शुद्ध धार्मिक वर्णन मिलता है। धर्मसूत्रों में माता, पिता, पुत्र एवं गुरु आदि के धर्मों का विवेचन मिलता है। कल्पसूत्र के चतुर्थ अंग शुल्बसूत्र के अंतर्गत यज्ञवेदी की रचना एवं परिमाण आदि का विवेचन किया गया है। शुल्बसूत्रों में भारतीय रेखागणित का प्रारंभिक रूप देखा जा सकता है।

वेद एवं ब्राह्मण-साहित्य के अधिक विशाल होने के कारण एक ऐसे प्रयास की आवश्यकता थी जो वैदिक वाङ्मय के यज्ञादि से संबंधित विषय को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर सके। यही कार्य कल्पसूत्रों द्वारा संपन्न हुआ। इसके अतिरिक्त कल्पसूत्रों के द्वारा हमें भारतवर्ष के प्राचीन धर्म एवं हिंदू-संस्कृति का बोध होता है। इस प्रकार धर्म, संस्कृति एवं यज्ञविधि की दृष्टि से कल्पसूत्रों का महत्व अनन्य है।

कल्याणी *(त० पा०)*

कल्याणी पुदुमैप्पित्तन् (दे०)-कृत 'कल्याणी' कहानी की नायिका है। युवा कल्याणी का विवाह पैंतालीस वर्षीय शुप्पुवैयर से कर दिया जाता है। इसका पति इसकी कोमल भावनाओं को कुचल डालता है तथापि वह आदर्श पत्नी के समान पति की सेवा करती है। इसका मन पवित्र है। सहसा घर में आए हुए युवा चित्रकार सुंदर शर्मा को यह भाई तुल्य मानती है। कालांतर में दोनों एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं। पति-प्रेम, पारिवारिक एवं सामाजिक मर्यादाएँ इसे शर्मा को ठुकरा देने के लिए विवश कर देती हैं। इसके माध्यम से लेखक सामाजिक मर्यादाओं में बँधी हुई एक युवती की मानसिक अवस्था के चित्रण में सफल हुआ है।

कळि.ळच्चेल्लम्मा *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1956 ई०]

यह जी० विवेकानंदन् का सामाजिक उपन्यास है। इसकी नायिका चेल्लम्मा सब्जी बेचने वाली है। अपने मनोबल से वह अपने चरित्र और आत्मसम्मान की रक्षा मुहल्ले के गुंडों से करती रहती है। उसका एक प्रेमी उसे धोखा देता है और वह आत्महत्या के लिए प्रेरित हो जाती है। उसको इस स्थिति से बचाने वाले पुरुष के साथ वह शेष जीवन व्यतीत करने का निश्चय करती है। बाद में जब उस पुरुष की पहली पत्नी और बच्चे मंच पर आ जाते हैं तब भी वह विचलित नहीं होती।

इस उपन्यास में निरीह युवतियों द्वारा समाज में अनुभव किये जाने वाले कष्टों का अच्छा चित्रण हुआ है। बाज़ारू औरत मानी जाने पर भी अपने सम्मान की रक्षा करने वाली चेल्लम्मा के चरित्र-चित्रण में विवेकानंदन् को सफलता प्राप्त हुई है। इस उपन्यास की फ़िल्म भी बनी है।

कल्वि गोपालकृष्णन् *(त० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

संप्रति ये बालोपयोगी साहित्य-लेखकों में

प्रथम श्रेणी के माने जाते है। ये मद्रास नगर के एक सम्रात 'श्रीवैष्णव' परिवार के है। इन्होने अपने प्रारभिक जीवन मे माध्यमिक विद्यालयो के लिए उपयोगी सामग्री देने वाली 'कल्वि' (यानी 'शिक्षा') नामक पत्रिका चलायी थी और बाद मे स्वतत्र लेखन के क्षेत्र मे प्रतिष्ठित हो गए थे। ये मद्रास शहर के बाल-साहित्य-लेखक-सघ के अध्यक्ष भी रह चुके है।

नवसाक्षरो तथा नन्हे मुन्नो के लिए कथाओ, जीवनियो, तथा विभिन्न प्रकार के ज्ञानवर्धक साहित्य के निर्माण मे इन्होने अपूर्व सफलता पायी है। इनकी 64 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित है जिनमे से अधिकाश भारत सरकार, यूनेस्को एव अन्य सस्थाओ की प्रतियोगिताओ मे पुरस्कृत भी हुई हैं। एक गुडिया के विशेष अनुभवो के रोचक वर्णन के रूप मे इनकी तीन पुस्तकें है—'परक्कुम् पाप्पा' (उडती हुई कागजी गुडिया द्वारा विश्व-परिचय), 'पण्टै उलकिल् परक्कुम् पाप्पा' (उक्त गुडिया द्वारा मानव-जीवन के विकास का परिचय) तथा 'मिट्टाय् पाप्पा (चीनी की गुडिया द्वारा मधुमक्खी, चीटी आदि जलु-जीवन का वर्णन)। विज्ञान के अद्भुत ससार का सरल बालरजक प्रस्तुतीकरण इनकी 'मतिरवातियिन् मकन्' ('जादूगर का पुत्र'—जतु-विज्ञान), 'मायाविकळ्' ('मायावी जीवाणु'—जीवाणु-विज्ञान), 'चतिरनुक्कुच् चेल्वोम्' ('चद्रमा को जायेंगे — अतरिक्ष-विज्ञान), 'चुटुविरल् चीमा' ('अगुष्ठ के भ्रमण की कहानी'—भौतिक-रासायनिक विज्ञान) इत्यादि पुस्तको मे द्रष्टव्य है। नैतिक आदर्शो का कथात्मक रूप 'कळिकाट्टिय उत्तमर' ('मार्गदर्शक महात्मा'—गाधी जी की जीवनी के 100 प्रसग) तथा 'कनकु उलकक्कुळन्तैकळ ('स्वप्नससार के बच्चे'—वन्य प्राणियो का परिचय और उनके साथ अच्छे व्यवहार के आदर्श का प्रतिपादन)— इन दोनो प्रकाशनो मे किशोरो के लिए चित्ताकर्षक ढग से प्रस्तुत है।

कल्हण *(स० ले०)* [समय—बारहवाँ शतक]

कल्हण काश्मीर-नरेश हर्ष (1049 1101 ई०) के प्रधान अमात्य चपणक के पुत्र थे। इनका वास्तविक नाम कल्याण था। इन्होने अलक्दत्त नामक किसी प्रतिष्ठित एव विद्वान् व्यक्ति की छत्रच्छाया मे अपना अधिकाश समय बिताया था और वही इन्होने साहित्य-सर्जन की प्रेरणा ग्रहण की। ये चाहते तो अपने पिता की भाँति उच्च पद प्राप्त कर सकते थे, किंतु तत्कालीन राजनीतिक सघर्ष के युग मे इन्होने राजाश्रय न ग्रहण कर स्वतत्र जीवन-यापन करना ही श्रेयस्कर समझा और राजदरबारो की गाथा को उपनिबद्ध करना ही अपने जीवन का उद्देश्य बनाया। यद्यपि ये शव (प्रत्यभिज्ञा) आस्थावादी थे, किंतु बौद्ध धर्म को भी आदर की दृष्टि से देखते थे।

इनका एकमात्र प्राप्त ग्रथ है—'राजतरगिणी' (दे०)। यह एक ऐतिहासिक काव्य है। इसकी रचना इन्होंने सुस्सल के पुत्र महाराज जयसिंह के राज्यकाल (1127-1159 ई०) मे की। इन्होने इसकी रचना 1148 ई० मे प्रारभ की और 1150 ई० मे पूरी की।

वैदर्भी रीति मे लिखे गये इस काव्य मे आठ तरगें है। इसमे इन्होंने अत्यत प्राचीन-काल से लेकर बारहवी शती तक के इतिहास का अत्यत प्रामाणिक वर्णन किया है। कल्हण की ऐतिहासिक दृष्टि अर्वाचीन इतिहासवेत्ता की शोधक दृष्टि के समान है जो अपने साधनो को पर्याप्त परीक्षण के पश्चात् ही ग्रहण करता है। इन्हे अपने देश की ऐतिहासिक एव भौगोलिक परिस्थितियो का सम्यक् ज्ञान है। अपने ग्रथ मे इन्होने प्राचीन ग्यारह ग्रथो का उपयोग किया है। उनमे से केवल 'नीलमत पुराण' आज उपलब्ध है।

कल्हण मूलत कवि है, इतिहासकार बाद मे। वे कवि के महान् गुणो से सर्वथा परिचित है। यही कारण है कि 'राजतरगिणी' काव्य दृष्टि से सर्वथा खरी उतरती है। वे अपने इतिहास-ज्ञान को अपना काव्य कौशल प्रदर्शित करने तथा जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति का साधन मानते है। वे अपने पूर्ववर्ती कवि बिल्हण (दे०) से बहुत प्रभावित हैं। उनकी कविता मे सहज प्रभाव है, अलकार के अनावश्यक प्रयोग तथा सहज शब्दो के चमत्कार आदि से वे कोसो दूर है। वे अपनी बात सरल तथा सहज ढग से कहते है। चरित्र-चित्रण मे वे अत्यत सफल हैं।

यद्यपि अधिकाशत समस्त ग्रथ अनुष्टुप मे उपनिबद्ध है तथापि कही-कही अन्य छदो का प्रयोग भी किया गया है। काश्मीर नरेशो की सघर्षमय गाथा को स्निग्ध काव्य शैली मे प्रस्तुत करके कल्हण ने बडा श्लाघनीय कार्य किया है।

कलीम *(उर्दू० पा०)*

कलीम डिप्टी नजीर अहमद (दे०) के सामाजिक उपन्यास 'तोबातुन्नसूह' (दे०) का एक पात्र है। यह नसूह का ज्येष्ठ पुत्र है। विवाहित है किंतु अक्खडपन

के कारण पत्नी से झगड़कर अलग हो गया है। शायर बहुत अच्छा है। सारे नगर में इसकी शायरी की बहुत प्रसिद्धि है। इसे भाव, भाषा, छंद तथा अलंकार पर पूर्ण अधिकार प्राप्त है। शायरी और ताश के अतिरिक्त इसकी किसी कार्य में रुचि नहीं है। यह धर्म, ईश्वर तथा नैतिकता का उपहास करता है। अश्लील तथा यौन-विषयों पर पुस्तकें पढ़ने में इसकी विशेष रुचि है। मिर्ज़ा ज़ाहिरदार बेग जैसे दमबाज, (ज़ाहिरदार अर्थात् आडंबरप्रिय), बातूनी, निकम्मे और बेफ़िक्र लोग इसके दोस्त हैं। पिता के शत्रु 'फ़ितरत' जैसों से इसका मेल है। पिता की अवज्ञा करने में यह अपना बड़प्पन समझता है। इसका आत्मविश्वास दंभ की सीमाओं में प्रविष्ट हो चुका है। इसे यह गुमान है कि संसार में इस-जैसे योग्य व्यक्ति कम उत्पन्न होते हैं। वास्तविकता यह है कि इसे न अच्छे-बुरे की पहचान है, न सामाजिक शिष्टता का ज्ञान। कलीम उन नवयुवकों का प्रतिनिधि है जिनकी अल्प शिक्षा उन्हें औरों को नितांत अयोग्य समझने की प्रेरणा देती है।

कलीमुद्दीन अहमद *(उर्दू० ले०)*

आलोचक-प्रवर प्रो० कलीमुद्दीन अहमद ने अंग्रेज़ी साहित्य के आलोक से उर्दू साहित्य को गरिमा प्रदान की है। आलोचना के क्षेत्र में इन्होंने काव्य और साहित्य की अन्य विधाओं में लिखित उल्लेखनीय सामग्री के अवगुणों और दोषों का उद्घाटन किया है। इनके विचारों की अभिव्यक्ति में निर्भीकता का गुण सर्वत्र विद्यमान है। 'उर्दू शायरी पर एक नज़र' (दे०) और 'उर्दू तनकीद पर एक नजर' (दे०) इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इन कृतियों में ये अपने युग के आलोचकों की पंक्ति में सर्वथा भिन्न व्यक्ति दृष्टिगोचर होते हैं। इन्होंने जिस शैली से उर्दू साहित्य का मूल्यांकन किया है, वह निश्चय ही चौंका देने वाली है। इनके यहाँ किसी भी साहित्यकार के प्रति कोई रू-रियायत नहीं है। इन्होंने उर्दू को अपने विशिष्ट सांस्कृतिक परिवेश और स्वभावगत विशेषताओं के संदर्भ में न देखकर प्रायः अंग्रेज़ी साहित्य के चश्मों से देखने का प्रयास किया है। परिणामस्वरूप ये उर्दू साहित्य के आंतरिक सौंदर्य तक पहुँचने में कहीं-कहीं असफल रहे हैं। श्री नसीम कुरैशी के अनुसार ये उच्च कोटि के विद्वान, आलोचक और स्पष्टवक्ता होते हुए भी उर्दू साहित्य की आत्मा से पूर्णरूपेण परिचित नहीं है। उर्दू आलोचना के संबंध में इन्होंने जो कुछ लिखा है वह बहुत-कुछ ठीक होते हुए भी उद्देश्य की ठीक से पूर्ति नहीं कर पाता।

कल्लोलयुग *(बँ० प्र०)*

सन् 1923 में प्रकाशित 'कल्लोल' पत्रिका से ही बँगला साहित्य में वास्तविक आधुनिकता का सूत्रपात हुआ। 'कल्लोल' पत्रिका केवल सात वर्ष तक प्रकाशित हुई परंतु इन्हीं सात वर्षों में 'कल्लोल'-गोष्ठी के लेखकों ने विद्रोह, विरोध, अस्वीकृति तथा रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) के आदर्श को नकार कर एक नये युग की स्थापना कर डाली। बीसवीं शती के तीसरे दशक के इन लेखकों ने परोक्ष रूप से फ़ायडीय मनःसमीक्षण एवं मार्क्सीय राजनीतिक समाज-चेतना को साहित्य में स्थान दिया। कल्लोल-मंडल के अन्यतम अग्रणी अचिंत्यकुमार सेनगुप्त (दे०) ने अपनी पुस्तक 'कल्लोल' में कहा है कि पहले हम सोचते थे कि रवींद्रनाथ ही बँगला साहित्य के अंत हैं परंतु 'कल्लोल' की विद्रोह-वह्नि में नया पथ, नयी दुनिया दिखाई पड़ी। और भी आदमी है, और भी भाषा है, इतिहास है।

कल्लोल-मंडल की निर्भीकता, नवीनता, मानवोन्मुख भाव-धारा की तीव्रता को कोई अस्वीकार नहीं कर सका। कल्लोल ने एक युग की ही रचना कर डाली जिसके लेखकों में सीमाबद्ध जीवन-बोध, अल्प अभिज्ञता एवं किताबी बोहेमियन आदर्श के प्रति अनुरक्ति का प्रदर्शन होने पर भी उनके द्वारा बँगला साहित्य में नये वातायन उन्मुक्त हुए। कल्लोल-मंडल के लेखकों में नज़रुल इसलाम (दे०), अचिंत्यकुमार सेनगुप्त (दे०), बुद्धदेव बसु (दे०), प्रेमेंद्र मित्र (दे०), शैलजानंद मुखोपाध्याय (दे०), ताराशंकर बंद्योपाध्याय (दे०), प्रबोधकुमार सान्याल (दे०) आदि विशेष उल्लेखनीय है।

कविकोंडल वेंकटराव *(ते० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1969 ई०]

ये राजमहेंद्रवरमु नामक शहर के रहने वाले थे। इन्होंने कुछ समय अध्यापकी तथा बाद में वकील की वृत्ति गृहण की थी। आंध्र आंदोलन और 'होमरूल' आंदोलन आदि ने इनमें स्वतंत्रता की भावना जगाई थी। ये प्रकृतिप्रेमी कवि थे। निम्न वर्ग के लोगों तथा ग्रामीण जीवन के प्रति इनकी गहरी सहानुभूति तथा अभिरुचि थी। इनकी अधिकांश रचनाएँ इन

तथ्य का उदाहरण है। ये वर्ड्सवर्थ जैसे अंग्रेज़ी कवियो की रचनाओ से प्रभावित थे। इनकी रचनाएँ ये है— 'विविध कुसुमावली' (सग्रह), 'जनपदमुलु', 'मातृदेश-सकीर्तनमु', 'प्रकृतिचदनमु', 'नर्लबालुडु' आदि कविताएँ, 'भारतीय सदेशमु', 'अनाथाभ्युदयमु' आदि नाटक, 'विजयसदनमु', इनुपकोटा' आदि कुछ उपन्यास और असख्य कहानियाँ। इनकी कविता अधिकतर मात्रिक छदो मे निबद्ध हैं। इनकी भाषा मे सरसता के अतिरिक्त सरलता तथा स्पष्टता सर्वत्र परिव्याप्त है। इनकी रचनाएँ प्रकृति-प्रेम से पूर्ण तथा समकालीन साधारण जन-जीवन के निकट की होती है। वेंकटराव प्रधानत एक सफल गीतकार के रूप मे प्रसिद्ध है।

कविच्चक्रवर्त्ती *(त० कृ०)* [रचना-काल —1963 ई०]

'कविच्चक्रवर्त्ती' कु० अषगिरिसामी (दे०)-कृत एक ऐतिहासिक नाटक है। इसके लेखक को कहानी एव निबध के समान नाटक रचना के क्षेत्र मे भी पर्याप्त सफलता मिली है। यह उनका प्रथम ऐतिहासिक नाटक है। इस सपूर्ण नाटक का अभिनय एव प्रकाशन एक साथ हुआ था। इसमे लेखक ने प्रथम बार विभिन्न स्रोतो से प्राप्त विवरण, शिलालेख, साहित्यिक विवरण, किंवदतियो और विद्वानो के शोध के फलस्वरूप प्राप्त सामग्री के आधार पर तमिल महाकवि कबर् का प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है। नाटक मे इतिहास और कल्पना का अपूर्व समन्वय हुआ है। लेखक ने विभिन्न प्रसगो का चयन करते हुए कबर् की महानता, अपनी ऐतिहासिक रुचि और सरसता का पूरा ध्यान रखा है। अषगिरिसामी ने कबर को स्वतत्र विचारो वाले एक कवि के रूप मे चित्रित किया है। कबर चोळ-राजाओ के शासन-काल मे आविर्भूत हुए थे। उस काल के अन्य कवि जहाँ राजाओ की प्रशसा मे लगे रहे वहाँ कबर् ने अपनी रामायणम मे भगवान् राम की महिमा का गान किया। कबर् के जीवन-वृत्त से सबद्ध एक अन्य कृति रा० पलनिसामी कृत 'कविचक्रवर्ती कबर्' मे कबर् को ऐसे मानव के रूप मे चित्रित किया गया है जो मानव-मात्र से प्रेम रखता है और जो आयुपर्यंत अपने मान की रक्षा करना चाहता है। इस नाटक मे कबर् द्वारा 'रामायणम्' की रचना, राज-दरबार, उसका प्रस्तुतीकरण आदि घटनाओ को ही विस्तार दिया गया है।

अषगिरिसामी कृत 'कविच्चक्रवर्ती' नाटक का तमिल नाटक साहित्य मे विशेष स्थान है। एक नाट्य-कृति के रूप मे ही नही अपितु तमिल के एक महाकवि की जीवनी को प्रस्तुत करने वाली कृति के रूप मे इसका महत्व असदिग्ध है।

कविजनरजनमु *(ते० कृ०)*

यह भास्करामात्य के पुत्र अड्दिमु सूरकवि (दे०) (1720 1785 ई०) का काव्य है। इस पर सुप्रसिद्ध श्लेष काव्य 'वसुचरित्र' (दे०) [श्री कृष्णदेवरायलु (दे०) के समय के कवि रामराजभूषणुडु (दे०) की कृति] का अत्यधिक प्रभाव है। अत इसे 'पिल्ल (छोटा) वसुचरित्र' कहते है। यह तीन आश्वासो का प्रबध-काव्य है। इसमे चद्रमती-हरिश्चद्र के विवाह की कथा वर्णित है। इस काव्य मे युगीन काव्यो के अनुरूप भावपक्ष की अपेक्षा रचना शिल्प को प्रधानता दी गई है।

कवित्त *(हिं० पारि०)*

यह वर्णिक दडक छद है। इसमे 26 से लेकर 33 तक वर्ण प्रत्येक चरण मे होते है। अत मे गुरु लघु का कही-कही भेद कर लिया जाता है। 31 अक्षर का कवित्त 'मनहरण, 32 का 'जलहरण' और 'रूपघनाक्षरी तथा 33 का देवघनाक्षरी कहलाता है। 'पृथ्वीराज रासो' (दे०) मे 'छप्पय (दे०) कहे जाने वाले छद को ही 'कवित्त सज्ञा दी गई है। हिंदी मे इस छद का सर्वाधिक प्रयोग सगुण भक्ति-काव्यधारा के कवियो ने किया है। सस्कृत के वर्णिक दडको के अक्षर परिमाण तथा दूसरी ओर प्राकृत छदो के आधार 'ताल' के समन्वित रूप का ही परिणाम यह छद है। आगे चलकर सस्कृत के दडक छद प्राकृतो के प्रभाव से तालबद्ध करके गाये जाने के कारण लोक गीतो की अक्षय निधि बन गये। परतु आज 'प्राकृत पंगलम्' के अतिरिक्त प्राकृत म अन्य समवर्णिक छद प्राप्त नही होते है। इसीलिए प्राकृत मे प्रचलित दडका और हिंदी मे प्रचलित दडको मे कोई साम्य बिठाना कठिन हो गया है। फिर भी 'सूरसागर' (दे०) के कुछ पद बीज की कड़ी सिद्ध होते हैं—

छोटी छोटी गोडियाँ, अँगुरियाँ छबीली छोटी
नख ज्योति मोती मानो, कमल दलनि पर।
ललित-अगन खेलैं ठुमकि ठुमकि डोलैं
झुनुक-झुनुक बोलैं, पैंजनी मृदु मुखर।

कवित्त-रत्नाकर *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1649 ई०]

यह सेनापति (दे०) के स्फुट पदों का संग्रह ग्रंथ है। इसकी पाँच तरंगों अथवा अध्यायों में कुल 394 छंद हैं। इसकी 11 हस्तलिखित प्रतियाँ पायी जाती हैं, जिनमें से 9 भरतपुर के पुस्तकालय में उपलब्ध हैं। डा० उमाशंकर शुक्ल ने 1936 ई० में हिंदी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा इसका प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित करवाया था।

'कवित्त-रत्नाकर' की पहली तरंग में 89 श्लेष-परक छंद हैं। ब्रजभाषा की साधारण शब्दावली का ऐसा चमत्कारपूर्ण प्रयोग कवि ने किया है कि प्रत्येक छंद के दोहरे अर्थ निकलते हैं। द्वितीय तरंग के अधिकांश पदों में रूप-वर्णन एवं नायिका-भेद का उल्लेख होने के कारण शृंगार की प्रधानता है। तीसरी तरंग में षड्ऋतु-वर्णन है और वसंत को ऋतुराज के अनेक प्रतीकों में बाँध-कर प्रस्तुत किया गया है। चौथी तरंग में रामकथा है और पाँचवी तरंग में प्रकृति का आलंबन-रूप में सरस चित्रण करने के कारण सेनापति अपना सानी नहीं रखते हैं। हिंदी-साहित्य में प्रकृति-चित्रण के लिए सेनापति एक अलग शैली के धनी के रूप में जाने जाते हैं।

कवित्रयम् *(मल० पारि०)*

बीसवीं सदी के आरंभ में मलयाळम कविता में नयी प्रवृत्तियों का प्रवर्त्तन और उन्नयन करने वाले तीन प्रमुख कवियों—कुमारन् आशान् (दे०), वळ्ळत्तोळ् (दे०) नारायण मेनन, और उळ्ळूर (दे०) परमेश्वर अय्यर् (दे०) केरल साहित्यचरितम्)—को साहित्य के विद्यार्थी 'कवि-त्रयम्' के नाम से जानते हैं।

जब तक इन कवियों ने काव्य-जगत में पदार्पण किया था तब तक कविता का नवोत्थान अवश्य हो चुका था, परंतु चमत्कारपूर्ण रचना-कौशल को सर्वोपरि महत्व देने वाली क्लासिक शैली के कवियों की ही उस समय प्रतिष्ठा थी। इन तीनों कवियों ने भी पहले क्लासिक काव्य लिखकर नाम कमाया था, परंतु इनका वास्तविक महत्व तभी प्रकट हुआ जब इन्होंने आंतरिक अनुभूतियों को व्यक्त करने वाले गीत और खंडकाव्य लिखकर मलयाळम में रोमांटिक आंदोलन को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया।

सन् 1909 ई० में प्रकाशित आशान् की कविता 'वीण पूवु' (दे०) ने कविता की इस नयी धारा का प्रवर्त्तन किया था। बाद में उन्होंने जातिगत असमत्वों के विरोध में और मानवीय महत्व के समर्थन में कई रचनाएँ प्रका-शित कीं। वळ्ळत्तोळ् की कविता का मुख्य स्वर भारतीय राष्ट्रीयता और गांधीवाद था। सिद्धहस्त क्लासिक कवि उळ्ळूर ने भी बाद में इन दोनों की तरह रोमांटिक आंदोलन को पुष्ट किया और समसामयिक विषयों पर भावपूर्ण कविताएँ लिखीं।

इन तीनों कवियों ने जो मार्ग दिखाया, वह मलयाळम कविता के लिए उज्ज्वल सिद्ध हुआ। अनेक कवि इनके प्रभाव-क्षेत्र में आए और मलयाळम की काव्य-शाखा परिपुष्ट हुई। इस त्रिमूर्ति को आधुनिक मलयाळम कविता का प्रवर्त्तक-प्रतिष्ठापक कहा जा सकता है।

कवित्व तत्त्व विचारम् *(ते० कृ०)*

यह आधुनिक तेलुगु आलोचना के प्रवर्तक डा० कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी (दे०) की रचना है। इसमें प्राच्य और पाश्चात्य आलोचना-पद्धतियों का समन्वय कर, काव्यांगों—रस, भाव, चरित्र-चित्रण आदि का विश्लेषण किया गया है। 'आंध्रमहाभारतमु' (दे०) की विशिष्टता, पिंगळि सूरना (दे०) के 'कलापूर्णोदयमु' (दे०) काव्य के कथा-रचना-कौशल की प्रशंसा (इस काव्य की कथा शेक्स-पियर के 'कॉमेडी आफ़ एरर्स' के समान लगती है), काव्यों के अश्लील शृंगार-वर्णन की निंदा आदि विषयों से युक्त यह ग्रंथ रेड्डी जी की पक्षपात-रहित तथा सुनिश्चित आलोचना का प्रमाण प्रस्तुत करती है।

तेलुगु मे आधुनिक आलोचना का श्रीगणेश इसी पुस्तक से हुआ है।

कविनी साधना *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1961 ई०]

यह ग्रंथ उमाशंकर जोशी (दे०) की आलोचक दृष्टि का परिचायक है। सन् 55 में 'नडियाद' में लेखक ने साहित्य-परिषद् के साहित्य-विभाग के अध्यक्ष के रूप में 'कविनी साधना' नामक जो महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया था वह इस संग्रह का प्रथम लेख है जिसके आधार पर समग्र कृति का नाम रखा गया है।

लेखक ने कवि की साधना के तीन सोपान स्वीकार किये हैं: (1) कवि जगत के पदार्थों को विशेष भाव से ग्रहण करता है; (2) कवि की चेतना में संचित

इस सामग्री का किसी विशेष प्रक्रिया से रूप बनता है, तथा (3) कवि इस रूप को यथातथ्य शब्दस्थ करने का प्रयास करता है। किसी अलौकिक परिस्पद के कारण जब बाह्य जगत के पदार्थ कवि-चित्त मे भावमय मूर्ति के रूप मे प्रकट होते है तो वह इस मूर्ति को वाङ्मय-रूप देता है।

इस सग्रह के 'मत्र-कविता' नामक लेख मे अरविंद की काव्य-भावना का विवेचन किया गया है। श्री अरविंद का कथन है कि 'सौदर्य और रस के अतिरिक्त कविता मे दर्शन की दीप्ति हो तब यह मत्र-रूप होती है।' उमाशकर 'सावित्री' को इसके उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत करते है। 'वर्ड्सवर्थ के काव्य-विचार' नामक लेख मे 'वास्तविक जीवन के शब्द से कविता की निर्मिति होनी चाहिए'— इस कथन की समीक्षा करते हुए लेखक कहता है कि स्वय वर्ड्सवर्थ की कविता ने इस कथन को असत्य सिद्ध कर दिया है।

उपर्युक्त लेखो के अतिरिक्त इसमे 'वास्तववाद', 'कविता शिक्षक बलवतराय', 'पद्यानुवाद नी समस्या', प्रख्यात आलोचक श्री विष्णुप्रसाद त्रिवेदी (दे०) की 'विवेचन नी रचना', 'विश्वमानवनो उद्गाता टैगोर', 'सरस्वतीचन्द्र' (दे०) और 'अर्नेस्ट हेमिंग्वे' पर आलोचनात्मक लेख है। श्री जोशी ने काव्य तत्व तथा अन्यान्य कृतियो का कितना गहन अध्ययन किया है यह ग्रथ इसका प्रमाण है।

'कविनी साधना' गुजरात के उच्चकोटि के कविता तथा अन्य सृजनात्मक साहित्य-विधाओ के प्रति एक विचारो का परिचय देने वाला एक महत्वपूर्ण ग्रथ है।

कविपुष्पमाला *(मल० कृ०)*

यह वेण्मणि महन् नपूतिरिप्पाड् (दे० नपूतिरिप्पाड्, अच्छन्, वेण्मणि) का खडकाव्य है जिसमे मलयाळम के तत्कालीन कवियो की उपमा विभिन्न पुष्पो से दी गई है। कात्तुट्ळि अच्युत मेनन के इसी नाम और विषयवस्तु के पूर्वप्रकाशित काव्य मे प्रस्तुत कवि और इनके पिता के लिए निर्धारित स्थान से असतुष्ट होकर उसकी प्रतिक्रिया के रूप मे कवि ने इसकी रचना की थी। वेण्मणि की सहज हास्यमय रचना शैली और ऋजु भाषा का यह काव्य अच्छा उदाहरण है। इसी शैली मे 'कविभारतम्', 'कवि रामायणम्', 'कविमृगावली' आदि काव्य विभिन्न कवियो द्वारा बाद मे रचे गये।

कवि-प्रिया *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवी शताब्दी ई० का अतिम भाग]

'कवि प्रिया' के लेखक आचार्य कवि केशवदास (दे०) है। ग्रथ मे 16 अध्याय है। इनमे अलकार, दोष और कवि शिक्षा पर विशेष प्रकाश डाला गया है तथा अन्य काव्यागो की चर्चा-मात्र है। केशव ने वर्ण्य विषय को तथा उसे भूषित करने वाले साधनो को अलकार कहा है— प्रथम को 'साधारण' अलकार और द्वितीय को 'विशिष्ट' अलकार। अलकार के सबध मे उनकी प्रमुख धारणा है कि नारी के समान सर्वगुण सपन्न कविता भी अलकार के बिना शोभा नही देती—

जदपि सुजाति सुलक्षणी सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न बिराजई कविता बनिता मित्त॥

उनका यह दृष्टिकोण सस्कृत के अलकारवादी आचार्यो— भामह (दे०), दडी (दे०) और उद्भट (दे०) के अनुरूप माना जाता है। पर इतना होते हुए भी उनका रस के प्रति समादर भाव कुछ कम नही है (दे० 'रसिकप्रिया')। प्रस्तुत ग्रथ का लक्षण-पक्ष अधिक पुष्ट नही है। कही वह अस्पष्ट और अव्यवस्थित है तो कही अशास्त्रीय और असगत। फिर भी, हिंदी की काव्यधारा को भक्ति-पथ से रीति पथ की ओर मोडने का श्रेय यदि केशव को दिया जाता है तो केवल इस ग्रथ के कारण।

कवि माधव याची कविता *(म० कृ०)*

कवि माधव अर्थात् मा० के० काटदरे का जन्म सन् 1892 ई० मे हुआ था और मृत्यु सन् 1958 मे। इन्होने उत्कृष्ट ऐतिहासिक कविताओ का प्रणयन किया है। मराठो के इतिहास से नाटकीय प्रसगो को चुनकर इन्होंने कलात्मक गीत लिखे है। इनकी रचनाओ मे सफाई तथा प्रभावक्षमता है। अपनी कविता मे इन्होने अर्थालकारो का समुचित विनियोग किया है। सामान्य रूप से इनके काव्य का कलापक्ष अधिक सपन्न है। 'शनिवारवाड्यापुढे' 'तारापूरचा सग्राम' आदि इनके स्फूर्तिप्रद ओजस्वी ऐतिहासिक गीत है।

'ध्रुवावरील फुलें' तथा 'फेकलेली फुलें' इनकी स्फुट कविताओ के सकलन है। इन्होंने यद्यपि शिशुगीत, प्रेमगीत, विनोदी तथा मृत व्यक्ति को सबोधन कर गीत भी लिखे है तथापि इनकी ऐतिहासिक कविताएँ ही विशेष प्रसिद्ध हैं।

कवियरंग कविदै *(त० पारि०)*

यह तमिल की नवीनतम काव्य-विधाओं में से है। इसका प्रचलन सन् 1940 के बाद हुआ है। कवियरंगम् कवि-सम्मेलन के समान एक सामूहिक आयोजन है। इसमें कविगण पूर्व-निश्चित विषयों पर कविताएँ पढ़ते है। संगोष्ठी के समान कवियरंगम् में भाग लेने वाले कविगण एक ही विषय के विभिन्न पक्षों से संबंधित कविताएँ पढ़ते हैं। 'कवियरंग कविदै' (कवियरंगम् में पढ़ी जाने वाली कविताएँ) में तमिल काव्य की विषय और शैलीगत रूढ़ियों का पालन नहीं किया जाता है। 'कवियरंग कविदै' की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—कवियरंगम् में कवियो को, श्रोताओं को आकृष्ट करने के लिए, स्वयं अपनी कविताओं का पाठ करना पड़ता है; अतः वे सरल शैली और सरल नवीन छंदों का प्रयोग करते हैं। 'कवियरंग कविदै' में हास्य का पुट अनिवार्यतः रहता है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक विचारधाराओं और क्रिया-कलापों की ओर संकेत रहता है।

'कवियरंग कविदै' की अपनी सीमाएँ भी है। कवियरंगम् में प्रथम बार भाग लेने वाले कवि अथवा किसी विशिष्ट राजनीतिक दल या सामाजिक, धार्मिक संस्था से संबद्ध कवि कभी-कभी कवियरंगम् की मर्यादा का उल्लंघन कर देते हैं। वे उक्त आयोजन के अवसर पर अपने विरोधी दल या संस्था से संबद्ध व्यक्तियों की निंदा या तिरस्कार करने में नहीं चूकते। इतना होते हुए भी 'कवियरंग कविदै' युगीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक विचारों के प्रचार का एक प्रबल माध्यम बन गया है। यद्यपि सामान्य कविता और 'कवियरंग कविदै' में विभाजन-रेखा खीचना कठिन है तथापि इसका लक्षण बहुत स्पष्ट है। इसे एक नवीन काव्य-विधा माना जाता है। अनेक तमिल कवि जिन्हें परंपराबद्ध काव्य-रचना मे विशेष सफलता नहीं मिली, उन्हें 'कवियरंग कविदै' की रचना में विशेष सफलता मिली है। आज तमिल प्रांत में विभिन्न सामाजिक उत्सवों, विवाह आदि के अवसर पर 'कवियरंगम्' का आयोजन किया जाता है।

कविरत्न, सत्यनारायण *(हि० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1918 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के सराय नामक ग्राम में हुआ था। इनका पालन-पोषण ताजगंज (आगरा) के बाबा रघुवरदास के यहाँ हुआ था। इनका गार्हस्थ्य जीवन अधिक सुखकर नहीं रहा था। सेंट पीटर्स कालेज से इन्होंने एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। ये धर्म से सनातनी थे और इन पर स्वामी रामतीर्थ के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था।

इनकी स्फुट कविताओं का संग्रह 'हृदय-तरंग' नाम से श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रकाशित कराया है। इनकी कविताओं में राजभक्ति, राष्ट्रीयता, देशगौरव, जाति-उत्थान एवं अतीत-गौरव-गान का स्वर पाया जाता है। 'भ्रमर दूत' पुराने कथ्य को लेकर आधुनिकता के साँचे में ढालकर लिखी गयी सुंदर प्रबंध कविता है। इन्होंने 'उत्तररामचरित' (दे०), 'मालतीमाधव' (दे०) और 'होरेशस' नामक ग्रंथों का अनुवाद किया था। समन्वयवादी कवि होने के कारण इन्होंने रसिया, पद, छप्पय, लावनी, कुंडलियाँ, ग़ज़ल, अष्टक, षट्पदी, दोहावली, स्तवन, अन्योक्ति आदि विभिन्न शैलियों का प्रयोग अपने काव्य में किया था। इनकी भाषा ब्रज है और उसमें ग्रामगीतों का लोच और मार्दव स्तुत्य है। निश्चय ही ये राष्ट्र-गौरव के आख्याता एवं ब्रजभाषा के उत्थान में बृहत्त्रयी [रत्नाकर (दे०), भारतेंदु (दे०), कविरत्न] के कवि हैं।

कविराजमार्ग *(क० कृ०)*

कन्नड भाषा के उपलब्ध ग्रंथों में 'कविराजमार्ग' सर्वप्रथम है। इसके रचयिता राष्ट्रकूट-सम्राट् नृपतुंग अमोघवर्ष (814-866 ई०) माने जाते थे। किंतु अद्यतन खोजों से यह पता चलता है कि इसके रचयिता नृपतुंग के सभासद श्रीविजय रहे होंगे।

'कविराजमार्ग' दंडी के काव्यादर्श (दे०) के आदर्श पर लिखा गया एक लक्षणग्रंथ है। इसमें दोषानु-दोष-वर्णन- निर्णय, शब्दालंकार-वर्णन-निर्णय तथा अर्थालंकार प्रकरण-नाटक तीन परिच्छेद हैं। लक्षण-निरूपण के अतिरिक्त इसमें कन्नड भाषा, पिंगल-साहित्य, कर्णाटक की सीमाएँ आदि की चर्चा भी है। इसमें उस समय प्रचलित कन्नड काव्य-भेदों का भी परिचय दिया गया है। कविराजमार्गकार भामह की कृति से परिचित थे; उद्भट और वामन से उनका परिचय नहीं था। दंडी उनका आदर्श लक्षणकार है और दंडी के गुर में गुर मिलाकर उन्होंने भी कहा है, 'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते'। किंतु उसने दंडी की कृति की नकल नहीं की है। उसमें लेखक की मौलिक विचारधारा भी है। जहाँ दंडी

ने दोषो का स्पर्श मात्र किया है, वहाँ कविराजमार्गकार ने दोषो की विस्तृत चर्चा की है। उसने गुणो को रसपरक माना है जो उसकी मौलिक उद्‌भावना है।

दडी के समान कविराजमार्गकार ने भी रसो को रसवदालंकारो के अतर्गत माना है। अतर यह है कि जहाँ दडी मे केवल आठ रस प्रोक्त है वहाँ 'कविराजमार्ग' मे शात को भी मिलाकर नौ रस बताये गये हैं। शात रस के इतिहास का स्मरण करने पर ज्ञात होगा कि ग्रथकर्ता के जैन होने के कारण यहाँ शात का उल्लेख हुआ होगा।

भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास की दृष्टि से दूसरी महत्वपूर्ण बात है 'कविराजमार्ग' मे ध्वनि का उल्लेख। 'कविराजमार्ग' तथा 'ध्वन्यालोक' की रचना प्राय एक ही समय हुई होगी। किंतु सुदूर कश्मीर से यह इतने शीघ्र कर्णाटक कैसे आ पहुँचा—यह आश्चर्य की बात है, किंतु 'कविराजमार्ग' मे कही भी यह सबूत नही मिलता कि उसके लेखक ने 'ध्वन्यालोक' का अवलोकन किया था। लेखक के अनुसार ध्वनि का क्या अभिप्राय है—यह स्पष्ट नही होता। उसने पैंतीस अलकारो के साथ छत्तीसवे अलकार के रूप मे ध्वनि को भी जोड दिया है। एक ही छद में उसने लक्ष्य तथा लक्षण को सँजो दिया है। विद्वानो का विचार है कि कविराजमार्गकार ने ध्वन्यालोक की तो बात ही नही, ध्वनिकारिकाओ को भी नही देखा होगा।

कविराजमार्गकार ने केवल सस्कृत आलकारिको की नकल न कर कन्नड भाषा की प्रकृति का सम्यक् अनुशीलन कर कन्नड काव्यो की विशेषताएँ भी बताई है। उसके अनुसार कन्नड कविता मे यति अनिवार्य नही है, निदर्शनालंकार कन्नड की प्रकृति के अनुकूल है। अलकारो के अतिरिक्त भाषा-विज्ञान की कई बातें भी इसमे मिलती हैं। अपने समय से पूर्व की भाषा को लेखक ने 'पळगन्नड' कहा है। उसके अनुसार उत्तरी तथा दक्षिणी उसके दो भेद भी थे। पूर्व-सूरियो का उल्लेख करते हुए किसी प्राचीन रामायण के छदो का उद्धरण भी दिया है। 'कविराजमार्ग' कन्नड भाषा एव सस्कृति का रत्न-दर्पण है।

कवि शेखर *(बँ० ले०)*

कवि के जन्म-स्थान तथा समय के सबध मे निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है। इतना तो निश्चित है कि ये महाप्रभु चैतन्य के परवर्ती है। इनका प्रकृत नाम देवकीनदन था। इनके पिता का नाम चतुर्भुज एव माता का हीरावती था। ये सिंह वश के थे।

इनकी चार पुस्तको का उल्लेख मिलता है। 'गोपाल चरित'(महाकाव्य), 'गोपीनाथ बिजय' (नाटक)। दोनो उपलब्ध नही है। अन्य दो कृतियाँ है 'गोपाल-कीर्तनामृत' एव 'गोपाल-बिजय'।

'गोपाल-बिजय' अतिम एव महत्वपूर्ण कृति है। यह ग्रथ मूलत वर्णनामूलक काव्य है, अन्य कृष्ण-मगल काव्यो के समान गीतिमूलक नही। भागवत के कृष्ण के ऐश्वर्य को गौण कर मधुरा-भक्ति के वर्णन की इन्होने चेष्टा की है। अधिकाश ग्रथ 'पयार' छद मे लिखा गया है, कहीं-कही त्रिपदी में भी वर्णन है।

'गोपाल-बिजय' की भाषा सरल है एव वर्णन हृदयग्राही। इनमे कवित्व-प्रतिभा थी, अत इनमे पाडित्य-प्रदर्शन नही है। उपमा आदि अलकारो का सुदर प्रयोग मिलता है। 'गोपाल-बिजय' मे स्थान-स्थान पर 'चैतन्य-चरितामृत' की प्रतिध्वनि है।

कृत्तिबास की रामायण (दे०) तथा काशीराम दास के 'महाभारत' (दे०) के समान 'गोपाल-बिजय' को कृष्णायन कहना अधिक समीचीन होगा।

कवि-समय *(हिं० पारि०)*

कवि-समय से आशय है कवियो मे परपरागत रूप से प्रचलित मान्यताएँ, परिपाटियाँ और विचार-पद्धतियाँ। भारतीय काव्यशास्त्र मे इसका समग्र, सुचिंतित और सविस्तर शास्त्रीय विवेचन राजशेखर(दे०) ने किया है। यद्यपि उनसे पूर्व वामन (दे०) ने 'काव्य-समय' अभिधान मे कवियो की व्याकरण और छद-विषयक परिपाटियो का उल्लेख किया था, तथापि कवि-परपराओ को बृहत्तर क्षेत्र मे शास्त्रीय रूप प्रदान करने का श्रेय राजशेखर को ही है। उनके अनुसार 'परपरा-प्रचलित, कवियो द्वारा व्यवहृत, अशास्त्रीय और अलौकिक बातो को 'कवि-समय' कहा जाता है' (काव्यमीमासा)। राजशेखर ने तीन प्रकार के कवि-समयो का निरूपण किया है स्वर्ग से सबद्ध चद्र, कामदेव, शिव, नारायण, दामोदर आदि विषयक 'स्वर्ग्य' कवि-समय, नाग, सर्प, दानव, दैत्य से सबद्ध 'पातालीय' कवि-समय तथा पृथ्वी से सबद्ध विविध 'भौम कवि-समय'। राजशेखर ने भौम कवि-समय को बारह प्रकारो मे विभक्त किया है जिनमे जलाशय, हस का नीर-क्षीर विवेचन, रत्न, बसत, अशोक, अधकार की सुभेद्यता, मलयगिरि को चदन का स्थान मानना, चकवा-चकवी-विषयक प्रकरण, चकोर की चद्रमा मे आसक्ति

एवं अंगार चुगना आदि स्वर्ग और पाताल से इतर सभी कवि-समय समाविष्ट है।

कवींद्रवचन-समुच्चय *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शताब्दी ई०]

'कवींद्रवचन-समुच्चय' संस्कृत का सबसे प्राचीन सूक्ति-संग्रह है। इसके संग्रहकर्ता के विषय में कोई जानकारी नहीं है। इसमें जिन कवियों की उक्तियाँ संकलित हैं उनका समय 1000 ई० के बाद का नहीं है। अतः इस आधार पर इसका रचना-काल ग्यारहवीं शताब्दी का प्रथम चरण ठहरता है। इसमें कुछ अप्रसिद्ध बौद्ध कवियों के पद्य भी संगृहीत हैं; अतः कुछ लोग इसके संग्रहकर्ता को बौद्ध मानते हैं।

इसमे अनेक नीतिविषयक तथा शिक्षाप्रद पद्य संगृहीत हैं जो मनुष्य के जीवन को व्यावहारिक बनाने में सहायक हैं। इसके बाद ऐसे संग्रहों की परंपरा चल पड़ी और इस प्रकार के अनेक ग्रंथ लिखे गये।

कषिञ्ञ कालम् *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1957 ई०]

रचनाकार के० पी० केशवमेनन (दे०)। 'कषिञ्ञ कालम्' का अर्थ है अतीत के दिन। यह यशस्वी पत्रकार, सार्वजनिक नेता तथा केरलीयों में अग्रणी केशव मेनन की सत्तर वर्ष की जीवन-कथा है। मलाबार के मध्यवर्गीय परिवार में जन्मे श्री मेनन ने सामान्य शिक्षा केरल व मद्रास में पाई। उन्होंने विलायत जाकर बैरिस्टरी की शिक्षा ग्रहण की। आगे वे कांग्रेस के कार्यक्षेत्र में कूद पड़े। उनके जीवन में कितनी ही घटनाएँ घटीं। अब तिरासी वर्ष की पक्व अवस्था में भी नियमित जीवन के कारण दृढ़चित्त व दृढ शरीर हैं। नयनों की शक्ति वर्षों पहले नष्ट हो चुकी तथापि अध्ययन-लेखन जारी है। 'मातृभूमि' में प्रति सोमवार उनका लेख आता है। सार्वजनिक सभा में भाषण भी देते हैं। उनकी आत्मकथा केरल तथा भारत के अतीत राजनीतिक एवं सामाजिक आंदोलनों के चुने हुए मार्मिक प्रसंगों की कथा है।

मेनन जी इस ग्रंथ में बचपन की स्मृतियों से लेकर केरल प्रदेश की स्थापना (1957) तक की बातें स्मरणमंडल और दैनंदिनी के आधार पर सुनाते हैं। इस ग्रंथ में वर्णित महत्वपूर्ण सार्वजनिक प्रसंगों में कुछ निम्नलिखित है—मलाबार लहळा (माप्पिळा आंदोलन) 'मातृभूमि' की स्थापना, वैक्कम सत्याग्रह, द्वितीय विश्वयुद्ध, आज़ाद हिंद फ़ौज की स्थापना तथा ऐक्य केरल आंदोलन। प्रत्येक प्रसंग पर अपने अनुभव के आधार पर ही मेनन जी ने लिखा है। मलाबार लहळा का सही विवरण इसमें मिलता है, वैक्कम सत्याग्रह का भी। आज़ाद हिंद फ़ौज की सेवा के काल में मेननजी को जेल का जो कड़ा अनुभव हुआ वह विशेष रूप से वर्णित है। 'मातृभूमि' में वे पुनः आये और वही कार्य करते है। लंबे सार्वजनिक जीवन ने उन्हें सुख एवं दुःख का अनुभव कराया। दोनों को स्वीकार कर वे जीवन के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण से ही आगे बढ़े।

सरल भाषा और अकृत्रिम शैली इस ग्रंथ मे शुरू से अंत तक पाई जाती है तथापि कुछ व्यक्तिगत मार्मिक प्रसंगों पर उसमें भावुकता का पुट भी है। मलयाळम साहित्य की चुनी हुई सफल आत्मकथाओं में यह ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय है।

क़सीदा *(उर्दू० पारि०)*

इस काव्य-विधा के माध्यम से कवि किसी राजा, सम्राट्, महापुरुष धनाढ्य व्यक्ति अथवा किसी वस्तु का प्रशस्तिगान करता है। इसके लिए विशिष्ट छंद का बंधन नहीं है। रचना-शैली की दृष्टि से यह ग़ज़ल का सर्वांगसम रूप है, परंतु आकार, विषय-वस्तु और भाषा की दृष्टि से दोनों में मिलता है। ग़ज़ल में कम-से-कम पाँच और अधिक-से-अधिक पंद्रह शेरों का विधान है परंतु क़सीदा मे कम-से-कम पंद्रह शेर अपेक्षित होते हैं और अधिक-से-अधिक की कोई सीमा नही है। ग़ज़ल में प्रायः शृंगारिक भावनाओं का मार्मिक चित्रण होता है जबकि क़सीदा किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का गौरव-गान होता है। ग़ज़ल की भाषा माधुर्य और प्रसाद-गुण-संपन्न तथा अत्यंत कोमल होती है परंतु क़सीदा की भाषा-शैली ओज-गुण-प्रधान होती है। शब्दों के लालित्य से अधिक उनकी भव्यता एवं औदात्य का ध्यान रखा जाता है। क़सीदा को विषयवस्तु की दृष्टि से प्रायः चार भागों में विभक्त किया जाता है—'तश्बीब', 'गुरेज़', 'मदह' और 'हुस्न-ए-तलब'। भूमिका रूप में लिखी गयी पंक्तियाँ 'तश्बीब' कहलाती हैं। भूमिका के पश्चात कवि 'गुरेज़' की ओर प्रवृत्त होता है। यहाँ कवि विवेच्य व्यक्ति अथवा वस्तु की प्रशंसा की ओर मुड़ता है। तदुपरांत प्रशस्ति-गान फूट पड़ता है। और इस प्रकार 'मदह' मे अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया जाता है। यह वर्णन कहीं-कहीं अत्युक्ति की सीमा का स्पर्श

करने लगता है। अत मे 'हुस्न ए-तलब' के सदर्भ मे कवि अपनी हार्दिक इच्छाओ, मनोकामनाओ एव आवश्यकताओ की पूर्ति का निवेदन अत्यत कलात्मक शैली मे करता है। कसीदा का वह बैत जो अत्यत प्रभावशाली, कवित्वपूर्ण और मार्मिक होता है, 'शाहबैत' कहलाता है।

कस्तूरि नारायण *(क० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

कस्तूरि नारायण मलयाळम भाषाभाषी होते हुए भी कन्नड के प्रसिद्ध लेखक हुए है। इनका जन्म केरल के त्रिपुणिमुरा मे हुआ था। ये मैसूर विश्वविद्यालय मे इतिहास के अध्यापक रहे और कुछ दिन दावणगेरे के डी० आर० एम० कालेज के प्रिंसिपल भी रहे। इन्होने बीस से अधिक पुस्तकें लिखी है। 'अणकु मिणकु' इनकी कविताओ का सग्रह है। 'उपाय वेदात' इनके निबधो का सग्रह है जिसमे मृदु हास्य है। 'अनर्थ कोश' इनकी उत्तम हास्य शैली का प्रमाण है। 'गाळि गोपुर' और 'चक्रदृष्टि' इनके मौलिक उपन्यास हैं तो 'पातालदल्लि पापच्चि' (पाताल मे मुन्ना) और 'नीद जीवि' (दुखी मनुष्य) इनके अनूदित उपन्यास हैं। 'दिल्लीश्वरन दिनचरि' मे बाबर की स्मृतियो का वर्णन किया है। इनका 'गगय्यन गडिबिडि' (गगय्या की गडबडी) नाटक लोकप्रिय हुआ है।

कस्तूरि रगकवि *(ते० ले०)*

फ्रेंच गवर्नर डूप्ले के दुभाषिये आनदरग पिल्लै के दरबार मे रहने वाले कस्तूरि रगकवि (वेंकट कृष्णार्य के पुत्र) ने (सन् 1736 1790 ई०) अपने आश्रयदाता के नाम पर आनदरग राट्छदस् अथवा लक्षण-चूडामणि के नाम से लक्षण-ग्रथ की रचना की थी। 'साब' मुकुट से सीस (देशी छद) पद्यो मे, ठेठ तेलुगु शब्दो के 'साब निघटु' (शब्दकोश) की रचना की। इनके अतिरिक्त 'कृष्णार्जुनचरित्रमु', 'पद्मनायकचरित्रमु', 'ययोपाख्यानमु' नामक काव्यो की रचना भी की। ये काव्य अभी प्रकाशित नही है।

अपने लक्षण-ग्रथ मे रगकवि ने प्राचीन ग्रथो से ही लक्ष्य और लक्षणो का सकलन किया है। चतुर्थ और अतिम आश्वास म सधि, शब्दस्वरूप आदि व्याकरण विषयो की चर्चा की है। उनकी शैली सरल और सुबोध है।

कहानी *(हि० पारि०)*

कहानी गद्य मे रचित एक लघु कलेवर कथात्मक साहित्य रूप है जिसमे भाव (दे०) अथवा विचार के किसी एक बिंदु को केंद्र बनाकर मुख्यतया तीव्र प्रभावान्विति के उद्देश्य से कथानक की सघटना की जाती है। यद्यपि भारतीय वाङ्मय मे ऋग्वेद के कथा-वृत्तो, सस्कृत मे महाकाव्यो के उपाख्यानो, आख्यायिकाओ (दे०), नीति-कथाओ, बौद्ध अवदान-ग्रथो और जातको मे कहानी का आदिम रूप उपलब्ध है, तथा मध्ययुगीन प्रेमाख्याना और मुस्लिम सस्कृति के प्रभावस्वरूप लिखे गये 'लैला-मजनू', 'यूसुफ-जुलखा', 'शीरी-फरहाद' आदि किस्सो मे भी कथा-प्रवाह पूरी रसात्मकता के साथ विद्यमान है, तथापि अपने विशिष्ट रूपाकार के कारण 'कहानी' अभिधान प्राप्त करने वाली आधुनिक कथा विधा उपन्यास (दे०) की भाँति पश्चिम के प्रभाव से आधुनिक भारतीय भाषाओ मे बीसवी शती के प्रथम दशक मे ही प्राय विकसित हुई है।

पश्चिम मे भी यद्यपि कथात्मकता से युक्त साहित्य की परपरा अत्यत प्राचीन है, किंतु आधुनिक कहानी का विकास उन्नीसवी शती की ही घटना है। कहानी को एक सुनिश्चित अर्थ देने का सुव्यवस्थित प्रयास सबसे पहले सन् 1842 मे प्रसिद्ध कहानीकार एडगर एलन पो ने किया। उन्होने किसी एक भाव की केंद्रीयता, कहानी की सक्षिप्तता और समग्र प्रभाव को अत्यधिक महत्व दिया। कहानी की कथाओ, रेखाचित्रो (दे०), शब्द-चित्रो, रिपोर्ताजो (दे०), गल्पो और चुटकुलो आदि से शैली शिल्प के आधार पर नितात पृथक रूप प्रदान करने का काय ब्रेंडर मैथ्यूस ने सन् 1885 मे अपने प्रसिद्ध ग्रथ द फिलॉसॉफी ऑफ शॉर्ट स्टोरी म किया। उसके बाद से कहानी एक स्वतत्र साहित्य विधा के रूप मे विकास को प्राप्त हुई है।

कहानी मे भी उपन्यास (दे०) के समान कथानक, चरित्राकन, देशकाल एव वातावरण और अभिव्यजना-शिल्प आदि तत्त्व माने गय है। जीवन से सदर्भित करन अथवा जीवनोपयोगी बनाने के लिए कहानी लिखने वाले मूल्यवादी कहानीकारो के लिए 'उद्देश्य भी एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। किंतु कहानी-तत्त्वो का इस प्रकार का व्यक्तित्व विश्लेषण न तो उपयोगी है और न सार्थक ही। कहानी की प्राणवत्ता उसकी प्रभावान्विति मे ही निहित होनी है। प्रभाव की अन्विति यदि कथ्य के सप्रेषण स होनी है तो कहानी का एकमात्र तत्त्व उसकी सवेदना को ही माना

जाएगा, फिर कथानक, चरित्रांकन और वातावरण-सृष्टि कितने ही अपूर्ण और धूमिल क्यों न हों। यदि कहानी की प्रभविष्णुता का कारण शिल्प का विशिष्ट प्रयोग है, तब उस कहानी के लिए उसका एकमात्र महत्वपूर्ण तत्त्व शिल्प ही होगा। वस्तुतः कहानी अपने यथासंक्षिप्त कलेवर में मूल संवेदना को तीव्रतम ढंग से संप्रेषित करने की कला है। यदि कथानक के बिना ही यह कार्य संपन्न हो सके तब कहानी अपनी अरूपता में भी सार्थक हो सकती है। पश्चिम में और भारतीय भाषाओं के अति आधुनिक कहानी-साहित्य में 'एब्सर्ड', 'फेंटास्टिक', 'अमूर्त' और 'फ़ार्स' आदि कहानियों का बहुप्रचलन इसी तथ्य को प्रमाणित करता है।

कहानी के लघु आकार को विशेष महत्व दिया जाता है और कथ्य इसे (आकार को) निर्धारित करता है। कहानीकार जितने कम शब्दों में जितना अधिक प्रभाव उत्पन्न कर सके वह उतना ही सफल माना जाएगा। इसी प्रकार कहानी के प्रकारों या भेदों का वर्गीकरण और परिगणन भी व्यर्थ है क्योंकि कहानी विशाल जीवन के किसी भी कोने से अपना भावसूत्र ले सकती है। शैलियों की संख्या भी मर्यादित नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रत्येक कहानी की अपनी अलग शैली हो सकती है।

'कहानी तिनिबंधर' *(उड़ि० कृ०)*

'कहानी तिनिबंधर' ब्रजमोहन महाति (दे०) का का एक सफल प्रयोगवादी उपन्यास है। इसमें तीन बंध हैं—मुखबंध, कटिबंध एवं पादबंध। स्वयं उपन्यासकार इसका एक पात्र है। अतः शैली की दृष्टि से यह एक नूतन प्रयोग है। कहानी, चरित्र-चित्रण, भाषा-आदि पर बल न देकर कतिपय साधारण संलापों के माध्यम से मन की विकृत अवस्था का अत्यंत कुशलतापूर्वक चित्रण हुआ है।

मानव जीवन का एक क्षण विराट् जीवन का अंश है। यही अंश पुनः जीवन के बीच से आकर जीवन की सूचना देता है। जीवन के एक-एक क्षण पर बल देकर उसकी क्षणिक प्रतिक्रियाओं का संकलन कर इस उपन्यास के अंतःस्वर को सशक्त बनाया गया है।

कांचन भट्ट *(म० पा०)*

यह गोविंद वल्लाल देवल (दे०) के नाटक 'संगीत शारदा' का पात्र है। यह धन के प्रति अपने विशेष आग्रह के कारण जीवन-मूल्यों के साथ सामंजस्य स्थापित न कर सकने के कारण मूल से टूटे हुए रूप में चित्रित हुआ है। इसके चरित्र का विकास भद्रेश्वर दीक्षित के संपर्क का परिणाम है क्योंकि इसके द्वारा दिये गये प्रलोभनों के कारण ही यह जहाँ अपनी धनेच्छा को अनायास पूर्ण होते देखता है, वहाँ पुत्री का विवाह कर सामाजिक उत्तरदायित्व से भी मुक्त हो जाना चाहता है। स्वार्थांध कांचन भट्ट धन-प्राप्ति की संभावना मात्र से विवेक भ्रष्ट हो जाता है। नानाविध प्रयत्नों से पत्नी को पुत्री शारदा का विवाह वृद्ध भुजंगनाथ से करने को तैयार कर लेता है। अपने चक्रव्यूह में भुजंगनाथ को फँसाने के लिए ही यह अपनी पुत्री शारदा को लेकर उसके घर उपस्थित होता है। विवाह के अवसर पर पुलिस द्वारा भद्रेश्वर दीक्षित और भुजंगनाथ को कैद कर लेने पर अपने धन-प्राप्ति के व्यूह को असफल होते देख कर यह विक्षिप्त हो जाता है। इस चरित्र के माध्यम से नाटककार ने स्वार्थांध व्यक्ति के एक विशेष पक्ष का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

कांचि *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे०) काव्य-विभाग का उपविभाग है जो प्राचीनतम लक्षण-ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' के अनुसार 'वाकै' उपविभाग के पश्चात् आता है। इसके अंतर्गत ऐसे प्रकरण (तुरै) रक्खे गये हैं जो कि संसार की नश्वरता से संबंधित हैं। ये प्रकरण नर एवं नारी के पक्षों के लिए दस-दस बनकर कुल बीस होते हैं। ये तत्कालीन युद्ध के साहसिक कार्यों एवं करुण दृश्यों के परिचायक हैं—यथा, युद्धवीर द्वारा वीरता की पराकाष्ठा-स्वरूप अपने ही घाव चीरकर प्राणत्याग करना, वीरगति-प्राप्त पुरुष के सिर पर अपनी छाती लगाकर हृदय-विदीर्ण पत्नी का अपने प्राण छोड़ना, वीर पति के वियोग पर नारी-समूह का क्रंदन तथा वीरगति-प्राप्त पुत्र के शोक से माता का देहांत, इत्यादि। इन मार्मिक प्रकरणों का भावमय प्रस्तुतीकरण संगमकालीन 'पुरम्' पद्य-संग्रहों में उपलब्ध है।

'अर्कत्तियम्' की लक्षण-शास्त्रीय परंपरा की 'पुरप्पोरुळ् वेण्पामालै' के अनुसार 'कांचि' उपविभाग 'वंचि' के पश्चात् आकर उससे संबद्ध पक्ष प्रस्तुत करता है। 'वंचि' आक्रमण से और 'कांचि' प्रतिरक्षा से संबंधित है। प्रतिरक्षा के बाईस प्रकरण बताये गये हैं और इनमें से कई 'तोल्काप्पियम्' (दे०) में उक्त प्रतिरक्षा के प्रकरणों में मिलते हैं।

काची कावेरी *(उ० कृ०)*

'काची कावेरी' रामशकर राय (दे०) का प्रथम नाटक है। उडिया इतिहास की यह सर्वश्रेष्ठ रोमाच-कारी कहानी युगो से उडिया चित्त को आकर्षित करती आ रही है। इस नाटक की विषय-वस्तु के निर्वाचन के पीछे तीन उद्देश्य परिलक्षित होते है—(1) जातीयता, (2) भक्ति और (3) आधुनिक रुचिबोध। विषयवस्तु ऐतिहासिक नही है, यह पूर्णत किंवदतीमूलक है। किंतु नाटक मे नाट्यरस के परिपाक के लिए वह सुसयत एव सुसगत रूप से नियोजित है। दैवी शक्ति इसे प्रत्येक पद पर नियत्रित करती हुई भी लोक-रुचि के विरुद्ध नही है। काची राणी की प्रार्थना एव सकल्प कि उनकी पुत्री पुरुषोत्तम देव की रानी बने, तथा पुरुषोत्तम देव की भीष्म प्रतिज्ञा कि काची-राजकुमारी चाडाल को सौंपी जाये, एक साथ पूर्ण हुई है। और इसी मे निहित है नियति के विद्रूप की एकात कमनीयता एव रमणीयता तथा इस नाटक के प्राण-स्पदन की नाटकीयता।

काची नरेश अपनी पुत्री पदमा के साथ पुरी दर्शनार्थ आते है। वहाँ रथयात्रा के समय महाराजा को जगन्नाथ जी के रथ के सामने झाड़ू देते हुए देखते है। महाराजा पुरुषोत्तम देव काची-कुमारी की ओर आकर्षित होते हैं, तथा उनके लौट जाने के बाद विवाह का पैगाम भेजते है। काची नरेश विवाह के प्रस्ताव को यह कहकर ठुकरा देते है कि काची राजकुमारी एक चाडाल को सौंपी नही जा सकती। अपमानित पुरुषोत्तम देव काची पर आक्रमण करते है। पहली बार उनकी हार होती हैं किंतु दूसरी बारी जगन्नाथ जी के आशीर्वाद एव कृपा से काची अभियान मे वे विजयी होते है। राजकुमारी बन्दिनी बनती है, तथा महाराज का महामत्री को आदेश होता है—पदमावती चाडाल को सौंप दी जाय। महामत्री को राजाज्ञा शिरोधार्य है। एक वर्ष बाद—आज उडीसा का राष्ट्रीय पर्व रथयात्रा है, महाराज बने है चाडाल—महामत्री पद्मावती को चाडाल को सौंप देते है। महाराज स्तब्ध है, महामत्री हर्षोत्फुल्ल, प्रजा आनद विह्वल।

ऐतिहासिक पुरुषोत्तम देव मे मानव पुरुषोत्तम देव की प्रतिष्ठा कर, उनके अतर्द्वंद्व को रूपायित करने का प्रयास नाटककार ने किया है। एक ओर राज्यापमान का प्रतिशोध दूसरी ओर पद्मावती के प्रति प्रेम। एक ओर आहत अह की फूत्कार है—पद्मावती चाडाल को समर्पित हो, दूसरी ओर निभृत अतर का प्रगाढ स्नेह पद्मावती की इस दुर्दशा से व्यथित है। नाटकीय शिल्प मे यह द्वद्व स्वत प्रस्फुटित हो नाटक को मनोज्ञता प्रदान करता है। इसी के कारण नाटकीय चमत्कार की सृष्टि हुई है। जातीयता एव भक्तिभाव इसके सहायक हैं। पुरुषोत्तम देव का अत सौंदर्य तथा नाटक का ललित कलावैभव निखर उठा है।

इसमे शास्त्रीय नियमो का पूर्ण पालन हुआ है। पाँच अक है और सुसघटित कथा वस्तु है। अपमान एव प्रतिशोध की प्रतिज्ञा से यह प्रारभ होता है। यही से अतर्द्वंद्व चल पडता है। प्रथम अक मे इस द्वद्व की सूचना मिलती है, दूसरे अक मे उसका प्रसार एव तीसरे अक मे चरम सीमा है तथा चौथे अक मे पद्मा सगीत के माध्यम से उस उद्वेलन की तीव्रता का चित्रण हुआ है। पचम अक मे पद्मावती के भाग्य विपर्यय से राजा विकल होते है, किंतु मत्री की विलक्षण नीति के कारण इस द्वद्व का अत मे सुखात पर्यवसान होता है।

इसकी भाषा एव शैली भी विषयानुरूप उदात्त है।

कातम् *(ते० पा०)*

यह पात्र श्री मुनिमाणिक्यम नरसिंहराव (दे०) की अमर सृष्टि है, जो उनकी अनेक रचानाओं की केंद्रबिंदु है। कातम् कोई कल्पित चरित्र नही है। यह नरसिंह राव की पत्नी ही थी। कातम ने अपने पति को साहित्यिक प्रेरणा दी थी और उनके पति ने अपनी रचनाओ द्वारा उनको अमर कर दिया है। कातम भारतीय नारी का सुदर प्रति-निधि है। यह अपनी चतुरता, वाकपटुता, रसिकता, त्याग एव कर्तव्य-भावना से हमारे मन पर गहरा प्रभाव डालती है। यह बचपन मे अपने अल्हडपन से, यौवन मे अपने स्निग्ध, सरस एव मोहक व्यवहार से तथा मातृत्व की प्राप्ति के उपरात अपने त्याग एव कर्तव्यशीलता से हमे मुग्ध करती है। इसने बहुत थोडी शिक्षा पायी है। फिर भी यह एक अत्यत सफल गृहिणी है। पति को सुख देने मे, पति से झगडने मे, वादविवाद करने म तथा पति के क्रोध को शात करने म जहाँ एक ओर वह अपनी बुद्धि-चातुरी से हमे चकित करती है, वहाँ दूसरी ओर यह अल्पशिक्षित होने के कारण शिक्षित ससार के अनेक विषयो के प्रति अपनी अबोधता को व्यक्त करके हास्य की सृष्टि कर, हमारे मन को मोह लेती है। कातम् आध्र का एक स्त्रीरत्न है जिसका स्वरूप घर-घर मे पाया जाता है।

कांता *(त० पा०)*

कांता स्वर्गीय सी० एन्० अण्णादुरै (दे०)-कृत 'गुमास्ताविन् पेण्' नामक उपन्यास की नायिका है। सन् 1940 ई० में टी० के० एस० ब्रदर्स ने 'गुमास्ताविन् मकळ्' नामक नाटक का अभिनय कराया था। उस नाटक से ही अण्णादुरै को उपन्यास रचने की प्रेरणा मिली। उन्हें नाटक की नायिका सीता का चरित्र प्रभावशाली नहीं लगा। अतः उन्होंने अपने उपन्यास में नायिका के चरित्र में कुछ परिवर्तन किए, इसीलिए कथा में भी जहाँ-तहाँ कुछ परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। सीता के समान कांता भी अपने माता-पिता की विवशता को देख अपने युवाप्रेमी को भुलाकर वृद्ध से विवाह कर लेती है और विवाह के अगले वर्ष ही विधवा हो जाती है परंतु वह सीता के समान वैधव्य को अपना दुर्भाग्य न मानकर समाज का क्रूर कर्म मानती है। एक अमीर युवक की सहायता से वह अपने परिवार का भरण-पोषण करती है। पहले प्रेमी द्वारा इसका विरोध किए जाने पर वह उसका वध कर देती है। सीता समाज से डरती है परंतु कांता समाज का विरोध करती है। अपने प्रेमी के वध के उपरांत जज के सम्मुख खड़ी होकर सामाजिक ढकोसलों का विवरण देती है। वृद्ध-विवाह, लोगों द्वारा निर्धनों को उपदेश, समाज में विधवा की दुर्दशा, समाज द्वारा युवती विधवा के माता-पिता को उपदेश, समाज द्वारा नारी के वैधव्य की रक्षा का प्रयत्न आदि विषयों को लेकर वह समाज पर कटु व्यंग्य करती है। कांता के रूप में अण्णादुरै ने आधुनिक जागरूक नारी की कल्पना की है। कांता अण्णादुरै की अमर कल्पना-सृष्टि है।

कांताराव, बलिवाड *(ते० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

ये तेलुगु के प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। इन्होंने अपने लेखन का आरंभ 1947 ई० से किया है। 'गोडमीदि बोम्मो' (दीवार पर गुड़िया), 'दगा पडिन तम्मुडु' (वंचित भ्राता), 'प्रवाहमु', 'संपंगि' (चंपक), 'इदे दारि' (यही रास्ता), 'पुण्यभूमि', 'नालगुमंचालु' (चार पलंग) इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त 'मत्स्यगंधी', 'सगुणा', 'अन्नपूर्णा', 'पराजयमु' आदि छोटी उपन्यासिकाएँ और डेढ़ सौ के करीब कहानियाँ। ये कभी-कभी रेडियो रूपक भी लिखते हैं। मानव-जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण, सामाजिक समस्याओं का यथार्थ चित्रण इनकी रचना का प्रमुख ध्येय है। सरल और सशक्त काव्य-व्यंजना के लिए कांताराव प्रसिद्ध हैं।

काउल *(उ० पा०)*

बैरिस्टर गोविंददास (दे०) की रचना 'अमावास्यार चंद्र' (दे०) का चंद्र है काउल। इसके चारों ओर अनेक चंद्रमाओं का घेरा है—मिस मीरा, मनीषा आदि। सभी सकलंक हैं तथापि इसकी महान् मानवीयता से समग्र अंधकार उजला है।

काउल एक अद्‌भुत चरित्र है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे गटर से इसकी उत्पत्ति हुई है तथा वही इसका जीवन-दर्शन है। किंतु पृथ्वी की समस्त शुभ्रताओं से यह अधिक धवल, अधिक शुक्ल है। काउल को यंत्रणा नहीं, और न है अनुशोचना; भाग्य के विरुद्ध नहीं है उसका विद्रोह अथवा आत्मसमर्पण। विजय के लिए नहीं है आग्रह, और नहीं है पराजय का भय। उसका जीवन है अनंत पाप की कभी न खत्म होने वाली कथा। इस अतल-स्पर्शी कलंक के बावजूद उसके चरित्र में है एक सशक्त मर्यादा।

एक नारी का अवैध उपभोग कर अनेक नारियों के मुंह में इसने हँसी प्रस्फुटित की है। सबके निकट वह पूज्य है। पाप की प्रतिमूर्ति काउल मनीषा के निकट देवता हो गया है। वास्तव में काउल शैतान भी है और देवता भी। देवत्व निजस्व है, और शैतान इस पृथ्वी के वातावरण से उद्‌भूत अनिच्छाकृत रूप।

मनीषा कहती है—"काउल, तुमने त्याग सीखा है, उपभोग भी सीखा है; किंतु दावा नहीं सीखा। तनिक इंगित पर ही तुम्हारे पद-तल में मैं लुटा देती अपना समस्त विश्व।" किंतु काउल इतना नीच नहीं है कि निस्सहायता का सुयोग पाकर नारीत्व की प्रताड़ना करे। काउल ने जीवन देखा है—नरक से स्वर्ग तक।

काकति, बाणीकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1894 ई०, मृत्यु—1952 ई०]

ये अंग्रेजी, ग्रीक और संस्कृत साहित्य के पंडित थे। काकति जी तीक्ष्ण बुद्धि-संपन्न आलोचक एवं निबंधकार थे। इनके अनेक निबंध 'आवाहन', 'बाँही', 'चेतना' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। अंग्रेजी में रचित ग्रंथ 'असमीया भाषा, इसका गठन और विकास' से

इनकी ख्याति बढी थी। असमीया भाषा और व्याकरण पर यही एकमात्र विद्वत्तापूर्ण ग्रथ है।

'प्रकाशित रचनाएँ'—'पुरणि असमीया साहित्य' (1940), 'साहित्य आरु प्रेम' (1948), 'पुरणि कामरुपर धर्मरधारा' (1955), 'कलिता जातिर इतिवृत्त', 'मा कामाख्या'।

इन्होंने असमीया के पुराने और नये दोनो काल के साहित्यो पर लिखा है। प्राचीन साहित्य की दार्शनिक, साहित्यिक और तत्कालीन सास्कृतिक पृष्ठभूमि का भी गहन अध्ययन इन्होंने किया है। नये साहित्यकारो के अध्ययन मे इन्होंने पाश्चात्य तुलनात्मक शैली अपनायी है। इनकी भाषा चित्रात्मक और सरस है, स्थान-स्थान पर काव्यात्मक गद्य का निदर्शन मिल जाता है। शैली सहज और सरल है।

ये असमीया मे वैज्ञानिक आलोचना और निबध लेखन के प्रवर्तक माने जाते है।

काकभट *(गु० पा०)*

कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी के अमर उपन्यास 'गुजरातनो नाथ' मे प्रवहमान तीन कथाओ मे से एक कथा का नायक काकभट है। छोटी किंतु तेजयुक्त आँखें, पतला पर दृढ और ऊँचा शरीर, सकल्पशीलता की छाप वाला पतली-नुकीली नाक, गरुड के समान झपट्टा मारने की शक्ति, निर्भीक व सावधान स्वभाव वाले व्यक्ति के रूप मे लेखक ने काक को पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया है। लाट प्रदेश के मडलेश्वर त्रिभुवनपाल के अत्यत विश्वासपात्र व उनके सतत परामर्शदाता की हैसियत से लाट प्रदेश का यह ब्राह्मण पाँच छह वर्षों से युद्धो और राजनीति के दाँवपेच मे व्यस्त रहने के कारण निर्भीक, यत्किंचित अभिमानी और आत्मनिष्ठ हो गया था। काक की ही राजनीतिक सूझबूझ के कारण पाटण जूनागढ के नवघण को पराजित करने मे सफल हुआ। पाटण की राजनीति मे अपना स्थान निर्दिष्ट करने मे काक को उदय महेता जैसे मत्री और मुजाल (दे०) के समान नीति निपुण महामात्य से टक्कर लेनी पडी और अतत उदय महेता का हिसाब चुकता कर वह महामात्य का विश्वास प्राप्त करने मे सफल हुआ, और स्वय मुजाल को भी यह कहना पडा कि अगर काकभट पाटण मे रहा होता तो उसका (मुजाल का) काम थोडा हल्का हो जाता। काक की राजनीतिक प्रखरता को देखकर महाराज जयदेव को केवल ईर्ष्या ही नही हुई अपितु उन्हे यह लगा कि अगर काक पाटण मे रहा तो वे कभी स्वतत्र राजा नही बन सकेंगे। इस दृष्टि से उनका यह कथन महत्वपूर्ण है "जहाँ किसी की नजर नही पहुँचती वहाँ इसकी पहुँचती है, जो काम कोई नही कर सकता वह यह कर सकता है" आप तो पितातुल्य हो" पर मुझे दो मुजाल महेता नही चाहिए।" वह अगर यहाँ रहेगा तो मुझे उसके हाथ का खिलौना बना रहना पडेगा।" इसके अलावा काकभट का एक दूसरा रूप भी है जो मजरी (कविकुलशिरोमणि रुद्रदत्त वाचस्पति की अपूर्व सुदरी कन्या) के रक्षक, प्रेमी और पति होने के कारण हमारे सामने आता है। आरभ मे काक मजरी की विद्वत्ता से प्रभावित होता है, उसे पूरा सम्मान देता है। उस रमणी के प्रति काक के मन मे जो आकर्षण पैदा हुआ है उसे साकार देखने की इच्छा उसके मन मे बलवती होती है। विवाहित होने पर वह मजरी के साथ बल-प्रयोग की धमकी देता है किंतु बार-बार उस अहकारी नारी से अपमानित होने के कारण उसका अपना अभिमान भी जाग्रत होता है जो मजरी के मान् भग के साथ समाप्त होता हुआ दिखाई देता। सक्षेप मे, काक स्वाभिमानी, राजनीतिविद्, कुशल योद्धा, निर्भीक व देशभक्तिपूर्ण सैनिक, किसी के भी दुख मे अपने को खतरे मे डाल उसे उबारने वाला, सामान्यत दृढचित्त और विनयी है।

काकळी *(मल० पारि०)*

काकळी एक द्रविड वृत्त का नाम है। इसमे बारह अक्षर होते है।

काका कालेलकर *(गु० ले०)* [जन्म—1885 ई०]

मराठीभाषी काका कालेलकर (दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर) के निर्माण मे लोकमान्य तिळक (दे०), स्वदेशी और स्वराज्य के आदोलन, पराजपे की समाज-सुधार प्रवृत्ति, प्रार्थना-समाज, विवेकानद, स्वामी रामतीर्थ, आनद कुमारस्वामी, भगिनी निवेदिता, हवेल और अवनींद्र ठाकुर (दे०) के नये कला-सप्रदाय ने महत्वपूर्ण योग दिया है। इनकी धारणा थी कि शिक्षा के द्वारा ही दशोद्धार का काम किया जा सकता है। परिणामत बडौदा के गगनाथ भारती विद्यालय मे सन् 1908 मे इन्होने अपना कार्यारभ किया। राजनीतिक कारणो से यह विद्यालय 1911 ई० मे बद हो गया। इसके पश्चात् स्वामी आनद

(दे०) के साथ इन्होंने हिमालय का प्रवास किया। वहाँ से लौटने पर अनेक संस्थाओं में घूमते हुए कालेलकर जी शांतिनिकेतन पहुँचे और वहाँ शिक्षक के रूप में कार्य करने लगे। सन् 1915 ई० में इनका साक्षात्कार गांधी जी से यहीं पर हुआ और 1917 ई० में ये गांधी जी के आश्रम में आकर रहने लगे। स्वराज्य के आंदोलनों में कालेलकर जी कई बार जेल-यात्रा भी कर चुके हैं। शिक्षा, समाज, राजनीति, साहित्य और संस्कृति आदि पर लिखे गए इनके निबंध 'कालेलकर लेखो' के नाम से ग्रंथ-रूप में प्रकाशित हुए हैं। इनके अन्य निबंध-संग्रह हैं: 'जीवन-विकास', 'जीवनसंस्कृति', 'जीवनभारती', 'जीवनप्रदीप', तथा 'जीवनचिंतन', सौंदर्य-दर्शन और संस्कार-उद्बोधन की दृष्टि से प्रवास-वर्णन करने का शुभारंभ काका साहब ने किया है। इनका 'हिमालयनो प्रवास' (दे०) गुजराती यात्रा-साहित्य की अनुपम पुस्तक है। अपने निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने वाला इनका आत्मचरितात्मक ग्रंथ है—'स्मरणयात्रा'। इनकी दृष्टि में कला का मूल्यांकन जीवन के परिवेश में ही होना चाहिए, उससे कटकर नहीं। इन्होंने कला को धर्म का विरोधी न मानकर सच्चरित्रता से संपृक्त कर दिया है। काका कालेलकर जी की शैली सरल, तेजयुक्त, प्रसादमय, सात्त्विक, संयत कल्पना से संस्पर्शित, सौंदर्य को आत्मसात् करती हुई एक 'सूक्ष्मदर्शी' भाषापारखी का परिचय दे जाती है।

काक्कै-पाडिनियार् *(त० ले०)* [समय—प्रथम शताब्दी]

'काक्कै' का अर्थ है—'कौआ' और 'पाडिनियार्' का अर्थ है—'वर्णन करने वाली महिला'। इनका वास्तविक नाम 'नच्-चैळ्ळै' प्राप्त होता है। किंतु इन्होंने एक कविता में कौए का अत्यंत मनोरम उल्लेख किया है; इसीलिए इनका नाम 'काकवर्णनशील' प्रख्यात हो गया था। संघकालीन कवयित्रियों में इनका भी अमर स्थान है। इनके द्वारा रचित दो ही पद्य प्राप्त हुए हैं पर दोनों अत्यंत सुंदर हैं। एक में विरह और दूसरे में वीरता का वर्णन है। उदाहरण—'हे सखि! इस कौए ने बोलकर, मेरी भुजाओं की कृशता के कारणभूत उस व्यक्ति (मुझे विरह-निमग्न करने वाले) के आगमन की सूचना दी है; इस कौए को सात मन श्वेत तंडुल में प्रभूत मात्रा में घी मिलाकर बलि समर्पित करूँ—तो भी वह कम होगी।'

"उस वृद्धा से किसी ने कहा—'युद्धभूमि में तुम्हारा पुत्र मरा पड़ा है।' यह वृद्धा यह कहती हुई निकल पड़ी—'यदि पीठ पर घाव लगने से वह मर गया है तो मैं इन स्तनों को, जिनका दूध पीकर वह बड़ा हुआ, काट डालूँगी।' युद्धभूमि में क्षत-विक्षत पड़े अपने पुत्र का शव देखकर वह पुत्रजन्म के समय से भी बढ़कर आनंदित हुई।"

क़ाज़ी क़ाज़न *(सिं० ले०)* [जन्म—1463 ई० के आस-पास; मृत्यु—1551 ई०]

क़ाज़ी क़ाज़न के पूर्वज सिंध में सेव्हण और ठटो नामक नगरों के निवासी थे, परंतु काज़ी ने अपने जीवन का अधिक समय सिंध के बखर नगर में बिताया था। ये इस नगर के प्रसिद्ध क़ाज़ी थे और इनके जीवन-काल में चार हाकिमों ने सिंध पर राज्य किया था, जो थे—समा वंश के हाकिम जाम नंदी और जाम फ़िरोज़ तथा अरग़ून-वंश के हाकिम शाह बेग अरग़ून और शाह हुसैन अरग़ून। क़ाज़ी साहिब वाराणसी के प्रसिद्ध सूफ़ी दरवेश सैयद मुहम्मद के शिष्य थे।

क़ाज़ी क़ाज़न का फ़ारसी भाषा में लिखा हुआ एक दीवान मिलता है। सिंधी में भी इन्होंने कई बैत कहे होंगे जिन में से केवल सात बैत प्राप्त हुए हैं। काज़ी साहिब पहले सिंधी कवि हैं जिनके लिखित रूप में इतने बैत प्राप्त हुए हैं। ये बैत 'बयान-अल्-आरिफ़ीन व तंबीह अल्-गाफ़िलीन' नामक फ़ारसी की एक पुस्तक में शाह अब्दुल-करीम के जीवनवृत्त तथा बैतों के साथ दिए हुए हैं। क़ाज़ी क़ाज़न के उपलब्ध सात बैत सूफ़ी मत के जगमगाते हुए सात रत्न हैं, जिनसे सिंध के परवर्ती अन्य सूफ़ी कवियों को भी प्रकाश मिला है। हिंदी दोहा छंद से सिंध बैतों के विकास के कुछ उदाहरण भी इन सात बैतों में मिलते हैं।

काट्टुकुरङ्ङ् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

के० सुरेंद्रन (दे०) का सामाजिक-मनोवैज्ञानिक उपन्यास। यह उनके प्रथम उपन्यास 'ताळम्' (दे०) का अगला भाग है। प्रभाकरन् और सौदामिनी के संघर्षमय दांपत्य में एक और स्त्री-पात्र अम्पिलि का आविर्भाव होता है जिसके प्रति प्रभाकरन् के मन में आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। अम्पिलि उस दांपत्य को बचाने के लिए पीछे हटने के प्रक्रम में कुचक्र में फँसकर वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए विवश हो जाती है। अंततः वह अपने परिश्रम से विजय पाती है।

इस उपन्यास में लेखक अपने इस मत का

समर्थन करता है कि मानव-मन किसी निर्धारित लक्ष्य का अनुसरण करने मे असमर्थ है और वह जगली बदर के समान चचल है। अपने विश्लेषण मे लेखक को सफलता मिली है और इस प्रकार उपन्यास महत्वपूर्ण बन गया है।

काठनिबारी घाट (अ० कृ०) [*रचना-काल—अज्ञात* ले०—महिमबरा।]

यह 12 कहानियो का सग्रह है। इसकी 'अपराजित' और 'चक्रवत' हास्य रस की कहानियाँ है। 'माछ आरु मानुह' मे नायक एक प्रचाड मछली से जूझता और पराजित होता है, इस पर हेमिग्वे का प्रभाव है। 'काठनिबारी घाट' नारी के करुण जीवन की एक छोटी कहानी है। लेखक की कथा-शैली अत्यत सरल है, उसमे वक्रता नही है।

काणे, पी० वी० *(स० ले०)*

इनका जन्म 7 मई, 1880 ई० को एक मध्यवर्गीय कोकण परिवार मे हुआ। एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्होने कुछ समय के लिए एक गवर्नमेंट सेकण्डरी स्कूल मे अध्यापक के रूप मे कार्य किया। फिर ये बम्बई हाई कोर्ट मे वकील रहे। इसके बाद इन्होने बम्बई यूनिवर्सिटी मे क्रमश 'विल्सन फाइलॉलोजिकल लेक्चरर', 'स्प्रिगर रिसर्च स्कालर' तथा 'प्रोफेसर ऑफ लॉ' के रूप मे कार्य किया। इनके अमूल्य ग्रथ-रत्नो मे से प्रमुख ग्रथ हैं—

(1) एशिएट ज्यॉग्रफी ऍड सिविलाइजेशन ऑफ महाराष्ट्र,
(2) हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र,
(3) हिंदू कस्टम्स एड मॉडर्न लॉ,
(4) हिस्ट्री ऑफ सस्कृत पोइटिक्स,
(5) वैदिक बेसिस ऑफ हिंदू लॉ,
(6) ए ब्रीफ स्कैच ऑफ पूर्वमीमासा सिस्टम,
(7) भारत रामायणकालीन समाज-स्थिति।

इनके अतिरिक्त इन्होंने अनेक सस्कृत-ग्रथो का सपादन तथा अग्रेजी भाषा मे अनुवाद प्रस्तुत किया। इनके अनेक निबध पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए तथा इनके दो प्रसिद्ध ग्रथो—'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र' और 'हिस्ट्री ऑफ पोइटिक्स' का हिंदी मे अनुवाद प्रस्तुत हुआ है।

कात्यायन *(स० ले०)* [स्थिति-काल—600 ई० पू०]

कुछ विद्वान् कात्यायन का स्थिति काल विक्रम से *2900-3000* वर्ष पूर्व मानते है। कात्य, पुनर्वसु, मेधाजित, वररुचि भी कात्यायन के नाम बतलाए जाते है। प्राचीन वाड्मय मे कौशिक, आगिरस तथा भार्गव आदि के नाम से अनेक कात्यायनो का उल्लेख मिलता है। वार्तिककार कात्यायन पाणिनि (दे०) के शिष्य बतलाए जाते है। 'कथासरित्सागर' (दे०) मे कात्यायन को कौशबी का निवासी कहा गया है। 'स्कदपुराण' के अनुसार कात्यायन के पिता याज्ञवल्क्य का आश्रम गुजरात मे था। याज्ञवल्क्य के मिथिला चले जाने पर कात्यायन महाराष्ट्र चले आये थे।

पाणिनीय व्याकरण पर कात्यायन के वार्तिक उत्कृष्ट कोटि की रचना है। इन वार्तिको के कारण ही कात्यायन वार्तिककार के रूप मे प्रसिद्ध है। पाणिनि और कात्यायन का यह शैली भेद देखा जाता है कि जहाँ पाणिनि अनेक स्वतत्र पदो के द्वारा प्राय कार्य का विधान करते है वहाँ कात्यायन अपने वार्तिको मे समस्त शैली मे ही कार्य का विधान करते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखने मे आता है कि शुक्लयजु प्रातिशाख्य के अनेक सूत्र कात्यायन के वार्तिको के समान हैं।

कात्यायन के वार्तिक पाणिनीय व्याकरण को समझने के लिए अत्यत उपयोगी है। इन वार्तिको की रचना करके कात्यायन ने व्याकरण शास्त्र को एक अमूल्य समृद्धि प्रदान की है।

कादबरी *(स० कृ०)* [समय—सातवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध]

सस्कृत गद्यकाव्य के क्षेत्र मे बाण (दे०) भट्ट की 'कादबरी' का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी रचना 'हर्षचरित' (दे०) के बाद की है। 'कादबरी' के पूर्व भाग की रचना करके ही बाण परलोकगामी हुए, अत उत्तर भाग की रचना उनके सुपुत्र पुलिदभट्ट ने की।

'कादबरी' को कथा की कोटि मे रखा जाता है। यह एक प्रेमाख्यान है। इसमे कादबरी और चद्रापीड तथा महाश्वेता (दे०) और पुडरीक इन दो युग्मो की प्रणय कथा अनुस्यूत की गई है। शापवश पुडरीक की मृत्यु हो जाती है और वह वैशपायन नाम से जन्म लेता है तथा चद्रापीड का मित्र बनता है। चद्रापीड तथा वैशपायन का सयोग से देहावसान हो जाता है और वे राजा शूद्रक (दे०) तथा तोते के रूप मे जन्म लेते है। कादबरी और महाश्वेता सखियाँ हैं।

कादंबरी का चंद्रापीड़ से तथा महाश्वेता का पुंडरीक से प्रेम होता है। उनके पुनर्मिलन के संबंध में आकाशवाणी होती है। एक दिन वैशंपायन तोता राजा शूद्रक के दरबार में लाया जाता है। वह पूर्वजन्म की घटनाओं का वर्णन करता है और पुंडरीक बन जाता है। राजा शूद्रक भी यह कथा सुनकर चंद्रापीड़ हो जाता है। दोनों का अपनी प्रियाओं से मिलन एवं परिणय हो जाता है।

बाण ने कादंबरी में सजीवता तथा प्रभावशालिता लाने के लिए समासबहुल शैली अपनायी है पर अन्यत्र लघु वाक्यों का प्रयोग भी करके उन्होंने अपनी शैली को सशक्त तथा प्रभावोत्पादक बनाया है। उनकी शैली विषय के सर्वथा अनुरूप उचित एवं सरस है। जहाँ हृदय के भावों की अभिव्यंजना है वहाँ न तो समासों का प्रयोग है, न दीर्घवाक्यों का। पं० चंद्रशेखर पांडेय ने कादंबरी को संस्कृत-साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना है। इसकी सारी कथा कौतूहलमय रोचकता से ओतप्रोत है। काव्य सौष्ठव के अतिरिक्त हमें तत्कालीन समाज के संबंध में अनेक बातों का पता चलता है। स्त्रियों द्वारा संतान-प्राप्ति के लिए जादू-टोने का प्रयोग, राज्याभिषेक की परिपाटी, शैव-शाक्त और क्षयपरक वर्ण-व्यवस्था, सती-प्रथा आदि सामाजिक जीवन के अंगो पर इसमें पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

कादंबरी *(सं० पा०)*

महाकवि बाण (दे०) भट्ट की सुप्रसिद्ध कृति 'कादंबरी' (दे०) की नायिका का नाम भी कादंबरी ही है जो कवि-कल्पित पात्र है। कादंबरी गंधर्वराज की पुत्री है। उज्जयिनी के राजा तारापीड़ का पुत्र चंद्रापीड़ जब किन्नरयुगल का पीछा करते हुए हिमालय के घोर अंतराल में स्थित आच्छोद सरोवर तक पहुँच जाता है तो उसका परिचय महाश्वेता (दे०) नाम की तपस्विनी से होता है जो अपने प्रियतम के वियोग में कालयापन कर रही थी। वही चंद्रापीड़ को अपनी सखी कादंबरी से परिचित कराती है।

प्रथम मिलन से ही दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो जाते है। दोनों सखियों के आग्रह पर चंद्रापीड़ कुछ दिन के लिए वहीं ठहर जाता है जिससे कादंबरी के साथ उसका प्रेम प्रगाढ़ हो जाता है। चंद्रापीड़ के वहाँ से प्रस्थान करने पर कादंबरी अपनी परिचारिका पत्रलेखा को चंद्रापीड़ के पास भेजती है; साथ में एक पत्र भी दे देती है जिसे पत्रलेखा ने उचित समय पर प्रस्तुत किया। अंत में जब चंद्रापीड़ के शाप की अवधि समाप्त हो जाती है तो दोनों का विवाह हो जाता है।

जिस कादंबरी का निरूपण करने के लिए प्रतिभा के धनी महाकवि बाणभट्ट ने 'कादंबरी' नामक कथा-कृति की रचना की, उसके चरित्र का पूर्ण रूप से चित्रण किए बिना ही वे यशःशेष हो गये। अनंतर उनके ही पुत्र पुलिंदभट्ट ने यद्यपि अपनी सारी शक्ति लगा कर उसे जिस किसी प्रकार पूरा कर दिया है तथापि वह कादंबरी के चरित्र का उसी रूप में चित्रण नहीं कर सके जिस रूप में बाण ने सोचा होगा।

कादंबरी *(गु० कृ०)*

प्रसिद्ध रामोपासक कवि भालण (दे०)-रचित 'कादंबरी' संस्कृत की प्रसिद्ध गद्य-रचना बाणभट्ट-रचित 'कादंबरी' का गुजराती में पद्यानुवाद है। यह पंद्रहवीं शती ई० की रचना है। इसका भाषा-सौष्ठव और वर्णन-कौशल द्रष्टव्य है।

संभवतः समस्त आधुनिक भारतीय भाषाओं में यह प्रथम पद्यानुवाद है। क्षेमेंद्र ने कादंबरी का संस्कृत पद्य में 'पद्य कादंबरी' के नाम से रूपांतर किया है, किंतु वर्तमान भारतीय भाषाओं में यह प्रथम प्रयास ही है।

क़ादरयार *(पं० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1805-6 ई०; मृत्यु—1850 ई०]

क़ादरबख्श 'क़ादरयार' का जन्म जिला गुजरांवाला (पाकिस्तान) के एक कृषक जाट-परिवार में हुआ। इनकी शिक्षा-दीक्षा सामान्य कोटि की थी। 'पूरन भगत' (दे०), 'राजा रसाल' (दे०), 'सोहणी-महीवाल', 'सीहरफी हरिसिंह नलुआ' जैसी प्रसिद्ध किस्सा-कृतियों के अतिरिक्त इन्होंने 'महिराजनामां', 'रोजानामा' आदि कुछ धार्मिक पुस्तकें भी लिखी हैं। क़िस्सा-काव्य में मुस्लिम कथा-वृत्तों के स्थान पर हिंदू वीरों के चरित्र को वर्ण्य बना कर क़ादरयार ने किस्सा-काव्य में एक नई प्रवृत्ति का सूत्रपात किया जो किशनसिंह आरिफ (दे०), कालिदास, आदि परवर्ती हिंदू कवियों द्वारा विशेष समादृत हुई। घटनाओं को विस्तार देने में कवि सिद्धहस्त हैं। इनकी रचनाओं में किसी गंभीर जीवन-दर्शन अथवा मनोभावनाओं को अभिव्यक्त करने की अपेक्षा कथागत औत्सुक्य को शांत करने की प्रवृत्ति प्रबल है, फिर भी अनेक प्रसंगों में मानवीय संवेदनाओं

की मनोहारी अभिव्यजना के कारण सुदर काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है। प्रस्तुत कवि की भाषा केंद्रीय (माझी) पजाबी है जिसमे फारसी के प्रचलित तत्सम और तद्भव शब्दो का पुट है। अधिकाश रचनाएँ सीहरफी (दे०) (ककहरा)-शैली तथा 'बैंत' (दे०) और 'दोहिरा' (दे०) छदो मे हैं। भाषा की सफलता तथा नवीन वर्ण्य विषय के कारण 'सीहरफी हरिसिंह नलुआ' और 'पूरन भगत' विशेष रूप से लोकप्रिय है। इन्ही के कारण पजाबी साहित्य मे 'कादरयार' को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

कान हरिदत्त *(बँ० ले०)*

कान हरिदत्त के जन्म-काल एव जन्म-स्थान के सबध मे निश्चित रूप से कुछ भी कहा नही जा सकता। अनुमान से ग्यारहवी से तेरहवी शताब्दी के मध्य किसी समय ये विद्यमान थे। परोक्ष प्रमाणों से लगता है कि ये पूर्वी बग के कवि थे। माता पिता के सबध मे भी कुछ ज्ञात नही।

कान हरिदत्त 'मनसा मगल' (दे०) काव्य के आदि कवि हैं। इनके गीत मनसा को स्वीकृत न हुए—ऐसा परवर्ती कवि विजय गुप्त (दे० गुप्त, विजय) के उल्लेख से ज्ञात होता है। विजय गुप्त के समय कान हरिदत्त के गीत लुप्त हो चुके थे। हरिदत्त के गीत गाथा-गीत (बैलड) थे—यह भी परवर्ती वृत्त से ज्ञात होता है। इनका छद-विधान सदोष था और शब्द-योजना सुश्राव्य नही थी—ऐसा विद्वानो का अनुमान है।

कानीया कीर्त्तन *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1861 ई० ले०—हेमचद्र बरुवा (दे०)]

आधुनिक असमीया नाट्य साहित्य मे इसका दूसरा स्थान है (*प्रथम स्थान 'रामनवमी' (दे०) का है*)। अँग्रेजो के भारत आने पर अफीम का प्रयोग बढ गया था, इससे देश की आर्थिक और शारीरिक शक्ति पर बुरा प्रभाव पड रहा था। तालुकेदार भद्रेश्वर बरुवा का परिवार अफीम-सेवन के दुष्परिणाम से किस प्रकार बरबाद हुआ, इसमे इसका चित्रण है। लेखक ने धर्म की आड मे अनैतिक कार्य करने वाले महत साधुओ पर भी प्रहार किया है। नाटक मे चुभते हुए व्यग्य है। इसमे नाटकीय गुण कम है, किंतु सुधारवादी उद्देश्य एव मनोरजन की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है।

कानूरु हैग्गडिति *(क० कृ०)*

कानुरु हैग्गडिति कन्नड के महाकवि श्री के० वी० पुट्टपा (दे०) का एक महान् उपन्यास है। करीब साढे छह सौ पृष्ठो के इस उपन्यास को हम कर्णाटक के मलेनाडु (पार्वत्य प्रदेश) सह्याचल का 'महाभारत' कह सकते है। इस दृष्टि से यह एक आचलिक उपन्यास है। 'मलेनाडु' सह्याद्रि के आचल का वह प्रदेश है जहाँ साल मे सबसे अधिक वर्षा होती है। अत वहाँ सदाबहार सस्यो का बडा जगल है। वहाँ आबनस, चदन आदि की उपज विशेष रूप से होती है। काफी, मिर्ची, ऊख, धान आदि भी होता है। ऐसे जगलो मे बडे-बडे अमीर अपना घर बनाकर रहते है। उनका एक घर ही एक गाँव होता है। उनके पास बीसियो कुली रहते है। खेती के साथ शिकार भी उनके जीवन का अनिवार्य अग होता है। वहाँ रहने वाले कुनबी (ओक्कलिग) जमीदारो की विराट् गाथा है यह उपन्यास। उपन्यास आदर्शोन्मुख यथार्थवादी है। यहाँ के जमीदार चद्रय्य गौड अन्य जमीदारो की भाँति हमेशा शिकार शराब आदि म व्यस्त रहते है। उनका घर सम्मिलित परिवार है। एक-एक करके उनकी तीन शादियाँ होती है। तीसरी पत्नी ही उपन्यास की नायिका सुब्बम्मा है जो वास्तव मे कन्या-शुल्क देकर खरीदी जाती है। गरीब परिवार की यह कन्या इस घर मे आकर सबकी सहानुभूति खो देती है। चद्रय्य गौड मे दिमागी सतुलन का अभाव है, उनमे जमीदार की सारी कमजोरियाँ है और इसका दुरुपयोग करते है पुरोहित वेंकथय्या है। इन जमीदारो के घर मे काम करने वालो मे बेगारे भी है। *अज्ञान, अधकार आदि का बोलबाला है।* चद्रय्य गौड का भतीजा हूवय्या इस उपन्यास का नायक है। वह कवि हृदय है। उस पर गाधी जी की अपेक्षा बुद्ध, रामकृष्ण, विवेकानद, वर्ड्सवर्थ, मैथ्यू आर्नल्ड आदि का अधिक प्रभाव है। गाधी के प्रभाव के कारण वह भूत प्रेत-बलि आदि का विरोध करता है, भगवद्गीता का पारायण करता है, खद्दर पहनता है। वह भावजीवी है, प्रकृति-प्रेमी है। कभी-कभी वह भाव समाधि मे लीन रहता है। उसका प्रेम 'सीता' से होता है। किंतु परिस्थितियो के कारण उसका विवाह उससे न होकर चद्रय्य गौड की पुत्री रामय्या से जबरदस्ती किया जाता है। रामय्या, सीता तथा हूवय्या इन तीनो का जीवन इसी कारण दु खमय बनता है। पारिवारिक समस्याओ से दुखी होकर वे अपनी सपत्ति का बटवारा करते है, सम्मिलित परिवार टूटता है। इन सब कारणो से हूवय्या का मन वैराग्य की ओर प्रवृत्त होता है। अपनी

धारण में आई हुई सीता से वह आध्यात्मिक ढंग से गठबंधन कर चुका है, शारीरिक रीति से नहीं करता। इस तरह दोनों शारीरिक संबंधविहीन दांपत्य जीवन-यापन करते हैं। समाज-सेवा में अपना सारा समय बिताते हैं। उनके कारण गाँव में नये युग का जन्म होता है। उधर सुब्बम्मा अपने पति की मृत्यु के बाद अपने घर के प्रबंधक सेरेगार के साथ सहवास कर गर्भिणी बनती है, उसे छिपा न पाकर दवा लेती है जिससे उसका शरीरांत हो जाता है। रामय्या भी आत्महत्या कर लेती है। अंत में हूवय्या टूटे हुए घर को जोड़ता है, 'तेनत्यक्तेनभुञ्जीथा' जैसा त्यागमय जीवन उसका आदर्श बनता है। कुनबी जाति के लोगों के वैभव, कमजोरियाँ, उनके विश्वास, आशा-अभिलाषा आदि का रत्नदर्पण है यह उपन्यास। जंगल के जीवन के वर्णन में कवि की शैली अत्यंत लोमहर्षक है। यह कन्नड की प्रतिनिधि कृतियों में से है।

कानेटकर, वसंत *(म० ले०)*

आज के प्रयोगधर्मी सफल नाटककारों में वसंत कानेटकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इतिहास-पुराणों से कथा-प्रसंगों का चयन कर इन्होंने समसामयिक ज्वलंत प्रश्नों को मुखरित किया है। इनकी 'रायगडाला जेव्हा जाग येते', 'वहातो ही दुर्वांची जुडी', 'वेड्याचे कर उन्हात', 'दुरिताच्चे दुरिजाओ', 'मलाकाहि सांगिच्याहे' आदि महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। 'रायगडाला जेव्हा जाग येते' में मराठा वीर शिवाजी और शंभा जी के पारस्परिक संबंधों का मनोवैज्ञानिक आकलन हुआ है। पुलिस के प्रति सामान्य जनता की सहज भावना तथा आदर्श पुलिस अफ़सर की कर्तव्यपरायणता का मनोहारी चित्रण 'अंगवात पुलला पारिजात' तथा 'अश्रंची फूली' नाटकों में हुआ है। पाश्चात्य समस्या नाटककार इब्सन के नाट्यतंत्र का इनकी रचनाओं पर प्रभूत प्रभाव है अवश्य परंतु समस्याओं के निराकरण की शैली भारतीय ही रही है। सामान्य भारतीय परिवारों की व्यथा-कथा की अभिव्यक्ति के साथ ही पौराणिक कथा-प्रसंगों की युगानुकूल व्याख्या के कारण इनकी रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय है।

सहज-सरल प्रसंगानुकूल भाषा-संवाद, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चरित्र-निरूपण तथा नाटकीय प्रभावान्विति आदि की दृष्टि से वसंत कानेटकर का नाम आधुनिक नाटककारों में अग्रगण्य है।

कानेटकर, वसंत *(म० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

चेतनाप्रवाह-पद्धति में उपन्यास लिखने वाले नये मराठी उपन्यासकार श्री कानेटकर अवचेतन मन के सूक्ष्म चित्रण के लिए विख्यात हैं। जेम्स जॉइस से प्रभावित होते हुए भी इनके उपन्यासों में न तो शब्दों का विचित्र प्रयोग मिलता है और न वाक्य-विन्यास-संबंधी वैचित्र्य ही प्रदर्शित हुआ है। अतः उन्हें समझने के लिए पाठक को माथापच्ची नहीं करनी पड़ती। इसके विपरीत काव्यमयता एवं प्रतीकवादी शैली ने इनके उपन्यासों को सुग्राह्य ही नहीं, मार्मिक एवं आकर्षक भी बना दिया है। मनोविज्ञान और सोद्देश्यता के संगम के कारण इनकी अभिव्यक्ति-शैली ही नई नहीं है, ये रचनाएँ कथ्य की दृष्टि से भी पाठक को मोह लेती हैं। इनमें यथार्थ अंकन तथा सहानुभूतिपूर्ण चित्रण का मेल सर्वत्र मिलता है। इनकी तीन कृतियाँ हैं—घर, पंख (दे० मास्तर) और पोरका। 'घर' में एक ऐसे मध्यवर्गीय व्यक्ति की मनःस्थिति का चित्रण है जिसे वर्षों तक घर के अभाव में अपने बाल-बच्चों से अलग होटल के कमरे में रहना पड़ता है। 'पंख' में नाटक के पीछे पागल बने अध्यापक के शोकपूर्ण जीवन का मार्मिक चित्रण है, और 'पोरका' में सितारवादन के पीछे पागल बनी सुमित्रा नाम की स्त्री का प्रभावपूर्ण चित्रण है। इन तीनों में पात्रों के मनोव्यापारों और मानसिक स्थिति का अत्यंत मनोवैज्ञानिक और सूक्ष्म चित्रण काव्यमय भाषा में किया गया है।

कान्हड़दे *(गु० पा०)* [तेरहवीं शती]

कवि पद्मनाभ (दे०) के आश्रयदाता व जालौर के शासक अखेराज चौहान के पराक्रमी पूर्वज तथा पद्नाभ-रचित वीररसप्रधान ऐतिहासिक चरित-काव्य 'कान्हड़दे प्रबंध' के नायक कृष्णदेव चौहान ही लोक और काव्य में 'कान्हड़दे' के नाम से विश्रुत हैं।

वीर, विजिगीषु राजा कान्हड़दे ने गुजरात पर आक्रमण करने के लिए भेजी गई अलाउद्दीन की सेना का प्रतिरोध किया तथा सेनानायक अलफ़खान को दूसरा मार्ग ग्रहण करने को बाध्य किया।

गुजरात-विजय के बाद लौटते समय अलफखान ने जालौर पर आक्रमण किया। कान्हड़दे ने पुनः डट कर मुकाबला किया। मुसलमान सेना एक बार फिर पराजित हुई। खीझ कर अलाउद्दीन ने तीसरी बार स्वयं आक्रमण किया। घमासान युद्ध हुआ। फूट के कारण राजा कान्हड़दे

की पराजय हुई। युद्ध मे कान्हडदे तथा उनके पुत्र वीरमदेव ने वीर गति प्राप्त की। रानियो ने चिता पर चढ कर आत्माहुति दी। राजपूती आन-बान और शान की रक्षा करने वाले स्वाभिमानी वीर कान्हडदे क्षत्रियो के गौरव थे।

कान्हड़दे-प्रबंध *(गु० कृ०)* [रचना-काल—1456 ई०]

'कान्हडदे प्रबध' जालौर (राजस्थान) के अखेराज चौहाण के आश्रित नागर जाति के जैनेतर कवि पद्‌नाभ (दे०) रचित वीररसपूर्ण ऐतिहासिक चरित-काव्य है।

माधव मंत्री के बुलाने पर अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात के कर्णदेव पर आक्रमण किया। उसकी सेना को जालौर के शासक कान्हडदे (दे०) ने रोका व दूसरे मार्ग से जाने को बाध्य किया। लौटते समय अलफखान ने जालौर पर आक्रमण किया। फूट के कारण कान्हडदे पराजित हुए। वे और उनके पुत्र वीरमदेव मारे गए। इस प्रबध-काव्य मे कान्हडदे की वीरता का वर्णन है।

कथा कडवको मे विभाजित न होकर चार खडो मे विभाजित है। तथ्य और कल्पना का सुदर समन्वय इस कृति मे हुआ है। वीररसप्रधान इस काव्य मे युद्ध का अतिशयोक्तिपूर्ण सजीव वर्णन है। रौद्र, अद्‌भुत व विप्रलभ शृगार का भी इसमे पर्याप्त परिपाक हुआ है। अलाउद्दीन की शाहजादी पीरोजा तथा कान्हडदे के पुत्र वीरमदेव के प्रेम की कल्पित कथा का रोचक वर्णन तथा वीरमदेव की मृत्यु पर पीरोज़ा का विलाप बहुत मर्मस्पर्शी है। दोहा, चौपाई, पवाड, सोरठा, झूलणा, आदि छदो तथा रामगिरि, धन्यासि, देशाख रागो का प्रयोग इसमे हुआ है।

भूगोल, सास्कृतिक इतिहास, लोक-जीवन के यथार्थ निरूपण व भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण कृति है।

कान्हा *(प० ले०)*

यद्यपि इनका निश्चित समय ज्ञात नहीं तथापि इनका सम्राट् जहाँगीर और गुरु अर्जुनदेव (दे०) (1563-1606 ई०) का समकालीन होना प्रमाणित है। ये लाहौर के एक प्रसिद्ध वेदाती भक्त और कवि थे। जिन दिनो गुरु अर्जुनदेव 'आदिग्रथ' का सकलन कर रहे थे, तब ये भी उसमे अपनी वाणी सम्मिलित कराने के उद्देश्य से शाह हुसैन (दे०), छज्जू और पीलो भक्त के साथ अमृतसर पहुँचे थे किंतु गुरु जी ने इनकी वाणी को गुरु-सिद्धात के अनुकूल न पाकर अस्वीकार कर दिया। तब ये गुरु जी को 'वैरियो के बंदी बनकर कष्ट सहते हुए शरीर त्याग करने' का शाप देकर लाहौर लौटते समय मार्ग मे फिसलकर मर गए।

इनकी कविता स्फुट रूप से और स्वल्प परिमाण मे प्राप्त है जिसमे प्रेम-भक्ति और वैराग्य का स्वर प्रमुख है। भाषा मुहावरेदार ठेठ पजाबी है।

कान्होपात्रा *(म० ले०)*

कवयित्री कान्होपात्रा का निवास-स्थान बीदर के निकट 'मगलवेढा' नामक ग्राम था। माता का नाम था श्यामा जो एक वेश्या थी। माँ के भ्रष्ट जीवन के भयानक चित्र देख कान्होपात्रा को सासारिक जीवन से विरक्ति हो गई और ये पढरपुर मे रहने लगी थी। इन्होंने विट्ठल की भक्ति मे सरस, मधुर अभगो की रचना की है। भगवान के सम्मुख गायन और नृत्य मे ये आजीवन निमग्न रही।

काफियाँ *(प० कृ०)*

सूफी-सत बुल्लेशाह द्वारा रचित 'काफियाँ' पजाबी लोक-काव्य की अमूल्य निधि हैं। ये काफियाँ अधिकाशत मौखिक रूप से ही पजाब मे प्रचलित रही है। कसूर-निवासी श्री प्रेमसिंह जरगर ने इनकी वाणी सकलित कर उसे पुस्तकाकार छपवाया था जिसमे इनकी अनेक काफियाँ भी सम्मिलित है। फारसी-लिपि मे प्रकाशित 'कानून-ए-इश्क' नामक कृति मे भी बुल्लेशाह की अनेक प्रेमपरक काफियाँ सकलित है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पजाबी काव्य-सग्रहो मे भी इनकी कुछ चुनी हुई काफियाँ स्फुट रूप से मिलती हैं।

बुल्लेशाह-कृत काफियो का प्रतिपाद्य प्रमुखत अलौकिक प्रेम है। इनके कवि की आत्मा प्रियमय हो गई है। यथा—

> राँझा राँझा करदी नी मैं आपे राँझा होई।
> सद्दो नी मैंनूँ राँझा, हीर न आखो कोई॥

यद्यपि गुरु-महिमा, बाह्याडबरो का विरोध एव सर्व-धर्म-समन्वय की भावना भी बुल्लेशाह ने अपनी काफियो मे व्यक्त की है तथापि इन सभी का समाहार अतत प्रभु-प्रेम मे हो जाता है।

बुल्लेशाह-कृत काफियो का अनुभूति-पक्ष जितना गहन और मार्मिक है, अभिव्यक्ति-पक्ष उतना ही सहज और

जन-सामान्य के स्तर के सर्वथा अनुकूल है। इसीलिए ये काफ़ियाँ प्रौढ़ सूफ़ी-काव्य की अपेक्षा लोक-काव्य के अधिक निकट हैं। लहिंदा-पंजाबी की सरल व्यावहारिक शब्दावली, सामान्य जीवन से गृहीत उपमान एवं प्रतीक तथा लोक-वाणी में प्रचलित मुहावरों के प्रयोग के कारण ये काफ़ियाँ पर्याप्त लोकप्रिय हुई है।

काफ़ियाँ *(पं० कृ०)*

शाह हुसैन द्वारा रचित 'काफ़ियाँ' पंजाबी सूफ़ी काव्य की अमूल्य निधि है। डा० मोहनसिंह ने पर्याप्त अनुसंधान के पश्चात् इनकी 165 काफ़ियों का एक संकलन प्रकाशित कराया है। इन 'काफ़ियों' का एक-एक शब्द कवि के दिव्य प्रेम-रस से सिक्त है। इन्हें एक प्रकार से पंजाबी सूफ़ी-काव्य का प्रथम सक्षम उदाहरण माना जा सकता है। अज्ञात प्रिय के प्रति जिज्ञासा, उसके अद्भुत, अनिर्वचनीय सौंदर्य के साक्षात्कार की उत्कट लालसा और मिलनातुरता इन काफ़ियों में साकार हो उठी है। उदाहरण—

दरद विछोड़े दा हाल, नी मैं कैनूँ आखाँ।
सूली मार दिवानी कीती
बिरह पिआ साडे ख्याल, नी मैं कनूँ आखाँ।

इन काफ़ियों की भाषा भावानुरूप है। यहाँ कोमल, मधुर शब्दावली में प्रचलित मुहावरे और लोक-जीवन से संबद्ध प्रतीक (चरखा-रहँट, अनाज आदि) सहज रूप में गुँथे हुए हैं।

क़ाफ़िया *(उर्दू० पारि०)*

क़ाफ़िया का शाब्दिक अर्थ है 'पीछे आने वाला'। पारिभाषिक अर्थों में क़ाफ़िया तुक समानार्थक है। 'क़ाफ़िया-बंदी करना' तथा 'काफ़िया मिलाना' मुहावरे क्रमशः तुक-बंदी करना तथा तुक जोड़ना के अर्थों में प्रयुक्त होते है। शेर के प्रत्येक चरण के पीछे अर्थात् अंतिम भाग में ध्वनि-साम्य किंतु अर्थ-वैषम्य से युक्त शब्द आते है जो 'तुक' या 'क़ाफ़िया' कहलाते है, जैसे—

बेवक्त किसी को कुछ मिला है ?
पत्ता कहीं हुक्म बिना हिला है ?

काफ़ी *(पं० पारि०)*

काफ़ी के पंजाबी-साहित्य में दो अर्थ हैं :

(1) एक रागिनी, जो 'काफ़ी' ठाठ की संपूर्ण रागिनी है। गांधार-शुद्ध और कोमल—दोनों में इसकी रचना होती है। निषाद कोमल और शेष सभी शुद्ध स्वर हैं। पंचम वादी और षड्ज संवादी है। इसका गायन-समय दिवस का चौथा प्रहर है। कुछ विद्वान् 'काफ़ी' को ही 'धमार' भी कहते है।

(2) *'काफ़ी' का अर्थ है*—पीछे चलना वाला, अनुचर, अनुगामी। इस प्रकार 'काफ़ी' वह पद्य-रूप है जिसमें प्रथम चरण स्थायी होता है और उसे गाते समय अन्य तुकें पीछे जोड़ दी जाती है तथा स्थायी पाद को छंद की ताल और विराम के पश्चात् दुहराया जाता है।

बुल्लेशाह की एक 'काफ़ी' का उदाहरण प्रस्तुत है—

उठ जाग घुराड़ मार नहीं। (स्थायी)
तूँ एस जहानों जावेंगी,
फिर कदम न एथे पावेंगी,
इह जोबन रूप लुटावेंगी,
तूँ रहिणा विच संसार नहीं।
उठ जाग..............।

इस छंद में प्राय: 16 मात्राएँ होने के कारण, कुछ विद्वान् इसे हिंदी के 'चौपाई' अथवा 'नाटक' छंद के समानांतर मानते है किंतु वास्तव में 'काफ़ी' कोई पृथक् छंद न होकर गायन की पद्धति-विशेष है। प्राय: सूफ़ी-संत जो प्रेम-भरे पद गाते है, और जिन्हें सारी मंडली प्रमुख गायक के स्वर के साथ दुहराती है, वे 'काफ़ियों' के नाम से प्रसिद्ध है।

काव्य-नायिका *(उड़ि० कृ०)*

'काव्य-नायिका' राधामोहन गड़नायक (दे०) की सर्वश्रेष्ठ काव्य-रचना है। काव्यात्मक कल्पना और भावना की आधुनिक दृष्टि-भंगी अभिव्यंजना, की पारदर्शिता और शैली की रमणीयता ने इसे मोहक और रसात्मक बना दिया है। विषय-वस्तु का चयन अत्यंत व्यापक क्षेत्र से हुआ है। भावों, विचारों और अनुभूतियों की कल्लोल-क्रीड़ा, चल-चंचल छंदों, प्रवाहमयी शैली और गत्यात्मक भाषा में नृत्य-मुखर हो उठी है। उड़िया भाषा की निजी विशेषताओं से इसकी भाषा कांतिमान है। इसमें छोटी कविताओं के साथ कतिपय गाथा-कविताएँ भी हैं। वस्तुत: यह कृति गड़नायक के काव्य-जगत की नायिका है।

कामण्णा *(म० पा०)*

यह रामगणेश गडकरी (दे०) के 'प्रेम सन्यास' नाटक का पात्र है जो अपने क्रियाकलापो से हास्य की सृष्टि करता है। नायिका लतिका को प्राप्त करना इसके जीवन का लक्ष्य है। अपने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ही यह नायिका के घर वेश बदल कर रहता है और नायिका के हृदय-परिवर्तन की राह देखता है। इसके अतिरिक्त अधा होने तथा कन्नडभाषी होने का स्वाँग रचकर भी अपने अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहता है, परतु धैर्य एव बुद्धि-चातुर्य के अभाव मे अपने ही बिछाए जाल मे स्वय फँस जाता है। लतिका से विवाह का स्वप्न लेते-लेते इसके गले कुरूप इदु (दे०) पड जाती है। रगमच पर कामण्णा के चरित्र का अभिनय करने वाला अभिनेता दिनकरढेरे कालातर मे दिनकर कामण्ण के नाम से ही विख्यात हो जाता है। हास्य-परिपोषण के कारण यह चरित्र-सृष्टि मराठी पात्रो मे अनूठा स्थान रखती है।

कामदी *(पारि०)*

कामदी पाश्चात्य साहित्य मे नाटक (दे०) के दो प्रमुख प्रकारो मे से एक कॉमेडी (Comedy) के पर्याय के रूप मे प्रयुक्त हिंदी-शब्द है। कामदी यद्यपि मूलत नाट्य-विधा है, तथापि आज टेलीविज़न, सिनेमा, हास्यमच, बैलेड आदि अनेक नाट्येतर विधाओ मे प्रयुक्त हास्य-तत्त्व के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। कामदी का उद्गम निश्चय ही त्रासदी (दे०) की भाति यूनानी साहित्य मे है। प्राचीन यूनान मे अभिलषित फल प्रदान करने वाले देवता डायोनीसस के सम्मान मे आयोजित उल्लासपूर्ण उत्सव मे 'कोमो' कहलाने वाले कुछ मस्त गायको द्वारा हास्य की तरग मे गीत गाए जाने की प्रथा थी। इसी क्रम मे दर्शको और गायको के बीच व्यग्यपूर्ण वार्ता-कटाक्ष भी होते थे। विद्वानो ने यूनानी कामदी के आदि रूप का सधान इन्ही कोमो-वृ द के हास्यपूर्ण उत्सव-गीतो मे किया है।

कामदी के मूल तत्त्व ये है (1) कामदी का मूल भाव (दे०) हास्य है, हर्ष नही। वह प्राय सुखात होती है, किंतु यह उसका अनिवार्य अनुबध नही है जिस प्रकार त्रासदी सुखात हो सकती है उसी प्रकार कामदी भी दु खात हो सकती है। (2) कामदी मे चित्रित जीवन यथार्थ होता है। निकृष्ट कामदियो के चरित्र भले ही नितात मूर्ख, फूहड, अभिहस्य और विरूप हो, किंतु श्रेष्ठ कामदियो के पात्र सामान्य जीवन के सामान्य जन होते है, विदूषक नही। (3) यद्यपि मैरेडिथ के अनुसार कामदी बुद्धि को प्रभावित करती है और त्रासदी भावना को, तथापि आधुनिक युग की मर्मस्पर्शी श्रेष्ठ कामदियो के विषय बौद्धिक ही होते हैं। कामदी की कला का रहस्य वस्तु सगठन की अपेक्षा चरित्र निर्माण मे होता है। (4) कामदी मे कामद-तत्त्व का सप्रेषण और प्रभावान्वय हास्यपूर्ण दृश्य-विधान के माध्यम से न होकर, वस्तुत भाषा के व्यग्य-गर्भित मार्मिक प्रयोग द्वारा होता है।

विषय-वस्तु और उद्देश्य की दृष्टि से कामदी के अनेक प्रकारो का उल्लेख किया जाता है जिनमे प्रमुख है सहज बोध पर आश्रित कामदी (कॉमेडी ऑफ कॉमन सेंस), भ्रात चरित्रो पर आश्रित कामदी (कॉमेडी ऑफ ह्यूमर), आचार-विषयक कामदी (कॉमेडी ऑफ मैनर्स), घटना-वैचित्र्य पर आश्रित या सयोगाश्रित कामदी (द कॉमेडी ऑफ इट्रीग)। इसके अतिरिक्त कामदी के और भी अनेक प्रकार हो सकते है, जैसे सवेदनात्मक, रोमानी (शेक्सपियर आदि), यथार्थवादी (मोलियर आदि), विद्रूपात्मक (मॉम और गोगोल आदि), सामाजिक (चेखव आदि) और विचारात्मक या दार्शनिक आदि। अत्याधुनिक अमूर्त नाटक ('एब्सर्ड प्ले') को भी कामदी का ही एक रूप माना जा सकता है जिसका अधुनातन उदाहरण है सैम्यूअल बैकेट कृत 'वेटिंग फॉर गोदो'। (कामदी के बृहत्तर वृत्त मे प्रहसन (दे०) (फॉर्स), विडबन (आयरनी), व्यग्य (सैटायर) और विदग्ध (विट) आदि को भी समाविष्ट किया जा सकता है।

कामनी *(प० कृ०)*

'कट्टी होई पतग' (दे०) उपन्यास की नायिका कामनी नानकसिंह (दे०) के नारी सबधी प्रगतिशील विचारो का प्रतिनिधित्व करती है। पति ब्रजमोहन के अत्याचारो तथा दुर्व्यवहार से पीडित होकर यह उसे त्याग कर आर्थिक दृष्टि से स्वावलबी बन जाती है। सगीत और अभिनय-कला मे विशेष कुशलता प्राप्त कर लोकप्रिय एव सफल अभिनेत्री बन जाती है। साम्यवादी विचारो से प्रेरित होकर यह श्रमिक आदोलन का नेतृत्व करती हुई अपनी समस्त सपत्ति उनके हितार्थ प्रस्तुत कर देती है और नारी को 'कटी हुई पतग' के स्थान पर सबलता तथा आर्थिक स्वातन्त्र्य की प्रतीति कराती है।

कामायनी *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1935 ई०]

छायावाद (दे०) के सर्वोत्तम महाकाव्य 'कामायनी' का प्रणयन जयशंकर प्रसाद (दे०) ने मनु (दे०), श्रद्धा (दे०) और इड़ा (दे०) की कथा के आधार पर किया है। वैदिक साहित्य में उपलब्ध कथासूत्रों का चयन करके कवि ने उन्हें इस प्रकार नियोजित किया है कि 'मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ की भी अभिव्यक्ति करें····।' कथा का आरंभ जल-प्रलय की पृष्ठभूमि में हुआ है। चिंताग्रस्त मनु को श्रद्धा का संपर्क और संदेश क्रियाशील बनाता है। किलाताकुलि उन्हें बलि-यज्ञ में प्रवृत्त करते हैं। श्रद्धा के अहिंसात्मक विचारों से वे रूठ जाते हैं और उस गर्भिणी का त्याग कर देते हैं। सारस्वत प्रदेश में उनकी भेंट इड़ा से होती है। उसके सहयोग से वे सारस्वत नगर का भौतिक विकास कर शासक बन जाते हैं। इड़ा पर भी पूर्णाधिकार का प्रयत्न उन्हें देवताओं का कोपभाजन बना देता है। प्रजा विद्रोह करती है और वे घायल हो जाते हैं। इसी समय पुत्रवती श्रद्धा आकर उनकी सुश्रूषा करती है। लब्ध-संज्ञ मनु आत्मग्लानि से पीड़ित होकर फिर निकल जाते हैं। श्रद्धा उन्हें फिर ढूँढ़ लेती है और मानसरोवर तक ले जाती है, जहाँ वे सामरस्य-लाभ करते हैं। रूपक-तत्त्व की दृष्टि से मनु अर्थात् मन के दोनों पक्षों, हृदय और मस्तिष्क का संबंध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है।

श्रद्धा की सृष्टि आधुनिक हिंदी काव्य की अन्यतम उपलब्धि है। दया, ममता, मंगल-कामना, त्याग और सेवा आदि मानवीय गुणों का चरमोत्कर्ष उसके चरित्र में दिखाई देता है। इड़ा अपने ऐतिहासिक स्वरूप के अनुरूप बुद्धि की प्रतीक और कर्म-मार्ग की प्रेरयित्री है। मनु का चरित्र आदि पुरुष के गौरवानुकूल तो नहीं है परंतु परिस्थिति के अनुरूप गतिशील रहने से सहज मानवीय है।

काव्य-शैली में महाकाव्योचित गरिमा है। दृश्यांकन और भाव-चित्रण में उदात्त कल्पना और चित्रात्मक भाषा का वैभवपूर्ण प्रयोग हुआ है। प्रलय, लज्जा, रात्रि, इड़ा, त्रिपुर, सामरस्य आदि के चित्रण की कलात्मक समृद्धि अतुलनीय है।

'कामायनी' की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसका प्रतिपाद्य है। कवि ने अपने गंभीर चिंतन-मनन के फलस्वरूप उपलब्ध आनंदवाद की दार्शनिक पीठिका उसे प्रदान की है। युगद्रष्टा कवि की चेतना ने बुद्धिवाद से दग्ध आधुनिक विश्व को श्रद्धावाद या आनंदवाद का जो अमृत संदेश दिया है, वह अपने महत्व में अद्वितीय है।

कामिनीकांतर चरित्र *(अ०कृ०)* [रचना-काल—1877 ई०; ले० : ए० के० गर्नी (दे०)।]

उपन्यास के नायक कामिनीकांत का विवाह सरला से होता है। वह ईसाई धर्म से प्रभावित होकर धर्मान्तरण कर लेता है। उसका पिता उसे त्याग देता है। वह अपनी पत्नी से पत्र-व्यवहार कर अनेक तर्क प्रस्तुत करता है, अंत में पत्नी पराजित होकर ईसाई धर्म स्वीकार कर लेती है। इस उपन्यास के 15 अध्यायों में 8 अध्याय केवल पत्र-व्यवहार और ईसाई धर्म के प्रचार पर लिखे गये हैं। कथा में नीरसता है। कामिनीकांत को जानबूझकर ब्राह्मण दिखाया गया है ताकि हिंदुओं पर प्रभाव पड़ सके। प्रचारात्मक दृष्टिकोण इतना प्रबल है कि साहित्यिक सौंदर्य पीछे छूट जाता है। अतः इसे असमीया का प्रथम उपन्यास नहीं कहा जा सकता।

कामिनी राय *(बं० ले०)* [जन्म—1864 ई०, मृत्यु—1933 ई०]

उन्नीसवीं शती की कवयित्रियों में कामिनी राय की विशेष ख्याति थी। इनका पहला काव्य-ग्रंथ 'आलो ओ छाया' (1889) है। इसके उपरांत इनके 'निर्माल्य' (1891), 'पौराणिकी' (1897), 'माल्य ओ निर्माल्य' (1913), 'अशोक संगीत' (1914) आदि ग्रंथ प्रकाशित हुए जिससे ये काव्य-क्षेत्र में मर्यादा के साथ सुप्रतिष्ठित हो सकीं। गद्यनाटिका 'सितिमा' (1916), जीवनी-ग्रंथ 'श्राद्धिकी' (1913), कहानी-संकलन 'धर्मपुत्र' (1907), 'ठाकुमार चिठि' (1923) एवं शिशुओं के लिए काव्य-संग्रह 'गुंजन' (1905) उस युग के सुप्रचारित ग्रंथों में से हैं।

कामिनी राय के काव्य में नारी-हृदय का माधुर्य एवं सलज्जित भाव अपरूप स्निग्धता के साथ प्रकट हुआ है। नैतिक मानदंड पर आधृत बृहत्तर आदर्श के प्रति आनुगत्यता कवि की काव्य-चेतना का अन्यतम वैशिष्ट्य है। प्रियतम के प्रति परिपूर्ण आत्म-निवेदन से इनके काव्य में अपरूप माधुर्य का संचार हुआ है। प्रेम के पवित्र गीतों में कवयित्री की मुखरता स्पष्ट है। शैली की भावानुभूति के साथ इनकी कविता का काफ़ी निकट का संबंध है।

कामेश्वर रावु, भमिडिपाटि *(तें० ले०)* [जन्म—1897, मृत्यु—1958 ई०]

ये राजमहेंद्रवरमु के रहने वाले थे और वृत्ति से अध्यापक थे। इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया और बी० ए० पास करके अँग्रेजी साहित्य का भी परिचय प्राप्त कर लिया। ये विनोदी प्रकृति के थे। इनकी रचनाएँ ये हैं—'बागुबागु', 'एप्पुडूइर्तं', 'कचटतपलु', 'पेल्लि ट्रेनिंगु' आदि नाटक, 'अद्दे कोपलु' जैसे हास्यरसपूर्ण निबंध, 'त्यागराजु आत्मविचारमु', 'आंध्र नाटक पद्यपठनमु' आदि आलोचनात्मक ग्रंथ। इनकी सभी रचनाएँ सरस तथा कोमल हास्य से ओत-प्रोत हैं। घटनाएँ, पात्र, कथोपकथन तथा कहीं-कहीं शीर्षक भी हास्यरस-पोषक होते हैं। इनके चालीस नाटक हैं जिनमें कुछ मौलिक हैं, कुछ अनुवाद हैं तथा कुछ अनुकरण। पश्चिमी नाटककारों में मेटरलिंक, शेरिडन, गोल्डस्मिथ आदि के नाटकों को इन्होंने अनूदित किया है। इनकी रचनाओं में भास (दे०) के नाटकों के अनुकरण भी हैं।

आधुनिक तेलुगु-साहित्य में एक सफल नाटककार के रूप में इन्होंने अत्यधिक प्रशस्ति पाई है। आधुनिक साहित्य में हास्यरस को योग्य स्थान प्रदान कराने वालों में ये भी एक हैं। इनको 'हास्यब्रह्म' कहा जाता है।

कामेश्वर रावु, श्रीपाद *(तें० ले०)*

दर्शन में एम० ए० पास करके कामेश्वर रावु राजमहेंद्री के ट्रेनिंग कालेज में प्राध्यापक बने। ये एक साथ लेखक, अभिनेता और संगीतज्ञ थे। नाटक के अभिनय की शास्त्रीय आलोचना का श्रीगणेश करके इन्होंने अंक देने की पद्धति का प्रवर्तन किया था। इस विषय का समग्र विवेचन करते हुए इन्होंने 'आंध्र-पत्रिका' के (1914) उगादि विशेषांक में एक लेख प्रकाशित कराया था। 1908 ई० इन्होंने राजमहेंद्री में 'राजमंड्री अमेच्योर्स' नामक नाटक-मंडली की स्थापना की थी और उसे 10-12 वर्ष चलाया था। कूल्ड़े नामक अँग्रेज की देखरेख में इन्होंने अँग्रेजी नाटकों में भी भाग लिया। 1927 में डी० एल० राय (दे०) की 'नाटक की आलोचना' नामक बँगला पुस्तक का इन्होंने तेलुगु-अनुवाद प्रकाशित किया था।

इन्होंने 'चंद्रगुप्तडु' (1922), 'सोहराबरुस्तुम', 'भारतरमणी', 'सीता', 'राणाप्रतापसिंहुडु', आदि मौलिक अभिनय योग्य नाटकों की रचना की है। परंतु अन्य भाषाओं के प्रसिद्ध नाटकों के तेलुगु अनुवाद प्रस्तुत करने वालों में इनका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने 'बिल्वमंगल' (बँगला), 'लीलावती सुलोचनम्' (तमिल), 'श्रीमाधवाचार्य विद्यारण्य', 'डिटेक्शन', 'शिवाजी शीलमु', 'शंभा जी निर्याणमु' (मराठी), 'काला पहाड़' (उड़िया), 'पुनर्विवाह' (पंजाबी) आदि नाटकों के तेलुगु अनुवाद प्रस्तुत करने के साथ-साथ डी० एल० राय के कुछ प्रहसनों का भी तेलुगु अनुवाद किया है।

कायकोबाद *(बँ० ले०)* [जन्म—1854 ई०, मृत्यु—1951 ई०]

'कायकोबाद' उपनाम से ही मुहम्मद काज़ेम सर्वाधिक जाने जाते हैं। 'भारती' (1897) पत्रिका में इनकी दो कविताएँ प्रकाशित होते ही इनकी ख्याति फैल गई थी। पानीपत के तृतीय युद्ध एवं मराठा शक्ति के पतन की कहानी के आश्रय से इन्होंने 1904 ई० में महाकाव्यात्मक ढंग से 'महाश्मशान' ग्रंथ की रचना की थी। इनके दूसरे प्रसिद्ध कविता-संकलन का नाम है 'अश्रुमाला' (1897)।

'कायम' चाँदपुरी *(उर्दू० ले०)*

शेख मुहम्मद इनका नाम और 'कायम' इनका तखल्लुस था। ये चाँदपुर के निवासी होने के कारण 'चाँदपुरी' कहलाते थे। रेख्ता (दे०) अर्थात् उर्दू के उस्ताद माने जाते थे। आरंभ में ख्वाजा मीर दर्द से इस्लाह लेते थे पर बाद में सौदा से इस्लाह लेने लगे। 'कायम' चाँदपुरी का काव्य प्रवाहशील, स्वच्छ एवं सरस है। 'बंदिश' विशेष तौर पर चुस्त होती है। यद्यपि 'कायम' ने कविता के विभिन्न रूपों में रचना की है किंतु इनकी विशेष रुचि गजल और मसनवी के प्रति रही है। इनका दीवान, मौलवी सैयद मुहम्मद साहब के कथनानुसार भरा हुआ 'अशआरे-आबादार से है'। इनका निधन हिजरी सन् 1210 (ई० (1832) में हुआ।

कायाकल्प *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1928 ई०]

प्रेमचंद (दे०) ने अपने इस उपन्यास में लौकिक तथा अलौकिक कथानक को आधार बनाते हुए अपने युग की सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का सशक्त अंकन किया है। उपन्यास का मुख्य पात्र चक्रधर अहिंसात्मक

उपायों का अवलंब ग्रहण करता हुआ गो-हत्या रोकने तथा हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का स्तुत्य प्रयत्न करता है। सजीव चरित्र-सृष्टि तथा नाटकीय वर्णन-कौशल इस उपन्यास की अन्य उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। लेकिन जगदीशपुर रियासत की विधवा रानी देवप्रिया से संबद्ध पुनर्जन्म विषयक अलौकिक कथानक ने कथावस्तु की स्वाभाविकता पर निर्मम प्रहार करते हुए पूरे औपन्यासिक कौशल को पर्याप्त क्षति पहुँचाई है जिसके फलस्वरूप इसे प्रेमचंद का प्रतिनिधि उपन्यास नहीं माना जाता।

काया लाकडानी माया लुगडानी *(गु० कृ०)*

'काया लाकडानी माया लुगडानी' जयंति दलाल के लेखों का संग्रह है। रवाणी प्रकाशनगृह, अहमदाबाद, ने इसे 1963 ई० में प्रकाशित किया था। इसमें 1940 से 1963 ई० तक की अवधि में लिखे गये लेखक के 14 निबंध संकलित हैं: 'पडदा उपडे छे त्यारे', 'नाटक निहालवानो आनंद', 'स्व० डाह्याभाई धोलशाजी झवेरी', 'एक वात : शताब्दीकोनी?', 'अहमदाबादना नाट्यगृहो', 'रमणलाल देसाईनुं नाट्यविधान', 'वैष्णवी अने मरजादी', 'पूर्वरंग', 'प्रवेश-रचना', 'एकांकीनी भोंय भांगनारा', 'नेपथ्य', 'एकांकीमां पहेलो प्रवेश', 'भजवणी' और 'स्वाध्याय'। इसमें कुछ व्यंग्य-लेख, कुछ स्तरीय सैद्धांतिक चर्चा और कुछ व्यक्तियों की व्यक्तिगत नाट्य-उपलब्धियों की चर्चा समाविष्ट है। प्रेक्षक के दायित्व और नाटक में प्राप्त होने वाले आनंद की प्रक्रिया, विभिन्न नाटककारों के योगदान, गुजराती नाटक की अपेक्षाओं, गुजराती रंगमंच की उपलब्धियों, अभिनय, आदि पर लेखक ने मुक्त भाव से विचार किया है। इस संग्रह में संगृहीत सभी लेखक नाटक के विभिन्न पहलुओं का स्पर्श करते हैं। लेखक की भाषा-शैली विषय-वस्तु के अनुरूप सरल, व्यंग्यप्रधान और गंभीर है।

कारैक्काल्-अम्मैयार् *(त० ले०)* [समय—अनुमानतः छठी शताब्दी ई०]

प्रसिद्ध शैव-भक्त 63 'नायन्मार्' में इनका भी नाम है। ये 'कारैक्काल्' नामक समुद्रतटीय व्यापार-केंद्र में एक धनी वणिज की पुत्री थीं और शिव की उपासना में निरत रहती थीं। इनके पिता ने अपनी इकलौती पुत्री का विवाह एक धनी वणिज से किया था और दोनों को अपने यहाँ रख लिया था। इनके यहाँ सदा ही शैवसंतों का सत्कार होता था। एक दिन एक भक्त ने इनके पति के हाथ दो आम दिये जिन्हें लेकर इन्होंने घर के भीतर रखा। इतने में एक शैवसंत अन्न माँगते आये तो उन्हें एक आम उठाकर इन्होंने दे दिया। जब इनके पति घर पर भोजन के लिए आये तो उन्हें बचा हुआ आम अच्छा लगा। उन्होंने दूसरा आम माँगा। तब इन्होंने शिवजी से प्रार्थना की। इनके हाथ एक अत्यंत मधुर आम आ गया। उसके विलक्षण रस से मुग्ध होकर पति ने पूछा तो इन्होंने कह दिया कि स्वयं शिवजी ने यह फल दिया है। संदेहग्रस्त पति की माँग पर पुनः इन्होंने एक और आम शिवजी की कृपा से प्राप्त किया जो पति के हाथ में जाते ही अदृश्य हो गया। इनकी दैवी शक्ति से अभिभूत पति कुछ दिनों के पश्चात् जब व्यापार करने विदेश गये तो वहीं पर उन्होंने एक वणिक्-कन्या से विवाह कर लिया; उससे उन्हें एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम उन्होंने अपनी पूर्वपत्नी के नाम पर 'पुनितवती' रखा। कुछ दिन पश्चात् उसका समाचार पाकर इनको लेकर परिवार के लोग इनके पति के नगर पहुँचे। इनके पति ने गृहस्थी से विरक्त संत के रूप में इनका परिचय देते हुए इनका स्वागत-सत्कार किया। इसी समय भगवान से प्रार्थना करके इन्होंने भौतिक शरीर त्याग दिया। उसी रूप में इन्होंने शिवजी का साक्षात्कार किया। विश्वास किया जाता है कि अब भी 'तिरु आलङ्काडु' नामक पुण्य स्थान में स्थित नटराज के चरणतल में ये उपस्थित हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'उन्दपुत अन्तादि' तथा 'इरट्टैमालै अंतादि'।

कारंत, शिवराम *(क० ले०)* [जन्म—1902 ई०]

बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार शिवराम कारंत जी का जन्म दक्षिण कन्नड जिले के कोटा नामक स्थान में हुआ था। ये बाल्यकाल में ही अपनी प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध हो गये थे। 1921-22 ई० में जब गांधी जी के असहयोग-आंदोलन की लहर देश में सर्वत्र व्याप्त हुई तभी इन्होंने इंटरमीडिएट से पढ़ना छोड़ दिया था। कुंदापुर में इन्होंने खादी की दुकान चलायी। फिर पुत्तूर में एक पाठशाला खोली। तब से ये पुत्तूर में ही निवास करते रहे हैं। इन्होंने कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, यात्रा-विवरण, विज्ञान कोश, विश्वकोश, आलोचना आदि सभी विषयों पर लिखा है। इनका एकमात्र कविता-संग्रह है 'राष्ट्रगीत सुधाकर'। इनके 42 नाटकों में 'गर्भगुडि' (गर्भगृह), 'कृष्णा ईन', 'गीत-नाटकगळु' (गीत

नाटक), 'दृष्टि सगम', 'नवीन नाटकगळु' (नवीन नाटक) 'नारद गर्वभग', 'मुक्तद्वार', 'हणेबरह' (ललाट रेखा) और 'हागदरेनु' (वैसा हो तो क्या) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके 32 उपन्यासो मे 'अळिदमेले' (दे०) ('मिटने पर'—हाल मे प्रकाशित उपन्यास), 'औदार्यद उरुळलि' (औदार्य के लपेटो मे), 'कन्यावलि अथवा सूळेय ससार' (कन्यावलि अथवा वेश्या का जीवन), 'चोमन दुडि' (चोम का ढोल), 'देवदूतरु' (देवदूत), 'नम्बिदवर नाक, नरक' (विश्वस्तो का नाक, नरक)', 'निर्भाग्य जन्म', 'बेट्टद जीव' (पहाडी जीव), 'मरळि मण्णिगे' (दे०), फिर मिट्टी की ओर), 'मुगियद युद्ध', 'सन्यासिय बदुकु' (सन्यासी का जीवन) और 'हेत्तळा ताय्' (जन्म दिया उस माता ने) के नाम अत्यत प्रसिद्ध है। 'तेरेय मरेयल्लि' (परदे के पीछे), 'हसिवु' (भूख) और 'हावु' (साँप) इनकी कहानियो के सग्रह हैं। इनके छह व्यग्यात्मक निबध सग्रहो मे 'ग्नान' ('ज्ञान' का तद्भव-रूप), 'चिक्कदोड्डवरु' (छोटे-बडे) और 'मैलिकल्लिनोडने मातुकतेगळु' (मील के पत्थर के साथ बातचीत) उल्लेखनीय है। तीन भागा मे प्रकाशित 'बाल प्रपच' (बाल-लोक) और चार भागो मे प्रकाशित 'विज्ञान प्रपच' (विज्ञान-लोक) नाम के इनके विश्वकोश सचमुच ही विस्मयकारी हैं। यात्रा साहित्य, बाल-साहित्य, धर्म दर्शन, कला विज्ञान इत्यादि विषयो से सबधित इनके ग्रथ इनके विशाल अध्ययन, गभीर चिंतन-मनन और जीवन दर्शन के सुपरिणाम हैं। इन्होंने सपादन कार्य भी किया है। 'यक्षगान' (कन्नड-साहित्य की विशेष विधा, कर्णाटक की प्रसिद्ध लोक गीत-नाट्य सबधी) के तो ये सिद्धहस्त कलाकार और अधिकारी विद्वान् है। इनके 'यक्षगान बयलाट' (दे०) (यक्षगान खुले मैदान का खेल) ग्रथ के लिए ही इनको 1958 ई० मे साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। 1968 ई० मे इनको 'पद्मभूषण' की उपाधि भी मिली थी। कन्नड तथा अँग्रेजी मे इनके दो सौ से भी अधिक लेखो का प्रकाशन हुआ है।

कन्नड साहित्य मे उपन्यासकार और नाटककार के रूप मे कारत जी की विशेष ख्याति है। ये अग्रगण्य उपन्यास लेखक हैं। इनके उपन्यासो का विषय प्राय सामाजिक होता है। उनमे सामाजिक समस्याओ के विविध रूपो के चित्रण है। कारत जी यथार्थवादी लेखक है, पर आदर्श प्रिय भी हैं। इनके उपन्यास इनके अनुभवो के आधार पर लिखित हैं, उनमे इनके जीवन-दर्शन का प्रतिपादन है। कथानक की दृष्टि से इनके उपन्यास मलेनाड अथवा पश्चिमी समुद्रतट के प्रदेश से सबधित है, इस कारण वे आचलिक हो गये है। 'मरळि मण्णिगे', 'बेट्टद जीव' और 'कुडियर कूसु' (अछूतो का बच्चा) जैसे उपन्यास इसके उदाहरण हैं। 'मरळि मण्णिगे' इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। हाल मे प्रकाशित इनके उपन्यास 'अळिद मेले' को (जिसमे कुछ लोगो के अनुसार इनके जीवन की झाँकी है) कुछ लोग इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास मानते है।

कारत जी के नाटको मे रगमच की दृष्टि से नये प्रयोग विद्यमान हैं। इन्होंने नाट्य मे 'गीति' का प्रयोग किया है। इनके एकाकियो मे पद्यनाटक, गीतिनाटक और छायानाटक के प्रयोग द्रष्टव्य है। अत मे, यह न कहना होगा कि साहित्य के विविध अगो को परिपुष्ट करने वाले महान कलाकार कारत जी का कन्नड साहित्य मे, निश्चित रूप से, श्रेष्ठ स्थान है।

कार्य-व्यापार *(हिं० पारि०)*

नाटक मे प्रस्तुत या अभिनीत घटनावली को नाटक का कार्य-व्यापार कहते हैं। अरस्तू ने कार्य-व्यापार को नाटक का मूलाधार कहा था, 'कार्य-व्यापार के अभाव मे त्रासदी (दे०) असभव है पात्र (दे०) के बिना उसकी रचना हो सकती है।' आरभ मे कार्य-व्यापार के कई अर्थ किये गये—द्वद्व, विवर्तन, बाह्य क्रिया-कलाप, पर आज कार्य-व्यापार के अतगत बाह्य क्रिया-कलाप के साथ पात्र के आतरिक जीवन, आध्यात्मिक व्यक्तित्व, अन्त-सघर्ष को व्यक्त करने वाली मानसिक और शारीरिक स्थिति और भाव क्रियाओ को भी समाविष्ट किया जाता है। अरस्तू ने जब यह कहा कि त्रासदी मे अनुसरण मनुष्य का नही, कार्यरत मनुष्य का होता है, तो उसका यही अभिप्राय था। नाटक (दे०) मे कथानक को सर्वाधिक महत्व देने का कारण भी यह था कि वह मानता था कि कथानक मे कार्य-व्यापार का सार-तत्त्व निहित रहता है। उसका मत है कि त्रासदी का कार्य-व्यापार गभीर, स्वत पूर्ण तथा निश्चित आयाम वाला होना चाहिए।

कार्यावस्थाएँ *(हिं० पारि०)*

भारतीय नाट्यशास्त्र मे नाट्यप्रबध का मूल तत्त्व नायक (दे० नेता) द्वारा फल प्राप्ति है। फलसिद्धि के लिए किए गए कार्य की विभिन्न अवस्थाओ को 'कार्यावस्थाएँ' अथवा 'अवस्थापचक' का अभिधान दिया गया

है। ये पाँच हैं : आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।

'आरंभ' में फलप्राप्ति के लिए उत्सुकता और उत्कंठा रहती है। 'प्रयत्न' में नाट्यफल की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले व्यावहारिक प्रयत्नों में उत्सुकता के साथ ही त्वरा का योग हो जाता है। यह अवस्था एक प्रकार से नाटकीय वस्तु के विकास के अंतर्गत होने वाले विभिन्न व्यापारों के विनियोजन की अवस्था भी है। 'प्राप्त्याशा' में फलसिद्धि की संभावनाएँ तो बढ़ जाती हैं, किंतु वे आशंका और अनिश्चय से धूमिल रहती है। 'नियताप्ति' की अवस्था में विभिन्न विघ्न-बाधाएँ निराकृत हो जाती है और फल-प्राप्ति का मार्ग स्पष्ट, अबाधित और सुनिश्चित हो जाता है। कार्य की अंतिम अवस्था 'फलागम' है जिसमें आरंभ से ही उद्दिष्ट फल अंतिम और समग्र रूप से प्राप्त हो जाता है। भारतीय दृष्टि से नाटक का समापन इसी स्थल पर होना चाहिए।

कालकेतु *(बँ० पा०)*

'चंडीमंगल' (दे०) काव्य के आखोटिक अंश का नायक कालकेतु है। मुकुदराम (दे० चक्रवर्ती) 'चंडी-मंगल' काव्य के श्रेष्ठतम कवि है। द्विज माधव, द्विज राम-देव आदि कवियों के काव्य में भी मुकुंदराम का 'कालकेतु' प्रायः अपरिवर्तित है।

कालकेतु व्याध है। व्याध वेशधारी कालकेतु के साहस एवं उसकी दृप्त भंगिमा का परिचय अतुलनीय है। दरिद्र व्याध-जीवन का सार्थक प्रतीक है कालकेतु। किंतु जिस क्षण देवी के साथ कालकेतु का परिचय हुआ है वहाँ काल-केतु के स्वभाव-दौर्बल्य ने चरित्र को यथार्थनिष्ठ बना दिया है। देवी के द्वारा दी गई धन-संपत्ति बटोरने में वह देवी का भी विश्वास नहीं कर सका है। कालकेतु जब राजा बना है उस समय भी उसके व्याध-रूप सारल्य ने कौतुकमय परिस्थिति की सृष्टि की है। मुरारीशील, भांडुदत्त (दे०) का वह सहज शिकार बना है। उसकी पराजय के मुहूर्त में भी कवि ने इस चरित्र के प्रति एक स्निग्ध ममत्वबोध का संचार किया है। जय-पराजय, दुःख-सुख में कालकेतु की व्यर्थता एवं साफल्य अतिसाधारण होने पर भी वह अनन्य-साधारण महिमा में प्रतिष्ठित है। मध्ययुगीन काव्य-साहित्य में इस व्याध-चरित्र का निरूपण असाधारण सफलता से अभिनंदित है।

कालचक्रयान *(पा० पारि०)*

यह तिब्बत में महायान (दे०) संप्रदाय की वज्रयान (दे०) से मिलती-जुलती एक शाखा है। 'काल-चक्र' का अर्थ दो प्रकार से किया जाता है—समय का घेरा और मृत्यु का घेरा (the circle of time or death)। पहले पशुओं के नाम पर वर्ष-गणना होती थी—श्वान-वर्ष, गर्दभ-वर्ष, इत्यादि। बाद में इसमें प्राकृतिक तत्त्व भी जुड़ गये। काष्ठ-श्वान वर्ष, अग्नि-श्वान वर्ष इत्यादि। इसीलिए इसे कालचक्र कहा गया। दूसरी ओर अतिश ने मृत्यु को केंद्र मानकर अपने उपदेश दिए और उन्हीं से इसका विस्तार हुआ। इसलिए इसे मृत्यु का घेरा (कालचक्र) कहा गया। दीपंकर इस यान के महत्वपूर्ण उन्नायक हुए।

इस यान के अनुयायी नागार्जुन को इसका प्रवर्तक मानते हैं जिन्हें स्वयं इसका ज्ञान वैरोचन बुद्ध से प्राप्त हुआ था। किंतु सातवीं शताब्दी में बुद्ध तथा उनकी शक्तियों की मूर्तियाँ बनने लगी थी जिनकी सत्ता ह्वेनसांग ने भी पाई थी। कुछ भी हो दसवीं शताब्दी के मध्य में इस का जन्म भारत में हुआ था जहाँ से काश्मीर होते हुए यह शाखा तिब्बत पहुँची। कुछ लोग इसकी उत्पत्ति मध्य एशिया में बतलाते हैं जहाँ से काश्मीर होते हुए यह शाखा तिब्बत पहुँची। तिब्बत में इसका प्रवर्तन 1027 ई० में हुआ जबकि कालचक्र की विमला नामक टीका लिखी गई।

इस शाखा के अनुयायी इसे अलौकिक तत्त्व से परिपूर्ण मानते है जिसमें योग-साधना प्रधान बतलाई जाती है किंतु यह एक अत्यंत साधारण विचारधारा है जिसमें दानव, दैत्य, राक्षस और असुरों की कल्पना है। भूतनाथ भगवान् शिव की जैसी बुद्ध की भयानक मूर्ति और उससे भी भयानक काली इत्यादि उनकी शक्तियों की कल्पना है जिन्हें निरर्थक मंत्रों के बल पर वश में किया जाता है। भगवान् बुद्ध ने ही उत्पादिका शक्तियों को जन्म दिया जिनमें प्रमुख है—डाकिनी, सर्वहारा, इत्यादि। पुरुष दानव-मूर्तियों में वज्र भैरव, संवर, हयग्रीव, गुह्यकाल इत्यादि प्रमुख हैं। बुद्ध के तंत्र-मंत्रों से इन्हें वश में किया जाता है और ये उपासक के शत्रुओं का नाश करते है। ल्हासा से तीन मील पश्चिम में धान्यकटक नामक इनका प्रधान मठ है।

काळपुरुष *(उड़ि० कृ०)*

'काळपुरुष' गुरुप्रसाद महांति (दे०) की सर्व-श्रेष्ठ काव्य-कृति है। टी० एस० इलियट के 'वेस्टलैंड' के

अनुसरण पर यह विरचित है, किंतु यह उसका अनुवाद नही है। इसमे स्थानीय तत्त्वो की प्रमुखता है। इसमे आधुनिक उत्कलीय जीवन एव शहरीकरण आदि का चित्रण हुआ है तथा तज्जनित समस्याएँ उभर कर आयी है। प्रतीको के प्रयोग मे गभीरता एव मननशीलता मिलती है। चित्रकल्प (बिबो) का सुदर प्रयोग हुआ है। आधुनिक बिब-सबधी असलग्नता इसमे नही है। इसमे भाव प्रक्षेपित बिबो का सफल प्रयोग हुआ है। इसमे गति, स्थिति, स्पर्श, दृष्टि, मन स्थिति आदि सभी के चित्र मिलते है जो मूल कथा के साथ सहिति बनाए रखते हैं—साकेतिक सयोग-क्रम की रक्षा करते है।

काळमेकम (त०ले०) [समय—पद्रहवी शती का उत्तरार्ध]

ये पद्रहवी सदी के 'इरट्टैयर' (दे०) नामक कविद्वय के समकालीन थे। इनके आश्रयदाता 'तिरुमलै रायन्' का समय 1450-1480 ई० है। किंवदती है कि ये 'चोळिय' ब्राह्मण थे और 'श्रीरगम्' के रगनाथ भगवान के विशाल मदिर की पाकशाला मे सेवा करते थे। समीपवर्ती 'तिरुवानैक्का' के शिव-मदिर की देवदासी के प्रेम के कारण इन्होने शैवधर्म अपना लिया था। इनका नाम 'काळमेकम्' (सघन मेघ) सार्थक ही है क्योकि इनकी वाणी से सघन मेघ के समान तमिल पद्यो की वर्षा होती थी। आशु कविताओ की स्वाभाविक रचना-शक्ति के साथ-साथ इनमे चमत्कारिक श्लेषादि शब्दालकारो की रचना की भी अपूर्व क्षमता थी। 'समस्यापूर्ति' मे इनका प्रतिद्वद्वी नही था। इनकी प्रखर वाणी ने उन लोभी धनवानो पर प्रहार किया है, जो विद्वानो को निराश लौटा देते थे। विभिन्न अवसरो के अनुकूल रचित इनके स्फुट पद्य अत्यत लोकप्रिय है। निंदात्मक पद्य-रचना के लिए इनकी प्रसिद्धि लोकोक्ति के रूप मे प्रचलित है।

इनकी काव्यकृतियाँ है—'तिरुवानैक्काउला' ('तिरुवानैक्का' मदिर की शिव-मूर्ति की सवारी का वर्णन), 'चित्तिरमडल्' (आश्रयदाता की प्रशस्ति) तथा 'कडल् विलासम्' (समुद्र-वर्णन), जो प्राप्त नही है। उक्ति-वैचित्र्य के कारण तमिल भाषा के उत्तरकालीन काव्य के इतिहास मे 'काळमेकम्' का नाम अमर है।

कालस्वरूप कुलक *(अप० कृ०)*

यह जिनदत्त (दे०) सूरि द्वारा रचित 32 पद्यो की छोटी सी कृति है। इसका विषय धर्मोपदेश है। इसमे सुगुरु-वाणी और जिन-वाणी मे श्रद्धा रखने का आदेश है और माता-पिता के प्रति आदर-भावना का उपदेश देते हुए सुगुरु-प्राप्ति से यम-भय मिट जाने का निर्देश किया गया है।

कालहस्तिमहात्म्यमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवी शताब्दी ई०]

इसके लेखक का नाम धूर्जटि (दे०) है जो विजयनगर के राजा श्रीकृष्ण देवरायलु (दे०) के दरबारी कवि थे। 'अष्टदिग्गज' (दे०) नाम से विख्यात आठ महाकवियो मे धूर्जटि भी एक थे। ये परम शिवभक्त थे। 'कालहस्तिमहात्म्यमु' तथा 'श्रीकालहस्तीश्वरशतकमु' नामक इनकी दोनो रचनाएँ शिवभक्ति से ओतप्रोत है। 'कालहस्तिमहात्म्यमु' चार आश्वासो का काव्य है। सस्कृत 'स्कदपुराण' इसके कथानक का आधार है। शिव का जगम (शिवभक्त) के रूप मे आकर, नारायणवन के राजा वीर-नृसिह यादव को श्रीकालहस्तिमाहात्म्य से सबद्ध कथाओ को सुनाना ही प्रस्तुत काव्य का मुख्य विषय है। यह काव्य जिन दस भक्तो से सबद्ध है वे हैं वसिष्ठ, ब्रह्मा, मकडी, साँप, हाथी, तिन्नडु नामक आटविक, ब्राह्मण पुजारी, नत्कीर नामक कवि, दो वेश्या पुत्रियाँ तथा यादव राजा। सस्कार-शून्य होकर जगल मे जीवन बिताने वाले तिन्नडु की उत्कट तथा स्वच्छ शिवभक्ति का इसमे बडा ही सहज और मार्मिक वर्णन है। श्री (मकडी), काल (साँप) और हस्ती (हाथी)—इन तीनो भक्तो का जहाँ शिव ने उद्धार किया वही क्षेत्र 'श्रीकालहस्ति' के नाम से विख्यात हुआ। इस क्षेत्र की महिमा का वर्णन करने वाला काव्य ही 'कालहस्तिमहात्म्यमु' है। इसमे स्थानीय वातावरण का सुदर चित्रण है। तिन्नडु का गाँव तथा आटविक जातियो के जीवन आदि का वर्णन हृदयहारी है। शैली सरस तथा कोमल है और चरित्र-चित्रण सजीव है। अनेक कथाओ को शिवभक्ति रूपी सूत्र मे गूँथकर सपूर्ण काव्य मे एकता प्रतिपादित करने मे लेखक ने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है।

सबद्ध कथाओ के वर्णन द्वारा क्षेत्रमाहात्म्य का वर्णन प्रस्तुत करने वाले अनेक तेलुगु काव्य उपलब्ध होते है। 'क्षेत्रमाहात्म्य' कहलाने वाले इस वर्ग के तेलुगु काव्यो के अतर्गत धूर्जटि (दे०)-कृत 'कालहस्तिमहात्म्यमु' का विशेष स्थान है।

कालापुरुष अथवा राणोजीराव (म० पा०)

हरिनारायण आपटे (दे०) के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'उष:काल' (दे०) का यह पात्र अत्यंत रहस्यमय है और जासूसी उपन्यासों का स्मरण कराता है। जासूसी उपन्यासों के नायक के समान ही वह वेश बदलकर घूमता है और ऐन मौके पर बड़े रहस्यपूर्ण ढंग से प्रकट हो जाता है। वह एक वीर मराठा सरदार था परंतु पत्नी के अपहरण के उपरांत बीजापुर सरदार से बदला लेने के लिए वेश बदल कर रहने लगता है। जब कभी शिवाजी पर संकट आता है, वह तुरंत आ उपस्थित होता है और उनकी सहायता करता है। इसीलिए आलोचकों ने उसे 'हैड ऑफ़ फ़्रेट' कहा है। पत्नी के विष-पान करने पर वह स्वयं भी आत्मघात कर लेता है।

कालिंदी (बँ० कृ०) [रचना-काल—1940 ई०]

'कालिंदी' उपन्यास मे ताराशंकर बंद्योपाध्याय (दे०) ने एक ओर जमीदारों की समस्या का और दूसरी ओर सरल-प्राण संथालों के धर्मविश्वास एवं समाज-जीवन के माध्यम से पारिवारिक, विरोध, प्रजा-विद्रोह,मुक़दमेबाजी, आधुनिक यंत्र-सभ्यता के अभिशाप, दैवी अभिशाप आदि घटनाओं का जटिल विवरण प्रस्तुत किया है। घटना-प्रवाह में चरित्र अप्रधान हो गए है, फिर भी मानव रामेश्वर एवं जड़ प्रकृति कालिंदी नदी का कछार दोनों ही अपने प्राधान्य की प्रतिष्ठा में सफल हुए हैं। रामेश्वर ने अपने अभिशप्त जीवन की दुर्दशा की अपनी संतानों को वसीयत कर दी है और कालिंदी के कछार ने विरोध का क्षेत्र प्रस्तुत कर दुर्दशा का विस्तार किया है। इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता इसकी नाटकीयता है। संथालों की विचित्र समाज-व्यवस्था के चित्रण में लेखक ने वर्णन एवं विश्लेषण-शक्ति का परिचय दिया है। इस उपन्यास में अंधकार के गर्भ मे से उदित होने वाले विद्रोह के एक रोमानी स्वप्न को लेखक ने रूप प्रदान किया है।

कालिकामंगल (बँ० कृ०)

'कालिकामंगल' विद्यासुंदर-विषयक एक काव्य-ग्रंथ है। कवि कृष्णराम दास (दे०) ने केवल 20 साल की अवस्था में इस ग्रंथ की रचना की थी। बंगाल के चौबीस परगना के निमता ग्राम में इनका जन्म हुआ था और इस ग्रंथ की रचना कदाचित् सन् 1664 से सन् 1676 के बीच हुई थी। अष्टादश शती में रचित कालिकामंगल काव्य के एक कवि (प्राणराम चक्रवर्ती) ने अपने काव्य में कृष्णराम दास को कालिकामंगल के आदि कवि रूप में श्रद्धांजलि अर्पित की है।

मंगलकाव्य की धारा का अनुसरण करते हुए कालिकामंगल काव्य में विद्यासुंदर की कहानी का वर्णन हुआ है। कृष्णराम दास के 'रायमंगल' (दे०), 'शीतलामंगल', 'षष्ठीमंगल', 'कमलामंगल' आदि काव्यों के साथ मध्ययुग का पाठक परिचित है। 'कालिकामंगल' ही इस प्रकार के काव्यों का प्रेरणा-स्रोत है। मुकुंदराम (दे० चक्रवर्ती, मु०) का नैपुण्य एवं भारतचंद्र (दे०) का वैदग्ध्य इस काव्य में यद्यपि नहीं है तथापि सरलता और सरसता की दृष्टि से यह काव्य हीन नहीं है।

कालिदास (सं० ले०) [समय—अधिक मान्य ई० पू० प्रथम शताब्दी]

महाकवि कालिदास संस्कृत कवियों में सर्वोपरि हैं। इनको 'कविकुलगुरु' कहा जाता है। जर्मन कवि गेटे भी कालिदास की प्रतिभा से अभिभूत था, तभी उसने इन्हें पृथ्वी पर स्वर्ग लाने वाला कवि कहा था। कालिदास ने अपने ग्रंथों में कहीं भी अपने जीवन एवं स्थिति-काल के संबंध में कोई संकेत नहीं दिए; अतः यह प्रश्न बड़ा विवादग्रस्त बन गया। अनेक जनश्रुतियों के आधार पर ये महाराज विक्रमादित्य के नवरत्नों में अग्रणी थे। इनके—'शाकुंतलम्' का अभिनय किसी राजा की 'अभिरूपभूयिष्ठा' परिषद् में हुआ था। कहा जाता है कि वह राजा विक्रमादित्य ही था जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। परंतु इतिहासकारों में विक्रमादित्य के संबंध में मतैक्य न होने के कारण कालिदास की स्थिति-काल के संबंध में विभिन्न मत प्रचलित हो गए। इनमें तीन मत प्रमुख हैं—

1. ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी।
2. दूसरी से चौथी शताब्दी ई०।
3. छठी शताब्दी ई०।

इसी प्रकार इनके जन्मस्थान के विषय में भी अनेक मत प्रचलित हैं। अधिकांश लोग इनको मालवा के आसपास का निवासी मानते हैं। इनके विषय में यह मत भी प्रचलित है कि ये तथा इनका आश्रयदाता विक्रम दोनों शैव थे।

इनकी सात प्रामाणिक कृतियाँ उपलब्ध हैं—

'ऋतुसहार' (दे०), 'मेघदूत' (दे०), 'कुमारसभव' (दे०) तथा 'रघुवश' (दे०)—चार काव्य, तथा 'मालविकाग्निमित्रम्' (दे०) 'विक्रमोर्वशीयम्' (दे०) और 'अभिज्ञान शाकुतलम्' तीन नाटक।

वैसे तो कालिदास अपनी सभी कृतियो मे बडे सक्षम एव सफल कवि के रूप मे प्रकट होते हैं पर इनके 'रघुवश' तथा 'शाकुतलम्' तो अद्वितीय ग्रथ हैं। काव्यकला एव नाट्य-चातुरी दोनो मे ये बेजोड ठहरते हैं। 'शाकुतलम्' ने इन्हें विश्वकवियो की पक्ति मे खडा कर दिया। इनकी कृतियो पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि नागरिक जीवन के प्रति इनके हृदय मे अधिक आकर्षण है। इनका दृष्टिकोण अत्यत कलावादी है। ये रसवाद के पोषक हैं तथा बाह्य अलकरण को व्यर्थ समझते है। इनका आदर्श है—'किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम्'। कालिदास का सबसे प्रिय रस है—शृगार तथा प्रिय अलकार है उपमा एव अर्थान्तरन्यास। इनकी शैली बडी कोमल तथा प्रसाद गुण से युक्त है। ये वैदर्भी रीति के मूर्धन्य कलाकार है। इनकी भाषा व्यजना-प्रधान होते हुए भी सहज एव स्वाभाविक है। कुल मिलाकर ये एव सफल एव उत्कृष्ट कलाकार हैं।

कालिदास राय *(बँ० ले०)* [जन्म—1889 ई०]

रवीद्र वनस्पति की बृहत् छाया के आश्रय मे रहते हुए भी कवि कालिदास राय के कविधर्म के स्वातत्र्य तथा वैशिष्ट्य को अस्वीकारा नही जा सकता। ये कवि के साथ-साथ समालोचक है। बग-भारती की सारस्वत-साधना मे उनका जीवन समर्पित है। अधशताब्दी से भी अधिक समय से ये कविताओ की रचना मे सलग्न हैं। इनका काव्य-नैवेद्य हृदय नैवेद्य का नामातर-मात्र है। इनके 'कुद' (1907), 'किशलय' (1911), 'पर्णपुट' (प्रथम) (1914), 'ब्रजवेणु' (1915), 'बल्लरी' (1916), 'ऋतुमगल' (1920), 'पर्णपुट' (द्वितीय) (1921), 'क्षुद्रकुडा' (1922), 'लाजाजलि (1924), 'रसकदब' (1925), 'चित्तचिता' (1925), 'आहरणी' (सकलन 1932), 'हैमवती' (1936), 'वैकाली' (1938), 'ब्रजबाँशरी' ((1945), 'आहरण' (सकलन 1950), 'गाथाजलि' (1957), 'सध्यामणि' (1958) एव 'पूर्णाहुति' काव्य ग्रथो के अतिरिक्त 'गीतागोविंद' (1930), 'गीतालहरी' (1932), 'शकुतला' (1944), 'कुमार सभव' (1952), एव 'मेघदूत' (1955) काव्य-अनुवाद भी विशेष समादृत है। 'प्राचीन बग-साहित्य परिचय', 'पदावली परिचय' आदि ग्रथो ने भी इन्हे समालोचक के रूप मे सुख्याति प्रदान की है।

कवि कालिदास राय की रचना वैष्णवीय भाव गध की अमृतधारा से पुण्यस्नात है। प्रकृति-वदना मे कवि मुखर है। किंतु इनके मनोविहग ने मात्र प्रकृति के बहिरग रूप मे अपना नीड नही रचा है। प्रकृति के आश्रय से प्राणरग भूमि मे स्वच्छद विचरण किया है। युगजीवन की यत्रणा की अस्थिरता वहाँ दिखाई नही पडती परतु जीवन के गहरे मे इनका नि शब्द पदसचार अनुभवगम्य है। समालोचक-कवि ने विदग्धता के राज्य मे जिस प्रकार अपने को प्रतिष्ठित किया है वहाँ दूसरी ओर जीवन नदी के किनारे बैठकर ममतामयी वसुधरा के अश्रुसगीत को साधारण जीवन मे सचारित कर अपने कवि कर्म को नवतर स्वातत्र्य तथा महिमा प्रदान की है।

कालीकीर्तन *(बँ० कृ०)*

वैष्णव पदावली की पथरेखा का अनुसरण करते हुए कविरजन रामप्रसाद सेन (दे० सेन)ने जिस देवी लीला-कीर्तन की रचना की, उसे ही 'कालीकीर्तन कहा जाता है। श्रीकृष्ण की गोष्ठ लीला, रासलीला के अनुरूप ही यहाँ भी शक्ति-देवी की जीवनचर्या के विचित्र अध्यायो की अपरूप कथा वर्णित हुई है। कहानी को यहाँ वृत्त के रूप मे सपूर्णता प्राप्त नही हुई है परतु विषय वैचित्र्य एव वर्णना की दृष्टि से रामप्रसाद के 'कालीकीतन' का ऐतिहासिक गुरुत्व निर्विवाद है।

कालीप्रसन्न सिंह *(बँ० ले०)* [जन्म—1840 ई०, मृत्यु—1870 ई०]

उन्होने 30 वर्ष की अल्पायु मे ही 'हुतोम प्याचार नक्सा' (दे०) की रचना कर प्रारभिक बँगला-गद्यकारो मे अपना स्थायी स्थान बना लिया था। धनी परिवार के इस नवयुवक ने पहले-पहल अपनी 'विद्योत्साहिनी सभा' मे मधुसूदन दत्त (दे० माइकेल मधुसूदन दत्त) की कवि प्रतिभा का खुलकर अभिनदन किया तो दूसरी ओर 'नीलदर्पण' (दे०) के अँग्रेजी अनुवादक पादरी लाग पर हुए 1000 रुपये के जुरमाने को स्वय चुका कर अपने सहृदय व्यक्तित्व का परिचय दिया। उनके सामाजिक

व्यक्तित्व की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है 'हुतोम प्यांचार नक्सा', जो दो भागों मे सन् 1862 में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक की रचना उन्होंने हुतोम प्यांचा (बड़ा उल्लू) के छद्म-नाम से की थी।

'हुतोम प्यांचार नक्सा' में कालीप्रसन्न सिंह ने अपनी ही श्रेणी के वित्तवान तथा प्रतिष्ठावान समाज के सदस्यों की दुर्बलता तथा दैन्य पर पैने व्यंग्य का भरपूर आघात किया है। इसी ढंग का उनका एक नाटक 'बाबू' सन् 1854 में प्रकाशित हुआ। किंतु कालीप्रसन्न सिंह की अक्षय कीर्ति का स्तंभ है उनका 'महाभारत' का बँगला अनुवाद (सन् 1860-66 ई०)। वस्तुतः 'हुतोम प्यांचार नक्सा' तथा 'महाभारत' के अनुवाद का उद्देश्य एक ही था—लोकमंगल तथा समाज की हित-साधना।

प्यारीचाँद मित्र ने बँगला गद्य को दैनंदिन जीवन के मुहावरे के निकट लाने का प्रयत्न किया था और उसमें सफलता भी पाई थी परंतु विशुद्ध व्यावहारिक भाषा के प्रयोग में पूर्ण सफलता कालीप्रसन्न सिंह को ही मिली। चलाऊ भाषा का प्रयोग करने पर भी उनकी भाषा संयत-संतुलित है, और उसका यह गुण हास्य-प्रधान गद्य में ही नहीं, गुरु-गंभीर लेखन में भी परि-लक्षित होता है।

कालू (गु० पा०)

'मानवीनी भवाई' (दे०) नामक आंचलिक उपन्यास का प्रमुख पात्र कालू झाकलिया गाँव के बाला-भाई पटेल की वृद्धावस्था में उत्पन्न एकमात्र संतान है। बालक के पैदा होने के बाद ही एक ब्राह्मण ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक 'आत्मकर्मी' होगा; औपचारिक रूप से भले ही चौधरी न हो पर चौधराई उसी की चलेगी; इसके घर के दरवाजे पर घोड़ी बँधेगी; जाति और राज्य में यह लड़का अत्यंत प्रसिद्ध होगा; बड़ा बहादुर होगा; इसकी उम्र अपने पिता से भी लंबी होगी; दो स्त्रियों से विवाह करेगा तथा उसकी सगाई बालाभाई के जीवन-काल में ही हो जायेगी। 'राजा के कुँवर के समान' कालू नामक लड़के की सगाई फूली काकी के उद्योग से गवलाभाई की लड़की राजू के साथ हो जाती है और ब्राह्मण की भविष्य-वाणी फलने लगती है। कालू के पिता उसे बहुत ही छोटी उम्र में छोड़कर चल बसते हैं। किसी का सहारा नहीं रहता। माँ रूपा को उसकी देवरानी अपमानित करती है; अपमान न सह सकने के कारण कालू को लेकर रूपा हल-बैलों के साथ खेत पर पहुँच जाती है। यहीं से ब्राह्मण की दूसरी भविष्यवाणी के सही होने का श्रीगणेश होता है। लड़का 'आत्मकर्मिता' का पहला पाठ पढ़ता है। साहस की उसमें कमी नहीं है। चाची माली की अवकृपा, ईर्ष्या और द्वेष के कारण कालू की सगाई टूट जाती है और उसका विवाह भली के साथ होता है और उसकी मँगेतर का विवाह होता है भली के काका के साथ; और इस प्रकार कालू और राजू की एक ही ससुराल बन जाती है। कालू अपनी ससुराल की निर्धनता देखकर द्रवित हो उठता है और उन्हें सभी प्रकार की सहायता देने लगता है। यह हृदय की द्रवणता केवल अपने सगे-संबंधियों के लिए ही नहीं है, उसका आधार संपूर्ण मानव-समाज है। अनावृष्टि होती है और सारा गाँव दुष्काल से पीड़ित है। भील गाँव की गाय-भैंसों को जबरदस्ती उठा ले जाते हैं। कालू उनका पीछा करता है और उन्हें—भूख से अत्यंत पीड़ित भीलों को कच्चा मांस खाते देखता है, और देखता है उनकी बेसब्री को; तो उन लोगों को जो पत्थर से गाय को मार कर खाना चाहते थे, अपनी तलवार देकर घर चला आता है। इसी प्रकार तलकचंद कारभारी की धान्य से भरी गाड़ियाँ गाँव से होकर निकल रही हैं और सारा गाँव भूखा मर रहा है। कालू से नहीं देखा जाता। अपने एक हाथ को खोकर भी कालू उस गाड़ी को गाँववालों के लिए बलात् लूट लेता है और उसका अन्न सभी गाँववालों में बाँट देता है। दरियादिली और साहसिकता में कालू बेजोड़ है। स्वाभिमान उसमें कूट-कूट कर भरा है। भली के ताने मारने पर वह अपनी ससुराल जाना स्थगित कर देता है और डेंगडिया नगर में जब सभी कणबी पटेल भूख से हार मानकर भीख माँगने के लिए तैयार हो जाते हैं, उस समय भी वह यह कह कर कि 'जिस अन्न को हमने कमाकर इन महाजनों को दिया उसी अन्न के लिए वह हाथ नहीं पसार सकता' भीख माँगना टाल देता है। पर सेठ के समझाने पर पीड़ा और कृषक की विवशता का अनुभव करने वाला कालू किसान रो उठता है। राजू से उसका प्रेम है। वह इसे व्यक्त नहीं कर पाता पर सतत अनुभव करता रहता है। अपने मन की भावनाओं के अनुकूल वह राजू के साथ जैसे जीवन जीने के सपने देखता है; निराश होता है। राजू को राजू बनाए रखने में कालू का बहुत बड़ा हाथ है। भूख की पीड़ा न सह पाने की स्थिति में जब कालू जीवन से निराश हो जाता है तो राजू ही उसे प्रोत्साहित करती है। भयंकर दुष्काल के बाद वर्षा की बूँदें आने से उसमें पुनः उत्साह आ जाता है और राजू की

भी यह कहना पड़ता है कि अब इसे यमराज भी नहीं मार सकता। इस तरह देखने से कालू हमारे समक्ष सच्चा प्रेमी, किसान की पीडा को जानने वाला, गरीबो का सहायक और किसी की विपत्ति मे कूद पडने वाला साहसिक युवक है। उदारमना इस चरित्र मे धरती की गध भरी हुई है। गुजराती उपन्यास साहित्य मे इस प्रकार का कोई दूसरा पात्र शायद ही मिले।

काळेले, रामचद्र अनंत *(म० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

ये इदौर राज्य के राजकवि थे। इनके काव्य सग्रह हैं—'वाग्वसता', (1934), 'ओळखीचे सूर' (1941), 'भावपूर्णा' (1943), 'गीतनिर्वाण' तथा 'हिमागार'।

इनके प्रारभिक गीत प्रेमगीत हैं। परतु 'हिमागार' रचना से काळेले की काव्य-चेतना ने प्रेम के स्तर से क्रातिकारी भावनाओ के नवीन स्तरो मे प्रवेश किया। शोषित वर्ग के नाम पर प्राय मजदूर तथा किसान की व्यथा मुखर की जाती है, परतु इन्होंने एक सामान्य आय वाले क्लर्क की मनोव्यथा को भी वाणी प्रदान की है।

काळेले का काव्य विचार-प्रधान है। इन्होंने मुक्त छद (दे०) मे काव्य-रचना की है। काव्य भाषा प्रसन्न, ऋजु एव प्रसादमय है।

कावडिच्चिदु *(त० पारि०)*

'चिदु' या 'शिदु' गेय पदो की एक शैली है। छदो के जिन चरणो मे तीन-तीन अक्षरो के गण होते हैं, उन्हें तमिल छद शास्त्र मे 'चिदु' या 'चिदडि' कहा जाता है। आरभ मे इसी विशेषता के कारण गीतो को चिदु' कहते थे। बाद मे, समान चरणो से युक्त किसी भी तरह के गेय पद को चिदु' कहा जाने लगा। दक्षिण मे मुरुग या सुब्रह्मण्य भगवान के दर्शन के लिए मनौती करके भक्त लोग छोटी-छोटी कांवरिया कधे पर लिये यात्रा पर चलते हैं। इनमे मुरुग भगवान को समर्पित करने के लिए आवश्यक पूजा-सामग्री और दूध रख लिया जाता है। इस यात्रा मे लोग भजन गाते हैं। बाद मे ऐसे गीत 'कावडिच्चिन्दु' कहे गए। उन्नीसवी शताब्दी मे अण्णामलै रेड्डियार नामक कवि ने एक जमींदार-परिवार की यात्रा के समय गाने के लिए 'कावडिच्चिदु' नामक एक गीत-कृति निर्मित की। यह प्रबधकाव्यवत् रचना है। प्रकृति-वर्णन, 'मुरुग' की प्रियतमा का उसके वियोग मे दुख भोगना, प्रियतम से मिलन इत्यादि प्रसगो का मार्मिक चित्रण है। यह सस्कृत तथा तमिल के शब्दो से युक्त व्यावहारिक भाषा-शैली मे लिखी गई है और जनप्रिय हो गई है। इसके अनुकरण पर कुछ अन्य कवियो ने 'रामायण', 'महाभारत' आदि कहानियो को लेकर 'कावडिच्चिदु' रचे हैं।

काविले पाट्टु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1968 ई०]

'काविले पाट्टु' इटश्शेरि (दे०) गोविदन् नायर का साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत कविता-सग्रह है। इस सग्रह की कविताओ का मुख्य विषय केरल की ग्रामीण जनता का जीवन और उनकी आशाओ अभिलाषाओ, विश्वासो और व्यथाओ वेदनाओ का सुदर प्रस्तुतीकरण है। आशावाद और मानव-प्रेम इटश्शेरि की कविता के मुख्य स्वर है। उनकी भाषा ऋजु-सहज और सवेदनक्षम हैं और वे अलकारो से सप्रयास बचते हैं। उनकी इन विशेषताओ का प्रतिनिधित्व करने वाला यह ग्रथ मलयाळम का एक महत्वपूर्ण कविता-सग्रह है।

काव्य *(हिं० पारि०)*

भारतीय दृष्टि के अनुसार वाङ्मय का एक भेद। दूसरा भेद है शास्त्र। सस्कृत-व्याकरण मे 'काव्य' शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से कवि-कर्म के रूप मे नई धातुओ से व्युत्पन्न माना गया है कवि-पु० (1) कवते सर्वं जानाति सर्वं वर्णयति, सर्वं सर्वतो गच्छति वा। √कव+इन्। (2) कवते श्लोकान् ग्रथते वर्णयति वा। √कव+इन्। (3) कवति शब्दायते इति। √कु (शब्दे)+इ (हलायुध कोश) अर्थात् 'कवि' शब्द (1) √कव मे इन् प्रत्यय के सयोग से बना है, 'कव्' धातु का प्रयोग सर्वज्ञता एव वर्णन-कौशल के अर्थ मे होता है। इस दृष्टि से 'कवि' से तात्पर्य हुआ सर्वज्ञ एव वर्णन-कला मे निपुण व्यक्ति। (2) √कु+इन् से भी 'कवि' की व्युत्पत्ति मानी गई है, √कु का अर्थ है शब्द करना और इस आधार पर 'कवि' शब्द से आशय है शब्द के माध्यम से भाव एव अर्थ व्यक्त करने वाला व्यक्ति।

सस्कृत-काव्यशास्त्र मे 'काव्य' शब्द के अर्थ का विकास व्याकरण-सम्मत अर्थ के आधार पर ही हुआ है। अभिनवगुप्त (दे०) ने 'ध्वन्यालोकलोचन' मे कवि कर्म को ही 'काव्य' की सज्ञा प्रदान की है. 'कवनीय काव्यम्'

एकावली टीका में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई 'कवयतीति कविः तस्य कर्म काव्यं'। मम्मट (दे०) ने 'कवि' शब्द को √कव् से व्युत्पन्न मानते हुए 'लोकोत्तर वर्णन में निपुण कवि के कर्म को काव्य माना है : 'काव्यं लोकोत्तरवर्णनानिपुणं कविकर्म।' भट्टगोपाल के अनुसार 'कवि' शब्द √कु से बना है और रस एवं भावों को शब्द रूप में प्रस्तुत करने वाले कवि का कर्म ही काव्य है : 'कौति शब्दायते विमृशति रसभावान् इति कविः तस्य कर्म काव्यं'। संस्कृत-काव्यशास्त्र में कवि के लिए 'स्रष्टा', 'प्रजापति' तथा काव्य के लिए 'सृष्टि' आदि शब्द काव्य-प्रक्रिया की सर्जनात्मकता की ओर इंगित करते हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य को मूलतः शब्दार्थ-रूप माना गया है : 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' (भामह), 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्'(रुद्रट)। इस आधार पर संस्कृत-काव्यशास्त्र के अंतिम एवं अन्यतम आचार्य पंडितराज जगन्नाथ (दे०) ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य माना ('रमणीयार्थ-प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्—रसगंगाधर, प्रथम आनन)। रस को काव्य-सर्वस्व मानने वालों में कविराज विश्वनाथ (दे०) की काव्य-परिभाषा अत्यंत प्रसिद्ध है: रसात्मक वाक्य काव्य है। (वाक्यं रसात्मकं काव्यम्)।

काव्य का अनिवार्य अंतस्तत्त्व अनुभूति है; इसके दूसरे मौलिक घटक हैं कल्पना एवं विचार। भारतीय दृष्टि से काव्य की उत्तमता का निकष रसात्मकता और ध्वन्यात्मकता है। काव्य के बहिरंग को महत्व देने वाले संप्रदायों में अलंकरण और उक्ति-चारुत्व को भी काव्यत्व की कसौटी माना गया है। ध्वनिवादियों ने व्यंजकता के आधार पर काव्य की उत्तम, मध्यम और अधम तीन कोटियाँ निर्धारित की हैं। रूप की दृष्टि से काव्य के दो भेद हैं दृश्य और श्रव्य। दृश्य के भी दो प्रकार हैं—रूपक (दे०) और उपरूपक। श्रव्य के भी दो भेद हैं—प्रबंध और मुक्तक (दे०)। प्रबंधकाव्य का सर्वप्रमुख भेद महाकाव्य (दे०) साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रूप है। भारतीय वाङ्मय का 'काव्य' शब्द वस्तुतः रस के समस्त साहित्य का पर्याय है; छंदोबद्धता उसका अनिवार्य अनुबंध नहीं है।

काव्य आणि काव्योदय *(म० कृ०)* [रचना-काल—1909 ई०]

श्री वा० म० पटवर्धन इसके लेखक हैं। इसमें पाश्चात्य काव्य-सिद्धांतों के आधार पर आधुनिक मराठी काव्यकृतियों की समीक्षा की गई है।

इसमें भारतीय और पाश्चात्य काव्यरचना के मूलगत भेद का स्पष्टीकरण किया गया है। पश्चिम की भौतिक, राजनीतिक परिस्थितियों ने साहित्य रचना की गतिविधि को किस प्रकार प्रभावित किया है, इसकी चर्चा करते हुए इसमें बताया गया है कि अंग्रेज़ी साहित्य की रचना नैसर्गिक और लोकजीवाभिमुख होने के कारण लौकिकानंद देने में समर्थ है। इसके विपरीत भारत में अस्थिर राजनीति के कारण प्राचीन भारतीय साहित्य गंभीर एवं निवृत्तिपरक बताया गया है। 'प्रतिभा' (दे०) की नई व्याख्या भी इसमें की गई है। इनके अनुसार मनोविकारों के प्रकर्ष को 'प्रतिभा' कहना चाहिए और उक्त मनोविकारों का सहजाविष्कार ही काव्य या साहित्य है।

इसमें काव्य के शाश्वत गुणों का उल्लेख किया गया है। विषय-विवेचन उत्तम कोटि का है। लेखक की मौलिकता तथा व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है। इस ग्रंथ से ही वास्तव में मराठी में आधुनिक साहित्य-तत्व-विवेचन का श्रीगणेश हुआ है।

काव्यकल्पद्रुम *(हि० कृ०)*

इस ग्रंथ के दो भाग हैं—रसमंजरी और अलंकारमंजरी, जिनके प्रणेता कन्हैयालाल पोद्दार (दे०) हैं। वर्तमान युग में मम्मट (दे०) रचित 'काव्यप्रकाश' (दे०) और विश्वनाथ (दे०) रचित 'साहित्यदर्पण' (दे०) का आधार ग्रहण कर जिन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का प्रणयन हुआ है, उनमें से विषय-प्रतिपादन की स्वच्छता एवं प्रामाणिकता की दृष्टि से 'काव्यकल्पद्रुम' का विशिष्ट स्थान है। काव्य-लक्षण, काव्य-भेद, ध्वनि (दे०), गुणीभूत-व्यंग्य (दे०), शब्दशक्ति, रस (दे०), गुण (दे०), दोष (दे०) एवं अलंकार (दे०)—इन सभी काव्यांगों को इस ग्रंथ में स्थान मिला है। काव्यांगों एवं उनके भेदोपभेदों के लक्षण व्यवस्थित खड़ीबोली-गद्य में प्रस्तुत किए गए हैं, फिर उनका यथावश्यक रूप में स्वच्छ विवेचन किया गया है, और अंततः प्रायः मम्मट अथवा विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत उदाहरणों का ब्रजभाषा में पद्यबद्ध अनुवाद किया गया है। रीतिकालीन रीति-ग्रंथ शास्त्रीय दृष्टि से शिथिल एवं अपरिपक्व थे, किंतु यह ग्रंथ इस दृष्टि से सर्वथा पुष्ट एवं समर्थ है। यद्यपि इसमें मौलिकता का अभाव है, फिर भी, हमारे विचार में, हिंदी का प्रथम प्रौढ़ काव्यशास्त्रीय पाठ्य-ग्रंथ यही है।

काव्यतत्त्वविचार *(गु० कृ०)*

रामनारायण वि० पाठक (दे०) द्वारा सपादित और गुर्जर-ग्रथ-रत्नाकर द्वारा प्रकाशित 'काव्यतत्त्व-विचार' नामक ग्रथ आचार्य डा० आनदशकर बापुभाई ध्रुव द्वारा लिखे गए 'गरुड' और 'वसत' नामक पत्रिका मे समय-समय पर प्रकाशित लेखो का मुद्रित रूप है। इस ग्रथ मे विद्वान लेखक के 'कविता', 'कविता अने भाषण', 'सुदर अने काव्य', 'सस्कारी सयम अने जीवननो उल्लास', 'काव्यशास्त्रना थोडाक सिद्धातो', 'रसास्वादनो अधिकार', 'साहित्य', 'सौदर्यनो अनुभव', 'हिंदुस्थानमा वर्षाऋतु' (प्रकृतिकाव्य), 'साहित्य अने राष्ट्र', 'साहित्य अने काव्य', 'केलवणी अने साहित्य', 'साहित्य अने साक्षर', 'साक्षर अेटले शु ?', 'साहित्यमा गाजवीज ?', 'साहित्यनु पुनरावर्तन', गुजरात कालेजमा वार्तालाप 1 'साहित्य अने जीवन', 2 'साहित्य अने शीत', 'पृथुराजरासाना एक अवलोकन-माथी उद्भवती चर्चा' तथा 'कविता सबधी थोडा विचार नामक विषयो पर उत्प्रेरक लेख या व्याख्यान सग्रथित हैं। आनदशकर ध्रुव के लिए कविता अमृतस्वरूप, आत्मा की कला और वाग्देवी-रूप है, प्रत्येक कवि सुदर (श्रीमत्) और भव्य (ऊर्जित) को अपने काव्य मे मात्रा-भेद से स्थान देता है। सस्कारी जीवन और जीवनोल्लास की चर्चा करते हुए लेखक शास्त्रीयता और स्वच्छदता की चर्चा उपस्थित करता है। 'रसास्वादनो अधिकार' नामक लेख मे ध्रुव जी ने मुशी द्वारा इसी विषय पर दिए भाषण से कुछ तथ्य निकाल कर शास्त्रीयतावाद और स्वच्छदतावाद के परिप्रेक्ष्य मे उनकी चर्चा की है। 'साहित्य' शब्द की व्याख्या मे भी पूर्व और पश्चिम की कुछ धारणाओ को आगे रख कर समता सिद्धात (क्लासिकल [सस्कृतिनो सयम] और रोमाटिक [जीवननो उल्लास] शैलियो की समता के सिद्धात) को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। सौंदर्यानुभव की विचारणा करते हुए लेखक जगन्नाथ, कालिदास और एडिथ सिट्वेल के उद्धरण देकर पुन शास्त्रीयतावाद और स्वच्छदतावाद मे अपनी चर्चा को समेट लेता है। 'केलवणी अने साहित्य' तथा 'साहित्य अने साक्षर' लेखक द्वारा दिए गए भाषण है। भीमराव भोलानाथ द्वारा रचित 'पृथुराजरासा' नामक ग्रथ पर रमणभाई द्वारा लिखित विवेचना को लेकर लेखक ने कुछ समस्याएँ उठाई हैं। इन सभी लेखो व भाषणो को देखने से पता चलता है कि लेखक की आलोचना मे पूर्व और पश्चिम की विचारधाराओ का अद्भुत समन्वय है, जटिल-से-जटिल विषको मे सत्य खोज लेने की पैनी दृष्टि के दर्शन होते हैं और किसी वस्तु का मूल्याकन करते समय जिस ऐतिहासिक और तत्त्वान्वेषी दृष्टि की आवश्यकता होती है वह दृष्टि लेखक मे सर्वत्र दिखाई देती है। रामनारायण पाठक की यह बात ठीक ही लगती है कि अगर ध्रुव जी के इन लेखो को पुस्तकाकार न प्रकाशित किया गया होता तो गुजराती के एक बहुत बडे विद्वान की विद्वत्ता से गुजराती पाठक वचित रह जाता। गुजराती साहित्य के इतिहासकार और साहित्य के अध्येताओ के लिए ध्रुव जी के निबध बहुत अधिक उपयोगी हैं।

काव्यनिर्णय *(हिं०कृ०)* [रचना-काल—1746 ई०]

इसके रचयिता भिखारीदास (दे०) है। ग्रथ मे 25 उल्लास है, जिनमे विभिन्न काव्यागो का निरूपण है। सबसे अधिक सामग्री अलकार विषयक है और इसके बाद रस तथा नायक-नायिका भेद-विषयक। इस ग्रथ की कतिपय मौलिकताएँ उल्लेख्य है—वामन (दे०)—सम्मत दस गुण चार वर्गो मे विभक्त किए गए है, 'स्वाधीनपतिका' आदि आठ नायिकाएँ दो वर्गों मे, तथा इक्यानवे अलकार बारह वर्गो मे। किंतु अलकारो का वर्गीकरण शास्त्र-सम्मत एव वैज्ञानिक नही है। इस ग्रथ मे शृगार रस के ये नूतन भेद प्रस्तुत किए गए है—सम तथा मिश्रित, सामान्य तथा सयोग, और नायक-जन्य शृगार और नायिका-जन्य शृगार। ग्रथ निर्माण मे हिंदी के लक्ष्य ग्रथ भी सामने रखे गए है और—काव्य-हेतु, 'तुक' तथा ब्रजभाषा-प्रसग मे उनको आधार बनाया गया है, और इस दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण है। किंतु इसमे दोष भी कम नही है। काव्य-लक्षण, शब्दशक्ति-प्रकरण मे सकेत-गृह, उपादानलक्षणा आदि स्थल तथा व्यग्य-प्रकरण शिथिल है। फिर भी, हिंदी रीतिकालीन ग्रथो मे केशव की 'कविप्रिया' के बाद इस ग्रथ का विशेष स्थान है।

काव्यप्रकाश *(स० कृ०)* [समय—1075-1100 ई०]

'काव्यप्रकाश' के लेखक राजानक मम्मट (दे०) है। मम्मट का स्थिति काल ग्यारहवी शताब्दी ई० का उत्तरार्ध है। अत अनुमान है कि काव्यप्रकाश की रचना ग्यारहवी शताब्दी के अतिम चरण म हुई होगी।

अलकारशास्त्र के क्षेत्र मे 'काव्यप्रकाश' एक महनीय कृति है। इसमे कुल 142 कारिकाएँ किंवा सूत्र

हैं जिनमें काव्यशास्त्र के सभी अंगों का विवेचन आ गया है। ग्रंथ दस उल्लासों में विभाजित है और कारिका, वृत्ति तथा उदाहरण इसके तीन भाग हैं। इसके प्रायः सभी उदाहरण पूर्ववर्ती ग्रंथों से लिये गए हैं। प्रथम उल्लास में काव्य के प्रयोजन, हेतु, परिभाषा तथा उसके तीन भेदों का निरूपण किया गया है। काव्य के छह प्रयोजन (यश, अर्थलाभ, व्यवहारज्ञान, अमंगल का निवारण, सद्यः परनिर्वृत्ति और कांतासम्मित उपदेश) और तीन हेतु (शक्ति, निपुणता और अभ्यास) बताए गए हैं। काव्य की परिभाषा में 'काव्यप्रकाश' की समन्वयवृत्ति द्रष्टव्य है। ऐसे शब्द और अर्थ को काव्य बताया गया है जो दोपरहित और गुणयुक्त हों; वह यत्रतत्र अलंकाररहित भी हो सकता है। काव्य के तीन भेद—उत्तम (ध्वनि), मध्यम (गुणीभतव्यंग्य) और अवर (चित्रकाव्य) किए गए हैं। द्वितीय उल्लास में शब्द के वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक तीन प्रकार और उनके वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य तीन प्रकार के अर्थों का भेदपूर्वक निरूपण किया गया है। तृतीय उल्लास में यह बताया गया है कि सभी प्रकार के अर्थ व्यंजक कैसे हो सकते है। चतुर्थ उल्लास में उत्तम काव्य (ध्वनिकाव्य) का भेदोपभेदपूर्वक निरूपण किया गया है। रस के स्वरूप तथा तत्संबंधी विभिन्न सिद्धांतों का विवेचन इसी उल्लास में किया गया है। पंचम उल्लास में मध्यम काव्य तथा छठे उल्लास में अवर काव्य के भेदों का निरूपण किया गया है। सातवें उल्लास में दोषों का निरूपण है और यह बताया गया है कि कतिपय स्थलों में दोष किस प्रकार रमणीयता-प्रतिपादक हो जाते हैं। आठवें उल्लास में गुण और शब्दालंकार के अंतर तथा गुणों के तीन प्रकारों (माधुर्य, ओज, प्रसाद) का निरूपण किया गया है। अन्य गुण या तो इन्हीं में अंतर्भूत हैं या वे दोषाभाव मात्र हैं। नवें उल्लास में 7 अलंकारों तथा तीन वृत्तियों (उपनागरिका, परुषा और कोमला) का तथा दसवें उल्लास में 61 अर्थालंकारों का भेदोपभेदपूर्वक विवेचन किया गया है।

'काव्यप्रकाश' मम्मट की समन्वयवादिनी दृष्टि का परिचायक है। ध्वनिवादी होते हुए भी लेखक ने इसमें अलंकार, गुण, रीति-वृत्ति आदि का व्यवस्थित मूल्यांकन कर उन्हें अपनी व्यवस्था में यथोचित स्थान प्रदान किया है।

काव्यप्रकाशखंडन *(सं० कृ०)* [समय—सोलहवी शती]

सिद्धिचंद्रगणी द्वारा लिखित 'काव्यप्रकाशखंडन' में दस उल्लास हैं। पंडितराज जगन्नाथ (दे०) के समकालीन होने के कारण इन्हें भी सोलहवीं शती का माना जा सकता है। इनके स्वयं के मतानुसार इनकी लेखन-विधि अनुवादपूर्वक खंडन की है यद्यपि इनके सभी खंडन समीचीन नहीं हैं।

काव्यप्रयोजन *(सं० पारि०)*

काव्य-रचना के बाद की उपलब्धि को काव्य-प्रयोजन कहते हैं। काव्यप्रकाशकार मम्मट (दे०) ने अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा परिगणित विभिन्न काव्य-प्रयोजनों को निम्नोक्त रूप में प्रस्तुत किया—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

अर्थात् काव्य का प्रयोजन है यश और धन की प्राप्ति, व्यवहार का ज्ञान, कष्ट-निवारण, तुरंत परम आनंद (रसास्वाद) की प्राप्ति, तथा कांतासम्मित (सहज रूप से प्राप्त) उपदेश। इनमें से मम्मट ने सद्यःपरनिर्वृत्ति (रसास्वाद) को सर्वोपरि स्थान दिया, और उसके बाद दूसरा स्थान कान्तासम्मित उपदेश को। उक्त प्रयोजनों में से यश, अर्थ और कष्ट-निवृत्ति—ये तीन प्रयोजन कवि को प्राप्त होते है और शेष तीन प्रयोजन सहृदय को। यों, ये सभी प्रयोजन किसी-न-किसी रूप में कवि और सहृदय दोनों को प्राप्त हैं।

काव्यमीमांसा *(सं० कृ०)* [समय—अनुमानतः दसवी शताब्दी का पूर्वार्ध]

राजशेखर (दे०)-कृत 'काव्यमीमांसा' का संस्कृत-साहित्यशास्त्र मे अत्यंत गौरवमय स्थान रहा है। यह ग्रंथ 18 अधिकरणों में लिखा गया था किंतु आज इसका प्रथम अधिकरण ही उपलब्ध होता है जिसके 18 अध्याय हैं।

इसमें कवि तथा आलोचक के स्वरूप, प्रकार, काव्यभेद, रीतिविवेचन, काव्यार्थ की योनि, शब्दहरण तथा अर्थावहरण विचार आदि अनेक उपादेय विषयों का अत्यंत प्रभावशाली विवेचन हुआ है। प्रस्तुत ग्रंथ में कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी की गई हैं—यथा वेद-पुरुष के आधार पर काव्यपुरुषोत्पत्ति एवं साहित्यविद्या-वधू के साथ उसका विवाह संबंध। इस ग्रंथ का एक वैशिष्ट्य यह भी है कि इसमें अनेक अज्ञात एवं अप्रसिद्ध आचार्यों के नामोल्लेख हैं जिनसे भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा एवं साहित्य-विकास संकेत मिलता है। यह केवल सैद्धांतिक विषय-विवेचन का ग्रंथ नहीं, व्यावहारिक विषयों का ग्रंथ भी है।

काव्य-विचार *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1941 ई०]

इसके मूल लेखक श्री सुरेंद्रनाथ दास गुप्त और अनुवादक श्री नगीनदास पारेख है। अनुवाद मूल बँगला ग्रथ से किया गया है। भारत मे यो तो भरत (दे०) से लेकर विश्वनाथ (दे०) तथा जगन्नाथ (दे०)-पर्यंत काव्य की सैद्धातिक चर्चा हुई है किंतु पश्चिम के समान काव्य का समग्ररूपेण विवेचन करने की पद्धति हमारे यहाँ नही रही। तीन सौ पृष्ठो के इस ग्रथ मे दासगुप्त ने समस्त काव्य-विचारधारा को व्यापक तथा पाश्चात्य पद्धति से प्रस्तुत किया है। उनके इस ग्रथ का प्रणयन उस समय हुआ था जब सहृदय पाठक की ज्ञान-पिपासा की परितुष्टि करने वाले ग्रथ स्वर्गीय डा० दे (दे०), काणे (दे०), जैकोबी, शोवानी तथा अतुलचद्र के प्रयासो तक ही सीमित थे। उस समय इस ग्रथ ने एक बडे अभाव की पूर्ति की थी। दासगुप्त के इस ग्रथ मे समग्रता और गहनता है।

स्वय अनुवादक भी काव्यशास्त्र के उत्कृष्ट विद्वान हैं तथा गाधीवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण उनकी शैली स्पष्ट और सरल है। गुजराती साहित्य परिषद् ने वर्षों पूर्व इस ग्रथ को सुलभ कर विद्वत् समाज की महत्वपूर्ण सेवा की थी।

काव्यशास्त्र *(हिं० पारि०)*

काव्य के मूलभूत सिद्धातो तथा उसके विभिन्न भेदोपभेदो के रचना एव मूल्याकन-सबधी नियमो का उपस्थापन, निरूपण, विवेचन एव विश्लेषण करने वाला शास्त्र। काव्यशास्त्र काव्य का शास्त्र है। भारतीय आचार्यो ने शास्त्र को वाड्मय के दो भेदो मे से एक माना है ('इह वाड्मय उपमया शास्त्र काव्य च'—राजशेखर)। शास्त्र के अतर्गत वेद, वेदाग, आन्वीक्षिकी, दडनीति, ज्योतिष, तकशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विद्याओ के साथ ही 'साहित्य-विद्या' भी समाविष्ट है जिसे राजशेखर (दे०) ने सभी विद्याओं का सार कहा है।

काव्यशास्त्र का प्राचीनतम भारतीय अभिधान 'अलकारशास्त्र' है, यद्यपि भामह (दे०) ने इसके लिए एक स्थान पर केवल 'अलकार' शब्द का प्रयोग भी किया है—'काव्यालकार इत्येप यथाबुद्धि विधीयते'। दूसरा प्राचीन नाम है 'काव्य विद्या'। राजशेखर ने 'साहित्य विद्या' शब्द का प्रयोग किया है। प्राचीन युग मे एक अन्य प्रचलित नाम था 'काव्यमीमासा'। रुद्रट ने काव्य के स्थान पर 'साहित्य' का प्रयोग करते हुए इसे 'साहित्यमीमासा' का अभिधान दिया है। अल्प प्रचलित नामो मे क्रियाकल्प उल्लेखनीय है जिसे कामशास्त्र मे वर्णित चौंसठ कलाओ मे से एक माना गया है। मध्य युग मे 'साहित्यशास्त्र' और 'रीतिशास्त्र' बहुप्रचलित नाम रहे। आधुनिक युग मे इसके लिए 'आलोचनाशास्त्र' के अतिरिक्त 'साहित्यविज्ञान' और 'काव्य विमर्श' नामो का प्रयोग भी होता है, किंतु इनका प्रचलन अपेक्षाकृत कम है। इन सबमे 'काव्यशास्त्र' सबसे अधिक व्यापक और अर्थव्यजक होने के कारण अब प्राय सर्वमान्य हो गया है।

पश्चिम मे प्राचीनतम नाम है 'पोयटिक्स'। अरस्तू ने अपने ग्रथ का नाम ही 'पेरि पोइतिकेस' रखा था जो 'काव्यशास्त्र' का यूनानी पर्याय है। दूसरा प्राचीन नाम है काव्य-कला ('आर्स पोएतिका') जो रोमी काव्यशास्त्र मे बहुत समय तक प्रचलित रहा। आधुनिक युग मे कुछ प्रचलित उल्लेखनीय नाम है 'थिअरी आफ पोइट्री', 'साइस आफ पोइट्री', 'थिअरी आफ लिटरेचर', 'थिअरी आफ क्रियेटिव लिट्रेचर', 'लिट्रेरी क्रिटिसिज्म' और 'प्रिंसिपल्ज ऑफ लिट्रेरी क्रिटिसिज्म'। इनमे से अतिम दो सर्वमान्य और प्रचलित हैं।

भारतीय काव्यशास्त्र की अत्यत प्राचीन एव समृद्ध परपरा है जिसमे कवि, काव्य एव प्रमाता का उनके व्यापकतम आयामो मे सुविस्तृत, व्यवस्थित एव वैज्ञानिक विवेचन किया गया है। कुछ अत्यत महत्वपूर्ण ग्रथ इस प्रकार है 'नाट्यशास्त्र' (दे०) (भरत), 'काव्यालकार' (दे०) (भामह), 'काव्यादर्श' (दे०) (दडी) 'काव्यालकारसूत्रवृत्ति, (दे०) (वामन), 'दशरूपक' (दे०) (धनजय), 'काव्यालकार' (दे०) (रुद्रट), (काव्यमीमासा' (दे०) (राजशेखर), ध्वन्यालोक' (दे०) (आनदवर्द्धन), 'ध्वन्यालोकलोचन एव 'अभिनवभारती' (अभिनवगुप्त), 'वक्रोक्तिजीवित' (कुतक), 'नाट्यदर्पण' (दे०) (रामचद्र गुणचद्र) 'काव्यप्रकाश (दे०) (मम्मट), 'साहित्यदर्पण' (दे०) (विश्वनाथ), तथा 'रसगगाधर' (दे०) (जगन्नाथ)।

काव्यसार *(क० कृ०)*

इसके रचयिता जैनधर्मावलवी अभिनववादी विद्यानद (1550 ई०) हैं जो विजयनगर-सम्राट कृष्णदेवराय के समसामयिक थे 'काव्यसार' एक सग्रह-ग्रथ है जिसमे अष्टादश वर्णनो के लिए भिन्न-भिन्न कृतियो से छाँटकर

उदाहरण दे दिए गए हैं। इसमें पैंतालीस अध्याय तथा एक हजार से भी अधिक पद्य हैं। अतः साहित्य के इतिहास में इसका विशिष्ट स्थान है। 'सूक्तिसुधार्णव' के बाद यही दूसरा ग्रंथ है जिसमें पूर्वकवियों की कविताएँ संगृहीत हैं। जन्न (दे०), नेमिचंद्र, रुद्रभट्ट (दे०) आदि ज्ञात कवियों की कृतियों के ही नहीं, वरन् गुणवर्मा के 'शूद्रक' जैसे अज्ञात ग्रंथ के भी 30-40 पद्य इसमें मिलते हैं। इस प्रकार एक ऐतिहासिक ध्वनिरम्य काव्य का पता लगाने में इस संग्रह-ग्रंथ का विशिष्ट स्थान रहा है। इससे यह भी आशा बढ़ती है कि विद्यानंद के समय प्राप्त यह ग्रंथ पूर्ण रूप से लुप्त नहीं हुआ होगा—उसके मिलने की संभावना है।

काव्यहरिश्चंद्र *(ते० कृ०)*

यह कवि-सम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का रेडियो नाटक है। इसमें अपने वचन के पालन के लिए सब कुछ खोने वाले—यहाँ तक कि श्मशान तक में काम स्वीकार कर लेने वाले—राजा हरिश्चंद्र की कथा है। लेखक ने अपनी विलक्षण प्रतिभा द्वारा इसे आध्यात्मिक बना दिया है। हरिश्चंद्र मोक्षपथगामी जीव का प्रतीक है। वह अरिषड्वर्ग तथा ईषणत्रय पर विजय प्राप्त कर, शिवत्व को प्राप्त करता है। इसमें सत्य-साधना के साथ-साथ मोक्षसाधना भी समान रूप से वर्णित है।

काव्यहेतु *(सं० पारि०)*

काव्य-निर्मिति के कारण को 'काव्यहेतु' कहते हैं। काव्यप्रकाशकार मम्मट (दे०) से पूर्व जिन काव्यहेतुओं की परिगणना की गई थी उन्हें इन्होंने निम्नोक्त तीन काव्यहेतुओं में समाविष्ट कर दिया—(1) शक्ति अर्थात् प्रतिभा (दे०) अथवा प्रज्ञा। इसे मम्मट ने 'कवित्वबीजरूप संस्कारविशेष' कहा है। (2) लोक, काव्य, शास्त्र आदि के अवेक्षण से प्राप्त निपुणता अथवा व्युत्पत्ति। (3) काव्य के मर्मज्ञों से प्राप्त शिक्षा के द्वारा अभ्यास। वस्तुतः इन तीनों को काव्य के हेतु न मानकर इनके समन्वित रूप को ही मम्मट ने काव्य का एक हेतु माना है—

शक्तिर्निपुणता लोककाव्यशास्त्राद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥

किंतु उनकी यह धारणा आगे चलकर मान्य नहीं हुई। परवर्ती आचार्यों के अनुसार प्रतिभा तो काव्य-हेतु है, और व्युत्पत्ति और अभ्यास संस्कारक (परिष्कारक) हेतु हैं—'प्रतिभाऽस्य हेतुः। व्युत्पत्त्यभ्यासाभ्यां संस्कार्या।' (काव्यानुशासन—हेमचंद्र)।

काव्यादर्श *(सं० कृ०)* [समय—छठी शती का उत्तरार्द्ध]

संस्कृत-साहित्यशास्त्र के ख्यातनामा आचार्य दंडी (दे०) की कृति 'काव्यादर्श' का अपना विशेष महत्व है। छठी शताब्दी के अंतिम भाग में लिखे गए इस ग्रंथ में पूर्ववर्ती कृति भामह (दे०) के 'काव्यालंकार' (दे०) के साथ साम्य एवं वैषम्य दोनों हैं। 'काव्यादर्श' में कुल 660 श्लोक हैं जिसमें उपमा-रूपक प्रभृति 35 अलंकारों, 16 प्रकार की प्रहेलिकाओं तथा दस प्रकार के दोषों का विवेचन विस्तारपूर्वक उपलब्ध होता है।

दंडी का 'काव्यादर्श' रीति एवं अलंकार-संप्रदायों का मिश्रित प्रतिनिधित्व करता है। रसवत् आदि अलंकारों की मान्यता तो भामह से ही चली आ रही थी, दंडी ने उसे परिपुष्ट किया। 'काव्यादर्श' में अनेक काव्य-शास्त्रेतर विषयों का भी विवरण उपलब्ध है।

काव्यानुशासन *(सं० कृ०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र के इतिहास में 'काव्यानुशासन' नाम से दो कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। एक हेमचंद्र (दे०) की, दूसरी वाग्भट द्वितीय की। हेमचंद्र का समय 1150 ई० है और वाग्भट द्वितीय का चौदहवीं शती के आसपास।

'काव्यानुशासन' नाम से उपलब्ध दोनों ग्रंथ सूत्रात्मक पद्धति से लिखे गए हैं। हेमचंद्र का काव्यानुशासन एक संग्रह-ग्रंथ है जिसमें 'काव्यमीमांसा' (दे०), काव्यप्रकाश (दे०), ध्वन्यालोक (दे०) लोचन तथा अभिनवभारती के लंबे-लंबे उदाहरण दिए गए हैं। आठ अध्यायों में विभक्त इस ग्रंथ में काव्यप्रयोजन, काव्यहेतु, लक्षण तथा शब्द और अर्थ-स्वरूप-विवेचन, रस, दोष, गुण, शब्दालंकार, अर्थालंकार, काव्यभेद, नायक-नायिका-वर्णन तथा उपदेशों का वर्णन विभिन्न ग्रंथकारों के 1500 पद्यों सहित किया गया है जबकि वाग्भट द्वितीय के 'काव्यानुशासन' में पाँच अध्याय हैं और इसके भी प्रतिपादित विषय मुख्य रूप से हेमचंद्र वाले ही हैं।

हेमचंद्र ने अपने काव्यानुशासन पर स्वयं 'विवेक'-वृत्ति लिखी जबकि वाग्भट द्वितीय ने अपने काव्यानुशासन पर 'अलंकार तिलक' नामक वृत्ति लिखी है।

काव्यालकार *(स० कृ०)*

सस्कृत-काव्यशास्त्र के इतिहास मे 'काव्यालकार' नाम से दो कृतियाँ उपलब्ध है—एक भामह (दे०) की तथा दूसरी रुद्रट(दे०)की। भामह का समय छठी शताब्दी तथा रुद्रट का नवी शताब्दी ई० है।

भामह की कृति अलकारशास्त्र के इतिहास मे एक नया प्रयोग है। काव्यालकार के पूर्व की आलकारिक कृतियो मे 'नाट्यशास्त्र' (दे०) तथा 'विष्णुधर्मोत्तर' एव 'अग्निपुराण' के कुछ अश ही थे जिनमे काव्य की दृश्य एव श्रव्य दोनो विधाओ का विवेचन हुआ है। पर भामह ने विशुद्ध रूप से श्रव्य काव्य को लेकर उसका विवेचन किया है। 396 श्लोको के 6 परिच्छेदो मे विभक्त यह ग्रथ काव्यशरीर, अलकार, दोष, काव्यन्याय, शब्दशुद्धि नामक विषयो का सम्यक् रूप से विवेचन प्रस्तुत करता है इस कृति ने उत्तरकालीन आनदवर्द्धन (दे०), कुतक (दे०), मम्मट (दे०) प्रभृति अलकारशास्त्रियो को प्रभावित किया।

रुद्रट का काव्यालकार एक सग्रहात्मक ग्रथ है। इसके सोलह अध्यायो मे विभक्त 734 आर्या छदो मे काव्य-शास्त्र के प्राय सभी विषयो का विस्तारपूर्वक विवेचन है।

काव्यालकारसारसग्रह *(स० कृ०)* [समय—नवी शती का पूर्वार्ध]

नवी शती के पूर्वार्ध मे रचित 'काव्यालकार सारसग्रह' ग्रथ मे केवल अलकारो का ही विस्तृत विवेचन किया गया है। 6 वर्गो मे विभाजित उक्त ग्रथ मे लगभग 79 कारिकाएँ हैं जिनमे 41 अलकारो का लक्षणोदाहरण सहित निरूपण किया गया है। इस ग्रथ मे अलकारनिरूपण का प्राय वही क्रम रखा गया है जो भामह (दे०) के 'काव्यालकार' (दे०) मे उपलब्ध है तथापि ग्रथकर्ता उद्‌भट (दे०) ने इसमे अलकारो की कुछ नवीन उद-भावनाएँ भी की हैं, यथा पुनरुक्तवदाभास, छेकानुप्रास, काव्यलिंग, सकर आदि।

यद्यपि भामह (दे०), दडी (दे०) के समान इस ग्रथ के कर्ता ने भी रस, भाव आदि को रसवदादि अलकारो के अतर्गत माना है किंतु इस ग्रथ की विशेषता यह है कि हमे सर्वप्रथम यही पर उनका व्यवस्थित विवेचन मिलता है। इस ग्रथ मे जो उदाहरण मिलते है वे अधिक-तर ग्रथकर्ता के स्वरचित काव्य 'कुमारसभव' (दे०) से ही उद्‌धृत है। इस प्रकार 'काव्यालकारसारसग्रह' अलकार-वाद का एक प्रामाणिक एव प्रबल समर्थक ग्रथ है जिसकी दो टीकाएँ प्रसिद्ध हैं (1) प्रतिहारेदुराज (दे०)-कृत लघुवृत्ति तथा (2) राजानक तिलक-कृत 'उद्‌भटविवेक'।

काव्यालकारसूत्रवृत्ति *(स० कृ०)*

यह ग्रथ वामन (दे०) (समय लगभग 800 ई०) द्वारा रचित है जो काश्मीरी राजा जयापीड के सभापडित थे। यह ग्रथ सूत्रबद्ध है, और इसकी वृत्ति भी स्वय वामन ने लिखी है। इस ग्रथ मे 5 अधिकरण हैं और पाँचो अधि-करणो मे कुल 12 अध्याय तथा 319 सूत्र है। प्रथम अधि-करण मे काव्य प्रयोजन आदि के उल्लेख के उपरात रीति के तीन भेदो तथा काव्य के विभिन्न प्रकारो का निरूपण है (दे० रीति)। अगले तीन अधिकरणो मे क्रमश दोष, गुण और अलकारो का विवेचन है, तथा अतिम अधिकरण मे क्रमश शब्द (दे०)-शुद्धि-समीक्षा है। प्रस्तुत ग्रथ मे रीतिवाद का विवेचन किया गया है और रीतिवाद के अनु-सार गुण रीति के आश्रित है। गुण काव्य के नित्य अग है अलकार और अनित्य। गुण दस शब्दगत है और दस अर्थगत, और इन्ही गुणो के अतर्गत वामन के अनुसार काव्य का समस्त सौंदर्य समाविष्ट हो जाता है, और इसी आधार पर रीतिकाव्य की आत्मा है। रस को वामन ने काति नामक गुण से अभिहित किया है। वामन पहले आचार्य हैं जिन्होने वक्रोक्ति को लक्षणा का पर्याय मानते हुए इसे अर्थालकारो मे स्थान दिया है। इस ग्रथ की सस्कृत-टीका गोपेंद्र त्रिपुर हरभूपाल ने लिखी है और हिंदी-टीका आचार्य विश्वेश्वर ने।

काव्यावलोकन *(क० कृ०)*

इसके रचयिता नागवर्मा द्वितीय (1150 ई०) (दे०) हैं। ये चालुक्य नरेंद्र जगदेकमल्ल के कटको-पाध्याय थे। 'काव्यावलोकन' कन्नड काव्यशास्त्र के इतिहास मे एक प्रकाश-स्तभ है। इसमे शब्दस्मृति, काव्यमलव्यावृत्ति, गुण-विवेक, रीतिरस निरूपण और कविसमय नामक पाँच अधिकरण हैं। नागवर्मा हिंदी के रीति कवियो की भाँति अपने सूत्रो के लिए आप ही उदाहरण नही गढते, अन्य कवियो की कृतियो से उद्धरण देते है। 'शब्दस्मृति' मे सग्रह-रूप मे कन्नड का व्याकरण निरूपित है। कन्नड का यही सर्वप्रथम व्याकरण है। 'काव्यमलव्यावृत्ति' नामक द्वितीय अधिकरण मे काव्य के दोष तथा उनके परिहारो-

पायों का वर्णन है। 'गुणविवेक' नामक तृतीय अध्याय में काव्यगुणों का विवेचन है, साथ ही शब्दालंकार एवं अर्थालंकारों का भी इसमें विवेचन है। यहाँ नागवर्मा ने रुद्रट (दे०) का अनुगमन किया है। 'रीतिरस-निरूपण' नामक चतुर्थ अधिकरण में 'पदरचनातिशयं रीतिः' कहकर वामन (दे०) के 'विशिष्टापदरचनारीतिः' का अनुसरण किया है। किंतु वैदर्भी, गौडी, पांचाली आदि रूपों में रीति का वर्गीकरण करते समय रुद्रट का आदर्श ग्रहण कर समास-प्राचुर्य, गुणगुंफन, रसदृष्टि आदि को भी स्थान दिया गया है। नागवर्मा के अनुसार रीति के केवल तीन भेद हैं। रुद्रट-प्रोक्त 'लाटीया' का नाम तक इन्होंने नहीं लिया है। भरत (दे०) के रस-सूत्र का निरूपण करते समय ये स्थायी भाव को भी विभावादि के साथ जोड़ते हैं।

रसों की संख्या नागवर्मा ने केवल आठ बताई है किंतु निरूपण करते समय अद्भुत के साथ शांतरस को भी सोदाहरण प्रस्तुत किया है। पंचम प्रकरण में राजशेखर की देखादेखी नागवर्मा ने 'कवि-समय' का निरूपण किया है। यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि नागवर्मा ने अपने पूर्ववर्ती ग्रंथ 'कविराजमार्ग' (दे०) का उल्लेख तक नहीं किया। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि 'कविराज-मार्ग' जैसे अत्यंत प्राचीन ग्रंथ तक में 'ध्वनि' का उल्लेख हुआ है किंतु नागवर्मा ने उसकी कोई चर्चा नहीं की। संस्कृत लाक्षणिकों के सिद्धांतों का उपयोग उन्होंने ज्यों का त्यों नहीं किया। वामन के अनुसार उन्होंने काव्य-शोभाकर धर्म को ही गुण माना है। किंतु श्लेष अर्थ-व्यक्ति, मधुर आदि दस गुणों का लक्षण दंडी के अनुसार दिया है। चतुर्थ अधिकरण में नागवर्मा ने एक बहुत पते की बात कही है। उनके अनुसार 'रीति-काव्य की आत्मा नहीं, शरीर है'। उसका जीव रस ही है। यह भारतीय साहित्य-शास्त्र के लिए उसकी महती देन है। उसके पूर्व संस्कृत में भी यह बात किसी ने नहीं कही थी कि रीति काव्य की देह है। नागवर्मा के उदाहरणों से उसकी सदभिरुचि का पता लगता है। उनको पढ़ना ही एक अनुभव है—आनंद है। नागवर्मा कन्नड के प्रतिनिधि आचार्य एवं रीतिकार हैं।

काशिका *(सं० कृ०)* [रचना-काल—600-700 ई० के अंतर्गत]

'काशिका' के रचयिता जयादित्य तथा वामन हैं। चीनी यात्री इत्सिंग ने केवल जयादित्य को 'काशिका' का लेखक कहा है। परंतु यह अनुचित है। 'काशिका' का अष्टम अध्याय निश्चय ही वामन द्वारा रचित है। ये वामन-अलंकारशास्त्र के विद्वान् वामन (दे०) से भिन्न हैं। 'काशिका' की रचना काशी में संपन्न हुई थी। काशिका को ही एक वृत्ति तथा प्राचीन वृत्ति भी कहते हैं। 'काशिका' आठ अध्यायों में विभक्त है। 'काशिका' में पाणि-नीय क्रम के अनुसार लौकिक तथा वैदिक सूत्रों की यथा-स्थान व्याख्या की गई है।

काशिकावृत्ति अत्यंत महत्वपूर्ण वृत्ति है। काशिका से प्राचीन कुणि आदि वृत्तियों में जिस गण पाठ का अभाव था वह 'काशिका' में वर्तमान है। इस कृति में अनेक सूत्रों की व्यवस्था प्राचीन वृत्तियों के आधार पर लिखी गई है। 'काशिका' के उदाहरणों तथा प्रत्युदाहरणों से अनेक प्राचीन ऐतिहासिक तत्वों का भी बोध होता है। 'महाभाष्य' (दे०) तथा काशिका में विरोध भी यत्र-तत्र मिलता है परंतु जहाँ यह विरोध दृष्टिगोचर होता है वहाँ काशिका का आधार प्राचीन वृत्तियाँ ही हैं। इस प्रकार व्याकरणशास्त्र के जिज्ञासु के लिए काशिका का ज्ञान अत्यंत लाभप्रद है।

काशीखंडमु *(ते० कृ०)*

'काशीखंडमु' महाकवि श्रीनाथुडु (दे०) (1380-1460) (दे०) द्वारा रचित काशी-क्षेत्र की महिमा का वर्णन करने वाला काव्य है। कवि ने इसकी रचना 'स्कंदपुराण' से कथावस्तु ग्रहण करके की है। यह रचना सहज स्वाभाविक वर्णनों से युक्त है, और श्रीनाथुडु की काव्य-प्रतिभा के कारण काव्यत्व की पूर्णता को प्राप्त कर सकी है। शिव में अनन्य भक्ति रखने वाले कवि श्रीनाथ ने शिव की महिमा को प्रकाशित करने वाली तथा काशी-क्षेत्र की पावनता को प्रमाणित करने वाली कथाओं को काव्य-रूप में प्रस्तुत किया है। ओज और प्रवाहमयता का काव्य-गुण इस कृति में भी परि-लक्षित होता है। भाषा संस्कृतनिष्ठ, प्रौढ़-प्रांजल तेलुगु है।

काशीरामदास *(बँ० ले०)*

अनुमान से सोलहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में वर्द्धमान जिलांतर्गत इंद्राणी परगना के सिंगि ग्राम में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम कमलाकांत देव एवं पितामह का सुधाकर था। ये जाति के कायस्थ थे

तथा देव इनकी उपाधि थी। ये तीन भाई थे। ज्येष्ठ भ्राता कृष्णदास ने 'श्री कृष्ण विलास' नामक कृष्ण-लीला विषयक काव्य एव कनिष्ठ भ्राता गदाधर ने 'जगत मगल' अथवा 'जगन्नाथ मगल' नामक नीलाचल माहात्म्य-ग्रथ लिखा था।

इनका ग्रथ 'पाडव-बिजय' अथवा 'पाडव-विजय-कथा' अथवा 'भारतपाचाली' है। इस ग्रथ की लोकप्रियता का कारण इसके मूल का 'महाभारत' (दे०) से घनिष्ठ सबध है। अनुमान है, इन्होंने आदि, सभा, वन एव विराट केवल चार पर्वों की रचना की थी—शेष पर्व इनके पुत्र तथा भाई के पुत्र ने पूर्ण किए थे। विद्वानो के अनुसार अन्य कवियो ने भी अनाम रूप से 'महाभारत' के अनेक प्रसगो मे योगदान किया है। अतएव कितना अश प्रक्षिप्त है, कहना कठिन है।

इनके नाम से प्रचलित महाभारत (दे०) ने बगाल मे अनुपमेय लोकप्रियता अर्जित की है। महाभारत की कहानी को सरल कर पारिवारिक एव सामाजिक आदर्शों को सर्वजन-बोध्य बना देना कवि-कौशल सिद्ध करता है। दर्शन एव राजनीति जैसे विषयो को सर्वथा छोड दिया गया है। स्थान-स्थान पर घटना-विन्यास की नाटकीयता, सरस उक्ति एव हास्य रस की सृष्टि द्वारा यह पाठको का मनोरजन करता है। अनेक प्रसगो मे 'महाभारत' के श्लोको का अनुवाद मूल के सौंदर्य को बनाये रखता है। स्वच्छद, सरल-पयार त्रिपदी छद मे 'महाभारत' की रचना करके इन्होंने अमृत-वर्षा की है।

महाभारतेर कथा अमृत समान।
हे काशी, कवीश दले तुमि पुण्यवान॥
अथवा
काशीराम दास कहे शुने पुण्यवान॥

किंचित (उ० कृ०)

'किंचित' अनत पटनायक (दे०) की गीति-कविताओ का सकलन है। इसमे प्रेम, उद्बोधन, नव-जागरण तथा शाश्वत-जीवन-सगीत की प्राण-विमोहक मूर्च्छना की सृष्टि का सदेश है। इसमे प्रेम की अकुठित अभिव्यक्ति 'तृष्णा' नामक कविता के अतर्गत हुई है। वही पर नवयुग-आगमन हेतु उद्बोधन और क्राति का आह्वान है। 'झर रे रुधिर' 'शहीद नुहें', 'शानिर हेमानळे' आदि मे कवि का उग्र विद्रोही स्वर मुखर है। 'स्वप्न देखुच' मे कवि ने नव-संसार का स्वप्न देखा है, जो कल्पना-प्रसूत आदर्श पर निर्मित नही, बरन् ठोस यथार्थ पर प्रतिष्ठित है। 'शातिर हेमानळे' मे शाति की होमाग्नि शिखा प्रज्वलित करने के लिए तरुण वर्ग का आह्वान है। जीवन को अरुणिम काति के जयदीप से स्वच्छ-आलोकित कर लेने का सदेश है। मृत्यु की वर्जना द्वारा सुदर शिव के आह्वान का उपदेश है। भाषा पूर्णत उडिया है। सहज भाव-स्फूर्त कल्पना-चित्र इन कविताओ के स्वाभाविक अलकरण है।

किट्टल कन्नड-इगलिश निघटु (क० कृ०)

भारत की समस्त भाषाओ मे ईसाई धर्म-प्रचारक पश्चिम के विद्वानो ने बाइबिल के अनुवाद के साथ-साथ कोशो का भी निर्माण किया। जर्मन-निवासी किट्टल कन्नड साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले पश्चिमी लेखको मे विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वे 21 वर्ष की आयु मे ईसाई धर्म-प्रचार के लिए भारत आए। आरभ मे उन्होंने मगलूर मे धर्म-प्रचार का काम किया। उन्होंने सस्कृत, फारसी, कन्नड, तमिल, कोकणी तथा मराठी भाषाओ का विशेष रूप से अध्ययन किया और अपने धर्म-प्रचार के प्रथम बीस वर्ष मे कन्नड मे बाइबिल के अनुवाद के अतिरिक्त कन्नड मे ही 210 पृष्ठो का एक सगीत-ग्रथ लिखा, कन्नड व्याकरण-लेखन के अतिरिक्त अनेक प्राचीन कन्नड-ग्रथो का सपादन भी किया और साथ ही कन्नड भाषा मे एक सचित्र मासिक पत्रिका का भी सपादन किया।

किट्टल भारतीय साहित्य, और विशेषकर कन्नड साहित्य मे अपने कन्नड-इगलिश कोश के लिए चिरस्मरणीय रहेंगे। उन्होंने कन्नड के कुछ विद्वानो की सहायता से 1824 ई० मे रचित विलियम रीब के इगलिश कन्नड और उन्ही के 1830 ई० मे रचित कन्नड-इगलिश कोश से लाभ उठाकर 1762 पृष्ठो का एक बृहत्काय कोश बीस वर्षो मे तैयार किया। किट्टल ने इसमें कर्णाटक मे प्रचलित जनसामान्य के शब्द, मुहावरो और कहावतो के अतिरिक्त प्राचीन कन्नड मे प्रयुक्त शब्दो का सकलन किया और शब्दो के अर्थ के अतिरिक्त उनकी व्युत्पत्ति एव प्रयोग भी बतलाने का सफल प्रयास किया। इसकी विशेषता यह भी है कि इसमें उन्होंने कन्नड मे प्रयुक्त अन्य द्रविड भाषाओ के अर्थ और रूप भी दर्शाए है। इस कोश की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। विद्वान लेखक ने कोश सबधी उन मूल द्रविड शब्दो को विशेष रूप से

चर्चा की है जो संस्कृत भाषा के अंग बन गए हैं। किट्टल की यह कृति कन्नड का एक प्रामाणिक वैज्ञानिक और सर्वश्रेष्ठ कोश है जिसकी प्रशंसा पाश्चात्य और पौरस्त्य सभी विद्वानों ने की है।

किट्टल, फ़र्डिनेंड *(क० ले०)*

फ़र्डिनेंड किट्टल कर्णाटक के चिरस्मरणीय व्यक्तियों में से हैं। ये जर्मन धर्म-प्रचारक थे। इनका जन्म उत्तर जर्मनी में 7-8-1832 ई० को हुआ था। इनके पिता लूथर संप्रदाय के पादरी थे। शिक्षा समाप्त कर यह स्विट्ज़रलैंड के बासेल मिशन की नौकरी में लग गए। 1853 ई० में मैंगूर आए और धर्मप्रचार-कार्य में प्रवृत्त हुए। इन्होंने मैसूर की भाषा कन्नड अच्छी तरह सीखी, उसमें पांडित्य अर्जित किया। बासेल मिशन, भारत सरकार तथा मैसूर सरकार की सहायता से इन्होंने कन्नड-अँग्रेज़ी के एक कोश की योजना बनाई और उसके पीछे अपना सारा जीवन ही लगा दिया।

किट्टल ने साठ वर्ष की उम्र में इस कोश का आरंभ किया। उनकी अद्भुत स्मरण-शक्ति ने इस काम में विशेष योग दिया। दक्षिण की भाषाओं पर जर्मन मिशन-रियों ने विशेष रूप से काम किया है। यह कोश तैयार करने में उन्हें पूरे बीस वर्ष लगे। इसके पूर्व किट्टल ने कन्नड का एक व्याकरण तैयार किया, नागवर्मा (दे०) के छंदोंबुधि, केशिराज (दे०) के 'शब्दमणिदर्पण' (जो कि कन्नड का अत्यंत प्रामाणिक व्याकरण है) आदि का संपादन किया। प्राचीन कन्नड कवियों का एक काव्य-संग्रह भी उन्होंने निकाला जिसकी अँग्रेज़ी भूमिका में उन्होंने कन्नड साहित्य की अत्यंत प्राचीन सामग्री से लेकर अधुनातन साहित्य तक की चर्चा और सर्वेक्षण किया है। इनके अतिरिक्त वीरशैव मत पर जर्मन में एक पुस्तक भी उन्होंने लिखी है।

किंतु किट्टल का नाम सदा के लिए अमर करने वाली कृति है उनका 'कन्नड-अँग्रेज़ी कोश'। उसका प्रथम संस्करण 1894 ई० में निकला। किसी ने ठीक ही कहा है कि यह कोश बीसवीं शती के लिए उन्नीसवीं शती की भेंट है। किट्टल ने इस ग्रंथ की 50 पृष्ठ की विस्तृत भूमिका लिखी है जिसका भाषा-वैज्ञानिक महत्व है। इसमें संस्कृत में आए हुए द्रविड़ शब्दों को खोज निकालने का प्रयास किया गया है। इस कोश की खूबी यह है कि इसमें प्रत्येक शब्द कन्नड तथा रोमन लिपियों में लिखा गया है। संस्कृत से निष्पन्न देशी आदि विभिन्न शब्दों के लिए विभिन्न अक्षरों का प्रयोग है, विभिन्न अर्थों के साथ ही प्रत्येक शब्द के लिए अन्य द्रविड़ भाषाओं में उपलब्ध ज्ञाति शब्द (Cognates) दिए गए हैं। यथासंभव प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति देने का प्रयास भी किया गया है। ऐसा प्रयास भारतीय भाषाओं के बहुत ही कम कोशों में पाया जाता है। किसी शब्द की अर्थ-विवक्षा देते समय उसके समर्थन में प्राचीन काव्यों के उद्धरण तथा कहावतों का हवाला दिया गया है। कहीं-कहीं हिंदी तथा मराठी के संवादी शब्द भी मिलते हैं। किट्टल की भूमिका का छठा भाग, जिसमें द्रविड़ तथा संस्कृत के संबंध की विवेचना है, आधुनिक भाषा-विज्ञान के लिए अनुपम देन है। 1752 पृष्ठों वाले इस बृहत् ग्रंथ के प्रत्येक पृष्ठ में किट्टल के गहरे अध्यवसाय, सहानुभूति, व्यापक ज्ञान आदि का प्रमाण मिलता है।

किन्नेरसानि *(ते० पा०)*

यह श्री विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) के गीतकाव्य 'किन्नेरसानि पाटलु' (दे०) की नायिका है। यह महान् पतिव्रता है और प्रेममयी है। किंतु अपने पुत्र या पुत्रवधू के सुख का ध्यान न रखने वाली इसकी सास इससे अकारण वैर-भाव रखती है। इस कारण वह इसको नाना प्रकार से पीड़ित करने और इसके चरित्र पर कलंक लगाने का यत्न करती है। इन यातनाओं से इसका कोमल हृदय शोक का पारावार बन जाता है। शोकावेग में यह अरण्यमार्गों पर दौड़ने लगती है। इसे रोकने के लिए इसका पति इसे अपने आलिंगन में बाँध लेता है। यह पति के आलिंगन में द्रवित होकर कलकल नाद करती हुई एक निर्झरिणी के रूप में प्रवाहित होने लगती है। पत्नी के वियोग में इसका पति वहीं शिला के रूप में परिवर्तित हो जाता है और यह अपनी तरंग बाहुओं से पति की प्रतिमा का आलिंगन करती हुई उसके चारों ओर बार-बार परिक्रमा करती हुई शोकावेग में तीव्र गति से प्रवाहित होती है। किन्नेरसानि गोदावरी की एक उपनदी है जिसके संबंध में उपर्युक्त लोककथा प्रचलित है।

किन्नेरसानि पाटलु *(ते० कृ०)* [कृतिकार—विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०); रचना-काल—1924 ई०]

'किन्नेरसानि पाटलु' (किन्नेरसानि के गीत)

का तेलुगु के गीतकाव्यो मे बहुत ऊँचा स्थान है। गोदावरी की एक छोटी-सी उपनदी किन्नेरसानि से सबधित एक लोक-कथा के आधार पर इसकी रचना की गई है। किन्नेरा (दे० किन्नेरसानि) पतिव्रता और प्रेममयी ग्रामीण युवती है। सास के अत्याचारो से उसका जीवन दूभर हो गया है। वह घर छोडकर जगलो की ओर दौड पडती है। उसका पति उसे रोकते हुए उसका आलिगन करता है। पति के आलिगन मे द्रवित होकर वह एक निर्झरिणी के रूप मे प्रवाहित होने लगती है और उसका पति दुख मे शिलारूप हो जाता है।

सरल स्वाभाविक शैली मे रचा गया यह गीतकाव्य अत्यत कोमल भावनाओ से ओतप्रोत है और इसमे तेलुगु भाषा का समस्त माधुर्य मानो एकत्र हो गया है। द्रवित होकर प्रवाहित होने वाली किन्नेरा की हृद्गत भावनाओ एवं उसके कातर प्रणय का अत्यत मार्मिक वर्णन कवि ने एक निर्झरिणी के सगीत के रूप मे किया है। अनेक समालोचको का मत है कि यह श्री सत्यनारायण की सर्वोत्तम रचना है।

किरणमयी *(बँ० पा०)*

शरत् (दे०) साहित्य मे किरणमयी ('चरित्र-हीन' दे०) आत्म-स्वातत्र्य की विद्युद्दीप्ति से उज्ज्वल है। विधवा किरणमयी स्वस्थ स्वाभाविक जीवन से वचित है। उसका हृदय कामज वासना से उद्वेलित है। उसने उपेंद्र से प्रेम किया है, दिवाकर के साथ झूठे दुर्नाम के फलस्वरूप उपेंद्र के द्वारा वह लाछित एव अपमानित हुई है। इसके बदले मे उसने उन्मत्त आक्रोश से तरलमति दिवाकर को पकगह्वर मे ला फेंका है। अप्राप्य की वेदना से, भाग्यवचिता रूपसी गर्विणी आधुनिका किरणमयी का जीवन रिक्तता का हाहाकार है। इसी से वह पागल हो गई है। आत्मस्वातन्त्र्य-प्रतिष्ठा की निरतर आवेगाकुल प्रचेष्टा ने उसे भ्रात पथानुसारिणी बना दिया है। समाज की कठिन शृखला को तोडने जाकर वह सग्राम मे स्वय ही निःशेष हो गई।

किरातार्जुनीय *(स० कृ०)*

सस्कृत के इस महाकाव्य के लेखक भारवि (दे०) हैं, जिनका समय लगभग 600 ई० माना जाता है। सस्कृत-महाकाव्यो की बृहत्त्रयी ['किरातार्जुनीय', 'शिशुपालवध' (दे०) और 'नैषधीयचरित' (दे०)] मे इसका प्रमुख स्थान माना जाता है। इसमे 18 सर्ग है तथा कवि ने महाकाव्य के लक्षणानुसार इसे प्रस्तुत करने का सुप्रयास किया है। इसका कथानक 'महाभारत' (दे०) के वन-पर्व से लिया गया है। कथा का प्रमुख भाग वह स्थल है जिसमे अर्जुन (दे०) महर्षि वेदव्यास (दे० व्यास, बादरायण) के परामर्श से पाशुपत अस्त्र पाने के लिए इद्रकील पर्वत पर गए, जहाँ उन्होंने घोर तपस्या की, जिसका भग सुरागनाएँ भी न कर सकी। अतत अर्जुन को किरातवेशधारी शिव से युद्ध करना पडा, जिन्होने उनके शौर्य और साहस से प्रसन्न होकर उन्हे उक्त दिव्यास्त्र अर्पित कर दिया। इस महाकाव्य मे अनेक वर्णन कवि की कवित्वप्रतिभा, वर्णना-शैली, अलकारप्रियता आदि के द्योतक हैं, जैसे—अर्जुन की तपस्या, सुरागना-विहार, किरात और अर्जुन के बीच युद्ध, शरदृतु-वर्णन, सूर्यास्त, जलक्रीडा आदि। रोचक सवाद इस ग्रथ की एक अन्य विशेषता है। यह महाकाव्य वीर रस और ओज गुण का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। भारवि अलकारप्रियता के लिए प्रसिद्ध हैं, किंतु कही-कही अलकारो का अतिशय तथा अनावश्यक प्रयोग विषयवस्तु के स्पष्ट निर्देश मे बाधक भी सिद्ध हुआ है, विशेषत वे स्थल, जिनमे इन्होंने सर्वतोभद्र, विलोम, यमक आदि का प्रयोग किया है। फिर भी, यह ग्रथ अर्थ-गौरव के लिए अति प्रसिद्ध है—भारवेरर्थ-गौरवम्।

किळिप्पाट्टु *(मल० पारि०)*

किळि=शुक, पाट्टु=नाम

पूरा अर्थ शुक-गान या वीर-गीत।

इस प्रकार शुक के माध्यम से कथा-गान की प्रवृत्ति को किळिप्पाट्टु कहते है। शुक वस्तुत कवि की अभिव्यजना का वाहक और माध्यम बन जाता है। मलयाळम के जनक रामानुजन् एपुत्तच्छन् (दे०) के पहले कई प्रकार की गान-शैलियाँ प्रचलित थी। किंतु प्रस्तुत शैली कथा-वर्णन मे कही नहीं अपनाई गई थी। इस रीति का सबसे पहले एपुत्तच्छन् ने आविष्कार किया था जिसमे वे 'किळिप्पाट्टु' (दे०)-पद्धति के जनक माने जाते हैं। सस्कृत तथा तमिल भाषाओ मे भी ऐसी रीति प्रचलित है। किळिप्पाट्टु, केका (दे०), काकळि, कळकाचि और अन्ननटा—इन चार वृत्तो मे लिखे गए हैं।

राणीहाटि एवं मादारिणी धारा। क्रमशः कीर्तन-संगीत इन सुनिर्दिष्ट धाराओं का अनुसरण करता हुआ विकसित होता रहा एवं इसका लोक-संगीत का स्वाधीन एवं स्वतःस्फूर्त रूप समाप्त हो गया। बहुत से विद्वान अनुभव करते हैं कि कीर्तन शब्द संस्कृत से बँगला में आया है परंतु संस्कृत में इसका जो अर्थ है वह बँगला-अर्थ से मेल नहीं खाता। बँगला में इसका अर्थ है विशेष प्रकार का संगीत एवं आजकल इसका अर्थ है कृष्णलीला-विषयक संगीत।

कीर्तन *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1531-1553 ई० के मध्य कभी; ले०—शंकरदेव (दे०)]

गोस्वामी तुलसीदास (दे०) के 'मानस' (दे० रामचरितमानस) के समान ही असम के जन-जीवन में इस ग्रंथ का प्रचार है। इसमें 27 काव्यों का समावेश है, कुल 2261 पद हैं। इसमें सृष्टि के आदि से लेकर कृष्ण के जन्म, लीला तथा बैकुंठ-गमन तक का वर्णन है। शंकरदेव के दार्शनिक सिद्धांतों का यह महाकोश है। नवधाभक्ति में कीर्तन को विशेष महत्ता दी गई है। इस महाकाव्य को स्वर और लय के साथ गाए जाने के योग्य बनाया गया था। इसमें हर्ष, विषाद, प्रेम, विरह, क्रोध क्षमा आदि का वर्णन है, नव रसों का भी प्रतिपादन है, किंतु किसी एक रस की प्रधानता नहीं है। इसमें प्रह्लाद की निर्मल भक्ति, हिरण्यकश्यपु का अग्नि-सम क्रोध, नृसिंह की भैरव मूर्ति, ग्राह-ग्रस्त गजेंद्र की स्तुति, उद्धव गोपी-संवाद आदि का वर्णन है। यह ग्रंथ पूर्वी असमीया जीवन का आध्यात्मिक दर्शन है। यह गीता, भागवत और मूर्ति है। शंकर देव के संप्रदाय के अनुसार प्रार्थना के समय मूर्ति के स्थान पर इसे ही रखा जाता है। श्री हेम बरुआ (दे०) के शब्दों में 'कीर्तन' ने ही श्री शंकरदेव को ऊँचा उठाया था और यह उनका कीर्ति-स्तंभ है।

कीर्तिकौमुदी *(सं० कृ०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

'कीर्तिकौमुदी' के प्रणेता सोमेश्वर के विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं। इतना कहा जा सकता है कि इन्होंने इस काव्य की रचना वस्तुपाल के जीवन-चरित को दृष्टि में रखकर उन्हीं की कीर्ति का बखान करने के लिए की है। भाषा तथा काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से यह अच्छा काव्य है। पर इसकी शैली कुछ ऐसी है कि कुछ लोग इसे चंपू कहते हैं।

कीर्तिदाने कमलना पत्रो *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1939 ई०]

इसके कृतिकार हैं बटुभाई उमरवाडिआ (1899-1950) गुजराती साहित्य में पत्र-रूप में आलोचना की यह प्रथम पुस्तक है। इसमें कई लेखकों और पुस्तकों पर कड़ी आलोचना लिखी गई है। कीर्तिदा नाम के काल्पनिक पात्र के प्रति कमल नाम के व्यक्ति-द्वारा लिखे गए पत्रों में आलोचना हुई है। काल्पनिक प्रसंगों द्वारा संवाद के रूप में लेखक और कृतित्व का मूल्यांकन किया गया है। मूल्यांकन में तटस्थ दृष्टि है और हास्य का उपयोग करके विवेचन को रोचक रूप दिया गया है। लेखक के पास मर्मवेधी दृष्टि है, प्रतीतिकर तर्क-शक्ति है और आलोचना के सिद्धांतों का समुचित ज्ञान है। इस पुस्तक से लेखक ने आलोचना-साहित्य को एक नया मोड़ दिया है।

कीर्तिदेव *(गु० पा०)*

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी-कृत 'गुजरातनो नाथ' उपन्यास में कीर्तिदेव एक आदर्शप्रिय, स्वप्नद्रष्टा पात्र है। वह मालवदेश का निष्कपट, निःस्वार्थ और स्पष्टवादी योद्धा है। अपने जन्म, जाति, माता, पिता, आदि के विषय में उसे कोई ज्ञान नहीं। इस रहस्य को जानने की अदम्य इच्छा से वह तंत्रविद्या सीखता है और काक (दे० काक भट्ट) की सहायता से यह जान जाता है। उसके मृदु, सात्त्विक व्यवहार, मोहक स्वरूप और सरल व्यक्तित्व से प्रभावित काक उससे स्नेह करता है। काक ने काल-भैरव से यह संवाद प्राप्त किया कि कीर्तिदेव जब बालक था तब उसे सज्जन मेहता ने अनाथ मानकर यात्रा के लिए आए हुए सेनापति उबक को सौंप दिया था। वह पाटण के प्राग्वाट कुल का था और वस्तुतः वही मुंजाल (दे०) का पुत्र था। फूलकुँवरबा उसकी माता थी। अवंती का योद्धा कीर्तिदेव मुंजाल का पुत्र है—इस तथ्य के उद्घाटन से सभी आश्चर्य एवं आनंद से गद्गद हो जाते हैं। मुंजाल दौड़कर पुत्र कीर्तिदेव को जब गले लगाता है तब यह पहली बार का पिता-पुत्र-मिलन उपन्यास में रोचकता पैदा करता है। कीर्तिदेव इस सुख का त्याग कर अपना कर्तव्य निभाने के लिए निराश होकर अवंती की ओर प्रस्थान करता है। यह उसकी कर्तव्यपरायणता का उदाहरण है। वह आर्यावर्त की एकता का आराधक है। अपने इस स्वप्न को साकार करने के लिए वह अहर्निश उद्योग

करता है। कीर्तिदेव के चरित्राकन मे मुशी जी ने बडी सतर्कता और कुशलता का परिचय दिया है। उसके मन मे सदैव अतर्द्वंद्व चलता रहता है—आदर्श और यथार्थ का, स्वप्न और सत्य का, कर्तव्य और भावना का। उसी के सत्प्रयत्नो से पाटण और अवती एक सूत्र मे अनुस्युत होते है। यवनो के आक्रमण से देश की रक्षा करने की चिंता लेकर वह पाटण आता है और आर्यावर्त की सुरक्षा के लिए कटिबद्ध होने के लिए शासको एव सामतो का आह्वान करता है। मुजाल से लोहा लेता है, कैदी बनता है, यातनाएँ सहता है। पर आर्यावर्त की एकता का महामत्र जपना नही छोडता। यही उसके चरित्र की विशेषता है।

कीर्तिनाथ कुर्तुकोटि *(क० ले०)*

डॉ० कीर्तिनाथ दत्तात्रेय कुर्तुकोटि का जन्म कर्णाटक मे हुआ। कीर्तिनाथ कुर्तुकोटि कन्नड की आशा हैं, मेधावी साहित्यकार है। आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ है—'ऊर्मिले', 'स्वप्नदर्शिमत्तु', 'इतर गीतनाटकगलु', 'साहित्य मत्तु युगधर्म', 'बेंद्रेयवर कविते', 'रामायण दर्शनम्' (आलोचना) तथा 'नडेदु बद दारि' के तीन सपुट। आप कन्नड की नयी पीढी के सर्वश्रेष्ठ आलोचक है। 'नडेदु बद दारि' की भूमिकाओ ने कन्नड मे युगातर उपस्थित किया है। 'मन्वतर' नामक श्रेष्ठ साहित्य त्रैमासिक का आप सफलतापूर्वक सपादन कर रहे हैं। 'स्वप्नदर्शी' एक सफल गीतिनाटक है जिसमे यह प्रतिपादित किया गया है कि समाज सतो को स्वीकार करने के लिए तैयार नही है, किंतु उनकी पूजा करता है। सत्यकाम के जीवन की यह मार्मिक कहानी अत्यत साकेतिकता के साथ निरूपित है। 'रामावसान', 'महाप्रस्थान', 'महाश्वेते', 'शोकचक्र' इस सग्रह के अन्य उल्लेखनीय गीतिनाटक है। तीव्र साकेतिकता, चुभती भाषा आदि इनकी विशेषताएँ हैं। 'उर्मिले' मे काव्य मे अनादृत उर्मिला की मार्मिक कथा है। कुर्तुकोटि ने हिंदी मे भी कुछ कविताएँ लिखी है। रससृष्टि, सतुलित भाषा तथा वैचारिकता आपकी शैली की विशेषताएँ हैं।

कीर्त्तिलता *(अप० कृ०)*

विद्यापति (दे०) रचित 'कीर्त्तिलता' एक ऐतिहासिक चरित-काव्य है। इसम कवि ने अपने प्रथम आश्रयदाता राजा कीर्त्तिसिंह का गुण-गान किया है। यह विद्यापति की सर्वप्रथम रचना है और इसकी रचना कवि ने 20 वर्ष की अवस्था मे की थी। जैनेतर कवियो द्वारा लिखित जो कतिपय कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं उनमे से यह भी एक है।

यह कृति चार पल्लवो मे विभक्त है। प्रथम पल्लव मे राजा कीर्त्तिसिंह के दानशील स्वभाव और आत्माभिमान की ओर सकेत किया गया है। दूसरे पल्लव मे पितृघाती राज्यापहर्त्ता तुरुक असलान से बदला लेने के लिए कीर्त्तिसिंह तथा उनके भाई वीरसिंह के जौनपुर के नवाब से सहायता के लिए वहाँ जाने का वर्णन है। तीसरे और चौथे पल्लवो मे सेना के प्रस्थान, युद्ध तथा कीर्त्तिसिंह की विजय, पराक्रम और राज्याभिषेक का वर्णन है।

कृति मे वर्णनात्मकता अधिक है। विभिन्न वर्णन स्वाभाविक है। बीच-बीच मे अनेक वर्णन काव्य-सौंदर्य से अलकृत हैं, किंतु ऐसे स्थल अल्प हैं। वर्णनो मे सवेदना और हृदयस्पर्शिता का अभाव है। कवि की प्रथम रचना होने के कारण सभवत उसका काव्य-सौंदर्य निखर नही पाया।

कृति मे स्थान-स्थान पर गद्य का भी प्रयोग हुआ है। यह गद्य सस्कृत-ग्रथ के आदर्श पर अवलबित है। पद्य-भाग की गाथाओ मे प्राकृत का यथेष्ट प्रभाव है। कृति की अपभ्रष्ट-अवहट्ठ भाषा मैथिल अपभ्र श है जो उत्तरकालीन अपभ्र श का रूप है। इसमे सस्कृत पदावली, प्राकृतिक शब्द-योजना, अरबी फारसी के शब्दो का प्रयोग और मैथिली का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

इस कृति के सस्कृत-पद्यो मे मालिनी, शार्दूलविक्रीडित, आदि सस्कृत के छदो का प्रयोग हुआ है। अन्यत्र दोहा, छप्पय, मणबहला, गीतिका, णाराच, अरिल्ल इत्यादि छद प्रयुक्त हुए हैं।

कीषकणक्कु *(त० पारि०)*

सघकालीन कृतियो का एक वर्ग कीषकणक्कु (गौण रचनाएँ) कहलाता है। इस वर्ग की कुछ रचनाएँ सघ काल मे और कुछ सघमोत्तर काल मे रचित हैं। इस वर्ग की विभिन्न रचनाओ के नाम और उनके प्रपाद्य विषय इस प्रकार हैं—'तिरुक्कुरल्' (दे०) और 'नालडियार' (दे०) नीतिग्रथ है जिन्हे तमिल साहित्य मे विशिष्ट स्थान प्राप्त है। 'नान्मणिक्कडिहै विळम्बि नाहनार' की रचना है। इसम 140 नीति विषयक पद है। प्रत्येक पद म मणिवत् सुदर चार (नान्कु) तथ्यो की अभिव्यक्ति है। 'इनियवै नार्पदु' के रचयिता पूदचेंदनार हैं। नीति-विषयक चालीस पदो से

युक्त इस रचना में बताया गया है कि संसार मे कौन-कौन से कार्य इनियदु (मधुर) अर्थात् करणीय हैं। कपिलर (दे०)-कृत 'इन्ना नार्पदु' नामक नीति-ग्रंथ में 40 पद हैं। इसमें निषिद्ध कर्मों की चर्चा है। कण्णन् कुत्तनार की कृति 'कार नार्पदु' के 40 पदों में वर्षा ऋतु में प्रकृति के सौंदर्य का सजीव एवं मनोहारी वर्णन प्राप्त होता है। 'कळवषि नार्पदु' के रचयिता पोयगै कवि हैं। उन्होंने इस कृति की रचना चोल सम्राट् शेंगणान द्वारा बंदी बनाए गए अपने मित्र कणैक्कल इरुंम्पोरै (दे०) को क़ैद से मुक्त करने के लिए की थी। ऐंतिणै ऐम्बदु, तिणैमोषि ऐम्बदु, ऐंतिणै एुपदु, तिणैमालै नूट्रैंबदु के रचयिता क्रमशः मारन् पोरैयन, कण्णन् चेंदनार, मूवादियर और कणियन् मेदावियार हैं। इन कृतियों में पाँच भूभागों का वर्णन है। विभिन्न कृतियों में पाँचों भूभागों से संबंधित पद बराबर मात्रा में हैं। 'तिरिकडुकम' नल्लादनार की कृति है। इसके प्रत्येक पद में तीन उत्कृष्ट विचार व्यक्त हुए हैं। 'आचारक्कोवै' के 100 पदों में पेरुवायिन मुळ्ळियार ने करणीय एवं अकरणीय विषयों की चर्चा की है। मुन्रुरैयरैयनार (दे०)-कृत 'पष्मोषि' (कहावत) के प्रत्येक पद के अंत में एक कहावत का प्रयोग हुआ है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों एवं पौराणिक प्रसंगों की ओर संकेत किया गया है। कारियाशान-कृत 'शिरुपंचमूलम्' के प्रत्येक पद में जीवन के लिए उपयोगी पाँच बातें बताई गई हैं। पुल्लंकाडनार-कृत 'कैन्निलै' में पाँच भूभागों का वर्णन है। कूडलूर किषार-कृत 'मुदुमोलिक्कांजि' में मनुष्य के लिए उपयोगी सुंदर तत्त्वों का तथा कणि मेदावियार-कृत 'एलादि' के प्रत्येक पद में छह महत्त्वपूर्ण बातों का वर्णन है।

कुंकुमप्पोट्टु कुमारस्वामी *(त० पा०)*

यह तमिल के प्रसिद्ध कहानीकार (बी० एस०) रामय्या (दे०) की इसी नाम से प्रकाशित कहानी-माला की कहानियों का नायक है। सभी कहानियाँ अपने आप में स्वतंत्र है परंतु सभी में कुमारस्वामी की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन है। इसका चरित्र बहुत कुछ सर कानन डायल की कहानियों के नायक 'शरलाक होम्स' की तरह है। कुमारस्वामी खुफ़िया पुलिस (सी० आई० डी०) का कर्मचारी है। विभिन्न कहानियों में उसकी सफलताओं और विफलताओं का सजीव वर्णन प्रस्तुत किया गया है। वह जहाँ अपराधियों के संपर्क में आता है वहाँ अमीर लोगों के संपर्क में भी आता है। विभिन्न कहानियों में अपराध-संबंधी गुत्थियों को सुलझाने और अपराधियों को पकड़ने में उसकी सामर्थ्य का प्रभावशाली वर्णन है। उसमें पुलिस वाले के लिए अपेक्षित सभी गुण—जैसे कार्यकुशलता, चातुरी, व्यवहार-कुशलता आदि—हैं। इस चरित्र के माध्यम से कहानीकार ने अँग्रेज़ों के शासन-काल के उत्तरार्ध में मदुरै ज़िले के पुलिस वालों के जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है। कहानी में उसके तीस वर्षों के जीवन का चित्रण है।

कुमारस्वामी दृढ़ विचारों का व्यक्ति है। बड़े-से-बड़ा प्रलोभन भी उसे अपने कर्तव्य से नहीं डिगा पाता है। वह वस्तुतः एक वफ़ादार पुलिस वाला है। उसके जीवन का चित्रण करते हुए कहानीकार ने बीसवीं शती के प्रथम चार दशकों में मदुरै ज़िले के लोगों के जीवन का सफलतापूर्वक चित्रण किया है।

कुंचन नंपियार *(मल० ले०)* [जीवन-काल—अठारहवीं शती ई० का आरंभ]

ये मलयाळम के प्रथम जनकवि हैं और तुळ्ळल् नामक दृश्य-कला रूप के प्रवर्तक हैं। ये त्रावनकोर के महाराजाओं—मार्तंड वर्मा और धर्मराजा कवि-सभा में सदस्य थे। कहा जाता है कि इन्होंने 'चाक्यार कुत्तु' की प्रतियोगिता में तुळ्ळल्-नामक नृत्यात्मक कथाख्यान-विधा का उपज्ञापन किया था और स्वयं मंच पर अपना कौशल दिखाकर प्रथम बार ही प्रेक्षकों को मुग्ध कर दिया था। विद्वानों में इस विषय में मतभेद है कि 'राघवीयम्' आदि संस्कृत-काव्यों के रचयिता राम पाणिवाद कवि से अभिन्न हैं अथवा नहीं।

नंपियार की मुख्य कृतियाँ 'शीतंकन्' (दे०), 'परयन्', 'ओट्टन' (दे०)—इन तीनों शैलियों में रचित चालीस से अधिक तुळ्ळल् (दे०)-कथाएँ हैं। ये पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं। 'श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम्' बालोपयोगी महाकाव्य है जिसको अनेक पीढ़ियों से प्रारंभिक शिक्षा के क्षेत्र में स्थान मिलता रहा है। इन्होंने आट्टकथाएँ भी लिखी हैं।

नंपियार कवि ही नहीं, समाज-सुधारक भी थे। सुधारक के लिए उनका हथियार था हास्यरस। उद्धत राजाओं, भ्रष्टाचारी राजसेवकों, डरपोक सैनिकों पर इन्होंने जो व्यंग्य किया और जिस कुशलता से इस व्यंग्य को प्रेक्षकों और श्रोताओं के सामने प्रस्तुत किया उससे न केवल हँसी के फव्वारे फूटे थे वरन् समाज-सुधार के भी साधन जुट गए

थे। पौराणिक कथाएँ इसके लिए निमित्त-मात्र थी। असली पात्र तो जनता के भिन्न-भिन्न वर्गों के प्रतिनिधि ही थे जिनमे हिंदुस्तानी बोलने वाले गोसाईं भी सम्मिलित हैं। पौराणिक पात्रो मे भी वृद्ध वानर की पूँछ को हिलाने मे असमर्थ भीमसेन, बाली की पूँछ मे बँधे रावण जैसे कुठित-वीर्य पात्रो का चित्रण ही इनको अधिक प्रिय था। शायद नपियार ही प्रथम भारतीय कवि है जिन्होने यूरोपीय व्यापारियो के साथ भारतीय नरेशो की मैत्री पर असतोष प्रकट किया था।

कुचियम्मा *(मल० पा०)*

पी० के० राजराज वर्मा (दे०) द्वारा सर्जित स्त्री पात्र जो 'पचुमेनवनुम् कुचियम्मयुम्', 'प्रेसिडेट कुची आदि अनेक हास्य-कृतियो मे पाठको का मनोरजन करता है। कुचियम्मा मध्य वर्ग की औसत गृहिणी की तरह कभी अपने पति पचु मेनन (दे०) को उलाहना देती है तो कभी उससे लडती-झगडती है। अपने पति की तरह वह भी कभी कभी हास्यास्पद स्थितियो मे फँस जाती है। कुचियम्मा एक भोली-भाली महिला है जो अपने पति और बच्चो के प्रति अपने कर्तव्य खूब जानती है, परतु उनको निभाने के प्रयत्न मे पाठको को हास्य की सामग्री प्रदान करती है। कुचियम्मा मलयाळम के हास्य-कथा-पात्रो मे प्रमुख है।

कुञ्ञिक्कुट्टन् तपुरान *(मल० ले०)* [जन्म—1864 ई० मृत्यु—1912 ई०]

ये केरल व्यास के नाम से प्रख्यात है। ये उस कोटुङ्ङळूर् के ऐतिहासिक राजवश के सदस्य थे जहाँ अनेक विद्वानो ने जन्म लिया था और उससे भी अधिक विद्वानो को काव्य-सपर्या मे शिक्षण प्राप्त हुआ था। तत्कालीन कवियो-मूर्धन्यो मे से कई इनके सहयोगी थे और ये इन सब मे शिरोमणि थे।

तपुरान् का सबसे मुख्य साहित्यिक प्रयत्न सपूर्ण 'महाभारत' (दे०) का छदानुछद अनुवाद (दे० भाषा-भारतम्) है। इसके अलावा इन्होंने साठ से अधिक मौलिक एव अनूदित ग्रथो की भी रचना की है जिनमे काव्य, रूपक, गीत, शास्त्र आदि सभी सम्मिलित है। ये अपने सहयोगियो से पत्र-व्यवहार भी कविता मे ही करते थे। सस्कृत मे भी इन्होंने कई ग्रथो की रचना की है। सस्कृत के प्रकाड पडित होते हुए भी इन्होंने एक भी सस्कृत शब्द का प्रयोग न करते हुए भी इन्होने काव्य-रचना की है।

मलयाळम की काव्य-भाषा को सहज सरल, प्रवाहपूर्ण और प्रसन्न-मधुर शैली प्रदान करने वालो मे तपुरान् प्रमुख है। इनके पिता वेण्मणि (दे०) अच्छन् नपूतिरिप्पाड द्वारा प्रवर्तित और वैमात्रेय भ्राता वेण्मणि (दे०) महन् नपूतिरिप्पाड वळ्ळत्तोळ् (दे०) द्वारा पोषित नूतन आदोलन 'वेण्मणि प्रस्थानम्' को इन्होंने पूर्ण रूप से विकसित किया था जिसका वळ्ळत्तोळ् जैसे आगे के कवियो ने सफलतापूर्वक प्रयोग किया था। तपुरान का द्रुत-कविता-पाटव अद्भुत था।

'महाभारत' के अनुवादक के रूप मे, काव्य-शैली के परिमार्जनकर्ता के रूप मे और महान् कला-पोषक के रूप मे तपुरान का स्थान अद्वितीय है।

कुडलिया *(हिं० पारि०)*

कुडलिया छद मे भी छप्पय (दे०) की भाँति छह् चरण होते है, और प्रत्येक चरण मे चौबीस मात्राएँ होती है। पर ये चौबीस मात्राएँ एक छद की न होकर—दोहा (दे०) और रोला (दे०)—इन दो छदो की होती हैं। ये दोनो छद मानो कुडली रूप से एक दूसरे से गुँथे होते हैं इसलिए इसे 'कुडलिया' छद कहते हैं। जिस शब्द से यह छद प्रारभ होता है, उसी से इसका अत भी होता है, साथ ही दोहे का चौथा चरण रोला छद के पहले चरण का एक भाग होकर आता है। हिंदी-साहित्य मे दीनदयाल गिरि (दे०) और गिरधर (दे०) कविराय की कुडलियाँ प्रसिद्ध हैं। उदाहरण—

दौलत पाय न कीजिये सपनेहुँ अभिमान,
चचल जल दिन चारि को ठौउ न रहत निदान
(दोहा)

ठाँउँ न रहत निदान जियत जग मे जस लीजै
मीठे बचन सुनाय, विनय सब ही की कीजै
कह गिरधर कविराय, अरे, यह सब घट तौलत,
पाहुन निसि दिन चारि, रहत सब ही के दौलत ॥
(रोला)

कुतक *(स० ले०)* [समय—सभवत 980 1000 ई०]

राजानक कुतक, जैसा कि इनकी राजानक उपाधि से ही प्रतीत होता है, कश्मीरी थे। इनका समय आनदवर्धन (दे०) के बाद तथा महिमभट्ट (दे०) के पूर्व

दशक का अंतिम चरण एवं एकादश शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध प्रतीत होता है। कुंतक के व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। कुछ हस्तलेखों में इनका नाम कुंतल या कुंतलक मिलता है जो निश्चित रूप से भ्रांति है।

आचार्य कुंतल के नाम से केवल एक ही ग्रंथ उपलब्ध है—'वक्रोक्तिजीवित' (दे०) (दे० वक्रोक्ति भी) जो साहित्यशास्त्र-परक है। कुंतक साहित्य के बड़े ही मर्मज्ञ आचार्य थे। महिमभट्ट ने इन्हें 'सहृदयमानी' कहा है जिसका अभिप्राय यह है कि ये अपने को बहुत बड़ा सहृदय मानते थे। 'वक्रोक्तिजीवित' साहित्यशास्त्र की एक मूर्धन्य कृति है जो अभी भी अपूर्ण रूप में ही उपलब्ध है। संपूर्ण ग्रंथ संभवत: चार उन्मेषों में था पर तृतीय उन्मेष भी पूरा उपलब्ध नहीं हो सका है। ग्रंथ में कारिका, वृत्ति एवं उदाहरण शैली को अपनाया गया है। उपलब्ध कुल 104 कारिकाओं पर वृत्ति एवं यथास्थान उदाहरण श्लोक है। उदाहरण 'रामायण' (दे०), 'महाभारत' (दे०) एवं भास (दे०), कालिदास (दे०), भवभूति (दे०) तथा राजशेखर (दे०) आदि अनेक कवियों की कृतियों से लिये गए हैं।

कुंतक व्यापारवादी आचार्य हैं। इनके अनुसार कवि का वक्तृ-व्यापार ही काव्य का सर्वस्व है। उक्ति के दो प्रकार होते हैं—स्वभावोक्ति एवं वक्रोक्ति। स्वभावोक्ति शास्त्रों एवं पुराणों की रचना का प्रकार है तो वक्रोक्ति काव्य का। इसी से सहृदय को आह्लाद होता है। वाक्य से रसानुभूति का रहस्य भी यही वक्रोक्ति ही है। कुंतक ने ध्वनि का वक्रोक्ति में ही अंतर्भाव माना है। पर महिमभट्ट ध्वनि एवं वक्रोक्ति दोनों का अंतर्भाव भक्ति अर्थात् लक्षणा में करके अनुमान में ही सबको गतार्थ मानते है।

कुंती *(सं० पा०)*

इसका पिता युद्धकुलीन राजा शूर था और यह श्री कृष्ण (दे०) के पिता वसुदेव की भगिनी थी। दुर्वासा के वर के कारण इसने विवाह से पूर्व एक बार सूर्य का आवाहन किया तो उससे इसे कवच-कुंडल-युक्त कर्ण (दे०) नामक पुत्र हुआ, जिसे इसने लोकलाजवश अश्व नदी में त्याग दिया, किंतु वह बच गया। इसका पांडु के साथ विवाह हुआ, तथा इसके तीन पुत्र हुए—युधिष्ठिर (दे०), भीम (दे०) और अर्जुन (दे०)। कुंती ने अनेक उपायों से कर्ण को पांडवों के पक्ष में करना चाहा परंतु कर्ण ने सदा कौरवों का साथ दिया। स्वयंवर में अर्जुन ने द्रौपदी (दे०) को जीता तो घर आते ही युधिष्ठिर ने कुंती से कहा कि 'हम भिक्षा ले आये हैं' तो कुंती ने सहजभाव से कहा कि इस भिक्षा को पाँचों में समान रूप से बाँट लो। कुंती के वचन का पालन करने के लिए द्रौपदी पाँचों भाइयों की पत्नी बनी रही। एक बार इसने ब्राह्मण-कुटुंब को संकट से मुक्त करने के लिए भीम द्वारा बकासुर का वध कराया। इससे इसकी परोपकारी वृत्ति का पता चलता है।

कुंदकुंद *(प्रा० ले०)*

दिगंबर-संप्रदाय में इनका नाम अत्यंत गौरव के साथ लिया जाता है। महावीर और गोयल के बाद इस संप्रदाय में इन्हें सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। श्वेतांबरों में जो गौरव भद्रबाहु (दे०) को प्राप्त है दिगंबरों में वही इन्हें प्रदान किया जाता है। इनका समय ईसा की प्रथम शताब्दी के आसपास माना जाता है। इनका वास्तविक नाम पद्मनंदि है किंतु कोंडकुंड के निवासी होने के कारण इन्हें इस नाम से अभिहित किया जाता है। इनकी एक उपाधि 'गृह पिच्छमी' है जो इनकी शिष्य-परंपरा को भी प्राप्त हुई है। कहा जाता है कि इन्होंने 83 ग्रंथ लिखे थे जिनमें केवल सात का ज्ञान है। 'पंचत्थिअसार' (पंचास्तिकायसार) या 'पवयनसार', 'पंचत्थिअसंग्रह' और 'समयसार' ये तीन ग्रंथ मिलकर 'प्राभृतत्रय' या 'नाटकत्रय' की संज्ञा से अभिहित किए जाते हैं। इनमें 'पंचत्थिअसंग्रह' के दो भाग हैं—'प्रवचनसार' और 'पंचास्तिकायसंग्रह'। ये दोनों पृथक् ग्रंथ माने जाते है। 'नियमसार', 'रत्नसार' और 'षट्प्राभृत' भी इनके ही ग्रंथ माने जाते हैं। इन ग्रंथों में प्राकृत गाथाएँ, सदाचार, नीति और जैन नियमावली आदि का वर्णन है।

कुंदनिका कापडिया *(गु० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

स्वातंत्र्योत्तर काल की कहानी और उपन्यास-लेखिका के रूप में कुंदनिका कापडिया का महत्वपूर्ण योगदान है। संप्रति वे 'नवनीत' मासिक पत्रिका के गुजराती संस्करण की संपादिका हैं। अंतर्राष्ट्रीय कहानी-प्रतियोगिता में उनकी कहानी 'प्रेमनां आँसू' पुरस्कृत हुई थी। उनके दो कहानी-संग्रह 'प्रेमनां आँसू' और 'वृंधनिशाओ' और दो उपन्यास 'परोढ़थतां पहेला' तथा 'अगनपिपासा' प्रकाशित हुए हैं। उनके उपन्यास और कहानियों का रूप मनोवैज्ञानिक है। विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग उनके कृतित्व का वैशिष्ट्य है।

कुंदमाला *(सं० कृ०)* [समय—1000 ई०]

यह एक रामकथात्मक नाटक है । इसके रचयिता दिङ्नाग (दे०) अरारालपुर के निवासी थे। ये बौद्ध तार्किक दिङ्नाग से सर्वथा भिन्न हैं । इनका दूसरा नाम वीरनाग भी है ।

'कुंदमाला' मे राम के जीवन के उत्तरकालीन भाग को उपजीव्य बनाया गया है। इसमे तथा 'उत्तर-रामचरित' (दे०) के कथानक मे बहुत कुछ समानता है। दिङ्नाग ने स्पष्ट रूप से भवभूति (दे०) का अनुकरण किया। 'कुंदमाला' के वर्णन रूढिसम्मत एव कविता मध्यम कोटि की है। परतु क्रियाशीलता एव शैली की सरलता की दृष्टि से यह नाटक बडा प्रभावोत्पादक है। इसमे सवाद और चरित्र-चित्रण अपना वैशिष्ट्य लिये हुए हैं। परित्यक्ता सीता के दुख से समस्त वन के पशु-पक्षी रो पडते हैं। सीता के प्रति राम के विलाप की भी इसमे बडी मार्मिक अभिव्यजना हुई है। वस्तुत इस नाटक मे चरित्र-चित्रण मे नाटककार का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। अत यह नाटक दर्शकों के मानस पर बडा स्थायी प्रभाव डालता है।

कुंभकर्णन् *(त० पा०)*

वाल्मीकि रामायण (दे०) मे प्राप्त कुभकर्ण के चरित्र को लेकर तमिल मे अनेक साहित्यिक कृतियो की रचना हुई है जिसमे प्रसिद्ध है कबर कृत 'कब-रामायणम्' (महाकाव्य), रा० पि० सेतुपिल्लै-कृत 'कर्णनुम् कुभकर्णनुम्' (निबध), कदकैयिन् कादल् (काव्य-ग्रथ), शालै इलतिरैयन्-कृत 'कोट्टियुम् आबलुम् नेयदलुम् पोलवे' (कथाकाव्य) आदि।

कबर का कुभकर्णन् एक आदर्श योद्धा है। वह अत्यत शक्तिशाली है। उसे करणीय-अकरणीय का ज्ञान है। अपना पेट पालने वाले भाई के प्रति उसमे सम्मान की भावना है। उस भाई के लिए वह अपने प्राण त्याग देता है। कुभकर्ण के भ्रातृ प्रेम की भावना को कवि ने विशेष महत्व नही दिया। इसके दो कारण हैं। प्रथमत 'कब रामायणम्' मे कुभकर्ण गौणपात्र है, अत कवि को उस की भावनाओ के विस्तृत वर्णन का अवकाश नही मिला। द्वितीयत कबर का आविर्भाव चोळ राजाओ के शासन-काल मे हुआ था जबकि लोग अपना पेट पालने वाले के लिए प्राणो का त्याग अपना उद्देश्य समझते थे। इस प्रकार 'कब-रामायणम्' मे कुभकर्णन् का चित्र अपूर्ण है। 'कर्णनुम् कुभकर्णनुम्' शीर्षक निबध मे लेखक ने राजा कर्ण से कुभ-कर्ण की तुलना करते हुए उसे वीर, कर्तव्यपरायण एव आदर्श व्यक्ति सिद्ध किया है। 'कैदकैयिन् कादल्' नामक काव्य ग्रथ मे प्रथम बार कुभकर्ण के पारिवारिक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया गया है। कवि ने उसे काल्पनिक पात्र न बनाकर सामान्य मानव का रूप दिया है। 'कोट्टियुम् आवलुम् नेयदलुम् पोलवे' नामक कथाकाव्य म कुभकर्णन् को आदर्श भ्राता, आदर्श योद्धा और बुद्धिमान व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया गया है। वह रावण की विजय पर प्रसन्न होता है। उसे गर्व है कि वह रावण जैसे महान् व्यक्ति का भाई है। वह युद्ध-क्षेत्र मे प्राण त्याग कर लोगो को यह कहने का अवसर नही देना चाहता कि रावण के मन मे अपने भाइयो के प्रति तनिक भी प्रेम नही था। इस कथाकाव्य म कुभकर्णन को आदर्श भाई के रूप मे चित्रित किया गया है। स्पष्ट है कि तमिल मे कुभकर्णन् के चरित्र से सबधित अनेक साहित्यिक कृतियाँ है। विभिन्न कृतियो मे उसका रूप भिन्न-भिन्न है।

कुरणगार, के० जी० *(क० ले०)* [जन्म—1895 ई०]

कन्नड के प्रतिष्ठित आलोचक एव विद्वान् प्रो० कल्लप्पा कुरणगार का जन्म बेलगाँव जिले के कौजलगी ग्राम मे 1895 ई० मे हुआ। आपका बाल्य जीवन बहुत गरीबी मे बीता। कन्नड मे एम० ए० पास कर आप धारवाड के कर्णाटक कालेज मे प्राध्यापक और फिर कोल्हा-पुर के राजाराम कालेज मे कन्नड विभागाध्यक्ष बने। वही रहकर इन्होंने शोध की। शोध की दृष्टि स 'इस्क्रिप्शज फ्रॉम कोल्हापुर एड नार्दर्न कर्नाटक' आपकी उल्लेखनीय कृति है। आपके सपादित ग्रथो मे 'आदि पुराण' (दे०), 'कुमुदेंदु रामायण' (दे०), पूर्व-पुराणम्', 'हरिहर देव' आदि प्रमुख हैं। 'महादेवियाक्क' इनका सुदर नाटक है। 'सरस्वती' पर भी आपने एक ग्रथ लिखा है। इनके अति-रिक्त, इन्होंने कन्नड व अँग्रेजी मे कन्नड-साहित्य, भाषा व सस्कृति से सबधित शताधिक लेख लिखे हैं। पुरातत्त्व के अतर्गत शिलालेख, ताम्रपत्रो, आदि मे इनकी विशेष रुचि रही है। आपने पुरातात्त्विक अन्वेषण-अध्ययन के बल पर कर्णाटक के शातवाहनकालीन जनजीवन का चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रो० कुरणगार कन्नड साहित्य की जैन, वीरशैव और ब्राह्मण सभी धाराओ के अधिकारी विद्वान् थे। छद-शास्त्र मे आपकी विशेष पैठ थी। कर्णाटक के शैवधर्मो पर

—उनमें भी पाशुपतों पर—आपने विशेष प्रकाश डाला है। आपके निधन से कन्नड-साहित्य की विशेष क्षति हुई।

कुटुंबराव, कोडवगंटि *(ते० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

ये तेलुगु के प्रमुख कथाकार एवं उपन्यासकारों में से एक हैं। इन्होंने राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं को प्रतिबिंबित करने वाले अनेक मनोवैज्ञानिक उपन्यासों एवं कहानियों की रचना की है। इन्होंने सामाजिक प्रयोजन को दृष्टि में रखकर साहित्यिक साधना की है। आज के बदलते हुए सामाजिक मूल्यों का चित्रण इनकी रचनाओं का प्रमुख विषय है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'चदुवु', 'आडजन्मा', 'निलुवनीरु', 'मोडिवाड्रु', 'वरप्रसादमु', 'कलुपं लेनि मनिषि', 'अरुणोदयमु' आदि।

'चदुवु' स्वतंत्रता-संग्राम के सत्याग्रह की भूमिका पर लिखा गया इनका राजनीतिक उपन्यास है। कांग्रेस के आंदोलन के कारण पढ़ाई छोड़ने वाले एक युवक की दु:ख-गाथा के साथ-साथ जीविका के किसी भी साधन का प्रबंध करने में असमर्थ हमारी शिक्षा-पद्धति का भी इसमें मार्मिक चित्रण किया गया है। इसी प्रकार इनकी अन्य रचनाओं में यथार्थवादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन मिलता है। छोटे उपन्यास के रूप में लिखी गई इनकी लंबी कहानियाँ चरित्र-चित्रण तथा कथा के चमत्कार की दृष्टि से विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करती हैं। इन्होंने अन्य भाषाओं से अनेक कहानियों के अनुवाद भी किए हैं। तेलुगु के उपन्यास एवं कथा-साहित्य को इनका योगदान महत्त्वपूर्ण है।

कुटियोषिक्कल *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1952 ई०]

वैलोप्पिळ्ळि श्रीधर मेनन (दे०) का खंड-काव्य। इस काव्य का नायक एक मध्यवर्गीय स्वप्नद्रष्टा कवि है जो दलित-दरिद्रों की उन्नति तो चाहता है, परंतु अपने आदर्शों का कार्यान्वयन तो दूर, उलटे वह उन मजदूरों से घृणा ही कर पाता है और स्वार्थवश उन्हें सताता है।

कृषकों और मजदूरों की क्रांति के इस युग में मध्यवर्गीय भावुक व्यक्तियों की इस क्रांति के प्रति होने वाली प्रतिक्रिया का प्रस्तुत काव्य में सुंदर विश्लेषण किया गया है। किसी भी सहृदय व्यक्ति को इस क्रांति से सहानुभूति होगी, परंतु उसके कार्य इसके विरुद्ध ही परिणत होते हैं। यह अंतर्द्वंद्व आधुनिक मनुष्य की मानसिक स्थिति का मुख्य लक्षण है। इस अंतर्द्वंद्व को स्वर देने वाले इस काव्य का मलयाळम कविता में मुख्य स्थान है।

कुडुंब विळक्कु *(त० कृ०)*

यह भारतीदासन (दे०)-कृत एक वीट्टियल् काव्यम् (गृहस्थ जीवन से संबंधित काव्य) है। पाँच भागों में विभक्त इस कृति में गृहस्थ के जीवन के आदि से लेकर अंत तक की विभिन्न घटनाओं का वर्णन है। प्रथम भाग में गृहस्थ-जीवन में घटित होने वाली नाना घटनाओं का वर्णन करते हुए एक आदर्श गृहस्वामिनी का चित्र प्रस्तुत किया गया है। अतिथि-सत्कार नामक द्वितीय भाग में गृहस्वामिनी द्वारा अतिथियों के स्वागत-सत्कार आदि का वर्णन है। यहाँ कवि ने नारी-शिक्षा एवं भोजन संबंधी कुछ सुंदर विचार व्यक्त किए हैं। तृतीय भाग में वेडप्पन और नाहमुत्तु के प्रेम तथा विवाह का वर्णन है। लेखक ने इन दोनों के माता-पिता को आदर्श माता-पिता के रूप में चित्रित किया है। वे अपने बच्चों के प्रेम को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। चतुर्थ भाग में नाहमुत्तु द्वारा गर्भधारण, शिशु-जन्म आदि की घटनाएँ वर्णित है। अंतिम भाग इस कृति का सर्वश्रेष्ठ अंश है। 'वृद्धों का प्रेम' शीर्षक इस भाग में कवि ने नर-नारी के प्रेममय जीवन और गृहस्वामिनी की महिमा का गान किया है। इस भाग के विभिन्न पद एक दीर्घ कविता के रूप में है। विभिन्न पदों में अभिव्यक्त विचारों एवं भावों में तारतम्य है। इस भाग के प्रत्येक पद में कवि का कवित्व अपनी पूर्ण शक्ति के साथ प्रकट हुआ है। उसने सबल शब्दावली में अपने विचारों और भावों को व्यक्त किया है। ये पद अत्यंत प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी हैं। 'कुडुंब विळक्कु' एक नवीन काव्य-विधा में रचित है। इसमें एक ओर कवि की कवित्व-शक्ति का तथा दूसरी ओर गृहस्थ-जीवन के प्रति उसकी गहन अभिरुचि का परिचय मिलता है। इसे भारतीदासन की कृतियों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

कुचेलवृत्तम् वंचिप्पाट्टु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

यह रामपुरत्तु वारियर (दे०) का वंचिप्पाट्टु (नौका-गीत) है। कहा जाता है कि महाराजा मार्तंड वर्मा की नौका-यात्रा के दौरान कवि ने इस काव्य की रचना

की थी और महाराज ने प्रसन्न होकर कवि को बताए बिना ही उनके लिए महल बनवाया था। काव्य मे सुदामा-चरित की कथा सगृहीत है। आरभ मे कवि के अभिभावक महाराजा की प्रशसा भी की गई है।

'कुचेलवृत्तम्' मे कवि की आत्मानुभूतियो की गहरी छाप है। सुदामा, उनकी धर्मपत्नी एव श्रीकृष्ण का चरित्र चित्रण हृदयस्पर्शी हुआ है। वचिप्पाट्टु रीति के काव्यो मे 'कुचेलवृत्तम्' का स्थान अद्वितीय है। सुदामा-चरित पर आधारित जितनी भी कृतियाँ मलयाळम मे रचित हैं उन सबमे भी इस काव्य का स्थान अग्रणी है।

कुट्टनीमत *(स० कृ०)* [समय—आठवी शती ई०]

'कुट्टनीमत' दामोदरगुप्त की हास्योपदेशक काव्यकृति है। वे काश्मीर-नरेश जयापीड के प्रधान अमात्य थे।

इस ग्रथ मे दामोदरगुप्त ने तत्कालीन राजाओ की लपटता, विलासिता तथा कुट्टनियो के प्रभाव आदि का सजीव चित्रण किया है। 1059 आर्याओ के इस काव्य मे कवि ने अत्यत रोचक शैली मे तत्कालीन समाज का नग्न चित्र खीचा है।

श्री दामोदरगुप्त ने इसकी रचना समाज सुधार की दृष्टि से रखकर की थी। इसमे विकराला नामक कुट्टनी के रूप का चित्रण इतनी कुशलता से किया गया है कि उसकी आकृति नेत्रो के सामने नाचने लगती है। विकराला मालती को कामीजनो से धन ऐंठने की शिक्षा इस ढग से देती है कि यह काव्य कामशास्त्र का एक शास्त्रीय ग्रथ बन गया है। पाटलिपुत्र तथा वाराणसी की काम प्रवृत्ति का चित्रण करने के कारण इस ग्रथ का सास्कृतिक महत्व भी है।

कुतबन *(हिं० ल०)* [अस्तित्व काल—ईसा की पद्रहवी शती के अत से सोलहवी शती के प्रथम चरण तक]

ये शेख बुड्ढन के शिष्य थे। शाहेवक्त की प्रशसा मे इन्होने जौनपुर के शासक हुसेनशाह का उल्लेख किया है। इन्होने अपनी रचना 'मृगावती' (दे०) के माध्यम से काव्य रूढि तथा कथानक-रूढियो मे भारतीय परपरा का निर्वाह किया है। कवि ने पूर्व प्रचलित कथा को दोहा, चौपाई, सोरठा, अरिल्ल, आदि छदो मे बड चातुर्य से अवधी भाषा के योग से उरेहा है। अभी तक ज्ञात सूफी कवियो मे ये मुल्ला दाऊद के बाद द्वितीय कवि ठहरते है। अपने सप्रदाय के कवियो का इन्होंने पर्याप्त मार्गप्रदर्शन किया है।

कुप्पुस्वामी शास्त्री, एस० *(स० ले०)*

इनका जन्म 15 दिसबर, 1880 ई० को गनपति अग्रहरम (जिला तजौर) मे हुआ। एम० ए० (सस्कृत)परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद ये सन 1906 स 1910 तक मायलापुर सस्कृत कालिज और राजा सस्कृत कालिज तिरुवाडि के प्रिसिपल रहे। फिर 1914 से 1935 तक प्रेसिडेसी कालेज मद्रास मे सस्कृत तथा तुलनात्मक भाषा विज्ञान के प्रोफेसर रहे। इन्हे 'विद्यावाचस्पति', महामहोपाध्याय आदि उपाधियो से विभूषित किया गया था। इनके द्वारा रचित ग्रथ हैं—

1 हिंदू फिलॉसफी विद स्पशल रेफरेंस टु द न्याय एड वैशेषिक सिस्टम्स
2 इडियन एपिस्टोमोलोजी,
3 मैथडस एड मैटिरियल ऑफ लिट्रेरी क्रिटिसिज्म,
4 द प्रभाकर स्कूल ऑफ कर्ममीमासा,
5 इडियन थीइज्म
6 द फिलासफी एड एस्सीजैटिक्स ऑफ द मीमासा सिस्टम
7 हाइवेज एड बाइवेज आफ सस्कृत लिट्रेरी क्रिटिसिज्म
8 पुराणिज्म इन इडियन थॉट।

इनके अतिरिक्त इन्होने सस्कृत के अनक ग्रथो का सपादन किया तथा प्राक्कथन लिखे। इन्होने अनेक सस्थाओ के अध्यक्षीय भाषण दिए जिनका विषय सस्कृत वाड्मय रहा।

कुमणन् *(त० पा०)*

कुमणन् एक प्रसिद्ध दानी शासक था। इसका समय सघकालीन सात प्रसिद्ध दानी राजाओ के बाद का है। 'पुरनानूरु' (दे०) मे सगृहीत परचित्तिरनार् की कविताओ मे कुमणन की दानशीलता का विस्तृत वर्णन है। प्रसिद्ध है कि अपन छोटे भाई के अत्याचारो स तग आकर कुमणन् जगल म रहन लगा था। उस समय कवि पेरुतलैचात्तनार् पुरस्कार पाने की इच्छा से इसके पास

गए। उस अवस्था में भी इसने कलाकार की सहायता करना अपना धर्म समझा था। इसने तुरंत अपनी तलवार उन्हें दे दी थी और कहा था कि आप मेरा सिर काटकर मेरे छोटे भाई को देकर तुरंत पुरस्कार-रूप में अपार धनराशि प्राप्त कर लें। लोगों का विश्वास है कि कुमणन् की इस दानशीलता को देखकर उसके नीच भाई का मन भी बदल गया होगा। तमिल में कुमणन् के चरित्र को लेकर अनेक नाटक, रेडियो-नाटक, कहानी, निबंध आदि लिखे जा चुके हैं। विभिन्न साहित्यिक कृतियों में कुमणन् के नाना गुणों का, विशेषकर दानशीलता का ही, वर्णन है।

कुमरगुरुपरर (त० ले०) [समय—ईसा की सत्रहवीं शती]

कुमरगुरुपरर का जन्म एक शैव परिवार में हुआ था। प्रसिद्ध है कि ये जन्म के उपरांत पाँच वर्ष तक गूंगे रहे। तिरुचेंदूर के भगवान सुब्रह्मण्य की कृपा से इन्हें वाक्-शक्ति मिली। कुमरगुरुपरर तमिल के प्रसिद्ध कवियों में गिने जाते हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—मीनाक्षीयम्मै पिळ्ळैत्तमिल (दे०), मुत्तुक्कुमारस्वामी पिळ्ळैत्तमिल, कयिलै कलम्बकम्, मदुरै कलम्बकम्, काशी कलम्बकम्, नीतिनेरि विळक्कम्, तिरुवारूर नान्मणिमालै, चिदम्बर मुम्मणिक्कोवै, पंडार मुम्मणिक्कोवै, सकलकलावल्लि मालै, इरट्टै मणिमालै, चेय्युट् कोवै, आदि। इन रचनाओं में विविध विषयों का वर्णन है। अधिकांश कृतियों में विविध स्थलों पर प्रतिष्ठित देवताओं की महिमा का गान है—उदाहरणतया, 'मीनाक्षीयम्मै पिळ्ळैत्तमिल' में इन्होंने मदुरै मीनाक्षी देवी की बाललीलाओं का सरस एवं हृदयहारी वर्णन करने के साथ-साथ उनकी महिमा का गान किया है। 'नीतिनेरि विळक्कम्' एक नीतिग्रंथ है। इस कृति से कवि के अनुभव-ज्ञान और उपमा-प्रयोग में कौशल की सृष्टि हुई है। इनकी अधिकांश कृतियाँ इनके प्रकांड पांडित्य, प्रखर कल्पना-शक्ति और अपार भाषा-ज्ञान की अभिव्यक्ति करती हैं। इनकी सहज प्रवाहमयी भाषा-शैली में अनूठा माधुर्य पाया जाता है जो कि पाठकों को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। इनका तमिल भाषा-प्रेम सराहनीय है। ये उसे देवभाषा कहते थे। इनकी रचनाओं में हिंदी-शब्दों का प्रयोग भी दृष्टिगत होता है। प्रसिद्ध है कि इन्होंने उत्तर भारत का भ्रमण किया था। इन्होंने हिंदी भाषा का अध्ययन कर उसके माध्यम से शैवधर्म का प्रचार उत्तर भारत में किया था। इन्होंने काशी में एक मठ की स्थापना भी की थी जो कि अब भी विद्यमान है।

कुमरेश-शतकम (त० कृ०) [रचना-काल—ईसा की अठारहवीं शती]

यह भगवान कार्तिकेय के परम भक्त गुरु-पाददासर की प्रसिद्ध रचना है। इस कृति में प्राप्त सौ पदों में कवि ने एक ओर नैतिक विचारों की और दूसरी ओर इष्टदेव के प्रति अपनी अनन्य भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति की है। प्रत्येक पद में कवि भगवान कार्तिकेय को संबोधित करके, पौराणिक कथाओं के सहारे, उनकी महिमा का उद्घाटन करता है; तदुपरांत नैतिक विषयों का वर्णन करता है। ये विषय हैं—सुखी पारिवारिक जीवन के लिए अपेक्षित आचार-व्यवहार, न्यायशील राजा की शासन-कुशलता, आदि। विभिन्न पदों में साधुओं की आडंबर-प्रियता, आधुनिक विद्वानों के ज्ञान का उथलापन, अमीरों का निर्दयतापूर्ण व्यवहार, नारी की अस्थिर बुद्धि, युवकों द्वारा बड़ों का अनादर, छात्रों द्वारा गुरु का आदर न किया जाना, आदि बातों की निंदा की गई है। तमिल में रचित नीति-प्रधान शतकों में 'कुमरेश-शतकम' सर्वप्रमुख है।

कुमारदास (सं० ले०) [समय—620 ई०]

महाकवि कुमारदास का जन्म सिंहलद्वीप में हुआ था। उनके पिता का नाम मानित और दो मामाओं का नाम मेघ तथा अग्रबोधि था। दोनों ही बड़े वीर तथा संस्कृत-प्रेमी थे। इनका कुमारदास के जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

इनका केवल एक ग्रंथ प्राप्त होता है—'जानकी-हरण'। यह अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं। सिंहली भाषा में प्राप्त उसके शब्दकोश के आधार पर इसकी फिर से रचना की गई। राजशेखर (दे०) ने कुमारदास के महाकाव्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि कालिदास (दे०) के 'रघुवंश' (दे०) के वर्तमान रहते हुए कुमारदास ने 'जानकीहरण' की रचना करके अपने कौशल का परिचय दिया है। उनके ऊपर कालिदास का पर्याप्त प्रभाव था। उन्होंने अपने काव्य में वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है तथा अनेक अलंकारों के चमत्कार से अपने काव्य को सजाया है। बीस सर्ग के अपने महाकाव्य में कवि ने अपनी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचय बालप्रकृति के स्वाभाविक

वर्णन मे दिया है। राम के सलोने बालस्वभाव के अनेक मनोहारी वर्णन इस महाकाव्य मे विद्यमान है।

कुमार राम *(क० पा०)*

यह मध्यकाल के कवि नजुड (दे०) के 'कुमार राम सागत्य' नामक काव्य का नायक है। यह पराक्रमी, वीर, शीलवान, नीतिवान और सुदर पुरुष है—कर्णाटक के राजा कपिल का पुत्र होने के कारण क्षात्रधर्म का ज्वलत प्रतीक है। एक दिन जब इसकी गेंद सौतेली माँ रत्नजी के अत पुर मे जा गिरी और यह अपनी गेद लेने अत - पुर मे जाता है तो उसकी कामलालसा इसे घेर लेती है। किंतु यह अपना नैतिक बल नही खोता। परिणामत इसे असतुष्ट रानी के प्रतिशोध का शिकार बनना पडता है। रानी की बात सच मानकर राजा मत्री को आज्ञा देता है कि इसे मौत के घाट उतार दिया जाए। मत्री बैचप्पा बडी बुद्धिमत्ता से इसे बचाकर सुरग मे सुरक्षित रखता है। मुसलमानो को जब ज्ञात होता है कि कपिल के राज्य मे राम के समान वीर नही, तब वे धावा बोल देते हैं। उस समय यह बाहर प्रकट होकर मुसलमानो के छक्के छुडा देता है। अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित कर यह वीरगति प्राप्त करता है।

कुमारवालचरिय (कुमारपालचरित) *(प्रा० कृ०)*

यह प्राकृत भाषा के प्रसिद्ध महावैयाकरण हेमचद्र (दे०) का लिखा हुआ महाकाव्य है और इसका उद्देश्य 'कुमारपाल के चरित्र स्तवन के अतिरिक्त 'सिद्धहेमव्याकरण के नियमो को उदाहरणबद्ध करना भी है। इसके दो भाग हैं—प्रथम भाग के 20 सर्गो मे कुमारपाल के पूर्वजो का वर्णन करते हुए 'सिद्धहेमव्याकरण के प्रथम 7 अध्यायो मे उल्लिखित नियम समझाए गए है और दूसरे भाग के 8 सर्गो मे आठवें अध्याय के नियम कुमारपाल के वर्णन के माध्यम से समझाए गए हैं। इसीलिए इसे द्व्याश्रयकाव्य कहा जाता है। इसका कुछ भाग प्राकृत से भिन्न मागधी, पैशाची, अपभ्र श इत्यादि मे भी लिखा गया है।

कुमारवालपडिवोह (कुमारपालप्रतिबोध) *(प्रा० कृ०)*

यह रचना हेमचद्र (दे०) के परवर्ती समकालीन सोमप्रभसूरि (दे० सोमप्रभाचार्य) की लिखी है। अनहिलबाडा के चालुक्य सम्राट कुमारपाल को प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचद्र ने जिस उपदेश के द्वारा जैन धर्म मे दीक्षित किया था उसी का इसमे वर्णन है। इसमे 5 प्रस्ताव हैं—प्रथम मे पापो से विरति, द्वितीय मे गुरु देवोपासना, तृतीय मे सद्धर्मनिरूपण, चतुर्थ मे 12 व्रत और पाँचवें मे दुर्गुणो का वर्णन है। अधिकाश रचना जैन महाराष्ट्री मे है, किंतु बीच बीच मे सस्कृत और अपभ्र श भी आ जाती है। पाँचवाँ प्रस्ताव अपभ्र श मे है। जैन-कथा-साहित्य का भी इसम पर्याप्त समावेश है।

कुमार वाल्मीकि *(क० ले०)* [समय—1500 ई० के लगभग]

कुमार वाल्मीकि या नरहरि का जन्म उत्तर कर्णाटक मे बिजापुर के पास तोखे ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। ये हरिहराद्वैती भागवत सप्रदाय के अनुयायी थे तथा अपने गाँव के नरसिंह के भक्त थे। इनके दो ग्रथ हैं—'तोखे रामायण तथा ऐरावण काळग'। 'तोखे रामायण' पाँच हजार से भी अधिक षट्पदी छदो म लिखा एक विशालकाय ग्रथ है। इसमे 'वाल्मीकि रामायण' की ही कथा है किंतु कवि की दृष्टि मे अतर है। उसने यहाँ राम को विष्णु के अवतार के रूप मे देखा है। तुलसी के 'रामचरितमानस' की भाँति इसके आदि मे रामनाम की महिमा बताई गई है और उसके उपरात शिव-पार्वती सवाद चलता है जिसमे शिवजी पार्वती को राम की कथा सुनाते है। कथा का सक्षेप मे निरूपण करना ही कवि का उद्देश्य है। किंतु युद्ध-वर्णन का प्रसग आते ही वह अनुपात को भूल गया है। परिणामत आधे से भी अधिक भाग इस काड ने ले लिया है। कवि ने अपनी कथा मे यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन भी किए है किंतु वे उतने महत्वपूर्ण नही है। इसकी मथरा दासी नही है, माया की अवतार है। चरित्र-चित्रण मे भी कुछ परिवर्तन है। इसका रावण युद्ध मे जाने के पहले गरीबो मे अपनी सपत्ति का दान करता है, बदियो को छोड देता है और विभीषण को लाने की बात कहता है और कहता है कि मैं कामाध हो गया था जो मैंने विभीषण की बातें नही सुनी। इस तरह वह पश्चात्ताप करता है।

'वाल्मीकि रामायण' को कन्नड मे प्रस्तुत करने वालो मे कुमार वाल्मीकि ही सर्वप्रथम हैं। किंतु इन्होने इसमे जितनी भक्ति दिखाई है उतनी कवित्व-शक्ति इनमे नही है। ये मध्यम श्रेणी के कवि है। अतएव इनका काव्य भी मध्यम कोटि का है। वैसे इनकी शैली पर्याप्त समर्थ है।

कुमारव्यास *(क० ले०)* [आविर्भाव-काल—पंद्रहवीं शती]

'कुमारव्यास' कन्नड के महाकवि नारणप्पा का उपनाम है। इनके जीवन व समय के विषय में काफ़ी विवाद है। ये गदुग के वीरनारायण के भक्त थे। इन्होंने अपने जीवन का बहुत-सा भाग गदुग में बिताया था। वहाँ के वीरनारायण के मंदिर में आज भी एक जगह दिखाई जाती है जहाँ बैठकर ये लिखा करते थे।

कुमारव्यास का विख्यात ग्रंथ है 'महाभारत' जो 'गदुगिन भारत' के नाम से अधिक प्रख्यात है। 'ऐरावत' इनकी दूसरी कृति मानी जाती है। किंतु विद्वानों को इसकी प्रामाणिकता पर संदेह है। इनकी प्रतिनिधि रचना 'भारत' ही है। षट्पदी छंद में लिखित इस ग्रंथ में केवल दस पर्व हैं। कथा गदापर्व तक है। इसकी शेष कथा को विजयनगर-नरेश कृष्णदेव राय के दरबारी कवि तिम्मण्ण (1510 ई०) ने पूर्ण किया था। यह ग्रंथ कर्णाटक भारती का हृदयहार है। कन्नड साहित्य के भीतर इसका प्रचार गोपाल से लेकर भूपाल तक में, तुलसीदास के 'रामचरितमानस' (दे०) के समान, है।

कुमारव्यास ने इसे 'कृष्णकथा' कहा है। अपनी विनय प्रकट करते हुए इन्होंने कहा है कि वीरनारायण ही कवि हैं, मैं तो केवल उनका लिपिकार हूँ। इनका दावा है कि इस ग्रंथ में राजाओं के लिए वीररस, द्विजों के लिए वेदों का सार, मंत्री-जनों के लिए बुद्धि-विचार है और विरहियों के लिए शृंगार है। वास्तव में इस समन्वयवादी भक्त कवि ने मूल 'महाभारत' (दे०) की कथा को इस ढंग से प्रस्तुत किया है कि कथा-संघटन, चरित्र-चित्रण आदि की दृष्टि से कहीं-कहीं यह मूल से भी वैशिष्ट्यपूर्ण हो गया है। इसके साथ ही निर्गुण-सगुण के समन्वय द्वारा इसमें जो दर्शन प्रस्तुत किया गया है, वह हिंदी के तुलसी के समान प्रभावकारी है।

कुमारव्यास मूलतः भक्त हैं। अतः भक्ति के प्रसंगों में आत्मविभोर हो परमात्मा का गुणगान करने लग जाते हैं। यद्यपि इनका दावा है कि इस कृति में नौ के नौ रस हैं तथापि वीर तथा भक्ति इसके प्रधान रस हैं; शृंगार का तीसरा स्थान है और चौथा स्थान हास्य का है। इनकी शैली में अद्भुत प्रवाह है। षट्पदी (दे०) (भामिनी) छंद के तो ये सम्राट् हैं। यद्यपि समस्त काव्य एक ही छंद में है तथापि नीरस नहीं हो पाया। इस प्रकार भाषा जलप्रपात की भाँति गतिशील है। देशी तथा संस्कृत शब्दों का सामंजस्य अत्यंत मंजुल है। अलंकारों में रूपक इनका प्रिय अलंकार है। विद्वानों ने इन्हें 'रूपक-साम्राज्य-चक्रवर्ती' के नाम से अभिहित किया है। शब्दों के नूतन निर्माण एवं प्रयोग में भी इनकी पटुता देखने को मिलती है। नये प्रयोगों के साथ कहीं-कहीं शब्दों की तोड़-मरोड़ तो है ही, अरबी-फ़ारसी शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है। कुमारव्यास कर्णाटक के महाकवियों में हैं।

कुमारव्यास-भारत *(क० कृ०)*

कुमारव्यास (दे०) की गणना कन्नड के सर्वश्रेष्ठ कवियों में है। उनका नाम वीरनारायण था और वह गदुग के निवासी थे। व्यास के 'महाभारत' (दे०) के आधार पर कन्नड में महाभारत लिखने की वजह से उन्होंने 'कुमारव्यास' नाम धारण किया और इसी नाम से प्रसिद्ध हो गए। उनका लिखा भारत 'गदुगिन भारत' (गदु का भारत या कुमारव्यास-भारत) कहलाता है। इसका समय लगभग पंद्रहवीं शती बताया जाता है।

कन्नड के तीन भारत प्रसिद्ध हैं—

1. 'विक्रमार्जुन-विजय' अथवा पंप भारत (दे०)
2. गदु का भारत या 'कुमारव्यास-भारत', और
3. लक्ष्मीकृत 'जैमिनी-भारत' (दे०)

'कुमारव्यास-भारत' में केवल दस पर्व हैं। लेखक ने दसवें पर्व (गदापर्व) तक लिखकर अपना ग्रंथ समाप्त कर दिया है। 'कुमारव्यास-भारत' पर व्यास के भारत तथा पंप (दे०) के भारत का पूर्ण प्रभाव है। परंतु इसकी अपनी विशेषताएँ भी हैं। अपने सब पूर्व महाकवियों से लाभ उठाने पर भी कुमारव्यास ने अपनी मौलिकता दिखाई है। व्यास का कृष्ण मानव है, पंप ने जैनी होने के कारण कृष्ण को मानव के रूप में ही देखा है परंतु कुमारव्यास का कृष्ण भगवान है। वह सर्वशक्ति-सम्पन्न है। कृष्ण का गुणगान ही कुमारव्यास का उद्देश्य है। 'कुमारव्यास-भारत' में कृष्ण केवल महाभारत के सूत्रधार ही नहीं हैं अपितु नायक हैं। कुमारव्यास ने लिखा है कि कर्णाटक में भारत की मंजुल मंजरी है और मैं कृष्णकथा स्वच्छ तथा निर्मल ढंग से कहूँगा। कुमारव्यास ने महाभारत के प्रत्येक पर्व के प्रमुख भागों का अनुसरण किया है, परंतु उसमें कहीं संक्षेप और कहीं विस्तार तथा परिवर्तन करके अपना चमत्कार दिखलाया है।

संस्कृत भारत में पांडु की मृत्यु संक्षिप्त है पर कुमारव्यास ने उसका बहुत ही सुंदर ढंग से विस्तार से

वर्णन किया है। इसी प्रकार युद्ध पर्व मे सस्कृत भारत मे दु शासन के अत्याचार से पीडित द्रौपदी कृष्ण का स्मरण करती है। किंतु कुमारव्यास ने उसे बहुत ही स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी बनाते हुए लिखा है कि उस दुष्ट ने जब द्रौपदी का आँचल पकडा तो द्रौपदी ने आँसू बरसाते हुए पहले तो पतियो की ओर देखा, फिर भीष्म आदि सबसे गिडगिडाई और अत मे कृष्ण की शरण मे गई।

'कुमारव्यास भारत' मे कथा रचना की अपेक्षा चरित्र चित्रण मे कवि अधिक सफल हुए है। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त भीम, द्रौपदी, उत्तर कुमार और कर्ण का चरित्र-चित्रण विशेष महत्व का है। इसमे कुमारव्यास की श्रेष्ठता अपने आप व्यक्त होती है। आलोचक उनके कौशल पर मुग्ध हो गए। एक ने लिखा है, 'एक भीम पात्र ही साक्षी है कि कुमारव्यास महाकवि था', दूसरा लिखता है कि द्रौपदी के गुणो को पाठको के सामने ला खडा करने वाला कुमारव्यास महाकवि है, इसमे लेशमात्र भी सदेह नही। तीसरा लिखता है कि 'कुमारव्यास का उत्तर कुमार कन्नड साहित्य मे अपूर्व है।'

कुमारव्यास को आलोचको ने 'रूपक-साम्राज्य-चक्रवर्ती' कहा है। उदाहरण के लिए यह 'राजा दुर्योधन ने मत्रणा-रूपी आभूषण को अपने पिता की मन-रूपी कसौटी पर कसकर कर्ण की स्मृति-रूपी अग्नि पर उसके सोने को तपाकर, शकुनि की नीति मे उसे खीचकर सीधा करके, छोटे भाई की सम्मति से उस फैलाकर, साले की सम्मति से चमकाकर अपनी अपकीर्ति रूपी अगना को पहनाया।'

'कुमारव्यास-भारत' की कहानी समस्त कर्णाटक मे इतनी प्रचलित है कि तुलसी रामायण के समान वह जनता के जीवन का एक अग बन गया है।

कुमारव्यास-युग *(क० पारि०)* [पद्रहवी से उन्नीसवी शती तक]

कन्नड के प्रसिद्ध साहित्यकार डा० र० श्री मुगळि ने अपने कन्नड साहित्य के इतिहास मे युग का प्रतिनिधित्व करने वाले महाकवियो के महत्व को स्वीकार करते हुए कन्नड-साहित्य का काल विभाजन इस प्रकार किया है पप-युग (दे०), बसव-युग (दे०) और कुमारव्यास-युग। पप-युग के पूर्व के साहित्य को उन्होने 'पप पूर्व युग' मे रखा है। आधुनिक काल के नामकरण के विषय मे उन्होंने कोई विचार व्यक्त नही किया। पद्रहवी शती से उन्नीसवी शती तक के काल को 'कुमारव्यास-युग' कहा जाता है। इस युग मे सभी जाति-सप्रदाय के लोगो की रचनाएँ प्रकाश मे आई और साहित्य की विविध विधाओ का विकास हुआ। 'देसि' (दे०) (देश्य) के प्राचुर्य के कारण यह युग 'देसियुग' भी कहलाता है। पट्पदी, सागत्य, त्रिपदी तथा गेय पदो की रचना इस युग मे विशेष रूप से हुई है। इस युग के साहित्य को विजयनगर के राजाओ तथा मैसूर के नरेशो का राजाश्रय प्राप्त हुआ था जिससे वह समृद्ध बना। इस युग के प्रथम महाकवि कुमारव्यास (दे०) देसिनिष्ठा के श्रेष्ठ प्रतिनिधि कवि है। उनका महाभारत कन्नड का एक ग्रथरत्न है। इस युग के अन्य प्रमुख कवि हैं—चेपराज, भास्कर, लक्कन दडेश (दे०), मग्गेय मायिदेव, चामरस (दे०), गुरु बसव, गुब्बि मल्लण्णा, कुमार वाल्मीकि (दे०), श्रीपादराय (दे०), निजगुण शिवयोगी (दे०), सुरग कवि (दे०), तृतीय मगराज (दे०), गुब्बि मल्लणार्य, व्यासराय, नजुड (दे०), चाटु विट्ठलनाथ, पुरदरदास (दे०), कनकदास (दे०), साल्व (दे०), लक्ष्मीश (दे०), रत्नाकर वर्णि (दे०), *वादिराज, विरुपाक्ष पडित, भट्टाकलक, षडक्षरदेव (दे० षडक्षरी),* चिक्कदेवराज (दे०), चिक्कुपाध्याय (दे०), *सिगराय (दे०), होन्नम्मा (दे०), सर्वज्ञ (दे०), जगन्नाथ-*दास (दे०), तृतीय कृष्णराज (दे० मुम्मडिकृष्णराज), *कम्पुनारायण और मुद्दणा (दे०)। यह युग मुख्य रूप से* भक्ति के प्राधान्य को घोषित करता है। पुरदरदास (दे०), कनकदास दे०) आदि भक्तकवियो की रचनाएँ साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इस युग के अतिम कवि मुद्दणा प्राचीनता और आधुनिकता के सधिकाल की प्रवृत्तियो के प्रतिनिधि हैं।

कुमुदेंदुरामायण *(क० कृ०)*

इसके रचयिता कुमुदेंदु नामक एक जैन कवि हैं जिनका समय अनुमानत 1275 ई० ठहराया गया है। यह पट्पदी (दे०) छद मे लिखा ग्रथ है जिसमे पट्पदी के सभी भेद मिलते हैं। यह जैन रामायण है। इसके लेखक नागचद्र से प्रभावित हैं। कथा मे यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन भी है किंतु ग्रथ का महत्व उसके छदो के वैविध्य मे है। प्रत्येक सधि मे एक एक प्रकार की पट्पदी प्रयुक्त है जिसके राग और कही-कही ताल भी बनाए गए हैं। प्रौढिमा एव गेयता का सम्मिश्रण करने का इसका प्रयास स्तुत्य है किंतु 'पपरामायण' (दे०) के मुकाबले यह कृति ठहर नही सकती।

कुमारसंभव *(सं० कृ०)* [समय—पहली शती ई० पू०]

'कुमारसंभव' कालिदास (दे०) का प्रथम महाकाव्य है। इसकी रचना 'रघुवंश' (दे०) से पहले की है।

सत्रह सर्गों के इस महाकाव्य में शिव-पार्वती के विवाह एवं कार्तिकेय के जन्म तथा तारकासुर के वध की कथा वर्णित है। मल्लिनाथ ने इसके केवल आठ सर्गों पर टीका की है, अतः अनुमान किया जाता है कि कालिदास ने इसके आठ ही सर्गों की रचना की है। शेष नौ सर्ग प्रक्षिप्त हैं।

प्रथम आठ सर्गों में कालिदास की कला अपने निखरे हुए रूप में हमारे सामने आती है। इन सर्गों में कवि ने एक समग्र एवं समन्वित कथावस्तु को चित्रित किया है। शिव-पार्वती की प्रणय-गाथा को काव्यभूमि पर लाना सरल काम नहीं था। कालिदास ने इस प्रणय को दैवी रूप न देकर मानवीय रूप दिया है। मूल कथा 'महाभारत' (दे०) से लेकर महाकवि ने उसे काव्यानुकूल बनाने के उद्देश्य से यथावश्यक परिवर्तन कर लिये हैं। आरंभ में हिमालय का सजीव वर्णन, तृतीय सर्ग का वसंत वर्णन, चतुर्थ सर्ग का रतिविलाप तथा पंचम सर्ग का पार्वती-ब्रह्मचारी-संवाद 'कुमारसंभव' के अत्यधिक मार्मिक स्थल हैं। 'कुमारसंभव' पूर्णतः रसवादी कृति है। यौवन की सरस क्रीड़ा का चित्रण ही कवि को यहाँ अभीष्ट है। कालिदास की वर्णना-शक्ति इस महाकाव्य में पूर्णरूप से अभिव्यक्त हुई है। इस महाकाव्य में कवि का कोई गंभीर उद्देश्य नहीं प्रतीत होता; और यदि है भी तो वहाँ काव्य के प्रवाह में दब-सा जाता है।

वास्तव में 'कुमारसंभव' के साथ संस्कृत में एक उत्कृष्ट एवं सुसंबद्ध महाकाव्य का जन्म होता है जो बाद के कवियों के लिए एक प्रेरणा-स्रोत बन गया।

कुमारसंभवमु *(ते० कृ०)* [कृतिकार—नन्नेचोडुडु (दे०)]

यह तेलुगु का प्रथम शैव-काव्य है जो तत्कालीन दक्षिण भारत में प्रचलित वीरशैव-संप्रदाय के प्रतिपादन एवं प्रचार के लिए शिव-संबंधी इतिवृत्त के आधार पर लिखा गया था। यह कालिदास (दे०) के 'कुमारसंभवम्' (दे०) का अनुवाद नहीं है। दोनों कृतियों में कथावस्तु की यत्किंचित् समता होने पर भी यह एक स्वतंत्र कृति है। इसका आधार उद्भट-रचित संस्कृत ग्रंथ है। इसमें मूल कथा के अतिरिक्त दक्षिण भारत में प्रचलित शिव-संबंधी अनेक कथाओं का समावेश है। 'कुमारसंभव' की कथा मुख्यतः स्कंदपुराण, शिवपुराण, वायुपुराण, ब्रह्मपुराण, 'महाभारत' (दे०) तथा 'रामायण' (दे०) में मिलती है। इन कथांशों का भी इस काव्य में उपयोग किया गया है। सती का जन्म, गुडाधीश का जन्म, दक्ष-यज्ञ का विनाश, पार्वती का जन्म, शिव की तपस्या, देवता एवं ब्राह्मणों का क्षोभ, काम-दहन, पार्वती की तपस्या, शिव-पार्वती-विवाह, उनकी रति-क्रीड़ाएँ, गणेश का जन्म, कुमार का जन्म, तारकासुर-वध, आदि अनेक सरस प्रसंगों से युक्त इस प्रौढ़ प्रबंध-काव्य में बारह सर्ग हैं। इसके वस्तु-वर्णन, कथावस्तु की प्रस्तावना, चरित्र-चित्रण, भाषा आदि में कवि की प्रतिभा स्पष्ट लक्षित होती है। भाषा संस्कृतनिष्ठ तथा क्लिष्ट न होकर प्रायः सरल एवं सहज तेलुगु ही है। परवर्ती प्रबंध काव्यों के लिए यह ग्रंथ आदर्श रहा है। इसकी कविता ओज-प्रधान एवं रजोगुण-युक्त है। राजस प्रवृत्ति तथा भक्ति का आवेग यहाँ सहज वाणी में अभिव्यक्त हुआ है। वीर-शैव-संप्रदाय का प्रचलन कन्नड प्रांत में अधिक रहने के कारण इस काव्य में कन्नड के शब्द भी यत्र-तत्र मिलते हैं। तेलुगु के परवर्ती प्रबंध-काव्यों के आरंभ में इष्ट देवता की प्रार्थना, पूर्वकवि-स्तुति, कुकवि-निंदा, ग्रंथ-लेखक का आत्मपरिचय, कृति-समर्पण, आदि की पद्धति का आरंभ इसी के आधार पर किया गया है।

कुमारिल भट्ट *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—800 ई०]

कुमारिल भट्ट के प्रमुख ग्रंथों में 'श्लोकवार्तिक' (दे०), 'तंत्रवार्तिक' तथा 'टुप्टीका' हैं। इन्होंने 'बृहट्टीका' तथा 'मध्यटीका' की रचना भी की थी किंतु ये अनुपलब्ध हैं। कुमारिल का 'श्लोकवार्तिक' बृहद्वार्तिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ में कुमारिल ने विविध दार्शनिक तत्त्वों का विश्लेषण किया है। 'तंत्रवार्तिक' केअंतर्गत 'मीमांसासूत्र' के प्रथम अध्याय द्वितीय पाद से लेकर तृतीय अध्याय के अंत तक के ग्रंथ पर वार्तिक रचना की गई है। टुप्टीका मीमांसासूत्र के चतुर्थ अध्याय से बारहवें अध्याय के अंत तक के ग्रंथ के ऊपर वार्तिक का नाम है। यह ग्रंथ अत्यंत लघुकाय है।

कुमारिल मीमांसक थे। कुमारिल के स्वयं के कथनानुसार उनका उद्देश्य मीमांसाशास्त्र को आस्तिक पथ पर लाना है। 'शंकरदिग्विजय (दे०) के अनुसार यह भी कहा जाता है कि मीमांसक कुमारिल एवं शंकरा-

चार्य (दे०) का शास्त्र वार्तालाप प्रयाग मे त्रिवेणी के तट पर हुआ था। कुमारिल के प्रमुख शिष्यो मे प्रभाकर (दे०) मिश्र थे। कुमारिल ने इनके वैदुष्य से प्रसन्न होकर इन्हे गुरु की उपाधि प्रदान की थी। इसीलिए प्रभाकर का मत 'गुरुमत' के नाम से प्रसिद्ध है।

कुरत्तिप्पाट्टु *(मल० पारि०)*

मलयाळम मे लोकगीतो की एक विधा जो 'कुरत्ति' अथवा हस्तरेखा देखकर भाग्यविवेचन करने वाली जिप्सी कविताओ के रूप मे गाया जाता था। इन लोकगीतो के छद श्रुतिमधुर हैं और आधुनिक कवियो ने इस छद को और अधिक लोकप्रिय बनाया है।

कुरवजि *(त० पारि०)*

'कुरवजि' तमिल नाटको के प्राचीन रूपो मे से है। इसे 'कुरत्तिप्पाट्टु' (दे०) भी कहते हैं। इसमे प्राय धार्मिक कथाओ एव घटनाओ का वर्णन प्राप्त होता है। कुरवजि नाटको मे वर्णित कथा की रूपरेखा इस प्रकार है—नायक (देवता या मनुष्य) द्वारा नगर-भ्रमण, नायिका का उसे देख कामासक्त होना, उसके विरह मे व्याकुल होना, दूती को नायक के पास भेजना, कुरत्ती (बनजारिन) का आना, कुरि अर्थात् लक्षण देखकर नायिका से मिलन का आश्वासन देना, कालातर मे नायक-नायिका मिलन एव विवाह तथा कुरत्ती का अपने पति कुरवन (बनजारे) के साथ नाचते गाते लौट जाना।

कुरवजि सगीत नाटक का एक प्रकार है। इसमे सगीतात्मकता और कल्पना की प्रधानता होती है। इसमे अकवल, वेण्बा, कलिप्पा, कलित्तुरै, विरुत्तम आदि छदो का प्रयोग होता है। इसकी रचना शिदु, कीर्तनै आदि गेय पद-शैली मे होती है। चौदहवी एव पद्रहवी शती मे तमिल मे अनेक कुरवजि नाटक लिखे गए जैसे कुट्राल कुरवजि, अषहर कुरवजि ज्ञान कुरवजि, मीनाक्षी अम्मै कुरम, शरमेदिर भूपाल कुरवजि, आदि। इनमे सर्वप्रसिद्ध है तिरुक्कूडराशप्पर-कृत 'कुट्राल कुरवजि'।

कुर्रिजि *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य मे पाँच भूभागो का वर्णन प्राप्त होता है जिनमे कुर्रिजि भी एक है। अकम् (दे०) और पुरम् (दे०) दोनो वर्गों की रचनाओ मे इन भूभागो का वर्णन हुआ है। कुर्रिजि से तात्पर्य है 'पहाडी प्रदेश'। यहाँ के निवासी 'कुरवर' या 'कानवर' कहलाते है। कुर्रिजि प्रदेश के निवासियो का प्रमुख व्यवसाय है खेती करना, शहद एकत्र करना, आदि। इनके आराध्यदेव शेयोन् (कार्त्तिकेय) हैं। इस प्रदेश की अनुकूल ऋतुएँ शरत् (आश्विन और कार्तिक) और हेमत (अगहन और पौष) हैं और अनुकूल वेला है रात्रि का दूसरा प्रहर। यहाँ के पशु-पक्षी हैं मोर, तोता, बाघ, रीछ, हाथी, आदि। कुर्रिजिवासियो का वाद्ययत्र है कुर्रिजियाष। यहाँ के लोग तोडकप्पर नामक ढोल का प्रयोग करते है। कुर्रिजि नामक पुष्प विशेष के प्रभूत मात्रा मे पाए जाने के कारण ही इस प्रदेश को तथा यहाँ के निवासियो की सभ्यता और सस्कृति को कुर्रिजि नाम दिया गया है। कुर्रिजि प्रदेश से सबधित अकम् काव्यो मे प्रेमी-प्रेमिकाओ की प्रेम-क्रीडाओ का विस्तृत वर्णन मिलता है। प्रेमी-प्रेमिकाओ की भावना को स्पष्ट करने के लिए प्रदेश विशेष की प्राकृतिक अवस्था का वर्णन किया जाता है। इस प्रदेश मे पाई जाने वाली विभिन्न वस्तुएँ नायक-नायिका की प्रेम-भावना को व्यक्त करने मे सहायक होती है। कुर्रिजि पुष्प बारह वर्ष मे एक बार खिलता है, ठीक इसी प्रकार बारह वर्ष की अवस्था हो जाने पर कन्या के ऊपर गृहस्थी का उत्तरदायित्व आ जाता है।

कुर्रिजित्तेन *(त० कृ०)* [रचना-काल—1963 ई०]

राजम कृष्णन (दे०) का यह उपन्यास आरभ मे तमिल की लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'कलैमगळ' मे धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास चार खडो मे विभाजित है। इसमे लेखिका ने नीलगिरि प्रदेश के आदिवासी पडगु लोगो के प्राचीन इतिहास, उनके गाँव, उनके घरो के रूप, उनके विश्वास, रीति रिवाज, खान-पान, व्यवसाय, उनकी जीवन-पद्धति, जीवनोद्देश्य, उनके यहाँ होने वाले सस्कार आदि का विस्तृत वर्णन किया है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र है—जोगी, उसका तयेरा भाई रजन, उसकी पत्नी पारु, करियमल्लर, आदि। बारह वर्ष मे एक बार कुर्रिजि पुष्पो से घिर जाने वाले नीलगिरि-प्रदेशवासियो के जीवन मे परिवर्तन आता है। वे चामै, रागी, किप गु के स्थान पर चाय की खेती कर अपार धनराशि एकत्रित करने के लिए लालायित हो उठते है। पुरातन प्रेमी लिंगैयन और उनके पुत्र का परिवार

पिछड़ जाता है। इसके विपरीत समय के साथ आगे बढ़ने वाले करियमल्लर का परिवार उन्नति करता चलता है। इन दोनों परिवारों की कथा के माध्यम से लेखिका ने पुरानी पीढ़ी के अंतःबाह्य संघर्ष, उनकी समस्याओं तथा प्राचीन परंपराओं से सर्वथा अनभिज्ञ नवीन पीढ़ी के संघर्ष का सजीव चित्रण किया है। कथा-वर्णन, पात्रों के चरित्र-चित्रण, वातावरण के सजीव चित्रण में उपन्यास-लेखिका को अपूर्व सफलता मिली है। नीलगिरि प्रदेश के पडगु लोगों से संबद्ध इस आंचलिक उपन्यास का तमिल उपन्यास-साहित्य में, विशेषतः तमिल के आंचलिक उपन्यासों में, विशिष्ट स्थान है। यह उपन्यास 'कुरिंजि का मधु' शीर्षक से हिंदी मे अनूदित हो चुका है। इस कृति का साहित्यिक महत्व तो है ही, समाजशास्त्रीय महत्व भी अक्षुण्ण है।

कुरुंतोगै *(त० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से ईसा की दूसरी शती तक]

कुरुंतोगै का शाब्दिक अर्थ है 'लघु कविताओं का संग्रह'। इसकी गणना संघकालीन एट्टुतोगै (अष्टपद्य-संग्रह) में होती है। इसमें 203 कवियो के 400 पद संगृहीत है। इन कवियो मे से कुछ चोल, चेर और पांड्य राजवंशों से संबंधित थे। चार से लेकर छह् पंक्तियों तक ये पद अहवल छंद में रचित हैं। इन पदों का संग्रह् पूरिक्को नामक कवि ने किया। कुरुंतोगै अकम् (दे०) वर्ग की रचना है। अकम् काव्यों के समान इसमें भी कुरिंजि (दे०), मुल्लै (दे०), मरुदम (दे०), पालै (दे०) और नेयदल (दे०) नामक पाँचों भूभागो का वर्णन प्राप्त होता है। इस कृति मे कवियो ने व्यक्ति की बाह्य परिस्थितियो और विविध मनःस्थितियों का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। कुछ पदो में प्रकृति का मनोहारी चित्रण हुआ है। इस कृति के अध्ययन से तत्कालीन तमिल-समाज में प्राप्त विभिन्न जातियों, उनके व्यवसायों, उनकी वेशभूषाओं, प्रथाओ एवं विश्वासो आदि का ज्ञान प्राप्त होता है। कुरुंतोगै के विभिन्न पद अत्यंत सरस-सरल शैली में रचित हैं। कहीं-कही संस्कृत शब्दों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। विभिन्न अलंकारो, विशेषकर उपमा अलंकार, का प्रयोग प्रभूत मात्रा मे हुआ है। कुरुंतोगै संघकालीन अष्टपद्य-संग्रहो मे पर्याप्त प्राचीन एवं प्रसिद्ध कृति है। परवर्ती व्याख्याकारो और वैयाकरणो ने अपनी कृतियों में कुरुंतोगै के पदों का प्रयोग अन्य पद्य-संग्रहों के पदों की अपेक्षा अधिक मात्रा में किया है।

कुरुंबा *(त० कृ०)* [रचना-काल—1966 ई०]

'कुरुंबा' महाकवि (दे०) उपनाम से प्रसिद्ध रुद्रमूर्ति की प्रसिद्ध रचना है। इसमें 100 लघु पद हैं। इन पदों के विषय हैं—मिथ्याचार, दहेज-प्रथा, घूसखोरी, मनुष्यों की अधिकार और धन-लोलुपता, वर्तमान साहित्य की निस्सारता और छिछलापन, विश्व की महान शक्तियों का ढोंग-भरा व्यवहार, आदि। संपूर्ण कृति में समाज के विभिन्न पक्षों पर व्यंग्य है। हास्य का समावेश होते हुए भी कवि की ये व्यंग्योक्तियाँ प्रभावशाली बन पड़ी हैं। 'कुरुंबा' पाश्चात्य तुक्तक (लिमरिक) की शैली में रचित है। 'कुरुंबा' तमिल में तुक्तक शैली में रचित प्रथम काव्यकृति है।

कुरुक्षेत्र *(गु० कृ०)*

कवि न्हानालाल दलपतराम (दे०) द्वारा रचित 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य का एक प्रयोग है। इसकी रचना एक दिन में या एक साथ किसी कालावधि में नहीं हुई बल्कि इसकी रचना में 1926 से 1940 ई० तक का यानी लगभग पंद्रह वर्ष का समय लग गया था। दूसरी बात यह है कि इसकी रचना व्यवस्थित रूप से क्रमशः नहीं हुई। रचना-काल को देखने से पता चलता है कि संपूर्ण महाकाव्य दो कालखंडों में लिखा गया है : 1926-30 ई० और 1939-40 ई०। इसके कांड भी जब-तब लिख दिए गए हैं। कुल ग्रंथ बारह कांडों के अतिरिक्त 'अर्पण अने प्रस्तावना' तथा 'समंत-पंचक अने महाप्रस्थान' में विभक्त है। कांडों का वर्गीकरण इस प्रकार हुआ है—पहला कांड : युग पलटो; दूसरा कांड : हस्तिनापुरना निर्घोष; तीसरा कांड : निर्धार; चौथा कांड : योधपर्वणी; पाँचवाँ कांड : प्रतिज्ञाद्वंद्व; छठा कांड : आयुष्यदान; सातवाँ कांड : चक्रव्यूह; आठवाँ कांड : मायावी संध्या; नौवाँ कांड: सहोदरना बाण; दसवाँ कांड : रौद्री अथवा कालनो डंको; ग्यारहवाँ कांड : शरशैया; बारहवाँ कांड : महासुदर्शन। लगभग ग्यारह हज़ार चरणा-वलियों वाले इस महाकाव्य में कवि न्हानालाल ने महाभारत की कथा को निबद्ध करने का प्रयास किया है। अपनी प्रस्तावना के चौबीसवें खंड मे कवि ने स्पष्ट किया है कि जब तक पशुता के अंश-अवशेष मानव-मन में बसे हुए हैं तब तक यह पशु-क्रीड़ा होती ही रहेगी और जब मन से पशुता विदा ले लेगी तभी कुरुक्षेत्र का अंत हो जाएगा। इसमें समस्त 'कुरुक्षेत्र' के वस्तु-तत्व को एक प्रकार की प्रतीकात्मकता सहज ही उपलब्ध हो जाती है।

इसी प्रकार के कुछ अन्य सकेत 'छेल्लो बोल' मे निहित हे जहाँ कवि कहता है कि 'मनुष्य जीवन-सग्राम मे महावीर बनना' 'अथवा कुरुक्षेत्र अर्थात् कालरमणा'। कवि स्वय यह स्वीकार करता है कि कुरुक्षेत्र के लिखे जाने के पूर्व मुक्त छद गुजराती मे स्थापित हो चुका था पर महाकाव्य मे उसके प्रयोग को लेकर कवि की यह गर्वोक्ति द्रष्टव्य है 'एकवीस वर्पना एक गुजराती जूवानडाए 2200 वर्षना श्री पिगलाचार्यना चक्रवर्तित्वनीस्ना मे बलवा कीधो।' मुक्त छद मे सर्वप्रथम महाकाव्य लिखने का श्रेय न्हानालाल को दिया जा सकता है। यह ग्रथ कवि द्वारा अपने पिता श्री दलपतराम को समर्पित है। प्रेमभक्ति ग्रथमाला के अतर्गत इसका प्रकाशन किसी एक स्थान से न होकर अलग-अलग सस्थाओ द्वारा हुआ है। गुजराती मे यो भी थोडे से ही महाकाव्य है। इन महा काव्यो मे कुरुक्षेत्र का स्थान सदा के लिए सुरक्षित है।

कुरुक्षेत्र (*हिं० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1946 ई०]

रामधारी सिह दिनकर (दे०) ने इस प्रवध-काव्य का सृजन युद्ध की अनिवार्यता के 'पागल कर देने वाले प्रश्न' को उपस्थित करने के लिए किया है। इस प्रश्न के दो पक्ष अत्यत प्राचीनकाल से हमारे सामने रहे है—निवृत्ति-मूलक और प्रवृत्तिमूलक। पहले के अनुसार युद्ध सभी अवस्थाओ मे त्याज्य है। दूसरे के अनुसार न्याय-स्थापना के लिए धर्मयुद्ध मनुष्य का कर्त्तव्य है। आधुनिक काल मे पूर्वपक्ष का प्रतिनिधित्व हमारे युग के महामानव गाधी ने किया था। उत्तरपक्ष का कुछ मेल समाजवादी विचारधारा से बैठ जाता है। इन विरोधी आस्थाओ का अतर्द्वद्व ही 'कुरुक्षेत्र' मे युधिष्ठिर और भीष्म के माध्यम से व्यक्त हुआ है। 'शकाकुल हृदय' के इस अतर्द्वद्व न समस्त कृति को असाधारण आवेगात्मक अन्विति प्रदान कर दी हे। कलात्मक दृष्टि से इस रचना की प्रौढता और समृद्धि असदिग्ध है। अप्रस्तुत विधान चित्रात्मक और व्यजक है। शब्दयोजना मे वक्रता का सार्थक और सर्जनात्मक प्रयोग है। आवेगानुकूल प्रवाह तो दिनकर के समस्त कृतित्व का प्राण है, पर इस कृति मे यह प्राण-धारा अपेक्षाकृत सर्वाधिक वेगवती दिखाई देती है। हिदी के आधुनिक युद्ध-काव्यो मे 'कुरुक्षेत्र' का स्थान अद्वितीय है।

कुरुप्प्, जी० शकर (*मल० ले०*) [*समय—1902 ई०*]

कालरी नामक गाँव मे प्रकृति के सरस गायक महाकवि शकर कुरुप्प् का जन्म हुआ। छात्रावस्था से ही उनकी कविमेधा प्रस्फुटित हो आई। महाकवि वळ्ळत्तोळ् (दे०) की काव्य-चेतना का प्रभाव और प्रकृति-प्रेम के सस्कार उनमे आरभ से ही परिलक्षित होते हैं। 'प्रेमगीत' लिखने मे कवि की प्रतिभा विलक्षण है। 'स्वातन्त्र्य गीत' देशभक्ति से ओतप्रोत कविताओ का समाहार है। उनकी 1920 ई० तक की चुनी हुई कविताओ का सग्रह 'ओटक्कुपल्' (दे०) (वशी) नाम से प्रकाशित किया गया जिस पर उन्हे ज्ञानपीठ-पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'पाथेय' एक और कविता-सकलन है। रहस्यवादी और प्रतीकवादी कवि के रूप मे वे खूब प्रसिद्ध हुए है। 'एन्टे वेळि' नामक कविता उनकी सर्वोत्कृष्ट रचना मानी जाती है। विप्लवात्मक कविताओ म 'तूप्पुकारी' (झाड़ू लगाने वाली) का अद्वितीय स्थान है। चिंतन की सामग्री देने मे 'पेरुन्तच्चन्' (दे०) अद्वितीय है। राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति आपका प्रेम सर्वविदित हे। कुरुप्प् की वक्तृत्व-शक्ति भी अद्भुत रही है। वे राज्यसभा के नामित सदस्य रहे है। उन्हें नवयुग का प्रतिनिधि कवि कहना सर्वथा समीचीन होगा।

कुरुप्प्, मुषि राम (*मल० ले०*) [जन्म—1848 ई०, मृत्यु—1898 ई०]

यह मलयाळम के प्रसिद्ध हास्य-नाटककार एव सफल अध्यापक थे। उनका हास्य-नाटक 'चक्कीचकरम्' 1893 ई० मे प्रकाशित हुआ था और उस समय तक मलयाळम का साहित्य अनेक निम्न कोटि के नाटको के आविर्भाव से दूषित हो चुका था। कुछ सफल नाटककारो की देखादेखी अनेक नाटककारो ने सस्ते नाटको की रचना करके उनका रगमच मे अभिनय कराना शुरू किया था। 'चक्कीचकरम्' इन नाटककारो के लिए एक प्रहार था। इसमे दो हास्य-पात्रो, चक्की और चकरन्, की प्रणय-कथा है। उनके विवाह के अवसर पर आई हुई नाटक-कपनियो को शिवजी का भूत कुभाड डडे से मार भगाता है। इस नाटक ने साहित्यकारो को नाटक के मूल्या पर विचार करने की प्रेरणा दी और बाद मे निम्न कोटि के नाटको का प्रकाशन ही बद हो गया।

साहित्य के शोधन-सस्कार के उद्देश्य से रचित प्रथम कृति के लेखक के रूप मे मलयाळम साहित्य मे राम कुरुप्प् का स्थान महत्वपूर्ण है।

कुर्रतुल-एन-हैदर *(उर्दू० ले०)*

कुर्रतुल-एन-हैदर एक अच्छी उपन्यास एवं कहानी-लेखिका हैं। इन्होंने अपने कहानी-लेखन का श्रीगणेश बुर्जुआ वातावरण की रोमानियत और उस रोमानियत के अंक में पलने वाली बेज़ारी के चित्रण से किया है। पाकिस्तान बनने के पश्चात् भी इनकी कला का अंदाज़ वही रहा है जो विभाजन से पूर्व था। इनकी कहानियों में कहीं-कहीं परिवेश के काव्यात्मक चित्र हैं और इन कहानियों में लुकमान की-सी सरलता, एंडरसन की कहानियों-जैसी जादूगरी फ़िज़ा और अमीर खुसरो (दे०) के दोसुखनों जैसी ताज़गी और इन सब चीज़ों से मिल-जुल कर पैदा होने वाली एक अनोखी शान है।

इनका 'आग का दरिया' (दे०) उपन्यास एक सुंदर-सशक्त साहित्यिक कृति है।

कुर्रालक्कुरवंचि *(त० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

यह तमिल प्रदेश के 'तिरुनेल्वेलि' ज़िले के 'कुर्रालम्' नामक पर्वतीय ग्राम में अवस्थित शिव-मंदिर के भगवान की स्तुति के रूप में तमिल भाषा की प्राचीन 'अकम्' (दे०)-पद्धति पर रचा हुआ काव्य है। इस रचना में शिव भगवान नायक हैं और उनकी शोभा-यात्रा के दर्शन के पश्चात् उनसे गुप्त प्रेम करने वाली नायिका के रहस्य-पूर्ण रोग के निदान के लिए एक ज्योतिषी पर्वतीय नारी (कुरत्ति) बुलाई जाती है जो अपने प्रदेश का परिचय देते हुए नायिका के संबंध में भविष्यवाणी करती है। ज्योतिषी नारी की उक्तियों के माध्यम से मनोहारी प्रकृति-वर्णन, व्यंग्य-मिश्रित स्तुति आदि अभिव्यक्त हैं। इसकी विशेषता नाटक-तत्त्वयुक्त वार्तालाप की योजना तथा कई पुराने साहित्यिक छंदों के साथ नये गेय 'कीर्त्तनै' छंदों के सम्मिश्रण में है। लोक-भाषा का भी प्रयोग दर्शनीय है। यह कुल सोलह भागों में विभक्त है।

कुळकर्णी, विनायक महादेव *(म० ले०)*

ये सौंदर्यवादी रोमानी कवि हैं। 'विसर्जन' इनका एक दीर्घ विरहगीत है, और 'पहाटवारा' तथा 'कमळवेल' दो काव्य-संग्रह है। इनके काव्य का मूल स्वर प्रेममय है, परंतु 'श्रमदेवता', 'एक महात्मा होउनि गेला', 'अणुस्फोटक' आदि कुछ कविताएँ अपवाद-रूप भी हैं जिनमें युगीन चेतना का प्रतिबिंब है। इनकी भावनाभिव्यक्ति मनोहर है; लालित्यपूर्ण भाषा एवं कल्पना-विलास इनके काव्य की विशेषताएँ हैं।

ग्रामोद्धार की समस्या को लेकर कुळकर्णी ने 'आहुति' नामक उपन्यास भी लिखा है और 'न्याहरी' इनका एक कथा-संग्रह है। अपने 'साहित्य-दर्शन' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ में कुलकर्णी ने पद्य-रूप का विवेचन किया है।

कुलपति *(हिं० ले०)*

कुलपति आगरा-निवासी थे और बाद में जयपुर के महाराजा राजसिंह के दरबार में चले गए थे। इनके बनाए पाँच ग्रंथ उपलब्ध हैं—'द्रोणपर्व', 'युक्तितरंगिणी' 'संग्रामसार', 'नखशिख' और 'रसरहस्य'। इनमें से अंतिम दो ग्रंथ काव्यशास्त्रीय हैं। इनकी ख्याति का आधार 'रस-रहस्य' है जिसमें मम्मट के 'काव्यप्रकाश' (दे०) की पद्धति पर काव्य के विविध अंगों का निरूपण आठ अध्यायों में किया गया है। कहीं-कहीं गद्य का भी आश्रय लिया गया है। शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से यह ग्रंथ सामान्य कोटि का है, अनेक गंभीर प्रसंगों को या तो स्थान नहीं मिला, मिला भी है तो अतिसंक्षेप में, और कहीं-कहीं अपूर्ण, भ्रांत तथा अशुद्ध रूप में भी। ग्रंथकार का उद्देश्य मम्मट (दे०) एवं विश्वनाथ (दे०) की शास्त्रीय सामग्री को सरल एवं सुबोध अनुवाद के रूप में ढाल देना है, और इसमें वे प्रायः सफल सिद्ध हुए हैं। कवित्व की दृष्टि से भी कुलपति को साधारण कोटि का कवि मानना चाहिए। कल्पना-वैभव और चित्रयोजना जैसी कि मतिराम (दे०) आदि रीति-ग्रंथकारों में पाई जाती है, इनके ग्रंथ में उसका प्रायः अभाव है। समग्रतः कुलपति आचार्य अधिक हैं, और कवि कम।

कुलशेखर आळवार *(त० ले०)* [समय—ईसा की आठवीं शती तथा सांप्रदायिक ग्रंथों के अनुसार—कलियुग 3075 ई० पू०]

कुलशेखर आळवार का जन्म चेर-सम्राट दृढ़व्रत के घर हुआ। पेरुमाळ कहे जाने वाले राम के प्रति अपार प्रेम होने के कारण इन्हें कुलशेखर पेरुमाळ कहा गया। इन्हें विष्णु के वक्ष पर स्थित कौस्तुभ मणि का अवतार

माना जाता है। इन्होंने तमिल तथा संस्कृत का अध्ययन कर इन भाषाओं मे क्रमश पेरुमाळ तिरुमोळि और मुकुद-माला की रचना की। पेरुमाळ तिरुमोळि के विभिन्न पदो मे विष्णु के अर्चावतार और विभवावतार का, रामावतार एव कृष्णावतार-लीलाओ का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। इस रचना के एक दशक मे यशोदा के समान कृष्ण की बाल लीलाओ का रसास्वादन न कर सकने के कारण दुखी माता देवकी का करुण विलाप वर्णित है। यह वर्णन कुल-शेखर की मौलिक सूझ है। कुलशेखर आळवार कुशल कलाकार हैं। इनकी रचनाओ मे अनेक सुदर शब्दचित्र प्राप्त होते हैं।

कुली कुतुबशाह *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1550 ई०, मृत्यु—1611 ई०]

कुतुबशाही वश मे मुहम्मद कुली कुतुबशाह का शासन-काल सन् 988 हि० से सन् 1020 हि० माना जाता है। इनकी गणना प्राचीन काल के उर्दू कवियो मे की जाती है। इनके दीवान (काव्य-सग्रह) मे गज़लें, मर्सिये, मसनवियाँ, तरजीअबद और क़सीदे आदि अनेक काव्य-विधाएँ इनकी काव्य-प्रतिभा की द्योतक हैं। इनकी भाषा-शैली अत्यत सरल और प्रसाद गुण सपन्न है। प्रातीय प्रभाव इनके काव्य मे सर्वत्र परिलक्षित होते है। भारतीय रीति रिवाज, परपरा और मर्यादा का ध्यान इनके काव्य मे विशेष रूप से रखा गया है—यहाँ तक की भारतीय पक्षियो, मेवो और सब्ज़ियो तक का उल्लेख भी अनेक स्थानो पर हुआ है। इनकी गज़लो मे अभिव्यक्त प्रेम-भावना सूक्ष्मानुभूति से ओतप्रोत है। हिंदी-काव्य का प्रभाव भी इन्होंने अपने काव्यो मे प्रचुर मात्रा मे ग्रहण किया है।

कुलीन-कुल-सर्वस्व *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1851 ई०]

रामनारायण तर्करत्न (दे०) का यह पहला ख्याति-प्राप्त नाटक है। इसमे तर्करत्न ने अपने युग की ज्वलत समस्या को उठाया है। भद्र समाज का एक व्यक्ति अपनी चार विवाह-योग्य कन्याओ के लिए उपयुक्त वर ढूँढने मे असमर्थ है। कुलीनता के मोह मे पडकर वह, विवश-सा, अपनी लडकियो का विवाह एक वृद्ध से कर देता है। कथा पाँच भागो मे विभक्त है। पाँच भागो मे अतर्व्याप्त कथा मे एकसूत्रता का अभाव है। वास्तव मे इस नाटक का कोई कथानक नही, केवल प्रसगो का विषम मिश्रण है। लेखक कौतुक बनाए रखने मे अवश्य सफल हुआ है। पात्र साकेतिक तथा प्रतीकात्मक हैं जैसे—अनृता-चार्य, अधर्मरुचि, विवाहवणिक, आदि। प्रत्येक भाग मे एक विचित्र पात्र की कल्पना की गई है। सभवत इसीलिए सवादो मे अपेक्षित औचित्य का अभाव मिलता है। बीच-बीच मे नाटककार सस्कृत-श्लोको के गद्यानुवाद प्रस्तुत करता है। नाट्य-शिल्प की दृष्टि से सस्कृत नाट्यशास्त्र का पालन भी किया गया है। नादी-प्रस्तावना है, भाषा पात्रानुसार है अर्थात् मुख्य पात्र सस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग करते है और स्त्री-पात्र साधारण भाषा का।

यह नाटक तर्करत्न ने कालीचद्र रायचौधुरी के 'दूसरे विज्ञापन' के उत्तर मे लिखा था। यह नाटक यद्यपि रगमच के लिए नही लिखा गया था फिर भी अभिनय की दृष्टि से सफल और प्रभावशाली है। समस्या-प्रस्तुति मे नाटककार की दृष्टि यथार्थोन्मुख रही है। इसीलिए इसका पहला सफल सामाजिक नाटक माना जाता है।

कुलोत्तुगन् पिळ्ळैत्तमिष *(त० ले०)* [रचना-काल—ईसा की बारहवी शती]

इस कृति के रचयिता ओट्टकूत्तर् (दे०) हैं। इसमे उन्होने कुलोत्तुगचोष द्वितीय की वीरता, युद्धकौशल आदि गुणो का वर्णन किया है। इस कृति मे 103 पद हैं और यह 10 भागो मे विभाजित है। ओट्टकूत्तर् ने इस कृति मे कुलोत्तुग चोल द्वितीय और उनके पूर्वजो के वीरतापूर्ण कर्मों का और अपने नायक के समकालीन लका, जावा, सुमात्रा और उत्तर भारत के राजाओ का उल्लेख किया है। यह कृति *पिळ्ळैत्तमिष* शैली मे रचित है। इस शैली मे रचित अन्य काव्यकृतियो के समान इस कृति के दस भागो मे वय क्रम से नायक की विभिन्न चेष्टाओ का वर्णन किया गया है। इस कृति के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि ओट्टकूत्तर् गौडी रीति मे काव्य-रचना करने मे पटु थे। इसमे अनेक नाद-व्यजक शब्दो का प्रयोग हुआ है। शिलालेखो और अन्य स्रोतो से प्राप्त सामग्री से इसमे वर्णित ऐतिहासिक घटनाओ की प्रामाणिकता सिद्ध हो जाती है। इसमे चोल साम्राज्य के उत्तरकाल से सब-धित पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होती है। कुलो-त्तुगन पिळ्ळैत्तमिष की शैली मे रचित प्रथम काव्य-कृति है।

कुल्लियात-ए-अकबर *(उर्दू० कृ०)*

'कुल्लियात-ए-अकबर' सैयद अकबर हुसैन 'अकबर' इलाहाबादी (दे०) का संपूर्ण काव्य-संग्रह है। यह कुल्लियात तीन खंडों में है। इस संग्रह में अकबर की ग़ज़लें, नज़्में, क़ते, और रुबाइयाँ इत्यादि सम्मिलित हैं। अकबर उर्दू-काव्य में हास्य-व्यंग्य के अद्वितीय रचयिता हुए हैं। इनकी अपनी शैली थी जिसका अनुकरण भी कोई अन्य कवि नहीं कर सका।

अकबर के काव्य में सुधारात्मकता का पक्ष प्रबल है। वे अपनी व्यंग्योक्तियों द्वारा समाज की कुरीतियों की सफल 'शल्यचिकित्सा' करते हैं। नई सभ्यता अर्थात् पाश्चात्य सभ्यता एवं फ़ैशन की बढ़ती हुई प्रवृत्ति पर वे प्रबल प्रहार करते हैं। बुद्धू, जुम्मन, कल्लू, शेख, ऊँट, रेलगाड़ी आदि सरल एवं हलके-फुलके शब्दों द्वारा वे प्रतीकात्मक शैली में गंभीर व्यंग्य कर जाते हैं। अकबर के काव्य की भाषा सरल एवं सहज है। अंग्रेजी के अनेक शब्द कवि ने बड़ी निपुणता से जगह-जगह जड़ दिए हैं जो नगीनों की-सी शोभा रखते हैं।

सुधारात्मक रचनाओं के अतिरिक्त अकबर की कुल्लियात में 'जल्वए-दरबारे-देहली', 'पानी का बहाव', 'बर्क़े-कलीसा' आदि कई शुद्ध साहित्यिक महत्व की कविताएँ भी सम्मिलित हैं।

कुल्लियात-ए-जुर्रत (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1805 ई०]

क़लंदर बख्श 'जुर्रत' की कविताओं के इस संकलन में गज़ल, रूबाई, मुखम्मस, वासोख़्त और हिज्व आदि से सबद्ध रचनाएँ तो हैं किंतु क़सीदा का सर्वथा अभाव है। काव्य-कौशल की दृष्टि से जुर्रत का काव्य अनेक विशेषताओं का परिचायक है। इसमें मुहावरों का सशक्त प्रयोग और मनोरंजन का पुट देखते ही बनता है परतु कहीं-कहीं उच्छृंखलता और अश्लीलता बहुत खटकती है। भाषा की शुद्धता और सरलता पर उन्होंने विशेष परिश्रम किया है। कला की दृष्टि से इनका काव्य यथेष्ट प्रौढ़ है। इसी प्रौढता के कारण इनकी गणना काव्य-गुरुओं में भी की जाती है परतु भाव-पक्ष दुर्बल है। काव्य में न तो गंभीरता है और न अनुभूति की प्रखरता ही है। शृंगारिक वर्णनों से भरपूर यह सकलन सामान्य कोटि का है। इसमें सर्वत्र इतिवृत्तात्मकता का ही प्राधान्य है। इसमें ऐसी सभी अभिरुचियों का परिचय मिल जाता है जो किसी पतनोन्मुख समाज में स्वाभाविक और अवश्यंभावी होती हैं।

कुल्लियात-ए-'नज़ीर' अकबराबादी *(उर्दू० कृ०)*

अठारहवीं शती के इस लेखक का पूरा नाम शेख वली मुहम्मद नज़ीर 'अकबराबादी' था। उच्च कोटि के कवि एवं कलाकार होने के कारण इन्हें 'तूती-ए-हिंद' के नाम से भी स्मरण किया जाता है। 'नज़ीर' की इस कृति में उनका समस्त काव्य संगृहीत है। रचयिता के अप्रकाशित काव्य को भी बड़े परिश्रम से इसमें संकलित किया गया है। मौलाना अब्दुलबारी साहब 'आसी' और मौलवी अशरफ़ अली लखनवी ने यथावसर पाद-टिप्पणियों एवं अन्य आवश्यक सकेतों से इस कृति की उपादेयता में अभिवृद्धि की है। बड़े आकार के 959 पृष्ठों की यह विशालकाय 'कुल्लियात' (काव्य-संकलन) अपनी कवित्व-शक्ति के बल पर यथेष्ट लोकप्रिय हुई है और इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। इस कुल्लियात में 'नज़ीर' का फ़ारसी काव्य भी संगृहीत है। इसमें संकलित उर्दू काव्य भी मनोहारी और हृदयस्पर्शी है। कवि का प्रकृति-चित्रण बड़ा समृद्ध और सजीव है। साधारण-से-साधारण विषय को भी अपनी कला की तूलिका से उसने इस प्रकार चित्रित किया है कि वह असाधारण बन गया है। हिंदी-शब्दों का विन्यास इस काव्य में देखते ही बनता।

कुवलयानंद *(सं० कृ०)* [समय—सोलहवीं-सत्रहवीं शती]

'कुवलयानंद' प्रसिद्ध दार्शनिक, विद्वान् एवं आलंकारिक अप्पय दीक्षित की संभवतः अंतिम रचना है। अप्पय दीक्षित का समय सोलहवीं शती का अंत एवं सत्रहवीं का आरंभ है।

'कुवलयानंद' जयदेव की आलंकारिक कृति 'चंद्रालोक (दे०) के मूल पर आश्रित अर्थालंकारों का लक्षण उदाहरणपूर्वक सम्यक् विवेचन करती है। मूल कारिकाएँ प्रायः 'चंद्रालोक' की ही हैं; कुछ नई भी हैं जिनमें अलंकारों का लक्षण किया गया है। अनंतर वृत्ति में उसका विवेचन सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं गहन हुआ है। इस ग्रंथ में कुल 123 अलंकारों का निरूपण हुआ है जिनमें से 100 तो वे अलंकार हैं जिनका लक्षण चंद्रालोककार

ने ही किया था। अप्पय दीक्षित ने उनमे यथास्थान कुछ परिवर्तन करके उनकी व्याख्या लिखी है तथा काव्यो से उदाहरण देकर उसे निरूपित भी किया है। शेष 23 अलकारो के लक्षणो एव उदाहरणो का निरुपण इन्होने स्वय किया है। इनमे अनेक तो इनकी ही नवीन कल्पना है।

'कुवलयानद' सस्कृत-अलकारशास्त्र की उन तीन कृतियो मे से एक है जो अलकारो के विवेचन के लिए सर्वाधिक प्रामाणिक मानी गई है। सबसे बाद की होने से इसमे अपने पूर्ववर्ती आचार्यो की मान्यताओ का सम्यक् रूप से विवेचन उपलब्ध होता है।

श्री अप्पय दीक्षित की मान्यता है कि लक्षण घट जाने मात्र से कोई रचना अलकार की कोटि मे नही आ जाती, अपितु उसे काव्य पहले होना चाहिए अलकार विशेष बाद मे। अप्पय दीक्षित ध्वनि विरोधी आचार्य तो नही हैं परतु रसवत् आदि के स्वतत्र रूप से अलकार होने का इन्होंने विधान किया है। अलकारो के ज्ञान के लिए 'कुवलयानद' का पठन-पाठन पर्याप्त प्रचलित है। यह एक लोकप्रिय रचना है।

कुवेंपु *(क० ले०)*

दे० पुटप्पा, के० वी०।

कुशल कोवर *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1948 ई०, लेखक—सुरेंद्रनाथ शइकीया]

सन् 1942 ई० के आदोलन मे शहीद कुशल कोवर पर यह नाटक लिखा गया है। इसमे 1942 की दो समानातर स्थितियो का चित्रण है (1) स्वतत्रता-आदोलन की घटना, और (2) महायुद्ध के फलस्वरूप दुर्नीति और व्यभिचार की स्थिति। अत आरभ मे नायक उपेक्षत हो गया है। नाटक के शेष भाग मे नायक मे गाधीवादी निर्भीकता एव ईश्वर-विश्वास दिखाया गया है। सेना के भ्रष्ट ठेकेदारो और कर्मचारियो की जो चरित्रहीनता चित्रित की गई है, उसका नायक के जीवन से कोई सबध नही है। नायक को फाँसी दी गई है। इसमे ट्रेजडी का घनीभूत रस नही है, किंतु कारुण्य यथेष्ट है।

कुशळ लाभ *(गु० ले०)* [समय—1560 ई० के आसपास]

कुशळ लाभ जैन कवि थे। बहुत काल तक ये राजस्थान मे, विशेपत जैसलमेर मे, रहे। 'माधवानल कामकदला चउपइ' एव 'ढोला मारूरी चउपइ' नामक दो प्रसिद्ध रचनाएँ इनके नाम से प्राप्त है। इनकी अन्य रचनाएँ इस प्रकार कही जाती हैं—तेजसार रास, अगउदत्त चउपइ, स्तभन पार्श्वनाथ स्तवन, गौडी छद, नवकार छद, भवानी छद, पूज्य वाहण गीत, जिन-पालित जिन-रक्षित सधि गाथा पिंगल शिरोमणि, देवीसातसी, शत्रुजय सघ विवरण।

'ढोला मारूरी चउपइ' एक उत्तम प्रणय विरह-काव्य है। 'माधवानल कामकदला चउपइ' भी विप्रलभ श्रृगार की एक उत्तम रचना है। दोनो रचनाओ मे विप्रलभ श्रृगार का सुदर निरूपण हुआ है। इन दोनो रचनाओ मे प्राचीन राजस्थानी का स्वरूप द्रष्टव्य है।

विप्रलभ-श्रृगार व प्राचीन राजस्थानी की भाषा भूमिका के विचार से कुशळ लाभ व उनकी रचनाओ का प्राचीन गुजराती-भाषा-साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान है।

कुसुमाग्रज, वि० वा० शिरवाडकर *(म० ले०)* [जन्म 1912 ई०]

ये नासिक के निवासी हैं और मराठी साहित्य क्षेत्र मे कवि तथा नाटककार के रूप मे विख्यात हैं।

काव्य-सग्रह—'जीवनलहरी,' 'विशाखा,' 'किनारा' 'मराठी माती'। 'जीवन-लहरी' इनका प्रथम काव्य-सग्रह है। इसमे रम्याद्भुत तत्त्व का प्राधान्य है। अन्य सग्रहो म कवि की व्यापक जीवन-दृष्टि पूर्णत प्रतिफलित हुई है।

कुसुमाग्रज प्रगतिशील कवि है। इन्होन दलितो के लिए अपार सहानुभूति व्यक्त की है और 'बळी' 'लिलाव' आदि कविताओ मे अन्याय का उग्रता स विरोध किया है। सामाजिक-आर्थिक विषमता के निराकरण और अन्याय के प्रतिकार के लिए कवि क्राति करने का पक्षपाती है। उसने शोषण-रहित शुद्ध मानवतावादी धरातल पर आधृत राजनीतिक, आर्थिक और सास्कृतिक व्यवस्था की स्थापना का समर्थन किया है।

कुसुमाग्रज क्रातिकारी कवि है। इनकी कविताएँ उद्बोधक, विद्रोही एव राष्ट्रीय अभिमान को उत्तेजित करने वाली है। इनमे अपार स्वाभिमान की भावना है। सन् 1939 मे डमडम कारागार मे आमरण अनशन करने वाले क्रातिकारियो के अदम्य उत्साह एव भव्य भाव को लक्ष्य कर लिखी गई 'गर्जा जयजयकार क्रांतिचा गर्जा जयजयकार' कविता भारतीय स्वातत्र्य-सग्राम के वीरो की जिह्वा पर थी।

नाटक : 'दुसरा पेशवा' तथा 'कौंतय' मौलिक

नाटक हैं। 'दूरचे दिवे' 'वैजयंती' तथा 'राजमुकुट' रूपांतरित हैं।

उपन्यास : 'वैष्णव' तथा 'जाह्नवी'।

कुसुमावलि *(क० कृ०)*

इसके रचयिता देव कवि माने जाते हैं जिनका समय 1225 ई० ठहराया गया है। यह चिक्कराज चमूप के आश्रित एक ब्राह्मण कवि थे। 'कुसुमावलि' एक प्रेमाख्यान-काव्य है जो चंपूशैली में रचा गया है। इसकी कथा यों है—मदनावती नामक नगरी का राजा मणिकुंडल एक दिन चित्रकूट की तराई में कपिल ऋषि के यहाँ एक सुंदरी को देखता है। उसकी खोज में राजा और मंत्री चल पड़ते हैं। कपिलाश्रम में पहुँचने पर उन्हें वहाँ एक स्त्री की प्रतिमा दीख पड़ती है। ऋषि से उसके बारे में पूछने पर वे यों कहते है—विमल पुरी के राजा विश्वंभर ने पुत्रकामेष्टि यज्ञ के द्वारा कंदर्प नामक पुत्र प्राप्त किया था। जब वह बड़ा हुआ तो उसने कहीं टँगे हुए कुसुमावलि के चित्र को देखा, उस पर मोहित हुआ और कुसुमावलि की खोज में मंत्रीपुत्र के साथ चल पड़ा। रास्ते में कौशिक ऋषि से उसने दिव्यास्त्र प्राप्त किए। पद्मपुर आकर वहाँ के राजा वज्रजंघ के वैरी सिंहवर्मा को मारा और उससे कुसुमावलि का पता जान लिया। चक्रवाकपुर के राजा चंद्रोदय की पुत्री कुसुमावलि भी कंदर्प देव पर मोहित हो चुकी थी। सखी के माध्यम से काली के मंदिर में दोनों का मिलन हुआ। कंदर्प अपने साथी को वहीं छोड़ कर कुसुमावलि के साथ घोड़े पर चढ़े अपने घर लौट रहा था कि रास्ते में एक सिंह से सामना हो गया। वह उससे जूझने लगा। घोड़ा डर गया। वह कुसुमावलि को लेकर भागा और कुसुमावलि धीवरों के हाथों में पड़ गई। वहाँ से भाग कर वह कपिल ऋषि की शरण में आई। उन्होंने उसे बचाने के लिए एक शिलामूर्ति के रूप में परिणत कर दिया। इधर कंदर्प सिंह को मार कर लौटा तो कुसुमावलि गायब थी। उसकी खोज में भटकते हुए वह भी कपिलाश्रम में आया। कुसुमावलि और कंदर्प का समागम हुआ। दोनों के माँ-बाप वहाँ आए। कहानी बहुत ही रोचक है। इस पर नेमिचंद्र की 'लीलावती' (दे०) का विपुल प्रभाव है। शृंगार इसका प्रभावी रस है। यह मध्यम श्रेणी का काव्य है। शैली में प्रवाहमयता है।

कुहर सिंह (कँअर सिंह) *(पं० ले०)*

इस कवि का समय सन् 1734 माना जाता है। इसका निवास-स्थान लाहौर था। ये 'गुरुविलास' (छठी पातशाही) के लेखक भाई मनीसिंह के लाहौर बंदी-गृह में रखे जाने के समय (1738 ई०) लाहौर में ही उपस्थित थे। भाई मनीसिंह के द्वारा 'गुरुविलास' (दे०) कथा अपने बंदी साथियों को सुनाई गई। कथा पहरेदार तुर्क सिपाही ने कुहर सिंह कलाल को सुनाई थी। इस लेखक ने श्रुत कथा को सन् 1741 में ग्रंथ-रूप में बाँध दिया। रचनाकार के ग्रंथ लिखने के संबंध में ये शब्द प्रमाण हैं—

संवत् सत्रह सहस इकावन।
मास असार सुकल वर पावन।
दहै बीच तुरकान को मेला।
तब ही मिरल गुरु संग चेला।
पंचम मित भूमन सुभ वारो।
लवपुर माहँ देह बिनसारो।
जाहि निखासत खाना कहँ।
सौदागर को थान सुलहँ।
सीस दइ सिंहन लियो थाना।
वली सहीद भये तिंह माना।
सरब अस्थान सिंहन कहिये।
जोय नखासत खाना लहिये।
तिन की लिखी सु साखी होई।
वदूअन बीच जात अति सोई।
करे टहल तिन की बड़ माना।
खिजमत खान वहादर जाना।
राखा तितकर रहै अपारा।
सरन न आयो खालसा मारा।
कुहर सिंह कलाल अति जोई।
रहै कंबोअन आँगन सोई।
नाम मन्नी सिंह हौ भाई।
पूरब खंडे पाहुल न पाई।
जब नौकरी ते भये वैरागी।
सुनत सासियन मन अनुरागी।
मनी सिंह ऐ वचन अलाए।
सुनो खालसा जी चितलाये।
यह धरमग्ग कथा मैं भाखी।
बड़ विस्थार सूछम कर भाखी।

दो०—अठदस सम्मत प्रथम वर मास कुआर जो आहि ।
पुस्तक भयो सपूरन चद सनज दिन माहि ।
असूज वदी एकादशी बुधवार सवत 1808 ॥
(पन्ना 219)

कूट्टुकृषि *(मल० कृ०)*

यह इटशेरि (दे०) गोविंदन् नायर् का सामाजिक नाटक है। इसमे एक गाँव के किसानो के जीवन मे होने वाली कठिनाइयो की करुण कथा कही गई है। अत मे सारे कृषक मिलकर अपनी समस्या का हल निकालते हैं, और वह हल है सहकारी कृषि ।

कृषक-जीवन का ऐसा यथार्थ चित्रण मलयाळम के और किसी नाटक मे नही हुआ है। मिट्टी से युद्ध करने वाले इन अपाहिजो मे हुई नई चेतना के वर्णन मे भी नाटककार सफल हुए हैं। इस दृष्टि से इसे राजनीतिक नाटको की श्रेणी मे रखा जा सकता है ।

मलयाळम के सामाजिक राजनीतिक नाटको मे 'कूट्टुकृषि' का स्थान महत्वपूर्ण है ।

कूत्तु *(त० पारि०)*

कूत्तु का शाब्दिक अर्थ है नृत्य । प्राचीन तमिल महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) के पुहारक्काण्डम् मे तत्कालीन तमिल समाज मे प्रचलित ग्यारह प्रकार के नृत्यो का वर्णन है। वे नृत्य है—कोडुकोट्टि आडल्, पाण्डरगक्कूत्तु, अल्लिय तोकुदि, मल्लाडल, तुडिक्कूत्तु, कुडैक्कूत्तु, कुडक्कूत्तु, पेडिक्कूत्तु, मरक्कालकूत्तु, पावैक्कूत्तु और कडैयक्कूत्तु । विभिन्न कालो मे देवताओ द्वारा असुर-सहार के लिए अपनाई गई युद्ध-रीतियो के रूप मे इन नृत्यो की चर्चा होती है। इन नृत्यो के अतिरिक्त 'आयच्चियर कुरवै' शीर्षक अध्याय मे अहीर बालाओ द्वारा किए गए कुरवैक्कूत्तु का वर्णन है ।

सघकालीन कृतियो मे वर्णित कुछ अन्य कूत्तु के नाम इस प्रकार है वेट्टुव वरिक्कूत्तु—शिकारियो का सामूहिक नृत्य, वळ्ळिक्कूत्तु—स्कन्द देव के मदिर मे नारियो का नृत्य, अल्लिक्कूत्तु—किसी राजा की विजय पर किया जाने वाला नृत्य, वेलनक्कूत्तु—स्कन्द द्वारा आवेशित व्यक्ति का नृत्य आदि । वरिक्कूत्तु पति-पत्नी की प्रेम-भावनाओ को व्यक्त करने वाला नृत्य है। इसके आठ प्रकार होते है ।

कूलकथाओ *(गु० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1966 ई०]

सामान्य व्यक्तियो के महान गुणो की सच्ची घटनाएँ स्वामी आनद (दे०) के इस के ग्रथ मे प्रस्तुत की गई हैं। बडे-बडे उद्योगपतियो के पूर्वज अत्यत निर्धन अवस्था मे किस तरह बबई आए और कठिनाइयाँ सहकर धीरे-धीरे किस प्रकार महान उद्योगपति बने—इसकी रोचक कथाएँ प्रस्तुत की गई हैं। खटाऊ, ठाकुरसी, वसनजी इत्यादि के पूर्वजो की कथाएँ दी गई है। इस पुस्तक को गुजराती साहित्य परिषद् तथा साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है ।

कृत्तिवास ओझा *(बँ० ले०)*

अनुमान से इनका जन्म पद्रहवी शताब्दी के शेषार्द्ध मे हुआ था। नदिया जिले का फुलिया ग्राम इनका जन्म-स्थान है। इनके पिता का नाम वनमाली एव माता का मेनका कहा जाता है। इनके पितामह मुरारि ओझा विख्यात और कुलीन पडित थे। ये जाति के ओझा उपाध्याय-ब्राह्मण, थे। गौडेश्वर की सभा से इनका सबध था—ऐसा विद्वानो का अनुमान है ।

इनकी प्रसिद्ध कृति 'रामकथा काव्य' अथवा 'श्रीराम पाचाली' (दे० रामायण) है। वाल्मीकि रामायण का जो कथा रूप बगाल मे प्रचलित है उसको आधार बनाकर इन्होने राम-कथा लिखी थी। इनकी मूल रचना नही मिलती। अब से डेढ सौ-दो सौ वर्ष पूर्व लिपिकारो ने स्वेच्छानुसार परिवर्तन एव परिवर्द्धन किए है अत ग्रथ मूल रूप मे तथा भाषा के स्तर पर विकृत मिलता है। अनेक अश प्रक्षिप्त हैं।

ये बगाल के लोकप्रिय, प्रसिद्ध तथा प्राचीनतम कवि है। बगाल के घर-घर मे श्रद्धा एव भक्ति से रामायण पढी जाती है। यह अत्यत रोचक सरस एव मधुर काव्य है। 500 वर्षो से यह ग्रथ बगालियो के हृदयो मे भक्ति एव शृगार का सचार कर रहा है ।

कृत्तिवास *(गु० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1965 ई०]

'कृत्तिवास' शिवकुमार जोशी (दे०) द्वारा रचित एक त्रि-अकी नाटक है। हाथी की खाल लपेटने के कारण शकर (जो भीलनी पर मोहित हो गए थे) का एक नाम कृत्तिवास है। इसी आशय को ध्यान मे रख लेखक ने इस

नाटक में प्रियंकर नामक पात्र के माध्यम से, भौतिक उन्नति और विज्ञान की असीम उपलब्धियों के बीच में रहता हुआ मनुष्य किस प्रकार अपनी सीमाओं से परेशान है, इसका मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया है। वर्षों से साधु और निःस्पृह जैसे दिखाई देने वाले प्रियंकर के चरित्र का उद्घाटन उपसी के द्वारा प्रयुक्त दो प्रतीकों से हो जाता है। वह अपने प्रति प्रांजल से बात करती हुई कहती है कि 'उन्हें (प्रियंकर को) कवर की नहीं कवच की आवश्यकता है; छबड़ी में पूरियाँ ही रखी जा सकती हैं, दाल के लिए तो कमंडल ही चाहिए।' इन्हीं मर्मभेदक सूक्तियों से प्रियंकर चिंतित हो उठता है और अवंतिका के साथ विवाह करने की बात छोड़ कर निश्चय करता है कि मुझे अपने को तपा कर अपना कवच खुद बनना होगा। मनुष्य ने जो ओढ़ रखा है वह गैंडे की खाल नहीं, हाथी की है जो अभेद्य नहीं है।

कृपाराम *(हिं० म०)* [समय—सोलहवीं शती]

कृपाराम का प्रसिद्ध ग्रंथ 'हिततरंगिणी' (दे०) है जिसकी रचना सन् 1541 में हुई। यह ग्रंथ नायक-नायिका-भेद विषयक है, जिसमें अधिकांशतः भानुमिश्र की 'रसमंजरी' (दे०) का आधार ग्रहण किया गया है तथा कुछ भेद भरत के 'नाट्यशास्त्र' (दे०) से भी गृहीत हैं, जिसकी ओर स्वयं लेखक ने भी संकेत किया है। यद्यपि वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इस ग्रंथ में कोई विशेषता नहीं है, इसके परवर्ती सभी नायक-नायिका-भेद-विषयक ग्रंथ लगभग इसी प्रकार की सामग्री प्रस्तुत करते हैं, फिर भी, हिंदी साहित्य में अपने प्रकार का प्रथम उपलब्ध ग्रंथ होने के कारण इसका निजी महत्व है। इसकी रचना भक्तिकाल में ही हो गई थी। भक्तिकालीन अन्य सभी रचनाएँ—'साहित्यलहरी' (दे०) (सूरदास), रसमंजरी (नंददास), बरवै नायिका-भेद (रहीम) इसके बाद की हैं, और रीतिकाल में आकर तो इस प्रकार के ग्रंथों की बाढ़-सी आ गई। इस दृष्टि से कृपाराम का ऐतिहासिक महत्व स्पष्ट है। उदाहरणों की सरसता की दृष्टि से भी यह ग्रंथ उल्लेखनीय है।

कृपासागर, लाला *(पं० ले०)* [जन्म—1875 ई०, मृत्यु—1939 ई०]

लाला कृपासागर की कीर्ति का आधार है उनका महाकाव्य 'लक्ष्मीदेवी' (दे०)। यह महाकाव्य अंग्रेजी कवि सर वाल्टर स्कॉट की रचना 'लेडी ऑफ़ द लेक' पर आधृत है। परंतु, इस महाकाव्य में कवि ने नवीन प्रसंगों की उद्भावना और मौलिक कल्पना द्वारा कथावस्तु तथा चरित्र-चित्रण का जैसा नूतन विधान किया है, वह इसे एक श्रेष्ठ काव्य-कृति बना देता है। यह पंजाबी का पहला महाकाव्य है जिसमें रूपक-पक्ष का भी सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है। इस दृष्टि से यह नवरस सिद्ध महाकाव्य है जिसमें प्रकृति का भव्य और सुंदर चित्रण है।

इनकी छोटी कविताओं का एक संग्रह 'मन-तरंग' भी छप चुका है।

कृशनचंदर *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1914 ई०; मृत्यु—1977 ई०]

उर्दू के प्रगतिशील लेखकों में कृशनचंदर का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म पंजाब में हुआ और बचपन कश्मीर में बीता। उच्च शिक्षा इन्होंने लाहौर में पाई। कृशनचंदर प्राकृतिक दृश्यों को लेकर अपनी कहानी की आधारभूमि तैयार करते हैं। इन दृश्यों का अवलंब लेकर ये पाठकों का जीवन के तीखे और कड़वे यथार्थ से सामना करा देते हैं, जैसा कि 'गुलफरोश' कहानी में है। कृशनचंदर यथार्थवादी लेखक हैं। 'जिंदगी के मोड़ पर' (दे०) इनके जीवन-दर्शन की द्योतक है। वे वर्तमान समाज पर कठोर आघात करते हैं और उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत करते हैं। कभी-कभी इनके लेखन में इनका भावावेश भी अभिव्यक्त होता है।

कृशनचंदर की कहानियों में रोमान और यथार्थ का सुंदर समन्वय, विस्तृत अध्ययन, समाज की वर्तमान आर्थिक व्यवस्था से घृणा, एक साथ तीखे व्यंग्य तथा हास्य का आनंद और मनोविज्ञान का गंभीर अध्ययन पाया जाता है। भाषा तथा शैली के विचार से ये मुंशी प्रेमचंद के कार्य को और आगे बढ़ाने वाले हैं।

कृशनचंदर के कई कहानी-संग्रह हैं जिनमें 'जिंदगी के मोड़ पर' (दे०) और 'टूटे हुए तारे' विशेष उल्लेखनीय हैं। इनकी साम्यवादी विचारधारा की कहानियों का संग्रह 'नज़ारे' प्रशंसनीय है। देश-विभाजन की पीड़ा को इन्होंने 'हम वहशी हैं' में संगृहीत कहानियों में अनूठे ढंग से व्यक्त किया है। 1977 ई० के पूर्वार्ध में 63 वर्ष की अवस्था में इनका निधन हो गया।

कृष्ण *(स० पा०)*

कृष्ण 'महाभारत' (दे०) के प्रमुख पात्र हैं। ये वसुदेव और देवकी के पुत्र थे। इनका जन्म मथुरा मे वसुदेव के शत्रु कस के कारागार मे हुआ और लालन-पालन गोकुल मे नद और उसकी पत्नी यशोदा द्वारा किया गया। इन्होंने बाल्यकाल मे पूतना तृणावर्त, बकासुर, वत्सासुर, अघासुर धेनुकासुर प्रलबासुर अरिष्ट, व्योम तथा केशि का वध किया। कालियनाग का मर्दन किया। कुपित इद्र द्वारा कराई गई अनिवृष्टि के प्रकोप से इन्होंने गोवर्धन पर्वत को उँगली पर उठाकर गोकुलवासियो की रक्षा की। कस द्वारा भेजे गए चाणूर और मुष्टिक मल्लो का वध किया। कुवलयापीड हाथी को भी मार गिराया। अतत कस का भी वध किया। इन्होने सादीपनी नामक गुरु से शिक्षा ग्रहण की, तथा 64 दिनो मे ही वेदो का तथा धनुर्वेद का अध्ययन किया।

इन्होने भीष्मक राजा की कन्या रुक्मिणी का हरण किया। जाबवती तथा सत्यभामा से इनका विवाह हुआ तथा कालिंदी, मित्रविंदा, सत्या (नाग्नजिती), भद्रा कैकेयी तथा लक्ष्मणा (सुलक्षणा) का हरण करके इन्होंने इनसे विवाह किया। नरकासुर का वध करके उसके कारागार मे कैद सोलह हज़ार स्त्रियो को मुक्त कर इन्होने उनसे विवाह किए। कृष्ण के 80 हजार पुत्र थे।

कस वध से क्रुद्ध जरासध ने (जो कि कस का दामाद था), इन्हे पर्याप्त भयभीत किया तथा इन्होने अतत इसका भीम (दे०) द्वारा वध करा दिया। इन्होंने राजसूय यज्ञ मे शिशुपाल का सुदर्शन-चक्र से वध किया।

महाभारत के युद्ध मे इन्होने पाडवो के पक्ष मे होकर अर्जुन (दे०) के सारथि रूप मे कार्य करते हुए जो उपदेश दिया वह 'भगवद्‌गीता (दे० गीता) नाम से प्रसिद्ध है। इससे अर्जुन को पर्याप्त उत्साह मिला। इस युद्ध मे इन्होने पाडवो की अनेक रूपो से सहायता की। रथ के अश्वो की सेवा की। रथ को पाँच अगुल धरती मे गाडकर कर्ण के सर्पयुक्त बाण से अर्जुन की रक्षा की। अधकार उत्पन्न करके अर्जुन द्वारा जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा पूरी करायी। द्रोण-वध के लिए युधिष्ठिर (दे०) को असत्य भाषण की सलाह दी। दुर्योधन (दे०) की जाघ पर भीम द्वारा गदा प्रहार कराके उसका वध कराया। अश्वत्थामा के अस्त्र से उत्तरा के गर्भ की रक्षा की।

इनकी मृत्यु जरा नामक व्याध द्वारा तलुवे मे तीर लगने से हो गई। उस समय इनकी आयु 125 वर्ष से अधिक थी।

इन्हें हिंदू लोग भगवान् का अवतार मानते है, *तथा बालकृष्ण, मुरलीधर, गोपाल, भगवान् कृष्ण* आदि अनेक रूपो मे इनकी उपासना करते हैं। इन्होने अपने जीवन-काल मे अनेक बार विश्व रूप का दर्शन कराकर विकट समस्याओ का समाधान कर विपत्ति का निवारण किया। भक्तजन इनके इस रूप की भी उपासना करते हैं। इनकी बाल सखी राधा भी भक्तो की उपास्या है, तथा 'राधाकृष्ण' की भी भक्तजन उपासना करते है। इनके भाई (नद-पुत्र) बलराम को भी इनके नाम के साथ जोडकर कृष्ण-बलदेव की जयजयकार की जाती है। द्रौपदी (दे०) के कौरवो द्वारा चीर-हरण के समय ये अपने अद्‌भुत चमत्कारपूर्ण कृत्य से उसकी साडी मे *इतनी अधिक वृद्धि करते गए कि वह समाप्त होने मे न* आई—भक्तजन इन्हें 'द्रौपदी रक्षक' रूप मे भी स्मरण करते हैं। भारतीय जन जीवन मे राम के अतिरिक्त कृष्ण के जीवन को भी एक आदर्श माना जाता है। भारत की सभी भाषाओ के कविगण शताब्दियो से इनकी गौरव-गाथा वर्णित करते चले आए हैं।

कृष्णकातेर उइल *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1878 ई०]

'विषवृक्ष (दे०) के समानातर रचना होते हुए भी यह अपेक्षाकृत परिपक्व एव यथार्थोन्मुख उपन्यास है। *कथा का ढाँचा मिलता जुलता है।* गोविंदलाल अपनी पत्नी भ्रमर के साथ सुखी जीवन बिता रहा है। उसका परिचय रोहिणी से होता है। वह विधवा है। उसका सम्मोहन बढने लगता है, इसलिए भ्रमर यह अपमान न सहकर पिता के घर चली जाती है। गोविंदलाल रोहिणी से विवाह करता है। उसके बाद उसकी आँखें खुलती है। वस्तु विन्यास की दृष्टि से बकिम ने अपने कौशल का परिचय दिया है। पात्रो का रेखाकन अधिक यथाथ एव प्रभावशाली है। गोविंद, भ्रमर और रोहिणी तीनो सशक्त पात्र हैं।

उपन्यास का लक्ष्य नैतिक मूल्यो की स्थापना है। यहाँ लेखक ने नियति से कही अधिक नीति का आश्रय लिया है। यह बकिम की सर्वश्रेष्ठ सामाजिक रचना है जिसमे उन्होंने अपनी औपन्यासिक प्रतिभा का परिचय दिया है।

कृष्ण-काव्य (पं० प्र०)

आदि ग्रंथ में श्रीकृष्ण का नाम श्याम आदि के अभिधान से आया है। काव्य-परंपरा में गुरु गोविंदसिंह (दे०) का 'चौबीस अवतार' कृति में 'कृष्णावतार' महत्वपूर्ण रचना है। श्रीकृष्ण के लीलामय रूप के अतिरिक्त योगिराज का रूप अधिक आकर्षक चित्रित हुआ है। केशवदास-कृत 'बारह माह कृष्ण जी का' दूसरी कृति है। दोनों कृतियों की भाषा ब्रज है।

कृष्णकुमारी (बँ० कृ०) [रचना-काल—1861 ई०]

यह माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) का प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है। इसकी कथा 'टॉड राजस्थान' में से ली गई है। उदयपुर के राजा भीमसिंह की बेटी कृष्णकुमारी के दो प्रणय प्रार्थी हैं—जयसिंह तथा मानसिंह। भीमसिंह विचित्र संकट एवं तनाव में है। अगर वह कृष्णकुमारी का विवाह उसकी पसंद के व्यक्ति मानसिंह से करे तो जयसिंह शांत नहीं रहेगा और सारा देश द्वेष एवं क्रोध के युद्ध से जल उठेगा। यदि वह देश की एकता, शांति और गौरव की रक्षा करे तो बेटी के जीवन की आहुति देनी पड़ेगी। कृष्णकुमारी ने अपने जीवन की बलि अवश्य दी थी परंतु भीमसिंह दुःख और ग्लानि से बच न सका। नाटक में संघर्ष बाह्य एवं आंतरिक दोनों स्तरों पर उभरा है। सर्वाधिक सशक्त पात्र है भीमसिंह जो पिता की ममता तथा राजा के कठोर कर्तव्यनिष्ठ आचरण के द्वंद्व में फँसा हुआ है। कृष्णकुमारी का व्यक्तित्व भी प्रभावशाली है परंतु साधारण पात्रों में धर्मदास तथा मदनिका उल्लेखनीय हैं। इस नाटक का वातावरण स्वच्छंद है। इस पर पश्चिमी नाट्य-शिल्प का गहरा प्रभाव पड़ा है। अभिनय की दृष्टि से यह निर्दोष नहीं है।

'कृष्णकुमारी' बँगला का पहला सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटक है जिसमें युग के संदर्भ में जातीय गौरव और त्याग की भावना प्रस्तुत की गई है। 'कृष्णकुमारी' को पहला सफल दुःखांत नाटक होने का भी गौरव प्राप्त है।

कृष्णगाथा (मल० कृ०) [रचना-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

यह मलयाळम का सर्वप्रथम महाकाव्य है। चेरुश्शेरि (दे०) नम्पूतिरि की इस कृति के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि इसकी रचना कवि के अभिभावक राजा उदयवर्मा के आदेश पर हुई थी। कहा जाता है कि जब कवि और राजा शतरंज खेल रहे थे तो रानी ने लोरी के बहाने कुछ गुनगुनाया था जिसमें शतरंज की एक चाल का संकेत था। राजा ने संकेत ग्रहण करने के अलावा रानी के मुख से निकले छंद में एक कृष्ण-काव्य की रचना का आदेश भी कवि को दिया था।

'कृष्णगाथा' के साथ ही मलयाळम की साहित्यिक भाषा परिपक्वता के स्तर पर पहुँच गई थी। कवि ने उस समय प्रचलित संस्कृत-मंडित मणिप्रवाल (दे०) शैली के स्थान पर लोक-शैली के छंद और काव्य-भाषा को अपनाया था। यद्यपि कवि ने काव्य-लक्षणों के सूत्रों के आधार पर काव्य-रचना का प्रयत्न नहीं किया था, तो भी इसमें उत्तम काव्य के सभी लक्षण दर्शनीय है। 'कृष्णगाथा' तुंचत्तु एषुत्तच्छन (दे०), कुंचन् (दे०), नंपियार जैसे कवियों के लिए मार्गदर्शक रही है। सरस और मधुर भाषा काव्य की लोकप्रियता में सहायक रही है। कवि की चमत्कारपूर्ण रस-व्यंजना के अतिरिक्त उनका सन्मार्ग-प्रेरक दार्शनिक भी काव्य के महत्व को बढ़ाता है। मलयाळम का यह गौरव-ग्रंथ भारतीय भाषाओं के कृष्णकाव्यों के मध्य मुख्य स्थान को अलंकृत करता है।

कृष्ण-चरित्र (बँ० कृ०) [रचना-काल—1892 ई०]

नई शिक्षा-दीक्षा के उद्दाम प्रवाह में नव्य हिंदू समाज अपने धर्म की चर्चा से वितृष्णा करने लगा था। उसे पश्चिम की प्रत्येक प्रवृत्ति अनुकरणीय लगती है। ऐसे आत्म-विस्मृति के युग में बंकिम (दे०) ने पश्चिम की वैज्ञानिक दृष्टि और नई विचारधारा का अध्ययन किया और अपने अवतार-पुरुष को 'पश्चिमी परिप्रेक्ष्य' में प्रस्तुत किया ताकि अँग्रेजी शिक्षा-प्राप्त समाज उसे समझे और ग्रहण कर सके। इस दृष्टि से उन पर कई पश्चिमी दार्शनिकों का—विशेषतः कांट का प्रभाव पड़ा। लीलाकार कृष्ण की अविश्वसनीय सी अलौकिक लीलाओं को उन्होंने निकाल दिया और इसके स्थान पर उन्होंने ऐसे कृष्ण की कल्पना की जो महामानव है। उनके निष्काम कर्म तथा लोक-हित-भावना जैसे आदर्शों की उपयोगिता आज भी उतनी ही है। बंकिम को साफ़ दिखाई दे रहा था कि इस समाज को हरिकृष्ण की नहीं, कर्मयोगी कृष्ण की आवश्यकता है।

भारतीय संस्कृति के प्रति अबाध आस्था से अनुप्राणित होकर ही बंकिम ने अपने युग को नया संदेश

दिया। उनके इस अविस्मरणीय योगदान की सही सराहना रवींद्र (दे०) ने की है।

कृष्ण चैतन्य (के० के० नायर) *(मल० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

श्रीकृष्ण चैतन्य मलयाळम और अँग्रेजी के प्रमुख समालोचक है। इन्होने विश्व की अनेक भाषाओ के साहित्यो का गभीर अध्ययन किया है और उनके शोध-पूर्ण इतिहास प्रकाशित किए हैं। अरबी, लेटिन, यूनानी, मेसोपोटेमियन, यहूदी, रोमन और सस्कृत के साहित्यो के इतिहास इन्होंने मलयाळम मे प्रकाशित किए है। ये पुस्तकें बीस भागो वाली विश्व-इतिहास-माला के अतर्गत अन्य भाषाओ में भी प्रकाशित हो रही हैं। कृष्ण चैतन्य उच्च कोटि के कला-मर्मज्ञ और पत्रकार भी है।

कृष्ण दयार्णव *(म० ले०)*

इनके पिता का नाम नारायण और माता का बहिणादेवी था। दुर्भाग्य से कवि रक्तपित्त की व्याधि से अत मे जर्जर हो गया था, दारिद्र्य की दारुण व्याधि से भी वह आजीवन पीडित रहा। फिर भी काव्य-रचना की भी अदम्य लालसा उसमे अत तक प्रबल बनी रही। कृष्ण दयार्णव ने 'भागवत' (दे०) दशम स्कन्ध पर 'हरिवरदा' (दे०) शीर्षक भाष्य लिख कर अपने को साहित्य-इतिहास मे चिर-स्थायी बना लिया है। इसमे 87 अध्याय और बयालीस हज़ार ओविया है। ग्रथ पूर्ण होने से पूर्व ही इनका स्वर्गवास हो गया था और बाद म इनके शिष्य उत्तम श्लोक ने शेष ग्रथ को पूर्ण किया था। इस सरस ग्रथ के अतिरिक्त इन्होंने 'तन्मयानद बोध' नामक एक अन्य आध्यात्मिक ग्रथ की रचना की है।

कृष्णदास कविराज *(बँ० ले०)*

कृष्णदास कविराज का जन्म अनुमानत सन् 1517 के आसपास हुआ था। इनके पिता का नाम भगीरथ था। ये वैद्य (ब्राह्मण) वश के थे एव वर्द्धमान ज़िले के भामटापुर ग्राम के निवासी थे। जब ये छह वर्ष के थे तब इनके पिता का देहात हो गया। ये वैष्णव धर्म मे दीक्षित हो गए थे और फिर इन्होंने विवाह नही किया। शैशवावस्था से ही कष्टमय जीवन व्यतीत करने के बाद प्रौढ़ आयु मे ये वृ दावन मे आकर बस गए थे।

कृष्णदास कविराज का 'चैतन्य चरितामृत' (दे०) गौडी वैष्णव-साधना एव वैष्णव तत्त्व का प्रामाणिक ग्रथ है। यह ग्रथ इन्होने 80-85 वर्ष की आयु मे पूर्ण किया था। इनका एक ग्रथ 'गोविंद लीलामृत' सस्कृत मे है।

कृष्णदास कविराज विद्वान, रसवेत्ता एव कवित्व-प्रतिभा-सपन्न महापुरुष थे। इन्होंने सनातन (दे०) एव रूप गोस्वामी (दे०) से आध्यात्मिक शिक्षा और श्रीदास लोकनाथ गोस्वामी, गोपालभट्ट प्रभृति व्यक्तियो से चैतन्य महाप्रभु का मौखिक वृत्त प्राप्त किया था। चैतन्य भागवत (दे०) (वृ दावनदास), चैतन्य चद्रोदय (कवि कर्णपुर) तथा मुरारि गुप्त और स्वरूप दामोदर के कडछा को आधार बना कर इन्होंने 'चैतन्य चरितामृत' (दे०) की रचना की है।

'चैतन्य चरितामृत' मे काव्य, नाटक, व्याकरण, स्मृति, पुराण, साख्य, वेदात, तत्र, रामायण, महाभारत, सभी सस्कृत ग्रथो के सदर्भ यथा प्रसग मिलते है। पयार एव त्रिपदी छद मे इन्होन वैष्णवोचित विनय, भक्ति की व्याख्या एव सस्कृत ग्रथो का सार एकत्र कर दिया है। कवि की बँगला भाषा पर वृ दावन का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। वैष्णव साहित्य के श्रेष्ठ ग्रथो मे 'चैतन्य चरितामृत' का स्थान अन्यतम है।

कृष्णदेवरायलु *(ते० ले०)* [समय—1471-1530 ई०]

ये दक्षिण के विजयनगर राज्य के सुप्रसिद्ध राजा थे। इन्होंने दक्षिण मे मुसलमानी प्रभुसत्ता को अत्यत सफलतापूर्वक रोक दिया था और कटक से कन्याकुमारी तक अपने राज्य का विस्तार किया था। ये न केवल एक शक्तिशाली राजा थे बल्कि बडे विद्वान तथा विख्यात कवि भी थे। ये अच्छे कलाकार थे और साथ-साथ कलापोषक भी। इनकी साहित्य-सभा 'भुवनविजय' (दे०) नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसमे 'अष्टदिग्गज' (दे०) नाम से विख्यात आठ महाकवि विराजमान रहते थे। बताया जाता है कि ये लडाई के मैदान में जाते समय भी कवियो को साथ ले जाते थे। इन्होने कई काव्य लिखे तथा अपने दरबार के कवियो से लिखवाए थे। इन्होंने 'आमुक्तमाल्यदा' (दे०) नामक प्रसिद्ध तेलुगु काव्य की रचना की। इसकी अवतारिका से पता चलता है कि इन्होंने 'मदालसचरित्र', 'सत्यावधूप्रीणन', 'सकलकथासारसग्रह',

'ज्ञानचिंतामणि', 'रसमंजरी' आदि अनेक संस्कृत-काव्यों की भी रचना की थी। किंतु ये ग्रंथ आज अनुपलब्ध हैं।

ये विष्णु के उपासक थे। अतः इनकी रचनाएँ प्रायः विष्णुभक्ति से संबद्ध हैं। 'आमुक्तमाल्यदा' का कथानक गोदादेवी (दे०) तथा श्रीरंगेश्वर की प्रणयकथा से संबद्ध है। इस तेलुगु प्रबंध (-काव्य) के अंतर्गत पाए जाने वाले खांडिक्य केशिध्वजोपाख्यान, यामुनाचार्य-चरित्र, मालदासरिकथा आदि अनेक अंश विष्णु-भक्ति से ओतप्रोत हैं। इस रचना में पांडित्य-प्रदर्शन के कारण कुछ क्लिष्टता अवश्य आ गई है किंतु सरस तथा सहज वर्णनों और मार्मिक चरित्र-चित्रण के द्वारा यह अपनी विशिष्टता प्रकट करती है। एक शासक होते हुए भी प्रकृति-परिशीलन और साधारण जन-जीवन के चित्रण में इन्होंने जो क्षमता दिखाई है वह सचमुच अनुपम तथा प्रतिभापूर्ण है।

कृष्णदेवरायलु और उनके दरबारी कवि अपनी-अपनी रचनाओं के द्वारा तेलुगु साहित्य के अंतर्गत 'स्वर्णयुग' के प्रवर्तक बन गए हैं। ये 'आंध्र भोज' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

कृष्णपक्षमु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1925 ई०; कृतिकार—देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री (दे०)]

'कृष्णपक्षमु' भावकविता (दे०) की सर्वोत्तम रचना है। प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत देश में फैली हुई निराशा एवं अवसाद के फलस्वरूप आत्माश्रयी काव्यधारा —भावकविता का प्रादुर्भाव हुआ था। कृष्णपक्षमु का यह प्रगीत-संग्रह इस धारा का प्रतिनिधि है। इसमें कवि ने समाज का पूर्ण तिरस्कार कर केवल अपने हृदय में उठने वाली भावतरंगों को स्वच्छंद होकर अभिव्यक्त किया है। इसमें असफल प्रेम, आध्यात्मिक दृष्टि, विषाद, किसी अलौकिक सौंदर्य की लालसा की पीड़ा, प्रकृति-प्रेम, उसके पत्रों, फूलों, शाखाओं एवं पक्षियों के साथ एकाकार होकर दिव्य आनंद पाने की कामना आदि की अभिव्यक्ति अत्यंत मौलिक एवं प्रभावोत्पादक ढंग से हुई है।

सर्वथा नूतन भावों के साथ-साथ तेलुगु भाषा के सहज सौंदर्य का निखार भी इस काल में प्रकट हुआ है। भावों की स्निग्धता एवं सूक्ष्मता के अनुरूप भाषा भी अपूर्व मार्दव एवं व्यंजना-शक्ति को लेकर इसमें प्रकट हुई है। कृष्णशास्त्री ने अपनी एक विशिष्ट शैली का निर्माण इसी के प्रगीतों में किया था। जीवन के अंधकारमय 'कृष्ण-पक्ष' के रोदन को उदात्त एवं भव्य अभिव्यक्ति देकर, शोक में ही अतींद्रिय सुख का अनुभव करके, कवि ने यहाँ परम सिद्धि प्राप्त की है।

कृष्ण पिळ्ळा, ई० वी० *(मल० ले०)* [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1938 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध निबंधकार और नाटककार थे। महान उपन्यासकार सी० वी० रामन् पिळ्ळा (दे०) इनके श्वशुर और साहित्यिक गुरु थे। ये सरकारी नौकर, वकील और संसद-सदस्य रहे हैं। 'मलयाळ राज्यम्', 'मनोरमा' आदि समसामयिक पत्र-पत्रिकाओं से इनका संबंध था और 'सेविनी' नामक एक मासिक का संपादन भी इन्होंने किया है। ये सफल अभिनेता भी थे।

इनके महत्वपूर्ण लेख 'चिरियुम् चिंतयुम्' (दे०) में संगृहीत हैं। 'राजा केशवदासन्' (दे०), 'इरविक्कुट्टि पिळ्ळा', आदि ऐतिहासिक नाटक है और 'बी० ए० मायावि', 'प्रणय कमीशन' आदि प्रहसन। 'जीवितस्मरण-कळ्' आत्मकथा है। इन्होंने अनेक कहानियाँ भी लिखी हैं।

ई० वी० कृष्ण पिळ्ळा का व्यंग्य प्रखर और प्रभावशाली है। पाठक को हँसाकर उसकी चिंता को उत्तेजित करने की शक्ति उनको नैसर्गिक रूप से प्राप्त थी। उन्होंने गद्य को नई शैली प्रदान की थी। नाटककारों में भी उनका स्थान प्रमुख है। वे अपने समय के सर्वाधिक लोकप्रिय गद्यकार थे।

कृष्ण पिळ्ळै *(त० ले०)* [जन्म—1827 ई०; मृत्यु—1900 ई०]

ये तमिल प्रदेश में कृषक जाति के वैष्णव धर्मावलंबी परिवार में उत्पन्न हुए थे। तमिल भाषा एवं साहित्य के विशेष ज्ञाता होने कारण 'तिरुनेल्वेलि' जिले के पादरी बिशप कॉल्डवेल ने इन्हें अपने अधीन 'सायरपुरम्' स्थित महाविद्यालय में तमिल-शिक्षक के रूप में नियुक्त किया था। यहाँ काम करते-करते तीस वर्ष की आयु में इन्होंने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया और उसकी सेवा में शेष जीवन व्यतीत किया।

तमिल भाषा में ईसाई धर्म-संबंधी साहित्य-सृजन में 'कृष्ण पिळ्ळै' का योगदान महत्वपूर्ण है। इनका महाकाव्य 'इरट्चणिय-यात्तिरिकम्' है जो प्रसिद्ध जॉन

बन्यन के 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' की अन्योक्तिपरक कथा का तमिल महाकाव्य शैली मे रूपातर है। पद्यो की सख्या 3800 है और अनेक पद्यो मे यमक, श्लेषादि का चमत्कार भी दर्शनीय है। पापी जीव की यात्रा तथा प्रभु ईसा की कृपा का काव्य मे अनेक रूपो मे वर्णन किया गया है।

इनकी शेष रचनाएँ—'इरट्चणिय मनोकरम्', 'इरट्चणियसमय निर्णयम्' तथा 'इरट्चणियक्कुरळ्'—भी ईसाई धर्म-तत्त्व का प्रतिपादन करती हैं।

कृष्णभट्ट, सेडिकापु *(क० ले०)*

दक्षिण कन्नड जिले के विख्यात विद्वान सेडिकापु कृष्णभट्ट एक सफल कवि, कहानीकार एव समर्थ विद्वान है। आपका जन्म दक्षिण जिले के एक गाँव मे सुसस्कृत ब्राह्मण परिवार मे हुआ। सत्याग्रह के कारण आपकी शिक्षा अधूरी रह गई। 'कृष्णकुमारी', 'श्वमेध', तरुणध्वनि', 'पुण्यलहरी अथवा शबरी' आदि आपके श्रेष्ठ कविता-सकलन हैं। 'कृष्णकुमारी' मे राजस्थान की ऐतिहासिक गाथा है तो 'पुण्यलहरी' मे शबरी की भक्ति का मार्मिक निरूपण है। 'पळमगळ्' उनकी कहानियो का सग्रह है। 'चित्रदयेळ्', 'येन्नेकमे' आपकी श्रेष्ठ कहानियाँ हैं। कन्नड के वर्ण तथा विभक्ति-प्रत्ययो पर उन्होने मौलिक खोजपूर्ण लेख लिखे हैं। उनकी भाषा सरल एव उदात्त है।

कृष्णमाचार्य, श्रीरगपट्टणमु (क० ले०)

श्री कृष्णमाचार्य का जन्म 1800 ई० मे हुआ था। वे मद्रास सदर अदालत मे वकील थे। कन्नड भाषा तथा व्याकरण पर उन्होने विशेष काम किया है। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ ये हैं—'धातुमजरी','शब्दमजरी','हळमन्नड', 'नुडिगन्नडि', 'होसगन्नड'। गत शताब्दी मे लिखा इनका 'कन्नड व्याकरण' ग्रथ अत्यत वैज्ञानिक एव प्रमाणभूत माना जाता है।

कृष्णमाचार्युलु *(ते० ले०)* [समय—चौदहवी शती ई०]

प्रसिद्ध यात्रास्थल सिंहाचल के निवासी कृष्णमाचार्युलु तेलुगु मे 'वचन साहित्य' के प्रवर्तक माने जाते हैं। कन्नड मे यह 'वचन वाङ्मय' अत्यत विख्यात है परतु तेलुगु मे इसका अधिक प्रचार नही। इस विधा से आध्रभारती को अलकृत करने का श्रेय इसी कवि को है। काकतीय सम्राट् द्वितीय प्रतापरुद्र (1295-1326) के ये समकालिक माने जाते हैं। सिंहाचल के स्वामी वराह नरसिंह का गुणगान करते हुए इस कवि ने कई वचनो, चूर्णिकाओ (विशेष छद) और भजन-सकीर्तन के उपयुक्त कई गीतो की रचना की। प्रसिद्ध गीतकार अन्नमाचार्युलु (दे०) ने भी इनकी बडी प्रशसा की है।

कृष्णमूर्ति, के० *(क० ले०)*

डा० के० कृष्णमूर्ति का जन्म 1923 ई० मे मैसूर राज्य के केरलापुर मे एक ससुस्कृत ब्राह्मण परिवार मे हुआ। ये भारत के विख्यात सस्कृत विद्वानो मे हैं। 'ध्वन्यालोक' को पहली बार अँग्रेजी अनुवाद के द्वारा जगत् के सामने रखने का श्रेय इन्हे प्राप्त है। सम्प्रति आप कर्णाटक विश्वविद्यालय मे सस्कृत विभागाध्यक्ष है। आपने सस्कृत के सभी श्रेष्ठ काव्यशास्त्रीय ग्रथो का कन्नड अनुवाद प्रस्तुत किया है, जिनमे प्रमुख है—'ध्वन्यालोक','काव्यालकार', 'काव्यादर्श', 'काव्यप्रकाश', 'काव्यालकार-सूत्रवृत्ति', 'काव्यमीमासा' आदि। इनकी भूमिकाएँ बहुत ही विद्वत्तापूर्ण, मौलिक एव उपादेय हैं। डा० कृष्णमूर्ति ने 'उत्तररामचरित', 'किरातार्जुनीय', आदि ग्रथो का सफल अनुवाद कन्नड मे किया है। 'रसोल्लास', 'सस्कृतकाव्य', 'कन्नड रल्लिकाव्य-तत्त्व' आपकी अन्य उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। आपकी भाषा प्रौढ एव विचारक्षम है।

कृष्णमूर्तिशास्त्री, शिष्टु *(ते० ले०)* [जन्म—1790 ई०; मृत्यु—1840 ई०]

सर्वशास्त्री और गवरम्मा के पुत्र कृष्णमूर्ति शास्त्री पूर्वी गोदावरी ज़िले के गोल्लपालेम के निवासी थे। ये उसी ज़िले के रामचद्रपुरम के जमीदार के आश्रित थे। रामेश्वरम की यात्रा स लौट आते समय कालहस्ति (तिरुपति के निकट) के प्रभु दामेर्ल वेंकटपति राय ने इन्हे अपने यहाँ 17 वर्ष के लिए आश्रय दिया था। ये सस्कृत और आध्र भाषाओ के प्रकाड पडित और प्रसिद्ध कवि थे—सगीत के भी अच्छे ज्ञाता थे। इनके सस्कृत ग्रथो मे 'यक्षोल्लासमु' (काव्य), वल्लवीवल्लवोल्लासमु', 'मदनाभ्युदयमु' (भाण), 'ककणवधमु' (रामायण की कथा), 'अश्वशास्त्रमु', 'हरिकारिकावलि', 'नीलशैलानाथीयमु' उल्लेखनीय हैं। तेलुगु ग्रथो मे 'सर्वकामदा परिणयमु', 'वेंकटाचल महात्म्यमु', 'स्त्रीनीतिशास्त्रमु', 'पचतत्रमु',

'नाटक दीपमु', 'वायुपुत्र शतकमु', 'वसुचरित्र' (दे० 'वसुचरित्रमु') की व्याख्या, कुछ दंडक, मालिकाएँ, स्तोत्र आदि हैं। तुलसीदास (दे०) के 'रामचरितमानस' (दे०) का इन्होंने मंड नरहरि अथवा कामय्या के सहयोग से तेलुगु भाषा में अनुवाद किया था। इस अनुवाद की विशिष्टता दोहा-चौपाई आदि हिंदी छंदों में तेलुगु भाषा को ढालने में है। अनुवाद सरस तथा प्रवाहयुक्त है।

कृष्णमूर्तिशास्त्री, श्रीपाद *(ते० ले०)* [जन्म—1866 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

ये तेलुगु और संस्कृत के प्रकांड पंडित और प्रतिभासंपन्न कवि थे, तथा राजमहेंद्रवरम नामक शहर के रहने वाले थे। अष्टावधान और शतावधान में भी ये कुशल थे। आधुनिक युग से प्रभावित होने पर भी इन्होंने प्रधानतः परंपरा का अनुसरण किया है। ये आंध्र के राष्ट्रकवि के रूप में राज्य सरकार के द्वारा तथा संस्कृत के बड़े विद्वान के रूप में केंद्र सरकार के द्वारा सम्मानित किए गए थे। इनकी रचनाएँ लगभग दो सौ हैं। उनमें प्रमुख ये हैं—'श्रीकृष्ण महाभारतमु', 'श्रीकृष्ण रामायणमु', 'श्रीकृष्ण महाभागवतमु', और 'गणेशपुराणमु' आदि पुराण-इतिहास संबंधी रचनाएँ; 'गौतमी महात्म्यमु', 'गजाननविजयमु', 'श्रीकृष्णकविराजीयमु' जैसे कुछ काव्य; 'ब्रह्मानंदमु' नामक स्वच्छ तेलुगु में लिखित काव्य; 'बोब्बिलियुद्धमु', 'वेणीसंहारमु', 'कलभाषिणी', 'श्रीनाथकविराजीयमु' आदि नाटक; 'लेडारि बुच्चिगाडु' जैसे कुछ प्रहसन; 'संस्कृतकविजीवितमुलु', 'तेनालिरामकृष्णचरित्र' आदि गद्यबद्ध जीवनियाँ; 'श्रीकृष्ण स्वीयचरित्र' आत्मकथा और 'महाभारतचरित्रनिराकरणमु', 'महाभारतरहस्यविमर्शनमु' आदि आलोचनात्मक रचनाएँ। इन्होंने कलावती नामक मुद्रण संस्था की स्थापना की थी तथा 'गौतमी', 'वज्रायुधमु', 'मानवसेवा', 'वंदेमातरम्' नामक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया।

कृष्णमूर्तिशास्त्री की रचनाओं में विस्तार के साथ वैविध्य भी है। विस्तार की दृष्टि से पूरे तेलुगु साहित्य के इतिहास में इतनी मात्रा में ग्रंथ-रचना करने वाला दूसरा कवि मिलना कठिन है। इनकी कविता में पांडित्य तथा परंपरा का प्रभाव अधिक है। इनके भारत, भागवत तथा रामायण के संपूर्ण अनुवादों में परंपरा का प्रभाव और नाटक, प्रहसन, आत्मकथा तथा आलोचनात्मक रचनाओं में आधुनिकता का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। इनका 'बोब्बिलियुद्धमु' आंध्र के सर्वश्रेष्ठ रंगमंचीय नाटकों के अंतर्गत माना जाता है। इन्होंने अनुवादों के साथ-साथ अनेक मौलिक रचनाएँ भी करके अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है।

सैकड़ों ग्रंथों के रचयिता तथा एक महान पंडित के रूप में इनकी प्रशस्ति अनन्य है। ये कलाप्रपूर्ण, महामहोपाध्याय तथा कविसार्वभौम आदि उपाधियों से विभूषित थे, पर इनके ग्रंथों की जितनी अधिक संख्या है उतना इनका प्रचार नहीं हो पाया।

कृष्णराज, मुम्मडि *(क० ले०)* [जन्म—1794 ई०; मृत्यु—1868 ई०]

'मुम्मडि' का अर्थ है 'तृतीय'। कृष्णराज ओडेयर तृतीय मैसूर के महाराजा थे। जब ये छह वर्ष के थे तभी इनका राज्याभिषेक हो गया था। महामंत्री पूर्णय्या की देखरेख में ये बड़े हुए। संस्कृत, कन्नड, मराठी और फ़ारसी के ये अच्छे विद्वान थे। काव्य, संगीत और शिल्प-कलाओं में ही नहीं ज्योतिषशास्त्र में भी इनकी विशेष रुचि थी। कर्णाटक सिंहासनाधीश्वर होकर कन्नड के विकास के लिए इन्होंने पर्याप्त कार्य किया तथा विद्वानों को यथेष्ट प्रोत्साहन दिया। ये विद्याप्रेमी, प्रजावत्सल, न्यायप्रिय और लोककल्याणाकांक्षी नरेश थे। इन्होंने यक्षगान-कला को प्रोत्साहन दिया और अपने प्रासाद में नाटक-मंडली की स्थापना भी की थी। इनके ग्रंथों की संख्या पचास के लगभग है जिनमें निम्नांकित मुख्य हैं—

(1) 'अखंड कावेरी माहात्म्य', (2) 'अध्यात्म रामायण', (3) 'उत्तरगीता', (4) 'उत्तररामचरित-कथा', (5) 'कादंबरी', (6) 'काशीखंड', (7) 'कृष्णकथारत्नाकर', (8) 'कृष्णराज-वाणी-विलास' (कन्नड भगवद्गीता), (9) 'महाभारत कन्नड-टीका', (10) 'तत्त्वनिधि' (संस्कृत विश्वकोश, कन्नड टीका के साथ) (11) 'भारतसार-संग्रह-टीका', (12) 'रामायण-टीका', (13) 'रामायण-तात्पर्यदीपिका-टीका', (14) 'ललितोपाख्यान', (15) 'लिंग-पुराण', (16) 'विक्रमोर्वशीय', (17) 'शंकरसंहिता', (18) 'सौगंधिका परिणय' (पद्यकाव्य तथा गद्यकाव्य), (19) 'हरिवंश', (20) 'हरिश्चंद्रोपाख्यान' तथा फुटकल पद।

इन ग्रंथों में अधिकांश गद्य में हैं, पद्य में कम हैं। कन्नड-गद्य-शैली के विकास में इनका विशेष योगदान

है। इनके महाभारत, रामायण, आदि ग्रंथ काफी लोकप्रिय हुए हैं।

कृष्ण राजानक (राजदान) *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानत. 1850-55 ई०; मृत्यु—1925 ई०]

कृष्ण राजानक (राजदान) कश्मीर-स्थित 'वनपोह' (वन-पुष्प) के निवासी थे और प्रकृति के सौंदर्य मे जन्मे और पले-बढे थे। कश्मीरी के वरिष्ठ कवि परमानद के शिष्य थे। इन्होंने जीवन-भर आराध्य की भक्ति की और तदनुसार 'लीलाएँ' अर्थात् 'स्तुति-भजन' की रचना की। भक्तिभावना, आराध्य के प्रति आत्मसमर्पण और तैल-धारावत् 'तत्पद' मे रमते रहना—ये ही हैं इनके भजनो की विशेषताएँ। काव्य-शिल्प की दृष्टि से इनका बहुत ही ऊँचा स्थान है। छद एव अलकार का इनके काव्य मे सुदर प्रयोग है और भाषा भी ठेठ कश्मीरी है। ये सगुण-उपासक थे और इनके हजारो शिष्य थे जो इनकी भजन-मडली मे कश्मीरी साज़ पर ईश्वर के भजन एव स्तुतियाँ गाते रहते थे। इन्होंने सगुण उपासना को ही परलोक सुधारने का साधन माना है। इन्होंने कश्मीरी के प्रसिद्ध ग्रथ 'शिवलग्न' की रचना की। 'हरी (हर) कल्याण' मे इनकी भक्ति-रचनाएँ प्रकाशित हुई है।

कृष्णरामदास *(बँ० ले०)* [समय—सत्रहवी शती का उत्तरार्ध]

कृष्णरामदास का जन्म-स्थान कलकत्ता से उत्तर की ओर बेलघरिया के निकट निमता अथवा निमिता ग्राम था। इनका जन्म अनुमानत 1656 ई० मे हुआ था। इनके पिता का नाम भगवतीदास था। ये कायस्थ थे।

इनकी तीन कृतियाँ 'कालिकामगल' (दे०) (1676 ई०), 'षष्ठी-मगल' (1679-80) तथा 'रायमगल' (दे०) (1686 ई०) मिलती हैं। इनमे 'कालिकामगल' (दे०) महत्वपूर्ण है। देवी के माहात्म्य के प्रचार के माध्यम से विद्यासुदर की कथा का वर्णन 'कालिकामगल' मे मिलता है। 'षष्ठी-मंगल' व्रत-कथा का छोटा-सा काव्य है। 'रायमगल' अनुमान से अतिम रचना है जिसमे व्याघ्र देवता का महत्व प्रतिपादित किया गया है।

इनके काव्य मे अनेक त्रुटियाँ हैं। कवि मे प्रतिभा नही है। काव्य मे ग्राम्यता मिलती है। पर यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि इनमे रचना-शक्ति का सर्वथा अभाव न था।

कृष्णराव, अ० न० *(क० ले०)* [जन्म—1908 ई०, मृत्यु—1971 ई०]

अ० न० कृष्णराव का जन्म एक सभ्रात ब्राह्मण परिवार मे तुमकूर मे हुआ था। इनके पिता नरसिंहराव साहित्य एव ललितकलाओ के मर्मज्ञ थे। ये कभी कालेज मे नही पढे—स्वाध्याय से ही इन्होने बहुत कुछ सीखा था। सोलह वर्ष की अवस्था मे इन्होने 'मदुवेदो हाळो (शादी) या बरबादी)' नामक एक नाटक लिखा था। पहली ही कृति मे इनका स्वर विद्रोही था। तब से ये निरतर गतिशील रहे हैं। इन्होने विभिन्न विषयो पर दो सौ से भी अधिक पुस्तकें लिखी हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबध, रेखाचित्र, आलोचना, आदि सभी मे इन्होने जमकर काम किया है। साहित्य की ऐसी कोई भी विधा नही जिस मे इनकी लेखनी सक्रिय न हुई हो। किंतु इनको सदा के लिए अमर बनाने वाले है इनके उपन्यास। ये कन्नड के उपन्यास-सम्राट् कहलाते थे। इन्होने एक सौ से भी अधिक उपन्यास लिखे है। 'सध्याराग' (दे०), 'उदयराग', 'नर सार्वभौम', 'साहित्य-रत्न', 'बेण्णद बदुकु' आदि मे क्रमश गायक, चित्रकार, नट, साहित्यकार तथा नर्तक के जीवन की समस्याओ का चित्रण है। जीवन की ऐसी कोई भी समस्या नही है जिसका स्पर्श इन्होने न किया हो। इनसे पूर्व कन्नड उपन्यास-क्षेत्र प्रेमचद-पूर्व उपन्यास-क्षेत्र की भाँति था। इन्होने अपने उपन्यासो के द्वारा लाखो पाठको का निर्माण किया उनमे वाचनाभिरुचि जगाई तथा उपन्यास को ऐयारी और तिलस्मी के रगमहल से बाहर निकाल कर उसे यथार्थ की ठोस भूमि पर ला खडा किया। सवाद-कौशल की दृष्टि से इनके उपन्यास अद्वितीय हैं।

प्रेमचद की देखादेखी इन्होंने भी कर्णाटक मे प्रगतिशील साहित्यकारो का सगठन किया और स्वय उनके अध्यक्ष बने। इसके बाद ये प्रकृतवाद की ओर झुके। 'नग्न सत्य', 'शनिसतान', 'सजेगत्तलु', आदि मे इन्होने वेश्या-जीवन का नग्न चित्र प्रस्तुत किया। इसका विरोध भी हुआ। अपने पक्ष के समर्थन मे इन्होने 'साहित्य तथा काम प्रचोदन' नामक एक पुस्तक लिखी। ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना मे भी इन्हें काफी सहायता मिली।

'अग्निकन्ये', 'किडी', आदि इनके दस कहानी-संकलन हैं जिनमे प्रगतिवाद का ही बोलबाला है। 'गोमुख

व्याघ्र', 'बेण्णर बीसणिगे' आदि इनके प्रख्यात नाटक हैं। 'स्वामी विवेकानंद', 'कैलासम्' (दे०), 'दीनबंधु कबीर', 'बापू' आदि इनके द्वारा लिखित श्रेष्ठ जीवनियाँ है। पोरके (झाड़ू) 'होसहोट्टू' आदि में इनके श्रेष्ठ निबंध संगृहीत हैं। 'बरहगारू बदुकु' इनकी आत्मकथा है। ये अच्छे समालोचक थे। 'साहित्य और जन-जीवन', 'साहित्य और संस्कृति', 'साहित्य समाराधन' आदि में साहित्यिक समस्याओं पर मौलिक ढंग से प्रकाश डाला गया है। वीर-शैव साहित्य के ये अधिकारी विद्वान् थे। 'वीरशैव साहित्य भक्त-संस्कृति' इनकी श्रेष्ठ कृति है।

कृष्णराव कन्नड साहित्य में विद्रोह के प्रतीक थे। ये सफल पत्रकार भी थे। समस्याओं की गहराई में न जाने के कारण सत्य के स्थान पर ये छाया मात्र को पकड़ पाते है—इसी कारण इनकी कृतियों में स्थायित्व नहीं है।

कृष्णराव, जी० वी० *(ते० ले०)*

श्री कृष्णराव का योगदान यों तो अनेकमुखी है परंतु आलोचक और उपन्यासकार के रूप में इनकी विशेष प्रसिद्धि है। ये विजयवाड़ा के आकाशवाणी केंद्र से संबंधित हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'कीलुबोम्मलु', 'चैत्ररथ' (उपन्यास), 'आदर्शशिखरालु' (नाटक-संग्रह), 'कलापूर्णोदयमु' (दे०) की समीक्षा, 'काव्यजगत्' (आलोचनात्मक ग्रंथ) और अन्य कई नाटक, कहानी, कविता आदि। 'प्लेटो आदर्शराज्यमु' इनका अनुवाद-ग्रंथ है। 'कीलुबोम्मलु' में लेखक ने ग्रामीण जीवन की भावनाओं की मार्मिक व्यंजना की है। 'भिक्षापात्र' नामक नाटक में इन्होंने साम्यवादी दृष्टिकोण से एक पौराणिक घटना का पुनर्नियोजन किया है। अपने काव्य-जगत में इन्होंने मार्क्स के सिद्धांतों के आधार पर आधुनिक काव्य-जगत की समीक्षा की है। 'कलापूर्णोदयमु' नामक तेलुगु काव्य की समीक्षा मे इनकी आलोचनात्मक क्षमता का पूरा परिचय मिलता है। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास और आलोचना आदि विविध साहित्यिक विधाओं में इनकी समान गति है।

कृष्णराव, मुटनूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1879 ई०; मृत्यु—1945 ई०]

इनका निवास-स्थान मछलीबंदर था। बचपन में ही इन्होंने अपने माँ-बाप को खो दिया था। 1896 ई० में मैट्रिक परीक्षा में पास हुए। एफ़० ए० के लिए ये नोबेल कालिज में पढ़े परंतु पास नहीं हो सके।

कृष्णराव जी का सामाजिक एवं दार्शनिक व्यक्तित्व महत्वपूर्ण है। ये बंगदेश के महान् नेता विपिन चंद्रपाल आदि के संपर्क में रहे तथा इनकी विचारधारा अरविंद घोष (दे०) से भी काफ़ी प्रभावित रही। गांधीवाद से भी ये अत्यंत प्रभावित हुए। आंध्रप्रदेश के उस समय के गण्यमान्य नेताओं में इनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है।

साहित्यिक क्षेत्र में इनकी आलोचनात्मक कृति 'समीक्षा' का बहुत आदर विद्वज्जगत् में है। वास्तव में तेलुगु गद्यनिर्माताओं में इनका अन्यतम स्थान है। ये बहुत समय तक 'कृष्णा' पत्रिका के संपादक रहे। और इनके अग्रलेख साहित्यिक गरिमा से शोभित रहते थे। इनकी कलम की छटा इनके अग्रलेखों में पाई जाती है।

इनकी दार्शनिक विचारधारा ब्राह्मसमाज तथा अरविंद से प्रभावित रही। फलतः इनकी लेखमाला 'लोवेलुगुलु' (आंतरिक प्रकाश-रेखाएँ) अपने गहरे विचारों एवं अध्ययन-गंभीरता के लिए प्रसिद्ध हुई है।

कृष्णशर्मा, बेटगेरी *(क० ले०)*

बेटगेरी कृष्ण शर्मा का काव्यनाम 'आनंदकंद' है। आपका जन्म 1900 ई० में बेलगाँव जिले के गोकाक तालुके के बेटगेरी गाँव में एक संभ्रांत ब्राह्मण-परिवार में हुआ। अल्पायु में ही पिता का स्वर्गवास हो जाने से वे स्थानीय परीक्षा तक ही शिक्षा प्राप्त कर सके पर उन्होंने स्वाध्याय से बहुत-कुछ सीखा। धारवाड़ में उन दिनों बेंद्रेजी (दे०) के नेतृत्व में 'गेळेयर गुंपु' के नाम से विख्यात तरुण-कवियों की एक मंडली थी जिसके वे सक्रिय सदस्य बन गए। कृष्ण शर्मा जी ने लोक-साहित्य से अधिक प्रेरणा पाई है। कर्णाटक की सांस्कृतिक जागृति में उन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है। कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, आलोचक एवं संपादक के नाते आपने बहुत बड़ी साधना की है। 'मुद्दनमातु', 'अरुणोदय', 'विरहिणी', 'ओडनाडि', 'कारहुण्णिवे' आदि आपके प्रमुख कविता-संकलन हैं। 'मुद्दनमातु' रवींद्रनाथ की 'Gescent Moon' से प्रभावित शिशुकाव्य है। 'विरहिणी' और 'ओडनाडि' (साथी) में प्रणय-जीवन का चित्रण है। आनंदकंद जी के गीतों में देश-प्रेम, भाषा-प्रेम, प्रकृति-प्रेम आदि की उत्कट व्यंजना है। कन्नड में ग़ज़ल-शैली का प्रयोग करने वालों में आप सर्वप्रथम हैं। आपने करीब तीस कहानियाँ भी लिखी हैं। 'मातनाडुवकल्लुगळु'

(बोलते पत्थर) मे शिलालेखो के आधार पर रचित कहानियाँ है। लोकजीवन एव लोकसस्कृति से ये अनुप्राणित हैं। 'सुदर्शन', 'राजयोगी', 'अशातिपर्व', 'मल्लिकार्जुन' आदि आपके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है। 'कर्णाटक जन-जीवन' आपका शोधग्रथ है। अपनी बहुमुखी प्रतिभा से आपने कन्नड साहित्य की अनवरत सेवा की है।

कृष्णशर्मा, सिद्धवनहल्लि *(क० ले०)*

कन्नड के महान गाधीवादी साहित्यकार सिद्धवनहल्लि कृष्णशर्मा का जन्म 1904 ई० मे हुआ। आप अल्पावस्था मे ही महात्मा जी की पुकार सुनकर स्वराज्य-सग्राम मे कूद पडे और अपना जीवन राष्ट्र के लिए अर्पित कर दिया। आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ ये है—'पर्णकुटि', 'सरदार वल्लभभाई', 'स्थितप्रश्न', 'दर्शन', 'होसयुगधर्म' (नवीन युगधर्म) आदि। आप कन्नड के सर्वश्रेष्ठ वैचारिक निबधकार हैं। आपने बाबू राजेंद्रप्रसाद की आत्मकथा का सफल अनुवाद किया है। बापूजी के पत्रो का तथा 'हरिजन' के सैंकडो लेखो का कन्नड अनुवाद भी आपने प्रस्तुत किया है। पर्णकुटि' मे बापू के आश्रम तथा आश्रमजीवी बापू के अतीव मार्मिक चित्र है। इतने सुदर रेखाचित्र कम ही मिलेंगे। विचार एव अनुभूति का मजुल सामजस्य आपकी शैली की विशेषता है। आपकी भाषा विषयानुकूल, प्रखर एव प्रभविष्णु है।

कृष्णशास्त्री, डा० ए० आर० *(क० ले०)* [जन्म—1890 ई०, मृत्यु—1968 ई०]

कन्नड के धीमत आलोचको मे श्री ए० आर० कृष्णशास्त्री का विशेष स्थान है। इनका जन्म चिक्कमगलूर जिले के अबळे नामक ग्राम मे हुआ था। इनके पिता श्री रामकृष्णशास्त्री मैसूर की सस्कृत पाठशाला मे व्याकरण के प्रोफेसर थे। सस्कृत तथा कन्नड का ज्ञान इन्होने अपने पिता से प्राप्त किया। महाराजा कालेज, मैसूर से बी० ए० करके मद्रास वि० वि० से इन्होंने एम० ए० किया था। सेंट्रल कालेज, बेंगलूर तथा महाराजा कालेज, मैसूर मे इन्होने कन्नड अध्यापक के रूप मे काम किया। अत मे कन्नड प्रोफेसर की हैसियत से ये सेवा-निवृत्त हुए। ये कन्नड के गभीर विद्वानो मे से हैं। कन्नड, तमिल सस्कृत, बँगला, अँग्रेजी तथा जर्मन भाषाओ पर इनका अच्छा अधिकार था। ये कवि नही, कविजनो के निर्माता थे। डा० पुट्टप्पा (दे०) जैसे कवि इनके शिष्य रहे हैं। ये 'प्रबुद्ध कर्णाटक' नामक त्रैमासिक पत्र के जन्मदाता तथा यशस्वी सपादक थे। हैदराबाद मे सपन्न कन्नड साहित्य सम्मेलन के ये अध्यक्ष थे।

कृष्णशास्त्री जी की प्रसिद्ध रचनाओ मे 'भासकवि', 'सस्कृत नाटक', 'हरिश्चद्र-काव्य-सग्रह', 'सर्वज्ञ', 'कथामृत', 'वचनभारत', 'बकिमचद्र', 'निर्मलभारती', 'श्रीपतियकतेगळु', 'भाषणगळु मत्तु लेखनगळु' आदि प्रमुख हैं। इनकी पकड अद्भुत थी। ग्रथ के गुण-दोषो पर तुरत इनकी नजर पडती थी। इन्होने सस्कृत के काव्यशास्त्र का गहरा अध्ययन किया था। उसका निचोड इन्होंने 'कन्नड कैपिडि' (दे०) के प्रथम सपुट मे दिया है। 'सस्कृत नाटक' मे सस्कृत नाटक-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास है। प्रत्येक कवि के नाटको का सुदर साराश तथा तटस्थ आलोचना है। 'भासकवि' मे सस्कृत-कवि भास-विषयक वाद-विवाद तथा उसके सभी नाटको की सारग्राही एव प्रौढ आलोचना है। 'बकिमचद्र' इनकी सर्वश्रेष्ठ आचार्य कृति है। बकिमचद्र जी के व्यक्तित्व एव कृतित्व का इतना सुदर अध्ययन शायद ही किसी भाषा मे हो। ये कन्नड के सर्वश्रेष्ठ गद्यकार है। 'कथामृत' मे इन्होने जनप्रिय शैली मे 'कथासरित्सागर' की कहानी लिखी है तो 'वचनभारत' कर्णाटक के जन-जन का कठहार है। 'श्रीपतियकतेगळु' मे इनकी मौलिक कहानियाँ है। 'भाषणगळु मत्तु लेखनगळु' मे समय समय पर लिखे इनके लेखो का सग्रह है। ये आदर्श शैलीकार हैं। सस्कृत नाटको पर लिखते समय इनकी शैली अत्यत प्रौढ है तो बच्चो के लिए इन्होने अत्यत सरल शैली मे महाभारत लिखा है। आधुनिक कन्नड के कर्मठ सेवी तथा दिग्गज विद्वान के रूप मे इनका नाम सदा स्मरणीय रहेगा।

कृष्णशास्त्री, देवुलपल्लि *(ते० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

इनका जन्म विद्वान् कवियो के वश मे हुआ था और ये बगाल मे कुछ समय रह कर वहाँ से ब्राह्मसमाज के सिद्धातो तथा वहाँ की साहित्यिक गतिविधियो से प्रेरणा ग्रहण करके आए थे।

ये तेलुगु की 'भावकविता' (दे०) के विशुद्ध उदाहरण एव उसके सर्वोत्कृष्ट कवि है। इस प्रवृत्ति की कविता को जो प्रतिष्ठा तेलुगु साहित्य मे मिली, उसका अधिकाश श्रेय इन्ही को दिया जाना चाहिए। स्वच्छद प्रवृत्ति, भग्नप्रेम, निर्वेद, दार्शनिक दृष्टि, अलौकिक

सौंदर्य-प्राप्ति की लालसा, आदि अनेक प्रवृत्तियाँ इनकी कविता में अभिव्यक्त हुई हैं। इन्होंने रोदन को भी कलात्मकता प्रदान करके, उसे उदात्त एवं स्पृहणीय बना दिया है। इस शाखा के अनेक युवक कवियों के लिए ये सदा आदर्श बने रहे हैं।

इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'कृष्णपक्षमु' (दे०), 'प्रवासमु', 'उर्वशी' आदि। ये भाव, वचन, लेखन सभी में कविता की मानो साकार मूर्ति हैं। जो समाज व्यक्ति को नाना प्रकार के बंधनों से मुक्त करके सुख एवं शक्ति प्रदान नहीं कर सकता, उस समाज के विरुद्ध विद्रोह करके, इन्होंने केवल अपने सुख-दुःखों को ही काव्य-वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया है। कभी ये छोटे अवसाद में गा उठते हैं : 'मैं शोक-तिमिर के भयंकर लोकों का राकैकपति हूँ', और कभी मधुर उल्लास में मुक्त कंठ से गाने लगते हैं : 'आज मुझमें वृंदावन की शोभा प्रदीप्त हो रही है।' छंदोबद्ध कविता एवं प्रगीत दोनों में इनकी कारीगरी की तुलना तेलुगु के किसी अन्य कवि से नहीं की जा सकती; भाव एवं भाषा, कोमलता एवं माधुर्य एक दूसरे से आगे बढ़ी हुई-सी दिखाई देती हैं। निस्संदेह, कृष्णशास्त्री आधुनिक तेलुगु कविता के एक युगपुरुष हैं।

कृष्णसिंह *(उड़ि० ले०)* [जन्म—1739 ई०; मृत्यु—1788 ई०]

गंजाम जिले के धराकोट राजवंश में कृष्णसिंह ने जन्म लिया था। पिता नीलाद्रि सिंह के तीन पुत्रों में ये द्वितीय थे। संस्कृत भाषा का इन्हें अच्छा ज्ञान था। राजा की अपेक्षा एक भक्त एवं सुविज्ञ पंडित के रूप में ये अधिक विख्यात हैं। राजकार्य मनोनीत व्यक्ति को सौंप कर ये आजीवन धर्म-साधना और साहित्य-सेवा में लीन रहे। कृष्णसिंह वैष्णव धर्मावलंबी थे।

जो दो उड़िया महाभारत उड़ीसा में सर्वत्र आदृत हैं, उनमें पहला है सारलादास (दे०) का और दूसरा है राजकवि धर्मप्राण कृष्णसिंह का। महाभारत के आक्षरिक अनुवादकों में ये सर्वप्रमुख हैं। सारला-महाभारत (दे०) एक स्वतंत्र मौलिक रचना है और निश्चित रूप से कृष्णसिंह के अनूदित महाभारत से अधिक महत्वपूर्ण है, किंतु संस्कृत महाभारत का आनंद कृष्णसिंह के महाभारत (दे०) में ही प्राप्त हो सकता है। भाषा प्रतिपाद्य के अनुरूप पांडित्यपूर्ण है, किंतु साथ ही उड़िया भाषा की विशिष्टता की रक्षा भी हुई है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक स्फुट कविताओं और चौपदियों की रचना भी की है।

केंद्रसभा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1929 ई०]

सत्यनाथ बरा के इस संग्रह में अनेक स्केच संगृहीत हैं, जिनमें लेखक ने अपने समाज के अंधविश्वासों और कुरीतियों पर व्यंग्य किया है। इनके व्यंग्य में हास्य भी है।

केका *(मल० पारि०)*

यह एक द्रविड़ वृत्त है। प्रत्येक पंक्ति में चौदह अक्षर होते हैं। मात्राएँ 28 होती हैं और सातवें अक्षर के अंत में यति होती है।

केकारव *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1903 ई०]

'केकारव' श्री सुरसिंह तख्तसिंह गोहिल कलापी (दे०) (लाठी नरेश) की कविताओं का एकमात्र संग्रह है। इसका संपादन व प्रकाशन कलापी की मृत्यु के उपरांत उनके मित्र कांत के हाथों संपन्न हुआ। 'केकारव' की चौथी आवृत्ति के अनुसार इस संग्रह में कलापी की 241 कविताएँ संगृहीत हैं। कलापी काव्य के मूल में प्रेम को स्वीकार करते थे और कविता लिखने की प्रवृत्ति उनके लिए हृदय के आवेग को वाणी दे कर इच्छा तृप्त करने का साधन थी। 'एकांत आनंद' को निजी वस्तु बना लेना ही इनके लिए कला थी। अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स और बायरन आदि की रोमानी वृत्ति से परिचित-प्रभावित, तीव्र राग-विराग से संसक्त, प्रकृति-सौंदर्य पर मुग्ध, प्रेम की पीर से भरपूर, सूफ़ियाना मस्ती में डूबे और एकांततः वैयक्तिक अनुभूति को वाणी देने वाले कलापी की इन कविताओं में उक्त स्वर ही प्रमुख है। इनकी रचनाओं में संस्कृत के शार्दूलविक्रीडित, उपेंद्र-वज्रा, मालिनी, स्रग्धरा, हरिगीत वसंततिलका, शिखरिणी, मंदाक्रांता, इंद्रवज्रा आदि छंदों का, फ़ारसी की ग़ज़लों का और गीत शैली का मुक्त प्रयोग मिलता है। रुदन-प्रेम, विषाद का अतिरेक, भावातिशयता और कला की अनगढ़ता के उपरांत भी कलापी का 'केकारव' पिछले छह दशकों से साहित्य-प्रेमियों के लिए सतत आकर्षण का विषय बना रहा है।

केकावली *(म० कृ०)*

कवि मोरोपत की वृद्धावस्था की यह रचना है। इनका यह लगभग अतिम काव्य है। इसम कथानक नही, यह स्फुट काव्य है। इसकी मौलिकता असदिग्ध है। 'केका' का अभिप्राय है—मोर की आवाज़। मेघो के दर्शनार्थ मोर आर्तस्वर मे चिल्लाता है। कवि मोरोपत भगवान के दर्शनो के लिए आर्तवाणी मे अपनी आतुरता व्यक्त कर रहे हैं। 'केकावली' भक्ति रस और करुण रस से परिपूर्ण काव्य है। भगवान की असीम शक्ति पर कवि को दृढ विश्वास है। वार्धक्य-जर्जर शरीर मे एक ही शक्ति अवशिष्ट रही है—वह है वाणी। कवि ने अतर्मन से भक्ति भाव मे डूबकर अपनी वाणी मे यथासभव प्रभविष्णुता उत्पन्न कर दी है। इस काव्य को पढते हुए पाठक का मन रसार्द्र हो उठता है। प्रसिद्ध इतिहास लेखक पागरकर ने इस काव्य के विषय मे लिखा है, 'केकावली' पढते ही मोरोपत के काव्यगुणो के विषय मे जो सदेह हो उसका तत्काल निराकरण हो जाता है। ध्वनिकाव्य का यह आदर्श उदाहरण है। परिणतप्रज्ञ की यह वाणी है। शब्द रचना, नाद-माधुर्य, भावार्द्रता सभी का इसमे मणिकाचन सयोग है।'

केतकरचरित्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1959 ई०]

इस चरित्र के लेखक श्री द० न० गोखले है। चरित्रकार ने निवेदन मे ही स्वीकार किया है कि इस चरित्र के रूप मे ज्ञानकोशकार डॉ० श्री० व्य० केतकर (दे०) का सत्य तथा सजीव चरित्र लिखने का सकल्प किया गया है। गोखले जी के पी-एच० डी० शोध प्रबध का विषय केतकर से सबधित ही था। शोध करते हुए ही इन्हे चरित्र लिखने की सूझी थी। यह चरित्र, चरित्र-लेखन का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है। इसमे चरित्र-नायक सबधी गभीर चर्चा प्रमुख न होकर, विभिन्न घटनाओ के निर्देश द्वारा केतकर जी के चरित्र का स्पष्टीकरण ही महत्वपूर्ण है।

लेखक ने केतकर के जीवन से सबधित विविध सामग्री का सकलन प्रकाशित वाड्मय, लिखित सस्मरण, पत्र तथा स्मृतियो के आधार पर किया है। केतकर का व्यक्तित्व बहुमुखी था एव उनकी कर्तृत्व-शक्ति प्रचड थी। इसमे केतकर के बाल्यकाल, उनकी महत्वाकाक्षा, उनके स्वभाव, अमरीका मे अध्ययन करते समय की उनकी दीर्घ परिश्रमशीलता, 'ज्ञानकोश-रचना' का प्रारभ, रचना मे आने वाली उनकी कठिनाइयो, उनके कौटुबिक जीवन, उनकी अनन्य देश निष्ठा आदि पहलुओ का मार्मिक उद्घाटन किया गया है।

तटस्थ दृष्टि एव सत्यकथन का आग्रह इस चरित्र की सफलता का मर्म है। यह सग्रहणीय चरित्र-ग्रथ है।

केतकर, व्य० *(म० ले०)* [जन्म—1884 ई०, मृत्यु—1937 ई०]

ज्ञान-मार्ग से देशभक्ति की साधना करने वाले डा० केतकर का जन्म अमरावती मे हुआ था। वहीं से मैट्रिक कर इन्होने बबई के विल्सन कालिज से इटर किया और फिर अमरीका जाकर समाजशास्त्र मे बी० ए० और एम० ए० किया। 'द हिस्ट्री ऑफ कास्ट्स इन इडिया' विषय पर शोध प्रबध लिख कर इन्होने पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। प्रारभ से ही इन्हे व्यापक अध्ययन के प्रति रुचि थी और विस्तृत ज्ञान के कारण इन्हे 'चलता-फिरता ज्ञानकोश' कहा जाता था। जिन विषयो पर इन्होंने लेखनी उठाई है—उदाहरणार्थ समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, हिंदू लॉ, इतिहास, काव्य, राजनीति आदि—उनसे भी इनके विस्तीण ज्ञान-क्षेत्र का पता चलता है। निरतर ग्यारह वर्ष के परिश्रम से तेईस खडो का 'ज्ञानकोश' प्रकाशित करने के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक, कहानी और कविता लिखकर इन्होने सरस्वती के भडार को समृद्ध किया है। इनके उपन्यास भाषा-लालित्य और विषय-सौदर्य के कारण ही नही अपितु गभीर समाजशास्त्रीय विषयो के कारण प्रसिद्ध हैं। कला की दृष्टि से इन्हे अधिक सफल नही कहा जा सकता क्योकि इनके पात्र, प्रसग और भाषा स्वाभाविक नही है। चार-पाँच पात्रो, दो-चार प्रसगो की योजना कर ये उपन्यास के बहाने अपने शास्त्रीय और ऐतिहासिक विचार गभीर भाषा मे व्यक्त करते हैं। एक अन्य दोष जो इनके उपन्यासो मे मिलता है वह है समसामयिक जीवित व्यक्तियो—लाला लाजपतराय, रवीद्रनाथ (दे०) टैगोर, इतिहासकार वि० का० राजवाडे (दे०) आदि का नाम बदलकर उनकी कटु आलोचना। उत्पीडितो के प्रति अनुकपा जाग्रत करने तथा विचारोत्तेजक होने पर भी इनके उपन्यास कला की दृष्टि से सफल नही है अत ये उपन्यासकार की अपेक्षा कोशकार के रूप मे ही स्मरण किए जाएँगे।

प्रसिद्ध रचनाएँ—'महाराष्ट्र ज्ञानकोश', 'परांगदा' (दे० लाला गणपतराय), 'गांवसासू', 'ब्राह्मण-कन्या', 'विचक्षणा', 'गोंडवनांतील प्रियंवदा' (दे० वैजनाथ शास्त्री), 'आशावादी' (दे० स्वामी) आदि ।

केतकादास क्षेमानंद *(बं० ले०)*

अनुमान है इनका नाम क्षेमानंद अथवा क्षमानंद था और केतकादास अर्थात् 'मनसा का सेवक' इनकी उपाधि थी परंतु परवर्ती काल में भ्रम से ये दो व्यक्ति समझ लिये गए । दक्षिण राढ़ में दामोदर नदी के दक्षिण अथवा पश्चिम तट पर इनका निवास-स्थान था । जाति के ये कायस्थ थे । अनुमानतः इनके पिता का नाम शंकर मंडल था।

इनकी कृति 'मनसा-मंगल' है जो अनुमान से 1640-50 के मध्य लिखी गई थी । 'मनसा-मंगल' के कथानक में कोई मौलिकता नहीं परंतु इसमें पूर्ववर्ती मनसा-मंगल-काव्यों के प्रसंगों को कहीं अच्छे रूप में प्रस्तुत किया गया है । कवि की रचना रीति एवं परिकल्पना में पूर्ववर्ती कवि मुकुंदराम (दे० चक्रवर्ती, मुकुंदराम) का प्रभाव देखा जा सकता है ।

क्षेमानंद मनसा-मंगल के ये सर्वश्रेष्ठ कवि है । पश्चिम बंग में इनके ग्रंथ का सर्वाधिक प्रचार है । इनकी रचना में उत्कृष्ट पांडित्य एवं कवित्व के दर्शन होते हैं । इनकी विशेषता है सरलता एवं सहृदयता । जिस प्रकार कृत्तिवास (दे०) की रामायण का बंगाल के घर-घर में प्रचार है, उसी प्रकार 'मनसा-मंगल' परंपरा के बंग प्रदेश में इनका अपना विशिष्ट स्थान है ।

केतना *(तें० ले०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

ये महाकवि तिक्कना (दे०) के समसामयिक थे । इनका पूरा नाम मूलघटिक केतना है । 'आंध्र-महाभारतमु' (दे०) के अनुवादकर्ता तिक्कना के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुए इन्होंने अपने 'दशकुमारचरित्र' को उन्हें अर्पित किया था । ये न केवल संस्कृत के काव्य-साहित्य के मर्मज्ञ थे, अपितु शास्त्र-साहित्य के भी अच्छे ज्ञाता थे। ये परम शिवभक्त थे । इनकी रचनाएँ हैं : 'दशकुमारचरित्र', 'आंध्रभाषाभूषणमु' और 'विज्ञानेश्वरीयमु' (दे०) । इनमें 'दशकुमारचरित्र' 12 आश्वासों का एक कथात्मक तेलुगु काव्य है । दंडी (दे०)-कृत संस्कृत 'दशकुमारचरित्र' (दे०) इसका आधार है। संस्कृत-गद्यकाव्य को इन्होंने तेलुगु में चंपू शैली में प्रस्तुत किया । इसकी साहसपूर्ण कथाओं में शृंगार तथा हास्य का सुंदर समन्वय पाया जाता है । 'आंध्रभाषाभूषणमु' व्याकरण ग्रंथ है । इनके पहले तेलुगु भाषा के लिए जितने व्याकरण लिखे गए उन सबकी भाषा संस्कृत थी । तेलुगु के लिए तेलुगु भाषा में ही लिखित व्याकरणों में 'आंध्रभाषाभूषणमु' ही सर्वप्रथम है। संस्कृत में याज्ञवल्क्य मुनि ने आचार कांड, प्रायश्चित कांड, तथा व्यवहार-कांड से युक्त एक स्मृति-ग्रंथ की रचना की और उसकी 'मिताक्षरी' नामक व्याख्या भी लिखी । केतना का 'विज्ञानेश्वरीय' उक्त व्याख्या सहित मूलग्रंथ का तेलुगु अनुवाद है । इनमें 'दशकुमारचरित्र' की रचना के आधार पर ही इनको उत्तम कवि की ख्याति प्राप्त हुई । ललित शब्दों के प्रयोग के लिए संस्कृत-साहित्य में दंडी ने जो यश प्राप्त किया वही तेलुगु-साहित्य में केतना को भी मिला । इनको 'अभिनव दंडी' कहा जाता है । शृंगार और हास्य रसों से युक्त साहसपूर्ण कहानियों के वर्णन में केतना ने मूलग्रंथ के लेखक की ही तरह अनुपम प्रतिभा दिखाई है । व्याकरण, धर्मशास्त्र और कविता रूपी भिन्न स्वभाव वाले क्षेत्रों में समान प्रतिभा प्रदर्शित करना इनकी विशेषता है। तेलुगु में लिखित सर्वप्रथम व्याकरण (तेलुगु भाषा से संबद्ध), धर्मशास्त्र-ग्रंथ तथा कथात्मक काव्य भी इन्हीं के हैं ।

केतेकी *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1918 ई०]

रघुनाथ चौधारी के इस संग्रह की कविताओं में पक्षियों के कलरव में विश्वरागिनी का स्वर बताया गया है । पक्षियों की प्रत्येक चेष्टा में अपरूप शाश्वत सौंदर्य के दर्शन किए गए हैं । संस्कृत शब्दावली का प्रयोग है । लेखक पर कालिदास (दे०) का विशेष प्रभाव है । विहंग-संबंधी कविताओं की दृष्टि से पुस्तक भारतीय साहित्य में विशेष स्थान रखती है ।

केतोटि कथा *(उड़ि० कृ०)*

यह नंदिनी शतपथी (दे०) की समय-समय पर लिखी कतिपय कहानियों का संकलन है । कहानियाँ साधारणतः आकार में लघु तथा अत्यंत प्रभावशाली हैं । भाषा-प्रयोग में लेखिका की पारदर्शिता उल्लेखनीय है । कहानियों की विषय-वस्तु सामान्यतः सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन

की सारी समस्याओ से सबधित है। उनमे प्रचुर मानवीय सवेदना देखने को मिलती है। सकलन की अतिम कहानी 'जनपथ' मे इसी सवेदना की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। सवेदना के अतराल से उद्भासित वैचारिक तीक्ष्णता इन कहानियो को तरल गाभीर्य प्रदान करती है।

केरल कौमुदी *(मल० कृ०)*

श्री कोवुण्णि नेटुङ्डाडि (दे०) ने सन् 1878 मे 'करल कौमुदी' नाम से एक व्याकरण-ग्रथ की रचना की। इसके पहले जितने व्याकरण-ग्रथो की रचना हुई है उनमे प्रस्तुत ग्रथ का स्थान अन्यतम माना जाता है। चौदह अलकार और कुछ वृत्तो के लक्षण और उदाहरण सुचारु रूप से दिए गए है। द्राविड वृत्तो पर प्रकाश डालने वाला यह प्रथम ग्रथ है।

केरळत्तिले काळ सेवा *(मल० कृ०)*

इसके लेखक डा० चेलनाट अच्युत मेनन हैं। करल मे प्राचीन काल से सर्वशक्ति-सपन्न काली (देवी) की उपासना की रीति परपरा जन रूप से प्रचलित रही है। कई देवी-मदिरो मे उत्सव के समय भक्तिपूर्वक ये गीत गाए जाते हैं। मण्णन्, पाणन् आदि समाजो के स्त्री पुरुषो के बीच इनका बडा प्रचार है।

केरलपाणिनीयम *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1896 ई०]

यह ए० आर० राजराज वर्मा (दे०) का प्रशस्त व्याकरण-ग्रथ है। सन् 1896 मे प्रकाशित इस ग्रथ का सर्वाद्धित रूप सन् 1917 मे पुन प्रकाश मे आया था। मलयाळम भाषा के इस व्याकरण का निबधन सस्कृत-वैयाकरणो की परपरा मे सूत्र रूप से हुआ है। प्रत्येक सूत्र की विशद चर्चा भी पुस्तक मे सम्मिलित है। ग्रथ चार काडो मे विभक्त है जिनमे क्रमश शिक्षा परिनिष्ठा, आकाक्षा और निरुक्ति की चर्चा है।

इस ग्रथ के रचना-काल मे जो चार-पाँच व्याकरण ग्रथ उपस्थित थे वे पूर्ण या प्रामाणिक नही थे। 'केरलपाणिनीयम्' इस क्षेत्र का सर्वप्रथम प्रामाणिक ग्रथ है और उसका यह स्थान आज भी अक्षुण्ण है। उन्होंने शब्दो को पाच शीर्षको मे विभाजित किया—नाम, कृति, भेदक, निपात और अव्यय। इस प्रकार की अनेक व्यवस्थाएँ लाकर केरलपाणिनि ने व्याकरण का अध्ययन सरल किया।

इस ग्रथ के महत्व का यही प्रमाण है कि आज तक किसी अन्य विद्वान ने इसमे सशोधन की आवश्यकता नही समझी और किसी नए व्याकरण की रचना नही की।

केरलभाषयुटे विकासपरिणा मङ्डळ् *(मल० कृ०)*

यह इळकुळम् कुञ्जन् पिळ्ळा (दे०) का भाषा-वैज्ञानिक ग्रथ है। इसमे मलयाळम के विकास के सबध मे नूतन मत स्थापित किया गया है। कुञ्जन् पिळ्ळा ने भाषा के रूप निर्धारण के लिए इतिहास का सहारा लिया है। उनकी सूचना और शोध के मूल स्रोत विभिन्न शिलालेख है। इन शिलालेखो का विश्लेषण करके लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि केरलीय भाषा का विकास तमिल और मलयाळम की एक मिश्र भाषा के रूप मे हुआ है। भाषा-वैज्ञानिक शोधग्रथो मे इसका स्थान महत्वपूर्ण है।

केरलभाषाविज्ञानीयम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1951 ई०]

यह डा० के० गोदवर्मा (दे०) का भाषावैज्ञानिक ग्रथ है। इसमे भाषाओ की उत्पत्ति, विभिन्न शाखाओ मे विभाजन, भारतीय आर्य और द्राविड भाषाओ की विशेषताएँ आदि विषयों पर विस्तृत चर्चा के बाद मलयाळम के विकास के इतिहास और भाषावैज्ञानिक स्वरूप का विवेचन किया गया है।

इस ग्रथ मे लेखक ने इस परपरागत मत का खडन किया है कि मलयाळम का विकास तमिल की एक उपभाषा के रूप मे हुआ है। उन्होंने आट्टूर कृष्ण पिषारटी (दे०) के इस मत का समर्थन किया है कि तमिल और मलयाळम दोनो का विकास मूल द्राविड भाषा से स्वतत्र रूप मे हुआ है। आजकल के प्राय सभी भाषाविज्ञ इस नूतन सिद्धात से सहमत है। सामान्य भाषाविज्ञान की प्रामाणिक पाठ्य पुस्तक के रूप मे भी यह ग्रथ महत्वपूर्ण है।

केरलवर्मा रामायणम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानत 1679 और 1696 ई० के बीच]

इसके लेखक केरलवर्मा तपुरान हैं। केरलवर्मा (वीर केरलवर्मा) का जन्म तो उत्तर मलाबार मे

कोट्टयम् में हुआ पर बाद में ये त्रावनकोर-राजपरिवार के सदस्य हो गए। श्री तुंचत्तेषुत्तच्छन (दे०) के पश्चात् उनके द्वारा प्रयुक्त किळिप्पाट्टु (दे०) में मलयाळम काव्य रचने का श्रेय सुप्रसिद्ध कवि केरलवर्मा को ही है। केरलवर्मा ने 'वाल्मीकि रामायण' (दे०) का जो अनुवाद प्रस्तुत किया वह 'केरलवर्मा-रामायणम्' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वाल्मीकि (दे०) की भाव-संपदा सुबोध शैली में मलयाळम काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करना कवि का ध्येय था। सुंदरकांड तक के खंड ही केरलवर्मा ने अनूदित किए थे, बाद में किसी ने युद्धकांड लिखकर जोड़ दिया जो काव्य-गुण की दृष्टि से कहीं नीचे है। इस काव्य के अनेक प्रसंग भावपूर्ण एवं सरस हैं। ठेठ मलयाळम तथा संस्कृत शब्दों के कई उत्तम उदाहरण इसमें मिलते हैं। मलयाळम साहित्य की रामकाव्य-धारा में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

केरलसाहित्यचरित्रम् *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1953 ई०; लेखक—उळ्ळूर् (दे०) परमेश्वरय्यर]

इस बृहत् इतिहास के रचयिता उळ्ळूर् अपने समय के अद्वितीय अनुसंधाता विद्वान थे। महाकवि के रूप में भी इनका योगदान महत्वपूर्ण है परंतु प्राचीन शिलालेखों, विवादग्रस्त पांडुलिपियों, दुर्लभ ग्रंथों आदि के क्षेत्र में तपस्साधक की तरह अथक अनुसंधान करने में भी वे बेजोड़ रहे हैं।

मलयाळम भाषा और साहित्य के इतिहास की केवल एक माला ही मिलती है। श्री गोविन्दपिल्लै, शेषगिरि प्रभु, आदि पहली पीढ़ी के इतिहासकार थे। श्री पियारटि (दे०) नंपियार, आदि ने संक्षिप्त परिचयात्मक पुस्तकें ही लिखीं। आधुनिक युग में श्री आर० नारायण पणिक्कर का कई जिल्दों में लिखा 'मलयाळम साहित्य का इतिहास' ही वर्षों तक उपलब्ध था। इसमें प्रामाणिकता और विवेचनात्मकता की कमी थी। महाकवि उळ्ळूर् ने वर्षों के परिश्रम से अपने साहित्य का इतिहास पूरा किया। अनुसंधान इनका प्रिय विषय था ही। ये इतिहास की सामग्री जुटाते ही रहे और विलक्षण साधना के फलस्वरूप समग्र इतिहास तैयार किया। यह पाँच जिल्दों में प्रकाशित हुआ है।

इसमे विद्वान लेखक ने साहित्य-धाराओं, कवियों-कृतिकारों और प्रमुख कृतियों का विशद विवेचन किया है। अब प्राचीन ग्रंथों के संबंध में संतोषजनक विवरण यदि कहीं एक जगह मिलता है तो उळ्ळूर के इस इतिहास में ही। आत्मगत तथ्यों के विस्तृत उल्लेख का मोह वे निश्चय ही संवरण नहीं कर सके परंतु इसमें संदेह नहीं कि यह इतिहास मलयाळम साहित्य का तो इतिहास है ही, केरल में रचित संस्कृत ग्रंथों का भी इतिहास है।

केरलसिंहम् *(मल० कृ०)*

यह आधुनिक युग के विशिष्ट साहित्यकार, राजनीतिज्ञ एवं इतिहासवेत्ता सरदार के० एम० पणिक्कर (दे०) द्वारा रचित एक ऐतिहासिक उपन्यास है। केरलसिंह केरल के उत्तर भाग में स्थित कोट्टयम् केरलवर्मा पषशि राजा है। राजा बड़े शूरवीर तथा पक्के देशभक्त थे। सारे योरोप को कंपायमान करने वाले सम्राट नेपोलियन को पराजित करने वाले ड्यूक ऑफ़ विलिंगटन को केरलसिंह ने परास्त किया। यह कथा इसमें वर्णित है। साथ ही राजा के कथकलि-प्रेम का चित्रण भी किया गया है। पात्र-निर्माण तथा समसामयिक समाज एवं वातावरण के चित्रण में रचयिता ने पूरी सफलता पायी है।

केरलीय संस्कृत साहित्यचरित्रम् *(मल० कृ०)*

इसके रचयिता सुप्रसिद्ध विद्वान और कवि स्व० राजराज वर्मा हैं। इनका पूरा नाम है वटक्कुम्कूर् राजराज वर्मा (दे०) और जन्म-स्थान है वैक्कम। आचार्यों से इन्होंने न्यायशास्त्र एवं व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया। गहरी विद्वत्ता के कारण इन्हें कोचीन की भाषा-परिष्करण समिति एवं त्रिवेंद्रम् के पांडुलिपि-संग्रहालय में विशेष रूप से नियुक्त किया गया था। कवि के रूप में ये क्लासिकल शैली के पोषक थे। इन्होंने अनेक प्राचीन कवियों एवं अन्य साहित्यिकों की समीक्षा-प्रधान जीवनियाँ लिखी हैं। व्याख्याकार, ग्रंथ-संपादक तथा समीक्षक की हैसियत से इनकी साहित्य-सेवा सराहनीय रही है।

श्री वटक्कुम्कूर् का सब से मुख्य मौलिक योगदान उनका 'केरलीय संस्कृत साहित्यचरित्रम्' है। यह ग्रंथ छह मोटे-मोटे खंडों में विभक्त है। इसमें केरलीय संस्कृत विद्वानों तथा कवियों का ऐतिहासिक परिचय और उनकी कृतियों का ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक वर्णन है। साथ ही इसमें केरल की प्राचीन संस्कृति, धर्म-भावना, सामाजिक, ऐतिहासिक आदि अनेकों विषयों का विस्तृत विवरण भी मिलता है। अतएव जिन्हें प्राचीन केरल के विभिन्न विषयों के प्रति जिज्ञासा है उनके लिए यह एक संदर्भ-

ग्रथ के समान है। केरल ने वैदिक एव लौकिक दोनो धाराओं मे अनेक सस्कृत ग्रथ प्रस्तुत किए हैं। इन सब का परिचय, सक्षिप्त ही सही, अकेले एक विद्वान के द्वारा हो, यह बडी साधना ही है। इस दृष्टि से प्रस्तुत ग्रथ का बडा महत्व है। परवर्ती विद्वानो को इस ग्रथ से बडी सहायता मिली है।

केरी, विलियम *(बँ० ले०)* [जन्म—1761 ई०, मृत्यु—1834 ई०]

विलियम केरी ईसाई मिशनरी थे जिन्होने फोर्ट विलियम कालेज मे बँगला-सस्कृत के अध्यक्ष के रूप मे काम करते हुए बँगला भाषा मे विविध विषयो पर सुपाठ्य ग्रथो की रचना की व्यवस्था की और स्वय भी 'व्याकरण 'शब्दकोश' तथा 'कथोपकथन' (दे०) आदि पुस्तको की रचना कर प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप से पहले-पहल सुश्रृखलित बँगला गद्य की प्रतिष्ठा की।

1801 ई० मे इनका एक बँगला व्याकरण एव 1825 ई० मे एक 'बँगला-अँग्रेजी शब्दकोश प्रकाशित हुआ। इनके अतिरिक्त केरी साहब के द्वारा सपादित दो महत्वपूर्ण ग्रथ और भी है—'कथोपकथन तथा 'इतिहासमाला'। इन दोनो पुस्तको मे केरी साहब की भूमिका अद्वितीय रही। 'कथोपकथन' मे तत्कालीन कलकत्ता तथा श्रीरामपुर के प्रत्येक स्तर के स्त्री पुरुषो की दिनचर्या, सामाजिक रीति-नीति, धर्म तथा आचार-व्यवहार का पूरा विवरण है। 'इतिहासमाला देशी और विदेशी भाषा की 15 कहानियाँ सकलित हैं। इन दोनो ग्रथो की रचना के द्वारा बँगला गद्य के मौलिक रूप का उद्‌घाटन और साहित्य-रचना के लिए एक सुश्रृखलित गद्य भाषा का आविष्कार ही केरी साहब का उद्देश्य था।

केरी ने अपने आप कितना लिखा है, इस सबध मे काफी सदेह है एव केरी की अपनी बँगला-रचना के उत्कर्ष-अपकर्ष के विषय मे भी मतभेद हो सकता है किंतु इसमे कोई सदेह नही कि बँगला-गद्य के इतिहास मे फोर्ट विलियम कालेज के बँगला-विभाग के अध्यक्ष के रूप मे काम करते हुए उन्होंने एक विशेष लेखक गोष्ठी की परिचालना की और बँगला गद्य को अरबी फारसी के प्रभाव से मुक्त कर उसे सस्कृत आदर्श का अनुगामी बना उसके गठन, सौष्ठव तथा अभिव्यजना की श्रीवृद्धि की।

केरूर, वासुदेवाचार्य *(क० ले०)* [जन्म—1866 ई०, मृत्यु—1921 ई०]

ये बिजापुर जिले के बागलकोटे के निवासी थे। इनकी प्रारभिक शिक्षा घर पर हुई थी। सन् 1884 मे मैट्रिक तथा सन् 1888 मे एच० पी० परीक्षा पास करके बागलकोटे मे इन्होंने वकालत करना शुरू किया था। ये प्रकाड पडित, कलाकार और प्रतिभा सपन्न साहित्यकार थे। लोग इन्हे कन्नड के 'सर वाल्टर स्काट' नाम से पुकारते है। कन्नड-कथा साहित्य को इनकी देन अद्‌भुत है। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ ये है—'इदिरा', 'तोळेद मुतु' (परिशुद्ध मोती),' 'नीळ्गतगळु (नवी कहानियाँ), 'प्रेमविजय', 'बेळगिद दीपगळु' प्रकाशित दीप), 'भ्रातृघातकनाद औरगजेब', 'यदु महाराज' और बाल्मीकि विजय'। इनके अतिरिक्त इनके नल-दमयती' तथा पतिवशीकरण' एव 'सुरतनगरद श्रेष्ठी' (सुरत नगर का सेठ) नामक नाटक भी पर्याप्त लोकप्रिय हुए हैं। इनमे अतिम दो गोल्डस्मिथ और शेक्सपियर के नाटको पर आधारित हैं।

केळकर, नरसिंह चिंतामण *(म० ले०)* [जन्म—1872 ई०, मृत्यु—1947 ई०]

इनका जन्म मिरज रियासत के मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ था। सन् 1894 मे वे मिरज मे ही वकालत करने लगे थे। टिळक से भेंट होने पर ये 'मराठा' पत्र के सपादक बने थे। सन् 1896 1947 तक 'मराठा', 'केसरी', 'सह्याद्रि' (मासिक) जैसे लोकप्रिय पत्रो के सपादक व सचालक रहे। राजनीति मे ये टिळक की अपेक्षा गोखले की नरम नीति के समर्थक थे। साहित्य-जगत के ये 'साहित्य सम्राट' कहलाते थे।

केळकर जी निबधो के बादशाह है। इनके निबध 'समग्र केळकर वाड्मय' खड 1-8 म है। इनकी निबध-रचना विविध, विपुल एव कलापूर्ण है। इनके पूर्व के लेखको ने निबध साहित्य को शक्ति प्रदान की थी और इन्होने उसे कलात्मक सौंदर्य से मडित किया। इनके निबध वि० कृ० चिपळूणकर (दे०) के विचारप्रधान तथा ना० सी० फडके (दे०) के ललित-मधुर लघु निबधो को जोडने वाली शृखला की कडी है। 'पाला-पाचोळा' निबध-सग्रह मे इनके व्यक्तिनिष्ठ निबध है।

'तोतयाचें बड', 'कृष्णार्जुन युद्ध', 'वीर विडम्बन'

आदि इनके नाटक हैं, तथा 'नवलपूरचा संस्थानिक', 'कावळा आणिढापी', 'बालिदान' आदि उपन्यास हैं। इनके द्वारा लिखी गई लगभग पच्चीस कहानियाँ भी हैं। मनोविनोद के लिए कुछ कविताएँ भी इन्होंने लिखी थीं, पर अंततः उनमें वृत्ति नहीं रमी। कालिदास (दे०) की तरह इनकी उपमाएँ प्रसिद्ध हैं।

इतालवी राष्ट्रवीर ग्यारी बॉल्डी, तथा आयरिश देशभक्तों के चरित्र भी इन्होंने लिखे थे। चरित्र-ग्रंथों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण लोकमान्य बालगंगाधर टिळक का त्रिखंडात्मक बृहत् चरित्र (दे० 'टिळक-चरित्र') है। यह चरित्र टिळक के जीवन का विशाल इतिहास है। सन् 1939 में इन्होंने 'गतगोष्टी' नामक आत्मकथा भी लिखी थी।

ये कलावादी साहित्यकार थे। इनके अनुसार साहित्य में नीतिबोध हो तो सोने में सुहागा होगा, पर यह कहना कि नीति के बिना साहित्य रचना संभव नहीं, असमीचीन है।

इनके 'सुभाषित आणि विनोद' तथा 'हास्य-विनोद मीमांसा' (दे०) साहित्यशास्त्र संबंधी पुस्तकों में हास्य रस का विवेचन है।

केळकर जी बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार हैं। काव्य, उपन्यास, नाटक, चरित्र, आलोचना, निबंध तथा साहित्यशास्त्र सभी साहित्यिक विधाओं पर लेखनी चलाकर इन्होंने मराठी साहित्य का उपकार किया है।

केलवु नेनपुगळ् *(क० कृ०)*

स्व० नवरत्नं रामराव कर्णाटक के एक धीमंत व्यक्ति थे। वे मैसूर के एक सफल अधिकारी और राजा जी के सहपाठी थे। कला, संस्कृति आदि में उनकी विशेष रुचि थी। ऐसे सहृदय व्यक्ति के कुछ संस्मरण (केलवु नेनपुगळ्) इसमें संगृहीत हैं। कन्नड में ऐसा ग्रंथ सब से पहली बार आया। इसमें श्री नवरत्न रामराव जी के उन दिनों के जीवन का चित्रण है जब वे तहसीलदार थे। ये संस्मरण केवल साहित्य नहीं हैं। काव्य, कला, दर्शन तथा जीवन-धर्म सभी-कुछ इसमें हैं। इसमें अर्द्धशताब्दी के मैसूर राज्य (स्वातंत्र्य-पूर्व) के शासन, जन-जीवन आदि का अत्यंत सुंदर निरूपण है। प्रचलित उर्दू-अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग से वातावरण में एक विलक्षण आत्मीयता आ गई है, कृत्रिमता या अजनबीपन नहीं है। वे संगीत-प्रेमी थे, आस्तिक थे। पूर्ण जीवन के सभी उपादान और सामग्रियाँ आपको यहाँ मिलेंगी। उन दिनों मैसूर राज्य में दीवान बनकर आने वालों का स्वजन-पक्षपात, तमिलनाडु से आए हुए लोगों का दुरभिमान, अधिकारियों की पारस्परिक गुटबंदी आदि के साथ-साथ गाँव की गुटबंदी, डकैतों, चोरों के उपद्रव, जिलाधिकारियों का आडंबर, गाँव के मेले-ठेले, विवाह के समय बारातों में निकलने के लिए लोगों में विरोध, नवरत्न रामराव जी का ज्योतिष-प्रेम, उनकी इंग्लैंड-यात्रा, ग्रामीण नाटक, गाँव के विभिन्न पक्षों और चरित्रों का उद्घाटन, राजमाता की भक्ति, प्रजा-प्रेम—इस तरह हमारे गाँवों के लोगों के सैकड़ों जीवन-चित्र यहाँ हैं। इन चित्रों में जीवन है, गति है, संदर्भ है। इस तरह कर्णाटक की स्वातंत्र्य-पूर्व अर्धशताब्दी के ग्राम तथा नगर-जीवन एक उपन्यास की भाँति रोचक शैली में यहाँ मूर्तिमंत हुए हैं। उनका निर्मल हास्य बीच-बीच में सारे वातावरण को मधुर बना देता है। एक सुसंस्कृत-सहृदय व्यक्ति के साथ जीने का आनंद इस ग्रंथ से मिलता है। संस्मरण का इतना सुंदर ग्रंथ कन्नड में आज भी दूसरा नहीं है।

केलॉग, सैमुएल एस० [जन्म—1839 ई०; मृत्यु—1899 ई०]

न्यूयॉर्क के वैस्ट हैम्पटन में जन्मे पादरी केलॉग भारत में धर्म-प्रचार के लिए आए और 1872 तक इलाहाबाद के थियोलॉजिकल ट्रेनिंग स्कूल में पढ़ाते रहे। यों तो 'लाइट ऑफ़ एशिया', 'लाइट ऑफ़ द वर्ल्ड' आदि कई पुस्तकें इन्होंने लिखीं किंतु इनका अधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'हिंदी व्याकरण' (A Grammar of the Hindi Language) है। इसका प्रथम संस्करण 1876 ई० में तथा दूसरा परिवर्तित-परिवर्धित संस्करण 1893 ई० में हुआ। हिंदी का यह प्रथम सुव्यवस्थित तथा विस्तृत व्याकरण है तथा आज भी कई दृष्टियों से सर्वोत्तम है। इसमें लिपि, ध्वनि तथा संधि के अतिरिक्त हिंदी के तत्कालीन परिनिष्ठित रूपों के साथ-साथ मारवाड़ी, मेवाड़ी, मेरवाड़ी, जयपुरी, हाड़ौती, कुमाऊँनी, गढ़वाली, नेपाली, कन्नौजी, बैसवाड़ी, रीवाई, भोजपुरी, मगही और मैथिली आदि के भी रूप यथास्थान दिए गए हैं। वाक्य-रचना के विस्तृत प्रायोगिक नियमों के अतिरिक्त रूपों की व्युत्पत्ति और उनका विकास भी दिया गया है। केलॉग बहुत अच्छे अनुवादक भी थे। भारत की बाइबिल सोसायटी ने इन्हीं से बाइबिल की पुरानी पोथी का अनुवाद कराया था जो इनके निधन के बाद प्रकाशित हुआ।

केवलज्ञान *(प्रा० पारि०)*

मुक्तात्माओ का ज्ञान जन धर्म मे 'केवल ज्ञान' कहा जाता है। सामान्यतया ज्ञान दो प्रकार का माना जाता है—*प्रत्यक्ष और परोक्ष।* इद्रियजन्य ज्ञान प्रत्यक्ष और उसके आधार पर होने वाला (अनुमान) ज्ञान परोक्ष माना जाता है। किंतु जैन धर्म के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान भी पूर्ण प्रत्यक्ष नही होता, क्योकि उसमे भी वस्तु का आत्मा से प्रत्यक्ष सबध हो कर इद्रियो के माध्यम से ही होता है। आत्मा कर्मबधनो को हटाकर जो पारमार्थिक ज्ञान अर्जित करता है वह इन दोनो प्रकार के ज्ञानो से भिन्न होता है। इस प्रकार के ज्ञान के तीन भेद माने जाते है—(1) आशिक रूप मे कर्मबधन का अपाकरण कर जो सूक्ष्म तत्त्वो का अवलोकन किया जाता है वह सीमित होने के कारण 'अवधि-ज्ञान' कहलाता है। (2) जब व्यक्ति राग द्वेष के ऊपर, उठ कर इतनी शक्ति प्राप्त कर लेता है कि दूसरे के मस्तिष्क मे प्रवेश कर सके और अतीतानागत वस्तु को देख सके तब उसे मनपर्याय कहा जाता है और (3) जब कर्मो का अत्यताभाव होकर मुक्तात्माओ को आत्मा का पूर्ण ज्ञान हो जाता है तब उसे केवलज्ञान कहा जाता है तथा उस प्रकार के ज्ञानो को 'केवली' की उपाधि प्राप्त होती है।

के० वी० एम० *(मल० ले०)* [जन्म—1888 ई०, मृत्यु—1965 ई०]

इनका पूरा नाम कैप्पळ्ळि वासुदेव मूसद है। 'कैप्पळ्ळि' परिवार का नाम है और 'मूसद' उपजाति का इनका जन्म पोन्नानी तालुके के एक गाँव मे हुआ था। इनके पिता का नाम नीलकठन् मूसद था और माता का 'आर्या'। श्री के० वी० एम० ने परपरागत क्रम से प्रारभ मे सस्कृत के कुछ स्तोत, 'अमरकोश' अदि सीखे थे। इनकी अगली सस्कृत शिक्षा केरल के प्रशस्त आचार्य नीलकठ शर्मा के पट्टापी स्थित सस्कृत महाविद्यालय मे सपन्न हुई थी। सस्कृत के अध्ययन के साथ विश्राम की घडियो मे ये मलयाळम साहित्य का रसास्वादन भी करते थे। इस प्रकार अध्यापन-लेखन का भी कार्य शिक्षा के साथ-साथ चलता था।

सेवा-कार्य और धन लाभ के विषय मे इनका जीवन बडा ही अव्यवस्थित और कठोर था। कुछ वर्ष स्कूल के मलयाळम अध्यापक और कुछ वर्ष कोचिन रियासत की भाषापरिष्करण समिति के भाषा-पडित रहे। मगर अधिकाश जीवन-काल तो स्वतत्र साहित्य-सेवा मे बीता। विविध विद्वत्समाजो ने इन्हें 'साहित्यनिपुण', 'साहित्यरत्न' आदि उपाधियो से विभूषित किया था। इनके ग्रथो की विपुलता और विविध-विषयता के आधार पर इन्हे अभिनव क्षेमेद्र तक कहा गया था। श्री के० वी० एम० की साहित्य-सेवा का प्रारभ पालघाट से प्रकाशित 'सारबोधिनी' पत्रिका के माध्यम से हुआ था। वह युग साहित्य-सेवा के सम्मान का तो था, पर अर्थलाभ इन्हे बिलकुल नही होता था। गभीर से गभीर विषयो के ग्रथ लिखने के पारिश्रमिक के तौर पर भी श्री के० वी० एम० को प्रति फार्म दो रुपये ही मिलते थे। अर्थाभाव के कारण वह भी इन्हें स्वीकार करना पडता था। इनके ग्रथो मे म कुछ है—'मेप्पत्तूरभट्ट-तिरि', 'महाकवि', 'कालिदासम्', 'उर्वशी', 'शिवाजी', 'आनद-रामायणम्', 'साहित्यकौस्तुभम्', 'प्राचीन भारतम' आदि। सपादित या अनूदित ग्रथो मे 'अर्थशास्त्र', 'आग्नेयपुराण', पूतानम् (दे०) कृतियाँ' आदि प्रमुख रहे है। 'मगलोदम्', 'वसुमती' आदि पत्र पत्रिकाओ के सपादक-प्रूफसशोधक आदि के रूप मे भी इनकी सेवा कम महत्व की नही है। मलयाळम के परिनिष्ठित गद्य और सस्कृत की उत्तम कविता—दोनो पर इनका जबरदस्त अधिकार रहा है। श्री के० वी० एम० की तुलना कई दृष्टियो से हिंदी के बाबू शिवपूजनसहाय (दे०) से की जा सकती है।

केशव-कोइलि *(उडि० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानत पद्रहवी शती, ले०—मार्कडदास (दे०)]

अभिलिखित कोइलि-रचनाओ मे प्राचीनतम होते हुए भी केशव कोइलि' उडीसा का सर्वाधिक प्रिय कोइलि गीत है। वस्तुत कोइलि कहने से लोग 'केशव-कोइलि' ही समझते है। चउतिशा' (दे०) रीति से इसकी रचना हुई है। प्रत्येक पद के अत मे 'लो कोइलि' सबोधन होने के कारण इसको 'कोइलि-चउतिशा' कहते हैं। सस्कृत-दूतकाव्य मे प्रयुक्त हस, मेघ आदि के समान यहाँ कोयल दूत नही है। माँ यशोदा कृष्ण के वियोग मे अपनी अतर्व्यथा कोयल के समक्ष व्यक्त कर शांति-लाभ करती है। यह वात्सल्य रस की एक उत्कृष्ट रचना है। कृष्ण के प्रति उमडते मातृ हृदय की अश्रुसिक्त ममता कोयल को सबोधित कर व्यक्त होने के कारण इस 'केशव-कोइलि' कहते है।

कस के आदेश से कृष्ण मथुरा जाते हैं। अपने माता-पिता को प्राप्त कर वापस व्रज नही आते हैं। वृद्धा जननी के विरहोद्गार ही इसकी करुण कथा है।

दुःखिनी यशोदा के शोक-श्लोक के भीतर उड़िया घर के सामाजिक चित्र रीति-नीति, आचार-व्यवहार, सुख-दुःख, चमत्कारिक ढंग से उभर आए है। मातृप्राण की भाव-ऊर्मियों से यह रचना संगीत-ऊर्मिल हो उठी है। 'केशव-कोइलि' की भाषा घरेलू एवं सरल है—विशुद्ध उड़िया पदावली। इसमें दो चरणों का एक पद है। आरंभ एवं अंत में कोइलि संबोधन मिलता है।

अतिवड़ी जगन्नाथदास (दे०) ने इसकी दार्शनिक व्याख्या 'अर्थ कोइलि' नामक अपनी टीका में प्रस्तुत की है। उनके अनुसार जीव, परमपिंड, पिंड में जीव की लीला, परमात्मा के विरह में जीव की वेदनानुभूति आदि इसमें वर्णित है। लौकिक बिंबों के माध्यम से कठिन दार्शनिक विषय को अत्यंत सरल रूप में समझाने का प्रयास पंच-सखाओं (दे०) ने किया था। उसी का प्रभाव-विस्तार हम मार्कंडेयदास में पाते हैं। जगन्नाथ दास द्वारा इसकी टीका में इस बात का द्योतन होता है कि उस समय (सोलहवीं शती) तक 'केशव-कोइलि' रचना प्रसिद्ध हो गई थी।

दार्शनिक गुरुता से परे 'केशव-कोइलि' की विशिष्ट मनोज्ञता उसकी घरेलू भाषा एवं घरेलू-साधारण परिचित चित्रों में है। शोक-विधुरा वृद्धा जननी यशोदा की यह वाणी अत्यंत करुण और रसमय है।

केशवदास (*हिं० ले०*) [जन्म—1555 ई०]

इनका जन्म टेहरी में हुआ था। ये सनाढ्य ब्राह्मण थे और ओरछा नरेश के भाई इंद्रजीत सिंह के यहाँ आश्रित कवि के रूप में रहते थे। इनकी सात कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' (दे०) 'रामचंद्रिका' (दे०), 'वीरसिंह-देवचरित', 'विज्ञानगीता', 'रतनबावनी', और 'जहाँगीरजसचंद्रिका'। इनकी ख्याति के आधार प्रथम तीन ग्रंथ हैं। प्रथम दो काव्यशास्त्र-विषयक हैं, 'रामचंद्रिका' रामचरित से संबद्ध महाकाव्य है और साथ ही अलंकारों तथा छंदों का उदाहरण-संग्रह भी। शेष चार ग्रंथ साधारण कोटि के है। 'रसिकप्रिया' में शृंगार रस, उसके भेदोपभेद और नायक-नायिका-भेद का निरूपण है। अन्य रसो की भी सामान्य चर्चा है। पर इनका अंतर्भाव केशव ने शृंगार रस में कर दिया है। 'कविप्रिया' विविध-काव्यांग-निरूपक ग्रंथ है, जो कि अधिकांशतः दंडि (दे० दंडी)-प्रणीत 'काव्यादर्श' (दे०) के अनुकरण पर रचित है। हिंदी में अपने प्रकार का यह प्रथम प्रयास है। इसी कारण कई आचार्य केशव को रीतिकाल का जन्मदाता मानते हैं। किंतु आगे चलकर 'कविप्रिया' की सरणि का अनुकरण नहीं हुआ, चिंतामणि (दे०)-कृत 'कविकुलकल्पतरु' का अनुकरण हुआ, अतः रीतिकाल का प्रवर्तक चिंतामणि को ही माना जाता है। 'कविप्रिया' में वर्ण्यविषय को 'साधारण' अलंकार कहा गया है, और इसे भूषित करने वाले साधनों को विशेष 'अलंकार'। साधारण अलंकार के चार भेद हैं—वर्ण, वर्ण्य, भू-श्री और राजश्री। इनके निरूपण में केशव ने संभवतः अमरचंद्र यति के ग्रंथ 'काव्यकल्पलतावृत्ति' और केशवमिश्र के ग्रंथ 'अलंकारशेखर' से सहायता ली है। विशिष्ट अलंकार से केशव का तात्पर्य है स्वभावोक्ति, विभावना आदि अर्थालंकार, जो कि प्रायः दंडी के काव्यादर्श पर और कहीं-कहीं रुय्यक (दे०) के 'अलंकारसर्वस्व' के आधार पर प्रतिपादित हैं। कहीं-कहीं यह प्रतिपादन अस्पष्ट, अपूर्ण एवं भ्रामक भी हो गया है। अलंकार के संबंध में केशव की यह प्रमुख धारणा उल्लेख्य है—

जदपि सुजाति सुलक्षणी सुबरन सरस सुवृत।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता वनिता मित्त॥

स्पष्टतः, उनका यह कथन भामह (दे०) के निम्नोक्त कथन से प्रभावित है—'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्।' प्रमुखतः, इसी धारणा के कारण केशव को अलंकारवादी आचार्य कहा जाता है, किंतु 'रसिकप्रिया' के निम्नोक्त उद्धरण के आधार पर उनका रसवाद के प्रति आग्रह भी कुछ कम नहीं है—

ज्यों बिन डीठ न शोभिये लोचन लोल विशाल।
त्यों ही केशव सकल कवि, बिन बाणी न रसाल॥

वस्तुतः, केशव का ग्रंथ 'कविप्रिया' अलंकारवादी आचार्यों; विशेषतः दंडी के ग्रंथ का रूपांतर मात्र है, अतः उन्हें एक सीमा से आगे अलंकारवाद का समर्थक आचार्य नहीं मानना चाहिए। जो हो, हिंदी जगत् में काव्यशास्त्र के विविध अंगों पर शास्त्रीय चर्चा करने वाले प्रथम आचार्य केशव ही हैं। हिंदी की काव्यधारा को भक्तिपथ से रीतिपथ की ओर सर्वप्रथम मोड़ने का श्रेय केशव को ही है।

'रामचंद्रिका' के आधार पर केशव को हिंदी का एक प्रबंध काव्यकार भी माना जाता है, किंतु इस ग्रंथ के द्वारा राम की कथा को प्रबंधकाव्य का रूप देने में कवि को सफलता नहीं मिली। कथा का सुसंगत विकास, भावपूर्ण स्थलों का सुचित्रण और दृश्य-विधान आदि विशेषताएँ जो एक महाकाव्य के लिए अपेक्षित हैं, इस रचना में नहीं मिलती। वस्तुविकास की दृष्टि से यह ग्रंथ मुक्तकों का संग्रह प्रतीत होता है जिन्हें जोड़कर

प्रबंधात्मक रूप दे देने का प्रयास किया गया है। इसमें राम की अनेक महत्वपूर्ण और प्रमुख घटनाओं का तो संकेत मात्र कर दिया गया है, किंतु अनावश्यक प्रसंगों को अति विस्तार से स्थान मिला है। मूलतः, केशव का लक्ष्य इस ग्रंथ के माध्यम से विभिन्न अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत करना भी रहा है, इस कारण भी इस ग्रंथ में प्रबंध-कौशल लक्षित नहीं होता। बहुविध छंदों के उदाहरण प्रस्तुत करना भी कवि को अभीष्ट रहा है। इसके अतिरिक्त केशव की पांडित्य-प्रदर्शन-प्रवृत्ति, वाग्जाल के प्रति रुचि एवं दरबारी मनोवृत्ति भी इस ग्रंथ में स्पष्ट है। फिर भी, इस ग्रंथ में कई एक संवाद कुशल शब्द योजना एवं सफल भावाभिव्यक्ति के कारण कवि की प्रतिभा का परिचय देते हैं। केशव हिंदी के प्रथम आचार्य कवि हैं।

केशवदेव, पी० *(मल० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानीकार और नाटककार हैं। अपने संघर्षमय जीवन में ये सदैव क्रांति के पक्षपाती रहे हैं और परिणामस्वरूप इन को जेल-जीवन भी भुगतना पड़ा है। यद्यपि ये साम्यवादी आंदोलन के सजीव कार्यकर्ता थे तो भी बाद में अपने सहयोगियों के विपथगमन का इन्होंने कड़ा विरोध किया।

केशवदेव का उपन्यास 'अयल्कार' (दे०) साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत कृति है। 'ओटयिल् निन्नु' (दे०), 'नटी', 'भ्रान्तालयम्' आदि इनके अन्य उपन्यास हैं। इनके सोलह कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इन्होंने 'नाटक्कृत्', 'मुन्नोट्टु' आदि ग्यारह नाटक रचे हैं और 'एतिर्पु' में अपने साहित्यिक विचारों का संग्रह भी किया है।

केशवदेव की रचनाओं में सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध विद्रोह का स्वर मुखरित है। सार्वजनिक आंदोलनों में निहित स्वार्थ के हस्तक्षेप से होने वाली मलिनताओं के विरुद्ध आवाज उठाना इन्होंने अपना कर्तव्य समझा है। मानव-हृदय में रूढ़मूल सद्प्रवृत्तियों के प्रकाशन में भी ये समान रूप में सिद्धहस्त हैं।

आधुनिक गद्य साहित्यकारों में केशवदेव का स्थान समुन्नत है।

केशवराम शास्त्री *(गु० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

विद्यावाचस्पति पंडित केशवराम काशीराम शास्त्री का जन्म मांगरोल (सौराष्ट्र) में हुआ। पिता काशीराम जी शास्त्री मांगरोल की संस्कृत पाठशाला के आचार्य थे। बचपन से ही शास्त्री जी को संस्कृत के प्रति प्रगाढ़ अनुराग था। 1925 ई० में मांगरोल में ही स्कूल में अध्यापक हुए। सन् 1936 में स्थायी रूप से अहमदाबाद में आकर बस गए। संप्रति वे भो० जे० विद्याभवन तथा बी० डी० गर्ल्स कालेज में कार्यरत हैं।

अब तक शास्त्री जी 113 ग्रंथ लिख चुके हैं। शास्त्री जी के प्रकाशित लेखों की संख्या 300 से भी अधिक है। उनके कतिपय प्रसिद्ध ग्रंथ हैं—'आपणा कविओ', 'कविचरित' (भाग 1 और 2), 'अपभ्रंश व्याकरण', 'नळाख्यान' (दे०), (भालण-कृत), 'प्रेमानंद एक अध्ययन', 'भालण एक अध्ययन', 'जूनी पश्चिमी राजस्थानी' (तेस्सितोरी का अनुवाद), 'भाषाशास्त्र अने गुजराती भाषा', 'दयाराम रसधारा' (भाग १) आदि। प्राचीन साहित्य, पाठ-शोध, अपभ्रंश व संस्कृत-साहित्य, भाषाविज्ञान, पुरातत्त्व, प्राचीन भारतीय संस्कृति, मध्ययुगीन गुजराती आदि विषयों के गंभीर अध्येता तथा प्रकांड पंडित केशवराम जी शास्त्री एक विद्या पुरुष के रूप में सभी के द्वारा समादृत हैं। शोध के क्षेत्र में भी उनका स्तुत्य योगदान है।

सन् 1966 में राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने शास्त्री जी को 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि से विभूषित किया। उनका विद्याव्यसन आज भी यथावत् है।

केशवसुत, कृष्णाजी केशव दामले *(म० ले०)* [जन्म—1866 ई०, मृत्यु—1905 ई०]

श्री दामले साहित्य-जगत में केशवसुत नाम से ही विख्यात हैं। इनका जन्म रत्नगिरी ज़िले के मालगुंड नामक ग्राम में हुआ था। इन्होंने प्रारंभिक विद्याध्ययन रत्नगिरी के खेडग्राम में किया था और तदुपरांत पूना के न्यू इंग्लिश स्कूल से प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण की थी। धनाभाव के कारण इन्होंने पूना, बंबई तथा फैज़पुर में अध्यापन कार्य किया था। सरकारी नौकरी के प्रति इन्हें अश्रद्धा थी।

केशवसुत मूलतः कवि थे। इन्होंने अंग्रेज़ी की रोमांटिक कविता का गहन मनन-चिंतन किया था, जिसके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव से आधुनिक मराठी कविता में स्वच्छंदतावाद, प्रकृति प्रेम आदि नूतन प्रवृत्तियों का प्रवेश हुआ था। इन्होंने 134 स्फुट कविताएँ लिखी थीं। इनमें से 19 कविताएँ संस्कृत तथा अंग्रेज़ी का अनुवाद हैं। ये सभी

कविताएँ 'केशवसुतांची कविता-संग्रह' में संगृहीत है।

युगकवि केशवसुत अर्वाचीन मराठी कविता के जनक है। ये संक्रांति-काल के कवि हैं। इन्होंने विशिष्ट साँचे में ढली परंपराबद्ध कविता का विरोध कर कविता के क्षेत्र में विचार, वस्तु तथा शैली विषयक क्रांति का सूत्रपात्र कर उसे नवीन मोड़ दिया है।

इनकी कविता स्वानुभूति से उत्प्रेरित है। कविता का विषय साधारण व्यक्ति का सुख-दुःख है—पर उसका अंकन यथार्थ है। इनके काव्य में तत्कालीन राष्ट्रीय एवं जातीय चेतना प्रतिबिंबित है। इनका काव्य क्रांति का उद्‌बोधक रहा है। इनकी 'तुतारी' (तुरही) कविता के आधार पर इनके साहित्य को 'तुतारी वाङ्‌मय'—अर्थात् क्रांति का प्रेरक कहा जाता है।

इनकी कविता के विषय वैविध्यपूर्ण हैं। कवि तथा कविता, प्रेम, नारी की अवस्था, प्रकृतिवर्णन, समाज-सुधार, राष्ट्रीयता, संस्कृति, प्रेम, नीति, उपदेश आदि सभी विषयों पर इन्होंने लेखनी चलाई है। इन्होंने 'झपुर्झा', 'हरपले श्रेय', 'म्हातारी' जैसी कुछ रहस्यवादी कविताएँ भी लिखी हैं।

केशवसुत की रचना प्रगीतात्मक है। इन्होंने मुक्तक काव्य-रचना के क्षेत्र में विविध प्रयोग किए है। 'सॉनेट' जैसे अँग्रेजी-काव्य-रूप को 'सुनीत' नाम से मराठी में सर्वप्रथम लाने का श्रेय इन्हें ही प्राप्त है। मराठी साहित्य में मुक्त छंद (दे०) का सफल प्रयोग सर्वप्रथम इन्होंने ही किया है।

केशवीयम् *(मल० कृ०)*

सरस गायक कवि-मणि के० सि० केशव पिळ्ळा (दे०) है। इसका रचना-काल सन् 1868 और 1914 के बीच में माना जाता है। प्रस्तुत कृति केरली के उत्तम काव्य ग्रंथों में परिगणित है। भागवत् की स्यमंतक कथा के आधार पर इस काव्य की रचना हुई है। इसी कथावस्तु के आधार पर यद्यपि कई कवियों ने काव्य लिखे है तो भी कवि ने इस ग्रंथ में स्वतंत्र रूप से कई बातों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है जिससे उनकी काव्य-मर्मज्ञता का आभास मिलता है। 'केशवीयम्' में यह दिखाया गया है कि राम तथा कृष्ण के प्रति भेद-भावना रखना निरी मूर्खता है। हास्य-वचनों का प्रयोग कवि ने कई प्रसंगों में किया है। शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का महत्व अधिक दिखाया गया है। ध्वनियुक्त सरस शब्दों के प्रयोग में कवि ने कमाल किया है। सारे प्रासों के प्रयोग में समान-भाव दिखाया गया है। संस्कृताचार्यों के निर्देश के अनुसार काव्य के सारे गुण अपने में काव्यों में लाने का रचयिता ने विशेष प्रयत्न किया है। भिन्न-भिन्न प्रकार की सरस घटनाओं के चित्रण में कवि ने अपनी प्रतिभा दिखाई है। यह कहने में जरा भी अत्युक्ति न होगी कि 'केशवीयम्' में केरलीय काव्यों की प्रथम पंक्ति में स्थान पाने की क्षमता है।

केशिराज *(क० ले०)* [समय—तेरहवीं शती का अंतिम चरण और चौदहवीं का प्रथम चरण]

ये प्राचीन कन्नड के सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण थे। 'शब्दमणिदर्पण' (दे०) इनका प्रसिद्ध व्याकरण-ग्रंथ है। 'चोलपालक चरित्रे', 'चित्रमाले', 'सुभद्राहरण', 'प्रबोधचंद्रोदय', 'किरात' आदि इनकी अन्य रचनाएँ मानी जाती हैं जो अब अनुपलब्ध हैं। 'प्रबोधचंद्र' इनका नाटक माना जाता है। केशिराज न केवल लक्षण-शिक्षणाचार्य थे, वरन् एक सफल कवि भी थे। वे यादव कटकाचार्य सुमनोबाण के दौहित्र थे तथा चिदानंद मल्लिकार्जुन के पुत्र थे। 'शब्दमणिदर्पण' इनकी आचार्य कृति है। इसमें संधि, नाम, समास, तद्धित, आख्यात, धातु, अपभ्रंश एवं अव्यय प्रकरण हैं। इनके अतिरिक्त पीठिका-प्रकरण भी है। अंत में, पूर्व-कवियों द्वारा प्रयुक्त अपूर्व शब्दों का अर्थ भी दिया गया है। केशिराज ने नागवर्मा (दे०) की 'शब्दस्मृति' तथा 'कर्णाटक-भाषा-भूषणम्' (दे०) का अनुगमन किया है। फिर भी इसमें बहुत-सी नई बातें कही गई हैं। अपभ्रंश प्रकरण इसका अपना है। उदाहरण-पद्यों को उन्होंने 'काव्यावलोकन' (दे०) तथा 'भाषा-भूषण' से भी लिया है। इनके उदाहरण व्याकरण-रूपी मरुभूमि में नंदन के समान रमणीय है। इनकी लेखनी के स्पर्श से इनका व्याकरण शास्त्र न रहकर काव्य हो गया है। 'केशिराज' के व्यक्तित्व की छाप इस शास्त्र-ग्रंथ पर स्पष्ट है। 'केशिराज की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी निस्संग शास्त्र-दृष्टि। अपने मामा जन्न (दे०) के काव्यों से उन्होंने साधु प्रयोगों के ही नहीं, असाधु प्रयोगों के भी उदाहरण दिए है। यह तटस्थता मीमांसक की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

केशिराज ने प्राचीन कन्नड के स्वरूप की रक्षा करने के लिए बहुत परिश्रम किया है। प्राचीन कन्नड के लक्षणों को अत्यंत सुंदर ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय 'केशिराज' को है।

कैकेयी *(स० पा०)*

इसके पिता का नाम अश्वपति था, जो कि कैकेय देश का राजा था। यह आयोध्या नगरी के सूर्यवशी अथवा इक्ष्वाकुवशी राजा दशरथ की तीसरी पत्नी थी, और उसे सर्वाधिक प्रिय थी। इसके विवाह के समय दशरथ (दे०) ने इसके पिता से प्रण किया था कि इसका पुत्र युवराज बनेगा। इसके अतिरिक्त एक बार जब दशरथ देव-दानवो के युद्ध मे देवताओ की सहायता करने गए तो रथ की कील टूट जाने पर कैकेयी ने अपना हाथ देकर राजा को बचाया था। राजा ने प्रसन्न होकर उसे दो वर माँगने का वचन दिया। दशरथ जब राम (दे०) को युवराज बनाने की तैयारी मे लगे थे तो अपनी मथरा नामक दासी के भडकाने पर कैकेयी ने दशरथ से ये दो वर माँग लिये कि राम को वनवास दिया जाए और भरत को राज्य दिया जाए। राजा ने वचन का पालन किया और पुत्र के विरह-शोक मे उसकी मृत्यु हो गई। भरत ने अपनी माता की अति भर्त्सना की कि तू ऐश्वर्य-लोभी, अविचारी, क्रोधी और घमडी है, आदि।

कैक्किळै *(त० पारि०)*

'अकम्' (दे०) काव्य-विभाग के सात उपविभागो के लिए तीन आधार है—एकपक्षीय काम-इच्छा (प्रथम उपविभाग), औचित्ययुक्त काम-इच्छा (द्वितीय से षष्ठ उपविभाग तक) तथा असगत काम-इच्छा (अतिम, सातवाँ उपविभाग)। 'कैक्किळै' प्रथम उपविभाग होकर एकपक्षीय काम-इच्छा प्रकाशन के प्रसग प्रस्तुत करता है। तोल्काप्पियम्' (दे०) (सूत्र 105) के अनुसार आर्य जाति की आसुर, राक्षस, पैशाच विवाह-पद्धतियाँ (जो एक-पक्षीय काम-व्यवहार वाली हैं) इस उपविभाग के प्रकरणो के समानातर मानी जा सकती है। कामवासना-रहित अबोध आयु की बालिका के प्रति नायक द्वारा मोह प्रकट करना इस उपविभाग का विषय है। अबोध बालिका की ओर से प्रत्युत्तररूपी काम-इच्छा उठने की आशा बिल्कुल न होने पर भी नायक का निरुपाय मोह इसके लिए उसे बाध्य कर देता है (सूत्र 50)। ऐसा एकपक्षीय कामाचरण दास, सेवक, आदि वर्गों के लिए व्यवहारोचित बताया गया है (सूत्र 23)।

उपर्युक्त प्रकार से पृथक् उपविभाग होने के अतिरिक्त दो अन्य उपविभागो मे एक प्रकरण के रूप मे 'कैक्किळै' ने स्थान पाया है। 'पुरम्' (दे०) काव्य-विभाग मे पाटाण्' उपविभाग के अतर्गत दानार्थी द्वारा आश्रय-दाता की प्रशसा एकपक्षीय प्रकरण माना गया है। 'अकम्' काव्य-विभाग मे 'कुरिंचि' उपविभाग के अतर्गत नायिका से नायक की सर्वप्रथम भेंट के कतिपय प्रकरण नायिका के दर्शन, उसके देव-वनिता होने का सदेह तथा सदेह-निवृत्ति —एकपक्षीय प्रेम से सबधित माने गए है।

'तोल्काप्पियम्' के बाद की रचना 'पुरम्-पोरुळ् वेण्पामालै' मे 'कैक्किळै' को पूर्णत 'पुरम्' काव्य-विभाग मे ही प्रतिष्ठित किया गया है और उसमे पुरुष और स्त्री पर आधारित दो विभेद तथा कुल उन्नीस प्रकरण बताए गए है। ध्यान देने की बात है कि उपलब्ध 'सगम्' कविता-सग्रहो मे 'कैक्किळै' के उदाहरण केवल 'कलित्तोकै' मे चार पद्यो तक सीमित है। स्पष्ट है कि एकपक्षीय काम-व्यवहार की अस्वाभाविकता के कारण वह कविता से निष्कासित-सा रहा।

'कैफी' *(उर्दू० ले०)*

पूरा नाम प० ब्रजमोहन दत्तात्रेय, उपनाम 'कैफी'। जन्म दिल्ली मे सन् 1866 मे हुआ था। कश्मीरी पडितो के उच्च वश से इनका सबध था। उर्दू, फारसी और अँग्रेजी का यथेष्ट ज्ञान इन्हे प्राप्त था। भाषा के मर्मज्ञ, अनुसधाता, गद्य-लेखक और कवि की दृष्टि से उर्दू-साहित्य मे इनका नाम सदा अमर रहेगा। पद्य के क्षेत्र मे इनकी आरभिक रचनाएँ परपरागत गजल-लेखन तक ही सीमित रही, परतु कालातर मे इन्होने गुल-ओ-बुलबुल तथा सुरा-सुदरी-विषयक विलासपूर्ण अभिव्यजना शैली त्याग कर 'आजाद' (दे०), 'हाली' (दे०) तथा अन्य अनेक पाश्चात्य प्रभावग्राही साहित्यकारो के अनुकरण पर 'प्रकृत' काव्य का सृजन किया। इनकी दो महत्वपूर्ण गद्य-कृतियाँ—'मनशूरात' और 'खमसा-ए-कैफी' हैं। इनके अतिरिक्त कैफी साहब के अनेक उपन्यास, नाटक और काव्य सग्रह भी प्रकाशित हुए है। उर्दू भाषा के प्रबल समर्थको मे इनका नाम अत्यत महत्वपूर्ण है।

कैयट *(स० ले०)* [समय—1100 वि० पू०]

ये कश्मीरी थे। इनके पिता का नाम जैयट उपाध्याय था। 'सुधासागर' के अनुसार ये काव्यप्रकाशकार मम्मट (दे०) के अनुज कहे जाते है। महाभाष्य (दे०) पर

प्रदीप इनकी विशिष्ट कृति है।

व्याकरणशास्त्र के क्षेत्र में प्रामाणिक विद्वानों में कैयट का परिगणन किया जाता है। भट्टोजिदीक्षित (दे०) इन्हें 'अस्तीति कैयट:' कहकर उद्धृत करते हैं। इस प्रकार व्याकरणशास्त्र के शास्त्रीय पक्ष की दृष्टि से कैयट का विशिष्ट योगदान कहा जा सकता है।

कैंयरुनिलै *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे०) काव्य-विभाग के 'कांचि' (दे०) नामक उपविभाग के अंतर्गत आने वाला एक प्रकरण ('तुरै') है।

इस प्रकरण का विषय मृत लोगों के वियोग से शोक-संतप्त प्रियजनों का असहाय विलाप है। 'कैंयरुनिलै' का अर्थ है—असहाय शोकावस्था। 'संगम्' साहित्य में इस प्रकरण का प्रचलित उदाहरण 'अदियमान' (दे०) नामक दानी प्रभु के वियोग-दुःख पर कवयित्री 'अव्वैयार' (दे०) का गीत है जो 'पुऱनानूरु' (दे०) के कविता-संग्रह में मिलता है।

कैलासम् *(क० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

कैलासम् आधुनिक कन्नड रंगभूमि के कैलास पर्वत है, प्रहसन-पितामह है। इनका जन्म एक संभ्रांत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये उच्च शिक्षा के लिए इंगलैंड गए थे। नाटक के प्रति इनका आकर्षण जन्मजात था। वहाँ की नवीनतम नाट्य-परंपरा से ये प्रभावित हुए और श्रेष्ठ नाट्य-प्रतिभाओं के संपर्क मे आए। उनकी प्रेरणा से इन्होंने कन्नड में सामाजिक नाटकों की रचना की थी। पौराणिक वस्तुओं को लेकर इन्होंने अँग्रेज़ी में नाटक लिखे। कन्नड मे इन्होंने अँग्रेजी मिश्रित कन्नड की अपनी ही एक शैली तथा रंगमंच का निर्माण किया था।

कैलासम् से पहले कन्नड में पौराणिक तथा संस्कृत से अनूदित नाटकों की भरमार थी। इन्होंने ही पहली बार कन्नड रंगमंच पर जनसाधारण की रुचि के नाटक प्रस्तुत किए। हास्य को इन्होंने सामाजिक रोगों का चिकित्सालय बनाया। इन्होंने लगभग साठ नाटक लिखे। उनमें कुछ गम्भीर है और कुछ हास्य-प्रधान। 'टोळ्ळु गट्टि', 'ताळीकट्टक्कूलीने', 'पोली किट्टि' (दे०), 'बंडवाळविल्लद बडायी', 'अम्मावेगंड', 'हुत्तदल्लि हुत्तु', 'सूळे' (दे०) आदि नाटकों में इन्होंने नूतन-पुरातन, पूर्व-पश्चिम, आदि के द्वंद, वर्तमान शिक्षा के खोखलेपन, स्त्रैणपति की असहायता, वेश्या-समस्या आदि का चित्रण किया है। सन्निवेश-सृष्टि, चरित्र-चित्रण, वाग्वैदग्ध्य, विडंबन आदि में ये सिद्धहस्त है। किंतु कहीं-कहीं सन्निवेशों में अतिकृत्रिमता आ गई है, चरित्र अतिरंजित हो गए हैं। अँग्रेज़ी तथा कन्नड की मिश्रित भाषा ने इनके नाटकों को अँग्रेजी जानने वाले वर्ग-विशेष के लिए सीमित कर दिया। 'सूळे' (वेश्या) वेश्या-जीवन की बीभत्सता का चित्रण करने वाला इनका अत्यंत सशक्त नाटक है। 'होंऽल' इनके छोटे नाटकों में बहुत ही सफल है। 'कीचक', 'एकलव्य' आदि नाटकों में इन्होंने महाभारत के चरित्रों को नवीन दृष्टि से देखने का सफल प्रयास किया है। इनके नाटक रंगमंच की दृष्टि से अत्यंत लोकप्रिय रहे है। नाट्य-कला की दृष्टि से ये उत्कृष्ट हैं। वातावरण एवं संवादों में बौद्धिकता की प्रधानता होने पर भी इनके चरित्र अत्यंत मानवीय हैं। मध्यवर्गीय जनता के जीवन की कुरूपता एवं कुंठाओं का उद्घाटन करने में ये बहुत सफल हुए हैं। ये कन्नड के सर्वश्रेष्ठ नाटककारों में से है।

कैवार, राजाराव *(क० ले०)*

नाटक-रचना के द्वारा समाज के नाना रूपों तथा सामाजिक समस्याओं का चित्रण करने वाले नाटक-कारों में इनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। इन्होंने अपने नाटकों में विशेष समस्याओं पर ही नहीं, साधारण समस्याओं पर भी विचार किया है। 'प्रेम परीक्षे' नामक नाटक इसका परिचायक है। इसमें इन्होंने सुंदर वातावरण-निर्माण द्वारा प्रेम के नाम से उत्पन्न होने वाली समस्या एवं अस्थिर मानव-स्वभाव का चित्रण किया है। इनके नाटकों में संवाद भी अत्यंत स्वारस्यपूर्ण होते हैं। 'गंडन जुल्माने' (पति पर जुर्माना), 'गळिसुव गृहिणी' (कमाने वाली गृहिणी) और 'वधू परीक्षे' जैसे नाटक उदाहरण के रूप में उल्लिखित हो सकते है। इन्होंने विदेशी नाटककारो से प्रेरणा ग्रहण की है। इनका 'प्रेरणा बुडुबुडिके' (छोटा डमरू) अनातोले फ्रांस के नाटक पर आधारित है। 'नव चदुरंग' (नई शतरंज) लागो विरो के 'रिवोल्ट, नाटक पर आधारित है। इनके नाटकों में यथार्थ चित्रण के साथ-साथ आदर्श का भी चित्रण हुआ है। 'दिल्लियिंद हळ्ळियवरेगे' (दिल्ली से गाँव तक) इनका उदाहरण है। 'संसार सत्याग्रह अथवा हेंगसर बडायि' (गृहस्थी का

सत्याग्रह अथवा स्त्रियो का डीग हाँकना) इनका अत्यत सुदर सामाजिक नाटक है। इनके 'अम्मा' और 'बाबरन पाठ' (बाबर का पाठ) नामक नाटक बच्चो के लिए है।

कोइलि *(उडि० पारि०)*

'कोइलि' एक प्रकार का सबोधन-गीत है। 'कोइलि' को सबोधित कर लिखे गए गीतो को 'कोइलि' कहते हैं। इसमे अन्य रीतियो की अपेक्षा चउतिशा (दे०) रीति अधिक प्रयुक्त हुई है। यह सस्कृत की दूत-कविता के समान नही है। दूत के रूप मे कोइलि का प्रयोग बहुत कम हुआ है। वह एक श्रोता या साक्षी है। प्राकृत की 'लोली' कविता से कोइलि कविता समानता रखती है। यह कविता प्रधान रूप स आदिवासी गीतो से अनुप्रेरित है। आदिम जातियो मे वृक्ष-लता, पशु पक्षी को सबोधित कर गीत गाने की प्रथा है। 'कोइलि कविता प्राय करुणरसात्मक होती है और श्रोता मादा कोइलि होती है। 'कोइलि' कविताओ मे बारहमासा वर्णन भी मिलता है। असमिया, बँगला एव हिंदी के समान बारहमासा वर्णन की स्वतत्र रीति उडिया साहित्य मे नही है। कोइलि रचना की तुलना नाटकीय स्वगतकथन के साथ की जा सकती है। 'कोइलि' के अतिरिक्त मधुप, वउल, नवघन, सारग आदि को सबोधित कर भी चउतिशाएँ लिखी गई है, किंतु कोइलि के समान लोकप्रिय नही हो सकी। 'केशव-कोइलि (दे०) (मार्कडदास), 'कात कोइलि' (बळरामदास) (दे०), 'बारमासी कोइलि' (शकर), 'ज्ञानोदय कोइलि' (नाथिया), 'खर कोइलि' (अच्युतानद दास) (दे०) आदि इस वर्ग की प्रसिद्ध कविताएँ है। आज भी प्रचारमूलक कविताओ मे 'कोइलि' शैली का प्रयोग दिखाई पडता है।

कोकिला *(गु० पा०)*

कोकिला श्री रमणलाल देसाई (दे०) के 'कोकिला' उपन्यास की स्त्री-पात्र है। जीवन सगिनी के रूप मे इसे प्राप्त कर कोई भी व्यक्ति अपना अहोभाग्य समझ सकता है। ऐसी मृदु, मनोहर, लावण्यमयी, प्रेमार्द्र और आदर्श गृहिणी-रूप इस नारी ने एक समय समस्त गुजरात का हृदय जीत लिया था।

कोकिला का समग्र दापत्य जीवन परिस्थितियो की विषमता के बीच व्यतीत होता है किंतु उसके मन म कभी कटुता नही आती। अपनी वाणी के माधुर्य स यह पति को ताज़गी देती है। इसके चेहरे पर ऐसा अपूर्व भाव रहता है, जहाँ लेखक के शब्दो मे प्रेम और सौंदर्य तद्रूप हो जाते हैं।

पति के प्रति इसकी निष्ठा, विश्वास तथा प्रेम अटूट है। इसी कारण विजयालक्ष्मी सयम की सीमा नही लाँघती तथा नाथ बाबा भी अपना वैर भूल जाते है। जब नाथबाबा आत्महत्या की ओर प्रवृत्त होते है तब यही उन्हे नया जीवन अर्पित करती है। इस समय इसका प्रेम बृहत्तर भूमिका पर पहुँच जाता है।

कोकिला सरल सहज गृहिणी है और यही इसका आकर्षण है।

कोच्चु सीता *(मल० पा०)*

1921 मे प्रकाशित महाकवि वळ्ळत्तोळ् (दे०) के इसी शीर्षक के खडकाव्य की कथा-नायिका है कोच्चु सीता या चेम्पकवल्ली। वेश्याकुलोत्पन्न चेम्पकवल्ली श्री रामचद्र की धर्मपत्नी सीता के समान पावन चरित्र बनने का प्रयत्न करती थी। देवमूर्ति के सम्मुख नृत्य करना उसकी कुल वृत्ति थी। कोच्चु सीता की प्रवृत्ति रामायण-पाठ की ओर थी और उसकी नानी उसे वेश्या बनाने म सदा तत्पर रहती थी। एक दिन वह अपने घर से हमेशा के लिए गायब हो जाती है। अपने विदा पत्र मे वह अगले जन्म मे स्वतत्र भारतीयागनाओ के बीच जन्म लेने की इच्छा प्रकट करती है। इस पात्र के द्वारा कवि ने भारतीय सस्कृति प्रेम का सदेश दिया है।

कोटि ब्रह्माड सुदरी *(उडि० कृ०)*

'कोटि ब्रह्माड सुदरी' उपेंद्र भज (दे०) की रचनाओ मे सर्वोत्तम तथा उडिया साहित्य मे बेजोड कृति है। इस कृति ने कवि-सम्राट भज को भाषा-साहित्य के आलकारिक कवि के रूप मे अक्षय गौरव का अधिकारी बनाया है। भाव भाषा, अलकार-प्रयोग, वर्णन चातुरी एव पाडित्य सभी दृष्टियो से यह अद्वितीय है। इस काव्य लता के मूल स शीर्ष तक शाखा पत्र फल, पुष्प सभी परम काव्यमय हैं। इसमे विराम के लिए अवकाश नही है।

यह एक काल्पनिक काव्य है। पुरुषोत्तम जगन्नाथ जी की वदना स काव्यारभ होता है। यद्यपि यह शब्द-काठिन्य से भरपूर रचना है, किंतु मगलाचरण की भाषा अपेक्षाकृत सरल है। चपा नगरी के राजा विश्वनदन की

पुत्री कोटि ब्रह्मांड सुंदरी का—जो ब्रह्मा जी की अनुकंपा से प्राप्त होती है—जीवन इसमें चित्रित है। पाटलिपुत्र के राजा दीप्तसागर के पुत्र पुष्पकेतु से राजकुमारी का प्रणय होता है और अंततोगत्वा वह विवाह में परिणत हो जाता है। कथावस्तु केवल इतनी ही है। इस काव्य की विशिष्टता एवं सौंदर्य कथावस्तु की गति एवं उस गति के बीच आए प्रत्येक स्थान, प्रत्येक प्रसंग के सालंकार वर्णन में है।

तत्कालीन समाज का चित्र भी इसमें उभर कर आया है काल्पनिक राज्य व्यवस्था एवं जनसमाज के चित्रण में कवि का अपना समाज ही प्रतिबिंबित हुआ है। राज्य का प्रशासन, अर्थव्यवस्था, सैनिक शक्ति, युद्ध-कला, सामाजिक रीति-नीति, लोगों का रहन-सहन, उनकी वेशभूषा, समाज में प्रचलित विश्वास एवं मान्यताओं (जैसे तंत्र-मंत्र, शून्यभ्रमण) आदि का इसमें चित्रण हुआ है।

प्रकृति का वर्णन सुंदर एवं जीवंत है। प्रकृति मानव के सुख में सुखी एवं दुःख में दुःखी दिखाई पड़ती है। षड्ऋतु-वर्णन सिद्धहस्त अनुभवी सूक्ष्म द्रष्टा शास्त्रादि कलाकार की तूलिका से निःसृत है।

इस की भावपूर्ण सरस-आलंकारिक पदावली सहृदय के मन को सुधासिक्त कर देती है। पदों और अर्थ-वैचित्र्य का संश्लेष-साधन अद्भुत है। 'कोटि ब्रह्मांड सुंदरी' में 15 पदों में अपूर्व कौशल से तीनों ऋतुओं का वर्णन है। पूर्व पंक्तियों में वर्षा ऋतु का वर्णन है और छंद का राग 'चिन्तादेशाक्ष' है। पंक्तियों के आद्यवर्ण निकाल देने से छंद 'काफी कामोदी' में परिणत होकर शीत ऋतु के वर्णन को व्यक्त करने लगता है। फिर प्रत्येक पंक्ति के प्रथम दो-दो वर्ण निकाल देने से वह छंद 'मालबराड़ि' राग में परिणत होकर ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करने लगता है। यह जादू केवल लोकोत्तर प्रतिभा से संपन्न हुआ है। कवि की यह उक्ति सर्वथा ठीक है कि उसने अपनी इस रचना में रसाल भाव को कठिन शब्द-साँचे में रख दिया है, अतः अल्पार्थियों के लिए अर्थबोध सरल नहीं है।

इसमें 35 छंद है। इससे कवि की चिंतना की गंभीरता एवं विद्वत्ता प्रकाशित होता है। लेखनी कवि की आज्ञाकारिणी है।

कोट्टारत्तिल, शंकण्णि *(मल० ले०)* [जन्म—1855 ई०; मृत्यु—1937 ई०]

जन्म-स्थान—कोट्टयम्। कोट्टारत्तिल इनका पारिवारिक नाम था। इनकी ठोस साहित्य-सेवा का प्रारंभ कोट्टायम-स्थित 'मलयाळ-मनोरमा' पत्रिका के कविता-स्तंभ के संपादन काल से होता है। ये अनेकों सुधी सज्जनों के संपर्क में आए और स्वयं बहुत बड़ी संख्या में कविताएँ रचीं। परंतु काव्य की गुण-दृष्टि से ये कविताएँ विशेष प्रभावशाली नहीं हैं। इनका चिरस्मरणीय योगदान तो आठ खंडों में प्रस्तुत 'ऐतिह्यमाला' (दे०) है। जनश्रुतियों पर आश्रित ऐसा विशाल कथा-संग्रह मलयाळम में कोई और नहीं है। जनश्रुति के नाते थोड़ी-सी रियायत यदि की जाय तो शेष बातें अत्यंत प्रभावशाली और प्रामाणिक है। इनका प्रथम प्रबंधकाव्य 'सुभद्राहरणम्' 1891 ई० में प्रकाशित हुआ था।

कोडियां *(गु० कृ०)* [प्रथम संस्करण—1934 ई०; द्वितीय संशोधित संस्करण—1957 ई०]

'कोडियां' श्रीकृष्णलाल श्रीधराणी (दे०) की काव्यकृति है। श्रीधराणी की काव्य-चेतना का विकास प्रमुखतया गांधीयुग में एवं गांधीवादी भावनाओं के अनुरूप हुआ है। 'पुजारी', 'देव' तथा 'मंदिर' इत्यादि इस संग्रह की ऐसी ही कविताएँ है जिनमें दीन-हीन जनवात्सल्य को अभिव्यक्ति मिली है। क्रांति तथा नवोन्मेष की शंखध्वनि करने वाली इन कविताओं का प्रमुख आकर्षण सुभग-ललित पदावली, भावप्रतीक, कल्पना की मनोहारिता, कलात्मकता तथा स्वाभाविकता में निहित है।

1948 ई० के पश्चात् इनकी कविता विषय, छंद, तथा भाषा सभी दृष्टियों से एक नवीन वानक पहनकर आई है। संग्रह की 'आठवुं दिल्ली' इसी प्रकार की प्रतिनिधि रचना है।

संक्षेप में कवि समस्त पुरानी परंपराओं को पचाकर नवयुग का संदेशवाहक बनकर इस कृति के भीतर प्रकट हुआ है।

कोणार्क *(उड़ि० कृ०)*

'कोणार्क' अश्विनीकुमार घोष (दे०) का ऐतिहासिक नाटक है। इसमें जातीय जीवन का गौरवमय पक्ष प्रस्तुत हुआ है। रंगमंच की दृष्टि से यह सफल नाटक है।

कोणार्क *(उड़ि० कृ०)*

कृपासिंधु मिश्र (दे०)-कृत 'कोणार्क' इतिहास और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से मूल्यवान है। अपनी

प्रामाणिक गद्य रीति के द्वारा लेखक ने जिस इतिहास की रचना की है वह एकात अभिनव है। कोणार्क के वर्णन के साथ ऐतिहासिक तथ्य स्वत उद्घाटित होते जाते है। यही इसकी सुदरता है। आलोचना की प्राजलता, भाषा की अप्रतिहत गति, उच्चकोटि की सुखपाठ्य शैली के कारण इसमे शुष्क इतिहास सरस हो उठा है।

कोदैत्तीवु *(त० कृ०)*

यह व० रामस्वामी का प्रसिद्ध उपन्यास है। इसकी कथा उपन्यास के सर्वथा अनुरूप है। इसे उपन्यासकार के सुदर स्वप्न का प्रतिफलन कहा जा सकता है। वह एक ऐसे आदर्श समाज की, राज्य की कल्पना करता है जहाँ नारी को समस्त अधिकार प्राप्त है। उस समाज को उसने 'कोदैत्तीवु' नाम दिया है। इसमे वर्णित प्रमुख प्रसग है—नारी पुरी नामक देश मे माणिक्क कोदैयार का शासन, वहाँ नर-नारी को समान अधिकार प्राप्त, सुखी पारिवारिक जीवन-यापन के मार्ग के बाधक जाति-भेद, दहेज-प्रथा आदि का उस देश मे अभाव, गणपतिरामन और भूपतिरामन का नारीपुरी गमन, वहाँ की स्थिति देख विस्मयविमूढ रह जाना, आदि। इस उपन्यास के द्वारा एक आदर्श समाज की सृष्टि करने के साथ साथ उपन्यासकार ने पौराणिक मान्यताओ और ऐतिहासिक तथ्यो को नूतन दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। उसने 'हर पुरानी वस्तु सुदर है' इस विचारधारा का विरोध किया है। व० रामस्वामी जीवन-भर नारी को उचित अधिकार दिलाने के लिए सघर्ष करते रहे। इस उपन्यास मे नारी के अधिकारो के विषय मे उनके विचार व्यक्त हुए है। इसका तमिल के समाज-सुधार-प्रधान उपन्यासो मे विशिष्ट स्थान है।

कोनो खेद नाइ *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1693 ई० लेखक—पद्म बरकटकी *(दे०)*]

शिवसिह (1714-1736 ई०) की रानी फूलेश्वरी और उस समय के मरान विद्रोह पर आधारित यह ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमे इतिहास का नवीन दृष्टि से मूल्याकन किया गया है।

कोप्पेरुचोळन *(त० पा०)*

ये सघकालीन प्रसिद्ध शासको मे से हैं। कोप्पेरुचोळन, पिशिरादैयार और पोत्तियार बिना एक दूसरे को देखे प्राणसखा बन गए थे। प्रसिद्ध है कि तीनो ने एक ही समय प्राणो का त्याग किया था। ये कवियो का बहुत आदर करते थे। इन्होने स्वय कुछ सुदर कविताओ की रचना की है। इनकी चार कविताएँ 'कुरुतोगै' (दे०) मे और तीन कविताएँ 'पुरनानूर' (दे०) मे सगृहीत है। इन कविताओ की रचना करके इन्होने तमिल के राजा-कवियो मे अपना स्थान बना लिया है।

कोमप्पन् *(मल० पा०)*

शुद्ध मलयाळम भाषा मे कुडूर नारायण मेनन (दे०) ने कोमप्पन' नामक एक काव्य लिखा है जिसका कथा नायक है कोमप्पन्। कोमप्पन् को केंद्र बनाकर कई लोक-गीत लिखे गए है। इनमे उत्तर केरल' मे लोगो के आचार विचार विश्वास, सिद्धात आदि की अभिव्यक्ति हुई है। खेत मे काम करने वाली महिलाएँ काम करते समय इसके गीत गाकर अपनी श्रान्ति का परिहार करती हैं। 'कोमप्पन्' के गीत बहुत लोकप्रिय है।

कोयित्तपुरान्, किळिमानूर विद्वान् *(मल० ले०)* [जन्म—1812 ई०, मृत्यु—1845 ई०]

ये प्रमुख आट्टक्कथाकार है। इनका नाम राजराज वर्मा था और विद्वान की उपाधि महाराजा स्वाति तिरुनाल् द्वारा प्रदत्त थी। ये किळिमानूर् राजवश के सदस्य थे और महाराजा के परम मित्र और राजकवि थे। 'रावणविजयम् आट्टक्कथा' इनकी कृतियो मे मुख्य है। यह प्रथम कोटि की आट्टक्कथाओ मे एक है और कथकलि के कलाकारो और प्रेक्षको मे अत्यधिक लोकप्रिय है। देवताओ और राजाओ को नायक का स्थान न देकर रावण को मुख्य पात्र का स्थान देना परपरा के विरुद्ध होने पर भी इस दृश्य काव्य का सहृदयो ने स्वागत किया था। कथकलि-साहित्यकारो मे तपुरान् का स्थान शीर्षस्थ है।

कोयित्तपुरान् (वलिय), केरलवर्मा *(मल० ले०)* [जन्म—1845 ई०, मृत्यु—1914 ई०]

ये केरल-कालिदास के नाम से प्रख्यात कवि, गद्यकार एव शिक्षाशास्त्री है। ये तत्कालीन त्रावनकोर महाराजा के बहनोई थे, परतु महाराजा की अप्रसन्नता

के पात्र होने के कारण इन्हें पाँच वर्ष का कारावास भोगना पड़ा था। यह प्रवास-काल सुंदर संदेश-काव्य 'मयूर-संदेशम्' (दे०) की रचना के लिए प्रेरक बना। परवर्ती महाराजा के काल में इन्हें अधिक सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और इन्होंने साहित्यकारों के प्रोत्साहन और शिक्षा के विकास में शेष जीवन समर्पित किया।

इनकी मुख्य कृतियाँ 'मयूरसंदेशम्', 'दैवयोगम्' आदि काव्य, 'हनुमदुद्भवम्', 'ध्रुवचरितम्' आदि आट्टक्कथाएँ, 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' (दे०), 'अमरुकशतकम्' (दे०) आदि के अनुवाद और 'अकबर' (दे०) उपन्यास हैं। इन्होंने इतिहास, भूगोल आदि विषयों पर अनेक पाठ्य-पुस्तकों की भी रचना की है तथा अनेक संस्कृत-काव्य भी लिखे हैं जिनमें 'विशाखविजयम्' प्रमुख है।

केरलवर्मा मलयाळम कविता के नवोत्थान के प्रणेता हैं। इन्होंने नव-क्लासिक शैली में काव्य-रचना की और अनेक कवियों को इस शैली में दीक्षित किया। इनके नाम से एक साहित्यिक आंदोलन ही चालू हुआ था। इनके प्रोत्साहन में मलयाळम को अनेक सुंदर काव्य प्राप्त हुए थे। आधुनिक गद्य के विकास में भी इनका स्थान सर्वोपरि है। यद्यपि 'मयूरसंदेशम्' और 'भाषाशाकुंतलम्' के प्रतिभा-संपन्न कवि के रूप में केरलवर्मा का अद्वितीय स्थान है तथापि साहित्य-कला प्रोत्साहक के रूप में ही साहित्य में इनका यश अक्षुण्ण है।

'कोरटि', श्रीनिवासराव *(क० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

इनका जन्म कर्णाटक के कोरटि नामक गाँव में हुआ था। ये 'कोरटि' के नाम से बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। कन्नड के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में इनका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने अब तक पच्चीस से भी अधिक उपन्यास लिखे हैं। 'जैत्रयात्रे', 'तुरिबंद तारे' (उड़ कर आई तारिका), 'मिस लीलावती', 'जगन्मोहिनी' और 'मैसूरु हुलि' (मैसूर का बाग) इनके लोकप्रिय उपन्यास हैं। इनके उपन्यासों में ऐतिहासिक वातावरण का अच्छा निरूपण हुआ है तथा संभाषणों में आकर्षण और पात्रों के चित्रण में रमणीयता है। इनके 'आदिमानव' का अँग्रेजी में अनुवाद भी हुआ है।

कोरड़ा *(पं० पारि०)*

यह पंजाबी का एक लोकप्रिय छंद है। प्रत्येक चरण में 13 वर्ण होते हैं, तथा 6 और 7 पर यति होती है। प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं।

> तूड़ी तंद सांभ, हाड़ी वेच वट के।
> लंबड़ा ते शाहां दा हिसाब कट के।
> कड़े मार वंझली अनंद छा गिआ।
> गारदा दमामे जट्ट मेले आगिआ।

कोळूर कोडगूसु-पडक्षरिय *(क० पा०)*

कोळूर कोडगूसु की कहानी तमिल साहित्य में बहुत ही प्रसिद्ध है। वह एक शिवभक्त बालिका थी। इसकी कहानी भीम कवि के 'बसव पुराण' में भी आती है। पडक्षरी ने अपने 'वृषभेंद्रविजय' नामक काव्य में इसका बहुत ही सुंदर निरूपण किया है। इसके पिता परम शिव-भक्त थे। एक दिन उनको किसी दूसरे गाँव जाना पड़ा और उन्होंने भोग लगाने का काम बेटी को सौंप दिया। लड़की को क्या मालूम कि भोग लगाना क्या होता है। उसने समझा कि शिवजी काफी दूध पिएँगे। दूध खूब गरम कर मंदिर में ले चली। किंतु मंदिर में पत्थर की मूरत दूध क्या पीती? उसने भाँति-भाँति से प्रार्थना की, गिड़-गिड़ाई, और अंत में आत्महत्या करने लगी। शिवजी उसकी भक्ति पर रीझे और दूध पी गए। फिर रोज़ ऐसा ही होने लगा। जब पिता लौटे तो उन्होंने दूध के नैवेद्य के बारे में पूछा। लड़की ने सारा हाल कह सुनाया। पिता को विश्वास नहीं हुआ। वे नाराज़ हो लड़की को मारने चले। अंत में दोनों मंदिर में चले। शिवजी भी आज जल्दी नहीं रीझे, अंत में अपनी भक्तिन को बचाने के लिए वे प्रकट हो दूध पीने लगे। आखिर उस परम भक्त को उन्होंने अपने में लीन कर लिया। लिंग में विलीन होते देख-कर पिता ने अपनी लड़की की चोटी पकड़ कर खींची। चोटी बाहर ही रह गई, शेष सब भाग लिंग में लीन हो गया। इसकी मूर्ति आज भी विद्यमान है। पडक्षरी ने कोडगूसु की कहानी में मुग्ध भक्ति का अत्यंत सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

कोल्हटकर, अच्युत बळवंत *(म० ले०)* [जन्म—1879 ई०; मृत्यु—1931 ई०]

धाई के एक संभ्रांत परिवार में इनका जन्म हुआ था। ये टिळक के अनुयायी थे। इन्होंने नागपुर से निकलने वाले 'देशसेवक' पत्र में उग्र राजनीतिक विचारपूर्ण निबंध

लिखे थे। ये निबंध अत्यत लोकप्रिय हुए फलत ये 'देश-सेवक' पत्र के सपादक बन गए। 1912 मे इन्होने 'सदेश' समाचारपत्र निकाला। कोल्हटकर जी ने एक नाट्यमडली की स्थापना भी की थी जिसमे ये स्वरचित नाटको का अभिनय प्रस्तुत करते थे।

इनका साहित्य-भाडार विपुल, वैविध्यपूर्ण और एक अद्भुत सग्रहालय की तरह है। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं ऐतिहासिक उपन्यास—'इग्रजांचा पराभव', निबध-सग्रह—'अ० ब० कोल्हटकर स्मारक ग्रथ' (भाग 1 3)। इनके अतिरिक्त इन्होंने राष्ट्राभिमानपोषक पोवाडे और नाटक की भी रचना की।

इनके साहित्यिक यश का आधारस्तभ 'सदेश' समाचारपत्र मे प्रकाशित निबंध है जो 'अ० ब० कोल्हट-कर स्मारक-ग्रथ' मे सगृहीत है। इनमे से कुछ स्वभाषा, स्वधर्म, एव स्वदेश के उद्धार की प्रेरणा देने वाले गभीर निबध हैं और कुछ मनोरजनार्थ ललित शैली मे लिखे गए हैं। इनकी निबध-शैली व्यग्य, विनोदयुक्त, धाराप्रवाही एव चित्ताकर्षक थी।

इनके कारण 'सदेश' इतना लोकप्रिय बन गया था कि लोग खरीदकर पढते थे। इनका 'वत्सला वाहिनीची पत्रे' स्तभ अत्यत उद्बोधक था और लोकप्रिय भी। ये सामान्य बातो को भी विस्तारपूर्वक आवेशयुक्त शैली मे लिखते थे जिसे पढते ही पाठक उनका प्रयोजन समझ जाता था।

राष्ट्रोत्थान की प्रेरणा देने वाले पत्रकार एव निबधकार के रूप मे इनका स्थान अन्यतम है।

कोल्हटकर, बाळ *(म० ले०)*

आधुनिक मराठी नाटककारो मे बाळ कोल्हटकर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने अपनी नाट्य-कृतियो मे पारिवारिक जन-जीवन को उरेहा है। रग-मचीय दृष्टिकोण के प्राधान्य के कारण इनकी रचनाएँ नाटकीय प्रभावान्विति की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। त्यागमय जीवन का भव्य चित्राकन इनके 'दुरिताचें तिमिर जावो' (दे० दिगू), 'व्हातो ही दूर्वांची दूरी' (दे० ताई), 'अगाई', 'वेगळ व्हायचय मला', 'एखा दी तरी स्मिति रेखा', 'करायला गेलो एक' तथा 'लहान पण देगा देवा' आदि नाटको मे हुआ है। जनसामान्य से नाटकीय कथा एव पात्रो का चयन कर जनसाधारण की भाषा मे ही सहज-सरल सवादो की योजना से युक्त इनकी कृतियाँ परिपूर्ण है और यही कारण है कि नाटकीय प्रभावान्विति की दृष्टि मे वे विशेष उल्लेखनीय हैं।

कोल्हटकर, श्रीपाद कृष्ण *(म० ले०)* [जन्म—1871 ई०, मृत्यु—1934 ई०]

इन्होंने अनूदित एव पौराणिक नाटको के भँवर-जाल से मराठी रगमच को निकालकर कल्पना रम्य सामाजिक नाटको का प्रचलन किया था। आगरकर के समाज-सुधारक विचारो का प्रतिपादन इनके नाटको मे हुआ है। 'वीर तनय (1894), 'मूक नायक' (1897), 'गुप्त मजूष' (1901), 'मतिविकार (1906), 'प्रेमशोधन' (1908), 'वधू परीक्षा' (1912), जन्म रहस्य' (1918), 'सहचा-रिणी' (1917) आदि नाटको मे अनमल, विधवा, बहु-विवाह आदि का निरूपण हुआ है। 'वीरतनय' मे मद्य-निषेध तथा 'शिव पावित्र्य' मे महाराज शिवाजी के महद चरित्र का भव्याकन हुआ है। शेक्सपियर तथा मौलियर के नाट्य तत्र से ये अतिशय प्रभावित है। कथा विन्यास चम त्कार एव चमत्कारपूर्ण घटना-प्रसगो के कारण जटिल अवश्य हो गया है, परतु भाषा मनोहारी, व्यग्यात्मक, सहज सरल है तथा सवाद-योजना के कारण कहीं भी बोझिल नही हो पाई है। सुधारवादी दृष्टिकोण के प्रबल आग्रह के कारण कथा का विकास पूर्व निश्चित योजना के अनुसार हुआ है। फलत मार्मिक भावाभिव्यक्ति के स्थान पर चम त्कार एव आलकारिक प्रवृत्ति का अवलब लेकर औत्सुक्य बनाए रखने की प्रवृत्ति स्पष्टत परिलक्षित होती है। वस्तुत अपनी स्वच्छदतावादी परपरा से हटकर कथा चयन के कारण इनकी रचनाओ मे कतिपय शिल्पगत त्रुटियाँ अवश्य रह गई हैं, परतु अद्भुत एव सयोग के समावेश, सहज-सरल मार्मिक सवाद तथा अभिनयोचित चाचल्य से परिपूर्ण तर्कमयी भाषा के कारण इनके नाटक मराठी नाट्य-साहित्य की अमूल्य निधि है। नाटको के अतिरिक्त इन्होंने विनोदपरक लेख भी लिखे है। 'सुदाम्याचे पोहे' (द०) मे ये लेख सगृहीत है।

कोवूर, ई० एम० *(मल० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

तिरुवल्ला शहर के प्रतिष्ठित और आर्थिक दृष्टि से सपन्न सिरियन् परिवार मे जन्मे कोवूर जी अपनी प्रतिभावती, प्रभावशीला और वात्सल्यमयी माता का स्मरण श्रद्धा तथा ममता से करते हैं, ये भौतिकी और

कानून के स्नातक होने के बाद कुछ वर्षों तक वकालत करते रहे तथा अंततः जिला-जज के पद से इन्होंने अवकाश ग्रहण किया।

श्री कोवूर जज से बढ़कर साहित्यकार के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। वे धारावाही वक्ता, सरस कहानीकार और उपन्यासकार है। कहानी व उपन्यास के अलावा व्यंग्य-विनोद, नाटक, जीवनी आदि अन्य विधाओं की रचनाएँ भी इनकी लिखी हुई हैं। बहुमुखी साहित्यकार होते हुए भी कोवूर जी साहित्य-साधना को अपनी 'हाबी' ही मानते हैं।

कोवूर जी की कहानियों के करीब तेरह संग्रह निकले है। इनकी कहानियों के विषय अनेक हैं और इनका प्रेरणा-स्रोत मानो अक्षय है। बहुमुखी जीवन-धाराओं का विशद परिचय शब्दबद्ध करना ही ये सृजनशील कलाकार का कर्तव्य समझते हैं। इनकी कहानियों में कम वेतन पाने वाले सरकारी कर्मचारी, वैतनिक गवाह, धर्मप्रचारिणी महिलाएँ, कलाकार आदि समाज-जीवन के अनेक स्तरों और वर्गों के पात्र आते है। गुप्तन नायर के शब्दों में साधारण कोटि के जीवन के असाधारण भावों और प्रसंगों को देख लेना और उनके जरिये सूखे जीवन-प्रसंगों को आश्चर्य का गाढ़ा रंग देने का रोमांटिसिज्म कोवूर जी की कहानियों में उपलब्ध है। यथार्थवाद की शुष्कता की जगह कल्पनामिश्रित मधुर कथा को कोवूर अधिक पसंद करते है। हास्य-व्यंग्य इनमें सहज है और इन्हें स्व० ई० वी० कृष्णपिळ्ळा (दे०) से इस विषय में बड़ी प्रेरणा मिली है। श्री कोवूर मलयाळम के अग्रणी कथाकारों में परिगणित है।

कोवूर-किपार् *(त० ले०)* [समय—अनुमानतः पहली शती]

ये कोऊर् नामक गाँव के एक किसान थे। इनके विरचित 17 पद्य विभिन्न संकलन-ग्रंथों में प्राप्त होते है। इनकी रचनाओं से तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का कुछ संकेत मिलता है। ये चोळ् राजा 'नलङ्-किळ्ळि' के आश्रय में रहते थे। जिस समय 'नलङ्-किळ्ळि' ने एक अन्य राजा 'नेडुङ्-किळ्ळि' पर आक्रमण किया था उस समय 'नेडुङ्-किळ्ळि' अपने दुर्ग में ही छिपा रहा था। इस कवि की एक कविता को सुनकर यह राजा अपना दुर्ग छोड़कर बाहर निकल आया था। हारने के बाद वह 'उरैयूर' नामक स्थान को चला गया था; 'नलङ्-किळ्ळि' ने वहाँ भी आक्रमण किया था। 'नेडुङ्-किळ्ळि' ने एक व्यक्ति को गुप्तचर होने की शंका पर मरवाना चाहा था; तब इसी कवि के कारण उसे छोड़ दिया गया था। इस कवि ने बाद में दोनों नरेशों में संधि करा दी थी। इसी प्रकार 'किळ्ळि वळ्वन्' नामक राजा ने जब किसी कारण से अन्य किसी राजा 'मलयमान्' के पुत्रों को हाथियों से कुचलवाने का दंड दिया था तो इस कवि ने अपनी एक कविता सुनाकर उसका मन-परिवर्तन कर दिया था और उन कुमारों को बचा लिया था। ऐसी अनेक घटनाएँ इनकी कविताओं से संबद्ध है।

कोवै *(त० पारि०)*

कोवै तमिल साहित्य की एक विधा है। इसकी गणना अकम साहित्य के अंतर्गत होती है। इसमें मुल्लै (दे०), कुरिंजि (दे०), पालै (दे०), मरुदम (दे०), नेयदल (दे०) इन पाँच भूखंडों में प्रेमी-प्रेमिका के अंतरंग जीवन का वर्णन होता है। कोवै में प्रेम के दोनों पक्षों, पूर्वराग और विवाहोपरांत प्रेम का विस्तृत चित्रण होता है। कोवै कृतियों में कट्टले कलि तुरै छंद में रचित प्रेम-संबंधी चार सौ पद होते हैं। प्रत्येक पद में प्रेमी-प्रेमिका अथवा भावी पति-पत्नी के जीवन की घटनाओं का वर्णन होता है। कोवै का एक प्रकार है 'ओरुत्तुरै कोवै'। इसमें 400 पदों में मात्र एक ही घटना का वर्णन होता है। कोवै के प्रत्येक पद में कवि अपने इष्ट देवता या आश्रयदाता राजा को संबोधित करता है। इस प्रकार इसे दरबारी कविता का एक रूप माना जा सकता है।

तमिल की कुछ प्रसिद्ध कोवै कृतियाँ है—तिरुक्कोवैयार, तंजैवाणन कोवै, तिरुवेंगै कोवै, पांडियन कोवै, असदि कोवै आदि।

कोशविज्ञान *(हिं० पारि०)*

प्रायोगिक भाषाविज्ञान (applied linguistics) की एक शाखा, जिसका संबंध कोश-निर्माण से है। पहले मानव को कोशों की आवश्यकता न थी, किंतु जैसे-जैसे एक भाषा-भाषी समाज के अपने ही पुराने शब्द अप्रचलन के कारण कठिन जान पड़ने लगे तथा अन्य भाषा-भाषियों से उनकी भाषाओं एवं साहित्यों से परिचय की आवश्यकता पड़ी—एकभाषिक, द्विभाषिक तथा बहुभाषिक कोशों का निर्माण होने लगा। निर्माण के साथ-साथ इस

विज्ञान में चिंतन भी बढ़ा और अब कोशविज्ञान (lexicology) तथा कोशकला (lexicography) दो रूपों में इस विषय पर विचार होता है। कोशविज्ञान का सबध कोश-निर्माण सबधी सैद्धांतिक बातों से है तथा कोशकला का कोश-निर्माण-सबधी व्यावहारिक बातों से। 'कोश' किसे कहते हैं, उसके कितने प्रकार एकभाषिक, द्विभाषिक, त्रिभाषिक आदि, शब्दकोश, चरित्रकोश, मुहावरा कोश, लोकोक्ति कोश, प्रयोग कोश, उद्धरण कोश, उच्चारण-कोश, पर्याय कोश, पारिभाषिक कोश आदि, सामान्य कोश, ऐतिहासिक कोश, तुलनात्मक कोश, व्युत्पत्ति कोश आदि) होते हैं, उसके लिए प्रविष्टियों का चयन कैसे और कहाँ से करें, कोश-निर्माण में एकरूपता के लिए क्या कुछ करें, प्रविष्टियों को क्रमबद्ध कैसे करें, उच्चारण कैसे लिखें, व्याकरणिक सकेत में क्या क्या लें, अर्थों का क्रम क्या रखें, किन-किन अर्थों को उदाहृत करें, उदाहरणों का सदर्भ कैसे दें, आदि अनेकानेक बातें इस प्रसग में विचारणीय होती हैं। हिंदी में—तथा अन्य भारतीय भाषाओं में—कोश विज्ञान, अपने आधुनिक सदर्भों में, अभी विकसित होना है।

कोहिली, सुरिंदर सिंह *(प० ले०)* [जन्म—१९१९ ई०]

डॉक्टर कोहली पजाबी के प्रसिद्ध अध्यापक हैं। आपके अनुसधान और आलोचना का अधिकतर भाग आपके अध्यापन के परिणामस्वरूप विरचित है। आपने परपरा प्राप्त आलोचना-सरणियों को ठोस आधार प्रदान कर विस्तार की ओर अग्रसर किया। मध्यकालीन साहित्य के कतिपय अशों को सपादित कर इन्होंने पजाबी पाठ्य-पुस्तकों की कमी पूरी करने का यत्न किया। इसके अतिरिक्त आधुनिक कविता के भी प्रतिनिधि सकलन तैयार कर एक महत्वपूर्ण कार्य किया। आपने इतिहास, धर्म, धर्म-मर्यादा, साहित्य आदि भिन्न-भिन्न विषयों में रुचि ली परतु इन सब के मौलिक प्रकृति-भेद की ओर विशेष ध्यान न दे पाने के कारण इनमें अपेक्षित गभीरता का अभाव है।

आजकल आप पजाब विश्वविद्यालय में पजाबी विभाग के अध्यक्ष के पद पर कार्य कर रहे हैं। प्रसिद्ध रचनाएँ—'पजाबी साहित्य दा इतिहास', 'पजाबी साहित्य वस्तुते रूप', 'प्रो० पूरण सिंह जीवन ते रचना', 'पजाबी साहित्य दे उसरैये', 'लाला किरपा सागर ते उन्हाँ दी रचना' आदि।

कौटिल्य *(स० ले०)* [स्थिति काल—ई० पू० चौथी शती]

इनके विष्णुगुप्त और चाणक्य नाम भी मिलते हैं। इनका सर्वाधिक प्रख्यात ग्रथ 'अर्थशास्त्र' (दे०) है। इसके अतिरिक्त चाणक्य के नाम से 'चाणक्यशतक' एव 'चाणक्य नीति' (340 श्लोकों का सग्रह), ये दो ग्रथ मिलते हैं।

अर्थशास्त्र का प्रमुख विषय राजनीति है। इस महान ग्रथ में कौटिल्य ने राजनीतिशास्त्र के विषय में विस्तृत सामग्री प्रस्तुत की है। अर्थशास्त्र के उत्तरवर्ती ग्रथों—'कामन्दकीय नीतिसार' एव 'नीति वाक्यामृत' आदि—पर कौटिल्य का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्राचीन अर्थशास्त्र के क्षेत्र में कौटिल्य की देन इस कारण से महत्वपूर्ण है कि इस विद्वान् ने अपनी प्रतिभा से पूर्ववर्ती बृहस्पति (दे०) एव भारद्वाज आदि के अर्थ-शास्त्रीय सिद्धातों का समन्वय प्रस्तुत करते हुए एक विस्तृत अर्थशास्त्र का निर्माण किया था। इस ग्रथ में समाज के विभिन्न क्षेत्रों में व्यवहार्य राजनीतिक सिद्धातों का विशद निरूपण मिलता है।

कौल, जिंद *(कश्० ले०)* [जन्म—1884 ई०, मृत्यु—1965 ई०]

मास्टर जी के नाम से प्रसिद्ध श्री जिंद कौल ने शैशव से ही अपनी मेधा का परिचय दिया। ये पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली से शिक्षित प्रारंभिक कश्मीरी छात्रों में थे जिन्होंने स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की थी। परिणामत आधुनिक विचारावली से ये प्रभावित थे। उर्दू, फारसी, अरबी, हिंदी, सस्कृत और अँग्रेजी भाषाओं का इन्हें ज्ञान था। अँग्रेजी के ये प्रख्यात वैयाकरण थे। उर्दू और फारसी में भी इन्होंने कविताएँ रची हैं। ईरानी विद्वानों ने इनकी फारसी कविता को सराहा था। 'साबित' उपनाम से इन्होंने उर्दू और फारसी में प्रारंभिक रचनाएँ कीं। कुछ समय तक अध्यापक रहे। इसीलिए 'मास्टर जी' कहलाए। अपनी सीधी-सादी शिशुसुलभ प्रकृति, मित-भाषिता, सात्विक स्वभाव एव उच्च आदर्शों के कारण ये कश्मीरी जन-जन के स्नेहभाजन बने। कश्मीरी भाषा में इन्होंने सन् 1942 से 1950 तक रचनाएँ कीं। कश्मीरी के वरिष्ठ कवि परमानद की कविताओं का सुदर अँग्रेजी अनुवाद भी किया। कुल मिलाकर इन्होंने 37 कविताएँ

लिखी हैं। इनकी 35 कश्मीरी कविताओं के संग्रह 'सुमरन' पर इन्हें सन् 1956 में साहित्य-अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था। प्राचीन और अर्वाचीन विचारावलियों के सेतु-बंधन का श्रेय इन्हीं को है। इनमें भावगांभीर्य, पद-लालित्य एवं मार्मिकता का सुंदर सम्मिश्रण तथा अलंकारों का सुंदर प्रयोग है। सुंदर शब्दचयन; ठेठ कश्मीरी शब्दावली के होते हुए भी फ़ारसी और संस्कृत के तद्भव शब्द यत्र-तत्र दिखाई पड़ते हैं। सदा आर्थिक विषमताओं से जूझते रहे और इनका गार्हस्थ्य जीवन दुःखी रहा, जवान बेटे की मौत हुई। कदाचित् इसी के परिणामस्वरूप जीवन का दृष्टिकोण बदला। मनुष्य की बेबसी और इसीलिए ईश्वर के प्रति आत्मसमर्पण का विश्वास उत्पन्न हुआ। मौलिक एवं मार्मिक शैली में जीवन के कटु अनुभवों को प्रतिबिंबित करने वाली इनकी कई कविताएँ अत्यंत लोकप्रिय हुई हैं।

कौसल्या देवी कोड़ूरि *(तें० ले०)*

इनका निवासस्थान राजमहेंद्रवरमु है। ये प्रधानतः उपन्यास-लेखिका हैं। इनके उपन्यास 'आंध्रप्रभा', 'युवा', 'जयश्री' आदि तेलुगु पत्रिकाओं में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए हैं। पत्रिकाओं की ओर से आयोजित प्रतियोगिता में इनके 'चक्रभ्रमणमु' (दे०) नामक उपन्यास को पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'शांतिनिकेतनमु', 'धर्मचक्रमु', 'प्रेमनगर', 'कल्याण मंदिरमु', 'चक्रनेमि' आदि इनके अन्य उपन्यास हैं। उपन्यासों के अतिरिक्त इनकी कुछ कहानियाँ तथा लेख भी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। शैली की सरलता तथा सरसता, आकर्षक घटनाओं का चयन और नियोजन तथा सजीव चरित्र-चित्रण इनके उपन्यासों की लोकप्रियता के आधार-तत्त्व हैं।

क्रांतिकल्याण *(क० कृ०)* [समय—बीसवीं शती का दूसरा चरण]

यह कन्नड के श्रेष्ठ उपन्यासकार श्री बी० पुट्ट स्वामय्या (दे०) जी की साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत प्रतिनिधि उपन्यास-कृति है। यह एक सांस्कृतिक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें संत बसवेश्वर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के आलोक में बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध के कर्णाटक के राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जीवन का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत किया गया है। संत बसवेश्वर का आविर्भाव बारहवीं शती के उत्तरार्द्ध में हुआ। उन्होंने वीरशैव मत का प्रसार किया; वर्णाश्रम धर्म, छुआछूत, जाति-पाँति आदि का घोर विरोध किया और क्रांति का शंखनाद फूँका। वे सम्राट बिज्जल के मंत्री थे। बिज्जल जैन थे। सनातन धर्म का विरोध, अंतर्जातीय विवाह आदि को दिए गए प्रोत्साहन को देखकर सनातनियों ने उनका विरोध किया और बिज्जल के कान भरे। बिज्जल ने अंतर्जातीय विवाह कराने वाले हरलय्या मधुवय्या को दंड दिया। इससे जनता भड़क उठी। जनता ने विद्रोह किया। बिज्जल की हत्या हुई। बसव उस हिंसा-क्षेत्र से दूर चले गए। वहीं उनकी इहलीला समाप्त हुई। यह है संत बसवेश्वर के क्रांतिकारी जीवन का झंझा-क्रम। महान संत बसवेश्वर ने अपने समय के महान चिंतकों व संतों को आश्रय दिया, तत्त्वचिंतन के लिए अनुभव-मंडप की स्थापना की। प्रभुदेव, सिद्धराम (दे०), चेन्नबसव (दे०), अक्क-महादेवी आदि संतजन इसी समय हुए। उन्होंने हज़ारों बानियाँ लिखीं जो वचनों के नाम से विख्यात हैं। बसवेश्वर के वचनों में भक्ति, विचार एवं कर्म की त्रिवेणी है। इस आंदोलन की पृष्ठभूमि में यह बृहत् उपन्यास लिखा गया है। इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग में ये तीन पुस्तकें आती हैं: उदय रवि, राज्यपाल, कल्याणेश्वर; द्वितीय में नागबंध, मुगियदकल्लु, तथा क्रांतिकल्याण। बिज्जल की कूटनीति एवं महत्वाकांक्षा, बसवेश्वर की निःस्पृहता, लोककाव्य आदि का अत्यंत मनोहर चित्रण यहाँ है। इससे भी बढ़कर बसव के समकालीन महान् संतों के जीवन भी इसमें गूँथे हुए हैं। उपन्यास की शैली रोमांटिक है। कोमल सन्निवेश, भावुकतापूर्ण घटनाओं आदि के चित्रण में वे कुशल हैं। उनकी कुशल लेखनी से बारहवीं शती के कर्णाटक का एक पूरी शती का विस्तृत जीवन प्रत्यक्ष हो उठा है। इतनी विशाल पटभूमि के कारण यह शिथिल-कथानक उपन्यास है। कहीं-कहीं भरती की चीज़ें भी हैं। फिर भी वीरशैव धर्मदीप्त संस्कृति के पुनर्निर्माण में यह उपन्यास सफल है।

क्रिया *(हिं० पा०)*

'क्रिया' शब्द का संबंध 'कृ' धातु से है और इसका अर्थ है 'कुछ किया जाना' या 'कर्म'। व्याकरण में क्रिया उस विकारी शब्द को कहते हैं जिससे कुछ होना या किया जाना व्यक्त हो। 'राम गया' और 'राम ने खाया' में 'गया', 'खाया' क्रियाएँ हैं। क्रिया के अकर्मक

(जाना, गिरना, हँसना), सकर्मक (खाना, गिराना), द्विकर्मक (लिखना), प्रेरणार्थक (करवाना, लिखवाना), मूल ('राम गया है' मे 'गया'), सहायक ('राम गया है' मे 'है'), सयुक्त ('राम गिर गया' मे 'गिर गया') आदि कई भेद होते हैं। हर वाक्य मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से एक क्रिया का भाव अवश्य होता है, इस तरह भाषा मे क्रिया बहुत महत्वपूर्ण है।

क्रियाविशेषण *(हि० पारि०)*

व्याकरण मे क्रिया विशेषण उन शब्दो को कहते हैं जो क्रिया की किसी-न-किसी प्रकार की विशेषता व्यक्त करते है। उदाहरण के लिए, 'मोहन अच्छा गाता है' मे 'अच्छा' शब्द 'गाता है' क्रिया की विशेषता बतला रहा है, अत यह क्रियाविशेषण है। 'राम वहाँ गया', 'मोहन किधर जा रहा है', 'सीता अब चलेगी' मे 'वहाँ' से स्थान 'किधर' से दिशा तथा 'अब' से समय की अभिव्यक्ति हो रही है। स्थिति, स्थान, दिशा, समय आदि शब्द वस्तुत क्रिया की विशेषता तो नही बतला रहे है, किंतु ये भी क्रियाविशेषण के अतर्गत ही रखे जाते है। इस तरह इस प्रसग मे 'विशेषता' शब्द अपने सामान्य अर्थ से पर्याप्त व्यापक है। क्रियाविशेषण के अतर्गत क्रिया के काल, स्थान दिशा, स्थिति, परिमाण, रीति, क्रम, हेतु, निश्चय, अनिश्चय, निषेध, आवृत्ति, गुण, अवगुण, तुलना, पर्याप्ति, न्यूनता आदि के बोधक शब्द आते है।

क्रीडाभिरामम् *(ते० कृ०)*

यह महाकवि श्रीनाथुडु (दे०) द्वारा रचित शृगारपरक वीथीरूपक (दे० वीथिनाटक) है जिसका इनकी लघु रचनाओ मे महत्वपूर्ण स्थान है। यह तेलुगु का प्रथम उपहासपरक काव्य है और साथ ही सभी लक्षणो से युक्त प्रथम रूपक भी। सरस परिहास एव रसिकता इसके प्रमुख गुण हैं। समाज की कुरीतियाँ, दुर्बल मनोवृत्ति वाले व्यक्तियो के धर्म विरोधी आचरण आदि इसमे हास्य-शैली मे प्रस्तुत किए गए है और इस प्रकार लेखक ने उन पर परोक्षत प्रहार किया है। इसमे कोमल उपालभ है, क्रुद्ध-शाप या दड नही। इसमे दूसरे प्रतापरुद्र के समय के ओरुगल्लु के जनजीवन, नगर-वीथियो, बाजारो, वेश्यालयो, देवी देवताओ आदि का सजीव चित्रण दो मित्रो के सवाद के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

क्षणदागीत चिंतामणि *(बँ० कृ०)*

'क्षणदागीत चितामणि' विश्वनाथ चक्रवर्ती-कृत वैष्णव पदसमूह का प्राचीनतम सकलन है। बगाल के नदिया जिले के देवग्राम मे लगभग 1586 ई० मे विश्वनाथ चक्रवर्ती का जन्म हुआ था। इन्होने आजीवन वैष्णव-शास्त्र के प्रचार के लिए कार्य किया।

'क्षणदागीत चितामणि' मे कुल मिलाकर 308 पद है। ये सब 'पूर्व-विभाग' से सबधित पद है। वैष्णव-साधना के क्षेत्र मे 'क्षण' भित्तीय गुह्य साधना की धारा को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न इस ग्रथ मे दृष्टिगोचर होता है। यह गूढ 'आस्वादन' श्री चैतन्य धारा के अनुसार 'अतरग' आधारशिला है। इस ग्रथ मे कुल मिलाकर 49 पदकर्ताओ के पद सकलित है परतु चडीदास (दे०) के पद इसमे नही है। विश्वनाथ चक्रवर्ती के पद 'हरिवल्लभ' के नाम से इसमे सकलित है।

क्षणार्ध *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1962 ई०]

'क्षणार्ध' चुनीलाल मडिया (दे०) की तेईस कहानियो का सग्रह है। लेखकीय निवेदन के अनुसार प्रस्तुत सग्रह मे लेखक की पिछले तीन-चार वर्षो मे लिखी गई कहानियाँ सगृहीत है। इस पुस्तक का नामकरण हमारा ध्यान दो बातो की ओर आकृष्ट करता है 'चक्रद्वार', 'विश्राति', 'दिनोदिन' आदि कहानियो मे 'क्षणार्ध' के प्रयोग के साथ इसके नाम का सबध जोड दिया गया है तथा 'डख' और 'वादूडियो' जैसी कुछ कहानियो मे जो सवेदनपूर्ण क्षणार्ध को रूपायित किया गया है, वह द्रष्टव्य है। एक हतो गधेडो' के समान कुछ हलकी फुलकी कहानियाँ भी इसमे सकलित है और 'प्रेम, कथा अने किस्सो' के समान शब्द-मुखर और करामाती कहानियाँ भी मौजूद है। 'क्षणे क्षणे' कहानी नागरिक जीवन के एक दूसरे ही माहौल को प्रकट करती है। लेखक का जिनतान का कैलेंडर अनेक स्थानो पर मौजूद है (शायद यही कैलडर उन्हे अधिक प्रिय हो!) प्राय सभी कहानियाँ गुरु-गभीर न हो कर सीधी-सादी जीवन-सवेदना को प्रकट करने वाली है। भाषा सरल और शैली प्रवाहपूर्ण है।

क्षमाराव, पडिता *(स० ले०)* [समय—1890-1954 ई०]

पडिता क्षमाराव बीसवी शती की सम्कृत

लेखिका हैं। ये प्रख्यात संस्कृत विद्वान् पं० शंकर पांडुरंग की पुत्री थीं। इन्होंने गद्य तथा पद्य दोनों में आधुनिक विषयों पर सुंदर रचनाएँ की हैं। इन्होंने आधुनिक दृष्टिकोण से संस्कृत में साहित्य-सर्जन किया।

इनकी मुख्य कृति 'कथामुक्तावली' है। यह सरल तथा सुबोध गद्य में रचित कहानियों का संग्रह है। ये कहानियाँ रोचकता एवं घटना के वैचित्र्य की दृष्टि से आधुनिक युग के सर्वथा उपयुक्त है।

क्षितिमोहन सेन *(बँ० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

बंगाल के विद्वत् समाज में आचार्य क्षितिमोहन सेन अपनी महिमा में सुप्रतिष्ठित है। कवि गुरु रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) का घनिष्ठ संपर्क उन्हें प्राप्त हुआ था। शांतिनिकेतन के विद्याभवन की अध्यक्षता करते हुए एक ओर उन्होंने शिक्षा-विस्तार में अपना तन-मन-धन लगा दिया तो दूसरी ओर निरलस ज्ञानचर्चा के क्षेत्र में अपने कार्य का वास्तविक विस्तार किया। उनके रचित ग्रंथों में 'मध्य युगे भारतीय साधनार धारा' (1930), 'दादू' (1938), 'बाँगलार बाउल' (1954), 'बलाका काव्य परिक्रमा' (1952) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके 'दादू' ग्रंथ के कारण ही रवींद्रनाथ मध्ययुगीन हिंदी कविता के प्रति आकर्षित हुए थे। हिंदी में 'भारत में जातिवाद', गुजराती में 'तंत्र नि साधना', अँग्रेजी में 'मेडीवल मिस्टीसिज्म' आदि की रचना कर क्षितिमोहन बाबू ने उज्ज्वल मनीषा का परिचय दिया है।

क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद *(बँ० ले०)* [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1927 ई०]

इनकी रचनाएँ है—

गीतिनाट्य : 'फूलशय्या' (1894), 'प्रेमांजलि' (1895), 'आलि बाबा' (1897), 'बेदौरा' (1904), 'वरुणाम्ब' (1908), 'भूतेर बेगार' (1908), 'बासन्ती' (1908), 'किन्नरी' (1918); अरब-ईरान की कथाओं पर : 'जूलिया' (1900), 'पलिन' (1911), 'मिडिया' (1922) तथा और कई नाटक; पौराणिक नाटक : 'सावित्री' (1902), 'रंजावती' (1904), 'भीष्म' (1913), 'रामानुज' (1916), 'नर-नारायण' (1926); ऐतिहासिक नाटक : 'रघुवीर' (1903), 'प्रतापादित्य' (1903), 'चांदबिबि' (1907), 'अशोक' (1908), 'आलमगीर' (1921) (दे०); इतिहासाश्रित काल्पनिक नाटक : 'खांजहान' (1912), 'आहेरिया' (1915), 'बंगेराठौर' (1917)।

क्षीरोदप्रसाद के नाट्य साहित्य में वैविध्य एवं विस्तार है।

विद्याविनोद के नाटक मूलतः रोमांटिक-धर्मी हैं। संभवतः इसीलिए ये अपने नाटकों में 'गल्प रस' उत्पन्न करने में सफल रहे है। (गिरीश) (दे०) घोष के नाटकों में भक्ति-रस माना जाता है)। इनके नाटकों में कहीं ऐतिहासिक विसंगतियाँ और कहीं-कहीं कष्ट-साध्य कल्पनाएँ मिलती हैं। वास्तव में इनकी नाट्य प्रतिभा का परिचय पात्रों के मानवीय पक्ष के उद्घाटन में मिलता है। पात्र ऐतिहासिक कम, वैयक्तिक अधिक हैं। इनके अंतर्जगत् का संघर्ष इनके व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करता है। विद्याविनोद के पौराणिक नाटकों में पातिव्रत्य, मातृ-पितृ-भक्ति, आदि परंपरागत आदर्शों की स्थापना है परंतु इनके कुछ ऐतिहासिक नाटकों का राष्ट्रीय पक्ष प्रबल है। जातीय गौरव तथा स्वाधीनता की भावना का आग्रह कहीं अधिक प्रखर एवं मुखर है।

इनकी भाषा आवश्यकता से अधिक तरल एवं भावप्रवण है। इनके नाटकों का मानवीय स्वरूप तथा रंगमंचीय सफलता उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

क्षेत्रय्या *(ते० ले०)* [समय—1600-1660 ई०]

आंध्र-विद्यापति' (दे० हिं० ले० विद्यापति) क्षेत्रय्या के पदों में संगीत और नृत्य का अद्भुत सामंजस्य है। आंगिक अभिनय के द्वारा आंतरिक भावों को आत्मीयता के साथ आह्लादकारिणी भाषा और रमणीय राग-रागिनियों में आराध्य के सामने प्रकट करने के उद्देश्य से ही क्षेत्रय्या ने अपने पदों की रचना की। इन पदों में भक्ति-भावना से मिश्रित शृंगार की अभिव्यंजना प्रधान है। प्रत्येक पद के अंत मे पद-रचनाकार के आराध्य भगवान गोपाल का उल्लेख मिलता है। आंध्र के कृष्णा जिले में मुव्वा नाम का एक ग्राम क्षेत्रय्या का जन्मस्थान था। कहते हैं कि क्षेत्रय्या ने कुल मिलाकर चार हजार पदों की रचना की थी, पर आज केवल साढ़े तीन सौ पद मिलते हैं। इनके पदों में भक्ति-भावना प्रधान है या शृंगार की भावना—यह कहना कठिन है। जो लोग जिस दृष्टि से देखेंगे, उनको वही भावना प्रधान प्रतीत होती होगी। लेकिन रसात्मकता सभी पदों

मे पाई जाती है। ये पद नृत्य-प्रदर्शन के अत्यत अनुकूल प्रतीत होते है। नारी-हृदय की कोमल भावनाओ की बडी मार्मिक व्यजना भी इन पदो की विशेषता है। नायक-नायिका के विविध भेदो के लक्षण भी इन पदो मे परिलक्षित होते है। सगीत और नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत भक्ति और शृगार की गगा-जमुनी का यह रसात्मक प्रवाह भारतीय साहित्य मे अन्यत्र दुर्लभ है। सत्रहवी शताब्दी के तजौर नरेश रघुनाथ नायकुडु के दरबार मे क्षेत्रय्या को राजाश्रय प्राप्त था और वही इन्होंने अपने अधिकाश पदो की रचना की।

क्षेमेंद्र *(स० ले०)* [समय—अनुमानत 1025-1075 ई०]

बहुमुखी प्रतिभा के धनी क्षेमेंद्र कश्मीरी थे। इनका समय ग्यारहवी शती ई० का द्वितीय और तृतीय चरण है। इनके पिता का नाम प्रकाशेंद्र तथा पितामह का नाम सिंधु था। इन्होने साहित्य का अध्ययन अभिनवगुप्त (दे०) के चरणो मे बैठकर किया था। ये मूलत शैव थे परतु बाद मे वैष्णव बन गए थे। इन्होने अपने ग्रथो मे अपने को 'व्यासदास' कहा है। ये शैव दार्शनिक क्षेमराज से भिन्न हैं।

क्षेमेंद्र ने अनेक विषयो पर अनेक ग्रथ लिखे है। उनकी कृतियाँ ये है—'औचित्यविचारचर्चा' (दे०), 'कविकठाभरण', 'कविकर्णिका', 'सुवृत्ततिलक', 'अमृततरग', 'अवसरसार', 'कनकजानकी', 'कलाविलास', 'क्षेमेंद्रप्रकाश', 'चतुर्वर्गसग्रह', 'चारुचर्या', 'चित्रभारतनाटक', 'दर्पदलन', 'दशावतारचरितकाव्य', 'देशोपदेश', 'दानपारिजात' 'नर्ममाला' (दे०), 'नीतिकल्पतरु', 'पद्यकादबरी', 'पवन पचाशिका', 'बृहत्कथामजरी' (दे०), 'बौद्धावदानकल्पलता', 'भारतमजरी', 'मुक्तावलीकाव्य', मुनिमतमीमासा', 'राजावलि', 'रामायणमजरी', 'ललितरत्नमाला', 'लोकप्रकाश', 'लावण्यवतीकाव्य', 'वात्स्यायनसूत्रसार', 'विनयवल्ली', 'वेतालपचविंशति', 'व्यासाष्टक', 'शशिवशमहाकाव्य', 'समयमातृका', 'सेव्यसेवकोपदेश'।

यद्यपि क्षेमेंद्र ने चालीस के लगभग ग्रथ लिखे तथापि उनकी कीर्ति का विशेष और महत्वपूर्ण आधार अलकारशास्त्र के क्षेत्र मे उनका 'औचित्यवाद' है जिसका विशद प्रतिपादन 'औचित्यविचारचर्चा' (दे०) मे किया गया है।

क्षेमेंद्र के औचित्यवाद मे कोई मौलिकता नहीं है और न ही इसे अलकारशास्त्र के क्षेत्र का मौलिक सिद्धात माना जा सकता है। क्षेमेंद्र ने अपने प्रतिपादन द्वारा काव्याभिव्यक्ति मे औचित्य का एक मानक स्थिर करने का प्रयास किया है। यह कोई पृथक् सिद्धात न होकर विभिन्न काव्यागो को परिष्कृत और उपादेय बनाने का हेतुमात्र है। उनके 'कविकठाभरण', 'कविकर्णिका' (अनुपलब्ध) और 'सुवृत्ततिलक' भी कवि शिक्षा के ग्रथ है। उनकी विपुल ग्रथ-राशि उनकी बहुलता तथा विविध क्षेत्रो मे उनके सर्जनकौशल की परिचायक है।

खडकाव्य *(स० पारि०)*

जीवन के अपार विस्तार को उसके बृहत्तम आयामो मे चित्रित करने वाले महदाकार काव्य-रूप महाकाव्य से भिन्न जीवन का एकपक्षीय खडचित्र प्रस्तुत करने वाला लघु आकार काव्य का रूप। सर्वप्रथम आनदवर्धन (दे०) ने मुक्तक प्रभेदो तथा पर्यायबध, परिकथा, सकलकथा आदि काव्य के अन्य उपभेदो के साथ 'खडकथा' रूप मे इसका उल्लेख किया है। अभिनवगुप्त (दे०) ने कथा के एक भाग के वर्णन को खडकथा कहा है ('एकदेशवर्णना खडकथा,—ध्वन्यालोकलोचन, तृतीय उद्योत)। कविराज विश्वनाथ (दे०) ने काव्य के एक अश का अनुसरण करने वाले काव्य विशेष को खडकाव्य का अभिधान दिया है ('खडकाव्य भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च'। —साहित्य दर्पण, 6।329)। लेकिन खडकाव्य जीवन का न तो खडित एव विशृखल चित्र है और न महाकाव्य का एक अग मात्र ही। कहानी (दे०) और एकाकी (दे० नाटक) के समान खडकाव्य भी जीवन के किसी एक पक्ष, महत्वपूर्ण घटना अथवा प्रसग विशेष का अपने सीमित आकार मे सक्षिप्त, किंतु क्रमबद्ध एव सपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करता है।

खगेंद्र मणिदर्पण *(क० कृ०)*

इसके रचयिता मगराज प्रथम हैं जिनका समय 1350 ई० के करीब है। यह जैन थे और हरिहर प्रथम के आश्रित थे। 'खगेंद्र मणिदर्पण' सोलह अधिकारो वाला वैद्यक ग्रथ है। कवि का दावा है कि वैद्यक मोक्षसाधक है। मणौपधि निरूपण ही उत्कृष्ट काव्य का उद्देश्य हो सकता है। शास्त्र-कविता होने पर भी इसमे कविता का वध ललित है और गति प्रौढ है। अनुप्रास, यमक, आदि अलकारो की छटा दर्शनीय है।

खड़ी बोली *(हिं० पारि०)*

खड़ी बोली नाम का प्रयोग दो अर्थों में हो रहा है। एक तरफ तो आज का साहित्यिक हिंदी को 'हिंदी या 'खड़ी बोली' कह रहे है और दूसरी तरफ मेरठ-मुरादाबाद में वहाँ की जनता द्वारा प्रयुक्त लोकभाषा को भी खड़ी बोली कह रहे है। इस गड़बड़ी को बचाने के लिए कुछ लोग लोक-भाषा को 'कौरवी' नाम से अभिहित करते है। 'खड़ी बोली नाम की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। इस नाम में 'खड़ी' शब्द को कुछ लोग 'खरी' या 'शुद्ध' मानते है तो कुछ लोग 'खड़ी' या 'खड़ी हुई'। ब्रजभाषा आदि की तुलना में (गयो-गया, कौ-का) खड़ी पाई या आकारांत की प्रधानता से भी कुछ लोग इस नाम का संबंध जोड़ते है। वस्तुतः ये सारे अनुमान मात्र हैं। किसी प्रमाण के अभाव में इस संबंध में कुछ कहना कठिन है। आज की खड़ी बोली हिंदी मूलतः शौरसेनी अपभ्रंश से निकली है। साहित्य में इसका प्रयोग हिंदी के आदिकाल में नही मिलता। मध्यकाल में भी अपवादतः ही इसका प्रयोग हुआ है। आधुनिक काल में पहले तो गद्य में इसका प्रयोग शुरू हुआ, फिर धीरे-धीरे कविता भी इसी में लिखी जाने लगी। अब 'खड़ी बोली' मानक हिंदी का पर्याय बन चुकी है तथा आधुनिक काल में 'हिंदी का अर्थ 'खड़ी बोली हिंदी' ही लिया जाता है।

खत्री, देवकीनंदन *(हिं० ले०)* [जन्म—1861 ई०; मृत्यु-1913 ई०]

इनका जन्म मुजफ्फरपुर में हुआ था। हिंदी उपन्यास के इतिहास में ये तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों के प्रवर्तक माने जाते हैं। 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति,' (दे०), 'नरेन्द्र मोहिनी,' 'काजर की कोठरी' आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। 'चंद्रकांता' इनका लोकप्रिय उपन्यास है। घटना-वैचित्र्य, जादू के करिश्मे, तिलस्मी करामातें तथा ऐयारों के ऊहापोह से भरपूर इस उपन्यास ने न केवल पाठकों का खाना-पीना भुला दिया था अपितु इसे पढ़ने के लिए हजारों लोगों ने हिंदी सीखी थी। यद्यपि यह निर्विवाद है कि खत्री जी के उपन्यास वास्तविक जीवन से संबंधित न होने के कारण न तो पाठकों के मानसिक विकास में किसी प्रकार का योग देते है और न औपन्यासिक कला की दृष्टि से ही विशेष महत्व रखते है, फिर भी यह नि.संकोच कहा जा सकता है कि हिंदी को लोकप्रिय बनाने मे इनका ऐतिहासिक महत्व है।

खबरदार, अरदेशर फरामजी *(गु० ले०)* [जन्म—1881 ई० मृत्यु—1953 ई०]

अंग्रेजी छठी कक्षा तक जिसने अध्ययन किया, जो गुजरात की मूलभूमि से दूर मद्रास में रहकर भी गुजराती साहित्य का सृजन करता रहा और जिसने अपने अंतिम पंद्रह-बीस वर्ष शैयाग्रस्त रहकर भी गुजराती साहित्य की सतत साधना की—ऐसे कवि खबरदार उन गिने-चुने पारसी गुजराती लेखकों में हैं जिन्होंने साहित्यिक गुजराती में लिखकर उसके साहित्य की श्रीवृद्धि की है। 'मनुराज' नाटक तथा 'गुजराती कविता की रचना कला' के अलावा खबरदार की सभी रचनाएँ काव्यकृतियाँ ही है। 'काव्यरसिका', 'विलासिका', 'प्रभातनो तपस्वी', 'कुक्कुटदीक्षा', 'संदेशिका','कलिका', 'भजनिका', 'राराचंद्रिका', 'दार्शनिका' (दे०), 'कल्याणिका' 'राष्ट्रिका', 'श्रीजी इरान शाहनी पवाड़ो', 'नन्दनिका', तथा 'कीर्तनिका' नामक इनके तेरह ग्रंथ हैं। इतना अधिक लिखने के बाद भी खबरदार नरसिंहराव (दे०) के समान प्रगीत नही लिख सके, कांतकलापी (दे०) की भांति खंडकाव्य में अपनी प्रतिभा का प्रकाश नहीं दिखा सके, 'दार्शनिका' का तत्त्वज्ञान भी अनेक स्थलों पर छायानुवाद-सा दिखाई देता है; प्रेम-निरूपण में भी अनेक स्थानों पर भावों की कृत्रिमता, कल्पना की शिथिलता, भाषा की विरूपता दिखाई देती है। फिर भी अनेक स्थलों पर इनके काव्य में सौंदर्य दृष्टि व प्रसादमयी अभिव्यक्ति के सुंदर दर्शन होते हैं।

'खयाल', गुलाब नबी *(कश्०ले०)* [जन्म—1936 ई०]

स्वभाव से स्वतंत्रताप्रिय और विचारों से मूलतः राष्ट्रवादी। कश्मीरी भाषा के सर्वप्रथम साप्ताहिक 'वतन' के संपादक। अपनी विचारधारा के कारण इनको सन् 1958 में एक बार जेल भी जाना पड़ा था। इन्होंने 'उमर खैयाम' का कश्मीरी पद्यानुवाद 1961 में प्रकाशित कराया। इन्होंने 'अरस्तू का काव्यशास्त्र' का भी कश्मीरी भाषा में अनुवाद किया है। इनकी कविताओं का संग्रह 'प्रागाश' (मोर) नाम से प्रकाशित हुआ है। अपने कारावास के दिनों में इन्होंने कुछ कविताओं की भी रचना की थी। जिनका संग्रह 'जंजीर हुंद साज' (बेड़ियों का संगीत) नाम से 1963 में प्रकाशित हुआ था। खयाल साहब अपनी पैनी

दृष्टि के कारण एक सफल शोधक, उच्च कोटि के आलोचक एव गद्य लेखक है। भावुक होते हुए भी बहुत ही स्वच्छद हैं और उनकी शैली मौलिक, प्रौढ एव ओजस्वी है। भाषा के प्रयोग मे ये सिद्धहस्त है।

खरोष्ठी *(पारि०)*

एक प्राचीन लिपि, जिसके प्राचीनतम लेख शहबाजगढी और मनसेरा मे मिले हैं। इसकी प्राप्त सामग्री मोटे रूप मे चौथी सदी ई० पू० से तीसरी सदी ई० तक की है। खरोष्ठी नाम की उत्पत्ति पर विवाद है। एक मतानुसार खरोष्ठ नामक किसी व्यक्ति की बनाई होने से यह नाम पडा है। कुछ लोग 'खरोष्ठ' शब्द को 'काशगर' का सस्कृत रूप मानते है। काशगर कभी इस लिपि के प्रयोग क्षेत्र का केंद्र था। एक मत यह भी है कि इसके अक्षर गदहे के ओष्ठ की तरह बेढगे हैं, अत यह (खर+ओष्ठ+ई) नाम पडा है। यह लिपि मूलत आर्मेइक लिपि से निकली है। खरोष्ठी लिपि बडी ही अवैज्ञानिक है। दीर्घ स्वरो का इसमे सर्वथा अभाव है। इसमे लिखी सामग्री पढने मे पाठक को कई बातो मे अनुमान से काम लेना पडता है।

खाडेकर, वि० स० *(मल० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

खाडेकर की प्रारभिक शिक्षा साँगली मे हुई। 1913 ई० मे मैट्रिक करने के बाद ये पूना के फर्गुसन कॉलिज मे दाखिल हुए। पाठ्य-क्रम की पुस्तकें पढने के अतिरिक्त इन्हे अन्य पुस्तकें पढने का भी बडा शौक था, विशेषत नाटक-उपन्यास पढने का। रोग, गरीबी, मुकदमेबाजी के बीच भी इन्होने 16 वर्ष की वय से ही बहुविध साहित्य-रचना आरभ कर दी थी, जिसे आलोचको ने 'अष्टकोना बँगला' कहा है क्योकि कहानी, रूपक कथा, कविता आलोचना, निबध, उपन्याम, नाटक और पटकथा सभी विधाओ की इन्होने सफलतापूर्वक रचना की है। यदि ना० सी० फडके (दे०) 'कला कला के लिए' मानने वाले लेखक हैं, तो खाडेकर 'कला जीवन के लिए सिद्धात के पुरस्कर्ता हैं। इनकी कोई भी कृति सदभिरुचि और नीति की लक्ष्मण-रेखा का उल्लघन नही करती। इन्होंने सर्वत्र त्याग, समाज-सेवा और देशभक्ति के उदात्त विचारो का प्रतिपादन किया है। इनके नायक-नायिका ध्येयवादी है, किसी-न-किसी उदात्त विचार के सदेशवाहक। कही ग्राम-सेवा का, कही विधवा के उद्धार का तो कही गरीब मजदूरो के उद्धार का सदेश है। आर्थिक विषमता को समाज के दोषो का मूल कारण मानने, तथा 'भविष्य सर्वहारा का होगा'—यह आवेशयुक्त सदेश देने के कारण इन्हे समाजवादी लेखक भी कहा गया है।

इनकी आरभिक कृतियो की भाषा अलकृत और कृत्रिम है—उसमे श्लेष उपमा, उत्प्रेक्षा, सुभाषितो की भरमार है पर बाद की रचनाओ मे ये दोष बहुत कम पाए जाते है। खाडेकर कवि भी हैं अत इनकी गद्य रचनाओ मे भी प्रकृति के चित्र अत्यत रमणीय और मोहक है। इन्हे भारतीय सस्कृति से अपार प्रेम है अत काचन मृग' से 'ययाति' (दे०) तक इनके उपन्यासो मे पौराणिक सदर्भ पाए जाते हैं। 'कला जीवन के लिए' के पुरस्कर्ता होने का परिणाम इनकी उपन्यास-कला पर भी पडा है। इनके पात्र प्रगतिनिधिक एव प्रतीकात्मक होने के कारण निर्जीव हो गए है, उनके सवाद वादविवाद का रूप धारण करने के फलस्वरूप कृत्रिम है, उद्देश्यमयता जीवन पर हावी हो उठी है और कथानक मे विशृखलता आ गई है। इनके 'ययाति' उपन्यास को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला है और अनेक उपन्यास भारतीय भाषाओ मे अनूदित हो चुके हैं।

मुख्य कृतियाँ—'काचनमृग' 'उल्का', 'दोन ध्रुव', 'रिकामा देव्हारा', 'क्रौच-वध', 'ययाति' आदि उपन्यास। 'नवमल्लिका', 'जीवनकला', 'पूजन', 'वनदेवता', 'मुरली' आदि कथा सग्रह। 'गोपाल गणेश आगरकर', 'राम गणेश गडकरी' आदि जीवनी-ग्रथ।

खाटनियार, यमुनेश्वरी *(अ० ले०)* [जन्म—1899 ई०, मृत्यु—1924 ई०, जन्म-स्थान—गोलाघाट]

इनकी शिक्षा घर पर मिडिल तक हुई थी। मुर्दं गाँव बालिका विद्यालय मे इन्होंने अध्यापन किया था। इनका विवाह कवि भैरबचद्र खाटनियार के साथ 1920 ई० मे हुआ था। 1914-15 ई० से इन्होंने कविता लिखना आरभ किया था।

प्रकाशित रचना —'अरुणा' (1919)।

अप्रकाशित —'सावित्री', 'रजा त्रियेर'।

यमुनेश्वरी जी प्रकृति म सौंदर्य देखती है, किंतु इसके मन मे अतृप्ति अनुभव कर दुखी होती हैं। ये आधुनिक असमिया साहित्य की एक-दो कवयित्रियो मे से हैं।

खाडिलकर, कृ० प्र० *(म० ले०)* [जन्म—1872; मृत्यु—1948 ई०]

खाडिलकर मराठी नाट्य-साहित्य के उन उन्नायकों में हैं जिन्होंने टिळक (दे०) की राजनीतिक चेतना को अपनी कृतियों में उरेहा है। स्वाधीनता-संग्राम के सक्रिय सेनानी होने के कारण इन्होंने इतिहास-पुराण के संदर्भ में समसामयिक ज्वलंत प्रश्नों का अंकन अपने गद्य एवं संगीत नाटकों में किया है। 'सवाई माधव-रायाचा मृत्यु' (दे० सवाई माधवराव) (1893), के 'कांचनगडची मोहना' (1898), 'वायकचि बंड' 'कीचक वध' (दे० वल्लभ, सैरंध्री, कंकभट्ट), 'भाउबंदकी' (1907), संगीत द्रौपदी' आदि इनकी विशेष उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। 'सवाई माधव रावाचा केशव शास्त्री' में षड्यंत्र, मानसिक विक्षिप्तता में माधवराव की मृत्यु; 'भाऊबंदकी' में आनंदी बाई के कुकृत्य, नारायणराव का रहस्योद्घाटन; 'कीचक वध' की प्रतीकात्मक कथा में लार्ड कर्जन की दमनकारी नीतियों का भंडा-फोड तथा 'बायकांचे' में नारी-स्वातंत्र्य का जयघोष है। इन्होंने अपने नाटकों में शास्त्रीय नाटकों के रस और नाट्य-वर्जनाओं के साथ ही पाश्चात्य नाटकों के व्यक्ति-वैचित्र्य का अवलंब लिया है। चारित्रिक, दृष्टि से माधवराव, आनंदीबाई, कीचक आदि प्रमुख पात्र ही प्रभावोत्पादक हो पाए हैं। जहाँ एक ओर अनावश्यक प्रसंगों, पात्रों एवं अस्पष्ट गीतों के कारण इनकी रचनाओं की नाटकीय प्रभान्विति बाधित हुई है, वहाँ दूसरी ओर कतिपय स्थलों पर निम्न स्तरीय हास्य-व्यंग्य भी दोष की सीमा तक पहुँच गया है। प्रमुख रचनाओं का कथा-विकास संघर्ष-संकेंद्रित है। संक्षेप में इनकी रचनाओं में जो कुछ नया है उसका मेरुदंड पुराना है और जो कुछ पुराना है उस पर रंग नया है। इसी से महाराष्ट्र मंडली और गंधर्व मंडली के मंच पर इनकी रचनाएँ विशेष रूप से समादृत हुई हैं।

'खादिम', हरूमल ईसरदास सदारंगाणी *(सि० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

इनका जन्मस्थान शहदादपुर (सिंध) है और इन्होंने बंबई तथा तेहरान विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की थी। सिंध के फारसी कवियों पर शोध प्रबंध लिखने पर इन्हें बंबई विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। सिंध में ये प्राध्यापक थे और विभाजन के पश्चात् ये दिल्ली में स्थायी रूप से निवास कर रहे हैं। गत कई वर्षों से आकाशवाणी दिल्ली में ये फारसी विभाग के अध्यक्ष के रूप में कार्य कर रहे हैं। इनकी प्रमुख कृतियों के नाम हैं—'रंगीन रुबाइयूँ', 'रूह के दिनों रेलो' (दोनों कविता-संग्रह है); 'कख और काना' (निबंध); 'बाबरनामो' (अनुवाद)। सिंधी कविता के क्षेत्र में ये प्रधानतया फ़ारसी काव्यधारा के कवि है, यद्यपि समय के अनुसार इन्होंने नवचेतना से प्रेरित होकर विभिन्न विषयों पर भी कविताएँ लिखी हैं। सिंधी गद्य के क्षेत्र में इनके निबंधों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

खानम *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1967 ई०]

'खानम' एक रूमानी एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इसके रचयिता अजमत रज़ा हैं। लेखक का कहना है कि उन्होंने 'खानम' की कहानी बड़ी निडरता से लिखी है और इसमें भाव तथा तकनीक दोनों दृष्टियों से अपने पुराने मित्रों व मेहरबानों के सुझावों को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया है। जहाँ तक संभव हो सका है, लेखक ने पात्र कम से कम रखे हैं और तीन मुख्य पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन बड़ी गहराई से किया है।

खानम *(उर्दू० पा०)*

'खानम' मिर्जा (दे०) के उपन्यास 'उमराव जान अदा' (दे०) की एक प्रमुख और प्रभावशाली स्त्री पात्र है। यह बड़े धड़ल्ले की औरत है और अपने सहकारियों पर इसका बड़ा रोबदाब है। लखनवी सभ्यता की पूरी शान इसमें दिखाई देती है। इसने लखनऊ में वेश्याओं का अड्डा स्थापित कर रखा है। इसका घर मानो परिस्तान है। यह नारी-स्वभाव को समझने में दक्ष है। शरीफ घरों की बेगमें अपने लड़कों को सुमार्ग पर लाने में इसकी सहायता की प्रत्याशा करती हैं। यह इस तरह की वेश्या है जिसके पास शरीफों के लड़के सभ्यता का सबक सीखते हैं। गाने में बड़े-बड़े उस्तादों को टोक दिया करती है। महफ़िल में रंग जमाने के लिए पूरे गुर जानती है। धर्म में इसकी दृढ़ आस्था है यद्यपि बाद में यह आस्था कुछ कम हो जाती है।

खाना जंगी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1949 ई०]

पाँच अंकों के इस नाटक के लेखक हैं प्रोफे-

सर मुहम्मद मुजीब (दे०)। शाहजहां के शासन काल के उत्तरार्द्ध मे उसके बेटो के पारस्परिक मतभेदो के कारण मुगल साम्राज्य को बहुत बडा आघात लगा था। मुगल सत्ता की नीव हिल गई और मुसलमानो की जातीयता का ताना-बाना विशृंखल हो गया। प्रस्तुत नाट्य-कृति मे उनके पारस्परिक मतभेदो और मुसलमानो की आपसी फूट का चित्रण किया गया है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर सरचित होने के बावजूद इस नाटक मे रोचकता है। भाषा प्रौढ तथा कथोपकथन सजीव और जानदार हैं। उर्दू साहित्य की यह एक उल्लेखनीय कृति है और लेखक की पैनी दृष्टि एव जागरूकता का प्रमाण उपस्थित करती है।

खिडिया, जग्गा *(हिं० ले०)*

इनके पिता का नाम रतना जी था। इन्होने 1658 ई० के लगभग 'वचनिका राठौड रतनसिंह जी री महेसदासोत्तरी' नामक ग्रथ की रचना की, जिसका दूसरा नाम 'रतन-रासो' भी है। इसमे महाराजा जसवतसिंह, औरगजेब और मुराद के युद्ध का वर्णन है। यह डिंगल(दे० डिंगल-पिंगल)मे लिखित वीर रस का श्रेष्ठ चपू काव्य है। जग्गा वीर रस के सिद्ध कवि माने जाते हैं, किंतु इन्होंने वचनिका के अतिरिक्त कुछ फुटकर छप्पय भी लिखे हैं जिनमे शात रस का अच्छा परिपाक मिलता है। डिंगल के ओजस्वी स्वर तथा भावो की कोमलता का अदभुत समन्वय इन्होंने अपने काव्य मे किया है। गद्य लिखने मे भी ये सिद्धहस्त थे।

खिलनाणी, कौडोमल चदनमल *(सिं० ले०)* [जन्म—1844 ई०, मृत्यु—1916 ई०]

कौडोमल का जन्म सिंध के भिर्या नामक गांव मे हुआ था। बचपन से ही इन्हे विद्यार्जन की ओर अधिक रुचि थी। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण ये स्कूल मे प्रसिद्ध थे। मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त करके ये कुछ समय के पश्चात् शिक्षा विभाग मे अध्यापन कार्य करने लगे थे, जहाँ से ये सरकारी विभाग मे अनुवादक के पद पर नियुक्त किए गए थे। शिक्षा विभाग मे और अनुवादक के पद पर रहने के कारण इन्होंने सिंधी भाषा और साहित्य की पाठ्य पुस्तकें तैयार की थी जो काफी लोकप्रिय सिद्ध हुई। समाज-सुधार और नारी-शिक्षा के प्रसार के क्षेत्रो मे इनकी सेवाएँ अविस्मरणीय है। साहित्य के क्षेत्र मे इन्होने वेदात मार्ग के प्रसिद्ध सत कवि सामी (दे०) के श्लोको को प्रकाश मे लाकर सिंधी जगत् को इस महान् कवि से परिचित कराया है। इसके सिवाय इन्होने हर्षदेव के सस्कृत नाटक 'रत्नावली' तथा बँगला साहित्य की चुनी हुई कहानियो का सिंधी मे अनुवाद किया है। गद्य के क्षेत्र मे विशेषत निबध लेखक के रूप मे अधिक प्रसिद्ध है। इन्होने विभिन्न विषयो पर लगभग 44 पुस्तकें लिखी हैं। इनकी चुनी हुई रचनाओ का सकलन 'साहित्यिक पुष्प' नाम से साहित्य अकादमी दिल्ली न प्रकाशित किया है। प्रारभिक सिंधी गद्य की भाषा और शैली को सुधारने, सँवारने और उसे स्थिर रूप देने वाले गद्य लेखको मे ये मुख्य है।

खिलनाणी, मनोहरदास कौडोमल *(सिं० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

मनोहरदास जी सिंधी के प्रसिद्ध गद्य लेखक श्री कौडोमल खिलनाणी (दे०) के सुपुत्र है। इनका जन्म स्थान सिंध का भिर्या नामक गाँव है। पिता की तरह इन्होने भी जीवन का अधिक भाग देशसेवा और समाज-सेवा मे व्यतीत किया है। ये कृषिविज्ञान के विशेषज्ञ हैं। इन्होने सिंधी मे विभिन्न विषयो पर निबध लिखे है। पुस्तक रूप मे इनकी प्रामुख कृतियाँ है—'सैर जो सवादु', 'हिंदु जो सैरु'(दोनो यात्रा सस्मरण है), 'विचार', 'पच्छिमी नारी चरित्र','मन जा मण्या','अरुणाजी आखाण्यू' 'मुल्हाइता मोती', 'साहित जो सीगार'। इन्होने कुछ कहानियाँ भी लिखी है, परतु ये निबधकार के रूप मे ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

खुंटिया, विश्वनाथ *(उडि० ले०)* [जन्म—अनुमानत अठारहवी शती ई०]

विश्वनाथ खुंटिया द्वितीय दिव्यसिंहदेव (1779-1795 ई०) तथा उपेन्द्र भज (दे०) के समसामयिक थे। इनकी 'विचित्र रामायण (दे०) अथवा बिशि रामायण' (काव्य मे प्रयुक्त नाम 'बिशि') अपनी सुपाठयता के कारण राम-साहित्य मे अत्यत लोकप्रिय है। रामलीला सबधी रचनाओ मे आज भी इसका सर्वोच्च स्थान है। भाषा की सरलता, छदो की तरल गति, शैली, मनोज्ञ भगिमा आदि विशेषताओ के कारण यह काव्य सरस और सुपाठ्य बन गया है।

खुतबात-ए-अहमदिया *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1870 ई०]

'खुतबात-ए-अहमदिया' सर सैयद अहमद (दे०) की धर्म-विषयक रचनाओं में सर्वोत्तम कृति है। यह शुद्ध इस्लामी मान्यताओं से संबद्ध । इस्लाम पर ईसाई मिशनरियों के आक्रमणों और भारत में अँग्रेजी शिक्षा तथा सभ्यता के प्रचार-प्रसार से मुसलमानों की धार्मिक आस्थाओं को सुरक्षित रखने के लिए इस पुस्तक की रचना की गई थी। इस पुस्तक में सर विलियम म्यूर की कृति 'लाइफ़ ऑफ़ मुहम्मद' के प्रत्युत्तर में लिखे गए बारह अँग्रेजी लेख संगृहीत है जिनको बाद मे अधिक विस्तार के साथ उर्दू में छापा गया है।

'खुतबात-ए-अहमदिया' इस्लाम की सेवा के उद्देश्य से लिखी गई अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृति है।

खुम्माण रासो *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1713 ई० और 1633 ई० के मध्य]

इसके रचयिता दलपत (दे०) विजय थे। इस काव्य में मेवाड़ के महाराजाओं का वर्णन है। बाप्पा से आठवीं पीढ़ी में उत्पन्न कर्ण-सुत खुम्माण का चरित्र यहाँ सबसे अधिक विस्तार से वर्णित है। आचार्य शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचंद्र) आदि कतिपय विद्वानों ने इसे वीरगाथा-काल की रचना माना था, किंतु नवीन खोजों से यह ग्रंथ उत्तर-मध्यकाल की कृति सिद्ध हो चुकी है। इसमें काल्पनिक घटनाओं तथा अलौकिक तत्त्वों का अद्भुत मिश्रण है। भाषा डिंगल-पिंगल (दे०) तथा अंगीरस वीर है।

खुल्लना *(बँ० पा०)*

मध्ययुगीन मंगल काव्य (दे०) (चंडीमंगल दे०) काव्यपरंपरा में 'खुल्लना' वास्तव मे अनन्य चरित्र है। इसी एकमात्र नारी चरित्र को कवियों ने बाल्य, कैशोर्य से लेकर नारी-जीवन के प्रत्येक स्तर पर अंकित किया है। बाल्य काल की चपलता एवं कैशोर की रहस्यमयता ने उसे सहज ही प्रेयसी नारी की भूमिका में स्थान प्रदान किया है। स्वामी के प्रेम में वह विह्वल है। जीवन के दुर्योग में वह केवल स्वामी के सहवास से ही वंचित नहीं, दारिद्र्य-निपीड़न से निरंतर लाछित है। स्वामी के साथ पुर्नमिलन के माध्यम से सौभाग्य की किरणच्छटा ने उसका स्पर्श किया है परंतु केवल क्षणमात्र के लिए। संतानसंभवा नारी पति की वाणिज्य यात्रा की मंगल-कामना में चंडीपूजा के समय पति की क्रोधाग्नि में दग्ध होती है। उसके बाद फिर दुःखरात्रि की शुरुआत होती है। पुत्र श्रीमंत (दे०) के जन्म के पश्चात् लांछना, दारिद्र्य एवं हताशा में भी खुल्लना का मातृ-हृदय विकसित हुआ है। पुत्र की मंगल-कामना में अधीर इस प्रकार का नारी-चरित्र मंगल-काव्य में और नहीं। पितृ-अन्वेषण के लिए श्रीमंत यात्रा में निकल पड़ा है। मातृ-हृदय का आनंद और उपवेग क्रंदन में आश्रय ढूंढता है। कहानी के समाप्ति-लग्न में उसके जीवन के करुण-रंगीन पथ ने अश्रु के सागर में आनंद के स्वर्ण-कमल को प्रस्फुटित किया है। नारी-जीवन के प्रत्येक स्तर पर खुल्लना के विकास, व्याप्ति एवं गंभीरता की तुलना नही है।

खुल्ले लेख *(पं० कृ०)*

प्रो० पूरनसिंह (दे०) का यह एक महत्वपूर्ण निबंध-संग्रह है। इसमें कुल 13 निबंध हैं। तीन निबंध विशुद्ध साहित्यिक विषयों पर है। ये निबंध है : 'कविता' 'कवि का दिल' और 'आर्ट'। इन निबंधों से लेखक की साहित्यिक मान्यताओं का पता चलता है। लेखक ने अपनी धारणाओं को भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के मतों से पुष्ट भी किया है। इनसे लेखक के चिंतन-मनन और अध्यवसाय का भी पता चलता है। लेखक की साहित्यिक मान्यताओं और जीवन-संबंधी अन्य मान्यताओं में कहीं कोई विरोध या असंगति नहीं दिखती।

इस संग्रह के कुछेक निबंध सांस्कृतिक विषयों पर भी हैं, जैसे 'मजहब', 'वतन दा प्यार', 'कीमत ते मिट्ठा बोलना' तथा 'प्यार'। इन निबंधों में लेखक ने एक विश्व-संस्कृति के विकास की कल्पना की है जिससे देश-कालातीत सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा संभव हो सके। राजनीतिक विषयों में भी लेखक की अच्छी पैठ थी। उनका निबंध 'वोट ते पालिटिक्स' इसका प्रमाण है।

पूरनसिंह के ये निबंध उनके समग्र व्यक्तित्व को समाहित किए हुए है। उनके व्यक्तित्व का फक्कड़पन, मस्ती, उदात्तता, विशालता और महानता इस संग्रह के सभी निबंधों में विशेष रूप से 'औरत' और 'मित्रता' आदि निबंधों के कथ्य और शैली दोनों में परिलक्षित होती है।

खुल्हे मैदान (पं० कृ०)

प्रो० पूरनसिंह (दे०) की यह काव्यकृति आधुनिक पंजाबी की प्रथम स्वच्छंद छंदात्मक रचना है। पंजाबी के परंपरावादी काव्य के निश्चित प्रतिमानों से अलग होकर इस काव्य-संग्रह में पहली बार आधुनिक संवेदना का स्वर उभरा है। अँग्रेजी साम्राज्य के अधीन उत्पन्न होने वाले मानसिक एवं आत्मिक व्यामोह को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली यह प्रथम रचना है। इस कृति की काव्य-प्रक्रिया एवं रचना-विधि भी अपने आप में निराली है। मध्यकालीन पंजाबी लोक-जीवन एवं संस्कृति को कवि ने अनुभूति के अनुकूल ढालने का सफल यत्न किया है। आधुनिकता को स्वर देने हुए भी यह रचना समग्र पंजाबी संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें मध्यकालीन पंजाब के लोक-जीवन में व्याप्त पौराणिक कथाओं और लोक-कथाओं को जिस कौशल से काव्य में ढाला गया है वह अपने आप में अभूतपूर्व कार्य है। कवि ने इन कथाओं के परंपरागत प्रसंगों के स्थान पर इनमें नवीन अर्थ बोध भर दिया है। इसीलिए इस काव्य का प्रभाव एवं प्रचार जनसामान्य तक हुआ।

खून-ए-नाहक (उर्दू० कृ०)

'खून-ए नाहक' उर्दू का एक प्राचीन नाटक है जिसके रचयिता मुंशी मेहदी हुसैन 'अहसन' लखनवी है। इस नाटक का कथानक अँग्रेजी के विख्यात नाटककार शेक्सपियर के नाटक 'हैमलेट' से उधार लिया गया है। 'अहसन' लखनवी ने इस कथानक को स्वदेशी सामाजिक जीवन तथा भाषा शैली का परिधान प्रदान करके मौलिक रूप दे दिया है। इस नाटक की भाषा-शैली सरल, सजीव तथा विषयानुरूप है। गानों में सरल हिंदी का प्रयोग किया गया है। इस नाटक में गजलें भी सम्मिलित हैं, संवाद सुंदर तथा सजीव है किंतु तत्कालीन प्रवृत्ति के अनुसार संवादों में तुकसाम्य की विशेषता पाई जाती है।

खेमाणी, आनंद प्रकाश (सिं० ले०)

ये दिल्ली में रहते हैं और राज्य सभा के हिंदी संपादन विभाग में अनुवादक का कार्य करते हैं। सिंधी साहित्य के क्षेत्र में इन्होंने सन् 1957 के आसपास प्रवेश किया था लेकिन कुछ वर्षों के पश्चात् ही इनकी रचनाओं ने सिंधी साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट कर लिया था। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'लुची' (कहानी संग्रह), 'हिक शख्स जी वासना' (उपन्यास), चेतना (आलोचनात्मक निबंधों का संकलन), 'साहित जा सिद्धांत' (संपादन)। ये कहानीकार और आलोचक के रूप में सिंधी साहित्य में प्रसिद्ध हैं। इन्होंने नई कहानी और नई कविता के क्षेत्र में सिंधी साहित्य को सफल रचनाएँ दी हैं।

खेमी (गु० पा०)

रामनारायण विश्वनाथ पाठक 'द्विरेफ' (दे०)-रचित खेमी' कहानी की नायिका खेमी स्त्री जाति का शृंगार है। निम्नतम जाति में जन्म लेकर भी उसने पातिव्रत व सतीत्व का आदर्श स्थापित किया है।

अहमदाबाद की गलियों में झाड़ू देने व सफाई करने का काम करने वाली भंगिन खेमी अपने पति—धनियो—से बेहद प्रेम करती है। उसके साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती है। अपने पति को कभी सत्पथ से विचलित नहीं होने देती। पति की असामयिक मृत्यु के बाद युवती विधवा खेमी के जाति वाले दुबारा 'घर करने' के लिए बहुत जोर देते हैं। अनेक आकर्षक प्रस्ताव आने पर भी वह अपने निर्णय पर अटल रहती है—वैधव्य पालती है, इतना ही नहीं, दिवंगत पति के श्रेयार्थ वह अपनी शक्ति, सीमा व मति के अनुसार दानपुण्य भी करती रहती है।

'खेमी' के चरित्र में हमें पातिव्रत का आदर्श, पत्नी धर्म की पराकाष्ठा व एकनिष्ठता का मानदंड प्राप्त होता है। विलक्षणता यही है कि अति निम्नवर्गीय समाज में उत्पन्न होने पर भी उसमें आभिजात्य के संस्कार हैं।

गुजराती कथा साहित्य में जो गिने चुने उच्चकोटि के स्त्री-पात्र है, खेमी' उनमें से एक है। उसकी आत्म-निर्भरता, स्पष्टता, निडरता, एकनिष्ठता और सबसे अधिक उत्सर्ग-भावना अनुकरणीय है। कीचड़ में खिले कमल के समान उसका निर्मल चरित्र स्त्री-जाति का गौरव है।

खोजी (उर्दू० पा०)

खोजी पं० रतननाथ 'सरशार' (दे०) की विख्यात कृति 'फसाना-ए-आजाद' (दे०) का एक मसखरा पात्र है जो हीन भावना का शिकार है किंतु अपने बड़प्पन

की शेखी बघारता रहता है। इसके माध्यम से 'सरशार' ने तत्कालीन सभ्यता पर गहरा व्यंग्य किया है।

खोजी का परिचय देते हुए 'सरशार' स्वयं लिखते हैं—'क़द कोई आध गज़ का, हाथ-पाँव दो-दो माशे के। हवा ज़रा तेज़ चले तो पता हो जाएँ, कन्नी लगाने की ज़रूरत भी न पड़े। मगर बात-बात पर तीखे हुए जाते हैं। किसी ने ज़रा तिरछी नज़र से देखा और हज़रत ने करौली सीधी की। दुनिया की फ़िक्र न दीन की···बस अफ़ीम हो और चाहे कुछ हो न हो। बाज़ार में उस अजीब-उल-खलकत पर जिसकी नजर पड़ती है बेअख्तियार हँस देता है।'

खोजी अपनी आदतों के गोरखधंधे में ऐसा उलझा हुआ है कि परिस्थितियों में अपने आप को ढाल नहीं सकता। इसमें मानव-स्वभाव की सहज लोच का सर्वथा अभाव है। यह सदा बलवान और विद्वान् होने का असफल अभिनय करता रहा है। बात-बात पर क़सम खाना, वीरता की मिथ्या कथाएँ कहना, बड़प्पन का झूठा स्वाँग भरना, अनुभवों से शिक्षा ग्रहण न करना, बौना और कुरूप होने पर भी सुंदरियों का प्रेम-पात्र होने का दावा करना, अपनी त्रुटियों तथा मूर्खताओं को जानते हुए भी डींगें हाँकना इसके चरित्र की मुख्य विशेषताएँ हैं। यह लखनऊ की विलासिता, प्रमाद, अतिशय दंभ तथा आडंबरपूर्ण सभ्यता का प्रतीक है।

खोरधा इतिहास *(उड़ि० कृ०)*

'खोरधा इतिहास' श्री केदारनाथ महापात्र (दे०) की अन्यतम कृति है। यह उनकी जीवन-भर की साधना एवं अध्यवसाय की परिणति है।

अध्यवसाय, अनुसंधान तथा ऐतिहासिक निरपेक्ष दृष्टिकोण के कारण यह रचना अत्यंत मूल्यवान हो गई है। खोरधा इतिहास पर यह सर्वाधिक प्रामाणिक रचना है। अत्यंत ऋजु, सरल तथा रोचक शैली, अपनी निजता से प्राणवान प्रयुक्त भाषा, ऐतिहासिक सत्य की अकृत्रिम अभिव्यक्ति के द्वारा लेखक ने इसके द्वारा इतिहास-रचना की एक नवीन परिपाटी को जन्म दिया है।

ख्यात और वात *(हिं० पारि०)*

'ख्यात' और 'वात' राजस्थानी की गद्य-पद्य-रचना की शैलियाँ हैं; परंतु इनमें प्रधानता गद्य की ही रहती है। 'ख्यात' में इतिहास-कथाएँ लिखी जाती हैं, पर 'वात' में कल्पित कथानक भी रहते हैं।

'वात' के तीन मुख्य रूप मिलते हैं—गद्यमय, गद्य-पद्यमय तथा पद्यमय। राजस्थानी का वात-साहित्य बहुत समृद्ध है। ऐतिहासिक, पौराणिक, काल्पनिक आदि सभी प्रकार के विषयों पर 'वातें' लिखी गई हैं। वस्तुतः 'वात' साहित्य की रचना कथन-श्रवण के लिए हुई है। अतः अनेक 'वातें' मौखिक रूप में मिलती हैं, जिनका विद्वानों ने बाद में संकलन कर दिया है।

ख्यातकर्णाटक *(क० पारि०)*

कन्नड के चम्पू-काव्यों में जिन छंदों का प्रयोग द्रष्टव्य है उनमें उत्पलमाला, चंपकमाला, स्रग्धरा, महास्रग्धरा और शार्दूलविक्रीडित विशेष विख्यात हैं, अतएव इनको 'ख्यातकर्णाटक' नाम से अभिहित किया जाता है। यह ध्यान देने की बात है कि प्रायः सभी चम्पू-काव्यकारों ने अपने काव्यों में इन छंदों का प्रयोग किया है। यद्यपि ये छंद संस्कृत के हैं तथापि कन्नड के प्रबंधकाव्य-निर्माताओं ने इनको कन्नड छंदों के साथ-साथ बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है।

ख्यालबंदी *(उर्दू० पारि०)*

'ख्यालबंदी' का अर्थ है ख्यालात का सिलसिला, ख्याली तसवीर। मुगलों के आखिरी दौर में इसने तसव्वुफ में रवाज पाया और उस वक़्त 'बेदिल', 'जलाल', 'असीर' (दे०) वग़ैरा का असर इस पर पड़ने लगा। 'बेदिल' के तसव्वुफ़ में 'मानी आफ़रीनी' थी। इनका असर उर्दू पर हुआ और खास तौर पर लखनऊ के शायरों 'नासिख़' (दे०) और उनके दौर के शायरों में 'ख्यालबंदी' का चलन ज्यादा रहा। उदाहरणार्थ—

> 'आतिशे रंगेहिना से शम्मा हैं सब उँगलियाँ
> दस्ते जाना में मेरा मनकून परवाना हुआ।'

ख्यालिस्तान *(उर्दू० कृ०)*

यह पुस्तक लघु कहानियों का एक सुंदर संग्रह है। इसमें कुछ कहानियाँ मौलिक हैं और कुछ अंग्रेज़ी व तुर्की भाषाओं से ग्रहण की गई हैं जिनमें लेखक ने अपने विवेक के अनुसार यथोचित काट-छाँट कर ली है। सारि-

स्तान व गुलिस्तान, सुहवते नर्जिस, निकाह-ए-सानी, सौदाए सगीन आदि तो तुर्की भाषा से ली गई कहानियाँ हैं तथा 'मुझे मेरे दोस्तो से बचाओ' अँग्रेजी भाषा के एक निबंध का रूपातर है।

'अजदवाज-ए मुहब्बत', 'चिड़िया चिडे की कहानी', 'हजरत दिल की स्वानह उम्री', 'हिकायात-ए-लैला मजनू', 'गुर्बत-ए वतन' आदि मौलिक कहानियाँ हैं।

इसके लेखक सुप्रसिद्ध उर्दू साहित्यकार सज्जाद हैदर (दे०) है। कहानियाँ रोचक और मनोरजक है। भाषा मधुर तथा मुहावरेदार है। उर्दू के कहानी साहित्य की यह एक प्रशसनीय उपलब्धि है।

खिस्तपुराण *(म० कृ०)*

ईसाई धर्म का मराठी भाषी जनता मे प्रचार करने के उद्देश्य से इसकी रचना सन 1614 मे हुई थी। रचनाकार फादर स्टीफन इगलैंड मे पैदा हुए थे, किंतु मिशनरी बनकर महाराष्ट्र मे रहने लगे थे। इस पुराण मे दो भाग है और अनेक प्रकरण है। इसमे ओवी छदो की कुल सख्या 10,962 है। 'खिस्तपुराण' की रचना शैली 'ज्ञानेश्वरी' (दे०) से पूर्णत प्रभावित है। कवि ने मराठी भाषा के लालित्य की मुक्त कठ से प्रशसा की है। इसकी भाषा शैली मे इतनी सरसता और स्वाभाविकता है कि कोई भी पाठक यह अनुमान तक नही लगा पाता कि इसका रचयिता कोई अ-मराठी तथा अ-भारतीय विद्वान् होगा।

गग *(हिं० कृ०)* [जन्म—1538 ई० और मृत्यु—लगभग 1625 ई० के बाद]

अकबरी दरबार के कवियो मे गग की गणना एक प्रसिद्ध कवि के रूप मे की जाती है। भिखारीदास (दे०) ने 'तुलसी गग दुवौ भय सुकविन के सरदार' कहकर मध्ययुगीन कवियो मे इनका माहात्म्य प्रकट किया है। इनकी 'गग पदावली', 'गग पचीसी' तथा 'गग रत्नावली' नामक तीन रचनाएँ प्राप्त है। 'चद छद वर्णन की की महिमा' नामक खडी बोली की इनकी प्रथम गद्य की रचना कही जाती है। 'दिग्विजयभूषण मे बीरबल, रहीम (दे०) और मानसिंह की दानशीलता को लेकर इनके तीन पद सकलित है। गग अपनी स्पष्टवादिता के लिए काफी प्रसिद्ध रहे है। 'गग ऐसी गुनी को गयन्द से चिराइये' वाली उक्ति के आधार पर कुछ लोग अनुमान लगाते है कि किसी राजा ने असतुष्ट होकर इन्हे हाथी के नीचे कुचलवा दिया था, पर यह राजा कौन था इतिहास इस बारे मे मौन है। इन्होने सयोग और वियोग के बडे सरस, तीखे और नुकीले चित्रण प्रस्तुत किए है। भाषा पर इनका अपूर्व अधिकार था। काव्य मे आलकारिक चमत्कार, उक्तिवैचित्र्य तथा वाग्वैदग्ध्य के लिए इनकी गणना मध्ययुग मे उच्च कोटि के कवियो के साथ की जाती रही है।

गगावर्णन *(म० कृ०)* [रचना काल—1874 ई०]

'गगावर्णन' नामक विशुद्ध प्रकृति-सौंदर्य-वर्णनात्मक कृति चितामणि पेठकर की स्वतत्र प्रज्ञा का फल है। 'दक्षिण प्रेज कमिटि' द्वारा दिए गए गगावर्णन विषय पर चिन्तामणि पेठकर, कुरुदवाडकर तथा हस, इन तीन कवियो ने काव्य रचना की थी जिसमे से पहले दो कवियो को पुरस्कार दिया गया था।

गगावर्णन' की रचना मे कवि ने कुट की शैली का अनुकरण किया है। गगा के उदगम से लेकर उसके सागर मे लीन होने तक के प्रवाह का वर्णन इस काव्य मे हुआ है। गगा-तट पर स्थित भौगोलिक स्थलो तथा इस तट पर घटित अनेक ऐतिहासिक घटनाओ का विस्तृत तथा सरस वर्णन इसमे किया गया है। गगा प्रवाह का वर्णन पढते हुए पाठक आत्मविभोर हो जाता है। इसमे गगातट के आसपास की सृष्टि शोभा का नयनाभिराम तथा चित्रात्मक वर्णन अनेक स्थलो पर उपलब्ध होता है। 1857 के गदर मे कानपुर मे हुए भीषण हत्याकाड का क्रोधावेशपूर्ण वर्णन किया गया है। कानपुर-वर्णन मे राजनिष्ठा का भाव प्रदर्शित है, जो कई लोगो को खटकती है, परतु उस काल मे आग्ल शासको के प्रति पूज्यबुद्धि होना सामान्य धर्म था।

एक विषय की समाप्ति तथा दूसरे के प्रारभ का ज्ञान कराने के उद्देश्य से इसमे विभिन्न वर्णिक वृत्तो का प्रयोग किया गया है। वैसे शार्दूलविक्रीडित (दे०) छद का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। लेखक ने इसकी प्रस्तावना मे लिखा है कि 'सच्ची कविता के लिए तुक तथा छद का बधन आवश्यक नही। कृष्णाशास्त्री चिपळूणकर ने इस रचना की मुक्तकठ से प्रशसा की है।

गंगिरेद्दु *(ते० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1956 ई०]

इसके लेखक डॉ० पल्ला दुर्गय्या (दे०) हैं। 'गंगिरेद्दु' ग्रामीण जीवन से संबद्ध काव्य है। किसी-किसी बैल को खेती अथवा गाड़ी खींचने आदि के काम में न लाकर 'बसवन' के नाम से देवता के रूप में उसकी पूजा की जाती है। उसका मालिक उसे खूब सजाता है और प्रणाम करना तथा कुछ प्रश्नों के उत्तर के रूप में सिर हिलाना आदि सिखाता है। गली-गली में उसके करतब दिखाकर ही वह अपनी आजीविका कमाता है। इस प्रकार के बैल को 'गंगिरेद्दु' कहते हैं। प्रस्तुत काव्य ऐसे ही एक 'गंगिरेद्दु' की कहानी है। पिछले दो जन्मों में उसे गाय और बैल की योनि प्राप्त हुई और उसे बहुत दुःख उठाना पड़ा। अतः उसने भगवान से दया की प्रार्थना की। अब वह 'गंगिरेद्दु' का जन्म धारण करता है। इस काव्य में ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण तथा करुण रस की मार्मिक व्यंजना है।

गंगोपाध्याय, तारकनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1843 ई०; मृत्यु—1891 ई०]

बंकिम (दे०) युग के लोकप्रिय उपन्यासकारों में तारकनाथ गंगोपाध्याय उल्लेखनीय हैं। इन्होंने कई उपन्यास लिखे परंतु इनकी प्रसिद्धि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण 'स्वर्णलता' (दे०) है। तारकनाथ ने अपने उपन्यासों में उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के बंगाली जीवन की पारिवारिक जटिलताओं और दांपत्य जीवन की समस्याओं को उठाया है। अंततः लेखक नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों तथा आदेशों को प्रतिष्ठित करना चाहता है। इसीलिए वस्तु-विधान में आकस्मिकता एवं भाग्य-निष्ठा है। 'स्वर्णलता' बंगाली गृहस्थ की कारुणिक कहानी है।

बंकिम के समान उन्नत प्रतिभा न होते हुए भी तारकनाथ ने शिल्प और शैली की दृष्टि से नई धारा का सूत्रपात किया है।

गंगोपाध्याय, नारायण *(बँ० ले०)* [जन्म—1918 ई०; मृत्यु 1971 ई०]

औपन्यासिक जीवन के आरंभ में ही नारायण गंगोपाध्याय ने पाठक-समाज को अपनी प्रतिभा का प्रमाण देकर प्रभावित किया था। लेखक के प्रसिद्ध उपन्यासों में 'उपनिवेश' (तीन खंड) (1944), 'सम्राट ओ श्रेष्ठी' (1944), 'मंद्रमुखर' (1945), 'महानन्दा' (1947), 'लालमाटि' (1951), 'स्वर्णसीता' (1947), 'शिलालिपि', 'निर्जनशिखर' (1968), 'तृतीय नयन' (1969) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

उर्वर कल्पना एवं वेगवान अलंकृत भाषा लेखक की निजी विशेषताएँ हैं। जीवन के प्रचंड बहिप्रकाश के चित्रांकन में उनकी दक्षता असाधारण है। पहले उपन्यास 'उपनिवेश' में आदिम प्रवृत्ति-शासित, प्रकृति-परिवेश के तीव्र प्रभाव से अभिभूत ऐतिहासिक पटभूमिका में मनुष्य-समाज की गति एवं परिवर्तन का चित्र उपस्थित किया गया है। 'लालमाटि' में समाज-चेतना की सार्थकतम अभिव्यक्ति हुई है। संत्रासवादी आंदोलन, मन्वंतर, अगस्त-विप्लव, कृषक-विद्रोह आदि महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं की पटभूमिका में 'स्वर्णसीता', 'सूर्यसारथी', 'शिलालिपि' आदि उपन्यासों की रचना हुई है। इनमें 'शिलालिपि' का महत्व सर्वाधिक है। संत्रासवादी आंदोलन एवं रोमांटिक मानसिकता या द्वंद्व तथा इसके फलस्वरूप यथार्थ परिणति में जो वैसा दृश्य प्रकट हुआ है, उसका सार्थक चित्र उपस्थित हुआ है। 'निर्जनशिखर' में निस्संगता-बोध, विच्छिन्नता-बोध एवं एक अनिवार्य विषाद से आक्रांत नायक के चित्रण में आधुनिकता की सर्वांगीण प्रतिष्ठा हुई है।

नारायण गंगोपाध्याय ने कहानियों की रचना कर विशेष ख्याति प्राप्त की है। उनकी कहानियों में घटनाओं की भयावहता तथा वीभत्सता, पाठकों की संवेदनशीलता को तीव्र बना देती है। 'टोप', 'हाड़', 'पुष्करा', 'बीतंस', 'बनज्योत्स्ना' में आँधी, तूफान, विकारग्रस्त चरित्र के निर्माण के द्वारा इन्होंने जीवन के मर्मांतक एवं बर्बर रूप को प्रकट करने का सत्साहस दिखाया है। इनकी कहानियों में गंभीर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की अपेक्षा चारित्रिक द्वंद्व एवं कहानी-रस का प्राधान्य होता है।

गंजीना *(उर्दू० कृ०)*

यह मिर्जा 'यगाना' चंगेजी की काव्य-कृति है। इसमें रचयिता की ग़ज़लें और रुबाइयाँ संगृहीत हैं। ग़ज़लों की संख्या 121 है और रुबाइयों की 163। ग़ज़ल के विषय प्रायः शृंगार, प्रेम, संसार की बेवफ़ाई, संसार की असारता, प्रगतिशीलता, जागृति और प्राकृतिक चित्रण आदि हैं। बहुत-सी ग़ज़लें शुद्ध फ़ारसी भाषा में भी हैं

जिनमे रचयिता का फारसी-ज्ञान और उसके प्रति उसकी आत्मीयता की भावना स्पष्ट लक्षित होती है। उर्दू गजलो की भाषा पर भी फारसी का प्रभाव बहुत है। रुबाइयो की भाषा अपेक्षाकृत सरल है और कही-कही हिंदी भाषा के निकट है। काव्य की सशक्तता और सुगठित वाक्य-विन्यास इस कृति की विशेषता है। कही कही व्यग्य भी बड़ा चुटीला और तीखा है। उत्साह, स्वावलबन, आत्म-विश्वास और मनोबल के बल पर जीवन मे आने वाली आपत्तियो को चुनौती देने और उन पर छा जाने का स्वर सर्वत्र मुखर है। गजलो मे अभिव्यक्त विचारो और मनोभावो के निरूपण मे कवि द्वारा स्पष्टवादिता और निष्कपट अभिव्यक्ति से काम लिया गया है और शैली भी प्रभावशाली अपनाई गई है। परतु रुबाई-लेखन मे वह बुरी तरह असफल रहा है।

गजू, दयाराम *(कश्० ले०)* [जन्म श्रीनगर मे—अनुमानत 1875-1880 ई० मे, मृत्यु दिल्ली मे—जून 1954 ई० मे]

इन्हे उर्दू एव फारसी का बहुत अच्छा तथा सस्कृत और अँग्रेज़ी का सामान्य ज्ञान था। इनकी शैली व्यग्य तथा वाग्विदग्धतापूर्ण है। इन्होने विशेषत उपदेशात्मक कविता लिखी है जिसमे रहस्यवाद अथवा निराशावाद की कोई झलक नही। स्वभाव से ये विशुद्धिवादी थे। इनकी भाषा भी ठेठ एव विशुद्ध कश्मीरी है। गार्हस्थ्य जीवन की सफलता, स्वच्छता एव शुद्धता तथा अच्छे आचार-विचार के सबध मे इन्होंने काव्य रचना की है। आचार-सहिता के रूप मे इन्होने 'घर व्यज माल' की रचना की। 'मनषि जीवन' नाम की इनकी एक और रचना है। ठेठ कश्मीरी शब्दो के प्रयोग के बारे मे ही सदा अपने समसामयिक कवियो और लेखको को प्रेरणा देते रहे और सरल शब्दावली का ही प्रयोग करते रहे।

गजेइ ओ गवेषणा *(उडि० कृ०)*

'गजेइ ओ गवेषणा' महापात्र (दे०) नीळमणि साहू का अनूठा कहानी सग्रह है। इन हास्यरसात्मक कहानियो की अपनी विशिष्ट दृष्टिभगी है, विशिष्ट शिल्प-सौंदर्य है। दादी माँ आज के युग के बच्चो को कहानी सुना रही हैं—अपनी आपबीती, अपने युग की रीत समझा रही हैं। विषय-वस्तु हल्की, कल्पना-प्रधान एव विनोदपूर्ण है। शैली अत्यत रोचक एव प्रवाहमयी है। किंतु इस सरलता एव मनोरजकता के झीने आवरण मे से जैसे दोनो युगो का विराट् अतर छन-छनकर बाहर आ जाता है। *यही इसकी मनोज्ञता है।*

गउडवहो (गौडवध) *(प्रा० कृ०)*

यह आठवी शताब्दी का प्राकृत भाषा का अत्यत प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसके रचयिता कन्नौज के यशोवर्मा के आश्रित कवि वाप्पइराग्रा (वाक्पतिराज) है। इसमे यशोवर्मा की प्रशस्ति गाई गई है। गौडराज के वध का तो बहुत सक्षिप्त उल्लेख है किंतु उसकी पृष्ठभूमि के रूप मे यशोवर्मा की दिग्विजय-यात्रा का विस्तृत वर्णन किया गया है जिसमे बिहार, मगध, बगाल, कोकण, मरुदेश, महेंद्र पर्वत इत्यादि की विजय का भी वर्णन आ गया है। प्रसगानुसार ऋतु-वर्णन, प्रकृति वर्णन, विंध्यवासिनी देवी का वर्णन, शृगार-भावना इत्यादि भी आ गई है।

गऊदान *(उर्दू० कृ०)*
[दे० गोदान ले० प्रेमचद।]

गर्ग, गणेश *(अ० ले०)* [जन्म—1907 ई०, मृत्यु—1938 ई०]

ये काशी विश्वविद्यालय मे पढने गए थे किंतु बिना परीक्षा दिए लौट आए थे। कुछ दिन काठ का व्यवसाय किया था। ये शिकारी और प्रथम श्रेणी के खिलाडी थे। इनकी अल्पायु मे ही मृत्यु हो गई थी।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य 'पापरि' (दे०) (1938), 'स्वप्न भग' (दे०) (1945), 'रूप-ज्योति' (दे०) (1945), नाटक 'काश्मीर कुमारी', 'शकुनिर प्रतिशोध' (1939)।

'पापरि' इनकी आत्मकथात्मक प्रेम-कविता है। किसी नारी ने इनके प्रेम को ठुकरा दिया था। प्रेम की यह पीडा इन्हे उच्चस्तरीय प्रेम-कवि बना गई थी। *प्रेमिका से मिलने की इच्छा और विरह की तीव्र अनुभूति* इनकी कविता के विषय हैं। प्रेमिका का एक-एक अग इनके लिए आकर्षक है। कही-कही एकरसता और पुनरावृत्ति आ गई है। सवादो और पात्रो की दृष्टि से इनके नाटक सुदर है। 'शकुनिर प्रतिशोध' सफल मचोपयोगी नाटक है। एक आलोचक के शब्दो मे य बहुत दृढ विद्युत्-धारा के दबाव से टूटे तार की तरह टूट गए।

गर्ग, लीला (अ० ले०) [जन्म—1927 ई०; जन्म-स्थान—शिवसागर]

इनकी शिक्षा बी० ए० तक हुई थी। ये अध्यापक हैं। ऐतिहासिक खोजों में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

प्रकाशित रचनाएँ—'बुरुंजीये परशा नगर' (1950), 'हेरो आ दिनर कथा' (1958), 'आहोम जाति आरु असमीया संस्कृति' (1961), 'सीमांतर माटि आरु मानुह' (1963), 'कपलि छिगा रेल' (1961)।

ऐतिहासिक खोजों के अतिरिक्त इन्होंने 'सीमांतर माटि आरु मानुह' में उत्तर-पूर्वी पर्वतों की जनजातियों का सहानुभूतिपूर्ण वर्णन किया है। 'कपलि छिगा रेल' 'बेले लेटर' शैली में लिखा ग्रंथ है। इन्होंने शिशु-साहित्य भी लिखा था।

गजल (उर्दू० पारि०)

उर्दू-जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय काव्यविधा गजल है। इसमें मुख्यतः शृंगारिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है। संगीतात्मकता इसका विशिष्ट गुण है। लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के सौंदर्य का चित्रण इसके माध्यम से होता है। 'आजाद' (दे०) और मौलाना 'हाली' (दे०) ने सामाजिक एवं राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत गजलों का भी प्रचलन किया परंतु वे इसमें 'ग़ालिब' (दे०) और मीर (दे०) जैसी प्रभविष्णुता और मार्मिकता की सृष्टि न कर सके। आधुनिक युग में गजल के माध्यम से प्रायः राजनीतिक, सामाजिक, मानवतावादी और प्रगतिशील भावनाओं को स्वर दिया जाता है। यह प्रायः प्रत्येक छंद में लिखी जा सकती है। इसकी प्रथम दो पंक्तियाँ परस्पर तुकांत होती हैं। दो पंक्तियों के इस प्रथम शेर (पद) को 'मतला' कहा जाता है। इस प्रकार के अनेक मतले भी किसी ग़जल में संभव है। ग़जल के शेष शेरों (पदों) की केवल द्वितीय पंक्तियाँ आद्योपांत परस्पर तुकांत होती है। इसके आखिरी शेर (पद) को 'मकता' कहा जाता है। इसी 'मकता' में कवि अपना उपनाम प्रयुक्त करता है। ग़जल के पदों में परस्पर पूर्वापर संबंध नहीं होता। प्रत्येक दो पंक्तियों का शेर (पद) भाव की दृष्टि से अपने में एक स्वतंत्र इकाई होता है। एक ही छंद, क़ाफ़िया और रदीफ में लिखित एक ग़जल के अतिरिक्त दूसरी और तीसरी गजल को 'दोगजला' और सहगजला' कहा जाता है। ग़जल के कम से कम पाँच और अधिक-से-अधिक पंद्रह शेरों (पदों) की सीमा का विधान है। इसमें शब्दों की मार्मिकता, भाषा की कोमलता, भावों की गरिमा, संक्षिप्तता और कल्पना के औदात्य का ध्यान विशेष रूप से अपेक्षित है।

गडकरी, रामगणेश (मल० ले०) [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1919 ई०]

श्री० कृ० कोल्हटकर (दे०) के नाटकों की स्वच्छंदतावादी काव्यमयी भाषा, संयत संश्लिष्ट हास्य-प्रसंग, कृ० प्र० खाडिलकर (दे०) का सचरित्र-निरूपण एवं शास्त्रीय नाटकों की रस-प्रधान दृष्टि का मणि-कांचन संयोग रामगणेश गडकरी की रचनाओं में हुआ है। इनकी ये सात रचनाएँ है—'वेड्यांचा बाजार' (अपूर्ण) (1923), 'संगीत गर्वनिर्वाण' (अपूर्ण), 'राजसंन्यास' (दे० तुळसी) (अपूर्ण), 'प्रेम संन्यास' (दे० गोकुल, कामण्णा, लीला) (1912), 'संगीत पुण्यप्रभाव' (1917), 'संगीत एकच प्याला' (दे०) (1917), 'संगीत भावबंधन' (दे० इंदु-बिंदु, धुंडिराज) (1918)। इनमें 'वेड्यांचा बाजार' (दे० वालवया छः पागलों से संबद्ध प्रहसन है, 'प्रेम संन्यास' अनमेल विवाह एवं वैधव्य की करुण गाथा है, और 'संगीत पुण्यप्रभाव' पातिव्रत्य-धर्म का महिमागान है। 'संगीत एकच प्याला' मद्यपान के दुष्परिणामों की करुण कहानी है और 'राजसंन्यास' सम्भा जी के जीवन से संबद्ध अपूर्ण ऐतिहासिक रचना है। नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने हास्य-निबंध भी लिखे हैं।

सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण इनके नाटकों की कथावस्तु सामाजिक जीवन में परिव्याप्त कतिपय कुरीतियों के चित्रण की ओर ही रही है। शास्त्रीय नाटकों की रस-प्रधान दृष्टि के उपरांत भी कथा-विकास पाश्चात्य नाटकों के अनुरूप संघर्ष के माध्यम से हुआ है। मूल कथा की संघटनात्मकता के लिए ही प्रधानतः संश्लिष्ट हास्य-व्यंग्यमयी अवांतर कथाओं की संयोजना इनके नाटकों में उपलब्ध होती है। इनके पात्रों का चरित्र-निरूपण पूर्व-निश्चित प्रारूप के आधार पर हुआ है, परंतु मार्मिक भाव-पूर्ण स्थलों पर पात्र की दुविधामयी स्थिति के मनोहारी चित्रण जहाँ उन्हें वाग्वैदग्ध्य एवं विविधता के कारण टाइप होने से बचा लेते हैं, वहाँ नाटकीय प्रभावान्विति को बनाए रखने में भी सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त शेक्सपियर के नाटकों में निरूपित प्रतिनायकों के अनुरूप चरित्रों का निरूपण इनके नाटकों में हुआ है। नाटकों में प्रयुक्त काव्य

के छोरो को छूकर चलती हुई-सी एकरूप भाषा अभिनयोचित चाचल्य की दृष्टि से बोझिल होते हुए भी भावपूर्ण सवादो की अद्वितीय विशेषता से परिपूर्ण है। समग्र प्रभाव एव वातावरण-निर्माण की दृष्टि से इनके दु खात्मक नाटको के दु खमय पर्यवसान पर पाश्चात्य नाट्य शिल्प का स्पष्ट प्रभाव है। शैल्पिक दृष्टि से सर्वथा निर्दोष न होते हुए भी इनके नाटक मराठी रगमच पर विशेष रूप से समाहित हुए है।

गडनायक, राधामोहन *(उडि० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

आधुनिक उडिया गाथा-काव्य मे प० गोदावरीश मिश्र (दे०) के बाद छदमर्मज्ञ श्री राधामोहन गडनायक सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त कवि हैं। उडीसा एव भारत की अनेक घटनाएँ, इतिहास एव किवदती के अनेक व्यक्ति तत्त्व गडनायक के काव्य मे जीवत हो गए हैं। भावो की सशक्तता, छदो की माधुर्यपूर्ण सरचना, भाषा का गभीर प्रवाह, शैली का अपूर्व विन्यास आदि गुणो ने कवि की रचनाओ को चिरतनता प्रदान की है। मनुष्य ही नही, इतर प्राणी-जगत् पर भी गडनायक की सुदर काव्य रचनाएँ मिलती हैं।

गडनायक का जन्म कळ डापाळ, अनुगोळ मे हुआ था। यद्यपि उच्चशिक्षा की उपाधि इनके पास नही है, किंतु इनकी रचनाएँ इनके असाधारण पाडित्य की परिचायिका है। सस्कृत, उडिया और बँगला के ये अच्छे विद्वान हैं। 'मेघदूत' (दे०) एव 'गीतगोविंद' (दे०) का इन्होंने सुदर अनुवाद किया है। 'काळिदास' (काव्य-नाटिका) 'विप्ळवी', 'राधानाथ', 'काव्य-नायिका' (दे०), 'उत्कळिका', 'दीपशिखा' (काव्य) 'पशुपक्षिकाव्य' आदि इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ है।

गड्डलिका *(बँ० कृ०)* [रचना काल—1924 ई०]

गडडलिका परशुराम (दे०) (राजशेखर बसु) की हास्यरस-प्रधान कहानियो का सर्वप्रथम सग्रह है जिसके प्रथम आविर्भाव के समय रसग्राही पाठक समाज मे तहलका मच गया था। सभी ने एक स्वर मे स्वीकार किया था कि बँगला साहित्य क्षेत्र मे ऐसा हास्यरसिक पहले पैदा नही हुआ। परशुराम की इन कहानियो की चरित्र-सृष्टि की प्रशसा करते हुए रवीद्रनाथ (दे०) ने इस ग्रथ को 'चरित्र-चित्रशाला' कहा था। इन चरित्र-चित्राकनो में विशेष रूप से उनकी 'श्रीश्रीसिद्धेश्वरी लिमिटेड', 'चिकित्सा-सकट' एव 'भुशडीर माठे' कहानियो का उल्लेख किया जा सकता है। 'सिद्धेश्वरी लिमिटेड' मे धर्म के नाम पर धोखेबाजी के प्रति लेखक ने कटाक्ष किया है। 'चिकित्सा-सकट' मे नददुलाल के रोग की उत्पत्ति, चिकित्सा की विचित्र प्रणाली एव उपशम आदि का उल्लेख करते हुए विचित्र प्रकार के प्रहसन की सृष्टि की गई है। 'भुशडीर माठ' मे भूत-प्रेत-के जगत् के ऐसे रूप का उद्घाटन किया गया है जिसकी हास्यकर असगति हमारी हँसी को तीव्र कर देती है। इन कहानियो मे चरित्र एव परिवेश के वर्णन के द्वारा लेखक ने हास्य की सृष्टि की है। इस हास्य-सृष्टि मे नाटकीय सताप की सरसता ने कहानियो को और भी अधिक हास्य-मधुर बना दिया है।

'गड्डलिका' कहानी-सग्रह मे लेखक की अद्भुत कल्पना ने हँसी को और भी अधिक प्रगाढ बनाया है। उसकी असामान्य उद्भावना-शक्ति, कल्पना का प्राचुर्य एव हास्य-सृष्टि की निपुणता पाठको के लिए एक विस्मयजनक घटना है।

गणदेवता *(बँ० ले०)* [रचना-काल—प्रथम खड 'चडीमडप'—1942 ई०, द्वितीय खड पचग्राम'—1944 ई०]

देश के क्रातिकारी वातावरण मे लिखी इस महाकाव्योचित रचना म ताराशकर बद्योपाध्याय (दे०) ने अपने युग के नवजागरण को दो भागो मे चित्रित किया है। गाँव के विशाल फलक पर बहुविध पात्र एव प्रसगो के द्वारा रचनाकार का मुख्य लक्ष्य उद्योग व्यवस्था, नगरीकरण, यात्रिकता के बढते आघात को रेखाकित करना तथा लगभग कृषि पर निर्भर पुरानी अर्थ-व्यवस्था म उलट-फेर, परपरा पर टिके रहन-सहन, आचार-विचार के जीवनगत मूल्यो मे परिवर्तन एव विघटन के स्वरूप को प्रकट करना है। लेखक स्वाधीनता सग्राम के सघर्ष और बलिदान का जीवत इतिहास भी चित्राकित कर सका है। परिणाम-स्वरूप सघर्षशील आदर्शवादी युवक देबू घोष, जीविकाहीन, भूमिहीन अनिरुद्ध लुहार, न्यायरत्न, दुर्गा आदि अनगिनत पात्र धर्मभ्रष्ट तथा लक्ष्यभ्रष्ट जड समाज की चोखी तस्वीर प्रस्तुत करते हैं।

तारा बाबू बकिम (दे०), रवीद्र (दे०) तथा शरत् (दे०) की परपरा के महान लेखक है। उनके रचना-तत्र की विशेषता है सूक्ष्म अतर्दृष्टि, यथार्थवादी

दृष्टिकोण, अकृत्रिमता एवं स्वाभाविकता। भारतीय ज्ञानपीठ ने 'गणदेवता' को 1966 की सर्वश्रेष्ठ रचना होने के नाते पुरस्कृत कर उपयुक्त सम्मान प्रदान किया था।

गणधर *(प्रा० पा०)*

जैन धर्म विभिन्न गणों और शाखाओं में विभाजित था और गणों के प्रधानों को 'गणधर' की संज्ञा दी जाती थी। इन गणधरों का 'नंदी', 'अनुयोगद्वार' (दे०), 'कल्पसूत्र' इत्यादि अनेक आगम (दे० जैन आगम) ग्रंथों में वर्णन किया गया है। महावीर स्वामी ने उपदेश 'गणधरों' को ही दिया था जो बाद में लोक में प्रतिष्ठा पा सका। मुख्य गणधर 11 हैं—इंद्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, आर्यव्यक्त, आर्य सुधर्मन्, मंदितपुत्र, मौर्यपुत्र, अंकपित, अचलभ्रात, मेतार्य और प्रभास।

गणपति शास्त्री, पिलका *(ते० ले०)*

इनका जन्म 1911 ई० में कट्टुंगा नामक ग्राम में हुआ। इन्होंने आंध्र विश्वविद्यालय से 'साहित्य-'विद्याप्रवीण' तथा 'उभयभाषाप्रवीण' नामक प्राच्य उपाधियाँ प्राप्त कीं। ये कुशल पत्रकार, कवि तथा समालोचक हैं। कई वर्ष 'आंध्रपत्रिका', 'भारती', आदि पत्र-पत्रिकाओं के संपादक रहे। कुछ वर्ष 'शिल्पि' नामक तेलुगु साहित्य पत्रिका का भी संपादन-कार्य किया। इनकी काव्यकृतियों में—'विभ्रातामरुकमु' तथा 'रत्नोपहारमु' उल्लेखनीय है। 'मीनांबिका', 'अशोकवर्धनुडु' आदि इनके मौलिक उपन्यास हैं। 'गृहदाहमु', 'एरंकलुवु इनके अनूदित उपन्यासों में से हैं। पहला शरच्चंद्र (दे०) की बँगला कृति का अनुवाद है तथा दूसरा एनतोल फ्रांस की कृति का। इनकी 'प्राचीन गाथालहरी' पर्याप्त प्रसिद्ध है। आरंभ में ये आधुनिक शैली में गीत आदि लिखा करते थे। इन गीतों में 'श्री उपसि चरण मंजीराल' नामक इनका गीत बहुत ही प्रसिद्ध है।

गणेशलिंगन्, से० *(त० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

इनका जन्म जाफ़ना (लंका) के एक ग्राम में हुआ था। ये आजकल श्रीलंका के राजकोष अनुभाग में कार्य कर रहे है। अब तक प्रकाशित इनके तीन कहानी-संग्रह हैं—'नल्लवन्', 'ओरे इनम्' और 'संगमम्'। इनके छह उपन्यासों में प्रसिद्ध है—'नींड पयणम्' और 'शङ्ङ्'। इन्होंने एक अँग्रेज़ी उपन्यास का अनुवाद भी किया है। इनकी कृतियों में मार्क्सवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। इनके अधिकांश उपन्यासों का संबंध लंका के तमिल-भाषी मज़दूर वर्ग या निम्न वर्ग के जीवन से है। इन्होंने अपने उपन्यासों में इस बात का प्रतिपादन किया है कि मज़दूर-वर्ग भी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक उत्थान के लिए सजग हो उठा है। इन्होंने अपनी कहानियों में उत्तरी लंका की शिक्षित तमिल जनता की समस्यों का वर्णन किया है। 1966 ई० में इन्हें 'नींड पयणम्' पर 'लंका साहित्य मंडल' का पुरस्कार मिला था। इनकी कुछ कहानियाँ रूसी में अनूदित हो चुकी है। इनकी गणना लंका-निवासी प्रमुख तमिल उपन्यासकारों में होती है।

गदायुद्ध *(क० कृ०)*

[दे०—'साहस भीम विजय']

गद्य *(हि०पारि०)*

गद्य कहते हैं छंदोविहीन रचना को—'वृत्तगन्धोज्झितं गद्यम्।' काव्य के बाह्याकार के आधार पर दो भेद होते हैं—गद्य-काव्य और पद्य-काव्य। गद्य-काव्य चार प्रकार का होता है—मुक्तक, वृत्तगंधि, उत्कलिका-प्राय और चूर्णक। पहला समास-रहित होता है। दूसरे में पद्यांश भी होते है। तीसरे में दीर्घ समास होते हैं, और चौथे में छोटे-छोटे समास होते है। (साहित्य-दर्पण, 330-332)।

गद्य-काव्य *(हि० पारि०)*

आधुनिक विशिष्ट अर्थ में गद्य-काव्य से अभिप्राय गद्य-रचना से है जिसमें काव्य-जैसी संवेदनशीलता और रसमयता हो। वैयक्तिक आत्मनिष्ठता, तीव्र भावात्मकता, अंतर्निहित संगीत आदि इसके अन्य गुण हैं। इसकी शैली अधिक लययुक्त, अलंकृत और काव्यमय होती है। हिंदी के प्रथम गद्यगीतकार हैं राय कृष्णदास (दे०) जिन्होंने 'गीतांजलि' (दे०) का प्रभाव स्वीकार किया है। गद्य-काव्य में कहीं प्राकृतिक घटनाओं को आध्यात्मिक रूप देकर दार्शनिक भावनाओं की अभिव्यक्ति की गई तो कहीं भक्त की हृदय-तरंग का मार्मिक चित्रण है; कहीं देश को उद्बोधन दिया गया है, तो कहीं ऐतिहासिक तथ्यों पर अवलंबित अतीत के गौरवमय चित्र हैं; कहीं प्रवंचित और

निराश नारी का हाहाकार है तो कहीं शोषितों पर आँसू बहाए गए हैं। हिंदी के गद्य काव्य लेखकों में उल्लेखनीय हैं—राय कृष्णदास, माखनलाल चतुर्वेदी (दे०) और डा० रघुवीरसिंह (दे०)। अँग्रेजी में इसका अर्थ है, वह कविता जो गद्य की तरह मुद्रित हो। इसकी प्रेरणा फ्रेंच कवि पाल फोर्त से मिली और इसके विकास का श्रेय ऐमी लावेल को है।

गद्य-रीति *(बँ० प्र०)*

बँगला 'गद्य-रीति' की यह विशेषता है कि इसमें दो भाषा-शैलियों का प्रयोग चलता है। बँगला बोलियों के लिए 'चलित भाषा' शब्द का प्रयोग किया जाता है एवं किताबी भाषा के लिए बँगला में 'साधु भाषा' का प्रयोग है। यह भाषा संस्कृतनिष्ठ है एवं इसके क्रियापद एवं कारक चिह्न 'चलित' से भिन्न हैं। मध्ययुग के प्राचीन काव्य और गद्य से लेकर आधुनिक युग के काव्य और गद्य में इसी का प्रयोग होता रहा है यद्यपि व्यष्टि-लेखकों ने इसके कठिन क्लिष्ट रूप को तोड़कर सरल और सहज बनाने के लिए सक्रिय रूप से कार्य किया है। प्रमथ (नाथ) चौधुरी (दे०) एवं बाद में रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) ने किताबी भाषा के लिए 'चलित भाषा' को स्वीकार कर बँगला गद्य रीति में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। आजकल 'साधु भाषा' का प्रयोग गद्य-रीति में कम हो रहा है और 'चलित' का अधिक। ऐसा प्रतीत होता है कि आगामी युग में यह 'चलित भाषा ही सर्वजन-स्वीकृत साहित्यिक भाषा का स्थान ग्रहण करेगी।

गब्बिलमु (चमगादड़) (ते० कृ०) [कृतिकार—गुर्रम जापुवा (दे०) रचना काल—1940-42 ई०]

'गब्बिलमु' एक खंडकाव्य है जो कालिदास (दे०) के 'मेघदूत' (दे०) की प्रेरणा से रचा गया है। इसमें एक दरिद्र और क्षुधार्त्त व्यक्ति अपनी टूटी फटी झोंपड़ी में रहने वाले चमगादड़ के द्वारा परमात्मा के पास अपना अश्रुपूर्ण संदेश भेजता है। हंस और शुक जैसे उत्तम पक्षी तो दूत के रूप में राजाओं और कुलीनों को ही मिल सकते हैं। अतः इस असहाय कातर प्राणी का चमगादड़ द्वारा संदेश भेजा जाना स्वाभाविक ही है। 'मेघदूत' के समान ही कैलास तक के मार्ग के वर्णन में भारत देश की प्रकृति एवं उसके प्रमुख दर्शनीय स्थानों का मनोहर वर्णन इस कृति में भी प्रस्तुत किया गया है। समाज के दलित, शोषित एवं अनाथ वर्ग के प्रति कवि की तीव्र संवेदना का उफान इसमें तीव्रता से प्रकट हुआ है।

गयोपाख्यानमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1889 ई०]

इसके लेखक चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहमु (दे०) हैं। प्रधानतः श्रेष्ठ नाटककार तथा उपन्यासकार के रूप में इनको अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। 'गयोपाख्यानमु' नाटक का कथानक इस प्रकार है : जलविहार करने के लिए कृष्ण सपरिवार यमुना जाते हैं। वहाँ सूर्य को अर्घ्य देते समय उनकी अंजलि में से थूक गिरता है। क्रुद्ध होकर कृष्ण प्रतिज्ञा करते हैं कि अपराधी का संहार किया जाएगा। वह दोषी मणिपुराधीश गय नामक गंधर्व है। डर के मारे गय ब्रह्मा तथा शंकर से रक्षा माँगता है। पर वे दोनों अपनी असमर्थता प्रकट कर देते हैं। तब नारद की सलाह से वह पांडवों से शरण माँगता है। वस्तुस्थिति न जानते हुए भी अर्जुन उसे बचाने का वचन दे देता है। विषय समझते ही कृष्ण से विरोध करने संबंधी इस मामले में उलझ जाने के कारण पांडव बहुत पछताते हैं। पर वे गय की रक्षा का वचन किसी भी हालत में निभाना ही चाहते हैं। नतीजा यह होता है कि गय के कारण कृष्ण तथा पांडवों के बीच युद्ध होता है। अंत में भगवान शंकर प्रत्यक्ष होकर सबको शांत करते हैं।

इस नाटक में संभाषण सहज है तथा चरित्र-चित्रण मार्मिक। पहले संपूर्ण नाटक गद्य में लिखा गया था। बाद में नटवर्ग की अभ्यर्थना पर इसमें पद्य भी कई स्थानों पर जोड़ दिए गए। आंध्र के अत्यंत प्रचलित तथा सफल रंगमंचीय नाटकों में 'गयोपाख्यानमु' एक है।

गर्नी, ए० के० *(अ० ले०)* [जन्म—1845 ई०, मृत्यु—अज्ञात]

ये सन् 1874 ई० में संयुक्त राज्य से भारत आए थे और शिवसागर के बैपटिस्ट मिशन से संबद्ध हुए थे। सन् 1883 ई० तक इन्होंने 'अरुणोदय' का संपादन किया था। ये दो वर्ष के लिए स्वदेश चले गए थे और वहाँ से सपरिवार लौटकर शिवसागर में 1907 ई० तक रहे थे। इनका मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था।

प्रकाशित रचनाएँ—उपन्यास 'एलोकेशी वेश्यार कथा' एवं 'कामिनीकांतरचरित' (दे०) (1877 ई०)।

'एलोकेशी बेश्यार कथा' एक बँगला उपन्यास है, जिसमें हिंदू विधवा की दयनीय स्थिति का वर्णन है। एक नन के द्वारा इसका उद्धार होता है। गर्नी ने इसका असमीया अनुवाद किया था। दूसरा उपन्यास 'कामिनी-कांतर चरित्र' गर्नी का मौलिक उपन्यास है। कामिनीकांत नामक बंगाली युवक ईसाई हो जाता है। पत्नी सरला से उसका वैचारिक संघर्ष चलता है। अंत में वह भी ईसाई हो जाती है। इससे उनकी आर्थिक और आध्यात्मिक उन्नति भी होती है। कामिनीकांत को जान-बूझकर ब्राह्मण दिखाया गया है, ताकि जनता पर प्रभाव पड़े कि उच्च जातीय हिंदू भी ईसाई बन जाते है। उपन्यास में प्रचारात्मक दृष्टिकोण इतना प्रबल है कि साहित्यिक सौंदर्य पीछे छूट जाता है। गर्नी ने हिब्रू से ओल्ड टेस्टामेंट का असमीया अनुवाद सन् 1899-1903 ई० के मध्य प्रकाशित किया।

दुर्बल शिल्प एवं मात्र प्रचारात्मक दृष्टिकोण रखने के कारण गर्नी का ग्रंथ असमीया का प्रथम उपन्यास नहीं कहा जा सकता, तथापि असमीया भाषा के विकास में इनका योगदान माना जाएगा।

गळगनाथ *(क० ले०)* [जन्म—1869 ई०; मृत्यु—1942 ई०]

कन्नड उपन्यास साहित्य के पितामह गळगनाथ का वास्तविक नाम है वेंकटेश तिरको कुलकर्णी। उनका जन्म उत्तर कर्णाटक के धारवाड़ जिले के गळगनाथ में हुआ। व्यवसाय से वे अध्यापक थे। गळगनाथ कन्नड के उपन्यास-साहित्य के आद्य स्रष्टाओं में एक हैं। इस शताब्दी के आरंभ में कन्नड पाठकों को उपन्यास की ओर आकृष्ट करने वाले दो महापुरुष—बी० वेंकटाचार तथा गळगनाथ थे। गळगनाथ के 'ईश्वरी सूत्र', 'प्रबुद्ध पद्मनयने', 'कमल-कुमारी', 'कन्नडगिर कर्मकथे' आदि अनूदित उपन्यासों ने महाराष्ट्र तथा राजपूत वीरों के जीवन के चित्रण के द्वारा कन्नड के लोगों मे अभूतपूर्व देश-प्रेम जगाया। आपने कर्णाटक के इतिहास से संबंधित दो उपन्यास भी लिखे है—'माधवकरुणाविलास' और 'कुमुदिनी'। इन दोनों में विजयनगर का इतिहास है। 'दांपत्य', 'कुटुंब', 'हिंदू समाज-व्यवस्था', 'वर्णाश्रम धर्म' आदि निबंध भी आपके लिखे हुए हैं। श्री गळगनाथ ने आधुनिक कन्नड की गद्य-शैली को परिमार्जित रूप दिया। उपन्यास-साहित्य के उन्नायक तथा गद्य-निर्माता के रूप में उनके नाम का सदैव उल्लेख किया जाएगा।

गल्पगुच्छ *(बँ० कृ०)*

तीन खंडों में प्रकाशित 'गल्पगुच्छ' रवींद्रनाथ ठाकुर की कहानियों का संग्रह है। रवींद्रनाथ के समग्र मानस का प्रकाश कहानियों में हुआ है। इन कहानियों की मूल प्रेरणा ग्राम-जीवन की यथार्थ अभिज्ञता रही है। मृत्तिका के प्राणरस एवं कवि-कल्पना की ऊर्ध्वगामी चेतना के अपूर्व समन्वय से ये कहानियाँ रस-सिंचित हो उठी है। ये कहानियाँ आख्यान-प्रधान, परिवेश-प्रधान, नाटकीयता-प्रधान या मनस्तत्त्व मूलक हैं। इनमें जहाँ विषय-वैचित्र्य है, वहीं विचित्र भावों की व्यंजना भी है—जैसे अहंकृत वश्यता, उद्धत प्रभुभक्ति या जयदीप्त पराभाव। काव्यानुभूति एवं मनस्तत्त्व का अपूर्व समन्वय इनमें दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति के माध्यम से अतिप्राकृत रससृष्टि में भी लेखक ने विशेष दक्षता दिखाई है। कुछ कहानियाँ समाज-आलोचना-मूलक है एवं कुछ उपन्यास-धर्मी नाट्यरसयुक्त कहानियाँ है।

रवींद्र की प्रसिद्ध कहानियों में 'खोकाबाबूर प्रत्यावर्तन', 'पोस्टमास्टर', 'क्षुधित पाषाण', 'काबुलिवाला', 'एक रात्रि', 'समाप्ति', 'कंकाल', 'छुटि', 'मेघ ओ रौद्र', 'अतिथि', 'माल्यदान', आदि विशेष उल्लेखनीय है। इन कहानियों में चरित्र-सृष्टि की व्यापकता, कुशलता एवं वस्तुनिष्ठता का प्रमाण मिलता है। हमारे जीवन के सुख-दुःख की परिचित बातें तथा यह परिचित दुनिया ही 'गल्पगुच्छ' की कहानियों की आधार-पीठिका है जिसके आश्रय से व्यंजनामूलक गीतिधर्मिता-युक्त कहानियों को रच कर लेखक ने अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है। ये कहानियाँ युग की होने के साथ ही युग-युग की भी है।

'गव्वासी' *(उर्दू० ले०)* [जन्म-स्थान—गोलकुंडा]

दक्षिण भारत के प्राचीन उर्दू कवियों मे इनका ऊँचा स्थान है। इनका प्रामाणिक जीवनचरित अभी तक अनुसंधान का विषय बना हुआ है। मुहम्मद कुतुबशाह (दे०) के शासन-काल में इन्होंने सन् 1618 में मसनवी 'सैफ़-उल-मुलुक-ओ-बदी-उज्जमाल' (दे०) का प्रणयन किया था। अब्दुल्ला कुतुबशाह ने इन्हें 'फ़साहत आसार' की उपाधि से अलंकृत कर राजदरबार से संबद्ध कर दिया था। क़सीदा (दे०)-लेखन में ये सिद्धहस्त थे। 'तोतीनामा' का लेखक भी इन्हें बताया जाता है। इनके अतिरिक्त 'मैना सतवंती' और 'लैला-मजनूँ' नामक दो अन्य

मसनवियो का लेखक भी इन्ही को माना जाता है। इनकी कृतियो से इनकी कलात्मक प्रौढता का परिचय मिलता है। बीजापुर के कविसम्राट 'नुसरती' (दे०)और 'मुकीमी' ने अपनी कृतियो मे इनकी चर्चा बडे आदर तथा श्रद्धा के साथ की है। मीर तकी 'मीर' (दे०) और मीर हसन (दे०) ने भी इनके काव्य-कौशल का लोहा माना है।

गहमरी, गोपालराम *(हिं० ले०)* [जन्म—1866 ई०, मृत्यु—1946 ई०]

इनका जन्म गाजीपुर जिले के गहमर गाँव मे हुआ था। गहमर गाँव मे जन्म लेने के कारण ही ये गहमरी कहलाए। यद्यपि ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे तथा इन्होने कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबध आदि विभिन्न क्षेत्रो मे साहित्य-सृजन किया था, किंतु इनकी प्रतिष्ठा जासूसी उपन्यासो के कारण ही है। इन्हे हिंदी के जासूसी उपन्यासो का जनक माना जाता है। इन्होने दो सौ से अधिक उपन्यास लिखे थे तथा 'जासूस' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला था। 'अदभुत लाश', 'बेगुनाह का खून', 'डबल जासूस', 'जासूस पर जासूसी', 'जासूस की डाली' आदि इनकी कतिपय प्रसिद्ध रचनाएँ है।

गाँउली गळ्प *(उ० पारि०)*

पल्लीगळ्प अथवा गाँउली गळ्प उडिया-साहित्य की एक बहुमूल्य सपदा है। अनादिकाल से परपरा के रूप मे ये कहानियाँ लोकमुख से प्रचारित होती आ रही हैं। ग्रामीण वृद्ध एव वृद्धाएँ ही इन कथाओ को कहती है। सध्या के बाद अथवा रात्रि के भोजन के उपरात कथाओ का कहना आरभ होता है। कथा कहने वाले की बुद्धि एव स्मरण-शक्ति के आधार पर इन कहानियो के आकार, प्रकार और रस मे भिन्नता दिखाई पडती है। इन कहानियो की विषयवस्तु रामायण, महाभारत अथवा पुराण से गृहीत नही होती।

कभी-कभी कुछ लोग गल्पकथन को जीवन-निर्वाह का पेशा भी बना लेते है। इन लोगो की कहानियाँ साधारण कहानियो से भाव एव भाषा दोनो ही दृष्टियो से कुछ ऊँचे साहित्यिक स्तर की होती है। इनकी अधिकाश कहानियाँ पुराण एव प्राचीन सस्कृत-गल्प-रचनाओ से गृहीत होती है। इन्हे गल्प-सागर कहा जाता है। ये गद्य-पद्य-मिश्रित भाषा का प्रयोग करते है और इनकी कथा-शैली के श्लोक छद डगडमाळि (दे०) आदि से अलकृत होते है। सभी आयु के व्यक्ति समान रूप से इसके श्रोता होते है।

'गाँउली गळ्प' के कई प्रकार है। कुछ गल्प देवी-देवता, भूत-प्रेत, वेताल, यक्ष, अप्सरा आदि से संबद्ध होती है, कुछ का सबध इंद्रजाल आदि भौतिक विद्याओ से होता है, कुछ राजा, मत्री, सामुद्रिक व्यापारी आदि के जीवन से सबधित होती है और कुछ साधारण जीवन के *विविध विषयो पर रचित हर्ष-विषादमयी अथवा व्यग्यात्मक* कहानियाँ होती है।

'साहाडा सुदरी', 'कलेरेइफुल', 'चकुळिआ पडा' आदि कुछ कहानियो की लोकप्रियता अवर्णनीय है। इन कहानियो की कथन-शैली चित्ताकर्षक है किंतु विषय-वस्तु के सक्षिप्त कलेवर के कारण कल्पना-प्रसार की अधिक सभावना नही रहती। मनोरजन ही इनका प्रमुख उद्देश्य होता है। इन कहानियो मे उडीसा के सामाजिक जीवन के विविध चित्र मिलते है।

गागुलि, माणिकराम *(बँ० ले०)* [समय—अनुमानत *अठारहवी शती*]

माणिकराम हुगली, जिला आरामबाग, मे बेलडिहा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम गदाधर, माता का कात्यायनी एव पत्नी का शैव्या था।

'धर्म-मगल' (दे०) इनकी कृति है। इनके *काव्य के अधिकाश उपादान पुराणो से लिये गए है।* वर्णन-क्रम गतानुगतिक है। काव्य को पढने से कवि की वैष्णवता का बोध होता है। अनुमान है काव्य अठारहवी शताब्दी के प्रारभ मे लिखा गया है।

इस कवि ने अद्भुत और अनैसर्गिक कल्पना का आश्रय लिया है। काव्य मे बीच-बीच मे सरसता पाई जाती है। इन्होने छोटे-छोटे जीवन-चित्र अकित किए है किंतु कोई महत्वपूर्ण व्यापार (कार्य) उन पात्रो द्वारा पूर्ण नही किया गया।

गांधारी *(सं० पा०)*

कौरवो के पिता धृतराष्ट्र (दे०) थे। गाधारी उनकी पत्नी थी। सुबल नामक गाधार राज की कन्या होने के कारण इन्हे गाधारी कहा जाता था। बाल्यकाल मे रुद्र की उपासना करने के कारण वरस्वरूप इन्हे दुर्योधन (दे०) आदि सौ पुत्रो की प्राप्ति हुई थी। इनकी एव कन्या

भी थी—दुःशला। दुर्योधन की पांडवों के प्रति बढ़ती शत्रुता को देखकर ये उसे सदुपदेश दिया करती थीं, किंतु उसने इस पर कुछ भी ध्यान न दिया। धृतराष्ट्र जन्मांध थे। एक पतिव्रता पत्नी होने के नाते इन्होंने भी आजीवन अपनी आँखों पर पट्टी बाँधे रखी। महाभारत (दे०)के युद्ध में दुर्योधन की मृत्यु पर कृष्ण (दे०) और व्यास ने इन्हें पर्याप्त सान्त्वना देने का प्रयास किया, किंतु इन्होंने अत्यंत शोक-संतप्त होकर कृष्ण को शाप दे दिया था।

गांधी महान कदै *(त० कृ०)* [रचना-काल—1947 ई०]

यह कोत्तमंगलम सुब्बु द्वारा रचित एक प्रसिद्ध कथा-काव्य है। शीर्षक के अनुसार यह गांधी जी की जीवन-गाथा नहीं क्योंकि इसमें उनके पारिवारिक जीवन का वर्णन नहीं है। कवि ने गांधी जी के विषय में जो कुछ देखा, सुना और तमिलनाडु की पत्र-पत्रिकाओं एवं विभिन्न कृतियों में पढ़ा था उसी को स्वतंत्रता-संग्राम की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत कर दिया है। इस कृति में वर्णित प्रमुख राजनीतिक घटनाएँ हैं—1857 का गदर, कांग्रेस की स्थापना, बंगभंग, असहयोग आंदोलन, चंपारन-सत्याग्रह, नमक-सत्याग्रह, गांधी-इरविन-समझौता और स्वतंत्रता-प्राप्ति। इस कृति के दूसरे संस्करण में कवि ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की छह महीने की घटनाओं को जोड़ दिया है। वर्तमान समाज को स्वतंत्रता-संग्राम की कथा सुनाने और गांधी जी की महानता बताने के उद्देश्य से ही इस कथा-काव्य की रचना की गई थी। इसकी भाषा अत्यंत सरल और गद्य के निकट है। कोत्तमंगलम सुब्बु लोक-छंदों के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। इस कथा-काव्य में भी उन्होंने लोक-छंदों का सफल प्रयोग किया है।

गाओं बुढ़ा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1890 ई०; लेखक : पद्मनाथ गोहाजिबरुवा (दे०)]

लेखक का यह आरंभिक प्रहसन उसकी कृतियों में सर्वश्रेष्ठ है। इसमें उन्नीसवीं शती की समाप्ति के अँग्रेजी शासन का यथार्थ चित्रण है। दीनबंधु मित्र के सुप्रसिद्ध बँगला नाटक 'नील दर्पण' से इसकी समता की जा सकती है। इसमें गाँव के मुखिया की दयनीय स्थिति का चित्रण है, जो अपना कर्तव्य-पालन करते हुए आर्थिक दृष्टि से कुछ नहीं पाता, अपितु गाँव के सभी लोगों के द्वारा अपमानित होता है। नाटक के हास्य के मध्य व्यथा भी छिपी हुई है। मंचीय व्यवस्था एवं यथार्थता के कारण यह नाटक लेखक के गंभीर नाटकों की अपेक्षा आज भी अपनी विशेषता रखता है।

गाडगीळ, गंगाधर *(म० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

मराठी कहानी को नया आशय और नई अभिव्यंजना प्रदान करनेवाले श्री गाडगीळ नई कहानी के मूर्धन्य लेखक हैं जो देश में ही नहीं, विदेशों में भी पुरस्कृत हो चुके हैं। आरंभ में बाल-मन की सूक्ष्मतम भावनाओं का मार्मिक विश्लेषण करने के लिए इन्हें प्रसिद्धि मिली, बाद में अपनी प्रयोगशीलता और प्रगतिशीलता के लिए प्रसिद्ध हुए। प्रकृति और सामाजिक वातावरण पर पूर्णतया आधारित कथा लिखने, समूह के चित्र खींचने, मध्य-वर्गीय जीवन की असंगति, विकृति, पीड़ा, मानसिक वेदना को प्रकट करने, और सभी अवस्थाओं के व्यक्तियों की भावनाओं का विश्लेषण करने के लिए विख्यात श्री गाडगीळ की कतिपय कहानियों में निराशा, नग्नता, कुरूपता और विध्वंस के चित्र भी मिलते हैं जिनके कारण इन्हें नया कहानी-लेखक कहा जाता है। रचना-शैली के क्षेत्र में भी इन्होंने नये प्रयोग किए हैं जो साधारण पाठक को कभी चमत्कृत करते हैं तो कभी आघात पहुँचाते हैं।

प्रसिद्ध रचनाएँ—'मानसचित्रें', 'कबुतरें', 'स्वप्न-भूमि', 'बंडू', 'काजवा' (जुगनू) आदि।

गाडगीळ, न० वि० *(म० ले०)*

इन्होंने राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय भाग लिया था और लगभग सात वर्ष तक कारावास में रहे थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ये केंद्रीय शासन में मंत्री पद पर रहे और बाद में पंजाब के राज्यपाल पद पर भी रहे। सन् 1935 से ये केंद्रीय धारा-सभा के सदस्य रहे थे। इन्होंने 'पथिक' (दे०) नामक आत्मचरित लिखा था। यह चार खंडों में है। चौथे खंड की पूर्ति इनके पुत्र ने की थी।

राजनीति में सक्रिय भाग लेने पर भी इनकी सहृदयता लघुनिबंधों में प्रकट होती है।

'सालगुदस्त', 'अनगड मोती' तथा 'समृनिगेप' इनके निबंध-संग्रह हैं।

इन्होंने लोकरंजन के उद्देश्य से निबंध-रचना की है। इनके निबंध निजी अनुभवों से ओतप्रोत हैं। ये बहुपठित थे। अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, संविधान-शास्त्र

जैसे रूक्ष विषयो पर भी इन्होंने रोचक शैली म निबध लिखे जिन्हे पढकर पाठक नीरसता का अनुभव नही करता।

सभाषण-पटु होने के कारण अपनी बात को बलपूर्वक कहने की विशेषता इनके निबधा मे देखने को मिलती है। इनकी निबध-शैली धाराप्रवाही प्रामादिक, अलकृत है जिसमे यत्र तत्र विनोद एव व्यग्य के प्रसग भी है। व्यग्य के कारण इनके निबध सरस बन गये है।

गाथा *(मल० पारि०)*

यह चेरुश्शेरी (दे०) आदि कवियो द्वारा स्वीकृत प्रवध-काव्य की एक विधा है। कृष्ण गाथा और भारत-गाथा प्रसिद्ध गाथाएँ है। इनमे स्वीकृत छद मजरी है जो एक श्लथ और मधुर द्रविड छद है।

'गाथा' शब्द का अर्थ पाटटु (दे०) अथवा गान ही है। कृष्ण गाथा का पर्याय कृष्णप्पाटटु भी है। चेन्तमिष मे भी इस शब्द का प्रयोग मिलता है। शिलप्पतिकारम' और 'मणिमेखला मे सर्ग विभाग के अर्थ मे इस शब्द के द्रविड रूप का प्रयोग हुआ है।

गाथा-गीत *(बैलेंड)* [हिं० पारि०]

गाथा गीत (बैलेंड) आख्यान एव प्राय लोक-गाथाओ पर आधारित सीधे, सहज एव सामान्यत अभिधात्मक शैली मे रचित पारपरिक गेय कविता का नाम है। अपने मूल रूप मे गाथा गीत लोक-तत्त्व से ही युक्त था किंतु पाश्चात्य साहित्य के उत्तर मध्य युग मे साहित्यिक-कलात्मक गाथा गीतो की रचना भी प्रभूत मात्रा मे की गई। इस प्रकार गाथा गीत के दो रूप है (1) पारपरिक लोक गाथा गीत, जो पौराणिक और अर्द्ध-ऐतिहासिक वीरतापूर्ण अथवा शृगारिक आख्यानो पर ही सामान्यत आधारित होते हैं और पूरे के पूरे समाज विशेष मे लोकानुरजन के उद्देश्य से गाए जाते हैं, कभी-कभी नृत्य के साथ भी, (2) साहित्यिक गाथा गीत व्यक्ति-तत्त्व से युक्त कलात्मक आत्माभिव्यक्ति के निमित्त रचित आख्यानात्मक कविता जिसके विषय प्राय वीरतापूर्ण प्रसग होते है। गाथा गीत के इस रूप का ग्राहक सस्कारी पाठक-समाज होता है।

गाथा गीत अँग्रेज़ी शब्द 'बैलेंड' का हिंदी पर्याय है जो लेटिन और इतालवी शब्द 'बलारे' (ballare) स व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है नर्तन। इसी-लिए गाथा गीत प्रारभ मे नृत्य-गीत ही था जिसकी गेयता नृत्य की लय और वर्तुलता के निमित्त सहयोगी तत्त्व के रूप मे ही सार्थक थी। सगीत एव नृत्य से स्वतत्र गेय कविता के रूप मे गाथा-गीत का विकास पश्चिम मे बारहवी-तेरहवी शताब्दी से माना जाता है इगलेंड, स्काटलेंड, स्पेन, डेनमार्क और रूस आदि प्राय सभी यूरोपीय देशो मे। आधुनिक काल मे पाश्चात्य साहित्य मे कलात्मक गाथा-गीतो की अत्यत समृद्ध परपरा है जर्मन कवियो बर्गर शिलर और गेटे तथा अँग्रेज कवियो स्कॉट, कोलरिज कीट्स और स्विनबर्न आदि ने गाथा गीत के साहित्यिक रूप के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान किया है।

गारबी चा बापू (गारबी का बापू) *(म० कृ०)* [रचना-काल —1952 ई०]

श्री० ना० पेंडसे (दे०) का यह उपन्यास कोकण प्रदेश के एक गाँव गारबी के एक तेजस्वी, स्वाभिमानी, रूढियो के प्रति विद्रोह करने वाले, प्रगतिशील युवक के सघर्ष की कहानी है। दरिद्र ब्राह्मण परिवार मे उत्पन्न बापू (दे०) पिता और मौसी के अतिरिक्त गाँव भर की उपेक्षा और तिरस्कार का पात्र होने के कारण बचपन से ही विद्रोही स्वभाव का बन गया। कर्मठ परिश्रमी और उग्र स्वभाव का यह युवक शीघ्र ही गाँव की नदी के पुल पर स्थित एक होटल वाले रावजी का कृपा-पात्र बन गया। उसका परिचय रावजी की सुदर पत्नी राधा से भी हुआ और पहली भेंट मे ही वह उसकी ओर आकृष्ट हो गई। बाद मे रावजी की मृत्यु पर बापू ने विजातीय होते हुए भी उसे अपनी पत्नी बना लिया। सुपारी का व्यापार कर वह धनाढय हो गया पर उसकी महत्वाकाक्षा थी कि वह सरपच बन जाय। इस आकाक्षा की पूर्ति के मार्ग म बाधक था गाँव का सरपच अण्णा खोत जिसने उसके पिता विठोबा को छल उसकी माँ का (जब वह उसके गर्भ मे था) उससे विवाह करा दिया था। बापू ने गाँव वालो की सहायता के लिए धर्मशाला, पाठशाला आदि खोली, पर गाँव के ब्राह्मण उसके शत्रु बने रहे। पर अत मे रहस्य खुल जाने के भय से अण्णा को बापू के सरपच बनने मे सहमति देनी पडी और बापू सघर्ष म विजयी हुआ।

कोकण प्रदेश मे सबद्ध यह उपन्यास वहाँ की प्रकृति, व्यवसाय, धर्म, रीति रिवाज, रहन-सहन, वर्ग-सघर्ष आदि का चित्र उपस्थित करने तथा वहाँ की बोली मे

लिखे जाने के कारण आंचलिक उपन्यास कहा जाएगा।

गार्गी, बलवंत (पं० ले०) [जन्म—1916 ई०]

बलवंत गार्गी की गणना पंजाबी के सर्वश्रेष्ठ नाटककारों में की जाती है। पंजाबी में प्रगतिवादी विचार-धारा के प्रमुख लेखक के रूप में गार्गी की प्रतिष्ठा पंजाब और भारत के बाहर भी है। अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में ये भारतीय नाटक और रंगमंच का प्राध्यापन भी करते रहे हैं।

गार्गी को अपने पहले नाटक 'लोहाकुट्ट' (दे०) से ही पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। प्रारंभ में गार्गी पर इब्सन का बहुत प्रभाव था। फिर बाद में इनकी कला रूसी लेखक चेखव से प्रभावित हुई। गार्गी के अधिकांश नाटक दुःखांत हैं। इनकी धारणा है कि मृत्यु दुःखदायी नहीं है, वरन् वह समस्त दुःखों का अंत है। दुःखांत प्रभाव दुःखों में घुल-घुल कर जीने से उभरता है।

गार्गी ने प्राचीन भारतीय नाटक और रंगमंच का गहरा अध्ययन किया है। इस दृष्टि से उनकी पुस्तक 'रंगमंच' (दे०) भारतीय रंगमंच-साहित्य की एक महत्व-पूर्ण उपलब्धि है। इस पुस्तक का हिंदी और अँग्रेज़ी में अनुवाद प्रकाशित हो चुका है और इस पर इन्हें साहित्य-अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

प्रमुख रचनाएँ—'लोहाकुट्ट', 'केसरी', 'सैल पत्थर', 'कणक दी बल्ली' (नाटक), 'क़ुआरी टीसी', 'दो पासे', 'दसवंध पत्तण दी बेड़ी' (एकांकी-संग्रह), 'डुले बेर' (कहानी-संग्रह)।

गार्सां-द-तासी *(हिं० ले०)*

फ्रांसीसी विद्वान् गार्सां-द-तासी ने फ्रांसीसी भाषा में लगभग सत्तर हिंदी-कवियों का विवरण अँग्रेज़ी वर्णक्रम से 'इस्तवार-द-ला लितरात्यूर एन्दुईऐ एन्दुस्तानी' नाम से दो भागों में लिखा था। पहला भाग 1839 ई० में और दूसरा भाग 1846 ई० में प्रकाशित हुआ। 1871 ई० में इस ग्रंथ का दूसरा संस्करण तीन भागों में प्रकाशित किया गया। इस ग्रंथ में कवि-परिचय का क्रम इस प्रकार है—पहले कवियों का जीवन-वृत्त, फिर रचना-विवरण और उदाहरण। यह ग्रंथ हिंदी-साहित्य का प्रथम इतिहास माना जाता है। इसके हिंदी से संबद्ध अंश का अनुवाद डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने किया है।

ग़ालिब *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1796 ई०; मृत्यु—1869 ई०]

पूरा नाम मिर्ज़ा असद-उल्ला-ख़ाँ। उपनाम पहले 'असद' और फिर 'ग़ालिब'। इनका जन्म-स्थान आगरा है। मिर्ज़ा के दादा सबसे पहले भारत में आए और शाह आलम के दरबार में मान प्राप्त किया। इनके पिता मिर्ज़ा अब्दुल बेग ख़ाँ अस्तव्यस्त जीवन व्यतीत करते रहे और 1801 ई० में अलवर के राजा की सेवा में उनका देहांत हुआ। उस समय मिर्ज़ा ग़ालिब पाँच वर्ष के थे। ग़ालिब का शैशव अपनी ननिहाल, आगरा, में ही बीता।

ग़ालिब ने अपने जीवन में बहुत कष्ट सहन किए। इसी कारण इनके काव्य में करुणा तथा पीड़ा का प्राधान्य है। हल्के व्यंग्य तथा हास्य के पुट इनकी काव्य-शैली को रोचक बना देते हैं। पद्य तथा गद्य-लेखन दोनों पर ग़ालिब का समान अधिकार है। इनकी कृतियों के नाम इस प्रकार हैं—

(1) उर्दू-ए-हिंदी, (2) उर्दू-ए-मुअल्ला, (3) कुल्यात-ए-नज़्म-ए-फ़ारसी, (4) कुल्यात-ए-नस्र-ए-फ़ारसी, (5) दीवान-ए-उर्दू, (6) लतायफ़-ए-ग़ैबी, (7) तेग़-ए-तेज़, (8) क़ातिह बुरहान, (9) पंज आहंग, (10) नामा-ए-ग़ालिब, (11) मह्र-ए-नीमरूज़।

उर्दू काव्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। भावों की सूक्ष्मता तथा कल्पना की ऊँची उड़ान इनके काव्य की मुख्य विशेषताएँ हैं। संक्षेप में ये बड़ी-से-बड़ी बात कह जाते हैं, दार्शनिक तथ्यों को सरलता तथा सादगी से अभि-व्यक्त करने में ग़ालिब अद्वितीय हैं। इनके भावों में नवीनता तथा मौलिकता सर्वत्र दृष्टिगत होती है। भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों की दृष्टि से इनकी रचनाएँ प्रथम कोटि की हैं। ग़ालिब की तुलना जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक कवि 'गेटे' से की जा सकती है। ग़ालिब में दार्शनिक की प्रतिभा, सूफ़ी की दृष्टि तथा कुशल चित्रकार की कला तीनों गुण विद्यमान हैं।

'ग़ालिब—शख़सियत और शायरी' *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1970 ई०]

'ग़ालिब—शख़सियत और शायरी' प्रो० रशीद अहमद सिद्दीक़ी (दे०) के दो साहित्यिक वक्तव्यों का संकलन है। यह दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से 'ग़ालिब शताब्दी' के संदर्भ में प्रकाशित हुआ। इन दोनों व्याख्यानों

मे गालिब के विषय मे उपयोगी सामग्री जुटाई गई है। प्रथम वक्तव्य मे गालिब के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है और दूसरे मे गालिब की शायरी पर। अत, जैसा-कि पुस्तक का नाम है, 'शखसियत और शायरी' उसी प्रकार पुस्तक के दो भाग है—प्रथम, गालिब की शखसियत और दूसरा, गालिब की शायरी। यह पुस्तक 95-96 पृष्ठ की एक छोटी-सी पुस्तक है। इसकी भाषा सशक्त तथा शैली प्रभावपूर्ण है।

गाहा ओ दोहा *(उ० पारि०)*

ओडिशा मे 'दूहा' अथवा 'दूआ' के रूप मे अनेक रचनाएँ लोक-गीतो मे दिखाई पडती हैं। प्राचीन 'बौद्धगान ओ दोहा' मे कतिपय उडिया-सिद्ध-आचार्यों के दोहे मिलते हैं। उपेंद्र भज (दे०) ने 'गाहा एव दोहा' की रचना की है।

गाहासत्तसई (गाथासप्तशती) *(प्रा० कृ०)*

उच्चकोटि की प्राकृत गाथाओ का यह सर्वोत्तम सग्रह है और हिंदी की 'बिहारीसतसई' (दे०) जैसे महान मुक्तक सग्रहो का आदर्श रहा है। काव्यशास्त्र के उच्च-कोटि के आचार्यों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशसा की है। कहा जाता है कि ईसा की पहली शती मे शातवाहन (दे० हाल) नरेश ने बिखरी हुई एक करोड गाथाओ से छाँट कर इन 700 गाथाओ का सकलन कर दिया था। इसमे नायक-नायिका-भेद, हाव, भाव, चेष्टा इत्यादि समस्त शृगारिक तत्त्वो के अतिरिक्त प्रकृति-वर्णन, उत्सव, व्रत, नियम, इत्यादि अनेक विषय आ गए है। इससे तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश पडता है।

गिदवाणी, मनु तोलाराम *(सि० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

इनका जन्म-स्थान बूबक (सिंध) है। सिंध मे ये सरकारी विभाग मे कार्य करते थे। सरकारी नौकरी मे रहते समय इन्होंने सिंध के कई स्थानो का भ्रमण किया था जिसका उल्लेख इनकी कई रचनाओ मे मिलता है। आज-कल ये स्थायी रूप से जयपुर मे रहते है। इनके सैकडा गवेषणापूर्ण निबध पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुके हैं। पुस्तक रूप मे इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'वाणिको वाँहि-वारु', 'विधवा जो वार्नो', 'सिंधी बोलीअ जी लिपीअ जो इतिहास'। सिंधी भाषा, लिपि, साहित्य और सिंध के इतिहास आदि विषयो पर शोध-कार्य करने के प्रति इनकी विशेष रुचि रही है। इनकी रचनाओ की भाषा सरल और स्वाभाविक है।

गिद्धा *(प० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1936 ई०]

पजाबी लोकगीत और लोकनृत्य से सबद्ध इस पुस्तक मे देविंदर (देवेंद्र) सत्यार्थी (दे०) ने बडे परिश्रम से पजाब के लोक-साहित्य और नृत्य-परपरा का विश्लेषण किया है। लोक-जीवन मे बिखरी भिन्न-भिन्न 'बोलियो' (काव्याशो) की इस रचना मे भावपूर्ण व्याख्या की गई है। लोक-साहित्य की खोज करने और उसे लोक-परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत करने की सत्यार्थी जी के पास अद्भुत कला है। पजाब के लोक-साहित्य की खोज और साज सँवार की दृष्टि से इस रचना का ऐतिहासिक महत्व है।

गिरिजाकल्याण *(क० कृ०)* [रचना-काल—1200 ई० के लगभग]

यह कन्नड के महाकवि हरिहर (दे०) (1200 ई०) का चपूकाव्य है। हरिहर वीरशैव कवियो मे सर्वश्रेष्ठ है। कथा विषय, वस्तु रचना, वर्णन-शैली आदि मे उन्होंने बहुत-कुछ परपरा से लिया है और उसमे अपना भी कुछ जोड दिया है। शैवपुराण ही इसका आधार ग्रथ है। शिव-पार्वती विवाह इसकी कथावस्तु है। गिरिजा इसकी नायिका हैं। कवि ने कालिदास के 'कुमारसभव' (दे०) मे भी कुछ सामग्री ली होगी किंतु 'कुमारसभव' और 'गिरिजाकल्याण' के उद्देश्य मे काफी अतर है। बृहस्पति का दौत्य, विष्णु का काम को फुसलाना, बहुवेशी शिव पर क्रुद्ध होकर उन पर गिरिजा का भभूत फेंकना, आदि हरिहर की मौलिक सूझें है। बृहस्पति का दौत्य नया होने पर भी कवि ने बृहस्पति के प्रति न्याय नहीं किया है। इसी प्रकार विष्णु और काम के सवाद मे बेहूदापन अधिक है। 'गिरिजाकल्याण' शिव-लीला की, देवासुर-सग्राम की कथा है। एक दृष्टि से यह रूपक भी है। गिरिजा यहाँ मानवी गुणो से युक्त दैवी पात्र है। पर्वतराज-कुमारी तप शक्ति हैं, शिवभक्ति हैं, किंतु साथ ही उसमे मानव-सहज स्वाभिमान, क्रोध, निष्ठुरता, आदि गुण भी है। उसने 'भवानी मानी' कहकर उस मान-वती का सही चित्रण प्रस्तुत किया है। प्रो० मुगली (दे०) के अनुसार इसमे मार्गी काव्य की सप्रदायशरणता और

उसकी मौलिकताजन्य नवीनता के बीच संघर्ष हुआ है। जिसके कारण कई विसंगतियाँ भी आ गई हैं। पात्रों के दिव्य मानवीय गुणों के समन्वय में भी संतुलन नहीं रह पाया है। उत्साह हरिहर की स्थायी वृत्ति है। वेगवती कथन-कला हरिहर के जन्मजात गुणों में से एक है। भक्ति एवं वीरता के प्रसंगों में उसकी यह कला खुल कर खेली है।

गिरिधर कविराय *(हिं० ले०)* [कविता-काल—अठारहवीं शती का मध्य]

इनकी कुंडलियों में अवधी की प्रधानता देखकर इन्हें अवधी प्रदेश का रहने वाला कहा जाता है, बाद में कतिपय कारणों से ये इस प्रदेश को छोड़ गए। इन्होंने नीति की परंपरागत बातों एवं अनुभवगत सत्यों को लेकर अनेक कुंडलियाँ बनाई है। इनकी कुंडलियों के छोटे-बड़े लगभग दस संस्करण निकल चुके हैं। उत्तर भारत में इन की कुंडलियाँ सर्वाधिक प्रचलित है। सामान्यतः इनमें कवित्व का अभाव है, पर कुछ अन्योक्तियाँ काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट भी है। नीतिकारों में इनका विशेष स्थान है।

गिरिधर स्वामी *(म० ले०)*

ये समर्थ रामदास (दे०) से प्रभावित थे। उनका यशोगान करने के लिए इन्होंने 'समर्थप्रताप' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इसमें रामदास के चरित्र का श्रद्धा-भक्ति-भाव-पूर्ण वर्णन है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'निवृत्तिराम', 'श्रीसमर्थकरुणा' आदि छोटे-बड़े लगभग 40 ग्रंथों की रचना की है। इनकी प्रसिद्धि 'रामायण' (दे०) को विविध रूपों में रचने के कारण विशेष रूप से हुई है। 'अब्ध रामायण', 'मंगलरामायण', 'छंदोरामायण', 'सुदररामायण' 'संकेतरामायण', 'करुणारामायण', इसके प्रमाण है। 'संकेतरामायण' में 6741 ओवियाँ हैं। समर्थ-संप्रदाय के अनुयायियों में 'समर्थप्रताप' ग्रंथ की रचना के कारण इनका विशेष स्थान है।

गिरींद्र मोहिनी (दत्त) दासी *(बँ० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1924 ई०]

इनका जन्म भवानीपुर में अपनी ननसाल में हुआ था।

उन्नीसवीं शती की महिला-कवयित्रियों में गिरींद्र मोहिनी को विशेष ख्याति प्राप्त हुई थी। इनका पहला काव्य-ग्रंथ 'कविताहार' 1873 ई० में प्रकाशित हुआ था। 'भारत कुसुम' (1882), 'अश्रुकण' (1894), 'आभाष' (1897), 'शिखा' (1903), 'अर्घ्य' (1909), 'स्वदेशिनी' (1912), 'सिंधुगाथा' (1913), 'अलक' एवं नाट्यकाव्य 'संन्यासिनी' या 'मीरांबाई' (1892), की रचना कर गिरींद्र मोहिनी ने उस युग के काव्य-जगत में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। 'हिंदू-महिला-पत्रावली' (1892) निबंध-ग्रंथ को उस युग में विशेष समादर प्राप्त हुआ था।

गिरींद्र मोहिनी के काव्य में सौंदर्य की सरल अभिव्यक्ति अतुलनीय है। बचपन से ही स्वर्णकुमारी (दे०) से उनकी मित्रता थी। रवींद्रनाथ (दे०) के प्रभाव से ये प्रभावित थीं। फिर भी इनकी स्वकीयता को स्वीकार करना पड़ता है। ग्राम्य जीवन के सहज-सरल सौंदर्य के अपरूप वर्णन में इन्होंने जो जादू किया है उससे आज भी बंगाली पाठकचित्त मुग्ध है।

गिरीशचंद्र घोष *(बँ० ले०)* [जन्म—1844 ई०; मृत्यु 1912 ई०]

इनकी रचनाओं को इन वर्गों में रखा जा सकता है—**पौराणिक तथा भक्तिमूलक**: रावणबध' (1881), 'अभिमन्यु-बध' (1881), 'पांडवेर अज्ञातवास' (1882), 'सीतार बनबास' (1882), 'रामेर बनवास' (1882), 'सीताहरण' (1882), 'चैतन्य लीला' (1886), 'नल-दमयंती' (1887), 'रूप सनातन' (1888), 'विल्व-मंगल' (1888), 'पूर्णचंद्र' (1888), 'विषाद' (1889), 'जना' (1894), 'करमे तिवाइ' (1895), 'नसीराम' (1896), 'काला पहाड़' (1896); **सामाजिक नाटक**: 'प्रफुल्ल' (1889), 'मायाबसान' (1899), 'बलिदान' (1905), 'शास्ति ओ शांति' (1908), 'गृहलक्ष्मी' (1912); **ऐतिहासिक नाटक**: 'भ्रांति' (1902), 'सलाम' (1904), 'वासर' (1906) 'सिराजुद्दौला' (1906), 'अशोक' (1911)।

गिरीश की साहित्यिक यात्रा के कई सोपान हैं। पहला: अनुवाद युग। बंकिम (दे०) के लोकप्रिय उपन्यासों का नाटकीय रूपांतर। यहाँ ये कुशल अभिनेता तथा सफल निर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। दूसरा: मौलिक नाटकों का सृजन। पौराणिक नाटकों की प्रेरणा राजकृष्ण राय तथा मनमोहन बसु (दे०) से ली। तीसरा: अवतार-महापुरुषमूलक नाटक। इस धारा का सर्वोत्कृष्ट नाटक है

'बिल्वमगल' । चतुर्थ दीनबधु (दे०)से अनुप्रेरित होकर। इनका ध्यान सामाजिक समस्याओ की ओर गया। 'प्रफुल्ल' इनका कीर्ति-स्तभ है । अतिम चरण में तत्कालीन स्वदेशी आदोलन से अनुप्राणित होकर इन्होंने भी समकालीन नाटक कारो की तरह् ऐतिहासिक नाटक लिखे । इनके नाटको मे नीति भावना और धर्म-भावना का समन्वय है । आध्यात्मिक दृष्टि से ये रामकृष्ण परमहस तथा विवेकानद से प्रभावित हैं ।

नाट्य शिल्प की दृष्टि से ये दीनबधु से प्रभावित हैं। इन्होंने नाटको मे साहित्यिकता और रगमचीयता का सतुलन रखा है । रगमच के बहुमुखी विकास का श्रेय सदा इनको मिलेगा ।

गिरीशम् (तें० पा०)

यह गुरजाडा अप्पाराव (दे०) (1861-1915) के प्रसिद्ध नाटक 'कन्याशुल्कम्' (दे०) का प्रसिद्ध पात्र है। यह ढोगी, मिठबोले और धोखेबाज समाज-सुधारको के प्रतिनिधि के रूप मे चित्रित है । अँग्रेज़ी और सस्कृत के टूटे फूटे शब्दो और वाक्याशा का प्रयोग करके यह अपनी विद्वत्ता बघारता रहता है। विधवा-विवाह की आवश्यकता के बारे मे कन्याशुल्क (शुल्क देकर कन्या को खरीदने की प्रथा), वेश्या-प्रथा आदि के विरोध मे, भाषण के समान बातें करके, लोगो को ठगता फिरता है। पूटकूळ्ळम (धन लेकर भोजन देने वाली औरत) के पैसे न चुका सकना, छुट्टियो का बहाना करके वेंकटेशम नामक भोले विद्यार्थी के साथ उसके गाँव जाना, वेंकटेशम की बहिन, बाल-विधवा बुच्चमा को भगा ले जाना, मधुरवाणी (दे०) नामक वेश्या के साथ सबध आदि उसके खोखले चरित्र के प्रमाण हैं ।

ढोगी समाज सुधारको के जीते-जागते प्रतीक के रूप मे अप्पाराव जी ने इस पात्र का चित्रण किया है ।

गिरीश, शकर केशव कानेटकर (म० ले०) [जन्म—1893 ई०]

घर की आर्थिक परिस्थिति सतोषजनक न होन क कारण गिरीश उच्च शिक्षा प्राप्त न कर सके । मैट्रिक के पश्चात एक स्कूल मे अध्यापन कार्य करते हुए एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की और तदनतर पूना के फर्ग्युसन महाविद्यालय मे प्राध्यापक बने ।

इन्होंने मुक्तक और प्रबध दोनो प्रकार की काव्य-रचना की है । 'काचनगगा', 'फलभार', 'मानसमेघ', 'चन्द्रलेखा' इनके नाद लयमधुर गेय प्रगीतो का सग्रह है। विषय की दृष्टि से ये प्रगीत प्रकृति वर्णनात्मक, ईश्वर-विषयक, ग्रामीण जनता के सुख दुख तथा नारी समस्या को लेकर लिखे गए हैं ।

गिरीश की प्रसिद्धि खडकाव्य के निर्माता के रूप मे अधिक है। इनसे पूर्व ऐतिहासिक खडकाव्य लिखे जाते थे, परतु सामाजिक खडकाव्य लिखने की परपरा का सूत्रपात इन्होंने ही किया । इनके खडकाव्य सामाजिक खडकाव्य का आदर्श हैं । इन्होंने 'अभागी कमल', 'आबराई' और 'कला' नामक खडकाव्यो की रचना की । पहले दो खडकाव्यो का आधार यथार्थ है, और तीसरा कल्पनात्मक है । 'अभागी कमल' मे विधवा की शोकपूर्ण स्थिति का उद्घाटन है तो 'आबराई' ग्राम्य भाषा मे ग्रामीण जीवन की करुण-गाथा है। गिरीश समाज-सुधारक थे, परतु वे क्रान्तिकारी न होकर विचारो मे सौम्य और सयमी थे। इन खडकाव्यो की रचना द्वारा आलोचको के इस कथन का कि आधुनिक काल मे दीर्घ काव्य-रचना सभव नही, खडन हुआ है ।

शब्द-सगीत इनके काव्य का प्राण है । ये रविकिरण-मडळ के सदस्य थे। स्वरचित कविताओ के गायन द्वारा इन्होंने आधुनिक मराठी कविता को जनता मे लोकप्रिय बनाया ।

गिलक्राइस्ट, जॉन बौर्थविक (हिं० ले०)

जॉन गिलक्राइस्ट को 18 अगस्त 1800 ई० के पत्रानुसार फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता म हिंदुस्तानी भाषा का प्रोफेसर बनाया गया था। इस कालेज की स्थापना सन् 1800 मे की गई थी । इन्होने छोटे-बडे 19 ग्रथो की रचना की । उल्लेखनीय ग्रथ हैं—'ए डिक्शनरी ऑफ इगलिश एड हिंदुस्तानी', 'ए ग्रामर ऑफ द हिंदुस्तानी लैंग्वेज , 'द ओरिएटल फेबूलिस्ट' (सपादित)। इनके ग्रथो मे तथा इन ग्रथो की भूमिकाओ म इनके भाषा सबधी विचारो पर प्रकाश पडता है । 'हिंदुस्तानी' शब्द से उनका तात्पर्य उर्दू से था, किंतु साथ ही उनकी दृष्टि मे हिंदी, उर्दू, उर्दूवी, रेख्ता, और हिंदुस्तानी—ये सभी शब्द समानार्थी थे। यहाँ 'हिंदी' शब्द म उनका तात्पर्य था 'हिंदी की' अर्थात 'भारत की भाषा अर्थात् हिंदुस्तानी'। इसके अतिरिक्त वे 'हिंदवी अथवा ठेठ हिंदी' और 'ब्रज-भाषा' को समानार्थी मानते थे। समग्र रूप से 'हिंदुस्तानी'

भाषा से इनका तात्पर्य उस भाषा से था जिसके संज्ञा-शब्द तो अरबी-फ़ारसी से लिये गए हों और जिसका व्याकरण 'हिंदवी' या 'ब्रजभाषा' के अनुरूप हो। इन्होंने खड़ी बोली की तीन शैलियाँ निर्धारित की थीं—(1) दरबारी या फ़ारसी शैली, (2) हिंदुस्तानी शैली, (3) हिंदवी शैली। इनमें से प्रथम सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य न थी और हिंदवी शैली को ये गँवारू समझते थे। हिंदुस्तानी शैली इन्हें सर्वप्रिय थी। इसे ये 'द ग्रेंड पाप्यूलर स्पीच ऑफ हिंदुस्तान' कहते थे। जॉन गिलक्राइस्ट के संरक्षण में लल्लूलाल (दे०) और सदलमिश्र (दे०) ने अनेक हिंदी ग्रंथों (अथवा कहिए, हिंदुस्तानी ग्रंथों) की रचना की, जिनके फलस्वरूप इन दोनों लेखकों की गणना हिंदी खड़ी बोली-गद्य के जन्मदाताओं में की जाती है।

गीतगोविंद (सं० कृ०) [समय—बारहवीं शती]

'गीतगोविंद' संस्कृत-साहित्य की अमर कृति है। इसके कर्ता जयदेव (दे०) पूर्वांचल के राजा लक्ष्मणसेन के दरबारी कवि एवं भोजदेव के सुपुत्र थे। इनका समय 1100 ई० के आसपास ठहराया जाता है।

'गीतगोविंद' में राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन है। 12 सर्गों के इस ग्रंथ का प्रत्येक सर्ग गीतों से समन्वित है। सर्गों को परस्पर मिलाने तथा कथासूत्र बतलाने के लिए कुछ वर्णनात्मक पद्य भी हैं।

'गीतगोविंद' की रचना बौद्ध-सिद्धों के गीत की परंपरा से हुई। जयदेव के इस काव्य में उक्त परंपरा का चरमोत्कर्ष लक्षित होता है। इस ग्रंथ में इतना माधुर्य है कि संस्कृत न जानने वाला व्यक्ति भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इसकी कोमलकांत पदावली संसार के साहित्य में दुर्लभ है। जयदेव की इस कृति में शब्द और अर्थ का सामंजस्य मनोमुग्धकारी है और भक्तिरस का इसमें परम परिपाक हुआ है। उसके शृंगार प्रवाह के पीछे रहस्यमयी भावना अंतर्निहित है। इसमें भावों का अद्भुत गांभीर्य है। राधा और कृष्ण के प्रेम की निर्मलता यहाँ सुंदर शब्दों में अभिव्यक्त हुई है और उनका मिलन जीव और ब्रह्म का मिलन है। साधना-मार्ग के अनेक तथ्यों का रहस्य यहाँ स्वतः सुलझ गया है।

'गीतगोविंद' का प्रभाव न केवल उत्तर भारत अपितु गुजरात, महाराष्ट्र तथा कन्नड साहित्य पर पर्याप्त रूप से पड़ा है। महाप्रभु चैतन्यदेव 'गीतगोविंद' की माधुरी के परम उपासक थे। संस्कृत में तो 'गीतगोविंद' के बाद ऐसे काव्यों की बाढ़-सी आ गई और इस शैली पर अनेक काव्यों की रचना हुई।

गीतांजलि (बं० कृ०)

यह रवींद्रनाथ (दे०) के 103 गीतों का संग्रह है। इंडिया सोसायटी, लंदन से नवंबर, 1912 में इसका प्रकाशन हुआ था। रवींद्रनाथ ठाकुर लिखित बँगला भाषा (1910) में प्रकाशित 'गीतांजलि' से यह भिन्न है। रवींद्रनाथ की विभिन्न कृतियों 'गीतांजलि', 'गीतिमाल्य', 'नैवेद्य', 'खेया', 'शिशु', 'चैतालि', 'स्मरण', 'कल्पना', 'उत्सर्ग' एवं 'अचलायतन' में लिये गए गीतों का यह अंग्रेज़ी अनुवाद है। 1913 ई० में इसी कृति पर उन्हें नोबुल पुरस्कार मिला था। उन्होंने इन गीतों का स्वयं अनुवाद किया था तथा इसकी भूमिका कवि येट्स ने लिखी थी।

'गीतांजलि' में मुख्य रूप से ये भावधाराएँ मिलती हैं—

(अ) भगवान को सहज न प्राप्त कर पाने के कारण हताश भावना तथा प्रबल विरह-वेदना की अनुभूति;

(आ) अहंकार त्यागकर दुःख-वेदना की अग्नि में स्वयं को निर्मल कर ब्रह्म से दया-प्रार्थना;

(इ) प्रकृति एवं मानव के विचित्र रूप-रस में भगवान का आभास एवं स्पर्श का अनुभव;

(ई) दीन-दरिद्र में भगवान का दर्शन करना;

(उ) असीम और ससीम की तथा उनके लीला तत्त्व की अनुभूति; आध्यात्मिकता, देशात्मबोध और मानवतावाद—ये सभी स्वर इसमें मिलते हैं। इसकी भाषा, भाव, छंद सब ब्रह्म के लिए रक्षित हैं—कुछ स्वतंत्र नहीं। इसमें ईश्वर और प्रकृति अत्यंत आश्चर्यजनक रूप से ओतप्रोत भाव से मिल गए हैं। प्रियतम की विरह वेदना छंद और स्वर में मुखरित है। कविताओं में ईश्वर मुख्य है, प्रकृति गौण। शब्द, छंद, भाव, भाषा सभी के प्रयोग में कवि अत्यंत कुशल है। रवींद्रनाथ ठाकुर के अपने शब्दों में आध्यात्मिक कविता एवं गान में जो श्रेष्ठ है, वही इसमें संकलित है।

गीता (श्रीमद्भगवद्गीता) (सं० कृ०) [रचना-काल—400 ई० पू०]

'गीता' महाभारत' (दे०) के महासागर का ही अत्यंत मूल्यवान ग्रंथ-रत्न है। इसमें अष्टादश अध्याय हैं।

'गीता' के रचयिता वेदव्यास (दे० व्यास, बादरायण) हैं।

'गीता' भारतीय धर्म एव दर्शन का प्रौढ एव विश्वप्रख्यात ग्रथ है। समस्त भारतीय वाङ्मय मे धर्म एव दर्शन की दृष्टि से वेदो और उपनिषदो के बाद तीसरा स्थान 'गीता' का है। 'गीता' उपनिषदो का सारभूत ग्रथ है। गीता मे भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिए गए उपदेशो का प्रधान महत्व है। युद्धोपरात अर्जुन को श्रीकृष्ण ने 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' का उपदेश दिया है। गीता का कर्मवाद 'स्व' तथा 'पर' की भावना से ऊपर है। कर्मवाद के उक्त कर्त्तव्यपरक भाव से प्रेरित होकर ही अर्जुन कौरवो के साथ पारिवारिक सबध की चिंता न कर कर्त्तव्य के पावन पथ पर अग्रसर हो जाता है। कर्मवाद के कारण ही 'गीता' ससार भर मे शिरोधार्य है।

समग्र रूप से 'गीता' मे कर्मयोग, भक्तियोग एव ज्ञानयोग, इस त्रिविध योग का विवेचन मिलता है। कर्म, भक्ति एव ज्ञान का समन्वय ही गीताकार का अभीष्ट है। निष्काम भावना एव भगवद्बुद्धि से किया गया कर्म ही मानव के लिए सर्वथा श्रेयस्कर है।

इस प्रकार गीता का यह विशिष्ट महत्व है कि यह लौकिक एव अलौकिक दोनो ही दृष्टियो से मानव की अप्रतिम पथप्रदर्शिका है। 'गीता' मन शाति का अमोघ उपाय है।

गीता (उ० पारि०)

गुरु-शिष्य के बीच मे होने वाला विचार विनिमय, तर्क वितर्क 'गीता' ग्रथ मे निबद्ध होता है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' के आदर्श पर उडिया गीता की रचना भी हुई है। प्रश्नोत्तर द्वारा शिष्य की भ्राति का निराकरण तथा धर्म मे आस्था सस्थापन गुरु का लक्ष्य होता है। इसमे लेखक अपने को गुरु के माध्यम से व्यक्त करता है। केवल अच्युतानद दास (दे०) ने ही 78 गीताओ की रचना की है। इससे यह सहज ही अनुमान हो जाता है कि उडिया साहित्य मे गीताओ की बहुलता है। बळरामदास (दे०) की 'वेदात सारगुप्तगीता', अच्युतानद की 'गुरुभक्ति-गीता', दिवाकर दास की 'जगन्नाथामृत गीता', दीनकृष्ण दास (दे०) की 'नवरत्नगीता', देवानद की 'वँचद्रगीता' आदि उल्लेख-योग्य हैं।

गीता-प्रवचनो (गु० कृ०) [प्रकाशन वर्ष—1951 ई०]

1951 ई० मे परमधाम विद्यापीठ प्रकाशन, पवनार की ओर से प्रकाशित विनाबा जी के ग्रथ 'गीता-प्रवचनो' मे गीता-विषयक चिंतन-मनन की अभिव्यक्ति हुई है। गाधीजी के धार्मिक व दार्शनिक विचारो के उत्तराधिकारी विनोबा जी का चिंतन-मनन मौलिक व आत्म-स्फूर्त ही अधिक है। ज्ञान को जीवन के क्षेत्र से जोडकर उसे आचरण मे रखने पर विनोबा जी ने बल दिया है।

1932 ई० मे धूळिया जेल मे य गीता के प्रवचन प्रस्तुत हुए थे। साने गुरु जी (दे०) ने इन्हे लिखित रूप मे ग्रथित किया था। उसकी गुजराती मे नागरी लिपि तथा गुजराती लिपि मे दो आवृत्तियाँ (सस्करण) अलग-अलग प्रकाशित हुई।

18 व्याख्यानो मे समाविष्ट विषय-वस्तु इस प्रकार है—

(1) अर्जुन विषाद, (2) आत्मज्ञान व समत्वबुद्धि (3) (4) कर्मयोग, (5) योग और सन्यास, (6) चित्त-वृत्तियो का निरोध, (7) ईश्वर शरणागति अर्थात् प्रपत्ति, (8) सातत्य-योग, (9) समर्पण योग, (10) विमति-चिंतन, (11) विश्व-रूप-दर्शन, (12) सगुण-निर्गुण-भक्ति विवेचन, (13) आत्म अनात्म विवेचन, (14) गुणोत्कर्ष एव गुण-विस्तार, (15) पूर्णयोग, (16) परिशिष्ट 1—दैवी और आसुरी वृत्तियो का झगडा, (17) परिशिष्ट 2—साधना का कार्यक्रम, (18) उपसहार फल त्याग की पूर्णता-ईश्वरप्रसाद, परिशिष्ट 1—परमार्थ का सकल जनोपयोगी सुलभ विवेचन, परिशिष्ट 2—शका-समाधान।

इन सब मे विनोबा के स्वच्छ चिंतन व स्वच्छ हृदय का प्रतिबिंब झलकता है। नित्य प्रति के जीवन-व्यवहार से ऐसे दृष्टातो द्वारा गहन विषय को ऐसा सरल बना दिया गया है कि साधारण जन भी हृदयगम कर सकें। इनमे केवल विचारवाद या तर्क के लिए तर्क नही है। एसा एक भी विचार प्रकट नही किया गया जिसका जीवन के आचरण-पक्ष से दैनदिन सबध न हो।

शिक्षित, अशिक्षित, ग्रामीण जन, नागरिक जन सबके लिए एक-सी सरल, यथायोग्य विचार-सामग्री इसमे सग्रथित है। भाषा बडी सरल है।

गीतारहस्य *(म० कृ०)* [रचना-काल—1915 ई०]

भारतवासियों के सांस्कृतिक जीवन में 'श्रीमद्-भगवद्गीता' (दे०) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'गीता' पर रचित वाङ्मय में लोकमान्य टिळक (दे०)-रचित 'गीता-रहस्य' मील का पत्थर है। कई दृष्टियों से यह एक अनूठा ग्रंथ है। पहला कारण यह है कि एक महान् राजनीतिक नेता ने इसका प्रणयन कारावास में किया था। दूसरा, और सबसे मुख्य कारण यह कि इससे पूर्व हुई 'गीता' की टीकाओं से भिन्न नवीन ग्राह्य अर्थ का प्रतिपादन करने वाला यह भाष्य ग्रंथ है।

टिळक के अनुसार गीता निवृत्तिमार्गी संन्यास-मार्गोपदेशक ग्रंथ न होकर प्रवृत्तिपरक निष्काम कर्मयोग का समर्थन करता है। कर्म से अभिप्राय वेद-विहित कर्म नहीं वरन् उसमें लौकिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय कर्त्तव्यों का अंतर्भाव है। कर्मयोग ज्ञाननिष्ठा का साधन नहीं वरन् स्वतंत्र मोक्ष-मार्ग है। कर्म-अकर्म क्या है? केवल आत्म-सुख के लिए कर्म करना नीचता है—आदि का प्रतिपादन इसमें मिलता है। यह कर्त्तव्यबुद्धि को जागृत करने वाला, लोगों को प्रोत्साहित करने वाला, क्रियाशील बनाने वाला, निराश एवं अस्वस्थ को आशा से स्फूर्त करने वाला एक विलक्षण ग्रंथ है।

टिळक ने इसमें अपने मत की बलपूर्वक स्थापना की है तथा प्रतिपक्ष के मत का खंडन करने में अपूर्व युक्ति-वाद का परिचय दिया है। इसकी भाषा पूर्ण एवं व्यवस्थित है। अतः यह सभी दृष्टियों से असाधारण है। उपसंहार में पाश्चात्य चिंतन-पद्धति से तुलना कर भारतीय चिंतन-पद्धति के श्रेष्ठत्व को सिद्ध करने का जो उपक्रम किया गया है वह मराठी तत्त्वज्ञान साहित्य में बेजोड़ है। 'गीता-रहस्य' लोकमान्य के तत्त्वचिंतन का आलोक है, कर्मयोगी टिळक के संतुलित जीवन-दर्शन का परिचायक है, गीता-भाष्यों में सिरमौर तथा तत्त्वज्ञान संबंधी ग्रंथों में अग्रगण्य है।

गीतार्णव *(म० कृ०)*

दासोपंत (दे०) की यह रचना सचमुच अर्णव जैसी विशाल है। 'गीता' (दे०) के अठारह अध्यायों पर इनका भाष्य है। भाष्य-रूप में लिखित ओवियों की संख्या सवा लाख है। कई आलोचकों के मत में इतना विशाल काव्यबद्ध भाष्य कदाचित् ही संसार की किसी अन्य भाषा में उपलब्ध हो। कवि का उद्देश्य सामान्य जनता को 'गीता' के मार्मिक उपदेशों-रहस्यों से अवगत कराना रहा है। यह भाष्य इतना विशाल कैसे बन गया? इसका एक उदाहरण लें, गीता में प्रयुक्त चिंता की कवि-व्याख्या है: 'चिंता पुरुषों के लिए एक बंधन है, पर जीते जी ही मृत्यु के समान है। चिंता सुखों का नाश कर पीड़ा देती है। चिंता जीवन का अंधकार और जीवन का कृष्ण पक्ष है ...चिंता बिना अग्नि के जलाती है और सुख को निगल जाती है', आदि-आदि। कवि ने स्वानुभव और चिंतन-मनन से भाष्य को जीवन-व्यवहारोपयोगी बनाया है।

गीतावली *(हिं० कृ०)*

यह गोस्वामी तुलसीदास (दे०)-कृत सप्तकांडों में विभाजित रामपरक गीतिकाव्य है, जिसे प्रबंधोन्मुख मुक्तक समझना अधिक समीचीन होगा। इसके रचना-काल के संबंध में विभिन्न कल्पनाएँ हैं; किंतु अधिक संभव है कि यह *1586* और *1593* ई० के मध्य रचा गया। इसमें लगभग इक्कीस रागों के व्यास-शैली प्रवृत्त 330 से अधिक मुक्तक हैं; जिनकी भाषा प्रायः संस्कृतनिष्ठ किंतु मुहा-वरेदार ब्रज है जिसमें 48 अरबी-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग भी है। यह उपमा, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, परिकर, संदेह, अनन्वय आदि अलंकारों से संकुल है; और चित्रकूट-संबंधी इसके कतिपय सांगरूपक मनोहर हैं, *यथा* 2.47-49; हनुमान् जी की यह उक्ति भी सुंदर है कि मैं रावण-रूपी पोरे को उसके शूरवीर-रूपी रसों के सहित फूंक कर लंका-रूपी खरल में घोंटता (5.13)। 'गीतावली' के कई संवाद मनोरम हैं; इसके कुछ स्थल 'कवितावली' से प्रभावित प्रतीत होते हैं। संयोग और वियोग दोनों प्रकार के वत्सल और शृंगार की, तथा पितृभक्ति, भ्रातृशोक, हर्षोल्लासु प्रपत्ति आदि अनेक भावों की अभिव्यक्तियाँ प्रशस्त हैं।

गीतिका *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

निराला जी (दे०) की बहुमुखी प्रतिभा ने जो अनेक प्रयोग किए हैं, उनमें से शास्त्रानुमोदित गीत-प्रयोगों की साक्षी रचना 'गीतिका' है। बँगला काव्य से प्रेरणा लेकर कवि ने अँग्रेज़ी शैली के गीत लिखे हैं, पर उनकी 'स्वरमैत्री हिंदुस्तानी है।' गीतों के विषय आत्मनिवेदन, नारी-सौंदर्य, प्राकृतिक वैभव, दार्शनिक चिंतन और राष्ट्र-भक्ति आदि हैं। अधिकांश गीतों में काव्यगुण की समृद्धि मिलती है, परंतु कहीं-कहीं अत्यधिक सामासिकता के कारण

पद-योजना दुरूह हो गई है। सगीत और कवित्व के दुर्लभ मिश्रण के कारण, यह कृति हिंदी काव्य मे प्रसिद्ध है।

गीति-काव्य *(हिं० पारि०)*

कथ्य की दृष्टि से स्वानुभूतिनिरूपक और बध की दृष्टि से मुक्तक (दे०) काव्य को गीति-काव्य कहा जाता है, आरभ मे सगीत उसका प्रधान तत्त्व था। यूनान मे लाइर नामक वाद्ययत्र के साथ गाया जाना और उसका राग-रागिनी मे आबद्ध होना इसका प्रमाण है। पर अब यह तत्त्व स्थूल से सूक्ष्म होता जा रहा है। आज आतरिक लय ही गीति-काव्य के लिए पर्याप्त है।

गीति-काव्य की आत्मा है भाव, जो किसी प्रेरणा के भार से दबकर एकसाथ गीति मे फूट पडता है। उसमे स्वभाव से ही हार्दिकता का तत्त्व रहता है। सच्ची गीति-कविता एक सरल, क्षणिक पर तीव्र मनोवेग का परिणाम होती है। वह कवि की निजी भावनाओ का प्रकाशन होती है, उसमे एक ही भाव होता है, अत सपूर्ण गीत मे रागात्मक अन्विति स्वत आ जाती है और वह सक्षिप्त भी होता है, सहज आतरिक प्रेरणा के कारण वह आत्मद्रव की अतर्धारा से प्लावित होता है। इस प्रकार सगीतात्मकता, व्यक्तिगत अनुभूति की विवृति, भाव-प्रवणता, रागात्मक अन्विति, प्रवाहमयता और सक्षिप्तता उसके प्रधान तत्त्व हैं।

गीति-काव्य के असख्य भेद हो सकते हैं पर मुख्य हैं—चतुर्दशपदी, सबोध-गीति, शोकगीत, व्यग्य गीत, शिशुगीत, आख्यान-गीति आदि।

गीति-नाटक *(हिं० पारि०)*

ग्रीक त्रासदी (दे०) को पुनरुज्जीवित करने के प्रयत्न मे गीति-नाटक (ऑपेरा) का आविर्भाव 1594 ई० मे ओतावियो रिन्युचीनी के 'दाफने' के प्रस्तुतीकरण के साथ हुआ था। बारोक-युग मे यह यूरोप के अनेक स्थानो—वेनिस, रोम, नेपिल्स आदि मे विकसित होकर प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ था। अठारहवी शती तक इसके विषय यूनानी पौराणिक कथाओ तथा प्राचीन इतिहास से लिये जाते रहे थे, और इसके द्वारा करुणा जगाने का प्रयत्न होता था, परतु रोमाटिक आदोलन के फलस्वरूप इसमे नये विषयो को अपनाया गया और इसका शिल्प भी बदला। अब इसमे कलात्मक गायन, नाटकीय उपस्थापन तथा प्रभावपूर्ण दृश्य-विधान की प्रधानता है। आज गीति-नाटक के अग माने जाते है—प्रस्तावना, कथा, सवादाभिनय गीत और नृत्य। इसके प्रदर्शन मे तीन दल होते है—अभिनता (दे०), भावनट या भावनटी तथा गायक-वादक मडली (आर्केस्ट्रा)। इसकी सपूर्ण कथा गीतो के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है और बीच-बीच मे भाव नृत्य होत है। उत्तर भारत मे इनकी लोकप्रियता का श्रेय शातिनिकेतन मे होने वाले कवीद्र रवीद्र (दे०) के गीति नाटको को है।

गुडप्पा, एल० *(क० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

श्री एल० गुडप्पा जी का जन्म तुक्कूर जिले के मतिघट्ट मे 1906 ई० मे हुआ। भासन एकाक नाटकगळु', 'आदि पुराणसग्रह', 'भारतियवर कवनगळु' आदि आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं। आपने भास (दे०) पर विशेष काम किया है। लोकगीतो के सग्रह एव लोकसस्कृति के अध्ययन मे आपकी विशेष रुचि है। 'हळ्ळियहाडुगळु' आपका प्रसिद्ध लोकगीत-सग्रह है। इन्होने टॉल्सटाय की कहानियो का अनुवाद भी किया है। तमिल के प्रसिद्ध कवि सुब्रह्मण्य भारती की कविताओ का कन्नड अनुवाद भी आपने प्रस्तुत किया है। पत्रकारो के लिए आपने एक कोश भी तैयार किया है। आपकी भाषा सहज-सरल है।

गुडप्पा, डी० वी० *(क० ले०)* [जन्म—1889 ई०]

श्री डी० वी० गुडप्पा आधुनिक कन्नड की पुरानी पीढी के कवि हैं। इनका जन्म कोलार जिले के मुळबागिल नामक स्थान मे हुआ था। हाईस्कूल की शिक्षा पूर्ण कर ये कालेज मे नही पढ पाए। स्वाध्याय से इन्होने बहुत-कुछ सीखा-समझा। इन्होने अपना जीवन पत्रकार के रूप मे ही आरभ किया था। बँगलौर मे इन्होने 'गोखले सार्वजनिक सस्था' नामक एक सस्था की स्थापना भी की थी। ये कन्नड साहित्य-सम्मेलन के दो बार अध्यक्ष भी बने। 'वसत कुसुमाजलि', 'निवेदन अत पुरगीते' आदि मे इनकी श्रेष्ठ गीतिकाएँ सगृहीत हैं। उमरखैयाम की रुबाइयो का सफल अनुवाद इन्होने 'उमरन ओसगे' नाम से किया है। 'अत पुरगीते' मे बेलूर मदिर की मदनिका-मूर्तियो से प्रेरित गीत हैं जो अपनी गेयता के कारण बहुत ही लोकप्रिय हुए है। 'वनसुम', दारिद्वोकर' आदि इनके सर्वाधिक लोकप्रिय गीत हैं। 'मकुतिम्मन कग्ग' (दे०) इनका मुक्तक काव्य है जिसमे करीब एक हजार छद हैं। इसे हम नये युग की

नई 'गीता' कह सकते है। इसमें कवि का जीवन-दर्शन रस-रूप ग्रहण करके वह निकला है। विचारों की उदारता, शैली की गंभीरता तथा कल्पना की विराटता इसकी विशेषता है। 'गीतशाकुंतल' में इन्होंने 'शाकुंतल नाटक' को एक नये रूप में प्रस्तुत किया है। ये सफल आलोचक भी हैं। 'साहित्य-शक्ति', 'जीवन-सौंदर्य मत्तु साहित्य', 'संस्कृति' आदि में इन्होंने साहित्य की विशद व्याख्या करते हुए नये मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। 'राजनीति' के भी ये आचार्य है। 'राज्यशास्त्र' इस क्षेत्र मे इनकी अनूठी देन है। इन्होंने 'विकारथ', 'रंगाचार्लु' आदि जीवनियाँ लिखी है। 'वन्देमातरम्' लिखकर सत्याग्रह के दिनों में इन्होंने मैसूर में क्रांति पैदा की थी। 'बाळिगोंद्र नंबिके' इनकी चिंतन-प्रधान कृति है। शेक्सपियर के 'मैकवेथ' नाटक का अनुवाद भी इन्होंने किया है। 'जीवनधर्मयोग' इनका हाल ही में प्रकाशित गीताभाष्य है जिसमें इन्होंने गीता की व्याख्या नवीन दृष्टि से की है। यह इनकी अर्द्ध-शती से भी अधिक समय की साहित्यिक तपस्या का अमृतफल है। इस पर इन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिल चुका है। इन्होंने बाल-साहित्य में भी रुचि ली है। 'बेक्कोळि' इस क्षेत्र के लिए इनकी उल्लेखनीय देन है। इनकी शैली पांडित्यपूर्ण एवं प्रौढ है। विचार-गांभीर्य, भाव-गांभीर्य एवं भाषा-गांभीर्य इनकी विशेषता है।

गुंडर्ट निघंटु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1872 ई०]

यह जर्मनी-निवासी ईसाई धर्मप्रचारक और भाषावैज्ञानिक डा० हेरमन गुंडर्ट (दे०) द्वारा रचित मलयाळम-अँग्रेजी कोश है। केरलवासियों से निकट संपर्क का और सभी दाक्षिणात्य भाषाओं के ज्ञान का लाभ उठाकर वर्षों की निरंतर गवेषणा के उपरांत तैयार किए गए इस कोश में उस समय मलयाळम में प्रयोग में आने वाले सभी शब्दों का सही और संपूर्ण अर्थ व्युत्पत्ति-सहित दिया गया है। इसके लिए उस समय प्राप्य सभी पुस्तकों का अध्ययन इन्होंने किया था। आज भी भाषा और साहित्य के विद्यार्थियों के लिए यह कोश एक अमूल्य संदर्भ-ग्रंथ है।

गुंडर्ट व्याकरणम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1868 ई०]

यह जर्मन भाषा वैज्ञानिक हेरमन गुंडर्ट (दे०)-लिखित मलयाळम व्याकरण है। ईसाई धर्मप्रचारकों की सहायता से गुंडर्ट से पहले भी व्याकरण-ग्रंथों का प्रकाशन हुआ था परंतु यह व्याकरण इतना प्रामाणिक और विद्वत्तापूर्ण सिद्ध हुआ कि अन्य सभी व्याकरण शीघ्र ही लुप्त हो गए। आधुनिक मलयाळम के सर्वप्रथम प्रामाणिक व्याकरण के रूप में यह पुस्तक अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

गुंडर्ट, हेरमन *(मल० ले०)* [समय—1814-1903 ई०]

जर्मनी से आए इस ईसाई पादरी ने 1838 ई० में केरल में धर्म-प्रचार के साथ दक्षिणी भाषाओं में बड़ी प्रवीणता प्राप्त की तथा मलयाळम में एक अनूठे कोश का निर्माण किया। पदों के आगमन, उच्चारण, अर्थभेद आदि पर इन्होंने बड़ी गहराई से प्रकाश डाला है। पाठमाला, मलयाळम व्याकरण आदि ग्रंथ लिखकर इन्होंने केरल की महत्वपूर्ण सेवा की।

गुण *(सं० पारि०)*

काव्य की पुरुष-रूप में कल्पना कर संस्कृत-आचार्यों ने उसकी आत्मा एवं शरीर के साथ ही गुण-दोषों का भी विशद विवेचन किया। सामान्यतः गुण काव्योत्कर्ष के साधक हैं। भरत (दे०) के समय से ही गुणों का विस्तृत एवं सुव्यवस्थित विवेचन प्रारंभ हो गया था, किंतु उनकी सर्वप्रथम परिभाषा आचार्य वामन (दे०) ने दी: 'काव्य-शोभा के विधायक तत्व गुण कहलाते हैं' ('काव्य-शोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः'—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति: 3.1.1) संस्कृत काव्यशास्त्र में गुण-विषयक अवधारणा का विकास तीन अवस्थाओं में हुआ है: वामन आदि ध्वनि-पूर्ववर्ती आचार्यों ने गुणों को काव्य-शोभा के विधायक शब्दार्थ के नित्य धर्म माना है; ध्वनिवादी आचार्यों ने गुणों का सीधा संबंध शब्दार्थ की अपेक्षा रस से माना है तथा ध्वनि की स्थापना के उपरांत अभिनवगुप्त (दे०) ने गुणों को अत्यंत सूक्ष्म रूप प्रदान करते हुए चित्तवृत्ति-रूप माना है। इस प्रकार गुण भी अलंकार और रीति की भांति काव्य के उत्कर्ष-विधायक ऐसे विशिष्ट तत्त्व हैं जो मूलतः रस से संबद्ध होते हुए भी व्यंजक-रूप में शब्दार्थ चमत्कार का आधार भी अनिवार्यतः लिये रहते हैं। संस्कृत-काव्यशास्त्र में भरत और दंडी (दे०) के दस गुणों से लेकर उनका विस्तार भोज (दे०) तक पहुँचते-पहुँचते 72 तक हो गया, किंतु बाद में गुणों के वैज्ञानिक विवेचन एवं वर्गीकरण की प्रवृत्ति के फलस्वरूप मम्मट (दे०) तक

आते-आते उनकी सख्या तीन रह गई। मम्मट ने भामह (दे०) के विवेचन के आधार पर गुणो की सख्या तीन निर्धारित कर दी—माधुर्य, ओज और प्रसाद। इन्ही मे अन्य सभी गुणो का अतर्भाव कर दिया गया। आज यही मत मान्य हैं।

गुणवर्मा प्रथम *(क० ले०)* [समय—900 ई० के लगभग]

इनका समय 900 ई० के लगभग माना जाता है। ये जैन थे। कन्नड के कवि नयसेन (दे०) (1112 ई०) ने इनका सर्वप्रथम उल्लेख किया है। इससे लगता है कि गुणवर्मा उस समय तक विख्यात हो चुके थे। विद्वानो ने अनुमान लगाया है कि ये गगचक्रायुध, कामद आदि विरुदो से भूषित गगराजा एरेयप्पा के दरबार मे थे। इनके दो ग्रथ 'शूद्रक' एव 'हरिवश' माने जाते हैं जो उपलब्ध नही हैं। परवर्ती सकलन-ग्रथो मे इनके बहुत से पद्य मिलते है। इनके आधार पर डाक्टर मुगली आदि विद्वानो ने यह अनुमान लगाया है कि इनके ये दोनो ग्रथ चपू-काव्य थे (क्योकि सग्रह ग्रथो मे इन ग्रथो के गद्य भाग भी मिलते है)। इनमे सकलित पद्यो मे आखेट, समुद्र, पुर, कानन, स्त्रीरूप, वेश्यावाट, युद्ध, शौर्य, राजा आदि के वर्णन है। इससे लगता है कि यह एक वीरकाव्य है। साथ ही, एक लौकिक तथा एक आगमिक—इस प्रकार कृति रचना करने की शैली भी इसी से शुरू होती है। इस तरह समासोक्ति-काव्य एव लौकिक तथा आगमिक परपरा इन दोनो के प्रवर्तक के रूप मे गुणवर्मा का नाम स्मरणीय है। प्राप्त कविताओ की शैली प्रौढ है।

गुणाढ्य *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानत प्रथम शती ई० के उत्तरार्द्ध मे, मृत्यु काल—अज्ञात]

भारत-आर्य कुल मे भारत-ईरानी उपकुल की दर्द भाषा-परिवार की पैशाचिक भाषा मे, जिसे 'पश्तो' का प्राचीन रूप समझा जाना चाहिए, 'वृहद्कथा' की रचना हुई। 'बृहद्कथा' मे एक लाख श्लोक हैं और इस रचना से उस समय के सास्कृतिक मूल्यो, जनविश्वास, जन-मानस की प्रवृत्तियो, कथाकार की कला आदि पर प्रकाश पडता है। यह एक विवादास्पद विषय है कि यह महान कृति गद्य मे थी या पद्य म, किंतु दडी (दे०) के अनुसार यह गद्य मे थी। 'बृहद्कथा' की भाषा पैशाचिक होने के कारण इसे यदि कश्मीरी भाषा का आदि ग्रथ माना जाए तो कदाचित् कोई अत्युक्ति नही होगी। कश्मीरी भाषा के साहित्य एव उसके इतिहास मे गुणाढ्य की 'बृहद्कथा' का वही स्थान है जो खडी बोली हिंदी या यो कहना चाहिए कि हिंदी भाषा के साहित्य एव इतिहास मे, चदवरदाई के रासो का, अथवा डिंगल और पिंगल की कृतियो का। इस 'बृहदकथा' रचना का आधार भले ही पिशाच भाषा हो किंतु शब्द विन्यास, पद विन्यास तथा क्रियापदो से इसे कश्मीरी भाषा का आदि-रूप समझा जा सकता है। इसी आदि-रूप को कई शताब्दियो बाद तक सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश भाषाओ ने सीचा, और अतत इसे आधुनिक कश्मीरी भाषा का रूप मिला। गुणाढय की इस 'बृहद्कथा' का पहली बार सस्कृत मे अनुवाद करने वाले कश्मीरी पडित थे—दसवी-ग्यारहवी शती के बहुमुखी प्रतिभा-सपन्न दार्शनिक विद्वान लेखक राजानक क्षेमद्र (दे०)।

गुणीभूतव्यग्य (स० पारि०)

ध्वनिवादी आचार्यो के मतानुसार काव्य के सर्वोत्कृष्ट रूप ध्वनि (दे०) काव्य स भिन्न मध्यम कोटि का काव्य। 'गुणीभूत' का शाब्दिक अर्थ है गौण, अप्रधान हो जाना। इस दृष्टि से गुणीभूतव्यग्य का अर्थ हुआ जहाँ व्यग्य से सबध होने पर वाच्य का चारुत्व अधिक प्रकर्ष-युक्त हो जाता है वह गुणीभूतव्यग्य नामक काव्य का दूसरा भेद होता है (*प्रकारोऽन्यो गुणीभूतव्यग्य काव्यस्य दृश्यते। यत्र व्यग्यान्वये वाच्यचारुत्व स्यात प्रकर्षवत्।*'—ध्वन्यालोक 3 34)। विश्वनाथ (दे०) गुणीभूतव्यग्य उसे कहते हैं जहाँ व्यग्यार्थ वाच्यार्थ से उत्तम न हो ('*अपरतु गुणीभूतव्यग्य वाच्यादनुत्तमे व्यग्ये*'—*साहित्यदर्पण*, 4 13)। व्यग्य के गुणीभूत होने के कथित आठ कारणो के आधार पर गुणीभूतव्यग्य के आठ भेद है *अगूढव्यग्य*, *अपरागव्यग्य*, *वाच्यसिद्ध्यगव्यग्य*, *अस्फुटव्यग्य*, *सदिग्ध-प्राधान्यव्यग्य*, *तुल्यप्राधान्यव्यग्य*, *काक्वाक्षिप्तव्यग्य* और *असुदरव्यग्य*।

गुप्त, ईश्वरचद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1812 ई० मृत्यु—1859 ई०]

नदिया जिले के कांचडापाना ग्राम म इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम हरिनारायण दासगुप्त था। इनकी प्रमुख कृतियो के नाम हैं—'हित-

प्रभाकर' (गद्य एवं पद्य), 'बोधेंदु विकास' (नाटक), 'सत्यनारायण की पांचाली' तथा चार काव्य-संकलन।

ये 'संवादप्रभाकर' पत्रिका के संपादक थे जिसके माध्यम से बंकिमचंद्र चटर्जी (दे०) तथा दीनबंधु (दे०) जैसे साहित्यिक प्रकाश में आए थे।

इन्होंने उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे, पाँचवें एवं छठे दशक में बँगला साहित्य में अपूर्व प्रभाव स्थापित किया था। ये नूतन एवं पुरातन के संधिस्थल में एक कड़ी के रूप में विद्यमान हैं और इनकी कृतियों में यह तथ्य भली प्रकार लक्षित होता है। ये विदेशी प्रभाव-रहित शुद्ध बंगाली कवि हैं। भाषा और छंद पर इनका असाधारण अधिकार है।

तत्कालीन बंगाली समाज के अनेक यथार्थ चित्र व्यंग्य-विद्रूप रूप से प्रस्तुत करने में इनकी समता करने वाला अन्य नहीं है। गंभीर विषयों पर भी व्यंग्यात्मक शैली में इन्होंने लिखा है।

गुप्त, नगेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1861 ई०; निधन —1940 ई०]

उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण से लेकर बीसवीं शती के चौथे दशक तक रहस्य-रोमांचकारी, पारिवारिक रोमांटिक उपन्यासों के यशस्वी लेखक नगेंद्रनाथ गुप्त लेखन-रत रहे। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'पर्वतवासिनी' (1883), 'अमरसिंह' (1889), 'लीला' (1892), 'तमस्विनी' (1900), 'जयंती' (1929), 'आराताभा' (1930); 'ब्रजनाथेर विवाद' (1938) उल्लेखनीय हैं। लीला में वर्णित पारिवारिक चित्र सुंदर हैं। 'तमस्विनी' में इन्होंने पहली बार यथार्थ यौन दृष्टि का परिचय दिया था। इन्होंने कुछ उत्कृष्ट कहानियाँ भी लिखी हैं। इनका कहानी-संग्रह 'संग्रह' अपने समय में पर्याप्त लोकप्रिय हुआ था। सहृदयता एवं औत्सुक्य को बनाए रखने की शक्ति इनकी कथाकृतियों का विशिष्ट गुण है।

गुप्तन् नायर, एस० *(मल० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

ये मलयाळम के प्रख्यात समालोचक हैं। केरल के विविध सरकारी कालेजों में मलयाळम के आचार्य और केरल भाषा-संस्थान के उपनिदेशक रहे हैं।

'आधुनिक साहित्यम्', 'समालोचना', 'क्रांतदर्शिकळ्' आदि इनके समालोचनात्मक ग्रंथ हैं। प्रथम ज्ञानपीठ पुरस्कार जीतने वाले जी० शंकर कुरुप्प (दे०) के कविता-संग्रह 'ओटक्कुष़ल्' की भूमिका इन्होंने ही लिखी थी।

समालोचक गुप्तन् नायर की रुचि विवादास्पद तर्कों को प्रस्तुत करके ख्याति प्राप्त करने के प्रयत्न में न होकर विशुद्ध सत्यान्वेषण में है। इस कारण वे सर्व-सम्मत साहित्याचार्य हैं और पाठकों द्वारा अत्यधिक समादृत हैं।

गुप्त, बालमुकुंद *(हिं० ले०)* [जन्म—1865 ई०; मृत्यु —1907 ई०]

इनका जन्म हरियाणा प्रांत के रोहतक ज़िले के गुड़ियाना गाँव में हुआ था। ये अत्यंत निर्भीक, ओजस्वी, राष्ट्रप्रेमी, ईमानदार एवं कर्त्तव्यनिष्ठ पत्रकार थे। ये जीवन-पर्यंत पत्रकार ही रहे तथा अपने जीवन-काल में इन्होंने दो उर्दू-पत्रों—'अखबारे चुनार' और 'कोहनूर'—तथा तीन हिंदी पत्रों—'हिंदोस्थान', 'हिंदी बंगवासी' एवं 'भारतमित्र' का संपादन किया था। पत्रकारिता के अतिरिक्त ये हास्य-व्यंग्य से भरपूर दो कृतियों 'शिवशंभु के चिट्ठे' (दे०) एवं 'चिट्ठे और खत' के लिए भी प्रख्यात हैं। 'शिवशंभु के चिट्ठे' में इन्होंने शिवशंभु शर्मा उपनाम से लार्ड कर्ज़न की अहम्मन्यता पर तीखा प्रहार करते हुए आठ खुली चिट्ठियाँ लिखी हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक महत्वपूर्ण निबंध भी लिखे थे जो 'गुप्तनिबंधावली' में संकलित हैं। हिंदी गद्य के इतिहास में ये अपनी चुस्त, चुटीली और प्रवाहपूर्ण शैली तथा शब्दों की अंतरात्मा को पहचानने के लिए भी प्रख्यात हैं। इस संदर्भ में 'अनस्थिरता' तथा 'शेष' शब्दों को लेकर क्रमशः आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) तथा लज्जाराम शर्मा मेहता के साथ हुआ इनका विवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

गुप्त, मैथिलीशरण *(हिं० ले०)* [जन्म—1889 ई०; मृत्यु—1965 ई०]

इनका जन्म चिरगाँव (ज़िला झाँसी) के एक सम्मानित वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पिता सेठ रामचरण राम-भक्त थे और अनुज सियारामशरण गुप्त (दे०) हिंदी के प्रतिष्ठित साहित्यकार थे। काव्य-सृजन के आरंभ में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) ने इनका मार्गदर्शन किया। इनके महाकाव्य 'साकेत' (दे०) की रचना में द्विवेदी जी के एक निबंध की प्रत्यक्ष प्रेरणा थी।

ये परपरा से सगुण राम के भक्त थे। अपनी साम्प्रदायिक आस्थाओ मे दृढ रहते हुए भी ये व्यवहार मे अत्यत उदार थे। इसी कारण इनका कृतित्व रामभक्ति की साम्प्रदायिक सीमा मे आबद्ध नही रहा। 'रामायण'(दे०)के साथ-साथ 'महाभारत' (दे०) की कथाएँ लेकर भी इन्होने प्रबधकाव्यो का प्रणयन किया है। 'साकेत', 'जयभारत' (दे०) आदि महाकाव्य और 'पचवटी', 'जयद्रथवध (दे०) आदि खडकाव्य इनकी उल्लेखनीय प्रबध-कृतियाँ है। इस्लाम, बौद्ध मत और सिक्ख सप्रदाय से सबद्ध रचनाएँ भी इन्होने राष्ट्रीय एकता की भावना से प्रेरित होकर लिखी है। 'सिद्धराज', 'कुणाल-गीत' और 'विष्णुप्रिया आदि रचनाएँ विभिन्न युगो के ऐतिहासिक पात्रो को आधार बनाकर लिखी गई है। 'भारत-भारती' और 'अजित' मे राष्ट्रीयता की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हुई है। 'अनघ' गाधीवादी सुधार-भावना से प्रेरित है।

इनका रचना काल लगभग अर्द्ध शती तक व्याप्त है। इस लबी अवधि मे हिंदी काव्य ने जो प्रगति की उसका प्रभाव इनकी रचना-शैली पर स्वाभाविक था। 'भारतभारती' जैसी प्रारभिक रचनाओ मे द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता है और 'साकेत', 'यशोधरा (दे०) आदि मे छायावाद (दे०) युग की प्रगीतात्मक समृद्धि है।

प्रख्यात कथाओ मे मौलिक उद्भावना करने और प्रसिद्ध पात्रो को पुन स्पर्श से चमकाने मे इनकी मेधा स्फूर्त हुई है। खडी बोली को काव्योपयुक्त बनाने मे इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनकी भाषा प्रसादगुणयुक्त और सर्वजनग्राह्य है। 'यशोधरा' का गीति वैभव छायावादी युग मे भी बेजोड है। 'साकेत' मे राष्ट्रीय जीवन और विशेषत गृहस्थ का जो समग्र चित्र अकित हुआ है वह आधुनिक हिंदी काव्य मे अप्रतिम है। समूचे राष्ट्र की भावनाओ को वाणी देने के कारण इन्हे राष्ट्रकवि का सम्मान प्राप्त हुआ था। काव्य और सस्कृति के दुर्लभ तत्वो का समन्वय इन्हे प्रथम कोटि का राष्ट्रकवि सिद्ध कर देता है।

गुप्त, विजय *(बँ० ले०)*

विजय गुप्त का जन्म अनुमानत 1450 ई० के आस-पास हुआ था। इनके पिता का नाम सनातन एव माता का रुक्मिणी था। इनका जन्म स्थान था बारीसाल जिले मे फूलश्री ग्राम।

इनकी कृति 'पद्मापुराण' (दे०) या 'मनसा-मगल' (दे०) है। स्वप्न मे देवी (मनसा) का निदेश पाकर इन्होने 'मनसा मगल' के गीतो की रचना की थी। इनका सपूर्ण काव्य नही मिलता परतु जितना मिलता है उसकी भी प्रामाणिकता म सदेह है। विभिन्न हाथो मे पडकर काव्य का मूल अश भी सदेहास्पद हो गया है। काव्य का रचना-काल भी सदिग्ध है। अनेक अश प्रक्षिप्त है। इनकी प्रतिभा उच्चतर किस्म की नही। काव्य मे स्थान-स्थान पर अश्लीलता, ग्राम्यता एव भद्दी रुचि का परिचय मिलता है। भाषा प्राचीन एव अपरिमार्जित है। ग्राम्य जीवन की छाप काव्य मे पदे-पदे मिलती है। इन दोषो के होते हुए भी यह काव्य पूर्व बग—विशेषकर बारीसाल, नोआखाली, त्रिपुरा अचल—मे अत्यत लोकप्रिय है।

'मनसा मगल' कृति बग देश के सामाजिक, राजनीतिक एव धार्मिक तत्वो की मानो कुजी है। इस कृति मे बनावटी कुछ नही। 500 वर्षो से ये इस कृति के माध्यम से बगालियो के हृदय सिंहासन पर प्रतिष्ठित हैं।

गुप्त, सियारामशरण *(हिं० ले०)* [जन्म—1895 ई०, मृत्यु—1964 ई०]

इनका जन्म चिरगाँव जिला झाँसी मे हुआ था। ये मैथिलीशरण गुप्त (दे०) के अनुज थे अत इन्हे वैष्णव सस्कार और साहित्यिक रुचि अपने पारिवारिक वातावरण से प्राप्त हुई। इनका स्वास्थ्य अच्छा नही था। आत्मीयो के निधन का आघात भी इन्हे अनेक बार सहना पडा। अग्रज के व्यापक प्रभाव के कारण इनका साहित्यिक व्यक्तित्व भी बहुत कुछ उपेक्षित रहा। इन सब कारणो ने मिलकर इनके अतर्जगत को करुणाप्लुत कर दिया। अत इनके साहित्य मे भी वेदना की अत सलिला सर्वत्र व्याप्त है। इतना अवश्य है कि आस्तिकता के सस्कार, गाधी के प्रभाव और चिंतन की रुचि ने इनकी वैयक्तिक वेदना को उन्नयित और परिष्कृत कर दिया है।

इन्होने कविता, कथा, नाटक और निबध की विधाओ मे रचना की है। 'झूठ सच' शीर्षक निबध-सग्रह और 'नारी' शीर्षक उपन्यास को तो पर्याप्त ख्याति भी मिली है। फिर भी इन्हे 'कविता ही सर्वाधिक तृप्ति देती है।' काव्येतर सृजन को ये अपने काव्यकर्म का 'बाइप्रोडक्ट' मानते रहे है। मुक्तक या प्रबध शैली मे लिखे गए काव्य-ग्रथो मे 'बापू', 'उन्मुक्त', 'नकुल' तथा 'गोपिका' आदि प्रसिद्ध है। 'बापू' मे राष्ट्रपिता को श्रद्धाजलि अर्पित की गई है। 'उन्मुक्त' युद्ध की विभीषिका का चित्रण करने

वाला काल्पनिक और प्रतीकात्मक गीतिनाट्य है। 'नकुल' महाभारत (दे०) के वनपर्व की कथा के आधार पर लिखा गया खंडकाव्य है। 'गोपिका' में लोकोत्तर मधुर भाव की व्यंजना है।

इनके काव्य की मूल चेतना गांधीवादी है। इनके 'हृदय और बुद्धि दोनों का गांधी दर्शन के साथ पूर्ण सामंजस्य है'''।' इसीलिए इनके काव्य में आधुनिक युग की अनास्था और पाशवता का चित्रण तो है, परंतु उसकी स्वीकृति नहीं है। इनके लिए वाङ्मय तप है, जिसके माध्यम से ये अपनी आत्मा का परिष्कार करते हैं।

इनके तपःपूत साहित्य का प्रभाव भी निभृत मंदिर के घृतदीप की भाँति सात्विक और शांतिप्रद होता है। उसमें न विचारों की उत्तेजना है न भावों की; न वासना की मांसल गंध है, न भोगोन्मुख कल्पना का ऐश्वर्य; न उद्दाम रूप का वैभव है, न रति-क्रीडाओं का चांचल्य। फलतः उसमें अमृत है परंतु जीवन का उतना रस नहीं है। 'वह गीतिमय न हो कर चिंतनमय है।' गांधीवादी साहित्यकारों में इनका अद्वितीय स्थान है।

ग़ुबार-ए-ख़ातिर *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1942 ई०]

यह मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (दे०) की उत्कृष्ट कृति है। यह 9 अगस्त, 1942 ई० से 15 जून, 1945 ई० के बीच की अवधि में लिखे गए पत्रों का संकलन है। ये पत्र मौलाना आजाद ने अहमदनगर जेल से नवाब सदर यार जंग, मौलाना हबीबुर्रहमान खाँ साहब रईस भीकमपुर, जिला अलीगढ़, के नाम लिखे थे किंतु जेल में मित्रों से पत्र-व्यवहार की आज्ञा न होने के कारण एक फ़ाइल में सुरक्षित रखते चले गए थे।

15 जून, 1945 को मौलाना के जेल से मुक्त होने के पश्चात् हाली पब्लिशिंग हाउस, देहली की ओर से ये पत्र पुस्तक-रूप में प्रकाशित कर दिए गए और इस संकलन को 'ग़ुबार-ए-खातिर' नाम दिया गया।

मौलाना आज़ाद के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष रहे हैं। वे एक साहित्यकार, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, विचारक, लेखक तथा सुवक्ता सभी कुछ थे। उनका जीवन अनेकमुखी क्रियाकलाप का संगम था।

'ग़ुबार-ए-ख़ातिर' के पत्रों में मौलाना ने विविध विषयों पर लेखनी उठाई है। धर्म, दर्शन, इतिहास, नैतिकता आदि अनगिनत विषयों पर प्रकाश डाला है। हर विषय के लिए अपनी विशेष शैली का प्रयोग किया है। इस संकलन से उर्दू साहित्य की निश्चित श्रीवृद्धि हुई है।

यों इन पत्रों की भाषा बहुत क्लिष्ट है किंतु यह क्लिष्टता विशुद्ध साहित्यिकता तथा रसात्मकता के पीछे छिप जाती है। ये पत्र काव्यमय गद्य का अनुपम उदाहरण हैं।

'गुमनाम', बलदेव ताराचंद गाजरा *(सिं० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

इनका जन्म सिंध के प्रसिद्ध नगर शिकारपुर में हुआ था। विद्यार्थी जीवन से ही इनकी रुचि साहित्य के प्रति रही है। भारत के स्वातंत्र्यांदोलन में इन्होंने सक्रिय भाग लिया। आजकल ये बंबई में रहते हैं और 'भारतवासी' नामक पत्रिका का संपादन करते हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं: 'गुमनाम-सदा', 'फूल-ऐं-तराना' (दोनों कविता-संग्रह है)। गांधी शताब्दी के शुभ अवसर पर इन्होंने 'गांधी ग्रंथ' का संपादन एवं प्रकाशन कराया था। यह ग्रंथ सिंधी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इनकी अधिकतर कविताएँ देशभक्ति और राष्ट्रीय भावना से पूर्ण है। कविता, पत्रकारिता, निबंध-लेखन और आलोचना के क्षेत्र में इनकी देन महत्वपूर्ण है।

गुरचरणसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

डा० गुरचरण सिंह पंजाबी उच्च शिक्षण से उस समय संबद्ध हुए जबकि वह अपनी प्रारंभिक अवस्था में ही था। आपने अपने विद्यार्थियों की माँग पूरी करने के लिए आलोचना का कार्य आरंभ किया। आपकी प्रारंभिक रुचि पंजाबी गल्प-साहित्य और नाट्य-साहित्य की ओर थी और आपने इन्हीं विषयों पर 'पंजाबी गल्पकार' और 'पंजाबी नाटककार' दो वृहदाकार ग्रंथ लिखे। ये दोनों रचनाएँ पंजाबी छात्र-जगत में पर्याप्त प्रसिद्ध रहीं। इनकी आलोचना किसी शास्त्रीय पद्धति पर आधारित नहीं, उसका स्वर अधिकतर प्रभावात्मक ही है।

इन्होंने एक उपन्यास 'वगदी सी रावी' भी लिखा है।

गुरचरन रामपुरी *(पं० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

प्रगतिवादी धारा के नवीन कवियों में गुरचरन सिंह का विशेष स्थान है। विचारों की दृष्टि से ये विद्रोही कवि हैं परंतु काव्य-रूप की दृष्टि से इनमें प्राचीन एवं

नवीन काव्य-प्रक्रिया का संयोग है। पजाब—विशेषतया मालवा—के लोक-जीवन की महक से इनके गीत सुवासित है। 'कणका दी खुशबो' और 'कौल करार' इनके प्रसिद्ध काव्य-सग्रह है।

गुरु, कामताप्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1875 ई०, मृत्यु—1947]

गुरु जी मूलत सस्कृत के विद्वान थे, किंतु आप का कार्य-क्षेत्र था हिंदी भाषा का विश्लेषण। आपकी प्रसिद्ध कृति है 'हिंदी व्याकरण' जिसमे हिंदी भाषा का अत्यत गहराई और विस्तार से विश्लेषण किया गया है। हिंदी भाषा का इस स्तर का आज भी हिंदी मे कोई दूसरा व्याकरण नही है। गुरु जी आजीवन शिक्षक रह। आपकी एक अन्य कृति है 'भाषा वाक्य पृथक्करण।

गुरु काव्य *(प० प्र०)*

'गुरु काव्य' से तात्पर्य मूलत गुरुओ के द्वारा लिखे गए काव्य से है जिसमे छह गुरुओ का साहित्य माना जाता है। जनसामान्य बाबा फरीद, कबीर आदि अन्य सतो की वाणी-सग्रह समेत गुरु वाणी साहित्य को 'गुरु-काव्य' मानता है। परतु 'गुरमत निर्णय' तथा 'गुरु-शब्द-रत्नाकर' मे केवल गुरुओ की वाणी को ही 'गुरुकाव्य' की सज्ञा दी गई है। इस काव्य मे गुरु नानकदेव (दे०), गुरु गोविंदसिंह (दे०) गुरु अगद, गुरु अमरदास, गुरु रामदास गुरु अर्जुनदेव, गुरु तेगबहादुर की वाणी ही मान्य है। गुरु-काव्य के मूल विषय भक्ति, अहकार त्याग, नामजप, कर्म-परायणता आदि है तथापि गुरु-काव्य मे सामाजिक शोषण एव धार्मिक पाखड को विडबना माना गया है। इसमे आचार-विचार की पवित्रता पर बल दिया गया है। 'गुरु-काव्य' युग की भक्ति, समाज एव धर्म-चेतना का प्रतीक है। इस गुरु-काव्य मे वेद, उपनिषद् एव अन्य भारतीय दर्शनो का तत्त्व-सग्रह है। ब्रजभाषा का प्रभाव गुरु-काव्य मे परिलक्षित है।

गुरुचरन सिंह जसूजा *(प० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

इनकी गणना पजाबी के अच्छे आधुनिक नाटक-कारो मे होती है। इन्होंने सरचना विधि की दृष्टि से नाटक के क्षेत्र मे कई प्रयोग किए हैं। इन्होंने अनेक एकाकी एवं कुछ सपूर्ण नाटक लिखे हैं। 'गौमुखा शेरमुखा' इनका बहुत प्रसिद्ध एकाकी है। 'रेत दीआ कधा' और 'अधसार' इनके पूर्ण नाटक है।

गुरुचरित्र *(म० ले०)*

महाराष्ट्र मे दत्त सप्रदाय के प्रवर्तक थे—नृसिंह सरस्वती। किंतु दत्त-भक्ति का प्रसार करने मे सर्वाधिक योगदान 'गुरुचरित्र' ने दिया जिसके रचनाकार थे सरस्वती गगाधर। इस ग्रथ का मूल आधार सिद्धमुनि रचित सस्कृत का 'गुरुचरित्र है। सरस्वती गगाधर की भाषा कानडी थी किंतु इन्होने रचना की मराठी मे। इस चरित्र ग्रथ मे गुरु के चमत्कारो का वर्णन है, साथ ही तत्कालीन महाराष्ट्र के सामाजिक जीवन की झाँकी भी मिल जाती है। इसमे दत्तात्रेय के अवतार-ग्रहण और उनके अलौकिक कार्यो का विस्तृत वर्णन है। दत्त-सप्रदाय के अनुयायी इसका नित्य पारायण करते है। यह ग्रथ गुरु-शिष्य सवादात्मक शैली मे लिखा गया है। भाषा सरल है। इसकी रचना 1539 ई० मे पूरी हुई थी और इसमे कुल 53 अध्याय हैं।

गुरुदयालसिंह *(प० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

पजाबी उपन्यास-साहित्य मे गुरुदयाल सिंह का नाम नानकसिंह की परवर्ती पीढी का सबसे प्रसिद्ध नाम है। पिछले कुछ समय से उनके उपन्यासो—'मढी दा दीवा (दे०), 'अघ होऐ', 'रेते दी इक मुट्ठी', 'अघ चानणी रात' की विशेष चर्चा है। 'सगी फुल्ल', 'ओपरा घर', 'कुत्ता ते आदमी' इनके प्रसिद्ध कहानी-सग्रह हैं। गुरदयाल से पूर्व पजाबी उपन्यास अपनी अधकचरी अवस्था मे था। इन्होने उसकी आदर्शवादी प्रवृत्ति का निराकरण कर उस यथार्थवादी स्वरूप की ओर मोडा। मालवा (पटियाला-नाभा) निवासी होने के कारण आपके उपन्यासो एव कहा-नियो का क्षेत्र भी वही प्रदेश है परतु विशेषता यह है कि उनके पात्र जिन समस्याओ से जूझते हैं वे एक प्रदेश तक ही सीमित नही होती, वे सपूर्ण समाज की समस्याएँ होती है। उनके सभी उपन्यास एक-दूसरे से स्वतत्र है। वे नानकसिंह (दे०) अथवा जसवतसिंह कँवल (दे०) के उपन्यासो की भाँति एक ही समस्या या घटना की परपरा का निर्माण नही करते। इस प्रकार गुरदयाल सिंह पजाबी के एक ऐसे उपन्यासकार है जिन्होंने पजाबी उपन्यास का सकीर्ण क्षेत्र से निरात कर विकास के मार्ग पर

अग्रसर किया।

गुरुदास, भाई *(पं० ले०)* [समय—संभवत. 1559 ई० से 1627 ई० तक]

भाई गुरुदास गुरु अमरदास के भतीजे थे। संस्कृत, ब्रजभाषा एवं फ़ारसी साहित्य के ज्ञाता थे। आपने गुरु ग्रंथ साहिब के संपादन में लेखन-कार्य किया था। भाई गुरुदास की दो रचनाएँ प्रसिद्ध है। पहली रचना का नाम 'वारां' है। दूसरी रचना का नाम 'कवित्त-सवैये' है। इन रचनाओं में वाणी के गुह्य तत्व प्रकट किए गए हैं। इन की रचनाओं में वेद-शास्त्र, पुराण, ज्योतिष, गणित, भूगोल आदि विषयों का भी ज्ञान निहित है। इन्होंने 39 वारें लिखी हैं जिनमें वीर रस के साथ ही आध्यात्मिक चेतना को भी समन्वित किया है। इन वारों में सिख धर्म के सिद्धांतों एवं गुरुवाणी की व्याख्या भी की गई है।

भाई गुरुदास के साहिब को सिख धर्म में गुरु ग्रंथ साहित्य को समझने की कुंजी माना जाता है। सामान्य जीवन के उपमानों से आपका काव्य भरा पड़ा है। चातक, घर, कुआँ, अनाज, अनार, पतंग, आदि उपमानों से गूढ़ तत्त्वों को समझाने का प्रयास अत्यंत हृदयग्राही बन पड़ा है। काव्यभाषा में संस्कृत-फ़ारसी के शब्द पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं परंतु ब्रजभाषा का पुट अत्यधिक है। इनकी वाणी के दो उदाहरण प्रस्तुत है—

गिद्दड़ दाख न अपड़े आखे थूह कौड़ी।
नचण नचण जाणई आखे भुई सौड़ी॥

गुरु नानक-चमत्कार *(पं० कृ०)*

यह भाई वीरसिंह (दे०) की प्रसिद्ध धार्मिक गद्य-रचना है जिसमें गुरु नानकदेव जी के विभिन्न प्रेरणादायक जीवन-प्रसंग वर्णित हैं। पंजाबी जीवनी-साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। यह ग्रंथ स्वतंत्र रूप से नहीं लिखा गया अपितु भाई वीरसिंह द्वारा 'खालसा ट्रैक्ट-सोसाइटी' के निमित्त समय-समय पर लिखी गई छोटी-छोटी पुस्तिकाओं का संकलन है जिसके प्रत्येक परवर्ती संस्करण में पूर्ववर्ती संस्करण के पश्चात् लिखे गए प्रसंग जुड़ते रहे है। प्रत्येक प्रसंग के पूर्व-प्रकाशन का शीर्षक और समय आरंभ में ही 'पाद-टिप्पणी' के अंतर्गत निर्दिष्ट है। विभिन्न प्रसंगों का संकलन करते समय यद्यपि उनमें एकसूत्रता बनाए रखने का संपादकीय दायित्व लेखक ने नहीं निभाया तथापि सम्यक् विषय-प्रतिपादन, उत्कृष्ट भाषा-सौष्ठव और धारा-प्रवाह शैली के कारण यह रचना पंजाबी-गद्य की अमूल्य निधि मानी जाती है। निस्संदेह साहित्यिक दृष्टि से इसका उतना महत्व नहीं, जितना धार्मिक दृष्टि से है, फिर भी भाई वीरसिंह के गद्य-शिल्प का यह उत्कृष्ट नमूना है।

गुरुबख्शाणी, होतचंद मूलचंद *(सिं० ले०)* [जन्म—1884 ई०; मृत्यु—1947 ई०]

होतचंद का जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है। एम० ए० तक शिक्षा-दीक्षा सिंध और बंबई में हुई थी। 1908 ई० में ये दयाराम जेठमल सिंध कालेज में फ़ारसी के प्राध्यापक नियुक्त हुए थे। 1928 ई० में इन्हें अंग्रेजी कविता में तसव्वुफ़ विषय पर अनुसंधान करने पर लंदन विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। इनका देहांत 11 फ़रवरी 1947 को कराची में हुआ था। ये 'शाह जो रिसालो' (दे०) का आलोचनात्मक संस्करण तैयार कर सिंधी साहित्य में अमर हो गए है। यह संस्करण चार भागों में प्रकाशित होने वाला था जिसके तीन भाग इनके जीवन-काल में ही प्रकाशित हो चुके थे, परंतु चौथा भाग अप्रकाशित रह गया और वह अभी तक छप नहीं सका है। शाह लतीफ़ के काव्य का ऐसा सुसंपादित संस्करण और किसी ने तैयार नहीं किया है। इस संस्करण की भूमिका बाद में 'मुकदमें लतीफ़ी' नाम से अलग पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुई थी जिसमें शाह लतीफ़ के काव्य का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। शाह लतीफ़ के काव्य में आई हुई प्रेमगाथाओं को आध्यात्मिक व्याख्या सहित इन्होंने 'रूह रिहाण' नाम से प्रकाशित कराया था। इनका लिखा हुआ ऐतिहासिक उपन्यास 'नूरजहान' सिंधी उपन्यासों के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इनकी भाषा मँजी हुई, मुहावरेदार और प्रभावपूर्ण है।

गुरुमत-निर्णय *(पं० कृ०)*

भाई जोधसिंह (दे०) ने खालसा कालेज, अमृतसर में धर्मशास्त्र के अध्यापक के रूप में 'सिख धर्म और साधना' पर 1928 ई० में कुछ भाषण दिए थे। इन भाषणों के पुस्तकाकार-संकलन का नाम 'गुरमत निर्णय' रखा गया। इसमें भाई जी ने अति सहज-सरल भाषा में सिख धर्म के मौलिक सिद्धांत, मर्यादा और आचार-व्यवहार पर अपने विचार प्रकट किए हैं। 'अकाल पुरुष', 'सतिगुरु', 'नाम',

'साध-सगत','भाई चारक-व्यवहार', 'करामात', 'आवागमन', 'शखसी जीवन का मनोरथ' ग्रादि विपयो पर भाई जी के विचार ग्रति विद्वत्तापूर्ण पद्धति से प्रस्तुत हुए है। यद्यपि उनका अध्ययन ग्रति विशाल है परतु कही भी इसके फल-स्वरूप इन लेखो मे बोझिलता नही आई। यही उनकी शैली का कमाल है।

गुरुराजचरित्र *(क० क्र०)*

इसके रचयिता सिद्ध नजेश नामक वीरशैव कवि हैं जिनका समय 1650 ई० के करीब माना गया है। 'राघवाक चरित्र' (दे०) इनकी एक और कृति है। यह वार्धक षट्पदी मे लिखा एक छद ग्रथ है जिसमे अनेक शिव-भक्तो की कहानियाँ है। कवि का दावा है कि उसने इसमे आचार्य-विभव, सदगुरवश, शिव की पचविंशति लीला, शिवपूजा विधान, गणसहस्रनाम, नूतन एव पुरातन शिव-भक्तो की कहानी कही है। यह एक बहुविषय-गर्भित धार्मिक कोश-ग्रथ सा है। इसके सपादक प्रो० भूसनूरमठ जी का कहना है कि विविध कथाग्रो से युक्त यह ग्रथ एक छोटा-सा 'शिवकथा सरित्सागर' है। कन्नड साहित्य तथा वीरशैव सप्रदाय के इतिहास के निर्माण मे इसका विशेष महत्व है।

गुरु-विलास *(प० क्र०)*

'गुरु-विलास' नाम से दो रचनाएँ प्राप्त हैं। इनके कर्ता तीन कवि माने जाते है (1) भाई मनी सिंह, (2) भाई कुहरसिंह (केअरसिंह) तथा (3) भाई सुक्खासिंह। ग्रथ के अध्ययन से पता चलता है कि भाई कुहरसिंह और भाई सुक्खासिंह (दे०) दोनो ही भाई मनीसिंह की शिष्य-परपरा के कवि है। इन दोनो ने इस ग्रथ का सपादन किया है। दोनो सस्करण मिलते हैं। 'गुरु विलास' (छठी पादशाही) के निर्माण-काल के सबध मे यह पद प्रमाण है—

सत्रह सै बीते तपै वरष पचहत्तर जान।
सावन मास इक्कीस दिन गयौ सुखद पहिचान॥

इस पद से 'गुरु विलास' (छठी पादशाही) का रचना-काल 1718 ई० निश्चित हो जाता है। तब न तो भाई कुहरसिंह रचना करते थे, न ही भाई सुक्खासिंह। दोना का कालातर म ही सपादक हाना सभव है।

'गुरु विलास' (दशम पादशाही) नामक एक अन्य काव्य कृति की रचना केशवगढ के ग्रथी भाई सुक्खासिंह (दे०) ने 1797 ई० मे भी की है। इसमे दशम पादशाही का विस्तृत विवरण प्राप्त है। इसका रचना-काल निम्नलिखित पद से ज्ञात हो जाता है—

समत सहस पुराण कहत तब।
अरथ सहित पुन गनस सब।
क्वार वदी पचम रविवारा।
गुरु-विलास लीनो अवतारा॥

काव्य के लालित्य की दृष्टि से दोनो कृतियाँ सुदर है परतु सुक्खासिंह-कृत 'गुरु-विलास' (दशम पादशाही) अधिक लालित्यपूर्ण काव्य-कृति है। इसमे गुरु गोविंदसिंह का जीवन चरित वर्णित है। यह एक पौराणिक प्रभाव पुष्ट, सुदृढ, ऐतिहासिक भित्ति पर लिखी गई कृति है। ग्रथ तीस अध्यायो म विभाजित है। कुल छद सख्या 4951 है।

गुरु-शबद *(प० प्र०)*

ये सतो के कहे हुए उपदेशात्मक पद हैं। 'शबद' का तात्पर्य 'वचन', शिक्षा, उपदेश इत्यादि से है। 'गुरु-शबद' एव गुरवाणी एक ही अर्थ के बोधक हैं। 'गुरवाणी' अथवा 'गुरु शबद मे अमृत का निवास माना जाता है। 'गुरु शबद' को न मानने वाले अधे एव बहरे कहे जाते है। आदि ग्रथ (दे०) मे 'वाणी गुरु गुरु वाणी विचि अमृतसारे' तथा 'सबदु न जाणहि अन्ने बोले से कितु आए ससारा' जैसी उक्तियाँ प्रमाण हैं। 'गुरु-शबद के अनुसार जीवित ही मर जाने से परमात्मा का पवित्र नाम हृदय मे आ बसता है। गुरु के शब्द से हरिनाम प्राप्त होता है। इस प्रकार पजाबी साहित्य मे 'गुरु शबद' मुक्तिदाता माना गया है।

गुरु-शोभा *(प० क्र०)* [रचना-काल—अठारहवी शती का प्रथम चरण]

'गुरु-शोभा' गुरु गोविंदसिंह (दे०) के दरबारी कवियो मे से एक प्रधान कवि सेनापति की रचना है। 'गुरु-शोभा' की रचना 1701 ई० मे आरभ हुई। कवि का ही यह पद प्रमाण है—

सबन सत्रह सै गए बरस अठावन बीन।
भादव सुद पद्रह भई रची कथा करि प्रीन॥

इस ग्रथ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ 'सिख रेफरेंस लायब्रेरी', अमृतसर मे प्राप्त हैं। तीसरी प्रकाशित

प्रति कीरसिंह द्वारा 1868 ई० संपादित होकर प्रकाशित हुई थी। 'गुरु शोभा' में गुरु गोविंदसिंह का जीवन-चरित वर्णित है। इसमें दसवें 'गुरु गोविंदसिंह के यशोगान, युद्ध, यात्रा एवं परलोक-यात्रा का वर्णन किया गया है।' इस रचना में प्रबंधात्मकता की दृष्टि से वीर रस प्रधान है। काव्य-भाषा खड़ी बोली शब्द-प्रधान व्रज है। भाषा में विविधता की अपेक्षा एकरूपता का निर्वाह काव्य में कुशलता से हुआ है।

गुर्जर, वि० सी० (म० ले०) [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

1910 से 1926 ई० तक अर्थात् हरिनारायण आप्टे (दे०) के पर्यवसान से ना० सी० फड़के (दे०) के उदय से पूर्व तक की अवधि में मराठी पाठकों के बीच इनके उपन्यासों का बोलबाला रहा। इन्होंने केवल बँगला उपन्यासों का मराठी में अनुवाद ही नहीं किया है, अपितु बँगला कथा-साहित्य से कोमल भावना-विलास और वातावरण-चित्रण की पद्धति भी ग्रहण की है। मराठी उपन्यास में कोमल भावमयता तथा वर्णन-पद्धति का सौंदर्य लाने का श्रेय इन्हें प्राप्त है। इन्होंने कहानियाँ भी लिखी हैं।

मुख्य ग्रंथ—'कांचनमाला', 'कुलकलंक', 'पतिपत्नी', 'पौर्णिमेचा-चंद्र', 'देवता', 'स्वप्नभंग' आदि (सामाजिक उपन्यास); 'जीवन संध्या', 'शशांक' (ऐतिहासिक उपन्यास); 'द्राक्षांचे घोंस' (दे०) (कहानी-संग्रह)।

गुलज़ार-ए-इरम (*उर्दू० कृ०*) [रचना-काल—1778 ई०]

'गुलज़ार-ए-इरम' मीर हसन (दे०) की लिखी हुई मसनवी है। प्रसिद्ध विद्वान गार्सां द तासी (दे०) तथा ब्लूमहार्ड ने इसे मीर हसन की एक अन्य मसनवी 'सेहरुलबयान से खल्त-मल्त कर दिया है किंतु वास्तव में यह एक अलग कृति है।

'गुलज़ार-ए-इरम' में शाहमदार के मेले की चूड़ियों का विस्तृत हाल लिखा गया है और 'सेहरुलबयान' की तरह इसमें भी तत्कालीन रीति-रिवाजों, जनाने वस्त्राभूषणों, शादी-ब्याह और नाच-रंग आदि का रोचक वर्णन है। इसमें लखनऊ शहर की हज्व (निंदा) तथा फ़ैज़ाबाद की अत्यंत प्रशंसा की गई है। इसकी भाषा सरल तथा मुहावरेदार लखनवी उर्दू है।

गुलज़ार-ए-नसीम (*उर्दू० कृ०*) [रचना-काल—1836 ई०]

'गुलज़ार-ए-नसीम' पं० दयाशंकर 'नसीम' (दे०) की अमर कृति है। इस मसनवी (दे०) का विशेष गुण है गागर में सागर का होना। कवि थोड़े में ही बहुत-कुछ कहने में सफल हुआ है। इसमें कला की प्रौढ़ता एवं कुशलता, सुंदर शब्दावली का समन्वय, मुहावरों का रोचक प्रयोग और अलंकारों (विशेषकर यमक एवं श्लेष अलंकार) का सफल तथा स्वाभाविक प्रयोग अत्यंत प्रशंसनीय है। 'गुलज़ार-ए-नसीम' में बाह्य सौंदर्य भरपूर है। साथ ही प्रवाह तथा सहजता के कारण इसमें आंतरिक आकर्षण भी उत्पन्न हो गया है। इसके अतिरिक्त कवि की गंभीर निरीक्षण-शक्ति भी श्लाघनीय है।

'गुलज़ार-ए-नसीम' में अत्यधिक आलंकारिक कला के कारण तड़प, पीड़ा एवं प्रभाव में कुछ कमी-सी अनुभव होती है। 'चकबस्त' (दे०) साहब के कथनानुसार 'नसीम के शेर ज़बान के सुथरे निखार, लफ़्ज़ों के खूबसूरत मेल और समास की चुस्ती के कारण अपने असर में तिलिस्म बने हुए हैं।'

गुलबांग (*उर्दू० कृ०*)

'गुलबांग' बीसवीं शती के प्रख्यात उर्दू कवि तथा आलोचक जनाब रघुपति सहाय 'फ़िराक़' गोरखपुरी (दे०) का काव्य-संग्रह है जो प्रथम बार 1967 में साहित्य कला भवन इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह में 'फ़िराक़' साहब की नज़्मों, ग़ज़लों, रुबाइयों, दोहों तथा फुटकर शेरों का संकलन है। यह संग्रह उनके काव्य का एक महत्वपूर्ण चयन है। स्वयं 'फ़िराक़' साहब के कथनानुसार उनके लोकप्रिय काव्य का लगभग अस्सी प्रतिशत अंश इस में संगृहीत है। उन्होंने लिखा है—'मौजूदा नस्ल (वर्तमान पीढ़ी) या आइंदा नस्लें (भावी पीढ़ियाँ) अगर मेरी किसी एक किताब को मेरी यादगार समझना चाहेंगी तो वह किताब 'गुलबांग' होगी।

'फ़िराक़' साहब की भाषा सरल, प्रवाहमयी तथा प्रभावपूर्ण है। भारतीयता उनके काव्य की विशेषता है।

गुलबांग (*उर्दू० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1965 ई०]

'गुलबांग' उर्दू के प्रसिद्ध उस्ताद कवि जनाब 'सेहर' इश्क़ाबादी के काव्य-संग्रह का भी नाम है। इसका

संपादन जनाब नंदलाल 'परवाना' ने किया है। प्रस्तुत सग्रह मे 128 पृष्ठ है। 'गुलबाँग' मे 'सेह्‌र' साहब की नज्मे, गजलें, रुबाइयाँ और कतआत सगृहीत है। इस पुस्तक के पढने से कवि के काव्य-कौशल का प्रमाण मिलता है। भाषा साफ-सुथरी तथा प्रवाहमयी है।

गुल मुहम्मद *(सिं० ले०)* [जन्म—1811 ई०, मृत्यु—1858 ई०]

गुल मुहम्मद का जन्म सिंध के हाला नामक गाँव मे हुआ था। इन्होने बचपन से ही अरबी और फारसी भाषाओ का अभ्यास कर इन पर अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था। ये मृत्यु से कुछ महीने पूर्व हज के लिए रवाना हुए थे और बबई मे रहकर इन्होने अपना पूरा काव्य 'दीवान-गुल' नाम से लिथो के रूप मे प्रकाशित कराया था। इनके काव्य का मुख्य विषय है इश्क। इसके सिवाय प्रकृति-चित्रण, नीति-शिक्षा, इस्लाम मजहब मे श्रद्धा आदि विषयो पर भी इन्होंने शेर लिखे हैं। ये पहले सिंधी कवि हैं जिन्होंने 'दीवान' के रूप मे अपना काव्य प्रकाशित कराया था। इनकी रचना पर फारसी शायरी का अधिक प्रभाव पडा है। फारसी छदो के नियमो का पालन करने के मोह मे पड कर इन्होंने कही-कही शब्दो के रूप बिगाड दिए हैं। सिंधी मे फारसी शायरी से प्रभावित काव्यधारा का प्रतिपादन करने वाले कवियो मे इनका नाम अग्रगण्य है।

गुलराजाणी, जेठमल परसराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1885 ई०, मृत्यु 1948 ई०]

जेठमल का सिंधी गद्य-लेखको मे महत्वपूर्ण स्थान है। 1911 ई० के आस-पास ये अध्यापन कार्य छोडकर साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्र मे सक्रिय रूप से कूद पडे थे। भारत के स्वातत्र्य आदोलन मे इनका कार्य अविस्मरणीय है। साहित्यिक क्षेत्र मे इन्होने लालचद अमरदिनोमल के साथ 1914 ई० मे 'सिंधी साहित्य सोसाइटी' की स्थापना की थी जिसने सिंधी गद्य के विकास मे महत्वपूर्ण कार्य किया है। 1917 ई० मे इन्होंने 'हिंदवासी' नाम से एक समाचार-पत्र शुरू किया था जिसमे अँग्रेज सरकार की कटु आलोचना करने के कारण इन्हे जेल-यात्रा करनी पडी थी। 1922 ई० मे इन्होंने 'नई सिंधी लायब्रेरी' और 'सस्तो उम्दो साहित्यमाला' का आरभ किया था जिसके अतर्गत इन्होंने विश्व-साहित्य की कई उत्तम रचनाओ के सिंधी अनुवाद प्रकाशित किए थे। 1947 ई० मे इन्होने थियोसॉफी और सूफी मत के प्रचारार्थ 'रूह रिहाण' नामक पत्रिका शुरू की थी। विभाजन के पश्चात् शीघ्र ही बंबई मे इनका देहात हो गया था। कहानी, नाटक, उपन्यास, निबध, आलोचना और पत्रकारिता के क्षेत्र मे इन्होने प्रशंसनीय कार्य किया है। आध्यात्मिक विषयों पर भी इनकी कई महत्वपूर्ण रचनाएँ मिलती है। इनकी कुछ प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—'चमडापोश जू आखाण्यू' (कहानियाँ), 'शाह जू आखाण्यू' (आलोचना), 'सचल सरमस्त' (आलोचना), 'सूफी सगोडा' (जीवन-चरित्र)। इनकी भाषा सरल और स्वाभाविक है। इनके कई निबधो मे इनके सफल व्याख्याता और दार्शनिक होने के स्पष्ट प्रमाण मिलते है।

गुलाबराय *(हिं० ले०)* [जन्म—1888 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

इनका जन्म इटावा मे हुआ था। इनका मुख्य प्रदेय काव्यशास्त्र, आलोचना तथा निबधो के क्षेत्र मे है। 'नवरस', 'सिद्धात और अध्ययन', 'काव्य के रूप', 'हिंदी नाट्य-विमर्श' इनकी प्रमुख काव्यशास्त्रीय कृतियाँ है जिनके माध्यम से इन्होने भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के समजन द्वारा हिंदी काव्य के विश्लेषण एव मूल्याकन के लिए व्यापक एव सुदृढ आधारभूमि प्रदान की है। व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र मे इनकी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं—'हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास', 'अध्ययन और आस्वाद' तथा 'हिंदी काव्य विमर्श'। व्याख्यात्मक शैली का आश्रय लेते हुए दोष-दर्शन की अपेक्षा गुणो के सधान की ओर अपनी दृष्टि केंद्रित रखना इनकी आलोचना-शैली की मुख्य विशेषता है। निबधकार के रूप मे इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं—'ठलुआ क्लब', 'मेरी असफलताएँ', 'कुछ उथले, कुछ गहरे' आदि। मनोविश्लेषणशास्त्र का आश्रय लेकर वैयक्तिकता का पुट देते हुए हास्य-व्यग्यात्मक शैली के माध्यम से प्रतिपाद्य विषय का साफ-सुथरा निरूपण इनकी निबध-शैली की मुख्य विशेषताएँ हैं। समग्रत हिंदी गद्य के उन्नायको मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

गुलाम अहमद शेख *(गु० ले०)* [जन्म—1935 ई०]

इलियट आदि पश्चिम के काव्य-मनीषियो का गुजराती कविता पर जो प्रभाव पडा है, उसके दर्शन गुलाम अहमद शेख की कविता मे होते है। शेख प्रधानत. चित्रकार

हैं और चित्रकला का प्रभाव उनके काव्य में भी परिलक्षित होता है। आधुनिकता का समग्र परिचय उनके काव्यों में मिलता है। अवसाद, बिखराव, खंडित व्यक्तित्व, अकेलापन इत्यादि काव्य के नये विषय उनकी कविता में दिखाई देते हैं तो काव्य के बाह्य स्वरूप में भी जो परिवर्तन आ गए हैं—जैसे शब्दों में तोड़-फोड़, नये ढंग की वाक्य-रचना इत्यादि—वे भी उनकी कविता में दृष्टिगोचर होते हैं। उन्होंने 1952 ई० के बाद काव्य-रचना शुरू की है। वे बड़ौदा में महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय में चित्रकला के प्राध्यापक हैं।

गुलाम मुहम्मद, सूफ़ी *(कश्० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

शैशव से ही चिंतनशील और मेधावी। उर्दू और फ़ारसी का अच्छा ज्ञान। कश्मीर के सामाजिक जीवन पर अनेक कहानियाँ लिखी हैं। इनकी शैली में हास्य और व्यंग्य है, और ये अपनी लेखनी से पाठक के मर्म पर चोट करते हैं। यह अच्छे गद्यलेखक हैं और इनकी रचनाओं में भाषा का प्रवाह भी खूब है। सूफ़ी साहब को इनके संग्रह 'लूसिमत्य तारख' (अस्त हुए तारे) पर कल्चरल अकादमी-पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इनकी कहानियों का एक और संग्रह 'शीशः त संगिस्तान' (काँच और प्रस्तर भूमि) भी प्रकाशित हुआ है। इनकी भाषा में फ़ारसीमय शब्दावली का पुट है और इनकी कहानियाँ विचारोत्तेजक हैं।

गुलेरी, चंद्रधर शर्मा *(हिं० ले०)* [जन्म—1883 ई०; मृत्यु—1922 ई०]

हिंदी साहित्य के इतिहास में गुलेरी जी कहानीकार, निबंधकार, शोध-विद्वान्, समीक्षक आदि अनेक रूपों में प्रख्यात हैं किंतु इनकी प्रसिद्धि मूलतः कहानी के क्षेत्र में ही है। इन्होंने अपने जीवन-काल में कुल तीन कहानियाँ—'सुखमय जीवन', 'उसने कहा था', तथा 'बुद्धू का कांटा'—लिखी थीं। 'उसने कहा था' की गणना हिंदी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में की जाती है। प्रतिपाद्य विषय तथा रचना-शिल्प की दृष्टि से यह एक अनूठी रचना है तथा हिंदी-कहानी के क्षेत्र में इसे मील का पत्थर माना जाता है।

गृहदाह *(बँ० कृ०)*

परंपरा से कुछ हटे होने के कारण 'गृहदाह' शरत् (दे०) का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में शरत् ने दांपत्य जीवन तथा विशेष रूप से यौन समस्या को यथार्थवादी धरातल पर प्रस्तुत किया है। अचला चंचल स्वभाव की युवती है जो अस्थिरता के आवेश से महिम को सदा के लिए अपनाती है। धीरे-धीरे उसे महसूस होने लगता है कि वह महिम के बालसखा, एकाधिकार-वृत्ति वाले सुरेश की प्रभाव-परिधि से बाहर नहीं है। वह सुरेश के साथ अज्ञातवास के बाद पति के शीतल-सुखद आश्रय में लौट आती है। मृणाल में आस्था एवं विश्वास है। वह अस्थिरमना नहीं है, इसलिए मानसिक संघर्ष एवं यातना से वंचित है। महिम गंभीर, अंतर्मुखी एवं क्षमाशील युवक है जो परिस्थितियों के प्रवाह में बहता नहीं है। सुरेश में उत्तेजना, आवेश से कहीं अधिक प्रभुत्व-भावना है। अचला के द्वारा नई उभरती नारी का रेखांकन किया गया है जिसके दांपत्य की नींव विश्वास पर आधारित नहीं है। उसके सहज-अस्थिर स्वभाव एवं आचरण का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। अंततः शरत् नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हुए सुरेश को दंड देते तथा अचला को महिम के पास पहुँचाते हैं। इस चिपके तथा जोड़े गए आदर्श को छोड़कर यह उपन्यास अपने नाम की सही और सार्थक अभिव्यक्ति है।

गृह-प्रवेश *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1950 ई०]

श्री सुरेश जोशी (दे०) के इस प्रथम कहानी-संग्रह में कहानी-विषयक उनकी नवीन दृष्टि का परिचय मिलता है। संग्रह के प्रारंभ में 'नई कहानी' शीर्षक की लंबी प्रस्तावना में उन्होंने कहानी में घटना-तत्त्व के लोप पर विशेष बल दिया है।

'गृह-प्रवेश' की कहानियों में घटनाएँ नहीं, केवल संकेत हैं। इन कहानियों को मनोवैज्ञानिक कहानियों की संज्ञा दी जा सकती है। कारण, पात्रों की विभिन्न मानसिक प्रक्रियाओं के चित्रणांतर्गत मानव-मन का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। यौन संबंधों की विवृति में इन पर फ़ायड का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। प्रतीक-योजना इनकी अन्य उल्लेखनीय विशेषता है।

वस्तुतः 'गृह-प्रवेश' की कहानियाँ कहानी-विषयक परंपरागत मान्यताओं का उच्छेदन कर गुजराती कहानी-साहित्य को नया मोड़ देने वाली प्रयोगात्मक कहानियाँ हैं।

गृह्यसूत्र *(स० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० 800 तथा पश्चाद्वर्ती काल]

लेखक—विभिन्न धर्मतत्त्ववेत्ता ऋषिजन एव मनीषी। गृह्यसूत्र कल्पसूत्रो (दे० कल्पसूत्र) के ही अगरूप हैं। गृह्यसूत्रो मे आश्वलायन, शाड्खायन, कौषीतकि, पारस्कर, बोधायन और भारद्वाज आदि गृह्यसूत्र गृहीत हैं।

गृह्यसूत्रो मे गृह मे सपन्न होने वाले धार्मिक कृत्यो का वर्णन है। गृह्यसूत्रो मे गर्भाधान, पुसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, उपनयन, महानाम्नीव्रत, महाव्रत, उपनिषद्व्रत, गोदानव्रत, समावर्तन, विवाह और अत्येष्टि—इन 16 सस्कारो का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त सात प्रकार के गृह्य यज्ञो—पितृयज्ञ, पार्वण यज्ञ, अष्टक यज्ञ, श्रावणी यज्ञ, आश्वयुजी यज्ञ, आग्रहायणी यज्ञ तथा चैत्री यज्ञ का विवेचन भी गृह्यसूत्रो मे वर्तमान है।

गृह्यसूत्रो मे जिन स्मार्त सस्कारो का वर्णन है वे सस्कार गृहस्थ और उसके परिवार के लोगो के जन्म से मृत्युपर्यंत समय-समय पर की जाने वाली विभिन्न विधियाँ हैं। स्मार्त विधियो के निर्वर्तन के लिए स्मार्त अग्नि की ही अपेक्षा होती है। इस अग्नि को आवसथ्य या वैवाहिक अग्नि कहते हैं। यह अग्नि श्रौत विधि मे अपेक्षित त्रेता अग्नि से भिन्न है। गृह्यसूत्रो मे वर्णित गर्भाधान से विवाह तक के 19 सस्कार कायिक हैं। इसके अतिरिक्त 22 सस्कार यज्ञात्मक हैं।

गृह्यसूत्र प्राचीन भारत के गृहस्थ जीवन के सबध मे एक रोचक एव उपयोगी विवरण प्रस्तुत करते हैं। मानव-सभ्यता के इतिहास मे गृह्यसूत्रो का स्थान अत्यत महत्वपूर्ण है।

गेसूदराज *(उर्दू० ले०)* [समय—अनुमानत 1380 ई० —1430 ई०]

नाम—हज़रत सैयद मुहम्मद हुसैनी, प्रसिद्ध नाम—ख्वाजा बदानवाज 'गेसूदराज'। ये दक्षिण भारत मे सुल्तान फिरोज़शाह बहमनी के शासनकाल के कवि थे। आध्यात्मिक विषयो तथा सूफी साहित्य पर इन्होंने अनेक कृतियो का प्रणयन किया। अरबी और फारसी के प्रचार तथा प्रसार मे ये सक्रिय योग देते रहे। 'मेराज-उल-आशिकीन', 'हिदायतनामा', 'तलावत-उल वुजूद', 'रिसाला सहबारा' और 'शिकारनामा' इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ है। इनकी भाषा-शैली प्राचीन ढग की है। ख्वाजा नसीर-उद्-दीन चिराग-देहलवी के मुरीद (शिष्य) और खलीफा होने के कारण इनका शिष्यमडल बहुत बडा था। धर्म-प्रचार और समाज-सुधार इनके जीवन के लक्ष्य थे। इनके कतिपय सग्रहो मे बीमारियो के नुस्खे भी काव्यबद्ध मिलते है। इनके काव्य मे इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता के तत्त्व प्रचुर मात्रा मे हैं। कल्पना तथा भाव के औदात्त्य का इनमे अभाव है।

गोकाक, वि० कृ० *(क० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

विनायक कृष्ण गोकाक कन्नड के प्रतिभाधनी साहित्यकारो मे से है। इनका जन्म धारवाड जिले के अतर्गत सवणूर के एक सभ्रात ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। धारवाड तथा पूना मे उच्च शिक्षा प्राप्त कर ये अँग्रेज़ी भाषा तथा साहित्य के विशेष अध्ययन के लिए इगलैंड गए। ऑक्सफोर्ड मे इनकी प्रतिभा खूब चमकी। लौटने पर आरभ मे बबई, गुजरात, धारवाड आदि मे अँग्रेज़ी के प्राध्यापक और बाद मे बँगलौर विश्वविद्यालय के कुलपति रहे। ये कन्नड साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष भी रहे। भारत सरकार की ओर से इन्हे 'पद्मश्री' से अलकृत किया गया था।

ये कर्णाटक के महान् कवि बेंद्रेजी (दे०) के शिष्यो मे से एक हैं। उनके द्वारा स्थापित 'गेळेयर गुपु' के सक्रिय सदस्यो मे ये भी एक है। 'कलोपासक', 'पयण', 'समुद्रगीतगळु', निविन्नमर आकाशगगे', 'नव्यकवितेगळु', 'द्यावापृथिवी' (दे०) आदि इनके उल्लेखनीय कविता-सकलन हैं। इनकी कविताओ पर अरविद-दर्शन का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। मनुष्य की पहुँच से परे प्रकृति के विराट सौंदर्य की सूक्ष्म अभिव्यक्ति इनकी कविताओ की विशेषता है। 'शेले' इस दिशा की एक उल्लेखनीय कविता है। ये रहस्यवादी कवि है, 'हिमु' इनकी एक सुदर रहस्यवादी कविता है। 'इल्लिम न्याय', 'नौकायन' आदि कविताओ मे सामाजिक विषय तथा यत्रदारुणता आदि की यथार्थ विवृति है। 'समुद्रगीतगळु' मे समुद्र तथा उसके चतुर्दिक् की प्रकृति की भगिमाओ का विराट् चित्रण है। ये कन्नड मे प्रयोगवाद या 'नव्य कविते' के प्रतिष्ठापको मे से हैं। 1950 ई० मे इन्होने बबई मे सपन्न कन्नड साहित्य सम्मेलन की कविगोष्ठी के अध्यक्ष-पद से प्रयोगवाद की आवश्यकता पर जोरदार भाषण दिया था। 'नव्यकवितेगळु' मे इनकी 'क्लोरोफारम्' आदि सफल प्रयोगवादी कविताएँ है। 'द्यावापृथिवी' इनकी श्रेष्ठ कृति है जिस पर इन्हे

साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला है। 'नीरद' तथा 'ड्ळागीत' नामक दो लंबी कविताएँ इसमें हैं। विषम लय, बिंबनिष्ठता आदि से भरपूर इनमें भूमि एवं आकाश की भव्यता का वर्णन है। ये एक सफल उपन्यासकार, नाटककार तथा आलोचक भी हैं। 'समरसवेजीवन' इनका 1500 पृष्ठ का वृहत् उपन्यास है जिसकी पटभूमि देश-विदेश तक छाई हुई है। अरविंद के समन्वय-दर्शन का संदेश इसमें है। 'जननायक', 'युगांतर' आदि इनके श्रेष्ठ नाटक हैं। 'जननायक' में एक नेता के कौटुंबिक तथा लोक-जीवन के द्वंद्व का चित्रण है। 'युगांतर' में साम्यवाद तथा अध्यात्मवाद के समन्वय का संदेश है। कविता में इन्हें भाषा-सिद्धि उतनी ही मिली है जितनी कि बेंद्रे (दे०), कुवेंपु (दे०) आदि को मिली है। ये एक सफल यात्रा-संस्मरण-लेखक भी हैं। 'इदिन काव्यदगोत्तु गुरिगळु', 'नव्यते हागू काव्य-जीवन', 'साहित्य दल्लि प्रगति', 'कविकाव्य महोगति' आदि में इनके श्रेष्ठ आलोचनात्मक निबंध हैं। समन्वय तथा विराट् दृष्टि आपके द्वारा प्रतिष्ठापित मूल्य हैं।

गोकुल *(म० पा०)*

यह रामगणेश गडकरी (दे०)-कृत 'प्रेम-संन्यास' नाटक का पात्र है। विदूषक-हत्या-षड्यंत्रों के घटाटोप जमघट ने कथा को बोझिल ही नहीं, बल्कि करुण रस से ओत-प्रोत कर दिया है। गोकुल अपनी भुलक्कड़ प्रवृत्ति के कारण अपनी कर्कशा पत्नी मथुरा के व्यवहार से त्रस्त रहता है, परंतु अपने आचार-व्यवहार से वह जहाँ अपने पारिवारिक जीवन को सहज-सुचारु रूप से चलाता है वहाँ अपने कार्य-कलापों से हत्या-षड्यंत्रों से बोझिल कथा में हास्यास्पद घटना-प्रसंगों से हल्का कर नाटकीय संघर्ष का निर्माण करता है। मंच पर गोकुल की उपस्थिति मात्र दर्शकों के हास्य की अपूर्व क्षमता रखती है। कृपण श्वसुर की दानशीलता का वर्णन वह इन शब्दों में करता है—

"'विजय दशमी' (दशहरे) के अवसर पर जब हम सोना (शम्मी वृक्ष की पत्तियाँ) लेने जाते हैं तो उसके हाथ से वह भी नहीं छूटती। कोई उन्हें संदेशा ही कहने को कह दे तो उनमें से भी चार शब्द तो वे दलाली के अपने पास रख ही लेंगे···।"

गोकुल की भुलक्कड़ प्रवृत्ति एवं मथुरा की कलहप्रियता ने नाटकीय संघर्ष को गति प्रदान की है। स्फुट हास्य-प्रसंगों के माध्यम से गोकुल का चारित्रिक विकास यथेष्ट स्पष्ट रूप से हुआ है।

संक्षेप में, गोकुल-मथुरा के अनमेल विवाह के माध्यम से नाटककार ने जिन अवांतर घटना-प्रसंगों की संयोजना की है, उनका मुख्य उद्देश्य विशृंखलित होती प्रधान कथा को सूत्रबद्ध करना रहा है। गोकुल अपनी हास्यास्पद क्रियाओं से हत्या, आत्म-हत्याओं के क्रूर घटना-प्रसंगों से सहृदय जनमानस पर पड़े प्रभावों को कम करता है। गोकुल के चरित्र-निरूपण में नाटककार ने अपूर्व कौशल का परिचय दिया है।

गोकुल-निर्गमन *(क० कृ०)*

यह कन्नड के विख्यात कवि श्री पु० ति० नरसिंहाचार्य जी (दे०) का गीतिनाटक है। इसमें श्रीकृष्ण के गोकुल छोड़कर मथुरा जाने का प्रसंग चित्रित है। श्रीकृष्ण के चले जाने के बाद विरहिणी व्रजांगनाओं की हृदयवेदना का चित्रण काफ़ी विस्तार से हुआ है, किंतु कृष्ण के दिल पर क्या बीती इसका उतना चित्रण नहीं हुआ है। नरसिंहाचार्य जी ने इस कमी को पूरा किया है। श्रीकृष्ण के संतत साहचर्य के, आत्मीय वस्तुओं के, प्रियजनों के त्याग में जो मर्मवेदना है उसका अत्यंत मार्मिक चित्रण यहाँ हुआ है। कृष्ण राजनीतिक कारणों से राजनीति के लिए ही मथुरा जा रहे हैं। वहाँ उन्हें मुरलीवादन के लिए फ़ुर्सत कहाँ! अतः मुरली के रूप में अपना हृदय भी यहीं छोड़कर जाते हैं। मार्मिक प्रसंगों के चित्रण में कवि को अद्भुत सफलता मिली है। राधा आदि गोपियों की वेदना की दारुणता तो अकल्पनीय है। कृष्ण के सान्निध्य में उनका हर्षोल्लास, वियोग मे विषाद की तीव्रता आदि की अतिशय कलात्मक व्यंजना इसमें है। गीत संगीत के रागतालों में समन्वित हैं। कन्नड की अमर कृतियों में 'गोकुल-निर्गमन' का नाम उल्लेखनीय है।

गोखले, अरविंद *(म० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

सत्रह वर्ष की अल्प वय से कहानी लिखना आरंभ करने वाले देश-विदेश में पुरस्कृत श्री गोखले तब से सतत साहित्य-साधना करते आ रहे हैं और अब तक इसके लगभग 14 कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनका कथा-संसार अत्यंत विस्तृत है। सामयिक, राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों—स्वतंत्रता-आंदोलन, द्वितीय महायुद्ध, भारत छोड़ो आंदोलन, देश-विभाजन, सांप्रदायिक दंगों,

बेकारी, महँगाई आदि पर लिखने के अतिरिक्त इन्होने स्त्री जाति एव समाज के निम्नतम वर्गों पर भी बडी तडप के साथ लिखा है। जीवन के मार्मिक प्रसगो का भावपूर्ण चित्रण, और मानव के अतरग का सूक्ष्म अकन करने वाले श्री गोखले अपनी कहानियो मे प्रगतिशीलता और प्रयोगशीलता के लिए विख्यात हैं।

प्रमुख रचनाएँ—'नजराणा', 'मिथिला', 'उन्मेष', 'माहेर', 'अनामिका' आदि।

गोडबोले, परशुराम तात्या *(म० ले०)* [जन्म—1799 ई०, मृत्यु—1874 ई०]

ये सक्रातिकाल के आग्लविद्या विभूषित पडित कवि है। ये श्रेष्ठ कवि, छद शास्त्रकार तथा सफल अनुवादक थे। इन्होने 'सर्वसग्रह' नामक मासिक पत्र प्रारभ कर कुछ वर्षों तक उसमे प्राचीन मराठी कविता प्रकाशित कराई थी। इन्होने 'ज्ञानेश्वर' (दे०) आदि प्राचीन कवियो के काव्य-समुद्र का मथन कर काव्यामृत नवनीत निकाला था। इस 'नवनीत ग्रथ' मे सत, पडित तथा शाहीर कवियो के काव्य के उत्कृष्ट अगो का समावेश किया गया था। इस ग्रथ के लगभग 20 सस्करण निकले थे, जिससे इसकी श्रेष्ठता स्वयसिद्ध है।

इन्होने छद शास्त्र पर 'वृत्तदर्पण' नामक ग्रथ लिखकर उदीयमान मराठी कवियो का उपकार किया था। कवियो मे पडित कवि मोरोपत इन्हे विशेष प्रिय थे। इन्होने मोरोपत के काव्यादर्श को अपनाकर 'नामार्थदीपिका, 'कादम्बरीसार', 'बालबोधामृत' आदि काव्य-ग्रथो की रचना की थी। मोरोपत की 'केकावली' रचना पर इन्होने 'केकादर्श' नाम से सुदर टीका लिखी।

इन्होने अनेक सस्कृत नाटको का मराठी मे सफल अनुवाद कर मराठी साहित्य को समृद्ध तथा विविध गुण-सपन्न बनाया है। इन्होने 'वेणीसहार' (दे०) (1857) 'उत्तररामचरित' (दे०) (1859), 'अभिज्ञान शाकुतलम्' (दे०) (1861), 'नागानद' (दे०) (1865), 'मृच्छकटिक' (दे०) (1862), 'पार्वती परिणय' (1872) आदि सस्कृत नाटको का अनुवाद किया था।

पडित काव्य-परपरा को आधुनिक काल तक प्रवाहित रखने का श्रेय परशुराम तात्या गोडबोले को है। कृष्णशास्त्री चिपळूणकर (दे०) ने इनकी प्रशसा की है। ये वृत्ति से रसिक होने के कारण मित्र-मडली मे रसिक तात्या नाम से ख्यात थे।

गोदादेवी *(ते० पा०)*

यह विजयनगर के प्रतापी सम्राट श्री कृष्णदेवरायलु (दे०) के सुप्रसिद्ध प्रबधकाव्य 'आमुक्तमालयदा' (दे०) (सोलहवी शती) की एक प्रधान पात्र है। यह भगवान् विष्णु के लिए बनाई गई मालाओ को पहले स्वय पहनकर बाद मे विष्णु को अर्पित करती थी। इसका नाम 'आमुक्तमालयदा' भी है। यह विष्णुचित्तुडु नामक एक भक्त-श्रेष्ठ की पुत्री है और लक्ष्मी का अवतार कही गई है। श्रीरगेश्वर के रूप मे विष्णु मे यह गाढरूप से अनुरक्त होती है। पूर्ण-यौवना होकर यह प्रभु की सन्निधि मे भेजी जाने वाली मालाओ को एकात मे धारण करके, कुएँ के जल मे अपने सौदर्य का अवलोकन करती है और श्रीरगेश्वर से रूठती तथा मान करती हुई अपने प्रेम को सफल बनाने की चुनौती देती है। जब विरह असह्य होता है तब उनको उपालभ भी देती है। अत मे यह श्रीरगेश्वर को ही पति के रूप मे पाकर उनमे एकरूप हो जाती है।

गोदान *(हि० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

यह प्रेमचद (दे०) का सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास है जिसमे उन्होने होरी (दे०) के माध्यम से भारतीय कृषक-जीवन का अत्यत सशक्त चित्र प्रस्तुत किया है। भारतीय किसान अपने परिवार की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए जमीदारो, सूदखोरो के शोषण की चक्की मे पिसता हुआ किस प्रकार अतत अपने जीवन की बलि दे देता है इसका जैसा जीता-जागता चित्रण इस उपन्यास मे किया गया है वैसा अन्यत्र देखने को नही मिलता। लेखक ने ग्रामीण जीवन का चित्रण करने के साथ-साथ मालती, मेहता तथा उनके इष्ट मित्रो के माध्यम से नागरिक जीवन के विलास वैभवपूर्ण जीवन को भी इस दृष्टि से उजागर किया है कि गाँव मे रहने वाले व्यक्तियो की सघर्ष-गाथा का पूरा चित्र उभर कर आ सके। इस उपन्यास मे पश्चिम मे बढते हुए प्रभाव तथा उसके दुर्बल पक्ष को रूपायित करने के साथ-साथ भारतीय सस्कृति की मूल विशेषताओ सेवा, त्याग आदि को भी अत्यत सहज रीति से उपस्थित किया गया है। कतिपय विद्वानो ने ग्रामीण तथा नागरिक जीवन के कथासूत्रो के पारस्परिक सबधो की क्षीणता की चर्चा करते हुए इस औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से अत्यत शिथिल कृति माना है किंतु वस्तुस्थिति यह है कि लेखक ने किसी परिवार अथवा वर्ग-विशेष को आधार बनाकर

अपने उपन्यासों की सृष्टि करने के स्थान पर समूचे राष्ट्र की समस्याओं तथा गतिविधियों को दृष्टिपथ में रखकर इस उपन्यास का प्रणयन किया है; और चूंकि राष्ट्र का जीवन पारिवारिक जीवन के समान सुगठित नहीं हुआ करता, फलतः इस उपन्यास के कथानक में भी कृत्रिम सुगठितता के स्थान पर एक स्वाभाविक बिखराव आ गया है। यह बिखराव भी वस्तुतः बिखराव न होकर पूरे परिदृश्य को प्रस्तुत करने का एक सफल माध्यम है।

होरी, धनिया (दे०), गोबर, मालती, मेहता आदि अजर-अमर पात्रों के माध्यम से प्रेमचंद के जीवन-अनुभवों को अत्यंत कलात्मक ढंग से रूपायित करने वाला यह उपन्यास अपने रोचक, चुस्त तथा नाटकीय कथोपकथनों, प्रवाहपूर्ण भाषा-शैली तथा अत्यंत हृदयद्रावक अंत के लिए भी प्रख्यात है। समग्रतः यह उपन्यास प्रेमचंद तथा प्रेमचंदयुगीन भारत को जानने के लिए एक ऐतिहासिक दस्तावेज का कार्य करता है।

गोन गन्ना रेड्डी *(तें० कृ० एवं पा०)*

यह काकतियों के समय (तेरहवीं-चौदहवीं शती) की कहानी के आधार पर श्री अडवि बापिराजु (दे०) द्वारा रचे गए प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'गोन गन्ना रेड्डी' का नायक है। गोन गन्ना रेड्डी काकतीय साम्राज्य का विख्यात वीर है।

गोपबंधु *(उ० ले०)* [जन्म—1871 ई०; मृत्यु—1928 ई०]

उत्कलमणि गोपबंधु उड़िया-प्राण के प्रतिनिधि व विराट् भारत के प्रतीक है। गोपबंधु गांधी जी के सच्चे अनुयायी और स्वतंत्रता-संग्राम के जननायक थे। 1921 ई० के प्रारंभ मे इन्होंने बकुल-बन-विद्यालय को इंडियन नेशनल कांग्रेस में मिला दिया। गांधीजी द्वारा परिचालित असहयोग आंदोलन में इन्होंने सक्रिय भाग ही नही लिया, नवयुवकों को इस महायज्ञ में उत्सर्गित हो जाने का आह्वान भी दिया। इस प्रकार महत्-प्राण गोपबंधु की जातीय भावना विराट् भारतीयता में पर्यवसित हो गई।

गोपबंधु के लिए साहित्य जन-सेवा व ईश्वर-भक्ति की अभिव्यक्ति का साधन मात्र था। अपने को महाएक में अंतर्लीन कर जातीय अंतराल से महामानव को वे देख सके थे। जनसेवा की आंतरिक इच्छा, धर्मनिष्ठा, उनके साहित्य की तीन आधारभूत वृत्तियां हैं। बिहार की हजारीबाग जेल में ही (1923-24 ई०) में इन्होंने 'काराकविता', 'बंदीर आत्मकथा', 'धर्मपद', (दे०), 'गो-माहात्म्य' आदि पुस्तकों की रचना की थी। इन सब काव्यों में उग्रजातीय भाव, विदेशी शासन के प्रति तीव्र विरोध, अपने अधःपतन के प्रति क्षोभ व देश के लिए उत्सर्गित हो जाने की प्रबल आकांक्षा आदि भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। शैली सहज, सरल, सावलील एवं मूर्तिविधायिनी है।

गोपबंधु ने 'समाज-पत्रिका' द्वारा उड़िया गद्य का विकास किया। बकुल-बन-विद्यालय स्थापित कर जातीय व राष्ट्रीय भावना का प्रसार किया। गणबंधु गोपबंधु का जीवनादर्श उड़िया जीवन को सदा अनुप्राणित करता रहेगा।

गोपाळ *(उ० पा०)*

गोपाळ कविचंद्र काळिचरण पटनायक (दे०) के सामाजिक नाटक 'परिवर्तन' (दे०) का प्रमुख पात्र है। वह मातृपितृहीन है। इसे ख्याति-संपन्न गौर बाबू आश्रय देते है किंतु गोपाळ अधिक समय तक गौर बाबू के पास नहीं रहता। वकालत से इसे प्रचुर अर्थलाभ होता है। अपना घर, अपनी शान-शौकत। शारीरिक अस्वस्थता के लिए ब्रांडी का उपयोग प्रारंभ करता है। किंतु इसके खल-बंधु राजू की संगत से गोपाळ बाबू के सोने का संसार नष्ट हो जाता है। शराब एवं वेश्या का आज इसके जीवन पर प्रमुख अधिकार है। अपनी सुंदरी पत्नी आरती के हाथ से चूड़ी खोल लेने में भी शिक्षित गोपाळ बाबू को तनिक संकोच नही होता। बंधुता की आड़ में राजू विष-वृक्ष का रोपण करता है। किंतु ठीक समय पर गोपाळ बाबू की आँखें खुल जाती हैं। आरती से छीन कर ली गई चूड़ियाँ लेकर यह पुनः आरती के पास वापस आ जाता है।

गोपाळ कृष्ण पदावली *(उ० कृ०)*

यह शुद्धाभक्ति के अन्यतम कवि गोपाळ कृष्ण पटनायक (दे०) के पदों का संग्रह है। इसकी सरल, तरल ललित, कोमल और लोक-प्रचलित भाषा के कारण ब्रज-रस का आस्वादन सर्वश्रेणी के पाठकों के लिए संभव हो सका है। कवि की राधाकृष्ण-प्रेम-संबंधी गहन गंभीर अनुभूति के कारण ही इसकी अभिव्यक्ति भी रसमय, प्रांजल एवं मनोज्ञ है। इसमें राग, तान और लय का पूर्ण

विकास हुआ है। इसमे कवि की विश्वजनीन कल्पना, भगवत् निवेदन, गहन अनुभूति, आशा, निराशा का प्राजल प्रकाशन हुआ है। राधाकृष्ण-प्रेम-चित्र मानवीय एव मनोवैज्ञानिक है। विशेषता यह है कि राधाकृष्ण, गोप गोपियो ने उडिया रूप धारण किया है और वहाँ भी प्रकृति एव जन-जीवन से तदाकार हो गए है। इसका बालवर्णन सूर (दे०) के समान अनुपम है।

गोपाल कृष्णमूर्ति, श्रीपाद *(ते० ले०)* [जन्म —1908 ई०]

कामेश्वरराव और जोगम्मा के पुत्र गोपाल कृष्णमूर्ति का जन्म 1908 ई० मे हुआ था। इनके एक भाई पिनाकपाणि कर्णाटक सगीत के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् एव गायक है। बी० ए० (राजमहेन्द्री), बी० एस-सी० (मद्रास विश्वविद्यालय), एम० ए० (फिजिक्स) (तिरुचिरापल्ली), पी-एच० डी० (आध्र विश्वविद्यालय) कर 1936 ई० से 1940 ई० तक ये आध्र विश्वविद्यालय मे प्राध्यापक रहे। उसके बाद मद्रास के प्रेसिडेंसी कालेज मे फिजिक्स के आचार्य रहे। तदनतर आध्र मे कई सरकारी कालेजो के प्रिंसिपल रहकर 1963 ई० मे इन्होंने अवकाश ग्रहण किया। इन्होंने प्रो० रगनाथराव के तत्वावधान मे 'ऐटोमिक स्पैक्ट्रा' पर शोध-कार्य किया तथा 'ऐटोमिक्स' और 'मॉलीक्यूलर स्पैक्ट्रा' पर वैज्ञानिक पत्रिकाओ मे कई लेख प्रकाशित कराए थे। पदार्थ-विज्ञान मे शोधकार्य का निर्देशन भी इन्होने किया है।

'तेलुगु एकाकी साहित्यमु' (5 लेख), स्त्रीत साहित्यमु' (8 लेख), 'अर्द्धशती आध्र-कविता' (18 लेख) पर इनके लेख 'भारती' (मद्रास से निकलने वाले मासिक पत्र) मे प्रकाशित हुए है। इनके 'नेटि श्रेष्ठ एकाकिकलु', 'ग्रामीण गीत तालु', 'स्त्रीत रामायण पाटलु', 'स्त्रीत पुराण पाटलु' आदि सकलन-ग्रथ प्रकाशित हुए है। सगीत से सबध रखने वाले कुछ लेख भी इन्होंने लिखे है। इनकी विज्ञान से सबधित कुछ पुस्तके प्रकाशित हुई है। इनमे 'विज्ञान वीथुलु' (चार खड), 'वैज्ञानिक गाथाशती', 'आइन्स्टीन सापेक्षितावादमु', 'मनोभूमि-आकाश', 'राकेट-आकाश', 'गिमनमुवज्ञान-साधना' आदि उल्लेखनीय हैं।

अवकाश ग्रहण करने के बाद, ये आध्यात्मिक विषयो मे रुचि लेने लग गए है। 'अम्मा और उनके वाक्य', 'अर्कपुरी की विशेषताएँ', 'सत्यसाई स्वामी की वाक्य-विभूति' इनके सकलन ग्रथ है। आजकल ये 'मातृश्री' (अँग्रेजी) का सपादन कार्य कर रहे है। 'अम्मा का बताया नया मार्ग' इनकी मौलिक कृति है। 'जिज्ञासा' शीर्षक से इनके अध्यात्मपरक 18 लेख धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए है।

गोपालकृष्ण राव *(क० ले०)* [समय—*1906-1967* ई०]

कन्नड के श्रेष्ठ कहानीकार श्री गोपालकृष्ण राव का जन्म 1906 ई० मे बेंगलूर के समीप कोडगहल्ली मे हुआ। मास्तिजी (दे०) से प्रेरणा पाकर आप कहानी-क्षेत्र मे उतरे। आपकी प्रसिद्ध कहानियो मे 'बगारद डाबू' (सोने की करछी), 'कोदवल मारु ?' (किसने मारा ?); 'मागडी रग' आदि मुख्य है। आप मानवतावादी कहानीकार है। इन कहानियो मे आपने मानव की सुप्त मानवता को जगाकर दिखाया है तो कही-कही सामाजिक वैषम्य पर भी कटाक्ष किया है। 'केंसिंगटन पार्क' आपकी एक विशिष्ट कृति है जिसमे एक पार्क से स्फर्त कहानी है, कविता है, निबध है और दृश्य है। चरित्र-चित्रण मे आपको अधिक सफलता मिली है। 'गीतगळु' मे आपकी कविताएँ है।

गोपालदान *(हिं० ले०)* [जन्म—1815 ई०, मृत्यु—1888 ई०]

गोपालदान का जन्म सीकर के उदयपुरा ग्राम मे खुमान के घर हुआ था। इन्होंने 'लावारासा' (कूर्मवश-यशपुराण), 'शिखरवशोत्पत्ति' (पीठीवार्तिक) एव 'कृष्ण-विलास' नामक ग्रथो तथा अनेक फुटकर कविताओ की रचना की है। इन ग्रथो मे गोपालदान ने बोलचाल की राजस्थानी का ऐसा रूप अपनाया है जो व्रजभाषा के बहुत निकट है। लावारासा' मे वीर रस का अच्छा परिपाक मिलता है।

गोपाल बापा *(गु० पा०)*

श्री मानुभाई पचोली 'दर्शक' (दे०)-रचित गुजराती उपन्यास 'झेर तो पीधा छे जाणी जाणी' (दे०) (भाग 1 और 2) के प्रमुख महत्वपूर्ण पुरुष पात्र गोपाल-दास परीख उपन्यास मे गोपाल बापा के नाम से प्रसिद्ध हैं।

दो महायुद्धो के बीच से भारतीय जीवन की विडबनाओ का चित्राकन करने वाले इस मधुर किंतु विषादात उपन्यास के प्रथम 88 पृष्ठो तक ही विद्यमान गोपाल

बापा का व्यक्तित्व इतना प्रखर है कि शेष उपन्यास की घटनाएँ, पात्र एवं विचार-प्रवाह इनसे प्रभावित है।

झरिया (बिहार) की कोयले की खानों के व्यापार में इन्होंने प्रपीड़ित मानव-जीवन का साक्षात्कार किया और विरक्त होकर अपनी जन्मभूमि सौराष्ट्र में द्वारिका के मार्ग पर तुलसी-श्याम के निकट शिंगोडो नदी के तट पर एक आश्रम स्थापित कर आजीवन मानव-सेवा का व्रत धारण कर लिया। पुत्री रोहिणी और अपने मित्र के पुत्र सत्यकाम को आश्रम में अपने पास रख कर इन्होंने उन दोनों में मानव-सेवा, जीवन-मूल्यों के प्रति गहरी आस्था के ऐसे गहरे संस्कार डाल दिए कि विकटतम परिस्थितियों में भी वे इनका त्याग न कर सकें। प्राचीन भारतीय ऋषि व उनके गुरुकुल की कल्पना गोपाल बापा और उनके आश्रम में साकार हुई है। गांधीवादी सेवाव्रती व मानव-कल्याण के चिर-आकांक्षी गोपाल बापा में आश्रम-संस्कृति व गांधी-विचार का मणिकांचन योग पाया जाता है।

अपने व अपने अंतेवासियों के आचरण से मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वाले व जीवन के प्रति गहरी आस्था वाले गृहस्थ-ऋषि गोपाल बापा गुजराती-साहित्य के एक अमर पात्र हैं।

गोपालरेड्डी, बेजवाडा *(ते० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

ये राजनीतिक नेता, बहुभाषाविद् एवं साहित्यकार हैं। इन्होंने रवींद्रनाथ (दे०) के समय में शांतिनिकेतन में शिक्षा पाई थी और स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया था। इन्होंने रवींद्रनाथ की अनेक रचनाओं का सुंदर अनुवाद तेलुगु में प्रस्तुत किया है तथा कई स्वतंत्र रचनाएँ भी की हैं। 'चित्रागंदा', 'गीतांजलि' (दे०) आदि इनके प्रमुख अनुवाद हैं।

ये आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के तथा तेलुगु भाषा समिति के अध्यक्ष भी है। स्वयं साहित्य-रचना करने के साथ-साथ अनेक साहित्यकारों को इन्होंने बहुत प्रोत्साहन दिया है।

गोपालसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

यद्यपि डाक्टर गोपालसिंह ने कविता, कहानी, आलोचना, अनुवाद, कोश-रचना आदि विभिन्न क्षेत्रों में कार्य किया है परंतु आपको विशेष सफलता आलोचना के क्षेत्र में प्राप्त हुई। 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' के अंग्रेजी अनुवाद से आपको अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। पंजाबी के अन्य प्रारंभिक प्राध्यापकों के समान आपने भी उच्च कक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तकों के संकलन-संपादन के काम में भी रुचि ली। 'पंजाबी साहित्य का इतिहास' लिखकर इस क्षेत्र में आपने प्रथम बार एक प्रणालीबद्ध कृति प्रस्तुत करने का यत्न किया। यद्यपि वहाँ भी कहीं-कहीं आप निजी भावुकता से अभिभूत होकर तथ्यों पर अपनी रुचि को प्रधान स्थान दे जाते हैं पर कुल मिलाकर वह रचना विषयपरक ही है। 'झना', 'हनेरे सवेर' और 'अनहद-नाद' (दे०) आपकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं। 'अनहद-नाद' पर आपको साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला है। 'रोमांचक पंजाबी कवि' (दे०), 'साहित दी परख', 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब दी साहित्यिक विशेषता' आदि आपकी आलोचनात्मक कृतियाँ हैं।

गोपीचंद्रुडु *(तें० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

ये तेलुगु के प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार एवं कहानी-लेखक हैं। अपने चारों ओर के प्रबल वातावरण के सामने मनुष्य को झुकना ही पड़ता है—इस प्रकार की भावना इनकी अनेक रचनाओं में व्यक्त होती है। ये राजनीतिक क्षेत्र में भी सक्रिय रहे हैं। इस कारण इनके भावों एवं आदर्शों पर राजनीतिक विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट है।

'असमर्थुनि जीवितयात्रा' (दे०) और 'परिवर्तनमु' इनके प्रमुख उपन्यास हैं। इनके अतिरिक्त अनेक कथा-संकलन भी प्रकाशित हुए हैं। इनके निबंधों में दार्शनिकता का पुट रहता है। इन्होंने कई जीवन-परिचय एवं चलचित्रों के संवाद भी लिखे हैं।

'असमर्थुनि जीवितयात्रा' इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असफल रहकर समाज के प्रत्येक व्यक्ति से द्वेष बढ़ाकर अंततः नष्ट होने वाले एक असमर्थ का कारुणिक किंतु पूर्णतः मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इनका गद्य अत्यंत सरल किंतु तीक्ष्ण भावों को अभिव्यक्त करने वाला है। अप्रिय किंतु बहुमूल्य हित के संकेत तथा न्यूनतम शब्दावली इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

गोपीचंद *(बँ० पा०)*

गोपीचाँद मयनामती अथवा 'गोपीचाँद-गीतों'

की मूल आख्यायिका का प्रधान पात्र है (नाथ साहित्य) अर्थात् इन गीतो का नायक गोपीचाँद ही है। गोपीचाँद की माता मयनामती के गुरु सिद्धाचार्य हाडिपा हीनकार्य-रत हैं। नीच जाति से दीक्षा लेने के प्रश्न पर गोपीचाँद ने सहज ही असम्मति प्रकट की। उसके उपरात सिद्धाइ की सहायता से उसे दीक्षा लेने के लिए सहमत किया जाता है। गुरु के साथ उसके जीवन के नाना स्तरो की अभि-व्यक्ति मे उस युग के सामाजिक जीवन की प्रतिच्छवि दिखाई पडती है। इस काव्य मे गोपीचाँद का रूप वीर-साहसी का नही है, फिर भी, कभी माता के द्वारा या फिर वधू के द्वारा प्ररोचित होने पर उसने दु साहसिक कार्य कर दिखाया है। गोपीचाँद के चरित्र मे स्वकीयता का अभाव खटकता है, अधिकतर वह कवि के हाथ का खिलौना-सा दिखाई पडता है। तो भी, सुदरी वधू को छोडकर सन्यास लेने पर पाठक व्याकुल हो उठता है। जीवन की विचित्र अनुभूतियो के साथ गोपीचाँद के क्रमोत्तरण का चित्र लगभग अभिन्न है। इसीलिए गोपीचाँद नाथ-साहित्य के सार्थक मार्मिक चरित्र के रूप मे सुव्यक्त है।

गोपीचाँदेर गान *(बँ० कृ०)* [*रचना-काल—अठारहवी* शती ई० का उत्तरार्द्ध]

यह दुर्लभ मल्लिक की रचना है और मयना-मती अथवा गोपीचाँदेर गान के पहले कवि सभवत दुर्लभ मल्लिक ही हैं। कहानी की प्राचीनता का निदर्शन जायसी (दे०) के 'पद्मावत' (दे०) और गुजरात तथा पजाब की लोकगाथाओ मे भी मिलता है। दुर्लभ मल्लिक ने मानिकचद्र के साथ मयनामती के विवाह एव उसके बाद मयनामती के अलौकिकत्व, पुत्र गोपीचाँद के सन्यास धर्म मे दीक्षित होने, गुरु हाडिपा एव कानुपा के ज्ञानतत्र की वर्णना, अदुना-पदुना के मर्मदाह आदि का सविस्तर, दृढ-बद्ध कहानी के आधार पर, रुचिसम्मत ढग से वर्णन किया है। इसमे गोरक्ष-पथ के साधना-तत्त्व का भी विस्तार से परिचय मिलता है। (दे० मयनामतीर गान)।

गोपीनाथ कविराज *(बँ० ले०)* [*जन्म—1857 ई०*]

भारतवर्ष के वर्तमान विद्वत् समाज मे महा-महोपाध्याय प० गोपीनाथ कविराज एक पुण्यनाम है। अपना समग्र जीवन उन्होने ज्ञान की तपस्या म अर्पित कर दिया। भारतीय तत्र साधना के मर्म-विचारक एव दर्शन के व्याख्याता के रूप मे उनकी अपार प्रसिद्धि है। उनके द्वारा रचित भारतीय साधना के विलक्षण दिक्-निर्देशक ग्रथ इस युग की प्रतिभा का एक विस्मयकारी उदाहरण प्रस्तुत करते है। अँग्रेजी, हिंदी एव बँगला रचना मे वे सिद्धहस्त थे। अध्यात्म-जगत् के बहुत-से सिद्ध-महात्माओ का उन्होने सस्नेह सान्निध्य प्राप्त किया था। बँगला मे लिखित ग्रथो मे 'अखड महायोग', 'साधुदर्शन ओ सत्प्रसग' (दो खड), 'स्वसवेदन', 'तन्त्र ओ आगम शास्त्रेर दिग्दर्शन' आदि उल्लेखनीय ग्रथ हैं। हिंदी मे उनके प्रख्यात ग्रथ का नाम है 'तान्त्रिक वाङ्मय मे शाक्तदृष्टि'।

गोम्मटस्तुति *(क० कृ०)*

इसके रचयिता हैं बोप्पण पडित। इनका समय *1180 ई० माना जाता है। यह जैन धर्मावलबी थे।* इसमे श्रवणबेलगोल की विश्वविख्यात बाहुबली की मूर्ति की स्तुति है। यह श्रवणबेलगोल के 234 शिलालेखो मे उत्कीर्ण है। इसमे सत्ताईस छद हैं। भक्तिभाव से ओतप्रोत ये स्तोत्र बहुत ही सुदर है। यह कवि के द्वारा बाहुबली के चरणो मे अर्पित भक्ति-कुसुमाजलि है। आरभ मे बाहुबली-कथा-परिचय दिया गया है। प्रतिमायोग मे स्थित उस मूर्ति के महत्व को कवि ने अपनी आँखो मे भर लिया है और यह गीति-मालिका लिखी है। कर्णाटक शिल्पो से प्रेरित हो काव्य-रचना करने वालो मे बोप्पण सर्वप्रथम हैं। गोम्मटेश्वर के दर्शन से हृदय मे उदित होने वाली उदात्त भावनाएँ अत्यत सजीव ढग से यहाँ बिंबित हुई है। कवि के अनुसार गोम्मटेश्वर की मूर्ति मे सौंदर्य है, औन्नत्य है और आति-शय्य है। भाषा प्राचीन कन्नड है, शैली सहज एव प्रासा-दिक है। कन्नड के स्तोत्र-साहित्य मे इसका अपना विशिष्ट स्थान है।

गोरखनाथ *(हि० ले०)* [*समय—चौदहवी-पद्रहवी* शती]

नाथ-सप्रदाय की गुरु-शिष्य-परपरा मे गोरख-नाथ का विशेष स्थान है। इनकी रचनाएँ गद्य और पद्य दोनो रूपो मे है जो कि 1400 ई० के आसपास लिखी गई थी। इनकी उपलब्ध पुस्तकें ये हैं—'गोरख-गणेश गोष्ठी', 'महादेव-गोरख सवाद', 'गोरखजी की सत्रह कला', 'गोरखबोध', 'दत्तगोरख सवाद', 'योगेश्वर साखी', 'नरवई बोध', 'विराट्पुराण', 'गोरखसार' और 'गोरखवाणी'। वस्तुत

ये ग्रंथ गोरखनाथजी के न होकर उनके शिष्य-संप्रदाय के हैं। इनमें से अधिकतर संस्कृत-ग्रंथों के अनुवाद हैं। 'साखी' और 'वाणी' के नाम से जो रचनाएँ मिलती हैं, वे संभवतः गोरखनाथ की हों। उक्त प्रायः सभी रचनाएँ इनकी सांप्रदायिक शिक्षा से संबद्ध हैं। अतः इन्हें शुद्ध साहित्यिक रचना नहीं कहा जा सकता। फिर भी, तत्कालीन ब्रजभाषा के पद्य तथा विशेषतः गद्य रूप की परिचिति के लिए इन ग्रंथों का निजी महत्व है।

गोरक्ष-विजय (फयजुल्ला) *(बँ० कृ०)* [रचना-काल — संभवतः 1725-26]

गोरक्षनाथ की कहानी के आधार पर भारतीय भाषाओं में नाना ग्रंथों की रचना हुई है। विद्यापति (दे०) का 'गोरक्षविजय' नाटक इसका उल्लेखनीय दृष्टांत है। बँगला 'गोरक्ष-विजय' काव्य नाथ-साहित्य का एक विशेष महत्वपूर्ण ग्रंथ है। 'गोरक्ष-विजय' काव्य में शेख फयजुल्ला की कविताओं के अतिरिक्त कवींद्रदास, भीमसेन एवं श्यामदास की कविताएँ हैं। यह निश्चित है कि 80 प्रतिशत कविताएँ फयजुल्ला की हैं, इसीलिए इसे फयजुल्ला-रचित काव्य मानना ही उचित है। अन्यान्य कविताएँ कदाचित् इसको गीताकार में गाने वालों की हैं। काव्य में निबद्ध कालज्ञापन श्लोक के अर्थानुसार यह काव्य लगभग 1725-26 ई० के बीच रचित है।

नाथ-साहित्य की कहानी मूलतः दो धाराओं में प्रसारित है —मत्स्येंद्रनाथ की कहानी एवं गोपीचंद-मयनामती की कहानी। 'गोरक्ष-विजय' काव्य मे नाथ साहित्य के धर्मतत्त्व के साथ मीननाथ की कहानी वर्णित हुई है। गोरक्षनाथ देवता नहीं, देवोपम मानव थे—कदाचित् देवताओं की अपेक्षा उनका चरित्र और भी अधिक महिमान्वित था। मंगलकाव्य की देव-देवियों की ईर्ष्या, नीचता का स्पर्शमात्र भी यहाँ नहीं है। माधुर्य एवं विराटत्व से युक्त इतिहास-आश्रित 'गोरक्ष-विजय' कथा-काव्य नवरस का संवाहक है।

गोरा *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1909 ई०]

महाकाव्य की समग्रता समेटे इस उपन्यास में रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) ने अपने युग का सजीव एवं सर्वांगीण चित्रांकन किया है। हिंदू धर्म की संकीर्णता-वृत्ति तथा ब्राह्मसमाज की उदार दृष्टि के संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय चेतना का उदय दिखाया गया है। कथा का केंद्र-बिंदु गोरा है जो धर्म-कर्म और बाह्यानुष्ठान के बारे में इतना कट्टर एवं असहिष्णु है कि किसी को क्षमा नहीं करता। उसके तर्क-वितर्क और मताग्रह से उपन्यास आक्रांत है। सुचरिता गोरा के प्रखर एवं उज्ज्वल व्यक्तित्व के प्रति समर्पणशील अवश्य है परंतु स्वभाव से सौम्य-सुकुमार एवं मितभाषिणी है। विनय गोरा के विपरीत स्नेहशील एवं उदार है परंतु ललिता निर्भीक, मुखर एवं प्रखर है। गोरा के जन्म-रहस्य के उद्घाटन द्वारा लेखक गोरा का स्वयं संतुलित रूप प्रकट करना चाहता है। गोरा का देशानुराग इस रचना को नई गरिमा प्रदान करता है। इसका प्रेरणा-स्रोत है उसकी माँ आनंदमयी जो भारतमाता का प्रतीक है। उसका सबल ओजस्वी व्यक्तित्व युगानुरूप है। इस प्रकार लेखक का मंतव्य उभरते बंगाल में धार्मिक, सामाजिक, नैतिक एवं राष्ट्रीय परिवर्तनों का चित्रण करना है। शिल्प-विधि की दृष्टि से इसमें नये प्रयोग किए गए हैं। काव्यात्मक शैली के स्थान पर व्यंग्यपूर्ण शैली का आश्रय लिया गया है। यह रवींद्र का अलग-विशिष्ट उपन्यास है जिसे युग की उपलब्धि होने का गौरव प्राप्त है।

गोरा *(बँ० पा०)*

उपन्यास (दे० गोरा—बँ० कृ०) के नायक के नाम पर ही गुरुदेव रवींद्रनाथ (दे०) के इस महाकाव्यात्मक उपन्यास का नामकरण हुआ है। इस उपन्यास के प्रत्येक क्षेत्र में गोरा सार्थक रूप मे प्रतिष्ठित है। आइरिश-संतान गोरा हिंदू धर्म के दृढ़ संस्कारों के बंधन में प्रतिपालित है। संस्कार के साथ हृदय का द्वंद्व स्वभावतः ही प्रकट होता है। गोरा का जीवन सहज ढंग से ही स्वदेश-आत्मा के वाणीमूर्ति-रूप में प्रतिफलित हुआ है। बृहत् सामाजिक समस्या की पटभूमिका में गोरा के चरित्र का माहात्म्य उसके बंधनों के छिन्न होने में और उसकी मुक्ति में प्रकट हुआ है। सुचरिता के साथ मिलन केवल बाह्य जीवन-चेतना के लिए ही नहीं; जीवनादर्श की मुक्ति की प्रतिष्ठा में उसकी सार्थकता निहित है। 'गोरा' ने नव्य-ब्राह्म समाज के आत्मानुसंधान को तीव्रतर किया है। गोरा चरित्र के विश्लेषण में कवि एवं औपन्यासिक रवींद्र ने एक होकर अपने उद्देश्य को सार्थक किया है। देशप्रेम की निष्ठा ने गोरा को कार्य, मन और वचन में अविचल महिमा प्रदान की है किंतु यही उसकी समाप्ति नहीं हुई है। गोरा के जन्म-रहस्य का उद्घाटन होते ही

सकुचित परिधि से गोरा की मुक्ति होती है। भारतवर्ष की सीमारेखा पृथ्वी को और दूर हटा नही पाई है। गोरा को सहज ही स्वदेश-प्रेम, विश्व-प्रेम, मानवीय बोध, विश्वमानवीय बोध के राज्य मे स्थान मिला है। सीमा असीम के राज्य से विलीन होकर महिमान्वित हुई है। गोरा के चरित्र मे भी उस सीमा के अतिक्रमण के द्वारा असीम के साथ एकात्मता की पूर्ण प्रतिष्ठा हुई है।

गोरे, ना० ग० *(म० ले०)*

ये सफल राजनीतिक नेता और गभीर साहित्यकार है। इनके द्वारा लिखित 'कारागृहाच्या भिंती' सफल डायरी है। गुलबर्गा कारागृह मे रहते हुए इन्होने अपने चेतन तथा अवचेतन मन की भाव-प्रक्रिया की अभिव्यक्ति इसमे की है। मन का अतर्बाह्य अभिव्यक्त होने के कारण लेखक की मनोदशा तथा मन मे होने वाले अतर्द्वद्व को समझने मे पर्याप्त सहायता मिलती है। इससे लेखक की बहुश्रुतता राजकारणाभिमुखता, विचारो की उदारता प्रमाणित होती है। इसमे इन्होने अपनी पत्नी तथा पुत्री के लिए सदिग्ध तथा आत्मीय उद्‌गार व्यक्त किए है।

मराठी मे डायरी-लेखन की प्राय उपेक्षा हुई है। इस उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण को देखते हुए यदि 'कारागृहाच्या भिंती' को डायरी-लेखन का एकमेव अमूल्य भूषण कहे तो अत्युक्ति नही होगी। 'सीतेचेपोहे', 'डाली' इनके लघु निबध-सग्रह है। 'शुभासपत्रे' मे इनके अपनी पुत्र पुत्री शुभा के नाम लिखे उपदेशपरक पत्र सकलित हैं।

गोलगोथा *(क० कृ०)*

स्व० गोविंद पै ने आधुनिक कन्नड को दो खड-काव्य दिए हैं. 'गोलगोथा' तथा 'वैशाखी'। 'गोलगोथा' मे ईसा मसीह के अतिम समय का अतीव मार्मिक चित्रण है। उनके सूली पर चढने का दृश्य करुण है, शात है, अद्‌भुत है। एक भारतीय कवि ने अपने देश-काल से दूर के विषय को चुन कर उसके प्रत्येक ब्योरे को हृदयगम कर उसके साथ तादात्म्य स्थापित कर एक अत्यत यशस्वी काव्य की रचना की है। यह अपने मे एक आश्चर्य है। चार सौ पक्तियो मे लिखा यह काव्य अतुकात पद्य मे है। शुरू से लेकर अत तक ईसा के अवसान का कारण सशक्त बिंबो तथा ब्योरो के साथ आया है। इसमे इतिहास का प्रगाढ अध्ययन है किंतु उसके काव्य-सौदर्य मे व्याघात नही पडा है। उपनामो की गरिमा है किंतु कही भी चमत्कार नही। तत्कालीन जीवन से अलकारो की सामग्री चुनी गई है। इसमे महाकाव्य का विस्तार नही है किंतु उसका गाभीर्य है, दर्शन है। अत आलोचक एस० अनतराम ने इसे 'महाकाव्य खड' की सज्ञा दी है।

गोळे, पद्मा *(म० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

इनका जन्म सरदार पटवर्धन के कुलीन सस्कारी परिवार मे हुआ था। महाविद्यालयी शिक्षा पूना मे प्राप्त की और आजकल वही निवास करती है।

काव्यसग्रह—'प्रीतिपथावर', 'नीहार'।

पद्मा गोळे की काव्य-प्रतिभा मूलत प्रगीतात्मक है। स्त्री मन तथा उसकी समस्याओ का पारदर्शी दृष्टि से किया गया सूक्ष्म विश्लेषण इनके काव्य का वैशिष्ट्य है। इनकी भाषा-शैली सरल, प्रासादिक एव कोमलकात पदावली-युक्त है। अब नई कविता की क्लिष्टता एव लैंगिकता भी इनके काव्य मे मिलती है।

ये आधुनिक कवयित्रियो में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। कविता के अतिरिक्त कुछ कहानियाँ, एकाकी एव ललित निबध भी इन्होने लिखे हैं।

गोळे, महादेव शिवराम *(म० ले०)* [जन्म—1859 ई०, मृत्यु—1906 ई०]

इनका जन्म सातारा जिले के मर्ढे गांव मे हुआ था। 1883 ई० मे इन्होने एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इसके पश्चात् ये गो० ग० आगरकर (दे०) जी के आग्रह से डेक्कन एजुकेशन सोसायटी के कार्यकर्ता हो गए थे। आगरकर जी की मृत्यु के उपरात ये पूना के फर्ग्युसन कॉलेज के प्रधानाचार्य बने थे।

गोळे जी हिंदू धर्म तथा भारतीय सस्कृति के अनन्य प्रेमी तथा निष्ठावत समाज-सुधारक के रूप मे चिरविख्यात हैं। 'हिंदू धर्म आणि सुधारणा' तथा 'ब्राह्मण आणि त्याची विद्या' नामक इनके अत्यत प्रसिद्ध ग्रथ रहे हैं। इनमे आगरकर की तरह प्रगतिशील तथा क्रातिकारी समाज-सुधारो का तीव्रता से समर्थन किया गया है। इनके प्रकाशन से उस समय बडी ही खलबली मच गई थी।

'कुळाचा अभिमान', 'अमरसार', 'सस्कृत कोसेस' आदि इनके अन्य उल्लेखनीय ग्रथ हैं।

इनकी भाषा सुसंस्कृत तथा सहज है एवं वर्णन-शैली सूक्ष्म एवं विवेचनात्मक है।

ये हिंदुत्व के अभिमानी समाज-सुधारक तथा मराठी के गद्यकार रहे है।

गोविंद कवीची कविता *(म० कृ०)*

इस काव्य-संग्रह के लेखक श्री गोविंद त्र्यंबक दरेकर हैं। यह संग्रह 1930 में प्रकाशित हुआ था।

ये राष्ट्रीय काव्यधारा के लब्धप्रतिष्ठ कवि हैं। मेले व तमाशे के लिए गीत-रचना कर इन्होंने अपार यश पाया था, पर इनके ये गीत आज उपलब्ध नहीं हैं। साहित्य की दृष्टि से भी इनका महत्व नहीं। सावरकर आदि क्रांतिकारियों के साहचर्य से इनके विचारों में परिवर्तन आया था। इन्होंने पारतंत्र्य का तिरस्कार कर, स्वतंत्रता की माँग करने वाले उद्‌बोधक गीत लिखे जो प्रस्तुत संग्रह में संगृहीत है।

'रणावीण स्वातंत्र्य कोणा मिळाले' गीत महाराष्ट्र के प्रत्येक युवक की जिह्वा पर था। 'श्रीकृष्ण जन्मोत्सव', 'भारत-प्रशस्ति', 'मुरली' आदि दीर्घ कविताएँ हैं तथा 'सुंदर मी होणार', 'टिळकांची भूपाळी' आदि संक्षिप्त पर भावोत्कट रचनाएँ हैं।

ये स्वतंत्रता के कवि हैं। इनकी राष्ट्रीय कविताएँ प्रत्यक्षानुभव पर आश्रित हैं। गोविंद कवि स्वयं पंगु थे, परंतु राष्ट्र-निर्माण-कार्य करने की इनमें तीव्र उमंग थी। अतः इन्होंने कविताएँ लिखकर ही राष्ट्र-सेवा की।

इनका काव्यक्षेत्र सीमित और एकांगी है पर इनकी राष्ट्रीय कविताएँ उत्कृष्ट हैं। ये स्वातंत्र्य देवता के निष्ठावान आराधक रहे है। ओजस्वी गीतों के रचयिता के रूप में ये प्रसिद्ध हैं।

गोविंद ठक्कुर *(सं० ले०)* [समय—1450-1500 ई०]

'काव्यप्रकाश' (दे०) के टीकाकार गोविंद ठक्कुर मिथिला-निवासी थे। इनके पिता का नाम केशव तथा माता का नाम सोनोदेवी था। इनके छोटे भाई कवि श्रीहर्ष थे (जो नैषधकार से भिन्न हैं)। अनुमान है कि अपनी टीका की रचना उन्होंने पंद्रहवीं शती के अंतिम चरण में की होगी।

'काव्यप्रकाश' (दे०) पर गोविंद ठक्कुर की टीका का नाम 'प्रदीप' है। इसका पूरा नाम 'काव्यप्रकाशप्रदीप' है जिसे 'काव्यप्रदीप' भी कहा जाता है। यह टीका अत्यंत विद्वत्तापूर्ण है। इस टीका पर वैद्यनाथ तत्सत् और नागोजी भट्ट (दे०, नागेश) ने क्रमशः 'प्रभा' और 'उद्योत' नामक टीकाएँ लिखी हैं। गोविंद ठक्कुर ने 'काव्यप्रकाश' में उद्धृत उदाहरणों पर 'उदाहरण-दीपिका' नामक एक और टीका लिखी है जिसे पूर्वोक्त वृहत् टीका (प्रदीप) का पूरक या परिशिष्ट समझना चाहिए। 'उदाहरण दीपिका' टीका पर भी वैद्यनाथ तत्सत् ने 'उदाहरण चंद्रिका' नामक टीका लिखी है।

गोविंददास *(बँ० ले०)* [समय—अनुमानतः 1537-1613 ई०]

इनका पैतृक निवासस्थान मुर्शिदाबाद जिले में तेलिया बुधिर नामक स्थान था। इनके पिता का नाम चिरंजीव सेन एवं माता का नाम सुनंदा था। ये रामचंद्र कविराज के छोटे भाई थे। अल्पायु में पिता का देहांत हो जाने के कारण इनके मातामह दामोदर सेन ने श्रीखंड में इनका पालन पोषण किया था। वे श्रीखंड के प्रधान पंडित, धनी एवं प्रभावशाली व्यक्ति थे। प्रारंभिक काल में मातामह के कारण शक्ति के उपासक थे परंतु बाद में श्रीनिवास आचार्य के प्रभाव से वैष्णव धर्म में दीक्षित हो गए थे। जीव गोस्वामी (दे०) ने इन्हें 'कवींद्र' कहकर संबोधित किया है।

ये उत्तर-चैतन्य युग के श्रेष्ठ पदकर्ताओं में से हैं। विद्यापति (दे०) की धारा का अनुसरण कर इन्होंने अलंकारपूर्ण पद-रचना की है। 'भक्तिरसामृतसिंधु' (दे०) एवं 'उज्ज्वलनीलमणि' (दे०) से इनके पद प्रभावित हैं। इनके पदों की भाषा विशुद्ध ब्रजबुलि है। संस्कृत भाषा एवं साहित्य पर इनका असाधारण अधिकार था। ये पंडित और विदग्ध कवि हैं। इनके गीतों में भावगांभीर्य, अलंकार एवं ध्वनि-प्राचुर्य तथा समास-बाहुल्य पाया जाता है। अपूर्व वाणी-झंकार, आवेगों के अनुसार सूक्ष्म भावों की व्यंजना तथा गीतों में अमृत-वर्षा में विद्यापति के अतिरिक्त अन्य कवि इनके समक्ष नहीं टिक सकते। छंद में इन्होंने जो वैचित्र्य एवं दक्षता प्रदर्शित की है वह बँगला काव्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

ये असाधारण जनप्रिय कवि थे। कतिपय विद्वानों का अनुमान है कि ब्रजबुलि के विहारी कवि गोविंददास तथा बँगाली कवि गोविंददास दो व्यक्ति थे जिसका कोई प्रमाण एवं साक्ष्य नहीं मिलता।

गोविंददास *(हिं० ले०)* [जन्म—1896 ई०, मृत्यु—1974 ई०]

इनका जन्म मध्य प्रदेश के जबलपुर नगर के एक सपन्न, धर्मप्राण परिवार मे हुआ था। इन्होंने घर पर ही अँग्रेज़ी, सस्कृत और हिंदी का अध्ययन किया। आरभ मे हिंदी उपन्यासकार देवकीनदन खत्री की रचनाओ से बहुत प्रभावित हुए। वल्लभ सप्रदाय के उत्सवो, पारसी नाटक, रामलीला आदि मे भी इनकी बडी रुचि थी। इसी रुचि के कारण ये नाट्य लेखन की ओर प्रवृत्त हुए तथा इन्होंने 1917 ई० मे 'विश्वप्रेम' नाटक लिखा। तब से लेकर अतिम समय तक ये निरतर नाट्य साहित्य की श्रीवृद्धि करते रहे। सख्यात्मक दृष्टि से तो सभवत हिंदी का कोई भी नाटककार इनकी समता नही कर सकता। 'कर्तव्य', 'विकास', 'नवरस', 'शशिगुप्त' आदि इनके उल्लेखनीय नाटक हैं तथा 'सप्तरश्मि', 'चतुष्पथ', 'एकादशी' आदि प्रतिनिधि एकाकी सग्रह। साहित्य-स्रष्टा होने के साथ-साथ ये एक कर्मठ राष्ट्रीय नेता भी थे। इनके नाटको पर गाधीवादी विचारधारा का प्रभत प्रभाव परिलक्षित होता है। इन्होंने अपनी कृतियो मे लगभग सभी नाट्य शैलियो का सफलता पूर्वक प्रयोग किया है तथा एकपात्री एकाकी नाटको की रचना करने मे यह अपना सानी नही रखते। नाट्य रचना के अतिरिक्त इन्होने कविता, यात्रावृत आदि अन्य साहित्य-विधाओ को भी समृद्ध किया है किंतु इनका मुख्य प्रदेय नाट्य रचना के क्षेत्र मे ही है।

गोविंदन्, एम० *(मल० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

ये मलयाळम साहित्य के विविध क्षेत्रो मे प्रतिष्ठा-प्राप्त साहित्यकार हैं। सुप्रसिद्ध साम्यवादी दार्शनिक एम० एन० राय के ये सहयोगी रहे। सरकारी नौकरी से त्याग पत्र देकर य साहित्य-सेवा कर रहे हैं। ये 'समीक्षा' मासिक का सपादन भी कर रहे है। ये अँग्रेज़ी मे भी लिखत हैं।

'राणियुटे पट्टी' (कहानी-सग्रह), 'नी मनुष्यने कोल्लरुतु' (नाटक), 'मेनका' (काव्य), आदि इनकी सर्जनात्मक कृतियाँ हैं। इनके समालोचनात्मक और राजनीतिक विचारो के अनेक सकलन प्रकाशित हुए हैं।

य कहानी के नवोत्थान-काल के कहानीकारा तथा कविता की नई पीढ़ी के उद्घाटको मे हैं। नये कवियो के प्रोत्साहन और पथ प्रदर्शन म भी इनका योगदान महत्वपूण है।

गोविंदन् कुट्टि *(मल० पा०)*

यह एम० टी० वासुदेवन (दे०) नायर के लोकप्रिय सामाजिक उपन्यास 'असुरवित्तु' (दे०) का प्रमुख पात्र है। मध्यवर्ग का यह युवक अपने धनी रिश्तदारो के कुचक्रो के फलस्वरूप एक गर्भवती से अनजाने ही विवाह कर लेता है। प्रतिशोध के रूप मे यह इस्लाम धर्म स्वीकार करता है, परतु इसके इस धर्म-परिवर्तन से फायदा उठाने वाले साम्प्रदायिकतावादियो से तग आकर यह विचित्र मानसिक स्थिति मे आ जाता है। लोग इसे चोर कहना शुरू करते हैं। आखिर जब गाँव मे हैज़ा फैल जाता है तो मृतको को दफनाने के लिए यही आगे आता है।

इस पात्र के चरित्र-चित्रण मे लेखक ने समाज के ठेकेदारो के कुकर्मों और अत्याचारो से पीडित मनुष्यता को प्रस्तुत किया है। साथ ही कष्टो के निरतर सहन से भी न बुझने वाले मानवीय गुणो की अतर्धारा के अस्तित्व पर भी उन्होने प्रकाश डाला है। सामूहिक घृणा का पात्र रहकर भी आखिर प्रत्येक के लिए इसकी सहायता अनिवार्य हो जाती है।

गोविंद पै, एम० *(क० ले०)* [जन्म—1883 ई०, मृत्यु—1963 ई०]

गोविंद पै का जन्म दक्षिण कन्नड के मजेश्वर मे हुआ था। मद्रास विश्वविद्यालय से इन्होने उच्च शिक्षा पाई। मद्रास सरकार ने इन्हे 'राजकवि' की उपाधि से विभूषित किया था। ये आधुनिक कन्नड कविता के प्रथम श्रेणी के कवि हैं। 'गिळिविंडु' नामक ग्रथ मे इनकी फुटकल कविताएँ सगृहीत हैं। प्राचीन कन्नड, सस्कृत, ग्रीक, जर्मन, अँग्रेज़ी, बँगला आदि दर्जनो भाषाओ पर इनका अधिकार था। इन्होने कन्नड साहित्य की प्राचीनता आदि पर गभीर गवेषणात्मक लेख लिखे हैं। *कन्नडिगरताये* 'मिचुळिळ', 'बकु वेड' आदि इनकी प्रसिद्ध कविताएँ है। ससार के महापुरुषो के जीवन के निरूपण म इन्हे अद्भुत सफलता मिली है। ईसा मसीह की मृत्यु का चित्रण करने वाला 'गोलगोथा' (दे०) तथा बुद्ध के निर्वाण का परिचय देने वाली 'वैशाखी' इनके दो महाकाव्य-खड है। दोनो मुक्तछद म हैं। इनके अतिरिक्त इन्होने बगाल के कुछ काव्यो का भी सफल अनुवाद प्रस्तुत किया है। 'उमरखैयाम' इनकी दीर्घ कविता है। य सफल नाटककार भी हैं। 'हेब्बेरळु' एकलव्य पर लिखा इनका अनूठा नाटक है। इनके अति-

रिक्त इन्होंने कुछ निबंध भी लिखे हैं जिनमें 'बरहगारन हणेयबरह' (लेखक का ललाट-लेख) उल्लेखनीय है। 'गोम्मट-जिनस्तुति' इनकी एक और सशक्त कृति है जिसमें गोम्मटेश्वर की कथा है। इनकी कृतियों में इनके प्रगाढ़ इतिहास-ज्ञान तथा भाषा-प्रौढ़ता का परिचय मिलता है। इनकी कविता ओजोगुण-प्रधान है। 'कन्नडिगरतायि' आदि में प्रसाद गुण मिलता है। 1950 ई० में ये बंबई में संपन्न कन्नड साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष बनाए गए थे। ये कन्नड के धीमंत साहित्यकारों में से हैं।

गोविंदप्रभुचरित्र *(म० कृ०)*

इसकी रचना महिम भट्ट ने 1288 ई० के आस-पास की थी। श्री गोविंद प्रभु चक्रधर जी के गुरु थे। लेखक ने इनसे संबद्ध सैकड़ों आख्यायिकाएँ, लीलाएँ गाँव-गाँव घूमकर एकत्रित की थीं। अतः विदर्भ के अनेक स्थलों और ग्रामों का इसमें उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ का दूसरा नाम 'ऋद्धपुरचरित्र' भी है। इस चरित्र-ग्रंथ का दो दृष्टियों से विशेष महत्व है— इसमें एक ओर प्राचीन मराठी गद्य तथा भाषा के स्वरूप के दर्शन होते हैं और दूसरी ओर तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों की झलक मिलती है। महानुभाव पंथ के अनुयायी इसका बड़ी श्रद्धा से पारायण करते हैं।

गोविंद सिंह, गुरु *(हिं०, पं० ले०)* [जन्म—1666 ई०; मृत्यु—1708 ई०]

गुरु गोविंदसिंह सिखों के दसवें गुरु थे। गुरु नानकदेव (दे०) द्वारा प्रवर्तित मार्ग को सैनिक संगठन में परिणत कर उसे 'खालसा' का स्वरूप प्रदान करने के लिए ये विशेष रूप से प्रख्यात हैं। गुरु गोविंदसिंह का जन्म पटना में हुआ था। उस समय इनके पिता (गुरु तेगबहादुर) और माता (गूजरी) पूर्वी भारत की यात्रा पर थे।

गुरु गोविंदसिंह के व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू अभी तक पूरी तरह मूल्यांकित नहीं हुआ है—वह है उनका भाषाविद् और कवि-रूप। ये अनेक भाषाओं के विद्वान थे। इन्होंने अपनी मातृभाषा (पंजाबी) तथा तत्कालीन राजभाषा (फ़ारसी) में तो थोड़ी ही काव्य-रचना की है, इनका अधिकांश काव्य परिमार्जित ब्रजभाषा में है। गुरु गोविंदसिंह की सभी रचनाओं का संग्रह जिस ग्रंथ में है उसे 'दशम ग्रंथ' (दे०) कहा जाता है। इसके मुद्रित संस्करण के 1428 पृष्ठों में से 1350 पृष्ठों से अधिक की रचनाएँ ब्रज में हैं।

गुरु गोविंदसिंह की कविता के दो मुख्य स्वर हैं—एक है भक्ति-भाव और दूसरा है वीर-भाव। वस्तुतः इनकी भक्ति-भावना भी इनकी वीर-भावना की सहचरी है; इसलिए इनके संपूर्ण काव्य में भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति के लिए जिन इष्टवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है उनमें 'काल' सबसे प्रमुख है और 'केवल काल ही करतार' विश्वास की पुष्टि इनकी रचनाओं में सर्वत्र व्याप्त है। ईश्वर के काल-रूप की परिकल्पना इनके युग की माँग थी। विदेशी शासन से आक्रांत जनता में गुरु गोविंदसिंह नव-जीवन और जागरण का मंत्र फूंकना और उसे 'धर्मयुद्ध' के लिए तैयार करना चाहते थे। भागवत् के दशम स्कंध का भाषानुवाद करते हुए उन्होंने कहा भी है—

दशम कथा भागौत की भाषा करी बनाइ।
अउर बासना नाहि प्रभु धरमजुद्ध को चाइ॥

गुरु गोविंदसिंह की सभी रचनाओं को स्थूल रूप से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(1) स्वयं-प्रेरित रचनाएँ—'जापु' (दे०), 'अकाल स्तुति', स्फुट पद और अधूरी आत्मकथा—'विचित्र नाटक', (2) प्राचीन आख्यानों से प्रेरित—'चंडी-चरित' (ब्रज) (दे०) और 'चौबीस अवतार' (दे०), 'रुद्र और ब्रह्मा के अवतार', 'ज्ञान प्रबोध', (3) 'शस्त्रनाममाला', (4) 'चरित्रोपाख्यान' (दे०)।

गोविन हाडु *(क० कृ०)*

यह कर्णाटक का सर्वाधिक लोककंठकूजित लोक-गीत है। कालिंग नामक एक ग्वाला था; उसके पास बहुत सी गायें थीं। उनमें एक थी पुण्यकोटि। एक दिन वह घास चरने गई। घास की खोज में वह थोड़ी पहाड़ी की ओर चली तो वहाँ अर्बुद नामक एक व्याघ्र दीख पड़ा। वह इस पर झपटा तो पुण्यकोटि ने कहा कि मेरा इकलौता बछड़ा है, उससे कहकर, उसे दूध पिलाकर आ जाऊँगी। थोड़ा समय दें। बाघ ने अविश्वास प्रकट किया तो उसने कसम खाई। उसकी बातों से आश्वस्त हो कर बाघ ने उसे छोड़ दिया। पुण्यकोटि अपने घर लौटी। उसने अपने बछड़े से कहा कि उसे व्याघ्र के पास जाना है, क्योंकि उसने वचन दिया है और वह उसे अंतिम बार देखने के लिए आई है। तब बछड़े ने कहा—माई, तुम काहे को जाकर मर रही हो! मत जाओ। तब गाय ने कहा—मैं अपने वचन से विमुख नहीं हो सकती। सत्य ही हमारे माँ-बाप है, सत्य ही बंधु-बांध

हैं, सत्य वचन से चूके तो अच्युत हरि रुष्ट होगे। बछडे ने पुण्यकोटि को रोकने के बहुत प्रयास किए किंतु पुण्यकोटि नही रुकी। अत मे वह सबसे विदा लेकर बाघ के पास गई। बाघ उसकी सत्यनिष्ठा पर बहुत ही प्रसन्न हुआ।

इस प्रकार सत्यनिष्ठा की महिमा से मडित यह कहानी कर्णाटक मे आबाल-वृद्ध सबके कठ मे प्रतिष्ठित है। इससे बढकर धर्मोपदेश, दर्शन और क्या हो सकता है? पुण्यकोटि कर्णाटक सस्कृति की मर्म है। मकर सक्राति के दिन आज भी ग्वाल-बाल इसे गाते हैं। इसका छद कन्नड का अपना छद है। अज्ञात कवि के इस अमर गीत मे हमारी सस्कृति का अमृतकुभ निहित है।

गोष्ठी *(प० प्र०)*

गोष्ठी पजाबी साहित्य के पुराने वार्तिक (गद्य) साहित्य का महत्वपूर्ण अग है। योगियो, मुसलमान फकीरो एव सिद्धो से गुरु नानकदेव (दे०) की आध्यात्मिक चर्चाएँ ही गोष्ठी-साहित्य के रूप मे प्रख्यात है। इन गोष्ठियो मे आध्यात्मिक विषयो के विवेचन का स्वर प्रधान है। गुरु नानकदेव के गोष्ठी-साहित्य मे गुरु नानकदेव की (1) 'अजिते रधावा नाल गोष्ठी, (2) 'कलियुग नाल गोष्ठी, (3) 'राजा जनक नाल गोष्ठी', (4) निरजन नाल गोष्ठी एव (5) 'कारू नाल गोष्ठी' प्रसिद्ध हैं। मुख्यत जन्म-साखियो, गोष्ठिया एव टीकाओ के माध्यम से ही पजाबी-गद्य का विकास हुआ है। मेहरबान नामक लेखक द्वारा रची 'जन्मसाखी' मे एक सौ से अधिक गोष्ठियाँ सकलित है। इन गोष्ठियो मे आदि ग्रथ (दे०) मे सकलित सत कवियो के जीवन-चरित अकित है। बाबा लाल द्वारा लिखित 'दारा शिकोह दी गोष्ठी' एव 'सिद्ध गोष्ठी' (दे०) काफी प्रसिद्ध हैं। इनकी भाषा शुद्ध पजाबी की अपेक्षा सधुक्कडी है और उस पर फारसी शब्दावली का प्रभाव भी दिखाई देता है।

गोस्वामी, किशोरीलाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1865 ई०, मृत्यु—1932 ई०]

इनका जन्म काशी मे हुआ था और शिक्षा-दीक्षा भी वही पर हुई थी। इनके नाना गोस्वामी कृष्ण चैतन्य भारतेंदु (दे०) हरिश्चद्र के साहित्य-गुरु थे। अतएव भारतेंदु मडल के साहित्यकारो से इनका सबध सहज ही हो गया था। इसी सबध के फलस्वरूप इनके मन मे भी साहित्य-सृजन का अकुर प्रस्फुटित हुआ था। इन्होंने केवल उपन्यास-लेखन को ही अपना क्षेत्र बनाया था तथा न केवल साठ से अधिक उपन्यास लिखे थे अपितु 'उपन्यास' नामक एक मासिक पत्र भी निकाला था। 'त्रिवेणी', 'प्रेममयी', 'तारा', 'चपला व नव्य समाज चरित्र', 'कटे मूड की दो-दो बातें या तिलस्मी शीशमहल', 'लखनऊ की कब्र या शाही महलसरा' आदि इनके कतिपय प्रमुख उपन्यास हैं। इनके उपन्यासो का मुख्य विषय प्रेम-मनोविज्ञान है जिसके फलस्वरूप इनके अधिकाश उपन्यास सम-विषम प्रेम के विविध रूपो की चहारदीवारी के भीतर घूमते रहते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास *(हिं० कृ०)*

गोस्वामी तुलसीदास (दे०) पर यह आचार्य रामचद्र शुक्ल (दे०) की आलोचनात्मक कृति है। 'तुलसी ग्रथावली' की भूमिका के रूप मे इसका आविर्भाव हो चुका था, किंतु 1923 ई० मे यह अलग पुस्तक के रूप मे छपी। तब इसमे गोस्वामी जी का जीवन-चरित भी था। 1933 ई० मे इसका जो सशोधित सस्करण निकला, उसमे जीवन खड को छोड दिया गया। तदनतर 1935, 1942, 1946, 1948 और 1951 ई० म इसके सस्करण काशी नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) से प्रकाशित हुए। सप्तम सस्करण मे तुलसीदास पर जिन विषयो की चर्चा हुई, वे है भक्ति-पद्धति, प्रकृति और स्वभाव, लोकधर्म, धर्म और जातीयता का समन्वय मगलाशा, लोकनीति और मर्यादावाद, शील-साधना और भक्ति, ज्ञान और भक्ति, काव्य-पद्धति, भावुकता, शील-निरूपण और चरित्र-चित्रण, बाह्य दृश्य-चित्रण, अलकार-विधान उक्ति वैचित्र्य, भाषाधिकार, कुछ खटकने वाली बातें, मानस की धर्म-भूमि, हिंदी साहित्य मे गोस्वामी जी का स्थान। या तो गोस्वामी जी पर प्राचीन काल से लिखा जाता रहा है, परतु आधुनिक युग मे नवीन पद्धति की आलोचनाओ मे इसका महत्व है।

गोस्वामी त्रैलोक्य *(अ० ले०)* [जन्म—1906 ई०, जन्म-स्थान—नलबारी]

इनकी शिक्षा एम० ए०, बी० एल० तक हुई थी। ये कामरूप जिले के नलबारी डिग्री कालेज के पूर्व-अध्यक्ष हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—कहानी · 'अरुणा' (1948), 'मरीचिका' (1948), 'शिशिर जन्म' (1957), उपन्यास · 'जिया मानहु' (1954)। आलोचना 'साहित्य आलोचना',

प्रथम खंड (1950), 'संपूर्ण' (1961), 'आधुनिक गल्प-साहित्य (1965)।

ये अपनी कहानियों में गाँव के यथार्थ मानव के सुख-दुःख एवं गुण-दोष का चित्रण करते हैं। ये समाज-सचेतन लेखक हैं, पतित नर-नारी एवं विधवाओं के प्रति इनकी सहानुभूति है। इनकी कहानियों में व्यर्थ का आडंबर और वाक्-चातुर्य नहीं है। इन्होंने कम शब्दों का प्रयोग करते हुए प्रांजल शैली में रस-विचार और साहित्य का मौलिक विश्लेषण किया है। 'आधुनिक गल्प-साहित्य' में इन्होंने असमीया गल्प के साथ हिंदी, बँगला आदि भाषाओं की कहानियों के विकास का भी अध्ययन किया है। ये कथाकार और आलोचक हैं।

गोस्वामी, प्रफुल्लदत्त *(अ० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

इनकी शिक्षा एम० ए०, डी० फिल० तक हुई है। ये अँग्रेज़ी-साहित्य से अधिक संबद्ध हैं। गोस्वामी जी अध्यापन-कार्य करते हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास :** 'केंचा पातर कँपनि' (1952), आलोचना: 'साहित्य आरु जीवन' (1955), 'असमीया जन-साहित्य' (1943); **संपादन :** 'शंकर देव का रुक्मिणीहरण नाट' (1948); **लोक-गीत-संग्रह :** 'बार माहर तेर गीत' (1962); **भ्रमण-साहित्य :** 'बिलातत सात माह' (1958), **कहानी :** 'निते नव रूप तार' (साठोत्तरी प्रकाशन) **कविता :** 'फिरिङती'।

इनके उपन्यास में संवाद और चरित्र-चित्रण तो आकर्षक हैं पर रोचकता कम है। कविताओं में प्रतीकों के माध्यम से अँग्रेज़ों के प्रति घृणा अभिव्यक्त की गई है। इनका गद्य प्रवाहमय एवं सामान्यतः तर्कसंगत होता है। ये वर्तमान युग के अच्छे गद्य लेखक हैं।

गोस्वामी, मामनि *(अ० ले०)* [जन्म—1944 ई०; जन्म-स्थान—गौहाटी]

अत्यंत कुलीन वंश की। पिता विद्वान् एवं सत्राधिकार। आरंभिक शिक्षा शिलांग में। गौहाटी विश्वविद्यालय से 1964 में असमीया में एम० ए०। असमीया रामायण और मानस (दे० रामचरितमानस) पर शोध कार्य। 1970 से दिल्ली विश्वविद्यालय के असमीया विभाग में प्राध्यापिका हैं। इनका सत्य नाम इंदिरा गोस्वामी है। 100 से अधिक कहानियाँ प्रकाशित। 'असम बातरि' में दो उपन्यास धारावाहिक प्रकाशित। प्रकाशित कथा-संग्रह (1) 'सिनाकी मान', (2) 'कइना', (3) 'रितिकि-रिनिकि देखेछि जमुना'।

ये भोगे यथार्थ पर लिखती हैं। भावुक अधिक हैं।

गोस्वामी, राधाचरण *(हि० ले०)* [जन्म—1859 ई०; मृत्यु—1925 ई०]

ये ब्रजवासी थे तथा साहित्य-स्रष्टा होने के साथ-साथ संस्कृत के प्रकांड पंडित, समाजसुधारक एवं देशप्रेमी भी थे। इन्होंने खड़ी बोली का विरोध करते हुए ब्रजभाषा का समर्थन किया था। ये भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र से विशेषरूपेण प्रभावित थे और इसी के फलस्वरूप इन्होंने वृंदावन से 'भारतेंदु' पत्रिका भी निकाली थी। साहित्य-सृजन की दृष्टि से ये नाट्य-रचना के क्षेत्र में प्रवृत्त हुए थे। 'सुदामा नाटक', 'सती चंद्रावली', 'अमरसिंह राठौर', 'तन मन धन श्री गोसाईं जी के अर्पण' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

गोस्वामी, शरत्चंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1945 ई०; जन्म-स्थान—नलबारी]

इन्होंने कलकत्ता से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। ये असम उपत्यका के स्कूल इंसपेक्टर नियुक्त हुए थे। असम साहित्य-सभा के ये अन्यतम प्रतिस्थापक थे। इनकी मृत्यु दिल्ली में हुई थी।

प्रकाशित रचनाएँ—उपन्यास : 'पानिपथ' (1930), **कहानी-संग्रह :** 'गल्पांजलि' (1914), 'मइना' (1920); 'बाजीगर' (दे०) (1930), 'परिदर्शन' (मरणोपरांत प्रकाशन) (1956)।

'पानिपथ' इनका ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें बाबर और संग्रामसिंह के युद्ध का वर्णन है। यह पूर्णतः ऐतिहासिक उपन्यास न होकर इतिहास पर आधारित काल्पनिक उपन्यास है।

इन्होंने कहानी के क्षेत्र को नया मोड़ यह दिया कि श्री लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०) की लोक-कथाशैली छोड़कर एकदम पाश्चात्य शैली अपनाई। इन्होंने समाज-व्याप्त शोषण, पीड़ा आदि का चित्रण किया है। ये नियतिवादी थे और सारा दोष नियति पर छोड़ देते थे।

असमीया कहानी के क्षेत्र में इनका विशेष योगदान माना जाता है।

गोस्वामी, हेमचद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1872 ई, मृत्यु—1928 ई०]

जन्मस्थान गोलाघाट ढेकियाल ।

इन्होंने कलकत्ता से बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। शिक्षक, डिप्टी कलेक्टर एव एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर पदो पर इन्होंने कार्य किया था। इन्होने कई पत्र-पत्रिकाओ का सपादन भी किया था। ये जोनाकी, कामरूप अनुसधान-समिति, असम साहित्य-सभा आदि सस्थाओ से सबद्ध रहे थे। इनकी प्रथम कविता 'असमबधु' 1907 ई० मे प्रकाशित हुई थी। गोस्वामी जी असमीया के प्रथम सॉनेट-लेखक थे।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य 'फुलर चाकि', सपादन 'कथागीता' (1918), 'पुरणि असम बुरजी' (1922), 'असमीया साहित्यर चानेकि' (1929), 'हेमकोश'-प्रकाशन (1940)।

इन्होने रोमाटिक कविताएँ लिखी हैं। सॉनेट छद मे इनकी प्रथम कविता 'प्रियतमार चिठि' है। 'पूवा' कविता मे सयत कल्पना, गाभीर्य और आशावाद है। बाद मे ये पुरातत्व एव प्राचीन पोथियो की खोज मे व्यस्त हो गए थे, अतएव कविता अधिक नही लिख सके।

इनके अनेक खोजपूर्ण निबध पत्रिकाओ मे बिखरे पडे हैं। इन्होने साहित्य, इतिहास, शिलालिपि और ताम्रलिपि तथा सस्कृत पोथियो पर लिखा था अथवा उनका उद्धार किया था। हेमचद्र बरुवा (दे०) की मृत्यु के पश्चात् उनके अधूरे 'हेमकोश' का इन्होने प्रकाशन कराया था। इन्होने 'असमीया साहित्यर चानेकि' नामक ग्रथ मे असमीया साहित्य के विभिन्न कालो की चुनी हुई कविताओ का सप्रथम सग्रह किया था। असमीया साहित्य मे प्रथम सॉनेट-लेखक, रोमाटिक कविता के प्रवर्तक एव विद्वान सपादक के रूप मे इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

गोहाञिबरुवा, पद्मनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1871 ई, मृत्यु—1946 ई०]

जन्म-स्थान उत्तर लखीमपुर का नौकोंडी गाँव। ये कोहिमा हाई स्कूल और तजपुर नामल स्कूल के हेडमास्टर रह थे। 1933 ई० में साहित्य सभा द्वारा इनका अभिनदन किया गया था।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य 'जुरणि' (1900), 'लीला (1901), 'फुलर चानेकि' (1941), उपन्यास 'भानुमती' (1892), 'लाहरी' (1892); ऐतिहासिक नाटक 'जयमती' (1900), 'गदाधरसिंह' (1907), 'साधनी' (1911), 'लाचित बरफुकन' (1915), प्रहसन 'गाओ बुढ़ा' (दे०) (1897), 'भूत ने भ्रम' (दे०) (1924), पौराणिक नाटक 'बाणरजा' (दे०) (1932)।

इनके 'जुरणि' और 'फुलर चानेकि' सग्रहो मे चतुर्दशपदी और सोलहपदी कविताएँ है। 'लीला' पत्नी पर लिखा शोकगीत है। ये प्रथम ऐतिहासिक नाटककार है। लबे कवित्वमय सवाद और स्वगतोक्तियो के कारण नाटक मचोपयोगी कम हैं। प्रहसनो मे अधविश्वास और रूढ़िवादिता पर व्यग्य है। इनके उपन्यास 'भानुमती' मे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे आधुनिक समस्या का चित्रण है। इन्हें असमीया का प्रथम ऐतिहासिक नाटककार और प्रथम उपन्यासकार माना जाता है।

गौडपादाचार्य *(स० ले०)* [समय—800 ई० के लगभग]

गौडपादाचार्य शकराचार्य (दे०) के परमगुरु थे। म० म० विधुशेखर भट्टाचार्य ने गौडपाद का समय 500 ई० माना है। गौडपाद के बारे मे यही पता चलता है कि वे नर्मदा के किनारे रहते थे। गौडपादाचार्य का प्रमुख ग्रथ 'गौडपादकारिका' है। इसी को 'माडूक्यकारिका' भी कहते है। यह चार प्रकरणो मे विभक्त है। 'गौडपादकारिका' पर शकराचार्य का भाष्य है।

यो तो, गौडपादाचार्य अद्वैतवादी ही थे, परतु उनका प्रमुख सिद्धात अजातवाद है। अजातवाद सिद्धात के अनुसार न किसी जीव की उत्पत्ति होती है और न कोई जीव की उत्पत्ति का कारण है। वस्तुत परमार्थ सत्य रूप ब्रह्म मे कुछ उत्पन्न नही होता। इस प्रकार परमार्थ दृष्टि से जीव अजात ही है। इसीलिए इस सिद्धात का नाम अजातवाद पडा है।

गौडपादाचार्य ने जगत् के मिथ्यात्व का प्रतिपादन स्वप्न-सिद्धात के आधार पर किया है। इनका कहना है कि जिस प्रकार जाग्रत अवस्था मे स्वप्नावस्था के समस्त भाव मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार परमार्थावस्था म जाग्रत के समस्त अनुभव मिथ्या सिद्ध होते हैं।

गौडपादाचार्य के दार्शनिक सिद्धात म परवर्ती आचार्य शकर के अद्वैतवाद को पुष्ट पृष्ठभूमि मिलती है। यह उल्लेखनीय है कि जहाँ शकराचार्य ने माया को व्यावहारिक दृष्टि से सत् कहा है वहाँ आचार्य गौडपाद न माया को स्वप्न सदृश कहा है।

गौतम *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—250 ई०]

डा० सतीशचंद्र विद्याभूषण ने गौतम का स्थिति-काल 550 ई० माना है। उद्योतकर तथा वात्स्यायन (दे०) ने इन्हें अक्षपाद नाम से पुकारा है। किंतु श्रीहर्ष (दे०) के समय में इनका गौतम या गोतम नाम प्रख्यात हो चला था। 'न्यायसूत्र' गौतम का अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। 'न्यायसूत्र' में कुल पाँच अध्याय तथा प्रत्येक अध्याय में दो-दो आह्निक हैं। 'न्यायसूत्र' में 533 सूत्र हैं।

गौतम ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द —ये चार प्रमाण माने हैं। इसके अतिरिक्त मन, आत्मा, इंद्रिय, शरीर, अर्थ, बुद्धि, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख तथा अपवर्ग—ये प्रमेय हैं। गौतम पुनर्जन्म एवं परलोक भावना में भी विश्वास रखते थे। मृत्यु के पश्चात् आत्मा लोकांतर में जाता है, यह सिद्धांत गौतम ने स्वीकार किया है। कर्मफल के संबंध में गौतम का विचार है कि कर्मों का फल तुरंत नहीं, अपितु कालांतर में होता है। कर्मों के आधार पर ही धर्म एवं अधर्म का निर्माण होता है। मुक्ति के संबंध में गौतम का मौलिक विचार है कि दुःखाभाव ही मुक्ति है। गौतम का कथन है कि मिथ्याज्ञान के नाश से राग, द्वेष और मोह का, रागद्वेषादि के नाश से धर्म-अधर्म का, धर्माधर्म के नाश से जन्म-ग्रहण का और जन्म-ग्रहण की समस्या से छुटकारा पाने पर समस्त दुःखों का नाश हो जाता है। इस दुःख का नाश होने पर ही अपवर्ग या मुक्ति की प्राप्ति होती है। गौतम बुद्धिवादी न्यायशास्त्र के प्रतिपादक आचार्य कहे जा सकते हैं।

गौरना *(ते० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती]

ये पद्मनायक राजाओं के राचकोंड नामक राज्य में रहते थे। कवि सार्वभौम श्रीनाथुडु (दे०) और गौरना दोनों समसामयिक थे। ये संस्कृत और तेलुगु के बड़े विद्वान तथा सरस कवि थे, ये बड़े शिवभक्त थे। और श्रीशैल के मल्लिकार्जुन इनके उपास्य देवता थे। इनकी रचनाएँ हैं: 'नवनाथचरित्र', 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' (दे०), और 'लक्षण-दीपिका'। इनमें प्रथम दोनों रचनाएँ 'द्विपदा' नामक देशी छंद में लिखे गए काव्य हैं। नौ सिद्ध पुरुषों की कहानियों से युक्त 'नवनाथचरित्र' मल्लिकार्जुन को समर्पित किया गया है। इन्होंने संस्कृत के स्कंद तथा मार्कंडेय पुराणों से हरिश्चंद्र की कथा लेकर एक स्वतंत्र काव्य की रचना की थी। तेलुगु में हरिश्चंद्र-कथा को स्वतंत्र काव्य के रूप में लिखने वालों में ये ही प्रथम थे। इनकी रचना की सरसता से आकृष्ट होकर बाद में शंकर कवि तथा शरभ कवि ने इसी कथा को लेकर पद्यकाव्य लिखे थे। हरिश्चंद्र की कथा अत्यंत प्रचलित है। पर गौरना का प्रस्तुत काव्य कुछ अपनी ही विशेषता रखने वाला है। इसकी भाषा मुहावरेदार, सरस तथा कोमल है। वर्णन सहज और सुंदर हैं, रस-पोषण तथा चरित्र-चित्रण मार्मिक हैं और छंद तथा शैली मधुर और प्रवाहयुक्त हैं। उचित मात्रा में कहीं-कहीं हास्य रस का भी सन्निवेश पाया जाता है। 'नवनाथचरित्र' में वंचक पुरोहित की कथा और 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' में कलहकंठी तथा कालकौशिक की कथा इसके अच्छे उदाहरण हैं। करुण रस के चित्रण में ये भवभूति (दे०) से समानता रखते हैं। प्रधानतः इन्हें आंध्र-साहित्य के श्रेष्ठ कवियों के अंतर्गत स्थान देने वाला काव्य 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' ही है। तेलुगु में जैसे पद्यबद्ध, गद्यबद्ध तथा चम्पूबद्ध साहित्य है वैसे ही 'द्विपदा' नामक देशी छंद में लिखा गया विस्तृत साहित्य भी एक स्वतंत्र शाखा के रूप में विकसित होता आया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि तेलुगु-साहित्य के अंतर्गत हरिश्चंद्र की कथा की अथवा द्विपद-साहित्य की प्रशस्ति के लिए गौरना और उनका 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' आधारस्तंभ रहे है।

गौरा *(हि० पा०)*

यह अज्ञेय (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'नदी के द्वीप' (दे०) की उल्लेखनीय चरित्र-सृष्टि है। आभूषणों से रहित अपने शरीर पर बहुत छोटे-छोटे बूटों वाली चिकन सफेद साड़ी को पहने हुए तपस्विनी-सी प्रतीत होने वाली, ईर्ष्या-द्वेष से सर्वथा परे, अपने प्रेमी के प्रति मनसा-वाचा-कर्मणा समर्पण की भावना से सर्वथा परिपूर्ण, अत्यंत आशा-वादी, मेधावी, विनीत, सहिष्णु, स्वाधीनचिंतिका, सहज स्नेह, अनुराग एवं सद्गुणों की साकार प्रतिमा गौरा के माध्यम से उपन्यासकार ने एक ऐसे चरित्र का निर्माण किया है जो न केवल अपने पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करने में पूर्णतः सफल है अपितु उपन्यास के अन्य दो प्रमुख पात्रों—रेखा तथा भुवन (दे०) के चरित्र को उभारने में भी पूर्णतः सहायक है।

ग्रामगीतिका *(बँ० प्र०)*

बँगला लोक साहित्य के अंतर्गत 'ग्रामगीतिका' का महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रामगीतिका से तात्पर्य है आख्यान-

मूलक लोकगीति जिसका स्थान निरक्षर समाज के मौखिक साहित्य के रूप में है। मध्ययुग मे रचित बँगला ग्राम-गीतिका का जो सग्रह अभी तक प्रकाशित हुआ है उसके तीन भाग हैं—नाथ-गीतिका, मैमनसिह-गीतिका (दे० पूर्व-बग-गीतिका) तथा पूर्व-बग-गीतिका (दे०)। नाथ-गीतिका मे मूल रूप स नाथ गुरुओ की अलौकिक साधना-भजन की कहानी के साथ-साथ तरुण राजपुत्र गोपीचद्र के सन्यास लेने की कहानी वर्णित है। प्रथमोक्त विषय को लेकर जो गीतिकाएँ अभी तक प्रकाशित हुई है वे 'गोरक्ष विजय' (दे०), 'मीन चेतन' नाम से प्रसिद्ध है एव दूसरे विषय को लेकर जो गीतिकाएँ प्रकाशित हुई है वे 'माणिकचद्र राजार गान', 'गोविंदचद्रेर गीत', 'मयनामतीर गान' (दे०), 'गोविंदचद्रेर गान', 'गोपीचादेर सन्यास' आदि नाम से परिचित हैं। नाथ-गीतिकाओ मे सामयिक समाज का चित्र स्पष्ट नही है। इसके चरित्र गोरक्षनाथ, मीननाथ, शिव, चडी, योगिनी, मगला-कमला आदि यथार्थ जगत् के वासी प्रतीत नही होते। नाथ-गीतिका मे वर्णित सामाजिक शुचि एव सयम का उल्लेख अन्यान्य गीतिकाओ मे नही है यद्यपि मैमनसिह या पूर्वबग-गीतिका की समाज-धर्म-निरपेक्षता नाथ-गीतिका मे नही है। नाथ-गीतिका एक विशिष्ट सप्रदाय के उच्च नैतिक आदर्श की अभिव्यक्ति है। नाथ-गीतिकाओ का प्रचार उत्तर-बग मे ही अधिक हुआ है जहाँ यह 'पुगीयात्रा' के नाम से प्रसिद्ध है। रगपुर जिले के मुसलमान किसानो के मुँह से इसका गायन सुनकर ग्रियर्सन ने 1878 ई० मे 'माणिकचद्र राजार गान' के नाम से 'एशियाटिक सोसाइटी पत्रिका' मे इसे प्रकाशित किया था। बाद मे इसके और भी बहुत-से पाठ सगृहीत हुए।

ग्रामायण (क० कृ०)

यह रावबहादुर कुलकर्णी जी का लिखा एक बृहत् यथार्थवादी उपन्यास है। गोदान (दे०) के बाद कदाचित् भारतीय साहित्य मे यही एक उपन्यास है जिसमे ग्रामीणो के शोषण का नग्न एव करुण चित्रण है। इस उपन्यास का कोई नायक नही है। गाँव 'पादळ्ळी' ही इसका नायक है। सामतवाद के चगुल से अभी गाँव मुक्त नही थे। यह गाँव किसी जमीदार के अधीन था। जमीदार के अधिकारी, सरकारी अमले, फौजदार, कुलकर्णी आदि गाँव का शोषण करते हैं तो मठाधिपति पड्दय्या एक अबोध कन्या चिमणा का कौमार्य भग करता है। उसके गुडो द्वारा गाँव के भले मानस सताए जाते है। उनसे बदला लेने का प्रयत्न होता है। अत मे अमानुषिक हत्या, फौजदारी, अकाल आदि के चगुल मे फँसकर नदन सा गाँव उजड जाता है। गाँव के नाश मे बाहरी लोगो की अपेक्षा गाँव के लोगो का हाथ ही विशेष है। दुष्ट व्यक्तियों एव शक्तियो के कारण हमारी ग्रामीण सस्कृति किस तरह ह्रासोन्मुख हो रही है, धर्म घर जोडने के बदले कैसे तोड रहा है—इन सब का अतीव मार्मिक चित्रण इसमे है। लेखक अत मे प्रेमचद (दे०) की भाँति एक आदर्श की झाँकी प्रस्तुत करता है। समाधान ऊपर से थोपा लगता है किंतु उपन्यास की विस्तृत पटभूमि मे वह बहुत गौण है। उच्चवर्गीय, मध्य एव निम्न-मध्यवर्गीय ग्रामीण जनता के बडे यथार्थ प्रभावशाली चित्र इसमे उपलब्ध है।

ग्राम्या (हिं० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1940 ई०]

इस रचना मे प्रगतिवादी (दे० प्रगतिवाद) पत (दे०) ने ग्राम-जीवन का चित्रण बौद्धिक सहानुभूति के साथ किया है। दृश्याकन सश्लिष्ट और व्यक्ति-चित्र प्रखर है, किंतु बौद्धिक विवेचना के कारण 'द्रष्टा और दृश्य के बीच एक विशेष अतर सदैव बना रहा है।' फिर भी यहाँ हार्दिकता का नितात अभाव नही है। कुछ प्रकृति-चित्र तो पूर्वकालीन रचनाओ की तुलना मे भी निश्चय ही समृद्ध है। शैली की व्यग्यात्मकता और भाषा की सरल एव सशक्त गति कृतिकार की नवीन कलात्मक उपलब्धियाँ है।

ग्रियर्सन [जन्म—1851 ई०, मृत्यु—1941 ई०]

पूरा नाम जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन। जन्म आयरलैंड। 1871 म इडियन सिविल सर्विस की परीक्षा पास की तथा बगाल मे नियुक्त हुए। 1882 से 87 तक इन्होने अपना 'सेवन ग्रामर्स ऑफ द डायलेक्ट्स एड सब-डायलेक्ट्स ऑफ द बिहारी लैंग्वेज' प्रकाशित किया। इसके बाद ही इन्होने भारत की सभी भाषाओ, उपभाषाओ, बोलिया तथा उप-बोलियो का सर्वेक्षण प्रारभ किया जो 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इडिया' नाम से 11 बडी-बडी जिल्दो मे (1894-1927) प्रकाशित हुआ। आज तक किसी भी देश की सारी भाषाओं पर इस प्रकार का कार्य नही हुआ है। इसमे भाषाओ और बोलियो आदि का सक्षिप्त व्याकरण देने के साथ-साथ प्रत्येक के नमूने तथा मानचित्र भी दिए गए हैं। भारतीय भाषाओ और बोलियो आदि के सीमा-निर्धारण का भी प्रथम प्रयास इसी मे है, जो कुछ अपवादो को छोडकर आज तक भी प्रामाणिक हैं। इतना विस्तृत कार्य कोई

एक व्यक्ति नहीं कर सकता था, अतः ग्रियर्सन को इसमें अन्य अनेक लोगों की सहायता लेनी पड़ी। इसी कारण इसमें यत्र-तत्र कुछ कमियाँ भी हैं किंतु इनसे इस ऐतिहासिक ग्रंथ का महत्व कम नहीं होता। संस्कृत, प्राकृत तथा आधुनिक भाषाओं एवं लिपियों पर आपने लगभग 200 खोजपूर्ण तथा वैज्ञानिक लेख प्रकाशित किए थे। आपकी भाषाविज्ञान-विषयक अन्य मुख्य कृतियाँ हैं : 'बिहारी का तुलनात्मक कोश' (हार्नले के साथ 1889, अपूर्ण) 'पिशाच लैंग्वेज' (1906), 'ए मैन्युअल ऑफ़ कश्मीरी लैंग्वेज' (1911), 'कश्मीरी कोश' (4 खंडों में 1916-32)।

ग्वाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1792 ई०; मृत्यु—1867 ई०]

ये वृन्दावन-निवासी सेवाराम बंदीजन के पुत्र थे। इनके ग्रंथ 'रसिकानंद' में इनके पिता का नाम मुरलीधर राव मिलता है। ये फक्कड़ स्वभाव के थे। ग्वाल के छोटे-बड़े सब मिलाकर 50 ग्रंथ बतलाए जाते हैं, किंतु 'रसरंग', 'अलंकार भ्रम भंजन', 'कविदर्पण', 'प्रस्तार प्रकाश', 'रसिकानंद' तथा 'कृष्णाष्टक' मुख्य है। 'रसरंग' के दोहों में रस-रसांगों के लक्षण तथा 'अलंकार भ्रम भंजन' में अलंकारों का विवेचन है। 'प्रस्तारप्रकाश' में पिंगल-निरूपण तथा 'कविदर्पण' रीति ग्रंथ है। इनकी कविता में भोगविलास की वस्तुओं के परिगणन, षट्ऋतु-वर्णन तथा शृंगारोद्दीपक ऋतु-वर्णन से एक प्रकार की अस्वाभाविकता आ गई है। रसरसांग-विवेचन में इन्हें देव (दे०) और पद्माकर (दे०) की कोटि में नहीं बिठाया जा सकता, पर षट्ऋतु-वर्णन में सेनापति (दे०) के अलावा ये अपना सानी नहीं रखते है।

घत्ता *(अप० पारि०)*

घत्ता अपभ्रंश का प्रिय छंद है। इस छंद का प्रयोग कड़वक (दे०) के आरंभ में और अंत में किया जाता है। आरंभ में प्रयुक्त छंद ध्रुवा, ध्रुवक, 'घत्ता' कहलाता है। कड़वक की समाप्ति सूचित करने वाले या दो कड़वकों के विभेदक छंद को घत्ता कहते है। घत्ता में 31 मात्राएँ होती हैं। 10 और 8 पर यति होती है। द्विपदी, चतुष्पदी और षट्पदी रूप में इसका प्रयोग किया गया है। हेमचंद्र (दे०) ने 31 मात्राओं के इस छंद का नाम छड्डणिआ (छर्दनिका) दिया है। अपभ्रंश-काव्य में कड़वक के अंत में घत्ता का प्रयोग अतीव आवश्यक है। घत्ता का प्रयोग दोहा छंद के समान दो पंक्तियों में होता है। घत्ता मात्रिक अर्धसम छंद है, इसके विषम चरणों में 18 और सम चरणों में 13 मात्राएँ होती हैं। लक्षणकार घत्ता के स्वरूप के विषय में बहुत स्पष्ट नहीं हैं। वस्तुतः कड़वक के अंत में प्रयुक्त होने वाले किसी भी छंद को घत्ता कहा जा सकता है।

अपभ्रंश की कड़वक के अंत में घत्ता देने की परंपरा हिंदी-साहित्य में भी दृष्टिगत होती है। वहाँ कुछ चौपाइयों के बाद दोहों का प्रयोग हुआ है। तुलसी के 'रामचरितमानस' (दे०) और जायसी के 'पद्मावत' (दे०) में यह परंपरा सुरक्षित रही है।

घनादा (घनादार गल्प) *(बँ० पा०)*

प्रेमेंद्र मित्र के घनादा केवल किशोर-चित्त में नहीं, बड़ों के निकट भी सकौतुक विस्मय के आधार हैं। परशुराम (दे०) के बिरिंचिबाबा (दे०) की तरह इनकी उम्र का भी कोई ठीक-ठिकाना नहीं। इसीलिए कदाचित् इस ग्रंथमाला के अन्यतम ग्रंथ का सार्थक नामकरण हुआ है 'घनादा चतुर्मुख'। उम्र की जिस प्रकार कोई सीमा नही उसी प्रकार इनके अनुभवों का भांडार भी अलीबाबा के रत्नों से भरा हुआ गोपन गुफा से कम रहस्यपूर्ण नहीं। अलीबाबा के आश्चर्यजनक दिये का सृष्टिकर्ता शायद घनादा के नसवार के डिब्बे में बंद है। तेरह नंबर बनमाली नस्कर लेन की तीसरी मंजिल के कोठे में घनादा का एकाधिपत्य एवं उनके कथामृत-पान की छद्म व्याकुलता की आधार चारमूर्ति बंगाली पाठक के लिए बहुत ही परिचित एवं प्रियजन है। दर्शन, साहित्य, शिल्प, विज्ञान, भूगोल, प्राणितत्त्व आदि सब विषयों में ही घनादा चतुर्मुख है। उसकी गप्प-कहानियों की सारहीनता पग-पग पर स्पष्ट होती है, फिर भी उसके श्रोता अनजान बनकर उसके सरस-कौतुक का उपभोग करते हैं एवं पाठक-समाज भी उस रस-भोग में पीछे नहीं रहता।

घनानंद *(हिं० ले०)* [जन्म—1673 ई०; मृत्यु—1739 ई०]

ये रीतिकालीन कवि हैं। इनके जीवन-चरित्र का व्यवस्थित वर्णन कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। ग्रियर्सन (दे०) ने इन्हें जाति का कायस्थ और बहादुरशाह का मीरमुंशी बतलाया है। नादिरशाह के आक्रमण के समय

जब सखीभाव (दे० सखी सप्रदाय) से ये कृष्ण की उपासना कर रहे थे, तब नादिरशाह के सिपाहियो ने तलवार से इनकी हत्या कर दी थी। इनके काव्य मे प्रेम के उच्छ्वसित निर्बाध भावो की अभिव्यक्ति बडी सहज और विमल है। ये मुहम्मदशाह के दरबार मे सुजान नामक नर्तकी (वेश्या) मे अनुरक्त थे। दरबार से निष्कासन मिलने पर ये वृन्दावन आए थे और भक्ति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर इन्होने सुजान का रूपातरण कृष्ण मे कर डाला था। इन्होने सुजान का अध्यात्मीकरण करके उसमे भगवान के नाना रूपो के दर्शन किए है। इनके नाम से 'सुजान हित' (दे०), 'वियोगवेलि', 'विरह लीला', 'इश्कलता', 'यमुनायश', 'प्रीतिपावस' तथा 'प्रेमपत्रिका आदि ग्रथ कहे जाते हैं।

भारतेंदु (दे०), रत्नाकर (दे०), काशी प्रसाद जायसवाल, शभुप्रसाद बहुगुणा आदि ने इनकी रचनाओ के सग्रह प्रकाशित कराए है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'घनानद' नामक ग्रथावली मे इनके छोटे-बडे लगभग तीन दर्जन ग्रथो का प्रामाणिक सग्रह प्रकाशित कराया है। शुक्ल जी (दे० शुक्ल, रामचद्र) ने कवि को रोमाटिक धारा का श्रेष्ठ कवि माना है। इनकी व्रजभाषा सजीव, लाक्षणिकता तथा व्यजना-प्रचुर एव व्याकरण सम्मत है। कवि ध्वन्यात्मक शब्दो के प्रयोग मे पटु है। उदारतावादी नीति के आधार पर कवि ने फारसी साहित्य से भी भाव ग्रहण किया है। रीतिमुक्त (दे० रीतिमुक्त काव्य) कवियो मे घनानद का स्थान विवाद से परे है और इसका श्रेय इनकी उन्मुक्त भावाभिव्यक्ति तथा सहज, सरल, व्यजनापूर्ण भाषा को दिया जा सकता है।

घाटे, विट्ठलराव दत्तात्रेय *(म०ले०)* [जन्म—1895 ई०]

ये पूना स्कूल मे अध्यापक एव शिक्षणाधिकारी रहे हैं।

वि० द० घाटे 'रविकिरणमडळ' के सदस्य कवि हैं। माधवराव पटवर्धन तथा घाटे ने मिलकर 'मधुमाधव' नामक काव्य सग्रह प्रकाशित कराया था। 'रविकिरणमडळ' द्वारा प्रकाशित की गई 'किरण शलाका' पत्रिका मे भी घाटे की कविताएँ थी। इनकी कुल मिलाकर लगभग 25 कविताएँ है। इनमे से कुछ प्रेमगीत हैं और कुछ राष्ट्राभिमानी कविताएँ हैं जिनमे 'आई' 'मातृभूमि विषयक' कविता स्मरणीय हैं।

इन्होने ललित निबध-लेखन के द्वारा गद्य-लेखन मे भी ख्याति प्राप्त की है। 'पाडरे हिरवी मने' नामक इनका लघु निबध-सग्रह है, और 'काही म्हातारे व एक म्हातारी' रेखाचित्रो का सकलन है जिसमे जीवन मे सपर्क मे आए व्यक्तियो के शब्द चित्र हैं।

घुडिराज *(म० पा०)*

रामगणेश गडकरी (दे०) के सगीत 'भावबधन' नाटक का यह पात्र आदर्श पिता का प्रतिनिधित्व करता है। अपनी सहज एव उदार प्रवृत्ति के कारण वह अपने प्रति किए गए षड्यत्रो से सर्वथा अनभिज्ञ रहता है। अपने प्रगतिशील विचारो के कारण ही घनश्याम द्वारा अपनी पुत्री मालती के विवाह का प्रस्ताव सुनकर यह मालती की सम्मति लेना आवश्यक समझता है। घनश्याम और इसका भतीजा दोनो इसकी सरलता का अनुचित लाभ उठाते हैं तो भी इसकी सहज मानवीय भावनाएँ बाधित नही हो पाई है। तभी तो यह घनश्याम के षड्यत्रो का भडाफोड होने पर उसे पुलिस से बचा लेता है। कष्टमय जीवन ने इसके व्यक्तित्व को अत्यधिक भास्वर बना दिया है। मधुर-तिक्त जीवनानुभव एव वात्सल्यपूर्ण पितृहृदय की उदारता के कारण घुडिराज का चरित्र अपनी सहजता एव सरलता के कारण मराठी नाट्य-जगत की अनूठी परिकल्पना है।

घुम्मण, कपूर सिह *(प० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

आधुनिक पजाबी नाट्य लेखन और रगमचीय गतिविधि को नई दिशा देने वालो मे कपूर सिंह घुम्मण का नाम सर्वोपरि है। सश्लिष्ट, तनावपूर्ण कथानक तथा तीक्ष्ण चुभती भाषा मे सवाद योजना घुम्मण के नाटको के दो सशक्त पक्ष है। घुम्मण ने नाटक लिखे हैं, रगमच पर उनका निर्देशन किया है और प्रत्येक नाटक म स्वय किसी-न-किसी प्रमुख पात्र का अभिनय किया है। आधुनिक पश्चिमी रगमच की नई प्रवृत्तियो से वे प्रभावित है। इनका प्रभाव उनके नाटको मे जगह-जगह पर मिल जाता है। कुछ प्रसिद्ध नाटको के नाम इस प्रकार हैं 'पुतलीघर', 'अतीत दे परछावें', 'वुझारत', 'वदगली', 'अनहोनी'।

आजकल आप भाषा विभाग पजाब मे सहायक निदेशक के पद पर कार्य कर रहे हैं।

घूरणीया पृथिवीर बेंका पथ *(अ० कृ०)* [रचना-काल अज्ञात; लेखक : उमाकात शर्मा (दे०)]

इस कहानी-संग्रह की कहानियों में दार्शनिक चिंतन अधिक है जो साहित्यिक सौंदर्य को मलिन कर देता है। स्थान-स्थान पर यौन-आकर्षण के चित्र हैं, किंतु ये पात्रों के संस्कारों को पराभूत नहीं कर सके हैं। इनके नारी-चरित्र युक्तिवादी हैं। भाषा और भावों के क्षेत्र में संयम है।

घोष, अश्विनी कुमार *(उ० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1962 ई०]

अश्विनी कुमार घोष उड़िया नाट्य साहित्य के द्वितीय उत्थान (1920-45 ई०) के अग्रगण्य नाटककार हैं। प्रसिद्ध नाटककार रामशंकर राय (दे०) इनके नाना थे। रामशंकर के अग्रज श्री गौरीशंकर भी लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक थे। अपने पिता अक्षय कुमार की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण इनका अधिकतर समय माता सुंदरमणि के साथ ननिहाल में बीता था। फलतः, दोनों नानाओं की नाट्य एवं साहित्यिक प्रतिभा का प्रभाव इनके बाल-मन पर पड़ना स्वाभाविक था। रेवेन्सा कालेज, कटक से एफ़० ए० पास करने के बाद इन्होंने कलकत्ता विश्व-विद्यालय में बी० ए० में नाम लिखा लिया था, पर पिता की आर्थिक स्थिति के कारण इन्हें अध्ययन स्थगित कर जीवन-संग्राम में प्रवेश करना पड़ा। अँग्रेज़ी शिक्षा तथा बाद में अँग्रेजी साहित्य का गंभीर अध्ययन करने के कारण पश्चिमी नाट्य शैली का सुस्पष्ट प्रभाव इनके नाटकों में दिखाई पड़ता है।

इनका प्रथम नाटक 'भीष्म' 1911 ई० में प्रकाशित हुआ था। इनके नाटकों को पौराणिक, ऐति-हासिक, भक्ति-रसात्मक तथा सामाजिक, इन चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। घोष ने आधुनिक उड़िया रंगमंच पर गद्य को सुप्रतिष्ठित किया। 'कोणार्क' इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इन्होंने छोटे-बड़े तीस नाटकों की रचना की है। इनका 'आर्ट थियेटर्स' से घनिष्ठ संबंध था। फलतः इनके नाटकों में रंगमचीय कला मिलती है, यद्यपि वह इनके नाटकों की सीमा भी बन गई है।

घोष, संतोषकुमार *(बँ० ले०)*

इस युग के बिल्कुल आधुनिक कथाकार संतोष-कुमार घोष आधुनिक जीवन की नाना जटिलताओं के अन्वेषी हैं। निर्मोह वैज्ञानिक या निरासक्त दार्शनिक की तरह इन्होंने मध्यवित्त-समाज के मर्म एवं अस्तित्व का व्यवच्छेद किया है। इनके प्रारंभिक उपन्यासों में बहुचर्चित 'किनु गोयालार गलि' से इन्हें जनप्रियता का स्थायी आसन प्राप्त हुआ था। इनके आधुनिक उपन्यासों में 'मुखेर रेखा', 'जलदाओ', 'त्रिनयन', 'स्वयंनायक', 'शेष नमस्कार' आदि उल्लेखनीय हैं। इन उपन्यासों में इनका स्वकीय शिल्प-विचार, जीवन-दृष्टि, अस्तित्व का अन्वेषण तथा शिल्प-रीति का अभिनवत्व आकर्षक है। 'स्वयंनायक' में आज के विभ्रांत, अस्थिर मनुष्य का आत्मोद्घाटन हुआ है। शून्यता एवं अंधकार, व्यर्थता एवं निराशा में भी जीवन के प्रति लेखक का प्रेम है।

संतोष बाबू की कहानियों में समाज-सचेतनता है। निर्मम हृदय-विश्लेषण के द्वारा इन्होंने समाज-जिज्ञासा के नाना पहलुओं का उद्घाटन किया है। 'शोक', 'एकमेव', 'शनि', 'कानाकड़ि', 'धात्री', 'दिनपंजि' आदि कहानियों में तीक्ष्ण लेखनी की सहायता से समाज के पर्तों को उघाड़ कर रख दिया गया है। तीक्ष्ण पर्यवेक्षण-शक्ति, समाज-सचेतन सहानुभूति, यथार्थ जीवन की दुःख-व्यथा, मूल्यबोध की परिवर्तनशीलता, निरसंगता की वेदना को इन्होंने अपनी कहानियों में अनन्यसाधारण ढंग से रूपायित किया है। इनकी कहानियों में आत्मजीवनी का स्वर ही प्रधान है।

घोष, सुबोध *(बँ० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

सार्थक कहानीकार के रूप में आधुनिक बँगला साहित्य-क्षेत्र में सुबोध घोष का नाम विशेष उल्लेख के योग्य है। जीवन के नाना वैचित्र्यों को अद्भुत चारुत्व के साथ एवं कलात्मक ढंग से प्रकट कर इन्होंने अपने स्वा-तंत्र्य एवं वैशिष्ट्य को प्रकट किया है। इनके कहानी-संग्रहों में 'फसिल' (1944), 'परशुरामेर कुठार' (1942), 'शुक्लाभिसार' (1954), 'जतुगृह', 'मनभ्रमर', 'थिर-बिजुरी' आदि में कल्पना की मौलिकता, आलोचना का विस्मयकर वैचित्र्य एवं निर्मोह यथार्थ-दृष्टि पाठकों को अभिभूत कर लेती है। इनकी पहली कहानी 'अयांत्रिक' (1940) एवं दूसरी कहानी 'फसिल' बँगला साहित्य की विस्मयकारी सृष्टि है। इसके उपरांत 'सुंदरम', 'जतुगृह', 'गरल अमिय भेल' आदि कहानियों की रचना कर इन्होंने अम्लान ख्याति प्राप्त की है। वैपरीत्यों का स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष संघर्ष इनकी कहानियों की मौलिक विशेषता है।

'फसिल' कहानी मे श्रेणी द्वद्व, 'सुदरम्' मे नैतिकता के साथ उच्छृखलता का द्वद्व, 'अयात्रिक' मे यात्रिकता के साथ मानवीय बोध का द्वद्व, 'गरल अमिय भेल' मे ढलते यौवन के साथ यौन-आकाक्षा का द्वद्व प्रकट हुआ है—यद्यपि इस द्वद्व-सघर्ष के माध्यम से इन्होंने जहाँ निर्मोह यथार्थ दृष्टि का परिचय दिया है वहाँ कही कही रोमानी मनोभाव की भी व्यजना हुई है।

सुबोध घोष के प्रारभिक उपन्यास 'तिलाजलि' (1944) एव 'गगोत्री' (1947) मे राजनीतिक आदोलन एव हृदय-द्वद्व का समन्वय किया गया है जिसमे इनकी सार्थकता बहुत अधिक प्रकट नही हुई है। परतु परवर्ती उपन्यास 'त्रियामा' एक साकेतिक रूपकाश्रयी सफल उपन्यास है। इनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'शतकिया' (1958) में रूपक-प्रयोग एव उन्नततर कला-रीति का सुदर निदर्शन मिलता है। पात्रो के स्वरूप के उद्घाटक एव प्रकृति के निगूढ परिचय के वाहन के रूप मे रूपक का प्रयोग हुआ है। सुबोध घोष नि सदेह एक शक्तिशाली लेखक है।

चड्ड पुपा कृष्ण पिळ्ळा *(मल० ले०)* [जन्म—1911ई०, मृत्यु—1948 ई०]

मलयाळम के इस सर्वाधिक लोकप्रिय कवि का जीवन नैराश्य और आघातो का इतिहास है। इनके जीवन का प्रथम आघात इनके अतरग मित्र और उदीयमान युवा-कवि इटप्पळ्ळि राघवन् पिळ्ळा की आत्महत्या था। उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर भी इनको कभी कोई उचित नौकरी नही मिली। सैंतीस वर्ष की आयु मे राजयक्ष्मा से इनका देहात हो गया।

चड्डपुपा का प्रमुख काव्य 'रमणन्' (दे०) है। इटप्पाळ्ळि राघवन् पिळ्ळा (दे०) की दुरत प्रणय-कथा और आत्महत्या पर आधारित इस गोप शोक-गीति (pastoral elegy) ने अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की। 'यवनिका', 'सुधागदा', 'वत्सला', 'मोहिनी, 'पाटुन्न पिशाच आदि इनके अन्य खडकाव्य है। 'बाष्पाजली (दे०), 'रक्त-'पुष्पड्ड्ळ्', 'स्पदिक्कुन्न अस्थिमाडम', 'नीरुन्न तीच्चूळा, 'स्वररागसुधा' आदि मे इनके गीत सगृहीत हैं। 'कलित्तोपि' इनका उपन्यास है।

चड्डपुपा की कविता उनके सघर्षमय जीवन की अनुभूतियो का प्रतिबिब है। वे विषादात्मक प्रेमकाव्य के कवि हैं। इस छलनामय ससार मे अपने निष्कपट हृदय को ही वे अपनी पराजय का हेतु मानते हैं। समाज के अन्यायो और अत्याचारो के विरुद्ध उन्होने क्रातिकारी कविताएँ भी लिखी है और स्पष्ट शब्दो मे मार्क्सवाद का समर्थन किया है। परतु मलयाळम के प्रमुख प्रगतिवादी कवि होते हुए भी अपनी कविताओ की मूल प्रवृत्तियो के अतिम विश्लेषण मे वे भावुक स्वच्छदतावादी कवि ही माने जाते है और माने जाएँगे।

कविता की भाषा और शैली को भी उन्होने नया रूप दिया है। पुराने गीतात्मक द्रविड छदो के प्रयोग ने उनकी कविता को और लोकप्रिय बनाया है। कवित्रय द्वारा विकसित स्वच्छदतावाद को एक नूतन और अधिक सवेदनशील धरातल पर प्रतिष्ठित करने वाले चड्ड पुपा का युगप्रवर्तक स्वरूप इस तथ्य से सिद्ध है कि आने वाले कई वर्षों तक नए कवि उनकी शैली मे रचना करते रहे।

चडशासन *(क० पा०)*

यह कवि जन्न (दे०) 'अनन्तपुराण' (दे०) की प्रासगिक कथा का एक नायक है। वह अपने मित्र वसुषेण के घर उसका अतिथि बनकर जाता है। उसकी पत्नी सुनदा पर वह रीझ जाता है और उसे धोखे से हर ले जाता है। किंतु सुनदा परम साहसी है। वह इसकी ओर आँख उठाकर भी नही देखती। अत मे वह जादूगरी से उसके पति का कटा सिर लाकर उसे दिखाता है। उसे देखकर वह तुरत मर जाती है। किंतु चडशासन का मोह मौत से भी छूटता नही। वह उसके साथ अपने शरीर को जलवाकर सहगमन करता है। अपनी पत्नी की प्राप्ति के लिए सेना लेकर आया हुआ वसुषेण यह जानकर वैरागी हो जाता है। चडशासन अनुभयनिष्ठ रति का, धर्म-विरुद्ध प्रेम या काम का अत्यत दारुण चरित्र है। उसे केवल कामी कह कर ठुकराया नही जा सकता। उसका प्रेम सचमुच उत्कट है। काम की प्रचड शक्ति के सामने मनुष्य कितना कमजोर हो जाता है इसका दारुण चित्र यहाँ प्रस्तुत है। जन्न ने उसे 'विधि-विलास' कहा है। इस दृष्टि से वह विधि के हाथ मे फँसे एक कारुणिक नायक (tragic hero) के रूप म आता है। उसका यह चरित्र असामान्य मनोविज्ञान की वस्तु है। पूरे कन्नड साहित्य मे ऐसा दूसरा चरित्र दुर्लभ है।

चडालिका *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

बौद्ध जातक-कथा के अनगढ़ प्रसग को रवींद्र (दे० ठाकुर) ने मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत कर सफल

नाटकीय रूप प्रदान किया है। समाज द्वारा अपमानित तथा जाति द्वारा उपेक्षित चंडालिका का साधु आनंद के संसर्ग से एक तरह से पुनर्जन्म होता है। उसमें आत्म-हीनता की ग्रंथि दूर हो जाती है और संपूर्ण मानवीय भावना के साथ आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है। आनंद उसके हृदय-परिवर्तन से अपरिचित रहता है। चंडालिका आनंद को पाने के लोभ में माँ से सम्मोहन-शक्ति का प्रयोग करवाकर उसे बुला तो लेती है परंतु अपने सुधारक के निष्प्रभ तथा विकृत मुख को देखकर उसे अपनी स्वार्थ-वृत्ति पर ग्लानि होती है। इस प्रकार रवींद्र ने मानवीय चेतना की जागृति के अनुकूल-प्रतिकूल प्रभाव का मनो-विश्लेषण किया है। काव्यात्मकता अधिक होने के कारण इसका नाटकीय रूप प्रखर नहीं है।

चंडीचरण मुंशी *(बँ० ले०)*

फ़ोर्ट विलियम कालेज के बँगला पंडितों में चंडीचरण मुंशी का भी उल्लेख किया जाता है। जन्म-समय का पता नहीं चलता है परंतु उनका देहांत 1808 ई० में हुआ था।

इन्होंने कादिरबख्श की फ़ारसी रचना 'तुति-नामा' का बँगला अनुवाद 'तोता इतिहास' (1805) के नाम से किया। पुस्तक इतनी जनप्रिय हुई कि इसके 12 संस्करण प्रकाशित हुए। इनमें से कई संस्करण लंदन से प्रकाशित हुए। इन्होंने 'भगवद्गीता' का बँगला अनुवाद भी प्रकाशित किया।

इनकी रचना में आरंभ में फ़ारसी शब्दों का प्रभाव था परंतु बाद में संस्कृत का प्रभाव स्पष्ट होने लगा। इनका 'तोता इतिहास' सरल है एवं पुनराख्यान होने पर भी इसमें रोचकता है। इनकी भाषा में गति है और बँगला गद्य को सरल गति प्रदान करने में इनकी देन महत्वपूर्ण है, मगर साथ ही यह भी कहना पड़ता है कि भाषा की सहज शैली पर लेखक का अधिकार नहीं था।

चंडीचरित *(पं० कृ०)*

'दशम ग्रंथ' (दे०) में चंडी-विषयक तीन प्रबंध रचनाएँ हैं। इनमें दो रचनाओं की भाषा ब्रज और एक की पंजाबी है। हिंदी (ब्रज) रचनाएँ अपने आकार में पंजाबी रचना से बड़ी हैं। दोनों हिंदी-रचनाओं, 'चंडी-चरित' (उक्तिविलास) और 'चंडी-चरित' (द्वितीय) में क्रमश: 233 एवं 262 छंद हैं। ये रचनाएँ मार्कण्डेयपुराण में अध्याय 81 से 93 तक वर्णित 'देवी-माहात्म्य' का स्वतंत्र अनुवाद हैं।

'चंडी-चरित' (उक्तिविलास) कवित्त-सवैया छंदों में लिखी गई अलंकार-प्रधान रचना है। यह रचना आठ अध्यायों में विभाजित है और इसमें महिषासुर, शुंभ-निशुंभ, धूम्रलोचन, चंड और मुंड, रक्तबीज आदि दानवों से चंडी का युद्ध होता है और अंत में चंडी की विजय होती है। यह रचना उक्ति-वैचित्र्य का एक सुंदर उदाहरण है। 233 छंदों की इस रचना में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की संख्या 170-180 के लगभग है। सवैया इस रचना का प्रधान छंद है। कवि ने साधा-रणत: सवैये की प्रथम तीन पंक्तियों में एक दृश्य चित्रित किया है और चतुर्थ पंक्ति में सादृश्यमूलक अलंकार की सहायता से एक समानांतर दृश्य उपस्थित कर भाव को तीव्र किया है।

'चंडी-चरित' (द्वितीय) का कथाधार पहले 'चंडी-चरित' की भाँति ही है, परंतु उसकी काव्य-शैली सर्वथा भिन्न है। इस रचना में युद्ध की द्रुत, अतिद्रुत और अल्प-द्रुत गतियों को प्रस्तुत करने के लिए कवि ने छंद-वैविध्य और शीघ्र छंद-परिवर्तन का आश्रय लिया है। इस रचना में रसावल, भुजंगप्रयात, तोटक, कुलंक, बेलीबिद्रुम आदि 17 छंदों का प्रयोग हुआ है और 57 बार छंद-परिवर्तन किया गया है।

गुरु गोविंदसिंह (दे०)-रचित 'चंडी-चरित' यद्यपि दुर्गा सप्तशती पर आधारित है परंतु उसकी भावना सर्वथा भिन्न है। दुर्गा की स्तुति एवं दुर्गा सप्तशती के नियमित पठन एवं श्रवण से प्राप्त होने वाले माहात्म्य पर कवि का अधिक आग्रह नहीं है। वह इस बात को केवल यह कहकर समाप्त कर देता है—'जाहि नमित पढ़ै सुनिहै नर। सो निसचै करि ताहि दई है।।'

कवि द्वारा चंडी-चरित्रों की रचना का उद्देश्य भक्तों की संतुष्टि न होकर तत्कालीन परिस्थितियों में 'धर्मयुद्ध' के लिए सन्नद्ध हो रहे लोगों में वीर-भाव का उन्मेष करना था। इसलिए, कवि ने इस रचना में चंडी की अलौकिकता को यथाशक्ति बचाते हुए संपूर्ण वर्णन में तत्का-लीन परिस्थितियों का परिप्रेक्ष्य बनाए रखा है।

चंडीदास *(बँ० ले०)*

ये प्राचीन बँगला साहित्य के अत्यंत प्रसिद्ध

एव विवादास्पद कवि है। चडीदास, बडु चडीदास, द्विज चडीदास, दीन चडीदास आदि विभिन्न उपाधियो से अलकृत होने के कारण ये बँगला विद्वानो के लिए समस्या बने हुए हैं।

'श्रीकृष्ण-कीर्तन' (दे०) के रचयिता चडीदास वासली देवी के सेवक थे। *'श्रीकृष्ण-कीर्तन'* बँगला के प्राचीन ग्रथो मे से है किंतु उसके अनेक अश प्रक्षिप्त हैं तथा अनेक गीत सुरुचि का परिचय नही देते। *'श्रीकृष्ण-कीर्तन' नाट्यगीति-काव्य है। इसके तीन पात्र हैं—कृष्ण,* राधा और सखी (दूती)। विद्वानो के अनुसार इसको पुत्तलिका नृत्य के लिए निर्मित किया गया था। ग्रथ मे अनेक अश अश्लील हैं। अधिकाश ग्रथ पयार छद मे लिखा गया है। महाप्रभु चैतन्य ईश्वर-विरह से व्याकुल हो इनके पदो को सुनकर शाति-लाभ करते थे। ये पदकर्ता चडीदास 'श्रीकृष्ण-कीर्तन' के रचयिता से भिन्न हैं, यह कहना कठिन है। इनके पदो मे मोहिनी शक्ति है तथा बगाल के लोग गायत्री मत्र के समान इनके गीतो का पाठ करते हैं।

चडीदास के पदो मे प्रेम की विह्वलता, राधा का दु ख-निवेदन, कातर उक्तियाँ, अश्रुपात आदि प्रसगो का अनुपम वर्णन मिलता है। इनके अनेक पदो मे अलौकिक प्रेम का सकेत है जो लौकिक प्रेम मे मिल गया है तथा लौकिक प्रेम क्षण-क्षण पर अलौकिक प्रेम की ओर अग्रसर होता है। इनके पदो मे साहित्यिक सौंदर्य का आडबर नही है। पद अत्यत मर्मस्पर्शी है। इनकी वाणी सहज, सरल और सुदर है।

चडी दी वार (प० कृ०)

गुरु गोविंदसिंह (दे०) द्वारा रचित 'दशम ग्रथ' (दे०) मे 'चडी दी वार' एक वीररसपूर्ण लघु पजाबी कृति है। इस रचना मे पजाबी साहित्य के प्रसिद्ध काव्य रूप 'वार' (दे०) का प्रयोग किया गया है जिसे मुख्य रूप से किसी भी योद्धा के वीरतापूर्ण कृत्यो के वर्णन के लिए व्यवहार म लाया जाता है।

'चडी दी वार' मे कुल 55 छद हैं। इन छदो मे महिषासुर, शुभ-निशुभ, धूम्रलोचन, चड और मुड, रक्तबीज आदि दानवो से चडी के युद्ध का वर्णन है।

पजाबी साहित्य की यह प्रथम 'वार' है जिसकी नायिका एक स्त्री है। भगवती शक्ति-रूपा है और वह 'कालपुरुष' द्वारा दैत्यो का नाश करने के लिए उत्पन्न की गई है—

'तैंही दुरगा साजि कै, दैंता दा नासु कराइआ।'

[तुमने (कालपुरुष ने) दुर्गा की रचना करके दैत्यो का नाश करवाया।]

इसी के साथ ही 'कालपुरुष' देवताओ का अभिमान नष्ट करने के लिए दैत्यो का निर्माण करता है—

'अभिमान उतारन देवतिआ,
महिखासुर सुभ उपाइआ।'

गुरु गोविंदसिंह के ब्रजभाषा मे लिखे इस विषय के काव्यो (दे० 'चडी-चरित') और 'चडी दी वार' मे पूरी तरह कथा-साम्य है। ये सभी रचनाएँ 'मार्कण्डेय-पुराण' मे वर्णित 'माहात्म्य' पर आधारित है और इनका उद्देश्य सैनिको म वीरभाव जाग्रत करना था।

चडीमगल (बँ० कृ०)

'मनसामगल' (दे०) काव्य के उपरात 'चडीमगल' बगाल मे सर्वाधिक प्रचारित काव्य है। 'चडीमगल' के आदि कवि सभवत माणिक दत्त हैं। 'चडीमगल' काव्य के श्रेष्ठतम कवि मुकुदराम है, जो कविककण मुकुदराम चक्रवर्ती (दे०) के नाम से सर्वाधिक परिचित हैं।

'चडीमगल' काव्य के तीन खड है। पहला देव खड है जिसमे सृष्टितत्त्व आदि की वणना के उपरात इद्रपुत्र नीलाबर को मर्त्यलोक मे भेजा जाता है। द्वितीय खड म कालकेतु व्याध का उपाख्यान है एव समाप्ति खड मे धनपति सौदागर की कहानी वर्णित है। इस काव्य मे समसामयिक समाज का अप्रत्यक्ष इतिहास काव्य की शिल्प-*कला के साथ वर्णित है। 'चडीमगल' की ऐतिहासिकता के* सबध मे आलोचक आस्थावान हैं। वर्धमान जिले के मगलकोट, कोग्राम आदि स्थानो मे धनपति सौदागर एव उनके पुत्र श्रीमत की वासभूमि को सभी स्वीकार करत है।

'चडीमगल' के सर्वश्रेष्ठ कवि मुकुदराम है। मुकुदराम आनद के स्थान पर विरह के दक्ष कवि हैं। 1595 ई० मे उन्हाने इस काव्य की रचना की थी। कविकक्ण के काव्य मे यथार्थानुभूति एव मानवता-बोध का जो अपूर्व परिचय मिलता है, वह मध्ययुगीन बँगला काव्य मे विरल है। भारतचद (दे०) के अतिरिक्त और किसी भी कवि के साथ उनकी तुलना नही की जा सकती यद्यपि यथार्थानुभूति एव मानवता-बोध के क्षेत्र मे मुकुदराम अप्रतिद्वद्वी हैं। मुकुदराम ने कहानी-विन्यास एव चरित्राकन मे अपूर्व निपुणता का परिचय दिया है। मुकुदराम

का मुरारीशील, उसकी पत्नी 'वान्यानी' मांडुदत (दे०) आदि चरित्र सजीव हैं। बहुत-से आलोचक मुकुंदराम के काव्य को बँगला उपन्यास की पूर्वभूमिका के रूप में संवर्द्धित करते हैं। दुख के चित्रण में कवि दक्ष है परंतु अश्रुतीर्थ के प्रांत से आलोक-शिखा की ओर चलना ही उनका उद्देश्य है। 'चंडीमंगल' काव्य के रचयिताओं की संख्या लगभग 19 है परंतु मुकुंदराम की काव्य-प्रतिभा के सम्मुख सभी म्लान हैं।

चंडेमद्दळे (क० कृ०)

यह कन्नड की प्रयोगवादी काव्यधारा के धुरंधर कवि श्री गोपालकृष्ण अडिग (दे०) की प्रतिनिधि कृति है। यह अडिगजी के नव्यकाव्य (प्रयोगवादी काव्य) का प्रथम संग्रह है। इसमें 'हिमगिरिय कंदर', 'गोंदलपुर दीपावली' आदि लंबी कविताएँ हैं। काव्य-बिंबों से भरपूर इस कविता में जीवन की यथार्थता की मानसिक कुंठा की अत्यंत सजीव अभिव्यक्ति है। एक क्लर्क की मनःस्थिति, उसकी असहायता एवं निराशा आदि यहाँ अत्यंत नाटकीय ढंग से वर्णित हैं। वर्तमान जीवन के साथ पार्वती की पंचाग्नि-तपस्या, कामदहन आदि का संबंध जोड़कर जीव की असहायता की मार्मिक विकृति है, वैराग्य की आंतरिक पुकार का संकेत है 'हिमगिरि की कंदरा'। आंतरिक पुकार तथा दैहिक ताप का संघर्ष यहाँ नाटकीय ढंग से वर्णित है। अतीत एवं वर्तमान को एक साथ रखकर उनका साधर्म्य एवं तारतम्य दिखाने का प्रयास किया गया है। 'गोंदलपुर' या 'गडबडनगर' में कम्युनिस्ट, अथवा कोई सर्वाधिकारी राजनीतिक पद्धति हो, यदि वह समष्टि दृष्टि की घोषणा करते हुए व्यक्ति को कुचलने का प्रयास करेगी तो उसके परिणाम बहुत ही विकट होंगे—इसी तथ्य का प्रतिपादन है। इस काव्य के नायक के सिर को गोंदलासुर काटता है। इससे आसुरी वृत्ति के प्रभावाधिक्य का बोध होता है। व्यक्ति-स्वातंत्र्य तथा कलाकारों की वैयक्तिकता को निर्मूल करने वाला भयंकर सन्निवेश यहाँ चित्रित है। ये सभी कविताएँ नाटकीय स्वगतों से भरी हुई हैं। ये कुछ पात्रों की सृष्टि करती हैं। इन पात्रों में दो विरोधी भावनाओं का अथवा विचारों का द्वंद्व छिड़ा रहता है। इस संग्रह में स्वच्छंद छंद का अत्यंत सफल प्रयोग हुआ है। भाषा में भी कवि ने अपनी प्रयोगवादी दृष्टि का परिचय दिया है। इसमें अंग्रेजी, उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत आदि के शब्द प्रभूत मात्रा में आए हैं। अडिगजी की शैली में विडंबना की प्रधानता है। उनके बिंब उनकी बौद्धिकता के परिचायक हैं तो बौद्धिक अस्वस्थता एवं अस्थिरता के भी परिचायक बन सकते हैं। 'चंडेमद्दळे' कन्नड की एक क्रांतिकारी कृति है जिसने कन्नड साहित्य में नए आयाम खोल दिए हैं।

चंदनवाड़ी (पं० कृ०)

लाला धनीराम चातरिक (दे०) का यह कविता-संग्रह 1931 ई० में प्रकाशित हुआ था। कवि ने संगृहीत कविताओं को 10 भागों में बाँटा है जिनमें प्रमुख ये हैं: 'प्रार्थना', 'भक्ति', 'प्रेम बाण', 'राधा-संदेश', 'समाज', 'देशभक्ति', 'प्रकृति', 'साहित्य फुलवाड़ी' और 'फुटकर टोटके'। इससे लगता है कि चातरिक जी की कविता में विषयवस्तु की दृष्टि से पर्याप्त वैविध्य है। पहले और दूसरे भाग की कविताओं में जहाँ कवि के विनीत और मधुर स्वभाव का पता चलता है वहाँ तीसरे भाग की कविताओं में उनके हृदय की प्रेम-वेदना का, कृष्ण-राधा और गोपियों के प्रेम-प्रसंगों के माध्यम से, मार्मिक चित्रण हुआ है। 'राधा-संदेश' कविता में कवि ने विरह-विदग्ध हृदय की वेदना और टीस की बड़ी मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति की है। 'शकुंतला' की चिट्ठी' में भी प्रेम और व्यंग्य का अद्भुत सामंजस्य है। चौथे भाग में इन्होंने समाज की कुरीतियों और कुप्रथाओं पर जम कर प्रहार किया है।

चातरिक की इस संग्रह की कविताओं में कल्पना की रंगीनी और उड़ान बहुत कम है पर कहीं-कहीं इन्होंने कल्पना-शक्ति का अच्छा परिचय दिया है, जैसे 'हिमालय' नामक अपनी कविता में।

चंदबरदाई (हिं० ले०)

चंदबरदाई का जीवन-वृत्त संदेहास्पद है। ये संभवतः लाहौर-निवासी थे, और एक जनश्रुति के अनुसार दिल्ली के शासक पृथ्वीराज (दे०) चौहान (बारहवीं शती) और इनका जन्म तथा मरण एक ही स्थान पर तथा एक ही दिन हुआ था—

'इक ठाम उप्पजे इकयल मरण निध्रानं।
एक दीह ऊपन्न इक्क दीहँ समायकम॥'

किंतु अनेक अंतःसाक्ष्यों से यह भी ज्ञात होता है कि ये पृथ्वीराज से आयु में काफी बड़े थे। इनके पिता का नाम वेनराव अथवा मल्लराव था। इनके दस पुत्रों में एक था

नाम जल्हन था, जिसने इनके प्रसिद्ध महाकाव्य 'पृथ्वीराजरासो' (दे०) को इनकी आज्ञानुसार पूरा किया था—'पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप काज'। किंतु कुछ विद्वान चदबरदाई का अस्तित्व तक स्वीकार नहीं करते। प्रो० बूलर के अनुसार चदबरदाई नामक कोई कवि नहीं था, क्योंकि जयानक रचित 'पृथ्वीराज विजय' नामक सस्कृत-काव्य मे वर्णित पृथ्वीराज की राज्य सभा मे एक बदीजन पृथ्वीभट्ट का तो उल्लेख है, पर चद का नहीं है। इसके अतिरिक्त उक्त काव्य के निम्नोक्त पद्य से किसी 'चद्रराज' कवि का होना सिद्ध होता है, पर यह नाम चदबरदाई का सूचक प्रतीत नहीं होता—

तनयश्चन्द्रराजस्य चन्द्रराज इवाभवत्।
सग्रह य सुवृत्ताना सुवृत्तानामिव व्यधात्॥

म० म० गौरीशकर हीराचद ओझा (दे०) इसे 'चद्रक' कवि का सूचक बताते हैं, जिसका उल्लेख क्षेमेंद्र (दे०) कश्मीरी ने किया। पृथ्वीराजकालीन शिलालेखो मे भी चदबरदाई का कहीं उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार न तो नयनचद सूरि कृत 'हम्मीर महाकाव्य' मे वर्णित चौहान वश मे चद का उल्लेख है और न उनके 'रमामजरी' नाटक मे, जिसका नायक जयचद है, रासो या चद का उल्लेख है। किंतु इनके विपरीत म० म० हरप्रसाद शास्त्री आदि विद्वानो ने चद का तो अस्तित्व स्वीकार किया ही है, उसके वशधरो का पूरा वशवृक्ष भी दिया है। उक्त 'पृथ्वीराजरासो' को एक अप्रामाणिक ग्रथ माना जाता है क्योंकि शताब्दियो तक इसमे परिवर्तन-परिवर्द्धन होता रहा। इसमे वर्णित अधिकतर घटनाएँ भी इतिहास के प्रतिकूल सिद्ध होती हैं और सवत् भी इतिहास से मेल नहीं खाते। 'पृथ्वीराजरासो' हिंदी भाषा का सर्वप्रथम विशालकाय महाकाव्य है, और इसी कारण चदबरदाई को हिंदी का आदि महाकवि माना जाता है।

चदा *(गु० पा०)*

ईश्वर पेटलीकर (दे०) के उपन्यास 'जनमटीप' (दे०) की नायिका चदा मे नारी-जीवन की भव्य भावनाओ और महान शक्तियो का निरूपण हुआ है। निम्नवर्ग की गुनहगार पाटणवाडिया की प्रणय एव प्रतिशोधसबधी घटनाओ को रूपायित करने वाले इस उपन्यास मे चदा का व्यक्तित्व 'मागल्य की कौमुदी' की तरह जगमगाता है। वह साधारण स्त्री नहीं है। उसमे स्वाभाविक सौंदर्य है, मधुर वाणी है। आकर्षक व्यक्तित्व है और मादक यौवन है। इन सबके ऊपर उसमे स्वाभिमान की भावना तीव्रतम है और शक्ति-सामर्थ्य का भी अभाव नहीं है। चदा मे इतना साहस है कि वह अपनी जाति और गाँव के लोगो की परवाह न कर दुर्बल मनोस्थिति के बदले तेजस्वी भीमा से विवाह करती है। जब भीमा विवाह के समय की गई गभीर प्रतिज्ञाओ को भग करता है तो वह उसका भी त्याग कर पिता रयजी के पास चली जाती है, पर टेक निभाने के लिए जीवनपर्यंत 'भीमा की चूड़ियाँ' पहनने की बात कहती है। भीमा का पिता देवा भीमा का विवाह अबा से करवा देता है पर चदा आजीवन भीमा की पत्नी बनी रहती है। एक बार जब भीमा बीमार होकर अस्पताल मे भर्ती होता है, तब अपने अपमान, रोष और तिरस्कार को भूलकर चदा अस्पताल पहुँच जाती है और हृदय से भीमा की सेवा-सुश्रूषा करती है। चदा का अपमान करने वाले पूजा की हत्या के लिए भीमा और देवा आजन्म कारावास का दड पाते है, तब चदा भीमा के यहाँ पहुँच कर उसके सारे परिवार के लालन-पालन का दायित्व स्वेच्छापूर्वक स्वीकार कर अपनी कर्तव्यपरायणता का महान आदर्श उपस्थित करती है। इस प्रकार उपन्यासकार ईश्वर पेटलीकर ने 'जनमटीप' उपन्यास के इस मुख्य पात्र चदा के द्वारा नारी के स्वाभिमान, समर्पण और सामर्थ्य का दिग्दर्शन कराया है। वस्तुत चदा का स्थान गुजराती उपन्यास-साहित्य मे प्रथम पक्ति के नारी चरित्रो मे है।

चदुलाल सेलारका *(गु० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

*स्वातत्र्योत्तर युग के कहानीकार और उपन्यास-*लेखक। इनकी कहानियाँ और उपन्यास विशेष रूप से मनोवैज्ञानिक हैं। उनमे बहिरग घटनाओ का तत्त्व बहुत क्षीण है और विशेष रूप से उनमे मनुष्य मन की अतरग सृष्टि का परिचय मिलता है। उनके तीन उपन्यास और तीन कहानी सग्रह प्रकाशित हुए हैं। अपने कहानी सग्रह 'स्फुल्लिग' मे उन्होंने कहानी-लेखन मे एक अभिनव प्रयोग किया है—बहुत छोटी कहानी लिखने का। आठ-दस पक्ति की इन कहानियो मे कहानी के नए स्वरूप का आरभ हुआ है। अपने मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'भीतर-सातसमदर' मे मानव के अतर्जगत का परिचय देने के लिए उन्होंने आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है जिसमे प्रत्येक पात्र अपनी विशिष्ट दृष्टि से बात करता-कहता है।

चंद्रकांता (*हि० पा०*)

यह देवकीनंदन खत्री (दे०) के अत्यंत लोकप्रिय उपन्यास 'चंद्रकांता' की नायिका है। विजयगढ़ के राजा जयसिंह की अनुपम सुंदरी पुत्री चंद्रकांता नौगढ़ के राजकुमार वीरेंद्रसिंह से प्रेम करती है किंतु विजयगढ़ के वज़ीर का लड़का क्रूरसिंह इसमें बाधक बनता है और चुनारगढ़ के राजा शिवदत्त को भड़का कर अपने पक्ष में कर लेता है। लेकिन चंद्रकांता के रूप-सौदर्य की प्रशंसा सुनकर शिवदत्त के मन में भी उसे प्राप्त करने की लालसा जाग उठती है। इस प्रकार चंद्रकांता शत्रुपक्ष के चंगुल में फँस जाती है और शिवदत्त तथा क्रूरसिंह के ऐयारों द्वारा एक खोह में छिपा दी जाती है। चंद्रकांता धैर्य तथा साहस से काम लेती है और अपने प्रेम की पवित्रता की रक्षा करने के लिए कर्मक्षेत्र में कमर कस कर कूद पड़ती है। लेकिन खोह से किसी प्रकार मुक्त हो जाने के बाद वह एक तिलस्म में फँस जाती है। अंततः वीरेंद्रसिंह ऐयारों की सहायता से इस तिलस्म को तोड़कर चंद्रकांता का उद्धार करता है और तदनंतर ये दोनों बहुत धूमधाम से विवाह-सूत्र में बँध जाते है। देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों का मूल उद्देश्य पात्रों का चरित्र-चित्रण करना न हो कर पाठकों के लिए मनोरंजक और कौतूहलवर्धक कथा का निर्माण करना था। यही कारण है कि मुख्य पात्र होने पर भी चंद्रकांता का चरित्र उतना नहीं उभर पाया है जितना कि उसे उभरना चाहिए था। लेकिन फिर भी चंद्रकांता का अनुपम रूपलावण्य, उसका सात्विक प्रेम और क्षत्रियोचित वीरता पाठक के मानस-पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ने में पूर्णतः समर्थ हैं।

चंद्रकांता संतति (*हि० कृ०*)

यह देवकीनंदन खत्री (दे०)-विरचित एक ऐसा लोकप्रिय एवं रोचक उपन्यास है जिसे पढ़ने के लिए अनेक लोगों ने हिंदी सीखी। छह खंडों तथा चौबीस हिस्सों में विभक्त इस उपन्यास में लेखक ने अपने पहले उपन्यास 'चंद्रकांता' के कथानक का ही विस्तार किया है। राजा वीरेंद्र सिंह और रानी चंद्रकांता (दे०) के दो पुत्रों—राजकुमार इंद्रजीत सिंह एवं आनंद सिंह—और किशोरी एवं कामिनी-नाम्नी कुमारियों की प्रणय-कथा को निरूपित करना ही इस उपन्यास का मूल उद्देश्य है। इस उपन्यास में शताधिक पात्रों की सहायता से अत्यंत रहस्यमय एवं वैविध्यपूर्ण नानाविध कथासूत्रों को ऐसे कलात्मक ढंग से नियोजित किया गया है कि पाठक अधीरतापूर्वक आगामी कथा को जानने के लिए उत्सुक रहता है। इसके साथ ही उपन्यासकार ने यथास्थान समकालीन जीवन का ऐसा विस्तृत विवरण दिया है कि पाठक उसकी असाधारण प्रतिभा की प्रशंसा किए बिना नहीं रह पाता।

चंद्रगुप्त (*बँ० कृ०*) [रचना-काल—1911 ई०]

इस नाटक के कथा-स्रोत हैं पुराण, किंवदंतियाँ तथा ग्रीक इतिहास। यहाँ भी द्विजेंद्रलाल राय (दे०) ने ऐतिहासिक स्थापना के विरुद्ध चंद्रगुप्त को शूद्र-संतान माना है। इस नाटक में छाया के अतिरिक्त सभी पात्र इतिहास-सम्मत हैं परंतु वातावरण, प्रसंग-विधान तथा शील-निरूपण कल्पनाश्रित है। मुख्य कथा चंद्रगुप्त-चाणक्य-मुरा-नंद की है तथा प्रासंगिक कथा सेल्यूकस-ऐंटीगोनस-हेलन की। दोनों कथाएँ स्वतंत्र एवं समानांतर हैं। समन्वय-बिंदु है हेलेन का विवाह जो इस उद्देश्य का निर्वाह नहीं कर सका। घटना-क्षेत्र हैं यूनान, अफ़ग़ानिस्तान तथा भारत। पात्रों की दृष्टि से चाणक्य का व्यक्तित्व सारे नाटक पर छाया हुआ है। चाणक्य एक ओर राजनीतिक कुचक्रों में कुशल, घटनाओं और पात्रों का नियंता, लक्ष्य-प्राप्ति के लिए नीति-अनीति की परवाह न करने वाला सशक्त पात्र है, दूसरी ओर ब्राह्मण-धर्म से भ्रष्ट, बेटी से बिछुड़ा निरीह एवं निरुपाय है। उसके प्रबल व्यक्तित्व के सामने चंद्रगुप्त का व्यक्तित्व निष्प्रभ लगता है। ऐंटीगोनस वीर, स्वाभिमानी एवं उदार है। वह निष्ठुर हेलेन से प्रेम नहीं पाता और दुर्भाग्य से, अपरिचित होने के कारण, पिता की हत्या कर बैठता है। उसके जीवन की विडंबना मार्मिक है। सेल्यूकस तथा मुरा में संतान के प्रति स्नेह-भावना है।

इस नाटक में त्रासदी तत्वों का सफल प्रयोग किया गया है। चाणक्य, ऐंटीगोनस और छाया की विषाद-गाथा मार्मिक है। इसी पृष्ठभूमि में चंद्रगुप्त का मानसिक संघर्ष द्रष्टव्य है। इस नाटक में अतिनाटकीय तत्वों का विशेष सहारा लिया गया है। भाषा पर्याप्त सुंदर एवं प्रभावशाली है। अभिनय की दृष्टि से यह नाटक बहुत सफल रहा है। परंतु नंद की निर्मम हत्या का दृश्य ग्लानि एवं वितृष्णा उत्पन्न करता है।

चंद्रगुप्त (*हि० कृ०*) [रचना-काल—1931 ई०]

जयशंकर प्रसाद (दे०) के ऐतिहासिक नाटकों

मे 'चंद्रगुप्त' का स्थान अग्रगण्य है। मौर्य वश का संस्थापक चद्रगुप्त इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति है। विशाखदत्त ने 'मुद्राराक्षस' (दे०) एव द्विजेन्द्रलाल राय (दे०) ने 'चद्रगुप्त' नाटक मे इसी चरित्र को ग्रहण किया है। प्रसाद ने इस नाटक की निर्मिति मे ऐतिहासिक तथ्यो को आधार बनाकर कल्पनाओ के चटकीले रगो का ऐसा प्रयोग किया है कि वे घुल-मिलकर ऐतिहासिक तथ्यो के साथ एकरूप हो गए है, उन्हे उनसे अलग करना एकदम असभव सा लगता है।

नाटककार ने 'चद्रगुप्त' मे पहले भारत और यूनान की सस्कृतियो का सीधा सघर्ष प्रकट किया है, बाद मे सेल्यकूस की पराजय मे यूनानी सस्कृति की पराजय और चद्रगुप्त एव कार्नेलिया के विवाह मे दोनो सस्कृतियो का समन्वय तथा पारस्परिक प्रभाव चित्रित किया है। इस नाटक मे चद्रगुप्त (दे०) और चाणक्य (दे०) दो मुख्य चरित्र हैं। चाणक्य को ब्राह्मणत्व, तेजस्विता और बुद्धिमत्ता के त्रिकोण मे इस तरह प्रस्तुत किया है कि अपनी प्रभावात्मक स्थिति को लेकर वह नायक प्रतीत होता है, जबकि नाट्यशास्त्र की बँधी-बँधाई परपरा फल के उपभोक्ता एव कथावस्तु को अग्रसरित करने के रूप मे उच्च कुलोद्भव चद्रगुप्त को ही प्रस्तुत नाटक का नायक मानती है। सिंहरण, राक्षस, सुवासिनी, कल्याणी, मालविका एव कार्नेलिया आदि चरित्रो का अकन भी प्रसाद जी ने विशेष कौशल से किया है। चाणक्य और सुवासिनी का प्रेम कर्मठता एवं भावुकता मे समन्वय स्थापित करता है। चाणक्य जैसे कठोर व्यक्ति मे भी भावुकता का एक स्तर पाया जाता है जो भले ही आगे चलकर दब गया हो, पर शुरू शुरु मे उसकी समाहृति ही नाटक की मौलिकता बनी है।

राष्ट्रप्रेम इस नाटक का मूल स्वर है। कार्नेलिया का 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' तथा अलका का 'हिमाद्रितुग शृग से ' प्रयाण-गान इस नाटक मे जहाँ एक ओर वातावरण के निर्माण मे सहायक हुए है, वहाँ दूसरी ओर प्रसाद जी के राष्ट्रवादी स्वर की गरिमा का भी भार वहन करते हैं। चाणक्य जहाँ भाषा-सुधार को सर्वोपरि मानता है, वहाँ मनुष्य-सुधार को भी राष्ट्रीय भावना की दृष्टि से सर्वथा अपेक्षित विचारता है। नाटक के आदि, मध्य और अत को ध्यान मे रखकर 'चद्रगुप्त' मे तीन अक ही होन चाहिए थे, पर इतने स चाणक्य की वैराग्यमयी निष्काम स्थिति के दर्शन न होते और यह प्रसाद जी को भी काम्य न था। कार्नेलिया और चद्रगुप्त का भारतीय पद्धति से विवाह दो सस्कृतियो के निकट आने की उपलब्धि है। ऐतिहासिक नाटको मे पूर्णत साहित्यिक स्थिति लाने की दृष्टि से 'चद्रगुप्त' का अपना महत्त्व है और इसे पीछे छोड आने का दावा हम उस दिन करेंगे जिस दिन ऐतिहासिक परिवेश मे इससे बडी मानवीय सवेदना उत्पन्न कर सकेंगे।

चद्रगुप्त (हिं० पा०)

भारतीय नाट्यशास्त्र मे धीरोदात्त नायक के लिए उल्लिखित सभी गुणो से सपन्न यह पात्र जयशकर प्रसाद (दे०)-कृत 'चद्रगुप्त' (दे०) नाटक का नायक है। वीरता, कुलीनता, उदारता आदि विभिन्न गुणो के कारण यह निर्भीक, राष्ट्रवादी, तेजस्वी तथा स्वाभिमानी पात्र शीघ्र ही सभी व्यक्तियो के अनुराग का पात्र बन गया है। देशप्रेम, स्वावलबन एव आत्मविश्वास की भावना इसके चरित्र की ऐसी केंद्रीय धुरी है जो इसे साधारण स्थिति से उठाकर समस्त उत्तरापथ के एकछत्र सम्राट् के पद पर आसीन कर देती है। इन्ही दो गुणो के कारण यह अपने चिर सहचर सिंहरण और गुरुदेव चाणक्य (दे०) को भी रुष्ट करने की सामर्थ्य रखता है।

चद्रगुप्त केवल एक कुशल योद्धा ही नही है अपितु एक प्रणयी भी है। परिस्थिति के अनुरूप उसके हृदय मे प्रेम का स्रोत भी फूटता है तथा मालविका एव कार्नेलिया के प्रति अभिव्यक्त होता है। मालविका की सरलता पर मुग्ध होकर युद्ध मे जाने से पूर्व मुरली की मधुर तान सुनने की उसकी इच्छा को दिखाकर नाटककार ने उसके चरित्र मे साधारण व्यक्ति की-सी दुर्बलता दिखाई है तो कार्नेलिया विषयक प्रेम-प्रसग को अत्यत मनोवैज्ञानिक रीति से रूपायित किया है। चद्रगुप्त और कार्नेलिया दाण्ड्यायन के आश्रम मे ही एक दूसरे से परिचित होते हैं। यदि कार्नेलिया अप्रतिम शील-सौंदर्य-समन्वित आदर्श भारतीय वीरता की प्रतिमूर्ति चद्रगुप्त को देखकर आसक्त हो जाती है तो चद्रगुप्त भी सिर से पैर तक भारतीय सस्कृति मे पगी ग्रीक राजकुमारी कार्नेलिया के सहज सौंदर्य की ओर आकर्षित हुए बिना नही रह पाता। राजनीतिक सघर्षो के फलस्वरूप इन दोनो का प्रेम प्रसग कुछ समय तक मुरझाया-सा रहता है किंतु अतत भारत और यूनान जैसे दो सबल राष्ट्रो के राजनीतिक सबधो को स्थायित्व देने तथा सास्कृतिक आदान-प्रदान के द्वार खोलने मे सहायक हाता है।

समग्रत शृगार और रौद्र के सगम चद्रगुप्त को प्रसाद जी ने अपने पूर्ववर्ती नाटककारो के समान चाणक्य के हाथ की कठपुतली भर नहीं दिखलाया है। उसका एक

निजी व्यक्तित्व है जिसका क्रमिक विकास होता है। अपने जीवन के विकासक्रम में वह चंचलता और उत्साह की सीढ़ियाँ लाँघता हुआ गंभीरता की स्थिति तक पहुँच जाता है।

चंद्रधर *(बँ० पा०)*

चंद्रधर अथवा चाँद सौदागर मध्ययुगीन बँगला कवियों द्वारा रचित प्रत्येक 'मनसामंगल' (दे०) काव्य का प्रधान चरित्र है। समुन्नत पुरुषाकृति के आदर्श का प्रतीक यह चरित्र मध्ययुगीन बँगला साहित्य में अद्वितीय है। शिव-पूजक चंद्रधर लौकिक देव-देवियों को अस्वीकार करते हैं; यहाँ तक कि साँपों की देवी मनसा (दे०) की भी परवाह नहीं करते। चाँद के चरित्र के इस मानवीय पौरुष एवं महिमा को 'मनसामंगल' के रचयिता प्रत्येक कवि ने प्रकट किया है। इस चरित्र के श्रेष्ठ चित्रकार हैं नारायण देव। एक अन्य विख्यात कवि विजय गुप्त (दे०) ने इस चरित्र को शृंगार-रस-मज्जित कर प्रकट किया है। इससे लौकिक दृष्टि से आकर्षक बन जाने पर भी उसकी चारित्रिक आदर्श-निष्ठा में शिथिलता आ गई है। 'मनसामंगल' की कहानी को बहुत-से विद्वानों ने प्रतीक-कथा के रूप में स्वीकार किया है जहाँ मनसा अत्याचारी राष्ट्रशक्ति की प्रतीक है एवं चाँद सौदागर अत्याचार-पीड़ित हिंदू समाज का प्रतिनिधि है। बेहुला के अनुरोध पर चाँद सौदागर के द्वारा मनसा की पूजा उसकी मानवीय उदारता का ही परिचय देती है। कदाचित् चाँद सौदागर के द्वारा अंत में मनसा की पूजा शिव के शक्ति-रूप की ही स्वीकृति है।

चंद्रधर के वाणिज्य-यात्रा-प्रसंग में तत्कालीन विनिमय-वाणिज्य तथा उपकूलवर्ती अंचल के व्यापार का परिचय मिलता है। प्रत्येक काव्यकार के 'मनसामंगल' में चंद्रधर मध्ययुगीन पुरुष-पात्रों में प्रमुख बनकर उपस्थित हुआ है।

चंद्रप्रभपुराण *(क० कृ०)* [समय—अनुमानतः 1189 ई०]

इसके रचयिता अग्गल नामक एक जैन कवि हैं जिनका समय 1189 ई० के आसपास माना जाता है। यह आठवें तीर्थंकर की कहानी है। संस्कृत में वीर नंदि द्वारा रचित 'चंद्रप्रभपुराण' ही इसका आधार-ग्रंथ है। यह चंपू-काव्य है। इसमें शृंगार का काफ़ी विस्तार है। अत: यह काव्य 'अग्गल लीलावती' के नाम से भी विख्यात है। इसमें तीर्थंकर की भावावलियों का झंझट नहीं है। जिनपुराणों में आने वाले लोकस्वरूप-निरूपण, कालस्वभाव, पंचकल्याण, आदि का विस्तृत वर्णन है। जैन-समय और काव्य-समय के तीव्र प्रभाव में आकर इन्होंने अपनी प्रतिभा का ठीक उन्मेष नहीं किया है। इसके कुछ प्रकृति-वर्णन बहुत ही सरस हैं; आम, मल्लिका, चंद्रोदय, सूर्योदय, निदाघ, पावस आदि के वर्णन मार्मिक हैं। दुर्गयुद्ध, समर-क्रीड़ा आदि में तत्कालीन वीर जीवन की झाँकी मिलती है। इसकी शैली में संस्कृत का निर्घोष प्रधान है। अग्गल का यह काव्य मध्यम श्रेणी का है। इसी के प्रभाव से दोड्डय्या नामक एक कवि ने 'चंद्रप्रभसांगत्य' की रचना की है।

चंद्रालोक *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शती]

संस्कृत-साहित्यशास्त्र के इतिहास में बारहवीं शती के लेखक जयदेव के 'चंद्रालोक' का अपना विशिष्ट महत्व है। ध्वनि-संप्रदाय के उत्थान के अनंतर अलंकारों का काव्य-धर्म में स्थान नगण्य-सा हो गया था। आचार्य जयदेव ने 'चंद्रालोक' में अलंकारों की अनिवार्यता पर बल देते हुए भामह (दे०), 'दंडी' (दे०), रुद्रट (दे०) के मतवाद की पुनः स्थापना की। राजानक मम्मट (दे०) के काव्यलक्षण में आए हुए 'अनलंकृती पुनः क्वापि' की उन्होंने सोपहास आलोचना करते हुए कहा कि अलंकार-रहित शब्दार्थ को काव्यरूप में स्वीकार करने वाला अग्नि को उष्णता-रहित क्यों नहीं स्वीकार कर लेता? 'चंद्रालोक के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रंथ के काव्यलक्षण में लक्षण का समावेश उपलब्ध नहीं होता। गुणों के निरूपण में जयदेव ने अपने 'चंद्रालोक' में भरत (दे०), वामन (दे०) आदि प्राचीन आलंकारिकों का अनुकरण किया है, भामह आदि का नहीं। 'चंद्रालोक' के पंचम मयूख में अलंकार-निरूपण किया गया है। प्रायः एक ही श्लोक की प्रथम पंक्ति में अलंकार का लक्षण तथा दूसरी पंक्ति में उसका उदाहरण दे दिया गया है।

चंद्रावती *(बँ० पा०)*
दे० रामायण।

चंद्रावली *(हिं० पा०)*

कृष्ण-भक्ति-परंपरा, उसके विभिन्न संप्रदायों तथा कृष्ण-साहित्य के अंतर्गत चंद्रावली की गणना राधा की मुख्य एवं अभिन्न सखी के रूप में की जाती है। 'पद्म-पुराण' के पाताल खंड तथा 'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण' में भी चंद्रा-

वली का उल्लेख इसी रूप मे किया गया है। मध्य युग मे रास-लीलाओ तथा छद्मलीलाओ के अतर्गत इसके चरित्र को अनेक मौलिक सदर्भों के साथ प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण-भक्त कवियो ने इसे सहचरी के उपास्य रूप का आदर्श मान कर प्रस्तुत किया है। आधुनिक युग मे भारतेंदु (दे०) हरिश्चद्र ने इसे नायिका का पद प्रदान करते हुए 'चद्रावली' (दे०) नाटिका की रचना की है। यद्यपि प्रारभ मे तो वह एक साधारण प्रेमिका के रूप मे ही परिलक्षित होती है किंतु आगे चलकर उसके चरित्र को निखार दिया गया है और इस प्रकार उसके चरित्र मे भक्ति तथा शृगार का अपूर्व एव मनोहारी सम्मिश्रण कर दिया गया है। लौकिक बधन उसकी उत्कट प्रेम-भावना को रोक पाने मे सर्वथा असमर्थ हैं और वह माता-पिता, भाई बधु, गुरुजन लोकलाज आदि सभी बधनो को तोड कर अपने प्रेम पर दृढ रहती है। वह कृष्ण से मिलने के लिए अकुलाती है, छटपटाती है और उसे मन शांति केवल तभी मिलती है जब उसका प्रेमी उसे अपनी भुजाओ मे भर लेता है। लेकिन उसका यह प्रेम उस कृष्ण से है जिसे परमात्मा का स्वरूप मात्र माना जाता है। अतएव उसका यह प्रेम भक्ति तथा त्याग से परिपूर्ण है। इसी प्रेम के कारण वह कृष्ण की अनुकपा प्राप्त करने मे सफल होती है। समग्रत चद्रावली भारतेंदु की एक आदर्श पात्र-सृष्टि है।

चद्रावली नाटिका *(हिं० कृ०)* [ले० भारतेंदु (दे०) हरिश्चद्र]

चार अको मे विभक्त इस नाटिका मे चद्रावली (दे०) के प्रेम, विरह तथा मिलन को रूपायित करते हुए कृष्ण के प्रति उसके उत्कट प्रेम को अभिव्यक्ति दी गई है। यद्यपि चद्रावली का उल्लेख भागवत (दे०) तथा 'सूरसागर' (दे०) मे भी उपलब्ध होता है किंतु भारतेंदु हरिश्चद्र ने उसे जिस रूप मे प्रस्तुत किया है वह सर्वथा मौलिक है। इसमे उनका भक्त हृदय व्यक्त हुआ है। इसम प्राचीन भारतीय 'नाट्यशास्त्र' के नियमो के पालन तथा खडी बोली के प्रयोग के साथ-साथ समकालीन लोकमच की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है।

चद्रिका *(म० कृ०)*

यह राजकवि चद्रशेखर की स्फुट कविताओ का सग्रह है। कवि केशवसुत (दे०) की तरह ये व्यक्तिगत अनुभूति को अभिव्यक्त करना ठीक नही मानते थे। इन्होंने वैयक्तिक भाव की भी अवैयक्तिक अभिव्यक्ति की है। इनका काव्य विचारप्रधान, दीर्घ एव वर्णनात्मक है।

प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करते समय पश्चिमी कवि वर्ड्स्वर्थ की तरह प्राकृतिक उपकरणो के माध्यम से इन्होंने उपदेश दिए हैं। 'शरच्चद्र आणि चद्रिका', 'सौंदर्या-विषयी', 'कोकिला' आदि कविताएँ इसका प्रमाण हैं। 'सुवि-चार समागम', 'मोह आणि जतिलता', 'सौजन्य', 'निद्रो', आदि कविताओ मे सूक्ष्म भाव एव मनोविकारो का गहन विचारक्षम शैली मे वर्णन किया गया है। 'दत्तावियोग' और 'माधवनिधन' विलापिकाओ की रचना भी इन्होंने की थी। 'इतिहास', 'कवितारति', 'उत्कठिता' आदि कविताओ मे भाव तथा विचार का अपूर्व अमिश्र योग है। 'गोदा-गौरव' भक्तिपरक रचना है। इन्होंने अपने काव्य मे आध्या त्मिक तत्त्व के अनुभव का भी वर्णन किया है। चद्रशेखर के काव्य की आत्मा विचार है। इन्होंने नवीन उपमानो की योजना की है। इनके काव्य मे वाणी एव अर्थ की चारता है। इनका शब्द-शिल्प अनुपम तथा रचना चातुर्य अप्रतिम है। इनका 'कार्य हो चमत्कार' नामक खडकाव्य चित्रण-कौशल के लिए प्रसिद्ध है। यह आधुनिक मराठी का अभि-जात कथाकाव्य है।

चद्रोत्सवम् *(मल० कृ०)*

यह मणि प्रवाल (दे०) शैली मे रचित शृगार काव्य है। इसके रचयिता और रचना-काल के सबध मे मतभेद है। अधिकाश विद्वानो का मत है कि इसकी रचना पद्रहवी शती मे हुई थी और इसका रचनाकार कोई केर लीय ब्राह्मण था। कथा-वस्तु गधर्व अपनी प्रेयसी के साथ विहार कर रहा था कि वहाँ सुगध व्याप्त हो गई। प्रिया की इच्छा के अनुसार गधर्व उस सुगधि स्रोत का अन्वेषण करते हुए केरल मे त्रिचूर के निकट स्थित एक गाँव मे पहुँचा जहाँ चद्रोत्सव मनाया जा रहा था। वहाँ जाकर उसने पाया कि सुगध एक वेश्या की दीपवर्तिका से निकल-कर फैली थी। गधर्व वहाँ रह कर उत्सव मे भाग लेता है और प्रिया के पास लौट कर वहाँ की घटनाएँ उस सुनाता है।

इस काव्य मे वेशभूषा आदि का सुदर वर्णन है। रस-परिपाक आरभ स अत तक मिलता है। 'चद्रोत्सवम्' की गणना मणि-प्रवाल शैली के उत्तम काव्यो मे होती है।

चंपक बनर एलिजि *(उ० कृ०)*

'चंपक बनर एलिजि' रमेशचंद्र घळ (दे०) की 19 कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों की विषय-वस्तु बहुविध है—राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, मनोविश्लेषणात्मक। सभी कहानियाँ छोटी एवं प्रभावोत्पादक हैं। आज का आर्थिक दृष्टिकोण किस प्रकार मानवीय व्यवहारों का नियामक बन गया है, द्रुत अर्थ-व्यवस्था का मानवीय जीवन के विविध पक्षों पर कितना गहरा प्रभाव पड़ रहा है, इसका भी संकेत है। संवाद एवं सांकेतिक शैली का अधिक प्रयोग करने के कारण कहानियों में प्रभविष्णुता एवं रमणीयता आ गई है। प्रसंगानुकूल प्रयुक्त वर्णनात्मक शैली भी रोचक है। भाषा विषयानुकूल तथा संक्षिप्तता का गुण लिये हुए है।

चंपू *(सं० पारि०)*

संस्कृत काव्यशास्त्र में निरूपित श्रव्य काव्य की एक गद्यपद्य-मिश्रित विधा जिसका उल्लेख भामह (दे०), दंडी (दे०), वामन (दे०), आदि प्राचीन आचार्यों के शास्त्रग्रंथों में नहीं मिलता। विश्वनाथ आदि परवर्ती आचार्यों ने भी चंपूकाव्य के गद्यपद्य-मिश्रित बाह्य कलेवर के अतिरिक्त इसकी किसी अन्य प्रवृत्तिगत विशेषता की ओर इंगित नहीं किया है ('गद्यपद्यमयं काव्यं चंपूरित्यभिधीयते'—साहित्यदर्पण 6/336) जिससे यह व्यक्त होता है कि शास्त्र में भी यह काव्यविधा अधिक मान्यता प्राप्त नहीं कर सकी। त्रिविक्रम भट्ट-विरचित 'नलचंपू' (दे०) (दसवीं शती का पूर्वार्द्ध) सुप्रसिद्ध चंपूकाव्य है।

चंपू रामायण *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शती ई०]

भोजराज (दे० भोज)-कृत 'चंपू रामायण' किष्किंधाकांड तक ही उपलब्ध होता है। लक्ष्मण भट्ट ने युद्धकांड तथा वेंकट राज ने उत्तरकांड की रचना करके इसकी पूर्ति की। इसमें कवि का शाब्दिक चमत्कार तथा अलंकार-प्राचुर्य दर्शनीय है। इस चंपू में वाल्मीकि 'रामायण' (दे०) के आधार पर राम-कथा को उसी के रूप में प्रस्तुत किया गया है; अतः इसके पद्यों की रामायण के पद्यों से समानता दृष्टिगोचर होती है।

चउतिशा *(उ० पारि०)*

चउतिशा उड़िया-साहित्य की सर्वाधिक जनप्रिय रचना-रीति है। यह संयोग की बात है कि उड़िया-साहित्य की प्रथम लिखित उपलब्ध रचना 'कळसा चउतिशा' (दे०) चउतिशा-शैली में लिखी गई है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक इसका प्रयोग देखा जा सकता है। रस, गुण, छंद, विषय-वस्तु आदि सभी दृष्टियों से यह एक अत्यंत समृद्ध रचना-शैली है। केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से भी इन चउतिशाओं से महत्वपूर्ण तथ्य प्राप्त हो सकते हैं।

'चउतिशा' अक्षर-क्रम रचना रीति है। इसमें 'क' से लेकर 'क्ष' तक चौंतीस व्यंजन-वर्णों का क्रमशः पद्य के आद्य वर्ण के रूप में प्रयोग होता है। अतः साधारणतः इसमें चौंतीस पदों की योजना होती है। किंतु इसमें अनेक स्थानों पर व्यतिक्रम दिखाई पड़ता है। उपेंद्र भंज (दे०) की 'चिटाउ-चउतिशा' छह पदों की तथा 'जगबंधु-जणाण-चउतिशा' 17 पदों की है। एक चउतिशा में एक ही राग का प्रयोग हो, इस नियम का पालन भी कठोरता से नहीं हुआ है। 'क्ष' से प्रारंभ होकर 'क' में समाप्त होने वाली चउतिशा को 'विपरीत चउतिशा' कहते हैं। कविसूर्य बलदेव रथ (दे०) की रचना 'किशोर चंद्रानन चंपू' (दे०) चउतिशा शैली की रचनाओं में एक विशिष्ट कृति है। इसमें रीति-काव्य के अक्षर-क्रम के प्रयोग पर चउतिशा पद्धति का प्रभाव दिखाई पड़ता है। 'कळसा चउतिशा', 'रसकुल्या चउतिशा', 'मथुराविजे चउतिशा', 'मनबोध चउतिशा' आदि अत्यंत लोकादृत चउतिशाएँ हैं।

चउपदी *(उ० पारि०)*

चउपदी में सामान्यतः चार पाद होते हैं। जगन्नाथदास (दे०) की 'पोळ चउपदी', धनंजय भंज (दे०) की 'चउपदी भूषण', उपेंद्र (दे०) भंज की 'चउपदी चंद्र' प्रख्यात चउपदी रचनाएँ हैं।

चकबस्त *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1882 ई०; मृत्यु—1926 ई०]

जन्मस्थान—फैज़ाबाद। नाम—ब्रजनारायण; चकबस्त इनकी पारिवारिक उपाधि थी। इन्होंने अपना उपनाम कुछ रखा ही नहीं था। इन्होंने लखनऊ से

बी० ए० पास कर 1907 ई० मे वकालत की परीक्षा पास की थी। लखनऊ मे ही ये वकालत करते रहे थे और यथेष्ट प्रसिद्धि भी प्राप्त की थी। इनकी गणना उर्दू के मूर्धन्य समर्थ कवियो मे की जाती है। इनका पूरा काव्य देशभक्ति, राष्ट्रीय जागरण, राजनीतिक चेतना साप्रदायिक एकता और स्वराज्य-प्राप्ति की दिव्य अनुभूतियो का उज्ज्वल उदाहरण है। इनकी अमर कृति 'सुबह ए वतन' कवित्व से भरपूर अदभुत ग्रथ रत्न है। इसमे भावानुकूल भाषा, अनुभूति की तीव्रता, शैली का उत्कर्ष, कल्पना का औदात्य और बुद्धि-तत्त्व का औचित्यपूर्ण अपूर्व समन्वय देखते ही बनता है। इनकी अधिकाश कविताएँ 'मुकद्दस-ए-हाली' (दे०) की शैली मे लिखी हुई मिलती है जिनमे प्रेम व्यापार का चित्रण न होकर नैतिकता, गभीरता, राष्ट्रीयता और अतीत-गौरव के गान की सजीव झाँकियाँ पाठक को मत्र मुग्ध कर देती है। समस्त उर्दू साहित्य मे भारतीय तत्त्वो के सर्वाधिक सजीव चित्रण यदि किसी समर्थ कवि मे मिलत है तो वे अकेले चकबस्त ही है। ये 'सुबह-ए-उम्मीद' नामक एक साहित्यिक पत्रिका का सपादन भी करते थे। मसनवी 'गुलजार-ए-नसीम' (दे०) को लेकर 'शरर' (दे०) के साथ इनका साहित्यिक शास्त्रार्थ ऐतिहासिक महत्व का तथा अत्यत प्रसिद्ध है। मर्सिया-लेखन के क्षेत्र मे भी इन्होंने अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। इनके द्वारा लिखित अधिकतर मर्सिये राष्ट्रीय नेताओ एव स्वाधीनता सग्राम के कर्णधारो से सबद्ध है जो अत्यत हृदयस्पर्शी और मार्मिक हैं।

चक्की *(मल० पारि०)*

'चक्की चकरम्' नाटक की प्रधान नायिका है *चक्की। रचयिता पि० रामकुरुप् ने अपठित नाटककारो* की हँसी उडाते हुए प्रस्तुत नाटक की रचना की है। हास्य-प्रधान नाटको मे इस रचना का स्थान सर्वोपरि माना जाता है।

चक्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1963 ई०]

जयत दळवी का यह उपन्यास झुग्गी झोपडियो मे रहने वालो के दयनीय जीवन पर प्रकाश डालता है, नाली मे कीडो की तरह गिजगिजाने वाले इन प्राणियो की जीवन विधि की जानकारी पाठको को देता है जिससे एक नया अनुभव विश्व हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। लेखक ने अपनी सहज, स्वाभाविक और समर्थ शैली मे इस नारकीय जीवन का चित्रण करते हुए बताया है कि किस प्रकार इन निराधार प्राणियो की दैनिक आवश्यकताएँ भी पूरी नही होती, उन्हे पूरा करने के लिए वे कौन कौन से अपराध करते है और पकडे जाने के कारण उनके सुदर सफल जीवन के स्वप्न किस प्रकार नष्टभ्रष्ट हो जाते है। यथार्थ चित्रण और निकट अनुभव पर आधारित होने के कारण यह उपन्यास पाठक को प्रभावित तो करता है पर अश्लीलता तथा भाषा प्रयोग के कारण इसे पूर्ण निर्दोष नही कहा जा सकता।

चक्रध्वज सिंह *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1915 ई०]

लेखक लक्ष्मीकात बेजबरुवा (दे०)।

इस नाटक मे पाँच अक और छब्बीस दृश्य है। इसमे बाह्य सघर्ष है किंतु मानसिक द्वद्व नही है। इसका नामकरण ठीक नही है क्योकि चक्रध्वजसिह इसका प्रधान चरित्र नही है। नाटक का आकर्षक चरित्र गजपुरिया है, पर इस पर शेक्सपियर के फाल्टस्टाफ पात्र का प्रभाव है। गजपुरिया स्थूलकाय रसिक, वाक्पटु, मद्यप एव भीरु है। पात्रो के आधिक्य के कारण यह मचोपयोगी नही है। यह सुखात ऐतिहासिक नाटक है।

चक्रभ्रमणमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1963 ई०]

इसकी लेखिका कोडूरि कौसल्यादेवी (दे०) हैं। इन्होने अनेक उपन्यास लिखे हैं। 'चक्रभ्रमणमु' एक सामाजिक उपन्यास है। इसमे चार प्रमुख पात्र है तथा कथानक एक ही प्रमुख घटना पर आधारित है। मित्र की पत्नी के *स्नेह को अनुचित समझकर माधवी पर मिथ्यारोप करती हुई* निर्मला एक चिट्ठी लिखती है। इस घटना से उत्पन्न परिस्थिति तथा उसका परिणाम ही कथा का प्रधान विषय है। कथानक के विकास, चरित्र चित्रण तथा शैली, सभी की दृष्टि से यह एक उत्तम उपन्यास है। इसके आधार पर चलचित्र भी निर्मित हुआ है।

चक्रवर्ती, अमिय *(बँ० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

रवीद्रनाथ (दे०) की रहस्यमयी चेतना के एकमात्र उत्तराधिकारी होते हुए भी अमिय चक्रवर्ती ने अति आधुनिक कविता के क्षेत्र मे अपनी स्वतत्र सत्ता बनाए रखी है। विश्व-परिव्राजक के रूप मे इन्होंने जीवन के वातायन-पथ

से समग्र विश्व को देखा है एवं उसी का द्वंद्व-मुखर अपरूप चित्र प्रकट किया है। 'खसड़ा' (1938), 'एकमुठो' (1939), 'माटीर देयाल' (1942), 'अभिज्ञान वसंत' (1943), 'पारापार' (1953), 'पालाबदल' (1955), आदि इनके उल्लेखनीय काव्य ग्रंथ हैं।

प्रारंभिक अवस्था में इन्होंने रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) की आध्यात्मिक रहस्य-चेतना को वैज्ञानिक चेतना के आश्रय से अभिव्यक्त किया था। रवींद्रनाथ ने इंद्रिय-ग्राह्य वस्तुजगत् से परे अतींद्रिय भावलोक में आत्मा और परमात्मा की एकात्मता का अनुभव किया था तो इन्होंने इंद्रिय-ग्राह्य जगत् के यंत्रों के घर्घर में एक अद्भुत विश्व-रहस्य का दर्शन किया। दूसरी अवस्था में इन्होंने यह अनुभव किया कि विज्ञान और भौतिक चेतना के द्वारा विश्व के समस्त रहस्य की उपलब्धि नहीं हो सकती—इसके लिए व्यक्ति को ध्यानमग्न होना पड़ेगा। 'माटीर देयाल' की कविताओं में इस प्रकार की चिंतनधारा की अभिव्यंजना हुई है। तीसरी अवस्था में ये विश्व-दर्शन के लिए निकल पड़े हैं। और भारत, यूरोप तथा अमरीका-परिदर्शन करते हुए इनकी यही उपलब्धि रही है कि विज्ञान में यदि मुक्ति नहीं तो ध्यान में भी मुक्ति नहीं। इन दोनों—ध्यान एवं विज्ञान—की संगति में ही मुक्ति है। यही प्रज्ञानियंत्रित रहस्य-चेतना इनकी कविताओं की आधार-भूमि है।

चक्रवर्ती, धनराम *(बँ० ले०)*

इनका जन्म-स्थान वर्द्धमान जिले में कृष्णपुर ग्राम है। इनका जन्म-समय निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। इनके पिता का नाम गौरीकांत एवं माता का सीतादेवी था। ये जाति के ब्राह्मण तथा राम के भक्त थे। इनकी प्रमुख कृति 'धर्म-मंगल काव्य' है। अनुमान से यह ग्रंथ 1711 ई० में पूर्ण हुआ था। इनका काव्य 24 खंडों में विभक्त विराट महाकाव्य है। इनके काव्य की भाषा प्रांजल है। भाषाभिव्यक्ति, भाषा-प्रयोग एवं रचना-कौशल में कवि अत्यंत पटु है। सहज, सरल, अबाधित पयार त्रिपदी छंद में लिखा यह मंगल-काव्य अठारहवीं शती के धर्ममंगल-काव्यों में सर्वाधिक लोकप्रिय है। शृंगार, करुण एवं वीर रस का प्रयोग तथा अनुप्रास का आधिक्य इस ग्रंथ का वैशिष्ट्य है। इन्होंने अपने ग्रंथ में तत्कालीन वर्द्धमान नरेश कीर्तिचंद्र की प्रशंसा की है। इससे अनुमान होता है संभवतः इनको राज्याश्रय प्राप्त था। अठारहवीं शती के धर्ममंगल-रचयिताओं में ये अत्यंत जनप्रिय कवि थे।

चक्रवर्ती, बिहारीलाल *(बँ० ले०)* [जन्म—1835 ई०; मृत्यु—1894 ई०]

इनका जन्म कलकत्ता में नीमतल्ला पल्ली में हुआ था। इनके पिता का नाम दीननाथ चक्रवर्ती था। इनके दो विवाह हुए थे। ये ब्राह्मण जाति के थे। इनके प्रमुख ग्रंथ हैं: 'स्वप्नदर्शन', 'बंगसुंदरी', 'निसर्ग संदर्शन', 'प्रेमप्रवाहिनी', 'बंधुवियोग', 'संगीत-शतक', 'साधेर आसन', 'बाउल विंशति' एवं 'सारदा-मंगल'। 'सारदा-मंगल' (दे०) इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। मैत्री-विरह, प्रीति-विरह एवं सरस्वती विरह का अपूर्व चित्रण इन्होंने प्रस्तुत किया है। केवल यही ग्रंथ इनकी यशःकाया को धूमिल नहीं होने देगा।

इन्हें अपने जीवन-काल में यश प्राप्त नहीं हुआ था। यथार्थ में बँगला काव्यधारा में छंद, भाषा एवं भाव में युगांतर उपस्थित करने वाले एकमात्र व्यक्ति ये ही हैं। परवर्ती काव्य में इनका स्वर पल्लवित, पुष्पित एवं फलित हुआ है। इनको नव्य गीतिकाव्य का प्रवर्तक कहा जाता है। रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) ने इनको 'भोरेर पाखि', अर्थात् 'प्रातःकालीन पक्षी' की संज्ञा से अभिहित किया है। प्रकृति-वर्णन में स्वकीयता, अपरूप-रूप सृष्टि का निर्माण करने में ये अत्यंत कुशल हैं। भाषा शिशु के समान नग्न एवं अकृत्रिम है। इनकी उड़ान अत्यंत आत्मपरायण है। इनकी कविता साधारण कविता-प्रेमी पाठक के लिए नहीं है। रवींद्रनाथ ठाकुर इन्हें अपना काव्य-गुरु मानते थे।

चक्रवर्ती, मुकुंदराम *(बँ० ले०)*

'कविकंकन' मुकुंदराम चक्रवर्ती का जन्म अनुमान से सोलहवीं शती के अंत अथवा सत्रहवीं के प्रारंभ में हुआ था। वर्द्धमान जिले के अंतर्गत दामोदर नदी के तट पर दामुन्याग्राम इनका जन्म-स्थान था। यह राढ़ी श्रेणी के श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। इनके पिता हृदय मिश्र थे। इनके ज्येष्ठ भ्राता कविचंद्र का उल्लेख भी आता है। स्थानीय शासक के अत्याचार से पीड़ित हो कवि ने जन्म-स्थान त्याग कर मेदिनीपुर जिले में आरता गाँव के जमींदार बाँकुड़ाराम का आश्रय ग्रहण किया था।

इनकी प्रमुख कृति 'चंडीमंगल काव्य' (दे०) है जिसमें कालकेतु (दे०), फुल्ला (दे०) तथा धनपति की कथा है। प्राचीन बँगला कवियों में इनका विशिष्ट स्थान है। सोलहवीं शती के लेखक होकर भी इन्होंने

बँगला भाषा को प्राचीनता से नवीनता की ओर मोडने का सफल प्रयास किया है। इनके काव्य मे उस समय प्रचलित बँगला शब्दो का प्रयोग इस बात का प्रमाण है। शब्द की पकड इनकी अचूक थी—अतः उस समय की बँगला भाषा का शुद्ध रूप इनकी रचना मे ही देखा जा सकता है। श्लेष और व्याजोक्ति का प्रयोग बँगला भाषा मे सर्वप्रथम इनकी रचना मे ही देखा जा सकता है।

प्राचीन बँगला भाषा में इनका विशिष्ट स्थान है। वस्तु-विधान, हास्य रस, यथार्थ-चित्रण एव चरित्राकन आदि अनेक विषयो मे ये अत्यत कुशल है। ये बँगला साहित्य के प्रथम आख्यान-शिल्पी है।

चक्रवर्ती, शिबराम *(बँ० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

शिबराम चक्रवर्ती हास्य कथाकार के रूप मे बँगला साहित्य मे प्रसिद्ध है—यद्यपि बँगला साहित्य-क्षेत्र मे इनका प्रवेश गभीर कविता के रचयिता के रूप मे ही हुआ था। इनके प्रारभिक कविता-सग्रहो के नाम हैं 'मानुष' और 'चुम्बन' (1929)। इनमे दरिद्रो की वेदना एव कामरति के जयोच्छ्वास का वर्णन है। इसके उपरात इन्होने हास्य-प्रधान उपन्यास या कहानियाँ लिखनी शुरू की थी। इनका ध्यान विशेष रूप से शिशु मन की ओर आकृष्ट हुआ था। इस सबध मे इनका यह कहना था कि मुझसे बडो के लिए हँसी की कहानी लिखने के लिए कहा गया पर छोटो मे ही मुझे ज्यादा आनद आता है। उपन्यासो मे इनका 'प्रेमेर पथ घोटालो' (1946) काफी प्रसिद्ध है एव कहानी-सग्रहो मे 'आज एव आगामी काल' (1929)', 'मेयेदेर मन' (1940), 'बडदेर हासिखुशि', 'शिबरामेर सेरा गल्प' आदि उल्लेखनीय है।

शब्दो के प्रयोग-चातुर्य के द्वारा अतर की बात को स्पष्ट करना इनकी अपनी विशेषता है। इनके कौतुक-रस मे व्यग्य और विद्रूप के स्थान पर अनाविल हास्य प्रधान है। शिशु-मन की तरह इनका हास्य अकारण, अवारण गति की सरल उच्छलता को प्रकट करता है—यही इनकी प्राण-शक्ति है।

चचा छक्कन *(उर्दू० पा०)*

चचा छक्कन इम्तियाज अली ताज (दे०) की हास्य प्रधान रचना 'चचा छक्कन' का मुख्य-पात्र है। 'चचा छक्कन' उपन्यास की विभिन्न कथाओ का ताना-बाना इसी एक पात्र के गिर्द बुना गया है। लेखक ने 'थ्री मेन इन ए बोट' से प्रेरणा ली और उसी स्तर को सम्मुख रखकर चचा छक्कन के लिए इससे मिलती-जुलती परिस्थितियो का जाल बुना है।

चचा छक्कन हमारे सामने दाढी-मूँछ से युक्त, अधेड उम्र के एक स्वाभिमानी गृहस्थ के रूप मे आता है। यह अपने असतुलित व्यवहार से अपनी परिस्थितियो को स्वय उलझाता रहता है। पाठक इसकी फडफडाहट देख कर हँस देता है। इसमे एक साधारण गृहस्थ की लोच-लचक नही है। इसकी करनी और कथनी का विशद अतर हास्यास्पद है। यह नियम बनाता है, दूसरो पर उन्हे थोप देता है किंतु स्वय उनका पालन नही करता।

साराश यह कि चचा छक्कन उर्दू साहित्य का एक ऐसा पात्र है जो हास्यास्पद परिस्थितियो को स्वय जन्म देता है। यह बडप्पन तथा गभीरता का असफल अभिनय करता है और नए वातावरण के अनुकूल अपने आप को ढाल नही पाता।

चटर्जी, सुनीतिकुमार *(भाषा० ले०)* [जन्म—1890 ई०, मृत्यु—1977 ई०]

दो दर्जन से अधिक भाषाओ के जानकार डा० चटर्जी अँग्रेजी के प्राध्यापक, कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर विभाग मे प्राध्यापक, वही भारतीय भाषाओ के खैरा प्रोफेसर, बगाल विधान परिषद के अध्यक्ष आदि रहे। आप साहित्य अकादमी के अध्यक्ष भी रहे। यूरोप और एशिया की पचीसो सस्थाओ ने अपना सम्मान्य सदस्य बनाकर तथा अनेक ने उपाधियाँ देकर आपको सम्मानित किया। भारतीय भाषाविद् के रूप मे अनेक बार आपने अतर्राष्ट्रीय सम्मेलनो मे भारत का प्रतिनिधित्व किया। आपका सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रथ 'ओरिजिन ऐंड डेवेलपमट आफ बगाली लैंग्वेज' है जिसकी भूमिका को भारतीय आर्य-भाषाओ का विश्वकोश कहा गया है। आपके अन्य मुख्य ग्रथ है 'इडो आर्यन ऐंड हिंदी' (हिंदी अनुवाद 'भारतीय आर्य-भाषा और हिंदी'), 'बगाली फोनेटिक्स रीडर', 'राजस्थानी, लैंग्वेज ऐंड लिग्विस्टिक प्राबलम्स' (हिंदी अनुवाद 'भारतीय भाषाएँ और भाषा-समस्याएँ'), 'लैंग्वेजिज आफ इडिया'। पाणिनि के बाद डा० चटर्जी ही ऐसे भारतीय भाषाशास्त्री हैं जिन्हे विश्व मे इतनी अधिक ख्याति मिली है।

1977 के पूर्वार्द्ध म सतासी वर्ष की पूर्णायु प्राप्त कर इनका निधन हुआ।

चट्टोपाध्याय, बंकिमचंद्र *(बँ० ले०)*

दे० बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय ।

चट्टोपाध्याय, शरत्चंद्र *(बँ० ले०)*

दे० शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय ।

चट्टोपाध्याय, संजीबचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1834 ई०; मृत्यु—1889 ई०]

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय (दे०) के अग्रज संजीबचंद्र चट्टोपाध्याय की प्रतिभा की तुलना में उनकी साहित्य-सृष्टि पर्याप्त नहीं है।

संजीबचंद्र का प्रथम उल्लेखनीय उपन्यास है 'कंठमाला' (1877) यद्यपि उससे पहले वे 'रामेश्वरेर अदृष्ट' उपन्यास की रचना कर चुके थे। 'कंठमाला' के पूर्वभाग 'माधवीलता' का प्रकाशन पहले-पहल 'बंगदर्शन' पत्रिका में हुआ था। बाद में सन् 1884 ई० में वह पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। वस्तुतः संजीब बाबू की विशेष प्रसिद्धि उनकी भ्रमण-कहानी 'पालामौ' (1880-81) (दे०) के कारण है। इस ग्रंथ के द्वारा लेखक ने यह प्रमाणित कर दिया है कि शुद्ध भ्रमण-कहानी के उपलक्ष्य में आख्यान-मात्र-वर्जित मनोरम साहित्य-रचना संभव है। उनके साहित्य-सृजन से यही पता चलता है कि कहानी कहने की शक्ति उनमें विद्यमान थी, इसलिए उपन्यासों की कथा-वस्तु जटिल होने पर भी कहानी की निबिड़ता तथा गति पाठकों को आकर्षित करती रही है। उनमें प्रतिभा थी परंतु अनुशासन और शृंखला का अभाव था, इसीलिए सृजन-क्षमता के रहते हुए भी वे बहुत नहीं लिख पाए।

चतुरसेन शास्त्री *(हिं० ले०)* [जन्म—1891 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

इनका जन्म जिला बुलंदशहर के अनूपशहर कस्बे में हुआ। लगभग 23 वर्ष की आयु में ये एक प्रसिद्ध कथाकार माने जाने लगे थे और इसके बाद लगभग 44 वर्ष तक इन्होंने उपन्यास, निबंध, इतिहास, धर्म, राजनीति, चिकित्सा, कामशास्त्र, पाकशास्त्र जैसे विषयों पर 186 ग्रंथ लिखे। अभी भी लगभग चार दर्जन ग्रंथ अप्रकाशित हैं।

बौद्धकाल, मुगलकाल एवं राजपूत काल से संबंधित इन्होंने लगभग 450 कहानियाँ लिखी हैं। 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' इनकी प्रसिद्ध कहानी है, जो शैली और गठन की दृष्टि से बेजोड़ है। इनका संपूर्ण कथा-साहित्य दिल्ली से पाँच भागों में प्रकाशित हुआ है—1. 'बाहर-भीतर', 2. 'दुखवा मैं कासे कहूँ', 3. 'धरती और आसमान', 4. 'सोया हुआ शहर', और 5. 'कहानी खत्म हो गई'।

'वैशाली की नगरवधू' (दे०), 'आत्मदाह', 'हृदय की प्यास', 'बगुला के पंख', 'गोली', 'सोना और खून' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। कुल मिलाकर इनके 32 उपन्यास कहे गए हैं। इनके उपन्यास ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। 'वयम् रक्षामः' इनकी प्रागैतिहासिक औपन्यासिक कृति है। 'अमर राठौर' तथा 'उत्सर्ग' इनकी नाट्यकृतियाँ हैं।

अनेक विषयों पर लिखने के कारण इनमें विस्तार तो है, पर गहराई बहुत कम है। इनकी भाषा-शैली युगानुरूप साँचे में नहीं ढली और न पुरानेपन को त्याग सकी। इनकी रसाप्लुत शैली, जो कुछ ऐतिहासिक कहानियों में उमड़ी है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। भारतीय संस्कृति के गौरवपूर्ण और अंधकारमय काल को अपना कथ्य बनाकर इन्होंने परतंत्रता के काल में हमें हमारे गौरवपूर्ण अतीत की झाँकी दिखाकर राष्ट्र-निर्माण की दिशा में जो कार्य किया है वह अत्यंत प्रशंसनीय है। भारतीय साहित्य और संस्कृति को इनका यही सच्चा योगदान है।

चतुर्दशपदी (सॉनेट) *(हिं० पारि०)*

यह प्रसिद्ध पाश्चात्य प्रगीत-रूप 'सॉनेट' का बहुप्रचलित हिंदी-पर्याय है। जेकब शिपर के अनुसार 'सॉनेट ग्यारह वर्णों अथवा पंचपदियों में रचित चौदह पंक्तियों की एक ऐसी स्वतःपूर्ण लघु कविता है जिसमें कवि आद्यंत एक ही विषय, विचार अथवा विचार-शृंखला का प्रतिपादन करता हुआ *अंत में किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है*'। 'छोटे आकार के कारण सुरुचिपूर्ण एवं निर्भ्रांत-सुनिश्चित शब्द-चयन, लय (दे०), अंत्यक्रम, छंद (दे०) की नियमित योजना तथा विषय की पूर्ण अन्विति इसके सुसंहित, सघन और तीव्र प्रभाव की सृष्टि के लिए आवश्यक हैं।

सॉनेट का उद्भव इटली में तेरहवीं शती के आरंभ में इतालवी सॉनेटो से माना जाता है। प्रारंभ में लंबी कविताओं के विभिन्न अनुच्छेदों के रूप में प्रयुक्त सॉनेट का कोई निजी स्वरूप नहीं उभर पाया था, यहाँ तक

कि उसकी पक्तियो की सख्या भी सुनिश्चित न हो सकी थी। तेरहवी शती के अत मे रचित इतालवी कवि दुराते की प्रसिद्ध रचना 'रोमाँ दि ला रोजे' मे सॉनेट को अनुच्छेदो के छादिक माध्यम के रूप मे ही अपनाया गया है। अँग्रेजी मे इसका प्रचलन सोलहवी शती के प्रारभ मे हुआ। अँग्रेजी के प्रारभिक सॉनेटकारो ने पक्ति-सख्या की कोई चिता नही की। स्पेंसर ने प्राय बारह पक्तियो मे ही अतुकात सॉनेटो की रचना की है। चौदह पक्तियो का साग्रह निर्धारण उन्ही के समकालीन फिलिप सिडनी के द्वारा किया गया। सत्रहवी शती के प्रथम दशक मे ही शेक्सपीयर के प्रसिद्ध सॉनेट प्रकाश मे आए और तब से लगभग दो शताब्दियो तक सॉनेट अँग्रेजी साहित्य का अत्यत लोकप्रिय गीतिरूप बना रहा। फ्रास मे इसके स्वरूप निर्धारण का मुख्य श्रेय मल्हर बेऔर सेंत ब्यब को है।

पश्चिम मे विशिष्ट सॉनेट रचयिताओ के नाम पर पैट्राकियन, स्पेंसेरियन और शेक्सपीरियन आदि अभिधान देने की परपरा रही है। अधिकाश सॉनेट पैट्रार्क की भाँति दो चतुष्पदियो और दो त्रिपदियो मे रचित है। आधुनिक भारतीय साहित्य मे चतुर्दशपदियो का आविर्भाव और प्रचलन पाश्चात्य प्रभाव के फलस्वरूप ही हुआ है यो आधुनिक कवियो—विशेषत बँगला और हिंदी के कवियो—ने इसके रूप मे अपने अनुरूप परिवर्तन कर लिये हैं।

चतुर्दशपदी कवितावली *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1866 ई०]

'चतुर्दशपदी कवितावली' की रचना कर माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) ने बँगला काव्य क्षेत्र मे पाश्चात्य काव्य रूप सॉनेट का प्रवर्तन किया और बँगला काव्य को एक अभिनव अभिव्यजना-रीति प्राप्त हुई। सॉनेट गीतिकविता का ही एक प्रकार-भेद है। गीति कविता के तरल, स्वच्छद प्रवाहित भावोच्छ्वास को चौदह पक्तियो मे से प्रवाहित कर एक सहत रूप प्रदान करना पडता है। चतुर्दशपदी कवितावली के सॉनेटो मे कवि-मन की सुगभीर अनुभूति को इसी प्रकार एक सहत, अखड रूप प्राप्त हुआ है।

मधुसूदन के इन सॉनेटो मे उनका जातीय गौरव एव स्वदेश प्रीति ही अधिक प्रकट हुई है। आश्चर्य की बात है कि सुदूर फ्रास मे रहते हुए रचित इन सानेटो मे कवि ने जयदेव (दे०), कृत्तिवास (दे०) आदि के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है। भारतीय देव-देवियो, पूजापार्वण का उल्लेख किया है। पीपल वृक्ष के नीचे स्थित शिव-मदिर को वे नही भूले हैं एव साँप, वृक्ष, नदी का किनारा आदि क्षुद्रातिक्षुद्र विषयो को लेकर कविता की रचना की है। इन सॉनेटो मे आवेग की तीव्रता की अपेक्षा जीवन के सबध मे परिणत चितन अधिक प्रकट हुआ है। प्रज्ञा एव मनन के माध्यम से कवि ने एक मुहूर्त की अनुभूति को स्थायी रूप प्रदान किया है। अपने ही छद मे अपनी बात कहने की रीति महिमा के आश्रय मे रचित चतुर्दशपदी कवितावली बँगला साहित्य की स्थायी सपत्ति है।

चतुर्वेदी, माखनलाल *(हि० ले०)* [*जन्म—1889 ई०, मृत्यु—1967 ई०*]

इनका जन्मस्थान बावई, *ज़िला होशगाबाद* (म० प्र०) है। परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण ये उच्च शिक्षा प्राप्त नही कर सके। थोडे दिन अध्यापन काय करने के पश्चात् इन्होने पत्रकारिता मे प्रवेश किया और 'प्रभा', कर्मवीर' एव 'प्रताप' जैसे पत्रो का सपादन किया। 'स्वातत्र्य सग्राम मे सक्रिय भाग लेने के कारण इन्होने जेल-यात्रा भी की। इनकी रचनाओ मे 'हिमकिरीटिनी' और 'हिमतरगिनी' नामक काव्य तथा कृष्णार्जुन युद्ध' नामक नाटक अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। इनकी कविताओ मे राष्ट्रभक्ति का ओज और आस्तिक भावना की द्रवणशीलता दर्शनीय है। विषय जो भी हो, इनकी शैली मे भावावेश का अप्रतिहत प्रवाह सदैव विद्यमान रहता है। इनकी शब्दावली प्राय मुक्त और अनगढ है। भावसिक्त बिबो की योजना करने मे ये सिद्धहस्त हैं। उक्तियो मे लाक्षणिक चमत्कार और अलकृति का भी अभाव नही है। इस प्रकार भाव की दृष्टि स इनकी चेतना सास्कृतिक है और शैली की दृष्टि से इनकी कविता मे छायावादी (दे० छायावाद) तत्त्वो की प्रचुरता है। आधुनिक युग के राष्ट्रीय-सास्कृतिक काव्य मे इनकी रचनाओ का महत्वपूर्ण स्थान है।

चदुरग *(क० ले०)* [*जन्म— 1916 ई०*]

कन्नड के श्रेष्ठ प्रगतिवादी साहित्यकार श्री सुब्रह्मण्यम राजे अर्स का काव्य-नाम है 'चदुरग'। आपका जन्म 1916 ई० म मैसूर राजघराने से सबधित एक सुसस्कृत परिवार मे हुआ। महाराजा कालेज मे उच्च शिक्षा पाने के पश्चात् ग्रामोद्धार के उद्देश्य से वर्षों अपने गाँव मे रहे और ग्राम-सुधार मे लगे रहे। 'सर्वमगला' तथा

'उय्याले' आपके श्रेष्ठ उपन्यास हैं जिनमें आपने कर्णाटक के कृषक-जीवन की समस्याओं का मानवीयता के आलोक में अंकन किया है। 'सर्वमंगला' कन्नड के अमर चरित्रों में से है। उसमें एक कृषक नारी के त्यागमय एवं सेवापरायण जीवन का मार्मिक चित्रण है। श्री चदुरंग एक अच्छे कहानीकार भी हैं। 'बण्णद बोंबे' में अमीरी और ग़रीबी की समस्या बालमन को भी कैसे आक्रांत करती है—इसका सशक्त निरूपण है। 'कुमार राम' आपका एक ऐतिहासिक नाटक है जिसमें विजयनगर पूर्व राज्य कुंटल के कुमार राम वीरोल्लास तथा मुसलमानों के आक्रमण आदि का सजीव निरूपण है। आपकी शैली बहुत ही चुटीली और सशक्त है।

चदुवु *(तें० कृ०)* [ले०— कोडवगंटि कुटुंबराव (दे०)]

'चदुवु' (शिक्षा) कोडवगंटि कुटुंबराव का भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन एवं सत्याग्रह की भूमिका पर रचा गया एक राजनीतिक उपन्यास है। इसमें कांग्रेस के आंदोलन में भाग लेने के लिए शिक्षा का त्याग करने वाले एक युवक की यातनाओं का यथार्थ वर्णन उपन्यासकार ने किया है। इसके साथ-साथ इसमें मनुष्य को अपनी जीविका चलाने के लिए समर्थ बनाने की ओर ध्यान न देकर उसे पंगु एवं निष्क्रिय बना डालने वाली हमारी व्यावहारिकता-शून्य शिक्षा-नीति पर भी कटाक्ष किया गया है।

चमनलाल 'चमन' *(कश्० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

विभाजनोत्तर काल के सांस्कृतिक नवजागरण से प्रभावित। 1957 ई० से कविताएँ लिखने लगे। प्रेमाख्यानक पृष्ठभूमि पर रोमानी गीतों की रचना। 1963 में 'शबनम्य शार' नाम का कविता-संग्रह प्रकाशित। भावुक और कल्पना-प्रधान कविता। लय, सुर, तुक आदि की दृष्टि से अच्छे छंद जिनमें गेयता भी है और बारीकी भी। इस समय जम्मू व कश्मीर अकादमी, श्रीनगर में हैं।

चरक *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—ई० पू० 600 के लगभग]

चरक-रचित 'चरक-संहिता' अत्यंत प्रख्यात है। वस्तुतः 'चरक-संहिता', 'आत्रेयपुनर्वसु' द्वारा उपदिष्ट है। उनके शिष्य अग्निवेश ने 'चरक-संहिता' की रचना की है। महर्षि भरद्वाज के शिष्य दृढबल तथा चरक ने 'चरक-संहिता' का प्रतिसंस्कार किया है। 'चरक-संहिता' में आठ विभाग या स्थान हैं। ये हैं—1. सूत्रस्थान, 2. निदानस्थान, 3. विमानस्थान, 4. शारीरस्थान, 5. इंद्रियस्थान, 6. चिकित्सास्थान, 7. कल्पस्थान तथा 8. सिद्धिस्थान।

चरक ने 'चरक-संहिता' के अंतर्गत रोग के निदान एवं चिकित्सा के अतिरिक्त नैतिक एवं दार्शनिक पक्ष के संबंध में भी विचार किया है। 'चरक-संहिता' के सूत्रस्थान में ओषधि, पथ्य एवं वैद्य के कर्तव्य आदि का वर्णन किया गया है। निदानस्थान में ज्वर, रक्तस्राव, कुष्ठ एवं क्षय आदि का विवेचन है। विमानस्थान में रोगों के परीक्षण एवं ओषधि का वर्णन है। इंद्रियस्थान में इंद्रियों की विकृति, वाणी-संबंधी विकार तथा शक्ति-क्षय का उल्लेख है। चिकित्सास्थान में रोगों के निदान, स्वास्थ्य-वृद्धि तथा दीर्घ जीवन के उपाय आदि का वर्णन किया गया है। कल्पस्थान में शरीर-शोधन द्वारा रोगों के निवारण का वर्णन है। सिद्धिस्थान में विषम रोगों के चिकित्सा के लिए ओषधि के शरीर में प्रवेश कराने की व्याख्या है। इस प्रकार आयुर्वेदशास्त्र के अंतर्गत चरक का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। रोग के निदान और उसकी चिकित्सा के संबंध में चरक की देन सर्वथा अविस्मरणीय रहेगी। चरक ने कर्म-सिद्धांत एवं पुनर्जन्मवाद आदि सिद्धांतों का भी स्पष्ट प्रतिपादन किया है।

चरणदास, भक्त *(उ० ले०)* [समय—अठारहवीं शती ई०]

इनका जन्म 1780 में रणपुर राज्य के अंतर्गत सुनारवळा ग्राम में हुआ था। इनका पितृदत्त नाम बैरागी चरण पटनायक था। दीक्षा-ग्रहण के बाद ये भक्तचरण के नाम से प्रसिद्ध हुए। ये पंचसखा (दे०)-मतावलंबी गृही वैष्णव थे।

चरणदास ने अपने लोकप्रिय काव्य 'मथुरा मंगळ' (दे०) में हृदय का नैवेद्य भावग्राही कृष्ण के चरणों में अर्पित किया है। मध्ययुगीन उड़िया साहित्य में 'मथुरा मंगळ' का स्थान अन्यतम है। भक्ति की दृष्टि से भी इसका विशेष महत्व है। 'मथुरा मंगळ' में यशोदा, राधा एवं गोपियों की कृष्ण-विरह-जनित व्यथा अत्यंत करुणार्द्र भाषा में वर्णित है। इसके छंदों की मूर्च्छना मर्मस्पर्शी है। गोपियों के विलाप में सहज भक्ति का चित्रण हुआ है। उद्धव का अद्वैतवादी ज्ञान वात्सल्यमयी माता यशोदा, प्रेम-विह्वला राधा, अनुरागमयी गोपियों के अनन्य प्रेम-प्रवाह में भाव-तरल बनकर निमग्न हो जाता है। वियोग-शृंगार का यह काव्य 'सूर-सागर' (दे०) का स्मरण दिलाता है। वैष्णवों

की यह अमूल्य निधि है।

भक्त चरणदास की दूसरी रचना है 'मथुरा विजे चउतिशा' जो मथुरा की नारियो के कृष्ण दर्शन-जनित विभ्रम के वर्णन से मधुर व सजल बन गई है। इनके द्वारा रचित 'मनोबोध चउतिशा' नामक कृति शकराचार्य (दे०) के 'मोहमुद्गर' की तरह वैराग्य व नीति-शिक्षा से परिपूर्ण है।

भक्त चरणदास की लोकप्रियता का रहस्य इनकी भाषा की रमणीयता, छदो की सगीतात्मकता, तथा रचना की भाव-स्निग्धता मे ढूँढा जा सकता है।

चरणसिंह *(प० ले०)* [जन्म—1853 ई०, मृत्यु—1908 ई०]

डा० चरणसिंह भाई वीरसिंह (दे०) के पिता थे। वे अपने समय के उच्चकोटि के विद्वान थे। इन्होने ब्रजभाषा मे कविता लिखना प्रारभ किया था। ब्रजभाषा के प्रति इनके मन मे अगाध प्रेम और सम्मान था। बाद मे पजाबी भाषा मे रचित साहित्य से प्रभावित होकर इन्होने पजाबी मे काव्य-रचना की। डा० चरणसिंह की कविताओ मे आध्यात्मिक भावो को कलात्मक ढग से व्यक्त किया गया है। इन्होने कालिदास के 'शकुतला' नाटक का पजाबी मे सुदर अनुवाद किया है।

चरिउ काव्य *(अप० पारि०)*

अपभ्रश-साहित्य मे कुछ ग्रथ ऐसे है जिन्हे 'पुराण' कहा गया है, कुछ ऐसे है जिन्हे 'चरिउ' सज्ञा दी गई है। कुछ ग्रथो को 'पुराण' और 'चरिउ' दोनो सज्ञाओ से अभिहित किया गया है। जैसे स्वयभू-रचित 'पउम चरिउ' को कवि ने कई पुष्पिकाओ मे 'पउम चरिउ' या 'पोम चरिउ' कहा है। अतिम प्रशस्ति मे त्रिभुवन स्वयभू इसे 'रामायण पुराण' कहते है। इस ग्रथ की कुछ पाडुलिपियो मे इसे 'पद्मपुराण' कहा गया है। इसी प्रकार स्वयभू (दे०) की 'रिट्ठणेमि चरिउ' (दे०) को चरिउ और पुराण दोनो ही नामो से अभिहित किया गया है। इसलिए कुछ विद्वान चरिउसज्ञक और पुराणसज्ञक काव्यो मे भेद नही मानते। डा० हरिवल्लभ भायाणी दोनो मे स्वरूपगत भेद न मानते हुए केवल आकारगत भेद ही मानते है। पुराण मे विस्तार अधिक होता है चरिउ मे अपेक्षाकृत कम। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०) ने 'हिंदी साहित्य की भूमिका' (पृष्ठ 221) मे सूचित किया है कि 63 महापुरुषो के चरित्रो के आधार पर लिखे गए ग्रथो को दिगबर लोग साधारणत 'पुराण' कहते है और श्वेताबर लोग 'चरिउ'। इस कथन की परीक्षा तभी सभव है जबकि अपभ्रश के पुराण एव चरितसज्ञक ग्रथो के कृतिकारो का दिगबर और श्वेताबर सप्रदायो की दृष्टि से अध्ययन किया जाए।

चरितकाव्यो की वही विशेषताएँ है जो पुराण शैली के काव्यो की हैं—जैसे वक्ता और श्रोता के सवाद रूप मे कथा कहना, अलौकिक, अतिप्राकृत और अतिमानवीय शक्तियो, कार्यो और वस्तुओ का समावेश, साहसिक कार्यो और रोमाचक तत्त्वो का प्राधिक्य, नायक के जन्म से लेकर मरण-पर्यत तक की अथवा भवातरो की कथा, शृगार, वीर तथा शात रसो की व्यजना करते हुए उनका शात रस मे पर्यवसान होना या प्रेम, वीरता और वैराग्य की भावनाओ का समन्वय, काव्य-रूढियो का पालन, एक-आध अपवादो को छोड कर सभी चरितकाव्यो का कडवक-बद्ध शैली मे होना, इत्यादि। अपभ्रश के चरितकाव्यो से हिंदी के चरितकाव्य भी प्रभावित हुए। उनमे भी य विशेषताएँ कम-अधिक मिलती हैं।

चरितकाव्य *(हिं० पारि०)*

शास्त्रीय लक्षणो एव नियमादि से मुक्त प्रबध-काव्य का एक अशास्त्रीय रूप। पुराण (दे०), कथा एव इतिहास से सर्वथा भिन्न चरितकाव्य आचार्यो, कोविदो और परिनिष्ठित-सुसस्कृत अभिजात-वर्ग मे कभी प्रिय नही रहा। तात्त्विक दृष्टि से इसे लोक-साहित्य के अतर्गत ही माना जाता है। इसकी शैली जीवनचरितात्मक होती है। नायक के वश, जन्म, घर-परिवार, शैशव, यौवन से लेकर जीवनात तक की महत्वपूर्ण एव महत्वहीन सभी प्रकार की घटनाओ का गतानुगतिक वर्णन इसकी एक विशेषता है। विषय शृगार-शौर्य, धर्मवैराग्य आदि से सबद्ध होते हैं। कथारभ मे प्राय प्रश्नोत्तरपूर्ण श्रोता-वक्ता की सवाद-योजना रहती है जिसमे अधिकतर कवि और उसकी पत्नी, तोता-मैना, शुक-शुकी और भृग भृगी के साथ मानवीय चरित्र भाग लेते हैं। लोक-रुचि के अनुसार ही स्वभावत इसमे अलौकिक दिव्य अतिमानवीय शक्तियो के अतिशयोक्तिपूर्ण कही-कही अस्वाभाविक कार्य-कलापो का अतिरजनापूर्ण वर्णन रहता है। अभिव्यजना, भाषा और अलकार-प्रसाधन से रहित सीधी लोकभाषा होती है जिसमे प्राय व्याकरण के प्रति उपेक्षा भी दिखाई पडती है।

शास्त्रीय महाकाव्यों की भाँति इसमें भी कवि उद्देश्य-प्रतिपादन के प्रति सजग रहता है, किंतु उद्देश्य सूक्ष्म एवं कलात्मक रूप से ध्वनित न होकर स्थूलतः कथित रहता है। यद्यपि संस्कृत में भी चरितकाव्य की परंपरा रही है ['पद्मचरित' (दे०), 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' (दे०), 'विक्रमांक देवचरित' (दे०) आदि], तथापि इसकी सर्वाधिक लोकप्रियता प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में ही रही है। कुछ प्रसिद्ध चरितकाव्य हैं : 'पउमचरिउ' (दे०), 'रिट्ठणेमिचरिउ' (दे०), 'जसहरचरिउ' (दे०), 'पज्जुण्ण कहा', 'गउड वहो', 'मलयसुंदरी कहा' आदि। कुछ विद्वानों ने हिंदी के 'पृथ्वीराज रासो' (दे०), 'बीसलदेव रासो' (दे०), 'ढोला मारूरा दूहा' (दे०), 'रामचरितमानस' (दे०), 'पद्मावत' (दे०), 'मृगावती' (दे०) और 'मधुमालती' (दे०) आदि मध्ययुगीन प्रबंधकाव्यों को भी चरितकाव्य माना है, किंतु यह मत विवाद से मुक्त नहीं है।

चरित्रहीन *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1917 ई०]

'चरित्रहीन' में शरत् (दे०) ने ह्रास-परिहास से उत्पन्न आकर्षण का तीव्र प्रभाव दिखाया है। सामाजिक तथा अवस्थागत वैषम्य होते हुए भी सतीश-सावित्री एक दूसरे को चाहने लगते हैं। प्रणयिनी होती हुई भी सावित्री संयत एवं कल्याण-कामना से अनुप्राणित है। इसीलिए वह स्वेच्छा से मिथ्या कलंक का प्रचार करती है तथा दीर्घ अज्ञातवास लेती है ताकि सतीश का उद्दाम आकर्षण द्वेष एवं घृणा में बदल जाए। निश्चय ही इससे सावित्री की चरित्र-गरिमा असाधारण प्रभाव छोड़ जाती है। ऐसे रोगजर्जर शेष जीवन में उपेंद्र उसका साथ देता है।

इस उपन्यास की तो बात ही क्या, संभवतः समस्त शरत्-साहित्य की अद्भुत सृष्टि है किरणमयी (दे०)। उसका संस्कारमुक्त कुंठाहीन तेजस्वी व्यक्तित्व प्रखर एवं मुखर है। डाक्टर के साथ उसकी गुप्त प्रेम-लीला, दिवाकर का अभिभावक बनना और उसके साथ बर्मा भागना, आदि वैविध्यपूर्ण व्यवहार में पतन एवं असंगति लक्षित होती है परंतु उसकी स्वीकारोक्तियों में प्रबल, निर्भीक तथा यथार्थवादी व्यक्तित्व छिपा हुआ है। इसके विपरीत सरोजिनी तथा सुरबाला के आचरण में स्वच्छता एवं शीतलता है। वास्तव में वैध एवं अवैध प्रेम, चरित्रवान तथा चरित्रहीन की लक्ष्मण-रेखाएँ खींचना असंभव है। लेखक नैतिक मूल्यों के खोखलेपन को उजागर करना चाहता है।

चरित्रोपाख्यान *(पं० कृ०)*

गुरु गोविंदसिंह (दे०)-विरचित 'दसम ग्रंथ' (दे०) में चरित्रोपाख्यान सर्वाधिक दीर्घ और साथ ही इस विशाल ग्रंथ की सर्वाधिक विवादपूर्ण रचना है। चरित्रोपाख्यान कथाओं का एक बृहद् संग्रह है जिनकी संख्या 400 से अधिक है। डा० मोहन सिंह (दे०) के शब्दों में यह रचना मध्यकालीन भारत में प्रचलित सभी पंजाबी और ग़ैर-पंजाबी, भारतीय और अभारतीय कथाओं का विश्वकोश है।

इस रचना में सम्मिलित कथाओं के मुख्य प्रेरणा-स्रोत हैं—बहार दानिश, भारतीय पुराण, लोकगाथा, पंजाबी किस्सा-काव्य, भारतीय इतिहास, आदि। इन कथाओं का केंद्रीय विषय है स्त्री-चरित्र। यदि सभी नहीं तो लगभग अधिकांश कथाओं का केंद्रबिंदु कोई नारी पात्र है और अनेक रूपों में उसके पुरुष-संबंध के द्वंद्व को व्याप्त किया गया है। इसमें देशकाल की परिस्थितियों का अत्यंत सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत किया गया है।

'चरित्रोपाख्यान' में संगृहीत सभी चरित्र अपने आप में स्वतंत्र होते हुए भी एक बृहत्तर कथा-योजना के अंग हैं। ये सभी चरित्र राजा चित्रसिंह को उसके मंत्री द्वारा विशेष लक्ष्य की सिद्धि के लिए सुनाए गए थे। यह लक्ष्य था विमाता द्वारा लांछित राजकुमार हनुवंतसिंह को प्राणदंड से मुक्ति।

'चरित्रोपाख्यान' में संगृहीत सभी कथाओं को स्थूल रूप से चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है : (1) प्रेम-कथाएँ, (2) शौर्य-कथाएँ, (3) विनोद-कथाएँ, (4) काम और छल-कथाएँ। 'कृष्ण-रुक्मिणी, भर्तृहरि-पिंगला, माधवानल-कामकंदला, रत्नसेन-पद्मावती, हीर-राँझा, मोहिनी-असुर, उषा-अनिरुद्ध आदि अनेक लोकप्रिय कथानक इस संग्रह में उपलब्ध हैं।

प्रारंभ (मंगलाचरण) और अंत (महाकाल का दीर्घ दाड़ ते युद्ध) का इस ग्रंथ के अध्ययन में विशेष महत्व है। यही वह अंश है जो इस रचना को दसम ग्रंथ की मूल सृजन-चेतना के साथ बाँधता है। तत्कालीन पीड़ित, पराधीन और शक्तिहीन समाज को प्राचीन भारतीय ग्रंथों, वीरप्रसंगों और ईश्वरीय शक्ति का आश्रय लेकर उसे संघर्ष के लिए सन्नद्ध करना दसम ग्रंथ के रचयिता का मूल उद्देश्य था। इस रचना का प्रारंभ—'तुही आपनो निहकलंकी धनैहै। सभै ही मलेछान को नास कैहै॥' के भाव से होता है। अंत में 'महाकाल' के दीर्घ दाड़ से युद्ध

का लंबा वर्णन है—'दुस्ट जिते उठवत उतपाता, सकल मलेच्छ करो रणघाता।'

चर्चरी *(अप० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती ई० का उत्तरार्ध]

यह जिनदत्त (दे०) सूरि द्वारा रचित एवं छोटी-सी कृति है। इसमे रचयिता ने 47 पद्यो मे अपने गुरु जिनवल्लभ सूरि का गुणगान और चैत्य-विधियो का विधान किया है। यह धार्मिक कृति है। कृतिकार ने लिखा है कि यह कृति मजरी भाषा-राग मे गाते हुए और नाचते हुए पढी जानी चाहिए।

चर्चरी *(अप० पारि०)*

चच्चरी तथा चाचरि, चर्चरी के ही पर्याय है। विक्रमोर्वशी के चतुर्थ अक मे अपभ्रश-पद्यो मे से कुछ पद्य चर्चरी नाम से अभिहित है। श्रीहर्ष की 'रत्नावली-नाटिका' मे चर्चरी का उल्लेख है और उधर हरिभद्र (आठवी शती से पूर्व) द्वारा लिखित 'समराइच्च-कहा और उद्योतन सूरि-रचित 'कुवलयमाला कथा' (वि० स० 836) नामक प्राकृत-ग्रथों मे भी इसका उल्लेख है। सस्कृत-प्राकृत के ग्रथो के अतिरिक्त अपभ्रश के वीर कवि (1019 ई०) द्वारा रचित 'जबुसामिचरिउ' (दे०), नय नदी (1043 ई०) के 'सुदसण चरिउ' के वसतोत्सव प्रसग मे, और श्रीचद (1066 ई०) के 'रत्नकरड शास्त्र' नामक अपभ्रश-ग्रथ मे कुछ छदो के साथ चच्चरि छद भी मिलता है। इससे प्रतीत होता है कि चर्चरी एक छद विशेष का नाम होगा। कबीर के 'बीजक' (दे०) मे चाचर का उल्लेख है जिसे कुछ टीकाकार एक प्रकार का खेल कहते है और जायसी के 'पद्मावत' (दे०) मे भी फागुन और होली के प्रसग मे 'चाचरि' का प्रयोग हुआ है। वास्तव मे 'चर्चरी शब्द, ताल एव नृत्य के साथ उत्सवादि मे गाई जाने वाली रचना विशेष का बोधक है। कुछ विद्वानो के विचार मे चर्चरी शृगार-प्रधान लोकगीत था जो बारहवी शती के लगभग वसत के दिनो मे गाया जाता था।

चर्या *(अप० पारि०)*

महायान के धर्म और साधना-पथ मे बोधि-चित्त को उत्पन्न करने के लिए पारमिताओ की साधना करनी होती है, जिनमे सबसे अतिम और महत्वपूर्ण प्रज्ञा-पारमिता है। इसकी साधना के बाद बोधि चित्तोत्पाद होता है, उसके उपरात उसे ऊपर की ओर उद्बुद्ध किया जाता है, तब अनत करुणा का उदय होता है। यह समस्त प्रणाली 'चर्या' कहलाती है, जो जनसुलभ नही होती। चर्या तथा क्रिया, दोनो का ही उद्देश्य प्रज्ञा तथा उपाय का अभ्युदय है। विविध देवी-देवता, उनकी साधनाएँ, दीक्षा, अभिषेक, मडल आवेश आदि क्रियाओ और चर्याओ के अतर्गत आते है।

चर्यापद *(बँ० कृ०)*

1882 ई० मे राजा राजेंद्रलाल मित्र-रचित 'सस्कृत बुद्धिस्ट लिट्रेचर इन नेपाल' निबध मे नेपाल मे सरक्षित सस्कृत पाडुलिपियो की एक सूची प्रकाशित हुई। राजेंद्रलाल मित्र की मृत्यु के उपरात सरकारी अनुरोध पर महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री नेपाल गए। 1907 ई० मे उनकी तीसरी यात्रा मे नेपाल के राजदरबार से उन्होने कतिपय मूल्यवान पाडुलिपियो का सग्रह किया और 1916 ई० मे वगीय साहित्य परिषद् की ओर से इन्हे ग्रथाकार प्रकाशित किया जो बाद मे 'चर्यापद' के नाम से विख्यात हुआ। 1926 ई० मे सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय (चैटर्जी) (दे०) ने भाषातात्त्विक विचार के आधार पर इसे बँगला भाषा का प्राचीनतम रूप सिद्ध किया। बँगला पद, प्रवचन एव मुहा-वरे की दृष्टि से एव शब्द रूप धातु-रूप एव बँगला भाषा की विशिष्ट विभक्ति की दृष्टि से चर्यापद समूह को बँगला भाषा के प्राचीनतम निदर्शन के रूप मे स्वीकार करना पडता है। बँगला भाषा के अतिरिक्त इस पर असमी भाषा के दावे को भी स्वीकार करना पडता है क्योकि सोलहवी शती तक बँगला एव असमी भाषा का मौलिक पार्थक्य बहुत गहरा नही था।

चर्या का अर्थ है आचरणीय एव अचर्य का अर्थ अनाचरणीय है, इसी अर्थ मे इन पदो को 'चर्याश्चर्य' कहा जाता है। मुनिदत्त के सस्कृत टीका ग्रथ मे से इन पदो को उद्धृत किया गया है। ग्रथ का नाम है 'चर्याश्चर्यविनिश्चय'। इन्ही को ही चर्यापद या चर्यागीतिका कहा जाता है। यह खडित टीका ग्रथ है। इसमे केवल 24 कवियो के 46 पूर्ण एव एक असपूर्ण पद समाहित है। प्रबोधचद्र शास्त्री ने 1938 ई० मे चर्यापद समूह का तिब्बती अनुवाद प्रकाशित किया। इस अनुवाद की सहायता से खडित पाडुलिपि के लुप्त गीत-समूह आविष्कृत हुए। मुनिदत्त ने चौदहवी शती

में टीका की रचना की। प्राचीनतम पदकर्ता हैं लुइपाद, जो ग्यारहवीं शती के हैं। इन पदों के लेखक लुइपाद, कानुपा, भुसुकु, सरहपाद आदि बौद्ध सहजिया मतावलंबी साधक हैं। इनमें महायान संप्रदाय की सहजयान नामक एक विशेष तांत्रिक योगसाधना की निवृत्ति है। इन गीतों में उपमा-रूपक के प्रयोग के द्वारा सिद्धाचार्यों के मतवाद को संकेत के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन संकेतों का अर्थ यही है कि चित्त के साथ विषय के संपर्क का विच्छेद करके एवं समस्त भेदज्ञान को लुप्त करके चित्त को शून्यताबोध में प्रतिष्ठित करना है। शून्यताबोध के साथ करुणा के संयोग से चित्त निर्वाण प्राप्त करता है। इसकी भाषा संध्यभाषा है क्योंकि इसमें प्रस्तुत अर्थ के साथ ही विशेष अभिप्रायमूलक एक दूसरा अप्रस्तुत अर्थ भी रहता है। दसवीं से बारहवीं शती के बीच रचित योगियों के ये गीत बँगला भाषा के प्राचीनतम उदाहरण हैं।

चलाबाट *(उ० कृ०)*

'चलाबाट' राजकिशोर पटनायक (दे०) का सामाजिक उपन्यास है। उत्कलीय युवक अमरेंद्र और उत्तर-भारतीय युवती रीति अपने विश्वविद्यालयीय जीवन में निकट आते हैं तथा कालांतर में यह संबंध भावुकतापूर्ण प्रणय में बदल जाता है। रीति भाव-प्रवणतावश अमरेंद्र से दूर चली जाती है। विश्वविद्यालय की अन्यतम छात्रा सुमति अमरेंद्र को जीवन-साथी के रूप में चाहती है। इस त्रिकोण में अंत में तीनों ही अविवाहित एवं निस्संग जीवन बिताते हैं। यही इसकी विषयवस्तु है। कथावस्तु संक्षिप्त है। इसमें पात्रों की मनोवृत्ति, मानसिक द्वंद्व आदि का अच्छा परिचय मिलता है। लेखक के समाज-संबंधी विचार भी सामने आते हैं। शैली वैशिष्ट्यपूर्ण है। लेखक की तीक्ष्णबुद्धि, परिपक्व अभिज्ञता, रसज्ञता एवं जीवन की सत्योपलब्धि से यह उपन्यास समृद्ध है। उपमा, रूपक आदि से इसकी भाव-संपदा सुसज्जित है।

चलिहा, कमलेश्वर *(अ० ले०)* [जन्म—1904 ई०; जन्म-स्थान—डिब्रूगढ़]

इन्होंने 1922 में जोरहाट से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की थी। कई कार्यालयों में इन्होंने नौकरी की। ये जोरहाट के गीतार्थी समाज के एक संस्थापक हैं। इन्होंने 'काच' छद्म नाम से रचनाएँ की हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'संसारी' (1922), 'कणभी' (1927), 'मुकुति' (1927), 'गुणगुण' (1930), 'छंदिता' (1941)। नाटक : 'धुलि' (1928)। उपन्यास : 'प्रिया' (1939), 'वालिगड़ात' (1951), 'सुंदरर आघात' (1954)। जीवनी : 'विश्वरसिक बेजबरुवा' (1939), 'दीनबंधु एंड्रूज' (1940)।

इनकी कविताओं में दार्शनिकता और आध्यात्मिकता है, अतः वे कुछ क्लिष्ट हैं। इन पर रवींद्रनाथ (दे०) ठाकुर का प्रभाव है। 'कणभी' सरल शिशुकाव्य है। 'धूलि' एक प्रतीकात्मक नाटिका है जिसमें धूलि स्त्री की प्रतीक है। उपन्यासों के अतिरिक्त इन्होंने जीवनी-ग्रंथ भी लिखे हैं, जिनमें श्री बेजबरुवा पर लिखा ग्रंथ विशेष उल्लेखयोग्य है।

चलिहा, सौरभ *(अ० ले०)*

श्री चलिहा स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी के सशक्त कलाकार हैं। प्रकाशित रचनाएँ—कहानी-संग्रह : 'अशांत इलेक्ट्रन' (दे०) (1962), 'दुपरिया' (दे०) (1963)।

इनकी कहानियों में बौद्धिकता अधिक है अतः वे जटिल हैं। इन पर हेमिंग्वे का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इनका पहला कहानी-संग्रह अधिक जटिल है, इसकी एक कहानी 'ज्यामिति' में व्यक्तियों के नाम क, ख, ग हैं। 'दुपरिया' संग्रह की कहानियों में जटिलता नहीं है। देखना है कि भविष्य में इनकी कौन-सी दृष्टि विकसित होती है।

चाँद का मुँह टेढ़ा है *(हि० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1964 ई०]

नये कवि गजानन माधव मुक्तिबोध (दे०) के इस कविता-संग्रह का मूल स्वर प्रगतिवादी (दे० प्रगतिवाद) है। जन-क्रांति के लक्ष्य से तादात्म्य स्थापित करने में मध्यवर्गीय संस्कार किस प्रकार बाधा उत्पन्न करते हैं, इसका मनोवैज्ञानिक चित्रण अनेक रूपक-कथाओं द्वारा किया गया है। कुछ कविताओं में सैद्धांतिक घोषणाएँ भी हैं। अप्रस्तुत सामग्री अधिकांशतः लोक-जीवन से गृहीत है परंतु भाषा में अप्रचलित संस्कृत शब्दों का भी अभाव नहीं है। 'अँधेरे में' आदि कुछ कविताओं में महाकाव्य जैसी गरिमा है।

चाकनैया *(अ० कृ०)* [रचना काल—1954 ई०]

लेखक राधिका मोहन गोस्वामी। 'चाकनैया' (भँवर) उपन्यास मे विवेक नामक आदर्शवादी युवक की निराशा-कहानी है। यह युवक वर्तमान समाज में अपने को अनुपयुक्त पाता है।

चाक्को, आई० सी० *(मल० ले०)* [जन्म—1876 ई०, मृत्यु—1966 ई०]

प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक और वैयाकरण। अपने नब्बे वर्ष के जीवन में वे अत तक साहित्य-सेवा करते रहे और उन्होंने विश्व की अनेक भाषाओ पर अधिकार प्राप्त किया। साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत उनका व्याकरण-ग्रथ 'पाणिनीयप्रद्योतम्' पाणिनीय (दे० पाणिनी और अष्टाध्यायी) व्याकरण पर लिखा गया आधिकारिक ग्रथ है। उन्होंने कृषि आदि तकनीकी विषयो पर भी लिखा है और जीवनियाँ भी लिखी हैं। मलयाळम के प्रौढ लेखको मे आई० सी० चाक्को का स्थान महत्वपूर्ण है।

चाटुर्ज्या, सुनीतिकुमार *(बँ० ले०)*

दे० चटर्जी, सुनीतिकुमार, दे० बँगला भाषा तत्त्व।

चाटुवुलु *(तं० पारि०)*

कभी-कभी किसी घटना से स्पदित होकर समर्थ कवि तत्काल ही एक-दो छद बोलते हैं। इसी प्रकार के छद तेलुगु मे 'चाटुवुलु' कहे जाते है। प्राय सभी भाषाओ मे हम इस प्रकार की कविता देख सकते हैं। सस्कृत मे कालिदास (दे०) जैसे अनेक कवियो की तथा तेलुगु मे भीमन, श्रीनाथुडु (दे०) आदि की चाटुकविताएँ प्रसिद्ध हैं।

चाटुपद मुक्तक रचना के अतर्गत आते हैं। फिर भी शतक, त्रिशति, सप्तशति आदि की तरह विस्तृत न होकर यह रचना अत्यत सक्षिप्त रहती है। इसके लिए वस्तु, रस तथा छद आदि से सबद्ध कोई विशेष नियम नही है। सक्षिप्तता, गति तथा पूर्णता इसकी विशेषताएँ है। दर्शन, शृगार, नीति, वैयक्तिक अनुभूति आदि कुछ भी इसका विषय हो सकता है। कभी-कभी यह चमत्कारपूर्ण अथवा हास्य-प्रधान होती है। एक बार प्यासे श्रीनाथुडु (प्रसिद्ध तेलुगु कवि) ने अपनी चाटु कविता मे कहा, "हे शकर! भीख माँगने वाले को दो (औरतो) की क्या जरूरत है? पार्वती को पास रखो और गगा को छोड दो।" तेलुगु मे वेमुलवाड भीमन के चाटुपद भी बहुत प्रसिद्ध है।

सक्षिप्त साहित्यिक विधाओ मे चाटुकविता का प्रमुख स्थान है। तेलुगु मे अनेक कवियो के चाटुपद अत्यत प्रचलित तथा लोकप्रिय हैं।

चाणक्य *(बँ० पा०)*

द्विजेंद्रलाल राय (दे०) के 'चद्रगुप्त' नाटक मे इतिहास का चाणक्य प्राय अलक्ष्य-अदृश्य है। फिर भी 'चद्रगुप्त' नाटक के चाणक्य चरित्र को ऐतिहासिक मर्यादा प्राप्त हुई है। कूटनीतिज्ञ चाणक्य की ख्याति ऐतिहासिक है किंतु इस ऐतिहासिक चरित्र के व्यक्ति-जीवन को द्विजेंद्रलाल ने रूपायित किया है। नाट्यकार ने कन्याहारा चाणक्य को एक अपूर्व आवेग-प्रवण मनुष्य के रूप मे चित्रित किया है। उसके स्नेह मे विघ्न पडने पर ही उसमे हिंसा जागी है। ब्राह्मण्य अहकार व्यक्तिगत अपमान का बदला लेने के लिए व्यग्र हो उठा है। किंतु इस अहकार ने उसे ग्रस नही डाला है। इसीलिए नदवध के उपरात ही चाणक्य का व्यर्थ हाहा-कार प्रकट हुआ है। उसकी लडकी आत्रेयी के वापस मिलते ही चाणक्य नाटक से विदा ले लेता है। ऐतिहासिक चरित्र से यह भिन्नता काफी स्पष्ट है किंतु चाणक्य के व्यक्तिगत जीवन को लेखक ने बहुत ही सुदर ढग से प्रस्तुत किया है और कदाचित् इसीलिए जनमानस ने हमेशा चाणक्य को अतरग होकर ग्रहण किया है। प्रख्यात नट शिशिरकुमार भादुडी ने चाणक्य के चरित्र को रूप देकर नाट्य-रसिको के मन मे उसे हमेशा के लिए आवेग और श्रद्धा के आसन पर प्रति-ष्ठित कर दिया है।

चाणक्य *(स० ले०)*

इसका वास्तविक नाम विष्णुगुप्त है, तथा इसे कौटिल्य अथवा कौटिलेय भी कहते हैं। सभवत इसके पिता का नाम चणक था, अत इसका 'चाणक्य' नाम प्रसिद्ध हो गया। इसने मगध देश के नद राजाओ का विनाश कर चद्रगुप्त को राज्य पर प्रतिष्ठित किया तथा मौर्य साम्राज्य की स्थापना की। इसका प्रसिद्ध ग्रथ 'कौटिलीय अर्थशास्त्र' (दे०) है, जिसका प्रमुख विषय राजनीति है। इसमें पद्रह अधिकरण हैं जिनमे राज्य शासन से सबद्ध विभिन्न विषयों

के अतिरिक्त परराष्ट्र, युद्धशास्त्र, विधान और वाणिज्य-व्यापार आदि विषयों पर सविस्तर प्रकाश डाला गया है। संस्कृत वाङ्मय में अपने विषय का यह अद्‌भुत ग्रंथ है तथा परवर्ती संस्कृत के कवियों एवं नाटककारों ने इससे पर्याप्त सामग्री ग्रहण की। सर्वप्रथम दाक्षिणात्य पं० डा० श्यामशास्त्री ने 1909 ई० में इस ग्रंथ की प्रामाणिक प्रति प्रस्तुत कर इसका पुनरुद्धार किया।

चाणक्य *(हिं० पा०)*

यह जयशंकर प्रसाद (दे०) के ऐतिहासिक नाटक 'चंद्रगुप्त' (दे०) का अत्यंत गौरवपूर्ण पात्र है तथा नायक न होते हुए भी संपूर्ण नाटक में आद्यंत छाया रहता है। इसके माध्यम से जयशंकर प्रसाद ने ब्राह्मणत्व का चरम निदर्शन किया है। सिद्धांतवादिता, दृढ़ता, कष्ट-सहिष्णुता, स्पष्टवादिता, दूरदर्शिता तथा राजनीतिक चातुर्य इसकी उल्लेखनीय चारित्रिक विशेषताएँ हैं। अपनी राजनीतिक प्रतिभा के फलस्वरूप ही यह गांधार से लेकर मगध तक के सारे उत्तरापथ को एक शासन-व्यवस्था में नियोजित करके चंद्रगुप्त (दे०) को उसका प्रथम आर्य-सम्राट् घोषित करता है। चंद्रगुप्त द्वारा सिल्यूकस को पराजित करवा कर यह पर्याप्त अवधि के लिए आर्यावर्त को बाहरी हमलों के संकट से निश्चिंत कर देता है। यह क्रूर तथा महत्त्वाकांक्षी भी है, किंतु इसकी क्रूरता स्वभावगत न होकर परिस्थितिजन्य है तथा महत्त्वाकांक्षा सर्वथा स्वार्थहीन। इसका चरित्र ब्राह्मणोचित विद्वत्ता के साथ-साथ ब्राह्मण-सुलभ उदारता तथा क्षमाशीलता के गुणों से भी युक्त है। इसीलिए यह किसी से द्वेष नहीं करता तथा पराजित सिकंदर के साथ मैत्री-भाव स्थापित हो जाने पर उसकी मंगल-यात्रा की कामना करता है। अपने घोर विरोधी राक्षस के शरणागत हो जाने पर यह उसे महामंत्री के पद पर प्रतिष्ठित करा देता है। राजनीति के जटिल चक्र में आजीवन व्यस्त रहने पर भी यदाकदाइ सके चरित्र का कोमल पक्ष उद्‌घाटित हो ही जाता है। तक्षशिला से विद्याध्ययन के बाद घर लौटने पर यह न केवल अपने माता-पिता का स्मरण करता है अपितु इसे बालसंगिनी सुवासिनी भी सहज स्मरण हो आती है। यद्यपि यह प्रारंभ में उसे विस्मृत करने का प्रयत्न करता है किंतु उसके सामने आ जाने पर इसकी आँखों से प्रणय-भाव अनायास झलक उठता है। लेकिन यह प्रेम में अंधा होकर अपना विवेक नहीं खोता और जब इसे यह विश्वास हो जाता है कि सुवासिनी राक्षस से प्रेम करके ही सुखी हो सकती है तो उसे राक्षस से विवाह करने का आदेश देकर अपनी त्यागपूर्ण उदारता का परिचय देता है। समग्रतः चाणक्य कर्मठता, सूझबूझ तथा त्याग का एक ऐसा प्रतीक है कि उसकी प्रशंसा अनुगामी ही नहीं अपितु पर्वतेश्वर, राक्षस, सिल्यूकस, सिकंदर आदि विरोधी भी करते हैं।

चातरिक धनीराम *(पं० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1954 ई०]

इनका जन्म पसियावाल गाँव (ज़िला स्यालकोट) में हुआ था। ये उच्च शिक्षा तो प्राप्त न कर सके, फिर भी, इन्होंने हिंदी, उर्दू और अँग्रेज़ी का खासा अध्ययन किया था।

इनके तीन काव्य-संग्रह हैं: 'चंदनवाड़ी' (दे०) (1931), 'केशर क्यारी' (1940), और 'नवा जहान' (1945)। इन तीनों काव्य-संग्रहों की कविताएँ लोक-चेतना से संपृक्त हैं। प्रगति, सामाजिक सुधार और राष्ट्रीयता के स्वर इन कविताओं में प्रबल हैं।

चातरिक की कविता यथार्थवादी और प्रगतिशील है। इसमें तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति का सुंदर चित्रण हुआ है। चातरिक के काव्य का मूलाधार भौतिक और लौकिक है। इसमें हर प्रकार के शोषण का विरोध किया गया है। कुछेक कविताओं में राष्ट्रीय भावनाएँ भी व्यक्त हुई हैं और राजनीतिक दासता से मुक्त होने की तीव्र छटपटाहट भी। इन कविताओं की भाषा ठेठ पंजाबी है और इनमें अभिव्यक्ति का खरापन है। इनके गीतों में लोकगीतों का-सा रस है।

चातरिक ने पंजाबी काव्य को ठोस भौतिक आधार दिया है। उनके काव्य में जीवन के वास्तविक संघर्ष, समाज की बुनियादी समस्याओं और राष्ट्रीय स्वातंत्र्य चेतना को कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति मिली है। पंजाबी कविता के विकास में चातरिक का योगदान महत्वपूर्ण है।

चातन् *(मल० पा०)*

यह आधुनिक युग के प्रख्यात कवि स्व० उळ्ळूर् (दे०) परमेश्वरय्यर् के खंडकाव्य 'भक्तिदीपिका' (दे०) का प्रमुख पात्र है। श्री शंकराचार्य (दे०) के शिष्य पद्मपाद भागवत के प्रह्लादोपाख्यान से प्रभावित हो नृसिंह की उपासना के लिए वन चले गए थे। इसी वन में निरक्षर-

हृदय और प्रेममूर्ति चात्तन् रहता था। एक साधु को भूख-प्यास झेलते तथा तपते देख उसे दया आई और उसने उसकी सेवा करनी चाही। पद्मपाद ने बडे विद्वत्तापूर्ण शब्दो मे नृसिह-मूर्ति का वर्णन किया परतु चात्तन् ने केवल उसका हुलिया समझा—कि उस जीव का शरीर आदमी का होता है और सिर शेर का। वह उस जानवर की तलाश मे चला। निश्छल वनवासी भील की सच्ची प्रार्थना से प्रसन्न होकर नृसिह देव ने उसे दर्शन दिए। वह एक मोटी जगली बेल उसके गले मे बाँधे उसे साथ लेकर घूमने लगा। वह उसे प्रेम से कदमूल खिलाता, नहर का पानी पिलाता। पद्मपाद के पास जाने की इच्छा न होने पर भी नृसिह को उस भोले भक्त के अनुरोध के सामने सिर झुकाना पडा। पद्मपाद का ज्ञानगर्व भोले भील की भक्ति के सम्मुख चूर-चूर हो गया।

चात्तन् के द्वारा कवि ने जाति-पाँति विषयक ऊँच-नीच की भावना की निरर्थकता व्यक्त की है।

चानना, डा० देवराज *(प० ले०)* [जन्म—1921 ई०, मृत्यु—*1968 ई०*]

डा० चानना का जन्म लायलपुर (अब पाकिस्तान) मे हुआ। शिक्षा ऋषिकुल महाविद्यालय, लायलपुर से शास्त्री, ओरिएटल कालेज, लाहौर से एम० ए० सस्कृत। सॉरबॉन विश्वविद्यालय, पेरिस (फ्रास) से 'प्राचीन भारत मे दास-प्रथा' विषय पर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। इनका शोध-प्रबध अँग्रेजी एव रूसी भाषा मे अनूदित एव प्रकाशित हुआ है। पजाब विश्वविद्यालय कैप कालिज, नई दिल्ली मे सस्कृत विभाग मे प्राध्यापक और तदनतर दिल्ली विश्वविद्यालय के साध्यकालीन स्नातकोत्तर महाविद्यालय मे सस्कृत विभाग मे रीडर पद पर रहे।

देश-विभाजन के पश्चात् दिल्ली से प्रकाशित 'साझा युग' पत्र का सपादन 1950 ई० तक किया। देश-विभाजन पूर्व 'प्रीतलडी' पत्रिका के सपादन-विभाग मे भी सहयोगी रहे। वेद के सोमसूक्तादि भाग को पजाबी पद्य मे 'ऋग्वाणी' शीर्षक से अनूदित किया। 'ऋग्वाणी' प्रकाशित कृति है। अन्य ग्रथो मे फ्रासीसी भाषा से अनूदित—1 'भारतीय चिकित्सा-सिद्धातो का इतिहास', 2 'मराठी भाषा की रूप-रचना', 3 'डैस्टिनी आफ द वेदाज'। सपादित कृति—'ऋग्भाष्य-सग्रह'। 19 मई 1968 को हृदय गति रुक जाने से देहावसान हो गया।

चापेकर, ना० गो० *(म० ले०)*

ये मराठी साहित्य के प्रतिष्ठित साहित्य-समालोचक हैं। इन्होने शासकीय सेवा करते हुए यथायोग्य समाज एव साहित्य की भी निष्ठापूर्वक सेवा की है।

इनके समालोचनात्मक निबध 'साहित्य-समीक्षण' मे सकलित है। इनकी आलोचना-शैली का यह वैशिष्ट्य है कि समीक्ष्य ग्रथ से पाठक का परिचय कराने के उपरात तटस्थ दृष्टि से ये उसका मूल्याकन करते है। ये निर्णयात्मक आलोचक हैं। आलोचना करते हुए तटस्थ वृत्ति होने पर भी विवेचन मे इनके व्यक्तित्व का रागतत्त्व झलकता है। विविध ज्ञान-विस्तार तथा अन्य पत्रिकाओ मे इनकी पुस्तक-समालोचनाएँ प्रकाशित हुई है।

1943 मे इन्होने 'जीवनकथा' नाम से आत्मचरितात्मक ग्रथ लिखा था। इस आत्मचरित की प्रस्तावना मे ये आत्मचरित-लेखन को दुष्कर कार्य मानते हैं। ये कहते हैं कि आत्मचरित लिखना तार पर कसरत करना है। निस्सदेह अपने मतव्य के अनुरूप ही इनके लेखन मे सर्वत्र सतुलित दृष्टिकोण दिखाई देता है।

जानपदगीतो के सकलनकर्ताओ मे भी ये प्रमुख हैं।

चामरस *(क० ले०)* [आविर्भाव-काल—पद्रहवी शती ई०]

चामरस के समय, जीवन आदि के बारे मे अधिक बातें ज्ञात नही हैं। यह वीरशैव-मतावलबी थे। विजयनगर-नरेश प्रौढदेवराय के समय के विरक्तो मे इनकी भी गणना की गई है। इन्होने कर्णाटक के महान् सत अल्लम प्रभु (दे०) पर षट्पदी छद मे 'प्रभुलिगलीले' नामक एक चरित-काव्य लिखा है। परम ज्ञानी प्रभुदेव के जीवन निरूपण के लिए आवश्यक विरक्ति एव स्वतत्र दृष्टि उनमे थी।

अल्लम प्रभु पर कन्नड मे और भी अनेक काव्य एव पुराण मिलते है। चामरस से भी पूर्व हरिहर ने रगले छद मे 'प्रभुदेवर रगले' नामक एक चरित-काव्य लिखा था। उसमे प्रभुदेव को जन्मना सिद्ध के रूप मे चित्रित किया गया है। वहाँ प्रभुदेव माया पर अनुरक्त होते हैं और उसके साथ कुछ समय तक सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं। उसके उपरात माया की मृत्यु हो जाती है जिसमे प्रभुदेव मे प्रगाढ वैराग्य पैदा हो जाता है। किंतु चामरस की दृष्टि ही भिन्न है। वह विश्वास ही नही कर सकता कि शिवजी के अवतार-रूप प्रभुदेव माया-जाल मे कैसे फँस सकते हैं।

यहाँ माया उसे अपने मोहजाल में फँसाने का प्रयत्न करती है और उसमें विफल होकर कैलास लौट पड़ती है। इस तरह यहाँ सांप्रदायिक आग्रह अधिक है। किंतु इससे काव्य का महत्व घटा नहीं है। काव्य अपनी मूर्त कल्पना तथा महान् उद्देश्य के कारण एक श्रेष्ठ कृति बन गया है। अल्लम प्रभुदेव के चरित्र-निरूपण में कवि ने कमाल हासिल किया है। शून्यमूर्ति अल्लम के चित्रण में यथार्थ की अपेक्षा आदर्श अधिक है। इसमें चामरस की कल्पना-शक्ति तथा शब्द-शक्ति के सहज विलास को हम देख सकते हैं। अल्लम के साथ गोरक्षनाथ की मुठभेड़ होती है। इस संदर्भ में शून्य और वज्र की परीक्षा, माया-निरसन, संत रमणी, अक्क-महादेवी, प्रभुदेव संवाद आदि इस काव्य के रमणीक प्रसंग हैं। अल्लम प्रभु के समय वीरशैव संतों का एक नक्षत्रपुंज ही रहता है। उनमें से सब जैसे बसव (दे०), चेन्नबसव (दे०), सिद्धराय, अक्कमहादेवी आदि अल्लम के साथ आ मिलते है। मानो पर्वत आकर इस आकाश के सामने झुक जाते है। इन सबके निरूपण में चरितनायक की आंतरिक शक्ति के साथ इसके तादात्म्य, सूक्ष्मज्ञान आदि ने इसके काव्य में प्रासादिकता तथा कल्पना-प्रवाह का सन्निवेश कर दिया है। माया के सौंदर्य-वर्णन में तो इसने कलम तोड़ दी है।

चामरस की शैली सरल है। उसमें अलंकारों की अति या संस्कृत शब्दों की भरमार नहीं है। भामिनी षट्पदी छंद की प्रवाहमयता तथा रूपक संपत्ति में यह कुमारव्यास (दे०) के निकट आते हैं। इनकी दृष्टि में भी स्वतंत्रता के दर्शन होते हैं।

चार इयारी कथा *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1916 ई०]

'चार इयारी कथा' एक प्रसंग-सूत्र में बँधा हुआ चार कहानियों का संकलन है जिसके लेखक हैं श्री प्रमथनाथ चौधुरी (दे० चौधरी, प्रथमनाथ)। यह सबसे पहले 'सबुजपत्र' (दे०) में प्रकाशित हुआ था। विलायत से वापस आए हुए चार दोस्तों की व्यर्थ प्रणय-कहानी ही 'चार इयारी कथा' है। चारों नायिकाएँ विदेशिनी है। एक कहानी का घटनास्थल कलकत्ता है, दो का इंग्लैंड और अंतिम का इंग्लैंड और कलकत्ता दोनों है। नायक-नायिकाओं के अतिरिक्त इसमें कोई तीसरा पात्र नहीं है। नायकों की अनुभूति एवं विचार-विश्लेषण के बीच से कहानी की गति प्रवाहित है।

प्रमथ चौधुरी की इन कहानियों में कथावस्तु की व्याप्ति भले ही खटकने वाली हो परंतु गपशप की शैली में लिखी गई कहानियों की व्याप्ति के संबंध में लेखक एकदम निरुद्वेग है एवं मूल कथा की संगति एवं समापन के विषय में भी उसकी कोई उत्कंठा नहीं है। कहानियों में अनंत गपशप की यह पद्धति बिल्कुल नई थी एवं आलोचकों के लिए यह विस्मय की बात बन गई थी। लेखक ने हास्यरस-सृष्टि की एक अभिनव प्रणाली का प्रयोग किया है। इन कहानियों को पढ़ते हुए लेखक का मन हास्य-व्यंग्य से स्निग्ध हो उठता है परंतु कहानी की गंभीरता कहीं भी समाप्त नहीं होती। रचना-शैली का यह आपत्-विरोधी तत्त्व लेखक की एक बहुत बड़ी विशेषता है।

चारुदत्त *(सं० पा०)*

राजा शूद्रक के नाम से उपलब्ध 'मृच्छकटिक' (दे०) नामक प्रकरण का नायक चारुदत्त उज्जयिनी के एक बड़े ही संपन्न परिवार का सदस्य है जो अब व्यवसाय में घाटा होने से निर्धन हो चला है। उसी नगर की प्रसिद्ध सुंदरी गणिका वसंतसेना (दे०) उसके गुणों पर मुग्ध होकर उससे प्रेम करती है और इसे वह अपना सौभाग्य मानती है।

विधि की विडंबना कि उस सुंदरी के पीछे राजा का साला पड़ जाता है जिसका चारुदत्त से विरोध हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है। एक बार उसी के चंगुल में फँसते-फँसते वसंतसेना को चारुदत्त के घर में त्राण मिलता है और वह अपने सभी आभूषण उसी के यहाँ न्यास के रूप में रख जाती है जो दुर्भाग्यवश चोरी चले जाते हैं। उसके बदले में चारुदत्त अपनी पत्नी की मोतियों की माला भिजवा देता है। दूसरी बार वसंतसेना चारुदत्त के घर जाती है और सोने की गाड़ी के लिए मचलते हुए चारुदत्त के पुत्र को अपने सभी आभूषण दे आती है जिनको लेकर चारुदत्त वसंतसेना का हत्यारा सिद्ध कर दिया जाता है। पर वध के ऐन मौके पर ही विप्लव हो जाने से तथा वसंतसेना के जिस किसी प्रकार उपस्थित हो जाने से वह मुक्ति ही नहीं पा जाता, विप्लवी राजा के व्यक्ति को त्राण देने के लिए पुरस्कृत किया जाता है तथा वसंतसेना को उसकी पत्नी के रूप में स्वीकृति भी मिल जाती है।

चारुदत्त मूलतः भास (दे०) की कल्पना है। सर्वसंपन्न व्यक्ति निर्धन हो जाने पर गरीबी का ही रोना रोता रहता है पर चारुदत्त को कष्ट इस बात का है कि अतिथि उसे निर्धन मानकर उसके घर आते नहीं। दूसरों की

आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकने मे असमर्थता का अनुभव उसे पीडित करता है। वह एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति है जो गृहदेवताओ की पूजा को अविच्छिन्न चलाते रहने के लिए आग्रहशील है। नगर मे उसका बहुत सम्मान है। पुलिस के लोग उसकी सवारी की तलाशी नही लेते। न्यायालय मे उसे बैठने के लिए आसन दिया जाता है। इन सबके साथ-साथ वह एक सहृदय प्रणयी भी है। वसतसेना की प्रेम-दृष्टि को समझता ही नही, उसका उचित सम्मान भी करता है। वह इसकी परवाह नही करता कि इसका परिणाम क्या होगा। यद्यपि वह एक सच्चा प्रणयी है पर मर्यादा का उल्लघन कभी नही करता। यह जान लेने पर कि वसतसेना मर गई वह सोचता है कि अब तो जीना ही व्यर्थ है और शकार (दे०) द्वारा लगाया गया वसतसेना की हत्या का आरोप स्वीकार कर लेता है।

चावुंडराय-पुराण (क० कृ०)

'चावुडराय पुराण' के रचयिता चावुडराय का समय 978 ई० ठहराया गया है। ये गगवशी नरेश मारसिंह, रायमल्ल आदि के मत्री और महान् योद्धा थे। 'समर परशुराम', 'समर मार्त्तंड' आदि इनके विरुद थे। श्रवणबेळगोल मे स्थित गोम्मटेश्वर की मूर्ति का निर्माण इन्ही ने कराया था। ये कवि भी थे और कवियो के आश्रयदाता भी। 'आचारसार' इनका सस्कृत ग्रथ माना जाता है। 'त्रिषष्टि-शलाकापुरुषपुराण' इनकी प्रतिनिधि रचना है। 'वड्डाराधने' के पश्चात् यही कन्नड का अत्यत प्राचीन गद्य-ग्रथ है। इसी का दूसरा नाम है 'चावुडरायपुराण'। जिनसेन तथा गुणभद्र के पूर्वपुराण तथा उत्तरपुराण इसके आधार-ग्रथ हैं। आदिपुराण, शातिपुराण, रामकथा, नेमिपुराण आदि का प्रमुखत तथा अन्यो का गौणत उपयोग किया गया है। इसमे जैन धर्म के विश्वासो, तत्त्व एव इतिहासो का निरूपण है। इसे हम जैन धर्म की दीपिका कह सकते है। इसमे मुख्य रूप से 63 महापुरुषो—अर्थात् 24 तीर्थंकरो, 12 चक्रवर्तियो, 9 बलदेवो, 9 वासुदेवो तथा 9 प्रतिवासुदेवो—की कथा आई है। बलदेव, वासुदेव एव प्रतिवासुदेवो मे राम, लक्ष्मण, रावण, बलराम, कृष्ण एव जरासध आते हैं।

चावुडराय की शैली कथा-गद्य एव शास्त्र-गद्य की मिश्रित शैली है। बीच-बीच मे सस्कृत शब्दो का प्रयोग, तथा लबे-लबे वाक्य गतिरोध उत्पन्न करते है। प्राचीन कन्नड के प्रयोग भी बीच-बीच मे आ धमकते है। इसमे चपूग्रथो मे पाए जाने वाले गद्य का आडबर नही है, उसी तरह विशुद्ध कथागद्य की देशी शैली का विलास भी नही है। फिर भी उसमे एक सरल लालित्य है, गभीर गति है। विषय की दृष्टि से मौलिक न होने पर भी प्राचीन कन्नड की गद्य-शैली का यह एक नमूना है। गभीरता, मुक्तता एव शुद्धता इस शैली की विशेषताएँ हैं।

चितानल (अ० कृ०) [रचना-काल—प्रथम खड 1890 ई०, द्वितीय खड 1922 ई०]

कमलकात भट्टाचार्य (दे०) के इस काव्यसग्रह की कविताएँ देशभक्ति के अग्नि-स्फुलिंग के समान हैं। इनमे असम के अतीत गौरव और वर्तमान के अध पतन की ओर ध्यान आकृष्ट कर देशवासियो को उन्नति-पथ पर अग्रसर होने का आह्वान किया गया है। छद सावलील एव श्रुतिमधुर नही हैं, किंतु अनुभव की तीव्रता और कल्पना की मौलिकता का अभाव नही है। कविताओ की प्रत्येक पक्ति स्वदेश प्रेम के वज्रघोष से पूरित है। ओजस्वी कविता लिखने के कारण ही इस काव्य-ग्रथ के रचयिता श्री कमलकात 'अग्निऋषि' कहे जाते है।

चिंता दीक्षितुलु (तें० ले०) [जन्म—1891 ई०, मृत्यु—1960 ई०]

इन्होने पूर्वी गोदावरी ज़िले मे रामचद्रपुर तहसील के दगेरु नामक ग्राम मे जन्म लिया। इन्होने बी० ए० तथा एल० टी० की परीक्षाएँ पास की। आध्रप्रदेश के प्रशासन के अतर्गत ये कई स्थानो मे शिक्षाधिकारी रहे।

तेलुगु-साहित्य मे नवजागरण स्वच्छदतावादी युग से आरभ होता है। इस नवजागृति मे सहायता तथा प्रेरणा पहुँचाने वाली साहित्यिक सस्थाओ मे 'साहिती समिति' ने बडी प्रमुख भूमिका निभाई थी। दीक्षितुलु इनके प्रधान सदस्यो मे स थे। जासूसी उपन्यासो से इनके साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश हुआ था परतु आगे चल कर इस विधा को इन्होने त्याग दिया। इन्होने कहानी-कला मे चार चाँद लगाए। ये कहानी-सम्राट् माने जाते हैं। इनकी कहानियो का सकलन 'एकादशी' नाम से प्रकाशित हुआ जिसमे इनकी गिनी-चुनी ग्यारह कहानियो का सकलन हुआ था। 'वटीरावु' इनका अन्य कहानी-सग्रह है जिसमे आधुनिक नारियो की कुछ विलक्षण प्रवृत्तियो का चित्रण हुआ है। दीक्षितुलु एक सफल एकाकीकार भी थे। इनमे

'वरूथिनी', 'शर्मिष्ठा' तथा 'रेणुका' उल्लेखनीय हैं। ये सभी कृतियाँ आधुनिक विचारधारा से ओतप्रोत हैं। इन्होंने एक नाटक का भी प्रणयन किया। 'शबरी' वास्तव में इनकी सभी कृतियों में शिरोमाणिक्य है। इसमें छंदों का अभाव है जो तेलुगु की नाटक-रचना में एक नई उद्भावना थी। प्रसिद्ध भक्तिन 'शबरी' का इतिवृत्त बड़ी मार्मिकता के साथ इसमें अंकित है।

दीक्षितुलु का पुण्यस्मरण तेलुगु के बालसाहित्य-निर्माता के रूप में अवश्य होना चाहिए। इनकी 'लीला-सुंदरी' नामक परीकथा बहुत प्रसिद्ध हुई। 'सूरि', 'सीती', 'वेंकी' नाम से रचित इनकी बाल-कहानियों का बड़ा आदर हुआ है। बालगीतकार के रूप में भी दीक्षितुलु ख्याति-प्राप्त थे। 'लक्कपिडतलु' बालगीतों की यशस्वी कृति है।

चिंतामणि *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1921 ई०]

यह काळ्ळकूरि नारायणराव, (दे०) का दस अंकों का सामाजिक नाटक है। 'कृष्णकर्णामृत' के कर्ता लीलाशुक से संबद्ध बताया जाने पर भी यह सामाजिक कुरीतियों की आलोचना करने वाला नाटक है। शांतरस-प्रधान इस नाटक में आदर्श चरित्र वाले बिल्वमंगळुडु (दे०) के चिंतामणि नामक वेश्या के जाल में फँसकर, अंत में श्रीकृष्ण के माहात्म्य के कारण, वैराग्य-भाव ग्रहण करने का वर्णन किया गया है। चिंतामणि भी बैरागिन हो जाती है।

वेश्यावृत्ति के दुष्परिणामों को चित्रित करते हुए इस सामाजिक कुप्रथा की आलोचना करने वाला यह नाटक रंगमंच पर अति लोकप्रिय रहा है।

चिंतामणि *(हिं० कृ०)*

यह हिंदी के युग-प्रवर्तक आलोचक एवं निबंध-कार आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) के कृतित्व का प्रति-निधित्व करने वाला बहुचर्चित एवं लोकप्रिय निबंध-संग्रह है। दो भागों में प्रकाशित इस निबंध-संग्रह में शुक्ल जी के प्रायः सभी श्रेष्ठ निबंध संकलित हैं। इसके पहले भाग में सत्रह निबंध हैं जिनमें से प्रथम दस भाव या मनोविकार-विषयक हैं, चार सैद्धांतिक आलोचना से संबंधित है तथा तीन व्यावहारिक समीक्षा-संबंधी हैं। दूसरे भाग में शुद्ध शास्त्रीय समीक्षा संबंधी तीन लंबे-लंबे निबंध हैं। मनो-वैज्ञानिक निबंधों में मानव-मन की विभिन्न दशाओं—यथा श्रद्धा भक्ति, क्रोध, लोभ और प्रीति आदि—का सूक्ष्म और सुव्यवस्थित विवेचन किया गया है तो सिद्धांत-समीक्षा-संबंधी निबंधों में शुक्ल जी की आलोचना-विषयक उन मान्यताओं का निरूपण हुआ है जिनके आधार पर उन्होंने हिंदी साहित्य के कृतिकारों, कृतियों तथा प्रवृत्तियों की समीक्षा की है। व्यावहारिक समीक्षा-संबंधी निबंधों में उन्होंने अपनी सैद्धां-तिक मान्यताओं के आधार पर किसी कृति या लेखक की अंतःप्रवृत्तियों में प्रवेश करके उसकी समस्त साहित्यिक चेतना का मूल्यांकन किया है। मौलिक चिंतन, सुनियोजित तार्किक विचार-शृंखला, भारतीय तथा वैयक्तिकता की छाप से युक्त, हास्य-व्यंग्य का पुट लिये विषयानुरूप एवं मुहा-वरेदार भाषा-शैली का प्रयोग इस कृति की कतिपय अन्य उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

चिंतामणि *(हिं० ले०)*

चिंतामणि तिकवाँपुर (कानपुर) के निवासी थे। ये शाहजहाँ के समय में विद्यमान थे। इनके बनाए पाँच ग्रंथों का उल्लेख मिलता है—'काव्यविवेक', 'कवि-कुलकल्पतरु', 'काव्यप्रकाश', 'रसमंजरी', 'पिंगल' और 'रामायण'। इनके अतिरिक्त इन्होंने संत अकबरशाह-रचित 'शृंगारमंजरी' की हिंदी-छाया भी तैयार की थी। इनमें से कवि की ख्याति का मूलाधार-ग्रंथ 'कविकुलकल्पतरु' है। इसमें आठ प्रकरण हैं, जिनमें काव्यशास्त्र के विविध अंगों—काव्य-भेद, काव्य-लक्षण, गुण, शब्दालंकार, रीति, दोष, शब्दशक्ति, ध्वनि, रस और नायक-नायिका-भेद—का निरूपण किया गया है। इस ग्रंथ के निर्माण में मम्मट, (दे०) और विश्वनाथ (दे०) के अतिरिक्त धनंजय, (दे०) अप्पय्यदीक्षित (दे०), विद्यानाथ और भानुमिश्र के ग्रंथों से सहायता ली गई प्रतीत होती है। ग्रंथ का लक्षण-भाग सोरठा छंदों में है और उदाहरण-भाग कवित्त-सवैया छंदों में। चिंतामणि ने सर्वप्रथम मम्मट और विश्वनाथ की सरणि पर विविध काव्यांगों का निरूपण किया है, इसी कारण इन्हें रीतिकाल का प्रवर्तक आचार्य माना जाता है।

चिंताविष्टयाय सीता *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1919 ई०]

यह कुमारन् आशान् (दे०) का खंडकाव्य है। श्री रामचंद्र के अश्वमेध यज्ञ में पुत्रों को भेजकर वाल्मीकि के आश्रम में एकांत में बैठी सीता की विचार-परंपरा को इस काव्य में विकसित किया गया है। राम की न्याय-

प्रियता और राजधर्म पर सीता सदेह प्रकट करती है। उसके आदर्शों की उच्चता पर वह प्रश्न चिह्न लगाती है। अत मे अपनी चिता के लिए वह सबसे क्षमा माँगती है और इस ससार से ही बिदा ले लेती है।

इस काव्य मे 'रामायण' (दे०) के इस प्रसग पर नवीन परिप्रेक्ष्य मे दृष्टिपात करने के अलावा मानव-मनोविज्ञान का भी सुदर विश्लेषण किया गया है। काव्य मे करुण रस का निष्पादन कुशलतापूर्वक किया गया है और पाठक को चिंता की गहराइयो तक निमग्न होने का अवसर दिया गया है। यह सीता-काव्य आशान की यशस्विता का मुख्य आधार है।

चिकवीरराज *(क० पा०)*

कन्नड के कहानी सम्राट् मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे०) एक सफल उपन्यासकार भी हैं। उन्होने 'चेन्नबसवनायक' (दे०) तथा 'चिकवीरराज' नामक दो ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। 'चिकवीरराज' दूसरे उपन्यास का नायक है। वह कोडगु का राजा था। कोडगु वर्तमान मैसूर राज्य या कर्णाटक का एक जिला है। अँग्रेजो के जमाने मे वह एक स्वतत्र राज्य था। चिकवीरराजेंद्र उसका अतिम राजा था। वह एक अयोग्य शासक था। उसके उत्पीडन से त्रस्त होकर वहाँ की जनता ने अँग्रेजो से शिकायत की। अँग्रेज ऐसे मौके की ताक मे बैठे थे। तुरत उन्होने कोडगु पर चढाई कर दी, राजा को पदच्युत कर दिया और वहाँ अपना कमिश्नर रखा। चिकवीरराज का कोई पुत्र नही था, बस एक पुत्री थी। पहले उसे कोडगु की राजधानी मडिकेरी से हटाकर वेल्लूर मे रखा गया, फिर वहाँ से बनारस भेज दिया गया। बनारस मे उसकी रानी गौरम्मा का देहात हुआ तो राजा को उसकी बेटी के साथ, इगलैंड भेज दिया गया। वहाँ उसकी बेटी को ईसाई बना लिया गया। अँग्रेजो ने पहले वादा किया था कि राजा की बेटी गद्दी पर बिठाई जाएगी। किंतु वे अपने वादे से फिर गए और इस प्रकार एक छोटे हिंदू राज्य को उन्होने हडप लिया।

कोडगु के इसी पराभव का चित्रण इस उपन्यास मे है। चिकवीरराज का चरित्र चित्रण मास्तिजी ने अत्यत सजीव ढग से किया है। उसके विलास-जर्जर जीवन की विभिन्न परिस्थितियो का अत्यत यथार्थ चित्रण है। व्यभिचार तो मानो उसे पित्रार्जित सपत्ति की तरह प्राप्त था। पिता भी लपट थे परतु पुत्र ने तो इस दिशा मे पिता को मात कर दिया। उसका सहयोगी एक लडका था—बसव जो लँगडा था।

वह अनाथ बालक वास्तव मे राजा की जारज सतान था। शराब और सुदरी ने उसे बरबाद किया था। उसकी पत्नी गौरम्मा एक परम साध्वी विवेकशील रमणी थी। किंतु राजा अपनी पत्नी पर भी विश्वास नही करता था। राजा के एक बहिन थी जो चेन्नबसव (दे०) से ब्याही गई थी। व्यभिचारी राजा ने उसे बदी बना रखा था। चेन्नबसव ने अपनी पत्नी के साथ बच्चे को भी लेकर भाग जाने का प्रयत्न किया। राजा को ज्ञात हो गया कि शिशु कसयोग मे पैदा हुआ है। एक दिन रात को वह उस मासूम बच्चे की हत्या कर डालता है। इसके साथ ही उसकी व्यभिचार-लीला निरतर चलती रही। उसके मत्री इससे क्षुब्ध हुए। किंतु उसका तो सखा, सलाहकार सब-कुछ लँगडा बसव था। अत मे वह नगर के सपन्न घरो की स्त्रियो पर भी अपनी वक्र दृष्टि डालने लगा। तब अँग्रेजो को बुलाने मे जनता ने भी सहयोग दिया। राजा की चचलता, अविवेक, अहकार आदि की सीमा नही रही। वह 'किंग लियर' की तरह से यहाँ आया है। उसके प्रति जनता के मन मे जितनी अश्रद्धा है, उसकी पत्नी के प्रति उतनी ही श्रद्धा और पुत्री के प्रति प्रेम है। अव्यवस्थितचित्त राजा जनता का विरोध मोल लेकर किसी तरह अपने ही पाँव मे कुल्हाडी मार लेता है—इसका ज्वलत चित्र यहाँ है। मास्ति जी का चरित्र-चित्रण-कौशल यहाँ चरम सीमा पर पहुँच गया है। वह कन्नड के अत्यत जीवत चित्रो मे से एक है।

चिक्कदेवराज *(क० ले०)* [समय—1672-1704 ई०]

चिक्कदेवराज ओडेयर मैसूर के राजा थे। इनके समय मे मैसूर राज्य मे श्रीवैष्णव मत का महत्व बढा। मराठो को हराकर इन्होने औरगजेब से दोस्ती कर ली थी तथा राज्य की सपत्ति को बढाने के कारण इनका नाम नवकोटि नारायण पड गया था। ये न केवल स्वय कवि थे वरन् कवियो के आश्रयदाता भी थे। इन्ही के समय मे चपू-काव्य शैली का मार्ग काव्य पुनरुज्जीवित करने वाला बना था।

इनके तीन ग्रथ माने जाते है—'चिक्कदेवराज-विनय', 'गीत गोपाल', 'भागवत, शेषधर्म तथा भारत'। 'चिक्कदेवराजविनय' मे यदुगिरि नारायण को सबोधित करके लिखे गए 39 विनय-गद्य हैं। विनय के रूप मे श्री-

वैष्णव मत का तत्त्व-निरूपण है। इसके गद्य में प्रौढ़ता तथा भक्ति का रसोद्रेक है। 'गीतगोपाल', 'गीतगोविंद' (दे०) के आदर्श पर लिखा एक गीति-प्रबंध है जिसमें सात सप्तपदियां हैं। इसमें श्रीवैष्णव-तत्त्व के अनुसार भक्ति का निरूपण है। गोपालकृष्ण को जगाने वाले तथा गोपिकाओं के विरह का वर्णन करने वाले गीत अत्यंत मार्मिक हैं। इनकी शैली अत्यंत ललित एवं मधुर है। श्रीवैष्णव संप्रदाय संबंधी ये गीत कन्नड साहित्य में पहली बार लिखे गए हैं। इनकी भाषा में शुद्ध कन्नड का विलास देखा जा सकता है। भावतीव्रता तथा संगीतात्मकता के कारण ये श्रेष्ठ गीतिकाव्य बन पड़े हैं। भाव के भार से ये अवनत है और काव्य के गुणों से उन्नत। 'भागवत, शेषधर्म तथा भारत' टीका-ग्रंथ है। कुछ विद्वानों का कहना है कि चिक्कदेवराज के ये सब ग्रंथ उनके मंत्री तिरुमलाई द्वारा रचित हैं।

चिक्कुपाध्याय (क० ले०) [समय—सत्रहवीं शती का पूर्वार्ध]

ये मैसूर-नरेश चिक्कदेवराज ओडेयर के मंत्री तथा दरबारी पंडितों में से थे। इनके ग्रंथों की संख्या तीस से ऊपर है। इन कृतियों में इन्होंने श्रीवैष्णव मत के सिद्धांत, संप्रदाय-इतिहास आदि लिखकर एक 'श्रीवैष्णव-कोश'-सा प्रस्तुत कर दिया है। इनकी कृतियों में 'कमलाचल-माहात्म्य', 'हस्तिगिरि-माहात्म्य', 'रुक्मांगदचरिते', 'विष्णुपुराण', 'दिव्यसूरिचरिते', 'सात्विकब्रह्मविद्याविलास अर्थपंचक' आदि चंपुओं की एक श्रेणी है तो 'वेंकटगिरि-माहात्म्य', 'श्रीरंगमाहात्म्य', 'यादुगिरिमाहात्म्य' आदि गद्य-ग्रंथ हैं। 'पश्चिमरंगमाहात्म्य', 'शृंगारशतक', 'रंगधामस्तुति' आदि सांगत्य छंद में है। 'कामंदक नीति', 'तिरुवासमोपि टीके' आदि टीकापरक ग्रंथ हैं। इस प्रकार इनकी समस्त कृतियों को चार-पांच वर्गों में बाँटा जा सकता है। इनके अतिरिक्त इन्होंने शृंगारी गीतों की भी रचना की है। इनमें चिक्कदेवराय की स्तुति है। इनके 'दिव्य-सूरिचरिते' में तमिलनाडु के बारह आळ्वारों की कथा है। यह इनकी श्रेष्ठ कृतियों में मानी जाती है। इनमे रामानुजाचार्य जी का भी चरित आता है। 'सात्त्विक ब्रह्मविद्याविलास' में विशिष्टाद्वैत का शास्त्रीय विवेचन है। इनके सभी ग्रंथों में 'रुक्मांगदचरिते' सर्वश्रेष्ठ माना जाता है जिसमें भक्ति का सुदर निरूपण है। 'विष्णु-पुराण' इन्होंने दो लिखे हैं : एक चंपू में और दूसरा गद्य में। 'शुकसप्तति' इनका एक गद्य-ग्रंथ है। इनकी चंपू-कृतियों की शैली प्रौढ़ एवं संस्कृत-बहुल है। किंतु सांगत्य कृतियों में सरल कन्नड का विलास है। पांडित्य और कवित्व-शक्ति से संपन्न होने पर भी इनमें काव्य-तत्त्व ऊँची श्रेणी का नहीं है। किंतु नष्टप्राय चंपू-परंपरा को पुनरुज्जीवित करने में इनका ऐतिहासिक योग-दान महत्वपूर्ण है। कन्नड भाषा की महिमा का वर्णन कर इन्होंने भाषा-प्रेम को भी उद्दीप्त किया।

चिट्टा लहू *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1931 ई०]

यह नानकसिंह (दे०) का युगांतरकारी पंजाबी उपन्यास है। इसके माध्यम से उपन्यासकार ने युगीन समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं—अनमेल विवाह, विधवा, वेश्या, छुआछूत, जाति-पाँति, नशेबाज़ी से उत्पन्न सामाजिक विभीषिका, धर्मस्थानों की दुर्दशा, धार्मिक नेताओं का पतित आचरण, दूषित पुलिस व्यवस्था आदि—को संश्लिष्ट रूप से प्रस्तुत किया है। अकाली आंदोलन के आदर्शवाद और समाज-सुधार की भावना से अनुप्राणित इस रचना में नारी एवं शोषित वर्ग के प्रति अत्यधिक सहानुभूति मिलती है। लेखक ने इसमें मध्यवर्ग तथा निम्न वर्ग के शहरी और ग्रामीण पात्रों के साथ मानवेतर पात्र—लच्छो वेंद-रिया—का भी चित्रण किया है। उपन्यास में गुरदेई और सुंदरी (दे०) द्वारा वर्णित कथा आत्मकथात्मक पद्धति में गुंफित हुई है और पत्रों तथा गीतों की सहायता से विगत कथा का उल्लेख किया गया है। वातावरण का चित्रण अत्यंत सजीव और स्वाभाविक है। उपन्यास में समाज-सुधार की भावनाओं का प्राधान्य है जिनके कारण कहीं-कहीं लेखक को अनावश्यक आत्महत्या तथा अस्वाभाविक मृत्यु आदि की घटनाओं का भी समावेश करना पड़ा है। 'चिट्टा लहू' रूसी, चैक आदि विदेशी एवं गुजराती कन्नड, तमिल, मलयाळम इत्यादि भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुका है। यह नानकसिंह का सर्वश्रेष्ठ दुःखांत सामाजिक उपन्यास है।

चित्रकला *(उ० पा०)*

फकीर मोहन सेनापति (दे०) के 'मामुँ' (दे०) उपन्यास का एकांत गुरुत्वपूर्ण चरित्र है 'चित्रकला'। संपूर्ण उपन्यास चित्रकला के घटना-बहुल जीवन पर आधारित है, यह कहना अनुचित नहीं होगा। उपन्यास के अंत में सेशन जज की राय से ज्ञात होता है कि वस्तुतः अन्य

समस्त चरित्र (यथा—नाजिर नटवर दास, प्रभुदयाल, राघव, महाति आदि) निर्दोष हैं, किंतु चित्रकला भयकर बुद्धिमती, भयकर दुश्चरित्रा, बाजारू औरत है।

सर्वप्रथम वह नटवर दास के यहाँ नौकरानी रहती है। अनजान व्यक्ति इसे गृहस्वामिनी भी समझता है। इसके पास सयम को डिगा देने वाला सौंदर्य भी है और गुमराह कर देने वाली बुद्धि भी। अत इसके लिए एक सामान्य स्थिति से ऊपर उठकर अपने प्रभाव-विस्तार से एक विराट् षड्यंत्र की नायिका बन जाना आश्चर्य की बात नही। चित्रकला अशिक्षिता अवश्य है, किंतु वह विलक्षण बुद्धिमती एव प्रत्युत्पन्नमति है, यह असंदिग्ध है। खल-नायिका की दृष्टि से यह लेखक के 'छमाण आठगुंठ' (दे०) उपन्यास की नायिका चपा (दे० मगराज, रामचंद्र) को भी मात कर जाती है।

आज भी ग्राम्यांचल मे भयानक समस्याओ की सृष्टि करने वाली शतशत चित्रकलाओ की कमी नही है।

चित्रकाव्य बंधोदय *(उ० पारि०)*

प्राचीन आलकारिक 'चित्रकाव्य' (दे०) को पांडित्य का प्रतीक मानते थे। इसमे शब्द ज्ञान के साथ शब्द-सघटना-कौशल भी अपेक्षित है। काव्य-गौरव की दृष्टि से इसका उतना ऊँचा स्थान न होने के कारण प्राय कवियो ने इसकी उपेक्षा की है। कुछ कवियो ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय देने के लिए अन्य साहित्यिक विधाओ के साथ इसे भी अपनाया है। उडिया मे चित्रकाव्य लिखने वालो की सख्या अत्यल्प है। इनमे कवि सम्राट् उपेंद्र भंज (दे०) सर्वश्रेष्ठ है। उडिया साहित्य मे उपेंद्र युग के पूर्व 'चित्रकाव्य' की रचना हुई थी या नही, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता, क्योंकि उपेंद्र से पूर्व की इस प्रकार की कोई कृति अब तक उपलब्ध नही है। उपेंद्र के बाद कवियो ने इस ओर भी ध्यान दिया। सदानंद कविसूर्य ब्रह्मा (दे०) तथा अभिमन्यु सामत सिंहार (दे०) आदि कवियो ने 'चित्रकाव्य' की रचना कर विशेष ख्याति पाई है।

चित्रकाव्य *(हिं० पारि०)*

रस (दे०), भाव (दे०) और व्यग्य (दे०) आदि से शून्य कोरे शाब्दिक चमत्कार पर जीवित अधम अथवा अवर कोटि के काव्य के लिए सस्कृत-आचार्यों द्वारा दिया गया एक नाम। इस सदर्भ मे सर्वप्रथम उल्लेख्य मत ध्वनिकार आनदवर्द्धन (दे०) का है जिन्होने ध्वनि (दे०) अथवा व्यग्य (दे०) के आधार पर ध्वनिकाव्य और गुणीभूतव्यग्य (दे०) नामक उत्तम और मध्यम काव्य की दो कोटियो के उल्लेख के अनतर व्यग्यहीन 'वाचकवैचित्र्य' अथवा 'वाच्यवैचित्र्य' पर निर्भर अधम कोटि के काव्य को 'चित्र' सज्ञा प्रदान की है। मम्मट (दे०) ने मुख्यतया इसी आधार पर उत्तम और मध्यम के अतिरिक्त 'अव्यग्य' काव्य के तीसरे प्रकार का निरूपण किया है जिसमे केवल शब्द चित्रण अथवा अर्थ-चित्रण ही परिलक्षित होता है। इस प्रकार चित्रकाव्य के दो अवातर रूप माने जा सकते है शब्दचित्र और अर्थचित्र। आचार्य विश्वनाथ (दे०) ने मम्मट की चित्रकाव्य-विषयक प्रकल्पना का यह कहते हुए खडन किया है कि जो आस्वाद्य है वह या तो ध्वनिकाव्य है अथवा गुणीभूतव्यग्य, इससे इतर जो आस्वाद्य है वह काव्य ही नही है, उसे अलग से चित्रकाव्य की सज्ञा देना निरर्थक है।

चित्रलेखा *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1934 ई०]

भगवतीचरण वर्मा (दे०)-रचित 'चित्रलेखा' हिंदी के लोकप्रिय उपन्यासो मे से है जिसका अनेक प्रादेशिक भाषाओ मे अनुवाद हो चुका है। इस उपन्यास का अँग्रेज़ी रूपातर भी प्रकाशित हो चुका है तथा फिल्म भी बन चुकी है। इस उपन्यास की मूल समस्या है पाप क्या है और उसकी स्थिति कहाँ है? इसी प्रश्न के समाधान के लिए रत्नाबर अपने दो शिष्यो श्वेताक तथा विशालदेव को क्रमश मगध के धनी सामत बीजगुप्त तथा योगी कुमारगिरि के पास भेजते हैं। भोग-विलास का जीवन व्यतीत करते हुए भी बीजगुप्त उसके ऊपर रहता है, किंतु इद्रिय-दमन तथा सयम का मार्ग अपनाने वाला कुमारगिरि स्खलित हो जाता है। अत मे, रत्नाबर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि ससार मे पाप कुछ भी नही है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विसगति का दूसरा नाम है।

चित्रलेखा *(हिं० पा०)*

यह भगवतीचरण वर्मा (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा' (दे०) की नायिका तथा रूपगर्विता, अभिमानिनी एव प्रत्युत्पन्नमति वाली एक ऐसी पात्रा है

जो जीवन के कठोर अनुभवों के फलस्वरूप संसार को समझने-परखने की अद्भुत क्षमता रखती है। यह नर्तकी होती हुई भी विदुषी है तथा वाग्वैदग्ध्य में इतनी निपुण है कि हास-परिहास में भी तीव्र व्यंग्य करने से नहीं चूकती। अपने पक्ष का सतर्क एवं सप्रमाण पोषण करने में भी यह पूर्णतः दक्ष है। इसमें आत्मसम्मान की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। इसे अपने रूप-वैभव की शक्ति का अत्यधिक गर्व है और यह अपने समक्ष किसी का तन कर खड़े रहना सहन नहीं कर पाती। यही अभिमान इसे प्रवंचित करता है। लेकिन इतना होते हुए भी यह इस उपन्यास की केंद्रीय धुरी है। उपन्यास की सारी घटनाएँ और सभी पात्र किसी-न-किसी रूप में इसके साथ अवश्य संबद्ध हैं और ये सभी इसके चरित्र को भास्वर बनाते हैं।

चित्रांगदा *(क० कृ०)*

यह 'कुवेंपु' उपनामधारी डा० के० वी० पुट्टप्पा (दे०) का छह पर्वों और 2496 पंक्तियों का सुंदर खंड-काव्य है। इसमें महाभारत के अश्वमेध पर्व और 'जैमिनि-भारत' (दे०) में वर्णित अर्जुन-चित्रांगदा के प्रेम, दोनों के गंधर्व-विवाह, अर्जुन के चले जाने पर बभ्रुवाहन का जन्म, युधिष्ठिर के अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े को बांध लेने के कारण अर्जुन और बभ्रुवाहन का युद्ध तथा बीच में आ जाने के कारण चित्रांगदा की मृत्यु का वर्णन अत्यंत सरस ढंग से किया गया है। कवि ने चित्रांगदा के व्यक्तित्व का अत्यंत भव्य चित्र प्रस्तुत किया है। इस मनोहर काव्य की नायिका के रूप में वह पाठकों के मन में अंकित रह जाती है।

चित्रांगी *(ते० पा०)*

चित्रांगी एक काल्पनिक पात्र है जिसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं है। परंतु तेलुगु साहित्य में चित्रांगी का व्यक्तित्व निजंधरी बन गया है और तेलुगु के लोकजीवन में इसका अस्तित्व यथार्थ से भी बढ़कर यथार्थ बन गया है। चित्रांगी की लोकप्रचलित कथा इस प्रकार है: राजराजनरेंद्रुडु नामक राजा की द्वितीय पत्नी चित्रांगी अत्यंत रूपवती थी। राजा वृद्ध था, अतः वह चित्रांगी का प्रेम-भाजन नहीं बन सका। राजा का पुत्र सारंगधरुडु युवक तथा रूपवान था। चित्रांगी का मन इस पर अनुरक्त था। परंतु वह प्रेम एकनिष्ठ था क्योंकि सारंगधरुडु शीलवान होने के कारण विमाता से प्रेम करना अनुचित समझता था। एक दिन अपने साथियों के साथ सारंगधरुडु मैदान में कबूतरों को आकाश में उड़ा रहा था। इनमें से एक कबूतर चित्रांगी के महल पर जा बैठा। चित्रांगी ने उसे पकड़े रक्खा। सारंगधरुडु उसे वापस लाने के लिए विमाता के घर पहुँचा। चित्रांगी इस प्रसंग से लाभ उठाना चाहती थी। उसने अपनी प्रेम-भावना व्यक्त की। पर सारंगधरुडु विचलित नहीं हुआ। उसे उचित उपदेश देकर वह वापस आ गया। अपने प्रेम को ठुकराने से चित्रांगी के मन में प्रतिकार की भावना जागी। उसने राजा से सारंगधरुडु के खिलाफ मनगढंत बातें कहीं और उसे बड़ा भारी दोषी ठहराया। राजा ने उसकी बातों में आकर, सारंगधरुडु को मौत की सज़ा दे दी। वधशिला पर पहुँचते-पहुँचते वधिकों के दिल पिघल गए और उन्होंने केवल हाथ-पैर काट डाले। कालांतर में जब राजा सत्य से अवगत हुआ तो उसने चित्रांगी को मौत के घाट उतरवाया। चित्रांगी का प्रथम परिचय हमें दोनेरुको-नेरुनाथकवि-कृत 'बालभागवत' में मिलता है जिसमें राज-राजनरेंद्रुडु, सारंगधरुडु (दे०), चित्रांगी तथा रत्नांगी का वर्णन है। तदनंतर अप्पकवीयमु (दे०) तथा चेमकूर वेंकट-कवि (दे०) के 'सारंगधरचरित्रमु' (दे०) नामक काव्य में हमें इस कथा का वर्णन मिलता है। वस्तुस्थिति यह है कि गौरन (दे०)-कृत 'नवनाथचरित्र' में वर्णित चौरंगी नामक सिद्ध की कथा ही कालांतर में विविध रूपों में विकसित हुई है। 'नवनाथचरित्र' में आंध्र के राजराजनरेंद्र से चौरंगी का कोई संबंध नहीं दिखाया गया।

आधुनिक काल में चित्रांगी का पात्रपोषण कृष्णमाचार्युलु-कृत 'विषाद सारंगधर' नाटक में अच्छे ढंग से हुआ है जिसमें चित्रांगी एक अभिमानी रूपगर्विता नायिका के रूप में हमारे सामने आती है।

चित्रा *(बं० कृ०)*

यह रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) की 1893-95 ई० के मध्य लिखी कविताओं का संग्रह है। सन् 1895 में इसका प्रकाशन हुआ था। विचित्र भावों की कविताओं का संग्रह होने के कारण अथवा इसकी प्रथम कविता के नाम पर इसका नामकरण किया गया है।

रवींद्रनाथ ठाकुर की विकासोन्मुख प्रतिभा इसमें पूर्णतः परिलक्षित हुई है। इसमें सौंदर्य के संबंध में कवि की धारणा, स्नेह-प्रीति, प्रेम-संबंध में अनुभूति, कर्तव्य-निष्ठा तथा जीवन-देवता के संबंध में जिज्ञासा जैसे विषयों पर

कविताएँ हैं।

कवि को सौंदर्यानुभूति ने विशेष प्रभावित किया है। उनकी सर्वप्रसिद्ध एव सर्वश्रेष्ठ कविता 'उर्वशी' तथा रहस्यवादी एव विवादास्पद कविता 'जीवन-देवता' इसी मे सगृहीत है। कृति विचित्र भावो एव कल्पनाओ से परिपूर्ण है।

चित्रावली *(हिं० कृ०)* [रचना-काल —1613 ई०]

सूफी प्रेमाख्यानक काव्यो मे 'चित्रावली' का स्थान महत्वपूर्ण है। इसके रचयिता उस्मान (दे०) थे। इसमे नेपाल के राजा धरतीधर के पुत्र सुजान और रूपनगर की राजकुमारी चित्रावली के प्रेम और विरह का वर्णन है। कवि ने अत्यत रोचक ढग से कहानी कहते-कहते अपने काव्य-कौशल का भी परिचय दिया है। इसका कथानक पूर्णत काल्पनिक है। कवि ने अपनी परपरा के अन्य कवियो की तरह नख शिख वर्णन, षडऋतु-वर्णन आदि बहुत सहज भाव से किया है। 'चित्रावली' मे किसी भी प्रकार की धार्मिक सकीर्णता के दर्शन नही होते।

मसनवी शैली के आधार पर ईश्वर-स्तुति एव मुहम्मद साहब, प्रथम चार खलीफाओ, तत्कालीन बादशाह जहाँगीर, शाह निज़ाम चिश्ती, गुरुबाबा हाजी आदि की प्रशसा करके रूप, प्रेम और विरह शीर्षक देकर कवि ने कहानी जिस प्रकार से प्रारभ की है वह उसकी अपनी विशेषता है। इस प्रकार की परपरा हिंदी के अन्य सूफी प्रेमाख्यानक काव्यो मे देखने को नही मिलती। प्रसिद्ध सूफी कवियो मे उस्मान को अतिम उदारतावादी सूफी कवि कहा जा सकता है।

चिदंबर सुब्रह्मण्यन्, न० *(त० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

इनकी विशेष ख्याति उपन्यास तथा लघुकथा-लेखन के क्षेत्र मे है। इन्होंने अपनी साहित्यिक साधना का आरभ 1930 के पहले ही 'मणिक् कोटि' पत्रिका के लेखक-मडल के सदस्य के रूप मे किया था। निजी जीवन मे ये लेखाकार के व्यवसाय मे लगे हुए हैं पर इससे इनके साहित्य सृजन मे कोई गतिरोध नहीं हुआ। इनका विशिष्ट उपन्यास 'इदयनादम्' (दे०) एक ऐसे सगीतोपासनानिष्ठ त्यागपूर्ण व्यक्तित्व का सफल चित्रण करता है जो आज भी कतिपय तमिलभाषी ब्राह्मण परिवारो का जीवनादर्श है। इनकी अन्य रचनाओ मे 'उर्वशी' (एकाकी), 'नागमणि' (उपन्यास) तथा 'सूर्यकाति' (लघु कथाएँ) शामिल है। इनका एक नवीन उपन्यास 'मण्णिल् तेरियुतु वानम्' (धरती पर दीखता है ऊपरी लोक) शीर्षक से निकला है जो गाधीयुगीन वातावरण मे व्यक्ति-जीवन की कुछ प्रतिक्रियाओ को सूक्ष्मता के साथ प्रस्तुत करता है।

चिदंबरा *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1958 ई०]

सुमित्रानदन पत (दे०) विश्वमगल के प्रति सतत समर्पित काव्य-चेतना के समर्थ कलाकार है। उनकी दृष्टि सौदर्यमयी और आत्मा शिव-सकल्प है। इसीलिए वे दीर्घकाल से निरतर सौदर्य-साधना मे लीन रह सके। 'चिदबरा' इसी साधना के बीस वर्षों का गतिलेख है। 1937 ई० से 1957 ई० तक अर्थात् 'युगवाणी' से 'वाणी' तक के कविता-सग्रहो और काव्य-नाटको की प्रतिनिधि रचनाएँ स्वय कवि ने एक लबी भूमिका (चरण-चिह्न) के साथ सकलित की है। कवि के अनुसार उसके इस सकलन का उद्देश्य पक्षधर आलोचको द्वारा दिग्भ्रमित पाठको के समक्ष अपने काव्य-विकास के द्वितीय उत्थान का पूर्वाग्रह-मुक्त चित्र प्रस्तुत करना है।

'चिदबरा' शीर्षक सकलित रचनाओ के भाव-जगत् का सूक्ष्म सकेत देने मे सफल है। इन कविताओ के माध्यम से कवि चेतना की ऐसी चादर बनाने के लिए प्रयत्नशील रहा है जो नैतिक सकीर्णता की कलक-कालिमा से मुक्त, नवीन प्रकाश के जल से सिक्त और सस्कृति के व्यापक मूल्यो से मडित होकर सबके ओढने योग्य हो। प्रकारातर से कह सकते हैं कि वह भूतवाद और आत्मवाद को सकीर्णताओ से मुक्त कर भू-जीवन मे उनके सदेशो का समन्वय देखने की आकाक्षा से प्रेरित है। वर्तमान मे इस आकाक्षा की पूर्ति सभव नही थी, इसलिए कवि स्वप्न-द्रष्टा हो गया है। प्रारभ मे अतृप्ति की विषण्णता या प्रार्थना की व्याकुलता भी कुछ सीमा तक है परतु परवर्ती रचनाओ मे भविष्य-स्वप्न की मोहक छाया उत्तरोत्तर बढती गई है जो कवि की चिंतनमयी निष्कप आस्था को ध्वनित करती है। उल्लेखनीय है कि आस्था के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण ही कवि के ये स्वप्न मानसिक विकार-मात्र न रहकर परिष्कृत आत्मा के निश्छल उद्गार बन गए हैं।

ऊर्ध्वमुखी सौदर्य चेतना की इन लयसिद्ध उद्गोनियो का कलात्मक महत्व निर्विवाद है। कवि की मेधा के विकास ने कला के नव्यतर उपादानो का प्रयोग करने

की अद्भुत सामर्थ्य भी उसे प्रदान कर दी है। भाषा में अर्थ-गौरव और अप्रस्तुत-विधान में विविधता तथा व्यंजकता उत्तरोत्तर बढ़ते गए हैं। उत्तरा के गीतों को तो स्वयं कवि ने सौंदर्यबोध तथा भाव-ऐश्वर्य की दृष्टि से अपना सर्वोत्कृष्ट सृजन स्वीकार किया है। हिंदी-काव्य में ही नहीं समसामयिक भारतीय साहित्य में 'चिदंबरा' का महत्व अक्षुण्ण है।

चिन्नयसूरि, परवस्तु (*ते० ले०*) [जन्म—1806 ई०; मृत्यु—1862 ई०]

ये मद्रास के रहने वाले थे और मद्रास के प्रसिडेंसी कालेज में तेलुगु के प्रधान अध्यापक थे। तेलुगु तथा संस्कृत में अपनी वैशिष्ट्यपूर्ण विद्वत्ता के आधार पर इन्होंने 'सूरि' नामक उपाधि प्राप्त कर ली। ये व्याकरण, तर्क और अलंकारशास्त्र के अच्छे विद्वान थे। इनकी रचनाएँ हैं—'चिंतामणि वृत्ति', 'सूत्रांध्रव्याकरणमु', 'शब्द-लक्षण-संग्रहमु', 'आंध्र-शब्दशासनमु', 'विभक्तिबोधिनी', 'बालव्याकरणमु', 'आंध्र-धातुमाला', 'अकारादि निघंटु' आदि कोश-व्याकरण-संबंधी रचनाएँ; 'पच्चयप्प नृपयशोमंडन' जैसे काव्य; 'नीतिचंद्रिका', 'नीति-संग्रहमु', आदिपर्व का गद्यानुवाद, 'आंध्र-कादंबरी' आदि गद्य-रचनाएँ; अंग्रेजी क़ानूनी ग्रंथ का अनुवाद आदि। इनकी रचनाएँ अधिकांशतः व्याकरण से संबद्ध हैं। तेलुगु भाषा से संबद्ध होते हुए भी इनके कुछ व्याकरण-ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए हैं। संस्कृत-व्याकरण के क्षेत्र में सूत्रकार 'पाणिनि' (दे०), वार्तिककार 'वररुचि' तथा भाष्यकार 'पतंजलि' (दे०) प्रसिद्ध हैं। हम इन तीनों की विशेषताओं का समष्टि रूप चिन्नयसूरि में देख सकते हैं। प्रधानतः इनकी सूत्र-रचना-संबंधी निपुणता अनुपम है। इनकी लेखनी ने व्याकरण जैसे शास्त्र को भी सरस बना दिया है। इन्होंने तेलुगु में स्वतंत्र गद्य की भाषा को नियमबद्ध तथा सुस्थिर बनाने की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया है। इनकी 'नीति-चंद्रिका' तेलुगु के सर्वोच्च गद्य-काव्यों के अंतर्गत मानी जाती है। इसमें 'मित्रलाभ' और 'मित्रभेद' नामक दो भाग हैं। 'पंचतंत्र' (दे०) तथा 'हितोपदेश' पर आधारित कई तेलुगु रचनाएँ लिखी गई हैं किंतु चिन्नयसूरि की 'नीति-चंद्रिका' का स्थान उनमें सर्वोपरि है। 'नीतिचंद्रिका' की शैली प्रौढ़ है तथा अभिव्यंजना-पद्धति मार्मिक है। इसमें कहावतों तथा मुहावरों का सहज और सार्थक प्रयोग किया गया है। अंग्रेजी क़ानूनी ग्रंथ का तेलुगु अनुवाद ज्ञान-विज्ञान संबंधी विषयों पर उनकी रुचि का द्योतक है। इन्होंने 'सुजनरंजनी' नामक पत्रिका का संपादन कार्य भी किया था। शुद्ध तेलुगु भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहन देना ही इनका लक्ष्य था और इसी से इन्होंने प्रधानतः कोश-व्याकरण जैसे ग्रंथों की रचना की थी। तेलुगु में आधुनिक गद्य-युग के आरंभ से क़रीब बीस साल पहले ही 'नीति-चंद्रिका' जैसी स्वतंत्र तथा उत्कृष्ट गद्य-रचना का आविर्भाव एक महत्वपूर्ण घटना है। तेलुगु-व्याकरणकर्ताओं में चिन्नयसूरि का स्थान सर्वोपरि है। तेलुगु गद्य-शैली के विकास में इनकी 'नीतिचंद्रिका' का योगदान विशेषतः उल्लेखनीय है।

चिपळूणकर, कृष्णशास्त्री (*म० ले०*) [जन्म—1824 ई०; मृत्यु—1878 ई०]

पूना में जन्म, वहीं एक पाठशाला में उप-प्राध्यापक, बाद में ट्रेनिंग कॉलेज के प्रिंसिपल, संवाददाता और संपादक के रूप में भी कार्य किया। अलंकार, न्याय, धर्म, अर्थशास्त्र, अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी आदि भाषाओं और उनके साहित्य का अध्ययन किया। 'विचार लहरी' तथा 'शालापत्रिका' में स्फुट निबंध लिखे।

मुख्य ग्रंथ—1. 'संस्कृत भाषा का संक्षिप्त व्याकरण', 2. 'अरबी भाषा की सरस एवं अद्भुत कहानियाँ', 3. 'रासेलस' (दे०), 4. 'सात्रेतीज़ का चरित्र', 5. 'अर्थशास्त्र परिभाषा', 6. 'पद्यरत्नावलि' (दे०)।

इनके लेखन में विस्तार ही नहीं, वैविध्य भी है। एक ओर अंग्रेजी के गद्य-ग्रंथों—'द प्रिंसिपल्स ऑफ़ पॉलिटिकल इकनॉमी' आदि का अनुवाद किया तो दूसरी ओर संस्कृत काव्य-ग्रंथों 'मेघदूत' (दे०) आदि का। शास्त्रीय विषयों पर भी लिखा, जैसे मराठी और संस्कृत व्याकरण पर और दूसरी ओर अर्थशास्त्र पर। अंग्रेजी भाषा और साहित्य का अध्ययन करने वाली पीढ़ी के प्रतिनिधि लेखक, जिन्होंने मराठी की शैली को संस्कृतनिष्ठ, प्रौढ़, पुस्तकीय मोड़ दिया। इनकी कविता संस्कृत काव्य-ग्रंथों के आधार पर लिखी गई है, पर वह मूल से अधिक सरस एवं सुंदर है।

चिपळूणकर, विष्णुशास्त्री (*म० ले०*) [जन्म—1850 ई०; मृत्यु—1882 ई०]

प्रसिद्ध पंडित और कवि कृष्णशास्त्री चिपळूण-

कर (दे०) के ज्येष्ठ पुत्र विष्णुशास्त्री ने प्रारभिक शिक्षा देहात मे प्राप्त कर 16 वर्ष की आयु मे मैट्रिक किया और फिर डैकन कॉलेज मे पढते हुए सस्कृत, अँग्रेजी और प्राचीन मराठी साहित्य का गहन अध्ययन किया। पिता की सिफारिश पर ये पूना के राजकीय हाईस्कूल मे अध्यापक नियुक्त हुए पर राजकीय सेवा करते हुए इन्होने अँग्रेज शासन एव मिशनरी ईसाइयो की कटु आलोचना की। 1874 ई० मे 'निबधमाला' मासिक के अतिरिक्त इन्होने काव्येतिहास सग्रह' और 'चित्रशाला' का भी सपादन किया। पिता की मृत्यु के उपरात राजकीय सेवा से त्यागपत्र देकर ये पूर्णत देश-सेवा एव साहित्य-सेवा मे लग गए। 1880 ई० मे लोकमान्य टिळक (दे०) और गो० ग० आगरकर (दे) के साथ 'न्यू इगलिश स्कूल' नामक राष्टीय पाठशाला की स्थापना की और 'केसरी' तथा 'मराठा' नामक साप्ताहिक समाचारपत्रो का प्रकाशन किया। 1882 ई० मे इस मराठी निबध-भास्कर, प्रखर राष्ट्रवादी का 32 वर्ष की अल्पायु मे देहात हो गया। इनके अमर यश का आधारस्तभ है निबधमाला' (दे०), जो अर्वाचीन मराठी साहित्य का वैभव एव राष्ट्रप्रेम का स्रोत कहा जाता है। इसके उद्देश्य थे—स्वभाषा, स्वदेश, स्वधर्म, स्वसस्कृति के प्रति श्रद्धा जगाना, पाठको को बहुश्रुत करना, उनकी रुचि परिष्कृत करना और नए ग्रथो की समालोचना कर सद्ग्रथो की वृद्धि करना। प्रौढ निबध-लेखक के अतिरिक्त ये जीवनी-लेखक, पश्चिमी पद्धति के समीक्षक, प्राचीन काव्य और इतिहास के शोधक और सफल अनुवादक भी थे। प्रसिद्ध रचनाएँ —'निबधमाला' (दे०), सस्कृत-कविपचक', 'प्रथाकर टीका'।

चिमळराव, गुड्याभाऊ *(म० पा०)*

चिं० वि० जोशी (दे०) की विनोद-पुस्तक 'एरडाचे गुर्हाळ' के य दो पात्र मराठी विनोद-साहित्य के अमर पात्र हैं, जोशी जी की कल्पना द्वारा निर्मित ये नटखट पात्र मराठी पाठको को हँसाने वाल मित्र बन गए है। श्री० कृ० कोल्हटकर (दे०) के पाडूतात्या (दे० सुदामा) और बडूनाना (दे० सुदामा) के सदृश ये दोनो भी अपने निर्माता के मानस-पुत्र है और बाल-वृद्ध, ज्ञानी-अज्ञानी, स्त्री-पुरुष, सभी के स्वभाव-दोष दभ, लोभ, अहकार, धोखा देने की प्रवृत्ति इत्यादि दिखाकर पाठको को आनद प्रदान करते है। चिमळराव की स्वभावरेखा जोशी जी की प्रतिलिपि जान पडती है क्योकि दोनो के स्वभाव की सूक्ष्मातिसूक्ष्म लत, सनक और अन्य विशेषताएँ एक जैसी हैं। वह कलाकार न होकर लिपिक है, साठ रुपये मे परिवार का पोषण करता है, उसकी भाषा सरल, सीधी, ग्रामीण पर यथार्थ का आभास निर्माण करने वाली है। उसके मित्र गुड्याभाऊ के शब्द चित्र मे लेखक ने अपने मित्र प्रो० ना० का० आपटे को आधार बनाया है—वह व्यायाम-प्रमी, परोपकारी एव निर्भीक है। शिथिल बुद्धि पर उलट-पुलट करने का साहस रखने वाले और परोपकारी ये दोनो पात्र अपनी तत्त्वनिष्ठा एव परोपकार के पराक्रम से पाठको को खूब हँसाते हैं। इस जोडी के जीवनानुभवो मे विविधता है। लेखक ने अपने जीवन के अनुभवो को ही उनमे रूपातरित कर दिया प्रतीत होता है। गुड्याभाऊ सबधी लेखो मे चरित्र का एक सूत्र गुफित होने के कारण उसके उपवास, रोग, नौकरी और आतिथ्य सबके प्रति पाठक की सहानुभूति उत्पन्न होती है। इस प्रकार इन दोनो पात्रो के माध्यम से जिस हास्य की सृष्टि की गई है वह सर्वसामान्य की समझ के भीतर होने के कारण उन्हे रुचिकर है।

चिरकुमार सभा *(बँ० कृ०)*

यह रवींद्र (दे०) ठाकुर का लोकप्रिय प्रहसन है। इस सभा मे ऐसे युवक सम्मिलित है जो आजीवन कुमार रहने का प्रण तो लेते है परतु नारी के आकस्मिक एव अप्रत्याशित आकर्षण के सामने विचलित हो जाते है। नाटककार की प्रतिभा अर्थपूर्ण सवादो मे उभरी है जिनमे व्यग्य, हास-परिहास तथा कौतुक छिपा है। भाषा अलकारिक है तथा वाग्विदग्धता से वह तीखी हो गई है। इस प्रहसन का निर्बल पक्ष है वस्तु-विन्यास। नाटकीय कौतूहल का इसमे निर्वाह नही हुआ। कौमार्य नीति के उद्घोषक एव सचालक चद्र बाबू तक सभी साथी बिना सघर्ष किए बदल जाते है। इस तरह नाटक का आधार कमजोर पड गया है। रवींद्र के अनुसार जीवन का सुख सहज रहने मे है। भोग विमुख वैराग्य कितना हास्यास्पद एव निरर्थक है—यही दिखाना इस प्रहसन का उद्देश्य है।

चिरियुम् चितयुम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1926ई०]

यह प्रसिद्ध हास्य-लेखक ई० वी० कृष्ण (दे०) पिळ्ळा के 'मलयाळ राज्यम्' आदि पत्रिकाओ मे प्रकाशित निबधो का सग्रह है। यह दो भागो मे है। इसमे विभिन्न सामाजिक समस्याओ पर हास्य-व्यग्यपूर्ण शैली मे चर्चा

की गई है।

ई० वी० मलयाळम के प्रारंभिक निबंधकारों में से हैं और यह उनका सर्वप्रमुख निबंध-संग्रह है। इसमें पाठकों को विनोद की सामग्री प्राप्त कराने के साथ-साथ उनके चिंतन को भी समुद्दीप्त कराया गया है। मलयाळम की गंभीर हास्य-कृतियों में इस पुस्तक का स्थान महत्वपूर्ण है।

चिरुकाप्पियम् *(त० पारि०)*

इस शब्द का अर्थ 'लघुकाव्य' है और यह तमिल भाषा के आलोचना-क्षेत्र में महाकाव्येतर खंड-काव्यादि कृतियों के लिए प्रयुक्त होता है। यह मानी हुई बात है कि तमिल साहित्यिक परंपरा में संस्कृत काव्य-रूपों का प्रवेश परवर्ती काल में हुआ। ई० पू० की शतियों में तमिल साहित्य के जो अपने काव्य-रूप चलते थे, उनका आभास मात्र प्रसिद्ध लक्षण-ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' में मिलता है।

बारहवीं शती ई० के आसपास आचार्य दंडी के 'काव्यादर्श' के तमिल अनुकूलन-स्वरूप रचित 'दंडियलंकारम्' में सर्वप्रथम तमिल भाषा के अंतर्गत संस्कृत-परंपरा के काव्य-रूपों का शास्त्रीय विवरण प्रस्तुत हुआ है। इस ग्रंथ में काव्यों के दो भेद किए गए हैं—'पेरुङ्काप्पियम्' (महाकाव्य) तथा 'काप्पियम्' (काव्य)। 'चिरुकाप्पियम्' (लघुकाव्य) शब्द 'काप्पियम्' के समानार्थक रूप में बाद में चला है। 'चिरुकाप्पियम्' अथवा महाकाव्येतर काव्यों के उदाहरण के रूप में पाँच जैन धर्माश्रित तमिल काव्यों के नाम विद्वन्मंडलियों में कभी-कभी लिये जाते हैं। ये हैं: 'उदयणकुमारकाव्यम्', 'नागकुमारकाव्यम्', 'यशोधरकाव्यम्', 'चूळामणि' तथा 'नीलकेशि'।

चिरुतोंड नंबि *(ते० पा०)*

श्रीनाथुडु (दे०) कविसार्वभौम ने अपने काव्य 'हरविलासमु' (दे०) में, चिरुतोंड नंबि के भक्तिमय जीवन का गरिमामय वर्णन किया। यह वर्णन 'हरविलास' के द्वितीय आश्वास में उपलब्ध है। उनकी पत्नी तिरुवेंगनांचि तथा पुत्र सिरियाल तीनों वीरशैवव्रती थे। शिव और पार्वती ने चिरुतोंड नंबि से अतिथि के रूप में आकर पुत्रमांस बनाकर खिलाने का अनुरोध किया। वीरशैवव्रत के अनुसार अतिथि और शिव में अंतर नहीं है; अतिथि शिवाभिन्न ही नहीं शिव ही माने जाते हैं और उनकी मनोकामना पूरी करना वीरशैवव्रती का परम कर्तव्य है। तदनुसार इस कठोर परीक्षा में वे सफल हुए। गौरीशंकर साक्षात् हुए तथा चिरुतोंड नंबी को पुनः सजीव होकर सिरियाल प्राप्त हुए।

दक्षिण में कांचीनगर वैष्णव धर्म तथा शैवधर्म दोनों के लिए प्रसिद्ध है। चिरुतोंड नंबि उसी नगर का निवासी था। कविसार्वभौम श्रीनाथुडु स्मार्त ब्राह्मण होते हुए भी शिवोन्मुखी भक्तिभावना के लिए प्रसिद्ध हैं। अतः काव्य पढ़ते समय लगता है कि कवि का तादात्म्य अपने पात्र के साथ हुआ, तभी तो चिरुतोंड नंबि का पात्र-चित्रण इतना सफल बन सका। शंकर के साक्षात्कार पर भक्त चिरुतोंड नंबि की भक्ति-विह्वलता का अनुमान निम्न पंक्तियों से लगाइए—

"जय हालाहलनीलकंधर! महेशा! भक्तचिंतामणि!
जयगंगाधर! चंद्रशेखर! जगत्स्वामी! कृपांबोनिधि!
जय नीहारधराधरेंद्र तनया चारु स्तनद्वंद्व सं—
श्रय संलग्न पटीरकुंकुमरजस्यसम्पन्न बाहांतरा!"

पात्र की विशेषता इस बात में है कि ये तुंबुरु के अवतार माने जाते हैं तथा भारत के विविध प्रदेशों के विभिन्न वैश्यकुलों के कूटस्थ पुरुष माने जाते हैं। काव्य के अनुसार चिरुतोंड नंबि 'कावेरीवल्लभ', 'उभयद्राविड', किष्किंधा के 'चलक्रीड़ा विनोद' तथा अयोध्या-निवासी वैश्य-परिवारों के कूटस्थ पुरुष थे। शिवभक्ति में आपाततः ओजोगुण तथा वीररस का समावेश हो जाता है। चिरुतोंड के चरित्र-चित्रण में इन दोनों का निर्वाह कवि के द्वारा पुष्कल मात्रा में हुआ है।

चिवरकु मिगिलेदि *(ते० कृ०)*

'चिवरकु मिगिलेदि' (अंत में जो बचता है) बुच्चिबाबू (दे०) का उपन्यास है। यह तेलुगु के सर्वश्रेष्ठ मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में से है। इसके नायक को अपनी माँ के जीवन में किसी कलंक की शंका हो जाती है और वह अनुभव करने लगता है कि वह कलंक छाया की तरह सदा उसका पीछा कर रहा है। वह अनेकों के साथ प्रेम एवं घनिष्ठता बढ़ाकर, अनेक साहसपूर्ण कार्य करके, तथा अनेक कठिनाइयों का सामना करके, अपने जीवन में उन्मुक्त आनंद को भरने का यत्न करता है किंतु अंततः उसका जीवन एक अव्यक्त वेदना एवं पीड़ा से भरा रहता है।

चुन्नाकम् कुमारसामिप्पुलवर् *(त० ले०)* [जन्म—1850 ई०, मृत्यु—1922 ई०]

संस्कृत तत्सम शैली में इनका नाम 'कुमार-स्वामी' है और ये लंकाद्वीप के 'चुन्नाकम्' क्षेत्र के थे। ये संस्कृत तथा तमिल—इन दोनों चिरप्रतिष्ठित भाषाओं के विपुल पांडित्य वाले शिक्षक थे और अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान इनके शिष्य रह चुके हैं। बीसवीं शती के प्रथम चरण के साहित्यकारों के प्रभावशाली माध्यम के रूप में 'मदुरै' से चलाई गई 'चेन्तमिल्' नामक मासिक पत्रिका में इनके लेख निकलते थे। इन्होंने 'रामोदयम्', 'चाणक्य-नीति' तथा 'मेघदूत' इन तीनों संस्कृत कृतियों के सुंदर तमिल पद्यबद्ध रूपांतर प्रस्तुत किए थे। इनकी अन्य रच-नाएँ 'तमिलप्पुलवर चरित्तम्' (तमिल कवियों के वृत्तांत) तथा 'विनैप्पकुति विळक्कम्' (तमिल क्रिया-धातुओं का विवरण) हैं।

चूनड़ी *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1150-1196 ई०]

'चूनडी' भट्टारक विनयचंद्र (दे०) मुनि द्वारा रचित 31 पद्यों की छोटी-सी मुक्तक रचना है। चूनडी का अर्थ है स्त्रियों के ओढने का दुपट्टा, जिसे रँगरेज रंग-बिरंगे बेलबूटे छाप कर रँगता है। चुण्णी, चूर्णी भी इसी के पर्याय हैं, जिसका अभिप्राय है इतस्ततः विक्षिप्त प्रकीर्णक विषयों का लेखन अथवा चित्रण।

प्रस्तुत 'चूनडी' में धार्मिक भावनाओं और आव-रणों से रँगी चूनडी पहनने का उपदेश दिया गया है। एक मुग्धा पति से ऐसी चूनडी की प्रार्थना करती है जिसे ओढ कर जिन-शासन में विलक्षणता प्राप्त की जा सके।

इस कृति की भाषा सरल है। पद्धडिया और द्विपदी छंदों का प्रयोग हुआ है।

यह कृति गृहस्थों के लिए धर्म और नीति का उपदेश देने वाली मुक्तक रचना का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती है।

चेक्किषार् पिळ्ळैत्तमिल *(त० कृ०)* [रचना-काल—उन्नीसवीं शती]

यह कृति 'पिळ्ळैत्तमिल' काव्य विधा की श्रेणी की है। इसके रचयिता महाविद्वान मीनाक्षिसुंदरम् पिळ्ळै (दे०) हैं जिन्होंने सात और 'पिळ्ळैत्तमिल' और अनेक 'कोवै', 'पुराण' आदि काव्य ग्रंथों की रचना की है। इस कृति के द्वारा सम्मानित महापुरुष चेक्किषार हैं जो कृषक जाति के प्रभु तथा चोळ राजा 'कुलोत्तुंगन् द्वितीय' (1113-1150 ई०) के अमात्य थे। इनके द्वारा रचित 'पेरियपुराणम्' (दे०) नामक काव्य-रत्न भक्ति-रसार्द्र शैली में शैव धर्म के प्रसिद्ध 73 संत गुरुओं की कथाएँ प्रस्तुत करता है और इसे तमिल प्रदेश के बहुसंख्यक शैवमताव-लंबियों द्वारा समादरणीय धर्मग्रंथ माना जाता रहा है।

काव्य-नायक चेक्किषार् के निजी गाँव के दृश्य, उनकी विभिन्न महानताएँ, विशेषकर शिव भक्ति की प्रतिष्ठा बढाने में उनकी बहुविध सेवाएँ, इत्यादि विषयों का सविस्तर उल्लेख इस कृति में शैशव वर्णनों के अंतर्गत द्रष्टव्य है। साहित्यिक दृष्टि से इस रचना की विशेषताएँ हैं—प्रवाहमय 'आचिरिय विरुत्तम्' छंद का निर्वाह, शब्द एवं अर्थालंकार का सुंदर उपयोग, तथा रीतिबद्ध वर्णनों में भी चमत्कार की झलक। उक्ति-सौष्ठव के लिए यह एक उदाहरण है—'सरोवरों के कमल-पुष्पों में हंसगण आसीन हैं जैसे सुधी लोग अच्छे आसनों पर विराजमान होते हैं तथा भैंसे उन तडागों के जल में एकाएक कूद पडते हैं जैसे सुधिजनों की मंडली में अधम लोग घुस जाते हैं।

चेतना-प्रवाह *(हिं० पा०)*

इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग विलियम जेम्स नामक तत्त्वज्ञ ने 1884 ई० में किया था और इसकी व्याख्या करते हुए बताया था कि प्रसंग, घटना, क्रिया, परिस्थिति, बाह्य हलचल आदि ऊपरी बातें हैं, मनोव्यापारों में चमकने वाली प्रतिमा ही वास्तविक प्रेरक शक्ति है। अतः पात्र का स्वभाव-विश्लेषण मन के गहरे व्यापारों में से निरंतर उद्भूत होकर विलीन होने वाली प्रतिक्रियाओं की संगति होता है। कलाकार का कार्य उसी को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करना है, सुप्तमन के चेतना-प्रवाह को, सुप्त संवेदनों को व्यक्त करना है। अतः चेतना-प्रवाह पद्धति का प्रयोग करने वाला कलाकार अर्धचेतन मन में एक विशिष्ट कालखंड में उठने वाली संवेदनाओं, विचार तरंगों और सहस्मृतियों का उसी क्रम से अंकन करता है जिस क्रम से वे उसके मन में आविर्भूत होती हैं, उनको निजी विशिष्ट उद्देश्य से छाँटने या व्यवस्थित करने की चेष्टा वह नहीं करता। वर्जीनिया वुल्फ़ कहती हैं, 'हमें उस प्रति-च्छाया को खोजना है जो प्रत्येक दृश्य और घटना के कारण हमारी चेतना पर पडती है, चाहे वह कितनी ही असंबद्ध

और विशृंखलित क्यों न हो ।' इस पद्धति का प्रयोग करने वाले कलाकार की भाषा सामान्य भाषा से भिन्न होती है। मराठी लेखक मर्ढेकर के शब्दों में, 'भाषा की शब्द-संपत्ति और व्याकरण का सामान्य स्वरूप बदलना होगा, विकृत करना होगा, ऐसा किए बिना चेतना-प्रवाह की विलक्षण उलझनों को प्रतिबिंबित करना कठिन है ।'

चेन्नप्पा उत्तंगि *(क० ल०)*

स्व० रेवरेंड उत्तंगि चेन्नप्पा का जन्म उत्तर कर्णाटक के बेलगाँव ज़िले के एक गाँव में 1881 ई० में हुआ था । ये मिशनरी थे किंतु फिर भी इन्होंने वीरशैव साहित्य पर महत्वपूर्ण काम किया है। इन्होंने कन्नड कवि सर्वज्ञ (दे०) की वाणियों का संपादन भी किया है। उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'बनारसक्कं', 'बेल्लेहोमिनविनेति', 'हिंदू-समाजहितचिंतक', 'वामनतिलक' (जीवनी), 'बसवेश्वरन् अस्पृश्यर उद्धारवू', 'दृष्टांतदर्पण', 'अनुभव-मंटप' आदि। 'दृष्टांतदर्पण' में साधु सुंदरसिंह के दृष्टांत का संग्रह एवं विवेचन है। 'अनुभव-मंटप' में वीरशैव संत बसव (दे०), अल्लम (दे०), चेन्नबसव (दे०) आदि की आध्यात्मिक गोष्ठी तथा उसकी उपलब्धियों की चर्चा है। सर्वज्ञ (दे०) के इधर-उधर बिखरे हुए वचनों का संग्रह कर, उनका वर्गीकरण तथा विस्तृत आलोचना आदि आपने बहुत ही परिश्रम के साथ की है। पाठानुसंधान के सिद्धांतों के अनुसार न होने के कारण यह उतना प्रामाणिक नहीं है फिर भी नष्टप्राय रत्नों को अगली पीढ़ी के लिए संगृहीत कर रखने का महत्वपूर्ण कार्य इन्होंने किया । इनकी भाषा में ठेठ कन्नड की शक्ति है।

चेन्नबसव *(क० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानतः 1150 ई०]

बारहवीं शती में कर्णाटक में वीरशैव मत द्वारा एक बहुत बड़ी क्रांति हुई थी जिसमें साहसी संतों ने अपनी सरल व सुंदर वाणी द्वारा जनता को जगाया था। इस वाणी को 'वचन' कहते हैं। इस युग में पाँच संत अत्यंत प्रसिद्ध माने जाते हैं जिन्हें हम 'संतपंचक' कहते हैं। वे हैं—बसव (दे०), अल्लमप्रभु (दे०), चेन्नबसव, अक्कमहादेवी तथा सिद्धराम (दे०)। चेन्नबसव बसवेश्वर के भानजे थे। इनकी रचनाएँ ये हैं—'षट्स्थलवचन', 'करणहसुगे', 'मिश्रार्पण', 'मंत्रगोप्य', 'कालज्ञान' एवं 'रुद्र-भारत'। वीरशैव मत को एक तात्विक पृष्ठभूमि देने में इनका विशेष योगदान है। इनके वचनों में से कुछ बहुत ही लंबे हैं। सिद्धांत-निरूपण एवं मतप्रचार की दृष्टि के कारण उनकी शैली में यथेष्ट मर्मस्पर्शिता है। अन्य मत के प्रति व्यंग्य में उनकी शैली में मानो चमक आ जाती है तथा पाखंड-खंडन में बसवेश्वर के वचनों की भाँति उनकी वाणी में भी साहित्य-तत्त्व रहता है किंतु बसव की साहित्यिकता और मार्मिकता सर्वत्र गोचर नहीं होती।

चेम्मीन् *(मल० कृ०)*

यह उपन्यासकार ख्यात तकषि (दे०) शिवशंकर पिळ्ळा का एक प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें मछुओं के जीवन का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया गया है। 1926 ई० में इसका पहला प्रकाशन हुआ। इस उपन्यास का रूपांतर रूसी आदि विदेशी भाषाओं में भी हुआ है। मछुआ चेंपन् की बेटी करुत्तम्मा के जीवन की घटनाएँ इसमें वर्णित हैं। वह अन्य जाति के पुरुष परीक्कुट्टि से प्रेम करती है जो उसकी जाति के लोगों को बुरा लगता है। यद्यपि उसका ब्याह हो जाता है तो भी करुत्तम्मा अपने बाल्यकाल के मित्र परीक्कुट्टि के साथ प्रेम-संबंध मृत्यु तक बनाए रखती है और अंत में दोनों एक-दूसरे के गले लगकर समुद्र में कूदकर अपने प्रेम का निर्वाह करते हैं। मछुआ-जाति की जीवन-चर्या, आचार-विचार, अंधविश्वास आदि का तन्मय चित्रण इसमें हुआ है। मलयाळम के सामाजिक उपन्यासों में इस कृति का स्थान बहुत ऊँचा है।

चेय्युळवप्पक्कू *(त० पारि०)*

इस शब्द का अर्थ 'कविसागत प्रयोग' है। पारिभाषिक शब्द के रूप में तमिल काव्य-परंपरा में ग्रहण करने योग्य परिष्कृत वर्णन तथा कथन-पद्धतियों को सूचित करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। तमिल में ई० पूर्व कालीन 'संगम' साहित्य में जिन रूढ़ियों अथवा 'कविसमयों' का पालन होता था और जो काव्य-रचना या लक्षण मानी गई हैं वे सब 'चेय्युळवप्पक्कु' के शीर्षक के अंतर्गत आ जाती हैं। इसके पर्यायवाची शब्द के रूप में 'नाटकवप्पक्कु' की उक्ति का भी उपयोग होता है। इन पर्यायों में अंतर इतना ही है कि 'नाटक' का संबंध 'नृत्य अथवा गेय काव्य' की परंपरा से है तथा 'चेय्युळ' सामान्य कविता-परंपरा का द्योतक है। प्राचीन काल में ये दोनों परंपराएँ प्रायः अभिन्न

रही हैं। 'कवितागत प्रयोग' के व्यतिरेक मे 'उलकवपक्कु' (दे०) (लोकव्यवहाराश्रित प्रयोग) है।

चेरुकाट्टु *(मल० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

चेरुकाट्टु गोविंद पिषारडी प्रतिभाशाली नाटककार और कहानीकार है। अपने व्यावसायिक जीवन से निवृत्त होते समय ये सस्कृत महाविद्यालय के आचार्य थे। साम्यवादी आदोलन मे सक्रिय भाग लेकर इन्हे कारागार भी हुआ था। इनके नाटको मे 'तरवाट्टित्तम', 'अटिमा', 'मनुष्य हृदयड्डळ्' आदि विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने उपन्यास, कहानियाँ और कविताएँ भी लिखी है।

चेरुकाट्टु के नाटको मे शोषित जनता के विद्रोह का स्वर मुखरित है। केरल के परिवारो के आर्थिक शिथिलन का चित्र यथार्थ-बोध के साथ उतारने मे उनको सफलता मिली है। आधुनिक नाटककारो मे चेरुकाट्टु का प्रमुख स्थान है।

चेरुश्शेरि, नपूर्तिरि *(मल० ले०)* [जीवन-काल—सोलहवी शती ई०]

ये मलयाळम के प्रथम महाकाव्य 'कृष्णगाथा' के रचयिता है। इनके जीवन के सबध मे केवल इतना निर्विवाद कहा जा सकता है कि ये कोलत्तिरि राजा उदय वर्मा के आश्रित थे जिसके आदेशानुसार इन्होने 'कृष्णगाथा' (दे०) की रचना की थी। 'कृष्णगाथा' के अलावा 'भारत-गाथा' भी चेरुश्शेरि की कृति मानी जाती है।

चेरुश्शेरि मलयाळम के प्रथम कवि हैं जिन्होंने भाषा को साहित्यिक दृष्टि से पूर्ण बनाया। इन्होंने सस्कृत-छदो का प्रयोग करने वाली मणिप्रवाल शैली के स्थान पर लोक-शैली के पाट्टु के छद और काव्य-रीति को अपनाया। शृगार और हास्य की अभिव्यजना मे इनका पाटव असामान्य था। इनकी अलकार-योजना अकृत्रिम और हृदयावर्जक है। यद्यपि चेरुश्शेरि सत कवि नही माने जाते तो भी भक्ति-मार्ग के पोषण मे उनका योगदान महत्वपूर्ण है। भारत के कृष्णकाव्यकारो मे, विशेषत प्रवध काव्यकारो मे चेरुश्शेरि का स्थान समुन्नत है।

चेलियलिक्किट्टा *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1942 ई०]

चेलियलिक्किट्टा (समुद्र की वेला) श्री विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का एक महत्वपूर्ण सामाजिक उपन्यास है। श्री सत्यनारायण का प्राचीन भारतीय सभ्यता, सस्कृति एव शिक्षा मे अटूट विश्वास है तथा आधुनिक स्वच्छदतावादी विचारधारा को ये भारत की प्रगति के लिए घातक मानते है। अपनी इसी विचारधारा को इन्होने इस उपन्यास मे प्रस्तुत किया है।

सीतारामय्या पैंतालीस वर्ष की उम्र मे विधुर होकर रत्नावली नाम की कन्या से विवाह कर लेता है। सीतारामय्या के छोटे भाई रगाराव ने अँग्रेजी शिक्षा पाई है और वह नई सभ्यता एव विचारधारा मे पला है। वह अपनी भाभी रत्नावली को अपने नए विचारो से प्रभावित कर लेता है और उसके साथ अनुचित सवध स्थापित करके उसे भी मद्रास भगा ले जाता है। कुछ समय के पश्चात् वहाँ की स्वेच्छचारिता को देखकर रत्नावली के पुराने सस्कार सचेत हो जाते हैं। वह अपनी भूल को समझ जाती है और विश्वास करने लगती है कि विवाह एक सामाजिक आवश्यकता है। वह अपने पति के पास लौट आती है। उसका क्षमाशील पति उसे आश्रय देता है। उसी समय एक भीषण समुद्र-तरग मे वह विलीन हो जाती है। जीवन रूपी समुद्र अपनी वेला तक मर्यादित रहकर ही अपने स्वरूप को बनाए रख सकता है। इसी प्रकार स्त्री-पुरुषो का पारस्परिक प्रेम भी सामाजिक मर्यादा की सीमाओ मे ही शाति प्रदान कर सकता है। यही सदेश इस उपन्यास मे दिया गया है।

चेलुवाबे *(क० ले०)* [समय—1725 ई० के आसपास]

मैसूर-नरेश दोड्डकृष्ण राजा (1713-17) की पट्टमहिषी 'चेलुवाबे' *का समय 1725 ई० के करीब माना जाता है।* इनकी रचनाएँ हैं—'वरनदी कल्याण', 'वेंकटाचल माहात्म्य', 'लालिपरगळु' तथा 'माहात्म्य टीके' आदि। 'वरनदीकल्याण' इनकी उल्लेखनीय कृति है जो सागत्य (दे०) छद मे है। रामानुजाचार्य के जीवन के बारे मे कहा जाता है कि वे दिल्ली से अपनी आराध्यमूर्ति 'चेलुवराय स्वामी' को दक्षिण लाए। यह मूर्ति मैसूर के प्रसिद्ध श्री वैष्णव क्षेत्र मेलुकोटे मे है। कहा जाता है कि यह दिल्ली सुल्तान की बेटी के पास थी जिसे इसमे वरनदी कहा गया है। *कवयित्री की कल्पना है कि वरनदी पूर्वजन्म मे सत्यभामा* थी, वरनदी अपने इष्टदेव के साथ खुद भी मेलुकोटे आई। उसी के साथ उसने विवाह किया। इसी की कहानी इसमे सागत्य छद मे कही गई है। इसके सागत्य काफी ललित एवं हृदय-सवेद्य है।

चेल्लम्मा, सी० आर० *(क० ले०)*

ये उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में कन्नड की एक सरस कवयित्री थीं। इनका देहावसान 1910 ई० में हुआ। इनकी प्रसिद्ध रचनाओं में प्रमुख ये हैं—'गीतिकाल हर', 'द्वादशमंजरी स्तोत्र', 'पारिजातहरण', 'राजकलानिधि' 'रुक्मिणी-परिणय', 'वैराग्यमंजरी आदि। आधुनिक कन्नड में साहित्य-रचना करने वाली महिलाओं में, जिनकी संख्या कम ही है, इनका नाम श्रद्धा के साथ लिया जाता है।

चैतन्य

ये प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य थे। इनका समय पंद्रहवीं शती है। इन्होंने बंगाल में वैष्णव धर्म का प्रचार किया। ये राधा-कृष्ण के अनन्य भक्त थे। इनके दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन इनके शिष्य आचार्य जीवगोस्वामी ने 'षट्-संदर्भ' में किया, तथा बलदेव ने 'ब्रह्मसूत्र' (दे०) पर अपने 'गोविंदभाष्य' में किया। इनके अनुयायी रूपगोस्वामी (दे०) ने 'उज्ज्वलनीलमणि' (दे०) तथा 'भक्तिरसामृत सिंधु' (दे०) नामक काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के माध्यम से वैष्णव सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। इनके एक शिष्य कवि कर्णपूर (1543 ई0) ने 'चैतन्य-चंद्रोदय' (दे०) नामक नाटक में इनका जीवनचरित प्रस्तुत किया है।

चैतन्यचंद्रोदय *(सं० कृ०)* [समय—1579 ई०]

'चैतन्यचंद्रोदय' श्री परमानंद द्वारा रचित प्रतीक नाटक है। यह शिवानंद सेन के पुत्र तथा महात्मा चैतन्य देव (दे०) के पार्षद थे। चैतन्य ने इन्हें 'कर्णपूर' की उपाधि से विभूषित किया था।

'चैतन्यचंद्रोदय' कवि की प्रौढ़ रचना है। इसमें दस अंक हैं। महाप्रभु चैतन्य देव के जीवनवृत्त तथा सिद्धांतों को समझने के लिए यह नाटक बड़ा ही प्रामाणिक है। इसके पात्रों में मूर्त तथा अमूर्त दोनों का सम्मिश्रण है। अमूर्त पात्रों में भक्ति, विराग, कलि तथा अधर्म आदि प्रमुख हैं। मूर्त पात्रों में चैतन्य तथा उनके प्रसिद्ध शिष्य हैं। इसकी भाषा सरल तथा सुबोध गद्य है।

चैतन्यचरितामृत *(बँ० कृ०)*

वैष्णव समाज और साहित्य में कृष्णदास कविराज (दे०) अपने 'चैतन्यचरितामृत' ग्रंथ के कारण विख्यात हैं। उनके जीवन के बारे में आज भी संपूर्ण तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। वृंदावन उनकी जीवन-साधना का क्षेत्र था। छहों गोस्वामियों की कृपा उन्हें मिली थी। उनमें से श्रीरूप एवं रघुनाथ का उन्हें विशेष सान्निध्य मिला था। कदाचित् ये दोनों उनके दीक्षा-गुरु थे और शेष सभी शिक्षा-गुरु। विद्वानों के अनुसार 1496 ई० में उनका जन्म एवं 1582 ई० में उनकी मृत्यु हुई थी।

कृष्णदास की एकमात्र बँगला रचना 'चैतन्य-चरितामृत' है। आभ्यंतर प्रमाणों के अनुसार इस ग्रंथ की रचना 1612 ई० के आसपास हुई थी। वृद्धावस्था में उन्होंने इस ग्रंथ की रचना की थी। कवि की मनस्विता का परिचय इस ग्रंथ में सर्वत्र मिलता है। यह काव्य पांडित्य, भक्ति एवं काव्यकुशलता का त्रिवेणी-संगम है। श्री चैतन्यदेव (दे०) के महान् जीवन के अंतिम पक्ष का चित्रण करना ही कवि का मंतव्य था और श्री चैतन्य-प्रवर्तित वैष्णव धर्म की दार्शनिक भित्ति एवं आदर्श का निष्ठापूर्वक प्रचार-प्रसार उनका उद्देश्य था। दुरूह दार्शनिक तत्त्वों की व्याख्या एवं इस धर्ममत के विश्लेषण और प्रतिष्ठा के संदर्भ में कवि ने जहाँ कौशल का परिचय दिया है वहाँ भाव-गंभीर काव्य-शैली की स्थापना में भी उनका अविस्मरणीय कृतित्व परिलक्षित हुआ है। वृंदावनदास (दे०) के चैतन्य-भागवत (दे०) में श्री चैतन्य के जीवन के प्रथमार्ध का चित्रण है एवं कृष्णदास के काव्य में शेषार्ध का। कृष्णदास ने श्री चैतन्य के प्रथम जीवन का सूत्राकार में वर्णन कर अन्तपर्व में अपने उद्देश्य को रूपायित किया है। कृष्णदास जीवनीकार के साथ-साथ दार्शनिक भी है। आदिलीला में 17 परिच्छेद हैं, मध्यलीला में 25 एवं अंतिम लीला 20 परिच्छेदों में वर्णित है। इतिहास, रसतत्त्व, दर्शन एवं काव्यरस की वर्णना में कवि का धर्मभाव, गहरी मननशीलता, सूक्ष्म और संहत विचार-बोध एवं रसज्ञान का सार्थक परिचय मिलता है।

चैतन्यदेव *(बँ० पा०)*

कृष्णदास कविराज (दे०)-प्रणीत 'चैतन्य-चरितामृत' (दे०) ग्रंथ में श्री चैतन्य (दे०) के जीवन के शेषार्ध का परिचय एवं उनके द्वारा प्रवर्तित गौड़ीय वैष्णव धर्म के तत्वस्वरूप का विश्लेषण है। श्री चैतन्य (1486-1533 ई०) के जीवन का प्रथमार्ध वृंदावनदास (दे०) के 'चैतन्य-भागवत' (दे०) ग्रंथ में विशद रूप में वर्णित है।

'चैतन्य-भागवत' एव 'चैतन्य-चरितामृत' ग्रथो के द्वारा महाप्रभु श्री चैतन्य के दिव्य जीवन का पूर्ण परिचय विकसित हुआ है।

नवद्वीप मे उनका जन्म हुआ। पिता ने नामकरण किया—विश्वभर। श्री चैतन्य का दूसरा नाम था—निमाइ। सन्यास ग्रहण करने पर उनका नाम हुआ श्रीकृष्ण चैतन्य। परम भागवत माधवेंद्र पुरी के प्रियतम एव प्रधान शिष्य ईश्वरपुरी से इन्होंने दशाक्षर गोपालमत्र की दीक्षा ली। पहली स्त्री का नाम था लक्ष्मीप्रिया। बाद मे विष्णुप्रिया के साथ उनका विवाह हुआ। इसके उपरात पितृकार्य के उपलक्ष्य मे उन्हे गयाधाम जाना पडा। वही उन्होने दीक्षा ली। गयाधाम से वापिस आते ही उनका लोकोत्तर जीवन शुरू होता है। अत मे सन् 1510 मे उन्होने गृहस्थाश्रम त्याग दिया एव काटोया मे जाकर केशव-भारती से सन्यास ग्रहण किया। इसके उपरात उन्होने नीलाचल (पुरी) की ओर यात्रा शुरू की। दाक्षिणात्य भ्रमण के उपरात श्री चैतन्य नवद्वीप मे फिर वापिस चले आए और बाद मे वृदावन-मथुरा का परिभ्रमण किया। अतिम जीवन उन्होने पुरी मे ही व्यतीत किया। प्रारभिक जीवन मे अध्यापना एव बाद मे भक्ति रस से समग्र देश को उन्होने अनुप्राणित किया था। केवल आध्यात्मिक क्षेत्र मे ही नही, सामाजिक क्षेत्र मे भी उन्होने बगाल को दिशा दी। श्री चैतन्य प्रवर्तित प्रेमधर्म मे नवमानवता-बोध के सुस्पष्ट बीज विद्यमान थ। गौडीय वैष्णव धर्म के प्रवर्तक श्री चैतन्य ने मनुष्य को स्वमहिमा मे प्रतिष्ठित किया था।

श्री चैतन्य के महाप्रयाण का उल्लेख किसी भी ग्रथ रचयिता ने नही किया है। केवल कवि जयानद (दे०) के 'चैतन्य-मगल' (दे०) के सकेत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 1533 ई० के जुलाई मे वे तिरोहित हो गए थे।

चैतन्य-भागवत (*बँ० कृ०*)

बँगला भाषा मे 'चैतन्यचरित' ग्रथ समष्टि मे वृदावनदास (दे०) के 'चैतन्य-भागवत' ग्रथ की रचना सबसे पहले हुई थी। कृष्णदास कविराज (दे०) ने वृदावनदास को 'चैतन्य लीला के व्यास' के नाम से अभिनदित किया है। कविराज ने इस ग्रथ को 'चैतन्य-मगल' के नाम से ही पुकारा है। कदाचित् कृष्णदास के 'व्यास' कहने पर परवर्ती युग मे लोगो ने वृदावनदास के काव्य को 'चैतन्य-भागवत' के नाम से पुकारना शुरू कर दिया था। और फिर बहुत स लोग यह सोचते है कि उसी समय लोचनदास (दे०) ने 'चैतन्य-मगल' की रचना की थी और इस तरह दोनो ग्रथो का एक ही नाम हो गया था। माता नारायनी देवी ने पुत्र के ग्रथ का नाम परिवर्तित कर इस समस्या का समाधान कर दिया।

कदाचित् श्री चैतन्य के गृहत्याग के बाद ही वृदावनदास का जन्म हुआ। नित्यानद के घनिष्ठ सहचर थे वृदावनदास। श्री चैतन्य की अत लीला का विवरण इस ग्रथ मे नही है। कदाचित् ग्रथ-समाप्ति के पहले ही श्री चैतन्य का तिरोधान हो गया था, इसीलिए अतपर्व की वृदावन ने रचना नही की। 'चैतन्य-भागवत' का रचना-समाप्ति काल कदाचित् 1434-35 ई० है। वैष्णव साहित्य के अन्यान्य आभ्यतर प्रमाणो से पता चलता है कि वृदावन की मृत्यु 1580 के आसपास हुई थी।

'चैतन्य भागत' मे कवि ने चैतन्य नित्यानद को कृष्ण-बलराम के अवतार के रूप मे प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है। चैतन्य धर्म-तत्त्व का उल्लेख करना कवि का लक्ष्य नही था। चैतन्य के आख्यानमूलक जीवन वृत्तात की रचना ही कवि का उद्देश्य था। अवतारवाद की प्रतिष्ठा के लिए कवि ने बहुत सी अलौकिक कहानियो की अवतारणा की है। कवि के हृदय मे चैतन्य के लिए अपार प्रेम भरा हुआ है। चैतन्य नित्यानद उसकी आत्मा है। चैतन्य धर्म के विरोधी धर्मों पर उन्होंने आक्रमण किया है, इसीलिए उनके ग्रथ मे समसामयिक समाज का चित्र भी उभर आया है। श्री चैतन्य के सार्थक जीवनीकार के रूप म नही, प्रथम जीवनीकार के रूप ही मे वृदावनदास की ख्याति रहेगी।

चैतन्य मगल (*बँ० कृ०*)

'चैतन्य-मगल' के नाम से लोचनदास तथा जयानद दोनो ने ही अलग अलग काव्य-ग्रथो की रचना की है। वृदावनदास (दे०) के 'चैतन्य-भागवत' (दे०) की रचना के उपरात कदाचित् लोचनदास न 'चैतन्य मगल' की रचना की थी। अनुमान किया जाता है कि 1560 ई० स 66 ई० के बीच इस ग्रथ की रचना हुई होगी। प्राचीन मगल-काव्य के अनुरूप चार खडो मे समाप्त इस ग्रथ मे चैतन्य (दे०) की जीवनी का आलेख प्रस्तुत किया गया है। नरहरि सरकार ठाकुर के प्रियतम शिष्य लोचन के गुरु की आज्ञा से ही इस ग्रथ की रचना की थी। वृदावनदास एव विशेष रूप से मुरारिगुप्त के प्रति कवि न अपना आनुगत्य बार-बार प्रकट

किया है। इतिहासाश्रित सार्थक जीवनी-रचना का प्रयास इसमें नहीं है। कल्पना-प्रवण भक्त हृदय को इस काव्य में मुख्य स्थान प्राप्त हुआ है। श्री गौरांग के 'नदीया नागरी भाव' के प्रवक्ता-रूप में लोचन को इस काव्य में प्रतिष्ठा मिली है।

जयानंद का 'चैतन्य-मंगल' भी 'मंगलकाव्य' (दे०)के रूपाश्रय में रचित है। कदाचित् 1560 ई० में इस ग्रंथ की रचना हुई थी। लोचन का काव्य एक विदग्ध कवि की रचना है जबकि जयानंद के काव्य में अवैदग्ध्य का परिचय स्पष्ट है। वीरभद्र प्रभु की सम्मति एवं श्रीगदाधर पंडित की आज्ञा से उन्होंने नौ खंडों में गीतोपयोगी इस ग्रंथ की रचना की थी। इसके विभिन्न खंडों में शृंखला का अभाव है। काल्पनिक कहानियों की भरमार भी है। फिर भी उस युग के सामाजिक जीवन का परिचय इस ग्रंथ में विशेष रूप से उपलब्ध है। वैष्णव समाज में इस ग्रंथ के प्रचार को रोकने का प्रयत्न किया गया था क्योंकि केवल इसी ग्रंथ में चैतन्यदेव के 'अप्रकट' होने का यथार्थ कारण दर्शाते हुए यह कहा गया है कि रथयात्रा के समय नाचते हुए चैतन्य के पैर में ईंट का टुकड़ा घुस गया था और उसी घाव से ही 1533 ई० में उनकी मृत्यु हुई थी। कवि रूप में अभिनंदित होने पर भी जयानंद ने ऐतिहासिकों की दृष्टि में सश्रद्ध स्वीकृति प्राप्त की है।

चोखामेला *(म० ले०)*

इनका निवास-स्थान था—मंगलवेढा। ये भगवान विट्ठल के अनन्य भक्त थे। जाति से ढेड़ होने के कारण इन्हें जीवन में अनेक बार अपमानित होना पड़ा था। परंतु भक्ति-भावना ने इन्हें सहज कवि बना दिया। इनके अनेक सरस और सालंकृत अभंग उपलब्ध हैं। पंढरपुर में पांडुरंग-मंदिर के सिंहद्वार के निकट इनकी समाधि बनी हुई है।

चोखेर बालि *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1903 ई०]

यह रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) का ख्याति-प्राप्त सफल उपन्यास है। बिनोदिनी चतुर एवं चंचल स्वभाव की बाल-विधवा है। महेंद्र अपनी सरल एवं निश्छल पत्नी आशा के गंभीर प्रेम से ऊबकर बिनोदिनी के प्रति आकर्षित होता है। बालसखा होने के नाते विहारी अपने असंयत मित्र को सुधारने का प्रयास करते हुए स्वयं बिनोदिनी के मोह-जाल में उलझ जाता है। रवींद्र का अभीष्ट वैध एवं अवैध प्रेम की उत्तेजना एवं संघर्ष को दिखाना है। उन्होंने नारी के दो रूपों का रेखांकन किया है। आशा सौम्य, शांत एवं गंभीर है। बिनोदिनी मुखर, चुलबुली एवं चतुर है। महेंद्र जैसा अस्थिर एवं असंयमी व्यक्ति विनोदिनी के गूढ़ आकर्षण में सब कुछ गँवा बैठता है; बिहारी बंधु-प्रीति के आवेश में बिनोदिनी के संपर्क में ऐसा आता है कि उससे अलग नहीं हो पाता। बहुविध द्वंद्व होने के कारण महेंद्र सर्वाधिक सशक्त पात्र है, बिनोदिनी का चित्रांकन भी पर्याप्त ईमानदारी से किया गया है। वास्तव में इस उपन्यास का वस्तु-कौशल इतना सुगठित तथा चरित्रांकन इतना तटस्थ भाव से किया गया है कि यह रचना बँगला उपन्यास में नए युग का सूत्रपात्र करती है। रवींद्र की प्रतिभा का प्रमाण है जटिल मानसिक संघर्ष एवं क्रिया-प्रतिक्रिया का सूक्ष्म विश्लेषण। यह रवींद्र की अन्यतम उपलब्धि है।

चोरघडे, वा० कृ० *(म० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

नाम से वामन पर कद में छह फुट लंबे श्री चोरघडे का आविर्भाव मराठी कथा-साहित्य में दीप्तिमान नक्षत्र के रूप में हुआ था। कहानी को प्रसंग, घटना, निर्जीव शिल्प से निकालकर उसे काव्यमय भावसमृद्ध और अंतर्मुख रूप प्रदान करने का श्रेय इनको ही है। इनकी कहानियों में मानव की स्वाभाविक उदारता, भव्यता तथा भीषणता का काव्यमय वर्णन है। इन कहानियों की एक अन्य विशेषता है—प्रादेशिकता। ग्रामीण जीवन और देहाती लोगों का स्वानुभूतिपूर्ण चित्रण बड़ा ही मार्मिक एवं प्रभावशाली बन पड़ा है और पाठक के मन में इस ग्रामीण जीवन के प्रति सहज ही सहानुभूति उत्पन्न हो उठती है। महात्मा गांधी के जीवन-दर्शन का मार्मिक और कलापूर्ण प्रतिपादन भी इनकी कई कहानियों में हुआ है। इनकी भाषा-शैली में सर्वत्र संगीतमयता है क्योंकि वाक्य छोटे-छोटे हैं, उनमें नाद तथा लय का मणिकांचन संयोग है। अब तक इनके आठ कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रसिद्ध कथा-संग्रह—यौवन, हवन, पाथेय, प्रस्थान और संस्कार।

चोरधरा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती; लेखक : माधवदेव (दे०)]

श्री शंकरदेव (दे०)द्वारा प्रचारित अंकीया नाट

(दे०) की परंपरा मे माधवदेव ने 'चोरधरा' नाट लिखा था। इसकी भाषा ब्रजबुलि मिश्रित असमिया है। शकरदेव के नाटक के समान यह आख्यानमूलक न होकर परिस्थिति-मूलक नाटक है। माधवदेव नाटकीयता की ओर अधिक सजग थे। कृष्णत्व के प्रचार की अपेक्षा उन्होंने कृष्ण की बाल लीलाओ का चित्रण अधिक किया है। नाटक का प्रसग इस प्रकार है—कृष्ण ग्वालिन के घर दूध दही खाते पकडे जाते हैं। उसी समय सखाओ के वहाँ पहुँच जाने पर कृष्ण का साहस बढ जाता है, वे उल्टे ग्वालिन पर ही दोषारोपण करने लगते हैं। ग्वालिन डर कर उन्हे छोड देती है। कृष्ण कहते हैं कि तुमने तो मुझे छोड दिया किंतु मैं तुम्हे नही छोड़ूँगा। इस प्रकार वे थोडा मक्खन और पा लेते हैं। तब तक माता यशोदा वहाँ पहुँच जाती है। यहाँ माता के वात्सल्य का मनोहारी चित्रण है।

चौधुरी, प्रमथनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1868 ई० मृत्यु—1946 ई०]

रवीद्र (दे० ठाकुर) के समसामयिक प्रमथ चौधुरी का प्रधान परिचय 'सबुजपत्र' (दे०) प्रथम प्रकाशन 1925 ई०) के सपादक के रूप मे है एव सर्वोत्तम परिचय कवि एव प्रबधकार के रूप मे है। प्रमथ चौधुरी के सपादन मे ही रवीद्रनाथ ठाकुर ने 'सबुजपत्र मे' चलित भाषा का प्रयोग शुरू किया था।

'सबुजपत्र' के सपादक प्रमथ चौधुरी (छद्मनाम बीरबल) नवीनो एव नव्ययुग के अग्रणी रहे हैं। उन्होंने 'जयदेव' निबध मे प्राचीन चिंतनधारा के विरुद्ध मौलिक साहित्य चिंतन की अभिव्यक्ति की। साहित्यिक निबधो के अतिरिक्त सामाजिक निबधो की रचना मे भी उन्होने दक्षता का परिचय दिया है। तेल नुन लकडी, बीरबलेर हालर खाता' (दू०), 'नाना कथा, 'नाना चर्चा आदि ग्रथ समूह नवीन युग की चिंतनधारा के प्रतीक है। मननशीलता के क्षेत्र मे शाणित-बुद्धिदीप्त तिर्यक व्यग्योक्ति के माध्यम से प्रमथनाथ ने 'सबुजपत्र' मे एक उन्नत आदर्श की स्थापना की थी। बुद्धिदीप्त यौवनोद्भासित तरुण समाज का मुख-पत्र था 'सबुजसन' एव मुखपात्र—प्रमथ चौधुरी।

बँगला काव्य के क्षेत्र मे प्रमथ चौधुरी के सर्वाधिक कृतित्व का परिचय उनकी सार्थक सॉनिट रचना मे मिलता है। 'सानेट पचाशत' (1913 ई०) एव पद चारण (1919 ई०) कवि के कृतित्व के सार्थक निदशन है।

चौधुरी, प्रसन्नलाल *(अ० ले०)* [जन्म—1902 ई०, जन्म-स्थान—पलाशबाडी]

इन्होने गौहाटी से स्नातक-परीक्षा उत्तीर्ण की। 1931 ई० मे बारपेटा विद्यापीठ के हेडमास्टर नियुक्त हुए, बीच मे गौहाटी के सरकारी प्रचार विभाग मे भी काम किया।

प्रकाशित रचनाएँ—'अग्निमत्र' (कविता सग्रह) (1952) 'नीलाबर' (नाटक) (1926)।

ये विद्रोही कवि हैं। समाज के प्राचीन सस्कारो का विरोध कर नये समाज की रचना का स्वप्न देखते हैं। इनका विद्रोह यौवन का विद्रोह है, ककाल-सदृश किसान का विद्रोह है। उत्कट स्वदेश प्रेमी होते हुए भी इन्हे विश्व के किसी भी प्रदेश के श्रमिको के प्रति सहानुभूति है। अर्ध-ऐतिहासिक नाटक 'नीलाबर' साहित्यिक सौंदर्ययुक्त एव मचोपयोगी है। इसमे हत्या, प्रपच आदि का प्रचुर वर्णन है। विद्रोही कवि श्री चौधुरी असम के नजरुल इस्लाम (दे०) कहे जाते हैं।

चौधरी, बहिणाबाई *(म० ले०)* [जन्म—1879 ई०, मृत्यु—1951 ई०]

ये आधुनिक मराठी साहित्य मे ग्रामीण गीतो की रचयित्री रूप मे प्रसिद्ध सोपानदेव चौधरी (दे०) की माता हैं।

इनका 'बहिणाबाईची गाणी' नामक गीत सग्रह प्रसिद्ध है।

बहिणाबाई एक अशिक्षित ग्राम्य गृहणी थी, जो काव्य रचना की प्रतिभा से सपन्न थी। इनके गीतो की विषय-परिधि नित्यप्रति के व्यवहार मे आने वाली वस्तुओ तथा दैनिक जीवन की अनुभूतियो तक ही सीमित थी। साधारण विषय की मधुरिमा प्लावित कर आकर्षक ढग से व्यक्त करने की कला मे पारगत होने के कारण, इनके गीत आज भी सामान्य जन की जिह्वा पर नाचते हैं। काव्य के आशावादी दृष्टिकोण, भावनाओ की मौलिकता, आस्तिक बुद्धि, स्वाभाविक अलकार योजना, सरसता आदि गुणो के कारण इनका काव्य प्राचीन काव्य-परपरा म तो गौरव का अधिकारी है ही, साथ ही आधुनिक काल म भी उसकी प्रतिष्ठा है।

चौधुरी, योगेशचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1948 ई०]

पौराणिक कथावस्तु के आधार पर वर्तमान कालोपयोगी समस्यामूलक नाटक लिखकर योगेशचंद्र चौधुरी ने विशेष ख्याति प्राप्त की थी। इनके प्रसिद्ध नाटकों के नाम निम्नलिखित हैं : 'सीता' (1924), 'दिग्विजयी' (1928), 'श्री श्री विष्णुप्रिया' (1931), 'बांगलार मेये' (1934), 'पतिव्रता' (1934), 'पथेर साथी' (1935), 'नंदरानीर संसार' (1936), 'माकड़सार जाल' (1934) आदि। इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटक है 'सीता'। बंगाल के सर्वश्रेष्ठ अभिनेता शिशिर भादुड़ि के कारण भी 'सीता' को बहुत प्रसिद्धि मिली थी। इस नाटक में शिशिर भादुड़ि ने राम का अभिनय किया था। इस नाटक में सीता की निर्वासन-कथा को लेकर नाट्यकार ने समाजधर्म तथा राजधर्म के साथ मानवधर्म के विरोध के एक उज्ज्वल चित्र का प्रदर्शन किया है एवं इसी के साथ मानवधर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन हुआ है। योगेशचंद्र ने कतिपय सामाजिक नाटकों की भी रचना की थी। मोलेयर के नाटक 'स्कूल फार हस्बेंडस्' के अनुकरण पर इन्होंने 'पूर्णिमा-मिलन' प्रहसन की रचना की थी। इनका प्रथम सामाजिक नाटक 'नंदरानीर संसार' एक उपन्यास का नाट्यरूप है।

योगेशचंद्र ने नाट्य साहित्य के आधुनिक युग में मध्ययुग की धारा का अनुसरण किया है परंतु इनका कृतित्व इसी में है कि इन्होंने प्राचीनता के माध्यम से आधुनिक समस्याओं को प्रकट करने में सफलता प्राप्त की है।

चौधरी, रमाकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1846 ई०; मृत्यु—1889 ई०]

जन्मस्थान : नलबारी।

रचनाएँ—**काव्य** : 'अभिमन्यु-वध' (दे०) (1875); **नाटक** : 'सीताहरण नाटक', 'रावण-वध नाटक'।

इन्होंने 1875 ई० में मधुसूदन दत्त (दे०) से प्रेरणा लेकर अमित्राक्षर छंद में 'अभिमन्यु-वध' (दे०) काव्य की रचना की थी। उन्नीसवीं शती के अष्टम दशक में इन्होंने दो नाटक 'सीताहरण' और 'रावण-वध' लिखे थे। दोनों नाटक अभिनीत हुए थे। ये नाटक गंभीर हैं और अमित्राक्षर छंद में लिखित हैं। 'सीताहरण नाटक' असमीया का प्रथम नाटक है। अब इसकी प्रति उपलब्ध नहीं है। स्व० दुधनाथ खाउंड ने 1909 ई० में जो 'सीताहरण' नाटक संगृहीत किया था उसमें अमित्राक्षर छंद का प्रयोग और मधुसूदन दत्त का प्रभाव है, अतः यह श्री चौधरी का ही हो सकता है। 'रावण-वध नाटक' बाद में प्रकाशित हुआ था। इसमें श्री चौधरी ने मधुसूदन दत्त जैसा दृष्टिकोण न रखकर राम और रावण के प्रति परंपरागत दृष्टिकोण ही रखा है, इसमें चरित्रों की नवीनता भले ही न आई हो, किंतु भारतीय मान्यताओं पर आघात नहीं है।

श्री रमाकांत चौधरी असमिया के प्रथम नाटककार हैं।

चौधरी, सोपानदेव *(म० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

सोपानदेव चौधरी मूलतः खानदेश के निवासी थे, पर बाद में नासिक में जा बसे। 'काव्यकेतकी' तथा 'अनुपमा' इनके काव्य-संग्रह हैं।

इनकी रचनाएँ 'कला कला के लिए' सिद्धांत की प्रतिपादक हैं। नैसर्गिक रूप से प्रकृति की क्रोड़ में रहने वाले ग्रामीणों के मनोभावों का वर्णन अनेक प्रगीतों में किया गया है। ये जानपद गीतों के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध हैं।

इनके प्रगीत संगीतात्मक और नादमधुर हैं। इन्होंने बच्चों के लिए हास्य-गीत भी लिखे हैं।

चौधरी, रघुनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1879 ई०; मृत्यु—1967 ई०]

जन्म-स्थान : कामरूप का लाउपरा गाँव।

इन्होंने घर पर संस्कृत का तथा स्कूल में अंग्रेजी का अध्ययन किया था। एकाधिक शिक्षा-संस्थाओं में इन्होंने अध्यापन किया। 1920 ई० के आंदोलन में इन्होंने जेल-यात्रा की थी। इन्होंने अनेक सभाओं का सभापतित्व किया था। कई पत्रिकाओं का इन्होंने संपादन भी किया। इनकी प्रथम कविता 'जोनाकी' में निकली थी।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'सादरी' (1910), 'केतेकी' (दे०) (1918), 'कारवला' (1923), 'दहिकतरा' (1931), 'नवमल्लिका' (गद्यकाव्य) (1959)।

इनकी कविताओं में दो धाराएँ हैं—एक इंद्रियमुखी और दूसरी अंतर्मुखी। प्रथम में शारीरिक आकर्षण का वर्णन है। इस श्रेणी में विहंग और फूल-विषयक कविताएँ भी हैं। इन्होंने प्रकृति के प्रत्येक कार्य में सौंदर्य देखा है। द्वितीय धारा की कविताओं में वैराग्यतत्त्व।

निराशा का स्वर प्रमुख है। इन्होने आधुनिक रोमासवादी कविता मे ध्रुपद शैली का प्रवर्तन किया था। इनकी शैली पाश्चात्य है, किंतु कालिदास (दे०) की कविताओ का इन पर प्रभाव है। कविताओ की भाषा सस्कृत-प्रधान है किंतु 'कारबला' और 'सादरी' मे अरबी-फारसी शब्दो का भी प्रयोग है। 'कविरत्न' और 'विहगी कवि' इनकी उपाधियाँ थी। ये असमीया के उच्चकोटि के कवि थे।

चौधुरी, निरोद *(अ० ले०)*

ये स्वातत्र्योत्तर पीढी के लेखक है।

रचनाएँ—**कहानी** 'कोमल गाधार', मोर गल्प', 'अगे-अगे शोभा'। **सपादन** प्रेमेर गल्प।

इनकी कहानियो मे सवेदनशील मनोवैज्ञानिक वर्णन है। इस युवा लेखक से अभी बहुत अपेक्षाएँ है।

चौपाई *(हिं० छ०)*

चौपाई के प्रत्येक चरण मे सोलह मात्राएँ होती है। इसके चरण के अत मे जगण और तगण का प्रयोग नही होना चाहिए।

तुलसीदास (दे०) ने रामचरितमानस (दे०) की रचना चौपाई छद मे कर उसे अमर कर दिया है। उदाहरण—

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।
देखहिं भूप महा रणधीरा, मनहुँ वीर रस धरे सरीरा॥

चौबीस अवतार *(प० कृ०)*

'दशम ग्रथ' (दे०) मे प्राचीन पुराण साहित्य मे वर्णित विष्णु के चौबीस अवतारो की पद्यबद्ध कथा सगृहीत है। इन अवतारो की नामावली इस प्रकार है—1 मच्छ (*मत्स्य*), 2 कच्छ (*कच्छप*), 3-4 *नर-नारायण*, 5 मोहिनी, 6 बराह (बराह), 7 नरसिंह (नृसिंह), 8 बावन (वामन), 9 परसराम (परशुराम), 10 ब्रह्मा, 11 रुद्र, 12 जालधर 13 *बिसन* (विष्णु), 14 शेषशायी, 15 अरहतदेव, 16 मान राजा, 17 धनतर (धन्वतरि), 18 सूर्य, 19 चद्रमा, 20 राम, 21 कृष्ण, 22 नर (अर्जुन), 23 बुद्ध, 24 *निहकलकी* (कल्कि)। इन सभी अवतार-कथाओ मे राम और कृष्ण का वर्णन अधिक विस्तार से [illegible] है। रामावतार मे कुल 864 छद हैं और कृष्णावतार मे 2492।

दशम ग्रथ की अवतार भावना सामान्यत प्रचलित अवतार-भावना से थोडी भिन्न है। पौराणिक साहित्य मे जो स्थान विष्णु का प्राप्त है, दशम ग्रथ के रचनाकार ने वह स्थान 'कालपुरुष' को दिया है। विपत्ति पडने पर देवता 'कालपुरुष' के पास जाते है और 'कालपुरुष' विष्णु को अवतार धारण करने की आज्ञा देता है। उदाहरणस्वरूप कृष्णावतार के प्रसग मे—

ब्रह्मा गयो धीर निध जहाँ॥
काल पुरख इसथित थे तहाँ॥
कह्यो बिसन कह निकट बुलाई॥
किसन अवतार धरो तुम जाई॥
कालपुरख के बचन ते सतन हत सहाइ॥
मथरा मडल कै बिखे जनमु धर्यो हरिराइ॥
(द० ग्र०, पृ० 254)

'चौबीस अवतार' के रचयिता गुरु गोविंद सिंह (दे०) का उद्देश्य इन अवतार कथाओ के माध्यम से अपने युग की पीडित और दलित जनता मे आत्म विश्वास की भावना उत्पन्न करना था तथा उन्हे परिस्थितियो का सामना करने के लिए तैयार करना था। इसलिए ये अवतार-कथाएँ बहुत एकागी हैं। अधिकाश कथाओ मे युद्ध-प्रसगो को विशेष महत्व दिया गया है। कृष्णावतार मे कवि रचना के उद्देश्य के सबध मे अपनी भावना इस प्रकार व्यक्त करता है—

दशम कथा भागउत की भाखा करी बनाइ।
अवर वासना नाँहि प्रभु धरम जुद्ध को चाइ॥
(द० ग्र०, पृ० 570)

चौरपचाशिका *(स० कृ०)* [रचना-काल—ग्यारहवी शती]

'विक्रमाकदेवचरितम' नामक महाकाव्य के प्रणेता का नाम सस्कृत जगत् मे सुविख्यात है। 'चौरपचाशिका' उनका गीति काव्य है।

इसमे पचास पद्य है। इनमे बिल्हण ने एक राजकुमारी के साथ गुप्त प्रेम का वर्णन किया है। शृगार रस से भरपूर ये पद्य अत्यत हृदयावर्जक तथा मार्मिक हैं।

चौरासी वैष्णवन की वार्ता *(हिं० कृ०)*

ब्रजभाषा के प्राचीनतम गद्य की झाँकी प्रस्तुत करने के कारण वार्ता साहित्य का अपना महत्व है। महा-

प्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टि (दे० पुष्टिमार्ग) संप्रदाय में भक्तों की चरितावलियाँ गाने के कारण भी वार्ताओं का बहुत महत्व है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में वल्लभ के शिष्यों की कथाएँ संकलित हैं। इस वार्ता के रचयिता वल्लभ के पौत्र और विट्ठलनाथ के पुत्र गोकुलनाथ माने गए है। कुछ विद्वान् इस वार्ता को गोकुलनाथ के मुख से निःसृत प्रवचन मानकर बाद में हरिराय द्वारा संपादित मानते हैं। शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचंद्र) जी ने प्रारंभ में तो इसे गोकुलनाथ-कृत ही माना था, पर बाद में चलकर उनकी यह धारणा हो गई थी कि इसे उनके किसी गुजराती शिष्य ने लिखा था। इधर हिंदी के कुछ अन्वेषकों की ऐसी मान्यता हो गई है कि संदिग्ध रचनाओं के बाहुल्य के कारण सारा वार्ता-साहित्य अप्रामाणिक है। कुछ भी हो, मध्ययुगीन कृष्णभक्ति साहित्य की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति से अवगत होने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में वार्ता साहित्य की भूमिका अविस्मरणीय है।

चौलादेवी *(गु० कृ०)*

श्री कन्हैयालाल मुंशी (दे०) के उपरांत 'धूमकेतु' (गौरीशंकर गोवर्धनराम जोशी) (दे०) ने गुजरात के इतिहास पर आधारित अनेक उपन्यास लिखे हैं। इसमें 'चौलादेवी' इनकी उत्कृष्ट कृति है। इस उपन्यास का समय सोमनाथ पर महमूद गजनवी के आक्रमण का समय है।

चौलादेवी एक सुप्रसिद्ध नर्तकी तथा गायिका थी जिसे तत्कालीन गुर्जर शासक भीमदेव ने पत्नी के रूप में अपनाया था। उपन्यास में सर्वत्र चौलादेवी का व्यक्तित्व छाया हुआ है। वह अपने गुणों तथा कूटनीतिज्ञता से सर्वत्र विजयिनी होती है एवं अपनी सपत्नी का प्रेम भी जीत लेती है। भीमदेव की तो वह प्रेरणादात्री है। उसके सबल व्यक्तित्व के समक्ष भीमदेव का चरित्र अत्यंत निर्बल लगता है।

इस चरित्र-प्रधान उपन्यास की संरचना वर्णनात्मक शैली में हुई है। 'धूमकेतु' ऐतिहासिक सीमाओं के प्रति अत्यधिक सजग-सचेत रहने वाले लेखक हैं। अतः उपन्यास का प्रभाव कुछ-कुछ ऐतिहासिक ग्रंथ जैसा प्रतीत होता है परंतु इससे इसका महत्व क्षीण नहीं होता। गुजराती ऐतिहासिक उपन्यासों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

क० मा० मुंशी के 'जय सोमनाथ' में भी चौला अनिंद्य सुंदरी नर्तकी के रूप में चित्रित है किंतु वहाँ उसके चारित्रिक विकास के लिए इतना अवसर नहीं मिला और उपन्यास के अंत में उसका चरित्र कुछ-कुछ अगम-अबूझ-सा हो उठा है।

चौहान, शिवदानसिंह *(हिं० ले०)*

हिंदी की प्रगतिवादी धारा से प्रभावित होने वाले मार्क्सवादी समीक्षा के पक्षधरों में सर्वप्रथम नाम शिवदानसिंह चौहान का आता है। प्रेमचंद (दे०) के बाद प्रगतिशील पत्र 'हंस' (दे०) का संपादन इन्होंने सँभाला और अपने संपादन और निबंधों से प्रगतिशील विचारधारा को स्पष्ट किया। 'हंस' का प्रगति-अंक (सं० 1943) इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास था।

श्री चौहान का प्रगतिशील दृष्टिकोण स्पष्ट, स्वस्थ और संतुलित है। उनके साहित्यिक मूल्य पिटे-पिटाए, एकांगी और दुराग्रहपूर्ण नहीं हैं। उन्होंने कविता, कहानी, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, समीक्षा आदि पर सामाजिक दृष्टि से विचार किया है। कॉडवेल को आदर्श मान उन्होंने साहित्य-सिद्धांतों का संबंध तत्कालीन सामाजिक विकास की स्थिति से जोड़ा है। उन्होंने पहली बार घोषणा की कि सामयिक साहित्य भी शाश्वत हो सकता है। वे समाजविरोधी, निरपेक्षतावादी, मनोवैज्ञानिक फ्रायडीय मान्यताओं को अस्वीकार करते हैं क्योंकि ऐसे साहित्य में सामाजिक अभिव्यक्ति न होकर व्यक्ति-मानस में पड़ी हुई अतिरिक्त कुंठाओं का उन्मोचन मात्र होता है।

प्रगतिशीलता के संबंध में शिवदानसिंह चौहान और रामविलास शर्मा (दे०) में जो बहस छिड़ी उसमें चौहान का दृष्टिकोण अधिक स्वस्थ और संतुलित प्रतीत होता है। वह प्रगतिशील साहित्य को प्रोलेतेरियन या सोवियत साहित्य का पर्याय न मानकर उस साहित्य को प्रगतिशील मानते हैं जो पाठक को स्वस्थ प्रेरणा दे, उसे जीवन-संग्राम में आगे बढ़ने का बल दे, मनुष्य की चेतना को गहरा, व्यापक और मानवीय बनाए, मानव-जीवन की मार्मिक और सारगर्भित स्थितियों का चित्रण करे, जिसमें कला-सौंदर्य और गहराई हो। स्पष्ट है कि उनकी प्रगतिशीलता मानववाद की विशाल पृष्ठभूमि पर अधिष्ठित है। प्रगतिवाद (दे०) के समर्थक होकर भी वे उसकी सीमाओं से परिचित हैं और कुत्सित समाजशास्त्रियों को प्रगतिवाद की संकीर्ण सीमा के रूप में मानते हैं; कलावादियों के एकांगी दृष्टिकोण के साथ ही समाजवादियों की अधकचरी समझ का विरोध करते हैं।

श्री चौहान की आलोचना प्रमुखतः सैद्धांतिक ही है, व्यावहारिक आलोचना उन्होंने बहुत कम लिखी है।

व्यावहारिक आलोचना मे भी प्राय उनकी दृष्टि सतुलित रही है। पत (दे०) पर लिखे उनके निबध मे जहाँ उनकी उपलब्धियो का निर्देश है, वहाँ उनकी सीमाओ पर भी प्रकाश डाला गया है। 'छायावादी कविता मे असतोष की भावना' नामक निबध उनकी इतिहास-दृष्टि का परिचायक है। अभिव्यजना शैली के सबध मे उनका मत है कि हमारे सामाजिक सबध कभी कभी बहुत जटिल हो उठते हैं और उन जटिलताओ को अभिव्यक्त करने के लिए पुरानी शैली छोडकर हमे अभिव्यक्ति के नये रूप गढने पडते है।

आलोचनात्मक निबधो के अतिरिक्त श्री चौहान ने इटरव्यू साहित्य की समृद्धि मे भी योगदान किया है।

उनके प्रमुख ग्रथ हैं—'प्रगतिवाद' (1946 ई०), 'साहित्य की परख' (1948 ई०), 'साहित्य की समस्याएँ' (1959 ई०), और 'साहित्यानुशीलन'। इनमे मार्क्सवादी आलोचना के सैद्धातिक पक्ष को स्पष्ट करने के साथ-साथ हिंदी साहित्य को उसकी कसौटी पर यथासभव सतुलित ढग से परखने का प्रयत्न किया गया है। उनकी सबसे बडी विशेषता है कि वे प्रगतिशील सौंदर्यशास्त्र को व्यापक स्तर पर स्वीकार कर सभी युगो के लिए मानदड प्रस्तुत करते हैं। वे साहित्यिक गुटबाजी के विरोधी है। जहाँ तक उनकी शैली का सबध है, उसमे गभीरता है, विचार-प्रौढ़ता है, पर बात को घुमा-फिराकर लबे-लबे भारी वाक्यो मे कहने की प्रवृत्ति से उनकी शैली कॉडवेल के समान बोझिल हो गई है।

चौहान, सुभद्राकुमारी *(हिं० ले०)* [जन्म—1904 ई०, मृत्यु—1948 ई०]

इनका जन्म प्रयाग मे हुआ। उच्च शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् नवलपुर के प्रसिद्ध वकील ठाकुर लक्ष्मणसिंह से इनका विवाह हुआ। इन्होंने गृह-भार सँभालते हुए भी राष्ट्रीय आदोलन मे सक्रिय योग दिया।

'झाँसी की रानी' की लेखिका सुभद्राकुमारी चौहान मुख्यत कवयित्री थीं। इनकी प्रारभिक कविताएँ 'त्रिधारा' मे माखनलाल चतुर्वेदी (दे०) और केशवप्रसाद पाठक की रचनाओ के साथ सकलित हैं। 'मुकुल' इनकी कविताओ का अन्य सग्रह है। इन्होंने कहानियो और निबधो की रचना भी की है। इनकी कृतियो का मूल स्वर राष्ट्रीय सास्कृतिक है। कुछ रचनाओ मे कोमल व्यक्तिगत (पारिवारिक) अनुभवो की अभिव्यक्ति भी हुई है। इनका काव्य प्रवाह, प्रसादगुण और सरसता की त्रिवेणी है।

छद *(हिं० पारि०)*

छद अक्षर एव वर्ण, गति-यति, लय (दे०)-क्रम, ध्वनि प्रबध, स्वराघात आदि के तत्र से नियमित पद्य-रचना का नाम है। भारतीय काव्यशास्त्र मे छद शास्त्र एव पिंगल (दे०) तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र मे 'मीटर' एव 'प्रोसोडी' के अतर्गत इसका विवेचन हुआ है। छद मूलत लय का मूर्त और साकार रूप है। लय अपने-आप मे एक इद्रिय सवेद्य, किंतु अमूर्त तत्व है जो शब्द, स्वराघात आदि से युक्त छद मे मूर्त आकार ग्रहण कर लेती है। अत राग और भाव (दे०) के अतिरेक और आवेग से स्वभावत उच्छ्वसित लयबद्ध छद काव्य रचना के सभी अतरग और बहिरग उपकरणो की विशृखलता मे सामजस्य उत्पन्न करता है। छद के अगभूत तत्त्व हैं—पक्ति, वर्ण एव चरण, तथा विधायक तत्व हैं—अक्षर, गति, यति, लय क्रम और स्वराघात।

भारतीय वाड्मय मे 'छद' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में उपलब्ध होता है। 'छद्' धातु से व्युत्पन्न 'छद' शब्द का अर्थ है आवृत्त करना, जो स्पष्ट ही इसके लयाधार को रेखाकित करता है। भारतवर्ष मे छद को वेद के छह अगो मे एक माना गया है। भारतीय छद शास्त्र मे उसके दो प्रकार माने गए हैं—मात्रिक और वर्णिक।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र मे भी छद को मूलत आवृतिमूलक माना गया है। इतालवी और स्पेनी शब्द 'वर्सो' तथा लटिन 'वर्सस' का व्युत्पत्त्यर्थ भी आवृत्ति करना ही है। प्राचीन यूनानी-साहित्य मे महाकाव्य (दे०) के लिए हेक्सामीटर तथा नाटक (दे०) के लिए आयबिक ट्राइमीटर बहुत लोकप्रिय छद थे। प्राचीन रोमी साहित्य हेक्सामीटर के अतिरिक्त मुख्यत 'एलिजियाक' (शोक गीति) (दे०) के लिए पेंटामीटर बहुप्रचलित छद था। अँग्रेजी छद का मुख्य तत्त्व है स्वराघात। इसी के आधार और इस पर बलाबल के आधार पर अँग्रेजी कवियो ने अनेक छदो की उद्भावना की। आधुनिक अँग्रेजी-काव्य मे 'मुक्त' और 'अतुकात' छदो के आविष्कार से छद की मूल प्रकल्पना ही बदल गई है।

छदोंबुधि *(क० कृ०)*

इसके लेखक नागवर्मा प्रथम हैं जिनका समय 990 ई० माना गया है। इसका दूसरा नाम 'कादबरी' है। यह कन्नड का सर्वप्रथम छद शास्त्रीय ग्रथ है। यदि या

कहना है कि शिव द्वारा पार्वती को उपदिष्ट छंदःशास्त्र का विकास भूलोक में पिंगल द्वारा हुआ जिसे सीखकर स्वयं कवि ने अपनी पत्नी को इसका बोध कराया। इससे पता चलता है कि कवि ने पिंगल का अनुगमन किया है। किंतु आनुपूर्वी तथा वृत्तों के क्रम में भी पिंगल तथा नागवर्मा मे काफ़ी अंतर है। 'वृत्तरत्नाकर', 'श्रुतबोध' आदि ग्रंथों की शैली में कवि ने एक ही पद्य में लक्ष्य-लक्षण को समन्वित कर लिखा है। इसके छह् आश्वास हैं। प्रथम, संज्ञाधिकार में प्रास-गण आदि की चर्चा है। अंत में कन्नड में असाधारण 'जाति' छंदों की चर्चा है। दूसरे में उक्ता से लेकर उत्कृति तक 26 छंदों का विवरण है। तीसरे में शेष समवृत्त, अर्धसमवृत्त तथा मात्रा-छंदों का विवेचन है। चौथे में मात्रागण-छंदों का विवेचन है। पाँचवें में कन्नड के मात्रागण-छंदों का विवेचन है और छठे में षट्प्रत्ययों का विवरण है। प्रत्येक आश्वास के अंत में गद्य में पुष्पिका है। कन्नड के छंदस्वरूप तथा उसके प्रभेदों को समझने में यह ग्रंथ बहुत ही उपयोगी है।

छंदोरचना *(म० कृ०)* [रचना-काल—1937 ई०]

इसके रचनाकार हैं माधवराव पटवर्धन। इसमें कुल आठ अध्याय हैं। अंतिम अध्याय में छंदःशास्त्र का इतिहास निरूपित है। पिंगल के छंदःसूत्रों से आरंभ कर रचनाकार के समसामयिक लेखकों तक की कृतियों का इसमें संक्षिप्त परिचय आ गया है। छंदःशास्त्र के 1500 वर्षों से भी अधिक प्राचीन इतिहास और उसके प्रमुख ग्रंथों का गंभीर अध्ययन करके यह ग्रंथ लिखा गया है। लेखक की मान्यता में पद्य की परिभाषा है—'लयबद्ध अक्षर-रचना'। इसी के त्रिविध रूप है—'वृत्त', 'जाति' तथा 'छंद'। पद्य के 'पद्मावर्तनी', 'अग्न्यावर्तनी', मृंगावर्तनी' और 'हरावर्तनी' इन चार भेदों की इसमें कल्पना की गई है। 'वृत्त' प्रकरण में इनका वर्गीकरण प्राचीन पद्धति—अक्षर-संख्यानुसारी के अनुसार नहीं है वरन् अभिनव पद्धति से किया गया है। वृत्तों के नामकरण मे प्रचलित असंगतियों और भ्रमों का निवारण किया गया है। प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का गंभीर मंथन करके प्रायः सभी वृत्तों के उदाहरण खोज निकाले गए हैं। जतिविषयक तथा छंदोविषयक प्रकरण भी लेखक के गंभीर अनुसंधान और मौलिक चिंतन के परिचायक हैं। इनका निष्कर्ष है कि कोई भी पद्य-रचना लयमुक्त नहीं हो सकती, लय-मुक्त पद्य-रचना वास्तव में गद्य को विकृत करने की चेष्टा सिद्ध होती है।

छंदोलय *(गु० कृ०)*

उमाशंकर जोशी (दे०) तथा सुंदरम् (दे०) की पीढ़ी के बाद जो नई कवि-प्रतिभाएँ उभरी हैं उनमें निरंजन भगत (दे०) तथा राजेंद्र शाह (दे०) का नाम सर्वोपरि है। 'छंदोलय' निरंजन की कविताओं का प्रतिनिधि संग्रह है। निरंजन में जो नैसर्गिक कवि-प्रतिभा है, 'छंदोलय' में उसकी सक्षम अभिव्यक्ति हुई है। इसके अनेक गीतों और छंदोबद्ध कविताओं में कवि की विरह-वेदना की तीव्र अनुभूति उपयुक्त भावप्रतीकों द्वारा काव्यात्मक ढंग से हुई है। इसके निरूपण के लिए कवि ने प्राकृतिक परिवेश को पसंद किया है। उसके भाव-निरूपण में कोमलता है। कवि की छंद तथा लय-संबंधी सूझ असाधारण है। नाद-सौंदर्य, माधुर्य, चित्रात्मकता तथा भाव-समृद्धि इसकी रचनाओं की विशेषता है।

समग्रतया इस संग्रह की कविताओं में व्यापकता है। भावों की गहनता तथा निरूपण की नवीनता सहृदय भावक को असाधारण रूप से स्पर्श कर रचयिता को साहित्य के इतिहास में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है।

छज्जू, भाई *(पं० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती]

लाहौर-निवासी एक भक्त जो भाटिया जाति के स्वर्णकार थे। ये जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन-काल में विद्यमान थे। इनका देहावसान 1638 ई० में हुआ। जहाँ इनकी दुकान थी वहाँ बाद मे महाराजा रणजीतसिंह ने एक भव्य मंदिर स्मारक के रूप में बनवा दिया था। उसके निकट ही संगमरमर की बनी 'भगत छज्जू' की समाधि है। यह स्थान भक्तों और सत्संग-प्रेमियों में 'छज्जू का चौबारा' नाम से विख्यात है जिसके संबंध में यह उक्ति प्रसिद्ध है—'जो सुख छज्जू दे चौबारे, सो न बलख न बुखारे।'

छड़ा *(बँ० प्र०)*

'छड़ा' लोक-परंपरागत तुकबंदी है। यह अधिकतर गेय न होकर अंत्यानुप्रासयुक्त होती है—इसीलिए एक विशेष लहजे में इसकी आवृत्ति होती है। लोक-साहित्य के अंतर्गत पांचाली (दे०), 'कविगान' (दे०) तथा 'तर्जा' (दे०) में छड़ा-शैली में वक्तव्य या उत्तर-प्रत्युत्तर की परंपरा बंगाल में विशेष दिखाई पड़ती है। कवि-लड़ाई में

इसका उपयोग शुरु हो जाने पर छडा का लक्ष्य मनोरजन के साथ-साथ बुद्धिचातुर्य का प्रदर्शन भी माना जाने लगा। इस प्रकार की छडा-रचना मे ग्राम्यता-दोष दिखाई पडता है।

बच्चो का मन बहलाने के लिए भी बँगला मे प्राचीन काल से छडा-रचना की प्रवृत्ति रही है। शिशु-साहित्य मे सहज-अकृत्रिम हृदयानुभूति की अनाडबर अभिव्यक्ति होने के कारण बँगला-छडा की अद्भुत अनुभूति अत्यत हृदयग्राही है। बँगला मे रवीद्रनाथ (दे०), सुकुमार राय (दे०), अन्नदाशकर राय (दे०) जैसे महान् व्यक्तियो ने साहित्यिक छडा की रचना की है जिसमे भाषा, छद की शुद्धता के साथ-साथ ग्राम्यता दोष भी नही है, यद्यपि मूलभूत दृष्टिकोण इन छडाओ का बच्चो का मनोरजन करना ही है। छडा के सबध मे रवीद्रनाथ ने कहा है कि हमारे अलकार-शास्त्र मे नौ रस है, किंतु बच्चो के मन बहलाने वाला छडा का रस इसके अतर्गत नही है। छडा मे एक आदि सुकुमारता विद्यमान है। उस माधुर्य को बाल्यरस कहा जा सकता है। वह तीव्र नही, प्रगाढ नही, वह अत्यत स्निग्ध, सरस एव युक्तिसगतिहीन होता है।

छप्पय *(हिं० पारि०)*

छप्पय छह चरणो का छद है। इसके पहले चार चरणो मे रोला (दे०) छद और अतिम दो चरणो मे उल्लाला छद रहता है। 'रोला छद के प्रत्येक चरण मे ग्यारह और तेरह के विराम से चौबीस मात्राएँ होती हैं, और उल्लाला छद के पहले और तीसरे चरणों मे पद्रह मात्राएँ तथा दूसरे और चौथे चरणो मे तेरह मात्राएँ होती हैं। उदाहरण .

नीलाबर परिधान, हरित पट पर सुदर है,
सूर्य-चद्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम प्रवाह, फूल तारे मडन है,
बदी जन खग वृ द शेष फन सिंहासन है॥ (रोला)
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥
(उल्लाला)

छप्पय छत *(पं० पारि०)*

यह एक मिश्रित छद है। इसके छह चरण होते हैं। पहले चार चरणो मे 11, 13 के विभाग से 24-24 मात्राएँ होती हैं और अतिम दो चरणो मे दोहे के समान 13, 11 की यति पर 24-24 मात्राएँ होती है। कई बार अतिम चरण 30 या 26 मात्राओं के भी होते हैं। तब इनमे 15-15 या 13-13 पर यति होती है। उदाहरण

रही वासते घत्त, समे न इक न मन्नी।
फड फड रही धरीक, समे खिसकाई कन्नी।
किवें ना सकी रोक, अटकजो पाई भन्नी।
त्रिखे आपणे वेग मिआ टप बन्ने-बन्नी।
हो अजे सभाल इस समे नू, कर सफल उडेंदा
जावदा।
इह ठहि रल जाव ना जाणदा लधागिआ ना मुडके
आवदा।

छबि *(अ० पारि०)*

पयार के पश्चात् छबि असमीया का प्राचीनतम छद है। इसमे 8, 8, 10 वर्णों पर यति होती है और दो चरण होते हैं। उदाहरण

सालकाड रामायण, पदबधे निबधिलो
लबा परिहरि सारोधृत।
महामाणिकर बोले, काव्य रस किछो दिलो
दुग्धक मथिले जेन घृत।

छ माण आठ गुठ *(उ० कृ०)*

उत्कल-साहित्य' मासिक पत्रिका मे 1898 ई० मे छद्म नाम से प्रकाशित। 1901 ई० मे पुस्तक रूप मे प्रकाशित।

उडिया-उपन्यास साहित्य के पिता फकीर मोहन सेनापति (दे०) का 'छ माण आठ गुठ' उपन्यास श्रेणी-सघर्ष की सूचना देता है। एक ओर सर्वहारा वर्ग, दूसरी ओर पूँजीपति वर्ग, तथा एक ओर परपरा-युक्त प्राचीन सभ्यता, दूसरी ओर प्रगतिशील आधुनिक सभ्यता—इनकी खीचतान मे उपन्यास मे उत्कठा की सृष्टि होती है। उपन्यास का नायक रामचद्र मगराज (दे०) भूमिलोभी अत्याचारी प्रजापीडक जमीदार है। भागिआ एव सारिआ जैसे दो निरीह प्राणी मगराज के लोभ के किस प्रकार शिकार बनते है एव उनकी अत्यल्प भूमि कैसे जमीदार की विराट भूसपत्ति का अग बन जाती है, यही इसमे चित्रित है।

जमीन पल्ली-समाज के जीवन सरक्षण का एकमात्र अवलब है। धनी-वर्ग द्वारा इसका अपहरण जीवन

मृत्यु है। उन्नीसवीं शती के प्रथम चालीस वर्षों में जातीय जीवन की गंभीर समस्या के रूप में यह समस्या प्रकट हुई थी। उसी की पृष्ठभूमि पर यह उपन्यास खड़ा है। उड़िया आभिजात्य श्रेणी पर मरहट्ठों ने कुठाराघात किया था। मरहट्ठों के बाद उड़िया सामाजिक जीवन को और भी क्षत-विक्षत करने के लिए जिस बंगीय नवागत ज़मींदार वर्ग का जन्म हुआ, उन्होंने भी उड़िया गण-जीवन को चूस-चूस कर राख के ढेर में बदल दिया। बंगीय ज़मींदारों के प्रभाव में आकर मंगराज जैसे लोलुप ज़मींदारों की गोष्ठी भी दिखाई पड़ी। यह उपन्यास मंगराजी-संप्रदाय के विरुद्ध एक सुदृढ़ क्रांति का संकेत करता है।

सारिआ, भागिआ जैसे सरल चरित्र शोषित जनता के प्रतीक हैं। जीवन के लिए उन्हें मिट्टी से लड़ना पड़ता है, दूसरों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है और अंत में बनना पड़ता है धनिक वर्ग के लोभ का शिकार। मंगराजी सभ्यता की छद्म सहानुभूति परायी विवशता के प्रति सहानुभूति नहीं, वरन् पराया धन लूटने की विचित्र चालबाज़ी है।

सरल ग्रामीण जनता का शहरी सभ्यता से कोई संबंध नहीं है। जब सर्वहारा बनकर वे पुलिस या क़ानून का आश्रय लेते हैं, तब विलासमय, आलस्यपूर्ण शहरी जीवन के व्यापक एवं तीव्र शोषण-चक्र में वे पिसते जाते हैं, उनकी आवाज़ न तो 'स्वामियों' के पास पहुँचती है और न स्वामियों की सुनने की ऐसी कोई इच्छा ही है। यह 'छमाण आठ गुंठ' का सशक्त आत्म-दर्शन है।

इस उपन्यास का शिल्प-सौध कला-गर्भित सृष्टि-सौंदर्य से विभूषित है। संतानहीना जननी के वात्सल्य-बुभुक्षित हृदय को केंद्रित कर चंपा के द्वारा मंगराज अपनी शठता का जाल बिछा देता है। विषयवस्तु का समस्त वैचित्र्य इस धूर्तता पर आधारित है। कथा की सुशृंखलित योजना मिलती है। अवांतर एवं प्रासंगिक कथाएँ मूल कल्पना-विकास के अविच्छिन्न अंग हैं।

सेनापति भाषा-संस्कारक हैं। निरक्षर जनता की भाषा ले सेनापति जी ने अपने साहित्य में जिस महत्वपूर्ण कार्य का संपादन किया है, वह सदा एक साहित्यिक विस्मय के रूप में विवेचित होगा। नूतन-पुरातन, भव्य-ग्राम्य, साधु-असाधु के समन्वय से उन्होंने सृष्टि की एक ऐसी भाषा का निर्माण किया जो जाति की चिरकालिक प्रकृत भाषा बन गई, तथा जिसमें जातीय प्राण-रस स्पंदित एवं विकसित है। सेनापति-साहित्य उड़िया जीवन-स्पंदन का मूक प्रतीक है—शोषण-उत्पीड़न का मौन साक्षी है। वे सच्चे अर्थों में उड़िया-साहित्य के सर्वप्रथम 'प्रोलिटेरियाट' लेखक थे।

नैतिक आदर्श, विषयवस्तु का विस्तृत चित्रण, वर्णनों की प्रचुरता, उपन्यासकार की व्याख्या आदि के कारण कहीं-कहीं उपन्यास बोझिल हो गया है किंतु घटनाओं की साज-सज्जा हास्यरंजित व्यंग्य-व्यंजना, भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति, शैली की मार्मिकता औपन्यासिक कला की चरम सीमा का स्पर्श कर सकी है।

छलना *(हिं० पा०)*

यह जयशंकर प्रसाद (दे०) के नाटक 'अजातशत्रु' (दे०) में अजातशत्रु (दे०) की माँ तथा मगध की राजरानी है। अपने को बवंडर घोषित करने वाली; प्रतिहिंसा, प्रमाद और महत्वाकांक्षा से परिपूर्ण यह कुटिल तथा क्रूर नारी मगध परिवार की अशांति का मूल कारण है। स्त्री-हृदय की सहज कोमल भावनाओं—यथा कोमलता, दया, आदि की उपेक्षा करती हुई यह पुरुषार्थ का ढोंग करती है और परिणामतः पति-विद्रोहिणी होकर अपने पुत्र को भी खो बैठती है तथा अनिष्ट का वरण करती है। इस घोर असफलता के बाद छलना की आँखें खुलती हैं और यह वासवी की कृपा से सद्बुद्धि प्राप्त कर अंततः अपने खोए हुए मातृत्व तथा पत्नीत्व को पुनः प्राप्त करने में सफल हो जाती है। समग्रतः छलना प्रसाद की जीवंत चरित्र-सृष्टि है।

छायावाद *(हिं० प्र०)*

1918 ई० से 1938 ई० तक का कालखंड हिंदी-साहित्य के इतिहास में छायावाद-युग के नाम से अभिहित किया जाता है। छायावाद नाम संभवतः उपहास करने के लिए रखा गया था परंतु तत्संबंधी काव्य की सफलता और छायावादी कवियों एवं आलोचकों के गंभीर चिंतन से उसमें अर्थगौरव का समावेश हो गया है। छायावाद का अभिप्राय उस काव्य-प्रवृत्ति से है जो द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध उत्पन्न हुई थी और वैयक्तिकता, अंतर्मुखता, परिष्कृत सौंदर्य-चेतना, कलात्मक अभिव्यंजना आदि जिसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। डा० नगेन्द्र (दे०) के शब्दों में स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का मूल आधार है। पंत (दे०), प्रसाद (दे०), निराला (दे०) और महादेवी (दे०) प्रसिद्ध छायावादी कवि हैं। 'पल्लव'

(दे०), 'गुजन', 'लहर' (दे०), 'कामायनी' (दे०), 'परिमल', 'तुलसीदास' (दे०), 'यामा' आदि छायावाद की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

छायावादी काव्य के प्रमुख आलबन प्रकृति, नारी, परोक्ष सत्ता और राष्ट्र है। प्रकृति-चित्रण की दृष्टि स छायावादी काव्य सस्कृत के प्राचीन और अँग्रेज़ी के स्वच्छदतावादी काव्य के समकक्ष है। इस काव्य की प्रकृति जड न होकर चेतन है और मात्र उद्दीपन न होकर रागात्मक वृति की आलबन है। इस काव्य मे नारी-सौंदर्य के ऐसे निर्मल चित्र मिलते हैं जिनमे रीतिकालीन मासलता की गध भी नही है। अज्ञात प्रियतम को लक्ष्य कर किया गया प्रणय निवेदन भारतीय दर्शन की अद्वैतवादी अनुभूतियो से प्रभावित है। राष्ट्रीय कविताओ मे प्राय देश के प्राकृतिक सौंदर्य और अतीत के सास्कृतिक गौरव के कोमल-उदात्त चित्र अकित किए गए हैं।

इस काव्य की कलात्मक समृद्धि का सस्तवन प्राय सभी प्रतिष्ठित आलोचको ने मुक्तकठ से किया है। इसमे आधुनिक काल के सर्वोत्तम प्रगीत उपलब्ध होते है। प्रगीतो की पदावली वक्र, चित्रमय, लाक्षणिक और कोमल-कात है। मानवीकरण (दे०), विशेषण विपर्यय (दे०) आदि पाश्चात्य और समासोक्ति, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि भारतीय अलकारो का प्रचुर प्रयोग उसमे हुआ है। छद-विधान मे पत और निराला ने अनेक प्रयोग किए हैं। निष्कर्षत छायावाद-युग हिंदी काव्य की चरम समृद्धि और परिष्कृति का युग है।

छे घर (प० कृ०)

यह सतसिह सेखो (दे०) का प्रथम एकाकी-सग्रह है और अपनी रचना-प्रौढता के कारण महत्वपूर्ण है। इसमे लेखक का दृष्टिकोण मार्क्सवादी है तथा पजाब के ग्रामीण एव नागरिक जीवन की कुछ महत्वपूर्ण समस्याओ पर लेखक ने दृष्टि केंद्रित की है। 'महात्मा' एकाकी मे गुरु नानक के जीवन से सबधित उस कथा का आश्रय लिया गया है जिसमे उन्होने धनी मलिक भागो के मालपूओ मे से रक्त निचोड कर उन्हे खाने से इनकार कर दिया था और एक मजदूर की सूखी रोटी से दूध निचोड कर दिखाते हुए उसे ग्रहण किया था। 'पाँच ग्रामीण' पजाब के घरेलू जीवन की निरीह अवस्था को बडी सहानुभूति से अभिव्यक्त करते हैं। उद्योगपति अनैतिक साधनो के द्वारा किस प्रकार मजदूर-एकता को नष्ट करते हैं—यह 'हड़ताल' नामक अन्य एकाकी मे प्रदर्शित किया गया है। 'भावी' एकाकी मे 'दैव-प्रबलता'-सबधी मध्ययुगीन अवधारणा को राजपूत घरानो के यथार्थ जीवन मे रूपायित होते दिखाया गया है। इनके अतिरिक्त 'पुत्र', 'बाबा बोहल' जैसे एकाकी भी इसी सग्रह मे हैं।

छेदसूत्र (प्रा० कृ०)

जैन आगमो (दे०) मे गिने जाने वाले इन ग्रथो की सख्या छह तो निश्चित है किंतु इनका क्रम और अतर्भूत ग्रथो के विषय मे कुछ मतभेद है। इनमे कुछ ग्रथ अत्यत प्राचीन हैं और कुछ बाद मे जोडे गए हैं। बौद्धो के 'विनय-पिटक' (दे०) के समान इनमे जैनो का समस्त आचार-शास्त्र सकलित है और स्थान-स्थान पर पौराणिक कथाएँ भी सन्निविष्ट कर ली गई हैं। (1) पहला छेदसूत्र 'निसीह' (निशीथ) है। जिस प्रकार निशीथ (अर्धरात्रि) मे सब कुछ अधकारमय होता है उसी प्रकार गोपनीय तत्वो का इसमे सकलन किया गया है। यह ग्रथ 20 उद्देशको मे विभक्त है और इसमे निषिद्ध कर्मो का प्रकथन किया गया है। (2) 'महानिसीह'—यह ग्रथ 'निसीह' जैसा विशाल तथा महत्वपूर्ण नही है। सभवत मूलग्रथ लुप्त हो गया है। कुछ लोग इसे छठा छेदसूत्र मानते हैं। (3) ववहार (व्यवहार), (4) आयार दसाओ—जिसे दशश्रुत स्कध या केवल दसा भी कहा जाता है, और (5) कप्प (कल्प या बृहत्-कल्प) ये तीन ग्रथ अत्यत महत्वपूर्ण है और 'दशाकप्प-ववहार' इस एक नाम से ही जाने जाते हैं। 'आयार दसाओ' के 10 अध्याय भद्रबाहु (दे०) लिखित माने जाते हैं और उसका आठवाँ अध्याय 'कल्पसूत्र' तो निश्चित रूप से भद्रबाहु-लिखित माना जाता है। इस कल्पसूत्र के तीन खड है—प्रथम खड मे महावीर स्वामी का जीवन वृत है, द्वितीय मे गणो, शाखाओ और गणधरो का प्रकथन किया गया है। कल्पसूत्र का तीसरा भाग 'समाचारी' नाम से प्रसिद्ध है और इसमे जैन महात्माओ द्वारा परिपालनीय नियम-विधि का विवेचन किया गया है। इसे 'पज्जोसणा-कप्प' (पर्यूषणकल्प) भी कहा जाता है। यह पूरा कल्प-सूत्र भाग ही 'पज्जोसणाकप्प' नाम से अभिहित किया जाता है, किंतु वर्षाकालीन नियम-विधि का निरूपण इसी अतिम कल्प मे है और यही व्रत के दिनो म सुनाया जाता है। कहा जाता है कि कल्पसूत्रो को देवर्द्धि ने आगमो मे स्थान दिया था। पाँचवाँ 'छेदसूत्र' 'बृहत्कल्पसूत्र' है। सन्यासियो-सन्यासिनियो की आचार-विधि का यही प्रधान कल्प है।

इसमें दंडनीय अपराधों का उल्लेख है और दंड-विधान 'वावहार' नामक तीसरे छेदसूत्र में किया गया है। (6) छठा छेदसूत्र 'पंचकप्प' अब उपलब्ध नहीं होता। इसके स्थान पर जिनभद्र का 'जीयकप्प' माना जाता है। यह व्यक्तिगत नियमातित कर्मों पर पद्यबद्ध रचना है। कुछ लोग 'पिंड-निज्जुत्ति' और 'ओहा निज्जुत्ति' को भी छठे छेदसूत्र के रूप में स्वीकार करते हैं।

छोट बहुठाकुरानी *(बँ० पा०)*

बिमल मित्र (दे०) रचित 'साहेब बिबि गोलाम' (दे०) की छोटी बहूरानी का जीवन-मथित अश्रुसंगीत पाठक की हृदयतंत्री में सहज ही समवेदना का हाहाकार प्रस्फुटित करता है। स्वामी के प्रति उसके हृदय का प्रेम-पात्र एकदम भरा है, परंतु चरम अवहेलना के कारण यह नारी केवल वेदनादग्ध ही नहीं हुई है, गहरे मनस्तत्व-सम्मत परिणति-पथ की ओर भी बढ़ गई है। अपमानिता, वंचिता इस हतभागिनी को स्वामी को अपने वश में करने के लिए गणिकावृत्ति के अनुकरण के बीच से गुजरते हुए मद्यपायिनी बनना पड़ा है। इस आत्महनन के द्वारा भी उसको स्वामी-प्राप्ति नहीं हुई वरन् गहरी निराशा और उद्‌भ्रांति ने उसके मन को रिक्तता की अंतिम सीमा तक खींच डाला है। वंचिता रमणी के अस्तोन्मुख प्रेम की दीप्ति ने भूत-नाथ को सचकित एवं अभिभूत किया है एवं उसी के आश्रय में छोटी बहूरानी का मनोविहंग जब परम निर्भरशील आश्रय मिलने की खुशी में खुश होने वाला है तब सारा वातावरण रक्त-रंजित हो उठता है—छोटी बहूरानी हमेशा के लिए खो जाती है। कलकत्ते के तत्कालीन सामाजिक जीवन की पटभूमिका पर चिरकाल की वंचिता नारी का चित्र अत्यंत वेदनामय है।

छोटराय, गोपाळ *(उ० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

जगतसिंहपुर, कटक, इनका जन्म-स्थान है। कटक से इन्होंने मैट्रिक किया था। संप्रति एकांकी निर्देशक के रूप में आकाशवाणी, कटक में कार्य कर रहे हैं। अभी तक इनके 15 नाटक प्रकाशित हो चुके हैं।

गोपाळ छोटराय संवेदनशील एवं सजग नाटक-कार है। इनके मौलिक एवं रूपांतरित नाटक सार्थक शिल्प-गौरव से मंडित हैं। कथासंभार, चरित्र-चित्रण, गत्यात्मकता, आवेग की योजना, कौतूहल-सृष्टि, सशक्त संवाद, कलात्मक परिवेश, शिष्ट किंतु उच्छ्‌वसित हास्य, भाषा-सौष्ठव आदि की दृष्टि से ये नाटक बहुत सफल हैं। नाट-कीय कला के प्रति अत्यंत सचेतन होने के कारण व्यव-सायिक दृष्टि से आवश्यक चटपटे संवाद और सस्ते हास्य आदि को इन्होंने अपने नाटकों में स्थान नहीं दिया है। 'फेरिआ', 'परकलम', 'नष्ट उर्वशी', 'शांखा सिंदूर' 'भरसा' (दे०) आदि मौलिक नाटक हैं, और 'झंझा', 'अमडाबाट', 'मलाजन्ह', 'प्रतिभा' उपन्यासों के रूपांतर हैं। छोटराय ने कई एकांकियों की रचना भी की है। प्रथम एकांकी 'सहधर्मिणी' ने ही उन्हें सफल एकांकीकार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। रेडियो-रूपक लिखने वालों में भी छोटराय प्रमुख हैं।

जंगनामा-काव्य *(पं० प्र०)*

यह काव्य हिंदी के 'वीरगाथा-काल' की भाँति युद्ध-काव्य का ही एक रूप है। 'जंगनामा' फ़ारसी का शब्द है जिसका अर्थ है 'युद्ध-वृत्तांत'। पंजाबी-साहित्य में इस शब्द का प्रचलन उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में दिखाई देता है जब शाह मुहम्मद ने सिखों और अँग्रेजों के प्रथम ऐतिहासिक युद्ध का वृत्तांत पद्यबद्ध किया। इससे पूर्व पंजाबी में युद्ध-काव्यों के लिए अधिकांशतः 'वार' (दे०) शब्द का प्रयोग मिलता है। पंजाबी-साहित्य के इतिहासों में कई कृतियाँ 'वार' और 'जंगनामा' दोनों के अंतर्गत उल्लिखित हैं किंतु 'वार-काव्य' (दे०) का क्षेत्र 'जंगनामा-काव्य' की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है। उसमें युद्ध-शौर्य के अतिरिक्त दान-दया, धर्म-वीरता और यश-वर्णन भी हो सकता है जबकि 'जंगनामा-काव्य' केवल युद्ध-कथा-वर्णन तक ही सीमित रहता है।

पंजाबी में 'जंगनामा-काव्य' लिखने की परंपरा प्रमुख रूप से सिखों और अँग्रेजों की पहली लड़ाई के पश्चात् ही शुरू हुई। इस युद्ध-वृत्तांत को अनेक कवियों ने जंगनामे के रूप में पद्यबद्ध किया है। बाद में सिखों और अँग्रेजों के दूसरे युद्ध तथा 1857 ई० के स्वतंत्रता-संग्राम को प्रतिपाद्य बना कर भी कई जंगनामे लिखे गए। इन जंगनामों के ही अनुकरण पर पूर्ववर्ती और परवर्ती कई ऐसे वारकाव्य भी 'जंगनामा' के रूप में संकलित-संपादित हुए हैं जिनका प्रतिपाद्य कोई न कोई युद्ध है। कुछ युद्ध-वृत्तांतों को विजय-गाथा के रूप में चित्रित करते हुए 'फतह-नामा' के नाम से भी प्रस्तुत किया गया है। इस वर्ग की कुछ उल्लेखनीय कृतियाँ इस प्रकार हैं—'जंगनामा भंगाणी'

(वार गुरु गोविंदसिंह), 'जगनामा श्री गुरु गोविंदसिंह' (अणीराय), 'जगनामा सिंघा ते फिरगिया दा' (दे०) (शाह मुहम्मद और भटक), 'फतहनामा गुरु खालसा जी का' (गणेश), 'जगनामा लाहौर' (कान्हसिंह बग्गा), 'जग-नामा दिल्ली' (खजानसिंह) आदि ।

जगनामा सिंघा ते फिरगिया दा *(प० कृ०)*

शाह मुहम्मद (दे०) कृत यह युद्ध काव्य पजाबी-साहित्य मे 'किस्सा शाह मुहम्मद' के नाम से भी विख्यात है। इसमे 1845 46 ई० मे सिखो और अँग्रेजो के मध्य सतलुज तट पर लडे गए ऐतिहासिक युद्ध का रोमाचकारी वर्णन है। 1839 ई० मे महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु के पश्चात लाहौर के खालसा-दरबार को हथियाने के लिए विभिन्न राजवशियो, सरदारो और राज्याधिकारियो ने एक-दूसरे के विरुद्ध षडयत्र रचे जिससे कपनी अधिकारियो को पजाब मे अपने पैर जमाने का अवसर मिल गया। कलह-ग्रस्त खालसा राज्य को हस्तगत करने के लिए अँग्रेजो ने लुधियाना और फिरोजपुर मे सेना एकत्र करके लाहौर की ओर बढने का सकल्प किया जिसका सिखो ने डटकर विरोध किया। किंतु वे विफल रहे। पजाब का पतन हुआ और लाहौर दुर्ग पर अँग्रेजी झडा फहराने लगा। कवि शाह मुहम्मद इन सभी परिस्थितियो और घटनाओ के प्रत्यक्ष-दर्शी थे। पजाब के पतन से विक्षुब्ध उनके अतरतम की वेदना ही प्रस्तुत रचना मे व्यक्त हुई है।

शाह मुहम्मद कृत यह जगनामा इतिवृत्त प्रधान है जिसमे घटना प्रवाह त्वरित गति से आगे बढता है। बीच-बीच मे अपने समय की सामाजिक अवस्था, पजाबियो की पारस्परिक फूट, युद्धजन्य विनाश एव विदेशी शासन की विवशता का चित्रण भी कवि की लेखनी अनायास ही करती गई है। चारित्रिक वर्णन मे कवि ने यथाशक्ति तटस्थ भाव ग्रहण किया है। उसकी भाषा सरल और ठेठ पजाबी है तथा उसमे ओजगुण की अपेक्षा प्रसादत्व की प्रधानता है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो के स्वाभाविक समा-वेश से इस रचना का शिल्प निखर आया है। प्रचलित शब्दावली का प्रयोग कवि ने निस्सकोच किया है। ऐति-हासिक साक्ष्य की दृष्टि से भी यह रचना महत्वपूर्ण है।

जगम (बॅं० कृ०) [रचना-काल—1953 ई०]

तीन खडो मे सपूर्ण वनफूल (दे०) का यह उपन्यास लेखक की उपन्यास-सृष्टि का सार्थकतम निदर्शन है। इसमे आधुनिक अस्थिरचित्त, बहुधा विभक्त समाज का एक पूर्णाग चित्र उपस्थित करने का सफल प्रयास किया गया है। राजनीति, साहित्य, गाँव, वेश्यालय, जमीदार का महल, शहर आदि विभिन्न परिवेशो एव उनके साथ सयुक्त विभिन्न मनुष्यो एव घटनाओ के विस्तार मे मानव-जीवन का एक विशाल महाकाव्य रचा गया है। इस विस्तार मे कही कोई स्पष्ट मतवाद प्रकट नही हुआ है। लक्ष्यहीन, आश्रयहीन, नीति या अनीति से परे आदर्शहीन अस्थिर आधुनिक जीवन को प्रकट करना ही लेखक का उद्देश्य रहा है। आधुनिक जीवन की यह अस्थिरता अशाति नायक शकर के मस्तिष्क मे प्रतिबिंबित है। विचित्र चरित्रो एव घटना सकुलता के अकन के द्वारा एक अस्पष्ट अनिर्देश्य भावावेग की सृष्टि हुई है जिसके केंद्र मे शकर का चरित्र अवदमित यौन-कामना साहित्यिक प्रतिभा चारित्रिक स्वा-तत्र्य एव जन कल्याण की प्रेरणा को लेकर उपस्थित हुआ है।

चरित्रो की सृष्टि मे लेखक ने विस्मयजनक शक्ति का परिचय दिया है। प्रत्येक चरित्र अपनी स्वल्प परिधि मे सजीव है। लगता है जीवन के इस विशाल रग-मच पर कितने नट-नटी मात्र जीवन प्रेरणा के उच्छवास स असपूर्ण नाटको के दृश्यो का अभिनय कर रहे है। इन विभिन्न दृश्यो मे कोई एकसूत्रता नही, कोई सुनिर्दिष्ट लक्ष्य नही, परतु इनका आकर्षण तीव्र है। इतने जटिल घटना पुज एव विराट कमचाचल्य की अभिव्यक्ति म लेखक की कल्पना कुशलता का बहुत ही सुदर परिचय मिलता है।

जगम कथा *(त० प्र०)*

इस गेय रूप मे कथाकथन की एक विशेष प्रक्रिया है। इसमे गद्य एव पद्य दोनो का सम्मिश्रण होता है किंतु इसके पद्यभाग म मुख्य रूप स 'रगड' नामक तेलुगु छद का प्रयोग किया जाता है। उन्नीसवी शती स पहले इसके अस्तित्व के प्रमाण नही मिलत। इसमे प्राय किसी एक पौराणिक कथा का गायन किया जाता है।

जत्रारूढ *(उ० कृ०)*

'जत्रारूढ' उपन्यास आधुनिक उडिया-उपन्यास साहित्य को चद्रशेखर रथ (दे०) की एक महत्वपूर्ण दन है। आधुनिक जटिल मानव निरपक्ष यात्रिक सभ्यता तथा सरल

मानव-केंद्रित पारंपरिक जीवन-दर्शन में मूलभूत रूप से जीवन-मूल्यों का जो पार्थक्य है, लेखक ने,उस पर प्रकाश डाला है। तकनीकी सभ्यता के प्रसार के साथ मानव-केंद्रित जीवन-चेतना बड़ी द्रुत गति से मिटती जा रही है और इसका व्यापक प्रभाव जीवन पर दिखाई पड़ रहा है। मानव की शिशु-सरल आँखें चौंधिया गई हैं, उसकी भोली आत्मा शून्यता से भर उठी है।

स्वतंत्रता के बाद सारी पूर्व आशाओं पर तुषार-पात होना, गणतंत्र के नाम पर मुट्ठी भर लोगों द्वारा निरीह जनता के शोषण आदि का संकेत भी मिलता है। सनातनदादा के जीवन के माध्यम से मानो उपन्यासकार सनातन जीवन-चेतना, सनातन जीवन-मूल्य को समझ लेना चाहता है। भाषा-शैली के उड़ियापन ने इस उपन्यास को निखार दिया है एवं ग्रामीण जीवन को सजीव व प्राणस्पर्शी बना दिया है।

जंबूसामि चरिउ *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1019 ई०]

'जंबूसामि चरिउ' वीर (दे०) कवि द्वारा रचित महत्वपूर्ण अपभ्रंश प्रबंध-काव्य है। इसमें जैन संप्रदाय के अंतिम केवली जंबू स्वामी के जीवन-चरित्र का ग्यारह संधियों में वर्णन किया गया है। इसकी रचना एक वर्ष में हुई थी।

इस कृति में जंबू स्वामी के पूर्वभवों तथा उनके विवाहों और युद्धों के वर्णन हैं। जंबू स्वामी महर्षि सुधर्मा से अपने पूर्वजन्मों का वृत्तांत सुनकर विरक्त हो घर छोड़ना चाहते हैं। उनकी माता उन्हें समझाती हैं; उनकी पत्नियाँ वैराग्य-विरोधी कथाएँ सुनाती हैं। वे उनसे प्रभावित नहीं होते। अंत में वे सुधर्मा स्वामी से दीक्षा लेते हैं और उनकी सभी पत्नियाँ आर्यिका हो जाती हैं। उनकी संगति से विद्युच्चर जैसा चोर भी सद्गति प्राप्त करता है। अंत में जंबू स्वामी केवल-ज्ञान प्राप्त कर निर्वाण-पद प्राप्त करते हैं।

प्रस्तुत काव्य का कथानक सुगठित है। इसकी अंतर्कथाएँ मुख्य कथावस्तु के विकास में सहायक हैं। नायक के चरित्र के विविध पक्षों का उद्घाटन करती हुई कथावस्तु को एक निश्चित उद्देश्य अर्थात् नायक को फल-प्राप्ति की ओर ले जाती है। कवि ने इस कृति में प्रबंध-काव्योचित सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निंदा, संध्या, प्रभात, मध्याह्न, रात्रि, चंद्र, सूर्य, वन, पर्वत, नदी, सरोवर एवं ऋतु आदि का स्वाभाविक, सजीव एवं मार्मिक चित्रण किया है। प्रकृति के विभिन्न अंगों का नाना रूपों में विस्तार से चित्रण है। प्रकृति का कहीं उपदेशिका, कहीं आलंबन, कहीं उद्दीपन, कहीं अलंकार-विधान आदि रूपों में अत्यंत मनोहारी चित्रण उपलब्ध होता है।

कवि ने इस काव्य में सभी रसों की व्यंजना की है। इनमें शृंगार, वीर और शांत—ये तीन रस प्रधान हैं। यद्यपि कृतिकार ने अपनी कृति को 'शृंगार-वीर महाकाव्य' कहा है तथापि इन दोनों रसों का पर्यवसान शांत रस में होता है।

कवि ने अपने भावों को स्पष्ट करने के लिए नाना अलंकारों की योजना की है किंतु कहीं-कहीं श्लेष के प्रयोग से भाषा कुछ क्लिष्ट और अस्वाभाविक हो गई है। वैसे भाषा का भावानुकूल प्रयोग किया गया है। इसमें सुभाषितों और लोकोक्तियों का भी प्रचुर प्रयोग मिलता है। सामान्यतः इस कृति की भाषा वही नागर अपभ्रंश है जिसमें स्वयंभू (दे०), पुष्पदंत (दे०) प्रभृति कवियों ने रचना की है।

इस कृति में कृतिकार ने मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है किंतु अधिकता मात्रिक छंदों की है।

ज़काउल्ला *(उर्दू० ले०)*

इनका जन्म 1832 ई० में दिल्ली में हुआ था। इनके पिता का नाम सनाउल्ला था। इन्होंने दिल्ली कॉलेज से शिक्षा प्राप्त की थी। यहाँ इन्हें नज़ीर अहमद (दे०)तथा मुहम्मद हुसैन आज़ाद (दे०) का संसर्ग प्राप्त हुआ था। शिक्षा पूर्ण कर लेने के पश्चात् ये इसी कालेज में प्राध्यापक हो गए थे। बाद में आगरा कालेज और तत्पश्चात् म्योर सेंट्रल कालेज, इलाहाबाद में अरबी-फ़ारसी के प्राध्यापक रहे। ये आजीवन पुस्तकें लिखने तथा संपादन करने का कार्य करते रहे। ज़काउल्ला ने जितनी तरह की रचनाएँ की उतनी तरह की उर्दू के किसी एक गद्यकार ने नहीं लिखीं। गणित, भौतिक-शास्त्र, भूगोल, नीतिशास्त्र, ज्योतिष, राजनीति, खनिज-विज्ञान आदि सब पर उनकी प्रतिभा ने अपना ज़ोर दिखाया है।

'सैरुल मुसन्नफ़ीन' में इनकी लिखी 143 पुस्तकें कही गई हैं। इनमें अधिकतर अनुवाद हैं। 'तारीख़-ए-हिंदोस्तान' (दे०) इनकी अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है। ज़काउल्ला का गद्य सरस और प्रवाहमय है किंतु इतिहास लिखने में निर्भीकता से काम नहीं लिया गया। इनकी

साहित्यिक सेवा को दृष्टिगोचर रखते हुए इन्हे 'खानबहादुर' और 'शमसुल-उलेमा' की उपाधियाँ प्रदान की गई थी। 'हाली' ने जकाउल्ला पर एक फबती कसी है— जकाउल्ला का दिमाग एक बनिये की दुकान है, जिसमे हर किस्म की जिंस मौजूद है।' इससे यह ध्वनि भी निकलती है कि बनिये की दुकान मे उम्दा और सरस चीजें कम मिलती हैं। किंतु इस आलोचना मे कुछ अन्याय किया गया जान पडता है।

जक्कना *(ते० ले०)* [समय—चौदहवी शती]

इनकी प्रमुख रचना 'विक्रमार्कचरित्रमु' (दे०) है जो कुछ अशो मे ऐतिहासिक काव्य माना जा सकता है। यह कवि की एक मौलिक कृति है, जिसमे विक्रमादित्य के साहस और औदार्य-सूचक अनेक कार्यकलापो का वर्णन प्रचलित लोक-कथाओ को एकत्र करके किया गया है। विक्रमादित्य एक शक प्रवर्तक ऐतिहासिक पुरुष थे। किंतु उन पर अतिमानवीय क्रिया व्यापार को आरोपित करके कवि ने उनको पुराण-पुरुष के रूप मे चित्रित किया है।

शब्द सगठन की प्रतिभा, पुनरुक्तिहीन वर्णन तथा आलकारिक शैली इनकी कविता के प्रमुख गुण है। कविता मे प्रौढता है तथा अनेक प्रकार के वर्णनो को कवि ने अपने काव्य मे सम्मिलित किया है। किंतु कवि का मन सहज-स्वाभाविक प्रकृति वर्णन मे नही, उत्प्रेक्षादि द्वारा इनका चित्रण करने मे अधिक रमता रहा है। इनके शब्द-जाल मे तीन चौथाई सस्कृत शब्द होने से कविता म जटिलता आ गई है।

जगतविनोद *(हिं० कृ०)*

'जगतविनोद' के लेखक पद्माकर (दे०) हैं। यह एक रस निरूपक ग्रथ है, किंतु श्रृगार रस को ग्रथ का सर्वाधिक कलेवर अर्पित है, और उसमे भी नायक-नायिका भेद को। प्रसगवश षड्ऋतु वर्णन को भी स्थान मिला है। अन्य रसो की चर्चा यद्यपि अति सक्षिप्त है, फिर भी उनके उदाहरण प्रभावशाली है। श्रृगार-रस के उदाहरण तो अत्यत कमनीय एव मनोहारी है जो कि इस ग्रथ की ख्याति का मूल आधार हैं। पद्माकर के कवित्व की दो विशेषताएँ प्रसिद्ध है—शब्द-योजना और दृश्य-योजना। 'जगतविनोद' मे भी ये दोनो विशेषताएँ प्राय प्रत्येक उदाहरण मे एक साथ मिलती हैं, जो कि कवि की कल्पना-उर्वरता का परिचय देती है। इनमे नायिका का रूप चित्रण, उसकी प्रणय एव विरह भावना तथा उसके आनद एव उल्लास मय क्षणो का सजीव तथा सरस चित्रण है।

जगत्याणी, लालचद अमरदिनोमल *(सिं० ले०)* [जन्म—1885 ई०, मृत्यु—1954 ई०]

लालचद सिंधी के प्रमुख गद्यकारो मे से है। इन्होने अध्यापन कार्य के साथ साथ समाज-सुधार, देश सेवा और साहित्य-सृजन के क्षेत्र मे सक्रिय भाग लिया है। देश विभाजन के पश्चात् ये बबई मे आकर स्थायी रूप से रहने लगे थे। इनको अपनी जन्मभूमि सिंध से इतना प्रेम था कि मरते समय यह कह कह गए थे कि मेरी अस्थियाँ सिंधु नदी मे विसर्जित की जाएँ, क्योकि सिंधु नदी मुझे गगा-जमुना से भी अधिक प्रिय है। इनके कथनानुसार बबई मे देहावसान हो जाने पर लालचद जी की अस्थियाँ हैदराबाद के समीप सिंधु नदी मे विसर्जित की गई थी।

लालचद जी का सिंधी साहित्य की प्रत्येक विधा मे योगदान रहा है। इन्होने 1914 ई० मे जेठमल परसराम के साथ 'सिंधी साहित्य सोसाइटी' नामक सस्था की स्थापना की थी जिसके तत्त्वावधान मे एक मासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी। इस पत्रिका के द्वारा इन्होने सिंधी गद्य की भाषा और शैली को सुदृढ रूप प्रदान किया था। लालचद की प्रमुख रचनाएँ है—'चोथि जो चडु' (उपन्यास), 'किशिनीअ जा कष्ट' (कहानी), 'सदा गुलाबु' (पद्यात्मक गद्य), 'फुलनि मुठि' (निबध), 'उमर मारुई' (नाटक), 'शाहाणो शाह (आलोचना), सूहारो सचल' (आलोचना)। सिंधी गद्यकारा म इनकी भाषा-शैली असाधारण है। ठेठ सिंधी शब्दा का प्रयोग, मध्यकालीन कवियो की भाषा के सुदर और प्रभावपूर्ण प्रयोगा को अपनी रचनाओ के द्वारा फिर प्रचार म लाना तथा मुहावरो और कहावतो का यथोचित प्रयोग आदि इनकी भाषा शैली की प्रमुख विशेषताएँ है।

जगदीशचद्र बसु *(बँ० ले०)* [जन्म—1858 ई० मृत्यु—1937 ई०]

जगदीशचद्र बसु वैज्ञानिक के रूप म विश्व-विख्यात हैं। उनका सपूर्ण जीवन विज्ञान के प्रति अर्पित था। इसी नाते बँगला भाषा मे विज्ञान चर्चा को सुव्यवस्थित रूप देने म उनका योगदान अविस्मरणीय है। वे

नियमित रूप से बँगला मासिक पत्रिकाओं में गवेषणापूर्ण प्रबंधादि लिखा करते थे। उनके द्वारा रचित 'अव्यक्त' बँगला साहित्य की एक उत्कृष्ट पुस्तक है। बच्चों को विज्ञान-शिक्षा देने के लिए 'मुकुल' पत्रिका के प्रकाशन में भी उन्होंने सोत्साह काम किया।

जगन्नाथदास (उ० ले०) [समय—सोलहवीं शती]

पंच-सखा (दे०) में सर्वप्रमुख, उत्कल जातीय जीवन के प्रधान उन्नायक, उड़ीसा के प्रथम भागवतकार, योगी-प्रवर, भक्त व ज्ञानी कविवर जगन्नाथदास प्रताप रुद्रदेव के परम श्रद्धापात्र थे। इनके पिता का नाम भगवान था। पुरी में चैतन्य देव ने इनसे भागवत के दशम स्कंध की पांडित्यपूर्ण व्याख्या सुनकर इन्हें 'अतिबड़ी' की उपाधि दी थी। आज भी जगन्नाथदास के संप्रदाय को 'अतिबड़ी' संप्रदाय कहा जाता है।

इनके ग्रंथों में 'भागवत' (दे० 'जगन्नाथ भागवत') सर्वश्रेष्ठ है जो 'उड़ीसा का बाइबिल' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंने भागवत का उड़िया भाषा में प्रणयन ही नहीं किया, वरन् उसे ऐसी मधुर व प्रसादगुणमयी शैली प्रदान की जिसने जातीय जीवन को विषम परिस्थिति में शताब्दियों तक एकता के सूत्र में बाँधे रखा। भागवत में जिस नवाक्षरी छंद का प्रयोग हुआ है, उसे भागवत छंद भी कहते हैं। अपने ललित छंद, प्रवाहपूर्ण शैली, सरल भाषा में अभिव्यक्त गंभीर दार्शनिक विचारों के कारण, यह ग्रंथ इतना लोकप्रिय हुआ कि प्रत्येक गाँव में एक भागवत-गृह बन गया। जो गाँव का पंचायत-घर, पुस्तकालय और मंदिर सभी कुछ होता था तथा जहाँ प्रत्येक संध्या को भागवतपाठ होता था। ग्रामीण जनता अपनी संतानों को इस उद्देश्य से शिक्षित करना चाहती थी, कि वे आगे चलकर उन्हें भागवत पढ़कर सुना सकें।

इसके अतिरिक्त 'नीलाद्रिशतकम्' (संस्कृत), 'तुलाभिणा', 'दीक्षा-संवाद', 'गजस्तुति', 'ब्रह्मांड भूगोल' आदि इनकी अन्य रचनाएँ है।

जगन्नाथदास (क० ले०) [समय—अठारहवीं शती]

इनका समय अनुमानतः 1775 ई० के लगभग ठहराया गया है। पुरंदरदास (दे०), कनकदास (दे०) आदि के पश्चात् हरिदास-परंपरा को प्रोज्ज्वल बनाने वालों में ये अन्यतम हैं। संस्कृत के ये प्रकांड पंडित थे परंतु मातृभाषा के भी वैसे ही प्रेमी थे। इनमें संप्रदायनिष्ठा एवं उदारता, अपरोक्ष ज्ञान एवं भक्ति आदि का विलक्षण संयोग पाया जाता है। इनकी रचनाएँ ये हैं—'हरिकथामृतसार', 'तंत्रसार' तथा 'कीर्तन' एवं 'तत्वसुव्वाली'। कहा जाता है कि इन्होंने प्रस्थान-त्रयी का भी कन्नड में अनुवाद किया था। किंतु ये अनुवाद उपलब्ध नहीं। 'तंत्रसार' में विष्णु-स्तुति एवं मंत्र से युक्त 27 गीत हैं। 'हरिकथामृतसार' भामिनी षट्पदी में लिखा गया 32 संधियों वाला एक विशाल ग्रंथ है जिसमें माध्वमत के तत्वों का प्रतिपादन है। यह तात्विक काव्य है। जगन्नाथदास जी के कीर्तनों में हरि-गुरुस्तुति, आध्यात्मिक अनुभूति, आदि का महत्व प्रतिपादित है। 'सुलभपूजे' नामक कीर्तन में ऐसी ही बात मिलती है जो निर्गुणिया संतों में सहज समाधि के नाम से प्रसिद्ध है। जगन्नाथदास की शैली काफ़ी ललित है। मतीय तत्त्वों का सार ग्रहण कर उसे अनुष्ठान में लाने वाले विशालहृदय उदार-चेता रसयोगियों में जगन्नाथदास जी का नाम मूर्धन्य है।

जगन्नाथन, कि० वा० (त० ले०) [जन्म—1906 ई०]

तिरुच्चि ज़िले के कृष्णरायपुरम नामक स्थान में उत्पन्न श्री जगन्नाथन तमिल साहित्य-जगत में 'अनुराम', 'कपिलन', 'जोति', 'कुम्बम' आदि उपनामों से प्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा रचित 150 कृतियों में 'कलैंजन त्यागम्', 'अरंद तंदि', 'पवल मल्लिकै' (कहानी-संग्रह), 'मेघमंडलम' (कविता-संग्रह), 'तमिल काप्पियंगळ्' (शोध-ग्रंथ), 'इलंगै काट्चिगळ्' (यात्रा-साहित्य); 'संघ नूर काट्चिगळ्' (साहित्यिक निबंध) आदि प्रमुख हैं। इनकी कहानियों में मानव-मन में उठने वाली भावनाओं का सजीव चित्रण हुआ है। कविताओं का संबंध मुख्यतः देवी-देवताओं से है। कुछ कविताओं में इनकी प्रखर कल्पना-शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। श्री जगन्नाथन का अंग्रेज़ी ज्ञान भी पर्याप्त समृद्ध है। इन्होंने अँग्रेज़ी से राजनीतिशास्त्र की एक कृति का तमिल में अनुवाद भी किया है। इनकी 'अरंद तंदि' और 'पवल मल्लिकै' को तमिलनाडु सरकार का और 'वीरर् उलगम्' को साहित्य-अकादेमी का पुरस्कार मिल चुका है। ये आजकल 'कलैमगल्' नामक मासिक पत्रिका के संपादक हैं।

जगन्नाथ, पंडितराज (सं० ले०) [स्थिति-काल—1650 ई०]

पंडितराज जगन्नाथ संस्कृत-अलंकारशास्त्र के

इतिहास के प्रसिद्ध अंतिम आचार्य हैं। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम पेरुभट्ट तथा माता का नाम लक्ष्मी था। इन्होंने सर्वविद्या विशारद पिता से ही व्याकरण, न्याय, मीमासा एव वेदातादि शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन किया था। ये सभी शास्त्रों के प्रगाढ पडित थे। दर्शन एव साहित्य पर इनका अधिकार अद्भुत है। य तत्कालीन सम्राट् शाहजहाँ के दरबार मे बहुत दिनो तक रहे। सभवत वहीं इन्हे पडितराज की उपाधि से विभूषित किया गया। अप्पय दीक्षित (दे०) के समकालीन होने से भी इनका समय सत्तरहवी शती का मध्य निश्चित होता है।

पडितराज अनेक ग्रथो के कर्ता हैं जिनमे से 'रसगगाधर' (दे०) एव 'चित्रमीमासा खडन' अलकारशास्त्र के ग्रथ तथा 'सुधालहरी', 'गगालहरी', 'जगदाभरण', 'आसफविलास', 'प्राणाभरण', 'भामिनीविलास' एव 'यमुनावणन' चपू काव्य है। इनके अतिरिक्त इन्होने प्रसिद्ध वैयाकरण भट्टोजिदीक्षित (दे०) की कृति 'प्रौढ मनोरमा' की 'कुचमर्दिनी' नामक टीका भी लिखी है जिसमे मूल ग्रथकार का खडन किया गया है।

पडितराज उच्च कोटि के कवि एव समालोचक दोनो थे। इनकी लेखन शैली अतीव उदात्त तथा ओजस्विनी है। इनकी कृतियो मे तर्क एव नवीन युक्तियो की भरमार है। इनकी मान्यता है कि काव्य का लक्षण शब्द प्रधान होना चाहिए। काव्यजन्य आनद की अनुभूति मात्र रस से ही नही अपितु वस्तु एव अलकार से भी होती है। रत्यादि भावो से सवलित आत्मानुभव ही रसानुभूति है जिसका माध्यम व्यजना नामक वृत्ति है। ये केवल प्रतिभा को ही काव्य-हेतु स्वीकार करते हैं तथा रसो की सख्या को आठ या नौ तक ही सीमित मानना उचित नही समझते।

जगन्नाथ-भागवत *(उ० कृ०)*

उडिया जातीय जीवन पर जगन्नाथदास के भागवत का प्रभाव अपरिमेय है। इसने उडिया जाति के नैतिक जीवन को गढा है और आज भी उसे अपने रचनात्मक हाथो से सुष्ठु रूप देने मे रत है। उत्कलीय जनता मे भागवत की पक्तियाँ जितनी उद्धृत होती है, उतनी अन्य किसी ग्रथ की नही। चैतन्यदेव (दे०) के प्रभाव ने परवर्ती युग मे उडिया समाज के चरित्र को दुर्बल बना दिया था। यदि इस विघटन की स्थिति मे उडिया जातीय चरित्र की रक्षा हो सकी है, तो वह केवल *जगन्नाथ-भागवत* के कारण ही है। उडिया जाति जब लघु गोष्ठियो मे प्रभावशाली प्रनिवेशी प्रदेशो मे बिखर गई थी, तब इस छिन्न-भिन्न अवहेलित जाति के प्राण-स्फुलिंगो को केवल इसी ग्रथ ने बचाया था। यह उडिया जातीयता का स्पष्टतम एव साधारणतम प्रतीक है। यह उडिया मे साक्षरता का प्रधान स्रोत रहा है। पल्ली-समाज भागवत सुनने की अभिलाषा से अपनी सतानो को शिक्षित करता था।

जगन्नाथ-भागवत सस्कृत-भागवत का शाब्दिक अनुवाद नही है। मूल ग्रथ के श्लोक-भाव को ग्रहण कर जगन्नाथदास ने अपनी स्वतत्र रचना की है। अनेक स्थानो पर विषय-सस्थापन एव भाव-प्रकाशन दोनो मे अतर दिखाई पडता है। मूल ग्रथ के साथ इसकी न तो श्लोक-सख्या मे समानता है और न अध्याय-सख्या मे। तत्त्व-प्रतिपादन मे भी इसमे स्वतत्रता दृष्टिगोचर होती है। दास ने अपने ग्रथ मे ऐसे अनेक विषयो का उल्लेख किया है, जिनका वर्णन मूल ग्रथ मे नही है। उदाहरणस्वरूप मथुरा से कृष्ण की वापसी के समय पहले से सुदामा को भेजकर ब्रजवासियो को सूचित कर देना मूल ग्रथ मे नही है। कसवध प्रसग मे जगन्नाथदास की नवीनता असदिग्ध है। मूल ग्रथ के अनेक विषयो को त्याग भी दिया गया है। नद एव अक्रूर का वार्तालाप मूल ग्रथ मे है किंतु जगन्नाथदास के भागवत मे नही है।

यह उडीसा का 'बाइबिल' है। समस्त उडिया-साहित्य मे हम भागवत मे ही पाते हैं बाइबिल की-सी रहस्यमय वाक् सृष्टि। शिष्ट-सस्कृत पदावली के साथ सुमधुर एव शालीन उडिया पदावली एव वाक्याश मिलाकर, भाषा की कलागत सुषमा को अक्षुण्ण रखते हुए, गूढ दार्शनिक तत्त्वो को बोधगम्य घरेलू भाषा म ऐसे चमत्कारपूर्ण ढग से अभिव्यक्त किया गया है कि उसकी रहस्यमय सूक्ष्म-गभीर मादकता पाठक को मत्रमुग्ध कर लेती है।

जगन्नाथ-भागवत अनेक दृष्टियो से मूल्यवान है। जगन्नाथदास ने इसमे विष्णु, पद्म ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणो से श्रेष्ठतम कहानियो का समाहार कर इसे अधिक श्री-सपन्न बना दिया है। सर्वोपरि इसमे एक मौलिक स्रष्टा, साधु-स्वभाव, निर्मल व्यक्तित्व के भावपूर्ण हृदय का सस्पर्श है।

जगन्नाथ-विजय *(क० कृ०)* [समय—लगभग 1180 ई०]

इसके रचयिता रुद्रभट्ट नामक एक ब्राह्मण कवि थे जिनका समय 1180 ई० के करीब माना गया है।

ये कन्नड के प्रथम कृष्ण-कवि हैं और 'जगन्नाथ-विजय' प्रथम कृष्ण-काव्य। यह अठारह आश्वासों का प्रौढ़ चंपू-काव्य है। इसमें विष्णु-पुराण के आधार पर कृष्ण-कथा निरूपित है। कृष्ण के जन्म से लेकर बाणासुर-वध तक की कथा इसमें है। 'रसकलिके' इनका एक और ग्रंथ है जो अनुपलब्ध है। विष्णुपुराण की कथा-सरणि सरल है तो इसकी विस्तृत प्रौढ-काव्य की है। कवि ने यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन व परिवर्धन भी किए हैं। कृष्ण की बाल-लीला, मुरली-वादन-लीला, गोचारण-लीला, शिशुपालवध, आदि का काफ़ी प्रभावशाली वर्णन है। इसका प्रधान रस भक्ति है। अक्रूर का कृष्ण-साक्षात्कार तथा कृष्ण की रास-लीला इस ग्रंथ के अत्यंत मनोहर स्थल हैं। कवि हरिहराद्वैती भागवत पंथ के अनुयायी थे। अतः विशाल भागवत दृष्टि, उपनिषद्दर्शन आदि यहाँ पग-पग पर आते हैं। रुद्रभट्ट का दावा है कि उनकी कृति जब तक भूमि रहेगी तब तक वैष्णव-काव्य-रसार्णव को डुलाती रहेगी। रुद्र की शैली बहुत ही प्रौढ़ है, और बंधगौरव बहुत प्रशंसनीय है। किंतु वे अष्टादश वर्णनों के पीछे पड़ गए हैं और अलंकारों के मोह से मुक्त नहीं हैं। भक्ति रस के प्रसंगों में उनकी प्रतिभा अवश्य चमक उठती है। उनकी स्वतंत्र रूपक-शक्ति भव्य एवं संपन्न है।

जगसिर्पियन *(त० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

ये तंजौर जिले के निवासी हैं। तमिल कथा-साहित्य में इनकी कृतियों का अत्यंत समादृत स्थान है। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी इन्होंने ख्याति अर्जित की है। तमिल मासिक 'शिल्पी', 'चिरंजीवी' तथा पाक्षिक पत्र 'स्वतंत्र देवी' के संपादक के रूप में इन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया है। तमिल की प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्रिका के द्वारा आयोजित होने वाली कथा-लेखन-प्रतियोगिताओं में इन्हें एक लघुकथा के लिए 1957 ई० में द्वितीय पुरस्कार तथा एक उपन्यास के लिए 1958 ई० में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इनकी लघु-कथाओं के 14 संकलन, नाटिकाओं के तीन संकलन, 12 उपन्यास, 9 ऐतिहासिक उपन्यास तथा एक बड़ा नाटक अब तक पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। इनके अतिरिक्त अनेक पत्र-पत्रिकाओं में कई कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। इनकी कुछ कथाओं का अनुवाद हिंदी में तथा अंग्रेजी-जर्मनी आदि विदेशी भाषाओं में हुआ है।

जग हें त्रिविध आहे (यह जग तीन प्रकार है) *(म० कृ०)*
[रचना-काल—1913 ई०]

सी० के० दामले लिखित यह उपन्यास विचार-प्रधान उपन्यासों की श्रेणी में परिगणित किया जाता है क्योंकि इसमें विचारधारा और उपदेश-तत्त्व की प्रधानता है।

जज्बी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

मुईन हसन इनका नाम, और 'जज्बी' तखल्लुस है। ये आजमगढ़ में पैदा हुए थे। झाँसी, लखनऊ, आगरा और देहली में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। एम० ए० करने के पश्चात् आजीविका की खोज में कई नगरों में कई वर्षों तक फिरते रहे। शायरी का शौक बाल्यावस्था से ही था। पहले ग़ज़लें कहते थे, बाद में नज़्में लिखने लगे। प्रगतिवादी कवियों में इनका उच्च स्थान है। आजकल अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में नियुक्त हैं। 'फ़िरोज़ाँ' के नाम से इनका काव्य-संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इनकी भाषा साफ़, सरल एवं सशक्त है।

जडकुच्चुलु *(ते० कृ०)*

'जडकुच्चुलु' (वेणी के गुच्छे) रायप्रोलु सुब्बाराव (दे०) की समय-समय पर रची गई स्फुट रचनाओं का संग्रह है। ये रचनाएँ आत्माश्रयी काव्यगत प्रकृति की आराधना के सुंदर उदाहरण हैं। इस संकलन की उल्लेखनीय कविताओं में वर्षा ऋतु, प्रवास, राधिका, मेघ, कोयल आदि हैं। कवि की शैली सुमधुर, सरस एवं सरल है।

जणाण *(उ० पारि०)*

भजन एवं जणाण दोनों का अर्थ है ईश्वर-प्रार्थना। किंतु जहाँ भजन में ईश्वर का नामोच्चारण बारंबार होता है, वहाँ जणाण में वैयक्तिक दुःख-दुर्दशा का निवेदन अधिक होता है। जणाण में दैन्य-बोधक, प्रार्थनामय उद्देश्य अंतर्निहित होता है। यद्यपि भजन एवं जणाण दोनों सामूहिक रूप से गाए जाते हैं, किंतु जणाण वैयक्तिक दीन दशा से करुणार्द्र होने के कारण व्यक्ति-विशेष द्वारा गाए जाने पर अधिक मर्मस्पर्शी बन जाता है। कविसूर्य बलदेव रथ का 'सर्प जणाण' प्रसिद्ध है।

जतोई, हैदरबख्श अल्लाहदाद खान *(सिं० ले०)* [जन्म—1900 ई०, मृत्यु—1970 ई०]

इनका जन्म लाडकाणो (सिंध) के एक छोटे-से गाँव बखो देरो मे हुआ था। विद्यार्थी जीवन से ही इनकी अलौकिक प्रतिभा की अभिव्यक्ति कविता के माध्यम से होने लगी थी। सरकारी नौकरी के समय इन्हे सिंध के कई गाँवो का भ्रमण करने का अवसर मिला था। उन दिनो ही किसान और मजदूरो के दुखी जीवन को देखकर इनके हृदय मे उनके लिए सहानुभूति उत्पन्न हुई थी और दु खी जनो के जीवन का यथार्थ चित्रण ये अपनी कविताओ और कहानियो मे करने लगे थे। इनकी रचनाएँ सिंध देश के लिए असीम प्रेम और दलित वर्ग के लिए सहानुभूति से पूर्ण हैं। ये किसान और मज़दूरो को अधिकार दिलाने के लिए लगातार लडते रहे थे और इसी कारण इन्हे जेल-यात्राएँ भी करनी पडी थी। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'तोहफा ए-सिंध' (कविता सग्रह), 'आज़ादी ए-कौम' (काव्य), 'हारी कहाण्यू' (कहानियाँ)। इनकी रचनाएँ ओजपूर्ण और सिंधी साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

जनमटीप *(गु० कृ०)*

ईश्वर पेटलीकर (दे०) का यह सर्वप्रथम उपन्यास है जिसने उन्हे बहुत यशस्वी बनाया। उन्होने स्वय इसकी उत्कृष्टता का उल्लेख करते हुए एक स्थान पर लिखा है कि 'इस कथा से ज्यादा अच्छी कथा मैं कभी लिख सकूँगा या नही, मालूम नही।' इसकी कथावस्तु गुजरात के खेडा जिले के एक गाँव मे रहने वाली निम्नवर्ग की पाटणवाडिया जाति के एक परिवार से सबद्ध है। इस जाति के लोग अपराध करने के आदि होते है। हत्याएँ करना, प्रतिशोध लेना, जेल जाना इत्यादि इनके प्रतिदिन के कार्य हैं। इस जाति के चदा (दे०), भीमा, देवा आदि अशिक्षित, असस्कृत, अपराध दक्ष पात्रो के द्वारा लेखक ने इस रचना मे प्रणय और प्रतिशोध की कथा के साथ-साथ नारी के स्वाभिमान और समर्पण को रूपायित किया है। चदा इसकी नायिका है जिसमे ग्रामीण स्त्री की सुदरता और शक्ति का समन्वित स्वरूप व्यक्त हुआ है। वह वस्तुत अप्रतिम नारी-चरित्र है। कथा का ताना-बाना उसी को केंद्रीभूत बनाकर बुना गया है। 'जनमटीप' का वस्तुविधान कलात्मक है। सघर्षात्मक परिस्थिति के मध्य उपन्यास की विषय वस्तु का विकास होता है जिसमे गति है, स्वाभाविकता है, सरसता है। प्रारभ से अत तक लेखक ने कौतूहल तत्त्व का निर्वाह किया है। उपन्यास की भाषा देहाती पात्रो और प्रसगो के अनुरूप है। शैली प्रासादिक एव प्रभावोत्पादक है। सभी दृष्टियो मे 'जनमटीप' एक सफल कलाकृति है।

जनमसाखी *(प० पारि०)*

यह शब्द जीवन-चरित या जीवनी का पर्याय है। पजाबी-साहित्य और सिख पथ-सबधी धार्मिक साहित्य मे आदि गुरु नानकदेव (दे०) का जीवन वृत्तात 'जनमसाखी' के नाम से अभिहित है। गुरु नानकदेव की अनेक जनमसाखियाँ प्रचलित हैं जिनमे दो के नाम विशेष महत्वपूर्ण हैं—'जनमसाखी भाई बालो की' और 'जनमसाखी भाई मनीसिह की'। किंतु आजकल इनका मूलरूप उपलब्ध नही। अनेक प्रक्षिप्त अश इनमे जुड गए हैं। 1885 ई० मे मैकॉलिफ ने जनमसाखियो की समग्र प्रामाणिक सामग्री सकलित कर 'जनमसाखी' का सपादन किया।

जना *(बँ० कृ०)* [रचना काल—1894 ई०]

'जना' गिरीशचन्द्र घोष (दे०) के पौराणिक नाटको मे अन्यतम है। माईकेल मधुसूदन दत्त (दे०) के 'नीलध्वजेर प्रतिजना' कविता के द्वारा प्रभावित नखक ने इस नाटक मे जना चरित्र के गौरवमय मातृत्व, स्वदेश प्रेम एव जीवन की करुण व्यथा की सुदर अभिव्यक्ति की है। 'जना' का चरित्र चित्रण ही नाटक का मुख्य आकर्षण है। जना आदर्श वीरागना एव वीरमाता है। पुत्र की मृत्यु के उपरात प्रतिहिंसामयी जना की क्रुद्ध हृदय ज्वाला एव अत मे निरुपाय होकर गगा मे जलसमाधि नाटक की चरमोत्कृष्ट ट्रैजेडी' है। नाटक मे दैवी घटनाओ का समावेश एव अत मे भक्ति-धारा का प्रवाह नाटकीय द्वद्व म रसाभास की सृष्टि करता है परतु फिर भी जना के चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इस नाटक की सार्थकता सर्वत्र अक्षुण्ण रही है।

जनाबाई *(म० ले०)*

दक्षिण मे गोदावरी के तट पर स्थित गगाखेड नामक ग्राम मे इनका जन्म हुआ था। माता पिता निर्धन थे। उनकी मृत्यु के उपरात जनाबाई का सत नामदव (दे०)

के घर में आश्रय मिला और उनके प्रभाव से दासी जनाबाई एक श्रेष्ठ कवयित्री बन गई। ये स्वयं पढ़ी-लिखी नहीं थी, परंतु भक्ति-भावना के प्रबल आवेग से इनमें काव्य-प्रतिभा का स्फुरण हो गया था। इनके उपास्य देव विट्ठल थे। उनकी भक्ति में ही इनके अधिकांश अभंगों की रचना हुई है। जनाबाई के उपलब्ध पदों की संख्या 350 है। एक ओर इन्होंने ध्रुव, प्रह्लाद, शुक, शबरी आदि भक्तों का गुणगान किया है तो दूसरी ओर अपने समकालीन संत ज्ञानेश्वर (दे०), नामदेव, गोरा कुम्हार, सेनाबाई, चोखामेला (दे०), सोपानदेव, निवृत्तिनाथ आदि की भी मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।

जन्न *(क० ले०)* [जीवन-काल—1225 ई० के लगभग]

जन्न का जन्म एक साहित्यिक जैन परिवार में हुआ था। इनके पिता सुमनोबाण स्वयं कवि थे। इनके बहनोई मल्लिकार्जुन 'सूक्तिसुधार्णव' के लेखक है तथा इनके भानजे केशिराज कन्नड के विख्यात वैयाकरण हैं। यह होयसळ-नरेश नरसिंह के दरबार की शोभा थे—दंडाधीश, मंत्री और राजकवि। होयसळ-नरेश बल्लाल ने इन्हें 'कविचक्रवर्ती' की उपाधि दी थी।

जन्न ने शुरू-शुरू में कई शिलालेखों के लिए कविताएँ रची थीं। इसके उपरांत 'यशोधरचरिते' (दे०), 'अनंतनाथ पुराण' (दे०) और 'अनुभव मुकुर' (दे०) लिखे थे। 'अनुभवमुकुर' 'स्मरतंत्र' के नाम से विख्यात है। यह काव्यशास्त्र का ग्रंथ है।

'यशोधरचरिते' 310 कंदपद्यों वाला एक लघु काव्य-ग्रंथ है। वादिराज के संस्कृत 'यशोधरा-चरित' पर आधारित इस ग्रंथ में प्राणिहिंसा का विरोध करने वाली जीवदयाष्टमी की कथा है। कथनकला-निपुणता, चरित्र-चित्रण, विशिष्टता और जीवन के दुःखांत तत्व की मार्मिक पहचान के कारण यह ग्रंथ महाकाव्य की कोटि में गिनाया गया है। जन्न कवि रूपकों के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं।

'अनंतनाथपुराण' चौदह आश्वास वाला चौदहवें तीर्थंकर पर लिखा चरितपुराण है। संस्कृत के उत्तर-पुराण तथा कन्नड के चावुंडराय पुराण के आधार पर लिखा यह चंपूकाव्य एक प्रौढ़ कृति है। 'यशोधराचरित' में जहाँ स्त्री के अनुभयनिष्ठ प्रेम तथा उसका दुरंत है तो इसमें पुरुष की अनुभयनिष्ठ रति का मनोरंजक चित्रण है। राजा चंडशासन अपने मित्र वसुषेण के यहाँ अतिथि बनकर जाता है और उसकी पत्नी सुनंदा के रूप को देखकर रीझ जाता है। भाँति-भाँति के प्रयत्नों से उसे पाने का प्रयत्न करता है। एक जादूगर के द्वारा उसके पति का (कृत्रिम) कटा सिर दिखाता है। उसे देखते ही सुनंदा की मौत हो जाती है। किंतु उसका मोह भंग नहीं होता। वह भी उसके शव के साथ जल मरता है। वसुषेण यह सब जानकर विरक्त हो जाता है। रसनिरूपण, चरित्र-चित्रण आदि में जन्न ने अद्भुत कौशल दिखाया है। धर्मविरुद्ध प्रणय, अनुभयनिष्ठ रति के स्त्री तथा पुरुष मुख को अत्यंत उज्ज्वल एवं परिणाम-कारी शैली में चित्रित करने में जन्न को अद्भुत सफलता मिली है।

जन्मदिने *(बँ० कृ०)*

यह रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०)-रचित 29 कविताओं का 1941 ई० में प्रकाशित संग्रह है। इनमें से 1 कविता 1939 ई० में, 10 कविताएँ 1940 ई० में, 12 कविताएँ जनवरी, '41 से मार्च '41 तक रची हुई हैं तथा शेष का रचना-काल अनुल्लिखित है।

रवींद्रनाथ ठाकुर के जीवन-काल में प्रकाशित यह उनकी अंतिम कृति है। कवि ने इसमें विश्व-सृष्टि की अनादि, बहुविचित्र एवं आश्चर्यमयी धारा को व्यक्त किया है। अनेक कविताओं में विगत युद्ध की ध्वंसलीला की कवि-हृदय पर हुई प्रतिक्रिया का वर्णन भी है। कवि ने नवीन, आनंदविस्मय-दृष्टि से सब कुछ देखा है।

जपुजी *(पं० कृ०)*

आदिग्रंथ में '१ ॐ'—इस मंगल के अनंतर जपु जी गुरु नानकदेव (दे०) की सर्वप्रथम वाणी है। इसमें 38 पउड़ियाँ हैं। आदि और अंत में एक-एक श्लोक है। सिक्ख धर्म में 'जपु जी' को धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्व प्राप्त है। इस रचना को सिक्ख धर्म के मौलिक सिद्धांतों का आगार माना जाता है। आदि गुरु को परब्रह्म ने 'जपु' का उपदेश दिया; तदनंतर वही लोकहित में प्रचारित हुआ। जनमसाखियों में इस दिव्य अवतरण के संबंध में अनेक कथा-प्रसंग प्रचलित हैं। इस कृति को पैगंबरी-सूचक 'हजूरी निसाणु' माना जाता है। 'जपु' का प्रतिपाद्य नाम-संकीर्तन तथा प्रभु-स्तुति है। 'पावै को धाति जाणै नीसाणु। अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु' इसका प्रमाण है। जनमसाखी-कारों ने अमूल्य बख्शीश और अमूल्य निशान को जपु के केंद्र-बिंदु के रूप में माना है। 'जपु' की अनेक टीकाएँ हो

चुकी हैं जिनमे 'जपु-परमार्थ टीका' अत्यधिक मान्य एव प्रसिद्ध है। इस टीका का लेखक शिभूनाथ (शम्भूनाथ) ब्राह्मण बताया जाता है। निहालसिंह ने 'जपु जी' की सस्कृत मे टीका की है। टर्नर और मैकॉलिफ जैसे अनेक विद्वानो ने 'जपु जी' का अँग्रेजी मे अनुवाद किया है। 'जपु जी' की आनदघन-कृत टीका सन् 1795 मे लिखी गई थी जो तत्काल मान्य हो गई। 'जपु जी' पजाबी साहित्य की मूल बीजयत्र समान कृति है। भाषा अनुस्वरात सस्कृत-शब्द समन्वित है।

जफर *(उर्दू० ले०)* [*जन्म—1775 ई०, मृत्यु—1863 ई०*]

नाम—सेराजुद्दीन मुहम्मद, लकब बहादुरशाह, उपनाम—जफर। ये मुगल वश के अतिम नरेश थे और 1837 ई० मे सिंहासनारूढ हुए थे। ये 1857 ई० के प्रथम स्वाधीनता सग्राम के प्रमुख सेनानी थे। सग्राम असफल हो जाने पर विदेशी शासन ने इन्हे देश से निवासित कर रगून भेज दिया था। वही इनकी मृत्यु हुई और वही दफनाए गए।

ये उच्च कोटि के उर्दू शायर थे। सुप्रसिद्ध उर्दू शायर, 'जौक' (दे०) देहलवी का शिष्यत्व इन्हे प्राप्त था। इनकी कविताओ का सग्रह 'कुल्लियात-ए जफर' के नाम से बडे आकार के चार भागो मे प्रकाशित हो चुका है। हिंदी शब्दावली का प्रचुर प्रयोग इनके काव्य की विशेषता है। इनका काव्य मर्माहत वेदना और करुण अभिव्यक्ति से ओतप्रोत है और सूफी सिद्धातो तथा सूफी प्रवृत्तियो का उत्कृष्ट उदाहरण है। इनकी करुणाभावसिक्त गजलें अत्यत प्रभावशाली, मार्मिक एव लोकप्रिय हैं। इनके काव्य मे कही-कही राष्ट्रीय चेतना का स्वर भी अत्यत मुखर है।

जफरअली खाँ *(उर्दू० ले०)*

पजाब स प्रकाशित होने वाले उर्दू के सुप्रसिद्ध दैनिक समाचार पत्र 'जिमींदार' के साथ इनका विशेष सबध था। पत्रकार होने के कारण इनका कार्यक्षेत्र राजनीतिक और सवैधानिक मामलो से सबद्ध रहा था। इसके अतिरिक्त इन्हें विज्ञान, धर्म, साहित्य—और विशेषत काव्य-कला—के प्रति भी यथेष्ट अनुराग था। गद्य और पद्य दोनो क्षेत्रो मे इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया था। इनकी कविताओ का एक सकलन 'बहारिस्तान' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इस सकलन मे अधिकतर राजनीतिक और धार्मिक कविताएँ हैं। नवीन उपमाएँ, अलकार-प्रियता, लक्ष्य-निष्ठा और राजनीतिक चेतना इनके काव्य की विशेषताएँ हैं। मुहावरो के सशक्त प्रयोग पर इन्हे अद्भुत अधिकार प्राप्त है परतु इनका वाक्य विन्यास और शब्द-योजना फारसी से अत्यधिक प्रभावित है। कही-कही अरबी और फारसी का प्रयोग इन्होंने इतना अधिक किया है कि भाषा का स्वाभाविक लालित्य क्षीण हो गया है। इनके उपन्यासो मे गृहस्थ जीवन के अत्यत सजीव, स्पष्ट और यथार्थवादी चित्र उपलब्ध होते हैं। सन् 1956 ई० मे इनका निधन हुआ।

जमीर *(उर्दू० ले०)*

नाम मुजफ्फर हुसैन, उपनाम 'जमीर'। लखनऊ के मर्सिया लेखक दिग्गजो मे इनका उच्च स्थान है। इन्होने मर्सिया के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मीर खलीक (दे०) और ये दोनो समकालीन थे। दोना ने मर्सिया-लेखन मे अपनी अप्रतिम प्रतिभा का परिचय दिया है। मीर खलीक के मर्सिया म सरलता, सूक्ष्मता और मधुरता अधिक है जबकि 'जमीर' के मर्सिया मे विद्वता और पाडित्य-प्रदर्शन अधिक है। मर्सिया लेखन के क्षेत्र को इन्होने अत्यधिक व्यापक बना दिया है, नूतन विषयो, नूतन दिशाओ और नूतन परिकल्पनाओ स इस विधा की यथेष्ट अभिवृद्धि की है और इसे एक प्रकार से चारण-काव्य का रूप दे दिया है।

जयकातन, त० *(त० ले०)* [जन्म —1934 ई०]

जयकातन का जन्म नैवेली म हुआ। जय-कातन मुख्य रूप से कहानीकार है। इनके प्रसिद्ध कहानी-सग्रह हैं—'उदयम्', 'देवन्' 'वरवारा' 'युगसधि' (दे०) आदि। 'शिल नेरगळिल', 'शिलमनिदरहळ, पारीसुक्कु पा' इनके बडे उपन्यास हैं तथा 'वापक्कै अळैक्किरदु, 'प्रलयम्', *'कै विलगु' आदि लघु उपन्यास।* इनकी कहानियां और उपन्यासा मे भावना की प्रखरता तथा कला की सूक्ष्मता है। जयकातन पात्रो के मनोवैज्ञानिक चित्रण म पटु हैं। इनकी कहानियो मे निम्न वर्ग के लोगा के जीवन का सजीव चित्रण है। प्रातीय बोलियो के प्रयोग के कारण इनकी कहानियां एव उपन्यास प्रभावशाली बन पडे हैं।

इनकी प्रारंभिक कृतियों में मार्क्सवादी विचारधारा के, क्रांतिकारी भावना के, और आधुनिक कृतियों में व्यक्ति-वादी विचारधारा के दर्शन होते हैं। तमिल कहानी के द्वितीय उत्थान-काल के कहानीकारों में इनका विशिष्ट स्थान है।

जयदेव *(सं० ले०)* [समय—ग्यारहवीं शती]

'गीतगोविंद' (दे०) के कर्ता जयदेव का जन्म बंगाल में केंद्रबिल्व (केंगुली) नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम राधा था। ये राजा लक्ष्मण सेन के समकालीन तथा 'प्रसन्न-राघव' के रचयिता जयदेव (तेरहवीं शती) से भिन्न थे।

इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'गीतिगोविंद' अपने ढंग की अनूठी रचना है। इसकी संगीत-योजना से प्रभावित होकर, पाश्चात्य विद्वान् सिलवां लेवी तथा पिशेल ने इसको 'संगीत-रूपक' की संज्ञा दी है। केंगुली में प्रति-दिन हज़ारों वैष्णव भक्त एकत्र होकर इनके संगीत में डूब जाते हैं तथा इस प्रकार इस कवि के प्रति अपनी भक्ति-भावना व्यक्त करते हैं।

राधा और कृष्ण की प्रणयलीलाओं को लेकर लिखे गए इस काव्य में 12 सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग गीतों से ही समन्वित है। सर्गों को परस्पर मिलाने के लिए तथा कथा का सूत्र बतलाने के लिए कुछ वर्णनात्मक पद्य भी हैं। 'गीतिगोविंद' माधुर्य एवं सौंदर्य की पराकाष्ठा है। कहीं-कहीं तो जयदेव कालिदास (दे०) से भी आगे बढ़ जाते हैं। भावों के गांभीर्य की दृष्टि से भी यह बेजोड़ है।

जयदेव पुरी *(हिं० पा०)*

यह यशपाल (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'झूठा सच' (दे०) का प्रमुख किंतु दुर्बल चरित्र वाला पात्र है। निम्न मध्य वर्ग का यह पात्र प्रारंभ में एक आत्मविश्वासी, कर्मठ एवं आदर्शवादी के रूप में अनावरित होता है, किंतु परिस्थितियों के वात्याचक्र में पड़ कर स्वार्थ-पूर्ति के निमित्त काँग्रेसी नेताओं का पिछलग्गू बन जाता है और अपना दीन-ईमान खोकर पतन के मार्ग पर तेज़ी से अग्रसर होता हुआ अंततः अर्थ का दास बन कर रह जाता है। अपनी इन्हीं चरित्रगत दुर्बलताओं के कारण यह न केवल लेख-कीय सहानुभूति से वंचित रहा है अपितु उसकी घृणा का पात्र बन गया है।

जयदेव मुनि *(अप० ले०)* [रचना-काल—तेरहवीं शती ई० के लगभग]

जयदेव मुनि शिवदेव सूरि के शिष्य थे। इन्होंने 'भावना-संधि-प्रकरण' (दे०) नाम की कृति की रचना की थी। इस कृति में इन्होंने बताया है कि जिनेश्वर-प्रति-पादित धर्म के पालन से संसार के दुःखों से छुटकारा मिल सकता है। इस उल्लेख से प्रतीत होता है कि ये जैन थे। इन्होंने अपनी कृति में मालव नरेंद्र मुंज (997 ई०) का उल्लेख किया है। इससे इनके दसवीं शती ई० के बाद में होने का अनुमान किया जा सकता है।

जयद्रथ-वध *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1910 ई०]

लोकप्रियता की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त (दे०) की प्रारंभिक रचनाओं में 'भारत-भारती' के पश्चात् 'जयद्रथ-वध' का स्थान है। हरिगीतिका छंद में लिखे गए इस खंड-काव्य की कथा 'महाभारत' (दे०) से ली गई है। प्राचीन कथा को यथावत् ग्रहण करके भी कवि ने प्रभावशाली प्रसंग-योजना की है। सुभद्रा और उत्तरा के विलाप का करुण प्रसंग अत्यधिक मार्मिक है। दृश्यांकन और अप्रस्तुत-विधान काव्यात्मक है। भाषा साफ़-सुथरी और प्रवाहपूर्ण है।

जयभारत *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1952 ई०]

इस महाकाव्य में मैथिलीशरण गुप्त (दे०) ने अपनी पूर्वकालीन रचनाओं को आवश्यक परिवर्तनों के साथ अंतर्मुक्त कर और नए प्रकरणों की रचना कर 47 खंडों में 'महाभारत' (दे०) की संपूर्ण कथा के पुनराख्यान का प्रयास किया है। इस दृष्टि से यह प्रयास हिंदी-काव्य में अद्वितीय महत्व का है। इस महत्प्रयास में कवि ने चयन-क्षमता का कौशल दिखाया है। प्रतिपादन-शैली, घटना-क्रम-परिवर्तन और प्रकरण-वक्रता में कवि की मौलिकता असंदिग्ध है। युधिष्ठिर, कुंती, दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, हिडिंबा आदि पात्रों के मानवीय चित्रण में भी कवि ने असाधारण सहृदयता और कल्पना से काम लिया है। इस काव्य का अंगी रस शांत-पर्यवसायी वीर है। जीवन की विविधता से करुण, शृंगार तथा रौद्र आदि की व्यंजना के अनेक अवसर भी कवि को मिल गए हैं। शिल्प-विधान में थोड़ा वैषम्य लक्षित होता है, जिसका कारण उसके विभिन्न प्रकरणों के रचना-काल में लंबा अंतराल है। वहीं कथा

की गति शिथिल है और कही क्षिप्र, कही भाषा मे अभिधा की प्रधानता है और कही लक्षणा व्यजना की, कही शैली व्यस्त है और कही समस्त। फिर भी यह महाकाव्य अपने आप मे एक महत्वपूर्ण प्रयोग है।

जयमती कुँवरी *(अ० कृ०)* [रचना-काल—*1915 ई०*]

लेखक —लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०)। लेखक का यह सर्वश्रेष्ठ नाटक है। यह ऐतिहासिक दु खात नाटक है। इसमे राजकुमारी जयमती के आत्मोत्सर्ग की कहानी है जो अपने पति और देश के लिए स्वेच्छा से जीवन अर्पित कर देती है। इसमे नगा युवती डालिमा का चित्रण भी अत्यत सुदर है। यद्यपि नाटकीय तत्वो पर अधिक ध्यान नही दिया गया है तथापि इसके सवाद और चरित्र-चित्रण अच्छे हैं।

जयरामदास दौलतराम *(सि० ले०)* [जन्म—*1892 ई०*]

इनका जन्म स्थान कराची (सिंध) है। एम० ए०, एल-एल० बी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के पश्चात् ये कुछ वर्ष वकालत करते रहे, परतु 1921 ई० के आसपास महात्मा गाधी से प्रभावित होकर ये भारत के स्वातत्र्यादोलन मे कूद पडे और देशसेवा के कार्यों मे सक्रिय भाग लेने लगे। साहित्य के क्षेत्र मे इन्होने सिंधी तथा अँग्रेजी दैनिक पत्रो का कुछ वर्षो तक सपादन कार्य भी किया है। विभाजन के पश्चात् इन्होने खाद्यमत्री (केंद्रीय सरकार), तत्पश्चात् असम के राज्यपाल के पद पर रहकर कार्य किया था। इनकी रचनाएँ अँग्रेजी तथा सिंधी भाषाओ मे मिलती हैं। ये सिंधी भाषा एव साहित्य और सिंध के इतिहास के विशेषज्ञ हैं और इन विषयो पर इन्होने कई अनुसधानपूर्ण निबध लिखे है। इनका दृढ निश्चय है कि भारत मे सिंधी भाषा देवनागरी लिपि अपनाने से ही वि- ि त हो सकेगी।

जया *(गु० पा०)*

कवि न्हानालाल (दे०)-कृत 'जया-जयत' (दे०) नामक पद्यात्मक नाटक की नायिका जया गिरिराज—गिरिदेश के राजा—की कन्या है। विधि ने उसकी जन्मकुडली मे आजीवन कौमार्यव्रत लिख दिया है जिसका सकेत प्रथम अक के दूसरे दृश्य मे गिरिराज और राजरानी की परस्पर बातचीत से मिलता है। जया ब्रह्मचारिणी रहेगी और साथ ही वह हृदय-रानी होगी—राजराजेंद्रो के राजेश्वर की। ये विरोधाभासी बातें इस बात का तो सकेत दे ही जाती हैं कि जया को इतना ऊँचा उठना है कि बडे-बडे राजा भी उसे ससम्मान हृदय मे स्थान दें। मूलत जया के चरित्र की यही कहानी है। अपने चरित्र के विकास की पहली मजिल पार करने से पहले ही जया के ये वाक्य ध्यान आकृष्ट किए बिना नही रह सकते—"विलासने हजी वार छे, आज नयी पाकी ऐनी अवध'''दिलमाना दैत्योने जीत।" यह जानते हुए भी कि 'वायु बाधवो अने मन जीतवु सरखु' है, जया ने मन को जीतने का, शील के सौदर्य को प्राप्त करने, यौवन को सयम से दीप्त करने तथा पुण्य की नीव पर जीवन-सिद्धि पाने के कष्टसाध्य मार्ग पर बढने का दृढ निश्चय किया है। लेखक ने उसकी दृढता को प्रमाणित करने के लिए भी जहाँ एक ओर जयत जैसे प्रेमी के प्रणय और कविराज के समान राजा के साथ विवाह के प्रलोभनो को प्रस्तुत किया है वही दूसरी ओर वाममार्गी आचार्य, पारधी और पापमदिर के तीर्थगोर के विषचक्र की विषम परिस्थितियो मे उसे रखा है। जया को न तो प्रलोभन ही अपने पथ से विचलित कर पाए और न विषम स्थितियाँ ही। वह दृढता से अपने स्वीकृत पथ पर बढती गई और अत मे, जो काशिराज उससे विवाह करने को उत्सुक थे उन्हे भी जया मे 'आर्यकुटुब' की माता के दर्शन हुए। इसी के साथ जुडा हुआ जया का एक दूसरा चेहरा है—विश्व मगलाकाक्षिणी का। जयत का स्वागत करते हुए वह कहती है कि "जिस प्रकार तूने अमरपुरी को उबारा है उसी प्रकार सभी को उबारते रहना।" जया परिस्थितियो म केवल भाग्य के भरोसे ही नही बच पाई है वरन इसमे उसका अपना क्षात्र-तेज भी सहायता करता है अन्यथा पारधी से बचने का कोई उपाय नही था। न्हानालाल के इस नाटक मे घटनाएँ बदलती है, जया नही। जन्म-दिन के अवसर पर वह थोडे समय के लिए प्रकाश-अधकार, सुख-पुण्य, रात-दिन, निवृत्ति-प्रवृत्ति और श्रेय-प्रेय की समस्याओ मे उलझी हुई दिखाई देती है पर यह अवस्था बहुत ही क्षणिक है। जया का सपूर्ण चरित्र आदर्शमय, स्थिर और तत्कालीन स्थितियो को देखते हुए समाज सुधार की भावना से रचित है और गुजराती साहित्य मे ऐतिहासिक महत्व रखता है।

जया-जयत *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1914 ई०]

जया-जयत कवि न्हानालाल दलपतराम (दे०)-रचित व प्रेमभक्ति ग्रथमाला के अतर्गत डा० मनोहरलाल

म्हानालाल द्वारा प्रकाशित एक त्रिअंकी नाटक है। प्रस्तुत नाटक तीन अंकों, बीस दृश्यों और 179 पृष्ठों में फैला हुआ है। इस नाटक में कुल मिला कर 34 गीत हैं जो नाटककार के लक्ष्य की व्याख्या करते हुए प्रतीत होते हैं। जयंत की दैत्यों पर विजय दिखा कर लेखक गिरिदेश में उसके स्वागत की तैयारियों से नाटक आरंभ करता है। जया-जयंत का परस्पर स्नेहबंधन है पर दोनों की ही जन्म-कुंडलियों में विवाह का विधान लिखा हुआ नहीं है। जया (दे०) नैष्ठिक ब्रह्मचर्य को महत्व देती है। उसके लिए देह-योग का महत्व नहीं है, केवल स्नेह-योग का है। रानी उसे काशिराज के साथ विवाहित कर देना चाहती है। इस विवशता से बचने के लिए जया (राजकुमारी) घर छोड़कर चली जाती है; आगे चलकर वाममार्गी आचार्य के फंदे में फँसती है जहाँ से उसे एक पारधी बचा लेता है और अपने साथ विवाह करने के लिए विवश करता है। तेजबा के शस्त्रों की सहायता से जया वहाँ से बच निकलती है। घूमते-घूमते वह काशी में पहुँचती है जहाँ पापमंदिर के 'तीर्थगोर' के हाथों में पड़ती है और जल में कूद कर अपनी रक्षा का प्रयत्न करती है। जयंत, जो काशी में ही तपस्या कर रहा है, उसे बचा लेता है। ब्रह्मकुमार जयंत और ब्रह्मकुमारी जया ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियों के लिए पृथक्-पृथक् आश्रम की स्थापना करते हैं और ब्रह्मयोग में सिद्ध के रूप में प्रसिद्ध होते है। पुण्यजीवन की नींव पर खड़े होकर इन्होंने जीवन-सिद्धि प्राप्त की है। संपूर्ण नाटक चमत्कार और आकस्मिक घटनाओं से भरा पड़ा है। कुछ स्थानों पर पात्र भी प्रतीकात्मकता ग्रहण कर लेते है। इस नाटक में जया के अतिरिक्त नृत्यदासी भी गंभीर तर्कयुक्त भाषा में बात करती हुई दिखाई देती है। चूँकि संपूर्ण नाटक नैतिकता के आवेश में आकर लिखा गया है अतः बहुत-सी सूक्तियाँ स्वतः समाविष्ट हो गई है, यथा—'वस्तु पाप नथी, वस्तुनी वासनामां पाप छे। विलास अनिष्ट नथी, विलासनी तृष्णा अनिष्ट छे', 'सौंदर्य शोभे छे शील थी, ने यौवन शोभे छे संयम वडे', 'कालोदधिना तरंगो उपर जिंदगी एटले कल्याण-यात्रा' आदि। पद्यात्मक रूप में लिखा हुआ यह नाटक पारंपरीण कथनभंगिमा को लिये हुए है। गुजराती नाटकों में—विशेषतः पद्य नाटकों में—इस नाटक का अपना एक विशेष ऐतिहासिक महत्व है।

जयानंद *(बं० ले०)*

अनुमानतः जयानंद मिश्र का जन्म 1511-13 ई० के बीच हुआ था। इनका निवास-स्थान वर्द्धमान जिला में आमाईपुर ग्राम था। पिता का नाम सुबुद्धि मिश्र एवं माता का नाम रोदनी था। दीक्षागुरु थे अभिराम गोस्वामी।

जयानंद की कृति 'चैतन्य-मंगल' (दे०) है। यह ग्रंथ इन्होंने नित्यानंद के पुत्र वीरभद्र एवं गदाधर पंडित के अनुरोध से लिखा था। इस काव्य में परिच्छेद नहीं हैं, और मंगलाचरण में देवी-देवताओं की वंदना है।

'चैतन्य-मंगल' की घटनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक विश्वसनीय हैं। चैतन्यदेव के तिरोधान के संबंध में सबसे अधिक विश्वसनीय तथ्य इसी ग्रंथ में मिलते हैं। इन्होंने श्री चैतन्यदेव (दे०) को श्रीकृष्ण का अवतार माना है।

'चैतन्य-मंगल' गेय रचना है। यह काव्य जनसाधारण के लिए है, शिक्षित वैष्णवों के लिए नहीं। जयानंद में कौशल अधिक नही था, अतः ग्रंथ काव्य-दृष्टि से सुंदर नहीं बन पड़ा। यह ग्रंथ मल्लभूमि प्रदेश में ही विशेष रूप से प्रचलित है।

'ज़रीफ़' लखनवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1870 ई०; मृत्यु—1937 ई०]

नाम : सैयद मक़बूल हुसैन, उपनाम : 'ज़रीफ़'; जन्मस्थान : लखनऊ; पिता का नाम : सैयद फ़ज़ल हुसैन। 'सफ़ी' नाम के प्रसिद्ध उर्दू कवि इनके बड़े भाई थे। उन्हीं के सत्संग और आशीर्वाद से इन्होंने साहित्यिक जीवन में पदार्पण किया था। हास्य रस के कवियों में इनका विशिष्ट स्थान है। 'अकबर' इलाहाबादी (दे०) के काव्य की तरह इनका काव्य भी सोद्देश्य ही है। मनोरंजन के साथ-साथ राजनीति, समाज और साहित्य की कुरीतियों पर प्रबल व्यंग्य-बाणों का संधान करना इनके काव्य की विशेषता है। समाज-सुधार की भावना से ओतप्रोत इनका काव्य यथेष्ट आह्लादकारी, रोचक और मार्मिक है। इनकी भाषा बड़ी कलात्मक और मुहावरेदार है तथा अभिव्यंजना-कौशल अत्यंत प्रभावशाली है। इनका काव्य-संकलन 'दीवान जी' के नाम से इनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुआ था। अनुभूति की तीव्रता और कला की प्रौढ़ता इनके काव्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। अपने युग में उर्दू-जगत के अत्यंत लोकप्रिय कवियों में इनकी गणना रही है।

जर्बे-ए-कलीम *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

'जर्बे-ए-कलीम' डा० इक़बाल (दे०) के उर्दू काव्य का तीसरा संग्रह है। इसमें वर्तमान युग के विरुद्ध

विद्रोह का आह्लादपूर्ण स्वर है अर्थात् वर्तमान युग की सभी त्रुटियों की आलोचना की गई है। इस कृति मे सकलित कविताओ पर भी इकबाल की दार्शनिकता की छाप विद्यमान है। इस्लामियत के प्रति आकर्षण भी इस कृति मे झलकता है। 'मुसलमान का जिवाल', 'हिंदी मुसलमान', 'इस्लाम', 'हिंदी इस्लाम' आदि कविताएँ इस रुझान की ओर सकेत करती है। इसके अतिरिक्त शिक्षा-दीक्षा सुधार एव जागृति के भावो स ओतप्रोत रचनाएँ भी इस सग्रह मे सम्मिलित हैं। नारी तथा पूर्वी-पश्चिमी राजनीति एव मार्क्सवाद-सबधी कविताएँ भी इस सग्रह मे सकलित हैं।

जलधरसेन (बँ० ले०) [जन्म—1860 ई०, मृत्यु—1939 ई०]

सामयिक पत्र के सपादक के रूप म बँगला साहित्य-क्षेत्र मे जलधरसेन का नाम अमर रहेगा। बगाल की विशिष्ट पत्र पत्रिकाओ—ग्रामवार्ता, बगवासी, सध्या बसुमती, हितवादी, सुलभ-समाचार एव भारतवर्ष—का इन्होने सपादन किया था। प्रारभिक कृतियो मे हिमालय प्रदेश एव उसकी प्रकृति की वर्णना से युक्त इनके 'प्रवास चित्र' (1899), 'हिमालय' (1899), पथिक' (1902) 'हिमालय वक्षे' (1903) आदि सकलित ग्रथ काफी प्रसिद्ध हुए थे। परवर्ती युग मे इन्होने 'विशुदादा' (1920), 'करिम शेख' (1924), 'परश-पाथर' (1924), भवितव्य' (1925), आदि बहुत से उपन्यासो की रचना की थी परतु मनोहारिता एव स्थायित्व की दृष्टि से इनकी हिमालय भ्रमण-गाथाएँ ही श्रेष्ठ है। इनके बहुत-स कहानी सग्रह भी प्रकाशित हुए थे जिनमे 'नैवेद्य' (1900), 'पुरातन पजिका' (1909), 'आशीर्वाद' (1925), 'एक पेयाला चा' (1924) आदि उल्लेखनीय हैं। सारल्य एव स्वच्छता इनकी रचनाओ के विशेष गुण है।

'जलाल' लखनवी (उर्दू० ले०) [जन्म—1832 ई०, मृत्यु—1909 ई०]

नाम—सैयद जामिन अली, उपनाम—'जलाल', पिता का नाम—हकीम असगर अली।

इन्होंने काव्य म 'नासिख' (दे०) की शैली के अनुकरण का प्रयास किया है और कहीं-कहीं 'मीर' (दे०) के पद चिह्नो पर भी चले है। अपने युग मे उर्दू के श्रेष्ठ कवियों म इनका विशिष्ट स्थान रहा है। इनके चार काव्य सग्रहो मे 'शाहिद-ए-शोख तबा', 'करिश्माजात-ए-सुखुन', 'मजमूनहा-ए-दिलकश' और 'नज्म ए-रगी' के अतिरिक्त शब्दकोश और व्याकरण पर भी अनेक ग्रथ आज उपलब्ध हैं जिनसे इनकी विद्वत्ता और बहुज्ञता का परिचय मिलता है।

जल्लण (प० ले०)

यह पजाब के अमृतसर जिले के एक गाँव के निवासी और सुथरा कवि (1615-1755 ई०) के समकालीन थे। इन्होने सरल भाषा मे कवितामय उक्तियाँ कही हैं जो क्षेत्रीय जनता ने कठस्थ कर ली और कालातर मे पजाबी साहित्य मे मान्य साहित्य के रूप मे स्वीकृत हो गईं। इनकी उक्तियाँ पहले देवनागरी लिपि मे लिखी गई थी, तत्पश्चात् उनका रूपातरण गुरुमुखी लिपि मे किया गया। जल्लण की वाणी मे हास्य रस का पुट है। इनकी वैराग्यमयी उक्तियाँ भी हृदय का स्पर्श करती हैं और अनेक लोकोक्तियो की भाँति प्रचलित हो गई हैं। इनकी रचना का एक उदाहरण है—

खाये कणक ते पहिने पट
उत्थे की करेगा जल्हण जट।
जल्हिया रब दा की पाउणा,
इधरो पुग्गा उधर लाउणा॥

जल्हण (स० ले०) [समय—बारहवी शती]

ऐतिहासिक काव्यो की परपरा मे 'सोमपाल-विजय' का नाम भी आता है। इसके कर्ता जल्हण के बारे मे इतना ही कहा जा सकता है कि वह काश्मीर-निवासी थे और सोमपाल नामक किसी राजा (बारहवी शती) के दरबार मे रहते थे। उसी की प्रशसा म इन्होने उक्त काव्य की रचना की। इस काव्य की मुख्य घटना तथा चरित्र विशुद्ध ऐतिहासिक हैं, किंतु कवि ने अनेक काल्पनिक घटनाओ की सृष्टि करके अपने नायक के चरित्र एव उत्कर्ष का बडी मनोरम शैली मे वर्णन किया है।

जवरे गौड, दे० (क० ले०) [जन्म—1918 ई०]

आधुनिक कन्नड के श्रेष्ठ गद्यकार दे० जवरे गौड का जन्म 1918 ई० मे बेंगलूर जिले के चन्नपट्टण के पास एक गाँव मे एक कृषक-कुटुब म हुआ। आपका जीवन

आरंभ से संघर्ष का जीवन रहा है। अपनी शिक्षा-दीक्षा पूरी होने पर 1946 ई० में आप मैसूर विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हो गए। अपनी कर्मठता एवं निष्ठा के कारण आप प्रोफ़ेसर बने, प्रिंसिपल बने और मैसूर विश्वविद्यालय के कुलपति भी रहे। आपने अब तक पचास से भी अधिक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें प्रमुख हैं—'ऐन्स्टीन', 'ऋषिकवि रवींद्र', 'मैडम क्यूरी', 'मोतीलाल नेहरू', 'गोपाल कृष्ण गोखले', 'राष्ट्रकवि कुवेंपु'। ये सब आपकी सफल जीवनियाँ हैं जो शैली के लालित्य के कारण लोकप्रिय हैं। 'कट्टुगलिकुमारराम', 'बेंगलूर कॅपेगौड' आपके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। पात्र एवं भावानुकूल भाषा इनकी विशेषता है। 'नंजुंडकवि', 'षडक्षरदेव', आदि आपकी श्रेष्ठ आलोचनात्मक कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त आपने कई प्राचीन ग्रंथों का विद्वत्तापूर्ण संपादन भी किया है जिनमें प्रमुख हैं—'कब्बिगर काव' (दे०), 'अजित तीर्थंकर पुराण-तिलकं', 'गिरिजाकल्याण-संग्रह' आदि। इनकी गवेषणापूर्ण भूमिकाओं का अपना ही महत्व है। श्री गौड एक सफल अनुवादक भी हैं। 'अकबर', 'नेतपु कहियल्ल', 'हम्मु बिम्मु' (Pride and prejudice) तथा 'पुनरुत्थान' आपके प्रमुख अनुवाद हैं। 'होराटद बदुकु' (संघर्षमान जीवन) इनकी आत्मकथा है जिसमें इन्होंने अत्यंत तटस्थता एवं संयम के साथ अपने जीवन-क्रम का निरूपण किया है। श्री गौड हमारे प्रतिनिधि गद्यकारों में हैं। 'रामायणदर्शनं वचनचंद्रिके' आपकी श्रेष्ठ गद्य-शैली की सफल कृति है। संयत शैली, वैचारिकता तथा अनुभूति-प्रवणता आपकी शैली की विशेषताएँ हैं।

जसवंतसिंह *(हि० ले०)* [जन्म—1626 ई०; मृत्यु—1678 ई०]

जसवंतसिंह मारवाड़ के प्रतापी राजा थे। इस साहित्य-मर्मज्ञ, गुणज्ञ और उदार शासक के दरबार में अनेक आश्रित कवि रहते थे। ये स्वयं भी कवि थे। इनका प्रख्यात ग्रंथ 'भाषा-भूषण' (दे०) है, जिसमें जयदेव-प्रणीत 'चंद्रलोक' (दे०) की संक्षिप्त शैली पर कुल 108 अलंकारों का निरूपण प्रायः एक-एक दोहे में किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमें नायक-नायिका-भेद को स्थान दिया गया है। यद्यपि काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से यह ग्रंथ सामान्य कोटि का है, किंतु इसकी ख्याति का प्रधान कारण यह है कि इसकी शैली सुगम और सुबोध है। इनके द्वारा प्रणीत अन्य ग्रंथ भी कहे जाते हैं जिनका विषय तत्वज्ञान है—'अपरोक्ष-सिद्धांत', 'अनुभवप्रकाश', 'आनंद-विलास', 'सिद्धांत-बोध' और 'सिद्धांत-सार'। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'प्रबोध-चंद्रोदय' नाटक भी लिखा था।

जसहर चरिउ *(अप० कृ०)*

'जसहर चरिउ' चार संधियों में पुष्पदंत (दे०) द्वारा रचित काव्य है। इसका मुख्य उद्देश्य है हिंसा के दुष्परिणाम दिखाते हुए मानव को अहिंसा की ओर प्रवृत्त करना।

इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है—राजा मारिदत्त ने भैरवानंद नामक कापालिकाचार्य से दिव्य शक्ति देने की प्रार्थना की। उसने एतदर्थ राजा से प्राणि-युग्मों की बलि देकर चंद्रमारी की आराधना का आदेश दिया। मनुष्य का जोड़ा न मिलने पर राजकर्मचारी अभयरुचि और अभयमती नामक क्षुल्लक श्रेणी के दो शिष्यों को पकड़ कर देवी के मंदिर में बलि के लिए लाया गया। उस बालक और बालिका के भोले और सुंदर मुख को देखकर राजा ने उनका परिचय पूछा। अभयरुचि ने सारी कथा सुनाई और बताया कि किसी पूर्व जन्म में वे दोनों क्रमशः यशोधर और उसकी माता थे। माँ ने आटे का कुक्कुट (मुर्गा) बनाकर पुत्र की मंगल-कामना के लिए उसको मारा था जिसके फलस्वरूप उन्हें कुक्कुट, साँप, नेवला आदि अनेक योनियों में भटकना पड़ा और अनेक जन्मों में कष्ट भोगने पड़े। हिंसा के दुष्परिणामों को सुनकर राजा मारिदत्त और भैरवाचार्य अपने पूर्वभवों को सुनकर, हिंसा को त्याग जैन-धर्म में दीक्षित हो गए। कालांतर में अभयरुचि और अभयमती भी भिक्षु और भिक्षुणी बनकर पावन जीवन व्यतीत करते हुए देवत्व को प्राप्त हो गए।

इस प्रकार इस ग्रंथ में हिंसामूलक धर्मों पर जैन धर्म की विजय प्रदर्शित की गई है। 'णायकुमार-चरिउ' की तरह इस कृति में अतिरंजित घटनाओं और रोमांटिक तत्त्वों का अभाव है। धार्मिक भावना और दार्शनिक विचारों के कारण कवित्व निखर नहीं पाया। फिर भी स्थान-स्थान पर वस्तु-वर्णन, प्रकृति-वर्णन आदि रोचक हैं।

जसीमउद्दीन *(बँ० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

प्रकृति के कवि जसीमउद्दीन आधुनिक बँगला काव्य के क्षेत्र में गाथा-कविता की मधुर स्वरलहरी के अविस्मृत

प्रसार मे आज भी साधनामग्न हैं। इनके 'नक्सी काथार माठ' (दे०) (1919) 'सोजन बादियार घाट' (1930), 'राखाली' (1930), 'धानखेत' (1932) आदि काव्य ग्रथ बगाल के गाँवो की सजल-कोमल स्निग्ध सुरभि के मधुर-स्पर्श से आवेग आकुलित है। इनके स्मृति ग्रथ 'ठाकुर बाड़ीर आगिना' मे रवीद्र (दे० ठाकुर) के प्रति कवि का नव नैवेद्य है। पूर्वी पाकिस्तान के निवासी कवि दोनो बगाल के साहित्यकारो के निकट आत्मीय है। पूर्वी बगाल के साप्रतिक नवजागरण मे कवि जसीमउद्दीन की काव्यधारा देशात्मबोध के जयगान से मुखरित है।

जसूजा, गुरुचरनसिंह *(प० ले०)*

दे० गुरुचरनसिंह।

जहर-ए-इश्क *(उर्दू० कृ०)*

जहर ए-इश्क' नवाब मिर्जा शौक की एक मसनवी है। इस मसनवी मे *एक प्रणय-गाथा का वर्णन* है। नायक नायिका के रूप लावण्य पर आसक्त हो जाता है। दोनो में प्रेम की पेंगें बढने लगती है। परतु भेद खुल जाने पर नायिका के माता पिता उसे लखनऊ भेज देत है। वहाँ से लौटने के पश्चात् उसका विवाह कही और किए जाने की बात चलती है जिससे क्षुब्ध हुई नायिका आत्म हत्या को उद्यत हो जाती है। आत्महत्या से पूव वह अपने प्रियतम से मिलकर उसे सात्वना देते हुए धीरज धरने, शवयात्रा मे सम्मिलित होकर भी शोक प्रकट न होने देने, व्यर्थ रोने-धोने की चेष्टा न करने तथा शीघ्र ही उसे भुला देने और अन्यत्र विवाह करके सुखपूर्वक जीवन बिताने की वसीयत करती है। प्रिया के आत्महत्या कर लेने पर नायक अधिक समय तक विरह पीडा को सहन न कर सकने के कारण विष खा लेता है किंतु उल्टी हो जाने के कारण विष के प्रभाव से बच जाता है। दो तीन दिन बेहोश रहता है। इस बेहोशी की अवस्था मे स्वप्न मे नायिका उससे वसीयत का पालन न करने पर रोष प्रकट करती है। होश आने पर वह बडा प्रसन्नचित्त होता है जैसे उसके मन का विरेचन हो चुका हो।

इस मसनवी की भाषा सरल तथा मुहावरेदार है। कुछ आलोचको ने इस मसनवी के प्रणय वर्णन पर नग्न हो जाने का आरोप लगाया है।

जहाँगीर सजाणा *(गु० ले०)* [जन्म—1896 ई०, मृत्यु—1965 ई०]

जहाँगीर सजाणा प्रमुखत एक भाषा मर्मज्ञ थे। पारसी होते हुए भी वे सस्कृत के प्रकाड पडित थे। इसके अतिरिक्त मराठी और हिंदी भाषाओ पर भी उनका आश्चर्यजनक अधिकार था। गुजराती साहित्य के मूर्धन्य लेखको की भाषा मे व्याकरण दोष दिखाकर उन्होंने सबको प्रभावित किया। प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक नरसिहराव भी बार बार भाषा के बारे म उनका परामर्श लेते थे। उन्होने वैदिक छदो पर और उपनिषदो पर लेख लिखे है। उन्होने बबई विश्वविद्यालय मे गुजराती साहित्य पर पाँच व्याख्यान दिए थ और *आलोचना-साहित्य मे अपनी मौलिकता का* परिचय दिया था। उनके ये व्याख्यान बबई विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित किए गए। उनकी और अन्य पुस्तक 'अनार्यना अडपला' (दे०) भी अत्यत क्रातिकारी पुस्तक थी जिसमे उन्होंने प्रचलित और परपरागत मान्यताओ को गलत बताया है। व भूतपूव बबई राज्य मे भाषानियामक थे।

जहाज का पछी *(हि० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1955 ई०]

यह इलाचद्र जोशी (दे०) के साहित्यिक विकास को रूपायित *करने वाला एक उल्लेखनीय उपन्यास है।* इससे पूर्व के उपन्यासो मे उपन्यासकार जहाँ काम कुठाग्रस्त, शकालु आत्मनिष्ठ मानसिक रोगो के शिकार सदृश पात्रो को आधार बना कर अपने उपन्यास का ताना-बाना बुनता था वहाँ इस उपन्यास मे उसने सामूहिक पीडा से दुखी व्यक्ति के अतर्मन की उलझनो को रूपायित किया है। महानगर कलकत्ता को आधार बनाते हुए तथा अपन युवक कथानायक को जीवन की विभिन्न स्थितियो मे डालकर लेखक ने न केवल कृत्रिम शहरी जीवन की ही पोल खोली है अपितु स्वार्थाध एव आत्मकेंद्रित व्यक्तियो पर भी करारी चोट की है। कथानक के अतिरिक्त लीला आदि कतिपय पात्रो के चरित्र पाठक को किंचित अस्वाभाविक अवश्य लगते हैं किंतु जहा कही मानसिक अतर्द्वंद्व का निरूपण किया गया है वहाँ यह अस्वाभाविकता दूर हो गई है। घटना तथा पात्र-बाहुल्य इस उपन्यास की उल्लखनीय दुर्बलताएँ हैं तथा मनोविज्ञान का आश्रय लत हुए यथार्थ जीवन का जीवत निरूपण इसकी सबसे बडी शक्ति।

जांभेकर बाळशास्त्री *(म० ले०)* [जन्म—1810 ई०; मृत्यु—1846 ई०]

इनका जन्म राजापुर के समीप पोंमुलेग्राम में हुआ था। 1829 ई० में एलफिन्स्टन विद्यालय में इन्होंने गणित और ज्योतिष विषयों का अध्ययन किया था। सरकारी सेवा में रहते हुए भी मिशनरी लेखकों का मुँह बंद कर इन्होंने अपनी स्वाभिमानी प्रवृत्ति का परिचय दिया था। संस्कृत, मराठी, अँग्रेजी, ग्रीक, लेटिन आदि बारह भाषाओं पर इनका अधिकार था।

इन्होंने सदैव नारी के समानाधिकारों का समर्थन ही नहीं किया था, विधवा-विवाह तथा अछूतोद्धार को भी स्वीकार किया था। हिंदू धर्म से धर्मांतरित किए गए ईसाइयों को शुद्ध कर पुनः हिंदू बना कर पतित-परावर्तन का इन्होंने श्रीगणेश किया था। इन समाज-सुधारों के समर्थन द्वारा इन्होंने प्रगतिशील मनोवृत्ति का परिचय दिया।

अर्वाचीन मराठी गद्य-साहित्य की नीव डाल उसे समृद्ध करने वालों में जांभेकर जी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा। ये आधुनिक मराठी के पहले निबंधकार हैं। इन्होंने 'व्याकरण', 'नीतिकाव्य', 'सारसंग्रह', 'भूगोल', 'विद्या', 'इंगलैंड का इतिहास' आदि ग्रंथों की रचना की।

लोकसेवा के लिए इन्होंने 'दर्पण' नामक मराठी-अँग्रेज़ी में साप्ताहिक निकाला तथा 'दिग्दर्शन' मासिक पत्रिका का भी प्रारंभ किया। सोद्देश्य पत्र-लेखन की नीव भी इन्होंने डाली थी। अपार पांडित्य, जाज्वल्य देश-प्रेम तथा अथक परिश्रम के कारण ये सदा स्मरणीय रहेंगे।

जागरी *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1948 ई०]

चतुर्थ दशक के उल्लेखनीय उपन्यासकार सतीनाथ भादुड़ी (दे०) का 'जागरी' उपन्यास राजनीतिक पटभूमिका पर अभिनव रूप-विधान में लिखी गई एक बहुत ही सशक्त औपन्यासिक रचना है। राजनीतिक संग्राम एवं राष्ट्र-चर्चा के स्तर पर लिखे गए उपन्यासों में 'जागरी' साहित्यिक मूल्य की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है। सन् '42 के अगस्त-आंदोलन में फ़रार असामी बड़े भाई को साम्यवादी छोटा भाई पकड़ा देता है। फाँसी की रात दोनों भाई एवं उनकी माँ के मन में जो कुछ भी घटित हुआ उसी का विवरण इस उपन्यास में दिया गया है। मरण के करस्पर्श से जीवन के समस्त अनुभव, आशा-आकांक्षाएँ, मन के विचित्र स्वप्न-विलास, असंभव आदर्श को रूप देने के नाना असंपूर्ण प्रयास, कल्पना-अभिसार पात्रों की चेतना में पर्दे की तस्वीरों की तरह एक-के-बाद-एक उदित और अस्त होती दिखाई पड़ती है। चेतना-प्रवाह की रीति में बँगला साहित्य में इतना व्यापक प्रयास और पहले कभी नहीं हुआ था। चेतना-प्रवाह-रीति के आश्रय से लेखक ने माँ, और नायक (लड़का) तथा उसके भाई के अवचेतन मन के विक्षिप्त स्मृतिसूत्रों को उद्घाटित किया है। तीन विच्छिन्न निःसंग मन आसन्न मृत्यु के संपर्क में चिंताकुल हैं—उनकी विच्छिन्नता में भी घटनाओं एवं उनके निकट संबंध का एक गहरा संपर्क है। कथा-वस्तु की एक नाटकीय संभावना का लेखक ने उचित व्यवहार किया है। कथा की मौलिकता एवं औपन्यासिक रूप-विधान के अभिनवत्व की दृष्टि से 'जागरी' बँगला उपन्यास का शिलास्मारक है।

जातक *(पा० कृ०)*

'सुत्तपिटक' (दे०) के अंतर्गत खुद्दकनिकाय का यह एक खंड है। इसमें बुद्ध के पुराने जन्मों का वर्णन है। वस्तुतः तत्कालीन लोक-कथाओं का यह एक बहुत ही सुंदर संकलन है। लोक-प्रसिद्ध किसी कथा को ले लिया जाता है और उसे बुद्धपरक बना दिया जाता है। इनमें बुद्ध नहीं, 'बोधिसत्व' (दे० बोधिसत्त) का वर्णन किया गया है जिसका अर्थ है ऐसा तेजस्वी व्यक्ति जो बुद्धत्व को प्राप्त करने की क्षमता रखता है। किसी कहानी में किसी मुख्य या अमुख्य पुरुष को अथवा किसी पशु को बोधिसत्व के रूप में चित्रित किया जाता है और उसके लोकोत्तर गुणों का अभिख्यान किया जाता है। कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं जिनका बौद्ध धर्म से संबंध स्थापित नहीं किया जा सकता। इन कथाओं का प्रयोजन बौद्ध धर्म का प्रचार तो कम, कथा का आनंद देना अधिक प्रतीत होता है।

'जातक' की मूल प्रति प्राप्त नहीं हुई है, अतः यह कहना कठिन है कि इनमें कितनी गाथाएँ 'त्रिपिटक' (दे०) का भाग हैं। केवल इनकी व्याख्या की एक पुस्तक 'जातकत्थवण्णना' प्राप्त हुई है जिससे ज्ञात होता है कि 'जातकत्थ' नामक एक पुस्तक का इसमें विवेचन किया गया है। इस पुस्तक में व्याख्या के अंतर्गत 5 तत्त्व सभी में रहते हैं—पच्चुपन्नवत्थु जिसमें बतलाया जाता है कि बुद्ध ने अमुक कथा कब कही, अतीतवत्थु या बुद्ध के पूर्वजन्म की कथा, गाथा या पद्य व्याकरण या व्याख्या और समोधान या वर्तमान का भूत से संबंध। शीलंका के किसी अज्ञातनामा

लेखक की यह कृति ही लगभग 500 उपलब्ध जातकों के स्वरूप-निर्धारण मे कारण हुई है ।

जातकों मे भारतीय कथा-साहित्य की अनेक धाराएँ पाई जाती है । इनमे उपदेशपरक काल्पनिक कथाऐं हैं, जीव-जतुओ की लोक-कथाएँ है, हास्य-विनोदपरक घटनाएँ और काल्पनिक कथाएँ है, लबे प्रेमाख्यान हैं जिनमे साहसिक कारनामे विशेष महत्व रखते हैं, नैतिकतापूर्ण उपाख्यान है, पौराणिक कथाएँ हैं । सक्षेप मे तत्कालीन कथा-साहित्य के विविध रूप इनमे सुरक्षित हैं । इनका अधिकाश भाग बौद्ध धर्म से असबद्ध है ।

जातक-तिलक *(क० कृ०)*

इसके रचयिता श्रीधराचार्य नामक एक जैन कवि हैं जिनका समय लगभग 1050 ई० ठहराया गया है । इनके दो ग्रथ हैं—'जातक-तिलक' तथा 'चद्रप्रभ-चरित' । दूसरा ग्रंथ अनुपलब्ध है । इसकी रचना चालुक्य-नरेश आहवमल्ल के आश्रय मे हुई । यह कद तथा वृत्तो मे लिखा गया ज्योतिष-ग्रथ है जिसमे 24 अधिकार है । ग्रथारभ मे जिन एव सरस्वती की स्तुति है । अधिकारात मे गद्य मे पुष्पिका है । इसकी शैली ललित है ।

जात्रा *(उ० पारि०)*

जात्रा-साहित्य के उद्‌भव के सबध में विद्वानो के दो मत है । प्रथम मत के अनुसार प्राचीन काल मे पुण्य-प्राप्ति की लालसा से, तीर्थ-यात्रा के समय, पथ की क्लाति को दूर करने के लिए जिस नृत्य-गीत की व्यवस्था की जाती थी, उसे 'जात्रा' कहते थे । विद्वानो के दूसरे वर्ग का मत है कि तीर्थयात्रा पूरी करने के बाद जब यात्री एकत्रित होते थे, उस समय वे सगीतमय अभिनय के व्याज से तीर्थ-देवताओं की महिमा का वर्णन करते थे । ऐसे अभिनय को जात्रा कहते थे । निष्कर्ष यह है कि जात्राएँ मूलत धार्मिक हुआ करती थी । कालातर मे अनेक स्थलो पर समाजपरक घटनाओ पर उपहासात्मक आलोचनाएँ इस धार्मिक साँचे मे सँजो दी गई । इनका प्रदर्शन दृश्य-रहित नाटक के रूप मे होता था । इनमे गीत एव नृत्य की बहुलता रहती थी । बाद मे ग्रामीण श्रोताओ का मनोरजन ही इसका उद्देश्य हो गया, फलत. इनमे हास्यमय चुटकुलो और वाक्यपटु कथोपकथन की भरमार होने लगी । वेशभूषा, वाद्ययत्र सभी पुराने ढग के होते थे ।

1881 ई० के बाद इसके नवीनीकरण का प्रयास हुआ । आधुनिक जात्रा-साहित्य मे नाटकीयता एव स्वाभाविकता अधिक है । इससे आधुनिक नाट्य-साहित्य के विकास म परोक्ष रूप से बडी सहायता मिली है ।

जान-ए-आलम *(उर्दू० ले०)* [जन्म— 1827 ई०; मृत्यु— 1888 ई०]

पूरा नाम—वाजिद अली, उपनाम—अख्तर । ये अवध के अतिम शासक थे । सिंहासनासीन होने से पूर्व इनकी उपाधि 'जान-ए-आलम' थी । राज्याभिषेक होने पर इन्हे 'सुलतान आलम' की उपाधि से अलकृत किया गया था । इन्हे यो तो समस्त ललित कलाओ से अत्यधिक अनुराग था परतु काव्य-कला के प्रति इनकी श्रद्धा चरम सीमा को स्पर्श करती थी । अपने युग के समर्थ कवियो मे इनकी गणना होती थी । कसीदा, मसनवी, गजल, मर्सिया, ठुमरी, गीत और दादरा इनके प्रिय विषय थे । इन सभी क्षेत्रो मे इनका योगदान महत्वपूर्ण है । गद्य और पद्य मे इन्होने लगभग 28 पुस्तके लिखी । ये सभी पुस्तकें इन्होने अपने निजी प्रकाशन द्वारा छपवाई थी किंतु आजकल दो-एक कृतियो को छोडकर शेष सभी कृतियाँ अप्राप्य है । 'मसनवी हिज्न-ए-अख्तर' इनकी प्रसिद्ध कृति है । इसमे लखनऊ से कलकत्ते तक की यात्रा का बडा मार्मिक वर्णन किया गया है और शासन के पतन का दुखडा अत्यत मर्मभेदी स्वर मे रोया गया है । इनका काव्य सरसता, सजीवता, वर्णनो की स्वाभाविकता और प्रवाहमयता का सुदर उदाहरण है ।

जान-ए-आलम *(उर्दू० पा०)*

(जान-ए-आलम अवध के बादशाह वाजिद अली शाह का लकब भी है और 'फसाना-ए-अजायब' का प्रमुख पात्र भी । प्रस्तुत टिप्पणी मे फसाना-ए-अजायब के प्रमुख पात्र का उल्लेख अभीष्ट है ।)

जान-ए-आलम रजब अली बेग 'सरूर' (दे०) द्वारा रचित उपन्यास 'फ़साना-ए-अजायब' का नायक है । यह बडे लाड-चाव मे पला शाहजादा है, माता पिता का इकलौता पुत्र होने के कारण सिंहासन का उत्तराधिकारी है । इसे सब प्रकार की आवश्यक शिक्षा-दीक्षा प्रदान की गई है । यह सब प्रकार से योग्य, मधुभाषी, पराक्रमी तथा युद्ध-कला मे निपुण है । सुदरता और मृदुभाषिता इनके

दो बड़े आकर्षक गुण हैं। लेखक ने इसके इन दोनों गुणों को खूब उजागर किया है। यह एक सफल वक्ता भी है। बंदर के भेष में संसार की क्षणभंगुरता पर इसका वक्तव्य इसके वक्तृत्व का प्रमाण है।

साधारण मानव की तरह इसके चरित्र की सीमाएँ हैं। सारे संकट इसके अपने ही उत्पन्न किए हुए हैं। मेहनिगार के कथनानुसार—'उसने जितनी मेहनत-ओ-मशक्कत उठाई, अपनी बाद-अक्ली की सजा पाई।' मलका मेहनिगार इसे अहमक (मूर्ख) समझती है। कहती है—'शहजादा-सा अक्ल का दुश्मन देखा न सुना।' जिन संकटों में जान-ए-आलम अपनी मूर्खता से फँसता है उनसे अपनी बुद्धिमता से छूट नहीं पाता। साहिरा, मेहनिगार और सफ़ेद देव इसकी मुश्किलें आसान करते हैं। यह संदेह-शील भी है। फिर भी इसके संयत स्वभाव, नम्रता, शिष्टता तथा सभ्यता आदि गुण बड़े आकर्षक हैं। यह किसी अन्य की धनाढ्यता से प्रभावित तथा आतंकित नहीं होता।

जानकी रामन, ति० *(त० ले०)* [*जन्म—1921 ई०*]

इनका जन्म तंजौर जिले के देवकुंडि नामक स्थान पर हुआ। जानकीरामन संस्कृत और अँग्रेजी के भी अच्छे विद्वान है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'कोट्टुमेळम्', 'शिवप्पुरिक्शा','अप्पर शास्त्री','यादुम ऊरे' (कहानी-संग्रह); 'अमिरदम्', 'मोहमुळ्', 'अम्मा वन्दाळ्', 'चेम्बरत्ती', 'मलर मंजम्', 'उयिर तेन' (उपन्यास); 'नालु वेलि निलम्', 'वडिवेलु वाद्यार' (नाटक) आदि। कमलम्', 'तोड्' और 'अवलुम् उमियुम्' नामक तीन लघु उपन्यास है। प्राचीन संस्कृति और कला के विनाश को देखकर लेखक का मन वेदना से भर उठना है। उसी वेदना की अभिव्यक्ति इन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से की है। इन्होंने अपनी रच-नाओं में तंजौर जिले के ब्राह्मणों के जीवन का अंकन किया है। इनकी भाषा-शैली पर इनकी अपनी बोली का स्पष्ट प्रभाव है। *जानकीरामन अपनी कहानियों और लघु उप-*न्यासों के लिए प्रसिद्ध है। इनके दोनों अभिनेय नाटक तमिल रंगमंच को विशिष्ट देन हैं।

जानकीवल्लभ शास्त्री *(हिं० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

1935 ई० तक ये संस्कृत में लिखते थे। इसके बाद हिंदी-साहित्य की अनेक विधाओं में दो दर्जन से अधिक रचनाएँ कर चुके हैं। इनकी प्रतिभा का पूरा उत्कर्ष गीतों में ही दिखाई देता है। इनके सहस्राधिक गीतों में 'प्रकृति, दर्शन, अध्यात्म सब गुँथ गए हैं।' भावोत्कर्ष, अर्थगांभीर्य, शब्द-सामंजस्य और संगीत-साधना की दृष्टि से इनके गीत सूर (दे० सूरदास), मीरा (दे० मीराबाई) और निराला (दे०), महादेवी वर्मा (दे०) की परंपरा को अक्षुण्ण रखे हुए हैं। एकांत में रहकर संघर्ष-जर्जर जगत् में पीयूष-स्रोत बहाने वाले इस गीतकार की अविचल साधना का अपना मूल्य है।

जानी, ज्योतिष *(गु० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

इनका जन्म 9 नवंबर, 1928 ई० को हुआ था। इनकी प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चशिक्षा सूरत में हुई और बंबई विश्वविद्यालय से इन्होंने बी० एस-सी० (आनर्स) की उपाधि प्राप्त की थी। बाद में इन्होंने गुजरात विश्वविद्या-लय से पत्रकारिता में डिप्लोमा प्राप्त किया। इन्होंने जब अपना 'फीणनी दीवालो' नामक 'काव्य-संग्रह' प्रकाशित कराया तो इनकी कीर्ति एक नूतन अग्रगण्य कवि के रूप में फैल गई। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कृतियाँ हैं—'चार दीवालो', 'एक हुंगर' (कहानी-संग्रह); 'चाखंडी ए चढ़ी चाल्या हसमुखलाल' (उपन्यास); 'अभिनिवेश' (*अन्य कहानी-संग्रह*), '*मानव*' (*अनुवाद*) *और* '*इब्सननां नाटकों*' (परिचय-पुस्तिका श्रेणी में)।

जीवन के प्रति इनकी दृष्टि इन्हीं के शब्दों में—'नास्तिक, असमाधानकारी, विस्मयजनक एवं निरर्थकता में अर्थ खोजने की व्याकुलता की है: संक्षेप में गहराई में जीने की है।' इनका साहित्य-सृजन का उद्देश्य विसर्जन एवं विसंवाद द्वारा सर्जन और संवाद का आलेखन करने का है।

व्यंग्य, वक्रोक्ति, विनोद और कटाक्ष-उपहास की भूमिका पर रह कर वास्तविक परिस्थितियों को कला-कृति में मूर्त करने का ये सदैव प्रयत्न करते हैं। आधुनिक गुजराती साहित्य में इनका एक निश्चित स्थान है। इन्होंने 'संज्ञा' नामक त्रैमासिक का संपादन भी किया।

जानी, विश्वनाथ *(गु० ले०)* [*समय—1652 ई० के* आसपास]

श्री विश्वनाथ जानी पाटण (उत्तर गुजरात) के निवासी थे।

'प्रेमपचीसी', 'सगाळ चरित्र', 'मोसाळा चरित्र' —ये इनके नाम से उपलब्ध प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। रचनाओं

मे 'कडवक' पद्धति का आश्रय लिया गया है। प्रत्येक 'कडवक' के अत मे कवि ने अपने नाम की छाप दे रखी है। साहित्यिक गुणो की दृष्टि से इनकी रचनाएँ प्रेमानद (दे०) की रचनाओ के समकक्ष है। अलकारो के प्रयोग मे इन्हे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है तथा करुण रस की उत्तम योजना इनका कृतिगत वैशिष्ट्य है। भालण (दे०), नरसिंह (मेहता—दे०), विष्णुदास (दे०) से ये प्रभावित भी है।

गुजराती के आख्यानकारो मे इनका स्थान प्रेमानद के समान ही महत्वपूर्ण है।

जाफर जटली *(उर्दू० ले०)*

मीर जाफर इनका नाम और 'जाफर' इनका तखल्लुस है। ये 'जटल अर्थात् 'अश्लील' काव्य के रचयिता होने के कारण 'जटली' कहलाए। उर्दू के प्रारभिक कवियो मे से ये एक हैं। इनके पूर्वज नारनौल के सैयदो मे से थे। 'जाफर जटली' को 'जटल' के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की कविता करना पसद न था। ये कहा करते थे कि मैं यत्न करके शिष्ट काव्य की रचना कर भी लूं तो 'सादी' अथवा 'फिरदौसी' नही बन सकता, अत 'जटल' कहूँगा कि विश्व विख्यात हो जाऊँ। ये काव्य कला मे निपुण थे।

स्वभाव के बडे उदार थे। एक बार इन्हे बादशाह आज़मशाह के दरबार से एक लाख रुपया पुरस्कार-स्वरूप मिला जो इन्होने रास्ते मे ही दीन जनो मे बाँट दिया। 'जाफर जटली' का अधिकतर काव्य फारसी मे है किंतु इसमे शब्दावली उर्दू की भी प्रयुक्त है। इनकी बहुत कम रचनाएँ अश्लीलता-दोष से मुक्त है।

जायसी *(हिं० ले०)* [रचना-काल—1550 ई० के लगभग]

ये सूफी फकीर शेख मुहीउद्दीन के शिष्य थे और जायस मे रहने के कारण जायसी कहलाए। उमेठी के राजघराने मे इनका बहुत सम्मान था, वही इनकी मृत्यु हुई थी। ये देखने मे काने और कुरूप थे और जब शेरशाह इनके अजीबो गरीब रूप को देखकर हँसा था, तब इन्होने कहा था—'मोहि का हँसेसि कि कोहरहि।' जायसी ने 'पदमावत' (दे०) 'आखिरी कलाम' और 'अखरावट' नामक तीन ग्रथ लिखे हैं, पर 'पदमावत' ही इनकी अक्षयकीर्ति का मुख्याधार है। 'पदमावत' मे प्रेम की पीर, लोक व्यवहार का प्रशस्त प्रारूप और अध्यात्म की गढ व्यजना दर्शनीय है। इन्होने समग्र ग्रथ को अन्योक्ति के रूप मे जिस ढग से प्रस्तुत किया है वह प्रत्येक दृष्टि से स्तुत्य है। इनकी भाषा पूर्णत अवधी है। भावाभिव्यजन के प्रति जो सचाई और ईमानदारी इनमे पाई जाती है वह बहुत कम कवियो मे देखने को मिलती है। मसनवी शैली के अनुरूप 'पदमावत' के प्रारभ मे 'शाहेवक्त' शेरशाह की स्तुति गाई गई है। रतनसेन (दे०) और पद्मावती (दे०) की प्रेम गाथा को इसमे लौकिक प्रतीको और उपमानो मे रखकर पूर्णत अलौकिक बना दिया गया है। 'अखरावट' मे वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर सिद्धात सबधी तत्वो से भरी चौपाइयाँ कही गई हैं। इस ग्रथ मे, जीव, माया सृष्टि, ईश्वर प्रेम आदि विषयो पर विचार प्रकट किए गए हैं। 'आखिरी कलाम' मे कयामत का वर्णन है।

कबीर (दे०) की फटकार हिंदू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित न कर सकी थी, किंतु जायसी ने हिंदू और मुसलमान दोनो को एक दूसरे के आमने-सामने रखकर इनका अजनबीपन मिटा दिया। कालक्रम से कुतबन (दे०) और मझन (दे०) का काल जायसी से पूर्व भले ही गिना दिया जाय, पर 'पदमावत' के माध्यम से प्रेम की मीठी-मीठी पीर उठाते हुए कवि ने जिस ढग से सामान्य जीवन की दशाओ को खोलकर सामने रखा है वह किसी कुशल कवि और पूर्ण व्यावहारिक व्यक्ति के जीवट का कार्य है। समग्रत सूफी कवियो मे जायसी का स्थान सर्वप्रथम है और उनका 'पदमावत' प्रत्यक्ष जीवन की एकता का नयनाभिराम दृश्य प्रस्तुत करने के कारण काल के पट पर एक अमिट चिह्न बन गया है।

जायसी-ग्रथावली की भूमिका *(हिं० कृ०)* [रचना-काल — 1924 ई०]

प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि जायसी (दे०) को उत्कृष्ट कवि के रूप मे प्रस्थापित करने का एकमात्र श्रेय हिंदी के समर्थ आलोचक आचार्य रामचद्र शुक्ल (दे०) को दिया जा सकता है। शुक्ल जी ने सर्वप्रथम पदमावत' (दे०), 'अखरावट', 'आखिरी कलाम' नामक जायसी की तीनो कृतियो का 'जायसी-ग्रथावली' नाम से सपादन किया था और दो सौ पृष्ठो से अधिक की विशाल भूमिका देकर कवि की विचारधारा, उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि और काव्य-कौशल का विस्तृत परिचय दिया। शुक्ल जी ने इस भूमिका

के अंतर्गत सूफी-परंपरा, जायसी का जीवनवृत्त, पदमावत का ऐतिहासिक आधार, पदमावत की प्रेम-पद्धति, पदमावत में ईश्वरोन्मुख प्रेम, जायसी का रहस्यवाद, जायसी की भाषा आदि बाईस शीर्षकों पर अधिकारपूर्वक लेखनी चलाई है। अंत में 'संक्षिप्त समीक्षा' शीर्षक के अंतर्गत पाँच पृष्ठों में वही बात कही गई है जो लेखक पहले कह आया है।

लेखक की भाषा नितांत परिमार्जित और विचारानुकूल है। सारी भूमिका को पढ़ जाने के बाद यह तथ्य एकदम स्पष्ट हो जाता है कि शुक्ल जी भाव, भाषा और अभिव्यंजना-शैली के पूर्ण 'डिक्टेटर' हैं। अपनी बात को वे पूर्ण साहस और शक्ति से कहते हैं और दूसरों को अपनी बात मनवाने के लिए निरुत्तर कर देते हैं। एक स्थान पर वे लिखते हैं—'बिना किसी निर्दिष्ट विवेचन के यों ही कवियों की श्रेणी बाँधना और एक कवि को दूसरे कवि से छोटा या बड़ा कहना हम बहुत भौंड़ी बात समझते हैं।'···प्रेमगाथा की परंपरा के भीतर जायसी का नंबर सबसे ऊँचा ठहरता है।····'पदमावत' हिंदी साहित्य का एक जगमगाता रत्न है। 'पदमावत' में प्रस्तुत-अप्रस्तुत के समन्वय की स्थापना, सारे 'पदमावत' को अन्योक्ति मानना, जायसी पर विभिन्न विचारधाराओं के प्रभाव का अन्वेषण आदि बातें शुक्ल जी की कवि के संबंध में दृढ़ मान्यताओं की प्रतीक हैं। शुक्ल जी के बाद डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (दे०) ने भी जायसी का सांस्कृतिक मूल्यांकन करते हुए 'पदमावत' का प्रामाणिक संकलन प्रस्तुत किया है। यों तो शुक्ल जी के बाद जायसी पर शोध-कार्य करने वालों का एक ताँता-सा लग गया है, पर जो बात शुक्ल जी अपने दो सौ पृष्ठों की भूमिका में कह गए हैं उसे पीछे छोड़ आने का दावा उसी दिन किया जा सकेगा जिस दिन इतनी ही बड़ी मानवीय संवेदना जगाकर जायसी-जैसे किसी अज्ञान कवि को उद्घाटित किया जाएगा।

जापुवा, गुर्रमु *(तें० ले०)* [जन्म—1895 ई०; मृत्यु—1971 ई०]

लघु कविताओं के लेखक के रूप में श्री जापुवा को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। उत्कट राष्ट्र-प्रेम और आंध्र-प्रेम इनके प्रमुख गुण हैं। स्वयं निर्धन एवं अस्पृश्य होने के कारण समाज में इस वर्ग के साथ होने वाले अत्याचारों को देखकर ये मार्मिक पीड़ा का अनुभव करते हैं और समाज में इस पीड़ित वर्ग को मानवोचित सम्मान एवं गरिमा प्रदान करने के लिए अपनी रचनाओं द्वारा सचेष्ट रहे हैं।

'फिरदौसी (दे०), 'गब्बिलमु' (दे०), 'बापूजी', 'नेताजी', 'खंडकाव्यमु' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। सरलता, माधुर्य एवं समगति इनकी भाषा-शैली की मुख्य विशेषताएँ हैं। इनके भाव तीक्ष्ण एवं उष्ण बाणों की तरह सीधे पाठक के हृदय को बेधते हैं। लोकप्रिय इतिवृत्तों को लेकर एक निजी और जनरंजक शैली में इन्होंने रचनाएँ की हैं। चामगादड (दे० गब्बिलमु) जैसे क्षुद्र विषय भी इनकी कविता के विषय बन गए हैं। वास्तव में इनके व्यथा-पूरित हृदय का उफान ही इनकी रसार्द्र कविताओं के मूल में रहता है।

ज़िंदगी के मोड़ पर *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

यह पुस्तक चालीस सच्ची कहानियों का संकलन है। इन कहानियों को अलग-अलग लेखकों ने लिखा है जिन्हें 'ज़िंदगी के मोड़ पर' शीर्षक के अंतर्गत श्री बशीर अहमद चौधरी ने संकलित किया है।

इन कहानियों से हमारे समसामयिक जीवन के तथ्यों का उद्घाटन होता है तथा व्यष्टि एवं समष्टि जीवन-विषयक सामग्री उपलब्ध होती है। इन कहानियों से जीवन के प्रति निष्ठा बढ़ती है, जीवन-मूल्यों का महत्व खुल कर सामने आता है और इनसे हिम्मत और हौसला बढ़ता है।

इनके लेखक हमारी अर्थव्यवस्था से संबद्ध विभिन्न व्यक्ति हैं।

जिकिर *(अ० पारि०)* [रचना-काल—1634 ई० अथवा 1734 ई०]

इन गीतों के साथ आजान पीर का नाम जुड़ा हुआ है। कोई इन्हें अरब देश से आया मानते हैं और कोई अजमेर से। प्रवादानुसार गीतों की संख्या 8 कोड़ी है। इनके दो रचना-काल दिए गए हैं: 1045 हिजरी (1634 ई०) और 1145 हिजरी (1734 ई०)। अनेक जिकिर गीतों में लोक-साहित्य और वैष्णव गीतों की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। जिकिर में बाहर की नमाज आदि की जटिलता त्याग कर अंतर की ध्वनि को सुनने और एक ईश्वर के नाम लेने का निर्देश है। 'देह विचारर' (दे०) गीतों का भी इन पर प्रभाव पड़ा था।

जिगर अने अमी (गु० कृ०)

यह स्वर्गीय चुनीलाल वर्धमान शाह (दे० शाह) का सत्य घटनात्मक उपन्यास है जिसकी सरचना विश्वभर (जिगर) उर्फ पडित विश्वबधु की डायरी के पृष्ठो के आधार पर हुई है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक है विश्वभर (जिगर) तथा नायिका चद्रावली (अमी) है। जिगर तथा अमी के वास्तविक और अद्भुत प्रेममय जीवन की यह कथा गुजरात मे सुप्रसिद्ध है और इसका फिल्मीकरण भी हुआ है।

जिगर छोटी आयु मे ही माता-पिता के सुख से वचित हो गए थे और इनका पालन पोषण इनके दादा शारदाचद्र की छाया मे हुआ था। 14-15 वर्ष की अल्प आयु मे ही वे गृह त्याग कर चले गए थे किंतु बाद मे वापस आए और इनका विवाह प्रिंसिपल चद्रशेखर की गुणवती पुत्री चद्रावली के साथ हुआ था। चद्रावली की बहन चद्रआभा तो अपने बहनोई के साथ शादी तक करने को उत्सुक थी किंतु ईर्ष्या की पराकाष्ठा तो वहाँ है जहाँ जिगर की चरित्र भ्रष्ट सौतेली माँ दूध मे विष मिलाकर जिगर के अनजाने मे जिगर के ही हाथो अमी को पिलवा देती है जिससे अमी की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु की वेला मे अमी अपनी बहन चद्रआभा को पत्नी-रूप मे ग्रहण करने का प्रस्ताव रखती है। अमी की मृत्यु के आघात से पीडित जिगर स्वय करेंट से आत्महत्या करने को प्रवृत्त होते हैं किंतु किसी तरह बचा लिये जाते है। अमी की चिता के समीप जिगर काचन तथा कामिनी के परित्याग की प्रतिज्ञा करते हैं। बाद मे वे किसी को सूचित किए बिना दिल्ली छोडकर काश्मीर की ओर चले जाते हैं। यहाँ उपन्यास का पूर्वार्ध समाप्त होता है।

उत्तरार्ध मे जिगर अनेक लोगो के सपर्क मे आते हैं। स्त्रियाँ उन्हें काम-विह्वल करने का प्रयत्न करती है किंतु अमी की प्रेम निधि से सपन्न जिगर पर इनका कोई प्रभाव नही पडता तथा काचन और कामिनी के परित्याग की इनकी प्रतिज्ञा बाधित नही होती। इस समय इनकी आयु बीस वर्ष की थी। इसी समय वे जैन धर्म के प्रति आकर्षित हुए और विशुद्ध विजय नाम से जैन साधु के रूप मे दीक्षा ली। लेखक ने इस प्रसग मे एक ओर सात्त्विक दृष्टि-सपन्न साधु-साध्वियो का चित्रण किया है और दूसरी ओर शिथिलाचारिणयो का। तेंतीस वर्ष की आयु मे लेखक को अपनी अमी दूसरे जन्म मे मिली। उसका नया जन्म बबई मे महाराष्ट्रीय कुल मे पुष्पकाता नाम स हुआ। दोनो ने एक-दूसरे को पहचान लिया। जिगर को पुष्पकाता की देह मे विद्यमान अमी की आत्मा की पूर्ण प्रतीति हुई किंतु दुर्भाग्यवशात् दोनो का मिलन न हो सका। अत पुष्पकाता ने अगले जन्म मे पुनर्मिलन होगा—ऐसा मानकर अफीम खाकर अपना शरीर त्याग दिया। पूरे सत्रह साल साधु-जीवन व्यतीत करने के पश्चात् इस आघात मे जिगर अहमदाबाद आकर थियोसोफिस्ट बन समाज-सेवा की ओर प्रवृत्त हुए। जीवन-यापन के लिए मात्र चालीस रुपये मासिक मे शिक्षक का व्यवसाय स्वीकार किया तथा पुनर्जन्म मे अमी की प्राप्ति की श्रद्धा लिये शेष जीवन व्यतीत किया। 9 सितबर, 1958 को इसी श्रद्धा तथा विश्वास को लिये उन्होने शरीर त्याग दिया।

यही है जिगर तथा अमी के वास्तविक जीवन की मार्मिक कहानी।

जिगर मुरादाबादी (उर्दू० ले०)

इनका नाम अली सिकदर और तखल्लुस 'जिगर' है। ये मुरादाबाद के रहने वाले थे और इनका जन्म उन्नीसवी शती के अतिम दशक मे हुआ था। इनके पिता मौलवी नजर अली भी शायर थे। जिगर की शिक्षा बहुत साधारण थी। ये थोडी-सी फारसी और अंग्रेजी भी जानते थे। रगीनी, सौंदर्यप्रियता तथा भ्रमणशीलता इनके विशेष गुण थे। 13-14 वर्ष की आयु मे शेर कहने लगे थे। पहले 'दाग' (दे०) के और उनके बाद मुशी अमीरुल्ला 'तस्लीम' के शागिद हुए।

'जिगर' की शायरी मे शोखी, मामलावदी असर, सरूर और मस्ती एक खास शान स पाई जाती है। 'जिगर' के कलाम का एक बडा गुण सादगी और रवानी है। इनका शब्दचयन प्रशसनीय होता है। सादा फारसी समासो का प्रयोग करते हैं जिसमे प्रवाह मे बाधा नही आती। इन्होने मुहावरो का उचित तथा सुदर प्रयोग किया है। जिगर की रचनाओ मे शब्दो तथा भावो की आवृत्ति प्राय पाई जाती है। यह प्रवृत्ति कभी-कभी अस्वाभाविक भी हो जाती है।

'दाग-ए जिगर', 'शोल-ए-तूर' (दे०) तथा 'आतिश-ए-गुल' (दे०) इनके काव्य-सग्रह हैं जिनसे क्रमश गभीरता, शक्ति, प्रभाव तथा प्रौढता का विकास होता गया है—भाषा भी उत्तरोत्तर फारसी मिश्रित होती गई है।

जिणदत्त चरिउ (जिनदत्त-चरित्र) *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1218 ई०]

'जिणदत्त चरिउ' पंडित लाखू या लक्खण (लक्ष्मण) (दे०) द्वारा रचित एक अप्रकाशित कृति है। कवि ने इसमें ग्यारह संधियों में जिनदत्त के चरित्र का चित्रण किया है। इस कृति की रचना श्रीधर के आश्रय में हुई थी।

जिनदत्त का विमलमती के सुंदर रूप को चित्र में देखकर उसकी ओर आकृष्ट होना और उससे विवाह कर लेना, समुद्र-यात्रा करते हुए सिंघलद्वीप पहुँच कर सुंदरी राजकुमारी श्रीमती को प्राप्त करना, वहाँ से प्रभूत धन-संपत्ति उपार्जित कर लौटते हुए इसके प्ररोहण के ध्वस्त हो जाने पर दोनों का वियुक्त हो जाना और कालांतर में भाग्यवश दोनों का पुनर्मिलन इत्यादि। कथानक-रूढ़ियों का सन्निवेश इस कृति में मिलता है।

जिनदत्त की कथा धर्म के आवरण से आवृत एक सुंदर प्रेम-कथा है। अपभ्रंश की प्रवृत्ति के अनुरूप इस कथा में अलौकिक घटनाओं का समावेश भी दृष्टिगत होता है।

इस कृति में स्थल-स्थल पर सुदर वर्णन उपलब्ध होते हैं। क्या भौगोलिक वर्णन, क्या प्राकृतिक वर्णन और क्या नारी-सौंदर्य-वर्णन—सब अलंकृत भाषा में हैं। अंतिम संधियाँ कुछ नीरस हो गई है। कवि ने काव्योपयुक्त अलंकृत वर्णनों में अनुप्रास के साथ-साथ, श्लेष और यमक अलंकारों का भी स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है। इससे छंद लययुक्त होकर श्रवण-सुखद और हृदयहारी हो गए है। शब्द-योजना-चातुर्य से कृति की भाषा भी अत्यंत सरल बन गई है। इस कृति में कृतिकार ने अनेक मात्रिक और वर्णिक छंदों का प्रयोग किया है।

जिद्दी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

यह आरिफ़ मारहरवी द्वारा रचित उपन्यास है। इसका नायक राम एक अंतर्मुखी भावनाशील युवक है। वह सुखदेव-निवास के उजाड़ स्थान में शांति नाम की एक युवती को देखता है और उसके प्रेमपाश में फँस जाता है। शांति का विवाह एक बूढ़े खूसट सुखदेव नाम के व्यक्ति से हुआ था। लोग शांति को मृत समझते हैं और मानते है कि उसकी आत्मा प्रेतरूप में सुखदेव-निवास में रहती है। राम शांति के विरह में व्याकुल रहता है और अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। उसका विचार है कि ज़िद करने पर तो भगवान भी मिल जाते हैं। राम भी अपनी प्रेयसी के लिए ज़िद करता है और अंततः उसे प्राप्त कर लेता है। प्रारंभ में उपन्यास दुःखात्मक रहता है किंतु इसका अंत सुखात्मक है। इस उपन्यास में हिंदू स्त्री की पतिभक्ति का भी अच्छा वर्णन हुआ है। बेमेल विवाहों पर भी इसमें एक तीखा कटाक्ष विद्यमान है।

लेखक शब्दों द्वारा भयावह वातावरण का चित्रण करने में सफल रहा है। भाषा प्रौढ़ तथा प्रवाहमयी है। उपन्यास का आरंभ भयप्रद किंतु अंत सुखद है। यह उर्दू के सफल उपन्यासों में गिना जाता है।

जिनदत्त सूरि *(अप० ले०)* [जन्म—1075 ई०; मृत्यु—1153 ई०]

जिनदत्त सूरि जिनवल्लभ सूरि के शिष्य थे। ये संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के विद्वान् थे। अपभ्रंश भाषा में लिखित इनके तीन ग्रंथ—'उपदेश-रसायन-रस' (दे०), 'कालस्वरूप कुलक' (दे०) और 'चर्चरी' (दे०)—उपलब्ध हैं। इन्होंने संस्कृत और प्राकृत में भी रचना की है। जन्म का नाम इनका सोमचंद्र था। अपने गुरु जिनवल्लभ सूरि की मृत्यु के उपरांत इन्होंने सूरि-पद प्राप्त किया और अपना नाम जिनदत्त सूरि रखा। मरुदेश, नागपुर, अजमेर आदि स्थान इनके विहार-स्थल थे। ये स्थान-स्थान पर भ्रमण करते हुए धर्मोपदेश दिया करते थे।

जिनदत्त सूरि का प्रधान लक्ष्य श्रावक-श्राविकाओं के चरित्र का निर्माण करना तथा संघ के आध्यात्मिक स्तर को ऊँचा उठाना था। इन्होंने परलोक-सुधार की चिंता न कर इसी लोक में एक आदर्श समाज की स्थापना का प्रयत्न किया। यही कारण है कि इन्होंने गृहस्थों को संबोधित करते हुए अपनी कृतियों की रचना की है। इनकी कृतियों की भाषा साहित्यिक पश्चिमी अपभ्रंश है।

जिप्सी *(गु० ले०)*

दे० किशनसिंह चावड़ा।

जिलाजुगत *(उर्दू० पारि०)*

इसमें 'रियायते-लफ़्ज़ी' का ख्याल किया जाता है; मसलन अगर धोबी का जिक्र आए तो इस्त्री, पाट,

कलफ वगैरा इस तरह लाएँ कि ये लफ्ज बोलने मे तो आएँ लेकिन इनके वे मानी न लिये जाएँ बल्कि दूसरे मानी हो, जैसे 'छलिया' का जिक्र किया जाए तो इस तरह—

"छा लिया मुझको तेरे गम ने मै ऐसा वतथा"

इसी से ईहाम (श्लेष) भी पैदा होता है।

जीमूतवाहन *(स० पा०)*

महाराज हर्षवर्द्धन (दे० श्रीहर्ष)-कृत 'नागानद' (दे०) नाटक का नायक जीमूतवाहन बौद्ध जातक कथाओ की देन है। वह अत्यत सुदर एव साहसी राज कुमार है। देशाटन का उसे बहुत शौक है। इसी प्रसग मे वह एक बार नागलोक पहुँच जाता है। वहाँ की राजकुमारी मलयवती का गीत सुनकर वह उस पर मुग्ध हो जाता है। मलयवती भी इसके व्यक्तित्व पर लुब्ध होकर इसे अपना पति वरण कर लेती है। जीमूतवाहन राजकीय अतिथि के रूप मे वहाँ रहने लगता है।

एक दिन की बात है कि मलयवती को अपनी भावी पत्नी के रूप मे पाकर वह अपना सौभाग्य सराहते हुए जा रहा है कि एक स्त्री का रुदन सुनकर उस ओर मुड जाता है। ज्ञात होता है कि गरुड के खाने के लिए सर्पराज ने सर्पो की बारी बाँध दी है और आज उसके एकमात्र पुत्र की बारी आ गई है। माँ इसीलिए रो रही है। जीमूतवाहन बिना किसी विलब के वध्य वस्त्रो को उठाता है और बिना कुछ कहे उन्हे पहनकर वध्य-शिला पर पहुँच जाता है और अपने को गरुड का आहार बना देता है। लेकिन ऐसे महापुरुष को पहचानने मे गरुड को भी देर नही लगती। अत मे अमृत की वर्षा से वह पुनर्जीवित हो जाता है।

जीमूतवाहन को दयावीर का निदर्शन माना गया है। अपनी दया की भावना से द्रवित होकर वह अपनी प्रेमिका मलयवती को भी भूल जाता है। जीमूतवाहन मे इसके अतिरिक्त भी कई श्लाघ्य गुण है। वह कला का उपासक एव सौंदर्य का पारखी है तथा एक ऐसा राजकुमार है जो आम जनता के दुख-सुख मे हाथ बँटाता है।

जीवकचितामणि *(त० कृ०)* [रचना काल—ईसा की दसवी शती]

'जीवकचितामणि' जैन मुनि एव महाकवि तिरुत्तक्कदेवर की अमर रचना है। इसे तमिल के पाँच प्रसिद्ध महाकाव्यो म परिगणित किया जाता है। इस कृति म 3145 पद है और यह 13 खडो मे विभाजित है। 'जीवकचितामणि' म कवि ने जीवक नामक राजकुमार का जीवन वृत्त प्रस्तुत किया है। काव्य का नायक जीवक आठ विवाह करता है। जीवन के सभी सुखो और दुखो को भोगने के उपरात वह राज्य और परिवार का त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लेता है। अत मे उसे सशरीर मुक्ति मिल जाती है। इसमे लेखक ने जैन मतानुसार गृहस्थ जीवन के स्वरूप को स्पष्ट किया है। उसका कहना है कि गृहस्थ-जीवन के सुखो का उपभोग करते हुए भी हमारा ध्यान मोक्ष की ओर केंद्रित रहना चाहिए। इस ग्रथ मे मूलत श्रृगार रस की अभिव्यजना हुई है। नायक के आठ विवाहो का वर्णन होने के कारण इसे 'मणनूल' (विवाह-ग्रथ) भी कहा जाता है। इसकी भाषा सरस, सरल एव मधुर है। विभिन्न स्थलो पर उपमा, रूपक आदि अलकारो का सफल प्रयोग हुआ है। इसमे मुख्यत 'विरुत्तम' छद का प्रयोग हुआ है यद्यपि इससे पूर्ववर्ती कुछ कृतियो म भी विरुत्तम छद का प्रयोग हुआ है। परतु इसे काव्योपयोगी बनाने का श्रेय तिरुत्तक्कदेवर को ही है। तमिल के परवर्ती कवियो ने इनकी शैली का अनुसरण किया है। यह काव्य तत्व के नाना गुणो से युक्त है। इसम पग पग पर कल्पना-बाहुल्य और अर्थ गाभीर्य दृष्टिगत होता है। इसका साहित्यिक, धार्मिक और ऐतिहासिक महत्व अक्षुण्ण है।

जीवक वपुदि *(त० पा०)*

जीवक वपुदि तमिल के प्रमुख नाटक 'मनोन्मणीयम' (दे०) के प्रमुख पात्रो मे स है। 'मनोन्मणीयम' शेक्सपियर के नाटको के समान एव पद्यबद्ध नाटक है। इसकी रचना सुदरम पिल्लै (दे० सुदरम) न उन्नीसवी शती मे की थी। यह नाटक लार्ड लिटन के 'द सीक्रेट वे' पर आधृत है।

जीवक वपुदि पाड्य देश का राजा है। वह मनोन्मणीयम नाटक का नायक है। नाटक म उसका चित्रण गुणो एव दुर्गुणो स युक्त मनुष्य के रूप म किया गया है। वह अत्यत वीर है। अपनी वीरता के बल पर बडे-स बडे शत्रु को पछाडने की शक्ति रखता है। जीवक वपुदि प्रेमी पिता है। वह अपनी मातृविहीन एकमात्र पुत्री मनोन्मणी की सुख-सुविधा का हमेशा ध्यान रखता है। वह सिद्धातवादी और दृढप्रतिज्ञ है। भीषण परिस्थितियो मे भी मित्रो को दिए गए वचन स नही डिगता। वह अपने कुलगुरु

सुंदरवडिवेलु वा बहुत आदर करता है।

जीवक यद्यपि अत्यंत अबोध है। वह प्रत्येक सफ़ेद पदार्थ को दूध समझता है। उसकी सिद्धांतवादिता कहीं-कहीं ज़िद्दीपन की सीमा में पहुँच गई है। वह एक बार जिस विचारधारा को अपना लेता है उसे नहीं छोड़ता। आलोचकों ने इसे 'एडुप्पार कैप्पिळ्ळै' अर्थात् 'शक्तिशाली के हाथ का खिलौना' कहा है। विचारों की दृढ़ता का अभाव होने के कारण वह सदा प्रबल व्यक्ति का पक्ष लेता है। अपने कुलगुरु सुंदरवडिवेलु द्वारा समझाए जाने पर भी वह नाटक के खलपात्र कुडिलन के कपट-जाल में फँस जाता है।

जीवनधर्मयोग (क० कृ०)

'जीवनधर्मयोग' अथवा 'भगवद्गीता-तात्पर्य' कन्नड के प्रतिभाशाली साहित्यकार डॉ० डी० वी० गुंडप्पा (दे०) की प्रौढ़ कृति है। विद्वानों का कहना है कि तिलक जी के 'गीता-रहस्य' के पश्चात् इस शती में भारतीय भाषाओं में गीता पर लिखे ग्रंथों में यह सर्वश्रेष्ठ है। उनके अनुसार गीता मोक्षशास्त्र भी है, जीवनशास्त्र भी। उन्होंने प्रत्येक अध्याय का शीर्षक अपने ही ढंग से दिया है। प्रत्येक अध्याय के आरंभ में उसका सारांश तथा सूचना दी जाती है। प्रत्येक पटक के अंत में उसका सारांश एक पद में पूरा दिया गया है। पारिभाषिक शब्दों की अर्थ-व्याप्ति बढ़ा दी गई है। कहीं पूर्वापर विरोधाभास-सा लगता है तो उसका ठीक समाधान भी वे देते हैं। प्रत्येक अध्याय के निरूपण में यह दिखाने का प्रयास है कि गीता जीवन का मार्गदर्शन भी करती है। उपनिषद्, भागवत आदि से गीता की उक्तियों की समनुरूपता भी दी गई है। उनका कहना है कि गीता का बोध एक ग्रंथ या ग्रंथकर्ता का बोध नहीं बल्कि एक संस्कृति में अभिनिवेश है। इस ग्रंथ में रचयिता का उद्देश्य है—हमारे मताचार्यों में किसी का भी विरोध न कर आत्मविलोकन करना। जहाँ कहीं भिन्नाभिप्राय है वहाँ व्यक्ति के अपने मतानुसार अभिप्राय चुनने की छूट है। अतः खंडन-मंडन के पीछे वे नहीं पड़े। उनके अनुसार द्वैत, विशिष्टाद्वैत एवं अद्वैत स्वतःसमर्पण, स्वतःसहभाग एवं स्वतःविलयन के तीन सोपानों को दर्शाते हैं। गुंडप्पा जी ने 'गीतोपदेश' का सार एक ही बात में यों दिया है—जीव-संस्कार। उत्तम गति के लिए कुछ संस्कार वांछित हैं, उन संस्कारों का समूह ही कर्म है। डी० वी० एक रस-सिद्ध कवि भी हैं, श्रेष्ठ मनीषी भी। उनकी वाणी में चिंतन, भावना तथा कल्पना की त्रिवेणी है। उनकी भाषा अत्यंत सरल किंतु सक्षम है।

जीवन नुंपरोढ़ (गु० कृ०)

महात्मा गांधी (दे०) के भतीजे छगनलाल गांधी के पुत्र प्रभुदास गांधी (दे०)-रचित 'जीवन नुंपरोढ़' एक संस्मरणात्मक आत्मकथा है जिसमें आत्मकथा-लेखक ने अपने बचपन से लेकर किशोरावस्था की अनेक घटनाओं व प्रसंगों के माध्यम से बापूजी के दक्षिण अफ्रीका के जीवन व कार्य का इतिहास प्रस्तुत किया है। जुलाई, 1914 ई० तक बापूजी अफ्रीका में रहे। तब तक के कार्य का विवरण इसमें है। मूलतः ये संस्मरण आश्रम की हस्तलिखित पत्रिका 'मधपूडो' के लिए लिखे गए थे। इनके पीछे काका कालेलकर (दे०) की प्रेरणा व प्रोत्साहन का बल रहा है। प्रथम भाग के 21, दूसरे भाग के 21, तीसरे भाग के 21 तथा चौथे के 20 व 2 परिशिष्ट सब मिलाकर कुल 632 पृष्ठों की पाठ्य सामग्री है।

प्रारंभिक पृष्ठों में गांधी-परिवार के पूर्वजों का संक्षिप्त इतिहास, गांधी जी के बाल्यकाल, शिक्षा-दीक्षा व भारत लौटकर अफ्रीका जाने का विवरण है। तत्पश्चात् लेखक के बचपन की अनेक घटनाएँ वर्णित हैं जिनसे यह प्रमाणित होता है कि वे बहुत ही सामान्य स्तर के, अभ्यास-पराङ्मुख, हठाग्रही व उपद्रवी रहे। उनके काका मगनभाई गांधी के क्रोध के वे प्रायः भाजन होते थे। इन्हीं से लेखक का चरित्र-गठन व चरित्र-निर्माण हुआ। महात्मा गांधी से अवश्य उन्हें स्नेह व सद्गुणों की प्राप्ति हुई। टालस्टाय आश्रम, गोखले जी का अफ्रीका में भव्य स्वागत तथा गांधी जी वगैरा की जेल-यात्रा आदि का सरस व प्रामाणिक वर्णन-विवरण लेखक ने इसमें दिया है। गुजराती में लिखित गांधी-साहित्य तथा संस्मरण व आत्मकथा साहित्य में प्रभुदास गांधी की इस रचना का महत्वपूर्ण स्थान है।

जीवनर दावी (अ० कृ०)

लेखक : कामाख्या सभापंडित।

उदीयमान उपन्यासकार की इस कृति में एक साधारण प्रेस-मजदूर की आशा-आकांक्षाओं और उसके जीवन की व्यर्थता का चित्र खींचा गया है।

जीवनर बाटत *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1945 ई०]

लेखक . बिरिंचिकुमार बरुवा (दे०)।

जीवन की बाट, जीवन का गतिपथ ऋजु नही है—यही इस उपन्यास मे बताया गया है। कथा इस प्रकार है—गाँव की भोली युवती तगर सहेली के विवाह मे आए हुए एक शहरी युवक कमलाकात से परिचित होती है। अत्यत स्वाभाविक रीति से दोनो के मध्य प्रणय का विकास होता है। तगर के प्रेम मे आधुनिक-काल की प्रगल्भता नही है, वह लज्जाशीला है। कमलाकात उसे अँगूठी पहना कर शहर चला जाता है और उसे दुष्यत (दे०) के समान भूल जाता है। पिता भी पुत्री की इच्छा-अनिच्छा की चिता न कर उसका विवाह धरणी मास्टर से कर देता है। तगर को अपनी विधवा सास के अत्याचार सहने पडते है। यहाँ सास की मनोदशा बहुत ही स्वाभाविक रीति से चित्रित है, वह अपने पुत्र को बहू की ओर उन्मुख देख दुखित होती है। तगर की शिशु-सतान सास-बहू के मध्य सेतु का कार्य करती है। सास के व्यवहार का परिवर्तन भी सूक्ष्मता के साथ दिखलाया गया है। आगे धरणी बदी बनाया जाता है, यक्ष्मा से उसकी मृत्यु हो जाती है। सास भी मर जाती है। पुलिस तगर के घर की तलाशी लेती है, इसी बीच कमलाकात को तलाशी मे अँगूठी मिल जाती है और उसे अपने प्रणय की याद आ जाती है। इस प्रकार यह उपन्यास 'अभिज्ञान-शाकुतल' (दे०) का आधुनिक सस्करण बन जाता है। इसमे असमीया की ग्रामीण प्रथा-रीति और सामाजिक परिवेश का सुदर चित्र है। यह असमीया का प्रसिद्ध उपन्यास है।

जीवनलीला *(गु० कृ०)*

'जीवनलीला' नामक ग्रथ काका कालेलकर (दे०) के लिखे हुए प्रकृति-सबधी सत्तर लेखो का एक सग्रह है। लेखो के बाद श्री नगीनदास पारेख ने 'अनुबध' शीर्षक के अतर्गत 97 पृष्ठो मे विभिन्न लेखो से सबधित टिप्पणियाँ दी हैं। पुस्तक के अत मे एक सूची भी दे दी गई है। सर्वप्रथम इस ग्रथ की सामग्री 'लोकमाता' के रूप मे प्रकट हो चुकी थी। बाद मे साहित्य अकादेमी के आग्रह पर मूल 'लोकमाता' मे कुछ और लेखो को जोडकर 'जीवन-लीला' तैयार हुई। इसका प्रकाशन 1956 ई० मे हुआ था और इसकी दूसरी आवृत्ति 1959 ई० मे प्रकाश मे आई। काका कालेलकर ने स्वय यायावरी जीवन अपना कर भारत के कोने-कोने का प्रवास किया था। प्रवास मे आने वाले वे सभी स्थल जहाँ जल अपनी सपूर्ण सत्ता के साथ कल्लोल करता हुआ मिला, कालेलकर जी के सस्मरणात्मक लेखो के विषय बनते चले गए। लेखक की दृष्टि मे यह लेखन केवल साहित्य विलास नही है अपितु भारतभक्ति का एक प्रकार है। इन लेखो के माध्यम से लेखक ने भारत की नदियो, सरोवरो, सगमो—यहाँ तक कि मरुप्रदेश मे जल का आभास देने वाली मरीचिकाओ को अपनी भक्ति-कुसुमाजलि अर्पित की है। जीवन द्विअर्थक है· जिंदगी और जल। जल के साथ जिंदगी किस प्रकार जुडी है, इसका प्रमाण लेखक के इन निबधो मे उपलब्ध होता है। लेखक स्वय कहता है· "नदी और जीवन का क्रम समान है। नदी स्वधर्म के प्रति वफादार रहती है और अपनी कुल-मर्यादा का रक्षण करती है, अत प्रगति करती है। और अत मे नामरूप का त्याग कर सागर म अस्त हो जाती है। अस्त होने पर भी वह नष्ट नही होती। यह है नदी का क्रम ! जीवन और जीवन-मुक्ति का भी यही क्रम है।" प्रस्तुत पुस्तक मे लेखक की दृष्टि भक्ति की तो रही ही है, पर प्रकृति के सपूर्ण सौंदर्य को पी जाने और तद्भूत गहरे उल्लास का बोध भी प्रत्येक स्थल पर प्राप्त होता है। लेखक की शैली सर्वत्र बडी सजीव और भाषा अत्यधिक सरल है। वर्णनो की चित्रात्मकता दर्शनीय है। प्रकृति-वर्णन करने वाले प्रत्येक साहित्यकार को—भारतीय साहित्यकार को—इसे पढ जाने की सस्तुति की जा सकती है। यो प्रवास-साहित्य अब काफी मात्रा मे उपलब्ध होने लगा है पर अपनी यथार्थता, रमणीयता और वर्णन मे उच्छलता के कारण 'जीवनलीला' का अपना एक अलग महत्व है।

जीवन-शोधन *(गु० कृ०)*

गाधी जी के प्रिय, गाधी-युग के चितक, श्री किशोरलाल घनश्यामलाल मशरूवाला (दे०)-रचित 'जीवन-शोधन' लेखक के तत्व-चितन का प्रामाणिक व आधारभूत ग्रथ है। श्री किशोरलाल जी जीवनदर्शी चितक रहे है। उनके इस ग्रथ मे छह खडो मे अधिकाश दार्शनिक सिद्धातो की मीमासा की गई है।

प्रथम खड म चतुर्थ पुरुषार्थ-मोक्ष, मोक्षार्थी के गुण, धार्मिक जीवन के सिद्धात, आश्रम धर्म व समाज धर्म आदि का सम्यक् विवेचन किया गया है। दूसरे खड म जगत्, उसकी उत्पत्ति का कारण, चित्त और चैतन्य, सगुण ब्रह्म, उसकी उपासना-पद्धति, परमात्मा की भावना, श्रद्धालु

नास्तिकता, उपासना, मरणोत्तर स्थिति आदि की मीमांसा है। तीसरे खंड में भक्ति, आराधना, भक्ति-धर्म, गुरु-सद्गुरु-शरणागति, गुरु-भक्ति और पूजा-सद्भाव एवं सत्संग, भक्ति-प्रकरणों का तात्पर्य आदि की चर्चा की गई है। चतुर्थ खंड में वैराग्य, उपाधि, संन्यास, भिक्षा, अपरिग्रह, बाह्याडंबर, स्वाभिमान, कर्मवाद, अध्यात्मवाद, देहसंबंध, वासनाक्षय, पूर्वग्रह, जीव-ईश्वर, अवतारवाद, निर्गुण और गुणातीत, सर्वत्र मैं और सर्वत्र राम, मायावाद, लीलावाद, पूर्णता, अज्ञान का स्वरूप और सर्वज्ञता आदि विषय समाविष्ट हैं। पंचम खंड में सांख्य-दर्शन तथा वेदांत-दर्शन पर विचार किया गया है। प्रकृति, महत्व, अहंकार, महाभूत, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, अग्नि आदि पंचमहाभूत तन्मात्राएँ, कर्मेंद्रिय, ज्ञानेंद्रिय, पुरुष, आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। पष्ठ खंड में योग-विचार किया गया है। योग का अर्थ, विरोध के लक्षण, योग मार्ग, फल, योग का महत्व, साक्षात्कार आदि का सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

पुस्तक की प्रस्तावना स्वामी केदारनाथ जी ने लिखी है। पुस्तक का प्रकाशन नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद से हुआ है। पृ० सं० 374 है। गुजराती भाषा में रचित दर्शनशास्त्र-संबंधी ग्रंथों में यह अति महत्वपूर्ण ग्रंथ है। एक ही स्थान पर विविध दर्शनों का इतना स्पष्ट, सरल, सूक्ष्म तथा जीवन से संपृक्त ऐसा विवेचन गुजराती में दुर्लभ है।

जीवन-संगीत *(उ० क०)*

जीवन-संगीत राजकिशोर राय (दे०) का कहानी-संकलन है। इसमें कहीं स्वतंत्र भारत की सर्वग्रासी दुर्दशा, आपाधापी और भयंकर निर्धनता का चित्रण है, तो कहीं जीवन के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और चरित्रोद्घाटन का प्रयास मिलता है। कथन-भंगी अपूर्व है। कहानियों में कलात्मकता अधिक है। शैली रमणीय और गरिमामयी है। 'जीवन-संगीत' कहानी में छिद्रान्वेषी, पर श्रीकातर समाज का नग्न-चित्र है। 'क्षमा-प्रार्थना' में आधुनिक गुरु-शिष्य-परंपरा पर कठोर आघात है। 'आलोकरंजित पथ' में महाप्राण अंग्रेज पादरी तथा हमारे समाज के क्षुद्रहृदय ईसाइयों का चित्रण है। 'रूपकथा' में मानव के वास्तविक रूप की संदिग्धता और अस्पष्टता चित्रित है। 'अखंड ज्योति' में स्वतंत्र भारत का अन्याय-चित्र है—पहले जहाँ आशा की अखंड ज्योति प्रज्वलित होती थी आज वहाँ मृत्यु और निराशा की अखंड ज्योति जल रही है। 'तारा फ्रांकलिन' में स्वाधीन भारत की भयंकर निर्धनता का चित्रण है, जहाँ जीवित रहने के लिए माँ को पुत्र को बेचना पड़ता है। समग्र रूप से यह एक सशक्त रचना है।

जीवनी *(हि० पारि०)*

वैसे तो सभी साहित्यिक विधाओं का विषय मनुष्य होता है पर जीवनी-लेखक प्रसिद्ध व्यक्ति को अपने अध्ययन का विषय बनाकर, उसके संबंध में विभिन्न स्रोतों —व्यक्ति द्वारा स्वयं लिखे गए पत्र, डायरी, पुस्तक आदि, समकालीनों के संस्मरण, उसके मित्रों, संबंधियों से वार्तालाप, पत्र-व्यवहार, उस व्यक्ति से संबद्ध स्थानों के भ्रमण तथा उस पर अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखे गए ग्रंथों—से आधिकारिक जानकारी प्राप्त कर उसके सर्वांगीण जीवन और व्यक्तित्व का चित्र उपस्थित करता है। वह व्यक्ति के गुण और दोष—सभी पर प्रकाश डालता है। डॉ० जॉनसन के शब्दों में, 'जीवनीकार का लक्ष्य जीवन की उन घटनाओं और क्रियाकलापों का रंजक वर्णन करना होता है जो व्यक्ति-विशेष की बड़ी-से-बड़ी महानता से लेकर छोटी-से-छोटी घरेलू बातों से संबंधित होते हैं। जीवनी में व्यक्ति का संपूर्ण जीवन-वृत्त भी आ सकता है और वह उसके एक काल या चरित्र-पक्ष पर भी लिखी जा सकती है। वस्तुपरक वैज्ञानिक दृष्टि होते हुए भी जीवनी-लेखक जीवन का नीरस इतिहास मात्र प्रस्तुत नहीं करता; उसमें जीवनी-लेखक का व्यक्तित्व भी मुखरित हो उठता है। वह शास्त्रीय ग्रंथ न होकर कोमल साहित्यिक विधा है, इसीलिए लिटन स्ट्रैची ने कहा है, 'जीवनी लेखन-कला का सबसे सुकोमल और सहानुभूतिपूर्ण स्वरूप है।' पर लेखक को राग-द्वेष से मुक्त होना चाहिए—नायक के प्रति अपने द्वेष एवं श्रद्धा-भाव दोनों को पीछे रख निष्पक्ष चित्र प्रस्तुत करना चाहिए।

जीव मनःकरण संलाप कथा *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1184 ई०]

'जीव मनःकरण संलाप कथा', 'कुमारपाल प्रतिबोध' के अंतर्गत एक धार्मिक कथाबद्ध रूपक काव्य है। जैसा कि इस कृति के नाम से ही स्पष्ट है इसमें जीव, मन और इंद्रियों का परस्पर संलाप है। इन सबको पात्र-रूप में चित्रित किया गया है। देह नामक नगरी में लावण्य-

लक्ष्मी का निवास है। इस नगरी के चारो ओर आयु-कर्म का प्राकार है। वही आत्मा नामक नरेंद्र बुद्धि की महादेवी के साथ राज्य करता है। उनका प्रधानमंत्री मन है। पाँचो इंद्रियाँ पाँच प्रमुख राजपुरुष है। एक बार राज्यसभा म दुख के कारण पर विवाद उठता है। मन अज्ञान को, राजा मन को, मन इंद्रियो को दुख का मूल कारण बताता है। इस प्रकार कभी इंद्रियो को, कभी मन को, कभी कर्मों को, कभी काम वासना को दुख का मूल कारण बताया जाता है। अत मे आत्मा स्वानुभूति से उन्हे प्रशम का उपदेश देता है।

इस कथा मे उपदेश भावना प्रधान है। कवित्व के सौंदर्य का अभाव है। कथा मे मनोरजन-तत्त्व भी नही है। बीच-बीच मे सुभाषित अवश्य दृष्टिगत होते हैं।

जीवी *(गु० पा०)*

पन्नालाल पटेल (दे०)-रचित *'मळेला जीव* (दे०) *नामक* उपन्यास की नायिका जीवी जाँगीपरा गाँव की सीमा पर स्थित झोपडी मे रहने वाले एक वृद्ध नाई की बीस वर्षीया साग के सोंटे-सी देहलता वाली स्वस्थ लडकी है जिसमे कौमार्य की लज्जा और यौवन की मस्ती के बीच द्वद्व चल रहा है। पहले ही दर्शन मे हमे जीवी हरी छीट का घाघरा और चोली पहने हुए दिखाई देती है। कस कर बँधे हुए कपडे पर टँका हुआ गोटा पीन वक्षस्थल पर क्रीडा कर रहा है और उसकी लपकती चाल को और अधिक समृद्ध बना रहा है। इसी गोटे मे कानजी का मन उलझा रह गया। प्रथम दर्शन मे ही कानजी को ऐसा लगा कि जीवी की नजर जैसे उसके हृदय से कुछ उठा कर ले गई और उसके बदले मे अपना कुछ रख गई। तदुपरात दोनो की निगाहे मिली और झुक गई।

यही जीवी का कानजी से परिचय है जो विश्वास और समर्पण की उस पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है जहाँ *कानजी के कहने पर ही जीवी अपात्र धुला नाई के साथ भागकर उसके घर बैठने को तैयार हो जाती है। गाँव के सकुचित व्यवहार, कानजी की विवशता और धुला की* ईर्ष्या के कारण वह रोज अपने पति की मार खाती है, चुप रहती है पर किसी से शिकायत नही करती—केवल इसी भरोसे कि कानजी उससे प्रेम करता है और शायद यह सब उसके प्रेम का ही अग है। जीवी सभी कुछ सहती है, विवश हो कानजी के बाहर चले जाने पर धीरे-धीरे टूटती चली जाती है, आत्महत्या के लिए साधन जुटाती है जिसका अनचाहे ही शिकार बन जाता है उसका पति *(दे० मळेला जीव) और तब वह वैधव्य को भी भोगने के लिए यत्रवत् काम करने लगती है।* पर जब एक बार कानजी गाँव आकर जीवी से बिना मिले ही चला जाता है, तो जैसे उसका रहा सहा धीरज भी साथ छोड देता है। सभी कुछ सह लेने वाली जीवी 'निजानद' मे डूब जाती है—पागल हो जाती है। पागल होने पर भी जीवी की आत्मा तो कानजी के साथ ही रहती है इसीलिए तो लोग पूछते है कि 'तूने अपने पति को जहर क्या दे दिया ?' 'मेरा पति ? वह तो परदेश कमाने गया है।' वह उत्तर देती है और लजा जाती है। अतत जीवी कानजी को प्राप्त तो करती है पर उस समय जब उसमे प्राप्ति बोध ही नही रहता। जीवी का सपूर्ण चरित्र जिस व्यथा से पूर्ण है वह *पाठक को सवेदित किए बिना नही छोडती। उपन्यास का अत होते-होते पाठक के हाथ केवल अवसाद के कण ही रह जाते है, कथा पीछे छूट जाती है। आत्माओ के मिलन की इस कथा मे लेखक ने जीवी के चरित्र-निरूपण मे पर्याप्त सहानुभूति से काम लिया है।* जीवी का अन्तर्द्वंद्व अनेक स्थानो पर अत्यत मुखर हो उठा है। कुछ ही स्थल ऐसे है जहाँ घटनाएँ चरित्र पर हावी हो गई है और चरित्र घटनाओ के प्रवाह मे बहता हुआ प्रतीत होता है। फिर भी यह निस्सकोच भाव से कहा जा सकता है कि जीवी गुजराती साहित्य की अद्वितीय पात्र सृष्टि है।

जुत्शी, सोमनाथ *(कश्० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

ये प्रारभ म ही प्रगतिशील विचारधारा के लेखक रहे है। विभाजनोत्तर काल के सास्कृतिक पुनर्जागरण युग म ये प्रगतिशील आदोलन मे सक्रिय रहे। प्रारभ मे ये उर्दू मे लिखते रहे, बाद मे कश्मीरी भाषा म कहानियाँ लिखी। इनकी पहली कहानी है 'जलि गाश फवोल' (जब भोर हुई) जो ऊँचे स्तर की है। इसके अतिरिक्त इन्होने *और तीन चार कहानियाँ लिखी। 'व्यथि हन्द्य बॅठय ज' (वितस्ता के दो किनारे), 'नोव मकान (नया मकान), अमानत' (धरोहर), 'पोछ' (प्रतिथि), आदि अनेक रेडियो एव मच नाटक हैं। इन्होने प्रसिद्ध नाटककार* इबसन के नाटक *'The Wild Duck'* का अनुवाद भी किया है जो *'युज' नाम से प्रकाशित हुआ है।*

'जुरअत' *(उर्दू० ले०)*

इनका बचपन का नाम यहया अमान था परतु

बाद में ये कलदर बख़्श के नाम से प्रसिद्ध हुए। 'जुरअत' इनका उपनाम था। वे शाह आलम सानी के सुपुत्र मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह के दरबारी कवि थे। जाफ़र अली ख़ाँ 'हसरत' इनके काव्य-गुरु थे। इन्हें संगीत और ज्योतिष-शास्त्र में भी बड़ी रुचि थी। दुर्भाग्यवश यौवनावस्था में ही ये नेत्रहीन हो गए थे। अपने समय के समर्थ कवियों में इनकी गणना होती थी। इन्होंने ग़ज़ल, रुबाई, वासोख़्त, मुख़म्मस और हिज्व आदि अनेक काव्य-विधाओं में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी भाषा स्पष्ट, सरल, शुद्ध और मुहावरेदार है परंतु इनमें कल्पना की उड़ान और भावों की गंभीरता का अभाव है। इनके काव्य में तत्का-लीन ह्रासोन्मुख विलासप्रिय समाज की लगभग सभी प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती है। इनका 'दीवान' (काव्य-संग्रह) दुर्लभ है।

जैतली, कृष्णचंद्र टोपणलाल *(सि० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

इनका जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है। बचपन से ही इन्होंने सिंधी के साथ-साथ हिंदी तथा संस्कृत का भी अध्ययन किया है और इन भाषाओं पर इन्हें अच्छा अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त ये मराठी, गुजराती, पंजाबी, बँगला और अँग्रेज़ी भाषाओं के भी अच्छे ज्ञाता हैं। विद्यार्थी-जीवन से ही इनकी रुचि भाषाओं के अध्ययन और अनुसंधान के प्रति रही है। देश-विभाजन के पश्चात् ये पूना में स्थायी रूप से निवास कर रहे है। भाषा, लिपि, सिंध के इतिहास, सिंधी साहित्य आदि विषयों पर इनके कई गवेषणापूर्ण निबंध सिंधी, हिंदी तथा संस्कृत भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी रचनाओं में 'सिंधी भाषा का संक्षिप्त परिचय' (1957) नामक पुस्तक का महत्वपूर्ण स्थान है। अनुसंधान के क्षेत्र में इनका कार्य अविस्मरणीय है।

जैतली, मुरलीधर कृष्णचंद्र *(सि० ले०)* [जन्म—1930 ई०]

इनका जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है। माध्य-मिक स्तर तक सिंध मे शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् इन्होंने उच्च शिक्षा पूना विश्वविद्यालय में प्राप्त की है। डेक्कन कालेज, पूना मे भाषाविज्ञान का अध्ययन कर इन्होंने सिंधी भाषा पर शोध-प्रबंध लिखकर 1966 ई० मे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। आजकल ये दिल्ली विश्वविद्या-लय में सिंधी का अध्यापन कार्य कर रहे हैं। इनकी रुचि सिंधी भाषा-साहित्य और सिंध के इतिहास का अनुसंधान करने के प्रति अधिक रही है। इस क्षेत्र में इनके लगभग चालीस निबंध विभिन्न सिंधी पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। 1972 ई० में 'सिंधी साहित्य जो इतिहास' (दे०) नामक इनकी पुस्तक प्रकाशित हुई थी, जो सिंधी साहित्य के इतिहास पर प्राप्त अन्य सभी रचनाओं से निराले ढंग की है। इसमें आरंभ से लेकर 1970 ई० तक सिंधी साहित्य की प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है और साथ-साथ सिंधी साहित्य के काल-विभाजन का भी आलोचना-त्मक दृष्टि से निर्णय किया गया है।

जैन-आगम *(प्रा० कृ०)*

आर्ष अथवा अर्धमागधी प्राकृत में लिखे हुए जैन-सिद्धांत-ग्रंथों को मौखिक परंपरा में आगमन के कारण 'आगम' कहा जाता है। इनकी संख्या 45 या 46 है—12 अंग (जिनमें एक उपलब्ध नहीं होता), 12 उवंग (उपांग), 10 पइन्ना (प्रकीर्ण), 6 छेयसुत्त (छेद सूक्त), 4 मूल सुत्त और दो स्फुट ग्रंथ नंदी और अनुयोगद्वार। कहीं-कहीं इस संख्या में व्यतिक्रम भी पाया जाता है। कुछ लोग इनमें 30 प्रकीर्णक और 12 निज्जुत्तियाँ (निर्युक्तियाँ) और जोड़ देते हैं। यह समस्त साहित्य महावीर (दे०)-वाणी माना जाता है किंतु इसमें इतना परिवर्तन-परिवर्धन हुआ है कि निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता कि इनमें कितना अंश महावीर-वाणी है और कितना बाद में जोड़ा गया है। कहा जाता है कि महावीर स्वामी ने 11 गणधरों (दे०) को 14 पुव्वो (पूर्वो) का उपदेश दिया था जो काल-दोष से लुप्त हो गया। उनका ज्ञाता केवल एक व्यक्ति रह गया। उसी के माध्यम से इनका ज्ञान 6 पीढ़ियों तक बना रहा। चंद्रगुप्त मौर्य के राज्यकाल में 12 वर्ष के भयानक दुष्काल मे जैन प्रमुख भद्रबाहु (दे०) दक्षिण में कर्णाटक को चले गए। इसमें पूर्वों के सर्वथा लुप्त होने की संभावना उत्पन्न हो गई। तब स्थूलभद्र ने पाटलिपुत्र में एक सभा आयोजित की और 11 अंगों को लिपिबद्ध किया। पूर्वों का भी जो अंश याद था और जो नेपाल जाकर ज्ञात किया जा सका उसे 'दिट्ठिवाय' नाम से बारहवें अंग के रूप में सम्मिलित कर लिया गया। तीसरी-चौथी शती में जब पुनः अकाल पड़ा और पुनः महा-वीर-वाणी के लुप्त होने की संभावना उत्पन्न हो गई तब

आर्य स्कदिल ने मथुरा मे दूसरी सभा आयोजित कर आगमो का उद्धार किया । उसके कुछ समय बाद वलभी (गुजरात) मे देवर्धि क्षमा श्रमण की देखरेख मे तीसरी सभा आयोजित की गई । उसमे इन पवित्र ग्रथो का सकलन कर उन्हे लिपिबद्ध कर दिया गया । आज के उपलब्ध 'आगम' वे ही है जिनका वलभी मे सकलन किया गया था । इसमे 'दिट्ठिवाय' को छोडकर 11 अग विद्यमान हैं । ये आगम दिगबरो के मान्य ग्रथ है । श्वेताबर लोग इन्हे पूर्ण प्रामाणिक नही मानते क्योकि उनके मत मे महावीर-वाणी बहुत पहले लुप्त हो चुकी है ।

जैनेंद्र कुमार *(हिं० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

ये हिंदी के प्रतिष्ठित कथाकार, निबधकार तथा विचारक हैं । इनका जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ जिले के कोडियागज नामक स्थान मे हुआ । अपने जन्म के दो वर्ष बाद ही इन्हे पितृ-स्नेह से वचित होना पडा तथा माता एव मामा ने ही इनका पालन पोषण किया । इनकी प्रारभिक शिक्षा हस्तिनापुर के उस गुरुकुल मे हुई जिसकी स्थापना इनके मामा ने की थी । इन्होंने गुरुकुल मे बहुत थोडे समय तक ही अध्ययन किया और सन् 1919 ई० मे पजाब विश्वविद्यालय से प्राइवेट विद्यार्थी के रूप मे हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की । उच्च शिक्षा के निमित्त इन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय मे प्रवेश लिया किंतु दो वर्ष बाद ही विश्वविद्यालय छोड दिया और कांग्रेस के असहयोग आदोलन मे सम्मिलित होने के लिए दिल्ली चले आए । य कुछ समय तक लाला लाजपतराय के 'तिलक स्कूल ऑफ पालिटिक्स' मे भी रहे, लेकिन बाद मे उसे छोडकर व्यापार मे प्रवृत्त हो गए । व्यापार मे असफल रहने के बाद ये 1931 ई० मे नागपुर चले गए और वहाँ राजनीतिक पत्रो के सवाददाता के रूप मे कार्य करने लगे । तद्युगीन ब्रिटिश सरकार ने इन्हें उसी वर्ष बदी बना लिया और तीन मास जेल-प्रवास के बाद कलकत्ता आदि स्थानो पर आजीविका के निमित्त घूमते हुए अतत ये लेखन की ओर प्रवृत्त हो गए । अब तक इन्होने उपन्यास, कहानी, निबध, सस्मरण आदि विविध विधाओ को अपने लेखन से समृद्ध करते हुए हिंदी साहित्य मे अपना स्थायी स्थान बना लिया है । इन्होने कतिपय महत्वपूर्ण नाटको तथा कहानियो का अनुवाद भी किया है किंतु इनका मुख्य देय उपन्यास और कहानियो के क्षेत्र मे ही रहा है । 'परख' (1929), 'सुनीता' (दे०) (1935), 'त्यागपत्र' (दे०) (1937), 'सुखदा' (1953), 'जयवर्द्धन' (1956), 'मुक्तिबोध' (1966) आदि इनके बहुचर्चित एव उल्लेखनीय उपन्यास है तो 'फाँसी' (1929), 'वातायन' (1930), 'नीलम देश की राजकन्या' (1933), 'पाजेब' (1942) आदि सग्रहो मे इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ सकलित है । 'साहित्य का श्रेय और प्रेय' (1953) 'सोच-विचार' (1953) इनके उल्लेखनीय निबध-सग्रह है तथा 'ये और वे' (1954) मे इनके सस्मरण सकलित है । हिंदी उपन्यास के इतिहास मे ये मनोविश्लेषणात्मक परपरा के प्रवर्तक माने जाते हैं । घटनाओ की सघटनात्मकता के स्थान पर चरित्र सृष्टि पर बल देते हुए पात्रो के अतर्मन को रूपायित करना तथा मनोविज्ञान और दर्शन का समुचित समन्वय इनके उपन्यास-लेखन की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं । इनके उपन्यासो मे पुरुष पात्रो के स्थान पर नारी-पात्रो की प्रधानता है और ये नारी-पात्र भीषण मानसिक सघर्ष से गुज़रते हुए सारे उपन्यास मे छाए रहते है । कहानी-लेखन के क्षेत्र मे यद्यपि इन्होने राष्ट्रीय, सामाजिक आदि विभिन्न प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं किंतु मुख्यता दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक कहानियो की ही रही है । उपन्यासो के समान इन कहानियो मे भी बाह्य जीवन की हलचल के स्थान पर मन के भीतरी द्वद्व को उभारने का प्रयत्न किया गया है । निबधो के अतर्गत इन्होने साहित्य, कला, धर्म, दर्शन, समाज, राष्ट्र आदि की विभिन्न समस्याओ को कथ्य के रूप मे सकलित करते हुए अपने मौलिक चिंतन के द्वारा विषय का स्पष्ट विवेचन किया है । विषयानुरूप भाषा तथा सूत्रो जैसे छोटे-छोटे वाक्यो का प्रयोग इनकी शैलीगत विशेषता है ।

जैमिनि *(स० ले०)* [स्थिति काल—300 ई०]

रचना—*मीमासा सूत्र* । *बादरायण* (दे० 'व्यास', बादरायण) और जैमिनि दोनो ने एक-दूसरे के मत को उद्धृत किया है । अत दोनो को समसामयिक मानना युक्तिसगत होगा । जैमिनि के 'मीमासा-सूत्र' मे द्वादश अध्याय तथा 2500 सूत्र हैं । 'मीमासा-सूत्र' पर शबर स्वामी (दे०) का भाष्य है ।

जैमिनि ने मीमासा-सूत्र का आरभ धर्म की जिज्ञासा से किया है । धर्म की परिभाषा करते हुए जैमिनि ने कहा है कि जिसके लिए प्रेरणा हो वह धर्म है —'चोदनालक्षणार्थो धर्म '। जैमिनि यज्ञ-सबधी धर्म के विशेष प्रतिपादक थ । जैमिनि का यह यज्ञ सबधी धर्म भी वैदिक है । इस प्रकार जैमिनि के अनुसार वेद जिस कर्म को इष्ट

साधक समझता है, वही धर्म है और जो कर्म वैदिक दृष्टि से अहितकर है, वही अधर्म है। जैमिनि ने विधि एवं अर्थवाद की पद्धति से यज्ञ-कृत्यों का प्रतिपादन किया है। अर्थवाद से भी निंदा, प्रशंसा, परकृति एवं पुराकल्प रूप से चार भेद हैं।

मीमांसा दर्शन के अंतर्गत शब्द, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, संभव और अभाव, ये सप्त प्रमाण स्वीकार किए गए हैं। जैमिनि का मीमांसा दर्शन अनेकात्मवादी एवं अनीश्वरवादी है। जैमिनि वेद की स्वतः-प्रामाण्य सिद्धि के समर्थक हैं।

यह कहना उचित ही होगा कि अन्य दर्शनों की अपेक्षा विशाल होने पर भी मीमांसा-सूत्र में दर्शन का अंश न्यून रूप में ही मिलता है। परंतु वैदिक धर्म के प्रतिपादन एवं कर्मकांड-विचारधारा के पोषण की दृष्टि से जैमिनि का योगदान अत्यंत मूल्यवान कहा जाएगा।

जैमिनि-भारत *(क० कृ०)* [रचना-काल –सोलहवीं शती का उत्तरार्द्ध]

इसके रचयिता लक्ष्मीश (दे०) हैं जिनका समय अनुमानतः 1550 ई० के क़रीब ठहरता है। लक्ष्मीश के जीवन व मत के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार वे हरिहराभेदी भागवत संप्रदाय के अनुयायी थे। इसी कारण 'जैमिनि-भारत' संस्कृत 'जैमिनि-भारत' का संग्रहानुवाद है। मूल के 62 अध्यायों की सामग्री यहाँ 34 अध्यायों में संगृहीत है।

लक्ष्मीश की यह कृति मूल की अनुकृति नहीं है। यत्र-तत्र परिवर्तन व परिवर्धन भी किए गए हैं। शृंगार, भक्ति एवं वीर रस को विशेष महत्व दिया गया है। मूल के अनुसार बभ्रुवाहन घोड़े के ललाट-पट्ट के लेख को देखकर, अपने और अर्जुन के संबंध को जान, अर्जुन को घोड़ा सौंप देता है। किंतु इसमें अपनी माता चित्रांगदा के उपदेशानुसार वह वैसा करता है। सुधन्वा, मयूरध्वज, वीरवर्मा, चंद्रहास आदि वीर यहाँ परमभागवत के रूप में आते हैं। लक्ष्मीश का 'जैमिनि-भारत' वीर-भक्तों का कथा-कोश है। उसमें खड्ग-कमल में नाचने वाली भक्ति-वधू को हम देख सकते हैं। लक्ष्मीश की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने पुराण-प्रधान कथानक को काव्य-प्रधान कथानक के साँचे में ढाल दिया है। वे एक श्रेष्ठ कहानीकार है। कहानी सुनाते-सुनाते वह सुंदर चित्र खींचते हैं और उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा देते हैं। उनके काव्य की नाद-माधुरी सचमुच अद्भुत है। सीता-परित्याग, चंद्रहास का बाल्य, सुधन्वा का युद्ध, मयूरध्वज की भक्ति आदि ऐसे मार्मिक प्रसंग हैं जिन्हें कर्णाटक के अपढ़ लोग भी जानते हैं। इसमें कथा की एकता की अपेक्षा भक्ति की एकता है। इन विशृंखलित कहानियों को जोड़ने वाला सुवर्ण-सूत्र है भक्ति। चंद्रहास की कथा में लक्ष्मीश की कथन-शैली का चरमोत्कर्ष है। लक्ष्मीश ने अपने काव्य को 'कृष्ण-चरितामृत' कहा है। वीर योद्धा अर्जुन को इसलिए ललकारते हैं कि उसकी रक्षा के लिए कृष्ण आएँगे और उनके दर्शनों का पुण्य मिलेगा। इस दृष्टि से कृष्ण ही इसके नायक हैं। वीरत्व एवं भक्ति का यह संगम कर्णाटकी भक्ति की एक विशेषता है।

लक्ष्मीश का 'जैमिनि-भारत' षट्पदी छंद में लिखा गया है। सचमुच इस छंद में षट्पदी के गुंजन को हम यहाँ सुन सकते है। देशी एवं मार्गी शैली का सुंदर समन्वय इसकी भाषा में है। डा० मुगली (दे०) ने लक्ष्मीश को महाकवि मानते हुए भी 'जैमिनि-भारत' को आंशिक रूप में महाकाव्य माना है। 'जैमिनि-भारत' कर्णाटक का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य है।

जैमिनीभारतमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

इसके लेखक का नाम संमुखवेंकट कृष्णप्प नायकुडु है। ये दक्षिण की मधुरा रियासत के शासक विजयरंग-चोक्कनाथुडु (शासन-काल 1704-1731 ई०) के सभाकवि तथा एक सेनाध्यक्ष भी थे। 'जैमिनीभारतमु' पाँच आश्वासों का एक गद्य-काव्य है। संस्कृत के 'जैमिनि-भारत' का अश्वमेध पर्व ही प्रचार में है। पिल्ललमर्रि पिनवीरभद्रुडु (दे०) ने इसे तेलुगु में पद्यकाव्य के रूप में लिखा। उक्त पद्यकाव्य को वेंकट कृष्णप्प नायकुडु ने गद्य-बद्ध किया। अश्वमेध-याग के लिए भीम तथा अर्जुन द्वारा की गई विजय-यात्राओं का वर्णन ही इस काव्य का कथानक है। इसकी रचना प्रौढ़ है और इसमें यमक, अनुप्रास आदि शब्दालंकारों का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। इसमें उद्दालक की कथा, कुश-लवोपाख्यान तथा चंद्रहासोपाख्यान आदि अत्यंत मनोहर हैं। युद्ध-वर्णन भी सहज तथा सुंदर है। तेलुगु में परंपरा के रूप में सर्वप्रथम गद्यकाव्य लिखने की ख्याति मधुरा रियासत के शासकों तथा सभाकवियों को प्राप्त हुई। आज प्रचार में स्थित उस समय की इनी-गिनी गद्य-रचनाओं में 'जैमिनीभारतमु' सर्वश्रेष्ठ

मानी जाती है।

जोडणीकोश *(गु० कृ०)* [प्रथम आवृत्ति —1929 ई०]

गुजराती जोडणीकोश गाधीजी (दे०) द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, का सबसे महत्व पूर्ण प्रकाशन है। पहली आवृत्ति से लेकर अब तक जितनी भी आवृत्तियाँ पाठको के समक्ष आ चुकी है उन सभी मे भाषा की जीवतता को ध्यान मे रखकर न केवल शब्दो की सख्या मे ही वृद्धि हुई है अपितु कुछ नियमो पर भी पुनर्विचार किया गया है। इस कोश मे लगभग एक लाख सदर्भ है। पहली आवृत्ति मे वर्तनी सबधी 33 नियम भी दिए गए हैं और जो शब्द इन नियमो मे बँध नही पाए है उनके लिए अपवादों की भी चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त कोश का उपयोग करने वालो के लिए आवश्यक सूचनाएँ, अतिशय प्रयुक्त होने वाले सकेतो की जानकारी, व्युत्पत्ति सकेत, उच्चारण-सकेत तथा दूसरे अन्य चिह्नो की जानकारी दी गई है। इस कोश की प्रथम दो आवृत्तियो का दायित्व काका कालेलकर जी के सबल कधो पर रहा था और शेष आवृत्तियाँ मगनभाई दसाई के सपादकत्व मे तैयार की गई थी। गुजराती भाषा मे वतनी की जो अराजकता विद्यमान थी उसे इस कोश ने बहुत अशो तक दूर किया है। इसकी अन्यतम महत्ता को प्रदर्शित करने वाले गाधी जी के ये शब्द उद्धरणीय है हवे पछी कोईने स्वेच्छाअे जोडणी करवानो अधिकार नथी '(अब किसी को स्वेच्छा से वर्तनी करने का अधिकार नही है)।

जोतवाणी, मोतीलाल वाधूमल *(सिं० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

इनका जन्म सिंध के प्रसिद्ध नगर सक्खर मे हुआ था। ये स्थायी रूप से दिल्ली मे रहते है और वहाँ के देशबधु कालेज (सायकाल) मे सिंधी का अध्यापन कार्य करते हैं। सिंधी साहित्य के क्षेत्र मे इन्होने कहानी, कविता, निबध और आलोचना की उल्लेखनीय कृतियाँ प्रस्तुत की है। इनके अतिरिक्त सिंधी रचनाओ को अनुवाद के द्वारा अंग्रेजी और हिंदी जगत् के सामने लाने का भी इन्होने प्रशसनीय कार्य किया है। सिंधी मे इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'ख्याल' (निबध सग्रह), 'राजधानीअ जा साहित्यकार (सपादन), 'अलकार ऐ छद (काव्यशास्त्र), 'अनासिरनि जी साजिश' (नयी कविताओ का सग्रह), 'परपराहीन' (कहानी सग्रह)। सिंध के प्रसिद्ध सूफी सत कवि शाह अब्दुल करीम पर हाल मे अंग्रेजी भाषा मे इनकी एक पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है।

जोधराज *(हिं० ले०)*

जोधराज अलवर के समीपवर्ती नीवागढ या नीमराणा के राजा चद्रभान के आश्रित कवि थे। इनका प्रसिद्ध ग्रथ 'हम्मीर रासो' है, जिसका रचना-काल 1728 ई० है। यद्यपि यह ग्रथ पद्य मे ही लिखा गया है, तथापि बीच-बीच मे वचनिका वार्तिक या वार्ता के नाम से गद्य का प्रयोग भी हुआ है। इसमे मात्रिक और वृत्त दोनो प्रकार के छदो का प्रयोग हुआ है। यद्यपि जोधराज रीतिकालीन कवि है, फिर भी उन्होने भूषण (दे०), लाल (दे०) और सूदन (दे०) के समान वीररस विषयक काव्य लिखकर राष्ट्र की एक महान् आवश्यकता की पूर्ति की है। यह एक वर्णन प्रधान काव्य है। रासो पद्धति के अनुरूप इसके कथानक मे भी प्रेम और युद्ध दोनो का सगम है। प्रेम पूर्वपीठिका के रूप मे है, जिसका पर्यवसान युद्ध मे होता है। ग्रथ की मुख्य कथा अलाउद्दीन और हम्मीर के युद्ध से सबधित है। विषय के अनुरूप इस काव्य की वर्णन-शैली कोमल भी है और कठोर भी। इस ग्रथ की एक विशेषता यह है कि इसमे ओजगुण एव वीररस का वातावरण उत्पन्न करने के लिए जानबूझकर भाषा को द्वित्ववर्ण अथवा सयुक्तवर्ण प्रधान नही बनाया गया, अपितु भाषा का सहज रूप मे प्रयोग किया गया है।

जोधसिंह, भाई *(प० ले०)* [जन्म—182 ई०]

पजाब के शैक्षणिक जीवन मे डा० (भाई) जोधसिंह का बहुत प्रमुख स्थान है। 1906 ई० मे इन्होने पजाब विश्वविद्यालय से गणित मे प्रथम श्रेणी मे एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की और गणित के अध्यापक के रूप मे ही प्रतिष्ठित हुए परतु पजाबी भाषा के प्रति गहरे आतरिक लगाव के कारण गद्य लेखक के रूप मे भी सम्मानित हुए। सोलह वर्ष तक खालसा कालेज, अमृतसर के प्रिंसिपल रहने के बाद ये पजाबी विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति नियुक्त हुए।

भाई जोधसिंह का लेखन मुख्यत धार्मिक दार्शनिक क्षेत्र का लेखन है। गभीर चिंतन और मनन तथा वैज्ञानिक दृष्टि से जीवन के दार्शनिक प्रश्नो का तर्कपूर्ण विश्लेषण द्वारा सुलझाना चाहा है।

प्रमुख रचनाएँ—'जीवन दा अरथ', 'गुरमतनिरणै', 'गुरु साहिब ते वेद', 'प्राचीन बीड़ां बारे' आदि।

'ज़ोर', मुहीउद्दीन क़ादिरी *(उर्दू० ले०)*

डा० 'ज़ोर' उसमानिया विश्वविद्यालय में उर्दू साहित्य के प्रोफ़ेसर रहे हैं। दकनी साहित्य पर इनका काम अत्यंत महत्वपूर्ण है। उपन्यास, आलोचना, अनुसंधान, भाषाविज्ञान और साहित्य के इतिहास-लेखन से उर्दू साहित्य की इन्होंने पर्याप्त सेवा की है। इनका ज्ञान बड़ा विस्तृत है। इंगलैंड से साहित्य पर अनुसंधान करने के कारण इन्होंने पाश्चात्य आलोचना-पद्धति से उर्दू साहित्य को परिचित कराने में भरसक प्रयत्न किए हैं। इनकी अभिव्यंजना-शैली में गंभीरता और सरलता के साथ-साथ तरलता भी है। इनकी विभिन्न कृतियों में 'तनक़ीदी मकालात', 'रूह-ए-तनक़ीद', 'उर्दू शहपारे' (दे०) और 'हयात मुहम्मद कुली कुतुबशाह' विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। एक सफल उपन्यासकार के रूप में भी इनकी प्रसिद्धि रही है। इनके तीन उपन्यास 'सैर-ए-गोलकण्डा', 'गोलकण्डा के हीरे' और 'तलिस्म-ए-तकदीर' पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त कर चुके हैं। 'इदारा अदबियात-ए-उर्दू' की स्थापना कर इन्होंने उर्दू साहित्य की विशेष रूप से सेवा की है। इस संस्था के माध्यम से अनेक अनुपलब्ध पुस्तकों के अतिरिक्त 'कुलियात-ए-सराज' तथा 'कुलियात-ए-कुतुबशाह' जैसी महत्वपूर्ण कृतियों का प्रकाशन इन्हीं के प्रयत्नों से हुआ है।

'जोश' मलीहाबादी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

'जोश' मलीहाबाद, ज़िला लखनऊ में पैदा हुए थे। इनका नाम शब्बीर हसन और तख़ल्लुस 'जोश' है। शायरी इन्हें विरासत में मिली। शायरी के साथ-साथ गद्यकार की भी अद्भुत प्रतिभा इनमें विद्यमान है। ये एक योग्य आलोचक तथा सफल पत्रकार भी हैं। राजनीति तथा अर्थशास्त्र आदि में पर्याप्त रुचि रखते हैं।

'जोश' नज़्म कहने में सिद्धहस्त हैं। इनकी ग़ज़लों में भी नज़्म का अंदाज़ पाया जाता है। इनकी नज़्मों में दरिया की-सी रवानी होती है। भावानुकूल शब्दावली के प्रयोग में ये सिद्धहस्त हैं। फ़ारसी पदावली का प्रयोग भी ये बड़ी निपुणता तथा बहुलता से करते हैं। 'जोश' उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं से भाव को इतना दिलकश कर देते हैं कि उर्दू साहित्य में कोई दूसरा शायर इस मैदान में उनकी बराबरी करने वाला नहीं।

'जोश' के कलाम से उद्बोधन एवं स्वतंत्रता का संदेश मिलता है। ये प्राकृतिक दृश्यों के भी अत्यंत सुंदर चित्र खींचते हैं। निराशा एवं भीरुता को पास नहीं फटकने देते। आशा और उत्साह ही इनका संदेश है। उर्दू शायरी में साम्यवादी भावनाओं की नींव 'जोश' से पड़ी है। निर्भीकता इनके काव्य का विशेष गुण है। 'रूह-ए-अदब', 'नक़्शो-निगार (दे०), 'शोल-ओ-शबनम' (दे०), 'हर्फ़-ओ-हिकायत' (दे०), 'जनून-ओ-हिकमत', 'फ़िक्र-ओ-निशात', 'आयात-ओ-नग़मात', 'सुम्बल-ओ-सलासिल' आदि इनके अनेक काव्य-संग्रह हैं। आजकल 'जोश' पाकिस्तान में रह रहे हैं।

जोशवा, फ़ज़लदीन *(पं० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

जोशवा फ़ज़लदीन पंजाबी के उन साहित्यकारों में हैं जिनकी प्रतिभा बहुमुखी है। पश्चिमी पंजाब के जेहलम ज़िले में आपका जन्म हुआ था। लाहौर में वकालत करते हुए और पाकिस्तान की राजनीति में सक्रिय भाग लेते हुए भी ये साहित्य-सेवा में संलग्न हैं।

जोशवा का प्रथम कहानी-संग्रह 'अदबी अफ़साने' शीर्षक से प्राप्त हुआ था, परंतु इन्हें साहित्य में विशेष प्रतिष्ठा इनके उपन्यास 'प्रभा' के कारण प्राप्त हुई।

जोशवा एक सफल कवि भी है। उनकी कविता एक शीशे की तरह है जिसमें व्यक्ति को अपना आत्म-रूप ही झलकता मिलता है। इनकी कविताओं का संग्रह 'तारे' विशेष प्रसिद्ध है। इन्होंने नाटकों और एकांकियों की भी रचना की। 'पिंड दे वैरी' इनका सुप्रसिद्ध नाटक है जिसमें ग्रामीण जीवन की विडंबनाओं को प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है।

अन्य प्रमुख रचनाएँ—'पतिव्रता कमला' (उपन्यास), 'इखलाकी कहाणिआं' (कहानी-संग्रह), 'मुडे दा मुल्ल', 'देहाती तलवार' (एकांकी-संग्रह)।

जोशी, इलाचंद्र *(हिं० ले०)* [जन्म—1902 ई०]

इनका जन्म प्राकृतिक सुषमा से भरपूर पार्वत्य नगर अल्मोड़ा के एक मध्यवर्गीय किंतु प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने से पहले ही इन्होंने वाल्मीकि (दे०), व्यास (व्यास, बादरायण), शेली,

कीट्स, टालसटाय, चेखव आदि विश्वविख्यात लेखको की रचनाओ का रसास्वादन कर डाला था तथा बँगला-अँग्रेजी कोश की सहायता से बँगला भाषा तथा साहित्य की श्रेष्ठ तम रचनाओ से भली भाँति परिचित हो चुके थे। लेकिन पाठ्यपुस्तकें पढने मे इनका मन न लगता था और इसीलिए हाईस्कूल परीक्षा पास करने के बाद ये कलकत्ता जा पहुँचे और वहाँ के दैनिक पत्र 'कलकत्ता समाचार' मे कार्य करने लगे। तदनतर ये 'चाँद', 'सुधा', 'सम्मेलन पत्रिका', 'भारत', 'धर्मयुग' (दे०) आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ से सबद्ध रहने के साथ-साथ साहित्य सृजन भी करते रहे। इनका मुख्य प्रदेय हिंदी कथा-साहित्य मे मनोविश्लेषण-प्रणाली के प्रथम प्रयोक्ता के रूप मे है। 'घृणामयी', 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', 'जहाज का पछी' (दे०), 'ऋतु-चक्र' इनकी उल्लेखनीय औपन्यासिक कृतियाँ है। तत्सम शब्दावली का बहुलता से प्रयोग करते हुए विकारग्रस्त व्यक्ति के अतर्मन का गहराई से विश्लेषण करने मे इन्हे कमाल हासिल है।

जोशी, उमाशकर *(गु० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

जोशी जी कवि और चिंतक के रूप मे गुजरात मे ही नही, पूरे भारत मे जाने-माने है। आप कई वर्षों से गुजराती की सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक पत्रिका 'सस्कृति' का सपादन कर रहे हैं। आपने कहानी ('श्रावणी मेळो'), उपन्यास ('पारका जण्या'), निबध ('गोष्ठि' और 'उघडती बारी'), एकाकी ('सापना भारा' (दे०) और 'शहीद सग्रह') इत्यादि विभिन्न साहित्य-रूपो को अपनी लेखनी से समृद्ध किया है। परतु कवि और आलोचक के रूप मे ये विशेष विख्यात है। 'महाप्रस्थान' (दे०) भी उनकी एक विशिष्ट कृति है। सन् 1930 मे जोशी जी ने गुजराती कविता को नया मोड दिया और प्रगतिवादी चिंतन से प्रभावित होकर सामाजिक यथार्थ के प्रमुख रचनाकार बने। तदनतर 1956 मे 'हु छिन्न-भिन्न हु' जैसी अछादस् नयी कविता लिखकर नये कवियो के अग्रणी बने और नयी कविता के वैचारिक समर्थन मे प्रवृत्त हुए। उनकी चेतना ने सदैव मगलकारी प्राचीन तत्वो के साथ नवनिर्माणकारी नूतन भावबोध एव सौंदर्य-बोध का स्वागत किया है। इसीलिए वे नित नूतन रह हैं। 'विश्वशाति', 'गगोत्री', 'निशीथ (दे०), प्राचीना', 'आतिथ्य', 'वसत वर्षा' जैसी श्रेष्ठ काव्यकृतिया के रचयिता उमाशकर भाई आज भी ठहरे नही है, नयी दिशाओ, नये आयामो की खोज मे आज भी वे बेचैन हैं।

'अखो एक अध्ययन', 'समसवेदन', 'अभिरुचि', 'शैली अने स्वरूप', 'श्री अने सौरभ', 'निरीक्षा', 'कविनी साधना' वगैरा जोशी जी के समीक्षा ग्रथ हैं। कविकर्म को व्यक्तिश समझने और अनुभव करने के कारण वे आलोच्य कृतियो और कृतिकारो को कला-सर्जन की मूल भूमियो पर सही तौर से परख पाते है। फलत उनकी समीक्षा सदैव रसलक्षी एव वस्तुलक्षी होती है।

'निशीथ' काव्य सग्रह पर जोशी जी को 1967 मे ज्ञानपीठ का पचास हजार रुपए का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। जोशी जी न केवल साहित्यकार है, अपितु शिक्षाशास्त्री, चिंतक, इतिहासवेत्ता और सस्कृति के अध्येता हैं। वे गुजरात की लगभग सभी उच्चस्तरीय साहित्यिक सास्कृतिक प्रवृत्तियो के प्राण, प्रेरणास्रोत और परिपोषक हैं परतु साथ ही भीतर से उमाशकर जी कितने अतर्राष्ट्रीय और कितने आधुनिक है, निकट सपर्क मे आने वाला व्यक्ति ही इसका अनुभव कर सकता है। सप्रति वे साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष भी है।

जोशी, गौरीशकर गोवर्धनराम *(गु० ले०)*

दे० धूमकेतु।

जोशी, चिं० वि० *(म० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

पूना के 'नूतन मराठी विद्यालय' से मैट्रिक, फर्गुसन कालेज से बी० ए० तथा एम० ए० करने के उपरात इन्होने पाली भाषा तथा बौद्ध ग्रथो का गभीर अध्ययन किया। उमरावती, रत्नगिरि मे चार वर्ष तक शिक्षक रहने के बाद ये 1920 ई० मे बडौदा म कॉलेज के प्राध्यापक रह और 1928 ई० म डायरेक्टर ऑफ आर्काइव्स बने। यद्यपि इन्होने विविध विषयो—शिष्टाचार, समाजशास्त्र, बाल-साहित्य, इतिहास, जीवन-चरित आदि पर पुस्तकें लिखी है फिर भी इनकी सर्वाधिक प्रसिद्धि है अपने विनोदपूर्ण साहित्य क लिए। इन्हाने प्रतिदिन के प्रसगो तथा सीधे सादे पात्रा द्वारा हास्य-सृष्टि की है। इनकी भाषा शैली भी सरल प्रसादगुण-सपन्न है। इन्होन अपनी प्रत्येक हास्य-कथा द्वारा मानव-स्वभाव का दोष दिखाकर कोई सिद्धात या सदेश दिया है और इस प्रकार जनता का कल्याण किया है। इनके विनोद के विशिष्ट गुण हैं यथार्थ और वैविध्य। झोपडी स लकर राजमहल तक की घटनाओ का मजेदार वर्णन यहाँ मिलेगा। चिमळराव (दे०) और

गुंड्याभाऊ (दे० चिमळराव) इनके साहित्य के अमर पात्र हैं।

अपने लेखों में श्लेष, नये-नये विचित्र शब्द, शब्दों की नयी व्युत्पत्ति, अतिशयोक्ति आदि का आश्रय लेकर इन्होंने हास्य-सृष्टि की है। भिन्न-भिन्न विभागों और व्यवसायों के व्यक्तियों की भाषा का प्रयोग भी इन्होंने सफलतापूर्वक किया है। पर शब्दनिष्ठ विनोद की अपेक्षा इनकी रचनाओं में कल्पनानिष्ठ विनोद अधिक है; इसीलिए अपने व्यंग्यबाणों से क्षतविक्षत करने की अपेक्षा ये जख्मी हृदय पर सहानुभूति का शीतल स्पर्श ही अधिक करते हैं।

कहीं बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग करनेवाले विद्वानों, कहीं ढोंगियों, कहीं लोभियों और कहीं बेईमान अधिकारियों तथा डाक्टरों पर व्यंग्य किया गया है, तो कहीं मुद्रण-दोष के कारण अर्थ का अनर्थ किस प्रकार होता है, इसके द्वारा पाठकों को हँसाया गया है। मराठी के आधुनिक विनोद-लेखकों में जोशी जी का विशिष्ट स्थान है।

प्रमुख रचनाएँ—'एरंडाचे गुऱ्हाल'(दे० चिमळराव) 'चिमळरावचें चऱ्हाट', 'आणखी चिमळराव', 'गुंड्याभाऊ, वायफळाचा मळा', आदि।

जोशी, महादेवशास्त्री *(म० ले०)*

नयी कहानी के युग में सोद्देश्य, आदर्शवादी और उदात्त-संदेशयुक्त कहानी लिखकर भी लोकप्रियता प्राप्त करनेवाले श्री जोशी की रचनाओं की पृष्ठभूमि गोमात (गोआ) प्रदेश है। इन्होंने अपनी कहानियों में गोआ की रम्य प्रकृति और वहीं के विभिन्न सामाजिक स्तर के व्यक्तियों को चुना है। प्राचीन धर्मशास्त्र और संस्कृति के अनन्य उपासक श्री जोशी की कहानियों के पात्र यदि सत्प्रवृत्त, परोपकारी और आत्म-बलिदानी हैं तो उनका प्रतिपाद्य है भारतीय संस्कृति और आदर्श। चरित्र-चित्रण और घटनाओं के मनोहर संगम के लिए इनकी कहानियाँ प्रसिद्ध है। इनकी भाषा काव्यात्मक, संस्कृत-मिश्रित और लालित्यपूर्ण है और निवेदन-शैली सहज है। श्री जोशी के अब तक नौ कथा-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रसिद्ध रचनाएँ—'वेल-विस्तार', 'पर्णनिधि', 'भारतीय संस्कृति कोश' (दे०) आदि।

जोशी, मा० ना० *(मं० ले०)* [जन्म—1885 ई०]

प्रारंभ में मराठी के पौराणिक नाटक सरकार-विरोधी प्रतीकात्मकता के कारण अँग्रेज सरकार की शनि-दृष्टि के कोपभाजन तो बने थे, परंतु इससे वे अत्यधिक लोकप्रिय भी हो गए थे। पौराणिक नाटकों की इसी लोकप्रियता के कारण माधव नारायण जोशी ने 'कृष्णार्जुन' और 'कृष्ण विजय' (1910-11) नामक पौराणिक नाटकों की रचना की थी, परंतु उन्होंने कथा को अभिधार्थ रूप में ही ग्रहण किया था। नाटकों की अपेक्षा इनके एकांकी ही अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। समाज में व्याप्त कतिपय बुराइयों के विरुद्ध इन्होंने अपने प्रहसनों में भेरी-नाद किया है। 'विनोद' (1914), 'स्थानिक स्वराज अथवा सचित्र म्युनिसिपालिटी' (दे० पांड्या) (1925), 'हास्य तरंग' (1927), 'आनंद' (1946), 'मोरांचा नाच' (1946), 'प्रोफेसर शाहणे' (1936), 'प्रेमळ लफंगे' (1946), 'नामधारी राजे' (1946) आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। 'स्थानिक स्वराज्य' अथवा म्युनिसिपालिटी' में नगरपालिका के स्वार्थी सदस्यों के कुकृत्यों का भंडाफोड़ है तथा 'वऱ्हाडचा पाटील' में साहूकार, वकील, डाक्टर तथा वेश्याओं के हाथों लुटे भोले ग्रामीण पटेल की व्यथा-कथा है। 'गिरणी वाला' में मालिक और मजदूरों के पारस्परिक संघर्ष का अंकन हुआ है। सामाजिक परिवेश में व्याप्त बुराइयों का रहस्योद्घाटन तो इन्होंने किया है, परंतु मार्मिक स्थलों की पकड़ का इनमें सर्वथा अभाव लक्षित होता है। विशृंखलित कथा-विन्यास तथा सुधार भावना के पूर्वनिश्चित प्रारूप के कारण चरित्र-चित्रण, सर्वथा उपेक्षित रह गया है। प्रहसनों में कतिपय व्यंग्यात्मक संवाद एवं गीत मार्मिक अवश्य हैं, परंतु निम्नस्तरीय व्यंग्य के कारण इनकी रचनाएँ एक विशिष्ट वर्ग तक सीमित होकर रह गई हैं।

जोशी, य० गो० *(म० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

अँग्रेजी भाषा एवं साहित्य से अल्प परिचित परंपरागत कथा-शिल्प के प्रति विद्रोही श्री जोशी अब तक डेढ़ सौ से अधिक कहानियाँ लिख चुके हैं जो आठ संग्रहों में प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी कहानियों की विषय-परिधि संकुचित है—पारिवारिक जीवन ही इनकी कहानियों का विषय है। पर स्वानुभूति, आत्मीयता, भावोत्कटता, मानवता तथा लोकमंगल की भावना ने इन कहानियों को रसभीनी और साथ ही उद्बोधक बना दिया है। इनकी भाषा-शैली अपनी सात्त्विकता, चुभते और चटपटे संवादों और प्रवाहमयता के लिए प्रसिद्ध है। परंपरागत विषयों और

शिल्प के विरुद्ध, स्वच्छंद रचना शैली में कहानी लिखने के कारण मराठी कथा साहित्य में ये अविस्मरणीय रहेंगे।

प्रसिद्ध कृतियाँ—'पुनर्भेट', 'शेवग्याच्या शेंगा' *(मुनगे की फलियाँ)*।

जोशी, रा० भि० *(म० ले०)*

ये व्याकरणाचार्य हैं। इन्होंने 1889 में मराठी का 'प्रौढ बोध व्याकरण' लिखा था। मराठी भाषा के पाणिनि दादोबा पाडुरंग (दे०) के व्याकरण ग्रंथ के अनुरूप ही इन्होंने अपना ग्रंथ रचा है। इसमें संस्कृत के अनुसार मराठी शब्द रूपों की व्यवस्था है तथा वर्तमान मराठी की प्रकृति का अँग्रेजी से साम्य लक्षित कर अँग्रेजी के व्याकरण की पद्धति पर उसका व्याकरण लिखा है।

इसमें भाषाशास्त्रीय अध्ययन पर बल नहीं है। प्रस्तुत ग्रंथ मराठी भाषा के बल पर लिखा गया है। तत्सम ह्रस्व शब्दों को दीर्घ लिख मराठी की स्वतंत्र प्रकृति प्रस्थापित की गई है। गो० ग० आगरकर (दे०) जी की 'वाक्य-मीमांसा' के आधार पर वाक्य का संपूर्ण विवेचन मराठी में सर्वप्रथम इन्होंने किया है। 'विविध ज्ञान-विस्तार' पत्रिका में गुंजीकर ने इस ग्रंथ के दोषों का उद्घाटन कर स्वयं सुबोध व्याकरण लिखा है।

जोशी, रामचंद्र भिकाजी *(म० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

इनका जन्म दक्षिण हैदराबाद में हुआ था। इन्होंने अमरावती, इंदौर तथा बंबई में अध्ययन कार्य किया था। आजकल सिद्धार्थ कालेज ऑफ कॉमर्स में अँग्रेजी के प्राध्यापक हैं। कुछ वर्ष इन्होंने दिल्ली के आकाशवाणी केंद्र में भी नौकरी की थी।

साहित्य के क्षेत्र में लघु निबंध, लघु कथा तथा साहित्य समालोचनात्मक ग्रंथ लिखे हैं। प्रवास करने में इनकी अत्यंत रुचि रही है। 'वाटचाल' इनके प्रवास-वर्णनात्मक निबंधों का संकलन है।

इन्होंने उर्दू कथाओं का मराठी में अनुवाद भी किया है।

जोशी, वामन मल्हार *(म० ले०)* [जन्म—1882 ई०, मृत्यु—1943 ई०]

विचारप्रधान मराठी उपन्यास के जनक जोशी जी जीवन को शुद्ध और स्वतंत्र जिज्ञासा दृष्टि से देखते थे। उपन्यास के क्षेत्र में तात्त्विक विवेचन को स्वतंत्र महत्व देने का श्रेय उन्हीं को है। इनकी कृतियों में मूलग्राही जीवन-*विश्लेषण और मौलिक दर्शन मिलता है।* इनके उपन्यासों ने बुद्धिनिष्ठ अभिजात और उच्च शिक्षित पाठकों को शीघ्र ही आकृष्ट कर लिया क्योंकि इनके युग में जो नये विचार प्रचारित हो रहे थे, नये आदर्श निर्मित हो रहे थे, उन सबकी अभिव्यक्ति इनके कथा-साहित्य में मिलती है। स्त्री-स्वातंत्र्य, ईश्वर का अस्तित्व, ब्रह्म निर्गुण है या सगुण, उपयोगितावाद, स्वहितवाद, विश्वकुटुंब, समाजवादी विचार, कला और नीति का परस्पर संबंध इनके उपन्यासों के विषय हैं। तत्कालीन महाराष्ट्रीय वैचारिक जीवन में जो संघर्ष एवं बहुविधता पाई जाती थी, उसकी सर्वांगीण अभिव्यक्ति वा० म० जोशी की कृतियों में मिलती है। इनके उपन्यासों में एक ओर पाश्चात्य विचारकों—स्पेन्सर, बर्गसाँ आदि के और दूसरी ओर मनु, याज्ञवल्क्य आदि भारतीय दार्शनिकों के विचारों की छटा मिलती है। साथ ही उस युग में महाराष्ट्रीय सामाजिक एवं कौटुंबिक जीवन में जो नया मोड़ आ रहा था, उसका भी स्पष्ट प्रतिबिंब मिलता है।

इनके स्त्री-पात्र—रागिणी (दे०), उत्तरा, सुशीला—मराठी उपन्यास में चिरकाल तक स्मरण किए *जाएँगे। उत्तरा अपने उद्धत तर्कप्रिय स्वभाव के लिए* और रागिणी और सुशीला अपने शांत, निःस्वार्थ एवं आदर्शवादी सिद्धांतों के कारण। तत्त्व दर्शन के कारण इनकी उपन्यास-कला को आघात पहुँचा है—अद्भुत घटनाओं, अस्वाभाविक वर्णनों एवं विवेचनात्मक प्रकरणों के कारण कथा बोझिल हो उठी है और कथानक में शिथिलता आ *गई है। लेखक पहले विचारों का ढाँचा तैयार कर लेता है* और फिर उसके लिए कथानक तैयार करता है। इससे कथानक की कड़ियाँ टूट जाती हैं और लेखक को उन्हें जोड़ने का प्रयत्न करना पड़ता है। वस्तुतः इनकी सत्यान्वेषी की वृत्ति अधिक थी, कथाकार की कम। इसीलिए इनके उपन्यासों में चित्रित जीवन में रंग-संगति, रेखा-सौंदर्य, नाद-माधुर्य कम है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ये मूलतः कलाकार न होकर तत्त्वज्ञ और विचारक थे।

मुख्य उपन्यास—'रागिणी' (दे०) अथवा 'काव्य-शास्त्रविनोद' (1915), 'आश्रमहरिणी' (1916), 'नलिनी' (1919), 'सुशीले चा देव' (1930), 'इंदु काळे व सरला भोळे' (1934)।

जोशी, वीर वामन गोपाल *(म० ले०)* [जन्म—1881 ई०; मृत्यु—1956 ई०]

ये मराठी रंगमंच के लोकप्रिय नाटककार हैं। इन्होंने अपने 'राक्षसी महत्त्वाकांक्षा' (1918), 'रण दुंदुभि' (1927) और 'धर्मसिंहासन' (1929) नाटकों में तत्कालीन राजनीतिक संचेतना का सजीव चित्रण किया है। अँग्रेज सरकार के विरुद्ध जनमत तैयार करने के महत् उद्देश्य से लिखे इनके नाटकों में वीर-रस का अंगी रूप में चित्रण हुआ है। मार्मिक घटना-प्रसंगों को भावानुकूल भाषा-संवादों में प्रयुक्त कर इन्होंने जहाँ कथा की एकरसता में वैविध्य-वैचित्र्य उत्पन्न कर पाश्चात्य नाटकों में प्रयुक्त नाटकीय संघर्ष को सतत बनाए रखा है, वहीं श्लिष्ट किंतु सीमित हास्य-प्रसंगों के माध्यम से युगीन परिस्थितियों पर प्रखर प्रहार भी किया है। सशक्त चरित्र-निरूपण और ओजमयी भाषा के होते हुए भी इनका कला-पक्ष भावनाओं के उद्दाम वेग को वहन करने में पूर्णरूपेण समर्थ नहीं हो पाया है।

जोशी, शं० बा० *(क० ले०)*

कन्नड के विख्यात विद्वान श्री शंकर बालदीक्षित का जन्म बेलगाँव जिले के गुर्लहोसूर में जनवरी, 1896 ई० में हुआ था। धारवाड़ में इनकी शिक्षा-दीक्षा हुई और उसके उपरांत कुछ समय तक ये अध्यापक रहे। उसके उपरांत आपने 'कर्मवीर', 'जयकर्णाटक' आदि वृत्तपत्रों में काम किया। इसी बीच राष्ट्रीय संग्राम में भी सक्रिय भाग लिया। आप कन्नड, मराठी, संस्कृत, अँग्रेजी आदि भाषाओं के प्रकांड पंडित हैं तथा साथ ही एक प्रौढ अनुसंधाता भी।

जोशी, शिवकुमार गिरिजाशंकर *(गु० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

पिछले दो दशकों से प्रसिद्धि प्राप्त शिवकुमार जोशी गुजराती के आधुनिक साहित्यकारों में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। बी० ए० (आनर्स) तक शिक्षा-प्राप्त श्री जोशी वर्षों से कलकत्ते में रहते हैं और लेखन के प्रतिकूल कपड़े का व्यापार करते हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं: 'पाख विनानां पारेवा', 'अनंत साधना', 'नीलांचल', 'नीरदछाया' (एकांकी-संग्रह); 'सुमंगला', 'अधारा उलेचो', 'अंगारभस्म', 'सांध्यदीपिका', 'दूर्वांकुर', 'पटा धीरो धीरो आई', 'एकने टकोरे', 'सुवर्णरेखा', 'शतरंज', 'कृत्तिवास' (दे०) (पूर्ण नाटक); 'रजनीगंधा', 'त्रिशूल', 'रहस्य नगरी', 'रात अंधारी ने तल छे काला', 'अभिसार', (कहानी-संग्रह); 'कंचुकीबंध', 'अनंगराग', 'श्रावणी', 'आभ रूवे एनी नवलखधारे', 'दियो अभयनां दान' (उपन्यास), 'विराज-बहू' और 'देवदास' (बँगला से अनुवाद)। एकांकी-संग्रहों में कथा का चयन प्रायः नगर-जीवन से हुआ है। संभ्रांतता इसका प्रमुख लक्षण है। पात्र और घटनाएँ नगर-जीवन से संबद्ध होने के कारण कथा-फलक प्रायः अंतर्मुखता को ग्रहण कर लेता है। नाटकों के संघर्ष की स्थिति परिस्थितियों की टकराहट से नहीं अपितु पात्रों के मनोमंथन से जन्मी है। जोशी जी के सभी नाटक सामाजिक हैं, अतः वस्तु की दृष्टि से उनमें वैविध्य अधिक नहीं है। पर रंगमंच-संबंधी दृष्टि जितनी शिवकुमार जोशी की विकसित है उतनी गुजराती के कम ही एकांकीकारों की है। इन्होंने रेडियो-रूपक की तकनीक का भी समुचित उपयोग किया है। इनकी सभी कृतियाँ सामान्यतः लेखक के गंभीर व्यक्तित्व का परिचय देती है। इनके संवाद चुटीले, सजीव और आंचलिक भाषा के संस्पर्श से युक्त हैं। चरित्र-चित्रण भी बड़ा सजीव है। इनकी नाटक-योजना में 'फ़्लैशबैक' और 'डबल स्टेज' पद्धति के प्रयोग भी प्राप्त हो जाते हैं। शिष्ट हास्य, शृंगार और करुण—इनके नाटकों के प्रमुख रस हैं। सामग्रतः यह कहा जाता है कि नाटक की स्वरूप-रचना में शिवकुमार जोशी सिद्धहस्त हैं। इनके उपन्यासों का मुख्य स्वर शृंगार का ही है। यौनपरक जीवन के सुंदर चित्र इनके उपन्यासों में मिल जाते हैं। मूलतः इनकी ख्याति का आधार नाटक ही है और नाटककार के रूप में इन्हें जो सफलता मिली है उसे देखकर इनसे अभी और सुंदर नाटकों की अपेक्षा है।

जोशी, सुरेश *(गु० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

पिछले दशक के सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुजराती कवियों में सुरेश जोशी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। श्री जोशी महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय में गुजराती के प्राध्यापक के रूप में काम कर रहे हैं। व्यवसाय से शिक्षक सुरेशभाई की रचनाओं में आधुनिक साहित्य के सभी गुण-दोष वर्तमान हैं। इनकी रचनाएँ हैं: 'प्रत्यंचा' (काव्य-संग्रह), 'गृह-प्रवेश' (दे०), 'बीजी थोडीक' और 'अपि च' (कहानी-संग्रह), 'छिन्नपत्र' (उपन्यास)। 'प्रत्यंचा' नामक

कविता संग्रह मे निस्सहायता, हताशा, हतार्थताजन्य गहरी वेदना की अनुभूति की अभिव्यक्ति है। समाज निरपेक्ष व केवल सत्य-दर्शन के निमित्त ही कविता की रचना के नमूने जोशी की कविताओ मे मौजूद हैं। सुरेशभाई ने नये कवियो का एक अर्थ मे नेतृत्व किया है। नये कवियो ने इनके इस कथन से प्रभावित होकर कि अस्तित्ववाद के सदर्भ मे कला और साहित्य का मूल्याकन लेखक के वक्तव्य के आधार पर नही वरन् उसकी रचना के आधार पर होना चाहिए, अस्तित्ववाद और उसके प्रमुख विचारको को सहृदयता से समझने की चेष्टा की है। नयी कविता की भाँति ही कहानी और उपन्यासो मे प्रतीकात्मक प्रयोगो की वृद्धि हुई है। घटनाओं का महत्व कम होने लगा है और अभिव्यक्ति पक्ष प्रमुख हो गया है। सुरेशभाई अर्थपूर्ण बिबो के माध्यम से विषादमय सवेदनो का तटस्थ निरूपण करने मे सिद्धहस्त है। मनुष्य की दौडमदौड और उसके जीवन के नैरतर्य के प्रत्येक क्षण को बाँधने का प्रयत्न कथा मे घटनाविहीनता को जन्म देता है और कई बार अतिशय वेदनाजनित नर्वस ब्रेकडाउन मे परिणत हो जाता है। 'छिन्नपत्र' मे भी यह घटनाविहीनता मौजूद है। कथा के ततु इस उपन्यास मे बहुत बिखरे हुए है, व्यक्ति के विघटन को सूचित करने वाला वातावरण सर्वोपरि दिखाई देता है। परिशिष्ट रूप मे प्रस्तुत कथाश अधिक स्पष्ट और सुसबद्ध है जो उपन्यास को उसकी वायवीयता से मुक्ति दिलाता है। बाकी विशदता के आग्रही सुरेशभाई की शैली सदिग्धता, क्लिष्टता और बिखराव मे मुक्त नही है। सामान्यत यह कहा जा सकता है कि सुरेश जोशी की कविताएँ, कहानियाँ और उपन्यास—सभी रचनाएँ प्रतीका त्मकता, सामाजिक निरपेक्ष सत्य दर्शन क्षण की अभिव्यक्ति के प्रति आग्रह और गहरे विषाद की छाया से अनुस्यूत है। 'कथोपकथन' (दे०) मे उन्होने उपन्यास और कहानी की विधाओ का आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। श्री जोशी गुजराती साहित्य की नयी प्रवृत्तियो के पुरस्कर्ता रहे है और इसी रूप मे वे अपना विशेष महत्व रखते है।

ज़ौक *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1789 ई०, मृत्यु—1854 ई०]

इनका नाम शेख इब्राहीम और उपनाम 'ज़ौक' था। इनके पिता का नाम मुहम्मद रमजान था। ज़ौक का जन्म दिल्ली मे हुआ। बडे होने पर इनके पिता ने इन्हें हाफिज गुलाम रसूल के पास विद्याध्ययन के लिए बैठा दिया। हाफिज रसूल स्वय भी कवि थे। उनके सपर्क से ज़ौक भी काव्य-रचना मे प्रवृत्त हुए। ज़ौक स्वभाव से बहुत कोमल हृदय और ईश्वर भक्त थे। इन्हें सगीत, ज्योतिष और चिकित्सा-ज्ञान आदि मे रुचि थी। इनकी भाषा परिमार्जित, सुस्पष्ट तथा मुहावरेदार है। वाक्यो मे शब्दो को इस प्रकार सजाते हैं कि स्वत सगीत प्रस्फुटित हो उठता है। दिल्ली की स्वच्छ एव प्रसादगुण-युक्त भाषा ने इनके काव्य को और अधिक सरस बना दिया है।

ज़ौक का काव्य सूफी सिद्धातो से पुष्ट उच्च मानवीय गुणो से ओतप्रोत है। इनके पद स्पष्ट और सरल हैं। यह कल्पना की ऊँची उडानें भरने के साथ साथ काव्य की रसात्मकता को भी नही त्यागते। इनके काव्य मे नयी-नयी उपमाओ तथा रूपको का बाहुल्य है। भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनो की दृष्टि से इनकी रचनाएँ अद्वितीय हैं। अकबर बादशाह की स्तुति करने पर इन्हे 'मलिकुश्शोअरा खाकानी ए-हिंद' की उपाधि प्राप्त हुई थी। इनके कसीदे उच्च कोटि के माने गए है। यह सर्वमान्य है कि इनके समान कसीदा लिखने वाला कोई अन्य कवि नही हुआ। उर्दू साहित्य मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

'जौहर', मुहम्मद अली *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1878 ई०; मृत्यु—1931 ई०]

'जौहर' रामपुर के निवासी थे। इन्होने अलीगढ कालेज और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय म शिक्षा पाई थी। काव्य-साधना के साथ साथ राजनीति के क्षेत्र मे भी ये महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे। ये स्वाधीनता-सग्राम मे अँग्रेजो के विरुद्ध सदा सक्रिय रहे। राष्ट्रीय और राजनीतिक आदोलनो के फलस्वरूप इन्हे अनेक बार जेल-यात्रा करनी पडी। 1931 ई० मे जब ये लदन मे आयोजित गोलमेज कान्फ्रेंस मे भाग लेने गए थे तो वही इनका देहान्त हो गया। ये गद्य और पद्य दोनो के समर्थ लेखक थे। 'रईस-उल अहरार', 'हमदर्द' और 'कामरेड' का सपादन भी इन्होने किया था। इनके काव्य मे विद्यमान खरापन, स्पष्टवादिता, निर्भयता, प्रभावात्मकता, वेदना तथा कसक की विशेषताएँ पाठक को बलात् आकृष्ट कर लेती हैं। इनका 'दीवान' (काव्य-सग्रह) कवित्व की दृष्टि से बडा महत्वपूर्ण है।

ज्ञानदास *(बं० ले०)*

ज्ञानदास के जीवनवृत्त के सबध मे निश्चित

रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अनुमान है 1520 से 1535 ई० के मध्य ब्राह्मण-वंश में इनका जन्म हुआ था। इनका निवास वर्द्धमान जिला (वीरभूमि के अंतर्गत) कांदड़ा ग्राम में था। ये गोविंददास (दे०), बलरामदास (दे०) के समकालीन और संगीत तथा ज्योतिष के अच्छे ज्ञाता थे। ज्ञानदास नित्यानंद (दे०) के भक्त थे। वे नित्यानंद के साक्षात् संपर्क में आए थे। नरहरि चक्रवर्ती के 'भक्ति-रत्नाकर' एवं 'नरोत्तम विलास' के विवरण से जाना जाता है कि नित्यानंद की पत्नी जाह्नवी देवी के ये शिष्य थे। संभव है कि नित्यानंद के तिरोधान के अनंतर इन्होंने जाह्नवी देवी से दीक्षा ग्रहण की हो।

चैतन्य-परवर्ती वैष्णव-पदावली-साहित्य के स्रष्टाओं में ज्ञानदास का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रायः समस्त प्राचीन संग्रहों में इनके पद पाए जाते है। इन्होंने बँगला एवं ब्रज बुलि दोनों भाषाओं में पद रचना की है। ज्ञानदास के पदों में विद्यापति (दे०) एवं चंडीदास (दे०) का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। श्रीमद्भागवत के प्रति इनका अंतरंग अनुराग था; फलस्वरूप श्रीकृष्ण-लीला-संबंधी पदों का बाहुल्य इनके पदों में देखा जा सकता है। गोष्ठी-लीला, सख्य एवं वात्सल्य के पद, राधाकृष्ण का पूर्वराग, रूपानुराग, अभिसार, वसंत-विहार, होली, मान, प्रवास आदि विषयों पर इन्होंने पद-रचना की है।

ज्ञानदास की रचनाओं में आडंबर नहीं है। इनके पदों में गंभीर आंतरिकता, भावों में स्वाभाविकता, भाषा में सहज गांभीर्य मिलता है। ज्ञानदास के सर्वश्रेष्ठ गुण हैं व्यंजना, अपूर्व विस्मय-प्रकाश, अशरीरी चित्रण और नूतन शब्द-सृष्टि द्वारा रहस्य-भावना की अवतारणा। प्रथम श्रेणी के पदकर्ताओं में ज्ञानदास की गणना सदा होती रहेगी।

ज्ञानप्पाना *(मल० कृ०)*

भक्त कवि पून्तानम् (दे०) नंपूतिरि ने इसकी रचना की है। जैसे एषुत्तच्छन (दे०) ने 'किळिप्पाट्टु' (दे०) और श्री कुन्चन नंपियार ने 'तुळ्ळल्' (दे० ओट्टन तुळ्ळल्) पद्धति को जन्म दिया वैसे ही पून्तानम् ने 'पाना' (दे०)-पद्धति का सूत्रपात किया है। इस पद्धति में अन्य केरलीय कवियों ने भी अपनी कृतियाँ रची हैं। किंतु पून्तानम् ही को इसमें सबसे अधिक सफलता प्राप्त हुई है। इसमें संसार की अनित्यता, मानव-जीवन का उद्देश्य, संसार के प्रति वैराग्य आदि विषयों का निरूपण बड़ी विद्वत्ता के साथ काव्यात्मक ढंग से किया गया है। एक प्रकार से इसमें सारे उपनिषदों का सार संगृहीत है। एक बार पढ़ने पर ही पाठक ग्रंथ की सरलता से प्रभावित हो उठेगा। इसकी शैली इतनी सरल और प्रसादपूर्ण है कि एक अपढ़ को भी इसकी भाषा और आशय समझने में कठिनाई नहीं होती।

ज्ञानसिंह, 'ज्ञानी' *(पं० ले०)* [समय—उन्नीसवीं शती]

यह सिख-पंथ के प्रसिद्ध इतिहासकार माने जाते है। इनका जन्म लोंगोवाला में हुआ था। यह विभिन्न भाषाओं के उद्भट विद्वान, कवि और धर्म-प्राण व्यक्ति थे।

इन्होंने 1868 ई० में सिख-पंथ का पद्यमय इतिहास लिखा जो नवीन 'पंथ-प्रकाश' (दे०) के नाम से विख्यात है। इससे पूर्व 1841 ई० में ज्ञानी रतनसिंह 'भंगू' (दे०) भी 'पंथ-प्रकाश' के नाम से पंथ का एक इतिहास लिख चुके थे जिसे छंदःशास्त्र के नियमों की दृष्टि से सदोष समझकर इन्होंने उसमें संशोधन-परिवर्द्धन किया।

ज्ञानेंद्र *(उ० पा०)*

श्री रबिनारायण महापात्र (दे०) के उपन्यास पर आधारित 'एकांकी' (दे०) नाटक [लि० विजयकुमार मिश्र (दे०)] का नायक ज्ञानेंद्र अपने आदर्श में हिमालय-सा अडिग आधुनिक युवक है। यह गण-सेवक का जीवन अपने लिए चुन लेता है। समाज के कोलाहलपूर्ण परिवेश के बीच भी एक स्वतंत्र वैशिष्ट्य लिये यह आगे बढ़ता जाता है। दुर्जेय प्राणशक्ति से युक्त होकर यह आत्म-विभोर हो उठता है। किंतु यह लक्ष्यभ्रष्ट नहीं होता। उसी प्रकार गण-प्राण की शिथिलता व असहयोग के बीच भी यह टूटता नहीं बल्कि इसके कंठ से फूटती है वज्र-शपथ—'एकला चलो।'

इसी मंत्र की शपथ लेकर शहर के निम्न-स्तरीय जीवन में प्रवेश करता है—विश्वविद्यालय का डिग्री-धारी युवक ज्ञानेंद्र। गुंडा रमजान, पाकेटमार बेलु, काला-बाजारिया जेकब, रिक्शावाले की लड़की फुल—इन्हीं के सहयोग से इसने निर्माण किया है अपना कर्म-केंद्र, धर्म, श्रेणी एवं गोष्ठी-निर्विशेष। संहिति के मंच पर इसने गढ़ा है सेवा और जागृति का अमर मंत्र। प्राण एवं प्रतिज्ञा की मशाल लेकर इसने सृष्टि करना चाहा है अंधकार में आलोक का वर्ण-वैभव। इसने सुनी है हृदय के परिवर्तन के बीच सामाजिक जागरण की जयझंकार।

किंतु अतीत की सहपाठिनी, अभिजात समाज की प्रतिनिधि छवि, इसके यात्रा-पक्ष मे सृष्टि करती है अचानक प्रलय। यह प्रलय क्या ज्ञानेंद्र को पथ-विमुख कर सकेगी ? निंदा, अपमान, लाछना की सीढियाँ इसे सिद्धि के मडप पर पहुँचा देती है।

ज्ञानेश्वर *(म० ले०)* [जन्म—1275 ई०, मृत्यु—1296 ई०]

पडितो की प्राचीन नगरी पैठण के निकट आपेगाँव मे इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम विट्ठल पत था, व्यवसाय था पटवारी का। माता का नाम था रुक्मिणी बाई। विट्ठल पत सन्यासाश्रम से पुन गृहस्थाश्रम मे प्रविष्ट हुए थे। अत ज्ञानेश्वर के माता पिता और सभी परिजनो को जाति-बहिष्कार की कठोर यातनाएँ सहनी पडी थी। बाल्यावस्था मे ही ज्ञानेश्वर की अलौकिक प्रतिभा से पडित वर्ग प्रभावित हो गया था। केवल 15 वर्ष की अवस्था मे ही ज्ञानेश्वर ने 'भावार्थदीपिका' की रचना की थी जो 'ज्ञानेश्वरी' (दे०) के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह श्रीमद्भगवद्गीता' (दे० गीता) पर मराठी भाषा मे लिखित अनुपम टीका है। इनका मौलिक ग्रथ है 'अमृतानुभव'। इसमें बौद्धो के शून्यवाद, साख्यो के पुरुष-प्रकृतिवाद का खडन कर मौलिक चिद्विलासवाद की स्थापना की गई है। यह ग्रथ ज्ञानेश्वर के प्रखर दार्शनिक चिंतन का प्रतीक है। 'हरिपाठ' नामक इनकी रचना मे सत्ताईस भक्तिपरक अभग हैं। 'चांगदेव पासष्टी' मे अष्टागयोग मे ब्रह्म प्राप्ति का प्रतिषेध कर भक्ति के महत्व का निरूपण किया गया है। इनके अतिरिक्त सैकडो स्फुट अभगो मे इनकी सरस रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। ज्ञानेश्वर ने काव्य के क्षेत्र म मौलिकता का प्रमाण दिया है—और चिंतन के क्षेत्र मे भी वे सर्वथा मौलिक रहे। भाषा शैली की दृष्टि से तो ये युग-प्रवर्तक कवि थे। ज्ञानेश्वर ने प्रयाग, वाराणसी, गया, अयोध्या, गोकुल वृदावन आदि तीर्थों मे भ्रमण किया था। 22 वर्ष की अल्पायु मे ही ये पूना के समीपस्थ 'अलदी' ग्राम मे समाधिस्थ हो गए।

ज्ञानेश्वरी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1290 ई०]

1290 ई० मे रचित यह ग्रथ-रत्न 'भगवद्गीता' (दे० गीता) की काव्यमय टीका है। ज्ञानेश्वर (दे०) ने इसे 'भावार्थदीपिका' नाम दिया है क्योंकि इसमे गीता के सात सौ श्लोको का मराठी के ओवी छद मे भावार्थ निरूपण है। ओवियो की सख्या नौ हजार है। भाष्य के लिए शकराचार्य (दे०), रामानुजाचार्य (दे०) आदि के दार्शनिक ग्रथो का आधार लिया गया है। ज्ञानेश्वरी का प्रमुख प्रतिपाद्य है—ज्ञान तथा भक्तिप्रधान कर्मयोग। शकराचार्य का दर्शन ज्ञान-प्रधान है तो रामानुज का भक्ति-प्रधान। दोनो के महत्व को समझकर 'ज्ञानेश्वरी' मे ज्ञान-भक्ति-युक्त कर्मयोग की प्रतिष्ठापना की गई है। ज्ञानेश्वर की मान्यता मे "गीता वाग्विलास मात्र का शास्त्र नही है वरन् ससार को जीतने का शस्त्र है। इसके अक्षर वे मत्र हैं जिनसे आत्मा का उद्धार होता है।" 'ज्ञानेश्वरी' मे चिंतन की प्रौढता है, साथ ही काव्यत्व का उत्कृष्टतम रूप भी अतर्भूत है। टीका मे कथोपकथन या सवाद शैली अपनाई गई है। इससे प्रबधकाव्य जैसी रोचकता आ गई है। अध्यात्म और अष्टाग योग जैसे दुरूह विषयो को अत्यत सरल-सुबोध तथा अलकृत भाषा मे समझाया गया है। 'ज्ञानेश्वरी' की नौ हजार ओविया मे से लगभग तीन हज़ार मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टात आदि अलकारो का प्रयोग हुआ है। भाषा मे माधुर्य गुण और सरसता का चरम उत्कर्ष मिलता है। ज्ञानेश्वरी का आध्यात्मिक और साहित्यिक मूल्य दोनो ही एक-दूसरे से बढ कर हैं।

ज्या त्या पडे नजर मारी *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

ज्योतींद्र दवे (दे०) गुजराती साहित्य के श्रेष्ठ हास्यलेखक हैं। इस ग्रथ मे हास्यरस के निबध हैं। विषय और कथन-रीति की प्रचुर विविधता उनके ग्रथो मे मिलती है। इनका हास्य कभी उपहास नही होता, हमेशा परिहास रहता है। हास्य निष्पन्न करने के लिए वे कभी तर्क का आश्रय लेते हैं, तो कभी शाब्दिक हास्य का प्रयोग करते हैं। हास्य-निर्माण के लिए कभी काव्य की विधा का—विशेष रूप से प्रतिकाव्य का, कभी सवाद, तो कभी डायरी, कभी आत्मकथा, तो कभी रेखाचित्र का प्रयोग करते है। इसलिए इस पुस्तक मे विषय और निरूपण-रीति की विविधता प्रचुर मात्रा मे है।

ज्योतिकणा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1938 ई०]

लेखक नीलमणि फुकन (दे०)।

इसकी कविताओ की विशेषता है—रहस्यवाद

कवि विश्व के कण-कण में दैवी शक्ति का आभास पाता है। चूंकि लेखक राजनीतिक नेता है, अतः कविताओं में समाज-चेतना भी है। भावों की अपेक्षा बुद्धि पर अधिक जोर देने के कारण कविताओं में सरसता का अभाव है।

ज्योतिपंत महाभागवत *(म० ले०)*

इनका जन्म-स्थान था—'वुध-मलवड़ी'। पिता का नाम था गोपालपंत और माता का गोदावरी। पानीपत की प्रसिद्ध लड़ाई के समय ये मराठा-सेना में थे। इन्हें संपूर्ण 'भागवत' (दे०) पर टीका लिखने का श्रेय प्राप्त है। यह टीका अभंगबद्ध और ओवीबद्ध है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनेक स्फुट छंद भी रचे हैं। ज्योतिपंत विट्ठल-भक्त थे। एक हजार देवालय बाँधने की इनकी प्रतिज्ञा थी। लगभग साढ़े सात सौ विट्ठल-मंदिरों की स्थापना कर 1788 ई० में ये दिवंगत हो गए।

ज्योतिरेखा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1958 ई०]

लेखक : सत्यप्रसाद बरुवा (दे०)। यह नाटक 1942 ई० के आंदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। निर्भीक शिक्षित युवक ज्योति बरुवा देश के आह्वान पर सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देकर आंदोलन में कूद पड़ता है, उसे फाँसी होती है। 1942 ई० के आंदोलन के कई सजीव चित्र इसमें प्रस्तुत किए गए हैं। नाटक को नायकहीन ट्रेजेडी कहा गया है, क्योंकि जनांदोलन की अशरीरी मूर्ति ही इसका नायक है। यह कृति परिस्थिति प्रधान है। संवादों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

झड़र-झंकार *(उ० कृ०)*

यह श्रीमती तुलसीदास (दे०) की 67 कविताओं का संकलन है। इसमें जीवन-संग्राम की क्षत-विक्षत अनुभूति का आलेख है। कविताओं के माध्यम से कवयित्री ने जिस तूफान की चर्चा की है, उसकी सृष्टि होती है दुःखी व्यक्ति के हृदय में एवं उसकी झंकार वह जितने प्रत्यक्ष रूप से सुन सकता है, उतनी प्रत्यक्षता से दूसरों के लिए उसका सुनना संभव नहीं है। इन कविताओं में मानव-जीवन की व्यथा, असहायता तथा उसके प्रति कवयित्री की संवेदना सुंदर रूप से प्रतिफलित हुई है। देशात्मबोध और जन्मभूमि के प्रति कतिपय कविताएँ भी इसमें संकलित है। 'सेमणिष', 'प्रतिशोध', 'जीवनर हाटे', 'सभ्यतार साज' एवं 'माटिर मोह' आदि इस संकलन की प्रतिनिधि कविताएँ है।

झरना *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1918 ई०]

'झरना' के प्रथम संस्करण में जयशंकर प्रसाद (दे०) की प्रारंभिक छायावादी (दे० छायावाद) रचनाओं का संग्रह किया गया था परंतु दूसरे संस्करण में परवर्ती काल की प्रौढ़ रचनाएँ भी सम्मिलित कर दी गई। इसके वर्तमान रूप में रहस्यवाद, अभिव्यंजना का अनूठापन, व्यंजक चित्र-विधान सब कुछ मिल जाता है। प्रेम के व्यापारों की मधुरता पर कवि की दृष्टि अधिक रमी है। इस काव्य में छायावादी काव्य-पद्धति का मनोरम विकास करने वाली प्रतिभा का पूर्वाभास मिलता है।

झलकीकर वामन *(सं० ले०)*

मम्मट (दे०) के 'काव्यप्रकाश' (दे०) की अनेक टीकाओं का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है जिनमें से कुछ उपलब्ध तथा प्रकाशित भी हैं। आधुनिक काल में उपलब्ध 19 टीकाओं का सारसंग्रह करके झलकीकर वामनाचार्य ने 'बालबोधिनी' नामक टीका की रचना की है। इस टीका में वामनाचार्य ने राधाकृष्ण 'अविचूरि टिप्पणी' तथा महेंद्र-कृत 'तात्पर्यविवरण' नामक टिप्पणी आदि 'काव्य-प्रकाश' की टीकाओं का उल्लेख किया है।

झांग्याणी, संतराम मंघाराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

इनका जन्म-स्थान हैदराबाद सिंध है। ये दिल्ली विश्वविद्यालय के देशबंधु कालेज में सिंधी विभाग के अध्यक्ष है। इनकी कई रचनाएँ विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। पुस्तक के रूप में इनकी रचनाएँ हैं—'अदब जी राह में', 'जय गंगोत्री', 'हलु पुन्हल', 'पाप जी माया'। इन्होंने कहानी, कविता और निबंध के क्षेत्र में सुंदर रचनाएँ सिंधी साहित्य को दी है, परंतु इन्हें अधिक ख्याति निबंध-लेखक के रूप में प्राप्त हुई है। सिंधी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी में भी इनके कुछ निबंध प्रकाशित हो चुके हैं।

झाँसी की रानी *(हिं० कृ०)* (प्रकाशन-वर्ष—1946 ई०]

यह हिंदी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृंदावनलाल वर्मा (दे०) का ऐसा उपन्यास है जिसमें भासी की रानी लक्ष्मीबाई (दे०) तथा उनके सहयोगियों द्वारा 1857 ई० में भारतीय स्वाधीनता के लिए किए गए प्रयत्नों का कलात्मक एवं चित्रोपम लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने अनेक प्रामाणिक साक्ष्यों का प्रश्रय लेते हुए इस तथ्य की स्थापना की है कि रानी लक्ष्मीबाई के मन में बचपन से ही पराधीनता के प्रति विद्रोह के अंकुर विद्यमान थे और स्वराज्य-प्राप्ति के लिए उन्होंने जो लड़ाई लड़ी वह विवशता की उपज न होकर जन्मजात भावना का प्रतिफल थी। लेखक ने अपने इस उपन्यास का ताना-बाना बुनते समय तथ्यों के प्रस्तुतीकरण पर इतना अधिक बल दिया है कि विवरणाधिक्य के फल-स्वरूप औपन्यासिक कला को क्षति पहुँची है। यह उपन्यास सजीव चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से भी पर्याप्त उल्लेखनीय है। लेखक ने रानी लक्ष्मीबाई के शौर्य-पराक्रम का जीवंत चित्रण करने के साथ-साथ गंगाधर राव, सुंदर, मुंदर, मोती, झल-कारी, खुदाबख्श आदि के स्मरणीय चरित्र प्रस्तुत किए है। ध्यातव्य है कि इस उपन्यास में पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्री पात्रों का चरित्रांकन अधिक विस्तार से हुआ है। उपन्यासकार तद्‌युगीन वातावरण की सशक्त अवतारणा में भी सफल रहा है। झाँसी के सामाजिक जीवन तथा पर्वों के साथ-साथ अँग्रेज-छावनियों का भी सजीव वर्णन हुआ है। युद्ध-विषयक वर्णन इतने सजीव बन पड़े हैं कि उन्हें पढ़कर पाठक लेखक के एतद्विषयक ज्ञान की सराहना किए बिना नहीं रह पाता। बुंदेलखंडी भाषा के पुट ने तो उपन्यास की स्वाभाविकता में चार चाँद लगा दिए है।

झा, गंगानाथ *(म० ले०)*

इनका जन्म 25 सितंबर 1872 ई० को हुआ था। ये एम०ए०, डी० लिट्०, एल-एल० डी० थे तथा इन्हें महामहोपाध्याय उपाधि से विभूषित किया गया था। ये इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के कुलपति रहे। इनके द्वारा संस्कृत भाषा में रचित ग्रंथ ये है—

(1) कतिपयदिवसोद्‌गमप्ररोह (पद्य)

(2) वेलामाहात्म्य (पद्य)

(3) भक्तिकल्लोलिनी ('शाण्डिल्यभक्तिसूत्र' पर पद्यबद्ध टीका)

(4) भावबोधिनी (जयदेव-प्रणीत 'प्रसन्न राघव' पर टीका)

(5) खद्योत (वात्स्यायन-रचित 'न्यायभाष्य' पर टीका)

(6) मीमांसा-मंडनम् (मंडन मिश्र-रचित 'मीमांसानुक्रमणिका' पर टीका)

(7) प्रभाकरप्रदीप (पूर्वमीमांसा के प्रभाकर संप्रदाय पर विचार-विमर्श)

इनके अतिरिक्त अँग्रेजी में रचित इनके ये ग्रंथ हैं—

(1) प्रभाकर स्कूल ऑफ पूर्वमीमांसा,

(2) साधोलाल लेक्चर्स ऑन न्याय,

(2) फिलॉसॉफिकल डिसिप्लिन,

(4) हिंदू लॉ इन इट्स सोर्सिज़,

(5) शंकराचार्य एंड हिज वर्क फॉर द अप-लिफ्ट ऑफ द कंट्री,

(6) पूर्वमीमांसा ऑफ जैमिनि।

इनके अतिरिक्त इन्होंने लगभग 30 ग्रंथों का अनुवाद तथा संपादन किया।

झूठा सच *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष, प्रथम खंड—1958 ई०]

यह हिंदी के प्रसिद्ध यथार्थवादी उपन्यासकार यशपाल (दे०) का उपन्यास है। 'वतन और देश' तथा 'देश का भविष्य' शीर्षक से दो खंडों में लिखित इस उपन्यास में 1942 से 1952 ई० तक के भारत की सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना को रूपायित किया गया है। प्रथम खंड में भारत-विभाजन से पूर्व के पंजाब के मध्यवर्गीय जीवन, वहाँ के सामाजिक एवं मानसिक गठन, साम्प्रदायिक भावना की उत्तेजक आँधी के चलने पर देश-विभाजन की विकट समस्या तथा हिंदू मुसलमानों के बीच बढ़ते हुए भेद-भाव आदि का वर्णन किया गया है तो दूसरे खंड में भारत-विभाजन, हिंदू-मुस्लिम दंगों, निरीह नारी का अपमान एवं तिरस्कार करने वाली जघन्य एवं कुत्सित घटनाओं, स्वाधीनता-प्राप्ति के अनंतर लाखों व्यक्तियों के बेघर-बार हो जाने तथा विभिन्न स्थानों पर चलने वाली धोखा-धड़ी, निम्न वर्ग की निराशा आदि को रूपायित किया गया है। इस समूचे परिदृश्य को प्रस्तुत करने के लिए यों तो लेखक ने अनेक छोटी-बड़ी कथाओं का आश्रय लिया है

किंतु इसकी मुख्य कथा जयदेव (दे०) पुरी तथा उसकी बहिन तारा के संघर्षपूर्ण जीवन की कथा ही है। शीलो, उर्मिला, सत्यवती, सीता, आदि से संबंधित गौण कथा-प्रसंगों को मूल कथा में धागे में मनके के समान इस प्रकार पिरोया गया है कि कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने पाई है। जयदेव पुरी, तारा तथा कनक इस उपन्यास की उल्लेखनीय चरित्र-सृष्टि हैं। जयदेव पुरी को मध्यवर्गीय दुर्बलताओं से ग्रस्त व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है जो देश-विभाजन से पूर्व जहाँ अत्यंत आदर्शवादी था वहाँ विभाजन के बाद अपना दीन-ईमान खोकर स्वार्थी तथा खुशामदी प्रवृत्ति वाला व्यक्ति बन जाता है। कनक तथा तारा पुरुषों द्वारा किए गए अत्याचारों के विरोध में विद्रोह व्यक्त करने वाली स्त्री पात्र हैं। लेकिन लेखक ने इनकी चारित्रिक परिणति स्वाभाविक रूप में नहीं होने दी है जिसके फलस्वरूप कनक एक पुरुष के प्रति विद्रोह करने के बाद दूसरे पुरुष का प्रश्रय ढूँढ़ने लगती है और दूसरे पुरुष को पाने के बाद भी उसे चैन नहीं मिलता। तारा आजीवन पुरुषों से बचती हुई अंततः प्राणनाथ के प्रति अपने को समर्पित कर देती है। भावाभिव्यंजना में समर्थ तथा अत्यंत चुस्त भाषा-शैली का कलात्मक प्रयोग इसकी शिल्पगत विशेषता है।

झूलणां *(पं० पारि०)*

झूलणां छंद का प्रयोग पंजाबी में बहुत कम हुआ है। संभवतः यह पंजाबी प्रकृति और सुर-प्रणाली के अनुकूल नहीं। इस छंद में 40-40 मात्राओं के चार चरण होते हैं जिस में हर दस मात्राओं के बाद यति होती है। इसका एक अन्य रूप भी मिलता है जिसमें प्रति चरण 10+10+10+7 के विधान से 37 मात्राएँ होती है। भाई कान्ह सिंह ने इसे 'मणिधर' सवैया का रूप माना है। परंतु पंजाबी में इसे लयानुसारी मानकर ही प्रयुक्त किया गया है। उदाहरण :

कौण सी नी सखी, साँवला कान्ह सी।
जावंदा-जावंदा, वंसरी वा गिआ॥
बोलदी बोलदी पावंदी जान सी।
उसदा बोल नीं जिद नूं भीगिआ॥
लाडला नी चंद, लैगिआ चैन नूं।
कालजे ताँघ दे चीर है पा गिआ॥
प्रीत दी रीत मैं की कहाँ नी सखी।
कान्ह दा प्रेम है, जान नूं खागिआ॥

झेंडूचीं फुलें *(म० कृ०)*

आचार्य प्र० के० अत्रे (दे०) द्वारा लिखित यह विडंबन-काव्य वस्तुतः मराठी में विडंबन-काव्य का श्रीगणेश करता है। इससे पूर्व भी हास्य-व्यंग्यपूर्ण गद्य-पद्य लिखा जाता था, पर अत्रे की कृति की विशेषता यह है कि काव्य-रचना की हास्यास्पद प्रवृत्तियों का उपहास सर्वप्रथम इसी रचना के द्वारा हुआ है। यदि 'संगीत हजामती' में नाट्य-शिल्प का ज्ञान न रहते हुए भी नाट्य-रचना करनेवालों का मजाक उड़ाया गया है तो अन्यत्र संग्राम-गीतों में प्रयुक्त अतिरंजित ओजपूर्ण भाषा का, रचना-दोष दिखाने के लिए लेखक ने संस्कृतनिष्ठ, सामासिक शब्द-योजना का मजाक उड़ाया है। इसमें हास्य के सभी प्रकार—शुद्ध विनोद, परिहास, वैयक्तिक दोष-दर्शन, विडंबन आदि—उपलब्ध होते हैं। लेखक ने प्रायः संयम और परिष्कृत अभिरुचि का परिचय दिया है पर कहीं-कहीं, जहाँ संयम छूट गया है वहाँ, सुसंस्कृत रुचि के पाठक को आघात पहुँचता है। अपने इन्हीं गुणों के कारण यह कृति शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई थी और आज भी विडंबन-काव्य के आदर्श रूप में उसकी मान्यता है।

झेर तो पीधा छे जाणी जाणी *(गु० कृ०)*

मनुभाई पंचोली 'दर्शक' (दे०) का यह एक श्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास है। 'दर्शक' की जीवन-साधना और साहित्याराधना का उत्कृष्ट परिपाक इस कृति में पाया जाता है। श्री ढोलरराय मांकड (दे०) ने इसका विश्लेषण करते हुए कहा है कि—'बुद्ध के द्वारा प्रबोधित मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा—इन चार ब्रह्मविहारों का निदर्शन इस उपन्यास के पात्रों और प्रसंगों के माध्यम से होता है।' रोहिणी, सत्यकाम, हेमंत गोपाल बापा (दे०), नरसी भगत (दे०), शांतिमति और जोरबाइना इस कृति के दिव्य चरित्र है। संसार में फैले हुए विसंवाद, वैमनस्य, अशांति और विसंगति का शमन कर ये पात्र सर्वत्र संवादिता, शांति, प्रेम और करुणा की धारा प्रवाहित करते हैं। इसकी नायिका रोहिणी और नायक सत्यकाम ऊर्ध्वगामी, आदर्श जीवन को चरितार्थ करने के लिए भगीरथ प्रयत्न करते हैं। इसमें उन्हें गूढ़-गहन आंतर-वेदना भोगनी पड़ती है। इसका पूरा उत्तरदायित्व उस अदृष्ट का है जिसके क्रियाकलाप तर्कातीत हैं। लेखक ने अदृष्ट की माया को महत्ता प्रदान करते हुए कई आकस्मिक

घटनाओ को इस उपन्यास के कथानक मे समाविष्ट किया है। इससे इसमे आद्य त कारुण्यपूर्ण गभीर वातावरण बना रहता है जो कभी-कभी पाठक को विह्वल और व्यग्र बना देता है। इस उपन्यास मे सामाजिक, राजनीतिक एव सास्कृतिक समस्याओ को सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे वैयक्तिक धरातल पर प्रस्तुत कर व्यष्टि और समष्टि के सघर्ष को उभारा गया है। इस रचना के प्रमुख पात्र रोहिणी, सत्यकाम और हेमत के समक्ष श्रेय और प्रेय का चिरतन प्रश्न उपस्थित रहता है जिससे अतर्द्वंद्व की सृष्टि होती है। इस अतर्द्वंद्व मे रोहिणी सीता की तरह अग्निपरीक्षा मे तपकर काचन-सी शुद्ध, स्वच्छ और सात्त्विक बनती है। 'शेर सो पीधा' के दो भाग हैं। रचनाकार ने प्रथम भाग मे वस्तु विधान और रूप-विधान मे बडी कुशलता का परिचय दिया है परतु दूसरे भाग मे वस्तु-विन्यास मे शिथिलता और विशृखलता आ गई है। चरित्राकन भी समुचितरूपेण नही हो पाया है। उपन्यास के सबसे आकर्षक पात्र गोपाल बापा हैं जिनका व्यक्तित्व उपकारक और तेजोमय है।

ञानप्पिरकाशर, सामि *(त०ले०)* [जन्म –1875 ई०, मृत्यु— 1947 ई०)

स्वामी ञानप्पिरकाशर (ज्ञानप्रकाश) श्रीलका के तमिल प्रदेश के एक ईसाई साधु थे। इनका जन्म यद्यपि शैव धर्म के अनुयायी परिवार मे हुआ था, किंतु इन्होने ईसाई धर्म की दीक्षा ले ली थी। आरभ मे कुछ समय तक रेल-विभाग मे नौकरी करने के पश्चात् ये धर्मगुरु बन गए थे। तमिल भाषा तथा साहित्य की इन्होने बडी सेवा की। इनके विरचित अनेक ग्रथ हैं, जिनमे कुछ ये हैं—'शब्द-व्युत्पत्ति-निघटु', 'तमिल का प्राचीन रूप और धर्म', 'यापप्पाण (श्रीलका के तमिल प्रदेश) का इतिहास', 'तर्कशास्त्र', 'सन्यास-दर्शन', 'ईसा की जीवनी का अध्ययन', इत्यादि। इन्होने अँग्रेजी मे भी तमिल समाज, भारत के इतिहास आदि से सबद्ध अनेक ग्रथ लिखे है। इन ग्रथो मे 'शब्द-व्युत्पत्ति-निघटु' का बडा महत्व माना जाता है। इसमे तमिल के ऐसे अनेक शब्दो का विवेचन किया गया है, जो सस्कृत मे ही नही, यूरोप की भाषाओ मे भी रूपातरित होकर प्रचलित हो गए है।

ञानाबाळ् *(त० पा०)*

उन्नीसवी शती मे वेदनायक पिळ्ळै द्वारा विरचित तमिल के प्रथम उपन्यास 'पिरतापमुदलियार् चरित्तिरम्' (दे०) की यह कथा-नायिका है। यह एक कल्पित पात्र है किंतु इसके चित्रण मे एक आदर्श भारतीय महिला का रूप प्रस्तुत हुआ है। ञानाबाळ् पिरतापमुदलियार् के मामा की बेटी है। बचपन से ही विवेकपूर्ण तथा लिखने पढने मे चतुर। 'प्रताप' के समान यह भी एक सपन्न ज़मीदार परिवार मे जन्मी है। अपने पाँचवे वर्ष मे ही यह अपने कजूस, अनुदार पिता को यह कहकर बदल देती है कि 'मैं कजूस की बेटी नही कहलाना चाहती'। इसके मग रहने से 'प्रताप' सुधर जाता है। कुछ समय तक प्रताप, ञानाबाळ् तथा अध्यापक-पुत्र कनकसभै तीनो एक साथ पढते-खेलते हैं, दिन बिताते है, तब एक दिन अकस्मात् कनकसभै जलाशय मे गिर जाता है। ञानाबाळ् बडी स्फूर्ति के साथ कार्य करती है और एक राहगीर सन्यासी को बुला लाती है जो कनकसभै को बचाता है। उसे बचाने के लिए यह अपने सारे आभरण उतारकर देने को तैयार हो जाती है। बडो के झगडे के कारण प्रताप और ञानाबाळ् का विवाह रुक जाता है; तब प्रताप के इस प्रस्ताव को वह ठुकरा देती है कि हम छिप कर कही चले जाएँ, किंतु साथ ही प्रताप से प्रेम भी करती है। दुष्ट लोगो द्वारा हरी जाने पर धीरता के साथ यह खिसक कर भाग जाती है और 'प्रताप' की सहायता से मुक्त होती है। फिर दोनो का विवाह सपन्न होता है।

कनकसभै को धनी ज़मीदार का बेटा प्रमाणित करने मे अनेक अडचनें आती हैं, तब ञानाबाळ् धीरज के साथ गवर्नर से भेंट कर सारी बात समझाती है। इसके व्यवहार से प्रभावित होकर गवर्नर मामले को स्वय जाँच कर निपटा देता है।

शिकार खेलने जाकर प्रताप एक मस्त हाथी की भगदड से जगल मे फँस जाता है और फिर किसी परदेश मे लोगो से ठगा जाकर जेल मे पडा रहता है। ञानाबाळ् पुरुष वेश मे वहाँ जाती है और उसे छुडा देती है। सयोगवश वहाँ के लोगो द्वारा शासिका निर्वाचित होकर वह शासन-व्यवस्था को सुधारती है और अत मे प्रताप के सग अपने स्थान को लौट आती है।

ञानाबाळ् के द्वारा लेखक ने तत्कालीन महिलाओ के सम्मुख सद्गुणो का अच्छा आदर्श प्रस्तुत किया है।

टप्पा *(प० पारि०)*

यह एक लोक-प्रचलित काव्य है। इसमे प्रेमी

और प्रेमिका बारी-बारी एक-दूसरे से नोक-झोंक करते हैं। कभी-कभी इसमें गंभीर भावनाओं की भी अभिव्यक्ति मिल जाती है। इसमें प्रायः प्रथम पंक्ति निरर्थक होती है और वह केवल अन्य चरणों के साथ तुक मिलाने के लिए ही बोली जाती है। उदाहरण :

सोने दा दिल माहीआ।
लोकां दीआं रोण अखीआं
साडा रोदां दिल माहीआ।
दो पत्तर अनारां दे
इकवारी मिल माहीआ
दुख जान बीमारां दे।

टप्पा *(बँ० प्र०)*

बँगला में टप्पा का अर्थ है संक्षिप्ताकार के गीत-गायन। टप्पा हिंदी शब्द है जिसका आदि अर्थ था 'कूदना'। बाद में इसका रूढ़ार्थ हो गया संक्षेप; अर्थात् ध्रुपद एवं खयाल की अपेक्षा जो गायन संक्षिप्त है, उसी का नाम हुआ टप्पा। उन्नीसवीं शती के प्रारंभिक काल में, रामनिधि गुप्त (निधुबाबू) हिंदुस्तानी संगीत सीखकर हिंदी गीतों को तोड कर संक्षिप्ताकार में बँगला गीतों की रचना करने लगे और इसी को 'टप्पा' कहा जाने लगा। बंगाल में यह धारणा है कि श्रृंगार-रसात्मक गीत ही टप्पा है परंतु यह भ्रम है। वस्तुतः टप्पा गाने की एक पृथक् रीति का नाम है। टप्पा का परिसर संक्षिप्त होने के कारण इसका भाव संहत एवं रसघन है। विरह-ज्वाला के अपूर्व माधुर्य का आस्वाद निधुबाबू के श्रेष्ठ गीतों में अभिव्यक्त हुआ है। निधुबाबू के अतिरिक्त श्रीधर कथक भी टप्पा-साहित्य के एक प्रसिद्ध लेखक है। कबिगान (दे०) में गाने के साथ-साथ दो-तीन पंक्तियों के संक्षिप्त गान या टप्पा का विशेष प्रचलन था।

टिपणीस, य० ना *(म० ले०)*

रंगमंच के व्यावहारिक ज्ञान एवं सर्जक कल्पना-शक्ति के बल पर य० ना० टिपणीस ने 'मत्स्यगंधा' (1913), 'राधा माधव' (1914), 'जरासंध' (1916), 'नारद' 'पौराणिक चंद्रहार' (1918), 'शहाशिवाजी' (1925), 'शिक्का कट्यार' (1927), 'शिवाजीलाशह' (1933), 'दक्खनचा दिवा' (1936) ऐतिहासिक; तथा 'कमेला' (1911), 'राजरंजन' (1925), 'आशानिरासा' (1923), 'स्वास्तिक बैंक' (1932), सामाजिक नाटकों की रचना की है। 'मत्स्यगंधा' राजा शांतनु के प्रणय एवं भीष्म द्वारा आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा; 'जरासंध' रुक्मिणी-स्वयंवर तथा भीम द्वारा जरासंध-वध; तथा 'राधा-माधव' श्रीकृष्ण-राधा के प्रणय प्रसंगों पर आधारित रचनाएँ है। रचना-शिल्प की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष न होते हुए भी इनकी रचनाओं की मंचीयता स्तुत्य रही है। ऐतिहासिक नाटकों में मौलिक कल्पनाधिक्य के कारण ये ऐतिहासिक पात्रों के साथ न्याय नहीं कर सके हैं। शेक्स-पीयरी नाट्यपद्धति पर रचित होने के कारण भावपूर्ण स्थलों पर पात्रों की द्वंद्वमयी स्थिति एवं अभिनयोचित चांचल्य से परिपूर्ण भाषा-संवादों ने इनकी रचनाओं को मंचीय गौरव अवश्य प्रदान किया है।

टिळक चरित्र *(म० कृ०)*

कथा, उपन्यास, कविता तथा निबंध-लेखक न० चिं० केळकर (दे०) की प्रसिद्धि का आधार उनका चरित्र-ग्रंथ 'टिळक चरित्र' है।

1920 ई० में टिळक बालगंगाधर (दे०) की मृत्यु हुई थी। टिळक के अनन्य सहयोगी केळकर ने उनका चरित्र लिखा, जो तीन भागों में प्रकाशित हुआ। पहला भाग 1923 ई० में निकला और दूसरा 1928 ई० में। तीनों भाग मिलाकर यह ग्रंथ 2000 पृष्ठों में है। एक ही व्यक्ति को लेकर लिखा गया इतना व्यापक तथा विशाल चरित्र-ग्रंथ मराठी में दूसरा नहीं है।

केळकर जी की लेखन शैली आकर्षक है। उन्होंने टिळक जी के जीवन की छोटी-से-छोटी घटना का भी उल्लेख किया है। मराठी व्यक्ति के लिए टिळक पूज्य होने के कारण इस ग्रंथ का महाराष्ट्र में स्वागत हुआ था तथा साहित्य-जगत में अनुकूल टीका-टिप्पणियां हुई थी।

प्रस्तावना में लेखक ने स्वयं लिखा है कि घटित इतिहास के आलेखन के उद्देश्य से यह चरित्र लिखा गया है। इसकी शैली तथ्यात्मक एवं विवरण-प्रधान है। भारतीय राजनीति के क्रीड़ांगण में अग्रिम पंक्ति में कटिबद्ध लोकमान्य टिळक के जीवन के 40 वर्षों के इतिहास के प्रस्तुतीकरण द्वारा यह ग्रंथ भारत—विशेष रूप से महाराष्ट्र—के सांस्कृतिक, सामाजिक, जीवन की सचित्र झाँकी प्रस्तुत करता है।

टिळक के अलौकिक व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रति आदर-भाव रखते हुए भी लेखक का दृष्टि-

कोण विभूतिपूजक का नही रहा है । केळकर जी न टिळक को एक कर्मयोगी मानव के रूप मे ही चित्रित किया है।

टिळक, बालगगाधर (म०ले०) [जन्म—1856 ई०, मृत्यु—1920 ई०]

रत्नगिरि जिले के चिरवलगाँव के साधारण परिवार मे इनका जन्म हुआ था । महाविद्यालय मे पढते हुए आगरकर (दे०) से इनकी मैत्री हो गई थी । सन् 1879 ई० मे ये बी०ए०, एल-एल०बी० हुए थे। बाद मे ये फर्ग्युसन कालेज मे गणित तथा सस्कृत के प्राध्यापक हो गए परतु 1890 मे इन्होने देशसेवा के उद्देश्य से नौकरी स त्यागपत्र दे दिया ।

टिळक एक नि स्वार्थ देशसेवक, लोकनायक, वैदिक अनुसधाता, 'गीता' (दे०) के श्रेष्ठ टीकाकार तथा प्रौढ निबधकार के रूप मे प्रसिद्ध हैं। लोकजागृति के उद्देश्य से इन्होने 'केसरी' और 'मराठा' पत्र निकाला था। 'केसरी' पत्र का सपादन आग से खिलवाड करना था। देशकार्य के लिए जेल जाने की प्रथा का श्रीगणेश टिळक तथा आगरकर ने ही किया था। इनका देशप्रेम इतना प्रबल था कि हिंदुओ की सघशक्ति बढाने के लिए इन्होने गणेशोत्सव तथा शिवाजी जन्मोत्सव को राष्ट्रीय उत्सव घोषित किया था। पत्रो मे प्रकाशित दो सपादकीय निबधो के कारण 1908 ई० मे इन पर राजद्रोह का आरोप लगाकर सरकार ने इन्हे बर्मा के माडले-कारावास मे बदी बनाकर रखा था। कारावास मे रहते हुए इन्होने 'गीता-रहस्य' (दे०) नाम से 'श्रीमद्भगवदगीता' की सर्वोत्कृष्ट टीका लिखी।

ये लोकमगलकारी एव जीवनवादी साहित्यकार थे। 'केसरी' मे प्रकाशित इनके निबध ग्रथो मे सगृहीत है। ये मराठी निबध-साहित्य की अमूल्य सपत्ति है। इनमे से अधिकाश निबध राजनीति पर हैं परतु कुछ निबध पुरातत्त्व, ज्योतिष, समाज-सुधार, तत्वज्ञान, गवेषणा आदि विषयो पर भी है।

टिळक ने निबधो मे अपने मत का आवेशयुक्त प्रतिपादन किया है। इनके निबधो में दृढ आत्मविश्वास का भाव है। इनकी भाषा ओजस्वी और प्रभावोत्पादक है। जटिल विषय को सरल बनाने मे सिद्धहस्त होने के कारण ही 'केसरी' पत्र अतिशय लोकप्रिय था। वकील के ढग से तर्क करते हुए इन्होंने यथास्थिति सुभाषितो की मार्मिक योजना की है।

'ओरिऑन' तथा 'आर्कटिक होम इन द वेदाज़' इनके वैदिक शोध सबधी दो ग्रथ है, जिन्हे पढकर मैक्समूलर भी मुग्ध हुए थे।

टिळक भारत मे राजनीतिक क्राति के जनक माने जाते है। जैसे राजनीति मे ये उग्रदल के नेता तथा स्वराज सस्थापक रहे है, वैसी ही उग्रता तथा आवेग एव अडिग आत्मविश्वास इनके निबध-साहित्य मे भी है, और यही उसकी आत्मा है।

टिळक, रेव्हरेंड नारायण वामन (म० ले०) [जन्म—1862 ई०, मृत्यु—1919 ई०]

इनका जन्म रत्नागिरि जिले में स्थित करज़गाँव के ब्राह्मण कुल मे हुआ था। ईसाई धर्म-प्रचारको से अत्यत प्रभावित होकर इन्होने धर्मांतर किया और ईसाई बन गए।

रेव्हरेंड टिळक सधिकाल के कवि है। लबी कविता और तत्सम-बहुला शब्दावली के कारण जहाँ वे प्राचीन कविता से सबध जोडे हैं वही नवीन भाव-सामग्री, एव विषयो के कारण आधुनिक भी है।

'बापा चे अश्रु', 'माझी भार्या', 'सुशीला'—ये तीन कल्पना-प्रवण प्रबधात्मक कविताएँ है। 'वनवासी फूल' दीर्घ विचारात्मक प्रगीत है और 'अश्रुगुच्छ' एक लघु कविता है। 'रणशिंग' जैसी ओजस्वी कविता द्वारा समाज को जागृति के लिए स्फूर्त किया गया है। 'अभगाजलि' मे अनेक भक्तिपरक अभग हैं। ईसाई धर्म से प्रभावित होकर इन्होने 'ख्रिस्तायन' काव्य लिखा था जो अधूरा है। इसके अतिरिक्त सुदर शिशुगीत भी इन्होने लिखे हैं।

मराठी साहित्य मे ये फूल (प्रकृति) और बच्चो के कवि कहलाते है।

टीका (उ० पारि०)

टीका का अर्थ आलोचना अथवा अर्थ का प्रकाशन है। उडिया-साहित्य म टीका रचनाओ की विपुलता होते हुए भी आलोचनात्मक टीकाओ की सख्या प्राय नगण्य ही है। 'टीका-गोविंदचद्र' एक दीर्घ गाथा-कविता है। उडिया-साहित्य मे 'टिकी' (छोटी-सी वस्तु) के अर्थ मे टीका शब्द का प्रयोग हुआ है। 'टीका महाभारत' इसका उदाहरण है। 'टीका' ग्रथ के रूप मे 'सप्ताग योगसागर-टीका' एव 'गणेशविभूति टीका' आदि महत्वपूर्ण है।

टीका *(पं० पारि०)*

किसी दार्शनिक अथवा गंभीर अर्थ वाली रचना के अर्थ-विश्लेषण के साहित्य-रूप को 'टीका' कहा जाता है। यह मध्ययुगीन पंजाबी गद्य-रूपों में से एक है जिसके माध्यम से धर्म-पुस्तकों और आध्यात्मिक अर्थ वाली काव्य-कृतियों के अर्थ गद्य में प्रस्तुत किए जाते थे। पंजाबी आध्यात्मिक साहित्य के संदर्भ में अठारहवीं-उन्नीसवीं शती तक टीकाकारी की एक दीर्घ परंपरा बन चुकी थी। भाई गुरदास की दो वारों की टीका के रूप में भाई मनी-सिंह-रचित 'ज्ञान रत्नावली' और 'भगत रत्नावली' अपने समय की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। पंजाबी में 'टीका' शब्द पुल्लिंग है और इसका संबंध साहित्यिक और धार्मिक विद्वत्ता की परंपरा से है।

टीह-अखियूं *(सिं० प्र०)*

'टीह-अखियूं' का शाब्दिक अर्थ है 'तीस वर्णों वाली कविता'। यह एक प्रकार की वर्णनात्मक कविता है जिसकी रचना अरबी वर्णमाला के तीस वर्णों पर आधारित है। अरबी भाषा की वर्णमाला में मूलतः अट्ठाईस वर्ण होते हैं। अरबी के अध्यापकों ने अरबी वर्णों के लिखने का रूप बच्चों को सिखाने के लिए उसमें 'हम्जा' और 'ला' (ल् में अलिफ़ मिलाकर 'ला' लिखने का एक विशेष रूप) के रूप अलग जोड़कर कुल तीस वर्णों की तालिका बना ली। अरबी वर्णमाला के अलिफ़-बे आदि तीस वर्णों को लेकर प्रत्येक वर्ण से क्रमानुसार एक-एक बंद (कड़ी) का आरंभ कर 'टीह अखियूं' नामक कविता की रचना की जाती है। इस कविता की विधा फारसी की 'सी-हर्फ़ी' से प्रभावित है। फ़ारसी में भी 'सी-हर्फ़ी' का अर्थ है 'तीस वर्ण'। डा० नबी बख़्श ख़ान बलोच (दे०) ने 'टीह-अखियूं' नाम से दो भागों में इस प्रकार की चुनी हुई सिंधी कविताओं का बृहत्-संग्रह तैयार किया है जो 1960 और 1961 ई० में सिंधी अदबी बोर्ड, हैदराबाद सिंध से प्रकाशित हो चुका है।

टेकाडेयांची कविता *(म० कृ०)*

आनंद कृष्णाजी टेकाडे (जन्म—1890 ई०) की तीन काव्य-रचनाएँ हैं—'आनंदगीत' भाग 1, 2, 3। 'आनंद कंद रमो' नामक ग़ज़ल के काव्य-गायन ने उन्हें रसिक काव्य-श्रोताओं में कवि-रूप में लोकप्रिय बना दिया है।

कवि ने प्राचीन पोवाड़ों की परंपरा को आधुनिक काल में पुनर्जीवित करने का सफल प्रयत्न किया है। महाराष्ट्र व उसका इतिहास इनके पोवाड़ों के विषय हैं। ये पोवाड़े ऐतिहासिक होते हुए भी साहित्यिक हैं। इन पोवाड़ों में सामयिक राजनीतिक घटनाओं एवं प्रसंगों की ही अभिव्यक्ति हुई है। इसी कारण इनका ऐतिहासिक महत्व है।

कृष्णपरक गीतों में भक्ति रस का प्राधान्य है। इनका काव्य परिमाण में विपुल है, पर वह प्रायः अभिधामूलक है। अधिकांश कविताएँ गेय हैं।

टेढ़ी लकीर *(उर्दू० कृ०)*

इसमत चुग़ताई (दे०) के इस उपन्यास में जीवन के निरूपण से अधिक चरित्रांकन पर ध्यान दिया गया है। एक विशेष पात्र अपने जन्मकाल से लेकर युवावस्था तक कुछ विशेष परिस्थितियों में से गुज़रता है और जीवन में पेश आने वाली छोटी-मोटी विभिन्न घटनाओं से उसके चरित्र का निर्माण होता है। इसमत चुग़ताई के उपन्यास की नींव इसी मनोवैज्ञानिक यथार्थ पर रखी गई है कि उप-चेतन की प्रक्रिया का मानव-जीवन और उसके कार्यों से गहरा संबंध होता है। विभिन्न प्रकार के वातावरण से मानव-मन में जो मनोवैज्ञानिक ग्रंथियाँ पड़ती हैं वे उसे प्रभावित करती हैं। अपनी रचना में इसमत ने बराबर उनका ध्यान रखा है। हमारे जीवन में राजनीति, अर्थ-व्यवस्था विचार-शक्ति एवं सहनशक्ति जिस प्रकार घुले-मिले हैं, उन सब पर इसमत की मज़र दृष्टि है। इससे भी बढ़कर उनकी दृष्टि उस मानवीय प्रकृति पर है जो आत्माभिव्यक्ति के लिए सामाजिक बंधनों एवं नियमों की पाबन्द नहीं। इसमत का यह उपन्यास भी प्रेमचन्द (दे०), सज्जाद ज़हीर, कृश्न चंदर (दे०), अज़ीज़ अहमद की भाँति बढ़ते हुए जीवन और नित नयी राहें ग्रहण करती हुई कला का पोषक है। यहाँ भी केवल उसी जीवन को अपना विषय बनाया गया है जिसकी रगों में निरन्तर वादों की संवेदना अपना स्थान बना चुकी है। इसी जीवन को विचार-शक्ति द्वारा नयी कला के साँचे में ढाला गया है। यह कृति उर्दू-साहित्य की एक अमूल्य निधि है। उर्दू-उपन्यास-साहित्य में निश्चय ही इसका एक गौरवपूर्ण स्थान है।

ठक् चाचा *(बँ० पा०)*

'आलालेर घरेर दुलाल' (दे०) के नायक चरित्र का नाम है मतिलाल क्योंकि मतिलाल के जीवन की बात की ही लेखक ने वर्णना की है। किंतु इस ग्रथ की समस्त घटनाओ के केंद्र मे जो निवास कर रहा है अथवा जो समस्त घटनाओ का नियत्रण कर रहा है उसका नाम है—ठक् चाचा (ठक् चाचा)। ठक् चाचा प्यारीचाँद मित्र (दे० मित्र) की अमर सृष्टि है। ठक् चाचा की धोखा-धडी की तुलना नही; कूटकौशल मे वह अद्वितीय है, झूठी प्रशसा करने मे उसका मुकाबला नही, इसीलिए ठक् चाचा की तुलना एकमात्र ठक् चाचा ही है। सस्कारवादी रामलाल की सद्वृत्ति एव शिक्षानुराग से ठक् चाचा आशकित है, केवल लाभ-हानि के डर से नही क्योकि उसका स्थिर विश्वास है—दुनिया सच्ची नही है। इतनी चाल-बाजी करने पर भी उसकी आशा भग हो जाती है और यही ठक् चाचा की जिदगी की सबसे बडी ट्रेजेडी है। ठक् चाचा प्रत्येक क्षेत्र मे सजीव-प्राणवान है। उसके कितने तरीके है, कितने दाँव है; फिर भी शिकार आकर भाग जाता है। यथार्थ जगत् से चुना गया ठक् चाचा का चरित्र बँगला साहित्य मे अद्वितीय है। वह प्राचीन साहित्य के भाडुदत्त (दे०) का समगोत्रीय है।

ठाकर, धारूभाई प्रेमशकर *(गु० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

धीरूभाई ठाकर मूलत वीरमगाम के निवासी हैं। इनकी शिक्षा सिद्धपुर, अहमदाबाद और बबई मे हुई। 'मणिलाल नभुभाई' पर शोधप्रबध लिखने के उपलक्ष्य मे इन्हे बबई विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई। ठाकर जी आरभ से ही एक तेजस्वी छात्र रहे थे। बी० ए० (गुजराती विषय लेकर) प्रथम श्रेणी मे पास करने के पश्चात् ये एल्फिस्टन कॉलेज बबई मे अशकालिक अध्यापक के रूप मे नियुक्त हुए। आजकल ठाकर जी मोडासा आर्ट्स एड साइस कॉलेज मे प्राचार्य के पद को सुशोभित कर रहे है। इनकी रचनाओ मे यदि सपादित रचनाओ को छोड दें तो मौलिक रचनाएँ इस प्रकार है: 'गुजराती साहित्यनी विकासरेखा', 'मणिलाल नभुभाई : साहित्य साधना' (पी-एच० डी० का शोध-प्रबध), 'मणिलाल नभुभाई : जीवनरग', 'रग कसुबी', 'रस अने रुचि'। डॉ० धीरूभाई ठाकर सन्निष्ठ विद्वान अध्यापक के रूप के सुविख्यात हैं। सम्प्रति ये नाट्य-निर्माण तथा नाटक के साहित्य प्रकार और आधुनिक गुजराती साहित्य का बृहत् इतिहास लिखने मे प्रवृत्त है। इनके विवेचन सूक्ष्म और अध्यापकीय व वैचारिक निष्ठा से पूर्ण है।

ठाकर, लाभशकर *(गु० ले०)* [जन्म—1935 ई०]

इनका जन्म प्रख्यात वैद्य जादवजी निर्भयराम के यहाँ हुआ था 1957 ई० तथा 1959 ई० मे इन्होने क्रमश बी० ए० तथा एम० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। स्वय रोगग्रस्त होने पर इन्होने वैद्यक से सबधित समस्त साहित्य का गहन अध्ययन कर वैद्यक का ज्ञान अर्जित किया था। सम्प्रति 'कामचिकित्सा' नामक रुग्णालय का सचालन कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त 'पुनर्वसु' नामक सुप्रसिद्ध गुजराती समाचार-पत्र मे आयुर्वेद-विषयक लोकप्रिय लेख-माला भी चला रहे है। इससे पूर्व ये दस वर्ष तक गुजराती के प्राध्यापक पद पर भी प्रतिष्ठित रहे थे। किंतु परीक्षा के लिए विद्यार्थियो को तैयार करना रसहीन लगने के कारण इन्होने इस पद को छोड दिया।

इनका वास्तविक परिचय एव साहित्यकार के रूप मे है। नये कवियो के नेता होने के साथ-साथ ये उच्चकोटि के कवि है। 'वही जती पाछल रम्यघोषा' (दे०) इनका सुविख्यात काव्य-सग्रह है। 'एक उदर अने जदुनाथ' (दे०) अर्थात् 'एक चूहा और जदुनाथ' नामक एब्सर्ड नाटक लिख कर इन्होने गुजराती के रगमच पर बडी हलचल मचाई है। 'माणसनी वात' तथा 'तमारा नामना दरवाजे' इनके काव्य-ग्रथ है। 'अकस्मात' और 'कौस' उपन्यास तथा 'इनर लाइफ' तद्विषयक आलोचनात्मक ग्रथ है।

इन्होने प्रारभ मे परपरागत ढग पर काव्य-रचना की थी किंतु बाद मे आयासपूर्वक इसका परित्याग कर दिया और छादस-अछादस रचनाओ मे सहजता का भोग लिये बिना लय तथा प्रास की लीला द्वारा नये काव्य को वाणी देने लगे। उनके काव्य का बहुत कुछ सौंदर्य, मार्दव तथा लालित्य उसमे निहित शिशु पर आधृत है। इस सबध मे एक आलोचक का यह कथन सर्वथा सार्थक प्रतीत होता है कि लाभशकर मे जो शिशु है उसे यदि निकाल दिया जाए तो इनके काव्य मे बहुत कम उल्लेख्य रह जाता है।

ठाकुर *(हिं० ले०)*

कवि ठाकुर के सबध मे असनी वाले पुराने

ठाकुर (सोलहवीं शती का उत्तरार्ध), असनी वाले दूसरे ठाकुर (उन्नीसवीं शती का प्रारंभ) और बुंदेलखंडी तीसरे ठाकुर (1766 ई० से 1823 ई० तक) को लेकर विद्वानों में काफ़ी विवाद है। पहले ठाकुर ने व्रजभाषा में मन की उमंग के अनुकूल रीतिमुक्त (दे० रीतिमुक्त काव्य) स्फुट रचनाएँ की है, दूसरे ठाकुर ने 'सतसई बरनार्थ' नामक 'बिहारी-सतसई' (दे०) की टीका लिखी है और तीसरे बुंदेलखंडी ठाकुर ने स्फुट पदों में वहाँ के रीति-रिवाजों की बहुत सुंदर अभिव्यंजना की है। इनके पिता गुलाबराय अपनी ससुराल ओरछा में आ बसे थे। वहीं इनका जन्म हुआ।

लाला भगवानदीन (दे०) ने 'ठाकुर ठसक' नाम से इनके पदों का संग्रह प्रस्तुत किया है, जिसमें कुछ पद पहले ठाकुरों के भी सम्मिलित कर लिये है। इन्होने जैतपुर-नरेश परीछत के दरबार में बहुत सम्मान प्राप्त किया था और बांदा के हिम्मत बहादुर गोसाईं के दरबार मे पद्माकर से इनकी नोक-झोंक अनेक बार हो चुकी थी। ठाकुर सच्ची उमंग के कवि थे। बोलचाल की भाषा में भाव का यथातथ्य चित्रण करना इनकी सहज विशेषता है। इनके काव्य में लोकोक्तियों और मुहावरों का बड़ा सजीव प्रयोग पाया जाता है। प्रेम-निरूपक रीतिमुक्त कवियों में ये अग्रणी कवि है। भारतेंदु (दे०) के सवैयों पर ठाकुर की भाव-भंगिमा का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। सवैया (दे०) छंद में ठाकुर की सहजगति थी। 'मोतिन की सी मनोहर माल गुहै तुक अक्षर जोरि बनावै', 'पंडित और प्रवीन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त कहावै' एवं 'बनाय आय मेलत सभा के बीच, लोगन कवित्त की बो खेलकरि जानौ है' आदि पंक्तियों में कवि ने अपने समय की सुंदर-असुंदर कविता की परिभाषा प्रस्तुत की है। स्वभाव से निर्बंध होते हुए भी इस कवि ने लोक-चित्त की उपेक्षा नहीं की है; तभी तो लोक का यह अद्भुत चितेरा बुंदेलखंड की जनता के बीच में अक्षय तृतीया को पहुँचकर वट-पूजन कराना नहीं भूला है, पुरुष से पत्नी का और पत्नी से पुरुष का नाम लिवाना और न लेने पर गुलाब या चमेली की छड़ी से उपस्थित भीड़ द्वारा आघात करवाने की चुहल तक को अपने काव्य में समेट लाया है। कहना न होगा प्रेमरस मे निमज्जित होकर हृदय की सहज समुच्छ्वसित भावनाओं का चित्रण जिस ढंग से इन्होंने किया है वह प्रत्येक दृष्टि से अद्वितीय और परवर्ती कवियों के लिए अनुकरणीय है।

ठाकुर, अवनींद्रनाथ (*बँ० ले०*) [जन्म—1871 ई०; मृत्यु—1951 ई०]

अवनींद्रनाथ ठाकुर प्रिंस द्वारकानाथ ठाकुर के तृतीय पुत्र गिरींद्रनाथ के कनिष्ठ पुत्र गुणेंद्रनाथ के कनिष्ठ पुत्र थे। भारतीय शिल्पकला के इतिहास में अवनींद्रनाथ का स्थान अतुलनीय है। ये भारतीय शिल्प की नवजागृति के पुरोधा थे। अवनींद्रनाथ अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रथम सार्थक भारतीय शिल्पी थे। शिल्पी तथा शिल्पी-गुरु के रूप में ये प्रसिद्ध हैं। परंतु केवल शिल्प के क्षेत्र में ही नहीं, साहित्य-क्षेत्र में भी इनका विशिष्ट स्थान है। शिशु-साहित्य तथा चिंतनशील प्रबंध-साहित्य के निर्माण में इन्होंने स्वकीय वैशिष्ट्य का परिचय दिया है। 'क्षीरेर पुतुल', 'शकुंतला', 'नालक', 'भूतपरीर देश', 'राजकाहिनी' (दे०), 'खाजांचिर खाता', 'बुडो आंग्ला', 'मासि', 'मारुतिर पुंथि', आदि पुस्तकें शिशु-साहित्य के अमूल्य रत्न हैं। दूसरी ओर, 'भारत शिल्प' (1909), 'बांग्लार व्रत' (1919), 'प्रियदर्शिका' (1921), 'बागेश्वरी शिल्प-प्रबंधावली' (दे०) (1941) आदि विभिन्न विषयों से संबंधित इनके चिंतन-प्रधान ग्रंथ हैं।

सहज स्वर में अपने मन की बात कहने एवं लेखक और पाठक के बीच के व्यवधान को मिटा देने की शक्ति अवनींद्रनाथ के साहित्य-शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता रही है।

ठाकुर, ज्योतिरिंद्रनाथ (*बँ० ले०*) [जन्म—1849 ई०; मृत्यु—1925 ई०]

आधुनिक युग के प्रारंभिक चरण मे ज्योतिरिंद्रनाथ ठाकुर ने ऐतिहासिक नाटकों की रचना कर जो स्वाधीनता-बोध जगाने का प्रयत्न किया था वह बंगला साहित्य मे बिलकुल अभिनव एवं एक नये दृष्टिकोण का सूचक था। देश के प्रति लोगों का अनुराग एवं स्वदेश-प्रीति को उद्बोधित करने के लिए लेखक ने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से भारतवर्ष की गौरव-गाथा का कीर्तन किया है। उनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटकों में 'पुरुविक्रम' (1874), 'सरोजिनी' (1875), 'अश्रुमती' (1879), 'स्वप्नमयी' (1882) बहुत ही प्रसिद्ध हैं। ऐतिहासिक कहानियों को लेखक ने इन नाटकों में अपने आदर्श के अनुसार ढाला है; कदाचित् इसीलिए उनके 'पुरुविक्रम' नाटक के अतिरिक्त और किसी नाटक में नाटकीय रस एवं नाटक

का महत्व ऐतिहासिक घटनाओ एव चरित्र पर निर्भर नही है। उस युग के लिए दुर्लभ आगिक चेतना, स्वाभाविक एव परिच्छन्न कथानक एव सवाद-रचना लेखक का प्रधान वैशिष्ट्य रहा है।

ज्योतिरिंद्र के शिल्पी मानस मे एक आभिजात्य भाव विद्यमान था और इस परिच्छन्न अभिजात रुचि का परिचय उनके द्वारा रचित प्रहसनो मे विशेषत मिलता है। उनके प्रहसनो मे 'किंचित् जलयोग' (1872), 'एमन कर्म आर करब ना' (1877), 'हिते बिपरीत' (1896), 'हठात नबाब' (1884) आदि उल्लेखनीय हैं। इन प्रहसनो मे विद्रूप का आघात कही भी सुरुचि की सीमा का अतिक्रमण नही करता।

ठाकुर, देवेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1817 ई०, मृत्यु—1905 ई०]

आधुनिक बँगला प्रबध साहित्य के विकास-काल के साथ विशेष रूप से सबद्ध महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर ने 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका की स्थापना कर बँगला गद्य-लेखको के एक मडल के निर्माण मे बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया।

ब्राह्मसमाजी, रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) के पिता, देवेंद्रनाथ ठाकुर की प्राथमिक रचना मूल रूप से धर्माश्रित है। 'तत्त्वबोधिनी' पत्रिका स ही सकलित उनकी 'ब्राह्मधर्म' (1851), 'ब्राह्मसमाजेर वक्तृता (1862) 'ब्राह्मधर्मेर व्याख्यान (1869) पुस्तके प्रकाशित हुई है। आलोचको का कहना है कि विद्यासागर (दे० ईश्वरचद्र) ने नही बल्कि देवेंद्रनाथ ठाकुर ने बँगला-गद्य को भाव प्रकाशन की सरलता, स्पष्टता तथा सरसता प्रदान की थी। उनकी रचना मे पाडित्य और शास्त्रज्ञान की अपेक्षा सौंदर्य बोध तथा गहरी अध्यात्म अनुभूति कही अधिक मात्रा मे थी। उनकी 'आत्मजीवनी (1898) म तथ्यो और युक्ति तर्कों के साथ आत्मगत भावोच्छ्वास का सुर प्रतिध्वनित है। यह ठीक है कि महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर की रचना मे विषय वैचित्र्य नही है परतु भावानुभूति की प्रगाढता उनकी रचनाओ मे स्वत स्पष्ट है।

ठाकुर, द्विजेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1840 ई०, मृत्यु—1926 ई०]

महर्षि देवेंद्रनाथ (दे०) के ज्येष्ठ पुत्र, कवि सार्वभौम रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) के अग्रज द्विजेंद्रनाथ अपनी वैचित्र्यमयी प्रतिभा के फलस्वरूप बँगला साहित्य के इतिहास म विशेष स्मरणीय है। चित्रकला, गणित, दर्शन, काव्य आदि नाना विषयो पर इनका अबाध अधिकार था। दार्शनिक आलोचना एव मौलिक साहित्य-चिंतन से अनुप्राणित इनके ग्रथ 'तत्त्वविद्या' (1866 69) (चार खड), एव 'गीतापाठेर भूमिका' तथा 'गीतापाठ' (1916) उल्लेखनीय है। इनकी प्रातिभिक श्रेष्ठता का निदर्शन दूसरे ग्रथो मे भी विद्यमान है। सोनार काठि रूपारि काठि' (1885), 'आर्यामि ओ साहे बियाना' (1890), 'सामाजिक रोगेर कविराजी चिकित्सा' (1891), 'अद्वैतमतेर प्रथम और दूसरी समालोचना' (1897-98), 'आर्य धर्म एव बौद्धधर्मेर परस्पर घात-प्रतिघात और सघात' (1900), 'सारसत्येर आलोचना', 'हारामणिर अन्वेषण', 'नानाचिंता' (1922), 'प्रबधमाला' (1921), 'चिंतामणि' (1923) इनके उल्लेखनीय ग्रथ हैं।

कवि द्विजेंद्रनाथ भी बँगला-काव्य के क्षेत्र मे सुप्रतिष्ठित है। 'स्वप्न प्रयाण' (1875) काव्य मे परिकल्पना के साथ मनोदर्शन का अपरूप समन्वय घटित हुआ है। यौतुक न कौतुक' (1883) गाथा-काव्य मे भी इनके कविधर्म का विचित्र परिचय उद्घाटित हुआ है।

ठाकुर, बलेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1870 ई०, मृत्यु—1899 ई०]

रवींद्र (दे० ठाकुर) के समकालीन एव परवर्ती प्रबधकारो म बलेंद्रनाथ सविशेष स्मरणीय है। स्वल्प जीवन की परिधि म इनकी प्रतिभा का थोडा प्रकाश भी विस्मयकारी है। इनके 'चित्र और काव्य' (1892 ई०) ग्रथ ने इन्ह शिल्पी की मर्यादा प्रदान की है। इनके कविता-ग्रथ 'माधविका (1894 ई०) मे वसत एव 'श्रावणी' मे वर्षा की कविताएँ प्रेयसी के सौंदर्य म मुग्ध कवि-हृदय का स्तवगान हैं। पत्र-पत्रिकाओ म प्रकाशित इनके प्रबधो मे प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व, प्राचीन सस्कृति साहित्य मध्य युगीन बँगला साहित्य आदि विषयो म सर्वत्र इनकी अनुसधित्सा एव विश्लेषण शक्ति का अपूर्व परिचय उद्घाटित हुआ है। 'कणारक', 'जयदव' आदि भी प्रसगत स्मरणयोग्य हैं।

बलेंद्रनाथ न बँगला साहित्य को ऐश्वर्यशाली बनाया है। इनके प्रबध-साहित्य म इनकी परिपूर्ण शिल्पी-सत्ता विराजमान है।

ठाकुर, रवींद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1861 ई०; मृत्यु—1941 ई०]

मानव-इतिहास के पृष्ठों में कभी-कभी ऐसे कवि भी दिखाई पड़ जाते हैं जिनका प्रधान परिचय देशकाल की सीमा में आबद्ध नहीं रहता वरन् जिनका वास्तविक परिचय चिरंतन विश्व की व्यापकता में मिलता है। रवींद्रनाथ ठाकुर इसी प्रकार के कवि हैं।

बाल्यकाल में इन्होंने अपने पिता महर्षि देवेंद्रनाथ ठाकुर (दे०) से ज्योतिष तथा व्याकरण की शिक्षा प्राप्त की थी, अन्यथा स्कूल की शिक्षा इन्हें लगभग मिली ही नहीं थी। बारह-तेरह वर्ष की अवस्था से ही इन्होंने पद्य-रचना प्रारंभ कर दी थी। प्रारंभिक रचनाओं के अंतर्गत 'बनफुल' (1879), 'कवि-काहिनी' (1879), 'संध्या-संगीत' (1882), 'कड़ि ओ कोमल' तथा 'मानसी' (1890), है। बाद की अवस्था की रचनाओं में 'सोनार तरी' (दे०) (1894), 'चित्रा' (दे०) (1896), 'क्षणिका' (1900), 'खेया' (1906), 'गीतिमाल्य', 'गीतालि' तथा 'गीतांजलि' (दे०) (1910), 'बलाका' (दे०) (1916) का उल्लेख किया जाता है। 'गीतांजलि' के अँग्रेज़ी अनुवाद पर, जो इन्होंने स्वयं किया था, इन्हें 1913 ई० में नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ था। 'गीतांजलि' में कवि-मन की व्याकुलता अनाविल भक्तिरस से अभिषिक्त हो उठी है। 'गीतांजलि' की संवेदनाओं की सचाई और भाव-चित्रों की सजीवता इनके पदों के संगीत से मिलकर एक ऐसे काव्य की सृष्टि करती है कि शब्दों के भूल जाने पर भी पद-संगीत पाठक के मन को विभोर किए रहता है। इसके उपरांत जो काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हुए थे, उनमें 'पलातका', 'पूरबी' (दे०), 'प्रवाहिनी', 'शिशु' (दे०), 'भोलानाथ', 'महुआ', 'वनवाणी', 'परिशेष', 'पुनश्च', 'वीथिका' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके अंतिम काव्य-संग्रह 'आरोग्य' (1941) तथा 'शेष लेखा' (1941) मृत्यु-पथ-यात्री की विचित्र अभिज्ञता का वर्णन है।

पद्य की तरह गद्य की भी रचना रवींद्र ने शैशवकाल से प्रारंभ कर दी थी। इनका प्रथम गद्य-प्रबंध, 'भुवनमोहिन-प्रतिभा' 'ज्ञानांकुर' में 1883 ई० प्रकाशित हुआ था। इनका पहला उपन्यास था 'करुणा'। उसके बाद इन्होंने 'बौठाकुरानीर हाट', 'राजर्षि' (1886) की रचना की थी। फिर क्रमशः इन्होंने 'चोखेर बालि' (दे०), 'नौका डूबी' तथा 'गोरा' (दे०) उपन्यासों की रचना की। नाटकों में 'वाल्मीकि प्रतिभा', 'मायार खेला' गीतिनाट्य प्रसिद्ध हैं। स्वर के धागे में हृदयावेग को पिरो देना ही इन नाटकों का उद्देश्य रहा है। 'विसर्जन' (दे०) तथा 'चित्रांगदा' में रवींद्रनाथ की नाटक-लेखनी ने मानो पूर्णशक्ति प्राप्त कर ली है। 'डाकघर' (दे०) तथा 'रक्तकरबी' (दे०) इनके प्रसिद्ध सांकेतिक नाटक हैं। जीवन की अंतिम अवस्था में लिखित नृत्य नाटक तो इनकी अपनी मौलिक सृष्टि हैं। 'नटीर पूजा' इसका उदाहरण है। 'चिरकुमारेर सभा' (दे०) में हँसी निरंतर अश्रु के साथ मिलकर चलती हुई अंतिम दृश्य में एक अपूर्व प्रहसन की सृष्टि करती है। मानव-जीवन में ऋतुक्रम का प्रभाव तथा प्रतिक्रिया दिखाने के लिए इन्होंने 'शारदोत्सव', 'राजा', 'अचला यतन', 'फाल्गुनी' आदि नाटक लिखे थे। 1888 ई० में इन्होंने आधुनिक बँगला-साहित्य में लघु कहानी की सृष्टि करके एक नवीन एवं प्रधान धारा की सृष्टि की थी।

निबंध के क्षेत्र में भी इनकी देन बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा, भारतवर्ष, आत्मशक्ति, स्वदेश, समाज, धर्म, शांतिनिकेतन आदि इनके समस्यामूलक तथा दार्शनिक निबंधों का संकलन है। 'जीवन-स्मृति' इनकी आवेगमूलक गद्य-रचना का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है। अपने साहित्य-तत्त्व-विषयक ग्रंथों, 'साहित्य', 'आधुनिक साहित्य', 'साहित्येर पथे' आदि में इन्होंने रस, सौंदर्य और बृहत् जीवनादर्श के आधार पर भारतीय साहित्य-विचार को नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार साहित्य-सृजन में पारंगत कवि ने अपनी सृजन-कला से साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र को उज्ज्वल बनाया है।

रवींद्रनाथ ठाकुर की चिंतनधारा के प्रमुखतया तीन आधार थे। प्रथम, भारतीय उपनिषद् का आध्यात्मिक आत्मवाद; द्वितीय, बंगाल के बाउल विचार जो सूफी तथा अद्वैतवादी विचारधारा के अनुरूप हैं; और तृतीय, चिरंतन सौंदर्यवाद जिसकी अभिव्यक्ति प्रत्येक विराट् कवि के लिए आवश्यक है। इन आधारों से अनुप्रेरित कवि ने जगत् की इस विचित्र सृष्टि के बीच परमब्रह्म के प्रकाश का अनुभव किया है। इसी को कवि ने सीमा अर्थात् सीमित 'हम' एवं असीम 'ब्रह्म' के साथ मिलन का अनुभव कहा है। कवि का संपूर्ण साहित्य इसी जीवन-दर्शन से अनुप्रेरित है।

ठाकोर, जया *(गु० ले०)* [जन्म—1930 ई०]

जया ठाकोर अहमदाबाद के बी० डी० कालेज में अँग्रेज़ी साहित्य की प्राध्यापिका हैं। उनके दस उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। भारत-विभाजन पर आधारित उनका उपन्यास 'सती' इस विषय पर लिखा हुआ एकमात्र

उपन्यास है। उन्होंने अपने उपन्यासो मे नारी-जीवन की समस्याएँ विशेष रूप से ली है। 'मोटाघरनी बहु' उपन्यास मे विवाह विच्छेद की समस्या है। उनके उपन्यास विशेषत मनोवैज्ञानिक है, और उन्होंने चेतना-प्रवाह शैली का प्रयोग किया है। उनके उपन्यासो के नारी पात्र क्रातिकारी हैं। वे पति के अन्याय को सहन नही करती, पति का त्याग करती है, अवैध प्रणय भी करती है और उसके लिए क्षोभ की भावना उनमे नही होती। आधुनिक नारी के दर्शन उनके 'सती', 'मोटाघरनी बहु', 'बेघर', 'कल्पनामूर्ति', 'नव-प्रस्थान' इत्यादि उपन्यासो मे होता है। उनके 'पायडु सलिवल्यु' उपन्यास ने बहुत हलचल मचाई थी।

ठाकोर, पिनाकिन *(गु० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

पिनाकिन उदयलाल ठाकोर का जन्म ब्रह्मदेश (बर्मा) मे हुआ था। 1938 ई० मे बबई विश्वविद्यालय से बी० ए जी० (आनर्स) की डिग्री प्राप्त कर इन्होने कुछ समय पुराने बबई इलाके के कृषि विभाग मे नौकरी की थी। किंतु बाद मे अपना पैतृक जौहरी-व्यवसाय अपना लिया। इन्होने एक अच्छे कवि के साथ रेडियो नाटककार एव रेडियो एकाकीकार के रूप मे भी ख्याति अर्जित की है। 1956 ई० मे इनकी नियुक्ति आकाशवाणी के अहमदाबाद केंद्र पर नाट्य दिग्दर्शक के रूप मे हुई थी।

उमाशकर (दे०) तथा सुदरम् (दे०) की पीढी के बाद 1940 ई० से 1956 तक सौदर्योन्मुख कवियो का युग आया था जिसमे राजेंद्रशाह तथा निरजन भगत के साथ इनका नाम भी अग्रगण्य है। इनकी तीन रचनाएँ प्रसिद्ध है— आलाप', 'रागिनी' और 'आरवी अने पडछाया'। यो तो इन्हाने वर्णिक तथा मात्रिक दोनो प्रकार के छदो मे काव्य-रचना की है किंतु इनकी विशेषता इनके प्रगीतो म है। सौदर्य-भक्तिपूर्ण इनके प्रगीतो की पदावली अत्यत कोमल मधुर है। समग्रतया गुजराती कवियो मे इनका स्थान एक रुचिर कवि के रूप मे सुविख्यात है।

ठाकोर, बलवतराय *(गु० ले०)* [जन्म—1869 ई०, मृत्यु *1953 ई०*]

गोवर्धन युग के सबसे विलक्षण कवि, विवेचक एव गद्यकार बलवतराय कल्याणराय ठाकोर (ब०क०ठा०) इतिहास तथा अर्थशास्त्र के प्राध्यापक थे। 'सेहेनी' उपनाम से इन्होंने विचारमूलक कविताएँ लिखी है। इनका प्रसिद्ध कविता-सग्रह 'भणकार' (दे०) 1917 ई० मे प्रकाशित हुआ। परपरागत सरल, प्रासादिक, कल्पना-प्रचुर, रोमाटिक कविता धारा के प्रति विद्रोहात्मक वृत्ति और क्रातिकारी दृष्टि लेकर बलवतराय ने गुजराती काव्य क्षेत्र मे पदार्पण किया और अपने विशिष्ट प्रयोगो द्वारा विचार-प्रधान, अर्थयुक्त, गहन गभीर सॉनेटो और अन्य कविताओ का सर्जन किया जिसमे कविता की यति, प्रास, छद, लय आदि के बधनो को तोडा गया। उन्होंने कविता मे गेय तत्त्व का तिरस्कार किया और पद्य की प्रवाहिता' पर बल दिया। ब० क० ठाकोर ने 'पृथ्वी छद' की शक्तियो का अन्वेषण कर उसे यतिमुक्त, अगेय, प्रवाही बनाकर सफलतापूर्वक प्रयुक्त किया। 'भणकार' के कुछ सॉनेट अपने शब्द एव अर्थ-गाभीर्य, सुव्यवस्थित कल्पना-वैभव और प्रवहमान शैली के कारण गुजराती के उक्त सॉनेटो मे परिगणित होते हैं। कथ्य और शिल्प दोना दृष्टियो से बलवतराय युगातरकारी कवि है।

श्री ठाकोर उच्चकोटि के समीक्षक भी हैं। 'विविध व्याख्यानो भा० 1', 'सरस्वती चद्रमा वस्तुनी फूलगूथणी', 'लिरिक' (दे०) इत्यादि ग्रथो म इनकी उत्कृष्ट समालोचना-शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। 'उगती जुवानी' और 'लग्नमा ब्रह्मचर्य' इनके मौलिक नाटक हैं। तदनतर इन्होने सस्कृत नाटको के अनुवाद किए है और इतिहास-ग्रथ लिखे हैं। वस्तुत श्री ठाकोर बहुमुखी प्रतिभा के लेखक हैं।

ठोकळ, ग० ल० *(म० ले०)*

ये ग्राम्य जीवन तथा ग्रामीण परिवेश पर आधारित कथा लिखने वाले आचलिक कथाकार है।

इनके बारह कथा सग्रह प्रकाशित हुए है जिनम प्रसिद्ध है 'कडूसाखर', 'सुगध', मीत्याचा चारा', ठोस्ळ गोष्ठी' भाग 1-2 आदि।

इनकी कथाओ का आधार ग्रामीण जीवन है। देहाती जीवन के दुख, कष्ट, दीनता, अज्ञान आदि समस्याओ का अद्भुत-रम्य चित्रण इन्होंने किया है। ग्रामीण जीवन के आश्रय से ग्रामीणो के अत करण का अध्ययन कर अनेक रहस्य-कथाओ या अवास्तविक घटनाओं पर आधारित अतिरजनात्मक कथाओ का सृजन भी इन्होंने किया है।

कथाओ म विनोद स्थूल है, कृत्रिम और अतिरजित है। इन्होंने पात्रानुकूल ठेठ देहाती भाषा का प्रयोग किया है।

ये जानपद गीतकार के रूप में विशेष प्रसिद्ध हैं। 'मीठभाकर' इनके जानपद गीतों का संग्रह है।

डंबाचारी विलासम् (त० कृ०) [रचना-काल—उन्नीसवीं शती का अंतिम दशक]

इसके रचयिता काशी विश्वनाथ मुदलियार हैं। इन्होंने उन्नीसवीं शती के अंतिम दशम में नाटक रचना प्रारंभ किया। 'डंबाचारी विलासम्' इनका सर्वप्रसिद्ध नाटक है। इसे तमिल का प्रथम सामाजिक नाटक माना जाता है। विद्वानों के मतानुसार यह नाटक उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में मद्रास-स्थित एक व्यक्ति के यथार्थ जीवन पर आधृत है। नाटक की कथा इस प्रकार है—एक व्यक्ति अपने पिता से उत्तराधिकार में अपार संपत्ति प्राप्त कर पाखंडी, ढोंगी और आडंबरप्रिय हो जाता है। अपने अवसरवादी मित्रों और वेश्याओं के साथ आनंद-क्रीडाएँ करते हुए मदिराव्यसनी होकर अपनी सारी संपत्ति नष्ट कर देता है। धीरे-धीरे मित्रगण उसका साथ छोड देते हैं और वह अनाथ बन जाता है। काशी विश्वनाथ मुदलियार अँग्रेज़ी शिक्षा-प्राप्त अफसर थे। उन्होंने देखा कि तत्कालीन समाज में अँग्रेजी शिक्षा-प्राप्त ऐसे अनेक अमीर नवयुवक है जो कि बाह्याडंबर में जीवन नष्ट कर रहे हैं। ये व्यक्ति तमिल-समाज की रूढ़ परंपराओं और तमिल-संस्कृति के लिए खतरा बन रहे थे। इनका व्यवहार और जीवन-मूल्यों के प्रति इनका दृष्टिकोण हिंदू समाज के अनुरूप बिलकुल नहीं था। भारतीय संस्कृति और परंपरा की रक्षा में लगे व्यक्तियों को सदा इस बात का डर लगा रहता था कि कहीं ये लोग जीवन के व्यापक मूल्यों को नष्ट न कर दें। समाज को ऐसे ढोंगी युवकों से सावधान करने के लिए ही विश्वनाथ मुदलियार ने इस नाटक की रचना की थी।

प्रथम सामाजिक नाटक होने के कारण इसने दर्शकों एवं रंगकर्मियों को समान रूप से आकृष्ट किया। नाटक का नायक डंबाचारी तमिल-समाज में एक प्रतीक बन गया है। आज अत्यंत खर्चीले और निश्चित व्यक्ति को 'डंबाचारी' कहा जाता है। नाटक की दो प्रमुख विशेषताएँ है· पात्रों का सजीव चरित्र-चित्रण और व्यंग्यात्मकता। विभिन्न पात्र यथार्थ जीवन के अत्यंत निकट दीख पडते हैं। विश्वनाथ मुदलियार ने यद्यपि 'तामिलदार नाडहम' और 'ब्राह्मसमाज नाडहम' नामक दो अन्य सामाजिक नाटक लिखे परंतु प्रसिद्धि एवं प्रभावशालिता की दृष्टि से 'डंबाचारी विलासम्' ही इनका सर्वश्रेष्ठ सामाजिक नाटक ठहरता है। इसका तमिल के सामाजिक नाटकों में विशिष्ट स्थान है। 1900 से 1925 ई० के बीच इसका अभिनय तमिलनाडु में अनेक बार हुआ।

डखणे (पं० पारि०)

'आदिग्रंथ' में इस शीर्षक के अंतर्गत गुरु अर्जुनदेव के कुछ छंद संकलित हैं, अतः इसे भ्रमवश किसी छंद अथवा काव्य-रूप का भेद समझ लिया जाता है परंतु यह शब्द एक विशेष शैली का परिचायक मात्र है। गुरु नानक की जन्मभूमि तलवंडी से दक्षिण की उपभाषा मुलतानी (लहंदी) में निबद्ध होने के कारण ये डखणे (दक्षिणे>दखणे>डखणे) कहलाते है। इस उपभाषा में 'द' और 'स' का 'ह' हो जाता है। डखणे का वर्ण्य ईश्वर-प्रेम की तीव्रता और छंद दोहा अथवा सोरठा है।

डमरुधर (बँ० पा०)

डमरुधर (त्रैलोकनाथेर गल्प) बँगला साहित्य की एक चमत्कारिक चरित्र-सृष्टि है। डमरु ने असंभव अवास्तविक कल्पना के साथ अपने चरित्र की संस्थापना कर एक नये रसलोक की सृष्टि की है। डमरु की नीचता, स्थूलता कूटबुद्धि, पाखंड एवं आत्मप्रसाद व्यंग्य-कौतुक-करुणा की रश्मित्रयी से सुनियंत्रित है। अपने को लेकर डमरु ने मजाक किया है किंतु आत्मविश्वास नहीं खोया है। डमरु की झूठी आत्मश्लाघा ने पाठक को धोखे में नहीं डाला है एवं पाठक ने भी घृणा तथा विरक्ति से अपना मुह नहीं फेरा है वरन् सकौतुक दिल खोलकर हँस लिया है। डमरु सेरवान्ते के डॉन क्वक्ज़ोट, कानन डायल के शर्लाक होम्स, एवं अर्नेस्ट ब्राम के काडलुंग की तरह विश्व-साहित्य की एक अमर सृष्टि है।

डहमु (सिं० पारि०)

'डहमु' का शाब्दिक अर्थ है 'दम का', 'दम वाला' (पद्य)। सिंधी लोक-साहित्य में 'डहमु' शृंगार रस से पूर्ण वह कविता है जिसमें कवि नायिका के सौंदर्य का वर्णन करते समय किसी उपमेय अथवा उपमान का विभिन्न तथा पर्यायवाची शब्दों में उल्लेख करता है। ये शब्द सिंधी, संस्कृत, प्राकृत, हिंदी, अरबी, फ़ारसी आदि भाषाओं से चुने जाते है। उदाहरणार्थ, नायिका की आँखों का वर्णन

करते हुए कवि आँखो का अथवा आँखो के किसी उपमान का दस पर्यायवाची शब्दो मे उल्लेख करता है। 'डहसु' के सग्रह को 'डहसुनामो' कहा जाता है। इन कविताओ पर हिंदी के रीतिकालीन शृगार-काव्य का प्रभाव दृष्टिगत होता है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भी 'डहसु' पद्य महत्व-पूर्ण हैं। जलाल नामक धोबी के 'डहसु' पद्य बहुत प्रसिद्ध हैं।

डाकघर *(बँ०कृ०)*

प्रतीकात्मक नाटको मे सर्वाधिक लोकप्रियता 'डाकघर' को मिली है। इसमे रवीद्र (दे० ठाकुर) ने बाल-मनोविज्ञान का स्वाभाविक परतु सशक्त विश्लेषण किया है। अमल एक ऐसा अद्भुत बालक है जिसमे सृष्टि के सौंदर्य एव रहस्य को जानने की निरतर जिज्ञासा है। उसकी निश्छल प्रकृति तथा बाल-सुलभ कल्पना घटे वाले, दही वाले, सुधा आदि सब की बातो मे नवीनता एव उत्सुकता पाती है। स्थूल-व्यावहारिक बुद्धि का माधव उसकी इस मनोवृत्ति को नही समझ सकता। यही स्थिति कविराज की है। वह ऐसा जड अभ्यासी व्यक्ति है जो जीवन के सहज-सरल तत्त्व को नही समझ पाता। बाबा अमल की प्रकृति को तत्काल समझ जाता है। वस्तु-विन्यास कोई जटिल नही परतु राजा के घर से चिट्ठी आएगी, इस प्रसग का पूरा नाटकीय लाभ उठाया गया है। अत मे, अमल की यह इच्छा अवश्य पूरी हो जाती है। नाटक की समस्या बाल-मनोविज्ञान की है परतु, वास्तव मे, रवीद्र, सहज प्राकृतिक मूल्यो पर बल देना चाहते हैं। सबसे सशक्त पात्र अमल है जिसके रेखाकन मे कही-न-कही रवीद्र का अपना बाल्यकाल उभर आया है। शेष पात्र निमित्त मात्र है। रगमच की दृष्टि से यह बहुत सफल और प्रभावशाली रचना है। अपने क्षेत्र मे अद्वितीय होने के कारण यह चिरस्मरणीय रहेगी।

डा० आनदीबाई जोशी *(म० कृ०)*

1912 ई० मे श्रीमती काशीबाई कानिटकर ने 'डा० आनदीबाई जोशी' नामक चरित्र-ग्रथ की सृष्टि की थी। आनदीबाई के बारे मे लेखिका न आप्तजनो से जानकारी प्राप्त की है। अतः यह चरित्र-ग्रथ विश्वसनीय है। नायिका द्वारा लिखित पत्रो के उल्लेख द्वारा इस ग्रथ को अपूर्व बना दिया गया है। इन पत्रो के समावेश स चरित्र-नायिका की स्वभावगत विशेषताओ के मार्मिक उदघाटन मे सहायता मिलती है, साथ ही ग्रथ की शोभा मे वृद्धि भी हुई है।

इस चरित्र-ग्रथ की शैली प्रसाद गुण-सपृक्त एव सरस है। सहज-सुदर भाषा मे लिखित, हृदयस्पर्शी निवेदनो के सस्पर्श से सरस तथा भावनात्मक उद्गारो से युक्त यह चरित्र-ग्रथ पर्याप्त रमणीय हो गया है।

इसके प्रकाशन के उपरात पुस्तक तथा लेखिका दोनो ने मराठी साहित्य-जगत मे प्रसिद्धि प्राप्त की है। इस प्रकार की शैली का यह पहला मराठी चरित्र-ग्रथ है।

डाबर आरु नाइ *(अ० कृ०)* [रचना-काल—*1955* ई०]

लेखक योगेश दास (दे०)।

'डाबर आरु नाइ' (मेघ और नदी) उपन्यास मे महायुद्ध के प्रभाव से आदर्श-भ्रष्ट और नीति-भ्रष्ट समाज तथा चाय बागान के जीवन का चित्रण है। नये लेखक की यह एक महत्वपूर्ण कृति है।

डिंगल

राजस्थान मे एकाधिक भाषाओ का साहित्य मे प्रयोग होता रहा है जिनमे मुख्य मारवाडी या पश्चिमी राजस्थानी है। इसी के साहित्य मे प्रयुक्त रूप को 'डिंगल' कहते है। डिंगल नाम का प्रथम प्रयोग बाँकीदास ने उन्नीसवी *शती मे किया है। 'डिंगल' नाम कैसे पडा, इस पर बहुत* विवाद है। 'वेलि क्रिसन रुकमणरी' तथा 'ढोला मारूरा दूहा' डिंगल मे लिखित मुख्य कृतियाँ है।

डिंगल-पिंगल *(हि० पारि०)*

ये दोनो शब्द राजस्थान म भाषाशैलियो के लिए प्रचलित हैं। डिंगल नाम स राजस्थानी और पिंगल *नाम से राजस्थानी-प्रभावित व्रजभाषा का बोध होता है।* वस्तुत डिंगल नाम मारवाडी बोली की साहित्यिक चारण-शैली को दिया गया है। जोधपुर के कविराजा बाँकीदास (दे०) ने सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग किया था। यह वस्तुत भाषा की एक कृत्रिम शैली है, जिसे चारणो न गढा *था। इसी के अनुकरण पर राजस्थान की अन्य बोलियों से* प्रभावित व्रजभाषा को पिंगल कहा गया। कुछ लोग यह

भी मानते हैं कि ब्रजभाषा का आरंभिक रूप पिंगल ही है।

डियोढ़ *(पं० पारि०)*

चार चरणों के ऐसे मात्रिक छंद को 'डियोढ़' कहते हैं जिसके प्रत्येक चरण में 16+12+8=36 मात्राएँ हों। इसमें प्रत्येक चरण के दूसरे और तीसरे चरणांश की तुक मिलती है जिसके फलस्वरूप छंद की लय संगीतमयी एवं लचकदार हो जाती है। भाई कान्ह सिंह ने दुभंगी अथवा मदनमहर इसके दो अन्य नाम भी लिखे हैं। परंतु वे पंजाबी में प्रचलित नहीं हैं। इस छंद का प्रयोग अधिकतर शृंगार—विशेषतया विप्रलंभ शृंगार—में किया जाता है। महाराजा रणजीत सिंह के समकालीन कवि हाशम (दे०) की डियोढ़ें बहुत प्रसिद्ध हैं। महाराजा की अतिप्रिय 'डियोढ़', जिसे वे कवि हाशम के मुख से बार-बार सुनते थे, इस प्रकार है :

कामल शौक माही दा मैंनू, रहे जिगर विच वसदा,
लूँ लूँ रसदा।
रांझण बेपरवाही करदा, कुई गुनाह ना दसदा,
उठ उठ नसदा।
जिउँ जिउँ सुणावाँ गेवाँ, वेख ततीवल हसदा,
जरा ना खसदा।
हाशम कम्म नहीं हर कसदा, आशक होण दरस दा,
बिरहों रस दा॥

डेका, हलिराम *(अ० ले०)* [जन्म—1901 ई०; मृत्यु—1960 ई०; जन्म-स्थान : ज़िला कामरूप]

इन्होंने कलकत्ता से एम० ए०, बी० एल० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थी। ये असम उच्च न्यायालय के न्यायाधीश रहे थे।

प्रकाशित रचना—'अलकालै चिठि' (1949)।

यह ग्रंथ अलका नामक कल्पित नारी को संबोधित कर लिखे गए पत्रों का संग्रह है। अलग-अलग पत्रों के माध्यम से लेखक ने उपन्यास की कहानी बुननी चाही है। इन्होंने प्रेम-प्रणय-प्रधान जटिल और मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी हैं। कहानियों में बुद्धि-दीप्त हास्यरस और वाक्-चातुर्य भी पाया जाता है। 'मरा घोड़ा' इनकी विशिष्ट कहानी है।

ये गरिमामय एवं विचारपूर्ण गद्य के लेखक माने जाते हैं।

डेका, हितेष *(अ० ले०)* [जन्म—1924 ई०; जन्म-स्थान : ज़िला कामरूप]

व्यवसाय से ये अध्यापक हैं। प्रकाशित ग्रंथ—कहानी: 'प्रायश्चित्त' (1949), उपन्यास : 'आजिर मानुह' (दे०) (1952), 'नतुन पथ' (1954)', 'मारा घर' (1957),' 'माटि घर' (1958), 'एये तो जीवन' (1962)।

'आजिर मानुह' इनका श्रेष्ठ उपन्यास है। शेष कृतियों में ये अपने ही स्तर को स्थिर नहीं रख सके। इन्होंने ग्राम-जीवन और कृषक-समस्याओं के यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किए हैं। इनकी प्रसिद्धि रचना-कौशल आदि के कारण न होकर कहानी के कारण है।

ढगढमालि *(उ० पारि०)*

'ढगढमालि' लोकोक्ति और मुहावरा नहीं है। यह उड़िया भाषा एवं साहित्य की एक ऐसी विशेषता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। जातीय सांस्कृतिक चेतना को सुरक्षित रखने का युग-युग से चला आने वाला यह जनप्रयास है, अतः अपने में अनूठा है—भाव एवं भाषा दोनों ही दृष्टियों से। 'ढगढमालि' सैकड़ों वर्षों से अनेक पीढ़ियों द्वारा मौखिक रूप से संचित मानव-स्वभाव की व्याख्या है। युग-युग की अनुभूति से समृद्ध सहज एवं सरल भाषा में प्रकाशित 'ढगढमालि' को सांसारिक जीवन की दिशा-निर्देशिका कहना असंगत नहीं होगा। एक-एक 'ढग' में एक-एक पुस्तक छिपी है। किंतु 'ढगढमालि' सर्वदा उपदेशात्मक नहीं होती। इससे यदि कभी मनोहर ग्रामीण गल्प की सूचना मिलती है तो कभी ऐतिहासिक तथ्य की; कभी यह व्यंग्यात्मक होती है, तो कभी एकदम अर्थहीन।

'ढगढमालि' में गुरु और लघु के उच्चारण में निर्दिष्ट नियम नहीं दिखाई पड़ता श्रुति-मधुरता की दृष्टि से लघु के स्थान पर गुरु और गुरु के स्थान पर लघु का उच्चारण होता है। 'ढगढमालि' के लिए त्रय-अक्षरी से षडक्षरी तक के छंद प्रयुक्त हुए हैं। कविता में ऐसा प्रयोग नहीं दिखाई देता क्योंकि सप्ताक्षरी से कम वर्णों के छंद का प्रयोग कविता के लिए नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त इसमें अनेक समछंद भी दिखाई पड़ते हैं जिनमें

नामकरण तक नहीं हो सका है।

ढप-कीर्तन (बँ० प्र०)

प्राचीन पाचाली (दे०) गायन मे गायक के पैरो मे नूपुर एव हाथो मे चामर मदिरा वाद्य रहता था। परवर्ती युग मे कीर्तन (दे०) के आश्रय से पाचाली गान का प्रवर्तन हुआ। इस प्रकार के पाचाली गायन का एक विशेष रूप है ढप कीर्तन। ढप-कीर्तन के उद्भव के बारे मे एक दूसरा मत है कि कीर्तन गान जब धार्मिक अनुष्ठान मे बदल गया और लोग जब प्राचीन लोक पारपरिक कीर्तन के प्रेम सगीत को भूलने लगे तब इस ढप-कीतन का आविष्कार हुआ। ढप-कीर्तन मे प्राचीन पाचाली के अनुसार गायक नूपुर या चामर मदिरा का प्रयोग नहीं करता। वह साधारण वेश मे कीर्तन की तरह ही कथा एव स्वर के समन्वय के द्वारा गीत की कथावस्तु को नाटयाकार मे परिवर्तित कर देता है।

मधुकान (1813-1868) ढप-कीर्तन के प्रवर्तक उन्नायक थे। मधुकान के गीतो ने बँगला कीर्तन गान को एक नया रूप प्रदान किया। परवर्ती युग मे कीर्तन मे बाउल (दे०) आदि लोक गीतो की रीति के अनुप्रवेश का पूरा श्रेय इन्ही को दिया जाता है।

ढेकियालफुकन, आनदराम (अ० ले०) [जन्म—1829 ई०, मृत्यु—1859 ई०]

जन्म-स्थान गौहाटी। इनकी शिक्षा कलकत्ता के हिंदू कालेज मे हुई थी। इन्हे अँग्रेजी, हिंदी, फारसी और बँगला भाषाओ का अच्छा ज्ञान था। फुकन जी ने क्रमश दीवान मुसिफ, एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर आदि पदो पर कार्य किया था। इन्हाने 1846 ई० से 'अरुणोदय' पत्रिका मे लिखना आरभ किया था। इसमे इनका इगलैंड विवरण' धारावाहिक छपा था। 1849 ई० म इनके 'असमीया लरार' ग्रथ का प्रकाशन हुआ था। असमीया भाषा को बँगला प्रभाव म मुक्त कर उस स्वतत्र भाषा का गौरव दिलाने का इनका प्रयास सराहनीय है। इन्होने 1855 ई० मे 'ए नटिव' छदम नाम से 'ए पयू रिमार्क्स ऑन असमीज लैंग्वेज' पुस्तक लिखकर असमीया भाषा की स्वतत्रता का प्रतिपादन किया था। ईसाई मिशनरियो के साहित्यिक प्रयासो मे सबस पहल इन्होने सहयोग दिया था। इनके युक्तिसगत विचार, तीक्ष्ण बुद्धि और देशभक्ति देखकर ही कर्नल हापकिन्स ने इनकी तुलना बँगला के राममोहन राय से की थी। इनकी योजना अँग्रेजी-असमीया और असमीया-अँग्रेजी कोशो के निर्माण की थी, किंतु इनकी असमय मृत्यु के कारण वह सफल न हो सकी थी।

साहित्य को इनकी देन कम है, किंतु ये असमीया भाषा के त्राता और निर्माता माने जाते है।

ढोला (प० पारि०)

यह पश्चिमी पजाब के ग्रामो का प्रख्यात लोकगीत है जिसका वर्ण्य मुख्यत विरह वेदना अथवा उपालभ होता है। विद्वानो का अनुमान है कि पश्चिमी पजाब की बारो म आकर बसने वाले राजस्थानी परिवारो के साथ ही इस क्षेत्र मे ढोला मारु की कथा का प्रचार हुआ और उसके नायक ढोला के नाम पर ये लोक गीत भी प्रचलित हुए। तुकानता स्वर के लोच और घोष वर्णो के बाहुल्य के अतिरिक्त एक विशेष प्रकार की लय इस गीत की मुख्य पहचान है। गायक कानो मे उँगली डालकर, ठहराव के साथ, ऊँचे स्वर मे ढोला गाता है। पहले इनमे केवल प्रेम और विरह का चित्रण रहता था किंतु आजकल ईश्वर-महिमा धर्म, सूफी विचारधारा, वीरता अथवा हास्य के प्रसग भी इसकी परिधि मे समाविष्ट होने लगे हैं।

ढोला मारू रा दूहा (हिं० कृ०) [रचना-काल—ग्यारहवी शती]

यह राजस्थानी का अत्यत लोकप्रिय प्रेम-काव्य है। हेमचद्र (दे०) के व्याकरण म इस ग्रथ के कतिपय 'दूहे' मिलते है, जिससे यह सिद्ध है कि यह उनके समय म प्रसिद्ध रहा होगा और इसका प्रणयन उसस काफी पहल हुआ होगा। यह काव्य लोक गीत के रूप मे प्रचलित रहा है, अत इसका रचयिता अज्ञात है और समय-समय पर इसके रूप म भी परिवर्द्धन होता रहा है। कल्लोल 'लूणकरण तथा 'कुशलनाभ' को इसके कुछ अशो का रचयिता माना जाता है। यह शृगार रस प्रधान काव्य है जिसम ढोला मारू के प्रेमाख्यान का मुक्तक शैली म अत्यत सरस तथा सजीव वर्णन किया गया है।

णायकुमारचरिउ (अप० कृ०)

इस ग्रथ के लेखक पुष्पदत (दे०) हैं।

यह नौ संधियों का चरित-काव्य है। इसकी कथा संक्षेप में इस प्रकार है—मगध में राजा जयधर अपनी रानी विशालनेत्रा और पुत्र श्रीधर के साथ राज्य करता था। सौराष्ट्र में वह गिरिनगर की पुत्री पृथ्वीदेवी के चित्र पर मुग्ध हो गया और उसने उसे अपनी रानी बना लिया। इस रानी से राजा को एक पुत्र प्राप्त हुआ। इस बालक के अकस्मात् कुएँ में गिर जाने पर नाग ने उसकी रक्षा की थी, इसीलिए इस बालक का नाम नागकुमार रखा गया। इसने बचपन में ही अनेक अद्भुत कार्य किए तथा अनेक विद्याओं और कलाओं में दक्षता प्राप्त की। युवावस्था में इसने अनेक सुंदरियों से विवाह किए। श्रीधर उससे ईर्ष्या करने लगा। दोनों की माताओं में भी सपत्नीजन्य ईर्ष्या उत्पन्न हुई। अंत में नागकुमार ने अपने पूर्वजन्म की पत्नी लक्ष्मीमती से विवाह किया। इस प्रकार वह अनेक वर्षों तक अपनी अनेक पत्नियों के साथ आनंदपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए राज्योपभोग करता रहा और अंत में तपस्वी बनकर मोक्ष को प्राप्त हुआ।

ग्रंथकार ने इस चरित-काव्य की रचना श्रुत-पंचमी व्रत का माहात्म्य प्रदर्शित करने के लिए की थी। नागकुमार ने जिस लौकिक सुख-समृद्धि और धन-संपदा का उपभोग किया था वह उसके पूर्वजन्म में इसी व्रत के अनुष्ठान का फल था।

नागकुमार की कथा जैनों में बहुत प्रसिद्ध है। नागकुमार 24 कामदेवों में से एक है। पूर्वजन्म में श्रुत-पंचमी व्रत के अनुष्ठान के कारण उसने कामदेव के अवतार के रूप में जन्म लिया था। उसने अपनी वीरता से अनेक युद्ध जीते थे, अपने अप्रतिम सौंदर्य के कारण अनेक राजकुमारियों से विवाह किया था। डा० शंभूनाथ सिंह ने इसे रोमांचक खंड-काव्य कहा है जिसमें धर्मकथा, रोमांचक और काव्य तीनों की विशेषताओं का सुंदर सामंजस्य है।

इस कृति के कथानक में सपत्नी-ईर्ष्या, सौतेले भाइयों में वैमनस्य आदि विषय प्रचलित लोककथाओं की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। अलौकिक एवं अतिमानवीय कार्यों का उल्लेख तो प्रायः सभी जैन-काव्यों में मिलता है। इसमें पृथ्वीदेवी का नख-शिख-वर्णन, उद्यान-क्रीड़ा, जल-क्रीड़ा आदि अनेक काव्यमय वर्णन प्रस्तुत किए गए हैं। अनेक कथानक-रूढ़ियों के अध्ययन की दृष्टि से भी यह काव्य महत्वपूर्ण है।

तंगत्तम्मै (त० पा०)

'तंगत्तम्मै' भारतीदासन् (दे०)-कृत 'कुडुंब विळक्कु' नामक काव्य की नायिका है। 'कुडुंब विळक्कु' गृहस्थ जीवन का काव्य है। यह पाँच भागों में विभाजित है जिनमें क्रमशः गृहस्थ के घर में प्रतिदिन घटने वाली घटनाएँ, अतिथि-सत्कार, प्रेम-विवाह, शिशु-जन्म और वृद्धों का प्रेम वर्णित है। प्रथम भाग में यह गृहस्वामिनी के रूप में—एक घर की बहू के रूप में—हमारे सम्मुख आती है। यह सास, ससुर और पति की सेवा करती है, बच्चों का पालन-पोषण करती है। शिक्षित होने के कारण बच्चों को पढ़ाने का कार्य भी करती है। दिन-भर घर का कार्य करती है, घर और बाहर के कार्यों में पति की सहायता करती है। अतिथि-सत्कार करने में भी पटु है। वह आदर्श माता है—पुत्र द्वारा चुनी गई कन्या से ही उसका विवाह करा देती है; पुत्रवधू के गर्भधारण करने पर प्रसन्न होती है; शिशु का जन्म हो जाने पर बड़े उत्साह के साथ सभी उत्सवों-संस्कारों में भाग लेती है। अंतिम भाग में कवि ने इसे एक अनुभवी वृद्धा के रूप में चित्रित किया है और उसे तंगत्तम्मै कहा है। मातृत्व की मूर्ति वृद्धा तंगत्तम्मै के प्रति कवि श्रद्धा से प्रणत हो जाता है। तंगत्तम्मै पति से अनन्य प्रेम करती है—वृद्धावस्था में भी यथाशक्ति पति की सेवा करती है। इसमें कर्तव्यपरायणता, उदारता, दृढ़ता, कर्मठता आदि गुण हैं। काव्य के अंत में भारतीदासन कहते हैं कि यदि तंगत्तम्मै जैसी आदर्श नारियाँ देश की शासिका हों तो देश में दुःख की स्थिति नहीं रहेगी।

तंजैवाणन कोवै (त० कृ०) [समय—ईसवी तेरहवीं अथवा चौदहवीं शती]

पोय्यामोषिप्पुलवर की यह काव्य-कृति 'कुलशेखर पांड्य' राजा (1268-1311 ई०) के अमात्य एवं दंडनायक 'चंतिरवाणन्' (जो स्वयं एक 'मार' नामक उपप्रांत के राजा थे) के सम्मान में रचित है। 'कोवै' (दे०) नामक काव्य-विधा जिसमें प्रस्तुत रचना आती है, तमिल की प्राचीन 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ) काव्य-परिपाटी का यथावत् पालन करती है। इन रूढ़ियों का प्रथम प्रस्तुतीकरण ईसा पूर्व की शतियों के माने जाने वाले 'तोल्काप्पियम्' (दे०) नामक लक्षण-ग्रंथ में मिलता है और इनका विशदीकरण 'इरैयनार् अहप्पोरुळ्' (ई० छठी शती) तथा 'नंपियहप्पोरुळ्' (ई० बारहवीं-तेरहवीं शती) नामक

दो ग्रंथो में मिलता है । उक्त तीसरे परवर्ती लक्षण ग्रंथ के लिए एक लक्ष्य-ग्रंथ का कार्य इस कृति द्वारा संपादित हुआ है, अर्थात् जिन रूढ पात्रों एवं प्रसंगो का प्रस्तुतीकरण 'नंपियकप्पोरुल्' में हुआ है, उनके उदाहरण-रूप पद्यो की श्रृंखला इसमें द्रष्टव्य है । इन पद्यो की संख्या 425 है और प्रत्येक पद्य संपूर्ण काव्य द्वारा सम्मानित व्यक्ति की उल्लेख-रूपी मुद्रा से अंकित है । हर पद्य सुगठित एवं उक्ति-सौष्ठव-संपन्न है ।

यद्यपि यह काव्य रीतिबद्ध शैली में रचित है और प्राचीन रूढ पात्र एवं प्रसंगो का प्रस्तुतीकरण है तो भी ध्वन्यर्थों के सुंदर उपयोग से तथा सूक्ष्म कल्पनापूर्ण उक्तियो से एक प्रकार से विशिष्ट बना हुआ है । कहा जाता है कि कवि द्वारा सुनाए जाते समय काव्य-नायक इसके हर पद्य पर माणिक्य-खचित स्वर्ण नारियल भेंट में चढाते चले गए हैं ।

तंत्रालोक *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शती ई०]

यह काश्मीर शैवदर्शन के प्रमुख आचार्य अभिनवगुप्त (दे०) का सबसे अधिक विस्तृत ग्रंथ है । इसमें अद्वैतवादी 64 आगमो के लगभग सभी विषयो का विस्तृत विवेचन है ।

सैंतीस आह्निक का यह ग्रंथ जयरथ की टीका के साथ बारह खंडो में काश्मीर संस्कृत सीरीज के अंतर्गत प्रकाशित हुआ है । इसमें कर्मकांड तथा दर्शनो के विषयो का समान रूप से निरूपण किया गया है । यद्यपि इसका मुख्य प्रतिपाद्य कौल तथा आगमशास्त्र है, तथापि यह क्रमादि अन्य शाखाओ के विषय में भी बडा प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करता है । काश्मीर संस्कृत सीरीज के अंतर्गत प्रकाशित बारह खंडो में से प्रथम पांच, नवां तथा तेरहवां खंड दार्शनिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । वास्तव में यह त्रिकशास्त्र का स्रोत ग्रंथ है ।

तपुरान्, अप्पन् *(मल० ले०)* [पूरा नाम—रामवर्मा अप्पन् तपुरान्]

ये कोच्चि राजपरिवार के थे । साहित्य के विविध अंगो को इन्होंने अपने कृतित्व से समृद्ध किया है । इनकी आठ रचनाएँ प्रसिद्ध हैं । इनमें से दो उपन्यास हैं : 'भास्कर मेनन'—जासूसी उपन्यास, 'भूतरायर्' (दे०)—ऐतिहासिक उपन्यास, एवं नाटक है 'मुन्नाट्टु वीरन्' (गद्य नाटक), और तीन निबंध संग्रह हैं - 'प्रस्थान पंचकम-निबंध', 'कालविपर्ययम्', 'मंगळमाला' (दे०) (पाँच भाग)। 'द्रविड वृत्तड्ङळुम् अवयुटे परिणामड्ङळुम्' इनका प्रख्यात शोधप्रबंध है जिसमें द्रविड वृत्तो के उद्भव और विकास का गवेषणात्मक निरूपण किया गया है तथा 'संघक्कळि' शोध-प्रबंध है ।

श्री तंपुरान् की गद्य-शैली प्रभावशाली है और ये गागर में सागर भरने में अत्यंत कुशल हैं । शास्त्रीय विषयो में इनकी गंभीर रुचि है । इनकी रचनाओ में प्रसाद और माधुर्य गुण का प्राधान्य है । आवश्यक स्थलो पर ओज का भी सन्निवेश है । पदावली सरल और कोमल-कांत है । ये विशेष शैली के प्रवर्तक अपने युग के अनूठे लेखक थे ।

तपुरान्, कोच्चुण्णि *(मल० ले०)* [समय—1828 ई० से *1926 ई० तक*]

देशी राज्य कोचीन के कोटुङ्ङल्लूर् राजघराने में इनका जन्म हुआ था । संस्कृत भाषा तथा मलयाळम दोनो में ये सिद्धहस्त थे । 'कल्याणी' नाटक रचकर इन्होंने लोगो का ध्यान समाज की ज्वलंत समस्याओ की ओर आकृष्ट किया । इसके पश्चात् इन्होंने 'उमाविवाहम्', 'मधुर मंगलम्', 'पांचाली स्वयंवरम्' आदि नाटक लिखे । इनके काव्य-ग्रंथो में 'गोश्रीशादित्य चरितम्', 'पांडवोदयम्', 'वंचीशवंशम्' आदि प्रमुख हैं ।

तपुरान्, कोट्टयत्तु *(मल० ले०)* [जीवन-काल—सत्रहवीं *शती ई०*]

ये आट्टक्कथाओ की रचना करके कथकळि के साहित्यिक महत्व को प्रतिष्ठित करने वाले मलयाळम कवि हैं । ये उत्तर केरल के एक छोटे राजपरिवार के सदस्य थे । इनकी कृतियाँ 'महाभारत' (दे०) के चार प्रसंगो पर आधारित चार आट्टक्कथाएँ हैं 'बकवधम्', 'कल्याण-सौगंधिकम्', 'कालकेयवधम् और किर्मीरवधम्' । ये दृश्य-काव्य कथकळि के प्रेक्षको और कलाकारो में अत्यधिक लोकप्रिय हैं । नाटकीय गुणो की दृष्टि से ये उत्तम कृतियाँ हैं । इनकी कविता संगीत के ताल-लयो की दृष्टि से परिपूर्ण है । कथकळि-साहित्य में इनका स्थान अनुपम है ।

तंपुरान्, कोट्टारक्करा *(मल० ले०)* [जीवन-काल—सत्रहवीं शती ई०]

ये प्रसिद्ध दृश्यकला-रूप कथकलि के आविष्कर्ता और उसके साहित्य के प्रथम रचयिता कहे जाते हैं। 'गीत-गोविंदम्' (दे०) के अनुकरण पर रचित संस्कृत-गीतों के अभिनय के साथ प्रचलित 'कृष्णनाट्टम्' के मुकाबले में इन्होंने स्वरचित मणिप्रवाल श्लोकों और गीतों के अभिनय पर आधारित 'रामनाट्टम्' प्रचलित किया जो आगे चलकर कथकलि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन्होंने 'रामायण' (दे०) की कथा को आठ भागों में बाँटकर आठ दिनों के अभिनय के लिए सामग्री तैयार की। ये मलयाळम के प्रथम स्वतंत्र दृश्य-काव्य माने जा सकते हैं। इनके रचयिता के रूप में इनका स्थान महत्वपूर्ण है।

तकषियुटे कथकळ् *(मल० कृ०)*

मलयाळम के यशस्वी उपन्यासकार और कहानीकार तकषि (दे०) शिवशंकर पिळ्ळा के कथा-संग्रहों में अन्यतम। इसमें 'पट्टाळक्कारन्' (सिपाही), 'अवन्टे संपाद्यम्' (उसकी कमाई), 'इताणु सन्मार्गी' (यही सन्मार्गी है), 'अवळुटे प्रतीकारम्' (उसका प्रतिशोध) आदि कहानियाँ हैं। तकषि की कहानियों के दो पहलू हैं—(1) प्रगतिवादी चेतना; (2) मनोवैज्ञानिकता। प्रगतिवादी भावाभिव्यक्ति की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में तकषि का मन अधिक लगता है। शैतान लगने वाले मानव के मन की मनुष्यता, सज्जनता के स्वाँग के परदे में कपट, स्त्री की विलक्षण प्रतिशोध-भावना आदि भाव उनकी कहानियों में विविध पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं। श्री तकषि अपने पात्रों से अभिन्न होना या अत्यधिक ममता बनाए रखना नहीं चाहते। विशद एवं तर्कयुक्त विवेचन करने तथा प्रभावशाली ढंग से कहानी सुनाने में वे निपुण हैं।

तकषि शिवशंकर पिळ्ळा *(मल० ले०)*

बीसवीं शती के विश्व-विख्यात उपन्यासकारों में तकषि का स्थान महत्वपूर्ण है। आलप्पुषा ज़िले के तकषि गाँव में उनका जन्म हुआ। उनके 'चेम्मीन्' (दे०) उपन्यास ने उन्हें विश्व-साहित्यकारों की पंक्ति में स्थान दिलाया। कई विदेशी भाषाओं में इस उपन्यास का रूपांतर हो चुका है। उनके दूसरे उपन्यास 'रण्टिटङ्ङषि' (दे०) का अनुवाद भी कई भाषाओं में हुआ है। ग्राम्य चरित्रों के चित्रण में तकषि बड़े समर्थ हैं। 'तोट्टियुटे मकन्' का अनुवाद हिंदी में 'चुनौती' नाम से प्रकाशित किया गया है। 'एणिप्पटिकळ्', 'त्याग देवता', 'तेण्डिवर्गम्', 'तलयोट्टु', 'औसेप्पिन्टे मक्कळ्' (औसेप्प के बेटे) आदि उनके कई अन्य उपन्यास हैं। उनकी पात्र-सृष्टि प्रतीतिकारी और प्रभावशाली है।

तक्कयागप्परणि *(त० कृ०)* [समय—बारहवीं शती ई०]

इस काव्य-कृति में 'कलिप्पा' छंद के 815 द्विपदी पद्य ('ताळिचै') है। विषय-वस्तु दक्ष प्रजापति के यज्ञ की पौराणिक कथा है। प्रासंगिक रूप में कवि के आश्रयदाता 'चोल' सम्राट 'राजराजदेव' का यत्र-तत्र अभिनंदन करना तथा शैवधर्म की महत्ता का प्रतिपादन करना इस रचना के उद्देश्य हैं। इतिवृत्त-कथन 'परणि' नामक तमिल काव्य-विधा की सुनिश्चित रूढ़ पद्धति पर आधारित है। इसके अनुसार काली देवी के अनुचर वैतालगण सदा क्षुधा-पीड़ित रहते हैं और किसी प्रमुख योद्धा द्वारा रणक्षेत्र पर गिराए जाने वाले मृतक शरीरांशों को पकाकर, विशेष रूप से 'भरणी' नक्षत्र के दिन, देवी को खिलाते हैं और स्वयं खाते हैं। कृतज्ञता-ज्ञापन-स्वरूप युद्धवीर का अभिनंदन भी इन वैतालों द्वारा किया जाता है। उक्त कथा-भाग को प्रधानता देकर इस काव्य-विधा में साधारणतः ये अंश सम्मिलित किए जाते हैं—ईश्वर-स्तुति, महिलाओं का आह्वान, काली देवी की सभा, देवी के सम्मुख वैतालों की उक्तियाँ, वैतालों द्वारा मांसाहार की तैयारी एवं विनियोग, तथा कथा-नायक का अभिनंदन। विवेच्य 'परणि' ग्रंथ में युद्ध के स्थान पर दक्ष-यज्ञ की परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन है जो एक वैताल द्वारा काली देवी को सुनाया जाता है। देवी की आज्ञा के अनुसार वैतालगण सीधे दक्ष-यज्ञ-स्थल पर चले जाते है जहाँ वीरभद्र द्वारा रचित घोर विनाश-संहार से इन्हें प्रभूत आहार मिल जाता है। दूसरी बात है कि कवि ने देवी के सान्निध्य में सरस्वती द्वारा प्रासंगिक रूप से शैवधर्म के प्रथम आचार्य ज्ञान संबंध का वृत्तांत कहलवाया है जिससे अपने धर्म पर उनका विशेष अनुराग स्पष्ट है। बात यह भी है कि काव्य-नायक वीरभद्र के देवता होते हुए भी कवि ने उनके रूप में अपने ही आश्रयदाता 'राजराज' का अभिनंदन वैतालों द्वारा करवाने के साथ-साथ पृथक् रूप से उपसंहार में भी

उनकी चिरायु की कामनाएँ व्यक्त की हैं। इस काव्य मे देवी और वैतालो के सबध मे अनेक अलौकिक उद्‌भावनाएँ हैं। कवि गौडी रीति की ओजपूर्ण शैली के लिए प्रसिद्ध हैं और उदात्तता-सपन्न लय का अनूठा उपयोग इस काव्य की विशेष आस्वाद्य वस्तु है।

तच्चोलि ओतेनन् *(मल० पा०)*

यह पात्र उत्तर के लोकगीत-सग्रह 'वटक्कन-पाट्टुकळ्' का प्रधान नायक है। इस कथा-पात्र की चर्चा अँग्रेज लोगन साहब ने अपनी कृति 'मलाबार मैनुअल' मे की है। इसका चित्रण केरली 'रॉबिनहुड' के रूप मे हुआ है। 'ओतेनन्' का जन्म नायर-समाज मे हुआ। उसने अपनी प्रेयसी को प्राप्त करने के लिए अथक सघर्ष किया और अपने शत्रुओ से विकट युद्ध कर अत मे वीरगति का वरण किया। 'ओतेनन्' के चरित्र मे ग्रामीणो के स्वभाव, रीति-रिवाज, आचार-विचार आदि का सुदर चित्रण हुआ है।

तज़मीन *(उर्दू० पारि०)*

'तज़मीन' का शाब्दिक अर्थ है 'अगीकार करना' अथवा 'अपनी शरण मे लेना'। पारिभाषिक अर्थों मे तज़-मीन का अभिप्राय है—किसी और शायर का कोई प्रसिद्ध शेर, मिसरा अथवा पद्याश अपनी काव्य-रचना मे ले आना।

तणखा मडल *(गु० कृ०)*

गौरीशकर जोशी 'धूमकेतु' (दे०) की उत्कृष्ट कहानियाँ 'तणखा मडल' के चार भागो मे सगृहीत हैं। गुजराती कहानी को कलात्मक रूप देने का श्रेय 'धूमकेतु' को है और उनकी कलात्मकता के दर्शन इन कहानियो मे होते हैं। इसमे अत्यत मार्मिक ढग से मानव-जीवन के सभी पहलुओ का निरूपण किया गया है। धूमकेतु की तीव्र सवेदना, मानवता और भावुकता इनमे पाई जाती है। समाज मे जो लोग पददलित, प्रपीडित, उपेक्षित और अप-मानित हैं वे इस कहानीकार की सहानुभूति के विशेष अधिकारी बने हैं। ग्राम-जीवन और शहरी जीवन की विषमता, दापत्य जीवन की विसवादिता, मध्यवित्त-वर्ग की आर्थिक कठिनाइयो तथा मानव-मन के विलक्षण व्यवहार, दीन-हीनो की विवशताओ आदि का जितना यथार्थ निरूपण धूमकेतु ने 'तणखा मडल' मे किया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है।

इन कहानी सग्रहो के पात्रो मे वैविध्य और वैशिष्ट्य है। एक ओर जुम्मा भिश्ती, अली कोचमैन, देवु कोळण, पूना रबारण, काळो रावळियो, केशी खवासण आदि निम्नवर्गीय पात्र हैं, तो दूसरी ओर प्रो० नदप्रसाद, गुलाब भाभी, देवमणि, मजुलाल, मूधर मेहतो वगैरा मध्य-वित्त वर्ग के पात्र हैं। कुछ कहानियो मे पौराणिक और मध्ययुगीन पात्र भी दृष्टिगोचर होते हैं। सभी पात्रो की चारित्रिक विलक्षणता का धूमकेतु ने बडी कुशलता से उद्-घाटन किया है। इनके कतिपय पात्र वैयक्तिक विशेषताओ से सपन्न हैं और कुछ समाज के विशेष वर्गों के प्रतिनिधि, हैं—'टाइप'।

धूमकेतु प्रधानत रोमाटिक लेखक हैं। चरित्र-चित्रण, कथा-विकास, वातावरण, भाषा-शैली और अत—ये सभी तत्त्व रोमाटिक भावना के रग मे रँगे रहते हैं। कल्पना और भावुकता के अतिरेक के कारण यदाकदा इनकी कहानियाँ यथार्थ प्रतीत नही होती किंतु इस पर भी उनकी प्रभावोत्पादकता मे कमी नही आती। एक ज़माने मे 'धूमकेतु' गुजराती कहानी-साहित्याकाश मे धूमकेतु की तरह चमके थे।

तत्सम *(स०, हिं० पारि०)*

इतिहास के आधार पर भारतीय भाषाओ के शब्दो को चार वर्गों मे बाँटा जाता है तत्सम, तद्‌भव, विदेशी, देशज। 'तत्सम' दो शब्दो के योग से बना है, तत्+सम। 'तत्' का अर्थ है 'सस्कृत' और 'सम' का अर्थ है 'समान', अर्थात् वह शब्द जो 'सस्कृत के समान' हो, 'वैसा ही हो जैसा सस्कृत म था' उसमे किसी भी प्रकार का ध्वन्यात्मक परिवर्तन न हुआ है, जैसे कृष्ण, गृह, दधि, सध्या आदि। यह उल्लेख्य है कि तत्सम शब्दो की तत्समता का सबध शब्द के अर्थ स न होकर केवल ध्वनि से होता है।

तथागत *(पा० पारि०)*

'तथागत' भगवान् बुद्ध का नाम है जो तथा अर्थात् उस प्रकार के परिनिष्ठित मार्ग से लोकोत्तर भूमिका पर पहुँच गए (गत) हैं। चार आर्य सत्यो और सत्य को प्राप्त करने के सभी साधनो पर इनका पूरा अधिकार होता है। सभी

इंद्रियों और उनके विषयों से ये सर्वथा मुक्त तथा स्वतंत्र होते है। इंद्रिय-ज्ञान, वेदना और विचार सभी पर उनका पूर्ण आधिपत्य होता है और वे नर रूप में जन्म लेकर भी लोकोत्तर सत्ता से विभूषित होते हैं। परमतत्त्व रूप होते हुए भी लोकोपकार के लिए ये सिद्धार्थ इत्यादि रूपों में अवतीर्ण होते रहते है।

तद्भव *(सं०, हिं० पारि०)*

इतिहास के आधार पर भारतीय भाषाओं के शब्दों को चार वर्गों में बाँटा जाता है : तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशज। 'तद्भव' दो शब्दों के योग से बना है : 'तत्+भव'। 'तत्' का अर्थ है 'संस्कृत' और 'भव' का अर्थ है 'पैदा हुआ' या 'उद्भूत', अर्थात् वह शब्द जो किसी संस्कृत तत्सम शब्द से निकला हो, जैसे कन्हैया (संस्कृत-कृष्ण), घर (संस्कृत-गृह), दही (संस्कृत-दधि), साँझ (संस्कृत-संध्या) आदि। तत्सम शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन होने से तद्भव शब्दों का विकास होता है।

तनिप्पाडल तिरट्टु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की उन्नीसवीं शती]

इस कृति मे अनेक कवियों के विविध विषयों से संबंधित पद संगृहीत हैं। पदों का संकलन एवं प्रकाशन कविराज पंडितर उपनाम से विख्यात चंद्रशेखर कविरायर ने किया है। इस संग्रह में कंबर (दे०), अव्वैयार (दे०), नक्कीरर (दे०)-जैसे महान् कवियों के साथ-साथ सामान्य कवियों की रचनाएँ भी संगृहीत हैं। यह कहना कठिन है कि इन महाकवियों ने इस संग्रह मे प्राप्त पदों की रचना की थी अथवा नहीं। इन स्फुट कविताओं में वर्णित घटनाएँ अत्यंत मनोरंजक है। इनमें अनुपम-उदात्त मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति है। विभिन्न पदों की रचना करने वाले कवियों का समय भी भिन्न-भिन्न है। यदि कृति के रूप में ये स्फुट पद संगृहीत नहीं किए जाते तो अव्वैयार (दे०), काळमेहम (दे०), ओट्टक्कूत्तर, (दे०) पुहऴेन्दि (दे०) आदि महाकवियों के आत्मचरितात्मक पद संभवतः हमें उपलब्ध नही होते। इस संग्रह ने उन्नीसवीं शती के तमिल लेखकों को अत्यधिक प्रभावित किया। 1876 ई० में वीरासामि चेट्टियार (दे०) ने 'विनोदरस मंजरी' शीर्षक से सरस निबंधों का एक संग्रह प्रकाशित किया। इस संग्रह के विभिन्न निबंध 'तनिप्पाडल तिरट्टु' के विभिन्न पदों के आधार पर लिखे गए हैं। शोधकर्ताओं और साहित्यिक निबंधों की रचना करने के इच्छुक व्यक्तियों को इस कृति में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। इस कृति में जिन कवियों की कविताएँ संगृहीत हैं वे तमिलनाडु भर में प्रसिद्ध है। सभी कविताएँ रोचक हैं। उनमें विविध रसों की अभिव्यंजना हुई है। इन कविताओं का प्रतिपाद्य विषय और प्रतिपादन-शैली दोनों दृष्टियों से अपार महत्व है।

तपस्विनी *(उ० कृ०)*

कवि गंगाधर मेहेर (दे०) की असाधारण कवि-प्रतिभा की विकच अभिव्यक्ति है 'तपस्विनी'। आदर्श नारी के रूप में सीता के जीवन को लेकर अनेक काव्यों का निर्माण हुआ है। किंतु 'तपस्विनी' की सीता अपने गौरव में भी जीवन-सुषमा-विशिष्ट है। यही उसकी जीवंत महिमा है। मेहेर के 'तपस्विनी' काव्य में वह सती एक ऐसे सूक्ष्म कोमल अलंकरण से आवृत है कि उसे अन्य भाषाओं में रूपांतरित करना उसे नष्ट करना है।

स्वेच्छा से राम के साथ वनवासिनी बनने के कारण सीता की जो महिमा प्रस्फुटित हुई थी, वह सीता-निर्वासन से सौरभमय हो उठी है। निर्वासन-कष्ट सहने से सीता की पतिभक्ति जिस प्रकार से और भी दृढ़ एवं तेजोदीप्त हो जाती है, उसी प्रकार सीता की स्वर्ण-प्रतिमा रखकर अश्वमेध यज्ञ करने से राम का पत्नी-प्रेम और भी गौरवमय हो जाता है। सीता राम के हार्दिक प्रेम को समझती है। मिथ्यापवाद के कारण राम को निर्वासन का दंड देना ही पड़ता है। सीता इसे अपना भाग्य-दोष मानती है। इससे उसकी पति-भक्ति और भी गहरी और निश्चल हो जाती है। फलतः वनवास को पतिहित तपस्या में परिणत कर वह बनती है 'तपस्विनी'। इन्हीं सुकुमार तंतुओं से इस काव्य का रचनातंत्र गढ़ा गया है।

मंगलाचरण के बाद अत्यंत नाटकीय ढंग से इस काव्य का प्रारंभ होता है। भागीरथी-तट पर पति-विरह-विधुरा निर्वासिता सीता अश्रुपूर्ण नेत्रों से पूर्व की ओर देख रही हैं। संज्ञालाभ करते ही विषण्ण राम, व्यथित-मूक लक्ष्मण उनको चारों ओर दिखाई पड़ते हैं। राम लौटे हुए भाई से प्राणप्रिया साध्वी की बात पूछ नहीं सकते, लक्ष्मण वाक्रहित हैं। राम की दुविधा वे समझते हैं। अथाह प्रेम एवं अटल विश्वास के बाद भी राजा राम को सीता को निर्वासन देना पड़ा। सीता को उन पर क्रोध नहीं, शिकायत भी नहीं। उसे अपनी नहीं, गर्भस्थ संतानों

की चिता है । उसका मातृत्व क्रदन कर उठता है । मुनि कुमारियाँ क्रदन सुनकर आती हैं । वाल्मीकि को समाचार मिलता है । मुनि उन्हे लिवा जाते हैं ।

आश्रम की पल्लव-शैया पर तपस्विनी के मानस-पटल पर राम एव लक्ष्मण उभर आते है । लव-कुश का जन्म होता है । दु खिनी को आश्रय मिलता है । पुत्र-द्वय बडे होते हैं, उसी के साथ तपस्विनी की तपस्या के प्रति एकाग्रता बढती जाती है । राम के अश्वमेध-यज्ञ का निमन्त्रण वाल्मीकि को मिलता है। लव-कुश उनके साथ जाते हैं । सीता उन्हे साग्रह शिक्षा देती है कि वे अपना परिचय तपस्विनी-धन के रूप मे दें ।

इस पर मूल रामायण एव कालिदास के 'रघुवशम्' (दे०) का प्रभाव है । भवभूति के 'उत्तरराम चरित' (दे०) से भी यह प्रभावित है किंतु कथा का प्राण-केंद्र 'तपस्विनी' है ।

विषय प्राचीन है । काव्य का निर्माण भी परपरागत साँचे मे हुआ है । किंतु निर्माण-कला का अनुपम ऐश्वर्य ही उसका वैशिष्ट्य है । भाषा व शैली महाकाव्योचित है । प्राचीन छदो का युगानुरूप प्रयोग पद सयोजन की शालीनता, प्रकृति का सजीव चित्रण, अलकारो की सुसगत योजना आदि तत्त्व इस काव्य को महाकाव्य का गाभीर्य प्रदान करते हैं ।

तमिल ओळि *(त० ले०)* [जन्म—1924 ई०, मृत्यु—1965 ई०]

तमिल ओळि उपनाम से विख्यात विजयरगन् का जन्म दक्षिणी आर्काट स्थित आडूर मे हुआ था । इन्हे काव्य रचने की प्रेरणा कवि भारतीदासन् (दे०) से मिली थी । 1945 ई० मे इन्होने राजनीति मे रुचि लेना आरभ किया था और 1953 ई० मे उससे नाता तोड पुन साहित्य-सर्जना आरभ कर दी । इनकी आरभिक काव्य-कृतियाँ है—'निलै पेट्रशिलै', 'वीराय्' और 'कवित्जननि् कादल' (कथा-काव्य) । 'विधियो वीणैयो' 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) के कुछ दृश्यो पर आधृत एक नृत्य-नाटिका है । इनके अन्य महाकाव्य है —'कोसलै कुमरि', 'कण्णप्पन कीळिहळ्' और 'माधवी काव्यम्' । 'तमिल ओळियिन कविदैहळ्' इनकी कविताओ का सग्रह है । इन्होने बच्चो के लिए कुछ कहानियो और कविताओ की रचना करने के साथ-साथ कुछ एकाकियो और कुछ साहित्यिक एव आलोचनात्मक निबधो की रचना भी की है । तमिल काव्य—मुक्तक, कथाकाव्यो—के क्षेत्र मे इनका योगदान अक्षुण्ण है ।

तमिल शेल्वम् *(त० कृ०)* [रचना काल—1955 ई०]

यह कि० आ० पे० विश्वनादम्-कृत अभिनेय नाटक है । इसमे 11 अक हैं । लेखक ने तमिल साहित्य का आश्रय लेते हुए प्राचीन तमिल सभ्यता और सस्कृति का वर्णन किया है । सपूर्ण कृति सरस-सुदर शैली मे रचित है । 'तमिलशेल्वम्' तमिल नाटक के क्षेत्र मे एक नया प्रयोग है । यह मूलत एक सपूर्ण नाटक है परतु इसका प्रत्येक अक एकाकी नाटक की शैली मे रचित है, अत इस नाटक का अभिनय पूर्ण रूप मे, तथा आशिक रूप मे भी, हो सकता है । यह नाटक कन्नड भाषा मे अनूदित हो चुका है ।

तरगवइ कहाइ *(प्रा० कृ०)*

यह प्राकृत-साहित्य का एक अति प्राचीन प्रेम-कथाकाव्य था । इसका भी नाम हाल की 'गाथासप्तशती' के साथ लिया जाता है । इसके लेखक पादलिप्त सूरि हाल के समान ही शातवाहन के सभारत्न थे । अब यह रचना उपलब्ध नही होती, किंतु इसका उल्लेख जैन-आगम (दे०) ग्रथों तक मे पाया जाता है । इसका सार दसवी शती मे नेमिचद्र गणि ने 'तरग लोला' नाम से लिखा था । तरगवती सुव्रता की शिष्या थी और भिक्षाटन के प्रसग मे उसने राजगृह की सेठानी तरगवती को अपने पूर्वजन्म के चकोर-चकोरी वृत्तात तथा इस जन्म की अपनी प्रणय-वार्ता सुनाई है ।

तरंगिणी *(त० कृ०)* [रचना-काल—1964 ई०]

'तरगिणी' नारण दुरैक्कण्णन् (दे०)-कृत एक सामाजिक उपन्यास है । रचना के कुछ वर्ष पूर्व लेखक ने 'शारदा' नामक कहानी की रचना की थी । कहानी की नायिका शारदा एक निर्धन परिवार की कन्या है । माता-पिता उसका विवाह करने के लिए पर्याप्त प्रयत्न करते हैं परतु अपने प्रयत्नो मे सफल नही होते । माता-पिता की सतुष्टि के लिए वह एक ईसाई युवक स विवाह कर लेती है । इस कहानी के प्रकाशन के बाद लेखको एव पाठको द्वारा उठाए गए वादो और प्रतिवादो का परिणाम है 'तरगिणी' उपन्यास । इस उपन्यास का अत शारदा कहानी

के अंत से भिन्न है। उपन्यास की नायिका तरंगिणी जोसफ़ से विवाह की इच्छा न होते हुए भी उसके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखती है। युवा जोसफ़ इसे चुनौती मानता है; अतः वह अपने माता-पिता की सहायता से सौंदरराजन से तरंगिणी के विवाह का प्रबंध कर देता है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने बताया है कि नारी की समस्याएँ, विशेषकर उसके विवाह की समस्या, चिरंतन है।

तरंगिणी *(मल० पारि०)*

एक द्रविड़ वृत्त का नाम है। इसमें आठ गण होते हैं। प्रत्येक गण की मात्राएँ दो-दो होती हैं और एक पंक्ति में चार गण होते हैं।

तरक़्क़ीपसंद अदब *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—*1951 ई०*]

लेखक : 'सरदार' जाफ़री (दे०)। प्रकाशक : अंजुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दू (हिंद), अलीगढ़। प्रगतिवादी आंदोलन और तत्संबंधी उर्दू साहित्य पर लिखी इस कृति में जिस दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है उसका आधार लेखक के अनुसार लौकिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और यथार्थवादी चिंतनधारा है। इसमें प्रगतिवादी प्रवृत्तियों का मूल्यांकन आलोचना के स्तर पर किया गया है। इस कृति के निबंधों की सूची इस प्रकार है—प्रगतिवादी लेखकों का घोषणापत्र, दृष्टिकोण, कतिपय बुनियादी समस्याएँ, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, यथार्थ-चित्रण और शृंगार-वर्णन, प्रगतिवादी लेखकों का आंदोलन और मौलिक प्रवृत्तियाँ। प्रगतिवादी साहित्य के बाह्य निकष के निर्धारण की दृष्टि से इसका प्रणयन किया गया है। इसकी भाषा साहित्य और पत्रकारिता की भाषा का समन्वय है; अतः सुबोध और सरल है। इसमें मानव और स्वतंत्रता की रक्षा और तत्संबंधी संघर्ष प्रगतिवादी साहित्य का मुख्य उद्देश्य सिद्ध किया गया है। पलायनवादी दृष्टिकोण, प्रतिक्रियावादिता, तथा अश्लील लेखन के साथ प्रगतिवादी आंदोलन का समझौता संभव नहीं है, इस विषय पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। कृति के रचना-काल से 15 वर्ष पूर्व के प्रगतिवादी आंदोलन का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने में लेखक को यथेष्ट सफलता मिली है। नये साहित्य और प्रगतिवादी साहित्य के अंतर का स्पष्टीकरण संकीर्णता और सांप्रदायिकता से ऊपर उठकर किया गया है।

तरह मिसरा *(उर्दू० पारि०)*

किसी भी प्रसिद्ध कवि के शेर का एक मिसरा अर्थात् शेर का पहला अथवा दूसरा चरण जो कवियों को काव्याभ्यास के लिए आदर्श रूप में दिया जाता है, 'तरह मिसरा' कहलाता है। इस मिसरे को सम्मुख रखकर ही कविगण अपनी कविता का निर्माण करते हैं। इसमें तुक (क़ाफ़िया) तथा रदीफ़ (तुक के साथ जिसकी पुनरावृत्ति की जाती है वह शब्द) निश्चित होती है। 'तरह मिसरा' के छंद को ही आधार मानकर उसी छंद में कविता करना अनिवार्य होता है। 'तरह मिसरा' प्रायः काव्य-गोष्ठियों के लिए दिया जाता है।

त० रा० सु० *(क० ले०)*

त० रा० सु० (त० रा० सुब्बाराव) कन्नड के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। कन्नड कथा-साहित्य को इनकी देन अनुपम है। इन्होंने ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यास लिखे हैं। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का बड़ा रम्य चित्रण हुआ है। मैसूर राज्य के चित्रदुर्ग के छोटे-छोटे सामंत राजाओं के अंतःकलह का इन्होंने अपने 'कम्बनियकुयिलु' (आँसुओं की फ़सल), 'तिरुगु बाण' (प्रतिक्रिया बाण) और 'रक्त रात्रि' नामक उपन्यासों में अच्छा वर्णन किया है। कन्नड साहित्य में प्रसिद्ध राष्ट्रकूट-नरेश नृपतुंग पर इन्होंने चित्ताकर्षक उपन्यास लिखा है। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में वातावरण-निर्माण और संभाषण-सरसता की विशेषता होती है। उनमें चित्रित पात्र हमारे मन को अपनी ओर खींच लेते हैं। 'हंस-गीते' इनका सुंदर उपन्यास है, जिसमें वेंकटसुब्बय्या नाम के एक प्रतिभावान और आत्माभिमानी संगीतज्ञ का हृदयस्पर्शी चित्रण है। वह राजा के लिए गीत नहीं गाता, भगवान के सामने गीत गाकर अंत में अपने ही हाथ से अपनी जीभ काट लेता है। 'पुरुषावतार' इनका सुंदर सामाजिक उपन्यास है। 'बिडुगडेय बेडि' (मुक्ति की बेड़ी), 'चंदवल्लिय तोट' (चंदवल्लि का बाग), 'एरडु हेण्णु ओंदु गंडु' (दो स्त्रियाँ, एक पुरुष), 'नागर हावु' (नाग-साँप), 'सर्पमत्सर', आदि इनके लोकप्रिय सामाजिक उपन्यास हैं। 'गिरिमल्लेगेय नंदनदल्लि' इनकी कहानियों का संग्रह है। इनके उपन्यासों की भाषा प्रसाद-गुण-संपन्न है।

तरिगोडा (तरिकुडा) वेंकमाबा *(त० ले०)*

विदुषी और कवयित्री के रूप मे प्रसिद्ध वेंकमाबा उन्नीसवी शती के मध्यभाग मे जीवित थी। ये कानालि कृष्णार्य और मगमाबा की पुत्री थी और कडपा जिले के वायलपाडु के निकट तरिकुडा या तरिगोडा ग्राम मे रहती थी। ये बाल विधवा थी। ग्रामवासियो की यातनाएँ न सह सकने के कारण तिरुपति जाकर, वहाँ वेंकटाचलपति (बालाजी) को अपना पति मानकर, ये पारलौकिक चिंतन मे मग्न रहने लगी थी। वही 80 वर्ष की अवस्था मे इनका स्वर्गवास हुआ। ये पढी-लिखी नही थी। भगवान की कृपा से ही इन्हें कविता करने की शक्ति प्राप्त हुई।

अत साक्ष्य के आधार पर इनकी ये पद्रह रचनाएँ बताई जाती है। 'नरसिंह-शतकमु', 'नरसिंहविलास-कथा', 'शिवनाटकमु', 'पारिजातापहरण सस्कृति', 'कृष्ण नाटकमु', 'रमापरियणमु', 'चेंचु नाटकमु', 'कृष्णमजरी', 'श्रीरुक्मिणी नाटकमु', 'गोपिका नाटकमु', 'मुक्तिकाता विलास नाटकमु', 'राजयोगसारमु', 'भागवतद्विपदा', 'वेंकटाचल महात्म्यमु'। परतु सप्रति अतिम तीन रचनाएँ ही उपलब्ध हैं। इनमें कपिल और देवहूति के अतर्गत तत्व-सबधी वेदात-परक सवाद राजयोगसार की कथावस्तु है। यह वेंकमाबा की प्रारभिक रचना है। यह द्विपद छद मे लिखी गई है। इस काव्य मे वेदात की अनेक बातो को सरल और सुगम शैली मे प्रतिपादित किया गया है। इस काव्य का जीवन्मुक्ति-विचार शीर्षक द्वितीय प्रकरण आद्यत हृद्य है। भागवत द्विपद (द्वादश स्कध) की शैली अपेक्षाकृत प्रौढ एव सरस है। 'वेंकटाचल महात्म्यमु' सात आश्वासो का सुदर प्रबध-काव्य है। प्रबध-काव्य के अनुरूप इसमे वर्णन, अलकार आदि की भरमार है किंतु औचित्य का ध्यान रखा गया है। आश्वास के प्रारभ मे सस्कृत श्लोक भी हैं। इस काव्य मे तिरुपति के क्षेत्र-माहात्म्य तथा पद्मावती और श्रीनिवास के विवाह की कथा वर्णित है।

इनके अतिरिक्त बालाजी की सन्निधि मे रहते समय वेंकमाबा ने अनेक मधुर पदो की रचना की है। वास्तव मे तत्व-प्रतिपादक ग्रथ, द्विपद-काव्य, प्रबधकाव्य, नाटक, यक्षगान आदि साहित्य की अनेक विधाओ मे सफलता के साथ लिखने वाली ये एकमात्र विदुषी कवयित्री हैं।

तर्जा *(बँ० प्र०)*

अठारहवी शती के पहले से ही तुकबदी के आश्रय से ढोलकासि (एक प्रकार का बाजा) के साथ धर्म-देवता या शिवजी के गाजन (चैत के महीने मे भगवान शिवजी की पूजा के निमित्त गाना-बजाना या स्वाँग भरना) मे एक विशेष प्रकार की गायन-पद्धति प्रचलित थी। इस प्रकार के तुकबदी-आश्रित गायन को 'तजा' कहा जाता है। अष्टादश शती मे 'कविगान' के दरबार मे 'तर्जा' का प्रयोग शुरू हो गया जिसके फलस्वरूप तर्जागान की तुकबदी की सहायता से कवियो मे उत्तर-प्रत्युत्तर की परपरा चल पडी। इस पद्धति को 'दाडा कवि' (दे० कविगान) कहा गया। तर्जा की एक विशेषता है कि इसमे गाने के साथ-साथ नृत्य भी एक प्रधान अग है। 'खेउड' (दे० कविगान) की तरह तर्जा मे भी बाद मे अश्लीलता आ गई। यद्यपि शिवजी के गाजन मे तर्जा गायन का उद्देश्य भक्ति-भावना का प्रचार मात्र था। शिवजी के गाजन मे तर्जा-तुकबदी का विशिष्ट नाम था, बोलान।

'कविगान' मे उत्तर-प्रत्युत्तर के लिए तर्जा का प्रयोग शुरू हो जाने पर 'कविगान' को लोग 'तर्जा की लडाई' कहने लगे। उन्नीसवी शती के अतिम भाग मे तर्जा की जनप्रियता कम हो गई। तर्जा-लडाई के कवियो मे बनमाली दास, ईश्वरचद्र दास, नदलाल राय, गोपालचद्र पाल, तिनकडि विश्वास आदि उल्लेखनीय हैं।

तलैंमुरैहळ *(त० कृ०)* [रचना-काल —1968 ई०]

यह नील पद्मनाभन का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। नील पद्मनाभन तमिल के आधुनिक प्रसिद्ध उपन्यासकारो मे से हैं। इस आचलिक उपन्यास मे उपन्यासकार ने नाजिलनाडु के इरणियल नामक शहर के चेट्टियार (वणिक्) जाति के लोगो के जीवन का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया है। एक परिवार की कथा के माध्यम से चेट्टियार जाति के जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। उनकी परपरा, रीति रिवाज आस्था-विश्वास, अधविश्वास, खान पान, उत्सव-पर्व, मनोविनोद आदि का वर्णन करने के साथ-साथ विभिन्न सस्कारो जैसे सीमातोन्नयन, विवाह, मृत्यु आदि का भी वर्णन किया है। उपन्यासकार ने 70 वर्ष की लबी कालावधि को बडी चातुरी से उपन्यास के कलेवर मे समेट लिया है। घटना-वर्णन, पात्र-चरित्र-चित्रण मे लेखक को अपूर्व सफलता मिली है। पात्र व्यक्तित्व सपन्न हैं। शैली की नवीनता इस उपन्यास की प्रमुख विशेषताओ मे स है। जाति विशेष के लोगो की भाषा के प्रयोग से उपन्यास की प्रभावशालिता बढ गई है।

इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने यही संदेश दिया है कि पतनोन्मुख समाज में दीनों का उद्धार तभी संभव है जबकि वे उस समाज से बाहर निकल आएँ। वस्तुतः लेखक ने पाठकों में यही विश्वास जगाने का यत्न किया है कि मानव समाज उतना गिरा हुआ नहीं। प्रतिपाद्य विषय, भावनाओं के सजीव चित्रण, जीवन-दृष्टि, प्रतिपादन-शैली सभी दृष्टियों से इसे विद्वानों ने आधुनिक काल के श्रेष्ठ सामाजिक आंचलिक उपन्यासों में परिगणित किया है।

'तसलीम' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1820 ई०; मृत्यु—1911 ई०]

नाम—मुंशी अमीरुल्ला; उपनाम—'तसलीम', पिता का नाम—अब्दुल समद, जन्म-स्थान—मंगलसी गाँव (फ़ैज़ाबाद)। नसीम देहलवी इनके काव्य-गुरु थे, अतः लखनऊ में रहते हुए भी इन्होंने दिल्ली की उर्दू शैली में काव्य-सृजन किया था। नवाब मुहम्मद तकी खाँ ने लखनऊ में इनका शिष्यत्व स्वीकार किया था। इनका लेख बहुत सुंदर था। इनका प्रथम काव्य-संग्रह प्रथम स्वाधीनता-संग्राम के दिनों में विनष्ट हो गया था। इन्होंने आठ मसनवियों के अतिरिक्त नवाब रामपुर का पद्यबद्ध सफ़रनामा भी लिखा था जिसमें पचास सहस्र पद हैं। इनकी प्रसिद्धि का कारण इनकी उत्कृष्ट ग़ज़लें और मसनवियाँ तो है ही, साथ ही ये प्रसिद्ध उर्दू कवि हसरत मोहानी (दे०) के काव्य-गुरु भी थे। इन्होंने अपने काव्य में मोमिन (दे०) की शैली का अनुकरण किया है परंतु अतिलेखन के कारण इनके काव्य में मार्मिकता का अभाव है।

'तहसीन' *(उर्दू० ले०)*

नाम—मीर मुहम्मद हुसैन अता खाँ, उपनाम—'तहसीन'; जन्म-स्थान—इटावा (उ० प्र०)। इनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व अभी तक अनुसंधान का विषय बना हुआ है। 'नौ तर्ज़-ए-मुरस्सा' (दे०) नामक कृति इनका कीर्ति-स्तंभ है। यह कृति उत्तरी भारत में उर्दू गद्य की सबसे पहली पुस्तक मानी जाती है। मौलाना मुहम्मद हुसैन आज़ाद (दे०) के अनुसार इस कृति का प्रणयन लेखक द्वारा 1798 ई० में हुआ था। इस कृति में 'क़िस्सा चहार दरवेश' बड़ी योग्यता और कलात्मकता के साथ गद्य-शैली से प्रस्तुत किया गया है। इनकी अन्य कृतियाँ—'तारीख़-ए-कासिमी', 'ज़वाबित-ए-अंग्रेज़ी', और 'अंशा-ए-तहसीन' हैं। फ़ारसी भाषा में लिखित ये कृतियाँ आजकल अप्राप्य हैं। 'तहसीन' साहब काव्य-साधना भी करते थे परंतु काव्य के क्षेत्र में उन्हें कोई विशेष उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली।

तांबे, भास्कर रामचंद्र *(म० ले०)* [जन्म—1874 ई०; मृत्यु—1941 ई०]

तांबे ग्वालियर के राजकवि थे, इसी कारण संभवतः इनकी रचनाओं में यत्र-तत्र सामंतीय वातावरण की झाँकी मिलती है।

इनका 'तांबेयांची समग्र कविता' (दे०) नामक एक ही काव्य-संग्रह उपलब्ध है। तांबे मराठी के रोमांटिक कवि हैं। ये मूलतः भावकवि हैं। इन्होंने संगीत की राग-रागिनियों में आबद्ध अनेक मधुर गीतों की रचना की।

इनके काव्य का मुख्य वर्ण्य विषय प्रेम है। प्रेम का स्वरूप वासनात्मक न होकर, सर्वथा शुद्ध, निर्मल और उज्ज्वल है। प्रेम के माहात्म्य का प्रतिपादन करते हुए इन्होंने कहा है कि प्रेम सम्राट है और अन्य वृत्तियाँ उसकी दास-दासियाँ हैं। तांबे गार्हस्थिक भावनाओं के भी कवि हैं। इनके साथ इन्होंने कुछ प्रतीकात्मक शृंगारिक भक्ति-मूलक प्रगीतों की रचना भी की है। पुरुष की अपेक्षा नारी जाति के प्रति इनका दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण रहा है, जो कि विधवा, परित्यक्ता, दुःख आदि कविताओं में देखा जा सकता है। इन्होंने कुछ शिशुगीत भी लिखे हैं।

तांबे कलाकवि हैं। रोमानी कल्पना, संगीतात्मक शैली तथा आलंकारिकता इनके काव्य की विशेषताएँ हैं। इन्होंने सुंदर, भावरम्य, हृदयस्पर्शी नाट्य प्रगीतियाँ भी लिखी हैं। 'दिव्यांगनेची ओढ', 'भयचकित नभावे तुज रमणी', 'नववधु प्रिया मी बावरते', 'मरणांत खरोखर जग जगतें' आदि नाट्य गीत आज भी काव्य-रसिकों के हृदय में मधुर भाव उत्पन्न करते हैं।

तांबे यांची समग्र कविता *(म० कृ०)*

'तांबे यांची समग्र कविता' श्री भास्कर रामचंद्र तांबे (दे०) (1874—1941 ई०) का काव्य-संग्रह है।

इस संग्रह की कविताओं में पर्याप्त भाव-वैविध्य है। इनकी अधिकांश कविताएँ प्रेमपरक हैं किंतु यह प्रेम पवित्र एवं उदात्त है। 'जनम्हणती सावळी', 'सहजतुझी',

'हालचाल' जैसी कविताओ मे पति पत्नी के सुदर नैसर्गिक सयत प्रेम का चित्रण है। ये मूलत कौटुबिक जीवन के गायक हैं।

राष्ट्र-प्रेम तथा समाज-सुधार पर भी इन्होंने कविताएँ लिखी हैं। इनका 'या भविष्याचिया दिव्य कारागिरा' गीत राष्ट्रीय स्वयसेवको से मुखोदगत हो सपूर्ण महाराष्ट्र मे फैल गया था।

इन्होंने कुछ शिशु-गीत भी लिखे, जैसे गडी फू', 'चिवचिव चिमणी' आदि। 'वारा' शिशुगीत सरल है। जिसमे बालबुद्धि का यथावत् चित्रण है।

'फल गिरने पर ही मीठा फल आता है तथा 'मरने मे ही जग जीता है' जैसे कथनो द्वारा कवि का प्रबल आशावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है।

नाट्य गीतो के ये जनक हैं। भाव को मूर्तिमत करने के लिए इन्होने प्रकृति का आश्रय लिया है। काव्य, चित्र तथा सगीत तीनो का अपूर्व योग इनकी कविताओ मे मिलता है। राग-रागिनियो के आधार पर इन्होने नाद-मधुर गेय गीतो की रचना भी की है। शेक्सपियर क अनुकरण पर इन्होने मराठी मे सुनीत (सॉनेट) लिखे हैं जैसे 'गेली ज्योति' 'विझोनिया'। इन्होन 'शुभवदना, 'दिव्यागना', 'मदनरग आदि नवीन छद साहित्य को दिए हैं।

ताई *(म० पा०)*

यह बाळ कोल्हटकर (दे०) के 'व्हातो ही दूर्वाची दूरी' नाटक की नायिका है। इसके चरित्र के माध्यम से नाटककार ने बहन के आदर्श चरित्र की परिकल्पना की है। यह सद्गुणो की आगार है और यही कारण है कि इसके सपर्क मे आने वाला प्रत्येक पात्र इसके सद्व्यवहार से अत्यधिक प्रभावित होता है। इसका स्नेहशीला रूप बडे भाई सुभाष के प्रति इसके व्यवहार से उदभासित हुआ है। भाई के प्रति पिता के कठोर एव उपेक्षापूर्ण व्यवहार मे भी यह उस बरबस अपने स्नेह म बाँधे रखती है। बचपन मे ही माता की स्नेहछाया से वचित ताई ने भाई को कभी भी इस अभाव की प्रतीति नही होने दी है। आदर्शवादी सिद्धातो के प्रबल समथक वकील पिता की अनुशासनप्रियता, कठोर नियत्रण एव पुत्र के प्रति उपेक्षा भाव के कारण इसका नारी हृदय चीत्कार कर उठता है। यह पिता की कोपदृष्टि से बचाकर भाई को सन्मार्ग पर लाने के लिए प्रयत्नशील रहती है। अपने स्नेहपूर्ण मृदु व्यवहार म इसने अपनी ससुराल के सभी सदस्यो का हृदय बाँध लिया है तभी तो वे इसके भाई सुभाष को सन्मार्ग पर लाने के अथक यत्न करते है और अत म अपने उद्योग मे सफल भी होते हैं। रसवादी चरित्र-परपरा मे ढला ताई का चरित्र वर्गविशेष का प्रतिनिधित्व करता है।

ताई *(म० पा०)*

हरिनारायण आपटे (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'मी' (मैं) की नायिका ताई वैधव्य का आदर्श प्रस्तुत करने वाली, तेजस्वी, उदारमना, समाज-कल्याण की भावना से अनुप्रेरित तथा लेखक के स्त्री शिक्षण सबधी विचारो की प्रतीक पात्र है। वृद्ध, दुराचारी पति की पत्नी स्वय कष्ट झेलते हुए भी पत्नी के कर्तव्य-पथ पर आरूढ रहती है। परोपकार और समाज-सेवा का व्रत लेकर यह कर्मयोगिनी अपने कार्य मे जुट जाती है, केवल व्याख्यान देकर सतोष नही पाती। यह पात्र स्थिर न होकर विकासशील है। बचपन की भोलीभाली, डरपोक सीधी-सादी लडकी आगे चलकर कर्मठ, निर्भीक, तेजस्वी और प्रगतिशील बन जाती है जिसे देख पाठक अभिभूत हुए बिना नही रह पाता।

ताई *(हि० पा०)*

यह अमृतलाल नागर (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'बूंद और समुद्र' (दे०) के नारी पात्रो म सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय चरित्र सृष्टि है। ताई का चरित्र इस तथ्य का अत्यत पुष्ट प्रमाण है कि किसी भी व्यक्ति के चरित्र-निर्माण मे परिस्थितियो का कितना महत्वपूर्ण हाथ होता है। परिस्थितियो का विषम वात्याचक्र लखनऊ के रईस सर द्वारकादास अग्रवाल की परित्यक्ता पत्नी ताई के जीवन मे कुछ ऐसी ग्रथियाँ डाल देता है कि उसका चरित्र घृणा तथा करुणा के दो छोरो को अनायास छू लेता है। गाली-गलौज के बिना बात न करने वाली, नाना प्रकार के अधविश्वासो मे पली तथा लोगो पर तरह-तरह के जादू-टोने करने वाली ताई जहाँ एक ओर पाठक के मन म अपने प्रति घृणा उपजाती है वही दूसरी ओर बिल्ली के बच्चो के प्रति उसका अगाध प्रेम यह व्यक्त करता है कि वह कितनी वात्सल्यमयी तथा करुणामयी है। ताई के चरित्र का यह अतर्विरोध मानव चरित्र की रहस्यमयता का निदर्शन करता है और इसीलिए पाठक ताई के चरित्र को कभी भूल नही पाता।

'ताज' *(उर्दू० ले०)*

दे० इम्तियाज़ अली 'ताज'।

तात्पर्यावृत्ति *(हिं० पारि०)*

अभिधावृत्ति द्वारा काव्यगत प्रत्येक पद का वाच्यार्थ ज्ञात हो चुकने के पश्चात् जिस वृत्ति के द्वारा उन पदों के अन्वित अर्थ (तात्पर्य) का ज्ञान होता है उसे तात्पर्या वृत्ति कहते हैं—'तात्पर्याख्यां वृत्तिमाहुः पदार्थान्वयबोधने'। (सा० द० 2.20)। यह कुमारिल भट्ट(दे०) के अनुयायी भाट्ट मीमांसकों का मत है। इनके अनुसार अभिधा (दे०) शक्ति द्वारा केवल प्रत्येक पद का पृथक्-पृथक् अर्थ ज्ञात होता है। इसका अन्वित अर्थ—अर्थात् संपूर्ण वाक्य का अर्थ—ज्ञात नहीं होता, इस वाक्यार्थ (तात्पर्य) के लिए तात्पर्या वृत्ति माननी चाहिए। अतः भाट्ट मीमांसक अभिहितान्वितवादी कहाते है—'अभिहितानां स्वस्ववृत्त्या पदैरूपस्थापितानाम् अर्थानामन्वय इति वादिनो अभिहितान्वयवादिनः' (का० प्र० बा० बो० टीका, पृष्ठ 26)। भाट्ट मीमांसकों के विपरीत प्रभाकर (दे०) के अनुयायी प्रभाकर मीमांसक तात्पर्यावृत्ति को न मानकर केवल अभिधा वृत्ति को ही मानते हैं। इनके अनुसार अभिधा शक्ति के द्वारा ही वाक्य के अन्वित पदार्थों का बोध होता है। इसी कारण प्रभाकर मीमांसक अन्विताभिधानवादी कहाते हैं—'अन्वितानामेवाऽभिधानं शब्दबोध्यत्वम्, तद्वादिनोअन्विताभिधानवादिनः' (का० प्र०, बा० बो० टीका, पृ० 26)।

'ताबाँ', गुलाम रब्बानी *(उर्दू० ले०)*

जन्म-स्थान—पितौरा, तहसील—कायमगंज, जिला—फर्रुखाबाद (उ० प्र०)। इनका जन्म 1914 ई० में हुआ। आधुनिक उर्दू-कवियों में इनका अपना स्थान है। इन्होंने जामिया मिलिया, दिल्ली में आरंभिक शिक्षा प्राप्त की; अलीगढ़ से इंटर, आगरा से बी० ए० और एल-एल० बी० की परीक्षाएँ पास की। तदुपरांत इन्होंने फतहगढ में वकालत आरंभ की परंतु स्वभाव से स्वाभिमानी, स्वतंत्र तथा क्रांतिकारी होने के कारण ये सफल वकील न बन सके। अंततः ये अपनी स्वाभाविक अभिरुचि के अनुकूल राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे और काव्य-सृजन में मनोयोगपूर्वक प्रवृत्त हुए। ये साम्यवाद को अपना जीवन-दर्शन मानते हैं, अतः अपने काव्य के क्षेत्र में ये प्रगतिवादी दृष्टिकोण को लेकर चले हैं। गज़ल-लेखन में ये विशेष रूप से सिद्धहस्त हैं। मौलाना हामिद हसन कादिरी और मैकश अकबराबादी के सामीप्य से ये अत्यधिक लाभान्वित हुए हैं। आजकल मकतबा जामिया, दिल्ली में मुख्य प्रबंधक के रूप में सेवा-कार्य कर रहे हैं।

तायुमानवर *(त० ले०)* [समय—ईसा की सत्रहवीं शती]

तायुमानवर एक रहस्यवादी संत कवि थे। इनका जन्म एक प्रसिद्ध शिव-भक्त के घर में हुआ था। तायुमानवर (भगवान शिव) की कृपा से इन्हें पुत्र-रूप में पाने के कारण माता-पिता ने इन्हें 'तायुमानवर' नाम दिया था, बड़े होने पर संबंधियों द्वारा जबरदस्ती किए जाने पर इन्होंने मट्टुवार कुळलि नामक कन्या से विवाह किया था। परंतु कुछ वर्ष बाद संन्यास ले लिया। ये तमिल और संस्कृत के विद्वान थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'परापरक्कण्णि', 'पैंगिळिक्कण्णि', 'एण्णलक्कण्णि' और आनंदकळिप्पु'। इन्होंने अपनी रचनाओं में शैव सिद्धांतों का विवेचन किया है। इन्होंने विभिन्न शैव क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए शिवजी की प्रशंसा में अनेक सुदर पद रचे थे। शिव के अनन्य भक्त होते हुए भी ये कट्टरपंथी न थे और सभी धर्मों का आदर करते थे। इनका सिद्धांत 'समय समरसम्' (धार्मिक समरसता) कहलाता है। दर्शन के क्षेत्र में ये अद्वैतवादी थे। इन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा धार्मिक जीवन में उदारता, विश्व-भ्रातृत्व और सर्वधर्म सहिष्णुता का उपदेश दिया है। ये सच्चे अर्थों में मानवतावादी थे। संस्कृत शब्दों के प्रयोग से इनकी भाषा क्लिष्ट नहीं हुई अपितु उसमें विशेष सौंदर्य आ गया है।

तारसप्तक *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1943 ई०]

गजानन माधव मुक्तिबोध (दे०), नेमिचंद्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर (दे०) और अज्ञेय (दे०) की रचनाओं के इस संग्रह का प्रकाशन सहयोग के आधार पर हुआ था। संकलनकर्ता अज्ञेय के अनुसार इन कवियों के एकत्रीकरण का कारणभूत मूल सिद्धांत था कि ये 'कविता को प्रयोग का विषय मानते थे।' नेमिचंद्र जैन इसका कारण मात्र संयोग बताते हैं। जो भी हो, इस एकत्रीकरण का 'प्रभाव परवर्ती काव्य-विकास में दूर तक व्याप्त है।'

तारा *(हिं० पा०)*

यशपाल (दे०) के 'झूठा सच' (दे०) उपन्यास की तारा एक ऐसी मध्यवर्गीय भारतीय नारी के प्रतीक रूप मे चित्रित की गई है जो अनेक विषम एव प्रतिकूल परिस्थितियो के वात्याचक्र से जूझती तथा अमानुषिक अत्याचारो को सहती हुई अपने मनोबल को कमजोर नही पडने देती। बलात्कार जैसे अमानुषिक अत्याचार के समय भी यह अत्यत साहस से काम लेती है तथा अपनी बौद्धिक चेतना नष्ट नही होने देती। यह जागरूक, आर्थिक रूप से स्वावलबी ऐसी दृढप्रतिज्ञ नारी है जो पिछडी तथा जर्जर मान्यताओ मे अनास्था रखती है तथा अपने प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व के फलस्वरूप पाठक के स्मृतिपटल पर अपनी स्थायी छाप छोड जाती है। समग्रत तारा यशपाल की अत्यत प्रभावपूर्ण चरित्र-सृष्टि है।

तारा ओ तिमिर *(उ० कृ०)*

'तारा ओ तिमिर' दुर्गामाधव मिश्र (दे०) का गल्प-सकलन है, जिसमे प्रशासकीय जीवन की अनेकानेक अनुभूतियाँ चित्रित हैं। प्रत्यक्षानुभूति पर आधारित होने के कारण ये कहानियाँ प्रभावोत्पादक हैं। अधिकाश कहानियाँ नारी और पुरुष के सबध पर आधारित है, जिसमे प्रमुख रूप से विश्वासघात, प्रतारणा आदि का चित्रण हुआ है। पुरुष-मन की चिर अतृप्त वासना – बहुनारी रमणेच्छा, तज्जन्य परिणाम, मानव मन की सुप्त अपराध-वृत्ति, आदि बातें विविध रूपो मे अकित हैं। धनवानो की कुत्सित वासना के सामने गरीबी के कशाघात से पीडित गरीबो का विवश आत्म-समर्पण हृदय विदारक हैं। आदिवासी जीवन का अकन भी इनमे हुआ है। इन कहानियो का परिवेश प्राय पारिवारिक और वैयक्तिक है। वैयक्तिक जीवन की स्वस्थता पर सामाजिक स्वस्थ जीवन अवलबित रहता है। जीवन के इन छोटे निजी सुखो का बडा व्यापक प्रभाव पडता है। इन सभी बातो का सकेत इनमे मिलता है।

तारिणी *(त० पा०)*

तारिणी कृष्णमूर्ति कल्कि (दे०)-कृत सामाजिक उपन्यास 'अले ओसै' की नायिका है। इसमे लेखक ने स्वतत्रता प्राप्ति के लिए देश मे हुए सघर्षो का निरूपण करते हुए विभिन्न वर्गो से सबद्ध भारतवासियो के जीवन का चित्रण किया है। तारिणी उच्च वर्ग की नारी है। वह बुद्धिमती एव मर्यादाशील है। सबके प्रति प्रेम-भाव रखती है। यह एक आदर्श समाज-सेविका भी है। तारिणी के माध्यम से लेखक ने समाजवाद, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, देश मे हुई विभिन्न राजनीतिक क्रातियो के विषय मे अपने विचारो की अभिव्यक्ति की है।

तारीख़-ए-अवध *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1919 ई०]

लेखक मुहम्मद नज्म-उल-गनी खान रामपुरी। मुशी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा प्रकाशित इस कृति मे अवध का इतिहास लिखा गया है। इतिहास की अनेक आश्चर्यजनक घटनाओ का वर्णन विस्तारपूर्वक कर लेखक ने इस कृति की उपादेयता मे भरसक अभिवृद्धि की है। विस्तृत इतिहास पर आधारित इस कृति के बडे आकार के पाँच भाग हैं। प्रथम भाग मे नवाब सआदत अली (सस्थापक अवध प्रशासन) से लेकर नवाब अब्दुल मनसूर खाँ सफदरजग तक की घटनाओ का विस्तृत वर्णन है। द्वितीय भाग मे नवाब शुजाउद्दौला के राज्याभिषेक से लेकर अत काल तक का वर्णन है। तृतीय भाग मे नवाब आसिफुद्दौला से वजीरअली खान तक, चतुर्थ भाग मे उससे आगे गाजीउद्दीन हैदर और नसीरुद्दीन हैदर तक और पचम भाग मे उससे आगे अवध के अतिम बादशाह वाजिदअली शाह (दे०) तक के सभी नवाबो के राज्य तथा जीवन की घटनाओ का रोचक शैली मे उद्घाटन किया गया है। इस ग्रथ मे लेखक ने इतिहास की प्रामाणिक पत्रिकाओ और कृतियो की सहायता से विभिन्न घटनाओ का ग्रथन एव अकन साहित्यिक शैली मे किया है जिसके कारण यह साहित्य भी है और इतिहास भी। इस कृति का पचम भाग इस दृष्टि से अत्यत रोचक और महत्वपूर्ण है कि उसमे वाजिद अली शाह की नजाकत सौंदर्यप्रियता, विलासिता, कामुकता, किंकर्तव्यविमूढता और भीरुता का विशद विवेचन किया गया है और इस सदर्भ की कोई छोटी-से-छोटी घटना भी अछूती नही रहने पाई है। लेखक की वर्णन-शैली यथेष्ट प्रौढ, प्रसाद गुण-सपन्न और सरस है। कई दृष्टियो से यह शिक्षाप्रद है।

तारीख़-ए-हिंदुस्तान *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1916 ई०]

हिंदुस्तान के इस इतिहास के लेखक मुहम्मद

ज़काउल्ला खां (दे०) हैं। सारे भारत का इतिहास दस जिल्दों में बाँटा गया है। प्रत्येक जिल्द के विषय तथा शीर्षक निम्नलिखित हैं।

पहली जिल्द : (1) आरंभ, (2) भूमिका : इतिहास के संबंध में, (3) अरब जाहलियत, (4) एक सौ अठारह इसलामी सलातीन का ब्योरा, (5) तारीख-ए-सिंध, (6) खानदान ग़ज़नी, (7) खानदान ग़ोरी।

दूसरी जिल्द : इसमें तीन स्कंध हैं—(1) खिलजिया, (2) तुग़लक़, (3) सैयद और लोधी।

तीसरी जिल्द : (1) बाबरनामा, (2) सिगरफ़नामा हुमायुं, (3) रज़मनामा शेरशाही।

चौथी जिल्द : (1) तारीख-ए-सिंध, (2) तारीख़-ए-कश्मीर, (3) तारीख-ए-गुजरात, (4) तारीख-ए-मालवा, (5) तारीख़-ए-खानदेश, (6) तारीख़-ए-सलातीन-ए-बंगाल, (7) तारीख़-ए-सलातीन-ए-जौनपुर-बहमनिया, दक्कन, अहमदनगर, गोलकुंडा, बरार आदि।

पांचवीं जिल्द : (1) अकबरनामा (जिसमें सम्राट् अक़बर का पूरा हाल लिखा है)।

छठी जिल्द : (1) कारनामा जहाँगीरी (इसमें जहाँगीर का पूरा ब्योरा है)।

सातवीं जिल्द : (1) जफ़रनामा शाहजहाँ (इसमें शाहजहाँ का हाल है)।

आठवीं जिल्द : (1) बादशाहनामा-ए-आलमगीर, इसमें शहनशाह आलमगीर का पूरा वर्णन है।

नौवीं जिल्द : (1) जिवाल-ए-सल्तनत तैमूरिया अंतिम बादशाह बहादुरशाह तक और अंत, (2) मुसलमानों की सल्तनतें एशिया में कहाँ-कहाँ हैं और उन का क्या हाल है। (3) हिंदुस्तान और हिंदुओं को मुसलमानों से लाभ हुआ या हानि। (4) दिल्ली में पाया तख़्त का बदलना।

इस पुस्तक के अंत में पुर्तगालियों का वर्णन है।

लेखक ने अपने कार्य को संपन्न करने में कठिन परिश्रम किया है। पुस्तक में ऐसे तथ्यों का उद्घाटन हुआ है जो इतिहास की साधारण पुस्तकों में प्रायः नहीं मिलते।

इस कृति का उर्दू के इतिहास-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। निःसंदेह यह एक अमूल्य ग्रंथ है।

ताळम *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

के० सुरेंद्रन् (दे०) का प्रथम उपन्यास। इसके पात्रों प्रभाकरन् और सौदिमिनी (दे०) के स्वाभाविक प्रेम का विकास प्रभाकरन् की प्रदर्शन-विमुखता के कारण रुक जाता है और सौदामिनी चक्रपाणी के चंगुल में फँस जाती है। ठगी हुई सौदामिनी पुनः प्रभाकरन् के प्रश्रय में जाती है और यथासमय उनका विवाह हो जाता है। प्रभाकरन् पर अनुरक्त तुलसी चक्रपाणी से विवाह कर लेती है।

घटनाओं के क्रम के अनुसार दोलायमान मानव-मन का विश्लेषण करने में सुरेंद्रन् को इस उपन्यास में सफलता मिली है।

साहित्य-समालोचना के क्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ होने के बाद अपनी प्रतिभा को उपन्यास-रचना की ओर मोड़ने वाले इस लेखक के प्रथम उपन्यास के रूप में यह रचना महत्वपूर्ण है—विशेषकर इस दृष्टि से कि इनकी लेखनी से बाद में मलयाळम-साहित्य को कई उत्कृष्ट औपन्यासिक कृतियाँ प्राप्त हुईं।

तालुकदार, देवचंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1900 ई०; जन्म-स्थान—गौहाटी]

बी० एस-सी० की परीक्षा में अनुत्तीर्ण होकर ये डिप्टी कमिश्नर के आफ़िस में क्लर्की करने लगे थे। इन्होंने 1956 ई० में अशोक प्रेस की स्थापना की थी। प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'प्रेमफट' (1922), 'कुँहिमला' (1927), 'सौंदर्य' (1930), नाटक : 'असम प्रतिभा' (1923), 'बामुनी कोंवर' (1924), 'हरदत्त' (1923), 'लहड़ा' (1925), 'भास्कर वर्मा' (1935), उपन्यास : 'धुँवलि कुँवली' (1922), 'अपूर्ण और आग्नेयगिरि' (1924) 'विद्रोही' (1929), 'आदर्श पीठ' (दे०)।

इनकी कविताएँ प्रायः लंबी कहानी-कविताएँ हैं। इनके नाटकों की कथावस्तु आहोमकालीन ऐतिहासिक है। नाटकों में ऐतिहासिकता कम एवं अंतर्द्वंद्व अधिक चित्रित है। 'लहड़ा' पर गांधीवादी प्रभाव है, इसमें अस्पृश्यता का विरोध किया गया है। ये श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। इनकी कथाकृतियों पर पहले गांधी जी का प्रभाव था, बाद में ये साम्यवाद की ओर झुक गए थे। उपन्यासों की कथा और चरित्रों में शैथिल्य है, किंतु घटनाओं के वर्णन में यथार्थता है।

तिक्कना सोमयाजी *(ते० ले०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

तेलुगु में 'कवित्रय' के नाम से प्रसिद्ध तीन कवियों में से एक तिक्कना सोमयाजी हैं। ये कोम्मना-

मात्य और अन्नमाबा के पुत्र थे। ये तेरहवी शती मे नेल्लूर के राजा मनुभसिद्धि के यहाँ अमात्य के पद पर काम करते थे और अपनी कविता के प्रभाव से राज्यभ्रष्ट नरेश को पुन राजा के पद पर प्रतिष्ठित कर चुके थे। इस कवि की सबसे पहली रचना थी—'निर्वचनोत्तर रामायणमु' (दे०)। इसकी विषयवस्तु रामायण के उत्तरकाड की कथा है। तेलुगु के प्राचीन काव्य प्राय गद्य-पद्यात्मक चपू शैली मे लिखे जाते थे। पर प्रस्तुत रचना केवल पद्य-बद्ध होने के कारण तत्कालीन काव्य-रचना के क्षेत्र मे एक नूतन प्रयोग के रूप मे प्रसिद्ध थी। इस रचना के बाद कवि की वास्तविक काव्य-साधना साहित्यिक महामेध का रूप धारण कर चुकी थी जिसका पर्यवसान 'आध्र-महाभारतमु' (दे०) के पद्रह पर्वो (वन पर्व के अत तक) की रचना मे हुआ। 'महाभारत' के पहले तीन पर्वो की रचना नन्नय भट्टु (दे०) और एर्राप्रगड (दे०) की सम्मिलित साधना से सपन्न हुई और इस महान् ग्रथ की अधिकाश रचना का श्रेय सोमयाजी तिक्कना को प्राप्त है। विराट पर्व सबसे अधिक परिमार्जित और प्रौढ बन पडा है। तिक्कनार्य की रचना मे तीन विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं—रचना की नाटकीयता, मानव-मन का सूक्ष्म-गहन अध्ययन तथा कम से-कम शब्दो मे अधिक-से अधिक कहने की क्षमता। इन विशेषताओ के कारण कवि को 'कविब्रह्म' की उपाधि प्राप्त थी। सस्कृत और तेलुगु मे समान दक्षता प्राप्त होने के कारण इनको 'उभयकविमित्र' भी कहा जाता है। सस्कृत शब्दो के आडबर से अनावश्यक रूप से बोझिल भाषा को देशी शब्दो की सहज माधुरी से परिपुष्ट बनाकर तेलुगु के भावी कवियो का मार्ग प्रशस्त करने का श्रेय सोमयाजी को प्राप्त हुआ। उन दिनो मे शैव धर्म और वैदिक धर्म के बीच मे प्रचलित वैमनस्य को भी इस कवि की हरिहरात्मक साधना ने कातासम्मत विधान से अपावृत करके साहित्यिक क्षेत्र मे समन्वयात्मक धार्मिक भावना को प्रतिष्ठित किया था। 'रामायणमु' और 'महाभारतमु' के अलावा 'विजय-सेनमु', 'कविवाग्बधनमु', 'कृष्णशतकमु' नामक तीन और रचनाएँ भी इसकी लिखी हुई बताई जाती है।

तिक्कोटीयन् *(मल० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

तिक्कोटीयन मलयाळम नाटककार पी० कुञ्ञनतन् नायर का उपनाम है। तिक्कोटीयन् ने स्वतत्रता-आदोलन मे भाग लिया है और आकाशवाणी म सवा की है।

'जीवितम्', 'पुतिय तेट्टु', 'कनकम् विळयुन्न-मण्णु' आदि इनके नाटक है। 'अश्वहृदयम्' उपन्यास है। हास्य-कृतियो के भी दो सकलन प्रकाशित हुए हैं।

इनके नाटको मे अधिकतर सामाजिक समस्याओ पर प्रकाश डाला गया है। हास्य-लेखन मे व्यग्यकार 'सजयन्' (दे०) के शिष्य और सहयोगी रह हैं। ये अत्यधिक लोकप्रिय साहित्यकार हैं।

तितली *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1934 ई०]

यह जयशकर प्रसाद (दे०) का दूसरा किंतु अत्यत महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसमे लेखक ने प्रेम के आदर्श रूप का निरूपण करते हुए समाज के विभिन्न स्तरो के वास्तविक रूप को उजागर किया है। इसकी मूल कथा ग्रामीण जीवन से सबधित है। बाबा रामनाथ के कथानक के माध्यम से लेखक ने ग्रामीण जीवन की दयनीय स्थिति, जमीदार तथा उनके कारिदो की कूटनीति एव धाँधली आदि को उद्घाटित करते हुए ग्राम-सुधार तथा ग्राम-सगठन की ओर सकेत किया गया है। गाँव के सुशिक्षित युवा ज़मीदार इद्रदेव की कथा के माध्यम से सामतीय वातावरण, धनी परिवार की समस्याओ तथा टटती हुई सयुक्त पारिवारिक व्यवस्था को रूपायित किया गया है। इस उपन्यास का लक्ष्य यह बताना भी रहा है कि पश्चिमी सभ्यता का अधानुकरण करने के स्थान पर प्राचीन भारतीय सास्कृतिक आदर्श ही इस देश के निवासियो के लिए सर्वाधिक जीवनोपयोगी है। 'तितली' की अवतारणा नारीत्व तथा सतीत्व के प्राचीन भारतीय आदर्शों की सजीव प्रतिमूर्ति के रूप मे की गई है तो बाबा रामनाथ को भारतीय सस्कृति तथा दर्शन के प्रतीक-रूप मे प्रस्तुत किया गया है। काव्यात्मक भाषा-शैली का प्रयोग जयशकर प्रसाद के लेखन की निजी विशेषता है जिसकी झलक इस उपन्यास मे भी अनेक स्थलो पर दृष्टिगत होती है।

तिनोटि रातिर सकाल *(उ० कृ०)*

'तिनोटि रातिर सकाल' श्री शातनु कुमार आचार्य (दे०) के उपन्यास 'शताब्दीर नचिकेता' का उत्तराद्ध है, अत दोनो उपन्यासो के चरित्र समान है। इसे आशिक रूप से जीवनीमूलक उपन्यास कहा जा सकता है। उपन्यासकार की अभिज्ञता का क्रमिक विकास ही इसमें विनित है। लेखक के गाँव, परिचित शहर, शिक्षानुष्ठान,

प्रकृति एवं परिवेश को लेकर ही इस उपन्यास की रचना हुई है।

यह उपन्यास हर दृष्टि से आधुनिक है। यह युगीन चिंतना व धारणा का प्रतिनिधित्व करता है। आधुनिक विघटित मानव-व्यक्तित्व, ह्रासोन्मुख जीवन-दृष्टि, क्षयी मनोवृत्ति, पुरातन एवं नूतन का द्वंद्व आदि तत्त्व इसमें उभर कर आए है। इस विश्रृंखलता और ह्रास के पीछे के कारणों को उपन्यासकार मनोविज्ञान और युगीन परिवेश में समझने का प्रयास करता है।

इसकी भाषा सशक्त है; पदावली सुस्पष्ट एवं भावप्रकाशमयी है। शिष्ट एवं बोलचाल के शब्दों का इसमें सुंदर समाहार हुआ है। पदावली में संहिति, संक्षिप्तता एवं वैज्ञानिक नापजोख है। समग्र पुस्तक की अंतःशक्ति एवं गुरुता की रक्षा समर्थ भाषा और शैली के कारण ही हो सकी है।

यद्यपि इसमें एक अनिश्चित वर्तमान का चित्रण हुआ है, किंतु फिर भी इसमें एक गरीयमान भविष्यत् की संभावना सुरक्षित है।

तिप्पेरुद्रस्वामी, एच० *(क० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

डा० एच० तिप्पेरुद्रस्वामी कन्नड के अध्यवसायी अनुसंधित्सु तथा श्रेष्ठ गद्यकारों में से है। इनका जन्म 1928 ई० में शिवमोग्गा जिले के होन्नाली में हुआ था। इनके पिता एक कर्मनिष्ठ वीरशैव थे जिन्होंने अपना सारा समय वचन-साहित्य के अध्ययन में बिताया था। संप्रति ये मैसूर विश्वविद्यालय के कन्नड विभाग में रीडर हैं। इन्होंने वीरशैव संतों के रहस्यवाद पर अनुसंधान किया है। इन्होंने उपन्यास, नाटक, इतिहास एवं आलोचना-साहित्य के भंडार की श्रीवृद्धि अपनी लेखनी से की है। 'शिवप्प नायक', 'सत्याश्रम साम्राज्य', 'परिपूर्णदेडेगे' तथा 'कदलिय कप्पुर' आपके सफल ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'शरणर अनुभाव साहित्य' आपका शोधप्रबंध है। 'कर्णाटक-सं-कृति-समीक्षे' (दे०) आपकी एक प्रौढ़ कृति है जिसमें कर्णाटक के इतिहास, संस्कृति, साहित्य-संगीत आदि परंपराओं की विवेचना है। कर्णाटक संस्कृति के मर्म को प्रतिपादित करने वाले इस ग्रंथ को 1969 ई० का साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिल चुका है।

आपकी भाषा संयत है, उसमें कहीं भी भावोद्वेग नहीं है।

तिम्मकवि, कूचिमंचि (ते० ले०) [समय—1684-1757 ई०]

'कविसार्वभौम' के विरुद से समलंकृत तिम्मकवि गोदावरी प्रांत के कंदराड़ा के निवासी थे। ये गंगनामात्य लच्चमांबा के पुत्र और शैव-दीक्षापरायण थे। ये कंदराड़ा के पटवारी थे।

स्वयं तिम्मकवि ने अपनी रचनाओं का उल्लेख इस प्रकार किया है: (1) 'राजशेखरविलासमु' (दे०), (2) 'रुक्मिणीपरिणयमु', (3) 'सिंहशैलमहात्म्यमु', (4) 'नीलासुंदरीपरिणयमु' (दे०), (5) 'अच्च (ठेठ) तेलुगु रामायणमु' (दे०), (6) 'सारंगधरचरित्रमु', (7) 'सागरसंग महात्म्यमु' (8) 'सर्वलक्षणसारसंग्रहमु', (9) 'रसिकजनमनोभिराममु' (दे०), (10) 'सर्पपुर महात्म्यमु', (11) 'शिवलीला विलासमु', (12) 'सुजनमनःकुमुदचंद्रिका', (13) 'कुक्कुटेश्वर शतकमु'। इनके अतिरिक्त इन्होंने कुछ शतक तथा दंडकों की भी रचना की थी।

उपर्युक्त रचनाओं में कुछ क्षत्र-माहात्म्य का वर्णन करने वाले काव्य हैं तो कुछ पौराणिक गाथाएँ हैं। अंतिम शतक को छोड़कर शेष सरस श्रृंगार-काव्य हैं।

तिम्मकवि के सभी काव्य प्रसन्न मधुर-शैली से युक्त होकर, पाठकों को रसपुलकित करने में समर्थ हैं। 'सर्वलक्षणसारसंग्रहमु' लक्ष्य-लक्षणों से युक्त रीतिग्रंथ है। ठेठ तेलुगु में भी इन्होंने दो काव्यों की रचना की है। इस प्रकार के काव्यों में ये प्रथमगण्य हैं।

उस युग के प्रसिद्ध कवि कूचिमंचि जग्गकवि इनके अनुज हैं।

रचना-शैली और सरस वर्णनों के कारण तिम्म कवि अपने युग के कवियों में श्रेष्ठ माने जाते हैं।

तिम्मक्का, ताल्लपाक (ते० ले०) [समय—पंद्रहवीं शती ई०]

तिम्मक्का प्रसिद्ध संकीर्तनाचार्य एवं पदकविता-पितामह ताल्लपाक अन्नमाचार्य (दे० की पत्नी थी। इनकी काव्यकृति 'सुभद्राकल्याणमु' है जिसमें सुभद्रा व अर्जुन की विवाह-कथा वर्णित है। इस कृति के आधार पर तिम्मक्का तेलुगु की सर्वप्रथम कवयित्री मानी जाती हैं। इस कृति के अनुसंधाता वेटूरि प्रभाकर शास्त्री के अनुसार परवर्ती कवि वेंमकूर वेंकट कवि (दे०) ने अपने प्रसिद्ध प्रबंधकाव्य 'विजयविलासमु' (दे०) में तिम्मक्का की कविता-शैली का बहुत-कुछ अनुकरण किया है।

तिम्मक्का का यह काव्य 1163 चरणो के द्विपदा छद मे सपन्न हुआ है। एक तो नारी की कोमल रचना और दूसरा द्विपदा जैसे देशी छद का प्रयोग दोनो ने इस रचना को अत्यत सरस एव सार्वजनीन बना दिया है। स्त्रियाँ विवाह के समय आज भी समवेत स्वर मे इसके छद गाया करती हैं।

तिम्मना, नदि *(तं० ले०)* [समय—सोलहवी शती ई०]

ये विजयनगर राज्य के राजा श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) के दरबारी कवि थे। 'भुवनविजय' (दे०) नामक साहित्य-कथा के 'अष्टदिग्गज' (दे०) नाम से प्रसिद्ध आठ कवियो मे से तिम्मना भी एक थे। अपनी विजय-यात्राओं मे कृष्णदेवरायलु ने कटक के गजपति को परास्त किया। गजपति ने अपनी पुत्री को देकर कृष्णदेवरायलु से समझौता कर लिया। गजपति की कन्या के साथ ही तिम्मना भी कृष्णदेवरायलु के यहाँ आए और उनके दरबारी कवि बन गए। तिम्मना की रचनाओ मे पारिजातापहरणमु' (दे०) ही आज हमे उपलब्ध होता है। यह पांच आश्वासो का एक शृगार-काव्य है। कृष्ण ने नारद के द्वारा समर्पित पारिजात को पास बैठी हुई रुक्मिणी को दे दिया। उससे क्रुद्ध सत्यभामा को शात करने के लिए श्रीकृष्ण ने नदन वन से पारिजात वृक्ष लाकर उसके अत पुर के आँगन मे लगवा दिया। यही इस काव्य का मुख्य कथानक है। सरस तथा सुकुमार भावो को सुदर तथा कोमल शब्दो मे व्यक्त करने की इनकी प्रतिभा अनुपम है। इन्हे नारी-स्वभाव के नाना रूपो की विशद तथा पूर्ण जानकारी थी। इसीलिए इनके काव्य मे चरित्र-चित्रण के अतर्गत एक विशेष प्रकार की प्राणवत्ता प्रकट होती है। मानिनी सत्यभामा तथा श्रीकृष्ण का चरित्र चित्रण मार्मिक है। सहज तथा सुदर वर्णनो के द्वारा रस को पुष्ट करने मे ये अत्यत समर्थ थे। उक्त काव्य के अतर्गत इन्होने नासिका का वर्णन करते हुए एक अद्भुत कल्पना की थी। गधफली नामक पुष्प की गध भौंरो के लिए हितकर नही है। अत भौंरे उसके पास नही जाते। अपनी इस स्थिति के लिए दुखी होकर गध-फली ने घोर तप करके उसके फलस्वरूप नायिका की नासिका का रूप धारण कर लिया। अब उसके दोनो ओर एक-दो नहीं बल्कि ईक्षण-रूपी भौंरो की पक्ति ही लगी हुई है। तेलुगु मे 'मुक्कु' शब्द का अर्थ नासिका है। उक्त कल्पना के कारण यह कवि 'मुक्कु तिम्मना' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सरस तथा कोमल शैलीयुक्त काव्य लिखने वाले तेलुगु कवियो मे पेद्दन्ना (दे०) के बाद तिम्मना का ही नाम लिया जाता है।

तिम्मना, पुष्पगिरि *(तं० ले०)* [समय—अठारहवी शती ई०]

ये आध्र के नेल्लूरु ज़िले के रहने वाले प्रसिद्ध विद्वत्कवि थे। तिम्मना हनुमान के भक्त थे। इन्होने अपने को 'श्रीहनुमत्पाद सेवागताध्यात्म-तत्त्व-कवित्वविद्' (दे०) कहा है। इनकी रचनाएँ ये हैं—'समीरकुमारविजयमु', 'भागवतसारमु' और 'सुभाषितत्रिशति' के अतर्गत नीति-शतक का तेलुगु-अनुवाद। इनमे 'समीरकुमारविजयमु' पुराण और इतिहास आदि मे उपलब्ध हनुमान से सबद्ध प्रसगो को लेकर सात आश्वासो मे लिखा गया काव्य है। 'भागवत-सारमु' गद्यकाव्य है। बताया जाता है कि इसके आधार पर किसी लेखक ने तमिल मे एक भागवत-ग्रथ लिखा था। 'सुभाषितत्रिशति' के कई तेलुगु-अनुवाद उपलब्ध होते हैं। चपकमाला तथा उत्पलमाला नामक छदो मे तिम्मना के द्वारा किया गया अनुवाद अत्यत प्रौढ तथा सरस है। अठारहवी शती ई० तेलुगु साहित्य का क्षीणयुग माना जाता है पर उसमे जो इने-गिने प्रसिद्ध कवि हुए उनमे तिम्मना एक हैं।

तिम्मा *(क० पा०)*

कन्नड के व्यग्य-हास्य लेखक बीचि (दे०) के 'तिम्मन तले' (तिम्मा का सिर) और 'अदना तिम्म' (तिम्मा ने कहा) नामक मुक्तक-काव्यो मे प्रत्येक पद्य के अत मे 'तिम्मा' की छाप मिलती है। उनका यही 'तिम्मा' साहित्य-लोक का विचित्र, प्रभावशील व्यक्ति है। हास्य के छींटे बिखेर कर सत्य का, चाहे वह कितना ही कटु क्यो न हो, उद्घाटन करने मे यह सर्वथा समर्थ है। यह गभीर चितक, आलोचक और दार्शनिक है। 'तुम जैसे हो वैस बनो', 'पहले तुम अपने आपको समझो', 'अच्छा है'—ऐसा सोचकर बडो का अनुकरण मत करो, 'यह क्या हुआ, देखो छोटा गधा अपने पिता का अनुकरण कर बरबाद हुआ' जैसी इसकी उक्तियो मे जीवन की अनुभूति सुदर हास्य के साथ प्रकट हुई है।

तिरञ्ञेट्टुत्त कथकळ् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1940 ई० से 1950 ई० तक]

पोन्कुन्नम् वर्कि (दे०) मलयाळम कहानी के

अभ्युत्थान-काल के प्रमुख कहानीकारों में से हैं। इनके विभिन्न कहानी-संग्रहो से बत्तीस कहानियों का चयन करके सन् 1964 ई० में इन्हें पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया है।

पोन्कुन्नम् वर्कि की कहानियों का विषय तथा कथाधार केरल का सामाजिक और राजनीतिक जीवन है। उनकी कहानियाँ सामाजिक अन्यायों के कारण कष्ट सहने वाले दलित दरिद्रों में आत्मसम्मान की भावना प्रज्वलित करती हैं और उन्हें अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए क्रांति का मार्ग दिखाती है। धर्म के नाम पर मनुष्य की दुर्बलताओं से लाभ उठाने वाली पौरोहित्य-व्यवस्था उनकी भर्त्सना और कटु व्यंग्य का विषय बनी है। यद्यपि वर्कि की रचना-शैली पात्र-प्रधान नहीं है तो भी उन्होंने कुछ अविस्मरणीय पात्रों की सृष्टि की है जो पाठक के मन पर अपनी छाप छोड़ जाते हैं। उनकी कहानियों की इन सभी विशेषताओं का प्रतिनिधित्व इस ग्रंथ में संगृहीत कहानियाँ करती हैं। प्रसिद्ध कहानीकारों की चुनी हुई कहानियों के प्रकाशन की शृंखला में प्रथम कड़ी के रूप में भी इस ग्रंथ का महत्व है।

तिरनायृवु *(त० पारि०)*

यह एक आधुनिक पारिभाषिक शब्द है जो 'समालोचना' और 'समालोचनाशास्त्र' के लिए प्रयुक्त होता है। 'तिरन्' का अर्थ है दक्षता या कवि-कर्म-नैपुण्य और 'आयृवु' का अर्थ है विवेचन, विश्लेषण तथा मूल्यांकन। इस प्रकार किसी कृति की विशेषताओं का, उसके गुणों और दोषों का विवेचन कर साहित्यिक महत्व का मूल्यांकन करना 'तिरनायृवु' है। साथ ही इस विश्लेषण और मूल्यांकन के लिए मानदंड निर्धारित करने वाला या सिद्धांतों का प्रतिपादन करने वाला लक्षण ग्रंथ भी 'तिरनायृवु' है।

यह पारंपरिक शास्त्रीय समीक्षा-पद्धति से भिन्न व्यावहारिक समीक्षा का वाचक है; इसमें किसी कृति की काव्यात्मक संरचना और कृतिकार की सर्जन-प्रक्रिया के विश्लेषण द्वारा उसके सौंदर्य और महत्व का आकलन किया जाता है। तमिल में यह पद्धति पाश्चात्य समीक्षा-पद्धति के प्रभाव से विकसित हुई है।

तिरिकुडरासप्पन् *(त० ले०)* [समय—अठारहवीं शती]

'प्रकृति की आराम-भूमि' कहलाने योग्य 'कुट्रालम्' प्रपात के वातावरण में इनका जीवन बीता था और इस पार्वत्य प्रदेश के सुरम्य प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करना इनकी वाणी की विशेषता है। इनकी काव्य-रचना 'कुट्रालक्कुरवंचि' (दे०) है। इसकी कथा-वस्तु एक पहाड़ी नारी की उक्तियों पर आधारित है जो प्रणय-विह्वल नायिका के सामने प्रकट होकर अपना परिचय, नायिका के प्रणय-रोग का स्वरूप एवं निदान के उपाय इत्यादि बातों का विवरण देती है। इनकी एक और काव्यकृति 'कुट्रालत् तलपुराणम्' है जो कुट्रालम् तीर्थस्थान संबंधी माहात्म्य-कथा प्रस्तुत करती है।

तिरुअरुट्पा *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की उन्नीसवीं शती]

इसके रचयिता रामलिंगस्वामी है। रामलिंग-स्वामी तमिलनाडु के प्रसिद्ध शैव संतों में से हैं। मूलतः शिव और सुब्रह्मण्यस्वामी के भक्त होते हुए भी इन्होंने सभी धर्मों का आदर किया है। रामलिंगस्वामी ने 'समरस शुद्ध-सन्मार्गम्' नामक नवीन पंथ का प्रवर्तन किया था जिसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना पर बल दिया गया है। इनकी कृतियों में तिरुअरुट्पा का विशिष्ट स्थान है। इसमें इनके भक्तिमय पद संगृहीत हैं। विद्वानों के मतानुसार इन्होंने सोलह सहस्र से अधिक भक्तिमय पदों की रचना की थी जिनमें से कुछ सहस्र पद 'तिरुअरुट्पा' नाम से संगृहीत हैं। 1851 ई० में इनके भक्तिपूर्ण पदों का एक संग्रह 'शेन्नै कंदर दैव मणिमालै-शरण पत्तु' नाम से प्रकाशित हुआ था। कालांतर में तोलुवूर वेलायुद मुदलियार ने इनके पदों का संग्रह 'तिरुमुरै' नाम से किया। यही संग्रह आज 'तिरुअरुट्पा' के नाम से विख्यात है। इसके छह भाग हैं। प्रथम चार भाग 1867 ई० मे, पाँचवाँ भाग 1880 ई० में और छठा भाग 1885 ई० में प्रकाशित हुआ था। इन पदों में 'समरसशुद्धसन्मार्गम्' के सिद्धांतों का विवेचन है। प्रथम पाँच भागों के पदों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि इनकी विचारधारा क्रमशः विकसित होती गई है। इनके मत मे सभी प्रकार के भेद-भावों से रहित व्यक्ति के हृदय मे ही ईश्वर का निवास होता है। 'तिरुअरुट्पा' के भक्तिरसपूर्ण पद तमिलनाडु में अत्यंत लोकप्रिय हैं।

तिरुकोलविनाचि *(क० पा०)*

'तिरुकोलविनाचि' पड्क्षरि (दे०) की श्रेष्ठ

कृति 'राजशेखरविनाग' (दे०) का एक नारी पात्र है। इसमे शिवभक्त सत्येंद्र चोल की कथा है। पडक्षरि पडित कवि हैं। इस चपूकाव्य मे पाडित्य प्रदर्शन एव चमत्कार की ही प्रधानता है। किंतु तिरुकोलविनाचि का प्रसग इसका अपवाद है। वह एक गरीब स्त्री है। उसका इकलौता बेटा था। एक दिन वह सत्येंद्र चोल के कुमार के घोडे से कुचल कर मर जाता है। उस सदर्भ मे उसका मातृहृदय करुणा की गगा बनकर फूट पडता है। पुत्र को मृत पाकर राजा के पास जाकर वह शिकायत करती है। उसका पुत्र-शोक भयकर रूप धारण करता है। माता के कोमल पक्ष को उसके पुत्र की मृत्यु के समय देखते है तो उसके उपरात जब वह प्रतिशोध के लिए राजा के पास जाती है तब बहुत ही कठोर बन जाती है। किंतु राजा भी कम नही था। उसने उसके पुत्र के बदले अपने पुत्र की बलि दे दी। इसे देखकर उसकी माता ने अपनी बलि दे दी। उससे दुखी बने तिरुकोलविनाचि तथा राजा भी अपनी जान दे देते हैं। अत मे उनकी शिव-भक्ति एव निष्ठा देखकर शिव प्रकट हो उन सबको जिला देते है। तिरुकोलविनाचि मातृत्व प्रेम की मृदुता का एव रोष के भीषण रूप का सुदर प्रतिनिधित्व करती है।

तिरुक्करुवैप्पतिट्रुप्पत्ततांति *(त०कृ०)* [रचना-काल—सोलहवी शती ई०]

इसके रचयिता अतिवीररामपाडियन नामक पाड्य राज-वश के दानी कलाप्रिय शैव भक्त है। य सस्कृत भाषा के भी अच्छे ज्ञाता थे और इन्होने 'नैषध', 'काशीपुराण', 'लिंगपुराण' आदि ग्रथो के तमिल पद्यबद्ध रूप भी प्रस्तुत किए है।

आलोच्य काव्य-कृति मे शिव भगवान के प्रति चलाई गई अपूर्व भक्ति-तन्मयता दर्शनीय है। तमिल प्रदेश के 'तिरुनेल्वेलि' जिले मे स्थित 'करुवै' (अथवा करिवलम् वतनल्लूर) नामक गाँव के मदिर मे विराजमान शिव इनके इष्ट थे और इसी मूर्ति की स्मृति के रूप मे यह कृति विरचित है। इसमे मगलाचरण का एक अतिरिक्त पद्य छोड कर सौ पद्य हैं जो दस दस पद्यो के रूप मे विभाजित हैं और कई छदो मे निबद्ध हैं।

तमिल शैव सिद्धात-तत्त्वो के अनुसार शिव भगवान का विराट स्वरूप भक्त की नीचता और प्रभु की असीम एव अहेतुकी कृपा, ईश्वरीय अनुग्रह का अलौकिक आनद इत्यादि भक्त हृदय को आदोलित करने वाली बातें इस लघु काव्य मे भावार्द्रता के साथ अभिव्यक्त हुई है। तमिल शैव धर्म की शीर्षस्थानीय भक्तिरस-प्लावित कृति माणिक्कवाशगर् (दे०) द्वारा रचित तिरुवाचकम्' का स्मरण दिलाने से इस लघु रचना को कुट्टितिरुवाशगम' (लघु तिरुवाशगम) कहा जाता है।

तिरुक्कुरळ *(त० कृ०)* [रचनाकाल—ईसा की दूसरी-तीसरी शती के आसपास]

तिरुक्कुरळ शब्द 'तिरु' और 'कुरळ' इन दो शब्दो के मेल से बना है। तिरु आदरसूचक उपसर्ग है (श्री) और कुरळ डेढ पक्ति के एक तमिल छद का नाम है। इस ग्रन्थ मे नीति विषयक 1330 कुरळ हैं। इस ग्रथ के तीन भाग हैं—अरत्तुप्पाल (धर्म-विभाग), पोरुटपाल (अर्थ-विभाग) और कामत्तुप्पाल (काम-विभाग)। धर्म-विभाग के आरभ मे लेखक ने सर्वव्यापी प्रभु की वदना की है। तदुपरात गृहस्थ एव सन्यास धर्म का निरूपण करते हुए गृहस्थ जीवन को सन्यास से बढकर बताया है। एक अध्याय मे कर्म-सिद्धात का विवेचन है। अर्थ-विभाग मे राजा, राज्य-शासन, सैन्य-सचालन, राजनीति के विभिन्न अगो, राजा और प्रजा के कर्तव्यो आदि का विवेचन है। लेखक ने राजा एव प्रजा के समान अधिकार की घोषणा की है। काल विभाग मे पूर्वराग, गुप्त प्रेम, सयोग और वियोग शृगार का विस्तृत विवेचन है। लेखक ने स्थूल शारीरिक प्रेम के स्थान पर सूक्ष्म मानसिक प्रेम की चर्चा की है। इस कृति मे तिरुवळ्ळुवर (दे०) मानव के व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन के आदर्शों को व्यक्त करने मे सफल हुए हैं। इसे 'तमिल वेद' कहा जाता है। 'तिरुक्कुरळ' तमिल साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृतियो मे तथा विश्व की नीति विषयक श्रेष्ठ कृतियो म से है।

तिरक्कुरळभापा *(मल० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवी शती ई०]

तमिल के प्रसिद्ध आध्यात्मिक ग्रथ 'तिरुक्कुरळ' (दे०) का प्राचीन मलयाळम गद्यानुवाद। अनुवादक के सबध मे कोई प्रामाणिक सूचना नही है। तिरुक्कुरळ' के 1330 छदो का अनुवाद इसम है। इसकी भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा के बहुत निकट है। मूल पुस्तक की भाषा सेन्तमिल का प्रभाव भी यत्र-तत्र दर्शनीय है।

तिरुक्कोवैयार *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की नवीं शती]

प्रसिद्ध शैव संत माणिक्कवाशगर् (दे०) द्वारा रचित। इनके समय के विषय में विद्वानों में मतभेद है। बहुमत यही है कि इनका समय ईसा की नवीं शती है। इस कृति के 400 पदों में प्रेम और पारिवारिक जीवन का वर्णन है। विद्वानों के अनुसार विभिन्न पद अन्योक्तिपरक हैं। यहाँ नायक और नायिका वस्तुतः परमात्मा और आत्मा के प्रतीक हैं। इसमें प्रेम का चित्रण संयत रूप में किया गया है। प्रेम के संयत चित्रण का एक उदाहरण इस प्रकार है—युवती नायिका किसी युवक के साथ भाग जाती है। उसकी खोज में जंगल में भटकती वृद्धा माँ की एक प्रेमी-युगल से भेंट होती है। वह उनसे अपनी पुत्री और उसके प्रेमी के विषय में पूछती है। युवक कहता है कि मैंने एक युवक को इधर से जाते देखा था और अपनी प्रेमिका से पूछता है कि क्या उसने किसी युवती को उधर से जाते देखा था।

तेरहवीं शती में तिरुक्कोवैयार की विस्तृत टीका लिखी गई जो आज भी अत्यंत प्रसिद्ध है। विद्वानों के अनुसार 'तिरुक्कोवैयार' कोवै (दे०) नामक काव्यविधा में रचित प्रथम कृति है।

तिरुच्चेंदूर पिळ्ळैतमिल *(त० कृ०)* [समय—पंद्रहवीं शती ई०]

इस काव्य-कृति की गिनती 'पिळ्ळैतमिल' विधा (दे०) के अंतर्गत की जाती है। यह ग्रंथ सागर तट पर संस्थित 'तिरुच्चेंदूर' नामक स्थान-विशेष के मंदिर के 'मुरुग' (कार्तिकेय) भगवान की स्तुति है। इसमें उल्लिखित दस शैशव-दशाएँ ये हैं—(1) काप्पु (शिशु रक्षा-प्रार्थना), (2) चेङ्कीरै (शिशु-नृत्य), (3) ताल (हिंडोला-शयन), (4) चप्पाणि (ताली बजाना), (5) मुत्तम् (चुम्बन-याचना), (6) वरुकै (बच्चे का आह्वान), (7) अम्पुलि (चंद्रमा-आह्वान), (8) चिरुपरै (लघु ढोल बजाना), (9) चिट्रिल् (क्रीडा-घर बनाना), (10) चिरुतेर् (क्रीडा-रथ चलाना)। कवि 'पकलिक्कूत्तर' ने परंपरा प्राप्त काव्य-ढाँचे में अपने उपास्य देव की मनोहारी लीलाओं तथा महत्ताओं का प्रभावोत्पादक वर्णन किया है। यद्यपि वर्णन की शैली रूढ़िबद्ध है, तो भी परिपाटी-पालन की सीमाओं के अंतर्गत कवि का कल्पना-वैशिष्ट्य एवं उक्ति-चमत्कार निखर आया है। 'मुरुग' देव का वाहन मयूर है जो अपने पैरों तले एक सर्प को कुचलता हुआ दिखाया जाता है। चंद्रमा को शिशु 'मुरुग' के साथ खेलने बुलाते हुए कवि कहते हैं—"राहु रूपी सर्प तुम्हें खाने बैठा है। 'मुरुग' के साथ खेलो और मयूर है तुम्हें बचाने के लिए"।

तिरुपति वेंकट कवुलु *(ते० ले०)* [समय—उन्नीसवीं-बीसवीं शती]

उन्नीसवीं शती के अंतिम दशक में चेळ्ळ-पिळ्ळ वेंकटशास्त्री और दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्री नाम के दो कवि तेलुगु साहित्य में एक नयी चेतना, नयी सुषमा भर चुके थे। इन दोनों कवियों को सम्मिलित रूप से तिरुपति वेंकटकवुलु या तिरुपति कवुलु कहा जाता है। इन दोनों ने उस समय के सुप्रसिद्ध विद्वान् चर्ल ब्रह्मय्य शास्त्री के पास संस्कृत और तेलुगु का अध्ययन किया था। काव्यशास्त्र और व्याकरण में पारंगत होकर दोनों विद्वानों ने साथ-साथ सम्मिलित रूप में काव्य-साधना शुरू की। उस समय नयी पीढ़ी के लोग अँग्रेज़ी की ओर झुके हुए थे तो पुराने विद्वान संस्कृत के गुणगान में लगे हुए थे। ऐसी स्थिति में तिरुपति कवियुग्म ने अपनी ऊर्जस्वित काव्य-माधुरी से जन-मानस को ही नहीं राजदरबार के सभामंडपों को भी मंत्र-मुग्ध कर दिया। अष्टावधान और शतावधान नाम की दो काव्यप्रक्रियाओं का उन दिनों काफ़ी प्रचार था। आशुकविता और समस्यापूर्ति के ही ये विकसित रूप हैं। इस विधा का सम्यक् विकास तिरुपति कविद्वय ने किया। इनकी रचना 'नानाराजसंदर्शनमु' (दे०) में इन्हीं अवधानों का विवरण मिलता है। इन अवधानों के अलावा 'महाभारत' (दे०) के प्रमुख प्रसंगों के आधार पर इन्होंने अत्यंत लोकप्रिय नाटकों की भी रचना की थी। 'मृच्छकटिक' (दे०), 'मुद्राराक्षस' (दे०) 'बालरामायण' आदि संस्कृत-नाटकों का सरस अनुवाद भी इस कवियुग्म ने प्रस्तुत किया था। 'सुकन्या', 'अनर्घनारदमु', 'दंभवामनमु', 'पंडितराजु', 'उद्योगविजयमुलु' (दे०) आदि मौलिक नाटक भी इन लोगों ने लिखे थे। अनेक गद्य-काव्य और पद्य-काव्य भी इनके लिखे मिलते हैं। प्राचीन परंपरा के विद्वान् होते हुए भी नूतन प्रयोगों के प्रति इनकी विशेष रुचि है। वीर और हास्य-रसों की अभिव्यंजना करने वाले इनके कई काव्य तेलुगु-समाज में अत्यंत समादृत हैं।

तिरुप्पुहल *(त० कृ०)* [रचना-काल—पद्रहवी शती ई० का पूर्वार्ध]

रचयिता—अरुणगिरिनादर (दे०)। तिरुप्पुहल अरुणगिरिनादर की सर्वप्रसिद्ध कृति है। तिरुप्पुहल मे दो शब्द हैं 'तिरु' और 'पुहल' [तिरु=पावन, सुदर (यहाँ प्रभु का सूचक), पुहलप=प्रशसा], अत तिरुप्पुहल का अर्थ है—प्रभु की (भगवान मुरुगन की) स्तुति। प्रसिद्ध है कि अरुणगिरिनादर ने भगवान मुरुगन की स्तुति मे सोलह सहस्र पदो की रचना की थी किंतु आज उनके लगभग दो सहस्र पद ही उपलब्ध हैं। अन्य सत कवियों की भाँति इन्होने भी विभिन्न पुण्य क्षेत्रो का भ्रमण करते हुए भगवान् सुब्रह्मण्य की स्तुति मे पदो की रचना की। इन्होंने विभिन्न पदो मे स्वय को महापापी के रूप मे चित्रित किया है और आत्मदोषो का वर्णन करते हुए प्रभु से क्षमा-याचना की है। ये पद विशिष्ट लय मे रचित हैं और बहुत लोकप्रिय हैं। तिरुप्पुहल का धार्मिक एव साहित्यिक दोनो दृष्टियो से महत्व है।

तिरुमगै आळ्वार *(त० ले०)* [समय—ईसा की आठवी शती का मध्य भाग]

तिरुमगै आळवार का जन्म कुरयैलूर नामक स्थान पर हुआ। इन्हें विष्णु के धनुष 'शार्ङ्ग' का अवतार कहा जाता है। अल्पायु मे ही तिरुमगै तमिल तथा सस्कृत भाषाओ मे पारगत हो गए। इन्होने 'पेरिय तिरुमोलि', 'शिरिय तिरुमडल', पेरिय तिरुमडल', तिरुवेलुकूट्रिरुक्कै', 'तिरुक्कुरुन्दाण्डकम' तथा 'तिरुनेडुन्दाण्डकम' नामक छह कृतियो की रचना की है। 'पेरिय तिरुमोलि' के विभिन्न पदो मे वैष्णव तीर्थों और उनके अधिष्ठाता देवताओ, पौराणिक घटनाओ, तत्कालीन सामाजिक प्रथाओ का वर्णन है। 'तिरुवेलुकूट्रिरुक्कै' का विषय भी लगभग यही है। 'तिरुक्कुरुन्दाण्डकम' के अधिकाश पद ईश-स्तुति से सबधित हैं। 'तिरुनेडुन्दाण्डकम' मे प्रमुखत भगवत्-साक्षात्कार से उत्पन्न आनद का वर्णन है। 'शिरिय तिरुमडल' एव 'पेरिय तिरुमडल' नामक रचनाओ मे तमिल-समाज मे प्रचलित एक प्रथा-विशेष—मडल अरुदल—का वर्णन है। तिरुमगै आळवार की ये रचनाएँ दक्षिण के वैष्णव समाज मे वेदाग के रूप मे समादृत हैं। तिरुमगै श्रीरगनाथ के अनन्य उपासक थे।

तिरुमल रामचद्र *(तें०ले०)* [जन्म—1913 ई०]

तिरुमल रामचद्र अद्यतन आध्र लेखको मे लब्ध-प्रतिष्ठ हैं और सस्कृत, प्राकृत, पाली, हिंदी, कन्नड आदि भाषाओ की अच्छी जानकारी रखते हैं। ये न केवल लेखक अपितु सफल पत्रकार भी हैं। कई वर्ष 'भारती', 'आध्रसचित्र' साप्ताहिक आदि पत्र-पत्रिकाओ का सपादन-कार्य करते रहे हैं।

इनकी कृतियो मे उल्लेखनीय है 1 'मनलिपि पुट्टु पुर्वोत्तरालु', 2 'दक्षिणाध्रवीरुलु', 3 हिंदुवुल पडुगलु', 4 'नुडि-नानुडि', तथा 5 साहिती सुगतुनि स्वगतालु'। 'साहिती सुगतुनि स्वगतालु' पर आध्र प्रदेश साहित्य अकादेमी ने इनको पुरस्कृत किया। भाषा विज्ञान, समालोचना तथा बौद्ध वाङ्मय मे इनकी रुचि है।

ललितविस्तर' नामक बौद्ध कृति का तेलुगु अनुवाद इन्होने अपने मित्र पु० बुलुसु वेंकट रमणय्या (दे०) के साथ किया है।

तिरुमलिशै आळवार *(त० ले०)* [समय—ईसा की सातवी शती का प्रथम चरण। साप्रदायिक ग्रथो के अनुसार—द्वापर युग 4202 ई० पूर्व।]

तिरुमलिशै आळवार का जन्म तिरुमलिशै नामक स्थान मे हुआ। इनका सस्कृत नाम भक्तिसारर् है। आरभ मे तिरुमलिशै शिव-भक्त थे परतु कालान्तर मे विष्णु भक्त बन गए। इनकी तपोमहिमा-सबधी अनेक किंवदतियाँ तमिलनाडु मे प्रचलित हैं। इनकी दो रचनाएँ हैं—'नान्मुखन तिरुवदादि' और 'तिरुच्चदविरुत्तम'। 'नान्मुखन तिरुवदादि' मे नारायण की महिमा के प्रतिपादन के साथ-साथ जैन, बौद्ध, शैव आदि धर्मों की अपेक्षा वैष्णव धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। 'तिरुच्चदविरुत्तम के विभिन्न पदो मे वैष्णव धर्म-सबधी सिद्धातो, ब्रह्म, जीव, जगत् आदि दार्शनिक विषयो, तत्कालीन सामाजिक प्रथाओ एव कृष्ण की कुछ लीलाओ का वर्णन है। तिरुमलिशै आळवार की प्रसिद्धि का सबसे बडा कारण यह है कि इन्होने वैष्णवो द्वारा तिलक लगाने के लिए प्रयुक्त लाल चूर्ण की खोज की।

तिरुमलै ताताचार्य शर्मा *(क० ले०)*

कन्नड के श्रेष्ठ पत्रकार श्री तिरुमलै ताताचार्य

शर्मा का जन्म कोलार जिले के एक गाँव में 1897 ई० में हुआ। उनका घराना अपनी संस्कृत विद्या के लिए प्रसिद्ध था। घर पर ही आपने संस्कृत, प्राकृत, कन्नड, तेलुगु आदि भाषाएँ सीखीं। अपनी शिक्षा के बल पर विख्यात विद्वान् एच० कृष्णशास्त्री के साथ काम करने लगे किंतु स्वातंत्र्य-संग्राम की पुकार सुनकर उसमें कूद पड़े। उसके बाद संघर्ष में ही जीवन बीता है। आपने विश्वकर्णाटक' पत्रिका निकालकर उसका सफल संचालन किया। 'पत्रवृत्ति के परशुराम' के रूप में आप विख्यात रहे। इनकी वाणी सरकार के लिए सिंहवाणी थी। कई बार इनकी पत्रिका सरकार की कोपभाजन बनी। आपने कन्नड साहित्य के काल-विभाजन, तथा शिलालेखों आदि पर सैकड़ों विद्वत्तापूर्ण लेख लिखे हैं। 'भारतरत्न विश्वेश्वरय्या जी की जीवनी' 'मास्तियवर मनोधर्म', 'विक्रांत भारत' आदि आपकी श्रेष्ठ कृतियाँ हैं। 'विक्रांत भारत' में भारत-भर के स्वातंत्र्य-आंदोलन का अत्यंत ओजोमय चित्रण है। निर्भीक विचार-धारा, अग्नितुल्य वाक्प्रवाह, स्फटिक स्पष्ट भाषा आपकी विशेषता है।

तिरुमूलर *(त० ले०)* [समय—ईसा की छठी शती]

तिरुमूलर की गणना तमिल प्रांत के 63 शैव संतों में होती है। इनके जन्मादि के विषय में कोई बात ज्ञात नहीं है। ये एक रहस्यवादी संत कवि थे। इनके द्वारा रचित लगभग तीन सहस्र पदों का संग्रह 'तिरुमंदिरम्' कहलाता है। शैव संतों की रचनाएँ तिरुमुरै' नाम से संगृहीत हैं। इनकी संख्या बारह है। इनके पद दसवें तिरुमुरै में संगृहीत हैं। संत तिरुमूलर ने कहीं लौकिक जीवन से संबंधित विविध विषयों का वर्णन किया है तो कहीं आध्यात्मिक अनुभूतियों और गंभीर दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति की है। 'ओन्रेकुलमुम् ओन्रेदैवमुम्' कहकर इन्होंने एक देवता की उपासना और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना पर बल दिया है। ये विश्व-प्रेम के प्रचारक थे। इन्होंने स्पष्ट घोषणा की है कि 'प्रेम ही शिव' है। गंभीर विषयों का विवेचन भी इन्होंने सरल शैली में किया है। कहीं-कहीं रूपकों द्वारा आध्यात्मिक तत्त्वों का प्रतिपादन है। इनके पद अत्यंत सुंदर और सरस हैं। इनमें कहीं-कहीं सूत्रों का-सा भाषा-संयम और गहन तत्त्वार्थ पाया जाता है। दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति में कुछ स्थलों पर भाषा कुछ दुरूह हो गई है परंतु अधिकांश स्थलों पर सरस है। सरल शैली में गंभीर विचारों की अभिव्यक्ति में ये सफल हुए हैं। ये तमिल के प्रसिद्ध संत कवियों में गिने जाते हैं।

तिरुवरुट्प्रकाश वळ्ळलार *(त० ले०)* [रचना-काल—1968 ई०]

यह नारण दुरैक्कण्णन (दे०) 'जीवा' द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटकों में से है। इस ऐतिहासिक-धार्मिक नाटक में 'जीवा' ने उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध तमिल संत कवि रामलिंगस्वामी की जीवनी प्रस्तुत की है। अहिंसा के पुजारी रामलिंगस्वामी दया को मनुष्य का सर्वोपरि धर्म मानते थे। इनकी दयालुता को देख तमिल जनता ने इन्हें वळ्ळलार (दयालु) पुकारना प्रारंभ कर दिया। इन्होंने 'समरस सन्मार्गम' नामक एक पंथ चलाया जिसमें प्राणिमात्र की समानता पर बल दिया गया है। जीवा ने वळ्ळलार के जीवन से संबधित सामग्री विविध स्रोतों से एकत्रित की और अपनी कल्पना-शक्ति एवं प्रतिभा के बल पर उसे सरस नाटक के रूप में प्रस्तुत किया।

इस नाटक में इतिहास और कल्पना का अपूर्व सम्मिश्रण है। कहीं-कहीं पौराणिक प्रसंगों का मौलिक रूप से उपस्थापन है। नाटक की शैली सरस और सरल है। यह नाटक अभिनेय भी है और पाठ्य भी।

तिरुवळ्ळुवर *(त० ले०)* [समय—ईसा की दूसरी-तीसरी शती]

तिरुवळ्ळुवर तमिल के श्रेष्ठ कवियों में से हैं। तिरुवळ्ळुवर शब्द में 'तिरु' संस्कृत श्री के समान आदरसूचक उपसर्ग है और वळ्ळुवर एक निम्न जाति का नाम है। तमिल समाज में तिरुवळ्ळुवर नायनार, देवर, देवप्पुलवर, नानमुगनार आदि नामों से भी प्रसिद्ध हैं। तिरुवळ्ळुवर की एकमात्र रचना है 'तिरुक्कुरळ' (दे०)। तिरुक्कुरळ एक श्रेष्ठ नीति-ग्रंथ है। एक सहस्र तीन सौ तीस कुरळ छंदों में रचित यह ग्रंथ तीन भागों में विभाजित है—अरत्तुप्पाल (धर्म-विभाग), पोरुट्पाल (अर्थ-विभाग) और कामत्तुप्पाल (काम-विभाग)। धर्म-विभाग में धर्म के विविध पक्षों का, अर्थ-विभाग में शासन-प्रबंध, राजनीति, राजा और प्रजा के कर्तव्यों आदि का तथा काम-विभाग में प्रेम के विविध रूपों और पक्षों का विवेचन है। तिरुक्कुरळ के विभिन्न कुरळों में शब्द-सौंदर्य और भाव-गांभीर्य का अद्भुत समन्वय है। प्रत्येक कुरळ

अपने भीतर एक भावलोक को समाविष्ट किए हुए है। तिरुवल्लुवर के समकालीन एव परवर्ती विभिन्न कवियो ने मुक्तकठ से उनकी प्रशसा की है। वे पहले कवि है जिन्होने राजा और प्रजा के समान अधिकार की घोषणा की है।

तिरुवातिरप्पाट्टु (कैकोट्टिक्कळिप्पाट्टु) *(मल० पारि०)*

त्याहारो के अवसर पर, विशेषकर तिरुवातिरा अथवा मार्गशीर्ष पूर्णिमा के अवसर पर घरो मे होने वाले वृदनृत्य—'तिरुवातिरकळि' मे भाग लेने वाली कुलीन महिलाओ द्वारा गाए जाने वाले गीत। इसका सगीत शास्त्रीय रूप से व्यवस्थित है और साहित्यिक गुणो स सपन्न है। इन गीतो मे अधिकाश मच्चाट इळयत (1750 से 1853 ई०) द्वारा रचित है। मलयाळम के सगीतात्मक साहित्य मे कथकलि गीतो के बाद इन गीतो का स्थान है।

तिरुवाशगम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की नवी शती]

'तिरुवाशगम' माणिक्कवाशगर (दे०) की प्रसिद्ध कृति है। 'तिरुवाशगम' का शाब्दिक अर्थ है 'पवित्र वचन (तिरु=पवित्र, वाशगम्=वचन)। इसमे माणिक्क-वाशगर ने मूलत आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम, उस प्रेम की पूर्णत्व-प्राप्ति तक की विभिन्न स्थितियाँ, ब्रह्म-साक्षात्कार आदि की चर्चा की है। 'तिरुवाशगम' 51 अध्यायो मे विभक्त है। प्रथम चार अध्यायो मे माणिक्कवाशगर ने अपने इष्टदेव तिरुपेरुतुरै-स्थित शिवजी के दिव्य रूप, उनकी कृपालुता, व्यापकता, माहात्म्य आदि का वर्णन किया है। शेष 47 अध्यायो मे प्रभु के दिव्य रूप, भगवान के प्रति भक्त के प्रेम, उनके प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण, प्रभु वियोग मे तडपती हुई भक्त की आत्मा, भक्ति की महिमा, शिवजी के विभिन्न रूप प्रभु प्रेम मे लीन आत्मा की स्थिति, जीवन्मुक्त की स्थिति, प्रभु-साक्षात्कार से प्राप्त आनद आदि विषयो की चचा है। 'तिरवाशगम्' मे दार्शनिकता और भावुकता का समन्वय है। इसम कही-कही गीता का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इसके पदा मे सगीतात्मकता और काव्यत्व का अदभुत समन्वय है। पदा का अनूठा माधुर्य पाठको को सहसा द्रवीभूत कर दता है। इसीलिए तमिल मे यह कहावत प्रचलित हो गई—तिरुवाशगत्तिकु उरुगातार ओर वाशगत्तिकुम उरगार' अर्थात् जो तिरवाशगम् से प्रभावित नही हुआ वह किसी भी उक्ति स प्रभावित नही हो सकता'। इसके पद अत्यत लोकप्रिय है और दक्षिण के शिव-मदिरो म विभिन्न अवसरो पर इन पदो का पाठ होता है। 'तिर वाशगम्' का धार्मिक, साहित्यिक, सैद्धातिक, ऐतिहासिक सभी दृष्टियो से अपार महत्व है।

तिरु०, वि० क० *(त० ले०)* [जन्म—1883 ई०, मृत्यु—1953 ई०]

ये बीसवी शती के अग्रगण्य तमिल साहित्य-कारो मे हैं। इनका पूरा नाम तो 'कल्याणसुदरम' है, किंतु 'तिरुविक' नाम से ही ये अधिक जाने जाते है। इनकी शिक्षा मद्रास के वेस्ली कालेज मे हुई थी। इस कालेज मे तमिल प्राध्यापक श्री ना० कदिरवेर पिळ्ळै से प्रभावित होकर ये तमिल भाषा की उन्नति के लिए कार्य करने लगे थे। मद्रास के प्रसिद्ध तमिल विद्वान श्री मयिलै तणिकाचलम् पिळ्ळै और मरैमलै अडिहल् (दे०) से इन्होंने तमिल के लक्ष्य-लक्षण ग्रथो तथा शैव सिद्धातो का अध्ययन किया था।

इन्होने कुछ समय तक स्पेंसर कपनी मे नौकरी की थी। किंतु तिलक की गिरफ्तारी पर उससे त्याग-पत्र दे दिया था। बाद मे ये मद्रास की एक हरिजन सस्था म, और फिर वेस्ली कालेज मे अध्यापक के रूप म कार्य करते रहे। शैव सिद्धात महासमाज के तत्त्वाव-धान मे ये शैव धर्म पर व्याख्यान भी देते थे। सन 1917 मे इन्होंने 'देशभक्त' नाम से एक पत्रिका आरभ की थी। सन 1920 मे ब्रिटिश सरकार के कोप के कारण इसके बद हो जाने पर इन्होने नवशक्ति नामक पत्रिका आरभ की। प्रथम मजदूर-सगठन के बनाने मे श्री वाडिया के साथ इनका महत्वपूर्ण योग रहा था तथा काग्रेस और मजदूर-सगठन के अनेक अधिवेशनो मे ये अध्यक्ष रहे थे। स्त्री-उद्धार आदोलन और समाज सुधार-आदोलन के अति-रिक्त 'जीवकारुण्य सघ' के द्वारा मनुष्येतर प्राणिवर्ग की सुरक्षा के लिए भी इन्होन आदोलन चलाए थे। समाज के शिक्षित तथा उच्चवर्ग मे ही नही सामान्य जनता म भी य अत्यत आत्मीय मान जाते थे। इनकी प्रसिद्ध कृतिया के नाम य हैं 'मनुष्य जीवन तथा महात्मा गाधी', 'नारी की महानता अथवा जीवन-सगिनी', परमतत्त्व अथवा जीवन-मार्ग, 'आतरिक प्रकाश', 'भारत तथा स्वतत्रता सघर्ष', 'रामलिंगस्वामी का हृदय', 'शैव-धर्म की

समन्वय भावना', 'हिमाचल अथवा ध्यान', 'तमिल-साहित्य में बौद्धप्रभाव', 'तमिलदेश तथा नम्माऴ्वार' (वैष्णव संत) 'ईसा मसीह की करुणा', 'ईसा की 'श्रीसूक्ति', 'संपदा तथा करुणा अथवा मार्क्सवाद तथा गांधीवाद' इत्यादि है। महात्मा गांधी, ईसा, बुद्ध, आदि पर इनकी लिखी कविताएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

तिरुविळैयाडलपुराणम् *(त० कृ०)*

इस शीर्षक से दो कृतियाँ मिलती हैं—एक पेरुम्परंप्पुलियर नंबि द्वारा तथा दूसरी परञ्जोति मुनिवर द्वारा रचित। ये दोनों क्रमशः ई० तेरहवीं और सोलहवीं शतियों की मानी जा सकती हैं। दोनों 'मतुरै' (मधुरा) नगर के मंदिर में विराजमान 'सोमसुंदर' नाम से अभिहित शिव-मूर्ति की 64 लीलाओं की कथाएँ प्रस्तुत करती हैं। दक्षिण में प्रत्येक प्रसिद्ध मंदिर के लिए स्थल माहात्म्य-पुराण उपलब्ध है जिसमें उस पवित्र स्थल के मंदिर, मूर्ति एवं तीर्थ से संबंधित पौराणिक कथाएँ एवं जनश्रुतियाँ संस्कृत और तमिल भाषाओं में प्रस्तुत हैं। मतुरै की मंदिर-मूर्ति द्वारा रचित अनेक अद्भुत लीलाओं की कथाएँ मूलतः संस्कृत भाषा में निबद्ध 'उत्तरमहा-पुराण' के 'सार-समुच्चय' भाग और 'हालास्य माहात्म्य' में संगृहीत हैं। पेरुम्परंप्पुलियर नंबि की कृति प्रथमोक्त पुराण पर आधारित स्वतंत्र अनुवाद है। मूल पुराण आजकल अप्राप्य है। परञ्जोति मुनिवर की कृति द्वितीयतः उक्त 'हालास्य माहात्म्य' पर आधारित पद्यानुकृति है। द्वितीयोक्त रचना आकार में बड़ी है।

इन दोनों कृतियों में वर्णित शिव-लीला-कथाओं में मूलभूत अंतर न होने पर भी आंशिक भेद यत्र-तत्र मिलते हैं। इनमें शिव-भगवान मनुष्य के समान मतुरै नगर की अनेक घटनाओं में भाग लेकर भक्तों का अनुग्रह, दुष्टों का दमन, इत्यादि करते हैं। पांड्य राजा मलयत्तुवचन् (मलय-ध्वज) की यज्ञोत्पन्न देवता-रूपी कन्या चारों दिशाओं को जीतकर कैलास में शिवजी को भी ललकारती है। फलस्वरूप इसका विवाह शिवजी के साथ, विष्णु-ब्रह्मादि अन्य देवताओं के सान्निध्य में मतुरै नगर में ही अद्भुत सार्वजनिक उत्सव के रूप में राजा एवं प्रजा द्वारा मनाया जाता है। शिव भगवान 'पांड्य' जामाता के रूप में मतुरै मंदिर में शाश्वत निवास करते हुए अनेक रोमांचकारी लीला-प्रसंगों के कारण बनते हैं। यद्यपि इन पौराणिक कथाओं की पृष्ठभूमि में लोकातीत कल्पना काम कर रही है तो भी पांड्य राजाओं, तमिल शैव भक्त-संतों आदि कुछ समकालीन व्यक्ति-विशेष का उल्लेख तमिल प्रदेश के इतिहास के निर्माण में किंचित् सहायक सामग्री प्रस्तुत करने वाला है।

दोनों कृतियाँ साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। द्वितीयोक्त—परञ्जोति मुनिवर (दे०) की—कृति अधिक प्रसिद्ध हो चुकी है।

तिलक, बाल गंगाधर *(ते० लें०)*

ये वर्तमान युग के तेलुगु कवि एवं कथाकार हैं। 'अमृतं कुरिसिन रात्रि' इनकी कविताओं का संकलन है जिसे साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिल चुका है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई कथा-संकलन भी प्रकाशित किए हैं। कोमल भावना एवं नवीन विचारों की अभि-व्यक्ति इनकी रचनाओं की मुख्य विशेषताएँ हैं।

तिलकमंजरी *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शती ई०]

'तिलकमंजरी' संस्कृत का प्रसिद्ध कथाकाव्य है। इसके कर्ता धनपाल धारा-नरेश भोजराज (दे० भोज) के सभा पंडित और संस्कृत तथा प्राकृत के अधिकारी विद्वान् थे। वे कट्टर वैदिक थे किंतु बाद में अपने अनुज से प्रभावित होकर जैन हो गए थे।

'तिलकमंजरी' में विद्याधरी तिलकमंजरी और समरकेतु की प्रणय-गाथा का चित्रण है। इस ग्रंथ की रचना धनपाल ने भोजराज को जैनागमों की कथाओं का परिचय कराने के लिए की। 'तिलकमंजरी' की समस्त कथा गद्य में है किंतु प्रारंभ में 53 पद्यों में मंगलाचरण, सज्जनस्तुति, दुर्जननिंदा, कवि वंश-परिचय तथा 17 पद्यों में अनेक काव्यों की प्रशस्ति आदि का प्रसार है।

'तिलकमंजरी' चमत्कार से परिपूर्ण रसों वाली कथा है। यह कथा भोजराज के पूर्वजों का इतिहास जानने में बड़ी सहायक है। इसमें धनपाल ने कवि-प्रशस्ति संबंधी जो सुंदर पद्य लिखे हैं वे आज भी संस्कृत-समीक्षकों द्वारा उद्धृत किए जाते हैं। इसमें तत्कालीन समाज एवं कलाकौशल का बड़े ही आकर्षक ढंग से वर्णन किया गया है। 'कादंबरी' (दे०) की रचना के बाद किसी भी कवि की गद्य लिखने का साहस नहीं होता था। धनपाल ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने बाण (दे०) की गद्यशैली का अनुकरण करते हुए गद्यकाव्य को सरल बनाकर जनता के

अधिक निकट पहुँचाया।

'तिलकमंजरी' की रचना का सुखद परिणाम यह हुआ कि संस्कृत साहित्यकारों का व्यामोह भंग हुआ और बाद में गद्यचिंतामणि', 'उदयसुंदरीकथा', 'भूपाल-चरित' आदि गद्य-काव्यों की रचना हुई।

तिल्लै विल्लाळन् (त० ले०) [जन्म—1928 ई०]

तिल्लै विल्लाळन् पत्रकार हैं और तमिल प्रदेश के राजनीतिक दल 'डी० एम० के०' के सदस्य हैं। इनके कई लेख, लघु-कथाएँ आदि प्रकाशित हैं जिनके नाम हैं—'किळिक्कण्टु' (तोते का पिंजड़ा), 'इरुळुम् ओळियुम्' (अंधकार और प्रकाश), 'तङकत्तामरै' (स्वर्ण-कमल), 'पेचुम् ओवियम्' (बोलने वाला चित्र) इत्यादि। इनकी गद्य-शैली में गति है।

तिवारी, उदयनारायण *(हिं० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

डा० तिवारी पहले प्रयाग विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग में अध्यापक थे, बाद में जबलपुर विश्व विद्यालय में हिंदी भाषाविज्ञान-विभाग के अध्यक्ष रहे। अब आप कार्य-निवृत्त हैं। आपका कार्य क्षेत्र भाषा-विज्ञान रहा है। आपकी मुख्य कृतियाँ हैं 'भोजपुरी भाषा और साहित्य', 'हिंदी भाषा का उद्भव और विकास', 'भाषा-शास्त्र की रूपरेखा', पाणिनि के उत्तराधिकारी', 'भारत का भाषा-सर्वेक्षण' (ग्रियर्सन के सर्वेक्षण के प्रथम खंड का अनुवाद)।

तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकार-महापुराण (अप० कृ०) [रचना-काल—965 ई०]

इस महापुराण के रचयिता पुष्पदंत (दे०) हैं। यह महापुराण दो भागों में विभक्त है—आदिपुराण और उत्तर पुराण। ये दोनों भाग तीन खंडों में विभक्त हैं। प्रथम खंड को ही आदिपुराण कहा गया है। उत्तर पुराण का प्रथमार्ध द्वितीय खंड और द्वितीयार्ध तृतीय खंड कह-लाता है। प्रथम खंड में कवि ने प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती भरत के जीवन का 37 संधियों में वर्णन किया है। उत्तर पुराण के प्रथमार्ध या द्वितीय खंड में 38 से लेकर 80 तक संधियाँ हैं। इनमें 20 तीर्थंकरों, 8 बलदेवों, 8 वासुदेवों, 8 प्रतिवासुदेवों और 10 चक्रवर्तियों का वर्णन है। इसी खंड की 38 से 68 संधि तक अजितादि तीर्थंकरों की कथा है। इस कृति की 69 से 79 संख्या तक की संधियों में रामायण की कथा वर्णित है, जिसे जैन कवि 'पउम-चरिउ' (पद्म चरित) या पद्मपुराण कहते हैं। 81 से 92 संख्या की संधियों में मुख्य रूप से 'महाभारत' (दे०) की कथा है जिसे कवि ने 'हरिवंश पुराण' कहा है।

इस 'महापुराण' में 63 महापुरुषों का वर्णन होने से कथान्विति नहीं मिलती किंतु उद्देश्य की महत्ता, शैली की उदात्तता और गरिमा तथा भाव-सौंदर्य और वस्तु-व्यापार वर्णन आदि के द्वारा रस उत्पन्न करने की क्षमता होने के कारण यह ग्रंथ एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। कवि ने प्रत्येक संधि के अंत में पुष्पिका में इसे 'महाकाव्य' कहा भी है।

इस कृति के विशाल कथानक में अनेक कथाएँ अलौकिक घटनाओं और चमत्कारों से परिपूर्ण हैं। इनके मूल में जिन-भक्ति का प्रभाव प्रदर्शित किया गया है। स्थान-स्थान पर अनेक काव्यमय, सरस एवं सुंदर वर्णन उपलब्ध होते हैं। जनपदों, नगरों और ग्रामों के वर्णन बड़े ही भव्य हैं। इन सब वर्णनों में कवि का मानव जीवन के साथ संपर्क बना रहता है। बाह्य और आतंरिक दोनों जगतों के सुंदर वर्णन पाठक का हृदय आकृष्ट करते हैं।

इस काव्य में प्रसंगानुकूल शृंगार, वीर और शांत तीनों के व्यंजक चित्र अंकित किए गए हैं। शृंगार-वर्णन परंपरामुक्त नहीं हैं। यत्र-तत्र अनेक नवीन एवं हृदयहारी उद्भावनाओं की सृष्टि भी दृष्टिगत होती है।

प्रकृति वर्णन में कवि ने प्रकृति का आलंबन-रूप से संश्लिष्ट चित्र उपस्थित किया है। स्थान-स्थान पर मानव-जगत् और प्राकृतिक जगत् का बिंब-प्रतिबिंब भाव से चित्रण भी दृष्टिगत होता है। कवि भावानुकूल शब्द-योजना द्वारा वर्ण्य-विषय का चित्र-सा उपस्थित कर देता है।

कवि की शैली नाना अलंकारों से अलंकृत है। कवि ने अनुरणनात्मक शब्दों के प्रयोग से भाषा को बल-वती बनाने का प्रयत्न किया है। मुहावरों, लोकोक्तियों और सुभाषितों के प्रयोग से भाषा और भी प्राणवती बन गई है।

पुष्पदंत की शैली स्वयंभू की अपेक्षा अधिक अलंकृत, क्लिष्ट, रूढ़ और कृत्रिम प्रतीत होती है।

तौर, विधातासिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

श्री तौर का जन्म रावलपिंडी में हुआ था। ये

तो ये प्राइमरी तक ही पढ़े थे, पर इन्होंने स्वत: हिंदी और उर्दू भाषाओं का अच्छा अध्ययन किया था ।

इनकी कृतियाँ है : 'अणिआले तीर', 'नवें निशाने', 'गुंगे गीत', 'काल कूकां', 'बचन बिलास', 'मिट्ठे मेवे', 'ध्रुव भगत', 'बंदासिंह बहादुर', 'रूपराती शकुंतला', 'दशमेष दर्शन' आदि । इन कविताओं के विषय अधिकतर भारतीय संस्कृति, सिख धर्म और दर्शन से संबद्ध हैं । नये उज्ज्वल भविष्य में कवि की अडिग आस्था है ।

तीर्थंकर *(प्रा० पा०)*

जैन धर्म में एक ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं किया जाता । जीव विकास-क्रम से कैवल्य-पद धारण कर एक महाशक्ति बन जाता है और इस प्रकार ईश्वर-रूपता को धारण कर लेता है । इस अवस्था में उसे तीर्थंकर की संज्ञा प्राप्त हो जाती है । इस प्रकार जैन धर्म प्रत्येक व्यक्ति को ईश्वर रूप में परिणत होने का अवसर प्रदान करता है । अब तक जैन धर्म में 24 तीर्थंकर हो चुके हैं । प्रत्येक तीर्थंकर का एक चिह्न और एक वर्ण नियत है । चिह्न और वर्ण सहित 24 तीर्थंकर ये हैं—(1) ऋषभ (चि० बैल, व० स्वर्णिम), (2) अजितनाथ (चि० हाथी, व० स्वर्णिम), (3) संभवनाथ (चि० अश्व, व० स्वर्णिम), (4) अभिनंदन (चि० वानर, व० स्वर्णिम), (5) सुमति (चि० क्रौंच, व० स्वर्णिम), (6) पद्मप्रभ (चि० कमल, व० रक्त), (7) सुपार्श्व (चि० स्वास्तिक, व० स्वर्णिम), (8) चंद्रप्रभ (चि० चंद्र, व० श्वेत), (9) सुविधि या पुष्पदंत (चि० मीन, व० श्वेत), (10) शीतल (चि० श्रीवत्स, व० स्वर्णिम), (11) श्रेयांस या श्रेयान (चि० गैंडा, व० स्वर्णिम), (12) वसुपूज्य (चि० महिष, व० रक्त), (13) विमलनाथ (चि० वराह, व० स्वर्णिम), (14) अनंत या अनंतजित् (चि० बाज, व० स्वर्णिम), (15) धर्मनाथ (चि० वज्र, व० स्वर्णिम), (16) शांतिनाथ (चि० कृष्णासार, व० स्वर्णिम), (17) कुंतु (चि० बकरा, व० स्वर्णिम), (18) अरहनाथ (चि० नंद्यावर्त, व० स्वर्णिम), (19) मल्लीनाथ (चि० घट, व० नील), (20) सुव्रत या मुनि सुव्रत (चि० कच्छप, व० कृष्ण), (21) नमिनाथ (चि० नील कमल, व० स्वर्णिम), (22) नेमिनाथ या अरिष्ट नेमि (चि० शंख, व० कृष्ण), (23) पार्श्वनाथ (चि० सर्प, व० नील), (24) वर्धमान महावीर (चि० सिंह, व० स्वर्णिम) । ये सभी तीर्थंकर क्षत्रिय वंश के हैं । इनमें सुव्रत और नेमि हरिवंश से संबंध रखते हैं, शेष सभी इक्ष्वाकु वंशीय है । श्वेतांबर-संप्रदाय में मल्ली को स्त्री माना जाता है और मिथिला की राजकुमारी बतलाया गया है जो एक अनिंद्य सुंदरी थी । किंतु दिगंबर-संप्रदाय के लोग स्त्री को उच्च साधना का अधिकारी नहीं मानते । अत: उनके मत में ये सभी पुरुष थे । यह परंपरा वर्धमान महावीर पर आकर रुक गई । इनका जो पौराणिक शैली में वर्णन किया गया है उसके अनुसार किसी-किसी में कई सहस्र वर्षों का व्यवधान पड़ गया है । कतिपय तीर्थंकर कुछ जल्दी हुए ।

तुंपै *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ) नामक काव्य-भेद का उप-भेद है और 'उलिञै' के पश्चात् इसका स्थान है । इसका समानांतर 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ) उपभेद 'नेय्तल्' है । 'तोल्काप्पियम्' (दे०) के अनुसार इसके मुख्य विषय यश-संपादन की प्रेरणा से राजाओं द्वारा चलाए जाने वाले युद्ध तथा उनमें घटित शौर्यपूर्ण घटनाएँ हैं । इनमें से 'अट्टैयाट्टुतल्' (कटे हुए शरीर का नृत्य) नामक एक प्रकरण अत्यंत मार्मिक है । यह ऐसा चित्र उपस्थित करता है जिसमें एक वीर का शरीर शत्रु के भाले एवं तीरों से खंडित होकर दो टुकड़े बन जाने पर भी तनकर रिपु-मर्दन करता रहता है । यह प्रकरण 'वेट्चि', 'उलिञै' इत्यादि अन्य उपभेदों में भी युद्ध के प्रसंगों पर घटित हो सकता है । इसके अंतर्गत बारह और 'तुरै' (प्रकरण) बताए गए हैं । सेनाध्यक्षों का पतन, हाथी पर आरूढ़ राजा का गिर पड़ना तथा दोनों सेनाओं के घोर खड्ग-युद्ध के पश्चात् पूर्ण ध्वंस इत्यादि रणक्षेत्र के विभिन्न दृश्यों का उल्लेख करते है ।

तुक *(हिं० पारि०)*

पद्य के एकाधिक चरणों के अंत में एक समान स्वर और व्यंजन की लययुक्त आवृत्ति को छंदःशास्त्र ने 'तुक' नाम दिया गया है । पाश्चात्य काव्यशास्त्र में इसे 'राइम' कहा गया है । अरस्तू छंद के दो चरणों के अंतिम शब्दों का परस्पर समान रूप से विधान करने की विधि को, ब्लेयर समान ध्वनियों की आवृत्ति को तथा जर्मन दार्शनिक जे० एस० सूल्ज़े 'दो चरणों' के अंत में वर्णों की एक जैसी ध्वनि को तुक मानते है । तुक द्वारा पद्य-सौंदर्य के समावेश का कारण तो निश्चय ही उसका अपना नाद-सौंदर्य

तथा स्वाभाविक लय है जो पद्य को एक प्रकार से ताल मे बाँधते है। कुछ आचार्यो ने इसे पाठक अथवा श्रोता द्वारा वाच्यार्थ के समुचित ग्रहण और स्मृति मे पद्य को सुरक्षित रखे जाने मे सहायक माना है। शुक्ल ने तुक को अर्थ के साथ अनिवार्यत सबद्ध मानते हुए काव्य के सौदर्यकारक अनिवार्य उपकरणो मे स एक माना है, जबकि हीगेल अर्थ से निरपेक्ष नाद सौदर्य उत्पन्न करने मे ही तुक की सार्थकता मानते है। तुक अनेक प्रकार की हो सकती है। जगन्नाथप्रसाद 'भानु' (दे०) (छद प्रभाकर) ने तुको के छह वर्ग माने हैं सर्वान्त्य, समान्त्य विषमान्त्य, समान्त्य, विषमान्त्य, समविषमान्त्य, भिन्नतुकान्त। पाश्चात्य काव्यशास्त्र मे भी अनेक तुको की चर्चा की गई है, उनमे से कुछ प्रमुख हैं राइम रॉयल, ऑटवा राइमा (डान ज्युआ स्टेंज़ा), टर्जा राइमा, स्पेंसेरियन राइमा आई राइम, राइडिंग राइम, सिंथेटिक राइम

तुकाराम *(म० ले०)* [जन्म—1608 ई०, मृत्यु—*1651 ई०*]

ये महाराष्ट्र के 'देहू' नामक स्थान के निवासी थे। इनके पिता का नाम था बाल्होबा और व्यवसाय से ये व्यापारी थे। कहा जाता है कि बाबा चैतन्य ने तुकाराम को स्वप्न मे ही गुरूपदेश दिया था जिसस ये एक उत्कृष्ट सत कवि बन गए। इनकी कोई स्वतत्र रचना नहीं है—केवल 'अभग' मिलते हैं। इनकी सख्या पाँच हज़ार के लगभग ठहरती है। इनके उपास्य देव थे—पढरपुर के पुडलीक और इन्ही की भक्ति मे कवि की 'अभगवाणी' प्रवाहित हुई है। इसमे इनकी कविता मे भावना की उत्कटता-मार्मिकता का प्राचुर्य है। कवि का सगुण भक्ति मे विश्वास है, अत उसे मुक्ति से श्रेष्ठ भक्ति मे असीम आनद मिलता है। इनकी ख्याति और लोकप्रियता से चिढकर रामेश्वर भट्ट ने इनकी रचनाओ को इद्रायणी नदी मे डुबो दिया था, किंतु वे तैरकर पानी के ऊपर आ गई। अब विद्वान 'मत्रगीता' को भी इनकी कृति मानने लगे हैं—जो एक प्रकार से 'गीता' (दे०) का अभग छद-अनुवाद है। तुकाराम की कविता मे जीवनानुभव और भक्ति का मणिकाचन योग है। इनके सैकडो 'अभग लोकोक्तियो के रूप मे प्रचलित हैं।

तुझ आहे तुज पाशी *(म० कृ०)*

नयी पीढ़ी के नाटककारो म पु० ल० देशपाडे (दे०) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। समसामयिक जीवन-पद्धति पर आधारित 'तुझ आहे तुज पाशी' नाटक इनकी श्रेष्ठ नाट्य रचना है। 'तुझ आहे तुज पाशी' का अर्थ है—तुम्हारा है तुम्हारे पास। नाटककार ने इसे प्रतीक रूप मे ग्रहण किया है। प्रत्येक व्यक्ति के पास अपनी शकाओ के समाधान की सामर्थ्य होती है, परतु वह भ्रम के कारण अन्यत्र उसके सधान मे रत रहता है। इस प्रतीकात्मक कथा को नाटककार ने काकाजी देवासकर तथा आचार्य पोफले गुरुजी (दे०) की कथा के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। इस नाटक मे सर्वोदयवादी विचार परपरा का मार्मिक निरूपण हुआ है। जीवन के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण के प्रबल समर्थक काकाजी देवासकर तथा सर्वोदयी विचारो को बलात् ओढे आचार्य पोफले गुरुजी के माध्यम से इस नाटक की कथा का ताना-बाना बुना गया है। पारस्परिक भिन्न सिद्धातादर्शो के प्रतिपादक पात्रो के मनोवैज्ञानिक निरूपण के कारण नाटकीय सवाद दर्शन की गहनता को आत्मसात् करते हुए भी बोझिल नहीं हो पाए है। तीक्ष्ण मार्मिक सवाद योजना कथा-विकास मे पूर्णरूपेण सक्षम है। प्रधान कथा की एकरसता को दूर करने के लिए हास्य की जिस अवातर कथा की सयोजना हुई है वह प्रभावान्विति की दृष्टि से पूर्णरूपेण सक्षम है। सहज सरल पात्र एव प्रसगानुकूल भाषा अभिनयोचित चाचल्य स परिपूर्ण है। नाटक मे करुण रस अगी रूप मे तथा हास्य रस वातावरण की बोझिलता को कम करने की दृष्टि मे प्रयुक्त हुआ है।

तुमि *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1915 ई०]

लेखक—अबिकागिरि रायचौधुरी (दे०)।

यौवन के नवोन्मेष म किसी अनाम्नी सुदरी को सबोधित कर तुमि' (तुम) काव्य लिखा गया था। इसम रहस्यवाद एव अतीद्रियवाद का कोमल स्वर है। प्लेटो ने मानवीय प्रेम को ही स्वर्गीय प्रेम का आधार माना है। 'तुमि मे भी यही दृष्टि दिखाई पडती है। सग्रह की 'तुमि' शीर्षक दीर्घ कविता मे बताया गया है कि विश्व-स्रष्टा सुदर जगत् के मध्य कैसे अपने को प्रकाशित करता है। यह कविता सात भागो मे विभक्त है। इसका शब्द चयन और छद प्रयोग मनोरम है। असमीया कविता म इस ग्रथ का विशेष महत्व है।

तुमोमा *(उ० कृ०)*

'तुमोमा' दिव्यसिंह पाणिग्राही (दे०) का लोक-

प्रिय विचार-प्रधान उपन्यास है। इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें मातृ-जाति के प्रति सम्मान व्यक्त हुआ है। नारी केवल जन्मदात्री ही नहीं, वह पुरुष की पथ-प्रदर्शिका व आश्रयदात्री भी है। ऐश्वर्य-भोग की ओर भागता हुआ आज का भौतिकवादी संसार, अपने सच्चे सुख, सच्ची शांति को खो बैठा है। उत्थानशील वृत्तियों के बिना सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती—यही इस उपन्यास का मूल स्वर है। चिदानंद यद्यपि अपने लिए निवृत्ति का पथ चुनते हैं किंतु विश्वनाथ को परिवार, समाज, राष्ट्र के प्रति सजग कर्तव्यनिष्ठ रहने का उपदेश देते हैं। वे अपने सिद्धपीठ मे दादा द्वारा प्रदत्त पुराने खिलौनों की स्थापना करते हैं और उनकी पूजा करते हैं। जीवन का आनंद भावात्मक एवं रागात्मक होता है। अपनी प्राचीन परंपरा के साथ हमारा रागात्मक अनुबंधन होता है। अत: उसका परित्याग कर हम अपने उन्नयन के लिए स्वस्थ आधार-शिला का निर्माण नहीं कर सकते। एक ही सांस्कृतिक जीवन-चेतना अतीत से लेकर वर्तमान तक व्याप्त है। समयानुकूल परिवर्तन होते हैं; युगानुरूप उन परिवर्तनों को स्वीकार करते हुए भी हम इस अंतश्चेतना को बिसरा न दें, इस सत्य की अनुभूति के साथ हमारी मृण्मयता चिन्मयता में बदल जाती है और तब मूलीनाथ या धनपति ऋषि श्रेष्ठ चिदानंद बन जात है।

तुरयाई *(पं० पारि०)*

फ़ारसी की रुबाई (चार चरणों का समवृत्त, जिनमें पहले, दूसरे और चौथे चरण की तुक मिलती है और तीसरा भिन्नतुकांत होता है) के पंजाबी रूपांतर को भाई वीरसिंह (दे०) ने 'तुरयाई' नाम दिया है। इसमें भी प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ चरण समतुकांत तथा तीसरा भिन्न-तुकांत होता है। उन्होंने अपनी 'त्रेल तुपके' नामक कृति में मुक्तक के इस भेद का सजीव एवं प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया है। उन्हीं के अनुसार, "इसके प्रथम दो चरणों में विचार का उदय और विस्तार, तृतीय में मोड़ और चतुर्थ में भावपूर्णता होती है। यद्यपि इसकी चाल फ़ारसी रुबाई जैसी होती है परंतु तोल में कुछ भिन्नता होती है।" एक उदाहरण प्रस्तुत है—

गुलाब का फूल तोड़ने वाले के प्रति

"डाली नालों तोड़ ना सानूं, असां हट्ट महिक दी लाई,
लक्ख गाहक जे सुंघे आके, खाली इक्क न जाई।
तूं जे इक तोड़ के लैंगिओं, इक जोगा रहि जासां,
उह भी पलक झलक दा मेला, रूप महिक नस्स जाई॥"

तुळसी *(म० पा०)*

यह रामगणश गडकरी (दे०) के अपूर्ण 'राज-संन्यास' नाटक की साहसशीला नारी है, जो अपनी बलवती आकांक्षाओं की परिपूर्ति के लिए संभाजी के पुरुषोचित व्यक्तित्व के प्रति आकृष्ट है। महाराज शिवाजी के अनन्य सेवक हिरोजी की आत्मजा तुळसी शिर्के कुल की वधू है, परंतु पति के दुर्बल व्यक्तित्व से आहत इसकी नारी-भावना कुछ कर गुजरना चाहती है। संभाजी की दुर्बलता का लाभ उठाकर यह अपने अपूर्ण स्वप्नों को पूरा करने का प्रयत्न करती है, परंतु संभाजी द्वारा अपने पति की हत्या किए जाने से इसका नारी हृदय चीत्कार कर उठता है। यह प्रतिशोध की अग्नि में झुलसने लगती है। इसी से अपने पति की हत्या के प्रतिशोधार्थ ही गणोजी शिर्के तथा कलुषा कावजी के साथ षड्यंत्र रचकर यह संभाजी को औरंगजेब के क्रूर हाथों में सौंपने में सफलता प्राप्त करती है। महत्वाकांक्षी और साहसशीला यह नारी संभाजी की पत्नी येसूबाई का उपहास करती है। इसके देशद्रोही कार्यों से दुःखी होकर ही इसका पिता हिरोजी इसकी हत्या कर देता है। तुळसी के चरित्र के माध्यम से नाटककार ने महत्वाकांक्षिणी साहसशीला नारी-हृदय का मनोहारी चित्रण किया है। अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए नारी अपने देशद्रोही कृत्यों से देशवासियों का कितना अपकार कर सकती है, इसका निरूपण इसके चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

तुळसीदास *(उ० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

श्रीमती तुळसीदास की कविताओं में वैयक्तिक समस्याएँ अधिक चित्रित हुई हैं। सर्वत्र भावोच्छ्वास की अपेक्षा बौद्धिकता और चिंतनशीलता अधिक मिलती है। भाषा सरल एवं शैली सुखपाठ्य है। 'झड़र-झंकार' (दे०) में जीवन के तूफानी अनुभवों की स्मृतियाँ अत्यंत मार्मिक बन पड़ी हैं।

तुलसीदास *(हि० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1938 ई०]

'निराला' (दे०) का यह प्रबंधकाव्य छायावाद (दे०) की उत्तम रचना है। इसकी रचना तुलसीदास के

वैराग्य की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करने के लिए हुई है। जनश्रुति के अनुसार पत्नी की फटकार सुनकर वे विरक्त हुए थे। प्रस्तुत काव्य में इस महत् घटना की आभ्यतर प्रेरणाओं का चित्रण उदात्त शैली में हुआ है।

शास्त्र और काव्यालोचन मे समधीत तुलसीदास मुगलो से पददलित भारत का सास्कृतिक उत्थान करने के लिए माया के सर्वग्राही व्यूह को तोडना चाहते हैं। उनका मन चित्रकूट पर भ्रमण करते हुए ऊर्ध्वोन्मुख हो जाता है। परन्तु पत्नी का स्नेह स्मरण व्याघात उत्पन्न कर देता है। पितृ-गृह गई हुई पत्नी के विरह को न सह सकने से वे लोक-व्यवहार की उपेक्षा कर श्वसुरालय पहुँच जाते है। ससुराल के लोगो का व्यग्य रत्नावली के लिए असह्य हो जाता है और वह शयन कक्ष मे पति के सम्मुख अनल प्रतिमा बन जाती है। तुलसीदास के सस्कृत हृदय को उसके इस रूप मे भारती का दर्शन होता है और वे असुर सस्कृति से अनवरत सघर्ष का निश्चय कर लेते हैं।

तुलसीदास के जीवन की घटना पर आधृत यह प्रबध-काव्य कवि की अपनी अत प्रकृति का सकेत भी देता है। उनके अनुसार काम के मोह मे आबद्ध सास्कृतिक चेतना उससे मुक्त होकर ही सृजन की ऊर्ध्वतर भूमियो का स्पर्श कर सकती है। सर्जनानुभूति के क्षणो मे मुक्त चेतना समाधि के उस धरातल पर सरचना करती है जहाँ ऊर्ध्व, अधर और क्षर रेखा का विलय हो जाता है। वर्ण्य के साथ अत-प्रकृति के इस सामजस्य से ही कथा मे आवेग और अन्विति की, चित्रण मे ओज और दीप्ति की, तथा भाषा मे प्रवाह और स्फूर्ति की अदम्य शक्तियो का उन्मेष हुआ है।

काव्य की शैली पर 'निराला' के व्यक्तित्व की गहरी छाप है। छायावाद की महती उपलब्धियो को आत्मसात् करते हुए भी कवि उसकी एकात सीमा में आबद्ध नही है। आभ्यतर यथार्थ का पारदर्शी चित्रण और ससुराल के रूढ समाज पर व्यग्य कवि की पारगत प्रतिभा के परिचायक है। रत्नावली के भाई की बातो मे लोक-हृदय की मर्मस्पर्शी पहचान द्रष्टव्य है। निष्कर्षत यह काव्य छायावाद की उपलब्धि होते हुए भी 'निराला' के क्रातद्रष्टा और प्रयोगशील व्यक्तित्व का स्पर्श पाकर अपने समय से थोडा आगे है। सूक्ष्म व्यक्तिगत, स्थूल सामाजिक और ऊर्ध्वतर सास्कृतिक तत्त्वो का सामजस्य इस कृति मे हुआ है।

तुलसीदास, गोस्वामी *(हि० ले०)*

रामभक्त महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित विवादास्पद रहा है। 'तुलसीचरित', 'मूल गोसाईं चरित', 'घटरामायण' के परिशिष्ट, और 'तुलसी-प्रकाश' के विवरण परस्पर विरोधी तथा इतिहास-व्यतिक्रमो से आकुल हैं। इनका जन्मस्थान कुछ लोग राजापुर बताते है और कुछ लोग सोरो। अत साक्ष्य एव बहि साक्ष्य के आधार पर, इनके सबध मे अन्य तथ्य इस प्रकार हैं— पिता आत्माराम सुकुल, माता अतर्वेदस्थ तारी की हुलसी, गुरु सूकर क्षेत्र(सोरो) के नरहरि, पत्नी दीनबधु पाठक की तनया रत्नावली। 30 वर्ष की अवस्था मे तुलसी अपनी पत्नी की उपदेशात्मक उक्ति के कारण विरक्त हो गए। बुदेलखड गजेटियर (1874 ई०) मे इस जनश्रुति का उल्लेख है कि उन्होने बाँदा जिले म राजापुर की नीव डाली, और 1623 ई० मे स्वर्ग लाभ किया।

लगभग चालीस ग्रथ इनके लिखे बताए जाते हैं, जिनमे उल्लेखनीय हैं 'रामचरितमानस' (दे०), 'विनय-पत्रिका' (दे०), 'गीतावली' (दे०), 'कवितावली', 'कृष्ण-गीतावली', 'पार्वती मगल', 'जानकी मगल', 'बरवै रामायण', 'हनुमान बाहुक', 'रामाज्ञा प्रश्न', 'वैराग्य सदीपनी', 'रामलला नहछू', 'तुलसी सतसई'। रामचरितमानस' की गणना ससार के सर्वश्रेष्ठ ग्रथो मे की जाती है, और विनय-पत्रिका' रामभक्तिपरक गीतो का अनुपम सग्रह है।

गोस्वामी जी ने अपने महाकाव्य तथा अन्य बहुविध काव्य-रूपो के अतर्गत विशिष्ट प्रतिभा एव निपुणता का परिचय षड्विध (अर्थात् छप्पय, गीत, कवित्त-सवैया, दोहा-सूक्ति, प्रबध और कूट की) पद्धतियो तथा व्यास-समास शैलियो मे दिया है, जिसने इन्हे विश्ववद्य कवि बना दिया है। अनेक देशी-विदेशी भाषाओ मे इनके ग्रथो के अनुवाद और भाष्य हुए हैं।

किसी प्राचीन प्रशसक ने 'सूर सूर, तुलसी शशी' की काव्योक्ति द्वारा इन्हे श्रद्धाजलि अर्पित की है। मिश्र-बधुओ (दे०) के अनुसार तो 'तुलसी स बढकर कोई कवि हमारी जानकारी मे कभी किसी भाषा मे, ससार भर मे कही नही हुआ।' प्रसिद्ध इतिहासकार विंसेंट स्मिथ ने इन्हे भारत मे अपने युग का महत्तम मानव माना, अकबर से भी महत्तर। सर जार्ज आर्थर ग्रियर्सन (दे०) के मतानुसार उत्तरी भारत का धर्म गौतम बुद्ध के, तदनतर दो सहस्र वर्ष पश्चात् गोस्वामी तुलसीदास के, उपदेश से विशेषत प्रभावित हुआ।

तुळीराम *(म० पा०)*

यह रामगणेश गडकरी (दे०)-कृत 'सगीत एकच

प्याला' (दे०) नाटक का खल पात्र है। सुधाकर को मद्यपान की ओर प्रेरित कर उसके सुखद गार्हस्थ्य जीवन को दुःखमय बना देता है। बुद्धि-चातुर्य में अद्वितीय होते हुए भी इसकी प्रवृत्तियाँ नीच ही रही हैं; परंतु इसकी यह दुष्ट प्रवृत्ति साभिप्राय ही कही जाएगी। सुधाकर को व्यसनाधीन कर यह पात्र सिंधू के पारिवारिक जीवनाकाश पर धूमकेतु सदृश उदित हुआ है। तुळीराम आर्य-मदिरा-मंडल के अपने अन्यान्य सदस्य मित्रों के साथ अवांतर कथा के रूप में उपस्थित किया गया है। यह अवांतर कथा मूल कथा से असंबद्ध होते हुए भी कथा-विकास में सहायक है।

तुळीराम शराब के व्यसनाधीन होने के कारण अपना सब कुछ गँवाकर भी शराब के प्रति विमुख नहीं हो सका है। उसका विश्वास है कि शराब ही वह विष है जो व्यक्ति को बहुत धीरे-धीरे मृत्यु की ओर ले जाता है। तुळीराम के चरित्र के माध्यम से ही नाटकीय संघर्ष सतत बना रहा है। मद्यपान के दुष्परिणामों का सहज आकलन इस नाटक का महत् उद्देश्य है। इसी कारण तुळीराम का चरित्र नाटककार के पूर्व निश्चित प्रारूप के आधार पर विकसित हुआ है। कथा-विकास में सहायक होते हुए भी यह नाटककार के हाथ की कठपुतली जान पड़ता है जिसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं। यह तो मात्र नाटककार के विचारादर्शों का वहन मात्र करता है। इसका चरित्र वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। इसके चरित्र में महानता, चमत्कृति, अमानवीयता, परामानवीयता (इनह्यूमन तथा सुपरह्यूमन) आदि के स्थान पर सहज, स्वाभाविक, मानवीय गुण-अवगुणों का सन्निवेश हुआ है। मद्य-निषेध के प्रचार-प्रसार के महत् आदर्श का प्रतिपादक होने के कारण इसका चरित्र वर्ग-विशेष के आचार-व्यवहार एवं मानसिक स्तर का द्योतन करता है।

तुळ्ळल्कथकळ् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

यह मलयाळम के जन-कवि कुंचन नंपियार (दे०) द्वारा एक नृत्यात्मक कथाख्यान के लिए रचित चालीस से अधिक गीत-प्रबंधों का व्यापक नाम है। इन कथाओं में 'रामायण' (दे०), 'महाभारत' (दे०) आदि के विविध प्रसंगों का आख्यान हुआ है। तुळ्ळल् कथाओं के तीन भेद हैं—ओट्टन तुळ्ळल्, शीतंकन तुळ्ळल् और परयन तुळ्ळल्। ये भेद कथा में प्रयुक्त छंदों और नर्तक की भिन्न-भिन्न वेश-भूषाओं पर आधारित हैं। नंपियार के अलावा और कवियों ने भी तुळ्ळल् कथाएँ लिखी हैं, पर उनकी सफलता संदिग्ध है।

नंपियार ने साधारण जनता के आस्वादन के लिए तुळ्ळल् कथाएँ लिखी हैं। जनता में कर्तव्य-बोध जागृत करना कवि का काव्यगत उद्देश्य था। इसके लिए उन्होंने हास्य रस की सहायता ली। कर्तव्य-लोप करनेवालों पर कटु व्यंग्य-बाणों की वर्षा करने के लिए प्रत्येक पौराणिक कथा में वे अवसर ढूंढ़ निकालते थे। उनका पात्र चाहे देवता हो, गंधर्व हो या राक्षस, सभी केरल की जनता के प्रतिनिधि के रूप में ही तुळ्ळल् कथा में अवतरित होते थे। वास्तव में ये तुळ्ळल् कथाएँ ही मलयाळम का सर्वप्रथम सोद्देश्य सामाजिक साहित्य हैं। इन प्रबंध काव्यों का यह भी महत्व है कि इन्होंने साधारण जनता के आस्वादन के लिए एक दृश्यकला-रूप भी प्रस्तुत किया है। भारतीय साहित्य के गौरव-ग्रंथों में इन कथाओं का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

तूड़ी दी पंड *(पं० कृ०)*

कुलवंतसिंह विर्क (दे० विर्क) ने अपने इस प्रथम कहानी-संग्रह में पंजाबी के प्रचलित कहानी-शिल्प को त्याग कर नये प्रकार के कथाशिल्प का परिचय दिया है। इन कथाओं का रुचि-केंद्र या तो कोई मनोवैज्ञानिक विषय बनता है या फिर इनमें समाजशास्त्रीय दृष्टि के फलस्वरूप उत्पन्न जीवन के नवीन आयामों पर अर्थपूर्ण टिप्पणी है। पंजाब का ग्रामीण समाज इन कहानियों का मुख्य विषय है परंतु कुछ कहानियों में नागरिक जीवन की बदलती परिस्थितियाँ भी परिलक्षित होती हैं। इस संग्रह को नाम प्रदान करने वाली कहानी 'तूड़ी दी पंड' (भूसे का बोझा) में पुराने जातीय अभिमान के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने की त्रासदी को नवीन जीवन-संदर्भों में रखकर प्रस्तुत किया गया है।

तूरन, पे० *(त० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

'तूरन' इनका साहित्यिक उपनाम है। असली नाम 'पेरियसामि' है। आज के वरिष्ठ तमिल लेखकों में इनकी गिनती है। इन्होंने निबंध, कविता, नाटक, बाल-साहित्य आदि विधाओं के लेखन में ख्याति प्राप्त की है। आरंभ में ये अध्यापक थे और बाद में पर्याप्त समय तक 'तमिल विश्वकोश' के संपादक के रूप में रहे। ये 'विश्वकोश' के बालोपयोगी संस्करण का संपादकत्व कर रहे हैं।

इनकी कुछ कृतियाँ हैं—'इलनूतमिला' (स्फुट कविताएँ), 'तूरन की तैकळ्' (कई सालो मे प्रकाशित कविताओ का सग्रह), 'तड्क्चुचड्किलि' (लघुकथाएँ), 'कातलुम् कट-मैयुम' (नाटक), 'नल्ल नल्ल पाट्टु' (बाल-साहित्य), 'पारति तमिल' (कविवर सुब्रह्मण्य भारती के गद्य-लेखो का सग्रह) इत्यादि। प्राचीन काल से चले आ रहे विशिष्ट तमिल-सगीत के रागो के अनुकूल गेय पदो की रचना के लिए इनका नाम है। इनके पदो के कुछ सग्रह 'तमिलिचैप्पाडल्गल्' के नाम से प्रकाशित हुए है।

तृणकंकणमु (ते० कृ०)

'तृणकंकणमु' (1913) 'भाव कविता' (दे०) का प्रथम खड काव्य है, जिसमे रायप्रोलु सुब्बाराव (दे०) ने प्रथम बार अकलुष शृगार (शरीर-सबध से रहित प्रेम) को काव्य-रूप दिया है। अपनी बाल्य सखी (प्रिया) का किसी अन्य पुरुष से विवाह हो जाने पर, प्रेम मे विकल होने वाले नायक को नायिका अकलुष प्रेम का पाठ पढाती है। तब वह अपने पुनीत प्रेम के प्रतीक के रूप मे अपनी प्रेयसी को 'तृणकंकण' समर्पित करता है। अभिनव सरस कल्पना एव मधुर गभीर भावनाओं से युक्त इस काव्य में उदात्त प्रेम का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। प्रकृति-वर्णन भी इसमे रमणीय है। तेलुगु के छायावादी काव्यो मे इसका प्रमुख स्थान है।

तेंडुलकर, विजय (म० ले०)

ये मध्यवर्गीय परिवारो की व्यथा-कथा के अमर गायक कलाकार है। अपनी नाट्य-रचनाओ मे इन्होने अर्था-भाव मे टूटते-बिगडते मध्य-वित्तीय परिवारो का सजीव चित्रण किया है। धन सपदा की आड मे अपने अक्षम्य अप-राधो को छिपा लेने मे धनी वर्ग द्वारा धनाभाव से पीडित लोगो के सामान्य अपराधो का व्यापक प्रचार करने वालो पर कटु व्यग्य इनके 'श्रीमत' नाटक मे हुआ है। 'माणूस नावाचे बेट' मे वैयक्तिक उत्कर्ष-अपकर्ष स्वकर्मो पर आधा-रित होता है, इस बात का जयघोष हुआ है। 'मधल्या भिंती' मे आत्मकेंद्रित स्वाभिमानिनी पार्वती नाम्नी महिला की व्यथा-कथा के द्वारा अर्थाभाव मे टूटते दिवास्वप्नो का उल्लेख हुआ है। 'चिमणीचे घर होते मेणाचे' मे सुखद मानवीय आकाक्षाओ की गत्यात्मकता एव अनिश्चितता की प्रतीका-त्मक कथा को नाटकीय शैली मे चित्रित किया गया है। समस्याप्रधान नाटको की सुगुम्फित कथा इब्सन-पद्धति पर आधारित है। इसके अतिरिक्त मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर पात्रो का चारित्रिक विकास तथा सहज, सरल, प्रसगा-नुसार भाषा से युक्त मार्मिक सवाद-योजना इनके नाटको को वैशिष्ट्य प्रदान करती है।

तेक्कन् पाट्टुकळ् (मल० पारि०)

केरल के दक्षिण भाग मे जो लोक-गीत प्रचलित हैं वे 'तेक्कन् पाट्टुकळ्' के नाम से जाने जाते हैं।

तेक्कन्=दक्षिणी; पाट्टुकळ्=गीत अर्थात दक्षिण के लोक-गीत।

उत्तर केरल के समान दक्षिण भाग मे भी कई लोक-गीत गाए जाते हैं। धनुष, घडा दड आदि उपकरणो के द्वारा ये गीत गाए जाते हैं—इसीलिए इनका दूसरा नाम है 'विल्लटिच्चान्पाट्टुकळ्'। धनुष के दोनो तरफ या दोनो सिरो मे घटिकाएँ बाँधी जाती हैं। घडा लोह-निर्मित होता है। उसके मुँह पर चमडा मढा जाता है। धनुष के सिर-हाने गुरु जी और शिष्य घडे पर दड का प्रहार करते हैं। धनुष का उपयोग प्रधान है। अत उसके नाम पर इन गीतो का नाम आ गया है।

तमिल भाषा का प्रभाव इन पर खूब पडा है। इनकी भाषा स्वतत्र प्राकृत भाषा है। देवी तथा देवो के स्तोत्रो के अतिरिक्त देश मे प्रचलित कथाओ के आधार पर इस ढग से कई गीत लिखे गए हैं। अनेक ऐतिहासिक पुरुष इनके पात्र हैं।

तेजासिंह, प्रिंसिपल (प० ले०) [जन्म—1894 ई०, मृत्यु—1958 ई०]

पजाबी भाषा, साहित्य एव सस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र को उन्नति के मार्ग पर प्रेरित करने मे यत्नशील प्रिंसि-पल तेजासिंह ने यद्यपि विभिन्न साहित्यिक विधाओ मे प्रयोग किए तथापि आपको विशेष प्रसिद्धि गद्य के क्षेत्र मे प्राप्त हुई। पजाबी के मध्यकालीन तथा आधुनिक साहित्य-सबधी विभिन्न विषयो पर आलोचनात्मक निबध लिखने के अतिरिक्त आपने दैनदिन जीवन से सबधित समस्याओ पर भावुक, कल्पनापूर्ण, सरल एव मनोरजक निबध भी लिखे हैं। प्रिंसिपल तेजासिंह के निबधो मे किसी विशेष विचार-पद्धति की अपेक्षा पजाबी वातावरण अधिक मूर्त होकर उपस्थित होता है। आपकी रचनाएँ कठोर एव कट्टरपथी

संयम से मुक्ति का संदेश देती हैं, इसीलिए उनका प्रचार-प्रसार बुद्धिजीवियों तक ही सीमित न रहकर जनसामान्य तक हो गया है। आपकी रचनाओं में मनुष्य अपनी साधारण भावुकतापूर्ण एवं व्यावहारिक समग्रता में चित्रित हुआ है। इन कृतियों का वैशिष्ट्य शैलीगत अधिक है जिसका सौंदर्य प्रवाहमयी सीधी, सरल और स्पष्ट भाषा में निहित है। 'घर दा पियार', 'आरसी', 'साहित-दर्शन', 'नवियां सोचां' (दे०) आदि इनकी कुछ प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। पंजाबी में इनका सबसे महत्वपूर्ण कृतित्व चार जिल्दों में 'गुरु ग्रंथ साहब' की टीका है। इन्होंने 'अँग्रेजी-पंजाबी' तथा 'पंजाबी-अँग्रेजी' कोशों का भी संपादन किया।

तेन शिट्टु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1963 ई०]

तेन शिट्टु में (पेरियसामी) तूरन (दे०)-कृत ग्यारह निबंध संगृहीत हैं। इन निबंधों में भिन्न-भिन्न विषय लिये गए है परंतु इनमें प्राप्त मूल भाव एक ही है। लेखक के मत मे मानव मात्र से प्रेम करना ही जीवन का मूलभूत उद्देश्य है। विभिन्न निबंधों में लेखक ने अपनी व्यापक मानवतावादी विचारधारा की अभिव्यक्ति की है। तमिल में सामान्य विषय से संबंधित निबंध कम लिखे गए हैं। इस दृष्टि से इस कृति का तमिल के निबंध-साहित्य में विशेष स्थान है।

तेम्पावणि *(त० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई० का पूर्वार्द्ध]

यह ईसाई धर्मपरक प्रसिद्ध तमिल-काव्य है जिसके रचयिता हैं 'वीरमामुनिवर' (दे०) जो इताली देश से आगत धर्म-प्रचारक थे। 'तेम्पावणि' शब्द का अर्थ है—'न कुम्हलाने वाली पुष्पमाला'। इसमें 3615 वृत्त हैं जो 36 सर्गों में विभाजित है। कवि ने तमिल के 90 छंद-भेदों का इसमें प्रयोग किया है। तमिल काव्य-परंपरा के अनुरूप इसमें महाकाव्य के लक्षण विद्यमान हैं। इसका कथावृत्त ईसा की जीवनी से संबद्ध है। कहते हैं कि 1665 ई० में स्पेनिश भाषा में एक ईसाई संन्यासिनी के द्वारा विरचित काव्य का आधार लेकर इस तमिल-प्रबंध की रचना हुई है। धर्म, अर्थ आदि चतुर्विध पुरुषार्थों को लक्ष्य में रखकर विरचित यह प्रबंध यद्यपि एक धर्म-विशेष का काव्य है; तथापि एक उत्तम साहित्यिक कृति के रूप में सभी धर्मावलंबियों के द्वारा ग्राह्य है। यह अत्यंत विस्मयकारी तथा प्रशंसनीय विषय है कि एक यूरोपीय व्यक्ति तमिल भाषा तथा काव्य-परंपरा पर इतना अच्छा अधिकार प्राप्त करके उत्तम कोटि का प्रबंध-काव्य निर्मित कर पाया। इसमें पाश्चात्य साहित्य की कुछ विशेषताएँ भी दृष्टिगत होती हैं। दांते का प्रभाव इस पर स्पष्ट है। कवि ने नयी उपमाओं का प्रयोग किया है। तमिल के प्रसिद्ध महाकाव्य 'जीवकचिंतामणि' (दे०), 'कंबरामायण' (दे०) आदि का प्रभाव भी इसमें स्पष्ट है। 'तेम्पावणि' तमिल साहित्य की अति सुंदर कृतियों में परिगणित अमर महाकाव्य है।

तेरञ्ञेटुत्त कथकळ् *(मल० कृ०)* प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

रचनाकार—श्रीमती ललितांबिका अंतर्जनम् (दे०)। इस शीर्षक का मतलब है 'चुनी हुई कहानियाँ'। 'तेरञ्ञेटुत्त कथकळ्' में इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ हैं। समालोचक और कथाकार सुरेंद्रन् (दे०) ने इस ग्रंथ की प्रस्तावना में समालोचनात्मक कथा-परिचय दिया है। इन कहानियों को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है—(1) नंपूतिरि बहनों की अंतरंग कथाएँ, (2) ग्रामवासी अशिक्षित भाई-बहनों की कथाएँ, (3) आदमी की इंसानियत को डुबोने वाले राजनीतिक और अन्य आंदोलनों की कहानियाँ। प्रथम श्रेणी की कहानियों में इनका उत्कर्ष बेजोड़ रहा है।

तेरोट्टि महन् *(त० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1957 ई०]

यह श्री बी० एस० रामैया (दे०) द्वारा रचित नाटक है।

इस रचना में महाभारत के 'कर्ण' के व्यक्तित्व के एक उपेक्षित पहलू का विवरण प्रस्तुत है। कर्ण का चरित्र अत्यंत उदात्त था किंतु उस पर केवल एक कलंक था जिसका प्रभाव उसे सदैव सताता रहा। उसके अभिजात होने का कोई पता नहीं था, वह रथ-चालक द्वारा पाला-पोसा गया था और उसका ही पुत्र समझा जाता था। दुर्योधन की घनिष्ठ मित्रता से वह अंगदेश का अधिपति हुआ तथा एक क्षत्राणी से उसका विवाह संपन्न करवाया गया। फिर भी वैवाहिक जीवन में वह सुख से वंचित रहा। क्षत्राणी नाममात्र के लिए उसकी पटरानी रही, अंतःपुर में पति का कर-स्पर्श तक उसने नहीं चाहा। अपनी महिषी की इस भेद-बुद्धि को उसने एक रहस्य के रूप में आजीवन

रखने की ठानी पर ऐसी नौबत आई कि यह मर्म दुर्योधन की पत्नी तक पहुँचा और वह कर्ण को अपना भाई मानकर उसे सात्वना देने आई। अतत सर्वविदित 'महाभारत' कथा के अनुसार पर्ण के ही प्रयत्न से फलीभूत होकर कुतीदेवी उसकी माँ सिद्ध हुई। महाभारत युद्ध के दौरान इस निजी माता की गोद मे कर्ण की जीवन-समाप्ति होते समय उसकी क्षत्राणी महिषी सामने आकर अपने जाति-गौरव के अभिमान को धिक्कारती हुई नतमस्तक हो गई। इस प्रकार क्षत्रियत्व-सिद्धि तथा महिषी के गर्व-भग के पूर्ण मनोरथो के साथ कर्ण की मृत्यु इस नाटक मे घटित हुई है।

यह नाटक रेडियो द्वारा प्रसारित तथा रगमच पर 'सहस्रनामम्' की मडली द्वारा अभिनीत हो चुका है। नाटक का मौलिक कथाश कर्ण तथा उसकी पटरानी तथा इस पटरानी और दुर्योधन की महिषी के बीच सवादो की योजना है।

तेलगन्ना पोन्नेकटि *(ते० ले०)*

पोन्नेकटि तेलगन्ना सोलहवी शती के उत्तरार्द्ध मे (1520—1580 ई०) जीवित थे। इन्होने 'ययाति-चरित्रमु' की रचना 1575 ई० मे की थी। ये गोलकुडा के बादशाह इब्राहीम कुली कुतुबशाह के सामत अमीनखान के आश्रित थे।

'ययाति-चरित्रमु' ठेठ तेलुगु का प्रथम काव्य है। इसके भीतर 'महाभारत' (दे०) मे वर्णित ययाति, शर्मिष्ठा, देवयानी की कथा को प्रबध काव्य की शैली मे—5 आश्वासो मे—737 गद्य-पद्यो मे लिखा गया है। रस, भाव-स्फुरक कथा प्रसगो के वर्णन मे इन्हे पर्याप्त सफलता मिली है। ययाति के जीवन के श्रृगार-प्रधान प्रसगो का वर्णन सरस है। समयोचित प्रकृति-वर्णन भी औचित्यपूर्ण है। भाषा प्रवाहयुक्त तथा सरस है।

ययाति को मुनि जाबालि विस्तार से (101 गद्य-पद्यो मे) रामकथा सुनाते हैं। यह मूल कथा के लिए अनावश्यक होते हुए भी कवि की रामभक्ति को अभिव्यक्त करता है।

तोडैमडलशतकम् *(त० कृ०)* [उन्नीसवी शती ई०]

पडिक्कासुप्पुलवर् नामक कवि विरचित यह 101 पद्यो वाला 'शतक' है। इसम प्रत्येक पद्य का अतिम चरण अथवा अतिम शब्द एक ही होगा, इस 'मकुटम्' (यानी 'टक') कहते हैं। शतक ग्रथो के पद्यो मे न तो कोई कहानी चित्रित होती है और न पद्यो मे क्रम का कोई बधन रहता है। भगवान के प्रति कवि का आत्म-निवेदन, सदाचार का उपदेश, अथवा समाज की स्थिति की झलक इसमे होती है।

तोडैमडलम् तमिलनाडु के उस प्रदेश का नाम है जिसका केंद्र काचीपुरम् है। इसमे काचीपुरम् के आस-पास का लगभग पचास मील का क्षेत्र आता है। कवि ने इस प्रदेश की यात्रा कर वहाँ के जन-जीवन, लोक-रीति, आचार-विचार, मदिर और शिल्प इत्यादि के वर्णनो मे अपने मन की प्रतिक्रिया व्यक्त की है। उस समय के कवि, साहित्यकार, दानी महानुभावो का उल्लेख इसमे मिलता है। ऐसा लगता है जैसे कवि ने अपनी डायरी पद्यो मे लिखी हो। यह कृति अत्यत लोकप्रिय हुई है।

तोट्टम् *(मल० पारि०)*

मलयाळम के धार्मिक लोकगीतो की एक प्राचीन विधा। इन गीतो के द्वारा इष्टदेवताओ का आह्वान करके उनकी पूजा की जाती है। अधिकतर तोट्टम् गीत काली माता की प्रशस्ति मे हैं। किसी मे दारुकासुर के वध की कथा है तो किसी मे 'शिलप्पतिकारम्' की प्रसिद्ध कथा है। प्राचीन लोकगीतो मे इनका स्थान प्रमुख है।

तोट्टि *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1947 ई०]

लेखक—नागवळ्ळि आर० एस० कुरुप्प, श्री कुरुप्प् का जन्म—1917 ई० मे हुआ था।

मद्रास विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर उपाधि पाए हुए कुरुप्प् जी कुछ वर्ष अध्यापक एव प्राध्यापक रहने के बाद 1952 ई० से आकाशवाणी (त्रिवेंद्रम) के प्रोड्यूसर का कार्य बडी सफलता से करते रहे। इन्होने मुख्यत कहानीकार और उपन्यासकार के रूप म मलयाळम वाड्मय की अच्छी सेवा की है, कुछ बालोपयोगी उत्तम ग्रथ भी लिखे हैं। श्री कुरुप्प् ने कुछ मलयाळम चलचित्रो के सवाद भी लिखे थे। इनकी प्रथम रचना 'इरुनूर रुपा' नामक कहानी है और प्रथम रचना-सग्रह है 'दलम्र्मरम्'। 'आप्-कत्तु वन्न वीटु', 'तोट्टि' आदि इनके उपन्यास हैं। कई कहानी-सग्रह और अन्य कुछ रचनाएँ भी हैं।

'तोट्टि' लघु आकार का सोद्देश्य उपन्यास है। तोट्टि का अर्थ है भगी। भगी केलु का नारकीय जीवन

वात्सल्यमयी माता के अभाव और शराबी क्रूर पिता के अत्याचार से यंत्रणामय तथा लापरवाह निकलता है। उसकी दबंग प्रकृति का कारण भी यही रहा है। उसके नीरस जीवन में वाणी नामक झाड़ूदारिन युवती यद्यपि बहार ले आती है तथापि उस युवती की जीवन-कली प्रथम बालक-जन्म के साथ कुम्हला जाती है। अति दुखी केलु अपनी अनाथ बच्ची को भंगी समाज के घृणित वातावरण से छुड़ाने के लिए दूर एक नगर के ईसाई अनाथालय को सौंप देता है। बच्ची वहाँ पलकर बड़ी बनती है और एक आदर्श जनसेवक की पत्नी होकर उसी शहर में आकर रहती है। केलु को उस घर का भी जमादार होना पड़ता है। अज्ञात ममता का आकर्षण केलु को उस परिवार की तरफ खींचता है और मृत्यु के एक दिन पहले उसे विदित भी होता है कि यह उसी की बच्ची है। पड़ोसी वेलु ही इस लापरवाह और दबंग दोस्त को आखिरी घड़ियों में अपनी धोती से ओढ़ाकर और उसको प्यारी शराब पिलाकर यथा-संभव आराम पहुँचाता है। इस उपन्यास में ममता के अनेक रूप चित्रित हैं—मित्रता, दांपत्य तथा वात्सल्य। लेखक नागरिक समाज पर कशाघात भी करता है और उठती हुई नयी पीढ़ी की चुनौती भी सुनाता है।

तोन्मै *(त० पारि०)*

'तोलकाप्पियम्' (दे०) नामक व्याकरण-ग्रंथ का 'चेय्युळियल्' (छंद-परिच्छेद) छंदबद्ध रचनाओं के गठन और लक्षणों का उल्लेख करता है। शृंखलाबद्ध कविताओं के लिए आठ प्रकार के लक्षण बताए गए हैं जो आठ प्रकार के काव्य-रूप भी माने जा सकते हैं। इन आठों लक्षणों के लिए सामूहिक नाम 'वनप्पु' है।

इन आठों प्रकारों में से एक 'तोन्मै' है। यह नाम ऐसी पद्य-रचना के लिए प्रयुक्त होता था जो प्राचीन विषय-वस्तु पर आधारित होते हुए गद्यांशों से युक्त होती थी। इस पद्य-रचना के उदाहरणों का नामोल्लेख मूल 'तोलकाप्पियम्' में नहीं है। पर टीकाकारों ने पेरुन्तेवनार्-कृत 'पारतम्' (भारतम्) तथा 'तकटूर् यात्तिरै' इन दोनों रचनाओं को उदाहरणस्वरूप लिया है। ये उदाहरण-ग्रंथ आजकल अंशतः ही प्राप्य है। इस गद्य-युक्त पद्य-रचना के प्रकार को संस्कृत के चंपू काव्य के समकक्ष मानना उचित होगा।

तोप्पिल् भासि *(मल० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

ये मलयाळम के सफल रंगमंचीय नाटककार हैं। कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता के रूप में राजनीति में इन्होंने सक्रिय भाग लिया और अज्ञातवास में भी इन्हें रहना पड़ा।

'निङ्ङळेन्ने कम्युनिस्टाक्की', 'मुटियनाय पुत्रन्', 'सर्वेक्कल्लु', 'अश्वमेधम्' आदि इनके नाटक रंगमंच में अत्यधिक सफल सिद्ध हुए हैं। इन्होंने अनेक फिल्मों की पटकथाएँ भी लिखी हैं।

भासि का नाटक 'निङ्ङळेन्ने कम्युनिस्टाक्की' ने प्रदर्शनों की संख्या के विषय में अखिल भारतीय रिकार्ड स्थापित किया है। साम्यवादी आंदोलन के प्रचार में इस नाटक का बड़ा हाथ है। राजनीति के अलावा शुद्ध सामाजिक समस्याओं को लेकर भी इन्होंने नाटक-रचना की है।

सफल व्यावसायिक नाटकों की रचना में मलयाळम में भासि का नाम ही सर्वप्रथम लिया जाता है।

तोमस, सी० जे० *(मल० ले०)* [जन्म—1917 ई०; मृत्यु—1961 ई०]

प्रसिद्ध नाटककार और समालोचक सी० जे० तोमस को उनके माता-पिता पुरोहित बनाना चाहते थे और तदनुसार धार्मिक पाठशाला (सेमिनारी) में भर्ती कराने गए। परंतु यह मार्ग उनकी प्रकृति के विरुद्ध था और वे सेमिनारी छोड़कर जीवन-पर्यंत अपने प्रगतिशील विचारों के प्रचार में लगे रहे।

सी० जे० तोमस के नाटकों में 'अवन् वीण्टुम् वरुन्न', '1128 ल् क्राइम 27', 'आ मनुष्यन् नी तन्ने' आदि प्रमुख हैं। 'शिक्कारियुटे कातल्' और 'उयरुन्न यवनिका' समालोचनात्मक ग्रंथ हैं। इन्होंने कहानियाँ भी लिखी हैं।

सी० जे० तोमस ने नाटकों में मलयाळम साहित्य को नयी दिशा प्रदान की थी। इन्होंने ही सर्वप्रथम प्रयोगात्मक नाटक लिखा था। समस्या-नाटकों की रचना में इनका योगदान महत्वपूर्ण है। ये प्रगतिवादी आंदोलन के मुख्य संगठकों में से थे।

मलयाळम नाटक के इतिहास में सी० जे० तोमस का नाम एक दिशा-परिवर्तन सूचित करता है।

तोयन्मारन् *(त० पा०)*

तोयन्मारन् सघकालीन कवियों द्वारा प्रशसित एक वीर योद्धा और आदर्श दानी था। पुरनानूरु (दे०) मे सगृहीत अपने एक गीत मे मदुरैक्कुमरनार् कहते है कि स्वय निर्धन होते हुए भी तोयन्मारन् याचको को खाली हाथ नही लौटाता था। अपनी वीरता के बल पर अन्य देशो को लूटकर वह दीन-दुखियो की सहायता करता था। आधुनिक काल मे शालैइळन्तिरैयन् (दे०) ने 'तोयन्मारन्' नामक अपने कथाकाव्य मे उसे एक वीर, दानी, कलाप्रेमी शासक के रूप मे चित्रित किया है।

तोरडमल, मधुकर *(म० ले०)*

आधुनिक मराठी रचना-तत्र अपनी यथार्थवादी शैली के कारण इब्सन के रचना-शिल्प से अत्यधिक प्रभावित है और यही कारण है कि आज के अधिकाश नाटककारो पर इसका प्रमुख प्रभाव है। मधुकर तोरडमल यथार्थवादी नाट्यशैली से प्रभावित होते हुए भी समस्याओ के समाधान के लिए मध्ययुगीन नाटको की तरह अद्भुत एव सयोग का आश्रय ग्रहण करते हैं। इसी से प्रयोगधर्मी नाटककारो मे इनका नाम विशेष रूप मे लिया जाता है। इनकी 'काळनट लालबत्ती' बहुचर्चित नाट्य-रचना है। जीवन-यथार्थ की अपेक्षा चमत्कृति एव अद्भुत घटनाओं एव प्रतीकात्मक पात्रो के माध्यम से सामाजिक जीवन की विसगतियो को इन्होंने अपनी रचनाओ मे उरेहा है। 'भोवरा' नाटक मे प्रेममग्न युवक के अधःपतन तथा कालाबाजार आदि समाजद्रोही क्रियाकलापो से अर्जित धन स धनी बने वर्ग के प्रतिशोध की कथा का चित्रण किया गया है। अद्भुत सयोग-प्रधान नाट्य तत्र के विषय मे इनका अभिमत है कि इस जगत मे गुणो को सफलता नही मिलती—सभी कार्य किसी-न-किसी प्रभुसत्ता-सपन्न व्यक्ति की कृपा से ही होता है। गुणों को प्रधानता मिले तो वह विश्व का दसवां आश्चर्य होगा। यही कारण है कि दर्शको की औत्सुक्य भावना को सतत बनाए रखने के लिए ये अद्भुत एव सयोग का अवलब ग्रहण करते हैं। इसी से इनके नाटक समस्या-प्रधान होते हुए भी अद्भुत ही अधिक हुए हैं। पात्र एव प्रसगानुकूल भाषा से युक्त सवाद-योजना चरित्र-निरूपण मे अदभुत एव सयोग के प्राधान्य के कारण चमत्कृति आदि के कारण मधुकर तोरडमल आधुनिक नाटककारो मे विशेष उल्लेखनीय हैं।

तोरवे रामायण *(क० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानत पद्रहवी शती]

'तोरवे रामायण' के लेखक का नाम नरहरि (दे० कुमार वाल्मीकि) था। वह बीजापुर के निकट तोरवे ग्राम का निवासी था। अत उसके द्वारा रचित रामायण 'तोरवे रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है। आज भी उसके वशज तोरवे मे हैं। नरहरि ने कुमारव्यास (दे०) का अनुकरण करके रामायण की रचना करते समय अपने को कुमार वाल्मीकि कहा है। आलोचको ने 'तोरवे रामायण' का रचना काल लगभग पद्रहवी शती बताया है।

'तोरवे रामायण' से कन्नड मे ब्राह्मण-परपरा पर रामायण लिखने का श्रीगणेश हुआ। इससे पहले यह कथा जैन-परपरा के अनुसार ही कन्नड मे लिखी जाती थी। यो तो 'तोरवे रामायण' 'वाल्मीकि रामायण' का ही सक्षिप्त रूप है पर राम को भक्तिपूर्वक विष्णु के अवतार के रूप मे देखने वाली भागवत-दृष्टि का प्रभाव इसमे स्पष्ट है जैसा कि पीठिका भाग मे राम-नाम का महत्व कहकर शिव के मुख से पार्वती को राम की कहानी सुनाने की बात से स्पष्ट होता है। कुमार वाल्मीकि ने कन्नड मे पहली बार समस्त रामायण की रचना भामिनी षट्पदि मे पाँच हजार से अधिक पद्यो मे की है।

इसमे 'अद्भुत रामायण' का भी कुछ प्रभाव है। कवि प्राय सीधे और सक्षेप मे ही कथा कहता है किंतु कही-कही जहाँ उसे कोई सदर्भ महत्वपूर्ण लगा उसने विस्तार भी किया है—जैसे आधे से अधिक पुस्तक का कलेवर युद्धकाड से भरा है। मूलकथा मे कही-कही परिवर्तन भी हो गया है। मथरा जाति की दासी है पर माया का अवतार है। राज्याभिषेक के दिन राम मुनि वसिष्ठ से कहते हैं, "मैंने आज एक स्वप्न देखा कि मैं वन मे अरविंद-मुखी के साथ भ्रमण कर रहा था" आदि।

'तोरवे रामायण' मे कविता-शक्ति की अपेक्षा भक्ति विशेष रूप से दिखाई देती है, वैसे सजीव सदर्भो का बहुत सुदर चित्रण भी हुआ है। पात्रो का चरित्र-चित्रण भी स्वाभाविक हुआ है। कथन-शैली म प्रवाह और सौदर्य है। आलोचको का अभिप्राय है कि 'कुमारव्यास भारत' की तुलना मे काव्य की दृष्टि से यह एक मध्यम दर्जे की रचना है।

तोलकाप्पियम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा-पूर्व दूसरी-तीसरी शती]

'तोलकाप्पियम्' तमिल का प्राचीनतम उपलब्ध व्याकरण-ग्रंथ है। इसके रचयिता तोलकाप्पियर् (दे०) कहे जाते है। विद्वानों के मतानुसार वे प्रसिद्ध व्याकरणाचार्य अगत्स्य के शिष्य थे। 'तोलकाप्पियम्' मूलतः एक व्याकरण-ग्रंथ है परंतु इसके कुछ अध्यायों में काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का विवेचन भी है। संपूर्ण कृति सूत्र-शैली में रचित है। इसमें 1276 सूत्र हैं। 'तोलकाप्पियम्' तीन भागों में विभाजित हैं—'एलुत्तदिकारम्' (अर्थ-विचार), 'शोल्लदिकारम्' (शब्द-विचार) और 'पोरुळदिकारम् (अर्थ-विचार)। 'एलुत्तदिकारम्' में विभिन्न वर्णों एवं उनकी प्रयोग-विधि, ध्वनि-नियम, शब्दों के विभिन्न ध्वनि-संयोगों आदि का विशद विवेचन है। 'शोल्लदिकारम्' में विभिन्न काव्य-रूढ़ियों और अलंकार, छंद आदि काव्यांगों के स्वरूप और उनके प्रयोग पर विचार किया गया है। इस भाग में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों का भी विशद विवेचन हुआ है। पहले दो भागों का जहाँ व्याकरण की दृष्टि से महत्व है, वही इस भाग का काव्य-शास्त्रीय और ऐतिहासिक दृष्टियों से विशेष महत्व है। 'पोरुळदिकारम्' में साहित्य के दो प्रमुख वर्ग अहम् (दे० अहप्पोरुळ्) और पुरम् (दे० पुरुप्पोरुळ्) तथा जलवायु एवं भौगोलिक अवस्थानुसार विभाजित पाँच भूखंडों (तिणै) का विस्तृत विवेचन है। तोलकाप्पियर् ने साहित्य को तीन वर्गों में विभाजित किया है—इयल (काव्य), इशै (संगीत) और नाडहम् (नाटक और नृत्य)। तोलकाप्पियम् में 'इयल'-विषयक विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। तोलकाप्पियम् पर अनेकानेक टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं। अधिकांश विद्वानों का मत है कि अपने वर्तमान रूप में 'तोलकाप्पियम्' एक पूर्ण प्रामाणिक कृति नहीं है। इसमें अनेक प्रक्षिप्तांश हैं फिर भी सरल भाषा में वैज्ञानिक रीति से रचित तमिल के प्राचीनतम उपलब्ध श्रेष्ठ व्याकरण-ग्रंथ के रूप में इसका महत्त्व असंदिग्ध है। इस कृति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसकी रचना के पूर्व ही तमिल में एक सुदृढ़ साहित्य-परंपरा विद्यमान थी।

तोलकाप्पियर् *(त० ले०)* [समय—ईसा-पूर्व दूसरी-तीसरी शती]

तोलकाप्पियर् तमिल के प्रसिद्ध व्याकरणाचार्यों में गिने जाते हैं। इनके जन्म-संवत्, जन्म-स्थान, माता-पिता-जाति आदि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। दंत-कथाओं के अनुसार वे जमदग्नि ऋषि के पुत्र और परशुराम के भाई थे। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार ये तमिल के प्रथम व्याकरणाचार्य अगत्स्य ऋषि के शिष्य थे। इनकी प्रसिद्धि का मूलाधार है 'तोलकाप्पियम्' (दे०)। 'तोलकाप्पियम्' मूलतः व्याकरण-ग्रंथ है और तमिल का सबसे प्राचीन उपलब्ध व्याकरण-ग्रंथ है। इसके कुछ अध्यायों में काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों का विवेचन भी है। इस महान् ग्रंथ के रचयिता के रूप में तोलकाप्पियर् को तमिल साहित्य में अपार ख्याति मिली है।

तोलन् *(मल० ले०)*

देशी राज्य कोचीन के नरेश कुलशेखर वर्मा के सभा-कवि के रूप में तोलन् सुख्यात हुए। संस्कृत तथा मलयाळम के प्रकांड पंडित थे। हास्य रस-प्रधान और यमकालंकार से युक्त कविताएँ रचने में तोलन् कवि का स्थान अद्वितीय माना जाता है। 'महोदय-पुरेश-चरितम्' नामक महाकाव्य उनका लिखा हुआ है, ऐसा माना जाता है। प्रसिद्ध कवि कुंचन् नंपियार् (दे०) पर श्री तोलन् की काव्य-शैली का प्रभाव रहा है।

तौबातुन्नसूह *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1873 ई०]

'तौबातुन्नसूह' डिप्टी नजीर अहमद (दे०) का प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। इसमें संतान की शिक्षा-दीक्षा के लिए माता-पिता के कर्तव्यों का निरूपण है। इसका उद्देश्य नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा देना है। लेखक कहना चाहता है कि संतान को पाल-पोस कर कमाने-योग्य बना देने पर ही माता-पिता के कर्तव्य की समाप्ति नहीं हो जाती बल्कि उसको सुसभ्य एवं सुसंस्कृत बनाना भी उनका कर्तव्य है।

'तौबातुन्नसूह' में मजहब का उल्लेख कुछ इस प्रकार हुआ है कि सभी नेक आदमी उसे पसंद करें। इसके कथानक का आरंभ दिल्ली में फैले हैज़े के वर्णन से होता है। नसूह भी हैज़े की लपेट में आ जाता है। ओषधि-सेवन से नींद आ जाने पर वह ईश्वर के न्यायालय का दृश्य देखकर चौंक उठता है। नींद खुलने पर उसका हृदय-परिवर्तन हो जाता है। क्रूर एवं नास्तिक नसूह दयालु एवं आस्थावान बन जाता है।

इस उपन्यास मे सवाद कुछ अधिक ही हैं। इसमे चरित्र विकास सुदर एव स्वाभाविक है तथा मनोवैज्ञानिक आधार लिये हुए है। कलीम और नईमा के रुढ चरित्र भी कुशलता से चित्रित किए गए है। इसकी भाषा शैली स्पष्ट तथा सशक्त है—शुद्ध देहलवी भाषा तथा मुहावरो का प्रयोग किया गया है और हास्य का सफल पुट दिया गया है।

त्यागपत्र *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1937 ई०]

यह जैनेंद्रकुमार (दे०) का बहुचर्चित एव उल्लेखनीय उपन्यास है जो भारत की विभिन्न भाषाओ मे ही नही अपितु विश्व की अनेक भाषाओ मे अनूदित हो चुका है। आत्मकथात्मक शैली मे लिखे गए इस उपन्यास मे लेखक ने मृणाल (दे०) के माध्यम से नारी की सामाजिक स्थिति और उसकी समस्याओ का अत्यत सशक्त अकन किया है। अपने भाई के सरक्षण मे पली मृणाल बाल्यावस्था मे अंग्रेजी स्कूल मे अध्ययन करते समय अपनी सहेली के भाई से प्रेम कर बैठती है। जब भावज को इस रहस्य का पता लगता है तब वह उसे न केवल निर्दयता पूर्वक पीटती है अपितु एक वयस्क व्यक्ति के साथ विवाह भी कर देती है। अपने पति के प्रति पूर्ण निष्ठा रखते हुए भी वह सरलतावश एक दिन अपने पूर्व प्रेम प्रसग को व्यक्त कर देती है जिसे सुनकर उसका पति उस पर न केवल अत्याचार करता है अपितु एक दिन उसे घर से बाहर भी निकाल देता है। परिस्थितियो के वात्याचक्र मे पडकर मृणाल को कोयले के एक सामान्य व्यापारी का आश्रय लेना पडता है जो उसके गर्भवती होने पर छोडकर चला जाता है। वह अस्पताल मे एक बच्ची को जन्म देती है जो दस मास के भीतर ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर देती है। तदनतर मृणाल लगभग बीस वर्षो तक नानाविध कष्ट झेलने के बाद सासारिक यातना से मुक्ति पा लेती है। मृणाल का भतीजा प्रमोद अपनी बुआ की पीडा को भली भाँति समझता है और अपना सर्वस्व न्योछावर करके भी उसके दुर्भाग्य को जीत लेना चाहता है। लेकिन मृणाल अपने भतीजे की इस कृपा को अस्वीकार कर देती है। जब प्रमोद को बुआ की मृत्यु का समाचार मिलता है तब वह जजी स त्यागपत्र देकर सर्वथा विरक्त हो जाता है। जैनेंद्र के अन्य उपन्यासो के समान इस रचना मे भी कथा का महत्व नगण्य सा है। इसकी महत्ता तो मृणाल की दमित इच्छाओ तथा सूक्ष्म चारित्रिक प्रतिक्रियाओ के प्रत्यकन मे है जिसमे लेखक को अदभुत सफलता मिली है। यह कृति पाठक के मन को आदोलित करने मे अत्यत समर्थ है।

त्यागराजु *(तें० ले०)* [समय 1767-1847 ई०]

सत, सगीतकार और साहित्यिक—त्रिविध प्रतिभा का मगलमय सगम त्यागराजु मे पाया जाता है। त्यागराजु का जन्म दक्षिण भारत मे तजावूर के पास तिरुवारुर नामक ग्राम मे हुआ। इनके पिता का नाम रामब्रह्म और माता का सीतम्मा। पिता राम के भक्त थे और माता भक्त रामदास के गीत बडी तन्मयता के साथ गाया करती थी। फलत त्यागराजु मे भक्ति और सगीत का मणिकाचन सयोग घटित हुआ। भक्ति के बिना सगीत का ज्ञान निरर्थक घोषित करके रामकथा को इस वाग्धनी ने राग-सुधा से आप्लावित कर प्रस्तुत किया है। दक्षिण के घर-घर मे आज भी त्यागराजु के गीत गाए जाते है। तमिल-समाज के बीच मे रहते हुए भी त्यागराजु ने अपनी मातृभाषा तेलुगु मे ही गीतो की रचना की और सारे दक्षिणवासी इन गीतो का भावार्थ समझें या न समझें पर गाते बडी तन्मयता के साथ हैं। अर्थ की पार्थिव सीमा को पार कर नाद-सौंदर्य के माध्यम से आतरिक आनद प्राप्त करने के लिए त्यागराजु के गीत आध्यात्मिक सेतु बन गए हैं। कहते हैं कि त्यागराजु ने चौबीस हजार गीतो मे राम का गुणगान किया था। पर आज केवल एक हजार के करीब ही मिलते हैं। केवल गीतो के अतिरिक्त 'नौकाचरित्र', 'प्रह्लाद भक्त विजयमु' नामक कुछ सगीत रूपको की भी इन्होने रचना की। इनके गीतो मे भक्ति की सभी सभाव्य भाव-भूमिकाओ का विकास परिलक्षित होता है। राम के गुणगान म ही सत त्यागराजु का समस्त जीवन व्यतीत हुआ। अतिम दिनो मे इन्होंने सन्यास की दीक्षा ग्रहण की और अपनी ज्योति को परज्योति मे विलीन कर लिया। त्यागराजु का नाम साहित्य की अपेक्षा सगीत के क्षेत्र म अधिक विख्यात है। नादयोग की साधना मे इनको विलक्षण सफलता प्राप्त हुई। सात स्वरो का माधुर्य इनके लिए श्रुति का ही विषय नही रहा, प्रत्युत इन्होंने इन स्वरो को अपने सामने नाचनेवाली सुदरियो के रूप मे देखा और दिखाया।

नाटिका *(म० कृ०)*

वा० वा० केळकर का यह नाटक अंग्रेजी नाटककार शेक्सपियर के 'टेमिंग ऑफ द श्रू' की रूपान्तरित

रचना है। अँग्रेजी कृति पर मराठी परिवेश का आरोप कर केळकर ने इसमें नूतन प्राणप्रतिष्ठा की है। प्रतापराव द्वारा दिग्भ्रमित नायिका त्राटिका (दे०) को सन्मार्ग पर लाए जाने की कथा पर यह नाटक आधारित है। त्राटिका नारी-सुलभ कोमल भावनाओं का सर्वथा त्याग कर पुरुषोचित भावनाओं को अपने जीवन में उतार लेना चाहती है। फलतः विवाह हेतु आए प्रत्येक प्रत्याशी को वह विमुख लौटा देती है। प्रतापराव बलपूर्वक उससे विवाह कर लेता है और अपनी उपेक्षा-वृत्ति के द्वारा उसे सन्मार्ग पर ले आता है। नाटककार ने अपनी नाट्य प्रतिभा के बल पर इस रूपांतरित कृति को मराठी की मौलिक कृति का रूप प्रदान कर दिया है। अँग्रेजी नामों के स्थान पर मराठी या प्रदेशों के नामों आदि का प्रयोग तथा घटना-प्रसंगों के प्रादेशिक प्रभावानुसार चित्रण आदि से यह सहज रूप में संभव हो सका है।

त्राटिका *(म० पा०)*

वा० वा० केळकर के रूपांतरित नाटक 'त्राटिका' (दे०) (शेक्सपियर-कृत 'टेमिंग ऑफ़ द श्रू') की नायिका है। यह कठोरहृदया एवं उद्दंड प्रवृत्ति की ऐसी महिला है जिसे कोमल भावनाओं एवं प्रवृत्तियों से घोर घृणा है। अपनी इन पुरुषोचित वृत्तियों के कारण ही इसने आनंदी से बदलकर अपना नाम त्राटिका रख लिया है। नारी-सुलभ सुकुमार भावनाओं एवं प्रवृत्तियों की अपेक्षा यह क्रूरता एवं कठोरता को अपने जीवन में उतारने को लालायित रहती है। अपने इस दुराग्रह के कारण ही वह विवाह के इच्छुक प्रत्येक प्रत्याशी को अपमानित कर विमुख लौटा देती है। फलतः कोई भी व्यक्ति इससे वैवाहिक संबंध स्थापित करने से हिचकता है, किंतु प्रतापराव इस दिग्भ्रमित नारी को सन्मार्ग पर लाने के लिए ही इससे बलपूर्वक विवाह कर लेता है। विवाह के उपरांत प्रतापराव इसके साथ पूर्णतः उपेक्षापूर्ण व्यवहार करता है। पति की उपेक्षा एवं कठोर व्यवहार के कारण त्राटिका को अपनी भूल का अहसास होता है। फलतः पति के हृदय को जीतने एवं सद्व्यवहार को प्राप्त करने के लिए इसके व्यवहार में आमूल-चूल परिवर्तन हो जाता है। यह सद्गृहिणी के महद् आदर्शों का ग्रहण कर आदर्श नारी-चरित्र की श्रेणी की अधिकारिणी हो जाती है। वस्तुतः मराठी चरित्र-सृष्टि में त्राटिका कठोरहृदया कर्कशा एवं उद्दंड नारी चरित्रों के प्रतीक के रूप में प्रसिद्ध है।

त्रासदी *(हिं० पारि०)*

'त्रासदी' प्रमुख पाश्चात्य नाट्य-रूप 'ट्रैजेडी' का हिंदी पर्याय है। हिंदी में इसके लिए एक अन्य प्रचलित अभिधान है 'दुःखांत नाटक', किंतु त्रासदी के अंत का दुःखात्मक होना अनिवार्य नहीं है। इसी प्रकार 'त्रासदी' शब्द का भारतीय काव्यशास्त्र में निरूपित तेतीस संचारी भावों में परिगणित 'त्रास' से कोई संबंध नहीं है। आधुनिक आलोचकों ने यूनानी काव्यशास्त्र की मूल अवधारणा 'ट्रैजेडी' के वजन पर त्रास को उसका मूलवर्ती भाव मानते हुए 'त्रासदी' शब्द गढ़ लिया है जो अब व्यापक रूप से प्रचलित और प्रतिष्ठित हो चुका है। यूनानी भाषा में 'ट्रैजेडी' (मूल यूनानी शब्द-बंध : trag oidia) का शाब्दिक अर्थ है—अज-गीत। tragos का अर्थ है बकरा; और oide का गीत। प्राचीन यूनानी परंपरा के अनुसार बकरे के बलिदान के अवसर पर कुछ गायकों द्वारा बकरे की खाल पहनकर त्रास और करुणा के गीत गाए जाते थे। धीरे-धीरे इस त्रासक 'गीत-नाट्य' जैसी वस्तु ने गंभीर साहित्यिक नाट्य-विधा का रूप धारण कर लिया।

त्रासदी का सर्वप्रथम सुव्यवस्थित विवेचन यूनानी आचार्य अरस्तू के 'पेरि पोइतिकेस' नामक ग्रंथ में उपलब्ध होता है। अरस्तू के शब्दों में त्रासदी की परिभाषा इस प्रकार है : 'त्रासदी किसी गंभीर, स्वतःपूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है जिसका माध्यम नाटक के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयुक्त सभी प्रकार के आभरणों से अलंकृत भाषा होती है, जो समाख्यान-रूप में न होकर कार्य-व्यापार रूप में होती है और जिसमें करुणा और त्रास के उद्रेक द्वारा मनोविकारों का उचित विरेचन (दे०) किया जाता है।' त्रासदी की प्रकल्पना मूलतः नायक की दारुण एवं असह्य यातनाओं पर आधारित है। त्रासदी का नायक अपने चरित्र के दोष के कारण की गई किसी छोटी-सी भूल के भीषण दुष्परिणाम भोगता है। यूनानी काव्यशास्त्र में निरूपित त्रासदी के मूल तत्व भव्यता, कथानक (कथा-क्रम के मध्य के 'स्थिति-विपर्यय' और 'अभिज्ञान'), विरेचन, नैतिक विवेक और न्याय-बुद्धि आदि आज भी त्रासदी के लिए किसी-न-किसी रूप में जुड़े हुए हैं। अरस्तू ने त्रासदी के मूल कार्य की एकता पर विशेष बल दिया था, पश्चिम के पुनर्जागरण काल के कास्तेलवेत्रो आदि विद्वानों ने इसमें काल और स्थान की एकता को भी जोड़ दिया। इस प्रकार नाटकीय संदर्भ में संकलन-त्रय (दे०) की प्रकल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। कथानक से

ही सबद्ध एक अन्य प्राचीन अनुबध यह था कि उसमे सुनिश्चित आदि, मध्य और अत होना चाहिए। आधुनिक नामदी मे यह आवश्यक नही माना जाता।

त्रासदी के आस्वाद का प्रश्न काव्यशास्त्रीय चिंतन का एक मूलभूत प्रश्न है। भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र मे इसके लिए अनेक प्रकार के जीवन-व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक-नैतिक और कलावादी समाधान प्रस्तुत किए गए हैं। विरेचन-सिद्धात उनमे से एक है। इस सदर्भ मे भारतीय काव्यशास्त्र का प्रमुख सिद्धात है साधारणीकरण (दे०)।

अरस्तू ने त्रासदी को साहित्य का उत्कृष्टतम रूप माना था। 'हीनतर जीवन का चित्रण करने वाली कामदी' (दे०) की अपेक्षा 'भव्यतर जीवन का चित्रण करने वाली त्रासदी' उनके अनुसार कला (दे०) का सर्वश्रेष्ठ रूप है। अरस्तू के बाद पाश्चात्य साहित्य चिंतन मे त्रासदी की मूल प्रकल्पना, विशेषत विरेचन-सिद्धात, को लेकर अनेक प्रश्न उठाए गए और उसमे परिवर्तन भी किए गए जिनमे से कई निश्चय ही सार्थक हैं। किंतु त्रासदी की मूल अवधारणा अभी तक अक्षुण्ण है।

त्रिंजण (प० पारि०)

पजाबी लोक सस्कृति के सदर्भ म 'त्रिंजण' महत्वपूर्ण है। ग्रामो मे नवविवाहिताएँ और कुंवारी कन्याएँ इक्ट्ठी बैठकर चरखा कातती हैं। चरखे की धुकार के साथ-साथ ये भी गाती जाती हैं। इन गीतो को 'त्रिंजण के गीत' कहते हैं। इनमे मायके के अस्थायी जीवन तथा ससुराल जाने की भयविह्वलता का वर्णन होता है। इसी भाव को व्यापक अर्थ प्रदान कर ससार की नश्वरता की ओर सकेत किया जाता है। पजाबी जीवन और पजाबी साहित्य की रचना परपरा पर त्रिंजण का विशेष प्रभाव है। पजाबी सूफी काव्य मे इस विषय को बार-बार दुहराया गया है। आधुनिक काल मे (धनीराम) चातरिक (दे०) ने 'त्रिंजण' को उपमान के रूप मे बडी सफलता से प्रयुक्त किया है।

त्रिकाय (पा० पारि०)

महायान शाखा (दे०) म भगवान् बुद्ध के विभिन्न शरीरो की परिकल्पना त्रिकाय सिद्धात के रूप म प्रसिद्ध है। यह केवल धार्मिक ही नहीं प्राप्ति-सबधी तथा सामारिक तत्त्व को भी आत्मसात् किए है। इसमे वस्तुत इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है कि भगवान् बुद्ध का आध्यात्मिक स्वरूप उनके भौतिक जीवन से किस प्रकार मेल खाता है। हीनयान शाखा (दे०) मे भगवान के केवल दो रूप माने जाते थे धर्मकाय और रूपकाय। आगे चलकर तीन शरीरो की कल्पना कर ली गई—(1) धर्मकाय-हीनयान मे यह बुद्ध की आत्मा के रूप मे स्वीकार किया जाता था। महायान मे इसे वास्तविक तत्त्व के रूप मे स्वीकार कर लिया गया। यह बुद्ध का अनादि निधन, परिवृत्तिहीन तथा प्रकटीभाव और अतर्धान रहित मुख्य शरीर है जिसमे सभी धार्मिक तत्त्व, तथागत, शून्यता, मध्यम मार्ग, पूर्णता आदि सभी कुछ आ जाता है। यह आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनो धर्मो का समूह है। (2) सभोगकाय—यह प्रज्ञामय है और जगत् के उद्धार के लिए बोधिसत्त्व के रूप मे भगवान् सुदर शरीर धारण कर अवतीर्ण होते हैं। यह हीनयान मे नही माना गया है। (3) निर्माणकाय—यह बुद्ध का भौतिक शरीर है जिसमे शाक्य मुनि इत्यादि के रूप मे जरा मरण का अभिनय करते हैं। आगे चलकर तात्रिको ने एक चौथे वज्रकाय की भी कल्पना की।

त्रिपदी (क० पारि०)

त्रिपदी कन्नड का देशी छद है। 'त्रिपदी' शब्द से ही स्पष्ट है कि इसमे तीन पाद या चरण होते है। इसके प्रथम चरण मे पाँच मात्रा वाले चार गण होते हैं, तीसरे गण मे 'अतप्रास' होता है। द्वितीय चरण म क्रमश पाँच, चार, चार+एक और पाँच मात्रा वाले गण होते हैं। तृतीय चरण मे क्रमश पाँच, चार तथा चार+एक मात्रा वाले गण होते हैं। कन्नड मे सर्वज्ञ (दे०) कवि 'त्रिपदी' के लिए अत्यत विख्यात हैं। उनके त्रिपदी छद साधारण जनता मे भी बहुधा प्रचलित है। बादामि के शिलालेख म इस छद का सर्वप्रथम प्रयोग दिखाई पडता है। इसका समय 700 ई० है। कन्नड के प्राचीन तथा आधुनिक कवियो के काव्यो मे इस छद को स्थान प्राप्त हुआ है। आदि महाकवि पप (दे०) (940 ई०) के 'आदिपुराण (दे०) तथा कविचक्रवर्ती पोन्न (दे०) (950 ई०) के 'शातिपुराण' (दे०) मे त्रिपदी का प्रयोग द्रष्टव्य है। उक्त दोनो ग्रथो म अन्य कन्नड तथा सस्कृत-छदो के साथ इसका प्रयोग हुआ है। कन्नड के अन्य चपू-काव्यो मे भी इसका प्रयोग हुआ है। अग्गळ (1200 ई०) के 'चद्रप्रभपुराण' (दे०) मे इसका सुदर प्रयोग देखा जाता है।

केवल त्रिपदी छद का प्रयोग करके काव्य-रचना

करने वाले कवियों में सर्वप्रथम सिद्धराम (1150 ई०) का नाम लिया जाता है। वे एक श्रेष्ठ वीरशैव वचनकार थे। वचनों के अतिरिक्त उन्होंने 'मिश्र-स्तोत्र-त्रिविधि', 'बसव-स्तोत्र त्रिविधि', 'अष्टावरणस्तोत्र-त्रिविधि', 'कालज्ञान' और 'मंत्रगोप्य' की रचना की है। इसमें 'बसवस्तोत्र-त्रिविधि' तथा 'अष्टावरणस्तोत्र-त्रिविधि' त्रिपदी छंद में रची गई है। महादेवयक्क (1150 ई०) (दे०) कन्नड की सुप्रसिद्ध कवयित्री हैं। उनके वचनों में जहाँ उनकी भक्ति का दिव्य रूप मिलता है वहीं उनकी योगांग-त्रिविधि' में 63 त्रिपदी छंदों में तात्त्विक विषयों का प्रतिपादन द्रष्टव्य है। उसमें उनके व्यक्तिगत जीवन के अंश भी मिले हुए हैं। इसके बाद 'निजगुणशिवयोगी' (दे०) (1500 ई०) का नाम उल्लेखनीय है जिनके 'अनुभवसार' तथा 'अरवत्तुमूवर त्रिपदि' में त्रिपदी छंद का अच्छा प्रयोग हुआ है और दार्शनिक विषयों का प्रतिपादन हुआ है। सर्वज्ञ (1700 ई०) (दे०) जनवादी परंपरा के प्रसिद्ध कवि हैं। उनके वचन त्रिपदी में रचित हैं। ये त्रिपदी 'छंद-सर्वज्ञ वचनगळु' (सर्वज्ञ के वचन) नाम से विख्यात हैं। उनकी कबीर जैसी खंडन-मंडन की प्रवृत्ति उनकी सत्यप्रियता की ही द्योतक है।

त्रिपाठी, कुंजबिहारी *(उ० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

डा० कुंजबिहारी त्रिपाठी (एम०ए०, बी०एल०, पी-एच०डी०) का जन्म पथुरी पड़ा बाँकी (कटक) में हुआ था। ये उड़िया और संस्कृत साहित्य के प्रोफ़ेसर थे। 'उड़ीसा के संस्कृत-साहित्य का इतिहास' इनकी एक उत्कृष्ट रचना है। 'ओड़िया भाषा तत्त्व' इनकी समीक्षात्मक पुस्तक है। पाली 'धम्मपद' (दे०) (प्रथमार्ध) का सटीक अलोचनामूलक उड़िया-संस्करण इनका बहुमूल्य अवदान है। इसमें लेखक की गवेषणामूलक अंतर्दृष्टि प्रशंसनीय है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उड़िया एवं अँग्रेजी दोनों में इनके लेख प्रकाशित होते रहते हैं। इनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं शैली पांडित्यपूर्ण है। 'प्राचीन ओड़िया अभिलेख' (दे०) इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है।

त्रिपाठी, बकुल *(गु० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

गुजराती साहित्य में नयी पीढ़ी के हास्यरस के लेखक। वे अहमदाबाद के एच० एल० कॉमर्स कॉलेज में अर्थशास्त्र के अध्यापक हैं। अनेक गुजराती दैनिक समाचार-पत्रों में वे हास्य-व्यंग्य के लेख लिखते हैं। उनकी हास्य की तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। कभी वे लघु निबंध-शैली का प्रयोग करते हैं, कभी डायरी, कभी पत्र, तो कभी आत्म-निवेदन। उनकी 'सोमवारनी सवारे' पुस्तक गुजरात सरकार से पुरस्कृत हो चुकी है। वे नयी पीढ़ी के एकमात्र हास्य-लेखक हैं। मानव-स्वभाव की सहज निर्बलता ही उनके हास्य का उपादान है; इसलिए उनका हास्य सब पाठकों को रसानुभूति कराने में समर्थ है।

त्रिपाठी, विभूति भूषण *(उ० ले०)*

श्री विभूति भूषण त्रिपाठी (आइ० ए० एस०) यशस्वी कहानीकार हैं। आधुनिक जीवन-समस्याओं के चित्रण में ये सिद्धहस्त हैं। इनकी कहानियाँ मनोविश्लेषणात्मक होती हैं। आज जबकि साहित्य के हर क्षेत्र में यौन-चित्रण का आधिक्य है, स्थूल, असंयत चित्रण भी अस्वीकार्य नहीं, तब इनकी कहानियाँ पूर्णरूप से अ-यौन होती हैं। जहाँ आवश्यक है, वहाँ केवल उसका संकेत मात्र ही मिलता है। फिर भी आधुनिक जीवन की मानसिक उलझनें बड़ी कुशलता से इनकी कहानियों में उभर कर आई हैं। इनकी शैली विषयानुरूप, सशक्त, विश्लेषणात्मक, गंभीर एवं अभिव्यंजनामयी है। 'सेतु' (दे०) इनकी श्रेष्ठ कहानियों का संग्रह है।

त्रिपाठी, व्योमकेश *(उ० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

हास्य-व्यंग्यपरक नाटकों के क्षेत्र में श्री व्योमकेश त्रिपाठी का अवदान महत्वपूर्ण है। इनके नाटक रंगमंच की दृष्टि से सफल हैं तथा कई बार इनके नाटकों का सफल अभिनय भी हो चुका है। आधुनिक जीवन की विसंगतियों की अभिव्यक्ति की प्रधान शैली व्यंग्यात्मक ही है। इस शैली में संस्कार की भावना नहीं, आत्म-तिरस्कार की वृत्ति है। शैली चुटीली एवं विषयानुरूप तीखी है। 'विषर मिशा', 'कंसाकवाट' (दे०), 'सिंहद्वार', 'बाड़ुअ सिअ' आदि इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं।

त्रिपाठी, रामनरेश *(हि० ले०)* [जन्म—1889 ई०; मृत्यु—1968 ई०]

इनका जन्म कोइरीपुर (जिला जौनपुर) में हुआ। इनकी प्रारंभिक शिक्षा जौनपुर में हुई। राजस्थान,

प्रयाग और सुलतानपुर इनकी कर्मभूमि रहे। स्वतन्त्रता-संग्राम मे इन्होने सक्रिय योग दिया था। 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' इनके प्रसिद्ध खडकाव्य हैं। 'मानसी' में इनकी फुटकर कविताएँ सकलित है। उपन्यास, नाटक और आलोचना-ग्रथ भी इन्होने लिखे है। 'कविता-कौमुदी' के आठ भागो मे इन्होने हिंदी, उर्दू, सस्कृत और बँगला की लोकप्रिय कविताओ एव ग्रामगीतो का सकलन किया है।

हिंदी मे श्रीधर पाठक (दे०) द्वारा प्रवर्तित स्वच्छदता के प्रकृत पथ पर रामनरेश त्रिपाठी ही चले है। उनके खड-काव्यो मे देशभक्ति को रसात्मक रूप प्राप्त हुआ है। प्राकृतिक दृश्यो के 'सश्लिष्ट चित्रण की प्रतिभा इनमे अच्छी है।' इनकी भाषा व्यवस्थित और परिमार्जित है। इनकी कविता प्रसाद-गुण-युक्त है। खडी बोली के छायावाद (दे०) पूर्वकालीन कवियो मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

त्रिपिटक *(पा० कृ०)*

यह तीन भागो मे बौद्ध धर्म के उपदेशो का सग्रह है। बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद राजगृह मे एक सभा आयोजित की गई जिसमे धार्मिक सिद्धातो के लिए 'सुत्त-पिटक' (दे०) और सघ मे पालनीय नियमो के लिए 'विनय-पिटक' (दे०) *का सकलन किया गया*। महापरिनिर्वाण के 1 0 वर्ष बाद वैशाली मे दूसरी सगीति का आयोजन किया गया जिसमे पूर्वसकलनो को सशोधित किया गया। अत म अशोक के राज्यकाल मे तिस्सायोगलिपुत्र की अध्यक्षता मे पाटलिपुत्र मे तीसरी सगीति का आयोजन किया गया और उसमे त्रिपिटक के सकलन को परिपूर्णता प्रदान की गई। इसी समय 'अभिधम्मपिटक' (दे०) नामक तीसरे पिटक का भी सकलन हुआ जिसमे दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक शैली पर धर्म-निरूपण को प्रश्रय दिया गया। यह कहना कठिन है कि इन सकलनो मे कितना अश बुद्ध-कृत है और कितना परवर्ती। जो अश इन सकलनो मे सर्वत्र एक रूप मे अविरोधी होकर आए है और छुटपुट मिले सस्कृत पिटको से भी मेल खा जाते हैं वे असदिग्ध रूप मे बुद्ध-कृत माने जा सकते हैं। कुछ अश बुद्ध के निकटवर्ती शिष्यो द्वारा भी रचे हुए हो सकते हैं। इन पालि ग्रथो को श्रीलका मे सुरक्षित रखा गया। कुछ समय तक त्रिपिटक का वही मौखिक रूप चलता रहा, बाद मे 'गामिनी' के राज्यकाल मे लेख बद्ध किया गया।

'त्रिपिटक' के 9 अग बतलाए गए हैं—सुत्त, गेय्य (गद्य-पद्य मिश्र), वेय्याकरण (व्याकरण), गाथा (पद्य), उदान (सारगर्भित कथन), इतिवुत्तक (बुद्ध ने ऐसा कहा—कहकर छोटी कथाएँ), जातक (बुद्ध की पूर्वजन्म की कथाएँ), अब्भुत धम्म (चमत्कारपूर्ण कथन), और वेदल्ल (प्रश्नोत्तर)। इस विभाजन स ज्ञात होता है कि सभी प्रकार का साहित्य पहले से विद्यमान था। तीनो पिटको का वर्णन करने वाले क्रमश सुत्तान्तिक, विनयधर और *धम्मकथिक कहलाते थे। इसमे कई भाषाओ का प्रभाव है किंतु उनमे मागधी का प्राधान्य है जो प्राप्य मागधी से भिन्न* है।

त्रिपुरदहन सागत्य *(क० कृ०)* [रचना-काल—1184 ई०]

'सागत्य' (दे०) छद मे रचित ग्रथो मे शिशुमायण की रचना 'त्रिपुरदहन सागत्य' का विशेष स्थान है। इसका रचना-काल शक वर्ष 1106 (1184 ई०) है जिसका उल्लेख स्वय कवि ने किया है। 'त्रिपुरदहन सागत्य' म कुल 281 पद्य हैं। 'जनन मरण के नाम से घनतर हुए तीन पुरो को ज्योतिरूप धारण कर शकर ने भस्म किया वह कौतुक कहूँगा"—कवि इस उक्ति से स्पष्ट है कि इसमे रूपक-तत्त्व भी मिला हुआ है। रचना के प्रारभ म कवि ने चद्रनाथ की स्तुति करने के अनतर शातिजिन, *नेमिनाथ, वर्धमान आदि चौबीस तीर्थकरो, श्रवणबेळगोळ* के भुजबलि, सिद्धो, आचार्यो, सरस्वती एव अपने गुरु भानुमुनि की स्तुति की है। यह लालित्यपूर्ण रचना है। इसकी भाषा सुघर और सुष्ठु है।

त्रिपुरदाह *(स० कृ०)* [समय—तेरहवी शती]

सस्कृत नाट्यजगत मे वत्सराज (दे०) एक सुपरिचित नाम है। 'त्रिपुरदाह' इन्ही द्वारा रचित डिम है। वत्सराज कालिजर नरेश परमर्दिदेव के अमात्य थे तथा उनके पुत्र त्रैलोक्यवर्मदेव के समय तक उसी पद पर प्रतिष्ठित रहे।

चार अको के इस डिम की कथा पुराण स ली गई है। *भगवान् शकर ने त्रिपुर का नाश किस प्रकार किया था*, इसी का सागोपाग वर्णन इस रूपक का प्रतिपाद्य है। भरत (दे०) मुनि ने 'नाट्यशास्त्र' (दे०) म 'त्रिपुरदाह' शीर्षक डिम के प्रथम प्रयोग का उल्लेख किया है। इसी सकेत को ग्रहण कर वत्सराज ने इस रूपक की रचना की। इसमे रौद्र रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

त्रिपुरांतकुडु, रावियाटि *(तें० ले०)* [समय—चौदहवीं शती ई०]

ये विख्यात काकतीय नरेश प्रतापरुद्र (द्वितीय) (शासन-काल—1295-1326 ई०) के समसामयिक माने जाते हैं। उस समय इनकी युवावस्था थी। इनके ग्रंथ हैं—'प्रेमाभिरामम्' (संस्कृत में लिखित 'वीथी' नामक रूपक विशेष), 'अंबिकाशतकम्' (पार्वती तथा परमेश्वर के श्रृंगार का मुक्तकों में वर्णन) और 'त्रिपुरांतकोदाहरणमु' आदि। कूचिराजु एर्रना (दे० एर्राप्रगड) नामक तेलुगु कवि ने इन्हें श्रृंगार कवि कहा है। इनके उपलब्ध ग्रंथों में 'त्रिपुरांतकोदाहरणमु' प्रमुख है। संबोधन तथा अन्य सभी कारकों में अलग-अलग लिखे गए छंदों से युक्त एक लघुकाव्य ही 'उदाहरण' कहा जाता है। 'त्रिपुरांतकोदाहरण' की शैली सरल तथा सरस है। तेलुगु-उदाहरण (दे० उदाहरण वाङ्मय) काव्यों में इसका स्थान सर्वोपरि है।

त्रिरत्न *(अप० पारि०)*

जैन धर्म में कैवल्य पद-प्राप्ति के लिए कर्मों का अत्यंताभाव करने के निमित्त जिन तीन तत्वों की प्राथमिक अपरिहार्यता है उन्हें 'त्रिरत्न' की संज्ञा दी जाती है। वे तीन रत्न ये हैं: (1) सम्यक् ज्ञान—आत्मा के ठीक ज्ञान न होने से ही काम-क्रोधादि के कारण कर्मों का संचय होता है। अतः उनके अभाव के लिए पहली आवश्यकता सम्यक् ज्ञान है। (2) सच्चे तीर्थंकरों (दे०) के उपदेश का आस्थापूर्वक अध्ययन सम्यग्दर्शन कहलाता है; और (3) उसको क्रिया रूप में परिणत करना सम्यक् चरित है।

त्रिवेणी *(क० ले०)* [जन्म—1928 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

श्रीमती अनुसूया शंकर का काव्यनाम है 'त्रिवेणी'। आपका जन्म मंड्या में 1928 ई० में हुआ। आपके पिता श्री बी० एम० कृष्णस्वामी आधुनिक कन्नड साहित्य के नवोदय के मंत्रदाता एवं पुरोहित स्व० बी० एम० श्री कंठय्याजी (दे०) के भाई हैं। इन्होंने उच्च शिक्षा महाराजा कालेज में पाई। कन्नड साहित्य में मनोवैज्ञानिक विषयों को लेकर इन्होंने क्रांतिकारी उपन्यासों की रचना की। इन्होंने, 'बेक्किन कण्णु', 'दूरद बेट्ट', 'शरपंजर', 'बेल्लिमोड' आदि बीस उपन्यास लिखे हैं। इनके अतिरिक्त आपके तीन कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। मानसिक गुत्थियों को अत्यंत सरल व प्रभावी शैली में सुलझाने में ये सिद्धहस्त हैं। इनके उपन्यासों ने कन्नड-साहित्य में एक नया आयाम खोला। चरित्र-चित्रण में आपको कमाल हासिल है। त्रिवेणीजी हमारी सर्वश्रेष्ठ अंतश्चेतनावादी उपन्यास-लेखिका हैं।

त्रिवेदी, कालिदास *(हिं० ले०)* [अस्तित्व-काल—1688 ई०]

ये बनपुरा (अंतर्वेद) के निवासी थे। प्रसिद्ध कवि उदयनाथ कवींद्र इनके पुत्र तथा दूलह (दे०) इनके पौत्र थे। ऐसा कहा जाता है कि 1688 ई० में गोलकुंडा की चढ़ाई में किसी राजा के साथ ये औरंगजेब की तरफ से गए थे। (काशी) नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) की खोज रिपोर्ट में (1) 'राधामाधव मिलन बुध विनोद', 'वधू विनोद' अथवा 'वारवधू विनोद', (2) 'जंजीराबंद' तथा (3) 'कालिदास हजारा' इनके उपलब्ध ग्रंथ हैं। 'वारवधू विनोद' छोटा-सा ग्रंथ है तथा 'कालिदास हजारा' दो सौ बारह कवियों से संबंधित एक हजार पदों का 'भक्तमाल' (दे०) की शैली पर लिखा गया ग्रंथ है। इसमें कवियों का काल-निर्णय आदि बहुत सुदर ढंग से दिया गया है। इसके अतिरिक्त अनेक स्फुट पदों में राधा-कृष्ण के विहार को मुख्य प्रतिपाद्य बनाया है।

भाषा पर इनका असाधारण अधिकार है। नायिका-भेद-वर्णन में भानुदत्त की 'रसमंजरी' का अनुकरण करते हुए भी रूप-वर्णन में उक्ति-वैचित्र्य उल्लेखनीय है। ये हर रूप में अभ्यस्त और निपुण कवि माने जाते हैं।

त्रिवेदी, रामेंद्रसुंदर *(बँ० ले०)* [जन्म—1864 ई०; मृत्यु—1919 ई०]

बँगला साहित्य में विज्ञान-चर्चा के इतिहास में रामेंद्रसुंदर स्वकीय महिमा से नित्य अभिनंदित हैं। रामेंद्रसुदर के पूर्ववर्ती प्रबंधकारों ने विज्ञान से संबंधित विषयों को लेकर आलोचना की है परंतु वह या तो केवल साहित्य में या नीरस विज्ञान में पर्यवसित हुई है। विज्ञान की आलोचना में रामेंद्रसुदर की सरस अभिव्यक्ति-शैली को एक स्वतंत्र मर्यादा प्राप्त हुई है। 'जिज्ञासा' इनकी अनुपम पुस्तक है। साहित्य एवं सामाजिक जीवनचर्या की अभिव्यक्ति में इनकी 'कर्मकथा', 'शब्दकथा', 'चरितकथा' आदि

पुस्तकों मे विषयवस्तु के साथ भाषा ने एक अपरूप मिलन-बधन की सृष्टि की है। इनके ग्रथों मे ज्ञान के साथ सरसता का अपूर्व समन्वय दिखाई पड़ता है और यही ये यथार्थ रूप से स्वमहिमा मे सुप्रतिष्ठित हैं।

त्रिवेदी, विष्णुप्रसाद *(गु० ल०)* [समय—1899 ई०]

गुजराती के शीर्षस्थ समालोचको मे विष्णुप्रसाद (रणछोडलाल) त्रिवेदी *विशेषत उल्लेखनीय* है। 'विवेचना', 'परिशीलन', 'अर्वाचीन चितनात्मक गद्य', 'उपायन' (दे०) इत्यादि इनके सुप्रसिद्ध समीक्षा-ग्रथ है। अँग्रेजी और सस्कृत वाङमय का गभीर अनुशीलन परिशीलन करने के कारण इनकी विवेचना विशेष सतुलित, सर्वांगीण और निस्पृह बनी है। अपने मूल्याकन मे ये सदैव साहित्य-शास्त्र के सिद्धातो का ही विशेष आधार ग्रहण करते हैं। इसीलिए इनकी कृतिलक्षी आलोचनाएँ सर्वत्र समादृत होती है। 'सरस्वतीचद्र' (दे०) पर इनकी पाडित्यपूर्ण विशद विवेचना इस कथन का प्रमाण है। प्रो० विष्णुप्रसाद त्रिवेदी ने 'साधारणीकरण व्यापार पर जो विद्वत्तापूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं, वे *उनकी सूक्ष्म, सारग्राही दृष्टि और मौलिक गभीर* चितन का ठोस परिचय देते है।

त्रिवेदी जी सूरत मे एम० टी० बी० कालेज मे कई वर्षों तक गुजराती विभाग के प्राध्यापक एव अध्यक्ष के रूप मे कार्य करते रहे। तदुपरात गुजराती-शोध सस्था के निदेशक रहे और निवृत्त होने पर भी साहित्य समीक्षा, शोध और सपादन-कार्य मे प्रवृत्त रहे।

त्रिषष्टिपुरातन चरित्र *(क० कृ०)*

शैव भक्त-कवियो मे तिरेसठ भक्त-कवियो के नाम प्रसिद्ध हैं। इनको 'त्रिषष्टिपुरातन' कहते हैं। तमिल साहित्य मे इन पर लिखे गए ग्रथो की कमी नही है। कन्नड मे सर्वप्रथम हरिहर (दे०) ने इनका चरितगान रगळे (दे०) छद मे किया था। इनका प्रभाव इनके परवर्ती कवियो पर स्पष्टत देखा जा सकता है। सोलहवी शती के कवि सुरग भी उनके प्रभाव से दूर नही हैं। उनका समय 1500 ई० 'त्रिषष्टिपुरातन चरित्र' चपू शैली मे लिखा गया है। आकार म यह काफी बडा ग्रथ है और गुणो की दृष्टि स भी महत्वपूर्ण है। कर्नाटक विश्वविद्यालय,धारवाड से इसका सुसपादित सस्करण [सपादक हैं डा० आर० सी० हिरेमठ (दे०)] निकला है। यह ग्रथ सुरग कवि की अद्भुत प्रतिभा का निदर्शन है। इसके एक-एक अध्याय मे एक-एक भक्त का चरित्र वर्णित है। इसके वर्णनो मे चारुता और भाषा-शैली मे प्रभावशीलता है। शृगार, हास्य आदि रसो को इसमे उचित स्थान प्राप्त हुआ है, पर भक्ति ही इसका प्रतिपाद्य और अगी रस है।

त्वमेवाहम् *(ते० कृ०)*

'त्वमेवाहम्' आरुद्रा (दे०) की 'अभ्युदयमु' (प्रगतिवादी) काव्यधारा की रचनाओ का प्रतिनिधित्व करने वाली कविताओ का सकलन है। समाज मे आर्थिक विषमता एव शोषण का अत करके मानव को उसके अनुकूल गरिमा एव प्रतिष्ठा प्रदान करने की इनकी तीव्र आकाक्षा को इन कविताओ मे प्रबल अभिव्यक्ति मिली है। प्रौढ एव सशक्त भाषा मे लिखी गई ये कविताएँ पाठक के हृदय को भेदती हुई अदर प्रवेश करती हैं और उसमे एक आदोलन उत्पन्न करती है। मानव समुदाय की अभिन्नता को निरूपित करके उसमे *सद्भाव एव समरसता की स्थापना करने* के उद्देश्य से ही कवि ने इन कविताओ की रचना की है।

थूलि भद्द कहा (स्थूलिभद्र कथा) *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1184 ई०]

'स्थूलिभद्र कथा' सोमप्रभाचार्य (दे०) कृत 'कुमारपाल-प्रतिबोध' नामक कृति के अतर्गत एक छोटी-सी कथा है। इसके द्वारा लेखक ने ब्रह्मचर्य-व्रत का महत्व प्रदर्शित किया है।

सक्षेप मे कथा इस प्रकार है—पाटलिपुत्र मे *नवम नद राजा राज्य करता था।* उसके शकटार नामक मत्री के ज्येष्ठ पुत्र का नाम स्थूलिभद्र था। यह अतीव रूपवान युवक था। एक दिन वसत काल म वह कोशा नामक वारवनिता के प्रासाद मे गया। वहाँ उसके अग-प्रत्यग की शोभा देखकर उस पर मुग्ध हो गया और बारह वर्ष तक वह कोशा के साथ भोग विलास म लीन रहा।

शकटार की मृत्यु पर राजा ने दुराचारी स्थूलिभद्र के स्थान पर उसके छोटे भाई श्रीयक को मत्री बनाना चाहा। उसने बडे भाई के रहते उसकी अनुमति के बिना मत्री बनने मे आपत्ति की। राजा ने स्थूलिभद्र के पास सदेश भेजा। उसने विचार के लिए समय माँगा। वह सहसा कोशा के रगभवन म बाहर निकल पडा। सासारिक भोग-विलास को छोड कर विरक्त हो आचार्य सभूनि

विजय से जैन धर्म की दीक्षा लेकर तपस्या में लीन हो गया।

कालांतर में चातुर्मास्य के लिए कोशा के घर आया। किंतु उसके हाव-भाव स्थूलिभद्र को विचलित न कर सके। इस प्रकार स्थूलिभद्र के ब्रह्मचर्य के माहात्म्य-वर्णन के साथ कथा समाप्त होती है।

कृति में सुंदर वर्णन उपलब्ध होते हैं। प्रकृति और मानव दोनों का सुंदरता से वर्णन किया गया है।

थेरगाथा *(पा० कृ०)*

यह 'सुत्तपिटक' (दे०) के 'खुद्दकनिकाय' के अंतर्गत यह एक संकलित खंड है। इसमें जो कविताएँ सन्निविष्ट की गई हैं वे हैं तो धार्मिक ही किंतु शक्ति और सौंदर्य में उनकी तुलना उच्चकोटि की मुक्तक कविता से की जा सकती है। विंटरनित्ज़ ने इन कविताओं को 'ऋग्वेद' से लेकर कालिदास और अमरुक (दे०) तक की मुक्तक-परंपरा के समकक्ष रखना स्वीकार किया है और श्रीमती रायस डेविस के अनुसार 'थेरगाथा' की पंक्तियों को निस्संकोच शेली और कीट्स की किसी भी उच्चकोटि की रचना की तुलना में रखा जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि इन धार्मिक कविताओं में प्रकृति के मनमोहक चित्र भारतीय मुक्तक-परंपरा के बहुमूल्य रत्न हैं। जंगल और पर्वतों के दृश्यों के बीच में बैठकर भिक्षुगण साधना करते थे और जब गंभीर वृष्टि होती थी तथा बिजली कड़कती थी तब भी इन्हें आनंद आता था। ये महात्मा सांसारिकता से उदासीन होकर भी वसंतश्री से अपने को निर्लिप्त नहीं रख सके। निस्संदेह प्रकृति की महत्ता, उच्चता और आकर्षकता बौद्ध धर्म के दुःखवाद में भी इन्हें हर्षविभोर कर देती थी।

ये गाथाएँ 36 भागों में विभक्त हैं और इनमें 1279 पद्य हैं। इनमें प्रस्तावना की तीन गाथाएँ सम्मिलित नहीं हैं। ये गाथाएँ 264 थेरों की कही हुई हैं जिनका पद्यों की संख्या के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। इनमें थेर लोग अपने अनुभवों का वर्णन करते हैं। श्रीमती रायस डेविस के अनुसार 114 गाथाएँ बाह्य अनुभव-विषयक हैं; 141 आंतरिक अनुभवपरक और 9 गाथाएँ उभय-विषयक। इन गाथाओं पर धम्मपाल (दे०) की 'परमत्थदीपनी' टीका भी उपलब्ध हुई है जिसमें गाथाओं की पृष्ठभूमि दी गई है। इनमें पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन की अच्छी अभिव्यक्ति मिली है और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, शिल्पकार, कारीगर, मजदूर, अभिनेता, राजा के अवैध पुत्र, सामान्य व्यक्ति इत्यादि सभी को इनमें स्थान प्राप्त हुआ है।

थेरवाद *(पा० पारि०)*

यह बौद्धधर्म का सर्वप्राचीन रूप है। विभिन्न संगतियों में संकलित 'त्रिपिटक' (दे०) के निर्देशों के अनुसार चलकर ही निर्वाण-लाभ का सिद्धांत इसकी मूल मान्यता है। 'त्रिपिटक' में भगवान् बुद्ध तथा उनके निकटवर्ती दूसरे थेरों (स्थविरों) ने जो कुछ बतलाया है वही इनका सर्वोपरि धर्म है।

इस वाद के मानने वालों का मुख्य लक्ष्य है 'अरहंत' (दे० अरहत्) पद प्राप्त करना जो कि इस जीवन में ही निर्वाण-प्राप्ति की अवस्था है। इसके लिए चार आर्यसत्यों को स्वीकार किया गया है—(1) संसार और उसके सभी तत्त्व दुःख-रूप हैं; (2) दुःख का समुदय सहेतुक है; इसके लिए 'प्रटिच्चसमुप्पाद' (दे०) नाम से कारण-परंपराओं की कल्पना की गई है। (3) कारण-परंपरा को समाप्त कर देने से दुःख तथा आश्रवों की समाप्ति हो जाना संभव है और इस प्रकार निर्वाण तथा अरहंत-पद प्राप्त किया जा सकता है; और (4) निर्वाण-प्राप्ति का एक मार्ग है जिसके 8 अंग बतलाए गए हैं—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मांत, सम्यग् जीव (जीविका), सम्यग् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि। थेरवाद चरित्र-प्रधान धर्म है। इसमें आत्मनिग्रह तथा सच्चरित्रता द्वारा अलौकिक शक्ति प्राप्त कर लेना सर्वसाधारण के लिए सामान्य विधान बतलाया गया है।

इसमें समस्त तत्त्वों की क्षणिकता तथा अनित्यता का प्रतिपादन किया गया है। जितनी भी वस्तुओं को स्थायी कहा जाता है, इस मत में उनकी सत्ता ही स्वीकार नहीं की जाती। सभी वस्तुएँ संस्कार-जन्य हैं, परमाणु भी संस्कार-जन्य ही है। सभी संस्कार (धर्म) अनित्य तथा क्षणिक होते हैं। आत्मा नाम का कोई पदार्थ विद्यमान नहीं है। दृश्यमान प्रत्यक्ष ज्ञानवाद मात्र है जिससे भिन्न न कोई अनुभव करने वाला है, न विचार करने वाला। केवल विचार और संवेदनाएँ ही विद्यमान हैं जिनके आधार पर अनस्तित्व ठहरा हुआ है। इस वाद का प्रचार दक्षिण में हुआ।

कोई व्यक्ति दूसरे को निर्वाण-लाभ करने के लिए सहायता नहीं दे सकता। प्रत्येक व्यक्ति बुद्ध के मार्ग पर चल कर स्वयं निर्वाण-लाभ कर सकता है। यह संकु-

चिन स्वार्थमयी दृष्टि है इसीलिए इसे आगे चलकर 'हीनयान' (तुच्छ या छोटी गाडी) कहा गया क्योंकि थोडे व्यक्ति इस पर *निर्वाण तक जा सकते है ।*

थेरीगाथा *(पा० कृ०)*

यह 'ऋग्वेद' के बाद हाल के पहले की सर्वाधिक समृद्ध मुक्तक कृतियो का सकलन है। इसका नाम भी अधिकाशत 'थेरगाथा' (दे०) के साथ लिया जाता है, किंतु उसकी अपेक्षा इसकी कविताएँ उच्चकोटि की हैं। य रचनाएँ अधिकतर कवयित्रियो की हैं। इसमे 73 खडो मे 518 पद्य हैं। प्रत्यक खड मे एक थेरी का नाम दिया गया है और उसी की रचनाएँ उस खड मे सन्निविष्ट की गई हैं। इन पर धम्मपाल (दे०) की पाँचवी शती की टीका मे थेरियो की जीवनगाथा का पद्यो के आधार पर उन्नयन कर लिया गया है। धम्मपाल (दे०) के अनुसार अरहत् (दे०) पद प्राप्त कर लेने के बाद भिक्षुणियो ने भावनावश ये गाथाएँ लिखी थी। ये गाथाएँ स्त्रियो के विषय मे लिखी गई है और नारी-हृदय का ठीक रूप मे प्रतिनिधित्व करती हैं। श्रीमती रायस डेविस ने 'थेरगाथा और थेरीगाथा की तुलना करते हुए लिखा है कि 'थेरगाथा' मे प्रकृति-चित्रण की प्रधानता है और 'थेरीगाथा' मे हृदय-तत्त्व तथा भावना का प्राधान्य है। भिक्षुणियो की गाथाओ मे वास्तविक जीवन के चित्र अधिक उभरे हैं, साथ ही इनमे कवित्व का भी मनोरम स्फुरण हुआ है।

इन गाथाओ मे सामाजिक चित्रण बहुत ही महत्वपूर्ण है। इनमे हमे वर्णव्यवस्था का भेदभाव, राजकुमारी, रानी सेठानी, सुशिक्षित तथा सुसभ्य ब्राह्मणी, दासी, वेश्या, नाचने-गाने तथा सुदरता और कटाक्षो द्वारा जीविकोपार्जन करने वाली, भिखारिन, पहाडिन व्याघ्र की स्त्री तथा और कई प्रकार की स्त्रियो के दर्शन होते हैं। उनको बुद्ध धर्म की ओर आकृष्ट करने वाले तत्त्व भी अनेक हैं। कही बुद्ध का जीवन तथा व्यक्तित्व, कही उच्चकोटि का उपदेश, कही सवेग, कही प्राचीन सस्कार, इसी प्रकार पुत्र-मरण, वैधव्य निराशा, पति या पुत्र का व्यवहार, खेद, अपमान, दुराचार इत्यादि उन्ह बौद्ध धर्म की ओर झुकाते हैं और नवीन वातावरण मे उन्हें आनद शाति और स्वतत्रता की प्राप्ति होती है।

थोराताचो कमला *(म० पा०)*

नारायण मुरलीधर गुप्ते अर्थात् बी (दे०) कवि रचित 'कमला' नामक ऐतिहासिक खडकाव्य की यह नायिका है। महाराज सभाजी और थोरात की रूपवती कन्या कमला के प्रेम की अद्भुत कथा का निवेदन 'कमला' नामक काव्य मे हुआ है। कमला आदर्श हिंदू स्त्री तथा कुलीन कन्या है। सभाजी के व्यक्तित्व पर वह आसक्त है। सभाजी कमला को विवाह का वचन दे भगा ले जाता है, बाद मे अपना वचन पूरा न कर उसे अपने महल मे बदी बना लेता है। बदी होने पर कमला के मन मे भीषण अतर्द्वंद्व होता है, उसे अपने किए का पश्चात्ताप होता है। वह सोचती है कि मैंने थोरात के उच्च कुल म जन्म लिया था परतु आज मेरा चारित्रिक पतन हुआ है कि मैं रखैल बन गई हूँ और लोग मुझे कलकिनी कहकर मेरी अवहेलना करते हैं। मेरी जिस पवित्र देह ने परिणय-बधन मे आबद्ध होने से पूर्व आलिंगन, चुबन आदि किया उसे धिक्कार है। प्रायश्चित्त की आग मे जलते हुए अपनी देह के प्रति वितृष्णा का भाव होने के कारण जहाँ कमला कूँद है वही से कूद कर अत म आत्महत्या करती है। अभी भी वह स्थान 'कमला बुर्ज' के नाम से ख्यात है।

इस प्रकार कवि ने कमला जैसे ऐतिहासिक पात्र की योजना कर एक अपूर्व प्रेमकथा लिखी है जिसमे शील की रक्षा का मूल्य प्राणो स भी अधिक बताया गया है।

दडपाणि स्वामिहळ *(त० ले०)* [जन्म—1840 ई०, मृत्यु—1899 ई०]

सस्कृत तत्सम शैली मे यह नाम 'दडपाणि स्वामी' है। इनकी प्रसिद्ध कृति 'पुलवर पुराणम्' (कवियो का पुराण) है जिसमे तमिल कवि-गण के सबध म प्रचलित किंवदतियो एव कथाओ को रोचक पद्य-शैली म प्रस्तुत किया गया है। स्वभावत इस कृति म ऐतिहासिक सत्यता पर ध्यान कम दिया गया है। इनकी अन्य पद्य रचनाएँ प्रसिद्ध मदिरो पर उत्तरकालीन 'कोवै' 'कलम् पकम्' 'तलपुराण अताति' इत्यादि विधाओ की हैं जैसा कि उनके 'निरुच्चेन्त रकोवै', 'तिरुभयिलैक्कलम्पकम', 'आमानूरत तलपुराणम्' तथा 'तिरुवै यारन्तानि' नामों स स्पष्ट होता है। इनके दो शास्त्रीय ग्रथ भी हैं — वण्णत्तिलक्कणम्' (छद-लय के लक्षण), 'अरुकर् इलक्कणम्' (पट्लक्षण)।

दडी *(स० ले०)* [समय—अनुमानत 660 ई० से 680 ई० के बीच]

दक्षिण देशवासी दडी काचीपुरम् के पल्लव-

नरेश की सभा के रत्न थे। ये महाकवि भारवि (दे०) के प्रपौत्र कहे जाते हैं इनके समय के विषय में अनेक विसंवाद हैं। डा० काणे ने इनका समय 660 ई० से 680 ई० के बीच माना है।

दंडी कवि और आचार्य दोनों हैं। इनके नाम से तीन कृतियों के होने की ख्याति पहले से ही है। 'काव्यादर्श' (दे०) एवं 'दशकुमारचरित'— इन दो के विषय में तो कोई विवाद नहीं है पर इनकी तीसरी कृति क्या है, इस पर अनेक विसंवाद है। कुछ लोग तो 'मृच्छकटिक' को ही इनकी तीसरी कृति मानते हैं। पर अधिकतर विद्वानों ने 'अवंतिसुंदरीकथा' को तीसरा स्थान दिया है। इन तीनों में से 'काव्यादर्श' साहित्य-शास्त्र-विषयक ग्रंथ है तो शेष दोनों गद्य-काव्य की रचनाएँ हैं।

दंडी कवित्व एवं आचार्यत्व दोनों में ही सफल रहे हैं। 'काव्यादर्श' काव्य-तत्वों की सर्वथा मौलिक रूप में मीमांसा करता है। 'अग्निपुराण' इसका बहुत ऋणी है। इनकी गद्यरचनाएँ बाद के कवियों के लिए अनुकरणीय रही है।

दंदुवा द्रोह *(अ० कृ०)* [रचना-काल—*1919 ई०*]

रजनीकांत बरदलै (दे०) के इस उपन्यास में कामरूप के लोगों का आहोम-शासन के अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह दिखाया गया है। दो भाइयों—हरदत्त और वीरदत्त—के नेतृत्व में यह विद्रोह हुआ है। वीरदत्त मारा जाता है और हरदत्त गिरफ़्तार होता है। उसका कोर्ट मार्शल होता है। उसकी लडकी गिरफ़्तारी से बचने के लिए ब्रह्मपुत्र में कूद कर आत्महत्या कर लेती है। श्री लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०) ने भी दंदुवा द्रोह को आधार मानकर 'पद्मुम कुंवरी' उपन्यास लिखा था। तुलनात्मक दृष्टि से बरदलै की कृति अधिक सुंदर बन पडी है।

दक्षिण आफ्रीका ना सत्याग्रह नो इतिहास *(गु० कृ०)*

भारतीय स्वतंत्रता-आंदोलन का सूत्र अपने हाथ में ग्रहण करने के पूर्व महात्मा गांधी ने अपने जीवन के प्रारंभिक वर्ष दक्षिण अफ़्रीका में बिताए थे। ये वर्ष एक प्रकार से सत्याग्रह का प्रशिक्षण-काल थे। दक्षिण अफ़्रीका में बसे भारतीय —स्वतंत्रया 'गिरमिटिया' मजदूर—किस प्रकार अँग्रेज़ों के अत्याचारों से संत्रस्त थे, उन पर कैसे-कैसे सितम होते थे, उनके लिए कैसे-कैसे विचित्र क़ानून थे—आदि का सही-सही परिचय बापू ने इस ग्रंथ में दिया है।

ग्रंथ में दो खंड (362 पृष्ठ) हैं। इसका प्रकाशन भी नवजीवन प्रकाशन ने किया है। ग्रंथ का महत्व उतना ही है, जितना गांधी जी की आत्म-कथा का। अफ़्रीका में निवास करने वाले भारतीयों की मुक्ति एवं सुधरी स्थिति के लिए बापू ने घोर पुरुषार्थ किया था उसका प्राथमिक विवरण इस कृति में है। प्रथम खंड में अफ़्रीकावासी भारतीयों, गिरमिटियों, मज़दूरों की दुर्दशा, बोअर युद्ध, काला क़ानून, स्त्रियों व आठ वर्ष की उम्र से ऊपर के बच्चों के लिए भी अफ़्रीका में रहने के लिए कार्ड बनवाने व हस्ताक्षर या अँगूठे की अनिवार्यता आदि कड़े नियमों का वर्णन है। दूसरे खंड में इनके विरुद्ध आंदोलन, सत्याग्रह, उसकी प्रगति व अंत में विजय तथा नियमादि रद्द किए जाने की घटना वर्णित है। बापू की दृढ़ता, सत्याग्रह की पद्धति, तितिक्षा, सत्य, अहिंसा व उसके सुपरिणाम इस कृति में अंकित हैं।

दत्त, अक्षयकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—*1820 ई०*; मृत्यु—*1886 ई०*]

आधुनिक बँगला साहित्य के उत्थान काल में अक्षयकुमार दत्त ने निबंधकार के रूप में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। साहित्य-जगत् में कवि के रूप में इनका प्रथम आत्मप्रकाश हुआ था। इनका काव्य-ग्रंथ 'अनंगमोहन' 1834 ई० में प्रकाशित हुआ था। गद्यकार के रूप में ये उस समय की विख्यात पत्रिका 'तत्त्वबोधिनी पत्रिका' के माध्यम से उभर कर सामने आए थे। 1843 ई० से लेकर 12 वर्ष तक इन्होंने इसका संपादन किया था। इस पत्रिका में साहित्य, विज्ञान, समाज-नीति, दर्शन आदि विभिन्न विषयों में लिखकर इन्होंने बँगला गद्य को सुप्रतिष्ठित करने की दिशा में महत्वपूर्ण काम किया था।

इनकी प्रकाशित पुस्तकों में 'बाह्य वस्तुर सहित मानव प्रकृतिर संबंध-विचार' (दो खंडों में) 1853 ई० में प्रकाशित हुआ था। तीन खंडों में 'चारुपाठ' (1853-59 ई०) प्रबंधों का संग्रह है। इन प्रबंधों में लेखक की चिंतनधारा की स्पष्टता तथा वैज्ञानिक चेतना एवं व्यक्तित्व की स्पष्ट स्वीकृति मिलती है। 'भारतवर्षीय उपासक संप्रदाय' (1870, 1883 ई०) तथा 'धर्मनीति' (1885 ई०) इनकी दो और प्रसिद्ध पुस्तकें हैं।

अक्षयकुमार की सबसे बडी विशेपता यह रही है कि इन्होंने बँगला गद्य को व्यक्तित्व-विशिष्ट बनाया है। अँग्रेज़ी लेखक एडिसन की शैली से प्रभावित होने पर भी इन्होने शब्द-प्रयोग तथा वाक्य-गठन-रीति मे युक्ति निष्ठ वैज्ञानिक मन का प्रशसनीय परिचय दिया है। इनके निबध-साहित्य का वास्तविक उद्देश्य ज्ञान-प्रचार है और इसमे इन्हे विशेष सफलता मिली है।

दत्त, नीलिमा *(अ० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

जन्म स्थान सिलघाट। इनकी शिक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय मे हुई थी। ये व्यवसाय से प्राध्यापिका हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—'शिशु विकास' (1955), (मनोविज्ञान), 'शिशु आर परिबेश' (1957), 'नारीर मुक्ति' (समाजशास्त्र) (1957)। 'महत लोकर लरालिकाल' (जीवनियाँ) (1956)।

'बछरर कविता—1965' मे इनकी एक कविता 'कापुरुप' सगृहीत है। इससे प्रेरणा मिलती है कि विद्रोही का अन्याय सहना भी अन्याय है। इसकी ख्याति शिशु-मनोविज्ञान-विषयक साहित्य के कारण है।

दत्त, प्रेमनारायण *(अ० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

ये सप्रति उजान बाजार निवासी हैं। य गद्य-लेखक हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—नाटक 'कठरोल' (1950) 'सत्कार' (1956), जासूसी उपन्यास 'दिन डकाइत' (1947), 'राम टाडोन' (1950), सामाजिक उपन्यास 'नियतिर निर्माली' (1955), 'प्रणयर सुंति, प्राणर परश' (1957), 'मुक्तिर पथे दि' (1956), कहानी 'आशीर्वाद' (1950), 'रसर उत्पत्ति' (1951), निबध-सग्रह. 'रस माधुरी' (1959)।

इनकी ख्याति जासूसी उपन्यासकार के रूप मे अधिक है। इन्होने लगभग तीस जासूसी उपन्यास लिखे हैं। 'सत्कार' नाटक व्यग्य-प्रधान है। चरित्राकन और परिस्थिति चित्रण मे अतिरजना है किंतु हास्य के लिए ये तत्त्व आवश्यक हैं। कहानियो मे भी व्यग्य है, सेक्स भी है, किंतु अश्लीलता नही है। 'रस-माधुरी' मे हास्य-निबधो का सग्रह है।

दत्त, भवानंद *(अ० ले०)*

नयी पीढी के इस सशक्त लेखक की असमय मृत्यु हो गई थी। ये जयती युग की नवीन काव्यधारा के मुख्य कवि थे।

प्रकाशित रचनाएँ—'रवींद्र प्रतिभा' (1961)।

इन्होने 'राजपथ', 'पाउदार' आदि कविताओं द्वारा काव्य-जगत मे प्रवेश किया था। इन्होने टूटते हुए समाज की दस्युता, यौन विकार और नैराश्य का चित्रण किया है। इनकी गद्य शैली पुष्ट एव सारगर्भित है।

दत्त, रमेशचद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1848 ई०; मृत्यु—1909 ई०]

प्रख्यात इतिहासवेत्ता तथा साहित्यकार रमेशचद्र दत्त ने अपने युग मे ऐतिहासिक उपन्यास तथा अँग्रेज़ी शोध-ग्रथो की रचना कर भारतीय विद्वन्मडली मे अपना विशेष स्थान बना लिया था। आई० सी० एस० की परीक्षा पास कर इन्होने सम्मान के साथ प्रशासनिक कार्य किया और अवकाश ग्रहण करने के उपरात लदन विश्वविद्यालय मे कई वर्षो तक भारतीय इतिहास के अध्यापन का कार्य भी किया।

उनके उपन्यास 'बगविजेता' (1874) और 'माधवीकंकन' (दे०) (1877) मे इतिहास और गार्हस्थ्य-जीवन का मणिकाचन योग है। 'जीवन प्रभात (1878) तथा 'जीवन सध्या' विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं जो क्रमश महाराष्ट्र तथा राजस्थान के इतिहास मे सबद्ध है। 'ससार' (1886) तथा 'समाज' (1893) उनके सामाजिक उपन्यास हैं।

बंकिमचद्र की प्रेरणा से ही रमेशचद्र दत्त ने उपन्यास लिखना शुरू किया था। बकिम की तरह उनकी कल्पना दीप्त नही थी परतु ऐतिहासिक सत्यनिष्ठा उनमें बकिम से अधिक थी। सामाजिक उपन्यासो मे रमेशचद्र दत्त ने अपार सहानुभूति के साथ ग्राम-जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है। 'समाज' उपन्यास मे लेखक ने विधवा-विवाह का समर्थन किया है परतु यहाँ व उपन्यासकार से अधिक समाज-सस्कारक ही लगते हैं। चरित्रो के प्रति पाठको की सहानुभूति जगाने मे वे सफल नहीं हैं, परिणामत इस प्रकार के विवाह के प्रति दर्शको के मन मे समर्थन पैदा नही कर पाए हैं यद्यपि इसमे उनकी जनप्रियता कम नहीं हुई। बँगला साहित्य मे रमेशचद्र सार्थक

ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में स्मरणीय रहेंगे।

दत्त, सत्येंद्रनाथ *(बँ० लं०)* [जन्म—1882 ई०; मृत्यु—1922 ई०]

रवींद्रनाथ ठाकुर जब बँगला साहित्याकाश में मध्याह्न-सूर्य की तरह दीप्तिमान थे तभी सत्येंद्रनाथ का आविर्भाव हुआ। फिर भी स्वातंत्र्य एवं वैशिष्ट्य की दृष्टि से निस्संदेह ये अपने को सुप्रतिष्ठित कर सके थे।

सत्येंद्रनाथ दत्त का काव्य-जीवन सन् 1900 से लेकर 1922 ई० तक प्रसारित है। इस स्वल्पायु में भी वे महत् प्रतिष्ठा के अधिकारी बने। छंद के जादूगर सत्येंद्रनाथ का प्रथम काव्य-ग्रंथ 'सविता' (1900) है। छंद के वैचित्र्यपूर्ण प्रयोगकर्म के भीतर से इनकी कविसत्ता का प्रस्फुटन होने पर भी उसकी प्रतिष्ठा और विस्तृति का क्षेत्र दूसरा है।

सत्येंद्रनाथ की जीवितावस्था में प्रकाशित ग्रंथों के नाम हैं—'सविता' (1900), 'संधिक्षण' (1905), 'वेणु ओ वीणा' (1906), 'होमशिखा' (1907), 'तीर्थ-सलिल' (1908), 'तीर्थरेणु' (1910), 'फुलेर फसल' (1911), 'कुछ ओ के का' (1912), आदि। कवि की मृत्यु के बाद प्रकाशित ग्रंथों के नाम हैं 'बेला शेषेर गान' (1923), 'विदाय आरति' (1924) एवं 'घूमेर घोयांय' (1929)।

सत्येंद्रनाथ के कवि-चित्त में समग्र भारतवर्ष का एक अपरूप परिचय स्वतः उद्भासित है। भारतवर्ष के अतीत इतिहास की मर्मकथा के जयगान से इनकी कविता मुखरित है। दूसरी ओर दैनंदिन जीवन के तुच्छातितुच्छ विषयों को लेकर भी इन्होंने सफल काव्य का निर्माण किया है। अँग्रेज़ी, फ्रांसीसी, जापानी, जर्मन, फ़ारसी आदि विभिन्न भाषाओं की कविताओं का अनुवाद कर इन्होंने बँगला काव्य के क्षेत्र का विस्तार किया है।

व्यंग्य कविता के क्षेत्र में भी सत्येंद्रनाथ की सफलता असंदिग्ध है। 'सबुजपत्र' (दे०) में श्री नवकुमार कविरत्न के छद्मनाम से इन्होंने बहुत-सी व्यंग्य-कविताओं की रचना की है। व्यंग्य-कविताओं में इनके अश्रुसिक्त मन का परिचय बहुत ही स्पष्ट है।

दत्त, सुधींद्रनाथ *(बँ० लं०)* [जन्म—1901 ई०; मृत्यु—1961 ई०]

आधुनिक युग के बँगला कवि सुधींद्रनाथ दत्त ने मैलार्मे से प्रभावित होकर बँगला काव्य के क्षेत्र में कई नये प्रयोग किए हैं। मैलार्मे एवं उनके अनुगामी प्रूस्त (Proust) के प्रभावस्वरूप इन्होंने अभिजातवादी शिल्पनिष्ठता, संहत स्वल्पभाष, व्यंजनामय प्रकाश-शैली, अतींद्रियता के स्थान पर ऐंद्रिय घनता, व्यक्तिनिष्ठता के साथ निर्वैयक्तिकता एवं प्रेरणा के स्थान पर अभिज्ञता एवं अध्यवसाय एवं सर्वोपरि प्रूस्त के विषण्ण नेतिवादी जीवन-दर्शन एवं कदाचित् उनकी दुरूहता को स्वीकार किया है। परिणामतः इनकी कविता में एक ओर जहाँ आत्मा के वास्तव अस्तित्व को नकारा गया है वहाँ बुद्धि पर कवि की अनास्था, प्रेम की अवास्तविकता एवं इंद्रियग्राह्य अनुभूति को प्रकट किया गया है। इसीलिए इनका काव्य भ्रष्ट आदम का आर्तनाद-सा लगता है। ये स्वर्गच्युत हैं परंतु मर्त्य में विश्वास नहीं, इनमें विवेक है परंतु शांति नहीं, युक्ति है किंतु इनका मन आत्मग्लानि से भरा हुआ है।

इसी मनोभाव की अभिव्यक्ति हुई है इनके काव्य-ग्रंथों में जिनमें उल्लेखनीय हैं : 'अर्केष्ट्रा' (1935), 'क्रंदसी' (1937), 'उत्तरफाल्गुनी' (1940), 'संवर्त' (1953), 'दशमी' (1956)। अंतिम दो काव्य-संग्रहों में इनके जीवन-दर्शन का विवर्तन स्पष्ट है। नेतिवाद के साथ-साथ इनकी कविता में अस्तित्ववाद का आभास भी मिलने लगता है। इसीलिए ध्वंस को अनिवार्य जानते हुए भी कवि का मन पलाश के फूल से मुग्ध है; तटी जलमग्न हो जायेगी, मगर फिर भी मन निरुद्देश्य यात्रा के लिए चंचल है, पृथ्वी को अनाथ जानते हुए भी नये जीवन का स्वप्न जाग उठा है और यद्यपि प्रलय के बादल छा गए हैं फिर भी पंगु पंख उड़ने के लिए व्यग्र हो उठे हैं। कवि की यह स्वकीयता ही उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

दत्तांची कविता *(म० कृ०)*

'दत्तांची कविता' दत्तात्रय कोंडो घाटे (1875-1899 ई०) का काव्य-संग्रह है। घाटे आधुनिक काल के प्रथमोत्थान (1885-1905 ई०) के कवि हैं।

इन्होंने प्रेम, प्रकृति, राष्ट्रभक्ति आदि विषयों पर काव्य-रचना की है। कुछ अँग्रेज़ी कविताओं का अनुवाद भी किया है। इनका महत्व वात्सल्यपूर्ण तथा करुण गीतों की रचना के कारण है। अँग्रेज़ी के पर्याप्त विकसित बाल-साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर इन्होंने अनेक शिशु-गीत लिखे हैं। 'शहाणी बाहुली', 'बोलत कां नाही ?', 'बाललेखन', 'अआई' आदि कविताओं में बाल मनोविज्ञान

के सूक्ष्म अध्ययन का परिचय मिलता है।

'प्रिये कविता सुदरी', 'एक आसन्नमरण दुष्काळ पीडितास', 'मेनकेचे उद्गार' आदि कविताएँ कारुण्य से ओतप्रोत हैं। इनमे कवि का स्वर आर्त्त एव शब्द-योजना आर्द्र है।

इन्होंने लगभग 50 कविताओं के बल पर ही कवि-रूप मे प्रसिद्धि प्राप्त की है।

दधिवाडिया, माधवदास *(हि० ले०)* [जन्म—1553 ई० से 1558 ई० के मध्य, मृत्यु—1633 ई० के लगभग]

इनके पिता का नाम चूँडा जी था। इनका जन्मस्थान जोधपुर-राज्य का बलूँदा ग्राम कहा जाता है। पृथ्वीराज राठौड ने निम्नाकित दोहे मे इनकी प्रशसा की है—

चूँडे चत्रभुज सेवियौ, ततफल लागौ तास।
चारण जीवौ चार जुग, मरौ न माधौदास॥

'रामरासौ' तथा 'भाषा दशम स्कध' नामक इनके प्रसिद्ध ग्रथ हैं। 'रामरासौ' डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) मे लिखित सरस राम-कथा-काव्य है, जिसमे विषय-वर्णन, भाव-व्यजना एव अलकार-योजना-सबधी कई मौलिक उद्-भावनाएँ मिलती हैं।

'दबीर' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1803 ई०, मृत्यु—1875 ई०]

जन्म-स्थान—दिल्ली, नाम—मिर्जा सलामत अली, उपनाम—'दबीर'। दबीर मर्सिया (दे०) (शोक-गीत)-लेखन मे सिद्धहस्त थे। इनको और मीर 'अनीस' (दे०) को मर्सियागोई के क्षेत्र मे आज भी शीर्षस्थान प्राप्त है। इनकी उपमाएँ नवीन, पद-शैया सुव्यवस्थित, भाषा भावानुकूल और कल्पनाएँ उत्कृष्ट हैं परतु शब्दा-लकार के प्रति इनका अत्यधिक मोह दृष्टिगोचर होता है। मर्सियो मे सर्वत्र इनकी प्रतिभा और बौद्धिक उत्कर्ष का परिचय मिलता है।

दमयती *(स० पा०)*

सस्कृत के काव्यात्मक साहित्य मे उपलब्ध नल (दे०) एव दमयती की कहानी भी प्रणय की कहानियो मे अपना अपूर्व स्थान रखती है। दोनो एक-दूसरे को बिना देखे ही हसो के माध्यम से एक-दूसरे के रूप एव गुणो पर मुग्ध हो गए। विदर्भ देश के राजा भीम की पुत्री दमयती अपने समय की सर्वाधिक सुदरी मानी जाती थी। उसने नल को ही अपना पति चुन लिया जबकि उसके चाहने वालो मे से इद्र, यम, वरुण एव कुबेर भी थे।

नल मे अनेक गुणो के साथ एक दोष था—द्यूत-क्रीडा का, जिसमे वह सारा राज्य हार गया। दमयती उसके सँग जगल गई जहाँ नल उसे सोती हुई छोडकर चला गया। विलपती हुई वह पहले तो एक अजगर के चगुल मे फँस गई जिसे मारकर एक व्याध उसके ऊपर हावी हुआ। यह दमयती के चरित्र के ऊपर प्रहार था लेकिन दमयती ने विकराल रूप धारण किया तो वह उसके तेज को सहन न कर सका और तुरत कटे वृक्ष की तरह भूमि पर गिर पडा। बाद मे वह जैसे-तैसे अपने पिता भीम के घर पहुँची।

दमयती का प्रेम इतना उद्दाम था कि नल के बिना उसका वहाँ रहना ही दुष्कर हो गया। अत मे गुप्त-चरो द्वारा यह ज्ञात हुआ कि अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ नल है तो पुन स्वयवर की बदनामी को लेकर भी कम-से-कम समय देकर ऋतुपर्ण को बुलाया गया। दमयती नल के रथ हाँकने की ध्वनि पहचानती थी। वह उसके बनाए भोजन का स्वाद भी नही भूला था और अत मे वह नल को पुन पाकर ही रही।

दमोदर *(प० ले०)* [समय—सोलहवी शती]

पजाबी साहित्य मे किस्सा-काव्यधारा को आरभ करने का श्रेय दमोदर को दिया जाता है। इनकी एकमात्र उपलब्ध रचना 'हीर दमोदर' (दे०) मे चूचक सियाल की पुत्री हीर और हजारा निवासी मौजू के पुत्र राँझा के प्रेम का रसपूर्ण वर्णन है। इस रचना मे कवि ने कुछ आत्म-विषयक सकेत दिए हैं, जिनसे पता चलता है कि वे गुलाटी खत्री थे और कही बाहर से आकर हीर के पिता के नगर मे दुकान करने लगे थे। रचना के अत मे 'पातसाही जो अक्बर सदी दिन दिन चडे सवाए' से अक्बर के शासन की समृद्धि की कामना की गई है। इस आधार पर कवि को अकबरकालीन मानना अधिक तर्कसगत प्रतीत होता है और घटना के प्रत्यक्ष दर्शन की बात कवि-प्रौढोक्ति मात्र स्वीकार करनी पडती है। दमोदर ने भक्ति-भावना से आच्छादित तत्कालीन पजाबी साहित्य म शृगारपरक आख्यान-काव्य की एक नयी प्रवृत्ति का प्रवर्तन किया जो परवर्ती काल मे

सशक्त और जीवंत काव्यधारा के रूप में बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध तक लोकप्रिय रही।

दयाराम *(गु० ले०)* [समय—1776-1888 ई०]

गुजराती के मध्ययुगीन कवियों में अंतिम कवि दयाराम नर्मदा तटवर्ती चाँदोद ग्राम के निवासी थे। दस वर्ष की अवस्था में पिता प्रभुराम भट्ट को और बारह वर्ष की अवस्था में माता को खोकर ये अपनी एक चचेरी बहन के पास रहे थे। उसके स्वर्ग सिधारने पर ये अपने मामा के यहाँ डमोई में आकर रहने लगे थे।

शुद्धाद्वैत का इन्हें अच्छा ज्ञान था। इन्होंने समग्र भारत की तीन बार यात्रा की थी। सात बार ये श्रीनाथ जी गए थे। ये बहुत सुदर्शन थे, रसिक भी। संगीत तथा सुंदर वस्त्र-परिधान का इन्हें बहुत शौक था। ये ब्रज, मारवाड़ी, मराठी, पंजाबी, बिहारी, सिंधी व उर्दू भी जानते थे। ये आजन्म अविवाहित रहे। अपनी मधुर गरबियों के कारण गुजरात के लोक-हृदय में—विशेषतः नारी-हृदय में—इन्होंने अनूठा स्थान प्राप्त किया था।

इनकी रचनाएँ हैं—'रसिक-रंजन', 'भक्ति-विधान', 'सिद्धांत-सार', 'संप्रदाय-सार', 'पुष्टिपथ-सार', 'रसिक-वल्लभ', 'भक्तिपोषण', 'पुष्टिपथ-रहस्य', 'श्रीकृष्ण-नाम-माहात्म्य-मंजरी', 'श्रीकृष्ण-स्तवन-चंद्रिका', 'नाम-प्रभाव बत्रीशी', 'भक्तवेल', चौरासी वैष्णव ना धोळ', 'पुष्टि-भक्त-रूपमालिका', 'श्रीहरि-भक्ति-चंद्रिका', 'ब्राह्मण-भक्त-विवाद', 'मीरां-चरित्र', 'कुँवर बाई नुं मामेरूं', 'रुक्मिणी-विवाह', 'रुक्मिणी-सीमंत', 'सत्यभामा-विवाह', 'नग्न जीती विवाह', 'अजामिलाख्यान', 'भागवतानुक्रमणिका'। 'दयाराम-रससुधा' (दे०) इनके रास, पद, गरबे व गरबियों का संग्रह है। दयाराम की प्रतिभा का सर्वाधिक विकसित रूप इनकी गरबियों में दिखाई पड़ता है। ये गरबियाँ इनकी प्रगीति-रचनाओं का उच्चत्तम रूप हैं। हिंदी में इन्होंने सतसई भी लिखी थी। इनकी माधुर्य-भावना व प्रणय-मस्ती अनूठी है। 'षड्ऋतु वर्णन', 'मनमति संवाद', 'मन प्रबोध', 'चिंता चूर्णिका', 'प्रबोध बावनी' इनकी अन्य रचनाएँ हैं। ब्रजभाषा में रचित इनकी 'वस्तु वृंद दीपिका' भी उल्लेख्य है। गद्य में इन्होंने 'भागवत-सार', 'हरिहर-तारतम्य', 'प्रश्नोत्तर-माला', 'क्लेश-कुठार' रचनाएँ की हैं। मध्ययुगीन प्रतिभाशाली गीतिकार तथा प्रणय-कवि के रूप में इन्हें सदैव याद किया जाएगा।

दयाराम-रस-सुधा *(गु० कृ०)*

स्व० लीलावती बहन सेठ की स्मृति में प्रकाशित तथा श्री शंकरप्रसाद छगनलाल रावल द्वारा संपादित 'दयाराम-रस-सुधा' भक्त कवि दयाराम (दे०)-रचित रास, पद, गरबे व गरबियों का संग्रह है। दयाराम की समस्त रचनाओं में से भाव की पुनरावृत्ति वाले दस-बारह गरबों को छोड़कर शेष सारी रचनाएँ इसमें संकलित हैं। प्रारंभ में चौंसठ पृष्ठ की भूमिका है जिसमें संपादक ने दयाराम का व्यक्तित्व व कृतित्व, पुष्टिमार्गीय भक्ति-तत्त्व, 'गीति' का स्वरूप, गीति की परंपरा, गरबा, गरबी, रास व पद का स्वरूप व विकास, दयाराम की प्रणय-मस्ती, दयाराम का गोपी-भाव, दयाराम की भाषा आदि विषयों पर विस्तृत व विद्वत्तापूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया है।

संग्रह में संकलित रचनाओं में कुछ वियोग-शृंगार-विषयक, कुछ संयोग-शृंगार-संबंधी, कुछ मुरली-संबंधी, कुछ भक्ति-विषयक, कुछ उपदेश-प्रधान, कुछ ज्ञान-मूलक हैं। कुछ में कृष्ण-गोपी-संवाद तथा उत्तर-प्रत्युत्तर हैं। इन रचनाओं में गोपियों का कुब्जा के प्रति कुछ में तो आदर भाव है, कुछ में सौतिया डाह भी। मुरली के प्रति भी गोपियों के अनुकूल-प्रतिकूल मिश्र भाव हैं।

दयाराम का विरह-वर्णन बड़ा मार्मिक है। इनका संयोग शृंगार किंचित् खुला हुआ प्रतीत होता है। संयोग-वियोग दोनों की इनकी रचनाएँ मार्मिक, उद्दात्त व अत्यंत प्रभावशाली हैं। अपनी इन रचनाओं के कारण, विशेषतः अपनी गरबियों के कारण, दयाराम गुजरात के महिला-हृदय का कंठहार बन गए हैं। इनकी भाषा का कुछ जानपदीय तत्त्व भी इष्ट प्रभाव डालने में समर्थ हुआ है। गुजराती के भक्त-कवियों की यशस्वी परंपरा के अंतिम किंतु समर्थ प्रतिनिधि कवि दयाराम की रचनाओं के इस संकलन में दयाराम की प्रणय-मस्ती व गोपी-भाव दृष्टिगत होते हैं। गुजरात की विशिष्ट संस्कृति व रास-साहित्य में इस रस-सुधा का महत्वपूर्ण स्थान है। संग्रह में अंत में 12 पद ब्रजभाषा में रचित हैं।

'दरद', ज्ञानी हीरासिंह *(पं० ले०)*

इनका जन्म रावलपिंडी के घघरोट गाँव में 30 सितंबर, 1889 ई० को हुआ था। बचपन से ही इन्हें कविता लिखने का शौक था। पहले 'दुखिया' उपनाम था लेकिन सन् 1918 में 'दरद' उपनाम से कविता लिखने लगे। इन्हें

उर्दू, फारसी, हिंदी, अंग्रेजी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान है। 1920 ई० में 'अकाली' दैनिक का सपादन किया और तदनतर 1924-56 तक 'फुलवाडी' मासिक का सपादन करते रहे। इनकी 16 मौलिक रचनाएँ—कविता-सग्रह, कहानी-सग्रह, लेख आदि—प्रकाशित हुई हैं। 'दरद सुनेहे', 'चौणवें दरद सुनेहे', 'किसानदीआ आही', 'पजाबी सधर', 'अजभूमि ते मलाया दी यात्रा' आदि इनकी मुख्य रचनाएँ हैं जिनका मूल स्वर यथार्थवादी एव प्रगतिशील रहा है। सन् 1957 में इन्होंने 'केंद्रीय पजाबी लेखक-सभा' का सगठन किया और कुछ समय तक 'पजाब साहित एकादमी' से भी सबद्ध रहे। पजाबी साहित्य में पत्रकार, कवि एव गद्यकार के रूप में ज्ञानी हीरासिंह 'दरद' का विशिष्ट स्थान है।

दरबार-ए-अकबरी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1882-83 ई०]

'दरबार-ए-अकबरी' मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आजाद' (दे०) की रचना है। इस कृति में अकबर बादशाह के निजी दरबार और शासन के तथा विशेष अधिकारियों, मन्त्रियों, धर्म-प्रचारकों एव सामतों के वृत्तात शब्द-बद्ध हैं। इस पर मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूँनी की 'मुतखिब तवारीख' का विशेष प्रभाव लक्षित होता है।

'दरबार-ए-अकबरी' आजाद के गद्य का अत्यत रोचक नमूना है। लेखक ने इस इतिहास-ग्रथ में साहित्यिकता का पुट देकर इसे आकर्षक बना दिया है। इतिहास में उपन्यास की रोचकता उत्पन्न करना आजाद का ही कमाल है। इस कृति से साहित्यकार आजाद एक सफल इतिहासकार के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

दरिया-ए-लताफत *(उर्दू० कृ०)* [रचना काल—1808 ई०]

लेखक मीर इशा अल्लाह खाँ 'इशा' (दे०)। उर्दू भाषा शास्त्र, व्याकरण, निबध मुहावरे और लोकोक्तियों पर लिखी गई यह पहली महत्वपूर्ण पुस्तक है। इसके लेखक 'इशा' साहब उर्दू के सुप्रसिद्ध और समर्थ कवि होने के अतिरिक्त अरबी, फारसी और हिंदी से भी भली प्रकार परिचित थे। इस कृति के दो भाग हैं। प्रथम भाग में उर्दू भाषाशास्त्र और व्याकरण आदि का निरूपण है और द्वितीय भाग में तर्कशास्त्र, छद और अलकार आदि का वर्णन है। प्रथम भाग के लेखक 'इशा' और द्वितीय भाग के लेखक मिर्जा मुहम्मद अहसन 'कतील' हैं। कृति का पूर्वार्ध अर्थात् प्रथम भाग अत्यत महत्वपूर्ण और स्थायी मूल्य का है। सैयद इशा ने उर्दू के अन्य वैयाकरणों की तरह अरबी और फारसी का अधानुसरण नहीं किया। भाषा को उसके वास्तविक सास्कृतिक, सामाजिक और स्वाभाविक परिवेश में देखते हुए उसके लिए नियमों और उपनियमों का विधान किया है। लेखक का स्वतत्र दृष्टिकोण उसकी कृति की स्थायी गरिमा को बनाए हुए है। आधुनिक युग तक आते-आते एतत्सबधी जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं, उनमें से कोई भी 'इशा' की इस कृति के स्तर की नहीं है। लेखक का मौलिक चिंतन और अनुसधानात्मक वैज्ञानिक दृष्टिकोण कृति में सर्वत्र द्रष्टव्य है।

'दर्द' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1719 ई०, मृत्यु—1785 ई०]

नाम—सैयद ख्वाजा मीर, उपनाम—'दर्द', जन्म स्थान—दिल्ली। इनके पिता 'अदलीब' उपनाम से काव्य-साधना करते थे। अपने पिता के अनुकरण पर इन्होंने अध्यात्मपरक सूफी-काव्य का प्रणयन किया था। इनकी कविताओं का सकलन फारसी में और दूसरा उर्दू में 'दीवान-ए दर्द' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इनके अतिरिक्त 'नाला-ए-दर्द', 'दर्द-ए-दिल' और 'वारदाल-ए-दर्द' भी इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। गद्य-रचना भी इन्होंने की है। इनका काव्य सूफी मान्यताओं से ओत-प्रोत है। गजलों में प्रेम की पीर का सजीव चित्रण हुआ है।

'दर्शक', मनुभाई पचोली *(गु० ले०)*

मनुभाई पचोली का जन्म सौराष्ट्र में 1904 ई० में हुआ था। इन्होंने गुजरात विद्यापीठ में शिक्षा ग्रहण की और प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री नानाभाई भट्ट के सहयोगी बन कर ये ग्राम दक्षिणामूर्ति में अध्यापन और सस्था-सचालन का कार्य करने लगे। इसी के साथ 'दर्शक' उपनाम से साहित्य-सृष्टि करने लगे। इन पर महात्मा गांधी (दे०) के व्यक्तित्व और विचारों का विशेष प्रभाव पड़ा है। बाद मनुभाई ग्राम विद्यापीठ सणोसरा के नियामक एव आचार्य के रूप में कार्य करते रहे और राजनीति-क्षेत्र में भी सक्रिय रहे।

दर्शक इतिहास, सस्कृति, राजनीति और साहित्य के गभीर अध्येता हैं। 'वे विचारधाराओ', 'इतिहास कथाओ' 'त्रिवेणी तीर्थ', 'आपणो वैभव अने वारसो', 'वागीश्वरीना

कर्णफूलो' (दे०) इत्यादि ग्रंथों में इनके स्वतंत्र-मौलिक चिंतन, पैनी दृष्टि तथा गहरे अध्ययन का सहज ही परिचय प्राप्त होता है।

'दर्शक' एक यशस्वी उपन्यासकार हैं। यद्यपि इन्होंने पाँच उपन्यासों की रचना की है, पर उनमें विशेष उल्लेखनीय दो हैं : 'झेर तो पीधा छे जाणी जाणी' (दे०) और 'दीप-निर्वाण'। इन उपन्यासों पर भगवान बुद्ध के लोकमंगलकारी आदर्श और करुणा-भावना का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। दर्शक सिद्धहस्त कलाकार हैं और इनकी अनेक कृतियों में इसके प्रमाण मिलते हैं।

दर्शन अने चिंतन *(गु० कृ०)*

'दर्शन अने चिंतन' पंडित सुखलाल जी (दे०) के गुजराती लेखों का संग्रह है। दो भागों में प्रकाशित यह ग्रंथ 1957 ई० में पंडित सुखलाल-सम्मान-समिति, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद से प्रकाशित किया गया। संपादक हैं : सर्वश्री दलसुखभाई मालवणिया, पं० बेचरदास जीवराज दोशी, रसिकलाल छोटालाल पारीख (दे०), चुनीलाल वर्धमान शाह (दे०) तथा बालाभाई वीरचंद देसाई। प्रस्तुत ग्रंथ में पंडित जी के 'समाज और धर्म', 'जैन धर्म और दर्शन' तथा 'परिशीलन' नामक शीर्षकों के अंतर्गत अनेक निबंध संकलित हैं। ये सभी लेख समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं अथवा भाषण के रूप में जनता के समक्ष आ चुके हैं। इनके सभी धार्मिक लेखों का एक ही रहस्य है : बुद्धि तथा शुद्ध श्रद्धा से समन्वित सुसंवादी धार्मिक समाज की रचना; निवृत्ति तथा प्रवृत्ति का समन्वय ही वास्तविक धर्म है; बाह्य आचारों की उपयोगिता हृदय की शुद्धि के लिए ही है अन्यथा ये सभी कुछ प्रपंच हैं। दर्शन के क्षेत्र में भी पंडित जी की दृष्टि समन्वयवादी रही है, आग्रह कहीं भी नहीं है। सांप्रदायिक दृष्टि से मुक्त होकर पंडित जी ने जैन धर्म की विशेषताओं का उद्घाटन किया है और साथ ही अन्य दर्शनों की अवधारणाओं से उसकी तुलना की है। यही कारण है कि उनमें नवीन दृष्टि प्राप्त होती है। जैन धर्म को केंद्र में रख कर लिखे गए लेखों के अतिरिक्त कुछ फुटकर लेख 'परिशीलन' के अंतर्गत सामाजिक हैं। इन लेखों में भी 'हिंदी संस्कृति अने अहिंसा', 'तथागतनी विशिष्टतानो मर्म', 'मध्यम मार्ग : श्रद्धा ने मेधानो समन्वय' तथा 'हिंसानी एक आडकतरी प्रतिष्ठा' नामक लेखों में उक्त तथ्य ही उजागर होता है। पंडित जी की लेखन-शैली पूर्णतः स्वच्छ है; वे प्रमेयगत समस्याओं को बड़ी स्पष्टता से उठाते हैं, उनका सही विश्लेषण करते हैं और सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक समाधान की चर्चा करते हैं। भाषा स्पष्ट, सरल और वस्तुपरक है। गुजराती भाषा में जैन धर्म को लेकर जो कुछ लिखा गया है, उसके मूल में एक सांप्रदायिक दृष्टि रही है पर पंडित जी की अनाविल बुद्धि ने उसे तटस्थ भाव से देखने की दृष्टि दी है। यही प्रस्तुत लेखों की उपलब्धि कही जा सकती है। इस रूप में 'दर्शन अने चिंतन' केवल गुजराती भाषा के लिए ही नहीं अपितु जैन और जैनेतर धर्मों के लिए भी एक संग्रहणीय ग्रंथ है।

दर्शनिका *(गु० कृ०)*

पारसी जाति के जिन थोड़े से कवियों ने शुद्ध और शिष्ट गुजराती भाषा में साहित्य-रचना की है उनमें अरदेशर फ़रामजी खबरदार (दे०) 'अदल' (1881-1953) का स्थान सर्वोच्च है। खबरदार ने कई विषयों की कविताएँ रची हैं। 'दर्शनिका' उन्हीं का (छह हज़ार पंक्तियों का) सुदीर्घ काव्य-संग्रह है जिनमें धर्म, कविता और दर्शन का सम्मिश्रण है। जीवन, जगत, मृत्यु, आत्मा, परमात्मा आदि के मूलभूत प्रश्नों को इसमें कवि-दृष्टि से उठाया गया है और उनका समाधान प्रस्तुत किया गया है। खबरदार स्वयं जरथुस्त धर्म के अनुयायी थे, पर इस कृति में उन्होंने कर्म, पुनर्जन्म, प्रभुकृपा, ईश्वरीय मंगलमय योजना आदि हिंदू धर्म की मान्यताओं को एक भक्त के रूप में श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रस्तुत किया है। इसी के साथ विश्व की भव्यता, विशालता, गहनता तथा सर्वत्र प्रसारित प्रेम की प्रसन्नता को भी शब्दबद्ध किया गया है। 'दर्शनिका' की कविताओं का विभाजन 'जीवन-अस्थिरता', 'मृत्युनुं नृत्य', 'जीवनानुं गान' प्रभृति विभागों में किया गया है। पर इसकी सारी कविताएँ स्वतःपूर्ण प्रगीत-काव्य ही हैं। कवि ने आध्यात्मिकता और परमात्मा की रहस्यमयता को रूपकों तथा प्रतीकों द्वारा रूपायित किया है। मानव-जीवन की दारुण वेदनाएँ, उनके घात-प्रतिघात, मृत्यु की मर्मांतक पीड़ा इत्यादि को व्यावहारिक दर्शन के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। विषय की गंभीरता और गहनता के बावजूद 'दर्शनिका' का काव्य नीरस, क्लिष्ट या भारी-भरकम नहीं है। उसमें प्रासादिकता है और सरलता एवं स्वाभाविकता है। कहीं-कहीं कवि उपदेशक का रूप ग्रहण कर लेता है और कुछ कविताओं में पुनरुक्ति-दोष पाया जाता है। कहीं-कहीं अभिव्यक्ति गद्यात्मक और तुकबंदी-सी है।

इन थोडे-से दोषो के होते हुए भी 'दर्शनिका' दर्शन की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का सराहनीय प्रयत्न है।

दलपत काव्य *(गु० कृ०)*

आधुनिक गुजराती कविता के आदि प्रणेता कविवर दलपतराम (दे०) डाह्याभाई की प्राय अधिकाश रचनाएँ 'दलपत-काव्य' भाग 1 और 2 मे सकलित हैं। गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी ने दलपत काव्य का प्रथम सस्करण 1879 ई० में प्रकाशित किया था। दूसरा सस्करण दो भागो मे प्रकाशित किया गया था।

दलपत-काव्य के प्रथम भाग (776 पृष्ठ) मे प्रथम प्रकरण मे मगलाचरण, ग्रथ-प्रयोजन, गुजराती भाषा की महिमा, नवरस आदि-विषयक कविताएँ हैं। इस ग्रश मे कमलबध, कदली-प्रबध, छत्रक प्रबध दर्पण-प्रबध, गोमूत्रिका, अश्वगति-प्रबध, कपाट-प्रबध चोक प्रबध गतागत स्वस्तिक-प्रबध आदि चित्रकाव्य प्रयोग हैं। दूसरे प्रकरण की अधिकाश रचनाएँ प्रकृति-वर्णन विषयक हैं। तीसरे प्रकरण की बहुत-सी रचनाएँ ईश्वर विषयक है। चौथे प्रकरण मे विविध विषयो की रचनाएँ हैं। कहीं-कहीं अलकारो का सोदाहरण काव्यमय लक्षण विवेचन भी पाया जाता है। पाँचवें प्रकरण मे हस-शतक तथा अन्य कविताएँ सकलित हैं। इन कविताओ के विषय हैं—अभिमान लोभ कजूसी, उद्योग, नसीब आदि। छठे प्रकरण मे लोभ, व्यभिचार, दुर्जन, सज्जन, नम्रता, सद्गुण, दुर्गुण तथा सहोक्ति, व्याघात, विरोधाभास आदि अलकारो पर कविताएँ हैं। सातवें प्रकरण मे विविध विषयो पर रचित गरबियाँ व कच्छ गरबावली सकलित है।

दूसरे भाग के प्रथम प्रकरण मे अँग्रेजी राज्य की प्रशसा, रानी विक्टोरिया, प्रिंस ऑफ वेल्स, लाड मेयो की मृत्यु आदि पर कविताएँ हैं। दूसरे प्रकरण मे पडित मित्र, मूर्ख मित्र, पतिव्रता स्त्री, मरणोत्तर रोना-पीटना, आदि कुछ सुधारवादी रचनाएँ सकलित हैं।

तीसरे प्रकरण मे कवि मित्र फार्बस के निधन पर शोकगीत हैं। चौथे प्रकरण मे लक्ष्मी, राजनीति, हिम्मत रिश्वत आदि से सबधित कविताएँ, पाँचवें प्रकरण मे समस्या पूर्तियाँ, वक्रोक्ति, विरोधाभास आदि अलकार-सबधी रचनाएँ तथा छठे मे वेन चरित्र, सातवें मे विशिष्ट व्यक्तियो की प्रशस्तियाँ और आठवें प्रकरण मे होप वाचनमाला सग्रथित है।

दोनो भागो की सकलित रचनाएँ दलपतराम की काव्य प्रतिभा की परिचायक हैं। इन रचनाओ का ऐतिहासिक महत्व है। काव्य रूपो व प्रयोगो की दृष्टि से भी ये रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। विषय-वैविध्य तथा समसामयिक जीवन के विचार से ये रचनाएँ उत्तम अभिलेख भी हैं। कविवर के असाधारण छद-प्रभुत्व तथा अलकार-ज्ञान का भी परिचय इन रचनाओ मे हमे मिल जाता है।

दलपतराम *(गु० ले०)* [जन्म—1820 ई०, मृत्यु—*1898 ई०*]

दलपतराम का जन्म वढवाण (सौराष्ट्र) के 'डाह्या वेदिया' के नाम से प्रसिद्ध डाह्याभाई त्रवाडी के घर हुआ था। अपने पिता की यज्ञशाला से विद्या आरभ कर दलपतराम ने भावजी पड्या की पाठशाला मे शिक्षा पूर्ण की। इनके जीवन के सबसे महत्वपूर्ण प्रसग हैं: स्वामिनारायण सप्रदाय मे दीक्षा, अलेक्जेंडर किन्लाक फार्बस से सपर्क तथा गुजराती वर्नाक्यूलर सोसाइटी के तत्कालीन मत्री मि० कर्टिस से भेंट। परिणामस्वरूप इन्होंने धर्मदीक्षा के साथ काव्य-शिक्षा भी ग्रहण की, 'कवीश्वर' की उपाधि *प्राप्त की तथा सरकारी नौकरी छोडकर गुजराती भाषा* और साहित्य की सेवा का व्रत लिया। दलपतराम स्वभाव से सरल, विनोदी व सौम्य प्रकृति के व्यक्ति थे।

दलपतराम ने गद्य मे 'भूत निबध', 'ज्ञाति-निबध', 'बाल विवाह निबध' तथा 'लक्ष्मी' व 'मिथ्याभिमान' (दे०) नामक नाटको की रचना की। इनकी प्रसिद्धि का कारण इनका पद्य साहित्य ही है, गद्य-साहित्य नही। 'दलपत-काव्य' (भाग 1, 2), 'काव्यदोहन' (ग्रथ 1, 2), 'श्रावण सतसई', 'कथन सप्तशती', 'दलपत पिंगल' और 'हरिलीलामृत' नामक काव्य-ग्रथ हैं। दलपत की कविता की मूल प्रवृत्ति शिवोन्मुखी रही है। इनकी दृष्टि मे नैतिक मानदड ही काव्य के मानदड हैं। परिणामत दलपत की कविता आत्माभिव्यक्ति की कविता नही है, उसका मूलाधार व्यवहारनिष्ठता है। 'फार्बस विरह' नामक शोकगीत को केवल इसका अपवाद ही माना जाना चाहिए। गुजराती साहित्य के मध्यकाल और आधुनिक काल के सधिस्थल पर अवतीर्ण होने के कारण यद्यपि इनके काव्य मे आत्मनिष्ठता का सर्वथा अभाव है पर शैली की ऋजुता, भाषा की सरलता, छद शास्त्र पर अद्भुत अधिकार तथा अलकारशास्त्र की गहरी पकड आदि गुण इनके कवि-सामर्थ्य को प्रमाणित करते हैं। यह बात दूसरी है कि समय के प्रवाह मे इनकी कविता पुरानी और कवित्वहीन प्रतीत हो

पर जनप्रिय कथन-शैली की भंगिमा के कारण वह सदा अनुकरणीय रहेगी।

दलपत-विजय *(हिं० ले०)*

इनका कृतित्व-काल सामान्यतः 1673 ई० से 1703 ई० तक माना गया है। ये शांतिविजय नामक जैन साधु के शिष्य थे। इनके लिखे 'खुम्माणरासो' (दे०) नामक प्रसिद्ध काव्य को पं० रामचंद्र शुक्ल (दे०) आदि विद्वानों ने वीरगाथा-काल की रचना माना था, किंतु नवीन शोध के फलस्वरूप यह ग्रंथ सत्रहवीं शताब्दी की रचना सिद्ध हुआ है। इस ग्रंथ में बाप्पा रावल से महाराणा राजसिंह तक के जीवन का वृत्तांत मिलता है। दलपत डिंगल भाषा के सहज प्रवाहपूर्ण रूप के पोषक भावुक कवि थे। उनमें विविध प्रकार के वर्णन करने की अद्भुत क्षमता थी।

दलपतिराइ *(सिं० ले०)*

भाई दलपतिराइ सिंध के प्रसिद्ध वेदांतमार्गी कवि हैं। इनके जन्म और देहावसान का समय अज्ञात है, परंतु इतना निश्चित है कि ये अठारहवीं शती ई० के उत्तरार्ध और उन्नीसवीं शती ई० के पूर्वार्ध में जीवित थे। इनका जन्म सिंध के सेव्हण नामक शहर में हुआ था। ये सरकारी नौकरी के कारण बाद में हैदराबाद सिंध में गए थे जहाँ प्रसिद्ध संत कवि भाई आसूरदास के ज्ञान और व्यक्तित्व से प्रभावित होने के कारण उनके शिष्य बन गए थे। गुरु की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने हैदराबाद में एक मंदिर की स्थापना की थी, जो 'भाई दलपतिराइ जो ठिकाणों' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनकी वाणी के दो संस्करण अधिक प्रसिद्ध हैं, एक के संपादक हैं प्राध्यापक ठक्कुर और दूसरे के संपादक हैं गिदूमल हरजाणी। भाई दलपतिराइ की वाणी सिंधी, सिराइकी (सिंधी की उपभाषा) और हिंदी में है। इनकी वाणी में वेदांत और सूफी मत के सिद्धांतों का सुंदर संगम मिलता है।

दलूराइ *(सिं० पा०)*

सिंध में एक लोककथा प्रसिद्ध है जिसका नायक है राजा दलूराइ। इसके दुष्ट स्वभाव और कुकर्मों के कारण इसका राज्य प्राकृतिक प्रकोपों से नष्ट हो गया था। कहा जाता है कि राजा दलूराइ दसवीं या ग्यारहवीं शती ई० में सिंध के एक भाग पर राज्य करता था। यह इतना व्यभिचारी था कि इसने क़ानून बना लिया था कि इसके राज्य में जिस कुमारी का विवाह होगा वह पहली रात इसके पास लाई जाएगी। इस कुकर्म के कारण एक रात को आँधी आई, मूसलाधार वर्षा हुई, भूकंप आया और इस पापी का राज्य ध्वस्त हो गया जिससे यह स्वयं भी मिट्टी में मिल गया। सिंधु नदी जो पहले इसके राज्य से बहती थी, वह भी दूर हट गई। इस दंतकथा के आधार पर 1944 ई० में सिंध के प्रसिद्ध लेखक और कवि निर्मलदास फ़तहचंद ने एक ऐतिहासिक उपन्यास 'दलूराइ जी नगरी' लिखा था। दलूराइ अभी तक सिंधी जनता के स्मृतिपटल पर छाया हुआ है।

दवे, जुगतराम *(गु० ले०)*

जुगतराम (चिमनलाल) दवे का जन्म सौराष्ट्र के वढवाण नामक स्थान पर हुआ था और शिक्षा वढवाण, ध्रांगध्रा और बंबई में हुई थी। इनके विचारों पर गांधी जी (दे०) और रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) का गहरा प्रभाव पड़ा था। इन्होंने अपना जीवन देश-सेवा और शिक्षा के कार्यों के लिए समर्पित कर दिया था। 1922-23 ई० के आंदोलन के समय जब देश के सभी प्रतिष्ठित नेता जेल जा चुके थे उस समय 'नवजीवन', 'यंग इंडिया' का संपादन-भार इन्होंने ही सँभाला था। इनकी मुख्य रचनाएँ हैं : 'चालण गाडी', 'विद्यापीठ वाचनमाला' (पाठ्य पुस्तकें), 'कौशिकाख्यान' (काव्य), 'आंधलानुं गाडुं' (नाटक), 'गांधीजी' और 'भारत-सेवक गोखले' (शब्द-चित्र और जीवन-चरित्र), 'चणीबोर', 'रायण', 'ग्राम-भजन-मंडली' (संपादित गीत-संग्रह)। इन रचनाओं को देखने से स्पष्टतः यह बोध हो जाता है कि जुगतराम दवे की बाल-साहित्य और बाल-शिक्षा में अधिक रुचि थी। गांधी आश्रम में रह कर इन्होंने यही काम सफलतापूर्वक किया।

दवे, ज्योतींद्र *(गु० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

हास्य रस के गुजराती लेखकों में ज्योतींद्र दवे शीर्षस्थ हैं। गत पचास वर्षों से ये व्यंग्य-विनोद-युक्त और दंशमुक्त निबंध लिख रहे हैं जिनमें नाना विषयों का समावेश हुआ है। इनके हास्यपूर्ण निबंधों में कहीं भी अश्लीलता, अभद्रता या अस्वाभाविकता नहीं दिखाई पड़ती।

सर्वत्र जीवन के प्रति स्वस्थ स्वच्छ दृष्टिकोण पाया जाता है। 'रगतरग', भाग 1-6, 'मारी नोधपोथी', 'अल्पात्मानु आत्मपुराण', 'हास्य तरग', 'ज्या त्या पडे नजर मारी' (दे०) इत्यादि हास्यमूलक निबध-सग्रहो के लेखक ज्योतीद्र दवे अपने निबधो मे असाधारण बुद्धि-चातुर्य और अतर्दृष्टि द्वारा नितात साधारण, महत्वहीन वस्तुओं को महिमा-मडित कर गभीर हास्य की सृष्टि करते हैं। किसी क्षुद्र प्रसग या नगण्य परिस्थिति को उल्टी सीधी दलीलो और तर्क-वितर्क द्वारा भव्य रूप देने मे ये सिद्धहस्त हैं। व्यजना, लक्षणा, श्लेष आदि का प्रयोग कर हास्य की सृष्टि करते हैं और पाठको के चित्त पर अभीष्ट प्रभाव पैदा करते हैं। इनकी भाषा-शैली विषयानुकूल होती है।

ज्योतीद्र दवे गुजराती के प्राध्यापक एव आलोचक भी हैं। नाट्यशास्त्र के वे माने हुए विद्वान है। इनकी वक्तृत्व-कला भी बडी लाक्षणिक है जिसमे सदैव हास-उपहास एव व्यग्य विनोद का पुट रहता है।

दवे, मकरद *(गु० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

आधुनिक युग के अध्यात्मवादी कवि। इनके दो काव्य सग्रह प्रकाशित हुए हैं—'गोरज' और 'सज्ञा'। इन्होंने अपनी कविता मे आज की राजनीति पर कटाक्ष किया है और आज जो विषाद, अवसाद, बिखराव वगैरह जन जीवन मे व्याप्त हैं, उनका चित्र भी खीचा है। इनकी काव्य-शक्ति का माधुर्य तो इनके भजनो मे निहित है। इन्होंने लोकगीतो की काव्य शैली अपनाई है और उस शैली मे इन्हे पूरी सफलता प्राप्त हुई है। काव्य के अतिरिक्त इन्होंने अपने आध्यात्मिक अनुभवो पर भी दो पुस्तकें लिखी हैं। इनकी कविता विशेष रूप से भक्ति प्रधान है।

दशकुमारचरित *(स० कृ०)*

इस गद्यकाव्य के रचयिता दडी (दे०) हैं। इसमें दस कुमारो की साहसपूर्ण विजय-यात्रा की गाथा अत्यत सजीव, ललित और रोचक शैली मे प्रस्तुत की गई है। इसी ग्रथ के कारण दडी को सस्कृत के परिष्कृत गद्य का जन्मदाता माना जाता है। इसमे श्रृगार और हास्य, करुण और भयानक जैसे मित्र तथा अमित्र रसो का अद्भुत मिश्रण है। दडी वैदर्भी रीति के कवि है, अतएव इस ग्रथ मे माधुर्य और प्रसाद गुणो की अदभुत छटा है। अलकारो का निपुण प्रयोग दडी की एक अन्य विशेषता है। राजनीति तथा अन्य कठिन विषयो को इस ग्रथ मे सरल तथा प्राजल भाषा मे प्रस्तुत किया गया है। इसमे वाक्य छोटे छोटे हैं जो कि ललित पदो मे रचित हैं। दडी इसे लिखते समय इस तथ्य के प्रति सदा जागरूक रहे हैं कि वे एक कथा लिख रहे हैं, जिसमे भाषा सहज, स्वाभाविक, प्राजल, अक्लिष्ट और मनोरम होनी चाहिए। यही कारण है कि उनकी भाषा दो अन्य गद्यकाव्यकारो—सुबधु (दे०) और बाण (दे०)—की तुलना मे कही अधिक उपादेय एव अनुकरणीय है। इसके अतिरिक्त दडी कल्पना के भी धनी है। ग्रथ की कल्पित कथा का सरस और अजस्र प्रवाह इस तथ्य का प्रबल प्रमाण है। इस ग्रथ की अन्य विशेषता है कि इसमे असयम और उच्छृखलता के मार्ग के स्थान पर स्वस्थ और स्वच्छ पथ का अनुगमन करते हुए कथा को आगे पढने की उत्सुकता बनी रहती है। दडी ने इसमे प्रकृति का वर्णन किया है, पर उसे इतना अधिक लबा नही होने दिया गया कि कथा-प्रवाह मे व्याघात पडे।

दशम ग्रथ *(प० कृ०)* [सपादन-काल—1718 ई०]

गुरु गोविंदसिंह (दे०) की हिंदी (ब्रज), पजाबी और फारसी की विविध रचनाओ का सग्रह 'दशम ग्रथ' अथवा 'दसवें पातशाह का ग्रथ' कहलाता है। इस ग्रथ का सपादन-सकलन गुरु गोविंदसिंह के देहावसान के लगभग दस वर्ष पश्चात उनके निकटस्थ शिष्य और लिपिक भाई मनीसिंह ने किया था।

दशम ग्रथ मे जो रचनाएँ सगृहीत हैं उनका क्रम इस प्रकार है—जापु, अकाल उसतति (अकाल-स्तुति), बचित्र नाटक (विचित्र नाटक), चडी चरित्र (उक्ति बिलास), चडी चरित्र (दूजा), वार भगउती जी की (पजाबी), ज्ञान प्रबोध, चौबीस अवतार, महँदी मीर, ब्रह्मा अवतार, रुद्र अवतार, स्फुट पद, शस्त्र-नाम माला, उपाख्यान-चरित्र, जफरनामा (फारसी), हिदायतें (फारसी)।

दशम ग्रथ की प्रकाशित प्रतियाँ अभी तक केवल गुरुमुखी लिपि मे ही उपलब्ध हैं। मुद्रित पृष्ठो की सख्या 1428 है जिसमे पजाबी और फारसी की रचनाएँ मात्र 50 पृष्ठो मे ही सीमित हैं।

'दशम ग्रथ' बहुमुखी वैविध्य से मडित एक विशालकाय रचना है जिस प्रतिपाद्य और प्रतिपादन-शैली की दृष्टि से प्राय पुराण कहा जा सकता है। इसमे वैष्णव, शैव, शाक्त आदि अनेक सम्प्रदायो मे सबधित देवी-देवताओ की यशोगाथा का वर्णन है। सत्रहवी शती तक प्रचलित

सभी काव्य-शैलियों (पद्धटिका शैली, पदशैली, दोहा-चौपाई शैली, कवित्त-सवैया शैली) के अतिरिक्त कई अन्य शैलियों के दर्शन भी इस महाग्रंथ में होते हैं जिनमें जाप-शैली, वार-शैली और रेखता-शैली विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

रस की दृष्टि से 'दशम ग्रंथ' मुख्यतः वीररस-प्रधान काव्य है। अधिकांश अवतार-कथाओं का वर्णन भी युद्ध-भावना की व्याप्ति के लिए हुआ है; इसलिए उनमें प्रायः कथा-सूत्र की एकता नहीं है।

'दशम ग्रंथ' के कर्तृत्व के संबंध में पिछले तीन-चार दशकों में विद्वानों में बड़ा मतभेद रहा है। अनेक विद्वान (कनिंघम डा० गोकुलचंद्र नारंग, डा० इंदुभूषण बनर्जी, डा० रतनसिंह जग्गी, प्रभृति) दशम ग्रंथ का एक अंश गुरु गोविंदसिंह द्वारा तथा शेष उनके दरबारी कवियों द्वारा रचित मानते हैं। परंतु पिछले दो दशकों में दशम ग्रंथ का जो अध्ययन किया गया है, उसके आधार पर विद्वानों ने संपूर्ण दशम ग्रंथ को गुरु गोविंदसिंह-विरचित घोषित किया है।

दशरथ *(सं० पा०)*

ये अयोध्या के राजा थे तथा प्रख्यात महापुरुष रामचंद्र (दे० राम) के पिता थे। ये सूर्यवंशी अथवा इक्ष्वाकुवंशी थे। इनके पिता का नाम अज था। ये अतिरथी, यज्ञ करने वाले धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी (दे०)—ये उनकी तीन रानियाँ थीं। पुत्रकामेष्टि यज्ञ द्वारा इन रानियों से चार पुत्रों की उत्पत्ति हुई—राम, लक्ष्मण (दे०), भरत और शत्रुघ्न। दशरथ की एक पुत्री भी थी—शांता। पूर्ण वृद्ध हो जाने पर जब दशरथ कौशल्या-पुत्र राम को युवराज बनाने लगे तो कैकेयी ने इसका विरोध किया कि दशरथ ने विवाह के समय कैकेयी के पिता से यह प्रण किया था कि कैकेयी का पुत्र ही युवराज बनेगा। इसके अतिरिक्त एक बार दशरथ ने कैकेयी को दो वर माँगने को कहा था (दे० 'कैकेयी') तो इस अवसर पर कैकेयी ने राम के लिए वनवास और भरत के लिए राज्य—ये दो वर माँगे। परिणामतः भरत अनिच्छापूर्वक राजगद्दी पर बैठे और राम के साथ लक्ष्मण और सीता भी वन को चले गए, और उनके विरह-शोक में दशरथ की मृत्यु हो गई।

दशरूपक *(सं० कृ०)* [समय—दसवीं शती का अंत]

नाट्यशास्त्र के इतिहास में धनंजय (दे०) का 'दशरूपक' एक विशिष्ट ग्रंथ है। भरत (दे०) के नाट्यशास्त्र' (दे०) के रूपक-विषयक सिद्धांतों का संक्षिप्त किंतु सर्वांगीण विवेचन इनकी विशेषता है। यह ग्रंथ बाद के नाट्यशास्त्र तथा रसशास्त्र के अनेक ग्रंथों का उपजीव्य रहा है। 'दशरूपक' की रचना मुंज के राज्यकाल में (974 से 994 ई० के बीच) हुई थी।

इस ग्रंथ में चार प्रकाश तथा 300 कारिकाएँ हैं। इन कारिकाओं पर धनिक ने 'अवलोक' नामक टीका लिखी तथा 'काव्यनिर्णय' नामक एक अलंकार-ग्रंथ की भी रचना की।

दशरूपककार का प्रमुख उद्देश्य वस्तु, नेता और रस का विश्लेषण है। रसनिष्पत्ति के विषय में वे भट्ट-नायक (दे०) के अनुयायी हैं, किंतु कुछ अंशों में श्री शंकुक (दे०) के मत से भी प्रभावित हैं। वे ध्वनिवाद का खंडन करते हैं और व्यंजना को तात्पर्यवृत्ति से भिन्न नहीं मानते। उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' में शांतरस का भी विरोध किया है। दृश्यकाव्य-विवेचन की दृष्टि से दशरूपक का महत्वपूर्ण स्थान है।

दसतक *(पं० कृ०)*

कवि एस० एस० मीशा (दे०) का यह दूसरा कविता-संग्रह है। इससे पूर्व उनकी कृति 'चुरस्ता' (दे०) प्रकाशित हो चुकी थी। इन कविताओं की रचना-रूपविधि पूर्वनिश्चित-सी प्रतीत होती है। इस विधि की विशेषता उसकी व्यंग्य-प्रवणता में है। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ एक निबंध के समान तर्कपूर्ण हैं; इसीलिए वे काव्य की अपेक्षा 'कथन' के अधिक समीप हैं। परंतु कवि कथन को वक्रोक्ति के संस्पर्श से काव्य के समीप लाने का यत्न करता है। 'नत्थू छड़े दी चीक बुलबुले' जैसी साधारणता से लेकर 'मशवरे' की गंभीरता तक के दर्शन इन कविताओं में होते हैं।

दांडीवृत *(उ० पारि०)*

'दांडीवृत्त' साधारणतया 14 वर्णों का होता है। इसका लय-विधान आधुनिक मुक्त छंद जैसा ही है। प्रसंग, भाव तथा घटना के अनुरूप चरण लघु या दीर्घ होते हैं। जहाँ पर भाव थमता है, वहीं लय टूटती है। यह पुराण पाठ की एक विशिष्ट मुखपाठ्य शैली है। 'सारला-महाभारत' (दे०) एवं बलरामदास-कृत 'दांडी रामायण' (दे०)

मे इसका प्रयोग हुआ है ।

यह सस्कृत मे 'दडकवृत्त' से भिन्न है क्योकि दडकवृत्त मे प्रत्येक पाद मे 27 वर्ण होते हैं, लघुगुरु नियम भी सुनिर्दिष्ट होता है और विराम-चिह्न का प्रयोग भी नियमित होता है । दाडीवृत्त मे यह सब नही होता ।

दांडी-रामायण *(उ० कृ०)*

मूल सस्कृत-रामायण की कथावस्तु पर आधारित होते हुए भी बलरामदास (दे०) की 'दाडी-रामायण' तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' (दे०), तमिल की 'कबरामायण' (दे०), बँगला की 'कृत्तिबास-रामायण' (दे०), तेलुगु की 'द्विपद-रामायण' (दे०), मलयाळम की 'रामचरितम्' (दे०), कन्नड की 'तोरवे-रामायण' (दे०), असमिया की 'माधव कदली-रामायण' (दे०) के समान एक स्वतत्र मौलिक रचना है । वाल्मीकि-रामायण (दे०) की सारकथा के अस्थि-कंकाल के साथ 'दाडी रामायण' की मुख्य विषय-वस्तु के किंचित् सादृश्य के अतिरिक्त मूल ग्रथ के साथ इसकी किसी भी दृष्टि से कोई समानता नही है । बलरामदास ने मूल रामायण के अनेक विषयो का त्याग कर दिया है । साथ ही विभिन्न पुराणो से अनेक प्रसगो का सग्रह कर कई नूतन विषयो का सयोजन भी किया है, जैसे : दशरथ की कन्या के साथ शृगी ऋषि के विवाह (अग्निपुराण), हरिश्चद्र उपाख्यान, अयोध्या काड मे मथरा के पूर्व-जन्म का प्रसग, आदि ।

'दाडी-रामायण' मे बलरामदास ने रामचद्रकालीन समाज के चित्राकन के प्रयास मे समसामयिक समाज का बहुलता से चित्रण किया है । इससे उनकी लेखनी सार्थक हो गई है । उडिया जाति के प्राणो का चित्र उसमे उद्भासित हो उठा है । उन्होने जगन्नाथ एव उडीसा के विभिन्न प्रसिद्ध क्षेत्रो का वर्णन किया है । छोटे-बडे अनेक विषयो मे स्वतत्रता दिखाकर कवि ने अनेक रमणीय चित्रो की सृष्टि की है । प्रचलित किंवदतियो का आश्रय ग्रहण कर कवि ने कई चित्र अकित किए हैं और वे असगत या अप्रासगिक नही हैं ।

वाल्मीकि-रामायण के विभिन्न काडो की विषयवस्तु एव उनके क्रम का बलरामदास ने निर्वाह नही किया है । किंतु इस क्रमपरिवर्तन के कारण 'दाडी-रामायण' विकलाग या शिथिल नही होने पाई है । यही उनके घटनाविन्यास का वैशिष्ट्य और कौशल है ।

जातीय जीवन-विकास के उत्स के रूप मे 'दाडीरामायण' ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । इसकी वस्तुकथा के आधार पर उपेंद्र भज (दे०) ने 'वैदेहीश विलास' (दे०) और बिश्वनाथ खुंटिया (दे०) ने 'विचित्र रामायण' की रचना की है । इसमे प्रयुक्त छद का अनुकरण प्राय 'रामलीला' मे होता है । परवर्ती युग मे अधिकाश उडिया रामचरित-काव्यो की कथावस्तु के लिए रामायण की कथावस्तु अक्षय भाडार सिद्ध हुई है ।

दाडीवृत्त (दे०) के प्रयोग के कारण इसे 'दाडी-रामायण' कहते हैं, इससे इस वृत्त की लोकप्रियता एव विषयानुकूल उपयुक्तता स्पष्ट हो जाती है । जगन्नाथ भगवान का एक नाम जगमोहन भी है । जगन्नाथ जी की प्रेरणा-आज्ञा से इसकी रचना होने के कारण इसका नाम 'जगमोहन रामायण' भी है ।

इस प्रकार 'दाडी रामायण' आचलिक स्वत - पूर्ण स्वतत्र मौलिक रचना है । वस्तुत यह उडीसा का अपना काव्य है ।

दाडेकर, गो० नी० *(म० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

समसामयिक परिस्थितियो से स्फूर्ति ग्रहण कर उन पर उपन्यास लिखने वाले मराठी लेखको मे अत्यत लोकप्रिय उपन्यासकार श्री दाडेकर विद्यार्थियो के लिए उपदेशपूर्ण कहानी लिखते थे । 1948 ई० से ये उपन्याससृष्टि की ओर मुडे । नोआखाली की पृष्ठभूमि पर बगाली जीवन का चित्रण करने वाला उनका उपन्यास 'तुडवलेले घरकुल' यथार्थ चित्रण एव मार्मिक चरित्राकन के लिए प्रसिद्ध है, *'सिंधु कन्या' पश्चिमी पाकिस्तान से आए शरणार्थियो की करुण दशा का चित्र प्रस्तुत करता है, 'आम्ही भगीरथाचे पुत्र'* मे भगीरथ की पौराणिक कथा को आजकल की कथावस्तु से जोडकर भाखडा नगल बाँध के लिए किए गए भगीरथ प्रयत्नो का रम्य विन्यास है । आचलिक पृष्ठभूमि पर लिखे गए उपन्यास 'शितू' (दे०) 'पूर्णमायेची लेकरें' की विशेषताएँ हैं—आचलिक भाषा, अचलविशेष के निसर्ग का यथार्थ रम्य चित्रण और पात्रो की मनोव्यथा का सूक्ष्म एव प्रत्ययकारी वर्णन । *सस्कृत कवियो के जीवन से सबद्ध 'पद्मा' और 'जगन्नाथ' लिखकर* इन्होंने मराठी उपन्यास को एक नयी दिशा प्रदान की है । इस प्रकार वर्तमान के सदर्भ मे पौराणिक कथाओ को नवीन अर्थ प्रदान कर तथा अचल विशेष का सजीव चित्राकन कर इन्होंने मराठी उपन्यास साहित्य को नये-नये रत्नो से समृद्ध किया है ।

दांडेकर, रामचंद्र नारायण *(सं० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

जन्म-स्थान : सतारा (महाराष्ट्र)। ये मराठी, संस्कृत, अँग्रेज़ी, जर्मन तथा फ्रेंच भाषा के विशिष्ट विद्वान हैं। इनके प्रधान प्रकाशित ग्रंथ ये हैं—'देर वैदिश्च मैंश्च', 'हिस्ट्री ऑफ़ गुप्ताज', 'आस्पैक्ट्स ऑफ़ गुप्ता सिविलाइजेशन', 'वैदिक बिब्लियोग्राफ़ी', 'क्रिटिकल एडिशन ऑफ़ महाभारत', 'श्रौतकोश', 'ओरियंटल स्टडीज़ इन इंडिया' तथा 'रसरत्नप्रदीपिका'। इन्होंने 'महाभारत' (दे०) का महत्वपूर्ण संपादन किया है। इन्होंने 1950 ई० से 1969 ई० तक पूना विश्वविद्यालय के अध्यक्ष-पद पर कार्य करते हुए शोध के क्षेत्र में अनेक योजनाएँ कार्यान्वित कीं। इन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है। 1962 ई० में पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया गया था। संस्कृत आयोग आदि अनेक महत्वपूर्ण समितियों में भी डा० दांडेकर कार्य कर चुके हैं तथा कर रहे हैं। बाद में ये पूना के भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट में सचिव पद पर कार्य करते रहे हैं। इस प्रकार भारतीय विद्या-क्षेत्र में डा० दांडेकर का महत्वपूर्ण योगदान है।

दाऊदपोटो, उमर मुहम्मद *(सिं० ले०)* [जन्म—1896 ई०; मृत्यु—1958 ई०]

इनका जन्म सिंध के टल्टी नामक गाँव में हुआ था। इन्हें बचपन से ही ज्ञान-प्राप्ति के प्रति असीम प्रेम था। विद्यार्थी-जीवन में ये अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण अपने गुरुजनों में प्रिय हो चुके थे। 1927 ई० में इन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की। इनके जीवन का अधिक भाग अध्यापन-कार्य और सिंध के शिक्षा विभाग में कार्य करते बीता। ये सिंधी, अरबी, फ़ारसी तथा अँग्रेज़ी के प्रकांड पंडित थे। इनकी प्रमुख कृतियों के नाम हैं—'मनहाज-अल्-आशिक़ीन', 'शाह अब्दुलकरीम बुलड़ीअ वारे जो कलाम', 'अबियात सिंधी', 'कलाम गरहोड़ी', 'आत्मकहाणी'। सिंधी भाषा-साहित्य और सिंध के इतिहास पर इनके कई निबंध विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। सिंधी गद्य-लेखकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

'दाग़' देहलवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1831 ई०; मृत्यु—1905 ई०]

नाम—नवाब मिर्ज़ा खान, उपनाम—दाग़; पिता का नाम—नवाब शमसुद्दीन, जन्म-स्थान—दिल्ली। बहादुरशाह 'ज़फ़र' (दे०) के गुरु शेख इब्राहीम 'ज़ौक़' (दे०) इनके भी काव्य-गुरु थे। 1857 ई० के स्वाधीनता संग्राम के फलस्वरूप ये रामपुर में रहने को बाध्य हुए। चालीस वर्ष तक रामपुर में रहने के बाद ये हैदराबाद चले गए और निज़ाम दकन-मीर महबूबअली खाँ के गुरु नियुक्त हुए थे। डा० इक़बाल (दे०) को भी इनके शिष्यत्व का गौरव प्राप्त हुआ था। यों तो अन्य काव्य-विधाओं में भी ये सिद्धहस्त थे परंतु ग़ज़ल (दे०) के क्षेत्र में सर्वथा बेजोड़ थे। इनके जीवन-काल में ही 'मसनवी फ़रियाद-ए-दाग़' के अतिरिक्त इनके तीन काव्य-संग्रह—'आफ़ताब-ए-दाग़', 'महताब-ए-दाग़' और 'गुलज़ार-ए-दाग़' प्रकाशित हो चुके थे। शृंगार रस में लिखित इनकी ग़ज़लें अत्यंत मार्मिक हैं किंतु कहीं-कहीं इनमें अश्लीलत्व-दोष और नग्न विलासिता के चित्रण भी दृष्टिगोचर होते हैं। अभिव्यंजना की नवीनता, विषय की सजीवता और सरसता, अवसरानुकूल भाषा तथा भावों की स्पष्टता और शुद्धता इनकी ग़ज़लों की विशेषताएँ हैं।

दात्यूहसंदेशम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1897 ई०]

यह शीवोळ्ळि नारायणन् नंपूतिरि (दे०) का हास्य-विडंबनात्मक संदेश-काव्य है। इसमें एक वृद्ध जुलाहे द्वारा दात्यूह (उल्लू) को दूत बनाकर कुरूपा नायिका को संदेश भेजने का विवरण केवल बीस श्लोकों में वर्णित है।

यह काव्य मलयाळम में अनेक दुष्कवियों द्वारा लिखे जाने वाले संख्यातीत संदेश-काव्यों के उपहास के हेतु लिखा गया था। स्थायी रस वीभत्स है और यह प्रदर्शित करने में कवि को सफलता प्राप्त हुई है कि यह सुंदर काव्य-रूप जुगुप्सा की किस सीमा तक पहुँच सकता है। इस काव्य की रचना का परिणाम कविता के लिए स्वास्थ्यकर सिद्ध हुआ।

दादूदयाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1544 ई०]

दादू-पंथ के संचालक दादूदयाल की जन्मभूमि अहमदाबाद मानी जाती है। इन्होंने दादूपंथ (परब्रह्म संप्रदाय) की स्थापना *1573* ई० में की थी। इनके भक्तों द्वारा इनकी रचनाओं की संख्या बीस हज़ार कही जाती है, संभवत: यह संख्या उनके द्वारा रचित पदों एवं साखियों की होगी। कबीर (दे०) के समान ये भी निरक्षर साधक

तथा निराकार ब्रह्म के उपासक थे। ईश्वर की व्यापकता, हिंदू-मुस्लिम-ऐक्य, सद्गुरु की महिमा, जात-पाँत का खडन, आत्मज्ञान, नश्वर विश्व की निस्सारता—ये सभी इनकी रचना के भी विषय हैं। इनकी रचनाओ की शैली सहज-सुबोध है तथा आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि करने मे सक्षम है। भाषा राजस्थानी-मिश्रित पश्चिमी हिंदी है, जिसमे अरबी और फारसी शब्दो का भी प्रयोग हुआ है।

दादोबा पाडुरग *(म० ले०)* [जन्म—1814 ई०, मृत्यु—1882 ई०]

इनका जन्म बबई के एक वैश्य-परिवार मे हुआ था। ये पेशवा-काल के बाद की पीढ़ी के विद्वान थे। ये सरकारी अधिकारी थे और कर्मठ समाज-सुधारक थे। ये 'परमहस सभा' के सस्थापक थे।

प्राय दादोबा पाडुरग मराठी के आद्यव्याकरण-कार माने जाते हैं। अँग्रेज शासन-काल से पूर्व मराठी भाषा वैयाकरणिक दृष्टि से शिथिल एव अस्तव्यस्त हो गई थी। उसे व्याकरणनिष्ठ तथा व्यवस्थित बनाने में इनका पर्याप्त योग रहा है। इन्होने विद्यार्थी-काल मे ही 'मराठी व्याकरण' पुस्तक लिखी थी जिसकी लघु आवृत्ति 'सरकार की आज्ञाएँ' बालको के उपयोग के लिए 1965 ई० मे निकाली गई थी।

दादोबा पाडुरग जी के व्याकरण पर अँग्रेजी भाषा के व्याकरण-लेखन की छाप है। इतना अवश्य है कि महाराष्ट्र मे दीर्घकाल तक मराठी भाषा के अध्ययन के लिए इस ग्रथ का अवलबन लिया गया है। इन्होंने सस्कृत तथा फारसी भाषा का भी व्याकरण लिखा था।

'शिशुबोध', 'यशोदापाडुरगी' तथा आत्मचरित्र इनके अन्य ग्रथ हैं। सरकार ने इन्हे रायबहादुर की पदवी से विभूषित किया था।

दानापाणि *(उ० कृ०)* [लेखक—श्री गोपीनाथ महत (दे०)]

गोपीनाथ महाति के 'दानापाणि' उपन्यास का प्रकाशन-वर्ष है 1955 ई०। इस यथार्थवादी उपन्यास की वस्तुवस्तु, आधुनिक जीवन-सग्राम मे दिखाई देने वाले दानापानी के तीखे द्वद्व, नौकरी के क्षेत्र मे पदोन्नति की समस्या, व्यक्ति का पतन एव तज्जनित विभीषिकामय जीवन को लेकर विरचित है। उपन्यास का प्रमुख पात्र 'साफल्य-कामी' एव 'योजनावादी' बलिदत्त (दे०) कपनी की नौकरी मे पदोन्नति व सफलता के लिए नि सकोच रूप से अपने विवेक व मानवता का विसर्जन कर नैतिकता के सोपान से क्रमश किस प्रकार स्खलित होता जाता है एव अत मे अपनी स्थिति व प्रतिष्ठा के लिए जीवन-यज्ञ मे पत्नी सरोजिनी के सतीत्व की बिना किसी दुविधा के आहुति चढा देता है, उसी की असहाय करुण कहानी है 'दानापाणि' उपन्यास। रोज़ी-रोटी के सघर्ष मे व्यक्ति ने अपनी शिक्षा, सस्कार, रुचि, नीति आदि सभी बातो की बलि चढा दी है। वह अपने अह को चरितार्थ करने के लिए व्यग्र और अग्रसर है तथा दूसरे के प्रति परश्रीकातर। छोटे तबके से लेकर बड़े स्तर तक हर व्यक्ति का आतरिक स्वरूप किस प्रकार अनीति एव शोषण की प्रवृत्ति से आक्रात है, यह इस उपन्यास मे लेखक की सधानी दृष्टि से उद्भासित हो उठा है।

दामोदर, कुशालदास बोटादकर *(गु० ले०)* [जन्म—1870 ई०, मृत्यु—1924 ई०]

बोटादकर सरल और मुग्ध प्रकृति के कवि थे। अपने जागतिक अनुभव मे जो कुछ सुदर, मधुर और शिव था उसे ही इन्होने अपने काव्य का विषय बनाया। जीवन भर निर्धनता से पीडित रहकर भी बोटादकर ने 'कल्लोलिनी', 'स्रोतस्विनी', 'रासतरगिणी', 'निर्झरिणी' तथा 'शैवालिनी' नामक पाँच काव्य-सग्रहो की भेंट साहित्य-जगत् को दी। इन्होने अपनी काव्य-साधना जनप्रिय कथन शैली से आरभ की जो गुरु-गभीर, सस्कृतमय, समासयुक्त तथा अपरिचित शब्द-प्रयोगो का बोझा ढोती हुई अत में लोक-बोली व लोक-चेतना तक पहुँच गई। साहित्य-जगत् मे बोटादकर की प्रसिद्धि का कारण उनकी भावसमृद्ध रास-रचनाएँ हैं।

दामोदरन्, के० *(मल० ले०)*

श्री दामोदरन् सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी चितक और मलयाळम-नाटककार हैं। वे साम्यवादी दल के प्रमुख नेता हैं और राज्य-सभा के भूतपूर्व सदस्य भी हैं। कई वर्ष जेल मे भी विताए हैं। 'पाट्टबाक्की' और 'रक्तपानम्' इनके नाटक हैं। 'उरुप्पिका', 'धनशास्त्र प्रवेशिका' और 'इत्ययुटे आत्मावु' मार्क्सवादी अर्थशास्त्र और दर्शनशास्त्र पर इनकी पुस्तकें हैं। इनकी कुछ पुस्तकों का विषय

साहित्यिक समीक्षा है।

मार्क्सवादी दर्शनशास्त्र के आधार पर साहित्य, कला और संस्कृति के मूल्यांकन के मूलभूत सिद्धांतों का प्रतिपादन इन्होंने किया है। इनके लोकप्रिय नाटक 'पाट्टबाक्की' ने कृषक-आंदोलन को प्रोत्साहित किया। केरल के मार्क्सवादी साहित्यकारों में इनका स्थान अन्यतम है।

दारु देबता *(उ० कृ०)*

डा० बेणीमाधव पाढ़ी (दे०) की इस सुंदर कृति के प्रमुख आधार हैं दारु देबता—जगन्नाथ। श्री जगन्नाथ के संबंध में ऐतिहासिक, पौराणिक तथ्यपूर्ण इस गवेषणामूलक पुस्तक में जगन्नाथ के आदिम भक्त शबर जाति के इतिवृत्त, संस्कृति, पूजा-पद्धति एवं विभिन्न मूर्ति-तत्त्वों का विशद रूप से वर्णन हुआ है। जगन्नाथ-संस्कृति पर यह एक उपादेय पुस्तक है।

दार्व्हेकर, पुरुषोत्तम *(म० ले०)*

संगीत-प्रधान नाट्य-पद्धति पर नाट्य रचना करने वाले आधुनिक नाटककारों में पुरुषोत्तम दार्व्हेकर का नाम विशेष महत्वपूर्ण है। इन्होंने किर्लोस्कर एवं कृ० प्र० खाडिलकर (दे०) प्रभृति नाटककारों की लुप्त होती नाट्य-पद्धति को पुनः जीवित करने में अपूर्व योग दिया है। दैनं-दिन जीवन की सामान्य घटनाओं को अपनी अनूठी प्रस्तुती-करण-शक्ति के बल पर इन्होंने अपूर्व प्रसिद्धि प्राप्त की है। 'वर्‌हाडी मानसंड' नाटक में इन्होने वन्हाळ प्रांत के निवासियों का निरूपण प्रांतीय भाषा संवादों का आश्रय लेकर किया है। इनकी इस यथार्थवादी नाट्य-रचना के अतिरिक्त शेष कृतियाँ अद्‌भुत संयोग एवं चमत्कृतिपूर्ण हैं। 'नयन तुझे जादुगर' नाटक में टोने-टोटके में विश्वास रखने वाली जादूगर महिला का मनोहारी चित्रण करते हुए सच्चे प्रेम का गौरव-गान किया गया है। 'घनश्याम नयनी आला' नाटक में राजा तथा राजपुत्रों के माध्यम से संगीत-महिमा का प्रतिपादन हुआ है। इनकी रचनाओं पर इब्सन के यथार्थवादी नाटकों का प्रभूत प्रभाव है परंतु कथा-विधान पर शेक्सपियर की रोमानी प्रवृत्ति का गहरा रंग है। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में रहस्यात्मकता एवं वेषांतर का अधिक प्रभाव है। किर्लोस्कर एवं खाडिलकर की नाट्य पद्धति को नव्य जीवन प्रदान करने की दृष्टि से लिखे इनके नाटकों में संवाद एवं चरित्र-निरूपण में कृत्रिमता का आभास स्पष्ट झलकता है।

दाशरथी *(ते० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

ये आधुनिक क्रांतिकारी युवक कवियों में प्रमुख हैं—विशेषकर अपने तेलंगाणा के सभी युवक कवियों के नेता एवं मार्गदर्शक हैं। तेलंगाणा के स्वातंत्र्य-समर में अपनी रचनाओं द्वारा समस्त जनता की व्यग्रता एवं आक्रोश को व्यक्त करने के कारण इन्हें कारागार की यातनाएँ भी सहनी पड़ीं। 'मेरा तेलंगाणा कोटि रत्नों की वीणा है' इस प्रचंड उद्‌घोष से तेलंगाणा की धरती एवं जनता के प्रति अपना अनन्य अनुराग तथा इसके पुनरुत्थान के प्रति अपनी कठोर दीक्षा को इन्होंने व्यक्त किया है। इनकी रचनाओं पर प्रगतिवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव है। ये समाज में शोषण का अंत करके, समता, सद्‌भाव एवं शांति को स्थापित करना चाहते हैं। इन्होंने अपने को पीड़ित मानव-समुदाय के मुखर वक्ता के रूप में रूपायित कर लिया है। आंध्रत्व एवं राष्ट्रीयता की भावनाएँ भी इनकी कविता में प्रचुर मात्रा में प्रकट हुई हैं।

'रुद्रवीणा', 'अग्निधारा', 'अमृताभिषेकमु', 'महांध्रोदयमु', आदि इनकी रचनाएँ हैं। चलचित्रों के क्षेत्र में भी गीतकार के रूप में ये लोकप्रिय हुए हैं।

दाशरथीशतकमु *(ते० कृ०)* [लेखक—भक्त रामदासु (दे०)—सत्रहवीं शती उत्तरार्द्ध]

ये राम के परम भक्त थे। तेलुगु के शतककारों तथा संगीतकार कवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

यह 'दाशरथी करुणापयोनिधी' के मुकुट पर रचा गया एक सुंदर शतक है। इसमें भक्त कवि ने अपने आराध्य राम के बल, साहस, उदारता, करुणा, सौंदर्य आदि नाना सद्‌गुणों की स्तुति अत्यंत तन्मयता के साथ की है। तेलुगु के शतक-साहित्य में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी रचना सरल तथा मनोहर शैली में की गई है।

दाश, रमा *(अ० ले०)* [जन्म—1909 ई०; जन्मस्थान—बरपेटा नगर]

ये आवाहन युग के रोमांसवादी कहानीकार हैं। प्रकाशित रचनाएँ—कहानी: 'रमा दाशर श्रेष्ठ गल्प'

(1952), 'वर्षा जेतिया नामे' (1964), 'जाह्नवी'।

इनकी कहानियो मे भावुकता और रोमास अधिक है। इन्होने मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण किया है। सेक्स के वर्णन मे ये साहसी है। चित्रात्मक वर्णन, आकर्षक सवाद और पुष्ट विचार के लिए इनकी ख्याति है। इनकी कहानियो मे शिल्प की भी पूर्णता है। ये नये कहानीकारो मे विशिष्ट हैं।

दास (भिखारीदास) *(हिं० ले०)*

ये ट्योगा (प्रतापगढ) के निवासी थे। इनके द्वारा प्रणीत काव्यशास्त्र-विषयक चार ग्रथ हैं—'काव्यनिर्णय' (दे०), 'रससाराश', '*श्रृगारनिर्णय*', और '*छदोर्णव पिंगल*'। पहले ग्रथ मे काव्य के विविध अगो का निरूपण है। अगले दो ग्रथ रस और नायक-नायिका विषयक हैं। चौथा ग्रथ छद-शास्त्र का है। इन्होने 'विष्णुपुराण भाषा' की भी रचना की थी। 'काव्यनिर्णय' इनका प्रसिद्ध ग्रथ है। इसमे विविध काव्यागो का निरूपण मम्मट (दे०), विश्वनाथ (दे०), अप्पय्यदीक्षित (दे०) और जयदेव (दे०चद्रालोक) के ग्रथो के आधार पर किया गया है। इसमे कुछ-एक मौलिक धारणाओ को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ, वामन (दे०)-सम्मत दस गुण चार वर्गों मे विभक्त किए गए हैं, नायिका के स्वाधीनपतिका आदि आठ भेद दो वर्गों मे, तथा इक्यानबे अर्थालकार बारह वर्गों मे। इसके अतिरिक्त इन्होंने श्रृगार-रस के सम तथा मिश्रित ये दो नूतन भेद प्रस्तुत किए हैं। इस ग्रथ मे हिंदी भाषा और साहित्य को भी ध्यान मे रखकर कतिपय धारणाएँ प्रस्तुत की गई हैं। यह ग्रथ सभवत अपने समय में अत्यत प्रसिद्ध था। कवित्व की अपेक्षा आचार्यत्व की दृष्टि से दास का महत्व अधिक है।

दास, अनिरुद्ध *(उ० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

अनिरुद्ध दास सुप्रसिद्ध निबधकार एव जीवनी-रचयिता हैं। 'बीर सुरेंद्रसाए' (दे०) इनका ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमे बीर सुरेंद्रसाए के राष्ट्रीय चरित्र का सुदर चित्रण हुआ है। जगन्नाथ-सस्कृति पर इनकी दो रचनाएँ हैं—'शबरी' और 'श्री जगन्नाथ ओ नेपाळ'। अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'मेरिआ', 'शब्दर देवता'। आई० ए० एस० से अवकाश प्राप्त करन के पश्चात् आजकल ये उडिया दैनिक 'स्वराज्य' का सपादन कर रहे हैं।

दास, उपेंद्र किशोर *(उ० ले०)* [जन्म—1901; मृत्यु—1972 ई०]

आधुनिक उडिया उपन्यास-साहित्य मे उपेंद्र किशोर दास का स्थान महत्वपूर्ण है। इनके उपन्यास सामाजिक एव वैचारिक है। फलत इनके उपन्यासो मे कुसस्कार-ग्रस्त उडिया समाज का करुण चित्र मिलता है। 'मलाजन्ह' (दे०) इनका प्रसिद्ध उपन्यास है।

दास, कमळाकात *(उ० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

श्री कमळाकात दास मुख्यत कथाकार हैं। अब तक इनके कई उपन्यास प्रकाशित हो चुके है। सामाजिक एव आर्थिक समस्याएँ ही मुख्य रूप से इनके उपन्यासो मे चित्रित हैं। इस प्रकार जातीय जीवन की बहुविध समस्याएँ इनके उपन्यासो की विषयवस्तु है। इनके उपन्यास व्यक्ति-केंद्रित नही है। दृष्टिकोण की इस व्यापकता के अनुकूल भाषा-शैली मे भी पर्याप्त अभिव्यजना-शक्ति, प्राजलता एव लोच है। शिशु-साहित्य की रचना भी इन्होंने प्रचुर मात्रा में की है। 'इच्छाबरण' (दे०), 'चिडिआखाना', 'चित्रतारका', 'आश्रित', 'चाँदिनी चउक्' आदि इनके उपन्यास है। इनके कई कहानी-सग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। इनका जन्म रघुनाथपुर (कटक) मे हुआ था।

दास, कुंजबिहारी *(उ० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

इनका जन्म पुरी मे हुआ था। इनके पिता का नाम मागुणिदास है। डा० दास ने शातिनिकेतन से पी एच० डी० की है और आजकल ये उत्कल विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर हैं। इनकी काव्य-कृतियाँ है—'प्रभाती', 'पापाण चरणेरक्त', 'चारणिका', 'डुडुमा', 'बरथी' आदि। 'ओडिआलोकगीत ओ कहाणी' (दे०) समालोचना-ग्रथ है।

आधुनिक उडिया-साहित्य को डा० कुंजबिहारी दास का महत्वपूर्ण प्रदेय है—'ओडिआ लोकगीत सचयन'। इन्होंने उडिया लोकगीत और लोक-कथा के सग्रह के साथ-साथ इस क्षेत्र मे गहन अनुसधान भी किया है।

डा० दास स्वय कवि हैं। पल्ली-जीवन सबधी इनकी रम्य रचनाएँ ग्राम्य जीवन को साकार कर देती हैं। इनमे उत्कलीय चेतना एव सामाजिक सजगता की भावनाएँ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं।

दासगुप्त, सुधीरकुमार *(बं० ले०)*

पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा मनोविज्ञान के आधार पर संस्कृत काव्यशास्त्र के पुनर्निर्माण की दिशा में डा० सुधीरकुमार दासगुप्त ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। डा० सुधीरकुमार दासगुप्त के 'काव्यालोक' ने संस्कृत अलंकारशास्त्र के पुनर्निर्माण में अपूर्व सहायता की है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र और संस्कृत काव्यशास्त्र के तुलनात्मक विवेचन के साथ-साथ इस ग्रंथ में इन दोनों का साम्य एवं वैषम्यमूलक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

पाश्चात्य मनोविज्ञान को भी संस्कृत अलंकारशास्त्र पर घटा कर उसकी नूतन व्याख्या की गई है।

लेखक की अन्य पुस्तकों में 'काव्यश्री' उल्लेखनीय है।

दासगुप्त, सुरेंद्रनाथ *(बं० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1952 ई०]

बंगला काव्यशास्त्र के क्षेत्र में आचार्य डा० सुरेंद्रनाथ दासगुप्त दार्शनिक-आलोचक के रूप में प्रसिद्ध हैं। बंगला काव्यशास्त्रीय आलोचना में उनका योगदान विशेष महत्वपूर्ण है। 'काव्य-विचार' (1936 ई०) की रचना कर डा० दासगुप्त ने एक ओर जहाँ प्राचीन संस्कृत अलंकारशास्त्र के पुनराख्यान की दिशा में साहित्य-जिज्ञासु का ध्यान आकर्षित किया है, वहीं दूसरी ओर 'सौंदर्य-तत्त्व' (1940 ई०) की रचना कर नवीन सौंदर्यशास्त्रनिष्ठ नये प्रतिमान भी प्रतिष्ठित किए हैं। इनकी तीसरी पुस्तक 'साहित्य-परिचय' काव्यशास्त्रीय एवं साहित्यिक निबंधों का संकलन है।

डा० सुरेंद्रनाथ दर्शनशास्त्र के प्रख्यात विद्वान् थे और भारतीय दर्शनशास्त्र पर महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना तथा अध्ययन-अध्यापन के द्वारा इन्होंने विश्व-प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। बंगला भाषा में काव्यशास्त्रीय आलोचना की परिक्षीणता को देखते हुए इन्होंने उसे भी अपने अध्ययन का विषय बनाया था और सौंदर्यशास्त्र के अध्ययन का सूत्रपात किया था। सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र में डा० दासगुप्त का सबसे बड़ा योगदान यह है कि इन्होंने यूरोपीय विद्वानों के इस अभिमत को भ्रामक बताते हुए कि भारत में सौंदर्य के संबंध में कोई विवेचन ही नहीं किया गया, संस्कृत काव्यशास्त्र तथा उपनिषद्-विद्या के आधार पर सौंदर्य का अभिनव तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत किया है। डा० दासगुप्त ने पाश्चात्य काव्यशास्त्र की तुलना में संस्कृत अलंकारशास्त्र का पुनराख्यान कर अपनी प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया है। काव्यशास्त्रीय विश्लेषक के रूप में इन्होंने जहाँ सौंदर्य को आधार-पीठिका के रूप में ग्रहण किया है वहीं सूक्ष्म दार्शनिक मेधा की सहायता से काव्यशास्त्र के अंतर-तत्त्वों का भी विशद विवेचन किया है।

दास, गोविंद *(उ० ले०)* [जन्म—1930 ई०]

यद्यपि बैरिस्टर गोविंददास को अपनी व्यावसायिक व्यस्तता के कारण साहित्य-सर्जना के लिए अत्यल्प समय मिल पाता है, किंतु जिन कतिपय पुस्तकों की इन्होंने रचना की है, उनका साहित्यिक मूल्य असंदिग्ध है। 'अमावस्यार चंद्र' (दे०) इनकी सफल कृति है। मनुष्य के तिमिराच्छन्न अंतर के अबूझ चंद्र को देखने का इनका प्रयास निश्चित रूप से प्रभावोत्पादक है। आजकल ये सुप्रीम कोर्ट में प्रैक्टिस कर रहे हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'देशेदेशे' (यात्रा), 'मिश्रराग' आदि।

दास, गोविंदचंद्र *(बं० ले०)* [जन्म—1855 ई०; मृत्यु—1918 ई०]

पूर्व-बंग के भाओआलेर के अंतर्गत जयदेवपुर ग्राम में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने जीवन में बहुत कष्ट पाए थे—शोक, ताप, दुःख, दारिद्र्य ही नहीं, दारुण उत्पीड़न भी इन्हें सहना पड़ा था। ये आजीवन अविवाहित रहे।

इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'कुंकुम', 'कस्तूरी', 'वैजयंती', 'प्रेम और फूल', 'चंदन', 'फूलरेणु', 'शोक और सांत्वना', 'शोकोच्छ्वास'।

समसामयिक आधुनिक कवियों की तुलना में शिक्षित न होते हुए भी इनकी रचनाओं में आधुनिकता की छाप स्पष्ट है। इनकी भाषा में पांडित्य पाया जाता है। इनमें कल्पना का प्रसार कम है परंतु भावों में एकाग्रता एवं अनुभूति में तीव्रता कुछ अधिक है।

ये अपने समय के पूर्व-बंग के सर्वश्रेष्ठ कवि थे।

दास, चितरंजन *(उ० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

श्री चितरंजन दास सफल निबंधकार हैं। इनके वैचारिक निबंधों ने आधुनिक निबंध-साहित्य को संपन्न बनाया है। इन्होंने अनेक गवेषणामूलक तथा आलोचनात्मक

निबध लिखे हैं, जो विश्वविद्यालयी शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। साथ ही इनके ललित निबध भी कम सफल नही हैं। इनके भ्रमण एव जीवन-चरित सबधी निबधो का निबध-साहित्य मे विशेष स्थान है। इन्होंने व्यापक रूप से देश तथा विदेशो का भ्रमण किया है। इन्हे अँग्रेजी के अतिरिक्त स्पेनिश, फ्रेंच आदि विदेशी भाषाएँ आती हैं। इसी भ्रमणप्रियता के कारण इनकी भ्रमण-कहानियाँ जीवत एव रोचक हैं। 'शिलाओ शालग्राम', 'शिलातीर्थ' (दे०), 'नेपाल पथे', 'मजाम माळरे सात दिन' आदि इनकी भ्रमण सबधी रचनाएँ हैं। ये कुशल अनुवादक भी हैं।

दास, जीवनानद *(बँ० ले०)* [जन्म—1899 ई०, मृत्यु—1954 ई०]

जीवनानद दास अति-आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वर्तमान युग की सशयी मानवात्मा का क्षतविक्षत रक्ताक्त रूप इनकी कविता मे उद्भासित है। यद्यपि यह भी निश्चित है कि इस यत्रणा-विक्षोभ के साथ-साथ इनकी कविता मे प्रकृति-केंद्रित अपूर्व तन्मयता का भी परिचय मिलता है।

अपने पूर्वज कवियो का अनुसरण करते हुए इन्होने अपना पहला काव्य ग्रथ 'झरा पालक' (1927), प्रकाशित कराया था। इसके उपरात इनके 'धूसर पाडुलिपि' (1936), 'बनलता सेन' (द्वि० स० 1952), 'महापृथिवी' (1944), 'सातटितारार तिमिर' (1948) एव 'मृत्यूपरात 'रूपसी बाँगला' (1957) नामक ग्रथ प्रकाशित हुए थे।

जीवनानद की प्रारभिक कविताओ मे इस पृथ्वी का नि स्व, रिक्त, अनुर्वर रूप प्रकट हुआ है—चारो ओर जरा, क्षय, मृत्यु के चिह्न दिखाई पडते हैं, कही सूर्य नही केवल बर्फ की तरह चाँद आलोकित है। इसी अवस्था मे रचित प्रेम की कविताओ मे प्रेम का अचरितार्थ रूप प्रकट है यद्यपि कविमानस का व्यर्थता-बोध कही वेदना-कातरता (मॉरबिडिटी) मे परिणत नही हुआ है। जीवन के प्रति कवि का आकर्षण कही कम नही हुआ है। बनलता सेन, अश्रुकणा सन्याल, सुरगमा, सुरजना आदि नायिकाओ को व्यक्ति नाम से पुकार कर कवि ने अपने नि सग अतर के निभृत कोने मे आह्वान किया है। कवि का 'वनलता सेन' काव्य-ग्रथ उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इनकी नायिकाएँ यदि सौंदर्यहीन इस युग मे इन्हे प्रेम और सौंदर्य का सधान नही दे पाईं तो इन्होने इतिहास और भूगोल की विस्तृति मे उसे ढूँढना चाहा है। इनकी इतिहास-चेतना ने ही इन्हे महाकाव्य की व्याप्ति प्रदान की है और कवि यह उपलब्धि कर सका है कि मनुष्य की अग्रगति सरल रेखा मे नही होती है, उसका भाग्य चक्राकार मे आवर्तित है। उसके इतिहास मे एक एक स्मरणीय युग के उपरात ध्वस का अधकार फैल जाता है। वर्तमान युग भी इसी प्रकार एक अधकार-क्षण है। मनुष्य की चेतना का क्रमश फिर विस्तार होगा और इसीलिए विमूढ-युग के विभ्रात कवि ने जीवन के अतिम क्षणो मे अचानक यह अनुभव किया है कि उसकी प्रतिभा सर्जक नही हुई है।

दास, नित्यानद *(बँ० ले०)*

नित्यानद दास का प्रकृत नाम बलराम दास था। पिता का नाम आत्माराम दास, माता का सौदामिनी तथा निवासस्थान श्रीखण्ड था। ये नित्यानद की कनिष्ठ पत्नी जाह्नवी देवी के शिष्य थे। जाह्नवी देवी ने मत्र-दीक्षा देकर इनका नाम नित्यानद दास कर दिया था।

इनकी प्रमुख कृति 'प्रेम बिलास' है जो सभवत 1600 ई० मे पूर्ण हुई थी। 'प्रेम बिलास' बगाल मे वैष्णव धर्म के प्रचार का इतिहास-ग्रथ है। यही कारण है कि इस ग्रथ का मूल्य एव महत्व बढ जाता है।

'प्रेम बिलास' मे तीन प्रभुओ, छह गोस्वामियो एव अन्यान्य वैष्णव महापुरुषो के चरित्र के सबध मे प्रामाणिक तथ्य मिलते हैं। सत्रहवी शती के इतिहास की दृष्टि से इस ग्रथ का मूल्य स्वीकार करना होगा।

दास, नीलकठ *(उ० ले०) [जन्म—1884 ई०]*

डा० नीलकठ दास का जन्म पुरी मे हुआ था। पिता का नाम आनद दास था। 1911 ई० मे इन्होंने एम० ए० किया। बी० ए० के बाद सत्यवादी (दे० सत्यवादी साहित्य) स्कूल की स्थापना कर 1918 ई० तक उसके प्रधान आचार्य रहे। *बाद मे कलकत्ता विश्वविद्यालय मे* प्रोफेसर हुए और 1921 ई० मे असहयोग आदोलन मे जेल गये। 1955 ई० मे उत्कल विश्वविद्यालय ने आपको डाक्टर आफ लिटरेचर की उपाधि प्रदान की और इसी वर्ष ये उत्कल विश्वविद्यालय के प्रो-वाइस चासलर भी रहे।

उडीसा मे डा० नीलकठ दास कवि की अपेक्षा विद्वान के रूप मे अधिक समादृत हैं, किंतु साथ ही इनकी सर्जना-शक्ति और कलात्मक मौलिकता भी असदिग्ध है।

विषयवस्तु और वर्णन-शैली दोनों ही दृष्टियों से 'कोणार्क' काव्य इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें उग्र जातीय बोध व यथार्थ का सुंदर समन्वय हुआ है। सत्यवादी जातीय व राष्ट्रीय चेतना इनके जीवन की प्रेरिका व नियामिका शक्ति रही है। यही कारण है कि वे राधानाथ राय (दे०) के कट्टर आलोचक रहे हैं। इनके 'कोणार्क' तथा 'मायादेवी' (दे०) काव्य राधानाथ-साहित्य का तीखा प्रतिवाद हैं। मध्ययुगीन सामंतीय परिप्रेक्ष्य में राजकीय प्रणय-कहानी 'कोणार्क' की विषयवस्तु है। संगीत-मधुर कथा, प्रखर अभिव्यंजनामयी भाषा, सशक्त गंभीर अभिव्यक्ति, अप्रतिहत प्रवाह, भावानुकूल कोमल, कठोर, सरल-अलंकृत, क्लिष्ट, मनोज्ञ शैली। सुंदर गीति-योजना के कारण यह काव्य एक अपूर्व कला-सृष्टि बन गई है। इसके साथ ही ये उच्चकोटि के समीक्षक एवं गद्यकार भी हैं। इनकी समालोचनाओं में युक्ति की सशक्तता, भाषा की संक्षिप्तता, शैली की नूतनता और विवेचन की मौलिकता मिलती है। 'आर्य जीवन' इनकी प्रबल गद्य-रचना है।

दास, बलराम *(बँ० ले०)*

अनुमान से सोलहवीं शती के मध्य में इनका जन्म हुआ था। इनका आदि निवास श्रीहट्ट था। ये नित्यानंद के विशिष्ट भक्त थे। उनसे दीक्षा ग्रहण कर ये आधुनिक वर्द्धमान जिले के पूर्व में दोगाछिया ग्राम में रहने लगे थे। उन्हीं के आदेश से इन्होंने विवाह किया था। इनके पाँच पुत्र थे। ये ब्राह्मण थे। ये प्रसिद्ध खेतुरी उत्सव में उपस्थित थे। चैतन्य-वंदना के प्रसंग में 'ए मुञि वंचित' में बलरामदास के लिखने से अनुमान होता है कि चैतन्य महाप्रभु की नवद्वीप-लीला को इन्होंने प्रत्यक्ष नहीं देखा था।

ये बालकृष्ण की मूर्ति के उपासक थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठित मंदिर एवं विग्रह अब भी दोगाछिया ग्राम में विद्यमान हैं।

बलराम दास ने कृष्ण की बाललीला, राधाकृष्ण का पूर्वराग, अनुराग और मिलन, अभिसार और संयोग, नौका-विलास, दानलीला, वासकसज्जा, विरह आदि विषयों पर पद लिखे हैं। इन्होंने बँगला एवं ब्रजबुलि दोनों भाषाओं में पद लिखे हैं।

ये वात्सल्य भाव के पदकर्त्ताओं में अग्रणी हैं। चैतन्य एवं नित्यानंद के संबंध में इन्होंने जो पद लिखे हैं उनमें हृदय का स्पर्श करने की क्षमता है। रूपानुराग एवं रसोद्‌गार-वर्णन में ये अद्वितीय हैं। अंतरंगता एवं आंतरिकता में इनके पदों के समक्ष अन्य कवि नहीं टिकते। इनके पदों का मूल स्वर है सहज जीवन-रस-प्रीति। वर्तमान में ये रसिक समाज में अत्यंत प्रिय हैं एवं भविष्य में भी इनके भक्तों की कमी होगी—ऐसा कहना कठिन है।

ब्रजभाषा के कवि सूर (दे०) के बाललीला-वर्णन-संबंधी पदों से इनके पदों की तुलना की जा सकती है।

दास, बिजयकुमार *(उ० ले०)*

श्री बिजयकुमार दास का जन्म 1947 ई० में कटक जिले में हुआ था। इन्होंने रेवेन्सा कालेज, कटक, से अँग्रेजी में एम० ए० किया है। उड़िया एवं अँग्रेजी दोनों में कविता करते हैं। 'सामुख्य', 'डगर', 'मानस' आदि पत्रिकाओं में इनकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। लेखक की चिंतनशीलता एवं बौद्धिक दृष्टिभंगी कविता, कहानी सभी में देखी जा सकती है। आधुनिक जीवन की जटिलता को रूपायित करने का प्रयास करते हुए भी लेखक का कथ्य कहीं भी दुर्बोध नहीं हुआ है। यह इस उदीयमान लेखक की सबसे बड़ी सिद्धि है। 'अवलोकन' (दे०) इनका काव्य-संकलन है। आजकल ये नेशनल बुक ट्रस्ट में उड़िया-विभाग के सहकारी संपादक हैं।

दासबोध *(म० कृ०)*

यह समर्थ रामदास (दे०) की रचना है। इसका लेखन 1648 ई० से 1678 ई० तक लगभग तीस वर्षों तक हुआ था। इसमें बीस दशक हैं और प्रत्येक दशक में दस समास हैं। इस प्रकार दो सौ समासों में 7751 ओवियाँ हैं। कवि ने अपने कथ्य को आरंभ में ही स्पष्ट कर दिया है—'दासबोध' गुरु-शिष्य का संवाद है। इसमें नवधा भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्य का विस्तृत विवेचन है। अध्यात्म से संबद्ध अनेक शंकाओं का समाधान किया गया है। शास्त्रों से प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं और स्वानुभव की बातें बतलाई गई हैं। कवि रामदास मूलतः भक्तिमार्गी थे। परंतु देश-काल की विषम परिस्थितियों के प्रति भी ये विशेष सजग थे। अतः 'दासबोध' केवल अध्यात्म-चर्चा का ग्रंथ मात्र नहीं है वरन् इसमें सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, व्यावहारिक और जीवनोपयोगी अनेक तथ्यों का मार्मिक विवेचन है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा : 'लोगों को आलसी नहीं बनने देना चाहिए। राजनीति का पालन करते हुए जनता को संगठित करना चाहिए। जिसने दूसरे पर विश्वास

क्रिया उसका सब काम चौपट हो गया। अपने काम के लिए स्वय परिश्रम करना ही अच्छा है। राजा को इतना परमार्थी और धर्मात्मा होना चाहिए कि जिसके साथ रहने वाले शूरवीरो की भुजाएँ शत्रु-सेना देखते ही फडकने लगें। राजनीतिज्ञ को चाहिए कि हृष्ट पुष्ट के सामने हृष्ट-पुष्ट को, उद्धत के सामने उद्धत को रखे। जब जैसे को तैसा मिलता है तभी कार्य सफल होता है'। 'दासबोध' लौकिक और पारमार्थिक जीवन को सफल बनाने के लिए एक सशक्त पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है।

दास, भोलानाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1858 ई०, मृत्यु—1929 ई०]

जन्म स्थान—नौगाँव।

इन्होने एट्रेंस तक शिक्षा पाई थी। इन्होने क्रमश इन पदो पर कार्य किया था—नौगाँव मे डिस्ट्रिक्ट सर्वेयर, वही के हाई स्कूल मे शिक्षक, शिवसागर के सर्वे स्कूल मे शिक्षक, सब-डिप्टी-कलेक्टर, मजिस्ट्रेट और सहायक सेटलमेंट ऑफिसर।

प्रकाशित रचनाएँ—'कविता माला' प्रथम भाग (1882 ई०), द्वितीय भाग (1883 ई०), 'चितातरगिणी' (1884 ई०), 'सीताहरण-काव्य' (दे०) (1902 ई०)।

अप्रकाशित—'सुभद्राहरण' (अपूर्ण), 'प्रसग-माला' (गद्य-पद्य मिश्रित रचना)।

इन्होने रमाकात चौधरी (दे०) के समान अमित्राक्षर छद मे सीताहरण काव्य' की रचना छात्रावस्था मे की थी। अतुकात छद मे लिखा हुआ यह ग्रथ असमीया भाषा का प्रथम महाकाव्य है। इसका शब्द प्रयोग और भाषा दोषपूर्ण है, फिर भी यत्रतत्र काव्य प्रतिभा के दर्शन हो जाते हैं। सगृहीत कविताओ म कवि कल्पना का परिचय भलीभाँति मिलता है। असमीया साहित्य मे गीति-कविताओ का इन्होने ही प्रवर्तन किया था, किंतु इनकी कविताओ की इतनी कटु आलोचना की गई थी कि इनका विकास रुक गया।

ये असमीया के प्रथम गीतिकार हैं।

दास, मनोज (उ० ले०) [जन्म—1934 ई०]

श्री मनोजदास उडिया के एक प्रमुख कहानीकार हैं। आधुनिक जीवन की विशृंखलता, कुहासा, सकट, ह्रासोन्मुख जीवन-चेतना, मूल्यहीनता, आदि बातो ने इनकी रचनाओ मे स्थान पाया है। इनके उपन्यास 'आरण्यक' (दे०) पर इन्हे 1965 ई० मे राज्य-साहित्य-अकादेमी पुरस्कार मिला था। अपनी समुन्नत गद्य-शैली के द्वारा इन्होंने उडिया साहित्य को एक नूतन गद्य-शैली दी है। 'दिगत' पत्रिका के ये कई वर्षो तक सपादक रहे हैं। आजकल ये पाडिचेरी के इटरनेशनल सेंटर ऑफ एजुकेशन मे अँग्रेजी के अध्यापक है। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—इडोनेशिया अनुभूति' (भ्रमण-वृत्तात), 'शेप बसतर चिठि' (कविता) आदि।

दास, मनोरजन (उ० ले०) [जन्म—1923 ई०]

श्री मनोरजन दास (बी० ए०, एल० एल० बी०) द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद के एक प्रमुख नाटककार हैं। इन्होंने उडिया नाट्य-साहित्य मे उद्भट नाटक (एब्सर्ड ड्रामा) का प्रवेश कराया, साथ ही नाट्य-साहित्य का सस्कार भी किया एव पूर्वयुग की कमियो को दूर किया। रेडियो रूपक एव रेडियो नाटक लिखने वालो मे इनका नाम उल्लेखनीय है। इनके नाटक 'अरण्य फसल' (दे०) पर इन्हे 1971 ई० का साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला था। 'बक्सि जगबधु', 'कवि सम्राट् उपेंद्र भज', 'अगष्ट नअ, 'बनहसी' (दे० अशोक), 'आगामी', 'नारी' आदि इनकी रचनाएँ हैं।

दास, मन्मथकुमार *(उ० ले०)*

मन्मथकुमार दास के उपन्यासो मे सूक्ष्म मनोवृत्तियो का चित्रण एव अतर्द्वंद्व का उद्घाटन सफलता स हुआ है। उनके पात्र जीवन की कटु वास्तविकता, परि-स्थिति की विषमता के समक्ष टूटते नही हैं वरन् उस दल-दल से जीवन रस खीचकर और भी सतेज हो उठते हैं। उनके सामाजिक एव मनोवैज्ञानिक उपन्यासो का आधुनिक उडिया उपन्यास-साहित्य मे विशेष महत्व है। 'महाश्वेता' (दे०) इनका प्रसिद्ध उपन्यास है।

दास, मन्मथनाथ *(उ० ले०)*

डा० मन्मथनाथ दास इतिहास के अध्यापक हैं। अत इनके निबधो का विषय भी प्रधानतया इतिहास ही होता है। इतिहास से निकलकर कभी-कभी ये सृजनशील साहित्य मे मनोनिवेश भी करते हैं। इनका उपन्यास 'अस्पष्ट आख्यान' (दे०) जीवन को एक नये दृष्टिकोण से

समझने का प्रयास करता है। मेधावी मानव सारी सृष्टि का रहस्य उद्घाटित कर लेने के बाद भी स्वयं अपने निकट सदा अबूझ पहेली बना रहेगा। जीवन की इस अभेद्यता को साकार करने में इनकी गूढ व्यंजनामयी भाषा व शैली समर्थ है।

दास, योगेश *(अ० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

इनकी शिक्षा एम० ए० तक हुई थी। ये शिक्षक और पत्रकार हैं। प्रकाशित रचनाएँ—उपन्यास : 'सँहारी पाइ' (1955), 'डाबर आरु नाइ' (दे०) (1955), 'जोनाकीर जुइ' (1956), 'निरुपाइ निरुपाइ' (1963) कहानी : 'पापीयातरा' (1957), 'आँधारर आँरे आँरे' (1959)।

इनकी कहानियों की भाषा निराडंबर है, न बौद्धिकता का व्यर्थ प्रदर्शन है न कविता का उच्छ्वास है। उपन्यासों में इनके पात्र स्वयं कहानी विकसित करते हैं। 'डाबर आरु नाइ' में युद्ध-युग की भ्रष्ट नैतिकता के साथ मानवता का संघर्ष और उसकी जय चित्रित है। 'जोनाकीर जुइ' आख्यान-प्रधान कृति है। इसमें तथा 'सँहारी पाइ' में प्रेम-कथा है। 'जोनाकी जुइ' में लेखक का कथा-शिल्पी रूप अधिक सुस्पष्ट है। ये नवयुग के सशक्त कथाकार हैं।

दास, लक्षहीरा *(अ० ले०)* [जन्म—1930 ई०]

जन्म-स्थान—जिला कामरूप।

इन्होंने गौहाटी विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी। प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'प्रथमा' (1950), 'गीतार्थ' (1956), 'सुरसेतु', 'शिशुमनर पथे दि' (मनोविज्ञान) (1955); 'आदर्श नारी' (जीवनी) (1955); आस्कर वाइल्ड की कहानियों का अनुवाद (1956)।

शिलांग और गौहाटी में आकाशवाणी केंद्र की स्थापना के पश्चात् जिन गीतकारों का उदय हुआ है उनमें श्री दास भी हैं। इन्होंने शिशु-मनोविज्ञान पर भी पुस्तकें लिखी हैं।

दास, लोकनाथ *(बँ० ले०)* [समय—अनुमानतः सोलहवीं शती का अंतिम दशक]

इनके जीवन के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। ये अद्वैत प्रभु के शिष्य लोकनाथ चक्रवर्ती ही थे अथवा कोई अन्य—यह कहना कठिन है।

इनकी कृति 'श्रीसीता-चरित्र' है। अद्वैत प्रभु की पत्नी सीतादेवी के अलौकिक चरित्र तथा उनके पुत्रों की कथा इस ग्रंथ में है, गौरांग के जन्म से संन्यास की कथा तथा नीलाचल-गमन की कथा अत्यंत संक्षेप में वर्णित है। इस काव्य में 'चैतन्य भागवत' (दे०) और 'चैतन्य-चरितामृत' (दे०) का उल्लेख मिलता है, अतः अनुमान से यह सोलहवीं शती के आठवें दशक से परवर्ती काल की रचना है।

'सीता-चरित्र' आकार में सामान्य है। काव्य की भाषा सरस है।

दास, सजनीकांत *(बँ० ले०)* [जन्म—1900 ई०; मृत्यु—1962 ई०]

'शनिवारेर चिठि' पत्रिका के संपादक के रूप में सजनीकांत दास ने बंगला साहित्य-क्षेत्र में कई दशकों तक महत्वपूर्ण कार्य किया था। व्यंग्य-कविता-रचना में सजनी बाबू सिद्धहस्त थे। इनकी व्यंग्य-कविताओं की पुस्तकें हैं : 'पथ चलते घासेर फुल' (1929), 'अंगुष्ठ' (1931), 'बंगरणभूमे' (1931) आदि। गंभीर कविताओं की रचना में भी इनकी पारदर्शिता कम नहीं थी। 'राजहंस' (1935), 'आलो आंधारि', 'पंचिशे बैशाख' इस श्रेणी की काव्य-पुस्तकें हैं। सजनीकांत का उपन्यास 'अजय' अपने समय का प्रसिद्ध उपन्यास था। जीवन-कहानी की प्रणाली में लिखे गए इस उपन्यास में नायक अजय के शैशव से यौवन तक के प्रणय-अनुभवों का इतिहास लिपिबद्ध है। उपन्यास की भाषा सांकेतिक कवित्वमय है और इसी के साथ मनस्तत्व का सुंदर सामंजस्य हुआ है। सामूहिक दृष्टि से विवेचन करने पर सजनीकांत दास के ऐतिहासिक मूल्य की अवहेलना नहीं जा सकती।

दास, सीताराम *(बँ० ले०)*

सीताराम दास का जन्म बाँकुड़ा जिले के इंदास ग्राम में अपने मामा के यहाँ हुआ था। इनके जन्म-समय के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। इनके पिता का नाम देवीदास था जो वर्द्धमान जिला के सुखसागर ग्राम में निवास करते थे। ये जाति के कायस्थ थे।

इनकी कृति 'धर्ममंगल' है जिसका रचना-काल संभवतः 1698 ई० है। धर्म ठाकुर ने संन्यासी के वेश में इनको गीत-रचना का निर्देश दिया था। कथानुभक्ति मंगल-

काव्य के कवियो के समान ग्रथ मे इन्होंने आत्म परिचय दिया है।

सीताराम दास की रचना इतिवृत्तात्मक है। कहानी अथवा चरित्र मे कोई नूतनता नही मिलती। ग्रथ मे कोई काव्य-कौशल नही। कृति सामान्य श्रेणी की है। ये मूलत: धर्म-गायक थे।

दास, सूर्यनारायण *(उ० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

इनका जन्म-स्थान पारलाखे मुडी है और पिता का नाम है श्री बालुकेश्वरदास। प० सूर्यनारायणदास की उडिया साहित्य को अमूल्य देन है। इनका विशालकाय ग्रथ 'ओडिआ-साहित्यर इतिहास' (दे०) है, जिसके चार भाग प्रकाशित हो चुके हैं, लेखक की जीवन व्यापी साधना और गभीर अध्ययन का परिणाम है। आज भी ये कटक मे गवेषणा का कार्य कर रहे हैं। इनकी समस्त कृतियो मे गंभीर ऐतिहासिक गवेषणा परिलक्षित होती है।

एम० ए० होते हुए भी इन्होंने अपने लिए स्वतत्र साहित्यिक जीवन स्वीकार किया। भारतीय साहित्य अकादेमी से 1967 ई० मे तथा उडीसा साहित्य अकादेमी से 1969 ई० मे इन्हें पुरस्कार मिला है। उत्कल विश्व-विद्यालय से इन्होने एम० ए० किया है। इनके उल्लेखनीय ग्रथ हैं—'ओडिशार स्वाधीनता सग्रामर इतिहास', 'उन्नी-सवी शताब्दीर ओडिशा', 'ओडिशार सिपाही', 'बिद्रोहर झलक', 'श्री जगन्नाथ मदिर ओ जगन्नाथ तत्व', 'निम्बार्क', 'रामानुज', 'बुद्धदेव', 'देशप्राण मधुसूदन', 'भाषा बोध ओडिआ व्याकरण' आदि।

दासोपंत *(म० ले०)* [जन्म—1551 ई०, मृत्यु—1615 ई०]

इनका मूल निवासस्थान बीदर के निकट 'नारायणपेठ' था। लेकिन अधिकाश समय 'आबेजोगाई' मे व्यतीत हुआ। इन्होने 'गीता' (दे०) पर टीका लिखी है। 'गीतार्णव' (दे०), 'ग्रथराज', 'पचीकरण' आदि इनके लग भग 50 ग्रथ हैं। इनके 'ओवी' छदो की सख्या कई लाख ठहरती है। इतनी विपुल काव्य रचना किसी अन्य कवि ने नही की। 'पचीकरण' काव्य तो एक बडो चादर पर लिखा गया अब भी सग्रहालय मे उपलब्ध होता है। इन्हे विविध रागो का ज्ञान था। अनेक पद इन पर आधारित हैं। मराठी भाषा के प्रति इनमे प्रबल स्वाभिमान था। सस्कृत से मराठी भाषा मे रूपातरण करने की अपेक्षा इन्हे स्वतत्र मौलिक रचना के प्रति विशेष आग्रह था। आराध्य ईश्वर की भक्ति मे इन्होने अपने आपको काता, विरहिणी, दास, शिशु आदि रूपो मे प्रस्तुत किया है। भाषा-शैली अत्यत सरस, सरल और उपमा-दृष्टातो से परिपूर्ण है।

दास्तान-ए-तिलिस्म-ए होशरुबा *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1801-25 ई० के बीच]

'दास्तान-ए-तिलिस्म-ए-होशरुबा' अहमद हुसैन कमर की रचना है। यह 'दास्तान-ए अमीर-हमजा' की एक महत्वपूर्ण कडी है। यह इतनी लबी कथा है कि सात जिल्दो मे समाप्त हुई है। इसमे एक सर्वथा नवीन जगत् की सृष्टि की गई है जिसके शासक, शासन-विधान, परिवेश सब कुछ नया और अपरिचित-सा भी लगता है और जाना-पहचाना भी। इसमे 'तिलिस्म होशरुबा' नामक एक जादू की नगरी की विजय-गाथा है। इसमे वातावरण, पात्र, घटनाएँ तथा सवाद सबमे जादू का आधार है। पर मनोवैज्ञानिक तथ्य भी प्रस्तुत किए गए हैं।

'तिलिस्म-ए-होशरुबा' मे अमीर हमजा और उसके सहयोगी सत् के प्रतीक हैं। असत् के प्रतीक अफरा-सियाब और उसके साथियो पर इनकी विजय दिखाई गई है। इसमे समर-भूमि का साहस, उत्साह एव सघर्ष भी है और रगमहलो के विलास तथा शृगारिक प्रेम का चित्रण भी। एक ओर शौर्य की परीक्षा है तो दूसरी ओर प्रेम तथा यौवन की उमग की जाँच भी है।

'तिलिस्म-ए-हाशरुबा' अरबी तथा भारतीय सस्कृतियो का समन्वित रूप प्रस्तुत करती है। अमीर-हमजा जैसे नायक मे अरबो का परपरागत शौर्य भी है और लख-नऊ की मध्यकालीन विलासिता भी। कथा का असतुलित विस्तार इसकी लोकप्रियता मे बाधक बना है। भाषा मे स्वाभाविकता तथा अस्वाभाविकता का समन्वय है और लखनवी प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। घटना एव पात्र-बहुलता के कारण चरित्राकन मे स्वभावत गहराई नही आ सकी। प्रेमचद (दे०) ने कथा लेखन के प्रेरणा स्रोतो मे इस ग्रथ का उल्लेख किया है।

दिगबर कविता *(तें० प्र०)*

पूर्व निश्चित जीवन मूल्यो का अस्वीकार कर, समस्त प्राचीनता को नष्टभ्रष्ट कर, नये जीवन-बोध का

मूल्यांकन दिगंबरता से—बिना किसी मुखौटे के, बिना किसी आच्छादन के—करने का निश्चय कर छह युवाकवियों ने 'दिगंबर शक' का श्रीगणेश किया। इनके नाम इस प्रकार हैं: (1) नग्नमुनि, (2) निखिलेश्वर, (3) ज्वालामुखी, (4) चेरबंडराजु, (5) भैरवप्पा, (6) महास्वप्न। इन्होंने अपने नाम से संवत्सर चलाए हैं। छह ऋतुओं और छह वारों के नाम क्रमशः इस प्रकार दिए हैं: आशा, तपना, अश्रु, मदिरा, विरह, और विषाद; स्नेह, विश्रृंखल, क्रांति, सृजन, विकास और अनंत। इन्होंने अपनी कविताओं को 'दिक्' कहा है।

तीन कविता-संग्रह (प्रथम 1 मई 1965 ई० का, द्वितीय दिसंबर 1966 ई० का, तृतीय जून 1968 ई० का) प्रकाशित करने के बाद, 1970 ई० में यह पीढ़ी लगभग विघटित हो गई। अब ('70 के बाद) तेलुगु में विरसम्= विप्लव रचयिता (रचयिताओं का)-संघ अस्तित्व में आया है।)

अपने अनुभवों के आधार पर, दिगंबर स्वर से, वर्तमान की कटु आलोचना करने वाले दिगंबर कवियों ने उद्बोधन किया कि सभी मुखौटों को हटाकर, दिगंबर होकर, अपने आपको देख लो तो वर्तमान व्यवस्था को बदल देने के लिए कटिबद्ध हो जाओगे। किंतु वर्तमान की कटु-तिक्त आलोचना के अतिरिक्त इनके पास कोई जीवन-दर्शन नहीं रहा, इसलिए ये कवि समाज पर कोई स्थायी प्रभाव डाले बिना ही, मात्र एक चकाचौंध उत्पन्न कर, विलीन हो गए।

दिगू *(म० पा०)*

यह बाळ कोल्हटकर (दे०) के 'दुरिताचें तिमिर जावो' नाटक का अमर पात्र है। अपने बहनोई द्वारा दिए गए कष्टों को भी यह हँसते-हँसते सह लेता है परंतु बहनोई द्वारा अपनी ममतामयी माँ को धीरे-धीरे जहर दिए जाने की बात से अवगत हो इसका भावुक मन हाहाकार कर उठता है। यद्यपि बहनोई ने छल-कपट से इसकी समस्त संपत्ति का अपहरण कर इसकी स्थिति घर के सामान्य नौकर से भी बदतर बना दी है तथापि इसके आचार-व्यवहार में कोई अंतर नहीं आया बल्कि अपने सद्व्यवहार एवं सहज-सरल प्रकृति के कारण यह जन-सामान्य में अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त कर लेता है। अपनी माँ के देहावसान के उपरांत ही यह अपने बहनोई के षड्यंत्रों से पूर्णरूपेण परिचित होता है और अपनी खोई संपत्ति को प्राप्त करने में सफल होता है। गाँव में पड़े भीषण दुर्भिक्ष को दूर करने के लिए यह आत्मबलिदान कर जनता की श्रद्धा और कृपा का भाजन बन जाता है। दिगू का आदर्शवादी चरित्र नाटककार के सिद्धांतादर्शों का संवाहक मात्र होने के कारण उसके द्वारा ही परिचालित होता है।

दिघे, र० वा० *(म० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

शिवाजी की भूमि में, शिवाजी की सहायता करने वाले पूर्वजों के परिवार में उत्पन्न दिघे ने पूना के सुप्रसिद्ध विद्यालय 'डेक्कन कॉलेज' से बी० ए०, एल-एल० बी० किया। कुछ दिन वकालत करने के बाद ये साहित्य-सेवा में संलग्न हुए और आज वृद्धावस्था में अपने गाँव में खेती की देखभाल तथा साहित्य-सेवा करते हुए जीवन-यापन कर रहे हैं। उनके उपन्यास-साहित्य की विशेषताएँ हैं—ग्रामीण जीवन का वर्णन, शृंगार और अद्भुत का पुट तथा देशभक्ति। वस्तुतः ग्रामीण जीवन पर उपन्यास लिखने वालों में दिघे अग्रणी हैं। इनके उपन्यासों की भाषा, प्रसंग और भावना सभी ग्राम्य-गंध से सुवासित हैं। इनके उपन्यासों में कातोडी आदि जंगली जातियों के रहन-सहन, युवकों की कुश्ती, बैलों की दौड़, बाघ के शिकार, गरीबी, खेत, प्रणय-व्यापार आदि का सजीव वर्णन है। शब्द-चित्रों ने उनके उपन्यासों को अत्यंत मोहक बना दिया है। महाराष्ट्र के वृक्षों, पुष्पों, पक्षियों, सुवासित वातावरण, सुंदर अल्हड़ युवतियों, चंद्रोदय आदि के शब्द-चित्र न केवल वातावरण को पाठक के सम्मुख साकार कर देते हैं अपितु लेखक की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति, कल्पना-वैभव और चित्रण-कौशल के भी परिचायक हैं। यदि इनके उपन्यासों में कोई बात खटकती है तो वह है पात्रों का अस्वाभाविक आचरण और अस्वाभाविक भाषा। उनकी जंगली जाति की नायिकाएँ जब कॉलिज-कन्या की तरह व्यवहार करती हैं और नागर-समाज की पुस्तकीय भाषा बोलती हैं तो रस-भंग हो जाता है। फिर भी साहित्य-समिति ने पुरस्कार देकर तथा रजत-पट ने उनकी कृतियों को पट-कथा के लिए चुनकर इनका भारी सम्मान किया है।

प्रधान कृतियाँ—पाणकळा, सराई, पानलुब्या मृगनयना, आई आहे शेतांत।

दिङ्नाग (धीरनाग, धोरनाग) *(सं० ले०)*

इस नाम के दो लेखक कहे जाते हैं— बौद्ध दार्श-

निक दिङ्नाग जोकि पाँचवी शती मे विद्यमान थे, तथा 'कुदमाला' (दे०) नाटक के रचयिता दिङ्नाग, जो कि अनुमानत 1000 ई० मे विद्यमान थे। नाटककार दिङ्नाग का नाम धीरनाग या वीरनाग भी कहा जाता है। 'कुदमाला' मे राम द्वारा सीता के परित्याग से लेकर राम-सीता-मिलन तक की घटना का वर्णन है। गोमती के तट पर घूमते हुए राम-लक्ष्मण ने जल मे बहती हुई कुद के फूलो की माला को देखकर सीता को खोज निकाला, अत नाटक का नाम 'कुदमाला' है। 'कुदमाला' और भवभूति (दे०)-रचित 'उत्तररामचरित' (दे०) मे अनेक प्रसगो मे साम्य है, अत दिङ्नाग भवभूति के ऋणी प्रतीत होते है, किंतु फिर भी दिङ्नाग ने स्थान-स्थान पर अपनी मौलिकता भी प्रकट की है। इन दोनो नाटको मे स्पष्ट अतर भी परिलक्षित होते हैं। 'उत्तररामचरित' मे करुण और वीररस का परिपाक हुआ है और 'कुदमाला' मे करुण रस का। 'उत्तररामचरित' मे राम और सीता अधिक आदर्शवादी है किंतु 'कुदमाला' मे दोनो मानवीय न्यूनताएँ भी हैं। 'उत्तररामचरित' की शैली दुर्बोध एव श्रमसाध्य है, किंतु 'कुदमाला' की सरल, सुबोध है। इसके अतिरिक्त 'उत्तररामचरित' अभिनेयता की दृष्टि से इतना सफल नहीं है, जितना कि 'कुदमाला' नाटक है। हाँ, कवित्व की दृष्टि से 'उत्तररामचरित' का महत्व 'कुदमाला' की अपेक्षा कही अधिक है।

'दिनकर', रामधारीसिंह *(हिं० ल०)* [*जन्म—1908 ई०, मृत्यु—1974 ई०*]

इनका जन्मस्थान ग्राम सिमरिया, जिला मुगेर (बिहार) है। एक साधारण कृषक-परिवार मे जन्म लेकर भी ये प्रतिभा और अध्यवसाय के बल पर भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति और भारत सरकार के हिंदी सलाहकार के उत्तरदायित्वपूर्ण पदो तक पहुँचे। 1952-64 ई० मे ये राज्यसभा के मनोनीत सदस्य रहे। अपनी साहित्य-सेवाओ के लिए इन्हे भागलपुर विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की सम्मानोपाधि और भारत सरकार से 'पद्मभूषण' का अलकरण प्राप्त हुआ।

इनकी काव्य-कृतियो मे 'हुकार', 'रसवती' (दे०), 'सामधेनी' आदि मुक्तक और 'कुरुक्षेत्र' (दे०), 'उर्वशी' (दे०) आदि प्रबध-रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं। 'चक्रवाल' इनकी चुनी हुई रचनाओ का सकलन है। अपने और अपने युग के काव्य का विश्लेषण तथा स्पष्टीकरण करने के लिए इन्होंने कुछ आलोचनात्मक निबध भी लिखे हैं। 'संस्कृति के चार अध्याय' पर इन्हे साहित्य अकादेमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

इनके काव्य का मूल स्वर राष्ट्रीय-सास्कृतिक है। कवि की राष्ट्रीय भावना पर तत्कालीन उग्र राजनीति का प्रभाव अत्यत स्पष्ट है। सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन की आकाक्षा से इन्होने क्राति का आह्वान ओजस्वी भाषा मे किया है। इनकी प्रारभिक रचनाओ मे ग्राम जीवन का सारल्य और युवकोचित आवेग सर्वत्र दिखाई देता है। परवर्ती रचनाओ मे सारल्य के साथ शिल्प-समृद्धि और आवेग के साथ चिंतन प्रौढि का दुर्लभ सयोग हो गया है जिसके ज्वलत उदाहरण हैं—'कुरुक्षेत्र' और 'उर्वशी'।

'दिनकर' के काव्य मे उदात्त और कोमल का सुदर समन्वय है। इसलिए इनके काव्य मे वीर और शृगार की धाराएँ आद्यत युगपत् प्रवाहित रही हैं। 'महाभारत' (दे०) जैसे आर्ष ग्रथो की प्रवृत्तिमूलक विचारधारा से इनकी सस्कृतिनिष्ठ प्रतिभा निरतर प्रभावित रही है। इसी विचारधारा मे प्रतिष्ठित होकर इन्होंने प्रगतिवादी (दे०) *या फ्रायडवादी पाश्चात्य प्रवृत्तियो का स्वस्थ रीति से उन्नयन किया है। 'कुरुक्षेत्र' का प्रगतिवाद अद्वैतवादी कर्मयोग के और उर्वशी का फ्रायडवाद त्यागपूर्वक भोग के सिद्धात मे रम गया है।*

कलात्मक दृष्टि से प्रसादमयी निश्छल अभिव्यक्ति और ओजस्वी भाषा इनके काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इनकी आस्था देश की मिट्टी मे अकुरित होकर पूर्वग्रहमुक्त सार्वभौम विज्ञान के निरभ्र आकाश मे पल्लवित हुई है।

दिया अभयना दान *(गु० कृ०)* [*प्रकाशन-वर्ष—1961 ई०*]

शिवकुमार जोशी (दे०) का यह उपन्यास 1962 ई० के भारत-चीन सघर्ष की पृष्ठभूमि मे लिखा गया है। लेखक ने स्वय युद्धभूमि म जाकर युद्ध विषयक जानकारी प्राप्त करने के बाद ही यह उपन्यास लिखा है। रणागण यथास्थान होने के कारण उसमे विशाल और विविध पात्रसृष्टि है। पत्रकार गुप्तचर, पुलिस और सैन्य अधिकारी, व्यापारी, देशद्रोही, हिंदी, तिब्बती, अंग्रेज अमरीकी और चीनी—इस प्रकार लेखक ने सारा विश्व खडा कर दिया है। लेखक ने बहुत-सी ऐतिहासिक और भौगोलिक सूचनाएँ भी दी है। लेखक ने कथा के अतिम भाग म नायिका के परस्पर विरोधी जैसे दो व्यक्तित्व दिखाकर परिवेश मे

अतिरिक्त कथाशिल्प को भी आधुनिक रंग दिया है। गुजराती उपन्यास-साहित्य में युद्ध की पटभूमि पर लिखा गया यह एकमात्र उपन्यास है और इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

दियाच (*सिं० पा०*)

सिंधी साहित्य में राजा दियाच की लोक-कथा प्रसिद्ध है। राजा दियाच सिंध के दस दानवीर राजाओं में से एक था और गिरनार (जूनागढ़) में उसकी राजधानी थी। गुजरात का राजा अनिराइ राजा दियाच का कट्टर शत्रु था और उसे मारने की ताक में लगा रहता था। राजा अनिराइ ने अपने राज्य के बीजल नामक एक चारण को राजा दियाच का सिर काट कर लाने की आज्ञा दी। राजा दियाच का संगीत-प्रेम प्रसिद्ध था और बीजल चंग बजाने में सिद्धहस्त था। बीजल को विवश होकर यह कुकर्म करना पड़ा। उसने राजा दियाच को संगीत से मुग्ध कर उससे दान में सिर ले लिया। बीजल जब राजा दियाच का सिर लेकर राजा अनिराइ के दरबार में पहुँचा तब राजा अनिराइ ने बीजल को अपने लिए भी ख़तरे का कारण समझ कर उसे देश से निकाल दिया। बीजल अपने किए पर पछताता हुआ वापस गिरनार पहुँचा जहाँ रानी सोरठ अपने पति राजा दियाच के धड़ के साथ सती हो रही थी। बीजल भी इस दानवीर राजा के सिर को लेकर चिता की आग में कूद पड़ा और इस प्रकार इसने अपने पाप का प्रायश्चित्त किया। सिंधी साहित्य में राजा दियाच संगीत-प्रेमी और महान् दानवीर के रूप में अभी तक याद किया जाता है।

दिलआराम (*उर्दू० पा०*)

'अनारकली' (दे०) नाटक को एक त्रासदी बनाने में दिलआराम की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। 'ताज' (दे० इम्तियाज़ अली 'ताज') ने अनारकली के माध्यम से औरत का गहरा दार्शनिक निरूपण किया है। यों तो दिलआराम एक दासी थी जिसका काम शाहे-वक़्त और शाहज़ादे की ख़िदमत करना था लेकिन उसने शाहज़ादे की मुहब्बत में मुग़ल हुकूमत पर निगाह रखी। इस पात्र में इंद्रियलोलुपता, क्षुधाग्निदीपन और ईर्ष्यालुता की आत्मा पाई जाती है। वह बला की ज़हीन है। महल की हर बात पर उसकी निगाह रहती है। सलीम से लेकर अकबर तक उसके इशारों पर नाचते हैं। वह सलीम से नहीं, अकबर के ताजो-तख़्त से मुहब्बत करती है और उसकी अभिव्यक्ति का अवसर तलाश रही थी कि उसी वक़्त अनारकली सामने आई। उसे रास्ते से हटाने के लिए दिलआराम ने पूरे महल में छलकपट का जाल बिछा दिया। यह सही है कि इस जाल में वह ख़ुद ही फँस गई और उसे सफलता नहीं मिली परंतु अपनी प्रखर बुद्धि से उसने अपनी प्रतिद्वंद्विनी को भी मटियामेट कर दिया। वह न होती तो अनारकली की मुहब्बत सादा-सपाट हो जाती; दिलआराम के छल-कपट ने उसे चमका दिया। दिल आराम ख़ुद जलती है तो सारी दुनिया में आग लगा देती है—यहाँ तक कि जिससे मुहब्बत करती है उसकी भी तबाही का कारण बन जाती है।

'दिलगीर', हरी दर्याणी (*सिं० ले०*) [जन्म—1916 ई०]

इनका जन्म सिंध के लाड़काणो नामक नगर में हुआ था। व्यवसाय से इंजीनियर होते हुए भी ये सिंधी के प्रमुख कवियों में स्थान रखते हैं। आजकल ये आदिपुर (कच्छ) में एक महाविद्यालय के मुख्याध्यापक हैं। इन्होंने सिंध के प्रसिद्ध कवि किशनचंद 'बेवस' (दे०) से अधिक प्रेरणा प्राप्त की है। इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं—'कोड', हरिश्चंद्र जीवन कविता', 'भाकफुड़ा' (नारायण श्याम और आपकी कविताओं का संग्रह), 'मौज कई महिराणा'। इन्होंने जहाँ एक ओर बच्चों के लिए सरल और मधुर गीत लिखे हैं वहीं दूसरी ओर गहन और दार्शनिक विचारों से पूर्ण कविताएँ भी लिखी हैं। सिंधी कविता के विकास में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

दिलीप (*सं० पा०*)

दिलीप प्रथम और दिलीप खट्वांग इन दोनों को कई विद्वान् एक मानते हैं और कई अलग-अलग। दिलीप प्रथम को राजा भगीरथ का पिता माना जाता है जो अपने 'भगीरथ' प्रयास से गंगा नदी को पृथ्वी पर ले आए थे। दिलीप खट्वांग को अयोध्या के प्रसिद्ध राजा रघु का पितामह माना जाता है। दिलीप खट्वांग ने अपनी पत्नी सुदक्षिणा के साथ पुत्रोत्पत्ति के हेतु कामधेनु-कन्या नंदिनी गाय की सेवा करनी आरंभ की थी और 'मायावी' सिंह से उसकी रक्षा करने के लिए स्वदेह तक का अर्पण कर दिया था। परिणामतः, धेनु के प्रसादस्वरूप इसे रघु नामक पुत्र

की प्राप्ति हुई। कालिदास (दे०) ने इसी गाथा को 'रघुवंश' (दे०) मे प्रस्तुत किया है। दिलीप चक्रवर्ती सम्राट् था और इसने सैकडो यज्ञ किए थे और अपार सपत्ति दान मे दी थी।

दिवाकर कृष्ण *(म० ले०)* [जन्म—1902 ई०]

स्वल्प लिखकर भी जिन्होने साहित्य के क्षेत्र मे अमरत्व प्राप्त किया है उनमे कहानीकार दिवाकर कृष्ण का नाम उल्लेखनीय है। एम० ए०, एल एल० बी० कर हैदराबाद मे वकालत करने वाले इस लेखक के केवल 7-7 कहानियो के दो कथा-सग्रह प्रकाशित हुए। एक की कहानियाँ यदि पाठक को करुण रस से आप्लावित करती हैं तो दूसरे को पढते समय पाठक प्रणय की कोमल और सूक्ष्म भावधारा मे अवगाहन करने लगता है। रवीद्र (दे० ठाकुर रवीद्रनाथ) की काव्यमयता और भावुकता, बाल मानस तथा स्त्री हृदय का सवेदनापूर्ण चित्रण, स्वच्छदतावादी मनोवृत्ति, रम्य प्राकृतिक दृश्यो की मोहकता तथा प्रसादगुणसपन्न काव्यमय भाषा इनकी कहानियो के विशिष्ट गुण है।

प्रमुख कथा-सग्रह—'समाधि', 'रूपगर्विता' आदि।

दिवाकर, र० रा० *(क० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

रगनाथ रामचद्र दिवाकर कर्णाटक के महान् नेता, जननायक, गाधीवादी तथा साहित्यकार है। इन्होने सत-साहित्य, विचार साहित्य आदि पर बहुत-कुछ लिखा है। इनका जन्म धारवाड के एक सुसस्कृत परिवार मे हुआ था। इन्होने धारवाड तथा बबई मे शिक्षा पाई। अंग्रेजी मे एम० ए० करके इन्होने वकालत की परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी। विद्यार्थी-जीवन मे ही गाधी जी की पुकार सुनकर ये स्वराज्य-सग्राम मे कूद पडे थे और कई बार जेल भी गए थे। स्वराज्य प्राप्ति पर ये केंद्रीय मत्रिमडल मे सचार-मत्री रहे। बाद मे बिहार के राज्यपाल रहे।

दिवाकर अध्यात्मवादी है। जेल मे रहते समय इन्होने कर्णाटक के वीरशैव सतो की बानियो का विशेष अध्ययन किया था। इसके फलस्वरूप इनका प्रसिद्ध ग्रथ 'वचनशास्त्र-रहस्य' निकला। रहस्यवाद की विस्तृत भूमिका तथा कर्णाटक के सतो के साथ हिंदी, मराठी तथा पाश्चात्य सतो की विचारधारा की तुलना इसकी सबसे बडी विशेषता है। इनकी शैली अत्यत प्राजल है। इसी प्रकार इन्होने कर्णाटक के हरिदासों का भी गहरा अध्ययन किया है जिसके फलस्वरूप इनका 'हरिभक्ति सुधे' नामक सग्रह प्रकाश मे आया। इसकी भूमिका मे भक्ति के उद्गम और विकास की सुदर चर्चा है। वचनकारो की शैली मे इन्होने गद्य-काव्य भी लिखे हैं जो 'अतरस्मृतिगे' (अतरात्मा से) मे सगृहीत हैं। इनमे यद्यपि आत्मनिरीक्षण, अतिभक्ति और आनदानुभूति है तथापि इनकी शैली अत्यत मार्मिक है। मतातीत आधुनिक भक्त जीव की अत्यत सहज अभिव्यक्ति इनमे है। इन्होने गीता पर भाष्य तथा उपनिषदो का सरल अनुवाद भी किया है। महर्षि अरविंद की जीवनी भी इन्होंने कन्नड तथा अँग्रेजी मे लिखी है। ये कन्नड के आध्यात्मिक साहित्य के स्रष्टा एव अधिकारी विद्वान है।

दिवेटिया, नरसिंहराव *(गु० ले०)* [जन्म—1859 ई०, मृत्यु 1937 ई०]

अहमदाबाद के एक सभ्रात नागर परिवार मे उत्पन्न नरसिंह राव को पिता भोलानाथ दिवेटिया का कला-प्रेम, साहित्यानुराग, सुधार-दृष्टि और पाडित्य विरासत मे मिला था। भाउदाजी पुरस्कार के साथ सस्कृत मे बी० ए० की उपाधि प्राप्त कर ये सरकारी नौकरी मे लगे और कलेक्टर के पद तक पहुँचकर 1912 ई० मे निवृत्त हुए। ऊपर से सब प्रकार से सुखी नरसिंह राव का अतर्मन पुत्र, पुत्री व पत्नी की मृत्यु के मर्मांतक घावो से पीडाग्रस्त रहा।

1921 ई० मे बबई विश्वविद्यालय ने इनकी मानद सेवाओ के साथ गुजराती विषय का उच्चस्तरीय अध्यापन व शोधकार्य प्रारभ किया।

'मनोमुकुर' भा० 1-4 (समीक्षा) (दे०), 'स्मरणमुकुर' (रेखाचित्र), 'विवर्तलीला' (निबध), 'अभिनय-कला' (रगमच-विषयक व्याख्यान), 'नरसिंह राव जी रोजनीशी' (डायरी), 'कसुममाला', 'हृदयवीणा', 'नूपुर-झकार', 'स्मरण-सहिता' (दे०) (काव्य-रचनाएँ), 'बुद्ध-चरित (पद्यानुवाद), 'गुजरात एड इटस लिटरेचर' इनकी रचनाएँ हैं।

'कुसुममाला' अर्वाचीन गुजराती कविता म नवप्रस्थानकारी रचना है। पाश्चात्य शैली के प्रेम व प्रकृति-विषयक इनकी असख्य प्रगीति-कविताएँ इसमें सकलित हैं। 'हृदय-वीणा' भी स्वानुभूति-निरूपक प्रगीतो का सग्रह है। 'नूपुर झकार' म कवित्व थोडा उतार पर है। 'स्मरण-सहिता' गुजराती की एक उत्तम करुण-प्रशस्ति (एलिजी)

है। पुत्रशोक इसका मुख्य विषय है। 'बुद्ध-चरित' एडविन आर्नल्ड के 'लाइट ऑफ़ एशिया' का पद्यानुवाद है। प्रतिभाशाली पंडित, प्रकृति और प्रेम के समर्थ गीतिकार, समीक्षक तथा भाषाशास्त्री के रूप में नरसिंहराव का स्थान व कार्य गुजराती में अविस्मरणीय रहेगा।

दिवेटिया, भोगींद्र राव *(गु० ले०)* [जन्म—1875 ई०; मृत्यु—1917 ई०]

भोगींद्रराव दिवेटिया का जन्म अहमदाबाद में हुआ था। 1890 ई० में ही, 15-16 वर्ष की अवस्था में, इन्होंने काव्य-प्रणयन करना शुरू किया था। 1900 ई० में इंद्रवा से इनका विवाह हुआ। वे एक सुरुचिशील लेखिका थीं और 'प्रमिला' के नाम से कहानियाँ लिखती थीं।

भोगींद्रराव दिवेटिया कवि, संपादक व उपन्यासकार थे। 25-26 वर्ष के सर्जक जीवन में इन्होंने 25 ग्रंथ रचे। ये 'सुंदरी सुबोध' के संपादक थे। व्यवसाय से ये अध्यापक थे। इनके द्वारा रचित ग्रंथ हैं—

'मृदुला', 'उषाकांत', 'चमेली', 'राजमार्ग नो मुसाफिर', 'सितारा नो शोख', 'जीवन-कला', 'नवरंगी बाळको', 'रसिकचंद्र', 'तरला', 'एसिस्टेंट कलेक्टर', 'त्रिभुवनदास भाणजी का चरित्र', 'मोहिनी', 'दिवाली के होळी', 'स्नेह के मोह', 'लग्न धर्म के करार', 'बालकुमार', 'अजामिल', 'कॉलेजियन', 'ललितकुमार', 'ज्योत्स्ना', 'स्त्रीओ अने समाज सेवा', 'सालीसीटर', 'बालवाड़ी', 'टॉलस्टॉय-जीवन-चरित्र', 'इंगलेंड नो इतिहास'।

इन ग्रंथों से पता चलता है कि ये बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। जीवनी, उपन्यास, काव्य, इतिहास, स्त्री-शिक्षा, बाल साहित्य आदि विविध क्षेत्रों में इनका योगदान काफ़ी महत्वपूर्ण है। इन्होंने रमणलाल देसाई (दे०) जैसे सिद्ध उपन्यासकारों के लिए भूमिका तैयार की। मध्यमवर्गीय जीवन का स्वाभाविक किंतु रोचक चित्र तथा निर्धनता की मर्मभेदिनी कथा प्रस्तुत करने में ये सिद्धहस्त हैं। वैविध्यपूर्ण चरित्र-सृष्टि इनके उपन्यासकार की शक्ति है।

दिव्यचक्षु (गु० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1932 ई०]

रमणलाल वसंतलाल देसाई (दे०) द्वारा रचित 'दिव्यचक्षु' नामक उपन्यास 1932 ई० में प्रकाशित हुआ था। गांधीवादी विचारधारा और राजनीतिक कार्य-पद्धति की भूमिका पर लेखक ने प्रेम के उदात्ततम रूप को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। नायक अरुण से पुष्पा और रंजना दोनों प्रेम करती हैं। उन्मुक्त स्वभाववाली रंजना अरुण को पुष्पा के लिए छोड़ देती है और पुष्पा को जब यह ज्ञात होता है कि अरुण अपनी संपूर्ण हार्दिकता से रंजना को ही प्रेम करता है तो पुष्पा उसे पुनः रंजना को ही सौंप देती है और यह माँग लेती है कि उनकी पहली संतान पुष्पा को ही मिलनी चाहिए। इस कथा का दूसरा पक्ष है मरण। क्रांतिकारी अरुण जनार्दन के संपर्क में आने से गांधीवादी अहिंसा को एक वर्ष के लिए स्वीकार कर लेता है। ध्वजारोहण के प्रयत्न में घायल होकर बंदी बना लिया जाता है। जेल में आग लगने पर वह अंग्रेज परिवार को भी बचाने का उपक्रम करता है और स्वयं अपनी आँख खो देता है। यही समय है जब रंजना उसे सहारा देकर आत्महत्या करने से रोक लेती है। राष्ट्रीय और उदात्त प्रेम की यह एक सुंदर कथा है। 'दिव्यचक्षु' पढ़कर सहज ही मुंशी प्रेमचंद (दे०) का स्मरण हो आता है। इस उपन्यास में वर्णनात्मकता और कहीं-कहीं सूक्त्यात्मकता के वैसे ही दर्शन होते हैं जैसे प्रेमचंद में।

दिव्या *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1945 ई०]

बौद्धकालीन भारत की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधृत यशपाल (दे०) की इस प्रसिद्ध औपन्यासिक कृति में तत्युगीन भारत के आभिजात्य वर्ग द्वारा सर्वहारा वर्ग के शोषण, दास-दासियों की दयनीय स्थिति तथा उनके साथ किए जाने वाले पशुवत् व्यवहार, कुलों के पारस्परिक कलह और नानाविध संघर्षों के मध्य गुजरती हुई नारी की कारुणिक दशा का कलापूर्ण अंकन है। मार्मिक एवं कौतूहलवर्धक कथा-प्रसंगों के समुचित संयोजन, युग-युगांतर से शोषित नारी के विद्रोह को स्वर प्रदान करने वाली दिव्या (दे०) सदृश सशक्त चारित्रिक सृष्टि, संक्षिप्त, स्वाभाविक और पात्रों की चारित्रिक विशिष्टताओं को उद्घाटित करने वाली रोचक संवाद-योजना, देशकाल-व्यंजक, भावात्मक एवं चित्रोपम भाषा-शैली आदि कतिपय अन्य ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके फलस्वरूप यह कृति न केवल हिंदी के औपन्यासिक साहित्य की महत्वपूर्ण निधि बन गई है अपितु देश-विदेश की अनेक भाषाओं में अनूदित होने का गौरव प्राप्त कर चुकी है।

दिव्या *(हिं० पा०)*

यह यशपाल (दे०) के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' (दे०) की एक ऐसी चारित्रिक सृष्टि है जिसमे लेखक ने सामतयुगीन, उच्चकुलोद्भव तथा सुकुमार नारी को युग-युग से शोषित नारी के विद्रोह के प्रतीक-रूप मे प्रतिष्ठित किया है। नानाविध सामाजिक कुरीतियो, अत्याचारो, विषमताओ आदि को सहती हुई सागल के *धर्मस्थ महापडित की प्रपौत्री तथा जनपद-कल्याणी मल्लिका* की शिष्या दिव्या इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि नारी को कुलवधू का सम्मान, कुलमाता का आदर तथा कुलमहादेवी का अधिकार स्वत्व का त्याग करके ही प्राप्त होता है। लेकिन यह स्वाभिमानिनी नारी स्वत्व को नष्ट करना नही चाहती तथा आभिजात्य के वैभव-विलास को तुच्छ मानते हुए ठुकरा देती है। उसकी दृष्टि मे आत्मनिर्भरता के लिए *नाना प्रकार के कष्ट सहना तथा वेश्या-सा निरर्थक जीवन* व्यतीत करना कही अधिक सार्थक है। आत्मविश्वास से परिपूर्ण यह प्रगतिशील साहसी नारी अवैध सतान को कलक नही समझती और उसके पालन-पोषण के निमित्त दासी-कर्म करने तथा स्वय को बेचने के लिए भी तैयार रहती है।

दिव्यावदान *(स० कृ०)* [समय—सभवत पहली शती ई०]

सस्कृत मे पालिजातको की भाँति बौद्ध कथाओ को सन्निविष्ट करने वाले साहित्य को 'अवदान साहित्य' कहते हैं। इनमे 'दिव्यावदान' अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

इस ग्रथ मे मुख्यत हीनयान को आधार बनाया गया है। इसकी कथाएँ गद्य मे हैं, पर स्थान-स्थान पर गाथाएँ दी गई हैं, जो पद्यबद्ध तथा अलकारयुक्त हैं। इसकी भाषा विशुद्ध सस्कृत है पर कहीं-कहीं पाली के सपर्क से मिश्रित तथा भ्रष्ट भाषा का प्रयोग भी किया गया है। अशोक से सबध रखने वाली कथाएँ ऐतिहासिक तथा मनोरजक हैं, परतु उनके कहने का ढग बिल्कुल भोडा, अव्यवस्थित तथा विशृखल है।

दीक्षित, (श्रीमती) मुक्ताबाई *(म० ले०)*

श्रीमती मुक्ताबाई दीक्षित बहुमुखी प्रतिभासपन्न साहित्यकार हैं। अपने कथा-साहित्य के अनुरूप ही अपनी नाट्य-रचनाओ की कथा का चयन इन्होंने मुख्यत *मध्यवर्गीय सामाजिक जन जीवन से किया है*। 'जुगार', 'अवलिया' तथा 'ससार' इनकी प्रमुख नाट्य-रचनाएँ हैं। 'जुगार' मे विवाह को जुआ समझने वाली महिला का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। 'अवलिया' मे सुख-दुख को समान रूप से ग्रहण करने का सदेश है तथा 'ससार' मे पतनोन्मुख बौद्ध धर्म का सजीव अकन। इन नाटको मे कथा का विकास जहाँ पाश्चात्य नाट्य-तत्र के अनुरूप सघर्ष के *माध्यम से हुआ है, वहाँ चरित्र-निरूपण मनोविश्लेषणात्मक* पद्धति पर हुआ है। अभिनयोचित चाचल्य से परिपूर्ण तथा पात्र-पसगानुकूल भाषा से युक्त मार्मिक सवाद इनकी नाट्य-रचनाओ की अनूठी विशेषता है।

दीनकृष्णदास *(उ० ले०)* [जन्म—1651 ई०, मृत्यु—1713 ई०]

भक्त शिरोमणि, रससिद्ध कवि दीनकृष्णदास का प्रभाव उपेंद्र भज (दे०) से लेकर राधानाथ, मधुसूदन (दे०) व गगाधर मेहेर (दे०) तक देखा जा सकता है। दीनकृष्णदास बालेश्वर जिले के जलेश्वर ग्राम के निवासी तथा मधुसूदनदास के पुत्र थे। ये द्वितीय मुकुद देव तथा दिव्यसिंह देव के शासनकाल मे जीवित थे। दीनकृष्ण पचसखा (दे०) मतावलबी तथा जगन्नाथ के अनन्य उपासक थे। कृष्ण की पूजा इन्होंने मानव-विष्णु के रूप मे की है। यद्यपि इनके काव्य मे शुद्ध भक्ति का निर्देश मिलता है, फिर भी *योग व ज्ञान-सकलित भक्ति पर इनका अधिक* विश्वास था। रुग्ण व निर्धन होते हुए भी दीनकृष्णदास ने व्यक्ति-स्वातत्र्य चेतना के मूल्य पर राजकृपा नही लेनी चाही थी, फलत इन्हे दडित होना पडा।

जीवन की कडवी अनुभूति, सामाजिक कटुता, आर्थिक विपन्नता, शारीरिक अस्वस्थता तथा राजदड के कारण इनका अतर क्षुब्ध हो गया था। सभी ओर से निराश होकर इन्होंने अपने को जगन्नाथ के पाद-पद्मो मे समर्पित कर दिया। 'आर्तत्राण चउतिशा' इनके आकुल *अतर की आवेगमयी अभिव्यक्ति है*। यह लघु काव्य भाव-सपदा व काव्य वैभव की दृष्टि से महान रचना है। 'रस-कल्लोल' (दे०) मे कृति की सज्ञा के अनुरूप ही रस *कल्लोल कर रहा है। कृष्ण के नयनाभिराम रूप पर मोहित* कवि के भाव विह्वल अतर ने 'रस-कल्लोल' का रूप ले लिया है।

'रस-विनोद', 'नाव-केलि', 'जगमोहन छंद', 'नवरत्न-गीता' आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं। इनकी रचनाओं की जन-प्रियता के मूल में इनकी संगीतात्मकता, मंजुल अलंकार-योजना, नैषधीय (दे० नैषध) शब्द-चमत्कार, गीत-गोविंद (दे०)-जैसा पद-लालित्य आदि विशेषताएँ हैं।

दीनदयाल गिरि *(हिं० ले०)* [जन्म—1802 ई०; मृत्यु—1865 ई०]

ये दशनामी संन्यासी और कृष्णभक्त थे। काशी में पश्चिमी द्वार पर देहली-विनायक पर रहा करते थे। इनके कृष्णलीला-विषयक 'अनुराग बाग', वैराग्य-विषयक 'वैराग्य-दिनेश' तथा नीति-विषयक 'दृष्टांततरंगिणी', 'अन्योक्तिमाला' तथा 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' नामक पाँच ग्रंथ पाए जाते हैं, जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) से 'दीनदयाल गिरि ग्रंथावली' नाम से डा० श्यामसुंदरदास (दे०) द्वारा संपादित हो चुके हैं। दीनदयाल हिंदी नीति-काव्य के प्रमुख स्तंभों में से हैं। इनके प्रिय छंद कुंडलिया और दोहा है। अन्योक्ति ही इनकी शैली का अनिवार्य अंग है।

दीनबंधु *(बँ० ले०)* [जन्म—1830 ई०; मृत्यु—1874 ई०]

दीनबंधु का जन्म नदिया जिले में और शिक्षा-दीक्षा कलकत्ता में हुई थी। ये डाक-विभाग में काम करते थे और अपने समकालीन साहित्यकारों से इनका पर्याप्त साहचर्य-संपर्क था।

छात्रावस्था में ही ईश्वरचंद्र गुप्त (दे०) से अनुप्रेरित होकर इन्होंने काव्य-जगत् में प्रवेश किया। इनकी प्रारंभिक रचनाएँ कविताएँ थीं जो तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं परंतु वास्तव में इनकी प्रसिद्धि नाटककार के रूप में ही हुई। इनके नाटक हैं—'नीलदर्पण' (दे०) (1860), 'नवीन तपस्विनी' (1863), 'पागला बुड़ो' (1866), 'सधवार एकादशी' (1866), 'लीलावती' (1867), 'जामाइ वारिक' (1872), 'कमलेकामिनी नाटक' (1873)।

'नीलदर्पण' में दीनबंधु ने एक समसामयिक ज्वलंत समस्या को उठाया है। 'कमलेकामिनी' इतिहासाश्रित रोमानी नाटक है जिसकी कथा 'नवीन तपस्विनी' से मिलती-जुलती है। अतिरंजना के कारण कहीं-कहीं इसमें अस्वाभाविकता आ गई है। 'दीनबंधु' की शेष रचनाएँ हास्य-व्यंग्यपूर्ण नाटक हैं। इनमें इन्होंने सामाजिक विकृतियों एवं विसंगतियों पर कटाक्ष किए हैं। परंतु उनका मानवीय स्वरूप हास्य-व्यंग्य के रूप में प्रस्फुटित हुआ।

दीनबंधु के उपर्युक्त नाटकों में यथेष्ट गंभीरता का अभाव है। कहीं-कहीं हास्य-व्यंग्य का स्तर बहुत हल्का है। इनके प्रहसनों पर माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) का प्रभाव पड़ा है। रंगमंच की दृष्टि से दीनबंधु के नाटक अपने युग में बहुत लोकप्रिय रहे पर इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि उनकी प्रसिद्धि का क्षेत्र साधारण समाज ही था, साहित्यिक स्तर पर ये नाटक इतने सफल नहीं रहे।

बँगला नाटक के प्रथम चरण के महत्वपूर्ण नाटककारों में दीनबंधु का विशेष स्थान है। वास्तव में माइकेल के बाद वे ही प्रमुख नाटककार हैं। शायद उस शती के वे पहले भारतीय नाटककार हैं जिन्होंने शासकों के शोषण का इतना यथार्थ रेखांकन किया है।

दीनानाथ अलमस्त *(कश्० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

शैशव से भावुक। विरह-वेदना के गीत लिखने में सिद्धहस्त। व्यवसाय से चित्रकार। कई बार एकल प्रदर्शनियाँ आयोजित की हैं। 'बाल यपारि' (पर्वत के इस ओर) तथा 'बाल अपारि' (पर्वत के उस ओर) तथा 'विधवायि हुंद व्यदाख' (विधवा के विरह-उद्गार) आदि कविताओं को पढ़कर पाठक अलमस्त साहब का लोहा माने बिना नहीं रह सकता। मनोभावों की सरल शब्दों में अभिव्यक्ति, ओजपूर्ण शैली तथा काव्य की गेयता वस्तुतः सराहनीय है। अलमस्त साहब बुद्धिवादी हैं और इन्होंने अपने काव्य में ठेठ कश्मीरी शब्दावली का प्रयोग किया है।

दीपनिर्वाण *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1876 ई०]

'दीपनिर्वाण' स्वर्णकुमारी देवी का ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें मुहम्मद गोरी के दिल्ली आक्रमण के साथ पृथ्वीराज चौहान के पारिवारिक इतिहास को कथा-वस्तु के रूप में स्वीकार किया गया है। इसी के साथ दो प्रेम-कथाएँ जोड़ दी गई हैं। सत्यनिष्ठा के साथ ऐतिहासिक तथ्यानुवर्तन के प्रति लेखिका ने विशेष उत्साह दिखाया है परंतु हिंदुओं के प्रति उनका पक्षपात उनकी सत्यनिष्ठा को संकुचित कर देता है। अल्पावस्था की रचना होने के

कारण उपन्यास का घटना-विन्यास एव चरित्र-चित्रण निर्जीव एव रसहीन प्रतीत होता है—यद्यपि थानेश्वर के युद्ध-वर्णन मे वर्णन कौशल विशेष सुदर बन पडा है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस उपन्यास का स्थायी महत्व है।

दीपवंस *(पा० कृ०)* [समय—चौथी शती का अतिम भाग]

यह किसी अज्ञातनामा कवि की कृति है, और प्रथम बार उपलब्ध सामग्री को पौराणिक तथा काव्यात्मक रूप देने की इसमे चेष्टा की गई है। इसकी विषय-वस्तु का उपादान बुद्धवश, चरियापिटक, जातक आदि 'त्रिपिटक' (दे०) के खडो और 'अट्ठकथा' (दे०) से विशेष रूप से हुआ है। इसमे भाषा और छद सभी कुछ सदोष है क्योकि उस समय तक लका मे पाली का अध्ययन-अध्यापन व्यवस्थित नही था और कवि ने यथाशक्ति अनुकरण करने का प्रयास किया है।

दीपशिखा *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1942 ई०]

'दीपशिखा' महादेवी वर्मा (दे०) की पाँचवी प्रगीतात्मक कृति है। इसमे 51 गीत हैं। गीतो के भावो को मूर्त्त पीठिका देने के लिए इकरगे चित्र भी दिए गए है। 'चिंतन के कुछ क्षण' शीर्षक से भूमिका लिखी गई है जिसमे यथार्थवाद-प्रगतिवाद (दे०) के सापेक्ष मे की गई रहस्यवाद छायावाद (दे०) की भव्य व्याख्या हिंदी आलोचना के इतिहास का अमर अध्याय है।

'दीपशिखा' का वर्ण्य विषय महादेवी वर्मा की अन्य रचनाओ के समान मुख्यत रहस्यानुभूति है। अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रणय भावना की अभिव्यक्ति अधिकतर दीपक के प्रतीक से की गई है। कवयित्री दीपक की लौ के समान निष्कम्प जलना चाहती है। विरह-वेदना मे घुलकर उसने 'कण-कण का क्रदन' पहचान लिया है और अब अधीर घटा के समान रज मे बिखर कर निखरना चाहती है। स्पष्टत अनुभूति-पक्ष मे दो तत्त्व दिखाई देते हैं—लोकोत्तर प्रणय और विश्वोन्मुख करुणा। आधुनिक परिवेश मे लोकोत्तर प्रणय की वास्तविकता पर सदेह करने वालो के लिए महादेवी का कहना है कि 'इसका जो उत्तर अनेक युगो से रहस्यात्मक कृतियाँ देती आ रही हैं, वही पर्याप्त होना चाहिए।' कुछ लोगो को 'दीपशिखा' मे अनुभूति की तीव्रता का अभाव भी खला है। इस प्रसग मे यह प्रश्न विचारणीय है कि क्या काव्य-कृति मे प्रकृति के मुकाबले परिष्कृति का कोई महत्व नही है?

'दीपशिखा' के गीत कलात्मक दृष्टि से अत्यत समृद्ध हैं। उत्कृष्ट काव्य की चित्रात्मक पदावली मे ग्राम-गीतो की वन्य गति का अपूर्व सयोग यहाँ हुआ है।

दीवान-ए-गालिब *(उर्दू० कृ०)*

उर्दू के सुविख्यात कवि मिर्ज़ा असद उल्ला खाँ 'गालिब' (दे०) (जो पहले 'असद तखल्लुस करते थे और बाद मे 'गालिब' तखल्लुस करने लगे) की उर्दू गज़लो तथा कतआत के सग्रह का नाम है 'दीवान ए-गालिब'। इस दीवान मे मिर्ज़ा की 231 गज़लें, चार कसीदे, एक मसनवी, एक सेहरा, 16 रुबाइयाँ और 16 कतए सम्मिलित है। उर्दू काव्य के इस सग्रह ने गालिब को साहित्य-जगत् मे उनकी फारसी शायरी से भी अधिक लोकप्रियता प्रदान की है। गालिब स्वय अपनी फारसी शायरी की तुलना मे उर्दू के इस काव्य को तुच्छ समझते थे।

मिर्ज़ा गालिब के इस दीवान मे उनकी प्रारभिक कठिन रचनाएँ भी हैं और बाद मे कही गई सहज-सरल गज़लें भी। गालिब की भाषा शैली कठिन से सरल की ओर तथा नीरस से सरस की ओर निरतर अग्रसर रही है। गालिब की कल्पना की उडान विषयो की नूतनता, शैली का चमत्कार, साफ-सुथरी तथा नवीन उपमाएँ, अर्थ-गाभीर्य तथा जीवन से नैकट्य कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो इस बात को मनवा लेती है कि 'गालिब का है अदाज़-ए-बयाँ और'। मिर्ज़ा के यहाँ व्यग्य तथा हास्य का पुट भी विद्यमान है और बला की शोखी भी है। गालिब के अधिकतर शेर बहु-पक्षीय अर्थों से समृद्ध हैं। सजग मन की अनुभूतियाँ लेखनी का सबल पाकर मानो मुखरित हो उठी हैं।

दीवान, रणछोड़जी अमरजी *(गु० ल०)*

इतिहास प्रसिद्ध दीवान अमरजी कुँवरजी के पुत्र रणछोड़जी का जन्म सौराष्ट्र के माँगरोल म 1824 ई० मे हुआ था और इनका जीवन जूनागढ मे व्यतीत हुआ। ये जूनागढ राज्य के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और सेनाधिकारी थे। रणछोड़जी स्वय गुजराती, व्रज और फारसी के विद्वान् थे। इन्होने फारसी मे ही तवारीखे-सोरठ (सोरठ का इतिहास) लिखा है। इनके प्रसिद्ध प्रकाशित ग्रथ हैं 'चडीपाठना गरबा (गुज०) 'सूतक निर्णय', शखचूड आख्यान',

'दक्ष यज्ञ-भंग', 'कालखंज आख्यान', 'ईश्वर-विवाह' (गुज० ब्र०), 'जालंधर आख्यान' (ब्र०), 'अंगजासुर आख्यान', 'भस्मांगद आख्यान', 'सोमवार माहात्म्य' (गुज०), 'बुढेश्वर बावनी' (ब्र०), 'त्रिपुरासुर आख्यान' (ब्र०), 'मोहिनी छल' (ब्र०), 'कामदहन' आख्यान' (ब्र०)। इन सब ग्रंथों को देखने से ज्ञात होता है कि दीवानजी ने मुख्यतः ब्राह्मण होने के कारण धार्मिक ग्रंथ ही अधिक लिखे हैं। ये ग्रंथ भी व्रज में अधिक लिखे हैं, गुजराती में कम। इस दृष्टि से रणछोड़जी का प्रदेय गुजराती साहित्य को कम ही है।

दीवानसिंह, कालेपाणि (पं० ले०) [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1944 ई०]

दीवानसिंह कालेपाणी का व्यक्तित्व अद्‌भुत था। सरकारी नौकरी करते हुए भी ये स्वतंत्रता-आंदोलन में कूद पड़े थे और स्वतंत्रता की खातिर बलिदान हो गए थे। ये राष्ट्र-प्रेमी भी थे और मानवतावादी भी।

दीवानसिंह कालेपाणी का एक ही कविता-संग्रह 'वगदे पाणी' (दे०) उपलब्ध है। यह संग्रह 1938 ई० में प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह की कविताओं में विषयगत विविधता ही नहीं, वस्तुगत विविधता भी है। इन कविताओं के विषय हैं: मानव-प्रेम, त्याग और सेवा। कवि जीवन को किसी वाद या सिद्धांत के घेरे में सीमित करके नहीं देखता, उसके लिए जीवन बहते हुए पानी के समान है। इसीलिए यह जीवन की स्वीकृति का काव्य है। कवि ने भ्रष्ट सामाजिक मूल्यों का खुलकर तीव्र विरोध किया है। इनके काव्य में मनुष्य के उदात्त स्वरूप का ही नहीं, मानव-सुलभ दुर्बलताओं का भी चित्रण हुआ है।

दीवानसिंह कालेपाणी की कविताओं का मूल स्वर मानवतावादी है। समाज या राष्ट्र के प्रति उनका प्रेम-भाव मानव-प्रेम का ही एक अभिन्न रूप है। अतुकांत शैली में रचित ये कविताएं भावाभिव्यंजना की दृष्टि से भी सर्वथा सफल हैं।

'दुखायल', हूंदराज (सिं० ले०) [जन्म—1910 ई०]

इनका जन्म-स्थान लाड़काणो, सिंध है। ये न केवल प्रसिद्ध कवि हैं, अपितु अच्छे गायक और संगीतज्ञ भी हैं। ये सिंध के प्रसिद्ध कवि किशनचंद 'बेवस' (दे०) के शिष्य हैं। अपने गीतों द्वारा सिंध में राष्ट्रीय भावना, देशभक्ति और गांधी-सिद्धांतों का प्रसार करने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आजकल ये आदिपुर (कच्छ) में रहते हैं और संत विनोबा भावे के सिद्धांतों के प्रबल समर्थक और प्रचारक हैं। इनकी प्रमुख कृतियां हैं—'भूंगार', 'कौमी ललकार', 'संगीत वर्खा', 'लाहूती लहर', 'संगीतांजलि' (ये सिंध के राष्ट्रकवि हैं और इनके द्वारा रचित कई गीत काफ़ी लोकप्रिय हुए हैं।

दुग्गय्या, दग्गुपल्लि (ते० ले०) [समय—पंद्रहवीं शती का पूर्वार्ध]

तिप्पनार्य और एरम्मा के पुत्र दुग्गय्या का जन्म 1410 ई० के आसपास माना जाता है। ये महाकवि श्रीनाथ (दे० श्रीनाथुडु) के साले थे। दुग्गय्या ने 'नासिकेतोपाख्यानमु' और 'कांचीपुरमहात्म्यमु' नामक दो काव्य-ग्रंथों की रचना की थी। इनमें केवल प्रथम काव्य ही उपलब्ध है। यह काव्य उदयगिरि के प्रभु वसवभूपाल के प्रधानमंत्री चंदलूरि अनंतामात्य के पुत्र गंगय्या को समर्पित है।

'नासिकेतोपाख्यानमु' की कथावस्तु उपनिषदों से ली गई है। मूल कथा में विशेष परिवर्तन नहीं किया गया। उद्दालक और चंद्रावती का चरित्र-चित्रण प्रभावशाली तथा मनोहर है। कर्माचरण को श्रेष्ठ मानने वाले उद्दालक और योग और आत्मविद्या को ही उपास्य मानने वाले नासिकेत (या नचिकेत) का वाद-विवाद भी प्रभावशाली है। यमराज के पाप-पुण्य का विचक्षण कराते हुए नासिकेत को स्वर्ग और नरक के दर्शन कराने वाले प्रसंग में रमणीय नीतियों का वर्णन किया गया है। इस काव्य का इतना ही भाग प्राप्त है।

शांतरस-प्रधान इस काव्य में कथा रम्य है। कविता मृदुमधुर, मुहावरे और कहावतों से युक्त मन को आकृष्ट करने वाली है।

दुग्गल, करतारसिंह (पं० ले०) [जन्म—1917 ई०]

करतारसिंह दुग्गल पंजाबी के सर्वाधिक यशस्वी कहानीकार हैं। पंजाबी कहानीकारों में इन्होंने सबसे अधिक कहानियां लिखी हैं और शिल्प तथा कथ्य दोनों ही दृष्टियों से सर्वाधिक प्रयोग किए हैं।

दुग्गल का प्रारंभिक लेखन फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद से बहुत प्रभावित हुआ। मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता इनकी अधिकांश कहानियों की आधारभूमि है। इनर

कहानियो मे एक बहुत बडी सख्या यौन-कुठा और अतृप्ति की कहानियो की है जिन्हे लेखक गहरे मानवीय स्तर पर ग्रहण करता है और सूक्ष्म कलात्मकता के साथ चित्रित करता है । दुग्गल की इन यौन-विषयक कहानियो मे उर्दू कथाकार सआदत हसन मटो जैसी सजग सामाजिकता और तीखापन नही है। उनमे धीरे-धीरे छूने वाली सहजता है । ये कहानियाँ हमे झकझोरती नही हैं, वरन् हल्की-सी चुटकी काटकर निकल जाती हैं और हम उस स्थान पर हल्का-हल्का सा दर्द महसूस करते हुए उस पर हाथ फेरते रहते हैं ।

दुग्गल का पहला कहानी सग्रह 'सवेर सार' (दे०) 1941 ई० मे प्रकाशित हुआ था, जिसने अपने समय की पजाबी कहानी मे एक मानदड स्थापित किया । उसके पश्चात् उनके लगभग दस और कहानी-सग्रह प्रकाशित हुए हैं । 'इक छिट चानण दी' (दे०) नामक सग्रह पर इन्हे साहित्य अकादेमी पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है । हिंदी मे 'मोनियो वाले' तथा 'एक किरण चाँदनी की' शीर्षक से दो कहानी सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं ।

अन्य प्रमुख कृतियाँ —'हाल मुरीदा दा' (दे०) 'आदरा', 'नहु ते मास' (उपन्यास), 'मिट्ठा पाणी' पुराणीआ बनेल बोतला' (नाटक) ।

दुपरीया *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1963 ई०]

असमीया के नये कथाकार सौरभ चलिहा (दे०) का प्रथम कहानी-सग्रह 'अशात इलेक्ट्रन (दे०) दुरूह है, वैसी दुरूहता इस सग्रह मे नही है । चरित्रो के अतर्द्वंद्व की सजगता इस सग्रह की कहानियो की अपनी विशेषता है ।

दुबेला शातिर गीन *(अ० कृ०)*

यह रोमाटिक गाथागीत है, जिसमे एक ऐत व्यापारी पुत्र की प्रेमकथा है जो एक विवाहिता स्त्री स प्रेम करता है । एक मालिन को युवक पर दया आ जाती है और वह दुबेला तक सदेश पहुँचा देती है । कविता के शेष भाग मे स्त्री की प्रतिक्रिया का वर्णन है और इसकी आकस्मिक समाप्ति हो जाती है । या तो यह अधूरी लिखी गई है अथवा इसकी पाडुलिपि खोजने का कार्य अभी शेष है ।

दुरवस्था *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1923 ई०]

यह कुमारन् आशान् (दे०) का क्रांति-काव्य है । ब्राह्मण-कन्या सावित्री द्वारा निरक्षर हरिजन युवा की जीवन सगिनी बनकर खेतिहर मजदूर का जीवन अपनाने की कथा इस काव्य मे वर्णित है । साप्रदायिक दगो मे घर-बार से अलग होने वाली सावित्री अपने रक्षक चातन् (दे०) की मानवता पर मुग्ध हो जाती है और जातिवाद से कलुषित अपने समाज मे वापस जाने से इनकार करती है ।

'दुरवस्था' मे मलयाळम-भाषियो ने सर्वप्रथम बदलते हुए मानवीय मूल्यो की आवाज सुनी थी । इस काव्य मे आशान् ने सदेश दिया है कि जातिवाद की क्रूर नीति ने कितने ही महापुरुषो को पालने-पोसने के अधिकार से केरल माता को वचित रखा है । कवि ने समाज को चुनौती दी है कि नियमो को बदल डालो, अन्यथा वे नियम ही समाज को बदल देंगे ।

'दुरवस्था' साहित्य के नवोत्थान मे एक नये मोड का प्रतिनिधित्व करती है । आज के साहित्यकार भी अपने रचना-कार्य मे इससे प्रेरणा ग्रहण करते हैं ।

दुर्गय्या, पल्ला *(ते० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

ये निज़ाम प्रात के 'मडिकोंड' के रहने वाले हैं । आजकल उस्मानिया विश्वविद्यालय के तेलुगु विभाग मे रीडर है । ये सफल और विद्वान अध्यापक ही नही, अच्छे कवि भी है । इनकी रचनाएँ हैं—'पालवेल्लि' (दे०) (कविता सग्रह) और 'गगिरेद्दु' (दे०) (खडकाव्य) । 'सोलहवी शती के अतर्गत प्रबधो (तेलुगु काव्य) का विकास इनका शोध-प्रबध है । 'मनुचरित्र' नामक प्रसिद्ध तेलुगु काव्य पर इन्होने आलोचनात्मक निबध प्रकाशित कराए है तथा कोशनिर्माण-कार्य भी किया है । प्रकृति तथा ग्राम्य जीवन के प्रति सहज प्रेम इनकी रचनाओ म परिलक्षित होता है ।

दुर्गसिह *(क० ले०)* [जीवन-काल—1030 ई० के लगभग]

यह चालुक्य-नरेश जगदेकमल जयसिह का दडनायक एव सधिविग्रहिक था तथा असि एव मसि दोनो का धनी था । दुर्गसिह का ग्रथ 'पचतत्र' (दे०) है जो चपू शैली मे है। इसका कहना है कि गुणाढ्य (दे०) न जब पैशाची मे 'बृहत् कथा' लिखी तब उसमे से पाँच कथारत्नो को चुनकर वसुभाग भट्ट ने पचतत्र' नाम देकर अपने ढग मे लिखा था । उसी का इसने कन्नड म लिखा। सस्कृत मे विष्णु शर्मा का 'पचतत्र' (दे०) प्रसिद्ध है। किंतु वसुभाग

भट्ट का भी एक 'पंचतंत्र' था, इसका पता केवल दुर्गसिंह से लगता है। इस दृष्टि से इस ग्रंथ का विशेष महत्व है। सुना जाता है कि जावा में वसुभाग भट्ट संप्रदाय के तीन 'पंचतंत्र' मिले हैं।

दुर्गसिंह का यह ग्रंथ गद्य-पद्य-मिश्रित शैली में है। इसमें कई ऐसी बातें हैं जो विष्णु शर्मा के ग्रंथ में नहीं हैं। इसमें जैन धर्म की ओर झुकाव है। कुछ स्थलों पर जैन एवं वैदिक अंशों का समन्वय है। इसकी शैली बहुत ही प्रौढ़ है। गद्य में सरल कन्नड का प्रयोग है। कवि ने व्यंग्य एवं विडंबना के लिए कहीं-कहीं जान-बूझकर क्लिष्ट संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है—जैसे बंदर के लिए गोलांगूल। इस ग्रंथ में इसके प्राणी मनुष्य की विकृतियों की नकल उतारते हैं, मुँह बनाते हैं। इस तरह यह काव्य मध्यम श्रेणी का होने पर भी व्यंग्य के कारण बहुत ही प्रभावी बन गया है।

दुर्गावर *(अ० ले०)* [जीवन-काल—सोलहवीं शती; जन्म-स्थान—कामरूप ज़िले का कोई गाँव]

इनके पिता का नाम चंद्रधर कायस्थ था। इन्होंने कोच राजा विश्वसिंह के शासन-काल के बहुबल शिकदार की अनुप्रेरणा से काव्य-सृजन किया था।

रचनाएँ—'गीति रामायण' और 'मनसार गीत'।

'गीति रामायण' का सबसे मनोरम अंश 'अरण्य कांड' है। इसमें कुछ नूतन प्रसंग भी हैं—जैसे सीता द्वारा दशरथ के प्रति पिंडदान, दुःखी राम के लिए सीता द्वारा माया सीता की सृष्टि किया जाना, रति-रूपिणी शूर्पणखा का प्रसंग, राम-सीता का पासा खेलना, आदि। इसमें अनुभूति की कोमलता है। इसमें अवतारवाद, राम-नाम-जप की महिमा, भक्त के दुःख देख भगवान् का कातर होना आदि बातों का वर्णन है, किंतु राम को साधारण मानव के समान सुख-दुःख की अनुभूति करते हुए दिखाया गया है। 'गीति रामायण' के कई स्थलों पर माधव कंदली (दे०), शंकरदेव (दे०) और कृतिवास ओझा (दे०) (बंगाली कवि) का प्रभाव है। यह पुस्तक 'ओजापालि' (दे०) में गायन के लिए लिखी गई थी। 'मनसार-गीत' के गीत भी मर्मस्पर्शी हैं। इसमें सती बेहुला की कथा है। आज भी कामाख्या के ओजापालि में इसका गायन होता है।

असमीया साहित्य में श्री दुर्गावर का स्थान रामायण-कवि, मनसा-कवि और संगीतज्ञ के रूप में है।

दुर्गामंगल *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानतः सत्रहवीं शती का आरंभ]

मैमनसिंह ज़िले के काँठालिया गाँव के निवासी जन्मांध कवि भवानीप्रसाद राय की 'दुर्गामंगल' मूलतः पौराणिक कहानी के आधार पर रचित है। मार्कंडेय चंडी के आधार पर कवि ने यद्यपि इस काव्य की रचना की है तथापि श्रीरामचंद्र की दुर्गा-पूजा कहानी का सविस्तर वर्णन किया है। इस काव्य में कविकृतित्व का अच्छा परिचय मिलता है। 1965 ई० में यह काव्य अनुलिखित हुआ था। परिणामतः कवि की प्राचीनता निस्संदेह है। दूसरे 'दुर्गामंगल'-काव्यकारों में रंगपुर के कवि द्विज कमल-लोचन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त कवि रूपनारायण, रामचंद्र मुखोपाध्याय आदि के काव्य भी स्मरण-योग्य हैं।

दुर्गाशंकर शास्त्री *(गु० ले०)* [जन्म—1881 ई०]

दुर्गाशंकर शास्त्री का जन्म अमरेली (सौराष्ट्र) में हुआ था। इनके पिता का नाम केवलराम तथा माता का जयकुमारी था। शास्त्री जी की प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा गोंडल (सौराष्ट्र) में हुई। शिक्षा पूर्ण कर शास्त्री जी बहुत समय तक झंडु फार्मेसी में काम करते रहे।

शास्त्री जी की रचनाएँ हैं—'वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास', 'वाळंरी नो वैद्य', 'माधव निदान', 'झंडु भट्ट जी नुं जीवन-चरित्र', 'शैवधर्म नो अनुवाद', 'गुजरात नां तीर्थस्थानो', 'पुराण विवेचन', 'प्रबंध चिंतामणि'।

प्राचीन भारतीय इतिहास तथा साहित्य के अध्ययन में गहरी रुचि रखने वाले शास्त्री जी ने चावडा और सोलंकी वंश के गुजरात के इतिहास, आयुर्वेद तथा पुराणों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण काम किया है। एक रुचिशील अनुसंधाता, विद्याप्रेमी व प्रकांड पंडित के रूप में दुर्गाशंकर जी शास्त्री प्रतिष्ठित हैं।

दुर्गेशनंदिनी *(बँ० कृ०)*

दुर्गेशनंदिनी (समय—1865 ई०) बंकिम बाबू (दे० चट्टोपाध्याय, बंकिमचंद्र) का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। बंकिम बाबू के ऐतिहासिक उपन्यासों में कार्यकारण-शृंखलाबद्ध चरित्र-निर्माण की अपेक्षा रोमांटिक चमत्कारी घटनाओं का आकलन ही प्रधान आकर्षण

का विषय रहा है। सोलहवी शती के अत मे उडीसा पर अधिकार करने के लिए मुगलो-पठानो के बीच जो युद्ध हुआ था, उसी की पटभूमिका मे इस उपन्यास की रचना हुई है। इसका नायक मानसिंह का पुत्र युवराज जगत्सिह इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति नही है, इसीलिए बकिम बाबू ने अपने आदर्शानुसार जगत्सिह को क्षत्रिय वीर एव प्रेमी परतु सदेहपरायण तरुण व्यक्ति के रूप मे चित्रित किया है। जगत्सिह का प्रेम युद्ध-विग्रह के बीच आकस्मिक रूप से उद्घाटित होता है और फिर नाना बाधाभित्तियो को पार करता हुआ उसकी सफल परिणति का प्रदर्शन हुआ है। तिलोत्तमा और आयेषा दोनो ही उसे चाहती है। अत मे आयेषा आत्मदमन के द्वारा तिलोत्तमा के मार्ग से हट जाती है। कतलू खाँ की हत्या, तिलोत्तमा के हृदय मे प्रेम का उन्मेष, आयेषा का आत्मविसर्जन और अतर्द्वद्व—इन समस्त घटनाओ मे मानवीय भावावेग का अत्यत निपुण वर्णन हुआ है। दुर्गेशनदिनी रोमास है, इसमे मानव प्रकृति का परिचय इतना यथार्थ नही, जितना आदर्श स्वप्नमय है।

दुर्देवी रंगू *(म० कृ०)* [रचना-काल—1914 ई०]

चि० वि० वैद्य के इस उपन्यास मे विस्तृत अध्ययन और सहृदयता का मणिकाचन सयोग पाया जाता है। यहाँ बाल विधवा रगू बाई की करुण कथा के चारो ओर पेशवा काल का इतिहास गुम्फित किया गया है। पेशवा दरबार का ऐश्वर्य, विविध समस्याएँ, पेशवा के पारिवारिक सबध, उसके दैनिक कर्म, सेना-छावनी, पानीपत के युद्ध पर फलित ज्योतिष का प्रभाव आदि का चित्रण अत्यत सरस, गभीर और प्रत्ययकारी है जिससे उस समय का समाज सजीव हो उठा है। शैली मे ऐतिहासिक उपन्यास के अनुरूप नाट्यात्मक उत्कटता और मथर गति का समन्वय है। पाद-टिप्पणी तथा ऐतिहासिक निर्देशो के कारण प्रामाणिकता तो आ गई पर कही कही उपन्यास बोझिल भी हो गया है। पात्रो के सूक्ष्म वृत्ति-भेद तथा उनके मानसिक सघर्ष का चित्रण भी अत्यत सुदर है। विवेच्य काल से समरस होने के कारण मराठी ऐतिहासिक उपन्यासो मे इसका विशिष्ट स्थान है।

दुर्योधन *(स० पा०)*

यह धृतराष्ट्र (दे०) और गाधारी (दे०) के सौ पुत्रो मे से ज्येष्ठ पुत्र था। इसने स्वयवर मे कलिगराज चित्रागद की कन्या का हरण किया। काशिराज की कन्या भी दुर्योधन की स्त्री थी। इसकी एक अन्य पत्नी का नाम भानुमती था। इसे बलराम का भी दामाद माना जाता है। इसके पुत्र का नाम लक्ष्मण था और कन्या का नाम लक्ष्मणा।

'महाभारत' (दे०) का यह पात्र लोभी, कलहप्रिय महत्वाकाक्षी और ईर्ष्यालु रूप मे चित्रित किया गया है। बचपन से ही अस्त्र-शस्त्र मे पाडवो की कुशलता देखकर इसके मन मे उनके प्रति ईर्ष्याभाव जग उठा था और आमरण यह उनका शत्रु बना रहा। उनके विनाश के लिए इसने विभिन्न षड्यत्र रचे किंतु सदा असफल रहा। एक बार भीम (दे०) को गगा मे धकेल दिया, सारे पाडवो को लाक्षागृह मे जला डालने का प्रयास किया। अपने मामा शकुनि की अनुमति से इसने युधिष्ठिर (दे०) को द्यूत-क्रीडा के लिए आमत्रित किया और उसके परास्त हो जाने पर इसने द्रौपदी (दे०) को भरी सभा मे नग्न कराने का विफल प्रयास किया, तथा पाडवो को बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास स्वीकार करना पडा। महाभारत के युद्ध मे भी इसने पाडवो को परास्त करने के अनेक उपाय किए, किंतु अत मे भीम ने गदायुद्ध मे गदा प्रहार से इसकी बायी जाँघ तोड डाली। भीम का यह प्रहार गदा-युद्ध के नियम का उल्लघन था।

दुलडी (दुलरी) *(अ० पारि०)*

*6 6-8 की यति से बीस वर्णों वाला यह अस*मीया वर्णिक छद है। इसमे तीन-तीन पर्वो के दो चरण होते हैं। असमीया रामायण मे भी इस छद का प्रयोग हुआ है।

उदाहरण—

नमो नमो राम, दूर्व्वादलश्याम,
सर्व्वगुणे अनुपाम।
जार गुण नाम, धर्म्म अनुपाम
मुकुति सुखर धाम॥

दुवरा, यतींद्रनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1892 ई०, मृत्यु—1964 ई०]

जन्म-स्थान—शिवसागर।

ये कलकत्ता विश्वविद्यालय मे असमीया मे एम० ए० उत्तीर्ण कर प्राध्यापक नियुक्त हुए थे। 1947 ई० के

दंगों के समय कलकत्ता छोड़कर ये डिब्रूगढ़ के एक कालेज में असमीया का अध्यापन करने लगे थे। इन्हें असम सरकार से साहित्यिक पेंशन मिली थी। 1955 ई० में इन्होंने साहित्य अकादेमी का पुरस्कार पाया था।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'आपोन सुर' (1938), 'बनफुल' (दे०) (1952), 'कथाकविता' (गद्य काव्य) (1933)।

अनूदित : ओमर-तीर्थ (1925), 'मिलनर सुर' (1960)।

ये रोमांटिक काव्यधारा के बाँही-मंडल के कवि थे। इनकी रचनाओं में तीव्र वेदना, वैराग्य और आत्मचिंतन की अभिव्यक्ति हुई है। इन पर शेली, टेनिसन, उमरखैयाम और रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) का प्रभाव है। 'आपोन सुर' और 'बनफुल' में निराश प्रेम की करुणा है। कविताओं में शोक की प्रधानता और लौकिक सुख के प्रति अनिच्छा है। 'बनफुल' पर इन्हें साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला था। 'कथाकविता' पर तुर्गनेव का प्रभाव है। इसमें भी करुण रचनाएँ हैं। 'ओमर-तीर्थ' में उमर खैयाम की रुबाइयों का सुंदर रूपांतर है। 'मिलनर सुर' में हाफिज के स्वर की अनुकृति है। सौंदर्य और प्रेम के कवि श्री दुवरा असमीया रोमांटिक काव्यधारा के उत्तरार्द्ध के श्रेष्ठ कवि हैं।

दुःशासन *(सं० पा०)*

यह कुरुवंशी धृतराष्ट्र (दे०) का दूसरा पुत्र था। इसका बड़ा भाई दुर्योधन (दे०) था। यह सदा दुर्योधन का अनुगत बना रहा। इसने द्रोण से अस्त्र-शस्त्र-विद्या ग्रहण की थी। पांडवों द्वारा द्यूत-सभा में हार जाने पर इसी ने ही दुर्योधन, कर्ण (दे०) आदि के संकेत पर द्रौपदी (दे०) का चीरहरण किया था, और तभी भीम (दे०) ने इसके रक्त का प्राशन करने की प्रतिज्ञा की थी। मत्स्य देश के राजा विराट की गौओं का हरण करने वालों में दुःशासन भी था, और इसी अवसर पर अर्जुन के साथ इसका युद्ध हुआ था। महाभारत के युद्ध में इसका नकुल के साथ द्वंद्व-युद्ध हुआ था। भीष्मार्जुन-युद्ध में इसने अर्जुन पर आक्रमण किया था। अभिमन्यु (दे०) के साथ भी इसका घोर युद्ध हुआ था और यह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा था। अंततः भीम के साथ युद्ध में भीम की गदा के प्रहार से यह भूमि पर गिर पड़ा और भीम ने दुर्योधन, कर्ण आदि के देखते-देखते इसका वक्ष विदीर्ण कर सबके सामने इसका प्राशन किया।

दुष्यंत *(सं० पा०)*

इसके अन्य नाम हैं दुष्मंत, दुःषंत आदि। इसका पुत्र भरत था जो कि एक प्रसिद्ध चक्रवर्ती सम्राट् था। यद्यपि यह पौरववंशी था किंतु वैशाली देश के तुर्वसु राजा मरुत्त ने इसे गोद लेकर अपना राज्य दे दिया था। कुछ ग्रंथों के अनुसार वस्तुतः यह उक्त राजा मरुत्त की सम्मता नामक कन्या का पुत्र था और मरुत्त ने अपने दौहित्र को गोद लिया था। राजा बनने के बाद दुष्यंत ने अपने पुरुवंश की पुनःस्थापना की। एक बार कण्व (दे०) ऋषि के आश्रम में इसने शकुंतला (दे०) नामक कन्या को देखा तो उस पर मोहित होकर इसने उसके साथ गांधर्व विवाह किया, जिससे इसका भरत (दौष्यंति) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी कथा को कालिदास (दे०) ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' (दे०) में अत्यंत मनोरम रूप में चित्रित किया है।

दुःस्पर्श नाटकम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1900 ई०]

शीवोळ्ळि नारायणन् नंपूतिरि (दे०) का हास्य-विडंबनात्मक अपूर्ण नाटक। नाटक की प्रगति तीन अंकों में आगे नहीं हुई है। नायिका का नाम दुःस्पर्शा है और नायक का भळ्ळातक। इस नामकरण से ही स्पष्ट हो जाता है कि कवि का उद्देश्य दुष्कवियों की भर्त्सना-मात्र है। उन्होंने सफलतापूर्वक दिखाया है कि शृंगार रस के विकास के प्रयत्न में नाटक किस प्रकार बीभत्स रस के गर्त में फिसल जाता है। इस कृति ने अनेक नाटकाभासों की रचना को रोककर भाषा को बचाया है।

दूतवाक्यम् *(सं० कृ०)* [समय—तीसरी शती ई०]

'दूतवाक्यम्' भास (दे०) के प्रयोग का एक अन्य उदाहरण है। यह एक अंक का व्यायोग है।

इसमें 'महाभारत' (दे०) के विनाशकारी परिणाम से सबकी रक्षा के उद्देश्य से श्रीकृष्ण का संधि-प्रस्ताव लेकर जाना और दुर्योधन की सभा से तिरस्कृत होकर लौटना वर्णित है।

इस छोटी-सी घटना का सहारा लेकर भास ने इस एकांकी की कथा का गुंफन किया है। इसमें सहज एवं

शिल्प-विधान की दृष्टि से मौलिक परिवर्तन भास की अनूठी प्रतिभा के परिचायक हैं। इसमे अर्द्धनग्न द्रौपदी के केशाकर्षण के चित्र की उद्भावना करके भास पाठक को पूर्व-वृत्त से परिचित करा देते हैं। साथ ही नाटक के विकास मे इससे काफी सहायता मिलती है।

इसके लगभग सभी पात्र पुरुष हैं। इसका नायक दिव्य और प्रख्यात तथा अगी रस वीर है।

दूतवाक्यम् गद्यम् *(मल० कृ०)*

उपलब्ध मलयाळम-गद्य-प्रबधो मे यह सबसे प्राचीन कृति मानी जाती है, और इस दृष्टि से इसका विशिष्ट ऐतिहासिक महत्व है। इसकी रचना के समय को लेकर विद्वानो मे मतभेद हैं। अधिकाश पडितो की राय है कि चौदहवी शती मे इसका निर्माण हुआ है। यह संस्कृत के रूपको मे से एक का रूपातर है। इसकी शैली दीर्घ समास-युक्त है। 'उत्तर रामायणम् गद्यम्', 'भाषा भागवतम्' आदि ग्रथ इसी सरणि मे आ जाते हैं।

दूतांगद *(स० कृ०)* [*समय—तेरहवी शती ई०*]

मच-शिल्प का सबसे प्राचीन तथा आदिम रूप छाया-नाटक है। सुभट कवि द्वारा रचित 'दूतागद' इस विधा की प्रतिनिधि कृति है।

यह नाटक अणहिलपट्टण के चालुक्य राजा *त्रिभुवनपाल की सभा मे कुमारपाल की यात्रा के अवसर* पर 1242 ई० मे खेला गया था। इसमे रावण की सभा मे अगद के दौत्य का वर्णन है। कवि ने भवभूति (दे०) तथा राजशेखर (दे०) के प्रसिद्ध श्लोको को भी इसमे स्थान-स्थान पर उद्धृत किया है।

दूलहकवि *(हि० ले०)* [सृजन-काल—1743 ई० से 1768 ई० तक]

दूलह इनकी उपाधि है, नाम नही। इनके बारे मे प्रसिद्ध है—'*और बराती सकल कवि दूल्हा दूलहराय*।' ये कालिदास त्रिवेदी (दे०) के पौत्र तथा उदयनाथ 'कवीद्र' के पुत्र थे। ग्रियर्सन (दे०) ने इन्हे दोआब के बनपुरा का रहने वाला बताया है। '*कविकुलकठाभरण*' इनका अलकारो के लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत करने वाला ग्रथ है। ये कवित्व और आचार्यत्व के आधार पर देव (दे०), मतिराम (दे०) और दास (दे०) के समान माने जाते हैं। भाषा पर इनका *सहज अधिकार है*। केशवदास (दे०) के समान इन्होने काव्य मे अलकारो के प्राधान्य पर बल दिया है।

दृष्टांत पाठ *(म० कृ०)*

इसमे महानुभाव सप्रदाय के प्रवर्तक श्री चक्रधर की दार्शनिक मान्यताओ का सकलन है। सकलनकर्त्ता हैं *श्री केसोबास*। इसमे कुल *114* दृष्टात है। प्रत्येक दृष्टात के तीन भाग हैं—(1) मूल सूत्र, (2) उदाहरण अथवा दृष्टात, (3) दार्ष्टांतिक। इनमे प्रथम दो श्री चक्रधरोक्त हैं, तीसरा भाग केशोबास का है। श्री चक्रधर गांव-गांव घूमकर अपने मत का सर्वसाधारण जनता मे प्रचार करते थे। इन्होने अपनी मान्यताओ को सुगम बनाने के लिए व्यावहारिक दृष्टातो का आश्रय लिया है। चक्रधर की *भाषा शैली मे सजीवता और अकृत्रिमता है, परतु केसोबास* की भाषा शैली मे पाडित्य और तर्क-पटुता है। मराठी भाषा के आरभिक गद्य के स्वरूप को जानने मे इस ग्रथ का विशेष महत्व है।

दृष्टिकोण *(प० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1963 ई०]

'दृष्टिकोण' अतरसिंह (दे०) के आलोचनात्मक निबधो का दूसरा सग्रह है। इस पुस्तक के प्रथम भाग मे आधुनिकता, परपरा, प्रयोग और प्रगतिवाद पर, दूसरे मे पजाबी साहित्य के प्रारभिक काल और मध्यकाल पर, और तीसरे भाग मे आधुनिक पजाबी साहित्य के कुछ लेखको पर निबध हैं। सतसिंह सेखो (दे०) की प्रसिद्ध *आलोचना-पुस्तक 'साहित्यार्थ'* (दे०) के पश्चात् *अतरसिंह* का 'दृष्टिकोण' पजाबी आलोचना क्षेत्र की एक बहुचर्चित कृति है। इसमे अतरसिंह ने सेखो की समाजवादी और यथार्थवादी दृष्टि को आधार बनाने का यत्न किया है।

देउस्कर, सखाराम गणेश *(बं० ले०)* [जन्म—1869 ई०, मृत्यु—1912 ई०]

मराठी भाषा-भाषी सखाराम गणेश देउस्कर ने 'हितबादी', 'साधना' एव 'साहित्य' के विशिष्ट लेखक के रूप मे बँगला साहित्य-क्षेत्र मे प्रवेश किया था। तिलक (दे० टिळक, बा०ग०) के नेतृत्व मे हिंदू धर्म के आश्रय से नवीन स्वाधीन राष्ट्रचितन के प्रसार के फलस्वरूप

बंगाल के जनमानस में हिंदू धर्म, हिंदू सभ्यता एवं भारतीय इतिहास के प्रति एक कौतूहल-चेतना जागृत हुई थी। सखाराम ने मराठी दस्तावेज़ों की छानबीन कर प्राचीन मराठा इतिहास के उज्ज्वल पक्ष को बंगाली पाठक के सम्मुख प्रस्तुत कर प्रशंसनीय कार्य किया है। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं : 'बाजीराव' (1901), 'झाँसीर राजकुमार' (1901), 'आनंदीबाई' (1903) आदि।

दे, विष्णु *(बँ० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

आधुनिक युग की क्लांति, जिज्ञासा, वितृष्णा तथा नैराश्य की पटभूमिका में विष्णु दे ने अपनी कविता में आस्था और विश्वास की अभिव्यक्ति की है। परंतु इनका आस्थावाद एकदम आधुनिक है। इनके अनुसार साधारण जीवन के मानस-सरोवर से ही सृष्टि का आवेग उत्सरित है एवं कवि-मानस की व्याप्ति या रूपांतर में ही कविता का कलाकौशल निर्भरशील है तथा विभिन्न देशों एवं विभिन्न कालों की संस्कृति के सायुज्य से ही कवि-मानस की व्याप्ति घटित होती है। कवि-मन की यह संस्कृति-संचेतना इलियट की देन है। इलियट को कवि ने ग्रहण किया है परंतु उनके साथ इनका व्यवधान भी दुस्तर है।

इनके उल्लेखनीय काव्य-ग्रंथ हैं : 'उर्वशी ओ आर्टेमिस' (1932), 'चोरावालि' (1938), 'पूर्वलेख' (1942), 'संदीपेर चर' (1947), 'अन्विष्ट' (1950), 'कोमल गांधार' (1950) आदि।

इन्होंने अपनी कविता में रामायण (दे०), महाभारत (दे०), पुराण, रवींद्रनाथ (दे०), माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०), सत्येंद्रनाथ दत्त (दे०), चंडीदास (दे०) आदि से असंख्य उदाहरण एवं यूरोपीय संगीत, चित्र, रूसी विप्लवी नेता, आर्टेमिस, कासांड्रा, मांतोवानि, मातिस आदि असंख्य उल्लेख प्रस्तुत किए हैं। कविता लिखने की यह प्रणाली इन्होंने इलियट से प्राप्त की थी परंतु बाद में इन्होंने इलियट के प्रभाव से मुक्त होकर बीसवीं शती की युग-यंत्रणा तथा मनुष्य की मार्क्सवादी चिंतनधारा का विन्यास किया। विष्णु दे ने द्वांद्विकता के आधार पर अतीत का मूल्यांकन किया है परंतु इनके लिए वर्तमान का ही मूल्य अधिक है क्योंकि उसमें ही भविष्यत्-निर्माण की प्रतिश्रुति है। इस प्रकार अपनी राजनीतिक चेतना को कवि ने प्रचार में पर्यवसित नहीं किया है वरन् जीवन को एक अखंड विश्वव्यापी प्रवाह के रूप में देखा है जो प्रत्येक मुहूर्त अपने को नये ढंग से रच रहा है।

देव (देवदत्त) *(हिं० ले०)* [जन्म—1673 ई०]

इनका जन्म इटावा में हुआ था। मनोनुकूल आश्रयदाता न मिलने के कारण ये विभिन्न राजदरबारों में भटकते फिरे। औरंगज़ेब के पुत्र आज़मशाह, तृतीय और फिर पिहानी-निवासी अकबर अली ख़ाँ के यहाँ भी ये रहे थे। इनके बनाए ग्रंथों की संख्या 72 अथवा 52 बताई जाती है। इनमें 27 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, शेष अनुपलब्ध हैं। इनमें से अधिकतर ग्रंथ ऐसे भी हैं जिनमें अन्य ग्रंथों से पद्य संगृहीत कर नया नाम दे दिया गया है। इनकी समस्त रचनाओं में प्रेमचंद्रिका', 'शब्दरसायन'(दे०), 'देव-शतक', 'भावविलास' और 'रसविलास' अधिक प्रसिद्ध एवं उत्कृष्ट हैं। प्रेमचंद्रिका का वर्ण्य-विषय प्रेम है, जिसमें प्रेम-रस, प्रेमस्वरूप, प्रेममाहात्म्य आदि विषयों पर ललित शैली में प्रकाश डाला गया है। 'शब्दरसायन' इनका प्रसिद्ध काव्यशास्त्रीय ग्रंथ है। इस ग्रंथ में विविध काव्यांगों का निरूपण 'काव्य-प्रकाश' (दे०) की शैली में किया गया है, किंतु विवेचन बहुत अधिक स्वच्छ, प्रामाणिक एवं व्यवस्थित नहीं है। इनके शेष काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में अलंकार और शृंगार रस तथा उसके अंतर्गत नायक-नायिका-भेद का सम्यक् प्रतिपादन है। इन ग्रंथों में कतिपय नूतन धारणाओं को भी स्थान मिला है, पर वे सामान्य कोटि की हैं। इनका 'देवशतक' नामक ग्रंथ अत्यंत प्रौढ़ रचना है। इसमें कवि ने दार्शनिक भावनाओं को पूर्ण अनुभूति के साथ अभिव्यक्त किया है। अतएव यह ग्रंथ कोरा दर्शन न रहकर काव्य बन गया है। इसके अतिरिक्त इनकी शांत रस की भी दो रचनाएँ मिलती हैं। 'देवमाया-प्रपंच' (दे०) नाटक और 'वैराग्य-शतक' : 'देवमाया-प्रपंच' नाटक 'प्रबोधचंद्रोदय' (दे०) की शैली पर लिखित एक सफल पद्यबद्ध नाट्यरूपक है।

देव के ग्रंथों की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। भाषा के सौष्ठव, समृद्धि एवं अलंकरण पर देव का विशेष ध्यान रहा है। काव्य में पद-मैत्री, यमक और अनुप्रास का पर्याप्त प्रयोग है। संयोग एवं वियोग की प्रणय-लीलाओं की मनोरम झाँकियाँ इनके काव्य में यत्र-तत्र मिलती हैं, जिनसे कवि की कवित्व-प्रतिभा एवं कल्पना-समृद्धि का पता चलता है। भाषा कहीं-कहीं व्याकरण-संगत नहीं है। शब्दों को छंद के आग्रह से तोड़ा-मरोड़ा भी गया है, किंतु ऐसे

स्थल बहुत कम हैं। समग्रत देव हिंदी के रससिद्ध कवि हैं और उनका स्थान रीतिकालीन कवियो मे बहुत ऊँचा है।

देवड़ु, नरसिंह शास्त्री *(क० ले०)* [समय—1897 ई० से 1962 ई० तक]

कन्नड के महान् साहित्यकार देवडु नरसिंह शास्त्री का जन्म 1897 ई० मे मैसूर मे हुआ था। उनके पिताश्री श्रोत्रिय ब्राह्मण थे। वे काव्यमर्मज्ञ भी थे और कवि भी। उन्ही से पुत्र को साहित्य मे प्रवेश करने की प्रेरणा मिली। 1912 ई० मे आपने 'साहसधर्मी' नामक उपन्यास लिखा था। अभिनय का भी इन्हे शौक था। वृत्ति से अध्यापक रहे। सस्कृत के वे दिग्गज विद्वानो मे से थे। आपने शाकर दर्शन पर एक सुदर पुस्तक लिखी है। 'कुमार कालिदास' के नाम से कालिदास की कुछ कृतियो का गद्यानुवाद भी किया है। 'कर्णाटक सस्कृति' आपकी श्रेष्ठ कृति है। 1932 ई० मे आपके विख्यात उपन्यास 'मयूर' तथा 'अतरग' प्रकाशित हुए। 'मयूर' एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमे कदब राज्य के सस्थापक 'मयूर शर्मा' का रम्योज्ज्वल चित्र प्रस्तुत हुआ है। 'अनरग' मे चेतनाप्रवाह की तकनीक अपनाई गई है। कन्नड साहित्य मे यह एक विलक्षण एव सफल प्रयोग है। 'महाब्रह्माड' तथा 'महाक्षत्रिय' विश्वामित्र के समय एव जीवन को लेकर लिखे वैदिक उपन्यास हैं। इनमे से एक को साहित्य अकादेमी का पुरस्कार भी मिल चुका है। वैदिकयुगीन वातावरण के निर्माण मे आपको अद्भुत सफलता मिली है। 'कल्लरकूट', 'देशातरक्तेगळु' आदि आपके कहानी-सकलन हैं। 'अवळकते' (उसकी हार) विजयनगरकालीन इतिहास से सबधित उपन्यास है। देवडु हमारे धीमत साहित्यकारो मे से है। उनकी भाषा बहुत ही परिष्कृत एव सशक्त है।

देवदत्त *(पा० पा०)*

ये बुद्ध-पत्नी यशोधरा के भाई थे और इन्होने बुद्ध के निर्देश पर प्रव्रज्या ली थी किंतु बुद्ध के प्रतिद्वद्वी के रूप मे सघ मे सर्वप्रथम इन्होंने भेद डालने की चेष्टा की थी। इन्होंने बुद्ध को निरुत्तर करना चाहा, 500 शिष्यो को वरगलाकर गया शशि मे नया सघ स्थापित किया। किंतु बुद्ध द्वारा प्रेषित सारिपुत्त और मोग्गलायन के उपदेश से वे शिष्य पुन भगवान् की शरण गए। इन्होंने अजातशत्रु की सहायता से बुद्ध की हत्या का असफल प्रयास किया। अत मे जब भगवान की शरण मे जाने लगे तब एक पुष्करिणी के किनारे दलदल मे समा गए।

देवदास *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1917 ई०]

इसमे कोई सदेह नही कि देवदास शरत् (दे०) की आरभिक रचना है और उनके अपने मतानुसार किशोर-भावना से अनुप्राणित है परतु सार्वदेशिक स्तर पर सभवत यही रचना सबसे अधिक लोकप्रिय रही है। इसम शरत् ने सामाजिक स्तर पर जाति-भेद तथा प्रेम पर प्रतिबध की समस्या को उठाया है *तथा वैयक्तिक स्तर पर देवदास की* भीरु वृत्ति का उद्घाटन किया है। पार्वती भुवन चौधरी की पत्नी बन कर परिवार और पति के प्रति कर्त्तव्य पालन मे जुट जाती है। देवदास (दे० पात्र) निराशा और अवसाद मे डूबा चद्रमुखी के वेश्यालय मे अपने विनाश के दिन पूरे करने लगता है। दोनो अपने हृदय की सपदा बाल-प्रेम को नही भुला पाते। देवदास को सदा अपना समझती हुई भी पार्वती सती-धर्म का पालन करती है और देवदास पार्वती को चाहता हुआ भी चद्रमुखी को नही छोड पाता। चद्रमुखी वेश्या अवश्य है परतु त्याग एव निष्ठा की दृष्टि से वह पूरा सती-धर्म निभाती है। वह देवदास को अपना नही बना पाती। कारण, शरत् अतत सामाजिक मूल्यो की प्रतिष्ठा एव पालन करना चाहते हैं। इस तरह चद्रमुखी मे सावित्री और राजलक्ष्मी के पूर्व-सकेत मिलते हैं। आकार मे सक्षिप्त तथा सुगठित होने के कारण शिल्प की दृष्टि से यह अपेक्षाकृत सफल उपन्यास है।

देवदास *(बँ० पा०)*

समाज एव हृदय के द्वद्व के माध्यम से देवदास (दे० कृति) चरित्र की समस्त कथावस्तु को शरत्चद्र (दे०) ने प्रकट किया है। सामाजिक प्रतिबध के कारण देवदास का भीरु प्रेम सफलता प्राप्त नही कर सका वरन् दु सह दु ख के अगार मे जलकर खाक हो गया है। देवदास के प्रति पार्वती का प्रेम अतर मे छिपी हुई नदी की धार की तरह है *जिसका बहि प्रकाश नही है परतु यह नित्य प्रत*-सलिला है। वेदना वहाँ अपनी मौनता मे चिर-अम्लान है। देवदास अप्राप्ति की वेदना के फलस्वरूप आत्महनन के पथ को चुन लेता है। उच्छृखलता के राज्य से गुजरता हुआ वह जब पथ के अत मे पहुँचता है तब उसे प्रेम की अतद्र दीपशिखा की बुझती हुई लौ कुछ क्षण के लिए दिखाई पड़ती

है। शरत्चंद्र ने समाज के अनुशासन के विरुद्ध आक्रमणात्मक रीति ग्रहण नहीं की है परंतु मनोधर्म के अंतरविरुद्ध प्रेम की फल्गुधारा को अवारित कर प्रचलित सामाजिक अनुशासन के अतिक्रमण की चेतना को दुर्वार बनाया है। मनोधर्म का यह अप्रतिरोध्य नीरव विप्लव शरत्चंद्र की इस अपरिणत रचना में सुस्पष्ट है। इसीलिए देवदास की सारी व्यर्थता समवेदना की अश्रुमालिका से अभिनंदित है।

देवनागरी लिपि *(पारि०)*

भारत की प्रमुख लिपि जिसका प्रयोग संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, मराठी तथा एक सीमा तक सिंधी और कश्मीरी-लेखन में होता है। भारत के बाहर की भाषाओं में नेपाली भी इसी लिपि में लिखी जाती है। सिंधु घाटी की लिपि की बात छोड़ दें तो भारत में प्राप्त प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी है। उसकी उत्तरी शैली से गुप्त लिपि विकसित हुई है, और फिर गुप्त लिपि से कुटिल लिपि। कुटिल लिपि से ही आठवीं शती के लगभग प्राचीन देवनागरी लिपि का विकास हुआ। इस प्राचीन देवनागरी से ही पंद्रहवीं-सोलहवीं शती में आधुनिक देवनागरी विकसित हुई है। इस लिपि का नाम देवनागरी कैसे पड़ा, यह प्रश्न विवाद का है। एक मत यह है कि अन्य नगर तो नगर हैं और काशी देवनगर है। पहले काशी में ही इसके प्रचार के कारण इसे देवनागरी लिपि कहा गया। दूसरे मतानुसार तांत्रिक चिह्न 'देवनागर' के साम्य के कारण इसे देवनागरी कहा गया। बहुत-से लोग इसका मूल नाम नागरी मानते है और इस नाम को गुजरात के नागर ब्राह्मणों से जोड़ते हैं या फिर पहले नगरों में प्रयोग होने के कारण इसे इस नाम का अधिकारी मानते हैं। वस्तुतः ये सारे अनुमान मात्र हैं, और निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पंद्रहवीं-सोलहवीं शती की नागरी लिपि अन्य लिपियों के प्रभाव के कारण तथा आवश्यकताओं के अनुसार समय-समय पर बदलती रही है। इस समय इसमें क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ड़, ढ़, आ आदि कई लिपि-चिह्न हैं जो मूलतः इसमें नहीं थे। आदर्श लिपि की दृष्टि से नागरी लिपि में समय-समय पर कई कमियाँ स्वीकार की गई हैं तथा उन कमियों को दूर करने के लिए व्यक्तियों, संस्थाओं तथा समितियों द्वारा कई सुझाव भी दिए गए हैं किंतु अभी तक इसे संतोषजनक-सर्वसम्मत रूप में सुधारा नहीं जा सका है।

देवनाथ (म० ले०) [जन्म—1754 ई०; मृत्यु—1821 ई०]

ये विदर्भ के 'सुर्जी अंजन' नामक गाँव के निवासी थे और व्यायाम-प्रेमी तथा मल्लविद्या-विशारद थे। हनुमान जी इनके आराध्य थे। इन्होंने काशी, रामेश्वर, द्वारका, हरिद्वार आदि तीर्थों की यात्राएँ की थीं। देवनाथ गाँव-गाँव घूमते और जनता में भक्ति का प्रचार करते थे। 'कविता-संग्रह' में इनकी अनेक रचनाएँ संकलित हैं। ये हिंदी में भी कविता करते थे और इनके अनेक कृष्ण-भक्तिपरक पद मिलते हैं।

देवन् (त० ले०)

'देवन्' लेखकीय उपनाम है। असली नाम 'महातेवन्' ('महादेवन्') है। अत्यंत लोकप्रिय साप्ताहिक पत्रिका 'आनंदविकटन्' में ये उपसंपादक और संपादक के रूप में काम करते थे और उसी पत्रिका में समय-समय पर निकले इनके व्यंग्यपूर्ण नाटक, कथाएँ, लेख आदि चित्ताकर्षक सिद्ध हुए। इनकी प्रसिद्ध रचनाओं में से कुछ ये हैं—'तुप्परियुम् साम्बु' (जासूसी साहस की कथाओं की शृंखला), 'मिस्टर वेदांतम्' (एक पारिवारिक उपन्यास), 'मिस जानकी' (पढ़ी-लिखी युवती के जीवन-प्रसंग), 'जस्टिस जगन्नाथन्' (एक अदालती सुनवाई का नाटक-रूप) इत्यादि। इनका एक और पारिवारिक उपन्यास 'कोमतिपिन् वातलन्' नाटक के रूप में रंगमंच पर खेला गया है। इन्होंने पारिवारिक और सामाजिक जीवन के सामान्य प्रसंगों में उभरने वाले अनेक ठेठ पात्रों की सृष्टि की है जो अपने वार्तालाप एवं व्यवहार में किसी-न-किसी विशेषता की मुहर से अंकित होकर पाठकों के लिए चिरपरिचित व्यक्तियों के समान बन जाते हैं। लेखक की प्रसंग-योजना, अभिव्यक्ति-शैली दोनों पाठकों में मंद मुस्कान उत्पन्न करती हुई आस्वाद्यता का पोषण करने वाली हैं।

देवमाया प्रपंच *(हि० कृ०)*

इसके प्रणेता रीतिकालीन प्रसिद्ध आचार्य देव (दे०) कवि हैं। यह ग्रंथ संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक 'प्रबोधचंद्रोदय' (दे०) (केशवमिश्र-रचित) की प्रतीकात्मक शैली में लिखित पद्यबद्ध नाट्य-रूपक है। इस ग्रंथ का प्रमुख उद्देश्य अधर्म पर धर्म की विजय दिखाना है। कथानक के पात्र प्रतीकात्मक हैं—परम-पुरुष, माया (मन), प्रवृत्ति

(बुद्धि), जनश्रुति, तर्क आदि । देव से पूर्व 'प्रबोधचंद्रोदय' का पद्यबद्ध हिंदी अनुवाद महाराजा जसवंतसिंह (दे०) भी प्रस्तुत कर चुके थे । ग्रंथ का महत्व इस तथ्य में भी निहित है कि यह हिंदी नाटक-साहित्य की प्रारंभिक रचनाओं में से है ।

देवरदासिमय्या *(क० ले०)* [समय—1040 ई० के लगभग]

देवरदासिमय्या बसव-पूर्व वचनकारों में मूर्धन्य माने जाते हैं । इनके करीब डेढ़ सौ वचन प्राप्त हुए हैं । 'रामनाथ' इनका अंकित या इनके उपास्य देव का नाम है । देवरदासिमय्या के वचनों में उत्कृष्ट वीरशैव-निष्ठा, निष्ठुर सत्यवीरता, मार्मिक समास-शैली एवं दृष्टांत-संपत्ति के दर्शन होते हैं । इनके वचनों ने बसव (दे०) आदि वचनकारों को भी प्रेरणा दी । यही नहीं, इनके वचनों से ज्ञात होता है कि देवरदासिमय्या से पूर्व वचन-साहित्य था । मारि, मसणि आदि क्षुद्र देवताओं की उपासना करने वालों की निंदा कर अहिंसा का प्रतिपादन किया गया है । सतवाणी की महिमा का बहुत ही सुंदर वर्णन इसमें है । सामाजिक कुप्रथाओं पर व्यंग्य करने में इनकी वाणी वज्र कठोर बनी है । इनकी वाणियों में दर्शन *साहित्य-गुण-संपन्न होकर आया है* । देवरदासिमय्या के वचन साहित्यिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं ।

देवराज *(हि० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश की रामपुर रियासत में हुआ तथा शिक्षा-दीक्षा बनारस और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों में । दर्शनशास्त्र में पी-एच० डी० एवं डी० लिट० की उपाधियाँ अर्जित करते हुए इन्होंने जहाँ एक ओर 'शंकर का ज्ञानशास्त्रीय सिद्धांत' एवं 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन' सदृश मानक ग्रंथों का प्रणयन किया है, वहीं दूसरी ओर कविता, उपन्यास तथा आलोचना-विषयक अनेक उत्कृष्ट कृतियों के सृजन द्वारा हिंदी साहित्य के संवर्धन में महत्वपूर्ण योग दिया है । इनका मुख्य प्रदेय उपन्यास तथा आलोचना के क्षेत्र में रहा है । 'पथ की खोज', 'बाहर-भीतर', 'रोड़े और पत्थर' तथा 'अजय की डायरी' इनके उपन्यास हैं जिनमें मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के जीवन का यथार्थ एवं मनोवैज्ञानिक निरूपण किया गया है । आलोचना के क्षेत्र में इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं—'छायावाद का पतन', 'साहित्य-चिंता', 'आधुनिक समीक्षा' एवं 'प्रतिक्रियाएँ' । यद्यपि इन्होंने व्यावहारिक एवं सैद्धांतिक दोनों ही प्रकार की आलोचनाएँ लिखी हैं किंतु इनका झुकाव सैद्धांतिक आलोचना की ओर ही अधिक रहा है । कृति विशेष का विवेचन-विश्लेषण करते समय इनके मस्तिष्क में अतीत की कालजयी कृतियाँ विद्यमान रहती हैं और इसीलिए उसका मूल्यांकन करते समय नवीनता के स्थान पर ये प्रौढ़ता के स्तर को अधिक महत्व देते हैं । इसी प्रकार से ये काव्य में रसानुभूति के कायल न होकर संस्कृति बोध के कायल हैं ।

देवर्धिक्षमाश्रमण *(प्रा० ले०)*

ये जैन-आगम (दे०)-साहित्य के अंतिम प्रस्तोता हैं । महावीर निर्वाण के बाद आगम-साहित्य को संकलित करने की जो गतिविधि चल पड़ी थी वह पाँचवीं शती में वलभी की सभा में इनके तत्त्वावधान में पूरी हुई । आज का समुपलब्ध आगम-साहित्य इन्हीं का संपादित किया हुआ है । इसमें लिखित सामग्री के अतिरिक्त मौखिक परंपरा का भी आश्रय लिया गया है । जिन चरित, थेरावली और सामाचारी को आगम-साहित्य में इन्होंने स्थान दिया और जैन धर्म विश्वकोश 'नंदी' की रचना की ।

देवल, गोविंद बल्लाल *(म० ले०)* [जन्म—1855 ई०, मृत्यु—1916 ई०]

किर्लोस्कर के संगीत नाटकों की परंपरा में गो० ब० देवल का महत्वपूर्ण स्थान है । अंग्रेज़ी एवं संस्कृत की छह प्रमुख नाट्यकृतियों के अनुवाद भावानुवाद के अतिरिक्त केवल 'संगीत-शारदा' ही इनकी मौलिक कृति है । 'दुर्गा' (1886), 'संगीत-विक्रमोर्वशीय' (1886), 'संगीत-शारदा' (दे० भुजंगनाथ, भद्रेश्वरदीक्षित, काचन भट्ट) (1899), 'संगीत संशय कल्लोळ' (दे० फाल्गुनराव, भादव्या) (1916), 'संगीत शाप संभ्रम' आदि नाट्यकृतियों में 'दुर्गा' अंग्रेज़ी के 'इज़ाबेला','भुजारराव','ऑथेलो', 'संशय कल्लोळ', 'ऑल इन दि राँग' के भावानुवाद हैं । 'संगीत शारदा' की कथावस्तु अनमेल विवाह पर आधारित है । मृत्यु के कगार पर खड़े भुजंगनाथ द्वारा अपने धन-बल के आधार पर अवयस्क बालिका शारदा से विवाह के असफल प्रयास का चित्रण हुआ है । सहज स्वाभाविक अनुवाद-कला के कारण इनकी रचना मौलिक कृतियाँ-सी जान पड़ती हैं । भाषा पर सहज अधिकार होने के कारण ही इनके

गीतों में मार्मिकता एवं संवादों में अभिनयोचित चांचल्य है। अनमेल विवाह की सामाजिक समस्या का भव्यांकन कर अन्यान्य नाटककारों को ज्वलंत सामाजिक समस्याओं की ओर इन्होंने ही सहज रूप से आकृष्ट किया है।

देव, ल० ग० *(म० ले०)*

ये प्रयोगधर्मी नाटककार हैं जो अँग्रेज़ी नाट्य-साहित्य एवं तंत्र से अत्यधिक प्रभावित हैं। समसामयिक ज्वलंत प्रश्नों और समस्याओं को इन्होंने अपनी नाट्य-कृतियों के माध्यम से उरेहा है। तत्कालीन जटिलताओं की प्रतिच्छाया इनकी पौराणिक कृतियों में भी उपस्थित हुई है। 'भागवत' (दे०) में उल्लिखित प्रह्लाद की प्रसिद्ध कथा को इन्होंने सामयिक परिवेश में निरूपित किया है। इनके 'घोडा जाकी आणि पुस्तक' नाटक में 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' की कल्पना को भारतीय प्रारूप में चित्रित किया गया है। इस नाटक को स्वयं लेखक ने 'प्रहसनात्मक सुखांतिका' की संज्ञा दी है। 'पुरुष नावाचा प्राणी' में पुरुष वर्ग की लोलुप स्वार्थी दृष्टि के कारण अभिशप्त नारी जीवन की दारुण व्यथा-कथा को हास्य-व्यंग्य के माध्यम से नाटककार ने प्रस्तुत किया है। इनका 'हेमंत' दुखांत नाटक तथा 'जोशीकाय म्हणतात' प्रहसन है। इन रचनाओं में सामाजिक समस्याओं का मनोहारी चित्रण हुआ है। पात्र एवं प्रसंगानुकूल भाषा से युक्त संवाद-योजना, सहज-सरल रूप में मानव-मनोविज्ञान की तलस्पर्शी चरित्र-योजना एवं नाटकीय प्रभावान्विति की दृष्टि से प्राध्यापक ल० ग० देव की रचनाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके साथ ही नाट्य-क्षेत्र में बहुविध शिल्प-प्रयोग की दृष्टि से भी ये विशेष स्थान के अधिकारी हैं।

देवशिखामणि अलशिंगराचार्य *(क० ले०)* [1877-1940 ई०]

इनका जन्म मैसूर राज्य के प्रसिद्ध श्रीवैष्णव धाम मलुकोटे में एक श्रीवैष्णव परिवार में हुआ था। आपका वंश पंडितों का वंश था। मद्रास में ये क्रिश्चियन कालेज, प्रेसिडेंसी कालेज तथा नवीन मेरी कालेज में कन्नड के प्राध्यापक रहे। आपने कन्नड में बहुत-से ग्रंथ रचे हैं जिनमें मुख्य हैं—'आर्यमहोपाख्यान', 'कन्नड वचनरामायण' (आठ भागों में), 'घोर यूरोपु युद्ध चरित्रे', 'चेलवनारायण शतक', 'चंडकौशिक' (नाटक), 'चाणक्यतंत्र चमत्कार', 'पंचभाषा प्रहसन', 'भागवत' (चार भागों में), 'महाभारत', 'श्रीरामकृष्ण परमहंसर चरित्रे', 'स्वप्नवासवदत्ते', 'पांचरात्र'। संस्कृत में भी आपने ग्रंथ-रचना की है। आपका नाम कन्नड-साहित्य में रामायण तथा भागवत के कारण सदैव अमर रहेगा। इतनी सरल व इतनी सुंदर शैली में वे लिखे गए हैं कि आज भी उन्हें लोग चाव से पढ़ते हैं। इनकी भाषा बहुत ही सरस एवं प्रभावी है।

देवसेन *(अप० ले०)* [समय—932 ई० के आसपास]

देवसेन अपभ्रंश के अतिरिक्त संस्कृत और प्राकृत के भी पंडित थे। इनकी अपभ्रंश भाषा की कृति 'सावय धम्म दोहा' (दे०) है। इन्होंने संस्कृत में 'आलाप-पद्धति' और प्राकृत में 'दर्शन-सार', 'आराधना-सार', 'तत्व-सार' और 'भावसंग्रह' नामक ग्रंथ लिखे थे। अपने संबंध में देवसेन ने कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है। इनके ग्रंथों से ज्ञात होता है कि ये दिगंबर जैन थे।

देवसेना *(हिं० पा०)*

जयशंकर प्रसाद (दे०)-विरचित ऐतिहासिक नाटक 'स्कंदगुप्त' (दे०) की यह पात्र काल्पनिक होते हुए भी वास्तविक प्रतीत होती है। भावुकता की प्रतिमूर्ति होते हुए भी इसमें गंभीरता तथा सहनशीलता के गुण कूट-कूट कर भरे हुए हैं। इसके चरित्र में अनासक्त कर्मयोग की झलक भी देखने को मिलती है। संभवतः अपने इसी गुण के कारण यह सभी सांसारिक संघर्षों में अडिग रहते हुए अपने सामाजिक दायित्वों को पूर्ण रीति से निभाती है। यह संगीत की अनन्य प्रेमिका है तथा विदेशियों द्वारा किए गए आक्रमण जैसी संकटपूर्ण घड़ी में भी अपनी संगीत-प्रियता व्यक्त किए बिना नहीं रह पाती। इसे संसार के प्रत्येक कण में लय तथा तान की समरसता परिलक्षित होती है। लेकिन इसका संगीत-प्रेम कारुण्य-भावना से अनुप्रेरित है और इस कारुण्य-भावना के पीछे जीवन की असफल प्रणय-कथा छिपी है। दुर्भाग्यवश अपने जीवन के वसंतकाल में वरण किए गए स्कंदगुप्त के विजया की ओर उन्मुख हो जाने पर यह अपने पवित्र प्रेम का उदात्तीकरण तो कर देती है किंतु उसकी वेदना को सर्वथा भूल नहीं पाती। यह स्त्री-सुलभ अन्य सभी गुणों तथा सहिष्णुता, भावुकता, उदारता आदि से भी परिपूर्ण है।

देवसेनी *(म० कृ०)* [रचना काल—1867 ई०]

'देवसेनी' नामक काव्य ग्रथ की रचना श्री बजाबा रामचद्र प्रधान ने की थी। प्रस्तुत रचना अँग्रेजी साहित्यकार सर वाल्टर स्कॉट की 'लेडी ऑफ द लेक' नामक कृति पर आधारित है। अत यह मौलिक कृति न होकर रूपातरित रचना है। *यह युग की माँग की देन है।* अँग्रेजो के राज्य मे पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित भारतीय युवक अँग्रेजी साहित्य की ओर आकृष्ट हो रहा था। उसकी तृप्ति के लिए ही इन्होने इस अँग्रेजी रचना को मराठी मे रूपातरित किया था। इस रूपातर से आधुनिक मराठी साहित्य भी समृद्ध हुआ है। आधुनिक मराठी काव्य के इतिहास मे इस काव्य का अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण स्थान है।

इसकी कथा काल्पनिक प्रेमकथा है। मूल रचना मे स्कॉट ने कथा का विकास पर्वतीय प्रदेश की पृष्ठभूमि मे किया है, इसका ध्यान रखकर प्रधान ने प्रेम के नैसर्गिक *विकास के लिए राजस्थान को भूमिका के रूप मे अपनाया है।* स्कॉट मनोवृत्तियो के विश्लेषण एव चित्रण तथा सृष्टि-सौंदर्य-वर्णन के कुशल चितेरे है, प्रधान भी इन अशो के अनुवाद मे पर्याप्त सफल रहे हैं।

'देवसेनी' की भाषा अत्यत मधुर एव श्रुतिसुखद है। पडित-कवियो की शैली मे प्रधान ने यह रचना की है। इसमे करुण अगी एव शृगार तथा वीर अगभूत रस हैं। आलोचक चिपळूणकर के अनुसार कालातर मे चाहे कोई भूल जाए कि यह स्कॉट की कृति का रूपातर है, तब भी 'देवसेनी' का स्वतत्र कृति रूप है और मराठी कविता को नवीन मोड देने की दृष्टि से इसका महत्व है।

देवानदा *(प्रा० पा०)*

ये एक प्रकार से महावीर स्वामी *की माता* थी। वैसे महावीर का जन्म त्रिशला मे हुआ था किंतु जैन आगमो के अनुसार देवानदा के ही गर्भ मे तीर्थंकर-प्रवेश *हुआ था।* देवानदा उसमदेव *की पत्नी थी। एक बार तीर्थ-*यात्रा के प्रसग मे जब इनको महावीर के दर्शन हुए तब ये टकटकी लगाकर महावीर की ओर देखने लगी। जब गोयम इदभूति ने महावीर से इसका कारण पूछा तब महावीर ने यह रहस्योद्घाटन किया। बाद मे देवानदा महावीर के धर्म मे दीक्षित हो गई।

देवारम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की सातवी शती]

शैव सत अप्पर् (दे०) 'तिरुज्ञान सबदर्' (दे०) और 'सुदरर्' (दे०) के पदो का सग्रह 'देवारम्' कहलाता है। यह सात भागो मे विभाजित है। इन तीनो सतो के पदो को 'देवारम्' शीर्षक से सगृहीत करने का श्रेय नबि आडार *नबि (दे०)* को है। *'देवारम्' के प्रथम तीन भागो मे अप्पर्* के 311 पद, अगले तीन भागो मे तिरुज्ञान सबदर्' के 384 पद और अतिम भाग मे 'सुदरर्' के 100 पद सगृहीत है। विभिन्न पदो मे सतो ने प्रभु के प्रति अपनी अनन्य भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति की है। इनकी भक्ति क्रमश दास्य, वात्सल्य और सख्यभाव की थी। 'अप्पर्' के पदो मे उनका अनुभव-ज्ञान व्यक्त हुआ है। उन्होने जाति-भेद और अहकार-भावना की निंदा की है और मानव-जीवन तथा ससार की नश्वरता का प्रतिपादन किया है। सबदर्' के पदो मे प्रचार-भावना का प्राधान्य है। इन्होने अन्य धर्मो की निंदा कर शैव धर्म की महिमा का गान किया है। 'सुदरर्' के पदो *से स्पष्ट है कि वे ससार को सत्य समझते थे, अत उन्होंने* इस ससार मे ही प्रभु के दर्शन किए थे। 'देवारम्' के पदो मे प्रकृति के अनेक सुदर चित्र हैं। ये पद सगीत प्रधान विशिष्ट शैली मे रचित है। 'देवारम्' का धार्मिक और साहित्यिक दोनो दृष्टियो से अपार महत्व है।

देवी चौधरानी *(बँ० कृ०)* *[रचना काल—1884 ई०]*

'आनदमठ' (दे०) की आदर्श-भावना से अनुप्राणित बकिमचद्र (दे०) की इस रचना का वस्तु-विधान उनके पूर्ववर्ती उपन्यासो की अपेक्षा कही अधिक सरल एव *सहज है।* इसका आरभ यथार्थपुष्ट है। प्रफुल्ल का प्रारभिक स्वरूप सामान्य है परतु धीरे-धीरे उसका रूपातरण किया गया है। वह इतनी सशक्त नही है कि गृहस्थ-कन्या होते हुए देवी चौधरानी *के समान* देशोद्धार *मे जुटी रह।* ब्रजेश्वर मे देशव्रत और गृहस्थ धर्म का सघर्ष है परतु उपन्यास की उपलब्धि है प्रफुल्ल की दुर्बलता। भवानी का *व्यक्तित्व अति मानवीय हो गया है।*

अब बकिम को मनुष्य की भक्ति और शक्ति पर विश्वास बढ गया है। इसीलिए वैयक्तिक स्तर पर वे देशोद्धार की चेष्टा मे तत्पर हुए। औपन्यासिक दृष्टि से यह उनकी कोई असाधारण रचना नही है।

देशज *(हिं० पारि०)*

इतिहास के आधार पर भारतीय भाषाओं के शब्दों को चार वर्गों में बाँटा जाता है : तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशज। देशज शब्दों के संबंध में मतभेद रहा है। कुछ लोग उन शब्दों को देशज मानने के पक्ष में रहे हैं जो मूलतः मुंडा जैसी आर्य-पूर्व भाषाओं के हैं। कुछ लोग ऐसे तद्भव शब्दों को देशज कहते रहे हैं, जिनके मूल तत्सम का पता नहीं है। कुछ लोग देश में उद्भूत शब्दों को ही देशज कहते हैं। वास्तव में देखा जाए तो हमारी भाषाओं के कुछ शब्द तो तत्सम हैं, कुछ तद्भव हैं, तथा कुछ विदेशी है। जो शब्द इन तीनों में किसी भी वर्ग में नहीं आते, वे ही देशज हैं। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि देशज शब्द उन शब्दों को कहा जा सकता है जिनकी व्युत्पत्ति का पता न हो। इसीलिए ऐसे शब्दों को देशज की तुलना में 'अज्ञातव्युत्पत्तिक' नाम से अभिहित करना अधिक समीचीन प्रतीत होता है। हिंदी में तेंदुवा, थोथा आदि शब्द इसी वर्ग के हैं।

देशपांडे, कुसुमावती *(म० ले०)*

आधुनिक मराठी साहित्य में ये एक निबंध-लेखिका, कहानीकार, कवयित्री एवं समालोचक के रूप में विख्यात हैं। ये मराठी के सुप्रसिद्ध कवि श्री आ० रा० देशपांडे 'अनिल' (दे०) की पत्नी थीं।

'दीपकली' और 'दीपदान' इनके निबंध-संग्रह हैं। इन निबंधों में ग्रामीणों के दुःख-दर्द का मार्मिक अंकन हुआ है।

इन्होंने कवित्व-गुण-मंडित अनेक यथार्थवादी कहानियाँ भी लिखी हैं जिनमें शासित एवं दलित नारी की मनोदशा का हृदयस्पर्शी चित्रण है। इन कहानियों में जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण प्रकट हुआ है। समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों से संबद्ध चरित्रों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण करने में ये सिद्धहस्त हैं। 'मोलो', 'दीपमाल' इनके कथा-संग्रह हैं।

अपनी 'मराठी कादंबरी' (भाग 1, 2) नामक समालोचनात्मक कृति में इन्होंने मराठी उपन्यास के स्वरूप-विकास का निरूपण किया है।

देशपांडे, नागोराव घनश्याम *(म०ले०)* [जन्म—1909 ई०]

इनका जन्म मेहेकर नामक स्थान पर हुआ था। व्यवसाय से ये वकील हैं।

काव्य-संग्रह : 'शीळ'।

ना० घ० देशपांडे 'प्रेमयोगी' कवि हैं। इनके लिए प्रेम ही सर्वस्व है, पर यह प्रेम समाज के बंधनों को स्वीकार नहीं करता, यह उन्मुक्त प्रेम है। ग्राम्य जीवन की पृष्ठभूमि को लेकर लिखे इनके प्रेमगीत विशेष रूप से लोकप्रिय हैं। कवि ने किसानों और ग्वालों पर कुछ गीत लिखे हैं जिनमें ग्राम्य जीवन के नैसर्गिक, अकृत्रिम आनंद का वर्णन है।

इन प्रेमगीतों की रचना में 'अलंकरण' पर बल दिया गया है। सभी गीत नाद-मधुर एवं संगीतात्मक हैं। देशपांडे नवयुग के प्रेमगीतकार हैं।

देशपांडे, पु० ले० *(म० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

नाटककार और हास्य-लेखक श्री पु० ले० देशपांडे विविध कलाओं के ज्ञाता हैं। इन्होंने नाटक, कहानी, लेख, सिनेमा और भाषणाभिनयादि द्वारा हास्यरस की प्रचुर निर्मिति की है। इनके एकांकी नाटक रेडियो के लिए तो लिखे ही गए हैं, वे मंच पर भी अभिनीत किए जा सकते हैं। इनके नाटक आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विचारधाराओं का मार्मिक दर्शन कराने के साथ-साथ दार्शनिक संदेश भी देते हैं। इन्होंने कतिपय विदेशी नाटकों का मराठी में रूपांतर भी किया है और विशेषता यह है कि रूपांतर मूल से अधिक सफल है। विनोद-सृष्टि के लिए ये विडंबना, उपहास और संस्मरणों का कुशल प्रयोग करते हैं। सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति ने सामाजिक और साहित्यिक जीवन में व्याप्त दंभ का विस्फोट करने में इनकी बड़ी सहायता की है। विभिन्न बोलियों के प्रयोग ने इनकी रचनाओं को और भी अधिक यथार्थ, मार्मिक और लचीला बना दिया है। मध्यम वर्ग के व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण और उनके बीच होने वाले वाद-विवादों के विडंबनापूर्ण अंकन में कुशल देशपांडे स्थान-स्थान पर आदर्श का भी दिग्दर्शन करते चलते हैं। व्यक्तियों की अपेक्षा प्रवृत्तियों की विडंबना पर अधिक बल होने के कारण उनकी रचनाएँ कटु न होकर स्वस्थ एवं सुरुचिपूर्ण हैं। कल्पनानिष्ठ, बुद्धिनिष्ठ, भावनानिष्ठ, स्वभावनिष्ठ, प्रसंगनिष्ठ, शब्दनिष्ठ—सभी प्रकार का विनोद प्रस्तुत करने में सफल देशपांडे आधुनिक मराठी के श्रेष्ठ हास्य-लेखक हैं।

प्रसिद्ध कृतियाँ : नाटक—'तुझे आहे तुजपाशी'

(दे०)। विनोद लेख-सग्रह—'नसती उठाठेव', 'बटाट्याची चाळ' आदि ।

देशि (क० पारि०)

कन्नड काव्यशास्त्रज्ञो ने काव्य के दो प्रकार बताए हैं—मार्ग (दे०) और देशि । इनमे सस्कृतनिष्ठ काव्य-रचना विधान को 'मार्ग' तथा उससे भिन्न अर्थात् स्वीय भाषा की प्राचीन परपरा के अनुसार रचित काव्य को 'देशि' कहा जाता है । कन्नड का प्राचीन साहित्य 'मार्ग' कहा जा सकता है, जिसमे 'देशि' की प्रवृत्ति भी स्पष्टतया दीखती है । कन्नड के प्रसिद्ध विद्वान स्व० मुळियतिम्मप्पय्या (दे०) के अनुसार मार्ग-साहित्य का उदय देशि से ही हुआ है । देशि मे भी श्रव्य और दृश्य भेद माने गए हैं । कन्नड के प्रथम काव्यशास्त्रीय ग्रथ 'कविराजमार्ग' (दे०) के लेखक ने 'बेदडे' और 'चत्ताण' नाम के दो काव्य-भेदो का उल्लेख किया है । इस सबध मे विद्वानो की धारणा है कि 'बेदडे' श्रव्य काव्य है और 'चत्ताण' दृश्य-काव्य है । देशी श्रव्य-काव्य को 'देसिगब्ब' अथवा 'पाडुगब्ब' ('कब्ब' शब्द 'काव्य' शब्द का तद्भव है, 'पाडुगब्ब' का अर्थ है गाने योग्य काव्य) कहा गया है । इसके 'पद', 'मेल्वाडु', 'पाडु', 'पाडुगब्ब' आदि भेद बताये जाते हैं । देशि दृश्य काव्य को 'बाजने-गब्ब' कहा गया है । कन्नड का प्रसिद्ध 'यक्षगान' (दे०) (सगीत-नाटक) इसके अतर्गत ही है । देशि काव्य उपेक्षा की वस्तु नही है । मार्ग-साहित्य के समान ही मान्य है ।

देशिग विनायकम् पिळ्ळै (त० ले०) [जन्म—1876 ई०, मृत्यु—1954 ई०]

ये आधुनिक तमिल साहित्य के अग्रगण्य महा-कवि माने जाते हैं । जिला कन्याकुमारी मे इनका जन्म हुआ था । अपने गाँव 'तेरुर्' मे ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्होने 'कोट्टारु' मे अँग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त की । इसके पश्चात् तिरुवनतपुरम् मे इन्होंने अध्यापक-प्रशिक्षण प्राप्त किया । अपने गाँव मे स्थित 'तिरुवावडु-तुरै शैवमठ' की शाखा म 'शातलिंग तपिरान' नामक सन्यासी तमिल विद्वान् से तमिल के लक्ष्य-लक्षण ग्रथो का अध्ययन भी इन्होंने किया था । तीस वर्ष पर्यंत इन्होंने अनेक स्थानो पर और अत मे फिर तिरुवनतपुरम् में तमिल अध्या-पक तथा प्राध्यापक का कार्य किया था। 1931 ई० के बाद ये मृत्यु-पर्यंत 'पुत्तेरी' नामक गाँव मे ही रहे थे ।

इनकी कविता की मुख्य विशेषता है भाषा-शैली का सरल सौंदर्य । अभिव्यक्ति मे 'द्राक्षापाक' कहलाने योग्य प्रसाद गुण तथा माधुर्य गुण उमडते रहते हैं । करुणा भाव के चित्रण मे ये सिद्धहस्त हैं । तमिल काव्य की प्राचीन परपरा के अनुरूप इन्होने छद रचना, व्याकरणिक भाषा, तथा भाव गभीरता के साथ-साथ अपने युग की क्रातिकारी भावनाओ को भी स्वीकार किया है । स्त्री उद्धार, हरिजन-उद्धार इत्यादि बातें इन्हे प्रिय थी । बच्चो को दृष्टि मे रखकर लिखे गए इनके गीत एक विलक्षण साहित्यिक उदात्तता से सवलित होकर शाश्वत-वाङ्मय के अग बन गए हैं । 'आसिय ज्योति' (दे०) भगवान बुद्ध की जीवनी पर आधारित इनका खडकाव्य है—'एडविन आर्नल्ड' कृत अँग्रेजी काव्य 'लाइट ऑफ एशिया' से प्रेरित । 'मलरुम् मालैयुम्' (पुष्प और माला) इनकी प्रकृति-वर्णन-प्रधान कविताओ का सकलन है । इनका 'उमरकय्याम् पाडल्कळ्' उमरखैयाम की रुबाइयो का भावानुवाद है । 'दविथिन् कीर्त्तनैकळ्' भक्तिरसप्रधान गय पदो का सग्रह है । 'कुळन्दै-च्-चेल्वम्' ('बालको की सपदा') बच्चो के लिए लिखे गए पद्य हैं । इनके अतिरिक्त—'नाजिल नाट्टु मरुमक्कळवषि मान्मियम' (दे०) नामक इनका खड-काव्य भी अत्यत विख्यात हुआ है । इस खड-काव्य का समाज पर बडा असर हुआ ।

ये अच्छे गद्यकार भी थे । इनके भाषणो तथा निबधो का सकलन प्रकाशित हुआ है । इन्होने अँग्रेजी मे भी ऐतिहासिक अनुसधानपूर्ण निबध लिखे हैं ।

देसाई, दिनकर (क० ले०) [जन्म—1909 ई०]

समाज-सुधारक और लेखक के रूप मे श्री दिन-कर देसाई की प्रसिद्धि है । ये मैसूर और बबई विश्वविद्या-लयो के छात्र रहे हैं । इनकी कविताओ के सग्रह हैं 'कवन सग्रह', 'मक्कळ गीतागळु' (बच्चा के गीत) तथा 'मक्कळ पद्यगळु' (बच्चो के पद्य) । ये कन्नड तथा अँग्रेज़ी के अच्छे विद्वान हैं । 'प्राइमरी एजुकेशन इन इडिया' और 'मारि-टाइम लेबर इन इडिया' इनकी अँग्रेज़ी पुस्तकें हैं ।

देसाई, महादेव (गु० ले०)

दे० महादेव देसाई ।

देसाई, रणजीत रामचंद्र *(म० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

कोल्हापुर में जन्मे श्री देसाई बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। इन्होंने नाटक, कहानी और उपन्यास के अतिरिक्त फिल्मों के लिए भी पट-कथाएँ लिखी हैं। अब तक इनके चार उपन्यास, छह कहानी-संग्रह, छह नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। उपन्यासों में प्रमुख हैं—'स्वामी' (दे०) और 'श्रीमान योगी'। 'स्वामी' और 'श्रीमान योगी' दोनों ऐतिहासिक उपन्यास हैं। प्रथम माधवराव पेशवा से संबद्ध है और दूसरा शिवाजी से। सफल ऐतिहासिक उपन्यास के लिए जिन गुणों—प्रामाणिकता, वातावरण-सृष्टि आदि—की अपेक्षा होती है वे सब इनकी रचनाओं में उपलब्ध हैं।

देसाई, रमणलाल वसंतलाल *(गु० ले०)* [समय—1892 ई० से 1954 ई०]

रमणलाल देसाई का जन्म गुजरात के नागर परिवार में 1892 ई० में हुआ। इनके पिता वसंतलाल देसाई एक पत्रकार थे। एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर रमणलाल बड़ौदा रियासत की सेवा में लगे और दीर्घकालीन सेवाओं के पश्चात् निवृत्त हुए। 1954 ई० में 62 वर्ष की आयु में इन्होंने इहलीला समाप्त की।

रचनाएँ—'जयंत', 'शिरीष', 'कोकिला', 'हृदयनाथ', 'स्नेहयज्ञ', दिव्यचक्षु' (दे०), 'पूर्णिमा', 'ग्रामलक्ष्मी' (भाग 1 से 4), 'बंसरी', 'पत्र लालसा', 'भारेलो अग्नि', 'ठग', 'क्षितिज' (भाग 1-2), 'शोभना', 'हृदय विभूति', 'छायानट', 'पहाड़नां पुष्पो (भाग 1-2), 'झंझावात' (भाग 1-2), 'प्रलय', 'कालभोज', 'सौंदर्य-ज्योति', 'शौर्य-तर्पण', 'बालाजोगण', 'स्नेहसृष्टि', 'त्रिशंकु'; कहानी-संग्रह—'झाकळ', 'पंकज', 'रसबिंदु', 'कांचन अने गेरू', 'दीवड़ी', 'भाग्यचक्र', 'सती अने स्वर्ग'; नाटक—'संयुक्ता', 'शंकित हृदय', 'परी अने राजकुमार अंजनी', 'तप अने रूप', 'पुण्योनी सृष्टि मां', 'उश्केरायेलो आत्मा'। काव्य-संग्रह—'नीहारिका'; समीक्षा—'जीवन अने साहित्य' (भाग 1-2), 'साहित्य अने चिंतन'; आत्मकथा और जीवनी—'गई काल, मध्याह्न नां मृगजळ'; प्रकीर्ण रचनाएँ—'अप्सरा' (भाग 1 से 5), 'गुजरात नु घडतर', 'ग्रामोन्नति', 'तेज चित्र', 'ऊर्मि अने विचार', 'गुलाब अने कंटक', 'रशिया अने मानवशांति', 'वड़ोदरा नु राज्यबंधारण', 'भारतीय संस्कृति', 'सुवर्ण रज'; भाषांतर—'मारु जीवन अने कार्य'।

इस प्रकार देखें तो श्री देसाई सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे किंतु उन्हें विशिष्ट ख्याति और यश मिला उपन्यासकार के रूप में। गांधीवाद की इनके मानस और चिंतन पर गहरी छाप थी और वह स्वर इनके कृतित्व में भी ध्वनित हुआ है।

देह बिचारर गीत *(अ० पारि०)*

ये प्राचीन काल से चले आ रहे गीत हैं। बाह्य रूप से ये भक्ति-गीत लगते हैं तथा इनके साथ माधवदेव (दे०) का नाम जुड़ा होता है, किंतु वास्तव में ये वैष्णव गीत नहीं है। ये गीत गुप्त संप्रदायों में बहुत प्रचलित रहे हैं। इन पर शैव-शाक्त और बौद्ध तांत्रिकों का प्रभाव रहा है। इन गीतों में शरीर की तुलना नाव या घर से की जाती है। इसे 24 तत्त्वों का घर कहा जाता है। इस घर में नवद्वार हैं, इसमें पूर्ण कृष्ण अथवा पूर्णानंद का वास है। बंगाल के बाउलों के गीत अथवा निर्गुणियों की उलटबाँसियों (दे० उलटबाँसी) से इनकी समता की जा सकती है। कभी-कभी ये पहेली जैसे हो उठते हैं, तब इनका अर्थ करना कठिन होता है, जैसे कि—

'ए माखि मुरे काढ़ि छयनो ढोल साजिले।'

इन गीतों की गणना असमीया के आदि मौखिक साहित्य में की जाती है।

देवम् पिरंदु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

इसमें कु० अळगिरिसामी (दे०) की आठ कहानियाँ संगृहीत हैं। इनमें 'देवम् पिरंदु', 'गुरुरूपम', 'तंबिरामैया' और 'कुमारपुरम् स्टेशन' प्रसिद्ध हैं। 'देवम् पिरंदु' में लेखक ने बताया है कि यदि हम किसी व्यक्ति को आदर्श बनाने का भरसक यत्न करते हैं तो वह हमारी कल्पना से कहीं अधिक आदर्शवान् बन जाता है। 'गुरुरूपम' में दो पात्रों के माध्यम से मानव-मन की कुरूपता को व्यक्त किया गया है। 'तंबिरामैया' में बताया गया है कि निर्धन परिवार का युवक पढ़-लिखकर अपने परिवार का तो क्या अपना भी भरण-पोषण नहीं कर पाता है। इसमें लेखक को बालक की भावनाओं के चित्रण में विशेष सफलता मिली है। 'कुमारपुरम् स्टेशन' में लेखक ने बताया है कि उत्तम गुण वाले व्यक्ति ही हमारे गुरु हैं। ये कहानियाँ अत्यंत सरल शैली में रचित हैं। इन कहानियों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि अळगिरिसामी कथानक, विषय के प्रस्तुती-

करण, उद्देश्य, शैली आदि के सबध मे परपरावादी नही है।

दोदो-चनेसर *(सि० पा०)*

सिंध मे 'दोदो-चनेसर' नामक वीरगाथा बहुत प्रसिद्ध है जिसका सबध सूमरा वश (1050-1350 ई०) के राजाओ से है। पहले-पहल भाट भाग तथा उन दिनो के अन्य चारणो ने इस वीरगाथा की रचना की थी। इस वीरगाथा के केवल कुछ पद्यात्मक अश मौखिक रूप से आज-कल के चारणो को अपने पूर्वजो से प्राप्त हुए हैं और पिछली शती मे पहली बार लिपिबद्ध किए गए हैं। बाकी अश गद्य मे ही जोडकर गाथा का क्रम रखा गया है। दोदो और चनेसर सूमरा वश के राजा भूगर के पुत्र थे और पिता की मृत्यु के पश्चात् राज्यसिंहासन की प्राप्ति के लिए उनमे कलह हुआ। राज्य के प्रमुख पदाधिकारियो ने दोदो को अपना राजा चुना, जिससे क्रुद्ध होकर चनेसर ने भाई से राज्य-सिंहासन छीनने के लिए अलाउद्दीन की सेना की सहायता से सिंध पर आक्रमण किया। इस युद्ध मे दोदो और उसके कई साथी वीरगति को प्राप्त हुए। दूसरी तरफ युद्ध के पश्चात् चनेसर, अलाउद्दीन और उसकी सेना मे से भी कोई न बचा। सिंधी साहित्य मे दोदो वीरता का और चनेसर साहसहीनता देशद्रोह और अनिर्णयात्मक बुद्धि का प्रतीक माना गया है। सिंधी साहित्य की कई रचनाओ मे इन पात्रो के सदर्भ मिलते हैं।

दोष *(स०, हिं० पारि०)*

गुण (दे०), अलकार (दे०)-विवेचन की भाँति दोष-विवेचन भी काव्यशास्त्र का महत्वपूर्ण विषय है। सामान्य रूप से काव्य का अपकर्ष करने वाले तत्त्व दोष कहलाते हैं। भरत (दे०) तथा वामन (दे०) दोष को गुण का विपर्याय मानते हैं ('एत एव विपर्यस्ता गुणा काव्येषु कीर्तिता—भरत नाट्यशास्त्र 17।88,94, 'गुणविप-र्ययात्मनो दोषा'—वामन काव्यालकारसूत्रवृत्ति 2।12)। ध्वनि एव रसवादी आचार्यों की परिभाषा अधिक स्पष्ट एव सगत है आनदवर्द्धन (दे०), अभिनवगुप्त (दे०) और मम्मट (दे०) ने दोष को मुख्यार्थ का अपकर्षक तत्त्व माना है तथा विश्वनाथ (दे०) के विचार मे दोष वह है जो शब्दार्थ द्वारा रस का अपकर्ष करे ('रसापकर्षका दोषा'—साहित्यदर्पण 7।1)। मम्मट ने रसौचित्य की दृष्टि मे रखते हुए नित्य एव अनित्य दोषो की प्रकल्पना की है। नित्य दोष प्रत्येक स्थिति मे रस का अपकर्ष करते हैं, अत रस-दोष कहलाते हैं, अनित्य दोषो का सबध काव्य के बाह्य पक्ष—शब्दार्थ—से है जो सदा रस का अपकर्ष नही करते। सक्षेप मे, काव्य दोष काव्य का अपकर्ष अर्थात् काव्य-सौंदर्य का विघात तीन प्रकार से करते हैं रस-प्रतीति मे विलब द्वारा, रसास्वादन मे अवरोध द्वारा तथा रस प्रतीति के पूर्ण विघात द्वारा। इसीलिए उत्कृष्ट काव्य-रचना के लिए सस्कृत-आचार्यों ने कवियो का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए काव्य-दोषो को त्याज्य बताया है।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता *(हिं० कृ०)*

यह मध्ययुगीन ब्रजभाषा गद्य की सुदरतम कृति है। इसमे पुष्टि सप्रदाय (दे० पुष्टिमार्ग) के गोस्वामी विट्ठलनाथ के दो सौ शिष्यो की वार्ताएँ समाहित हैं। कुछ विद्वान 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' (दे०) एव 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' को गोकुलनाथ-कृत मानते हैं, पर कुछ विद्वान 'दो सौ वैष्णवन की वार्ता' को उनके गुजराती शिष्य द्वारा प्रणीत मानते हैं। एक वर्ग ऐसा भी है जो इन दोनो ग्रथो को गोकुलनाथ के मुख से नि सृत और बाद मे हरिराय द्वारा सपादित मानता है। इसमे कृष्णभक्तो अथवा कवियो के चरित्र पर सक्षेप मे विचार किया गया है। अत प्राचीन आलोचना के मानदडो मे लिखा गया यह ग्रथ जहाँ एक ओर सत्रहवी शती के ब्रजभाषा गद्य की झाँकी प्रस्तुत करता है, वहाँ दूसरी ओर कृष्णभक्ति-साहित्य की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि समझने के लिए इस ग्रथ का अध्ययन परम अनिवार्य है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के सप्रदाय मे भक्तो की चरितावलियो का गान होता है, इसी-लिए समग्र कृष्णकाव्य मे वार्ता-साहित्य का महत्व अनूठा है।

दोहड़ा *(प० पारि०)*

दोहिरा (दे०) छद मे रचित श्लोक 'दोहड़ा' कहलाते हैं। यह गुरबाणी का विशेष पारिभाषिक प्रयोग है। इसके माध्यम से छोटे-छोटे विचार प्रकट किए गए हैं। आध्यात्मिक दृष्टात, नैतिक शिक्षा तथा दैनिक जीवन से सबद्ध सूक्तियो को अभिव्यक्त करने के लिए इसका आश्रय लिया जाता है। इस शब्द का मूल 'दोहा' है। उदाहरण

रोटी मेरी काठ की, लावण मेरी भुख।
जिन्हा खादी चोपड़ी घणे सहिनगे दुख॥

दोहा *(हिं० पारि०)*

दोहा छंद के पहले और तीसरे चरणों में तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं। इसके सम चरणों के अंत में गुरु-लघु होना चाहिए तथा विषम चरणों के प्रारंभ में जगण नहीं आना चाहिए। उदाहरण :

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापै नही, लिपटे रहत भुजंग॥

दोहा कोश : चर्यापद *(अप० कृ०)*

बौद्ध सिद्धाचार्यों की रचनाएँ दो रूपों में मिलती हैं—दोहों के रूप में और गीतों या पदों के रूप में। सिद्धों के लिखे दोहों का संग्रह 'दोहा कोश' कहलाता है। इनके द्वारा रचित पद चर्यागीत या चर्यापद कहे जाते हैं। इन रचनाओं में दो प्रकार की भावधारा मिलती है—एक रूप है संप्रदाय के सिद्धांतों से संबद्ध विवेचन का और दूसरा रूप है जिसमें उपदेश, खंडन-मंडन आदि का स्वर प्रधान है। संस्कृत में लिखे गए सिद्धों के ग्रंथ प्रायः साधना-मार्ग की व्याख्या करते हैं किंतु अपभ्रंश में रचित पदों और दोहों में धार्मिक विश्वास, दार्शनिक मत और नैतिक स्वर का परिचय अधिक स्पष्ट है।

सिद्धों ने अपने भावों की अभिव्यक्ति में कहीं-कहीं रूपकों का भी आश्रय लिया है, किंतु इन रूपकों में ऐसे ही पदार्थ चुने गए हैं जिनका मानव-जीवन से संबंध है। जैसे—नौका, हरिण, चूहा, हाथी, सूर्य, वीणा आदि। अप्रस्तुत-विधान के लिए भी कच्छप, कमल, भ्रमर, नक्र आदि मानव-जीवन से संबद्ध पदार्थों का अधिकतर प्रयोग किया गया है।

सिद्धों की रचनाओं में भाषा के दो रूप मिलते हैं—एक वह है जिसमें पूर्वी अपभ्रंश का रूप मिलता है; दूसरा रूप पश्चिमी अपभ्रंश (शौरसेनी) का है। चर्या-गीतों में पूर्वी रूप की प्रधानता है और 'दोहा कोश' के दोहों में पश्चिमी रूप की।

सिद्धों की रचनाओं का चाहे कवित्व की दृष्टि से इतना महत्व न हो किंतु भावधारा के विकास को समझने के लिए ये निस्संदेह महत्वपूर्ण हैं।

दोहा-बंध *(अप० पारि०)*

अपभ्रंश साहित्य में दोहा-बंध एक प्रमुख बंध है। दोहा या दूहा अपभ्रंश का अपना छंद है, वैसे ही जैसे गाथा प्राकृत का अपना छंद है। यही कारण है कि 'गाथा बंध' प्राकृत रचना का और 'दोहा बंध' अपभ्रंश रचना का पर्यायवाची-सा बन गया था। अपभ्रंश से पूर्व के साहित्य में दोहा छंद उपलब्ध नहीं होता। (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०)—'हिंदी-साहित्य', पृ० 11)।

दोहा छंद का प्रयोग अपभ्रंश साहित्य में निम्नलिखित रूप में मिलता है—

(1) जैन धर्म-संबंधी मुक्तक दोहे—ये दोहे जैन मुनियों की आध्यात्मिक एवं आधिभौतिक एवं उपदेशात्मक कृतियों में प्रयुक्त हुए हैं। धार्मिक उपदेश के कुछ दोहे हेमचंद्र (दे०) में भी मिलते हैं।

(2) बौद्ध धर्म-संबंधी दोहे—ये दोहे बौद्ध सिद्धों की कृतियों में प्रयुक्त हुए हैं। इनमें से कुछ दोहों में धर्म के सिद्धांत, मत, तत्वादि का प्रतिपादन है और कुछ में तंत्र-मंत्रादि कर्मकांड का खंडन है। यह परंपरा संत कवियों के दोहों तक गई है।

(3) श्रृंगार रस के दोहे—ये दोहे हेमचंद्र (दे०) के प्राकृत व्याकरण, मेरुतुंगाचार्य-कृत 'प्रबंधचिंतामणि' आदि रचनाओं में उपलब्ध होते हैं। इनमें रूप-वर्णन, संयोग-वियोग, श्रृंगार-मिलन का उल्लास आदि के सुंदर चित्र अंकित हैं। इस परंपरा ने रीतिकालीन कवियों को भी प्रभावित किया।

(4) नीति-विषयक दोहे—ये दोहे भी हेमचंद्र में मिलते हैं। इनमें मानव को अवसरोचित शिक्षा दी जाती है। यह परंपरा हिंदी-साहित्य में रहीम (दे०), तुलसी (दे०), वृंद (दे०), बिहारी (दे०) आदि के दोहों में मिलती है।

(5) वीर रस के दोहे—ये दोहे प्रायः वीर नारियों के अपने पति के गौरवमय उद्गारों के रूप में व्यक्त हुए हैं। ये अपभ्रंश साहित्य की विशेषता हैं। अपभ्रंश साहित्य से पूर्व के साहित्य में इस प्रकार के दोहे प्रायः नहीं मिलते। इस परंपरा का निर्वाह राजस्थानी साहित्य में विशेष रूप से हुआ है।

दोहावली *(हिं० कृ०)*

'दोहावली' गोस्वामी तुलसीदास (दे०) के स्फुट

दोहों का संग्रह है। इसके प्रकाशित संस्करणों में 573 दोहे उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ दोहे 'रामचरितमानस' (दे०), 'रामाज्ञाप्रश्न' और 'तुलसी सतसई' में भी मिलते हैं। इनके मुख्य विषय हैं भगवान् शंकर, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा, सीता, काशी आदि की महिमा, ज्ञानमार्ग की कठिनता, माया मोह की सेनाएँ, वैर-प्रेम, एकांगी प्रेम के उदाहरण, सज्जन दुर्जन-लक्षण, कलि, कपटी की पहचान, विपरीत बुद्धि, क्षमा, विश्वास, विवेक, समय आदि का महत्व, होनहार, मन के चार कटक, मूर्खशिरोमणि, राजनीति; राजा के लक्षण, भेड़ियाधसान, आज्ञाकारी सेवक, साधन, मेल-जोल, सफल जीवन, रामकृपा। कुछ दोहों में चातक के अनन्य प्रेम की जो अभिव्यक्ति हुई है वह बहुत सुंदर है। कुछ दोहों से तुलसीदास जी के जीवन पर भी प्रकाश पड़ता है।

दोहिरा *(पं० पारि०)*

दोहिरा हिंदी 'दोहा' (दे०) का पंजाबी रूपांतर है। इसके दो चरण माने जाते हैं। प्रत्येक चरण में 24-24 मात्राएँ और ग्यारह-तेरह पर यति होती है। अंत में गुरु के बाद लघु आवश्यक है। आरंभ में दोहिरा किसी छोटे-से विचार को प्रकट करने का माध्यम था, बाद में यह आख्यानात्मक कविता में भी प्रयुक्त हुआ। उदाहरण

दर ढठिया दे गुणा दी, कदर पंदी यार।
गले पये फुलहार दी, भासे ना महिकार॥

दौलत काज़ी *(बँ० ले०)* [समय—अनुमानतः सोलहवीं शती का अंत और सत्रहवीं शती का आरंभ]

मध्ययुगीन बँगला साहित्य के ख्यातिप्राप्त मुसलमान कवि दौलत काज़ी का जन्म संभवतः ईसा की सोलहवीं शती के अंत में हुआ था। दौलत काज़ी पूर्वी-बंगाल के चट्टग्राम के निकट स्थित अराकान राज्य की राजधानी रोसांग के राजा थिरि थु-धम्मा (श्री सुधर्मा) के राज-कवि थे। मध्ययुगीन हिंदी प्रेमगाथाओं से प्रभावित होकर बँगला साहित्य में इन्होंने धर्म-संस्कार-मुक्त मानवीय प्रणय-कहानी की रचना की। सन् 1629 के आसपास उनकी मृत्यु हुई।

श्री सुधर्मा (थिरि-थु धम्मा) के सेनापति अशरफखान के अनुरोध पर दौलत काज़ी ने हिंदी के कवि साधन की 'मैना सतवंती' या मुल्ला दाऊद की पुस्तक 'चंदायन' से प्रभावित होकर बँगला में इसी काव्य-गाथा को 'सती मयनामती' या 'लोरचंद्रानी' के नाम से रूपांतरित करना प्रारंभ किया। यही उनकी एकमात्र काव्य-पुस्तक है जिसे समाप्त किए बिना ही वे परलोक सिधार गए। इनकी मृत्यु के तीस वर्ष उपरांत अराकान राज्य के एक और प्रसिद्ध कवि आलाओल (दे०) ने इस काव्य-ग्रंथ को पूरा किया।

दौलत की काव्य-कथा मौलिक तो नहीं परंतु फिर भी उन्होंने कथा-विन्यास में तथा अपनी भाव-कल्पना की परियोजना में विशेष कृतित्व का परिचय दिया है। आलाओल जैसे विख्यात कवि भी असंपूर्ण काव्य-ग्रंथ को समाप्त करते हुए उनके काव्यत्व की रक्षा नहीं कर पाए हैं। उत्तर भारत की इस लोक-कथा को मर्त्य-जीवन रस से सिक्त कर इसके माध्यम से उन्होंने सूफी-प्रेम तथा सत्य का स्वरूप उद्घाटन किया है। मुसलमान होने पर भी उन्होंने इस हिंदू कहानी को हिंदू कवि की तरह ही व्यक्त किया है। धर्म-निरपेक्ष होकर उन्होंने इस दुनिया के मानव का जय-गान किया है जिसके मृत्तिकारूपी जीवदेह का अवसान होने पर ही आत्मा का मुक्ति-लाभ संभव है। सूफी साधक दौलत काज़ी मध्ययुग के पहले बँगला मुसलमान कवि हैं जिनका 'लोरचंद्रानी' काव्य ग्रंथ बँगला का प्रथम धर्मसंस्कार-मुक्त मानवीय प्रणय-काव्य है।

दौलतराम *(पं० ले०)* [जन्म—1880, मृत्यु—1935 ई०]

पंजाबी किस्सा काव्य को मनोरंजन प्रधान लोक-साहित्य के स्तर से उठाकर सत्साहित्य की गरिमा प्रदान करने वाले कवियों में रामगढ़ सरदारां (जिला लुधियाना)-निवासी पं० साहिब दित्ता के सुपुत्र पं० दौलतराम का स्थान प्रमुख है। इन्होंने रूप-बसंत' (दे०) (1903), पूरन भगत' (1908), 'राजा सिरपाल' (1911), 'राजा 'सुलोचना रसालू' (दे०), 'राजा हरीचंद धर्मी', 'माता सुलखनी', रानी', 'हकीकत राय', 'गोपीचंद' शीर्षक आख्यान-काव्यों के अतिरिक्त 'ज्ञान गुलजार', 'विवेक बहार', 'नसीहत शराब' प्रभृति आध्यात्मिक और उपदेशात्मक रचनाएँ भी प्रस्तुत की। ये कृतियाँ संगठन और चरित्र चित्रण की दृष्टि से साधारण कोटि की हैं परंतु इनमें धर्मनिष्ठ, दृढ़प्रतिज्ञ एवं उदात्त-चरित्र जातीय वीरों की यशोगाथा का प्रभावात्मक शैली में वर्णन हुआ है। इनकी केंद्रीय पंजाबी में ब्रज और खड़ी बोली का पुट है। कवि की रचनाओं में अनेक भारतीय-अभारतीय छंदों और विविध लोकप्रचलित काव्य-रूपों—बारहमासा, सतवारा, सीहरफी आदि—का प्रयोग

हुआ है, जिनसे किस्सा-काव्य का स्वरूप ही बदल गया।

द्यावापृथिवी *(क० कृ०)*

यह डा० वि० के० गोकाक (दे०) का प्रतिनिधि कविता-ग्रंथ है जिसे साहित्य अकादेमी-पुरस्कार मिल चुका है। इसमें कवि ने आसमान और धरती को विराट् दृष्टि से देखा है। इसमें 'नीरद' और 'इलागीत' दो लंबी कविताएँ हैं। बीच में 'इम्वामण' नामक एक कविता जुड़ी है। 'नीरद' में कवि धरती पर खड़े होकर मेघों का अवलोकन करता है। 'इलागीत' में हवाई जहाज़ में बैठकर भूमि का समग्र दर्शन किया गया है। नीरद भव्य कल्पना से दीप्त है और दार्शनिकता से बोझिल भी है। कविमन का स्थिति-बिंदु पृथ्वी बनती है तो उसकी व्याप्ति आकाश बनता है। इस आकाश में प्रकाश गंगा बनकर बहा है, तारे भुंड के भुंड आकर विविध आकृतियों का निर्माण करते हैं। तब कवि की कल्पना-शक्ति भव्यता की विहारिणी बनती है। कवि की प्रतिभा-सृष्टि तथा प्रतिभा-दृष्टि परस्पर पूरक बनकर एक पूर्णता की कांति लाई है, नीरद-दर्शन के लिए कविमन ऊर्ध्वमुखी बनता है। इसके भव्य रूपक, काव्यबिंब अपने विलास एवं वैचित्र्य के कारण भावोद्दीपनकारी बने हैं। 'नीरद' यदि हमारे उद्धार की अभीप्सा को प्रकट करता है तो 'इलागीत' हमारे अवतारों की ओर संकेत करता है। दशावतारों की कल्पना बहुत ही व्यंजकता के साथ यहाँ आई है। 'नीरद' एवं 'इलागीत' इन दोनों की पृष्ठभूमि में अरविंद-दर्शन है। इस प्रकार यहाँ दर्शन एवं काव्य का सुंदर समन्वय हुआ है। समकालीन एवं कालातीत की व्यंजना में यह सर्वथा सफल है।

द्राक्षांचे घोंस *(म० कृ०)* [रचना काल—1890 ई०]

वि० सी० गुर्जर (दे०)-कृत इस कहानी-संग्रह में ग्यारह कहानियाँ हैं जिनमें से कुछ का विषय प्रणय है तो कुछ में हास्य-व्यंग्य का सहारा लेकर शास्त्रीय संगीत, नये बैरिस्टर आदि पर कटाक्ष किया गया है। एक कहानी का विषय ऐतिहासिक है जिसमें शिवाजीकालीन मराठों का त्याग और उत्सर्ग दिखाया गया है। हास्य उत्पन्न करने के लिए श्लेष, मुद्रण-दोष, प्राचीन उक्तियों के हास्यपूर्ण प्रयोग आदि का सहारा लिया गया है। लोकोक्तियों के प्रयोग ने भाषा को सजीव बनाने में सहायता की है। असमंजस, कुतूहल एवं जासूसी तत्त्वों के प्रयोग ने कहानियों को मनोरंजक बना दिया है। शिल्प की दृष्टि से कुछ नये प्रयोग किए गए हैं, जैसे कथा को बीच में से आरंभ करना, पत्रात्मक शैली का प्रयोग आदि।

द्रौपदी *(सं० पा०)*

द्रुपद राजा की कन्या द्रौपदी कहलाई। पांडवों की पत्नी होने के नाते 'महाभारत' (दे०) में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। इसके स्वयंवर में मत्स्य-वेध की शर्त को अर्जुन (दे०) ने पूरा किया, किंतु पांडवों की माता कुंती द्वारा भूलवश कहे गए एक वचन के कारण यह युधिष्ठिर (दे०) आदि पाँचों भाइयों की पत्नी बनी रही। युधिष्ठिर जब दुर्योधन (दे०) के साथ द्यूत-क्रीड़ा में दाँव पर द्रौपदी को भी हार गए तो दुःशासन (दे०) ने भरी सभा में द्रौपदी को निर्वस्त्र करना चाहा परंतु कृष्ण (दे०) की चमत्कारपूर्ण लीला से उसका प्रयास विफल हुआ। वनवास के दिनों में एक बार जयद्रथ ने पांडवों की अनुपस्थिति में द्रौपदी का हरण कर लिया कि इतने में पांडव आ गए और उन्होंने इसे परास्त कर दिया। अज्ञातवास के दिनों में द्रौपदी सैरंध्री बनकर सुदेष्णा के पास रही, और वहीं कीचक नाम के सेनापति ने इसके प्रति कुदृष्टि रखी तो भीम (दे०) ने उसका वध कर दिया। अज्ञातवास के बाद कौरवों के साथ जब-जब संधि की बात चलती तो द्रौपदी उन्हें उनके साथ युद्ध के लिए भड़का देती। अंततः भयानक युद्ध हुआ और युद्ध में इसके पाँचों पुत्र अश्वत्थामा द्वारा मारे गए और भीम ने अश्वत्थामा का वध कर उक्त वध का बदला चुकाया। युधिष्ठिर के महाप्रस्थान के समय मार्ग में द्रौपदी का पतन हुआ—कारण यह कि पाँचों पतियों में से इसकी अर्जुन के प्रति विशेष प्रीति थी। पतन होते ही इसने कृष्ण का स्मरण किया और यह स्वर्ग में चली गई।

द्वंद्वात्मक भौतिकवाद *(हिं० पारि०)*

कार्ल मार्क्स का सिद्धांत जिसके अनुसार सृष्टि का विकास भौतिक परिस्थितियों के नियंत्रण में अवस्था, प्रत्यवस्था और समन्वय के सोपानों के धरातल पर होता है 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद' के नाम से जाना जाता है। मार्क्स ने 'द्वंद्वात्मक' शब्द हीगेल और 'भौतिकवाद' शब्द फ़ायरबाख से लिया, पर उनकी नयी व्याख्या की। हीगेल का विचार था कि मनुष्य के मस्तिष्क में विरोधी प्रत्ययों में संघर्ष होता है, इतिहास केवल उस संघर्ष की प्रतिच्छाया है;

मार्क्स ने प्रत्यय के स्थान पर पदार्थ रख यह बताया कि सघर्ष का आधार प्रत्यय न होकर पदार्थ है। पर दोनो के अनुसार परिवर्तन की प्रणाली द्वद्वात्मक है। फायरबाख से प्रभावित मार्क्स मानता है कि मानव-इतिहास मे सपूर्ण विकास अर्थव्यवस्था के सदर्भ मे हुआ है और आर्थिक सघर्ष या वर्गो के मध्य, जो अर्थव्यवस्था पर टिके हैं, सघर्ष की परिणति समतावादी वर्गहीन समाज मे होगी। मार्क्स वादी साहित्य मे निरूपित द्वद्वात्मक पद्धति के तीन पक्ष हैं—(1) किसी भी युग के साहित्य का स्वरूप समाज के तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक ढाँचे पर निर्भर होता है, (2) कला का अध्ययन तदयुगीन आर्थिक परिस्थितियो के प्रकाश मे होना चाहिए, तथा (3) कला (दे०) की उच्चता की कसौटी यह है कि वह किस सीमा तक अपने युग की आर्थिक परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करती है और कहाँ तक वर्ग-हीन समाज की स्थापना मे सहायक बनती है।

द्विज, जनार्दन *(बँ० ले०)*

जनार्दन के जन्मस्थान, माता, पिता आदि के सबध मे निश्चित रूप से कुछ भी कह सकना कठिन है। अनुमान है कि ये उत्तर बग के कवि थे।

इनकी प्रमुख कृति 'मगल-चडी अथवा 'चडी-मगल' है। इसका रचना-काल अज्ञात है। अनुमानत यह सत्रहवी-अठारहवी शती मे किसी समय लिखी गई है। *यह व्रतकथा के ढग की ग्राम्य-कविता है।*

भाषा अथवा वर्णन शैली की दृष्टि से भी कृति महत्वपूर्ण नही है।

द्विज, पीताबर *(अ० ले०)* [समय— सोलहवी शती]

ये सभवत कमतापुर-निवासी थे। इनके आश्रय दाता कोच-बिहार के शुक्ल ध्वजसमर (सग्राम) सिंह थे।

रचनाएँ—'उषा परिणय' (1533 ई०), 'भागवतपुराण' (दशम) (1550), 'मार्कंडेय चडी आख्यान' (1602), 'भागवतपुराण' (प्रथम), 'नल-दमयती'।

अब इनके 'उषापरिणय' और 'मार्कडेय चडी आख्यान' को छोडकर अन्य ग्रथ उपलब्ध नही हैं। 'उषा परिणय' इनकी श्रेष्ठ कृति है, यह वैष्णव शैली मे न होकर विहुगीत (दे०) शैली मे है। 'हरिवशपुराण' के उषा-विषयक आख्यान से प्रेरणा लेकर मौलिकतापूर्वक वर्णन किया गया है। इसमे दैहिक प्रेम के लास विलास और इद्रिय-लोलुपता का विशेष चित्रण है, अत शृगार-वर्णन अमर्यादित हो गया है। श्री शकरदेव (दे०) इनके सम कालीन थे। इन्होने इन्हे अहकारी और शाक्त तामसिक कहा था। 'मार्कंडेय चडी आख्यान' मे देवी चडी और राक्षसो के युद्ध का वर्णन है। कवि को कथा-वर्णन मे निपुणता प्राप्त है।

शकरदेव युग के प्रारभिक कवियो मे ये अग्रगण्य हैं। इनकी गणना अवैष्णव कवियो मे की जाती है।

द्विज, रमानाथ *(बँ० ले०)*

द्विज रमानाथ के जन्म, माता पिता आदि के सबध मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। ये सत्रहवी अथवा अठारहवी शती मे किसी समय विद्यमान थे।

इनकी कृति 'श्रीकृष्ण विजय' श्रीमद्भागवत के आधार पर रचित *कृष्ण लीला-सबधी काव्य है। अन्यान्य* कृष्ण-मगल-काव्यो के समान इसमे दानलीला, नौकाविलास आदि लीलाओ का आख्यान है। ग्रथ विष्णुपुर अचल मे प्राप्त हुआ था—अत अनुमान है, कवि उसी प्रदेश का है। काव्य की भाषा को देखकर यह अनुमान पुष्ट भी होता है।

कवि मे पाडित्य नही, सारल्य है—परिणाम-स्वरूप स्थान-स्थान पर उसकी सहज-सरल उक्तियाँ मर्म का स्पर्श करती है।

द्विज, वशीदास *(बँ० ले०)*

द्विज वशीदास मैमनसिंह जिलातर्गत पातोयाडी अथवा पाटवाडी ग्राम मे पैदा हुए थे। अनुमान से सत्रहवी शती के अत मे किसी समय ये विद्यमान थे। इनके पिता का नाम यादवानद तथा माता का नाम अजना था और ये जाति के ब्राह्मण थे।

इनकी प्रमुख कृति 'पद्म पुराण' *है जो मनसा* के महत्व को स्थापित करती है। देवी-देवताओ की वदना दक्षयज्ञ, सती-शरीर-त्याग महादेव-तपस्या, मदनभस्म, शिव-पार्वती विवाह आदि प्रसगो से ग्रथ का प्रारभ होता है तथा अत मे मनसा का महत्व प्रतिपादित करता है। ग्रथ पर 'कुमारसभव' का प्रभाव परिलक्षित होता है।

ये शाक्त थे। शाक्त धर्म के प्रति अनुरक्त होते हुए *भी ये सत्रहवी शती के सर्वव्यापी वैष्णव प्रभाव से* अछूते नही रह सके थे। इसका प्रमाण ग्रथ मे मिलता है। कवि का आगम एव तत्र विषयो पर अधिकार है ऐसा इनके

ग्रंथ के अध्ययन से ज्ञात होता है। भाषा की सरलता एवं आडंबरशून्य वर्णन कृति की प्रधान विशेषताएँ हैं।

द्विज, वैद्यनाथ *(बँ० ले०)*

इनका समय अनुमानतः उन्नीसवीं शती का दूसरा और तीसरा चरण है। 1839-47 ई० में इन्होंने 'शिवपुराण' का अनुवाद किया। तत्पश्चात् 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' का भी अनुवाद किया।

इन्होंने शिवेंद्र नारायण (कूच विहार के महाराजा) के राज्य-काल में कार्य किया और उस समय इनका विद्यमान होना प्रमाणित है।

द्विरेफनी वातो (भाग 1, 2, 3) *(गु० कृ०)*

प्रो० रामनारायण (विश्वनाथ) पाठक (दे०) बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। समालोचक, कवि, निबंधकार और शोधकर्ता के अलावा वे उच्चकोटि के कहानीकार भी थे। 'द्विरेफ' के उपनाम से उन्होंने उत्तम सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं जो 'द्विरेफनी वातो' के तीन भागों में संगृहीत हैं। इन तीन कहानी-संग्रहों में कई समस्याओं, चित्रों, प्रसंगों और पात्रों का रूपायन हुआ है। प्रथम दो संग्रहों की कहानियों में प्रमुख पात्रों के हर्षानुभव अंकित हैं, जबकि तीसरे संग्रह की कहानियों में विषादमय वातावरण पाया जाता है। इसके पात्र अनिष्ट तत्वों और विधि की वक्रता के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। वे या तो पराजित होते हैं या विजयी होने पर भी विजय का सुख नहीं भोग पाते। इसीलिए ये कहानियाँ करुणांतक बन गई हैं। प्रथम दो भागों में लेखक ने दुष्ट पात्रों के प्रति घृणा और उपेक्षा प्रकट की है। तीसरे संग्रह में सभी पात्रों के प्रति लेखक का समभाव और तटस्थ-वृत्ति पाई जाती है। इसमें पूर्ववर्ती संग्रहों की तुलना में केवल दृष्टिकोण ही नहीं, निरूपण-पद्धति भी परिवर्तित हो गई है। इनकी कुछ कहानियाँ चित्त को क्लेश और कटुता से भर देती हैं। अधिकांश कहानियाँ मानवीय संवेदना और समभाव से ओतप्रोत हैं जो पाठक के मन पर शांत, स्वस्थ एवं आनंददायक प्रभाव छोड़ जाती हैं। 'रँकड़ी', 'इंदु', 'पोतानो दागलो' इत्यादि ऐसी ही कहानियाँ हैं। 'सौभाग्यवती' जैसी कुछ कहानियाँ नारी-जीवन की विवशता और वेदना को अभिव्यक्त करती हैं। 'खेमी', 'जक्षणी', 'मुकुंदराय', 'कपिलराय' और 'नवो-जन्म' प्रो० पाठक की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं जिनमें कहानी-कला का उत्कृष्ट रूप पाया जाता है।

'द्विरेफनी वातो' का लेखक मूलतः चिंतक और मनोविश्लेषक है। इसीलिए इन तीनों संग्रहों में भावनाशीलता के बदले बौद्धिकता पाई जाती है। लेखक ने समाज के सभी वर्गों और वर्णों के पात्रों का चरित्रांकन किया है। कुछ कहानियाँ गंभीर हैं और कुछ हास्य-व्यंग्यमय हैं। कहीं-कहीं तीखे कटाक्ष भी किए गए हैं। सभी कहानियों की भाषा सरल और स्वाभाविक है और अंत प्रभावोत्पादक।

द्विवेदी, मणिलाल नभुभाई *(गु० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1898 ई०]

गोवर्द्धनराम (दे०) के समकालीन मणिलाल नभुभाई द्विवेदी का जन्म नड़ियाद में हुआ था। इन्होंने बंबई में गुजराती स्कूलों के डिप्टी इंस्पेक्टर के रूप में काम किया था। ये संस्कृत के विद्वान और आर्य संस्कृति के प्रबल समर्थक थे। इसी का परिणाम है कि इन्होंने 'गुजराती सोशियल यूनियन' द्वारा आयोजित विधवा-विवाह-विषयक परिसंवाद में अकेले ही विधवा-विवाह का विरोध किया था। प्रस्तुत परिसंवाद में दिए गए तर्कों के आधार पर ही इनका 'नारी प्रतिष्ठा' नामक लेख साप्ताहिक पत्र 'गुजराती' में क्रमशः प्रकाशित हुआ। द्विवेदी जी ने भावनगर के शामलदास कालेज में संस्कृत के अध्यापक के रूप में काम किया था। विचारों में अद्वैतवादी होने के कारण अभेदानुभव को ब्रह्मसाक्षात्कार मानने वाले द्विवेदी सामान्यतः यह प्रतिपादन करते हुए दिखाई देते हैं : अभेद घर के लिए सुख-शांति का वाहक है; राज्य के लिए उत्तम अंग है और साहित्य-सर्जन के लिए इसकी अनिवार्य आवश्यकता है।

वेदांत परिपाटी के अनुरूप हिंदू धर्म की व्याख्या करने के लिए इन्होंने 'सिद्धांतसार' नामक ग्रंथ की रचना की। जड़वाद पर चेतनवाद की स्थापना करने के प्रयत्न-स्वरूप 'प्राणविनिमय' नामक ग्रंथ अस्तित्व में आया। 'मोनिज्म ऑर अद्वैतिज्म ?', 'राजयोग' तथा 'इमोटेशन ऑफ़ शंकर' नामक अंग्रेजी लेखों से आपको यूरोप और अमरीका में अच्छी ख्याति मिली। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं : नाटक—'कांता' और 'नर्मगद्यावनार'; निबंध—'बाल-विलास' और 'सुदर्शन गद्यावली'; उपन्यास—'गुलाबसिंह'; अनुवाद—'भवभूति के नाटक', 'गीता', 'चारित्र्य', 'रामगीता', 'हनुमन्नाटक', 'चतुःसूत्री' और 'वृत्तिप्रभाकर'। कविता—'शिक्षा शतक' तथा 'आत्मनिमज्जन'; संपादन—पाटण जैन भंडार में स्थित प्रकाशित करने योग्य हस्तलिखित

पुस्तकों की सूची तथा 2619 पुस्तकों की वर्गीकृत सूची जो बड़ौदा राज्य की ओर से 'प्रसिद्ध जैनपुस्तकमंदिरस्थहस्तलिखितप्रधानाक्रमप्रदर्शकपत्रम्' नाम से प्रकाशित हुई। इन सब ग्रंथों के अतिरिक्त गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी के लिए इन्होंने 'न्यायशास्त्र', बड़ौदा की ज्ञानमंजूषा के लिए 'चेतनशास्त्र', कच्छ राज्य के लिए 'शिक्षण अने स्व-शिक्षण' नामक ग्रंथ तैयार किए।

मणिलाल नभुभाई द्विवेदी गुजराती साहित्य में चिंतनशील निबंधकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। गुजराती भाषा को विचारक्षम, शिष्ट, सुसंस्कृत और ओजस्वी बनाने का बहुत कुछ श्रेय द्विवेदी जी को दिया जा सकता है।

द्विवेदी, महावीरप्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1864 ई०, मृत्यु—1938 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली ज़िले के दौलतपुर गाँव में हुआ था। हिंदी साहित्य के इतिहास में इनका ऐतिहासिक महत्व है। इन्होंने न केवल खड़ी बोली के प्रचार-प्रसार तथा गद्य एवं पद्य दोनों में उसके समानरूपेण प्रयोग के लिए सफल आंदोलन किया था अपितु उसे परिष्कृत परमार्जित कर कलात्मक रूप देने एवं सभी प्रकार के भावों को वहन करने योग्य बनाने में अभूतपूर्व योग दिया था। इन्होंने यह दुष्कर कार्य सत्रह वर्षों तक—1903 ई० से 1920 ई० तक—'सरस्वती' (दे०) पत्रिका के संपादक की हैसियत से किया था। अपने अथक परिश्रम से इन्होंने इस पत्रिका को अपने समय की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया था। सच तो यह है कि द्विवेदी युग का प्रत्येक साहित्यकार 'सरस्वती' में अपनी रचना का प्रकाशित होना गौरव की बात समझता था। द्विवेदी जी ने अपने जीवनकाल में अस्सी से अधिक मौलिक तथा अनूदित ग्रंथों की रचना की थी। 'रसज्ञ-रंजन', 'सुकवि संकीर्तन', 'साहित्य संदर्भ', 'हिंदी महाभारत', 'हिंदी कालिदास की आलोचना' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनका मुख्य प्रदेय निबंध, आलोचना तथा संपादन के क्षेत्र में है। निबंधकार के रूप में इनका मुख्य दृष्टिकोण पाठकों का ज्ञानवर्धन था। फलत विषय वैविध्य, उपदेशात्मकता और सरलता इनके निबंधों की मुख्य विशेषताएँ हैं। आलोचना के क्षेत्र में इन्होंने उपादेयता, लोकहित, शैलीगत नवीनता और निर्दोषिता को श्रेष्ठ काव्य की कसौटी माना है। संपादक के रूप में इन्हें नये लेखकों को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ पाठकों के हित की सर्वाधिक चिंता रही है। समग्रत महावीरप्रसाद द्विवेदी हिंदी साहित्य के युगांतकारी साहित्यकार थे।

द्विवेदी, शांतिप्रिय *(हिं० ले०)* [जन्म—1906 ई०; मृत्यु—1968 ई०]

इनका मुख्य प्रदेय निबंध तथा आलोचना-साहित्य के संवर्धन में है, यद्यपि इन्होंने अपना साहित्यिक जीवन काव्य-सृजन से प्रारंभ किया था। छायावाद (दे०) की समीक्षा के क्षेत्र में इनका ऐतिहासिक महत्व है। 'हमारे साहित्य के निर्माता', 'साहित्यिकी', 'कवि और काव्य', 'सामयिकी', 'ज्योति विहग' इनके प्रतिनिधि आलोचना-ग्रंथ हैं तथा 'वृंत और विकास', 'परिव्राजक की प्रजा' और 'धरातल' उल्लेखनीय निबंध-संग्रह। प्रांजल-पारिभाषिक तथा प्रभावपूर्ण भाषा-शैली के माध्यम से वैयक्तिक प्रतिक्रियाओं का प्रत्यंकन इनके आलोचक रूप की मूलभूत विशेषता है।

द्विवेदी, सोहनलाल *(हिं० ले०) [जन्म—1906 ई०]*

इनका जन्म बिंदकी, ज़िला फतेहपुर (उ० प्र०) में हुआ था। इन्होंने काशी और प्रयाग विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त की। गांधी जी के प्रभाव के कारण इनकी काव्य-चेतना लोकोन्मुख बन गई है। 'भैरवी', 'वासवदत्ता' और 'कुणाल' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इन्होंने बालोपयोगी साहित्य की रचना भी प्रभूत मात्रा में की है। अनवरत साहित्य-सेवा के लिए इन्हें भारत सरकार ने पद्मश्री अलंकार से सम्मानित किया है।

द्विवेदी, हजारीप्रसाद *(हिं० ले०) [जन्म—1907 ई०]*

इनका जन्म बिहार प्रांत के बलिया ज़िले के 'दुबे का छपरा' नामक गाँव में हुआ था। निबंध, आलोचना, उपन्यास, शोध आदि सभी क्षेत्रों में इन्होंने अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय दिया है। सांस्कृतिक-साहित्यिक संदर्भों से संपृक्त इनके निबंधों में कथ्य की अनौपचारिकता तथा शैली की सादगी के साथ-साथ सरसता, विद्वत्ता तथा गंभीरता का जो मणि-कांचन-योग मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। आलोचना के क्षेत्र में ये इस बात का ध्यान रखते हैं कि आलोच्य कवि अथवा काल-विशेष ने किस सीमा तक मानवीय मूल्यों की सृष्टि की है। वस्तुत वैयक्तिकता की छाप तथा मानववाद द्विवेदी जी के साहित्य की मूलभूत विशेषताएँ हैं। इनकी रचनाओं में 'अशोक के फूल' (दे०)

'कल्पलता', और 'कुटज' प्रतिनिधि निबंध-संग्रह, 'हिंदी साहित्य की भूमिका' (दे०), 'कबीर', 'नाथ साहित्य', 'सूर साहित्य, मार्मिक आलोचना-ग्रंथ; 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' शोधपूर्ण कृति; तथा 'बाणभट्ट की आत्मकथा' (दे०) अपनी शैली का असमानांतर उपन्यास है। समग्रत: द्विवेदी जी हिंदी गद्य साहित्य के मूर्धन्य लेखक हैं।

द्वयाश्रय काव्य *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शती ई०]

जैन कवि ऐतिहासिक विषयों पर महाकाव्य लिखने में बड़े दक्ष हैं। जैन आचार्य हेमचंद्र (दे०) ने 'कुमारपालचरित' (द्वयाश्रय काव्य) में गुजरात के राजाओं का चरित अपने आश्रयदाता कुमारपाल तक निबद्ध किया है।

इस महाकाव्य में अट्ठाईस सर्ग हैं। आरंभिक सर्ग संस्कृत में और अंतिम प्राकृत में हैं। हेमचंद्र के संस्कृत तथा प्राकृत के व्याकरणों के उदाहरणों को भी प्रदर्शित करते हैं। इसीलिए इस काव्य को द्वयाश्रय काव्य कहते हैं।

इस महाकाव्य का साहित्यिक मूल्य बहुत नहीं परंतु गुजरात के इतिहास का प्रामाणिक वर्णन प्रस्तुत करने के कारण इसका ऐतिहासिक मूल्य बहुत है।

धनंजय *(सं० ले०)* [समय—975 ई०-1000 ई०]

मालवा के परमार वंश के राजा मुंज (वाक्पतिराज द्वितीय) के राजकवि धनंजय संस्कृत-साहित्यशास्त्र के एक आचार्य हैं। इनके पिता का नाम विष्णु था। इनका समय दशम शती ईसवी का अंतिम भाग था।

आचार्य धनंजय की एकमात्र उपलब्ध कृति 'दशरूपक' (दे०) है जो रूपक अर्थात् नाट्य एवं उसके दस भेदों का सांगोपांग विवेचन करती है। धनंजय के स्वयं के कथनानुसार 'दशरूपक', 'नाट्यशास्त्र' (दे०) का ही अत्यंत संक्षिप्तीकृत रूप है। ग्रंथ चार प्रकाशों में विभक्त तीन सौ कारिकाओं तथा उन पर वृत्ति एवं उदाहरण से समन्वित है। केवल कारिकाएँ ही धनंजय की हैं। कृति एवं उदाहरण का भाग टीका है जिसका नाम 'अवलोक' है। इसके कर्ता धनंजय के ही छोटे भाई धनिक हैं। चारों प्रकाशों में क्रमशः वस्तु, नेता, रूपक के भेद-प्रभेद तथा रस का विवेचन हुआ है।

धनंजय आनंदवादी आचार्य हैं। इनका कहना है कि नाट्य व्युत्पत्ति के लिए नहीं बल्कि आनंद की प्राप्ति के लिए होते हैं। नाटकों का आश्रय रस ही होना है। रस केवल आठ ही हो सकते हैं। शांत रस संभव नहीं है। ये ध्वनि-विरोधी थे। व्यंजना-वृत्ति धनंजय एवं धनिक दोनों को मान्य नहीं। विभावादि से स्थायी भाव की भावना ही रस है। धनंजय ने अपने परवर्ती आचार्यों को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया है।

धनपाल *(अप० ले०)*

धनपाल द्वारा रचित एक ही ग्रंथ 'भविसयत्त-कहा' (दे०) उपलब्ध हुआ है। कवि ने धक्कड़ नामक वैश्य वंश में जन्म लिया था। इनके पिता का नाम माएसर (माहेश्वर) और माता का नाम धनश्री था। कहते हैं कि इन्हें सरस्वती का वर प्राप्त था। इनके रचना-काल के विषय में विद्वान एकमत नहीं हैं। कोई इन्हें दसवीं, कोई ग्यारहवीं और कोई चौदहवीं शती का कवि मानते हैं। दसवीं शती से लेकर सोलहवीं शती तक के जिन कवियों की अपभ्रंश रचनाएँ प्रकाश में आई है, और जिन्होंने पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख किया है, उनमें धनपाल का नाम नहीं मिलता। ये जैन धर्म के दिगंबर संप्रदाय के अनुयायी थे।

धनिया *(हि० पा०)*

यह प्रेमचंद (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' (दे०) के नायक होरी (दे०) की पत्नी है। उपन्यासकार ने इसे भारतीय कृषक नारी के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। होरी के मुख से इसके चरित्र को रूपायित करते हुए लेखक ने लिखा है कि यह सेवा और त्याग की देवी; जबान की तेज, पर मोम जैसे हृदय वाली, पैसे-पैसे के पीछे प्राण देने वाली, पर मर्यादा-रक्षा के लिए अपना सर्वस्व होम देने को तैयार रहने वाली नारी है। व्यवहार-कुशल, निर्भीक और निडर धनिया वही करती है जो ठीक समझती है तथा जात-बिरादरी, समाज, कानून आदि तक की चिंता नहीं करती। नारी जाति की सभी चारित्रिक विशिष्टताएँ—यथा मातृभावना, स्नेह आदि—उसमें लक्षित होती हैं। प्रतिशोध की भावना होते हुए भी उसमें दूसरों के दुःख में द्रवित होने की क्षमता है। धनिया प्रेमचंद की अत्यंत प्रखर चरित्र-सृष्टि है।

धम्मचक्कपवत्तन सुत्त *(पा० कृ०)*

यह 'सुत्तपिटक' (दे०) के 'संयुत्तनिकाय' में

पचपनवें सुत्त का दूसरा भाग है। यह अत्यत प्रसिद्ध सुत्त भगवान् बुद्ध का बनारस मे दिया हुआ पहला उपदेश है। यह पचवर्गीय भिक्षुओ के सामने दिया गया था और इसी से भगवान् बुद्ध ने धर्म के रथचक्र को प्रवर्तित किया था। इसी मे भगवान् ने चार आर्य सत्यो 'दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध और दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद्' और अष्टाङ्गिक आर्यमार्ग का उपदेश दिया जो बौद्ध धर्म का मूल आधार है।

धम्मपद *(पा० कृ०)*

यह 'सुत्तपिटक' (दे०) के *'खुद्दक निकाय'* का एक खंड है। 'धम्मपद' शब्द का अर्थ है धार्मिक शब्द। इस खंड मे ऐसे पद्यो का सकलन किया गया है जो धार्मिक सूक्ति-काव्य की सज्ञा से अभिहित किए जा सकते हैं। ये जीवन के लिए सदाचार का प्रतिपादन करने वाले पद्य है और बुद्ध के मुख से निकले हुए माने जाते हैं। कुल पद्यो की सख्या 423 है। दस-दस या बीस-बीस पद्यो के सर्ग बनाए गए हैं। प्रत्येक वर्ग या तो किसी एक विचारधारा को लेकर चलता है या किसी एक उपमा के आधार पर एक वर्ग बना दिया गया है। कभी कोई वर्ग एक पूरी कविता जैसा प्रतीत होने लगता है। 'धम्मपद' मे कुछ पद्य ऐसे भी हैं जो 'त्रिपिटक' (दे०) की अन्य कृति मे भी पाए जाते है। ऐसे पद्यों की सख्या आधे से भी अधिक है। ज्ञात होता है कि सकलनकर्ता ने किसी एक दृष्टिकोण को लेकर विभिन्न रचनाओ मे से निकाल कर इनका सकलन कर दिया होगा। बहुत से पद्य ऐसे भी हैं जिनका बौद्ध धर्म से कोई सबध नही है, इनमे जीवन को उत्तम बनाने के लिए सामान्य उपदेश दिए गए है जैसे उपदेश 'मनुस्मृति' (दे०), 'महाभारत' (दे०), 'पचतत्र' (दे०) इत्यादि ग्रथो मे भी पाए जाते हैं। इन पद्यो मे कलात्मक सौंदर्य भी उच्चकोटि का है और अनेक अलकारो का मनोरम प्रयोग किया गया है।

बौद्ध साहित्य मे 'धम्मपद' की जो प्रतिष्ठा है वह किसी अन्य कृति की नही। अनेक यूरोपीय भाषाओ मे भी इसका अत्यत गौरव के साथ अनुवाद किया गया है और बौद्ध धर्म पर लेख लिखने वाले इनके पद्यो का बहुत अधिक उद्धरण देते हैं। श्रीलका मे नवशिक्षितो को इसका अध्ययन कराया जाता है और 'उपसपदा' (दे०) ग्रहण करने के पहले इसका पूरा परिशीलन करना पडता है। अनेक व्याख्याता इसके किसी पद्य को अपने प्रवचन का आधार बनाते हैं।

धम्म परिक्खा *(अप० कृ०)* [रचना काल—983 ई०]

'धम्म परिक्खा' (धर्म-परीक्षा) हरिषेण द्वारा ग्यारह सधियो मे रचित कृति है। प्राकृत और सस्कृत मे भी 'धर्म-परीक्षा' नामक अनेक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। हरिषेण ने प्राकृत मे लिखित जयराम की 'धर्म-परीक्षा' का निर्देश किया है। संभवत उसी के आधार पर हरिषेण ने प्रस्तुत कृति की रचना की होगी।

हरिभद्र (दे०) सूरि *(आठवी शती)* ने 'धूर्ताख्यान' *नामक प्राकृत पद्यबद्ध कृति मे ब्राह्मण धर्म पर कटु व्यग्य किया है।* हरिषेण की प्रस्तुत कृति का विषय भी वही है। ब्राह्मण धर्म के अनेक पौराणिक आख्यानो और घटनाओ को असगत तथा असंभव बताते हुए पाठक-हृदय मे ब्राह्मण—हिंदू—धर्म के प्रति अनास्था तथा जैन धर्म के प्रति आस्था एव श्रद्धा जगाने का प्रयत्न किया है। इसी कारण डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये 'धूर्ताख्यान' को 'धर्म-परीक्षा'-सज्ञक कृतियो का आदिरूप मानते हैं।

इस कृति मे धार्मिक तत्त्व की प्रधानता होने के कारण कवित्व अधिक नही निखर सका है। फिर भी इसका सर्वथा अभाव नही है। कवित्व की दृष्टि से पहली और ग्यारहवी सधि उल्लेखनीय है।

कृतिकार ने सरल और सरस भाषा मे भावो को अभिव्यक्त किया है। भावो को स्पष्ट करने के लिए यथास्थान *अलकारो का भी प्रयोग किया गया है।*

कृतिकार के स्पष्ट उल्लेख—'साहम्मि धम्म परिक्ख सा पद्धडिय बधि'—से सूचित होता है कि इस कृति मे पद्धडिया छद की बहुलता है। इसके अतिरिक्त मदनावतार, विलासिनी, स्रग्विणी, पादाकुलक, भुजगप्रयात, प्रमाणिका, घत्ता, विद्युन्माला, दोधक आदि अनेक मात्रिक और वर्णिक दोनो प्रकार के छदो का प्रयोग दृष्टिगत होता है।

धम्मपाल *(पा० ले०)*

इनका जन्म बुद्धघोष (दे०) के कुछ ही समय बाद दक्षिण समुद्रतट पर पदरतित्थ मे हुआ था, किंतु रचनाओ से प्रमाणित होता है कि इनका सबध अनुराधापुर से अवश्य रहा। इन्होने बुद्धघोष के अवशिष्ट कार्य को पूरा किया और *'खुद्दकनिकाय' (दे० सुत्तपिटक)* के इतिवुत्तक, 'उदान', *'चरिया पिटक'* (दे० सुत्तपिटक), *'थेरगाथा'* (दे०), 'विमानवत्थु' (दे० सुत्तपिटक), 'पेतवत्थु' (दे०) इत्यादि उन ग्रथो पर टीकाएँ लिखी जिन पर बुद्धघोष ने नही लिखी

यों। ये नालंदा विश्वविद्यालय में ह्वेनसांग के गुरु धम्मपाल से भिन्न थे।

धर्मकीर्ति *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—700 ई०]

धर्मकीर्ति का जन्म चोल (उत्तर तमिल) प्रांत के तिरुमलै नामक ग्राम में एक ब्राह्मण के घर हुआ था। इनके पिता का नाम कोरुनंद था। कुछ विद्वानों के अनुसार ये कुमारिलभट्ट (दे०) के भानजे थे। डा० श्चेर्वात्स्की ने इन्हें भारतीय कांट कहा है। धर्मकीर्ति की कृतियों की संख्या नौ है। इनमें सात मूल ग्रंथ और दो टीकाग्रंथ हैं। मूल ग्रंथ—'प्रमाणवार्तिक' (दे०), 'प्रमाणविनिश्चय', 'न्यायबिंदु','हेतुबिंदु','संबंधपरीक्षा', 'वादन्याय' तथा 'सन्तानान्तर सिद्धि' हैं। टीकाग्रंथों में 'प्रमाणवार्तिक' के एक परिच्छेद की वृत्ति तथा 'संबंधपरीक्षा' की वृत्ति है।

धर्मकीर्ति योगाचार विज्ञानवाद के प्रतिपादक बौद्ध आचार्य हैं। धर्मकीर्ति बाह्य विषयों को विज्ञान स्वीकार करते हैं। इनका विचार है कि इंद्रियों से जिन बाह्य विषयों का साक्षात्कार होता है उनकी वास्तविक स्थिति नहीं है। बाह्य विषयों का प्रत्यक्ष भ्रम मात्र है। इसीलिए धर्मकीर्ति का कथन है कि न इंद्रियाँ और न चित्त ही बाह्य विषयों का प्रत्यक्ष करते हैं। इसीलिए अंततः समस्त बाह्य विषयों की असत्यता सिद्ध हो जाती है। समस्त बाह्य विषय चित्त में केवल विज्ञान-रूप में वर्तमान रहते हैं।

सुख तथा दुःख को भी धर्मकीर्ति चित्त की कल्पना ही मानते हैं। ग्राह्य (विषय) एवं ग्राहक (विषयी) के संबंध में इस आचार्य का कथन है कि दोनों ही विज्ञान-रूप हैं। इन दोनों में वस्तुतः अभेद है। इस प्रकार धर्मकीर्ति के अनुसार विषय की सत्ता विषयी से अतिरिक्त वर्तमान नहीं है। धर्मकीर्ति ने बाह्य विषयों के बोध का हेतु चित्त की वासना को बताया है।

योगाचार-बौद्ध-दर्शन के क्षेत्र में धर्मकीर्ति का योगदान इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उन्होंने बाह्य विषयों को इंद्रियानुभूति मात्र माना है। वैसे, वह भी असंग आदि के समान विज्ञानवाद के ही समर्थक हैं।

धर्मदास (हि० ले०) [जन्म—1418 ई०; मृत्यु—1543 ई०]

ये बांधोगढ़ के धनाढ्य कसौधन बनिया थे और संत कबीर (दे०) के प्रधान शिष्य एवं उत्तराधिकारी थे। 'अमर सुखनिधान' ग्रंथ में लिखा है कि ये परमभक्त एवं दया-धर्मयुक्त व्यक्ति थे। इन्होंने कबीर की बानी का संग्रह 'बीजक' के रूप में सुरक्षित रखा। ब्रजभाषा में 'धर्मदास की बानी' नामक इनका एक संग्रह प्राप्त होता है। प्रियतम के देश में संत कबीर का आना-जाना होता है, कबीर-रूपी प्रियतम की प्राप्ति के बाद वे आवागमन के बंधन से मुक्त हो गए हैं—यही उनका सिद्धांत है। भावुक संतों की परंपरा में धर्मदास का नाम अग्रगण्य है।

धर्मपद *(उ० कृ०)*

'धर्मपद' गोपबंधु (दे०) के कवि-मानस की अमर संतान है। इसकी मर्मस्पर्शी कथा प्रतिभा के स्पर्श से एक नये आलोक से उद्भासित हो उठी है। इसके जीवनोत्सर्ग में गोपबंधु का जीवनादर्श जीवंत रूप में स्थापित है। इसमें आदर्श के साथ वास्तविक जीवन का सुंदर समन्वय मिलता है। इसकी कथा किंवदंती पर आश्रित है। कोणार्क मंदिर के निर्माण में एक बालक के शिल्पी-कुल के सम्मान की रक्षा के लिए उत्सर्जित हो जाने की कथा किंवदंती के रूप में प्रचलित है। उसी बालक को काल्पनिक नाम धर्मपद देकर, कवि ने उसे काव्य-रूप दिया है। सरल-तरल भाषा में यह मार्मिक कहानी प्राणस्पर्शी हो गई है।

इसकी कथा इस प्रकार है: ज्योतिर्मंदिर, कोणार्क का निर्माण हो रहा है। बारह सौ बढ़ई बारह वर्षों से मंदिर-निर्माण में कार्यरत हैं। शिल्पी-सम्राट् बिशु की मनोज्ञ कल्पना कोणार्क में मूर्तिमंत है। किंतु आज ज्योतिर्मंदिर पर विषाद का साया व्याप्त है, क्योंकि महाराज नरसिंह देव का वज्र आदेश है—

'कल सूर्योदय तक यदि मंदिर पर कलश नहीं चढ़ जाता, तो बारह सौ कारीगरों को फाँसी की सजा मिलेगी।'

इसी समय धर्मपद वहाँ पहुँचता है। धरमा (धर्मपद) बिशु महाराणा की एकमात्र संतान है, जो कोणार्क-निर्माण के लिए उसके चले जाने के बाद होता है। समय बीतता जाता है। बारह वर्षों के बाद धरमा पितृदर्शन की उत्कट लालसा लिये पहुँचता है। पिता-पुत्र-भेंट के पूर्व ही उसे महाराज का वज्र आदेश ज्ञात होता है। वह साधारण मेधावी बालक शिल्पी-कुल की रक्षा के लिए विरत हो उठता है। पिता-पुत्र परिचय का समय नहीं। बिशु से अनुमति लेकर वह निरीक्षण के लिए मंदिर पर चढ़ जाता है। कुछ समय के बाद सफलतापूर्वक कलश चढ़ाकर उतर आता

है। शिल्पी-समाज आश्चर्यचकित रह जाता है। किंतु तभी भय एव सशय की लहर दौड जाती है। बारह वर्ष के बालक के द्वारा कलश की स्थापना शिल्पी कुल के लिए लज्जा की बात है। इससे महाराज अप्रसन्न ही होंगे। अत शिल्पी समाज इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि महाराज से बात गुप्त रखने के लिए धरमा का बलिदान अपरिहार्य है। धरमा की हत्या का भार बिशु लेता है, क्योकि धरमा की सफलता ही बिशु की सबसे बडी असफलता है। उसका अह फुफकार उठता है। निद्रित धरमा को मारने को उद्यत बिशु के निर्मम हाथ थम जाते हैं। क्योकि उसके गले मे पडे तावीज से वह पुत्र को पहचान लेता है। तभी यह माँग गूँज उठती है—

'बारह सौ बढई दाय या पुत्र दाय ?' पिता निरुत्तर है। धरमा की उदात्त वाणी तरगायित हो जाती है—'निश्चित रूप से बारह सौ बढ़ई दाय। अनेक धरमा जन्म लेंगे। कोई भी धरमा पितृहीन नही रहेगा।' शिल्पी-कुल के प्रकृतिस्थ होने के पूर्व ही 'छपाक' की ध्वनि सबो को चौंका देती है। दसो दिशाएँ इस आत्मविसर्जन से रोमाचित हैं। बिशु पागल हो जाता है।

महाराज को दूर से आते हुए जब सूयमदिर का स्वर्ण-कलश दिखाई पडता है तो उनके हर्षोल्लास की सीमा नही रहती। आते ही गले से मोतियो का हार निकालकर बिशु को पहना देते है। किंतु विक्षिप्त बिशु के प्रलाप से उन्हे सत्य का ज्ञान होता है। महाराज की खुशी वेदना की गहराई मे खो जाती है। धरमा का शव निकाला जाता है। उसे राज सम्मान प्राप्त होता है।

समाज एव राष्ट्र के कल्याण के लिए सकुचित स्वार्थ का त्याग, इसका सदेश है। गोपबधु वस्तुत थे मानव-सेवक। उच्चभावानुकूल उनकी वाणी साधारण वचन के ऊपर उठकर स्वयमेव हो गई है कविता। शिल्प की दृष्टि से नही, उदार मानवीयता ने इनकी रचनाओ को जनता का कठहार बना दिया है।

धर्म परीक्षे *(क० कृ०)* [समय—चौदहवी शती का उत्तरार्द्ध]

इसके रचयिता वृत्तविलास नामक जैन कवि हैं जिनका समय 1350 ई० माना गया है। इस चपूकाव्य मे दस आश्वास हैं। मनोवेग एव पवनवेग नामक दो राज्यपुत्र पाटलिपुत्र जाकर वहाँ ब्रह्मदेवालय मे स्थित जयभेरी बजाते है और वहाँ के सिहासन पर बैठकर उस नगर के विद्वानो के साथ वाद विवाद करने लगते है। वास्तव मे वहाँ की रीति के अनुसार वाद-विवाद मे विजयी होने वाला ही सिहासन पर बैठ सकता था। किंतु ये राजकुमार पहले ही उस पर बैठ जाते है। उपस्थित विद्वानो मे कोई मूर्ख हो, शठ हो, तो हम वाद नही करेंगे—ऐसा कह कर शठ, मूर्ख, मूढ आदि के उदाहरण देते जाते है। अत मे वे वहाँ के ब्राह्मणो को जीतकर जयपत्र प्राप्त कर लेते हैं। इसके दसो आश्वासो मे कहानियो का ही बोलबाला है। वृत्तविलास एक श्रेष्ठ कहानीकार हैं। पैनी शैली भी उसके व्यापृत है। यहाँ पचतत्र की कुछ कहानियो को जैन दृष्टि से देखा गया है। यत्र तत्र आने वाले वर्णनो मे सहजता है।

धर्ममगल *(बँ० कृ०)*

रचयिता—रूपराम चक्रवर्ती। 'धर्ममगल काव्य' के धर्मठाकुर के साथ धर्मराज यम देवता का कोई सबध नही है। धर्मठाकुर अनार्य देवता हैं। समाज की अस्पृश्य निम्न जाति पर इनकी सस्नेह कृपादृष्टि के फलस्वरूप इन्हे नवीन मर्यादा प्राप्त हुई है। अष्ट्रीक भाषा के शब्द 'कुमेर' के प्रतिशब्द 'दडम' का प्रतिरूप 'धर्म' है।

धर्म के पहले पुजारी रामाइ पडित की कहानी 'धर्ममगल काव्य' के सदाडोम एव हरिश्चद्र की कथा मे वर्णित है। 'धर्ममगल काव्य' की कहानी मे विस्तार एव वैचित्र्य समरूप से विद्यमान है। 'धर्ममगल-काव्य' की कहानी मे ऐतिहासिक उपादान सत्याश्रित है—ऐसा पडितो का अनुमान है। काव्य मे वर्णित गौड प्रदेश के राजा को धर्मपाल का पुत्र कहा गया है। बहुत से विद्वान् इस राजा को देवपाल समझते हैं। इछाइ घोष अर्थात् ईश्वर घोष भी ऐतिहासिक पात्र हैं। परतु ये देवपाल देव के दो सौ वर्ष बाद विग्रहपालदेव के समसामयिक थे। मयनागढ को केंद्रबिंदु बनाकर इस कहानी का विस्तार हुआ है। 'धर्ममगल' काव्य-समूह का स्वर मध्ययुगीन मगलकाव्य से भिन्न है। वीर-रसाश्रित इस काव्य मे महाकाव्य के लक्षण सहज ही उपलब्ध है।

'धर्ममगल काव्य' के श्रेष्ठतम कवि निस्सदेह घनराम चक्रवर्ती (दे०) हैं। कवि ने अपने को श्रीरामचद्र का उपासक कहा है। 1711 ई० मे इस ग्रथ की समाप्ति का उल्लेख मिलता है। 'धर्ममगल' के आदिकवि कदाचित् मयूर-भट्ट हैं। सन्-तारीख-युक्त पहला 'धर्ममगल-काव्य' रूपराम चक्रवर्ती का प्रस्तुत काव्य है। उनके काव्य म कवि की विदग्धता ने यद्यपि कवित्व के पथ म बाधा उपस्थित की है

फिर भी बीच-बीच में सरसता का स्निग्ध स्पर्श अनुभव किया जा सकता है। घनराम चक्रवर्ती की विदग्धता ने काव्य में सहायक बनकर काव्य की श्रेष्ठता की मर्यादा प्रदान की है। 'धर्ममंगल'-काव्यकारों में सहदेव चक्रवर्ती (1734 ई०) एवं माणिक गांगुली (दे०) (1781 ई०) ने विशेष ख्याति प्राप्त की थी। इनके अतिरिक्त बहुत-से कवियों ने 'धर्ममंगल-काव्य' की रचना की थी जिसमें श्याम पंडित, सीताराम दास, रामदास आदक, आदि उल्लेखनीय हैं।

धर्मयुग (*हिं० कृ०—पत्र*)

हिंदी का सर्वाधिक लोकप्रिय सचित्र साप्ताहिक 'धर्मयुग' टाइम्स आफ़ इंडिया प्रेस, बंबई से 1950 ई० से निकलना आरंभ हुआ। इसके प्रथम संपादकद्वय हेमचंद्र जोशी और इलाचंद्र जोशी (दे०) थे। बाद में सत्यकाम विद्यालंकार ने संपादन किया। अँग्रेजी के साप्ताहिक पत्र 'इलस्ट्रेटिड वीकली' के नमूने पर आरंभ में इसका मुख्य आकर्षण चित्रमय समाचार थे, परंतु धीरे-धीरे उसमें मनोरंजक और ज्ञानवर्धक सामग्री के साथ-साथ साहित्यिक और सांस्कृतिक विषयों पर भी लेख निकलने लगे। नयी कविता (दे०), नयी कहानी, इंटरव्यू-साहित्य, रिपोर्ताज आदि के प्रकाशन के अतिरिक्त साहित्य के विवादास्पद प्रश्नों पर विविध दृष्टिकोणों से प्रकाश डालना इसकी अपनी विशेषता है। पाक-बांगला देश युद्ध के समय इसके संपादक डा० धर्मवीर भारती (दे०) ने युद्ध-क्षेत्र में जाकर स्वानुभव के आधार पर जो रिपोर्ताज लिखे वे न केवल अपनी सचता के कारण अपितु लेखक की सूक्ष्म दृष्टि, मार्मिक सहृदयता एवं साहित्यिक शैली के लिए स्मरणीय रहेंगे। इस प्रकार यह पत्र पाठकों के मनोरंजन के साथ-साथ उनकी रुचि का परिष्करण करने की दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही, साहित्य के क्षेत्र में नये विचारों और नयी दृष्टि को प्रश्रय देकर साहित्यिक चिंतन को नयी दिशा दे रहा है। एक प्रकार से यह हिंदी साहित्य की प्रवृत्तियों का दर्पण बन गया है।

'धर्मराजा' (*मल० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1923 ई०]

उपन्यासकार सि० वि० रामन् पिळ्ळा (दे०) की प्रस्तुत कृति के कथा-नायक त्रावनकोर के राजा मार्तंड-वर्मा के उत्तराधिकारी हैं। पर उनके दीवान केशव पिळ्ळा के वीर-चरित के आधार पर इसका निर्माण हुआ है। राजा के प्रति उपन्यासकार की भक्ति साफ़ प्रकट होती है। 'धर्मराजा' में चित्रित हरिपंचानन योगीश्वरन् अपने कुछ मित्रों की सहायता से राजवंश की जड़ उखाड़ने का प्रयत्न करता है। दीवान केशव पिळ्ळा की अटूट राजभक्ति, कौशल तथा कुशाग्रबुद्धि के सामने योगीश्वरन् विफल-मनोरथ हो जाता है। राजा के प्रबल शत्रु हैदरअली और टीपू सुलतान भी अंत में पराजित होते हैं। यही इस उपन्यास की कथावस्तु है।

धर्मसाररामायणमु (*तें० कृ०*) [रचना-काल—बीसवीं शती का द्वितीय चरण]

इसके लेखक का नाम जनमंचि शेषादि शर्मा है। ये बड़े विद्वान् तथा अच्छे कवि हैं। इनके अनेक ग्रंथों के अंतर्गत 'रामायणमु', 'महाभारतमु' तथा 'भागवतमु' भी हैं। तेलुगु में अनेक रामायण-ग्रंथ लिखे गए हैं किंतु उनमें कई अधिक प्रचलित नहीं हैं। 'धर्मसाररामायणमु' भी उनमें से एक है।

धर्मामृत (*क० कृ०*) [समय—लगभग 1100 ई०]

इसके रचयिता नयसेन (दे०) नामक जैन कवि हैं जिनका समय 1100 ई० के करीब ठहराया गया है। यह एक चंपू-काव्य है जिसमें जैन-मताचारों में 14 महारत्नों के नाम से प्रसिद्ध गुणव्रतों में एक-एक का आचरण कर सद्गति पाने वाले चौदह महापुरुषों की कहानियाँ हैं। विषय एवं विन्यास दोनों में यह चंपू-काव्य लोकमुखी बना है। अब तक जैनपुराण केवल तीर्थंकरों व चक्रवर्तियों पर लिखे जाते थे, परंतु इन्हें सरल वैदिक पुराणों का अनुकरण आवश्यक प्रतीत हुआ। अतः हम कह सकते हैं कि यह जनता के लिए लिखा प्रथम जैन पुराण है। सन्निवेश-निर्माण, चरित्रचित्रण-शैली आदि में लोकजीवन के गाढ़ स्पर्श का अनुभव मिलता है। लोककथाकार का कथन-कौशल, विडंबक हास्य, लोकजीवन-प्रज्ञा आदि इस ग्रंथ की बड़ी विशेषताएँ हैं। नयसेन की भाषा टकसाली है। उसमें कहावतों और मुहावरों का सहज प्रयोग है।

धर्माराव (*तें० पा०*)

यह विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'वेयिपडगलु' (दे०) (सहस्रफन) का नायक है।

यह सनातन धर्म एव भारतीय सस्कृति का प्रतीक है तथा आधुनिकता के प्रबल झझावात मे भी अचचल रहता है। अपने अचल आत्मविश्वास के कारण यह सनातन धर्म की व्याख्या कर, सनातन धर्म के नौ सौ निन्यानबे फनो के गिर जाने पर भी दापत्य सबध नामक एक फन पर धर्म को सुस्थिर रूप देने का सफल प्रयास करता है।

धर्माराव, तापी *(ते० ले०)* [जन्म—1887 ई०]

इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। अपने निर्विराम साहित्य-सर्जन से ये कवि, पडित, समालोचक, नाटककार, प्रगतिवादी लेखक सघ के सस्थापक, पत्रकार, अनुसधानकर्ता एव हेतुवादी के रूप मे विख्यात हुए है। ये 'आध्र-विशारद एव 'आध्र साहित्य जगत् के भीष्म पितामह' आदि उपाधियो से सम्मानित हैं। इन्होने जनवाणी 'कागडा' आदि पत्रिकाओ का सपादन भी किया था। इन्होने अनेक जासूसी उपन्यासो की रचना भी की है। साहित्य मे परिवर्तन, विद्रोह एव यथार्थवादी दृष्टि इनके प्रमुख गुण हैं। 'रागिडब्बु', 'भिक्षापात्र', 'आध्र तेजमु' आदि इनके काव्य-ग्रथ है और 'उष कालमु', 'कोव्वुरालु' आदि इनके उपन्यास है। 'देवालयमुलपै बुतु बोम्मलेंदुकु ?' और 'पेल्लिदानि पुट्टु पूर्वोत्तरालु' इनके महत्वपूर्ण अनुसधान ग्रथ है जिनमे क्रमश मदिरो के ऊपर पाए जाने वाले अश्लील चित्रो के कारणो एव आदिकाल से विवाह की प्रथा के विकास-सूत्रो का अनुशीलन किया गया है।

धळ, गोळख बिहारी *(उ० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

गजेड्डीह (ढेंकानाल) इनका जन्म-स्थान है। प्रारभ से ही ये मेधावी छात्र रहे है। इनकी शिक्षा ढेंकानाल, कटक, पटना और लदन मे हुई है। प्रौढ साहित्य-प्रतियोगिता मे 1956, '57, '58 ई० मे तीन बार इन्हे भारत सरकार ने पुरस्कृत किया है। सप्रति ये रेवेन्सा कालेज, कटक के भाषा-विभागाध्यक्ष है। 'माटिर ताज' और 'अमर जीवन' इनकी अन्य रचनाएँ है।

गोळख बिहारी धळ सुविख्यात भाषाविद्, गद्यकार तथा सुदक्ष अनुवादक हैं। सस्कृत, हिंदी, बँगला, तेलुगु, तमिल, फ्रेंच, अँग्रेजी आदि भाषाओ का इन्हे विशद ज्ञान है। हिंदी मे ध्वनिविज्ञान के ये सर्वप्रथम लेखक हैं। प्रेमचद (हि०) के उपन्यास 'गोदान' (हि०) का इन्होने उडिया मे अनुवाद किया है। इनकी अन्य रचनाएँ भी—जैसे 'भ्रमण कहानी', 'अमेरिकी अनुभूति' (हि०)—अत्यत लोकप्रिय हैं।

धळ, रमेशचद्र *(उ० ले०)* [जन्म—1938 ई०]

एडवोकेट रमेशचद धळ का जन्म गजेड्डीह—ढेंकानाल मे हुआ था। ये कथाशिल्पी एव कवि है। इनकी कहानियो मे समसामयिक जीवन के प्रति एक नूतन दृष्टिकोण मिलता है और आधुनिक वैज्ञानिक बुद्धिवादी दृष्टिकोण से जीवन, जगत् एव परिवेश का चित्रण हुआ है। कविताएँ स्निग्ध-मधुर है। प्रेम के चित्र रेशमी तारो से निर्मित है, किंतु उसमे अस्वस्थता नही है। दलित जनता के प्रति कवि की तरल सहानुभूति काव्य मे तरगायित हो उठी है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'छिन्नपत्र' (उपन्यास), 'चपक वनर ऐलिजि' (हि०), 'मुठाए' (कहानी), 'नालिचूडि', 'प्रतीक्ष्यारे', 'आग्नेय शपथ' (क०), 'युगमानव' (जीवनी) आदि।

धवले *(म० कृ०)* [रचना-काल—1284 ई०]

इस काव्य की कवयित्री महदबा महानुभाव पथ मे दीक्षित मराठी की आद्य कवयित्री हैं। 'धवले' का अर्थ है—वर से सबद्ध गीत। श्री गोविंद प्रभु ने रुक्मिणी-विवाह का समारोह ऋद्धपुर मे सपन्न किया था। महदबा ने इस अवसर पर 140 लघु गीत गाकर सुनाए। इसके उपरात भी इन्होने कतिपय गीतो की रचना की। इनके 'धवले' गीतो की कुल सख्या 238 है। इनमे विवाह-प्रसग का रोचक शैली मे वर्णन है। रुक्मिणी का चरित्र-चित्रण मुग्धकारी है। प्रस्तुत काव्य स्त्रीसुलभ गुणो से परिपूर्ण है। महदबा आशु कवयित्री थी अत प्रेरणा से गीत स्वय प्रस्फुटित हुए हैं, अत उनमे बनावट या कृत्रिमता नही है और श्रमसाध्य रचना-शिल्प का सर्वथा अभाव है। इस काव्य ने महदबा को मराठी की आद्य कवयित्री होने का श्रेय प्रदान किया है।

धांधा *(बँ० प्र०)*

बँगला लोक-साहित्य के अतर्गत 'धांधा' या पहेली या मुकरी जैसी कविताओ का एक अच्छा सग्रह उपलब्ध है। 'धांधा' जैसी कविताओ के माध्यम मे लोकमानस के परिणत शिल्पमान तथा रसबोध का परिचय मिलता है। 'धांधा' केवल बुद्धि के अनुशीलन या ज्ञान-चर्चा के लिए ही नही रचा जाता—इसके द्वारा हास्य रस की सृष्टि भी

की जाती है।

प्राचीन या मध्ययुग का बँगला साहित्य 'धाँधा' से परिपूर्ण है। बँगला धाँधा का प्राचीनतम निदर्शन 'चर्यापद' (दे० चर्यापद) के गीतों में दिखाई पड़ता है जो अधिकतर तत्त्वविषयक हैं। तत्त्वविषयक 'धाँधा' का उल्लेख सत्रहवीं-अठारहवीं शती में रचित बँगला नाथ-साहित्य में भी दिखाई पड़ता है। मध्ययुगीन मंगलकाव्य में साहित्यिक 'धाँधा' के बहुत ही सुंदर उदाहरण मिलते हैं। विवाहाचार के अंतर्गत वर से 'धाँधा' पूछने की प्रथा बंगाल में बहुत दिनों से थी। प्राचीन एवं मध्ययुगीन साहित्य में व्यवहृत धाँधाओं के लोक-समाज में प्रचार के फलस्वरूप क्रमशः धाँधाओं ने जनश्रुतिमूलक साहित्य का रूप धारण कर लिया।

धातु *(सं० हिं० पारि०)*

व्याकरण में 'धातु' उस मूल भाषिक इकाई को कहते है जो उससे बने सभी रूपों में मिलती है। उदाहरण के लिए लिखना, लिखा, लिखो, लिखेगा, लिखे, लिखिए, लिखें आदि सभी में √ लिख् अंश समान रूप से आया है, अतः यह 'धातु' है। धातुएँ कभी-कभी दो धातुओं के योग से (ले+आ=ला) भी बन जाती हैं, और कभी-कभी संज्ञा (शर्म-शर्मा), सर्वनाम (अपना-अपना) आदि अन्य शब्दों के योग से भी। धातुओं में विभिन्न प्रकार के उपसर्ग (अचल) या प्रत्यय (चला) जोड़कर विभिन्न प्रकार के शब्दों और पदों की रचना होती है। अरबी, संस्कृत आदि कई भाषाओं के अधिकांश शब्द कुछ मूल धातुओं से बने माने गए हैं।

धारवाडकर, रा० ए० *(क० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

राजेंद्र एलगुट्राव धारवाडकर का जन्म उत्तर कर्णाटक के धारवाड में 1919 ई० में हुआ था। आप एक सफल आलोचक, भाषाविज्ञानी तथा प्राध्यापक हैं। भाषाशास्त्र के क्षेत्र में 'कन्नड भाषाशास्त्र' आपकी एक उत्कृष्ट देन है किंतु इसमें भाषाविज्ञान नवीन मार्ग पर नहीं है। 'साहित्य-समीक्षे' में आपके श्रेष्ठ आलोचनात्मक निबंध संगृहीत हैं। वैचारिकता एवं प्रभविष्णुता इनकी विशेषता है।

धाहिल *(अप० ले०)*

धाहिल कवि का लिखा हुआ एकमात्र चरित-काव्य 'पउम सिरि चरिउ' (दे०) (पद्मश्रीचरित) उपलब्ध हुआ है। कवि ने अनेक स्थलों पर अपने आपको 'दिव्यदृष्टि' कहा है, जो या तो कवि का विशेषण हो सकता है या उपनाम। कवि शिशुपालवधकर्त्ता माघ (दे०) के वंश में उत्पन्न हुआ था। धाहिल अपने जन्म-काल और जन्म-स्थान के विषय में मौन हैं। 'परम सिरी चरिउ' की 1134 ई० में लिखी हस्तलिखित प्रति के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि कवि इस काल से पूर्व उत्पन्न हुआ था। शिशुपालवधकर्त्ता माघ श्रीमाल वंश के वैश्य थे अतः धाहिल भी वैश्य था।

धीरुबेन पटेल *(गु० ले०)* [समय—1926 ई०]

स्वातंत्र्योत्तर काल के गुजराती साहित्य में अनेक महिलाओं ने योग दिया है जिनमें धीरुबेन मुख्य हैं। धीरुबेन ने उपन्यास, कहानियाँ और नाटक लिखे हैं। बंबई से महिलाओं का 'सुधा' नाम का एक साप्ताहिक प्रकाशित होता है जिसकी वे संपादिका हैं। उन्होंने 'वड़वानल' (दे०) और 'वासनोअंकुर' (दे०) नाम के उपन्यास लिखे हैं। 'वड़वानल' में डायरी-शैली का प्रयोग किया गया है। 'वासनोअंकुर' मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। उनके तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं—'एक लहर', 'अधूरो काल' और 'विश्रंभकथा'। 'पहेलु इनाम', 'मननरे मच्लेलो', 'विनाशने पथे' उनके नाटक हैं और 'नर्मणी नागखेल' उनका एकांकी-संग्रह है। 'अंडेरी गंडेरी टिपरीटेन' (दे०) उनका नृत्य-गीतमय बाल-नाटक है।

धीरो *(गु० ले०)* [जन्म—1753 ई०; मृत्यु—1825 ई०]

वड़ोदा के निकट गोठडा नामक गाँव के निवासी कवि 'धीरा' बारोट (ब्रह्म भट्ट) जाति के थे। अपने गाँव के ही शास्त्रीजी भाई से इन्होंने काव्यशास्त्र का ज्ञान पाया था। ज्ञान व वैराग्य के इस कवि का सांख्य, वेदांत और योगशास्त्र का ज्ञान केवल श्रवणलब्ध था, अध्ययन-प्रसूत नहीं। जीवन की यथार्थ कठोरता व पत्नी के कलह ने इन्हें वैराग्यमूलक काव्य-रचना की प्रेरणा दी।

'रणयज्ञ', 'अश्वमेध', 'द्रौपदीवस्त्रहरण' इनकी पौराणिक काव्य-कृतियाँ हैं, जबकि 'स्वरूप', 'ज्ञान बत्रीसी', 'प्रश्नोत्तर मालिका', 'आत्मज्ञान', 'ज्ञान बत्रीसी' आदि रचनाएँ आध्यात्मिक हैं। इनकी कुछ फुटकर रचनाओं में हिंदी का प्रयोग मिलता है। 'काफी' (एक गेयवृत्त) का सर्वाधिक

सुदर प्रयोग इन्होने किया है । धीरा अपनी 'काफियो' के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध रहे ।

मध्ययुगीन गुजराती के ज्ञानी कवियो मे धीरा अखा (दे०) और प्रीतम (दे०) के समान ही महत्वपूर्ण कवि हैं ।

धुवयातून लाल तार्‌याकडे *(म० कृ०)*

मराठी-साहित्य के निबध-लेखक, कहानीकार एव नाटककार श्री अनत काणेकर लिखित यात्रा-वर्णन 'धुवयातून लाल तार्‌याकडे' ग्रथ ने मराठी यात्रा-साहित्य को आधुनिक अभिरुचि की दिशा मे अग्रसर किया है । यह ग्रथ 1943 ई० मे लिखा गया था ।

इसमे यूरोप तथा एशिया के प्रवास का रोचक वर्णन है । प्रवास-वर्णन तिथि-सहित विस्तारपूर्वक किया गया है । यात्रा-वर्णन करते हुए विशिष्ट स्थलो पर मिले व्यक्तियो के स्वभावचित्र या रेखाकन भी किया गया है । विभिन्न वस्तुओ तथा व्यक्तियो का सरस वर्णन कर उनके प्रति अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओ की अभिव्यक्ति कुशलता से की गई है । इसकी शैली पर लेखक के व्यक्तित्व की छाप है ।

लेखक का झुकाव साम्यवाद की ओर है । यत्र-तत्र इन्होने पूजीवादी समाज-व्यवस्था की तुलना रुसी समाज-व्यवस्था से व्यग्यपूर्ण शैली मे की है ।

धूमकेतु *(गु० ले०)* [जन्म—1892 ई०, मृत्यु—1964 ई०]

'धूमकेतु' के उपनाम से प्रसिद्ध कथाकार गौरीशकर जोशी का जन्म सौराष्ट्र मे हुआ था । बहाउद्दीन कालेज, जूनागढ मे अध्ययन कर इन्होने बबई विश्वविद्यालय की बी० ए० की उपाधि प्राप्त की और अहमदाबाद मे शिक्षण-कार्य करने लगे । जीवन के उत्तरार्द्ध मे लेखन को ही आजीविका का माध्यम बनाया और सुख-शाति से समय बिताया ।

धूमकेतु के पूर्व रमणभाई नीलकठ (दे०), मलयानिल, कन्हैयालाल मुशी (दे०) आदि कथाकार कथा-रचना मे प्रवृत्त थे । धूमकेतु 1926 ई० मे 'तणखा मडल' (दे०) का प्रकाशन कर धूमकेतु की भाँति साहित्याकाश मे चमके । वस्तुविधान और रचना-विधान की मौलिकता एव कलात्मकता और तीव्रतम भावावेग के कारण पाठक इनकी कहानियो से अभिभूत हो जाते हैं । सर्वप्रथम इन्होने अपनी कहानियो मे दीन-हीन लोगो के जीवन-प्रसगो को रूपायित किया । 'भैया दादा' (दे०), 'पोस्ट ओफिस', 'जुम्मा भिस्ती' प्रभृति सुप्रसिद्ध कहानियो मे समाज के पद-दलित-प्रपीडित निम्नवर्ग के पात्रो को नायकत्व प्रदान किया गया है । 'गोविदनु खेतर' जैसी कहानियाँ ग्राम-जीवन को प्रस्तुत करती हैं । धूमकेतु ने लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं जिनमे विषय की विविधता और पात्रो की विभिन्नता पाई जाती है । इनकी कहानियो मे जीवन का यथार्थबोध तो है ही, इसके अतिरिक्त इनमे भावुकता और तीव्र सवेदना का अनुभव होता है । कहानी का करुण अत पाठक को एक झटके के साथ झकझोर देता है और घनीभूत पीडा मस्तक पर बडी देर तक छाई रहती है । धूमकेतु की भाषा-शैली प्रभावोत्पादक और सरस है ।

धूमकेतु उपन्यासकार भी है । 'चौलादेवी' (दे०), 'राजसन्यासी', 'कर्णावती', 'जयसिह सिद्धराज' आदि इनके कई उपन्यास हैं । इन ऐतिहासिक उपन्यासो मे प्रतिभा-सपन्न पात्र-सृष्टि, अभिजात वर्ग से सबद्ध विषय-वस्तु और भावना-युक्त जीवन-दृष्टि का उद्घाटन होता है । इनमे 'चौलादेवी' सर्वाधिक सफल और लोकप्रिय कृति है । धूमकेतु को कहानियो की अपेक्षा उपन्यासो मे कम सफलता मिली है किंतु कहानीकार के रूप मे सपूर्ण भारतीय साहित्य मे इनका विशिष्ट स्थान है ।

धूर्जटि *(ते० ले०)*

ये अपनी युवावस्था मे विजयनगर राज्य के शासक श्रीकृष्ण देवरायलु (दे०) (शासन-काल 1590-1630 ई०) के दरबार के सम्मानित कवि थे । आरभ मे शृगार रस के प्रति आकृष्ट होने पर भी क्रमश: इनका जीवन राजाश्रय-विमुख तथा शिवभक्ति से परिपूर्ण होता गया । इनकी रचनाएँ हैं—'श्रीकालहस्तीश्वरशतकमु' तथा 'श्री कालहस्तीश्वरमहात्म्यमु' (दे०) । एक मकडी, एक साँप तथा एक हाथी को, जो अपनी-अपनी अनन्य शिवभक्ति के कारण आपस मे कट्टर दुश्मन बन गए थे, भगवान शिव मुक्ति प्रदान करते हैं । इसी से उनका नाम 'श्रीकालहस्तीश्वर' तथा इस स्थान का नाम 'श्रीकालहस्ति' के रूप मे विख्यात हुआ । पहली रचना मे कवि ने श्रीकालहस्तीश्वर को सबोधित करते हुए अपने विशिष्ट जीवनानुभव की मुक्तक छदो मे मार्मिक अभिव्यक्ति की है । दूसरी रचना मे वसिष्ठ, ब्रह्मन, मकडी, साँप, हाथी, तिन्नडु नामक आटविक, ब्राह्मण पुजारी, नत्कीर नामक कवि, दो वेश्या-पुत्रियाँ तथा यादव-राजा—इन दस भक्तो की कहानियाँ को शिवभक्ति रूपी सूत्र मे गूँथकर एक सरस काव्य के रूप मे प्रस्तुत किया गया

है। संस्कार-रहित तिन्नडु की उत्कट तथा स्वच्छ शिवभक्ति का इसमें बड़ा ही सहज और सरस वर्णन है। श्रीकृष्ण-देवरायलु ने एक बार धूर्जटि की कविता की प्रशंसा करते हुए कवि-पंडितों की सभा में पूछा था—'स्तुतमति आंध्र-कवि धूर्जटि की उक्तियों में यह अनन्य मधुरिमा की महत्ता कैसे आई?' श्रीकृष्णदेवरायलु के दरबार में 'अष्टदिग्गज' (दे०) नाम से विख्यात आठ कवियों में धूर्जटि भी हैं।

धृतराष्ट्र *(सं० पा०)*

ये कुरुवंश के राजा विचित्रवीर्य के पुत्र थे। इनकी माता का नाम अंबिका था। भीष्म (दे०) से इन्होंने विद्याभ्यास किया था। इनकी पत्नी गांधारी (दे०) गांधार देश के राजा सुबल की कन्या थी। इनकी अन्य भी कई पत्नियाँ थीं। गांधारी ने दुर्योधन (दे०), दुःशासन (दे०), जरासंध आदि सौ पुत्रों तथा दुःशला नामक कन्या को जन्म दिया। सौ पुत्रों की उत्पत्ति का कारण गांधारी को दिया गया रुद्र का वरदान था। धृतराष्ट्र को सदा यह चिंता रहती थी कि उनके मरने के बाद हस्तिनापुर का राज्य बड़े भाई पांडु के पुत्र युधिष्ठिर (दे०) को न मिलकर दुर्योधन को ही मिले। अतः इन्होंने षड्यंत्र रचकर पांडवों को लाक्षागृह में रखवाकर आग लगवा दी। पांडवों को आधा राज्य मिल जाने पर दुर्योधन ने द्यूत-क्रीड़ा का षड्-यंत्र किया तो धृतराष्ट्र ने किसी प्रकार की असहमति नहीं दी। पांडवों के तेरह वर्ष के वनवास के बाद भी इन्होंने युधिष्ठिर को यही उपदेश दिया कि दुर्योधन द्वारा राज्य न मिलने पर भिक्षा माँग कर निर्वाह करते रहो। 'महा-भारत' के युद्ध का वृत्तांत ये संजय से सुनते रहते थे। तथा पांडवों के शौर्य की गाथाओं से जान गये थे कि कुरुकुल का विनाश होने वाला है। इन्होंने दुर्योधन को उप-देश भी दिया कि पांडवों को उचित अंश दे दो, पर दुर्यो-धन पर इस बात का कोई प्रभाव न पड़ा। कौरवों की मृत्यु के बाद पांडवों के प्रति ये अति क्रुद्ध थे। युधिष्ठिर ने फिर भी इसके साथ सदा सद्व्यवहार किया, किंतु भीम (दे०) के वाक्-प्रहारों के कारण इन्होंने गांधारी आदि के साथ वन-गमन किया। वन में घोर तप करते-करते दावाग्नि में घिर कर इनकी मृत्यु हो गई।

ध्रुव *(सं० पा०)*

राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं—सुरुचि और सुनीति। सुरुचि उसकी प्रिय रानी थी, किंतु सुनीति को पति का प्रेम नहीं मिला था। ध्रुव सुनीति का पुत्र था, अतः उसे भी घर में अपमान सहन करना पड़ता था। एक बार विमाता के अपमान से इसने ईश्वर की आराधना का निश्चय किया और विष्णु की भक्ति द्वारा इसे अनेक वर मिले और यह वापस घर आ गया। राजा ने इसका राज्याभिषेक किया। इसके सौतेले भाई उत्तम का वध एक यक्ष ने कर दिया तो इसने यक्षनगरी अलका पर आक्रमण करके ऋषियों के वर से यक्षों को परास्त कर दिया। इसी अवसर पर कुबेर से इसने यह वर माँगा कि मैं श्रीहरि का अखंड स्मरण करता रहूं। अंततः अपने पुत्र वत्सर को राज्यगद्दी देकर यह विमान में बैठ स्वर्ग चला गया।

ध्रुव, केशवलाल हर्षदराय *(गु० ले०)* [जन्म—1859 ई०; मृत्यु—1938 ई०]

केशवलाल हर्षदराय ध्रुव हरिलाल ध्रुव के छोटे भाई थे और 'वनमाली' उपनाम से कविताएँ लिखा करते थे। सरकारी हाई स्कूल के आचार्य-पद से निवृत्त होने के बाद इन्होंने गुजरात कॉलेज में गुजराती के प्राध्यापक का पद सुशोभित किया। केशवलाल भाई गुजराती काव्य के समर्थ शोधकर्ता-संपादक, प्रथम कोटि के भाषाविद्, संस्कृत साहित्य के प्रखर अनुवादक तथा उत्तम कोटि के पिंगलशास्त्री के रूप में लगभग अर्द्धशती तक गुजराती भाषा की सेवा करते रहे। इनके शोध और संपादन की क्षमता का पता 'भालण (दे०) की कादंबरी', 'पंदरमा शतकनां प्राचीन काव्य', 'रत्नदासकृत हरिश्चंद्राख्यान' और 'अखा (दे०) के अनुभवबिंदु' से चलता है। इनके द्वारा संपादित प्रत्येक कृति पाठशोध, समीक्षण और मूल्यांकन तथा टीकाओं आदि से समृद्ध हुई मिलती है। 'मुग्धावबोध औक्तिक', 'पद्यरचनानी ऐतिहासिक आलोचना' क्रमशः भाषाशास्त्र-संबंधी निबंधों का संग्रह तथा वेद-काल से आधुनिक काल तक छंदों के विकास की शास्त्रीय आलो-चना से संपन्न ग्रंथ हैं। जयदेव के 'गीतगोविंद' के अनुवाद के अतिरिक्त विशाखदत्त, कालिदास, भास और श्रीहर्ष के ग्रंथों के क्रमशः 'मेलनी मुद्रिका', 'पराक्रमनी प्रसादी', 'स्वप्न', 'मध्यम', प्रतिभा' और 'विष्यकन्या' नामक अनुवाद किए। इनके अनुवादों में मौलिक कृति का-सा आनंद मिलता है। इस प्रकार केशवलाल विद्वान्, शोधकर्ता, संपादक व अनुवादक के रूप में गुजराती साहित्य में चिरस्मरणीय हैं।

ध्रुवदास *(हिं० ले०)* [समय –सोलहवीं शती]

सहारनपुर जिले के देवबद कस्बे के कायस्थ परिवार मे इनका जन्म हुआ था। वश-परपरा से ये राधा-वल्लभीय (दे० राधावल्लभ सप्रदाय) थे और जीवनपर्यंत वृदावन मे ही रहे। ध्रुवदास विनीत और साधुसेवी पुरुष थे। इनके काव्य मे जहाँ एक ओर सप्रदायगत सिद्धातो की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है, वहाँ दूसरी ओर भक्ति मे सराबोर उक्तियाँ सरसता का पर्याय बन गई है। ध्रुवदास-कृत बयालीस ग्रथ 'ब्यालीस लीला' नाम से तीन बार प्रकाशित हो चुके है। किंतु इनमे ग्रथ जैसी व्यापकता का सर्वथा अभाव है, कोई कोई ग्रथ तो आठ दस पदो तक ही सीमित है।

ध्रुवदास ने सर्वप्रथम राधावल्लभ सप्रदाय का सैद्धातिक निरूपण करने मे 'सिद्धातविचार' ग्रथ मे गद्य का प्रयोग किया है और प्रेम के सापेक्षिक महत्त्व पर बहुत गभीरता से विचार किया है। ये हितहरिवश' (दे०) के भाष्यकार और व्याख्याकार होने के साथ साथ माधुर्य भक्ति के समर्थ साधक थे। माधुर्य भक्ति की जो तल्लीनता और रसव्यजक पदावली की जो रोचकता इनके पदो मे पाई जाती है, वह मध्ययुगीन भक्तो मे बहुत कम पाई जाती है। 'हितशृगार लीला', 'रसमुक्तावली', 'सभामडल', 'शृगार-रस' आदि अलकार-प्रधान रचनाओ का काव्य सौष्ठव देव, (दे०), मतिराम, पद्माकर (दे०) आदि की टक्कर का है। काव्यरूढियो का शास्त्रीय ज्ञान होने के कारण नायिका भेद, नख शिख, बारहमासा, ऋतुवर्णन आदि का सर्वांगीण विवेचन इनके काव्य मे एक भक्त कवि के लिए उसकी उत्कृष्ट कला का पूर्ण निदर्शन ही माना जाएगा।

ध्रुवस्वामिनी *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1933 ई०]

यह जयशकर प्रसाद (दे०) की अतिम तथा अत्यत महत्वपूर्ण नाट्यकृति है। तीन अको मे विभक्त इस नाटक का कथानक गुप्त काल से लिया गया है। समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद रामगुप्त छलकपटपूर्वक गुप्त साम्राज्य पर अधिकार एव चद्रगुप्त द्वितीय की वाग्दत्ता ध्रुवस्वामिनी (दे०) से विवाह तो कर लेता है किंतु वह न तो चद्रगुप्त तथा ध्रुवस्वामिनी के मध्य चलने वाले गुप्त प्रणय-व्यापार को रोक पाता है और न अपने शत्रुओ के हृदय मे किसी प्रकार का आतक पैदा कर पाता है। उसकी शक्तिहीनता व्यक्त होने के कारण शकराज गुप्त-राज्य पर आक्रमण करता है और सधि की शर्त म महादेवी ध्रुवस्वामिनी की माग करता है। ध्रुवस्वामिनी द्वारा विनय की वस्तु होने से इनकार किए जाने पर भी रामगुप्त उसे शकराज के शिविर मे भेज देता है। चद्रगुप्त वश-मर्यादा की रक्षा के लिए इसका विरोध करता है और अपने बुद्धि-चातुर्य के फलस्वरूप शकराज का अत करके ध्रुवस्वामिनी से विवाह कर लेता है। इस प्रकार इस नाटक मे ऐतिहासिक कथानक का आश्रय लेते हुए भी नारी की सामाजिक स्थिति तथा अनमेल विवाह की समस्या को उठाकर पाठक को समाज मे नारी के स्थान-निर्धारण के प्रश्न पर सोचने के लिए विवश किया गया है। सरल भाषा, सक्षिप्त वाक्य-रचना, स्वगत-भाषणो के अभाव तथा प्रत्येक अक मे केवल एक ही दृश्य के नियोजन के फलस्वरूप यह नाट्य-रचना अभिनेयता की दृष्टि से एक सफल कृति बन पडी है।

ध्रुवस्वामिनी *(हिं० पा०)*

जयशकर प्रसाद (दे०) के नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' (दे०) की प्रधान पात्र ध्रुवस्वामिनी नये युग की जागृत नारी के प्रतीक-रूप मे चित्रित की गई है। इसके चरित्र मे जहाँ एक ओर स्त्री सुलभ कोमलता तथा सहिष्णुता के गुण विद्यमान हैं वहाँ दूसरी ओर आत्मसम्मान की रक्षा के लिए अपूर्व साहस तथा निर्भीकता भी है। अपने कायर, स्वार्थी तथा शकालु पति रामगुप्त का यह निर्णय सुनकर कि उसने उसे शक-शिविर मे उपहारस्वरूप भेजने का निर्णय कर लिया है यह पहले तो करुणा की प्रार्थिनी बनकर अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अनुनय विनय करती है किंतु अपनी प्रार्थना के ठुकरा दिए जाने पर उसका स्त्रीत्व जाग उठता है और यह विद्रोहिणी बनकर अपने आत्मसम्मान की रक्षा स्वय करने का सकल्प कर लती है। प्रारभ म वह आत्महत्या जैसा गौरवहीन उपाय ही सोचती है किंतु सहसा चद्रगुप्त के आ जाने पर इसके हृदय म जो मधुर भाव जाग उठते हैं, वे जीवन के प्रति मोह पैदा कर देत हैं और यह एक वीर क्षत्राणी के समान विषम म विषम परिस्थितियो का सामना करने के लिए सन्नद्ध हो उठती है। तदनतर यह अपने कौशल द्वारा न केवल शकराज की हत्या करने मे चद्रगुप्त को सहायता पहुँचाती है अपितु सामत-कुमारो की सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त करके रामगुप्त और शिखर-स्वामी के कपटाचरण की पोल खोल देती है। रामगुप्त की महादेवी होना अस्वीकार करके यह हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित करती है कि हमे प्राचीन परपराओ

के अंधानुकरण के स्थान पर यथार्थ के विश्लेषण पर बल देना चाहिए। समग्रत: ध्रुवस्वामिनी के स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक चरित्र-विकास में जयशंकर प्रसाद को पूर्ण सफलता मिली है।

ध्वनि *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1951 ई०]

'ध्वनि' नामक ग्रंथ आधुनिक गीतकार श्री राजेंद्र शाह की पाँचवें दशक में लिखी गई कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह में 63 कविताएँ और 45 गीत संग्रथित हैं। इस काव्य-संग्रह को कवि ने स्वयं प्रकाशित किया है। प्रकृति, प्रणय और रहस्यमय आत्मसंवेदन कवि के अपने व्यक्तित्व-वैशिष्ट्य से संस्पृष्ट होकर प्रकट हुए हैं। 'प्रभातमां नासिक', 'शरद रात्रि' तथा 'श्रावणी संधिकाए' आदि इनकी प्रकृतिप्रधान रचनाएँ हैं। कवि प्रकृति के दृश्यों पर चिंतन का आवरण नहीं डालता—उसका प्रकृति-निरूपण वास्तविक प्रकृति-चित्रों को उभार कर यथाशक्ति प्रभाव डालने की चेष्टा करता है। 'श्रावणी मध्याह्न' में सौंदर्य-दर्शन में लीन कवि स्वप्न, जाग्रत और तुरीय—सभी का निषेध करता हुआ भी इन सबका एकसाथ अनुभव करता है। राजेंद्र की शैली में निहित इंद्रियग्राह्यता यहाँ दर्शनीय है। 'अश्रु हे' तथा 'आनंद शो अमित' प्रेम के सूक्ष्म और गंभीर संवेदनों को वाणी देने का सफल प्रयास है। इन प्रगीतों में प्रकृति के विविध रूप प्रणयोल्लास, प्रणय-वेदना और प्रणयेच्छा के प्रकाशन में सहायता देते हैं। यों तो कवि आरंभ में ही संसार और कविता दोनों में ही अपनी यात्रा को निरुद्देश्य मानता है, फिर 'मैं' को वाणी देकर अपने को ही प्राप्त करने की यात्रा का शुभारंभ भी इसी से होता है। 'आयुष्यना अवशेषे' वृद्ध की मन:स्थिति का बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत करने वाली रचना है जो अंतत: शांति में परिणत होती है। 'कायाने कोटड़े बंधाणो', 'हरि तारा घटना मंदरियामा बेसणां हो जी', 'गारी सुपुगणानो तार' आदि गीत पढ़कर किसी भी मध्ययुगीन संत कवि की याद आ जाना बड़ा ही सहज है। 'शेष अभिसार' राजेंद्र शाह की प्रतिभा का एक आविष्कार मान लिया गया है। इस कविता में मृत्यु के आगमन की शुभ घड़ी का अनुभव करने वाली नारी के संवेदनों को बड़े नाट्यात्मक ढंग से चित्रित किया गया है। मृत्यु-विषयक काव्यों में यह कृति अनुपम कही जा सकती है। इस कविता-संग्रह में छंदों का भी बहुत वैविध्य है। लगभग बीस कविताएँ सॉनेट में लिखी हुई हैं। यह ठीक है कि सॉनेट के प्रचलित रूपों में इन सॉनेटों को नहीं परखा जा सकता पर इनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि ये विभिन्न भारतीय छंदों में रचित हैं, यथा 'आयुष्यना अवशेषे' के पाँचों सॉनेट हरिणी छंद में लिखे गए हैं। 'शेष अभिसार', 'एक फूल' एवं 'प्रासानुप्रास' आदि कुछ कविताएँ संवाद-शैली में भी लिखी गई हैं। 'फरी फरी फागुन आयोजी', 'हो सॉवरयोरी अँखियन मैं', 'आयोजी वैशाख लाल आयो जी' आदि रचनाएँ लोकगीत धुनों पर आधृत हैं। 'आज अषाढ़नी मासम रात' जैसे कुछ लंबे व ध्वन्यात्मक गीत भी इस संग्रह में संकलित हैं। 'आपण खेतरिए मंगल' और 'आभमहीं उडे वपासना पोल' कृषक जीवन से संबद्ध गीत है। कुछ कविताएँ मुक्त छंदों में पर तुकों से युक्त लिखी गई हैं। राजेंद्र शाह का यह रचना-संग्रह नये किंतु रोमांटिक कविताओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

ध्वनि *(सं०, हिं० पारि०)*

ध्वनि-सिद्धांत के अनुसार काव्य का सौंदर्य मूलत: व्यंग्यार्थ के आश्रित है जो वाच्यार्थ की अपेक्षा अधिक स्मरणीय होता है। ध्वनि-सिद्धांतों का प्रवर्तन वैयाकरणों के स्फोटवाद के आधार पर हुआ है। जिस प्रकार शब्द के विभिन्न वर्ण अपनी पृथक् सत्ता में स्वतंत्र रूप से अर्थाभिव्यक्ति में समर्थ नहीं होते, उसी प्रकार काव्य में वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ पूर्ण सौंदर्य के उद्घाटन में समर्थ नहीं होता; यह कार्य व्यंग्यार्थ (दे० व्यंग्य) द्वारा ही संपादित होता है। संस्कृत-काव्यशास्त्र में शास्त्रीय अर्थ में 'ध्वनि' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ध्वनिकार आनंदवर्द्धन (दे०) (नवीं शती का मध्यकाल) ने किया है। उनके अनुसार "अर्थ द्वारा अपनी आत्मा तथा शब्द द्वारा अपने अभिधेय अर्थ को गौण बनाकर किसी (अन्य) व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति करना ही ध्वनि है"। (यत्रार्थ: शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ। व्यङ्क्तः काव्य-विशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥) आनंदवर्द्धन ने ध्वनि-तत्त्व के स्वरूप का उद्घाटन एक अत्यंत सार्थक उदाहरण के द्वारा किया है: 'प्रतीयमान कुछ और ही वस्तु है, जो रमणियों के प्रसिद्ध शरीरांगों से भिन्न उनके लावण्य के समान महाकवियों की वाणी में प्रतिभासित होता है।" संप्रदाय-विशेष के रूप में ध्वनि का पक्ष-पोषण मम्मट (दे०) (ग्यारहवीं शती का उत्तरार्द्ध), हेमचंद्र (दे०) (बारहवीं शती का उत्तरार्द्ध), विद्याधर (दे०) (तेरहवीं शती का अंत) तथा जगन्नाथ (दे०) (सत्रहवीं शती का मध्यकाल) द्वारा किया गया।

ध्वनि रूपक *(हिं० पारि०)*

रेडियो के विकास के साथ एक विशेष प्रकार के रूपक का विकास हुआ है जो दृश्यकाव्य की परिधि के बाहर होने और ध्वनि को माध्यम बनाने के कारण 'ध्वनि-रूपक' कहा जाता है। कतिपय सीमाएँ – कथानक की सरलता, समय की कमी, चरित्र की गहराई में जा सकने की अक्षमता, ध्वनि के माध्यम से ही सब कुछ प्रस्तुत करने की बाध्यता आदि—होते हुए भी इसमें कुछ सुविधाएँ हैं। यहाँ सकलन त्रय (दे०) का नियम-पालन अनिवार्य नही, वातावरण को बड़े प्रभावपूर्ण ढग से प्रस्तुत किया जा सकता है, स्वप्न, विक्षेपावस्था, जो दृश्य-काव्य मे प्रस्तुत नही किए जा सकते, यहाँ प्रस्तुत किए जा सकते हैं, सवादो की ध्वनि मात्र से चारित्रिक वैशिष्ट्य अकित किया जा सकता है। ध्वनि-रूपक मे ध्वनि का बडा महत्व है। इसमे तीन प्रकार की ध्वनियो का प्रयोग होता है। शब्द ध्वनि का प्रयोग सवादो मे होता है, वाक्य ध्वनि से दृश्य परिवर्तन, पात्र के आगमन निष्क्रमण का सकेत दिया जाता है और *प्रभाव ध्वनि का* मुख्य प्रयोजन वातावरण निर्माण होता है। लेखक को ध्वनि प्रयोग मे बडी कुशलता एव सावधानी बरतनी चाहिए। ध्वनि रूपक के प्रसिद्ध भेद हैं—नाटक (दे०), रूपक, फैंटेसी, रेडियो रूपातर, एकपात्री नाटक (मॉनोलोग), सगीत रूपक झलकी।

ध्वनिविज्ञान *(हिं० पारि०)*

भाषाविज्ञान की वह शाखा जिसमे ध्वनियो का अध्ययन विश्लेषण होता है। सामान्यत जिसे ध्वनिविज्ञान कहते हैं, उसकी 'ध्वनिविज्ञान' (honetics) तथा ध्वनि प्रक्रियाविज्ञान' (phonology) दो *शाखाएँ* हैं। ध्वनिविज्ञान के अतर्गत ध्वनियो के उच्चारण, वर्गीकरण आदि का विचार किया जाता है। ध्वनिप्रक्रियाविज्ञान मे किसी भाषा मे प्रयुक्त ध्वनि इकाइयो की व्यवस्था का अध्ययन होता है। व्यवस्था का अर्थ यहाँ यह है कि उस भाषा मे कितने 'ध्वनिग्राम' (phonemes) हैं, तथा उनमे मूल और सयुक्त स्वरो, अनुनासिक स्वरो, स्वरानुक्रम, मूल और सयुक्त व्यजन, व्यजनानुक्रम बलाघात (stress), सुरलहर (intonation), मात्रा (length), अनुनासिकता (nasalisation), सगम (juncture), आक्षरिक सरचना (ayllabic structure), आक्षरिक विभाजन (syllabic division), आदि की क्या स्थिति है। इस व्यवस्था के अध्ययन को 'ध्वनिग्रामविज्ञान' (phonemics) भी कहते है। ध्वनियो का अध्ययन वर्णन, इतिहास और तुलना की दृष्टि से, तीन प्रकार का हो सकता है वर्णनात्मक (descriptive), ऐतिहासिक (historical), तथा तुलनात्मक (comparative)। ध्वनिविज्ञान के कई अन्य रूपो के लिए भी स्वतत्र नामो का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ, औच्चारणिक ध्वनिविज्ञान (articpulatory honetics) मे उच्चारण से सबद्ध बातो का अध्ययन किया जाता है तथा सावहनिक ध्वनिविज्ञान (acoustic phonetics) मे ध्वनि-तरगो से सबद्ध अध्ययन समाहित है, तो श्रावणिक ध्वनिविज्ञान (auditory phonetics) मे श्रवण-सबधी तथ्यो का अध्ययन होता है। इसी तरह ध्वनिविज्ञान की एक शाखा यात्रिक ध्वनिविज्ञान (instrumental phonetics) है जिसमे यत्रो की सहायता से भाषा ध्वनियो का अध्ययन किया जाता है।

ध्वन्यालोक *(स० कृ०)* [समय—850 ई०-875 ई० के बीच]

ध्वन्यालोक' को काव्यालोक और सहृदयालोक भी कहा गया है। अधिकाश विद्वानो के मतानुसार इसके लेखक आनदवर्धन (दे०) हैं परतु अन्य विद्वानो का कथन है कि इस ग्रथ की कारिकाएँ ध्वनिकार द्वारा लिखी गई, आनदवर्धन तो उसके वृत्तिकार मात्र हैं। इसका रचनाकाल नवी शती का तृतीय चरण है।

यह ग्रथ चार उद्योता मे विभाजित है तथा *कारिका, वृत्ति और उदाहरण इसके तीन भाग हैं। प्रथम* उद्योत मे ध्वनि (दे०) को काव्य की आत्मा घोषित करते हुए ध्वनि-सबधी तीन पूर्वपक्ष प्रस्तुत किए गए हैं—ध्वन्य-भाववादी, लक्षणावादी तथा अनिवर्चनीयतावादी। तदनतर काव्य के दो अर्थ बताए गए हैं—वाच्य और प्रतीयमान। वाच्यार्थ सर्वजनसवेद्य होता है परतु प्रतीयमान अर्थ केवल काव्यमर्मज्ञ या सहृदय ही समझ सकता है। प्रतीयमान अथ तीन प्रकार का होता है—वस्तु अलकार और रस। इन तीनो के पुन कई भेद हैं। प्रतीयमान अर्थ ही काव्य मे प्रधान होता है। इस ही 'व्यग्यार्थ' कहा जाता है। जहाँ व्यग्यार्थ प्रधान होना है उस 'ध्वनि काव्य' कहा जाता है। *ध्वनि के दो प्रकार हैं—अविवक्षित वाच्य और विवक्षि*तान्यपर वाच्य। आगे यह बताया गया है कि ध्वनि का न तो भक्ति (लक्षण) म अन्तर्भाव किया जा सकता है और न वह अनिवर्चनीय किंवा लक्षणातीत ही है। द्वितीय उद्योत म अविवक्षित वाच्य के सोदाहरण दो भेद किए गए

हैं—अर्थान्तरसंक्रमित वाच्य और अत्यंततिरस्कृत वाच्य। इसी प्रकार विवक्षितान्यपर वाच्य के दो भेद किए गए हैं—असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य और संलक्ष्यक्रम व्यंग्य। रस, भाव, रसाभास, भावाभास और भावप्रकाश की प्रधानता के कारण असंलक्ष्य के अनेक प्रकार हैं। जहाँ रस, भाव आदि अप्रधान तथा वाच्यार्थ मुख्य हो वहाँ रसवदादि अलंकार होते हैं। इसके बाद गुणों और अलंकारों के परस्पर भेद, तथा माधुर्य, ओज और प्रसाद नामक तीन गुणों का विवेचन किया गया है। इसके बाद संलक्ष्यक्रम के भेदोपभेदों का निरूपण हुआ है। प्रथम उद्योत में ध्वनि के भेद व्यंग्य की दृष्टि से किए गए हैं किंतु तृतीय उद्योत में ये भेद व्यंजक की दृष्टि से बताए गए हैं। तृतीय उद्योत में यह निरूपित किया गया है कि विविध ध्वनिभेदों में व्यंग्यार्थ की अभिव्यक्ति वर्ण, पद, वाक्य, वाच्य, संघटना, प्रबंध आदि के द्वारा कैसे होती हैं। तीन प्रकार की संघटना तथा गुणों से उनके संबंध का प्रतिपादन भी यहीं किया गया है। गुणीभूतव्यंग्य और चित्रकाव्य का भी निरूपण इसी उद्योत में हुआ है। काव्य में एक रस प्रधान और दूसरे रस उसके सहायक होने चाहिए। चौथे उद्योत में प्रतिभा के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। ध्वनि और गुणीभूतव्यंग्य काव्य में कवि की प्रतिभा नूतन चमत्कार प्रकट करती है। कवि की अपनी दृष्टि रचना में प्रधानतया एक ही रस पर केंद्रित होनी चाहिए। अलंकार-साहित्य में 'ध्वन्यालोक' का वही स्थान है जो व्याकरण में 'अष्टाध्यायी' (दे०) का और वेदांत में 'ब्रह्मसूत्र' (दे०) का। 'ध्वन्यालोक' भारतीय साहित्यशास्त्र की बहुत बड़ी उपलब्धि है। इसके निर्माण से पूर्व तक काव्य का विवेचन शब्द, वाच्यार्थ, अलंकार आदि जैसे स्थूल बाह्य तत्वों को लेकर ही किया जाता रहा। काव्य के सौंदर्यविधायक किसी आंतरिक और सूक्ष्म तत्त्व की खोज तब तक नहीं हो पाई थी। आनंदवर्धन ने काव्य के इस सूक्ष्म और व्यापक तत्त्व को, जिसे उन्होंने ध्वनि की संज्ञा दी, पकड़ा और उसे ही काव्य का आत्म-तत्त्व घोषित किया। 'ध्वन्यालोक' में ध्वनि की उद्भावना और प्रतिष्ठा के पश्चात् इस सम्प्रदाय के अनेक धुरंधर आचार्यों द्वारा इसे जो सुदृढ़ रूप प्रदान किया वह आज तक यथावत् स्थिर है। इसके विरोध में जो वाद ह्यात् खड़े भी हुए वे स्वयं काल-कवलित हो गए।

नंजुंड *(क० ले०)* [समय—1525 ई० के लगभग]

कन्नड के वीर-कवियों में अग्रगण्य नंजुंड का जन्म एक राजघराने में हुआ था। वह कन्नड के प्रसिद्ध कवि मंगरस (दे०) तृतीय के भतीजे थे। लगता है, इन्होंने जैन धर्म छोड़ कर वीरशैव मत अपना लिया था। 'रामनाथचरित' या 'कुमारराम सांगत्य' इनका प्रसिद्ध विशालकाय ग्रंथ है। कुमारराम (दे०) कर्णाटक का एक महान् जातिवीर था जिसने उत्तर से आने वाले मुसलमानों का ज़बर्दस्त विरोध किया और अखंड हिंदू साम्राज्य का सपना देखा था। उसी के आत्मयज्ञ के अग्निकुंड पर विजयनगर साम्राज्य की स्थापना हुई। कुमारराम का यह काव्य कर्नाटक का राष्ट्रीय वीर-काव्य है। इसी कुमारराम पर तेलुगु और तमिल में भी काव्य मिलते हैं। कन्नड में इस पर यक्षगान मिलते हैं, लोकगीत मिलते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कुमार दक्षिण भारत भर में एक प्रख्यात पुरुष था। उसकी कथा कुणाल की कथा से मिलती-जुलती है जहाँ विमाता कामांध होकर प्रणय-याचना करती है और विफल होने पर राजा से उसे यह कह कर दंड दिलाती है कि उसने माता के सतीत्व पर आक्रमण किया। अंततः मुस्लिम आक्रमणकारियों के विरुद्ध जूझते हुए कुमारराम वीरगति को प्राप्त होता है।

इस कथानक को 44 आश्वासों में सांगत्य (दे०) छंद में निरूपित किया गया है। वीर इसका प्रथम रस है, शृंगार पोषक के रूप में आया है। राम को 'गुणिवीर' के रूप में चित्रित कर कवि ने वीरों की कल्पना में एक नया तत्व जोड़ दिया है। कुमारराम का चरित्र अत्यंत भव्य बन पड़ा है। उसका यह चरित्र मध्यकालीन भारतीय साहित्य के लिए एक नूतन देन है। कवि अपने काव्य-नायक को पौराणिक परिवेश में बिठाता है। उसका कहना है कि कुमारराम पूर्व-जन्म का अर्जुन है। उसे शाप देने वाली उर्वशी मातंगी है, जो उसके अंत का कारण बनती है। इस तरह इसमें कल्पना और तथ्य का समन्वय हुआ है।

नंजुंड के सांगत्य में लालित्य एवं पौरुष का हृदयहारी संगम हुआ है। उनकी शैली संदर्भानुसार रंग बदल कर पाठकों पर अद्भुत प्रभाव डालती है। कथा-संयोजन, पात्र-सृष्टि, रचना-शैली, सौष्ठव-किसी भी दृष्टि से देखा जाए, यह काव्य उत्कृष्ट ठहरता है। कन्नड के श्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में नंजुंड का स्थान है। प्रो० डी० एल० नरसिंहाचार्य (दे०) के अनुसार 'कुमारराम सांगत्य' कन्नड भाषियों का 'राष्ट्रीय महाकाव्य' है।

नंददास *(हिं० ले०)* [जन्म—1533 ई०, मृत्यु—1586 ई०]

ब्रज के पूर्व मे रामपुर नामक गाँव नददास की जन्मभूमि कही जाती है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' (दे०) मे इन्हें गोस्वामी तुलसीदास (दे०) का भाई कहा गया है। पुष्टिमार्ग (दे०) मे दीक्षित होने से पूर्व इनकी आसक्ति एक खत्री साहूकार की रूपवती पत्नी मे थी, बाद मे यही आसक्ति श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी मे केंद्रीभूत हो गई। साहित्यिक महत्व की दृष्टि से अष्टछाप (दे०) के कवियो मे सूरदास (दे०) के बाद इन्ही का स्थान है। इन्होने 'अनेकार्थ मजरी', 'नाममजरी', 'जोगलीला', 'रसमजरी', 'रासपचाध्यायी' (दे०), 'भँवर गीत' आदि अनेक ग्रथो का प्रणयन किया था। 'रासपचाध्यायी' और 'भँवरगीत' के कारण नददास काफी प्रसिद्ध हुए हैं। इनकी सपूर्ण कृतियो के दो सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

नददास की भाषा मे शब्दो का जडाव बहुत कुशलतापूर्वक किया गया है। यत्र-तत्र मुहावरो का प्रयोग करके भाषा को अत्यधिक सरस और व्यावहारिक बना दिया है। इनके काव्य मे माधुर्य और प्रसाद गुण की प्रचुरता है। 'भँवरगीत' मे इनकी गोपियाँ तर्कपडिता और व्यावहारिक जगत से सबध रखने वाली है। काव्यशास्त्र के ज्ञाता होने के कारण ये भक्ति के साथ-साथ कवित्व मे भी पारगत थे। कविता के क्षेत्र मे ये जयदेव (दे०) और विद्यापति (दे०) से प्रभावित थे। इन्होने काव्य की अनेक शैलियो मे रचना कर अपनी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा का परिचय दिया है।

नददास के काव्य मे कुछ ऐसी विशेषताएँ है जिनके कारण अष्टछाप के कवियो मे इनका स्थान अद्वितीय है। ये एक ऐसे सचेष्ट और सचेतन कलाकार थे जिन्हे अपने कवि-कर्म के गहन दायित्व का सदैव ध्यान रहता था। कहना न होगा हिंदी साहित्य मे इस कवि का स्थान कुछेक चुने हुए महाकवियो के एकदम बाद आता है।

नददुलाल *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1928 ई०, प्रकाशन वर्ष—1935 ई० मे]

लेखक अतुल हाजरिका (दे०)

यह लेखक का तृतीय प्रकाशित नाटक है। इसमे कृष्ण के जन्म से लकर कस-वध तक की शिशुलीलाओ का वर्णन है। पाँच अको म क्रमश जन्माष्टमी, नददुलाल, रासलीला, गोकुल विद और कस-वध की घटनाओ का चित्रण है। यह यात्रा-शैली का नाटक है, सवाद कवित्वपूर्ण है, गीतो का प्रचुर प्रयोग है। इसमे भक्तिरस है, किंतु नाट्य-रस का अभाव है। यह काव्यात्मक धर्म-प्रधान नाटक है।

नदनदन *(गु० पा०)*

जयति दलाल (दे०)-रचित 'सोयनु नाकु' एकाकी का नायक। नदनदन राजनीतिक और सामाजिक भ्रष्टाचार का प्रतीक है। वह जिसके यहाँ मुनीम था उसका काला धन हडप करके बडा उद्योगपति बन जाता है। वह अनाथ स्त्रियो की सस्थाओ को दान देता है और अनाथालय की स्त्रियो को भ्रष्ट करता है। स्वदेशी आदोलन मे भाग लेकर स्वदेशी चीजें महँगी बेचकर पैसे बनाता है। चोरबाज़ारियो और भ्रष्टाचार फैलाने वालो का वह प्रतीक है।

नदनार *(त० पा०)*

शैव मतानुयायियो के अनुसार ये 63 नायन्मारो (शैव सतो) मे से हैं। ग्यारहवी शती मे रचित शेक्किषार के 'पेरिय पुराणम' (दे०) मे अन्य शैव सतो के साथ नदनार का जीवन-चरित भी दिया गया है। यही पात्र उन्नीसवी शती की रचना 'नदनार-चरित्तिरक्कीर्तनै' (दे०) का नायक है। नदनार-चरित्तिरक्कीर्तनै' गोपालकृष्ण भारती (दे०) का प्रसिद्ध सगीत-नाटक है। 'पेरिय-पुराणम्' एव 'नदनार-चरित्तिरक्कीर्तनै' मे प्राप्त नदनार के चरित्र मे बहुत अतर है। इस अतर का मूल कारण है—इन रचनाओ के उद्देश्य की भिन्नता। 'पेरिय-पुराणम' मे लेखक ने भक्ति को जाति-भेद एव वर्ग-भेद से ऊपर की चीज सिद्ध करने के लिए हरिजन-कुल मे उत्पन्न भक्त नदनार के विरुद्ध उच्च कुल मे उत्पन्न एक हिंदू चरित्र की अवतारणा की जिस पर नदनार कालातर मे अपनी भक्ति के बल पर विजय पा लेता है। हरिजन-कुल मे उत्पन्न होने के कारण वह मदिर मे प्रवेश नही कर सकता था किंतु अत मे अपनी अनन्य भक्ति के बल पर वह मदिर मे प्रवेश पा लता है। उन्नीसवीं शती की रचना 'नदनार-चरित्तिरक्कीर्तनै' के रचयिता ने युगीन परिस्थितियो के अनुरूप इस चरित्र का पुनर्निर्माण किया है। यहाँ नदनार मजदूर-वर्ग का प्रतिनिधि है और उसका प्रबल विरोधी है जमीदार। नदनार खेतो म काम करन वाला सामान्य स्तर का मजदूर है। उसका स्वामी जमीदार स्पष्ट शब्दो

में कह देता है कि एक दास को, मजदूर को, ईश्वर के भजन-पूजन का कोई अधिकार नहीं है।

'पेरिय-पुराणम्' एवं 'नंदनार-चरित्तिरक्कीर्त्तनै' के रचना-काल में लगभग 800 वर्षों का अंतर है। इन रचनाओं में नंदनार के चरित्र के माध्यम से क्रमशः उच्च वर्ग-निम्न वर्ग एवं स्वामी-दास के पारस्परिक संघर्ष को स्पष्ट किया गया है।

नंदनारचरित्तिरक्कीर्त्तनै *(त० कृ०)* [रचना-काल—उन्नीसवीं शती]

इस कृति में तमिल प्रदेश के 63 शैव 'नायनार' संतों में से नंदनार नामक हरिजन संत की कथा प्रस्तुत है। पुरानी ग्रामीण व्यवस्था के अनुसार एक गाँव के भूस्वामी के अधीन असामी के रूप में खेती करते हुए, नंदनार अपनी जाति के ग्रामीण देवताओं को छोड़कर शिवजी की उपासना एवं भजन-कीर्तन में तल्लीन रहते थे। 'चिदंबरम्' के प्रसिद्ध मंदिर में विराजमान 'नटराज' की मूर्ति-विशेष पर इनका असीम अनुराग था। एक बार जब इन्होंने अपने भूस्वामी से 'तिरुवातिरै' नामक पर्व पर इस मूर्ति-दर्शन के लिए चिदंबरम् जाने की अनुमति माँगी तो उन्होंने न केवल इनकार कर दिया बल्कि यह भी कह दिया कि "यदि जाना है, तो चालीस 'वेलि' की जमीन की बुआई समाप्त करके जाओ।" विवश होकर नंदनार अपने प्रिय 'नटराज' की स्तुति करते हुए सो गए, पर प्रातःकाल होते ही उन्होंने देखा कि चालीस 'वेलि' की भूमि पके हुए पौधों के साथ लहरा रही है। इस ईश्वरीय चमत्कार से भूस्वामी नत-मस्तक हो गया और निम्नतम जाति का यह भक्त सफल-मनोरथ हो 'चिदंबरम्' के बृहत् मंदिर की यात्रा पर चला गया। 'नटराज' ने अपने मंदिर के पुजारियों को स्वप्न में प्रकट होकर आदेश दिया कि 'नंदनार' को अग्नि में पवित्र स्नान कराके द्विगुणित पवित्रता के साथ हमारे सान्निध्य में लाया जाए। नंदनार शिवजी के मूर्ति-दर्शन के साथ-साथ शिवतत्त्व में मिलकर अंतर्धान हो गए।

इस कथा का वर्णन गेय पदों के माध्यम से किया गया है जो कीर्त्तनै नाम से प्रसिद्ध हैं और कर्णाटक-संगीत के रागों में बँधे हुए हैं। कुछ पदों में हिंदुस्तानी रागों तथा मराठी शैली में प्रचलित द्विपद, त्रिपद, दंडक आदि का अनुसरण भी हुआ है। अद्वैत-दर्शन तथा योगशास्त्र के सिद्धांतों का भी उल्लेख इस पदावली में मिलता है। ये गीत लोक-हृदय का स्पर्श करने वाली अत्यंत सरल शैली में रचित हैं और अपने रचना-काल में उनकी स्वाभाविकता एवं सरसता अभूतपूर्व विशेषताएँ थीं। कथावाचन में इस कृति के गेय पदों का निरंतर उपयोग होता आ रहा है और तमिल-भाषी जनता में 'चिदंबरम् पोकवेण्टुम् ऐयें' (हे स्वामी, मुझे 'चिदंबरम्' जाना है) गीत अत्यंत लोकप्रिय है।

नंदशंकर *(गु० ले०)* [समय—1835-1905 ई०]

नंदशंकर तुळजाशंकर मेहता का जन्म सूरत के नागर परिवार में हुआ था। एक साधारण अध्यापक के रूप में जीवन का प्रारंभ कर, ये अपने श्रम व अध्यवसाय से शिक्षा-विभाग में ऊँचे पद तक पहुँचे थे। इनकी एकमात्र रचना 'करण घेलो' (दे०) गुजराती का सर्वप्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। 'करण घेलो' में गुजरात के बाघेला वंश के अंतिम राजा 'करण बाघेला' के जीवन के प्रसिद्ध प्रसंग वर्णित हैं।

समीक्षा के वर्तमान मानकों पर कसने पर इस कृति में वस्तुविन्यास, पात्र, चरित्र-चित्रण, देश-काल-विषयक शिथिलताएँ दृष्टिगत हो सकती हैं, किंतु लगभग एक शतक पूर्व की रचना के रूप में विचार करने पर ये सब बातें गौण बन जाती हैं। रचना की भाषा-शैली पर अँग्रेजी लेखकों का—विशेषतः वाल्टर स्काट का—प्रभाव दिखाई देता है। तत्कालीन समाज की उत्सवप्रियता, विलासप्रियता एवं कलानुराग का अंकन कृति में अच्छा हुआ है।

गुजराती के प्रथम उपन्यासकार एवं ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में नंदशंकर मेहता का तथा ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में उनकी इस कृति का महत्त्व अक्षुण्ण है।

नंद शर्मा, गोपीनाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1869 ई०; मृत्यु—1924 ई०]

फकीर मोहन (दे०) के बाद साहित्य-साधना के क्षेत्र में द्वितीय स्थान है ज्ञान-तपस्वी गोपीनाथ नंद शर्मा का। अँग्रेजी या अन्य पश्चिमी भाषाओं का ज्ञान न होते हुए भी इनकी समीक्षाओं में सूक्ष्म विश्लेषण-शक्ति एवं गहन गवेषणात्मक दृष्टि प्राप्त थी। 'सारलादास महाभारत' (दे०) की विषयवस्तु एवं भाषा की समालोचना इनके पांडित्य की साक्षी है। महाभारत की उस अनगढ़ भाषा में इन्होंने विशुद्ध उड़िया भाषा के उज्ज्वलतम रूप और निजी सौंदर्य का संधान किया है। जगन्नाथदास के 'भागवत' (दे० जगन्नाथ भागवत) एवं दांडी रामायण (दे०) पर

भी इनकी समीक्षाएँ प्रसिद्ध हैं। अपनी आलोचना मे इन्होंने जिस सूक्ष्म अतर्दृष्टि, गभीर पाडित्य, तथा बहु-शास्त्रज्ञान का परिचय दिया वह असाधारण है।

पाली, प्राकृत व सस्कृत भाषा का तुलनात्मक अध्ययन कर इन्होने 'ओडिया भाषा तत्त्व' (दे०) नामक ग्रथ की रचना की है जो उडिया मे ही नही वरन् अन्य भारतीय भाषाओ मे भी अपने विषय का अत्यत उत्कृष्ट ग्रथ है। उडिया शब्दावली की सरचना का विवेचन एक हज़ार पृष्ठों मे हुआ है। 'शब्द-तत्त्व बोध' के सकलन का श्रेय भी इन्हे ही प्राप्त है। इसमे उडिया देशज शब्दो का विवेचन हुआ है। इनका अन्य प्रसिद्ध ग्रथ है—'ओडिया अभिधान'। इनके अतिरिक्त लेखक ने सस्कृतकाव्य व नाट्य साहित्य का अनुवाद भी किया है जिस पर उसके पाडित्य की स्पष्ट छाप है।

नदा, ईश्वरचंद्र *(प० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

ईश्वरचद्र नदा को आधुनिक पजाबी नाटक का जन्मदाता माना जाता है। इन्होने 1913 ई० मे अपना नाटक 'दुलहन' लिखा, जिसे एक प्रतियोगिता मे प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। एक वर्ष के पश्चात् इनका दूसरा नाटक 'वे राम भजनी' प्रकाशित हुआ। 1920 ई० मे इनका सर्वाधिक लोकप्रिय नाटक 'सुभद्रा' (दे० सुभदरा) प्रकाशित हुआ। 1928 ई० मे इन्होने इगलैड की यात्रा की। वहाँ के रगमचीय वातावरण और नाट्य कला से ये विशेष रूप से प्रभावित हुए। वहाँ से वापस आने पर इन्हो 'शामूशाह' और 'वर घर' नाटको की रचना की। 1950 ई० मे इनके एकाकियो का सग्रह झलकारे' प्रकाशित हुआ।

नाटक लिखने और उन्हे रगमच पर प्रस्तुत करने की प्रेरणा नदा को लाहौर मे अपने अंग्रेज़ी के प्राध्यापक श्री नोहरा रिचर्ड्स और उनकी पत्नी श्रीमती नोहरा रिचर्ड्स से प्राप्त हुई। इनके नाटक विशेष रूप से समाज-सुधार की भावना से प्रेरित हैं। 'सुभद्रा' मे विधवा विवाह की समस्या उठाई गई है और 'वर-घर' मे पश्चिमी सभ्यता के बढते हुए प्रभाव और उससे उत्पन्न सघर्ष का चित्रण किया गया है।

नदिक्लवकम् *(त० कृ०)* [समय—नवी शती ई०]

इस काव्य कृति के नायक 'नदिवरम्' राजा हैं जिनका समय अनुमानत ई० 825 से 850 तक है। ये 'काञ्चीपुरम' नगरी से शासन करने वाले 'पल्लव' राजवश के थे और इतिहास मे प्रसिद्ध है कि इन्होने 'तेळ्ळारु' नामक क्षेत्र मे दक्षिणापथ के अन्य शत्रु-राजाओ की सम्मिलित शक्ति पर महान विजय पाई थी। यह कृति एक ऐसी 'अरम' कहलाने वाली मत्रशक्ति-युक्त एव श्लेषार्थविशिष्ट रचना है जिसे सुनने पर विश्वास किया जाता है कि नायक की मृत्यु अवश्यभावी है। कहते हैं कि राजा के एक देश-भ्रष्ट सौतेले भाई ने उससे बदला चुकाने के लिए इसकी रचना की थी। किसी प्रकार से इस रचना की कुछ पक्तियो का परिचय 'नदिवरम्' को मिल जाने पर उन्होंने इस सपूर्ण काव्य रचना का आस्वादन कर आत्म-विभोर होना चाहा—यद्यपि इन्हे सचेत कर दिया गया था कि हर एक पद्य सुन लेने के साथ साथ उसके प्राण निकलते रहेगे और अत मे उसे चिता मे जलना भी पडेगा। सौतेले भाई को, जो घर छोडकर सन्यासी हो गया था बरबस अपना सौ पद्यवाला काव्य सुनाना पडा। सौ मडपो के निर्माण हुए और एक एक पद्य सुनने के बाद एक-एक मडप जल उठा और सौवाँ पद्य आते-आते राजा चिता पर लेटकर उसे सुनकर आनदातिरेक के साथ स्वर्ग सिधारे। काव्यगत अत साक्ष्य से इस कथा का पुष्टीकरण नही होता यद्यपि कुल पक्तियो का ध्वन्यर्थ इसको बल देने के लिए खीचा जा सकता है।

यह रचना 'कलबकम्' नामक काव्य-विधा की सर्वप्रथम उपलब्धि है। इस विधा की रचनाओ म विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण तमिल साहित्य की प्राचीन रूढ 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ) एव 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ) पद्धतियो का अवलबन करता है। इन पद्धतिया म पात्र और प्रसग सुनिश्चित हैं और पद्य-रचना उन नियमित पात्रो एव प्रसगो के अनुसार निर्मित होती है—यथा नायक-नायिका का एक दूसरे पर मोह प्रकटन, सखी द्वारा नायक स अनुरोध इत्यादि। आचिरियम्, 'वण्पा, कलि' तथा 'वञ्चि' नामक छदो के यत्र-तत्र उपयाग म छद-विधान की रोचकता इस विधा मे द्रष्टव्य है। 'कलबकम्' का शाब्दिक अर्थ 'मिश्रित फूलमाला' स्वय वैविध्य का सूचक है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसम पूर्ववर्ती पद्यो के अत वाल शब्द या शब्दाश परवर्ती पद्य का आरभ होत हैं।

इस कृति म 'अहम्' पद्धति की सरस शृगार-परक उक्तियो के द्वारा ही नायक की पराक्रमशक्ति, दान-शीलता, धर्मानुराग, युद्धकौशल, शासन-क्षमता आदि

विशिष्ट गुणों की ओर संदर्भानुकूल किए गए उल्लेख विलक्षणता लिये हुए हैं। ऐसे उल्लेखों से इतिहास-निर्माण में भी इसका योगदान अनुपेक्षणीय है।

नंदी अनुयोगदार *(प्रा० कृ०)* :

ये दोनों ग्रंथ जैन-आगम (दे०) के भाग माने जाते हैं। जैसाकि नाम से प्रकट है ये ग्रंथ जैन-साहित्य में प्रवेश के लिए उपक्रम-रूप हैं और जैन-साहित्य विश्वकोश कहे जाने के सर्वथा अधिकारी हैं। इनमें जैन धर्म संबंधी सभी ज्ञातव्य तत्त्व तो आ ही गए हैं, साथ ही मिथ्याश्रुत, 'महाभारत', अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, वैशेषिक, बौद्धशासन, कपिलदर्शन, लोकायत, पुराण, व्याकरण, भागवत, गणित इत्यादि का भी समावेश किया गया है। 'अनुयोगदार' प्रश्नोत्तर-रूप है।

नंदीमठ *(क० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

वीरशैवमत के अधिकारी विद्वान डा० शिवलिंगैया चेन्नबसवप्पा नंदीमठ का जन्म उत्तर कर्णाटक में एक सुसंस्कृत वीरशैव कुटुंब में 1903 ई० में हुआ। धारवाड तथा बंबई में शिक्षा पाकर उन्होंने लंदन में डा० बार्नेट के अधीन शोध-कार्य किया और वहीं से डाक्टरेट की उपाधि पाई है। आपने 'चंद्रज्ञानागम' आदि आगमों पर भी काम किया है। कर्णाटक का क्रमिक इतिहास आपने लिखा है जो कन्नड साहित्य परिषत् की ओर से प्रकाशित 'कन्नडनाडिन चरित्रे' के तृतीय भाग के रूप में निकला है। इसके अतिरिक्त आपने दर्जनों लेख वीरशैव-साहित्य व संस्कृति पर लिखे हैं।

नंपियार, शंकरन् पि० *(मल० ले०)*

श्री नंपियार अंग्रेज़ी के प्रकांड पंडित थे। छोटी-सी उम्र में ही 'पालायिमयनम् चंपु' का निर्माण करके उन्होंने कविता के प्रति अपनी रुचि दिखाई। काव्य-ग्रंथ 'प्रस्थानत्रयम्' में अंग्रेज़ी की पद्य-शैलियों के कई उदाहरण पाए जाते हैं। वर्ड्सवर्थ, शेली, शेक्सपियर जैसे महान् कवियों की कविताओं का अनूदित संकलित ग्रंथ है 'सवर्ण-मंडलम्'। द्रविड वृत्तों की अपेक्षा संस्कृत वृत्तों के प्रति उनका अधिक आग्रह है। स्थानीय नरेश ने उन्हें 'कवि तिलक' की उपाधि से सम्मानित किया।

नंपियार, के० सी० नारायणन् *(मल० ले०)* [जन्म—1873 ई०; मृत्यु—1922 ई०]

मलयाळम के प्रतिभाशाली कवि, समालोचक और पत्रकार। 'कल्याणी-कल्याणम्', 'इन्दुलेखा नाटकम्', 'चक्कीचंकरम्' आदि नाटक और 'भारतव्यवहारम्','भुंगिक भारतम्', आदि काव्य उनकी रचनाएँ हैं। 'उदयालंकारम्' उनका अलंकार-ग्रंथ है।

नारायणन नंपियार उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में अत्यधिक लोकप्रिय वेण्मणि-शैली के प्रमुख कवि हैं। भाषा का प्रसाद-गुण और ऋजुता और हास्यरस की प्रमुखता उनकी कविता के मुख्य तत्त्व हैं। वे आशु कविता की रचना में पटु थे। संगठित साहित्यिक प्रयासों में भी उनका बहुत योगदान रहा है।

नंपूतिरि, चेलप्परंपु *(मल० ले०)*

ये सत्रहवीं और अठारहवीं शती के बीच में जीवित थे। शृंगार रस से ओतप्रोत कई मुक्तक-पद्य रचकर ये 'रसिकाग्रणि' के नाम से प्रख्यात हुए। आरंभ से ही इनकी काव्य-प्रतिभा प्रस्फुटित होने लगी थी और ये स्वल्प काल में रचना करके चमत्कृत कर देते थे। इनकी सरलकोमल-कांत पदावलियों से सहृदय खूब आकृष्ट हुए थे।

नंपूतिरि, नट्टुवत्तु अच्छन् *(मल० ले०)* [समय—1842 ई० से 1913 ई० तक]

नट्टुवम् नंपूतिरि ब्राह्मण का घर है जो केरल के मध्य भाग में स्थित है। उस घर में जन्मे दो कवि नट्टुवत्तु अच्छन् नंपूतिरि और नट्टुवत्तु महन् नंपूतिरि नाम से सुख्यात हुए हैं। पिता (अच्छन्) और पुत्र (महन्) दोनों कवि और नाटककार थे। अपनी भक्ति-भावना, हृदयशुद्धि तथा पांडित्य आदि गुणों के कारण वे लोगों के आराध्य पुरुष बन गए 'अंबोपदेशम्', 'भगवद्स्तुति', 'भगवद्दूत नाटकम्' 'शृंगेरी यात्रा' आदि तो ऐसी रचनाएँ हैं जिन्हें वे पूरा कर गए। किंतु कई ग्रंथ उनके अधूरे लिखे भी हैं। उनकी सरल-कोमल-कांत पदावली सहज आकर्षक है। कविता के गुण-त्रय उनकी रचनाओं में पाए जाते हैं। उनका लिखा 'भगवद्दूत नाटकम्' भक्तिरस-प्रधान है। इसी नाटक के बल पर केरली के मुख्य कवियों की पंक्ति में उन्होंने अपना

स्थान बना लिया। कवि ने उस समय के महाकवि कुञ्जिक्कुट्टन् (दे०) तंपुरान् को जो पत्र लिखे थे उनमे से कई मे उनका कवित्व-चमत्कार परिलक्षित होता है।

नपूतिरि, नटुवत्तु महन् *(मल० ले०)* [समय—1864 ई० से 1944 ई० तक]

संस्कृत तथा मलयाळम मे अच्छी गति प्राप्त करने के बाद इन्होने भाषा के अध्यापन का कार्य किया। इन्होंने 'उत्तररामचरितम्', 'मुद्राराक्षसम्', 'घोषयात्रा नाटकम्', 'सन्तानगोपलम् काव्यम्', 'महिषमर्दनम्','भक्तलहरि' आदि तेरह ग्रथो की रचना की। इन्होंने अपनी काव्य-रचना मे शास्त्र के नियमों का अनुसरण और पालन किया है। कृष्ण तथा देवी पर लिखे उनके श्लोक भक्ति रस प्रधान हैं। पाँच सर्गों मे लिखा 'सन्तानगोपालम्' एक सरस काव्य है। 'आश्रमप्रवेशम् मे बापू जी ने अपनी धर्मपत्नी को जो उपदेश दिए हैं उनका सग्रह मिलता है। उसकी कविता सरस एव कोमल है।

नपूतिरि, पून्नोट्टत्तु अच्छन् *(मल० ले०)* [समय—1822 ई० से 1862 ई० तक]

कवि का वास्तविक नाम दामोदरन् नपूतिरि है। अच्छन् नपूतिरि इनका प्रसिद्ध साहित्य नाम है। इन्होंने संस्कृत का गहरा अध्ययन किया था और तुळ्ळल् शैली मे 'अबरीषचरितम्' नामक काव्य-ग्रथ लिखा। 'कालकेयवधम्', 'स्यमन्तकम्' नामक कथकलि आदि ग्रथो के अलावा कई मुक्तक पद्य भी लिखे।

नपूतिरि, पूतोट्टत्तु महन् *(मल०ले०)* [समय—1827 ई० से 1946 ई० तक]

इनका नाम भी पिताजी के नाम के समान दामोदरन है। पिताजी के समान पुत्र (महन् नपूतिरि) भी बचपन से ही कविता की ओर सहज रूप मे प्रवृत्त हुए थे।

काव्य ग्रथ 'नारकासुरवधम्'—कथकलि ग्रथ है, 'लक्षणास्वयवरम्'—कथकलि है। तुळ्ळल्-पद्धति मे दो पुस्तकें हैं—'राजसूयम', 'कुचेलवृत्तम्'। गुणगान के रूप मे 'गुरुवायूरपुरमहात्म्यम्', 'सावित्रिचरित्रम्'—इन दो ग्रथो का निर्माण किया। 'पाना' (दे०) पद्धति मे अजामिल-मोक्षम्' लिखकर कवि ने केरली की स्तुत्य सेवा की है।

नपूतिरि, शीवोळ्ळि *(मल० ले०)* [जन्म—1862 ई०, मृत्यु—1906 ई०]

पूरा नाम शीवोळ्ळि नारायणन् नपूतिरि है। शीवोळ्ळि शिवपळ्ळि का सकुचित रूप है। यह कवि के घर का नाम है। मध्य केरल की परवूर नामक तहसील के वयला गाँव मे कवि का जन्म हुआ। बाल्यकाल से ही शीवोळ्ळि काव्य-रचना के प्रति आकर्षित थे और यह प्रवृत्ति उनमे जन्मजात तथा सहज थी। संस्कृत के अध्ययन के पश्चात् उन्होंने वैद्यक शास्त्र मे वैशिष्ट्य प्राप्त किया। कन्नड, अँग्रेजी आदि भाषाएँ भी कवि ने सीखी।

कवि के रचना-काल मे सदेश-काव्यो की भरमार हुई तो उसे रोकने के लिए उन्होने सदेशकारो का उपहास करते हुए 'दात्यूहसदेशम्' (दे०) लिखा। उसी प्रकार 'दुस्पर्श नाटकम्' (दे०) की रचना करके नये नाटककारो पर भी व्यग्य किया। 'मदनकेतनचरितम्', 'सारोपदेशशतकम्', 'घोषयात्रा' आदि उनकी रचनाएँ है। पार्वती पर लिखे उनके पद भक्ति-रस से ओतप्रोत हैं।

नपूतिरिप्पाड्, सूरि *(मल० पा०)*

श्री ओय्यारत्तु चन्तु मेनन (दे०) ने 'इदुलेखा' (दे०) नामक उपन्यास लिखा है। उसका एक पात्र है 'सूरि नपूतिरिप्पाड्'। उस समय के ज़मीदार के रूप मे इस पात्र का चित्रण किया गया है। नपूतिरि समाज की सहज दुर्बलताओ का जीवत चित्र इस पात्र के माध्यम से लेखक ने प्रस्तुत किया है।

नपूतिरिप्पाड्, मूत्तिरिञ्ञोट्टु, भवत्रातन *(मल० ले०)* [जन्म—1902, मृत्यु—1944 ई०]

जन्म स्थान—मलाबार। संस्कृत-विद्वानो के परिवार मे जन्मे श्री नपूतिरिप्पाड् ने प्रारभ मे वेदाध्ययन किया, तदनतर न्यायशास्त्र एव वेदात सीखा तथा कुछ-कुछ अँग्रेजी भी पढी। रूढिवादी नपूतिरि समाज का सकुचित घेरे से बाहर लाकर सभ्यता एव उदारता के विशाल प्रागण मे खडा कर देने वाले प्रगतिप्रेमी युवको मे इनका विशेष स्थान रहा। 'मगलोदयम्' पत्रिका के सपादक की हैसियत

से और लेखक के तौर पर अपनी मौलिक रचनाओं से इन्होंने मलयाळम वाङ्मय की श्रीवृद्धि की। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'अप्फंटे मकळ्'(दे०) (भतीजी) नामक उपन्यास, 'पूंकुला' एवं 'आत्मार्पणम्' नामक कहानी-संग्रह एवं 'मरुपुरम्' नामक निबंध-संग्रह। इनकी गद्य-शैली में दुर्लभ भावुकता के दर्शन होते हैं।

नंबि-आंडार् नंबि *(त० ले०)* [समय—870 ई०-907 ई०]

तमिल के शैव-संतों ('नायन्मार') के विरचित पदों का विविध रागों के अनुसार संकलन करने वाले तमिल विद्वान् थे नंबि-आंडार् नंबि। 'तिरु-नारैयूर' नामक गांव आदिशैवकुल में (जिन्हें 'ब्राह्मण' माना जाता है) इनका जन्म हुआ था। बचपन से ही ये श्रीगणेश जी की उपासना करने लगे थे। इनके विषय में ऐसी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं जिनसे प्रकट होता है कि इन्हें गणेश भगवान का साक्षात्कार प्राप्त हुआ था और गणेश की कृपा से ये बड़े ज्ञानी बन गए थे। एक चोल राजा की प्रार्थना पर इन्होंने चिदंबरम् जाकर वहाँ एक कमरे में गुप्त रूप में सुरक्षित ताल-पत्र ग्रंथों का उद्धार किया था जिनमें शैव धर्म के मुख्य तीन आचार्यों की कृतियाँ थीं। उन्हें क्रमीकृत करके इन्होंने सात भागों में विभक्त किया; फिर अन्य कुछ संतों के गीतों को तीन भागों में संकलित किया। ग्यारहवें भाग में कुछ फुटकल पदों का संकलन है। इन्होंने स्वयं अनेक कृतियों की रचना की है; जिनमें शैव संतों की जीवनी पर लिखित पद्यकाव्य विख्यात है। श्रीगणेश की प्रार्थना के अनेक ग्रंथ भी इन्होंने विभिन्न तमिल साहित्य-विधाओं में लिखे हैं। अभी तक ऐसे दस ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं। तमिल के शैव वाङ्मय में इनकी रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

नंबियण्णा *(क० पा०)*

महाकवि हरिहर (दे०) (बारहवीं शती) के 'नंबियण्णन रगळे' (नंबियण्णा का रगळे) का प्रधान पात्र है 'नंबियण्णा'। कैलास में शिवजी के सान्निध्य में पुष्पदत्त नाम का एक गण था। पुष्पचयन कर शिवजी के पास लाना उसका काम था। पार्वती के लिए पुष्प लाने वाली सेविकाओं से उसका प्रेम हो गया। परिणामतः शिवजी की आज्ञा हुई कि मर्त्यलोक में इनका जन्म हो और समस्त सुख अनुभव करने के बाद पुनः कैलास में आवें। पुष्पदत्त शिव-सान्निध्य से नहीं बिछुड़ना चाहता था। शिवजी ने जब उसको समझाया और आश्वासन दिया कि उसका उद्धार होगा तो उसने उनकी बात मान ली। (उस पर विश्वास किया) अतएव उसका नाम 'नंबि' (विश्वास करने वाला) पड़ गया। भूलोक के तिरुनावलूर नगर में जडेय नायनार और यस्यज्ञानदेवी के यहाँ उसका जन्म हुआ। बचपन में ही वह दैवी अंश-संभूत प्रतीत हुआ। राजा का मदगज, जिसको शांत करना किसी के वश की बात नहीं थी, उसके सामने नमस्कार कर पूर्व-स्थिति में पहुँचा। राजा नरसिंह मोनेयर इस घटना से प्रभावित हुए। उन्होंने बालक को अपना पुत्र बनाया, उसका पालन-पोषण बड़े प्रेम से किया। उसे सौंदर पेरुमाळ नाम दिया गया। आगे चलकर वह बालक सौंदर नंबि कहलाया। नंबि जब यौवनावस्था को प्राप्त हुआ तब राजा ने उसके विवाह का प्रबंध किया। पर शिवजी की आज्ञा कुछ और थी। पार्वती जी की सेविकाएँ परवे और संकिलि के नाम से अवतरित हुई थीं उनके साथ नंबि का जीवन व्यतीत होना चाहिए था। अतः शिवजी ने वृद्ध माहेश्वर के वेश में आकर विवाह भंग कर दिया और उसे अपना गुलाम बनाया। पादुका-सहित शिवालय में प्रवेश कर जब तक वह अदृश्य नहीं हुआ, तब तक नंबि की पूर्व-वासना नहीं जगी। उसके बाद नंबि यौवराज्य त्यागकर 'शिवपुत्र' बन गया। शिवजी का प्रसाद उसे प्राप्त था। मंदिर में उसने परवे को देखा। दोनों में प्रेम की बेल बढ़ी और वे दाम्पत्य-सूत्र में बद्ध हुए। शिव-विधान के अनुसार कांची के तिरुवतियूर में जब वह पहुँचा तब संकिलि से उसका प्रेम-संबंध हुआ। शिवजी की आज्ञा का उल्लंघन कर वह सांसारिक सुख में लीन नहीं रह सकता था। संकिलि को पाने के लिए उसने परवे को त्यागने की शपथ ली। शपथ भी भंग हुई तो उसे अपनी आँखें खोनी पड़ीं। तब वह दीन होकर भगवान से प्रार्थना करने लगा—पार्वती देवी को उस पर करुणा आई, उन्होंने अपनी एक आँख उसे प्रदान की। इस प्रकार इसके चरित्र से यह स्पष्ट है कि जो विश्वास करते हैं, उस पर भगवान का पूर्ण अनुग्रह होता है।

नई कविता *(हिं० प्र०)*

ऐतिहासिक दृष्टि से 'तारसप्तक' (दे०) के प्रयोग जब वाद बनकर विवाद खड़ा करने लगे तो 'नये पत्ते' (1953 ई०) और 'नई कविता' (1954 ई०) ने नई कविता के आंदोलन का सूत्रपात किया। आजाद

आलोचक छायावादोत्तर अद्यतन काव्य प्रवृत्तियों को ही नई कविता में अंतर्भुक्त करने के पक्षपाती हैं। इस कविता की मुख्य प्रवृत्ति युग-यथार्थ का चित्रण है जो कहीं एकोन्मुख है और कहीं समाजोन्मुख। नये कवियों में अज्ञेय (दे०), मुक्तिबोध (दे०), गिरिजाकुमार माथुर (दे०), धर्मवीर भारती (दे०), शमशेर बहादुर सिंह, भवानीप्रसाद मिश्र (दे०) आदि प्रतिष्ठित हो चुके हैं।

युग-यथार्थ के आग्रह से नये कवियों ने मार्क्सवाद और मनोविश्लेषण शास्त्र की स्थापनाओं को किसी-न-किसी रूप में अंगीकार किया है। प्रभात, संध्या आदि के सार्वभौम प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण तद्वत्ता को आदर्श मान कर हुआ है। *कविता की सामग्री में आयातित महानगरीय* उपकरणों और लघु मानव के क्षणिक अनुभवों की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है। भाषा में अप्रचलित देशी-विदेशी शब्द और शैली में अगम्य प्रतीक संप्रेषण की समस्या उत्पन्न करते हैं। फिर भी यथार्थ का सूक्ष्म-संश्लिष्ट चित्रण और युगानुकूल मुहावरे का सर्जनात्मक प्रयोग नई कविता की उल्लेखनीय शैलीगत उपलब्धियाँ हैं।

नई समीक्षा *(हिं० पारि०)*

बीसवीं शती के प्रथम चरण में पश्चिम में कविता को भावावेगों की सहज अभिव्यक्ति मात्र न मानकर उसे कलात्मक रचना माना गया। कविता को भाव या विचार न मानकर 'पदार्थ' कहा जाने लगा, "ए पोयम शुड नॉट मीन बट बी"। ऐलेन टेट ने कहा कि कविता का उद्देश्य पाठक में रागात्मक मनःस्थिति उत्पन्न करना या उसके भाव-संस्कार जगाना नहीं, अर्थ सौंदर्य का संप्रेषण करना है। *अतः काव्यत्व का अधिवास शब्दार्थ के प्रयोग-कौशल में है।* काव्य-संबंधी धारणा में परिवर्तन होने पर काव्यालोचन के प्रति दृष्टि बदलना स्वाभाविक था। अतः प्रथम विश्वयुद्ध के बाद नई समीक्षा का जन्म हुआ। यद्यपि उसके पूर्व-चिह्न ह्यूमे, एजरा पाउंड के चिंतन में मिलते हैं, परंतु आज वह प्रधानतः अमरीकी आंदोलन है और प्रसिद्ध आलोचक हैं—रॉबर्ट पैन वारेन, क्लीथ ब्रुक्स, ऐलेन टेट, ब्लैकमर, जॉन क्रो रैन्सम, एम्पसन और रेने वैलक। "द न्यू क्रिटिसिज्म" का प्रयोग सर्वप्रथम जोएल स्पिंगार्न ने 1911 ई० में किया पर उसकी परिभाषा देने का श्रेय जॉन क्रो रैन्सम को है जिन्होंने अपनी पुस्तक 'द न्यू क्रिटिसिज्म' में उसकी व्याख्या की।

ये आलोचक मानते हैं कि कविता में शब्द अर्थ का सामान्य या साधारणीकृत प्रयोग न होकर उसका विशेष और मूर्त प्रयोग होता है, कवि सामान्य अर्थ को सुरक्षित रखते हुए भी कविता में *अतिशय अर्थ* भर देता है और इसके लिए उसके पास साधन हैं—वर्ण-विन्यास, शब्द-विधान, बिंब-सृष्टि, प्रतीक, रूपक, विशिष्ट संदर्भ से आलोकित शब्दार्थ, अनेकार्थता (एम्बिग्विटी), नाद-सौंदर्य और छंद-योजना। कविता की सफलता का आधार माना गया *विषय और भाषा का तालमेल; क्योंकि कथ्य और कथन-*पद्धति को ये लोग एकरूप (को-टर्मिनस) मानते हैं, लक्षणा, उपचारवक्रता को अलंकार-मात्र न मानकर उसका प्राण-तत्त्व कहते हैं।

काव्य और काव्य-भाषा-विषयक इस धारणा-परिवर्तन के फलस्वरूप आलोचना का कार्य भी शब्द-प्रयोग का गहन अध्ययन और अर्थ मीमांसा, कविता की संरचनात्मक अन्विति की खोज, उसकी जटिल संरचना का परीक्षण करना हो गया। लियो स्पिट्जर का मत है, "कविता की रचना का आधार शब्द ही है—ये शब्द अपने सामान्य अर्थ को सुरक्षित रखते हुए कवि-प्रतिभा के जादू से छंद के साँचे में ढलकर अतिशय अर्थ की सिद्धि करते हैं, इस अर्थ-परिवर्तन की विधि का विवेचन करना आलोचक का कर्तव्य-कर्म है।" *अब आलोचक* पाठ-विश्लेषण द्वारा काव्य-भाषा के विभिन्न सौंदर्य-तत्त्वों का संधान और विश्लेषण, छंद और लय का अध्ययन कर अर्थ-गौरव में उनके योग-दान पर प्रकाश डालने लगे। कविता के तंतु विन्यास *(टैक्सचर) की बारीकियों और संरचना (स्ट्रक्चर) को* अलग अलग देखा जाता है, उसके समग्र रूप और अंगों के अंतःसंबंधों का विश्लेषण कर मूल भावना को पकड़ने का प्रयास किया जाता है। नई समीक्षा की प्रविधि-प्रक्रिया के *तीन सोपान हैं—रचना का शब्दार्थ प्रस्तुत करना, शब्द-*विधान की बारीकियों को दिखलाकर कवि-कौशल पर प्रकाश डालना और तंतु-विन्यास का संरचना के साथ समन्वय करते हुए रचना के मूल अर्थ को प्राप्त करना। यह आलोचना *कविता के गठन और स्वरूप का अध्ययन करती है, मूल्यों* के स्थान पर शिल्प-पद्धति के प्रति उसका अधिक आग्रह रहता है।

बीच के काल में रचना के रूप शिल्प और *भाषा-सौष्ठव के उद्घाटन की उपेक्षा हुई थी, आलोचक* का सारा ध्यान विचार-तत्त्व और भाव-सौंदर्य के मूल्यांकन पर केंद्रित रहता था। नई समीक्षा ने रूप शिल्प संबंधी सौंदर्य के प्रति आलोचकों की इस उदासीनता पर प्रहार *किया। इस योगदान को स्वीकार करते हुए भी नई समीक्षा*

की कतिपय सीमाओं की ओर ध्यान जाए बिना नहीं रहता। कला-कृति को स्वत: संपूर्ण मानकर उसे कवि, परिवेश और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से अलग कर उसका मूल्यांकन करता, शब्द-विधान आदि रूप-शिल्प संबंधी उपकरणों को ही सब कुछ मानना उचित नहीं है। इस दृष्टि का कुपरिणाम यह होगा कि काव्य-रचना में जटिलताओं को अधिक महत्व मिलेगा, बौद्धिक व्यायाम की क़द्र होगी, भावोत्कर्ष, सुरुचि-संस्कार और विचार-गांभीर्य को कम महत्व दिया जाएगा। नई समीक्षा काव्य के अनुभव को प्रत्यक्ष, गोचर और तात्कालिक मानती है, इससे शाश्वत, सार्वभौम, चिरंतन भावों-विचारों के काव्य-सिंहासन से अपदस्थ होने का भय है। नई समीक्षा कृति में भाव-मुक्तता खोजने के स्थान पर रूप-शिल्प के विवेचन-विश्लेषण पर ही अधिक बल देने के कारण वह रसास्वादन में बाधक और इलियट के अनुसार नींबू-निचोड़ बन गई है। कोलरिज की दो कविताओं का 600 पृष्ठों में विविंस्टन लो द्वारा किया गया विवेचन-विश्लेषण इसका ज्वलंत प्रमाण है। नई समीक्षा-पद्धति का प्रयोग यद्यपि उपन्यास, कहानी आदि के क्षेत्र में भी हुआ है, पर वह प्रगीत और मुक्तक के ही लिए अधिक उपयोगी है।

यह आलोचना-पद्धति भारत के लिए एकदम नई नहीं है। संस्कृत काव्यों के टीकाकारों ने उसका प्रयोग किया ही था, आज भी (निश्चय ही पश्चिम के प्रभाव के कारण) कुछ विद्वान इस पद्धति का प्रयोग कर रहे हैं। यह अभी प्रयोग के रूप में ही है। उल्लेखनीय नाम हैं—डा० नगेंद्र (दे०), विद्यानिवास मिश्र, रमेश कुंतल मेघ और कुमार विमल।

नकल *(पं० पारि०)*

पंजाबी जन-जीवन में 'नकल' का प्रचार लोक-नाट्य के एक भेद के रूप में रहा है। विवाह-शादी अथवा मेले-ठेले में भाँड़ और नकलची उपस्थित जनता का मनोरंजन करते हैं। इसमें किसी धनाढ्य अथवा उच्च पदासीन व्यक्ति के स्वभाव या कार्यों का उपहासपूर्ण अनुकरण प्रस्तुत किया जाता है। इसके माध्यम से अपने से ऊँचे लोगों के साथ बने मानसिक अंतर को कुछ समय के लिए समाप्त कर उनके साथ बराबरी का संबंध जोड़ा जाता है। इस प्रकार इसके माध्यम से वर्ग-विशेष के प्रति जन-सामान्य की कुत्सा का विरेचन होता है।

नक्कीरर *(त० ले०)* [समय—पहली या दूसरी सदी ई०]

इस कवि के कई नाम हैं—कीरनार्, मदुराइ-नक्कीरर् और अध्यापक-पुत्र नक्कीरर्। 'कीरन्' वास्तविक नाम है; 'नल्'—विशेषण है जिसका अर्थ है 'अच्छा' या 'सत्'। ये मदुरै नगर के निवासी, विद्वानों के वंशज और अन्य कवियों द्वारा बहुधा-प्रशंसित थे। कुछ समय तक ये तमिल-साहित्य के संवर्द्धन के लिए पांड्य राजाओं द्वारा स्थापित तृतीय तमिल-विद्वत्-संघ के अध्यक्ष भी थे। तमिल-साहित्य के एक विशिष्ट लक्षण-ग्रंथ 'अकप्पोरुळ्' की इन्होंने गद्यात्मक व्याख्या की है। इसी व्याख्या में तीन तमिल-संघों की स्थापना के विवरण उपलब्ध होते हैं। ये वास्तव में महाकवि थे। इनके दो लघुप्रबंधात्मक काव्य प्राप्त हैं—(1) 'तिरुमुरुक-आट्रुप्पडै' (श्री सुब्रह्मण्य भगवान की प्रशस्ति) (317 पंक्तियाँ); (2) 'नेडु-नल्-वाडै' ('पवन-स्पर्श'—विरह-वर्णन) (188 पंक्तियाँ)। इनके विरचित 35 पद्य 'अष्ट संकलन' में उपलब्ध होते हैं।

उक्त काव्य-कृतियों में तमिल-काव्यशास्त्रीय परंपराओं के अनुसार 'अहम्' (आंतरिक प्रेमानुभूति) और 'पुरम्' (वीरता, दानशीलता आदि सामाजिक व्यापार) के वर्णन अत्यंत मनोहर हैं। 'मुरुग' भगवान की प्रशस्ति सुब्रह्मण्य-भक्तों का कंठहार है।

नक्सी कांथार माठ *(बं० कृ०)* [रचना-काल—1928 ई०]

'नक्सी कांथार माठ' कवि जसीमुद्दीन द्वारा रचित बंगाल के ग्राम-जीवन का बहुत ही सुललित आलेख है। संपूर्ण काव्य 14 सर्गों में बँटा हुआ है। काव्य का नायक है रूपा एवं नायिका सोना। क्षुद्र एवं साधारण ग्राम-जीवन की करुण कहानी के आश्रय से ग्राम्य शब्दावली में गाँव की कहानी की सृष्टि में सिद्धहस्त कवि ने इस वियोगांत काव्य की रचना की है। रूपा गाँव के किसान का लड़का है एवं किसान की ही लड़की है सोना। उनके जीवन का इतिहास नक्सी कांथा (फटे हुए कपड़ों के द्वारा सिली हुई फूलदार चादर) में लिपिबद्ध है। प्रेम-हँसी-विजड़ित दाम्पत्य जीवन का चित्र ही इस 'कांथा' (चादर) का प्रधान उपकरण है। उनके जीवन के सुख के दिन से यह 'कांथा' बनना शुरू होता है एवं विरह-कातरता में उसका पर्यवसान हो जाता है।

चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से इस काव्य में लेखक

ने असाधारण मनस्तत्व का परिचय दिया है और ग्राम्य परिवेश एवं ग्राम्य बिंबों का सफलता के साथ प्रयोग किया है। गौण कथा-धाराएँ जुड़ी हुई न होने के कारण कहानी की गति सरल रेखा के अनुरूप पाठकों के औत्सुक्य को बढ़ाती हुई आगे बढ़ती है। कहानी में नाटकीयता है एवं साथ ही गीति-काव्य का पूरा आस्वाद इसमें मिलता है। भाषा जीवंत एवं द्रुतगामी है। जसीमुद्दीन की कविता सायास नहीं, स्वतः स्फूर्त है। उनकी कवि-सत्ता गाँव के रूप, रस, शब्द, गंध, स्पर्श के साथ मिलकर एकदम एकाकार हो गई है। ग्राम की स्वल्प परिधि में ही कवि ने जीवन के शतदल की सुरभि फैलाकर अपनी काव्य-प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया है।

नक़्श-ओ-निगार (उर्दू० कृ०) [प्रकाशन वर्ष—1943 ई०]

'जोश' मलीहाबादी (दे०) की इस काव्य कृति में बिंब-विधान इतना सशक्त और सजीव है कि पाठक मंत्रमुग्ध हो जाता है। भाषा-शैली और प्रतीकात्मकता की दृष्टि से 'जोश' पर सुप्रसिद्ध फारसी कवि 'हाफिज' का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ की कविताएँ इस संग्रह की शोभा हैं। शृंगार और यौवन का विषय भी 'जोश' साहब का विशिष्ट विषय है। अतः इस विषय से संबद्ध सजीव कविताओं की भी इसमें कमी नहीं है। 'यह कौन उठा है शरमाता', 'उठती जवानी', 'यह नज़र किसके लिए है', 'जमना के किनारे', 'गंगा के घाट पर', 'जंगल की शहज़ादी', 'कोहिस्तान ए-दकन की औरतें' और 'जवानी का तकाज़ा' आदि कविताएँ अत्यंत सरस सुमधुर और सजीव हैं। 1927 ई० से 1935 ई० तक रचित गज़लें और कविताएँ इस काव्य-संग्रह में संगृहीत हैं।

नगीनदास पारेख *(गु० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत समीक्षा-ग्रंथ 'अभिनवनो रस-विचार अने बीजा लेखो' के लेखक नगीनदास पारेख पिछली अर्द्ध-शती से शब्दोपासना में संलग्न हैं। इसी के फलस्वरूप इनके लगभग 75 ग्रंथ गुजराती भाषा को प्राप्त हुए हैं। इनमें लघुग्रंथ, बृहद्ग्रंथ, मौलिक, संपादित, अनूदित एवं रूपांतरित सभी प्रकार की कृतियाँ हैं। नगीनदास पारेख ने गुजरात विद्यापीठ और शांतिनिकेतन में शिक्षा ग्रहण की है। इन पर विशेषतः महात्मा गांधी (दे०) तथा गुरुदेव रवींद्रनाथ (दे०) का प्रभाव पड़ा है। ये गुजराती भाषा-साहित्य के प्राध्यापक हैं।

नगीनदास भाई मुख्य रूप से आलोचक हैं। 'परिचय और परीक्षा', 'स्वाध्याय और समीक्षा', 'अभिनव नो रस विचार' वगैरा इनके समीक्षा-ग्रंथ हैं। इनमें विचारों और निर्णयों की स्पष्टता, नीरक्षीर-विवेक की कौशिकी दृष्टि, सहृदय की उदारता और पंडित की प्रज्ञा पाई जाती है। 'ग्रंथकीट' के उपनाम से इन्होंने गुजराती कृतियों के जो विवेचन-विश्लेषण किए हैं उनमें ये जाग्रत साहित्य-प्रहरी दृष्टिगत होते हैं। नगीनदास भाई का अन्य महत्वपूर्ण कार्य बँगला और अँग्रेज़ी भाषा के साहित्यशास्त्र-विषयक तथा विशिष्ट चिंतन एवं विचार-प्रधान ग्रंथों का गुजराती में प्रामाणिक अनुवाद है। उक्त भाषाओं की कहानियों और उपन्यासों का भी इन्होंने रूपांतर किया है। इनकी अनूदित रचनाओं में मूल कृतियों का सा रस प्राप्त होता है। नगीनदास पारेख विद्वत्ता, सन्निष्ठा और सूक्ष्म चिंतन के कारण सर्वत्र समादृत हैं।

नगेंद्र (हिं० ले०) [जन्म—1915 ई०]

इनका जन्म अलीगढ़ ज़िले के अतरौली गाँव में हुआ। इन्होंने अँग्रेज़ी तथा हिंदी में एम० ए० करने के अनंतर हिंदी में डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की। यद्यपि इनके साहित्यिक जीवन का आरंभ काव्य-रचना से हुआ तथा इनकी प्रथम प्रकाशित कृति 'वनमाला' (1937) काव्य-संकलन ही है, किंतु ये बहुत शीघ्र ही आलोचना की ओर प्रवृत्त हो गए और इस काव्य-संकलन के एक वर्ष बाद ही छायावादी (दे० छायावाद) कवि सुमित्रानंदन पंत (दे०) के काव्य-सौंदर्य का सोदाहरण तथा सप्रमाण विवेचन करने वाली इनकी एक महत्वपूर्ण कृति 'सुमित्रानंदन पंत' (1938) शीर्षक से प्रकाशित हुई जिसका नोटिस लेते हुए छायावाद के कट्टर आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) को भी यह लिखना पड़ा कि छायावाद की रचना-प्रक्रिया को भली भाँति स्पष्ट करने वाली यह पहली ठिकाने की पुस्तक है। तदनंतर इन्होंने 'साकेत : एक अध्ययन' (1939) में सृजन-प्रेरणा, कथावस्तु, चरित्र-सृष्टि, शैली और प्रसाधन आदि विभिन्न दृष्टियों से 'साकेत' (दे०) का मूल्यांकन करते हुए अपनी सूक्ष्म पकड़ तथा स्वच्छंद प्रतिपादन शैली का परिचय दिया। इसके बाद इनकी आलोचना-पद्धति पर फ्रायडीय मनोविज्ञान का प्रभाव परिलक्षित होता है जिसकी स्पष्ट छाप 'आधुनिक हिंदी नाटक' (1940) में देखी जा सकती है। डी० लिट्० की उपाधि के

लिए लिखे गए शोध-प्रबंध 'रीतिकाव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता' से इनका झुकाव सैद्धांतिक आलोचना की ओर हो गया तथा इन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र का गहन अध्ययन-मनन करते हुए उसके सिद्धांतों का तर्कपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया। इन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों—यथा संस्कृत के 'ध्वन्यालोक' (दे०), 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' (दे०), 'वक्रोक्तिजीवित' (दे०) तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अंतर्गत अरस्तू के काव्यशास्त्र और लोंजाइनस के 'काव्य में उदात्त तत्त्व' आदि ग्रंथों के अनुवाद तैयार कराए और उन पर विस्तृत विश्लेषणात्मक भूमिकाएँ लिखकर व्याख्यान, विश्लेषण एवं तुलना द्वारा दोनों के समान तत्त्वों की खोज का सफल एवं स्तुत्य प्रयत्न किया। इन्होंने अनेक महत्व-पूर्ण काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का प्रणयन भी किया जिसका प्रारंभ 'भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका' से माना जा सकता है। इसकी चरम परिणति 'रस-सिद्धांत' (दे०) (1964) में हुई है जिसमें इन्होंने इसके बाहर न तो काव्य की कोई गति मानी है और न उसकी कोई सार्थकता। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांतों का परिचय देने के लिए इन्होंने 'काव्य-बिंब' (1967) तथा 'नयी समीक्षा : नये संदर्भ' (1970) पुस्तकों का प्रणयन किया। पुस्तकाकार कृतियों के साथ-साथ इन्होंने समय-समय पर साहित्यिक समस्याओं, महत्वपूर्ण काव्यकृतियों तथा शोध-संबंधी विषयों पर अनेक महत्वपूर्ण निबंधों की रचना भी की है। प्रारंभ में ये निबंध 'विचार और अनुभूति', 'विचार और विश्ले-षण', 'अनुसंधान और आलोचना', 'आलोचक की आस्था' आदि में प्रकाशित हुए तथा बाद में इनका बृहदाकार सम-वेत संकलन 'आस्था के चरण' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। निबंध तथा समालोचना के अतिरिक्त इन्होंने यात्रावृत्त तथा संस्मरणात्मक रेखाचित्र भी लिखे हैं जो क्रमशः 'अप्रवासी की यात्राएँ' तथा 'चेतना के बिंब' में संकलित हैं। समग्रतः ये हिंदी के मूर्धन्य आलोचक हैं।

नङ्ङेमवकुट्टि *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1959 ई०]

ओळप्पमण्णा (दे०) का खंडकाव्य। इसमें एक यथास्थितिवादी नंपूतिरि परिवार की कन्या के गर्भवती होने और घर से निकाले जाने की कथा है। नवजात शिशु के साथ घर वापस आने पर उसके माता-पिता मूक वेदना का अनुभव ही कर पाते हैं, वे निष्क्रिय रह जाते हैं और 'नङ्ङेमवकुट्टि' वापस चली जाती है।

अंध समाज-नीति की जकड़न में घुटने वाले मानव-हृदय की पीड़ा का वर्णन इस काव्य का विषय है। नंपूतिरि समाज में महिलाओं द्वारा सही जाने वाली यात-नाएँ कई कवियों का प्रिय विषय रही हैं, परंतु एक खंड-काव्य के रूप में इस विषय का प्रस्तुतीकरण केवल ओळप्पमण्णा द्वारा ही हुआ है। इस काव्य की दूसरी विशेषता इसमें प्रयुक्त 'गायत्र' छंद है जो अनुष्टुप छंद के तीन पादों से बना 'असममित' छंद है। बाद में इस छंद को बहुत लोकप्रियता प्राप्त हुई। आधुनिक काल के खंडकाव्यों में 'नङ्ङेमवकुट्टि' का ऊँचा स्थान है।

नच्चिनार-किनियर् *(त० ले०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

'तोलकाप्पियम्' (दे०) नामक तमिल लक्षण-ग्रंथ के व्याख्याताओं में ये भी एक हैं। इनका यह साहि-त्यिक उपनाम प्रतीत होता है जिसका अर्थ है—'सुहृत्-प्रिय'। 'तोलकाप्पियम्' की अनेक व्याख्याओं में से इनकी तथा 'इलमपूरणर्' (दे०) की ही व्याख्याएँ पूरी उपलब्ध हुई हैं। इन्होंने स्थान-स्थान पर 'इलमपूरणर्' के कथन का खंडन किया है। अतः इनका समय बाद का विदित होता है। इनकी भाषा-शैली प्रौढ़ और सुगठित है। 'तोलकाप्पियम्' के तृतीय भाग—काव्यशास्त्र—की व्याख्या अत्यंत उपयोगी और ऐतिहासिक महत्व की है। इनकी व्याख्याओं में अनेक अनुपलब्ध संघकालीन कृतियों के अंश उद्धरण-रूप में उपलब्ध होते हैं।

नजरुल इसलाम *(बँ० ले०)* [जन्म—1899 ई०; मृत्यु—1976 ई०]

विद्रोही कवि नजरुल इसलाम बंगला काव्य-जगत् के ऐसे विलक्षण कवि हैं जिनके प्रथम काव्य-संग्रह 'अग्निवीणा' (1922) की भाव-झंझा से ही समस्त बंगाल चकित हो उठा था और पहले ग्रंथ के प्रकाशन से ही जिन्होंने बंगालियों के हृदय में स्थान बना लिया था। इन्होंने सांप्रदायिक भेदभाव से अलग होकर भारतवासियों को स्वाधीनता का मंत्र पढ़ाया था। पाक्षिक पत्रिका 'धूम-केतु' (1922) के प्रकाशन पर इन्हें जेल जाना पड़ा था। इनके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं : अग्निवीणा (1922), 'दोलन चांपा' (1923), 'विषेर बाँशी' (1924), 'भांगार गान' (1924), 'फणिमनसा' (1924), 'पूरेर हाओआ' (1925), 'संध्या' (1929), 'सुराणाकी' (1932),

'जुलफिकार' (1932), 'सिंधु हिल्लोल' आदि ।

स्वाधीनता-संग्राम के उस युग मे इनके काव्य मे समग्र युग का प्राण स्पदित हो उठा था । इनकी कविता मे निर्जीव, निश्चेष्ट, निष्प्रेषित मानव-मन के विरुद्ध चित्त की असहिष्णुता एव विद्रोह प्रकट हुआ है । मुसलमान होने पर भी इन्होने रक्ताबर-धारिणी माँ को लेकर कविता की है और दुर्गापूजा के अवसर पर 'आगमनी' कविता लिखी है । इनकी कविता मे धार्मिक अधविश्वासो के प्रति गहरा व्यग्य है और जाति की गुलामी के प्रति निदारुण कशाघात । इस प्रकार की विद्रोहात्मक, ध्वसात्मक, आवेग-उच्छ्वसित कविता की रचना करते हुए पता नही कब कवि ने प्रेम का मार्ग पकडा । इनकी प्रेम-कविताएँ बँगला-काव्य की श्रेष्ठ सपदा हैं और इस प्रकार की कविताएँ लिखकर इन्होने अति-आधुनिक कवियो का पथ-प्रदर्शन किया है । इनकी प्रेम-कविताओ मे देह की स्तुति है परतु कही भी ये सयमहीन नही हुए हैं । इनकी कविता की विशिष्टता इनके छदो की गति और वाक्भगिमा की ओजस्विता मे निहित है । असहयोग आदोलन के समय बँगला साहित्य-क्षेत्र मे जो विद्रोह-अग्नि धधक उठी थी बहुताश मे उसका श्रेय नजरुल को ही प्राप्त है ।

नजाबत *(प० ले०)* [समय—अठारहवी शती का मध्यकाल]

पजाबी 'वार-काव्य' (दे०) के उत्कृष्ट रचयिताओ मे नजाबत कवि का नाम महत्वपूर्ण है । इनके जन्म-समय और स्थान के सबध मे कोई प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नही है । पजाबी-साहित्य के विभिन्न इतिहास-ग्रथो मे इन्हें ज़िला शाहपुर के 'मटीला हरला' नामक स्थान का निवासी बताया गया है जो 'हरल राजपूतो की बस्ती थी । इसी आधार पर कवि नजाबत के भी हरल राजपूत होने का अनुमान लगाया जाता है । कहते है, कुछ समय पश्चात् ये 'पिंडी चिरागशाह' (वर्तमान रावलपिंडी) के सस्थापक सैयद शाह चिराग के शिष्य बन गए । इनके द्वारा लिखित 'वार नादरशाह' (दे०) के नाम से एक रचना मिलती है जो पजाबी साहित्य मे गुरु गोविंदसिंह (दे०)-कृत 'चडी दी वार' (दे०) के पश्चात् दूसरी महत्वपूर्ण वार-कृति मानी जाती है । कुछ विद्वान इस युद्ध-काव्य का रचयिता सैयद शाह चिराग को मानते हैं । उनका अनुमान है कि नजाबत ने अपने गुरु की रचना को ही यत्किंचित् सशोधन के साथ अपने नाम से प्रचारित कर दिया । किंतु यह अनुमान निराधार प्रतीत होता है क्योकि समूचे काव्य के अनेक पद्यो मे कवि नजाबत का नामोल्लेख मिलता है जो छद-रचना मे पूरी तरह सगत बैठता है ।

'वार बादशाह' (दे०) के अध्ययन से पता चलता है कि नजाबत एक बहुज्ञ, अनुभवशील एव उदार आस्थावादी कवि थे ।

'नज़ीर' अकबराबादी *(उर्दू० ले०)*

इनका पूरा नाम वली मुहम्मद और पिता का नाम मुहम्मद फारूक था । इनका जन्म दिल्ली मे हुआ । अपने पिता के बारह बच्चो मे से केवल यही बच रहे थे, इसलिए इनके पिता इन्हे बहुत प्यार करते थे । अहमद-शाह अब्दाली के आक्रमण के समय ये दिल्ली से आगरा चले गए और वही रहने लगे । इन्होने थोडे दिनो तक मथुरा मे अध्यापन-कार्य भी किया । ये स्वभाव से बहुत मिलनसार व्यक्ति थे । अपने जीवन मे इन्हे सगीत, व्यायाम और खेल-तमाशे आदि के प्रति विशेष रुचि थी किंतु वृद्धावस्था मे ये बहुत सादा तथा सूफी स्वभाव के बन गए थे ।

नज़ीर का काव्य उपदेशो से ओतप्रोत है । इसके अध्ययन से ऐसा लगता है जैसे कोई महामानव अथवा सत प्रवचन कर रहा हो । दस-ग्यारह कविताएँ तो ऐसी हैं जिन्हे फकीर लोग मधुर स्वर में पढकर श्रोताओ को मंत्रमुग्ध कर देते हैं ।

इनकी भाषा सरल तथा सहज प्रसाद गुण-सपन्न है । इनके काव्य मे सूफियाना रग और नैतिकता का प्राबल्य है । नज़ीर अपनी उदार दृष्टि, स्वतत्र विचारो तथा निष्पक्ष वृत्ति के कारण अन्य कवियो से पृथक् स्थान के अधिकारी बन गए हैं । ये एक शुद्ध भारतीय कवि हैं । इनके भाव, भाषा, विषय सभी भारतीय रग मे रँगे हैं । इन्होंने जन-जीवन का अत्यत मार्मिक वर्णन किया है ।

नज़ीर अहमद *(उर्दू० ले०)* [*जन्म—1826 ई०, मृत्यु—1912 ई०*]

पिता का नाम—मौलवी सआदतुल्ला खाँ । ये उर्दू के उच्चकोटि के गद्य लेखक थे । ये उर्दू के सबसे पहले उपन्यासकार भी थे । 'मरात उल-उरूस', 'बनात-उल-नअश', 'तौबा तुलनसूह', 'इब्न-उल-वक्त' आदि इनके उपन्यास हैं । इन्होंने धर्म, नीति और व्याकरण पर अनेक पुस्तकें

का प्रणयन भी किया। 'तर्जुमा कुरान शरीफ़' इनकी प्रसिद्ध कृति है। वे कुशल अनुवादक भी थे। अपने इसी गुण के कारण एक साधारण अध्यापक के पद से उन्नति करते-करते डिप्टी कलक्टर हो गए थे और बाद में अंग्रेज़ी सरकार की नौकरी छोड़ कर आठ सौ रुपये मासिक वेतन पर हैदराबाद चले गए थे। ये अंग्रेज़ी से उर्दू अनुवाद करने में भी सिद्धहस्त थे। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर अंग्रेज़ी शासन ने इन्हें 'शम्स-उल-उलेमा' (विद्या-मार्तंड) की उपाधि प्रदान की थी। ये उच्चकोटि के वक्ता भी थे। वृद्धावस्था में इन्हें काव्य-रचना के प्रति भी मोह हो गया था परंतु इनकी ख्याति का मूल कारण इनका अनुवाद-कार्य और उपन्यास-लेखन ही है। भारतीय दंडसंहिता का अनुवाद अंग्रेज़ी से उर्दू में तत्कालीन शासन द्वारा इन्हीं से कराया गया था। इनके उपन्यासों में समाज-सुधार की प्रवृत्ति अत्यंत मुखर है। इस्लामी सभ्यता और संस्कृति के सजीव चित्रण में ये सिद्धहस्त हैं। 'मरात-उल-उरूस' में इन्होंने नारी-भावना का सुंदर चित्रण किया है। इनका गद्य सप्रवाह और मुहावरेदार है। इनके लेखों में कहीं-कहीं शिष्ट हास्य भी दृष्टिगोचर होता है।

नज़्म *(उर्दू० पारि०)*

वह शेर जो छंदोबद्ध हो तथा जिसमें तुक (क़ाफ़िया) मौजूद हो, नज़्म कहलाता है। शेर के लिए छंदोबद्ध होना आवश्यक नहीं समझा जाता किंतु नज़्म के लिए छंद अनिवार्य है। इसी प्रकार क़ाफ़िया (तुक) शेर के लिए ज़रूरी नहीं किंतु नज़्म के लिए ज़रूरी है। नज़्म अंग्रेज़ी शब्द 'वर्स' का पर्याय है जबकि शेर को पर्यायवाची शब्द 'पोयट्री' समझना चाहिए। नज़्म को पद्य भी कह सकते हैं और यह 'नस्र' (गद्य) का विलोम शब्द है।

नज़्म-उन्निसा *(उर्दू० पा०)*

'नज़्म-उन्निसा' मीर हसन की मसनवी 'सिह्‌र-उल-बयान' की एक प्रभावशाली पात्र है जिसमें जीवंतता, चतुरता तथा सक्रियता का समन्वय है। वफ़ादारी और बलिदान इसके स्वभाव के विशेष गुण हैं। इसके लिए शृंगारिक भावनाओं का कुछ महत्व नहीं है। यह एक अविवाहिता कन्या है और 'बद्र-ए-मुनीर' का साज-शृंगार करने का कर्तव्य पालन करती है। बेनज़ीर और बद्र-ए-मुनीर की प्रथम भेंट के समय यह बद्र-ए-मुनीर को मज़े लूटने के लिए उकसाती है। यह प्रेरणा कुछ विचित्र-सी लगती है। लगता है, वृद्धावस्था में भी कवि का यौवन नज़्मुन्निसा के मुख से बोल उठा है।

नज़्मुन्निसा जीवन को हँसी-ख़ुशी काटने में विश्वास करती है। यह विरह-पीड़िता बद्र-ए-मुनीर को बड़े स्नेह तथा युक्तिपूर्ण ढंग से धीरज बँधाने का प्रयत्न करती है और अकेली शाहज़ादा बेनज़ीर को ढूँढ़ने निकल पड़ती है।

इसके चरित्रांकन में जहाँ एक ओर विवाह, दृढ़ता, और साहस का परिचय मिलता है वहीं आचरण के कुछ स्तरों पर अनौचित्य का पुट बड़ा स्पष्ट और सुनिश्चित है।

नटराजन्, क० से० *(त० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

इनका जन्म जाफ़ना (लंका) में हुआ था। इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ कविता-रचना द्वारा किया था। इन्होंने कुछ प्राचीन तमिल-काव्यों के संपादन और प्रकाशन का कार्य किया है। नटराजन् ने उत्तरी लंका के इतिहास पर कुछ प्रबंध लिखे हैं। इनकी कविताओं का एकमात्र प्रकाशित संग्रह है—'शिलंबोलि'। लंका में रचित तमिल काव्य के इतिहास में इसका विशिष्ट स्थान है। नटराजन् का लंका के तमिल कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

नटसार्वभौम *(क० कृ०)*

यह कन्नड के श्रेष्ठ उपन्यासकार स्व० अ० न० कृष्णराय (दे०) के श्रेष्ठ उपन्यासों में से है। अ० न० कृ० ने हर प्रकार की कला के धनियों के जीवन पर उपन्यास लिखे हैं। 'संध्याराग' (दे०) में एक गायक का जीवन है तो 'उदयराग' में एक चित्रकार का। उसी प्रकार यहाँ एक नट के जीवन का मर्मस्पर्शी चित्रण है। उन दिनों अभिनेताओं का उतना मान नहीं था जितना आज है। उसमें भी नाटक में अभिनय को वृत्ति बनाने वालों का जीवन और भी घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। जीवन संघर्षों का जीवन था। राजा इसका नायक है। वह अपनी अभिनय-कला के कारण कर्नाटक का नट-सम्राट बनता है। किंतु ऐसा बनने में उसका जीवन किन-किन उतार-चढ़ावों में गुज़रा—इसका भी चित्रण है। राजा कला का उपासक

है। कला के साथ ही उसमे कई दुर्व्यसन भी हैं। उसका प्रेम कितनी ही नटियो व गृहिणियो के साथ होता है। ऐसी जगहो मे वह एक 'नट' नही, 'विट' के रूप मे आ जाता है। एक दृष्टि से इसे हम यथार्थवादी उपन्यास कह सकते है। स्वातत्र्य-पूर्व कर्णाटक के रगमच का इतिहास इसमे निहित है। एक जन्मजात नट होने के कारण उसकी हर कही माँग होती है। वह एक नही, दर्जनो कपनियो मे जाता है । कपनी-मालिको की लपटता, *स्वार्थपरता आदि का अत्यत सजीव वर्णन हुआ है।* अत मे वह स्वय एक नाटक-कपनी खोलकर उसे आदर्श ढग से चलाने का प्रयत्न करता है। इसमे उसके साथी कलाकार तथा अभिनेत्री व प्रेमिका नीला उसका साथ देते हैं। इस प्रकार उसका सारा जीवन रगभूमि की सेवा मे बीत जाता है। अत मे सघर्षो व अपने सयमरहित आचरण के कारण वह जल्दी ही कालकवलित हो जाता है । एक अभिनेता के जीवन को यहाँ लेखक ने अत्यत आत्मीयता से चित्रित किया है। उनकी भाषा मे एक विलक्षण जादू है। इस उपन्यास का स्थान कन्नड के उपन्यास-साहित्य मे बहुत ऊँचा है।

नटेश शास्तिरियार् *(त०ले०)* [जन्म—1859 ई०, मृत्यु—1906 ई०]

ये 'पडित नटेश शास्त्रिर' नाम से विख्यात है। इनका जन्म जिला तिरुच्ची म हुआ था। कुभकोणम और मद्रास के गवर्नमेंट कालेजो मे अध्ययन कर ये स्नातक बने थे, तथा 1881 ई० मे भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग मे कार्य करने वाले 'राबर्ट शिवल' के अधीन नौकरी पर लगे थे। इनके तमिल और सस्कृत के पाडित्य से प्रभावित होकर सरकार ने इन्हे 'पडित' उपाधि दी थी। मैसूर रियासत के पुरातत्त्व-विभाग मे इन्होंने कार्य किया था। इसके बाद ये कुछ समय तक कारागार अधीक्षक और रजिस्ट्रार भी रहे। तमिल, सस्कृत, अंग्रेजी के अतिरिक्त अरबी, फारसी, हिंदी, फ्रेंच, जर्मन आदि अठारह भाषाओ का बहुत अच्छा परिचय इन्होंने प्राप्त किया था। इनके विरचित अनेक ग्रथ है जिनका विषय-वैविध्य तथा गभीर प्रतिपादन इनके पाडित्य तथा परिश्रम का साक्षी है। अंग्रेजी मे—'हिंदू त्योहार', 'दक्षिण भारत की कथाएँ', 'तेनालि राम की कहानियाँ' इत्यादि प्रसिद्ध हैं। सस्कृत मे *'शाकुतल नाटक विमर्शनम्'*, *'ईर्याचरित्र-विमर्शनम्'*, 'रघुवश विमर्शनम्' आदि विख्यात हुए। तमिल म वाल्मीकि रामायण', 'दो अनाथ बालक', 'दक्षिण की प्राचीन कथाएँ', 'ईसप की कथाएँ' आदि अनेक कृतियाँ प्रसिद्ध है।

नट्रिणै *(त० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से ईसा की दूसरी शती तक]

'नट्रिणै' सघकालीन अष्ट पद्य-सग्रहो (एट्टुत्तोगै) मे सबसे प्राचीन एव प्रमुख है। इसम 9 से लेकर 12 *पक्तियो तक के 401 पद हैं।* इन पदो के रचयिता 187 कवि है। इसमे जीवन के आतरिक पक्ष का वर्णन होने के कारण इसे 'अहम्' (दे० अहप्पोरुल) काव्य मे परिगणित किया जाता है। इस कृति का मूल भाव है— प्रेम। इसमे प्रेम की विभिन्न दशाओ तथा पाँचो भूभागो मे प्रेमियो के जीवन का विस्तृत वर्णन है 'नट्रिणै' मे सयोग और वियोग-शृगार के अनेक सुदर चित्र प्राप्त होत है। इस कृति मे तत्कालीन तमिल समाज मे प्रचलित 'मडल् अरुदन्' नामक प्रथा का वर्णन हुआ है। अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने मे असफल हो जाने पर प्रेमी ने ताड के पत्तो स बने एक घोडे पर सवार होकर गली गली घूमता था और प्रेमिका की प्राप्ति न होने पर आत्महत्या की धमकी देता था। ऐसा करने से उसे प्राय अपनी प्रेमिका की प्राप्ति हो जाया करती थी। इस क्रिया को 'मडल् अरुदल्' कहत है। *परवर्ती काल मे इस प्रकार के वर्णनो के अनुकरण पर* तमिल के भक्त कवियो ने 'मडल् नामक काव्य की रचना की जिनमे भक्त प्रभु द्वारा न अपनाए जाने पर आत्महत्या की धमकी देता है।

नण्बरुक्कु *(त० कृ०)*

यह डा० मु० वरदराजन (दे०) के निबधों का सग्रह है। इन निबधो मे उल्लिखित तीन पात्र हैं—वळवन, एपिल, और नबि। वळवन और एपिल युवा वर्ग के प्रतिनिधि हैं। नबि उनका पारिवारिक मित्र है। इस सग्रह के सभी निबध वळवन एव एपिल के नाम नबि के पत्रो के रूप मे लिखित हैं। सभी निबधो म युगीन सामाजिक समस्याओ का चित्रण है। शैली की नवीनता के कारण *इस कृति का तमिल निबध-साहित्य मे विशिष्ट स्थान है।*

नदी के द्वीप *(हि० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष 1951 ई०]

अज्ञेय (दे०) ने अपने इस उपन्यास मे प्रेम,

यौन-तृप्ति तथा विवाह-संबंधी समस्याओं की मनोविश्लेषणात्मक एवं फ्लैश बैक की शैली का प्रश्रय लेते हुए चंद्र माधव, भुवन (दे०), गौरा (दे०) तथा रेखा के माध्यम से उद्घाटित किया है। पूरा उपन्यास अनेक खंडों में विभक्त है और जिस खंड में जिस पात्र-विशेष को प्रमुखता मिली है उसके आधार पर ही उसका नामकरण किया गया है। इसमें कतिपय स्थलों पर वासनात्मक तथा कामोत्तेजनापूर्ण चेष्टाओं का ब्यौरेवार वर्णन है जिसके फलस्वरूप अनेक विद्वानों ने इस पर अश्लीलता का आरोप लगाया है। वस्तुतः यह उपन्यास सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों के उपस्थापन के स्थान पर कतिपय व्यक्तियों के निजी जीवन की समस्याओं तथा मानसिक अंतर्द्वंद्व को रूपायित करता है और इस दृष्टि से इसे एक सर्वथा सफल कृति माना जा सकता है।

नदी सुंदरी *(तें० कृ०)*

'नदी सुंदरी' अब्बूरि रामकृष्णराव (दे०) की सुप्रसिद्ध नाटिका है। इसमें इन्होंने पौराणिक इतिवृत्त को आधार-रूप में ग्रहण कर, उसमें अपनी कल्पना-प्रतिभा का संयोजन करके इसके कथानक का निर्माण किया है। कोमल एवं मधुर भावनाओं की प्रधानता तथा रोचक प्रसंगों के निर्माण की चतुरता के कारण यह नाटिका पाठक के हृदय को भावावेग से आंदोलित करती है। इसके पात्र पौराणिक होकर भी नवीन भावनाओं एवं विचारों से पूर्ण हैं।

नन्नयभट्टु *(तें० ले०)* [समय—ग्यारहवीं शती ई०]

नन्नयभट्टु से पूर्व तेलुगु में साहित्यिक रचना का कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। इसलिए नन्नयभट्टु को ही तेलुगु का प्रथम कवि माना जाता है। 'आंध्र महाभारतमु' (दे०) की तेलुगु में आरंभ करने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। इस से पहले तेलुगु भाषा का कोई व्याकरण नहीं था, कोई साहित्यिक परंपरा प्रचलित नहीं थी, प्रतिष्ठित छंदोविधान भी नहीं था और यहाँ तक कि संस्कृत की तुलना में तेलुगु को साहित्यिक क्षेत्र में कोई सम्मान भी प्राप्त नहीं था। इस वातावरण में नन्नयभट्टु को अपनी भाषा को परिमार्जित, परिनिष्ठित एवं सुव्याकृत रूप देकर उसे उत्कृष्ट साहित्य का सक्षम साधन बनाना और आगे का मार्ग प्रशस्त करना आवश्यक प्रतीत हुआ। 'आंध्र महाभारतमु' की रचना का श्रीगणेश कर इन्होंने यही काम किया। संस्कृत के श्लोक से ही 'आंध्र महाभारतमु' का आरंभ होता है। नन्नयभट्टु की भाषा में संस्कृत की प्रांजलता भी है और साथ-साथ तेलुगु की निजी मनोहारिता भी। दोनों भाषाओं के शब्दों को तेलुगु के आदि कवि ने इस प्रकार मिला दिया है कि आज भी साधारण पाठक को पता नहीं चलता कि कौन-सा शब्द संस्कृत का है और कौन-सा तेलुगु का। प्रसंगोचित भाषा का प्रयोग नन्नयभट्टु की एक और विशेषता है। वस्तुव्यंजना की कोमल कमनीयता के साथ शब्द-योजना की रमणीयता की ओर भी नन्नयभट्टु ने काफ़ी ध्यान दिया है। छंदों के प्रयोग में संस्कृत के छंदों के अलावा उन दिनों के लोकगीतों में प्रचलित छंदों को परिमार्जित रूप देकर उनका यथेष्ट प्रयोग किया गया है। भाषा को व्याकृत रूप देने के लिए नन्नयभट्टु ने 'आंध्र शब्द चिंतामणि' (दे०) नामक व्याकरण-ग्रंथ की भी रचना की थी। इसको 'प्रक्रिया कौमुदी' भी कहा जाता है। संस्कृत की सूत्र-शैली में संस्कृत में ही यह लिखा गया था। इसी के आधार पर नन्नयभट्टु को 'वागनुशासन' कहा जाता है। 'आंध्र महाभारतमु' में नन्नयभट्टु के द्वारा प्रस्तुत प्रसंगों में शकुंतला और दुष्यंत का प्रसंग तथा द्रौपदी के चीर-हरण का प्रसंग उल्लेखनीय हैं। संवादों में पात्रोचित भाषा का प्रयोग करते हुए प्रसंगोचित मर्यादा का ठीक-ठीक पालन किया गया है। नन्नयभट्टु की रचना में उनके व्यक्तित्व की विशुद्धता स्पष्ट झलकती है। ये वैदिक धर्म के अनुयायी थे और राज महेंद्री के शासक राजराज नरेंद्रुडु के दरबार में राज कवि थे। उन्हीं की इच्छा से इन्होंने अपने अमर ग्रंथ 'महाभारत' की रचना की थी।

'नन्ना', नंदलाल कौल *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1877 ई०; मृत्यु—1940 ई०]

इनके जीवन के संबंध में कोई विशेष प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं। 1931 ई० से पहले ही कवि और नाटककार के रूप में ये प्रसिद्ध हो चुके थे। 'सतच कहवट' 'रामुन राज', 'प्रह्लाद भगत' नाम के कश्मीरी नाटकों की इन्होंने रचना की। इनमें से राजा हरिश्चंद्र के जीवन से संबद्ध नाटक 'सतच कहवट' (सत्य की कसौटी) रघुनाथ मंदिर, श्रीनगर के मंच पर खेला भी गया था। इन्होंने 'दर लोल' आदि कश्मीरी कविताओं की भी रचना की। इनकी शैली में जहाँ भाषा की सरलता पाई जाती है, वहीं प्रसंग-

गर्भत्व के भी खूब उदाहरण मिलते हैं। कश्मीरी भाषा के नाटककार के रूप मे इनका उत्कृष्ट स्थान है।

नन्नेचोड्डु *(ते० ले०)* [समय—1080-1125 ई०]

ये तेलुगु वीरशैव-सप्रदाय के सर्वप्रथम कवि थे। ये ओरयूरु के सूर्यवशी क्षत्रिय राजा थे जिन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा के कारण 'कविराज शिखामणि' तथा वीरता एव पराक्रम के कारण 'टेंकणादित्युडु' की उपाधियाँ प्राप्त की थी। नन्नेचोड्डु सस्कृत भाषा के भी विद्वान् थे। इन्होने शैवमत के प्रचार के लिए शिव सबधी काव्य 'कुमारसभवमु' (दे०) की रचना की जो तेलुगु साहित्य मे अत्यत लोकप्रिय हुआ। परतु यह काव्य कालिदास (दे०) के 'कुमारसभवम्' (दे०) का अनुवाद नही है। इसके अतर्गत दक्षिण भारत मे प्रचलित अनेक शिव सबधी कथाओ का समावेश किया गया है। यह बारह सर्गों का प्रबध काव्य है जिसमे कवि ने सस्कृतनिष्ठ तेलुगु के स्थान पर सरल एव स्वाभाविक तेलुगु का प्रयोग किया है। इस से तेलुगु के प्रति कवि का प्रेम तथा अपने सदेश को साधारण जनता तक पहुँचाने का आग्रह व्यक्त होता है। इनकी कविता मे रजोगुण के साथ ही भक्ति का भी तीव्र आवेग तथा अकृत्रिम काव्य प्रतिभा का परिचय मिलता है।

कुछ विद्वानो का मत है कि ये नन्नयभट्टु (दे०) से भी पहले के कवि हैं, अतः इन्ही को तेलुगु के आदिकवि होने का श्रेय मिलना चाहिए। तेलुगु के आदिकवि ये न भी हो, किंतु अनेक विषयो के प्रवर्त्तक अवश्य हैं। तेलुगु के परवर्ती प्रबध-काव्यो का स्वरूप इनके 'कुमार सभवमु' के आधार पर ही स्थिर हुआ है तथा तेलुगु-कविता को सस्कृत शब्दो की अनिवार्यता से बचाकर उसे सरल-स्वाभाविक बनाने की दिशा मे इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

नवबाबूविलास *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-आरभ—5 मार्च, 1822 ई०]

'समाचार-चद्रिका' पत्रिका के प्रख्यात सपादक भवानीचरण वद्योपाध्याय ने अपनी 'कलिकाता कमलालय' (1813 ई०) पुस्तक मे तीक्ष्ण व्यग्य-विनोद का सुदर परिचय दिया है। मुफस्सिल तथा कलकत्ता निवासियो के सलापो के माध्यम मे उन्होंने अजब शहर कलकत्ते का वर्णन किया है। 'नवबाबूविलास' ग्रथ मे भी कलकत्ता के धनी समाज के असगत आचरण के अद्भुत चित्र अकित हैं (1853 ई०)। इसके लेखक हैं प्रमथनाथ शर्मा। इस नाम को बहुत-से विद्वान् भवानीचरण का छद्मनाम मानते हैं। समसामयिक काल मे रचित भोलानाथ वद्योपाध्याय के 'नवबिबिविलास' (1852 ई०) ग्रथ की बात इस प्रसग मे स्मरण योग्य है।

नमिसाधु *(स० ले०)* [समय—1025-1075 ई०]

रुद्रट के 'काव्यालकार' (दे०) के टीकाकार नमिसाधु को श्वेतभिक्षु कहा गया है जिससे उनका श्वेताबर जैन होना सिद्ध होता है। ये थारापद्रनगर के श्रीशालिभद्र सूरि के शिष्य थे। इनका स्थितिकाल ग्यारहवी शती ई० का द्वितीय और तृतीय चरण है।

रुद्रट के 'काव्यालकार' पर नमिसाधु-कृत टीका का नाम 'टिप्पण' है जो 1068-69 मे लिखी गई। नमिसाधु प्राचीन ग्रथकार हैं। उन्होंने पूर्ववर्ती टीकाकारो का अनुसरण किया है—पूर्वामहामति विरचित वृत्त्यनुसारेण किमपि (वयामि) और उनकी व्याख्याओ से पाठ भी उद्धृत किए हैं। उनकी टीका सक्षिप्त तथा विषयानुकूल है, फिर भी उसमे अनेक उद्धरण मिलते हैं। उन्होंने भरत, मेधाविरुद्र, भामह, दडी (दे०) वामन आदि ग्रथकारो तथा 'अर्जुन-चरित' (आनदवर्धन (दे०), 'तिलकमजरी' (दे०) (धनपाल), मृच्छकटिक, (दे०) 'मेघदूत' (दे०), 'शिशुपालवध' (दे०) आदि ग्रथो का नामग्रहण किया है या उनसे उद्धरण लिये हैं। उन्होंने काव्यशास्त्र पर प्राकृत के एक लेखक 'हरि' का एक उद्धरण दिया है जिसमे रुद्रट की पाँच वृत्तियो के बजाय आठ वृत्तियो का उल्लेख किया गया है।

नम्माळ्वार *(त० ले०)* [समय—ईसा की नवी शती का प्रथम चरण]

आळ्वार सतो मे नम्माळ्वार का स्थान सर्वोपरि है। इनका जन्म तिरुक्कुरूर के एक अब्राह्मण परिवार मे हुआ था। विभिन्न कारणो से इन्हे शठकोपर, पराकुशर, मारन आदि नामो से पुकारा गया। नम्माळ्वार को साक्षात् विष्णु का अवतार माना जाता है। विभिन्न विद्वान् नम्माळ्वार को अवयवी तथा अन्य आळ्वारो को अवयव स्वीकार करते हैं। नम्माळ्वार ने 'तिरुवाय्मोऴि',

'तिरुविरुत्तम', 'तिरुवाशिरियम', तथा 'पेरिय तिरुवंदादि' नामक चार कृतियों की रचना की। 'तिरुविरुत्तम' में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक अथवा भगवद्प्रेम की व्यंजना है। 'तिरुवाशिरियम' का प्रमुख प्रतिपाद्य है ईश्वर-साक्षात्कार से उत्पन्न परमानंद का वर्णन। 'पेरिय तिरुवंदादि' में नम्माळवार ने ब्रह्म के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का चित्रण किया है इस कृति का साहित्यिक सौंदर्य भी अक्षुण्ण है। तिरुवाय्मोषि नम्माळवार की ही नहीं अपितु तमिल के वैष्णव-भक्ति साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण रचना है। दक्षिण का वैष्णव समाज नम्माळवार की इन रचनाओं को क्रमशः साम, ऋक्, यजुः और अथर्ववेद को सार मानता है।

नयनंदी *(अप० ले०)* [रचना-काल—ग्यारहवीं शती ई०]

नयनंदी निर्दोप एवं जगविख्यात मुनि थे। इन की 'सुदंसण-चरिउ' और 'सकल-विधि विधान-काव्य' (दे०) नामक दो कृतियाँ उपलब्ध हैं। इन्होंने 'सुदंसण-चरिउ' (दे०) की रचना 1043 ई० में राजा भोजदेव के शासन-काल में अवन्ती देश-स्थित धारा नगरी में की थी। ये कुदकुंदान्वय की आचार्य परंपरा में उत्पन्न माणिक्य नंदी त्रैविद्य के शिष्य थे। इन्होंने 'सुदंसण-चरिउ' की प्रत्येक संधि की पुष्पिका में अपने गुरु का नामोल्लेख किया है।

इन्होने अपने व्यक्तिगत जीवन के विषय में कोई जानकारी नही दी। ये काव्यशास्त्र और छंदःशास्त्र में निष्णात थे तथा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं के प्रकांड पंडित थे। इनके पाडित्य का प्रमाण इनकी कृति में स्थान-स्थान पर मिलता है। बाण और सुबंधु ने जिस क्लिष्ट और अलंकृत पदावली का गद्य में प्रयोग किया था, इन्होने उसी शैली का पद्य में सफलतापूर्वक निर्वाह किया है।

नयनंदी विनीत स्वभाव और धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। ये जिन-वर्णन को ही कविता का प्रयोग समझते थे।

नयसेन *(क० ले०)* [समय—बारहवी शती ई०]

नयसेन मध्यकालीस कन्नड साहित्य के सर्वश्रेष्ठ व्यंग्यकार हैं। ये जैनधर्मी थे और मुनि के नाम से विख्यात थे। इनकी प्रतिनिधि कृति है 'धर्मामृत' (दे०) जो एक चंपूकाव्य है। इसमें जैनियों में विख्यात 14 गुणव्रतों का आचरण कर सद्गति को प्राप्त करने वाले 14 महापुरुषों की कहानियाँ 14 आश्वासों में कही गई हैं। कन्नड साहित्य के आदिकाल अथवा जैनयुग में पुराण केवल तीर्थंकरों व चक्रवर्तियों पर लिखे जाते थे जो बहुत ही प्रौढ होते थे। इस कारण वे मामूली जनता की पहुँच से भी परे थे। किंतु जनसामान्य को ही दृष्टि में रखकर जैन-पुराण लिखने का श्रेय नयसेन को है। 'धर्मामृत' जनता के लिए लिखा कन्नड का सर्वप्रथम पुराण है। ग्रंथकार का दावा है कि उसने इसमें जैन धर्म का निचोड़ दे दिया है। इसमें उसकी कलादृष्टि के साथ लोकदृष्टि भी प्रकट हुई है। नयसेन बहुत बड़े क्रांतिकारी भी थे। इनके समय तक आते-आते कन्नड भाषा संस्कृत की स्वर्ण-शृंखला से जकड़ गई थी। नयसेन ने उसके विरुद्ध क्रांति का शंखनाद करते हुए कहा है—यदि संस्कृत शब्दों को कन्नड में प्रयुक्त करना हो तो वे शुद्ध संस्कृत में ही लिखा करें, शुद्ध कन्नड के साथ संस्कृत शब्दों को मिलाना घी और तेल के मिश्रण के समान है।

नयसेन जन्मजात कहानीकार थे। इनकी कहानियाँ मौलिक नहीं हैं। फिर भी मूल कथानक की नयी सृष्टि के द्वारा इन्होंने अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की है। एक लोककथाकार के कथन-कौशल, विडंबना, व्यंग्य, जनभाषा का निकट संपर्क तथा लोकजीवन का गाढ़स्पर्श—ये सभी बातें इनकी कहानियों में मुखर हो उठी है। नयसेन में धार्मिक अभिनिवेश अधिक है। इस कारण इनकी सहजता और सुंदरता में कहीं-कहीं व्याघात पहुँचा है। इनकी शैली की यह विशेषता है कि अपने कथानकों के बीच उपमाओं की झड़ी लगा देते हैं। इन परंपरित उपमाओं में औचित्य, सुरुचि और जीवन की गहराई है। कहीं-कहीं कथा की गति में ये बाधक बन गई हैं। इनकी भाषा कहावतों और मुहावरों से भरी हुई चलती भाषा है। जनता-कवि कहलाने के योग्य गुण उनमें विद्यमान है।

नरपति नाल्ह *(हिं० ले०)*

नरपति नाल्ह की प्रसिद्ध रचना 'बीसलदेव-रासो' (दे०) है। इसके रचना-काल के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कोई इसे 1016 ई० (संवत् 1073) की रचना मानते हैं और कोई 1155 अथवा 1156 ई० (संवत् 1212-1213) की। ग्रंथ के नायक विग्रहराज तृतीय का समय इतिहास के आधार पर 973-999 ई० (संवत् 1030-1056) माना जाता है और नरपति नाल्ह को यदि इनका

आश्रित कवि मानें तो 'बीसलदेवरासो' का रचना-काल 1016 ई० उचित प्रतीत होता है, और इस आधार पर नरपति नाल्ह हिंदी के प्रथम कवि ठहरते हैं; किंतु इस संबध मे निश्चयपूर्वक कुछ कह सकना सरल नही है, क्योंकि कुछ विद्वान् नरपति नाल्ह को विग्रहराज चतुर्थ (शासन-काल 1143-53 ई०) संवत् 1210-20) का समकालीन मानते है। ग्रंथ की भाषा मे अपभ्रंश रूप और हिंदी रूप दोनो का मिश्रण है। अतः इस ग्रंथ की भाषा को उस युग की भाषा का संधिस्थल कह सकते है। भाषा शुद्ध साहित्यिक नही है, राजस्थानी है। ग्रंथ का काव्य-सौदर्य मनमोहक एवं अनूठा है। इसका कथानक एक नवोढा प्रोषितपतिका की विरह-व्यंजना पर आधारित है।

नरसिंह मेहता *(गु० ले०)* [जन्म—1414 ई०, मृत्यु—1480 ई०]

'वैष्णव जन तो तेने रे कहिये'—इस प्रसिद्ध भजन के रचयिता गुजराती के आदि भक्त-कवि नरसिंह मेहता का जन्म जूनागढ (सौराष्ट्र) के निकटवर्ती ग्राम तलाजा मे हुआ था। बचपन मे ही इन्होंने अपने पिता विष्णुदास तथा माता दयाकुँवर को खो दिया था। मातृ-पितृ-विहीन बालक नरसिंह भाई-भाभी के सहारे जी रहा था। भाभी के व्यग्य वचनो से आहत हो नरसिंह ने घर छोड दिया। एक जीर्ण शिव-मदिर मे सात दिन तक ये शिवलिंग से लिपटे पडे रहे। प्रसन्न होकर शिवजी ने इन्हे कृष्ण की रासलीला दिखाई। भगवान पर इन्हे अटल विश्वास था।

नरसिंह मेहता के नाम से प्राप्त कृतियाँ हैं 'कुंवर बाई नु मामेरू', 'शृंगारमाळा', 'रास सहस्रपदी (दे०), 'सुदामा चरित्र', 'गोविंद गमन', 'सुरत संग्राम', 'हारमाळा, 'शामळशा नो विवाह', 'हुंडी', 'दाण लीला', 'रास लीला', 'चातुरी षोडशी' आदि। इनमे से 'हुंडी', 'सुदामा चरित्र,' कुंवर बाई नु मामेरू', 'हारमाळा' तथा 'शामळशा नो विवाह' अत्यंत प्रसिद्ध कृतियाँ हैं।

संत, भक्त व सुधारक नरसिंह मेहता ने जाति-पाँति का भेद-भाव दूर करने तथा अस्पृश्यता निवारण करने का महत् कार्य किया। 'झुलणा' छद मे रचित इनके भजन प्रभात मे गाए जाने के कारण 'प्रभातियो' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आचरण की पवित्रता पर इन्होंने बहुत बल दिया। गोपीभाव की (प्रेमलक्षणा) भक्ति का अनुसरण करते हुए भी नरसिंह नाथ-सप्रदाय से एवं ज्ञानदेव आदि से प्रभावित थे। इनके काव्य मे निर्गुण और सगुण दोनो मतो के तत्व उपलब्ध होते हैं। कबीर (दे०) जैसा निर्भीक व फक्कड व्यक्तित्व लिये हुए नरसिंह ने लोक-संस्कार का अद्‌भुत कार्य किया। नरसिंह के व्यक्तित्व मे एक ही साथ कवि, भक्त, संत व सुधारक का समुचित योग था।

नरसिंहराव्, मुनिमाणिक्यम् *(ते० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

इनका जन्म आंध्र के गुटूर जिले के अंतर्गत 'सगजागर्लमूडि' नामक स्थान मे हुआ। ये वृत्ति से अध्यापक हैं। आकाशवाणी भी कुछ समय तक इनका कार्यक्षेत्र रहा है। ये रसिक स्वभाव के है। इन्होंने स्वय अनुभव करके अपनी रचनाओ के द्वारा यह बात प्रमाणित की है कि पारिवारिक जीवन नीरस अथवा यातनापूर्ण नही है बल्कि सरस और सुखद है। इनकी रचनाएँ ये हैं—*'तिरुमालिग', 'उपाध्यायुडु', 'वक्ररेखा', 'अन्नयमन्त्रि' आदि* उपन्यास, 'तिरुगुबाटु', 'गृहप्रवेशमु', 'मुनिमाणिक्य नाटिकलु', आदि नाटक, 'कांत वृद्धाप्यम्', 'कातम्', 'कापुरम्', 'नेनू मा कातम्', 'मुनिमाणिक्य कथलु' आदि कथा-रचनाएँ, 'तेलुगु हास्यमु', 'मन हास्यमु' जैसे आलोचनात्मक ग्रंथ तथा कुछ मनोरजक निबंध। चाहे कथा-कविता हो अथवा नाटक या निबंध—इनकी सभी रचनाओ मे सहज, मार्मिक तथा औचित्यपूर्ण हास्य का समावेश पाया जाता है, विशेषकर पारिवारिक जीवन तथा उसमे गृहिणी के नाना रूपो को *जिस स्वाभाविकता और सरसता के साथ उन्होंने* चित्रित किया है वह बात अन्य रचनाओ मे बहुत कम पाई जाती है। शैली, कथानक, कथोपकथन आदि सभी बातो मे इनकी रचनाएँ एक प्रकार की मौलिकता प्रकट करती हैं। ये प्रधानतः सरस कथा-लेखक के रूप मे विख्यात हैं। 'कातम्' (दे०) पात्र की सृष्टि मे ये इतने सफल हुए हैं कि पाठको का कहना है कि मुनिमाणिक्यम् कुछ लिखें तो कातम् की कहानी ही लिखें तथा कातम् की कहानी लिखनी है तो मुनिमाणिक्यम् ही लिखें।

नरसिंह शास्त्री, नोरि *(ते० ले०)* [जन्म—19 0 ई०]

ये गुटूर जिले के अंतर्गत रेपल्ले के रहने वाले हैं और वृत्ति से वकील हैं। ये 'साहिती समिति' के सचिव तथा आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के सदस्य हैं। नरसिंह शास्त्री ने संस्कृत तथा अंग्रेजी साहित्यो का गहरा अध्ययन किया

है। ये कन्नड भाषा के भी अच्छे जानकार हैं। इनकी रचनाएँ ये हैं—'नारायण भट्ट', 'रुद्रमदेवी', (दे०), 'मल्लारेड्डी', (दे०) 'वाघिरा', 'कर्पुरद्वीपयात्रा' आदि उपन्यास; 'सोमनाथविजयमु' (दे०), 'खेमाभिक्खुनि', 'वरागमनमु', 'पतंगयात्रा', 'वण्णवति' आदि नाटक; 'गुलाबिपुव्वु' 'गानसंगमु', 'भविष्यत्तु', 'वधूसर' आदि कथाएँ; 'गीतमालिका' जैसी कविताएँ और कुछ आलोचनात्मक लेख। आंध्र से संबंधित ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में इनकी रुचि है और उसमे इनको पर्याप्त सफलता तथा प्रतिष्ठा मिली है। नाटक-रचना में इन्होंने कुछ नये प्रयोग भी किए है। इनकी 'भागवतावतरण' पद्यबद्ध नाटिका है। इनके नाटक तथा नाटिकाओं के अंतर्गत कुछ ऐतिहासिक, प्रतीकात्मक तथा व्याख्यात्मक भी हैं। 'तेनेतेट्टे' जैसी कुछ नाटिकाएँ मॉरिस मेटरलिंक से प्रभावित हैं। इन्होंने कुछ पौराणिक तथा सामाजिक रचनाएँ भी की हैं। इनके द्वारा किया गया 'देवीभागवत' का तेलुगु अनुवाद प्रशस्त है। इनको 'कवि-सम्राट्' की उपाधि मिली तथा इनके 'नारायण भट्ट' नामक ऐतिहासिक उपन्यास को तेलुगु भाषा-समिति का पुरस्कार मिला। परंपरा तथा नव्यता का समन्वय करते हुए विविध आधुनिक साहित्यिक विधाओं में सफल रचना करने वालों में नरसिंह शास्त्री भी एक हैं।

नरसिंह शास्त्री, मोक्कपाटि *(तें० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

ये विख्यात हास्य-लेखक हैं। इनका अमर चरित्र 'बारिष्टर पार्वतीशमु' (दे०) है। समस्त आंध्र में यह पात्र परंपरावादी एवं अंधविश्वासों में जकड़े हुए शिक्षित व्यक्ति के उदाहरण के रूप में ग्रहण किया जाता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'एकोदरुलु', 'कन्नवि-विन्नवि', 'मोक्कुबडि' आदि रचनाएँ की हैं। थोड़े से शब्दों में पात्रों के चरित्र को स्पष्ट करके, कथाक्रम निर्वाह करने में ये अत्यंत समर्थ हैं।

समाज में बद्धमूल अनेक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों को जनता की दृष्टि में लाकर, उनका निवारण करने के लिए इन्होंने हास्य रस का सहारा लिया है। प्राचीन रूढ़ियों एवं अत्याचारों के साथ नवीन शिक्षा की चेतना के आ मिलने से उत्पन्न होने वाले नाना प्रकार के चित्र-विचित्र प्रसंगों की सृष्टि करके भी इन्होंने हास्य रस की सृष्टि की है—समाज के नवनिर्माण के उद्देश्य से रची गई इनकी रचनाओं का तेलुगु साहित्य में विशेष आदर हुआ है।

नरसिंहस्वामी, के० एस० *(क० ले०)*

मानवीय हृदय की सुकुमार वृत्तियों के अनन्य गायक श्री के० एस० नरसिंहस्वामी जी का जन्म मैसूर राज्य के मंड्या जिले के किक्केरी नामक स्थान में एक संभ्रांत ब्राह्मण-परिवार में हुआ। 'मैसूरु मल्लिगे' (मैसूर की मल्लिका) ने उन्हें सर्वाधिक लोकप्रिय बनाया। प्रणय विश्वमोहक प्रणय का व्यापक रूप लेकर लोक-गीतों की शैली में मार्मिक रूप से इनकी कविताओं में व्यंजित हुआ है। नरसिंहस्वामी कन्नड के बर्न्स हैं। सरलता तथा सहजता इनकी कविताओं की विशेषता है। ये कविताएँ मानव की रागात्मिका वृत्तियों का अक्षय भंडार हमारे सामने खोलती है। स्त्री का मातृगृह-प्रेम, पति का प्रणयकोप, प्रणय-कलह, मिलन-कौतूहल, विरहकातरता, प्रेमियों का प्रणय-संलाप एवं उनकी अठखेलियों आदि की चिरनूतन सुकुमार अभिव्यक्ति इनमें हैं। हाथीदाँत पर उत्कीर्ण बेल-बूटों की भाँति भावों के सूक्ष्म एवं चारु चित्रण में कवि अनुपम है, भाषा मल्लिका से भी कोमल-मधुर एवं मदिर है। 'ऐरावत', 'उंगुर' (अँगूठी), 'मनोमिदमनेगे' इनके अन्य श्रेष्ठ संकलन है। नरसिंहजी एक विकासशील कवि हैं। 'कलियागु बालकृष्ण' आपकी सुंदर प्रगतिवादी कविता है। 'शिलालते' में आपकी उत्कृष्ट प्रयोगवादी कविताएँ हैं। नरसिंहस्वामी जी की कविता को आलोचकों ने रोमांटिक तथा प्रयोगवादी शैली के सुवर्ण माध्यम की कविता कहा है।

नरसिंहाचार, आर० *(क० ले०)* [जन्म—1860 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

आधुनिक कन्नड-साहित्य के महारथियों में स्व० आर० नरसिंहाचार्य जी का नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। इनका जन्म मैसूर राज्य के मण्ड्या जिले में हुआ था। इन्होंने मद्रास विश्वविद्यालय से एम० ए० की उपाधि प्राप्त की तथा 'देवराज बहादुर सहायक-निधि' का पारितोषिक प्राप्त किया। 1906 ई० में इन्हें 'राव बहादुर' की, 1913 ई० में 'प्राक्तनविमर्श-विचक्षण' की और 1925 ई० में 'कर्नाटक-प्राच्यविद्यावैभव' की सम्मान-उपाधियाँ प्राप्त हुई थी। 1918 ई० में धारवाड़ में संपन्न कन्नड-साहित्य-परिषद् के ये अध्यक्ष रहे, अखिल भारतीय

प्राच्यविद्या-परिषद् के आठवें अधिवेशन के कन्नड विभाग के भी अध्यक्ष रहे। ये कन्नड-संस्कृत, तमिल और अंग्रेजी भाषाओ के गभीर विद्वान् थे। 'एपिग्राफिया कर्नाटका' मे इन्होने कन्नड के मूल शिलालेखो का विवरण दिया है, इनके अतिरिक्त कर्नाटक से सबधित तमिल शिलालेखो का कन्नड अनुवाद प्रस्तुत किया है जो अत्यत महत्वपूर्ण है।

कन्नड-साहित्य के इतिहास-लेखको मे नरसिंहाचार जी का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। 'कर्नाटक कवि चरिते' (दे०) (कन्नड-साहित्य का इतिहास) के तीन भाग इनके 35 वर्षो के अथक परिश्रम का परिणाम है। इसमे 1150 कवियो की कृतियो का परिचय और विश्लेषण किया गया है। यह ग्रथ इनकी मेरुकृति और साहित्य के इतिहास विषयक ग्रथो मे अत्यत प्रामाणिक है। इनकी अन्य रचनाओ मे 'नगेगडलु' (ई० जी० ई० बेश्चि की पुस्तक का अनुवाद), 'नीतिमजरी', भाग 1 तथा भाग 2 (तमिल के प्रसिद्ध ग्रथ तिरुक्कुरळ' के चुने हुए पद्यो का अनुवाद) तथा 'नीतिवाक्य-मजरी' के नाम उल्लेखनीय हैं। मैसूर विश्वविद्यालय से इनके व्याख्यान 'हिस्ट्री ऑफ कन्नड लिट्रेचर' नाम से प्रकाशित हुए हैं। इनकी 'हिस्ट्री ऑफ कन्नड लेंग्वेज' (मैसूर वि० वि० से प्रकाशित) भी अत्यत महत्वपूर्ण कृति है।

नरसिंहाचार, डी० एल० *(क० ले०)* [जन्म—1906 ई०, मृत्यु – 1971 ई०]

वर्तमान युग के कन्नड के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० नरसिंहाचार जी का जन्म चिक्कनायकन हळ्ळि मे हुआ था। कर्नाटक मे ये इतने प्रसिद्ध हुए कि पाडित्य का दूसरा नाम डी० एल० एन० हो गया। प्रतिभाशाली विद्यार्थी और 'विद्या की निधि' प्रोफेसर के रूप मे इनको पाकर मैसूर विश्वविद्यालय का कन्नड-विभाग गौरवान्वित हुआ। 1960 ई० मे बिदरेनगर मे सपन्न कन्नड साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष बनने का गौरव भी इनको प्राप्त हुआ था। 1969 ई० मे मैसूर विश्वविद्यालय ने इनको डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया था।

डी० एल० एन० व्यक्ति नही थे चलते फिरते विश्वकोश थे। इनमे एक अनुसधित्सु के सत्यान्वेषण और चिंतक की विचारशीलता का सुदर सगम हुआ था। इनकी स्मरण-शक्ति असाधारण प्रखर थी। पाठानुसधान के क्षेत्र मे डी० एल० एन० ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इनका 'कन्नड-ग्रथ सपादने' (दे०) (कन्नड पाठानुसधान) इनकी दीर्घकालीन शोध-वृत्ति का फल है। इसमे पाठानुसधान-सबधी समस्याओ और विधियो पर समग्र रूप से विचार किया गया है। इसके साथ ही इन्होने प्राचीन कन्नड-साहित्य के ग्रथ-रत्न 'वड्डाराधने', (दे०) 'पपरामायण-सग्रह', 'सिद्धराम चरित्र', (दे०) 'सुकुमार-चरित' और 'शब्दमणि-दर्पण' (दे०) (व्याकरण-ग्रथ) का सपादन कर इन ग्रथो के अत्यत प्रामाणिक सस्करण निकाले थे। इन ग्रथो के प्रारभ मे उन्होने जो विद्वत्तापूर्ण भूमिकाएँ लिखी हैं, वे इनकी अध्ययनशीलता और परिश्रम की साक्षी हैं।

डी० एल० एन० की मृत्यु के बाद इनके दो बृहदाकार ग्रथ प्रकाश मे आए हैं—'पपभारत-दीपिका' और 'पीठिकेगळु लेखनगळु (भूमिकाएँ तथा लेख)। 'पीठिकेगळु लेखनगळु' मे इधर-उधर बिखरे पडे इनके समस्त लेखो का सग्रह है जिनका परिष्कार और परिवर्धन स्वय इन्होने ही किया था। साहित्य के अध्येताओ और विद्वानो के लिए यह एक उपयोगी और महत्वपूर्ण सदर्भ-ग्रथ है।

नरसिंहाचार, पु० ति० *(क० ले०)*

पु० ति० न० के नाम से प्रसिद्ध नरसिंहाचार जी आधुनिक युग के श्रेष्ठ कवियो मे गिने जाते हैं। पाश्चात्य प्रेरणा से कन्नड को गीतिकाव्य की नवनिधि प्रदान करने वाले कवियो मे पु० ति० न० भी उल्लेखनीय हैं। ये सात्विक प्रकृति, तीक्ष्ण बुद्धि और सूक्ष्म कल्पना के कवि है। 'हणते' (प्रणीता या दिया), मावळिरू' (आम्र-पल्लव), 'शारदयामिनी', 'गणेशदर्शन', रससरस्वती, मले देगुल' (पहाडी मदिर) और 'सत्यायन हरिश्चद्र' इनकी कविताओ के सग्रह हैं। गेयता और सास्कृतिकता इनकी कविताओ की सामान्य विशेषताएँ है। उनमे हम प्रकृति की विविध चित्रात्मकता और सूक्ष्म सुदर वर्णन देख सकते हैं। यद्यपि इन्होने अपनी कविता के लिए सामान्य सामाजिक वस्तु कम चुनी है, तथापि 'पतितपावन' जैसी कविताएँ अत्यत मर्मस्पर्शी कही जा सकती हैं। इनकी कविताओ मे स्वाभाविक प्रवाह होता है और कवि का नया चिंतन पग-पग पर दिखाई पडता है। 'सत्यायन हरिश्चद्र' नयी कल्पना के आकाश को छूता है। पु० ति० न० गभीर चिंतक, दार्शनिक और आलोचक भी हैं। 'कवि' नामक कविता मे इन्होने कवि और काव्य की जो विस्तृत आलोचना की है वह इसका उदाहरण है। इन्होने छोटी और लबी सब प्रकार की कविताएँ लिखी हैं।

'अहल्य' (अहल्या), 'गोकुलनिर्गमन', 'हवरी',

'हंस दमयंतीमत्तु इतर रूपकगळु' (हंस-दमयंती तथा अन्य रूपक) जैसे गीतनाट्य, 'ईचलमरद केळगे' (देशी खजूर के पेड़ के नीचे), 'रामाचारिय नेनपु' (रामाचारी की स्मृतियाँ) जैसे निबंध-संग्रह एवं स्केच तथा विकटकवि-विजय' जैसे राजनीतिक प्रहसन इनकी साहित्यिक तपस्या के सुंदर फल हैं। 'विकटकवि-विजय' हास्य-प्रधान रूपक हैं, लेकिन उसमें भी गेयता की प्रधानता है।

पु० ति० न० की भाषा-शैली की भी अपनी विशेषता है। इन्होंने कन्नड शब्दों के साथ-साथ संस्कृत शब्दों का भी प्रयोग किया है, लेकिन कहीं-कहीं ऐसे शब्द क्लिष्ट हो गए हैं। अनुप्रास इनको प्रिय है, तुक मिलाने के लिए ये कभी-कभी शब्द को बलात् खींच लाते हैं। इस कारण इनकी शैली कभी-कभी दुरूह भी हो जाती है। फिर भी यह सच है कि पु० ति० न० की कला में कोमलता और शालीनता है, उसमें हाथीदाँत की कारीगरी का-सा वैभव है।

नरहरि *(क० ले०)*

(दे०) कुमार वाल्मीकि।

नरहरि *(गु० ले०)* [समय—1611-1663 ई०]

ये 'अखा' के पूर्ववर्ती ज्येष्ठ समकालीन निर्गुण ज्ञानाश्रयी कवि थे।

'वासिष्ठसार-गीता', 'भगवद्गीता', 'भक्ति-मंजरी' और 'हस्तामलक' आदि इनकी अनूदित कृतियाँ हैं और 'प्रबोध-मंजरी', 'हरिलीलामृत', 'ज्ञानगीता', 'संतना-लक्षणो', 'गोपी-उद्धव संवाद', 'कक्को', 'मास' आदि इनकी मौलिक रचनाएँ हैं।

'भगवद्गीता' में गीता के 700 श्लोकों का 1125 पदों में अनुवाद किया गया है। इनकी 'ज्ञानगीता' मध्ययुगीन गुजराती ज्ञानाश्रयी काव्य की एक प्रतिनिधि रचना है। परमपद की प्राप्ति के लिए ये भक्ति को उत्तम साधन मानते हैं। परवर्ती कवि की 'अखे गीता' (दे०) एवं 'छप्पा' पर इनकी 'ज्ञानगीता' और संतना-लक्षणों का प्रभाव बहुत अधिक है।

नरहरि तीर्थ *(क० ले०)* [समय—अनुमानतः तेरहवीं शती का अंतिम चरण]

उपनाम—'रघुकुल तिलक'। कन्नड के हरिदास-साहित्य के प्रवर्तकों में इनकी गणना की जाती है। माध्वाचार्य के उपरांत पीठारोहण करने वालों में आप तीसरे हैं। कहते हैं कि संन्यासी बनने के पहले यह उड़ीसा के राजा के यहाँ मंत्री थे। अब तक आपके केवल दो कीर्तन या गेयपद प्राप्त हुए हैं। प्राप्त गीतों में आत्म-निवेदन की अनन्यता एवं दैन्य की व्यंजना है। भाषा बहुत परिमार्जित नहीं है। वह लोक-भाषा के अधिक निकट है। गेयकारों के हाथों में पड़ कर उसका स्वरूप ही बदल-सा गया है। प्राप्त गीतों में कवि की चित्तवृत्ति परिलक्षित होती है।

नरिंदरपाल सिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

नरिंदरपाल सिंह पंजाबी के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। भारतीय सेना के एक उच्च अधिकारी होने के कारण सैनिक जीवन का इनका गहरा अनुभव है जिसे इन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। लेखक ने अपने अधिकांश उपन्यासों के कथानक सिख-इतिहास से चुने हैं और उन्हें ऐतिहासिक प्रामाणिकता के साथ उपन्यास का रूप प्रदान किया है।

मुख्य रचनाएँ—'मलाइ', 'सेनापति', 'उनवाली माल', 'इक राह इक पड़ाऊ', 'शकती', 'त्रिआज़ाल', 'अमन दे राह', 'एति भाग्ग जाणा', 'इक सरकार बाझों'।

नरिकण्णन् *(त० पा०)*

नरिकण्णन् भारतीदासन् (दे०) के कथाकाव्य 'पांडियन् परिशु' (दे०) में खलनायक के रूप में चित्रित है। राज्य करने की एकमात्र इच्छा की पूर्ति के लिए यह अपने संस्कारों का, बहन के प्रति अपने प्रेम का, वीरों की नीति का तथा अपने ज्ञान का त्याग कर राक्षस बन जाता है। यह पड़ोसी राजा की सहायता से बहनोई के राज्य पर चढ़ाई करता है। धोखे से बहनोई और बहन का वध कर उसकी पुत्री अन्नम को पुत्रवधू बनाने का यत्न करता है; अंधविश्वासों का आश्रय लेकर जनता को धोखा देता है; राज्य के उत्तराधिकार-संबंधी प्रमाण-पत्रों को नष्ट करना चाहता है; अन्नम के प्रेमी वेलन् को मारने का यत्न करता है; और अंत में एक खलनायक की तरह वह पराजित होता है और अन्नम के हाथों मारा जाता है। इसके चित्रण द्वारा भारतीदासन् ने यह दिखाना चाहा है कि मनुष्य कितना नीच हो सकता है। उसका वध कराके

लेखक ने यह बताया है कि सत्कार, प्रेम, ज्ञानशून्य राक्षस का सदा विनाश होता है।

नरूला, सुरिंदर सिंह *(पं० लें०)* [जन्म—1917 ई०]

पंजाबी में नानकसिंह (दे०) की पीढ़ी के बाद के उपन्यासकारों में सुरिंदर सिंह नरूला अग्रगण्य हैं। इनके उपन्यासों से पंजाबी उपन्यास-साहित्य यथार्थवादी युग में प्रवेश करता है। नरूला ने उपन्यास-क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए हैं और युग-चेतना को उसकी समग्रता में ग्रहण करने का प्रयास किया है। वे प्रगतिवादी विचारधारा के लेखक हैं और दृश्य-चित्रण की सूक्ष्मता उनकी रचना-शैली का वैशिष्ट्य है।

नरूला का पहला उपन्यास 'पिओ पुत्तर', (दे०) विशेष रूप से प्रसिद्ध हुआ। इसमें लेखक ने बीसवीं शती के प्रारंभिक काल के अमृतसर के जीवन का बड़ा यथार्थवादी चित्रण किया है। इसके पश्चात् नरूला के 'रंग महल', नीली बार', 'जगराता', 'दीन-दुनिआ' आदि उपन्यास प्रकाशित हुए हैं।

नरोत्तमदास *(हिं० लें०)*

शिवसिंह सेंगर (दे०) के 'सरोज' अनुसार ये 1545 ई० तक रहे। ये सीतापुर जिले के बाडी नामक कसबे के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके ग्रंथों में 'सुदामाचरित' प्रसिद्ध है, 'विचारमाला' और 'ध्रुवचरित' नामक ग्रंथ अनुपलब्ध हैं। 'सुदामाचरित' में कवि ने संवादात्मक शैली में गार्हस्थिक रेखाओं के मध्य में तत्कालीन समाज, विविध प्रथाओं और पारिवारिक मान्यताओं का सुंदर चित्र प्रस्तुत किया है। अपनी प्रसादगुण-संपन्न एवं सरस शैली के लिए यह कवि मध्ययुगीन कृष्णकाव्य में अत्यंत लोकप्रिय है।

नर्म-गद्य *(गु० कृ०)*

गुजराती गद्य के जनक तथा आधुनिक गुजराती साहित्य के युगप्रवर्तक कवि नर्मदा शंकर (दे०) के गद्य-लेखों व भाषणों का संग्रह 'नर्म-गद्य' के नाम से प्रकाशित है। मूल नर्म-गद्य दो खंडों में निकला था, जिसमें 1850 से 1865 ई० तक की गद्य रचनाएँ संकलित हैं।

निबंधों व भाषणों के विषयों पर दृष्टि डालते ही कृतिकार के लेखक, कवि, सुधारक, नवजागरण काल के अग्रदूत, नाटककार, समीक्षक आदि अनेक रूपों व उसके व्यक्तित्व के अनेक पहलुओं का स्पष्ट बोध हो जाता है। उस युग की मान्यताएँ, परंपराएँ व उनसे नर्मद का संघर्ष व विरोध कृति में स्थान-स्थान पर साकार हुआ है। 100-125 वर्ष पहले की गुजराती भाषा के स्वरूप व गद्य-शैली के विचार से यह कृति अध्ययन करने योग्य है।

साहित्य, संस्कृति, धर्म, राजनीति, शिक्षा एवं पाश्चात्य प्रभाव का समर्थन तथा अज्ञान व वहम को दूर करने का नर्मद का प्रयास आदि इसमें दृष्टिगत होते हैं। शताधिक विषयों व ग्रंथों पर लगभग 500 पृष्ठों का, बड़े आकार का यह गद्य संकलन नर्मद के उत्साही कृतित्व का प्रमाण है।

इसमें संग्रथित व चर्चित विषय हैं—लावणी, कविता जाति, भाषण-कला, कवि चरित्र, पुस्तकों की प्राप्ति व उनकी संक्षिप्त समीक्षाएँ, हिंदू धर्म, वध्या, विवाह, पारसी कविता, रसिकजन के प्रीति-विषयक प्रश्न, व्यभिचार-निषेध, सहकारी मंडली, स्वदेशाभिमान, गुरु और स्त्री, मृतकों के पीछे रोने का कुरिवाज, पुनर्विवाह, पत्र लेखन कला, सर विलियम जोंस, तुलसी वैधव्य-चरित्र, भिखारीदास-गरीबी (संवाद), भक्ति, एकता आदि।

नर्मद के बहुमुखी व्यक्तित्व तथा उसकी सत्ता, सुधारवादिता, क्रांतिवादिता, आदि के दर्शन इस नर्म-गद्य में सहज ही होते हैं। 'नर्मद ग्रंथावली', भाग 3 में यह पुनः प्रकाशित हुई है। विषय, शैली, भाषा-स्वरूप आदि के विचार से गुजराती गद्य की प्रारंभिक कृतियों में यह गद्य अत्यंत महत्वपूर्ण कृति से है जिसका ऐतिहासिक महत्व तो है ही साथ ही आज भी वह अनेक रूपों में प्रेरणा प्रदान करती है।

नर्मद *(गु० लें०)* [जन्म—1833, मृत्यु—1886 ई०]

कविवर नर्मद (नर्मदाशंकर) आधुनिक गुजराती साहित्य के प्रवर्तक तथा गुजराती गद्य के जनक माने जाते हैं। आधुनिक गुजराती साहित्य का सूत्रपात प्रायः उन्नीसवीं शती के तीसरे दशक में माना जाता है। बंबई में एलफिंस्टन इंस्टिट्यूट की स्थापना 1827 ई० में हुई थी। नर्मद इसके छात्र रहे और बाद में अपने अध्यापकों की प्रेरणा और प्रोत्साहन से उन्होंने सामाजिक तथा शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त संस्थाएँ और पत्र-पत्रिकाएँ चलाईं। दलपतराम (दे०) तथा नर्मद

गुजराती साहित्य के नवोन्मेष के पुरोधा थे और इन दोनों में नर्मद निश्चय ही अधिक उत्साही, दूरदर्शी और कल्पना-प्रवण थे। काव्य-सृजन के क्षेत्र में भी उनकी विकल आत्म-भावना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

नर्मद का व्यक्तित्व अनेकमुखी था—कवि, नाटककार, आत्मकथाकार, समीक्षक, सुधारक, नवजागरण के अग्रदूत आदि। अपने युग की परंपराबद्ध मान्यताओं के साथ नर्मद के स्वच्छंद व्यक्तित्व का टकराव जगह-जगह प्रतिध्वनित होता है। उनकी शैली प्रवाहमयी है, ओजपूर्ण है और नयी अभिव्यंजनाओं को अपने में समोए हुए है—यद्यपि उसकी गति सर्वत्र सम नहीं है। उनका 'नर्मकोश' विद्वत्ता और प्रयत्न की विराट्ता की दृष्टि से एक मूल्यवान् उपलब्धि है। 'नर्म-गद्य' (दे०) में उनके गद्यलेखों तथा भाषणों का संग्रह है। 'मारी हकीकत' (दे०) उनकी आत्मकथा-कृति है।

आधुनिक गुजराती के साहित्यकारों में नर्मद का स्थान शीर्षस्थ है।

नर्मदाशंकर मेहता (गु० ले०)

पंडित युग के विद्यापुरुष नर्मदाशंकर मेहता का जन्म 23 अगस्त, 1871 को नडियाद में हुआ था। विद्यार्जन के पश्चात् अपने गुरु श्रीमन् नृसिंहाचार्य के संकेतानुसार अध्यापकी छोड़कर वे सरकारी नौकरी में लगे और डिप्टी कलक्टर के पद तक पहुँचे। कुछ काल के लिए ये खंभात के दीवान भी रहे।

इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'हिंद तत्व-ज्ञान नो इतिहास' (भा० 1 और 2), 'शाक्त संप्रदाय', उपनिषद्-विचारणा'। 1919 ई० में गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी के अनुरोध पर इन्होंने 'हिंद तत्त्वज्ञान नो इतिहास' लिखा। भारतीय दर्शनशास्त्र का यह शृंखलाबद्ध इतिहास लिखकर उन्होंने दर्शन-शास्त्र व गुजराती भाषा की अमूल्य सेवा की है। इस क्षेत्र में ये प्रो० दासगुप्ता व डा० राधाकृष्णन् के पूर्ववर्ती हैं। दूसरों के अभिमतों पर अंध-विश्वास न कर स्वयं गहन अध्ययन करके स्पष्टता व निर्भीकता से इन्होंने प्रवर्तमान भ्रमों का निरसन किया है।

'शाक्त संप्रदाय' अद्यावधि उपेक्षित विषय पर एक गंभीर व तलस्पर्शी ग्रंथ है, तो 'उपनिषद्-विचारणा' में उपनिषदों का महत्व, प्रभाव व कांट, स्पिनोज़ा, हीगेल आदि पश्चिमी दार्शनिकों से उपनिषदों में व्यक्त विचारों की तुलना की गई है। श्री मेहता ने भारतीय दर्शन-शास्त्र का व साहित्य का महदुपकार किया है। आधुनिक गुजराती के पंडित युग के साक्षरों में इनका विशिष्ट स्थान है। गुजराती साहित्य व दर्शन के क्षेत्र में वे एक आदरणीय और चिंतक विद्वान् हैं।

नर्ममाला (सं० कृ०) [समय—ग्यारहवीं शती ई०]

'नर्ममाला' महाकवि क्षेमेंद्र (दे०) का प्रसिद्ध हास्योपदेशक काव्य है। इसमें तीन परिच्छेद हैं। इनमें कायस्थ तथा नियोगी आदि अधिकारियों के कुत्सित कृत्यों का वर्णन बड़ी ही पैनी दृष्टि से किया गया है।

इस काव्य में कवि ने तत्कालीन समाज तथा धर्म का सम्यक् निरीक्षण करके उनकी अवांछनीय गति-विधियों पर करारी चोट की है। इससे कवि का वर्णन कहीं-कहीं ग्राम्य तथा भौंड़ा अवश्य हो गया है, पर उससे हमें वस्तु-स्थिति को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है। क्षेमेंद्र ने इस काव्य में अनेक अधिकारियों के कुकृत्यों तथा वैद्यों की वंचक वृत्ति का बड़े ही मनोरंजक ढंग से पर्दाफाश किया है। संस्कृत-साहित्य को यह विशिष्ट काव्य-प्रकार क्षेमेंद्र की ही देन है।

नल (सं० पा०)

उदयन (दे०) की तरह राजा नल का जीवन भी साहसपूर्ण घटनाओं से ओतप्रोत रहा है। अतएव नल-चरित्र को ले कर 'नलचंपू' (दे०), 'नलाभ्युदय', 'नलोदय' तथा 'नैषधीयचरित' (दे०) प्रभृति अनेक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं जिनका मूल 'महाभारत' (दे०) है। निषध देश के राजकुमार नल के गुणों की चर्चा सुनकर विदर्भ देश की अनिंद्य सुंदरी राजकुमारी दमयंती (दे०) मन में उसी का वरण करने का निश्चय कर लेती है जबकि इंद्र प्रभृति देव भी उसे अपनी पत्नी बनाना चाहते थे। स्वयंवर में वह नल का ही वरण करती है।

दुर्दैववश राजा नल द्यूत में सारा राज्य हार जाता है। दमयंती को साथ लेकर जंगलों में मारे-मारे फिरना उसे उचित नहीं लगता पर दमयंती उसे छोड़कर कहीं भी जाने को प्रस्तुत नहीं होती। नल उसे दिन में ही थककर सोई हुई छोड़कर चल देता है कि अंत में रो-पीटकर वह जिस किसी प्रकार अपने पिता के यहाँ पहुँच ही जाएगी। अनंतर उसकी भेंट कर्कोटक नाग से होती है जो दावाग्नि से बचाने के कारण नल को काटकर

उसका रूप विकृत कर देता है ताकि वह पहचाना न जा सके। नल अश्वविद्या मे पारगत है, अत वह कोशल के राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथी हो जाता है।

दमयती जैसे-तैसे पिता के यहाँ पहुँचकर पति के अन्वेषण के लिए चर भिजवाती है। अयोध्या मे नल के होने की सभावना पर वहाँ के राजा ऋतुपर्ण को दमयती के पुन स्वयवर का समाचार देकर बुलाया जाता है जिसे सुनकर वह बहुत दु खी होता है। एक दिन की अल्प अवधि मे ही सारथी नल ऋतुपर्ण को विदर्भ की राजधानी पहुँचाता है। वहाँ नल को पहचान लिया जाता है। वह अपनी अश्वविद्या ऋतुपर्ण को बताता है और उससे अक्ष-विद्या सीखकर पुन अपना राज्य जीत लेता है।

नलचपू *(स० कृ०)* [समय—सातवी तथा ग्यारहवी शती के बीच]

'नलचपू' त्रिविक्रम भट्ट की कृति है। शाडिल्य गोत्री त्रिविक्रम भट्ट के पितामह का नाम श्रीधर तथा पिता का नाम नेमादित्य था।

'नलचपू' का दूसरा नाम 'दमयती-कथा' भी है। इसमे सात उच्छ्वास हैं। ग्रथ के आरभ मे शिव की स्तुति है और बाद मे कवि-प्रशसा तथा खलनिंदा की गई है। नल (दे०) का चरित्र वर्णन करने के लिए कवि ने अपनी नवीन कल्पना का अधिक उपयोग किया है। त्रिविक्रम सस्कृत के सर्वप्रधान श्लेष कवि हैं। परतु त्रिविक्रम ने श्लेष के प्रयोग के लिए अप्रचलित शब्दो का यथासभव प्रयोग नही किया। 'नलचपू' की सबसे बडी विशेषता है सभग श्लेष का प्रयोग। कवि ने छोटे छोटे अनुष्टुपो मे इतनी सुदरता के साथ सभग श्लेष का प्रयोग किया है कि उसके समझने के लिए पद्य की विशेष तोड-मरोड की आवश्यकता नही पडती और अर्थ भी अनायास निकल आता है। श्लेष के बाद इनका प्रिय अलकार परिसख्या है।

नलचपू का सस्कृत-साहित्य मे बडा महत्व है। भोज (दे०) तथा विश्वनाथ (दे०) ने अपने अलकार-ग्रथो मे इसके अनेक पद्य उद्धृत किए हैं।

नलचरितम् आट्टक्कथा *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवी शती ई०]

यह उण्णायि वारियर (दे०)-रचित आट्टक्कथा है। 'महाभारत' (दे०) के नलोपाख्यान की कथा इस दृश्यकाव्य मे सगृहीत है। चार दिन के अभिनय के लिए इसकी कथा चार भागो मे विभक्त है। प्रथम भाग के कथानक मे 'नैषधीयचरित' (दे०) का प्रभाव दर्शनीय है। कवि-कल्पना से नवीन कथाश भी जोडे गए हैं।

'नलचरितम्' कथकलि के कलाकारो एव आस्वादको मे सर्वाधिक लोकप्रिय आट्टक्कथा है। नाटकीय गुणो की दृष्टि से यह काव्य अति सुदर है। रसपरिपाक मे विशेषत सभग श्रृगार रस के निष्पादन मे 'नलचरितम्' की सफलता अनन्य है। कवि की सगीत मर्मज्ञता भी काव्य की लोकप्रियता का कारण बनी है। भाषा प्रयोग की उच्छृखलता के कारण 'नलचरितम्' के रचयिता को निरकुश कवि कहा गया है। इस काव्य के कुछ प्रयोगो के अर्थों को लेकर आज भी वाद-विवाद जारी है।

'नलचरितम्' मलयाळम के प्राचीन दृश्यकाव्यो मे सर्वाधिक सुदर है।

नलचरित्रमु *(त० कृ०)*

इस नाम से पाँच प्रकाशित तथा चार अप्रकाशित रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमे काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से रघुनाथ नायकुडु (दे०) की रचना तथा लोकप्रियता की दृष्टि से चक्रपुरि राघवाचार्य (1690) की रचना उल्लेखनीय हैं।

दोनो कवियो ने 'महाभारत' (दे०) की कथा को ही अपनाया है। रघुनाथ नायकुडु ने कलिप्रवेश के स्थान पर शनि-प्रवेश का वर्णन किया है तथा स्वयवर के समय सखियो द्वारा दमयती को राजाओ का परिचय कराया है। राघवाचार्य ने कलि प्रवेश का ही वर्णन किया है परतु वसुदेव नामक ब्राह्मण द्वारा दमयती को राजाओं का परिचय दिलाया है। इसके अतिरिक्त दोनो कवियो की रचना मूलानुसारिणी ही है।

रघुनाथ नायकुडु के काव्य मे 8 आश्वास हैं। उनकी अन्य रचनाओ की अपेक्षा नलचरित्रमु मे काव्य-सौंदर्य की न्यूनता है। फिर भी काव्य-मर्मज्ञ और सुधी लेखक के कौशल के कारण यह काव्य पाठको को चमत्कृत करने मे सफल है। करुणरस-प्रधान होने से श्रृगार रस के वर्णनो के लिए अवसर नही मिला।

चक्रपुरि राघवाचार्य के 'नलचरित्र' के पूर्व तथा उत्तर भाग दोनो म मिलाकर 5 आश्वास हैं। 2328 द्विपद छदो मे लिखा गया यह काव्य अतिलोकप्रिय हो

गया है। आज भी गाँवों में संकट के दिनों में (शनि महाराज की दशा में) इसी द्विपद काव्य का पाठ किया जाता है।

उपर्युक्त दोनों काव्य 'दक्षिणांध्रयुग' (हिंदी के रीतिकाल के समकक्ष) में रचे जाने के कारण युगप्रभाव से मुक्त नहीं हैं। प्रबंध-काव्यों की शैली में वर्णनों का प्राचुर्य, और अलंकारों की भरमार के बावजूद अपनी सरस तथा सरल शैली के कारण इन्हें काव्य-प्रतिष्ठा प्राप्त है।

नळचरित्रे *(क० कृ०)* [रचना-काल—1300 ई० के आसपास]

तेरहवीं शती के कवियों में चौण्डरस (समय 1300 ई० के आसपास) का अन्यतम स्थान है। उनका 'नळचरित्रे' (नल-चरित) एक चंपू-काव्य है। उसकी कथा महाभारत के 'नलोपाख्यान' से ली गई है। उसमें सर्ग या आश्वासों का कोई विभाग नहीं है, कुल मिलाकर 810 पद्य हैं। पीठिका-भाग में अमंगविट्ठल की स्तुति है। तदनंतर शंकर, गणपति और पार्वती की स्तुति है। कवि ने अपने बारे में कहा है, 'कर्णाटवंश शृंगाररसम्' जो उनकी कवि-प्रतिभा का निदर्शन है। उनका काव्य ललित और मधुर है। उसमें अलंकारों का सहज-स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। उसकी प्रांजल भाषा और प्रवाहपूर्ण शैली पाठकों के मन को आकृष्ट करने में समर्थ है। हम उसको एक सुंदर खंडकाव्य कह सकते है। नल और दमयंती के चरित्र-चित्रण में कवि ने निपुणता दिखाई है। उनका प्रकृति-वर्णन भी मनोहारी है।

कन्नड मे 'नळचरित्रे' शीर्षक एक और ग्रंथ मिलता है जिसके कवि भक्तप्रवर कनकदास (दे०) (समय 1550 ई०) हैं। वह भामिनी-षट्पदी में रचित भक्ति-रसलेप से युक्त काव्य है। उसमें कवि ने नल-दमयंती के उदात्त चरित्र का चित्रण किया है। उसकी प्रसादपूर्ण शैली और उसमें चित्रित करुण रस के चित्र पाठकों को आकर्षित कर लेते हैं।

नल-दमयंती स्वयंवर *(म० कृ०)*

संस्कृत के कवि श्रीहर्ष (दे०) की रचना इसका मूल आधार है। श्रीहर्ष के विशाल 'नैषध' (दे०) महाकाव्य का रघुनाथ पंडित ने 254 श्लोकों में संक्षिप्तीकरण किया है। इसमें मूल काव्य-सौंदर्य की रक्षा हुई है, साथ ही स्वतंत्र कल्पना-सौरभ का भी समावेश है। कवि के मत से यह रचना 'नैषध काव्य' की ही टीका है। वास्तव में यह रचना संस्कृत काव्य का मराठी अनुवाद नहीं, अपितु मराठी रूपांतरण है। कथानक को संक्षिप्त किया गया है किंतु औत्सुक्य गुण की रक्षा हुई है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में भी केवल परंपरा-पालन नहीं है। नायिका दमयंती का नल के प्रति आकर्षण और प्रेम-भाव बड़ी सुकुमारता और शालीनता से वर्णित है। हंस के चरित्र-चित्रण में विशेष आकर्षण और मार्मिकता है। दमयंती के पिता विदर्भ के थे, विवाह के वातावरण, वेश-भूषा आदि के वर्णन में कवि ने समकालीन महाराष्ट्र के सांस्कृतिक जीवन को इस प्राचीन कथा में साकार करने का प्रयत्न किया है। पात्रों का चरित्र-चित्रण भारतीय आदर्शवाद से मंडित है। भाषा में संस्कृत शब्दों की प्रचुरता है। शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का प्रचुर प्रयोग है। मूल 'नैषध' के पदलालित्य की रक्षा मराठी में भी पूरी तरह हुई है। शृंगार और करुण रसों की परिपुष्टि में कवि को विशेष सफलता प्राप्त हुई है।

नळवेण्बा *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की तेरहवीं शती]

रचयिता—पुकळेंदि पुलवर। 'नळवेण्बा' में नल-दमयंती की कथा वर्णित है। इस कथा का आधार 'महाभारत' में प्राप्त नलोपाख्यान है। यह कृति 'स्वयंवर-काडम्', 'कलित्तोडर् कांडम्', 'कलिनीगु कांडम्' नामक तीन कांडों में विभाजित है। 'नलवेण्बा' में वेण्बा छंद में रचित 424 पद हैं। नल-दमयंती की कथा का वर्णन वेण्बा छंद में होने के कारण ही इस कृति को 'नलवेण्बा' नाम दिया गया है। इस कृति में कवि ने प्रकृति के अनेक सुंदर, सजीव एवं मनोहारी चित्र प्रस्तुत किए हैं। पुकळेंदि वेण्बा छंद के प्रयोग में पटु थे। 'नलवेण्बा' को वेण्बा छंद में रचित तमिल कृतियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

नळाख्यान *(गु० कृ०)*

गुजराती के श्रेष्ठ आख्यानकार, लोक-रंजक कवि भाषा-स्वामी, रससिद्ध सर्जक, यथार्थ संसार के द्रष्टा व निरूपक, मानव-प्रकृति के चातुर्य के प्रखर आलोचक, भक्त व कवि प्रेमानंद (दे०) के सब आख्यानों व सभी

रचनाओ मे 'नळाख्यान' उत्तम रचना है ।

महाभारत म प्रसिद्ध नल की कथा को ग्रहण कर कवि ने इसे विस्तार दिया है। 64 कडवको मे यह कथा पद्य मे प्रबधात्मक शैली मे निरूपित है। अगी रस शृगार है तथा हास्य, करुण, अद्‌भुत रसो की अग रूप मे योजना हुई है । सक्षिप्त-सी भूमिका बाँधकर कवि सीधे ही कथयितव्य पर आ जाता है। कथा-निर्वाह के बाद उपसहार व फलश्रुति भी प्रस्तुत करना कवि की आदत है ।

अपनी निम्नलिखित विशेषताओ के कारण 'नळाख्यान' का गुजराती आख्यान काव्यो मे सर्वोपरि स्थान है और रहेगा । सुदर वस्तु सगठन, उससे भी सुदर *पात्र-अकन*, *समसामयिक जीवन का सफल प्रतिफलन*, उत्तम रस योजना, एक रस से सहज ही दूसरे रस मे सक्रमित हो जाने का लाघव, लोक-सस्कृति का सन्निवेश, आदि ।

'नळाख्यान मे नल दमयती के प्रेम प्रसग-वर्णन मे शृगार, स्वयवर के समय राजाओ व देवो की चेष्टाओ मे हास्य, दमयती के वन-जीवन की विपत्तियो के तथा विरह-वर्णन मे करुण भाव का तथा अश्वविद्या के प्रसग मे अद्‌भुत रस का सुदर निरूपण हुआ है। दमयती के रूप-वर्णन मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा व अतिशयोक्ति अलकारो का मनोहारी प्रयोग हुआ है ।

'नळाख्यान' की कुछ सीमाएँ भी हैं—रूढ परपरायुक्त परिगणन पद्धति का प्रकृति-वर्णन तथा अन्य वर्णन, कही कही दुर्बोध शब्द प्रयोग, स्थूल व ग्रामीण हास्य, प्रादेशिक सीमाएँ ऋतुपर्णबाहुक व दमयती के सभाषण मे सुरुचि घात व औचित्य-भग । परतु इस रचना के असख्य गुणो के ससार मे ये छोटे-से दोष गौण हो जाते हैं। 'नळाख्यान' प्रेमानद की श्रेष्ठ रचना है तथा गुजराती आख्यान-काव्यो मे बेजोड है ।

नलिनलाल रावल *(गु० ल०)*

इन्होने प्राथमिक, माध्यमिक एव उच्च शिक्षा *अहमदाबाद मे प्राप्त की थी। सप्रति ये अहमदाबाद के* बी० डी० कालेज मे अँग्रेज़ी के प्राध्यापक हैं। 'उद्‌गार' नाम से इनका एक काव्य-सग्रह प्रकाशित हुआ है । 1953 से 1962 ई० तक लिखी गई कविताओ के इस सग्रह मे नयी कविता की विशेषताएँ उभर कर आई हैं। आलोच्य सग्रह की 'काल अने आज' नामक रचना सुप्रसिद्ध है । वर्षा, सुबह, पतझड प्रभृति प्राकृतिक उपकरण इनके काव्य का प्रमुख आकर्षण हैं । सुमधुर कल्पना से परिपूर्ण 'कविनु मृत्यु' इनकी एक प्रख्यात कविता है ।

समग्रतया काव्य मे अद्यतनता लाने का इन्होने भरसक प्रयत्न किया है ।

नळिनी *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1911 ई०]

यह कुमारन् आशान् (दे०) का खड-काव्य है। दिवाकरन् हैमवत भूमि मे तपस्या करने वाला युवा योगी है ? नळिनी उसके बाल्यकाल की सगिनी है । उसने दिवाकरन् पर अपने हृदय को समर्पित किया था । जीवन *से निराश होकर वह भी तपस्विनी बन गई और अत मे* दिवाकरन् स मुलाकात हुई । आध्यात्मिक प्रेम की चरम सीमा मे उसने दिवाकरन् के चरणो मे प्राण त्याग दिए ।

'नलिनी' आशान् की दार्शनिक विचारधारा और कवि-प्रतिभा का निदर्शन है । प्रेम की अलौकिकता और अनश्वरता आशान् ने प्रदर्शित की है। प्रतिपादन-विधा मे भी उन्होने पूर्ववर्ती कवियो की अपेक्षा नवीन मार्ग अपनाया । मलयाळम कविता के आधुनिक रूप के विकास मे 'नळिनी' का स्थान समुन्नत है ।

नलिनीबाला देवी *(अ० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

जन्मस्थान : बरपेटा ।

य कर्मवीर नवीनचद्र बरदलै (दे०) की पुत्री है । इनकी शिक्षा घर पर ही हुई थी। 1909 ई० मे इनका विवाह हुआ था और 1917 ई० मे ये विधवा हो गई थी । 10 वर्ष की आयु मे इन्होने प्रथम कविता लिखी थी। सतान की मृत्यु पर इन्होने 1922 ई० मे 'पुतली' कविता लिखी थी । 1954 ई० मे ये असम साहित्यसभा (जोरहाट) *की सभानेत्री चुनी गई थी। इन्हे असम सरकार* की साहित्य पेंशन भी प्राप्त हुई थी । 1957 ई० मे ये पद्‌मश्री से विभूषित हुई थी ।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य 'सधियार सुर' (*1928*), 'सपोनर सुर' (दे०) (*1943*), '*स्मृतितीर्थ*' (1948), 'परशमणि' (दे०) (1954), 'युगदेवता' (1958), जीवनी : 'विश्वदीपा' (1961) ।

इनकी प्रसिद्धि शोक-परिपूर्ण कविता पुतली' के कारण हुई थी । इनकी कविताएँ हृदय-द्रावक हैं और उनका मूल स्वर भक्ति और आत्म-समर्पण का है । ये प्रकृति

के सौदर्य, पक्षियों की आकुल तान आदि में अविनश्वर आत्मा का असीम सौदर्य देखती हैं। नलिनी जी की कविताओं में किसी असीम अनंत के साथ मिलन की आकुलता है। दो-एक कविताओं में देशभक्ति की भी भावना है। 'परशमणि' में राष्ट्रीय कविताएँ हैं। इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'संधियार सुर' है।

इनकी कविताओं का प्रधान स्वर रहस्यवाद है। ये असमीया की महादेवी वर्मा (दे०) कही जा सकती हैं।

नल्लियकोडन् *(त० पा०)*

नल्लियकोडन् संघकालीन दानशील राजाओं में से हैं। इनके चरित्र की दो प्रमुख विशेषताएँ थीं—अन्य राजाओं द्वारा कलाकारों की सहायता न किए जाने पर स्वयं उनकी सहायता करना तथा कलाकारों का स्वागत-सत्कार करते समय अपने बड़प्पन को, अपने राजत्व को, पूर्णतः भूल जाना। नल्लियकोडन् की प्रशंसा करने वाले कवियों में प्रसिद्ध हैं नल्लूर नत्तनार् और पुरत्तिणै नन्नाहनार्। ओयमनाडु के राजा वल्लियकोडन् के नाना गुणों—विशेषकर दानशीलता—का वर्णन शिरुपाणाट्रुप्पडै के विभिन्न पदों में है।

नवतेज सिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

इनका जन्म स्यालकोट (पश्चिमी पाकिस्तान) में हुआ था। अपने पिता गुरुबख्श सिंह 'प्रीतलडी' (दे०) से प्रेरित होकर इनमें साहित्यिक अभिरुचि का प्रस्फुटन हुआ। सर्वप्रथम इनकी रचनाएँ एशिया एवं यूरोप की विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई और फिर उनका प्रकाशन पंजाबी में हुआ। अगस्त, 1953 में उनकी पंजाबी कहानी—'मनुख दे पिओ' (Wreaks without oars) रूमानिया में होने वाले चौथे विश्व युवक-मेले में प्रथम पुरस्कार से पुरस्कृत हुई। अद्यावधि इनकी आठ रचनाएँ—कहानी-संग्रह, यात्रा-लेखन, विदेशी उपन्यासों के अनुवाद—प्रकाशित हो चुकी है। 'चानण दे बीज', 'बासमती दी महक', 'नवी रुत' इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। नवतेज की कहानियों में सामाजिक चेतना, आर्थिक विषमता और राजनीतिक जागरूकता का स्वर प्रधान है। इन्हें पंजाबी कहानी को अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ख्याति दिलाने का श्रेय प्राप्त है। ये आजकल 'प्रीतलडी' पत्रिका के सहसंपादक हैं।

नवरत्न रामराय *(क० ले०)*

ये कर्नाटक के लब्धप्रतिष्ठ वयोवृद्ध साहित्यकारों में से हैं। 'श्रीनिवास' उपनामधारी मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे०) ने सुब्बण्णा नामक एक सुंदर लघु उपन्यास लिखा है। उसकी भूमिका में उन्होंने स्पष्ट किया है कि ये उनको एक वृद्ध गायक की कहानी सुनाते थे, वही 'सुब्बण्णा' के रूप में प्रकाश में आई है। स्वयं साहित्यकार होते हुए इन्होंने मास्ति जी को प्रेरणा भी दी थी, यह कम महत्वपूर्ण बात नहीं है। इनकी पुस्तकों में 'नन्न नेनपुगळु' (मेरे संस्मरण) अतिविश्रुत और लोकप्रिय पुस्तक है। यह इनकी गद्यशैली का सर्वोत्तम उदाहरण है। इन्होंने मेकियावेल्लि-कृत 'नरेश' का कन्नड में अनुवाद किया है।

नवल ग्रंथावलि *(गु० कृ०)*

गुजराती के प्रथम व समर्थ समीक्षक स्व० नवलराम लक्ष्मीशंकर पंड्या (दे०) के लेखों का संग्रह चार भागों में प्रकाशित हुआ। इनमें से महत्वपूर्ण सारग्राही लेखों को संपादित कर श्री नरहरि द्वारकादास परीख ने एक ग्रंथ तैयार किया—'नवल ग्रंथावलि'। गुजरात विद्यापीठ ने इसे 1937 ई० में प्रकाशित किया था।

'ग्रंथावली' के प्रथम खंड में चालीस लेख संकलित हैं। सभी साहित्यिक समीक्षा से संबद्ध हैं। गुजराती के प्रथम उपन्यास 'करण घेलो' (दे०) से लेकर 'ऑवरियो हडकवा' तक के इन लेखों में लेखक की पैनी समीक्षा-दृष्टि व गहरी साहित्यिक सूझ-बूझ के दर्शन होते हैं। दूसरे खंड में संकलित दस निबंध प्रायः भाषा व वर्तनी से संबंधित है। एक भाषा हिंदी और एक लिपि देवनागरी के समर्थन में लेखक ने बहुत सुचिंतित दृष्टि से लेख लिखे हैं। गुजराती कोश तथा वर्तनी-संबंधी लेख भी बड़े प्रामाणिक व गहरे विचार-विमर्श से संपन्न हैं। तीसरे खंड में 11 प्रकीर्ण लेख हैं। इनमें मुख्यतः शिक्षा, समाज-सुधार, धर्म, उद्योग, रीति-रिवाज, देशाभिमान, आदि विषयों पर लेख हैं। चतुर्थ खंड में चार निबंध हैं। 'अकबर-बीरबल' निबंध रस-विषयक विवेचना का निबंध है। 'मेघदूत' भी गद्य में रचित तथा उदाहरण पद्य में रचित-निबंध है। 'मेघ' छंद में रचित सपद्यानुवाद के कुछ स्वरचित उदाहरण हैं। 'बाळलग्न बत्रीशी' बाल-विवाह पर पद्यात्मक व्यंग्य है। 'बाळ गरबावली' अन्य गरबे हैं।

संपादक ने अत्यंत श्रमपूर्वक इन लेखों का चयन व संपादन किया है। इस ग्रंथ में स्व० नवलराम के व्यक्तित्व के चारों प्रमुख रूप—समीक्षक, सुधारक, शिक्षा-शास्त्री तथा चिंतक—उभरकर आए हैं। संपादक ने प्रारंभ में 47 पृष्ठों में नवलराम के जीवन व कार्य का परिचय दिया है।

नवलराम *(गु० ले०)* [जन्म—1836 ई०, मृत्यु—1888 ई०]

गुजराती के प्रथम समीक्षक नवलराम लक्ष्मी-शंकर पड्या सूरत के निवासी थे। इन्होंने शिक्षा प्राप्ति के बाद सूरत, राजकोट, अहमदाबाद आदि स्थानों में अध्यापक तथा आचार्य का कार्य किया।

इनकी रचनाएँ हैं—'बाळ लग्न बत्रीसी', 'बाळ गरबावली' (काव्य), 'भटनुं भोपाळुं', 'वीरमती' (नाटक), 'मेघदूत' (अनु०), 'प्रेमानंद-कृत कुँवर बाईनुं मामेरूं' (संपा०), 'व्युत्पत्ति-पाठ' (भा० वि०), 'निबंधरीति' (निबंध), 'इंग्रेज लोकोनो संक्षिप्त इतिहास', 'कविजीवन' (प्रकीर्ण)। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'गुजरातशाला-पत्र' नामक पत्रिका का वर्षों तक संपादन किया।

कवि, नाटककार, निबंधकार, अनुवादक और समीक्षक—सभी रूपों में नवलराम की साहित्य सेवा उल्लेखनीय है। विवेचक के रूप में इनका स्थान बहुत ऊँचा है 'नवल ग्रंथावलि' (दे०) इनके आलोचना-कृतित्व का संग्रह है। संस्कृत एवं अँग्रेजी के समीक्षा सिद्धांतों का इन्होंने तलस्पर्शी अध्ययन किया था। गुजराती के सर्वप्रथम समालोचक के रूप में इनका स्थान सदैव बना रहेगा।

योग्यता, तटस्थता, विद्वत्ता निष्पक्षता, समत्व आदि समीक्षा गुणों का इनमें पर्याप्त विकास हुआ था। इनकी शैली विश्लेषणपरक थी।

नवसाहसांकचरित *(सं० कृ०)* [समय—अनुमानत 1005 ई०]

यह संस्कृत का प्रथम ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसमें धारा के प्रसिद्ध नरेश भोज (दे०) के पिता सिंधुराज के शशिप्रभा नामक राजकुमारी के साथ परिणय का वर्णन है। इसके रचयिता हैं - पद्मगुप्त परिमल। यह सिंधुराज के पूर्व मुंज (वाक्पतिराज) के सभाकवि थे। मुंज बड़े गुणग्राही एवं साहित्यानुरागी थे। उनकी मृत्यु हो जाने पर पद्मगुप्त ने अपने को निराश्रय पाया। पर सिंधुराज ने इनका इतना सम्मान किया कि इनकी प्रसन्नता कविता के रूप में प्रकट हुई।

यह महाकाव्य 1005 ई० के आसपास लिखा गया। इसमें 18 सर्ग हैं। उसके बारह सर्गों में सिंधुराज के पूर्ववर्ती सभी परमारवंशी नरेशों के वर्णन हैं। यह महाकाव्य वैदर्भी रीति का उत्कृष्ट निदर्शन है। इसका प्रमुख रस शृंगार तथा गुण प्रसाद है। प्राकृतिक दृश्यों के अंकन में कवि बड़ा सफल हुआ है। कालिदास (दे०) की कविता का जितना सफल अनुकरण इस महाकाव्य में हुआ है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। उपमादि अलंकारों के सफल प्रयोग ने काव्य को और भी मनोरम बना दिया है। इस प्रकार यह काव्य परमारों के इतिहास के लिए जितना उपादेय है, काव्य-सौष्ठव एवं साहित्यिक गरिमा की दृष्टि से भी उतना ही सफल है।

'नवा शिवाला' *(प० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1947 ई०]

'नवा शिवाला' गुरुबख्शसिंह 'प्रीतलड़ी' (दे०) का निबंध-संग्रह है जिसमें कला, जीवन, सौंदर्य, कलाकार का कर्त्तव्य आदि विविध विषयों पर इक्कीस निबंध संकलित हैं। इन निबंधों में 'प्रीत' सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए जीवन को कला का अंश माना गया है। जीवन-दोषों के निराकरण का एकमात्र साधन है प्रीति—अर्थात् परस्पर प्रेम की भावना। कला भावाभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसकी एक ही किरण जीवन में सौंदर्य का संचार कर देती है। सौंदर्य उत्तम स्वभाव की अभिव्यक्ति है जो मानवता को जन्म देती है। मनुष्य की प्रत्येक बुराई का उपचार स्वयं मनुष्य ही है। प्रीति-सिद्धांत का प्रतिनिधित्व करने वाली इस कृति में कहीं-कहीं निबंधकार का उपदेशक-रूप मुखर हो गया है।

नवीन कविता विषे व्याख्यानो *(गु० कृ०)*

'नवीन कविता विषे व्याख्यानो' प्रो० बलवंत-राय क० ठाकोर के व्याख्यानों का मुद्रित रूप है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन अप्रैल 1943 ई० में हुआ और पुनर्मुद्रण जनवरी 1964 में गुजराती विभाग, म० स० विश्वविद्यालय, बड़ौदा, की ओर से किया गया। इसमें लेखक के चार भाषण संकलित हैं जो पहला, दूसरा, तीसरा और चौथे दर्शन के नाम से अंकित किए गए हैं। इन चार दर्शनों के बाद 22 टिप्पणियाँ दी गई हैं और तत्पश्चात्

शुद्धि-पत्रक। प्रथम दर्शन में लेखक अपनी काव्य-भावना को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि 'मेरी काव्य-तत्त्व संबंधी भावना यूरोपीय रसिकों और दार्शनिकों की सौंदर्य-मीमांसा के आधार पर बँध पाई है।' इसी के साथ प्रथम दर्शन में लेखक ने गुजराती-साहित्य में उस समय प्रवर्तमान संक्रांति-युग की चर्चा की है और अपने नवीनता-संबंधी दृष्टिकोणों को स्पष्ट किया है। दूसरे दर्शन में 'नवीन कविता में लिरिक' को लेकर एक भूमिका बांधी गई है; तीसरे दर्शन में विरह-काव्य और विषाद-काव्यों की चर्चा है जबकि चौथा दर्शन लिरिकेतर कविता (महाकाव्य, आख्यान-काव्य, वर्णन-काव्य तथा खंड-काव्य), और कविता से संबंधित कुछ प्रश्नों को समर्पित है। कुछ प्रश्नों में 'इमेजिस्ट' आंदोलन, दुर्बोधता, सर्जकता और कविता और संगीत को लिया गया है। इस ग्रंथ में वास्तव में तो तीसरा और चौथा दर्शन ही महत्वपूर्ण हैं। लेखक गुजराती-साहित्य में 'नवीन' (नवीन साहित्य और नये हस्ताक्षरों) का पक्षधर है। सभी स्थानों पर विचार स्पष्ट और भाषा आवेग-प्रधान है।

'नवीन', बालकृष्ण शर्मा *(हि० सं०)* [जन्म—1897 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

इनका जन्मस्थान ग्वालियर का भवाना नामक ग्राम है। इनकी शिक्षा उज्जैन और कानपुर में हुई। सत्याग्रह-आंदोलन के प्रभाव में आकर इन्होंने कालिज छोड़ दिया। इनका स्वभाव मनमौजी और फक्कड़ था। पारिवारिक परिवेश से इन्हें वैष्णव संस्कार प्राप्त हुए। गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे प्रखर राष्ट्रनेता और निर्भीक पत्रकार ने इन्हें सक्रिय राजनीति और पत्रकारिता में दीक्षित किया। फलतः इनके काव्य में रीति, रहस्य और राष्ट्रीयता की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। 'कुंकुम', 'रश्मिरेखा' 'अपलक', 'क्वासि', 'विनोबा-स्तवन' और 'उर्मिला' इनकी गीतात्मक या प्रबंधात्मक रचनाएँ हैं। 'हम विषपायी जनम के' इनकी रचनाओं का प्रतिनिधि संकलन है। इनकी प्रतिभा का पूर्ण उत्कर्ष गीतों में हुआ है। राजनीतिक व्यस्तता अथवा फक्कड़पन के कारण ये अपनी शैली का परिष्कार नहीं कर सके। इसीलिए कहीं तो खड़ी बोली में ब्रजभाषा के अनुचित प्रयोग खटकते हैं और कहीं संस्कृत के दुरूह शब्द प्रवाह में व्याघात उत्पन्न करते हैं। फिर भी निश्छल प्रणयोद्गार और निर्भय राष्ट्रभक्ति को निर्व्याज रूप से लयबद्ध करने के कारण उत्तर छायावादी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कवियों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

नव्यशास्त्रवाद *(हि० पारि०)*

'नव्यशास्त्रवाद' पश्चिम में सत्रहवीं और अठारहवीं शती में प्राचीन आभिजात्यवादी (दे०) साहित्यिक मूल्यों के पुनरुत्थान में प्रयत्नशील विशिष्ट प्रकृति एवं आंदोलन 'निओक्लासिसिज़म' के लिए प्रचलित हिंदी अभिधान है। इसके लिए एक अन्य पर्याय 'नव्य-आभिजात्यवाद' भी है। नव्यशास्त्रवाद की स्थापना वस्तुतः उस युग के प्रमुख साहित्यिक केंद्रों इटली और फ्रांस में फैली हुई अराजकता, शास्त्रीय मूल्यों एवं नियमों की घोर उपेक्षा, कवि-कर्म को व्युत्पत्ति और प्रशिक्षण से सर्वथा मुक्त मात्र विशेष-जन्य मानने की भ्रांति और कवि-कल्पना के असंयम आदि को अनुशासित करने के लिए साहित्य-सृजन और साहित्यालोचन के क्षेत्र में प्राचीन यूनानी-रोमी साहित्य-सिद्धांतों की पुनः प्रतिष्ठा के उद्देश्य से की गई थी। कुछ लोग इसका आरंभ पुनर्जागरणकाल के लेखक वीदा की अमर कृति 'दे आर्ते पोएतिका' (1527 ई०) से मानते हैं। इस ग्रंथ में वीदा ने प्राचीन आचार्यों के प्रति आदर व्यक्त करते हुए साहित्य-रचना के लिए प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के व्यापक महत्व का प्रतिपादन किया था। वीदा की मान्यताओं में यद्यपि नव्यशास्त्रवाद के बीज तो अवश्य थे, किंतु उनका अनुसरण करने वाले परवर्ती लेखकों में नव्यशास्त्रवाद का वास्तविक पल्लवन नहीं हो पाया था। यह कार्य वस्तुतः फ्रांसीसी लेखक मालेबा द्वारा संपन्न हुआ। बाद में बोइलो, रापँ और बोस्यू ने नव्यशास्त्रवाद के सिद्धांतों का विधिपूर्वक प्रतिपादन किया। फ्रांस से बाहर ड्राइडन, एडिसन और डॉ० जॉन्सन जैसे अँग्रेज आलोचकों ने अपने युग की आवश्यकताओं के अनुरूप आभिजात्यवादी शास्त्रीय दृष्टि का रूपांतरण किया तथा जर्मनी के प्रसिद्ध कवि और आलोचक लेसिंग ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'लाओकन' (1766 ई०) में नव्यशास्त्रवाद की बहुत सुंदर व्याख्या की।

नव्यशास्त्रवाद प्राचीन साहित्य-सिद्धांतों का न तो अंधानुकरण था और न विवेकहीन अनुसरण ही। वस्तुतः नव्यशास्त्रवादियों—विशेषतः अँग्रेज़ी आलोचकों—ने अपने विवेक के आधार पर युगीन परिप्रेक्ष्य के अनुरूप अरस्तू, लॉन्जाइनस और होरेस आदि प्राचीन आचार्यों के सिद्धांतों के उत्तमांश का नवरूपांतरण करते हुए उसे साहित्य-सर्जना के मानदंड के रूप में अपनाया।

'नसीम' लखनवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1811 ई०, मृत्यु—1843 ई०]

नाम—दयाशंकर कौल, उपनाम—'नसीम', जन्मस्थान—लखनऊ। ये कश्मीरी ब्राह्मण थे। 'आतिश' लखनवी (दे०) इनके पथ-प्रदर्शक थे। मसनवी 'गुलज़ार ए-नसीम' (दे०) इनका कीर्तिस्तंभ है। इस मसनवी मे *गुलबकावली की पद्यबद्ध कहानी है। अनेक काव्यात्मक* विशेषताओ के कारण यह कृति उर्दू साहित्य की अमूल्य निधि मानी जाती है। इसी मसनवी को लक्ष्य कर 'चकबस्त' (दे०) और मौलाना 'शरर' (दे०) मे परस्पर साहित्यिक शास्त्रार्थ हुआ था और 'अवधपंच' अखबार ने उनकी आलोचना प्रत्यालोचना मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

नसूह *(उर्दू० पा०)*

'नसूह' डिप्टी नज़ीर अहमद (दे०) के उपन्यास 'तौबातुन्नसूह' (दे०) का प्रमुख पात्र है। यह अपने घर का कर्ता धर्ता है। फ़हमीदा इसकी पत्नी है, कलीम, असीम और सलीम इसके तीन पुत्र हैं तथा नईमा और हमीदा दो पुत्रियाँ। नसूह पहले क्रूर स्वभाव का व्यक्ति है। घरवाले उसे हव्वा समझते हैं। घर के सभी सदस्य इसकी झिड़कियो और घुड़कियो से काँपते हैं। यह पारिवारिक कर्तव्यो की ओर से सर्वथा उदासीन है। विलासिता और खास-खास पान मे ही इसका जीवन कटता है। इस के जीवन मे धर्म और आस्तिकता के लिए कही स्थान नही है। यह डिप्टी मजिस्ट्रेट फौजदारी के पद पर कार्य कर चुका है।

दिल्ली मे हैज़ा फैलता है जो नसूह को भी अपनी लपेट मे ले लेता है। ओषधि-सेवन करने पर आँख लग जाती है और यह स्वप्न म ईश्वर का दरबार देखता है। अनेको लोग—यहाँ तक कि नसूह के पिता भी—इस ईश्वरीय न्यायालय मे उपस्थित होकर न्याय की प्रतीक्षा मे खड़े हैं। यहाँ का दृश्य देख नसूह का मन काँप उठता है। स्वप्न टूटता है तो इसका कायापलट हो जाता है। इस की आस्थाओ तथा आचरणो मे आमूलचूल परिवर्तन हो जाता है—यह नम्र, धर्मपरायण, स्नेहशील, कर्तव्यनिष्ठ एव आस्थावान बन जाता है। लोग बीमारी से उठकर चिड़चिड़े हो जाते हैं किंतु यह नम्र एव शिष्ट हो जाता है। घर मे जो लोग इससे डरते थे वे ही अब इसका आदर करने लगते हैं।

नहैमोळि *(त० पारि०)*

तमिल भाषा के उपलब्ध प्राचीन वैयाकरणो मे प्रथम 'तोलकाप्पियम्' (दे०) के 'चेय्युळियल्' (छंद-परिच्छेद) मे कुछ रचनाओ का उल्लेख है जिनके लिए चरणो की निश्चित सीमा का बधन नही है। इनमे से एक 'उरै' है जो सभवत पद्य-गद्य-मिश्रित टीकात्मक रचना थी। *सूत्र 173 मे 'उरै' ग्रथो के चार प्रकारो का उल्लेख* है। ये हैं—

(1) मूलाश बीच बीच मे लिये हुए, उसके विचारो से सबधित।

(2) मूल से उठने वाली बातो से सबधित।

(3) मूल से हटकर कल्पना सपृक्त बातो से सबधित।

(4) मूल से सबद्ध *सार्थक व्यग्यपूर्ण बातो मे* सबधित।

प्रस्तुत 'नहैमोळि' चौथा प्रकार है। कदाचित् मूल पद्य की बात को व्यग्यपूर्ण ढग से काटकर कुछ और *स्थापना करना इस ग्रथ का उद्देश्य था।* 'तोलकाप्पियम्' मे इस प्रकार के ग्रथो के उदाहरणो के नाम नही मिलते और उसके टीकाकारो ने ऐसे उदाहरण बताए है जो आजकल अप्राप्य हैं।

नाजिल नाट्टु मरुमक्कळ वाषिमान्मियम *(त०कृ०)* [रचना-काल—1917-18 ई०]

यह बीसवी शती के प्रसिद्ध तमिल कवि देशिग विनायकम्पिळ्ळै (दे०) की प्रभावशाली काव्य-कृतियो मे परिगणित है। इन्होने प्राय बच्चो के लिए कविताएँ लिखी परतु इस कृति मे एक गभीर विषय का प्रतिपादन है। यह काव्य तिरुवनतपुरम से प्रकाशित 'तमिलन' नामक मासिक पत्रिका मे 1917-18 ई० के मध्य धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हुआ था।

इसमे नाजिल नाडु (त्रावनकोर) मे रहने वाले वेळाळर जाति के लोगो म प्रचलित मातृसत्तात्मक दाय-प्रथा से पीडित एक परिवार की करुण कहानी वर्णित है। इसमे उन्होने इस प्रथा के पालन म उत्पन्न नाना समस्याओ का अत्यत सजीव चित्रण किया है। उक्त जाति मे प्रचलित बहु-विवाह प्रथा के दोषो का वर्णन भी इस कृति मे है। कवि ने सपूर्ण कथा काव्य के नायक पंचकल्याणी पिळ्ळै (दे०) की पाँचवी पत्नी के माध्यम मे

कही है। इस कृति में उसके अंतर्द्वंद्व, भाव-संघर्ष का सजीव चित्रण है। विभिन्न प्रसंगों में करुण, हास्य, वीभत्स आदि रसों की सफल अभिव्यंजना हुई है। संपूर्ण कृति में सरल एवं व्यावहारिक भाषा का प्रयोग है। प्रादेशिक शब्दों एवं मुहावरों के प्रयोग से भाषा में सजीवता एवं प्रभावशालिता आ गई है।

इस कृति के प्रकाशित होते ही वेळाळर जाति के कुछ जागरूक व्यक्तियों ने क्रांति की। राज्य की ओर से प्रथा-संबंधी नियमों में कुछ परिवर्तन किए गए। इस प्रकार इसे एक क्रांतिकारी रचना कहा जा सकता है।

नांदी *(सं० पारि०)*

देवता, ब्राह्मण तथा राजा आदि की आशीर्वाद-युक्त स्तुति जिस कथन के द्वारा की जाती है उसे 'नांदी' कहते हैं। इसे नांदी इसलिए कहते हैं क्योंकि प्रेक्षक इससे आनंदित होते हैं। इसमें मांगल्य-वस्तु—शंख, चंद्र, चक्रवाक और कुमुद आदि का वर्णन होना चाहिए। इसमें बारह या आठ पद होने चाहिए।

नाएग्रा ओ देवयानी *(उ० कृ०)*

'नाएग्रा ओ देवयानी' श्री कृष्णप्रसाद मिश्र (दे०) की ग्यारह कहानियों का संकलन है। डा० मिश्र की कहानियों में नूतन दृष्टि-भंगी दिखाई पड़ती है। प्रकृति-वर्णन एवं प्राकृतिक बिंबों का प्रयोग इनकी कहानियों में हुआ है। लेखक के मतानुसार पाठक के मनोरंजन के साथ ही किसी-न-किसी सत्य-घटना की अवतारणा भी कहानीकार का उद्देश्य होता है। दैनिक जीवन और प्राकृतिक सौंदर्य-वर्णन के माध्यम से विभिन्न दार्शनिक तत्त्वों की स्थापना करना लेखक की एक अन्य विशेषता है।

लेखक की कहानियाँ सुखपाठ्य हैं तथा नारी-पुरुष तथा पुरुष-प्रकृति-संबंध पर आधारित हैं।

नाकर *(गु० ले०)* [जन्म—1516 ई०; मृत्यु—1569 ई०]

प्राचीन गुजराती के महत्वपूर्ण कवि नाकर बड़ौदा के निवासी वणिक् थे।

'हरिश्चंद्राख्यान', 'चंद्रहासाख्यान', 'ध्रुवाख्यान', 'नळाख्यान', 'ओखाहरण', 'लवकुशाख्यान', 'शिव-विवाह', 'व्याध-मृगी-संवाद', 'भीलनी के बारमास' आदि इनकी कृतियाँ हैं। अपने एक ब्राह्मण मित्र की आजीविका चलाने के लिए इन्होंने आख्यान लिखकर उसे दे दिए थे।

संस्कृतज्ञ न होने के कारण इन आख्यानों की कथा पुराणादि से ग्रहण न कर, मौखिक व श्रवण-परंपरा से ग्रहण की गई है।

पद-पद्धति व कड़वक-पद्धति का आश्रय इन्होंने भालण (दे०) के अनुकरण पर लिया है। परवर्ती आख्यान-कवि प्रेमानंद (दे०) पर इनका प्रभाव रहा है।

गुजराती के प्रारंभिक आख्यानकारों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

नाककटा चित्रकार *(उ० कृ०)*

यह रामप्रसाद मिश्र उर्फ फतुरानंद (दे०) का अन्यतम उपन्यास है। बाल्यावस्था में चेचक के रोग से जिस चित्रकार ने नाक गँवा दी है, उसके अनुराग की कहानी इस उपन्यास की विषयवस्तु है। उसकी कला-सृष्टि की जो प्रेरणा है, वह चित्रकार की तूलिका से अमर तो हो गई, किंतु वह उसकी जीवन-संगिनी नहीं बन सकी।

सावलील गद्य में लिखित उनका यह उपन्यास स्थान-स्थान पर हास्योद्रेक करता हुआ भी मुख्यतः एक कलाकार की समस्या के प्रतिफलन की निष्ठापूर्ण चेष्टा करता है।

नागमती *(हिं० पा०)*

जायसी (दे०)-कृत 'पद्मावत' (दे०) नामक प्रेमाख्यानक काव्य में यह सहनायिका के रूप में आती है। यह पूर्णतः काल्पनिक पात्र है, परंतु फिर भी कवि ने इसका इस चातुर्य से वर्णन किया है कि इससे संबद्ध समग्र घटनाएँ कम सजीव प्रतीत नहीं होती हैं। प्रारंभ में यह रूप-गर्विता है, एक स्थान पर स्पष्ट उद्घोषणा करती है—'मैं सारे संसार का रूप जीत चुकी हूँ' (36-10) और पद्मिनी (दे० पद्मावती) चाहे रूप में कितनी ही सुंदर सही हम से बढ़कर कोई भी रूपवती नहीं है' (8-6)। राजा रतनसेन (दे०) के सिंहल की ओर चल देने पर कवि ने उसके विरह का अकृत्रिम ढंग से बहुत ही हृदयद्रावक वर्णन किया है। संदेशवाहक द्वारा 'बारहमासा' के रूप में अपने पूरे वर्ष की वियोग-स्थिति का नागमती ने जिस करुण ढंग से वर्णन किया है वह कवि के कौशल का परि-

चायक है। नागमती एक हिंदू रमणी है, अपनी विरहजन्य वेदना का संदेश जब वह एक दूत के माध्यम से राजा के पास भिजवाती है, तब राजा भी उसकी स्थिति से द्रवीभूत होकर उसके पास चला जाता है।

अंत में नागमती राजा की मृत्यु पर अपनी सपत्नी के साथ चिता में जल जाती है। निश्चय ही नागमती के रूप में कवि ने सच्चे विरहोद्गारों की जाली में जिस प्रभावक चरित्र की निर्मिति की है उसकी करुण गाथा की लपेट में 'दरार' के रूप में पृथ्वी का हृदय फट गया है और कल्पना में उसके मरन पर चिता की अग्नि से आज तक भौंरे और कौवे काले पड़ते आए हैं।

नागम्मा (ते० पा०)

यह महाकवि श्रीनाथुडु (दे०)-रचित 'पलनाटि वीरचरित्र' (दे०) नामक ऐतिहासिक प्रबंधकाव्य की नायिका है। यह नागम्मा रामि रेड्डी नामक एक कृषक द्वारा पाली जाती है और अल्पायु में ही विधवा हो जाती है, *इस प्रकार पिता एवं पति दोनों की संपत्ति की स्वामिनी* बनती है। तदुपरांत इसके अंदर छिपी हुई महान शक्ति एवं सामर्थ्य इसको स्त्री सुलभ कार्यव्यापारों तक सीमित नहीं रहने देती। प्रबल महत्वाकांक्षा से प्रेरित होकर परम चातुरी से यह उस देश के शासक नलगामराजु को प्रभावित करके उसके स्वामिभक्त मंत्री ब्रह्मनायुडु को अपदस्थ करवाती है और स्वयं मंत्री बन जाती है। इतने से संतुष्ट न होकर नलगामराजु के सौतेले भाइयों के राज्य को भी हस्तगत करने के लिए उन्हें *'कुक्कुटयुद्ध'* के लिए प्रेरित कर, *वंचना से उनको हराती है, और शर्त के अनुसार* उनसे सात वर्ष का वनवास कराती है। जब वे वनवास से लौटते हैं, तब उनके राज्य को लौटाने से नलगामराजु से इनकार करवाती है। परिणाम में जो युद्ध होता है उसमें *स्वयं सेनानी के पद से युद्ध करती हुई अंत में शत्रुओं के* द्वारा बंदी बनाई जाती है। आज में नागम्मा, एक चतुर, पराक्रमी और कठोर स्त्री के रूप में स्मरण की जाती है।

नागर, अमृतलाल (हि० ले०) [जन्म—1916 ई०]

इनका जन्म आगरा के गोकुलपुरा मोहल्ले में हुआ। इनके पूर्वज गुजरात के रहने वाले थे। किंतु इनके जन्म से कई पीढ़ी पूर्व आगरा आकर रहने लगे थे पिता की असामयिक मृत्यु तथा पंद्रह-सोलह वर्ष की आयु में ही विवाह-सूत्र में बँध जाने के कारण ये मात्र इंटर तक ही पढ़ सके। जीवन-यापन के निमित्त बीमा-कंपनी के डिस्पैच-क्लर्क से लेकर सिने-संसार, पत्रकारिता तथा आकाशवाणी के ड्रामा प्रोड्यूसर आदि पदों पर *कार्य करते हुए ये निरंतर* साहित्य-सृजन में लीन रहे। 'महाकाल', 'सेठ बाँकेमल', 'शतरंज के मोहरे', 'सुहाग के नूपुर', (दे०), 'बूँद और समुद्र' (दे०) 'अमृत और विष', 'मानस का हंस' तथा 'नाच्यौ बहुत गुपाल' इनके उल्लेखनीय सामाजिक-ऐतिहासिक उपन्यास हैं। *ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रणयन करते समय ये संबद्ध युग की* संपूर्ण सामग्री का सम्यक् अध्ययन करने के बाद इतिहास तथा कल्पना का ऐसा समन्वय करते हैं जिससे न तो साहित्यिकता को ही आँच पहुँचती है और न ऐतिहासिकता को। सामाजिक उपन्यासों में ये *व्यक्ति तथा समाज में समन्वय की भावना* पर बल देते हैं और इन दोनों की सापेक्षता में सामाजिक समस्याओं का हल ढूँढते हैं। सुसंगठित कथानक, समाज के विभिन्न वर्गों से बौद्धिक समस्याओं का निरूपण करने वाले, प्रतिक्रियावादी, सुधारवादी, रूढ़िवादी आदि पात्रों का चयन, *व्यंजक ब्योरों के द्वारा देशकाल का हृदयस्पर्शी* चित्रण तथा हास्य-व्यंग्य के पुट से युक्त भाषा-शैली का प्रयोग इनकी उपन्यास-कला की कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। समग्रत: प्रेमचंदोत्तर (दे० प्रेमचंद) हिंदी-उपन्यासकारों में इनका उल्लेखनीय स्थान है।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका (हि० कृ०)

हिंदी और नागरी के प्रचार का बीड़ा उठाकर *इस कार्य को निरंतर निष्ठापूर्वक करते रहने वाली* पत्रिकाओं में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का स्थान सर्वोच्च है। जून 1896 ई० में वाराणसी से प्रकाशित इस पत्रिका के प्रथम संपादक थे वेणी प्रसाद। आरंभ में डिमाई आकार के 48 पृष्ठों की इस मासिक पत्रिका का मूल्य था चार आना। और पहले-पहल इसकी केवल 250 प्रतियाँ छपी थीं। शुरू में इसमें नागरी प्रचारिणी सभा की सूचनाएँ अथवा हिंदी भाषा और साहित्य पर टिप्पणियाँ प्रकाशित होती थीं। कभी-कभी एकाध कविता भी छप जाती थी जैसे महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) की कविता 'नागरी तेरी यह दशा'। प्रारंभ में इसके संपादक-मंडल में बाबू श्यामसुंदरदास (दे०), महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी, श्री कालिदास और श्री राधाकृष्ण दास थे। 1920 ई० में यह त्रैमासिक हो गई। सुप्रसिद्ध विद्वानों—आचार्य

शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचंद्र), पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा (दे०), चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' (दे०) मुंशी देवीप्रसाद, केशवप्रसाद मिश्र, मंगलदेव शास्त्री, (दे०) विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र, हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०) आदि का संपादक-रूप में सहयोग पाने का इसका सौभाग्य रहा है।

इसका प्रकाशन तो हिंदी आंदोलन की पीठिका के रूप में हुआ था पर बाद में इसने आलोचना और शोध-पत्रिका का रूप धारण कर लिया। रॉयल एशियाटिक सोसायटी और पाश्चात्य पंडितों के अध्ययनों द्वारा आरंभ होने वाली ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक परीक्षण वाली आलोचना-पद्धति को सबसे पहले इसी पत्रिका ने अपनाया। अन्वेषण और अनुसंधानपरक आलोचना का विकास भी इसके द्वारा हुआ। इसी पत्रिका के माध्यम से चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने स्पष्ट घोषणा की कि उत्तर अपभ्रंश ही पुरानी हिंदी है। ब्रजभाषा-गद्य के पुराने नमूनों, जैसे सती-समाधि लेख, का प्रकाशन भी इसके द्वारा हुआ। इसी मे जायसी (दे०)-कृत 'पदमावत' (दे०) जैसे अमर ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। प्राचीन हिंदी-साहित्य की खोज और प्रकाशन के साथ-साथ इस पत्रिका ने इतिहास, पुरातत्व, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, कला, संस्कृति-संबंधी उच्चस्तरीय साहित्य के प्रणयन और प्रकाशन में अन्यतम योग दिया। 1917 ई० में प्रकाशित 'शिक्षा का माध्यम', 'आँखों देखा नक्षत्र-जगत', 'कोलंबस की यात्रा' आदि लेख इसके प्रमाण है। इसी प्रकार 1949 ई० में खोजपूर्ण लेख—'गुप्त सम्राट और विष्णुसहस्रनाम', 'रामवनवास का भूगोल', 'मिश्रबंधुविनोद की भूलें'—छपे। शुक्ल जी के मनोवैज्ञानिक लेखों को प्रकाशित करने का श्रेय भी इसी पत्रिका के अंकों (1912 ई० से 1919 ई०) को है। हिंदी-पत्र-साहित्य के विकास में भी इसका योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

नागरी प्रचारिणी सभा *(हिं० संस्था)*

हिंदी भाषा और साहित्य तथा देवनागरी लिपि की उन्नति तथा प्रचार और प्रसार करने वाली यह देश-भर मे अग्रणी संस्था है। इसकी स्थापना 16 जुलाई, 1893 ई० में हुई थी। इसके प्रमुख संस्थापक थे—स्व० श्यामसुंदरदास (दे०), पं० रामनारायण मिश्र और स्व० ठाकुर शिवकुमार सिंह। सभा का 'आर्य भाषा पुस्तकालय' नामक एक विशाल पुस्तकालय है, जिसमें अन्यत्र अलभ्य ग्रंथों का भी काफ़ी बड़ा संकलन है। इसमें पंद्रह हजार हस्तलिखित ग्रंथ हैं जिनका संक्षिप्त विवरण 'त्रैवार्षिक रिपोर्ट' में दिया जाता है। सभा द्वारा लगभग 1000 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (दे०) (त्रैमासिक) सभा का प्रमुख पत्र है। 'नागरी पत्रिका' (मासिक) भी प्रकाशित हो रही है। 'सरस्वती' (दे०) पत्रिका का श्रीगणेश भी सभा द्वारा किया गया था। सभा ने निम्नोक्त मासिक पत्रिकाएँ भी चलाई थीं—'हिंदी', 'विधि पत्रिका', 'हिंदी रिव्यू' (अँग्रेज़ी), किंतु किन्हीं कारणों से इन्हें बंद करना पड़ा। सभा लेखकों को प्रतिवर्ष अनेक पुरस्कार एवं स्वर्ण तथा रजत पदक दिया करती है। सभा की अनेक शाखाएँ हैं।

नागवर्मा प्रथम *(क० ले०)* [समय—लगभग 990 ई०]

नागवर्मा प्रथम के समय तथा कृतियों के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कहा जाता है कि ये चंद्र राजा के दरबार में थे। भोज-परमार के पास जाकर इन्होंने अपनी 'कादंबरी' सुनाई थी, जिस पर उन्होंने पुरस्कृत करके कवि को संतुष्ट किया था। 'छंदोंबुधि' (दे०) तथा 'कर्णाटक कादंबरी' (दे०) इनकी रचनाएँ मानी जाती हैं। 'छंदोंबुधि' कन्नड में पिंगल पर लिखा सर्वप्रथम ग्रंथ है। इसमें संस्कृत-छंदों के अतिरिक्त कन्नड के अपने छंदों का सोदाहरण निरूपण है। कवि का कहना है कि उसने पिंगल मुनि का ही अनुसरण किया है।

'कर्णाटक कादंबरी' बाण (दे०) कवि की विख्यात गद्यकृति का कन्नड रूपांतर है। बाण की 'कादंबरी' विन्ध्याटवी की भाँति गहन है। उसे काट-छाँटकर एक सुंदर चंपू-काव्य के रूप में परिवर्तित किया गया है। इसमें गद्य एवं पद्य समान परिमाण में है। मूल कथानक, चरित्रों की यथार्थता, वर्णनों की सरसता, कल्पना, की उड़ान—इनमें व्याघात नहीं आने दिया गया है। अनुवाद में मौलिक कृति का सौंदर्य आ गया है। इस प्रकार 'कादंबरी' नागवर्मा के हाथ में पड़कर कन्नड की अपनी कृति बन गई है। इस ग्रंथ की भाषा अत्यंत प्रांजल है। नागवर्मा की शैली वैदर्भी है। उन्होंने मूल के अनेक संस्कृत शब्दों के बदले सरस कन्नड शब्दों का प्रयोग किया है; शैली कहीं भी दुरूह नहीं होने पाई।

नागवर्मा द्वितीय *(क० ले०)* [समय—लगभग 1150 ई०]

कन्नड-साहित्य के आदिकाल की सर्वांगीण

प्रगति मे विशेष रूप से योग देने वालो मे नागवर्मा द्वितीय का नाम अविस्मरणीय है। इनके जन्म मृत्यु आदि के बारे मे निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नही है। अनुमानत इनका समय 1150 ई० के करीब ठहरता है। ये चालुक्य-नरेश जगदेकमल्ल के यहाँ कटकोपाध्याय थे। जाति के जैन थे। कहा जाता है कि ये कन्नड के विख्यात कवि जन्न के गुरु थे। इनकी रचनाएँ हैं—'शब्दस्मृति', 'भाषाभूषण', 'काव्यावलोकन' तथा 'छदोविचितिव्युत्पत्ति-साधक'। सभी ग्रथो का—क्या रीतिग्रथ, क्या पिंगल क्या व्याकरण सबका—प्रणयन एक साथ करने का श्रेय इन्हें मिलता है। अत सहज ही ये कर्णाटक-लक्षण-शिक्षणाचार्य के गौरव से भूषित हैं। कन्नड के वैयाकरणो मे तो ये सर्वप्रथम हैं ही, इन ग्रथो मे शास्त्र-पाडित्य, सग्रह-कौशल, प्रयोग-नैपुण्य के साथ ही रसग्राहिता तथा समन्वय-दृष्टि भी विद्यमान है। लक्षणो का निरूपण करते समय इन्होने खुद लक्ष्य-पद्य न लिखकर दूसरो की कविताएँ चुनी है, और उनमे इनकी रस-दृष्टि के दर्शन होते हैं।

नागवर्मा प्राचीन आलकारिको से—विशेषत राजशेखर (दे०) से—अधिक प्रभावित हैं। रसो की सख्या नागवर्मा ने केवल आठ दी है किंतु निरूपण करते समय अद-भुत के साथ शात रस का भी निरूपण किया है। वामन (दे०) ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहा तो नागवर्मा ने उसे अस्वीकार कर 'रीति काव्य का शरीर' कहकर उसे उचित स्थान दिया है। यह भारतीय काव्यशास्त्र के लिए उनकी महती देन है। नागवर्मा से भी पूर्व के कन्नड आलकारिक कवि-राजमार्गकार ने ध्वनि (दे०) का उल्लेख किया था किंतु यह आश्चर्य की बात है कि नागवर्मा ने कही भी ध्वनि का उल्लेख नही किया है।

नागानद (स० कृ०) [समय—सातवी शती ई०]

यह महाराज हर्ष (दे० श्रीहर्ष) की प्रसिद्ध नाट्यकृति है। इसमे बौद्ध अवदान कथा के आधार पर विद्याधर कुमार जीमूतवाहन (दे०) की कथा पाँच अको मे सयोजित है। इस नाटक के दो भाग हैं। पूर्वार्ध मे विद्याधर कुमार जीमूतवाहन तथा सिद्धकन्या मलयवती की प्रणय-कथा वर्णित है। उत्तरार्ध मे जीमूतवाहन द्वारा गरुड के सर्प-भक्षण-त्याग की कथा है। नाटक का अत भरतवाक्य से किया गया है।

इस नाटक के मगलाचरण और भरतवाक्य मे बौद्ध धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है, पर कथानक मे ऐसा नही है। इसमे हर्ष ने आत्म-बलिदान, वदान्यता, उदार हृदयता तथा दृढ सकल्प आदि बातो का सफल चित्रण किया है। जीवमूतवाहन विलक्षण रूप मे निबद्ध होने पर भी, बौद्धो का एक आदर्श है। शखचूड और उसकी माँ का चरित्र भी महान् है। यद्यपि नाटक के दोनो अशो मे सामजस्य की कमी है, किंतु प्रभावान्विति मे किसी प्रकार की असफलता नही है। अभिव्यजना तथा विचारो की सरलता हर्ष का विशेष गुण है और उसका परिचय नागानद मे पद-पद पर मिलता है। नागानद की भाषा परिनिष्ठित तथा अर्थगर्भित है। अलकारो का प्रयोग सुरुचिपूर्ण तथा सयत है।

नागार्जुन (स० ले०) [स्थिति-काल—200 ई०]

डा० विंटरनिटज के अनुसार नागार्जुन आध्र राजा यज्ञश्री के समकालीन थे। नागार्जुन का जन्म विदर्भ मे एक ब्राह्मण के घर हुआ था। आगे चलकर ये श्रीपर्वत पर रहने लगे थे। नागार्जुन वैद्यक और रसायनशास्त्र के भी आचार्य थे। नागार्जुन की प्रमुख रचनाओ मे 'माध्य-मिक कारिका', 'सुहृल्लेख' तथा 'विग्रह-व्यावर्त्तनी' हैं। 'माध्यमिक कारिका' और 'विग्रह व्यावर्त्तनी' मूल सस्कृत मे ही उपलब्ध हैं। विग्रह व्यावर्त्तनी' की 72 कारिकाओ मे से माहात्म्य और नमस्कार के दो श्लोको को छोडकर शेष 70 कारिकाओ मे शून्यता का विवेचन होने के कारण ही 'विग्रह व्यावर्त्तनी' का दूसरा नाम 'शून्यता-सप्तति' भी प्रचलित हो गया है।

नागार्जुन का शून्यवाद एक विचित्र दर्शन है। उसका एक छोर अनात्मवाद है और दूसरा अभौतिक-वाद। शून्यवादी आत्मा का खडन करता है। नागार्जुन के मतानुसार ससार का निदान सत्काम दृष्टि है। इस सत्काम दृष्टि का आलबन आत्मा है। शून्यवादी यह मानता है कि आत्मा की अनुपलब्धि से सत्काम दृष्टि का विनाश होगा और उसके विनाश से क्लेशो की व्यावृत्ति होगी। आत्मा, नागार्जुन के मतानुसार, अहकार का विषय है। अत क्लेशमूल अहकार के परिक्षय के लिए आत्मा निषिद्ध ही है।

शून्यवादी नागार्जुन का प्रमुख सिद्धात प्रतीत्य-समुत्पाद है। इस सिद्धात के अनुसार सभी वस्तुएँ प्रतीत्य-समुत्पन्न हैं। प्रतीत्यसमुत्पन्न का आशय यह है कि सभी वस्तुएँ अपनी उत्पत्ति मे, अपनी सत्ता के अर्थ दूसरे प्रत्यय

शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचंद्र), पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा (दे०), चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' (दे०) मुंशी देवीप्रसाद, केशवप्रसाद मिश्र, मंगलदेव शास्त्री, (दे०) विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र, हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०) आदि का संपादक-रूप में सहयोग पाने का इसका सौभाग्य रहा है।

इसका प्रकाशन तो हिंदी आंदोलन की पीठिका के रूप में हुआ था पर बाद में इसने आलोचना और शोध-पत्रिका का रूप धारण कर लिया। रॉयल एशियाटिक सोसायटी और पाश्चात्य पंडितों के अध्ययनों द्वारा आरंभ होने वाली ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक परीक्षण वाली आलोचना-पद्धति को सबसे पहले इसी पत्रिका ने अपनाया। अन्वेषण और अनुसंधानपरक आलोचना का विकास भी इसके द्वारा हुआ: इसी पत्रिका के माध्यम से चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने स्पष्ट घोषणा की कि उत्तर अपभ्रंश ही पुरानी हिंदी है। ब्रजभाषा-गद्य के पुराने नमूनों, जैसे सती-समाधि लेख, का प्रकाशन भी इसके द्वारा हुआ। इसी में जायसी (दे०)-कृत 'पदमावत' (दे०) जैसे अमर ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। प्राचीन हिंदी-साहित्य की खोज और प्रकाशन के साथ-साथ इस पत्रिका ने इतिहास, पुरातत्व, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, कला, संस्कृति-संबंधी उच्चस्तरीय साहित्य के प्रणयन और प्रकाशन में अन्यतम योग दिया। 1917 ई० में प्रकाशित 'शिक्षा का माध्यम', 'आँखों देखा नक्षत्र-जगत', 'कोलंबस की यात्रा' आदि लेख इसके प्रमाण हैं। इसी प्रकार 1949 ई० में खोजपूर्ण लेख—'गुप्त सम्राट और विष्णुसहस्रनाम', 'रामवनवास का भूगोल', 'मिश्रबंधुविनोद की भूलें'—छपे। शुक्ल जी के मनोवैज्ञानिक लेखों को प्रकाशित करने का श्रेय भी इसी पत्रिका के अंकों (1912 ई० से 1919 ई०) को है। हिंदी-पत्र-साहित्य के विकास में भी इसका योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

नागरी प्रचारिणी सभा *(हिं० संस्था)*

हिंदी भाषा और साहित्य तथा देवनागरी लिपि की उन्नति तथा प्रचार और प्रसार करने वाली यह देश-भर में अग्रणी संस्था है। इसकी स्थापना 16 जुलाई, 1893 ई० में हुई थी। इसके प्रमुख संस्थापक थे—स्व० श्यामसुंदरदास (दे०), पं० रामनारायण मिश्र और स्व० ठाकुर शिवकुमार सिंह। सभा का 'आर्य भाषा पुस्तकालय' नामक एक विशाल पुस्तकालय है, जिसमें अन्यत्र अलभ्य ग्रंथों का भी काफ़ी बड़ा संकलन है। इसमें पंद्रह हजार हस्तलिखित ग्रंथ हैं जिनका संक्षिप्त विवरण 'त्रैवार्षिक रिपोर्ट' में दिया जाता है। सभा द्वारा लगभग 1000 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (दे०) (त्रैमासिक) सभा का प्रमुख पत्र है। 'नागरी पत्रिका' (मासिक) भी प्रकाशित हो रही है। 'सरस्वती' (दे०) पत्रिका का श्रीगणेश भी सभा द्वारा किया गया था। सभा ने निम्नोक्त मासिक पत्रिकाएँ भी चलाई थीं—'हिंदी', 'विधि पत्रिका', 'हिंदी रिव्यू' (अंग्रेजी), किंतु किन्हीं कारणों से इन्हें बंद करना पड़ा। सभा लेखकों को प्रतिवर्ष अनेक पुरस्कार एवं स्वर्ण तथा रजत पदक दिया करती है। सभा की अनेक शाखाएँ हैं।

नागवर्मा प्रथम *(क० ले०)* [समय—लगभग 990 ई०]

नागवर्मा प्रथम के समय तथा कृतियों के बारे में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कहा जाता है कि ये चंद्र राजा के दरबार में थे। भोज-परमार के पास जाकर इन्होंने अपनी 'कादंबरी' सुनाई थी, जिस पर उन्होंने पुरस्कृत करके कवि को संतुष्ट किया था। 'छंदोंबुधि' (दे०) तथा 'कर्णाटक कादंबरी' (दे०) इनकी रचनाएँ मानी जाती हैं। 'छंदोंबुधि' कन्नड में पिंगल पर लिखा सर्वप्रथम ग्रंथ है। इसमें संस्कृत-छंदों के अतिरिक्त कन्नड के अपने छंदों का सोदाहरण निरूपण है। कवि का कहना है कि उसने पिंगल मुनि का ही अनुसरण किया है।

'कर्णाटक कादंबरी' बाण (दे०) कवि की विख्यात गद्यकृति का कन्नड रूपांतर है। बाण की 'कादंबरी' विंध्याटवी की भाँति गहन है। उसे काट-छाँटकर एक सुंदर चंपू-काव्य के रूप में परिवर्तित किया गया है। इसमें गद्य एवं पद्य समान परिमाण में हैं। मूल कथानक, चरित्रों की यथार्थता, वर्णनों की सरसता, कल्पना, की उड़ान—इनमें व्याघात नहीं आने दिया गया है। अनुवाद में मौलिक कृति का सौंदर्य आ गया है। इस प्रकार 'कादंबरी' नागवर्मा के हाथ में पड़कर कन्नड की अपनी कृति बन गई है। इस ग्रंथ की भाषा अत्यंत प्रांजल है। नागवर्मा की शैली वैदर्भी है। उन्होंने मूल के अनेक संस्कृत शब्दों के बदले सरस कन्नड शब्दों का प्रयोग किया है; शैली कहीं भी दुरूह नहीं होने पाई।

नागवर्मा द्वितीय *(क० ले०)* [समय—लगभग 1150 ई०]

कन्नड-साहित्य के आदिकाल की सर्वांगीण

शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचद्र), पंडित गौरीशकर हीराचद ओझा (दे०), चद्रधर शर्मा 'गुलेरी' (दे०) मुशी देवीप्रसाद, केशवप्रसाद मिश्र, मगलदेव शास्त्री, (दे०) विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र, हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०) आदि का सपादक-रूप मे सहयोग पाने का इसका सौभाग्य रहा है।

इसका प्रकाशन तो हिंदी आदोलन की पीठिका के रूप मे हुआ था पर बाद मे इसने आलोचना और शोध-पत्रिका का रूप धारण कर लिया। रॉयल एशियाटिक सोसायटी और पाश्चात्य पडितो के अध्ययनो द्वारा आरभ होने वाली ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक परीक्षण वाली आलोचना-पद्धति को सबसे पहले इसी पत्रिका ने अपनाया। अन्वेषण और अनुसधानपरक आलोचना का विकास भी इसके द्वारा हुआ इसी पत्रिका के माध्यम से चद्रधर शर्मा गुलेरी ने स्पष्ट घोषणा की कि उत्तर अपभ्रश ही पुरानी हिंदी है। व्रजभाषा-गद्य के पुराने नमूनो, जैसे सती-समाधि लेख, का प्रकाशन भी इसके द्वारा हुआ। इसी मे जायसी (दे०)-कृत पदमावत' (दे०) जैसे अमर ग्रथो का प्रकाशन हुआ। प्राचीन हिंदी-साहित्य की खोज और प्रकाशन के साथ-साथ इस पत्रिका ने इतिहास, पुरातत्त्व, ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, कला, सस्कृति-सबधी उच्चस्तरीय साहित्य के प्रणयन और प्रकाशन मे अन्यतम योग दिया। 1917 ई० मे प्रकाशित 'शिक्षा का माध्यम', 'आँखो देखा नक्षत्र-जगत', 'कालबस की यात्रा' आदि लेख इसके प्रमाण है। इसी प्रकार 1949 ई० मे खोजपूर्ण लेख—'गुप्त सम्राट और विष्णुसहस्रनाम', 'रामवनवास का भूगोल', मिश्रबधुविनोद की भूलें'—छपे। शुक्ल जी के मनोवैज्ञानिक लेखो को प्रकाशित करने का श्रेय भी इसी पत्रिका के अको (1912 ई० से 1919 ई०) को है। हिंदी-पत्र-साहित्य के विकास मे भी इसका योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

नागरी प्रचारिणी सभा *(हि० सस्था)*

हिंदी भाषा और साहित्य तथा देवनागरी लिपि की उन्नति तथा प्रचार और प्रसार करने वाली यह देश-भर मे अग्रणी सस्था है। इसकी स्थापना 16 जुलाई, 1893 ई० मे हुई थी। इसके प्रमुख सस्थापक थे—स्व० श्यामसुदरदास (दे०), प० रामनारायण मिश्र और स्व० ठाकुर शिवकुमार सिंह। सभा का 'आर्य भाषा पुस्तकालय' नामक एक विशाल पुस्तकालय है, जिसमे अन्यत्र अलभ्य ग्रथो का भी काफी बडा सकलन है। इसमे पद्रह हजार हस्तलिखित ग्रथ हैं जिनका सक्षिप्त विवरण 'त्रैवार्षिक रिपोर्ट' मे दिया जाता है। सभा द्वारा लगभग 1000 ग्रथ प्रकाशित हो चुके हैं। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (दे०) (त्रैमासिक) सभा का प्रमुख पत्र है। 'नागरी पत्रिका' (मासिक) भी प्रकाशित हो रही है। 'सरस्वती' (दे०) पत्रिका का श्रीगणेश भी सभा द्वारा किया गया था। सभा ने निम्नोक्त मासिक पत्रिकाएँ भी चलाई थीं—हिंदी', 'विधि पत्रिका', 'हिंदी रिव्यू' (अंग्रेजी), किंतु किन्ही कारणो से इन्हें बद करना पडा। सभा लेखको को प्रतिवर्ष अनेक पुरस्कार एव स्वर्ण तथा रजत पदक दिया करती है। सभा की अनेक शाखाएँ हैं।

नागवर्मा प्रथम *(क० ले०)* [समय—लगभग 990 ई०]

नागवर्मा प्रथम के समय तथा कृतियो के बारे मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। कहा जाता है कि ये चद्र राजा के दरबार मे थे। भोज-परमार के पास जाकर इन्होने अपनी 'कादबरी' सुनाई थी, जिस पर उन्होंने पुरस्कृत करके कवि को सतुष्ट किया था। 'छदाबुधि' (दे०) तथा 'कर्णाटक कादबरी' (दे०) इनकी रचनाएँ मानी जाती हैं। 'छदोबुधि' कन्नड मे पिंगल पर लिखा सर्वप्रथम ग्रथ है। इसमे सस्कृत-छदो के अतिरिक्त कन्नड के अपने छदो का सोदाहरण निरूपण है। कवि का कहना है कि उसने पिंगल मुनि का ही अनुसरण किया है।

'कर्णाटक कादबरी' बाण (दे०) कवि की विख्यात गद्यकृति का कन्नड रूपातर है। बाण की 'कादबरी' विध्याटवी की भाँति गहन है। उसे काट-छाँटकर एक सुदर चपू काव्य के रूप मे परिवर्तित किया गया है। इसमे गद्य एव पद्य समान परिमाण मे है। मूल कथानक, चरित्रो की यथार्थता, वर्णनो की सरसता, कल्पना, की उडान—इनमे व्याघात नही आने दिया गया है। अनुवाद मे मौलिक कृति का सौदर्य आ गया है। इस प्रकार कादबरी' नागवर्मा के हाथ मे पडकर कन्नड की अपनी कृति बन गई है। इस ग्रथ की भाषा अत्यत प्राजल है। नागवर्मा की शैली वैदर्भी है। उन्होंने मूल के अनेक सस्कृत शब्दो के बदले सरस कन्नड शब्दो का प्रयोग किया है, शैली कहीं भी दुरूह नही होने पाई।

नागवर्मा द्वितीय *(क० ले०)* [समय—लगभग 1150 ई०]

कन्नड-साहित्य के आदिकाल की सर्वांगीण

प्रगति में विशेष रूप से योग देने वालों में नागवर्मा द्वितीय का नाम अविस्मरणीय है। इनके जन्म-मृत्यु आदि के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। अनुमानत: इनका समय 1150 ई० के करीब ठहरता है। ये चालुक्य-नरेश जगदेकमल्ल के यहाँ कटकोपाध्याय थे। जाति के जैन थे। कहा जाता है कि ये कन्नड के विख्यात कवि जन्न के गुरु थे। इनकी रचनाएँ हैं—'शब्दस्मृति', 'भाषाभूषण', 'काव्यावलोकन' तथा 'छंदोविचितिव्युत्पत्ति-साधक'। सभी ग्रंथों का—क्या रीतिग्रंथ, 'क्या पिंगल, क्या व्याकरण सबका—प्रणयन एक-साथ करने का श्रेय इन्हें मिलता है। अतः सहज ही ये कर्णाटक-लक्षण-शिक्षणाचार्य के गौरव से भूषित हैं। कन्नड के वैयाकरणों में तो ये सर्वप्रथम हैं ही; इन ग्रंथों में शास्त्र-पांडित्य, संग्रह-कौशल, प्रयोग-नैपुण्य के साथ ही रसग्राहिता तथा समन्वय-दृष्टि भी विद्यमान है। लक्षणों का निरूपण करते समय इन्होंने खुद लक्ष्य-पद्य न लिखकर दूसरों की कविताएँ चुनी हैं, और उनमे इनकी रस-दृष्टि के दर्शन होते हैं।

नागवर्मा प्राचीन आलंकारिकों से—विशेषत: राजशेखर (दे०) से—अधिक प्रभावित हैं। रसों की संख्या नागवर्मा ने केवल आठ दी है किंतु निरूपण करते समय अद्भुत के साथ शांत रस का भी निरूपण किया है। वामन (दे०) ने 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहा तो नागवर्मा ने उसे अस्वीकार कर 'रीति काव्य का शरीर' कहकर उसे उचित स्थान दिया है। यह भारतीय काव्यशास्त्र के लिए उनकी महती देन है। नागवर्मा से भी पूर्व के कन्नड आलंकारिक कविराजमार्गकार ने ध्वनि (दे०) का उल्लेख किया था किंतु यह आश्चर्य की बात है कि नागवर्मा ने कहीं भी ध्वनि का उल्लेख नहीं किया है।

नागानंद (*सं० कृ०*) [समय—सातवीं शती ई०]

यह महाराज हर्ष (दे० श्रीहर्ष) की प्रसिद्ध नाट्यकृति है। इसमें बौद्ध-अवदान-कथा के आधार पर विद्याधर कुमार जीमूतवाहन (दे०) की कथा पाँच अंकों में संयोजित है। इस नाटक के दो भाग हैं। पूर्वार्ध में विद्याधर कुमार जीमूतवाहन तथा सिद्धकन्या मलयवती की प्रणय-कथा वर्णित है। उत्तरार्ध में जीमूतवाहन द्वारा गरुड़ के सर्प-भक्षण-त्याग की कथा है। नाटक का अंत भरतवाक्य से किया गया है।

इस नाटक के मंगलाचरण और भरतवाक्य में बौद्ध धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है, पर कथानक में ऐसा नहीं है। इसमें हर्ष ने आत्म-बलिदान, वदान्यता, उदार-हृदयता तथा दृढ़ संकल्प आदि बातों का सफल चित्रण किया है। जीवमूतवाहन विलक्षण रूप में निबद्ध होने पर भी, बौद्धों का एक आदर्श है। शंखचूड़ और उसकी माँ का चरित्र भी महान् है। यद्यपि नाटक के दोनों अंशों में सामंजस्य की कमी है, किंतु प्रभावान्विति में किसी प्रकार की असफलता नहीं है। अभिव्यंजना तथा विचारों की सरलता हर्ष का विशेष गुण है और उसका परिचय नागानंद में पद-पद पर मिलता है। नागानंद की भाषा परिनिष्ठित तथा अर्थगर्भित है। अलंकारों का प्रयोग सुरुचिपूर्ण तथा संयत है।

नागार्जुन (*सं० ले०*) [स्थिति-काल—200 ई०]

डा० विंटरनित्ज के अनुसार नागार्जुन आंध्र राजा यज्ञश्री के समकालीन थे। नागार्जुन का जन्म विदर्भ में एक ब्राह्मण के घर हुआ था। आगे चलकर ये श्रीपर्वत पर रहने लगे थे। नागार्जुन वैद्यक और रसायनशास्त्र के भी आचार्य थे। नागार्जुन की प्रमुख रचनाओं में 'माध्यमिक कारिका', 'सुहृल्लेख' तथा 'विग्रह-व्यावर्त्तनी' हैं। 'माध्यमिक कारिका' और 'विग्रह-व्यावर्त्तनी' मूल संस्कृत में ही उपलब्ध है। 'विग्रह-व्यावर्त्तनी' की 72 कारिकाओं में से माहात्म्य और नमस्कार के दो श्लोकों को छोड़कर शेष 70 कारिकाओं में शून्यता का विवेचन होने के कारण ही 'विग्रह व्यावर्त्तनी' का दूसरा नाम 'शून्यता-सप्तति' भी प्रचलित हो गया है।

नागार्जुन का शून्यवाद एक विचित्र दर्शन है। उसका एक छोर अनात्मवाद है और दूसरा अभौतिकवाद। शून्यवादी आत्मा का खंडन करता है। नागार्जुन के मतानुसार संसार का निदान सत्काम दृष्टि है। इस सत्काम दृष्टि का आलंबन आत्मा है। शून्यवादी यह मानता है कि आत्मा की अनुपलब्धि से सत्काम दृष्टि का विनाश होगा और उसके विनाश से क्लेशों की व्यावृत्ति होगी। आत्मा, नागार्जुन के मतानुसार, अहंकार का विषय है। अतः क्लेशमूल अहंकार के परिक्षय के लिए आत्मा निषिध्य ही है।

शून्यवादी नागार्जुन का प्रमुख सिद्धांत प्रतीत्य-समुत्पाद है। इस सिद्धांत के अनुसार सभी वस्तुएँ प्रतीत्य-समुत्पन्न हैं। प्रतीत्यसमुत्पन्न का आशय यह है कि सभी वस्तुएँ अपनी उत्पत्ति में, अपनी सत्ता के अर्थ दूसरे प्रत्यय

अथवा हेतु पर आश्रित हैं। माध्यमिक शून्यवादी का यही सिद्धात प्रतीत्यसमुत्पादवाद का सिद्धात है।

नागिला *(मल० पा०)*

'साहित्य मजरी' (दे०) वळ्ळत्तोळ् (दे०) ने 'नागिला' शीर्षक एक खडकाव्य लिखा है। उसका एक कथा-पात्र है—'नागिला'।

नागेश *(म० ले०)* [जन्म—1618 ई०; मृत्यु—1693 ई०]

ये अहमद नगर के समीपस्थ 'भिंगार' ग्राम के निवासी थे। इनके माता-पिता का नाम क्रमश जानकी तथा मोर जोशी था और ये यशवतराव नामक किसी श्रीमत के आश्रय मे रहते थे। सस्कृत-साहित्य का इन्हें अच्छा ज्ञान था। इनकी रचनाएँ है—'सीता-स्वयवर,' 'रुक्मिणी-स्वयवर', 'रसमजरी' और 'शारदाविनोद'। एक समीक्षक के मत मे इनका काव्य सर्गबद्ध नही है, अत इन्हें महाकवि भले ही न कहा जाए, परतु प्रकृति वर्णन, नायक-नायिका के चरित्र-चित्रण और नौ रसो के परिपोष की दृष्टि से इन्हें महाकवि की सज्ञा देने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए।

नागेश *(स० ले०)* [स्थिति-काल—1800 ई० के लगभग]

नागेश भट्ट का दूसरा नाम नागोजी भट्ट था। इनके पिता का नाम शिवभट्ट तथा माता का नाम सती-देवी था। नागेश ने हरि दीक्षित से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था। नागेश का प्रधान शिष्य पायगुड था। प्रयाग के समीप शृगवेरपुर का राजा रामसिंह नागेश का वृत्तिदाता था। अत मे, नागेश सन्यासी हो गए थे। सर्वाधिक प्रख्यात नागेश-रचित ग्रथ 'महाभाष्य प्रदीपोद्योत' है। यह कैयट के 'प्रदीप' पर टीका-ग्रथ है। इस टीका का दूसरा नाम 'विवरण' भी है। इसके अतिरिक्त नागेश रचित प्रमुख ग्रथ—'लघुशब्देंदुशेखर,', (दे०), 'बृहच्छब्देंदुशेखर', 'परिभाषेंदुशेखर', 'लघुमजूषा' तथा 'परमलघुमजूषा' तथा 'स्फोट वाद' हैं। नागेश-रचित 'उद्योत' 'महाभाष्य (दे०) के विषय-बोध के लिए अत्यत उपादेय टीका है। इसी प्रकार 'सिद्धात-कौमुदी (दे०) के अनुशीलन के लिए 'लघुशब्देंदुशेखर' तथा 'बृहच्छ देंदुशेखर का महत्व भी मुक्त कठ से स्वीकार्य है। नागेश का विवेचन महान् पाडित्यपूर्ण एव गभीर है।

नाजकी, मीरग़ुलाम रसूल *(कश्० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

इनका जन्म कश्मीर स्थित माडर गाँव (खुइहामा) मे हुआ था। ये पुरानी विचारधारा और मध्यमार्गी दृष्टिकोण के प्रसिद्ध कवि थे। इनका लोकप्रिय कविता-सग्रह 'नमरूदनामा' प्रकाशित हो चुका है। इन्होंने बहुधा प्रेमाख्यानक स्फुट छदो और रुबाइयो की ही रचना की है। नाजकी साहब उर्दू के भी अच्छे कवि हैं और उस भाषा मे भी इनका एक सग्रह 'दीदा एत्तर' प्रकाशित हो चुका है। नाजकी साहब की लेखनी मे ओज है और इन्होंने शब्द की अभिधा और व्यजना-शक्तियो से काम लेकर अपने ध्येय को खूब निभाया है। प्राचीन एव अर्वाचीन विचारधारा के सक्रमण-काल के कश्मीरी साहित्य मे इनका ऊँचा स्थान है।

नाटक *(हि० पारि०)*

पूर्व और पश्चिम दोनो मे 'नाटक' के बीज धर्मोत्सव एव लोक-समारोह मे माने जाते हैं। यदि पश्चिम मे इसका सबध डाइनाइसस और बैंकस देवताओ की पूजा से सबद्ध उत्सव-समारोहो से है, तो पूर्व मे बसत, शरद् ऋतु मनाए जाने वाले समारोहो और धार्मिक उत्सवो से माना जाता है। आरभ मे इनमे नृत्य और सगीत की प्रधानता थी, कुछ समय बाद व्यग्यानुकरण और सवादो की योजना की गई। नाटक का आरभिक रूप पद्य-प्रधान था। यूनानी तथा सस्कृत नाटको मे ही नही, शेक्सपियर के अँग्रेज़ी नाटको तथा हिंदी के प्रारभिक नाटको मे भी पद्य का प्राधान्य लक्षित होता है। यूरोप मे गद्य का समावेश सर्वप्रथम सोलहवी शती की कामदी (दे०) मे हुआ था। अठारहवी शती मे तो उसका व्यापक प्रयोग होने लगा था। भरत (दे०) और अरस्तू दोनो नाटक मे अनुकृति (दे०) को महत्व देते हैं, पर भारतीय नाट्यशास्त्र मे मूलाधार रस (दे०) को ही माना गया है। आरभिक नाटको मे आदर्शवादिता पर बल था, बाद मे नाटको के विषय समसामयिक जीवन के प्रश्न होने के फलस्वरूप उनमे यथार्थ का आग्रह है। पूर्व और पश्चिम दोनो के नाटको मे पाँच कार्यावस्थाएँ (दे०) मानी गई हैं, परतु पश्चिम मे सघर्ष को तथा पूर्व मे रस को प्रधान तत्व मानने के कारण ये अवस्थाएँ भिन्न भिन्न हैं। पश्चिम के नाटक आरभ से ही अभिनय की दृष्टि से लिखे गए, जबकि

है। अतिम सधि 'निर्वहण' वस्तुत 'बीज' से 'फलप्राप्ति' तक की यात्रा का परिणति-बिंदु है जिसमे 'कार्य' (दे० अर्थप्रकृतियाँ), अर्थप्रकृति और 'फलागम' (दे० कार्यावस्थाएँ) कार्यावस्था के सयोग से नाटक के सुखद उपसहार का विधान होता है।

आचार्यों ने नाट्सधियो के चौंसठ सध्यगो का उल्लेख भी किया है। शास्त्र मे मुख सधि के बारह, प्रतिमुख, गर्भ और विमर्श के तेरह-तेरह तथा निर्वहण के चौदह सध्यग निरूपित हैं। व्यावहारिक नाट्य-रचना मे इनकी उपयोगिता सदिग्ध है।

नाथमाधव *(म० ले०)* [जन्म—1882 ई०, मृत्यु—1928 ई०]

इनका वास्तविक नाम द्वा० मा० पितळे था। इन्होने 1907 ई० के लगभग लिखना आरभ किया था। डा० भडारकर से भेंट होने के पूर्व तक इनकी रचनाएँ साहित्यिक स्तर की नही थी क्योकि उनका उद्देश्य पाठको का मनोरजन था, बाद मे डा० भडारकर की प्रेरणा से इन्होंने उच्च स्तर के उपन्यास लिखना आरभ किया। यद्यपि इनका पहला ऐतिहासिक उपन्यास 'तरुण रजपूत सरदार' था, फिर भी जिस उपन्यास ने इन्हें कीर्ति के शिखर पर पहुँचा दिया वह है 'सावळया तांडेल'। इसमे उन्होंने शिवाजी के समुद्री बेडे और उसकी शक्ति का पहली बार वर्णन किया है। यद्यपि 'स्वराज्यमाला' के अतर्गत लिखे उनके उपन्यासो की रचना पर्याप्त ऐतिहासिक अध्ययन एव परिश्रम के साथ हुई है, फिर भी उनमे प्रतिभा का स्फुरण नही है। लेखक निरूपित काल से तदाकार नही हो पाया है, अत भाषा एव विचार-सरणि दोनो की दृष्टि से इन उपन्यासो मे काल विसगति दोष आ गया है। प्रणय और अद्भुत तत्त्वो का अनुचित समावेश भी पाठक को कचोटता है। मुख्य ग्रथ—सामाजिक उपन्यास 'स्वयसेवक', 'रायक्लब' भाग 1-2, 'डॉक्टर' भाग 1-3 आदि, ऐतिहासिक उपन्यास 'तरुण राजपूत सरदार', 'सावळया तांडेल', स्व राज्यमाला के अतर्गत पाँच उपन्यास।

नाथ सप्रदाय (हिं० प्र०)

नाथ सप्रदाय के सबध मे 'हठयोग प्रदीपिका' के टीकाकार ब्रह्मानद का कहना है कि सब नाथो म प्रथम आदिनाथ हैं (जो स्वय शिव ही हैं) —'आदिनाथ सर्वेषा नाथाना प्रथम, ततो नाथसप्रदाय प्रवृत्त इति नाथसप्रदायिनी वदति।' इस सप्रदाय के अन्य नाम हैं—सिद्धमत, सिद्धमार्ग, योगमार्ग, योग सप्रदाय, अवधूत-मत, अवधूत-सप्रदाय, आदि। नाथ सप्रदाय की शिष्य-परपरा इस प्रकार स्वीकार की गई है आदिनाथ के दो शिष्य है—मत्स्येंद्रनाथ और जलधरनाथ। इनमे से प्रथम के चार शिष्य हैं—गोरक्षनाथ, चरपटनाथ, रेवानाथ और मीननाथ। इनमे से गोरक्षनाथ के पाँच शिष्य है—गाहनीनाथ, नागनाथ भर्तृनाथ, माणिकनाथ और विलेशयनाथ। द्वितीय के दो शिष्य हैं—करणिपा और गोपीचद।

नाथो की सख्या नौ भी बताई जाती है। 'गोरक्ष-सिद्धात सग्रह' के अनुसार इनके नाम हैं—नागार्जुन, जडभरत, हरिश्चद्र, सत्यनाथ, भीमनाथ, गोरक्षनाथ, चरपटा, जलधर, और मलयार्जुन। इन सबमे गोरक्षनाथ सर्व-प्रसिद्ध है। इनका समय दसवी अथवा बारहवी शती है। इन्होने अपने पथ का प्रचार पजाब और राजपूताने की ओर किया। गोरक्षनाथ की हठयोग साधना ईश्वरवाद को लेकर चली थी। अत उसमे मुसलमानो के लिए भी आकर्षण था। नाथ-सप्रदाय के सिद्धात-ग्रथो मे ईश्वरोपासना के बाह्य विधानो के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई है, घर के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर ज़ोर दिया गया है, वेदशास्त्र का अध्ययन व्यर्थ ठहराकर विद्वानो के प्रति अश्रद्धा प्रकट की गई है, तीर्थाटन आदि निष्फल कहे गए हैं। परमात्मा को अनिवर्चनीय कहा गया है। नाथ-पथ के जोगी कान की लौ मे बडे छेद करके स्फटिक के भारी भारी कुडल पहनते हैं, इससे कनफटे कहलाते हैं। इस पथ के ग्रथो की भाषा सधुक्कडी सी है जिसका ढाँचा कुछ खडी बोली लिये हुए राजस्थानी है। नाथपथ के उपदेशो का प्रभाव हिंदुओ के अतिरिक्त मुसलमानो पर भी प्रारभ काल मे ही पडा था, जिससे निम्न वर्ग के मुसलमान नाथ पथ मे आ गए थे।

गोरक्षनाथ द्वारा अथवा उनके शिष्यो द्वारा लिखित ग्रथ निम्नलिखित हैं—'गोरखगणेश गोष्ठी' 'महादेव-गोरख सवाद', 'गोरखनाथ' 'गोरखनाथ जी की सत्रह कला' 'दत्त गोरख सवाद 'योगेश्वरी साखी' 'नरवइबोध', विराट-पुराण' 'गोरखसार', गोरखनाथ की वानी'। इन ग्रथो मे साप्रदायिक शिक्षा है।

हिंदी साहित्यकारा की भाँति पजाबी साहित्य के लेखक नाथ सप्रदाय को भी निजी परपरा मे स्वीकार करते हैं। इस सप्रदाय का साहित्य पद्रहवी शती तक लिखा जाता रहा। कविता का विषय माया मोह-त्याग एव

आध्यात्मिक चिंतन है। इसमें योगसाधना की प्रधानता है। इस संप्रदाय में मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, चरपटनाथ और रतननाथ आदि का काव्य स्वीकृत है। संसार को गोरख धंधा मानकर उससे मुक्त होने का उपदेश नाथों की वाणी में दिया गया है। कुंडली-चक्र, सहस्रदलकमल, आदि जैसे देहसाधना के योगों द्वारा मानव की आध्यात्मिक चेतना को जागृत करने का सफल उपक्रम किया गया है। नाथ संप्रदाय के साहित्य की भाषा पंजाबी और हिंदी मिश्रित है।

'नादिम', दीनानाथ कौल *(कश्०ले०)* [जन्म—1916 ई०]

ये शैशव से भावुक और विचारशील थे। इन्होंने अध्यापन से अपना जीवन आरंभ किया और किसी-न-किसी रूप में पठन-पाठन के संबद्ध रहे। स्नातक-परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद चिंतन एवं वामपंथी विचारधारा की ओर प्रवृत्त हो गये। प्रारंभ में उर्दू में और 1944 ई० से कश्मीरी भाषा में काव्य-रचना करने लगे। राजनीति के विषयों से आरंभ करके विशुद्ध सांस्कृतिक विषय-वस्तु को कविता का आधार बनाया। 'हीमाल नागिराय' नाम की कविता बहुत ही लोकप्रिय हुई। 'रय,' 'जवाबी कार्ड' और 'शीन प्यतो प्यतो' नाम से इनकी तीन कहानियों ने कहानी लिखने की कला को एक नयी दिशा दी। इनकी गद्य-कला के सुंदर नमूने 'वयंग पोश', 'तामीर' आदि में छपते रहे हैं। 'नादिम' साहब ने कश्मीरी गद्य और पद्य को नयी-नयी दिशाएँ दीं और उसमें नये नये प्रयोग किए, या यों कहना चाहिए कि नयी-नयी शैलियों को जन्म दिया। इन्होंने कश्मीरी पद्य का आधुनिकीकरण किया और अपने समकालीन कवियों को भी प्रेरणा देते रहे। कश्मीरी-साहित्य में 1947 ई० से इधर के सांस्कृतिक नवजागरण-काल में आधुनिकता के प्रवर्तक 'नादिम' का सर्वोच्च स्थान है। इन्होंने 'हीमाल नागिराय', 'बोम्बुर त यम्बर्जल' आदि पाँच युग्म प्रेमाख्यानक सांगीतिकों या गीतिनाट्यों की रचना की है जो अभी प्रकाशित नहीं हुए हैं। भाषा-प्रयोग की दृष्टि से 'नादिम' साहब विशुद्धिवादी हैं और कश्मीरी संस्कृति एवं परंपराओं के अनन्य भक्त हैं। इनकी शैली मौलिक है, और अपनी बहुमुखी प्रतिभा से इन्होंने नये-नये छंदों और अलंकारों का खूब प्रयोग किया है।

नानक देव, गुरु *(पं० ले०)* [समय—1469 से 1539 ई०]

सिख धर्म के आदि गुरु नानक देव जी का जन्म कालूराम वेदी क्षत्रिय के घर तलवंडी (पश्चिमी पाकिस्तान) ग्राम में 1469 ई० के कार्तिक मास की पूर्णिमा में हुआ था। कतिपय विद्वान् इसी वर्ष की अक्षयतृतीया को इनकी जन्म-तिथि मानते हैं। बालक नानक देव ने कुछ काल तक पं० ब्रजनाथ तथा मौलाना कुतुबुद्दीन से शिक्षा प्राप्त की। 18 वर्ष की आयु में इनका विवाह सुलक्षणा देवी से हुआ जिससे श्रीचंद तथा लक्ष्मीचंद दो पुत्र-रत्न प्राप्त हुए। नानकदेव का चित्त वैराग्य-भक्ति में लीन था। इन्होंने देश-विदेश की पाँच यात्राएँ कीं। जीवन के अंतिम दस वर्ष तक कर्तारपुर में ही रहे। यहीं 1539 ई० में इनकी नरलोक-लीला समाप्त हुई। गुरु नानक देव की रचनाओं में (1) 'जपुजी' (दे०), (2) 'सिद्धगोष्टि' (दे०), (3) 'राग आसावरी', (4) 'तीन वारें—आसा दी वार, माझ दी वार तथा मलार दी वार', (5) 'बारा माह', (6) 'सोहले', (7) 'पहरे', (8) 'बनजारे', (9) 'अलोहनियां', (10) 'बावर नानी', (11) 'शब्द', (12) 'अष्टपदियां', (13) 'छंद', (14) 'रेखता' एवं (15) 'श्लोक'। इनके अतिरिक्त 'प्राण-संगली' तथा 'वसीयत' नामक कतिपय रचनाएँ भी इनके नाम से कही जाती हैं। अब 'गुरु नानक वाणी' नाम से इनका संपूर्ण काव्य-संग्रह प्रकाशित है।

गुरु नानक देव के काव्य में नाम जपने, हाथ से कमा खाने और परस्पर बाँट कर खाने का बड़ा महत्व दिखाया गया है। गुरु नानक-वाणी में वेद, षट्शास्त्र, उपनिषद्, पुराण आदि का ज्ञान समाहित है। एक ओंकार की अद्भुत व्याख्या दी गई है। इनकी वाणी का मूल मंत्र है—(1) 'ओंकार सतिनामु करता पुरखु निरभै निरवैरु अकालमूरति', 'अजनी सैभं गुर प्रसादि'। गुरु नानकदेव ने अपने काव्य में सामाजिक चेतना को प्रधानता दी है। पाखंड, शोषण एवं अत्याचार का प्रबल शब्दों में खंडन किया है। मानव-जीवन को निरहंकार एवं भगवदादेश के अनुसार व्यतीत करने का संदेश दिया गया है। इनके काव्य की भाषा प्रधानतया ब्रज है। इसमें फ़ारसी एवं पंजाबी भाषा के शब्द पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हैं। गुरु नानक देव का वाणी-साहित्य संपूर्ण मानव-जाति के लिए आध्यात्मिक ज्ञान प्रकाश का स्तंभ है।

नानक-विजय *(पं० कृ०)*

कवि संतरेण (दे०) की पाँच रचनाएँ [(1) 'मन प्रबोध', (2) 'गुरु नानक-विजय', (3) 'गुरु नानक-बोध', (4) 'वचन-संग्रह' (अनभै अमृत-सागर), (5) 'उदासी-बोध']

ज्ञात हैं। 'नानक-विजय' दूसरी रचना है। यह ग्रथ कवि सतरेण के हस्तलिखित 1260 पत्रो मे प्राप्त है। इसका आकार 12"×7½" है। प्रति पृष्ठ प्राय 28 पक्तियाँ हैं। ग्रथ 20 खडों मे विभक्त है। कुल 324 अध्याय हैं। कुल छद 24,382 है। सौ वर्ष की आयु पार कर चुकने के उपरात कवि सतरेण ने इस कृति का लेखन आरभ किया था। इस ग्रथ मे गुरु नानक देव (दे०) का जीवन-चरित्र वर्णित है। इसे आदिग्रथ के पश्चात् दूसरा विशालकाय महान् ग्रथ माना जाता है। काव्यशास्त्रीय नियमो का निर्वाह इसमे आवश्यक नही समझा गया है। भाषा प्रधानतया ब्रज ही है। पर उसमे पजाबी खडी एव बोली का प्रभाव यत्र तत्र परिलक्षित होता है।

नानकसिंह (प० ले०) [जन्म—1897 ई०, मृत्यु—1971]

पजाबी के मूर्धन्य कथाकार नानकसिंह का पजाबी उपन्यास-साहित्य मे वही स्थान है जो प्रेमचद का हिंदी मे है। पजाबी मे आधुनिक कथा-साहित्य का आरभ नानकसिंह से ही माना जाता है। लोकप्रियता की दृष्टि से पजाबी मे जो स्थान नानकसिंह को प्राप्त है, वह किसी दूसरे लेखक को नही।

नानकसिंह का जन्म गाँव चक्क हमीद, जिला जेहलम (पश्चिमी पजाब) मे 4 जुलाई, 1897 ई० को हुआ। नानकसिंह को उपन्यास-लेखन की मूल प्रेरणा प्रेमचद से प्राप्त हुई। इनका लेखन-काल 1927 ई० स प्रारभ होता है। इनकी पहली कहानी का नाम था 'रखडी' (राखी) और पहला उपन्यास था 'मतरेई माँ (सौतेली माँ)।

नानकसिंह के सपूर्ण लेखन-काल को तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है (1) 1927 से 1938 ई० तक। इस काल की इनकी विशेष महत्त्वपूर्ण रचना है' 'चिट्टा लहू' (दे०)। (2) 1938 से 1947 ई० तक। इस काल की इनकी विशेष महत्वपूर्ण रचना है 'अधखिडिआ फुल्ले'। और (3) 1947 ई० से आज तक। इस अवधि म नानकसिंह की उपन्यास-कला अपने शिखर पर पहुँची और इनकी लेखनी से अनेक विशिष्ट रचनाओ का सृजन हुआ जैसे 'मझधार', 'खून दे सोहिले', 'नासूर', 'इक म्यान दो तलवारा' (दे०), 'पवित्तर पापी' (दे०), 'कटी होई पतग' (दे०) आदि। 'इक म्यान दो तलवारा' पर इन्हे साहित्य अकादेमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ।

नानकसिंह 'कला जीवन के लिए' सिद्धात के कट्टर समर्थक हैं और अपने उपन्यासो के माध्यम स उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, साप्रदायिक तथा राजनीतिक विसगतियो पर तीखे प्रहार किए हैं। विषय-वस्तु और कला की दृष्टि से नानकसिंह के उपन्यास निरतर विकसित होते रहे हैं और अपनी परिवेशगत समस्याओ के प्रति लेखक सतत जागरूक रहा है।

नानकसिंह के उपन्यास कहानी सग्रह, आत्म-चरित्र आदि विविध विषयो की पुस्तको की कुल सख्या 50 से ऊपर है। अनेक भाषाओ मे उनके अनुवाद भी प्रकाशित हुए है।

28 दिसबर, 1971 को दिल का दौरा पडने से इनका देहात हो गया।

नाना नाना रास (गु० कृ०)

'नाना नाना रास' (दे) नानालाल दलपतराम (दे०) कवि के रासो का सग्रह है। प्रथम भाग मे 50, दूसरे भाग मे 51 और तीसरे भाग मे 71 रास सगृहीत है। वस्तुत ये रास 'गरबा' के ही प्रकार है। इन्हे रचयिता ने 'लिरिक्स' कहा है। इन रासो मे गीत, वाद्य और नृत्य —सगीत के तीनो तत्वो का समायोग है।

गुजरात 'रासभूमि' है। श्रीकृष्ण चद्र ने अपनी रास-लीला की भूमि ब्रज और गुजरात को बनाया। इन रासो मे गुजरात के नारी-जीवन की सुकोमल अनुभूतियाँ स्पदित हैं। गुर्जर रमणी के भाव-वैभव का सपूर्ण चित्र इन रास-रचनाओ मे है। विषय-वैविध्य, गीति-तत्त्व, लय, झूमर, आवर्तन—यह इन रासो की प्रमुख विशेषताएँ हैं। कृष्ण की वसी, मयूर और मयूरी, दापत्य जीवन का रसोल्लास, वसन्त की बहार, सुनहरे स्वप्न, दधि-मथन, विक्रम, पूनम की चाँदनी, अज्ञात सत्ता का दर्शन, उत्सव-मुग्ध गोपी, लोक-जीवन की अभिव्यक्ति, शरद-ऋतु की चाँदनी जैसे अनेक विषय इनमे निरूपित हैं। प्राय सभी रचनाएँ गेय, मृदु, ललित पदो मे रचित हैं जिनमे लोकधर्मी लय (ढाळ) का भी सुप्रयोग हुआ है। गुजरात के नारी-हृदय की सस्कारिता का वास्तविक चित्र देने वाले इन छोटे-छोटे रासो का महत्व अनागत के लिए भी अक्षुण्ण है। यही इनका महत्व है।

नानालाल दलपतराम (गु० ले०) [जन्म—1877 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

कवि नानालाल दलपतराम आधुनिक गुजराती

के ऐसे कवि हैं जिन्हें निस्संकोच 'महाकवि' की संज्ञा से विभूषित किया जा सकता है। इनके पिताश्री कविवर दलपतराम डाह्याभाई आधुनिक कविता के अग्रणियों में परिगणित हैं।

गुजराती काव्य-गगन पर नानालाल का उदय होते ही एक परम प्रतिभाशाली स्रष्टा के रूप में उनका स्वागत हुआ। उनका कृतित्व गुण और परिमाण एवं विविधता दोनों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनमें विषय-वैविध्य है, दृष्टि की व्यापकता है, आदर्श प्रेम है; उनकी कल्पना बड़ी ऊँची उड़ान करने में समर्थ है और लय, छंद, अलंकार, शब्द-रचना तथा रचना-शिल्प में नये-नये प्रयोग करने की उनमें अद्भुत क्षमता है। उनका सचेष्ट काव्यशिल्प किसी यशस्वी सिद्धांत मूर्तिकार का स्मरण कराता है। उनके गीत, भजन प्रगीत, आख्यान-काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध तथा जीवनी सभी एक सौष्ठव एवं चारुत्व से ओतप्रोत हैं। उनकी (अपद्य-गद्य में रचित) प्रथम कविता 'वसंतोत्सव' से ही एक महान् कवि के अभ्युदय का संकेत मिल गया था। उनकी कविता में निष्कलुष-निश्छल प्रेम, संतुलित रतिभाव, देशभक्ति-शौर्य, तथा बलिदान-तत्परता के दर्शन होते है। उनके नाटक एक ऐसे कवि द्वारा जीवन अथवा इतिहास के प्रवस्थानों की कलात्मक व्याख्याएँ हैं जिसके अंतरतम में समन्वय तथा देश की संस्कृति के प्रति अगाध निष्ठा है। 'इंदुकुमार' में उन्होंने प्रेम और विवाह की समस्या का विवेचन किया है। 'जयाजयंत' (दे०) उनका अमर गीति-नाट्य है जिसमें आत्मिक प्रेम का निरूपण हुआ है। 'विश्वगीत' में उन्होंने जीवन की अनेक नैतिक-धार्मिक समस्याओं पर दृष्टिपात किया है।

नानालाल गुजराती साहित्य में ब्रिटिश युग के महानतम कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। (दे० नानारास)।

नानाराजसंदर्शनमु *(त० कृ०)* [कृतिकार—तिरुपति वेंकट कवुलु (दे०)]

तिरुपति शास्त्री (1871-1919) तथा वेंकट शास्त्री (1870-1950) ने मिलकर इस नाम से साहित्य-रचना की है। ये आधुनिक युग के आरंभ में समस्त आंध्र में एक प्रबल साहित्यिक आंदोलन को जन्म देने वाले, असाधारण प्रतिभा-संपन्न कवि थे। 'प्रभावती प्रद्युम्नमु', चरित्रमु', 'लक्षणा परिचयमु', 'देवी भागवतमु', 'उद्योग-'बुद्ध विजयमुलु' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ है।

ये अपनी उद्दंड प्रतिभा से अनेक कविता प्रति-योगिताओं में जाकर अपने विरोधियों को पराजित करते थे तथा अन्य सभी कवियों को जीतने को चुनौती दिया करते थे। इस प्रकार अनेक विजय-यात्राएँ करते हुए ये सारे आंध्र देश में भ्रमण करते रहे। इस प्रक्रिया में इन्होंने नाना देशों के राजाओं का दर्शन किया और उनके सम्मुख आशुरूप से अनेक कविताएँ पढ़ीं। जिसने उनको उचित सम्मान दिया, उसकी प्रशंसा की; जिसके यहाँ उनकी उपेक्षा हुई, उसकी भर्त्सना की। इस प्रकार अनेक स्थानों एवं परिस्थितियों में इनकी काव्यात्मक प्रतिक्रिया का परिचय इस कृति में मिलता है। इस कृति द्वारा तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों पर, इन कवियों की प्रचंडता एवं उद्दाम काव्य-प्रतिभा पर भी प्रकाश पड़ता है।

नावरिया गीत *(अ० पारि०)*

बरपेटा अंचल (असम) में नाव खेते समय जो गीत गाए जाते हैं, उन्हें 'नावरिया गीत' कहते हैं। ये बँगला भाषा के भाटियाली गीत के समान हैं। इनके विषय होते हैं—नाव लेकर दूर जाने वाला सौदागर और घर में प्रतीक्षा करती हुई उसकी स्त्री, तथा गोधूलि-वेला में कृष्ण से नदी पार कराने का अनुरोध करती हुई राधा—

'कानाइ पार करा दे वेलिर दिकि चावा।'

नाभादास *(हिं० ले०)*

इनका अस्तित्व ईसा की सत्रहवीं शती में माना जाता है। इन्हें ग्वालियर का नागर ब्राह्मण कहा गया है। प्रियादास जी ने इन्हें दक्षिण के तैलंग प्रांत-गोदावरी के रामभद्राचल का निवासी और हनुमानवंशीय ब्राह्मण माना है। कृष्णदास पयहारी के शिष्य कील्हदास एवं अग्रदास ने इनका पालन-पोषण किया था और इन्हें दीक्षा दी थी। इन्होंने अपने सर्वाधिक प्रसिद्ध 'भक्तमाल' (दे०) ग्रंथ में सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग में भक्तों, संतों और महात्माओं का बड़ी श्रद्धा और भक्ति से चरित्रांकन किया है। इससे संबद्ध अनेक संस्करण और टीकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, पर प्रियादासजी की टीका सर्वाधिक प्रामाणिक है। यह ग्रंथ निश्चय ही भक्ति-साहित्य का अविस्मरणीय अभिलेख है। कवि ने 'भक्तमाल' के रूप में भारत को भागवत-संप्रदाय का रोचक इतिवृत्त प्रदान किया है।

नामघोषा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवी शती]

माधवदेव (दे०) के इस सर्वश्रेष्ठ ग्रथ मे उनके आध्यात्मिक जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। असम के वैष्णव सप्रदाय के चार महाग्रथो मे इसका स्थान दूसरा है। माधवदेव के शास्त्रज्ञान, पाडित्य, कवित्व, आध्यात्मिक आदर्श आदि का पूर्ण परिचय इस ग्रथ मे मिलता है। यह घोषा छद मे लिखा गया है। 1000 छदो मे से 600 छद विभिन्न पुराणो के भक्ति प्रधान श्लोको के अनुवाद हैं शेष छद लेखक के अपने हैं। अनूदित छदो मे भी कवि ने मूल को आत्मसात् कर उसे अपने ढग से अभिव्यक्त किया है। विषय-वस्तु के अनुसार 'नामघोषा' को तीन खडो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम खड मे नामधर्म के विशिष्ट मतवाद की प्रतिष्ठा है, द्वितीय मे लेखक की ऐकातिक एव आत्मसमर्पणमयी भक्ति का कवित्वमय प्रकाश है। और तृतीय मे 'कृष्ण' नाम की महत्ता, नाम और नामी का अभेद, लेखक का आत्मनिवेदन आदि विषय हैं। समसामयिक भक्ति विरोधी लोगो का भी इसमे वर्णन है।

भाषा-शैली और अलकार प्रयोग की चारुता इसे धार्मिक ग्रथ की अपेक्षा रसमय भक्ति-साहित्य की कोटि मे ले आती है। असमीयाजन-साहित्य मे इसका स्थान गीता जैसा है।

नामदेव *(म०, हिं० ले०)* [जन्म—1270 ई०, मृत्यु—1350 ई०]

इनका जन्मस्थान था—नरसी बाहमणी, पिता का नाम दामाशेट, माता का गोणाई, और ये दर्जी का व्यवसाय करते थे। इनके पिता पढरपुर के विट्ठल के भक्त थे। बचपन मे ही नामदेव मे भक्ति-वैराग्य की भावना घर कर गई थी। माता पिता ने गृहस्थी मे मन रमाने के लिए 'राजाई' नामक सुदर कन्या से इसका विवाह किया जिससे चार पुत्र और चार पुत्रियाँ हुई किंतु नामदेव का प्रमुख व्यवसाय भजन-कीर्तन ही बनता गया। सत ज्ञानेश्वर (दे०) की प्रेरणा से इन्होने विसोबा खेचर से गुरु दीक्षा ली। ज्ञानेश्वर का भी इन पर गहरा प्रभाव था। उससे इनकी भावुक भक्ति मे अद्वैत ज्ञान का समन्वय हुआ। भजन-मडली लेकर नामदेव ने उत्तरी भारत की यात्रा की और भक्ति का प्रचार करते हुए ये अठारह वर्ष तक पजाब मे रहे। गुरुदासपुर जिले के 'घोमान' नामक स्थान पर नाम-देव-मदिर अब तक विद्यमान है। इनके पजाबी शिष्यो मे विष्णु स्वामी, बहारेदास, लब्धा खत्री आदि अनेक प्रसिद्ध हुए हैं। हिंदी भाषा मे भी इन्होंने पद-रचना की है। 'गुरु ग्रथसाहिब' (दे०) मे इनके 65 पद सगृहीत हैं, जिनका नाम है 'नामदेव बानी'। पजाब से ये महाराष्ट्र लौट आए थे और 80 वर्ष की आयु मे इनका पढरपुर मे स्वर्गवास हो गया। 'नामदेव की गाथा' मे इनके लगभग तीन हजार अभग सगृहीत हैं। जनता मे भक्ति भावना का प्रचार करना, धर्माडबर, जाति-भेद की सकीर्णता और सामाजिक धार्मिक कुरीतियो का खडन करना ही नामदेव का ध्येय था।

नामा पाठक *(म० ले०)*

ये रस-सिद्ध कवि थे। इनकी 'नामरत्नमाला', 'भरतभेट', 'अश्वमेध' आदि अनेक रचनाएँ उपलब्ध होती है। इनका 'अश्वमेध' काव्य सर्वश्रेष्ठ और प्रदीर्घ है। इसमे रामचद्र और पाडवो के अश्वमेध का सरस वर्णन है। सस्कृत के 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) इनकी रचनाओ के आधार-ग्रथ रहे है। इनकी रचनाओ मे पाडित्य-प्रौढता नही अपितु सरलता सरसता है।

नायक *(स०, हिं० पारि०)*

कथानक के प्रधान पात्र को नायक कहते हैं। यह व्यक्ति त्यागी, कर्म करने मे निपुण, कुलीन, लक्ष्मीवान्, रूपवान, यौवन सपन्न, उत्साही, दक्ष, लोकप्रिय, तेजस्वी, विदग्ध और शीलवान् होता है। इसके चार भेद हैं—धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीर प्रशात। धीरोदात्त नायक अपनी प्रशसा न करने वाला, क्षमावान्, अति गभीर स्वभाव वाला, महोत्सव अर्थात् हर्ष, शोक आदि से अपने स्वभाव को न बदलने वाला, स्थिर-प्रकृति, विनय से प्रच्छन्न गर्व रखने वाला, दृढव्रती अर्थात् अपनी बात का पक्का व्यक्ति होता है, जैसे रामचद्र, युधिष्ठिर आदि। धीरोद्धत नायक मायावी, प्रचड, चपल, घमडी, शूर, अपनी प्रशसा अधिक करने वाला होता है, जैसे भीमसेन आदि। धीरललित नायक निश्चित, अतिकोमल-स्वभाव, सदा नृत्यगीत आदि कलाओ मे प्रसक्त होता है—जैसे रत्नावली (दे०) नाटिका मे वत्सराज (दे० उदयन)। धीरप्रशात त्यागी, कृती आदि ऊपर कहे हुए नायक के सामान्य गुणो से अधिकाशत युक्त ब्राह्मणादि होता है, जैसे 'मालती माधव' (दे०) नाटक मे माधव। इन चारो के

फिर चार-चार भेद कहे गए हैं—दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ। इस प्रकार कुल नायक 16 प्रकार के माने गए हैं। फिर इन सब के तीन-तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। इस प्रकार नायक के कुल 48 भेद हुए। (सा०द० 3 30-38)

नायक, विनोदचंद्र *(उ० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

श्री विनोदचंद्र नायक का जन्म तेलिपालि-सुंदरगढ़ में हुआ था। इनकी कविताओं में जातीय साहित्यिक परंपरा, विषयवस्तु, शैली—सभी का परित्याग मिलता है। इस पुरातन के स्थान में एक नूतन जाति, एक नूतन प्रकृति के अनुसंधान की लालसा है। कल्पना-विलास, चित्र-कल्प तथा भाषा-प्रयोग में कवि को यथेष्ट सफलता मिली है। इनकी काव्य-पुस्तक 'सरिसृप' (दे०) पर इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है। 'नीलचंद्र उपत्यका' (काव्य), 'चंद्र ओ तारा' (पद्य-नाटिका) आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

नायक, लक्ष्मीधर *(उ० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

जन्म-स्थान : गुड़पाइलो, डेलाँग, पुरी।

श्री लक्ष्मीधर नायक बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार हैं। इन्होंने, उपन्यास, कहानी, काव्य, नाटक, आदि सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी रचनाओं की विषय-वस्तु सामाजिक मनःतात्त्विक, राष्ट्रीय तथा आर्थिक समस्याओं-संबंधी होती है; फलतः विचारोत्तेजक भी होती है। इस प्रकार इन्होंने अपने सम-सामयिक जीवन को अनेक रूपों में देखने और समझने का प्रयास किया है।

'उद्भ्रांत', 'सर्वहरा' (दे०), 'चरित्रहीनार-चिठि', 'हाय रे दुर्भागा देश' आदि इनके करीब पंद्रह उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

'गोटिए रातिर साथी', 'कंकाल' कहानी-संग्रह हैं।

'से', 'विरहिणी' काव्य-कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने नाटक भी लिखे—'लाल चाबुक', 'धर्म-पत्नी' आदि इनकी नाट्य-रचनाएँ हैं।

नायक, हा० मा० *(क० ले०)*

मैसूर विश्वविद्यालय की कन्नड-अध्ययन-संस्था के निदेशक डा० हा० मा० नायक (पूरा नाम हारोगद्दे मानप्प नायक) ने चालीस वर्ष की आयु में ही पर्याप्त सुयश प्राप्त कर लिया था। ये कन्नड के सर्वतोमुखी विकास के सबल और क्रियाशील समर्थक हैं। कन्नड मैसूर राज्य की राजभाषा होनी चाहिए एवं उसका उपयोग सभी स्तरों पर होना चाहिए—इनका यह विचार अनेक रचनात्मक और विधायक कार्यों को प्रोत्साहित कर रहा है। ये साहित्यकार होने के साथ-साथ भाषाशास्त्री भी हैं। इनका शोधग्रंथ 'कन्नड; लिटरेरी एंड कॉलोकुइल' बहु-प्रशंसित ग्रंथ है। अँग्रेजी पर भी इनका अच्छा अधिकार है। इसका प्रमाण इनका ग्रंथ 'कन्नड लिटरेचर : एंडेक्डि' है। ये 'कन्नड स्टडीज' के भी संपादक हैं। इनके कुछ अन्य ग्रंथों के नाम इस प्रकार हैं—'बाळ्नोटगळ्' (जीवन-दर्शन), 'नम्मनेय दीप' (हमारे घर के दीप), 'गुरुदेव रवींद्र', 'मुहम्मद पैगंबर', 'हावु मत्तु हेण्णु' (साँप और लड़की), साहित्यसल्लाप (दो भाग)। इनके द्वारा संपादित ग्रंथ हैं—'रूपाराधक', 'निसर्गदडियल्लि' (निसर्ग के तले), 'दे० ज० गौ० व्यक्ति और साहित्य', 'श्रीनिवास-साहित्य'। ये श्रेष्ठ आलोचक और गद्यलेखक हैं।

नायनार, वेङ्ङयिल कुञ्ञिरामन् *(मल० ले०)* [जन्म—1861 ई०; मृत्यु—1914 ई०]

ये मलयाळम के निबंधकार और प्रथम कहानीकार हैं। ये 'केसरी' उपनाम से निबंध लिखते थे। 'विद्याविनोदिनी', 'केरलपत्रिका', 'केरल-संचारी', 'मितवादी' आदि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में ये लेख लिखते रहे और उनके संपादन-कार्य में भी योग देते रहे।

केसरी की कहानी 'वासना-विकृति' मलयाळम की आधुनिक शैली की पहली कहानी मानी जाती है। इनके हास्य लेखों ने ई० वी० कृष्ण पिळ्ळा (दे०) संजयन (दे०) आदि व्यंग्यकारों को रास्ता दिखाया है।

आधुनिक गद्य-साहित्य के विकास में केसरी का महत्वपूर्ण स्थान है।

नायर, कुट्टिप्पुरत्तु केशवन् *(मल० ले०)* [जन्म—1882 ई०; मृत्यु—1959 ई०]

जन्मस्थान—मंगलम गाँव। मलयाळम-काव्य के आधुनिक युग को वळ्ळत्तोळ् (दे०) युग के नाम से अभिहित किया जा सकता है क्योंकि इस युग पर वळ्ळत्तोळ्

की काव्य-कला का भरपूर प्रभाव था। महाकवि वळ्ळत्तोळ् के घनिष्ठ सहचारियो और अनुयायियो मे केशवन् नायर अन्यतम थे। केशवन् नायर अपनी जीवन-चर्या के प्रारभ मे एव हाई स्कूल के मलयाळम-अध्यापक रहे। पदोन्नति करते-करते वे एरणाकुलम् स्थित महाराजा कालेज मे प्राध्यापक हो गए और वही से उन्होने अवकाश ग्रहण किया।

छात्र-गोष्ठियो की छद-रचना प्रतियोगिता के माध्यम से श्री केशवन् नायर की कवित्व-कला का विकास हुआ। इनकी शब्दावली प्रारभ से ही मधुर एव ललित रही है। पश्चिमी साहित्य के प्रभाव से अछूते रहकर भी इनमे स्वच्छदतावादी काव्यदृष्टि का विकास हुआ था। इनके कविता-सग्रहो मे 'काव्योपहारम्', 'नव्योपहारम्', 'प्रपचम्' आदि प्रमुख हैं। इनकी मुक्तक रचनाओ मे 'ग्रामीण कन्यका' सबसे प्रसिद्ध है। कालिदास (दे०) के 'अभिज्ञानशाकुतलम्' (दे०) के सफल मलयाळम रूपातर कारो मे ये भी थे। सयुक्त कविता-रचना भी इनका विशेष क्षेत्र रही। वळ्ळत्तोळ् के समान ये भी शब्दार्थ के मधुर समन्वय पर जोर देते थे।

नायर, पाला नारायणन् (मल०ले०) [जन्म—1911 ई०]

श्री पाला नारायणन् नायर अध्यापक, सेनानी और प्रशासक रहे हैं। 'निर्धन', 'प्रटिमा', 'बाष्परगम्' आदि उनके कई खडकाव्य और कविता सग्रह प्रकाशित हुए हैं। परतु उनकी सर्वाधिक उल्लेखनीय रचना 'केरलम् वलरुन्न' के नाम से आठ भागो मे प्रकाशित काव्य-शृखला है।

पाला की कविता कल्पना की अधित्यकाओ की अपेक्षा जीवन की यथार्थताओ की समतल भूमि पर विचरण करने वाली है। 'केरलम् वलरुन्नु' मे केरल के प्रकृति-वैभव और ऐतिहासिक एव सास्कृतिक गौरव की गाथा गाई गई है। पाला रोमाटिक धारा के प्रमुख कवियो मे से हैं।

नायर, पी० के०, परमेश्वरन् (मल० ले०) [जन्म—1903 ई०]

मलयाळम के विद्वान साहित्य-मीमासक, जीवनी-लेखक और शोधकर्ता। ये केरल सरकार के कुछ प्रशासनिक विभागो मे कार्य करने के बाद सेवा-निवृत्त हो चुके हैं। महात्मा गाधी, वाल्तायर, नेपोलियन आदि की प्रामाणिक जीवनियाँ इन्होने लिखी हैं। केंद्रीय साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित इनका 'मलयाळ साहित्य-चरित्रम्' एक प्रामाणिक कृति है और अन्य भाषाओ मे भी अनूदित हो चुकी है। अन्य साहित्यिक और सास्कृतिक विषयो पर भी इनके ग्रथ प्रकाशित हुए हैं।

परमेश्वरन् नायर का प्रत्येक साहित्यिक निबध विषय के सास्कृतिक और ऐतिहासिक पहलुओ के विस्तृत अध्ययन की परिणति होता है। इनके द्वारा रचित जीवनियो मे यह तथ्य और अधिक चरितार्थ हुआ है। मलयाळम के जीवनीकारो मे इनका स्थान अन्यतम है।

नायर, के० भास्करन्, (मल० ले०) [जन्म—1913 ई०]

सुप्रसिद्ध जीववैज्ञानिक डा० के० भास्करन् नायर मलयाळम के प्रतिष्ठित समालोचक भी है। वे त्रिवेंद्रम् के महाविद्यालय के प्रधानाचार्य थे और केरल के शिक्षा-विभाग मे निदेशक के पद से सेवानिवृत्त हुए थे।

उनके समालोचना-ग्रथो मे 'धन्यवादम्', 'कलयुम् कालवुम्' आदि प्रसिद्ध हैं। 'आधुनिक शास्त्रम्', 'शास्त्रत्तिटे गति' आदि वैज्ञानिक साहित्य के अतर्गत आते हैं।

भास्करन् नायर की समालोचना भारतीय दर्शन शास्त्र के सिद्धातो पर आधारित है। उनकी वैज्ञानिक तर्क-बुद्धि उनके आध्यात्मिक दृष्टिकोण को परिपुष्ट करने मे ही सहायक सिद्ध हुई है। वैज्ञानिक साहित्यकारो मे भी उनका स्थान अद्वितीय है। उनके समान साहित्य-मर्मज्ञता, वैज्ञानिकता और आध्यात्मिक चिंतन का समुचित सम्मिलन मलयाळम मे अन्यत्र दर्शनीय नही है।

नायर, वेट्टूर, रामन् (मल० ले०) [जन्म—1919 ई०]

जन्मस्थान : पालाई। स्कूली शिक्षा समाप्त करने के बाद 1938 ई० स ही इनके सार्वजनिक जीवन का आरभ हो गया। 1938 ई० मे ही इन्होंने काव्य-सृजन का भी प्रारभ कर दिया था। उन दिनो ये कविताएँ ही अधिक लिखते थे। कहानी की तरफ भी इनका मन जाता था। जब ये राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र मे आए तब कविता को छोड कहानी का सशक्त माध्यम इन्हे अधिक अनुकूल लगा और तब से कहानी-क्षेत्र मे इनकी लेखनी निरतर सक्रिय रही है।

अब तक इनके ग्यारह काव्य-कहानी-सग्रह प्रकाशित हुए

हैं। ये यथार्थवादी धारा के प्रारंभिक कहानीकारों में रहे हैं। आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओं की यथार्थ अभिव्यक्ति के साथ-साथ मानवीय संबंधों एवं मानवीय प्रकृति की विशेषताओं का विश्लेषण इनकी कहानियों का ध्येय है। यथार्थ की शिला से टकराकर छिन्न-भिन्न होने वाले आदर्श का चित्रण भी इनमें मिलता है। इनका उपन्यास-'जीविक्कान् मरन्नुपोय स्त्री' (जो जीना भूल गई) एक छोटी किंतु सफल औपन्यासिक रचना है। इसमें एक ऐसी क्वारी कन्या की कहानी है जिसकी जवानी परिवार की ही सेवा में बीत जाती है। नारी-मनोविज्ञान का विवेचन इसमें खूब हुआ है। यात्रा-विवरण का भी एक ग्रंथ इन्होंने लिखा है किंतु मूल रूप में ये कहानीकार ही हैं।

नायर, सी० एन० श्रीकंठन् *(मल० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध नाटककार हैं। छात्र-नेता, पत्रकार और साहित्य के संगठनात्मक कार्यकर्ता के रूप में इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है। सरकारी सेवा भी की है।

इन्होंने 'नष्टकच्चवटम्', 'कांचनसीता', 'एट्टिले पशु', 'मधुविधु' आदि दर्जनों नाटकों की रचना की है। चार कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं।

इनके नाटक मलयाळम के रंगमंच पर काफ़ी लोकप्रिय हुए हैं। पौराणिक कथा-पात्रों को नये परिवेश में प्रस्तुत करने में इनको सफलता मिली है। इनके सामाजिक समस्या-नाटक भी रंगमंच पर खरे उतरे हैं। आज के नाटककारों में इनका स्थान प्रमुख है।

नायर, सी० एस० *(मल० ले०)* [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1942 ई०]

श्री नायर मलयाळम के प्रसिद्ध समालोचक हैं। अश्वघोष (दे०)-कृत 'बुद्धचरितम्', वळ्ळत्तोळ्-कृत 'शिष्यनुम् मकनुम्' आदि ऐसे प्रमुख ग्रंथ हैं जिनका उन्होंने मूल्यां-.. किया है। 'ऊर्मिला' और 'कथामालिका' कथा-साहित्य .. उनकी मूल्यवान देन हैं। वळ्ळत्तोळ्, जी० शंकर कुरुप् (दे०) आदि कवियों की कई पुस्तकों पर सुदीर्घ 'आमुख' ..कर उन्होंने उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई है।

मलयाळम के प्रमुख समसामयिक कवियों की ..ों का मूल्यांकन सी० एस० नायर ने आधुनिक मानदंडों के अनुसार किया है। 'वळ्ळत्तोळ् उनके सबसे प्रिय-कवि हैं और वळ्ळत्तोळ्-काव्य की व्याख्या में वे पूर्णतः सफल हुए हैं। समालोचना को नयी दिशा प्रदान करने वालों में सी० एस० नायर का नाम अग्रगण्य है।

नायिका *(सं०, हिं० पारि०)*

नायिका को भी यथासंभव उन्हीं गुणों से युक्त माना गया है जो नायक के लक्षण में कहे गए हैं— नायक सामान्य-गुणैर्भवति यथासंभवयुक्ता। (सा० द० 3. 56), (दे० नायक)। इसके पहले तीन भेद हैं: स्वीया (स्वकीया), अन्या (परकीया), साधारणी (वेश्या)। स्वीया (स्वकीया) नायिका विनय, सरलता आदि गुणों से युक्त घर के कार्यों में तत्पर पतिव्रता नारी होती है। (सा० द० 3.56)। वह अपने पति में ही अनुरक्त होती है—तत्र स्वामिन्येवानुरक्ता स्वीया। (र० मं० पृ० 5) इसके तीन भेद हैं: मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा। इन तीनों के फिर तीन-तीन भेद हैं—धीरा, अधीरा और धीराधीरा। इस प्रकार कुल नौ भेद हुए। इनके अनेक भेदोपभेद हैं। परकीया नायिका अप्रकट रूप से पर-पुरुष के प्रति अनुरक्त होती है—अप्रकट-परपुरुषानुरागा परकीया (रसमंजरी, पृ० 27)। इसके पहले दो भेद हैं: परोढा और कन्या। परोढा विवाहिता होती है और कन्या अविवाहिता। मुदिता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना, आदि अनेक नायिका-प्रकार 'परकीया' के स्वरूप में अंतर्भूत किए जाते हैं। पुनः इनके अनेक भेदोपभेद हैं। सामान्या (वेश्या) धनमात्र के उद्देश्य से सब प्रकार के लोगों में अनुराग प्रकट करने वाली नायिका होती है। (रसमंजरी, पृ० 36)

नायिका-भेद *(सं०, हिं० पारि०)*

नायिका-भेद का विवेचन भारतीय काव्यशास्त्र में शृंगार रस के आलंबन—स्त्री-पुरुषों की काम-विषयक स्थितियों और मानसिक प्रतिक्रियाओं को दृष्टि में रखकर किया गया है। शुद्ध काम-विषयक, नायिका-भेद का निरूपण मूलतः कामशास्त्रीय ग्रंथों 'कामसूत्र' (वात्स्यायन) और 'रतिरहस्य' (कोक्कोक) में हुआ है। साहित्यशास्त्रीय नायिका-भेद-विवेचन की परंपरा का सूत्रपात भरत (दे०)-कृत 'नाट्यशास्त्र' (दे०) में ही हुआ। भरत ने प्रकृति के अनुसार उत्तमा, मध्यमा और अधमा—तीन भेद, अवस्था के अनुसार वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, खंडिता, विप्रलब्धा,

प्रोषितभर्तृका, स्वाधीनपतिका, कलहांतरिता, अभिसारिका—आठ भेद तथा प्रकार अथवा कर्म के अनुसार वेश्या, कुलजा और प्रेष्या—तीन भेद किए है। सस्कृत-काव्यशास्त्र का समस्त परवर्ती नायिका-भेद-विवेचन मूलत भरत की तद्विषयक मान्यताओ के आधार पर ही पल्लवित हुआ है। परवर्ती आचार्यों ने भरत-निरूपित वेश्या, कुलजा और प्रेष्या भेदो को क्रमश सामान्या, स्वकीया और परकीया के नये अभिधान दे दिए। इस विषय का सुव्यवस्थित विवेचन करने वाले परवर्ती आचार्यों मे धनजय (दे०) उल्लेखनीय हैं, जिन्होने प्रकृति, कर्म और अवस्था-विषयक भेदो के तर्कसम्मत विवेचन के साथ ही वय की दृष्टि से नायिकाओ के मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा भेदो के उपभेदो का भी निरूपण किया। इसी के आधार पर विश्वनाथ (दे०) ने मुग्धा के पाँच, मध्या के पाँच तथा प्रगल्भा के छह अवातर भेदो का निरूपण किया। विश्वनाथ ने नायिका-भेदो का विस्तार करते हुए उनकी सख्या 384 तक पहुँचा दी। श्रृगार को सर्वप्रमुख रस मान उसी की दृष्टि से नायिका-भेद-विवेचन करने वाले ग्रथो मे 'श्रृगारतिलक' (दे०) (रुद्रभट्ट), 'श्रृगारप्रकाश' (दे०) (भोज), 'भावप्रकाश' (दे०) (शारदातनय), 'रसार्णव' (दे०) (शिंगभूपाल) तथा 'रस तरगिणी' (दे०) एव 'रसमजरी' (दे०) (भानुदत्त) को महत्वपूर्ण माना जाता है। इनमे 'रसमजरी' सर्वाधिक लोकप्रिय रही है।

समग्रत सपूर्ण भारतीय काव्यशास्त्र मे नायिका-भेद के आठ आधार मान्य हैं जाति (पद्मिनी, शखिनी, चित्रिणी, हस्तिनी), कर्म अथवा धर्म (स्वकीया, परकीया, सामान्या), पति प्रेम (ज्येष्ठा, कनिष्ठा), वय (मुग्धा, मध्या, प्रौढा (प्रगल्भा), मान (धीरा, अधीरा, धीराधीरा), दशा (अन्यसुरतिदुखिता, मानवती, गर्विता), अवस्था (प्रोषितपतिका, कलहांतरिता, खडिता, अभिसारिका आदि) और गुण (प्रकृति—उत्तमा, मध्यमा, अधमा)।

नायिका भेद की यह शास्त्रीय पद्धति अत्यत यात्रिक और स्थूल है। आचार्यों ने प्राय स्त्री को वर्ग मानकर उसके समूह की कुछ स्थूल और चिर परिचित पारपरिक सामाजिक स्थितियो की कल्पना कर ली है तथा प्रत्येक विषय के भेदोपभेद प्रस्तुत कर देने की अपनी सामर्थ्य का प्रदर्शन उत्साहपूर्वक किया है।

नारण दुरैक्कण्णन *(त० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

उपनाम 'जीवा'। मद्रास के मयिलापूर नामक स्थान मे इनका जन्म हुआ। जीवा तमिल एव अँग्रेजी के विद्वान है। इन्हे कुप्पुस्वामी मुदलियार, मरैमलै अडिहळ् (दे०), शेषाचलम, तिरु वि० क० (दे०) जैसे योग्य विद्वानो का शिष्य बनने का सौभाग्य मिला। इन्होने अपनी जीविका का आरभ प्रेस मे प्रूफरीडर के रूप मे किया। कुछ समय तक 'आनदबोधनी', 'प्रचड विकटन' नामक पत्रिकाओ का सपादन किया। वे अनेक पत्रिकाओ के सपादक मडल के सदस्य भी रहे हैं। 'जीवा' सच्चे अर्थो मे बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक, जीवनी, निबध सभी विधाओ को इन्होने अपनी रचनाओ से समृद्ध किया है। प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'हसानदी', 'वेनिल वददु', 'अपाविकै', 'देवकी चपलम' (कहानी-सग्रह), 'इव्वुलगै तिरुबिपारेन', 'थान एन पेण्णाय पिरदेन ?', 'उयिरोवियम' (दे०), 'दासी रमणी', 'वेलैक्कारी', 'पुदुमैप्पेण', 'नडुत्तेरु नारायणन्', 'श्रीमान शुयनलम', 'त्याग तपुवु', 'तरगिणी' (उपन्यास), 'तीडादार यार ?', 'शदुरगम', 'वध पाशम', 'वळ्ळलार', 'कुमरि मुदल काश्मीर वेरै', 'तिरुवळ्ळुवर' (नाटक), 'अरिवुक्कु विरुदु', 'अरशियल शिन्दनैहल', 'लक्षिय कुखु', 'तमिलहत्तिन तनि तलैवरहल', 'मरैमलै अडिहळ्' (दे०) (निबध), 'पुदुडिल्लि पयणम', 'वबाय पारीर' (यात्रा साहित्य), 'इदय गीदम', 'अरुट्कवि अमुदम', 'तिरुमयिलै कविरायर कविदैहळ' (कविता-सग्रह) आदि।

जीवा की कहानियो मे नारी-स्वातत्र्य, विधवा-विवाह, सामाजिक एव आर्थिक दृष्टि से पिछडे हुए व्यक्तियो के पुनरुद्धार, धार्मिक एव सामाजिक समन्वय आदि सामाजिक समस्याओ का चित्रण है। इनके आरभिक उपन्यासो मे *समाज-सुधार की भावना प्रबल है। स्वतत्रता परवर्ती* उपन्यासो मे युगीन सामाजिक, आर्थिक समस्याओ का सजीव चित्रण है। अपने 'उयिरोवियम' (जीवन चित्र) नामक उपन्यास को नाटक-रूप मे प्रस्तुत कर इन्होंने तमिल-नाटक के क्षेत्र मे प्रवेश किया। इनके नाटक प्रसिद्ध साहित्यकारो के जीवन चरित्र पर एव सामाजिक समस्याओ पर आधृत हैं। इन्होंने विभिन्न धर्मगुरुओ, भक्तो, कवियो, वैज्ञानिको, राष्ट्र-नेताओ और महापुरुषो की जीवनियाँ लिखी हैं।

'जीवा' सामाजिक विषयो को आधार बनाकर साहित्य-सर्जना करने वाले प्रथम साहित्यकार हैं। तमिल साहित्य-जगत मे इन्हे उपन्यासकार के रूप मे सर्वाधिक ख्याति मिली है।

नारणप्पा *(क० ले०)*

(दे०) कुमारव्यास।

नारायण *(सं० ले०)* [समय—चौदहवीं शती के बाद]

'महाभारत' (दे०) के टीकाकारों में नारायण का विशिष्ट स्थान है। कुछ लोग इनको तथा नारायण सर्वज्ञ को एक ही व्यक्ति मानते हैं। पर, यह धारणा कुछ भ्रांत प्रतीत होती है क्योंकि इन्होंने अपनी टीका में नारायण सर्वज्ञ के मत की आलोचना की है।

इनकी टीका का नाम 'निगूढार्थ पदबोधिनी' है। इसमें बड़ी ही विशद एवं सुबोध शैली में 'महाभारत' की व्याख्या की गई है।

नारायणकवि, दूबगुंट *(ते० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती ई०]

ये नेल्लूरु जिले के 'दूबगुंट' नामक गाँव के मुखिया थे। इन्होंने विष्णुशर्मा-कृत संस्कृत 'पंचतंत्र' (दे०) का तेलुगु में अनुवाद किया। तेलुगु में उपलब्ध 'पंचतंत्र' के अनुवादों में नारायणकवि की यह रचना ही सर्वप्रथम है। इनके अनुवाद में मूल ग्रंथ का निकटतम अनुसरण किया गया है पर इनकी प्रतिभा साधारण कोटि की है।

नारायणदासु, आदिभट्ल *(ते० ले०)* [जन्म—1864 ई०; मृत्यु—1945 ई०]

इनका जन्म एक कलाभिज्ञ परिवार में हुआ था। अपनी साधना से इन्होंने संगीत और साहित्य में प्रवीणता पाई। ये यक्षगानमु तथा हरिकथाओं के लेखक एवं प्रस्तुतकर्ता के रूप में अत्यंत प्रसिद्ध हैं। इस क्षेत्र में इनसे अधिक सफलता किसी को प्राप्त नहीं हुई। 'आंध्र देश हरिकथा कालक्षेप कर्तृ पितामह' इनकी उपाधि थी। इन्होंने पौराणिक कथाओं पर आधारित—'जानकी शपथकमु', 'रुक्मिणी कल्याणमु', 'अंबरीप-चरित्रमु', 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' आदि हरिकथाओं तथा कई शतकों की रचना की है। ये हरिकथा लिखने में ही नहीं, उसके प्रस्तुतीकरण में भी प्रवीण थे। जीवन भर असंख्य स्थानों में ये हरिकथा प्रस्तुत करते रहे। शिक्षित तथा अशिक्षित दोनों वर्गों को ये अपनी प्रतिभा से मंत्रमुग्ध कर देते थे। अपने बहुमुखी पांडित्य को कथाओं के रूप में प्रस्तुत करते हुए जनता का सम्यक् उद्बोधन भी ये किया करते थे।

नारायणन् सार *(मल० पा०)*

के० सुरेंद्रन् (दे०) के उपन्यास 'शक्ति' का मुख्य पात्र। यह दरिद्र अध्यापक अपनी व्यवहार-कुशलता और धर्मभीरु-निरपेक्षता के सहारे अपने परिवार को संपन्नता और प्रतिष्ठा प्रदान करता है। अंत में रोग-पीड़ित और पत्नी का उपेक्षा-पात्र होकर भी अपराजित भावना के साथ ही आँखें बंद करता है।

नारायणन् सार के चरित्र की विशेषता है उसकी महत्वाकांक्षा और लक्ष्य प्राप्ति के लिए कोई भी मार्ग अपनाने की सन्नद्धता। परंपरागत नैतिक मान्यताएँ उसे मार्गभ्रष्ट नहीं करतीं, परंतु किसी भले व्यक्ति को हानि पहुँचाना भी उसका ध्येय नहीं है। उसके भक्ति-प्रभाव और इच्छाशक्ति का समुचित विकास उपन्यास में दर्शनीय है।

नारायणम् सार जैसे पात्र सामान्य जीवन में सुलभ होते हुए भी मलयाळम उपन्यास में ऐसी पात्र-सृष्टि अद्वितीय है।

नारायणराव *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

यह श्री अडवि बापिराजु (दे०) का सुप्रसिद्ध उपन्यास है। यह आंध्र विश्वविद्यालय द्वारा पुरस्कृत एक बृहद् उपन्यास है। यह कथात्मक उपन्यास मात्र न होकर आंध्र-जनता से संबंधित अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक विषयों के व्यापक वर्णनों से भरा हुआ है। इसका उद्देश्य केवल रसानुभूति न होकर समाज की अनेक विषमताओं एवं कुरीतियों को हटाकर एक नवीन सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था का निर्माण करना है। उपन्यासकार ने इसके नायक नारायणराव को एक उदारचरित, जागरूक एवं निष्ठावान् सामाजिक नेता के रूप में चित्रित करके उसे अपना संदेशवाहक बनाया है। 'नारायणराव' का स्थान तेलुगु के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में है।

नारायणराव, काळ्ळकूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1871 ई०]

पूर्णम्मा और वंगारुराज के पुत्र नारायणराव तेलुगु के प्रसिद्ध नाटककार हैं। इन्होंने नाटकों के अतिरिक्त कतिपय चित्रकाव्य, ऐतिहासिक ग्रंथ तथा आलोचना-

त्मक ग्रथ लिखे हैं। ये बी० ए०, एल-एल० बी० थे और वकालत करते थे। नाटको मे इन्होंने यद्यपि पौराणिक नाटक और प्रहसन भी लिखे हैं तथापि इनके सामाजिक नाटक ही सर्वाधिक हैं। सारगधर की प्रचलित कथा मे अनेक नाटकीय परिवर्तन कर लिखे गए 'चित्राभ्युदयमु' (1909 ई०), अभिमन्युवध को ग्रहण कर लिखे गए 'पद्मव्यूहमु' (1919 ई०) नामक नाटको की भूमिकाएँ इनकी तर्कबुद्धि पर प्रकाश डालने वाली हैं। 'चितामणि' (दे०) (1921 ई०), 'वर-विक्रयमु' (दे०) (1922-23 ई०), 'मधुसेवा' (1906 ई०) क्रमश वेश्यागमन, दहेज, मद्यपान की कुप्रथाओ का खडन करते हुए लिखे गए नाटक हैं।

नारायणराव्, चिलुकूरि *(तें० ले०)* [जन्म—1890 ई०, मृत्यु—1952 ई०]

नारायणराव् एम० ए०, पी एच० डी० और एल० टी० परीक्षाओ मे उत्तीर्ण थे। कुछ समय तक इस पेक्टर ऑफ स्कूल्स रहने के बाद, अनतपुर के सरकारी महाविद्यालय मे प्राध्यापक रहे। ग्यारहवी शती की तेलुगु भाषा पर शोध-कार्य करके इन्होंने आध्र विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। तेलुगु भाषा को सस्कृत-जन्य सिद्ध करते हुए (रेवरेंड काल्डवेल की पुस्तक 'ए कपेयरेटिव ग्रामर ऑफ ड्रैविडियन लैंग्वेजिज' का खडन करते हुए) इन्होने 'आध्र भाषा चरित्रमु' (दो भागो मे) नामक बृहत् ग्रथ की रचना की है। यह ग्रथ आध्र विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित है। यह इनकी गभीर गवेषणात्मक बुद्धि की कीर्ति-पताका है।

अनुसधाता होने के साथ-साथ ये सरस कवि, नाटककार, और व्याख्याकार और व्याख्याता भी थे। ये नव्यसाहित्य परिषद् के सस्थापको म से थे तथा आध्र-इतिहास-परिशोधक-मडली (राजमहेद्री) के कई वर्ष तक अध्यक्ष भी रहे। इन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई 'महामहोपाध्याय' की उपाधि का तिरस्कार किया था। 1947 ई० मे काशी सस्कृत विद्यापीठ ने इन्हें 'महोपाध्याय' की उपाधि से सम्मानित किया था। कहा जाता है, इन्होंने 1,25,000 पृष्ठो की 240 पुस्तकें लिखी हैं। इनमे प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रथ भी सम्मिलित हैं। अंग्रेजी मे भी कुछ पुस्तकें लिखी हैं। इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ ये हैं 'अथर्ववेद' (प्रतिपदार्थ तात्पर्य सहित), 'आपस्तवधर्मसूत्र' (व्याख्या), 'सिद्धात कौमुदी' और 'तर्कसग्रह' (तेलुगु-विवरण-सहित), दस भागो मे 'आध्र वाड्मय चरित्र', 'अव', 'अश्वत्थामा' (नाटक), 'सस्कृताध्रनिघटु', देश-देश के इतिहास (20 पुस्तकें) तथा तेलुगु काव्यो मे अंग्रेजी अनुवाद आदि। 'आध्र-भाषा-चरित्रमु' के कारण इन्हे अपार यश प्राप्त हुआ है।

नारायण रेड्डी, सी० *(ते० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

ये आधुनिक युवक तेलुगु-कवियो मे प्रमुख स्थान रखते हैं। अल्प आयु मे भी 'बालकवि' के रूप मे इन्होंने पर्याप्त ख्याति पाई थी। ये प्रमुख रूप से अनुराग एव प्रणय के कवि हैं। ये आध्र के प्राचीन इतिहास एव सस्कृति से विशेष आकृष्ट हैं। इसी कारण इनके प्रमुख काव्य इन्ही विषयो से सबद्ध है।

'कर्पूरवसतरायलु' (दे०), 'नागार्जुनसागरमु', 'विश्वनाथनायकुडु', 'जलपातमु' आदि इनके काव्य हैं। 'रामप्पा' इनकी एक गीतिनाटिका है। समालोचना के क्षेत्र मे भी इन्होने अपना योगदान किया है। इनका 'नागार्जुनसागरमु' प्राचीन बौद्धकालीन वातावरण मे प्रेम एव त्याग का सघर्ष चित्रित करने वाला मधुर काव्य है। 'कर्पूरवसत-रायलु' आध्र के एक शासक की प्रणय-कहानी है। इन्होंने कविता का गेय रूप ही प्राय सर्वत्र अपनाया है। अत इनकी कविता मे शास्त्रीय छदो का प्रयोग नही हुआ है। केवल मात्रा, लय एव तालबद्ध रीति से इन्होने रचनाएँ की हैं। इनकी मधुर एव प्रवाहमय शैली पाठक को आह्लादित करती है। चलचित्रो के गीतकार के रूप मे भी सर्वाधिक सफलता मिली है।

नारायणाचार्युलु, पुट्टपर्ति *(तें० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

ये बहुभाषाविद, बहु ग्रथ-प्रणेता तथा रसज्ञ साहित्यकार हैं। इनकी वाणी अत्यत तीक्ष्ण एव सशक्त है। इनके व्यापक पाडित्य और बहुभाषाज्ञान के कारण आध्र-जनता ने इनको 'सरस्वतीपुत्र' की उपाधि से सम्मानित किया है। कविता, समालोचना, अनुवाद आदि अनेक क्षेत्रो मे इनकी प्रतिभा प्रखर रूप स व्यक्त हुई है। 'शिवताडवमु', 'मेघदूतमु', 'पेनुगाडलक्ष्मी', 'प्रबधनायिकलु', आदि इनकी महत्वपूर्ण रचनाएँ है। शिवताडवमु' इनकी गेयकृति है जिसम सगीत, साहित्य एव नाट्य के समस्त सकेता का सरस समावेश करके शिव के ताडवनृत्य का मोहक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इनके 'मेघदूतम' मे कालिदास (दे०) के अनुकरण पर आध्र-देश का वर्णन किया गया है। ये

अत्यंत स्वच्छंद प्रकृति के साहित्यकार हैं। इनकी रचनाओं में सर्वत्र तीव्रता, मधुरता एवं आवेग की प्रधानता रहती है। सशक्त वाणी का वरदान इन्हें प्राप्त है।

नालडियार *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की छठी-सातवीं शती]

'नालडियार' को संघमोत्तर काल में रचित 'पदिनेण् कीऴ् कणक्कु' (अठारह गौण रचनाओं) में परिगणित किया जाता है। इस वर्ग की सर्वप्रसिद्ध रचना 'तिरुक्कुरल' (दे०) है। प्रसिद्धि की दृष्टि से दूसरा स्थान 'नालडियार' का है। चार चरणों वाले वेण्बा छंद में रचित होने के कारण इसे नालडि (चार चरणों वाला) या 'नालडियार' कहा गया है। 'नालडियार' की गणना पुरम् (दे० पुरप्पोरुळ) काव्यों में होती है। यह एक नीति-ग्रंथ है। इसमें विभिन्न जैन मुनियों द्वारा रचित नीति-विषयक 400 पद संगृहीत हैं। 'नालडियार' शीर्षक से इन पदों को संगृहीत करने का श्रेय पदुमनार को है। कृति का आरंभ ईश-वंदना से हुआ है। कुछ विद्वानों का मत है कि इस वंदना का संबंध 'जिन' से है। इस कृति में कहा गया है कि धन, यौवन और जीवन नश्वर हैं। आत्म-शुद्धि तथा मोक्ष-प्राप्ति के लिए परोपकार करना चाहिए, धन और जीवन का सदुपयोग करना चाहिए। इसमें भाव-सौंदर्य एवं कला-सौंदर्य का अद्भुत समन्वय दीख पड़ता है। इसकी गणना तमिल के ही नहीं, विश्व के श्रेष्ठ नीति-ग्रंथों में होती है।

नालायिर दिव्यप्रबंधम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की छठी से नवीं शती]

'नालायिर दिव्यप्रबंधम्' में बारह आळवार संतों की चौबीस रचनाएँ संगृहीत हैं—आळवारों और उनकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—'पोयगै आळवार' (मुदल तिरुवंदादि), 'भूतत्ताळवार' (इरंडाम तिरुवंदादि), 'पेय आळवार' (मून्राम तिरुवंदादि), 'तिरुमलिशै' आळवार (नान्मुखन तिरुवंदादि, तिरुच्चंदविरुत्तम), 'पेरियाळवार' (तिरुप्पल्लांडु पेरियाळवार तिरुमोऴि), 'आंडाळ' (तिरुप्पावै, नाच्चियार तिरुमोऴि), 'तोंडरडिपोडि आळवार' (तिरुमालै, तिरुप्पळ्ळिएऴुच्चि), 'तिरुप्पाण आळवार' (अमलनादिपिरान) 'तिरुमंगै आळवार' (पेरिय तिरुमोऴि, 'तिरुक्कुरुंदांडकम', 'तिरुनेडुंदांडकम', 'तिरुवेळुकूट्रिरुक्कै', 'शिरिय तिरु-मडल, पेरिय तिरुमडल), 'कुलशेखर आलवार' (पेरुमाळ तिरुमोऴि), नम्माळवार (तिरुवाय्मोऴि, तिरुविरुत्तम, तिरुवाशिरियम, पेरिय तिरुवंदादि) तथा 'मधुरकवि आळवार' (कण्णिनुण् चिरुत्तांबु)। इन रचनाओं का संग्रह आचार्य नाथमुनि के द्वारा ईसा की दसवीं शती के आस-पास किया गया। 'नालायिर-दिव्य-प्रबंधम्' शीर्षक का शब्दार्थ है 'चार सहस्र मधुर या दिव्य पदों से युक्त रचना'। वर्तमान काल में नालायिर-प्रबंधम् या दिव्य-प्रबंधम् शब्द आळवारों द्वारा रचित चार सहस्र पदों के संग्रह के लिए रूढ़ हो गया है। 'प्रबंधम्' तमिल कृष्ण-भक्ति परंपरा का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। यह ग्रंथ वैष्णवों के तेंकलै और वडकलै दोनों दलों के बीच समादृत है। अन्य धर्मानुयायी तथा नास्तिक-जन भी साहित्यिक कृति के रूप में 'नालायिर प्रबंधम्' का विशेषकर पेरियाळवार, आंडाल, तिरुमंगै और कुलशेखर आळवार की रचनाओं का अध्ययन-अध्यापन कर आनंद प्राप्त करते हैं। संघम युग के उपरांत तमिल-साहित्य की समृद्धि में आलवारों का विशेष योग रहा है।

नालुकथकळ् *(मल० कृ०)*

प्रस्तुत कृति चार कथाओं का संग्रह है। रचना-काल 1822 ई० और 1916 ई० के बीच में माना जाता है। कहानीकार ओटुविल् कुञ्ञिकृष्ण मेनन हैं। कल्याणिक्कुट्टि, जानु, नारायणिक्कुट्टि, केळुण्णि मूप्पिल् नायर—ये हैं इन चार कथाओं के शीर्षक। सहृदयों के मनोरंजन में इन कहानियों का विशिष्ट स्थान रहा है।

नालकेट्टु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1956 ई०]

यह एम० टी० वासुदेवन् (दे०) नायर का सुप्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। इसकी कथावस्तु एक यथास्थितिवादी धनिक नायर परिवार के क्रमशः अधःपतन और विघटन पर आधारित है। इसके प्रमुख पात्र 'अप्पु' के चरित्र का विकास नयी पीढ़ी में रूढ़ियों के विरुद्ध हुए विद्रोह के प्रतीक के रूप में हुआ है।

निकट भूतकाल तक केरल की कुटुंब-व्यवस्था मातृदायक्रम पर आधारित थी और सबसे बड़ा मामा अविभक्त परिवार का नायक होकर अपना एकाधिकार चलाता था। इस शासन के दबाव की जो प्रतिक्रिया युवकों में हुई थी, वह एम० टी० वासुदेवन् नायर की साहित्य-रचना का एक मुख्य प्रेरणा-स्रोत रही है। इसमें इस सामाजिक परिवर्तन-प्रक्रम का पूर्ण विकास दिखाया गया है। यह लेखक

का सर्वप्रमुख उपन्यास होने के साथ-साथ मलयाळम के मुख्य सामाजिक उपन्यासो मे प्रमुख है।

नालुभाषाकाव्यड् ङ्ळ् *(मल० कृ०)*

यह गुप्त मलयाळम भाषा मे लिखित चार उत्कृष्ट कृतियो का सग्रह है। इसमे चेरिय कोमप्पन्, कण्णन्, पावक्कनार्, कोच्चि की जीवनियाँ है। वीर रस प्रधान ये कविताएँ अलकृत तथा रस-समृद्ध हैं। इनका रचना-काल बीसवीं शती है। रचयिता कुटूर नारायण मेनन (दे०) हैं। इन पुस्तको के अतिरिक्त सोलह अन्य कृतियाँ भी प्रस्तुत कवि द्वारा रची गई हैं।

नासिकेतोपाख्यान *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1803 ई०]

सदल मिश्र (दे०)-विरचित इस कृति मे महाराजा रघु की पुत्री चद्रावती तथा उसके पुत्र नासिकेत के पौराणिक उपाख्यान को खडी बोली गद्य मे अत्यत मनोरजक शैली मे निबद्ध किया गया है। परपरागत तुकात पदावली तथा ब्रजभाषा के रूपो का परित्याग करते हुए व्यवहारोपयोगी गद्य का प्रयोग करने के कारण यह कृति खडी बोली के स्वरूप विकास के अध्ययन की दिशा मे एक अत्यत महत्वपूर्ण कडी है।

'नासिख़' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1757 ई०, मृत्यु—1838 ई०]

नाम—शेख इमामबख्श। उपनाम—'नासिख़', लकब—पहलवान-ए-सुख़न। जन्म-स्थान—लखनऊ। स्थूल वर्णनो और इतिवृत्तात्मकता से युक्त होने पर भी इनके काव्य मे यथेष्ट सरसता एव सजीवता परिलक्षित होती है। मुसहफ़ी (दे०) को ये अपना काव्य-गुरु मानते थे। उर्दू-भाषा के निर्माताओ मे इनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। इन्होने उर्दू को परिमार्जित और परिष्कृत करने का भरसक प्रयास किया था। फारसी और अरबी शब्दावली के प्रचुर प्रयोग के प्रति इनका विशेष आग्रह है। वाक्य-विन्यास शुद्ध फारसी-पद्धति का है। दार्शनिक विषयो का प्रतिपादन इनके काव्य की प्रमुख विशेषता है। इनका दीवान (काव्य सग्रह) भाषा की उत्कृष्टता एव सशक्त अभिव्यजना शैली का सजीव उदाहरण है।

नाहनदी *(त० पा०)*

नाहनदी कृष्णमूर्ति 'कल्कि' (दे०) के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास 'शिवकामियिन शपदम्' के प्रमुख पात्रो मे से है। नाहनदी 'कल्कि' की कल्पना सृष्टि है। लेखक ने इसे खलनायक के रूप मे चित्रित किया है। इसमे अपार साहस है परतु फिर भी यह अत मे पराजित हो जाता है। इसका कला-प्रेम ही इसकी शक्ति और शक्तिहीनता का कारण है। अपने कला प्रेम के कारण ही यह आयनशिर्पी को अपने साथ मिला लेता है और अपने षड्यत्रो मे सफल होता है, शिवकामी के आदर का पात्र बनता है और काची के किले से मुक्त हो जाता है। इसका कला-प्रेम इसे बलात्कार की पुत्री शिवकामी की ओर आकृष्ट करता है और अत मे इसका पतन होता है। इसी कारण यह अपने भाई पुलिकेशी से शत्रुता मोल लेता है और अपने देश की हानि करता है। बौद्ध धर्म की अवनति के समय नाहनदी जैसे कृत्रिम बौद्ध भिक्षु का चित्रण उचित प्रतीत होता है।

निंबार्क *(स० ले०)* [स्थिति-काल—1200 ई० का पूर्वार्द्ध]

ये तैलग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम अरुणमुनि और माता का नाम जयती देवी था। यह किवदती प्रचलित है कि एकदा इन्होने अपनी शक्ति से एक सन्यासी को, नीम के पेड के ऊपर अस्त हो जाने पर भी, सूर्य का दर्शन कराया था। इसीलिए इनका नाम निंबार्क पड गया था।

'वेदात पारिजात सौरभ', 'सिद्धात रत्न', 'दशश्लोकी', 'श्रीकृष्णस्तव', 'वेदात कौस्तुभ', 'पाचजन्य' तथा 'तत्त्व प्रकाशिका' के अतर्गत इनके दार्शनिक सिद्धात की प्रमुख रूप से प्रतिपादना मिलती है। इनका दार्शनिक सिद्धात भेदाभेद या द्वैताद्वैतवाद के नाम से प्रचलित है। इस मत के अनुसार जीवात्मा, परमात्मा एव प्रकृति ये तीनो भिन्न तत्त्व हैं। जीव तथा प्रकृति परमात्मा के अधीन हैं। किंतु परमात्मा इन सभी मे व्याप्त है, इसोलिए इनके मतानुसार भेद या अद्वैत भी स्वीकार किया गया है। इन्होने अपने भेदाभेदवाद को स्पष्ट करने के लिए समुद्रतरग को प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार कि समुद्र एव उसकी तरगो मे भेद एव अभेद दोनो हैं, उसी प्रकार परमात्मा एव जीव तथा प्रकृति मे भी भेद तथा अभेद दोनो हैं।

वैष्णव-दर्शन के क्षेत्र मे निंबार्क ने ईश्वर, जीव एव प्रकृति मे भेद तथा अभेद की स्थापना करके समन्वय

की सुंदर दृष्टि प्रस्तुत की है। इससे व्यावहारिक जगत् के स्वरूप की रक्षा भी संपन्न हुई है। अतः भारतीय दर्शन के अंतर्गत इनका स्थान महत्वपूर्ण है।

निकात-ए-मजनूं *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1956 ई०]

यह ग्रंथ साहित्यिक समालोचनाओं का संकलन है। इसके रचयिता प्रोफेसर अहमद सिद्दीक़ मजनूं हैं। इस पुस्तक में संकलित समालोचनात्मक साहित्यिक निबंधों में से कुछ इस प्रकार हैं :

(1) मीर और उनकी शायरी।
(2) हज़रत आसी का तग़ज़्ज़ुल।
(3) ममनवी इसरार-ए-मुहब्बत।
(4) नियाज़ फ़तेहपुरी।

इसमें प्रकाशित निबंध प्रायः वे ही हैं जो 'तनकीदे हाशिये' के नाम से पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं। इन निबंधों के माध्यम से समालोचना एवं उसके सिद्धांतों पर विद्वत्तापूर्ण ढंग से प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक उर्दू साहित्य की एक बहुमूल्य कृति है और उर्दू के समालोचनात्मक साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है।

निगारिस्तान *(उर्दू० कृ०)*

'निगारिस्तान' मौलाना ज़फ़र अली खां (दे०) की कविताओं का संकलन है। 256 पृष्ठों के इस संकलन में कोई 181 रचनाएँ संगृहीत है।

'निगारिस्तान' से पूर्व मौलाना ज़फ़र अली खां का एक काव्य-संकलन 'बहारिस्तान' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इस संकलन में मौलाना की विभिन्न विषयों पर लिखी कविताएँ उपलब्ध हैं। विषयों की विविधता का आकलन संभव नहीं, फिर भी कुछ काव्य-शीर्षक इस प्रकार हैं—

(1) रामायण का एक सीन, (2) वह और हम, (3) सितारा-ए-सुबह, (4) जन्माष्टमी, (5) ज़लज़ला-ए-बिहार, (6) जवाहरलाल नेहरू और हिंदू महासभा, (7) लाला नानकचंद नाज़ की शायरी, (8) मस्जिद शहीद गंज की शहादत आदि कविताएँ बहुत रोचक तथा मनोरंजक हैं।

मौलाना उर्दू साहित्य के एक उच्चकोटि के कवि तथा पत्रकार माने जाते हैं। उनकी कविताओं का यह संकलन उनकी प्रतिभा तथा काव्य-कला एवं कल्पनाशीलता का प्रतिनिधित्व करता है।

निचुकनि गीत *(अ० पारि०)*

ये असमीया साहित्य के लोरी गीत हैं। इनमें बच्चों के प्रति माता की कोमल कल्पनाएँ और भावनाएँ रहती है। असम में निम्नोक्त निचुकनि गीत बहुत प्रचलित है, बच्चों के शिशु-पाठ (प्रथम खंड) में भी लगा हुआ है—

जो न वाइ ए, वे जी एटि दिया···

'हे चंद्रमा सुई दे दो, इससे थैली सिऊँगी, थैली में धन भरूँगी, धन से हाथी मोल लूँगी, हाथी पर बच्चा चढ़ेगा।'

श्रीधर कंदली (दे०) नामक एक असमीया कवि ने निचुकनि शैली में 'कानखोवा' (कान खाने वाला) कविता लिखी थी, जिसमें यशोदा माता कृष्ण को डराकर सुला देने के लिए कानखोवा के आने की बात कहती हैं—

घुमटि जाओरे अरे कानाइ हुरे कानखोवा आसे।
सकलो शिशुर काण खाइ खाइ आसइ तोमार पाशे॥

निजगुण शिवयोगी *(क० ले०)* [समय—1500 ई० के लगभग]

निजगुण शिवयोगी के विषय में कहा जाता है कि यह पहले कहीं के राजा थे। बाद में विरक्त होकर शंभुलिंग पहाड़ियों में जाकर तपस्या में लीन रहे। ये वीरशैव थे। 'शंभुलिंग' इनका उपनाम था।

ये बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न थे। इन्होंने गद्य-पद्य दोनों में अपनी संचित ज्ञानराशि की व्यंजना की है। इनकी सात रचनाएँ हैं—'कैवल्य पद्धति', 'परमानुभव-बोधे', 'परमार्थगीते', 'अनुभव-सार', 'अरुवत्तुमूवर', 'त्रिपदि', 'परमार्थ प्रकाशिके', 'विवेक-चिंतामणि' (दे०)। इनमें पहली पाँच क्रमशः गीत, सांगत्य (दे०), रगळे (दे०), त्रिपदी (दे०) छंदों में हैं तो शेष दो गद्य में हैं। 'कैवल्य पद्धति' में तात्विक तथा शिवस्तुति वाले गीत हैं। उनमें कई तो श्रेष्ठ कोटि के गीतिकाव्य हैं। 'परमानुभव-बोधे' में अद्वैत का निरूपण याज्ञवल्क्य तथा मैत्रेयी के संवाद-रूप में है। 'अनुभवसार' में आत्म-स्वरूप तथा अद्वैतसिद्धि का निरूपण है। 'परमार्थगीते' में गुरु-शिष्य संवाद के रूप में मोक्षशास्त्र का निरूपण है। 'अरुवत्तुमूवर' त्रिपदी में त्रिपदी छंद में 63 शैव संतों

का स्तवन है। 'विवेक चितामणि' निजगुण शिवयोगी का बृहत् रूप है। यह एक प्रकार से कन्नड का सर्वप्रथम विश्व-कोश है। इसमे रस-प्रकरण तथा 765 विषय है। केवल दर्शन और धर्म ही नही, सगीत जैसे लौकिक विषय भी इसमे हैं। निजगुण शिवयोगी कर्णाटक ज्ञानियो मे उच्च तथा कवियो मे गण्यमान्य हैं। इनमे ज्ञान प्रधान भावशाति है। विभिन्न मतो के निरूपण मे इन्होने जो निष्पक्ष दृष्टि दिखाई है, वह अद्भुत है। ज्ञान और काव्य का मनोहर सगम ही इनकी विशेषता है।

निज्जुत्ति (निर्युक्ति) *(प्रा० कृ०)*

जैन आगमो (दे०) पर लिखी हुई व्याख्यात्मक टिप्पणियो का एक प्रकार इस नाम से अभिहित किया जाता है। ये निर्युक्तियाँ प्राकृत भाषा के आर्या छदो मे सूत्रबद्ध अर्थ को प्रकट करने के लिए लिखी गई हैं। सूत्रार्थ पर दृष्टिपात के साथ स्पष्टीकरण के लिए दृष्टातो, उदाहरणो तथा प्रसिद्ध कथाओ का उपयोग किया गया है। अनेक आगम निर्युक्तियो के साथ ही प्रकाश मे आए हैं और ये मूलग्रथो से ऐसी घुलमिल गई हैं कि पृथक्करण सभव प्रतीत नही होता। पिडनिज्जुत्ति इत्यादि दो-एक तो आगमो मे सन्निविष्ट हो गई है। अधिकाश के कर्ता भद्रबाहु (दे०) हैं।

निडदवोलु वेंकटराव् *(ते० ले०)*

ये प्राचीन एव मध्ययुगीन तेलुगु भाषा के अधिकारी विद्वान हैं। तेलुगु भाषा के विकास-क्रम के विषय पर इन्होंने *व्यापक शोध कार्य किया है। अनेक प्राचीन ग्रथो के* सशोधन एव सपादन का श्रेय भी इनको प्राप्त है। मद्रास विश्वविद्यालय मे तेलुगु विभाग के अध्यक्ष के रूप मे अनेक वर्षो तक इन्होने कार्य किया है। 'मिचुपल्ले' इनकी काव्य-कृति है।

निणमणिञ्ञ काल्पाटुकळ् *(मल० कृ०)* [रचना-काल— 1955 ई०]

पारप्पुरत्तु (दे०) का सैनिक जीवन से सबद्ध प्रसिद्ध उपन्यास। अपने उत्तरदायित्वो को निभाने मे असमर्थ निराश युवक मैत्यु (दे०) अपनी प्रेमिका तक्म्मा के प्रोत्साहन जन्य मनोबल के आधार पर सेना मे भर्ती हो जाता है। इधर तक्म्मा के पिता की मृत्यु के बाद वह दुष्प्रवादो का पात्र बनकर मैत्यु का प्रेम खो बैठती है। सेना से सेवा-निवृत्ति के बाद मैत्यु युद्ध मे शहीद होने वाले एक सहयोगी की बहन से विवाह करता है। जब तक उसको तक्म्मा की दु खद कथा का पूरा परिचय प्राप्त होता है तब तक सब-कुछ बिगड चुका होता है।

इस कथानक मे उपन्यासकार ने ग्राम-जीवन और सैनिक जीवन की विचित्रताओ और विशेषताओ के समातर चित्र उरेहे हैं। युद्ध की विभीषिकाओ और उसमे भाग लेने वाले सैनिको की मानसिक स्थिति का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करने मे पारप्पुरत्तु को जो सफलता मिली है वह अनन्य है। लेखक स्वय सैनिक रहा है और प्रस्तुत उपन्यास काफी हद तक उसकी अपनी कहानी है। गाँव के अच्छे-बुरे और अधिकतर दरिद्र लोगो के सघर्षमय जीवन की भी उपन्यास मे झलक मिलती है। इस पृष्ठभूमि मे उपन्यासकार ने भावपूर्ण और दु खात प्रणय-कथा गूँथी है। 'निणमणिञ्ञ काल्पाटुकळ' मलयाळम के सैनिक उपन्यासो मे अद्वितीय होने के अलावा सामाजिक उपन्यासो मे भी प्रमुख स्थान का अधिकारी है। उपन्यास-साहित्य के विकास मे इसका स्थान बहुत महत्वपूर्ण है।

निबध *(हि० पारि०)*

'निबध' हिंदी की एक गद्य-विधा है और सामान्यत अँग्रेज़ी के 'ऐस्से' के पर्याय रूप मे प्रयुक्त होता है। 'अँग्रेज़ी का 'ऐस्से' शब्द फ्रेंच भाषा के 'एसाई' (essais) से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है प्रयास परीक्षण अथवा प्रयोग करना। पश्चिम मे इस विधा का जनक *फ्रेंच लेखक माइकेल द मॉन्तेन (1533-92 ई०) को माना* जाता है। 1580 ई० मे इन्होने जब सर्वथा नयी शैली मे रचित दो पुस्तकें प्रकाशित कीं तो शायद उनकी प्रयोग-धर्मिता पर बल देने के उद्देश्य से उनके लिए 'एसाई शब्द का प्रयोग करते हुए उन्होंने अध्ययन विचारणा और कलात्मक अलकरण से मुक्त (केवल) अपना—स्वय का—चित्रण कहा था। इस प्रकार स्वय इस विधा के प्रवर्तक के अनुसार निबध रचनाकार की सहज एव अनौपचारिक आत्माभिव्यक्ति है। मॉन्तेन के रचना-काल के ठीक पद्रह वर्ष पश्चात् प्रकाशित अँग्रेज़ी के प्रथम महत्वपूर्ण निबधकार फ्रासिस बेकन के प्रथम निबध-सग्रह म सिद्धात-निरूपण एव परिभाषाएँ देने का सचेत प्रयास तथा विचारो के व्यवस्थित उपस्थापन के स्पष्ट लक्षण विद्यमान हैं। निबध के उद्भव-काल में ही उसकी प्रकृति के विषय मे मतैक्य

नहीं हो पाया और बाद में भी प्रायः सभी श्रेष्ठ निबंधकारों ने (चाहे वे कार्लाइल, हैजलिट, गोल्ड स्मिथ और ली हंट जैसे विषयी-प्रधान निबंधकार हों और चाहे बेन जॉन्सन, एडिसन, डॉ० जान्सन, मैकाले और वाल्टर पेटर जैसे विषय-प्रधान निबंध-लेखक हों) इसके स्वरूप के विषय में एकमत होकर अपनी अवधारणाओं को प्रस्तुत नहीं किया। इन लोगों के अनुसार यह आत्मा और स्वानुभूति की अनौपचारिक अभिव्यक्ति भी हो सकता है और किसी विषय का शास्त्रीय, वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित प्रतिपादन भी। वैसे निबंध-लेखन की शैली आत्मपरक होनी चाहिए—निर्वैयक्तिक या वस्तुमुखी नहीं, इस विषय में प्रायः सभी एकमत रहे हैं।

पाश्चात्य आलोचकों के अनुसार 'ऐस्से' (essay) वस्तुतः एक 'निबंध' रचना है, जबकि आधुनिक भारतीय भाषाओं में उसे 'निबंध' (नि+बंध+√बन्) कहा गया है, जिसका अर्थ होता है—बाँधना, सुसंबद्ध अथवा क्रमबद्ध करना। हिंदी के श्रेष्ठ निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) ने इस गुत्थी को यह कहकर सुलझाने का प्रयत्न किया है कि 'व्यक्तिगत विशेषता का यह मतलब नहीं कि उसके प्रदर्शन के लिए विचारों की शृंखला रखी ही न जाए या जान-बूझकर जगह-जगह से तोड़ दी जाए...।' इसका अर्थ यह हुआ कि 'निर्बंधता' में भी एक 'संबद्धता' रहती है जो अपने आप में व्यक्तिनिष्ठता के विरुद्ध नहीं है। यदि निबंध चिंतनात्मक है तो विचारों में संबद्धता स्वयं शृंखला का निर्माण कर लेगी और यदि निबंध भाव-प्रधान है तो वहाँ भाव (दे०) की एकसूत्रता होगी। वस्तुतः निबंध में बाहर से दिखाई पड़ने वाली विशृंखलता के भीतर एक आंतरिक शृंखला रहती है। इस प्रकार निबंध के प्रमुख तत्व है: (1) एकसूत्रता या सामंजस्य, (2) वैयक्तिक दृष्टिकोण, और (3) विषय-प्रतिपादन की शैली में आत्मीयता।

निबंध विषय और शैली के प्रकारों की दृष्टि से मर्यादित नहीं है। वह जीवन और जगत् के किसी भी मूर्त्त-अमूर्त्त विषय से लेकर विशुद्ध कल्पना पर आधारित लोकोत्तर विषयों पर भी लिखा जा सकता है। व्यक्ति-तत्त्व की प्रमुखता के आधार पर निबंध के दो रूप हो सकते है: व्यक्ति-प्रधान और विषय-प्रधान। शैली की दृष्टि से वह चिंतनात्मक, विश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक, विवेचनात्मक, वर्णनात्मक, भावनात्मक और चित्रात्मक आदि अनेक प्रकार का हो सकता है। साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से आलोचनात्मक निबंधों की विशेष उपयोगिता है। आजकल पत्र-पत्रिकाओं के संपादकीयों, उनके प्रकाशित होने वाली पुस्तक-समीक्षाओं, रेखाचित्रों (दे०), भेंट-वार्ताओं (इंटरव्यू), रिपोर्ताजों (दे०) आदि को भी निबंध के अंतर्गत ही माना जाने लगा है।

निबंधमाला (म० कृ०)

1874 ई० में श्री विष्णुशास्त्री चिपळूणकर (दे०) ने 'निबंधमाला' नामक पत्रिका का संपादन-कार्य आरंभ किया था। मराठी साहित्य में निबंधमाला प्रौढ़ निबंध-साहित्य का आद्य रूप रही है। अपने युग में 'निबंधमाला' मराठी भाषा-भाषियों की राष्ट्रीय भावनाओं का प्रेरणा-स्रोत रही है। विनष्ट स्वाभिमान को ही पुनः उद्‌बुद्ध करने के लिए चिपळूणकर जी ने परिस्थितियों के आग्रह से अनेक विषयों को अपनाया था और ओजस्वी तथा गरिमापूर्ण शैली में निबंध लिखे थे। प्रारंभिक चार वर्षों तक 'निबंधमाला' में केवल चिपळूणकर जी के ही निबंध छपते थे।

'निबंधमाला' की रचनाएँ मराठी निबंध-लेखन का आदर्श रही हैं। 'निबंधमाला' में 'मराठी भाषेचा सांप्रतची स्थिति' जैसे भाषा-विषयक, 'मोरोपंत की कविता' जैसे आलोचनात्मक, 'डॉ० जॉन्सन का चरित्र' (जो मराठी का पहला चरित्र-ग्रंथ माना जाता है), 'आमच्या देशाची स्थिति' जैसे राजनीतिक तथा अन्य अनेक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक निबंध संकलित हैं। लेखक निबंधों में अपने मत का तर्कनिष्ठ प्रतिपादन करता हुआ, प्रतिपक्षी को परास्त करने के लिए व्यंग्य, उपहास, व्याजोक्ति आदि का प्रचुर प्रयोग करता है।

इन्होंने अपने निबंधों में अंग्रेजी शासन का कड़ा विरोध किया था, जिसके परिणामस्वरूप 'आमच्या देशाची स्थिति' निबंध ज़ब्त कर लिया गया था। ये अपने को मराठी भाषा का शिवाजी कहते थे। मराठी साहित्य में 'निबंधमाला' के द्वारा ऐतिहासिक अनुसंधान, जीवनी, आलोचना तथा प्रौढ़ साहित्यिक निबंधों की परंपरा का सूत्रपात हुआ है।

निमचाँद (बँ० पा०)

निमचाँद चरित्र (सधवार एकादशी) दीनबंधु मित्र की एक अविस्मरणीय सृष्टि है। अँग्रेजी शिक्षा में पारंगत एवं संभ्रांत परिवार की संतान निमचाँद की अधोगति का कारण है मद्यतृष्णा। शराब के कारण ही उसे अपमानित-लांछित होना पड़ता है किंतु शिक्षा-गौरव से वह उन्नतमस्तक

है। धनी मूर्खो के प्रति उसकी अवज्ञा का अत नही। वह मद्यप है, यहाँ तक कि चरित्रहीन है परतु उचित-अनुचित-ज्ञान-वर्जित नही है। डेपुटी अटल ने जब गोकुल की स्त्री को बाहर निकालने का प्रस्ताव किया, निमचाँद ने अवज्ञापूर्वक उस प्रस्ताव का प्रत्याख्यान किया। निमचाँद की बातचीत, आचार-ग्राचरण मे सुशिक्षित पौरुष के आत्मदहन का पावक भस्माच्छादित है, इसीलिए उसके जीवन की प्रच्छन्न वेदना की धारा से पाठक-चित्त करुणा-प्रवण हो उठता है। बहुत-से यह सोचते हैं कि माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) के 'कैरीकेचर' के लिए ही लेखक ने इस पात्र का निर्माण किया है। यो मधुसूदन के व्यक्तित्व के साथ निमचाँद का कोई साम्य-समातरता नही है, तो भी निमचाँद के सताप मे मधुसूदन दत्त के मत्त ग्रावेग का क्षीण स्पदन सुनाई पड जाता है। निमचाँद की हँसी व्यर्थ जीवन का हाहाकार है एव उसका मत्त सताप विलाप की ही प्रतिध्वनि मात्र है।

निरजन *(क० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

कन्नड के विख्यात प्रगतिवादी उपन्यासकारो मे श्री कुलकुद शिवराव जी का नाम अग्रणी है। ग्रापका काव्य-नाम 'निरजन' है। आपका जन्म उत्तर कर्णाटक के कुलकुद मे 1923 ई० मे हुआ। हाईस्कूल तक शिक्षा प्राप्त कर इन्होने कई पत्र-पत्रिकाओ मे काम किया। सप्रति आप बालको के विश्वकोश 'ज्ञानगगोत्री' के सपादक है। आपने गोर्की के उपन्यास 'माँ' का सफल अनुवाद किया। आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'स्वामी अपरपार', 'कल्याणस्वामी', 'विमोचने', 'चिरस्मरणे', 'रगम्मन वठार', 'नास्तिक कोट्ट देवरु', 'ओदि', 'नक्षत्र नक्कितु' आदि। 'स्वामी अपरपार' मे धर्म की आड मे होने वाले शोषण एव अत्याचार पर व्यग्य है। 'रगम्मन वठार' मे मध्यवर्गीय जनता की समस्याओ का सरस निरूपण है। 'कल्याणस्वामी' मे कोडगु प्रात मे हुए राजविद्रोह का चित्रण है। निरजन की कहानियो मे देश के राजनीतिक एव आर्थिक जीवन के यथार्थ चित्रण हैं, शोषण एव वैषम्य के प्रति आक्रोश है। इनकी भाषा मे विलक्षण सयम है जो कभी-कभी नीरसता की सीमा का स्पर्श कर उठता है। तथापि वे कन्नड के श्रेष्ठ वैचारिक लेखको मे से हैं।

निरजन *(प० प्र०)*

माया के पृथक् ईश्वर-रूप। अजन-रहित अर्थात् निर्लिप्त। यह परमात्मा का प्रतीक शब्द है और पजाबी साहित्य मे नाथ सप्रदाय से प्राप्त हुग्रा है। गोरखनाथ ने अपनी वाणी मे ग्रलख ग्रौर निरजन नाम परब्रह्म के लिए प्रधानतया प्रयुक्त किए हैं। गुरु-वाणी-साहित्य मे गुरु रामदास ने परमात्मा को 'निरजन'-पद से माना है। उसे ग्रमर, निर्भय, निरकार एव निर्वैर कहा है। उनकी उक्ति है—'हरि सति निरजन अमरु है निरभऊ निरवैरु निरकारु'।

निरजन भगत *(गु० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

'स्वातत्र्योत्तर' गुजराती कवियो मे निरजन भगत अग्रगण्य है। अर्वाचीन कविता मे काव्यशिल्प, छद, लय, प्रतीक और बिब मे नूतन मौलिक प्रयोग करने का श्रेय उन्ही को है। मूलत तो ये आत्मलक्षी भावुक कवि हैं परतु इनकी कुछ कविताएँ युग सत्य और समष्टि-सत्य को भी रूपायित करती है। प्रारभ मे इन पर बँगला कविता की लय ग्रौर वृत्ति का प्रभाव परिलक्षित होता था, पर आगे चलकर इनकी कृतियाँ इतनी प्रौढ, परिपक्व ग्रौर मौलिक रूप मे प्रकट हुई कि समालोचको ने 'उच्चस्तरीय उत्तम काव्य' के रूप मे उनका स्वागत किया। निरजनभाई अहमदाबाद के स्थानीय कालेज मे अँग्रेज़ी के प्राध्यापक हैं। उनका पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन-अनुशीलन अत्यत व्यापक, गहन एव गभीर है। ये प्रगतिशील कवि है। छदोबद्ध और छदमुक्त कविताओ के अनतर इन्होने मधुर गीतो की भी रचना की है। 'छदोलय' (दे०) 'अल्पविराम', 'किन्नरी' आदि इनके कविता सग्रह हैं। कभी-कभी ये विवेचनात्मक लेख भी लिखते हैं जिनमे इनकी विद्वत्ता, ग्रध्ययनशीलता और चिंतन-दर्शन परिलक्षित होता है। इनकी रचनाओं मे अनुभूत-अर्जित सत्य का प्रकाशन होता है, आरोपित सत्य का नही—यही इनकी विशेषता है।

निरजन माधव *(म० ले०)* [जन्म—1703 ई०, मृत्यु—1790 ई०]

ये प्रतिभा-सपन्न कवि थे। इन्होने सस्कृत-काव्यो का गहरा अध्ययन किया था। सस्कृत की शैली मे इन्होने मराठी म 'सुभद्राचपू' की रचना की है। यह गद्य-पद्य मिश्रित सात सर्गो का काव्य है। कवि की रचनाओं मे विविधता है। 'वृत्तावनम', 'वृत्तमुक्तावली', 'वृत्तरत्नमाला' इनके छद-ग्रथ हैं। 'ज्ञानेश्वरविजय' 'निरोष्ठ्यराघव-चरित्रकाव्य' हैं और 'चिद्बोध रामायण', 'ग्रध्यात्मरामायण'

(दे०) की टीका है। 'निरोष्ठ्यराघव' में पवर्ग के अक्षरों का प्रयोग सप्रयत्न त्याग दिया गया है। 'रामकर्णामृत' में 111 स्तोत्र हैं, जिसमें पंक्तियों के आदि अक्षरों से 'श्रीराम जयराम जय जय राम' मंत्र सर्वत्र बनता जाता है। ये बहु-भाषाविद् थे—संस्कृत, मराठी, कानड़ी और हिंदी का इन्हें सम्यक् ज्ञान था—राजनीति तथा लोक-व्यवहार का भी इन्हें पर्याप्त ज्ञान था। पंडित कवियों में निरंजन माधव का विशिष्ट स्थान है।

निरंजनी, रामप्रसाद *(हिं० ले०)*

ये पटियाला दरबार के आश्रित थे तथा महारानी के लिए कथा बाँचते थे। इन्होंने 1741 ई० में परिमार्जित खड़ी बोली में 'भाषा योग वासिष्ठ' की रचना की थी जिससे जार्ज ग्रियर्सन (दे०) तथा उनके समर्थकों की यह धारणा सर्वथा निर्मूल सिद्ध होती है कि खड़ी बोली गद्य का श्रीगणेश 'फोर्ट विलियम कालेज' के तत्त्वावधान में लल्लूलाल (दे०) द्वारा रचे गए 'प्रेमसागर' से हुआ था। वस्तुतः रामप्रसाद निरंजनी खड़ीबोली-हिंदी-गद्य के प्रथम प्रौढ़ लेखक हैं तथा हिंदी गद्य के विकास में इनका ऐतिहासिक महत्व है।

निरणम् माधव पणिक्कर *(मल० ले०)* [समय—चौदहवीं शती ई०]

ये मलयाळम के प्राचीन पाट्टु (गीत)-साहित्य को परिष्कृत करने वाले कवि हैं। ये 'कण्णश्श' कवि के नाम से प्रख्यात हैं। दो मातुलों और एक भागिनेय कवियों में अग्रज मातुल हैं। इनकी भाषा 'भगवद्गीता' (दे०) किसी भी भारतीय भाषा में रचित प्रथम भगवद्गीता मानी जाती है। माधव पणिक्कर के काल में मणिप्रवाल (दे० मणिप्रवाळम्) शैली की संस्कृतनिष्ठ रचनाओं का अधिक स्थान था। माधव एवं अन्य दो कवियों की रचनाओं ने काव्य की दूसरी शैली का साहित्यिक महत्व बढ़ाया और आगे चलकर तुचत्त् एषुत्तच्छन् (दे०) जैसे कवियों के लिए शैली-चयन का आदर्श प्रस्तुत किया।

निरणम् राम पणिक्कर *(मल० ले०)* [जन्म—पंद्रहवी शती]

केरल प्रांत में आलप्पुषा नाम का एक जिला है और निरणम् उस जिले का एक गाँव है जो प्रसिद्ध पंपा नदी के किनारे स्थित है। उस गाँव के तीन प्रसिद्ध कवियों में एक हैं रामप्पणिक्कर। 'रामायणम्', 'भागवतम्', 'शिवरात्रि-माहात्म्यम्', 'भारतम्' आदि ग्रंथ इनके रचे हुए हैं। सुख्यात 'कण्णश रामायणम्' में कवि की भक्ति-भावना प्रस्फुटित हुई है। वर्णना में भी कवि ने अपनी प्रतिभा दिखाई है। इनकी भाषा सरस, कोमल और प्रांजल है।

निरणम् शंकर पणिक्कर *(मल० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती]

इनकी 'भारत माला' में 'भागवत' (दे०) के दशम स्कंध की कथा के साथ भारत की संक्षिप्त कथा भी निहित है। पांचाली का विलाप मर्मस्पर्शी भाषा में वर्णित है।

निरांत *(गु० ले०)* [समय—1779-1843 ई०]

ये करजण के निकट देथाण ग्राम के निवासी पाटीदार (कृषक) थे। प्रारंभ में ये सगुणोपासक थे, बाद में निर्गुणमार्गी हो गए। कहते हैं कि इनकी कुछ कविताएँ हिंदी में भी हैं।

इन्होंने 'वार', 'तिथि', 'महीना' लिखे। इन रचनाओं के विषय हैं—गुरु-महिमा, सुरति-अनुभव, कैवल्य-पद, आत्मज्ञान, पुरुष-प्रकृति-वर्णन, संत-लक्षण, सत्संग-महिमा, वैराग्य-बोध आदि। इनकी शिष्य-मंडली बड़ी व्यापक थी। मध्ययुगीन गुजराती के ज्ञानमार्गी कवियों में ये महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं।

'निराला', सूर्यकांत त्रिपाठी *(हिं० ले०)* [जन्म—1896 ई०; मृत्यु—1961 ई०]

इनका जन्म महिषादल स्टेट, मेदनीपुर (बंगाल) में हुआ था। पारिवारिक कठिनाइयों के कारण इनका शिक्षा-क्रम दसवीं के पश्चात् टूट गया। इनका स्वभाव आरंभ से ही चिंतनशील था। दार्शनिक प्रवृत्ति ने इन्हें अनेक प्रियजनों की मृत्यु का आघात सहने की शक्ति प्रदान की। वस्तुतः इनकी दार्शनिकता कोरा बुद्धि-विलास न होकर जीवन की माँग थी। इसीलिए इनका श्रेष्ठ साहित्य दार्शनिक गरिमा से मंडित है।

मूलतः कवि होकर भी इन्होंने आर्थिक कारणों

से कथा और निबंध-साहित्य की रचना की। फिर भी इनके *कथा-साहित्य का कलात्मक स्तर पर्याप्त उन्नत है* और निबंधो मे भाषा एवं भाव की प्रखरता द्रष्टव्य है। इनकी कविताओ का मूल स्वर क्रांतिकारी है। काव्य-क्षेत्र मे इन्होंने अनेक नयी शैलियो का आविष्कार या प्रसार किया है। मुक्त-छंद के विकास मे इनका सबसे अधिक योगदान है। सांगीतिक शैली के गीतों की रचना भी हिंदी मे सर्व-प्रथम इन्होने की है। 'परिमल' (दे०) 'गीतिका' (दे०) और 'अनामिका' इनके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह है। 'अनामिका' मे 'मडिल कविताएँ भी हैं। ये कविताएँ इनके कुसुमादपि कोमल और वज्रादपि कठोर व्यक्तित्व की श्रेष्ठ अभि-व्यक्तियाँ हैं।

'तुलसीदास' (दे०) 'निराला' जी का महत्वपूर्ण प्रबंधकाव्य है। इसमे महाकवि के मनोविकास का मनो-वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। काव्य का मूल उद्देश्य सास्कृतिक पुनर्जागरण का सदेश देना है। इसे एक तरह से आत्मोद्बोधन भी माना जा सकता है।

'कुकुरमुत्ता' आदि परवर्ती रचनाओ मे इनकी व्यग्य शैली का विकास दर्शनीय है। इन्ही रचनाओ के आधार पर अनेक नये कवि और आलोचक इन्हे नयी *कविता का प्रेरणा-स्रोत ही नहीं, प्रवर्तक भी स्वीकार करते* हैं।

'निराला' बहुमुखी प्रतिभा के धनी क्रांत द्रष्टा कवि हैं। आधुनिक हिंदी-साहित्य को इनके अनेक नये प्रयोगो से नयी दिशाएँ मिली हैं। हिंदी काव्य के इतिहास मे इनका स्थान अक्षुण्ण रहेगा।

निरुक्त *(सं० कृ०)* [रचना-काल—700 ई० पू०]

इसके रचयिता यास्क हैं। इस ग्रंथ मे परिशिष्ट के दो अध्याय मिलाकर कुल 14 अध्याय हैं। 'निरुक्त' निघटु का भाष्य रूप ग्रंथ है। 'निघटु' मे वेद के कठिन शब्दो की तालिका क्रमबद्ध रूप से सकलित की गई थी। यद्यपि ये दोनो ग्रंथ पृथक् हैं, तथापि *विषय-साम्य के कारण सायण* (दे०) ने 'ऋग्वेद' (दे० वेद)-भाष्य के उपोद्घात के अंतर्गत लाक्ष-णिक रूप से 'निघटु' को भी 'निरुक्त' के नाम से अभिहित किया है। यास्क ने 'नावैयाकरणाय' कहकर स्वतः इस ग्रंथ की कठिनता की ओर सकेत किया है। 'निरुक्त' मे प्रधान रूप से वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकार, वर्णनाश एवं धातु का उसके अर्थातिशय के साथ योग—इन विषयो का विवेचन-प्रतिपादन किया गया है। 'निरुक्त' के प्राचीन टीकाकार दुर्गाचार्य है।

'निघटु' का भाष्य होने के कारण वेदज्ञो की दृष्टि मे निरुक्त का स्थान अत्यत ऊँचा है। व्याकरण एव भाषा-विज्ञान दोनो ही क्षेत्रो मे 'निरुक्त' का स्थान महत्वपूर्ण है। सामान्य रूप से वैदिक शब्दो की व्युत्पत्ति के बोध के लिए 'निरुक्त' अत्यंत उपादेय ग्रंथ है। जो शब्द व्याकरण के क्षेत्र से बाहर थे उनका परिज्ञान कराने के लिए ही 'निरुक्त' की रचना की गई थी। इस प्रकार वैदिक शब्दबोध की दृष्टि से 'निरुक्त' का योगदान अत्यत विशिष्ट है।

निरुपमा देवी *(बँ० ले०)*

अन्य महिला उपन्यासकारो की तरह निरुपमा-देवी के उपन्यासो की कथाभूमि का आधार है गृहस्थ-जीवन की चिरपरिचित समस्या—दापत्य-जीवन तथा प्रेम। गृहस्थ-जीवन वैचित्र्यहीन है और प्रेम-निषिद्ध है। अंतर्जगत् के इस सघर्ष को लेखिका ने कई धरातलो पर उठाया है। मनो-विश्लेषण तथा चित्राकन मे सहजता और स्वाभाविकता का पूरा निर्वाह किया गया है। कही भी न असयम है और न अतिरंजना। आकार मे छोटे तथा गठन-कौशल मे समृद्ध *निरुपमादेवी के उपन्यास शिल्प और शैली की दृष्टि से* सफल हैं। 'अन्नपूर्णा मदिर' उनकी प्रथम उपलब्धि है परंतु 'दिदि' उनकी सर्वाधिक सजीव एव सशक्त रचना है।

निर्गुण भक्ति-काव्य *(हिं० प्र०)*

'निर्गुण' का अर्थ है गुण-रहित, गुणातीत, माया-तीत; सत्त्व, रज तथा तम से परे परमतत्त्व। निर्गुण-सप्रदाय को संत संप्रदाय, निर्गुण-पथ, निर्गुण-मार्ग, अथवा 'निर्गुनिया' कह देते हैं। निगुण अरूप, अवर्ण, अजर, अमर, अनादि, अनत, अलक्ष्य एव अनिर्वचनीय है, वह घट-घटवासी भी है। निर्गुण-काव्यधारा ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी इन दो शाखाओ मे विभाजित है। कबीर (दे०) को निर्गुणमार्ग का प्रधान *प्रवर्तक माना गया है, यद्यपि इसका स्रोत* जय-देव, नामदेव (दे०), स्वामी राघवानद, स्वामी रामानद तथा जैन-बौद्ध मुनियो की रचनाओ मे और उनसे भी पूर्व उपनिषदो (दे०) मे देखा जा सकता है। कबीर के अनतर गुरु नानक (दे०), दादू तथा उनके अनुयायियो ने अपने-अपने पथ चलाए। निर्गुण सप्रदाय एकरूप न रहा। कबीर ने विचार-स्वातन्त्र्य पर अधिक बल दिया। रहस्यवादी भावनाओ से ओतप्रोत अथवा भक्ति से परिपूर्ण गीतो को

'निर्गुन' कहा जाता है, जो लय-विशेष में गाए जाते हैं और जिनका उपदेश है निराकार ब्रह्म की उपासना।

'निर्दोष', वंसी (*कश्० ले०*)

ये बाल्यकाल से ही चिंतनशील और भावुक रहे और साथ ही आर्थिक परिस्थितियों से भी जूझते रहे हैं। 1958 ई० के बाद से इनके उपचेतन मन का भावुक लेखक जागा और ये सांस्कृतिक नवजागरण की लपेट में आ गए। सामाजिक कुरीतियों और राजनीतिक परिस्थितियों से इनके अंतर्मन की सुप्त भावनाएँ जाग उठीं। जीवन के सुख-दुःख, प्रेम-घृणा, मानव-प्रकृति-सुलभ भाव एवं विचार, मनुष्य-जीवन की क्षणभंगुरता, आदि के ताने-बाने से इन्होंने अपनी कृतियों को सँवारा और सजीव कर दिया। 'निर्दोष' जी का उपन्यास 'म्वर्कंजार' और एक छोटा उपन्यास 'सूरिन्य तें जून' साहित्यिक दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि की रचनाएँ हैं जिनसे इस कहानीकार का शिल्पकौशल सिद्ध होता है। इन्होंने कोई 40 कहानियाँ लिखी है जो मानव-मन के अंतस्तल की विविध ऊर्मियों का दिग्दर्शन कराती हैं और यह सिद्ध करती हैं कि निर्दोष जी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन और अभिनिवेश कितना गहरा है। इनकी कहानियों की पृष्ठभूमि जहाँ प्रायः मनोवैज्ञानिक है, वहीं इनकी सूझ-बूझ की गहरी पैठ के दर्शन होते हैं। निर्दोष जी ठेठ कश्मीरी का प्रयोग करते हैं और उनकी लेखनी में प्रवाह है। इनकी कहानियों के संग्रह 'बाल मरःयो' (मैं प्रेम-दीवानी तड़प रही हूँ) पर इन्हें कश्मीर की कल्चर अकादमी से पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इनका एक और संग्रह 'आदम छु यिथे वदनाम' पुरुष मुफ्त में बदनाम हुआ है) प्रकाशित हुआ है। इन्होंने कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) की जीवनी का 'क्रोमुक शायिर' नाम से कश्मीरी में अनुवाद किया है। अपने स्वभाव, कृतित्व, परिश्रम और प्रतिभा के कारण 'निर्दोष' को कश्मीरी साहित्य-जगत में बहुत ऊँचा स्थान है।

निर्मल भक्त (*अ० कृ०*) [रचना-काल —1925 ई०; ले० : रजनीकांत बरदलै (दे०)]

इस उपन्यास में टेनिसन के 'इनकर्डेन' काव्य की छाया है। इस काव्य की कथा को असमीया परिवेश में वर्मियों के तृतीय आक्रमण की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया गया है। निर्मल नामक युवक आक्रमणकारी वर्मियों से देश-रक्षार्थ संघर्ष करता है और बंदी होता है। बंदी-अवस्था में वह वर्मा में 13 वर्ष रहता है और पत्नी रूपही की चिंता में डूबा रहता है। कारामुक्त होकर जब वह लौटता है तो देखता है कि उसकी पत्नी ने मजबूरी में किसी दूसरे व्यक्ति से विवाह कर लिया है। निर्मल रूपही के जीवन में विष नहीं घोलना चाहता; अतः वह अपना परिचय न देकर वैराग्य-जीवनयापन करता है। उपन्यास का अंतिम भाग दुर्बल है। यद्यपि लेखक ने मूल कथा में परिवर्तन कर उसे असम के परिवेश में ढालने की चेष्टा की है किंतु अंतिम भाग अस्वाभाविक हो गया है। निर्मल के चरित्र में स्वदेश-भक्ति का समावेश सुंदर है। रूपही भी अपने स्वामी को प्यार करती है, वह 13 वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा करने के बाद ही अन्य से विवाह करती है। केवल वर्मियों के आक्रमण की पृष्ठभूमि में लिखे जाने से यह ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता।

निर्वचनोत्तर रामायणमु (*तें० कृ०*)

यह 'आंध्र-महाभारत' (दे०) के प्रणेता कवित्रय में से एक तिक्कना सोमयाजी (दे०) द्वारा रचित (*1260*) प्रबंध-काव्य है। इन्होंने 'आंध्र-महाभारत' के पंद्रह पर्वों की रचना की है, जो तेलुगु साहित्य की अन्यतम उपलब्धियों में से एक मानी जाती है। 'महाभारत' के समान लोकप्रिय रचना तेलुगु में और कोई नहीं है। तिक्कना के समय तक 'रामायण' और महाभारत' दोनों ही अपूर्ण थे। नन्नयभट्टु (दे०) द्वारा 'आंध्र-महाभारतमु'(दे०) आदि और सभा पर्व का तथा अरण्य पर्व के कुछ अंश का अनुवाद हो चुका था। 'रामायण' के छह कांडों की रचना हुई थी; अतः इन्होंने अपनी काव्य-रचना का आरंभ इस 'उत्तररामायण' से किया था। तेलुगु पद्य-काव्यों में यत्र-तत्र अत्यल्प मात्रा में गद्य का प्रयोग सामान्यतया मिलता है। फिर भी इनको चंपू काव्य नहीं कहा जाता। तिक्कना ने अपनी इस रचना में पूर्ण रूप से गद्य का बहिष्कार किया है जो तेलुगु काव्य-परंपरा की दृष्टि से अपूर्व है।

इसमें वाल्मीकि 'रामायण' (दे०) के उत्तरकांड की कहानी वर्णित है। कथा के नियोजन में कवि ने पर्याप्त स्वतंत्रता बरती है। काव्य के आरंभ में पहले के छह कांडों की कथा संक्षेप में वर्णन करके तथा काव्य के अंत में राम-निर्वाण के प्रसंग का परित्याग करके इन्होंने एक स्वयंपूर्ण एवं मंगलांत स्वतंत्र काव्य के रूप में इसकी रचना की है। शब्दार्थों का औचित्य, संवादों का कौशल सजीव पात्रों का निर्माण, प्रकृति-परिशीलन की सूक्ष्म दृष्टि,

चित्तवृत्तियो का विवेचन आदि का अच्छा परिचय इस रचना मे मिलता है। इसके उपाख्यान भी स्वयपूर्ण और सुदर हैं। सीता और राम के प्रेम की शिष्ट मर्यादा, एक-निष्ठता, दापत्य-जीवन का माधुर्य एव शालीन प्रणय का सौंदर्य इसमे परिलक्षित होते है।

निर्वाण *(पा० पारि०)*

'निर्वाण' शब्द का अर्थ है बुझना। दीपक के बुझने के समान ही जब सभी इच्छाएँ बुझ जाती हैं तब उसे निर्वाण या मोक्ष प्राप्त करना कहा जाता है। यद्यपि भगवान् बुद्ध ने 10 अनिर्वाच्यो मे इस विषय मे भी विचार करने का निषेध किया था किंतु आगे चलकर इस विषय में विचार को महत्व दिया जाने लगा। हीनयान शाखा (दे०) के अनुसार निर्वाण मे व्यक्ति की सत्ता समाप्त नही होती किंतु असत्य सिद्धातो और बुरे विचारो के साथ पुनर्जन्म का अभाव हो जाता है। इसमे आनद दुःख का स्थान ले लेता है। इसके अनुसार निर्वाण का अर्थ है मानव-परपरा, जीवन और मृत्यु का अतिक्रमण, नित्यता, आनदमयता और पवित्रता। महायान शाखा (दे०) में ये सब विशेषताएँ तो मानी ही जाती है साथ मे यह सत्ता और असत्ता दोनो से ऊपर धर्मकाय और परमज्ञान से भी सबद्ध है। इस शाखा मे नित्यता, आनद, आत्मा और पवित्रता—इन तत्वो पर विशेष बल दिया जाता है जो बुद्ध के विशेष गुण है तथा जो तथागत (दे०) के रूप मे जीवन-मृत्यु, विषय-विषयी सभी से ऊपर स्थित होते हैं। यह एक सच्ची शून्यता की स्थिति है जो परमज्ञान से प्राप्त होती है। निर्वाण के लगभग 18 रूप बतलाए गए है।

निशा निमंत्रण *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1938 ई०]

पत्नी की मृत्यु से सतप्त 'बच्चन' जी का शोक ही 'निशा निमत्रण' के सौ गीतो मे मुखरित हुआ है। ढलती साँझ और निस्तब्ध निशा ने इस शोक का उद्दीपन किया है। तीव्र वैयक्तिक दुःखानुभूति ने समस्त गीतो को प्रबल रागात्मक अन्विति प्रदान कर 'मानव जीवन की करुणा का महागीत' बना दिया है। मध्यमवर्गीय व्यक्ति के सरल-गहन आवेग का ऐसा निश्छल स्पदन हिंदी के किसी अन्य कवि ने नही किया है। छोटे पक्तियों के गीतो मे न अनुभूतियो का जटिल वधान है न दार्शनिक ऊहापोह; न कल्पना का असाधारण ऐश्वर्य है, न अप्रस्तुत-विधान मे दूरारूढ योजना, न भाषा मे लाक्षणिक साहस है, न छदो मे नवीन प्रयोग। लयात्मक शब्द-चित्रो मे अकित हार्दिक उद्गार पाठको के अतःकरण मे सीधे उतर कर एक स्थायी मानसिक प्रभाव छोडते हैं।

निशानी *(प० पारि०)*

इस छद मे मध्ययुगीन वार-काव्य (वीर-काव्य) की रचना की गई है। गुरु गोविंद सिंह (दे०)-रचित 'चडी दी वार' (दे०) इसी छद मे है। पजाबी के विद्वानो ने वार-काव्य मे प्रयुक्त छद को 'पौडी' नाम दिया है और 'निशानी' उसके तीस भेदो मे से एक है। इसका प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक है। इसके प्रत्येक चरण मे 23-23 मात्राएँ होती है जिनमे तेरह और दस पर यति का विधान है। उदाहरण

> देखन चंड-प्रचडनू, रण घूरे नगारे।
> धारा राकस रोहले, चौगिरदा भारे॥

निशीथ *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1939 ई०]

1967 ई० के भारत के सर्वोच्च ज्ञानपीठ साहित्य-पुरस्कार के लिए गुजराती की जो कृति चुनी गई थी वह है कविवर उमाशकर जोशी (दे०) का कविता-सग्रह 'निशीथ'। इसका प्रकाशन 1939 ई० मे गाधी जयती के दिन हुआ, जबकि कवि की आयु केवल 25 वर्ष की थी पर कथ्य और शिल्प की दृष्टि से यह कृति निस्सदेह उत्कृष्ट है। इसमें कवि की परिणत प्रज्ञा और प्रतिभा का सम्यक् परिचय प्राप्त होता है। 'विश्वशाति' और 'गगोत्री' की अपेक्षा 'निशीथ' की कविताएँ छोटी हैं, परतु उनमे अभिव्यक्त अनुभूति का आयाम विस्तृत और नवीन है। उसकी कई कविताओं मे कवि की व्यक्ति-चेतना समष्टि-चेतना के साथ समरूप होकर उस विराट् सौंदर्य की सृष्टि करती है जो शुभ और मगलमय है। 'ज्ञानसिद्धि', 'विराट प्रणय', 'निशीथ', 'वणजार' प्रभृति कविताएँ तो विश्व-चेतना से उद्भूत उत्कृष्ट, चितनमूलक रचनाएँ हैं।

'निशीथ' में सगृहीत 17 सॉनेटो की सॉनेटमाला —'आत्माना खडेर'— मे जीवन के यथार्थ को निर्भ्रांत काव्यात्मक रूप दिया गया है। इसीलिए स्व० चुनीलाल मडिया (दे०) ने उस माला को 'निर्भ्रांति का निवेदन' कहा है। इसम कवि की अनुभूति और अभिव्यक्ति, कथ्य और शिल्प की प्रौढता के दर्शन होते हैं। इस सकलन मे

प्रकृति और प्रणय की कविताएँ भी है जो मोहक एवं रमणीय हैं। 'गीत गोत्युं गोत्युं', 'रखड़तुं गीत', 'अंबोड्ले' इत्यादि मधुर गीत और 'फरी फरी फागणना रे', 'म्होर्या मांड्वा' प्रभृति हर्षोल्लासमय रास भी इस संग्रह की विशेष उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 'निशीथ' गुजरात, गुजराती भाषा और गुजराती साहित्य की एक अत्यंत उत्कृष्ट रचना है।

निष्कुलानंद *(गु० ले०)* [समय—1766-1848 ई०]

श्री निष्कुलानंद भी स्वामी नारायण-संप्रदाय के एक प्रतिनिधि कवि हैं। ये जाति के सुथार (बढ़ई) थे। इनका पूर्वाश्रम का नाम लाल जी सुथार था। इन्होंने सहजानंद स्वामी से दीक्षा ग्रहण की थी। सहजानंद स्वामी के साथ ये कच्छ की यात्रा पर भी गए थे। इन्होंने करीब 20 ग्रंथ और तीन हजार पद रचे हैं, ऐसा कहा जाता है। 'पुरुषोत्तम प्रकाश', 'यमदंड', 'भक्त-चिंतामणि', 'धीरजाख्यान', आदि इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। इनकी भाषा सरल व प्रवाहमयी है।

नींट कवितकळ् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1949 ई०]

यह एन० वी० कृष्ण वारियर (दे०) की छह सुदीर्घ कविताओं का संग्रह है। चार कविताएँ कवि द्वारा सुने गए लोकगीतों के रूप में हैं। शेष दो में से एक में संत अलेक्सिस की और दूसरे में हाथी की मौत से विक्षिप्त एक महावत की कथा है।

लोकगीतों को लोकप्रिय बनाने वाले सभी तत्त्वों, यथा मौलिक भावों की अभिव्यक्ति, प्रसिद्ध कथानक, ऋजु प्रतिपादन, सरल भाषा, सहज उपमाएँ, गेयता, कथा के लिए पर्याप्त दैर्घ्य आदि का 'नींट कवितकळ्' की कविताओं में समुचित समन्वय है। इनके अलावा उनमें प्रगतिवादी लक्ष्य भी है। लोकगीतों की शैली को पुनर्जीवित करने वाले इस संग्रह की कविताओं का मलयाळम में काफ़ी स्वागत हुआ।

नींडपयणम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1965 ई०]

'नींडपयणम्' से० गणेशलिंगन् (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यासों में से है। यह एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें मुख्य रूप से जाति-भेद की समस्या का चित्रण है। इसके शीर्षक का अर्थ है लंबी यात्रा। इसमें लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि आज निम्न वर्ग में भी जागृति आ गई है। जब निम्न वर्ग के लोग ऊपर उठने का यत्न करते हैं तो उच्च वर्ग के लोग उन्हें दबाने का यत्न करते हैं परंतु निम्न वर्ग के लोग हिम्मत नहीं हारते। अपनी कष्टदायक लंबी यात्रा पूर्ण कर वे अपने गंतव्य—उन्नति के चरम शिखर—पर पहुँच जाते हैं। इस उपन्यास का नायक चेल्लदुरै यथार्थ पात्र है। वह निम्न वर्ग में चेतना उत्पन्न करता है। उन्हें बताता है कि उच्चवर्ग के विरुद्ध एक होने पर ही वे लक्ष्य-सिद्धि कर सकते हैं। निम्न वर्ग ने कहाँ तक उन्नति की है और भविष्य में उन्हें क्या करना चाहिए इसका वर्णन भी उपन्यास में है। से० गणेशलिंगन् लंका-निवासी तमिल उपन्यासकारों में अग्रगण्य हैं। उनके इस उपन्यास का तमिल उपन्यास-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

नीति आणि कलोपासना *(म० कृ०)*

श्री ग० वा० कवीश्वर ने 'नीति आणि कलोपासना' नामक समालोचनात्मक पुस्तक 1934 ई० में लिखी थी। इसमें लेखक ने नीति-निरपेक्ष कला-दृष्टि का विरोध किया है। कवीश्वर तत्वज्ञान के प्राध्यापक थे और मैजिस्ट्रेट भी रहे। अतः वे जीवन में नीति की उपयोगिता समझते थे।

'कला कला के लिए' सिद्धांत का विरोध करते हुए लेखक ने कहा है कि कला का मुख्य हेतु इंद्रियों को सुख देना नहीं वरन् आध्यात्मिक उन्नति के लक्ष्य को दृष्टिपथ में रख मन में सुंदर भावना, विचार तथा कल्पनाओं का उदय करना है। कला-निर्माण की प्रक्रिया में सामाजिकता स्वतः अंतर्भुक्त है और समाज-जीवन का नियमन करने वाली नैतिकता को छोड़ना अनुचित है। अतः किसी भी दृष्टि से कला और नीति का संबंध-विच्छेद संभव नहीं है। स्पष्टतः यह पुस्तक 'कला जीवन के लिए है'—सिद्धांत का समर्थन करती है और इसमें कलाओं में भी विशेष रूप से साहित्य-कला में नीति-सापेक्षता पर बल दिया गया है।

नीरदछाया *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

'नीरदछाया' शिवकुमार जोशी द्वारा रचित एकांकियों का संग्रह है। इसका प्रकाशन 1966 ई० में

स्वाति प्रकाशन, बबई-3, से हुआ था। इस सग्रह मे सात एकाकी सगृहीत हैं 'नीरदछाया', 'छबी', 'सत्यस्यापिहित-मुखम्', 'चपारण्य', 'उभा रहेजो ग्राव् छु' ', 'कुजद्वारे' तथा 'मधुकर पुष्प विलासम्'। इन एकाकियो मे केवल 'चपारण्य' ही ऐसा एकाकी है जो विषय की दृष्टि स सभी एकाकियो से पृथक् उन युवको की कथा कहता है जो अपने-आप को कामिनी-काचन से बेचते रहते हैं और तदनुसार ही नयी नयी' 'चपारण्य एस्टेट' खडी होती जाती हैं। शेष सभी एकाकी वासना या प्रेम को केंद्र मे रख कर लिखे गए हैं। 'नीरदछाया' त्रिकोणात्मक प्रेम की कथा है, 'छबी' मे पति पत्नी दोनो ही किन्ही अन्य स्त्री-पुरुष से प्रेम करते हैं। 'सत्यस्यापिहितमुखम्' मे पति-पत्नी के सबधो को लेकर चर्चा की गई है, 'उभा रहेजो आव् छु ' पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम और त्याग की विमल गाथा प्रस्तुत करता है। 'कुजद्वारे' वासना की तपस्या मे परिणति की कथा है और 'मधुकर पुष्प विलासम्' एक ऐसे युवक की कथा है जो अनेक स्त्रियो से ससर्ग रख कर भी मुक्त रहना चाहता है। आरभ के एक-दो एकाकियो मे तो लेखक ने रग-निर्देश दिए हैं, शेष मे कथा-सवादो के रूप मे ही आगे बढती है। अनेक स्थलो पर फ्लैशबैक पद्धति से दृश्य उपस्थित किए गए हैं। 'मधुकर पुष्प विलासम्' मे एक-साथ तीन कथाएँ चलती हैं एक अग्नि और स्वाहा की (प्रतीकात्मक), दूसरी रुचिर और दक्षा तथा छदा की, तथा तीसरी रुचिर और सभूता की। जीवन के एक भाव को प्राय उभारा गया है। प्रस्तुत सग्रह के एकाकी (एक-आध को छोड कर) साधारण ही कहे जाएँगे।

नीलकठ *(स० ले०)* [समय—1650 ई०-1700 ई०]

इनका पूरा नाम नीलकठ चतुर्धर था। इनके पूर्वज महाराष्ट्र के कर्पूर ग्राम (कोपर) के मूल निवासी थे। पर बाद मे वे काशी मे जाकर बस गए थे। अत नीलकठ की साहित्य-साधना काशी मे ही हुई।

ये 'महाभारत' (दे०) के प्रसिद्ध टीकाकार हैं। इनकी टीका 'भारत-भवदीप' चित्रशाला प्रेस, पूना ने प्रकाशित की है। यह 'महाभारत' के 18 सर्गो पर आधारित है। नीलकठ के दो ग्रथ और मिलते हैं—'मत्र-रामायण' और 'मत्र-भागवत'। इनमे 'रामायण' (दे०) तथा 'महाभारत' की कथा से सबद्ध मत्र अत्यत क्रमबद्ध रूप मे सगृहीत हैं। इन पर नीलकठ ने अपने सिद्धातो के आधार पर टीका भी की है।

नीलकठ, रमणभाई महीपतराम *(गु० ले०)*

रमणभाई का बाल्य-काल अहमदाबाद मे व्यतीत हुआ। 1884 ई० मे मैट्रिक पास कर रमणभाई ने गुजरात कॉलेज मे प्रवेश लिया। बी० ए० (पूर्वार्द्ध) की परीक्षा उत्तीर्ण कर ये एल्फ़िस्टन कॉलेज, बबई, मे प्रविष्ट हुए। विलियम वर्ड्सवर्थ के प्रपौत्र प्रि० वर्ड्सवर्थ से पढने का इन्हें सौभाग्य मिला और इस प्रकार कवि वर्ड्सवर्थ के काव्य-सिद्धातो से परिचित और प्रभावित होने का इन्हें अवसर मिला जिसका प्रमाण है गुजराती एल्फ़िस्टन सभा के सामने 'कवितानी उत्पत्ति अने स्वरूप' नामक विषय पर दिया गया उनका व्याख्यान। 1887 ई० मे इन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके तुरत बाद अहमदाबाद की प्रार्थनासभा ने इन्हे अपने पत्र 'ज्ञानसुधा' के सचालन का काम सौंपा जिसे इन्होने 31 वर्षों तक बडी निष्ठा के साथ निभाया। इनके अधिकाश लेख 'ज्ञानसुधा' मे ही प्रकाशित हुए हैं। समाज के प्रति इनकी सेवाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की रही हैं। इन्होने न्यायालय मे सब-जज के रूप मे, अहमदाबाद म्युनिसिपैलेटी का अध्यक्ष रह कर, प्रार्थनासमाज के अध्यक्ष और गुजराती साहित्य के सक्रिय कार्यकर्ता के रूप मे समाज की सेवाएँ अर्पित की हैं। अँग्रेज सरकार ने इन्हें नाइटहुड की पदवी से विभूषित किया था। साहित्य के क्षेत्र मे इन्होंने 'राइनो पर्वत', 'भद्रभद्रा', 'हास्यमदिर', 'कविता अने साहित्य' भाग 1-4, 'धर्म अने समाज' भाग 1-2 ग्रथ प्रदान कर अपना महत्व-पूर्ण योग दिया है।' 'राइनो पर्वत' तत्कालीन प्रार्थना-समाज के विचारो का सफल वाहन बना है। यह नाटक सुदर, अर्थमय, भावोष्म तथा मार्मिक सवादो से परिपूर्ण है। यह अपने युग के विचारो का व नाट्य-परपराओ का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। 'भद्रभद्रा' की योजना के पीछे एक उद्देश्य था - प्राचीनता के पक्षपातियो की रूढिग्रस्त और सस्कृतमय शैली के प्रति उपहास व्यक्त करना। इसके लक्ष्य थे मणिलाल और मन सुखराम सूर्यराम। 'हास्यमदिर' मे हास्यप्रेरक सवाद, प्रसगचित्र और कुछ निबध हैं। इस की सामग्री पर अँग्रेजी प्रभाव है। 'शोधमा' उत्तर वय म लिखी गई एक अधूरी कहानी है जिसमे लेखक ने अवसर-वादी कवियो, सपादको तथा देशी राज्यो मे प्रवर्तित अँधेर-गर्दी पर कटाक्ष किया है। विवेचन के क्षेत्र मे 'कविता अने साहित्य मे कुल मिला कर लगभग 30 विवेचनापूर्ण लेख हैं। वर्ड्सवर्थ के काव्य-सिद्धात की विशद व्याख्या दे कर रमणभाई ने अपने युग की काव्य-रुचि का निर्माण

किया था। इनके विवेचनों के सामान्य लक्षण हैं — सरलता, विशदता, स्पष्टता, तर्कबद्धता और रसात्मकता। भारतीय रस और पाश्चात्य काव्य-मीमांसा की तुलना कर नये काव्य-बोध को विकसित करने का श्रेय भी रमणभाई को दिया जा सकता है। यह ठीक है कि रमणभाई संस्कृत के व्युत्पन्न पंडितों जैसी मर्मग्राही दृष्टि तो नहीं रखते थे पर छंद, कविता, वृत्तिमय भावाभास, कविता की उत्पत्ति, रागध्वनिकाव्य का स्वरूप, स्वानुभवरसिक और सर्वानुभवरसिक आदि विषयों पर इन्होंने जो चर्चाएँ की हैं वे सब इनकी विवेचन-सामर्थ्य को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं। परिणामतः गुजराती साहित्य में रमणभाई समर्थ विवेचक के रूप में सदा याद रहेंगे।

नील कमल *(उ० कृ०)*

'नील कमल' प्राणकृष्ण सामल (दे०) का परिवेश एवं चरित्र-प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास का नायक रामनारायण उत्कल के एक संभ्रांत परिवार का है; नायिका कमल उच्चशिक्षिता बंगमहिला है। दोनों परस्पर प्रेम करते हैं तथा अनेक कठिनाइयाँ पार करने के बाद मिलते हैं। सामाजिक संघर्ष एवं मानसिक द्वंद्व के चित्रण में उपन्यास की सफलता अंतर्निहित है। चरित्र-चित्रण एवं परिवेश-निरूपण में लेखक सुदक्ष है।

नीलदर्पण *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1860 ई०]

यह उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध बँगला-नाटककार दीनबंधु (दे०) की प्रथम सशक्त रचना है।

'नीलदर्पण' में नाटककार ने समसामयिक समस्या का रेखांकन किया है। उस समय बंगाल में नील की खेती साधारण ग़रीब किसान करते थे। उनके स्वामी थे अँग्रेज़ जिनके पास असीमित अधिकार थे। परिणाम-स्वरूप अनियंत्रित शोषण-चक्र से असहाय बंगाली परिवार पिस रहे थे। 'नीलदर्पण' में दो परिवार हैं; गोलोक बसु निम्न श्रेणी का किसान है, साधुचरण संपन्न व्यक्ति है। प्रथम अंक में गोलोक बसु अँग्रेज़ साहबों के कठोर अत्याचार से पीड़ित एवं अशांत है। साधुचरण भी उमड़ते कष्ट के बादलों से चिंतामग्न है। दूसरे अंक में नीलसाहबों के षड्यंत्र में फँस कर गोलोक बसु कारावास भोगता है। यहाँ संघर्ष उभरता है। तीसरे अंक में प्रजा का पक्ष लेकर नवीन माधव इस अत्याचार का विरोध करता है। विरोध बढ़ता देख अँग्रेज़ साहबों की शोषण की प्रवृत्ति भी बढ़ती गई। चौथे अंक में संघर्ष की करुण परिस्थिति गोलोक बसु की आत्महत्या के रूप में दिखाई गई है। पाँचवें अंक में गोलोक परिवार और साधुचरण परिवार के विनाश का चित्रण है।

दीनबंधु का लक्ष्य एक ओर अँग्रेज़ों के शोषण-तंत्र के कठोर अत्याचार और दूसरी ओर असहाय-निरीह-दरिद्र किसानों की विवशता का चित्रण करना है। इसी लिए इस नाटक का वस्तु-विन्यास सुगठित है, अवांतर प्रसंगों से उसका प्रभाव क्षीण नहीं होता। नाट्य-शिल्प की दृष्टि से दीनबंधु पर पश्चिम का गहरा प्रभाव पड़ा है। इन्होंने त्रासदी के तत्वों का प्रयोग इतना अधिक किया है कि नाटक के अंत में एक-साथ कई मृत्यु-दृश्य उपस्थित हो जाते हैं।

इस नाटक के विद्रोही स्वर का व्यापक प्रभाव पड़ा और माइकेल (दे० मधुसूदन दत्त) जैसे क्रांतिकारी कलाकार ने इसका अँग्रेज़ी-अनुवाद किया। पुस्तक पर लेखक का नाम नहीं था। प्रकाशक के रूप में लांग साहब का नाम था। उन पर मुकदमा चला, जुर्माना हुआ। इधर नाटक का अभिनय और प्रचार-प्रसार बढ़ता गया और अंत में अँग्रेज़ मालिकों को झुकना पड़ा। उन्नीसवीं शती में शासकों के सामाजिक और आर्थिक शोषण की इतनी सशक्त एवं सजीव अभिव्यक्ति किसी रचना में नहीं मिलती। 'नीलदर्पण' बँगला नाटक की उल्लेखनीय उपलब्धि है।

नीलशैल *(उ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1968 ई०।]

इसके लेखक सुरेंद्रमोहन महांति (दे०) हैं। उड़ीसा के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में 'जगन्नाथ' का स्थान सर्वोपरि है। शबर देवता 'नीलमाधव' ही इंद्रद्युम्न द्वारा 'जगन्नाथ' के रूप में प्रतिष्ठित किए जाते हैं। अतः जगन्नाथ मंदिर का दूसरा नाम 'नीलशैल' है। यद्यपि इस उपन्यास की विषय-वस्तु ऐतिहासिक है, किंतु कथा का केंद्र जगन्नाथ मंदिर होने के कारण उपन्यास का नाम 'नीलशैल' है। जगन्नाथ किसी निर्दिष्ट धर्म, मतवाद एवं संप्रदाय की संकीर्ण परिसीमा में आबद्ध नहीं हैं। शबर विश्वावसु से लेकर आर्य इंद्रद्युम्न, बौद्ध इंद्रभूति, शैव शंकराचार्य (दे०), पांचरात्रिक रामानुज (दे०), शुद्धा-भक्तिवादी श्री चैतन्य (दे०), शून्यवादी बलरामदास (दे०) एवं जगन्नाथ दास (दे०), सिक्ख धर्म-गुरु नानक (दे०)

तक विभिन्न मतवाद एव सप्रदाय श्री जगन्नाथ की मैत्री-साधना मे समन्वित हो गए हैं। इस्लाम धर्मी सालबेग एव हरिदास आदि महान भक्तो ने मर्मस्पर्शी भजनो से श्री जगन्नाथ की आराधना की है। वस्तुत सार्वजनीन मानव की मैत्री साधना के इष्टदेव के रूप मे श्री जगन्नाथ की परिकल्पना जैसी अद्वितीय है, वैसी ही विराट् एव उदार भी है। उत्कल राज्य के राजनीतिक जीवन मे भी इनका महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय सस्कृति को उडीसा का अपना योगदान है जन साहित्य, जन देवता।

अठारहवी शती के खोर्धा भोई राजवश के राजा द्वितीय रामचद्र (दे०) देव इस्लाम धर्म मे दीक्षित होकर हाफिज कादरबेग के रूप मे प्रसिद्ध हुए है। रामचद्र देव ने मुसलमान होकर भी कटक के नायब नाजिमा हिदू-विद्वेषी तकी खाँ के आक्रमण से जगन्नाथ व उसके द्वारा उडीसा की स्वतत्रता की रक्षा के लिए विश्वासघात बधुद्रोह लोकोपवाद एव लाछना के बीच जिस निरविच्छिन्न सग्राम का सचालन किया था, वह रोमाचकारी भी है और प्रेरणादायक भी। साप्रदायिक सस्कार-मुक्त हाफिज कादरबेग के वेदना-जर्जरित जीवनव्यापी निस्सग सग्राम का यह एक अध्याय मात्र है।

तकी खाँ, रामचद्र देव, वक्सीबेणु, भ्रमरबर देवान कृष्ण नरीद्र, रजिया बीबी ललिता महादेवी आदि इस उपन्यास के ऐतिहासिक चरित्र है। किंतु ये घटना बहुल इतिहास के प्राणहीन चरित्र नही, इतिहास के बीच प्रच्छन्न चिरतन जीवन धारा के जीवत प्रतिरूप हैं। आजीवन उपेक्षित एव सामाजिक सहानुभूति से वचित सरदेइ (दे०) उपन्यासकार की कल्पना सृष्टि है।

यह केंद्रीय साहित्य अकादमी द्वारा 1969 का सर्वश्रेष्ठ उडिया-उपन्यास माना गया है। उत्कट सघर्ष के बीच अविजित चिरमुक्त मानवीय जीवन-चेतना की यह गौरव गाथा राष्ट्रपति पुरस्कार से भी महिमामडित है। लेखक की सशक्त भाषा एव असाधारण वर्णन शैली सपूर्ण उपन्यास को काव्यात्मक बना देती है।

नीलाबिका *(क० ले०)*

मध्यकाल की कन्नड कवयित्रियो मे नीलवा अथवा नीलाबिका का नाम विख्यात है। ये वीरशैव धर्म को मानने वाली थी। ये महात्मा बसवेश्वर के मामा सिद्धण्णा मत्री की पुत्री थी। बसवेश्वर ने इनसे विवाह किया था। 'कर्णाटक कविचरिते' (दे०) के लेखक स्व० आर० नरसिंहाचार्य (दे०) जी ने लिखा है कि इनके दो ग्रथ है— 'प्रसाद सपादने' तथा 'कालज्ञान'। इनके वचनो मे 'बसवप्रियकूडलसगमदेव' की छाप मिलती है। 'नीलम्मन स्तोत्र' (नीलम्मा के स्तोत्र) नीलाम्बिका पचशिति' और 'नीलम्मन त्रिविधि' जैसे इनके ग्रथ स्तोत्र-रूप मे है।

नीलासुदरी परिणयमु *(त० कृ०)*

इस काव्य का ठेठ तेलुगु नाम 'नील पेंडिल कथा' अथवा लच्चिमगनि कथा' है। यह कूचिमचि तिम्मकवि (दे०) का ठेठ तेलुगु भाषा मे, तत्सम शब्दो का प्रयोग किए बिना लिखा गया काव्य है।

मिथिला मे धर्म नामक राजा के शासन-काल मे, कुभक नामक यादवो का मुखिया था उसकी पशुसपदा स्पृहणीय थी। उसकी पुत्री का नाम नीला था। नद के पुत्र श्रीकृष्ण के गुणश्रवण से नीला के मन मे प्रेम उत्पन्न हो जाता है। एक बार कुभक के मत्तवृषभ लोगो को सताने लगते हैं। वह प्रतिज्ञा करता है कि जो इन वृषभो का दमन करेगा, उसके साथ मैं अपनी पुत्री का विवाह करूँगा। यह जानकर नीला के मन मे आशका जन्य विरह वेदना उत्पन्न होती है। अत मे श्रीकृष्ण वृषभो का दमन कर, नीला से विवाह कर लेते हैं।

अपने वर्णन चातुर्य और पद-लालित्य के लिए यह लघु काव्य अत्यत प्रसिद्ध है।

नीलिमा *(हिं० पा०)*

यह मोहन राकेश (दे०) के उपन्यास 'अँधेरे बद कमरे' (दे०) की प्रमुख पात्र है। शिक्षित तथा रुचि-सपन्न होने पर भी यह परिस्थितियो की विषमता के फल-स्वरूप स्वय को सतुलित नही बना पाती तथा अत्यत असहज प्रतीत होती है। यद्यपि यह बाहर से अत्यत स्वच्छद और पति विरुद्ध आचरण वाली परिलक्षित होती है किंतु भीतर से यह पति-परायणा स्त्री ही है तथा अपने सनातन भारतीय सस्कारो को नही छोड पाती। यही कारण है कि पति द्वारा अविश्वास किए जाने तथा छोड दिए जाने पर भी उसका निमत्रण मिलते ही विदेश चली जाती है। विदेश मे पर-पुरुष के साथ रहते हुए भी यह शरीर-दान नहीं करती तथा अपनी आत्मा के पराग को अपने पति के लिए सँजोए रखती है। वस्तुत नीलिमा के माध्यम से उपन्यासकार ने

भारतीय नारी के संस्कारों तथा जीवन के परिवर्तित नैतिक मूल्यों को अत्यंत सशक्त रीति से प्रस्तुत किया है।

नीसाणी *(हिं० पारि०)*

यह डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) का बहुप्रयुक्त छंद है। इसके 12 भेद होते हैं, जिनमें 'शुद्ध नीसाणी' एवं 'गरबत-नीसाणी' विशेष प्रसिद्ध हैं। 'शुद्ध नीसाणी' में 13 व 10 के क्रम से 23 मात्राएँ होती हैं और अंत में दो गुरु होते हैं। 'गरबत नीसाणी' में भी 23 मात्राएँ होती हैं; परंतु उसके अंत में दो लघु होते हैं। 'खुम्माण रासो' व 'रामरासो' में नीसाणी का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है।

नुरजाहान *(बँ० पा०)*

'नुरजाहान' द्विजेंद्रलाल राय (दे०) का प्रथम सार्थक ऐतिहासिक नाटक है। परंतु नुरजाहान (नूरजहाँ) का चरित्र कितना इतिहास-सम्मत है—इस संबंध में काफ़ी संदेह है। नुरजाहान के चरित्र के दो पक्ष इस नाटक में उद्‌भासित हुए हैं—शेर अफ़गन की पत्नी नुरजाहान एवं भारत-सम्राज्ञी नुरजाहान। जहाँगीर के सिंहासन पर अधिरोहण की सूचना पाने पर नुरजाहान अपने को भाग्य-बिबिता समझने लगती है। परिणामस्वरूप, शेर अफ़गन के प्रति उसके एकनिष्ठ प्रेम के बारे में संदेह स्वाभाविक है। और फिर जहाँगीर के प्रति प्रकृत प्रणयासक्त रूप में भी उसका चरित्र चित्रित नहीं हुआ है। नुरजाहान क्षमता एवं प्रतिपत्ति के मोह में पड़कर भारत-सम्राज्ञी नुरजाहान में परिणत हो जाती है। भारतीय नारी-चरित्र का कोई वैशिष्ट्य तथा आदर्श इस चरित्र में नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि नाट्यकार ने सम्राज्ञी एलिज़ाबेथ की हृदय-हीनता एवं क्षमता तथा भोगविलास के अप्रत्यक्ष प्रभाव से परिचालित होकर इस चरित्र का निर्माण किया है। नुरजाहान के हृदयगत वैपरीत्य का बीज कदाचित् बंकिमचंद्र (दे०) के 'कपालकुंडला' (दे०) में निहित है। बंकिम बाबू ने जिस प्रकार मतिबिबि के सम्मुख नुरजाहान के चरित्र को प्रकट किया था, उसकी परिणति द्विजेंद्रलाल की 'नुरजाहान' में दिखाई पड़ती है।

'नुसरती' *(उर्दू० ले०)*

नाम—मुहम्मद नुसरत, उपनाम—'नुसरती'। इनकी शिक्षा-दीक्षा राजभवन में राजकुमार अली आदिल शाह के साथ हुई थी। अली आदिल शाह के सत्तारूढ़ हो जाने पर इन्हें 'मलिक-उल-शुअरा' (कवि-सम्राट्) की उपाधि से विभूषित किया गया था। इनकी तीन कृतियाँ—'गुलशन-ए-इश्क़', 'अलीनामा' और 'तारीख़-ए-असकंदरी' उल्लेखनीय हैं। 'गुलशन-ए-इश्क' में कुँवर मनोहर और मदमालती की कथा का वर्णन है। 'अलीनामा' में अली आदिलशाह के जीवन-चरित के अतिरिक्त कतिपय कसीदे भी हैं। इनकी मसनवियाँ और कसीदे कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। मानव-स्वभाव और मानव-अनुभूतियों का सजीव चित्रण जितना 'गुलशन-ए-इश्क' में हुआ है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। सरलता, तरलता और सरसता इनके काव्य की विशेषताएँ हैं।

नूर-उल-लुग़ात *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1924 ई०]

संपादक : मौलवी नूर-उल-हसन 'नय्यर'। उर्दू भाषा का यह विशद शब्दकोश अपनी अनेक विशेषताओं के कारण अत्यधिक लोकप्रिय हुआ है। इसमें उर्दू की बदलती हुई परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए शब्दों की विस्तृत एवं अपेक्षित विवेचना वैज्ञानिक रूप से की गई है। इसमें ऐसे शब्दों और मुहावरों का उल्लेख भी कर दिया गया है जो अब प्रयोग में नहीं लाए जाते। उनके प्रयोग के प्रति आवश्यक रूप से यथावसर सावधान भी कर दिया गया है। यह कोश बड़े आकार के चार भागों में विभक्त है।

नूरमुहम्मद *(हिं० ले०)*

ये मुगल बादशाह मुहम्मद शाह (1754 ई०) के समकालीन थे। इनका जन्म जौनपुर ज़िले के सबरहद स्थान में हुआ, बाद में ये अपनी ससुराल भादों (ज़िला आजमगढ़) चले गए। इन्होंने कालिंजर के राजकुमार और आगमपुर की राजकुमारी की प्रेम-कहानी का 'इंद्रावती' नामक रचना में वर्णन किया है। तत्त्वज्ञान-विषयक इनकी दूसरी रचना 'अनुराग बाँसुरी' है। फ़ारसी में एक दीवान और 'रौजतुलहक़ायक' ग्रंथ लिखा है। दूसरे सूफ़ी कवियों से भिन्न इन्होंने संस्कृत और ब्रजभाषा के शब्द प्रयुक्त किए हैं। सूफ़ी आख्यानकों की अखंडित परंपरा में 'इंद्रावती' अपनी कोटि की अंतिम और महत्त्वपूर्ण रचना है।

नूरी (सिं० पा०)

सिंधी साहित्य मे 'नूरी-जामतमाची' की प्रेम-गाथा प्रसिद्ध है। नूरी इसी प्रेमगाथा की नायिका है। नूरी कीझर नामक तालाब पर रहने वाले एक मछुए की बेटी थी और जामतमाची समावंश (1360-1520 ई०) का प्रसिद्ध राजा था। जामतमाची ने नूरी के सौंदर्य पर मुग्ध होकर उससे विवाह किया और उसे अपने महल मे ले आया। जामतमाची की समावंश की और रानियाँ नूरी को देखकर जलती रहती थी, परतु नूरी ने अपनी सहनशीलता, सादगी और मृदुभाषण से सबका मन मोह लिया। राजा ने भी इन्ही गुणो के कारण नूरी को अपनी पटरानी बनाया। सिंधी साहित्य मे नूरी नम्रता और सादगी का प्रतीक मानी गई है।

नूरुद्दीन वली, शेख (कश्० ले०) [जन्म—1377 ई०, मृत्यु-1438 ई०]

पिता का नाम शेख सालार और माता का नाम सद्र मोज। शैशव का नाम 'नुंदा'। इनके पिता पर प्रसिद्ध सूफी सैयद हुसैन समनानी का प्रभाव पडा, और एक और प्रसिद्ध सूफी मीर मुहम्मद हमदानी ने इनका नाम नूरुद्दीन रखा। हिंदू इन्हे 'सहजानद' के नाम से याद करते हैं। 'नुंद बाबा', 'नुंद ऋषि' भी इन्ही के नाम हैं। इन पर सूफी धर्म का काफी प्रभाव पडा। कश्मीर मे जिस मुस्लिम सूफी सत-परपरा या वली-सत धारा का प्रचार रहा, उस धारा के यह प्रथम प्रसिद्ध सत कश्मीरी कवि हैं। इनकी कोई औपचारिक शिक्षा दीक्षा नही हुई। प्रौढावस्था मे इनका विवाह हुआ और पिता भी बने, किंतु शीघ्र ही ससार से विरक्त हुए। 30 वर्ष की आयु मे रमते-गाते फकीर बन गये। रहस्यवादी दार्शनिक सत के नाते ये एक विश्व-प्राणी रहे, और जाति, धर्म, रग तथा नस्ल की भेद-भावना को सदा धिक्कारते रहे। कश्मीर की घाटी मे इनका वही स्थान है जो शेष भारत मे सत कबीर (दे०) का। इनकी सूक्तियो, उक्तियो, छदो और 'श्रुखो' (श्लोको) का वृहत् सकलन 'ऋषिनामा' कहलाता है। ललद्यद (दे०) के वाक्यो के समान ही इनके कई 'श्रुख' या उनके कई अश लोकोक्तियो के रूप म उद्धृत किए जाते हैं। इनकी भाषा जनसाधारण की भाषा है। उसी मे उपनामो और रूपको के द्वारा शाश्वत सत्य एव दार्शनिक तथ्यो को मार्मिक ढग से व्यक्त किया गया है। मौजा चिराग मे 61 वर्ष की आयु मे—1438 ई० मे—इनकी मृत्यु हुई। चार-ए-शरीफ मे इनका मकबरा है जो हिंदुओ-मुसलमानो दोनो ही के लिए पवित्र तीर्थस्थान बन गया है। कहा जाता है कि इनके दफनाए जाने के समय की अतिम प्रार्थना (फातिहा) का नेतृत्व स्वय सुल्तान जैनुल-आबदीन ने किया था।

नूल (त० प्र०)

'नूल्' शब्द का सामान्य अर्थ है—'ग्रथ' (गद्य, पद्य अथवा गद्य-पद्यात्मक) और शास्त्र (या विज्ञान)। लेकिन प्राचीन छद शास्त्र के अनुसार इसका लक्षण इस प्रकार है—'किसी एक वर्ण्य वस्तु को लेकर अनुस्यूत रूप मे सक्षेप और विस्तार के साथ वर्णन करने वाला ग्रथ।" इसके छद के चरणो की सख्या निर्धारित नही है। इसके चार भेद होते हैं—एक है 'सूत्र' जो दर्पण मे प्रतिबिंब के समान अपने मे अर्थ को स्पष्ट दिखाता है। दूसरा है—'ओत्तु' जिसमे हार मे मोतियो के समान एक जैसे अनेक विषय क्रमबद्ध किए जाते हैं। तीसरा है 'पटल' जिसमे विविध किंतु सबद्ध विषयो का वर्णन होता है। चौथा है 'पिंड' जिसमे उपर्युक्त तीनो या इनमे स किसी एक के अनेक उदाहरण सम्मिलित रहते हैं। 'पटल' या 'अदिकार' सस्कृत-काव्यो के 'सर्ग' या 'उच्छ्वास' हैं। सूत्रात्मक और 'ओत्तु'-युक्त 'पिंड'—लक्षण-ग्रथ होते हैं। पटल या अदिकार महाकाव्यो मे भी होते हैं, जैसे कबरामायण (दे०) पटल'-युक्त काव्य या 'मूल' है और 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) 'अदिकारम्' से युक्त काव्य है।

नृत्य-नाटक (हिं० पारि०)

मनोरजन के लिए नृत्य-नाटक (दे०) और सगीत का सयोजन प्राचीन भारत तथा यूरोप म बहुत पहले से होता रहा है परतु नृत्य-नाट्य (बैले) मूलत पश्चिम की विधा है जिसमे सगीत के साथ नृत्य तथा मूक अभिनय के माध्यम म नाट्य-व्यापार प्रस्तुत किया जाता है। यूरोप मे इसका आरभ फ्रास के सम्राट लुई चौदहवें के दरबार मे हुआ था और उसमे भाग लेने वाल होते थे बहुमूल्य वस्त्र तथा मुखौटा पहन कर अभिनय करने वाले बडे-बडे सामत-सरदार और उनकी पत्नियाँ। बाद म रग-मच पर कार्य करने वाले नर्तकों और अभिनेताओं न उसम भाग लेना आरभ कर दिया, उनकी वेशभूषा बदली जिसमे त्वरित गति और मुद्राओं द्वारा भाव-प्रदर्शन को अधिक

अवसर मिला। अठारहवीं शती में जब कला (दे०) के रूप में इसका विकास हुआ तो भावाभिव्यक्ति तथा अभिनय द्वारा कथा को प्रेषित करने का प्रयास होने लगा; नृत्य गौण हो गया। अब प्राचीन और नवीन प्रवृत्तियों के बीच संतुलन स्थापित करने के फलस्वरूप नृत्य-नाट्य में भावाभिव्यक्ति, नाटकीयता, अंग-संचालन, नृत्य, संगीत आदि का समन्वय हो गया है। रंगमंच के विकास के साथ रंग-सज्जा पर भी अधिक ध्यान दिया जाता है।

नृत्य-नाट्य का सर्वाधिक विकास रूस में हुआ है और वहाँ चेकोफ्स्की ने उसे सँवारने तथा उसके कलात्मक रूप को स्थिर करने में अभूतपूर्व योग दिया है। भारत में नृत्य-नाट्य लाने का श्रेय उदयशंकर और उनकी मंडली को है। उन्होंने भारतीय नृत्य-परंपरा और पश्चिम की 'बैले' शैली के मध्य समन्वय स्थापित कर अनेक प्रयोग किए हैं और उसे एक नया रूप प्रदान किया है। अन्य नाट्य-मंडलियों द्वारा भी रवींद्र (दे०) के नाटकों और कहानियों को नृत्य-नाट्य का स्वरूप दिया गया है। टेलिविज़न द्वारा प्रसारण से इसकी संभावनाएँ बढ़ गई हैं।

नेओग, डिंबेश्वर (*अ० ले०*) [जन्म—1900 ई०, मृत्यु—1966 ई०]

जन्म-स्थान—शिवसागर का एक गाँव।

इन्होंने अंग्रेज़ी में एम० ए० और बी० टी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। 1951 ई० तक सरकारी हाईस्कूल में अध्यापन-कार्य करते रहे थे। इन्होंने असम-साहित्य-सभा, जन्मभूमि, मिलन और असम-साहित्य-सभा-पत्रिका का संपादन किया था।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'मालिका' (1922), 'सँफुरा' (1923), 'थुपितरा' (1925), 'मालती' (1927), 'इंद्रधनु' (1930), 'मुकुता' (1932), 'स्वहिदे कारखाला' (1940), 'मेघदूत' (1942), 'असमा' (1947), 'विचित्रा' और 'थापना' (1948); आलोचना : 'आधुनिक असमीया साहित्यर बुरंजी' (1938), 'असमीया साहित्यर जिलिङनी' (1939), 'असमीया साहित्यर बुरंजीत मुमुकि' (1941), 'साहित्य कि' (1952), 'असमीया साहित्यर बुरंजी' (1957)।

इन्होंने छात्रावस्था से ही कविता लिखना आरंभ कर दिया था। इनकी कविता का मुख्य स्वर प्रेम और देशप्रेम है। 'थापना' में शिशुओं के लिए लिखी गई कविताओं का संग्रह है। 'मालिका' से 'इंद्रधनु' तक इनकी कविताओं का विकास देखा जाता है। 'मुकुता' में सॉनेट कविताओं का संकलन है।

नेओग स्पष्टवादी आलोचक भी थे। वे साहित्य को पवित्र दृष्टि से देखते थे। वे रुचिहीन साहित्य की कठोर आलोचना करते थे, अतः साहित्यकारों का एक वर्ग उनसे भीत एवं असंतुष्ट था।

'नेओग', महेश्वर (*अ० ले०*) [जन्म—1918 ई०]

जन्म-स्थान—शिवसागर। इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० (असमीया) की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की थी। 1955 ई० में गौहाटी विश्वविद्यालय से डी० फ़िल० की उपाधि पाई थी। ये गौहाटी विश्वविद्यालय में असमीया के रीडर हैं। प्रकाशित रचनाएँ—नाटक : 'ऋतुमुर' (1946); कहानी : 'डायरर सिपारे', 'धुनीया देश' (1948); संपादन : 'गीति-रामायण' (1954), 'कीर्तन घोषा', 'नाम-घोषा' (1955), 'पुरणि असमीया समाज आरु संस्कृति' (1957), 'संचय' (1959), 'चंद्रकांत अभिधान संशोधन' (1954-57); जीवनी : 'श्री शंकरदेव' (1948), आलोचना : 'असमीया साहित्यर रूपरेखा' (1962)।

'संचयन' में इनकी भी एक कविता संगृहीत है, इसमें भारत के अतीत के प्रति कवि की आस्था प्रकट होती है। इनकी प्रसिद्धि आलोचक के नाते ही है। पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिखते रहते हैं। इन्होंने असमीया के कुछ प्राचीन ग्रंथों का दक्षता के साथ संपादन किया है।

ये असमीया साहित्य के वर्तमान कतिपय आलोचकों में एक हैं।

नेकी, जसवंतसिंह (*प० ले०*) [जन्म—1925 ई०]

डा० नेकी की कविता का मुख्य गुण उसकी चिंतन-प्रधानता है। काव्यशिल्प पर ज़ोर देने के स्थान पर इन्होंने उस चिंतन को अपने काव्य का केंद्र बनाया है जिसमें कि आधुनिक मनुष्य ग्रस्त है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के वर्तमान युग में परंपरागत जीवन-मूल्यों तथा आधुनिक विचार-प्रणालियों में एक द्वंद्वात्मक संबंध उभर रहा है। यही द्वंद्व नेकी की कविताओं की विषय-वस्तु है। इसके अतिरिक्त काव्यजगत एवं वस्तुजगत में एक संतुलन खोजने की चेष्टा भी नेकी की कविता की मुख्य वृत्ति है।

इनकी कविताओ मे दर्शन प्राय काव्य-सरचना मे ढल कर उतरा है पर अनेक बार दर्शन एव काव्य का ऐसा तनाव भी परिलक्षित होता है जो अत तक सुलझ नही पाता। नेकी की प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं —'असले ते ओहले' (दे०) 'इह मेरे, ससे, इह मेरे गीत'। आजकल आप ऑल इडिया इस्टीच्यूट ऑफ मेडीकल साइसिज़, नयी दिल्ली के मनोचिकित्सा-विभाग के अध्यक्ष है।

नेटुड्डाडि, अप्पु *(मल० ले)* [जन्म—1863 ई०, मृत्यु—1934 ई०]

मलयाळम के प्रथम उपन्यासकार और प्रमुख पत्रकार। 1887 ई० मे प्रकाशित 'कुदलता' इनका और मलयाळम का सर्वप्रथम उपन्यास है। यद्यपि नेटुड्डाडि चतु मेनन (दे०) सी० वी० रामन् पिळ्ळा आदि प्रारभिक उपन्यासकारो के समकक्ष नही माने जाते तथापि पाश्चात्य साहित्य की इस विधा के प्रवर्तक के रूप मे मलयाळम-साहित्य मे इनका स्थान महत्वपूर्ण है।

नेटुड्डाडि, कोवुण्णि *(मल० ले०)*

उत्तर केरल की कनाट नामक तहसील के तोटुकाट गाँव मे इनका जन्म हुआ। अपने जीवन म इन्होने अध्यापन से कार्य आरभ किया, फिर वकालत का पेशा अपनाया और बाद मे एक जमीदार के पुत्र के शिक्षक बन गए तथा जीविकार्जन के लिए अत तक इसी काय मे व्यस्त रहे। इनके प्रधान ग्रथो म 'केरल कौमुदी' (दे०) नामक व्याकरण महत्वपूर्ण माना जाता है। अनेक विद्वानो के अनुसार भाषा म पारगत होने के लिए प्रस्तुत ग्रथ का गहरा अध्ययन अनिवार्य है। इस ग्रथ के अतिरिक्त लेखक ने कई मुक्तक-पद्य लिखे और एक सरस कवि के रूप मे भी ख्याति पाई।

नेता *(स०, हि० पारि०)*

भारतीय नाट्यशास्त्र मे विवेचित रूपक के प्रमुख तत्त्वो म से एक। अन्य तत्त्व हैं वस्तु (दे०) और रस (दे०)। नेता वस्तु और रस की मध्यवर्ती कडी है: वह वस्तु का सचालक, नाट्यफल का उपभोक्ता तथा इस प्रकार नाट्य रस की सिद्धि का मुख्य उपादान है। 'नी' धातु से निष्पन्न 'नेता' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ ही उसके कर्त्तव्यकर्म को सर्वथा स्पष्ट रूप से निर्धारित कर देता है। सर्वप्रमुख पात्र होने के नाते नाटक के सपूर्ण कार्य व्यापार के मूल मे स्थित रहकर वह वस्तु को फल की ओर अग्रसर करता है। इसके अतिरिक्त वह नाटक के फल का मूल उपभोक्ता, अगीरस का प्रमुख माध्यम तथा नाटककार के अभीष्ट अर्थ का प्रतीक एव उसकी दृष्टि का मूल आकर्षण-बिंदु होता है।

संस्कृत-काव्यशास्त्र की परपरा मे नायक का केवल आदर्श रूप ही मान्य रहा है। धनजय (दे०) ने 'दशरूपक' (दे०) मे नायक के प्रमुख गुणो का आख्यान करते हुए कहा कि उसे विनीत, मधुर स्वभाव वाला, त्यागी, दक्ष, प्रियभाषी, लोकप्रिय, शुचि वाग्मी, कुलीन, स्थिरचित्त, युवा, बुद्धिमान, उत्साही, स्मृतिवान्, कलाविद्, शूरवीर दृढचरित्र वाला, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ तथा धार्मिक होना चाहिए (दशरूपक . प्रकाश 2)। भरत (दे०) के आधार पर नाट्यदर्पणकार (दे०) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि नाटक के नायकत्व के अधिकारी केवल उत्तम और मध्यम प्रकृति के व्यक्ति ही हो सकते हैं—अधम प्रकृति के नही। नायक के चरित्र की प्रधान वृत्ति, उनके अनुसार, धीरता है जिसके आधार पर उन्होंने भरत का ही अनुसरण करते हुए धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीर-प्रशात —चार प्रकार के नायक-चरित्रो का निरूपण किया है। सामान्यत ये चारो प्रकार परस्पर-भिन्न चरित्र-रूप हैं, किंतु अपवाद-रूप मे एक व्यक्ति मे ये चारो विशेषताएँ हो सकती हैं (नाट्यदर्पण . प्रथम विवेक)। विश्वनाथ (दे०) के अनुसार धीरोदात्त नायक आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति स मुक्त, क्षमावान, गभीर, सुख-दुख मे प्रकृतिस्थ, स्थिर प्रकृति से युक्त स्वाभिमानी किंतु विनम्र हाना है। धीरोद्धत मायालिप्त, उग्र स्वभाव वाला, स्थिर प्रकृति-सपन्न, अहकारी दर्पयुक्त तथा आत्मश्लाघा मे निरत होता है। धीरललित नायक निश्चित प्रकृति का, मृदुल स्वभाव वाला तथा कला प्रेमी होता है। धीरप्रशात नायक मे त्याग आदि सामान्य गुणो का प्राचुर्य होता है और उसका सबध ब्राह्मणादि वर्ग मे होता। भारतीय परपरा मे राम, युधिष्ठिर आदि धीरोदात नायक के, भीमसेन, परशुराम आदि धीरोद्धत के, 'रत्नावली' (दे०) का वत्सराज और 'मालविकाग्निमित्र' (दे०) का अग्निमित्र धीरललित के तथा 'मालती माधव' (दे०) का माधव धीरप्रशात नायक का उदाहरण है। आचार्यो न शृगार-रसपूर्ण काव्य एव नाटक मे इन चारो प्रकार के नायको के पुन दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ—चार-चार प्रभेद माने हैं। इस प्रकार सब मिलाकर

16 प्रकार के नायक हुए। इनमें से प्रत्येक के उत्तम, मध्यम और अधम रूप होते हैं। अतएव संस्कृत-नाट्यशास्त्र में समग्र रूप से 48 नायक-भेदों का निरूपण किया गया है (साहित्यदर्पण : तृतीय परिच्छेद)।

संस्कृत-नाट्यशास्त्र में रूपक के विभिन्न भेदों के अनुरूप भिन्न-भिन्न प्रकार के नायक वर्णित हैं। नाटक के अतिरिक्त रूपक के डिम, व्यायोग, समवकार, अंक और ईहामृग नामक भेदों का नायक प्रख्यात तथा प्रकरण भाण, प्रहसन और वीथी का नायक कल्पित होता है। उपरूपक 'नाटिका' में नायक राजवंश का व्यक्ति या देवता प्रख्यात एवं धीरललित होता है। रूपक के कुछ भेदों में नायकों की संख्या एकाधिक मानी गई है; उदाहरण के लिए 'डिम' में 26 नायक होते हैं।

आधुनिक युग में नेता-संबंधी उक्त समस्त अवधारणाओं का महत्व केवल शास्त्रीय और ऐतिहासिक है। युग-परिवेश और निजी भाव-बोध के परिवर्तन के साथ आज का नाटककार शास्त्र की अपेक्षा कृति की आंतरिक प्रकृति और आवश्यकता के अनुरूप नायक का चरित्र स्वयं निर्धारित करना अधिक उचित समझता है। आज के जटिल और अति संकुल जीवन के कारण वह स्वभावतः व्यक्ति वैचित्र्यपूर्ण यथार्थ-चरित्रांकन की ओर अधिक प्रवृत्त है।

नेपथ्य *(स०, हि० पारि०)*

भारतीय नाट्यशास्त्र के अंतर्गत विवेचित रंग-मंच और नाट्यशाला के अत्यंत महत्वपूर्ण तत्वों में से एक अनिवार्य तत्व। भरत मुनि (दे०) ने 'नाट्यशास्त्र के पांचवें अध्याय में पूर्वरंग के अभिधान से मंच पर वास्तविक नाटक की प्रस्तुति से पूर्व की विविध प्रक्रियाओं का सुविस्तृत विवेचन किया है। इन बीस पूर्वरंग-विधियों में से प्रथम नौ यवनिका उठने से पूर्व की हैं जो सभी नेपथ्य में ही रंगमंच पर देवपूजन के निमित्त सूत्रधार (दे०) के प्रवेश से पूर्व संपन्न की जाती है। ये विधियाँ हैं: प्रत्याहार अवतरण, आरंभ, आश्रवणा, वक्त्रपाणि, परिघट्टना, संघोटना, मार्गासारित और आसारित। नेपथ्य में समस्त वाद्ययंत्र, वेश-सामग्री तथा अन्य प्रकार के नाट्य-उपकरण रखे जाते हैं। नाटक के बीच प्रस्तुत किए जाने वाले नृत्य-गीत इत्यादि के साथ वाद्य-संगीत, देवघोष, एवं आकाशघोष आदि के स्वर, वर्षा, भूकंप, कोलाहल, युद्धस्वर, युद्ध-उत्सव आदि से संबद्ध स्वर-प्रभाव आदि विभिन्न नाट्य-ध्वनियाँ नेपथ्य से ही संचालित होती हैं। परंपरागत नाट्य-शालाओं में नेपथ्य मंच के ठीक पीछे होता है, किंतु आधुनिक नाटकों में कहीं-कहीं वाद्य यंत्रों को मंच के आगे भी रखने की परंपरा चल पड़ी है।

नेमिचंद्र *(क० ले०)* [समय—1200 ई० के लगभग]

ये जैन-मतावलंबी, महापंडित तथा शृंगार-प्रिय कवि थे। ये कई राजाओं के आश्रय में रहे। इन्होंने राजा लक्ष्मणदेव के आश्रय में 'लीलावती प्रबंध' लिखा था और होयसळ राजा वीरवल्लाल के महाप्रधानी पद्मनाभ की प्रेरणा से 'नेमिनाथ-पुराण' (दे०) की रचना की थी।

नेमिचंद्र कन्नड के प्रतिनिधि शृंगारी कवि हैं। इन्होंने हिंदी के रीतिकालीन कवियों की भांति घोषणा की है—'स्त्रीरूप ही रूप है, शृंगार ही एकमात्र रस है।' इन्होंने शृंगार को काव्य-बंधन में बंदी बनाने के कारण अपने को 'शृंगार कारागृह' कहा है।

'लीलावती' कौतूहल की लीलावई की अपेक्षा सुबंधु की 'वासवदत्ता' पर अधिक आधृत है। यदि वह गद्य-ग्रंथ है तो यह चंपूकाव्य है। नामों के थोड़े-बहुत परिवर्तन को छोड़कर कथा का पूर्वभाग वासवदत्ता जैसा ही है, पर उत्तरार्द्ध में काफी अंतर है। स्वप्न में अलग-अलग रूप से एक दूसरे को देखकर रीझना, मिलना, बीच में विरह तथा अंत में मिलन में परिसमाप्ति ही लीलावती की कहानी है। भारतीय प्रेमाख्यानों की सारी कथानक-रूढ़ियाँ इसमें भी हैं। कथा के व्याज से वर्णनों का जाल ही बिछा है। जैन होने के कारण कवि ने बीच-बीच में कथा को मोड़ देने का प्रयत्न किया है। कथा की नायिका लीलावती पद्मावती यक्ष की उपासिका है। शृंगार ही इसका प्रधान रस है। इसमें कल्पना का औन्नत्य और सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति है। किंतु फिर भी यह एक समग्र कृति नहीं है। वर्णनों के अति विस्तार के साथ-साथ कवि ने कहीं-कहीं औचित्य का उल्लंघन किया है। इसमें ध्वनि की अपेक्षा वाच्य अधिक आ गया है। इन सबके कारण इस काव्य के समग्र सौंदर्य में बाधा पड़ी है। इतना होते हुए भी 'लीलावती' किसी का अनुवाद अथवा अनुकरण नहीं—गरिमापूर्ण स्वतंत्र काव्य है।

'नेमिनाथपुराण' (दे०) अपूर्ण कृति है। अतः उसका नाम 'अर्धनेमि' पड़ा है। इसमें हरिवंश एवं कुरुवंश की कथा है। वैसे इसमें भी कृष्ण की कथा प्रधान है। इस चंपूकाव्य में कृष्ण-लीला, कंसवध आदि प्रसंग बहुत

ही सशक्त बन पडे हैं। जैन काव्यों में पाई जाने वाली भावावलियो की जटिलता तथा मत-प्रचार की नीरसता इसमे नही हैं। चरित्रो मे कवि नें नूतन चेतना का सचार किया है। इसके कृष्ण देवताओ के उपजीवी नही, यशस्वी तथा परमवीर हैं। इसका कसवध प्रसग अत्यत सरस है। अन्य पात्र भी अतिमानवीय गुणो से आवृत नही किए गए। स्वभावोक्ति तथा अतिशयोक्ति—दोनो नेमिचद्र के प्रिय अलकार हैं। चमत्कार के पीछे पडने के कारण ये अपने काव्यो को सफल महाकाव्य नही बना पाए। गभीर जीवन-दर्शन तथा औचित्य के अभाव ने इन्हे ऊपर नही उठने दिया।

नेमिनाथ चतुष्पादिका (अप० कृ०)

'नेमिनाथ चतुष्पादिका' रत्नसिह सूरि के शिष्य विनयचद्र (दे०) सूरि द्वारा रचित 40 पद्यो की एक छोटी सी कृति है। इसमे बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की प्राचीन कथा का वर्णन है। इसी प्रसग मे राजमती या राजुल और उसकी सखियो के वार्तालाप के रूप मे कृतिकार ने शृगार और वैराग्य के भावो की व्यजना की है। राजमती का विवाह नेमिनाथ से होना निश्चित हुआ था किंतु वे पशुओ की हिंसा के कारण दयार्द्र हो वधू गृह के तोरण द्वार से ही लौट गये थे और गिरिनार पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे थे। राजुल के वियोग का वर्णन बारह मासा रूप मे प्रस्तुत किया गया है, कृतिकार ने श्रावण मास से आरभ कर आषाढ मास तक बारह मासो मे राजुल के विरह की व्यजना की है। राजुल प्रत्येक मास मे अपनी अवस्था का वर्णन करती है और उसकी सखी उसे सात्वना देती है। बारहमासा की परपरा के अध्ययन के लिए यह कृति महत्वपूण है।

नेमिनाथ चतुष्पादिका (गु० कृ०) [रचना काल—तेरहवी शती]

विजयसेन सूरि के नाम मे प्राप्त इस रचना मे नेमिनाथ का चरित्र वर्णित है। गुजराती का यह प्रथम बारहमासा काव्य माना जाता है।

काव्य का प्रारभ शृगार से होता है किंतु परिणति भक्ति मे होती है। राजुल नेमिनाथ स दीक्षा ग्रहण कर लेती है।

काव्य मे विप्रलभ शृगार का भी अच्छा निरूपण किया है। विरहिणी राजुल और उसकी सखियो का सवाद बडा महत्वपूर्ण है।

रचना मे प्रकृति-वर्णन व अलकार-योजना द्रष्टव्य है। रस के विचार से भी रचना प्रभावशाली व आकर्षक है तथा विरह-काव्य के रूप मे भी महत्त्वपूर्ण है।

कुछ विद्वानो ने विनयचद्र (दे०) को इसका रचयिता माना है।

नेमिनाथपुराण (क० कृ०)

नेमिचद्र (दे०) होयसळ वश के बल्लाल राजा के प्रधानमत्री पद्मनाभ के आश्रित पडित कवि थे। उनका समय बारहवी शती के अत तथा तेरहवी शती के आरभ मे बताया जाता है। नेमिचद्र ने 'लीलावती' और 'नेमिनाथ पुराण' नामक दो ग्रथो की रचना की।

'नेमिनाथपुराण' मे हरिवश अर्थात् श्रीकृष्ण के वश और कुरुवश अर्थात् पाडवो के वश की कथा का वर्णन है। इसमे मुख्य रूप से श्री कृष्ण की कथा ही कही गई है। अब 'नेमिनाथपुराण' आठवें आश्वास का कसवध भाग ही प्राप्त है। इसका आधार 'चावुडराय पुराण' (दे०) तथा कर्णपार्य (दे०)-कृत 'नेमिनाथपुराण' है। परतु लेखक ने कथानायक कृष्ण को एक धीरोदात्त नायक के रूप मे प्रस्तुत करने के लिए ही जैन पुराणो से कृष्ण की कथा मे परिवर्तन भी किया है। आलोचको का कथन है कि अद्‌भुत और वीर रस की दृष्टि से नेमिचद्र के कसवध-चित्रण की किसी भी महाकवि के चित्रण के साथ तुलना की जा सकती है। इसमे आने वाले पात्र अन्य पौराणिक कथाओ के पात्रो की तरह कठपुतली नही हैं अपितु जीवत हैं। वसुदेव केवल विलासी नही, वीर और उदार हैं। कस केवल दुष्ट नही बल्कि वह ईश्वर-भक्त, गुरुभक्त और दूसरो से स्नेह करने वाला भी है। कृष्ण अतिमानव नही, मानव हैं। 'लीलावती' मे जहाँ कवि की वाक् चातुरी तथा अलकार प्रियता प्रधान है, वहाँ 'नेमिनाथपुराण' मे सयम व्यक्त हुआ है। यह एक महाकाव्य तो नही है पर महाकाव्य का सत्व इसमे है।

नेमिविजय (गु० ले०) [समय—सत्रहवी शती]

सत्रहवी शती के जैन वार्ताकारो मे नेमिविजय प्रमुख हैं। इनकी दो रचनाएँ—'शीलवती रास' (दे०) और 'वच्छराजचरित्र रास' प्रसिद्ध है।

'शीलवती रास' में करुण तथा अद्भुत रस की सुंदर योजना बन पाई है। 'वच्छराज-चरित्रगास' वच्छराज के संबंध में लिखित एक चरित-काव्य है। परवर्ती जैनेतर कवि शामळ (दे०) पर 'शीलवतीरास' का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। उत्तर-मध्यकालीन जैन पद्य-वार्ताकारों में नेमिविजय का महत्वपूर्ण स्थान है।

नेयदल् *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य में वर्णित पाँच भूभागों में एक है नेयदल्। इन भूभागों का वर्णन 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ) और पुरम् (दे० पुरप्पोरुळ) दोनों वर्गों की रचनाओं में होता है। नेयदल् से तात्पर्य है 'समुद्र किनारे की भूमि'। यहाँ के निवासी पडवर कहलाते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय है मछली पकड़ना और नौका चलाना। नेयदलवासियों के आराध्य देव वरुणन् (वरुण) हैं। इस प्रदेश की अनुकूल ऋतुएँ छहों ऋतुएँ हैं और अनुकूल वेलाएँ हैं प्रातःकाल और संध्या। इस प्रदेश में पाए जाने वाले प्राणी हैं समुद्री कौआ, मगरमच्छ, मछली आदि। यहाँ नेयदल्, नाडल्मुळ्ळि, केवड़े आदि के पुष्प प्राप्त होते हैं। इस प्रदेश में प्रभूत मात्रा में पाए जाने वाले नेयदल् पुष्प के आधार पर ही इस प्रदेश का तथा यहाँ के निवासियों की सभ्यता और संस्कृति का नामकरण हुआ है।

नै झनां *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष —1942 ई०]

पंजाबी लोक-साहित्य को प्रकाशित कराने वाले अनुसंधाताओं में 'नै झनां' के रचयिता हरजीतसिंह का स्थान अग्रणी है। 'नैंझना' में 'बार' के इलाके के अपेक्षाकृत असभ्य (जंगली) लोगों के साहित्य, रहन-सहन तथा भाषा-विलक्षणता का सुंदर वर्णन किया गया है। यह कृति पंजाबी लोक-साहित्य के अनुसंधान की प्रारंभिक रचनाओं में से है।

नैडदम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

कृतिकार—पांड्य राजा अदिवीररामन। नैडदम् में नल-दमयंती की कथा वर्णित है। यह श्रीहर्ष-कृत संस्कृत-रचना 'नैषधचरित' का तमिल अनुवाद है। कथा 28 पडलम (खंडों) में विभाजित है। गणेशवंदना के उपरांत कवि ने प्रसंगानुसार विभिन्न प्राकृतिक तत्त्वों एवं मानव-जीवन से संबंधित विभिन्न उत्सवों, संस्कारों और कर्मों का वर्णन किया है। नैडदम् शृंगारिक वर्णन-प्रधान कृति है। इस महाकाव्य में उपमा, रूपक, श्लेष आदि अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। संपूर्ण कृति अकवल छंद में रचित है। तमिलनाडु में कहावत प्रचलित है, 'नैडदम् पुलवरक्कु औडदम्' अर्थात् नैडदम् विद्वानों के लिए ओषधि (कवित्वशक्तिप्रद ओषधि) के समान है। इससे नैडदम् के साहित्यिक महत्व का सम्यक् बोध होता है।

नैरंग-ए-ख़याल *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1875-80 ई०]

'नैरंग-ए-ख़याल' मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' (दे०) के अँग्रेज़ी-निबंधों के अनुवादों का संकलन है। इनमें से छह निबंध जानसन के, तीन ऐटीसन के और शेष अन्य अँग्रेज़ी लेखकों के हैं। ये सारे निबंध प्रतीकात्मक हैं। इन अनूदित निबंधों में 'आज़ाद' ने अपनी प्रतिभा से मौलिकता का गहरा पुट दे दिया है।

इस कृति में संगृहीत निबंधों में सर्वप्रथम उर्दू-कहानी के तत्त्व मिलते हैं। इस पुस्तक के दो भाग हैं जिनमें 'गुलशन-ए-उम्मीद की बहार', 'सैर-ए-ज़िंदगी', 'इंसान किसी हाल में खुश नहीं रहता' आदि निबंध पहले भाग में और 'नुक्ता-चीनी', 'मुरक्का-ए-खुशबयानी' और 'सैर-ए-अदम' जैसे पाँच निबंध दूसरे भाग में हैं।

आज़ाद की इस रचना की विशेषता यह है कि इसमें मानवीय स्वभाव के गुण-दोषों को प्रतीक-शैली में अंकित किया गया है। आज़ाद के इन निबंधों में धर्म, नीति, कला-कौशल एवं काव्य आदि विषयों पर महत्वपूर्ण आलोचना मिलती है किंतु सभी निबंधों में मानवीकरण की एक-जैसी शैली, ईमान, दिल, अक्ल, इंसाफ, और ज़ुल्म आदि का हर जगह घूमते-फिरते नज़र आना पाठक के मन में कुछ ऊब-सी पैदा करता है।

नैवेद्य *(गु० कृ०)*

मांकड साहब (डोलरराय, दे० मांकड) गुजराती के प्रतिष्ठित विद्वान थे। उन्होंने गुजराती तथा अँग्रेज़ी में विद्वत्तापूर्ण ग्रंथों का प्रणयन किया है। उनका 'टाइम्स ऑफ संस्कृत ड्रामा' नामक ग्रंथ समग्र भारत में सम्मानित हुआ था गुजराती में उन्होंने 'काव्य-विवेचन' नामक ग्रंथ

मे काव्य-तत्व की गहन विवेचना की है । उनकी षष्टि-पूर्ति के अवसर पर उनके लेखों को 'नैवेद्य' नाम से सगृहीत किया गया ।

आलोच्य सग्रह मे उनके सस्कृत तथा गुजराती साहित्य के 26 आलोचनात्मक लेख हैं जिनमे साधारणी-करण-विषयक लेख विशेष ध्यान आकर्षित करता है । इसमे उन्होने साधारणीकरण की प्रक्रिया के सबध मे प्राचीन भ्रातियो का निराकरण करते हुए निजी मत की स्थापना की है । रसिकलाल पारीख (दे०) के नाटक 'शर्विलक' (दे०) तथा शामळ (दे०) की बहुप्रशसित कृति 'मदन-मोहना' की विशद आलोचना इस सग्रह की उल्लेखनीय विशेषता है । अकादमी पुरस्कार प्राप्त यह सग्रह डोलरराय की आलोचना के अध्येताओ के लिए महत्वपूर्ण है ।

नैषधीयचरित *(स० कृ०)* [समय—बारहवी शती]

'नैषधीयचरित' सस्कृत का बहुचर्चित महा-काव्य है । इसके कर्ता श्रीहर्ष (दे०) कान्यकुब्ज-नरेश जयचद्र गहडवार की सभा मे विद्यमान थे ।

'नैषधीयचरित' 'महाभारत' (दे०) के नलो-पाख्यान के आधार पर रचित 22 सर्गो का विशाल महाकाव्य है । इसके लिखने की प्रेरणा श्रीहर्ष को त्रिविक्रमभट्ट विरचित 'नलचपू'(दे०) से मिली थी । इसमे नल (दे०) दमयती (दे०) की कथा तथा नल-दमयती के रूप एव सौदर्य का बडा चमत्कारपूर्ण वर्णन है । श्रीहर्ष ने 'महाभारत' की मूल कथा मे काव्योचित परिवर्तन करके अपनी मौलिक कल्पनाओ के सन्निवेश से इसके कलेवर को सजाया है तथा नल दमयती के रूप-वर्णन, प्रेम-वर्णन एव विवाह-वर्णन के छोटे कथानक को विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है ।

'नैषध' अलकृत महाकाव्यो की परपरा मे लिखा हुआ सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है जिसके सामने भारवि(दे०) तथा माघ (दे०) भी फीके पड जाते हैं । इस महाकाव्य मे पाडित्य के साथ वैदग्ध्य का अच्छा सामजस्य हुआ है । उनके काव्य मे व्याकरण तथा दर्शन के सिद्धात गुँथे हुए हैं । शृगार इस महाकाव्य का प्रधान रस रहा है । सयोग तथा विप्रलभ दोना की इसमे बडी मार्मिक व्यजना हुई है।

नोडिनाटकम् *(त० परि०)*

तमिलनाडु मे सत्रहवी-अठारहवी शतियो मे जिला तिरुनेलवेली मे 'पालैयकार' नामक शासको का दबदबा था । ये एक प्रकार के 'अमीर' कहलाने वाले शासको के समान पदाधिकारी थे जो ब्रिटिश शासन के अधीन रह कर अपने क्षेत्र मे शासन करते थे और लगान वसूल कर सरकार को कर दिया करते थे । ऐसे 'पालैयकार' के दरबार मे दरबारी कवियो के द्वारा उनकी प्रशसा मे विरचित होने वाली एक नाटक विधा है—'नोडिनाटकम्'। तमिल साहित्य के प्राचीन या मध्ययुगो मे यह विधा प्राप्त नही होती है । किंतु 'वरिक्कत्तु' नामक एक अभिनय-शैली प्राचीन युग मे प्रचलित थी जिसमे एक ही पात्र रगमच पर गान भी गाता है और विविध पात्रो का अभि-नय भी करता है । कदाचित् उसी से विकसित आधुनिक रूप 'नोडिनाटकम्' है ।

इसमे एक पात्र रगमच पर आता है, वही नाटक का नायक होता है । वह अपने बारे मे स्वय गाकर अभिनय करता है । फिर अपने अनुभव के रूप मे कोई कहानी या घटना सुनाता है । वास्तव मे—अब तक प्राप्त इस प्रकार के अनेक नाटको की मूलकथा एक ही मिलती है, किंतु देश, नाम आदि भिन्न हैं । इसमे एक चोर प्रमु खपात्र बनकर आता है । वह चोरी कर बडी सपत्ति इकट्ठी करता है । एक गाँव मे किसी वारनारी पर मुग्ध होकर उसे सारी सपत्ति दे डालता है । पुन चोरी करने निकलता है । एक 'पालैयकार' की अश्वशाला मे घुस जाता है । उसे घोडा चुराते हुए पाकर सिपाही पकड लेते है और 'पालैयकार' के सामने पेश करते हैं । शासक की आज्ञा से उसकी एक टाँग और एक हाथ काट दिया जाता है । रक्त-धारा मे विपन्न हो पडे उसके पास एक योगी आते है और उसके घाव ठीक करते है । वह चोर भक्त बन जाता है । फिर भगवान की कृपा से उसका शरीर पूर्ण हो जाता है ।

इस कथा के वर्णन मे बीच-बीच मे 'पालैयकार' की प्रशसा और अन्य प्रमुख व्यक्तियो का उल्लेख होता है ।

'नाडि' का अर्थ है 'लँगडा' । 'लँगडे का गीत' होने से इसका यह नाम पडा । इसमे प्रयुक्त छद 'सिंदु' कहलाता है, 'नोण्डिच् चिन्दु' उसी छद की एक शैली है । इसमे अन्य छदो का प्रयोग भी अल्पमात्रा मे होता है ।

नोण्डि *(त० पारि०)*

यह प्राचीन 'सघम्' साहित्य के 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ)नामक काव्य-भेद के 'उळिञै' नामक उपभेद का

एक 'तुर' (प्रकरण) है और इसका विषय दुर्ग-युद्ध में दुर्ग के स्वामी द्वारा की जाने वाली प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही होता है। तमिल भाषा के उपलब्ध व्याकरणों में सबसे प्राचीन मानी गई 'तोलकाप्पियम्' (दे०) ने उपर्युक्त कथनानुसार 'नोच्चि' को 'उळिञै' के अंतर्गत रख दिया है।

एक और लक्षण ग्रंथ-'पुरप्पोरुळ वेण्पामालै' 'तोलकाप्पियम्' के परवर्ती काल का है। परंतु यह कहा जाता है कि उसमें 'तोलकाप्पियम्' से भी पुरानी 'अकत्-तियम्' की परंपरा की रक्षा की गई है। इस ग्रंथ के अनुसार 'नोच्चि' एक पृथक् उपभेद है और इसके नौ प्रकरण होते हैं। किसी राजा द्वारा अपने दुर्ग पर हुए हमले के विरुद्ध की जाने वाली प्रतिरक्षात्मक कार्यवाही इस उपविभाग का मुख्य विषय है। इस उपविभाग के अनेक 'तुर' (प्रकरण) हैं जिनमें से मुख्य हैं—मुठभेड़ों के बाद वीर सेनानी राजाओं का स्वर्गवास हो जाना; दुर्ग से लगे हुए कानन और खंदक को बचाकर प्रतिरक्षा पक्ष द्वारा विजय पाना अथवा इस प्रतिरक्षा के घोर प्रयत्न में प्राण त्यागना; लक्ष्य पर तीर के समान टूट पड़ने वाले घोड़ों तथा शूर-वीर योद्धाओं की प्रशंसा करना; दुर्ग की दीवारों का नाश एवं प्रतिरक्षाकारी योद्धाओं द्वारा शत्रु-सेना की प्रगति का अवरुद्ध हो जाना तथा आक्रमणकारी राजा द्वारा यह माँग किया जाना कि दुर्ग-स्वामी की कन्या उसे विवाह में दी जाए और उसका ठुकराया जाना।

नोमल (अ० कृ०) [रचना-काल—1913 ई०]

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०) के इस के प्रहसन में नाहरफुटुका नामक पात्र के भुलक्कड़ स्वभाव को लेकर हास्य की सृष्टि की गई है।

नोवल् साहित्यम् (मल० कृ०) [रचना-काल—1930 ई०]

प्रसिद्ध समालोचक एम० पी० पॉल (दे०) का उपन्यास-संबंधी लक्षण-ग्रंथ। इसमें उपन्यास के विविध तत्त्वों, उपन्यासों के वर्ग-भेदों और विश्व के प्रख्यात उपन्यासों के संबंध में विस्तृत चर्चा के बाद मलयाळम के ..७ यशस्वी उपन्यासकारों की कृतियों का मूल्यांकन किया गया है। मलयाळम के प्रथम उपन्यास 'कुंदलता' के अलावा चन्तु मेनन (दे०), सी० वी० रामन् पिळ्ळा (दे०) और अप्पन् तंपुरान् (दे०) के उपन्यासों की विस्तृत समालोचना की गई है। साहित्य की इस सर्वाधिक लोकप्रिय विधा से संबंधित प्रथम प्रामाणिक ग्रंथ के रूप में 'नोवल् साहित्यम्' का स्थान महत्वपूर्ण है।

नौ-तर्ज़-ए-मुरस्सा (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1798 ई०]

'नौ-तर्ज़-ए-मुरस्सा' इटावा-निवासी मुहम्मद बाक़िर ख़ाँ के सुपुत्र मीर अताहुसैन 'तहसीन' (दे०) की रचना है। वे जनरल स्मिथ के मीर मुंशी थे। इसमें 'क़िस्सा-चहार-दरवेश' रंगीन और प्रौढ़ उर्दू में लिखा गया है। 'तहसीन' अपने सुंदर लेख के कारण 'मुरस्सा-रक़म' के नाम से विख्यात थे। पुस्तक के नाम में 'मुरस्सा' शब्द गद्य-शैली के साथ-साथ इस तथ्य की ओर भी संकेत करता है।

मीर तहसीन ने इसकी रचना जनरल स्मिथ के सेवा-काल में ही प्रारंभ कर दी थी किंतु इसकी समाप्ति शुजाउद्दौला के दरबार में आने पर की। इस रचना में उन्होंने प्रचलित रीति से हट कर नये ढंग का गद्य-प्रयोग किया है।

'नौ-तर्ज़-ए-मुरस्सा' की रचना अरबी-फ़ारसी-मिश्रित उर्दू में हुई है। इसमें अरबी-फ़ारसी पदों, उपमाओं एवं प्रतीकों की इतनी बहुलता है कि भाषा जगह-जगह दुर्बोध और दुरूह हो गई है यद्यपि कहीं-कहीं सरल गद्य का भी प्रयोग हुआ है।

न्टुप्पूप्पाक्कोरानैण्टान्नु (मल० कृ०) [रचना-काल—1951 ई०]

रचनाकार—मुहम्मद (दे०) बशीर वैकम। शीर्षक का अर्थ है—'मेरे दादा के एक हाथी था'। श्री बशीर निजी शैली के धनी अनन्य साहित्यकार हैं जिन्होंने बिना किसी तरह की औपचारिक शिक्षा प्राप्त किए साहित्य पर और पाठकों पर अपनी सृजनशीलता की छाप छोड़ी है।

इस छोटे उपन्यास की धुरी है एक देहाती मुसलमान परिवार। हठी और इस्लामी रूढ़ियों के कठोर पालक वट्टनटिमा, उनकी शरीक़ और किसी ज़माने में अमीर घराने की बीवी तथा उन दोनों की ख़ूबसूरत, सरल व समझदार बेटी कुञ्ञुपात्तुम्मा ही मुख्य पात्र हैं। अपने परिवार की पुरानी दौलत, ख़ासकर उसका बड़ा मस्त

हाथी—जिसने छह छह काफिरो को मारा था—उनकी अथक बातचीत के विषय थे। घरेलू झगडो और अदालती झभटो ने जब गृहस्थी को एकदम निर्धन बना दिया तब परिवार ने देहात मे रहना शुरू कर दिया। जीवन का क्रम ही मानो बदल गया। यही नागरिक सभ्यता के धनी, सुशिक्षित निसार अहमद ने कुञ्ञुपात्तुम्मा के रूप, सरलता व विवेक से प्रभावित होकर उससे शादी कर ली।

इस उपन्यास की कथावस्तु से बढकर इसकी कथन शैली अधिक महत्वपूर्ण है। माँ का दभ भरा दावा कि तेरे दादा के एक बडा हाथी था—करणा ही अधिक उपजाता है। कुरान की बातो का कुञ्ञुपात्तुम्मा के शब्दो मे बडा प्रभावशाली चित्रण हुआ है। कुञ्ञुपात्तुम्मा के सरल शब्द उपन्यास के सबसे रोचक अश हैं। इन सबका चित्रण बशीर की अपनी शैली मे हुआ है जिसका आनद केवल अनुभूति का विषय है। इस अनुपम शैली की रचना का रसास्वाद यो अन्य भाषा मे असभव सा है तथापि हिंदी मे 'दादा का हाथी' नाम से श्री रवि वर्मा ने इसका अनुवाद प्रस्तुत किया है।

न्यायकुसुमाजलि *(स० कृ०)* [रचना-काल—1000 ई०]

उदयनाचार्य (दे०)-विरचित 'न्यायकुसुमाजलि' न्यायदर्शन का अत्यत महत्वपूर्ण एव उपयोगी ग्रथ है। इस क्लिष्ट ग्रथ को स्पष्ट करने के लिए दो विशेष टीकाएँ लिखी गई हैं। इनमे एक टीका वर्द्धमान की 'प्रकाश टीका' है जो 'न्यायकुसुमाजलि' की ही टीका है। दूसरी टीका रुचिदत्त की 'मकरद टीका' है जो 'प्रकाश टीका' की टीका है।

विशेषत, 'न्यायकुसुमांजलि' के अतर्गत बौद्ध-दर्शन का खडन किया गया है तथा ईश्वर की सत्ता की सिद्धि का प्रयत्न किया गया है। ईश्वर सिद्धि के सबध मे तार्किक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए न्यायकुसुमाजलिकार का तर्क है कि यद्यपि ईश्वर का साक्षात दर्शन नही होता, परतु जिस प्रकार ससार मे अनेक पदार्थों का कारण देखने मे आता है, उसी प्रकार जगत का भी कोई न-कोई कारण अवश्य होना चाहिए। जगत् का कारण 'न्यायकुसुमाजलि' के अनुसार ईश्वर ही है। इस प्रकार कार्य-कारणवाद के आधार पर 'न्यायकुसुमाजलि' मे ईश्वर की सत्ता सिद्ध की गई है। न्यायकुसुमाजलि' की भाषा शैली क्लिष्ट ही कही जाएगी।

न्यायमूर्ति रानडे चरित्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1924 ई०]

प्रस्तुत चरित्र ग्रथ की रचना श्री न० र० फाटक ने की थी। इस चरित्र मे लेखक ने चरित्र-नायक के युग के सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आदोलनो का उल्लेख किया है। युगीन परिस्थितियो का सूक्ष्म अध्ययन कर उसके परिप्रेक्ष्य मे इस चरित्र को लिखा गया है। कही कही परिवेश का उल्लेख विस्तृत एव अनुपयोगी हो गया है, कारण ऐसे स्थलो से रानडे के चरित्र का कोई पहलू स्पष्ट नही होता—केवल परिस्थितियो का वस्तुपरक विवेचन ही शेष रह जाता है।

लेखक रानडे जी का प्रशसक रहा है। इसी कारण उसके लेखन मे विभूति पूजा का भाव है। उसने अपने चरित नायक को देवत्व पद पर आसीन करने का प्रयत्न किया है, परिणामत उसे सर्वगुण-सपन्न चित्रित करने की चेष्टा से यथार्थ चरित्राकन नही हो पाया।

इस चरित्र की भाषा प्रौढ एव सरल है। इसके द्वारा हमे भारत—विशेष रूप से महाराष्ट्र—के लग-भग चालीस वर्षों का क्रमबद्ध इतिहास पढने को मिलता है। रानडे जी पर इससे पूर्व भी चरित्र लिखे गए हैं पर उनके व्यक्तित्व तथा परिवेश का अध्ययन कर लिखा गया यह एकमात्र विस्तृत चरित्र ग्रथ है।

पक्षीपरिणयम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—बीसवी शती]

हास्यरस-प्रधान इस कृति के रचयिता सरदार के० एम० पणिक्कर (दे०) हैं। नायिका पक्षी के स्वयवर मे मलयाळम भाषा के कई कवि भाग लेते हैं, प्रत्येक का परिचय देते समय महाकवि वळ्ळत्तोळ् की खूब प्रशसा की जाती है और उळ्ळूर (दे०) परमेश्वरय्यर के प्रति व्यग्य-प्रहार किए जाते हैं। यद्यपि कविता सरस है तो भी कवि की पक्षपात की भावना खटकती है।

पचतत्र *(क० कृ०)* [रचना काल—ग्यारहवी शती पूर्वार्ध]

कन्नड के 'पचतत्र' का रचयिता दुर्गसिंह (दे०) है। दुर्गसिंह ग्यारहवी शती पूर्वार्ध म चालुक्य राजा जगदेकमल्ल जयसिंह का सेनापति और मत्री था। उसका जन्म स्मार्त भागवत-सप्रदाय के पडित-कुल मे हुआ था। उसने अपने गाँव म हरिहर के मदिर बनवाए। वह सर्वतोमुखी

प्रतिभा का व्यक्ति था ।

कन्नड का 'पंचतंत्र' प्रसिद्ध विष्णु शर्मा के 'पंचतंत्र' (दे०) से भिन्न है । वह वसुभाग भट्ट के द्वारा रचित पंचतंत्र पर आधारित है । वसुभाग भट्ट ने गुणाढ्य (दे०) की पैशाची भाषा में लिखित 'बृहत्कथा' से पांच कथा-रत्न चुन कर 'पंचतंत्र' नाम रखा । वह मूल 'पंचतंत्र' अब उपलब्ध नहीं । उसके अस्तित्व की जानकारी दुर्गसिंह के कन्नड-अनुवाद से ही हुई । डा० मुगळि (दे०) का कथन है कि इसी को आधार मानकर खोज करने पर पता लगा कि जावा में उसी के आधार पर तीन 'पंचतंत्र' हैं—दो पद्य में और एक गद्य में ।

दुर्गसिंह की कृति की विशेषता यह है कि जैन-मत की बहुत-सी बातें और पारिभाषिक शब्द इसमें पाए जाते हैं जो विष्णु शर्मा के 'पंचतंत्र' में नहीं हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि दुर्गसिंह बड़े उदार स्वभाव का था और इसके अतिरिक्त उस समय जैन धर्म का प्रभाव अधिक था ।

कथाओं की नीतियों के वर्णन में दुर्गसिंह ने मूल का निष्ठा से अनुकरण किया है किंतु कहीं-कहीं वर्णनों और संभाषणों में विस्तार करके अपनी मौलिकता का परिचय दिया है । यह 'पंचतंत्र' चंपु अर्थात् गद्य और पद्य में लिखा गया । इसमें कन्नड गद्य को एक सुघर रूप मिला ।

पंचतंत्र *(सं० कृ०)* [समय—200 ई० पू०]

'पंचतंत्र' भारत की अत्यंत प्राचीन नीति-कथाओं का संग्रह है । इसकी रचना पं० विष्णु शर्मा द्वारा हुई । कुछ विद्वान् विष्णु शर्मा का चाणक्य से अभेद स्थापित करके इसका रचना-काल 200 ई० पू० मानते हैं । किंतु डा० कीथ तथा डा० हर्टेल के अनुसार इसकी रचना 200 ई० पू० के बाद हुई होगी ।

पंचतंत्र के चार संस्करण उपलब्ध हैं —

1. पहलवी अनुवाद जो आज अप्राप्य है पर जिसकी कथाओं का परिचय सीरियन तथा अरबी अनुवादों की सहायता से प्राप्त है ।
2. दूसरा संस्करण गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' (दे०) में सन्निहित है ।
3. तृतीय संस्करण तंत्राख्यायिका तथा उसी से संबद्ध जैन-कथा-संग्रह है । आजकल का प्रचलित 'पंचतंत्र' इसी का आधुनिक प्रतिनिधि है ।
4. चौथा संस्करण दक्षिणी 'पंचतंत्र' का मूलरूप है । नेपाली 'पंचतंत्र' तथा 'हितोपदेश' इस संस्करण के प्रतिनिधि हैं । इस प्रकार 'पंचतंत्र' एक सामान्य कथा-संग्रह नहीं अपितु एक विपुल साहित्य का प्रतिनिधि है ।

पंचतंत्र के पांच तंत्र (भाग) हैं—मित्रभेद, मित्रलाभ, संधि-विग्रह, लब्ध-प्रणाश तथा अपरीक्षित कारक । प्रत्येक तंत्र की एक मुख्य कथा है जिसको पुष्ट करने के लिए ऐसी अनेक गौण कथाएं कही गई हैं जिनका उद्देश्य सदाचार तथा नीति के उपदेश एवं शिक्षा देना है । मानवेतर पात्रों की योजना करके इनमें कौतूहल एवं मनोरंजन के साथ नीति-उपदेश का अद्भुत मिश्रण किया गया है ।

पं० विष्णु शर्मा लोक तथा शास्त्र दोनों में पारंगत थे । उन्होंने थोड़े समय में निपट मूर्ख राजकुमारों को व्यवहार-कुशल, सदाचार-संपन्न तथा नीतिपटु बना दिया । नीतिमत्ता के साथ ग्रंथकार की विनोदप्रियता भी इस ग्रंथ में कदम-कदम पर झलकती है ।

'पंचतंत्र' की भाषा तथा शैली बड़ी सरल तथा सुबोध है । कथानक का वर्णन गद्य में है तथा अपनी बात को पुष्ट करने के लिए लेखक 'रामायण', (दे०), 'महाभारत' (दे०), आदि प्राचीन ग्रंथों से सूक्तियां उद्धृत करता है ।

कहा जाता है कि 'पंचतंत्र' बाइबिल के बाद सर्वाधिक प्रचलित ग्रंथ है । इसका अनुवाद संसार की लगभग सभी भाषाओं में हो चुका है । यूनानी कथाकार ईसप की कहानियां 'पंचतंत्र' से प्रभावित हैं ।

पंचतंत्र किळिप्पाट्टु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती]

विष्णु शर्मा के विश्व-प्रसिद्ध ग्रंथ 'पंचतंत्र' का मलयाळम काव्यानुवाद कुंचन् नंपियार् (दे०) ने किया है । नंपियार मलयाळम साहित्य के प्रथम जनवादी कवि थे जिन्होंने जनता की सरल व सरस भाषा में हास्यप्रधान कृतियां रचीं । वे 'तुळ्ळल्' कहलाईं । श्री नंपियार् ने 'पंचतंत्र' की रचना 'किळिप्पाट्टु' नामक काव्यरूप में की है । 'किळिप्पाट्टु' का अर्थ है 'शुकगीत' । यह काकलि आदि द्राविड़ी छंदों में रचित और कुछ-कुछ गेय है । नंपियार् ने मूल का भाव समझकर उसे स्वच्छंद अनुवाद में ढालने की नीति अपनाई है ।

पचदशी *(स० कृ०)* [रचना काल—1350 ई०]

'पचदशी' के लेखक विद्यारण्य है। विद्यारण्य का पूर्वाश्रम का नाम माधवाचार्य था। डा० वीरमणिप्रसाद उपाध्याय ने भारती तीर्थ को 'पचदशी' का लेखक माना है। विद्यारण्य वेदात के प्रतिबिबवाद सिद्धात के अनुयायी हैं। 'पचदशी' मे ईश्वर एव जीव आदि की सरल एव स्पष्ट व्याख्या की गई है। 'कूटस्थदीप' 'नाटकदीप' एव चित्रदीप प्रकरण मे साक्षी का अनेकधा विवेचन किया गया है। 'पचदशी' मे ब्रह्म, कूटस्थ आदि की भी सूक्ष्म विवेचना की गई है।

'पचदशी' की मौलिकता मे सदेह है। इस के अनेक श्लोक अन्य ग्रथो मे भी उपलब्ध है। इस की भाषा सरल एव साहित्यिक है। आलकारिकता 'पचदशी' के शिल्प की प्रमुख विशेषता है। उदाहरण के लिए 'पचदशी' मे माया को कामधनु तथा जीव एव ईश्वर को वत्स कहा गया है।

सरल एव सुबोध होने के कारण 'पचदशी' वेदात के जिज्ञासुओ का कठहार है। इस की पद्यात्मकता ने इसे और भी रुचिकर बना दिया है।

पचवटी *(ते० कृ०)*

'पचवटी माधवपेद्दी बुच्चि सुदरराम शास्त्री (दे०) का नवीन विधान मे लिखा गया खडकाव्य है। इस काव्य की रचना मे कवि का ध्येय लक्ष्मण का चरित्र-चित्रण करना है। इस दिशा म कवि को सराहनीय सफलता मिली है। इस काव्य मे सीता राम और लक्ष्मण के प्रवेश का विधान रमणीय है। वस्तुनिर्देश और नर्मक्रिया दोनो को एक साथ जोडकर कवि ने सीता और राम को मच पर ला खडा किया है। लक्ष्मण और शूर्पणखा के सवाद मे कवि ने लक्ष्मण के चरित्र का उजागर किया है। अपने भावगाभीर्य के कारण तेलुगु के खडकाव्यो मे 'पचवटी' का विशिष्ट स्थान है।

पचसखा *(उ० पारि०)*

अच्युतानददास कृत ग्रथो म पचसखा' का प्रयोग कई बार हुआ है।

'दश पटल मे लिखा है कि त्रेता युग म रामचद्र के पाँच सखा—नल नील, सुषेण, जामवत एव हनुमान तथा द्वापर मे कृष्ण के पचसखा दाम, सुदाम, सुबल, बाहु, सुबाहु के रूप मे अवतीर्ण हुए थे। उसी प्रकार कृष्ण के अवतार श्री चैतन्यदेव (दे०) के उडिया 'पचसखा' के रूप मे बळरामदास (दे०), जगन्नाथदास (दे०), यशोवतदास (दे०), अच्युतानददास (दे०) तथा अनतदास ने उनके साथ ही पृथ्वी पर जन्म लिया था। कालातर मे ये पचसखा' के नाम स विदित हुए।

'पचसखा युग' महाराज प्रतापरुद्रदेव (1495-1540 ई०) का युग है। महाराज स्वय उनका बडा सम्मान करते थे। इन महापुरुषो ने सारलादास (दे०) के पथ का अनुसरण किया था और स्वेच्छा से सस्कृत को छोड कर अज्ञान से पीडित जनता के लिए उडिया को अपनाया था। इससे इगलैड के एलिजाबेथ-कालीन कवियो और नाटककारो का स्मरण हो आता है, जो अपनी मातृभाषा को ग्रीक और लेटिन के समकक्ष लाने का सोद्देश्य प्रयत्न कर रहे थे। उडीसा मे यह युग 'पचसखा-युग' के नाम स सुपरिचित है। 'पचसखा-युग' केवल उत्कल मे ही नही, उत्तर भारत मे भी नूतन धर्मोदय का युग है। इस विषय में कबीर (दे०), नानक (दे०), सूरदास (दे०) और तुलसीदास (दे०) का धार्मिक साहित्य स्मरण योग्य है।

ये पच महापुरुष सिद्ध, योगी तथा कवि थे। ये सभी योगमिश्रा या ज्ञानमिश्रा भक्ति के अनुयायी थे। चैतन्यदेव को गुरु-रूप मे स्वीकार करने के बाद इन लोगो ने शुद्धाभक्ति को भी अपना लिया था। इन्ही पचसखाओ के समय स उडीसा मे आज तक शुद्धाभक्ति के साथ ही योगमिश्रा भक्ति अखड रूप से प्रवाहित होती आ रही है।

इन लोगो ने गूढ दार्शनिक तत्त्वो को सर्वजन सुलभ बना दिया है और पुराण-साहित्य का लोगो मे प्रचार किया है। वैष्णव धर्म के प्रचार के क्षेत्र म पचसखा' अग्रगामी है।

पच नढिडा नाटक *(सि० कृ०)* [रचना काल—1937 ई०]

'पज नढिडा नाटक' मघाराम उधाराम मलकाणी (दे०) के पाँच एकाकी नाटको का सग्रह है। इन नाटको म लेखक न सामाजिक बुराइयो का यथार्थ चित्रण किया है। माँ का अपनी चिरकाल म बीमार बटी के साथ दुर्व्यवहार, सौतली माँ का स्वभाव, फैशन और वाह्याडबरो के परिणाम, जमीदार और किसानो की समस्याएँ आदि विषयो को लेकर न इन एकाकी नाटको म चित्रण किया है। मघाराम मलकाणी पहले सिंधी एकाकी-

कार हैं जिन्होंने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की प्रवृत्ति को त्याग कर सामाजिक बुराइयों का यथार्थ चित्रण किया है। इन नाटकों में मलकाणी जी की भाषा सरल और स्वाभाविक है तथा शैली व्यंग्यपूर्ण है।

पंजवाणी, राम परतावराइ *(सिं० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

इनका जन्म-स्थान लाड़काणा, सिंध है। बी० ए० उत्तीर्ण करने के पश्चात् सिंधी प्राध्यापक के रूप में इन्होंने कार्य शुरू किया था। देशविभाजन के बाद ये जयहिंद कालेज, बंबई में सिंधी-विभाग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त हुए थे और अभी तक उसी पद पर रहकर सिंधी-अध्यापन के साथ-साथ सिंधी-साहित्य और कला के विकास में सक्रिय रूप से संलग्न हैं। इन्होंने सिंधी उपन्यास, नाटक और कहानी के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया है। इनकी प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ इस प्रकार हैं—उपन्यास : 'पद्मा', 'क़ैदी', 'शर्मीला', 'चांदीअ जो चमको', 'ज़िंदगी या मौतु', 'ग्राहिन आहे', 'धीअरु न जमनि'; कहानियां : 'अनोखा आज़मूदा'; एकांकी-संग्रह : 'सिंधु जूं सत कहाण्यूं'; नाटक : 'गौतम बुद्ध'। 'अनोखा आज़मूदा' नामक कृति पर इनको 1964 ई० में साहित्य अकादमी नयी दिल्ली से पाँच हज़ार रुपयों का पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। इस रचना में इन्होंने अपने जीवन की वास्तविक अनुभूतियों और घटनाओं को कहानियों के रूप में प्रस्तुत किया है। ये लेखक के साथ-साथ उत्तम श्रेणी के कलाकार और गायक भी हैं। इन्होंने अपनी कला के द्वारा सिंधी लोक-संगीत और सिंधी-संस्कृति की विशेषताओं का न केवल भारत में परंतु विदेशों में भी प्रचार किया है। हाल ही में इन्होंने बंबई में 'सिंधु भवन' की स्थापना की है जो सिंधी-साहित्य और संस्कृति के संरक्षण और प्रसार का मुख्य केंद्र सिद्ध होगा। पंजवाणी जी साहित्यकार तथा संगीतकार के रूप में काफ़ी लोकप्रिय हैं।

पंजाब दे लोकगीत *(पं० कृ०)*

पंजाबी लोक-साहित्य के व्यवस्थित वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से डा० महिंदर सिंह रंधावा (दे०) की इस कृति का विशेष महत्व है। इसमें पहली बार पंजाब के, विशेषकर माझे और मालवे के, लोकगीतों की एक विशाल संख्या को पुस्तकाकार प्रदान किया गया है। इन गीतों को पृथक्-पृथक् शीर्षकों के अंतर्गत संगृहीत करने का वैज्ञानिक ढंग अपनाया गया है। अपने विशाल अध्ययन, लोक-साहित्य की गहरी समझ और सरल शैली के प्रयोग से रंधावा जी ने इन गीतों की मनोहारी व्याख्या प्रस्तुत की है।

पंजाब में उर्दू *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1960 ई०]

'पंजाब में उर्दू' उर्दू भाषा के विकास पर स्वर्गीय हाफ़िज़ महमूद शीरानी (दे० महमूद शीरानी) की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें उर्दू भाषा की प्राचीनता पर प्रकाश डाला गया है—विशेषकर उन तथ्यों पर विचार किया गया है जिनके आधार पर पंजाब को इस भाषा के आरंभ तथा विकास का पालना माना जा सकता है।

इस कृति में लेखक ने विभिन्न प्रमाणों से सिद्ध किया है कि उर्दू शाहजहाँ के शासन-काल से ही प्रारंभ नहीं हुई बल्कि उससे बहुत पूर्व उस युग से है जब से कि मुसलमान मुहम्मद-बिन-कासिम के आक्रमण के साथ पंजाब में प्रविष्ट हुए थे। अतः उर्दू बुनियादी तौर पर पंजाबी ही है जो बाद में दिल्ली दरबार में पहुँची और वर्तमान विकसित रूप को प्राप्त हुई। इस पुस्तक में शीरानी साहब ने पंजाब तथा उर्दू की विभिन्न क्रियाओं में साम्य दर्शाया है तथा पंजाब के अनेक प्राचीन कवियों तथा गद्यकारों का उल्लेख किया है।

पंजावराव सरंजामे *(म० पा०)*

ना० सी० फड़के (दे०) के उपन्यास 'प्रवासी' (दे०) का यह पात्र नायक का पिता है और लेखक का उद्देश्य संतान पर पैतृक प्रभाव दिखाना है, अतः उसका विशिष्ट महत्व है। नायक राजाभाऊ में अपने पिता के स्वभाव की अनेक विशेषताएँ—संगीत-प्रेम और सनक आदि हैं तथा अपने पिता का स्मरण करके ही वह अनेक पापों से बच जाता है। इस पात्र की कल्पना लेखक ने पूना-निवासी श्री दाते नामक वकील के आधार पर की है जो बड़े मनस्वी, उदार और राष्ट्र-प्रेमी थे तथा जिन्होंने अनेक बार लोकमान्य टिळक (दे०) की सहायता की थी। श्री दाते सफल वकील होने के नाते खूब धन कमाते थे पर अपनी उदारता एवं दानशीलता के कारण सदा धनाभाव से पीड़ित रहे। उन्होंने सदा समाज की रूढ़ियों और कुरीतियों का निर्भय होकर विरोध किया। इसी प्रकार का चरित्र 'प्रवासी' उपन्यास के पंजाबराव सरंजामे का है।

पजाबी-लोक साहित्य *(प० कृ०)*

डा० एस० एस० बेदी की यह कृति पजाबी लोकधारा की खोज और सरक्षण की दृष्टि से अद्वितीय महत्व की है। पजाबी-जीवन से जुडे लोक-साहित्य को डाक्टर बेदी ने पहली बार किसी योजनाबद्ध ढग से सगृहीत किया है। पजाबी लोकधारा की खोज के सदर्भ मे इस रचना का महत्व ज्ञानवर्धन की दृष्टि से बहुत अधिक है।

पजाबी-साहित्य दा इतिहास (तीन भाग) *(प० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1963 ई०]

'पजाबी साहित्य दा इतिहास' (तीन भाग) भाषा विभाग, पटियाला का प्रकाशन है। इस पुस्तक मे पहली बार पजाबी-साहित्य के इतिहास से सबद्ध सारी सामग्री को एकत्रित करने का यत्न किया गया है परतु किसी भी प्रकार इसे पूर्वरचित इतिहासो की तुलना मे श्रेष्ठ नही माना जा सकता। इसमे भिन्न-भिन्न कालो पर पृथक्-पृथक् विद्वानो से लेख लिखवाकर उनका सकलन किया गया है फलस्वरूप साहित्य के इतिहास दर्शन के किसी भी अनुशासन का इसमे अभाव है। रचना मे प्रवाह का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है और जगह-जगह अतराल भी खलते हैं। इसमे कई अशुद्धियाँ और भ्रातियाँ भी हैं। पजाबी-साहित्य के एक प्रामाणिक-सर्वागीण इतिहास की आवश्यकता इसके बाद भी यथावत् बनी हुई है।

पंजुम पशियुम *(त० कृ०)* [रचना-काल—1953 ई०]

(चिदबर) रघुनाथन (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यासो मे परिगणित। इसे सरकार की वस्त्र-निर्माण सबधी नीति से पीडित जुलाहो की करुण गाथा कहा जा सकता है। इस उपन्यास मे हथकरघो पर काम करने वाले मजदूरो के जीवन से सबधित नाना समस्याओ का सजीव चित्रण है। लेखक के अनुसार क्राति द्वारा ही मजदूर अपनी समस्याओ से मुक्ति पा सकते हैं। मजदूर वर्ग को क्राति के मार्ग पर ले चलने वाले इस उपन्यास के दो अमर पात्र हैं शकर और राजू। मजदूरो के जीवन का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने ऊँच-नीच के भेद-भाव से रहित एव आदर्श समाज की कल्पना की है। 'पजुम पशियुम' मजदूरो के जीवन से सबद्ध एक सुदर उपन्यास है। कथा-विन्यास, पात्र-चरित्र चित्रण, घटना-वर्णन, समस्या-प्रतिपादन सभी दृष्टियो से इसका विशिष्ट महत्व है। तमिल समाज को सामाजिक यथार्थवाद से परिचित कराने के कारण इस उपन्यास का तमिल-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

पडित, अ० प्रबोध *(गु० ले०)* [जन्म—1920 ई०, मृत्यु—1975 ई०]

स्वातत्र्योत्तर काल मे अतर्राष्ट्रीय ख्याति के भाषावैज्ञानिक। इन्होने लदन विश्वविद्यालय मे भाषा-विज्ञान की शिक्षा ली और गुजरात विश्वविद्यालय तथा पूना के भाडारकर रिसर्च इस्टीट्यूट मे कुछ समय काम किया। जब उनका देहावसान हुआ। ये दिल्ली विश्वविद्यालय मे भाषाविज्ञान-विभाग के अध्यक्ष थे। अमरीका और यूरोप मे भाषाविज्ञान की अतर्राष्ट्रीय परिषद् के अध्यक्ष भी ये रहे। 'गुजराती माध्यनि' पुस्तक पर 1967 ई० मे उन्हे साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था और उसी वर्ष गुजरात सरकार का प्रथम पुरस्कार भी मिला था। इन्होने भाषाविज्ञान पर अँग्रेजी मे भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

पंडित, भवानीशकर श्रीधर *(म० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

ये मराठी के उच्च कोटि के शिशुगीतकार कवि हैं। 'चवथीचा चाँद', 'अष्टमीचा चद्र', 'बीजेची कोर', 'पौर्णिमेचें चादणें' आदि इनके काव्य सग्रह है जो वात्सल्य रस से परिपूर्ण हैं। इनमे शिशु के लिए तथा शिशु-विषयक अनेक रस-भीने गीत हैं।

अपनी काव्य-चेतना की प्रारभावस्था मे इन्होंने कुछ प्रणय-गीतियाँ लिखी थी, जो 'पिचलेला पावा' सग्रह में सगृहीत हैं। भारत की स्वतत्रता के बाद प्रकाशित 'उन्मेष आणि उद्रेक' तथा 'सुवास आणि रस' काव्य-सग्रहो मे मानव प्रेम, राष्ट्र प्रेम तथा समाजवादी विचारधारा की सुदर अभिव्यक्ति मिलती है।

भवानीशकर पडित का 'सवडीचे क्षण' नाम से एक निबध सग्रह भी प्रकाशित हुआ है जो लेखक की बहुश्रुतता का प्रमाण है। इसमे दर्पण, छाता, जूते जैसे साधारण विषयो पर हल्के-फुल्के, पर मनोरजक, निबध हैं।

पडिताराध्य चरित्रमु *(ते० कृ०)* [समय—तेरहवी-चौदहवी शती]

इस कृति के रचयिता पाल्कुरिकि सोमनाथुडु

(दे०) हैं। इन्होंने संस्कृत, तेलुगु तथा कन्नड़—तीनों भाषाओं में रचना की है। वीरशैव, संप्रदाय के अनुयायी इनके 'बसवपुराणम्' (दे०) को अपना वेद तथा इनको 'शृंगी' का अवतार मानते हैं।

वीरशैवों द्वारा परम ज्ञानी तथा दैवांश से उत्पन्न माने जाने वाले 'मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य' के जीवन-वृत्त-संबंधी कथाएँ इस काव्य में वर्णित हैं। मल्लिकार्जुन शिव के परम भक्त थे। इनको एक महान् नायक के रूप में चित्रित कर, तथा इनमें देवत्व का आरोप कर, एक अवतार-पुरुष के रूप में इनका चित्रण किया गया है।

इस काव्य में 'बसवपुराणमु' से भी अधिक भक्ति का आवेग पाया जाता है। साधारण जनता तक अपना संदेश पहुँचाने के उद्देश्य से कवि ने इसकी रचना तेलुगु के 'द्विपद' छंद में तथा सरल-स्वाभाविक भाषा में की है। विस्तार से वस्तु-वर्णन करके पाठक की कल्पना के लिए इसमें कवि ने कुछ अधिक सामग्री नहीं छोड़ी। 'द्विपद' छंद को महाकाव्य के योग्य सिद्ध करने में इस काव्य का भी महत्वपूर्ण योगदान है। इसके एक-एक द्विपद में पृथक्-पृथक् भाव समाप्त नहीं होते और समस्त काव्य एक ही प्रवाह के समान दिखाई देता है। काव्य-शास्त्रियों द्वारा अनुचित माने जाने वाले शब्द, समास, संधियाँ आदि इस काव्य में यत्रतत्र हैं। छंद तथा भाषा में तेलुगु का सहज सौंदर्य इस काव्य की महत्वपूर्ण विशेषता है परंतु काव्य का विषय साधारण मानव-जीवन से दूर होने से इसका विशेष प्रसार नहीं हो सका।

पंत, सुमित्रानंदन *(हि० ले०)* [जन्म—1900 ई०; मृत्यु—1977 ई०]

पंत जी का जन्म प्रकृति की रम्य स्थली कूर्माचल के कौसानी ग्राम में हुआ था। ये बचपन में ही मातृहीन होकर पिता और दादी की स्निग्ध छाया में पले। इनका बचपन का नाम गुसाईंदत्त था। 1921 ई० के असहयोग आंदोलन में पंत जी ने कालिज छोड़ दिया। प्रारंभिक काल में काव्य-सृजन की प्रेरणा इन्हें 'सरस्वती' (दे०) आदि पत्रिकाओं और 'हरिऔध' (दे०) मैथिलीशरण गुप्त (दे०) आदि की रचनाओं से प्राप्त हुई थी।

इनके समस्त काव्य को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(क) छायावादी (दे० छायावाद) काव्य में 'ग्रंथि', 'पल्लव' (दे०) और 'गुंजन', (ख) प्रगतिवादी (दे० प्रगतिवाद) काव्य में 'युगवाणी' (दे०) और ग्राम्या (दे०) तथा (ग) नव-रहस्यवादी (भूतात्मवादी) काव्य में 'स्वर्ण-किरण' (दे०), 'स्वर्णधूलि' (दे०) 'उत्तरा', 'कला और बूढ़ा चाँद', 'लोकायतन' (दे०) आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। काव्यकृतियों के अतिरिक्त 'ज्योत्स्ना' 'शिल्पी', 'सौवर्ण' आदि काव्यरूपक, 'गद्यपद्य', 'कला और संस्कृति' आदि में संगृहीत आलोचनात्मक निबंध, 'साठ वर्ष : एक रेखांकन' शीर्षक आत्मकथा आदि रचनाएँ भी उल्लेखनीय हैं। 'युगवाणी' से 'अतिमा' तक की चुनी हुई रचनाओं के संग्रह 'चिदंबरा' (दे०) पर इन्हें 1968 ई० का भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

इनके वर्ण्य-विषयों में प्रकृति का स्थान सर्वोपरि है। नारी के विदेह सौंदर्य का वर्णन भी इन्होंने प्रचुर मात्रा में किया है। वर्तमान जीवन-समस्या का चिंतन तो इनके काव्य में आद्यंत सूत्रवत् अनुस्यूत है। अनुभव और अध्ययन के विकास से इनकी विश्वदृष्टि बदलती रही है। क्रमशः सर्वात्मवाद और वैज्ञानिक भौतिकवाद से प्रेरणा ग्रहण करने के उपरांत मृत्युपर्यंत ये भूतात्मवाद का संदेश प्रसारित करते रहे।

पंत जी प्रधानतः कलाकार थे। शब्दशिल्पी के रूप में इनका कौशल अद्वितीय है। इनके काव्य में कल्पना की समृद्धि और अप्रस्तुत-विधान का वैविध्य दर्शनीय है। अप्रस्तुत-प्रयोग और व्यंजना-शक्ति में अनुभव-विकास के साथ-साथ परिष्कार आता गया है। प्रकृति के चितेरे, सूक्ष्म नारी-सौंदर्य के गायक और शब्दों के शिल्पी इस मनीषी का विपुल सृजन आधुनिक हिंदी-साहित्य में मूर्धन्य स्थान का अधिकारी है।

पंथ प्रकाश *(प० कृ०)* [रचना-काल—1867 ई०]

1841 ई० में रचित ज्ञानी रतनसिंह (दे० रतन सिंह 'भंगू') के मूल 'पंथ प्रकाश' को छंदःशास्त्र के नियमों की दृष्टि से सदोष मानकर विक्रमी संवत् 1924 अर्थात् 1867 ई० में ज्ञानी ज्ञानसिंह (दे०) ने नवीन 'पंथ प्रकाश' की रचना की। लेखक ने अधिकांश सामग्री मूल '(प्राचीन) पंथ प्रकाश' (दे०) से ही ग्रहण की है, किंतु उन्होंने छंद-विकास की दृष्टि से संशोधित करने के अतिरिक्त इसमें अनेक नये प्रसंग भी जोड़ दिए हैं। साथ ही लाहौर के समकालीन प्रसिद्ध कवि निहालसिंह की सिख-पंथ-संबंधी अनेक कविताएँ भी इसमें रचयिता का नाम परिवर्तित कर समाविष्ट कर ली गई हैं। इस ग्रंथ का प्रथम प्रकाशन 1880 ई० में हुआ था।

पंप (क० ले०) [समय—दसवी शती ई०]

कन्नड के आदिकवि, महाकवि पप का जन्म दुदुभि सवत्सर ई० 902 मे हुआ था। इनके पूर्वज वैदिक ब्राह्मण थे। इनके पितामह माधव सोमयाजी यज्ञ-याग सपन्न कर सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। किंतु इनके पिता अभिराम देवराय ने यह विश्वास कर जैन धर्म स्वीकार किया था कि सब धर्मो मे जैन ही श्रेष्ठ धर्म है। पप ने अपनी रचना 'विक्रमार्जुन विजय' (दे०) (जिसका दूसरा नाम 'पपभारत' है) मे बडे गर्व के साथ इस विषय का वर्णन किया है। 941 ई० मे इन्होने 39 वर्ष की आयु मे 'आदिपुराण' की रचना की। यह ग्रथ केवल तीन महीने मे पूर्ण हुआ। विक्रमार्जुन-विजय' छह महीनो मे पूर्ण हुआ था। ये दो ग्रथ इनकी 'यशो दुदुभि' के आधार हैं। चालुक्य राजा अरिकेसरी द्वितीय इनके आश्रयदाता थे। अरिकेसरी के अनुरोध से ही इन्होने 'विक्रमार्जुन-विजय' की रचना 941 ई० मे की। पप की दृष्टि मे 'भारत' लौकिक काव्य है और 'आदिपुराण' धार्मिक काव्य है। इनको कवितागुणार्णव', 'प्रसन्नगभीर वचनरचनाचतुर', 'पुराणकवि', 'सुकविजनमनोमानसोत्तस हस' और 'सरस्वती-मणिहार' जैसी उपाधियाँ प्राप्त थी। इन्होने अपने गुरु देवेंद्र मुनि के प्रति अत्यत आदर और श्रद्धा-भाव प्रकट किया है।

पप का 'आदिपुराण' (दे०) सोलह आश्वासो का चपूकाव्य है। इसमे प्रथम तीर्थंकर वृषभनाथ की कथा का सुदर वर्णन है। इसमे 'धर्म' और 'काव्यधर्म' दोनो का सुदर समन्वय हुआ है। कन्नड के जैन-पुराणो मे इसका अग्रस्थान है, परतु विशुद्ध काव्य की दृष्टि से भी यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

इनका दूसरा महत्वपूर्ण ग्रथ 'विक्रमार्जुन-विजय' है। इसका आधार 'व्यास महाभारत (दे०)और जिनसेन कृत 'महाभारत' है, परतु इसमे इन्होने प्रतिभाशाली ढग से परिवर्तन किए हैं। पाडवो मे अर्जुन का प्राधान्य है। अर्जुन और अरिकेसरी मे अभेद स्थापित कर उन्होंने अर्जुन को कथानायक बनाया है। उनकी द्रौपदी पाँच पाडवो की पत्नी नही, वह अर्जुन की धर्मपत्नी है। अत मे अर्जुन और सुभद्रा का राज्याभिषेक होता है। ऐसे परिवर्तनो के बावजूद कवि की विलक्षण प्रतिभा के कारण कथा के प्रवाह मे विशेष बाधा नही पडी है। कवि हित मित रचनाचतुर अथवा ध्वनिनिपुण है। उसके काव्य मे अरिकेसरी का इतिहास भी ध्वनिरम्यता के साथ सगुम्फित है। अत वह काव्य की दृष्टि से ही नही, इतिहास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण ग्रथ है।

'विक्रमार्जुन विजय' (दे०) मे चौदह आश्वास हैं। एक-एक आश्वास एक-एक कलाकुज के समान है। उसमे चित्रित कतिपय पात्र साहित्यलोक मे अविस्मरणीय हैं। कला कल्पना, भाषा भाव—सभी दृष्टियो से यह कन्नड का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है तथा गोम्मटेश्वर के विग्रह के समान आश्चर्यजनक कलाकृति है।

पप भारत (क० कृ०)

दे० विक्रमार्जुनविजय।

पप रामायण (क० कृ०)

'पप रामायण' का रचयिता नागचद्र है। उसने अपने आपको अभिनव पप के नाम से पुकारा है। इसलिए उसका लिखा 'रामचद्र चरित्र-पुराण' 'पप रामायण' नाम से प्रसिद्ध है। नागचद्र ग्यारहवी शती के अतिम भाग का प्रसिद्ध कवि है। उसकी जीवनी के बारे मे बहुत थोडी बातें ज्ञात हैं। उसको चालुक्य और होयसळ दोनो वशो के राजाओ का आश्रय प्राप्त हुआ होगा। उसने अपने धार्मिक ग्रथ 'मल्लिनाथपुराण' मे लिखा है कि मैंने विजय पुर (बीजापुर) को अलकृत करने वाले एक मल्लि जिनेंद्र का मदिर बनवाकर उसकी जीवनी कही है जिससे यह स्पष्ट होता है कि वह एक धार्मिक और धनी व्यक्ति था।

'रामचन्द्रचरित-पुराण' अथवा 'पप रामायण' 'वाल्मीकि रामायण'(दे०) के आधार पर नही लिखी गई। यह जैन साहित्य म प्रचलित रामायण सप्रदायो म से विमल सूरी के प्राकृत ग्रथ 'पउमचरिउ' स प्रेरित है। उसने लिखा है, "मैं रामकथा का वर्णन अपूर्व ढग से करूँगा। यह अपूर्व वर्णन उसकी रामायण की कथा और उसके मुख्य पात्रो के चरित्र-चित्रण म स्पष्ट होता है। 'पप रामायण' मे राम रावण का वध नही करता क्योंकि यह अहिंसा के विरुद्ध है। लक्ष्मण ही रावण का वध करता है। रावण सीता का हरण किसी अशुभ वेला मे कामदेव से प्रभावित होकर करता है पर सीता के पतिव्रत धर्म को देखकर अत मे पश्चात्ताप करता है। वह पप के दुर्योधन के समान उदात्त और सद्गुणी है। राम और लक्ष्मण की अनेक पत्नियाँ हैं। पति-भक्ति के कारण मदोदरी सीता को रावण की ओर मोहित होने के लिए प्रेरित करती है

जिससे उसके चरित्र में दोष आ गया है।

काव्य की दृष्टि से 'पंप रामायण' कन्नड की श्रेष्ठतम कृतियों में से एक है। यह उसके रूपक और उपमाओं से स्पष्ट है। रावण सीता को पुष्पक विमान में बिठाकर दिव्यसरोवरों आदि दिखाकर कहता है, "इंद्र के हाथी के दाँत उखाड़कर मैंने उससे अपना पलंग बनाया। हंस को मारकर उसके पंख भरकर दिग्गज जब पीठ दिखाकर भाग गए तो उनको छोड़े हुए गद्दों से मैंने शय्या बनाई···।" सीता पर आकाश पर स्याही मलने के समान उसका रंग नहीं चढ़ा। वह बोली, "गुणहीन के ऐश्वर्य से गुणियों की गरीबी क्या अच्छी नहीं", सीता का उज्ज्वल चरित्र दिखाते हुए कवि लिखता है कि मन में जैन पद और जिह्वा पर से पंच नमस्कार को दूर होने नहीं दिया क्या रत्न का दीपक हवा लगने से बुझ सकता है ?"

पइन्ना (प्रकीर्णक) *(प्रा० कृ०)*

जैन-धर्म के स्फुट विषयों को लेकर लिखे गए ये ग्रंथ जैन आगमों (दे०) में कुछ बाद में सम्मिलित हुए। इनकी संख्या लगभग 30 है। किंतु 45 आगमों में अधिकतर 10 निम्नलिखित प्रकीर्णक माने जाते हैं—(1) चउसरण (चतुःशरण), वीरभद्रलिखित इस प्रकीर्णक में अर्हत् (दे०) सिद्ध, साधु और धर्म की शरणागति का वर्णन है। (2) आउरपच्चक्खाण (आतुर-प्रत्याख्यान) में मूर्खों और सिद्धों की मृत्यु का अंतर बतलाया गया है। प्रत्याख्या या परित्याग के द्वारा मृत्यु उत्तम बतलाई गई है। (3) भत्तपरिण्णा में भोजन का परित्याग, (4) संथार (संस्तार) में दर्भ शय्या का महत्व और (5) महा-पच्चक्खाण में त्याग-वृत्ति का उपदेश दिया गया है। (6) तंदुलवेयालिय (तंदुलवैचारिक) में भौतिक तथा शरीर-विज्ञान, गर्भावस्थिति, स्थान और काल के परिमाण, अस्थि तथा स्नायु-संख्या का महावीर और गोयम के संवाद-रूप में वर्णन हैं। (7) चंद-विज्झय में गुरु-शिष्य का आचार-विचार और सामान्य अनुशासन वर्णित है। (8) देविंदत्थय (देवेंद्रस्तव) में विभिन्न देवराजों की यशोगाथा गाई गई है। (9) गणिविज्जा—इसमें ज्योतिष-शास्त्र के विषय आए हैं। तिथि, नक्षत्र, करण, इत्यादि का वर्णन है। (10) वीरत्थय (वीरस्तव) में महावीर स्वामी की स्तुति की गई है।

पउम (पद्म) *(प्रा० पा०)*

ये पौराणिक शैली के प्राकृत महाकाव्य 'पउम चरिउ' के कथानायक हैं। जैन-साहित्य में 'राम' को इस नाम से अभिहित किया जाता है। कथा का आधार 'वाल्मीकि रामायण' (दे०) ही है किंतु उसकी असंभव घटनाओं को निकाल कर जैन-धर्म के तत्वों का इनमें समावेश कर दिया गया है। प्रायः सभी पात्र जैन-धर्म की दीक्षा लेते हैं। दशरथ के ज्येष्ठ भ्राता अनंतरथ जैन महात्मा हैं। स्वयं पद्म अपने पिता के साथ उत्सवों में जैन-मंदिरों में पूजा करते हैं।

पउम चरिउ *(अप० कृ०)* [रचना-काल—आठवीं शती ई०]

'पउम चरिउ' स्वयंभू (दे०) द्वारा रचित 90 संधियों का काव्य है। यह पाँच कांडों में विभक्त है—विद्याधर कांड, अयोध्या कांड, सुंदर कांड, युद्ध कांड और उत्तर कांड। इसको कवि पूर्ण न कर पाया था। अंतिम आठ संधियाँ उसके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू ने लिखी हैं। इसकी रचना धनंजय के आश्रय में हुई थी।

'पउम चरिउ' या 'पद्म पुराण' शीर्षक-ग्रंथों में राम-कथा वर्णित है। रामकथा का जो रूप वाल्मीकि रामायण (दे०) में मिलता है उसका ठीक वही रूप जैन-पुराणों अथवा चरित-काव्यों में नहीं मिलता। रावण उनके यहाँ जिन का परमभक्त है, जिन की पूजा करता है, अतीव पवित्रात्मा है। सीता रावण की पुत्री है जिसे अमंगल-कारिणी समझ कर रावण ने जन्म के बाद वन में छोड़ दिया था। रावण की हत्या लक्ष्मण ने की थी जिसके कारण उसे नरक जाना पड़ा था। राम और सीता दोनों अंत में जैन धर्म में दीक्षित हो जाते हैं।

'पउम चरिउ' में रामकथा का आरंभ लोक-प्रचलित कुछ शंकाओं के समाधान के साथ होता है। राम के सर्वशक्तिमान् होने पर रावण कैसे उनकी पत्नी को हर सका? वानरों का पर्वतों को उठाना, समुद्र का लाँघना कैसे संभव हो सका? इस प्रकार की नाना शंकाओं के समाधान के लिए गौतम गणधर कथा आरंभ करते हैं। सृष्टि-वर्णन, जंबु द्वीप की स्थिति, कुलकरों की उत्पत्ति, काल का उल्लेख करके अयोध्या में ऋषभदेव की उत्पत्ति का वर्णन है। इसके पश्चात् इक्ष्वाकु वंश, देवताओं, विद्याधरों के वंशादि का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् जैन-मान्यताओं के अनुसार राम-कथा आरंभ की गई है। कथा

के सब प्रधान पात्र जिन-भक्त बताए गए हैं।

स्वयभू ने 'पउम चरिउ' मे संस्कृत-कवियो की परपरा का अनुसरण करते हुए अनेक ऋतुओ का वर्णन किया है। वसत वर्णन, सध्या, समुद्र, नदी, वन आदि नाना प्राकृतिक दृश्यो के काव्योपयुक्त सुदर चित्र अकित किए गए हैं। रसात्मकता और सौदर्य उत्पन्न करने के लिए कवि ने विभिन्न मर्मस्पर्शी भावो के चित्रण, प्राकृतिक दृश्यो और घटनाओ के वर्णन तथा वस्तु-व्यापार के सश्लिष्ट और प्रासगिक निरूपण मे पर्याप्त मौलिकता और धार्मिक रूढियो से ऊपर उठ कर स्वतत्रता का परिचय दिया है। स्वयभू जल-क्रीडा-वर्णन मे प्रसिद्ध है। विभिन्न वर्णनो, परपरामुक्त उपमानो, अलकारो और रूढिगत शैली का प्रयोग होते हुए कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति और दृश्यो के नाना सूक्ष्म अशो की पकड दृष्टिगत होती है।

ऐसे स्थल जहाँ कवि कथा प्रवाह को आगे बढाता है, उसकी शैली मे सरलता और सादगी पाई जाती है किंतु जहाँ वह प्रकृति के नाना दृश्यो का चित्रण करता है उसकी शैली अलकृत हो जाती है।

इस कृति मे वीर, शृगार, करुण और शात रसो की व्यजना की गई है।

कृति मे अनेक भाव-तरल स्थल हैं जिनकी सरस, सरल और अलकृत भाषा मे अभिव्यक्ति की गई है। भाव-पक्ष और कला पक्ष दोनो का समृद्ध रूप इस कृति मे दृष्टिगत होता है।

पउमचरिउ (प्रा० कृ०)

यह जैन साहित्य का रामचरित काव्य है। इसके रचयिता विमलसूरि महावीर निर्वाण के 530 वर्ष बाद (60 ई० मे) आचार्य राहु के शिष्य थे और इन्होने पौराणिक शैली मे 118 पर्वों मे पदम (राम) के चरित पर इस काव्य की रचना की। यद्यपि इसका आधार वाल्मीकि 'रामायण (दे०) ही है किंतु लेखक ने रामायण' को अनेक असभव और अविश्वसनीय घटनाओ से ओतप्रोत बताकर उसके प्रति अनास्था प्रकट की है और महावीर के प्रधान शिष्य गोयम द्वारा राजा सेनिय (बिम्बसार) को बतलाई हुई सत्य कथा के आधार पर इसकी रचना की है। प्रसिद्ध राम-कथा की अपेक्षा इसमे कुछ नवीनताएँ हैं। सभी प्रमुख पात्रा को जैन-धर्मावलबी बतलाया गया है। रावण के एक आभूषण म मुख के नौ प्रतिबिंबो के आधार पर उसे दशमुख कहा गया है। वानर विद्याधर जाति के थे। सीता का जन्म भूमि से नही हुआ था। रावण जैन तीर्थाटन करता है और अनतवीर्य से उपदेश ग्रहण करता है। दशरथ के बडे भाई अनतरथ जैन सन्यासी हो गए थे। स्वय दशरथ अपने पुत्रो के साथ जिन देव की पूजा करते हैं। समस्त काव्य पौराणिक शैली मे है जिसमे अत कथाएँ और धार्मिक प्रवचन गुँथे हुए हैं। ग्रथ की रचना जैन महाराष्ट्री मे आर्या छदो मे हुई है।

पउमसिरी चरिउ (पद्मश्रीचरित) (अप० कृ०)

'पउम सिरी चरिउ' चार सधियो का चरित काव्य है। इसके रचयिता दिव्यदृष्टि धाहिल (दे०) हैं।

कवि ने इस काव्य मे पद्मश्री के पूर्वजन्म की कथा का वर्णन किया है। यह काव्य धार्मिक आवरण से आवृत एक सरस प्रेम-कथा है। कवि ने इस काव्य का विषय ऐसे पात्र को बनाया है जो न तो पौराणिक है और न ऐतिहासिक। लेखक ने पद्मश्री की कथा से यह सूचित किया है कि मानव को पूर्वजन्म मे किए गए कर्मों का फल भोगना ही पडता है, तथा सदाचारमय पुण्य कर्मों द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

कवि ने अनेक भौगोलिक प्रदेशो का अलकृत भाषा मे वर्णन किया है। नाना प्रकृति-वर्णन नायक-नायिका के कार्यों की पृष्ठभूमि के रूप मे अकित किए गए हैं—सूर्यास्त, चद्रोदय, सूर्योदय, वसत आदि के सरस वर्णन उपलब्ध होते हैं। इसमे रति, शोक और निर्वेद भावो के ही अधिक प्रसग हैं। शृगार रस के सयोग और विप्रलभ दोनो पक्ष चित्रित किए गए हैं। रूप-वर्णन प्राय परपरामुक्त है।

काव्य की भाषा सरल और चलती हुई है। इसम संस्कृत-प्राकृत की प्राचीन धारा की ओर जान की प्रवृत्ति नही दिखाई देती। बीच-बीच मे मुहावरो, लोकोक्तियो और सुभाषितो के प्रयोग भी मिलत हैं।

काव्य म मुख्य रूप से पद्धडिया छद का प्रयोग हुआ है। एक ही कडवक मे दो छदा का प्रयोग भी कुछ स्थलो पर दृष्टिगत होता है।

पगरव (गु० कृ०) [प्रकाशन वर्ष—1966 ई०]

स्वातत्र्योत्तर गुजराती-कविता म आदिल मसूरी के इस काव्य-सग्रह का महत्वपूर्ण स्थान है। इसम मुक्तक, गजल तथा अन्य काव्य-रचनाएँ सगृहीत हैं। प्रयोगशीलता इन कविताओं की विशिष्टता है। जापानी काव्य प्रकार

'हादकू' का सफल प्रयोग इसमें देखा जा सकता है। काव्योचित विषय का काव्योचित प्रस्तुतीकरण तथा प्रतीक-योजना एवं बिंब-विधान की नव्यता से परिपूर्ण इस संग्रह में व्यक्ति की एकाकिता की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है।

पच्चमलयाळम् *(मल० पारि०)*

पच्चमलयाळम् शब्द का अर्थ है शुद्ध मलयाळम। 'मणिप्रवाल'(दे०) शैली में केरेली के कई कवियों ने अपनी कृतियाँ रची। कुछ समय के बाद कुछ कवियों ने सोचा कि शुद्ध मलयाळम भाषा के शब्दों में कविताओं की रचना करना और भी प्रभावोत्पादक है। यों सोचकर कुञ्ञिक्कुट्टन् (दे०) तंपुरान् जैसे महाकवि इस पद्धति में कविताएँ रचने लगे। इसी पद्धति का नाम 'पच्चमलयाळम् प्रस्थानम्' हुआ। कुंदूर नारायण मेनन (दे०), ओटुविल् कुञ्ञिकृष्ण मेनन (दे०) आदि ने इस शाखा को पुष्ट करने में बहुत योग दिया है। 'नालु भाषा काव्यङ्ङळ्' इस पद्धति का उत्तम काव्य-ग्रंथ है।

पटनायक, अनंत *(उ० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

श्री अनंत पटनायक का जन्म चणाहाट, पुरी में हुआ था। इनका लेखन समाजवादी चेतना-प्रधान है। प्रारंभ में ये स्वच्छंदतावादी साहित्य-चेतना से प्रभावित थे, किंतु बाद में बदलते युग-धर्म के साथ इन्होंने अपना मार्ग बदल लिया। इनकी भाषा और शैली में हमें उड़िया भाषा की आत्यंतिक निजी विशेषताएँ दिखाई पड़ती है। स्वतंत्र लेखन का जीवन अपनाकर इन्होंने निर्बाध रूप से साहित्य की जो सेवा की है, वह वस्तुतः स्तुत्य है। 'तर्पण करे आजि', 'शांति शिखा', 'रक्तशिखा', 'किंचित' (दे०) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

पटनायक, कालिचरण *(उ० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

कालिचरण पटनायक आधुनिक युग के प्रमुख नाटककार ही नहीं, अपितु कुशल गीतकार, संगीत-मर्मज्ञ, प्रतिभावान अभिनेता, नृत्य-विशारद और अत्यंत सफल निर्देशक भी हैं। इन्होंने नाटकों के आभिजात्य-गुण को दूर कर उन्हें जीवन की निकटता देकर उड़िया-नाट्य-साहित्य में एक नयी परंपरा स्थापित की है। बीस वर्ष तक उड़िया-रंगमंच पर इनका अधिकार रहा। आज के अधिकांश उच्चकोटि के कलाकारों के निर्माण का श्रेय इन्हीं को है।

कालिचरण का जन्म कटक ज़िले के बड़ंबागड़ में हुआ था। बचपन से नृत्य, संगीत और अभिनय के प्रति अभिरुचि होने के कारण मैट्रिक के बाद से इन्होंने अपना ध्यान उधर लगा दिया। 1932 ई० में 'किशोर चंद्रानन चंपू' के अभिनय पर इन्हें पुरस्कार मिला। 1940 ई० में ओडिशाये थियेटर्स की स्थापना की और अनेक सामाजिक नाटक प्रस्तुत किए।

रंगमंच की दृष्टि से उपयोगी नाटकों की रचना करने में कालिचरण अग्रणी हैं। इन्होंने अभिनय को सहज व सरल बनाया, रंगमंचीय संगीत को सुदृढ़ भूमिका दी, लोक-गीतों की धुन पर अनेक गीतों को बड़ी कलात्मकता से नाटक में संयोजित किया। इनके नाटकों के कथोपकथन अत्यंत स्वाभाविक तथा दैनिक जीवन के अनुरूप हैं।

इन्होंने प्रायः तीस नाटक लिखे हैं। 'भात' (दे०) तथा 'परिवर्तन' (दे०) इनके अत्यंत प्रसिद्ध नाटक हैं और 'रक्तमाटी', 'फटा भुंई', 'गर्ल स्कूल', 'अभियान', 'चक्री', 'रक्तमंदार' आदि अन्य उल्लेखनीय नाटक हैं। नाट्यकला के विकास में कालिचरण का प्रदेय प्रशंसनीय है।

पटनायक, गोपाळकृष्ण *(उ० ले०)* [समय—1785-1856 ई०]

वैष्णव कवि एवं प्रसिद्ध गीतकार गोपाळकृष्ण पटनायक गंजाम जिले के पारलाखेमुंडी स्थान के निवासी थे। पिता का नाम वनवासी पटनायक था। गोपाळकृष्ण शुद्धाभक्ति मार्ग के अनुयायी थे। इनके गीत अपनी सजीवता, भावसंभार, भाषा-माधुरी और संगीतात्मकता के कारण जनप्रिय हैं।

इनका राधा-कृष्ण-प्रेम-चित्रण जितना स्वाभाविक है उतना ही मानवीय एवं मनोवैज्ञानिक भी। अन्य कवियों की रचनाओं में राधा, कृष्ण, गोप, गोपियों की सत्ता मथुरा और वृंदावन (उत्तर प्रदेश) तक सीमित है, किंतु गोपाळकृष्ण के गीतों में वे उड़िया ग्रामीण समाज और प्राकृतिक परिवेश के साथ घुल-मिल गये हैं। नटखट कन्हैया की चंचल बालक्रीड़ाओं पर गोपाळकृष्ण के भाव-प्रवण अंतर का समस्त वात्सल्य उमड़ पड़ा है। सूर (दे०) के बाल-वर्णन के समान इनके ये चित्र भी अद्वितीय हैं। इन्होंने सैकड़ों गीतों की रचना की है, किंतु गीतों का अत्यल्प अंश ही 'गोपाळकृष्ण पदावली' (दे०) के रूप में आज उपलब्ध है।

पटनायक, देवीप्रसन्न *(उ० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

डा० देवीप्रसन्न पटनायक (एम० ए०, पी-एच० डी०) का जन्म तिगिरिआ कटक मे हुआ था। ये सुविख्यात भाषा-तत्त्वज्ञ है तथा आजकल सेंट्रल इस्टिट्यूट ऑफ इडियन लैंग्वेजिज, मैसूर के डायरेक्टर है। ये समीक्षक और निबधकार है। 'कविलिपि' और 'साहित्य बीख्या' (दे०) इनकी आलोचनात्मक पुस्तकें है। विद्वान लेखक का विशाल अध्ययन सर्वत्र परिलक्षित होता है। भाषा एव शैली विषय वस्तु की गुरुता के अनुरूप हैं।

पटनायक, पठाणि *(उ० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

पठाणि पटनायक का जन्म गोलबोइ पुरी मे हुआ था। ये उच्चकोटि के समीक्षक हैं। इनकी तुलनात्मक आलोचना दृष्टि अत्यत सतुलित, पूर्वाग्रह से मुक्त, स्वतत्र, निष्पक्ष एव तटस्थ है। उच्चकोटि की शिक्षा के लिए ये निबध अत्यत उपयोगी है। 'ओडिआ साहित्यर भूमिका' इनके आलोचनात्मक निबधो का सकलन है। तुलनात्मक भारतीय साहित्य पर भी इनका निबध-सकलन प्रकाशित हो चुका है।

पटनायक, पद्मचरण *(उ० ले०)* [जन्म—1887, मृत्यु—1955 ई०]

इनका जन्म पचगा-पुरी मे हुआ था और इन्होने बी० ए०, बी० एल० तक शिक्षा प्राप्त की थी। प्रत्यक्ष रूप से 'सत्यवादी युग' से सबधित न होते हुए भी पदमचरण पटनायक सत्यवादी-साहित्य (दे०)-चेतना से अनुप्राणित थे। व्यक्तिगत जीवन मे ये स्वतत्र चेतना के व्यक्ति थे और इनके साहित्य मे भी यह चेतना प्रतिफलित हुई है। पदमचरण मुख्यत गीतिकार है। भाव की स्वच्छता, भाषा की कमनीयता इनके गीतो का निजी सौंदर्य है जो इनकी रचना 'कविनावली' की लोकप्रियता का प्रमुख कारण है। इनका कोमल कवि-हृदय प्रकृति के सौंदर्य, अपने देश के इतिहास तथा जीवन की मार्मिक घटनाओ के प्रति अत्यत सवेदनशील रहा है। जीवन की सामान्य से सामान्य वस्तुओ की काव्यिक महिमा से ये परिचित थे। 'पद्म पाखुडा' (दे०), 'सूर्यमुखी', 'सुनारदेश', 'आशा मजरी', 'स्वर्णरेणु', आदि इनके काव्य-सग्रह हैं। काव्य के अतिरिक्त इनकी गद्यरचनाएँ भी उच्च कोटि की हैं—'पारिवारिक प्रबध' सशक्त निबध-कृति है।

पटनायक, बसत कुमारी *(उ० ले०)*

श्रीमती बसतकुमारी पटनायक आधुनिक उडिया साहित्य की एक प्रमुख उपन्यासकार है। इन्होने यद्यपि कहानियाँ एव एकाकी भी लिखे हैं, किंतु उपन्यास के क्षेत्र मे इन्हे अधिक सफलता मिली है। इनका लोकप्रिय उपन्यास 'अमडा बाट' (दे०) चित्रपट पर भी अत्यत सफल रहा है। नारी-जीवन की अनेक समस्याएँ नवीन रूप से इनकी रचनाओ में उभर कर आई हैं। लेखिका ने नारी चरित्र की जटिलता को युगीन सदर्भ मे समझने की चेष्टा की है। चरित्रोद्घाटन और सामान्य जीवन मे अनन्य वैशिष्ट्य की अवतारणा करने मे इन्होने कला कुशलता का परिचय दिया है। 'पालटा ढेउ', 'सभ्यतार साज'(कहानी), 'जुआर भट्ट' (एकाकी), 'चितानल' (काव्य) आदि इनकी रचनाएँ हैं। इनके कहने का ढग अत्यत स्वाभाविक है।

पटनायक, बिच्छदचरण *(उ० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

श्री बिच्छदचरण पटनायक मेधावी छात्र, विद्वान लेखक, अतर्दृष्टि-सपन्न सकलनकर्ता, कुशल सपादक तथा कवि है। सर्वोपरि वे भज (दे०)-साहित्य के *अग्रगण्य व्याख्याता हैं।*

इनका जन्म स्थान खुरधा (पुरी) है। इनकी बाल्यावस्था मे ही इनके पिता गोलोककृष्ण पटनायक अपनी सपत्ति से हाथ धो बैठे थे। दैहिक अक्षमता (लँगडापन) और अर्थाभाव का दृढता के साथ सामना करते हुए इन्होने रेवेंसा कालेज (कटक) से अँग्रेज़ी मे बी० ए० आनर्स किया तथा पूरे उडीसा राज्य म प्रथम आए। फिर बी० एल० किया और पुरी म शिक्षक रहे। इन्होने 'प्राची' के सपादक आर्तवल्लभ महाति के साथ उडिया ग्रथो का प्रामाणिक सस्करण प्रस्तुत किया और भाषा-कोश के सपादन मे गोपाल प्रहराज की सहायता की है। अँग्रेज़ी मे इन्होंने 'वैतरिणी' तथा उडिया मे 'जागरण' पत्रिका का सपादन किया। कटक मे कुछ दिनो तक वकालत की और फिर लोक-सपर्क विभाग मे प्रोडक्शन आफिसर भी रहे।

इन्होंने तुलसीदास-कृत 'रामचरितमानस' (दे०) एव 'विनयपत्रिका' (दे०) का उडिया मे अनुवाद किया

है। 'सेक्सपियर कहानी', 'कलिंग कवि-सम्राट ओ कलिंग भारती' (दे०), 'कवि सम्राट उपेंद्र भंज सोविनेर' और 'ग्लिम्प्सेज इन टु कवि सूर्य' आदि की रचना के द्वारा इन्होंने उड़िया-साहित्य को समृद्ध किया है।

पांडित्यपूर्ण शैली और क्लिष्ट भाषा के कारण ये जनसाधारण के लिए अल्प-परिचित ही रहे। भंज-साहित्य को लोकप्रिय बनाने के लिए इन्होंने अपना संपूर्ण जीवन अर्पित कर दिया है। भंज-साहित्य के प्रचार के लिए इन्होंने 'कलिंग-भारती' की स्थापना की है जिसके तत्त्वावधान में प्रतिवर्ष भंज-जयंती मनाई जाती है।

पटनायक, विभूतिभूषण *(उ० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

श्री विभूतिभूषण पटनायक का जन्म डिंगेश्वर (कटक) में हुआ था। ये तरुण पीढ़ी के सर्वाधिक प्रिय उपन्यासकार हैं। इन्होंने विपुल मात्रा में उपन्यासों की रचना की है। विभिन्न सामाजिक समस्याएँ इनके उपन्यासों की विषय-वस्तु है। इनके उपन्यास सुखपाठ्य एवं मनोरंजक हैं। जीवन के गंभीर प्रश्न इनमें उभरकर नहीं आए हैं। भाषा व शैली सहज और सुबोध है। 'शेष बसंत', 'प्रेम ओ पृथ्वी', 'वधू-निरुपमा' (दे०) आदि उपन्यास हैं। 'उन्नीस सौ पचपन' कहानी-संग्रह है। 'साम्प्रतिक साहित्य' आलोचना-ग्रंथ है।

पटनायक, वैकुंठनाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

श्री वैकुंठनाथ पटनायक सबुजगोष्ठी (दे० सबुज-साहित्य) के रहस्यवादी कवि हैं। आरंभिक रचनाओं में इनकी नैसर्गिक दिगंत-प्रसारी कल्पना, भावों के निर्बंध प्रवाह तथा उच्चकोटि की काव्य-प्रतिभा को देखकर उड़िया-साहित्य ने जिस महान् कवि की परिकल्पना की थी उसे इनकी परवर्ती रचनाओं के एकांत बुद्धि-विलास ने नष्ट कर दिया।

इनका जन्म बड़बाग़ड़ में हुआ था। 'मृत्तिका-दर्शन' (दे०) इनकी सर्वोत्तम रचना है। जिसमें संतान-वियोग से व्यथित पितृहृदय की निविड़ वैयक्तिक वेदना ने सार्वभौमिक धरातल का स्पर्श कर दर्शन का गंभीर स्वरूप ले लिया है। 'काव्य-संचयन' इनकी दूसरी कृति है। 'मुक्तिपथे' (नाटक) में नारी-स्वतंत्रता का प्रतिपादन हुआ है। इनकी कतिपय रचनाएँ यथार्थवादी हैं। उनमें इन्होंने अपने युग की ज्वलंत समस्याओं को रूपायित किया है।

पटनायक, डा० भिखारीचरण *(उ० ले०)*

कवि व नाटककार डा० भिखारीचरण अपनी स्वतंत्र चिंतना, मौलिकता, निर्भयता और सरस व्यंग्य के कारण उड़िया-साहित्य में सुपरिचित हैं। इनका जन्म चर्थेपुर, केंद्रापड़ा में श्री साधुचरण महांति के यहाँ हुआ था, पर बाद में ब्रह्मपुर निवासी जगन्नाथ पटनायक ने इन्हें गोद ले लिया था।

कलकत्ता से वकालत पास कर ये कटक हाई कोर्ट में वकालत करने लगे। 'कटक-विजय' (दे०) इनका प्रथम ऐतिहासिक नाटक है। इन्होंने अनेक सामाजिक, किंवदंतीमूलक काल्पनिक और ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं जिनमें नाट्य-परंपरा का सम्यक् रूप से पालन हुआ है। 'संसार चित्र', 'नंदिकेश्वरी', 'रत्नमाली', 'सुशीला', 'निरुपमा', 'राजा पुरुषोत्तमदेव' इनकी नाट्य-कृतियाँ हैं। 'उत्कल-साहित्य' पत्रिका में इनकी कविताएँ प्रकाशित हुई थीं। 'गीत-लहर' में स्वाधीनता आंदोलन से संबंधित कविताएँ संकलित हैं।

वकालत छोड़ कर इन्होंने अपना जीवन कुटीर-शिल्प की उन्नति में लगा दिया। चार भागों में प्रकाशित कुटीर-शिल्प पर इनकी पुस्तक 'गृह-शिल्प' इस क्षेत्र में अपने ढंग का मौलिक ग्रंथ है।

पटनायक, मदन *(उ० पा०)*

नित्यानंद महापात्र (दे०) ने अपने सामाजिक उपन्यास 'हिदमाटी' (दे०) में बीसवीं शती के प्रारंभ में प्रकट होने वाली एक सामाजिक समस्या पर प्रकाश डाला है। उपन्यास का मुख्य पात्र मदन पटनायक जमींदार है—समाज के अत्याचार का प्रतीक। लेखक का मंतव्य है कि—"उच्चवर्ग के आदर्श हैं मदन पटनायक। जमींदार हुजूर हैं। कायस्थ की संतान है, लहर गिन कर भी पैसा कमा सकते हैं। उनका जन्म हुआ है दुनिया को ठगने के लिए।"

जमींदारी व्यवस्था का प्रतीक मदन पटनायक निरंकुश ऐश्वर्य का उपयोग नहीं कर सका है। इसकी मृत्यु के विषय में लेखक ने एक प्रहेलिका की सृष्टि की है।

पटनायक, राजकिशोर *(उ० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

इनका जन्म कलकत्ता में हुआ था। संप्रति

श्रीराजकिशोर बहिन वसंत कुमारी पटनायक के साथ प्रकाशन कार्य में संलग्न हैं। एडवोकेट राजकिशोर पटनायक उड़िया के परिचित उपन्यासकार हैं। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं—'पजुरी परवी', 'सिंदुरगार', 'असरति', 'भसामेघ', 'सजबती', 'चलाबाट' (दे०), जिनमें सूक्ष्म मानसिक विश्लेषण की प्रवृत्ति मिलती है। 1947 ई० के पूर्व के उपन्यासकारों एवं कहानीकारों में इनका विशेष स्थान है। स्वाधीनता आंदोलन, नवजागरण, विभिन्न राजनीतिक मतवाद आदि के प्रचार के फलस्वरूप प्रबुद्ध वर्ग के मन में जिस विद्रोह, संशय और अनिश्चितता की सृष्टि हुई थी, उसकी अभिव्यक्ति इनकी कहानियों में मिलती है। 'निशाणरखुट', 'शालिग्राम' आदि इनके महत्वपूर्ण कहानी-संग्रह हैं।

पटल *(उ० पारि०)*

तांत्रिक ग्रंथों के विभिन्न अंशों को सर्ग, अध्याय को परिच्छेद न कहकर 'पटल' कहा जाता है। ग्रंथ का नाम पटल की संख्या के अनुसार 'दशपटल', 'चबीस पटल' आदि रखा जाता है। पटल ग्रंथ की विषय वस्तु गीता, संहिता के समान होती है। *अच्युतानंद दास (दे०) की पटल रचनाएँ (छयालीस, चबीस, दशपटल) आदि सुप्रसिद्ध* हैं।

पटवा, चिनुभाई मोगीलाल *(गु० ल०)* [जन्म—1911 ई०]

चिनुभाई पटवा की प्राथमिक शिक्षा अहमदाबाद में हुई। बी० ए० इन्होंने बंबई के एलफिंस्टन कालेज से पास किया। संप्रति लाइफ इंश्योरेंस कारपोरेशन, अहमदाबाद, में एसिस्टेंट मैनेजर हैं। इनकी कृतियाँ इस प्रकार हैं 'शकुंतलानुं भूत' (एकांकी नाटक संग्रह), 'नवोढा' (कहानी संग्रह), 'पानसोपारी', 'फिलसूफियाणी', 'चालो सजोडे सुखी थइए', 'अमे अने तमे', 'साथे बेसीने वांचीए', 'हलवुं गांभीर्य', 'गोरख अने मच्छिंद्र', 'किचनूरुन पूछो', 'सन्नारियो ने सज्जनो', 'ग्रवळे खणे थी' (ललित निबंध-संग्रह)। ललित निबंधों के साथ इनकी जो सबसे सफल कृति मानी गई है वह 'शकुंतलानुं भूत' है जिसे गुजराती पुस्तक-प्रतियोगिता में पारितोषिक भी मिल चुका है। सहज जीवन से निस्सृत, तीक्ष्ण बुद्धि से समन्वित और अनायास रूप में लिपिबद्ध इनके ललित निबंध भी गुजराती पाठकों में अत्यंत प्रीतिपात्र बने हैं। इस प्रकार के निबंधों को लिख कर पटवा जी ने हास्य साहित्य को निस्संदेह समृद्ध किया है।

पटिच्चसमुप्पाद (सं०— प्रतीत्यसमुत्पाद *(पा० पारि०)*

बौद्ध दर्शन का यह अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इसके अनुसार प्रत्येक वस्तु क्षणिक, परिवर्तनशील तथा सोपाधिक है। जल की लहरों के समान और दीपज्वाला के समान एक वस्तु से दूसरी वस्तु उत्पन्न होती रहती है। सभी वस्तुएँ कालजन्य हैं और दूसरी वस्तु का कारण बनती है। वस्तु में दूसरी वस्तु के उत्पादन के जो तत्व होते हैं उन्हें बौद्ध लोग वस्तु-धर्म के रूप में मान्यता देते हैं। वस्तु प्रथम क्षण में उत्पन्न होती है और दूसरी वस्तु को उत्पन्न कर स्वयं समाप्त हो जाती है। अनेक वस्तुओं की परंपरा निरंतरता का भ्रम उत्पन्न करती है। भगवान् बुद्ध ने दुःख की कालता का विश्लेषण करने में इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया था। अविद्या से संस्कार, उससे विज्ञान (चेतना), उसमें नामरूप तथा उसी क्रम से षडायतन (छह इंद्रियाँ), स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भाव, जाति (पुनर्जन्म) और जरामरण उत्पन्न होते हैं। अविद्या आदि कारणों के निरोध से संस्कार इत्यादि कार्य समाप्त हो जाते हैं जिससे अंत में जरामरण रूप दुःख जाल से छुटकारा मिल जाता है। यह मध्यमार्ग है क्योंकि इसमें किसी वस्तु को न तो चिरंतन माना जाता है और न सर्वथा नश्वर। किसी भी वस्तु की परंपरा समाप्त नहीं होती।

पटेल, पन्नालाल *(गु० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

आधुनिक गुजराती साहित्य में एक सफल उपन्यासकार एवं कहानी-लेखक के रूप में श्री पन्नालाल पटेल का गौरवपूर्ण स्थान है।

उपन्यास 'मळेला जीव', 'वळामणां', 'मानवी नी भवाई', कहानी संग्रह - 'जीवोदांड', *'सुख-दुख ना साथी'*, 'जिंदगी ना खेल', 'लख चोरासी', 'साचा समणां', 'पानेतर नारंग', 'वातक न राठें', 'अजवमानवी' आदि, नाटक 'जमाईराज'।

पन्नालाल के उपन्यासों में 'मळेला जीव' (दे०) और कहानियों में 'पीठीनुं-पडीकुं' सर्वोत्तम रचनाएँ हैं। ग्राम जीवन की यथार्थता का सुंदरतम निरूपण, ग्रामीण जनों की भीरुता, अज्ञान, दरिद्रता, मानवता,

स्वाभिमान, उदारता, आदि का सफल अंकन व आंचलिक परिवेश का कलात्मक प्रस्तुतीकरण इनकी उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं। 'मळेला जीव' में कानजी और जीवी के प्रगाढ़ प्रणय की असफलता का सशक्त निरूपण है। 'मानवी नी भवाई' में पारिवारिक समस्या का निरूपण है। 'वळामणां' में एक ग्रामकन्या का धरती-प्रेम चित्रित है। 'यौवन सुरभि' और 'भीरु साथी' में नगर-जीवन का आलेखन है।

इनकी कहानियों में मर्मस्पर्शी कारुण्य व अभावग्रस्त जीवन की विभीषिका का चित्र अंकित है। समस्याएँ इनमें स्वतः उठती हैं। नगर-जीवन की अपेक्षा ग्राम्य जीवन के अंकन में ये विशेष सफल हुए हैं। इनके उपन्यासों का वस्तु-निरूपण सुश्लिष्ट, पात्र-सृष्टि सजीव, वर्णन बड़े रोचक तथा वातावरण यथासंभव यथार्थ हैं।

गुजराती के कथा-साहित्य में—विशेषतः आंचलिक उपन्यासकार व कहानीकार के रूप में—पन्नालाल का अप्रतिम स्थान है।

पटेल, पीतांबर *(गु० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

इनका जन्म उत्तर गुजरात के महेसाणा जिले के शेलावी गाँव में हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा शेलावी, कड़ी और अहमदावाद में हुई थी। इन्होंने 1942 ई० में एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की।

1956 ई० से तीन वर्ष तक इन्होंने आल इंडिया रेडियो में काम किया। संप्रति ये दैनिक 'संदेश' के संपादकीय विभाग में हैं और 'संदेश' परिवार की एक पत्रिका के प्रमुख संपादक भी हैं।

'रसियो जीव' (उपन्यास) से 'आठमो कोठो' (लेखन चल रहा है) तक की साहित्य-यात्रा में इन्होंने 11 उपन्यास तथा 16 कहानी-संग्रहों की रचना की है। 1955 ई० में 'जन्मभूमि' तथा 'हैराल्ड ट्रिब्युनल' द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में इनकी कहानी सर्वश्रेष्ठ घोषित की गई थी। बंबई तथा गुजरात सरकार की ओर से इनकी सात पुस्तकों को तथा भारत सरकार की ओर से इनकी दो कृतियों को पारितोषिक मिल चुका है।

'खेतर ने खोळे' (खेत की गोद में) इनकी सर्वाधिक सफल कृति है। इसमें तथा इनके समग्र लेखन में प्रमुखतः उत्तर गुजरात का चित्रण हुआ है। इनका साहित्य-जीवन मांगल्य की शुभ दृष्टि से अनुप्राणित है। इन पर महात्मा जी की लोक-सेवा का प्रभाव है तथा जीवन का आलेखन करना इनका प्रिय विषय है। समाज-सेवा तथा पत्रकारिता का प्रभाव भी इनके लेखन पर पड़ा है। प्रवर्तमान रंगमंचीय नाटक के ये समर्थ आलोचक हैं।

पट्टिनत्तार *(त० ले०)* [समय—नवीं शती ई०]

ये प्रसिद्ध कवि तथा विरागी संत थे। संन्यासी होने के पूर्व ये 'काविरि-पू-पूंपट्टणम्' नामक विख्यात कावेरी नदी के मुहाने में स्थित धनी नगर में—जो अब समुद्र में डूब गया है—बड़े व्यापारी थे। जब इनका एकमात्र पुत्र युवावस्था में अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गया तो इन्होंने किसी गरीब बालक को दत्तक पुत्र बना लिया। वह पुत्र जहाज़ों में देशांतर जाकर व्यापार करके प्रभूत धन का स्वामी बना। एक दिन उस पुत्र ने अपनी माँ को एक छोटा संदूक देकर सुरक्षित रखने को कहा और चला गया। इसके बाद वह फिर कभी नहीं लौटा। ये दुखी हुए; उसके दिए संदूक को खोलकर जब देखा तो उसमें एक टूटी सुई थी और ताड़-पत्र का एक छोटा टुकड़ा पड़ा था। उस ताड़-पत्र पर लिखा था—'मरते समय यह सुई भी साथ न जाएगी'। इससे इनके मन में तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया और अपनी समस्त धनराशि गरीबों में बाँटकर स्वयं भिक्षुक बन कर घर से निकल गए। भिक्षाटन करते हुए, भगवान की उपासना करते हुए और लोगों को उपदेश देते हुए ये भ्रमण करते रहे; अंत में मद्रास के निकट एक स्थान में आकर रहने लगे। यहीं पर इन्होंने अंतिम समाधि प्राप्त की।

पट्टिनत्तार के लिखित अनेक ग्रंथ उपलब्ध हुए हैं। इनकी कविता के विषय हैं: शिवभक्ति तथा संसार के प्रति विरक्ति। ऐसे विरक्तिभावपूर्ण पद कदाचित् और किसी तमिल कवि ने इतनी प्रभावोत्पादक शैली में नहीं लिखे हैं—यहाँ तक कि इनकी कृतियों को घर में रखना कभी वर्जित माना जाता था। लोगों को यह डर था कि इनके पढ़ने से परिवार के सदस्य विरागी बन जाएँगे। इनकी भाषा आलंकारिक किंतु सरल होती है। नाव, समुद्र, सिकता आदि के शब्द बार-बार आते हैं। अनेक कहावतें तथा मुहावरे तथा लाक्षणिक प्रयोग इनकी कृतियों में प्राप्त होते हैं।

पट्टी *(पं० पारि०)*

यह मध्यकालीन पंजाबी-काव्य का एक शैली-

गत रूप-विशेष है जिसमे क्रमानुसार वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर से आरभ होने वाले पद्यो का समुच्चय होता है। उदाहरणत 'ससै सोइ सृष्टि जिन साजी' (गु० ग्र० सा० आसा म० 1) ('स' से आरभ)

'पट्टी' को फारसी के 'सीहरफी' (दे०) अथवा हिंदी के 'अखरावट' काव्यरूप का पर्याय माना जा सकता है। पजाबी मे इसी प्रकार का एक अन्य काव्य-रूप 'बावन अक्खरी' (दे०) भी मध्यकाल मे प्रचलित रहा है। किंतु दोनो मे सूक्ष्म अतर यह है कि 'पट्टी' मे अधिकाशत. 'शुभ उपदेश' ही वर्णित होते हैं जबकि 'बावन-अक्खरी' मे विविध विषयो का निरूपण सभव है।

पट्टुक्कोट्टै कल्याणसुदरम् *(त० ल०)* [जन्म—1930 ई०, मृत्यु—1959 ई०]

इनका जन्म तजौर जिले के पट्टुक्कोट्टै नामक स्थान मे हुआ। वही इन्होने आरभिक शिक्षा प्राप्त की। भारतीदासन (दे०) के सपर्क मे आने के उपरात ये प्रसिद्ध कवि के रूप मे प्रस्फुटित हुए। इन्होने मजदूरो और कृषिकार-सघ के आदोलनो और साम्यवादी दल के क्रियाकलापो मे सक्रिय भाग लिया। उसी समय इन्हें सामान्य जनता के जीवन से सबधित नाटक लिखने का अवसर मिला। नाटको के लिए रचित इनके कुछ गीत और प्रगीत बहुत प्रसिद्ध हुए। अपने गीतो के द्वारा इन्होने छदो के एक नवीन रूप की सृष्टि की। श्री कल्याणसुदरम् के कृतित्व पर साम्यवादी विचारधारा की छाप स्पष्ट है। इनकी गणना इस शती के उत्तर भाग के प्रमुख कवियो मे होती है।

पडिक्कासुप्पुलवर् *(त० ले०)* [जन्म—1686 ई०, मृत्यु—1723 ई०]

ये 'तोणटै मण्टलम्' नामक तमिल प्रात के उत्तरी भाग के रहने वाले थे। इसी भूभाग मे इन्होने कवि और आश्रयदाता दोनो पर प्रचलित लोकवार्ताओ को 'तोणटैमणटल शतकम्' नामक 'शतक' पद्य-रचना मे प्रस्तुत किया है। सौ पद्यो वाला यह ग्रथ तत्कालीन स्थितियो की जानकारी के लिए बहुत उपयोगी है। इनके अपने आश्रयदाताओ मे 'माण्टूर् कत्तूरि मुतलियार्' रामनातिपुरम् के 'सेतुपति' राजा तथा इसलाभी प्रभु 'चीतक्काति' थे। इनके बारे मे इन्होने अनेक स्फुट पद्य रचे हैं। विशेष रूप स 'चीतक्काति' के देहावसान पर इनकी शोकाकुल उक्ति कि "भरकर स्वर्ग शासन करने वाले 'चीतक्काति' के लौटे बिना कविगण जीवन चलाने मे असमर्थ होगे" प्रसिद्ध है। इनकी पद्यरचना की विशेषता 'चतम्' की योजना है—यानी प्राश और गेयता-युक्त लय के विशिष्ट विधान की उपलब्धि। इनका एक प्रचलित नीति-ग्रथ 'तण्टलैयार् शतकम्' है जिसके सौ पद्य नीतिपरक तथ्यो को अनुभव के सदर्भ मे काव्योचित ढग से प्रस्तुत करते है।

पण लक्षात कोण घेतो *(म० कृ०)*

इस शीर्षक का अर्थ है—'ध्यान कौन देता हैं'। मराठी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार हरिनारायण आपटे (दे०) का यह सर्वोत्कृष्ट सामाजिक उपन्यास है। इसमे तत्कालीन महाराष्ट्र-समाज मे स्त्री की दयनीय स्थिति तथा अन्य सामाजिक समस्याओ—पुरानी और नयी पीढी का सघर्ष, बाल-विवाह, सम्मिलित परिवार मे विधवा को मिलने वाले कष्ट, अकालमातृत्व, पति के अत्याचार, स्त्रियो की अशिक्षा, दहेज, धर्माडबर, अधविश्वास आदि का यथार्थ चित्रण है। लेखक ने बबई के कुछ प्रगतिशील दपतियो के माध्यम से युवक-युवती वर्ग की सामाजिक रूढियाँ तोडने और प्रगति-पथ पर बढने का उद्बोधन भी किया है। बाल मनोविज्ञान का जैसा सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण इसमे है, वैसा तत्कालीन मराठी उपन्यासो मे नही मिलता। आत्मचरितात्मक शैली मे लिखा गया यह उपन्यास लेखक के कथानक, पात्र और परिस्थितियो स तद्रूप हो जाने के कारण अत्यत कलात्मक बन पडा है। इसकी नायिका यमुना यदि तत्कालीन मराठी स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है तो शकर मामजी उन कठोर-हृदय, स्वार्थी, ढोगी और दुष्ट पुरुषो का, जो अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए घोर-से घोर पाप करने मे भी सकोच नही करते। पर ये तथा अन्य पात्र वर्ग मात्र नही हैं, उनमे अपना निजी वैशिष्ट्य भी है और वे स्थिर न होकर गतिशील हैं। घरेलू भाषा का प्रयोग उपन्यास को और अधिक स्वाभाविकता प्रदान करता है।

पणिक्कर, के० एम० *(मल० ल०)* [जन्म—1895 ई०]

कावालम् माधवप्पणिक्कर का जन्म आलप्पी के पास कावालम् गाँव मे हुआ। सरदार के० एम०

पणिक्कर की प्रतिभा बहुमुखी थी। इतिहासकार एवं प्रशासक का रुचि-वैविध्य साहित्यकार पणिक्कर पर अपना घातक प्रभाव नहीं डाल सका।

इनकी कविता का प्रारंभ स्वच्छंद द्राविड़ी छंद और अँग्रेजी प्रगीतों की नकल से हुआ था। तो भी न जाने क्यों, इनकी मानसिक प्रवृत्ति संस्कृत-छंद और रूढ़िबद्ध विषयों की तरफ उन्मुख हुई, प्राचीन शृंगारिक रुचि के ग्रंथ 'प्रेमगीति', 'बालिकामतम्' और 'चाटूक्तिमुक्तावली' इसके उदाहरण है। संस्कृत के 'कुमारसंभवम्' (दे०) और अँग्रेजी की 'रुबाइयात' का अनुवाद इनकी मध्य-मार्ग-वृत्ति का प्रमाण है। विद्वानों का मत है कि युगानुकूलता के अभाववश ही इनकी काव्य-रचनाएँ कम लोकप्रिय हुईं।

ऐतिहासिक उपन्यास का क्षेत्र दूसरी दिशा है जिसमे पणिक्कर की प्रतिभा फली-फूली। ऐतिहासिक तथ्यों का निर्वाह करते हुए इन्होंने जो उपन्यास रचे उनमें प्रमुख हैं—'परंकिप्पटयालि', 'केरलसिंहम्' (दे०) और 'कल्याणमल्'। 'केरलसिंहम्' स्वाधीनता-प्रेमी पपृशिराजा की वीरगाथा पर आधारित है। 'कल्याणमल्' मुगल शासन की पृष्ठभूमि पर लिखी हुई रचना है। उपन्यासों के इतिहासकार सरदार पणिक्कर के नाम का सादर उल्लेख करते हैं।

पणिक्कर, वि० सि० बालकृष्ण *(मल० ले०)* [समय—1812 ई०-1915 ई०]

संस्कृत, मलयाळम, अँग्रेजी आदि भाषाओं के पंडित। अल्पायु में ही सुंदर भाषा में गद्य लिखना आरंभ किया। चौदहवें वर्ष में 'मानविक्रमीयम्' नामक एक अलंकार-ग्रंथ लिखकर गुरु-दक्षिणा के तौर पर अपने गुरुदेव तथा देश-शासक 'एहुन तंपुरान' को समर्पित किया। संपादन-कला में कुशलता पाने के बाद 'केरलचिंतामणि', 'चक्रवर्त्ति' जैसे समाचार-पत्रों के संपादक के रूप में काम करते रहे। इनकी रचनाओं में 'मानविक्रमीयम्', कुमारस्तोत्रमाला', 'कुमारचरित्रम्' नाटक; 'नागानंदम्', 'साम्राज्य-गीता', 'मंकि गीता', 'ओरु विलापम्' (दे०) 'विश्वरूपम्', आदि सोलह ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

'ओरु विलापम्' खंडकाव्य विश्व-साहित्य में परिगणनीय है। शब्द-चयन, सरसता एवं गांभीर्य आदि गुणों मे यह कृति इनके यश का सबल आधार है। 'साम्राज्य गीता' के अध्ययन से लगता है कि ये लोकमान्य तिलक के आदर्शों से प्रभावित हुए थे। 'विश्वरूपम्' (दे०) श्री पणिक्कर का लिखा एक खंडकाव्य है जो खंडकाव्यों में उत्कृष्ट माना जाता है।

पतंजलि *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—205 ई०]

कतिपय विद्वान् योगदर्शन के लेखक पतंजलि एवं वैयाकरण पतंजलि को पृथक्-पृथक् मानते हैं। पतंजलि के नाम से दो रचनाएँ मिलती हैं—एक 'योगसूत्र' (दे०) और दूसरी 'महाभाष्य' (दे०)। इस स्थान पर योगसूत्रकार पतंजलि विवेच्य है। 'योगसूत्र' पर व्यास (दे० व्यास, बादरायण)-भाष्य, वाचस्पति मिश्र (दे०) का 'तत्त्ववैशारदी', विज्ञानभिक्षु (दे०) का 'योगवार्तिक', भोज (दे०) देव की 'राज मार्त्तंड' नामक वृत्ति, नारायणतीर्थ का 'योगसिद्धांत चंद्रिका' तथा 'सूत्रार्थबोधिनी' एवं रामानंद सरस्वती का 'योगमणिप्रभा' आदि टीका-ग्रंथ मिलते हैं।

योगदर्शन के अंतर्गत पतंजलि के विवेचन की दो दृष्टियाँ प्रमुख हैं—एक दार्शनिक दृष्टि और दूसरी साधना-दृष्टि। यह कहना भी संगत होगा कि योगदर्शन की दार्शनिक दृष्टि गौण ही है, प्रधानतया योगदर्शन की दृष्टि साधनात्मक ही है। इसीलिए योगदर्शन में पतंजलि ने विशेषकर चित्तवृत्ति के निरोध पर बल दिया है। पतंजलि का कथन है कि जब तक चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं होता, तब तक पुरुष (जीव) अपने शुद्ध रूप (कैवल्य) में स्थित नहीं होता। चित्त का विश्लेषण करते हुए पतंजलि ने चित्त की प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा तथा स्मृति—ये 5 वृत्तियाँ मानी हैं। पतंजलि के अनुसार ईश्वर को एक विशेष प्रकार का पुरुष बतलाया गया है। पुरुषविशेष ईश्वर राग, द्वेष आदि मलों, धर्म, अधर्म आदि कर्मों; कर्मविपाकों तथा संस्कारों से निर्लेप है। जगत् की सत्ता पतंजलि ने भोग तथा मोक्ष के लिए मानी है। इसके अतिरिक्त पतंजलि ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि—ये आठ योग के अंग स्वीकार किए हैं।

प्रयोगात्मक दर्शन के विचार से पतंजलि की दार्शनिक देन परम अद्भुत है। साथ ही, शून्यवाद एवं विज्ञानवाद का खंडन करके पतंजलि ने आस्तिकवाद की विचारधारा को पुष्ट किया है, यह भी निःसंकोच स्वीकार्य है।

पतरस (*उर्दू० ले०*)

'पतरस' उर्दू के हास्य-व्यग्य शैली के सुप्रसिद्ध लेखक हैं। इनका जन्म पेशावर मे 1898 ई० मे हुआ था। ये अँग्रेज़ी-साहित्य के बहुत अच्छे ज्ञाता थे। ये हँसाने का प्रयत्न नही करते, अपनी कहानियो एव निबधो मे मनोरंजन नही बल्कि सुधार करना चाहते हैं। ये मानव की दुर्बलताओ से भली भाँति परिचित है और उन दुर्बलताओ के प्रति हास्य के माध्यम से पाठको की सहानुभूति जगाने मे अत्यत सफल है।

पतरस के चरित्र-चित्रण से मनोविज्ञान के अध्ययन का प्रमाण मिलता है। ये मानव-स्वभाव की सब छोटी-छोटी बातो पर दृष्टि रखत हैं और मानव के सब प्रकार के हाव-भावो से परिचित है। पतरस कभी-कभी शब्द चयन तथा वाक्यो की बनावट स भी हास्य का सृजन करते हैं। सहजता तथा सरलता इनके कथानको की विशेषता है।

भाषा प्रवाहशील एव सरल है। कही-कही पजाबी मुहावरो का भी प्रयोग हुआ है। मुहावरो तथा भाषा के कलापूर्ण प्रयोगो से भी इन्होने रसोत्पत्ति की है। 'मजामीन-ए-पतरस' (दे०) इनका निबध-सग्रह है। 'होस्टल', 'कुत्ते', 'लाहौर का जुग्राफिया','कुत्तो का मुशायरा' आदि इनके प्रसिद्ध हास्य-व्यग्यपूर्ण लेख है।

पत्तुप्पाट्टु (*त० कृ०*) [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से दूसरी शती ई० तक]

सघकालीन दस दीघ कविताओ का सग्रह 'पत्तुप्पाट्टु' कहलाता है। इन रचनाओ और उनके रचयिताओ के नाम तथा उनमे प्राप्त विवरण इस प्रकार हैं—'तिरुमुरुकाट्रुप्पडै' (नक्कीरर्—दे०)—भगवान कार्तिकेय की स्तुति मे रचित इस कृति म उनसे सबद्ध विभिन्न तीर्थस्थानो का रोचक वर्णन प्राप्त होता है। कवि ने एक भगवान की स्तुति नाना रूपो मे करते हुए उन रूपो की समानता का प्रतिपादन किया है।

नक्कीरर् का कहना है कि भगवान स्वय भक्त के पास चले आते हैं—भक्त भगवान के पास नही जाता। 'पोरुनराट्रुप्पडै' (मुडत्ताम कण्णियार्) इसमे चोल राजा करिकालन् की साहित्य-मर्मज्ञता और उसके द्वारा कवियो के स्वागत सत्कार का वर्णन है। 'सिरुपाणाट्रुप्पडै' (नत्तत्तनार्)—इसम नल्लियक्कोडन् नामक सामत के गुणो का वर्णन है। 'पेरुम्पाणाट्रुप्पडै' (रुत्तिरंकण्णनार्)—इसमे काचीपुरम् और उसके शासक इलतिरैयन की साहित्य मर्मज्ञता और दानशीलता का वर्णन है। 'मलैपडुकडाम्' या 'कुत्ताराट्रुप्पडै' (पेरुकौशिकनार्)—मलैपडुकडाम् का शाब्दिक अर्थ है पर्वत की प्रतिध्वनि'। इसमे पर्वतीय दृश्यो का मनोहारी वर्णन है। कवि ने वीर राजा नन्नन् का यश-वर्णन किया है। 'नेडुनलवाडै' (नक्कीरर्)—इसमे शीतऋतु, पशु-पक्षियो और अन्य प्राणियो पर शीतकालीन पवन के प्रभाव आदि का तथा नायक से वियुक्त एक नायिका की विरहावस्था का प्रभावशाली वर्णन है। 'मदुरैक्काजि' (मागुडि मरुदनार)—इसमे पाड्य राजा नेडुचेलियन् के शासन-प्रबंध और उसकी राजधानी मदुरै का विशद वर्णन है। कवि ने विभिन्न पक्तियो के द्वारा मूलत सासारिक सुखो की क्षणिकता का प्रतिपादन किया है। 'पट्टिनप्पालै' (रुत्तिरकण्णनार्)—इसमे राजा करिकाल का यश-वर्णन है। कुछ पक्तियो मे तत्कालीन शासन-व्यवस्था तथा विदेशो से तमिलनाडु के व्यापारिक सबधो पर प्रकाश डाला गया है। कवि सासारिक सुखो के उपभोग मे विश्वास करता है, अतः कहता है कि बडी-से-बडी सपत्ति पाने का लोभ होने पर भी युवावस्था मे व्यक्ति को पत्नी से वियुक्त नही होना चाहिए। 'मुल्लैप्पाट्टु' (नप्पूतनार्)—कृति के शीर्षक का अर्थ है 'वन-गीत'। इसमे मुख्य रूप से युद्धक्षेत्र को गए पति के वियोग मे पत्नी की मनोदशा का मर्मस्पर्शी वर्णन है। 'कुरिंजिप्पाट्टु' (कपिलर्—दे०)—इसमे कुरिंजि प्रदेश के एक युवक और युवती के सहज प्रेम का चित्रण है। प्रसिद्ध है कि कपिलर् ने इस कृति की रचना आर्य राजा बृहत्तम् को तमिल सभ्यता एव सस्कृति से परिचित कराने के लिए की थी। इन कृतियो मे प्रथम सात पुरम् (दे० पुरप्पोरुळ) वर्ग की और शेष तीन अहम् (दे० अहप्पोरुळ) वर्ग की हैं। पुरम् वर्ग की रचनाओ मे पाँच आट्रुप्पडै (मार्गनिर्देशक कविताएँ) हैं (दे० आट्रुप्पडै)। इनमे किसी राजा या सामत मे पुरस्कार प्राप्त कर लौटता हुआ कलाकार अपने मित्र के समक्ष उस राजा की विजय का तथा वीरता, उदारता, दानशीलता, तेजस्विता आदि का वर्णन करता है। इन कविताओ मे यह बताया गया है कि उस युग मे कलाकार निर्धन थे। उनकी जीविका का एकमात्र आधार कला थी। अमीर राजागण कलाप्रेमी होने के कारण उन कलाकारो को धनादि दिया करते थे।

पत्नी प्रसाद *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1521-33 ई० के मध्य कभी]

शंकरदेव (दे०) के इस नाटक में कृष्ण-भक्ति-परायण ब्राह्मण-पत्नी और गोपों का संघर्ष यज्ञों में आस्था रखने वाले भक्ति-विरोधी ब्राह्मणों से दिखाया गया है। कर्म-मार्ग पर भक्ति-मार्ग की जय ही इस नाटक का लक्ष्य है। इस कृति का एक विशेष महत्व है। शायन ब्राह्मणों ने आहोम से शंकरदेव के विरुद्ध शिकायत की थी, तभी उन पर कटाक्ष करने के लिए यह नाटक लिखा गया था। नाटक में कार्य का अभाव है, चरित्रांकन सफल नहीं है। लेखक की यह आरंभिक कृति लगती है।

पथिक *(म० कृ०)*

1964 ई० में श्री न० वि० गाडगीळ दे०) ने दो भागों में प्रकाशित 'पथिक' नामक आत्मचरित्र लिखा था। इसमें लेखक के जीवन-वृत्तांत के साथ महाराष्ट्र की राजनीति के मंच पर अभिनीत घटनाओं तथा महाराष्ट्र कांग्रेस का 50-60 वर्षों का इतिहास भी उपलब्ध होता है। लेखक का निवेदन है कि यह आत्मचरित्रात्मक ग्रंथ इतिहास-ग्रंथ नहीं है—जीवन-पथ पर आरूढ़ होकर मंजिल तय कर उस तक जाने वाले यात्री का वृत्तांत है।

'पथिक' के पहले भाग में लेखक के जन्म से 1940 ई० तक का इतिहास है। यह यद्यपि आत्मचरित्र है तथापि इसमें वैयक्तिक जीवन का उल्लेख कम है। विविध राजनीतिक घटनाओं का वर्णन करते हुए, जहाँ कहीं स्वयं लेखक का अस्तित्व रहा है, वहाँ प्रासंगिक रूप से उसने अपनी कथा कही है। दूसरे भाग में 1957 ई० तक का जीवन-इतिहास है। इसमें आत्मकहानी पहले भाग से भी कम है—महाराष्ट्र तथा भारत में घटित घटनाओं का आलेखन ही प्रमुख है; कारण, लेखक अपने जीवन को सामूहिक सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का अंग ही मानता है।

'पथिक' का उद्देश्य सामान्य व्यक्ति को देश की जिस असामान्य परिस्थिति का अनुभव हुआ है, उसका प्रामाणिक निवेदन करना है।

यह ग्रंथ अत्यंत विस्तृत है और अतिव्याप्ति-दोष से ग्रस्त है। दोनों भागों की व्याप्ति 1107 पृष्ठों में हुई है।

पथेर पांचाली *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1929 ई०]

विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय (दे०) के दो खंडों में लिखित बहुचर्चित उपन्यास का पहला भाग 'पथेर पांचाली' तथा दूसरा भाग 'अपराजित' (1929 ई०) है। इस उपन्यास का वातावरण निम्न-मध्यवर्गीय है जहाँ किसी महत्वाकांक्षा-पूर्ति के लिए कोई आवेश तथा व्यग्रता नहीं है। घटना-तंत्र का आधार अपू है जो इस जीवन और संसार के रहस्यों को जानने के लिए तत्पर है। उसकी उत्कंठा और उत्सुकता का सहज रेखांकन छोटे-छोटे प्रसंगों के माध्यम से किया गया है। वह स्वभाव से आसक्तिहीन बालक है। वास्तव में विभूतिभूषण ने बाल-हृदय के कौतुक तथा क्रिया-प्रतिक्रिया का सूक्ष्म रेखांकन करने में अद्वितीय कौशल का परिचय दिया है।

इस रचना का आरंभिक तत्त्व है सहजता-स्वाभाविकता। कृत्रिमता का स्थान न प्रसंग-योजना में है और न पात्र-मनोविश्लेषण में; न प्रकृति-चित्रण में है और न मत-स्थापना में। रचना-तंत्र ऋजु एवं सरल है। दूसरे शब्दों में, गतानुगति से भिन्न इस उपन्यास का मानवीय पक्ष इतना प्रबल है कि इसे थोड़े समय में कई स्तरों पर प्रसिद्धि मिली। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि बँगला जीवन का जितना सच्चा और सही चित्रांकन इस रचना में मिलता है उतना अन्यत्र नहीं। इसलिए यह रचना बँगला उपन्यास की सदा उल्लेखनीय उपलब्धि मानी जाएगी।

पदिट्रुप्पत्तु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से दूसरी शती ई० तक]

'पदिट्रुप्पत्तु' संघकालीन अष्ट पद्य-संग्रहों में से है। यह 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ) काव्य है। इसमें 10 कविताएँ हैं। प्रत्येक कविता में 10 पद हैं। इन दस कविताओं में से प्रथम तथा अंतिम आज अप्राप्य हैं। इन कविताओं में विभिन्न चेर राजाओं और उनकी वंशावलियों का वर्णन है। आर्यों की प्रथाओं के साथ-साथ तत्कालीन तमिल समाज की कुछ प्रथाओं-परंपराओं का वर्णन इस कृति में है जैसे—मृत व्यक्तियों को घड़े में डालकर गाड़ना, रण-क्षेत्र में राजाओं का तुणंगै नृत्य, कन्याओं का कुरवै नृत्य, योद्धाओं द्वारा विजय के उपलक्ष्य में किया जाने वाला नृत्य आदि। कवियों ने समाज में प्राप्त द्रविड़-देवताओं और आर्य-देवताओं की पूजा की परंपरा का उल्लेख भी किया है। 'पदिट्रुप्पत्तु' के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उस

युग में समाज मे ब्राह्मणो का विशेष महत्व था। उस युग के राजा महादानी थे। वे मदिरो को रत्नादि का दान दिया करते थे। जगलो को नष्ट कर उनके स्थान पर मदिरो का निर्माण करवाते थे। विद्वानो के मतानुसार यह कृति अनेक अप्रचलित शब्दो, वाक्याशो और व्याकरण-प्रयोगो से युक्त है। 'पदिट्रप्पत्तु' की भाषा शुद्ध तमिल है। इसमे सस्कृत-शब्दो का प्रयोग बहुत कम हुआ है। इस कृति मे प्राप्त विभिन्न वर्णनो से हम चेर राजाओ की वीरता, दानशीलता, शौर्य, शासन-प्रबध, सैन्य सचालन आदि के विषय में तथा तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परि-स्थितियो के विषय मे जान सकते है। प्राचीन तमिल का इतिहास तैयार करने के लिए इस कृति से पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है।

पद्धडिया बध *(अप० पारि०)*

'पद्धडिया बध' अपभ्रश काव्यो मे एक प्रमुख बध है। इस बध का उल्लेख अनेक अपभ्रश कवियो ने अपने काव्यो मे गौरव के साथ किया है। स्वयभू (दे०) ने अपने महाकाव्य 'रिट्ठ णेमि चरिउ' (दे०) मे उल्लेख किया है कि उसे 'पद्धडिया बध' चतुर्मुख से प्राप्त हुआ (चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय)। 'पउम सिरि चरिउ' (दे०) मे मुख्य रूप से पद्धडिया छंद का प्रयोग हुआ है। 'सुदसण चरिउ' (दे०) मे कवि ने घोषणा की है कि अपनी शक्ति के अनुसार 'पद्धडिया-बध' मे अपूर्व काव्य की रचना करता हूँ (णिय सत्तिए त विरयेमि कव्वु पद्धडिया बधें ज अउव्वु। सुद० च० 1 2-3) —यद्यपि इस कृति मे अनेक छदो का प्रयोग मिलता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पहले कडवक के मुख्य भाग मे पद्धडिया (पद्धतिका या पज्झटिका, पद्धरी) का अधिकाश मे प्रयोग होता होगा। इस छद के प्रत्येक चरण मे 16 मात्राएँ होती हैं। प्राय चार पद्धडिया छदो या आठ पक्तियो से एक कडवक बनता है। पुन अलिल्लह, पादाकुलक, आदि 16 मात्राओ के छदो से बने कडवक को भी 'पद्धडिया-बध' कहा जाने लगा। जिनदत्त सूरि के 'उप-देश रसायन रास' (दे०) मे 16 मात्राओं का अलिल्लह छद है किंतु टीकाकार ने इसे भी 'पद्धडिया-बध' कहा है। फिर कडवक मे 16 मात्राओ से अतिरिक्त अन्य मात्रिक या वर्णिक छद होने पर भी उसे 'पद्धडिया-बध' कहा जाने लगा। हरिषेण ने अपनी 'धम्म परिक्खा' (दे०) नामक रचना मे यह निर्देश किया है कि मैं पद्धडिया-बध' मे रचना कर रहा हूँ, किंतु कृति मे पद्धडिया के अतिरिक्त अन्य अनेक वर्णिक और मात्रिक छदो का भी प्रयोग मिलता है।

पद्‌मनाभ *(गु० ले०)* [समय—1456 ई० आसपास]

पद्रहवी शती के एक महत्वपूर्ण कवि पद्‌मनाभ विसनगर के निवासी थे। जालोर-नरेश अखेराज के ये आश्रित कवि थे। प्राचीन गुजराती के वीररस-प्रधान प्रबध-काव्य 'कान्हडदे प्रबध' (दे०) के रचयिता पद्‌मनाभ ने अपने समसामयिक जीवन को अपनी रचना मे प्रतिच्छा-यित किया है।

इसमे वीर रस के साथ शृगार रस, करुण रस व अद्‌भुत रस की सुदर योजना हुई है। विरमदेव की मृत्यु पर अलाउद्दीन की शाहजादी पिरोज़ा का करुण व हृदयद्रावी कल्पात उसके प्रेम का प्रबल प्रमाण है।

चमत्कारिक घटनाओ, स्वप्नदर्शन, भविष्य-कथन, आदि के समावेश के कारण काव्य प्रभावशाली बन पडा है। जैनेतर प्राचीन प्रबध-काव्य व चरित-काव्य के रचयिताओ मे पद्‌मनाभ का स्थान महत्वपूर्ण है। भाषा की दृष्टि से भी ग्रथ महत्वपूर्ण है।

पद्‌मपाखुडा *(उ० कृ०)*

'पद्‌मपाखुडा' पद्‌मचरण पटनायक (दे०) की प्रेम-प्रधान गीति-कविताओ का सग्रह है। इसकी अधिकाश कविताएँ प्रेम प्रधान हैं। कवि की कला निपुणता ही इस प्रेमाभिव्यजना की यथार्थ शिल्प सपदा है। भावो की स्वच्छता, उनकी अनाविल प्रवहमानता मे लेखक का तत्सबधी आतरिक तादात्म्य प्रकट होता है। इसमे रहस्यवादी अस्पष्टता या अर्थबोध की जटिलता नही है। सहज छदो की स्वच्छद गति एवात उपभोग्य है। अभि-व्यक्ति का निराडबर परिवेश मन को जितना आनदित करता है, भावनाओ का स्वच्छ अमद प्रवाह चित्त को उतना ही आकर्षित करता है। इसमे अलकारो की चमक अथवा कारीगरी नही है—कतिपय रग एव कुछ स्पष्ट रेखाएँ हैं, न कौशल है, और न अतिरजना अथवा वैचित्र्य ही। कृषक-कन्या का मन भी उसी प्रकार है। इसम यौवन का उन्माद नही है, कैशोर्य की स्निग्धता है।

पद्‌ममाळी *(उ० कृ०)*

'पद्‌ममाळी' उमेशचद्र सरकार (दे०) द्वारा

आधुनिक शैली में विरचित प्रथम उड़िया-उपन्यास है। यद्यपि प्रथम प्रयास की सीमाएँ स्पष्ट हैं, किन्तु प्रथम उपन्यास की दृष्टि से इसकी उपलब्धियाँ नगण्य नहीं हैं।

यह ऐतिहासिक यथार्थवादी उपन्यास है। सामाजिक संस्कार की वृत्ति इसमें दिखाई पड़ती है। विषयवस्तु की संरचना सत्य घटना के आधार पर हुई है। कल्पना का प्रयोग अत्यल्प हुआ है। पांचगढ़ को नीलगिरि से अलग कर ब्रिटिश राज्य में मिला लेना, बालेश्वर ज़िला मजिस्ट्रेट हेनरी रिकेट्स द्वारा पांचगढ़ के लुटेरे तथा नीलगिरि के आक्रमणकारियों का विचार आदि बातें ऐतिहासिक हैं।

'पद्ममाळी' की प्राप्ति के लिए नीलगिरि एवं पांचगढ़ के बीच हुआ संघर्ष ही इसमें वर्णित है। इसकी कथावस्तु वैचित्र्यपूर्ण है, भाषा संस्कृतनिष्ठ, शैली वर्णनात्मक तथा संवाद आलंकारिक हैं।

पद्मराजपुराण *(क० कृ०)* [समय— पंद्रहवीं शती का आरंभ]

यह पद्मणाक (समय—1400 ई०) का वार्धक में रचित चरितकाव्य है। इसमें 'दीक्षाबोधे' ग्रंथ के प्रणेता केरेय पद्मरस (तालाब बनवाने के कारण पद्मरस 'केरेय पद्मरस' कहलाए थे) के चरित का वर्णन है। पद्मणांक पद्मरस के वंशज हैं। अतएव उनका यह काव्य उनके पूर्वजों का इतिहास बताने वाला काव्य है। इसे उत्तम और प्रौढ़ शैली में लिखना ही कवि का उद्देश्य है। 'बसवपुराण' (दे०) के कर्ता भीम कवि जिस प्रकार प्रसिद्ध हुए हैं उसी प्रकार पद्मणांक भी यशस्वी हुए हैं परंतु दोनों के रचना-विधान में अंतर भी स्पष्ट है। अधिक संस्कृतनिष्ठता के कारण पद्मणांक का काव्य क्लिष्ट है। यद्यपि उनको 'देसि' का ज्ञान है तथापि 'मार्ग' (अर्थात् संस्कृत) के अधिक प्रभाव के कारण शैली में मणिकांचन-संयोग नहीं दिखाई पड़ता। वस्तु की नवीनता के कारण इस काव्य का महत्व अवश्य है।

पद्मराजु, पालगुम्मि *(ते० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

ये तेलुगु के श्रेष्ठ कहानीकारों में से हैं। कहानी के आधार पर मानव की मानसिक वृत्तियों का उन्मीलन करने का यत्न इन्होंने सर्वत्र किया है। 1951 ई० में इनकी 'गालिवाना' (आँधी) नामक कहानी को अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ था। ये व्यवसाय से रसायनशास्त्र के प्राध्यापक हैं किंतु इनकी प्रतिभा का उन्मेष मुख्य रूप से कहानी के क्षेत्र में तथा आनुषंगिक रूप से कविता, नाटक एवं समालोचना के क्षेत्र में हुआ है। इनका कथा-साहित्य परिमाण में अल्प होकर भी इनकी ख्याति का कारण बना है। रमणीय कथा-निर्माण, रोचक प्रसंगों की कल्पना, शिल्प की विशिष्टता एवं संवादों की सहजता इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

पद्माकर *(हि० ले०)* [जन्म—1753 ई०; मृत्यु—1833 ई०]

रीतिकालीन आलंकारिक कवियों में इनका नाम काफी प्रसिद्ध है। ये जाति के तैलंग ब्राह्मण और बाँदा-निवासी मोहनलाल भट्ट के पुत्र थे। इनके पिता तथा कुल के अन्य लोग भी कवि थे। ये अनेक राजदरबारों में रहे और इनके ठाट-बाट किसी राजा से कम न थे।

पद्माकर ने 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली', 'पद्माभरण', 'जगद्विनोद' (दे०), 'प्रबोध-पचासा', 'गंगा-लहरी', 'रामरसायन', 'भाषा-हितोपदेश', 'ईश्वर-पचीसी', 'आलीजाह-प्रकाश' तथा 'प्रतापसिंह-विरुदावली' आदि ग्रंथ लिखे हैं। प्रथम ग्रंथ वीर रस की रचना है और हिम्मतबहादुर की प्रशंसा में लिखा गया है। द्वितीय ग्रंथ अलंकार-विवेचन के लिए लिखा गया है। 'जगद्विनोद' रस-विवेचन का ग्रंथ है और जयपुर-नरेश जयसिंह के नाम पर रचा गया। शेष अन्य ग्रंथ भी किसी-न-किसी आश्रयदाता की आज्ञानुसार लिखे गए हैं। निश्चय ही रचना की दृष्टि से ये रीतिशास्त्र के ज्ञाता, शृंगार एवं भक्ति के साथ वीर रस के अद्भुत प्रणेता, मुक्तक तथा प्रबंध—दोनों शैलियों के सफल रचनाकार, सफल अनुवादक तथा पचासा-शैली के प्रवर्तक माने जायेंगे। इनकी भाषा सरस, प्रवाहमयी एवं व्याकरण-सम्मत है। काव्यगत रमणीयता की दृष्टि से बिहारी (दे०) ही इनके समकक्ष बैठ पाते हैं और भाषा की अनेकरूपता की दृष्टि से इनकी तुलना तुलसीदास (दे०) से की जा सकती है। इनकी भाषा सरस, सुव्यवस्थित और व्याकरण-सम्मत है। गुणों का पूरा नियोजन इनके छंदों में पाया जाता है। सवैया और कवित्त पर जो अधिकार पद्माकर को प्राप्त है वह किसी और दूसरे कवि को प्राप्त नहीं है। लंबे-लंबे अनुप्रासों और यमकों के प्रयोग का भी इन्हें शौक था और इसमें ये सफल भी हुए हैं। व्यर्थ शब्दों का प्रयोग न करके इन्होंने जहां एक ओर

काव्य को अरुचिकर होने से बचाया है, वहां दूसरी ओर उसे पूर्ण रसमय कर दिया है। इस अलकारवादी कवि ने 'गगालहरी' मे गगा का अलकारो से जो अलकरण किया है, वह देखते ही बनता है। रीतिकाल के श्रेष्ठ अलकारवादियो मे पद्माकर का स्थान अन्यतम है और इस रूप म इनका प्रभाव अपने परवर्तियो पर भी पडा है।

पद्मानदीर माझि *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1936 ई०]

'पद्मानदीर माझि' मानिक बद्योपाध्याय (दे०) का सबसे अधिक जनप्रिय उपन्यास है। पूर्वबग (बाँगला देश) की पद्मा नदी के तट पर बस हुए दरिद्र मछेरो एव माझियो को लेकर यह उपन्यास रचा गया है। साधारण मनुष्य के पूर्णाग जीवन चरित्र के अकन के लिए लेखक ने कुबेर नामक एक दरिद्र माझी को इसका नायक चुना है। केवल कुबेर ही दरिद्र नही, उसके पडौसी सभी गरीब है किंतु इनके दु साहसिक कार्य तथा असाधारण जीवन यात्रा मे एक तीव्र आकर्षण है। कुबेर मे यो देखने से कोई असाधारण विशेषता नही है परतु लेखक ने उसके साधारण चरित्र मे नाना प्रकार के व्यक्ति वैचित्र्य का आविष्कार किया है। वह गरीब होने पर भी बलिष्ठ है, दुख की ज्वाला मे जल कर उसमे अनमनीय दृढता आ गई है। इस निम्नश्रेणी सकुल ग्राम-जीवन के चित्राकन मे लेखक ने सूक्ष्म तथा पूर्ण परिमिति बोध का परिचय दिया है। अत-हीन दरिद्रता मे भी इनमे मध्यवित्त जीवन की हताशा या निर्जीवता नही है। कठिन-हृदया प्रकृति का अत्याचार और धनलुब्ध मनुष्यो के निपीडन के परिणामस्वरूप इनके जीवन मे स्वस्थ स्वाभाविकता का विकास नही हो पाया है, फिर भी इनका जीवन *श्रीमडित* है। *पारिवारिक जीवन* की सकीर्ण परिधि मे सनातन मानव की आशा आकाक्षा, क्षुद्र ईर्ष्या-द्वद्व, क्षुद्र उच्छ्वास-आवेग, निषिद्ध प्रेम की तीव्र मादकता एव कठिन जीवन-सग्राम मे उच्चतर श्रेणी की ग्लानि या कृत्रिमता नही है—इसीलिए वह इतना अधिक आकर्षक है।

लेखक ने पूर्व बग की सरस तथा कृत्रिमता-वर्जित कथ्य-भाषा मे पद्मा नदी तीरवर्ती इस क्षुद्र गाँव मे एक यथार्थ, सरल तथा बलिष्ठ जीवन धारा का आविष्कार किया है और उसकी अभिव्यक्ति म एक सफल उपन्यासकार का परिचय दिया है।

पद्मापुराण *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—सभवत पद्रहवी शती का अतिम दशक]

मनसामगल (दे० मनसा) काव्य-समूह मे विजयगुप्त का 'पद्मापुराण' समधिक जनप्रियता का अधिकारी है। बारिशाल जिले के गैला फुल्लश्री ग्रामवासी विजय गुप्त ने कदाचित् 1484 ई० से 1494 ई० के बीच इस ग्रथ की रचना की थी। मगर कालज्ञापक श्लोक प्रत्येक पाडु-लिपि मे नही है। इसीलिए इसकी प्राचीनता के बारे मे सहज ही सदेह होता है। कालज्ञापक श्लोक के प्रक्षिप्त होने की सभावना को नकारा नही जा सकता।

'पद्मापुराण' का कहानी विन्यास अत्यत शलथ है। चरित्र-चित्रण मे भी दृढता का अभाव है, विशेषत चाँद सौदागर के चरित्र मे। मनसा के चरित्र को भी *भावसाम्यहीन ढग मे प्रस्तुत किया गया है। 'पद्मापुराण'* के वैचित्र्य मे ही इसकी विशिष्टता छिपी हुई है। समसामयिक युगजीवन की प्रतिच्छवि कवि की रसात्मक वर्णन मे दिखाई पडती है। छद एव अलकार प्रयोग मे कवि का कृतित्व उल्लेखनीय है। जनप्रियता की दृष्टि से इस काव्य को श्रेष्ठत्व का गौरव प्राप्त हुआ था परतु काव्य-विचार के *मानदड से यह साधारण रचना ही ठहरती है।*

पद्मावत *(हि० कृ०)* [रचना-काल—1520 ई० स 1541 ई० के बीच]

इसके रचयिता सूफी कवि मलिक मुहम्मद *जायसी* (दे०) हैं। *ग्रथ मे शाहेवक्त की प्रशसा करते हुए* शेरशाह सूरी का उल्लेख किया गया है—

'सेरसाहि दिल्ली सुलतानू। चारिउ खड तपइ जस भानू'।

'पद्मावत' फारसी की मसनवी-शैली के आधार पर दोहे चौपाइयो मे लिखा गया प्रेमाख्यानक काव्य है। *इसकी सारी कथा खडो मे विभाजित है, भाषा ठेठ अवधी* है। इसकी भाषा मे न तो तत्समो के प्रति कोई आग्रह है और न अलकरण के लिए कोई प्रयास दृष्टिगोचर होता है। मुहावरा, लोकोक्तियो और कहावतो का प्रयोग बहुत सार्थक ढग से हुआ है।

सिंहलद्वीप के राजा *गधर्वसेन की पुत्री पद्मा*-वती (दे०) परम सुदरी है। चित्तौड का राजा रत्नसेन (दे०) उसके रूप की चर्चा हीरामन तोते से सुनता है और सुनकर मूर्च्छित हो जाता है। चेत होने पर अपनी रानी नागमती (दे०) को रोता छोडकर साधुओ के कटक के साथ

मार्ग की अनेकानेक बाधाओं को पार करता हुआ सिंहल पहुँचता है। सिंहल दुर्ग पर आक्रमण करके पद्मावती को प्राप्त करता है। राघव चेतन राजा से रुष्ट होकर अलाउद्दीन के यहाँ पहुँचकर उससे पद्मावती के सौंदर्य की चर्चा करता है। अलाउद्दीन पद्मावती की प्राप्ति करने के लिए कई वर्ष तक दुर्ग का घेरा डाले रहता है, बाद में वह राजा को बंदी बना लेता है, किंतु पद्मावती के चातुर्य से राजा मुक्त हो जाता है। अंत में कुंभल-नरेश देवपाल से युद्ध करते हुए राजा की मृत्यु हो जाती है और दोनों रानियाँ उसके साथ सती हो जाती हैं। संक्षेप में विविध प्रयोगों से भरी 'पद्मावत' की यही कहानी है।

इस रचना का वास्तविक उद्देश्य प्रेम-तत्व का सम्यक् निरूपण करना है। साधना-मार्ग के अंतर्गत कवि ने बहुत से भारतीय और अभारतीय तत्त्वों को समन्वित कर परमात्मा-रूपी पद्मावती की प्राप्ति के हेतु आत्मा रूपी रतनसेन की अनेकानेक कठिनाइयों, बाधाओं एवं सफलता-असफलता का विवरण अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। कवि ने अंत में सारी रचना को अन्योक्ति कहा है। इस ग्रंथ में कथा का सांगोपांग विवेचन, गंभीर भावों की सुंदर अभिव्यक्ति, उदात्त चरित्रों की विशदता एवं आदर्श रचना की सोद्देश्यता पूर्णतः झलकती है।

पद्मावती *(हिं० पा०)*

जायसी (दे०)-कृत 'पद्मावत' (दे०) की मुख्य नायिका 'पद्मावती' या 'पद्मिनी' नाम से अभिहित की गई है। कवि ने इसके चरित्र की निर्मिति में ऐतिहासिक तत्त्वों की व्यापकता, अध्यात्म की विस्तृति एवं लोक-गाथा की कोमलता से काम लिया है। सिंहल द्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री के विवाह-योग्य होने पर हीरामन तोता चित्तौड़ के राजा रतनसेन (दे०) से उसकी अपरूप छवि का वर्णन करता है, राजा उसे प्राप्त करने के लिए योगी बनकर सिंहल जाता है, अन्यान्य जटिलताओं को पार करते हुए वह उसे प्राप्त करता है, अंत में राघव चेतन के सिखाने पर अलाउद्दीन किले का घेरा डालता है और रतनसेन की मृत्यु होने पर पद्मावती राजा के शव के साथ सती हो जाती है। विद्वानों ने इस सारी कथा को अन्योक्ति कहा है और इस परिच्छाया में पद्मावती परमात्मा की प्रतीक बन गई है तथा रतनसेन जीवात्मा की स्थिति का अवबोध कराता है, राघव चेतन एवं अलाउद्दीन शैतान तथा नागमती माया की प्रतीक है। कवि ने जागतिक सत्य की झिलमिली में मनोयोगपूर्वक नागमती का चित्रण जितनी पूर्णता के साथ किया है उतना वह पद्मावती का नहीं कर सका। आत्मा-परमात्मा के मिलन के रूप में कवि पद्मावती और रतनसेन के संयोग की स्थिति का बड़ा प्रभावी चित्रण करता है। पद्मावती के कन्यात्व और पत्नीत्व को कवि ने हिंदू-घराने की परिखा में इस तरह अभिव्यक्ति की है कि वह आज्ञाकारिणी पुत्री और पतिपरायणा स्त्री के रूप में आदर्श बन गई है। पद्मावती पूर्णतः काल्पनिक पात्र है और इसका निर्माण सूफ़ी-सिद्धांतों (दे० सूफ़ी काव्य) के अनुकूल हुआ है।

पद्मावती-चरण-चारण-चक्रवर्ती *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1936 ई०]

'पद्मावती-चरण-चारण-चक्रवर्ती' शिवशंकर स्वामी का सर्वश्रेष्ठ प्रगीत-नाटक है। इसमें 'गीतगोविंदम्' (दे०) के अमर कवि जयदेव तथा उनकी पत्नी पद्मावती के अनन्य अनुराग एवं प्रेम की परवशता का मार्मिक चित्रण किया गया है। भाषा अत्यंत सरल, मधुर एवं प्रवाहमयी है। इसकी संगीतात्मकता पाठक को पग-पग पर विह्वल कर देती है। प्रेम की गंभीरता, सूक्ष्मता, मृदुता, परवशता एवं तीव्रता का मनोमुग्धकारी चित्रण जयदेव और पद्मावती की कथा के आधार पर इसमें प्रस्तुत किया गया है। इसके पात्र ऐतिहासिक होकर भी भावना एवं विचारों में सर्वथा आधुनिक प्रतीत होते हैं।

पद्मावती-चरित्तिरम *(त० कृ०)* [रचना-काल—बीसवीं शती का प्रथम दशक]

तमिल के आरंभिक उपन्यासों में परिगणित। रचनाकार—अ० माधवैया (1874-1926 ई०)। उपन्यास के उदय का प्रमुख कारण उन्नीसवीं शती के अंतिम दशकों में उभरती हुई सामाजिक क्रांति है। इसमें नारायणन, उनकी पत्नी शाला, भाई गोपालन, पद्मावती, सावित्री, सीदै, अम्माळ, कल्याणी आदि पुरुष एवं नारी-पात्रों की सहायता से एक पीढ़ी के रीति-रिवाज, सुख-दुःख, आशा-निराशा, गुण-दोष, विचारधारा का—संक्षेप में, समग्र जीवन का—सफल चित्रण किया गया है।

कथा अत्यंत सीधी और स्पष्ट है। उसमें सहज वेग है। घटनाओं का विकास स्वाभाविक है। पात्रों के चरित्र-चित्रण—विशेषकर नारी पात्रों के चरित्र-चित्रण—

मे उपन्यासकार को पर्याप्त सफलता मिली है। पद्मावती आदर्श कन्या है। सावित्री मे प्राचीन आदर्श विचारधारा एव नवीन पाश्चात्य विचारधारा का समन्वय दीख पडता है। सीदै अम्माळ प्राचीन परपराओ मे जकडी हुई नारी है तो कल्याणी प्राचीन नवीन विचारधारा के मध्य भूलती सी दिखलाई पडती है।

माधवैया सुशिक्षित साहित्यकार थे। उन्होने कही पात्रो के माध्यम स, तो कही स्वय पाठको को सुदर उपदेश दिए है। इस उपन्यास मे उन्होने शिक्षा के महत्व पर बल देते हुए नारी-शिक्षा का प्रचार किया है। सामाजिक कुरीतियो का प्रबल शब्दो मे खडन किया गया है। उपन्यास मे सर्वत्र सरल सरस शैली का प्रयोग किया गया है। इसे तमिल के आरभिक सामाजिक उपन्यासो मे विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

पद्मिनी उपाख्यान (*बँ० कृ०*) [रचना-काल—1858 ई०]

रगलाल बद्योपाध्याय (दे०) का 'पदिमनी उपाख्यान' आधुनिक बँगला-साहित्य का पहला महाकाव्य है। अँग्रेजी लेखक टॉड की पुस्तक 'राजस्थान' के आधार पर इसमे चित्तौड पतन की कहानी वर्णित है। प्राचीन भारतवर्ष के स्वाधीनता-सग्राम के प्रति अपनी श्रद्धा एव स्वजाति मे उस गरिमा-बोध के प्रवर्तन की कामना से रगलाल बद्योपाध्याय ने इस प्रकार की काव्य रचना का निश्चय किया था। अँग्रेजी आख्यायिका-काव्य के आदर्श का अनुसरण करते हुए उन्होंने देशात्मबोधक इस रोमानी महाकाव्य की रचना की थी एव इतिहास लब्ध विषयवस्तु, प्रकृति वर्णन एव रोमानी देश-प्रेम की साधारण कविता मे नवप्राण का सचार किया था।

स्कॉट के 'मिस्ट्रेल' के अनुकरण पर रगलाल ने चारण के द्वारा इस काव्य-कथा का वर्णन किया है। यह काव्य घटनाबहुल एव वर्णनात्मक है। इसमे शौर्य की अपेक्षा स्वतत्र व्यक्तित्व, ममतामय जीवनबोध एव स्वदेश एव स्वाभिमान-पुष्ट जाति चेतना की व्यजना अधिक हुई है। इसीलिए इसम निष्ठुर सग्राम की अपेक्षा ममतामय प्रणय चित्र की दीप्ति अधिक है, अलाउद्दीन के द्वारा चित्तौड ध्वस की वर्णना की अपेक्षा भीमसिंह उद्धार की कहानी मन का अधिक स्पर्श करने वाली है। इसीलिए भीमसिह के पुत्रो के द्वारा युद्धक्षेत्र मे मृत्युवरण के स्थान पर पद्मिनी का चिताप्रवेश वर्णन अधिक हृदयविदाही एव महिमामय है। भीमसिह की वीरता नही, पद्मिनी की शूरमहिमा ही इस कहानी का प्रतिपाद्य है और इसी ने इस काव्य को उदात्तता प्रदान की है।

'पदिमनी उपाख्यान' सर्गबद्ध नही है। प्रकृति के आलबन वर्णन का सूत्रपात इसी काव्य से हुआ है। इसकी अभिव्यजना शैली मे कोई नूतनत्व नही है परतु जो कुछ भी थोडे बहुत नये प्रयोग इसमे किए गए हैं उससे परवर्ती कवि मधुसूदनदत्त (दे० माइकेल) को अपने मौलिक पथ आविष्कार मे विशेष सहायता मिली थी।

पद्य (*हिं० पारि०*)

छदो मे लिखे काव्यो को पद्य कहते हैं—छदोबद्धपद पद्यम। इसके निम्नोक्त भेद हैं—(1) जो पद्य मुक्त हो, अर्थात दूसरे पद्य से निरपेक्ष हो, उसे 'मुक्तक' कहते हैं। (2) जहाँ दो श्लोको मे वाक्य-पूर्ति होती है उसे 'युग्मक' कहते हैं। (3) जहाँ तीन श्लोको मे वाक्यपूर्ति होती है, उसे 'सदानितक' अथवा 'विशेषण' कहते हैं। (4) जहाँ चार श्लोको मे वाक्य-पूर्ति होती है उस 'कलापक' है। (5) जहाँ पाँच अथवा इनसे अधिक श्लोको मे वाक्य-पूर्ति होती है उसे 'कुलक' कहते हैं।

पद्यरचनानी ऐतिहासिक समालोचना (*गु०कृ०*)[प्रकाशन-वर्ष—1932 ई०]

केशव हर्षद ध्रुव (1858-1938 ई०) के इस ग्रथ मे बबई विश्वविद्यालय म दिए हुए पाँच व्याख्यान प्रकाशित किए गए हैं। ऋग्वेद से लेकर व्याख्यान देन के समय पर्यंत विविध छदो की उत्पत्ति और विकासक्रम की शास्त्रीय आलोचना इसम की गई है। गुजराती म यह छद विषयक प्रथम ग्रथ है।

पद्यरत्नावलि (*म० कृ०*) [रचना-काल—1865 ई०]

इस ग्रथ की रचना आधुनिक काल के प्रथम उत्थान के कवि श्री कृष्णशास्त्री चिपळूणकर (द०) न की थी। यह अन्योक्ति-युक्त मुक्तक कविताओ का सग्रह है। इसमे सग्रहीत कविताएँ अत्यत रमणीय एव सरस हैं। चिपळूणकर जी की कविता सस्कृत-कवियो के आदर्श पर थी। अत उसे प्राय स्वतत्र न मानकर सस्कृत-कविता का छायानुवाद माना जाता है। वैसे इस ग्रथ की प्रस्तावना मे कवि ने यह इच्छा प्रकट की है कि उनकी कविताओ को

स्वतंत्र एवं मौलिक माना जाए।

चिपळूणकर जी से पूर्व गद्य तथा पद्य की भाषा अलग-अलग मानी जाती थी। इन्होंने 'पद्यरत्नावलि' के ग्रंत में पद्य की भाषा पर एक निबंध दिया है जिसमें गद्य तथा पद्य की रचना एक ही भाषा-संभव है तथा होनी चाहिए, इस बात का प्रबलता से प्रतिपादन किया गया है।

पनी (गु० पा०)

झीणाभाई रतनजी देसाई 'स्नेहरश्मि' (दे०)-रचित उपन्यास 'अंतरपट' (दे०) की नायिका पनी शिक्षा एवं संस्कार के वातावरण में पली आश्रमवासिनी हरिजन कन्या है। पिता करसन का व्यवसाय कपड़े बुनना है। सोनवेल ग्राम मे इस शिक्षित व समझदार बुनकर का सामाजिक जीवन पर ठीक-ठीक प्रभाव है।

रूपवती, बुद्धिमती, स्वाभिमानिनी स्वाश्रयी, पन्ना अर्थात् पनी का शिक्षा-काल एक आश्रम में बीतता है। उसके संस्कारों के गठन व चरित्र-निर्माण में इस आश्रम का पर्याप्त प्रभाव रहा है। पति केशव और अपने ही ग्राम के ब्राह्मण युवक नरहरि के बीच पनी का मन झूलता रहा है। नरहरि की सेवा-वृत्ति व चरित्रशीलता ने उसे बुरी तरह प्रभावित कर लिया है। नरहरि ने उसे नदी में डूबने से बचाया था। केशव भी पढ़ा-लिखा, सच्चरित्र खिलाडी है। बंबई में रहता है। उसके साथ पनी भी बंबई मे रहती है और समाज-सेवा का कार्य करती रहती है। एक दिन केशव-क्लेरा के अभद्र व्यवहार से चिढकर वह बंबई छोडकर अपने गाँव सोनवेल आ जाती है। बहुत दिनों तक पति पत्नी के बीच मनमुटाव रहता है। तभी अचानक पता चलता है कि केशव एक कार-दुर्घटना में घायल होकर अस्पताल में पड़ा है। पनी तुरंत बंबई पहुँचती है। अपने पति की सुश्रूषा करती है किंतु कुछ दिनों में ही केशव की मृत्यु हो जाती है। जिस केशव ने अपनी सहज उदारता से पनी को पर्याप्त स्वतंत्रता दे रखी थी, उसकी मृत्यु पनी को बहुत ज़ोर से जकड़ देती है।

गांधीवादी जीवन-दृष्टि, हरिजन-समस्या, तथा दोहरे व्यक्तित्व का निरूपण करने वाले इस उपन्यास की शैलीगत विशेषता यह है कि उसके प्रमुख पात्र अपना-अपना कथा-वृत्तांत कहते जाते हैं और कथा-प्रवाह आगे बढ़ता जाता है। पनी की भाव-विह्वलता का चित्रण बड़ा मार्मिक बन पड़ा है।

पप्पु (मल० पा०)

पी० केशवदेव (दे०) के उपन्यास 'ओटयिल् निन्नु' (दे०) का प्रमुख पात्र। पप्पु उद्धत स्वभाव का रिक्शावाला है। जीवन के एक मोड़ पर एक दुर्घटनाग्रस्त बालिका का पालन-पोषण उसका व्रत बन जाता है और उसके लिए कठोर परिश्रम करके वह राजयक्ष्मा मोल लेता है। उस बालिका को पढ़ा-लिखाकर योग्य वर के हाथ मे सौंप देने के बाद वह खाँसता-खाँसता सुदूर राजमार्ग में गायब हो जाता है।

पप्पु का चरित्र-चित्रण इस तथ्य का दृष्टांत है कि जीवन की कितनी ही शोक-संकुल गहराइयों में भी त्याग और स्नेह की कलियाँ विकसित हो सकती हैं। पप्पु केशवदेव के पात्र-रचना-कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

परछावियां दी पकड़ (पं० कृ०)

'परछावियां दी पकड़' डा० अमरीक सिंह का एक ऐसा नाटक है जिसकी तकनीक तथा नाटकीय संरचना की पंजाबी-क्षेत्र मे विशेष चर्चा है। एक दफ़्तर से एक पात्र को निकाल कर उसके स्थान के लिए इंटरव्यू लिया जाता है और अंततः उसी पात्र को फिर रख लिया जाता है। इस संपूर्ण घटना-विकास में समाज के उच्चवर्गीय प्रबंधक-वर्ग को बड़ी बेरहमी से नंगा किया गया है। लेखक का व्यंग्य-प्रहार विलक्षण है। पंजाबी-साहित्य में इसके समकक्ष दूसरी कॉमेडी नहीं है।

परणर (त० ले०) [समय—पहली या दूसरी शती ई०]

ये तृतीय संघ के सदस्य कवि और प्रसिद्ध कवि 'कपिलर्' (दे०) के घनिष्ठ मित्र थे। इनके रचे हुए 82 पद्य संघकालिक संकलनों में उपलब्ध हुए हैं। ये विविध मानवीय अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण करने में अतुलनीय थे। इनके समय के विभिन्न राजाओं, ग्रामों या नगरों तथा घटनाओं का उल्लेख इनकी कविता की एक प्रमुख विशेषता है। लगभग प्रत्येक पद्य में इस प्रकार का उल्लेख अवश्य हुआ है। अतः इनकी रचनाओं का अध्ययन प्राचीन तमिल-प्रदेश का इतिहास समझने में अत्यंत सहायक है। ये कवियों तथा राजाओं के आदर के पात्र थे। लगता है कि ये भ्रमणशील थे। 'नेडु-ञ-चेरल्-आदन्' नामक चेरराजा और 'पेरु-विरल्-विळि्ळ' दोनों में भीषण युद्ध हुआ था जिससे

बडा विनाश हुआ था। इस घटना का इन्होने मार्मिक वर्णन किया है। 'बेकन' नामक राजा ने किसी कारण से अपनी पत्नी को त्याग दिया था। इस कवि ने अपनी मार्मिक कविता से उस राजा को मुग्ध करके, उसके द्वारा पुन पत्नी को स्वीकृत करवा दिया था। 'शेरमान्' राजा की समुद्री यात्राओं का वर्णन करके इन्होने उससे पुरस्कार पाए थे। वर्तमान केरल मे उस समय स्थित दो नरेशो— 'नन्नन्' तथा 'शेरमान्' के युद्ध का इन्होने वर्णन किया है। इनकी कविता मे नगरो, नदियो, पर्वतो तथा विभिन्न प्रकार की प्राकृतिक सभ्यता का अद्भुत चित्रण हुआ है।

परणिप्पाट्टु *(त० पारि०)*

तमिल काव्यशास्त्र म परिगणित 96 प्रकार की 'प्रबध-पद्धतियो मे 'परणि' एक पद्धति अथवा विधा है। यह एक प्रकार का वीर-रसात्मक खडकाव्य होता है जिसमे किसी ऐसे योद्धा की प्रशसा होती है जिसने युद्धरग मे एक हजार हाथियो को मारा हो। इसकी वर्णन पद्धति इस प्रकार होती है—राजा या योद्धा की प्रियतमा विरह मे पीडित रहती है, विजयी योद्धा लौट आता है, मान करती हुई नायिका को शात करने के लिए पहले कवि स्वय सौध के बद कपाट के सम्मुख योद्धा के वीर कृत्या का वर्णन करके गाता है जिससे उसकी प्रियतमा का हृदय युद्धरग की बातें सुनकर विचलित होता है। इस वर्णन मे युद्धरग मे भूत-समुदाय का नृत्य, उनका महाभोज, कालीदेवी तथा भूतो का सवाद इत्यादि होते है। 'परणि' 'भरणि' नक्षत्र का सकेत देता है, 'भरणि' नक्षत्र के अधिष्ठाता यमराज तथा कालिका है; कहा जाता है कि इस नक्षत्र के दिन युद्धरग म भूतो का उत्सव होता है। इसी आधार पर 'काव्य-विधा' का नाम 'परणि-काव्य' पडा है। तमिल मे अब उपलब्ध पुरातन 'परणि-काव्य' महाकवि 'जयकोडार' द्वारा रचित 'कलिंगत्तुप्पुरणि' है।

परती परिकथा *(हि० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1957 ई०]

यह फणीश्वरनाथ रेणु (दे०) का प्रसिद्ध आच लिक उपन्यास है जिसमे लेखक ने नानाविध कथाओ के माध्यम स परानपुर गाँव की समूची विशेषताओ और असगतियो का जीवत चित्रण किया है। लेखक ने अनेक अवान्तर कथाओ, किवदतियो तथा लोककथाओ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर वहाँ के लोगो की अनभिज्ञता, क्षुद्रता, बुद्धिमत्ता के प्रदर्शन की भावना, समाज के बदलते हुए सदर्भों आदि को स्थापित किया है। कोसी-योजना के अतर्गत ग्राम-सुधार-सबधी जो विकास-योजनाएँ क्रियान्वित की गई थी तथा उस सदर्भ मे जमीदारी उन्मूलन आदि के जिन कार्यक्रमो पर अमल किया जा रहा है उनके प्रति गाँव वालो की प्रतिक्रियाएँ तथा गाँव के राजनीतिक दलो के दाँव-पेच आदि का सजीव प्रत्यकन करते हुए लेखक ने यथार्थ वर्णन-कला की दृष्टि से एक सर्वथा अभिनव प्रयोग किया है। इस उपन्यास मे अनेक छोटी-बडी कथाओ की भरमार के साथ साथ पात्रो की भरमार भी दिखाई देती है, और जिस प्रकार किसी एक कथा को प्रमुख कथा नही माना जा सकता उसी प्रकार किसी भी पात्र को नायकत्व का श्रेय भी नही दिया जा सकता। लेखक ने छोटे बडे दर्जनो पात्रो का रेखाचित्रात्मक शैली मे ऐसा चरित्र-चित्रण किया है कि वे सभी समानरूपेण पाठक के स्मृति-पटल पर अकित रहते हैं। फिर भी जितेंद्र तथा ताजमणि की गणना प्रमुख पात्रो के रूप मे की जा सकती है। स्थानीय शब्दो के भरपूर प्रयोग से आचलिकता का रग पूरी गहराई के साथ उभर कर आया है और पाठक के मानस-नेत्रो के समक्ष परानपुर गाँव ही नही अपितु पूरा पूर्णिया जिला ही अपनी भौगोलिक ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विशेषताओ के साथ इस प्रकार गुजर जाता है मानो वह कोई उपन्यास न पढ़कर डॉकुमेंट्री फिल्म देख रहा हो।

परमजोति मुनिवर *(त० ल०)* [समय—सोलहवी शती]

ये 'मलरै' नगर के शैव सन्यासी थे। उस नगर के विशाल एव रमणीय मदिर मे विराजने वाले 'सोमसुदर' भगवान की परपरा-प्राप्त लीला-कथाओ का काव्यगत वर्णन इन्होने प्रस्तुत किया है। इन कथाओ के मूल पौराणिक रूप सस्कृत भाषा मे रचित 'स्कदपुराण' के हालास्य माहात्म्य नामक भाग म मिलते हैं। इसका तमिल पद्यबद्ध अनुवाद इनका 'तिरुविलैयाडल् पुराणम' नामक ग्रथ है। इस पद्य-रचना मे महाकाव्य की गरिमा दर्शनीय है। कथा-वस्तु धार्मिक महत्व सपन्न होने के साथ भगवान शिव के लीला-प्रसगो पर केंद्रित होन से अत्यत रोचक हो उठी है। काव्य-शैली परिमार्जित और आकर्षक है। ग्रथ का विपुल आकार चकित करने वाला है। इसके 68 अध्यायो म कुल 3363 पद्य प्रस्तुत हैं।

परमप्पयासु (परमात्मप्रकाश) *(अप० कृ०)*

'परमप्पयासु' के लेखक योगींद्राचार्य अथवा योगींद्र (दे०) हैं। ग्रंथ में रचना-काल का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

'परमात्मप्रकाश' जैन-धर्म की आध्यात्मिक रचना है। इसमें प्रभाकर, जो संभवतः योगींद्र का शिष्य था, उनसे आत्मा-परमात्मा के विषय में कुछ प्रश्न करता है। उन प्रश्नों के उत्तर-रूप में इस ग्रंथ की रचना हुई है। यह ग्रंथ दो अधिकारों में विभक्त है। प्रथम अधिकार में बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा का स्वरूप, जीव के स्वशरीर-प्रमाण की तथा द्रव्य, गुण, पर्याय, कर्म-निश्चय, सम्यक् दृष्टि, मिथ्यात्व आदि की चर्चा की गई है। द्वितीय अधिकार में मोक्ष-स्वरूप, मोक्ष-फल, मोक्ष-मार्ग, अभेद रत्नत्रय, समभाव, पाप-पुण्य की समानता और परम समाधि का वर्णन है।

अध्यात्म-चिंतन के बीच ग्रंथ में कहीं-कहीं नीति और सदाचार के उपदेश भी मिलते है।

इसमें अधिकतर दोहा छंद का प्रयोग हुआ है और बीच-बीच में कुछ गाथाएँ भी मिलती हैं। लेखक ने अपने मंतव्य को स्पष्ट करने के लिए यथास्थान उपमा, दृष्टांत, श्लेष आदि अलंकारों का प्रयोग किया है और उपमानों का चयन सामान्य जीवन की घटनाओं व दृश्यों से किया है। लेखक ने धर्म के बाह्य रूप और कर्मकांड को गौण बताते हुए सदाचार एवं आंतरिक शुद्धि पर बल दिया है।

तत्कालीन भाषा के स्वरूप एवं संत-साहित्य के पूर्वरूप के ज्ञान की दृष्टि से यह ग्रंथ अत्यंत महत्वपूर्ण है।

परम सिवानंदम्, अ० मु० *(त०ले०)* [जन्म—1914 ई०]

ये तमिल भाषा के अध्यापक के रूप में प्रसिद्धि पा चुके है। संप्रति मद्रास शहर-स्थित 'पच्चैयप्पन् कॉलिज' के स्नातकोत्तर तमिल-विभाग के अध्यापक हैं। तमिल-साहित्यानुशीलन और स्वतंत्र निबंधों के क्षेत्रों में इन्होंने अपनी लेखनी के बल पर प्रतिष्ठा पाई है। इनकी कुछ प्रकाशित रचनाएँ है—'तमिलक वरलाढ़' (तमिल साहित्य का इतिहास), 'कङ्कैक्करैयिल् काविरित् तमिल्' (गंगातट पर कावेरी का तमिल-निबंध), 'वटक्कुम् नेरळुम्' (उत्तर और दक्षिण), 'कवितैयुम् वाल्क्कैयुम्' (आलोचना) इत्यादि हैं।

परमानंद (नंदराम) *(क्श्० ले०)* [जन्म—1791 ई०; मृत्यु—1879 ई०]

कश्मीर-स्थित प्रसिद्ध तीर्थस्थान मटन में (जहाँ मार्तंड मंदिर के ऐतिहासिक अवशेष पाए जाते हैं) जन्म। प्रकृति की गोद में पले-बढ़े। प्रारंभिक शिक्षा मकतब में हुई। मौलाना साहिब ने उन दिनों की अदालती भाषा फ़ारसी में शिक्षा दी। सिख साधु-यात्रियों से गुरुवाणी सीखी; गीता, भागवत्, पुराण और शैव दर्शन का अध्ययन किया। 25 वर्ष की आयु में पटवारी (लेखपाल) बने। तब अंतर्मन का कवि जाग उठा। ठेठ कश्मीरी, संस्कृत-मिश्रित कश्मीरी, हिंदुस्तानी एवं पंजाबी-मिश्रित कश्मीरी, फारसी-मिश्रित कश्मीरी छंदों में रचना की। इनके काव्य में वेदांत और भक्ति का अद्भुत सम्मिश्रण है। मेधावी एवं प्रतिभा-संपन्न मौलिक रचनाओं के कारण इन्हें कश्मीरी काव्य का वरिष्ठ कवि कहा जाता है। इन्होंने आध्यात्मिक गुत्थियों को सरल भाव से सामान्य रूपकों द्वारा समझाया-सुलझाया है। कश्मीरी काव्य में अलंकार, लय और शैली के क्षेत्र में इनका जितना मौलिक योगदान है, उतना और किसी कवि का नहीं। यदि हम आत्मा और परमात्मा के मिलन की अंतर्मन की चिरंतन पुकार सुनना चाहें तो हमें परमानंद द्वारा रचित ग्रंथ 'राधास्वयंवर', 'सुदामाचरित', 'शिवलग्न' तथा 'ज्ञान-पर्द' में अनेक भक्ति-भजन एवं स्तुतियों (कश्मीरी की 'लाला') का अध्ययन करना होगा।

परमानंददास *(हिं० ले०)* [जन्म—1493 ई०; मृत्यु—1584 ई०]

संत कवि परमानंद दास 'अष्टछाप' (दे०) के प्रमुख कवि हैं, इन्हे विरह-गान में विशेष ख्याति प्राप्त है। महाप्रभु वल्लभाचार्य के शिष्य परमानंद दास श्यामसुंदर को अपना प्राणाधार समझते थे और उनके शोभा-सागर में आकंठ मग्न रहते थे। लीला-रसिक संत के रूप में इनके काव्य में हृदय की कोमलता तथा मधुर भावों की अभिव्यक्ति दर्शनीय है। इनके समग्र पदों का संग्रह 'परमानंद सागर' नाम से प्रसिद्ध है। इनकी भक्ति बाल, कांता और दास भाव की है। इनके मंगल-दर्शन के पद प्रसिद्ध हैं। मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों में परमानंददास कृष्ण-प्रेम की ध्वजा माने जाते हैं।

'परमानंद सागर' में वात्सल्य भाव का विस्तार से चित्रण हुआ है। सूरदास (दे०) की भाँति इन्हें भी

बाल-लीला का बोध हुआ था। कवि ने बाल-लीला-सबधी पदो मे कृष्ण-जन्म, पालना, छठी, स्वामिनी जी का जन्म, गोपी उपालभ, सखाओ की केलि, यमुना-विहार, गोदोहन, गोचारण, वन-क्रीडा, दानलीला आदि पर काफी विस्तार से विचार किया है। किशोर-लीला के अतर्गत गोपियो की आसक्ति, राधा की आसक्ति, कृष्ण-रूप-वर्णन, युगल-रस-वर्णन, रासलीला, अतर्धान, जलक्रीडा, मान-लीला, मनुहार, फलोत्सव, खडिता समय, हिडोल, यमुना-विहार आदि शीर्षको मे गोपी या राधा भाव की कातारति का प्रस्फुटन अधिक है। कृष्णलीला के वर्णन मे इनकी समानता केवल सूरदास से की जा सकती है। मदिर, शोभा, पवित्रा, अक्षय तृतीया, रथयात्रा, दशहरा आदि से सबधित पद इनकी शुद्ध धार्मिक और साप्रदायिक रुचि के परिचायक हैं और इस रूप मे इन्हे 'अष्टछाप' के एक अन्य कवि कृष्णदास के साथ बार-बार तोला जा सकता है। निश्चय ही मध्यकालीन वैष्णव कवियो मे परमानद दास प्रेम और भक्ति के पर्याय बन गए हैं।

परमानद मेवाराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1865 ई., मृत्यु—1938 ई०]

परमानद मेवाराम का जन्म हैदराबाद (सिंध) मे हुआ था। वे यौवन-काल मे ईसाई मजहब के सिद्धातो से प्रभावित होकर ईसाई बन गए थे और सिंध मे मसही मत का प्रचार करने लगे थे। परमानद मेवाराम ने 1900 ई० के आस-पास 'जोत' नामक सिंधी साहित्यिक पत्रिका का सपादन-कार्य सँभाला था। इस पत्रिका के द्वारा इन्होने मृत्युपर्यत सिंधी-साहित्य की जो सेवा की वह अविस्मरणीय है। इन्होंने 'जोत' पत्रिका मे समय-समय पर प्रकाशित अपने साहित्यिक निबधो के दो सग्रह 'गुलफुल' (1925 और 1936 ई०) नाम से पुस्तक रूप मे प्रकाशित कराए थे जो इनकी सौष्ठवपूर्ण और गरिमामयी भाषा शैली का प्रमाण है।

इसी प्रकार इन्होंने 'जोत' मे समय-समय पर प्रकाशित अपनी हास्य और व्यग्यपूर्ण कहानियो को प्रकाशित कराया था। इनके दो शब्दकोश (सिंधी-अंग्रेजी शब्दकोश—1910 ई०, अंग्रेज़ी सिंधी शब्दकोश—1932 ई०) आज तक सिंधी साहित्य के क्षेत्र मे प्रमाण ग्रथ माने जाते हैं। बीसवी शती ईसवी के सिंधी-गद्यकारो मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

परमेश्वर, कवींद्र *(बँ० ले०)*

कवींद्र परमेश्वर का कोई परिचय नही मिलता। अनुमान है कि इनका नाम परमेश्वर था और उपाधि 'कवींद्र'। किसी-किसी का मत है कि इनका नाम श्रीकर नदी था। गोपनाथ शास्त्री के मतानुसार इनका नाम वाणीनाथ था और 'कवींद्र' उपाधि थी। ये कूचबिहार राज्य मे मत्री थे और मूलत चटगाँव के निवासी थे।

'पाडव विजय' अथवा 'विजयपाडव' इनकी कृति है। हुसेनशाह के सेनापति लस्कर परागलखान ने चटगाँव-विजय करने के पश्चात् इन्हे 'महाभारत' की कथा लिखने का आदेश दिया था।

'पाडव विजय' 'महाभारत' की सपूर्ण कथा का अनुवाद है। यह 'महाभारत' का प्राचीनम अनुवाद है और उत्तर बग मे अत्यत लोकप्रिय है। अनुमानत इसका रचना-काल सोलहवी शती का दूसरा-तीसरा दशक है।

परमेश्वर भट्ट, एस० वी० *(क० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

कन्नड के श्रेष्ठ कवि श्री एस० वी० परमेश्वर भट्ट जी का जन्म शिवमोग्गा जिले के तीर्थहल्ली के पास एव गाँव मे एक सभ्रात ब्राह्मण-परिवार मे हुआ। स्वर्गीय बी० एम० श्रीकठय्या (कुवेंपु) (दे०) आदि कविजनो से प्रेरणा लेकर ये विद्यार्थी-जीवन मे ही काव्य-रचना मे प्रवृत्त हो गये थे। विद्यार्थी-जीवन मे ही इन्होने वर्ड्सवर्थ के काव्य का कन्नड काव्यानुवाद प्रस्तुत किया जिस पर इन्होंने रजत-पदक मिला था। इन्होंने कालिदास (दे०) की समस्त कृतियो का कन्नड अनुवाद किया है। ये अनुवाद काफी सरल हैं। 'गाथा सप्तशती' का भी सरल अनुवाद इन्होंने किया है। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'जहाँनारा', 'रागिनी', 'इद्रचाप', 'उप्पकडलु', 'चद्रवीथि' आदि। शृगार इनका सर्वाधिक प्रिय रस है, फलत उसके निरूपण मे इन्हें विशेष सफलता मिली है। 'इद्रचाप' मुक्तक कविताओ का सकलन है तो 'उप्पुकडलु' में इनकी सूक्तियाँ सगृहीत है। 'रागिनी', 'जहांनारा' आदि में सगृहीत कविताओ मे रोमाटिक भावना प्रधान है। प्रकृति-प्रेम एव सौंदर्य-प्रेम के चित्रण मे इन्हें विशेष सफलता मिली है। भाषा मे लालित्य है। ये एक सफल आलोचक भी हैं। 'सीकुमोर' इनके श्रेष्ठ आलोचनात्मक निबधो का सकलन है।

परयन् तुळ्ळल् *(मल पारि०)*

यह कुंचन नंपियार (दे०)-रचित तुळ्ळल् कथाओं के तीन प्रकार-भेदों में से एक है। अन्य दो प्रकारों की अपेक्षा इसमें शिथिल लय के गान के लिए उपयुक्त छंदों का प्रयोग हुआ है। वस्त्र और मल्लिका इसमें मुख्य हैं। 'परयन्' केरल की एक निम्न जाति है और उसका वेश धारण करके प्राकृत नृत्य करने की प्रथा मंदिरों के कुछ उत्सवों में हुआ करती थी। इस तुळ्ळल् का प्रादुर्भाव यहीं से हुआ होगा।

परशमणि *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1914 ई०]

कवयित्री नलिनीबाला देवी (दे०) के 'सपोनर सुर' कविता-संग्रह की जो विशेषताएँ अन्यत्र बताई गई हैं, वे इस संग्रह में भी हैं, अर्थात् व्यथित हृदय की अनुभूति, प्रकृति में विश्व-स्रष्टा के सौंदर्य की खोज आदि। इस संग्रह की एक अन्यतम विशेषता यह है कि इसमें राष्ट्रीय गीतों का समावेश है।

परशुराम *(बँ० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

जिस प्रकार केवल कहानी लिखकर ओ' हेनरी तथा मोपासां विश्व-साहित्य में प्रसिद्ध हुए हैं, ठीक उसी प्रकार राजशेखर बसु ने केवल कहानी की रचना करके समस्त भारत में ख्याति प्राप्त की है। शायद ही कोई ऐसी भारतीय भाषा हो जिसका पाठक राजशेखर बसु (छद्मनाम : परशुराम) की व्यंग्य-कहानियों से परिचित न हो।

प्रथम श्रेणी में एम० एस-सी० (रसायनशास्त्र) परीक्षा उत्तीर्ण, बंगला केमिकल्स के मैनेजर, राजशेखर ने 'भारतवर्ष' पत्रिका में परशुराम के छद्मनाम से अपनी पहली कहानी 'बिरिंचिबाबा' (दे०) प्रकाशित कराई थी। इस सरस व्यंग्य-कथा के प्रकाशित होते ही इन्होंने पाठकों के मन में स्थायी स्थान बना लिया था, इसके बाद इन्होंने इस प्रकार की कहानियों का पहला संकलन 'गड्डालिका' (1924 ई०) प्रकाशित कराया था। रवींद्रनाथ (दे०) ने इन कहानियों की प्रशंसा करते हुए बंगाल केमिकल्स के मालिक तथा विख्यात नेता प्रफुल्लचंद्र राय को लिखा था कि रस जाँचने की कसौटी में कसकर मैंने देखा कि आपके बंगाल केमिकल्स का यह आदमी (परशुराम) किसी तरफ़ से भी 'केमिकल गोल्ड' नहीं है; वह बिल्कुल सच्चा खरा सोना है। परशुराम के अन्य कहानी-संग्रहों के नाम हैं—'कज्जली' (1927 ई०), 'हनुमनेर स्वप्न' (1937 ई०), 'कृष्णकली', 'नीलतारा', 'आनंदीबाई' इत्यादि गल्प। अंतिम काव्य-संग्रह पर इन्हें 1955 ई० में साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला था। परशुराम की प्रत्येक कहानी में व्यंग्य और विनोद स्पष्ट है, किंतु वे किसी को आघात नहीं पहुँचाते वरन् एक शुभाकांक्षी के रूप में विद्रूप की रेखाओं द्वारा चरित्रों को अंकित करते हैं, जहाँ एक चिंतनशील विश्लेषक मन की प्रच्छन्न हँसी कहानियों को मनोरम बना देती है।

प्रबंध-रचना की दिशा में भी राजशेखर की अनन्यता स्पष्ट है। 1936 ई० में इन्होंने 'चलंतिका' के नाम से एक अभिनव बँगला-शब्दकोश प्रकाशित कराया था। इनका निबंध-संग्रह 'लघु-गुरु' (1939 ई०) तथा 'बिचिता' (1955 ई०), 'वाल्मीकि रामायण', 'व्यास महाभारत' का संक्षिप्त अनुवाद एवं 'मेघदूत' का सटीक अनुवाद बँगला साहित्य-क्षेत्र की अमूल्य निधियाँ हैं।

परशुराम *(म० ले०)* (जन्म—1754 ई०; मृत्यु—1844 ई०)

परशुराम नासिक के पूर्व में स्थित वावी गाँव के निवासी थे। ये जाति से दर्जी थे। ये बाल्यकाल से विट्ठल के अनन्य उपासक रहे। कहा जाता है कि इन्हें भगवान विट्ठल ने दर्शन भी दिए थे।

इन्होंने लावणी और पोवाडों की रचना की थी। विषय-चयन की दृष्टि से इनकी लावणियाँ वैविध्यपूर्ण हैं। परशुराम ने अनेक विनोदपूर्ण प्रसंगों को अपनी लावणियों में गुंफित कर उनकी सरसता को द्विगुणित किया है। इनकी लावणियों में तत्कालीन परिस्थितियों, समाज में प्रचलित विभिन्न रीति-नीतियों, प्रथाओं, रहन-सहन आदि का विस्तार से उल्लेख किया है।

इनके काव्य का यह वैशिष्ट्य है कि इन्होंने अध्यात्मपरक लावणियाँ भी लिखी हैं। इनके पोवाडों में अँग्रेज शासन-काल में भारत की अवस्था का चित्रण मिलता है।

इनके काव्य की भाषा संस्कृत-प्रचुर, सालंकृत नहीं है, वरन् स्वच्छंद और गतिमान शुद्ध मराठी है। इनके काव्य का सौंदर्य उसकी सहजता में है।

परशुरामन् *(मल० पा०)*

परशुरामन् को प्रधान कथा-पात्र के रूप में ग्रहण कर मलयाळम में 'वलिय कोयित्तपुरान' (दे०), 'कृष्ण ज्ञान' आदि कवियो ने कथकळि मे काव्य-ग्रथ लिखे हैं। केरल मे एक कथा प्रचलित है कि परशुराम ने अपना परशु सागर में फेंका था और जहाँ वह गिरा वहाँ तक से सागर हट गया। उसी स्थान का नाम केरल हुआ। केरली लोककथा नायक परशुराम के बारे मे कई कथाएँ प्रचलित हैं।

पराजपे, शकुतला *(म० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

इनका जन्मस्थान पूना है। इन्होने बबई से बी० एस सी० किया था और कैंब्रिज से बी० ए० और उसके बाद एम० ए० की परीक्षा भी उत्तीर्ण की थी।

इनके 'घराचा मालक' नामक उपन्यास मे प्रतिपाद्य विषय मौलिक है। इनका 'पाघरलेली कातडी नाटक विलोभनीय है। इसकी कथा मूलत सिनेमा के लिए लिखी गई थी। 'चढाओढ' तथा 'सोयरीक' स्लेप्ट सॉफ नामक फ्रेंच नाटककार के नाटकों के रूपातर है। 'थ्री' इअर्स इन आस्ट्रेलिया' अंग्रेजी मे लिखित स्थल वर्णन सबधी ग्रथ है।

'भिल्लणीचीबोर' इनके ललित निबधो का सग्रह है जिनमे कुछ व्यक्ति-रेखाचित्र भी हैं।

परिपाडल *(त० प्र०)*

यह एक काव्य-विधा है जिसका दूसरा नाम 'परिपाट्टु' भी है। यह गेय काव्य है और इसमे 25 से लेकर 400 तक चरण होते हैं। तमिल के चारो प्रधान छद-भेद —वेण्-पा, आशिरिय प्-पा, कलि प् पा, वञ्जि-प् पा—इसमे प्रयुक्त हो सकते हैं और बीच-बीच मे 'पृथक् शब्द' (जो चरण का अग न होकर अलग रहता है), 'छुरितकम्', 'अरागम्' आदि भी रहते हैं।

'परिपाडल' का मुख्य विषय प्रेम है जो भगवान के प्रति आत्म निवेदन के रूप मे भी हो सकता है। इसमे पर्वत क्रीडा, जल-क्रीडा आदि के वर्णन होते हैं और प्रबधात्मक कथानक न होने पर भी घटनाओ का उल्लेख रहता है।

सघकालिक साहित्य मे ऐसे 70 गेय काव्यो का एक सकलन किया गया था जिनमे से अब केवल 22 ही उपलब्ध हैं। इस सकलन का नाम भी 'परिपाडल' ही है। इन पदो को गाने के लिए रागो के नाम भी दिए गए हैं।

परिपाडल *(त० कृ०)* [रचना काल—ई० पू० दूसरी शती से दूसरी शती ई० तक]

'परिपाडल की गणना 'ऐट्टुत्तोगै' मे होती है। कहा जाता है कि 'परिपाडल' नामक एक रचना प्रथम सघकाल मे भी रची गई थी जो कि आज अप्राप्य है। इस कृति मे विभिन्न कवियो द्वारा रचित 70 पद थे जिनमे से 24 पद ही आज उपलब्ध हैं। ये पद 25 से लेकर 400 पक्तियो तक के हैं। उपलब्ध पदो मे विष्णु और कार्तिकेय की स्तुति है। कुछ पदो मे वैगै नदी का वर्णन है। विष्णु स्तुति के पदो मे कवियो ने कृष्ण और बलराम के मदिरो का उल्लेख भी किया है। वैगै नदी से सबधित पदो मे कवियो ने यह बताया है कि उस युग मे वैगै नदी अत्यत पवित्र मानी जाती थी। लोग उस नदी के किनारे नृत्य और गायन का अभ्यास किया करते थे। कुछ पदो मे तिरुप्परन् कुदरम् पर स्थित मुरुगन के मदिर की दीवारो पर चित्रित कलाकृतियो का विशद वर्णन है। ये चित्र ग्रहो, नक्षत्रो, रति-कामदेव, गौतम अहल्या, इद्र प्रह्लाद आदि देवी-देवताओ एव प्रसिद्ध पुरुषो तथा समुद्र-मथन, कार्तिकेय जन्म, त्रिलोक-दहन आदि पौराणिक घटनाओ से सबद्ध हैं। परिपाडल के पदो मे सगीतात्मकता है। सपूर्ण कृति 'परिपाडल' (दे०) छद मे रचित है इसी से कृति को 'परिपाडल' नाम दिया गया। 'परिपाडल' के पदो मे प्राप्त मुरुगन-मदिर के चित्रो के वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईसा की आरभिक शतियो मे ही तमिलनाडु मे चित्रकला का पर्याप्त विकास हो चुका था।

परिमेलळगर *(त० कृ)* [समय—ईसा की तेरहवी शती का उत्तरार्ध]

परिमेलळगर तमिल के टीकाकारो म विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन्होने मदुरै मे रहते हुए तमिल साहित्य की सेवा की। तमिल के प्रसिद्ध नीति-ग्रथ तिरुक्कुरल (दे०) पर धरुमर, मणक्कुडवर, तामत्तर, नच्चर, परिदि, तिरुमलैयर, मल्लर, परिप्पेरुमाळ और काळिगर द्वारा लिखी गई टीकाओं का भली प्रकार अध्ययन कर, उनके

गुणों को ग्रहण करते हुए परिमेलळ्गर ने एक टीका लिखी। इसे विद्वान तिरुक्कुरल की सर्वश्रेष्ठ टीका स्वीकार करते हैं। इस टीका द्वारा परिमेलळ्गर ने तिरुवळ्ळुर (दे०) के समान अपार ख्याति अर्जित की। तमिल एवं संस्कृत साहित्य के ज्ञाता होने के कारण परिमेलळ्गर ने कुरल के दोहों को समझाने के लिए तमिल एवं संस्कृत कृतियों से उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। मूल कृति के महत्व और भाव-गांभीर्य को व्यक्त करने में इन्हें पूर्ण सफलता मिली है। इनकी गद्यशैली क्लिष्ट एवं दुरूह है। इन्होंने प्रायः सामाजिक शैली का प्रयोग किया है। विभिन्न स्थलों पर उपमाओं का सफल प्रयोग दृष्टिगत होता है। तिरुक्कुरल पर लिखी इनकी टीका तब से आज तक पंडितों का ध्यान आकृष्ट करती आ रही है। सत्रहवीं शती में तिरुमेनी रत्न कविरायर ने 'नुणपोरुळ मालै' शीर्षक से इनकी टीका पर एक टीका लिखी।

परिवर्तन *(उ० कृ०)*

'परिवर्तन' काळिचरण पटनायक (दे०) का सामाजिक नाटक है। इसमें सूक्ष्म मनोवृत्तियों का घात-प्रतिघात दर्शाया गया है। गोपाळ (दे०) का आहत अहं, उसकी छिपी आत्महीनता की भावना, कालांतर में विद्रोह का रूप ले लेती है। वह अपने आश्रयदाता तथा उनकी पुत्री के प्रति कठोर हो उठता है। पारिवारिक जीवन विषमताओं से भर उठता है। सब कुछ नष्ट हो जाने के पहले गोपाळ में परिवर्तन आता है। टूटता हुआ परिवार सँभल जाता है। रंगमंच की दृष्टि से यह नाटक सफल है, अतः सामाजिकों पर इसकी प्रभावात्मकता असंदिग्ध है।

परिव्राजक *(बँ० कृ०)*

स्वामी विवेकानंद (दे०) की दूसरी अमरीका तथा यूरोप-यात्रा की घटनावली को लेकर 'उद्बोधन' पत्रिका में 'बिलातयात्रीर पत्र' के नाम से सर्वप्रथम एक लेखमाला धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुई थी। बाद में इसे ही 'परिव्राजक' नाम देकर पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। समकालीन जगत् एवं जीवन का मर्मस्पंदन इस ग्रंथ में बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत हुआ है। उच्छ्वास या भावुकता की कहीं लेशमात्र भी गंध इसमें नहीं। विदेशी समाज एवं सभ्यता को सुगंभीर एवं प्रशांत मनन की सहायता से ग्रहण कर भारतीय आदर्श के मानदंड पर लेखक ने उसे कसा है। संहत भाषा में लेखक ने सहज ढंग से इतिहास, दर्शन, साहित्य एवं विज्ञान की आलोचना की है—यद्यपि भ्रमण-कहानी का मूल स्वर कहीं भी दबा नहीं है। विवेकानंद की सौंदर्य-दृष्टि की सार्थक प्रतिच्छवि है 'परिव्राजक'। विदेशी पटभूमिका में स्वदेश-प्रतिमा की अपरूप शिल्पश्री इस ग्रंथ का अभिनव आविष्कार है।

परिमल *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1930 ई०]

निराला (दे०) के इस छायावाद (दे० छायावाद)-कालीन काव्य-संग्रह में उन्मेष-काल की चुनी हुई 78 कविताएँ सम्मिलित हैं। रूपात्मक दृष्टि से ये कविताएँ तीन खंडों में विभाजित हैं। प्रथम खंड में सममात्रिक सांत्यानुप्रास कविताएँ हैं और दूसरे खंड में विषममात्रिक सांत्यानुप्रास कविताएँ। तीसरा वर्ग कवित्त छंद के प्रवाह में लिखी गई प्रयोगात्मक रचनाओं का है। 'पंचवटी-प्रसंग' शीर्षक नाट्य-प्रयोग भी इसी खंड में संगृहीत है। विषय की दृष्टि से इस संग्रह में पर्याप्त वैविध्य है। प्रकृति, शृंगार, रहस्य और दर्शन की अनुभूतियों तक ही कवि सीमित नहीं रहा है; अनेक कविताओं में अतीत के प्रति अनुराग, राष्ट्र-भक्ति और दलितों के प्रति करुणा के मार्मिक उद्गार भी प्रकट हुए हैं। 'यमुना के प्रति', 'तुम और मैं', 'विधवा', 'भिक्षुक', 'संध्या-सुंदरी', 'जुही की कली', 'जागो फिर एक बार' और 'महाराज शिवाजी' का पत्र आदि प्रसिद्ध रचनाएँ विषय-वैविध्य के उदाहरण हैं। कलात्मक दृष्टि से प्रतीकात्मक अभिव्यंजना, चित्रात्मक शैली और लाक्षणिक शक्ति-विधान आदि सभी छायावादी तत्त्व इस संग्रह की कविताओं में प्रचुरता से मिलते हैं।

परीक्षा गुरु *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1882 ई०]

अधिकांश आलोचकों के मतानुसार यह हिंदी का पहला उपन्यास है। जिन दिनों यह उपन्यास लिखा गया था उन दिनों हिंदी में तिलस्मी-ऐयारी उपन्यासों का बाहुल्य था जिनमें जीवन की समस्याओं से मुँह मोड़ कर कल्पना-प्रधान ऐंद्रजालिक वातावरण की सृष्टि की जाती थी। किंतु लाला श्रीनिवासदास (दे०) द्वारा लिखित प्रस्तुत उपन्यास में इसके विपरीत एक बिगड़े रईस के विनिपात तथा उद्धार की कथा को आधार बनाया गया है। चूँकि इस उपन्यास का मूल उद्देश्य सामाजिक

सुधार है, परिणामत इसमे उपदेशो की प्रचुरता मिलती है।

परीख, नरहरि *(गु० ले०)* [समय—1891-1960 ई०]

श्री परीख भी गाधी जी (दे०) के सत्याग्रह आश्रम मे थे और गाधी जी के चुने हुए कार्यकर्ताओ मे से थे। इन्होने 'मानव अर्थशास्त्र' ग्रथ मे अर्थशास्त्र को गाधीवादी दृष्टि से नये ढग से प्रस्तुत किया है। गुजरात विद्यापीठ मे यह अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तक थी और आज भी है। इन्होने महादेव देसाई (दे०), सरदार पटेल, और किशोरलाल मशरूवाला (दे०) की जीवनियाँ लिखी हैं। गुजराती के जीवनी-साहित्य मे इन ग्रथो का बहुत ऊँचा स्थान है। अनुवाद-साहित्य मे इनका योगदान उल्लेखनीय है। टॉलस्टाय के कई ग्रथो के गुजराती अनुवाद इन्होने किए हैं और रवीद्रनाथ (दे०) के नाटको के भी अनुवाद किए हैं।

परीख, रसिकलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

रसिकलाल परीख का जन्म सादर मे हुआ। पिता छोटालाल परीख की 1912 ई० मे मृत्यु हुई। माता चचलबेन तथा काका वाडिलाल जी ने इन्हे पढाया-लिखाया। विद्यार्थी-काल मे डा० गुणे, प्रोफेसर रानाडे, महामहोपाध्याय अभ्यकर शास्त्री प्रो० पटवर्द्धन से तथा परवर्ती काल मे मुनि जिनविजय जी, प० सुखलाल जी से परिचित-प्रभावित हुए। 1920 ई० मे अहमदाबाद आकर अध्यापकीय जीवन प्रारभ किया।

कृतियाँ—'स्मृति' (कविता-सग्रह), 'जीवन ना वहेणो' (कहानी-सग्रह), 'मेना गुर्जरी' (नाटिका), 'शर्विलक' (नाटक); 'पुरोवचन अने विवेचन' (समीक्षा), 'प्रेम नु मूल्य' (रेडियो नाटिका), पहेलो कलाल' (अनुवाद); 'रुपिया नु झाड', काव्यानुशासन', भाग 1-2 (सपादन); 'काव्यप्रकाश-खडन', 'काव्यादर्श', 'काव्यप्रकाश सकेत', 'नृत्यरत्न कोश', 'काव्यप्रकाश'—उल्लास 1 से 6, 'वैदिक पाठावली', 'गुजरात नी राजधानीओ', 'आनद मीमासा, इतिहास पद्धति अने स्वरूप' आदि। पाश्चात्य व भारतीय दर्शन, भारतीय काव्यशास्त्र, कोशविज्ञान, वेद, नाट्य, भारतीय सस्कृति आदि इनके प्रिय विषय हैं।

अध्यापक, अनुसधाता, शोध-निदेशक, कवि, नाटककार, सपादक, पुरातत्त्ववेत्ता, इतिहासविद्, समीक्षक आदि अनेक रूपो से युक्त व्यक्तित्व-सपन्न परीख जी ने वर्षो तक गुजरात विद्या सभा के डायरेक्टर के रूप मे सेवाएँ की है। 'मेना गुर्जरी' को राष्ट्रीय अभिशसा तथा 'शर्विलक' को राष्ट्रीय स्तर पर अकादेमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है। *विद्या पुरुष रसिक भाई व्यक्ति नही सस्था हैं।*

पर्दा ए-ग़फलत *(उर्दू० कृ०)*

यह नाटक है जिसके लेखक डा० सैयद आबिद हुसैन (दे०) हैं। डा० आबिद हुसैन एक सतुलित विचारक और सवेदनशील साहित्यकार हैं और उनकी इस कृति मे उनकी सवेदनशीलता की अभिव्यक्ति हुई है।

पर्याय *(स०, हिं० पारि०)*

'पर्याय' या 'पर्यायवाची' शब्द ऐसे शब्दो को कहते हैं जिनमे अर्थ की समानता होती है—जैसे 'जल' और 'पानी'। यदि गहराई से देखा जाए तो किसी भी भाषा के बहुत कम ही शब्द आपस मे सच्चे पर्याय होते हैं। *तथाकथित पर्यायो मे भी प्राय आपस मे प्रयोगो की* दृष्टि से कुछ न कुछ अतर अवश्य होता है। उदाहरण के लिए 'दया' और 'कृपा' को प्राय पर्याय कहा जाता है किंतु किसी भी करुण कहानी को सुनकर किसी को 'दया' आ सकती है, 'कृपा' नही आ सकती। इसी प्रकार आप शर्म से 'पानी-पानी' हो सकते हैं, 'जल-जल' नही, किंतु इसके विपरीत आप अतिथि से 'जलपान' करने की प्रार्थना करते हैं 'पानीपान' की नही।

पलना प्रतिबिंब *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

गुजराती उपन्यास-साहित्य मे हरींद्र दवे का यह एक नया प्रयोग है। अस्तित्ववाद के प्रभाव से हमारे यहाँ जिस नये साहित्य का सर्जन हुआ उसका परिचय इस उपन्यास से मिलता है। अस्तित्ववाद मे क्षण का महत्व होता है, चिरतन का नही। इस उपन्यास मे अलग अलग क्षणिक प्रसगो का निरूपण किया गया है, और उन क्षणो को जोडने से *उपन्यास का कथानक बनता है। एक प्रसग* का दूसरे प्रसग के साथ वैसे कोई सबध नहीं है इसलिए कथानक को चलता प्रतिबिंब—क्षण का प्रतिबिंब—नाम दिया गया है। इसमे जिस समय का निरूपण है, वह भी

मनोवैज्ञानिक समय है। अस्तित्ववादी उपन्यासों में यह एक महत्वपूर्ण प्रयोग है।

पलनाटि वीरचरित्र (ते० कृ०)

यह महाकवि श्रीनाथुडु (दे०) द्वारा रचित एक सुंदर वीरगीत है। यह मध्ययुगीन आंध्र में घटित 'महाभारत' (दे०) की कहानी से समता रखने वाली ऐतिहासिक कहानी पर आधारित है। श्रीनाथुडु के समय में वीरगीतों का आदर नहीं होता था। फिर भी तेलुगु जाति के इतिहास एवं उसकी परंपराओं के प्रति तीव्र अनुराग रखने के कारण विद्वान कवि ने अपने पांडित्य-प्रकर्ष के उन्नत आसन से उतरकर साधारण जनता की अपनी शैली में इसकी रचना की थी। यह तेलुगु के 'द्विपद' छंद में, गेय-रूप में लिखा गया है। उदात्तता एवं निराडंबरता के गुण इसमें सर्वत्र दृष्टिगत होते हैं।

इस काव्य में आंध्र के 'पलनाडु' नामक प्रांत में बारहवीं शती के उत्तरार्ध में हैहयवंश के दो चचेरे भाई राजाओं के बीच हुए गृहयुद्ध का वर्णन है जो कौरव-पांडवों के युद्ध का स्मरण करा देता है। यह काव्य मलिदेवराजु के स्वामिभक्त मंत्री ब्रह्मनायुडु द्वारा चलाए गए महान् सामाजिक एवं धार्मिक आंदोलन पर भी प्रकाश डालता है। नागम्मा (दे०), ब्रह्मनायुडु और बालचंद्रुडु (दे०) इस महान् युद्ध के परम योद्धा थे। इसमें 'मुद्राराक्षस' (दे०) नाटक के चंद्रगुप्त के समान दोनों पक्षों के राजा निष्क्रिय हैं और सारा कार्यव्यापार सचिवायत्त है। वीर, करुण एवं शांत रसों का परिपाक इस काव्य में हुआ है। आंध्र-जनता में यह विशेष रूप से लोकप्रिय हुआ है।

पलाशीर युद्ध (बँ० कृ०) [रचना-काल 1876 ई०]

ऐतिहासिक गाथा-काव्य 'पलाशीर युद्ध' लेखक नवीनचंद्र सेन (दे० सेन, नवीनचंद्र) के यश का प्रथम एवं प्रधान कारण है। पाँच सर्गों में विभाजित इस काव्य में पलाशी के युद्ध में सिराज की हार एवं हत्या तथा अँग्रेजों की विजय-कथा वर्णित है। अंत में मोहनलाल के दृप्त आह्वान के माध्यम से काव्य के मूल वक्तव्य—देश-प्रीति एवं स्वाधीनता-प्रेम—का उल्लेख किया गया है। कवि नवीनचंद्र सेन की काव्य-रचना में उनका हृदय मूल शक्ति है। भावुकता उनका धर्म है। कवि स्वदेश-प्रेम में विगलित हैं, और सौंदर्य में आत्मविस्मृत हैं। उनके काव्य में आत्मगत आशा एवं आनंद की अभिव्यक्ति हुई है।

'पलाशीर युद्ध' अतिदीर्घ काव्य-निबंध है। एक ओर अबाध कल्पना और दूसरी ओर जीवन के एक उच्च आदर्श-प्रचार के फलस्वरूप यह काव्य उस समय के शिक्षित हिंदू-समाज में बहुत ही जनप्रिय हुआ था।

पल्लव (हिं० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1928 ई०]

'वीणा' और 'ग्रंथि' के उपरांत सुमित्रानंदन पंत (दे०) जी की पहली प्रौढ़ रचना 'पल्लव' है। विषय की दृष्टि से प्रेमपरक, प्रकृतिपरक और रहस्यात्मक रचनाएँ इसमें महत्वपूर्ण हैं। प्रेमपरक रचनाओं में यौवन का भावोन्माद, प्रकृतिपरक रचनाओं में दृश्य की रमणीयता और रहस्यात्मक रचनाओं में असांप्रदायिक स्वाभाविकता आकृष्ट करती है। इस संग्रह की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता का भाव और शिल्प की अन्विति के कारण विशेष महत्व है। वह पंत जी के काव्याकाश में उस दूरवर्ती तारे के सदृश है जो सबसे पृथक् रहकर अपनी ज्योति विकीर्ण करता है। कला की दृष्टि से लाक्षणिक वैचित्र्य, कल्पना-विलास, चित्रमयी भाषा, साभिप्राय विशेषण और व्यंजक प्रतीक-विधान आदि छायावादी (दे० छायावाद) प्रवृत्तियों का पूर्ण आभास इस रचना में मिलता है। सब मिलाकर यह माना जा सकता है कि 'पल्लव' युवा कवि के पूर्ण क्षणों की वाणी है—उसमें विहगवन के इस राजकुमार की उन्मुक्त वन्य गीतियाँ हैं।

पल्ली-चित्र (उ० कृ०)

'पल्ली-चित्र' श्री नंदकिशोर बळ (दे०) का छोटे आकार का काव्य है। ग्राम्य जीवन-अंकन की दिशा में यह एक सफल एवं सशक्त प्रयास है। ग्रामीण भाषा, सरल संवेदना, मृदु-मंथर छंद के प्रयोग से कवि ने प्राकृतिक पृष्ठभूमि पर सशक्त रेखाओं से गाँव की विभिन्न जीवन-धाराओं को उभार दिया है।

छड़ी लिये गुरु जी, अपने कँदेरा द्वारा ग्रामीण वधुओं के नेत्रों को सजल बनाता नाथ-योगी, धूर्त नाई; पल्ली वधू के सतृष्ण नेत्रों का लक्ष्य फेरी वाला, ग्राम्य पुरोहित आदि जो कल तक ग्राम्य जीवन के अभिन्न अंग थे, हमारे मानस-पटल पर क्रमशः उभरते-मिटते जाते हैं। जनपदवासियों की हास्य-अश्रुरंजित कथा, धान के खेत,

ग्राम्य देवालय, ग्राम्य श्मशान आदि चलचित्र की भाँति तरगायित हो उठते हैं। निसर्ग-सुदरी के सजीव रूपाकन मे एक ताजगी है, एक नूतनता है। कवि की उर्वर कल्पनाशीलता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति, गभीर रसबोध, व्यापक जीवनानुभूति गहन चिंतनशीलता भाषा की मूर्ति-विधायिनी शक्ति एव छदो की सावलील गति के कारण उनके ग्रामीण चित्र अत्यत सरस, मधुर एव जीवत हो उठे हैं।

पल्लीगीति *(बँ० प्र०)*

'पल्लीगीति' से तात्पर्य है लोक-समाज मे प्रचलित गीत। इसे 'लोक गीति' भी कहते हैं जिसका गायन विवाह आदि सामाजिक उत्सवो या फिर व्रत-पूजा-पर्वादि मे किया जाता है। बगाल मे लोक गीति की परपरा इतनी विस्तृत है कि जीवन की प्रत्येक अवस्था का इसने स्पर्श किया है। इन गीतो को दो भागो मे बाँटा जा सकता है ताल-युक्त एव ताल-हीन गीत। बगाल के विभिन्न लोकगीत बगाल के विभिन्न प्रातो मे सीमाबद्ध हैं, उदाहरणतया, पश्चिम बगाल मे पटुआ भादु, भुमुर तो उत्तर बगाल मे गभीरा, जाग, भाओयाइया तथा पूर्वबग मे जारि, घाटु इत्यादि। आचलिक होने पर भी ये गीत समग्र बगाल के अखड लोक साहित्य के अविभाज्य अग हैं।

आचलिक गीतो के अतिरिक्त लोकगीतो मे प्रेम-सगीत का महत्वपूर्ण स्थान है। राधा-कृष्ण की प्रेमलीला ही इन प्रेम गीतो का उत्स है। बगाल का प्रेमसगीत प्रधानत 'भाटियालि सगीत' कहा जाता है। बगाल के लोक गीतो का एक प्रधान अग पारिवारिक है। पारिवारिक जीवन के व्यावहारिक प्रयोजन के निमित्त ही इनका गायन होता है। इसे महिला-सगीत भी कहते हैं क्योंकि प्रधानत यह नारी समाज मे ही सीमाबद्ध है। ये गीत अधिकतर अलकरणहीन और साधारण होते हैं। पारिवारिक गीतो के अतर्गत पार्वण-सगीत का भी उल्लेख किया जाता है जो प्रतिवर्ष किसी निर्दिष्ट दिन किसी पार्वण के उपलक्ष्य मे गाया जाता है। गाजनेर गान, भाजो, उमा सगीत, कार्तिक व्रतेर गान, पौषपार्वणेर गान आदि इनके नाम हैं। इनके अतिरिक्त लोकगीति के अतर्गत किसानो के गीतो का भी महत्वपूर्ण स्थान है। बगालियो के देवता शिव स्वय किसान हैं और धान की बाली लक्ष्मी। इन्ही को लेकर चाषेरगान, पाटकाटार गान, धानमानार गीत, सारि आदि गीत गाने का प्रचलन है।

पळ्ळु *(त० पारि०)*

'पळ्ळु' तमिल नाटक के प्राचीन रूपो मे से है। विद्वानो के मतानुसार *'पन्निरु पाट्टियल'* नामक व्याकरण-ग्रथ में उल्लिखित उळत्तिप्पाट्टु (कृषक-स्त्री गीत) ही कालातर मे 'पळ्ळु' कहा गया। इसमे मुख्यत कृषको के *सामाजिक जीवन का सरस, सजीव, मनोहारी चित्रण प्राप्त* होता है। इसमे वर्णित कथा की रूपरेखा इस प्रकार है—कृषक की दो पत्नियो मे परस्पर विवाद, जमीदार के पास जाना, एक का पति के विरुद्ध शिकायत करना एव दूसरी का पति का पक्ष लेना, अत मे आपसी वैरभाव भुलाकर खुशी-खुशी घर लौटना। 'पळ्ळु' नाटको की रचना ग्रामीण जनता के मनोविनोद के लिए की गई थी। इनमे हास्य और व्यग्य की प्रधानता होती है। इनमे विविध छदो और मुख्यत श्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग दृष्टिगत होता है। 'पळ्ळु' सगीत नाटक का एक रूप है। इसमे सगीतात्मकता की प्रधानता होती है। इसमे प्राय बोलचाल के शब्दो और वाक्यो का प्रयोग दृष्टिगत होता है। चौदहवी और पद्रहवी शती मे तमिल मे अनेक 'पळ्ळु' लिखे गए जैसे—'मुक्कूडर पळ्ळु', 'तिरुमलै मुरुहन पळ्ळु', 'कुरुहूरप्पळ्ळु', कदिरैमलैप्पळ्ळु आदि। इनमे सर्वप्रसिद्ध है 'मुक्कूडर पळ्ळु', जिसका रचयिता अज्ञात है।

पवित्तर पापी *(प० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1942 ई०]

नानकसिंह (दे०)-कृत 'पवित्तर पापी' मध्यवर्गीय चेतना से अनुप्राणित सामाजिक उपन्यास है। इसके माध्यम से लेखक ने मध्यवर्ग की आर्थिक, सामाजिक एव पारिवारिक समस्याओ को चित्रित करते हुए उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। केदार जब इस तथ्य से अवगत होता है कि उसके कारण ही पन्नालाल की नौकरी समाप्त हुई है तो वह पन्नालाल के असहाय परिवार की यथासभव सहायता प्रदान करने लगता है। वीणा को अपनी बहन मानता हुआ केदार उसमे प्रेम करने लगता है, किन्तु जीवन की यह अतृप्ति और कुठा अत म उसके प्राण-त्याग का कारण बन जाती है। केदार के चरित्र मे प्रेम के अभाव और नैतिक-सामाजिक बधनो से प्रभावित अतृप्त मन का सुदर विश्लेषण मिलता है।

पहिला तारीख *(म० कृ०)* [रचना काल--1956 ई०]

महीने की पहली तारीख को सरकारी कर्मचारियों की तीनों श्रेणियों की क्या प्रतिक्रिया होती है, इसका चार अंकों में वर्णन है। ये तीन श्रेणियां हैं--(1) चपरासी-गण, (2) मध्यवर्गीय बाबू लोग, और (3) अफ़सर लोग। इनमें मध्यवर्गीय बाबुओं की स्थिति शोचनीय है। इनमें पद-मर्यादा भी नहीं है। अफ़सर लोगों में पद-मर्यादा और क्षमता दोनों हैं। चपरासी-वर्ग को अभाव कम है, उनके घर पर खेती-बाड़ी भी हो सकती है। सारदा बरदले (दे०) के इस नाटक का कथा-भाग दुर्बल है, किंतु परिस्थितियाँ यथार्थ और सजीव हैं।

पांगारकर, लक्ष्मण रामचंद्र *(म० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1941 ई०]

इनका जन्म चिपळूण नामक स्थान पर हुआ था। पहले ये पंढरपुर तथा पूना में अध्यापक रहे और तदनंतर अमरावती में मुख्याध्यापक बने। इन्होंने 'मुमुक्षु' नामक पत्र का प्रकाशन किया था जो अत्यंत लोकप्रिय हुआ।

प्रथम कोटि के मराठी लेखकों में इनकी गणना की जाती है। पांगारकर साहित्य-इतिहास-लेखक, संत-चरित्र-लेखक, भागवत-धर्म-प्रचारक एवं कुशल वक्ता थे।

ये प्राचीन संत-वाङ्मय के एकनिष्ठ साधक और चरित्र-लेखक थे। संत-वाङ्मय पर भाषण देते हुए ये भक्तिरस में पूर्णतः डूब जाते थे। 'मोरोपंतचरित्र', 'श्री संत तुकारामचरित्र', 'श्री ज्ञानेश्वर चरित्र' तथा 'एकनाथ महाराजांचे संक्षिप्त चरित्र' आदि इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं जिनमें यत्र-तत्र वैज्ञानिक शोध-दृष्टि भी प्रतिफलित हुई है। इनमें कवि के युग, जीवन-काल, विचार-परंपरा आदि पर निष्पक्षभाव से लिखा गया है।

इनका मोरोपंत विषयक अनुसंधान अत्यंत महत्वपूर्ण है। दर्शन, राजनीति तथा अन्य ज्वलंत सामाजिक प्रश्नों पर इनके निबंध 'मुमुक्षूंतील निवडक निबंध' में संगृहीत हैं। मराठी-वाङ्मय का इतिहास तीन खंडों में लिखकर इन्होंने प्राचीन मराठी-साहित्य की ऐतिहासिक समालोचना प्रस्तुत करने का विराट् अनुष्ठान पूर्ण किया है। 'चरित्र-चंद' इनका आत्मचरित है।

इस प्रकार, पांगारकर को अपने वक्तृत्व तथा इतिहास एवं चरित्र-लेखन के बल पर मराठी-साहित्यकारों में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

पांचकड़ी दे *(बँ० ले०)*

उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में जासूसी उपन्यासकारों में पाँचकड़ी दे ने सर्वाधिक जनप्रियता प्राप्त की थी। बँगला-उपन्यास के क्षेत्र में जासूसी उपन्यास की तरह के नये ढंग के साहित्यिक उपन्यास की संयोजना कर उपन्यास के क्षेत्र को प्रसारित करने का श्रेय पाँचकड़ी दे को है। इनके प्रसिद्ध जासूसी उपन्यासों में 'नीलवसना सुंदरी', 'मायावी', 'मनोरमा' आदि उल्लेखनीय हैं। उस युग में अँग्रेज़ी जासूसी उपन्यासों के अनुसरण पर 'बटतला सीरीज़' के नाम से असंख्य पुस्तकें निकल रही थीं जिनके लिखने वालों में शरच्चंद्र सरकार, क्षेत्रमोहन घोष, अंबिकाचरण गुप्त आदि थे। पाँचकड़ी दे ने बिलकुल इनसे भिन्न भारतीय उपादानों की सहायता से साहित्यिक कोटि के रहस्य-रोमांचकारी उपन्यासों की सृष्टि की।

पांचाली *(त० पा०)*

तमिल-साहित्य में पांचाली से संबंधित विवरण विल्लिपुत्तूरर् (दे०) आळ्वार-कृत 'भारदम्' और भारतियार-कृत 'पाचाली शपदम्' (दे०) नामक रूपक-काव्य में प्राप्त होते हैं। इन दोनों कृतियों में पाचाली का रूप व्यास-कृत महाभारत' (दे०) की पांचाली से भिन्न है। व्यास ने पांचाली को साधारण नारी तथा विल्लिपुत्तूरर् ने उच्च गुण-संपन्न नारी के रूप में चित्रित किया है। भारतियार ने पाचाली को भारतमाता का प्रतिरूप माना है। विल्लिपुत्तूरर् का 'भारदम' बहुत-कुछ व्यास-कृत 'महाभारत' का तमिल-अनुवाद प्रतीत होता है। 'पांचाली शपदम्' पर्याप्त अंशों में मौलिक है। इस रूपक-काव्य में पांचाली भारतमाता की प्रतीक है। दुःशासन द्वारा द्रौपदी-केश-कर्षण, द्रौपदी-वस्त्रापहरण आदि प्रसंगों की चर्चा कर भारती (दे०) ने अँग्रेजों के शासन में भारतमाता की दयनीय दशा की ओर ध्यान आकृष्ट कर भारतीयों में देश-प्रेम की भावना जगाने का यत्न किया है।

पांचाली *(बँ० प्र०)*

कविगान (दे०) के साथ ही साथ बंगाल में एक और प्रकार के गीतों का प्रचलन हुआ था जिसे 'पाँचाली' कहा जाता है। 'पंचालिका' या 'पांचालिका' शब्द से 'पाँचाली' शब्द का उद्भव हुआ है। बहुत पहले

पाचालिका या कठपुतली के नाच के साथ एक प्रकार की म्राख्यायिका गाकर सुनाई जाती थी। 'पाचाली' भी आख्यायिका-प्रधान गीत है। यद्यपि गायक बीच-बीच मे वर्णनामय अंश की द्रुत लय मे आवृत्ति करता चलता है। कीर्तन-गान से ही 'पाचाली' का उद्भव हुआ है। ब्रजलीला-विषयक स्वयपूर्ण आख्यान ही इसकी विषयवस्तु है यद्यपि बाद मे लौकिक कहानियो को भी 'पाचाली गान' मे स्थान मिलने लगा। 'पाचाली के' साथ 'कीर्तन' का पार्थक्य यह है कि 'पाचाली' मे गायक अभिनय भी करता है और कभी-कभी कथा मे वर्णित पात्रो की पोशाक भी पहनता है। बीच-बीच मे हास्यरस की अवतारणा भी की जाती है। मूल गायक आवृत्ति, तुकबदी व्याख्या-विश्लेषण करता हुआ कहानी को निश्चित परिणति तक पहुँचा देता है। 'पाचाली' मे तानपूरा, सारगी, ढोल, मदिरा आदि की सहायता से गीत गाया जाता है।

'कविओयालाओ' (दे० कविगान) के प्रभाव-स्वरूप बाद मे 'पाचाली' मे भी दो दलो मे कवि-लडाई का प्रवर्तन हुआ था—यद्यपि इसमे 'खेउड' (अश्लील तुकबदी या गीतो मे उत्तर-प्रत्युत्तर) की प्रथा नही थी। प्राचीन 'पाचाली' गान से ही यात्रा (दे० यात्रा) का उद्भव हुआ है, यद्यपि 'पाचाली' यात्रा से भिन्न है क्योकि 'पाचाली' का मूल गायक या पात्र एक ही होता है जबकि यात्रा मे एकाधिक पात्र एव गायक-गायिकाएँ रहती है। 'कविगान' मे प्रत्युत्पन्नमतित्व के द्वारा चमत्कार-सृष्टि की जाती है परतु 'पाचाली' मे प्रत्युत्पन्नमतित्व की उतनी आवश्यकता नही होती क्योकि यहाँ भाव-चिंतन के लिए कवि को अवकाश रहता है, इसीलिए इसमे गहराई अधिक होती है। 'पाँचाली' कथा-प्रधान सगीत है एव इसके वर्णन-कौशल मे नाटकीयता का प्राधान्य है। उस युग (अठारहवी-उन्नीसवी शती) के जनसमाज की स्थूल काव्य-रुचि के अनुरूप पाचाली मे भी अश्लीलता का समावेश हुआ। दाशरथिराय बगाल के श्रेष्ठ पाचालीकार माने जाते हैं।

पाचालीपरिणयमु *(त० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवी शती ई०]

इसके लेखक काकमानि मूर्तिकवि है। इन्होने 'राजवाहनविजय' नामक काव्य भी लिखा था। 'पाचाली-परिणयमु' पाँच आश्वासो का काव्य है। द्रौपदी के जन्म से लेकर पाडवो के साथ उसके विवाह तक की कथा इसमे वर्णित है। मूर्तिकवि की कविता हर छद मे चमत्कार उत्पन्न करने वाली है।

पांचाली शपदम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1912 ई०]

'पाचाली शपदम्' भारतियार (दे० भारती, सुब्रह्मण्यम्) की प्रसिद्ध काव्य-कृतियो मे से है। शीर्षक का अर्थ है 'पाचाली की प्रतिज्ञा'। इस कृति का आधार महाकवि व्यास-कृत 'महाभारत' (दे०) का द्रौपदी-प्रतिज्ञा-खड है। इस कृति मे 308 पद हैं। ईश-स्तुति तथा सरस्वती-स्तुति से काव्य का आरभ होता है। इसके उपरात हस्तिनापुर के सौदर्य और समृद्धि का, दुर्योधन की सभा, उसके षड्यत्र, पाडवो और कौरवो के जुआ खेलने, पाडवो की हार, द्रौपदी-वस्त्रापहरण, द्रौपदी द्वारा कृष्ण-स्मरण, कृष्ण द्वारा वस्त्रदान द्रौपदी-प्रतिज्ञा आदि का प्रभावशाली वर्णन है। काव्यात मे हरि-नाम-स्मरण-महिमा गान है। 'महाभारत' का आधार ग्रहण करते हुए भी कवि ने अपनी प्रतिभा के बल पर इसे मौलिक रूप प्रदान किया है। भारती ने 'महाभारत' के उक्त खड मे प्राप्त उन प्रसगो को छोड दिया है जो रसाभास उत्पन्न करते हैं। पात्रो के वचन तथा कर्मो द्वारा उनके चरित्र को स्पष्ट किया गया है। यह एक रूपक-काव्य है। इसमे पाचाली भारतमाता का, कौरव विदेशी शासको के तथा पाडव उन भारतीय नीच राजाओ के प्रतीक है जो कि अपने राज्य की रक्षा करने मे असमर्थ होने के कारण पराधीन हैं। कवि ने भीम के माध्यम से अपनी भावनाओ और विचारधाराओ की अभिव्यक्ति की है। भारती काँग्रेस के गरम दल के सदस्य थे; तदनुसार जब युधिष्ठिर जुए मे हार कर द्रौपदी को सभा मे लाने का आदेश देते हैं तो भीम क्रुद्ध हो कह उठते हैं कि युधिष्ठिर के हाथो को जला देना चाहिए। यह 'नोंडि चिंदु' नामक साधारण शैली मे रचित है। इसमे अनेक नाटकीय स्थल और सुदर शब्द-चित्र हैं। शब्दो द्वारा अर्थ एव ध्वनि की व्यजना मे कवि पूर्ण सफल हुआ है। यथा-स्थान सरल छदो और विविध अलकारो का प्रयोग हुआ है। पौराणिक प्रसगो के माध्यम से अँग्रेजो के शासन-काल मे भारत और भारतवासियो की अवस्था तथा देश के प्रति अपने अटूट प्रेम को अभिव्यक्त कर इसका रचयिता भारतीय जनता को जाग्रत करने मे पूर्ण सफल हुआ है।

पाडव-प्रताप *(म० कृ०)*

कवि श्रीधर (दे०) की इस रचना का आधार

ग्रंथ है—'महाभारत' (दे०)। परंतु 'महाभारत' की सभी कथाएँ इसमें अंतर्भूत नहीं हैं। जिनसे पांडवों का प्रताप प्रबल रूप में ध्वनित हो, उन्हीं प्रसंगों का विशेष समावेश इसमें किया गया है। इसके अतिरिक्त 'जैमिनिभारत', 'भागवत' (दे०), 'हरिवंशपुराण', आदि संस्कृत-ग्रंथों से तथा मुक्तेश्वर-रचित भारत-पर्वों से भी अनेक प्रसंग और कल्पनाएँ आधार रूप में ग्रहण की गई हैं। इस ग्रंथ के कुल 64 अध्याय हैं, और ओवी-छंदों की संख्या है—13397। कवि ने अपनी रचना को स्वयं ही 'सकल साहित्य का भांडार' कहा है। इन्होंने इस रचना के दो उद्देश्य भी स्पष्ट किए हैं—(1) वाणी को सार्थक करना, और (2) अज्ञानी तथा भोली जनता को ज्ञान-दीप की सहायता से सन्मार्ग दिखाना। इसकी भाषा-शैली इन दोनों उद्देश्यों को पूरा करने में असंदिग्ध रूप से सहायक सिद्ध हुई है। 'पांडव-प्रताप' में पूर्ववर्ती रचनाओं का आधार ग्रहण किया गया है। फिर भी कवि की अपनी मौलिक प्रतिभा प्रच्छन्न नहीं है। परिचित दृष्टांतों तथा घरेलू भाषा-शैली का आधार लेकर इस रचना को अत्यधिक सुगम और लोकप्रिय बनाने में श्रीधर को अद्वितीय सफलता मिली है। जनता में मनोरंजन के साथ-साथ भक्ति, सदाचार और धर्म-भावना का प्रचार-प्रसार करने में 'पांडव-प्रताप' ने महत्वपूर्ण योग दिया है।

पांडियन परिशु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1940 ई०]

भारतीदासन (दे०) की प्रसिद्ध काव्यकृतियों में परिगणित प्रमुख घटनाएँ—वेळ्नाडु के सेनापति नरिकण्णन द्वारा वहाँ के सज्जन, वीर किंतु अबोध राजा को फुसलाकर कदिरनाडु पर आक्रमण, छल से अपने बहनोई कदिरनाडु के शासक कदिरै वेलन और बहिन कण्णुक्किनियाळ का वध, रानी की सखी आत्ताक्किलवि द्वारा राजकुमारी अन्नम के प्राणों की रक्षा, नरिकण्णन द्वारा 'पांडियन परिशु' (कदिरै नाडु कदिरै वेलन के किसी पूर्वज को पांड्य राजा द्वारा पुरस्कार-स्वरूप परशु दिया गया था—इसका उल्लेख करने वाला ताम्रपत्र) की खोज, ताम्रपत्र की प्राप्ति एवं लोप, चोर सरदार वीरप्पन को ताम्रपत्र की प्राप्ति, आत्ता के पुत्र वेलन द्वारा अन्नम की विपत्ति से रक्षा, वेलन-अन्नम-प्रेम, अन्नम द्वारा 'पांडियन परिशु' खोज लाने वाले व्यक्ति से विवाह की घोषणा, अन्नम के हाथों नरिकण्णन की मृत्यु। पिता वीरप्पन की सहायता से वेलन को ताम्रपत्र की प्राप्ति, वेलन-अन्नम-विवाह, वेलन का राज्याभिषेक आदि।

भारतीदासन ने काल्पनिक घटनाओं एवं पात्रों का आश्रय लेते हुए इसके कथानक का निर्माण किया है परंतु यह ऐतिहासिक काव्य होने का आभास देता है। इसके माध्यम से कवि ने अपने मार्क्सवादी-समाजवादी विचारों को व्यक्त किया है कि 'यह विश्व अपने उस लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है जहाँ प्रत्येक वस्तु पर प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार होगा।' इस कृति में शृंगार, वीर और हास्य रसों की सफल अभिव्यंजना हुई है। संपूर्ण कृति 'एणशीर विरुत्तम' छंद में रचित है। काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से इस का भारतीदासन की ही नहीं अपितु तमिल की काव्य-कृतियों में विशिष्ट स्थान है। विधा की दृष्टि से यह कुरुंकावियम (लघु काव्य) है जिसने इस शती के अन्य कवियों को कुरुंकावियम लिखने की प्रेरणा दी।

पांडु *(गु० पा०)*

स्व० मणिशंकर रत्नजी भट्ट 'कांत'-रचित खंड-काव्यों में 'वसंत विजय' का स्थान सर्वोपरि है। 'वसंत-विजय' खंडकाव्य में ग्रीक त्रासदी का करुण रस आदि से अंत तक व्याप्त है। 'वसंत विजय' का नायक पांडु गुजराती-साहित्य का एक अमर पात्र है। ग्रीक त्रासदी नाटकों की भाँति 'वसंत-विजय' में भी मनुष्य व प्रकृति का संघर्ष व मनुष्य की पराजय का निरूपण है। नियति या प्रकृति के अगम्य रहस्य के समक्ष अपने को असहाय व तुच्छ पाने वाले मानव की यह कथा है। संघर्ष करते-करते अंत में पराभूत होने वाले मानव पांडु की करुणा हमारी संवेदना को झकझोर डालती है।

'महाभारत' के आदि पर्व से उसकी कथा ग्रहण की गई है। किंदव ऋषि व उनकी पत्नी मृग-मृगी का रूप धारण कर क्रीड़ा कर रहे थे कि शिकार पर गये हुए पांडु राजा के बाणों ने इन्हें घायल कर दिया। मरते समय ऋषि ने शाप दिया कि तुम्हारा अंत भी ऐसी अवस्था में ही होगा। मुनि के शाप से बचने के लिए पांडु असमय में ही वैराग्य धारण कर वानप्रस्थी हो जंगल में कुटीर बना कर रहते हैं। कुंती और माद्री को लेकर वह वनवास करते हैं। किंतु एक दिन वसंत का प्रभाव बढ़ ही जाता है। पांडु माद्री के प्रति आसक्त होकर तपोवन-विपरीत व्यवहार माँगते हैं। 'माद्री ना, नाथ···नहीं' कहती ही रहती है और पांडु पर वसंत की विजय बढ़ती रहती है। एक तरफ़ शाप और दूसरी तरफ़ जीवन-साफल्य है। पांडु के

मन मे भयकर अतर्द्वंद्व चलता है। अत मे माद्री पाडु की भुजाओ मे लिपट जाती है। त्रासदी-नायक की भाँति पाडु अपनी दुर्बलता से सघर्ष करते करते आखिर पराभूत हो जाते हैं। खडकाव्य का प्रारभ, मध्य व अत नाटक की पाश्चात्य अवस्थाओ से युक्त है। अनुष्टुप, शिखरिणी, वसततिलका, द्रुतविलबित, शार्दूलविक्रीडित आदि छदो का वैविध्य द्रष्टव्य है।

पाडु का अतर्द्वंद्व व उसका निरूपण अपूर्व है।

पाडुरग महात्म्यमु *(तें०कृ०)* [रचना काल—1950 ई०]

यह तेनालि रामकृष्णकवि (दे०)-रचित प्रबध-काव्य *'कृष्णदेवरायलु' (दे०) के उपरात रचित* तेलुगु के प्रौढतम प्रबध-काव्यो मे एक है और अपने रचयिता की कीर्ति का आधार-स्तभ भी। यह एक वैष्णव-प्रबध-काव्य है जिसमे शिव-भक्ति की भी आवेगमय एव सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। क्षेत्र-महिमा का वर्णन करने वाले इस काव्य मे कई कथाओ को 'स्कदपुराण' से ग्रहण करके एक सूत्र मे गूँथा गया है। इसकी प्रत्येक कथा जीवत पात्रो तथा सहज-स्वाभाविक कथागो से परिपूर्ण है। स्वतत्र तथा सुदर भाव और उनको अभिव्यक्त करने वाली प्रौढ शैली इस काव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस काव्य के निगम शर्मा (दे०), अक्का (दे०) आदि पात्र आध्र के घरेलू नाम हो गये हैं। इसमे मुख्य रूप से पढरपुर के पाडुरग विटठल तथा नरसिह की महिमा एव पुडरीक नामक एक भक्त-श्रेष्ठ की कथा का वर्णन किया गया है।

इस काव्य मे अपार भक्ति का प्रवाह प्रचड वेग से बहता हुआ सा प्रतीत होता है। सस्कृत और तेलुगु *दोनो भाषाओ पर असाधारण अधिकार रखने वाले विद्वान्* कवि की विद्वत्ता का आभास पाठक को सपूर्ण काव्य मे होता है। यत्र-तत्र कतिपय अप्रचलित शब्दो के प्रयोग के कारण क्लिष्टता आ गई है किंतु *मुख्य रूप से इस काव्य* मे गभीर भाव प्रदर्शन, रस परिपाक तथा पात्रो के चरित्र-*चित्रण मे कवि को विशेष रूप से सफलता मिली है।* तेलुगु के महाकाव्यो मे इसका अपना एक विशिष्ट स्थान है, किंतु इसका प्रचार एव प्रसार केवल विद्वत्-समाज तक ही सीमित है।

पाडेय, कातिचद्र *(स० ल०)* [समय—1898 से 1974 ई०]

भारतीय सौंदर्यशास्त्र तथा काश्मीर शैव-दर्शन के मूर्धन्य विद्वान् डा० कातिचद्र पाडेय का जन्म उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले मे 1898 ई० मे एक कान्यकुब्ज परिवार मे हुआ था। इनकी शिक्षा उत्तर प्रदेश, पजाब तथा बगाल मे हुई। इन्होने लखनऊ विश्वविद्यालय के सस्कृत विभाग मे प्राध्यापक के रूप मे जीवन शुरू किया और वही अध्यक्ष तथा आचार्य पद पर काम करने के बाद 1958 ई० मे अवकाश प्राप्त किया। तत्पश्चात् विश्व-विद्यालय आयोग के प्रोफेसर हुए और कई वर्षों तक विश्व-विद्यालय आयोग की अनेक प्रायोजनाओ को लेकर शोध करते रहे। 1964 ई० मे इन्हे अतर्राष्ट्रीय सौंदर्यशास्त्र-सम्मेलन (इटरनेशनल काग्रेस) मे व्याख्यान देने के लिए एम्स्टरडम आमत्रित किया गया। इसी वर्ष ब्रिटिश काउसिल की *ओर से भी इनको लदन मे सौंदर्यशास्त्र पर बोलने के लिए* बुलाया गया। इसी दौरान इन्होने फ्रास, जर्मनी, यूनान तथा रोम की यात्राएँ की और अनेक विश्वविद्यालयो तथा शोध केंद्रो मे सौंदर्यशास्त्र तथा शैवदर्शन पर व्याख्यान दिए। 1966 ई० मे यूनेस्को द्वारा आयोजित विश्व के सौंदर्य-शास्त्रियो के सम्मेलन मे इनको प्रो० जॉन अलर ने आमत्रित किया। इसमे विश्व की अनेक सौंदर्यशास्त्रीय धाराओ को लेकर 20 खडो मे एक ग्रथ निकालने का निश्चय किया गया। डा० पाडेय को भारतीय सौंदर्यशास्त्र-खड निकालने का कार्य सौंपा गया 1968 ई० मे ये पुन अतर्राष्ट्रीय सौंदर्य-शास्त्र-सम्मेलन मे भाग लेने के लिए स्वीडन गए। बुल्गा-*रिया, रूमानिया तथा हगरी सरकारो ने भी इनको अपने-*अपने देश मे आने पर सौंदर्यशास्त्र तथा शैवदर्शन पर व्याख्यान देने के लिए आमत्रित किया।

1968 ई० मे इन्होने विश्वविद्यालय आयोग तथा *उत्तर प्रदेश सरकार की मदद से तथा स्वय 25,000 रुपये का दान देकर लखनऊ विश्वविद्यालय मे अभिनवगुप्त सौंदर्यशास्त्र एव शैव-दर्शन-सस्थान की स्थापना की और* आजीवन उसके अवैतनिक निदेशक रहे। 24 जुलाई 1974 *को इनका देहावसान हो गया।*

डा० पाडेय ने सस्कृत तथा भारतीय चिंतन-जगत् को अनेक कृतियाँ प्रदान की। उनमे से अभिनव गुप्त ए फिलासाफिकल एड हिस्टारिकल स्टडी' 'कम्पेरेटिव ऐस्थे-टिक्स' (दो खड), 'स्वतत्र कलाशास्त्र', 'भास्करी' (तीन खड), 'शैवदर्शन बिंदु' (सस्कृत) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त देश तथा विदेश के अनेक प्रमुख शोध पत्रो एव सस्करणो मे इनके शोध पत्र प्रकाशित हुए। दिवगत होने से पूर्व ये एक ईश्वर प्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी व्याख्या के साथ 'भास्करी' का दूसरा सस्करण तथा यूनेस्को के लिए 'भारतीय सौंदर्य-

शास्त्र' खंड तैयार करने में लगे रहे।

पांडेय, मुकुटधर *(हिं० ले०)* [जन्म—1895 ई०]

इनका जन्म बालपुर (बिलासपुर) है। अग्रज लोचनप्रसाद पांडेय (दे०) की प्रेरणा से 1909 ई० में इन्होंने लिखना आरंभ कर दिया था। इनकी अधिकांश कविताएँ छायावादी (दे० छायावाद) प्रगीत-मुक्तकों की श्रेणी में आती हैं, जो 'कानन-कुसुम' आदि में संगृहीत हैं। 'छायावाद' की व्याख्या के लिए 'श्री शारदा' मे इनके महत्वपूर्ण लेख भी निकले थे। 'अंतर्भावना की प्रगल्भ चित्रमयी व्यंजना के उपयुक्त स्वच्छंद नूतन पद्धति' का आविष्कार करने वाले कवियों में इनका प्राथमिक स्थान है, इसलिए छायावाद के प्रवर्त्तकों में इनकी गणना की जाती है।

पांडेय, रूपनारायण *(हिं० ले०)* [जन्म—1884 ई०; मृत्यु—1959 ई०]

इनका जन्म रानी कटरा, लखनऊ में हुआ था, और वहीं शिक्षा-दीक्षा भी हुई। ये 'इंदु', 'माधुरी' आदि अनेक हिंदी-पत्रों के संपादक रहे हैं। इन्होंने पहले ब्रज-भाषा में और फिर खड़ी बोली में रचनाएँ की हैं। 'पराग', 'वन वैभव' आदि मे इनकी कविताएँ संकलित हैं। इन्होंने नाटक और उपन्यास भी लिखे तथा बँगला की अनेक पुस्तकों का अनुवाद किया। इनकी कविताओं में विषय-वस्तु की सरसता और भाषा की सुघराई दर्शनीय है।

पांडेय, लोचनप्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1886 ई०]

इनका जन्म मध्य प्रदेश के बालापुर (जिला बिलासपुर) नामक स्थान पर हुआ। इनका स्वभाव निश्छल था। हिंदी के अतिरिक्त इन्हें उड़िया, अंग्रेजी और संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान था। इनकी रचनाएँ 1905 ई० के आसपास 'सरस्वती' (दे०) में छपने लगी थीं। इन्होंने काव्य, नाटक और उपन्यास लिखे। द्विवेदी जी के प्रभाव से इनका साहित्य इतिवृत्तात्मक और उद्देश्यपूर्ण है। 'मृगी दुःखमोचन' आदि में दिखाई देने वाली 'भावुकता इनकी अपनी है।'

पांडेय, श्यामनारायण *(हिं० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के डुमराँव (जिला आज़मगढ़) नामक ग्राम में हुआ था। काशी में इन्होंने साहित्याचार्य की परीक्षा पास की। 'हल्दी घाटी' और 'जौहर' इनके प्रसिद्ध प्रबंध-काव्य है। इन काव्यों की रचना भारतीय वीर पुरुष और सती नारी का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए की गई है। इनमें उत्साह की अंतर्दशाओं और युद्ध की परिस्थितियों का चित्रण कुशलता से किया गया है। इनकी भाषा का प्रवाह और छंदों का तड़ित्-वेग दर्शनीय है। खड़ी बोली के वीर-काव्य में इनकी रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

पांड्या *(म० पा०)*

यह मा० ना० जोशी (दे०) के 'स्थानीय स्वराज्य' अथवा 'म्युनिस्पालिटी' नाटक का महत्वपूर्ण पात्र है। इस की सृष्टि नाटककार द्वारा हास्य की दृष्टि से की गई है। परंतु अपने वाक्-चातुर्य के कारण यह दर्शकों के हृदय पर गहरी छाप छोड़ देता है। सर्वथा निरक्षर होते हुए भी यह अपने सहज-सरल तर्कों के द्वारा म्युनिसपॅलिटी के सदस्यों की स्वार्थी मनोवृत्ति की प्रखर आलोचना करता है। इसी से नाटक का प्रत्येक पात्र इसके व्यक्तित्व से न्यूनाधिक प्रभावित होता है। इसके मर्मभेदी तर्कों से अभिभूत होने के कारण ही अन्यान्य पात्रों का यह अभिमत कि 'इसे तो बैरिस्टर होना चाहिए था', सही जान पड़ता है; किंतु यह भाग्य की विडंबना ही कही जाएगी कि यह पात्र साधारण-सा घरेलू कर्मचारी मात्र है। कथा की एकरसता को दूर कर हास्य की स्थिति बनाए रखने का पूर्ण श्रेय इसी पात्र को है। मराठी-नाटक-साहित्य में हास्य-पात्रों के क्षेत्र में पांड्या का महत्वपूर्ण स्थान है।

पाटणनी प्रभुता *(गु० कृ०)*

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (दे०) के इस ऐतिहासिक उपन्यास में विक्रम की बारहवीं शती के मध्य में गुजरात की राजगद्दी के लिए होने वाले षड्यंत्र, संघर्ष और प्रणय-शौर्य के प्रसंगों का निरूपण किया गया है। उत्कट कल्पना-शक्ति और असाधारण सर्जनात्मक प्रतिभा द्वारा मुंशी ने अतीत के इतिहास को सजीव और रोचक बना दिया है। इस कृति में केवल सत्तालोलुप राजा-महाराजा ही कुचक्र नहीं करते, अपितु सामंतगण, धनाढ्य जैन, महारानी मीनल, पाटण को विश्वविख्यात बनाने की महत्वाकांक्षा वाला महामात्य मुंजाल, धर्मांध जैनाचार्य आनंदसूरि और अन्य कई पात्र षड्यंत्र रचने में अपनी-

अपनी पटुता का उपयोग करते हैं। वे कभी जीतते हैं, कभी हारते है। सैंतालीस प्रकरणो के इस उपन्यास मे कई छोटे-मोटे प्रसगो-पात्रो को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत किया गया है। इसकी नायिका मीनल है और नायक पद का अधिकारी है महामात्य मुजाल। इनके आसपास होने वाले राजनीतिक प्रपच, दाँवपेच और उथल-पुथल को बहुत ही कुशलता एव कलात्मकता के साथ मूल कथावस्तु से सुश्रृखलित कर प्रस्तुत किया गया है।

मीनल मुजाल, प्रसन्न त्रिभुवन, हसा देवप्रसाद इन तीन युगलो की प्रणय-कथाएँ कर्त्तव्य और भावना के नाना रूपो को प्रकट करती हुई कृति मे प्रगाढ श्रृगार-धारा प्रवाहित करती है। उपन्यास का सजीव वातावरण, तीव्र कार्य-वेग, नाट्य-तत्त्वयुक्त शैली और सुदर भाषा के कारण *कथा-विकास मे कही शिथिलता नही* आने पाई है और पाठक की जिज्ञासा आद्यत उत्कट रूप मे बनी रहती है। वास्तव मे 'पाटणनी प्रभुता' मुशी के ही नही, गुजराती के श्रेष्ठ उपन्यासो मे परिगणनीय है।

पाट्टु *(मल० पारि०)*

इसका शब्दार्थ है गान अथवा गीत। मलयाळम भाषा के आरभिक काल मे कई गीत प्रचलित थे। इन गीतो के रचना-काल को गान-साहित्य का काल माना जाता है। कई लोकगीत गाए जाते थे। इनमे प्रधान, भद्र-काळिप्पाट्टु, सर्प्पप्पाट्टु, कृष्णप्पाट्टु, *किळिप्पाट्टु* आदि हैं। मलयाळम-साहित्य मे इन गीतो का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पाठक, जयत (गु० ल०) [जन्म—1920 ई०]

श्री जयतलाल हिम्मतलाल पाठक का जन्म पचमहाल जिले के राजगढ गाँव मे हुआ था। 1943 ई० मे इन्होंने बी०ए० तथा 1945 ई० मे गुजराती मुख्य विषय लेकर एम० ए० किया। प्रारभ मे अपनी जन्मभूमि मे ही शिक्षक के रूप मे कार्य करने के बाद लगभग पाँच वर्ष तक ये बबई मे पत्रकारिता के व्यवसाय मे रहे। 1953 ई० मे ये केंद्र सरकार के प्रेस कमीशन मे थे। 1953 ई० से ये सूरत के एम० टी० बी० कालेज मे गुजराती के प्राध्यापक-पद पर कार्य कर रहे हैं। अध्यापन कर्म के साथ-साथ इनका कवि-कर्म भी अबाधित रूप से चल रहा है। 'विस्मय', 'सकेत', 'मर्मर' तथा 'सर्ग' नामक काव्य-सग्रह इस बात के साक्षी हैं कि इनकी कविता मे भावो का आवेग, सवेदनशीलता, मानव-प्रेम, गेयता तथा छदोबद्धता इत्यादि तत्त्वो का प्राचुर्य है। प्रतीको की नवीनता इनके काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

कविता के अतिरिक्त 'वनाचल' नाम से इन्होने अपनी आत्मकथा भी लिखी है। इसमे राजपीपला के आसपास के वन्य प्रदेश का आह्लादक एव सुरम्य चित्रण मिलता है। आचलिक जीवन के विशद चित्रण के कारण इस कृति की बहुत प्रशसा हुई है। इन्होने 'गुजराती की आधुनिक कविता' पर शोध-प्रबध तथा 'आलोक' नामक आलोचना ग्रथ की रचना भी की है। ये दोनो ग्रथ इनकी पर्यवेक्षक एव सूक्ष्म आलोचनात्मक प्रतिभा के प्रमाण हैं।

पाठक, यादव मुकुद *(म० ल०)* [जन्म—1905 ई०]

आधुनिक मराठी-काव्यो मे इनकी कीर्ति का आधार यथार्थ घटना पर आधृत 'शशिमोहन' (1929 ई०) नामक खडकाव्य है। यह सस्कृत-काव्य के आदर्श पर लिखा गया है। इसमे 1929 ई० की घटना का वर्णन है। बगाल मे शशिमोहन दे नामक हिंदू युवक ने एक निस्सहाय हिंदू स्त्री की रक्षा की थी जबकि एक दुराचारी व्यक्ति ने उसके साथ अनैतिक आचरण करने का प्रयत्न किया था। वही शशिमोहन इस खडकाव्य का नायक है। सरल, उदबोधक शैली मे लिखा गया यह एक अनुपम खडकाव्य है। उद्देश्य-प्रधान होने पर भी यह काव्य कवित्व-गुण की दृष्टि से कम प्रभावशाली नही है।

इसके अतिरिक्त पाठकजी का एक अन्य काव्य-सग्रह भी है—'फुलें नी मुलें' (1939 ई०)।

पाठक, रामनारायण (गु० ले०) [समय—1887-1954 ई०]

'द्विरेफ', 'शेष' और 'स्वैरविहारी' उपनाम धारण कर साहित्य सर्जन करने वाले रामनारायण विश्वनाथ पाठक का जन्म सौराष्ट्र मे गुजराती पाठशाला के एक शिक्षक के यहाँ हुआ था। शिक्षण और साहित्य के सस्कार उन्हे अपने पिता से जन्मत प्राप्त हुए थे जो यथासमय पूरी तरह विकसित हुए। बबई के विल्सन कालेज से दर्शन-शास्त्र मे बी० ए० की उपाधि प्राप्त कर ये गाधी जी के असहयोग-आदोलन के समय गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद मे गुजराती के अध्यापक बने और आज के लब्धप्रतिष्ठ कवियो—सुदरम् (दे०), स्नेहरश्मि (दे०) इत्यादि को इन्होने कविता की शिक्षा दी। तत्पश्चात् कुछ वर्ष 'प्रस्थान' का

संपादन-संचालन-कार्य करके अहमदाबाद एवं बंबई में अध्यापन-कार्य किया। जीवन के अंतिम वर्षों में ये आल इंडिया रेडियो, बंबई कद्र के परामर्शदाता रहे।

प्रो० रामनारायण पाठक मूर्द्धन्य समीक्षक के रूप में विशेष विख्यात हैं। 'साहित्य-विमर्श', 'काव्यनी शक्ति', 'अर्वाचीन काव्य-साहित्यना वहेणो', 'अर्वाचीन गुजराती कविता साहित्य', 'आलोचना' आदि इनके प्रसिद्ध समीक्षा-ग्रंथ हैं जिनमें साहित्य-रूपों और शास्त्र की विवेचना है। समीक्षक पाठक साहब की दृष्टि पैनी, अध्ययन व्यापक, चिंतन सूक्ष्म और प्रतिपादन तटस्थ होता है। अपने 'प्राचीन गुजराती छंदो' ग्रंथ पर इन्हें 'कांटावाला पारितोषिक' और 'बृहत् पिंगल' (दे०) पर साहित्य अकादेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

पाठक जी सफल कहानीकार भी हैं। इन्होंने 'द्विरेफ' के नाम से 'द्विरेफनी वातो' (दे०) (भा० 1, 2, 3) कहानी-संग्रह प्रकाशित किया है। इनमें गुजराती कहानी-कला का उत्कृष्ट रूप अभिव्यक्त हुआ है। रा० वि० पाठक ने 'शेप' कवि के नाम से 'शेपना काव्यो' और 'स्वैरविहारी' के नाम से दो भागों में 'स्वैर विहार' नामक हास्यरसाश्रित निबंध-संग्रह प्रकाशित किया है। इस प्रकार इन्होंने गुजराती-साहित्य के नाना क्षेत्रों की भरपूर सेवा की है पर समीक्षक एवं कहानीकार के रूप में पाठक जी सदैव स्मरणीय रहेंगे।

पाठक, श्रीधर *(हिं० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1928 ई०]

इनका जन्म जोंधरी (जिला आगरा) में हुआ। इनके पिता लीलाधर बड़े धर्मनिष्ठ थे। एफ० ए० तक पढ़ कर ये कलकत्ता में सरकारी नौकरी करने लगे। सेवा-निवृत्ति के उपरांत ये प्रयाग में रहे।

इनकी कृतियाँ मौलिक भी हैं और अनूदित भी। मौलिक कृतियों में 'जगत् सचाई सार', 'काश्मीर-सुषमा' और 'भारत-गीत' आदि तथा अनूदित रचनाओं में 'एकांत-वासी योगी', 'ऊजड़ ग्राम', 'श्रांत पथिक और ऋतु-संहार' आदि प्रसिद्ध हैं। इन्होंने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में समान अधिकार से कविता लिखी है।

इनकी कविताओं का विषय प्रकृति, राष्ट्र-प्रेम और समाज-सुधार है। इन्होंने प्रकृति के प्रति नये दृष्टि-कोण का उन्मेष किया और छंद के क्षेत्र में नयी लयों और बंदिशों के सफल प्रयोग किए। पाठक जी का ब्रजभाषा-काव्य सरस है और खड़ी बोली की कविताएँ युगानुरूप नये भावों के प्रकाशन में समर्थ हैं। इन्हें खड़ी बोली का प्रथम सफल कवि और स्वच्छंदतावाद का प्रवर्तक होने का गौरव प्राप्त है।

पाठक, सरोज *(गु० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

सरोज पाठक बारडोली कालेज में गुजराती की प्राध्यापिका हैं। नयी पीढ़ी की लेखिकाओं में उनका उच्च स्थान है। ये कहानियाँ और उपन्यास लिखती हैं। उनके तीन कहानी-संग्रह तथा दो उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में विविध प्रयोग किए हैं। चेतना-प्रवाह-शैली, आत्मकथा-शैली, डायरी तथा पत्र-शैली के उन्होंने सफल प्रयोग किए हैं। उनकी कहानियों और उपन्यास 'नाईटमेर' पर अस्तित्ववादी प्रभाव है और फ्रॉयड के मनोविज्ञान का भी प्रभाव है। उन्होंने घटना-प्रधान एवं घटनालोप दोनों प्रकार की कहानियाँ लिखी हैं। यथार्थवादी चित्रण उनकी इन कृतियों की शक्ति है।

पाठक, हीरा बेन *(गु० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

इनका जन्म बंबई में हुआ था तथा इनकी प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चशिक्षा भी वहीं हुई थी। स्वर्गीय रामनारायण पाठक (दे०) के निर्देशन में रचित 'आपणुं विवेचन-साहित्य' नामक इनका शोध-प्रबंध एक उत्कृष्ट रचना है।

'काव्य भावन' नाम से इनका एक आलोचना-संग्रह भी प्रकाशित हुआ है जो तलस्पर्शिनी विवेचना-दृष्टि तथा भावात्मकता के कारण विशेष ध्यान आकर्षित करता है।

'परलोके पत्र' नामक कृति में इन्होंने स्वर्गीय पति को संबोधित कर काव्य-रूप में पत्र लिखे हैं। इस प्रकार एक नयी ही काव्यविधा को जन्म देकर इन्होंने भावों की मधुर, चित्रात्मक तथा काव्योचित अभिव्यक्ति की है।

पाठालोचन (हिं० पारि०)

'पाठालोचन' कृति के पाठ का आलोचनात्मक संपादन है, जिसमें सुनिश्चित नियमों के अनुसार पांडुलिपियों के सूक्ष्म परिशीलन द्वारा मूल पाठ का पुनर्निर्माण करने का प्रयत्न किया जाता है। कृतियों के मूल पाठ का यह पुनर्निर्माण संपादक की 'सुरुचि', 'कल्पनाशीलता' अथवा

उसके अपने 'विवेक' का प्रतिफल नही होता, उसे पाठ मे किए गए प्रत्येक सशोधन और परिवर्द्धन के लिए ठोस तर्क एव प्रमाण प्रस्तुत करने होते हैं। पाठालोचन प्राय हस्त-लिखित कृतियो का ही किया जाता है क्योकि आधुनिक मुद्रण-कला के प्रचलन से पूर्व 'प्रकाशन का कार्य हस्त-लिखित प्रतिलिपियो द्वारा ही किया जाता था और मूल पाडुलिपि की प्रतिलिपि करते समय अथवा एक प्रतिलिपि से अन्यान्य प्रतिलिपियाँ उतारते समय भूलो और अशुद्धियो का रह जाना स्वाभाविक ही था। अनेक स्थितियो मे उन मुद्रित पुस्तको के पाठालोचन की आवश्यकता भी होती है जिनका मुद्रण या तो लेखक के निरीक्षण मे न हुआ हो या जिनके परवर्ती सस्करणो मे भूलें बढती चली गई हो। हिंदी मे पाठालोचन के अर्थ मे 'पाठानुसधान' शब्द भी प्रचलित है, किंतु अँग्रेजी शब्द 'टैक्स्चुअल क्रिटिसिज्म' के पर्याय के रूप मे 'पाठालोचन' शब्द का प्रयोग अधिक आग्रहपूर्वक किया जाता है।

'पाठालोचन की आधुनिक पद्धति का सूत्रपात पश्चिम मे उन्नीसवी शती मे प्रसिद्ध जमन भाषाशास्त्री कार्ल लैश्मन (1793-1851 ई०) द्वारा सपादित अनेक कृतियो से हुआ। लैश्मन की पद्धति मे पाठालोचन की प्रक्रिया के दो सोपान हैं आलोचनात्मक पुनरीक्षण द्वारा पाठ-निर्धारण तथा परिशोधन। पहले सोपान के अतर्गत सपादक अनुसधान के द्वारा ग्रथ की एकाधिक प्रतिलिपियाँ एकत्र कर उनमे तिथि कम निश्चित करता है। तदनतर विभिन्न प्रतिलिपियो के विषम अशो मे विद्यमान पाठातरो के स्वरूप के अनुसार प्रतिलिपियो की विभिन्न शाखाओ एव परपराओ का वर्गीकरण करता है। तदुपरात व्याकरण, भाषाविज्ञान, शब्दशास्त्र, इतिहास और पुरातत्व आदि की सहायता से अधिक से-अधिक तर्कसगत एव युक्तियुक्त पाठ का निर्धारण करता है। यह एक प्रकार से वर्तमान प्रति लिपि से मूल पाठ की ओर एक उल्टी यात्रा है। इसके पश्चात् छूटे हुए वाक्याशो, शब्दो एव अक्षरो को पूरा किया जाता है तथा पाठ मिश्रणो एव प्रक्षिप्ताशो को हटाया जाता है। दूसरा सोपान परिशोधन का है। इसके अतर्गत सपादक कृतिकार की लेखन-शैली, शब्द भाडार और छद-योजना आदि के अनुरूप खडित एव विकृत पाठ म विवेक सम्मत आवश्यक परिन्यास, परिवर्द्धन और परिशोधन करता है। इस प्रकार पाठालोचन द्वारा मूल पाडुलिपि के अधिका-धिक समीप 'सही' पाठ का पुनर्निर्माण सभव हो जाता है। इस दूसरे सोपान मे यद्यपि सपादक की कल्पना का भी निश्चित योग रहता है, तथापि पाठालोचन मूलत एव समग्रत एक वस्तुपरक एव वैज्ञानिक प्रक्रिया है; यह प्रकृत्या विज्ञान ही है, कला नही।

पाडगावकर, मगेश *(म० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

ये कोमलकात पदावली-युक्त लालित्यपूर्ण रचना करने वाले नये कवि है। इनके काव्य-सग्रह है 'धारानृत्य', 'जिप्सी', 'छोरी'। इन्होने मीराँबाई (दे०) के गीतो का मराठी मे अनुवाद भी किया है।

नये कवियो की तरह सामाजिक वैषम्य का इन्होने यद्यपि विरोध किया है, परतु प्रकृति तथा प्रेम ही इनके काव्य का मूल प्रतिपाद्य है। इन्होने कोमल एव उग्र प्रकृति के चित्र अकित किए हैं। एक ओर जहाँ इनके वर्णन कोमल, कमनीय और मोहक है वही प्रकृति के भयकर रूप को अकित करते समय इनकी शब्द-योजना अत्यत उग्र तथा उत्तेजक हो गई है।

ये मूलत सौदर्यवादी कवि है। नये कवि होते हुए भी इनका काव्य आशावादी है। प्रकृति के कोमल रूप का चित्रण तथा प्रेमाभिव्यक्ति के क्षणो मे इनका काव्य शब्द-माधुर्य से ओतप्रोत है। इनकी कल्पनाएँ भी अत्यत कोमल एव रमणीय हैं तथा उनकी अभिव्यक्ति सगीतमय और चित्रात्मक है।

इन्होने रूढ उपमानो की उपेक्षा कर आधुनिक सदर्भ के योग्य नवीन प्रतिमानो एव प्रतीको का सार्थक प्रयोग किया है। ये विकासो-मुख कवि हैं। इन्होंने मुक्त छद का प्रयोग किया है।

पाडाण *(त० पारि०)*

यह 'सगम्' साहित्य के 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ) नामक भेद का उपभेद है और 'काचि' के पश्चात् आता हैं। इसका समानातर 'अहम् (दे० अहप्पोरुळ) का उपविभाग 'कैक्किळै' है। इसकी मुख्य विषय-वस्तु दानार्थी व्यक्ति द्वारा दानी प्रभु की स्तुति या प्रशसा है।

तमिल भाषा की व्याकरण-परपरा के प्रथम ग्रथ 'तोलकाप्पियम्' (दे०) के अनुसार 'पाडाण' नामक उपभेद के गीत देवता एव मनुष्य दोना पर आधारित हो सकते हैं। आधारभूत तत्त्व पर मोह, प्रेम, गर्व इत्यादि के साथ प्रशसात्मक उक्तियाँ इन गीतो म मिल सकती हैं। मनुष्य सबधी 'पाडाण' गीतो के दस 'तुरै' (प्रकरण) बनाए गए हैं। इनम म ये दो 'तुरै' अधिक प्रसिद्ध हो चुके हैं—

'आर्रुप्पर्टे' (उच्चारण 'भ्राट्रुप्पर्डे') तथा 'वायुरै वाळत्तु'। पूर्वोक्त प्रकरण के गीतों का विषय दानी प्रभुओं का प्रशंसात्मक परिचय है। यह परिचय ऐसे नर्तक-गायक-कवि-जनों द्वारा दिया जाता था जो दानी प्रभुओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत हो चुके थे और चाहते थे कि अन्य दानार्थी भी उस अपार दान-वर्षा से लाभान्वित हों। ऐसे गीतों की एक लोकप्रिय विधा 'संगम्' साहित्य में चलती थी। 'पत्तुप्पाट्टु' नामक गीत-पद्यसंग्रह में पाँच वृहत् गीत, 'मुरुकाररुप्पर्टे' नामक गीत-पद्यसंग्रह में पाँच वृहत् गीत 'मुरुकाररुपुपर्टे', 'पेरुम्पाणाररुप्पर्टे', 'चिरुपाणाररुप्पर्टे', 'पोरुनराररुप्पर्टे' तथा 'मलैपट्कटाम्' हैं ('ट्रु' का उच्चारण 'ट्रु' होता है)।

'संगम्' साहित्य के विभागों पर अनेक परवर्ती कविता-रूपों का विकास आधारित है और यह रोचक विषय है कि पिछली शतियों में प्रचलित दो पद्य-विधाएँ—'पिळ्ळैत्तमिल्' (शैशव अवस्थाओं पर मोह-प्रकटन के पद्य) तथा 'उला' (नायक की काल्पनिक शोभा-यात्रा पर वनिताओं की मोहाभिव्यक्ति के पद्य) वस्तुतः पुराने 'पाडाण्' उपविभाग से उत्पन्न हैं।

पाढ़ी, वेणीमाधव *(उ० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

डा० वेणीमाधव पाढ़ी (पी-एच० डी०) अध्यापक हैं। इनका जन्म पारळाखेमुंडी-गंजाम में हुआ था। इनकी कृति 'दारु-देवता' (दे०) एक उत्कृष्ट गद्य-रचना है। यह गवेषणामूलक रचना है तथा जगन्नाथ-संस्कृति से संबंधित है। इसमें लेखक ने व्यापकता, गहराई और सूक्ष्मता से विषयवस्तु को प्रकाशित करने का प्रयास किया है। इसमें जगन्नाथ-संस्कृति के अनेक अंधकारमय पक्ष आलोकित हो उठे हैं। प्रतिपादन की शैली भी विषयानुरूप सरस, गंभीर एवं उदात्त है। रचना किंवदंती-संवलित होने के कारण और भी मोहक हो उठी है। इसमें विराट् जीवन-दृष्टि की गंभीरता तो है ही, साथ ही अनगढ़ जन-जीवन की ऊष्मा भी है; यही इस रचना की अपनी विशेषता है। इसके अतिरिक्त 'अविश्वासी' (नाटक) 'चोर कवि' (कविता) आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

पाणिग्रही, कालिंदीचरण *(उ० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

इनका जन्म पुरी ज़िले के विश्वनाथपुर गाँव में हुआ था। रेवेंसा कॉलिज, कटक से इन्होंने बी० ए० की परीक्षा पास की।

बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न कालिंदीचरण पाणिग्रही सबुज-गोष्ठी (दे० सबुज-साहित्य) के ऐसे ख्याति-प्राप्त लेखक हैं जो आज तक साहित्य-साधना में निरत हैं। सबुज-साहित्यकारों में उपन्यासकार और कहानीकार के रूप में सर्वाधिक सफलता इन्हें मिली है; परंतु इनका काव्य एवं निबंध-साहित्य भी उपेक्षणीय नहीं है। इन्होंने सबुज-आदर्श पर अपना साहित्यिक जीवन प्रारंभ किया था, किंतु आगे चलकर इन्होंने अपनी दिशा बदल दी। इनका उपन्यास 'माटिर-मणिष' (दे०) इस परिवर्तन का सूचक है। यह इनकी सर्वोत्तम एवं सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। फकीर मोहन सेनापति (दे०) की रचनाओं के बाद 'माटिर मणिष' में ही गाँव का जीवंत चित्र मिलता है। ग्रामीण जनभाषा के प्रयोग ने इसे स्वाभाविकता प्रदान की है। यथार्थ और आदर्श के सुंदर समन्वय के कारण यह उपन्यास सार्थक शिल्प-गौरव प्राप्त कर सका है। त्याग, संयम, सहिष्णुता, उदारता एवं अहिंसा की प्रतिमूर्ति के रूप में ग्रामीण कृषक बरजू (दे०) के जीवन का जो चित्र लेखक ने दिया है, वह उच्च कोटि का है। कुटिल व्यक्तियों के कुप्रभाव से टूटते हुए परिवार को त्याग के द्वारा किस प्रकार बचाया जा सकता है, यही इसमें चित्रित है। अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद के लिए साहित्य अकादेमी ने जिन दस पुस्तकों को स्वीकार किया, उनमें एक 'माटिर मणिष' भी थी। बरजू के जीवन-क्रम-विकास में 18 वर्षों बाद 'लुहार-मणिष' की रचना हुई। इसमें श्रमिक-वर्ग के कल्याण-हेतु बरजू बंदी बनता है, किंतु यह उपन्यास उतना लोकप्रिय नहीं हो सका।

'मुक्तागढ़र क्षुधा' तथा उसका परवर्ती भाग 'अमर चिता' जीवनचरितमूलक उपन्यासों में उल्लेखनीय है। अब तक इनकी 15 रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'सागरिका', 'शेषरश्मि', 'मोकथाटिसरिनाहिं' प्रमुख कहानी-संग्रह हैं।

पाणिग्रही, कृष्णचंद्र *(उ० ले०)*

कृष्णचंद्र पाणिग्रही का जन्म 1912 ई० में मयूरभंज जिले के खिचिंग नामक स्थान में हुआ था। आधुनिक उड़िया गद्य-साहित्य के विकास में कृष्णचंद्र पाणिग्रही का योगदान उल्लेखनीय है। ये पुरातात्त्विक एवं इतिहासकार भी हैं; फलतः इनकी गद्य-शैली पर इसका

प्रभाव देखा जा सकता है। ऐतिहासिक अध्ययन एव गवेषणा को इन्होने सर्वथा एक नयी दिशा दी है।

रचनाएँ—'इतिहास एव किंवदती', 'भारतीय प्रत्न-तत्त्व', 'प्रबंध-मानस' (दे०), आदि।

पाणिग्रही, दिव्यसिंह *(उ० ले०)* [जन्म—1889 ई०]

इनका जन्म बिस्वनाथपुर, पुरी मे हुआ था। पुरी मे ये वकील थे। 1920 ई० मे ये पुरी की डिस्ट्रिक्ट कांग्रेस कमेटी के प्रधान रहे। ये उडिया के प्रतिष्ठित उपन्यासकार एव कहानीकार हैं। 'तुमोमा' (दे०) इनका प्रसिद्ध उपन्यास है। अन्य रचनाएँ हैं—'वधु', 'महाराज रामचंद्र', 'अमृत कंकण'।

पाणिनि *(स० ले०)* [स्थिति-काल—600 ई० पू०]

पाणिनि के स्थिति-काल के सबध मे विद्वानो मे मतभेद है। डा० वेलवेकर ने 700 600 ई० पू०, मैक्समूलर ने 350 ई० पू०, कीथ ने 3०० ई० पू० तथा डा० भडारकर ने 700 ई० पू० पाणिनि का स्थिति-काल स्वीकार किया है। पुरुषोत्तम देव ने 'त्रिकाडकोष' मे पाणिनि, पाणिन, दाक्षीपुत्र, शालकि, शालातुरीय, और आहिक, ये छह पर्याय पाणिनि के लिए दिए हैं। पाणिनि के पिता का नाम पाणिनि बतलाया जाता है। कहा जाता है कि इनकी माता दक्ष कुल की थी। आचार्य व्याडि इनके मामा थे। पाणिन का जन्म-स्थान शालातुर ग्राम बतलाया जाता है। कुछ विद्वान् पाणिनि का जन्म वाह्लीक देश मे मानते हैं। पाणिनि ने 'पाणिनितत्र', 'प्रत्याहारसूत्र', 'अष्टाध्यायी', (दे०) 'अष्टाध्यायीवृत्ति', 'जाववतीविजय' (पाताल विजय) 'विरूपकोष' तथा 'पाणिनिशिक्षा' की रचना की थी। पाणिनि की रचनाओ मे 'अष्टाध्यायी तथा 'पाणिनीय शिक्षा' अत्यत महत्वपूर्ण हैं। 'अष्टाध्यायी के सूत्रो मे व्याकरण के मूल नियम वर्तमान हैं, जिनके आधार पर व्याकरणशास्त्र का महान् प्रासाद निर्मित हुआ है। इसीलिए 'अष्टाध्यायी को 'जग-माता' कहा गया है। 'अष्टाध्यायी' के आधार पर अइउण् आदि 14 माहेश्वर सूत्र हैं। 'पाणिनीय शिक्षा' की लघुरूप मे रचना करके पाणिनि ने सस्कृत के विद्यार्थी के लिए अत्यत उपयोगी नियम सुलभ कर दिए हैं।

पाणिनि की व्याकरण सबधी देन को न केवल भारतीय अपितु विदेशी विद्वानो ने भी मुक्तकठ से स्वीकार किया है। पाणिनि वैदिक वाङ्मय के अतिरिक्त इतिहास, मुद्राशास्त्र तथा लोकशास्त्र के भी विशेष ज्ञाता थे।

पातिमोक्ख *(पा० कृ०)*

यह 'विनयपिटक' (दे०) का मूलाधार है। इस शब्द का कुछ लोग 'बधन' अर्थ करते हैं, दूसरे लोग 'बधन मे डालने वाले नियम' अर्थ लगाते हैं, तथा कुछ लोग इन्हे 'अवश्य पालनीय नियम' के रूप मे स्वीकार करते हैं। वस्तुत 'पातिमोक्ख' ऐसे नियमो और प्रतिज्ञाओ का सग्रह है जो प्रत्येक बौद्ध भिक्षु के लिए अवश्य पालनीय माने जाते हैं। 'विनयपिटक' मे इन्ही नियमो की व्याख्या है और इन्ही को बुद्ध का उत्तराधिकारी बतलाया गया है। उपोसथ मे इन्ही का पाठ किया जाता था। इसमे उन नियमातिक्रमो का वर्णन है जो पाप की सीमा मे आते है। इसमे 227 नियमो का वर्णन है। 'पातिमोक्ख' सुत्त-रूप मे हैं जिनमे प्रत्येक सुत्त एक अभिलेख माना जाता है। ये 'पातिमोक्ख' आठ अध्यायों मे विभक्त है क्योकि नियमो का अतिक्रमण करने वाले पाप आठ ही माने गए हैं। इनकी व्याख्या 'महाविभग (दे० विनयपिटक) मे की गई है। ये नियम पुरुषो के लिए है। इनके अनुकरण पर स्त्रियो के लिए नये नियम बनाए गए जिनका सकलन 'भिक्खुनीविभग' (दे० विनयपिटक) मे किया गया।

पात्र *(स०, हिं० पारि०)*

उपन्यास (दे०), कहानी (दे०), नाटक (दे०) आदि मे घटनाओ मे भाग लेने वाले, कार्यों को करने वाले और उनके परिणाम को झेलने वाले व्यक्तियो को पात्र' कहते हैं। कथावस्तु मे महत्व के अनुसार पात्र दो प्रकार के होते हैं—प्रमुख पात्र और गौण पात्र। पात्रो को उनके स्वभाव, गुण, व्यक्तित्व के आधार पर विभिन्न कोटियो मे वर्गीकृत किया गया है। ये कोटियाँ हैं—गतिहीन पात्र, गतिशील पात्र, व्यक्ति पात्र, प्रतिनिधि पात्र। जो पात्र परिस्थितियो से निरपेक्ष रह कृति मे आदि से अत तक एक से रहते हैं, जिनके व्यक्तित्व के एक पक्ष का ही उद्घाटन किया जाता है और जिनका विकास नहीं दिखाया जाता, वे गतिहीन या स्थिर पात्र कहलाते हैं। गतिशील पात्र के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षो मे, सघर्ष के कारण होने वाले रूपातर और विकास का चित्रण किया जाता है। ऐसे पात्रो के चरित्र के एक से अधिक पक्षो का उद्घाटन

और विरोधी गुणों के कारण मन में होने वाले घात-प्रतिघात का चित्रण किया जाता है। वह पात्र जो वर्ग-विशेष के गुण-दोषों का प्रतिनिधित्व न कर अपनी विशिष्ट चारित्रिक विशेषताएँ रखता है, व्यक्ति-पात्र कहलाता है। इसके विपरीत जो पात्र अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, वह प्रतिनिधि पात्र कहलाता है। आज की कथा-कृतियों में चरित्र ही मेरुदंड होता है, अतः पात्रों के चरित्र-चित्रण का बड़ा महत्व है। वे ही कला-कृतियाँ सफल मानी जाती हैं जिनके पात्र जीवंत हों।

पानशाला *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1928 ई०]

यह दुव्वूरि रामि रेड्डी (दे०) द्वारा किया गया उमर खय्याम की रूबाइयों का स्वतंत्र अनुवाद है। श्री रामि रेड्डी को फ़ारसी-साहित्य, इतिहास एवं काव्य-रूपों का विशेष ज्ञान था। इस कारण वे उमर खय्याम की भावनाओं एवं उनके जीवनदर्शन का अवगाहन समग्र रूप से कर सके। तेलुगु में उमर खय्याम के अनेक अनुवाद हुए हैं। किंतु 'पानशाला' का स्थान इनमें सर्वोपरि है। रामि रेड्डी की यह रचना पाठक को अनुवाद प्रतीत नहीं होती। मूल कवि की भावनाओं को आत्मसात् करके रामि रेड्डी ने उन भावों को अपना बना लिया है और उसके उपरांत उनको अपनी मृदु-मधुर शैली में सुंदर अभिव्यक्ति दी है।

पाना *(मल० पारि०)*

मलयाळम की एक काव्य-विधा और एक छंद। इस विधा के प्रमुख प्रयोक्ता सोलहवीं शती के भक्त कवि पूंतानम् (दे०) नंपूतिरि हैं जिनके दो काव्य 'ज्ञानप्पाना' (दे०) और 'संतानगोपालम् पाना' बहुत प्रसिद्ध हैं। इसमें प्रयुक्त छंद को 'सर्पिणी' भी कहते हैं। इसका लक्षण ग्यारह अक्षरों की दो पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में चार गण हैं। प्रथम गण दो अक्षरों का है और शेष तीन गण तीन-तीन अक्षरों के हैं।

पानेइ-जंकि *(अ० पा०)*

ये रजनीकांत बरदलै (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'मिरि जीयरी' (दे०) के नायिका-नायक हैं। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि मिरि जनजाति है। पानेइ और जंकि का मिलन नहीं हो पाता, उन्हें दर्द भरी मृत्यु का सामना करना पड़ता है। लेखक ने नायिका पानेइ के चरित्र पर विशेष ध्यान दिया है।

पापय्य शास्त्री, जंध्याल *(ते० ले०)* [समय—1912 ई०]

श्री शास्त्री आर्द्रहृदय कवि हैं। भवभूति (दे०) के समान ये भी करुणरसवादी हैं। अतः इनका दूसरा नाम 'करुणश्री' भी है और सरलता, सुकुमारता एवं प्रांजलता इनकी कविता के प्रमुख गुण हैं।

'हृदयश्री', 'करुणाश्री', 'विजयश्री', 'अरुण-किरणालु' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनकी रचना आद्यंत मधुर होती है और उसमें शब्द एवं अर्थ अनायास ही हृदयंगम हो जाते हैं। विशेषकर करुण रस के पोषण में इन की प्रतिभा अत्यंत प्रखर हो उठती है। बुद्ध इनके परम आराध्य हैं और इनका 'करुणाश्री' काव्य बुद्ध के ही चरित का वर्णन करता है। अनेक पौराणिक प्रसंगों को लेकर भी इन्होंने मृदु मधुर रचनाएँ की हैं। समाज की दीन जनता पर महती संवेदना, राष्ट्र के प्रति तीव्र अनुराग तथा स्त्रियों के प्रति आदर की भावना इनकी रचनाओं में सर्वत्र प्रकट होती है। इनकी रचनाओं का आदर पंडित-वर्ग में ही नहीं, साधारण जनता में भी खूब हुआ है।

पापराजु, कंकंटि *(ते० ले०)* [समय—अठारहवीं शती ई० का मध्यकाल]

पापराजु का जन्म नियोगि ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। माता नरसमांबा थीं तथा पिता अप्पयामात्य थे। कंकंटि उनका गृहनाम था।

पापराजु का निवासस्थान नेल्लुर जनपद माना जाता है। पापराजु के अनन्य मित्रों में पुष्पगिरि तिम्मन्न का नाम उल्लेखनीय है। तिम्मन्न भी 'अनेक-आंध्रकृति-प्रकल्पन-समर्थ' थे। एक बार पापराजु को स्वप्न में मदन-गोपाल देव का साक्षात्कार हुआ था। इष्टदेव मदनगोपाल ने आदेश दिया कि तुम 'उत्तररामायण' (दे० उत्तर-रामायणमु) की कथा को 'मृदुवचोधाराप्लावित' रसनिष्ठ शैली में प्रबंधकाव्य का प्रणयन करके मुझे समर्पण करो'। यह भव्य एवं दिव्य स्वप्न-कथा उन्होंने अपने मित्र तिम्मन्न को कह सुनाई तथा उनसे पापराजु ने प्रार्थना की कि प्रबंध-निर्माण में तुम मेरी सहायता ठीक उसी प्रकार करो जिस प्रकार भारत-युद्ध में श्रीकृष्ण ने अर्जुन की सहायता की

थी। कुछ आलोचकों के अनुसार 'उत्तररामायणमु' के कवि तिम्मन्ना (दे०) ही थे परंतु यह निष्कर्ष तर्कसम्मत नहीं है, कारण, दोनों की काव्य शैलियाँ एक दूसरे से नितांत भिन्न है।

पापराजु मदनगोपाल के उपासक थे। अतः उन्होंने 'विष्णुमायाविलासमु' नामक यक्षगानमु (दे०) को भी मदनगोपाल के श्रीचरणों में ही समर्पित किया था। *उनका कविकर्म विविधतापूर्ण था।* वे चतुर्विध कविता-विशारद थे। तेलुगु में कविता प्रक्रियाएँ चार प्रकार की मानी गई हैं—1 आशुकविता, 2 मधुर कविता, 3 चित्र-कविता, 4 विस्तार कविता। पापराजु इन सभी प्रक्रियाओं में निष्णात थे। उनका पारिवारिक जीवन सुखश्री-समृद्ध था अतः वे यशस्वी दानी थे। लोकज्ञता उनमें भरपूर थी। वे मंत्रि पुंगव भी थे। यही नहीं, गणितविद्या में उनकी अपार गति थी।

पापराजु की रचना में अपने आभिजात्य का वर्णन पुष्कल मात्रा में मिलता है। हिंदी-साहित्य में केशवदास (दे०) ने सनाढ्य ब्राह्मणों की वैभव गरिमा का वर्णन किया तो तेलुगु में ककटि कवि ने नियोगी ब्राह्मणों का गुणगान जी खोल कर किया है। कवि का व्यक्तिगत तथा काव्य-जीवन दोनों वैभवपूर्ण तथा ऊर्जस्वित थे।

प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से आँका जाए तो पापराजु की 'उत्तररामायणमु' कृति तिक्कना सामयाजी (दे०) की 'निर्वचनोत्तररामायणमु (दे०) से भी महत्त्वपूर्ण है। तेलुगु प्रदेश में 'उत्तररामायणमु' काव्य का कथावाचक पौराणिक पंडित गायन किया करते हैं। वैदुष्य और प्रभावोत्पादकता का मणिकांचन संयोग पापराजु की वैयक्तिक तथा साहित्यिक जीवनियों का वैशिष्ट्य है।

पापरि *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1935 ई०]

गणेश गर्ग (दे०) की इस *आत्मकथात्मक* प्रेम-कविता में प्रतिदानहीन एकपक्षीय प्रेम का चित्रण है। जिस लड़की ने लेखक को प्रभावित किया और जिसके सौंदर्य में स्नान कर उसने विश्व में नूतन सौंदर्य की उपलब्धि की, वह उसे निर्ममतापूर्वक छोड़ गई थी। *कविता में भावों* की गहराई, प्रभावशाली शब्द-चयन और अनुभूति की प्रामाणिकता है। प्रेम में बौद्धिकता एवं दार्शनिकता का अभाव है। संभवतः प्रेम की चोट न सह पाकर ही लेखक अल्पायु में *यह संसार छोड़ गया था। उसकी यह प्रारंभिक* कृति अपना विशेष महत्त्व रखती है।

पायिरम *(त० पारि०)*

'उपोद्घात', 'प्रस्तावना', 'भूमिका' आदि अर्थ देने वाला यह शब्द तमिल साहित्यिक परंपरा में पद्य-रचनाओं की भूमिकाओं के लिए प्रयुक्त है। इन भूमिकाओं के बारे में 'नन्नूल्' नामक व्याकरण ग्रंथ (तेरहवीं शती ई०) में कुछ सूत्र प्रस्तुत किए गए हैं। किसी भी शास्त्रीय चर्चा करने वाली रचना ('नूल्') के लिए एक 'पायिरम्' की आवश्यकता मानी गई है। सबद्ध रचना की शोभा भी भूमिका से बढ़ जाती है, यथा चित्रों से प्रासाद, गोपुर-द्वार से नगर आभूषणों से नारी, इत्यादि। दो प्रकार के 'पायिरम्' माने गए हैं—सामान्य एवं विशिष्ट। ऐसी भूमिकाएँ 'सामान्य' की कोटि में आती हैं जिनमें व्याकरण-ग्रंथों के संबंध में जानने लायक सामान्य बातें—विषय-प्रतिपादन, संदर्भ, अध्येता एवं अध्ययन प्रणाली—प्रस्तुत हों। 'विशिष्ट' भूमिकाओं में रचनाकार, परंपरा, प्रचलन-क्षेत्र, शीर्षक, विषयवस्तु, योजना, श्रोता, फलश्रुति—इन आठों मुद्दों का उल्लेख अपेक्षित है। स्पष्ट है कि गुरु-शिष्य की मौखिक परंपरा में चली आने वाली व्याकरण-रचनाओं को ध्यान में रखकर भूमिकाओं के लक्षण यहाँ प्रस्तुत हैं। उक्त दो प्रकारों के अतिरिक्त तमिल-साहित्य में एक 'स्वरचित' भूमिका का प्रकार भी चल पड़ा है जिसमें लेखक स्वयं अपनी रचना का परिचय देता है। प्राचीन *तमिल साहित्यिक रचनाओं के काल निर्णय में रचनाओं* का 'पायिरम्' सहायक होता है।

पारप्पुरत्तु ईशो मत्तायि *(मल० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

जन्मस्थान—मावेलिक्करा। हाई स्कूल शिक्षा के बाद करीब 21 वर्ष पलटन में नौकरी के पश्चात् इन्होंने अवकाश ग्रहण किया। अब पारिवारिक खेती और संपत्ति *की देखरेख तथा साहित्य सृजन और पटरथा-भ्रमण में* समय व्यतीत होता है।

श्री मत्तायि की सहज साहित्यिक चेतना बशीर, तकषि (दे०) आदि की कृतियों से उद्दीप्त हुई थी। सैनिक *सेवाकाल में अध्ययन के साथ-साथ इनकी कलम मित्रों के* प्रोत्साहन से कहानी, एकांकी आदि रचने लगी। इनकी प्रथम प्रकाशित रचना 'पुत्रियुटे व्यापारम्' 'लोकवाणी' में निकली थी। सुविधाय इन्होंने 'पारप्पुरत्तु' उपनाम रख लिया जो अंततः स्थायी हो गया। कहानियों में सफलता पाने के बाद ये उपन्यास रचना में प्रवृत्त हुए। इनके

प्रसिद्ध उपन्यास हैं—'निणमणिञ्ज काल्पाटुकळ्' (दे०) (खून-सने पद-चिह्न), 'अन्वेषिच्चु कंडेत्तियिल्ल' (खोजा, पर पता नहीं लगा), 'पणितीरात्त वीडु' (अधूरा घर) तथा 'अरनाषिक नेरम्' (दे०) (आधी घड़ी)। इनके कई कहानी-संग्रह भी हैं।

श्री पारप्पुरत्तु की सफलता का प्रमुख कारण यह है कि इनके पात्र इनके वैविध्यपूर्ण अनुभव-जगत् के जीव हैं और उन्हें अपनी रचनाओं में इन्होंने पूरी आत्मीयता के साथ प्रस्तुत किया है। ईसाई लोगों का पारिवारिक जीवन, उनका नाता-रिश्ता, गिरजाघर से संबंधित उनके उत्सव, उनके कलह-संघर्ष आदि का चित्रण उपन्यासकार ने उन्हीं की बोली के उद्धरणों सहित किया है। इनकी शैली सरल, सहज और सीधी है। मानसिक ग्रंथियाँ प्रस्तुत करना और कथाविकास के दौरान उन्हें खोलना अन्य उपन्यासकारों की तरह इनकी भी कला का अंग है। ये लोकप्रिय केरलीय उपन्यासकारों में प्रमुख हैं।

पारप्पुरत्तु संजयन् (मल० पा०)

'पारप्पुरत्तु संजयन्' सुप्रसिद्ध हास्य-साहित्यकार एम० आर० नायर (दे० संजयन्) का उपनाम है और वह उनकी रचनाओं का पात्र भी है। उनके द्वारा संपादित पत्रिका का नाम भी 'संजयन्' था। 'महाभारत' (दे०)-कथा के संजय की तरह यह संजय भी अज्ञान के अंधकार में दिशा-भ्रष्ट होने वाले समाज-रूपी धृतराष्ट्र को सत्य और असत्य के विवेचन द्वारा वस्तुस्थिति का परिचय देता है।

हास्यरस के इस मर्मज्ञ के जीवन का एक क्षण भी राजयक्ष्मा के कारण सुखमय नहीं रहा। पत्नी और पुत्र की अकाल मृत्यु भी हुई। परंतु इन कष्टों ने लेखक की हास्यप्रियता को बढ़ाया ही है। संजयन् के हास्य की दार्शनिकता एक कविता के निम्नलिखित प्रस्ताव से व्यक्त होती है—'चाहे दिल दहलाए, चाहे सिर चकराए, फिर भी हँसना चाहिए। विदूषक का यही धर्म है।'

संजयन् ने समाज और साहित्य की बड़ी सेवा की है। यह पात्र महात्मा गांधी का भक्त है और अंग्रेज राज का निरंकुश आलोचक। समाज में जहाँ भी अन्याय होता है वहाँ यह पहुँचता है और हँसी-हँसी में उन बुराइयों का इलाज करता है। महाकवि उळ्ळूर् (दे०) के इस कथन में अत्युक्ति नहीं है कि कुंचन् नंपियार (दे०) के बाद इस प्रकार की हास्य-प्रतिभा मलयाळम में पहली बार दिखाई दी थी।

पारमिता (पा० पारि०)

इस शब्द का अर्थ है 'पार की सीमा'। रायस डेविस के अनुसार इस शब्द का प्रयोग 'परिपूर्णता' तथा 'सर्वोच्च विधा' के लिए आया है। कभी-कभी इसके लिए 'पारमी' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। इस शब्द का प्रयोग 'सुत्तनिपात' (दे०), 'जातक' (दे०), 'नेट्टिपकरण' (दे०) तथा दूसरी पुस्तकों में प्रायः किया गया है। वस्तुतः इनकी सत्ता तो पहले भी थी किंतु इन्हें महायान शाखा (दे०) में व्यवस्थित रूप प्राप्त हुआ। पारमिताएँ 6 हैं—दान, शील, क्षांति, वीरय (वीर्य), ध्यान और प्रज्ञा। इन 6 में उस सीमा तक पहुँचना होता है जिसमें प्रज्ञा-पारमिता सर्वोच्च है। ये 'बोधिसत्त्व' (दे०) के विशेष गुण हैं और इन्हें अरहत् (दे०) तथा प्रत्येक बुद्ध से अधिक ऊँचा उठाते हैं क्योंकि इन दोनों में (अरहत् तथा प्रत्येक बुद्ध में) निषेधात्मक गुण ही हैं जबकि बोधिसत्त्व में दान इत्यादि तात्विक गुण भी हैं। उक्त 6 पारमिताओं के अतिरिक्त 4 पारमिताएँ और मानी जाती हैं—उपाय, महाकांक्षा, बल और ज्ञान। महायानियों ने पारमिताओं में गृहस्थ तथा धर्म को एक में मिलाकर धर्म के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान किया है।

पारसभाग (पं० कृ०) [रचना-काल—अठारहवीं शती का पूर्वार्ध]

अड्डनशाह (दे०) का 'पारसभाग' प्रसिद्ध दार्शनिक इमाम गज्जाली (मृ० 1111 ई०) के फारसी-ग्रंथ 'कीमिमाए सआदत' का अनुवाद कहा जाता है परंतु भाषा-प्रवाह और विचार-प्रतिपादन इतना सजीव है कि यह एक मौलिक रचना प्रतीत होती है। सेवा-पंथी संप्रदाय में इसका बहुत सम्मान है। नागरी और गुरमुखी लिपि में इसकी अनेक हस्तलिखित और मुद्रित प्रतियाँ मिलती हैं जिनके आधार पर प्रो० प्रीतमसिंह (दे०) ने विस्तृत भूमिका-सहित इसके प्रथम चार अध्यायों का संपादन किया है। ग्रंथ के आठ अध्यायों में वेदांत, सूफ़ीमत, आचार-व्यवहार तथा राजनीतिक और प्रशासनिक मान्यताओं की गंभीर मीमांसा करते हुए स्थूल उदाहरणों द्वारा विविध समस्याओं का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया गया है। इसमें संस्कृत, फ़ारसी और पंजाबी के अनेक शब्दों का मनोरम प्रयोग है परंतु क्रियारूपों को न हिंदी का कहा जा सकता है, न पंजाबी का ही। पंजाबी के

विद्वान् इसे 'हिंदी के पिंडे (आकार) वाली पजाबी' कहते हैं। पजाबी-क्षेत्र मे लिखी गई यह रचना अपनी शास्त्र-निष्ठता तथा जनजीवन से निकट सपर्क के कारण दोनो ही भाषाओ की युगातरकारी कृति है।

पारसी थियेटर (*हि० प्र०*)

व्यवसायी रगमच के रूप मे पारसी थियेटर का उद्‌भव और विकास भारतेंदु (दे०) युग मे हुआ। पहली पारसी नाट्य कपनी थी ओरिजिनल थियेटर कपनी। वह 1870 ई० तक काम करती रही। उसके द्वारा अभिनीत नाटक मोहम्मद मियाँ रौनक और हुसैन मियाँ जरीफ द्वारा लिखे जाते थे और उनकी भाषा उर्दू होती थी। 1877 ई० मे खुरशेद बल्लीवाला ने विक्टोरिया थियेटर कपनी की स्थापना की। इसके लिए नाटक लिखते थे काशी के मुशी विनायक प्रसाद। इन नाटको का महत्व इस दृष्टि से है कि उनकी भाषा हिंदी की प्रकृति के अधिक निकट थी। इसी समय दो अन्य नाटक-कपनियाँ आई—विक्टोरिया पारसी ऑपेरा कपनी और पारसी एलफिस्टन ड्रामेटिक क्लब। परतु जो लोकप्रियता कावसजी खटाऊ द्वारा स्थापित एल्फ्रेड थियेट्रीकल कपनी को मिली वह किसी अन्य को प्राप्त नही हो सकी। उसके लिए सैयद मेहदी हसन और प० नारायण प्रसाद 'बेताब' नाटक लिखते थे। यह कपनी बर्मा तक गई और वहाँ इसके नाटक 'बिल्वमगल', 'यहूदी की लडकी आदि बहुत लोकप्रिय हुए। 'बेताब' के लिखे नाटक 'महाभारत' मे शुद्ध हिंदी का प्रयोग हुआ है।

हिंदी नाटक-रचना की दृष्टि से इन कपनियो मे सर्वाधिक उल्लेखनीय है न्यू एल्फ्रेड कपनी। इसके लिए नाटक लिखने वालो मे आगा हश्र कश्मीरी और राधेश्याम (दे०) कथावाचक आज तक याद किए जाते हैं। राधेश्याम कथावाचक के नाटको के विषय प्राय पौराणिक होते थे और दृष्टि आदर्शवादी। दर्शको मे सुरुचि का सचार करने और हिंदी भाषा के प्रचार का श्रेय इन्ही के नाटको को है। इनका 'वीर अभिमन्यु', हरिकृष्ण जौहर के 'पति भक्ति' एव 'वीर भारत' तथा तुलसीदास शैदा का 'नल-दमयती' इसी शृखला के नाटक हैं।

पारसी थियेटर के नाटको मे पहले उर्दू का प्रयोग होता था—पर बाद मे हिंदी भी प्रयुक्त होने लगी। इनका लक्ष्य था रुपया कमाना। अत जनता को अधिकाधिक आकृष्ट करने के लिए इन्होंने जो नाटक प्रस्तुत किए उनमे कुरुचिपूर्ण असास्कृतिक प्रवृत्तियो का ही प्रचार हुआ। सीता की भूमिका मे मिस पुटी कमर लचकाती आती थी और राम की भूमिका मे अभिनेता कटाक्ष करता था। नाट्य रचनाएँ कपनी की सुविधा के लिए लिखी जाती थी। नाटको मे पद्य की भरमार होती थी, गद्य मे भी तुकबदी का प्रयोग होता था, थोडी-थोडी देर बाद गाने गवाए जाते थे, पात्र रोते भी गानो मे थे और हँसते भी गीतो के माध्यम से थे। विदूषक का परिवार अलग होता था। अनावश्यक आवेश, मस्ती, अश्लील हावभाव, नृत्य और गीत इन नाटको के अनिवार्य अग थे। इनकी दो उपलब्धियाँ कही जा सकती हैं—इन्होंने हिंदी के प्रचार-प्रसार मे सहायता दी तथा लाखो रुपये खर्च कर जो सुशोभन सीन-सीनरियाँ बनाई गईं उनसे हिंदी-रगमच की दृश्य-विधान-कला मे सहायता मिली। ये अनेक असभव घटनाओ—वायुयान उडना नदी बहना, प्रह्लाद का आग मे जलना—आदि को मच पर दिखला कर दर्शको को आश्चर्यचकित कर देते थे। इनके नाटको के विषय प्राय पौराणिक होते थे, कभी-कभी सामाजिक समस्याओ पर भी सुधारात्मक दृष्टि से नाटको की रचना की जाती थी। इनका प्रभाव आगे चलकर उन नाट्य मडलियो पर भी पडा जो भारतेंदु की प्रेरणा से बनी। उनकी अभिनय-पद्धति पर निश्चय ही पारसी थियेटर का प्रभाव था। अत पारसी थियेटर अपनी फूहडता, असास्कृतिक प्रवृत्तियो आदि के लिए कुख्यात होते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि और हिंदी के प्रचार के लिए स्मरणीय रहेगा।

पारि (*त० पा०*)

सघकालीन सात प्रसिद्ध दानी शासको मे परिगणित 'पारि' परबुनाडु नामक समृद्ध राज्य का शासक था। प्रसिद्ध है कि यह अत्यत दयालु था। एक बार जगल मे भ्रमण करते हुए इसने पृथ्वी पर निराश्रित पडी मुल्लै लता को देखा। उस लता को आश्रय दन के लिए इसने अपने स्वर्ण-रथ को वही छोड दिया। सघ-साहित्य के अनुसार तत्कालीन चेर, चोल, पाड्य राजाओ न इस पर आक्रमण किए थे। सभवत उन्ही राजाओ न शत्रुतावश इसे मरवा दिया था। इसकी मृत्यु पर अव्वैयार् (दे०) द्वारा रचित कविता को तमिल के करुण रस प्रधान गीतो मे विशिष्ट स्थान है। अधिकाश विद्वानो का मत है कि इसकी मृत्यु के उपरात कवि कपिलर (दे०) ने अगवै-सगवै नामक इसकी युवा कन्याओ का विवाह सपन्न किया था। पारि से सबधित विवरण 'अकनानूर' (दे०), 'पुरना

नूरु' (दे०), 'कुरुंतोगै' (दे०), 'शिरुपाणाट्रुप्पडै' आदि संघकालीन कृतियों और 'देवारम्' (दे०), 'तिरुप्पहृप्' (दे०), 'तंजैवाणन्' कोवै (दे०), 'करवै वेलन् कोवै' आदि परवर्ती कृतियों में मिलते हैं। आधुनिक काल में रचित रा० राघव अय्यंगार की 'पारि कादै', पे० गोविंदन् (दे०) की 'कोडै मन्नर् पनुवल्' आदि साहित्यिक कृतियों में इसके जीवन से संबंधित अनेक घटनाओं का वर्णन है।

पारिजात *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1938 ई०]

पूजालाल रणछोड़दास दलवाडी की विभिन्न कविताएँ 'पारिजात' नामक काव्य-संग्रह के रूप में सर्वप्रथम 1938 ई० में पाठकों के समक्ष आईं। 1954 ई० में इसकी दूसरी आवृत्ति गुर्जर ग्रंथरत्न-कार्यालय द्वारा प्रकाशित हुई। प्रस्तुत संग्रह में कवि की 121 रचनाएँ संकलित हैं। ये रचनाएँ तीन भागों में विभक्त हैं: सॉनेटो, बीजी कृतिओ (पूर्वार्ध) तथा बीजी कृतिओ (उत्तरार्ध)। प्रथम आवृत्ति में जिन रचनाओं का समावेश किया गया था, दूसरी आवृत्ति में भी रचनाएँ तो वे ही हैं पर उनका स्वरूप, 'पारिजात' पर हुई आलोचनाओं और मित्रों द्वारा दिए गए सुझावों को ध्यान में रखकर, बदल दिया गया है। 'पारिजात' में विविध विषय, छंद, रस और रचना-विधियाँ प्राप्त होती हैं। अकेले सॉनेटो में ही कवि ने अनेक भारतीय छंदों का सफलतापूर्वक उपयोग किया है, यथा—एक सॉनेट दीर्घ पयार में, दो-दो उपजाति, वसंततिलका और स्रग्धरा में, तीन अनुष्टुप में, छह शार्दूलविक्रीडित में, सात शिखरिणी में और शेष इकत्तीस पृथ्वी छंद में निर्मित हैं। अन्य रचनाओं में भी प्रायः सभी स्थानों पर छंदों के नामों का निर्देश कर दिया गया है। भावों की इतनी सहजता और छंदों का इतना वैविध्य कम संग्रहों में देखने को मिलता है।

पारिजातापहरणमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल —1510 ई० 1520 ई० के लगभग]

इसके लेखक नंदि तिम्मना (दे०) हैं जो 'मुक्कुतिम्मना' के नाम से भी विख्यात हैं। यह पाँच आश्वासों का एक शृंगार-काव्य है। इसका कथानक इस प्रकार है: एक दिन नारद ने कृष्ण को पारिजात का एक पुष्प समर्पित किया। कृष्ण ने पास बैठी हुई रुक्मिणी को उसे प्रेम से दे दिया। नारद ने रुक्मिणी के प्रति कृष्ण के प्रेम की प्रशंसा की। इस सारी घटना के बारे में सखी द्वारा सुनते ही मानिनी सत्यभामा अत्यंत क्रुद्ध हुई। कृष्ण उसे मनाते हुए जब उसके पैरों पर पड़कर अनुनय करने लगे तब सत्यभामा ने क्रोध में अपने बायें चरण से उनको मार दिया। कृष्ण दक्षिण नायक हैं। अतः उन्होंने अपनी प्रिय पत्नी को शांत करने के लिए नंदनवन से पारिजात वृक्ष का अपहरण कर, उसे सत्यभामा के अंतःपुर के आँगन में लगवा दिया। बाद में नारद की सलाह से सत्यभामा ने पुण्यक नामक व्रत किया। कहा जाता है कि एक बार कृष्णदेवरायलु और उनकी एक पत्नी के बीच कलह हो गया। राजा को शांत करके उन दोनों के बीच का वैमनस्य समाप्त करने की इच्छा से प्रेरित होकर तिम्मना ने इस व्यंग्यपूर्ण काव्य की रचना की। व्यंग्य यह है कि जब पति से भूल हो जाती है तो अत्यंत क्रुद्ध नारी की प्रतिक्रिया में औचित्य का प्रश्न कहाँ रह जाता है? जब भगवान कृष्ण ने ही ऐसी स्थिति में अपनी पत्नी का चरण-प्रहार भी प्यार से स्वीकार कर लिया तो साधारण मनुष्य के बारे में कहने के लिए कुछ और क्या रह जाता है? इस काव्य में शृंगार और वीर रसों का सुंदर चित्रण है; वर्णन सहज तथा मार्मिक है और चरित्र-चित्रण में प्राणवत्ता है। प्रधानतः सत्यभामा तथा श्रीकृष्ण का चित्रण अत्यंत स्वाभाविक और मनोहारी है। इसके द्वारा स्पष्ट होता है कि तिम्मना सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानसिक दशाओं के मर्मज्ञ थे। कोमल शब्दों के संयोजन तथा सुकुमार भावों की अभिव्यक्ति के द्वारा यह काव्य संपूर्ण तेलुगु-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है।

तेलुगु के औचित्यपूर्ण सरस शृंगार-काव्यों में 'पारिजातापहरणमु' का स्थान सर्वोपरि है।

पारिवारिक प्रबंध *(बं० कृ०)* [रचना-काल—1881 ई०]

भूदेव मुखोपाध्याय के जीवन एवं चरित्र में प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति का सुखद समन्वय घटित हुआ था। उनके 'पारिवारिक प्रबंध' (1881 ई०) ने उस युग में विशेष ख्याति प्राप्त की। भगवान मनु ने चतुराश्रम में गृहस्थाश्रम को श्रेष्ठ स्वीकार किया है। कल्याणमय आदर्श के द्वारा गार्हस्थ्य धर्म के आचार-आचरण को नियंत्रित करने के उद्देश्य से इस शिक्षात्मक ग्रंथ की रचना हुई थी। इस प्रकार के ग्रंथों में उनका 'सामाजिक प्रबंध' (1882), 'आचार-प्रबंध' (1887) आदि सविशेष उल्लेखनीय हैं। इस ग्रंथ में लेखक के भूयोदर्शन, सूक्ष्मदर्शिता

व्यावहारिक ज्ञान तथा मननशीलता का यथेष्ट परिचय विद्यमान है।

पार्त्तचारति, ना० *(त० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

तत्सम शैली मे इनका नाम 'पार्थसारथि' है। उपन्यास, निबध, आलोचना आदि के लेखन मे इन्हे ख्याति प्राप्त है। ये 'मतुरै' नगर मे तमिल भाषा एव साहित्य की विशेष शिक्षा प्राप्त कर वही तमिल-अध्यापक हो गए थे। सप्रति ये मद्रास शहर मे 'तीपम्' (दीप) नामक तमिल साहित्यिक पत्रिका के सपादक हैं। इनकी कुछ कृतियाँ है—'कुरिंचिमलर्', 'कोपुरतीपम्' (दोनो सामाजिक उपन्यास), 'पाटिमातेवि' (ऐतिहासिक उपन्यास), 'वेनिल् मलर्कल्' (लघुकथा), 'कवितैक्कलै' (निबध) इत्यादि। 1972 ई० मे इन्हे इनके 'समुताय कीति' नामक उपन्यास के लिए साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला था।

पार्वती *(स० पा०)*

यह हिमालय तथा मेना की कन्या थी। इनके अन्य नाम है—दुर्गा, देवी, सती आदि। यह पहले कृष्ण-वर्णा थी, परतु बाद मे एक चमत्कार के कारण गौरवर्णा हो गई थी। अत इन्हे गौरी भी कहते हैं। नारद की प्रेरणा से हिमालय ने इनका विवाह शकर से किया। विवाह से पूर्व इन्होने शकर को पति-रूप मे पाने के लिए घोर तपस्या की थी। शकर से इन्हें कार्तिकेय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। इनके शरीर के मल से गजानन (गणेश) की उत्पत्ति हुई थी। बाण और वीरभद्र को भी ये अपने पुत्र मानती थी। कल्पवृक्ष के नीचे बैठकर इन्होने एक सुदरी स्त्री की इच्छा की तो 'अशोकसुदरी' की उत्पत्ति हुई, जिसे इन्होने अपनी कन्या मान लिया। दुष्टो के सहार के लिए इन्होने अनेक बार अवतार लिये थे। कालिदास (दे०) ने 'कुमारसभव' (दे०) मे शकर-पार्वती की प्रणय-गाथा का अत्यत कवित्वपूर्ण वर्णन किया है।

पार्वतीश्वर कवि, मडपाक *(ते० ले०)* [जन्म—1833 ई०, मृत्यु—1897 ई०]

उन्नीसवी शती के पडित कवियो मे मडपाक पार्वतीश्वर कवि का स्थान मूर्धन्य है। इनके पिता और पितामह उच्चकोटि के विद्वान् थे। बोब्बिलि नामक रियासत के राजाओ के दरबार मे ये राजकवि थे। इन्होंने कई शतको की रचना की है। इस प्रकार के 'परम शिवशतकमु', 'सूर्यनारायणशतकमु', 'गोपालकृष्णशतकमु', 'गणपतिशतकमु', 'हरिशतकमु', 'हरिहरेश्वरशतकमु', आदि कई शतको के अतिरिक्त कवि ने 'श्रीराधाकृष्ण-सवादमु', 'उमासहिता', 'काचीमहत्वमु', 'अमरुक', 'अक्षर-मालिका निघटु' जैसे कई काव्यो की भी रचना की। इनके अलावा इन्होंने गद्य साहित्य को भी अपनी सशक्त लेखनी से समृद्ध किया।

पार्श्वनाथ पुराण *(क० कृ०)* [समय—अनुमानत 1225 ई०]

इसके रचयिता पार्श्व पडित नामक एक जैन कवि हैं जिनका समय 1225 ई० ठहराया गया है। ये राजा कार्तवीर्य चतुर्थ के सभा-कवि थे जिन्होने इन्हे 'कविकुल तिलक' का विरद दिया था। इस चपूकाव्य मे तेईसवें तीर्थकर पार्श्वनाथ की कथा निरूपित है। इसमे सोलह आश्वास हैं। ये एक समर्थ कवि थे। वर्णन-प्रधान होने पर भी कथा सरस बन पडी है। पार्श्व तीर्थंकर की भावावलियो का विस्तृत वर्णन भी इसमे मिलता है। पार्श्व तीर्थकर पर कन्नड मे काव्य-रचना करने वालो मे ये ही सर्व-प्रथम हैं। इनकी कन्नड शैली मे नागचद्र का प्रसार गुण है, परिशुद्धता है किंतु वर्णनो मे सस्कृत-प्रचुरता, अलकारो की विख्यात शैली की प्रौढता आदि इनकी प्रतिभा को नीचे खीचती है।

पॉल, एम० पी० *(मल० ले०)* [जन्म—1904 ई०, मृत्यु—1952 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध आलोचक हैं। प्रगतिशील विचारो के कारण ये धार्मिक नेताओ स सघर्परत रहे। ट्यूटोरियल कॉलिज का सचालन इनका मुख्य व्यवसाय था। 'नोवल् साहित्यम्' (दे०), 'चेरुकथा प्रस्थानम्', 'सौंदर्यनिरीक्षणम्' आदि इनकी साहित्या-लोचनात्मक कृतियाँ हैं।

एम० पी० पॉल पाश्चात्य और भारतीय साहित्यिक सिद्धातो के मर्मज्ञ थे। इन दोनो पद्धतियो का सश्लेषण करके वे स्वय अपने साहित्यिक मानदडो की सृष्टि करते थे। वे प्रगतिवादी चिंतक थे और उन्होंने उस मार्ग मे कई लेखको को दीक्षित और प्रोत्साहित किया

था। मलयाळम के आलोचकों में पॉल का स्थान समुन्नत है।

पाल्कुरिके सोमनाथ *(क० ले०)* [समय—तेरहवीं शती का अंत]

पाल्कुरिके सोमनाथ वीरशैव कवि थे; गोदावरी ज़िले के पाल्कुरिके में उनका जन्म हुआ था। 'कर्णाटक-कविचरिते' (दे०) के लेखक स्व० आर० नरसिंहाचार्य जी (दे०) ने उनका समय 1195 ई० बताया है, परंतु कुछ नये प्रमाणों के आधार पर उनका समय 1299-1300 ई० के आसपास माना जाने लगा है। उनके पिता का नाम वसवेश था और गुरु का नाम गुरुलिंगार्य। उन्होंने शास्त्रार्थ में कई लोगों को पराजित किया था और गणपुर के राजा जगदेवमल्ल से सम्मानित हुए थे।

सोमनाथ तेलुगु और संस्कृत के भी प्रकांड पंडित थे। तेलुगु के प्राचीन कवियों में उनका अत्यंत आदरपूर्ण स्थान है। तेलुगु में रचित उनका 'बसवपुराणमु' एक अनुपम काव्य है। 'तत्त्वविद्याकलाप', 'कवितासार', 'अन्यदैवकोलाहल' और 'प्रत्यक्षमृंगीश-अवतार' जैसी उपाधियाँ उन्हें प्राप्त थीं। कन्नड के कवियों में सोमराज और गुब्बि मल्लणार्य ने उनकी स्तुति की है। 'कर्णाटक-कविचरिते' में उनके निम्नांकित कन्नड ग्रंथ बताए गए हैं—

(1) 'शीलसंपादने'—यह गद्य में है, यत्र-तत्र संस्कृत के श्लोक भी हैं। इसमें वीरशैवों के 64 शीलों का वर्णन है। (2) 'सोमेश्वरशतक'—इसका दूसरा नाम है 'सोमाराध्यशतक'। इसके कवि के विषय में पर्याप्त चर्चा हुई है। व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग विद्यमान होने के कारण बहुत-से विद्वान इसे पाल्कुरिके सोमनाथ की रचना स्वीकार नहीं करते। यह पुलिगेरे सोमनाथ की रचना होगी। (3) 'सहस्रगणनाम'—इसमें प्रमथगण, रुद्रगण, भक्तगण, योगाचार्य, त्रिषष्ठिगण, अमरगण और दशगण—इनके नाम हैं। इसके आदि और अंत में कतिपय पद्य हैं। (4) 'पंचरत्न'—वसवेश्वर की स्तुति के पाँच वृत्त इसमें हैं। (5) 'सद्गुरु रगळे' (6) 'चेन्नबसवस्तोत्रद रगळे' और (7) 'शरणुबसव रगळे'।

इनमें अंतिम तीनों 'रगळे' छंद में रचित हैं। प्रत्येक में अलग-अलग 'छाप' है जैसे सद्गुरु, चेन्नबसव और शरणुबसव।

पालवेल्लि *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1950 ई० के लगभग]

इसके लेखक डा० पल्ला दुर्गय्या (दे०) हैं। यह स्फुट कविताओं का संग्रह है। इसमें दो भाग हैं जिनमें से एक में वर्णिक तथा दूसरे में मात्रिक छंदों का प्रयोग किया गया है। ये कविताएँ छोटी-छोटी हैं और विविध विषयों से संबद्ध हैं। 'वर्षामेघ', 'सेलयेरु' (झरना) आदि प्रकृति-प्रेम के द्योतक हैं। 'नन्नय भट्टु' (दे०) जैसी कविताएँ पुराने कवियों के प्रति श्रद्धांजलि हैं। 'नी पेरु' (तुम्हारा नाम), 'अस्पृश्यता' आदि सामाजिक कविताएँ गांधी तथा गांधीवाद के प्रति इनकी आस्था की द्योतक हैं।

पालामौ *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1880 ई०]

संजीवचंद्र चट्टोपाध्याय (दे०) के 'पालामौ' ग्रंथ के प्रकाशित होते ही उन्हें बहुत यश प्राप्त हुआ था। आज भी इस पुस्तक की जनप्रियता कम नहीं हुई है। 'बंगदर्शन' पत्रिका में प्रकाशित यह भ्रमण-कहानी बँगला साहित्य की एक अमूल्य निधि है। बंकिमाग्रज संजीवचंद्र ने 'जालप्रताप चाँद' (1883), 'रामेश्वरेर अदृष्ट' (1877), 'कंठमाला' (1807), 'माधवीलता' (1884) आदि उपन्यासों की रचना की थी मगर 'पालामौ' उनकी श्रेष्ठ रचना है। जीवन एवं प्रकृति के प्रति प्रेम उनकी रचना के चिरकालीन सौंदर्य का आधार है।

लेखक ने अपनी अंतरात्मा के सौरभ, समवेदना तथा माधुर्य के द्वारा छोटा नागपुर के पर्वत-नदी-अरण्य के साथ आरण्यक जीवन की एकात्मता का बहुत ही सुंदर चित्र उपस्थित किया है।

पालि *(भाषा० पारि०)*

एक मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा जिसका काल मोटे तौर पर पाँचवीं शती ई० पू० से पहली शती ई० तक है। 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। कुछ लोग इसका संबंध 'पंक्ति' से मानते हैं, तो कुछ लोग 'पाटलिपुत्र' से तथा कुछ लोग 'पल्लि' से या 'परियाय' से। अनेक लोगों का मत यह भी है कि इसका संबंध रक्षार्थ धातु 'पा' से है—जिस भाषा में भगवान बुद्ध के वचनों की रक्षा की गई, वह 'पालि' है: 'या रक्खतीति बुद्धवचनं इति पालि' वस्तुतः इसकी व्युत्पत्ति स्पष्ट नहीं है। व्युत्पत्ति की तरह

ही यह बात भी विवादास्पद है कि पालि भाषा का जो रूप प्राप्त है, वह मूलत किस क्षेत्र का है। कुछ लोग इसे मगध की भाषा मानते हैं तो कुछ पूरे देश की परिनिष्ठित भाषा तथा कुछ कोशल की। यो अधिक सभावना यह है कि मूलत यह मध्य देश की भाषा थी, जिस पर बौद्ध धर्म का विशेष क्षेत्र होने के कारण मगध की मागधी का प्रभाव था। पालि भाषा का जो रूप प्राप्त है, उसके अतिरिक्त भी इसके क्षेत्रीय रूप रहे होगे जो अन्य भाषा क्षेत्रो मे बोले जाते रहे होगे। इन सभी रूपो के प्रतिनिधि के रूप मे ही पालि सस्कृत से विकसित मानी जाती है, जिससे आगे चलकर विभिन्न प्राकृतो का विकास हुआ। इस तरह यह सस्कृत और प्राकृत के बीच की एक कडी है।

पालुम पावैयुम *(त० कृ०)* [रचना-काल—बीसवी शती का पचम दशक]

विंदन (दे०) का सर्वप्रथम किंतु अत्यत प्रभावशाली उपन्यास। इसमे गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के भगवान राम के हाथो उद्धार की पौराणिक कथा को नूतन रूप मे प्रस्तुत किया गया है। युवा कनकलिगम का कलैज्ञानपुरम के किसी उत्सव मे जाना, रात्रि के समय किसी नारी का रुदन, इद्र नामक युवक के छल-कपट का शिकार बनी उस युवती का कनकलिगम से सहायता की प्रार्थना, काफी सोच विचार कर कनकलिगम का उसे अपना लेना, मद्रास लौटने पर मालिक का उसे नौकरी से निकाल देना, कुछ समय बाद मरवा देना, अनाथ अहल्या का इधर उधर भटकना, दशरथकुमार राम का उसकी सहायता के लिए उद्यत होना, सेवक के इस प्रश्न को सुन राम का चौंकना कि 'क्या आप खराब दूध को अच्छा बना सकते हैं ?', दुखी अहल्या का समुद्र मे कूदकर आत्महत्या करना आदि इस उपन्यास की प्रमुख घटनाएँ है।

उपन्यास मे रामचद्र जी द्वारा अहल्या उद्धार के आदर्श कर्म पर जनता की प्रतिक्रिया का सुदर चित्रण है। उपन्यासकार के मत मे पुरुष एव नारी के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक नियमो का गठन अनुचित है। यदि पुरुष एक के बाद एक करके अनेक स्त्रियो से सबध स्थापना के बाद निष्कलक कहला सकता है तो नारी भी ऐसी स्थिति मे निष्कलक कहला सकती है। कनकलिगम आदर्श पुरुषो का प्रतिनिधि है जिनकी सख्या समाज मे बहुत कम है। अबला अहल्या बीसवी शती की जागरूक नारी के रूप मे चित्रित है। उपन्यास मे कुछ पौराणिक पात्रो का व्यग्य-चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमे जनता की विश्वासहीनता, आर्थिक वैषम्य, ईश्वर के नाम पर किए जाने वाले पाखड-कर्म आदि का वर्णन है। इस उपन्यास की रचना रूढियो मे जकडे नारी-समाज को जागृत करने के लिए की गई है। भाषा-शैली सरल किंतु प्रभावशाली है। जहाँ-तहाँ सुदर सूक्तियो का प्रयोग दृष्टिगत होता है—जैसे 'दूध और नारी मे विकार आ जाए तो वे किसी काम के नही।' तमिल के सामाजिक उपन्यासो मे इसका विशिष्ट स्थान है।

पालै *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य मे वर्णित पाँच भूभागो मे एक है पालै। इन भूभागो का वर्णन अहम् (दे० अहप्पोरुळ्) और पुरम् (दे० पुरप्पोरुळ्) दोनो वर्गो की रचनाओ मे होता है। 'पालै' से तात्पर्य है 'मरुभूमि'। इस प्रदेश के लोग मरवर, एयिनर, कळ्ळर आदि कहलाते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय है पडोसी प्रदेशो मे जाकर छापा मारना, चोरी, डकैती, राहजनी करना। पालै-प्रदेश के निवासी युद्ध की देवी दुर्गा (कोट्रवै) की उपासना करते हैं। इस देवी के अन्य नाम है—कन्नि और काडुकिनाळ्। इस प्रदेश की अनुकूल ऋतुएँ ग्रीष्म (जेठ-आषाढ) और शिशिर (माघ फाल्गुन) हैं और अनुकूल वेला दोपहर है। इस प्रदेश मे पाए जाने वाले पशु पक्षी हैं—खूखार कुत्ता, सियार, कबूतर, चील, गीध आदि। पालैवासियो का वाद्ययत्र पालैयाल नामक तत्रीवाद्य है। पालै-प्रदेश मे प्रभूत मात्रा मे पाए जाने वाले 'पालै' पुष्प के आधार पर ही इस प्रदेश का और यहाँ के निवासियो की सभ्यता और सस्कृति का नामकरण हुआ है। पालै प्रदेश से सबधित अहम् काव्यो मे वियोग शृगार की प्रधानता होती है। कविगण नायक-नायिका के अल्पकालिक विरह का वर्णन करते हैं। पालै-प्रदेश मे पाई जाने वाली विभिन्न वस्तुएँ वियोग शृगार की इस भावना को अभिव्यक्त करने मे सहायक सिद्ध होती हैं। कवियो व नायक-नायिका की मनोदशा को स्पष्ट करने के लिए प्रदेश विशेष की प्राकृतिक अवस्था का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है।

पावड्‌डळ् *(मल० कृ०)*

फ्रेंच के यशस्वी उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो की प्रसिद्ध कृति 'ला मिज़राबल' का अनुवाद नालप्पाट्टु

नारायण मेनन (दे०) ने 'पावङ्डळ' नाम से प्रकाशित किया। कहा जाता है इतना सुंदर अनुवाद अब तक और कोई नहीं कर सका है। अनुवादक ने मूल लेखक के प्रति सब प्रकार से न्याय किया है और मूल कृति की आत्मा को यथावत् नये कलेवर में प्रस्तुत कर देने में सफलता पाई है।

पावैप्पाट्टु *(त० पारि०)*

दक्षिण भारत में जिन अनेकानेक व्रतों का अनुष्ठान होता है उनमें एक है मार्गलि नोन्बु। तमिल के प्राचीनतम व्याकरण-ग्रंथ 'तोलकाप्पियम्' (दे०) में इस व्रत का वर्णन करने वाले गीतों और काव्यों को 'पावैप्पाट्टु' कहा गया है। अत: कालांतर में इस व्रत को 'पावै नोन्बु' कहा गया। पावै शब्द गीली मिट्टी से निर्मित देवी की प्रतिमा की ओर संकेत करता है जिसकी उपासना व्रत धारण करने वाली कन्याएँ किया करती थीं। संघकालीन कृति 'परिपाडल' (दे०) में इस व्रत के लिए 'अंबावाडल्' शब्द का प्रयोग है। अन्य कुछ कृतियों में इसके लिए 'तैनीराडलै' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'पावैप्पाट्टु' कही जाने वाली रचनाओं में सर्वप्रमुख हैं आण्डाळ (दे०)-कृत 'तिरुप्पावै' और माणिक्कवाशगर (दे०)-कृत 'तिरुवेम्पावै'।

पावै विळक्कु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1958 ई०]

पावै विळक्कु श्री अखिलन् (दे०)-कृत एक चरित्र-प्रधान उपन्यास है। इसमें लेखक ने अपने मित्र तणिकाचलम् के जीवन से संबद्ध विविध घटनाओं का वर्णन करते हुए उसके चरित्र पर प्रकाश डाला है। कुछ विद्वानों का मत है कि तणिकाचलम् के जीवन पर लेखक के व्यक्तिगत जीवन की प्रतिच्छाया है। तणिकाचलम् एक सामान्य व्यक्ति है जिसमें गुण भी हैं और दोष भी। उपन्यास के चार नारी पात्र—देवकी, शेंकमलम्, गौरी और उमा उसके जीवन का निर्माण करते हैं। विधवा देवकी की सहायता से वह अपने भीतर स्थिर कला की ज्योति को पहचानता है। वेश्या शेंकमलम् उस कला-ज्योति को प्रदीप्त करती है। उसकी पत्नी गौरी उस ज्योति का आधार (दीया) बनती है और उमा (दे०) ज्योति और उसके आधार दीये को जोड़ती है। इस प्रकार उमा ही इस उपन्यास की नायिका है। उपन्यास का शीर्षक 'पावै विळक्कु' (दीपधारिणी) उमा की ओर ही संकेत करता है। लेखक के मत में जीवन में ज्ञान और भावना का समन्वय होना चाहिए। तणिकाचलम् के समान बौद्धिक, उमा के समान भावुक व्यक्ति प्राय: जीवन में सफल नहीं हो पाते हैं। लेखक विभिन्न पात्रों की मन:स्थितियों के चित्रण में पूर्ण सफल हुआ है। 'पावै विळक्कु' अखिलन् के प्रसिद्ध उपन्यासों में से है। इसका तमिल-उपन्यास-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

पाश्चात्य गंभीर नाटकगळ् *(क० कृ०)*

कर्णाटक के विख्यात विद्वान प्रो० एस० वी० रंगण्णाजी की उत्कृष्ट कृति है करीब बारह सौ पृष्ठों का यह महाग्रंथ। इसमें मैसूर विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी-विभाग के अध्यक्ष रंगण्णाजी ने पाश्चात्य साहित्य में ट्रैजडी के जन्म एवं विकास का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनके चालीस वर्षों की अनवरत सारस्वत तपस्या का अमृत फल इसमें है। इसके छह भाग हैं। प्रथम भाग में ट्रैजडी की व्याख्या, उसका जन्म, नृत्य-गीत, डायोनीसस, एस्काइलस तथा ट्रैजडी को उसकी देन आदि पर विस्तृत चर्चा है। उसके नाटकों का आलोचनात्मक परिचय है। उसके उपरांत सॉफ़ोक्लीज़, उसके नाटक तथा उसकी देन आदि की गंभीर चर्चा है। यूरिपिडीज़ की दृष्टि में दु:खांत तत्त्व, उनकी देन आदि का विचार है। यूरिपिडीज़ के बाद हेलेनिस्टिक युग की चर्चा है। उसके बाद रोमन युग का व्यापक विवेचन है। इसमें कुल सात अध्याय हैं। द्वितीय भाग में नाटक का पतन, अंधकार युग, मध्ययुग तथा मध्ययुगीन रूपक—इस प्रकार चार अध्याय हैं। तीसरे भाग में नवोदय की पृष्ठभूमि पर स्पेन के नाटकों की मीमांसा है। क्रिस्टोफ़र, मार्लो आदि की चर्चा के बाद शेक्सपियर की चर्चा के लिए क़रीब दो सौ पृष्ठ समर्पित हैं। शेक्सपियर के समसामयिकों तथा परवर्तियों की भी चर्चा है। चौथे भाग में नव-क्लासिकीय पथ का गंभीर विवेचन है। उसकी ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि दी गई है। उसके उपरांत रासीन के नाटक-चक्र उसकी कलात्मक दृष्टि आदि का परिचय है। इसके बाद 'रेस्टोरेशन ट्रैजडी', उसकी अवधि, उसके प्रमुख कवि मिल्टन, ड्राइडन, एडिसन, वालतेर आदि का सर्वेक्षण है। इसके उपरांत रोमांटिक युग के आगमन का विवेचन है। पाँचवें अध्याय में यथार्थवाद, उसकी सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, यथार्थता तथा अन्य वादों आदि की चर्चा कर इबसन, उनके जीवन-स्वभाव, कृति, दृष्टि, स्थान आदि का परिचय है। टॉलसटाय के व्यक्तित्व तथा कृतित्व,

उनके साहित्य के गुण, उनके रूपक एव उनके जीवन-दर्शन की अतीव सरल व्याख्या है। चेखव के नाटक-चत्र, उनमे यथार्थता, उनकी ट्रैजिक दृष्टि आदि का वर्णन है। मटरलिंक गाल्सवर्दी, गोर्की, शॉ, इलियट, आदि की व्यापक विवेचना-हेतु छठे भाग मे आधुनिक युग का विवेचन है। इटली, फ्रास के अर्वाचीन लेखक और अभिव्यजनावाद आदि आदोलनो की विस्तृत चर्चा है। अत मे एकपात्र रूपक का भी विवेचन है। प्रत्येक आदोलन की सास्कृतिक पृष्ठभूमि के चित्रण मे लेखक ने अद्भुत कलात्मकता दिखाई है। इस तरह ट्रैजडी की मीमासा में यह अत्यत व्यापक, अद्यतन एव उपादेय ग्रथ है। नाटककारो के दोष व गुणो के चित्रण मे लेखक पटु है। इस तरह अपनी रस दृष्टि से उन्होंने एक अभिन्न लोक ही खोल दिया है। शैली विषयानुकूल एव समर्थ है।

पाश्चात्य नाट्यसाहित्यना स्वरूपो *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1968 ई०]

इसके लेखक नदकुमार पाठक ने इस ग्रथ मे पश्चिम की नाट्य-विधाओ की विवेचना की है। अरस्तू से लेकर अर्वाचीन युग तक जो विविध नाट्यविधाएँ प्रचलित रही उनकी व्याख्या, उनके स्वरूप, इतिहास और विकास क्रम का परिचय दिया गया है। गुजराती मे इस प्रकार की यह प्रथम पुस्तक है जिसमे यूरोप के नाटको का सर्वांगीण परिचय और विवेचन मिलता है। 'एब्सर्ड' नाट्यविधा का भी पूरा परिचय दृष्टात देकर किया गया है। लेखक के गहरे अध्ययन तथा नाट्य साहित्य के ज्ञान इत्यादि का परिचय इस ग्रथ मे मिलता है।

पाषाणी कन्या *(उ० कृ०)*

'पाषाणी कन्या' औपन्यासिक शैली पर विरचित प्राण बधुकर (दे०) की भ्रमण-सबधी रचना है। इसमे प्राण बधुकर के असम प्रवास की कहानी लिपिबद्ध है। आसाम की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति तथा उसका वहाँ के जीवन और सस्कृति पर प्रभाव, नागा जाति और उसकी उत्पत्ति और विकास के इतिहास का एक सुस्पष्ट चित्र इसमे मिल जाता है। इसके साथ ही लेखक के जीवन मे अनाकाक्षित और अफलीभूत एव प्रणय-प्रसग का भी सुदर निर्वाह हुआ है। वस्तुत इस प्रेम-प्रसग की पृष्ठभूमि पर ही कथा का रचनातत्र गढा गया है। उक्त वर्ण्य विषय यद्यपि खड-चित्र है तथापि गहराई से देखने पर इसमे एक सूक्ष्म सगति दिखाई पडती है और यह असम और नागा जाति का एक लघु इतिहास लगता है। आदि और अत मे लेखक के प्रणय-प्रसग के चित्रण से एक सहिति आ गई है। कथा सघटना मे एक गोलाई का आ जाना ही इसकी विशेषता है।

पाहुड दोहा *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1000 ई० के लगभग]

'पाहुड दोहा' के रचयिता मुनि रामसिंह (दे०) हैं। जैनाचार्यों ने 'पाहुड' शब्द का अर्थ विशेष विषय के प्रतिपादक ग्रथ के अर्थ मे किया है। यह शब्द सस्कृत शब्द 'प्राभृत' का रूपातर भी हो सकता है, जिसका अर्थ है उपहार। अत पाहुड दोहा का अर्थ दोहो का उपहार समझा जा सकता है।

कृति का प्रतिपाद्य विषय अध्यात्म-चितन है। साथ ही गुरु की अनिवार्यता, आत्म सुख की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। आत्मानुभूति और सदाचरण के बिना कर्मकाड व्यर्थ है। सच्चा सुख इद्रिय निग्रह और आत्म-ध्यान मे है। वर्णादि भेद देह के हैं। आत्मा अजर अमर है। समरसी भाव अर्थात् मन के परमेश्वर से मिल जाने से निर्वाण प्राप्त होता है। मोक्ष-मार्ग की प्रगति के लिए विषय परित्याग आवश्यक है। तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा, मदिर निर्माणादि की अपेक्षा देह स्थित देव का दर्शन करना श्रेयस्कर है। कुछ पद्यो मे रहस्य भावना, जैन-सप्रदाय से सबधित प्रसग, योगमार्ग की शब्दावली तथा सिद्धातो क उल्लेख भी मिलते हैं।

इस कृति मे इद्रियो के लिए बैल, आत्मा के लिए नदन कानन, मन के लिए करहा करभ (उष्ट्र), देह के लिए देवालय या कुटी इत्यादि प्रतीको का प्रयोग मिलता है।

इस कृति मे 222 पद्य हैं जिनम म 12 पद्य प्राकृत मे हैं, 3 पद्य सस्कृत मे हैं तथा शेष अपभ्रश म हैं जिनमे स 16 पद्यो को छोड कर शेष दोहा छद म हैं।

इस कृति मे 24 दोहे अश रूप से या पूर्णरूप म योगीद्र (दे०) के ग्रथो मे मिलत हैं। कुछ दोह किंचित् परिवर्तन के साथ हेमचद्र (दे०) के व्याकरण म उद्धृत हुए हैं।

पिंगल (सं०, हिं० पारि०)

छंदःशास्त्र के आदि ग्रंथ 'छंदःसूत्र' के रचयिता आचार्य पिंगल (लगभग ई० पू० 200) के नाम पर संपूर्ण छंदःशास्त्र के अर्थ में रूढ़ शब्द। प्राकृत-छंदों का निरूपण करने वाले 'प्राकृत पैंगलम्' (दे०) नामक छंदःशास्त्रीय ग्रंथ के प्रारंभ में मंगलाचरण के रूप में की गई आचार्य पिंगल की वंदना कालांतर में समस्त भारतीय भाषाओं के छंदःशास्त्रीय ग्रंथों का आदर्श बन गई। जगन्नाथप्रसाद 'भानु' (दे०) के 'छंद-प्रभाकर' (दे०) में भी इसी परंपरा का विधिवत् पालन किया गया है। इस प्रकार 'पिंगल' शब्द मूलतः छंदःशास्त्र के आदि आचार्य पिंगल से संबद्ध होते हुए भी बहुत समय से छंदःशास्त्र मात्र का पर्याय बन गया है। दूसरी ओर इसका प्रयोग ब्रजभाषा के लिए भी होता है क्योंकि मध्यकाल में ब्रजभाषा ही काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी।

पिंगला (मल० कृ०) [रचना-काल—1929 ई०]

इसके रचनाकार परमेश्वर अय्यर उळ्ळूर (दे०) आधुनिक मलयाळम-कवियों की बृहत्त्रयी में अन्यतम तथा कवि-प्रतिभा और विद्वत्ता के समन्वय के उदाहरण थे। इनकी कई रचनाओं का विषय पुराणादि संस्कृत-ग्रंथों से लिया गया है। 'पिंगला' इसी कोटि का खंडकाव्य है।

श्रीमद्भागवत (दे० भागवत) के ग्यारहवें स्कंध तथा 'महाभारत' (दे०) के शांतिपर्व में पिंगला की कथा संक्षेप में चर्चित है। यह कथा शायद पहली ही बार मलयाळम-काव्य की वस्तु बनी है। मिथिला की अनुपम रूपसी वेश्या पिंगला (दे०) के चरणों पर नगर के सारे प्रतिष्ठित धनी युवक अपना सर्वस्व निछावर करने को तैयार थे। धन-विलास में डूबी हुई पिंगला ने कमरे में सजाए श्रीराम-चित्र की तरफ़ एक भी बार नहीं देखा था। रोज़ प्रेमार्थियों की भीड़ रहती थी। एक दिन नियम के विरुद्ध कोई भी युवक उसके यहाँ नहीं आया तो वह सुंदरी चौंक उठी। एकाएक दीवार का श्रीराम-चित्र उसके पैरों के पास गिर पड़ा तो उसकी आँखें खुलीं। वेश्या-जीवन पर वह दिल से पछताई। वह रामभक्त बन गई। उसके मन की अशांति प्रव दूर हुई। दूसरे दिन प्रभात में वह जटा-वल्कल-धारिणी ब्रह्मवादिनी बन गई थी।

कवि ने कल्पना-वैभव से अत्यंत संक्षिप्त कथा का भी विस्तार कर उसे खंडकाव्य का रूप दिया है। मिथिलावीथियाँ, रम्य भवन, उसमें रहती पिंगला आदि का विस्तृत वर्णन इसमें है। पश्चात्ताप से गलती पिंगला और चित्रस्थ रामचंद्र का संवाद बड़ा गंभीर है। पिंगला के प्रथम चित्र में शृंगार रस-पूरित अंगवर्णन भी मिलता है। अर्थविस्तार एवं अलंकार-योजना में उळ्ळूरजी इतने दत्तचित्त हैं कि नाद-माधुरी, लय या मेल पर इनका ध्यान कम गया है।

पिंगला (मल० पा०)

महाकवि उळ्ळूर (दे०) ने 'पिंगला' (दे०) नाम का एक खंडकाव्य रचा है जिसकी प्रमुख-पात्र है पिंगला। यथार्थ में भगवद्भक्त एवं ब्रह्मवादिनी बनी हुई यह मिथिलावासिनी वारांगना भक्ति की गरिमा प्रमाणित करती है। कवि ने इसके दो चित्र प्रस्तुत किए हैं। पहला चित्र मिथिला की अनुपम सुंदरी वेश्या का है। दूसरा चित्र है पश्चात्ताप के आँसुओं से सिंचित एवं ज्ञानोदय से पवित्र ब्रह्मवादिनी का।

पिंगला के रम्य हर्म्य में प्रतिदिन कामार्थी युवकों का उत्सव रहता था। पर उस चैत्र पूर्णिमा की मनमोहिनी निशा में कोई प्रेमी उस घर की तरफ़ आँख उठाकर नहीं देखता। यह विमुखता और अपमान देख पिंगला को इन युवकों पर क्रोध आता है। इसी वक्त अचानक नीचे गिरा श्रीराम-चित्र मानो उसकी हँसी उड़ाता है। उस झाँकी से उस युवती के मन में ज्ञान एवं भक्ति का उदय होता है। वह चित्रगत राघव का संबोधन कर पश्चात्ताप के आँसू बहाती है और यह नयी भक्ति-भावना पिंगला के हृदय के ज्वार को शांत कर उसका कायापलट कर देती है। वेश्या पिंगला की जगह अब जटा-वल्कलधारिणी ब्रह्मज्ञानमयी पिंगला दीख पड़ती है। चरित्र-चित्रण में कवि ने प्राचीन प्रतिमानों और अलंकृत विशेषणों का प्रचुर प्रयोग किया है।

पिंगळि-काटूरि (ते० ले०)

पिंगळि लक्ष्मीकांतम् (1894 ई०) तथा काटूरि वेंकटेश्वरराव् (1895 ई०) ने पिंगळि-काटूरि नाम से सम्मिलित रचनाएँ की हैं। ये स्वच्छंदतावादी कवि हैं और इन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यों से सारतत्त्व ग्रहण करके अपनी साहित्यिक प्रतिभा को परिपुष्ट किया है।

'सौंदरनंदमु' (दे०), 'तोलकरि', 'पौलस्त्य-

हृदयमु' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ है। इनका दृष्टिकोण प्रगतिवादी है तथा इन्होने प्रकृति का स्वतत्र रूप से वर्णन किया है। 'सौंदरनदमु' इनकी सुप्रसिद्ध रचना है जिसमे इन्होंने बौद्ध-साहित्य से सबधित सुदरी एव नद के जीवन को कथावस्तु के रूप मे ग्रहण किया है। दलित देश के उद्धार के प्रति भी ये सजग रहे है और इनकी रचनाओ मे सामाजिक उन्नति, समता एव सास्कृतिक पुनरुत्थान की आकाक्षाएँ प्रतिध्वनित होती रहती हैं।

इनकी कविता मधुर एव भावमय तथा भाषा सहज, सरल एव प्रवाहमय है।

पिउ पुत्तर (प० कृ०)

यह सुरेंद्र सिंह नरूला का प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमे अमृतसर नगर के जीवन का एक विराट चित्र ऐतिहासिक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। पिछले कुछ वर्षों से अमृतसर के जीवन के अनेक विलक्षण गुण लोप होते जा रहे हैं जिनका नगर के ऐतिहासिक चरित्र के साथ गहरा सबध है। नरूला ने 'पिउ पुत्तर' की कथा द्वारा उन विशेष गुणो का सरक्षण किया है जो काल के व्यतीत होने से आज अमृतसर मे दृष्टिगत नही होते।

अपने एक अन्य उपन्यास 'सिल-अलूणी' मे भी नरूला ने अमृतसर नगर की पृष्ठभूमि पर पजाब के सामाजिक व्यक्ति के चरित्र के अनेक पक्षो को सार्थक रूप मे चित्रित किया है। बडी तीव्र गति से घटित हो रही घटनाओ को अमृतसर के नागरिको के सदर्भ मे परिवर्तित हो रही मानवीय कल्पना तथा विचारो को अकित किया गया है।

पिच्चमूर्त्ति, न० (त० ले०) [जन्म—1900 ई०]

वयोवृद्ध आधुनिक तमिल साहित्य रचयिताओ मे इनका विशिष्ट स्थान है। कुछ समय तक वकालत करने के बाद ये क्रमश तमिल प्रदेश के मदिरो के निर्वाहक 'कमिश्नर' तथा 'पत्र सपादक' के रूप मे रहे थे। 1937 ई० के आस-पास 'मणिक्कोटि' नामक साहित्यिक पत्रिका तत्कालीन सृजनात्मक लेखन का माध्यम बनी थी और उसमे लिखने वाली लेखक गोष्ठी मे पिच्चमूर्त्ति (और उनके साथी स्वर्गीय कु० प० राजगोपालन्) अधिक यशस्वी बन गए थे। लघुकथा के क्षेत्र मे इनका नाम पुराना है। बाद म इन्होंने नाटक, उपन्यास आदि भी लिखे हैं। रोचक बात यह है कि पिछले दशक म इन्होंने गद्य-कविता का भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया है जो तमिल मे इस दिशा का प्रथम प्रयत्न माना जा सकता है। इनकी कुछ रचनाएँ ये हैं—'मोकिनि', 'पिच्चमूर्त्तियिन् कतैकल्' (दोनो लघु-कथाएँ), 'काळि' (नाटक), 'कुटुम्पकचियम्' (लघु उपन्यास), 'काट्टुवात्तु' (नयी गद्य कविता) इत्यादि। 1970 ई० मे इनकी कुछ पुरानी कविताओ का सग्रह 'कुयिलिन् चुरुति' के नाम से निकला था।

पिनवीरभद्रुडु, पिल्ललमर्रि (ते० ले०) [समय—पद्रहवी शती ई०]

ये विजयनगर राज्य के शासक सालुव नरसिंहराय (शासन काल 1485-1493 ई०) के दरबारी कवि थे। हैदराबाद के नजदीक पिल्ललमर्रि नामक गाँव इनका पहला वासस्थान था। इनकी लिखी गई ये दो रचनाएँ ही आज उपलब्ध हैं—'शृगारशाकुतलमु' (दे०) और 'जैमिनिभारतमु' (दे०)। इनमे पहला चार आश्वासो का शृगार-प्रबध है। लेखक ने 'महाभारत (दे०) तथा कालिदास (दे०)-कृत 'अभिज्ञानशाकुतलम्' (दे०) की कथा लेकर कुछ नये परिवर्तनो के साथ इस काव्य की रचना की थी। शृगार रस सबधी चित्रण की विशेपता को लक्ष्य कर लेखक ने अपनी कृति को 'शृगार-शाकुतल' कहा हैं। उन्नीसवी शती ई० तक तेलुगु म सस्कृत-नाटको का अनुवाद नही किया गया था। एक-दो का अनुवाद किया भी गया था तो वह पद्य-काव्य के रूप म ही हो पाया था। प्रस्तुत कृति भी उनमे से एक है। इनकी दूसरी रचना 'जैमिनिभारतमु' है। जैमिनी-कृत सस्कृत-भारत' के अश्वमेध पर्व का ही प्रचलन है। उसी को पिनवीरभद्रुडु ने पद्य-काव्य के रूप म लिखा था। धर्मराज ने जो अश्वमेध याग किया था उसके सदर्भ म भीम तथा अर्जुन द्वारा की गई विजय यात्राओ का वर्णन ही इस काव्य का कथानक है। इस काव्य के अतर्गत मार्मिक युद्ध वर्णन तथा चद्रहास और उद्दालक आदि की मनोरजक कहानियाँ हैं। इनकी रचना म सस्कृत शब्दो तथा दीर्घ समासो का प्रचुर प्रयोग पाया जाता है। तेलुगु-साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि श्रीनाथुडु (दे०) का अनुकरण भी इनकी शैली म देखने को मिलता है। जिस प्रकार श्रीनाथुडु ने सस्कृत 'नैषध' (दे० नैषधीयचरित) काव्य का 'शृगार नैषध' (दे०) नामक अपना तेलुगु-अनुवाद प्रस्तुत किया था, ठीक उसी प्रकार इन्होने भी शाकुतल' नाटक का 'शृगारशाकुतलमु' नामक अनुवाद प्रस्तुत किया।

सरस कहानी, सुंदर वर्णन, मार्मिक रसचित्रण तथा प्रभावोत्पादक शैली प्रस्तुत करने में पिनवीरभद्रुडु कवि की प्रतिभा अद्भुत है। इसीलिए एक जगह लेखक ने कहा है कि 'वाणी मेरी रानी है।'

पियलि फुकन *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1948 ई०]

यह नाटक नौगाँव समाज द्वारा रचित और अभिनीत हुआ था। प्रथम स्वातंत्र्य-युद्ध (1857 ई०) से भी पहले 1830 ई० में पियलि फुकन ने अंग्रेज़ों के खदेड़ने का प्रयास किया था, पर उसे फाँसी हुई थी। इसी वीर पुरुष को लेकर यह नाटक लिखा गया है। इसमें परंपरानुसार अंक-विभाग नहीं हैं—घटनाओं के सात स्तर सात दृश्यों में अंकित हैं। इस नाटक के संवाद और भाषा सर्वाधिक आकर्षक हैं।

पियार, महम्मद *(अ० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

इनका जन्मस्थान जोरहाट है। इनकी शिक्षा गौहाटी विश्वविद्यालय में हुई थी। ये शिक्षक हैं। प्रकाशित रचनाएँ—उपन्यास : 'प्रीति उपहार' (1947), 'संग्राम' (1948), 'जीवन और जांजो' (1949), 'हेरोवा स्वर्ग' (दे०) (1952), 'युवती निशार आजान', (1956), 'हाइफेन' ('अन्ना केरेनिना' का अनुवाद) (1959)।

इनके उपन्यासों में निम्न-मध्यवित्त समाज के सुख-दुःख का चित्रण है। इनमें चरित्रांकन और औपन्यासिक अंतर्दृष्टि का अभाव है। इन्होंने असम के मुस्लिम समाज की गंदगी का चित्रण किया है।

युद्धोत्तरकाल के असमीया-उपन्यास-क्षेत्र में इनका विशेष योगदान है।

पिरताप मुदलियार् *(त० पा०)*

उन्नीसवीं शती ईसवी में वेदनायकम् पिळ्ळै (दे०) द्वारा विरचित तमिल के प्रथम उपन्यास 'पिरताप मुदलियार् चरित्तिरम्' (दे०) का यह कथानायक है। यह एक कल्पित पात्र है किंतु इसके चित्रण में तत्कालीन तमिल-समाज के व्यक्ति का पूर्ण प्रतिनिधित्व हुआ है। यह उपन्यास इसी पात्र की आत्मकथा के रूप में रचा गया है। यह चतुर नहीं है। साथियों के साथ खेलते समय प्रायः हार जाता है; कई बार धोखा खा जाता है; इसमें थोथा अहंकार और मूर्खतापूर्ण हठ भी है। अपने मामा की बेटी 'ञानांबाल' के, जो रूपवती तथा विवेकवती है, संग रह कर यह धीरे-धीरे सुधर जाता है। अंत में ञानांबाल के साथ इसका विवाह निश्चित होता है। लेकिन लगन के समय दोनों समधी अपने-अपने कुल-गौरव की डींग हांकते-हांकते एक-दूसरे को नीचा दिखाने की चेष्टा करते हैं; बात की बात में झगड़ा बढ़ जाता है और विवाह रुक जाता है। प्रताप और ञानांबाल का दूसरी कन्या और दूसरे वर के साथ विवाह होने की बात होती है; किंतु दैवयोग से वैसा नहीं हो पाता। एक बार किसी यात्रा में जाते समय ञानांबाल को कुछ दुष्ट लोग उसकी पालकी समेत उठाकर ले जाते हैं; वह खिसककर एक जंगल में स्थित भिक्षुणी की सहायता से यद्यपि घर लौटने का यत्न करती है तथापि दुबारा दुष्टों से घिर जाती है; इतने में यह वहाँ पहुँचकर दुष्टों को गोली मार देता है और उसे बचा लेता है। परिणामस्वरूप दोनों का विवाह संपन्न होता है। प्रताप का सहपाठी 'कनकसर्भ' दरिद्र अध्यापक के स्थान पर एक बड़े ज़मींदार का शैशव में खोया हुआ लड़का निकलता है। उसके विवाह में प्रताप आदि जाते हैं। वहाँ शिकार खेलने जाकर प्रताप एक मस्त हाथी द्वारा दूर जंगल में एक पहाड़ पर फेंक दिया जाता है; उस पहाड़ के पार उतरकर वहाँ स्थित किसी नगर में जा पहुँचता है, जहाँ अराजकता की स्थिति है। वहाँ के लोगों द्वारा प्रताप ठगा जाता है और कारागार में डाल दिया जाता है। तब ञानांबाल पुरुष-वेश में आ पहुँचती है; उस नगर के लोगों द्वारा वह शासिका निर्वाचित हो जाती है तो वह अपने पति को कारागर से छुड़ा लेती है और शासन-व्यवस्था में सुधार लाती है। अंत में वहाँ के भूतपूर्व राजा की पुत्री को राज्य सौंप कर प्रताप तथा ञानांबाल अपने नगर को लौट आते हैं।

'प्रताप' एक आदर्शप्रिय, न्यायी, धीर और समाज-सेवी व्यक्ति हो जाता है।

पिरताप मुदलियार् चरित्तिरम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1876 ई०]

तमिल का यह प्रथम उपन्यास है तथा तमिल-गद्य-साहित्य में इसका स्थान अमर है। इसके लेखक वेदनायकम् पिळ्ळै हैं। यह उपन्यास एक कल्पित कथानक पर आधारित आत्म-कथारूप 'बृहत्कथा' है। इसमें प्रताप के माता-पिता, उसकी दादी तथा स्वयं वह और उसकी

पत्नी—तीन पीढियो का चित्रण हुआ है, साथ ही प्रताप का सहपाठी मित्र, उसके बधुजन आदि अनेक अन्य पात्र भी अकित है। सपन्न माता पिता का इकलौता बेटा प्रताप दादी के कथन स विद्याभ्यास को अनावश्यक समझता है, किंतु अपनी माँ के यत्न से शिक्षा प्राप्त करता है। घर मे ही एक अध्यापक रख लिया जाता है। अध्यापक का पुत्र कनकसमै, जो बाद मे एक धनी जमीदार का शैशव मे खोया पुत्र निकलता है, प्रताप के सग पढता है। प्रताप की दादी के आदेश से अध्यापक प्रताप के ठीक न पढने पर अपने पुत्र को पीटता है अथवा अपनी ही पीठ पर छडी मार लेता है जिससे प्रताप अपनी गलती को समझ ले। लेकिन बाद मे प्रताप की विवेकवती माँ के यत्न से यह स्थिति बदलती है। तमिल देश की प्रथा के अनुसार प्रताप का उसकी ममेरी बहन ज्ञानाबाल के साथ विवाह होता है। इधर कनकसमै का 'गुणभूषणी' नामक कन्या के साथ विवाह होता है। किंतु 'गुणभूषणी' के साथ विवाह करने की इच्छा रखने वाला कलेक्टर यह कहकर कि कनकसमै वहाँ के जमीदार का वास्तविक पुत्र नहीं है, मुकद्दमा करके उसे देशनिकाले का दड देता है। तब ज्ञानाबाल तथा अन्य युवतियाँ गवर्नर साहब से मिलकर अर्जी देती हैं, गवर्नर की न्यायप्रियता के कारण सब लोग दड से मुक्त हो जाते हैं।

एक दिन शिकार खेलने जाकर प्रताप एक मस्त हाथी द्वारा दूर जगल मे पहाड पर फँसा दिया जाता है। वहाँ से धीरे-धीरे किसी अन्य देश मे पहुँचता है, वहाँ जनता के राज के नाम पर अराजकता चलती है। प्रताप लोगो द्वारा ठगा जाता है और अकारण ही जेल मे बदी बना दिया जाता है। इतने मे ज्ञानाबाल पुरुष-वेश मे उसकी खोज करती हुई वहाँ आ पहुँचती है और सयोगवश वहाँ की शासिका निर्वाचित हो जाती है। उसकी चतुराई से प्रताप जेल से मुक्त हो जाता है और उस राज्य मे अच्छी शासन-व्यवस्था स्थापित होती है। फिर प्रताप और ज्ञानाबाल अपने स्थान मे लौट कर सुखी रहते हैं।

इस कथानक के बहाने स लखक ने तत्कालीन तमिल प्रदेश क सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है। बीच-बीच मे आई अनेक छोटी-मोटी आख्यायिकाओ तथा प्रसगो स उस समय के लोगो के चरित्र, मनोभाव, बलहीनताएँ, अधविश्वास इत्यादि प्रकट होते हैं। सरकारी अधिकारियो के अत्याचार, मुकद्दमेबाजो तथा वकीलो की हरकतें, अपढ ग्रामीणों की दुरवस्था, इत्यादि बातो का विशद वर्णन बडा प्रभावकारी है। पात्र आदर्शवादी हैं, सवादों मे उपदेशात्मकता है, मनोरजक तत्त्व तथा कल्याण का प्राधान्य है, हास्य कही-कही ग्रामीण स्तर पर पहुँच गया है।

इस ग्रथ की प्रमुख विशेषता है इसकी गद्य-शैली। श्री पिळ्ळै ने व्याकरणसम्मत ग्राथिक शैली को अपनाकर भी उसे सामान्य जन के लिए ग्राह्य, सरल किंतु शिष्ट एव परिष्कृत रूप देकर अन्य लेखको के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है। स्थान स्थान पर मुहावरो तथा मुहावरो का प्रयाग बडा रोचक है। तमिल गद्य के इतिहास मे इस ग्रथ का अमर स्थान है।

पिळ्ळा इडप्पळि्ळ, राघवन् (मल० ले०) [जन्म—1909 ई०, मृत्यु—1936 ई०

जन्म-स्थान इडप्पळि्ळ गाँव। इन्ही प्रतिभाशील, परतु अल्पायु, कवि के कारण इडप्पळिळ गाँव साहित्य जगत मे प्रसिद्ध हो सका। ये और इनके मित्र चङ्ङपुषा (दे०) कृष्णपिळ्ळा आधुनिक मलयाळम-गीतिकाव्य के प्रमुख उन्नायक थे। ये जुड़वाँ भाई की तरह एक-साथ स्मरण किए जाते हैं। राघवन् पिळ्ळा की आर्थिक एव पारिवारिक परिस्थितियाँ बहुत ही प्रतिकूल थी और ये व्यावहारिक जीवन मे सफल नही हो सके। कवि की जन्मजात भावुकता ने उसे प्राणसकट मे डाल दिया। प्रेम-निराशा से अभिभूत हो इन्होंने अपनी जीवन-लीला समाप्त की।

राघवन् पिळ्ळा का कविता-सकलन 'तुषारहारम्' इनकी प्रकृति विषयक रचनाओ का सग्रह है। 'नवसौरभ' इनका अन्य कविता-सग्रह है। स्वच्छदता, भावुकता और ललित मधुर शब्दावली इन रचनाओ की विशेषताएँ हैं। हृदय स य निराश और अतर्मुख हात जा रह थे। निराशा और ससार के प्रति खीझ इनकी अनक रचनाओ मे स्पष्ट है। इनकी अतिम रचना 'मणिनादम्' (दे०) आत्महत्या से कुछ घडी पहल समाप्त हुई—ऐसा माना जाता है। यह बडी भावपूर्ण-सशक्त कविता है। इनकी सपूर्ण रचनाओ का सग्रह एक जिल्द म इडप्पळि्ळ-कृतिकळ्' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

पिळ्ळा, इळकुळम् कुञ्जन् (मल० ले०) [जन्म—1904 ई०, मृत्यु—1974 ई०]

मलयाळम के ये प्रशस्त इतिहासकार, भाषा-

विद् और साहित्य-समालोचक थे। त्रिवेंद्रम के यूनिवर्सिटी कॉलेज के मलयाळम के आचार्य के पद से अवकाश ग्रहण करने के बाद भी ये साहित्य-सेवा में निरत रहे। इनके इतिहास-ग्रंथों में 'केरल-चरित्रत्तिले इरुळटञ्ञ एटुकळ्', 'प्रन्नत्ते केरळम्' आदि प्रसिद्ध हैं। 'लीलातिलकम्' (दे०), 'उण्णुनीलीसंदेशम्' (दे०), 'चंद्रोत्सवम्' (दे०) आदि प्राचीन ग्रंथों के प्रामाणिक और सटीक संस्करण प्रस्तुत करके इन्होंने इस दिशा में स्तुत्य कार्य किया है। 'केरल भाषयुटे विकासपरिणामङ्ङळ्' (दे०) इनका भाषा-शास्त्रीय ग्रंथ है।

कुञ्ञन् पिळ्ळा के शोधपूर्ण ग्रंथों ने केरल के इतिहास के अनेक अंधकारमय संदर्भों को आलोकित किया है—विशेषत: भाषा के विकास के आधार पर इतिहास की गवेषणा करने में इनकी प्रतिभा अनन्यसामान्य है।

मलयाळम के ही नहीं, अपितु समस्त द्रविड़ भाषाओं के इतिहासकार और भाषावैज्ञानिक के रूप में इळंकुळम् कुञ्ञन् पिळ्ळा का स्थान अग्रणी है।

पिळ्ळा, ए० बालकृष्ण (*मल० ले०*) [जन्म—1889 ई०; मृत्यु—1961 ई०]

पाश्चात्य साहित्यिक प्रवृत्तियों को मलयाळम-साहित्य में प्रचार और लोकप्रियता प्रदान करने में सर्वाधिक योगदान देने वाले ए० बालकृष्ण पिळ्ळा सफल समालोचक, पत्रकार और शोधकर्ता थे। उनका पत्र 'केसरी' उनके नाम का अंश हो गया था। उन्होंने मोपासां, बालज़ाक आदि पाश्चात्य साहित्यकारों की अनेक कृतियों का मलयाळम में अनुवाद किया है। 'रूपमंजरी', 'नोबल् प्रस्थानङ्ङळ्', 'साहित्य-गवेषणमाला' आदि उनके समालोचनात्मक शोध-ग्रंथ हैं।

बालकृष्ण पिळ्ळा ने पाश्चात्य साहित्य-नायकों के साहित्य के अनुवाद प्रकाशित करके मलयाळम के साहित्यकारों को उनसे प्रेरणा ग्रहण करने का आह्वान किया। तकषि (दे०), केशवदेव (दे०), बशीर (दे० मुहम्मद) आदि लेखकों ने उनके आह्वान की प्रतिक्रिया में अनेक नूतन कहानियाँ और उपन्यास लिखकर साहित्य को समृद्ध किया। वे प्रगतिवादी विचारधारा के समर्थक थे और उन्हीं के प्रभाव से जी० शंकर कुरुप् (दे०), चङ्ङंपुषा (दे०) जैसे कवियों ने क्रांतिकारी कविताएँ लिखीं। उन्होंने शोधकार्य के फलस्वरूप अनेक नये मतों की स्थापना की है। अनेक प्रसिद्ध साहित्यिक ग्रंथों के विचारात्मक आमुख भी उन्होंने लिखे हैं।

बालकृष्ण पिळ्ळा आधुनिक समालोचकों के भीष्म पितामह हैं।

पिळ्ळा, एन० कृष्ण (*मल० ले०*) [जन्म—1917 ई०]

श्रीकृष्ण पिळ्ळा मलयाळम के प्रसिद्ध नाटककार और समालोचक हैं। ये त्रिवेंद्रम के यूनिवर्सिटी कॉलेज में मलयाळम भाषा और साहित्य के आचार्य थे। इनके नाटकों में 'भग्नभवनम्', 'कन्यका', 'बलाबलम्', 'अनुरंजनम्' आदि अग्रगण्य हैं। 'कैरलियुटे कथा' मलयाळम-साहित्य का इतिहास है। बालकोपयोगी ग्रंथों की भी इन्होंने रचना की है।

कृष्ण पिळ्ळा ने नाटक-रचना में इब्सन से प्रेरणा ली और मलयाळम-नाटक को नयी दिशा प्रदान की। मानसिक संघर्षों और सामाजिक समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नाटकीयता के साथ प्रस्तुत करने में ये सफल हुए हैं। इनके द्वारा रचित साहित्य का इतिहास संक्षिप्त होते हुए भी सर्वांगीण और प्रामाणिक है।

नाटक-साहित्य में नवयुग के प्रवर्तक के रूप में एन० कृष्ण पिळ्ळा का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पिळ्ळा, कारूर नीलकंठ (*मल० ले०*) [जन्म—1898 ई०]

जन्म-स्थान कोट्टयम के पास एट्टुमानूर गांव। अतिशय साधारण आर्थिक स्थिति के परिवार में जन्मे श्री कारूर की स्कूली शिक्षा नौवें दर्जे तक ही चली। शेष ज्ञान इनके स्वाध्याय का प्रसाद है। इनकी ज़िंदगी के 44 वर्ष अध्यापक के पेशे में बीते। पर इस लंबी अवधि में कई वर्षों तक ये सहकारिता के क्षेत्र में भी काम करते रहे। केरल इन्हें लेखकों की प्रकाशन-संस्था 'साहित्य प्रवर्तक सहकरणसंघम्' के मंत्री के रूप में विशेष सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखता आया है।

कारूर मलयाळम के अत्यंत सरल और लोकप्रिय कहानीकार हैं जिनकी कहानियों की संख्या कई सौ है। इनकी प्रथम प्रकाशित कहानी 'मृत्यवात्सल्यम्' 1930 ई० में निकली। आज भी इनकी कहानियों में पहले जैसी ही मौलिकता, सरसता और ताज़गी है। इनकी कल्पना उम्र के प्रभाव से दब नहीं सकी है। इन कहानियों का वर्गीकरण कई कोटियों में किया जा सकता है। पहली श्रेणी में

अध्यापक-कथाएँ आनी हैं जिनके आधार-रूप मे अध्यापक के दयनीय और सकट-ग्रस्त जीवन की घटनाएँ है। कारूर की अध्यापक-कहानियो मे हास्य व्यग्य के नीचे पीडा की तीव्रता है। इन्होने मानव-प्रकृति की गहराइयो पर प्रकाश डालने वाली कई मार्मिक कथाएँ भी रची हैं। ऐसी कहानियो म किसी की पृष्ठभूमि राजनीतिक है तो किसी की साप्रदायिक। नपूतिरि-परिवारो की कई हृदयहारी कहानियाँ कारूर ने लिखी है। कारूर की बाल-मनोविज्ञान सबधी कथाएँ एक नयी कथा दिशा का बोध कराती हैं। मुहब्बत या शृगार कारूर-कथाओ का मुख्य विषय कभी नही रहा। तथापि किसी किसी कथा मे प्रेम के मर्म की अत्यत सयत चर्चा है। सरस सवाद-कला और मन-ही-मन खूब हँसाने वाला हास्य-व्यग्य कारूर-कथाओ की अनन्य विशेषताएँ हैं। इनकी प्रसिद्ध कथाओ मे उल्लेखनीय हैं—'मरप्पावक्कळ्', 'पूवपषम्', 'सार् वदनम्', 'मिलिटरी आदि।

पिळ्ळा, के० सी० केशव *(मल० ले०)* [जन्म—1867 ई०, मृत्यु—1913 ई०]

ये सस्कृत, मलयाळम और अंग्रेजी भाषाओ के विद्वान थे। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'केरलवर्मविलासम्' जो सस्कृत की उत्तम काव्य-रचना है, (2) 'मुन्नाटट कथकळ्' जिसमे कथकलि साहित्य की तीन सुदर रचनाएँ सकलित हैं। 'हिरण्यासुरवधम्', 'शूरपत्मासुरवधम्' तथा 'श्रीकृष्ण विजयम्, (3) 'स्तव रत्नावलि' (भजन-सग्रह), (4) 'केरल-भाषा-नारायणीयम्' ('नारायणीयम्' का रूपातर); 'राघव माधवम्' 'लक्ष्मीकल्याणम' तथा 'सदारामा' (नाटक), 'सुदाराम' की शैली रोचक और सब प्रकार से लोकप्रिय है, 'विक्रमोर्वशीयम्' (सगीत-नाटक), (4) 'सुभाषित रत्नाकरम्'—कवित्वमय नीतिवचनो की पद्य-रचना। 'आग्ल-साम्राज्यम्—ए० आर० राजराज वर्मा (दे०) के लिखे काव्य का सुदर रूपातर —'षष्टिपूर्ति षष्टि' साठ पद्यो की एक कविता। 'साहित्य विश्रामम'—उत्तम पद्यो का सग्रह, 'सगीत मालिका —सगीत के राग और उसके लक्षणो पर लिखा गद्य-ग्रथ, 'केशवीयम्' (दे०)—श्रीकृष्ण की स्यमतक कथा पर लिखा महाकाव्य —'आसन्न मरण-चिताशतकम्'। इन्होंने सभी क्षेत्रो मे उत्तम काव्य-रचना की है।

ये सरस कवि और गायक होने के अतिरिक्त उतने ही प्रतिभा-सपन्न उत्तम गद्य लेखक भी थे। केरल के विद्वद्वर्ग ने इन्हे 'सरसगायककविमणि' नाम से भूषित किया।

पिळ्ळा, कैनिक्करा कुमार *(मल० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

ये मलयाळम के नाटककार कैनिक्करा-सहोदरो मे से हैं। कई शैक्षिक सस्थाओ और महाविद्यालयो मे ये अध्यापक और प्रधानाचार्य रहे हैं। सरकार के भी अनेक समुन्नत पदो को इन्होंने अलकृत किया है।

इनके नाटको मे 'हरिश्चद्रन', 'मोहवुम् मुक्तियुम्' 'वेषड्डल्' आदि मुख्य हैं। टैगोर (दे० रवीद्रनाथ) और शेक्सपियर के नाटको का अनुवाद भी इन्होने किया है। 'विचारमाधुरी' और 'विचारवीचिकळ्' निबध सग्रह हैं।

कैनिक्करा कुमार पिळ्ळा ने 'हरिश्चद्र', 'रुक्मागद' जैसे पौराणिक पात्रो की कथाओ को नवीन नाटकीय रूप के ढाँचे मे प्रस्तुत करके सफलता प्राप्त की थी। सामाजिक नाटक के क्षेत्र मे भी इनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। समालोचना के क्षेत्र मे भी इनका प्रमुख स्थान है। ये शिक्षाशास्त्री भी हैं।

पिळ्ळा, कैनिक्करा पद्मनाभ *(मल० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

ये मलयाळम के नाटककार है और कैनिक्करा-सहोदरो मे सबसे बडे हैं। विभिन्न विद्यालयो मे अध्यापन-कार्य करने के बाद इन्होंने सरकार के समुन्नत पदो पर कार्य किया और पुन नौकरी छोडकर राजनीति मे प्रविष्ट हुए।

इनके नाटको मे 'वेलुत्तपिदळवा', 'काल्व-रियिलेकल्पपादपम्', 'अग्निपजरम्' आदि प्रसिद्ध हैं। इन्होने उपन्यासो और कहानियो की भी रचना की है।

पद्मनाभ पिळ्ळा का ऐतिहासिक नाटक 'वेलुत्तपिदळवा' न स्वतत्रता सेनानियो को उत्साह प्रदान किया था। 'काल्वरियिले कल्पपादपम्' ईसा मसीह के जीवन पर आधारित है। इन नाटको का साहित्य म विशेष स्थान है। शिक्षाशास्त्री के रूप मे भी पद्मनाभ पिळ्ळा का स्थान समुन्नत है।

पिळ्ळा, पी० के० नारायण *(मल० ले०)* [जन्म—1878 ई०, मृत्यु—1937 ई०]

मलयाळम के मूर्धन्य आलोचको मे नारायण

पिळ्ळा का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुंचन् (दे०) नंपियार पर उनके ग्रंथ से आलोचना के क्षेत्र में प्राचीनों के मूल्यांकन का प्रवर्तन हुआ। 'कृष्ण-गाथा' पर उनकी आलोचनात्मक कृति विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी है। तुंचत्त् एष् त्तच्छन् (दे०) पर लिखा ग्रंथ भी महत्त्वपूर्ण है। अँग्रेजी के समालोचना-सिद्धांतों का श्री पिळ्ळा को अच्छा ज्ञान था।

पिळ्ळा, पी० गोविंद *(मल० ले०)* [जन्म—1829 ई०; मृत्यु—1907 ई०]

त्रिवेंद्रम् में जन्मे गोविंद पिळ्ळा स्नातक उपाधि प्राप्त करने के बाद कुछ दिन एक स्कूल के प्रधान अध्यापक रहे। तदनंतर राजा के अंतःपुर में प्रधान कार्यकर्त्ता बने—कालांतर में उन्होंने वकालत का काम स्वीकार किया। 'मलयाळम-भाषा-चरित्रम्' (मलयाळम भाषा का इतिहास) लिखकर उन्होंने केरल की अद्वितीय सेवा की। 'रोमन-चरित्रम्' उनकी दूसरी कृति है। गद्य-साहित्य में इस पुस्तक की रचना का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पिळ्ळा, पुलिमाना परमेश्वरन् *(मल० ले०)* [जन्म—1893 ई०; मृत्यु—1949 ई०]

मलयाळम के इस सिद्धहस्त नाटककार की प्रमुख कृति अभिव्यंजनावादी नाटक 'समत्ववादी' है। इनकी अन्य समस्त कृतियों का संकलित संस्करण इनके देहांत के बाद प्रकाशित हुआ है।

'समत्ववादी' मलयाळम के नाटक-साहित्य में एक नया प्रयोग था। इस प्रयोग में इनको विजय प्राप्त हुई थी; परंतु इस आंदोलन को आगे ले जाने में कोई समर्थ नहीं हुआ है। अपने इस नाटक के कर्तृत्व से ही पुलिमाना का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

पिळ्ळा, श्रीकंठेश्वरम् जि० पद्मनाभ *(मल० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

त्रिवेंद्रम् में श्री कंठेश्वरम् नामक एक मंदिर है। उसके पास लेखक ने जन्म लिया। बचपन से ही अँग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं में उन्होंने दक्षता प्राप्त कर ली। वैद्यक का भी अध्ययन किया। कुंचन नंपियार की कविताएँ तथा कथकळि में उत्तम ग्रंथों के अध्ययन में उन्होंने बड़ी रुचि दिखाई। उनका लिखा 'शब्द-तारावली' नामक 'मलयाळम कोष' बहुत प्रसिद्ध है। 'धर्म विजयम्', 'पांडव विजयम्' आदि लिखकर उन्होंने कैरली कथकळि को पुष्ट किया। उन्होंने कई नाटक तथा गद्य-ग्रंथ लिखे हैं। करीब बीस साल के सतत प्रयत्न के फलस्वरूप उन्होंने मलयाळम भाषा में कोश का निर्माण किया।

पिळ्ळा, सी० वी० रामन् *(मल० ले०)* [जन्म—1858; मृत्यु—1922 ई०]

ये मलयाळम के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। उच्च शिक्षा प्राप्त करके यद्यपि ये सरकारी नौकर बने, किंतु देशभक्ति पर आधारित अपने राजनीतिक विचारों के कारण किसी उच्च पद पर नहीं पहुँच पाए। इन्होंने अनेक पत्रिकाओं का संपादन-कार्य किया।

इनके ऐतिहासिक उपन्यास 'मार्त्तांड वर्मा' (दे०), 'धर्मराजा' (दे०) और 'रामराजा बहादुर' (दे०) हैं। इनमें त्रावनकोर राज्य के दो यशस्वी शासकों का इतिहास वर्णित है। 'प्रेमामृतम्' सामाजिक उपन्यास है। 'पंटते पाच्चन्', 'कुरुप्पिल्ला कळरी' आदि आठ प्रहसनों की रचना भी इन्होंने की है। 'विदेशीय मेधाविरवम्' इनका निबंध-संग्रह है।

इनकी तुलना प्रायः सर वाल्टर स्कॉट से की जाती है। लक्षणायुक्त उपन्यासों के रचयिताओं के संदर्भ में सर्वप्रथम लिये जाने वाले नामों में ये तथा श्री० चंतु-मेनन आते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र में आज भी कोई लेखक सी० वी० के समशीर्ष नहीं है। इनके उपन्यासों के पात्र मलयाळम के सभी पाठकों के लिए चिरपरिचित हैं। आधुनिक गद्य नाटकों का युग भी इन्हीं के प्रहसनों की रचना के साथ उद्‌घाटित हुआ था।

मलयाळम-गद्य के विकास में इनका योगदान अमूल्य है।

पिळ्ळै, कंदसामी *(त० ले०)*

दे० कंदसामी पिळ्ळै।

पिळ्ळै, व० उ० चिदंबरम् *(त० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

तमिलनाडु के तिरुनेलवेली जिले के ओट्ट-

पिडारम नामक ग्राम मे जन्म । शिक्षा समाप्त कर वकील के रूप मे जीविका का आरभ। स्वतत्रता-सग्राम के प्रसिद्ध सेनानी, निर्भीक देशसेवी । इस शती के आरभ मे इन्हे दो बार आजन्म कैद की सजा मिली । तमिलनाडु मे ये कप्पलोट्टिय तमिलर (जहाज चलाने वाले तमिलभाषी) के नाम से विख्यात हैं। इन्होंने 1906 ई० में 'स्वदेशी स्टीम नेविगेशन कपनी' की स्थापना कर तमिलनाडु के तूत्तुक्कुडि से लका तक अपना व्यापारी जहाज चलाया। राजनीति के क्षेत्र मे इनका सबध टिळक (दे०) के गरम दल से था । साहित्यिक क्षेत्र मे ये भारती (दे०) के समकालीन एव उनके परम मित्र थे। चिदबरम् पिळ्ळै तमिल और अँग्रेजी के अच्छे विद्वान थे । इन्होने तिरुक्कुरल का अँग्रेजी मे और जेम्स ऐलन के प्रबोधक नीति-ग्रथो का तमिल मे अनुवाद किया । तमिल के प्राचीनतम उपलब्ध व्याकरण-ग्रथ 'तोलकाप्पियम' (दे०) की इळम्पूरणर कृत टीका का, जिसे विद्वानो ने सर्वप्रथम और प्राय सर्वश्रेष्ठ माना है, सपादन एव प्रकाशन इन्होने किया था । 'मेय्यरिवु', 'अलिमैक्कु मार्गम' आदि इनके प्रसिद्ध निबध-ग्रथ है । 'व० उ० चि० सुय चरिदै' शीर्षक इनका आत्मचरित तमिल मे रचित आत्मचरितात्मक कृतियो मे सर्वप्रथम माना जाता है । इसे लेखक ने पद्य शैली मे मित्र को पत्र के रूप मे लिखा है। इन्होने कुछ सुदर स्फुट कविताएँ भी लिखी हैं । कुछ समय तक इन्होंने 'विवेक-भानु' नामक पत्रिका का सपादन भी किया था । विभिन्न कृतियो मे इन्होने सरल, सरस भाषा का प्रयोग किया है। जहाँ-तहाँ अँग्रेजी शब्दो का पुट दीख पडता है । इनका तमिल-राजनीति एव साहित्य दोनो क्षेत्रो मे विशिष्ट स्थान है।

पिळ्ळै तमिल *(त० पारि०)*

'पिळ्ळै तमिल' तमिल मे प्राप्त एक काव्य-विधा है। इसमे कवि शिशु के जन्म के तीसरे माह से लेकर इक्कीसवें माह तक की दस चेष्टाओ का वर्णन करता है। काप्पु-शिशु की रक्षा के लिए प्रार्थना, चेंगीरै-शिशु का पेट के बल लेटकर सिर उठाकर देखना, तालाट्टु—माता का लोरी गाना, चप्पाणी कोट्टुदल—शिशु का ताली पीटना, मुत्तप्परुवम्—शिशु को चूमना, वरुकैप्परुवम्—शिशु को अपने पास बुलाना, और अबुलिपरुवम्—शिशु से खेलने के लिए चद्र को बुलाना। इन सातो चेष्टाओं का वर्णन बालक और बालिका दोनो के सदर्भ मे किया जाता है । इनके अतिरिक्त बालको से सबधित कृतियो मे शिट्रिल अलित्तल—बालिकाओ द्वारा बनाये गये घरौंदो को तोडना, शिरुपरै कोट्टुदल्—परै नामक वाद्य बजाना और शिरुत्तेर उरुट्टल्—लकडी के बने सुदर लघु रथ को खीचना तथा बालिकाओ से सबधित कृतियो मे नीराडल (स्नान), ऊञ्जल (झूला झूलना) और कलगु या अम्मानै (बाजो को ऊपर उछाल कर पकडना) आदि क्रियाओ का वर्णन भी होता है। यद्यपि इस विधा का उल्लेख 'तोलकाप्पियम्' (दे०) मे मिलता है तथापि 'पेरियाळवार' (दे०) ही इसके जन्मदाता कहे जाते हैं । उन्होने अपने पदो मे अपने इष्टदेव बालकृष्ण की अनेकानेक चेष्टाओ का सरस वर्णन प्रस्तुत किया है। पिळ्ळै तमिल की शैली मे एक साहित्यिक कृति की रचना का श्रेय ओटटक्कुत्तर (दे०) को है । उन्होने अपने 'कुलोत्तुगन् पिळ्ळै तमिल' (दे०) मे अपने आश्रयदाता कुलोत्तुग चोल द्वितीय के वीर-कर्मो का वर्णन किया है।

पिळ्ळै, देशिग विनायकम् *(त० ले०)*

दे० देशिग विनायकम् पिळ्ळै ।

पिळ्ळै, पचकल्याणी *(त० पा०)*

यह देशिग विनायकम् पिळ्ळै (दे०)-कृत 'मरुमक्कळ वळि मान्मियम' नामक काव्यकृति का नायक है। इस काव्यकृति मे नाजिल नाडु की वेळाळर जाति के लोगो के जीवन का, उनकी सामाजिक प्रथाओ एव उनके कुप्रभावो का, सजीव चित्रण है । नाजिल नाडु के अमीर व्यक्ति चार-पाँच विवाह कर लेते थे । इससे उनकी पत्नियो की बडी दुर्दशा होती थी । काव्य के नायक का पचकल्याणी पिळ्ळै नाम सर्वथा सार्थक है क्योकि उसकी पाँच पत्नियाँ थीं । इस काव्य की सपूर्ण कथा उसकी पाँचवी पत्नी के माध्यम से प्रस्तुत की गई है जिसे सर्वाधिक दुःख सहने पडे थे ।

पचकल्याणी पिळ्ळै परिवार का मुखिया था। वह वेळाळर जाति का था जिसमे मातृसत्तात्मक दाय-प्रथा का प्रचलन था । इस प्रथा के नियमानुसार उसकी सपत्ति पर उसके बच्चो का नहीं अपितु भाजे-भाजियो का अधिकार था। अत वह सदा अपने स्वार्थ की बात सोचता है। मनमाने ढग से अपनी सपत्ति का अपव्यय करता है। भोग-विलास करते समय वह मर्यादा का परित्याग कर

देता है। काव्य में उसका चित्रण पाखंडी व्यक्ति के रूप में किया गया है। पारिवारिक झगड़ों को मिटाने के लिए, न्यायालयों का चक्कर काटते हुए वह अपनी अपार धन-संपत्ति खो बैठता है। काव्य के अंत में उसे निर्धन, निरीह व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

इस चरित्र को लेकर कवि ने कुछ हास्यपूर्ण प्रसंगों की सृष्टि की है। जैसे—आषाढ़ की अमावस्या के दिन पंचकल्याणी पिळ्ळै अपनी पत्नियों के साथ कन्याकुमारी जाता है। स्वर्ग-प्राप्ति की कामना से पति-पत्नियों के जोड़े हाथ पकड़कर समुद्र में डुबकियाँ लगाते हैं परंतु वह मूढ़वत् तट पर खड़ा रहता है। लोगों द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर वह कहता है कि 'मेरी एक नहीं, पाँच पत्नियाँ हैं। मैं बारह हाथों वाला ब्रह्मा या बीस हाथों वाला राक्षस नहीं कि एक-साथ सबका हाथ पकड़कर समुद्र में डुबकियाँ लगा सकूँ।'

इस पात्र के माध्यम से मातृसत्तात्मक दाय एवं बहुविवाह-प्रथाओं के दोषों को उभारने में कवि को अपूर्व सफलता मिली है।

पिळ्ळै, वेदनायकम् *(त० ले०)* [जन्म—1826 ई०; मृत्यु—1889 ई०]

ये तमिल भाषा के प्रथम आधुनिक उपन्यास-लेखक माने जाते हैं। ये सरस कवि भी थे। अंग्रेज़ी व्यापारी कंपनी के शासन-काल में ये जिला मुंसिफ (न्यायाधीश) के रूप में तमिल-प्रदेश के मध्यवर्ती जिलों में काम करते थे। इनके परिवार ने दो पीढ़ियों पूर्व ईसाई धर्म ग्रहण कर लिया था पर ये स्वभावतः उदारमना और भारतीय संस्कृति, तमिल भाषा एवं साहित्य के प्रति अत्यंत निष्ठावान थे। प्रायः सभी समकालीन साहित्य-महारथियों से इन्होंने संबंध स्थापित कर लिया था।

इनका यशस्तंभ 'पिरताप मुदलियार चरित्तिरम्' (दे०) नामक उपन्यास 1876 ई० में प्रकाशित हुआ था और इसमें चरित-नायक 'पिरताप मुदलियार' ('प्रताप' नामक अभिजात) के जन्म से मरण तक की घटनाओं का इतिवृत्त प्रस्तुत है। इसमें रोमानी प्रसंग तथा मानवतापूर्ण कथा-भाग एक ही सूत्र में पिरोए गए हैं; साथ-साथ 'पंचतंत्र' की भाँति सदुपदेशपरक उपकथाओं का सुंदर सम्मिश्रण देखा जा सकता है। कुल मिलाकर इस उपन्यास का आकर्षण प्रसिद्ध अंग्रेज़ी उपन्यास 'द विकार ऑफ़ वेकफ़ील्ड' की तरह सरल एवं अखंड मानवतावाद कहा जा सकता है। इनका दूसरा उपन्यास 'सुगुण सुन्दरि' है। यह नारी जीवन का चित्रण है पर अधिक सफल नहीं है। इनकी मुख्य कविता-रचनाएँ हैं—'नीतिनूल्' (नीति-सूक्तियाँ जो 'तिरुक्कुरळ्' के आदर्श पर चलती हैं), 'पेण्मतिमालै' (नारी सदाचार-संबंधी उपदेश) तथा 'सर्व चमय चमरसक्कीर्त्तनै' (सर्व समयों-धर्मों द्वारा मान्य भक्ति-भाव से प्रेरित गेय पद)। इस पद्य-रचना में इन्होंने पवित्र भक्ति-भावना-युक्त गीतों को कर्नाटक संगीत के रागों में गायन के अनुकूल संरचना से भी संपन्न कर दिया है।

पिशिरांदैयार *(त० कृ०)* [रचना-काल—1967 ई०]

भारतीदासन् (दे०)-कृत यह नाटक 34 दृश्यों में विभाजित है। दृश्यों के शीर्षक विषयानुरूप हैं। इसमें पांड्य राजा अरिवुडै नंबि के दरबारी कवि और तमिल प्रांत में आविर्भूत एक महापुरुष पिशिरांदैयार और चोल राजा कोप्पॆरुंचोलन् की घनिष्ठ मित्रता का वर्णन है। उनकी मित्रता की विशिष्टता यह थी कि वे दोनों बिना एक-दूसरे को देखे ही प्राण-सखा बन गए थे। इस नाटक में इतिहास और कल्पना का अपूर्व समन्वय हुआ है। पग-पग पर तमिलनाडु और तमिल भाषा के प्रति भारतीदासन् का अनन्य प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। नाटक में कुछ गेय गीत और अहवल छंद में रचित कुछ पद भी हैं। यह नाटक अत्यंत प्रौढ़ शैली में रचित है। इस नाटक के माध्यम से भारतीदासन् ने नवयुवकों को जागृत करने की चेष्टा की है। 1969 ई० में इस कृति पर भारतीदासन् को साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला था।

पिशेल, रिचर्ड *(सं० ले०)*

इनका जन्म 18 जनवरी, 1849 ई० को ब्रेज़ला (जर्मनी) में हुआ। 1870 ई० में इन्हें 'दे कालिदास शाकुन्तली रिसेनरीमोवस' विषय पर ब्रेज़ला यूनिवर्सिटी से डॉक्टरेट की उपाधि मिली। इन्होंने उक्त यूनिवर्सिटी के अतिरिक्त कील, हेली, बर्लिन यूनिवर्सिटियों में संस्कृत तथा इंडोलोजी विभागों में कार्य किया। इन्हें 'कंपैरेटिव ग्रामर ऑफ़ प्राकृत लैंग्वेजिज़' पर इंस्टीच्यूट द फ़्रांस से पुरस्कार मिला था। 26 दिसंबर 1909 ई० को जब ये कलकत्ता यूनिवर्सिटी के आमंत्रण पर प्राकृत भाषाओं पर भाषण देने आ रहे थे तो मद्रास में स्वास्थ्य

बिगड जाने के कारण इनका देहावसान हो गया । इनके ग्रथ हैं—(1) 'कालिदास'स् शकुतला', 'द बगाली रिसेंशन् विद क्रिटिकल नोट्स', (2) 'हेमचद्रा'स् ग्रामर ऑफ द प्राकृत लैंग्वेजिज', (3) 'ग्रामर ऑफ द प्राकृत लैंग्वेजिज', (4) 'वैदिक स्टडीज' (गैल्डनर के साथ), (5) 'लाइफ एड टीचिंग ऑफ द बुद्ध,' (6) 'एलिमेंटरी ग्रामर ऑफ द सस्कृत लैंग्वेज', (7) 'होम ऑफ द पपटप्ले', (8) 'कान्ट्रिब्यूशन टु वर्ड्स द स्टडी ऑफ जर्मन जिप्सीज', (9) 'द ओरिजिन ऑफ द क्रिश्चियन फिश सिबल', आदि । ये अनेक साहित्यिक तथा सास्कृतिक सस्थाओ से सबद्ध रहे ।

पिषारटि, आट्टूर कृष्ण *(मल० ल०)* [जन्म—1878 ई०]

इनका जन्म त्रिचुर जिले के आट्टूर गाँव मे हुआ था । इन्होने पहले सस्कृत भाषा एव शास्त्रादि का अध्ययन किया था । न्यायशास्त्र मे इनकी विशेष रुचि थी और उसमे इन्होने गहरी विद्वत्ता पाई । ये त्रिवेंद्रम् मे राजकुमार के शिक्षक और बाद मे वही कॉलेज के प्राध्यापक रहे । सस्कृत के शास्त्रादि का ज्ञान इन्हे था । केरलीय जनता इन्हे मलयाळम-साहित्य के अनुसधाता और व्याख्याकार के रूप मे ही अधिक सम्मान देती है । 'मणिप्रवाळ-काव्य' का व्याकरण ग्रथ 'लीलातिलकम्' (दे०) इन्ही के प्रयत्न से प्रथम बार प्रकाशित हो सका था । 'उण्णुनीलिसदेसम्' नामक मणिप्रवाळ-काव्य की प्रशस्त व्याख्या भी आट्टूर ने ही पहले-पहल की थी । 'केरलचरित्रम्' इनकी रचना है । इसमे इतिहास से बढकर जनश्रुति का ही अधिक आधार ग्रहण किया गया है । कालिदास (दे०) के 'अभिज्ञान शाकुतलम्' (दे०) का मलयाळम अनुवाद और 'सगीतचद्रिका' नामक व्याख्यात्मक सगीत-ग्रथ इन्ही की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं । श्री पिषारटी का सफल व्याख्याता के रूप मे बडा सम्मान रहा है ।

पीलू *(प० ले०)* [समय—सोलहवी शती का उत्तरार्द्ध]

लोककवि पीलू के जीवन के सबध मे कोई प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं होती । जनश्रुति के आधार पर इन्हे तरनतारन, जिला अमृतसर के एक मुसलमान जाट परिवार का सदस्य माना जाता है । इनकी रचना मे प्रयुक्त माझी पजाबी (अमृतसर-जालधर की बोली) से इसका समर्थन होता है । बाबा बुधसिंह (दे०) डा० मोहनसिंह (दे०), मौलाबख्श कुश्ता (दे०) प्रभृति अधिकाश पजाबी विद्वान् पीलू कवि और भक्त को दो भिन्न व्यक्ति मानते है, परतु डा० विश्वनाथ तिवारी ने अपने शोध प्रबध मे दोनो को एक ही व्यक्ति सिद्ध किया है । 'मिरजा साहिबा' (दे०) के अतिरिक्त कुछ फुटकर पद्य भी इनके नाम से प्रचलित हैं । 'मिरजा साहिबा' मे मिरजा और साहिबा नामक स्थानीय प्रेमियो के आकर्षण और सामाजिक बाधाओ से सघर्ष की दुखात कथा है, जिसके माध्यम से पीलू ने स्पष्ट किया है कि दुख अथवा दुर्भाग्य किसी अलौकिक शक्ति की अपेक्षा मानव की चारित्रिक कमजोरियो की ही देन है ।

पी० श्री० आचार्य *(त० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

इनका जन्म तिरुनेलवेली जिले के विट्टलपुरम् नामक स्थान मे हुआ । इनका उपनाम है पी० श्री० । पी० श्री० तमिल, अँग्रेज़ी और सस्कृत भाषाओ के पडित हैं । इन्होने लगभग 60 कृतियो की रचना की है जिनमे प्रमुख हैं—'दिव्यप्रबधसारम्', 'वीर तमिलकम', 'तळिळ तिरिकिन्र कालत्तिले', 'ज्ञानशिखरम', 'तुयिल एलुप्पिय तोंडर', 'कोदै', 'अल्लदु कादल वेळ्ळम्', 'भारदी निनैवुकळ्' आदि । 'Sheaves from the Tamil Muse' मे इन्होंने प्राचीन तमिल-कविताओ का सग्रह किया है । वैष्णव भक्ति-साहित्य मे इनकी विशेष रुचि है । इन्होने अत्यत सरस-सरल शैली मे तमिल वैष्णव-भक्तो और कुछ शैव-सतो का जीवन-चरित प्रस्तुत किया है । 'श्री रामानुजर' नामक कृति मे इन्होने रामानुजाचार्य का प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है । इस कृति पर इन्हें 1965 ई० मे साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिला । पी० श्री० तमिलनाडु-विषयक ऐतिहासिक सामग्री का चयन करने वाली एक सस्था मे प्रधान सपादक के रूप मे भी कार्य करते रहे हैं ।

पुडरीक *(स० पा०)*

इसका अपर नाम पुडरीकाक्ष है । इसका उल्लेख विभिन्न रूपो मे मिलता है । उदाहरणार्थ—इक्ष्वाकु-वश का एक राजा, पाताल लोक मे रहने वाला कश्यप-वशीय एक नाग, नागपुर का एक नाग राजा, यम का एक सभासद्, एक दिग्गज, एक भगवद्भक्त, कुरुक्षेत्र के कौशिक ब्राह्मण के सात पुत्रो मे से एक आदि । बाण (दे०)

की 'कादंबरी' (दे०) का यह एक महत्त्वपूर्ण पात्र है।

पुंडरीकाक्षुडु, दामराजु *(ते० ले०)*

इनका जन्म 1898 ई० में हुआ था। बी० ए०, बी० एल० करके इन्होंने कई वर्षों तक वकालत की। स्वतंत्रता-आंदोलन में भी इन्होंने भाग लिया।

ये 'स्वराज्य-सोपान-प्रचुरणलु' से अपनी तथा दूसरों की रचनाओं को—मुख्य रूप से नाटकों को—प्रकाशित कर, उन्हें अभिनीत करते थे। ये नाटक देशभक्ति के भाव से पूर्ण होते थे। ब्रिटिश सरकार ने इन नाटकों पर अनेक प्रकार से प्रतिबंध लगाए थे।

इनके नाटकों में 'गांधीमहोदयमु' (या नव-युगारंभमु), 'गांधीविजयमु', 'पांचाल पराभवमु' (1921-22), 'मिस विहार' या 'कलियुगभारतमु' (1936), 'भगवान नारद' (1935), 'भक्त पोतना' (1940), 'ताराशशांकमु', 'कुंभराणा' (1938), 'बोटला प्रहसनमु', उल्लेखनीय हैं। 'गांधी महोदयमु' में टिळक (दे०) के निधन से लेकर गांधी-युग के आरंभ तक की कथा है तो 'गांधीविजयमु' में गांधी-युग के प्रारंभ से लेकर नागपुर-महासभा तक की कथावस्तु वर्णित है। इन दोनों नाटकों के प्रारंभ में पौराणिक वातावरण की परिकल्पना की गई है। 'पांचाल पराभवमु' में डयरासुर (जनरल ओ डायर) के अत्याचार, पांचाल-माता (पंजाब) का वस्त्रापहरण, श्रीकृष्ण जन्मस्थान (जेलखाना) का वर्णन, अमृतसर में संपन्न कांग्रेस की महासभाओं का विवरण आदि हैं। 'मिस विहारमु' में विधवा-विवाह, वर्णांतरविवाह, आदि सामाजिक समस्याओं को ग्रहण किया गया है। 'संघ समस्या' अथवा 'संस्कारिणी' (1922) में सृष्टि के आदि से लेकर आज कलियुग तक विविध वर्ण वालों के कष्टों का वर्णन किया गया है। इनके 'गांधीनामं, मरवाम् मरवाम्' (गांधी के नाम को भूलेंगे नहीं, भूलेंगे नहीं) शीर्षक गीत और 'कत्तुलु लेवु, शूलमुन् गांडीवमुन् मोदले हुळविक' (तलवारें नहीं हैं, शूल और गांडीव का तो पहले से ही अभाव है) गांधी जी के अहिंसा-आंदोलन के संबंध में रचित पद्य अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं।

पुजारी जी *(पं० पा०)*

'पुजारी जी' नानकसिंह (दे०) के 'पुजारी' उपन्यास का सजीव तथा महत्त्वपूर्ण पात्र है। इसके माध्यम से सांप्रदायिक एकता—हिंदू-सिक्ख-मुसलिम-एकता का प्रतिपादन किया गया है। देश एवं समाज में व्याप्त सांप्रदायिकता का विष केवल भाषणों और नारों के द्वारा नहीं निकाला जा सकता, वे सांप्रदायिक सौमनस्य तथा सौहार्द उत्पन्न करने के लिए संगीत एवं काव्य का आश्रय ग्रहण करके एकता स्थापित करने का कार्य करते हैं क्योंकि इससे व्यक्तियों का विष प्रभावहीन हो जाएगा। नानकसिंह के सांप्रदायिक-एकता-विषयक विचारों का प्रतिनिधित्व करने वाला यह पात्र युगीन परिवेश को उभारने में सफल रहा है।

पुट्टण्णा, एम० एस० *(क० ले०)* [समय—1854-1930 ई०]

श्री एम० एस० पुट्टण्णा कन्नड के प्रारंभिक उपन्यासकारों में से हैं। इनका जन्म 1854 ई० में मैसूर के एक संभ्रांत ब्राह्मण-परिवार में हुआ। मद्रास विश्वविद्यालय से बी० ए० पास करने के बाद ये कुछ दिन शिक्षा-विभाग में रहे। कर्णाटक की महान साहित्यिक संस्था 'कर्णाटक साहित्य परिषत्' के संस्थापकों में ये भी एक हैं। ये कुछ समय तक उसके मंत्री भी रहे। 1930 ई० में इनका देहांत हुआ। 'हिंदू चरित्र-दर्पण', 'हिंदू चरित्र संग्रह', 'नीति चिंतामणि' आदि के अलावा इन्होंने शेक्सपियर के 'सिंबलीन' नाटक का कन्नड-अनुवाद 'जयसिंहराजचरित्रे' के नाम से किया। 1883 ई० में इन्होंने एम० बी० श्रीनिवास अय्यंगार जी के साथ 'हितबोधिनी' नामक मासिक पत्रिका निकाली। 'किंग लियर' नाटक का अनुवाद इन्होंने 'हेमचंद्रराजविलास' नाम से किया। 'सुमतिमदन कुमार चरित्रे', 'कांफूपन चरित्रे' आदि भी लिखे। किंतु पुट्टण्णाजी के नाम को सदैव के लिए अमर करने वाली कृति है उनका 'माडिद्दुण्णो महाराय' (जैसी करनी वैसी भरनी)। यह कन्नड के प्रारंभिक उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ है। उन दिनों के मैसूर राजघराने का चित्र, उनकी धार्मिक रसिकता आदि के साथ-साथ धर्म के नाम पर होने वाले अनाचार का चित्रण अत्यंत प्रभावी ढंग से हुआ है। भाषा चलती, मुहावरेदार और टकसाली है। वातावरण की दृष्टि से तो यह बेजोड़ है। 'मुसुतेगेये मायांगने', 'पेटेमातेनज्जी' इनके अन्य उपन्यास हैं। 'कुणि-एवंगल रामशास्त्रिगळ चरित्रे' कन्नड की प्रथम जीवनी कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त इन्होंने चित्रदुर्ग, हामलवाडि आदि के पालेगारों (छोटे राजाओं) का प्रामाणिक इतिहास भी प्रस्तुत किया है।

पुट्टप्पा, के० वी० (कुवेंपु) (क० ले०) [जन्म—1904 ई०]

श्री के० वी० पुट्टप्पा का जन्म मलनाडु के एक सम्भ्रात कुनबी कुटुब मे हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा तीर्थहल्ली तथा मैसूर मे हुई थी। ये आधुनिक कन्नड साहित्य के नवोदय के मत्रदाता एव पुरोहित श्री कृष्ण-शास्त्री (दे०) के प्रिय शिष्यो मे भी एक हैं। कॉलिज मे पढते समय ये रामकृष्ण आश्रम मे रहे थे। कन्नड मे एम० ए० करने के बाद ये कॉलेज मे अध्यापक बने। इसके बाद कन्नड के विभागाध्यक्ष तथा मैसूर विश्वविद्यालय के उप कुलपति बनकर इन्होने विभिन्न स्तरो पर कर्णाटक की सेवा की है। हाईस्कूल मे पढते समय ही ये कविता लिखने लगे थे। पहले इन्होने अँग्रेज़ी मे कविता लिखना शुरू किया था जो 'बिगिनर्स म्यूज' के नाम से प्रसिद्ध है। कन्नड मे इनका पहला कविता-सकलन 'कोळलु' ('बाँसुरी') 1930 ई० मे प्रकाशित हुआ था। इसने कन्नड मे एक नई तान छेड दी थी। तब से ये लगातार कविता लिखते रहे है। अब तक इनके बीस से अधिक कविता सकलन प्रकाशित हुए हैं जिन मे प्रमुख—'कोळलु', 'नविलु', 'कलासुदरी', 'पक्षिकाशि', 'अग्निहस', 'पाचजन्य', 'प्रेम-काश्मीर', 'षोडशी', 'कृत्तिके', अनिकेतन', 'इक्षुगगोत्री' आदि प्रसिद्ध हैं। 'चित्रागदा' इनका श्रेष्ठ प्रबध-काव्य है। 'रामायण-दर्शनम्' इनका महाकाव्य है जिस पर इन्हे साहित्य अकादेमी तथा भारतीय ज्ञानपीठ के पुरस्कार मिल चुके हैं। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। ये सफल नाटककार, जीवनी-लेखक, उपन्यासकार, कहानीकार, रेखाचित्रकार तथा आलोचक हैं। 'श्मशान कुरुक्षेत्र', 'रक्ताक्षि' आदि इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। 'स्वामी विवेकानद', 'रामकृष्ण परमहस', आदि इनकी श्रेष्ठ जीवनियाँ हैं। 'कानूरु हम्गडिति' (दे०) तथा 'मलेगळल्लि पदमगळु' (दे०) इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'नन्नदेवलमत्तुमुवतइतरकतेगळु', सन्यासीमत्तु इतरकते-गळु' मे इनकी श्रेष्ठ कहानियाँ सगृहीत हैं। 'मलेनाडिन चित्रगळु' मे इनके सुदर रेखाचित्र हैं तो 'तपोनदन', 'साहित्य विहार', 'विभूतिपूजे' 'रसोवैस' आदि मे इनके श्रेष्ठ आलोचनात्मक निबध हैं।

'कुवेंपु' इनका उपनाम है। ये कन्नड-साहित्य की सभी धाराओ के सफल तैराक रहे हैं। इनकी प्रारभिक कृतियो मे रोमाटिक धारा की समस्त विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं। 'पाचजन्य' आदि मे प्रगतिवादी कलाकार के रूप मे जीवन की नग्नता एव भग्नता का चित्रण हुआ है। 'कल्कि' इनकी सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी कविता है। 'देवरुराजुमाडिरवु', 'आह्वानवाणी', 'अनिकेतन', 'मधुर चिन्मय' आदि इनके श्रेष्ठ रहस्यवादी गीत हैं तो 'इतहसुदर प्रात कालदि', 'हसिरु', 'कैंदळिरु', 'नविलु' आदि इनके श्रेष्ठ रोमाटिक गीत हैं। इनको सर्वथा निरपेक्ष वस्तुवाद से परितोष नही मिला और इसीलिए ये वस्तुवाद का बाना फेंककर अरविंद की ओर झुके। 'रामायण-दर्शन', 'अनिकेतन' आदि मे इसकी छाप है। 'रामायण-दर्शन' कन्नड-काव्य-मदिर की स्वर्णपताका है। इसमे इन्होने राम की कथा को नवीन दृष्टि से देखा है। वह जीव के अत से लेकर आनदमय कोश तक परिणामित यात्रा का रम्योज्ज्वल इतिहास है। इनके रावण, मथरा, उर्मिला आदि चरित्र भारतीय साहित्य के लिए अनुपम देन हैं। इस काव्य के लिए इन्होने अपने ही एक छद का आविष्कार किया जो 'महाछदस्' के नाम से प्रसिद्ध है तथा 'ब्लैंक वर्स' का विकसित रूप है। इनका यह काव्य आकार एव स्वरूप दोनो दृष्टियो से महाकाव्य है। बीसवी शती के भारतीय साहित्य की मुख्य कृतियो मे 'रामायण-दर्शन' भी एक है, कन्नड साहित्य मे तो वह अद्वितीय महाकाव्य है। ये सबसे पहले 'सुदरम्' के कवि हैं। पीछे वही 'शिवम' बना। किंतु ये 'शिवम्' और 'सुदरम्' मे अतर नही मानते। प्रतीकात्मकता, लाक्षणिकता, कोमलकातमधुर पदावली इनकी कविता की विशेषता है। भावगाभीर्य, विचारगाभीर्य एव भाषागाभीर्य इनकी सबसे बडी विशेषता है। सस्कृत एव कन्नड-शब्दो का मणिकाचन योग इनकी भाषा की विशेषता है। इनके महाकाव्य मे अद्भुत प्रवाह है। सपूर्ण काव्य यद्यपि एक ही छद मे चलता है तथापि ऊब उत्पन्न नही होती। इनकी भाषा व्यजनाप्रधान है। आलोचना के क्षेत्र मे इन्होने सर्वोदय, समन्वय, पूर्वदृष्टि आदि नये मूल्यो की प्रतिष्ठा की है।

पुट्टस्वामय्या, बी० (क० ले०)

1897 ई० म जन्म पुट्टस्वामय्या कन्नड के कहानीकार, उपन्यासकार, निबधकार तथा पत्रकार के रूप मे प्रसिद्ध हैं। 'नाट्यमोहिनी मे इनकी कहानी-कला का सुदर रूप मिलता है। 'सुधामयी', 'उदय रवि' और 'कल्याणद क्राति' (कल्याण की क्राति) जैसे इनके उप-न्यास अधिक लोकप्रिय हुए हैं। 'कल्याणद क्राति' पर इन्हें केंद्रीय साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। 'कुरुक्षेत्र', 'चिरकुमार सभा' (रवींद्र की कृति का अनुवाद) एव 'रूपरेखा' इनकी नाट्य प्रतिभा के निदर्शन हैं।

पुण्यास्रव-चंपू *(क० कृ०)* [रचना-काल—1331 ई० के लगभग]

'पुण्यास्रव-चंपू' के कवि नागराज (समय—1331 ई० के लगभग) जैन-धर्मानुयायी कवि थे। उनके गुरु का नाम अनंतवीर्य था। वे जिनशासनदीपक विवेक-विट्ठलदेव और भागीरथी के पुत्र थे। सगर के पुरवासियों की इच्छा के अनुसार उन्होंने 'पुण्यास्रव-चंपू' की रचना की। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने संस्कृत से इस ग्रंथ का रूपांतर किया है। इसमें बारह 'अधिकारों' में बावन कथाएँ कही गई हैं। इसके आदिभाग में पूजा, गुरुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, दान और तपस्या नाम के साभारधर्म-अर्थात् गृहस्थ-धर्म का विवरण है। ग्रंथावतार में कवि ने जिनेंद्र की स्तुति, तत्पश्चात् सिद्धों, पंचपरमेष्टियों एवं सरस्वती की स्तुति की है। गुरु-क्रम का भी इसमें वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ की कथाएँ भिन्न होने पर भी उनमें विच्छेद नहीं है; दृढ़ आतरिक संबंध-सूत्र विद्यमान है। इसमें कवि की 'उभयकविताविलास' उपाधि सार्थक हुई है। इसके वर्णनों में नवीनता और शैली में सरसता है। इसमें कवि ने अपने पूर्व के कवियों में पोन्न (दे०), पंप (दे०), जन्न (दे०), गजांकुश बंधुवर्मा और नागचंद्र (दे०) (दे०) की स्तुति की है और बताया है कि उन समस्त कवियों की काव्यात्मक विशेषताएँ इनके ग्रंथ में हैं। गुणादि तथा कविता-चातुर्य के संबंध में भी उन्होंने अच्छी अभिव्यक्ति की है।

पुतुलनाचेर इतिकथा *(बँ० कृ०)*

शरत्चंद्र (दे०) के उपरांत बँगला-उपन्यास के क्षेत्र में क्रांतिकारी दृष्टिभंगी की सहायता से नये परिवर्तन लाने वाले कथा-साहित्यकारों में मानिक बंद्योपाध्याय (दे०) अन्यतम हैं। 'पुतुलनाचेर इतिकथा' मानिक बाबू का अत्यंत प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमें उनकी साहित्यिक विशेषताओं एवं मान्यताओं को सहज ही ढूँढा जा सकता है। शरत्चंद्र के उपरांत बँगला-उपन्यास में यथार्थ का प्रसार विशेष दृष्टि-गोचर होता है। मानिक बाबू यथार्थवादी हैं किंतु उनका यथार्थवाद गतानुगतिक नहीं है। लेखक के अनुसार मनुष्य के मनोजगत् में नाना कारणों से जिस अंतर्द्वंद्व की सृष्टि होती है उसी के प्रतिक्रियास्वरूप उसके मन में विकार, अस्वस्थता, अस्वाभाविकता, जटिलता उत्पन्न होती है और मनुष्य का जीवन पंकिल और विपाक्त बन जाता है। 'पुतुलनाचेर इतिकथा' में मनुष्य-जीवन के इस यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। इसीलिए उपन्यास का नायक डाक्टर शशि कलकत्ते में शिक्षा-प्राप्त अभिजातमन को लेकर गाँव के मनुष्य के साथ मिल नहीं पाता। कुसुम, सेनदिदि, मति, गोपाल सभी को वह चाहता है परंतु अंतःसंघर्ष के कारण वह क्रमशः एक अस्वस्थ मानसिकता का शिकार बन जाता है।

फ्रायड-प्रभावित मानिक बाबू के उपन्यास में यौन का आधिक्य है और यह यौन अस्वस्थ है—यद्यपि यह अस्वस्थ यौन ही उपन्यास की अंतिम बात नहीं है। मनस्तात्त्विक दृष्टिभंगी की सहायता से लेखक ने मनुष्य को राजनीतिक, सामाजिक, आत्मिक एवं नैतिक चेष्टाओं का विश्लेषण किया है। इस विश्लेषण में कहीं कृत्रिमता नहीं है। उपन्यास की यही सबसे बड़ी बात है। यह बात और है कि लेखक अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यौन-कामना ही प्रत्येक चेष्टा की नियामक शक्ति है। रचना में गाँव के मध्यवित्त समाज का एक अंतरंग चित्र उपस्थित किया गया है। संपूर्ण चित्र शशि के दृष्टिकोण से खींचा गया है। वह प्रत्येक व्यक्ति की असली बीमारी का पता लगाना चाहता है परंतु अनजाने स्वयं ही बीमार हो जाता है। बँगला-उपन्यास के क्षेत्र में यह उपन्यास फ्रायडीय अवचेतन मन का पहला सार्थक चित्ररूप है।

पुत्तम वीडु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1964 ई०]

लेखिका हेप्सिबा जेसुदासन। इस उपन्यास में लेखिका ने नागरकोइल के पनैविळै ग्राम के लोगों के जीवन का सजीव एवं सांगोपांग चित्रण किया है। अमीर युवती लिसी और निर्धन तंगराज के प्रेम और मिलन की कथा के माध्यम से एक ओर प्रेम में आने वाली बाधाओं, संघर्ष, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध आदि की व्यंजना की गई है तो दूसरी ओर नूतन सामाजिक विचारधारा के प्रभाव-स्वरूप परिवर्तित समाज की झाँकी दिखाई गई है जहाँ अमीरों और गरीबों के बीच की दूरी मिटती जा रही है। प्रादेशिक शब्दों के प्रयोग से उपन्यास अधिक प्रभावशाली हो गया है। यह लेखिका का प्रथम उपन्यास है तथापि इसे तमिल के आंचलिक उपन्यासों में विशेष स्थान प्राप्त है।

पुदुमैप्पित्तन् *(त० ले०)* [जन्म—1906 ई०; मृत्यु—1948 ई०]

पुदुमैप्पित्तन् उपनाम से विख्यात चो० वृद्धा-

चलम् का जन्म दक्षिणी आर्काट जिले के तिरुप्पादिरिप्पुलियूर मे हुआ था। बचपन से ही कहानियाँ पढने मे इनकी रुचि थी। ये नवीन शैली मे सरस कहानियो की रचना कर साहित्य-सेवा करना चाहते थे। 'मणिक्कोडि' आदि पत्रिकाओ मे प्रकाशित इनकी कहानियाँ अत्यत लोकप्रिय हुईं। पुदुमैप्पित्तन् ने कुछ समय तक 'अलियन', 'दिनमणि', 'दिनशरि' आदि पत्रिकाओ मे सहसपादक के रूप मे कार्य किया था। इन्होने यद्यपि निबध, नाटक और कविताएँ भी लिखीं तथापि ये अपनी कहानियो के लिए ही प्रसिद्ध हैं। इनके प्रसिद्ध कहानी-सग्रह हैं—'पुदिय ओळि', 'दैवम् कोडुत्त वरम्', 'मुदलुम् मुडिवुम्', 'आण्मै', 'वेडिक्कै मनिदरहळ्', शिट्रन्नै', 'बलिपीठम्', 'कपाटपुरम्', 'पुदुमैप्पित्तन् कदैहळ्' (दे०), 'नाशकार कुबल' आदि। 'वाक्कुम् वक्कुम्', 'भक्त कुचेला', 'नारद रामायणम्', 'निच्चयमा नाळैक्कु' आदि इनके एकाकी नाटक है। 'उलकत्तु शिरुकदै', 'प्रेत मनिदन' इनकी अनूदित कृतियाँ है। इन्होने चलचित्र के लिए भी एक-दो कहानियाँ लिखी थीं। ये तमिल के श्रेष्ठ कहानीकारो मे से है। इन्होने प्रथम बार कहानियो मे यथार्थवाद की स्थापना की है। जीवन के अधकारमय पक्ष का चित्रण करने मे इनकी विशेष रुचि थी। इनकी कहानियो मे इनकी निराशावादी विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। हास्य और व्यग्य के पुट के कारण वे सजीव बन पडी हैं। इनकी कहानियाँ अत्यत रोचक और सरस हैं। इन्होने अपनी कृतियो के लिए पात्रो का चयन समाज के निम्न वर्ग से किया है। इन्होने तमिल मे नयी कविता का भी आरभ किया था परतु इस क्षेत्र मे इन्हे सफलता नही मिली। कहानी, काव्य आदि साहित्यिक विधाओ पर रचित इनके निबध तमिल-आलोचना के क्षेत्र मे विशिष्ट स्थान रखते हैं। तमिल-साहित्य मे ये 'शिरुकदैमन्नन्' (कहानी-सम्राट्) कहे जाते हैं।

पुदुमैप्पित्तन् कदैहळ् *(त० कृ०)* [रचना काल—1940 ई०]

'पुदुमैप्पित्तन् कदैहळ्' शीर्षक इस कृति मे तमिल मे 'शिरुकदैमन्नन्' अर्थात् कहानी-सम्राट् कहे जाने वाले पुदुमैप्पित्तन् (दे०) की 26 कहानियाँ सगृहीत हैं। यह उनकी कहानियो का प्रथम सग्रह है। इस सग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हैं—'पोन्नगरम्', 'कल्याणी', 'कालनुम् किलवियुम्', 'तेरुविळक्कु', 'शमुदेवनिन् धर्मम्', 'तिरद जन्नल' और 'अहल्यै'। 'पोन् नगरम्' म लखक ने इस बात का प्रतिपादन किया है कि प्रेमभावना अपने आप मे बुरी नही। समाज की दरिद्रता को दूर करने पर ही प्रेम का वास्तविक महत्त्व व्यक्त हो सकता है। दरिद्रताग्रस्त समाज मे व्यक्ति प्रेम की ओट मे बुरे कार्य कर सकता है। 'कल्याणी' कहानी मे अनमेल विवाह के कुपरिणामो पर प्रकाश डाला गया है। 'कालनुम् किलवियुम्' शीर्षक कहानी मे लेखक ने दार्शनिक विचारो की अभिव्यक्ति की है। लेखक का मत है कि यमराज किसी के प्राण हर सकते हैं परतु विचारो को नही हर सकते। 'तेरुविळक्कु' मे इस बात का प्रतिपादन है कि मनुष्य को जीवित रहने के लिए किसी-न-किसी प्रकार के आधार की आवश्यकता होती है। बिना किसी आधार के व्यक्ति का जीवित रहना सभव नही है। 'शमुदेवनिन् धर्मम्' और 'तिरद जन्नल' मे बताया गया है कि मनुष्य मे बाह्य रूपाकार, स्वभाव-विरोधी गुण हो सकते हैं। पहली कहानी मे एक डाकू का चित्रण है जो राह चलते व्यक्तियो को लूटता है परतु समय आने पर एक अनजान बुढिया की बेटी के विवाह के लिए उसे धन देता है। 'तिरद जन्नल' मे एक ऐसे अमीर का चित्रण है जो सदा दूसरो को ठगने की ताक मे रहता है। 'अहल्यै' कहानी मे अहल्या-सबधी पौराणिक प्रसग को अपनाया गया है। लेखक ने गौतम को आदर्श मानव बनाया है। अत वे पौराणिक गौतम की तरह अहल्या को शाप नही देते। पुदुमैप्पित्तन् की कहानियो मे तमिल-सस्कृति और सभ्यता, तमिल-जनता के जीवन और विचारधारा का सजीव चित्रण है। इनमे विभिन्न स्थानो के प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण है। सर्वत्र पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। इन कहानियो का तमिल-साहित्य मे विशिष्ट स्थान है।

पुदुमैप्पित्तन् वरलारु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1951 ई०]

(चिदवर) रघुनाथन् (दे०) की इस कृति मे कहानी सम्राट् के रूप मे विख्यात पुदुमैप्पित्तन् (दे०) का प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया गया है। रघुनाथ इन के घनिष्ठ मित्र थे, अत वे इस कृति मे कुछ ऐसे प्रसगो को भी जोड सके हैं जिन्हे इनके रिश्तेदार तथा अन्य मित्र भी न जानते थे। लेखक ने अपनी दृष्टि से सरस प्रसगो को जोड लिया है तथा नीरस प्रसगों को छोड दिया है। 'पुदुमैप्पित्तन् वरलारु' मे 23 अध्याय हैं आरभिक कुछ अध्यायो मे पुदुमैप्पित्तन् की कुल-परपरा, आरभिक शिक्षा, विवाह, वैवाहिक जीवन, साहित्य-प्रेम, कहानी-रचना आदि

की चर्चा है। एक अध्याय में 'दिनमणि', 'दिनशरि' आदि पत्रिकाओं के सहसंपादक के रूप में इनके जीवन का विवरण है। 'सिनिमा तुर्रयिल' शीर्षक अध्याय में चलचित्र के क्षेत्र में इनके योगदान की चर्चा है। 'चोवी' शीर्षक अध्याय में पुदुमैप्पित्तन् उपनाम से विख्यात चो० वृद्धाचलम् के स्वभावादि का वर्णन है। दो अध्यायों में लेखक ने क्रमशः इनके संगीत-ज्ञान और इनकी भाषण-कला पर प्रकाश डाला है। लेखक ने विनोदपूर्ण शैली में बताया है कि संगीत में पुदुमैप्पित्तन् की तनिक भी रुचि नहीं थी। लेखक के मत में इनके भाषण बातचीत के समान सरस हुआ करते थे। एक अध्याय में लेखक ने कुछ सरस संस्मरण प्रस्तुत किए हैं। अंतिम अध्याय में पुदुमैप्पित्तन् के कृतित्व का विस्तृत विवेचन है। इस अध्याय में यह स्पष्ट किया गया है कि पुदुमैप्पित्तन् बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे।

तमिल में जीवनी-साहित्य बहुत कम है। 'पुदुमैप्पित्तन् वरलारु' साहित्यकारों की जीवनी के क्षेत्र में अकेली कृति है। तमिल के जीवनी-साहित्य में इस कृति का विशेष महत्त्व है।

पुद्गल *(प्रा० पारि०)*

पूरित और गलित होने के कारण जैन धर्म में प्राकृतिक तत्त्वों को पुद्गल कहा जाता है। इनका अविभाज्य रूप परमाणु है। अनेक परमाणु मिलकर भौतिक जगत् की सृष्टि करते हैं। मन, वाणी, श्वास इत्यादि का निर्माण भी इन्हीं अणुओं से हुआ है। स्पर्श, रस, गंध और रूप—ये चार पुद्गल में होते हैं। इनके संयोग-वियोग से पाँचवें गुण 'शब्द' का जन्म होता है। कर्मों के प्रभाव से विशिष्ट प्रकार की कामना उत्पन्न होती है जिससे खिंचकर पुद्गल के परमाणु संयुक्त होकर कर्मानुसार कायरूप-बंधन का निर्माण करते हैं। शरीर के रूप, रंग, शक्ति, अशक्ति सभी कुछ कर्मजन्य कामना से आविर्भूत होकर जीव को बंधन में डालते हैं।

पुनम् नंपूतिरि *(मल० ले०)* [जीवन-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

ये मलयाळम के चंपूकाव्यों के द्वितीय उत्थान के स्थापक और प्रसिद्ध कवि हैं। ये कोषिक्कोड् के सामूतिरि राजाओं के राजकवि थे और तत्कालीन कवियों द्वारा रचित इनकी प्रशंसा के पद्य प्राप्त हैं। इनकी मुख्य कृति 'भाषारामायण चंपू' है। 'भारतम्', 'कामदहनम्', 'पारिजातहरणम्' आदि अन्य चंपुओं के रचयिता भी ये माने गए हैं।

इन्होंने साहित्य की मणिप्रवाळ (दे० मणिप्रवाळम्) शाखा को नया रूप दिया था। इन्होंने काव्यभाषा को परिमार्जित किया था और प्रतिपाद्य विषय के रूप में पौराणिक कथाओं को प्रतिष्ठित किया था। हास्यरस को इन्होंने अधिक स्थान दिया।

मलयाळम-साहित्य में इनका स्थान इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि इनकी हास्यप्रियता बाद में प्रसिद्ध जनकवि कुंचन् (दे०) नंपियार के लिए आदर्श बन गई थी।

पुनरुत्थान-काल *(हिं० पारि०)*

यूरोप में मध्ययुग से आधुनिक युग में संक्रमण-काल (मध्य चौदहवीं से मध्य सोलहवीं शती) को पुनरुत्थान-काल (रेनेसां) कहा जाता है। इसके नामकरण का श्रेय फ्रांसीसी इतिहासकार मिशले को है। कुस्तुंतुनिया के पतन (1453 ई०) से जब ग्रीक विद्वान यूरोप भर में फैल गए और ग्रीक-साहित्य का अध्ययन होने लगा तो सर्वतोमुखी सांस्कृतिक क्रांति हुई। मुद्रण-कला और अमरीका की खोज (1492 ई०) ने भी इसे उत्तेजन प्रदान किया। विचारों और जीवन-मूल्यों की क्रांति ने सामंती व्यवस्था, अंधविश्वास, धर्माधिकरणों और मठाधीशों की कट्टरता को चुनौती दी। विज्ञान और विवेक की विजय से बौद्धिक पर्यावरण की सृष्टि हुई, आत्मिक मुक्ति का संघर्ष शुरू हुआ, विराग के स्थान पर इहलोक के आनंद और साहस को महिमा प्राप्त हुई, सामाजिक-राजनीतिक क्रांतियों का पथ प्रशस्त हुआ; साहित्य में सुंदर की चेतना को अनुप्राणित करने के साथ-साथ तुलना, आलोचना और अनुसंधान को बढ़ावा मिला। इंगलैंड में इसका प्रभाव सोलहवीं शती के प्रथम चरण में प्रकट हुआ।

हिंदी में भारतेंदु (दे०)-युग (1868-1900 ई०) नवीन जागरण के संदेशवाहक के रूप में अवतरित हुआ। मुद्रण-यंत्रों के विस्तार, समाचारपत्रों के प्रकाशन, ब्राह्म-समाज आदि संस्थाओं के सिद्धांतों, विवेकानंद के विचारों और अँग्रेज़ी साहित्य के अध्ययन ने जन-जागरण में योग दिया; सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्रों में अतिरिक्त सक्रियता आई। साहित्य के क्षेत्र में रीतिकालीन

प्रवृत्तियो का ह्रास हुआ। विषय-चयन मे व्यापकता और विविधता आई। जनता को उदबोधन देने के लिए देश-प्रेम, समाज-सुधार, शिक्षा-प्रसार आदि विषयो पर राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित साहित्य लिखा गया। वैयक्तिक स्वतत्रता की प्रेरणा देना और साहित्यिक चेतना को मध्यकालीन रचना-प्रवृत्तियो से हटाकर नवीन दिशाओ की ओर उन्मुख करना इसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

पुरदरदास (क० ले०)

कर्नाटक के वैष्णव भक्त-कवियो मे पुरदरदास का श्रेष्ठ स्थान है। ये बडे भक्त तथा सगीतज्ञ थे। इन्हे 'कर्नाटक-सगीत का पितामह' भी कहा जाता है। कहा जाता है कि ये पहले बडे धनी, लोभी और कजूस थे। जीवन मे घटित किसी घटना विशेष के कारण ये घर बार छोड कर अपने परिवार के साथ विजयनगर पहुँचे थे जहाँ व्यासराय के शिष्य और विष्णुभक्त बन गये।

पुरदरदास की सभी रचनाएँ मुक्तक पदो के रूप मे प्राप्त होती हैं जिन्हे कन्नड मे 'कीर्तन' कहा जाता है। इन कीर्तनो की सख्या चार लाख पचहत्तर हजार बताई जाती है परतु अद्यावधि प्राप्त और प्रकाशित पद एक हजार से कुछ अधिक है। इनके पदो मे 'पुरदर विट्ठल' की छाप मिलती है। पढरपुर के भगवान् पुरदर विट्ठल इनके इष्टदेव थे। इष्टदेव के नाम से ही इन्होने पद रचे। इनके पदो मे भक्ति ज्ञान और वैराग्य का अथाह सागर है। इनके पदो की महत्ता का प्रमाण यही है कि इनके समय मे ही उनके पदो को विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई और वे 'पुरदरोपनिषद्' कहलाये। विद्वानो ने इनके पदो को छह विभागो मे रखा है—(1) नाम-महिमा, (2) हरि-गुरु-महिमा तथा स्मरण-भजन, (3) आत्म-निवेदन, (4) श्रीकृष्णलीला-गान, (5) सामाजिक आलोचना, तथा (6) समाज प्रबोध।

ये व्यासराय के प्रमुख शिष्य और माध्व मत के सिद्धातो पर पूर्ण विश्वास रखने वाले थे। इनमे साम्प्रदायिकता नही थी। इन्होने बाह्याडबर और अनय का खडन कर भक्ति की महिमा का वर्णन किया है। इनका सदेश यही है कि मानव जन्म अमूल्य है उसका सदुपयोग होना चाहिए, मनुष्य को चाहिए कि वह सत्य, धर्म और नीति का मार्ग अपनाये, इस ससार में रहकर भी सासारिकता से दूर रहे।

पुरदरदास के कतिपय 'सुळादि' और उगाभोग' छद भी प्राप्त होते हैं। इनमे इनकी स्वच्छद भक्ति और मनोहर कल्पना के दर्शन होते हैं।

पुरदरदासर कीर्तनेगळु (क० कृ०)

पुरदरदास (दे०) कर्नाटक सगीत के प्रपितामह, दासवरेण्य एव भक्त श्रेष्ठ गेय पदकर्ता के रूप मे विख्यात हैं। उनके गेयपदो की सख्या पौने पाँच लाख मानी जाती है किंतु अब तक प्रकाशित गीत एक हजार से कुछ ही अधिक हैं। पुरदरदास के कीर्तनो पर अब भी अनुसधान नही हो पाया है। ये गीत या 'कीर्तन' सूरदास (दे०) के पदो जैसे राग रागिनियो मे ढले हैं तालबद्ध हैं। इन गेय पदो को सपादित एव प्रकाशित करने का श्रेय सर्वश्री पावजे गुरुराव, सुबोध रामराव, गोरबाल हनुमतराव आदि को हैं। पुरदरदास के पदो के वर्ण्य विषय है—नामभक्ति हरिस्मरण, गुरुमहिमा, आत्मनिवेदन, पाखड-विडबन, सत्सग महिमा, नैतिक उपदेश तथा कृष्णलीला। इनमे एक भक्त मानस के विकास क्रम के दर्शन होते हैं। समाज का सूक्ष्मावलोकन तथा अतरावलोकन और कही-कहीं माध्वमत के सिद्धातो का प्रतिपादन इनमे देखा जा सकता है। व्यक्तित्व की एकसूत्रता ने इन सबको गूँथ रखा है। पुरदरदास के पदो मे दास्य, सख्य वात्सल्य एव माधुर्य-भक्ति की प्रधानता है। वे कभी तुलसी (दे० तुलसीदास) के समान दैन्य मे आत्मनिंदा करते है तो कही सूर (दे० सूरदास) के समान अपने ऊपर कृपा न करने वाले भगवान को उलाहना देते हैं। आत्म निवेदन के पदो मे भक्त जीव की आर्तताकाक्षा एव कमियाँ प्रकट हैं। ए स गीत बहुत ही मार्मिक एव साहित्यगुण सपन्न हैं। पुरदरदास मे उपमा आदि सादृश्यमूलक अलकारो का सरस प्रयोग हुआ है। श्रीकृष्ण की बाल एव पौगडलीलाओ के वर्णन मे पुरदरदास अद्वितीय हैं। मुरलीवादन-लीला, कालियमर्दन, चीरहरण, द्रौपदीमान-रक्षा, गोवर्धन धारण तथा गोपियो का विरह-निवेदन आदि प्रसग अत्यत रमणीय बन पडे हैं।

पुरदरदास के कीर्तनो मे ससार की निस्सारता, वैराग्य-बोध के साथ ही साथ ससार की सत्यता, उसकी स्वीकृति एव उसके प्रति निष्ठा प्रतिबिंबित है। इनसे पुरदरदास के समय की सामाजिक एव धार्मिक परिस्थितियो का स्पष्ट परिचय मिलता है। इन कीर्तनो म पुरदरदास ने 'पुरदर-विट्ठल' उपनाम का प्रयोग किया है। उनके गीत श्रेष्ठ गीतिकाव्य हैं। वे भक्तिभाव म आनप्रोत हैं, साहित्य गुण स उन्नत हैं, साहित्य और सगीत का अप्रतिम सगम इन

कृतियों की विशेषता है। लालित्य एवं प्रसाद गुण इन गीतों का वैशिष्ट्य है।

पुरनानूरु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ई० पू० दूसरी शती से दूसरी शती ई० तक]

एट्टुत्तोगै में परिगणित पुरनानुरु या पुरप्पाट्टु में पुरम् (दे० पुरुप्पोरुळ)-संबंधी 400 पद हैं। मंत्रियों एवं चारणों द्वारा रचित इन पदों का संग्रह पेरुंदेवनार ने किया। ये पद चेर, चोल, पांड्य—दक्षिण के इन बड़े राज्यों के सम्राटों और सामंतों की प्रशंसा में रचित है। 'पुरनानूरु' में विभिन्न राजाओं, उनके शासन-प्रबंध, सैन्य-संचालन आदि का तथा तत्कालीन तमिल-जनता के रहन-सहन, रीति-रिवाज, प्रथाओं, धार्मिक मान्यताओं, कला-प्रेम, अंधविश्वास आदि का वर्णन है। चारणों की प्रशंसा करते हुए यह कहा गया है कि वे निर्धन होते हुए भी सम्माननीय जीवन व्यतीत करते थे। वे अत्यंत उदार, ईमानदार, निष्ठावान् और निष्पक्ष थे। वे सदा राजाओं को उचित सलाह देते थे और राज्य को युद्धादि से बचाने की चेष्टा करते रहते थे। 'पुरनानूरु' की रचना के समय तक तमिल-जनता पर आर्य-सभ्यता का प्रभाव पड़ चुका था। इसी से इस कृति के कुछ पदों में ब्राह्मणों द्वारा नदी-तट पर जाकर प्रभु की उपासना किए जाने का तथा ब्रह्मचारी के रूप में चतुर्वेदों और वेदांगों के अध्ययन का उल्लेख है। कुछ पदों में वैदिक धर्म और दर्शन की चर्चा है। 'पुरनानूरु' का महत्व इस बात में है कि इसमें प्राचीन तमिल लोगों की प्रथाओं, रीति-रिवाजों और विचारधाराओं का वर्णन है। इन्हें परवर्ती साहित्यकारों ने अपनी रचना का आधार बनाया। यह कृति वर्तमान तमिल-लेखकों का मार्ग-दर्शन करती है। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी इस कृति का महत्त्व असंदिग्ध है। प्राचीन होते हुए भी यह कृति आज तक यथापूर्व पाठकों का मनोरंजन कर रही है।

पुरप्पोरुळ् *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल-साहित्य दो भागों में विभाजित है—अहम् (दे० अहप्पोरुळ्) और पुरम्। 'अहम्' साहित्य में व्यक्तिगत जीवन और 'पुरम्' साहित्य में सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का वर्णन होता है। पुरम् साहित्य में मुख्यतः नायक की वीरता, दानशीलता आदि गुणों का और युद्धादि का विस्तृत वर्णन होता है। 'पुरप्पोरुळ्' के सात भेद हैं—वेट्चि, वंजि, उलिलै, तुंब, वाहै, कांजि और पाडाण्। राजा के सैनिकों द्वारा शत्रु-देश की गाय-भैंसों का अपहरण 'वेट्चित्तिणै' कहलाता है। अपहृत गाय-भैंसों को लौटाकर ले जाने के लिए शत्रु-देश के राजा का आगमन एवं युद्ध 'करंदै' कहलाता है। किसी वीर नरेश का शत्रु-देश पर आक्रमण 'वंजित्तिणै' कहलाता है। चढ़ाई करने वाली सेनाशत्रु के दुर्ग को चारों ओर से घेर लेती है; उधर शत्रु-सेना भी प्रत्याक्रमण के लिए तैयार हो जाती है। दोनों सेनाओं की इस मुठभेड़ को 'उलिलैत्तिणै' कहते हैं। दो पक्षों के राजाओं के घमासान युद्ध और युद्धक्षेत्र का वर्णन 'तुंबैत्तिणै' कहलाता है। दो योद्धाओं में परस्पर युद्ध और शक्तिशाली की विजय का वर्णन 'वाहैत्तिणै' कहलाता है। कवियों द्वारा पराजित राजा के सम्मुख जीवन की अनित्यता आदि का वर्णन कर उसे सांत्वना दिया जाना 'कांजित्तिणै' कहलाता है। कवियों द्वारा राजा की दक्षता, संपन्नता, वीरता, दानशीलता आदि की प्रशंसा में काव्य-कृतियों की रचना करना 'पाडाण्तिणै' कहलाता है। 'पुरप्पोरुळ्' के अन्य भेदों से संबद्ध रचनाओं में जहाँ राजा, युद्ध या वीरता का वर्णन हुआ है वहाँ 'पाडाण्तिणै' की रचनाओं में वीर राजाओं के साथ-साथ वीर सैनिक, दानशील व्यक्ति, धीर माता, सुशील नारी, आदर्श देश-भक्त, कर्मठ कृषक, सुखी दंपति, श्रेष्ठ कवि आदि को भी नायक-नायिका के रूप में अपनाया गया है।

पुरसलात *(पं० पारि०)*

यह 'पुर+सिरात' का परिवर्तित रूप है जिसका अभिप्राय है—नरक का 'सिरात' नामक पुल। इस्लाम धर्म के अंतर्गत इस पुल को नरक के अग्निकुंड पर स्थित माना गया है जो बाल से भी सूक्ष्म और तलवार की धार से भी तीक्ष्ण है। इस अति संकीर्ण पुल के दोनों ओर सघन कंटक-जाल हैं जो तनिक भी इधर-उधर नहीं होने देते। सच्चे साधक इस पुल को सहज पार कर लेते हैं जबकि पापी जन नरक के अग्निकुंड में गिर जाते हैं। उदाहरण—'पुरसलात का पंथु दुहेला' (सूही रविदास), 'बालहु निकी पुरसलात' (फ़रीद)।

पुराण *(अप० पारि०)*

अपभ्रंश-साहित्य में 'पुराण' का अभिप्राय हिंदुओं के ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, पुराण आदि पुराणों (दे०)

से नहीं जिनका वर्ण्य-विषय सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वंतर और वंशानुचरित होता है। वहाँ 'पुराण' पौराणिक शैली में लिखे प्रबंध-काव्य का द्योतक है। जैनों ने 'रामायण' (दे०), 'महाभारत' (दे०) और हिंदू 'पुराणों' (दे०) के अनुकरण पर अपने अलग 'पुराण' बनाए थे और इन जैन-पुराणों से प्रभावित होकर जैन-कवियों ने पौराणिक प्रबंध-काव्यों की रचना की थी। पुराणों की शैली से तात्पर्य है कि उसमें पौराणिक-धार्मिक आख्यान होते हैं, कथानक में अन्विति कम होती है, अवांतर कथाओं की अधिकता और घटनाओं की विविधता होती है, अलौकिक और अप्राकृत तत्त्वों का अधिक उपयोग होता है, कथा के भीतर कथा कहने और संवाद-रूप में कथा कहने की प्रवृत्ति होती है, भवांतरों का वर्णन होता है, साथ ही उपदेश देना या किसी मत-विशेष का प्रचार करना उनका उद्देश्य होता है (डा० शंभूनाथ सिंह—'हिंदी महाकाव्य का स्वरूप-विकास', पृ० 150)।

पुराण-शैली में लिखे हुए काव्य दो रूपों में प्राप्त होते हैं। एक तो ऐसे काव्य हैं जिनमें 63 शलाका पुरुषों या अनेक धार्मिक महापुरुषों का एक साथ जीवन-चरित काव्यमय वर्णनों के साथ वर्णित होता है। जैसे पुष्पदंत का 'महापुराण' (दे०), स्वयंभू का 'पउम-चरिउ' (दे०), 'रिट्ठणेमि चरिउ' (दे०) या 'हरिवंश पुराण'। दूसरे ऐसे हैं जिनमें एक ही धार्मिक पुरुष का चरित वर्णित होता है। जैसे 'जंबूस्वामी-चरिउ' (दे०), 'पासुपुराण', 'णेमिणाह-चरिउ' इत्यादि। ऐसे काव्यों की विशेषता यह होती है कि उनमें किसी पौराणिक या धार्मिक व्यक्ति का जीवन-चरित जैन-परंपरानुकूल वर्णित होता। कवि अपनी कल्पना-शक्ति से उसके कथानक में अधिक परिवर्तन नहीं कर सकता। इस पुराण-शैली के काव्य पौराणिक विषयों पर लिखे गये धार्मिक काव्य हैं, पुराण नहीं। इनमें शृंगार और युद्ध के वर्णन भी मिलते हैं। इनमें अवसरानुकूल प्रकृति-वर्णन, प्राकृतिक वस्तुओं—संध्या, प्रभात, चंद्रोदय, नदी आदि—का सुंदर चित्रण किया गया है। स्त्रियों के शारीरिक सौंदर्य, जल-क्रीडा, रण-प्रयाण, युद्ध आदि के विशद वर्णन किए गए हैं।

पुराण *(सं० पारि०)*

ईसा की दूसरी शती से लेकर आठवीं शती के बीच रचित हिंदुओं की धार्मिक, आध्यात्मिक-दार्शनिक अवस्थाओं-मान्यताओं से परिपूर्ण संस्कृत-साहित्य का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग। रचयिता के रूप में वेदव्यास के नाम से संबद्ध पुराणों की संख्या अठारह है ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारद, मार्कंडेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लिंग, वराह, स्कंद, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड और ब्रह्मांड। इसके अतिरिक्त 'देवी भागवत' नामक पुराण का भी उन्नीसवें पुराण के रूप में उल्लेख किया जाता है। पुराणों के अतिरिक्त व्यास के ही नाम से संबद्ध अठारह उपपुराण भी हैं सनत्कुमार, नरसिंह, नंद, शिव, धर्म, दुर्वासा, नारदीय, कपिल, उशनस्, मानव, वरुण, काली, महेश्वर, सांब, सौर, पाराशर, मारीच और भार्गव। पुराणों का प्रसिद्ध लक्षण है 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च, वंशो मन्वंतराणि च वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्।' 'अमरकोष' (दे०) के अनुसार पुराणों के आन्वीक्षिकी, दंडनीति, तर्क-विद्या, अर्थशास्त्र और आख्यायिका—पाँच प्रमुख अंग हैं (अमरकोष 1/9)। इस प्रकार 'पुराण' लोक और विचार के वृहद् कोष हैं जिनमें प्राचीन भारतीय इतिहास से संबद्ध प्राय प्रत्येक उल्लेखनीय घटना, ज्योतिष, व्याकरण, अलंकारशास्त्र, चिकित्सा आदि भारतीय ज्ञान के सभी महत्त्वपूर्ण अंगों का समावेश है। भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, कला, पुरातत्त्व आदि से संबद्ध कोई भी अध्ययन पुराणों के बिना पूरा नहीं हो सकता।

पुराण *(सं० कृ०)* [रचना काल—600 ई० पू०]

'पुराण' किसी एक काल की रचना नहीं हैं। पुराणों के रचयिता व्यास हैं। 'पुराण' शब्द का अर्थ पुराना आख्यान है। पुराणों की संख्या 18 है। ये पुराण हैं—मत्स्य, मार्कंडेय, भविष्यत, भागवत, (दे०) ब्रह्मांड, ब्रह्मवैवर्त, ब्रह्म, वामन, वराह, विष्णु, वायु, अग्नि, नारद पद्म, लिंग, गरुड, कूर्म तथा स्कंद।

पुराण भारतीय धर्म एवं समाज के इतिहास-ग्रंथ हैं। पुराणों के अंतर्गत सृष्टि के आरंभ से लेकर मानव के विकास तक का इतिक्रम भी उपलब्ध होता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य किस प्रकार के कर्मों से किस प्रकार का जन्म ग्रहण करता है, यह व्यवस्था भी पुराणों में वर्तमान है। अंतःकरण-शुद्धि के लिए व्रत एवं उपवासों का वर्णन भी पुराणों में प्रामाणिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। साथ ही, पुराणों का वंशावलि-वर्णन भी महत्त्वपूर्ण है। पुराणों की अतिशयोक्तियों एवं उनकी प्रवृत्तिपरक शैली के कारण कतिपय विद्वान् पुराणों को गल्प मात्र मानते हैं, परंतु यह कल्पना असमीचीन है। 'पुराण' प्रवृत्तिमार्गी हैं। धर्म-कर्म

में प्रवृत्त करने के लिए पुराणों का अतिशय महत्त्व है। पुराणों की साहित्यिकता भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। साहित्यिकता के कारण ही उनमें रोचकता भी आ गई है। इस प्रकार पुराणों की वर्णन शैलीवैज्ञानिकों जैसी तथ्य-कथन की न होकर साहित्यिक एवं प्रांजल है।

समग्र रूप से भारतीय इतिहास, धर्म एवं संस्कृति की दृष्टि से पुराणों का महत्त्व बेजोड़ है। सामाजिक एवं भौगोलिक दृष्टि से भी पुराणों की महत्ता श्लाघ्य है।

पुराण-कालक्षेपमु *(ते० पारि०)*

किसी पंडित द्वारा कई श्रोताओं के सामने प्रति दिन नियमित रूप से किसी पुराण (दे०) या महाकाव्य (दे०) का संपूर्ण व्याख्यात्मक पाठ करना ही 'पुराण-कालक्षेपमु' है। रात के समय पुराण में रुचि रखने वाले श्रोतागण, जो प्रायः अल्प-शिक्षित होते हैं, एकत्र हो जाते हैं और उनके सामने एक विद्वान व्यक्ति किसी पुराण को समझाता हुआ पाठ करता है। इस प्रकार प्रत्येक दिन एक-एक महत्वपूर्ण प्रसंग का पाठ करते हुए कई सप्ताहों में एक पुराण को समाप्त करते हैं।

'पुराण-कालक्षेपमु' का प्रमुख लाभ यही है कि साधारण जनता के बीच हमारे साहित्य, धर्म एवं दर्शन का यत्किंचित प्रसार होता है। इस प्रकार वे लोग अपने अवकाश के समय का सदुपयोग करके अपने ज्ञान को बढ़ा सकते हैं।

पुराणी, अंबालाल *(गु० ले०)* [समय 1898—1967 ई०]

गुजराती-साहित्य में अरविंद-दर्शन का प्रभाव श्री पुराणी के लेखों के द्वारा आया। ये 1920 ई० से अरविंद आश्रम, पांडिचेरी में साधक बनकर गये और अरविंद आश्रम में ही इनका निधन हुआ। इन्होंने अरविंद की कई पुस्तकों का गुजराती में अनुवाद भी किया है जिनमें 'सावित्री' काव्य और 'दिव्य-जीवन' प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने विचारात्मक निबंध भी लिखे हैं और इनके 'पथिकना पुष्पो' तथा 'दर्शनना टूकडा' दो विचारात्मक निबंध-संकलन प्रकाशित हुए है। इनके चिंतन पर उपनिषद् और अरविंद दर्शन का गहरा प्रभाव है।

पुरुरवा *(सं० पा०)*

यह प्रयाग देश का राजा और सोमवंश का प्रतिष्ठापक था। ऋग्वेद (दे० संहिता) में इसे 'ऐल' कहा गया है, क्योंकि यह 'इडा' नामक यज्ञीय देवी का वंशज था। इसने सौ बार अश्वमेध यज्ञ किए थे। इसका राज्य पूर्व और उत्तर-पूर्व दिशाओं में गंगा के दोआब, मालवा तथा पूर्व राजपूताना प्रदेशों तक फैला हुआ था। ऋग्वेद में सर्वप्रथम उर्वशी (दे०) तथा पुरुरवा का प्रणय-संवाद मिलता है। फिर यही संवाद 'शतपथ ब्राह्मण', 'महाभारत' (दे०) में अनेक काव्य-नाटकों में विभिन्न कथाओं के रूप में प्रस्तुत होता रहा। इंद्रलोक से भूतल पर उतरी उर्वशी पुरुरवा की पत्नी के रूप में रही, किंतु एक शर्त के कारण वह इसे छोड़कर गंधर्व लोक वापस चली गई। इसके वियोग में पागल बना पुरुरवा इधर-उधर भटकता रहा। इसकी इस स्थिति का चित्रण अनेक कवियों ने मार्मिक रूप में किया है। इसी प्रकार की अनेक घटनाएँ भी पुरुरवा के साथ जुड़ी हुई हैं।

पुरुषोत्तम कवि, नादेल्ल *(ते० ले०)* [जन्म—1863 ई. मृत्यु—1938 ई०]

1864 ई० में बंगाल की खाड़ी में आए आंधी-तूफान के कारण पुरुषोत्तम कवि के पिता इस हैदराबाद आए और यहाँ 12 वर्ष तक रहे। उस समय इस प्रतिभाशाली बालक ने अरबी-फ़ारसी, उर्दू-दक्खिनी भाषाएँ सीख लीं। तेलुगु और संस्कृत भाषाओं में अच्छी विद्वत्ता प्राप्त की। मेधा दक्षिणामूर्ति की उपासना से कविता करने की सामर्थ्य प्राप्त की। पिता की मृत्यु के बाद आंध्र प्रदेश जाकर, मिडिल की परीक्षा पास कर, अध्यापक बने। अपने सोलहवें वर्ष में ही 'अहल्या संक्रंदनमु' नामक यक्षगानमु (दे०) की रचना की जो 1880 ई० में प्रकाशित भी हो गया।

सन् 1880 ई० में आंध्र-देश में आए 'महाराष्ट्र नाटक समाज' (जो धारवाड़ से होते हुए आने के कारण 'धारवाड़ नाटक मंडली' कहलाए) के प्रभाव और दासानि-वेंकटस्वामी नायुडु की प्रेरणा से इन्होंने हिंदी-हिंदुस्तानी मे 1884 ई० से लेकर 1886 ई० के मध्य तक 32 नाटकों की रचना की। इसमें 'रामदासचरित्रमु' को स्वयं कवि ने 1916 ई० में तेलुगु लिपि में प्रकाशित किया था। शेष उपलब्ध 5 नाटकों और रामायण-नाटक के पद्यों को कवि के पुत्र मेधा दक्षिणामूर्ति शास्त्री जी ने 1940 ई० में तेलुगु लिपि में प्रकाशित किया।

कवि ने तेलुगु भाषा में 5 नाटकों की रचना की थी। इनके अतिरिक्त काव्य (तेलुगु और संस्कृत,)

स्तोत्र, वर्णन, निघटु, शास्त्रग्रथ आदि कुल मिलाकर 112 पुस्तकें लिखी हैं। इन्होने 'बुधविधेयी' नामक पत्रिका तीन वर्ष तक चलाई।

कवि चित्र-कविता लिखने के प्रेमी थे। मछलीपटणम की जनता ने इनके रचना-कौशल से विस्मित होकर, इन्हे 'सरस चतुर्विध (आशु, चित्र, बध-गर्भ) कविता साम्राज्य धुरधर' के विरुद से सम्मानित किया। इनकी शिष्य-मडली बडी है। समाज सेवक के रूप मे भी इन्होने अच्छा नाम कमाया था।

तेलुगु नाटक-रचना मे पात्रोचित भाषा के प्रयोग तथा नाटको मे गीतो और पद्यो को स्थान देने वाले सर्वप्रथम भारतीय नाटककार ये ही है।

तेलुगु के काव्य तथा नाटक के क्षेत्र मे पुरुषोत्तम कवि का विशिष्ट स्थान है। राष्ट्रभाषा मे 32 नाटक लिखने वाले इस अहिंदी-भाषी लेखक का हिंदी नाटक साहित्य मे भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पुरुषोत्तम देव *(उ० कृ०)*

यह गोदावरीश मिश्र (दे०) का ऐतिहासिक नाटक है। गोदावरीश मिश्र सत्यवादी गोष्ठी (दे० सत्यवादी साहित्य) के सदस्य थे, अत जातीयता एव राष्ट्रीयता की भावना उनकी रचनाओ का मुख्य स्वर है। पुरुषोत्तम देव जातीय वीर के रूप मे चित्रित हैं। 'वैयक्तिक प्रम से राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को अधिक महत्त्व दिया गया है। स्वतत्रता के पूर्व लिखे गये इस नाटक का महत्त्व असदिग्ध है। नाटक की नाटकीयता तब और भी निखर उठती है जब उदात्त जातीय चेतना की भव्य स्थापना के साथ सुकुमार मानवीय सवेदना की भी पूर्ण रक्षा होती है। नाटक रगमच की दृष्टि से सफल एव मार्मिक है।

पुरुषोत्तम देव *(उ० पा०)*

पुरुषोत्तम देव गोदावरीश मिश्र (दे०) की इसी नाम की कृति का प्रधान पात्र है। इसके माध्यम से लेखक ने जातीय चेतना एव जातीय महत्त्व की भावना का उद्रेक कर जातीय गौरव की रक्षा के लिए सर्वस्व उत्सर्ग कर देने का मौन सकेत दिया है।

पुरुषोत्तम देव कपिलेंद्र देव के कनिष्ठ पुत्र हैं। अन्य अट्ठारह पुत्रो के होते हुए भी पिता उन्हें राजसिंहासन दे जाते है। उदार पुरुषोत्तम देव विद्रोही भाइयो को पराजित करने के बाद भी क्षमा कर देते है तथा उन्हे एक एक राज्य का सामत बना देते है।

दक्षिण मे युद्ध करते समय एक आहत सैनिक के रूप मे पुरुषोत्तम देव को काची-राजकुमारी की सेवा प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता है, जो बाद मे प्रणय का रूप ले लेता है। पुरुषोत्तम देव का विवाह प्रस्ताव काची-नरेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है—कारण महाराज एक चाडाल के हाथो कन्यादान नही कर सकते। उडीसा का यह राष्ट्रीय नियम है कि महाराज रथयात्रा के समय रथ पर 'छेरापहँरा' करते हैं। इसी पर काची नरेश का कटाक्ष था।

पुरुषोत्तमदेव इस राष्ट्रीय अपमान से जल उठते हैं। इनके आक्रमण से काची ध्वस्त होता है। पद्मावती बदिनी के रूप मे लाई जाती है और महाराज का महामत्री को आदेश होता है कि 'चाडाल के साथ पद्मावती का विवाह कर दिया जाए।' महामत्री इस आज्ञा को नतमस्तक हो स्वीकार करता है।

एक वर्ष बाद जब उडीसा का राष्ट्रीय पर्व रथयात्रा होता है तो महाराज चाडाल बनते है। महामत्री महाराज की आज्ञा का पालन करता है। पद्मावती चाडाल पुरुषोत्तम देव को समर्पित कर दी जाती है। इस पर जनता हर्षोत्फुल्ल है, और महाराज विस्मयविमूढ। महामत्री' के अधरो पर विनम्र स्मित रेखा है।

पुरुरवश्चरित्रमु *(तें० कृ०)*

यह राय न मत्री और नरसमाबा के पुत्र कनुपर्ति अब्बयामात्य (अठारहवी शती के मध्यभाग मे जीवित) का काव्य है। कनुपर्ति अब्बयामात्य ने 'अनिरुद्ध चरित्रमु', तथा 'कविराज मनोरजनमु' नामक दो प्रबध-काव्यो की रचना की है। 'इनमे 'अनिरुद्धचरित्रमु' प्रथम रचना होने के कारण प्रौढ नही है। 'कविराजमनोरजमु' का दूसरा नाम 'पुरुरवश्चरित्रमु' है। इसमे चक्रवर्ती पुरुरवा की कथा वर्णित है। यह प्रौढ काव्य है। सुप्रसिद्ध श्लेष-काव्य 'वसुचरित्रमु' (दे०) [श्रीकृष्ण देवरायलु (दे०) के युग के कवि रामराजभूषणुडु (दे०) कवि की कृति] स अत्यधिक प्रभावित होने से इस काव्य को पिल्ल (छोटा) वसुचरित्र' कहत हैं। इसम कथावस्तु की अपक्षा कवि ने रचना-चमत्कार को प्रधानता दी है। इसलिए वर्णन तथा शिल्प प्रशसनीय है।

अखड सच्चिदानदावधूतुडु नामक परिव्राजक

ने भी 'पुरुरवश्चरित्रम्' नामक वेदांत-ग्रंथ की रचना की है। इस काव्य में पुरुरवस् को नारद के तत्वोपदेश का वर्णन है। इस कवि के पूर्वाश्रम के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

पुरोगामी साहित्य *(म० कृ०)* [रचना-काल—1941 ई०]

'पुरोगामी साहित्य' नामक साहित्य-समालोचनात्मक ग्रंथ के लेखक श्री शं० द० जावडेकर हैं। इसका प्रकाशन 1941 ई० में हुआ था।

मराठी में प्रगतिशील साहित्य को 'पुरोगामी साहित्य' कहते हैं। 'प्रगति' शब्द को प्रत्येक साहित्यकार ने अपनी दृष्टि से स्पष्ट किया है। जिन पर मार्क्स एवं फ्रायड की चिंताधारा का प्रभाव है उनके अनुसार सामाजिक क्रांति द्वारा मानव की अर्थेषणा तथा कामेषणा का समाधान ही प्रगति है। इस चिंतन-पद्धति का विरोध जावडेकर ने अपने 'पुरोगामी साहित्य' में किया है और प्रगतिशील साहित्य की भारतीय संस्कृति के अनुकूल नयी परिभाषा प्रस्तुत की है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ हैं, जिन्हें प्राप्त कर मानव-जीवन सफल होता है। अर्थ और काम-प्रधान संस्कृति पशु-संस्कृति है। धर्म और मोक्ष-प्रधान संस्कृति मानव-संस्कृति है। मानव को चाहिए कि वह धर्म के अनुसार आचरण कर अर्थ तथा काम संपादित कर मोक्ष की ओर उन्मुख हो।

इन्होंने आधुनिक युग के बुद्धिजीवी वर्ग के लिए धर्म तथा मोक्ष की बुद्धिसम्मत परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। इनके विचार में आत्मोन्नति एवं समाज-निर्माण के लिए आवश्यक बंधन धर्म है—स्वार्थ, अहं से मुक्ति पाकर आत्मोन्नति तथा संसार-कल्याण का प्रयत्न मोक्ष है। इन्होंने साहित्य में स्वार्थ-त्याग और नैतिक आचरण के चित्रण पर बल दिया है। इस साहित्य-दृष्टि का समर्थन कालेलकर (दे०), साने गुरु जी (दे०) प्रभृति विद्वानों ने भी किया है।

इस प्रकार जावडेकर जी अध्यात्म तथा नीतिवादी सिद्धांतों के समर्थक रहे है। इनका यह ग्रंथ साहित्य-शास्त्रीय ग्रंथ-रचना में अमूल्य है।

पुष्कर प्रभाशंकर चंदरवाकर *(गु०ले०)* [जन्म—1920 ई०]

पुष्करभाई का जन्म चंदरवा में हुआ था। इनकी शिक्षा-दीक्षा लीबड़ी और अहमदाबाद में संपन्न हुई। 1946 ई० में एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर ये अध्यापन के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए और आज तक इसी क्षेत्र में काम कर रहे हैं। बीच में अनेक प्रलोभनों को भी छोड़ कर पुष्करभाई ने अपनी अध्यापकीय निष्ठा को प्रमाणित किया है। इनमें लेखन-प्रवृत्ति का उदय बाल्य-काल में हो गया था। इनकी रचनाएँ हैं: 'रांकना रतन', 'मंदवाएलां हैयां', 'बावडाना बले', 'भवनी कमाणी', 'लीलुडां लेजो', 'नवा चीले', 'मानवीनो मालो', 'धरती भारती भौलर्से', 'झांझवानां नीर', (मौलिक उपन्यास); 'पियरनो पडोशी', 'यज्ञ', 'महीना ओवारे', 'रंगीलीला', (नाट्य-साहित्य); 'प्राणीधर', 'बांधणी', 'शकुनवंती', 'खेतनो खेडु', 'अंतरदीप', (कहानी-संग्रह), आदि। इनके प्रमुख प्रकाशनों में उपन्यास और कहानी-साहित्य महत्वपूर्ण है। यों गुजरात में इनकी प्रसिद्धि का कारण इनकी लोक-साहित्य में गहरी रुचि है। चंदरवाकर जी लोक-संस्कृति और साहित्य के अध्ययन में अधिक सक्रिय हैं।

पुष्टिमार्ग *(हि० प्र०)*

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने अपने शुद्धाद्वैतवाद के आधार पर भक्ति का जो संप्रदाय स्थापित किया था उसी का नाम 'पुष्टिमार्ग' है। 'भागवत' (दे०) के 'पोषणं तदनुग्रहः' के आधार पर भगवदनुग्रह के अर्थ मे ही 'पुष्टि' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'मुंडकोपनिषद्', 'कठोपनिषद्' एवं 'भागवत' में स्थान-स्थान पर भगवान के अनुग्रह से आत्मा की उपलब्धि की बात कही गई है। पुष्टिमार्गीय भक्त आत्मसमर्पण द्वारा रसात्मक प्रेम के माध्यम से भगवान् की आनंद-लीला में लीन होने को सदैव इच्छुक रहता है। वल्लभाचार्य जी ने भगवान, जीव, जीव को भगवान के अनुग्रह की आवश्यकता, सभी जीव पोषण के अधिकारी हैं अथवा नहीं आदि प्रश्नों का इसी प्रवृत्ति के अंतर्गत सविस्तार उल्लेख किया है। प्रारंभ में इन्होंने श्रीनाथ के मंदिर में बाल-भाव की सेवा-पद्धति प्रारंभ की थी, परिणामतः पुष्टिमार्ग में वात्सल्य भाव की भक्ति का विशेष माहात्म्य प्रतिपादित हो गया था। आगे चलकर वल्लभ ने सख्य और कांतारति को भी स्वीकार कर लिया था। एक स्थल पर इन्होंने स्वयं आकांक्षा प्रकट की है कि मेरे हृदय में गोपियों के विरह का दुःख पैदा हो जाए। विट्ठलनाथ के समय में सख्य और कांतारति का माहात्म्य और अधिक प्रस्थापित हो गया था। परंतु फिर भी गौड़ीय भक्तों ने रागानुगा भक्ति का अनुकरण पुष्टिमार्गीय भक्तों की अपेक्षा अधिक गहराई के साथ किया है। पुष्टिमार्ग में

सच्ची भगवत् सेवा को भक्ति माना गया है। इस मार्ग में धार्मिक आचार्य भी पूर्ण गृहस्थ पाए गये हैं, कारण यही है कि इन साधकों ने त्याग की अपेक्षा समर्पण को प्रमुखता दी है। सुतरां पुष्टिमार्ग एक प्रवृत्तिमार्ग है जिसमें मानसिक निवृत्ति पर विशेष बल दिया गया है।

पुष्पदंत (*अप० ले०*) [रचना-काल—दसवीं शती ई०]

पुष्पदंत काश्यप गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशवभट्ट तथा माता का नाम मुग्धा देवी था। ये पहले शैव थे बाद में दिगंबर जैन हो गए थे। इनके पारिवारिक जीवन के विषय में विशेष जानकारी नहीं मिलती। संभवतः ये एकाकी थे। स्वभाव के स्वाभिमानी, *उग्र एवं एकांतप्रिय व्यक्ति थे। इन्होंने अपने विषय* में कहा है—दुबला पतला साँवला शरीर एकदम कुरूप पर स्वभाव हँसमुख। ये धनहीन थे। इन्हें अपने कवित्व पर अभिमान था। इन्होंने स्वयं को कव्व पिसल्ल, अभिमान्-मेरु, कविकुल-तिलक, काव्य-रत्नाकर, सरस्वती निलय इत्यादि उपाधियों से संबोधित किया है।

इनकी कृतियों से ज्ञात होता है कि दुष्टों से सताये जाने पर ये मान्यखेट पहुँचे थे, किंतु कहाँ रहते थे और कहाँ से *मान्यखेट* पहुँचे थे इसका कोई संकेत नहीं मिलता। मान्यखेट आधुनिक मलखेड है जो हैदराबाद (दक्षिण) में है।

इन्होंने राजमंत्री भरत के आश्रय में रह कर 'तिसट्ठि पुरिस गुणालंकार' या 'महापुराण' (दे०), की रचना की थी। उसके बाद भरत के पुत्र नन्न के आश्रय में 'णायकुमार-चरिउ' जसहर-चरिउ (दे०) की रचना की थी।

पुष्पदंत के साहित्य का उद्देश्य शुद्ध धार्मिक है। इनकी कृतियों में कहीं वर्णनात्मक सरल शैली और कहीं अलंकारों से युक्त चमत्कृत शैली मिलती है। इनकी वाणी रसवती है और जिन भक्ति से पूर्ण है। अपभ्रंश के प्रमुख कवियों में इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पुष्पदंतपुराण (*क० कृ०*) [रचना काल—तेरहवीं शती का पूर्वार्ध]

गुणवर्मा द्वितीय (समय 1215 ई० के आस पास) की रचना 'पुष्पदंतपुराण' नवम जैन तीर्थंकर पुष्पदंत के चरित का वर्णन करती है। इसमें चौदह आश्वास हैं। नायक का उत्कर्ष दिखाने के लिए कवि ने कथा का विस्तार किया है। 'मृदुपदवध' और 'सुरुचिरार्थ' से उन्होंने अपनी रचना को 'जिनकथाविस्तार-सार' बनाया है। उन्होंने इसे 'नूतन काव्य' कहा है। यह नूतनता पदलालित्य और प्रसादपूर्ण शैली में है। काव्य के प्रारंभ में उन्होंने पुष्पदंत की स्तुति की है, तत्पश्चात् सिद्धि, सरस्वती यक्ष-यक्षी, अनुबद्ध केवलि, श्रुतकेवलि, दशपूर्वी एकादशांगधारी और आचारांगधर का स्तवन किया है। उनके गुरु का नाम मुनिचंद्र और आश्रयदाता का नाम शांतिवर्मा है। शांतिवर्मा को ही उनका काव्य समर्पित है। प्रबंध की दृष्टि से उनका काव्य एक उत्तम काव्य है। कुछ लोग उसे पंडितकाव्य कहते हैं, परंतु उसके वर्णनों में मनोहारिता है और शैली में कसाव। उसमें चित्रित अष्टादश वर्णन उसके *महाकाव्यत्व का ही निदर्शन है।*

पुष्प', लाल (*सिं० ले०*) [जन्म—1935 ई०]

इनका जन्मस्थान सिंध का प्रसिद्ध नगर लाडकाणो है। आजकल ये स्थायी रूप से बंबई में रहते हैं। इन्होंने कहानी, उपन्यास और आलोचना के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—कहानी संग्रह *'विश्वास में अविश्वास'*, 'दाइरो', 'बंधन ऐं निर्माण', 'पुर्नमिलन', उपन्यास 'हिक सर्द दीवार'। इन्हें अधिक ख्याति कहानीकार के रूप में ही प्राप्त हुई है। ये स्वातंत्र्योत्तर सिंधी-कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये आरंभ में प्रगतिशील विचारों से प्रभावित होकर साहित्य-सृष्टि किया करते थे किंतु बाद में ये रोमानवाद से प्रभावित हो गए थे। कुछ वर्षों में इन्होंने नयी कहानी लिखने के भी सफल प्रयोग किए हैं।

पुहळेंदि (*त० ले०*) [समय—तेरहवीं शती ई०]

इनकी एक ही प्रामाणिक पद्य-रचना नळ वेण्पा' मिलती है जिसने इनकी कीर्ति अमर कर दी है। 'महाभारत' (दे०) के 'नलोपाख्यान' की सर्वविदित कथा को स्वयंवर, कलि ग्रहण, कलि-त्याग संबंधी तीन कांडों तथा 424 'वेण्पा' (दे०) पद्यों में प्रस्तुत करने वाली यह कृति तमिल साहित्य के अध्येताओं में पर्याप्त यश पा चुकी है। इस काव्य में मानवहृदयान्वेषी गहरी पैठ तो नहीं मिलती पर लोकानुभव परिपाक से पूर्ण तथ्यों का प्रभावोत्पादक प्रतिपादन मिलता है। 'वेण्पा' छंद का अभूतपूर्व मनसन

उपयोग इस काव्य का वैशिष्ट्य है। यद्यपि यह चतुष्पद वाला स्निग्ध छंद तमिल-साहित्य के प्राचीन 'संगम' काल से ही विकसित हुआ है, तथापि इस कवि के द्वारा ही उसका काव्योपयोगी संगुंफित और प्रवाहपूर्ण रूप सर्वप्रथम हुआ और परवर्ती शतियों के कविगणों के लिए आदर्श बना। 'वेण्पा' के लिए 'पुहळेंदि' (शाब्दिक अर्थ—'यश धारण करने वाला') का नाम छोड़कर किसका लें ?' काव्यगत स्तोत्रों के स्वरूप से यह स्पष्ट है कि ये वैष्णव थे।

इनकी जीवनी के संबंध में अनेक किंवदंतियाँ हैं और इनकी और 'ओट्टक्कूत्तर्' नामक प्रौढ़ कवि की पारस्परिक स्पर्धा की कथाएँ प्रचलित हैं पर इनमें ऐतिहासिक सत्यता निश्चित रूप से नहीं है। 'चेंचिक्कलम्पकम्' नामक एक पद्य-रचना भी इनके द्वारा रची हुई कही जाती है पर यह उपलब्ध नहीं है।

पूंतानम् (मल० ले०) [जीवन-काल—सत्रहवीं शती ई०]

ये मलयाळम के अनन्य कृष्ण-भक्त कवि हैं। इनके बारे में यह कथा है कि इनके एकमात्र शिशु का दुर्घटनावश देहांत हो गया था और इन्होंने यह घोषणा करते हुए संन्यास ग्रहण किया था कि जब कन्हैया हृदय में क्रीड़ा करता है तो अन्य संतानों की क्या आवश्यकता है ?

पूंतानम् ने द्रविड़ छंदों में अनेक कीर्तन रचे हैं जो भक्तजनों के संध्या-पाठ में नित्य प्रयोग किए जाते हैं। 'ज्ञानप्पाना' (दे०) और 'कुमारहरणम् पाना' भाषा की अमूल्य निधियाँ हैं। 'भाषा कर्णामृतम्' संस्कृत-छंदों में रचित इनकी स्तोत्र-कृति है।

केरल के कृष्ण-भक्त कवि अधिकतर संस्कृत में काव्य-रचना करते थे। यही कारण होगा कि 'अष्टछाप' (दे०) और 'मीरांबाई' (दे०) जैसे कवियों की परंपरा का मलयाळम में अभाव है। परंतु पूंतानम् इस अभाव की सर्वथा पूर्ति करते है। संस्कृत पर इनका अधिकार नहीं था इसीलिए जनता की भाषा एवं गेय शैली में ही ये रचना करते रहे। इनके द्वारा बताए गए दार्शनिक तत्त्वों ने भक्त जनों के मन में सीधा प्रवेश पाया और यही इनके महत्त्व का मापदंड है। भारत के महान संत-कवियों के मध्य पूंतानम् का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पुत्तदु मानुडम् (त० कृ०) [रचना-काल—1968 ई०]

'पुत्तदु मानुडम्' शालै इळंतिरैयन् (दे०) की 66 कविताओं का संकलन है। यह कृति चार भागों में विभाजित है। 'नेत्ज्जोडु नेत्ज्जम्' शीर्षक प्रथम भाग में कवि ने काव्य के स्वरूप और सच्चे कवि के आदर्शों की चर्चा की है। यहीं काव्य के मूल्यांकन और रसास्वादन की विधि भी बताई गई है। 'विट्टकूरुं तीट्टकुरुं' शीर्षक द्वितीय भाग में कवि ने लोगों की कष्ट-सहन-क्षमता की प्रशंसा करने के साथ-साथ उन्हें उन पाखंडियों से बचने की चेतावनी दी है जो कि प्राचीन परंपराओं को वर्तमान समाज पर लादना चाहते हैं। 'शेयल् मणक्कुम तोळ्गळ्' नामक तृतीय भाग में उसने यह घोषणा की है कि वह मनुष्य के वीरोचित कर्मों और उच्चादर्शों की प्रशंसा में ही कविताओं की रचना करेगा। उसने मनुष्य की ज्ञान और परिश्रम-साध्य उपलब्धियों को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ उन्हें यह आश्वासन भी दिया कि इस संसार की कोई भी वस्तु उनकी पहुँच के बाहर नहीं है। 'पुदियदोर् नागरिकम्' शीर्षक भाग में उसने एक नूतन समाज की कल्पना की है। उसका विश्वास है कि यदि मनुष्य अपनी शक्ति और सामर्थ्य को पहचान ले तो ऐसे समाज का उदय अवश्य ही होगा।

'पुत्तदु मानुडम्' एक विलक्षण कविता-संग्रह है। यह संग्रह एक महाकाव्य का आभास देता है क्योंकि इसमें संगृहीत कविताओं में विचारों का एक अविच्छिन्न प्रवाह है और ये विचार क्रमशः विकसित होते गए हैं। कविताओं का मूल स्वर यह है कि यदि मनुष्य संसार को और उसमें व्याप्त शक्ति और ज्ञान को पहचान लें तो वे एक ऐसे संसार का निर्माण कर सकते हैं जहाँ कष्ट, विपत्तियाँ आदि नहीं होंगी। द्वितीय एवं तृतीय भाग की कुछ कविताओं में कवि ने सामाजिक उत्थान के लिए प्रचार किया है। चतुर्थ भाग की कविताओं में विश्व-बंधुत्व की भावना, समाजवाद, आदर्श मानवता आदि उच्च विचारों और आदर्शों की चर्चा है। यह कृति अत्यंत सरल शैली में रचित है। कवि ने अपने नवीन विचारों की अभिव्यक्ति के लिए नवीन छंदों का प्रयोग किया है।

तमिल-साहित्य के इतिहास में इस कृति का विशिष्ट स्थान है क्योंकि यह सामयिक तमिल-काव्य में प्राप्त तमिल राष्ट्रीयता और प्रादेशिकता की भावना से मुक्त है।

पूरन भगत (पं० कृ०) [रचना-काल—अनुमानतः उन्नीसवीं शती का पाँचवाँ दशक]

इसके रचयिता कादरयार (दे०) ने पूरन

भगत की कथा के आधार पर दो रचनाएँ 'किस्सा पूरन भगत', और 'कलियाँ पूरन भगत'—लिखी हैं। मुख्य कथा समान होते हुए भी दूसरी कृति मे अलौकिकता, पौराणिकता, और काल्पनिकता का प्राधान्य है। काव्य-सौष्ठव और लोकप्रियता की दृष्टि से 'किस्सा पूरन भगत' ही महत्वपूर्ण है। इसमे तीस-तीस 'बैंतो' (दे०) की पाँच सीहरफियाँ (दे०) हैं जिनमें सियालकोट के राजा शालिवाहन के पुत्र 'पूर्ण' की कथा है। विमाता लूणा (दे०) के प्रेम प्रस्ताव को ठुकराने के कारण पूर्ण को अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। अत मे गुरु गोरखनाथ का शिष्यत्व स्वीकार कर वह ससार के भोग विलास को तिलाजलि दे देता है। रचना मे गोरखनाथ की अलौकिक शक्तियो का सविस्तर वर्णन है। ग्रथारभ अथवा ग्रथात मे ईश्वर वदना या कवि-परिचयात्मक छद नही हैं। घटनाओ और दृश्यो का स्वाभाविक अकन, वातावरण का सजीव चित्रण और सरल शब्द-चयन रचना की मुख्य विशेषताएँ हैं। नारी की वासना, पुत्र की आचरण निष्ठा, माता का वात्सल्य तथा सामती समाज के अविवेक का वर्णन कवि ने पूर्ण मनोयोग से किया है। प्रेम के वासना-प्रधान रूप की निंदा और ससार की असारता की अनुभूति जगाने वाले नैतिक स्वर के कारण इस रचना को विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इसका प्रामाणिक पाठ भाषा विभाग पटियाला, द्वारा प्रकाशित 'कादरयार' मे सकलित है।

पूरनमाशी *(प० कृ०)*

'पूरनमाशी' उपन्यास पजाब के गाँव की पृष्ठभूमि मे प्रेम कथा को प्रस्तुत करता है। यह प्रथम उपन्यास है जिसके द्वारा जसवत सिंह कँवल (दे०) ने ग्रामीण जीवन का यथार्थवादी चित्रण करने के अतिरिक्त समाजवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का भी प्रयास किया है। उपन्यास के अत म 'ज्ञानी' के चरित्र द्वारा द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त होने के समय क्राति की बढती चेतना को व्यक्त किया है। पजाब के विभाजन के अवसर पर उपन्यास के दो प्रमुख पात्र रक्तपात के वातावरण म अपने दूसरे मित्रो की सहायता से मुसलमानो को कत्ल होने म बचाते हैं।

पूरनसिंह, प्रो० *(प० ल०)* [जन्म—1881, मृत्यु—1931 ई०]

प्रो० पूरनसिंह का जन्म ऐबटाबाद के एक गाँव मे हुआ था। इन्होने आरभिक शिक्षा लाहौर मे प्राप्त की। जापान के प्रवास-काल मे इन पर बौद्ध-मत का गहरा प्रभाव पडा और ये बौद्ध भिक्षु बन गए। बाद मे स्वामी रामतीर्थ के सपर्क मे आने पर ये वेदाती बन गए। इनका व्यक्तित्व अद्भुत एव अत्यत समृद्ध था।

प्रो० पूरनसिंह ने अपनी कृतियो द्वारा पजाबी की परपरा से अलग हट कर नये और मौलिक रूप मे काव्य-रचना की। कुछ विद्वान इनके काव्य पर भाई वीरसिंह (दे०) का प्रभाव मानते हैं। प्रो० पूरनसिंह की रहस्य-भावना या अध्यात्मवाद भाई वीरसिंह की अपेक्षा कही व्यापक और गहन है जिसकी परिधि मे सपूर्ण विश्व, साधारण से साधारण वस्तु, लघु से लघुतम व्यक्ति, आ जाता है। पूरनसिंह की कविता पर पाश्चात्य साहित्य का—विशेष रूप से अँग्रेजी के रोमानी कवियो—वर्ड्सवर्थ, शैली, कीटस और अमरीका के कवि वाल्ट विटमैन का गहरा प्रभाव है। प्रो० पूरनसिंह के दो कविता सग्रह 'खुल्ले-घुड' और 'खुल्ले मैदान' (दे०), उपलब्ध हैं। पहले सग्रह की कविताएँ दार्शनिक और विचार-प्रधान हैं। दूसरा सग्रह अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण है। इस सग्रह की कविताएँ मुक्त छद मे रचित हैं। इन कविताओ मे कवि की प्रवृत्ति स्वच्छदतावादी है। इसमे कल्पना की ऊँची उडान, मनोवेगो की तीव्रता और जीवन के प्रति गहरी आसक्ति की अभिव्यक्ति हुई है।

पूरप्रबधम् *(मल० कृ०)*

वेण्मणि महन् नपूतिरिप्पाड् (दे० नपूतिरिप्पाड्, अच्छन वेण्मणि) ने इस ग्रथ का प्रारभ 1873 ई० मे किया गया था। पूरे हजार श्लोक लिखने की इच्छा के कारण कई वर्षों म इसकी रचना पूरी हुई। वेण्मणि महन् नपूतिरि और उनके पिता दोनो उद्दाम शृगार रस की रचना मे सिद्धहस्त थे—यहाँ तक कि 'वेण्मणि' शब्द घोर शृगार का नामातर बन गया। 'पूरप्रबधम्' म कवि त्रिचूर नगर के वार्षिक पूरम् महोत्सव का आँखो देखा वर्णन करता है। एरनाकुलम (कोचीन) से निकलकर त्रिचूर पहुँचने तक जितने भी सुदर दृश्य कवि की नजर मे पडते हैं उन सबका विशद हृदयग्राही चित्रण 'पूरप्रबधम्' का विषय है। इस काव्य म शृगारिकता के साथ ही साथ हास्यप्रियता भी है। कवि ने अपनी काव्य-भाषा को सस्कृत के अतिशय प्रभाव म मुक्त कर सहज देशी शब्दो के प्रयोग का प्रयत्न किया है।

पूरबी *(बँ० कृ०)*

यह रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) की कविताओं का संग्रह है जो 1925 ई० में प्रकाशित हुआ था। इसके मूल स्वर हैं—

(अ) अतीत में प्रकृति एवं मानव के रूप-रस-पूर्ण जीवन के प्रति आकर्षण, उसी जीवन में लौटने की आकांक्षा एवं आसन्न मृत्यु की पटभूमिका में जीवन-भोग की करुण व्यर्थता।

(आ) आसन्न मृत्यु की पद-ध्वनि एवं महा-यात्रा का आह्वान।

कवि भगवान् की लीला को प्रत्यक्ष देख रहा है और पृथ्वी की धूल-मिट्टी, वृक्ष-लता, जल-वायु प्रकृति के विचित्र रूप-रस तथा मनुष्य के स्नेह-प्रेम में स्वयं को विलीन कर देना चाहता है।

यह तीन भागों में विभक्त है। पहले भाग का नाम 'पूरबी' है। इसमें 16 कविताएँ हैं। दूसरे भाग का नाम 'पथिक' है जिसमें 61 कविताएँ हैं। तीसरे भाग का नाम 'संचिता' है और इसमें 11 कविताएँ हैं।

'पूरबी' की 'सत्येंद्रनाथ दत्त' एक प्रसिद्ध एवं लंबी कविता है जिसमें कवि ने 'दत्त' के प्रति असीम स्नेह को, उनके काव्य एवं व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य को, अनुपम काव्य एवं छंद में प्रस्तुत किया है।

पूर्णम्मा *(ते० कृ०)*

यह तेलुगु-साहित्य के आधुनिक काल के युग-पुरुष गुरजाडा अप्पाराव (दे०) का खंडकाव्य है। इसमें अनमेल विवाह अथवा वृद्ध-विवाह की पोल खोली गई है। यह करुणरस-प्रधान गीत-काव्य है। पुत्तडि बोम्म पूर्णम्मा (सोने की मूर्ति पूर्णम्मा) को धन के लोभ में पड़कर उसके पिता एक बूढ़े के गले मढ़ देना चाहते हैं। बूढ़े पति को देखकर उस कुसुमकली की आशाओं पर तुषार-पात हो जाता है। बूढ़ा उसे अपने घर ले जाता है। वह पूजा के बहाने मंदिर जाकर, वहाँ आत्महत्या कर लेती है आत्महत्या से पूर्व पूर्णम्मा अपने भाई-बंधुओं का संबोधन करते हुए जो गीत गाती है, वह अत्यंत मर्मस्पर्शी एवं करुणाजनक है। शुल्क लेकर बूढ़ों के हाथ कन्याओं के बेचने की कुप्रथा पर व्यंग्य करते हुए लिखी गई यह रचना आंध्र में अत्यंत लोकप्रिय है।

'पूर्ण', राय देवी प्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1868 ई०; मृत्यु—1915 ई०]

इनके पिता राय बंशीधर जबलपुर में वकील थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् ये चाचा के संरक्षण में पढ़े। उत्तम श्रेणी में बी० ए० और वकालत पास करके ये कानपुर में वकील हो गए। ये सभाप्रिय और दर्शनविद् थे। 'रसिक-समाज' की स्थापना कर इन्होंने पुरानी ब्रजभाषा-काव्य-परंपरा को जीवित रखा।

इनका 'धाराधर धावन' [मेघदूत (दे०) का अनुवाद] सरस और ललित पदावली के लिए प्रसिद्ध है। खड़ी बोली का प्रचलन हो जाने पर इन्होंने बहुत-सी रचनाएँ खड़ी बोली में कीं जो 'पूर्ण-संग्रह' में संगृहीत हैं। इन्होंने 'चंद्रकला-भानुकुमार नाटक' एक कल्पित कथा के आधार पर लिखा है जो बहुत बड़े आकार का साहित्यिक नाटक है। राष्ट्र-प्रेम की दृष्टि से लंबी कविता 'वसंत वियोग' और प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से 'अमलतास' खड़ी बोली की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। इनके कृतित्व में परंपरा और नवीनता का अद्भुत सम्मिश्रण है। देशभक्ति और राजभक्ति का सामंजस्य भी इनके काव्य में दिखाई देता है।

पूर्णसिंह अध्यापक *(हिं० ले०)* [जन्म—1881 ई०; मृत्यु—1931 ई०]

इनका जन्म सिख परिवार में हुआ था। ये हिंदी के उन अमर लेखकों में से हैं जिनकी ख्याति का मूल आधार रचना-वैशिष्ट्य है, न कि परिमाण। फलतः ये केवल आठ निबंधों की रचना करने पर भी हिंदी-निबंध के इतिहास में चिर स्थायित्व प्राप्त कर चुके हैं। इनके निबंधों में भावात्मकता, दार्शनिकता तथा सामाजिकता का अपूर्व सम्मिलन है। विचारात्मकता एवं कला का ओज इनकी शैलीगत विशेषताएँ हैं। 'सरदार पूर्णसिंह अध्यापक के निबंध' पुस्तक में इनके छह निबंध संकलित हैं।

पूर्वबंग गीतिका *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1924 ई०]

उत्तर-पूर्व एवं पूर्व बंगाल की नाना लोक-गाथाओं के संग्रह का संपादन कर दिनेशचंद्र सेन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की ओर से इन्हें 'पूर्वबंग गीतिका' एवं 'मयमनसिंह गीतिका' (दे०) के नाम से चार खंडों में

1924 ई० मे प्रकाशित किया । इन काव्य-गाथाओ मे कई असपूर्ण है और कइयो मे प्रक्षिप्त अश जुडा हुआ है । द्विज कानाई, नयनचाद घोष, द्विज ईशान, चद्रावती, फकिर फैजु आदि ग्राम्य कवियो ने इन गाथाओ मे ग्राम-हृदय के गहरे स्तर से स्वत उच्छ्वसित प्रेम-तत्त्व की गहरी अभिव्यक्ति की है । मूल रूप से इनमे प्रेम की अकृत्रिम वेदना की स्वच्छ धारा की ही अभिव्यक्ति अधिक हुई है । 'मयमनसिह गीतिका' मे 'महुआ' नामक गाथा सर्वाधिक रोमानी एव मनोरम है । इसमे इतिहास, पुराण, धर्मतत्त्व, दर्शन समाजतत्त्व एव समाज के विभिन्न अशो के चित्र मिलते हैं परतु इसका वास्तविक मूल्य इनके कवित्व-रस मे एव मानव मन के सुख-दुख एव प्रेम-विरह के वर्णन मे निहित है ।

इन गीतिकाओ मे पुरोहित शासित या समाज-शासित प्रेम के स्थान पर हृदय के उन्मुक्त प्रेम का वर्णन अधिक है । कथानक, भाषा वर्णन-कौशल, कल्पना के साथ यथार्थ के सुष्ठु मिश्रण एव रसाश्रित-सयत परिसमाप्ति इन गीतिकाओ की विशेषताएँ है । गीत-कविता की तरह इनका भी उपजीव्य प्रेम है, परतु वह प्रेम राधा-कृष्ण का नही गाँव के दरिद्र किसानो का है जिसमे आध्यात्मिकता के स्थान पर लौकिक प्रणय-वेदना की अभिव्यक्ति अधिक है । इन गीतिकाओ की एक और विशेषता यह है इनमे हिंदू-मुसलमान उभय सप्रदाय के लोगो की कहानियो का सहानुभूति के साथ अकन हुआ है । इन काव्य-सग्रहो मे जन-साधारण की चिराचरित धर्मसाधनाओ का उल्लेख है परतु साधना-प्रणाली की व्याख्या की अपेक्षा इनमे सर्वमानवीय हृदय की आकुलता ही असाधारण रूप-चेतना एव प्रकृति-शक्ति की भावप्रकाशिका शक्ति की सहायता से व्यजनामय होकर प्रकट हुई है ।

पूर्वालाप (गु० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1923 ई०]

कवि कान्त (मणिशकर रत्नजी भट्ट) का काव्य-सग्रह 'पूर्वालाप' 1923 ई० मे उनके आकस्मिक निधन के समय प्रकाशित हुआ । इसमे उनके खडकाव्य और प्रगीत-काव्य सम्मिलित हैं । 'अतिज्ञान', 'वसतविजय', 'चक्रवाक मिथुन' और 'देवयानी' खडकाव्य कवि कान्त की पूर्णरूपेण विकसित कारयित्री प्रतिभा का परिचय देते हैं । उन्होने गुजराती-खडकाव्य के बाह्य और आभ्यतर स्वरूप का सर्वांग सुदर निर्माण किया । 'अतिज्ञान' और 'वसतविजय' खड काव्यो की विषय-वस्तु 'महाभारत' (दे०) से ली गई है । 'चक्रवाक मिथुन' कल्पनाश्रित है और 'देवयानी' खडकाव्य मे पुराण-प्रसिद्ध ययाति उपाख्यान मे वर्णित कच-देवयानी की कथा को रूपायित किया गया है। प्रसग, परिस्थिति और पात्र के मनोभावो के चित्रण मे कान्त कवि दक्ष हैं । खडकाव्यो के प्रारभ, मध्य और अत का सयोजन बडी सतर्कता और सिद्धहस्तता से किया गया है । इससे कही असगति, शिथिलता या विश्रृखलता का दोष दृष्टिगत नही होता । इन खडकाव्यो मे 'शाश्वत अनत तत्त्व' मे उस तेजोमय प्रदेश की खोज की व्याकुलता अभिव्यक्त होती है जहाँ 'सविता' सदैव अपना दिव्य प्रकाश फैलाता रहता है । 'पूर्वालाप' के प्रगीतो मे कवि की धर्म-भावना, ऊर्ध्वमुखी अभीप्सा, मित्र-स्नेह, प्रणय की कोमल भावना इत्यादि का निरूपण है । 'उपहार', 'उद्गार', 'वासलना नयन', 'आपणी रात', और 'सागर अने शशी' इसकी विशेष उल्लेखनीय कविताएँ है । अतिम कृति तो उत्तम काव्य के सभी तत्त्वो से विभूषित है ।

पूर्वी हिंदी (भाषा० पारि०)

ऐतिहासिक और भौगोलिक आधार पर ग्रियर्सन (दे०) ने हिंदी भाषा के पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी दो भेद किए थे । पूर्वी हिंदी मे उन्होने अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढी—इन तीन बोलियो को रखा । इस तरह इन तीन बोलियो के वर्ग का ही नाम 'पूर्वी हिंदी' है । यह ध्यान देने की बात है कि पूर्वी हिंदी हिंदी भाषा का कोई एक निश्चित रूप नही है, बल्कि वह इन तीन बोलियो का सामूहिक नाम मात्र है । कुछ लोग बघेली को एक क्षेत्रीय भेद मानकर पूर्वी हिंदी मे केवल दो ही बोलियाँ—अवधी और छत्तीसगढी—मानते हैं । पूर्वी हिंदी का उद्भव किस अपभ्रश से हुआ है, यह विवाद का विषय है । ग्रियर्सन ने इसका सबध अर्ध मागधी से माना था । जो भाषा जैन धर्म के साहित्य मे प्राप्त है, उसे इससे पूरी तरह नही जोडा जा सकता । डॉ० बाबूराम सक्सेना (दे०) के अनुसार पूर्वी हिंदी तथा पालि मे काफी बातें समान हैं । वस्तुत पूर्वी हिंदी या अवधी का सबध किस अपभ्रश और प्राकृत से है, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है । सामान्य प्रयोग मे पूर्वी हिंदी या पूर्वी प्रयोग कभी-कभी भोजपुरी या मगही मैथिली के लिए भी होता है । वस्तुत अपने क्षेत्र से पूरब की भाषा के लिए पूरबी नाम का प्रयोग प्राय होता रहा है । इस रूप मे ब्रजभाषियो के लिए अवधी पूरबी है तो अवध वालो के लिए भोजपुरी और

भोजपुरी वालों के लिए मगही-मैथिली।

पूवण्णन *(त० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

मूल नाम वे० ता० गोपालकृष्णन। इनका जन्म मद्रास में हुआ। एक दो वर्ष 'करुम्बु' बाल-पत्रिका का संपादन किया। इस समय ये तमिल प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं और तमिल बाल-साहित्यकारों की अनेक सभाओं से संबद्ध हैं। बच्चों के लिए रचित इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं –'बोम्मैवंडी', 'पुळ्ळिमान' (कहानी), 'अमुदाविन आसैं', 'महन पुहळ' (उपन्यास), 'कावेरीयिन अंबु', 'पुलवर महन' (ऐतिहासिक उपन्यास) 'उप्पिललाद पंडम', 'कवि-रञ्जन' (नाटक); 'पोकाल वाळ्वर्के' (संस्कृति का इतिहास) आदि। इन्होंने तमिल बाल-साहित्य का इतिहास भी लिखा है। इनकी अधिकांश कृतियाँ पुरस्कृत हैं। पूवण्णन तमिल में बाल-साहित्य की रचना करने वालों में अग्रगण्य हैं।

पूविनशिरिप्पु *(त० कृ०)*

यह पेरियस्वामी तूरन (दे०) के निबंधों का संग्रह है। इसमें लेखक के सत्रह निबंध संगृहीत हैं। विभिन्न साहित्यिक कृतियों के अध्ययन एवं एकांत भ्रमण के समय मन में उत्पन्न भावनाओं को ही लेखक ने इन निबंधों में व्यक्त किया है। इन निबंधों में जीवन के विविध पक्षों, प्राकृतिक दृश्यों, खेलों, विविध प्रकार की कविताओं आदि का वर्णन किया गया है। अत्यंत सरल-सरस शैली में रचित इन निबंधों द्वारा तूरन ने विश्वबंधुत्व की भावना का प्रचार किया है। तमिल में निबंध-साहित्य की कृतियाँ बहुत कम हैं। तूरन तमिल के प्रमुख निबंधकारों में से हैं। उनके इस निबंध-संग्रह का तमिल निबंध साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

पृथ्वीचंद्र चरित्र *(गु० कृ०)* [रचना-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

'पृथ्वीचंद्र-चरित्र' जैन कवि माणिक्य सुंदर सूरि [जिन्हें माणिक्य सूरि (दे०) भी कहा गया है] की प्रसिद्ध गद्य-रचना है।

इस रचना में गुजराती के प्राचीनतम गद्य के नमूने प्राप्त होते हैं। यह लय-प्रधान गद्य-कथा पाँच खंडों में विभक्त है। गद्य-शैली में बाणभट्ट (दे० बाण) का अनुकरण किया गया प्रतीत होता है। इसमें सभा, नगर, सेना, जंगल, युद्ध, स्वयंवर, रूप-गुण-कथन, वर्षा, वसंत, प्रभात, रात्रि आदि के वर्णन बहुत भव्य, प्रभावशाली एवं सजीव हैं।

पंद्रहवीं शती के प्रारंभ में गुजराती-गद्य का क्या रूप था : इसे जानने में यह रचना बहुत सहायता करती है। गद्य-शैली की दृष्टि से भी इस रचना का विशेष महत्व है।

पृथ्वीराज *(हिं० पा०)*

इतिहास का आधार बनाकर लिखे गये साहित्य में कल्पना मुक्त होती है; साहित्यकार तथ्यों के स्थान पर उनके पीछे छिपे सत्य के उद्घाटन के लिए गवेषणा से अधिक अनुमान का आश्रय लेता है, समष्टि के स्थान पर व्यष्टि के चित्रण पर अधिक बल देता है और स्रष्टा होने के कारण पात्रों के बाह्य की अपेक्षा अंतर का चित्रण करता है। 'पृथ्वीराज रासो' (दे०) के नायक पृथ्वीराज ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। उनके जीवन-वृत्त और चरित्र का अंकन करते समय चंदबरदायी (दे०) ने ऐतिहासिक तथ्यों की नितांत उपेक्षा न करते हुए भी स्वच्छंद कल्पना से काम लिया है। अजमेर नरेश सोमेश्वर और दिल्लीश्वर अनंगपाल की कन्या कमला के पुत्र पृथ्वीराज का जन्म सं० 1115 अनंद विक्रम शाक में हुआ। वे चौदह विद्याओं और षट्भाषाओं में निष्णात थे। उन्होंने 11 वर्ष से 36 वर्ष तक की आयु में 14 विवाह किए जिनमें से कुछ का साक्षी इतिहास है तो कुछ प्रबल जनश्रुति पर अनुमानित किए गये हैं। जयचंद की पुत्री संयोगिता का अपहरण तथा विवाह यद्यपि दानपत्र, ताम्रपत्र, शिलालेख आदि से प्रमाणित नहीं तथा जनश्रुति के कारण इतिहासकारों तक ने उसकी चर्चा की है। इन सभी विवाहों में युद्ध हुआ—चाहे उसका कारण वचन-पालन, शरणागत की सहायता नायिका का संदेश पाकर उसकी रक्षा के लिए युद्ध-अभियान कुछ भी रहा हो। इन युद्धों में कभी शौर्य-पराक्रम से काम लिया गया तो कभी छल-कपट से। शशिव्रता को पाने के लिए पृथ्वीराज कापालिकों के वेश में सात सहस्र योद्धाओं को लेकर देवगिरि जा पहुँचे थे।

पृथ्वीराज अद्भुत शूरवीर और पराक्रमी थे, शरणागत को क्षमा करना उनकी आन थी, अतः उन्होंने मुहम्मद गोरी को कई बार प्राण-दान दिया; बाद में चल कर उन्हें इसका भारी मूल्य भी चुकाना पड़ा। भोग-विलास के प्रति उनका झुकाव आरंभ से ही दृष्टिगत होता है। जब वे सं० 1411 में दक्षिण-दिग्विजय के लिए निकले

तो वहाँ से कर्नाटिका नामक वेश्या को ले आए और उसकी नृत्य-कला पर मुग्ध हो उसे अपने अंतःपुर में रख लिया। विलास की परिणति हुई संयोगिता-स्वयंवर के बाद के दिनों में जिसके कारण शहाबुद्दीन गोरी से पराजय हुई, और पृथ्वीराज बंदी बने।

विलासिता सनक को जन्म देती है। पृथ्वीराज की सनक दो घटनाओं से प्रमाणित होती है—नागौर की बत्तीस हाथ ऊँची चित्रशाला से योद्धाओं को नीचे कूदने की आज्ञा देना और ऐसा करने पर लोहाना के लहू-लुहान होने पर उससे क्षमा माँगना, उसे पाँच हजार गाँव तथा आजानुबाहु की उपाधि देना। प्रिय हाथी श्रृंगारहार के मदोन्मत्त होने पर जब चामंडराय ने उसे मार डाला तो उसे पुरस्कार देने के स्थान पर उनके पैरों में बेडियाँ डलवाना भी पृथ्वीराज के सनकी होने का प्रमाण है। उनके स्वभाव से ईर्ष्या, द्वेष आदि प्रतिहिंसा के भाव भी विद्यमान थे। मंत्री कैमास और नर्तकी कर्नाटिका को परस्पर आकर्षण-पाश में बिद्ध देखकर शब्द-भेदी बाण द्वारा रति निरत कैमास का बध करना उनकी इसी संकीर्ण मनोवृत्ति का परिचायक है।

पृथ्वीराज अद्भुत पराक्रमी थे, शब्द भेदी बाण चलाने में निष्णात थे, क्षत्रिय-धर्म का पालन बड़ी निष्ठा से करते थे पर युग की सामंती व्यवस्था के दोषों से मुक्त न हो सके और फलतः देश को पतन के गर्त में ढकेलने में उनका उत्तरदायित्व कम नहीं।

पृथ्वीराज रासो *(हिं० कृ०)*

उक्त महाकाव्य के लेखक चंदबरदाई (दे०) हैं जो कि संभवतः दिल्ली-सम्राट् पृथ्वीराज (दे०) (बारहवीं शती ई०) के दरबारी कवि थे। इस ग्रंथ के पाँच रूपांतर उपलब्ध हैं—बृहत्, मध्यम, लघु, लघुतम और नवीन। किंतु ये सभी अप्रामाणिक हैं। कारण, समय समय पर अन्य भाट-कवियों द्वारा इसकी कलेवर वृद्धि होती चली गई। बृहद् रूपांतर में 39 समय (सर्ग) हैं और 16306 पद्य। इसकी कथा पृथ्वीराज के अनेक युद्धों से संबंधित है, साथ ही, उनके अनेक विवाहों के साथ भी। ग्रंथ वीररस-प्रधान है, दूसरा स्थान श्रृंगार रस का है। सहायक रूप में अन्य रसों का भी समावेश है। भाषा डिंगल (दे० डिंगल पिंगल) अथवा पिंगल (दे० डिंगल पिंगल) मानी जाती है, जिसमें ब्रजभाषा, राजस्थानी, खड़ी बोली के अतिरिक्त अरबी और फारसी शब्दों का प्रयोग है। ग्रंथ में लगभग सत्तर छंदों और विषयानुकूल अनेक अलंकारों का प्रयोग है। वीर और रौद्र रसों के प्रसंगों में कठोर पदावली, और श्रृंगार रस के प्रसंगों में कोमल पदावली की छटा दर्शनीय है। सेना की साज-सज्जा, अस्त्रों शस्त्रों का झंकार, युद्धभूमि में घमासान-युद्ध, शत्रु का पलायन तथा विजयोल्लास के अतिरिक्त नायक-नायिका का मिलन और वियोग—ये सभी प्रकरण कवि कल्पना की सुंदर सृष्टि हैं। यह ग्रंथ हिंदी-साहित्य का प्रथम विशालकाय महाकाव्य है और इस नाते इसका रचयिता हिंदी का आदि कवि माना जाता है।

पेंडसे, श० दा० *(म० ले०)*

पेंडसे भागवत धर्म की आधारस्तंभ पुस्तक 'ज्ञानेश्वरी' (दे०) के विख्यात अध्येता, आलोचक और चिंतक हैं इन्होंने 'श्री ज्ञानेश्वराचे तत्त्वज्ञान' (1941 ई०) नामक ग्रंथ में अन्वयव्यतिरेकात्मक शैली में 'ज्ञानेश्वरी' के तत्त्वज्ञान का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनका विवेचन सर्वत्र संतुलित एवं निष्पक्ष है। विरोधियों का खंडन करते हुए भी ये सौम्य ही रहे हैं। 'श्री ज्ञानेश्वराचे तत्त्वज्ञान' इनका पी-एच० डी० का शोध-प्रबंध है। भागवत धर्म के इतिहास के तीसरे खंड के लेखक भी ये ही हैं।

बच्चों को मराठी साहित्य के मर्म से परिचित कराने के लिए पेंडसे ने सरल शैली में 'महाराष्ट्राचा सांस्कृतिक इतिहास' नामक पुस्तक भी लिखी है।

पेंडसे, श्री० ना० *(मल० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

आंचलिक उपन्यासकार के रूप में परिचित श्री पेंडसे ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण वातावरण, ग्रामीण व्यक्तियों और उनके जीवन के अत्यंत हृदयग्राही चित्र उपस्थित किए हैं। इनके उपन्यासों की लीलाभूमि कोंकण है। अपने प्रथम उपन्यास 'एलगार' में स्वतंत्रता से पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर हिंदू-मुसलमानों के परस्पर संबंध चित्रित करते हुए लेखक ने यह बताया है कि हिंदू मुस्लिम एकता की बुनियाद सच्ची मानवता है। दूसरे उपन्यास 'हद्पार' में राजे मास्टर नामक एक देहाती अध्यापक के मानवतापूर्ण सद्गुणों का दिग्दर्शन कराया है। इसी 'गारंबीचा बापू' (दे०) में गारबी नामक देहात के एक नटखट, हट्टे कट्टे पर सत्त्वशील व्यक्ति का चित्र है। उसके पात्रों के अंतर्जीवन तथा आंतरिक भावनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण करने में जितना कुशल है उतना ही प्राकृतिक दृश्य—सावित्री नदी, सूर्योदय

आदि के अंकन में। उनके पात्रों की चरित्र-रेखा यथार्थ पर आधारित होने के कारण जितनी प्रतीतिकर है उतनी ही अंतर्भेदिनी दृष्टि एवं अनुभूति के कारण मार्मिक। कथा-वस्तु के विन्यास, मार्मिक चरित्र-चित्रण, मानवतावादी दृष्टिकोण तथा प्रकृति के रम्य चित्रों के कारण इनके उपन्यास पाठकों को सहज ही मुग्ध कर लेते हैं सरल, प्रांजल, अकृत्रिम, अर्थव्यंजक और रसभीनी भाषाशैली इनकी कृतियों को और भी संवेद्य बना देती है।

प्रमुख कृतियाँ—'एल्गार', 'हद्पार' (दे० विसूराजे), 'गारंबीचा बापू', 'यशोदा', 'कलंदर', 'रथचक्र' (दे०) आदि।

पेकमेडलु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

यह श्रीमती मुप्पाळ्ळ रंगनायकम्मा (दे०) का प्रसिद्ध उपन्यास है। 'ताश के महल' के नाम से यह हिंदी में भी प्रकाशित हो चुका है। अब नेशनल बुक ट्रस्ट के द्वारा सभी भारतीय भाषाओं में इसका अनुवाद किया जा रहा है। इसमें नारी-मानस के नवोन्मेष का सशक्त, सहज और सजग चित्रण पाया जाता है। इसमें एक ऐसी नारी का चित्रण है जो पारिवारिक अशांति, पति की निष्ठुरता और असहाय परिस्थितियों से समझौता करने में असफल होकर अंततः अपने प्रिय पुत्र को भाग्य के हाथों छोड़ संसार से सदा के लिए विदा हो जाती है। दांपत्य-जीवन की असफलता का जितनी अनुभूति और तादात्म्य के साथ इसमें चित्रण किया गया है उतना किसी दूसरे उपन्यास में मिलना कठिन है।

पेटकोपदेस *(पा० कृ०)*

यह एक अत्यंत प्राचीन रचना है। इसके रचयिता कच्चायन (दे०) या महाकच्चायन हैं जो भगवान बुद्ध के अत्यंत प्रतिष्ठित शिष्यों में एक हैं तथा जिन्हें 'मज्झिमनिकाय' में बुद्ध के शब्दों का सर्वोच्च व्याख्याता कहा गया है। इस पुस्तक की रचना 'नेत्ति' (दे० कच्चायन) के बाद हुई और यह उसी की विषय-वस्तु को आगे बढ़ाती है। इसमें भी शिष्यों के उपदेश के लिए 'त्रिपिटक' (दे०) का सार सरलता के साथ समझाया गया है। पुस्तक को देखने से ही ज्ञात होता है कि इसकी रचना 'नेत्ति' के बहुत बाद नहीं की गई होगी। बौद्ध धर्म के सिद्धांतों तथा 'त्रिपिटक' विषयवस्तु को व्यवस्थित रूप देने एवं सामान्य पाठक के लिए हृदयंगम बनाने का यह सबसे पहला प्रयास है। इस पुस्तक को ब्रह्मा के बौद्ध 'त्रिपिटक' में सन्निविष्ट करते हैं। किंतु लंका में इस पुस्तक को इस प्रकार की मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी।

पेतवत्थु *(पा० कृ०)*

यह 'सुत्तपिटक' (दे०) में 'खुद्दकनिकाय' के अंतर्गत एक रचना है। जिसमें इधर-उधर घूमने वाली अशांत तथा पीड़ित मृतात्माओं (प्रेतों) से नारद इत्यादि कोई व्यक्ति उसकी प्रेतयोनि प्राप्ति का कारण पूछता है और वह अपने किसी पाप का बखान करता है जिससे उसे उस प्रकार की योनि में भटकना पड़ा। यह परवर्ती रचना है जो बाद में 'त्रिपिटक' (दे०) में जोड़ी गई है। इसी प्रकार की रचना 'विमानवत्थु' (दे० सुत्तपिटक) है जिसमें स्वर्ग प्राप्ति का कारण बतलाया गया है।

पेद्दन्ना, अल्लसानि *(ते० ले०)* [समय—1470 ई० से 1535 ई० तक]

पेद्दन्ना वसिष्ठ गोत्रज तथा ऋक्शाखाध्यायी ब्राह्मण थे। इनके पिता चोक्कनामात्य थे। इन्होंने शठगोपयति से शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की। तत्कालीन महान् सम्राट् श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) के आस्थानकवियों में ये सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। संस्कृत तथा तेलुगु दोनों भाषाओं पर इनका असाधारण अधिकार था। श्रीकृष्णदेवरायलु के प्रशासन-काल में ये मंत्री तथा नायंकर पदों पर भी सुशोभित रहे।

कवि पेद्दन्ना का साहित्यिक जीवन अत्यंत सफल एवं सरस था। इनकी कृतियों में केवल 'लक्षणसारसंग्रहमु' (दे०) तथा 'मनुचरित्रमु' (दे०) अब उपलब्ध हैं। 'हरिकथासारमु' एक अन्य काव्यकृति है जिसमें से कतिपय छंदों का उल्लेखन परवर्ती कवियों के रीति-ग्रंथों में पाया जाता है। परंतु यह अनुपलब्ध है। श्रीकृष्णदेवरायलु ने 'भुवन-विजय' (दे०) नामक अपनी आस्थान सभा में तेलुगु एवं संस्कृत शब्दों को समप्रधानता देते हुए आशुकविता के लिए उपस्थित कवियों को निमंत्रित किया पर कोई प्रस्तुत नहीं हुआ। तब रायलु ने कुछ निराशा के साथ अपने प्रश्न को दुहराया कि क्या मेरी सभा में एक भी ऐसा विद्वत्कवि नहीं है जो वांछित आशुकविता का प्रदर्शन कर स्वर्णकटक का अधिकारी बन सके। इस पर अल्लसानि पेद्दन्ना सभा

मे उठ खडे हुए और धारावाही रूप मे तीस चरणो का उत्पलमालिका छद सभासदो को सुनाया जिसमें क्रमश तेलुगु शब्दो का प्रयोग प्रथम पद्रह चरणो मे तथा संस्कृत-समासो का प्रयोग सोलहवें चरण से लेकर तीसवें चरण तक किया गया था। इस अभूतपूर्व काव्यकौशल पर मुग्ध होकर राजा ने अपने हाथ से तत्काल स्वर्णकटक पेद्दन्ना के वामचरण मे पहनाया और कवि को आध्रकविता पितामह नामक उपाधि से विभूषित किया। यह साहित्यिक घटना 1518-1519 ई० के बीच घटित हुई होगी। 1522 ई० के आसपास रायलु की अनुमति से पेद्दन्ना ने 'मनुचरित्रमु' अथवा 'स्वारोचिष मनुसभव' की सर्जना की। यह काव्य तेलुगु-साहित्य का सर्वागसपूर्ण प्रथम प्रबध-काव्य माना जाता है। यही तेलुगु के पचमहाकाव्यो मे प्रथमगण्य है।

पेराशिरियर *(त० ले०)* [समय—तेरहवी-चौदहवी शती ई०]

'तोलकाप्पियम्' (दे०) के व्याख्याकारो मे ये भी एक हैं। इनके द्वारा रचित पूरी व्याख्या उपलब्ध नही हुई; केवल तृतीय खड—काव्यशास्त्र—के कुछ अध्यायो की व्याख्या उपलब्ध हुई है। इनकी शैली अन्य व्याख्याओ की शैली से भिन्न और विलक्षण है। इनकी भाषा सरल, विचारपूर्ण और विवेचनात्मक है। तमिल गद्य-शैली के निर्माताओ मे इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होने अपने समय के अथवा अपने पूर्ववर्ती तमिल-साहित्य से जो उदाहरण दिए हैं, वे तमिल-शोधार्थी के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

पेरिन्चक्कोटन् *(मल० पा०)*

'रामराजा बहदूर' (दे०) नामक ऐतिहासिक उपन्यास सि० वि० रामन् पिळ्ळा (दे०) की कृति है और उसके एक पुरुष-पात्र का नाम है पेरिन्चक्कोटन्।

पेरिय आळवार *(त० ले०)* [समय—ईसा की सातवी शती के मध्य भाग से आठवी शती के मध्य भाग तक]

साप्रदायिक ग्रथो के अनुसार इनका समय कलियुग 3056 ई० पू० है। पेरिय आळवार तमिल प्रात के प्रमुख वैष्णव सतो मे से हैं। इनका जन्म विष्णु के परम भक्त मुकुद पट्टर के घर हुआ। सदा विष्णु को चित्त मे धारण करने के कारण इन्हें 'विष्णुचित्त' नाम दिया गया। इन्हें विष्णु के वाहन गरुड का अवतार कहा जाता है। प्रसिद्ध है कि पेरिय आळवार ने तत्कालीन पाड्य राजा वल्लभदेव की सभा मे अनेक विद्वानो को शास्त्रार्थ मे परास्त कर 'पट्टर पिरान' (ब्राह्मण-श्रेष्ठ) की उपाधि पाई थी। इनकी दो रचनाएँ हैं—'तिरुप्पल्लाडु' और 'पेरियाळवार तिरुमोलि'। 'तिरुप्पल्लाडु' मे जहाँ भगवद्प्रशसा है वहाँ 'पेरियाळवार तिरुमोलि' मे कृष्ण की बाललीला के पद सगृहीत है। पेरियाळवार का मन विष्णु के विभिन्न अवतारो मे कृष्णावतार मे विशेष रूप से रमा और कृष्ण के सभी रूपो मे भी पेरियाळवार उनके बालरूप पर मुग्ध थे। अन्य आळवारो ने जहाँ भगवद्अनुग्रह की याचना की है वहाँ इस आळवार ने ईश को शिशुवत् मानकर उनके प्रति मगलकामनाएँ व्यक्त की हैं। इसी से इन्हें 'पेरिय (महान) आळवार' कहा गया। पेरिय आळवार 'पिळ्ळै तमिल' शैली के जन्मदाता कहे जाते हैं जिसके अतर्गत नायक अथवा नायिका की बाल-लीलाओ का वर्णन किया जाता है। अधिकाश विद्वान आडाळ (दे०) नामक सत कवयित्री को इनकी पोष्य पुत्री मानते है और कुछ विद्वान आडाळ को पेरियाळवार की कल्पना-सृष्टि मानते हैं।

पिळ्ळै, पेरियतंबि *(त० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

इनका जन्म उत्तरी लंका के मट्टूर नामक स्थान मे हुआ था। इन्होने लगभग 35 वर्षों तक लका के राजकीय महाविद्यालय मे तमिल प्राध्यापक के रूप मे कार्य करने के उपरात साहित्य-जगत मे प्रवेश किया। इन्होंने श्रीलका की स्तुति मे 'इळगैमणित्तिरुनाडु' शीर्षक राष्ट्रीय गान की रचना की थी। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—'मट्टूर पदिकम्', मीट्चिपत्तु' और 'भगवद्गीदै वेण्बा।' 'मट्टूर पदिकम्' मे इन्होंने अपनी जन्मभूमि का वर्णन किया है। 'भगवद्गीदै वेण्बा' भगवद्गीता के प्रथम छह अध्यायो का रूपातर है। यह कृति वेण्बा छद में है। इसकी भाषा अत्यत सरस, सरल और प्रभावशाली है। निबधकार और वक्ता के रूप मे भी इन्हें पर्याप्त ख्याति मिली है। ये लका के दो प्रसिद्ध विद्वानों मे से हैं। इन्हें 'पुलवरमणि' (कविमणि) और दूसरे विद्वान सी० गणपति पिळ्ळै को 'पडितमणि' की उपाधि दी गई है। ये तमिल साहित्य और संस्कृति के प्रचार-प्रसार मे लगी प्राय सभी संस्थाओ से संबद्ध हैं। इनकी 'भगवद्गीदै वेण्बा' का तमिल-साहित्य मे विशिष्ट स्थान है।

पेरियपुराणम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती ई०]

रचयिता—चोल साम्राज्य के मंत्री चेक्किलार (शेक्किलार)। चेक्किलार ने इस कृति को 'तिरुत्तोंडर्-पुराणम्' (प्रभु के सेवकों से संबंधित पुराण) नाम दिया था परंतु इसका सर्वप्रचलित नाम 'पेरियपुराणम्' ही है। इसमें तमिल प्रांत में आविर्भूत 63 शैव संतों का जीवन-चरित्र वर्णित है। इनमें प्रमुख हैं अप्पर् (दे०), सुंदरर् (दे०) और संबंदर् (दे०)। इस काव्य में अलौकिक तत्त्वों की प्रधानता है। कवि ने स्थान-स्थान पर संतों के अलौकिक कृत्यों का उल्लेख किया है। शैव संतों की रचनाएँ तिरुमुरै ग्रंथों में संगृहीत हैं। इसकी गणना बारहवें तिरुमुरै के रूप में होती है। इसमें कथा-संघटना के अभाव को देखते हुए कुछ विद्वानों ने इसे महाकाव्य मानने से इनकार किया है। इसके विपरीत अन्य विद्वानों का कहना है कि इसके रचयिता ने 'तिरुत्तोंडर्' शब्द का प्रयोग सुंदरर् के लिए किया है। सुंदरर् की कथा कहते हुए कवि ने प्रसंगवश अन्य संतों से संबंधित विवरण भी दे दिए हैं। उसने संतों का जीवन-चरित लिखने के लिए उनसे संबंधित नाना स्थानों का भ्रमण किया था तथा शिलालेखों और किंवदंतियों का आश्रय लिया था। 'पेरियपुराणम्' में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थिति का, देश के प्राकृतिक सौंदर्य का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। कवि ने इस कृति की रचना यद्यपि शैव सिद्धांतों के प्रतिपादन के लिए की थी तथापि इसका काव्यत्व अक्षुण्ण है। इसकी भाषा सरल एवं सरस है। ऐतिहासिक, धार्मिक, साहित्यिक सभी दृष्टियों से 'पेरियपुराणम्' का महत्व है।

पेरुंकदै *(त० कृ०)* [रचना-काल—सातवीं शती ई०]

पेरुंकदै के रचयिता कोंगुवेल कहे जाते हैं। इनका वास्तविक नाम अज्ञात है। पेरुंकदै का शाब्दिक अर्थ है बृहत्कथा। इस कथा का प्राचीनतम रूप प्राकृत में मिलता है जिसके रचयिता गुणाढ्य (दे०) थे। आज यह कृति अपने संपूर्ण रूप में अप्राप्य है। प्राकृत की इस कृति का आधार लेते हुए विभिन्न भारतीय भाषाओं में नाटकों और काव्यों की रचना की गई है। पेरुंकदै वस्तुतः उज्जैन के राजा उदयन से संबंधित विविध प्रसंगों का संग्रह मात्र है। इसमें उदयन द्वारा सुखद गृहस्थ जीवन का उपभोग करने के उपरांत संन्यास ग्रहण एवं मुक्ति-प्राप्ति का वर्णन है। विद्वानों ने इसे एक जैन महाकाव्य स्वीकार किया है क्योंकि इसमें आदि से अंत तक जैन विचारों, मान्यताओं और जैन धर्म के सिद्धांतों का विवेचन है। कोंगुवेल ने अपनी रचना के द्वारा जैन धर्म का प्रचार करने की चेष्टा नहीं की। उन्होंने कथा को रोचक और आकर्षक बनाने में पूरी शक्ति लगा दी है। इसका रूप बहुत-कुछ संस्कृत महाकाव्यों के समान है। इसकी कथा सर्वत्र सुगठित नहीं है क्योंकि इसमें दो राजाओं—पिता और पुत्र—से संबंधित कथाएँ ली गई हैं। इस महाकाव्य में प्रकृति और मानवीय क्रियाकलाप का विस्तृत वर्णन है। विभिन्न पात्रों के चरित्र-चित्रण में कवि पूर्ण सफल हुआ है। इसे तमिल के महाकाव्यों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

पेरुंतच्चन् *(मल० पा०)*

महाकवि जी० शंकर कुरुप्पु (दे०) के काव्य का प्रधान नायक है 'पेरुंतच्चन्'। जब पेरुंतच्चन् को मालूम हुआ कि उसका पुत्र अपने पेशे में उससे समर्थ निकला तो उसका हृदय ईर्ष्या-दग्ध हो उठा। उसका पुत्र अपना हथियार लेने के लिए उसके पास आता है तो वह घर में आकर बैठता है। सुयोग देखकर पेरुंतच्चन् अपने पुत्र के गले पर हथियार गिरा देता है और बहाना करता है कि उसके हाथ से अकस्मात् हथियार छूट गया जो पुत्र के लिए घातक सिद्ध हुआ। इस प्रकार अहंकारी मानव की भीषण ईर्ष्यावृत्ति का चित्र लेखक ने इसके माध्यम से सहजतापूर्वक उरेहा है।

पेरुंतिणै *(त० पारि०)*

'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ्) नामक काव्य-भेद के सात उपभेद हैं। प्रथम 'कैक्किळै' है और अंतिम यानी सातवाँ 'पेरुंतिणै' है। इन दोनों के बीच पाँच उपभेद (ऐन्तिणै) रखे गये हैं। प्रथम और अंतिम उपभेद अनुचित काम-व्यवहार से संबंधित हैं और औचित्ययुक्त काम-व्यवहार से संबंधित शेष पाँचों से भिन्न हैं। 'पेरुंतिणै' का विषय असंगत काम-व्यवहार है जिसके चार प्रकरणों का उल्लेख किया जाता है [तोलकाप्पियम् (दे०), पोरुळ्, सूत्र 51]। ये प्रकरण इस प्रकार हैं—

(1) नायिका के निकट सुनवाई न होने के कारण नायक का 'मडल्' (ताड़ के घोड़े पर चढ़कर) आत्महत्या पर उतर आना।

(2) अनुचित आयु के (वृद्ध आदि) लोगो का काम व्यवहार।

(3) नायक का कामातिरेकवश उन्मत्त अवस्था मे पहुँच जाना।

(4) सीमातीत कामेच्छा प्रेरित पुरुष द्वारा नारी के प्रति हिंसात्मक कृत्य कर बैठना स्पष्ट है कि असाधारण काम वृत्तियो के लिए 'पेरुतिणै' मे स्थान दिया गया है। यह भी कहा गया है कि इस उपभेद का प्रकरण 'कैक्किळै' दास सेवक आदि निम्नवर्गीय लोगो के व्यवहारोचित है (सूत्र 23)। आठ आर्य विवाह पद्धतियो मे से पारस्परिक प्रेमयुक्त गधर्वपद्धति छोडकर ब्रह्म प्राजापत्य, आर्ष तथा दैव प्रथाएँ 'पेरुतिणै' के समकक्ष मानी जा सकती हैं (सूत्र 105)। उपलब्ध 'सगम पद्य सग्रहो मे 'पेरुतिणै' के उदाहरण रूप गीत केवल दस है और ये 'कलित्तोके' नामक सग्रह मे मिलते है।

पेरेलिसिस (गु० कृ०)

'पेरेलिसिस' चद्रकात बक्षी (दे०) का 210 पृष्ठीय उपन्यास है। उपन्यास का आरभ एक व्यक्ति के द्वारा रात मे देखे गए तीन स्वप्नो से होता है। स्वप्न देखने वाला और कोई नही, अँग्रेजी का प्रोफेसर आरामशाह है। स्वप्न देखने के बाद वह हिलस्टेशन के अपने निवास से घूमने के लिए बाहर निकलता है और एक पत्थर की दीवार के पास अचानक बेसुध हो कर गिर पडता है। उसे बेहोश देख कर रसभरी बचन वाला एक लडका पुलिस स्टेशन को समाचार देता है और पुलिस वाले मिशन अस्पताल को सूचित करत है। एबुलेंस मे उसे उठा कर अस्पताल लाया जाता है। वहाँ उसे पता चलता है कि उसे 'पेरेलिसिस' का आघात हुआ है। यहाँ उसका परिचय अस्पताल की मैट्रन आशिका से होता है। मैट्रन आशिका विधवा है। उसके ऊष्मायुक्त उपचार, व्यक्तिगत स्नेह व ममता से भरे अनेक प्रसगो के साथ साथ उसके अपने अतीत जीवन के प्रसग भी उभरते चलते हैं। फ्लैशबैक पद्धति से लेखक स्पष्ट करता है कि प्रो० आरामशाह की भी एक पत्नी थी, उसकी एक लडकी भी थी। पत्नी अस्वस्थ रहती थी और एक दिन बहुत खून जाने के बाद उसका अवसान हो गया था। प्रो० शाह ने अपनी लडकी मारिशा के साथ भेदभावमूलक सबध न रख कर सुने सबध बनाए थे जो मारिशा के बडे होने पर भी बने रहे। मारिशा अपनी इच्छा से एक केरलो प्रा० जॉर्ज के साथ विवाह कर लेती है। अपने बाप से विदा लेने के बाद वह गर्भावस्था को प्राप्त करती है और सभवत जॉर्ज के अनुचित व्यवहार के कारण आत्महत्या कर लेती है। इस सदमे को भुलाने के लिए ही प्रो० शाह हिलस्टेशन पर आते हैं कि उन्हे पक्षाघात हो जाता है। दूसरी ओर आशिका के साथ प्रो० शाह के सबधो मे वृद्धि की चर्चा है। आशिका की सहानुभूति और स्नेह के परिणामस्वरूप प्रो० शाह स्वस्थ हो जाते हैं और उन्हे अस्पताल से छुट्टी मिल जाती है। जाते समय वे आशिका को ढूँढते है। उन्हे पता चलता है कि आशिका कही बाहर गई हुई है और साँझ होने से पहले नही आ पायेगी। विवश होकर वे अपने निवास-स्थान पर आ जाते हैं। एक बार पुन घूमने निकलते है और जिस स्थान पर उन्हे पक्षाघात हो गया था वहाँ पहुँचते है और और उपन्यास समाप्त हो जाता है। सपूर्ण उपन्यास मे प्रो० शाह के दो जीवनो की चर्चा है एक उन्होने अस्पताल मे जिया और दूसरा जो वे उससे पहले पूरा कर चुके थे। फ्लैशबैक मे कही गई कथा के अलावा इस उपन्यास की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है प्रो० शाह की पक्षाघात अवस्था का चित्रण। दर्द भी कई बार मनुष्य के अस्तित्व की घोषणा करता है उसके जीवित होने का प्रमाण देता है और ऐसे अवसर पर मनुष्य उसे पूरी सच्चाई के साथ जी लेना चाहता है, अपने अस्तित्व को नकार सकने की उसकी सामर्थ्य नही होती—जीवन से निराश व्यक्तियो मे भी नहीं। प्रो० शाह के साथ भी यही होता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास बडा मार्मिक और रोचक है। कुछ स्थलो पर अनावश्यक विस्तार आ गया है जो ऊब पैदा कर सकते हैं।

पैरड्-कडुड्-को (त० ले०)

ये चेरवशीय राजा और सघकालिक कवि थे। तमिल काव्य-परपरा के अनुसार मरुभूमि तथा उससे सबधित प्राकृतिक परिवेश मे विप्रलभ का सरस चित्रण करने मे ये सिद्धहस्त थे, अतएव इनके नाम के साथ सदा 'मरुवणनसीन' विशेषण का प्रयोग किया जाता है। इनके अठहत्तर पद्य सघकालिक सकलन ग्रथो मे उपलब्ध हैं। अन्य कवियो ने भी इस कवि की प्रशसा मे पद्य रचे हैं।

उदाहरण "छायाहीन मरुभूमि मे मरुतरी पर बबूल अपने पद्य फैलाकर छाया करता है, हरिण अपनी छाया मे हरिणी को सुलाता है। ये दृश्य देखकर मेरे प्रियतम

मेरा अवश्य स्मरण करेंगे और प्रवास छोड़ लौट आएँगे।"

पैसा और परछाईं *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1955 ई०]

डा० मुहम्मद हसन (दे०) के इस नाट्य-संकलन में रेडियो-रूपकों के तौर पर लिखे अपने तीन दर्जन नाटकों में से लेखक ने नौ चुने हुए नाटकों का संग्रह प्रस्तुत किया है। इनमें से अधिकतर नाटक आकाशवाणी के विभिन्न स्टेशनों में अनेक बार प्रसारित हो चुके हैं। 'पैसा और परछाईं' नाटक आकाशवाणी द्वारा आयोजित अखिल भारतीय स्तर की प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर चुका है। रेडियो के लिए लिखे जाने के कारण इस संग्रह के नाटकों में कतिपय कलात्मक प्रतिबंध है। ये मात्र ध्वनि, कथोपकथन और संगीत से अपना आशय और अपना वातावरण अभिव्यक्त कर सकते हैं। गति और रंग इनकी पहुँच से बाहर हैं। 'पैसा और परछाईं' के अतिरिक्त इस कृति के अन्य आठ रूपक इस प्रकार हैं—'सुर्ख पर्दे', 'सोने की जंजीरें', 'नज़ीर अकबराबादी', 'नक़्श-ए-फ़रियादी', 'अकबर-ए-आजम', 'इंस्पेक्टर-जनरल', 'हुक्म की बेगम' और 'मेमार-ए-आजम'। ये नाटक इस केंद्रीय भाव के गिर्द घूमते हैं कि सांसारिक सुख-समृद्धि की इच्छा पाप नहीं है। प्रसन्नता व्यष्टिगत नहीं, बल्कि समष्टिगत वस्तु है। मनुष्य की सबसे बड़ी प्रसन्नता इस बात में है कि वह आने वाली पीढ़ियों के लिए जीवन को सुंदर और मधुर बनाने के संघर्ष में भाग ले और इस संदर्भ में वह विजय अथवा पराजय की भावनाओं से सर्वथा असंपृक्त रहे। नयी पीढ़ी को प्रोत्साहित करना और उसमें भावात्मक एकता का संचार कर विपरीत परिस्थितियों को बदलने का साहस प्राप्त करना इस नाट्य-संग्रह का मुख्य संदेश है।

पोइ *(उ० पारि०)*

संस्कृत 'पदी' का पर्यायवाची 'पोइ' है। वीर मित्रोदय की 'आठपोइ', प्रतापचंद्र सिंह देव की 'चउदपोइ' क्रमशः 'अष्टपदी' एवं 'चतुर्दशपदी' के नाम से परिचित हैं। 'पोइ' रचना की प्रत्येक कविता को 'पोइ' कहते हैं। 'पोइ' की संख्या के अनुसार रचना का नामकरण होता है, यथा—'छ.पोइ', 'न-पोइ', 'पंदर-पोइ' आदि। किसी भी रचना में जितनी पोइयों को स्थान दिया जाता है, प्रत्येक पोई में उतने चरण होते हैं तथा प्रत्येक चरण में उतने वर्ण होते हैं। जैसे—'पच्चीस पोइ' में 25 कविताएँ, प्रत्येक कविता में 25 चरण एवं प्रत्येक चरण में 25 वर्ण होंगे, किंतु सर्वत्र इस नियम का पूर्ण पालन दिखाई नहीं पड़ता। वर्णों की संख्या कहीं-कहीं पोइ एवं पद-संख्या के साथ समान नहीं दिखाई पड़ती। प्रत्येक पोइ के आरंभ या अंत में किसी दूसरे छंद में लिखित एक पद होता है।

उड़िया-साहित्य में पोइ एक स्वतंत्र रचना-रीति है, जिसके उत्स के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। कुछ विद्वानों का मत है कि संस्कृत के पट्श्लोकी, अष्टश्लोकी अनुकरण पर 'पोइ' की रचना हुई है। द्वारकादास की 'सप्तपोइ', 'नअपोइ', 'तेरपोइ'; 'कंठदास की 'नअपोइ', 'छः पोइ'; 'गोवर्धन दास की 'पच्चीस पोइ' आदि महत्वपूर्ण पोइ-रचनाएँ हैं।

पोक्कन् *(मल० पा०)*

यह तिक्कोटीयन् (दे०) के ऐतिहासिक उपन्यास 'चुवन्न कटल्' का मुख्य पात्र है। यह एक मछुआरा युवक है जिसका अपहरण पुर्तगाली सेना करती है। वर्षों की गुलामी के बाद इसे पुर्तगालियों का विश्वास और उनकी सेना में प्रवेश प्राप्त हो जाता है। सामूतिरि के विरुद्ध युद्ध में पुर्तगालियों की सेना की तरफ़ से लड़ते हुए इसे अपने देश के प्रति अपना कर्तव्य निभाने और अपने अपमान का बदला लेने का अवसर मिलता है और यह अपना जीवन बलिदान करके पुर्तगालियों को परास्त करता है।

पोक्कन् धीरोदात्त नायक है और उसका चरित्र अपने लक्ष्य की पूर्ति के दृढ़ संकल्प की भावना से उज्ज्वल है। मलयाळम की ऐतिहासिक कथाओं में पुर्तगाली आक्रमण से संबंध रखने वाले कथापात्रों में पोक्कन् सर्वप्रमुख है।

पोट्टेक्काट, एस० के० *(मल० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

इनका जन्म-स्थान कालीकट शहर है। इनकी शिक्षा कालीकट नगर में ही हुई थी। प्रारंभ में अध्यापक रहे, बाद में इन्होंने छोटे-मोटे दूसरे काम भी किए। 1949 ई० में ये पर्यटन में प्रथम बार लगे और इस पर्यटन ने पोट्टेक्काट् के साहित्यकार को मुखरित कर दिया। इन्होंने सार्वजनिक एवं राजनीतिक जीवन में भी सक्रिय भाग लिया है। 1962 ई० में ये लोक सभा के सदस्य भी चुने गए थे। आजकल ये साहित्यिक क्षेत्र में ही कार्यरत

हैं। 1971 ई० में केरल सरकार ने इन्हें केरल साहित्य अकादेमी का उपाध्यक्ष मनोनीत किया था।

श्री पोट्टेक्काट् ने कविता के क्षेत्र में ही अपना साहित्य-सृजन प्रारंभ किया था किंतु शीघ्र ही ये कहानी, उपन्यास और यात्रा-संस्मरण के क्षेत्रों में आ गए। इन क्षेत्रों में इनकी प्रतिभा निखर उठी है। 1928 ई० में प्रकाशित 'राजनीति' इनकी सर्वप्रथम कहानी है। इनका पहला उपन्यास है 'नाटन् प्रेमम्' (देहाती प्यार)। विविध भावों, प्रसंगों और पात्रों का कवित्वपूर्ण वर्णन समुचित शब्दों में करने की क्षमता इनकी विशेष सफलता का कारण है। यात्रा-वर्णन में ये केरल भर में बेजोड़ हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों का कवित्वपूर्ण शब्दों में वर्णन इनकी रचनाओं में दर्शनीय है। ये यात्रा साहित्य के प्रथम प्रदर्शक कहे जाते हैं। अफ्रीका, बालि-द्वीप आदि इनके यात्राविवरण के विशेष क्षेत्र हैं। 'राज-मल्लिका' (दे०) 'वनकौमुदी', 'विषकन्यका', आदि इनके प्रशस्त कहानी संग्रह तथा उपन्यास हैं। इनके नये उपन्यासों में किसी छोटे शहर या गाँव की विस्तृत जीवन गाथा का विशद चित्रण करने की नयी शिल्पविधि स्वीकार की गई है। इनका उपन्यास 'ओरु तेरुविंटे कथा (एक गली की गाथा) केरल साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत हुआ है।

उपन्यास एवं कहानी के क्षेत्र में श्री पोट्टेक्काट् का नाम अत्यंत लोकप्रिय है।

पोतना चरित्रमु *(तें० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

वानमामलै वरदाचार्युलु (दे०)-कृत यह प्रसिद्ध महाकाव्य बम्मेर पोतना (दे०) के जीवन-चरित्र से संबद्ध है जिन्होंने *संस्कृत-महाभागवत का* तेलुगु में प्रशस्त अनुवाद किया है। पोतना का जीवन तथा काव्य दोनों ही भक्ति से ओतप्रोत है। इसी गुण से आकृष्ट होकर वरदाचार्युलु ने भक्तकवि पोतना के जीवन-चरित्र पर 12 आश्वासों का एक महाकाव्य लिखा। पोतना के भक्तिमय जीवन तथा काव्य के गुणों को अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित करना ही लेखक का ध्येय रहा है। रस, अलंकार, वर्णन, शैली आदि सभी दृष्टियों से यह एक उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसकी दो प्रमुख विशेषताएँ हैं—एक महाकवि पोतना के भक्ति-निमज्जित उज्ज्वल जीवन की प्रस्तुति, और दूसरी आधुनिक युग में परंपराप्राप्त काव्य रूप की बहुत-कुछ नये ढंग से आकर्षक अभिव्यक्ति।

पोतना बम्मेर *(तें० ले०)* [*समय—पन्द्रहवीं शती ई०*]

ये निजाम प्रांत के अंतर्गत 'आरुमल्लु' नामक स्थान के रहने वाले थे। आरंभ में ये शिव के उपासक थे पर क्रमशः विष्णुभक्त बन गए। इनकी मुख्य वृत्ति खेती थी। पर इनको पारिवारिक जीवन गरीबी में ही बिताना पड़ा। ये अनन्य भक्त तथा अनुपम कवि भी थे। कुछ प्रचलित दंत-कथाओं के आधार पर बताया जाता है कि ये श्रीनाथुडु (दे०) नामक महान् तेलुगु कवि के साले थे। इन्होंने राजाश्रय की अवहेलना कर अपने 'भागवत' को श्रीरामचंद्रजी को समर्पित कर दिया। इनकी ये रचनाएँ हैं—'भोगिनीदंडकमु', 'नारायणशतकमु', 'भागवतमु', (दे० 'महाभागवतमु') और 'वीरभद्रविजयमु'। इनमें प्रथम दोनों रचनाओं के कर्तृत्व के बारे में विवाद है। 'भोगिनीदंडकमु' में एक वेश्या नायिका है। यह संस्कृत की दंडक-रचना के अनुसार लिखा गया है। 'नारायणशतकमु' भक्तिपरक मुक्तक रचना है। इनका भागवत संस्कृत के श्रीमद्भागवत का समग्र अनुवाद है। इस अनुवाद के कुछ अंश नष्ट हो गए और बाद में गंगन, सिंगन तथा नारय नामक कवियों ने उसे पूरा किया था। 'वीरभद्र-विजयमु' दक्षाध्वरध्वंस से संबद्ध चार आश्वासों का एक पद्य-काव्य है। भागवतानुवाद के आरंभ में इन्होंने प्रतिज्ञा की कि इनकी रचनाएँ संस्कृत तथा तेलुगु दोनों भाषाओं की मधुरिमा का प्रकट करने वाली रहेंगी। इनका भागवत स्वेच्छानुवाद है न कि प्रतिशब्दानुवाद। भक्ति के आवेश में इन्होंने मूलग्रंथ के कुछ उपाख्यानों का अपने अनुवाद में विस्तार किया है। इनकी कविता कलापूर्ण है। बिना किसी प्रयत्न के प्रयुक्त अनुप्रास जैसे सुंदर शब्दालंकारों का प्रयोग इनकी रचनाओं में पग-पग पर पाया जाता है, जिसके द्वारा संगीत तथा साहित्य का समन्वित रूप प्रस्तुत होता है। कथानक, वर्णन, अलंकार और शैली आदि सभी भक्तिरस से रंजित होकर हृदयंगम होते हैं। 'प्रह्लादचरित्र', 'गजेंद्रमोक्ष', 'ध्रुवोपाख्यान', 'वामन-चरित्र' आदि अनेक कथाएँ इनकी कविता को मौलिक तथा सर्वोच्च प्रमाणित करती हैं। इसीलिए साहित्य के मर्मज्ञ कहते हैं कि पोतना के द्वारा अनूदित भागवत मूल-ग्रंथ से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। तुलसी (दे०) तथा सूर (दे०) दोनों की विशेषताएँ पोतना में एक साथ पाई जाती हैं। हिंदी प्रांत में तुलसी के रामचरितमानस (दे०) की तरह तेलुगु प्रांत में इनका 'भागवतमु' अत्यंत लोकप्रिय हुआ। तेलुगु के साहित्य-गगन में तिक्कना (दे०)

को सूर्य तथा पोतना को चांद माना जाता है।

पोतुवाळ्, अंपाटि नारायण *(मल० ले०)*

इनका जन्म 1871 ई० में तृश्शवाट में हुआ और देहावसान 1936 ई० में हुआ। हाईस्कूली शिक्षा अपने शहर में पूरी करने के बाद इन्हें सरकारी सेवा स्वीकार करनी पड़ी। कविताओं से ही इनके साहित्यिक जीवन का प्रारंभ हुआ परंतु इनका विशेष योगदान कहानी-विधा को समृद्ध करने में हुआ। इतिहासकार 'उळ्ळूर' के शब्दों में ये मलयाळम कहानी-वाङ्मय के पिता हैं। इनके समसामयिक अप्पन् तंपुरान् और इनकी गद्य-शैली और विषयों में बहुत सादृश्य है। पोतुवाळ् की कहानियाँ शृंगारिकता से दूर थी और इनके विषयों में नवीनता थी। उनमें यथेष्ट कलात्मकता भी है। हास्य-प्रियता इनके संवादों की एक विशेषता थी और अनुप्रासों का लोभ इनकी कमजोरी थी। 'सौधम्' के तीन खंडों के अलावा 'केरळ-पुत्रन्' (उपन्यास) और 'मोचनम्' (गद्य-नाटक) इनकी रचनाएँ हैं।

पोद्दार, कन्हैयालाल *(हिं० ले०)*

आधुनिक युग में संस्कृत-काव्यशास्त्र को लक्ष्य में रखकर हिंदी खड़ी बोली गद्य में जिन्होंने ग्रंथ-निर्माण किया है, उनमें सेठ कन्हैयालाल पोद्दार का अन्यतम स्थान है। इनके दो ग्रंथ अति प्रसिद्ध है—(1) 'संस्कृत-साहित्य का इतिहास' (दो भाग), (2) 'काव्यकल्पद्रुम' (दे०) (दो भाग : रसमंजरी और अलंकार-मंजरी)। प्रथम ग्रंथ का नाम 'संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास' होना चाहिए था। इसके प्रथम भाग में भरत (दे०) से लेकर जगन्नाथ (दे०) पर्यंत संस्कृत के प्रख्यात काव्याचार्यों के ग्रंथों एवं उनके मतव्यों पर प्रकाश डाला गया है, और द्वितीय भाग में अलंकार (दे०), रीति (दे०), ध्वनि (दे०), वक्रोक्ति (दे०) और रस (दे०) संप्रदायों का स्वच्छ एवं संक्षिप्त प्रतिपादन है। इन दोनों भागों के निर्माण में ग्रंथकार ने इस विषय में संबंध अँग्रेजी ग्रंथों का पर्याप्त आधार ग्रहण किया है। इनका दूसरा ग्रंथ 'काव्यकल्पद्रुम' प्रायः मम्मट (दे०)-रचित 'काव्य प्रकाश' (दे०) और विश्वनाथ (दे०)-रचित 'साहित्य-दर्पण' (दे०) पर आधारित एक व्यवस्थित, प्रामाणिक किंतु संक्षिप्त काव्यशास्त्रीय ग्रंथ है। लक्षण एवं विवेचन-भाग खड़ी बोली गद्य में है, तथा उदाहरण-भाग प्रायः ब्रजभाषा-पद्य में। यह संस्कृत के ही पद्यों का अनुवाद है। इस ग्रंथ में मौलिकता का प्रायः अभाव है, फिर भी काव्यशास्त्र के जिज्ञासु हिंदी के पाठक के लिए यह शुद्ध सामग्री प्रस्तुत करता है, और इसी में ग्रंथकार का महत्व निहित है।

पोन्कुरिशु तोमा *(मल० पा०)*

मुहम्मद (दे०) बशीर वैकम की लंबी कहानी 'आनवारियम् पोनकुरिशुम्' का पात्र। तोमा बदनाम चोर है, परंतु वह गरीबों की सहायता भी करता है। वह पुलिस के एक दरिद्र सिपाही की सहायता करने के लिए गिरजा-घर से सोने का सलीब चुराता है। चोरी की तलाशी के समय वह पुरोहित को इस तर्क से चुप कर देता है कि ईसा को लकड़ी की सलीब पर चढ़ाया गया था और गिरजाघर में सोने की सलीब का कोई स्थान नहीं है।

पोन्कुरिशु तोमा का चरित्र जहाँ एक ओर नीच प्रवृत्तियों के बीच में भी मानवीय सद्भावना के अस्तित्व का बोध कराता है वहीं दूसरी ओर धर्म के क्षेत्र में विद्यमान अनावश्यक आडंबर का उपहास भी करता है। बशीर के सहज व्यंग्यप्रिय और विनोदशील पात्रों में पोन्कुरिशु तोमा का स्थान प्रमुख है।

पोन्मलर *(त० कृ०)* [रचना-काल—1965 ई०]

तमिल के प्रसिद्ध उपन्यासकार अखिलन (दे०) द्वारा रचित। इसमें स्वतंत्रता के बाद की देश की परिवर्तित राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए टूटते हुए सांस्कृतिक मूल्यों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया गया है। अखिलन के अनुसार समाज में तिरुपूर्ति जैसे दुर्योधन अधिक हैं। वे समाज के दुर्बल, निराश्रित व्यक्तियों पर मनमाना अत्याचार करते हैं। उनके सामने आरुमुगम जैसे सच्चे जनसेवक और तिरुज्ञानम जैसे सज्जन अपने जीवनोद्देश्य की सिद्धि में सफल नहीं हो पाते। उपन्यास में मद्यपान, जुआ, चोरी, व्यभिचार, हत्या, चोरबाजारी, घूसखोरी आदि सामाजिक बुराइयों का उद्घाटन है। उपन्यास की कथा अत्यंत रोचक है। उसमें सहज प्रवाह है। कथा और पात्रों का अभिन्न संबंध है। विभिन्न पात्र घटनाओं का निर्माण करते हैं और घटनाएँ उनके चरित्र में विकास एवं परिवर्तन लाती हैं। उपन्यास में शंकरी आधुनिक नारी-समाज का, तिरुज्ञानम भावी

समाज के श्रेष्ठ नागरिकों का और तिरुमूर्ति वर्तमान समाज के नीच व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपन्यास में शकरी का चरित्र सर्वाधिक प्रभावशाली है। उपन्यास का शीर्षक 'पोन्मलर' (स्वर्ण-पुष्प) उसी की ओर सकेत करता है। डाक्टर के रूप में वह व्यक्तिगत रोगों के साथ-साथ समाजगत रोगों के समूल विनाश के लिए प्रयत्नशील होती है। सपूर्ण उपन्यास नाटकीय शैली में रचित है। नाटक के समान इसमें आरभ, विकास, चरम सीमा, नियति और उपसहार सभी स्थितियों की योजना है। तमिल के आधुनिक सामाजिक उपन्यासों में 'पोनमलर' का विशिष्ट स्थान है।

पोन्न *(क० ले)*

कन्नड-साहित्य में पप (दे०), पोन्न और रन्न (दे०) रत्नत्रय नाम से विख्यात है। ये तीनों कवि प्राय समकालीन थे। पोन्न ने अपने विषय में बहुत कम कहा है, परतु आत्मस्तुति अधिक की है। सभवत इनका जन्म स्थान वेंगिमडल का पुगनूरु मे नागमय्या नाम के एक जैन ब्राह्मण थे। उनके दो पुत्र थे—मल्लपय्या जिन्होने अपने गुरु जिनचद्र को प्रसन्न करने के लिए पोन से 'शातिपुराण' (दे०) की रचना कराई।

राष्ट्रकूट सम्राट कृष्ण तृतीय से पोन्न को 'उभयकवि चक्रवर्ती' की उपाधि प्राप्त हुई थी। इससे यह व्यक्त होता है कि पोन्न कन्नड और सस्कृत दोनो भाषाओ मे कविता करते थे। 'शातिपुराण' और 'भुवनैकरामाभ्युदय (राम-कथा) इनकी कन्नड-रचनाएं हैं। 'कविचरिते' के लेखक स्व० नरसिंहाचार (दे०) ने लिखा है कि 'गतप्रत्यागत' पोन्न की सस्कृत-रचना होगी। 'जिनाक्षरमाला' भी सभवत इनकी सस्कृत-रचना है। 'शातिपुराण' को छोडकर शेष रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। भुवनैकरामाभ्युदय' के कुछ पद्य इधर-उधर प्राप्त हुए है। 'शातिपुराण' मे सोलहवें तीर्थंकर शातिनाथ का जीवनचरित्र वर्णित है। यह बारह आश्वासों का चपूकाव्य है और 'पुराणचूडामणि' कहलाता है। यह काव्य के लक्षणों के अनुसार लिखा गया है। इसमे सभी रसो का सुदर परिपाक है।

पोन्न को सस्कृत शब्दों का मोह अधिक है। कठिन शब्दों के प्रयोग के कारण इनकी शैली सरल-सुबोध नहीं है। फिर भी इनकी कविता मे स्वाभाविकता, लालित्य और प्रवाह है। इन्होने कई छदों का प्रयोग किया है, परतु कद छद की प्रयोग-बहुलता से ऐसा लगता है कि यह उनका प्रिय छद है।

पोन्न की दूसरी कन्नड-कृति 'भुवनैकरामाभ्युदय' मे सभवत राष्ट्रकूट सम्राट कृष्ण तृतीय के सामत राजा शकरगड के पराक्रम का, जिन्हे 'भुवनैकराम' की उपाधि प्राप्त थी, वर्णन होगा।

पोन्नुदुरै, एस० *(तं० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

इनका जन्म जाफना (श्रीलका) आरभिक शिक्षा मट्टक्कप्पु (श्रीलका) मे हुआ और उच्च शिक्षा मद्रास मे प्राप्त की। इन्होने महाविद्यालय मे प्राध्यापक के रूप मे अपनी जीविका आरभ की। *1955* ई० के आसपास कुछ कविताओं की रचना कर इन्होंने साहित्य-जगत मे प्रवेश किया। दस वर्षों मे ही इन्होने कविता, उपन्यास, कहानी, निबध, आलोचना, नाटक आदि सभी विधाओ मे अपने योगदान से तमिल के प्रसिद्ध साहित्यकारों मे अपना स्थान बना लिया। साहित्य के सभी क्षेत्रों मे वे प्रयोगकर्ता के रूप में दीख पडते हैं। इनका प्रथम कहानी-सग्रह पशि' कहानी के क्षेत्र मे एक नया प्रयोग है। इस सग्रह की पाँच कहानियों मे पाँच भिन्न तकनीकों का प्रयोग हुआ है। 'निळल' एव 'श्रोळि' नामक कहानी सग्रहों मे क्रमश *जाफना के शिक्षित मध्यवर्ग और मट्टक्कळप्पु के मध्यवर्ग* के लोगों—विशेषत कृषक वर्ग के लोगो के जीवन के विभिन्न पक्षो का चित्रण है। कहानी के क्षेत्र में इन्हें पर्याप्त सम्मान मिला। परतु अश्लीलता के पुट के कारण तिरस्कृत भी होना पडा। अपनी स्थिति के एव लेखन-कला के स्पष्टीकरण के लिए इन्होंने *आलोचनात्मक कृतियों की भी रचना* की। इन कृतियों के द्वारा इन्होंने साहित्यिक आलोचना के नये मानदडों की स्थापना की। इनका लघु उपन्यास 'ती' (आग) समाज मे विवाद का केंद्र बना। इनके नाटक 'मुदलमुळक्कम' और 'वर्ल' पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। क्रमश जीवन में बौद्ध, शैव और ईसाई मत से सबधित इनकी तीन कहानियाँ मौलिक, सर्वांगपूर्ण कहानियों के रूप में प्रसिद्ध है।

इनका नवीनतम कहानी-सग्रह है—'वो' जिसे आधुनिक तमिल कहानी का प्रतिदर्श समझा जाता है। इनकी रचनाओं मे सरलता, आधुनिकता, कलात्मक प्रौढता और गहरे व्यग्य के दर्शन होते हैं। इनके लेखन मे मार्क्स-*वादी विचारधारा परिलक्षित होती है। ये तमिल के प्रसिद्ध* कहानीकारों मे गिने जाते हैं।

पोयगै आळ्वार *(त० ले०)* [समय—छठी शती ई०]

पोयगै आळ्वार तमिल प्रांत में आविर्भूत वैष्णव संतों (आळ्वारों) में से हैं। इनका जन्म कांची-पुरम के वेहुका नामक स्थान में हुआ। इनका संस्कृत नाम सरोयोगी है। इनकी एकमात्र रचना 'मुदल तिरुवंदादि' है जिसमें अंदादि (दे०) छंद में रचित सौ पद हैं। विभिन्न पदों में विष्णु एवं उनके अवतारों की लीलाओं, पौराणिक प्रसंगों, इंद्र, ब्रह्मा, शिव आदि देवताओं और विभिन्न वैष्णव तीर्थों का वर्णन है। पोयगै आळ्वार ने कुछ पदों में ब्रह्म, जीव आदि दार्शनिक तत्त्वों का विवेचन भी किया है। तत्कालीन सामाजिक दशा और प्रथाओं का तथा प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण भी इनके पदों में है। दक्षिण के वैष्णव संतों में इन्हें पर्याप्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन्हें आदि आळ्वारों में से माना जाता है और ये अंदादि छंद में पद-रचना करने वाले प्रथम कवि कहे जाते हैं।

पोलीकिट्टी *(क० कृ०)*

यह कैलासम् (दे०) का एक हास्य नाटक है। कैलासम के सत्रह नाटक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने सामाजिक और पौराणिक दो प्रकार के नाटक लिखे हैं। पौराणिक नाटकों में महाभारत के पात्र प्रधान हैं। उनके सामाजिक नाटकों में शहर के मध्य वर्ग का चित्रण हुआ है। पति-पत्नी और सास-बहू की समस्या भी है। 'पोलीकिट्टी' में आवारा होने पर भी उदार बुद्धि वाली किट्टू का स्वाभाविक चित्रण है। कैलासम् ने अंग्रेजी-मिश्रित कन्नड भाषा का प्रयोग करते हुए इसमें जो हास्य-रस भरा है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

पौड़ी *(पं० पारि०)*

'वार' (दे०) नामक काव्यरूप के प्रत्येक पद्य-खंड को पौड़ी कहते हैं। इसे 'निशानी छंद भी कहा जाता है जो सीढ़ी के समानार्थक संस्कृत-शब्द 'निःश्रेणी' का तद्भव रूप और पंजाबी के पौड़ी शब्द का पर्याय है। पौड़ी एक ताल, ढाई ताल, तीन ताल, और पाँच ताल में गाई जाती है। इसके अर्थ-गांभीर्य के प्रति श्रोता को सावधान करने के लिए पखावज की केवल 'साथ' संज्ञक पट बजाई जाती है। दूसरी (गत संज्ञक) नहीं। भाई कान्हसिंह ने अपने 'महान् कोश' में इसके सम-विषम तीस विभिन्न भेद गिनाए हैं जिनमें प्रति पौड़ी चरण-संख्या और प्रतिचरण मात्रा-संख्या क्रमशः चार से बारह और तेरह से पचहत्तर तक मिलती है। इसके अतिरिक्त यति-नियम और चरणांत में गण-भेद भी उपर्युक्त तीस भेदों के निर्धारक हैं परंतु व्यावहारिक रूप में ये नियम कवि की इच्छा पर निर्भर हैं और पौड़ी की वास्तविक शक्ति उसके वेग, लय और समतुकांतता में निहित है। वार और पौड़ी की अन्योन्याश्रयता के कारण गुरु गोविंदसिंह और यशोदा नंदन आदि अनेक कवियों ने इन शब्दों का पर्याय रूप में प्रयोग किया है।

पौराणिक कथाकोष *(गु० कृ०)*

प्रणेता—डाह्याभाई देरासरी (1857-1937 ई०) पाँच भागों में से पहला भाग प्रकाशित हुआ 1927 ई० में, और पाँचवाँ 1931 में। इस ग्रंथ में सारी पौराणिक कथाओं के पात्रों की नामावली के प्रथम अक्षर के अनुसार कथाएँ दी गई हैं और कथा के साथ इसका उल्लेख भी किया गया है कि कौन से पुराण में कहाँ यह कथा मिलती है। जहाँ एक व्यक्ति का एक से विशेष पुराणों में उल्लेख आता हो और कथा में भी भेद हो वहाँ सब पुराणों की कथाएँ दी गई हैं।

प्रकाश, डॉ० *(उ० पा०)*

डा० मन्मथनाथ दास (दे०) के नाट्यात्मक उपन्यास (ड्रामा नॉवेल) 'अस्पष्ट आख्यान' (दे) का नायक डा० प्रकाश एक-साथ गवेषक, वैज्ञानिक, डाक्टर एवं अध्यापक है। इसकी गवेषणा का विषय है, मनुष्य चरित्र का विश्लेषण—"क्यों क्षुद्र हंस के रक्त की एक बूँद देखकर एक मर्माहत होता है और दूसरा नरमुंडों का कृत्रिम पिरामिड तैयार करता व आनंदित होता है? मानव के दृष्टिकोण को कौन नियंत्रित करता है? पिता-माता या परिवेश?"

अपनी सहकर्मिणी के रूप में डा० प्रकाश ने सहायता ली है स्मिता देवी की। अपनी गवेषणा के लिए इस नर्स की सहायता इसने पगपग पर चाही है। किंतु विडंबना का विषय है कि स्मिता के व्यक्तिगत जीवन के विषय में यह कुछ भी नहीं जान पाता।

हस्पताल के प्रसूति-भवन में माता के अनजाने में अनेक शिशुओं को परिवर्तित कर स्मिता डा० प्रकाश की गवेषणा को आगे बढ़ाती रहती है। इस गवेषणा की

विषयवस्तु के रूप मे स्मिता देवी डा० प्रकाश को नही छोडती। डा० प्रकाश की नवजात कन्या को मृत घोषित कर एक अधभिक्षु की कन्या के रूप मे स्मिता देवी उसका पालन करती है। स्मिता देवी अनेक तथ्यो को डा० प्रकाश से गुप्त रखती है।

परस्पर विरोधी विचारो के दो नवयुवक विवेकानद एव रत्नप्रिय इस गवेषणा के शिकार होकर समाज मे अनेक विषमताओ की सृष्टि करते हैं। अत मे परिस्थिति को सँभालने मे अपने को असमर्थ पाकर प्रकाश पागल होने का अभिनय करता है। किंतु अकस्मात जैसे सभी चीजें बिखर जाती हैं। परिस्थितियोवश अधभिक्षु की कन्या मीरा दुर्वृत्य द्वारा बदिनी होकर आत्महत्या कर लेती है। उसके बाद डा० प्रकाश को ज्ञात होता है कि मीरा उसकी अपनी लडकी थी। असीम आत्मग्लानि।

"मैं दुख भी करूँगा तो किस अधिकार से? दूसरे की लडकी समझकर, मैंने उसके प्रति कभी दया नही दिखाई। आज अपनी कन्या जान लेने के बाद यह दया क्यो?" इस प्रकार मीरा की मृत देह पर डा० प्रकाश देख रहा था अपने सदर्भ का शेष विश्लेषण। मानव का वास्तविक परिचय—'अस्पष्ट आख्यान'।"

प्रकृतवाद *(हिं० पारि०)*

अतिप्राकृतवाद और आदर्शवाद (दे०) के विरोध मे 'प्रकृतवाद' आदोलन के रूप मे उन्नीसवी शती मे आरभ हुआ था। यह आत्मा की धारणा को अस्वीकार कर प्रकृति से परे किसी शक्ति को नही मानता। यह मनुष्य को प्रकृति का विकसित जतु बताते हुए उसमे पशु-सुलभ *आकर्षण-विकर्षण की स्थिति मानता है*। इसीलिए प्रकृतवादी लेखक मनुष्य को काम क्रोध आदि मनोरोगो का गट्ठर मान उसके अर्थहीन आचरणो, कामासक्त चेष्टाओ, अहकार-जन्य वृत्तियो का चित्रण करता है। प्रकृतवाद के प्रवर्तक जोला ने कहा है कि प्रकृतवादी कलाकार का कार्य है कि वह जिस सत्य और *यथार्थ का साक्षात्कार करे, कला* (दे०) मे उसी की अभिव्यक्ति करे। इस प्रकार प्रकृतवाद यथार्थवाद (दे०) का प्ररोह होते हुए भी उससे इसलिए भिन्न है क्योकि वह यथार्थवाद की तरह भावुकता, रोमास, कल्पना (दे०), आदर्श का तो विरोध करता ही है, साथ ही ऐसा जीवन-दर्शन प्रस्तुत करता है जो विशुद्ध भौतिक एव यात्रिक धारणा पर आधारित है। प्रकृतवादियो ने साधारणत उपन्यास को अपनाया है।

प्रगति *(उ० कृ०)*

यह मनोविज्ञान के अध्यापक डा० राधानाथ रथ (दे०) के पच्चीस निबधो का सकलन है। निबधो की सामाजिक चेतना मे पूर्ण रूप से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। *उडिया निबध साहित्य मे इसका स्वतत्र महत्व* है। समाजवादी चिंताधारा को प्रतिफलित करने मे इन निबधो का समाज पर व्यापक प्रभाव पडने की यथेष्ट सभावना है।

प्रगतिवाद *(हिं० पारि०)*

साहित्य मे प्रगति का अर्थ है मार्क्सवादी विचार-धारा द्वारा निर्धारित दिशा मे आगे बढना। जो साहित्य मार्क्सवादी विचारधारा का समर्थन करता हुआ उस दिशा मे आगे बढने की प्रेरणा देता है, उसे प्रगतिवादी साहित्य की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। 'सामूहिक प्रगति, सामयिक नव-निर्माण, जनता के चीत्कार की कहानी किसी दर्शन पर आधृत है और वह दर्शन है *मार्क्स का द्वद्वात्मक* भौतिकवाद।' मार्क्स के इस जीवन-दर्शन के अनुसार जगत की सभी वस्तुओ मे विरोधी तत्त्वो का सघर्ष होता रहता है। इस सघर्ष के फलस्वरूप विभिन्न पदार्थों, उनकी शक्तियो और अस्तित्वो का अनवरत विकास होता रहता है आज *के समाजवाद मे दो विरोधी वर्ग-शक्तियो—पूँजीपति और* सर्वहारा—मे द्वद्व चल रहा है। प्रगतिवादी साहित्य सर्व-हारा का पक्ष लेकर समाजवादी शक्तियो का सवर्धन करता है। प्रगतिवाद व्यक्ति को समष्टि से अलग कर नही देखता और साहित्य को समष्टिगत चेतना मानता है, अत *प्रगतिवादी साहित्य समाज के सुख-दुख की अभिव्यक्ति को* महत्त्व देता है, समष्टि की रक्षा मे प्रवृत्त होता है। प्रगति-वादी लेखक अपनी अभिव्यक्ति के उपकरण जनजीवन मे ग्रहण करता है और रूप मोह मे न पडकर जीवन को उसकी सपूर्ण कुरूपता और अनगढपन के साथ प्रस्तुत करता है।

प्रगतिवाद *(हिं० प्र०)*

'छायावाद' (दे०) की अतिशय सूक्ष्मता और अतर्मुखता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्रगतिवाद का *विकास हुआ। छायावाद की विचारधारा आध्यात्मिक और* चेतना शास्त्रीय थी। प्रगतिवाद की विचारधारा भौतिक और चेतना आर्थिक है। मार्क्स का द्वद्वात्मक भौतिकवाद

और आर्थिक चिंतन प्रगतिवादियों का प्रेरणा-स्रोत है। प्रगतिवादी साहित्यकारों में पंत (दे०), निराला (दे०), प्रेमचंद (दे०), यशपाल (दे०), मुक्तिबोध (दे०), नागार्जुन और डा० रामविलास शर्मा (दे०) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सब लोग भी कट्टर प्रगतिवादी आस्था के साहित्यकार नहीं हैं। इस प्रवृत्ति के प्रभाव से सामाजिक यथार्थ-भावना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, रूढ़ि और शोषण का विरोध, क्रांति की चेतना, वर्ग-वैषम्य आदि प्रगतिवादी तत्त्व स्फुट रूप से आधुनिक साहित्यकारों की कृतियों में उत्तरोत्तर बढ़ते गये हैं। शिल्प की दृष्टि से प्रगतिवादी साहित्यकार सरलता के समर्थक हैं। उनकी भाषा व्यावहारिक और शैली प्रखर होती है। व्यंग्य उनका प्रधान अस्त्र है। प्रगतिवाद का महत्त्व यह है कि 'उसने हिंदी-काव्य को एक जीवंत सामाजिक चेतना प्रदान की है।'

प्रजाराम रावल (*गु० ले०*) [जन्म—1917 ई०]

प्रजाराम ने चौथे दशक के अंतिम भाग से कविता करना आरंभ कर साहित्य-जगत को दो कविता-संग्रह भेंट किए हैं : 'पद्मा' और 'नांदी'। इनकी कुछ प्रकृति-संबंधी कविताएँ 'पद्मा' में संकलित हैं जिनमें षट् ऋतुओं के मनोहारी चित्र वर्तमान हैं। इसी प्रकार भयंकर शीत के चित्र खींचते हुए रावल सृष्टि की सतत ताजगी (रेफ़रीजरेटर में रखे फल की भाँति) अनुभव करते हैं और आनंदित होते हैं। इनकी कविताओं पर अरविंद की गहरी छाप है। अध्यात्म-तंतुओं से गुंफित इनकी कविता का विषय है—पूर्णयोग की साधना। इन्होंने सुंदरम् (दे०) और पूजालाल की भाँति अधिमानस संवेदनों को वाणी देने का प्रयत्न किया है। विराट चेतना के स्पर्श से कवि पुलकित है; अपने हृदय में भरे हुए अमृत का पान करते हुए संसार-सर्प के साथ सतत युद्ध करते रहने की इनकी आकांक्षा है। चिन्मयी के प्रति लिखे गए काव्य में कवि-सौंदर्य, माधुर्य और सत्य—सभी को चिन्मयी को समर्पित कर देता है। प्रजाराम की कविता में संस्कृत काव्य जैसी सघनता और प्रौढ़ता है, अलंकार-योजना प्रायः निरायास है और लय को अर्थगत मान कर चलने का उपक्रम है। गंभीर संवेदनों को व्यक्त करने के लिए सॉनेट, मुक्तक और गीत आदि काव्य-स्वरूपों को ही इन्होंने अपनी कविता में संप्रेषण का माध्यम बनाया है। गुजराती कविता को अध्यात्म की ओर ले जाने वाले कुछेक कवियों में प्रजाराम का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

प्रताप (*बँ० पा०*)

बंकिम (दे०) बाबू के 'चंद्रशेखर' उपन्यास में 'प्रताप' अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित-प्रोज्ज्वल है। प्रताप के प्रत्येक पदक्षेप में शौर्य के साथ महत्त्व का समुचित समन्वय हुआ है। गंगावक्ष में आत्मविसर्जन के मुहूर्त से उसका प्रारंभ है। शैवालिनी (दे०) के साथ चंद्रशेखर का विवाह होते ही प्रताप शैवालिनी के प्रणय-चांचल्य से अपने को दूर हटा लेता है। बंकिम बाबू ने प्रताप को नायकत्व प्रदान नहीं किया है यद्यपि केंद्रीय चरित्र के रूप में प्रताप ही सर्वत्र अपने नायकत्व की गरिमा से पूर्णतः मंडित दृष्टिगोचर होता है। फ़ास्टर के शिकंजे से शैवालिनी के उद्धार के द्वारा जिस प्रकार उसके शौर्य की ही अभिव्यक्ति हुई है, उसी प्रकार ग्रंथ के ऐतिहासिक आवर्त में प्रताप ने अपनी भूमिका को ठीक ढंग से अपने अधिकार में रखा है। रूपसी का पति प्रताप न तो रूपसी का है, न शैवालिनी का। वह वस्तुतः रूपजाल में फँसा हुआ है, फिर भी प्रेम के दावे को अंतर से वह अस्वीकार नहीं कर सका। यह स्वीकृति आत्म-संयम की महनीयता से और भी मोहक हो जाती है। प्रताप के आत्म-विसर्जन में इसकी परिसमाप्ति होती है। वहाँ भी इस महत् प्राण की अचंचल आत्माहुति प्रेम एवं वीरत्व के आलोक में उसके समग्र जीवन के आकाश को आलोकित कर देती है।

प्रतापचंद्र विलासम् (*त० कृ०*) [रचना-काल—1877 ई०]

यह रामस्वामी राजु-कृत नाट्यकृति है। इसमें 12 अंक हैं। कहानी अत्यंत सरल है। नाटक का नायक सुदेशमित्तिरर् एक अमीर शिक्षित नवयुवक है। वह एक नीच व्यक्ति के हाथों में पड़ जाता है। अनुभवहीन होने के कारण उसे नाना कष्ट उठाने पड़ते हैं। अंत में उसके मित्रगण उसका उद्धार करते हैं। इस नाटक से तमिल नाटक के क्षेत्र में एक नवीन युग का आरंभ हुआ है। इसमें प्रतिपाद्य विषय, चरित्र-चित्रण, रंग-संकेत और कथा-विकास की दृष्टि से अनेक नवीनताएँ हैं। नायक का चरित्र स्वाभाविक और प्रभावशाली है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि लेखक ने कांग्रेस की स्थापना के आठ वर्ष पूर्व अपने नाटक के माध्यम से सुदेशमित्तिरर् नामक पात्र से हमारा परिचय कराया। सुदेशमित्तिरर् का शाब्दिक अर्थ है 'देश-भक्त' (स्वदेशमित्र)। इसमें यथास्थान विधवा-विवाह,

बाल विवाह, स्त्री-पुरुष के समान अधिकार की समस्याओं पर विचार किया गया है। भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता का उदय संभवत इसी कृति से होता है। यह नाटक प्रतिपाद्य विषय और रचना शैली की तमिल साहित्य की अभिनव सृष्टि है। इसे आधुनिक तमिल नाटकों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

प्रतापरुद्रीयमु *(तें० कृ०)*

श्री वेदवेंकटराय शास्त्री (दे०) का आधुनिक तेलुगु नाटककारों में प्रमुख स्थान है। इनका 'प्रतापरुद्रीयमु' एक विख्यात ऐतिहासिक नाटक है। इसमें आंध्र के सम्राट् प्रतापरुद्र के मंत्री युगंधर की चतुराई एवं बुद्धि कौशल के असाधारण कार्यों का चित्रण किया गया है। दिल्ली के मुसलमान शासक धोखे से प्रतापरुद्र को बंदी बनाकर ले जाते हैं और युगंधर एक पागल के वेश में दिल्ली जाकर अपूर्व चतुराई एवं साहस से प्रतापरुद्र को छुड़ाने में ही नहीं, दिल्ली के सुल्तान को बंदी बनाने में भी सफल होता है।

इसमें नाटककार ने नाटकीय प्रभाव को अत्यधिक तीव्र करने के लिए युगंधर को नाटक में पर्याप्त समय तक हमारे सामने प्रस्तुत नहीं किया है। दूसरे पात्रों के संवादों में उसकी महानता का वर्णन कराके नाटक के बीच में, जबकि हम युगंधर की प्रज्ञा से प्रभावित हो चुकते हैं, उसको रंगमंच पर लाकर उससे अद्भुत साहसिक कार्य संपन्न कराए हैं। युगंधर आंध्र का घरेलू नाम है। किसी व्यक्ति की चतुराई एवं सूझबूझ का वर्णन करना हो तो युगंधर से लोग उसकी तुलना करते हैं। ऐतिहासिक वातावरण एवं चरित्रों के चित्रण की दृष्टि से भी यह नाटक विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

प्रतापरेड्डी, सुरवरमु *(तें० ले०)* [जन्म—1896 ई०, मृत्यु—1953 ई०]

इनका जन्म अलपुर (जिला महबूबनगर) तालुके के इटिकालपाडु में हुआ था। पिता का नाम नारायण रेड्डी तथा माता का नाम रंगम्मा था। हैदराबाद के निजाम कालेज तथा मद्रास के प्रेसिडेंसी कालेज से इन्होंने बी० ए०, एल एल० बी० किया था। घर पर ही इन्होंने उपनिषद्, व्याकरण, तर्क, मीमांसा का सुष्ठु अध्ययन किया था। संस्कृत, उर्दू, फारसी आंध्र और अंग्रेजी भाषा साहित्य पर इन्हें अच्छा अधिकार था। कुछ समय तक इन्होंने हैदराबाद में वकालत की थी। बाद में इन्होंने 1924 ई० से 1934 ई० तक रेड्डी होस्टल का भार सँभाला और होस्टल में अच्छे पुस्तकालय तथा हस्तलिखित पुस्तकों के संग्रहालय की स्थापना की।

1925 से 1948 ई० तक इन्होंने गोलकोंडा' (अर्द्ध-साप्ताहिक) नामक पत्रिका का संपादन किया। निजाम के अत्याचारी शासन का साहस के साथ सामना कर, तेलंगाना प्रांत के राजनीतिक जागरण में इन्होंने अद्वितीय योग दिया। तेलंगाना की प्रत्येक साहित्यिक तथा सांस्कृतिक संस्था की स्थापना अथवा विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय है। तेलंगाना के राजनीतिक इतिहास में भी इनका प्रमुख तथा प्रथम स्थान है।

कवि, नाटककार, उपन्यासकार तथा शोधकर्ता के रूप में रेड्डी जी लब्धप्रतिष्ठ हैं। इनकी उल्लेखनीय रचनाओं में *'हिंदुओं के त्योहार'*, *'रामायण के रहस्य'*, 'गोलकोंडा के कवि', 'पुस्तकालय आंदोलन', 'आंध्र का सामाजिक इतिहास' आदि हैं। *1949 ई० में लिखा गया* 'आंध्रुल का सांघिक चरित्र' केंद्र साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत प्रथम तेलुगु रचना है। *यह पुस्तक इनके प्रथक* शोध कार्य का परिणाम है।

प्रतापसाहि *(हिं० ले०)*

प्रतापसाहि बुंदेलखंड के निवासी थे। इनका रचना काल *1833 से 1943 ई०* तक माना जाता है। इनके द्वारा रचित ये ग्रंथ कहे जाते हैं—'जयसिंह प्रकाश', 'शृंगारमंजरी', 'व्यंग्यार्थ कौमुदी', 'शृंगारशिरोमणि', 'अलंकार-चिंतामणि', 'काव्यविलास', 'काव्यविनोद' और 'जुगल नखशिख'। 'काव्यविलास' में इन्होंने अपने एक अन्य ग्रंथ 'रसचंद्रिका' का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'भाषाभूषण' (जसवंतसिंह), 'रसराज (दे०) (मतिराम), 'नखशिख' (बलभद्र) और 'सतसई (सभजन 'बिहारी सतसई दे०) की टीकाएँ भी लिखी थीं। इनके उपर्युक्त ग्रंथों में से 'काव्यविलास' और व्यंग्यार्थ कौमुदी' उपलब्ध हैं। इनमें से पहले ग्रंथ में विविध काव्यांगों का निरूपण है जो कि 'काव्यप्रकाश' (दे०) और विशेषतः 'साहित्यदर्पण' (दे०) पर आधारित है। शास्त्रीय दृष्टि से यह ग्रंथ सामान्य कोटि का है। दूसरा ग्रंथ नायक-नायिका भेद से संबद्ध है। इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि नायिका-भेद को लक्ष्य में रखकर पहले उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं, फिर ब्रजभाषा गद्य में उन भेदों के लक्षण के अतिरिक्त संस्कृत

की टीका-पद्धति के समान उसमें अनुस्यूत अलंकार; ध्वनि-भेद, शब्दशक्ति-भेद का निर्देश करते हुए इनके भी लक्षण प्रस्तुत किए गये हैं। 'काव्यविलास' ग्रंथ के आधार प्रतापसिंह को प्रमुख आचार्यों में स्थान दिया जाता है।

प्रतिज्ञायौगंधरायण *(सं० कृ०)* [समय—ईसा की तीसरी शती]

भास (दे०) की त्रयोदश नाट्यकृतियों में 'प्रतिज्ञायौगंधरायण' विशेष महत्त्वपूर्ण एवं सफल रचना है। इसी के कथानक के आधार पर भास ने 'स्वप्नवासवदत्तम्' (दे०) की रचना की।

इसका कथानक गुणाढ्य की 'वृहत्कथा (दे०) से लिया गया है। कौशांबीराज उदयन (दे०) नकली हाथी के छल से महासेन अवंतिराज के द्वारा वंदी बना लिया जाता है। राजकुमारी वासवदत्ता (दे०) को वीणा-वादन सिखाते-सिखाते वह उसके प्रणयबंधन में बँध जाता है। यौगंधरायण की सहायता से वह वासवदत्ता को लेकर उज्जयिनी से भाग निकलता है।

यह भास की प्रौढ़ कृति है। अतः इसमें कथा-वस्तु का सुंदर संयोजन है तथा चरित्र-चित्रण अत्यंत मार्मिक है। 6 अंकों का यह नाटक वत्सराज उदयन और अवंति-कुमारी वासवदत्ता के विवाह का रहस्यमय प्रसंग प्रस्तुत करता है। भास ने सुप्रसिद्ध लोककथा को अपने इस नाटक में इतनी स्वाभाविकता से प्रस्तुत किया है कि इसमें घट-नाओं का पौर्वापर्य बना रहता है तथा स्वाभाविकता का कहीं क्षय नहीं होता। यह नाटक भास की मानव-जीवन के मार्मिक प्रसंगों को प्रस्तुत करने वाली सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। वस्तु-विन्यास, शिल्पकौशल तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भास की उत्कृष्ट नाट्यकृति है।

प्रतिभा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1914 ई०]

यह चंद्रकुमार आगरवाला (दे०) की प्रकृति-विषयक सुंदर कविताओं का संकलन है। इनमें प्रकृति की रहस्यमयी सुंदरता का चित्रांकन है। कविताओं में दर्शन का गुरु-गांभीर्य और अभिव्यक्ति में लोकगीत की लय है। इनमें सौंदर्य का संधान, मानव-प्रीति वैज्ञानिक अद्वैतवाद, मानव-साम्य और सरल आशावाद है। कवि की दृष्टि में सत्य और सुंदर में भेद नहीं है। प्राच्य और पाश्चात्य कविता के भावार्थ एवं काव्यरीति का इसमें सामंजस्य है। लेखक जितना भावुक था उतना शिल्पी नहीं था। फिर भी कविताओं का यह छोटा-सा संकलन असमीया काव्य-जगत की संपत्ति है।

प्रतिभा *(उ० कृ०)*

'प्रतिभा' डा० हरेकृष्ण महताब (दे०)-कृत एक राजनीतिक उपन्यास है। स्वतंत्रता-आंदोलन, गांधी-दर्शन की सार्थकता, जनजागरण, नारी-स्वतंत्रता, नारी-जागरण आदि का इसमें चित्रण हुआ है।

प्रतिभा (दे०) अल्पशिक्षिता ग्रामीण बाला है। प्रारंभ में पति नवीन द्वारा इसी कारण उपेक्षित व अप-मानित होती है किंतु समय आने पर वह क्रांतिकारिणी बन जाती है; जनविद्रोह का नेतृत्व करती है; असीम साहस, चरित्रबल एवं प्रखर बुद्धि का परिचय देती है। नवीन की अवहेलना का ख्याल न कर वह उसके महत् आदर्श की पूर्ति में लग जाती है और नारी-जागृति की अनिवार्यता का संकेत करती है।

समुन्नत, सशक्त राष्ट्रनिर्माण के लिए समाज के उपेक्षित व दुर्बल अंगों का विकास अपरिहार्य है। जन-साधारण में राजनीतिक चेतना, राष्ट्रीय भावना एवं उत्सर्ग की प्रेरणा होनी चाहिए। इसके पात्र—प्रकाश, नवीन, प्रतिभा सभी इस प्रशस्त राजपथ के राही हैं। सर्वांगीण जागरण एवं विकास के बिना राष्ट्रीय उत्थान असंभव है, यही इसका संदेश है।

राजनीतिक उपन्यासों में इसका विशिष्ट स्थान है। राजनीतिक उपन्यास होते हुए भी यह प्रचारमूलक नहीं है।

प्रतिभा *(उ० पा०)*

प्रतिभा डा० हरेकृष्ण महताब (दे०) के उपन्यास 'प्रतिभा' (दे०) की नायिका है। यह अल्पशिक्षिता होते हुए भी अपनी स्वस्थ चिंतना व उच्चकोटि के व्यक्तित्व द्वारा अपनी प्रतिभा को प्रकट करती है। इसके चरित्र के माध्यम से लेखक ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि सामाजिक उपेक्षा के कारण यद्यपि नारी का व्यक्तित्व दब जाता है, तथापि समय आने पर वह आशातीत नेतृत्व व दृढ़ता का परिचय दे सकती है। वह पुरुष की परिपूरक है, उसे यथो-चित समझे बिना उसकी उपेक्षा करना घोर अन्याय है।

प्रतिभा एक ग़रीब मुंशी की पुत्री है। प्राइमरी

मे पढते समय महेद्र बाबू ने उसका नाम अपुछि के स्थान पर प्रतिभा कर दिया था। किशोरावस्था पार करते न-करते उसकी पढाई बद हो जाती है किंतु महेंद्र बाबू द्वारा भेजी जाने वाली पत्रिकाओ को वह नियमित रूप से पढती है। नारी स्वाधीनता सबधी महेद्र बाबू के लेखो से वह अत्यधिक प्रभावित होती है। महेंद्र बाबू भी अपने अतर मे प्रतिभा को प्राप्त करने की इच्छा सँजोए रहते हैं।

किंतु प्रतिभा का विवाह नवीन के साथ होता है। नवीन देशभक्त व विप्लवी है। प्रतिभा को अल्प शिक्षिता तथा अपने जीवन ध्येय की प्राप्ति मे बाधक समझ कर नवीन उसे छोडकर चला जाता है। असहयोग आदोलन मे उसे जेल हो जाती है।

नवीन के जमींदार पिता रामहरि बाबू के अत्याचार से जनता विद्रोह कर उठती है। नवीन का मित्र प्रकाश जनता मे जागृति फैलाता है। प्रकाश के विचार प्रतिभा को बडी गहराई स प्रभावित करते है। अब वह नवीन को नवीन दृष्टि से देखने लगती है। देशभक्त पति के महान व्यक्तित्व के समक्ष उसका मन श्रद्धावनत हो जाता है। महेंद्र बाबू मजिस्ट्रेट की हैसियत से इस जन-आदोलन का दमन करते हैं। नवीन की अनुपस्थिति मे प्रतिभा आदोलन का नेतृत्व करती है। नवीन उसके इस नूतन परिचय से अभिभूत हो जाता है। उसे अपनी भूल की प्रतीति होती है। प्रकाश दोनो को मिलाकर आशीर्वाद देता है—'तुम दोनो क्राति के अग्रदूत बनो।'

प्रतिभा *(स०, हिं० पारि०)*

प्रतिभा' का शाब्दिक अर्थ है दीप्ति या चमक। लाक्षणिक अर्थ मे यह शब्द विलक्षण बौद्धिक शक्ति का समानार्थी है। भारतीय काव्यशास्त्र मे इसे काव्य का मूलगत हेतु माना गया है। भामह (दे०), आनदवर्द्धन (दे०), वाग्भट्ट (दे०)(प्रथम), राजशेखर (दे०) और जगन्नाथ (दे०) आदि आचार्यों ने प्रतिभा के अभाव मे काव्य-सृजन को असभव माना है। वामन (दे०), रुद्रट (दे०) और कुतक (दे०) प्रतिभा को काव्य-सृजन के लिए अत्यत महत्त्वपूर्ण स्वीकार करते हुए भी इसे व्युत्पत्ति और अभ्यास के सहयोग मे ही उपयोगी मानते हैं। दडी (दे०), मगल आदि कुछ आचार्य प्रतिभा को परिहार्य काव्य-हेतु भी मानते हैं। वामन और मम्मट (दे०) ने प्रतिभा को कवित्व का बीज कहा है ('कवित्वबीज प्रतिभानम्' —वामन, 'शक्ति कवित्वबीजरूप सस्कारविशेष' —मम्मट)। भारतीय काव्यशास्त्र मे भट्ट तौत (दे०) ने इसे नव-नव उन्मेष करने मे समर्थ प्रज्ञा के रूप मे परिभाषित किया है ('प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता') जबकि अभिनवगुप्त (दे०) इसे अपूर्व वस्तु के निर्माण मे समर्थ प्रज्ञा कहते हैं। ('प्रतिभा अपूर्ववस्तुनिर्माणक्षमा प्रज्ञा') कुतक ने इसे ऐसी सस्कारजन्य शक्ति कहा है ('प्राक्तनाद्यतनसस्कार परिपाक प्रौढा प्रतिभा काचिदेव कविशक्ति'—कुतक) जो कवि को काव्यानुभूति की अभिव्यजना मे उपयुक्त शब्द अनायास ही सुझा देती है। ('सा काव्यघटनाऽनुकूल शब्दार्थोपस्थिति' —जगन्नाथ)। कहने का अभिप्राय यह है कि प्रतिभा सस्कारो के फलस्वरूप प्राप्त कवि की उस मौलिक एव नैसर्गिक शक्ति का नाम है जिससे उसके कवित्व को बीज मिलता है और वह नये नये अर्थों का उद्घाटन तथा अपूर्व वस्तु के निर्माण की क्षमता प्राप्त करता हुआ उपयुक्त शब्दो के विन्यास से अपनी अनुभूति को मूर्त रूप प्रदान करता है। राजशेखर (दे०) ने प्रतिभा के दो प्रकार निरूपित किए हैं 'कारयित्री' और 'भावयित्री' जिनमे कवि को काव्य सृजन की शक्ति प्रदान करने वाली कारयित्री ही वास्तविक प्रतिभा है। इसी प्रकार रुद्रट द्वारा निरूपित 'सहजा' और 'उत्पाद्या' प्रतिभा के दो भेदो मे से 'सहजा' ही वस्तुत प्रतिभा है, क्योकि उत्पाद्या व्युत्पत्ति और अभ्यास द्वारा अर्जित शक्ति है जो नैसर्गिक नही होती। भारतीय काव्यशास्त्र मे प्रतिभा के अतिरिक्त व्युत्पत्ति और अभ्यास को भी काव्यहेतु माना गया है, किंतु उनकी सार्थकता प्रतिभा के सस्कारक तत्त्वो के रूप मे ही है, उससे स्वतत्र रूप मे नही।

प्रतिभा को अँग्रेज़ी के 'जीनियस' शब्द के समकक्ष माना जाता है, किंतु 'जीनियस' एक अव्याप्त अभिधान है। प्रतिभा का स्वरूप इसके अतिरिक्त अँग्रेज़ी के 'इमजिनेशन', 'टैलेंट', 'गिफ्ट', 'फैकल्टी' आदि के समवेत रूप म ही प्रकट हो सकता है। 'जीनियस' शब्द का मूल अर्थ पितृगृह का महत् देवता था। बाद मे इस देवता मे निहित दिव्य शक्ति अथवा ईश्वर प्रदत्त गुणो को 'जीनियस' कहा जाने लगा। इस प्रकार 'जीनियस' और उसके निकटतम शब्द 'गिफ्ट', 'टैलेंट' और 'फैकल्टी' आदि म जन्मजात अथवा दिव्य सर्जना शक्ति का अर्थ निहित है। यूनान के अरस्तू-पूर्व चिंतको मे काव्य को दैवी प्रेरणा म उद्भूत और कवि को अलौकिक प्रेरणा स युक्त मानने की परपरा थी। होमर के दानो महाकाव्यो 'इलियड' और 'ओडीसी' के मगलाचरणो म दैवी प्रेरणा का उल्लेख है। बाद के कवि और आलोचको—कॉलरिज, कीट्स, डा० जॉन्सन

आदि —ने प्रतिभा को ही काव्य-शक्ति का मूल माना। इनके अतिरिक्त हौरेस, पोप और बेन जॉन्सन आदि ने प्रतिभा के साथ ही व्युत्पत्ति और अभ्यास को भी समान महत्त्व दिया है।

प्रतिभा-साधन *(म० कृ०)*

मराठी साहित्य में 'कला कला के लिए' सिद्धांत के प्रवर्तक एवं प्रचारक ना० सी० फडके (दे०) हैं। इसी साहित्य-सिद्धांत की पुष्ट स्थापना के लिए इन्होंने 1931 ई० में 'प्रतिभा-साधन' नामक साहित्यशास्त्रीय ग्रंथ की रचना की थी।

मराठी साहित्य में समाजहित-निरपेक्ष कला का समर्थन श्री कृ० कोल्हटकर तथा न० चि० केळकर जैसे साहित्यकारों ने भी किया था, परंतु फडके जी ने पश्चिम के इस सिद्धांत (आर्ट फॉर आर्ट्स सेक) की व्यवस्थित स्थापना की।

फडके जी के अनुसार कला के संदर्भ में नीति-अनीति का प्रश्न नहीं उठता। नीति का समर्थन एवं अनीति का उच्छेदन जैसे विधान साहित्य को संकीर्ण कारा में जकड़ देते हैं। साहित्य का एकमात्र उद्देश्य चित्ताकर्षक ढंग से कथ्य का निवेदन करना है। इस उद्देश्य को छोड़ यदि वह नीति की चर्चा भी करता है तो वह साहित्य-क्षेत्र से बाहर है।

जिन्होंने 'रत्नाकर' पत्र के अक्तूबर 1926 ई० के अंक में 'अभिजात मराठी वाङ्मय' शीर्षक निबंध में यह लिखा था कि साहित्य और नीति का संबंध नहीं, यह कहना भ्रामक है; वही फडके 1931 ई० में 'प्रतिभा-साधन' ग्रंथ में 'नीति-निरपेक्ष कला का समर्थन करें, यह आश्चर्य की बात थी। इसी कारण आलोचक उन पर आरोप लगाते हैं कि इनकी 'प्रतिभा-साधन' पुस्तक पर पश्चिमी समीक्षक हैमिल्टन के 'आर्ट ऑफ़ फ़िक्शन' नामक ग्रंथ का प्रभाव है।

'प्रतिभा-साधन' अपने प्रकाशन के बाद ही विद्वन्मंडली में चर्चा का विषय बन गया था। इस ग्रंथ पर फडके को भोजराज पुरस्कार भी मिला था।

प्रतिमा *(सं० कृ०)* [समय—तीसरी शती ई०]

रामकथा उपजीव्य नाटकों में 'प्रतिमा' का विशिष्ट स्थान है। महाकवि भास (दे०) अपने प्रयोगों तथा अभिव्यक्ति के वैविध्य के लिए सुविख्यात हैं। 'रामायण' (दे०) को स्रोत मानकर भी उन्होंने इस नाटक की कथावस्तु में कुछ मौलिक परिवर्तन किए हैं।

सात अंकों के इस नाटक में राम-वनवास से रावण-वध तक की कथा वर्णित है। अपने ननिहाल से लौटकर भरत प्रतिमा-मंदिर में अन्य पूर्वजों के साथ अपने पिता महाराज दशरथ की प्रतिमा देखकर उनकी मृत्यु का अनुमान लगा लेते हैं। यह अंश भास की अपनी उद्भावना है। वस्तुतः इसी अंश के आधार पर इस नाटक का शीर्षक रखा गया है।

इस नाटक के शिल्प-विधान तथा चरित्रचित्रण में शैथिल्य है। ऐसा लगता है यह भास की प्रारंभिक कृति है तथा इसकी रचना के समय तक भास में उतना रचना-कौशल नहीं आ पाया था जितना कि इसके बाद की कृतियों में देखने को मिलता है।

प्रतिहारेंदुराज (भट्टेंदुराज) *(सं० ले०)* [समय—950-990 ई०]

संस्कृत-अलंकारशास्त्र के इतिहास में प्रतिहारेंदुराज का स्थान भी कम महत्त्व का नहीं है। इनका संबंध साहित्यशास्त्र के दो विशिष्ट आचार्यों से था। एक ओर जहाँ ये 'अभिधावृत्तिमातृका' (दे०) के कर्ता प्रसिद्ध मीमांसक मुकुल भट्ट के शिष्य हैं जिनकी स्तुति इन्होंने अपनी कृति के आरंभ एवं अंत दोनों स्थलों पर की है, तो दूसरी ओर ये प्रसिद्ध आचार्य अभिनवगुप्त (दे०) के साहित्य-गुरु भी हैं। अभिनवगुप्त ने 'ध्वन्यालोक' (दे०) की अपनी टीका 'लोचन' के आरंभ में ही इनका पुण्यस्मरण किया है। इनके स्वयं के उल्लेख के अनुसार ये कोंकण प्रदेश के निवासी थे। इनके लिए महेंद्रराज एवं इंदुराज नाम भी प्रयुक्त हुए हैं।

प्रतिहारेंदुराज का समय उक्त दोनों आचार्यों के मध्य दशम शती का उत्तरार्ध निश्चित है।

इनकी एकमात्र कृति है—उद्भट के 'काव्यालंकारसारसंग्रह' (दे०) पर 'लघुवृत्ति' नाम की टीका। इसमें इन्होंने स्थल-स्थल पर भामह (दे०), दंडी (दे०), वामन (दे०), रुद्रट (दे०) तथा आनंदवर्धन (दे०) की कृतियों के उद्धरण दिए हैं। ये आनंदवर्धन के ध्वनि-सिद्धांत के विरोधी तो नहीं हैं पर काव्य में ध्वनि की मुख्यता भी इन्हें स्वीकार्य नहीं। इनके अनुसार ध्वनि का अलंकारों में ही अंतर्भाव साधित हो जाता है। लघुवृत्ति के

अतिम भाग मे इन्होने वस्तु, अलकार एव रस तीनो ध्वनियो का अतर्भाव किसी-न-किसी अलकार मे साधित कर दिया है।

प्रतीक *(गु० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष —1952 ई०]

यह श्री प्रियकात मणियार (द०) की प्रेम तथा काल के मुख्य विषय से सबधित कविताओ का सग्रह है। इसके शीर्षक के अनुरूप कवि ने अनेक नये भाव प्रतीको की योजना की है। उसके प्रतीको मे स्वातत्र्योत्तर पीढी के नये कवियो की रचना कला, प्रतीक-विधान तथा यथार्थ धरातल के दर्शन होते हैं। उदाहरणतया 'वेश्या की गली' का परिचय 'रे सूर्यमा मछलियो तरी रही' कहकर कराया गया है जबकि राधा-कृष्ण के प्रतीक मे दोनो की अभिन्नता 'सरोवर का जल कान्ह है तो उसकी लहरी राधा है' कहकर दिखाई गई है।

प्रतीक *(हिं० पारि०)*

यह अँग्रेजी 'सिम्बल' का पर्याय है। इसका प्रयोग किसी मूर्त, अमूर्त और गोचर अथवा इद्रियातीत विषय का किसी अन्य मूर्त एव इद्रियगोचर वस्तु द्वारा प्रतिविधान किए जाने के अर्थ मे होता है। अत प्रतीक-योजना मे सामान्यत चार तत्त्वो की स्थिति होती है— परोक्ष एव अप्रस्तुत कथन की शैली, अतीद्रिय विषय की इद्रियगोचर व्याख्या, प्रस्तुत से भिन्न सूक्ष्मतर अर्थ की व्यजना, प्रस्तुत के कथन के स्थान पर केवल अप्रस्तुत का कथन।

भारतीय काव्यशास्त्र मे विवेचित 'उपलक्षण' से इसका अत्यधिक साम्य है और इसका क्षेत्र शब्द की व्यजना (दे०)-शक्ति का ही प्रसार है। पाश्चात्य आलोचनाशास्त्र और दर्शनशास्त्र मे यद्यपि 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग अभिव्यजना मात्र के अत्यत व्यापक अर्थ मे भी हुआ है, तथापि अपने विशिष्ट अर्थ म यह अभिव्यजना की एक पद्धति-विशेष है।

प्रतीकों का प्रयोग सृष्टि के आरभ से ही जीवन, धर्म, दर्शन, कला (दे०) और वाङ्मय म होता आ रहा है। मनुष्य की चारित्रिक विशेषताओ के वर्णन के लिए पशुओ के नामो का प्रतीक-रूप मे प्रयोग प्राय प्रत्येक देश मे प्रचलित रहा है, जैसे वीरता के लिए सिंह, कायरता के लिए गीदड, चालाकी के लिए लोमडी आदि। देशकाल की सीमाओ मे सास्कृतिक प्रतीक भी बहुत बडे स्तर पर प्रयुक्त होते रहे है—जैसे भारत मे चूडियाँ और सिंदूर आदि। प्रतीक दो प्रकार के माने गए हैं पारपरिक और वैयक्तिक। पारपरिक प्रतीक बहुप्रयुक्त होने के कारण पाठक के लिए बोधगम्य और कवि के लिए वस्तुनिष्ठ होते है। वैयक्तिक प्रतीको का विधान कवि विशिष्ट भाव-बोध की व्यजना के लिए करता है जिससे काव्य मे नूतनता और वैचित्र्य का समावेश तो होता है, किंतु वे कभी-कभी बहुत दुर्बोध भी हो जाते हैं।

प्रतीकवाद *(हिं० पारि०)*

यह पाश्चात्य काव्यवाद 'सिंबालिज्म' का हिंदी पर्याय है। इसका प्रवर्तन फ्रास मे 18 सितबर, 1889 ई० मे 'फिगारो' नामक पत्रिका म प्रकाशित कुछ लेखको के घोषणापत्र द्वारा हुआ था। घोषणापत्र के अनुसार 'प्रतीकात्मक काव्य विचार को ऐंद्रिय रूप का बाना पहनाने की एक कोशिश है।' प्रारभिक प्रतीकवादियो मे विश्व के आधिभौतिक रूप की प्रकल्पना तथा ससार के प्रति एक विशेष प्रकार का रहस्यमय अतीद्रिय दृष्टिकोण विद्यमान था जिसके कारण उनके समसामयिक साहित्यिक क्षेत्र मे प्रतिष्ठित प्रकृतवाद (दे०) और वैज्ञानिक यथार्थवाद को निश्चय ही गहरा आघात लगा था।

प्रतीकवाद के प्रवर्तक आर्थर रिम्बॉड थे जिन्होने अपने नितात वैयक्तिक और कही-कही विचित्र प्रतीको द्वारा अभिव्यजना शिल्प को एक नया आयाम प्रदान किया। अन्य प्रमुख प्रतीकवादियो मे वरलें और मलार्मे के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रतीकवाद स समस्त योरोप और अमरीका का साहित्य भी काफी दूर तक प्रभावित हुआ है। अँग्रेजी साहित्य के 'डिकडेंट्स' (क्षयोन्मुखी) तथा अमरीका के बिंबवादी और प्रतीकवादी आदोलनो के मूल म फ्रेंच प्रतीकवाद की ही प्रेरणा थी। प्रसिद्ध जर्मन लेखक रिल्के और स्टीफन जॉर्ज भी प्रतीकवाद स अत्यत प्रभावित थ। प्रतीकवाद से प्रभावित परवर्ती योरोपीय लेखको मे इब्सन, यीट्स, सीन्ज, ओ'नील, फिलिप केरी आदि प्रमुख हैं। ईलियट के काव्य पर भी प्रतीकवाद का स्पष्ट प्रभाव है।

प्रतीकात्मक प्रस्थानम् *(मल० पारि०)*

जीवन के भिन्न-भिन्न महलो के बाहर विषयो

का प्रतीकों की सहायता से वर्णन करने की रीति को 'प्रतीकात्मक प्रस्थानम्' कहते हैं। यह जीवन के सूक्ष्म भावों को जगत के स्थूल पदार्थों के द्वारा प्रकाशित करने वाली काव्य-शैली है। मलयाळम भाषा के महाकवि आशान (दे०), जी० शंकर कुरुप् (दे०) आदि सहृदय कवियों ने इस शैली में कई कविताएँ लिखी हैं। 'वीणपूवु' (दे०), 'निमिषम्' जैसे काव्य-ग्रंथ इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। आम जनता की धारणा है कि प्रस्तुत शैली में रचित काव्य-ग्रंथों का अर्थबोध दुष्कर कार्य है।

प्रत्यभिज्ञाहृदयम् *(सं० कृ०)*

यह काश्मीर शैव दर्शन का अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसका प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के ग्रंथों में वही स्थान है जो 'वेदांतसार' का अद्वैत वेदांत के ग्रंथों में है। इसके कर्ता राजानक क्षेमराज आचार्य अभिनवगुप्त (दे०) के चचेरे भाई तथा प्रमुख शिष्य थे। इनका समय ग्यारहवीं शती माना जाता है।

इस ग्रंथ में प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सिद्धांतों का संक्षेप में प्रतिपादन किया गया है। बीस सूत्रों तथा उन पर सुबोध वृत्ति लिखकर क्षेमराज ने इस ग्रंथ के माध्यम से प्रत्यभिज्ञाशास्त्र को अत्यंत सरल बना दिया है।

इसमें चिदात्मा, विश्व, जीवात्मा तथा जीवन्मुक्ति का सम्यक् विवेचन किया गया है। साथ ही विश्व के साथ चिति के मनोवैज्ञानिक संबंध का विश्लेषण भी बड़ी सफलता से किया गया है।

क्षेमराज की प्रौढ़ रचना होने के कारण इसमें प्रतिपादित दार्शनिक सिद्धांत बड़े सरल, सुबोध और स्पष्ट हो गये हैं। इस ग्रंथ में धर्म और दर्शन का सामंजस्य स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसमें अनुस्यूत सिद्धांत एक ओर साधक के लिए ईश्वर प्रत्यभिज्ञा (आत्मबोध) का तत्त्वोपदेश है तो दूसरी ओर तत्त्वचिंतक के लिए विश्व-प्रक्रिया में परमेश्वर के रहस्य का उन्मीलन। अब तक इसके दो अंग्रेजी अनुवाद, एक तमिल रूपांतर, एक तेलुगु व्याख्या, एक कन्नड अनुवाद तथा एक हिंदी अनुवाद हो चुके हैं।

प्रत्यय *(सं०, हि० पारि०)*

वह भाषिक इकाई जिसका भाषा में स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता और जो किसी भाषिक इकाई के अंत में जोड़ी जाकर ही भाषा में प्रयुक्त होती है, 'प्रत्यय' कहलाती है। जैसे 'सुंदरता' में 'ता' या 'भारतीय' में 'ईय'। प्रत्ययों की सहायता से कारकीय रूप, एकवचन से बहुवचन, पुल्लिंग-स्त्रीलिंग, संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण तथा क्रिया-रूपों की रचना होती है।

'प्रदीप', कृष्णलाल बजाज *(सिं० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

इनका जन्मस्थान गढ़ी यासीन (सिंध) है और इनकी शिक्षा-दीक्षा विभाजन के पश्चात् भारत में हुई है। आजकल ये उल्हासनगर (महाराष्ट्र) में रहते हैं और एक माध्यमिक विद्यालय में अध्यापक हैं। ये सिंधी के साथ-साथ हिंदी, संस्कृत, गुजराती और मराठी के भी अच्छे ज्ञाता हैं। आजकल ये 'युगधारा' नामक एक साहित्यिक सिंधी पत्रिका का संपादन भी करते हैं। इनकी रुचि धर्म, दर्शनशास्त्र और तत्त्वज्ञान के क्षेत्र में अधिक रही है। इन विषयों पर इनके कई निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। कविता के क्षेत्र में भी इन्होंने कई सुंदर रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। ये सिंधी-जगत् में पत्रकार, निबंध-लेखक और कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं।

प्रबंध *(हिं०, सं० पारि०)*

रचना के आधार पर काव्य के प्रमुख दो भेद प्रचलित हैं—मुक्तक (दे०) और प्रबंध। वामन (दे०) ने इन्हें क्रमशः अनिबद्ध और निबद्ध कहा है। निबद्ध को इन्होंने 'संदर्भ' तथा 'प्रबंध' नाम भी दिया है। निबद्ध से उनका आशय महाकाव्य (दे०), नाटक (दे०), कथा, आख्यायिका (दे०) आदि मुक्तकेतर गद्य-पद्यबद्ध काव्य से है। उनके अनुसार जैसे पहले माला बनती है, और फिर अनेक मालाओं से मुकुट-शेखर बनाया जाता है, उसी प्रकार अनिबद्धों (मुक्तकों) से निबद्ध (प्रबंध) बनाया जाता है। अकेला अनिबद्ध काव्य उस प्रकार शोभित नहीं होता जैसे कि अग्नि का एक स्फुलिंग। स्फुलिंग-समूह के ही समान निबद्ध (प्रबंध)-काव्यदीप्तिमान् होता है। (का० सू० वृ० 1.3 27-32)। किंतु मुक्तक में भी प्रबंध के ही समान रसोद्बोध क्षमता होती है—इस कथन की पुष्टि करते हुए आनंदवर्धन (दे०), ने 'अमरुक' (दे० 'अमरुकशतक') के मुक्तकों का गुण-गान किया है—मुक्तकेषु हि प्रबंधेष्विव रसबंधाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यते। यथा हि अमरुकस्य कवेर्मुक्तकाः श्रृंगार रसस्यदितः प्रबंधाय-

माना. प्रसिद्धा एव। (ध्वन्या०) काव्य के मुक्तक और प्रबध इस नाम से दो भेद सर्वप्रथम राजशेखर (दे०) की 'काव्यमीमासा' (दे०) (पृष्ठ 124) मे मिलते हैं। इनसे पूर्व आनदवर्धन और कुतक (दे०) ने क्रमश ध्वनि (दे०) और वक्रोक्ति (दे०) के प्रबधगत भेदोपभेद का भी उल्लेख किया है। अब प्रबध-काव्य से तात्पर्य केवल पद्यात्मक प्रबधो से लिया जाता है, जिसके महाकाव्य और खडकाव्य (दे०) ये दो प्रमुख भेद माने जाते है।

प्रबध पूर्णचद्र (उ० कृ०)

'प्रबध पूर्णचद्र' यदुमणि महापात्र (दे०) की काव्य प्रतिभा का उत्कृष्ट फल है। कवि की सूक्ष्म दृष्टि, व्यापक अनुभूति, विशाल अध्ययन तथा पैनी प्रतिभा की यह द्योतक है। इसकी रचना शैली समुन्नत है तथा पद-विन्यास एव अलकार योजना उच्चकोटि की है। अगाध सस्कृत ज्ञान का गहरा प्रभाव दिखाई पडता है। शब्द-चमत्कार एव उद्भट कल्पना मे कही-कही वे उपेंद्र भज (दे०) से भी आगे बढ गए है।

कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण इसकी विषयवस्तु है। प्रबधकाव्य होते हुए भी इसके प्रारभ मे देवस्तुति नही है। कमल विष्णु के चरणो का उपयुक्त उपमान नही है, इसके प्रमाण-स्वरूप लेखक ने अनेक पौराणिक घटनाओ का उल्लेख किया है। उन्होने कहा है कि गुरुदेव के मुख से कृष्ण नाम-श्रवण होते ही कृष्ण सुधारस उनकी वाणी म स्वयमेव छलक पडा है। पूर्णचद्र द्वि-अर्थक शब्द है—कृष्ण एव रोग विनाशक औषधि। सपूर्ण काव्य का भी द्विविध अर्थ है—एक अर्थ कृष्ण सबधी है, दूसरा पुरागोक्त ऋषि अथवा किसी इतर विषय का सूचक है।

यदुमणि जी ने व्याकरण के नियमो के आधार पर इस ग्रथ म कुछ ऐसे स्वनिर्मित शब्दो का प्रयोग किया है, जिनका प्रयोग न तो प्रचलित भाषा म दिखाई पडता है और न पुराने ग्रथो म। पाणिनि व्याकरण का उन्होने गभीर अध्ययन किया था। यद्यपि क्लिष्ट शब्दालकारो का उन्होंने यथासभव प्रयोग नही किया है, किंतु श्लेष के प्रयोग के कारण कठिन सस्कृत-शब्दो का प्रयोग किया है। इस रचना से उनका गभीर सगीत-ज्ञान भी प्रकट होता है। रुक्मिणी को भावी कर्त्तव्या का उपदेश देते समय श्लेप के द्वारा कवि ने विभिन्न राग-रागिनियो का उल्लेख किया है। कवि का कठिन म कठिन एव सरल म सरल, दूरारूढ एव सहज, गुरुगभीर एव चटपटी भाषा पर एक-सा अधिकार है। सक्षेप मे उसका जीवत व्यक्तित्व भी इसमे सर्वत्र व्याप्त है।

प्रबधमानस (ओ० कृ०)

यह डा० कृष्णचद्र पाणिग्रही (दे०) के उडिया जातीय एव सास्कृतिक परपरा सबधी निबधो का सकलन है। एक प्रकाड पुरातत्त्ववेत्ता तथा इतिहासकार के रूप म हमारी सस्कृति के व्यापक स्वरूप पर उनका पाडित्यपूर्ण अधिकार है। इसमे सारलादास (दे०), जगन्नाथदास (दे०) एव राधानाथ राय (दे०) का पुनर्मूल्याकन मौलिक एव विद्वत्तापूर्ण है। कुछ निबधो मे लेखक ने उडिया जन इतिहास का अतिसूक्ष्म विवेचन किया है और हमारी अनेक सास्कृतिक मान्यताओ को नितात आधारहीन सिद्ध किया है। इस पुस्तक ने इतिहास के अध्ययन को एक नया परिप्रेक्ष्य एव एक निश्चित दिशा प्रदान की है।

प्रबोधचन्द्रिका (बँ० कृ०) [प्रकाशन वर्ष —1833 ई०]

विलियम केरी के परामर्श के फलस्वरूप फोर्ट विलियम कालेज के बँगला भाषा विभाग के प्रधान पडित मृत्युजय विद्यालकार की अन्यतम सार्थक रचना 'प्रबोध-चन्द्रिका' प्रकाशित हुई थी। कालेज अधिकारियो के नाम 5 जनवरी, 1819 ई० को लिखित केरी के एक पत्र स इस बात का पता लगता है। असस्कृतज्ञो के निकट सस्कृत-भाषाश्रित विद्या का परिचय देना ही इस ग्रथ का उद्देश्य था। इस ग्रथ मे कई लौकिक कहानियाँ भी सकलित हैं। भाषा अपेक्षाकृत सहज है। सस्कृत भाषा के प्रति लेखक का आनुगत्य समधिक विद्यमान है। फिर भी, कहानी की रचना एव भाषा विन्यास मे प्रयोजनानुरूप गद्य-रीति का प्रयोग किया गया है। इसी म उनका स्वकीय वैशिष्ट्य प्रकट हुआ है।

प्रबोधचद्रोदय (स० कृ०) [समय—ग्यारहवी शती का उत्तरार्ध]

यह सस्कृत का प्रसिद्ध प्रतीक नाटक है। इसके रचयिता कृष्णकवि या कृष्ण मिश्र का समय ग्यारहवी शती का उत्तरार्ध माना जाता है।

यह नाटक सस्कृत-नाट्य साहित्य की एक अनूठी कृति है। इसम क के माध्यम स दार्शनिक तत्त्वो

का विवेचन किया गया है। कवि ने इस नाटक में विवेक, मोह, ज्ञान, विद्या, बुद्धि, दंभ, श्रद्धा तथा भक्ति आदि अमूर्त भावों को विभिन्न पात्रों के रूप में कल्पित करके अध्यात्म विद्या का सुंदर निदर्शन प्रस्तुत किया है। भक्ति और ज्ञान-समन्वित यह रूपक दार्शनिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। कवित्व की दृष्टि से भी विद्वानों ने इस नाटक की प्रशंसा की है।

इस नाटक की रचना करके कृष्ण मिश्र ने संस्कृत में प्रतीक नाटकों की परंपरा को जन्म दिया। जैन कवियों ने इस परंपरा को अपनाकर अपने धर्म-सिद्धांतों का प्रचार किया। इसकी लोकप्रियता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि अनेक मध्यकालीन हिंदी कवियों ने इसके हिंदी रूपांतर किए अथवा इसकी दार्शनिक संवाद-योजना का सहारा लेकर रूपकों की रचना की।

प्रबोधचंद्रोदय *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती का पूर्वार्ध]

कृष्ण मिश्र-रचित 'प्रबोधचंद्रोदय' (दे०), संस्कृत का रूपात्मक नाटक है। इसमें वेदांत के अद्वैतवाद का प्रतिपादन नाटकीय ढंग पर हुआ है। मोह, विवेक, दंभ, ज्ञान, श्रद्धा, भक्ति, बुद्धि आदि पुरुष-स्त्री पात्रों के माध्यम से अध्यात्म-विद्या का ठाठ बहुत ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। जहाँ इसमें ज्ञान और भक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया गया है, वहाँ दूसरी ओर अँग्रेजी के रूपात्मक नाटकों की परंपरा का भी निर्वाह किया गया है।

हिंदी में भारतेंदु (दे०) ने 'पाखंड विडंबन' नाम से पहली बार इसका हिंदी अनुवाद 1871 ई० में किया। इसके अलावा अनाथदास ने 1883 ई०, गुलाबसिंह ने 1905 ई०, महेशचंद्र प्रसाद ने 1935 ई०, महाराज जसवंतसिंह (दे०) ने सत्रहवीं शती के पूर्वार्ध तथा ब्रजवासी दास ने सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में 'प्रबोधचंद्रोदय' नाम से इस ग्रंथ का हिंदी-अनुवाद प्रस्तुत किया। 1889 ई० में मानकदास ने राजा कीरत वर्मा का मन भोग-विलास से पलटने के लिए बलीराम-कृत 'प्रबोधचंद्रोदय' के आधार पर इसी नाम से दोहे-चौपाइयों में यवन भाषा में रचना की। इसमें कहीं-कहीं खड़ी बोली का भी प्रयोग किया गया है। ब्रजवासी दास ने अपने अनुवाद में विविध छंदों का प्रयोग किया है और अनुवाद की भाषा शुद्ध ब्रज-भाषा है। निरर्थक और भरती के शब्दों का इसमें अभाव है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के अनुवाद में वैष्णव धर्म की विशेषता अभिव्यंजित हुई है। भक्ति की पराकाष्ठा के भी इसमें दर्शन होते हैं। अनुवाद की भाषा सरल एवं प्रवाह-पूर्ण है। जसवंत सिंह का 'प्रबोधचंद्रोदय' का पद्यात्मक अनुवाद भी काफी निपुणतापूर्ण है। निश्चय ही यह रचना भक्ति और ज्ञान का समन्वय प्रस्तुत करने की दृष्टि से काफ़ी महत्त्वपूर्ण मानी जाती है और अपनी कोटि की अकेली रचना है।

प्रभजोत कौर *(पं० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

प्रभजोत कौर के कविता-संग्रह हैं—'लट लट जोत जगे', 'अजल तों', 'सुपने सधरां' और 'पब्बी'। पहले काव्य-संग्रह की कविताओं से लगता है जैसे कवयित्री को अपनी प्रेम-भावनाओं को व्यक्त करने में संकोच हो रहा हो और 'अजल तों' संग्रह में इस संकोच की जकड़न से काफ़ी हद तक मुक्त हो गई हों। इन कविताओं में जीवन की निराशा और पीड़ित मनुष्यता के प्रति हार्दिक सहानुभूति का भाव व्यक्त हुआ है। 'सुपने सधरां' कव-यित्री का पहला आत्मसाक्षात्कार-काव्य है। इसमें प्रेमजन्य विरह का मार्मिक वर्णन है। इन कविताओं में लोकगीतों का पुट है और कला का निखार भी। 'पब्बी' संग्रह पर इन्हें साहित्य अकादेमी का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

प्रभजोत कौर की कविता में विशुद्ध अनुभूति की तीव्रता है, लोकगीतों की-सी तड़प, अल्हड़ता और सरलता है।

प्रभाकर *(म० ले०)* [जन्म—1769 ई०; मृत्यु—1843 ई०]

इनका पूरा नाम प्रभाकर जनार्दन दातार था। ये गंगू हैबती के शिष्य थे।

इन्होंने अनेक लावणियाँ और पोवाडे लिखे हैं, परंतु इनकी प्रतिभा पोवाडों की रचना में अधिक निखरी है। प्रभाकर-रचित तेरह ऐतिहासिक पोवाडे मिलते हैं। इनमें से तीन के चरित-नायक सवाई माधवराव हैं और दो बाजीराव पेशवा द्वितीय पर हैं। पेशवा-शासन-काल के मध्याह्न से उसके अस्त होने तक के काल में जीवित रहने के कारण इनके काव्य में तत्कालीन परिस्थिति और सामंतीय संस्कृति की झलक मिलती है।

लौकिक लावणियों में कहीं-कहीं शृंगार-वर्णन प्रायः मुखर हो गया है, पर पौराणिक कथाश्रित लावणियाँ

अधिक सरस हैं। कृष्ण के शृंगार का वर्णन करने वाली एक लावणी हिंदी में भी लिखी है।

शाहीर कवियों में प्रभाकर अग्रणी है।

प्रभाकर *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—800 ई०]

प्रभाकर का पूरा नाम प्रभाकर मिश्र है। प्रभाकर मीमांसक कुमारिल (दे० कुमारिल भट्ट) के शिष्यों में सर्वाधिक प्रतिभाशील थे। इनका मत दर्शन के क्षेत्र में 'गुरु मत' के नाम से प्रख्यात है। इन्होंने 'शबर-भाष्य' (दे० शबरस्वामी) पर 'बृहती' तथा 'लघ्वी' ये दो टीकाएँ लिखी हैं। 'बृहती' का कुछ भाग ही प्रकाशित मिलता है।

प्रभाकर आत्मा को परिवर्तनशील नहीं मानते। इसके अतिरिक्त ये आत्मा की ज्ञेयता को भी स्वीकार नहीं करते। प्रभाकर का विचार है कि किसी भी क्रिया में कर्त्ता और कर्म एक नहीं हो सकते। इस प्रकार आत्म ज्ञाता ही है, ज्ञेय तो वस्तुएँ ही होती हैं। परंतु प्रभाकर मिश्र के मतानुसार आत्मा स्वयं प्रकाश भी नहीं है। आत्मा जड़ है। आत्मा के जड़ होने के कारण ही उसकी अभिव्यक्ति के लिए किसी ज्ञान का होना आवश्यक है। आत्मा की अभिव्यक्ति कराने वाला ज्ञान स्वप्रकाशरूप है।

जहाँ तक अज्ञानविषयक सिद्धांत का प्रश्न है, प्रभाकर अख्यातिवाद के समर्थक हैं। अख्यातिवाद के अनुसार शुक्ति (सीपी) को देखकर उसमें रजत (चाँदी) के भ्रम का कारण प्रत्यक्ष ज्ञान के कर्ता—द्रष्टा के सामने वर्तमान विषय—शुक्ति एवं रजत का भेदाग्रह है। अख्यातिवादी मीमांसक रजत को स्मृति पर आधारित मानता है। अख्यातिवादी का कहना है कि पुरोवर्ती विषय (शुक्ति) एवं रजत के भेद का ग्रहण होने पर शुक्ति एवं रजत के भ्रम का अवसर उपस्थित नहीं होता।

निस्संदेह, प्रभाकर का ख्याति संबंधी सिद्धांत मनोवैज्ञानिक पद्धति से परीक्षण करने पर नितांत युक्ति संगत प्रतीत होता है।

प्रभाकर शास्त्री, वेटूरि *(तें० ले०)* [जन्म—1888 ई०, मृत्यु—1950 ई०]

इस शती के विद्वान् समालोचकों में श्री वेटूरि प्रभाकर शास्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान है। साहित्यिक अनुसंधान के क्षेत्र में इनका प्रयास विशेष उल्लेखनीय है। श्रीनाथ (दे० श्रीनाथुडु) के बारे में इनका अध्ययन 'शृंगार श्रीनाथुडु' नामक शोधकृति के रूप में प्रस्तुत है। 'बसवपुराणमु' (दे०), 'हरविलासमु' (दे०), 'क्रीडाभिरामु' (दे०), आदि कई प्राचीन ग्रंथों का इन्होंने संपादन किया। इन संपादित ग्रंथों की भूमिकाओं में शास्त्रीजी की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय मिलता है। 'कपोतकथा', 'कडुपुतीपु', 'मन्नाळळमुच्चटा' और 'विश्वासमु' इनकी स्वतंत्र रचनाएँ हैं। 'प्रतिमा' (दे०), 'वर्णभारमु' (दे०), 'मध्यम-व्यायोग' (दे०), आदि भास के नाटकों का इन्होंने तेलुगु में रूपांतर भी किया था। 'नीतिनिधि' के नाम से इन्होंने अँग्रेजी से अनुवाद किया। तिरुपति के श्रीवेंकटेश्वर आरियेंटल इंस्टीट्यूट में रहते हुए इन्होंने सुप्रसिद्ध गीतकार अन्नमाचार्युलु (दे०) की जीवनी और साधना का अध्ययन किया। विस्मृति के गर्भ में पड़े इस प्रतिभा रत्न को प्रकाश में लाने का श्रेय इन्हीं को ही है। तालपत्रों में सुरक्षित प्राचीन ग्रंथों को भी ये प्रकाश में लाए और उन्हें प्रचारित प्रसारित किया। तेलुगु साहित्य का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जिसमें इन्होंने प्रवेश न किया हो। विद्वान, समालोचक, संपादक, शोधकर्ता और कवि के रूप में इनकी बहुमुखी प्रतिभा का तेलुगु-जगत में बड़ा आदर है।

'प्रभात', केदारनाथ मिश्र *(हिं० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

इनका जन्म आरा में हुआ। इन्होंने पटना विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त की। ये बिहार राज्य में पुलिस जन-संपर्क अधिकारी हैं और 1962 ई० में 'विशिष्ट पुलिस सेवा' के निमित्त राष्ट्रपति-पदक प्राप्त कर चुके हैं। साहित्य-सेवा के लिए ये साहित्यिक संस्थाओं और राज्य-सरकारों द्वारा अनेक बार सम्मानित और पुरस्कृत हो चुके हैं। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है परंतु साहित्य-जगत में इनकी ख्याति के आधार-स्तंभ 'कर्ण', 'कैकेयी', 'ऋतंवरा' आदि प्रबंध-काव्य हैं। इन काव्यों में इन्होंने कर्ण, कैकेयी और मनु जैसे प्रभावशाली पात्रों की सृष्टि की है। इनके महाकाव्य 'कैकेयी' को पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। छायावादोत्तर काल के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित प्रबंध-काव्यों में इनकी रचनाएँ वस्तु और शिल्प की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी हैं।

प्रभावती प्रद्युम्नम् *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1570 ई०]

पिंगळ सुरना (दे०) के इस काव्य का कथानक संस्कृत के 'हरिवंश' के आधार पर निर्मित हुआ है। श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न तथा प्रभावती का प्रणय एवं विवाह इस काव्य की मूल कथा है। इसमें 'शुचिमुखी' नामक राजहंस द्वारा नायक-नायिका के बीच में प्रणय-दौत्य का कार्य संपन्न करवाया गया है। यह राजहंस अपने वचन तथा कार्य-कुशलता से पाठक को आकृष्ट करता है। इसके द्वारा स्त्री-प्रकृति के अनेक स्वरूपों का परिचय भी दिया गया है।

इस काव्य की यह एक महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह प्रबंध-काव्य के रूप में रचित एक नाटक है। सर्ग-विभाजन के रूप में अंक-विभाजन, पाँचों संधियों तथा पात्रों के प्रवेश, निष्क्रमण आदि सूचनाओं से युक्त होकर यह काव्य पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है मानो सर्वालंकारों से सज्जित रंगमंच पर नाटक प्रदर्शित किया जा रहा हो। इसकी रचना मनोरम तथा घटनाएँ चमत्कारपूर्ण हैं। मूल इतिवृत्त मे आवश्यक संशोधन करके, कवि ने इस काव्य मे रोचक एवं निबिड कथा का निर्माण किया है। इसकी भाषा मधुर, प्रांजल एवं सशक्त है। तेलुगु के प्रौढ़ प्रबंध-काव्यों में यह बहुमूल्य माना जाता है।

प्रभुदास गांधी *(गु० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

श्री प्रभुदास गांधी की 'जीवनातुं पकोड' को गुजरात के गांधी-साहित्य में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। प्रभुदास गांधी महात्मा गांधी के भतीजे के पुत्र हैं और उनका बाल्यकाल गांधी जी के साथ फ़िनिक्स आश्रम में व्यतीत हुआ था। आश्रम के संस्कार उन पर कैसे पड़े, गांधीजी पर उनके जन्मस्थान और पारिवारिक वातावरण का प्रभाव किस प्रकार पड़ा, फ़िनिक्स आश्रम का संचालन गांधी जी ने किस प्रकार किया, इत्यादि प्रसंग जो गांधी जी की आत्मकथा में प्राप्त नहीं होते, उन सबका इस ग्रंथ मे विस्तार से और रोचक ढंग से वर्णन हुआ है। इस पुस्तक का अँग्रेजी में भी अनुवाद हुआ है जिसकी भूमिका गांधी जी के आश्रमवासी अँग्रेज शिष्य पोलोक ने लिखी है।

प्रमथनाथ बिशी *(बँ० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

कहानी-उपन्यास एवं साहित्यिक तथा समाचार-पत्रीय सरस निबंधों के रचनाकार प्रमथनाथ बिशी का आधुनिक साहित्य-क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। 'प्र० ना० बि०' के छद्मनाम से व्यंग्य कहानियों एवं 'कमलाकांत' के नाम से समाचार-पत्रों में असंख्य सरस निबंधों के रचनाकार प्रमथ बाबू के चिंतनशील व्यक्तित्व का प्रकाशन इनके साहित्यिक निबंधों में हुआ है एवं लेखक का कल्पनाशील सर्जक रूप ऐतिहासिक उपन्यासों में सर्वाधिक प्रस्फुटित हुआ है। प्रमथ बाबू के उपन्यासों में 'देशेर शत्रु' (1925 में ढाका से प्रकाशित), 'पद्मा' (1945), 'जोड़ादीघिर चौधुरी-परिवार' (1937), 'डाकिनी' (1955), 'चलनबिल (1951), 'अश्वत्थेर अभिशाप' (1947), 'केरी साहेबेर मुंशी', 'लाल क़िला' आदि उल्लेखनीय हैं। इनके 'जोडादीघिर चौधुरी-परिवार', 'चलनबिल' तथा अश्वत्थेर अभिशाप' में उत्तरबंग के एक जमींदार-परिवार उत्थान-पतन की शतवर्षव्यापी कहानी का क्रमिक इतिहास वर्णित है। 'पद्मा', 'कोपवती' आदि उपन्यासों में उत्तर-पूर्व-पश्चिम बंग के अपेक्षाकृत आधुनिक जीवन की कहानी लिपिबद्ध है। जमींदार एवं आभिजात्य वंश के स्मृति-कथन तथा बंगाल के गाँव के रूप-वर्णन के आश्रय से इन्होंने कल्पनाशीलता, काव्यधर्मिता, चरित्र-चित्रण-दक्षता, गंभीर जीवन तत्त्व-व्याख्याता का अच्छा परिचय दिया है।

सांप्रतिक काल में रचित 'केरी साहेबेर मुंशी' एवं 'लाल क़िला' में महाकाव्य की विस्तृति है। इतिहास के नाना घटनावर्त एवं राजनीतिक विक्षोभ तथा सामाजिक जटिलता के आश्रय से मानव जीवन की स्वयं या दैव-निर्धारित जीवन-लीला की इन्होंने बहुत ही सुंदर अभिव्यक्ति की है।

मननशील साहित्यिक आलोचक के रूप में प्रमथ बाबू की विशेष ख्याति है। स्वच्छंद-अभिव्यंजनावादी आलोचना के आश्रय से लेखक ने 'रवींद्र काव्य-प्रवाह', 'रवींद्र नाट्य-प्रवाह', 'रवींद्रनाथ ओ शांतिनिकेतन', 'माइकेल मधुसूदन', 'बंकिम सरणी' आदि महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है। नाटकों में लेखक ने व्यंग्य के आधार पर 'ऋणंकृत्वा' (1935), 'परिच्यासविजल्पितम्' आदि की एवं कविताओं में 'वसंतसेना' (1929), 'विद्यासुंदर' (दे०) (1935), 'युक्तवेणी' (1948), 'उत्तरमेघ' (1953), आदि प्रेम एवं प्रकृतिपरक संग्रहों की रचना की है।

ये कविता के क्षेत्र में पुरातनपंथी है जबकि उपन्यास के क्षेत्र में इन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास के आधुनिक एवं नये आदर्शों की स्थापना की है।

प्रमाणवार्तिक *(स० कृ०)* [रचना-काल—600 ई०]

लेखक—धर्मकीर्ति (दे०)।

'प्रमाणवार्तिक' दिङ्नाग के 'प्रमाण-समुच्चय' की स्वतंत्र व्याख्या है। 'प्रमाणवार्तिक' पर भी देवेंद्रबुद्धि, प्रज्ञाकरगुप्त, जयानंत, यमारि, रविगुप्त, मनोरथनंदी, शंकरानंद तथा स्वयं धर्मकीर्ति की टीकाएँ मिलती हैं।

'प्रमाणवार्तिक' में चार परिच्छेद हैं। ये परिच्छेद स्वार्थानुमान, प्रमाण-सिद्धि, प्रत्यक्ष प्रमाण तथा परार्थानुमान-विषयक हैं। प्रथम परिच्छेद के अंतर्गत ग्रंथप्रयोजन, हेतुविचार, अभावविचार, शब्दविचार, वेदों के अपौरुषेयत्व का विचार आदि विषयों के संबंध में विवेचन किया गया है। द्वितीय परिच्छेद में प्रमाण लक्षण एवं बुद्धवचन के संबंध में उल्लेख मिलता है। तृतीय परिच्छेद में प्रत्यक्ष तथा अनुमान की प्रमाणताएँ, परमार्थ-सत्य तथा व्यवहार-सत्य आदि विषयों का विवेचन है। चतुर्थ परिच्छेद के अंतर्गत धर्मकीर्ति ने परार्थानुमान, शब्दप्रमाणनिराकरण एवं भाव आदि के विषय में विवेचन किया है।

'प्रमाणवार्तिक' के अंतर्गत बौद्ध-विज्ञानवाद एवं क्षणिकवाद का विवेचन भी मिलता है। इसके अनुसार एकमात्र विज्ञान की ही सत्यता है। बाह्य तत्त्वों की सत्यता का इसमें निराकरण किया गया है। क्षणिकवाद का प्रतिपादन करते हुए प्रमाणवार्तिककार ने इस तथ्य पर विशेष बल दिया है कि सत्ता मात्र में नाश पाया जाता है। उपनिषदों की दार्शनिक विचारधारा के विपरीत इस ग्रंथ में, अर्थक्रिया में जो समर्थ है उसे परमार्थ सत् कहा गया है। इसके विपरीत वस्तु सामान्य को इसमें 'संवृत्ति' कहा गया है। उदाहरणार्थ, अर्थक्रिया में समर्थ घट परमार्थ सत् एवं घटत्व सामान्य संवृति है।

प्रमाण-समीक्षा एवं दार्शनिक विचारधारा की दृष्टि से *प्रमाणवार्तिक बौद्ध दर्शन का अत्यंत उपयोगी* ग्रंथ है।

प्रयोगवाद *(हिं० पारि०)*

साहित्य के समान प्रयोग भी चिरंतन हैं क्योंकि गतिरोध उत्पन्न करने वाली रूढ़ियों को हटाकर नये-नये प्रयोग सदा होते रहे हैं—*विषय और शिल्प* दोनों क्षेत्रों में। परंतु प्रयोग वे ही सफल रहे हैं जो परंपरा में एकदम कटे न रहकर उससे जुड़े होते हैं। जिन इलियट को प्रयोगवादियों में शीर्षस्थान प्राप्त है, वे भी परंपरा का महत्त्व स्वीकार करते हैं—यद्यपि परंपरा से उनका अभिप्राय पुरातन का अंधानुकरण नहीं है। वे भूत को वर्तमान के आलोक में देखने तथा वर्तमान को भूत द्वारा मार्गदर्शन देने के पक्ष में हैं। *उनके प्रयोगवाद का आधार सत्रहवीं* शती की अँग्रेजी कविता और कैथोलिक विचारधारा थी। हिंदी में सिद्धांत-रूप में 'प्रयोगवाद' का उद्देश्य था अछूते क्षेत्रों का अन्वेषण, पर वस्तुतः वह 'छायावाद की वायवी सौंदर्य-चेतना के विरुद्ध एक वस्तुगत मूर्त और ऐंद्रिय *चेतना का विकास तथा सौंदर्य की परिधि में* केवल मसृण और मधुर के अतिरिक्त परुष, अनगढ़, भदेस का समावेश' सिद्ध हुआ। यहाँ वह काव्य में इलियट की चिंताधारा और शिल्पगत विशेषताओं का तथा उपन्यास (दे०) में जेम्स ज्वाइस की चेतना-प्रकार पद्धति का अनुकरण मात्र बन कर रह गया है। जो बात हिंदी के विषय में सत्य है, प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के प्रयोगवादी साहित्य पर लागू होती है।

प्रयोगवाद *(हिं० प्र०)*

'तारसप्तक' (दे०) (1943 ई०) में भाव-शिल्प की जो नवीनता दिखाई दी, उसे आलोचकों ने मुख्यतया 'अज्ञेय' की भूमिका के आधार पर 'प्रयोगवाद' का नाम दिया है। 'नयी कविता' का प्रचलन हो जाने पर अधिकांश प्रयोगी कवि और आलोचक इस प्रवृत्ति की स्वतंत्र सत्ता अस्वीकार करते हैं। 'अज्ञेय' के अनुसार *'तारसप्तक' में संगृहीत कवियों के सहयोग की कसौटी* प्रयोगशीलता थी। इस प्रयोगशाला ने भावक्षेत्र में नवीन क्षितिजों की खोज, मूल्यों की अराजकता की स्वीकृति, वस्तुपरक दृष्टि के आग्रह और अवचेतन की जटिलता के प्रतीकात्मक चित्रण का मार्ग लिया। भावक्षेत्र की इन नवीनताओं ने शिल्पगत प्रयोगों को *अनिवार्य बना दिया*। फलतः शब्द-भंडार को शास्त्रीय और स्थानीय शब्दों के प्रयोग द्वारा व्यापक बनाया गया। प्रचलित शब्दों को विचित्र वैयक्तिक अर्थों से गर्भित किया गया। असाधारण अप्रस्तुतों की योजना की गई। विराम-संकेतों, अंकों, रेखाओं, टाइपों आदि के भाषेतर साधनों की शरण भी ली गई। लय और तुक की नयी शैलियों का संधान किया गया। *इस प्रकार प्रयोगवादियों ने भाव और शिल्प दोनों* के धरातल पर नवीनता या आधुनिकता को अंगीकार कर अपने काव्य को युगानुकूल बनाने का सफल-असफल प्रयास किया।

प्रवरुडु *(ते० पा०)*

प्रवरुडु आंध्र कविता पितामह 'उपाधि' से विख्यात अल्लसानि पेद्दन्ना (दे०) के अमर प्रबंध-काव्य 'मनुचरित्रमु' (दे०) का एक प्रमुख पात्र है। प्रवरुडु परम निष्ठावान्, एकपत्नीव्रती, सदाचारी एवं कामदेव के समान सुंदर युवक है। वह एक सिद्ध के द्वारा किसी मूलिका को प्राप्त करके उसके प्रभाव से आसमान में उड़कर हिमालय पर्वत पर पहुँच जाता है। वहाँ पहुँचने के उपरांत हिम के कारण उस मूलिका का प्रभाव नष्ट हो जाता है और वह अपने निवास-स्थान को लौट नहीं सकता। इस विकट स्थिति में उसकी भेंट वरूथिनी नामक परम सुंदरी अप्सरा से हो जाती है। वरूथिनी उसके अद्‌भुत सौंदर्य पर मुग्ध होकर उसके सम्मुख अपने प्रणय एवं विरहताप को अभिव्यक्त करके उससे अनेक सुख पाने के लिए कातर हो उठती है। परंतु प्रवर अपनी धार्मिक निष्ठा एवं संयम के कारण उसके प्रस्ताव को बार-बार अस्वीकार करके उसे धर्म, नैतिकता एवं सदाचार के मूल्य समझाने का यत्न करता है। वरूथिनी भी जीवन में कामोपभोग के महत्त्व का वर्णन करती हुई कहती है कि मनुष्य धर्म, निष्ठा एवं सदाचार के द्वारा स्वर्ग पहुँच कर वहाँ की अप्सरा कामिनियों के सांगत्य का सुख ही भोगता है और वह दैवीय सुख से पृथ्वी पर ही मिल रहा है। अतः उसे ठुकराना नहीं चाहिए। जब उसके सारे तर्क व्यर्थ हो जाते है, तब वह कामोत्कंठा से कातर होकर प्रवर को गाढ़ालिंगन में बाँधने का यत्न भी करती है। परंतु अंत में प्रवर रोती-बिलखती हुई वरूथिनी को छोडकर चला जाता है। प्रवर एवं वरूथिनी के इसी प्रसंग ने पेद्दन्ना की लेखनी के प्रभाव से 'मनुचरित्र' काव्य में अमरता प्राप्त कर ली है। समस्त आंध्र में प्रवर एक घरेलू नाम है, जो निष्ठावान् एवं संयमी सुंदर युवक का द्योतक है।

प्रवासी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1937 ई०]

ना० सी० फडके (दे०) के उन उपन्यासों में जिनमें समसामयिक राजनीतिक पार्श्वभूमि पर रम्य प्रणय-कथा लिखी गई है, 'प्रवासी' का शीर्षस्थान है। इसमें 1908 ई० से 1930 ई० तक के राजनीतिक आंदोलन का परिचय तो मिलता है, किंतु लेखक उससे तद्रूप नहीं हो पाया है। अतः पाठक का मन भी उसमें नहीं रमता। राजनीतिक पार्श्वभूमि का प्रयोग केवल कथा की घटनाओं को अधिक आकर्षक बनाने तथा नायक के गुणों में देशसेवा का गुण जोड़ने के लिए किया गया है। राजनीतिक घटनाओं और संघर्ष का प्रभाव पात्रों के मन पर नहीं पड़ता, वे पूर्ववत् कला-विलासी एवं प्रणयी बने रहते हैं। 'प्रवासी' उनके अन्य राजनीतिक उपन्यासों से थोड़ा भिन्न इसलिए है क्योंकि उसके नायक राजाभाऊ में आनुवंशिक प्रवृत्ति का प्रभाव दिखाया गया है—उसमें अपने पिता के दृढ़ निश्चय और अंतर्मुख स्वभाव की झलक मिलती है। अन्य उपन्यासों के सदृश इसमें भी संयोगों, और अस्वाभाविक प्रसंगों के प्रयोग के कारण विश्वसनीयता को आघात लगता है। चंचला के प्रति राजाभाऊ का आकर्षण प्रतीतिकर नहीं है। राजाभाऊ के प्रवास में उसे ऐसा कोई मित्र नहीं मिलता जिससे वाद-विवाद या वैयक्तिक संघर्ष होता हो, केवल स्त्रियाँ ही मिलती हैं—इस पर भी विश्वास नहीं होता। इसीलिए उसके 'प्रवास' की कथा प्रभावपूर्ण नहीं बन पाती, और न यथार्थ प्रतीत ही होती है; संघर्ष में धार भी नहीं आ पाती—राजभाऊ के दुखद अंत से पाठक द्रवित नहीं हो पाता। अतः राजनीतिक पार्श्वभूमि पर लिखा होने पर भी यह उपन्यास फडके के अन्य प्रणय-उपन्यासों से भिन्न नहीं है।

प्रवृत्ति *(सं० पारि०)*

राजशेखर (दे०) के अनुसार रंगमंच पर अभिनीत नाटक में 'वेशविन्यासक्रम' को 'प्रवृत्ति' कहते हैं। भारत ने चार भूखंडों के आधार पर प्रवृत्ति के चार भेद किए हैं—पश्चिम भाग की वेशभूषा आवंती, दक्षिण भारत की दाक्षिणात्य, पूर्वी भारत की औड्रमागधी, और मध्य तथा उत्तर की पांचाली।

प्रवेश बीजो *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1950 ई०]

रंगमंचीय एवं साहित्यिक दोनों दृष्टियों से सफल कहे जाने वाले एकांकियों की सृष्टि जयंति दलाल ने की है। 'जवनिका' के पश्चात् दलाल का यह एकांकी-संग्रह 1950 ई० में प्रकाशित हुआ जो विशेषतः व्यंग्य एवं हास्य पर आश्रित है। इस यथार्थवादी एकांकीकार ने इस संग्रह में शहरी जीवन की विचित्रताओं और विकृतियों पर बड़ी निर्ममता से प्रहार किया है। अभिजात वर्ग के दंभ, मिथ्याभिमान, ढकोसले, प्रपंच, विषयलिप्सा और प्रदर्शनप्रियता को जयंतिभाई ने इसमें बहुत ही कुशलता

तथा कलात्मकता से रूपायित किया है। इस संग्रह के दो एकांकी—'सोयनु नाकु' और 'द्रौपदीनो सहकारो'—विशेष लोकप्रिय हुए। 'स्त्रीनी दुश्मन स्त्री', 'चाल्लो', 'पाथरणा' ने चदरवा' आदि एकांकी यथार्थवादी धरातल पर सामाजिक समस्याएँ पेश करते हैं। बर्नार्ड शॉ की तरह दलाल ने इन एकांकियो मे समाज के ढकोसलो, मिथ्या व्यवहारो और दर्प पर करारे व्यंग्य एव तीखे कटाक्ष किए है। भाषा-शैली और सवाद भी तदनुसार वक्रोक्तियो और व्यंजनाओ से परिपूर्ण है।

प्रसन्नकथाकलितार्थ युक्ति *(ते० पारि०)*

नन्नय भट्टु (दे०) (ग्यारहवी शती) ने अपनी काव्य-रचना के विशेष गुणो का उल्लेख करते हुए लिखा है कि कविजन मेरी रचना की 'प्रसन्नकथा क(वि)-लितार्थ युक्ति' के बारे मे मन मे विचार कर उस योजना की सराहना करेंगे। यह उनके रचना-शिल्प की ओर इंगित करता है। कविता के अर्थ मे प्रसन्न (प्रसादगुण युक्त) कथा का रहना अथवा प्रसन्न कथा से कलित (शोभित) अर्थों का सयोजन, यही इस पारिभाषिक शब्द का तात्पर्य है। 'आध्र-महाभारतमु' (दे०) की कथाओ के नियोजन मे नन्नय का स्पष्ट रचना-चातुर्य इस आशय की पुष्टि करता है।

कवि सम्राट विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) जी ने नन्नय भट्ट के काव्य-सौंदर्य की इस दृष्टि से व्याख्या करते हुए नन्नय की 'प्रसन्नकथाकलितार्थ युक्ति' शीर्षक आलोचनात्मक पुस्तक (1962 ई०) मे लिखी है।

प्रसन्नराघव *(स० कृ०)* [समय—तेरहवी शती ई० का आरभिक काल]

यह रामकथा पर आधृत सस्कृत-नाटक है। इसकी रचना पीयूषवर्ष जयदेव ने की, जो गीतिगोविंदकार जयदेव (दे०) से भिन्न थे। इनका समय 1200 ई० के लग-भग माना जाता है। यह विदर्भ देश के कुंडनपुर नामक ग्राम के निवासी थे।

जयदेव ने 'प्रसन्नराघव' मे वाल्मीकीय 'रामायण' (दे०) की कथा को अनेक रोचक प्रसग, सवाद एव परिवर्तनो से सयुक्त करके सात अंको मे प्रस्तुत किया है।

इस नाटक मे नाट्य तत्त्वो की अपेक्षा काव्य-तत्त्वो का स्वर अधिक मुखरित है। इसीलिए कुछ आलोचक इसे नाट्य काव्य कहते हैं। इसके सवाद बडे हृदयस्पर्शी एव मार्मिक है, परतु व्यापार-सयोजन काव्यात्मकता के कारण शिथिल हो गया है। जयदेव का भाषा पर असाधारण अधिकार था। अद्भुत शब्दविन्यास तथा पदलालित्य ने उनकी भाषा को रमणीय तथा काव्य को कोमल बना दिया है।

हिंदी का राम-कथा-साहित्य प्रसन्नराघव से स्पष्टरूपेण प्रभावित है। गोस्वामी तुलसीदास (दे०) केशवदास (दे०) की कृतियो पर इस नाटक का प्रभाव सहज ही देखा जा सकता है।

प्रसाद, जयशंकर *(हि० ले०)* [जन्म—1889 ई०, मृत्यु—1937 ई०]

इनका जन्मस्थान वाराणसी है। इनके पिता-मह सुँघनी के व्यापारी थे। इनकी शिक्षा दीक्षा प्राय घर पर ही हुई। अपनी अध्ययनशीलता के कारण इन्होने सस्कृत हिंदी, बँगला, अँग्रेजी आदि का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। भारत के अतीत गौरव मे इनकी आत्मा रम गई थी। इसलिए इनका श्रेष्ठ साहित्य अधिकाशत सास्कृतिक पीठिका पर प्रतिष्ठित है।

'प्रसाद' की प्रतिभा बहुमुखी थी। 'आँसू' (दे०), 'लहर' (दे०) और 'कामायनी' (दे०) जैसे काव्य, 'स्कदगुप्त' (दे०), 'चद्रगुप्त' (दे०), 'अजातशत्रु' (दे०), 'ध्रुव-स्वामिनी' (दे०) आदि नाटक, 'ककाल' (दे०) और 'तितली' (दे०) जैसे उपन्यास, अनेक श्रेष्ठ कहानियाँ और गभीर आलोचनात्मक निबध इसके प्रमाण हैं। 'आँसू' विप्रलभ, शृगार प्रधान काव्य है और 'लहर' मे अनेक श्रेष्ठ प्रगीतो के साथ प्रलय की छाया जैसी लबी नाट्य कविता भी सकलित है। महाकाव्य 'कामायनी' इनकी कालजयी रचना है। इनके नाटक ऐतिहासिक हैं। सभी के कथानक भारतीय इतिहास के गौरवकाल से चुने गये हैं। इनके माध्यम से नाटककार ने अपने समय के राष्ट्रीय आदोलन को प्रदान करने का प्रयत्न किया है। घटनाधिक्य, पात्र-बाहुल्य, अलकृत भाषा और गभीर विचार आदि के कारण उन्हे रगमच पर प्रस्तुत करने मे अनेक कठिनाइयाँ आती रही हैं फिर भी इनका गौरव अक्षुण्ण है। अतिम नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' इस दृष्टि से अपवाद है। इनके कथा-साहित्य मे यथार्थवादी चेतना व्यक्त हुई है।

प्रसाद की कृतियो मे छायावाद (दे०) का

चरमोत्कर्ष प्राप्त होता है। मानवीय और मानवेतर सौंदर्य के कोमल और उदात्त चित्रों का जैसा भव्य समारोह यहां दिखाई देता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। युग-जीवन की समस्याओं का सार्वभौम समाधान प्रस्तुत कर इन्होंने युग-बोध को उदात्त रूप प्रदान किया है। भारतीय संस्कृति की आत्मा का निकटतम साक्षात्कार इनके साहित्य के माध्यम से किया जा सकता है। ये आधुनिक युग के प्रवर्तक एवं सर्वश्रेष्ठ कृतिकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

प्रसादम *(त० कृ०)* [रचना-काल—1964 ई०]

सुंदर रामस्वामी की नौ सामाजिक कहानियों का संग्रह। ये नौ कहानियां है—'प्रसाद', 'जन्नल', 'लव,' 'स्टाम्प एलबम', 'ओन्रूम पुरियविल्ले', 'वाळवुमवसंदमुम,' 'किडारि', 'सीदे मार्क शीक्कायत्तूळ' और 'मेय+पोय्= मेय्'। ये मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हैं, अतः कहानियों में आर्थिक दृष्टि से जीवन का चित्रण हुआ है। कहानियों में विभिन्न सामाजिक समस्याओं—विशेषकर अर्थाभाव से उत्पन्न समस्याओं का अंकन प्रभावशाली ढंग से हुआ है। 'स्टाम्प एलबम' जैसे नीरस विषयों को भी सरस कहानी का रूप दिया गया है। कहानियों में भाव-सौंदर्य के साथ कला-सौंदर्य भी है। अंतिम कहानी को छोड़ शेष सभी पारंपरिक शैली में रचित हैं। इनमें आंचलिक शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। सुंदर रामस्वामी आर्थिक दृष्टि से जीवन का यथार्थ चित्रण करने वाले प्रमुख तमिल साहित्यकारों में से हैं।

प्रहराज, गोपाळ चंद्र *(उ० लें०)* [जन्म—1887; मृत्यु—1945 ई०]

साहित्यकार व संस्कारक की सम्मिलित मनोवृत्ति लेकर श्री गोपाळ चंद्र प्रहराज ने उड़िया-साहित्य में जिन कतिपय दुर्लभ ग्रंथों का प्रणयन किया है, उनका साहित्यिक और सामाजिक मूल्य अतुलनीय है। अपनी व्यंग्यात्मक रचनाओं में इन्होंने एक स्पष्ट सामाजिक दायित्वबोध एवं उदात्त जीवन-मूल्यबोध का संकेत दिया है। प्रहराज का व्यंग्यधर्मी दृष्टिकोण अत्यंत गंभीर व मानवीय संवेदना के कारण प्राणस्पर्शी है। प्रहराज ने जिस अभिनव कौशल द्वारा सामाजिक व वैयक्तिक दुर्बलताओं का दिग्दर्शन कराया है, वह अद्भुत है। जमींदार एवं वकील होते हुए भी प्रहराज आधुनिक उड़िया-साहित्य के एक सशक्त गद्यकार हैं और फकीर मोहन सेनापति (दे०) के स्वाभाविक तथा यथार्थ उत्तराधिकारी। इनकी गद्यशैली से घरेलू भाषा की जो प्राणप्रतिष्ठा हुई है, वह फकीर मोहन की शैली का ही अग्रिम विकास है। इनकी घरेलू भाषा में सहज प्रवाह, कमनीयता तथा अभिव्यक्ति की नूतन भंगिमा आदि विशेषताएँ मिलती हैं।

समसामयिक समस्याओं पर रचित इनके परिहास-रंजित (दे०) आलोचनात्मक निबंधों का संकलन, 'वाइ महांति पांजी', 'भागवत टुंगीर संध्या' और 'ननांक वस्तानी' इन तीन ग्रंथों में हुआ है। इनमें 'वाइ महांति पाजी' अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्रहराज ने कल्पना-प्रसूत 'वाइ महांति' द्वारा आधुनिक समाज के दोषों पर तीखा प्रहार किया है। उड़िया-लोककथाओं पर लिखित इनकी रचना 'उत्कल-कहानी' का अपना महत्त्व है। उड़िया-साहित्य को इनका अमरदान है सात खंडों में संपूर्ण चतुर्भाषिक विराट् कोश-ग्रंथ, 'पूर्णचंद्र ओड़िआ भाषा कोश' जो आज दुर्लभ है।

प्रहसन *(सं०, हि० पारि०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र में दृश्यकाव्य के अंतर्गत रूपक (दे०) का 'भाण' के समान हास्यप्रधान भेद। प्रहसन का कथानक कवि द्वारा कल्पित एवं उत्पाद्य तथा वस्तु-विस्तार प्रायः एक अंक तक ही सीमित रहता है। भरत (दे०) ने प्रहसन के दो भेदों का निरूपण किया है: शुद्ध प्रहसन और संकीर्ण प्रहसन। शुद्ध प्रहसन में हास्य की व्यंजना के लिए तपस्वी, संन्यासी, भिक्षु, श्रोत्रिय, आदि में से किसी को धूर्त और पाखंडी चरित्रयुक्त नायक के रूप में चित्रित किया जाता है। संकीर्ण प्रहसन में वेश्या, चेट, नपुंसक, विट, धूर्त, बंधकी आदि निम्न पात्रों की अभद्र वेश-भूषा, प्रवृत्ति, चेष्टा, आचरण एवं भाषा-भंगिमा आदि के अनुकरण द्वारा हास्य का चित्रण रहता है। इन दो प्रहसन-भेदों के अतिरिक्त धनंजय (दे०) ने शुद्ध प्रहसन के पुनः 'वैकृत' और 'संकर' नामक दो भेद और किए हैं। शारदातनय (दे०) ने प्रहसन के लिए एक अंक तथा मुख और निर्वहण संधि (दे० नाट्यसंधियाँ) को निर्धारित किया है। सामान्यतः संस्कृत-काव्यशास्त्र में प्रहसन के भरत-सम्मत शुद्ध और संकीर्ण इन दो भेदों के अतिरिक्त एक तीसरा भेद विकृत प्रहसन भी मान्य है जिसमें नपुंसक, कंचुकी, तपस्वी, कामुक, चारण और योद्धा-वर्ग के व्यक्तियों के आचार-व्यवहार, वेशभूषा, आदि का हास्यपरक अनुकरण

होता है। 'भाव' (दे०) के समान ही हास्यप्रधान होते हुए भी प्रहसन में उसकी भाँति एक पात्र न होकर अनेक पात्र होते हैं। 'वीथी' के तेरहों अंगों का नियोजन प्रहसन में भी हो सकता है, किंतु प्रहसन में व्यंजित हास्य उच्चस्तरीय हास्य नहीं होता और इसमें 'आरभटी' वृत्ति तथा विष्कंभक' और 'प्रवेशक' का प्रयोग भी नहीं होता। संस्कृत में 'लटकमेलक', 'कलिकेलि' तथा हिंदी में भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र के 'अँधेर नगरी', 'सैरंध्रिका', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' (दे०) आदि प्रहसन के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। वर्तमान युग में प्रहसन शब्द अपने शास्त्रीय अर्थ को खोकर सामान्य रूप से किसी भी प्रकार की हास्य-व्यंग्यप्रधान लघु नाट्य-रचना के लिए व्यवहृत होने लगा है।

प्रहेलिका *(सं०, हिं० पारि०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र में निरूपित केवल शब्द-चमत्कार पर आधारित चित्र जाति का एक शब्दालंकार। इसका उल्लेख यद्यपि प्रायः समस्त संस्कृत आचार्यों ने किया है, तथापि उक्ति-चमत्कार से अधिक *मान्यता इसे किसी* ने नहीं दी है। भामह (दे०) के अनुसार 'प्रहेलिका' की स्वरूप-व्यवस्था सर्वप्रथम रामशर्माच्युत ने की थी। प्रहेलिका के च्युताक्षर, दत्ताक्षर और च्युतदत्ताक्षर आदि भेदों में उक्ति वैचित्र्य की सृष्टि प्रायः अनेकार्थी धातुओं और यमक के आश्रय से होती है। प्रहेलिका को 'नानाधात्वर्थ *गंभीरा यमक व्यपदेशिनी' कहा गया है*। भामह ने उक्त मत का खंडन करते हुए प्रहेलिका को भी शास्त्र की भाँति व्याख्यागम्य माना है (काव्यलंकार 2।20)। दंडी (दे०) ने शब्दालंकार के अंतर्गत यमक, चित्र आदि शब्दालंकारों के लक्षण निरूपण के पश्चात 'प्रहेलिका' के प्राचीन आचार्यों द्वारा किए गए 16 तथा 14 नवीन भेदों का निरूपण किया है (काव्यादर्श 3।106)। 'सरस्वती-कंठाभरण' (दे०) के रचयिता भोजराज (दे० भोज) ने प्रहेलिका के छः भेदों का सविस्तर वर्णन करते हुए इसकी उपयोगिता केवल गोष्ठी विनोद, रहस्यभाषण और दूसरों को सम्मोहित करने में ही मानी है जिसमें यह सर्वथा व्यक्त है कि उनकी दृष्टि में *प्रहेलिका काव्यत्व की अधिकारिणी* नहीं है (सरस्वतीकंठाभरण 2।133-34)। विश्वनाथ (दे०) ने प्रहेलिका को उक्तिवैचित्र्य मात्र कहते हुए *उसके अलंकारत्व का खंडन किया है क्योंकि उनके* अनुसार इससे रस प्रतीति में व्याघात उपस्थित होता है (साहित्यदर्पण 10।13)। समग्रतः अधिकांश आचार्यों के मत में 'प्रहेलिका' केवल बुद्धिव्यायाम एवं मनोरंजन का साधन मात्र है, काव्य में अलंकारों के अंतर्गत इसकी परिगणना समीचीन नहीं है।

प्रांतिक *(बँ० कृ०)*

यह रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) की *1937* ई० में लिखित एवं प्रकाशित 18 कविताओं का संग्रह है।

कवि रुग्ण रह कर मृत्यु के मुख से लौट आए थे। मृत्यु के घने अंधकार में उनको जो अनुभूति हुई, जिस सत्य का उन्होंने दर्शन एवं साक्षात्कार किया वही अत्यंत शांत चित्त तथा स्पष्ट भाव से इसमें व्यक्त है। इसमें *द्वितीय महायुद्ध के आरंभ की विभीषिका सब प्रकार* की बर्बरता, मनुष्य के अपमान अत्याचार, ध्वंस तथा हत्या से भी कवि विचलित हैं। दो कविताओं में इस विभीषिका *को धिक्कारा गया है एवं उसके प्रति विक्षोभ प्रकट किया* गया है।

'प्रांतिक' के साथ रविबाबू के काव्य में नवयुग *का आरंभ होता है। उपनिषदों का चिंतन इन कविताओं* में मिलता है। कवि के चिंतन को समझने की दृष्टि से 'प्रांतिक' एवं परवर्ती काव्य का बहुत महत्व है।

प्राकृत *(भाषा० पारि०)*

एक मध्यकालीन आर्य भाषा जिसका काल मोटे रूप से पहली शती ई० से 500 ई० तक माना गया है। प्राकृत का विकास बोलचाल की संस्कृत से पालि (दे०) के माध्यम से हुआ था। प्राकृत का क्षेत्र पूरा आर्य भाषा-भाषी प्रदेश था। इसके मुख्य क्षेत्रीय रूप या बोलियाँ थीं शौरसेनी प्राकृत—यह उस काल की परिनिष्ठित भाषा थी और इसका क्षेत्र वर्तमान गुजरात, राजस्थान, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तरप्रदेश था। गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी तथा पहाड़ी का—शौरसेनी अपभ्रंश से होते हुए—इसी से विकास हुआ है। पैशाची प्राकृत—इसका क्षेत्र पश्चिमोत्तरी भारत था। लहंदा और पंजाबी इसी से संबद्ध हैं। *महाराष्ट्री प्राकृत—मूलतः इसका क्षेत्र महाराष्ट्र था*। मराठी का संबंध इसी से है। एक मत है कि यह तत्कालीन राष्ट्रभाषा थी। मागधी प्राकृत—इसका क्षेत्र वर्तमान बिहार, बंगाल, असम तथा उड़ीसा था। इस क्षेत्र की आधुनिक भाषाएँ और बोलियाँ अपभ्रंश होते हुए इसी से

विकसित हुई हैं। अर्धमागधी—इसका क्षेत्र प्राचीन कोसल था। पूर्वी हिंदी का विकास अपभ्रंश होते हुए इसी से हुआ है। व्राचड़ प्राकृत—इसका क्षेत्र सिंध था। सिंधी का संबंध इसी से है। इनमें से कई प्राकृतों में साहित्य-रचना हुई है। विभिन्न-क्षेत्रीय प्राकृतों से ही अपभ्रंश के विभिन्न-क्षेत्रीय रूपों का विकास हुआ है।

प्राचीन ओड़िआ अभिलेख *(उ० कृ०)*

'प्राचीन ओड़िआ अभिलेख' डा० कुंजबिहारी त्रिपाठी (दे०) की गवेषणात्मक निबंध-पुस्तक है। उड़ीसा की विशिष्ट संस्कृति और उसकी विविध विशेषताओं को जानने के लिए उड़िया भाषा और उसके इतिहास को जानना आवश्यक है। इसके लिए सबसे उपयोगी हैं 'प्राचीन ओड़िआ अभिलेख'। उड़ीसा ताम्रपत्र एवं शिलालेखों की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। इन अभिलेखों से उड़िया भाषा व लिपि का क्रमिक विकास एवं प्राथमिक स्तर पर उसकी प्रकाशभंगी ज्ञात होती है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से भी ये मूल्यवान हैं। लेखक ने अत्यंत तात्त्विक गवेषणापूर्ण विषय को साधारण पाठ के लिए सुगम बना दिया है। यह कार्य उसकी सुस्पष्ट, प्रसादगुणमयी भाषा-शैली के कारण ही संभव हो सका है।

प्राचीन चरित्र कोश *(म० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1938 ई०]

इसके संपादक श्री सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव हैं। इसके द्वारा, श्रुति, स्मृति, सूत्र, वेदांग, उपनिषद्, बौद्ध तथा जैन साहित्य में उल्लिखित व्यक्तियों का परिचय मिलता है। यह मौर्य-पूर्वकालीन इतिहास का सुगम पट है। कोशकार ने ऋषि, मुनि, राजा-महाराजाओं के अतिरिक्त प्राचीन साहित्य में निर्दिष्ट जातिसमूह, मानव, देवता, राक्षस, वानर आदि चरित्रों को भी लिया है।

प्रत्येक पात्र का परिचय इस क्रम से दिया गया है: जीवन-परिचय, नाम, नाम-व्युत्पत्ति, स्वरूप-वर्णन पराक्रम, मृत्यु, परिवार, कालनिर्णय और कृतित्व। एक ही नाम के अनेक व्यक्ति होने पर उन्हें कालक्रम अथवा महत्वानुसार 2, 3, 4 संख्या-क्रम से दिया है। अनेक पात्रों के चरित्र का विकास वैदिक काल से पंचमहाकाव्यों तक मिलता है।

ये चरित्र अकारादि-क्रम से लिये गये हैं। प्रस्तुत कोश महाराष्ट्र-राज्य सरकार की ओर से पुरस्कृत है। यह एक उत्तम संदर्भ-ग्रंथ है।

प्राचीन पंथप्रकाश *(पं० ले०)* [रचना-काल—1841 ई०]

यह सिख पंथ का प्रसिद्ध इतिहास-ग्रंथ है। इसकी भूमिका में कहा गया है कि किसर डेविड ऑक्टरलोनी की प्रेरणा से कप्तान मरे ने खालसा-पंथ का जो वृत्तांत सरदार रतनसिंह से प्राप्त करके 1809 ई० में लिखा था, उसे ही 1833 ई० में रतनसिंह ने छंदोबद्ध कर पुस्तक-रूप दे दिया है।

इस ग्रंथ का मूल नाम 'पंथप्रकाश' ही है किंतु कुछ समय पश्चात् ज्ञानी ज्ञानसिंह (दे०) के आधार पर कुछ संशोधित और परिवर्धित रूप में एक अन्य पंथप्रकाश की रचना कर दी तो इसे विद्वान् 'प्राचीन' पंथप्रकाश कहने लगे।

प्राचीनमलयाळगद्यमातृक्कळ् *(म० कृ०)*

इसके लेखक और रचना-काल का कोई प्रामाणिक ज्ञान नहीं है। केरल विश्वविद्यालय के पांडुलिपि-संग्रहालय एवं ग्रंथालय ने संग्रह में उपलब्ध अपूर्ण ताड़पत्र-ग्रंथ के आधार पर 1951 ई० में यह प्रकाशित किया है। उसके संपादक के शब्दों में यह पांडुलिपि सोलहवीं शती में लिखी गई है। अतः इसका रचना-काल उससे भी पुराना हो सकता है।

इस ग्रंथ में 'नळोपाख्यानम्', 'अंबरीषोपाख्यानम्' और 'देवीमाहात्म्यम्' शीर्षक तीन गद्यमय आख्यान-संग्रह हैं। पहला बालोचित अतिशय सरल शैली का है तो द्वितीय कहीं प्रौढ़ शैली का, और अंतिम मध्यवर्ती है। मौलिकता, नवीन उद्भावना या कोई अन्य कथागत विशेषता इसमें नहीं है। तथापि यह ग्रंथ इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन मलयाळम में अनुप्रास-युक्त चंपू-शैली में अतिदीर्घ वाक्यों का गद्य ही नहीं; लघु एवं प्रभावशाली वाक्यों से युक्त ललित, प्रसादात्मक शैली का गद्य भी लिखा जा सकता था। लेखक ने दंडी (दे०) आदि संस्कृत-कवियों की गद्य-शैली के श्लेष, उपमा जैसे अलंकारों का प्रयोग खूब किया है।

'अंबरीषोपाख्यानम्' में नौका एवं जीवन की तुलना का जो विशेष चमत्कारयुक्त प्रसंग प्राप्त होता है। वह लेखक की कल्पना-निपुणता और अलंकार-प्रौढ़ता का

प्रमाण है। इस ग्रथ की भाषा उस विशेष युग की है जिसमे मलयाळम पर तमिल का प्रभाव तो था, साथ ही सस्कृत का शब्दगत एव भावगत प्रवेश हो रहा था। तमिल-प्रकृति के क्रियावाचक शब्द, सस्कृत-प्रकृति के क्रियावस्तु-बोधक शब्द तथा मलयाळम की प्रकृति के क्रियात्मक शब्द तीनो इसमे बराबर आये है।

प्राचीन साहित्य *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1907 ई०]

'प्राचीन साहित्य' (1907) मे रवीद्रनाथ ठाकुर (दे०) ने प्राचीन सस्कृत-साहित्य की कतिपय प्रसिद्ध पुस्तको की—जैसे 'रामायण', 'शकुतला', कादबरी' आदि की—नवीन विचार पद्धति से आलोचना की है। इस पुस्तक की सहायता से रवीद्रनाथ ने प्राचीन भारतीय साहित्य मे नवप्राण का सचार किया है। वस्तुत इसमे आलोचना से अधिक सृजन का ही स्वाद मिलता है। 'कुमारसभव', 'शकुतला', 'कादबरी' के रसास्वादन से सबधित इनके काव्य-सौंदर्य के उल्लेख के साथ साथ इन ग्रथो मे जिस जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है, कवि ने उसकी पूर्ण उपलब्धि करते हुए प्रभावका उल्लेख किया है। कालिदास का कृतित्व केवल इसी मे नही कि वे यौवनसुलभ, भोगासक्त प्रेम के चितेरे हैं वरन् तपश्चर्यापूत, आत्मसयम से महिमान्वित, कल्याणमय प्रेम की शात परिणति दिखाने वाले कवि भी हैं।

इस ग्रथ मे, इसके अतिरिक्त प्राचीन काव्यो की अमीमासित समस्याओ का भी समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'काव्ये उपेक्षिता' निबध मे रवीद्र ने उर्मिला के प्रति वाल्मीकि की उपक्षा का उल्लेख करके अथवा बाण-भट्ट के द्वारा पत्रलेखा के अतप्त यौवन की अवमानना की अनुभूति करके पाठको की कल्पना एव सहानुभूति को एक सपूर्ण नया मोड दिया है।

प्रियकात मणियार *(गु० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

इनका जन्म वीरम गाँव म हुआ था। माध्यमिक शिक्षा अपूर्ण ही छोड कर ये हाथीदांत की चूडियाँ बेचन के अपने पैतृक व्यवसाय मे लग गए किंतु नैसर्गिक प्रतिभा तथा अभ्यास से कवि-रूप मे सुविख्यात हुए।

जिस नयी युद्धोत्तर पीढी ने गुजराती कविता को नया मोड दिया, उसम इनका स्थान अग्रणी है। प्रारभ मे इन्होने सुदर प्रगीतो की रचना की किंतु आज इनकी ख्याति नवीन ताजगीपूर्ण विषयवस्तु, प्रयोगशील और नयी बिब तथा प्रतीक-योजनामयी कविताओ के कारण अधिक है। सुमधुर पदावली, प्रतीकात्मक एव रचना कौशल का वैशिष्ट्य इनकी प्रयोगवादी कविताओ का प्रमुख आकर्षण है।

प्रियप्रवास *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1914 ई०]

'प्रियप्रवास' अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' (दे०) कृत खडी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इस सर्गबद्ध रचना मे सस्कृत के वर्णित छदो का प्रयोग किया गया है। सभी छद अतुकात हैं। धनुर्यज्ञ मे सम्मिलित होने के लिए कस के आकर्षण पर कृष्ण गोकुल से मथुरा जाते हैं, वहाँ राजनीति की उलझनों मे बुरी तरह उलझ जाते हैं एव नद, यशोदा, राधा, गोपियाँ, गोप-कुमार आदि उनके वियोग म अत्यधिक व्याकुल होते हैं। इस तरह प्रतिपाद्य की दृष्टि से यह रचना विरह प्रधान है। कवि न पौराणिक इतिवृत्त को कथा का आधार बनाकर उसे आधुनिक समस्याओ से सवलित किया है।

शुक्ल जी ने समुचित कथानक के अभाव मे सबध निर्वाह की दृष्टि से इस रचना को प्रबध-काव्य के अवयवो से अपूर्ण माना है, किंतु कुछ रूढिगत लक्षणो को छोडकर उदात्त भावो की अभिव्यजना कथानक की मौलिकता, चरित्रो की विराट प्रभावान्विति एव उद्देश्य की गरिमा की दृष्टि से यह निश्चय ही एक सफल महाकाव्य है। इसके निर्माण से पूर्व काव्य-क्षेत्र मे ब्रजभाषा का एकाधिकार था। 'हरिऔध' जी ने पहली बार महाकाव्य लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि खडी बोली मे भी काव्य लिखा जा सकता है और वह भी महाकाव्य। इस रूप मे इस कृति का ऐतिहासिक महत्व है। प्रकृति का मानवीकरण एव शैलीगत कुछ नवीन तत्वों की समाहृति के होते हुए भी इस रचना पर स्वच्छदतावादी काव्य-चेतना का अत्यल्प प्रभाव दृष्टिगत होता है। महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) को काव्य गुरु मानन के कारण कवि न नैतिकता एव सयम क दायरे मे सयोग और वियोग के चित्रो को, रीतिकालीन कवियो की भाँति स्थूल सौंदर्य स समन्वित न कर, प्रेम के उदात्त रूप से सँजोया है। तभी तो राधा अपने पुराने रूप को छोड़कर इस कृति मे समाज सेविका के रूप मे प्रस्तुत हुई है।

प्रीतमदास *(गु० ले०)* [समय—1720 ई०-1796 ई०]

अठारहवी शती के महत्त्वपूर्ण वेदाती, योगमार्गी,

भक्त-कवि प्रीतमदास का जन्म अहमदाबाद के निकटवर्ती बावला ग्राम में हुआ था। ये बारोट (ब्रह्म भट्ट) जाति के थे। कहा जाता है कि ये जन्मांध थे।

मध्ययुगीन गुजराती के प्रसिद्ध काव्य-रूपों—'महीना', 'तिथि', 'वार', 'कक्को'—का इन्होंने विशेष प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त हिंदी में 'साखियाँ' भी रची। 'ज्ञानप्रकाश' आपकी प्रसिद्ध रचना है जिसमें जीव-ब्रह्म-विषयक चिंतन का प्रकाशन हुआ है। 'सरसगीता', 'एकादश स्कंध', 'ब्रह्मलीला', 'भगवद्गीता', 'गुरु महिमा', 'भक्तनामावली', 'विनयदीनता' तथा 'श्रीकृष्णाष्टक' प्रीतम की अन्य रचनाएँ हैं।

पदलालित्य, सरलता आदि के कारण प्रीतमदास की कविता सहज ही हृदयंगम हो जाती है। इनके 'रूपक' बड़े सुंदर हैं।

कबीर की भाँति इन्होंने भी सती और शूर के प्रेम को आदर्श माना है। माधुर्यभाव की भक्ति और ज्ञान-वैराग्य की बातें इनमें युगपत् निवास करती हैं। खेड़ा ज़िले में कहीं-कहीं प्रीतम के मंदिर व गद्दी भी पाई जाती है।

'अखा' के बाद प्रीतम ही दूसरे सशक्त, समर्थ तथा प्रथम पंक्ति के वेदांती कवि हैं।

प्रीतमसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

पंजाबी अध्यापन के क्षेत्र में प्रो० प्रीतमसिंह का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। पंजाबी साहित्य की उच्च शिक्षा के प्रारंभिक वर्षों में ही इन्होंने विशेष लगन एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपना कर इसे अधिक रोचक, संपन्न एवं आकर्षक बनाने का प्रयत्न किया। अपने पांडित्य, व्यापक अध्ययन और अपूर्व भाषा-संयम से उन्होंने अध्यापन-कार्य में सजीवता एवं गतिशीलता का समावेश किया। पंजाबी गद्य एवं काव्य-क्षेत्र में पाठ्य-पुस्तकों की कमी को पूरा करने के लिए सुरुचिपूर्ण सकलन तैयार करना इनकी प्रमुख देन है। 'पंजाबी काव्यधारा', 'भावचित्र', 'सोच-विचार' उनके कुछ सुंदर संकलन हैं। इसके अतिरिक्त प्रो० प्रीतमसिंह ने प्राचीन पांडुलिपियों को सँभालने और उनका संपादन-विवेचन करने में भी पर्याप्त रुचि दर्शाई है। 'श्रद्धाराम फलौरी गद्य रचना', 'सिक्खां दे राज दी विथिआ' का संपादन तथा आरंभ की विस्तृत भूमिकाएँ उनकी उपर्युक्त रुचि के प्रमाण हैं। बाबा फ़रीद (दे०), हाशम (दे०) आदि कवियों के बारे में ऐतिहासिक दृष्टि से लिखे गए उनके निबंध भी पंजाबी आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण हैं। इस प्रकार प्राचीन ग्रंथों की खोज एवं सँभाल, गुरबाणी विचार, इतिहास, साहित्य एवं संस्कृति-संबंधी विषयों में प्रो० प्रीतमसिंह की विशेष रुचि है।

आप गुरु नानक विश्वविद्यालय, अमृतसर में गुरु नानक-अध्ययन-विभाग के अध्यक्ष हैं।

प्रीतलड़ी, गुरबख्श सिंह *(पं० ले०)*

इनका जन्म स्यालकोट (पश्चिमी पाकिस्तान) में 1895 ई० में हुआ था। रुड़की से इंजीनियरिंग की परीक्षा पास करने के बाद इन्होंने मिशीगन विश्वविद्यालय, अमरीका, में उच्च शिक्षा प्राप्त की। 1933 ई० में 'प्रीतलड़ी' मासिक पत्र प्रारंभ किया। इनकी लगभग 60 रचनाएँ—निबंध-संग्रह, कहानी-संग्रह, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा, संस्मरण, लेख आदि प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें 'राजकुमारी तालिका' (दे०), 'प्रीतां दे पहरेदार', 'प्रीतमणि', 'वीणा विनोद' 'अणविआही माँ' (दे०), 'मेरी जीवन कहाणी' प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। श्री गुरबख्श सिंह ने पंजाबी साहित्यकारों के सहयोग से 1938 ई० में 'प्रीतनगर' की स्थापना की। इनके साहित्य का मूल स्वर समाजवादी विचारधारा के अनुकूल प्रगतिशील समाज की स्थापना करना है। 1970 में इन्हें पंजाब कृषि विश्वविद्यालय ने सम्मानित किया। ये पंजाबी साहित्य में सर्वश्रेष्ठ निबंधकार, गद्यकार एवं पत्रकार के रूप में प्रख्यात हैं।

प्रेमचंद *(हिं० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

इनका प्रारंभिक नाम धनपत राय था। इनका जन्म बनारस से पाँच मील दूर लमही नामक स्थान में हुआ। घर का पालन-पोषण खेती पर निर्भर करता था, पर गरीबी ने दूसरों के यहाँ-जैसा नंगा नाच भी किया। प्रेमचंद ने जो कुछ लिखा है उसे पहले व्यक्तिगत जीवन के चौखटे में जड़कर देखा है, तब कहीं जाकर उसे देशव्यापी मानव सहानुभूति का दर्जा दिया है। मन की चुभन और अनुभूत्यात्मक सत्य को व्यंग्य की तीखी धार पर पैना करते हुए अग्नि-स्फुलिंग छोड़ते जाना प्रेमचंद की कला है, जिसमें मार्मिक रचना के शाश्वत होने की गारंटी बनी है। पिता द्वारा कृषक का जीवन त्यागे जाने और मध्य वर्ग का

जीवन बिताने पर इनकी रचनाओ मे मध्यवर्ग का स्वर काफी प्रमुख है। एक तरह से इसी वर्ग का जीवन इनके उपन्यासो की रीढ बना है। इनकी इच्छाएँ अभावो के वृत्त मे कभी पूरी न हुईं, गरीबी ने सारा जीवन का रस चूस लिया, फिर भी बालक प्रेमचद तेरह वर्ष की आयु मे प्रसिद्ध उर्दू-लेखको की रचनाओ को बडे चाव से पढ गया। तभी तो उर्दू की शैली की-सी ताजगी और चुस्ती उनकी भावी रचनाओ मे रूपाकार ग्रहण कर सकी। 'सोजेवतन' जैसा प्रसिद्ध कहानी-सग्रह इस बात का प्रमाण है कि पहले इन्होने उर्दू मे लिखा और बाद मे अपने मित्रो के आग्रह पर 'वरदान', 'प्रतिज्ञा' और 'सेवासदन' (दे०) जैसे उपन्यास हिंदी मे लिखने शुरू किए, यश और मान ने घेरा डालना शुरू किया और प्रेमचद को उपन्यास-सम्राट बनते देर न लगी।

अपने उत्कर्ष-काल मे प्रेमचद ने 'कायाकल्प' (दे०), 'गबन', 'निर्मला', 'कर्मभूमि', 'रगभूमि' (दे०) और 'गोदान' (दे०) जैसे अतर्राष्ट्रीय ख्याति के उपन्यासो की निर्मिति की। तीन शतक से अधिक कहानियाँ लिखी जिनका सग्रह 'मानसरोवर' नाम से आठ भागो मे प्रकाशित हो चुका है। 'कर्बला' नामक नाटक इन्हे नाटककार, 'जागरण' एव 'हस' की फाइलो मे पाए जाने वाले लेख इन्हे निबधकार तथा जार्ज इलियट, टाल्सटाय, अनातोले, गाल्सवर्दी एव रतननाथ सरशार की कृतियो का हिंदी मे रूपातर और अनुवाद इन्हें एक अच्छा अनुवादक सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं।

प्रेमचद ने जिस समय कथा-साहित्य मे प्रवेश किया उस समय हिंदी कहानी की अपनी कोई विशिष्ट शैली न थी, पर हाँ उपन्यास के नाम पर भारतेंदु (दे०) युग ने थोडे से सामाजिक और द्विवेदी (दे० द्विवेदी, महावीरप्रसाद) युग ने 'चद्रकाता', 'चद्रकाता सतति' (दे०) और 'भूतनाथ' जैसे आश्चर्य मे डालने वाले अतिमानवीय घटनाओ से सपृक्त उपन्यासो के द्वारा प्रेमचद का स्वागत किया। निश्चय ही ग्राम और शहर के जीवन का मिश्रण करके व्यापक सामाजिक धरातल को अपने औपन्यासिक चित्रपट पर कल्पना के योग से जिस ढग से प्रेमचद ने उरेहा है वैसा किसी ने नही किया। प्रेमचद तभी अभूतपूर्व हैं और तभी उनके परवर्ती कथाकार भी उनसे बडी मानवीय सवेदना उत्पन्न नहीं कर सके हैं। प्रेमचद को पीछे छोड आने का दावा उसी दिन पूर्ण रूप से सिद्ध होगा जिस दिन होरी (दे०) से बडा मानवीय सवेदनाओ का पुज हिंदी-कथा-साहित्य म जन्म लेगा। प्रेमचद परिवार को, जो अलग-अलग मनुष्यो से बनता तो है पर जिसकी इकट्ठी अभिव्यक्ति उसका मूल सौंदर्य है, जीवन का केंद्रबिंदु मानकर चले हैं। प्रेमचद समष्टि मे भी व्यष्टि को नही भूले हैं और इन दोनो ही रास्तो से वे राष्ट्र तक गये हैं, एक बार नही अनेक बार। सच बात तो यह है कि दारुण दु ख भोगते हुए प्रेमचद स्वय गरलपायी हो गये थे, तभी तो क्या किसान, क्या मजदूर, क्या मिल मालिक, क्या महानगर की बडी चिमनियो के धूम्र मे सिसकता कारीगर, क्या वकील, क्या प्रोफेसर, क्या डाक्टर, क्या चोर-डाकू, क्या देशभक्त—सभी उनके स्वर मे बोल सके हैं, सभी को प्रेमचद ने वाणी दी है और सजीवता दी है। सचमुच ही प्रेमचद की सहानुभूति बहुत सप्रेषणशील थी। सर्वहारा-वर्ग की वकालत करने के कारण आज उन्हें गोर्की, टालसटाय, अनातोले जैसे विदेशी साहित्यकारो के साथ तोला जाता है और बार-बार तोले जाने पर भी मन उनकी महत्ता का अनुमान नही कर पाता है। ये निश्चय ही अतर्राष्ट्रीय ख्याति के उपन्यासकार हैं।

'प्रेमघन', बदरीनारायण चौधरी *(हिं० ले०)* [जन्म—1885 ई०, मृत्यु—1922 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के मिर्जा जिले मे हुआ था। इनका प्रदेय कविता, नाटक, निबध, आलोचना, पत्रकारिता आदि विभिन्न क्षेत्रो मे है। काव्य-रचना के क्षेत्र मे ब्रजभाषा के साथ-साथ खडी बोली का भी प्रयोग करके इन्होने खडी बोली का मार्ग प्रशस्त किया था। गद्य-लेखन के क्षेत्र मे इन्होने भाषा के शुद्ध, परिमार्जित तथा अलकृत रूप का प्रयोग किया है। इन्होंने 'आनद कादबिनी' तथा 'नागरी नीरद' पत्रिकाओ का सपादन किया तथा सामयिक विषयो पर उच्च कोटि की टिप्पणियाँ लिखी थीं। 'जीर्ण जनपद' इनका प्रबधकाव्य है तथा 'वारागना रहस्य', 'भारत सौभाग्य' और 'प्रयाग रामागमन' इनके नाटक हैं।

प्रेमाख्यानक काव्य *(हिं० प्र०)*

प्रेम-कथानको का आधार लेकर काव्य की सर्जना इस देश मे बहुत पहले से विद्यमान रही है। इस तरह की कहानियाँ या तो किसी ऐतिहासिक पुरुष से सबधित होती थीं या फिर इनकी मूल लोकप्रचलित कथाओं

में अनुस्यूत नाना प्रकार के विश्वासों से संबंधित होती थीं। ऐतिहासिक पुरुषों में राजा विक्रमादित्य, भोज, उदयन, शूद्रक आदि से संबंधित अनेकानेक प्रेम-कहानियाँ प्रचलित हैं। ऐतिहासिक पुरुषों के अतिरिक्त कल्पित नायकों से संबंधित 'माधवानल-कामकंदला' (दे०), 'हीर-राँझा', 'सारंग-सदावृज', 'ढोला-मारवाणी' आदि प्रेमाख्यानक-काव्य उल्लेख्य हैं।

ईसा की सोलहवीं शती से इन प्रेमाख्यानों में प्रतीकों का समावेश सूफ़ी कवियों की देन है। सूफ़ी कवियों ने इन कहानियों के द्वारा अपने मत का प्रचार किया है। इस देश की जनता से घनिष्ठ संपर्क होने के कारण सूफ़ी कवियों ने हिंदुओं की प्रेम-कहानियों को उन्हीं की भाषा में कहकर परोक्ष सत्ता तक पहुँचने की जो प्रचेष्टा की है वह किसी रूप में काफ़ी स्तुत्य है। इन कहानियों में प्रेमी और प्रेमिका के उत्कट प्रेम, मिलन में मार्ग की बाधाओं, मिलन के लिए अनेकानेक चेष्टाओं और अंत में मिलन का बड़ा रोचक वर्णन पाया जाता है। 'पदमावत' (दे०), चंदायन', 'मृगावती' (दे०), 'मधुमालती' (दे०), 'चित्रावली' (दे०), 'इंद्रावती' आदि प्रसिद्ध सूफ़ी प्रेमाख्यानक काव्य हैं। इन सूफ़ियों की तरह अनेक संतों ने भी अपने सिद्धांतों के प्रचार के लिए प्रेम-कथानकों का आश्रय लिया है।

प्रेमानंद *(गु० ले०)* [समय—1636 ई०-1714 ई०]

मध्यकालीन गुजराती के श्रेष्ठ आख्यानकार, प्रतिभाशाली कवि एवं गुर्जरी गिरा के गौरव-उन्नायक प्रेमानंद का जन्म पंडित कृष्णराम भट्ट के घर वड़ौदा में हुआ था। अल्पवय में ही मातृ-पितृ-विहीन शिशु प्रेमानंद का मौसी ने लालन-पालन किया। गुरु रामचरण के संपर्क से इनके प्रातिभ संस्कार जाग उठे। इन्होंने काव्य-रचना करना आरंभ किया। 1673 ई० में वड़ौदा में अकाल पड़ा; प्रेमानंद वड़ौदा छोड़कर नंदरवार गये। वहाँ लगभग दस वर्ष रह कर पुनः वड़ौदा लौट आए। शेष सारा जीवन वड़ौदा में ही बिताया। ताँबे की गागर पर कथा कहने के कारण ये 'माणभट्ट' अथवा 'गागरिया भट्ट' कहलाते थे। 'गुजराती भाषा का गौरव जब तक नहीं बढ़ेगा तब तक मैं सिर पर पगड़ी नहीं बाँधूंगा।' ऐसी उनकी प्रतिज्ञा थी। गुजरात के लोक-जीवन पर इनका गहरा प्रभाव है। लगभग सौ वर्ष के जीवन-काल में इन्होंने 35 आख्यान लिखे।

प्रेमानंद-रचित आख्यानों का विवरण इस प्रकार है—'द्रौपदी स्वयंवर', 'शृंगी ऋषि आख्यान', 'हुंडी', 'सुभद्राहरण', 'नळाख्यान' (दे०), 'नागदमण', 'रणयज्ञ', 'सुदामा चरित्र', 'अभिमन्यु आख्यान', 'ओखा हरण', 'हारमाळा', 'मामेरुं', 'श्राद्ध', 'दशम स्कंध', 'दाणलीला', 'भ्रमर पचीसी', 'द्वादश मास', 'विवेक वणझारो', 'चंद्रहास आख्यान', 'शामलशा नो विवाह', 'सत्यभामा रोषदर्शिका आख्यान', 'पांचाली प्रसन्नाख्यान', 'तपत्याख्यान'।

इनमें 'नळाख्यान' (दे०), 'ओखाहरण', 'मामेरुं' आदि तो गुजरात के लोक-जीवन में घुलमिल गये हैं।

पूर्ववर्ती कवियों से आख्यान-परंपरा ग्रहण करके भी अपनी प्रतिभा के चमत्कार से, चरित्र-चित्रण-कला तथा कथा कहने की शैली की विशिष्टता से प्रेमानंद ने इन आख्यानों को ऐसा रसमय व प्रभावशाली बना दिया है कि ये आख्यान प्रेमानंद के पर्याय हो गये हैं।

उस युग में व्रजभाषा में रचना करना कवियों के गौरव व पांडित्य का प्रमाण समझा जाता था। प्रेमानंद ने भी व्रजभाषा में रचनाएँ की हैं। गुजरात की संस्कृति, लोक-जीवन, उत्सव, रीति-रिवाज, रहन-सहन, आदि अनेक दृष्टियों से प्रेमानंद का साहित्य महत्वपूर्ण है। गुजरात की समस्त लोक-चेतना इनके आख्यानों में प्रतिबिंबित है।

प्रेमानंद 'प्रेमसखी' *(गु० ले०)* [समय—1779 ई०-1845 ई०]

स्वामीनारायण संप्रदाय के भक्तकवि श्री प्रेमानंद उपनाम 'प्रेमसखी' ने गोपीभाव की भक्ति के पद रचे हैं। शुद्ध भक्तकवियों में ये उच्च कोटि के कवि-नरसिंह मेहता (दे०) से तुलनीय थे। स्वामी सहजानंद इन्हें 'प्रेमसखी' कहकर पुकारते थे। ये उत्तम संगीतज्ञ थे। अतः इनकी रचनाओं में संगीत-तत्त्व की प्रधानता पाई जाती है। भक्ति-बोध, ज्ञान-वैराग्य, भावुकता, विरह-व्याकुलता इनके पदों की विशेषताएँ हैं।

इनकी रचना 'बारमासी' गुजराती साहित्य का सर्वोत्तम बारहमासा-काव्य है। इन्होंने कुछ पद हिंदी में भी लिखे। माधुर्य गुण के इस कवि की कुछ हिंदी रचनाएँ (भजन) महात्मा गांधी द्वारा संपादित आश्रम भजनावली में स्थान पा चुकी हैं।

प्रेमी, हरिकृष्ण *(हिं० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

इनका जन्म ग्वालियर के गुना नामक स्थान

मे एक राष्ट्रभक्त परिवार मे हुआ था। इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का आरभ पत्रकारिता से किया था, फिर काव्य रचना की दिशा मे प्रवृत्त हुए थे और तदनतर नाट्य रचना की ओर। इनकी सर्वाधिक देन नाटय रचना के क्षेत्र मे है तथा 'स्वर्ण-विहान', 'रक्षाबधन', 'शिवा-साधना', 'आहुति', 'उद्धार' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनके नाटको मे मुख्यत मुस्लिम युग के कथा-प्रसगो को ग्रहण किया गया है तथा राष्ट्रीय जागरण, धर्म-निरपेक्षता और विश्वबधुत्व के सदेश दिए गए हैं। रगमच की दृष्टि से भी इनके नाटक पूर्णत सफल है।

प्रो० डडी *(म० पा०)*

हरिनारायण आपटे (दे०) के घटनाप्रधान उपन्यास 'भयकर दिव्य' (भयकर परीक्षा) का खलनायक प्रो० डडी तत्कालीन महाराष्ट्र के उन दुष्ट व्यक्तियो का प्रतिनिधि है जो अँग्रेजी रहन सहन की आड मे विद्वता, शालीनता और सभ्यता का नाटक रचकर समाज के साथ कपट करते थे—धोखा देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते थे। वह वेश और नाम बदल कर कभी युवको को धोखा देता है, पैसा खाता है, तो कभी रूपवती युवतियो को फुसलाकर पथभ्रष्ट करता है। इस प्रकार प्रो० डडी के रूप मे लेखक ने यथार्थ की भूमि पर एक खल पात्र की सफल सृष्टि की है।

फकीर मोहन सेनापति *(उ० ले०)* [जन्म—1843 ई०, मृत्यु—1918 ई०]

• उडीसा के प्रेमचद (दे०), उपन्यास-सम्राट श्री फकीर मोहन सेनापति सच्चे अर्थों मे उडिया प्राण-चेतना के प्रतिनिधि लेखक हैं। इनकी रचनाओ मे सर्व-प्रथम उडिया जाति ने देश के मनुष्य को देखा और उसकी वाणी सुनी। 'गोदान' (दे०) का हिंदी मे जो स्थान है, वही स्थान उडिया-साहित्य मे 'छमाण आठगुठ' उपन्यास का है। प्रेमचद के समान इनके उपन्यासो मे यथार्थवाद, युगबोध, जन-जीवन, जन भाषा और व्यावहारिक आदर्शवाद आदि तत्त्व मिलते हैं। उन्नीसवी शती की उपेक्षित, उत्पीडित उडिया-जाति का शोषित हृदय इनके उपन्यासो मे प्रतिबिंबित हुआ है।

शोषण, अत्याचार, दमन आदि बातें इनके उपन्यासो के विषय हैं, अत उनमे पीडित प्राणो की करुण झकार सर्वत्र मिलती है। ये मानवतावादी कलाकार हैं। इन्होंने उपन्यास को एक स्पष्ट स्वरूप दिया है। इनके पात्र उडिया-माटी की सतान होने के कारण लोक-हृदय के अत्यत निकट हैं, इसीलिए ये अमर हो गये। इन्होंने जन-भाषा एव जन-जीवन के अनुकूल स्वाभाविक शैली का प्रयोग किया है तथा आचलिकता को प्रश्रय दिया है।

सेनापति बकिमचद्र (दे०) के समकालीन थे। केवल प्रायमरी तक इन्होने शिक्षा पाई थी, किंतु सस्कृत और अँग्रेजी के साथ पाँच अन्य प्रातीय भाषाओ का इन्हे अच्छा ज्ञान था। बहुमुखी प्रतिभा सपन्न सेनापति कहानीकार, कवि, निबधकार, अनुवादक एव इतिहासकार भी थे। किंतु उपन्यासकार के रूप मे ही ये अधिक विख्यात हुए हैं। इनके उपन्यास हैं—'लछमा', 'छमाण आठगुठ' (दे०), 'मामूँ' (दे०) और 'प्रायश्चित'।

फजलशाह *(प० ले०)* [जन्म—1828 ई०, मृत्यु—1896 ई०]

इनके पिता सैयद कुतबशाह नवाकोट, जिला लाहौर के निवासी थे। पारिवारिक परपरा के अनुसार इन्होने अरबी फारसी की शिक्षा ग्रहण की और फाइनेंशल कमिश्नर, लाहौर के कार्यालय मे नौकरी मिल जाने पर वही रम गए। ये सरल स्वभाव, धर्मपरायण तथा चिंता-मुक्त जीव थे। उन्नीसवी शती के अत मे पजाबी के कवि-दरबारो मे भी इन्हे विशेष ख्याति प्राप्त हुई। नैसर्गिक काव्य प्रतिभा के धनी फजलशाह ने पद्रह वर्ष की आयु मे ही आचार-प्रधान कृति 'तुहफाए फज़ल' की रचना की। तत्पश्चात् 'सोहणी-महीवाल' (दे०) (1849), 'ससि-पुन्नू' (दे०) (1863), 'हीर-राँझा' (दे०) (1867), 'लैला-मजनूँ' (दे०) (1871), 'यूसुफ जुलेखा' (दे०) (1885), आदि अनेक प्रबध-काव्य लिखे परतु 'सोहणी-महीवाल' (दे०) जैसी लोकप्रियता किसी अन्य कृति को नही मिली। किशोरावस्था का यह प्रेमाख्यान अपने मूल स्वर और काव्य-सौष्ठव मे कवि की उन परवर्ती प्रौढ रचनाओ से भिन्न है जिनमे, किस्सा-काव्य की परपरागत हिंदू-मुस्लिम ऐक्य-भावना को तिलाजलि देकर शुद्ध रूप मे इस्लामी शहर का प्रचार किया गया है। 'हीर-राँझा' मे धार्मिक प्रतीकात्मकता के द्वारा आचारोपदेश मुख्य वर्ण्य बन गया है। फारसी मसनवियो के अनुकरण पर लिखी गई इन रचनाओ मे कई ही प्रारभिक स्तुति-खड हैं। अलकरण और बिब-योजना मे भी उन्ही की छाया है। भाषा मे तत्सम फारसी शब्दावली का अनुपात

आधे से भी अधिक है; फलतः पंजाबी के विद्यार्थी के लिए यह दुरूह हो गई है। इनके काव्य की उल्लेखनीय विशेषता—यमक, वक्रोक्ति, श्लेष जैसे अलंकारों का उन्मुक्त प्रयोग—भी फ़ारसी-विद्वत्ता का ही परिचायक है। बेंत (दे०) नामक छंद के प्रयोग में वारिस के पश्चात् इन्हीं को सिद्धहस्त माना जाता है। उसके चरणांत में रदीफ़ और काफ़िए के प्रयोग द्वारा संगीत और भाव में अभिवृद्धि करने में इनका कौशल स्तुत्य है।

'फ़ज़ली' *(उर्दू० ले०)* [समय—बारहवीं शती ई०]

नाम—शाह फजलुल्लाह; उपनाम—'फ़ज़ली'। ये और इनके पिता सैयद अताउल्ला गाजी-उद्दीन खाँ फ़ेरोजजंग के संपर्क में बहुत समय तक रहे थे। इनका काव्य प्राचीन शैली में लिखा हुआ है। इनकी गजलों में उर्दू और फारसी साहित्य की काव्यरूढ़ियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। कहीं-कहीं घोर शृंगारिकता और ऊहात्मक वर्णन-शैली भी परिलक्षित होती है। औरंगाबाद (दक्षिण भारत) का यह कवि प्रेम-तत्त्व-निरूपण के प्रति अत्यधिक आसक्त दिखाई देता है। उर्दू मसनवियों में लिखित कतिपय प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त 'जाद-ए-राह' नामक एक छोटी-सी पुस्तक भी इन्होंने लिखी थी; जिसमें व्यवहार-कुशलता और नीति संबंधी पद्य-रचना है। 1184 ई० में इनका स्वर्गवास हुआ।

फडके, ना० सी० *(म० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

तहसीलदार के पुत्र, आराम में पले, 'कला को कला के लिए' मानने वाले फडके बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न कलाकार हैं। इनका साहित्यिक कृतित्व जितना विपुल है (अब तक 110 ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं), उतना ही वैविध्यपूर्ण। यह इस बात का प्रमाण है कि साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके कृतित्व में झाँकता है। विद्याभ्यास और क्रीड़ाविलास में समान रूप से प्रवीण एक ओर फडके ने 1920 ई० के असहयोग आंदोलन में भाग ले यह सिद्ध कर दिया कि ये जागरूक नागरिक हैं तो दूसरी ओर जीवन को पूरी तरह भोगकर अपने आनंदवादी रूप का परिचय दिया। दर्शनशास्त्र जैसे शुष्क विषय में एम० ए० करने तथा उसी विषय के तीस वर्ष तक अध्यापक रहने के बाद भी इनकी जीवन-दृष्टि क्रीड़ावादी है। इनके उपन्यास अपनी कोमल, रम्य, प्रणय-कथा तथा ललित-रम्य भाषा-शैली से पाठक को मुग्ध कर देते हैं। निर्दोष कथानक-शिल्प, मार्मिक चरित्र-चित्रण, मोहक प्रकृति-चित्रण, रमणीक कल्पना इनके उपन्यासों के अन्य गुण हैं। कतिपय उपन्यासों में सामयिक राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं को उठाया अवश्य गया है, पर आग्रह कला-विलास और मादक प्रणय-कथा पर ही है। इसीलिए ये युवक-युवतियों के प्रिय लेखक रहे हैं। इनमें विचार के औदात्य और गांभीर्य का अभाव ही है। उपन्यासों के अतिरिक्त फडके अपने लघुनिबंधों, प्रौढ़ निबंधों, प्रबंध-ग्रंथों एवं कहानियों के लिए भी विख्यात हैं पर सर्वत्र इनकी कलावादी दृष्टि का ही प्राधान्य है।

प्रमुख कृतियाँ—**उपन्यास**: 'कलाब्याची दांडी', 'प्रवासी' (दे०), 'झंझावात', 'उद्धार', 'आशा', 'निर्माल्य'; **कहानी**: 'लीला आणि इतर गोष्टी', 'उल्हास कथा', 'प्रीति पुष्प', 'किशोर कथा', 'मिटी' आदि; **निबंध-संग्रह**: 'गुज-गोष्ठी', 'स्मृति व संचार', 'कस्तुरीची लूट'। **आलोचना ग्रंथ**: 'प्रतिभा-साधन' (दे०); **आत्मकथा**: 'माझ्या साहित्य सेवेंतील स्मृती'। **जीवनी**: 'दादाभाई नौरोजी', 'लोकमान्य टिळक', 'महात्मा गांधी' आदि।

फतुरानंद, रामचंद्र मिश्र *(उ० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

इनका जन्म भाँझीर मंगला (कटक) में हुआ था। व्यवसाय से ये डाक्टर हैं; किंतु कुष्ठरोग-ग्रस्त होने के कारण नीरव-साहित्य-साधना को इन्होंने अपना जीवन बना लिया है। आजकल 'डगर' पत्रिका के संचालक-संपादक हैं। 'नाककटा चित्रकार' (दे०) (उपन्यास) 'हेरेसा', 'साहित्य चाष' (कहानी), 'निलठाक वि' (कविता), 'आम बहि' (शिशु-साहित्य) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

फतुरानंद कुशल व्यंग्यकार हैं। व्यंग्यात्मक शैली में इन्होंने बुद्धिजीवी-वर्ग के दोष व दुर्बलताओं पर प्रकाश डाला है। दैनंदिन बोलचाल की भाषा ने इनकी शैली को मार्मिक बना दिया है। हास्यरसात्मक कहानीकार के रूप में भी ये काफ़ी जनप्रिय हैं। उपन्यासों में हास्य के अंतराल से समस्या को उभार कर रखने में ये सिद्धहस्त हैं।

फ़रहंग-ए-आसिफ़िया *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1908 ई०]

लेखक: सैयद अहमद देहलवी। उर्दू भाषा

के इस शब्दकोश मे प्रत्येक शब्द का लिंग विचार दिल्ली और लखनऊ दोनो प्रकार की उर्दू के सदर्भ मे उल्लिखित है। इसमे जनसाधारण की भाषा और उच्च वर्ग की भाषा का अतर भी यथास्थान स्पष्ट किया गया है। मुहावरो की प्रामाणिकता अधिकतर उर्दू के समर्थ कवियो, लोकोक्तियो, गीतो की पक्तियो, दोहो और पहेलियो आदि से सिद्ध की गई है। साधारणतया महिलाओ मे प्रयुक्त भाषा और उनकी रीति रिवाजो तथा परपराओ की विशद जानकारी देना भी इस विशालकाय शब्दकोश की एक विशेषता है। प्रत्येक शब्द की धातु एव स्रोत के अतिरिक्त पारिभाषिक शब्दो के नामकरण पर भी इसमे यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। हिंदी शब्दो के विकास का उल्लेख प्राय सस्कृत, पालि और प्राकृत आदि भाषाओ के माध्यम से किया गया है। फारसी तक आते आते उन शब्दो मे किस प्रकार विकास हुआ है—इसका भी वर्णन है। शुद्ध हिंदुस्तानी शब्दो का भी विशद विवेचन विश्लेषण इसमे किया गया है।

फरहतुल्ला बेग (उर्दू० ले०)

फरहतुल्ला बेग उर्दू मे हास्य रस के सफल निबधकार हैं। इसकी शैली मे एक खास शोखी पाई जाती है जो कहकहा मारकर हँसने की बजाय मद-मद मुसकाने को प्रेरित करती है। इनकी साहित्यिक वार्ताओ मे भी इनकी स्वाभाविक शोखी झलक उठती है। इनके हास्य मे घटियापन अथवा निम्नता कही नही आने पाती। इनके लेखो को पढते वक्त एक प्रकार की बौद्धिक कसरत हो जाती है जिसके बाद एक हल्कापन महसूस होता है।

इनकी कृतियो मे कभी-कभी हल्का-सा व्यग्य भी नजर आता है जो समझने वाले के लिए पर्याप्त प्रभावपूर्ण होता है। इनके यहाँ दिल्ली की टकसाली भाषा का चटखारा भी रुचिकर होता है। रवानी, लफ्जो का खूबसूरत ठिठाव, विषय के साथ विचार और कल्पना का पूरी तौर पर घुला-मिला होना फरहतुल्ला बेग की खास खूबियाँ हैं।

फरीद (प० ले०)

दे० शेख फरीद।

'फलौरी', शरधा राम (पँ० ले०)

दे० फुल्लौरी, श्रद्धाराम।

फसाना ए-अजायब (उर्दू० कृ०) [रचना काल—1824 ई०]

'फसाना ए-अजायब' मिर्जा रजब अली बेग 'सरूर' (दे०) का सामाजिक उपन्यास है और 'सरूर' की सर्वश्रेष्ठ कृति है जिसने उन्हे अमर कर दिया है। इसमे फसाना ए-आजाद' (दे०) की तरह लखनऊ के सामाजिक जीवन के चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। 'सरूर' के ये चित्र प्रदर्शनी मे चित्रपट पर सजे सुदर किंतु मूक एव गतिहीन चित्रो जैसे प्रतीत होते हैं। 'सरशार' छोटी बातो का विस्तृत वर्णन करते हैं जबकि 'सरूर' कथा मे कुतूहल पैदा करने मे रुचि लेते हैं। सरूर के यहाँ हास्य कही भी नही जबकि सरशार के यहाँ हास्य हर समय और हर जगह है।

यह 'करबल-कथा' (दे०) और 'नौ तर्ज ए-मुरस्सा' (दे०) की गद्य शैली मे लिखा गया है। इसकी भाषा भी अरबी-फारसी पदावली से युक्त है किंतु इसकी भाषा उक्त दोनो कवियो की अपेक्षा अधिक सहज सरल है। इसमे वैसी जटिलता और दुरूहता नही है। 'सरूर' अवसरानुकूल भाषा के प्रयोग म निपुण हैं। दुकानदारो और शिल्पकारो की सहज स्वाभाविक बातचीत के दृष्टिकोण से यह एक श्रेष्ठ गद्य कृति है।

'फसाना-ए-अजायब' का कथानक भी परपरावादी चमत्कारो से भरा है। फिर भी प्राचीन शैली के उर्दू उपन्यासो मे इस कृति का बडा महत्व है। इसकी रचना के पश्चात् उर्दू उपन्यास का नवीन-युगारभ होता है। गद्य शैली की दृष्टि से तो इस कृति का एक वैशिष्ट्य है परतु कला की कसौटी पर यह बहुत खरी नही उतरती।

फसाना-ए आज़ाद (उर्दू०कृ०) [रचना-काल—1878 ई०]

'फसाना-ए-आज़ाद' प० रतननाथ सरशार (दे०) की रचना है। इसका प्रकाशन 1880 ई० मे हुआ था। इसमे लेखक ने अपने वतन लखनऊ के सामाजिक जीवन और लखनऊ की पतनोन्मुखी नवाबी सभ्यता का जीवन-मुखर चित्र प्रस्तुत किया है। इसे पढकर पाठक ऐसा अनुभव करता है कि वह स्वय लखनऊ के गली-कूचो

और हाट-बाजारों में विचरण कर रहा है। लेखक ने इसमें कवि की कल्पना और चित्रकार की आँख से काम लिया है।

'सरशार' की यह रचना उर्दू के प्रारंभिक उपन्यासों में से है किंतु शैली की दृष्टि से सब से निराला है। लोग 'सरशार' को तो भूल सकते हैं किंतु फ़साना-ए-आज़ाद' को नहीं। जिस समय यह 'अवध-अख़बार' में धारावाहिक उपन्यास के रूप में छपता था तो लोग अगले अंक की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा किया करते थे। इसका घटना-चक्र और पात्र सब कुछ वास्तविक और सजीव हैं। आज़ाद, ख़ोजी, हुस्न-आरा और नवाब साहब आदि इसके जीते-जागते पात्र हैं। आज़ाद तथा हुस्न-आरा अपने प्रगतिवादी विचारों तथा ख़ोजी अपनी विचित्र चेष्टाओं के लिए सदा याद किए जायँगे।

फ़साना-ए-मुब्तला (उर्दू० कृ०) [रचना-काल –1888 ई०]

'फ़साना-ए-मुब्तला' डिप्टी नज़ीर अहमद (दे० का सामाजिक उपन्यास है। इसमें मुसलमानों के तत्कालीन सामाजिक जीवन के सजीव चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। यद्यपि दिल्ली का नामोल्लेख नहीं हुआ तथापि इस उपन्यास का वातावरण दिल्ली के अतिरिक्त अन्य किसी नगर का प्रतीत नहीं होता। इसमें मुसलमानों के घरेलू जीवन, शिक्षा-संस्थाओं, सामाजिक रीति-रिवाजों, अंधविश्वासों, बहु-विवाह, दहेज आदि की कुप्रथाओं, भाँड़ों की नक़लों, नैतिक पतन, कोतवाल तथा अन्य अधिकारियों की धाँधली ग्रामीण संपत्ति-विभाजन के कारण होने वाली मुक़द्दमे-बाज़ियों, स्त्रियों के पारस्परिक झगड़ों, सौतिया डाह आदि के सजीव एवं मुखर चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। डा० अब्दुल हक़ (दे०) के शब्दों में हर मुसलमान को रह-रहकर शुबह होता है कि कहीं उसी के ख़ानदान के चिट्ठे तो नहीं खुल रहे हैं।

उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल है। महिलाओं की शब्दावली, मुहावरों तथा लोकोक्तियों के बड़े सटीक प्रयोग इसमें हुए हैं जो एक प्रभावशाली व्यंग्य लेखक की शैली की विशेषता होती है। इस कृति के पुरुष पात्र प्रायः शिक्षात्मक वक्तृत्व देने वाले ही हैं। संवाद नारी पात्रों के हैं जो बहुत सशक्त एवं सजीव हैं। ऐतिहासिकता को ध्यान में रखकर इस उपन्यास में बहुत सी अनमिल बातें भी कहीं गई हैं। मनोवैज्ञानिक आधार ग्रहण कर लेखक दर्शाया है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में घरेलू तथा विद्यालयी वातावरण का कितना प्रभाव पड़ता है।

फागु (हिं० पारि०)

'फागु' शब्द संस्कृत-शब्द 'फाल्गुन' का अपभ्रष्ट रूप है। 'फागु' का संबंध वसंतोत्सव और अनंग पूजा में है। वसंत के आगमन पर प्रकृति में नवजीवन का संचार होने लगता है। मानव-हृदय में प्रेम और शृंगार की भावनाएँ प्रस्फुटित होने लगती हैं। आरंभ में यही 'मदनोत्सव, 'फागुन' काव्यों का विषय बना।

फागु-काव्यों की परंपरा लिखित रूप में संस्कृत तथा प्राकृत में नहीं मिलती। इनकी रचना का प्रचलन उत्तरकालीन अपभ्रंश-काल में और हिंदी के प्रारंभिक काल में शुरू हुआ। आरंभ में ये फागु-काव्य वसंत, होली आदि उत्सवों पर गाये जाने के लिए लोक-गीतों के रूप में रचे गये। इन गीतों में प्रेम एवं शृंगार-भावना प्रधान होती थी। अपभ्रंश में रचित इन काव्यों में जैनाचार्यों ने धार्मिकता का पुट दिया। शृंगार की पृष्ठभूमि पर शांत रस का चित्र प्रस्तुत किया। 'सिरी थूलि भद्द फागु' (दे०), 'श्री नेमिनाथ फागु' (दे०) आदि रचनाएँ अपभ्रंश में मिलती हैं।

फ़ाज़िल, गुलाम अहमद (कश्० ले०) [जन्म—1914 ई०]

औपचारिक रूप से उर्दू, फ़ारसी, अँग्रेज़ी भाषाओं तथा अन्य सामाजिक विषयों में शिक्षित। भाषा में सौष्ठव और पद-लालित्य है। 'सरूद' और 'कलाम-ए-फ़ाज़िल' नाम से इनके कविता-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इनके अतिरिक्त, 'साग़र मस्ती', 'शमा-ए-वतन' तथा 'अनवारि मुहम्मदी' भी इनकी कृतियाँ हैं। फ़ाज़िल साहब अच्छे गायक कलाकार एवं संगीतकार भी हैं। अतः इन गुणों का प्रभाव इनकी कविता की गेयता में भी स्पष्ट रूप से झलकता है। प्रेमाख्यानक एवं धार्मिक कविता करने में इन्होंने अच्छा कौशल दिखाया है। इनकी कविता अच्छे स्तर की है और इन्होंने अपनी रचनाओं में शब्द की व्यंजना-शक्ति से ख़ूब काम लिया है। भाषा कुछ-कुछ फ़ारसी से प्रभावित है। इनकी कृतियों में महमूद गामी (दे०) की-सी परिपक्वता और महजूर (दे०) की-सी गेयता का सुंदर मिश्रण झलकता है।

फ़ानी बदायूनी (उर्दू० ले०) [जन्म—1789 ई०]

इनका नाम शौकत अली ख़ाँ है और तख़ल्लुस

'फानी'। इनके पूर्वज काबुल के रहने वाले थे। ये बदायूं (उ० प्र०) के निवासी होने के कारण बदायूनी कहलाए। इन्होंने बरेली कॉलिज से बी० ए० की परीक्षा पास की और अलीगढ से एल एल० बी० किया। वकालत मे इन्हे कोई रुचि नही थी, केवल पिता के आग्रह पर वकालत की परीक्षा पास कर ली थी। साहित्यिक रुचि प्रारभ म थी। इन्होंने पहली गज़ल 1890 ई० मे कही। इनके पिता इन्ह शेर कहने से रोका करते थे, अत उनके डर के मारे किसी से इस्लाह भी नही ले सके। फानी ने अपनी प्रतिभा के बल पर ही कीर्ति अर्जित की। इन्होंने तीन दीवानो, दो उर्दू मसनवियो, दो ड्रामो तथा एक फारसी मसनवी की रचना की किंतु उदासीन वृत्ति के कारण ये सब रचनाएँ नष्ट हो गईं। जो कुछ बाकी रहा वह 'बाकियात ए-फानी' के नाम से पुस्तक रूप मे छपा है। दूसरा सग्रह रफानियान-ए फानी के नाम से छपा है।

फानी के काव्य मे पीडा एव शोकानुभूति अत्यत प्रबल और गहरी है। इनकी कविता भावुकता तथा अर्थ-गाभीर्य से ओत-प्रोत है।

फारुकी, प्रो० ख्वाजा अहमद *(उर्दू० ल०)*

जन्मस्थान — बछराऊँ, जिला मुरादाबाद (उ० प्र०) ये पत्र-लेखन पर अनुसधान करपी-एच० डी० की डिग्री से विभूषित हुए। इन दिनो इन्हे दिल्ली विश्व-विद्यालय के उर्दू विभाग मे प्रोफेसर होने का गौरव प्राप्त है। इसके पूर्व ये उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग मे विभिन्न पदो पर तथा दिल्ली कालेज दिल्ली के प्राध्यापक के रूप मे भी कार्य कर चुके हैं। इनकी कृतियो मे 'मीर तकी मीर' 'क्लासिकी अदब' और 'तज़करा-ए-सरूर' महत्वपूर्ण कृतियो हैं। साहित्य-सृजन तथा उसके प्रकाशन मे इनकी सुरुचि सराहनीय है। इनकी अभिव्यजना-शैली मे प्रभविष्णुता, सजीवता, भव्यता, गभीरता, सरलता और सरसता का सचार देखते ही बनता है। विचारो के स्पष्टीकरण म कही भी शब्दाडबर अथवा भावाडबर का प्रश्रय इन्होंने नही लिया है। आधुनिक युग के उर्दू साहित्यकारो मे इन्ह उच्च स्थान प्राप्त है।

फाल्गुन राव *(म० पा०)*

यह गोविंद बल्लाल देवल (दे०) के प्रसिद्ध रूपातरित नाटक सगीन सशय 'कल्लोळ' (फ्रेंच नाटककार मोलियर कृत 'मानारेल' के मर्फी द्वारा) अंग्रेज़ी अनुवाद' 'आल इन दी राग का रूपातर) का सहपात्र वृषण अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। इसका नामकरण स्वदेशी मास 'फागुन' के आधार पर हुआ है। अपनी सशय-प्रवृत्ति के कारण ही यह अपनी पत्नी कातिका के प्रति भी सदेह रखता है। वस्तुत कातिका इसकी दूसरी पत्नी है जो वय आदि की दृष्टि से इससे बहुत छोटी है। इसी से वयोवृद्ध फाल्गुन राव अपनी इस नवयौवना पत्नी के चरित्र पर सदेह करता है। इसीलिए इसका पारिवारिक जीवन कटु है। यह अपन नौकर भादव्या (दे०) को बहुत कम वेतन देता है, परतु समय समय पर उसे कुछ इनाम आदि देने के झूठे आश्वासन भी देता रहता है। व्यवसाय मे वैद्य होने के कारण सभी प्रकार के व्यक्तियो से इसका परिचय होता है। नायिका रेवती के अचेतनावस्था मे उपचार आदि की सहायता करता है। सेठ कृतिका के पास अश्विनी सेठ की तस्वीर के कारण फाल्गुन राव और कृतिका के मन मे सदेह की खाई और गहरी हो जाती है। मानव की सहज शकालु वृत्ति के कारण घटित होने वाले अप्रिय घटना-प्रसगो का चित्रण नाटककार ने फाल्गुन राव के चरित्र के माध्यम से किया है। मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर विकसित होने के कारण यह चरित्र सहज, स्वाभाविक एव विशिष्ट प्रभावोत्पादक हो गया है।

फिरदौस ए-बरी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1895 ई०]

इस उपन्यास के लेखक हैं मौलाना अब्दुल हलीम 'शरर' लखनवी (दे०)। मौलाना 'शरर' ने प्राय. अपने सभी उपन्यासो म मुसलमानो के सास्कृतिक और राजनीतिक उत्थान की गाथाएँ सुनाकर उन्हे जागृति एव कर्मठता का सदेश दिया है। इन्होंने अपने उपन्यासो म दूसरे सप्रदायो की तुलना मे मुसलमानो के प्रति पक्ष-पात और अतिशयोक्ति से काम लिया है। उनके सभी उपन्यासो में केवल 'फिरदौस-ए बरी' ही एक ऐसा उपन्यास है जो कलात्मक दृष्टि से स्तुत्य कहा जा सकता है। उर्दू के ऐतिहासिक उपन्यासो मे इसे विशेष स्थान प्राप्त है और प्रायः सभी आलोचको ने इसकी कथावस्तु की रोचकता और चरित्र-चित्रण की सवेदनशीलता की प्रशसा की है। वातावरण का वास्तविक चित्रण उनकी कला की उत्कृष्टता का परिचायक है। इस उपन्यास के सभी पात्र सजीव हैं। उनका अपना विशेष व्यक्तित्व है। इसकी कथा-वस्तु का निर्माण स्वाभाविक तथा सतुलित ढग से हुआ है। ऐसा

प्रतीत होता है कि मौलाना 'शरर' की सृजनात्मक क्षमताओं और ऐतिहासिक विवेक ने अपना पूर्ण परिचय देने के लिए इस उपन्यास को माध्यम के रूप में चुना है। 'फ़िरदौस-ए-बरीं' उनका एकमात्र ऐसा उपन्यास है जिसमें न तो इतिहास का हनन हुआ है और न किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व को विकृत स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है।

'फ़िरदौस-ए-बरीं' की कथा का विषय वह तूफ़ान है जो पाँचवीं शती में इसलाम की दुनिया में आया और अपनी पराकाष्ठा को पहुँचकर उसी प्रकार समाप्त हो गया जिस प्रकार हर तूफ़ान समाप्त हो जाता है। 'फ़िरदौस-ए-बरीं' को रोचक बनाने के लिए लेखक ने दो काल्पनिक पात्रों का सृजन करके उनके पारस्परिक प्रेम का निरूपण किया है। ये दोनों पात्र चूंकि लेखक के मनोजात हैं, अतः वे पूर्ण कर्तव्यनिष्ठ हैं।

इस उपन्यास में पाठक का 'कौतूहल' निरंतर जागृत रहता है। आशा, निराशा, आश्चर्य व शांति की भावनाओं को यथावसर उभारने तथा दबाने का कार्य लेखक ने बड़ी कुशलता से किया है। शैली रोचक है। दृश्य चित्रों तथा वातावरण का स्वाभाविक निरूपण भी इस उपन्यास की विशेषता है।

फ़िरदौसी (तें० कृ०) [रचना-काल—1932 ई०]

'फ़िरदौसी' श्री गुर्रमु जापुवा (दे०) का एक प्रसिद्ध खंडकाव्य है। फारसी के महाकवि तथा 'शाहनामा' ग्रंथ के प्रणेता फ़िरदौसी (दे०) की करुण कहानी इसकी कथा-वस्तु है। भारत पर सत्रह बार आक्रमण करके अशेष धनराशि लूटकर स्वदेश लौटने के उपरांत महमूद गज़नवी ने फ़िरदौसी से आग्रह किया कि वह गज़नवी-वंश की विजय-यात्राओं का वर्णन करते हुए महाकाव्य की रचना करे। उसको यह वचन भी दिया गया कि पारिश्रमिक के रूप में उसको असंख्य स्वर्ण-मुद्राएँ दी जाएँगी। जब दीर्घ-काल के अथक परिश्रम के उपरांत फ़िरदौसी उस महाकाव्य को पूरा करता है तब तक महमूद गज़नवी की कृपा-दृष्टि कोप-दृष्टि में परिवर्तित हो चुकी होती है और फ़िरदौसी अपने प्राणों की रक्षा करने गुप्त रूप से देश छोड़कर चला जाता है। जाने से पहले वह एक मस्जिद की दीवार पर यह छंद लिख जाता है—'रत्नों के आगार समुद्र में मैंने अनेक बार डुबकियाँ लगाईं। परंतु हाय ! मैं कैसा भाग्यहीन हूँ ! रत्न की प्राप्ति तो नहीं हुई, अंत में सागर ही मुझे निगलने के लिए दौड़ पड़ा।' इसमें एक कवि-हृदय की वेदना एवं क्षोभ को जापुवा ने स्वयं अनुभव किया है और उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति इस काव्य में की है।

फ़िरदौसी (तें० पा०)

ये 'शाहनामा' के अमर फ़ारसी कवि हैं। कवि गुर्रमु जापुवा (दे०) ने अपने प्रसिद्ध खंडकाव्य 'फ़िरदौसी' (दे०) द्वारा इनकी कहानी को आंध्र-जनता के सामने जीवंत रूप में उपस्थित किया है। सत्रह बार भारत पर चढ़ाई करके अशेष धनराशि को हस्तगत कर लेने के उपरांत महमूद गजनवी महाकवि फ़िरदौसी को आज्ञा देता है कि *तुम गज़नी एवं मेरे पूर्वजों की गौरवगाथा का वर्णन* करते हुए एक महाकाव्य का निर्माण करो। गज़नवी फ़िरदौसी को पारिश्रमिक के रूप में विपुल संपत्ति प्रदान करने का वचन भी देता है। किंतु यह जब अनेक वर्षों के घोर परिश्रम के उपरांत उक्त ग्रंथ की रचना करके गजनवी को समर्पित करता है, तब तक अकारण ही इसके प्रति उसकी कृपादृष्टि कोपदृष्टि में परिवर्तित हो चुकी होती है। अतः इसको पुरस्कार-प्राप्ति की आशा से दंड का भय अधिक होने लगता है। असहाय और निराश फ़िरदौसी एक मस्जिद की दीवार पर यह छंद लिखकर प्राणों की रक्षा के लिए प्रस्थान कर देता है कि 'रत्नों के भांडार महासमुद्र में मैंने बहुत डुबकियाँ लगाईं, किंतु मैं अभागा ठहरा, मोती पा न सका और समुद्र ही मुझे निगलने के लिए मुँह बाये दौड़ पड़ा है।'

फ़िराक़ गोरखपुरी (उर्दू० ले०) [जन्म—1896 ई०]

प्रो० रघुपति सहाय 'फ़िराक़' गोरखपुर में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता प्रसिद्ध वकील तथा अच्छे शायर थे और 'इबरत' तखल्लुस करते थे। 'फ़िराक़' ने म्योर सेंट्रल कालेज, इलाहाबाद से बी० ए० की परीक्षा में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। इन्हें तुरंत डिप्टी कलेक्टर के पद के लिए चुन लिया गया किंतु इन्होंने दूसरों को जेल भेजने की बजाय स्वयं जेल जाना अच्छा समझा और डिप्टी कलेक्टर न बनकर कांग्रेस में शामिल हो गए।

शायरी में 'फ़िराक़' ने प्रो० नासिरी तथा उनके बाद 'वसीम' खैराबादी से इस्लाह ली। ये इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी-प्राध्यापक पद से रिटायर हुए हैं। इनकी ग़ज़लों पर मीर (दे०), अमीर मीनाई (दे०)

तथा सफी लखनवी (दे०) के रंग की छाप स्पष्ट दिखाई देती है किंतु इस समय इनका अपना एक निजी रग बन गया है जो श्रोताओ को बहुत प्रभावित करता है। 'फिराक' भावो के चतुर चितेरे है। मनोवैज्ञानिक चित्रण करने मे भी ये सिद्धहस्त है। इन पर पाश्चात्य काव्य, नाटक और उपन्यास का गभीर प्रभाव पडा है। 'फिराक' की कीर्ति इनकी गजलो से है, यद्यपि इन्होने नज्मे भी कही है और रूबाइयाँ भी। इनको अपने सग्रह 'गुलो-नग्मा' पर साहित्य अकादेमी की ओर से 5 हजार रुपये का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इसके अतिरिक्त एक लाख रु० का भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार भी इनको प्राप्त हुआ है जो उर्दू के किसी भी शायर को प्राप्त होने वाला सब से बडा सम्मान है। 'रूप' इनकी रूबाइयो का संग्रह है। भारतीयता इनके काव्य की विशेषता है।

फुकन, तरुण राम *(अ० ले०)* [जन्म—1877 ई०, मृत्यु—1939 ई०]

ये एक कुशल शिकारी थे।

प्रकाशित रचनाएँ—'यौनतत्व' (1934 ई०)।

इन्होने सैक्स पर लोकप्रिय पुस्तक लिखी है। शिकार-जीवन पर इनकी रचनाएँ अप्रतिम हैं। शिकार की कहानियो मे मनोहर रचना-शैली, सयत हास्य रस और कौतुकपूर्ण विवरण की उपलब्धि होती है।

इन्होने कामरूपीय स्थानीय शैली मे कुछ गीतो की रचना की थी। वैसे ये यौनतत्व और शिकार-विषयक लेखन के लिए ही असमीया-साहित्य मे स्मरणीय है।

फुकन, नीलमणि *(अ० ले०)* [जन्म—1880 ई०]

जन्म-स्थान—डिब्रूगढ। इनकी शिक्षा बी० ए०, बी० एल० तक हुई थी। ये गाधीवादी थे। इन्होने कई पत्र-पत्रिकाओ का सपादन किया था। 1648 से 57 ई० तक ये असम असेंबली के सदस्य रहे थे।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य 'ज्योतिकणा' (दे०) (1938), 'मानसी' (दे०) (1942), 'गुटिमाली' (1950), 'जिजिरि' (1951), 'सधानी' (दे०) (1953), निबध . 'साहित्यकला' (1940), 'चिंतामणि' (1940)।

इनकी कविताएँ रहस्यवादी हैं, ये विश्व के कण-कण मे दैविक शक्ति का आभास पाते हैं। इनकी कविताओ मे प्रवाह और रमणीयता कम है। इनका पद्य अधिक काव्यमय है। इनके निबधो मे रोचकता है। 'साहित्य कला' म इन्होने साहित्य की परपरानुसार विचार न कर सौदर्य-पिपासु की दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। 'चिंतामणि' के निबध बेकन के निबधो के समान हैं।

फुकन, प्रवीण *(अ० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

ये असमीया के द्वितीय युद्धोत्तर प्रसिद्ध नाट्यकार है।

प्रकाशित रचनाएँ—नाटक 'काल-परिणय' (1935), 'मणिराम देवान' (दे०) (1948), 'लाचित बरफुकन' (1948), 'डा० प्रमोद', 'शतिकार बान' (1954), 'विश्वरूपा' (1961); एकाकी 'त्रितरग'।

'काल-परिणय' मे सामाजिक व्यग्य है। इनके नाटक 'मणिराम देवान' ने रगमच पर धूम मचा दी थी। इसमे तीन अक हैं। इनके नाटको का ऐतिहासिक परिवेश दुर्बल है, किंतु काल्पनिक दृश्यो और पात्रो के सयोग से ये (नाटक) सुदर बन पडे हैं। 'शनिकार बान' मे असत् उपाय से धन-सग्रह करने वाली आसुरी शक्ति और चरित्र-बल से उपलब्ध उत्साहसपूर्ण शक्ति मे सघर्ष दिखाया है।

इनके 'त्रितरग' मे सकलित तीन एकाकियो मे मध्यवर्ग की आशा-निराशा का तीव्र द्वद्व चित्रित है।

ये मात्र एक सफल नाट्यकार हैं।

फुकन, राधानाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1875 ई०, मृत्यु—1964 ई०,]

जन्मस्थान—जोरहाट। इनकी शिक्षा कलकत्ता मे हुई थी, और इन्होंने एम० ए०, बी० एल०, वेदात-वाचस्पति की उपाधियाँ प्राप्त की थी। ये जज थे, इन्होने चाय बगीचे का व्यवसाय भी किया था।

प्रकाशित रचनाएँ—'शकर दर्शन' (1949), 'वेदात दर्शन' (1951), 'साख्य-दर्शन' (1949), 'कयारे उपनिषद्' (1954), 'श्रीमद्भगवद्गीता' (1955), 'विज्ञानर सिपारे' (1957), जन्मोत्तर रहस्य (1957)।

इन्होंने दार्शनिक ग्रथ लिखकर असमीया-साहित्य मे एक अभाव की पूर्ति की है। किसी समय इनका उद्बोधक गीत बहुत प्रतिसिद्धि लाभ कर गया था। कविता के क्षेत्र मे ये अग्रसर न हो सके। फुकन जी ने

अधिविद्या (मेटाफिज़िक्स) को गणितीय संक्षिप्त तर्कना से मिश्रित किया है। ये इस क्षेत्र में आदर्शवादी हैं। असमीया के दार्शनिक चिंतन के रूप मे ही इनकी ख्याति है।

फुकनैनी, पद्मावती देवी *(अ० ले०)* [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1927 ई०]

ये प्रसिद्ध समाज-सुधारक एवं साहित्य-सेवी स्वर्गीय आनंदराम ढेकियाल फुकन (दे०) की सुपुत्री थीं।

प्रकाशित रचनाएँ—'सुधर्मार उपाख्यान' (1884), 'हितसाधिका'।

'सुधर्मार उपाख्यान' को कतिपय आलोचक असमीया का प्रथम उपन्यास मानते हैं। मिशनरियों के उपन्यास प्रचारात्मक थे किंतु यह उपन्यास नहीं है। अतः इस दृष्टि से इनका यह उपन्यास प्रथम सामाजिक उपन्यास कहा जा सकता है, किंतु इसमें उपन्यास तत्वों का अभाव है। यह उपन्यास की अपेक्षा उपाख्यान अधिक है। यह छः परिच्छेदों में विभक्त है। इसमें तीन-तीन दंपतियों के विरह-मिलन का सहज स्वाभाविक वर्णन है। कहानी की परिणति के लिए लेखिका को आकस्मिक घटना एवं संयोग पर भी निर्भर रहना पड़ता है। चरित्र-चित्रण नहीं है किंतु कथानक का स्वाभाविक विकास है। आगे के उपन्यासकारों ने इनका अनुसरण नहीं किया। इनकी 'हितसाधिका' छात्रोपयोगी पुस्तक है।

इनका यही महत्व है कि ये प्रथम स्त्री उपन्यास-लेखिका है।

फुनहे *(पं० पारि०)*

आदि ग्रंथ में श्री गुरु अर्जुनदेव के नाम से रचित 'फुनहे महला पांच' शीर्षक से कुछ वाणी संगृहीत है। यह 'पुनह' छंद में रची गई है। इसी का दूसरा नाम फुनहा है। इस छंद के अन्य अनेक नामों में से एक नाम 'चांद्रायण' भी बताया गया है। इसमें चार चरण होते है, प्रति चरण 21 मात्राएँ तथा ग्यारह और दस पर यति का विधान है। उदाहरण :

धावउ दसा अनेक, प्रेम प्रभु कारणे।
पंच सतावहि दूत, कवन बिधि मारणे।

फुल कोंवर गीत *(अ० कृ०)*

दे० 'मणिकोंवर'।

फुल्लरा *(बँ० पा०)*

मध्ययुगीन मंगलकाव्य के सार्थक कवि कदाचित् दो ही हैं—मुकुंदराम (दे० चक्रवर्ती) तथा भारतचंद्र (दे०)। कथा तथा जीवन-विन्यास, चरित्र-चित्रण, यथार्थ-बोध एवं शिल्प-कौशल की दृष्टि से इस युग के अन्य कवियों की तुलना में मुकुंदराम श्रेष्ठ हैं। फुल्लरा का चरित्र-चित्रण भी उनकी श्रेष्ठता का एक प्रमाण है।

फुल्लरा व्याधपत्नी है। संस्कृत-शास्त्र के अनुसार कवि ने उसका सौंदर्य-वर्णन किया है। कृष्ण प्रस्तर से गठित यह मानो एक जीवंत नारी-मूर्ति है। अरण्य का सौंदर्य उसकी देह और मन दोनों पर ही फैला हुआ है। सरलता के साथ-साथ नारी सुलभ यथार्थबोध उसके चरित्र का आभूषण है। दुःख उसका जीवन-साथी है। देवी चंडी जब आश्रय-प्रार्थिनी होकर फुल्लरा के पास आती है तब सहज ही रूपवती सौत की संभाव्य भूमिका में उसकी कल्पना कर फुल्लरा पहले-पहल देवी से स्वगृह वापस चले जाने का अनुरोध करती है। जब देवी ने वह स्वीकार नही किया तब फुल्लरा ने अपनी बारह महीनों की दुःख-गाथा का वर्णन किया। मुकुंदराम (दे० चक्रवर्ती) का यह बारहमासा मध्ययुगीन मंगलकाव्य की एक संपत्ति-विशेष है। इस अश्रुसिक्त जीवनचर्या के वर्णन पर भी देवी अटल रहती हैं। तब फुल्लरा स्वामी कालकेतु की शरण लेती है। अभागिनी फुल्लरा ने सारा जीवन दुःसह दारिद्र्य में हँसते हुए बिताया है—केवल एकनिष्ठ प्रेम का ऐश्वर्य उसके पास था। दरिद्र का वह ऐश्वर्य भी मानो आज लुटने वाला है। इसीलिए वह पति के निकट आँसू और अभिमान से भरी हुई आती है।

मंगलकाव्यों में साधारणतः नारियों के द्वारा पतिनिंदा की परंपरा दिखाई पड़ती है। इस दृष्टि से फुल्लरा अपवाद है। स्वामी के साथ झगड़ा करने में वह पीछे नहीं है परंतु पति-प्रेम भी उसमें बहुत है। सौभाग्य-गर्विनी फुल्लरा की मनोभावनाओं का अंकन कवि ने नहीं किया है। वह स्वामी की हित-कामना करती हुई खलनायक भांडुदत्त (दे०) की तुलना से पराजित होती है। इस पराजय में भी फुल्लरा के यथार्थ अनुभवों का ही अंकन

हुआ है। फुल्लरा चडीमगल काव्य की एक जीवत तथा सार्थक नारी-पात्र है।

फुल्लौरी, श्रद्धाराम *(प०, हि० ले०)* [जन्म—1837 ई०, मृत्यु—1881 ई०]

हिंदी-गद्य के इतिहास मे इनका ऐतिहासिक महत्व है। अनेक आलोचक इनके 'भाग्यवती' उपन्यास को हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास मानते हैं। अपने समय मे ये विद्वत्तापूर्ण एव प्रभावशाली व्याख्यानो तथा रामायण (दे०) महाभारत (दे०) की हृदयस्पर्शी कथाएँ सुनाने के लिए प्रख्यात थे 'सत्यारभूत प्रवाह', 'आत्म चिकित्सा', 'तत्त्वदीपक', 'धर्मरक्षा', 'उपदेश-सग्रह', आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ है।

श्री फुल्लौरी का पजाबी गद्य के इतिहास मे बडा महत्वपूर्ण स्थान है—प्राय. वही जो हिंदी मे 'भारतेंदु' (दे० भारतेंदु हरिश्चद्र) का है। पजाबी गद्य का नमूना प्रस्तुत करने के लिए इन्होने दो पुस्तके लिखी थी—'सिखा दे राज दी विधिआ' और 'पजाबी बातचीत'।

फूल-बन *(उर्दू० कृ०)* [रचना काल—1665 ई०]

'फूल-बन' दक्न के प्रसिद्ध शायर इब्न-ए निशाती (दे०) की प्रसिद्ध मसनवी है। भाषा और शैली की दृष्टि से यह मसनवी बहुत महत्वपूर्ण है। इसमे तत्का लीन रीति-रिवाजो और रहन सहन के तरीको को बडी सुदरता से चित्रित किया गया है।

'फैज', फैज अहमद *(उर्दू० ले०)* *[जन्म—1911 ई०]*

बहुत कम लिखकर बहुत अधिक यश प्राप्त करने वाले शायरो मे फैज अहमद 'फैज' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। भाव और कला दोनो पक्षो का जैसा सुदर समन्वय इनके काव्य म पाया जाता है वैसा कम शायरो की कविता म मिलता है। फैज की नज्मो में अत्यत ओजपूर्ण अनुभूतियाँ अभिव्यक्त होती हैं। इनकी शायरी मे समाज का दु ख-दर्द मुखरित हो उठा है। इनमे आपबीती भी है और जगबीती भी। गागर मे सागर भरना फैज का विशेष गुण है। फैज जब गहराई से किसी बात को अनुभव करते है तभी उस कलमबद करते हैं।

'दस्ते-सबा', 'नाले', 'फरियादी', 'जिंदा' इनके काव्य-सग्रह हैं। इन्होंने उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं का सहारा नही लिया। इस युग मे इन जैसी लोकप्रियता कम शायरो को मिली है। अपनी उग्रता के कारण ही ये अपने देश (पाकिस्तान) की सरकार के कई बार कोपभाजन बन चुके हैं।

फोर्ट विलियम कॉलेज *(हि०, उर्दू० सस्था)*

उर्दू के आधुनिक गद्य का प्रारभ उन्नीसवीं शती मे हुआ। इसमे फोर्ट विलियम कॉलेज का बहुत योगदान है। इस कॉलेज की नीव कलकत्ता मे रखी गई जिस के उच्चाधिकारी डा० जॉन गिलक्राइस्ट थे। उन्होने उत्तरी *भारत के योग्य विद्वानो को इस कॉलेज मे इसलिए एकत्र किया था कि वे भारत आने वाले अँग्रेजो के लिए पाठ्य* पुस्तकें तैयार कर सकें जिससे उन्हे भारतीयों के साथ *स्वतत्र मेल-जोल मे आसानी हो। इस कॉलेज की स्थापना* से पूर्व भी उर्दू भाषा मे कुछ धार्मिक रग की पुस्तकें एव क़िस्से-कहानियाँ थी जिन्हें कच्ची एव प्रारभिक उर्दू भाषा मे फारसी से अनूदित किया गया था किंतु इन पुस्तको मे व्याकरण की दृष्टि से अनेक भूलें थी।

जो लोग इस कॉलेज मे पुस्तकें तैयार करने के लिए नियुक्त किए गए थे, उनमे उर्दू मे सैयद मुहम्मद हैदर बख्श 'हैदरी', बहादुर अली हुसैनी, इक्राम अली तथा मिरजा अली लुत्फ तथा हिंदी मे लल्लूलाल, सदल मिश्र आदि प्रसिद्ध हैं। इन लेखको की पुस्तकें सादा और सरल आकर्षक भाषा मे हैं। डा० गिलक्राइस्ट के इस कॉलेज के प्रयत्नो का ही फल था कि उर्दू सरकारी भाषा के रूप मे सत्तारूढ हो गई तथा इस योग्य बन गई कि इसे अदालती *भाषा घोषित किया जा सके। उर्दू-व्याकरण एव शब्द*-कोश भी इसी अवधि म तैयार किए गए। जहाँ तक हिंदी का प्रश्न है, कालेज के पडितो से हिंदी गद्य को अपेक्षित शक्ति प्राप्त नही हो सकी यद्यपि इसम सदेह नहीं कि हिंदी गद्य के आरभिक प्रयत्नो म कॉलेज का विशेष महत्व है।

वकिमचद्र चट्टोपाध्याय *(बँ० ले०)* [जन्म—1838 ई०; मृत्यु—1894 ई०]

आधुनिक बँगला उपन्यास के जनक वकिमचद्र *चट्टोपाध्याय ने उपन्यास, निबध आदि की रचना कर बँगला* साहित्य मे नवीन युग का सूत्रपात किया। 1958 ई० मे

कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास कर ये प्रथम बंगाली स्नातक बने और बी० एल० की उपाधि प्राप्त कर डिप्टी मजिस्ट्रेट के रूप में बहुत वर्षों तक कार्य करते रहे।

1865 ई० में 'दुर्गेशनंदिनी' (दे०) की रचना कर बंकिमचंद्र ने उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश किया और तभी से बँगला उपन्यास का विकास शुरू हुआ। बंकिम बाबू के प्रसिद्ध उपन्यास हैं—'राजसिंह' (1877), 'कपालकुंडला' (दे०) (1866), 'चंद्रशेखर' (1875), 'विषवृक्ष' (दे०) (1873), 'कृष्णकांतेर उइल' (दे०) (1876), 'आनंद मठ' (दे०) (1882), तथा 'देवी चौधुरानी' (दे०) (1887)। इनमें 'दुर्गेशनंदिनी', 'राजसिंह', 'कपालकुंडला' तथा 'चंद्रशेखर' ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'विषवृक्ष' तथा 'कृष्णकांतेर उइल' पारिवारिक उपन्यास हैं तथा 'आनंदमठ' एवं 'देवी चौधुरानी' में इतिहास की पटभूमिका में धर्मतत्त्व की व्याख्या की गई है। बंकिम बाबू ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में रोमांस और इतिहास का समन्वय कर जीवन के असाधारण उच्छ्वास और गौरव की अभिव्यक्ति की है। सामाजिक उपन्यासों में क्षुद्र विरोधों का निषेध कर जीवन का सहज स्नेहपूर्ण चित्र अंकित किया है। धर्मतत्त्व-प्रधान उपन्यासों में जीवन को एक भव्य आलोक से मंडित किया गया है।

बँगला निबंध-साहित्य के क्षेत्र में भी बंकिम बाबू की देन कम महत्वपूर्ण नहीं है। 'बंगदर्शन' पत्रिका की स्थापना कर उन्होंने विद्वानों को साहित्य-विचार-प्रधान तथा वैज्ञानिक एवं दार्शनिक निबंध-रचना में प्रवृत्त किया। उनके 'विविध प्रबंध' (प्रथम तथा द्वितीय भाग) 1887 ई० तथा 1892 ई० में प्रकाशित हुए। इनके अतिरिक्त 'विज्ञान-रहस्य' (1875), 'साम्य' (1879), 'कृष्ण चरित्र' (1886), 'धर्मतत्त्व' (1888) तथा व्यक्तित्व-धर्मी साहित्यिक निबंधों का संग्रह 'लोकरहस्य'—जिसमें 'कमलाकांतेर दप्तर' भी शामिल है—1875 ई० में प्रकाशित हुए। इन निबंधों में समसामयिक जीवन के प्रत्येक पक्ष की—दर्शन, विज्ञान, धर्म, साहित्य, इतिहास, अर्थनीति, राजनीति, व्यंग्य, समाजचित्र सभी की—सुललित गद्य में अभिव्यक्ति हुई। उन्होंने विद्यासागर (दे० ईश्वरचंद्र) की गुरु-गंभीर तथा प्यारीचाँद (दे० मित्र) की गतिमयी एवं हलकी-फुलकी भाषा के सम्मिश्रण से आदर्श गद्य-शैली की प्रतिष्ठा की। बँगला साहित्य में उनका ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, जीवन की शाश्वत भूमिका पर भी उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रतिष्ठा प्राप्त की है।

बंगारम्मा, चावलि (ते० ले०) [जन्म—1897 ई०; मृत्यु—1960]

पूर्वी गोदावरी जिले की रहने वाली बंगारम्मा विदुषी तथा कवयित्री थीं। 'कांचनविपंची' इनकी कविताओं का संग्रह है। विदुषी होते हुए भी सरल तथा सरस गीतों की रचना करना इनका वैशिष्ट्य है। इनकी कविता अन्य भाषा-साहित्यों के प्रभाव से आक्रांत नहीं हुई। अकृत्रिमता तथा सहजता इनके गीतों के प्रमुख गुण हैं। तेलुगु के साधारण जनजीवन की सहजता तथा भाषा के माधुर्य को इनके गीतों में अच्छी अभिव्यक्ति मिली है।

बंगारय्या, मंदरि (ते० ले०) [समय—बीसवीं शती ई०]

ये अच्छे देशभक्त तथा समर्थ लेखक हैं। इन की रचनाएँ ये हैं—'आंध्रतेजमु', 'राज्यलक्ष्मी' आदि नाटक 'अभिज्ञानशाकुंतल विमर्शनमु', 'विराटोद्योगपर्व विमर्शनमु' आदि आलोचनात्मक ग्रंथ; 'पानुगंटियारि रचनापाटवमु' जैसे कुछ लेख। आंध्र के आंदोलन के दिनों में अनेक तेलुगु लेखकों ने अपनी जाति के गतवैभव का गुणगान करते हुए कई रचनाएँ कीं। 'आंध्र तेजमु' इसी प्रकार का नाटक है। इसकी प्रस्तावना में लेखक ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उक्त रचना में समसामयिक जीवन का प्रतिबिंबित होते हुए भी आंध्रों की महत्ता के लिए एक शाश्वत साहित्यिक मंदिर का निर्माण करना ही अपना प्रमुख लक्ष्य था। इनकी 'राज्यलक्ष्मी' प्रदर्शन-संबंधी एक समस्या को लेकर लिखा गया नाटक है। इस रचना के द्वारा इन्होंने यह कहा है कि किसी भी नाटक के प्रदर्शन में स्त्रियों को ही स्त्री-पात्र की भूमिका ग्रहण करनी चाहिए। 'अभिज्ञानशाकुंतल विमर्शनमु' जैसे ग्रंथ इनकी स्वस्थ आलोचना-शक्ति के द्योतक हैं। बंगारय्या एक सफल नाटककार, श्रेष्ठ आलोचक तथा उदार देशभक्त हैं।

बंद्योपाध्याय, करुणानिधान (बँ० ले०) [जन्म—1877 ई०; मृत्यु—1955 ई०]

सौंदर्य के पुजारी करुणानिधान रवींद्रानुगामी कविसमाज में अन्यतम हैं परंतु अपने मन के निभृत निकुंज में काव्य-सरस्वती के स्तवगान की रचना में इनका स्वातंत्र्य सुचिह्नित है। स्वदेशी आंदोलन से प्रभावित इनके प्रथम लघु काव्य-ग्रंथ का नाम है—'बंगमंगल' (1901)। इसके

उपरांत इनके 'प्रसादी' (1904), 'झरा फुल' (1911), 'शांतिजल' (1913), 'धानदूबा' (1921), 'शतनरी' (सकलन ग्रथ 1930), 'रवींद्र आरति' (1937), 'गीतायन' (1940), 'गीतारजन' (1951), एव 'नयी' (1954) काव्य ग्रथ प्रकाशित हुए थे।

पुण्यतीर्थ रूपमय भारतवर्ष की आत्मा के अनुसधान मे कवि कल्पनाशील बन जाता है। प्रकृति को इन्होंने जीवन की धूलि-मलिनता के राज्य से अलग ही रखा है। वही इनका कवि-स्वातत्र्य प्रकट है। इनके काव्य पर रवींद्रनाथ के अतिरिक्त देवेंद्रनाथ (दे० ठाकुर), सत्येंद्रनाथ (दे० दत्त), कुमुदरजन (दे० मल्लिक) का प्रभाव परिलक्षित होता है।

बंद्योपाध्याय, चारुचद्र *(बं० ले०)*

जिन उपन्यासकारो ने बँगला उपन्यास को नयी कल्पना तथा भावना से सपन्न और उद्देश्यमूलक बनाने का प्रयास किया, उनमे चारुचद्र बंद्योपाध्याय उल्लेखनीय हैं। 'चोर काँटा', 'यमुना पुलिनेर भिखारिणी', 'दौराना', 'हेर-आदि' उपन्यास नितात मौलिक नही कहे जा सकते। लेखक ने किसी विदेशी रचना-कथा की छाया तो अवश्य ली है परतु उसे बडे कौशल से बगाली परिवेश मे प्रस्तुत किया है। कही-कही अस्वाभाविक कल्पनाएँ की गई हैं। इनके उपन्यास सरस वर्णन शैली तथा भावप्रवणता की दृष्टि से समृद्ध हैं। इन्होंने कहानियाँ भी लिखी है। उनमे चारुचद्र अधिक सफल रहे है।

बंद्योपाध्याय, ताराशकर *(बं० ले०)* [जन्म—1898 ई०, मृत्यु—1971 ई०]

अपने अचल के सस्कारो से पुष्ट ताराशकर का जीवन एव व्यक्तित्व पतनोन्मुखी जमींदारी तथा सामतशाही के विरोध मे यात्रिक सभ्यता के उदय, नयी शिक्षा-दीक्षा, स्वदेशी आदोलन, स्वातत्र्योत्तर उथल-पुथल और इनके परिप्रेक्ष्य मे बदलते ग्रामीण जीवन को समेटे हुए है। इन्होंने कुल 130 से अधिक पुस्तकें लिखी जिनमे 50 उपन्यास, 30 कहानियाँ, 10 नाटक तथा शेष यात्रा-साहित्य, राजनीतिक-साहित्यिक निबध आदि हैं। इनकी मुख्य विधा उपन्यास ही रही हालाँकि साहित्यिक जीवन का सूत्रपात कवि के रूप मे हुआ था। पहला उपन्यास 'चैताली घुरनी' 1931 ई० म प्रकाशित हुआ था। इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं—'पाषाणपुरी', 'कवि', 'धात्री', 'देवता', 'कालिंदी' (दे०), 'गणदेवता' (दे०), (ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित), 'पच ग्राम', 'हाँसुलि', 'बाँकेर उपकथा' (दे०), 'आरोग्य-निकेतन' (दे०), 'सप्तपदी', 'राधा'। इनकी विशेषताएँ हैं—कथ्य और कथन शैली मे अकृत्रिमता, प्रत्येक पात्र का सवेदना-सहानुभूतिपूर्ण चित्राकन तथा अतन प्राचीन आध्यात्मिक मूल्यो की प्रतिष्ठा। इनके साहित्य का धरातल है सक्रातिकालीन समाज जो यात्रिक सभ्यता के आघात से नयी करवट ले रहा है। इनका साहित्य अपनी विशिष्टता के कारण एकरूपता मे बँध गया लगता है।

कई तरह के पुरस्कारो-सम्मानो से विभूषित ताराशकर को बकिम-रवींद्र-शरत् की परपरा मे बँगला का सर्वश्रेष्ठ कलाकार होने का गौरव प्राप्त है।

बंद्योपाध्याय, विभूतिभूषण *(बं०ले०)* [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1950 ई०]

बँगला कथा-साहित्य के क्षेत्र मे विभूतिभूषण बंद्योपाध्याय का आविर्भाव एक अविस्मरणीय घटना है। इस गरीब स्कूल मास्टर ने जब अपनी कतिपय कहानियो को लेकर साहित्य-क्षेत्र मे प्रवेश किया था तो लोग उनकी ओर बरबस आकृष्ट हुए। फिर उनके उपन्यास 'पथेर पाचाली' (दे०) (1923) तथा 'अपराजित' (दे० अपु) (दो खड) (1932) के प्रकाशित होते ही बगाली पाठक को बग-प्रकृति की शात, स्निग्ध सुविस्तात पटभूमिका मे जीवन की अध्यात्म-दृष्टि-सपन्न यथार्थोन्मुख रोमानी अभिव्यक्ति का एक नया स्वाद मिला और एक क्षण म यत्रमुखर मनस्तात्विक द्वद्व मे व्यथित, समस्या-पीडित, व्यक्ति-स्वातत्र्य-भावना से परिपूर्ण जटिल मनुष्य के स्थान पर साधारण, सामान्य मनुष्यो की प्रीति-वेदना ने पाठको के हृदय मे हमेशा के लिए स्थान बना लिया।

'पथेर पाचाली' (दे०) और 'अपराजित' के अतिरिक्त लेखक ने 'दृष्टि प्रदीप' (1935), 'आरण्यक' (दे०) (1938), 'देवयान' (1944), 'इछामती' (दे०) (1939), 'आदर्श हिंदू होटेल' (1940) आदि उपन्यासो की रचना की थी एव 'मेघमल्लार' (1931), 'मौरी फूल' (1932), 'यात्रा बदल' (1934), 'जन्म ओ मृत्यु' (1937), 'किन्नर दल' (1938), 'बेनीगिर', 'फुलबाडी' (1941) आदि कहानी-सकलन प्रकाशित कराए थे। लेखक के उपन्यास जीवन की समाभिव्यक्ति के महाकाव्य

है जहाँ कल्पना है, अध्यात्म तथा यथार्थ है, संयम है, स्तब्धता है। उपन्यासों में प्रकृति तथा मानव ने एक होकर अद्भुत रस-परिवेश की सृष्टि की है। इनकी कहानियों में आडंबरहीन जीवन की गाथा बिना किसी चांचल्य के वर्णित है। प्रतिदिन के नाम-धामहीन विवर्ण जीवन में भी इतना जीवन-रस संचित है, इसका पता किसे था? दैनंदिन, साधारण जीवन के यथार्थ को इन्होंने अध्यात्म एवं अरण्य-प्रकृति के विचित्र रस से संचित कर अपूर्व चरित्रों की सृष्टि की है। कदाचित् इनके उपन्यासों में घटनाओं का घात-प्रतिघात, चारित्रिक द्वंद्व एवं जीवन-निष्ठा का अभाव है परंतु प्रकृति के संदर्भ में इन्होंने जिस मनुष्य-जीवन की एवं उसके सुख-दुःख की तथा चेतन-अचेतन की कहानी अभिव्यक्त की है उससे बँगला उपन्यास को नये दिगंत का परिचय मिला है।

बंद्योपाध्याय, मानिक *(बँ० ले०)* [जन्म—1910 ई०; मृत्यु—1956 ई०]

वैज्ञानिक दृष्टिकोण की सहायता से जीवन का विश्लेषण करने के फलस्वरूप मानिक बंद्योपाध्याय की रचनाओं में बंगाली भावुकता के प्रति स्पष्ट विद्रोह है। इन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में कठिन या कुत्सित सत्य प्रकट किया है। जिस मानव-मन को हम शांत, भद्र तथा निष्पाप समझते हैं उसके अंतर्देश में कितना जटिल विरोध है, कितनी खून से सनी हुई इंद्रिय क्षुधा और अपवित्र कामना की प्रेरणा है—फ्रायडीय मनोविज्ञान की सहायता से इन्होंने व्यक्ति एवं व्यष्टि के दृष्टिकोण की अभिनव एवं स्वकीय व्याख्या की है।

इनके प्रसिद्ध उपन्यासों के नाम हैं : 'दिवारात्रिर काव्य' (1935), 'पुतुलनाचेर इतिकथा' (1936) (दे०), 'पद्मानदीर माझि' (दे०) (1936), 'शहरतली' (1940), 'अहिंसा' (1948)। कहानी-संकलनों में 'अतसी मामी' (1935), 'प्रागैतिहासिक' (1937), 'मिहि ओ मोटा-काहिनी' (1938), 'सरीसृप' (1939) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इनकी कहानियों एवं उपन्यासों में आंचलिकता का विशेष स्थान है। निर्मोह यथार्थ-दृष्टि की सहायता से व्यक्ति के मन और आचरण का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए इन्होंने अद्भुत चरित्रों की सृष्टि की है और कभी-कभी अर्धबर्बर जीवन-चेतना की अभिव्यक्ति की है। देहजीवी मनुष्य के लज्जाहीन निरावृत आत्म-प्रकाश के स्वरूप को साहित्यिक के निरासक्त, किंतु प्राण-स्पंदित, दृष्टिकोण की सहायता से इन्होंने उद्घाटित किया है। मनुष्य को इन्होंने देहपिंड पर प्रतिष्ठित किया है। जो मनुष्य अपनी देह से प्यार करता है, जीवन से प्यार करता है वह कभी निष्क्रिय नहीं होता। कर्म मनुष्य को नया अनुभव देता है तथा मनुष्य एवं समाज के लिए प्रेम का प्रसार करता है। इनके अंतिम जीवन के उपन्यासों में यह धारणा ही स्पष्टतर हुई है। कहानियों में लेखक की प्रतिभा का श्रेष्ठ परिचय मिलता है।

बंद्योपाध्याय, रंगलाल *(बँ० ले०)* [जन्म—1827 ई०; मृत्यु—1887 ई०]

इनका जन्म वर्द्धमान जिले में बाकुलिया ग्राम में मातामह के यहाँ हुआ था। इनके पिता का नाम रामनारायण बंद्योपाध्याय था जो रामेश्वरपुर ग्राम के निवासी थे। इनकी शिक्षा हुगली कॉलेज में हुई। ये सरकारी नौकरी में रहे।

इनके रचे ग्रंथ हैं—'ऋतु संहार', 'बँगला कविता-विषयक प्रबंध', 'भेक-मूषिकेर युद्ध', 'पद्मिनी उपाख्यान' (दे०), 'कर्मदेवी', 'शुर सुंदरी', 'कवि कंकण चंडी', 'कांची कावेरी'। इसके अतिरिक्त 'संवाद-सागर' तथा 'संवाद-प्रभाकर' नामक पत्रिकाओं में भी इनकी असंख्य रचनाएँ हैं।

ये अनेक भाषाओं के पंडित थे। अतः बँगला भाषा एवं साहित्य में जो नवोन्मेष परवर्ती काल में देखा जाता है, निस्संदेह उसका श्रेय इन्हीं को है। यथार्थ तो यह है कि जो राष्ट्रीयता-युक्त ओजस्वी कविता परवर्ती काल में हेमचंद्र (दे० बंद्योपाध्याय) एवं नवीनचंद्र (दे० सेन) द्वारा प्रवर्तित हुई, उसके प्रवर्तक वस्तुतः ये ही थे।

ऐतिहासिक कहानियों को लेकर महाकाव्य की रचना करने वाले कवियों में ये अग्रगण्य हैं। इन्होंने विभिन्न भाषाओं के साहित्य से सद्भाव कुसुम लेकर अपने प्रदेश की मिट्टी में उनको उगाया है—बंग प्रदेश का रूप दिया है।

बंद्योपाध्याय, शरदिंदु *(बँ० ले०)* [जन्म—1899 ई०; मृत्यु—1970 ई०]

रोमानी ऐतिहासिक उपन्यास एवं कहानियों की रचना कर शरदिंदु बंद्योपाध्याय ने अभूतपूर्व सफलता

प्राप्त की है। रोमास, रहस्य, भावावेग के आश्रय से इन्होने अतीत युग की जीवनयात्रा के पुनर्गठन म ऐतिहासिक कल्पना का सार्थक प्रयोग किया है। इनके प्रसिद्ध उपन्यासो मे 'झिदेर बदी', 'बिपेर धोआ', 'कालेर मदिर', 'तुमि सध्यार मेघ' (1958), 'गौढमल्लार' आदि उल्लेखनीय है। इन उपन्यासो का कथा-भाग सुसबद्ध, चित्ताकर्षक एव रचना-रीति मे वाक्य-प्रयोग तथा भावग्रथन सुदर है। ये ऐतिहासिक युग की रीति नीति, पोशाक-परिच्छद, विभिन्न सामाजिक एव धार्मिक प्रथाओ तथा युद्ध विग्रह का सपूर्ण वर्णन कथा भाग के साथ इस प्रकार से अगागी-रूप मे सग्रथित कर प्रस्तुत करते हैं कि कहानी म इनके स्वतत्र अस्तित्व का पता ही नही चलता। इनका एक और वैशिष्ट्य यह है कि ये आप्त वाक्यो का प्रयोग कर युग प्रधान लेखक बनना नहीं चाहते। प्रकृत शिल्पी की तरह शिल्पी सुलभ परिमित बोध इनकी सबसे बडी विशेषता है।

कहानी मे यह परिमित बोध बहुत ही स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है। लेखक ने कहानीकार के रूप मे ही साहित्य-जगत मे प्रवेश किया था। 'जातिस्मर' (1933), 'चुयाचदन' (1942), 'काँचामिठे' (1942), 'कालकूट' (1944), 'गोपनकथा' (1945), 'दतरुचि' (1946), 'कुमेराग' (1946), 'कानु कहे राइ' (1954), 'मायाकुरगी' (1958) आदि कहानी-सग्रह बहुत ही प्रसिद्ध हैं। इन कहानी-सग्रहो मे सुदर जीवन की रोमानी स्वप्न-यात्रा की यथार्थ ढग से अभिव्यक्ति हुई है। आज का पाठक इन कहानियो को पढते हुए वर्तमान से अतीत भूमि पर अपने को प्रतिष्ठित कर लेता है। इन्होंने साधारण जीवन के नाना विषयो को लेकर भी कहानियो की रचना की है एव रोमाटिक शिल्पी की रहस्य-दृष्टि के आश्रय से जासूसी कहानियो का रहस्य-उन्मोचन किया है। जासूसी कहानी एव उपन्यासो को साहित्यिक स्तर प्रदान करने का श्रेय शरदिंदु बाबू को है। इनका 'व्योम-केश' (दे०) चरित्र बँगला साहित्य का अविस्मरणीय चरित्र है। रोमानी एव रहस्य रोमाच के आश्रय से सहज सरल सुखपाठ्य कतिपय नाटको की रचना भी इन्होंने की है जिनमे 'बधु' (1937), 'डिटेक्टिव' (1937), 'लालपाजा' (1938), 'कालिदास' विशेष उल्लेखनीय हैं।

बद्योपाध्याय, हेमचद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1838 ई०; मृत्यु—1903 ई०]

हेमचद्र का जन्म हुगली जिलातर्गत गुलिता ग्राम मे अपने मातामह के यहाँ हुआ था। इनके पिता का नाम कैलाशचद्र बद्योपाध्याय एव माता का आनदमयी था। इनकी शिक्षा हिंदू कालिज व प्रेसीडेंसी कालिज मे हुई थी। बी० ए० और बी० एल० करने के उपरात कुछ वर्षों तक ये मुसिफ रहे, बाद मे स्वतत्र रूप से वकालत करने लगे। इनके नेत्रो की ज्योति चली गई थी, काशी मे 1897 ई० मे आपरेशन कराया गया परतु व्यर्थ रहा।

इन्होने अनेक ग्रथो का प्रणयन किया, सामयिक पत्रो मे रचनाएँ प्रकाशित की और अनेक ग्रथो के अनुवाद भी किए। कवि की प्रमुख कृतियाँ हैं 'चिता तरगिणी', 'वीरबाहुकाव्य', 'कवितावली'—2 भाग (काव्य), 'आशा-कानन', 'छायामयी', 'वृत्रसहार' (दे०)—2 भाग (महा-काव्य), 'दशमहाविद्या', 'चित्त विकास' (काशी मे अधे होने पर कविता-सग्रह)।

हेमचद्र बद्योपाध्याय ने जिस आवेगमयी भाषा मे देश-प्रेम की भावना व्यक्त की है वैसा आवेग इनसे पूर्ववर्ती कवियो मे नही देखा जाता। 'जीवन-मरीचिका', 'भारत विलाप', 'कालचक्र', 'स्वर्गारोहण' आदि कविताओ मे इनकी प्रगीत-शक्ति का ऐश्वर्य देखा जा सकता है। 'वृत्रसहार' की अत्यत बोधगम्य भाषा एव सरल गठन-कौशल के कारण कुछ आलोचक उसे 'मेघनाद वध' (दे०) से श्रेष्ठ मानते हैं।

हेमचद्र बद्योपाध्याय आधुनिक युग के बँगला कवियो मे अन्यतम हैं। बकिमचद्र (दे०) ने इनके सबध म लिखा है, 'हेमचद्र की भेरी और सिंगा की आवाज से बगाली पागल थे।' हेमचद्र उन्नीसवी शती के उत्तरार्ध के शुद्ध बगाली कवि हैं। बगालियो के समस्त गुण-दोष उनके काव्य म विद्यमान हैं।

बधनस्थानाय अनिरुद्धन् *(मल० कृ०)*

'बधनस्थानाय अनिरुद्धन्' वळ्ळत्तोळ् (दे०) नारायण मेनन का पुराण-कथाश्रित खडकाव्य है। रहस्य प्रेम के अपराध मे कपट से कैद किए गए अनि-रुद्ध की प्रेमिका बाणपुत्री उषा के प्रेम की पवित्रता से प्रभावित होकर मत्री ने कारागार मे प्रेमियो के वार्तालाप की सुविधा करा दी। उषा ने अपना गहरा दुःख अभिव्यक्त करते हुए अनिरुद्ध को जेल से छुडाने का वचन दिया। परतु साहसी अनिरुद्ध न उसे समझाया कि शीघ्र ही यदुजन आकर उसे छुडाएँगे। इतनी ही बातो के साथ उनका सवाद समाप्त हो जाता है।

इस खंडकाव्य की कथा दो प्रसंगों या दृश्यों में विभक्त है—मंत्री-उषा-संवाद और उषा-अनिरुद्ध-संवाद। उषा का अपरूप सौंदर्य तथा अनिरुद्ध का वीररूप कल्पनामय शब्दों में चित्रित हुआ है। उषा की वाणी में पुत्री के विनय के साथ राजकुमारी की गंभीरता भी पाई जाती है। अनिरुद्ध का चरित्र भी उसकी साहसी और उदात्त प्रकृति से स्पष्ट है।

संस्कृत-शब्दों की प्रचुरता और संस्कृत छंद के बावजूद प्रवाहमयी भाषा एवं स्निग्ध भावधारा के कारण यह रचना हृदयहारी बन सकी है। द्वितीयाक्षर-प्रास का उचित निर्वाह इसकी सफलता का दूसरा कारण है। वळ्ळत्तोळ् के खंडकाव्यों में सबसे लोकप्रिय यही है। अनेक साहित्य-छात्र इसे कंठस्थ करते हैं। इसकी लोकप्रियता का यह प्रमाण है कि 1962 ई० तक इसके 27 संस्करण निकले और 76,000 प्रतियाँ छपीं।

बंधुकर, प्राण *(उ० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

श्री प्राण बंधुकर स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रमुख कहानीकार, नाटककार एवं एकांकीकार हैं। 'निशी-पद्म' इनका एकांकी-संग्रह है। जिस पर इन्हें सर्व-भारतीय प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। विषय-वस्तु का निर्वाचन ये जीवन के व्यापक क्षेत्र से करते हैं। इनके एकांकियों एवं कहानियों पर मनोविश्लेषण एवं फ़ायड का प्रभाव है। 'पाषाणी कन्या' (दे०) इनकी औपन्यासिक शैली पर विरचित भ्रमण-संबंधी प्रसिद्ध रचना है। 'श्वेत-पद्मा' (दे०) मूल रूप में लिखी गई कहानी से रूपांतरित इनका एकांकी नाटक है जो अभिनय की दृष्टि से अत्यंत सफल है।

बंबीहाबोल *(पं० कृ०)* [रचना-काल—1925 ई०]

इसके रचयिता और मध्यकालीन पंजाबी कवियों के व्यक्तित्व और कृतित्व के उद्धारक बाबा बुधसिंह (दे०) ने इस रचना में 17 कवियों का साहित्यिक परिचय दिया है। इससे पूर्व इनकी दो कृतियाँ 'हंसचोग' और 'काइलकू' प्रकाशित हो चुकी थीं। पहली में संत और सूफ़ी-कवियों के काव्य का विश्लेषण था और दूसरी में साहित्य-संबंधी विस्तृत भूमिका के अतिरिक्त प्रेमाख्यानक कवियों का विवेचन। 'बंबीहाबोल' इन दोनों से अधिक पुष्ट कृति है। इसका वर्ण्य 'इश्क और विरह' है। मुगलकाल के दमोदर (दे०), पीलू (दे०) और नजाबत (दे०) की कृतियों के विस्तृत परिचय के अतिरिक्त इसमें सिक्खकाल के प्रेमाख्यानक और सूफ़ी कवियों के काव्य का विवेचन है। अंत में भाई वीरसिंह (दे०) का एक वीर रसपूर्ण बारहमासा और किन्हीं भाई लच्छीराम के गुरुभक्ति-पद भी संकलित हैं। लेखक ने व्यवस्थित काव्यशास्त्रीय समालोचना की अपेक्षा प्रभावात्मक आलोचना-पद्धति का आश्रय लिया है। उसकी भाषा सरल और शैली विश्लेषणात्मक है। पंजाबी को केवल धर्म अथवा बोलचाल की भाषा मानने वाले पंजाब के पठित-समाज को पंजाबी साहित्य के सौंदर्य से अवगत कराने के लिए लिखी गई यह रचना अपने उद्देश्य में सफल रही है।

बकावली *(उर्दू० पा०)*

'बकावली' दयाशंकर 'नसीम' (दे०) की मसनवी 'गुलजार-ए-नसीम' (दे०) की नायिका है। यह परियों की राजकुमारी है। इसमें एक अद्भुत आत्मविश्वास तथा सामर्थ्य निहित है। यह ताज-उल-मलूक के आगे मध्यकालीन पत्नियों की तरह भीगी बिल्ली-सी बनकर नहीं रहती बल्कि संतुलित व्यवहार एवं आचरण करती है; साथ ही यह प्रेम, त्याग, बलिदान, कष्ट-सहन की क्षमता, अधिकारों के प्रति सजगता आदि गुणों से युक्त है। रुखसत के समय ताज-उल-मलूक की वकालत करता बकावली का कुछ अमर्यादित-सा कार्य लगता है। यह ताज-उल-मलूक पर मुग्ध है, उसे जी-जान से चाहती है और अपने प्रेम को प्राणपण से निबाहती है परंतु वह नयी शादी रचा लेता है और इससे बेवफ़ाई करता है। इस आघात से बकावली का हृदय विदीर्ण हो जाता है।

बक्षी, चंद्रकांत *(गु० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

चंद्रकांत बक्षी का जन्म 20 अगस्त 1932 ई० में पालनपुर नामक स्थान पर हुआ था। सेंट जेवियर्स तथा यूनिवर्सिटी लॉ कॉलेज, कलकत्ता से इन्होंने क्रमशः एम० ए०, एल-एल० बी० की डिग्रियाँ प्राप्त कीं। कलकत्ता में कपड़े का स्टोर—'अलका स्टोर्स' चलाते हैं। संप्रति बंबई में हैं। बक्षी जी ने नियमित रूप से लिखना 1954-55 ई० से आरंभ किया था। इनकी कुछ कहानियाँ हिंदी तथा अँग्रेज़ी में ही लिखी-छपी हैं। गुजराती में प्रकाशित इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं: उपन्यास: 'पडघा

डूबी गया', 'रोमा', 'अेकलताना किनारा', 'आकार', 'अेक अने अेक' तथा 'पेरेलिसिस' (दे०), कहानियाँ 'प्यार', 'एक साजनी मुलाकात', 'मीरा'। इनके अलावा इन्होने बहुत-सी अमरीकी कहानियो के अनुवाद किए है और कुछ लेख भी लिखे हैं। अस्तित्ववादी विचारधारा को घटना और पात्रो की क्रियाशीलता मे साकार करने की अद्भुत क्षमता चद्रकात बक्षी मे है। सामान्यत अस्तित्ववादी कृतियो मे घटनाएँ कम, पात्रो के स्थिर व वैचारिक चित्र अधिक उभर कर आते हैं परतु इनकी रचनाओ की सबसे बडी विशेपता यही है कि इनकी रच नाओ मे घटना अलोप नही हो जाती। अतल निराशा और वेदना के चित्र और सवेदन पात्रो की क्रियाओ मे उतर आए हैं। इनके पात्रो की महत्त्वाकाक्षा रेसकोर्स के घोडे की भाँति थोडे से ही वर्षों की जिंदगी जी लेने की है। इस दृष्टि से 'पेरेलिसिस' की मारिशा और 'आकार' के यश न शाह को लिया जा सकता है। दर्द हमे अपने अस्तित्व से जोड देता है और हम जिंदगी के साथ चिपके रहने का उपक्रम करते हैं—इस बात की प्रतीति भी 'पेरेलिसिस' मे ही होती है। 'एक अने एक' मे जीवन के निर्भ्रांत बोध से उत्पन्न मुमूर्षा को सुख की अतिम सीमा मान लेने का आग्रह दिखाई देता है। अनेक स्थानो पर परिस्थितियो मे फँसे हुए मनुष्य की करुण असहायता के चित्र भी उभर आए है जो पाठक मे गहरा भाव बोध उत्पन्न करते हैं।

बक्षी जी की रचनाओ को पढने से पता चलता है कि उनमे धर्म और नीति की मर्यादा अस्वीकृत है, यौन सबधी अथवा विकारो के चित्र कही-कही कथित अश्लीलता को छू गए हैं। लेखक मे स्थूल और सूक्ष्म दोनो को ही रूप प्रदान कर सकने की सहज क्षमता है।

बक्षी, रामप्रसाद *(गु० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

गुजराती के मर्मज्ञ समीक्षक रामप्रसाद बक्षी का जन्म जूनागढ मे हुआ था। इनके पिता का नाम प्रेमशकर बक्षी तथा माता का नाम मेनाबेन है। मामा हिम्मतलाल अजारिया, गुरु आनदशकर बापुभाई ध्रुव (दे०), सुमैधी श्री नरसिंह राव दिवेटिया (दे० दिवेटिया) आदि विद्वानो की प्रेरणा, प्रोत्साहन व सपर्क ने इनके विकास मे महत्व-पूर्ण योगदान किया है।

अध्यापक बक्षी जी ने अब तक—'काव्य-सरिता' (सकलन व अनुवाद), 'गुजराती भाषा अने साहित्य', भा० 1 और 2 (अनुवाद), 'सुखमनी' (अनुवाद), 'नाट्यरस' (मौलिक), 'वाड्मय विमर्श' (मौलिक), 'करुण रस' (मौलिक), '1953 के गुजराती साहित्य की वार्षिक समीक्षा' (मौलिक) ग्रथ रचे हैं। इनके द्वारा सपादित ग्रथ भी 6-7 है। 'गुजराती भाषा अने साहित्य' (भाग 1-2) नरसिंह राव दिवेटिया-रचित अँग्रेजी ग्रथो का गुजराती अनुवाद है। ('नाट्यरस', 'करुण रस', 'वाड्मय विमर्श' उनकी प्रमुख समीक्षात्मक कृतियाँ हैं जिन्होने लेखक को गुजराती-समीक्षा जगत् मे सुप्रतिष्ठित किया। भारतीय काव्यशास्त्र एव नाट्यशास्त्र-सबधी इनका अध्ययन बहुत गहन व प्रामाणिक है। इन विषयो मे इनकी गहरी पैठ व पकड है। ऐसे गहन व जटिल विषयो को ये सरल शैली मे समझा सके हैं।

गुजराती के समीक्षको मे भारतीय काव्यशास्त्र के एक अधिकारी विद्वान्, गभीर अध्येता एव स्वच्छ-दृष्टि-सपन्न आलोचक के रूप मे बक्षी जी की प्रतिष्ठा सदेहा-तीत है।

बख्तावरसिंह *(हि० ले०)* [जन्म—1813 ई०, मृत्यु—1891 ई०]

राजस्थान के 'बसी' ग्राम मे सुखराम के घर इनका जन्म हुआ था। इन्होंने उदयपुर के महाराणाओ के आश्रय मे रहकर सम्मान प्राप्त किया था। इनके द्वारा रचित ग्रथो की सख्या 11 है, जिनमे 'सज्जन यश प्रकाश', 'अन्योक्ति-प्रकाश' एव 'केहर-प्रकाश' विशेष महत्वपूर्ण हैं। सूर्यमल्ल (दे०) के पश्चात् आधुनिक राजस्थानी लेखको मे बख्तावरसिंह का स्थान सबमे अधिक महत्वपूर्ण है। इन्होंने जितना उत्कृष्ट काव्य लिखा है, उतना ही प्रभावो-त्पादक गद्य भी। भाषा मे विषयानुकूल प्रवाह तथा प्रभाव उत्पन्न करना इनकी प्रतिभा की सबसे बडी विशेषता है।

बख्शी, पदुमलाल पुन्नालाल *(हि० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

हिंदी साहित्य के इतिहास मे बख्शी जी की प्रतिष्ठा निबधकार तथा आलोचक के रूप मे ही है—यद्यपि अन्य लेखको के समान इन्होंने भी अपने साहित्यिक जीवन का प्रारभ काव्य-सृजन से किया था। 'पचपात्र', 'पद्मवन', 'कुछ', 'और कुछ', 'मेरे प्रिय निबध' इनके

प्रतिनिधि निबंध-संग्रह हैं तथा 'हिंदी-साहित्य-विमर्श', विश्व-साहित्य' और 'हिंदी-कहानी-साहित्य' आलोचना-ग्रंथ। बख्शी जी के निबंधों की सर्वप्रमुख विशेषता है मौलिक विचारों को गंभीर व्यंग्य, विनोद का पुट देते हुए कहानी की-सी मनोरंजक शैली में रूपायित कर देना। इसीलिए इनकी गणना हिंदी के प्रमुख शैलीकारों के अंतर्गत होती है।

बगड़ावत *(हिं० पारि०)*

यह शब्द वीरकथात्मक राजस्थानी लोक-गाथा के एक भेद के लिए प्रयुक्त होता है। बगड़ावत 'देवड़ा-चौहान' थे। ये संख्या में 24 थे, जो परस्पर युद्ध कर मृत्यु को प्राप्त हुए थे। इनका समय ईसा की दशवीं शती माना जाता है। इन वीरों की वीरता लोक-गाथा का विषय बनी और समस्त राजस्थान में उसका प्रचार हुआ। भोपा लोग बगड़ावत लोक-गाथा तीन-चार घंटे प्रतिदिन गाकर लगभग एक मास में पूर्ण करते हैं। यह लोक-गाथा राजस्थान की वीर-संस्कृति की प्रतिनिधि रचना है।

'बच्चन', हरिवंश राय *(हिं० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

इनका जन्म इलाहाबाद में हुआ। जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव झेलते हुए इन्होंने वहीं से अंग्रेजी में एम०ए० किया। कैंब्रिज विश्वविद्यालय ने यीट्स पर शोध-कार्य के लिए इन्हें पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की। कई वर्षों तक अध्यापन करने के उपरांत ये राजकीय सेवा में प्रविष्ट हुए और 1952 ई० में राज्यसभा के सदस्य मनोनीत हुए।

'मधुशाला' के प्रकाशन ने इन्हें हिंदी का सर्वाधिक लोकप्रिय कवि बना दिया। 'निशा निमंत्रण' (दे०) और 'एकांत संगीत' ने इनके साहित्यिक महत्व की प्रतिष्ठा की। 'दो चट्टानें' जैसी परवर्ती रचनाओं में ये युग-यथार्थ के अधिक निकट आ गये हैं।

'बच्चन' जी की लोकप्रियता का रहस्य ऋजु-प्रत्यक्ष अनुभूतियों की सावेग निश्छल अभिव्यक्ति में है। इनके काव्य को देखकर लगता है कि ये आरंभ से लेकर आज तक निर्व्याज अभिव्यक्ति के लिए कृतसंकल्प है। यही कारण है कि परवर्ती काव्य में इन्होंने अनुभूत यथार्थ की जटिलता का दबाव झेलकर भी शैली-शिल्प की सरलता बनाए रखी है। आवश्यकतानुसार व्यंग्यात्मक भाषा, प्रतीक-विधान या गीत-शैली के अनेक नये प्रयोग इन्होंने भी किए हैं किंतु संप्रेषणीयता को बाधित नहीं होने दिया है। इस प्रकार मध्यमवर्गीय सुख-दुःख की तीव्र अनुभूतियों को सशक्त वाणी देते रहने के कारण छायावादोत्तर कवियों में इनका ऊँचा स्थान है।

बच्छादास *(उ० ले०)* [समय—चौदहवीं-पंद्रहवीं शती ई०]

इनकी एकमात्र कृति 'कलसा चउतिशा' (दे०) है जो अब तक प्राप्त अनुलिखित उड़िया साहित्य में सर्वप्रथम रचना है। यह उड़ीसा का अत्यंत समादृत शैवकाव्य है, जो वस्तुतः मानवधर्मी अधिक है। यह रचना इतनी लोकप्रिय हुई कि परवर्ती युग में इसे एक राग (कलसा-राग) के रूप में स्वीकार कर लिया गया। सारलादास ने अपने 'महाभारत' में इसका उल्लेख किया है। भाषा की प्राचीनता की दृष्टि से भी यह 'सारला-महाभारत' (दे०) के पूर्व की रचना है। इस चउतिशा (दे०) की विषयवस्तु शिव-पार्वती-परिणय है, जिसमें बच्छादास ने उड़ीसा की संस्कृति, सामाजिक रीति-नीति एवं परंपरा को मूर्त किया है।

बछराज *(गु० ले०)* [समय—1557 ई० के आसपास]

ये जंबुसर के निवासी थे। इनके पिता का नाम विनायक था। इनकी एकमात्र रचना 'रसमंजरीनी वार्ता' बहुत प्रसिद्ध है। 605 पंक्तियों का यह प्रबंध-काव्य है। इस रचना की कथा परंपरा-प्राप्त 'प्रेमावती' की कथा के आधार पर निर्मित है। अपनी ओर से कवि ने कुछ परिवर्तन भी किया है।

इसमें शृंगार रस की प्रधानता है। दोहा (दे०) चौपाई (दे०) एवं छप्पय (दे०) छंदों का प्रयोग किया गया है।

बट महापुरुष *(उ० कृ०)*

'बट महापुरुष' श्री वामाचरण मित्र (दे०) का गल्प-संग्रह है। इन कहानियों की विषय-वस्तु जितनी विविध है, शैलियाँ भी तदरूप अनेक हैं। 'वैज्ञानिकर बिबाह' में यदि वैज्ञानिक की आंतरिक पीड़ा एवं करुण मृत्यु चित्रित है तो 'स्तुति रत्नाकर' में एक बड़े आदमी की कथा है जो अपनी प्रभुता एवं वैभव में बाल्यबंधु की

अवहेलना करता है। 'चलचित्र' की कथावस्तु अत्यत सामान्य है—बाह्य रूप सौंदर्य मे भटके हुए मूपेंद्र बाबू का कुरूप पत्नी के हृदय-सौंदर्य को पहचानकर वापस आ जाना फेड-इन, फ्लैशबैक, वाइप, क्लोज़अप, आदि तकनीको का इसमे प्रयोग हुआ है। इसमे प्राचीन ग्रास्थावादी जीवन मूल्य तथा आधुनिक मानव के वस्तुवादी जीवन-मूल्यो का तुलनात्मक विवेचन हुआ है।

बडजेना व्रजनाथ *(उ० ले०)* [समय—अठारहवी शती]

व्रजनाथ बडजेना का उडिया-साहित्य मे वही स्थान है जो हिंदी साहित्य मे भूषण (दे०) का है। रीतिकाल मे भूषण के समान, उडिया-साहित्य मे इन्होने ही वीर रस पूर्ण काव्य 'समर तरग' (दे०) की रचना की है और 'भूषण' के समान हो इस कार्य मे वे अत्यत सफल भी हुए हैं। 'समर-तरग' मे ढेंकानाल के राजा त्रिलोचन महेद्र बहादुर व मरहठो के बीच की लडाई का सजीव चित्रण हुआ है। इसमे उडिया के साथ अनेक खरोष्ठी शब्दो का प्रयोग भी हुआ है। मरहठो की युद्धमत्रणा का वर्णन हिंदी मे है।

बडजेना छह प्रादेशिक भाषाओ के पडित थे। 'गुडिचा-विजय' इनकी हिंदी रचना है। 'चतुर-विनोद' गद्य-पुस्तक है, जिसमे अत्यत परिमार्जित गद्य का प्रयोग हुआ है। अनके अन्य दोनो काव्य 'श्यामा रासोतरव' 'श' आद्य नियमो से तथा 'अबिका विलास' 'भ्र' आद्य नियम स लिखे गये हैं।

बडजेना का समय अठारहवी शती का उत्तरार्द्ध है। उस समय हिंदी मे रचना करना (जबकि राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की परिकल्पना भी अनहोनी-सी बात थी) जहाँ कवि की बहुत बडी सिद्धि है वही कवि की सुदर प्रसारी भविष्य दृष्टि की भी परिचायिका है।

इन्होने साहित्य मे सर्वप्रथम युगबोध का परिचय देते हुए सामयिक घटना पर साहित्य-निर्माण किया है। उडिया-साहित्य मे बडजेना का स्थान सदा ही गौरव-मडित रहेगा।

बडाल, अक्षयकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1860 ई०; मृत्यु—1912 ई०]

इनका जन्म कलकत्ता के चोरबागान मुहल्ले म हुआ था। इनके पिता का नाम कालीचरण बडाल था। ये बिहारीलाल के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'प्रदीप', 'कनकाजलि', 'भूल', 'शख' तथा 'एषा'।

रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर, रवींद्रनाथ) के समसामयिक होते हुए भी इनका बँगला काव्य मे विशिष्ट स्थान है। इनके काव्य-ग्रथो—विशेषतया 'प्रदीप' तथा 'कनकाजलि' मे अतिमधुर भावावेश-विह्वल गीत मूर्च्छना मिलती है। यह स्वर इन्होने बिहारीलाल की निकटता से प्राप्त किया है और उसकी अपनी प्रेम-कल्पना से झकृत किया है।

इनके काव्य के दो प्रधान लक्ष्य है, (अ) भाषा अत्यधिक शब्द सक्षेप अथवा मितभाषिता और तज्जन्य भाव-गाभीर्य, तथा (आ) आधुनिक गीत-काव्य का प्रधान लक्षण आत्मभाव प्रधान कल्पना (subjectivity) इनकी 'एषा' नामक कृति ने अन्य कृतियो की अपेक्षा अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है।

बद्देना *(ते० ले०)* [समय—अनुमानित बारहवी शती ई०]

ये जन्मत क्षत्रिय राजा थे, इनकी गणना तेलुगु के विख्यात राजकवियो मे की जाती है।

इनकी कृतियाँ हैं 'सुमतिशतकमु', 'नीतिसार मुक्तावली'। बद्देना के साहित्यिक व्यक्तित्व की महत्ता तेलुगु नीतिकाव्य के प्रथम प्रवर्तक होने मे है। सुमतिशतकमु' का पठन-पाठन आज भी तेलुगु के बालक-बालिकाओं मे प्रचलित है और उसके पद्य आध्रजनता की जिह्वा पर नाचते रहते हैं। इनके छद रीतिग्रथो मे लक्ष्य रूप मे प्रस्तुत किये गए हैं जो इनकी काव्य-गरिमा का द्योतक है।

बद्देन्ना सेनानी *(ते० उ०)*

'बद्देन्ना सेनानी' श्री विश्वनाथ सत्यनारायण का प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यास है। बद्देन्ना अछूतों क परिवार मे जन्म लेकर भी अपनी विलक्षण प्रतिभा के कारण चोल राजाओं की सेना मे नायक-पद पा लेता है। स्वदेश की स्वतत्रता की रक्षा मे अनुपम शौर्य एव कुशलता प्रदर्शन करके जनता का सम्मान अर्जित करता है। फिर भी वह अपनी इन बहुमूल्य सवाओ के बदले कुछ पाना नहीं चाहता। कुछ समय पश्चात् वह अपने से अधिक आयु वाली बादुम्मा नामक स्त्री स प्रेम करन लगता है। जाता

इस बात से क्षुब्ध हो जाती है और उसका विरोध करती है। आत्मिक प्रेम और लोक-धर्म के बीच जो संघर्ष छिड़ता है, उसमें दोनों प्रेमी—बद्देन्ना और बादुम्मा परितप्त हो जाते हैं। इस उपन्यास में राष्ट्रीय चेतना का स्वर भी मुखरित हुआ है।

बद्र-ए-मुनीर *(उर्दू॰ पा॰)*

शाहज़ादी 'बद्र-ए-मुनीर' मीर हसन (दे॰) की मसनवी 'सिह्र-उल-बयान' की अल्हड़ नायिका है। यह रूप और लावण्यमयी है और संगीत-कला इसकी सहज रुचि है। इसका अंग-अंग सुगठित है। नाज़ और बांकपन की यह प्रतिमा है। इसके तन पर आभूषणों की फबन निराली होती है। शाहज़ादा 'बेनज़ीर' (दे॰) से मिलते ही यह उसकी हो जाती है। प्रथम भेंट में ही अचेत हो जाना और फिर विरह में बार-बार मूर्च्छित-सी रहना, दूसरी भेंट के पश्चात् हर रात प्रिय-संयोग का सुखभोग करना आदि बातें इसे ऐसी नारी का रूप दे देती हैं जिसकी विलास-लालसा बड़ी प्रखर है। 'बेनज़ीर' के साथ प्रथम भेंट में ही यह ऐसी अमर्यादित बातें करती है कि अपने युग के नारी-समाज से कहीं आगे निकल जाती है। इसकी चेष्टाएँ अविवाहित कन्याओं की-सी गंभीरता से रहित हैं। 'बेनज़ीर' की तरह इसके वचन और आचरण में राजकुमारी जैसी गंभीर चेष्टाओं की कमी अनुभव होती है।

बधिरविलापम् *(मल॰ कृ॰)*

'बधिरविलापम्' महाकवि वळ्ळत्तोळ् (दे॰) का सा खंडकाव्य है। इसमें कवि जगदंबा से दीन निवेदन छोटा करता है—'देवी, बधिरता के कारण मैं क्या-क्या कष्ट झेल रहा हूँ। बधिर से मित्र-बंधु कुशल समाचार पूछ नहीं सकते। पक्षियों का कलरव, भक्तों का भजन और अन्य कितने ही प्रकार का मधुर नाद सुनने के भाग्य से वह वंचित रहता है। आप दयामयी हैं; मेरी इस बधिरता को दूर कर दें!'

इस निवेदन में केवल कल्पना या औपचारिकता नहीं है। यह कवि का आत्मानुभव-प्रेरित निवेदन है। इस दुःखानुभूति के कारण काव्य की व्यथाभिव्यक्ति अत्यंत प्रभविष्णु बन पड़ी है। इसीलिए इस खंडकाव्य की विशेष प्रसिद्धि हुई।

बधू निरुपमा *(उ॰ कृ॰)*

यह श्री विभूतिभूषण पटनायक (दे॰) का उपन्यास है। साधारणतः युवा-वर्ग की भावना और मनःस्थितियों को ध्यान में रखकर विभूति पटनायक उपन्यासों की रचना करते हैं, किंतु इसमें उन्होंने एक सामाजिक समस्या का चित्रण किया है। इसमें नायिका निरुपमा विजातीय विवाह कर लेती है, फलतः उसे रूढ़िग्रस्त, परंपरावादी हिंदू परिवार में किस प्रकार लांछना, प्रताड़ना एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उसका अंकन ही इसका प्रतिपाद्य है।

बनफुल *(अ॰ कृ॰)* [रचना-काल—1952 ई॰]

यतींद्रनाथ दुवरा (दे॰) के इस संग्रह की कविताओं का प्रधान स्वर करुणा है। इसमें निराश प्रेम की व्यथा अवश्य है किंतु कवि भविष्य के प्रति आस्थावान् है। कवि के आत्मकेंद्रित हो जाने के कारण कविताओं में सामाजिक समस्या का संकेत नहीं मिलता है। सुकुमार भाव, मधुर अभिव्यक्ति एवं सफल छंद-प्रयोग के कारण इन कविताओं का महत्व है। श्री हेम बरुवा (दे॰) के शब्दों में श्री दुवरा विषाद के चित्रण, शैली एवं संगीत में कीट्स हैं। इस काव्य को साहित्य अकादेमी का राष्ट्रीय पुरस्कार मिला था।

बनफुल *(बँ॰ले॰)* [जन्म—1899 ई॰; मृत्यु—1979 ई॰]

बलाइचंद्र मुखोपाध्याय का साहित्यिक छद्मनाम 'बनफुल' है और वे इसी छद्मनाम से बँगला साहित्य-क्षेत्र में विख्यात हैं। व्यवसाय से डाक्टर होते हुए भी इस लेखक ने उपन्यास-रचना में परिकल्पना की मौलिकता एवं आख्यान वस्तु के समावेश में विचित्र उद्भावना-शक्ति का परिचय दिया है। तीक्ष्ण मननशीलता की सहायता से एवं नाना प्रकार के परीक्षण-निरीक्षण के बीच से उन्होंने मानव-चरित्र का विस्मयकर चित्रण प्रस्तुत किया है।

बनफुल ने बहुत-से उपन्यास लिखे हैं परंतु उनमें एकरसता का दोष दिखाई नहीं पड़ता। उपन्यास की टेकनीक में इन्होंने नाना प्रकार की नूतनता का प्रवर्तन कर प्रशंसनीय कार्य किया है। इनके पहले स्तर के उपन्यासों 'तृणखंड' (1935), 'किछुक्षण' (1937), 'से ओ आमि' (1943), मूलरूप से डाक्टरी जीवन के अनुभवों की

अभिव्यक्ति हुई है। दूसरे स्तर मे प्रकाशित 'द्वैरथ' (1937), 'मृगया' (1940), 'निर्मोक' (1942) मे अभिव्यंजना कला की दृष्टि से लेखक ने काव्य और नाटक के सम्मिश्रण से कठोर यथार्थ पर गीतिकविता की साकेतिकता का प्रयोग किया है। 'मानदड' (1948), 'नवदिगत' (1949), 'पचपर्व' (1953), आदि तृतीय स्तर के उपन्यास घटना एवं मनोविज्ञान प्रधान है। चतुर्थ स्तर के उपन्यासो मे 'स्थावर' (दे०) (1951), 'जगम (दे०) (1843) विख्यात है। जगम (तीन खड) बनफुल की औपन्यासिक सृष्टि का सार्थकतम निदर्शन है। इसमे महाकाव्य के विराट आयतन के अनुरूप एक समग्र समाज का चित्र निर्लिप्त भाव से खीचा गया है।

बनफुल ने अतिसक्षिप्त कहानियो की रचना कर बँगला साहित्य मे कहानी को एक नया रूप प्रदान किया है। इनकी कहानियो मे विषय के प्रति अविचल निष्ठा है एव चरित्र-चित्रण मे कोई भावावेश का चाचल्य नही है। ससार की अभिज्ञता एव जीवन के अनुधावन से ही इन्होने विषयवस्तु का चयन किया है। जीवन के विश्लेषण मे ये कभी तीखे व्यग्य का आश्रय लेते हैं तो कभी कवि के दृष्टिकोण का आधुनिक बँगला साहित्य म ये सर्वाधिक विस्मय का उद्रेक करने वाले साहित्यकार माने गए हैं।

9 फरवरी, 1979 को उनका निधन हो गया।

बनहट्टी, श्रीनिवास नारायण *(म० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

ये मननशील प्रकृति के प्रौढ निबध-लेखक हैं। ये 18 वर्षों तक नागपुर मे मराठी के प्राध्यापक रह थे। इन पर विष्णुशास्त्री चिपळूणकर (दे०) की विचारधारा का गहरा प्रभाव था। ये 'विहगम' मासिक पत्रिका और 'समाधान' साप्ताहिक के सपादक रहे थे और 'नवभारत ग्रथमाला' सस्था के सस्थापक थे।

'ज्ञानोपासना', 'मयूर काव्यविवेचन', 'विष्णु कृष्ण चिपळूणकर' आदि इनके निबध-सग्रह हैं। 'मराठी रगभूमीचा इतिहास' तथा 'मराठी नाट्यकला आणि नाट्य वाड्मय' ग्रथ नाटक एव रगमच मे सबधित हैं। 'नाटककार देवेल' रचना पर इन्हे साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला था।

'रानाकर' तथा 'विहगम' मासिक पत्रो म प्रकाशित इनके निबध 'एकावली', 'नाट्य व रगभूमि' और 'वाड्मय विमर्श' जैसे समालोचनात्मक ग्रथो मे संकलित हैं। इनके अधिकाश निबध साहित्य-विषयक हैं। 'एकावली' मे बनहट्टी जी की मौलिक समालोचनाएँ हैं, जिसमे टिळक (दे०) ल० रा० पागारकर (दे०) कानेलकर, तथा अँग्रेज साहित्यिको के जीवन तथा कृतित्व का विवेचन है।

इन्होने अनेक पुस्तको की प्रस्तावनाएँ लिखी हैं। पडित मोरोपत की 'केकावली' रचना के ये भाष्यकार रहे हैं। 'मयूर काव्यविवेचन' मे प्रौढ मस्तिष्क एव सतुलित दृष्टि से मोरोपत के काव्य के गुणावगुणो की चर्चा की है।

इनकी विवेचन-शैली क्रमबद्ध एव सतुलित है। ये विषय की तह तक जाकर तथ्य-सकलन करते हैं। इनके लेखन मे आवेश नही, विचारो की प्रौढता एव तार्किकता है।

आजकल ये 'ज्ञानेश्वरी' (दे०) का पाठ-सशोधन कर, शुद्ध पाठ वाली 'ज्ञानेश्वरी' के निर्माण मे सलग्न हैं।

बनात-उन्नाश *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1871-1872 ई०]

'बनात-उन्नाश' डिप्टी नजीर अहमद (दे०) की रचना है। इसमे गणित, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, शारीरिक व्यायाम, स्वास्थ्य आदि विषयो की रोचक एव ज्ञातव्य बातें कहानी के पात्रो के सवादो द्वारा समझाई गई हैं।

'बनात-उन्नाश' की भूमिका मे लेखक स्वय बताता है—'यह किताब उसी 'मुर्आत-उल-अरूस' (इस से पूर्व प्रकाशित एक महिला-उपन्यास जिसमे नैतिकता की बातें कथा-रूप मे प्रस्तुत की गई है) का गोया दूसरा हिस्सा है। वही बोली है, वही तर्ज (शैली) है। 'मुर्आत-उल-अरूस' म तालीम-इख्लाक (नैतिक शिक्षा) व खानदारी (गृह विज्ञान) मकसूद थी, इसमे वह भी है मगर जिम्नन (गौण रूप स) और मालूमात ए-दल्मी (ज्ञानवर्धक बातें) असालतन (मुख्य रूप से)।'

उर्दू उपन्यास मे सर्वप्रथम सामाजिक जीवन को प्रस्तुत करने का श्रेय डिप्टी नजीर अहमद का है। उनकी भाषा भी महिलाओ के लिए उपयोगी है, क्या का परिवेश जनाना है—वही मुहावरे और वैसे ही मुहावरे। कहीं-कहीं भाषा मे गभीरता की कमी खटकती है, इतीलता

को हानि पहुँचती प्रतीत होती है। संवादों की शैली अँग्रेजी ड्रामे जैसी है। नजीर अहमद की शैली की एक विशेषता लंबे-लंबे नैतिक उपदेश देना है।

बनारसीदास *(हिं० ले०)*

इनका अस्तित्व-काल सोलहवीं शती का अंत है। ये जैन कवि थे और अपने ग्रंथ 'अर्धकथानक' के लिए काफ़ी प्रसिद्ध हैं। यह आत्मकथात्मक ग्रंथ है। ये शाहजहाँ के समकालीन थे। जैन कवियों में इनकी काफ़ी ख्याति रही है। इनकी बहुत सी कृतियाँ धार्मिक कृतियों के अनुवाद रूप में हैं। इन्होने पद्य के साथ-साथ गद्य भी लिखा है।

'समयसार' नाटक, 'बनारसी पद्धति' और 'कल्याण-मंदिर-भाषा' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इनकी भाषा सरल और भावानुकूल है। इनकी मृत्यु के बाद जगजीवन ने इनकी छोटी-बड़ी 75 रचनाओं का संग्रह 'बनारसी विलास' नाम से किया। इनकी प्रसिद्धि का मुख्याधार 'अर्ध-कथानक' है, जो आत्मपरक शैली में लिखा गया सबसे पहला साहित्यिक कोटि का जीवनीपरक ग्रंथ है। इसमें उन्होंने अपने जीवन को आधार बनाया है। मध्ययुगीन तथा संस्कृति के अध्ययन के लिए इनका साहित्य मूल्यवान है।

बयाबाई *(म० पा०)*

मराठी के सुप्रसिद्ध लावणीकार रामजोशी का लावणियों में उल्लिखित यह स्त्री-पात्र है। रामजोशी स्वतः ब्राह्मण कुटुंब के थे। इनकी रचनाओं को प्रोत्साहन दे इन्हें लोकप्रिय बनाने का श्रेय बयाबाई को है। बयाबाई नर्तकी तथा गायिका थी। वह रामजोशी की लावणियों (दे० 'राजोशांच्या लावण्या') पर आधृत तमाशों में इनकी लावणियों को सुरीले स्वर में गाकर नाच करती थी।

बयाबाई से पूर्व रामजोशी की रखैल तथा नटी चिमा थी परंतु उसके सहवास में इन्हें पर्याप्त यश नहीं मिला था। इसके विपरीत बयाबाई के प्रवेश के बाद ये लोकप्रियता के शिखरों पर आरूढ़ होने लगे थे।

कवि ने बयाबाई पर एक स्वतंत्र लावणी लिखी है और अन्य लावणियों में भी कहीं-कहीं बयाबाई का नामनिर्देश किया है। बयाबाई पर लिखी लावणी में इन्होने उसकी खूब प्रशंसा की है। इन्होंने लिखा है कि बयाबाई रूपवान थी, काव्य-रचना के लिए रसिक थी, प्रेरक शक्ति थी। उसकी मधुर स्वरलहरी से मेरी काव्य-रचना पुष्पित-पल्लवित हुई है। इन्होंने कहा है कि मेरी कवित्व-शक्ति एवं बयाबाई की रसिकता का अपूर्व योग धन्य है।

रामजोशी ही एकमात्र ऐसे लावणीकार हैं जिन्होंने अपने तमाशों में काम करने वाली गायिका एवं नर्तकी का अपनी रचनाओं में गौरवपूर्वक स्मरण किया है। साथ ही उनकी रचना को लोकनाट्य रूप में प्रस्तुत कर लोकप्रिय बनाने का श्रेय बयाबाई को है।

बरकटकी, पद्म *(अ० ले०)*

ये स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी के उदीयमान लेखक हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास** : 'मनर दापोन' (1959), 'खबर बिचारी' (1960), 'कोनो खेद नाइ' (दे०) (1963); **कहानी** : 'अश्लील' (दे०) (1959)।

ये उपन्यासों में फ़ैशनेबुल नये वर्ग और पश्चिमी संकर सभ्यता से बँधे हुए यौनाचारियों पर कठोर व्यंग्य करते हैं। 'कोनो खेद नाइ' ऐतिहासिक उपन्यास है। 'अश्लील' में रिपोर्ताज अथवा स्केच टाइप की 12 कहानियाँ हैं। इनमें अश्लीलता नहीं है।

ये नयी पीढ़ी के कथाकार हैं।

बरकाकती, रत्नकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1897 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

जन्मस्थान—नौगाँव का आठगाँव स्थान।

मैट्रिक पास करने के पश्चात् कॉलेज में अध्ययन के लिए इन्होंने प्रवेश लिया था किंतु पारिवारिक दुर्घटना के कारण इन्हें पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी थी। 1918 ई० में ये नलबारी हाई स्कूल के शिक्षक नियुक्त हुए थे। महात्मा गांधी का भाषण सुनकर इन्होंने शिक्षा-जगत् का त्याग कर दिया था।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य** : 'सेवालि' (दे०) (1932), 'तर्पण' (1953); **नाटक** 'आलाप' (1919)। 'महात्मा गांधी स्वराज्य भाङनि' (1923)। 'सेवालि' में कवि की पूर्ण प्रतिभा के दर्शन होते हैं। इनकी कविता का मूल स्वर प्रेम और सौंदर्य है। इन्होंने पूर्वराग, मिलन और विरह का चित्रण तो किया ही था भारतीय अध्यात्मवाद का भी वर्णन किया है। लौकिक प्रेम की

परिणति अलौकिक प्रेम मे दिखाई गई है। इनकी कविताओ की विशेषता ओजपूर्ण एव ध्वनिप्रधान भाषा तथा श्वासाघात-प्रधान छद है। इन पर श्री रवींद्रनाथ (दे०) ठाकुर का प्रभाव पडा था। इन्होने भी 'ताजमहल' पर कविता लिखी थी। असमीया के उत्तम कवियो मे इनकी गणना की जाती है।

बरगीत *(अ० पारि०)*

शकरदेव (दे०) की स्फुट कविताओ का सग्रह 'बरगीत' कहलाता है। शंकर देव ने विभिन्न स्थानो और कालो मे इसकी रचना की थी। कुल गीत 240 थे। कहा जाता है कि इनके एक भक्त पढने के लिए इन्हे ले गये थे, परतु जगल की आग से अन्य वस्तुओ के साथ ये भी जल गये थे और अब केवल 40 गीत ही मिलते हैं। ये मौखिक रूप से प्रचारित है। इनका मुख्य विषय है जीवन की नश्वरता, इद्रिय-जय, माया से मुक्ति की साधना, हरिभजन आदि। शकरदेव का अनुसरण करते हुए माधवदेव (दे०) ने भी बरगीत लिखे थे, जिनका मुख्य विषय बालकृष्ण की लीलाओ का वर्णन करना था। आगे कई अन्य कवियो ने भी बरगीत लिखे और इनके नाम से प्रचारित किए। 'बरगीत' नाम महापुरुष शकरदेव ने नही दिया था। इन दोनो कवियो के भक्तो ने इनके गीतो को 'बरगीत' कहना आरभ किया। 'बर' का अर्थ या तो बडा है अथवा श्रेष्ठ। गीतो के उच्च आध्यात्मिक गुणो के कारण ही यह नाम पडा होगा। इनकी भाषा व्रजबुलि है।

बरगोहाञि, होमेन *(अ० ले०)* [जन्म—1932 ई०],

जन्मस्थान—जिला लखीमपुर।

इन्होने काटन कॉलेज से बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की थी। 1968 ई० मे असम सिविल सर्विस की नौकरी छोडकर ये नवप्रकाशित साप्ताहिक 'नीलाचल' के सपादक बने थे।

प्रकाशित रचनाएँ—उपन्यास : 'सुबाला' (दे०); कहानी : 'विभिन्न क', 'राछ' (दे०) (कोरस) (1957), 'प्रेम आरु मृत्युर कारण' (1958), 'गल्प आरु नक्सा' (1960)। इन पर फ्रायड का गहरा प्रभाव है। इनकी कहानी 'महाश्वेतार विया' ही फ्रायडीय प्रभाव से युक्त प्रथम असमीया कहानी है। इनके नायक-नायिका नैतिकता और सामाजिकता के बधन से मुक्त होते है। ये अधिकतर प्रेम, मृत्यु और व्यभिचार का चित्रण करते है। इन्होंने कविताएँ भी लिखी हैं। असमीया-साहित्य के नवलेखन मे इनका महत्वपूर्ण योग है।

बरजू *(उ० पा०)*

बरजू श्री कालिंदीचरण पाणिग्राही (दे०) के उपन्यास 'माटिर मणिष' (दे०) का नायक है। यह गाधी-दर्शन का साकार रूप कहा जा सकता है। यह किसान है, और अल्पशिक्षित है, किंतु अपने निश्चय पर अटल रहता है, क्योकि इसके विचार मे यही उचित है और कल्याणकारी है।

यह सरल, अहकारशून्य है, धार्मिक एव न्याय-परायण है। पिता का इसको अतिम आदेश यही है कि इस घर मे अलगाव की दीवार नही उठेगी, इस जमीन पर भिन्नता की मेड नही खडी होगी।

पिता की मृत्यु के बाद यह घर सँभालता है। जमीन की नौकरी छोड कर खेती करने लगता है। इसकी तीन पुत्रियाँ और एक पुत्र हैं। बडे प्रयत्न के बाद किसी प्रकार यह बडी बेटी हार का विवाह करता है।

इसके छोटे भाई छकडी का पहला काम अपनी पत्नी नेत्रमणि को प्रसन्न रखना है और उसके पश्चात् घूमना-फिरना तथा जात्रा देखना है। छकडी हरि मिश्र की बातो मे आकर इसे सदेह की दृष्टि से देखने लगता है। दोनों बहुओ मे कलह प्रारभ हो जाता है। बरजू अपनी पत्नी को चुप रखने का सदा प्रयास करता है किंतु नेत्रमणि के ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं पडता। हरि मिश्र मध्यस्थ बन अलग हो जाने की सलाह देता है। बरजू उन्हे विदा कर, सारा घर व जमीन छकडी को सौंप कर, बिना कुछ लिये अपने परिवार के साथ घर छोड देता है। सारे गाँव मे एकता की स्थापना व अन्याय के प्रतिकार के लिए प्रयत्नशील रहकर भी यह अपने घर मे एकता व प्रेम बनाए नही रख पाता। पिता जी की अतिम इच्छा भी पूरी नही होती। इसके परिताप पर सारा गाँव हाहाकार कर उठता है।

नेत्रमणि की प्रसन्नता की सीमा नही, किंतु छकडी की सुख-शाति नष्ट हो जाती है। उसमें महान परिवर्तन होता है। भाई के स्नेह व बच्चों की ममता के बिना वह पागल के समान हो जाता है। भाई को लौटा लाने को वह निकल पडता है। नेत्रमणि भी उसे रोक नही पाती।

बरठाकुर, इंद्रेश्वर *(अ० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

जन्मस्थान—शिवसागर।

इन्होंने बी० ए० तक शिक्षा पाई थी और एक सरकारी स्कूल में अध्यापक और बाद में प्रधानाचार्य के रूप में 1942 ई० तक काम करते रहे थे। ये रंगमंच से भी संबद्ध रहे थे। 1924 ई० में ये असम-साहित्य-सभा की संगीत-शाखा के सभापति बने थे।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'इंद्रमल्लिका' 1951); नाटक : 'श्रीवत्स-चिंता' (दे०) (1927), 'संतर्पण' (1953), 'रण जेउति' (1955)।

'इंद्रमल्लिका' में कविताओं का संग्रह है। श्री बरठाकुर संस्कृत-साहित्य और भारतीय संस्कृति के अनुरागी थे, यह इनकी कविताओं के इन शीर्षकों से स्पष्ट है—'भारती', 'भरदेमरु', 'दुर्वासा', 'बाल्मीकि', 'वेदव्यास', 'उर्वशी' आदि। 'श्रीवत्स-चिंता' नाटक में अमित्राक्षर छंद का प्रयोग हुआ है। लेखक ने पौराणिक कथा पर विश्वास करते हुए भी प्राकर्षक एवं सशक्त पात्रों की अवतारणा की है। लंबे काव्यपूर्ण संवाद अभिनेयता के लिए बाधक हैं। इनके नाटकों का साहित्यिक मूल्य अधिक है। इनके अनेक मंचोपयोगी नाटक अभी तक अप्रकाशित हैं।

प्राचीन भारतीय नाटक और अभिनय पर इन्होंने अनेक विचारपूर्ण लेख लिखे थे।

वर्तमान शती के प्रथमार्द्ध के निपुण मंच-शिल्पी के रूप में ये सदैव स्मरणीय रहेंगे।

बरदलै, नबीनचंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

ये गांधी जी की प्रेरणा से राजनीति में आए थे। इन्होंने जेल-यात्रा भी की थी। उस समय इन्होंने शेक्सपियर के नाटकों का अनुवाद किया था। प्रकाशित रचनाएँ—नाटक : 'गृहलक्ष्मी' (1911 ई०), 'कृष्ण लीला' (1933 ई०); शेक्सपियर के अनूदित नाटक : 'दुंदुरी दमन', 'विषाद काहिनी', 'तरुण कांचन' आदि।

इनके 'गृहलक्ष्मी' नाटक में अत्याचारी पति और सुशीला पत्नी का चित्रण है। यह नाटक वर्तमान युग के पारिवारिक समस्यामूलक सामाजिक नाटकों का पथ-प्रदर्शक है। इन्होंने देशभक्ति की कविताएँ भी लिखी थीं। ये पारिवारिक समस्या के प्रथम सामाजिक नाट्यकार हैं।

बरदलै, निर्मल प्रभा *(अ० ले०)* [जन्म—1937 ई०]

कवयित्री और गीत-लेखिका।

प्रकाशित रचना—'यन फरिङर रं' (काव्य-संग्रह)।

बरदलै, रजनीकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1867 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

जन्मस्थान—गोहाटी। इन्होंने कलकत्ता के सिटी कालेज से एफ० ए० और बी० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थीं। अंग्रेज सरकार के उच्च पदाधिकारी होते हुए भी ये कट्टर देशभक्त थे।

प्रकाशित रचनाएँ—उपन्यास : 'मिरि जीयरी' (दे०) (1895), 'मनोमती' (दे०) (1900), 'दंदुवा द्रोह' (दे०) (1909), 'राधा रुक्मिणीर रण' (1925), 'रङ्गिली' (दे०) (1925), 'निर्मल भकत' (दे०) (1926), 'रहदै लिगिरी' (दे०) (1930), 'ताम्रेश्वरी मंदिर' (1936), 'खांबा आग थोइबी' ('आवाहन' में प्रकाशित) (1930)।

इन पर स्कॉट और बंकिम (दे० बंकिमचंद्र) का प्रभाव है। इन्होंने उपन्यासों में असम के उन्नत अतीत का वर्णन किया है। लगभग सभी उपन्यासों में बर्मियों के अत्याचारों का वर्णन है। 'मिरि जीयरी' असमीया का प्रथम सामाजिक उपन्यास है। 'मनोमती' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इन्होंने असमीया उपन्यास-धारा को एक नया मोड़ दिया है। इनकी कई कृतियाँ स्त्री-चरित्र प्रधान हैं। इनके कुछ उपन्यास ऐतिहासिक, कुछ सामाजिक और कुछ आंचलिक हैं। ये असमीया साहित्य के श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं।

बरदलै, सारदा *(अ० ले०)*

ये स्वातंत्र्योत्तर लेखक थे। ये कुशल अभिनेता भी थे।

प्रकाशित रचनाएँ—नाटक : 'मगरीबर आजान' (1950), 'पहिला तारीख' (दे०) (1956), 'एह बाटेदि' (1957)।

सारदा जी के 'मगरीबर आजान' में सामाजिक यथार्थ है, इसमें ग्राम्य-जीवन के प्रीति-सौहार्द एवं हिंदू-मुस्लिम एकता का वर्णन है। अनेक वर्षों तक इसकी असमीया-रंगमंच पर धूम रही थी। मध्यवर्ग के आर्थिक

संघर्ष को लेकर लिखा गया इनका नाटक है 'पहिला तारीख'। यह ऐसे वर्ग की करुण-कथा है जो वेतन वाले दिन ही पिछले मास का हिसाब चुकाने में पूरा वेतन व्यय कर देता है। 'एइ बाटे दि' भी सामाजिक नाटक है। ये दोनों नाटक भी मंच पर सफलता प्राप्त कर चुके हैं। श्री सारदा बरदलै स्वतंत्रता के बाद के सफल नाट्यकार हैं।

बरफुकनर गीत *(अ० कृ०)*

यह सशक्त ऐतिहासिक बैलेड है जो कि असम पर बर्मियों के आक्रमण की पृष्ठभूमि में लिखा गया था। देशभक्तिपूर्ण सजीव चित्रण इसकी विशेषता है।

बरबरुवा, हितेश्वर *(अ० ले०)* [जन्म—1876 ई०, मृत्यु—1939 ई०]

जन्मस्थान—जोरहाट का एक ग्राम।

इनकी आरंभिक शिक्षा घर पर हुई थी। इन्होंने जोरहाट हाई स्कूल में प्रथम श्रेणी में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। अनेक स्कूलों में अध्यापन-कार्य कर 1938 ई० में ये सेवा-निवृत्त हुए थे। इन्होंने जीवन में आर्थिक कष्ट झेले थे। *1935 ई० में ये असम-साहित्य* सभा के सभापति निर्वाचित हुए थे।

प्रकाशित ग्रंथ—काव्य 'ढोपाकलि' (1902), 'कमलापुरध्वस' (1912), 'सारी' (1912) 'विरहिणी विलाप' (1912), 'जयमती कुँवरी', 'विरतार आत्मदान' (1913), 'आभास' (1914), 'मूलागाभरु' (1915), 'माल च' *(1918)*, 'चकुलो' *(1922)*, अनूदित 'डेसिडमोना काव्य' और 'अमिला' (1917)।

इन कविताओं का मूल स्वर करुणरस है। इनका दृष्टिकोण राष्ट्रीयता से ओतप्रोत है। इनका सर्वश्रेष्ठ *ग्रंथ है 'कमलापुरध्वस' जो अमित्राक्षर छंद में लिखित* एक महाकाव्य है 'विरहिणीविलाप' में प्रोषितपतिका नायिका के विरह-दुःख का वर्णन है। इसमें माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) के 'ब्रजांगना काव्य' की तरह चपल छंदों का प्रयोग हुआ है। 'चकुलो' (आँसू) और 'मालच' इनके सॉनेट काव्य हैं। 'मूला गाभरु' इनकी प्रौढ़ और सयत रचना है।

ये असमीया के उत्कृष्ट कवियों में से हैं।

बरयात्री *(बँ० कृ०)* [रचना काल—1942 ई०]

'बरयात्री' बिभूतिभूषण मुखोपाध्याय (दे०) की अनाविल हास्यरस की कहानियाँ हैं जिनकी जनप्रियता तनिक भी मलिन नहीं हुई है। प्रत्येक कहानी में पात्र की *समानता के कारण उपन्यास की एकसूत्रता विद्यमान है।* इन कहानियों में विवाहार्थी युवक एवं उनके दोस्तों की विविध संभव असंभव दुरवस्थाओं की वर्णना में लेखक ने उच्च कोटि के प्रहसनों की सृष्टि की है। इन कहानियों के पात्रों—गणेश, के० गुप्त आदि—की कथाओं में लेखक की तटस्थ अभिव्यक्ति के कारण ही विशुद्ध हास्य का इतना तीव्र संचार हो पाया है। इन पात्रों के नये यौवन की नाना प्रकार की बुद्धिहीन अद्भुत अभिव्यक्ति से ही हास्य रस घना होता चला गया है। परंतु इस हँसी में कहीं भी परिहास-विद्रूप का अनधिकार प्रवेश नहीं हुआ है। व्यंग्य का *प्रयोग एक-आध स्थान पर हुआ है परंतु लेखक का मूल उद्देश्य* हास्य निर्झर से पाठकों को संपूर्ण रूप से सिक्त कर देना है जिसमें उसे पूर्ण सफलता मिली है।

बरवै *(हिं० पारि०)*

इसके विषम चरणों में 12, 12, और सम-चरणों में *7, 7 मात्राएँ होती हैं और अंत में जगण हुआ* करता है। इस तरह दोहे की तरह यह छोटा सा छंद अधिक विस्तृत विषय वस्तु अपने में समाहित नहीं कर पाता है। हिंदी में रहीम (दे०) और तुलसीदास (दे०) ने प्रथमतः इसका प्रयोग किया है। अतः संभावना यह है कि इनमें से ही किसी एक ने इसका आविष्कार किया हो। *तुलसी ने 'बरवै रामायण' और रहीम ने 'बरवैनायिका'* भेद इसी छंद में लिखे हैं। रीतिकाल में जगतसिंह आदि दो चार कवियों को छोड़ कर किसी ने भी इसे ग्रहण नहीं किया है। राजप्रशस्ति जैसे परंपरागत विषयों के अतिरिक्त कवियों ने अन्यान्य विषयों को भी इस छंद में समेटा है। नीचे की पंक्तियों में कवि ने इस छोटे से छंद के माध्यम *से शृंगार की रेखाओं को बड़ी सजीवता से उरेहा है—*

जब जब पाइ अँगनवाँ, धरति सुभाइ।
बसरनि वही करिजवाँ, बगरनि आइ॥

बरा, ज्ञाननाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

जन्मस्थान—गौहाटी। इनकी शिक्षा कलकत्ता

विश्वविद्यालय में हुई थी ये एकाधिक कॉलेजों के प्रिंसिपल पद पर रहे हैं। प्रसिद्ध साहित्यकार सत्यनाथ बरा (दे०) इनके पिता थे। इन्होंने अधिकतर निबंध लिखे हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—'पुरातत्त्व' (1924 ई०), 'असमत विदेशी' (1925 ई०), 'नतुन जगत' (1946 ई०), 'पुरणि असमीया साहित्य' (1957 ई०), 'आधुनिक असमीया साहित्य' (1961)।

'पुरातत्त्व' और 'नतुन जगत' के निबंधों का विषय दार्शनिक चिंतन है। 'असमत विदेशी' में देशभक्ति के निबंध हैं। शेष दो पुस्तकों में साहित्यिक विवेचन है। इनके ग्रंथों में सामयिक राजनीति, राष्ट्रीय समस्याओं और साहित्यिक विषयों का विवेचन हुआ है। इनके गद्य की विशेषताएँ हैं—परिष्कृत विचार और सरल रचना-शैली।

बरा, महिम *(अ० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

इनका जन्म दारांग जिले के घापसा पारा चाय-बागान में हुआ था। गौहाटी विश्वविद्यालय से इन्होंने एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। संप्रति ये नौगाँव कॉलेज में अध्यापक हैं।

प्रकाशित रचना—'कायनि बारिर घाट' (कहानी-संग्रह) द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् के ये सर्वाधिक सशक्त कहानीकार हैं। ये हास्य मिश्रित करुणा के चित्रण में दक्ष हैं। इनके पात्र परिस्थिति और परिवेश की पीड़ा वहन करते हैं।

बरा, लंबोदर *(अ० ले०)* [जन्म—1860 ई०; मृत्यु—1892 ई०]

जन्मस्थान—तेजपुर का गमिरि अंचल।

इनकी शिक्षा बी० ए० तक हुई थी। इन्होंने कुछ दिन तक अध्यापन किया, तत्पश्चात् बी० एल० कर तेजपुर में वकालत की थी। 32 वर्ष की अल्पायु में इनकी मृत्यु हो गई थी। इन्होंने 'असम बंधु', 'असमतारा', 'आसाम विलासिनी' और 'जोनाकी' पत्रिकाओं में अनेक निबंध लिखे थे।

प्रकाशित रचनाएँ—'लरावोध', 'ज्ञानोदय'। इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित रह गई हैं, जैसे कि ईश्वरचंद्र विद्यासागर और आनंदराम बरुवा की जीवनी। इन्होंने एक नाटक 'समाज दर्पण' लिखा था, जिसे ये पूरा न कर सके थे। इन्होंने 'गान', 'अलंकार आरु दर्शन', 'कालिदास आरु शकुंतला' आदि उच्च कोटि के निबंध लिखे थे। इन्होंने ललित गद्य लिखा है। इनका व्यंग्य संयत है। इनके शब्द-चयन और वाक्य-गठन में भी सौंदर्य है। गद्य शिल्पी के रूप में बौद्धिकता और तेजस्विता है।

बरा, सत्यनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1860 ई०; मृत्यु—1925 ई०]

जन्मस्थान—गौहाटी। इन्होंने कलकत्ता से बी० ए० और कानून की परिक्षाएँ उत्तीर्ण कर गौहाटी में वकालत आरंभ की थी। ये 'जोनकी' के साहित्य दल में सम्मिलित हुए थे प्रकाशित रचनाएँ— काव्य : 'गीतावली' (1888); निबंध-संग्रह : आकाश-रहस्य' (1908) साहित्यिक विचार' (1908), 'सारथि' (1915), 'केंद्रसभा' (दे०) (1929), 'चिंता-कलि' (मरणोपरांत प्रकाशन) (1935)।

'आकाश रहस्य' विज्ञान-विषयक पुस्तक है। 'साहित्य विचार' में साहित्य के लक्षण आदि की चर्चा है। इस प्रकार का यह प्रथम असमीया ग्रंथ है। गीतावली' में इनके 28 गीतों का संग्रह है। इनकी ख्याति उच्चकोटि के निबंधों के कारण है। कम शब्दों का प्रयोग करते हुए इन्होंने प्रसाद शैली में निबंध लिखे हैं। लोकोक्ति और मुहावरों का भी प्रयोग किया है। इन्होंने ज्ञानवर्द्धक, व्यंग्यपूर्ण और विचारप्रधान निबंधों के अलग-अलग संग्रह प्रकाशित कराए थे।

यद्यपि आज इनकी पुस्तकों का महत्व कम है तथापि कम शब्दों में सारगर्भित बात कह देने की गद्यशक्ति इनमें थी।

बरुवा, नवेन *(अ० ले०)* [जन्म—1942 ई०]

श्री बरुवा कवि और आलोचक हैं। इनकी कविता में सौंदर्यबोध का वैशिष्ट्य है। समाज के पूर्वग्रह एवं अत्याचार तथा स्वच्छ समाज का स्वप्न इनकी कविता के विषय हैं।

बरुवा, अमूल्य *(अ० ले०)* [जन्म—1922 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

जन्मस्थान—जोरहाट।

ये कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक थे।

16 अगस्त, 1946 ई० को मुस्लिम लीग के प्रत्यक्ष आंदोलन के समय इनकी हत्या कर दी गई थी। अकाल मृत्यु के कारण इनकी प्रतिभा से असमीया-जगत् वंचित रह गया।

इनकी कविता विद्रोहमयी है। दुर्भिक्ष के समय किसी धनिक द्वारा ऐंठे गये उच्छिष्ट के लिए कुत्ता और मनुष्य में छीनाझपटी देख ये उत्तेजित हुए थे। इनकी कविताओं मे विषमता के विरुद्ध संघर्ष है। बरुवा की प्रसिद्ध कविताएँ है—'वेश्या', 'अंधकार', 'हाहाकार', 'कुकुर और 'विप्लवी'।

ये असमीया नयी कविता के उन्मेषक माने जाते हैं।

बरुवा, आनंद *(अ० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

जन्मस्थान—जोरहाट।

ये काशी विश्वविद्यालय में तीन वर्ष तक रह कर लौट आए थे। 1930 ई० मे इन्होंने वाणी सम्मेलन की स्थापना की थी। ये 'असमीया' और दैनिक 'वातरि' पत्रों से संबंधित रहे थे। इस समय श्री बरुवा एक सरकारी शिल्प-प्रतिष्ठान मे है। प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : हाफिजर सुर' (दे०) (1933), 'पराग पुष्पक' (1930) नाटक : 'कपौ कुँवरी' (1932), 'नल-दमयति' (1944), 'कमता कुँवरी' (1940), 'रंजनरश्मि' (1933) 'विसर्जन' (1933)।

इनकी कविताओं पर फारस के हाफिज का प्रभाव है। कविताओं मे प्रेम का सुर, कल्पना का चंचल विलास, अनुभूति की सुकुमारता और आवेग की तीव्र अनुभूति है। इन्होने पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक नाटक लिखे है। 'कपौ कुँवरी' मंचोपयोगी नाटक है। इनके नाटको मे काव्यगुण अधिक एवं चरित्र-चित्रण दुर्बल हैं।

हाफिज कवि का असमीया साहित्य से परिचय कराने से इन्हे विशेष प्रतिष्ठा मिली है।

बरुवा, गुणाभिराम *(अ० ले०)* [जन्म—1837 ई०, मृत्यु—1894 ई०]

जन्मस्थान—गौहाटी।

इनका साहित्यिक जीवन 'अरुणोदय' पत्रिका से आरंभ हुआ था। इन्होंने कलकत्ता प्रेसिडेंसी कॉलेज मे दो वर्ष शिक्षा पाई थी। ये 1890 ई० तक सरकारी कर्मचारी रहे थे और अवकाश ग्रहण कर कलकत्ता मे ही बस गये। यही पर इनकी मृत्यु हुई थी। इनके प्रयास से 1856 ई० मे विधवा-विवाह कानून-सम्मत घोषित हुआ था। इन्होने अपने मित्रों एव परिवार के सभी लोगो—पत्नी, कन्या और दो पुत्रों मे साहित्यिक रुचि जाग्रत की थी।

प्रकाशित रचनाएँ—नाटक : 'रामनवमी' (दे०) (1857); जीवनी : 'आनंदराम ढेकियाल फुकन' (1880), भ्रमण-साहित्य : 'कौभार बुरंजी', 'भ्रमण', व्यंग्य साहित्य : 'कठिन शब्दर रहस्य'; इतिहास 'असम (1884)।

कलकत्ता मे अध्ययन के समय इन पर ब्रह्म समाज एव ईश्वरचंद्र विद्यासागर का प्रभाव पड़ा था। 'रामनवमी' नाटक पर यह प्रभाव स्पष्ट है। पाश्चात्य शैली मे लिखा गया असमीया भाषा का यह प्रथम नाटक है। रामचंद्र और नवमी नामक बालविधवा के प्रेम पर आधारित यह नाटक बाल-विवाह के दोष और विवाह का प्रचार करता है। इसमे पाश्चात्य और पौर्वात्य शैलियो का मिश्रण है।

'आनंदराम ढेकियाल फुकन' असमीया भाषा मे आधुनिक रीति से लिखा प्रथम जीवनी-ग्रंथ है।

फुकन जी असमीया के प्रथम आधुनिक सामाजिक नाटककार एवं प्रथम सफल ऐतिहासिक निबंध-लेखक थे।

बरुवा ज्ञानदाभिराम *(अ० ले०)* [जन्म—1880 ई०, मृत्यु—1855 ई०]

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'विलतानर चिठि' (1848), 'मोर कथा', शिशु-साहित्य 'ददाइर पजा', 'मेनिचर साउद' (1925)।

ये अपने पिता श्री गुणाभिराम बरुवा (दे०) के आदर्श पर चले थे। दोनो निबंध-संग्रहो में स्मृति विजड़ित माधुर्य है। *शैली के मध्य इनका प्रसन्न व्यक्तित्व* प्रकट होता है। यात्रा-संस्मरण-साहित्य के क्षेत्र मे इनकी पुस्तक 'विलातर चिठि' का विशेष महत्व है।

बरुवा, देवकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1994 ई०]

जन्मस्थान—डिब्रूगढ़।

ये काशी विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। शिक्षा समाप्त कर ये स्वतंत्रता आंदोलन मे कूद पड़े थे, कई बार जेल गये थे। 1952 ई० मे ये लोकसभा के सदस्य निर्वा-

चित हुए थे। 1954 ई० में ये संयुक्त राष्ट्र संघ में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य बन गये थे। 1957 में ये असम विधान-सभा के अध्यक्ष चुने गये थे। जनवरी 1971 ई० में इनकी नियुक्ति बिहार के राज्यपाल के रूप में हुई थी। रवींद्रनाथ (दे०) ठाकुर और इलियट इनके प्रिय कवि हैं।

प्रकाशित रचना—काव्य : 'सागर देखिछा' (दे०) (1945 ई०)।

'सागर देखिछा' की कविताओं में तिरस्कृत प्रेम की वेदना का वर्णन है। कवि केवल निराशा का वर्णन ही नहीं करता, वह विद्रोही हो उठता है और उसका विद्रोह देशप्रेम के रूप में व्यक्त होता है। ये रोमांटिक काव्यधारा के अंतिम कवि हैं। चीनी आक्रमण के समय लिखी गई इनकी कविता 'एइखन मोर देश' प्रभावोत्पादक है। ये क्रांति और नूतन पथ-संधान के कवि हैं।

बरुवा, नवकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

जन्मस्थान—नौगाँव।

इन्होंने कलकत्ता और अलीगढ़ विश्वविद्यालय से शिक्षा पाई थी। ये कुछ दिन शिकोहाबाद (उ० प्र०) में अध्यापक रहे थे। 1954 ई० में ये काटन कॉलिज के प्राध्यापक नियुक्त।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'हे अरण्य हे महानगर' (1951), 'एटि दुटि एघारटि तरा' (1957), 'पति आरु केइटाभान स्केच्च' (1761); उपन्यास : 'कपिली परिया साधु' (दे०) (1954)। इन पर इलियट का प्रभाव अधिक है, कविताओं में रोमांसवाद और पलायनवाद है। 'हे अरण्य हे महानगर' युद्धोत्तरकाल का सर्वप्रथम व्यक्तिगत काव्य-संग्रह है। आधुनिक विशृंखलित जीवन का चित्रण करते हुए इन्होंने दो खंडकाव्य 'रावण' और 'धृतराष्ट्र' लिखे थे। इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'कपिली परिया साधु' में नदी और मनुष्य के चिरंतन संग्राम का चित्रण है।

श्री बरुवा नये कवि और प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं।

बरुवा, पार्वती प्रसाद *(अ० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

जन्मस्थान—शिवसागर।

ये कलकत्ता स्काटिश चर्च कॉलिज के स्नातक और चाय बगीचे के व्यवसायी हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'गुणगुणनि' (1958), 'टोकारीर सुर' (1959); नाटक : 'लखिमी' (1929), 'सोणर' गोलेइ' (दे०) (1955), ['आवाहन' पत्रिका में 1929 में]। इनके गीतों में आनंद भाव मिलता है किंतु बाद में इनके गीतों में करुणरस का स्वर स्थायी रूप धारण कर गया। इन्होंने प्रतीकात्मक गीति-नाट्यों द्वारा नये प्रयोग किए हैं। 'लखिमी' में शरत्, हेमंत आदि पात्रों का वर्णन है।

इनकी ख्याति प्रतीकात्मक नाट्य-लेखन एवं गीतिकार के नाते है।

बरुवा, बिनंद *(अ० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

जन्मस्थान—जोरहाट का टियक स्थान। इनकी शिक्षा एम० ए० और लॉ तक हुई थी। ये जाँजी हाईस्कूल में शिक्षक और बाद में प्रधानाचार्य नियुक्त हुए थे।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'शंखध्वनि' (1925), 'प्रतिध्वनि' (1938), 'फुलकलि' (1940); नाटक : 'पार्थसारथि' (1933), 'टि टि हेड़' (1936), 'शराइघाट' (1936); जीवनी : 'महाराज नरनारायण' (1926)।

ये राष्ट्रीय चेतना के कवि हैं। असम के अतीत पर ये गौरव की अनुभूति करते हैं, उसके ह्रास पर दुःखी होते हैं। 'शंखध्वनि' संग्रह की 'गड़गाँव' कविता प्रसिद्धि पा चुकी है। 'प्रतिध्वनि' की कविताएँ भी इसी प्रकार की हैं। कवि ने अतीत का स्मरण प्रेरणा लेने के लिए किया है; वर्तमान की उपेक्षा नहीं की है।

इनके 'पार्थसारथि' और 'शराइघाट' गंभीर नाटक हैं। ये असम के प्राचीन गौरव और शौर्य के कवि हैं।

बरुवा, विरिंचि कुमार *(अ० ले०)* [जन्म—1910 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

जन्मस्थान—नौगाँव।

इन्होंने कलकत्ता और लंदन विश्वविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने डाक्टर की उपाधि तक की शिक्षा ग्रहण की थी। इन्होंने बीणा बरुवा के छद्म नाम से भी लिखा है। श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' के ग्रंथ 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' का इन्होंने 1941 ई० में भावानुवाद किया था।

प्रकाशित रचनाएँ—उपन्यास 'जीवनर बाटत' (दे०) (1945), 'सेउजी पातर काहिनी' (दे०) (1948), कहानी 'पटपरिवर्तन' (1948), 'आघोनी बाइ' (दे०), (1950), अन्य 'असमीया लोक-संस्कृति' (निबंध) (1961), 'असमीया भाषा आरु संस्कृति' (निबंध) (1957), 'असमीया कथा-साहित्य' (1950), 'स्विटजरलैंड-भ्रमण' (1948), नाटक 'ए बेलार नाट' (दे०)।

'जीवनर बाटत' उपन्यास मे असम के ग्रामीण समाज का सुस्पष्ट चित्रण है। 'सेउजी पातर काहिनी' चाय-बगीचा और मजदूरो के जीवन को लेकर लिखा गया है। इन्होने यौन-चित्रण भी प्रस्तुत किए हैं। 'पटपरिवर्तन' कहानी-संग्रह मे नगर-जीवन और 'आघोनीबाई' मे ग्राम-जीवन का चित्रण है। नगा युवती पर लिखी 'लापेली' कहानी सुंदर है।

इनका पांडित्य परिश्रम पर आधारित है। इन्होने स्वच्छ मुहावरे और प्रांजल शैली का प्रयोग किया है। इन्होने अनेक अँग्रेजी पुस्तकें भी लिखी हैं।

ये असमीया के ख्यातिलब्ध उपन्यासकार तथा आलोचक हैं।

बरुवा, बीरेश्वर *(अ० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

ये नयी पीढी के लेखक है।

प्रकाशित रचनाएँ—'निर्जन नाविक' (काव्य संग्रह) (1961), 'मन जेतुकार पात' (उपन्यास)।

इनकी कविता मे सामाजिक चेतना है। इन्होने नूतन विषयो, प्रतीको और बिंबो का प्रयोग किया है। इनकी 'प्रथम रागिनी' कहानी विशेष चर्चित हुई है। इन्होने स्टीफन ज्विग की प्रेम-कहानी का अनुवाद किया था। श्री बरुवा उदीयमान कवि और कथाकार हैं।

बरुवा, यादूराम *(अ० ले०)* [जन्म—1801 ई०, मृत्यु—1869 ई०]

इन्होने 1839 ई० मे असमीया भाषा का प्रथम कोश तैयार किया था। उच्चारण के अनुसार वर्ण-विन्यास के सरलीकरण पर इन्होंने जोर दिया था। ये असमीया के डॉ० जॉनसन कहे जाते है। इन्होने यह कोश कर्नल जॉनसन नामक व्यक्ति को भेंट किया था, जिसने इसे बैप्टिस्ट मिशन को दे दिया था। इसी को आधार मान कर श्री माइल्स ब्रॉनसन नामक मिशनरी ने 1867 ई० मे आसामीज इंग्लिश डिक्शनरी का संपादन किया था। श्री यादूराम बरुवा असमीया कोश के प्रथम निर्माता माने जाते है।

बरुवा, सत्यप्रसाद *(अ० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

इनकी शिक्षा बी० ए०, बी० एल० तक हुई थी। ये आकाशवाणी से संबद्ध हैं। प्रकाशित रचनाएँ—नाटक 'चार्क चकोवा' (1939), 'शिखा' (1957), 'ज्योतिरेखा' (दे०) (1958), आलोचना 'नाटक आरु अभिनय प्रसंग' (1962)।

नाटको की कथावस्तु रोमांटिक होती है। इनमे चरित्रो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। लेखक चरित्रो और संवादो के द्वारा यह व्यक्त करता है कि मानव के प्रत्येक कार्य के पीछे कोई तर्कसंगत या मनोवैज्ञानिक विचार होता है। इन्होने कुछ ऐतिहासिक नाटिकाएँ और एकांकी नाटक भी लिखे हैं।

ये नयी पीढी के गंभीर नाट्यकार हैं।

बरुवा, हेम *(अ० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

जन्मस्थान—तेजपुर।

इन्होने 1938 ई० मे कलकत्ता विश्वविद्यालय से अँग्रेजी मे एम० ए० किया था। ये कुछ दिन जोरहाट कॉलेज मे अध्यापक रहे थे। 1942 ई० के आंदोलन मे इन्हें कारावास हुआ था। 1957 स 1970 ई० तक ये लोक सभा के सदस्य रहे थे। इन्होंने 'जनता' और 'पछोवा' पत्रो का संपादन भी किया था। इन्होने अँग्रेजी मे भी पुस्तकें लिखी हैं। प्रकाशित रचनाएँ—'गण-विप्लवत असम' (1946), आलोचना : 'आधुनिक साहित्य' (1950), भ्रमण-साहित्य : 'सागर देखिछा' (1956), 'रडा कर बीर पुत्र' (1958), निबंध संग्रह : 'मान मिहलि' (1957), लोकगीत संग्रह 'एद मामा एद गीत' (1962), 'काव्य-बालिछरा' (1959)।

असमीया नयी कविता के प्रवर्तको मे हेम बरुवा भी एक हैं। 'बालिछरा' कविता मे श्री बरुवा इस निष्ठुर असभ्य पृथ्वी पर नव समाज की स्थापना करना चाहते हैं।

'सागर देखिछा' और 'रडा कर बीर पुत्र' मे अमरीका और रूस का भ्रमण वृत्तांत है, बीच-बीच मे

काव्य-सौंदर्य भी उपलब्ध होता है। इन्होंने इजराइल पर पुस्तक लिखकर वहाँ के लोगों की प्रगति की प्रशंसा की है।

'आधुनिक साहित्य' में पाश्चात्य साहित्य की आधुनिक भावधारा, आदर्श और रचना-शैली का प्रांजल वर्णन है।

'सान मिहलि' मिश्र के इतिहास, ओपन एअर थियेटर, नारी-सौंदर्य आदि विषयों पर लिखे निबंधों का संग्रह है।

श्री हेम बरुवा आलोचना और कविता के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

बरुवा, हेमचंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1835 ई; मृत्यु—1896 ई०]

घरवालों के विरोध की उपेक्षा कर इन्होंने अंग्रेजी-साहित्य का अध्ययन किया था। इनका साहित्यिक जीवन 'अरुणोदय' में लेखन से प्रारंभ हुआ था। ये 'सोनार चांद' छद्म नाम से लिखते थे। इनके द्वारा असमीया में संस्कृतनिष्ठ शैली का प्रचार हुआ था। इन्होंने अनेक छात्रोपयोगी पुस्तकें तैयार की थीं, इन पुस्तकों के लिए सरकार ने इन्हें 1100 रु० का पुरस्कार दिया था।

प्रकाशित रचनाएँ—'आदि पाठ' (1973), 'पाठमाला' (1973), 'असमीया लरार व्याकरण' (1886), 'असमीया व्याकरण' (1859), 'पढ़ाशालीया अभिधान' (1892), 'संक्षिप्त हेमकोश' (1894); उपन्यास : 'बाहिरे रं चं आरु भितरे को वा भातुरी' (1876); नाटक : 'कानीया कीर्तन' (दे०) (1861), 'हेमकोश' (1900)। 'बाहिरे रं चं आरु भितरे को वा भातुरी' नामक पुस्तक को कुछ लोग असमीया साहित्य का प्रथम उपन्यास मानते हैं। इसमें समाज में प्रचलित पाखंड, व्यभिचार, कुसंस्कारों आदि का चित्रण है। इसे व्यंग्यात्मक प्रबंध ही अधिक कहना चाहिए।

'कानीया कीर्तन' नाटक में दिखाया गया है कि अंग्रेजों के इस देश में आगमन से अफीम का प्रचार बढ़ गया था। इसमें अफीम के बुरे प्रभाव का वर्णन किया गया है। नाटक की विशेषता इसका तीक्ष्ण व्यंग्य है।

बरुवा जी का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य 'हेमकोश' नामक बृहत् कोश का निर्माण है, जिसका प्रकाशन इनकी मृत्यु के पश्चात् श्री हेमचंद्र गोस्वामी (दे०) एवं गार्डन साहब के प्रयत्नों से हुआ था।

वैज्ञानिक पद्धति से प्रथम शब्दकोश-निर्माता एवं असमीया-वर्तनी को सुस्थिर रूप देने तथा प्रथम व्यंग्य लेखक के रूप में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

बरुवानी, धर्मेश्वरीदेवी *(अ० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1960 ई०]

जन्मस्थान—गौहाटी, पंचवटी।

इनकी शिक्षा घर पर ही हुई थी। इनका जीवन कष्टमय रहा था। इनका विवाह 14 वर्ष की आयु में एक प्रसिद्ध व्यवसायी के साथ हुआ था। 21 वर्ष की आयु में वातरोग के कारण ये पंगु हो गई थीं। बाद में ये अंधी भी हो गई थीं। इनके कष्ट ही इन्हें कवयित्री बना गये थे। असम-साहित्य-सभा से इन्हें 1956 ई० में 'काव्य-भारती' उपाधि प्राप्त हुई थी।

प्रकाशित रचनाएँ—'फुलर शराइ' (1928), 'प्राणरपरश' (1952), 'फुलर शराइ' में जीवन की वेदनाएँ व्यक्त हुई हैं। 'आवाहन' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएँ 'प्राणरपरश' में संगृहीत हैं। स्वास्थ्य-लाभ के समय सागर की विशालता देखकर इन्होंने प्रकृति-विषयक कविताएँ लिखी थीं। स्त्री सुलभ अनुभूति और धर्म-भाव का संयत और अलंकृत शैली में प्रकाशन इनकी कविता में मिलता है। ईश्वर पर विश्वास और प्रियजनों के प्रति स्नेह इनके दो विशेष लक्ष्य रहे हैं। कविता में छंद का विलास नहीं है, किंतु कमनीयता है। सांसारिक कष्टों से इनके मन में तिक्तता नहीं आई है; इन्होंने सुख-दुःख को भगवान की देन मानकर स्वीकार किया है।

असमीया की कवयित्रियों में इनका विशेष स्थान है।

बर्मा, ज्ञानींद्र *(उ० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

श्री ज्ञानींद्र बर्मा बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार है। इनका जन्म बुधुमपुर, कटक में हुआ था। ये पूर्णरूप से स्वतंत्रचेता, परंपरा विरोधी, तथा नूतन-पंथी हैं। धर्म, सामाजिक परंपरा तथा राजनीतिक स्थिति के प्रति इनमें आस्था नहीं है, किंतु कवि-धर्म के प्रति ये अत्यंत सजग हैं। कृत्रिम आदर्श के प्रति इनकी रचनाओं में व्यंग्यात्मक कठोरता मिलती है। परंपरा-विरोधी उत्साह में कलाकार की अपेक्षा इनका विचारक रूप अधिक प्रखर होता गया है।

इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—गीति नाट्य 'बोले हुटि', 'कलरेइ फूल', नाटक 'स्वर्णयुगर सध्या', एकाकी 'स्वर्गर लोतक', कविता 'एक रात्रि', उपन्यास 'शताब्दीर स्व न भग', 'लालघोडा', 'तनु अतनु' 'अपरान्हर आकाश' (दे०) आदि ।

बळ, नदकिशोर, (उ० ले०) [जन्म—1875, मृत्यु—1928 ई०]

पल्ली कवि नदकिशोर ने उडीसा के पल्ली-जीवन को काव्य-महिमा दी है। इनकी रचनाओ मे जातीय परपरा जातीय भाषा व छद मे उद्भासित हो उठी है। पल्ली-जीवन की विशिष्ट दृष्टिभगी, अभिव्यजना की स्वाभाविकता, लोकोक्ति और मुहावरे, पल्लीगीत आदि के द्वारा इस प्रतिभावान कवि ने जिस साहित्य का निर्माण किया है, उसमे पल्ली-उत्कल की काव्यात्मा मुखरित हो उठी है। स्वरचित ओड, वेलाड, और गीति-कविताओ मे, लोक-गीतो की राग-रागिनियो मे इस कवि ने मनोज्ञ कठ से चिरपरिचित जनपदो की शातिमय सुषमा जनपदवासियो की सरल-सुदर जीवन लीला का मान किया है। शहरी जीवन के दूषित वातावरण मे इनकी रचनाओ ने माटी की सोधी सुगध भर दी है।

कटक जिले के कुसुपुर गाँव की मनोरम प्रकृति की गोद मे इस कवि ने जन्म लिया था। शिशु-मन पर अकित प्रकृति की वह मनोरम छवि, कवि-चित्त पर ग्रामीण परिवेश का वह सूक्ष्म प्रभाव, उच्चतर पश्चिमी शिक्षा तथा शहरी जीवन से भी नही मिट सकी।

इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'पल्ली-चित्र' (दे०) पल्ली जीवन के रूपायन का सार्थक प्रयास है। 'निर्झरिणी', 'शर्मिष्ठा', आदि इनकी अन्य काव्यकृतियाँ हैं। इनका उपन्यास 'कनकलता' (दे०) भी पल्ली-जीवन तथा ग्रामीण प्रकृति की स्निग्ध सुषमा वितरित करता है। 'नाना-बाइया गीत' (शिशु-सगीत) भी पल्ली-परिवेश से स्पदित है। इन्होंने जो कुछ लिखा है, उसमे ग्रामीण जीवन व ग्राम्य परिवेश का कोई न कोई रूप अवश्य उभर कर आया है।

बलबीर सिंह, डाक्टर (प० ले०)

डाक्टर बलबीर सिंह भाई वीरसिंह (दे०) के छोटे भाई हैं जो वृत्ति से वनस्पति विज्ञानी होते हुए भी परिवार के साहित्यिक वातावरण के फलस्वरूप साहित्य-क्षेत्र मे प्रविष्ट हुए। आपने अपनी कृतियो के द्वारा चिंतन-प्रधान पजाबी गद्य की कमी को पूरा किया। धर्म, साहित्य-शास्त्र, इतिहास, सस्कृति तथा दर्शन आदि विषयो पर इन्होने गभीर चिंतन-मनन का प्रमाण दिया है। अनुभव की गहनता, विचारो की परिपक्वता और प्रकाड पाडित्य इनके अनेक निबधो मे प्रतिभासित होता है। पजाबी के सूफी-काव्य और भाई वीरसिंह की रचनाओ पर आपका अनुसधान-कार्य पजाबी आलोचना मे बहुत समादृत है। इसमे सदेह नही कि डाक्टर साहब अपनी रचनाओ मे साहित्य, धर्म, इतिहास और सस्कृति के मौलिक चरित्र की रक्षा नही कर सके परतु इस ओर कदम उठाने का साहसपूर्ण कार्य उन्होने अवश्य किया।

'कलम दी करामात' (दे०), 'लवी नदर' आपके लेखो के प्रतिनिधि सग्रह है।

बलरामदास (उ० ले०) [समय—सोलहवी शती ई०]

उडीसा के 'तुलसी' बलरामदास वैष्णव कवियो व पचसखाओ (दे०) मे आयु मे सबसे बडे थे। इनके पिता सोमनाथ महापात्र, प्रताप रुद्रदेव सोलहवी शती के मत्री थे। बलरामदास, जगन्नाथदास (दे०) व प्रताप रुद्र देव के गुरु थे। विद्वानो के अनुसार चैतन्य (दे०) देव से इनकी भेंट पुरी मे हुई थी। इनका विवाह हुआ था तथा कई सतानें भी थी। बाद मे इन्होंने सन्यास लेकर मठ की स्थापना की।

इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'जगमोहन रामायण' दाडी-वृत्त मे होने के कारण 'दाडी रामायण' (दे०) भी कहलाती है। यद्यपि इसकी विषयवस्तु 'वाल्मीकि-रामायण' (दे०) से गृहीत है, किंतु हिंदी मे 'तुलसी-रामायण' (दे० रामचरितमानस), तमिल मे 'कब रामायण' (दे०) के समान ही यह एक स्वतत्र रचना भी है, जिसमे कल्पना का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इन्होंने अपनी रामायण मे उत्कलीय जीवन को साकार कर दिया है। यूरोपीय जीवन मे 'ओडेसी' और 'इलियट' के समान ही 'सारला महाभारत' (दे०) तथा 'दाडी रामायण' प्रबध उडिया साहित्य मे सर्वमान्य रहेंगे। 'श्रीमद्भगवद्गीता', 'भाव समुद्र', 'वट अवकाश', 'पणस चोरी' आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

इनकी जनभाषा मे आध्यात्मिक गूढ ज्ञान के भारवहन करने की क्षमता है। बलरामदास एक महा

भक्त कवि के रूप में चिरस्मरणीय रहेंगे।

बलिदत्त *(उ० पा०)*

यह गोपीनाथ महांति (दे०) के यथार्थवादी उपन्यास 'दानापाणी' का मुख्य पात्र है। इसके चरित्र के माध्यम से उपन्यासकार ने संप्रति भारतीय समाज के दानापाणी-संबंधी संघर्ष, नौकरशाही के तंत्र में पिसता इंसान, महत्वाकांक्षा-जनित नैतिक स्खलन आदि का चित्रण किया है।

बलिदत्त कंपनी की नौकरी करता है। लेखक की भाषा में—'वह अनजान किसी गली-कूचे का नगण्य-सा व्यक्ति है।' पर वह भी जीना चाहता है, अपने व्यक्तित्व की सामाजिक मान्यता चाहता है। जीवन-निर्वाह और अस्मिता की स्थापना के लिए धन व पदोन्नति परम आवश्यक है; क्योंकि आज व्यक्तित्व का परिचय उसके मानवीय गुणों में नहीं वरन् भौतिक संपदा में अंतर्निहित है। अतः जुगाड़ी बलिदत्त इसके लिए सब कुछ कर सकता है—आत्मसम्मान, नैतिकता, पत्नी का सतीत्व सभी कुछ दाँव पर लगा सकता है।

अंत में उपन्यासकार कहता है—'आज इस भयंकर बीमारी से सभी आक्रांत हैं—चपरासी से लेकर बड़े अफसर तक—राहत कहीं नहीं।'' तब भी बलिदत्त मौन प्रश्न बनकर हमारे सामने खड़ा है—अपनी महत्वाकांक्षा में दीन, अपने संघर्ष में असहाय, अपने पतन में करुण, अपनी प्रतिष्ठा-स्थापना में दुर्बल एवं अवहेलित।'

बलोच, नबी बख़्श ख़ान *(सिं० ले०)*

इनका जन्मस्थान सिंध का एक छोटा-सा गाँव जाफ़र ख़ान लगारी है। इनकी शिक्षा-दीक्षा बंबई तथा अलीगढ़ विश्वविद्यालयों और अमेरिका में हुई थी। इस समय ये सिंध युनिवर्सिटी, हैदराबाद में शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष और प्राध्यापक हैं। सिंधी अदबी बोर्ड हैदराबाद की योजना के अंतर्गत इन्होंने सिंधी-लोक-साहित्य पर लगभग तीस पुस्तकें संपादित कर प्रकाशित कराई हैं। इसके अतिरिक्त 'जामा लुगात सिंधी' के प्रथम भाग का भी इन्होंने संपादन किया है। इनकी अन्य रचनाओं में उल्लेखनीय हैं—'सिंधी बोली अ जी मुख़्तसर तारीख़' और 'बेलायुनि जा बोल' (लोक-साहित्य)। सिंधी भाषा, साहित्य और सिंध के इतिहास पर इन्होंने महत्वपूर्ण अनुसंधान किया है, जिसके लिए सिंधी जगत् इनका हमेशा ऋणी रहेगा।

बल्लभ *(म० पा०)*

यह कृ० प्र० खाडिलकर (दे०) के 'कीचक-वध' नाटक का पात्र है। बल्लभ का चरित्र तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का कारण है। बल्लभ (भीम) का पौराणिक चरित्र समसामयिक परिस्थितियों में विघटित कांग्रेस के गरम दल की भावाभिव्यक्ति है। विराट (ब्रिटिश साम्राज्य) के सहायक कीचक (व्हाइसराय लॉर्ड कर्ज़न) द्वारा सैरंध्री (दे०) (भारत-माता) के प्रति किए गए दुर्व्यवहार का समय रहते यथा-शक्ति प्रतिकार करना चाहता है। कीचक की अनीतियों के सतत प्रहारों से इसका संयम डगमगाता अवश्य है, परंतु विवेक का सीमोल्लंघन कहीं भी नहीं होने पाता। कंक भट्ट के सद्परामर्शों से यह कहीं भी विमुख नहीं होता और अंत में कीचक की 'अति' का यथोचित उत्तर देकर अपने संयम और धैर्य का सबल परिचय देता हुआ समाज और राजनीतिक परिस्थितियों के सजीव चित्रांकन में गहरा पैठ जाता है।

संक्षेप में, बल्लभ का चरित्र क्रांतिकारी क्रियाशील प्रतिकारार्थ उद्यत होते हुए भी उद्दंड नहीं हो पाया है। दूसरे शब्दों में, हम इसे भावों पर बुद्धि के नियंत्रण की सफल अभिव्यक्ति कह सकते हैं।

बसंतर मोह *(उ० कृ०)*

यह रवि नारायण महापात्र (दे०) का कहानी-संग्रह है। इसकी सभी कहानियों में नारी और पुरुष के चिरंतन संबंध को समझ लेने का प्रयास है। मनुष्य की आदिम कृतियाँ और उसकी नैसर्गिक इच्छाएँ सभ्यता और संस्कृति की खराद पर चढ़ कर भी आज अपने अनगढ़ रूप में विद्यमान हैं और ये उसके समस्त क्रिया-कलापों की संचालक हैं। जीवन-प्रश्न अत्यंत पेचीदा है, उसे सुलझाना सरल नहीं है। लेखक ने किसी भी प्रश्न को उठाकर उसका पूर्ण उत्तर नहीं दिया है—किसी ओर कुछ इंगित कर दिया है। इन प्रश्नों के प्रति कहानीकार का चिंतनशील, वैज्ञानिक दृष्टिकोण मिलता है। शैली विश्लेषणात्मक एवं सशक्त है। भाषा में जहाँ प्रचंड अभिव्यंजना-शक्ति है वहीं उसमें अपना निजी सौंदर्य भी है।

बसवनाल, एस० एस० (क० ले०) [समय—1893-1951 ई०]

श्री बसवनाल का जन्म उत्तर कर्णाटक मे धारवाड मे एक सुसस्कृत वीरशैव परिवार मे हुआ। वीरशैव तरुण-सघ के आप सस्थापक थे। 'प्रबोध' नामक एक मासिक पत्रिका का सपादन आपने किया। आप चौंतीसवे कन्नड साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष थे। कुछ समय तक आप 'श्रम-कर्णाटक' के सपादक भी रहे। आपने सत बसवेश्वर के वचनो का अत्यत प्रामाणिक सस्करण तैयार किया है। आप वीरशैव धर्म व साहित्य के अधिकारी विद्वान थे। आपकी रचनाएँ ये हैं—'कर्णाटक काव्यावलोकन', 'कर्णाटक-शब्दानुशासन प्रकाशिके', 'कैवल्य कल्पवल्लरी', 'कैवल्यदर्पण', 'चेन्नबसव पुराण', प्रभुलिंगलीले', 'बसवण्णनवर वचनगळु', 'शवरशकरविलास' तथा 'शिव तत्त्व प्रकाशन'।

आपने श्री के० आर० श्रीनिवास अय्यगार के साथ बसवेश्वर के वचनो का अनुवाद किया है। इनकी शैली अत्यत प्रभावशाली है। इस नाते आप कर्णाटक तथा महाराष्ट्र मे विख्यात है।

बसवपुराण (क० कृ०) [समय—पद्रहवी शती का आरभ]

इसके रचयिता भीम कवि नामक एक वीरशैव कवि हैं जिनका समय 1400 ई० माना जाता है। यह तेलुगु मे 'पाळकुरिके सोमनाथ' (दे०) द्वारा लिखे 'बसवपुराण' का कन्नड अनुवाद है। 61 सधियो का यह वृहत् ग्रथ षट्पदी छद मे रचा गया है। इसमे सत बसवेश्वर के चरित की अपेक्षा उससे सबद्ध कथाओं, पोपलीलाओ का पोवाडो का वर्णन है। इसके साथ अन्य वीरशैव सतो की कहानियाँ भी हैं। हरिहर (दे०) की 'बसवराजदेवरगळे' (दे०) का मुकाबला यह नही कर सकता क्योकि वह चरितकाव्य है और यह पुराणकाव्य, उसमे बसवेश्वर के व्यक्तित्व की प्रधानता है तो इसमे उनके चमत्कारो की प्रधानता है।

षट्पदी म समग्र काव्य की रचना करने मे भीम कवि सर्वप्रथम हैं किंतु षट्पदी बहुत परिमार्जित नही है। वीरशैव साहित्य मे यही एक ग्रथ है जिसकी रचना तिथि असदिग्ध है। अत इसका ऐतिहासिक महत्व भी है।

बसवपुराणमु (ते० कृ०)

रचनाकार—पाल्कुरिकि सोमनाथुडु (दे०) समय—तेरहवी-चौदहवी शती)।

यह काव्य वीरशैवो का वेद माना जाता है। वीरशैव सप्रदाय के प्रवर्तक बसव का पूर्वजन्म-सस्कारो के कारण बचपन से ही भक्त होना, यज्ञोपवीत आदि वैदिक कर्मकाड तथा वर्णव्यवस्था आदि का परित्याग करना, एकमात्र भक्ति-प्रधान, वर्णव्यवस्थाहीन तथा सर्वजनसुलभ वीरशैव-मत की स्थापना, तपस्या, शिव का साक्षात्कार, उनका महत्तर सदेश आदि का वर्णन इसमे विस्तार से किया गया है। बसव ने जनता की भाषा मे अनेक गीतो की रचना करके अपने सिद्धातो का प्रचार किया था। इस काव्य मे बसव के जीवन-चरित्र के साथ-साथ उनके शिष्यो के जीवन-चरित्र भी सम्मिलित किए गए हैं। वेद, स्मृति, आगम आदि अनेक आर्ष-ग्रथो से शिव के महत् स्वरूप के प्रमाण भी इसमे एकत्र किए गए हैं। तेलुगु के वीरशैव-वाङ्मय मे यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृति है।

कवि की भक्ति का आवेग काव्य मे सर्वत्र परिलक्षित होता है। सस्कृत-छदो तथा दीर्घसमासो से पूर्ण रचना साधारण जनता तक पहुँच नही सकती। अत इन्होंने तेलुगु के 'द्विपद' छद मे तथा सरल-स्वाभाविक तेलुगु मे इस काव्य की रचना की है। जीवत भाषा तथा लोकोक्तियो के सुदर प्रयोग की छटा इस काव्य की मुख्य विशेषताएँ हैं। इस काव्य से 'द्विपद' छद को तेलुगु साहित्य मे प्रतिष्ठा प्राप्त हुई तथा परवर्ती द्विपद काव्यो के लिए यह काव्य आदर्श बना रहा। परतु इसका इतिवृत्त सामान्य मानव जीवन के साथ विशेष रूप से सबद्ध नही है। अत इस काव्य को यथेष्ट प्रचार नही मिल सका।

बसवप्प शास्त्री (क० ले०) [समय—1846-1891 ई०]

बसवप्प शास्त्री कन्नड साहित्य के उन्नीसवी शती के श्रेष्ठ कवियो मे हैं। इनका जन्म 1864 ई० मे बेंगलूर जिले मे एक वीर शैव परिवार मे हुआ था। इनके पिता महादेवशास्त्री प्रकाड पडित थे। ये चामराज ओडेयर के दरबारी कवि थे। इन्होंने 'शाकुतलम्', 'विक्रमोर्वशीयम्', 'चडकौशिक' तथा 'उत्तर रामचरित'—इन चार सस्कृत नाटको का सफल अनुवाद किया। अभिज्ञान शाकुतलम्'

इनका सर्वाधिक लोकप्रिय और उत्कृष्ट अनुवाद है। इसके फलस्वरूप इन्हें 'अभिनवकालिदास' विरुद दिया गया। अँग्रेजी से इन्होंने अनुवाद किए हैं। 'अंथेलो' के आधार पर इन्होंने 'शूरसेनचरित्र' की रचना की भर्तृहरि (दे०) के 'नीतिशास्त्र' का कन्नड अनुवाद भी इन्होंने किया है। 'दमयंती स्वयंवर', 'रेणु का विजय काव्य' आदि चंपूग्रंथों के अतिरिक्त कई शैवस्तोत्र भी इन्होंने लिखे हैं। इनकी शैली अत्यंत सरस है। पद्यों के अनुवाद में मूलभाव को कहीं भी व्याघात नहीं पहुँचा है। इनके वृत्त अपनी मृदु-मधुर पद-शैली के कारण नागचंद्र (दे०) आदि प्राचीन कवियों की नाद माधुरी का स्मरण दिलाते हैं। ये उन्नीसवीं शती के प्रतिनिधि कवियों में परिगणित हैं।

बसवराज कट्टीमनि *(क० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

कन्नड के सर्वश्रेष्ठ प्रगतिवादी उपन्यासकार बसवराज कट्टीमनि का जन्म 5-10-1919 को बेलगाँव जिले के अंतर्गत गोकाक में एक किसान के घर में हुआ था। इनकी शिक्षा ठीक तरह से नहीं चली। वे मैट्रिक भी पूर्ण नहीं कर पाए। गरीबी के कारण उनको लाचार होकर गृहस्थी के जुए में जुटना पड़ा। 'संयुक्त कर्नाटक', 'तरुण कर्नाटक', 'कर्नाटक बंधु', आदि समाचार-पत्रों में इन्होंने काम किया। 1942 ई० में ये स्वातंत्र्य-संग्राम में कूद पड़े और जेल गये। 16 साल की उम्र से ही इनकी साहित्य-साधना शुरू हो गई थी। पत्रकारिता से थक कर जब गाँव लौटे तो मलामरडी में काश्तकारी में लग गये। ये लेखनी और हल एक-साथ चलाने वाले सव्यसाची हैं। इन्होंने किसानों का संघटन किया और ग्राम-सुधार में रुचि ली। 1968 ई० में इनको साहित्यकारों की ओर से मैसूर राज्य विधान-परिषद् में मनोनीत किया गया उसी वर्ष इनके श्रेष्ठ उपन्यास 'ज्वालामुखी' को सोवियत लैंड पुरस्कार मिला। श्री कट्टीमनि ने अब तक करीब पैंतीस उपन्यास, नौ कहानी-संग्रह, एक नाटक तथा एक जीवनी लिखी है। आपके सर्वप्रथम कहानी-संग्रह 'कारवाँ' (1945 ई०) ने कन्नड साहित्य में बड़ी क्रांति ला दी थी। प्रचलित परं-पराओं के प्रति विद्रोह, धार्मिक अंध-श्रद्धाओं, मूढ़ रूढ़ियों एवं सांप्रदायिकता के विरुद्ध विद्रोह इनकी हर कृति में दिखाई देता है। 'स्वातंत्र्य देडेगे', 'मणि मडिदवरु' आदि उपन्यासों में इन्होंने स्वातंत्र्य-संग्राम का चित्रण किया है। गाँव के अज्ञात वीरों की वीरगाथा है 'माडि मडिदवरु' (करके मरने वाले—करो या मरो के अनुसार) 'जगद्गुरु', 'मोहर बलेयल्लि' आदि उपन्यासों में उन्होंने मठाधिपतियों आदि द्वारा धर्म की आड़ में किए जाने वाले अत्याचारों का भंडाफोड़ किया है। 'गोवा देवी' में कांग्रेसी नेताओं की चरित्रहीनता का अत्यंत सरस चित्रण हुआ है। 'प्रिय बांधवी' में भी शराबी की समस्या चित्रित है। 'बीदियल्लि बिद्दवळु' (रास्ते में पड़ी हुई औरत), 'मण्णु मत्तु हेण्णु' (मिट्टी और औरत) तथा 'खानबलियनीला' में वेश्या-समस्या का बीभत्स चित्रण है। 'चक्रव्यूह' तथा 'बेंगलूरिगोंदु टिकेट्टु' में स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजकीय नेताओं के भ्रष्टाचार एवं अतीत का यथार्थ चित्रण है। 'प्रपात', 'द्रोही' आदि में मनोविज्ञानिक चित्रण है। 'नानूपो-लीस नागिद्दे' में पुलिस-जीवन का भांडा फोड़ा गया है तो 'तत्तरी प्रयोग' में बीमा विभाग की कमज़ोरियों पर कटाक्ष है। 'नीनन्नमुट्टबेड' में अस्पृश्यता की समस्या है। 'गिरिम नविलु', 'पौरुषपरीते' आदि उनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं इनकी प्रतिनिधि कृति 'ज्वालामुखी' एक राजनीतिक उपन्यास है। सत्य, धर्म, अहिंसा आदि की आधारभूमि पर निर्मित कांग्रेस स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद कैसे भ्रष्टाचार की बीबी बनी, कम्युनिस्ट सोशलिस्ट आदि पार्टियाँ कैसे आपसी संघर्षों से निर्वीर्य हुईं तथा इनके समानांतर रूप से दुराचार एवं गरीबों के शोषण पर यह एक श्रेष्ठ उपन्यास है, पूँजीवाद पर तीक्ष्ण कटाक्ष यहाँ है।

चरित्र-चित्रण में लेखक को अद्भुत सफलता मिली है। उनकी शैली अत्यंत ओजोगुणमयी है, आवेश उनका स्थायी है। किंतु कहीं-कहीं प्रचार की गंध आती है। भावना कच्ची-सी लगती है। कला-पक्ष ऐसे प्रसंगों में क्षीण हो गया है।

बसवराजदेवर रगळे *(क० कृ०)*

कन्नड-साहित्य में महाकवि हरिहर (दे०) (समय—1200 ई० के आसपास) 'रगळेय हरिहर' ('रगळे' एक छंद का नाम है, हरिहर ने उस छंद में अनेक रचनाएँ की हैं) नाम से प्रसिद्ध हैं। 'रगळे' छंद चरित-काव्यों के लिए बहुत उपयुक्त है, प्रबंध का निर्वाह उसमें अच्छे ढंग से हो सकता है। हरिहर का 'बसवराजदेवर रगळे' उनके कला-सौष्ठव का प्रमाण है। आकार में वह छोटा है, पर उसका महत्व बहुत है; वह महाकाव्य की कोटि में आता है। उसमें बसवण्णा अथवा बसवेश्वर (दे०) के चरित्र का अत्यंत मार्मिक उद्घाटन हुआ है। बसवेश्वर पर कई वीरशैव कवियों ने 'पुराण' लिखे हैं। हरिहर के

'रगळे' और उन पुराणो की कथा मे कुछ अतर भी हैं।

हरिहर ने बसवेश्वर के बाह्य तथा आतरिक जीवन का सुदर विश्लेषण किया है। आलोचकों का कहना है कि इस अतरग विश्लेषण मे कवि का व्यक्तित्व भी प्रकाश मे आया है। बसवेश्वर के व्यक्तित्व और कवि के व्यक्तित्व मे समानता रही होगी। कारण यह है कि भक्ति के प्रसग का वर्णन करते समय वह अत्यत भाव विह्वल हो जाते हैं। भक्तिरसपूर्ण वातावरण निर्माण, सुदर वर्णन और सवाद भाव-पूर्णता, भव्य कल्पना और सहज अलकारो के प्रयोग के कारण 'बसवराजदेवर रगळे' एक मनोहर कृति बन गई है। उसकी भाषा मे जादू है और शैली मे आकर्षण। उसका कथानक तेरह स्थलो (सर्गों) मे विभाजित है जिनमे पद्य और गद्य दोनो का प्रयोग हुआ है। सम स्थलो मे प्राय गद्य का और विषम स्थलो मे पद्य (रगळे) का प्रयोग हुआ है। हरिहर का गद्य पद्य के समान ही सुदर, प्रवाहशील और सहज अलकारो से युक्त है।

बसवराजु, डा० एल० *(क० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

कन्नड के सुप्रसिद्ध अनुसधित्सु विद्वान डा० एल० बसवराजु का जन्म 1919 ई० मे कोलार जिले के दड्डगुरु मे हुआ। इन्होने अपनी शिक्षा गुरुकुल तथा महाराजा कालेज मैसूर मे पाई। अब तक इनकी 18 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पाठानुसधान मे इनकी विशेष रुचि है। बसव ने 'अक्कमहादेवी', 'अल्लमप्रभु' (दे०) आदि वीरशैव सतो की वाणियो का प्रामाणिक सस्करण अत्यत परिश्रम के साथ प्रस्तुत किया है। 'अल्लमनवचन चद्रिके' मे आपने अल्लमप्रभु के वचनो का अत्यत प्रमाणिक पाठ प्रस्तुत किया है जिस पर इन्हे मैसूर विश्वविद्यालय से डी० लिट० की उपाधि प्राप्त हुई है। अब तक यही मान्यता रही कि पुरदरदास (1950 ई०) (दे०) ही कर्णाटक-सगीत के पितामह हैं, उनसे पहले सगीत-कृतियाँ थी ही नही किंतु डा० बसवराजु ने अपने अनवरत परिश्रम से वचनकार वीरशैव सतो के गेयपद ढूँढ निकाले और यह दिखाया कि कन्नड सगीत परपरा बा-हवी शती से ही मिलती है। 'शिवदास गीताजली' मे अपने ऐसे वीरशैव सतो के गीतो का सकलन किया है 'शून्य सपादन' (दे०) का प्रामाणिक सस्करण उनकी सबसे बडी उपलब्धि है। यह आपकी मेरुकृति है। इसके अतिरिक्त आपने सस्कृत के नाटको का एक सग्रहानुवाद भी प्रस्तुत किया है।

बसवेश्वर *(क० ले०)* [समय—अनुमानत 1130-1200 ई०]

बसवेश्वर को कर्नाटक के महापुरुषो मे गिना जाता है। इनके जीवनचरित से सबधित उपलब्ध सामग्री के विषय मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। अनेक दतकथाएँ और किंवदतियाँ इनके विषय मे प्रचलित हैं। आतरिक साक्ष्य के आधार पर यह कहा जाता है कि इनका जन्म 1130 ई० के लगभग हुआ था और मृत्यु 1200 ई० के लगभग हुई थी। इनका जन्मस्थान कर्नाटक का इगलेश्वर बागेवाडि ग्राम है। इनको 'बसव', 'बसवण्णा', 'बसवराज' और 'बसवदेव' भी कहा गया है। बाल्यकाल मे ही इन्होने अर्थशून्य उपनयन सस्कार का विरोध किया था उसी समय इनके हृदय मे सामाजिक कुप्रथाओ और रूढियो के प्रति अविश्वास का भाव जाग्रत हो गया था और ईश्वर के प्रति विश्वास और भक्ति दृढ हो गई। ये कूडल सगमेश्वर देवालय चले गये थे। किंतु बाद मे माता-पिता के प्रयत्न से इनका उपनयन हुआ था। कुछ वर्षों के पश्चात् इनका विवाह कल्याण के राजा बिज्जळ के मत्री बलदेव की पुत्री से हुआ। विवाह के अनतर भी ये कूडल मे ही रहे। बलदेव की मृत्यु के बाद ये राजा बिज्जळ का आह्वान पाकर उनके मत्री हुए। बिज्जळ इनके सत्कार्यों से बहुत प्रभावित थे, उन्होने बसवेश्वर के वीरशैव धर्म-प्रचार मे सहयोग प्रदान किया। बसवेश्वर की प्रसिद्धि सुनकर दूर-दूर से लोग उनके दर्शन के लिए आते थे और इस प्रकार ये 'भक्ति-भडारी' कहलाये। इन्होने धार्मिक शिक्षा दीक्षा के निमित्त 'शिवानुभव मडप' की स्थापना की जहाँ पचाचार, अष्टावरण, षट्स्थल आदि वीरशैव सिद्धात सिखाये जाते थे। ये अध्यात्म के क्षेत्र मे उच्च-नीच भावना के विरोधी थे, स्त्री और पुरुष को भी समान मानते थे। पेशो के कारण उच्चता और नीचता का भाव नही होता। समर्पण-बुद्धि मे कोई भी पेशा अपनाया जाये, वह ठीक है, उसी मे स्वर्ग है—इस विचार का इन्होने प्रचार किया। 'कायक ही कैलास है' अर्थात् 'परिश्रम की कमाई ही स्वर्ग है'—ऐसे सुदर विचार के उद्बोधन द्वारा उन्होने समाज मे नये उन्मेष का सचार किया। उन्होंने अपने विचार प्रकट करने के लिए जो साधन अपनाया वह कन्नड-साहित्य मे 'वचन' (एक प्रकार गद्यगीत) कहलाता है। इनके वचनो का विषय भक्ति, ज्ञान और वैराग्य है, परतु वह काव्य रस से परिपूर्ण है। उनमे दैनिक जीवन से सबधित दृष्टातो के द्वारा तात्त्विक विषयो का सरल, सुबोध और सुदर वर्णन है।

बसवेश्वर वचनगळ् *(क० लें०)*

संत बसवेश्वर (दे०) कर्णाटक के विभूतिपुरुषों में से हैं। बारहवीं शती में उन्होंने वीरशैव मत का उपबृंहण कर कर्णाटक में एक बहुत बड़ी क्रांति की थी। जाति-पाँति, छुआछूत आदि का विरोध कर उन्होंने धार्मिक साम्राज्य में लोकतंत्र की स्थापना की, आध्यात्मिक साम्यवाद की प्रतिष्ठा की। अपनी अनुभूतियों को सरल व प्रभावी वचनों के द्वारा उन्होंने अभिव्यक्त किया। यह वचन-साहित्य (दे०) कन्नड का अपना विशिष्ट साहित्य है जिसकी तुलना केवल उपनिषदों से की जा सकती है। यह विधा बसव से प्राचीन है। बसव ने उसका परिपूर्ण विकास किया। उनके समकालीन संत प्रभुदेव, अक्कमहादेवी (दे० महादेवियक्का), चेन्नबसव (दे०), सिद्धराज आदि ने भी वचनों की रचना की है। वचन गद्य एवं पद्य के बीच की शैली है। उसमें गद्य की प्रवाहमयता न रहने पर भी उसकी सरलता होती है, पद्य की छंदोगति न रहने पर भी उसकी लय रहती है। लय-मात्रा की प्रचुरता के कारण कुछ वचन गेय बने हैं। इन्हें हम 'गद्य-काव्य' कह सकते हैं। इनकी विशेषताएँ भी हैं अनुभूति की गाढ़ता एवं सूक्ष्मता के साथ ही कहावतों व मुहावरों का प्रयोग, अलंकाररम्यता, सांकेतिकता एवं तात्त्विक श्लेष, प्रत्येक वचन-लेखक के इष्टदेव के नाम या 'अंकित' के साथ समाप्त होता है। बसवेश्वर के वचन भक्ति के भार से अवनत हैं, विचारों की विराटता से उन्नत हैं। उनमें एक ओर रहस्यवाद के श्रेष्ठतम रूपों के दर्शन होते हैं, प्रवृत्ति के परिपूर्ण चित्र मिलते हैं, निर्मल आत्मालोचना है तो दूसरी ओर समाज की कटु आलोचना है। विडंबना है। इस तरह विचार एवं अनुभूति का अप्रतिम संगम इन वचनों में हुआ है।

बसवेश्वर का इष्टदेव नाम या अंकित है। 'कूडल संगमदेव'। वचनों की संख्या ठीक निश्चित नहीं है। अब तक प्रकाशित वचनों की संख्या 1250 है। इनको सबसे पहले संपादित कर प्रकाशित करने का श्रेय स्व० 'हळकट्टी', प्रो० शि० शि० बसवनाल आदि को मिलता है। इन वचनों को वीरशैव मतानुसार षट्स्थलों में वर्गीकृत किया गया है। बसवेश्वर के वचनों में हिंदी संतसाहित्य की तरह गुरु की महिमा, ईश्वर की सर्वव्यापकता, एकेश्वरवाद, मार्मिक बंधन-पाखंड-विडंबन, वर्णाश्रम धर्म का विरोध, छुआछूत का खंडन, बहुदेवोपासना का विरोध, सदाचार तथा अद्वैतानुभूति, विरहानुभूति, आदि के साथ-साथ 'कर्म' या 'कायक' पर विशेष जोर दिया गया है। यह बसवेश्वर की सबसे बड़ी विशेषता है। उन्होंने उदासी पंथ नहीं चलाया।

बसवेश्वर के वचन अपनी भावतीव्रता एवं वैचारिकता के अतिरिक्त साहित्यिक गुणों से भी मंडित हैं।

वसु, अमृतलाल (बँ० ले०) [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1929 ई०]

अमृतलाल बसु की रचनाओं को इन वर्गों में रखा जा सकता है—प्रहसन : 'हीरकचूर्ण' (1875), 'चोरेर उपर बाटपाड़ि' (1876), 'तिलदर्पण' (1881), 'विवाह विभ्राट' (1884), 'ताज्जब व्यापार' (1890), 'राजा बहादुर' (1891), 'कालापानि' (1893), 'ब्रात्र' (1894), 'एकाकार' (1895), 'बौमा' (1997), 'ग्राम्य विभ्राट' (1898), 'कृपेन धन' (1900), 'साबास आटाश' (1909); नाटक : 'तरुवाला' (1891), 'विभ्राता' (1893), 'आदर्श बंधु' (1900), 'खासदखल' (1912), 'नवयौवन' (1914), 'याज्ञसेनी' (1928)।

अमृतलाल वसु के प्रहसन दो प्रकार के हैं—शुद्ध प्रहसन तथा विद्रूपात्मक प्रहसन। पहले वर्ग में ये हास-परिहास की सामग्री प्रस्तुत करते हैं तथा दूसरे वर्ग में तीक्ष्ण व्यंग्य एवं कटु प्रहार करते हैं। वसु का प्रिय क्षेत्र है पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण तथा भारतीय मूल्यों की उपेक्षा और अवहेलना करने वाले व्यक्ति पर कटाक्ष। वसु ने सबसे कड़ी चोट स्त्री-स्वाधीनता पर की है। स्वदेशी आंदोलन की उपेक्षा और ऐश्वर्य-विलास में खो जाने वाले युवकों पर भी वसु ने व्यंग्य किया है। अंततः वे धार्मिक एवं नैतिक निष्ठा उत्पन्न करना चाहते हैं। इन प्रहसनों की रंगमंचीय सफलता और प्रसिद्धि असाधारण रही।

दीनबंधु (दे०) में मात्र उपहास है, गिरीश (घोष—दे०) भावनिष्ठ है, वसु में विसंगतियों पर गहरी चोट की क्षमता है। निश्चय ही इन्होंने बँगला प्रहसन तथा हास्य-व्यंग्य को नयी भंगिमा एवं गरिमा प्रदान की है।

वसु, कृष्णप्रसाद *(उ० ले०)*

इनका जन्म जाजपुर के कुँओसरपुर ग्राम में हुआ था। ये अच्छे नाटककार और संगीतज्ञ हैं, साथ ही ये सशक्त गद्यकार, कवि, गायक एवं कुशल शिक्षक भी हैं। इन्होंने कई गीति-नाट्य लिखे हैं और जात्रा अभिनय

मे नूतन शैली के साथ गद्य का प्रयोग किया है। 'झंकार' मासिक पत्रिका मे इन्होंने आधुनिक जात्रा-साहित्य का इतिहास 'आखडा घरर बैठक' (दे०) के नाम से प्रकाशित किया था। गद्य के क्षेत्र मे यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इनकी शैली मे अपनी विशिष्ट भगिमा के कारण एक विशेष आकर्षण है। उसमे ग्राम्य एव शिष्ट भाषा का सुदर सम्मिश्रण है, जो सूक्ष्म हास्य से अनुविद्ध है। सगीत नाट्य-समारोहो के द्वारा जनता के रुचि-परिष्कार मे इन्होंने विशेष योगदान दिया है।

बसु, बुद्धदेव *(बँ० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

आधुनिक बँगला साहित्य के क्षेत्र मे बुद्धदेव बसु जीवन एव यौवन के कवि रूप मे विख्यात ह। कविता, उपन्यास, कहानी एव समालोचनात्मक निबध लिखकर इन्होंने साहित्य-जगत् मे अपना स्थान बना लिया है। बुद्धदेव का पहला काव्य-ग्रथ है 'मर्मवाणी' (1925)। इसके उपरात 'बदीर वदना' (1930), पृथिवीर प्रति' (1933) 'ककावली' (1935), 'शीतेर प्रार्थना बसतेर उत्तर' (1955), आदि काव्य ग्रथ विशेष समादृत हुए है। युद्धोत्तर युग मे प्रेम, धर्म एव नीति के मूल्य-बोध मे किस प्रकार परिवर्तन आया उसी का परिचय मिलता है। इनकी कविता मे प्रेम की देहवादी व्याख्या मे कवि मुखर दिखाई पडता है। अपना, मैत्रेयी, अमिता, रमा, ककावती आदि देही प्रियाओ के प्रति कवि ने अपना प्रेम निवेदन किया है।

बुद्धदेव के उपन्यास और कहानी की पुस्तकें लगभग 50 हैं। इन्होंने उपन्यास की उपस्थापना-शैली मे नवीनता लाने का प्रयत्न किया है। पारिवारिक जीवन की साधारण घटनाओ की पटभूमिका मे लेखक ने अपना ही आत्म-विस्तार किया है और कदाचित् इसीलिए उनके उपन्यासो मे एकसरता का दोष दिखाई पडता है। इनके उपन्यासो मे मनुष्यो की भीड नही है, लेखक अपने मिलने वाले नर-नारियो को ही घुमा-फिरा कर एक के बाद-एक उपन्यास मे ले आया है। इनके कतिपय प्रसिद्ध उपन्यासो के नाम इस प्रकार हैं 'रडोडेन्ड्रन् गुच्छ' (1912), 'ये दिन फुटल कमल' (1933) 'धूसर गोधूलि' (1333), 'लालमेघ' (1934), 'तिथिडोर' (1949), 'मालिनाथ' (1952)। कहानियो के सग्रह मे 'एरा ओरा एव आरो अनेक' (1932), 'प्रेमेर विचित्रगति' (1934), 'खाना शेष पाना' (1943) आदि प्रसिद्ध है।

प्रबध रचना एव साहित्य-समालोचना मे बुद्धदेव बाबू की निपुणता एव प्रौढता स्पष्ट है। आत्मकथामूलक भ्रमणकथा 'हठात् आलोर झलकानि' (1935), एव 'साहित्य-चर्चा' (1954), 'रवीन्द्रनाथ : कथा-साहित्य' (1954) आदि समालोचनात्मक ग्रथ लेखक की प्रतिभा का सुदर निदर्शन है।

बसु, मनोज *(बँ० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

मनोज बसु ने अपने साहित्यिक जीवन के प्रारभ मे परिष्कृत स्वाभाविक जीवन-रस एव रोमास से युक्त सुमधुर कहानियो की रचना की थी। बाद मे इन्होंने कतिपय उत्कृष्ट उपन्यासो की रचना करके बगाल के राष्ट्रीय एव सामाजिक जीवन-स्तर तथा सुदरवन के इलाके के जलजगलवासी मनुष्यो की यथार्थनिष्ठ रोमानी कहानियो को अपरूप माधुर्य प्रदान किया था। इनके प्रसिद्ध कहानी-सग्रहो मे 'बन मर्मर' एव 'नरबाँध' (1933) सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। अतिप्राकृत की रोमानी अनुभूति एव सामततत्रीय अतीत के रहस्य को मनस्तत्त्वानुमोदित उपाय से उपस्थित कर इन्होने अपूर्व व्यजनामयता की सृष्टि की है। मनोज बाबू के उल्लेखनीय उपन्यासो मे 'भुलिनाइ' (1942), 'सैनिक' (1946), 'जनजगल' (1951), 'वृष्टि वृष्टि' (1957), 'आमार फाँसिहल' (1956), 'रक्तेर बदले रक्त' (1956), 'मानुष गडार कारिगर' (1959), 'रूपबती' (1960), 'बन केटे बसत' (1961), 'निशिकुटुब' (1953) आदि प्रसिद्ध हैं।

उपन्यासो मे इन्होने अतीत विलासी रोमानी दृष्टिकोण के स्थान पर यथार्थ जगत् के अकन के प्रति अधिक ध्यान दिया है परतु इनका स्नेहशील कोमल प्राण साधारणत जीवन के अप्रीतिकार रूप के उद्घाटन की ओर प्रवृत्त नहीं रहा। इन्होने राजनीतिक चितन-द्वद्व, साप्रदायिक नृशसता, शिक्षक समाज का अध पतन, समुद्र तट एव सुदरबन के इलाके के मेहनती लोगो की प्रकृति एव स्वार्थान्वेषियो मे उनके निरतर सग्राम के नाना अनतिरजित चित्रो को वस्तुनिष्ठता के साथ प्रस्तुत किया है परतु नैराश्यमूलक यथार्थ के स्थान पर परिसमाप्ति मे आदर्शात्मक रोमानी मनोवृत्ति का ही परिचय दिया है। विषय-वैचित्र्य की दृष्टि से लेखक का 'निशिकुटुब' सर्वाधिक जनप्रिय उपन्यास है जिसमे चौर्यवृत्ति की प्राचीन यथार्थ-सम्मत एव भावादर्शमूलक कहानी को निर्बाध कौतुकजनक एव रोमाचकारी ढग से व्यक्त किया गया है। वस्तुत चौर्यवृत्ति के इतिहास के व्याज से उन्होने हमे

असंख्य एवं विचित्र नर-नारियों के जीवन-मेले का कौतूहलाभिभूत दर्शक बनने का मौका दिया है। उपन्यास-क्षेत्र में स्वच्छंद गति एवं जीवन पर्यवेक्षण शक्ति मनोज वसु की सबसे बड़ी विशेषताएँ रही हैं। ये प्रधानतः कथाकार हैं परंतु इनके नाटक 'नूतन प्रभात' (1944), 'राखिबंधन' (1950) आदि एवं 'चीन देखे एलाम' भ्रमण-वृत्त इनकी प्रतिभा के विशिष्ट निदर्शन हैं।

वसु, मनोमोहन *(बँ० ले०)* [जन्म—1831 ई०; मृत्यु—1912 ई०]

आधुनिक युग के प्रारंभिक नाट्यकारों में मनोमोहन बसु का नाम विशेष प्रसिद्ध है। मनोमोहन बसु ने प्राच्य आदर्श के अनुसरण पर अपने नाटकों की रचना की है। सामाजिक नाटकों के रचयिता होने पर भी लेखक ने पौराणिक नाटकों के रचनाकार के रूप में ही अपने आप को प्रतिष्ठित किया है। 'प्रणय-परीक्षा' (1869), 'आनन्दमय नाटक' (1890) आदि उनके सामाजिक नाटक है एवं 'रामेर अधिवास ओ बनबास' (1867), 'सती' (1873) तथा 'हरिश्चन्द्र' उल्लेखनीय पौराणिक नाटक हैं। लेखक ने पुरानी पौराणिक यात्राओं (लोकनाटक) की वैचित्र्यहीनता एवं एकरसता के स्थान पर आधुनिक पौराणिक नाटकों की सफल रचना की, यद्यपि उनके पौराणिक नाटकों को विशुद्ध नाटक न कहकर गीताभिनय कहना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। मंचाश्रयी नाट्यकला के ढाँचे में लोकनाटक की वस्तु-वर्णना, आवेग एवं संगीतरस का समन्वय कर इन्होंने बंगाली नाट्य-प्रेमियों को एक नये नाट्यास्वाद से परिचित कराया।

पौराणिक भक्ति-भावना के साथ लेखक ने अपने नाटकों में देशात्मबोध की भी सार्थक अभिव्यक्ति की है। नाटकों के अतिरिक्त 'पद्ममाल', 3 खंड (1870-94) 'मनोमोहन गीतावली' आदि गीत एवं कविता-संग्रह लेखक के कवि-मन के परिचायक हैं।

वसु, मालाधर *(बँ० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती का उत्तरार्ध]

इनका जन्म अनुमानतः पंद्रहवीं शती के मध्य में हुआ था। अपने ग्रंथ 'श्रीकृष्णविजय' (दे०) में कवि ने आरंभ-परिचय दिया है। उससे ज्ञात होता है इनके पिता का नाम भगीरथ, माता का नाम इंदुमती, जाति कायस्थ, निवास वर्द्धमान जिला में कुलीन ग्राम था। तत्कालीन गौड़ प्रदेश के मुसलमान शासक से इन्हें 'गुण-राजखान' की उपाधि मिली थी।

कवि ने 'श्रीकृष्ण विजय' अथवा 'गोविंद विजय' अथवा 'गोविंद मंगल' ग्रंथ 1473 ई०-1481 ई० के मध्य लिखा था। यह ग्रंथ श्रीमद्भागवत के दसवें-ग्यारहवें स्कंध का भावानुवाद है, अक्षरशः अनुवाद नहीं। ग्रंथ अध्याय, परिच्छेद आदि में विभक्त नहीं है, केवल राग-रागिनियों के विभाग हैं। ग्यारहवें स्कंध में दर्शन का भी अंशतः समावेश है।

चैतन्य के आविर्भाव से पूर्व बंगाल में वैष्णव धर्म की दो धाराएँ समान रूप से प्रवाहित थीं। एक का श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य एवं भगवत्-तत्त्व में और दूसरी का माधुर्य भाव में अनुराग था जिसमें श्रीकृष्ण की वृंदावन-लीला, गोपियों के साथ कृष्ण की केलि आदि प्रमुख हैं। जयदेव (दे०), बड़ुचंडीदास (दे०) आदि द्वितीय धारा अर्थात् माधुर्य भाव के कवि हैं जबकि मालाधर बसु ने कृष्ण के ऐश्वर्य भाव को प्रधानता दी है।

इनका काव्य सरल एवं स्वच्छंद भाषा में आडंबरहीन 'पयार' छंद में कवि के भक्त हृदय एवं चरित्र का परिचय देता हुआ पाठक अथवा श्रोता के मन को हठात् आकर्षित करता है। 'श्रीकृष्ण-विजय' बँगला साहित्य की ही नहीं अपितु गौड़ीय वैष्णव धर्म की भी एक विशेष कृति है। इसका महत्व इससे जाना जा सकता है कि श्री चैतन्य महाप्रभु ने इसका उल्लेख किया है।

वसु, राजनारायण *(बँ० ले०)* [जन्म—1826 ई०; मृत्यु—1899 ई०]

आधुनिक युग के उत्थान-काल के बँगला गद्य-कारों में राजनारायण बसु ने उच्छल प्राणरस से युक्त निबंधों की रचना कर बँगला निबंध-साहित्य को अनन्यता प्रदान की है। बँगला साहित्य के ये सर्वप्रथम निबंधकार थे जिन्होंने निर्वैयक्तिक ज्ञान-प्रधान निबंधों के स्थान पर व्यक्ति जीवन-रस से उद्वेलित निबंधों की रचना की।

इनकी रचनाएँ हैं : 'धर्मतत्त्वदीपिका' (प्रथम तथा द्वितीय भाग), (1866) 'आत्मीयसभार वृत्तांत' (1867), 'सेकाल आर एकाल', (1874 ई०), 'हिंदू अथवा प्रेसिडेंसी कलेजेर वृत्तांत' (1876), 'बँगला भाषा ओ साहित्य विषयक वक्तृता' (1878), 'आत्मचरित' (1901)।

उस युग मे शिक्षा के क्षेत्र मे मातृभाषा एव विदेशी भाषा के प्रयोग को लेकर विवाद उपस्थित हुआ था। राजनारायण ने मातृभाषा के समर्थन मे चलाए गए आदोलन का हमेशा सशक्त शब्दो मे समर्थन किया था। इनका कहना था कि मातृभाषा मातृदुग्ध की तरह है। मातृदुग्ध जिस प्रकार बालक के लिए तृप्तिकारक एव बलवर्द्धक है, पशुदुग्ध उस प्रकार नही। 'सकाल ग्रार एकाल' ग्रथ मे इन्होने अँग्रेजी एव अँग्रेजियत पर करारी चोट की है।

इनकी रचनाएँ अधिकतर भावप्रधान है परतु गुरुगभीर मननशील रचनाओ की भी कमी नही। इनकी निबध-शैली एक ओर जहाँ भाव प्रधान व्यक्तित्वनिष्ठ है, वही दूसरी ओर मनन-प्रधान, ज्ञान-गरिष्ठ भी।

बसु, रामराम *(बँ० ल०)*

रामराम बसु बँगला मे मुद्रित प्रथम मौलिक गद्यग्रथ के लेखक हैं। इनकी जन्म-तिथि का पता नही चलता परतु मृत्यु-वर्ष है 1813 ई०। फोर्ट विलियम कालेज मे बँगला अध्यापक के रूप मे काम करते हुए इन्होने केरी साहब के साथ मिलकर प्रारभिक बँगला गद्य का स्वरूप स्थिर करने मे विशेष योग दिया।

इनकी पहली पुस्तक 'राजा प्रतापादित्य चरित्र' 1801 ई० मे प्रकाशित हुई। फोर्ट विलियम कालेज के छात्रो के लिए यह पहली पाठ्यपुस्तक थी। उनकी दूसरी पुस्तक 'लिपिमाला' 1802 ई० मे प्रकाशित हुई।

फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के बहुत पहले से रामराम बसु टॉमस तथा केरी साहब के मुशी के रूप मे काम करते हुए मसीही मत के प्रचारार्थ 'ख्रीष्ट-स्तव' (1788 ई०) आदि की रचना कर चुके थे परतु इन्होने स्वय कभी मसीही धर्म स्वीकार नही किया, साथ ही हिंदू पुराणपथिता के विरुद्ध इन्होंने तीक्ष्ण विद्रूप-बाण चलाने मे भी कसर नही छोडी।

बँगला गद्य के उद्भव की दिशा मे रामराम बसु का स्थान महत्वपूर्ण है।

बसु, समरेश *(बँ० ल०)*

साप्रतिक काल के कथा साहित्यकारो मे समरेश बसु की जनप्रियता सर्वाधिक है। इनकी ख्याति चतुर्थ दशक से ही फैलने लगी थी। इनके प्रारभिक उपन्यासो मे 'उत्तरग' एव 'गगा' सर्वाधिक उल्लेखनीय है। 'उत्तरग' मे सिपाही विद्रोह के एक पलातक सिपाही की कहानी है एव 'गगा' मे मत्स्यजीवी समाज के जीवन का अपूर्व परिचय है। इन यथार्थधर्मी कथावस्तुओ मे ये रोमानी कल्पना के स्पर्श से एक ऐसे चित्र का प्रसार करते हैं कि सहज ही पाठक आकर्षित हो उठता है। प्रारभिक उपन्यासो मे 'बिटि रोडेर धारे', 'नयनपुरेर माटि' आदि भी उल्लखनीय है।

समरेश बाबू ने 'बिबर', 'प्रजापति', 'पातक' आदि उपन्यासो की रचना द्वारा मानव मन की गहराई मे उतर कर, मानव मन की विस्मयकर स्वविरोधिता, व्यक्तित्व के आत्मसघर्ष, बुराई और अच्छाई के प्रति युग पत् प्रबल आकर्षण, अनुताप, अपराध एव प्रायश्चित्त का वर्णन किया है। इन उपन्यासो के नायकों की अवदमित यौन-कामना या कोई अवदमित क्षोभ ही इनकी समस्त कर्म प्रेरणा का उत्स है। स्वीकारोक्ति इस प्रकार के उपन्यासो का मूल वक्तव्य है एव यौन प्रवृत्ति को मानव-जीवन का नियामक माना गया है—यद्यपि अवरुद्ध यौन कामना का न कोई अत है, न समाधान। किंतु समरेश बसु केवल यही नही रुके हैं। अभी हाल ही मे प्रकाशित अपने दो उपन्यासो, 'सुचाँदेर स्वदेश-यात्रा' एव 'मानुष्य' मे इन्होंने जीवनवादी शक्तिशाली औपन्यासिक का परिचय दिया है।

पिछल 25 वर्षो मे समरेश बसु ने दो सौ के करीब कहानियाँ लिखी हैं जिनमे जीवन की विचित्र अभिज्ञता एव जीवन के कभी न समाप्त होने वाले सग्राम को प्राधान्य मिला है। मानव-जीवन के सुख दुख को प्रकट करते हुए ये अपनी कहानियो म कभी पात्रो के आत्मकथन द्वारा, कभी प्रबल आवेग-कपित वर्णन के द्वारा तो कभी निरासक्त विश्लेषण के द्वारा एक ऐसे प्रभाव का विस्तार करते हैं कि पाठक अभिभूत होकर रह जाता है।

बसु, सुनिर्मल *(बँ० ल०)* [जन्म—1902 ई०, मृत्यु—1957 ई०]

कवि सुनिर्मल बसु ने शिशु-साहित्य की रचना मे ही अपनी सपूर्ण प्रतिभा लगा दी थी। इनकी हँसी की कविताएँ पिछले चार दशकों स बगाली शिशुओ का मनोरजन करती ग्रा रही हैं। 'टुनटुनिर गान' (1930), 'हाओयार टाला', आदि कविता पुस्तकों की रचना कर

कवि ने अपने को सुकुमार राय (दे० राम, सुकुमार) का उत्तरसाधक प्रमाणित किया है।

इनकी कविताओं से इनका सदानंद शिल्प-प्राण हमारी आँखों के सम्मुख उद्भासित हो उठता है। इन्होंने शिशु-साहित्य के निर्माण में ही हृदय का समस्त अनुराग समर्पित कर दिया था।

बह्र *(उर्दू० पारि०)*

बह्र उन विशिष्ट शब्दों को कहते हैं जिन पर काव्यबद्ध पदों को तोला और जाँचा जाता है। इसका उद्देश्य यह निर्णय करना होता है कि कविता की पंक्तियों का वज़न ठीक है या नहीं। अतः 'बह्र का दूसरा नाम 'वजन' भी है। इसे हम छंद का पर्यायवाची भी कह सकते हैं। बह्र के अंगों को 'अरकान' कहते हैं और किसी एक अंग को रुकुन। जिन अंशों से रुकुन बनता है उन्हें 'अजज़ा' या 'असूल' कहते हैं।

बह्रुल-फ़साहत *(उर्दू० कृ०)*

'बह्रुल-फ़साहत' उर्दू काव्यशास्त्र का एक विशद ग्रंथ है जिसकी रचना स्वर्गीय मौलवी नज्मुलग़नी साहब ने की है। यह ग्रंथ उनके भगीरथ प्रयत्न तथा कठोर साधना का फल है जिसकी साहित्य-जगत में बहुत सराहना हुई है। यह ग्रंथ बारह सौ से अधिक पृष्ठों का वृहत् ग्रंथ है। इसमें काव्य, अलंकारों तथा छंदों (बह्रों) के बारे में बहुमूल्य ज्ञातव्य सामग्री जुटाई गई है। इसकी शैली परंपरागत है। वर्णनों तथा उदाहरणों का बाहुल्य है। अतिविस्तृत वर्णन तथा अत्यधिक उदाहरण इस ग्रंथ के विशाल कलेवर का कारण हैं और पाठक को कुछ खटकने लगते है और छंद-विधान जैसा गंभीर विषय उलझाव के कारण सुबोध नहीं रहता।

बहुरूपी *(म० कृ०)*

महाराष्ट्र के लोकप्रिय एवं यशस्वी अभिनेता श्री चिंतामण राव कोल्हटकर ने अपने जीवनानुभवों को 'बहुरूपी' नामक आत्मकथा में लिपिबद्ध किया है। इस आत्मकथा का प्रकाशन 1956 ई० में हुआ था।

इसमे लेखक ने निजी व्यक्तित्व का तथा अभिनेता-रूप मे प्राप्त विविध अनुभवों का रोचक इतिहास प्रस्तुत किया है। अपने जीवन-काल में वह जिन नाटककारों के संपर्क में आया, उनका सजीव चरित्र-चित्रण किया गया है।

व्यवसाय के साहित्यकार न होते हुए भी कोल्हटकर ने 'बहुरूपी' द्वारा सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। साहित्य अकादेमी ने 'बहुरूपी' रचना पर 5000 रु० के पुरस्कार से उन्हें गौरवान्वित किया है।

बहुलार्थकाव्यमु *(ते० पारि०)*

एक से अधिक अर्थों को व्यंजित करने वाले काव्य बहुलार्थ काव्य या द्वयर्थी कहे जाते हैं। तेलुगु में इस प्रकार की अनेक रचनाएँ हैं। इस दिशा में पहला उल्लेखनीय प्रयास पिंगळिसूरना (दे०) की 'राघवपांडवीयमु' (दे०) नामक कृति है। इस काव्य में एक ही रचना के अंतर्गत 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) की कहानी है। भाषा पर अपार अधिकार और संतुलित रस-दृष्टि के द्वारा ही इस प्रकार की रचना संभव है। इसके बाद भट्टुमूर्ति (दे० रामराजभूषणुडु) के 'हरिश्चंद्रनलोपाख्यानमु' (दे०) का उल्लेख होना चाहिए। इस शैली में पाँच काव्य और प्रकाशित हुए पेदरामात्य का 'शिवरामाभ्युदयमु', लक्ष्मण कवि का 'लंकाविजयमु', मंत्रिप्रेगडु सूर्यप्रकाशमु का 'कृष्णार्जुनचरित्रमु', मृत्युंजय कवि का 'धरात्मा परिणयमु' और वेंकटाचार्य का 'अचलात्मजीपरिणयमु'। तीन अर्थ देने वाले काव्यों में नेल्लूरि वीर राघव कवि का 'राघवयादवपांडवीयमु' और एककूचि बालसरस्वती (दे०) का 'यादवराघवपांडवीयमु' उल्लेखनीय हैं। ओरुगंटि सोमशेखर का 'रामकृष्णार्जुनरूपनारायणीयमु' चार-चार अर्थ देने वाली रचना है। इस प्रकार की रचनाओं में कवि का बौद्धिक विलास जितना प्रदर्शित होता है उतना उसके रस-भाव-निरूपण का प्रमाण नहीं मिलता।

बाँकीदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1971 ई०; मृत्यु—1833 ई०]

ये जोधपुर राज्यांतर्गत भाड़ियावास नामक ग्राम में आसिया-चारण-परिवार में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम फतहसिंह था। ये काव्य(दे० पिंगल-पिंगल) व्याकरण, इतिहास आदि कई विधाओं तथा संस्कृत, डिंगल, ब्रजभाषा एवं फ़ारसी के ज्ञाता थे। जोधपुर-नरेश मानसिंह इनको बहुत मानते थे। इन्होंने लगभग 27 ग्रंथों की रचना

की है, जिनमे 'वीरविनोद', 'सर-छत्तीसी' एव 'नीति-मजरी' विशेष प्रसिद्ध हैं। ये डिंगल के प्रथम श्रेणी के कवि थे। भाव-व्यजना, रस योजना और अलकार-विधान की दृष्टि से इनकी प्रतिभा अद्भुत थी। इनकी शैली अत्यत सयत, स्वाभाविक तथा प्रभावशालिनी है। इनके नीति वचनो मे गभीर तथा मौलिक विचार मिलते हैं।

बाँग ए-दरा *(उर्दू० कृ०)* [रचना—1924 ई०]

'बाँग-ए-दरा' उर्दू के सुविख्यात दार्शनिक कवि डा० मुहम्मद इकबाल (दे०) की सर्वप्रथम कृति है। इसमे उनका प्रारभिक काव्य सगृहीत है। इसमे राष्ट्रीयता तथा प्राकृतिक दृश्यो की रचनाएँ हैं। इस सग्रह की भाषा भी स्पष्ट, सरल तथा सरस है। अन्य कृतियो की अपेक्षा इकबाल ने इस कृति मे अधिक स्पष्ट अभिव्यक्ति से काम लिया है। इसमे वह गभीरता तथा जटिलता नही है जो इकबाल की बाद की रचनाओ मे है। आगे चलकर इकबाल के राष्ट्रीय दृष्टिकोण मे अतर आ गया था। फलत वह हिंदोस्तानियत से हटकर इस्लामियत मे केंद्रित हो गया था। वे हिंदोस्तान की बजाय अपना असली वतन हिजाज को समझने लगे थे। 'हिंदी हैं हम वतन है हिंदोस्ताँ हमारा' कहने वाला इकबाल 'मुस्लिम हैं हम वतन है सारा जहाँ हमारा' कहने लगा।

'तान ए हिंदी', 'नया शिवाला' 'शिकवा', 'जवाब-ए शिकवा', 'जुगनु', 'एक आरजू' इत्यादि कविताएँ इस सग्रह की महत्वपूर्ण कविताएँ हैं।

'बाँग ए-दरा' के अतिम भाग मे कुछ कलाम हास्य-व्यग्यात्मक भी हैं जो इकबाल ने अक्बर इलाहाबादी के रग मे कहने की कोशिश की है किंतु उनका यह प्रयास विशेष सफल नही कहा जा सकता।

बाँगला अभिधान *(बँ० कृ०)*

1743 ई० मे लिसबन से प्रकाशित मानोयेल द्वय आसुम्पसाँओ रचित 'Vocabulario em Hioma Bengalla e Portuguez' ग्रथ मे बँगला शब्दकोश का प्रारभिक रूप परिलक्षित होता है। इसके उपरात हनरी पिट्स फॉर्स्टर (1799 ई०) का नाम उल्लेखनीय है (द बाँगला व्याकरण)। फोर्ट विलियम कॉलेज (दे०) एव मिशनरियो के प्रयत्ना से ही बँगला व्याकरण एव अभिधान (कोश)-रचना का कार्य अग्रसर होता रहा। 1825 ई० मे प्रकाशित केरी का 'बँगला अभिधान' एव उसके उपरात 1829 ई० मे प्रकाशित मार्शमेन का कोश विशेष उल्लेखनीय है। 1834 ई० मे रामकमल सेन का दो खडो मे प्रकाशित बँगला अभिधान बँगला भाषा की प्रकृति के साथ दृढ रूप से सबद्ध है। इसके उपरात इस काम मे थोडी शिथिलता आ गई। बीसवी शती मे योगेशचद्र राय विद्यानिधि की चेष्टा के उपरात ज्ञानेंद्र मोहन दास का दो खडो मे 75 हजार से भी अधिक शब्दो का वैज्ञानिक प्रथानुयायी 'बँगला भाषा का अभिधान' 1916 ई० मे प्रकाशित हुआ। इसके बाद अब तक प्रकाशित सर्ववृहत् एव महत् अभिधान है 'बगीय शब्दकोश' (दो खड) जो 1946 ई० मे प्रकाशित हुआ। स्वर्गीय हरिचरण बद्योपाध्याय के जीवन की यह सर्वोत्तम एव महत् कीर्ति है इसके अतिरिक्त राजशेखर बसु (दे०) की 'चलतिका' सभ्य बगाली समाज का अत्यत उपयोगी अभिधान है। सप्रति सुकुमार सेन (दे०) अँग्रेजी मे 'Benga lexicon' नाम बँगला शब्दकोश की रचना कर अबगाली एव बगाली विद्वत्-समाज के कृतज्ञता भाजन हुए हैं। काजी असुदुल वदूद का 'व्यावहारिक शब्दकोश', सुबलचद्र मित्र का 'नूतन बगला अभिधान', कामिनीकुमार राय का 'लौकिक शब्दकोश' आदि इस प्रसग मे उल्लेखनीय हैं।

बाँगला व्याकरण *(बँ० कृ०)*

पुर्तगाली विद्वान मानोयेल द्वय आसुम्पसाँओ ने बँगला भाषा के प्रथम व्याकरण की रचना की। इस व्याकरण का नाम था 'Vocabulario em Hioma Bengalla e Portugueg' जो 1743 ई० मे लिसबन से प्रकाशित हुआ। यह ग्रथ यो तो बँगला-पुर्तगाली शब्दकोश था पर इसकी भूमिका मे बँगला व्याकरण के मूल तत्त्वो का उल्लेख हुआ था इस प्रकाशन के 35 वर्ष बाद व्याकरण रचना के उद्देश्य से ही नाथुयेल ब्रासि ह्यालहेड ने 'ए ग्रामर आफ द बेंगाल लैंगवेज' (1779 ई०) की रचना की। इसी ग्रथ मे सर चार्ल्स विल्किंस के आदेशानुसार पचानन कर्मकार के द्वारा तैयार सर्वप्रथम बँगला अक्षरो का मुद्रण हुआ इस ग्रथ की अपूर्णता को देखकर हेनरी पिट्स फॉर्स्टर ने 1799 ई० मे 'ए वाकेबुलरी इन टू पार्टस्—इगलिश एड बेंगाली एड वाइसवर्सा' ग्रथ की रचना की है। इसके उपरात लिडेन के अनुरोध पर फोर्ट विलियम कालेज (दे०) के पडित मृत्युजय (दे०) विद्यालकार ने 1807 ई० एव 1811 ई० के बीच बँगला भाषा के एक सक्षिप्त व्याकरण की

रचना की । संप्रति लंदन-स्थित इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी से इस ग्रंथ का उद्धार कर 1770 ई० में तारापद मुखोपाध्याय ने इसे प्रकाशित किया । अब यह नहीं कहा जा सकता कि राममोहन राय (दे०) का 'गौडीय व्याकरण' (1834) किसी बंगाली के द्वारा रचित सर्वप्रथम व्याकरण है । फ़ॉर्सटर के उपरांत (1801) में विलियम केरी का 'ए ग्रामर ऑफ़ द बेंगाली लेंगवेज' प्रकाशित हुआ । केरी साहब के ग्रंथ के उपरांत ही राममोहन राय का ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय है । इसके उपरांत बँगला भाषा एवं साहित्य की क्रमोन्नति के साथ-साथ व्याकरण-रचना का भी विस्तार हुआ है । आधुनिक काल के व्याकरणों में आचार्य सुनीतिकुमार चट्टोपाध्याय (दे० चाटुर्ज्या), आचार्य सुकुमार सेन (दे०) आदि के व्याकरण विशेषत: उल्लेख्य हैं ।

बाँगला साहित्येर इतिहास *(बँ० कृ०)*

यह विभिन्न इतिहासों की विवेचना है ।

बँगला साहित्य के इतिहास के अंधकार युग का संकेत प्राचीन पद-संकलन-ग्रंथों में उपलब्ध होता है । कविवर ईश्वरचंद्र गुप्त के प्राचीन कवियों की जीवनी एवं रचना संग्रह-प्रयास के माध्यम से (1853-55) इतिहास-रचना की दिशा में प्रथम नवचिंतन का अरुणोदय हुआ । इसके उपरांत 'विविधार्थ संग्रह' में प्रकाशित (1858-59) राजेंद्रलाल मित्र के 'बंगभाषार उत्पत्ति' निबंध में साहित्य के इतिहास का एक ढाँचा खड़ा किया गया । इसकी पथरेखा का अनुसरण करते हुए हरिमोहन मुखोपाध्याय का 'कविचरित' (1869), महेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय का 'बंगभाषार इतिहास' एवं महेंद्रनाथ भट्टाचार्य का 'बाँगला साहित्य-संग्रह' प्रकाशित हुआ । रामगति न्यायरत्न के 'भाषा ओ साहित्य विषयक प्रस्ताव' (1872) ग्रंथ को बँगला साहित्य के आनुपूर्विक इतिहास की मर्यादा प्रदान की जा सकती है । यों इस ग्रंथ प्रमाण की अपेक्षा श्रुति का आधिक्य है, युक्ति की अपेक्षा आवेग प्रबलतर है । बँगला साहित्य के प्रथम सार्थक इतिहास के रचयिता दीनेशचंद्र सेन (दे०) हैं जिन्होंने 'बंग भाषा ओ साहित्य' के नाम से 1896 में अपना ग्रंथ प्रकाशित किया । दीनेशचंद्र ने बंगाल के गाँव से पाडुलिपियों का उद्धार कर नाना नूतन उपादानों की सहायता से विश्लेषणात्मक रीति का अनुसरण करते हुए अपने की ग्रंथ की रचना की । दीनेशचंद्र का कविमन इस ग्रंथ में सर्वत्र स्पष्ट है । परिणामस्वरूप इसमें ऐतिहासिक निष्ठा की अपेक्षा आवेग का प्राधान्य हो गया है परंतु इसमें संदेह नहीं कि नये उपादानों के संग्रह के माध्यम से बँगला साहित्य के पूर्णांग-सार्थक इतिहास-रचना के मार्ग को उन्होंने ही प्रशस्त किया है । उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करते हुए सुकुमार सेन (दे०) ने 'बाँगला साहित्येर इतिहास' (प्रथम खंड 1940) की चार खंडों एवं पाँच स्तरों में रचना की । यथार्थ ऐतिहासिक मानदंड पर वैज्ञानिक दृष्टि के माध्यम से अप्रकाशित तथ्यों की भित्ति पर यह विस्मयकर रचना-कीर्ति बाँगाली मनीषा का चिरकाल का गौरव है । सुकुमार सेन के ग्रंथ के आश्रय से सप्रति असितकुमार बंद्योपाध्याय ने 'बंगला साहित्येर इतिवृत्त' (प्रथम खंड, 1959) की रचना की । तीन खंडों में प्रकाशित इस ग्रंथ में बँगला साहित्य के अठारहवीं शती तक के इतिहास का विश्लेषणात्मक विवेचन है । इसके अतिरिक्त साहित्य की विभिन्न धाराओं के आश्रय से सुधी समाज ने प्रामाणिक इतिहास की रचना की है । वैभव साहित्य की आलोचना में विमान बिहारी मजूमदार, मंगलकाव्य आशुतोष भट्टाचार्य आदि उल्लेखनीय हैं । साहित्य-इतिहास-रचना की धारा की वैचित्र्यमय है ।

बाँध गठरिया *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1954]

यह कृति गुजराती के कृति साहित्यकार श्री चंद्रवदन मेहता (दे०) की आत्मकथा का एक भाग है । गुजराती आत्मकथा-साहित्य में इसका अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है । कथा की मोहिनी के बीच गुण-दोषों का हास्य-व्यंग्यमय चित्रण कर लेखक ने समग्र विश्व का विविध और रंगदर्शी रूप एक तटस्थ नाटककार की आँखों से देखा है । इसमें पाठक लेखक के साथ सहज अंतरंग संबंध में बँधकर उसके साथ विश्व-यात्रा को निकल पड़ता है ।

बाँसी नामनी एक छोकरी *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1962 ई०]

यह युवा लेखक मधुराय (दे०) का कहानी-संग्रह है । इसकी कहानियों में 'पृथ्वी अने स्वर्ग' नहीं है । लेखक यथार्थ-जीवन की भीषणता तथा ईश्वरीय न्याय-योजना की विडंबना को चित्रित करता है जो प्रकारांतर से समग्र आधुनिक नवलेखन में प्रश्रय पाए हुए हैं । किंतु आधुनिक जीवन के विडंबनामय सत्य को चित्रित करते हुए भी इनमें कहीं विषाद नहीं, मधुर-मधुर हँसते-हँसते वह परिस्थितियों का चित्रण करता है । इन कहानियों में

घटना-तत्त्व प्राय नगण्य है किंतु लेखक की निरीक्षण शक्ति की मोहिनी अभूतपूर्व है। अभिव्यक्ति की नवीनता मधुरोय की विशेषता है।

समग्रतया यह संग्रह पिछले दशक के गुजराती कहानी-लेखकों की प्रवृत्ति का अच्छा दिग्दर्शन कराता है।

बाइमहाति पाजी *(उ० कृ०)*

'बाइमहाति पाजी' श्री गोपाल चंद्र प्रहराज (दे०) की महत्वपूर्ण व्यग्य-रचना है। इसमे ग्रथकार ने जिस अभिनव कौशल द्वारा सामाजिक दुर्बलता का पर्दाफास किया है, वह जादूगर के गारुडी-मत्र के समान है। इसमे मानवीय स्वभाव के दोषो को चाबुक लगाकर एक प्रकार से उजागर कर दिया गया है। उदाहरण-स्वरूप—

'देवताओ के स्थान पर अश्लील मूर्तियो को देखकर, जिस समय मन मे स्वर्गीय एव आध्यात्मिक भावना जागृत होना कानूनन अनिवार्य है, उस समय देव-दर्शन स्वाधीनता का अन्यथा एव विपरीत परिणाम-युक्त होना कदापि सभव नही।'

व्यग्य एव हास्य से युक्त सरल, घरेलू, ललित-भाषा प्रवहमान शैली, जीवत हास परिहास के अतराल से उद्भासित सरस एव चतुर तर्क आदि विशेषताओ ने इसे लोकप्रिय बना दिया है। फकीर मोहन के बाद उडिया-साहित्य मे विशुद्ध घरेलू भाषा की पुन स्थापना का श्रेय प्रहराज को है। भाषा की कमनीयता, विशिष्ट प्रकाशन-भगी, और अत सौंदर्य फकीर मोहन सेनापति (दे०) के बाद, प्रहराज के हाथो से अभिनव रूप और वैभव से दीप्त हो उठा है। कटक जिले मे विशेष रूप से व्यवहृत शब्दावली का इसमे अधिक प्रयोग किया गया है।

प्रहराज का व्यग्य धर्मी दृष्टिकोण इसके भीतर अत्यत गहन तथा मानवीय सवेदना से प्राणस्पर्शी होकर आया है।

बाउल गान *(बं० प्र०)*

प्राचीनकाल से ही बगाल मे रूपक के आश्रय से आध्यात्मिक तत्त्व एव रहस्यात्मक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए एक प्रकार की आध्यात्मिक सगीत धारा का प्रचलन था जो 'बाउल गान' के नाम से प्रसिद्ध है। 'बाउल गान' बँगला लोकसाहित्य का एक प्रधान अग है। 'बाउल' शब्द कदाचित् 'वातुल' शब्द से निकला है। समाज विधि-सम्मत समस्त निर्देशो की उपेक्षा कर बाउल-साधक हिंदू मुसलमान धर्म के कठोर नियमो के बधन से मुक्त होकर अपने 'मन के आदमी' की खोज मे विशिष्ट साधना पथ पर अग्रसर हुआ। सहज एव सस्कारमुक्त जीवन यापन एव धर्मसाधना ही बाउल का उद्देश्य है। मानवदेह के नित्य निवासी परमदेवता का प्रेमलाभ ही बाउल की मुख्य साधना है।

गीत (गान) बाउल सप्रदाय का शास्त्र है। और किसी भी शास्त्र को ये स्वीकार नही करते। बाउल-साधको ने अपने मन की अनुभूति, अपनी साधना की बात एव ईश्वरानुभूति को सहस्रो गीतो के माध्यम से प्रकट किया है। इनकी भाषा रहस्यात्मक सध्या-भाषा है। बाउल गान का प्रचलन बगाल मे बहुत दिनो से है किंतु काफी दिनो तक भद्र-शिक्षित समाज मे इसका कोई मूल्य नही था। बाउल गीतो के माधुर्य एव ऐश्वर्य के प्रति रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) ने शिक्षित समाज का ध्यान आकर्षित किया। वैष्णव-साधना का परकीया तत्त्व एव सहज-साधना के साथ सूफी धर्ममत के अपूर्व सम्मिश्रण से बाउल गीतो का धर्मपक्ष बहुत ही समृद्ध है। आउलचाँद को बाउल सप्रदाय का आदि कवि माना जाता है। उन्नीसवी शती के बाउल कवियो मे लालन फकीर का नाम बहुत विख्यात है। गगाराम बाउल, जगा कैवर्त, पदमलोचन, विशा भुइ-माली, कागाली बाउल आदि उल्लेखनीय बाउल-कवि है।

बाग-ओ बहार *(उर्दू० कृ०)* [रचना काल—1801-1802 ई०]

'बाग ओ-बहार' मीर अम्मन (दे०) देहलवी की रचना है। इसमे 'किस्सा चहार दरवेश' का कथानक प्रस्तुत किया गया है। डा० मौलवी अब्दुल हक साहब ने लिखा है कि मीर अम्मन ने बाग ओ बहार' की रचना तहसीन' की 'नौ-तर्ज ए-मुरस्सा' (दे०) को देखकर की है किंतु भाषा उसकी अपक्षा सरल कर दी है। इसमे अनावश्यक बातो को छोड दिया गया है और आवश्यक बातो को अधिक विस्तार स लिखा है। इस प्रकार इसमे एक प्रकार की मौलिकता आ गई है।

मीर अम्मन ने दैनिक प्रयोग की भाषा का प्रयोग किया है जिससे 'बाग-ओ-बहार' इतनी लोकप्रिय हुई कि अँग्रेज़ी फ्रेंच, पुर्तगाली तथा लेटिन मे इसके अनुवाद किए गए हैं। उर्दू के कई कवियो न भी इस पद्य मे प्रस्तुत किया है। 'गार्सा द तासी' (दे०) ने इसकी भूरि-भूरि

प्रशंसा की है और कहा है कि यह तत्कालीन भारत तथा इस्लाम को समझने में सहायक है।

'बाग़-ओ-बहार' अपने समय की संस्कृति का दर्पण है। इससे इस्लामी मान्यताओं, रीति-रिवाजों, रहन-सहन, खान-पान तथा सामाजिक जीवन के अन्य पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है।

बागची, यतींद्रमोहन *(बँ० ले०)* [जन्म—1877 ई०; मृत्यु—1948 ई०]

कवि यतींद्रमोहन रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) के भक्त-शिष्य थे। इनका पहला काव्य ग्रंथ 'लेखा' रवींद्रनाथ को समर्पित है एवं प्रकाशन से पहले रवींद्रनाथ ने इस काव्य-ग्रंथ की सारी कविताएँ एक बार देख ली थीं। 'लेखा' के अतिरिक्त इनके अन्य आठ काव्य ग्रंथ हैं—'रेखा' (1910), 'अपराजिता' (1913), 'नागकेशर' (1917), 'बंधुर दान' (1918), 'जागरणी' (1922), 'नीहारिका' (1927), 'महाभारती' (1936) एवं 'पांच-जन्य' (1941)। इनके एकमात्र उपन्यास का नाम है 'पथेर साथी'।

ग्रामीण जीवन के स्निग्ध-माधुर्य, सांसारिक दुःख-वेदना, आनंद-उल्लास को कवि ने निपुणता के साथ चित्रित किया है। असाधारण सहृदयता एवं रूपकर्म की त्रुटिहीन दक्षता का पूर्ण परिचय इनके काव्य में उपलब्ध है। हमारे जीवन, समाज, ग्राम, पुराण, इतिहास की कथा-वस्तु को कवि ने अपनी संवेदनशील अनुभूति के द्वारा प्रकट करके अपने असाधारण कवित्व का परिचय दिया है।

बागेश्वरी-शिल्प-प्रबंधावली *(बँ० कृ०)*

1921 ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति सर आशुतोष मुखर्जी ने विश्वविद्यालय में पाँच नये आचार्य-पदों की सृष्टि की जिनमें से एक था शिल्पकला-अध्ययन विषयक 'रानी बागेश्वरी आचार्य-पद'। सर आशुतोष का निमंत्रण पाकर शिल्पगुरु अवनींद्रनाथ ठाकुर ने यह पद स्वीकार किया था। 1921 ई० से लेकर 1929 ई० तक वे इस पद को सँभाले रहे एवं इस बीच शिल्पकला से संबंधित जितने भी भाषण उन्होंने दिए उन्हें एकत्रित कर कलकत्ता विश्वविद्यालय ने 1941 ई० में 'बागेश्वरी-शिल्प-प्रबंधावली' के नाम से प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशित किया।

शिल्पकला की आलोचना की दृष्टि से यह ग्रंथ युगांतरकारी है एवं रसबोध के उन्मेष-साधन की दृष्टि से इसकी अमूल्य देन हमारी सांस्कृतिक जीवनचर्या के इतिहास में सुप्रतिष्ठित है। चित्रकला एवं साहित्य-संवेदना की अपरूप प्रतिभा की भास्वरता से यह ग्रंथ प्रोज्ज्वल है।

बाज़ार-ए-हुस्न *(उर्दू० कृ०)*

दे० 'सेवासदन' (ले० प्रेमचंद)।

बाजीकर *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1930 ई०]

शरत्चंद्र गोस्वामी (दे०)। यह कहानी-संग्रह है। श्री लक्ष्मीनाथ बेज बरुवा (दे०) ने कहानियों में लोक-कथा-शैली का प्रयोग किया था; गोस्वामी जी ने पाश्चात्य शैली अपना कर कहानी को एक नया मोड़ दिया। इन कहानियों में अवैध प्रेम का चित्रण है, किंतु प्रेम की प्रचंडता के साथ ही अंत में ग्लानि का भी चित्रण है। लेखक सामाजिक अन्याय एवं अनाचार के प्रति भी सावधान है। उसने किसी पर प्रहार न कर साधारण वातावरण के मध्य समाज की उदासीनता एवं नृशंसता का चित्रण किया है। कहानियों में सारा दोष नियति पर छोड़ दिया जाता है।

बाजी राउत *(उ० कृ०)*

'बाजी राउत' सच्चिदानंद राउतराय (दे०) का विप्लवी चेतना का काव्य है। सामाजिक कुसंस्कारों, अन्यायों एवं अत्याचारों को केंद्रित कर इससे अत्याचारी शासन के विरोध में विद्रोह की प्रेरणा दी गई है। इसका नायक बाजी राउत ढेंकानाल के मामूली खेवैया का बेटा है। यह निष्पेषित, शोषित समाज का प्रतिनिधि है।

1938 ई० में उड़ीसा के गड़जातों में प्रजा-आंदोलन हुआ था। ढेंकानाल के राजा ने प्रजा के विद्रोह को दबाने के लिए अँग्रेज सरकार की सुरक्षा-सेना बुलाई थी। दिनभर दमन-चक्र चलता रहा। रात को अपनी छावनी के लिए लौटती सेना ने नदी पार जाने के लिए घाट पर नाव माँगी। तेरह वर्ष का बालक बाजी राउत पहरा दे रहा था। उसका उत्तर था, 'प्रजा-मंडल का आदेश नहीं है।' बालक को अपने निश्चय पर अडिग देखकर सेना ने उसे गोलियों से भून दिया था। बाजी राउत का निष्प्राण

शरीर नाव पर गिर गया और सेना पार हो गई। उसका शव कटक लाया गया और पूरे सम्मान के साथ उसकी अत्येष्टि-क्रिया हुई।

स्वय कवि की आत्म-स्वीकृति है—'जिस को लेकर यह कविता विरचित है, वह आज केवल व्यक्ति-विशेष नही है वह इस देश का वृहत्तम अनुष्ठान है। यह उसकी चिता नही है, यह गहन अधकार मे कभी न बुझने वाली दीपशिखा है। यह केवल जल जाने के लिए नही है। उसका जन्म जलाकर भस्म कर देने के लिए है।'

सच्चिदानद राउतराय यथार्थवादी, समाज सचेतन जीवनवादी गीतिकाओ मे अग्रणी हैं। 'बाजी राउत' काव्य मे जहाँ उनका क्रातिकारी दृष्टिकोण स्पष्ट हुआ है वहाँ उसका उदात्त स्वर स्वत ही कलात्मक गरिमा से महिमा-मडित हो उठा है।

बाण *(स० ले०)* [समय— सातवी शती]

बाण का सस्कृत गद्य लेखको मे प्रमुख स्थान है। यह महाराज शिलादित्य (हर्षवर्धन) के सभापडित थे। अपने 'हर्षचरित' (दे०) के आरभिक दो परिच्छेदो मे इन्होने अपनी आत्मकथा लिखी है। ये सोणनद के किनारे प्रीतिकूट नामक नगर मे निवास करते थे। इनके पितामह का नाम अर्थपति और पिता का नाम चित्रभानु था। बाल्यकाल मे ही इनके माता पिता का देहात हो गया था अत ये बुरी सगति मे पड गये। कुसगति ने इन्हे यायावर तथा इत्वर (आवारा) बना दिया। पहले महाराज हर्षवर्धन इनकी आदतो से नाराज थे, पर बाद मे वे इनकी प्रतिभा से बडे प्रभावित हुए और इन्हे अपने दरबार मे समुचित सम्मान दिया।

बाण की तीन कृतियाँ उपलब्ध हैं— हर्षचरित', 'कादबरी' (दे०), तथा 'चडीशतक'। किंतु बाण को वस्तुत ख्याति हर्षचरित' और 'कादबरी' से मिली है। 'कादबरी' बाण की उत्कृष्ट कलाकृति है। इसकी रचना की प्रेरणा इनको गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' (दे०) तथा सुबधु की 'वासवदत्ता' से मिली है। किंतु ये इन दोनो से आगे बढ गये हैं। 'हर्षचरित' आठ उच्छ्वासा म अभिव्यक्त आख्यायिका है जिसमे कवि ने महाराज हर्षवर्धन का जीवन चरित उपनिबद्ध किया है। 'कादबरी' के दो भाग हैं। पूर्वार्द्ध की रचना बाण ने की है। उत्तरार्द्ध बाण की मृत्यु के बाद उनके पुत्र पुलिद भट्ट ने लिखा।

बाण सस्कृत गद्य के सिद्धहस्त लेखक हैं। इनकी दोनो कृतियाँ सस्कृत गद्य-साहित्य की अनुपम निधि हैं। वर्णनाशक्ति बडी विलक्षण है। परिसख्यादि अलकारो के माध्यम से बाण ने अपनी अनुभूतियो को अत्यत कुशलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। बाण भट्ट की शैली परवर्ती सस्कृत गद्यकारो के लिए आदर्श बन गई। ये प्रभावशाली गद्य लिखने मे निष्णात हैं। इनके गद्य मे सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति, चमत्कृत वर्णन-प्रणाली, अक्षय शब्दराशि तथा कल्पनाप्रसूत मौलिक अर्थों की उद्भावना विशेष रूप से विद्यमान है। बाण, वस्तुत सस्कृत भाषा के अत्यत सक्षम एव सबल लेखक हैं।

बाणभट्ट की आत्मकथा *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष— 1946 ई०]

यह हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०) का अत्यत लोकप्रिय ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमे लेखक ने 'कादबरी' (दे०) तथा 'हर्षचरित' (दे०) को उपजीव्य रूप मे ग्रहण करते हुए सस्कृत के प्रसिद्ध लेखक बाण (दे०) भट्ट के जीवन-वृत्त को अनेक ऐतिहासिक तथा कल्पित कथाप्रसगो के माध्यम से बाणभट्ट की ही शैली मे इस प्रकार निरूपित किया है कि पाठक को इसे बाणभट्ट की आत्मकथा समझने का भ्रम पैदा हो जाता है। इस कृति मे तदयुगीन धर्म-साधना राजनीति, आभिजात्य, वातावरण आदि का भी सशक्त प्रत्यकन हुआ है।

घुमक्कडी प्रकृति वाला बाण इस उपन्यास का केंद्रबिंदु है और उपन्यास का सारा कथाचक्र उसी के इर्द-गिर्द घूमता है। एक दिन वह घूमता हुआ स्थाण्वीश्वर पहुँचता है जहाँ पर उसकी भेंट नाट्यमडली की अभिनेत्री निपुणिका (निउनिया) स होती है। निपुणिका से उसे यह पता लगता है कि किसी साध्वी राजकुमारी को उसकी इच्छा के विरुद्ध मौखरी वश के राजघराने मे बदी बना लिया गया है। यह सुनकर वह निपुणिका की सहायता से उसका उद्धार करता है। तदनतर उसे उस राजकन्या अर्थात भट्टिनी से ज्ञात होता है कि वह विषम समर विजयी वाल्हीक विमर्दन प्रत्यत बाडवदेवपुत्र तुविर मिलिद की कन्या है। उसके मन मे स्थाण्वीश्वर के राजकुल के प्रति इतनी घृणा पैदा हो जाती है कि वह उस घराने से सबधित किसी भी व्यक्ति के सरक्षण मे रहने के लिए तैयार नही होती। निपुणिका तथा बाण भी राजदड के भय स वहाँ रहना नही चाहते और भट्टिनी को साथ लेकर मगध की ओर प्रस्थान कर देते हैं। मार्ग मे अनेक प्रकार की

कठिनाइयों का सामना करते हुए ये येन-केन-प्रकारेण मगधेश्वर दुर्ग के आभीर सामंत लोरिक देव के आश्रय में पहुँच जाते हैं। उस समय देश के ऊपर दस्युओं का आक्रमण होने वाला था। इस आक्रमण से देश की रक्षा करने का सामर्थ्य केवल तुविर मिलिंद में ही था। स्थाण्वीश्वर-नरेश देवपुत्र तुविर मिलिंद के प्रीत्यर्थ भट्टिनी को अत्यंत अनुरोधपूर्वक स्थाण्वीश्वर बुला लेते हैं। वे उसके सम्मानार्थ उसके स्कंधावार में जाने का भी निश्चय करते हैं। इस अवसर पर बाण हर्षचरित-रत्नावली के अभिनय का आयोजन करता है जिसमें वासवदत्ता की भूमिका निभाते हुए निउनिया राजा (बाण) के हाथ में रत्नावली का हाथ देते हुए इतनी विचलित हो उठती है कि उसके प्राण-पखेरू, उड़ जाते हैं। निपुणिका का श्राद्ध-कर्म करने के बाद जब बाण को पुरुषपुर जाने का आदेश मिलता है तब भट्टिनी अत्यंत आर्द्र कंठ से शीघ्र लौट आने का अनुरोध करती है। लेकिन बाण की आत्मा चीत्कार करती हुई कह उठती है, 'अब क्या मिलना होगा?' संक्षेप में यही इस उपन्यास की कथा है।

यह उपन्यास अपने रोचक तथा कौतूहलपूर्ण विन्यास के लिए ही नहीं अपितु मानवीय चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। लोगों की दृष्टि में निउनिया भले ही पतिता हो तथा बाण भट्ट बंड, किंतु जहाँ तक मानवीय गुणों का प्रश्न है वहाँ ये दोनों अत्यंत खरे उतरते हैं। इनमें न साहस की कमी है और न बुद्धि-चातुर्य की। इस उपन्यास के संवाद अत्यंत रसात्मक तथा वाग्वैदग्ध्यपूर्ण हैं। तत्सम शब्दावली से परिपूर्ण अलंकृत भाषा इसके बाण-कृत होने का भ्रम पैदा करती है। यह उच्चकोटि का एक ऐसा ऐतिहासिक उपन्यास है जो हिंदी-साहित्य में अपनी अत्यंत कलात्मक रचना-शैली की दृष्टि से सर्वथा बेजोड़ ठहरता है।

बाणरजा *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1932 ई०]

पद्मनाथ गोहाञि बरुवा (दे०) का यह अंतिम नाटक पाँच अंकों का है। इस पौराणिक नाटक में उषा-अनिरुद्ध के प्रणय और बाल-कृष्ण के युद्ध की मुख्य कथा है। कथा में अनावश्यक विस्तार हो गया है। भाषा और संवाद आकर्षक नहीं हैं। यह नाटक मंचोपयोगी नहीं है।

बाणी *(त० पा०)*

'बाणी' सुंदरम् पिळ्ळै (दे०)-रचित उन्नीसवीं शती के पद्यबद्ध तमिल नाटक 'मनोन्मणीयम्' (दे०) के प्रमुख नारी पात्रों में से है। नाटक में बाणी को आदर्श प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रेम के मार्ग पर बढ़ते हुए वह पिता एवं राजा का भी विरोध करती है और अंततः अपने प्रेमी नटराजन को पति-रूप में पा लेती है। बाणी पांड्य राजा की पुत्री मनोन्मणी की अंतरंग सखी है। राजकुमारी मनोन्मणी बाणी के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए तत्पर रहती है। वही अपने पिता से कहती है कि बाणी को नटराजन से विवाह की अनुमति दी जाए। इसके बदले में बाणी यह प्रतिज्ञा करती है कि जब तक राजकुमारी मनोन्मणी योग्य वर नहीं पा लेगी तब तक वह विवाह नहीं करेगी। नाटककार बाणी को उन्नीसवीं शती की जागरूक नारी के रूप में चित्रित करने में पूर्ण सफल हुआ है।

बापट, वसंत *(म० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

ये बंबई में प्राध्यापक हैं।

1950 ई० के पश्चात् मराठी की नयी काव्य-धारा के प्रमुख काव्यों में इनकी गणना की जाती है।

इनके दो काव्य-संग्रह हैं—'बिजली' और 'सेतु'।

इन्होंने सामयिक राजनीति एवं सामयिक घटनाओं पर अपने मन की तीव्र प्रतिक्रिया को अपनी कविताओं में व्यक्त किया है। 1942 ई० के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में प्रत्यक्ष कार्य करने के कारण इनकी प्रारंभिक कविताएँ प्रचारात्मक भी हैं। नाम के अनुसार ही 'बिजली' काव्य-संग्रह की कविताएँ प्रखर, आवेशयुक्त, तीक्ष्ण एवं मर्मभेदी हैं। 'महायात्रा', 'गांधी मंदिर', 'अमरविहंगम', 'पूर्णाहुतीचा तो दिवस' जैसी कविताओं में इन्होने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का गौरव-गान कर उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की है। गांधी जी के प्रति निष्ठापूर्वक लिखी गई इन रचनाओं का अपना महत्व है।

'सेतु' नामक काव्य-संग्रह के अंतर्गत इनकी काव्य-दृष्टि में स्वप्न-परिवर्तन लक्षित होता है। उसमें ये प्रेम-सौंदर्य का स्वानुभूतिपूर्वक चित्रण करने वाले कवि बन गये हैं।

'बिजली' संग्रह के कारण ही ये नये कवि के

रूप मे प्रतिष्ठित हुए है। इन्होने नये प्रतिमानो एव प्रतीको का सुदर प्रयोग किया है।

बापिराजु, अडवि *(ते० ले०)* [जन्म—1895 ई०, मृत्यु—1952 ई०]

1920 ई० के उपरात तेलुगु-साहित्य के इतिहास मे अडवि बापिराजु के समान प्रतिभाशाली व्यक्तित्व दूसरा कोई नही आया। कवि, कथाकार, शिल्पी, चित्रकार, पत्रकार, चलचित्रो के कलास्रष्टा, आदि अनेक रूपो मे इन्होने अपनी प्रखर प्रतिभा को प्रसारित किया है। ये अल्प आयु से ही कविता, शिल्प, चित्रकला आदि मे विशेष रुचि रखने लगे थे। समस्त भारत का भ्रमण करके, मदिरो की शिल्पकला, गुफाओ की चित्रकला आदि का अध्ययन इन्होने किया था। ये इन शास्त्रीय कलाओ के साथ साथ ग्रामीण लोकगीत, कथावाचन, कठपुतली के नाच आदि मे भी गहरी रुचि रखकर इनके विकास के लिए भी यत्न करते रहे थे। सत्याग्रह-आदोलन मे भाग लेकर एक वर्ष तक ये कारागार मे भी रहे थे। वही पर इन्होने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'हिमबिंदु' (दे०) की रचना की थी। ये व्यवसाय से वकील थे और कुछ समय तक 'मीजान्' नामक दैनिक पत्रिका का सपादन भी करते रहे थे।

इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'हिमबिंदु', 'नारायणरावु' (दे०), 'गोनगन्ना रेड्डी' (दे०), 'तुपानु', 'कोणगि', 'नरुडु' आदि। अपरिमित भावना शक्ति, सुनिश्चित अनुशीलन, परम पाडित्य एव तीव्र भारतीय सास्कृतिक चेतना इनमे एकत्र मिलती हैं। काव्य मे चित्रकला गुण तथा चित्र मे काव्यगुण को सम्मिलित कर, दोनो को एक नवीन तेज प्रदान करने वाले ये प्रतिभावान् कलाकार थे।

इन्होने भारतीय दृष्टि से रस प्रधान उपन्यासो की रचना की है। इनका 'हिमबिंदु' आध्र-शातवाहनो के समय को चित्रित करने वाला ऐतिहासिक-सास्कृतिक उपन्यास है। 'नारायणरावु' एक उदात्त चरित्र की सृष्टि करने वाला एव आध्रत्व के विशुद्ध स्वरूप को चित्रित करने वाला सामाजिक उपन्यास है। इनकी रचनाएँ अद्भुत कथा-प्रगमा से युक्त होकर स्वप्निल एव वास्तविक, दोना ससारो के मनोरम सम्मिश्रण को प्रस्तुत करती हैं। इनके पात्र प्राय शिल्पी, चित्रकार या कवि ही हुआ करते हैं जो अपने स्रष्टा की कलात्मक चेतना के प्रतिरूप के समान दिखाई देते है। चित्रकार के रूप मे इनकी ख्याति समुद्रगुप्तडु, तिक्कना आदि चित्रो के कारण है।

बापिराजु, बोड्डु *(ते० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

ये पश्चिम गोदावरी जिले के निवासी हैं और सस्कृत के भी अच्छे विद्वान हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'विपची' (कविता सग्रह), 'कात्यायनी' (बालोचित गेय रचना) और 'कलिका' (कथा सग्रह)। इस प्रकार इनकी रचनाओ मे विविधता पाई जाती है। समाज के विविध वर्गो की चित्तवृत्तियो तथा रुचियो का इन्हे अच्छा ज्ञान है और उनकी काव्य-रचना मे वह भली भाँति परिलक्षित होता है। बेलूर क्षेत्र मे स्थित चेनकेशव मदिर के शिल्प सौदर्य का इन्होने बडा मार्मिक वर्णन किया है।

बापू *(म० पा०)*

श्री० ना० पेंडसे (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गारबीचा बापू' (दे०) का नायक बापू एक ओर उद्दड, मनस्वी और सशक्त नवयुवक है तो दूसरी ओर सहृदय, उदारमना एव परोपकारी भी है। गाँव का जमीदार अण्णा खोत अपनी प्रियतमा यशोदा का विवाह गाँव के ही एक गरीब और नपुसक ब्राह्मण विठोबा से करा देता है जिसमे वह जीवन भर उसके साथ सबध रख सके। बापू वस्तुत अण्णा का ही बेटा है, पर विठोबा अपना सारा वात्सल्य उस पर उँडेलता है और बापू भी उसे पिता के समान प्यार करता है। बाद मे पता चलने पर कि उसका वास्तविक पिता अण्णा है उसके मन मे विद्रोह का भाव जागता है और वह रूढि-भजक बन जाता है। गाँव की विधवा राधा से गाधर्व विवाह करता है और गाँव के लोगो को शूकर पालन, मुर्गी पालन जैसे वर्जित व्यवसाय करने को प्रोत्साहित करता है। अण्णा के विरुद्ध आक्रोश होने के कारण वह उसे चुनाव मे हराकर स्वय सरपच बनता है। क्रातिपूर्ण और उद्दड होते हुए भी वह सहृदय है—जब-तब सबकी सहायता करता है, पिता की स्मृति मे कुआँ बनवाता है। कुल मिलाकर वह क्रातिकारी, रूढि भजक, प्रगतिशील और साथ ही उदारमना, सहृदय और सबल पात्र है।

बापू छत्रे (सदाशिव काशीनाथ छत्रे) *(म० ले०)*
[जन्म—1788 ई०; मृत्यु—1830 ई०]

ये मराठी के अर्वाचीन ग्रंथकार हैं। साहित्य-क्षेत्र में 'बापू धर्म' के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म बंबई में बाळकेश्वर नामक स्थान के निकट हुआ था। मिशनरियों से इन्होंने अँग्रेज़ी भाषा सीखी थी। बंबई में पाठशाला की स्थापना करने में इन्होंने अँग्रेज़ी सरकार के प्रतिनिधि कर्नल कौर तथा जर्विस की सहायता की थी।

छत्रेजी ने अनेक अँग्रेज़ी ग्रंथों का अनुवाद कर मराठी साहित्य की भाव-सामग्री को विपुल बनाया है। 'बाळमित्र' (दे०), 'ईसपनीति' तथा 'वेताळपंचविशी' इनके प्रमुख अनूदित ग्रंथ हैं। इनकी भाषा सरल एवं सुबोध है। मराठी के आद्य व्याख्याकार दादोबा पांडुरंग (दे०) के अनुसार ये मराठी गद्य-रचनाओं के जनक हैं।

बापूजी आत्मकथा *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1944-1951 ई०]

तुम्मल सीता राममूर्ति चौधरी (दे०)-कृत 'बापूजी आत्मकथा' गांधी जी की आत्मकथा का पद्यानुवाद है। इस रचना की सफलता एवं लोक-प्रियता के कारण ही लेखक को 'गांधी जी का दरबारी कवि' कहा जाता है। गांधी जी के गद्यात्मक आत्मचरित को रसात्मक पद्यानुवाद के रूप में अवतरित करना किसी भी कवि के लिए सरल कार्य नहीं और इसे श्री चौधरी ने बड़ी खूबी से पूरा किया है। इसके अतिरिक्त गांधीजी की रचना की सरलता एवं स्वच्छता को अपने पद्यानुवाद में प्रतिफलित करने के लिए कवि को कुछ और बंधन भी स्वीकारने पड़ते हैं। श्री चौधरी स्वभाव से सरलता-प्रेमी एवं विचारों से गांधीवादी हैं। अतः इस कार्य में उनको आशातीत सफलता मिली है। गांधी जी की मनोरचना की सरलता, निराडंबरता एवं आह्लादकारी स्वच्छता इनकी रचना में पूर्ण रूप से प्रकट हुई है।

बापू ना पत्रो *(गु० कृ०)*

गांधी-साहित्य में बापू के पत्रों का अनूठा स्थान है। विश्व-पत्र-साहित्य के क्षेत्र में बापू के पत्र अपनी सहज सरलता, स्पष्टता व अनलंकृतता के कारण विशिष्ट महत्व के हैं।

अनेक व्यक्तियों के नाम बापू ने पत्र लिखे थे। नवजीवन प्रकाशन ने बापू के गुजराती में लिखे पत्रों को दस भागों में प्रकाशित किया था जिनका विवरण इस प्रकार है:

प्रथम भाग—(आश्रम की बहिनों के नाम)
द्वितीय भाग—(सरदार वल्लभ भाई के नाम)
तृतीय भाग—(कुसुम बेन देसाई के नाम)
चतुर्थ भाग—(मणि बेन पटेल के नाम)
पंचम भाग—(प्रेमा बेन कंटक के नाम)
षष्ठ भाग—(गंगा बेन के नाम)
सप्तम भाग—(छगनलाल जोशी के नाम)
अष्टम भाग—(अप्रकट)
नवम भाग—(नारायण देसाई के नाम) ग्रंथ—1-2
दशम भाग—(प्रभावती बेन के नाम)

अत्यधिक व्यस्त जीवन में भी बापू अपने अंतेवासियों, स्नेहियों, मिलने वालों का कितना ध्यान रखते थे, यह इन पत्रों से पता चलता है। बापू के प्रत्यक्ष व परोक्ष संपर्क में आने वाले असंख्य व्यक्तियों का उल्लेख इन पत्रों में हुआ है। बापू की लेखन-शैली, बापू के अक्षर, बापू का विनोद, बापू की बारीक-बारीक सूचनाओं आदि के इन पत्रों में दर्शन होते हैं। बापू के कृतित्व को तो उनके दूसरे ग्रंथों से भी पहचाना जा सकता है, किंतु बापू के व्यक्तित्व के विविध पहलुओं की सही-सही पहचान तथा आने वाली पीढ़ियों को उसका ज्ञान तो इन्हीं पत्रों से होगा। इन पत्रों की साहित्यिकता भी असंदिग्ध है।

गांधी-साहित्य की एक अमूल्य निधि के रूप में बापू के ये पत्र सदैव महत्वपूर्ण बने रहेंगे।

बापूसाहब गायकवाड *(गु० ले०)*

बापूसाहब गायकवाड यशवंत राव गायकवाड के पुत्र थे। मूलतः ये बड़ौदा के रहनेवाले थे। इन्होंने धीरा भक्त की शिष्यता स्वीकार कर ली थी। निरांत भक्त से भी इन्होंने उपदेश ग्रहण किए थे। पं० के० का० शास्त्री की सूची के अनुसार इनकी दो प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध हैं: पद-संग्रह जिसमें 30 ज्ञानोपदेश के, 10 धर्म-वेश अंग के, 15 ब्रह्मज्ञान के, 3 परजिया के, 6 षड्रिपु-राजिया, गरबी तथा काधी के पद समाविष्ट हैं। महिना—इसमें ज्ञान के द्वादश मास की संभावना की गई है। इनकी रचनाओं का प्रतिपाद्य संतों की रचनाओं के प्रतिपाद्य से मेल खाता है।

बाबा जी *(उ० कृ०)*

'बाबा जी' जगमोहन लाला (दे०)-रचित नाटक है। यह आधुनिक उडिया साहित्य का प्रथम पुष्प है। प्रथम प्रयास की समस्त सीमाओ के होते हुए भी यह निर्विवाद रूप से एक महान कृति है। पूर्वी एव पश्चिमी किसी भी नाट्य शैली का पूर्ण अनुकरण न होते हुए भी अपन आतरिक गुणो के कारण यह गभीर साहित्यिक कृति है। समसामयिक समस्याओ को इसमे स्थान मिला है। चरित्र की सुनियोजित योजना इसमे मिलती है। आधुनिक रुचि के अनुकूल लेखक का दृष्टिकोण यथार्थवादी है। जनभाषा के प्रयोग ने इसकी उपयोगिता बढा दी है। इसकी भाषा एव शैली मे विषयानुरूप पर्याप्त गभीरता है।

यह आवश्यक है कि इसमे नाटकीय द्वद्व, सघर्ष, उत्कठा आदि बातें नही मिलती हैं। इसमे किसी भी चरित्र का परिपूर्ण विकास भी नही हो पाया है। कथावस्तु की उपस्थापना मे क्षिप्र गतिशीलता भी नही दिखाई पडती है। बाबा जी के जीवन की केवल एक घटना चित्रित होने के कारण इसे हम दीर्घ एकाकी मान सकते हैं। किंतु इसे गीति-नाट्य, फार्स या स्केच कहकर इसके नाटकीय मूल्यो को अस्वीकार करना अनुचित होगा। इसकी कथावस्तु अत्यत सक्षिप्त है। एक आदर्श बाबा जी का चरित्र इसमे वर्णित है। अपने भिक्षाटन-क्रम मे बाबा जी पहले एक मद्यप गृहस्थ, तत्पश्चात एक व्यभिचारग्रस्त मठ मे लाछित एव प्रवचित होते हैं। अत मे वे एक उपवन मे निवास करते हैं तथा उनके उपदेशो से कुछ प्रवचको का हृदय परिवर्तन होता है।

यह एक सामाजिक शिक्षाप्रद नाटक है। इसमे साधुओ की अलौकिक शक्ति, गारुडी मत्र, मद्यपान आदि के कुपरिणामो का यथार्थ चित्रण हुआ है।

बाबा पदमनजी *(म० ले०)* [जन्म—1831ई०, मृत्यु—1906 ई०]

वेळगाँव मे कासीर जाति मे जन्म। 'बेळगाँव मिशन स्कूल' म प्रारभिक शिक्षा 1847-1949 मे बबई के 'एल्फिस्टन स्कूल मे 'फ्री चर्च' विद्यालय मे प्रवेश के बाद ईसाई धर्म की ओर झुकाव, 1854 ई० मे दीक्षित हुए, तब से ईसाई धर्म के प्रचार के लिए साहित्य लिखा।

मुख्य ग्रथ—यमुनापर्यटन (दे०) (उपन्यास), निबधमाला', 'मराठी-अंग्रेजी कोश', 'महाराष्ट्र देशाचा सक्षिप्त इतिहास', 'कृष्ण आणिखिस्तयाची तुलना', 'खिस्ती लोकाचे कर्त्तव्यसार'। 'मराठी मे ये ईसाई साहित्य के जनक कहे जाते हैं। अपनी सुधारवादी दृष्टि से उन्होने मराठी पाठको को एक नयी दिशा प्रदान की। कला की दृष्टि से महत्व न होते हुए भी साहित्य वैपुल्य एव नये विचारो के कारण उनका मराठी-साहित्य मे स्थान हैं।

बा मारली *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1958 ई०]

राधिकामोहन गोस्वामी-रचित 'बा मारली' (वातचक्र) उपन्यास मे आधुनिक सभ्यता के झझावात का विरोध किया है, जिसने हमारे गाँवो के शात जीवन का उच्छेद किया है। आधुनिक कृत्रिम जीवन एव आधुनिकता के प्रभाव मे पडी नारी की तीव्र आलोचना की गई है।

बारा माह *(प० पारि०)*

यह एक काव्य रूप है जिसमे बारहो महीनो के नाम पर 12 छद होते हैं। इसका विषय वियोग शृगार होता है। हर छद के आरभ मे महीने का नाम होता है। कवि बताता है कि उस मास विशेष मे प्रेमी की क्या दशा हुई, उसने कितने कष्ट से वह मास विताया। इसका आरभ प्राय चैत्र से होता है। ऋतु-परिवर्तन के साथ प्रेमी की भावनाओ मे भी विकास आता जाता है। पजाबी म इस काव्यरूप की दीर्घकालीन परपरा है और आध्यात्मिक विचारा की अभिव्यक्ति के लिए भी इस बडी सफलता से प्रयुक्त किया गया है। गुरु ग्रथ साहिब मे दो 'बारामाहे' हैं। एक तुखारी राग मे है जिसके रचयिता गुरु नानक हैं और दूसरा माझ राग म है जिसे गुरु अर्जुन देव ने लिखा है। इन दोनो बारामाहो म आध्यात्मिक विकास की ओर सकेत है। काम और आध्यात्मिक भावनाओ के तनाव से इनकी सरचना बहुत ही प्रभावशाली हो गई है। इसके अनतर सूफी कवियो न इसका खुलकर प्रयोग किया है। पजाबी किस्सा काव्य (दे०) म तो इसका प्रवेश उन्नीसवी शती के उत्तरार्द्ध मे ही हुआ है।

बारिष्टरू पार्वतीशमु *(ते० पा०, ते० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1925 ई०]

यह मोकपाटि नरसिंह शास्त्री (दे०) का

हास्य-प्रधान उपन्यास है। इसका नायक ही 'बारिस्टर पार्वतीशमु' है। इस उपन्यास एवं इसके नायक द्वारा समाज में बद्धमूल अनेक व्यर्थ पूर्वाचारों पर प्रहार किया गया है। निरर्थक प्राचीन आचारों के मोह में पड़कर, उनका अंधानुकरण करते हुए अपने को सदाचारी मानकर संतुष्ट होने वाले व्यक्तियों पर इसमें मुक्त भाव से व्यंग्य किया गया है। इस उपन्यास का नायक अपनी समस्त रूढ़िवादिता एवं पूर्वाचारों के साथ इंग्लैंड की यात्रा कर आने वाला युवक बारिस्टर है। इसके अनेक अनुभवों का कृत्रिम एवं अतिरंजित वर्णन प्रस्तुत करके लेखक ने सर्वत्र हास्यरस की सृष्टि की है।

बारी बहार (*गु० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1940 ई०]

'बारी बहार' प्रह्लाद पारेख की कविताओं का संग्रह है। अब तक इसकी तीन आवृत्तियाँ हो चुकी हैं। पहली आवृत्ति में साठ, दूसरी आवृत्ति में तिरासी और तीसरी आवृत्ति में अट्ठानवे कविताएँ हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक आवृत्ति में कुछ नयी कविताएँ जोड़ी जाती रही हैं। सामान्यत: 1930 ई० के राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि में जिस प्रकार के आह्वान और बलिदान के चित्र तत्कालीन रचनाओं में प्राप्त होते हैं तथा पश्चाद्वर्ती रचनाओं में जिस तरह के प्रगतिवादी स्वर मिलते हैं वैसी रचनाएँ प्रह्लाद पारेख की नहीं हैं। यह बात दूसरी है कि इन भावनाओं का कहीं-कहीं संस्पर्श मिल जाता है। अपने को नवीन कहलाने के लिए नवीन प्रयोगों का आग्रह इनमें नहीं है। सर्वत्र भाव-सघनता और रस के प्रति आग्रह ही दिखाई देता है। इस संग्रह की भूमिका में उमाशंकर जोशी (दे०) ने ठीक ही कहा है कि 'मानव-हृदय ही इनके काव्य का विषय है' और 'मानव-हृदय की विविध भावपरिस्थितियों से इनके गीत भरे हुए हैं।' इनकी रचनाओं में चाक्षुप एवं श्रौत बिंबों के साथ-साथ गंधपरक इंद्रिय-संवेदना को उकेरने की अद्भुत क्षमता है। कहीं-कहीं भावस्पृष्ट चित्र बिजली की भाँति आँखों के सामने कौंध जाते हैं। भावतीव्रता, प्रेम और प्रेमजनित वेदना मानव 'कंठ', 'तारो इतबार', 'अवधूतनुं गान', 'आज', 'अंध', 'एकलु', 'विदाय' गीतों में मिल जाते हैं। 'विदाय' में तो स्वप्न-निर्माण, स्वप्न-नाश, अश्रुपात और तदुपरांत कल्याण-कामना से विदा के भाव अत्यंत सफलता से व्यंजित हुए हैं। 'जूह' 'कामिनी' और 'शिवली' गीत पुष्प-विषयक है। 'दान', 'मुक्त निर्झर', सिंधु' आदि रचनाओं पर रवींद्र (दे० ठाकुर) आदि कवियों का प्रभाव बताया जाता है। यदि ये रचनाएँ किसी से प्रभावित भी हैं तो भी हैं अपने में पूर्ण और कवि की काव्य-प्रतिभा को प्रकाशित करने वाली। प्राय: सभी स्थानों पर कवि की भाव-स्वच्छता, पद्य-रचना में स्पष्टता और भाषा की सरलता दर्शनीय है। 'बारी बहार' में पृष्ठ 147 से 156 तक मूलशंकर भट्ट द्वारा तैयार की गई गीतों की स्वर-लिपि भी दे दी गई है। प्रह्लाद पारेख की ये रचनाएँ अपनी सरलता, स्वच्छता और गेयता के कारण पाठकों को अपने में रमाने की अनोखी सामर्थ्य से पूर्ण हैं, कवि की सूक्ष्म संवेदना को बिंबात्मक रूप में प्रस्तुत करने की सहज शक्ति की परिचायिका हैं।

बाल-ए-जिब्रील (*उर्दू० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1935 ई०]

'बांग-ए-दरा' (दे०) के बाद डा० इक़बाल (दे०) की ऊर्दू नज़्मों का दूसरा संकलन है : 'बाल-ए-जिब्रील'। इसमें अधिकतर ग़ज़लें, रुबाइयाँ और क़त्ए हैं। इक़बाल की दार्शनिक शैली, जो अधिकतर उनके फ़ारसी काव्य में विद्यमान है, उर्दू की केवल इसी कृति में पाई जाती है। इसमें इस्लाम के अतीत के संबंध में बड़ी करुण शब्दावली में उल्लेख मिलता है। इक़बाल की इस कृति से उनकी पश्चिम यात्रा का प्रभाव स्पष्ट झलकता है।

'बाल-ए-जिब्रील' भाव तथा भाषा दोनों की दृष्टि से 'बांग-ए-दरा' की अपेक्षा जटिल है। यह संग्रह इक़बाल की उर्दू शायरी के चरमोत्कर्ष का द्योतक है।

बाळकराम, ठकी (*म० पा०*)

रामगणेश गडकरी (दे०) के हास्य-निबंधों के संग्रह के ये पात्र भाई-बहिन हैं। अपनी बहिन ठकी के लिए वर खोजने के प्रयत्न में बाळकराम को कितने कष्ट सहन करने पड़ते हैं, यही इन निबंधों का विषय है। लेखक ने इस प्रसंग द्वारा बताना चाहा है कि किस प्रकार तत्कालीन महाराष्ट्र में मध्यवर्ग की सामान्य युवती के लिए वर पाना कष्टकर था। ठकी सामान्य मध्यवर्ग की लड़की है जिसके पास न रूप है और न शिक्षा। उसका भाई बाळकराम उसके विवाह में वर-पक्ष की दहेज के रूप में अधिक धन भी नहीं दे सकता। अत: उसे नाना प्रकार की कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती है। इनके द्वारा लेखक ने तत्कालीन सामाजिक रूढ़ियों विशेषत: विवाह संबंधी विकृतियों पर व्यंग्य किया है और उन कुरीतियों को

सुधारने की प्रेरणा दी है जिनके कारण मध्यवर्ग का जीवन नाटकीय बन गया था। एक ओर वर पक्ष का उपहास किया गया है तो दूसरी ओर वधू पक्ष की लाचारी एव दयनीय स्थिति के प्रति सहानुभूति और करुणा उत्पन्न की गई है। इन दो पात्रो का महत्त्व इसी दृष्टि से है कि इनके माध्यम से लेखक ने इस समस्या का हास्य-विनोदपूर्ण शैली मे विवेचन किया है। मराठी पाठको की स्मृति मे अभी भी ये पात्र बने हुए है।

बालकवि, त्र्यबक बापूजी ठोमरे *(म० ले०)* [जन्म—1890 ई०, मृत्यु—1918 ई०]

बालकवि की गणना मराठी के रोमाटिक कवियो मे की जाती है। मराठी-साहित्य मे ये प्रकृति प्रेमी कवि के रूप मे ही प्रसिद्ध है। 1907 ई० मे आयोजित कवि-सम्मेलन मे किशोर वयस बालकवि ने अपनी कविताओ का सस्वर पाठ कर श्रोताओ को मत्रमुग्ध कर दिया था। इसी समारोह मे सभापति ने इन्हे बालकवि की उपाधि से अलकृत किया था।

28 वर्ष की अल्पायु मे बालकवि का देहात हो गया था परतु साहित्य-जगत मे इनकी गणना श्रेष्ठ कवियो मे होती है। इनकी 142 स्फुट कविताएं 'बालकवीची समग्र कविता' (दे०) मे सकलित हैं।

इन्होने प्राकृतिक सौंदर्य के अनेक रमणीय चित्र अकित किए हैं। रस, गध, स्पर्श, रग और नाद सबधी अनेक सजीव, गत्यात्मक बिबो मे कवि की लेखनी की सामर्थ्य प्रकट होती है। इनकी कविता की शब्द-माधुरी अपूर्व है। प्रकृति-सबधी कविताओ मे कवि का उल्लास-पूर्ण आशावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। बालकवि ने कुछ शिशुगीत भी लिखे हैं, इन गीतो की भाषा बाल बुद्धि के अनुरूप है और उसमे बाल मनोविज्ञान का सुदर चित्रण हुआ है।

बालकवींची समग्र कविता *(म० कृ०)*

'बालकवीची' कविता के रचयिता श्री त्र्यबक बापूजी ठोमरे हैं, जो साहित्य-जगत मे बालकवि (दे०) के नाम से ख्यात हैं। कवि के रूप मे इनकी ख्याति का आधार इनका एकमात्र यही काव्य-सग्रह है।

मराठी-साहित्य मे बालकवि प्रकृति-कवि के रूप मे प्रसिद्ध है। बालकवीची समग्र कविता' की अधिकाश कविताएँ प्रकृति-वर्णनात्मक हैं। कवि के लिए प्रकृति आनद का अक्षय कोष है और प्रेरणादायिनी शक्ति है। प्रकृति मे सर्वत्र कवि आनद के ही दर्शन करता है। बालकवि ने प्रकृति के कोमल, मार्दव रूप को ही अपनाया है। प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि तन्मय हो गया है। 'फुलराणी' जैसी प्रकृति वर्णन-सबधी कविताओ मे कवि ने प्रकृति पर मानवीय भावनाओ एव क्रिया-कलापो का आरोप किया है। 'अरुण', 'सध्या रजनी', 'निर्झरास' आदि इनकी कुछ विदग्ध प्रकृति वर्णनापरक रचनाएँ हैं।

इन्होने कुछ प्रेम प्रगीतो की भी रचना की है। इन प्रगीतो म प्रेम का तात्त्विक विवेचन ही हुआ है। इनकी प्रेम की परिभाषा अत्यत व्यापक एव उदात्त है। 'माझा भाऊ', 'चादोबा मजला देई' जैसे कतिपय शिशुगीत भी इन्होने लिखे हैं। आधुनिक मराठी के आद्यकवि केशवसुत (दे०) की प्रेरणा से इन्होने 'शून्य', 'मी','दिव्य', 'वनमाला' जैसी रहस्यवादी कविताएँ लिखी हैं।

इनकी कविताओ का महत्व शैली-सौष्ठव के कारण भी है। कठोर योजना एव उग्र विचार इनके काव्य मे कही नही मिलते। इनका काव्य सुकुमार, मधुर, सगीतात्मक एव प्रसादगुण-युक्त है। चित्रात्मकता इनके काव्य का एक अन्यतम गुण है। इन्होने रूप, रस, गध, स्पर्श आदि इद्रियो विषयी अनेक सूक्ष्म, तरल एव मूर्त भावचित्र तथा प्रकृति-चित्र अकित किए हैं।

बालचद्रुडु *(ते० पा०)*

'महाभारत' (दे०) की कहानी से समता रखने वाली मध्ययुगीन आध्र की एक ऐतिहासिक कहानी है जो 'पलनाडु' नामक प्रात मे घटित होने के कारण 'पलनाटि-चरित्र' नाम से विख्यात है। इस कहानी के आधार पर महाकवि श्रीनाथुडु (दे०) ने 'पलनाटि वीरचरित्र' (दे०) नाम से एक काव्य की रचना की है। इसमे बालचद्रुडु 'महाभारत' के अभिमन्यु के समान है। यह स्वाधिकार को पाने के लिए अपने चचेरे भाइयो से लडने वाले मलिदेवराजु के सेनापति ब्रह्मनायुडु का पुत्र है। ब्रह्मनायुडु इसे एक सुकुमार बालक समझकर युद्ध मे लेकर नही जाते। परतु यह एक वीर योद्धा की भाँति शत्रु सेनाओ के साथ जूझकर शत्रुओ का विनाश करके अत मे शत्रु की वचना से वीरगति पाता है। यह समस्त आध्र मे अटल साहस, पराक्रम एव कर्तव्य-निष्ठा के निदर्शन के रूप मे समादृत है।

बाळमित्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1833 ई०]

सदाशिव काशीनाथ उर्फ़ बापूछत्रे (दे०) की, जो मराठी के आद्य गद्यग्रंथकार के रूप में प्रसिद्ध हैं, यह नीति-शिक्षापरक बालोपयोगी पुस्तक वस्तुतः मूल फ्रांसीसी लेखक बर्किस की पुस्तक के अँग्रेजी रूपांतर 'चिल्ड्रेंस फ्रेंड' का मराठी अनुवाद है। इसके दो भाग प्रकाशित हुए—प्रथम पर केवल छत्रे का नाम है पर दूसरे पर उनके साथ एक अँग्रेज अधिकारी का भी नाम है। यद्यपि बाद में भी इसका अन्य लोगों ने अनुवाद किया पर यह भाषांतर इतना मार्मिक, सरस एवं सुंदर था कि अन्य अनुवाद लोकप्रिय न हो सके। कहने को यह नीति-बोध-युक्त कथा-संग्रह है पर इसमें चुटकी लेने वाली कहानियाँ और छोटे-छोटे नाट्यांश भी हैं। अनुवाद में अँग्रेजी भाषा की वाक्य-रचना है जो कहीं-कहीं मराठी पाठक को खटकती है। कुल मिलाकर यह शुद्ध, सीधी-सादी सरल मराठी का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

बालवार्ताओ *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1929 ई० 1939 ई०]

लेखक—गिजुभाई बधेका (समय—1885-1939 ई०)। गुजराती में बालसाहित्य का प्रारंभ गिजुभाई से हुआ। इस पुस्तक के आठ भाग हैं और प्रत्येक भाग में बालकों की कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ लोककथाओं पर आधारित हैं परंतु लोककथा में बालक ठीक तरह से समझ सकें इसलिए यथोचित परिवर्तन भी किए गये हैं। गिजुभाई बालमनोविज्ञान से भली भाँति परिचित थे, इसलिए बालकों के वय के अनुसार कहानियों का बँटवारा हुआ है। इन कहानियों के द्वारा उन्होंने बाल-लोककथाओं को लोकप्रियता प्रदान की और कहानियों द्वारा शिक्षा दी। इन कहानियों के द्वारा बालसाहित्य की भाषा का निर्माण किया।

बालसरस्वती, एलकूचि *(ते० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती ई०]

इनके पिता का नाम एलकूचि कृष्णय्या था। बालसरस्वती का वास्तविक नाम वेंकटकृष्णय्या था। बाल्यकाल में ही विद्यापारंगत होने के कारण इन्हें 'बालसरस्वती' की उपाधि मिली थी जो कालांतर में नाम का अंग बन गई। इनकी कृतियों में 1. 'बालसरस्वतीयमु' 2. 'राघवयादवपांडवीयमु', 3. 'शतकत्रय' (दे० 'भर्तृहरिशतक' का काव्यानुवाद) तथा 4. 'चंद्रिकापरिणयमु' उल्लेखनीय हैं। ये महामहोपाध्याय उपाधि से अलंकृत थे। 'बालसरस्वतीयमु' में 'आंध्रशब्दचिंतामणि' (दे०) की व्याख्या है। 'राघवयादवपांडवीयमु' त्र्यर्थिकाव्य है। तीसरा भर्तृहरि (दे०)-सुभाषितों का अनुवाद तथा 'चंद्रिकापरिणयमु' मौलिक काव्य है।

इनकी विभिन्न कृतियों से यह स्पष्ट होता है कि ये तेलुगु के प्रौढ़ विद्वत्कवियों में से थे।

बालाशंकर *(गु० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1898 ई०]

नडियाद के निवासी तथा 'बाल' उपनाम से प्रसिद्ध बालाशंकर उल्लासराम कंथारिया मणिलाल के सहपाठी रहे हैं। स्वभाव से मस्त और रँगीले होने के कारण वे अधिक नहीं पढ़ सके। भारतेंदु हरिश्चन्द्र (दे०) की 'चन्द्रावली' नाटिका (दे०) और 'देवदास राजनीति', शूद्रक के 'मृच्छकटिक' (दे०) और आद्यशंकराचार्य की 'सौंदर्यलहरी' के सफल अनुवाद इन्होंने किए हैं। 'क्लांत कवि' नामक एक काव्य-संग्रह भी प्रकाशित हुआ था। यद्यपि इस संग्रह में प्रस्तुत रचनाओं की भाषा शिथिल और अस्पष्ट है तथापि उनमें प्रेम, भक्ति आदि के दर्द-भरे गीत समाविष्ट हैं। संस्कृत की भावछटा, अलंकार-समृद्धि और फ़ारसी की कवित्व-शैली, ग़ज़लों का सफल प्रयोग—यह है इनका गुजराती साहित्य के प्रति योगदान।

बाल्यकालसखी *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1944 ई०]

रचनाकार—मुहम्मद (दे०) बशीर वैकम। श्री बशीर को मलयाळम उपन्यास-क्षेत्र के युगांतरकारी कृतिकार होने का श्रेय प्राप्त है। वर्षों तक यायावरीय जीवन और कुछ साल तक पुस्तक-विक्रय-व्यवसाय चलाने के बाद बशीरजी अब कालिकट के पास बेपूर में शांतिपूर्ण जीवन बिताते हैं। 'बाल्यकालसखी' उनकी युगांतरकारी रचना है। इसके तथा 'न्टुप्पुप्पाक्कोरानेंटार्न्नु' (दे०) के रचयिता के नाते बशीर केरल साहित्य में अमर रहेंगे।

बशीर इस उपन्यास में अपने ही समाज की—यानी मुसलमान परिवारों की—ही कहानी सुनाते हैं। धनी बाप का बेटा मजीद (दे०) दिल का अच्छा, परंतु

स्कूली गणित मे कच्चा है। उसके मुहल्ले की खूबसूरत, पर भोली लडकी सुहरा (दे०) गणित मे तेज थी। वही स्कूल मे मजीद की मित्र थी और घर मे भी। मजीद गाँव की पाठशाला की पढाई छोड शहर मे पढने जाता है तो सुहरा को भी सहपाठिनी के रूप मे साथ ले चलना चाहता है। पर गरीब सुहरा मजबूर है। मजीद का बाप घरेलू कलह व अदालती खचखच के कारण निर्धन हो जाता है तो मजीद को दूर रोटी कमानी पडती है। वह बडी मेहनत करता है और घर रुपया भेजने लगता है। उसके प्रवास मे सुहरा को गरीबी के कारण एक दुष्ट कसाई के गले मढ दिया जाता है। प्रतिकूल परिस्थितियो और विपन्नता-ग्रस्त मजीद को जब मालूम पडता है कि सुहरा क्षयग्रस्त होकर मर गई तो उसका दिल टूट जाता है।

कथा की प्रभावशालिता से कही बढकर कथा-शैली और अनुपम भाषा इस ग्रथ की सफलता का कारण है। दो चार सशक्त वाक्यो के द्वारा पूरे शब्दचित्र खीचने मे बशीर को कमाल हासिल है। लेखक मुसलमान समाज के खास लहजे का व्यवहार करता है जिसकी नकल करना बडा मुश्किल है। श्री एम० पी० पॉल (दे०) के शब्दो मे इस उपन्यास मे *जीवन का यथार्थ परिचय मिलता है।* खून की आर्द्रता भी कुछ-कुछ महसूस होती है।

बावन अक्खरी *(प० पारि०)*

यह पजाबी के मध्ययुगीन काव्य मे प्रचलित एक विशेष काव्य-रूप है जिसमे सस्कृत वर्णमाला के 52 अक्षरो की व्याख्या के रूप मे विविध उपदेशो का वर्णन होता है। सस्कृत वर्णमाला के 12 स्वर + 4 ऋ ॠ, लृ ॡ + 25 स्पृष्ट व्यजन + 4 अतस्थ वर्ण + 4 ऊष्म वर्ण, एव + 3 सयुक्ताक्षर (क्ष, त्र, ज्ञ) मिलाकर 52 होते हैं किंतु 'बावन अक्खरी' नामक किसी भी रचना मे इन सभी वर्णों का क्रम पूरा नही मिलता। प्राय स्पष्ट व्यजनो ('क' से लेकर 'म' तक) से आरभ होने वाले पद्य ही इस काव्य-रूप के अतर्गत रचे गए हैं। 'गुरु ग्रथ साहब' मे 'बावन अक्खरी' पद्धति की रचना के दो उदाहरण देखे जा सकते हैं—एक गौडीराम के अतर्गत गुरु अर्जुन देव की रचना, एव दूसरा—*कबीर की वाणी के अतर्गत।*

बावनदास *(हिं० पा०)*

यह फणीश्वरनाथ रेणु (दे०) के प्रसिद्ध आचलिक उपन्यास 'मैला आचल' (दे०) की ऐसी अनुपम चरित्र-सृष्टि है *जिसे पाठक कभी भूल नही पाता। यह* चर्खा सैंटर का व्यवस्थापक तथा गाधी जी का परम भक्त है। इसमे देश प्रेम की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। गाँव की सामाजिक विषमताओ तथा जन समाज की घृणित स्थिति को देख कर यह अत्यत क्षुब्ध हो उठता है तथा दुखभरे शब्दो मे कह उठता है, 'भारतमाता और भी जार-बेजार हो रही है।' यह एक निस्पृह जनसेवक है और इसके बावन अगुल के शरीर मे *अपरिमित सच्चाई* भरी हुई है। इसी सच्चाई के फलस्वरूप नये कांग्रेसी नेता पुलिस के साथ मिल कर इसके शरीर पर चोरबाजारी के माल से भरी गाडियाँ चला देते हैं। समग्रत यह कहा जा सकता है कि आचलिक उपन्यास होने के कारण 'मैला आँचल' मे चरित्र-विकास की ओर ध्यान केंद्रित करने के स्थान पर अचल विशेष के व्यक्तित्व को मूर्त्त करने की ओर ही अधिक ध्यान दिया गया है *अन्यथा बावनदास के* चरित्र मे ऐसी अनत सभावनाएँ है जिनके समुचित विकास से वह एक कालजयी पात्र के रूप मे प्रतिष्ठित हो सकता था।

बाबा बुधसिंह *(प० ल०)* [जन्म—1878 ई०, मृत्यु—1931 ई०]

बाबा बुधसिंह पजाबी आलोचना के पितामह हैं। इनकी दृष्टि मे साहित्य आनदप्रद कला है और इसी आधार पर ये अपनी आलोचनाओ मे साहित्य को अन्य कलाओ से जोडते हुए अपना अभिमत व्यक्त करते हैं। पजाबी आलोचना-क्षेत्र मे इस प्रकार की आलोचना पद्धति के प्रथम प्रयोक्ता के रूप मे इनका महत्व निर्विवाद है। इसके अतिरिक्त पजाबी रहन-सहन, रीति रिवाज को भी प्रशसा-व्यजक रूप मे अपनी कृतियो मे जोड कर ये अपनी आलोचनाओ को प्रभाववादी रूप मे प्रस्तुत करते हैं। फलत इनकी आलोचनाएँ किसी शास्त्रीय या तर्कयुक्त प्रणाली पर आधारित नही, वे भावुकता के स्तर से आगे नही जाती। परतु इनके द्वारा पजाबी साहित्य जनता के अधिक निकट आया और उसके लोक-साहित्य के स्तर से आगे बढ कर सत्साहित्य के रूप मे विकसित होने की सभावना प्रतिभासित हुई।

यद्यपि ये व्यवसाय से इजीनियर थे परतु आजीवन इजीनियरी के साथ-साथ साहित्यिक गतिविधि मे भी लगे रहे। आलोचना क्षेत्र मे इनकी प्रसिद्धि पुस्तकें

'कोइलकू' (1916), 'बंबीहा बोल' (दे०) (1925), 'हंस चोग' (1913) है।

आलोचनात्मक पुस्तकों के अतिरिक्त आपने पंजाबी में कई नाटक भी लिखे हैं जिनका उद्देश्य पंजाबी संस्कृति की प्रशस्ति और समाज-सुधार था, 'मुंदरी छल', 'दामनी', 'राजा रसालू' (दे०) और 'नार नवेली' आपके प्रसिद्ध नाटक हैं।

बाप्पांजली *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1935 ई०]

'बाप्पांजली' चङ्ङंपुषा (दे०) का प्रथम काव्य-संग्रह है। इसकी कविताओं ने कवित्रय द्वारा विकसित स्वच्छंदतावादी आंदोलन को एक नया रूप दिया था। आदर्शीकरण और दार्शनिकता के भार से इस आंदोलन को चङ्ङंपुषा ने बचाया और शोकरस के आवेश से अधिक संवेदनशील प्रेमगीतों की रचना करके उसे और अधिक लोकप्रिय बनाया था। इस संग्रह की माधुर्यपूर्ण भाषा और गेयता ने, इसकी लोकप्रियता बढ़ाई थी। 'बाप्पांजली' एक नये युग के आरंभ की द्योतक है।

बासंती *(सं० पा०)*

भवभूति (दे०) के 'उत्तररामचरित' (दे०) के अंतर्गत मात्र कवि की कल्पना से प्रसूत पात्र बासंती एक वनदेवी है जो राम के वनवास-काल में सीता की सखी बन जाती है। छात्रा आत्रेयी को जो सत्कार वह देती है वह परमहृदय है। पर उससे सीता-निर्वासन एवं यज्ञ में सीता की सुवर्ण मूर्ति की प्रतिष्ठा—दो परस्पर बातें सुनकर वह अवाक् रह जाती है।

शंबूक-वध के लिए राम जब पंचवटी जाते हैं तो उसके प्रति अपनी परस्पर विरुद्ध दो प्रकार की मनोवृत्तियों से वह घबरा जाती है। राम को देखकर वह सब कुछ भूल जाना चाहती है पर मन का आक्रोश प्रकट हो ही जाता है और कह उठती है कि 'आपको यश प्रिय था, सीता नहीं।' राम तिलमिला जाते हैं।

जब राम मूर्च्छित होने लगते हैं तो वह सहसा सीता को पुकार बैठती है और सीता के स्पर्श का जब वह उल्लेख करते है तो उसे उनका प्रलाप समझती है।

बासंती वस्तुतः कवि की अपनी जिज्ञासा का प्रतीक है। राम और सीता दोनों के प्रति श्रद्धा एवं सद्-भाव से युक्त व्यक्ति के मन में राम के द्वारा सीता के परित्याग की घटना पर क्या प्रतिक्रिया होनी चाहिए यह कहना दुष्कर है। वह उसका समर्थन तो कर ही नहीं सकता। पर इससे राम को दुष्ट या कुटिल भी नहीं कह सकता। वह रोष किसके प्रति व्यक्त करे जब देखता है कि परित्याग करने वाले ने स्वयं को दंडित करने के लिए ही ऐसा किया है। बासंती कवि की इसी भावना की प्रतीक है।

बाहुबलि *(क० पा०)*

महाकवि पंप (दे०) के 'आदिपुराण' (दे०) में वर्णित पात्रों में आदिनाथ का पुत्र बाहुबलि विशेष रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। पंप ने आदिनाथ के जीवन में जिस भाँति 'भोग का अंत त्याग है' तत्त्व का उद्घाटन किया है, उसी भाँति उनके पुत्र भरत और बाहु-बलि के चरित्र में दिखाया है कि 'वैभव का अंत वैराग्य है।' पंप का बाहुबलि नय-विनय-संपन्न योद्धा है। यह अपने बड़े भाई भरत को पिता के समान मानता है, परंतु उसके अधिकार के अहं को स्वीकार नहीं करता है। पिता के दिए हुए राज्य में यह बड़े भाई का कोई अहसान नहीं मानता। इसका तर्क है—'पिता ने भरत को जैसे राज्य दिया है, वैसे ही मुझे भी दिया है। इसमें भाई का क्या अहसान!' बड़े भाई को नमस्कार करना अपमान का विषय नहीं है। पर, 'गर्जन करते हुए कर में करवाल लेकर कोई बलपूर्वक प्रणाम कराना चाहे तो प्रणत होना क्या भीरुता नहीं है!' इसी तर्क के कारण यह दूत को उत्तर देता है—'समर-निकष में हमारी आभा मालूम हो जाएगी।' परिणामतः भाई-भाई में युद्ध छिड़ जाता है। दोनों धर्मयुद्ध करते हैं। उभय पक्ष की सेनाएँ प्रेरक बनी रहती हैं। दृष्टियुद्ध और जलयुद्ध में भरत की हार हो जाती है। फिर मल्लयुद्ध होता है। थोड़े ही समय में इसकी विजय निश्चित हो जाती है। यह भरत को एकदम ऊपर उठाकर भूमि पर पटक देना चाहता है। किंतु इतने में इसका ज्ञान जागृत होता है—'भरत मेरे गुरु हैं, बड़े भाई हैं, सम्राट हैं, महिमामय हैं। ऐसे व्यक्ति का इतने लोगों के सामने पटककर अपमान करना बुरा है।' यह धीरे से उसे नीचे उतार देता है। भरत के स्वाभिमान को बड़ा आघात लगता है। वह व्यर्थ ही चक्ररत्न का प्रयोग करता है। वज्रगिरि का वज्र क्या कर सकता है? धर्मयुद्ध में हारने के बाद भरत ऐसा अनुचित कार्य करता है कि 'चक्रेश ने जो नहीं करना चाहिए, उसे किया' लोगों की यह वाणी उसके

कानों में भी पड़ती है । वह लज्जावनत होता है । इस क्षणिक घटना पर वह विचार करता है, 'भरत ने ऐसा क्यों किया है, यह पापीयसी राज्यलक्ष्मी !' इसके मन में वैराग्य उत्पन्न होता है और भाई को राज्य दे कर स्वयं तपोवन की ओर चला जाता है किंतु तपोनिरत होने पर भी इसे कैवल्य-ज्ञान नहीं होता । कारण, इसके मन में यह भाव रहता है कि मैं भरत की भूमि में खड़े होकर तपस्या कर रहा हूँ । जब भरत जाकर इसे समझाता है कि यह राज्य तुम्हारा ही है, यह तुम्हारा दिया हुआ है तब इसका मन स्थिर होता है और इसे कैवल्य-ज्ञान प्राप्त होता है ।

बिंध्या *(उ० पा०)*

बिंध्या राजकिशोर राय (दे०) की एक मनोज्ञ कल्पना है । *यह एकांकी 'कलिंग शिल्पी' (दे०) का प्राण* है । कलिंग की शिल्प चातुरी, पुरी, कोणार्क एवं भुवनेश्वर के मंदिरों में बिखरे हुए कला वैभव का अन्वेषक है महान शिल्पी श्रीधर महाराणा । नायिका बिंध्या एक स्वप्न है, शिल्पी का शिल्प । बिंध्या युद्ध वेश में कलिंग सम्राट् वसुभूमा के निकट आकर शरण माँगती है ।

'अनेक युद्ध-क्षेत्रों में मैंने सैनिक के वेश में रण-तांडव देखा है । रुधिर-स्नात शव पर मैंने पैर रखा है—रण उन्मादिनी *चंद्रिका का प्रलय नृत्य* मैंने देखा है । किंतु और नहीं, मैं क्लांत हूँ, मैं विश्राम की इच्छुक हूँ । मुझे आज्ञा दीजिए, मैं आपके अंत:पुर में कुछ समय तक अंत:-पुर-वासिनी होकर युद्ध क्लेश को भुला देना चाहती हूँ ।'

बिंध्या एक रहस्य है । सम्राट् के निकट इसकी समस्त प्रार्थनाएँ विफल जाती हैं। उपवन में सम्राट अपने प्रिय पक्षी बिंबोष्ठ के लिए आतुर है, बिंध्या पुन: प्रणय निवेदन करती है। सम्राट किंतु दृढ़ हैं । नेपथ्य से—'आह, सम्राट्, रक्षा करिए । बिंबोष्ठ लता कुंज से उड़कर मेरे कर्णाभूषण पद्म कलिका को छिन्न भिन्न कर मेरे गंड प्रदेश को क्षत विक्षत कर रहा है ।'

यही मूर्ति रूपाकार पाती है 'कलिंग शिल्पी' के शिल्प में । गैरिक वसना योगिनी बिंध्या ने शिल्पी को सब समझा दिया था । आज बिंध्या नहीं है। किंतु यह तो उसकी अनंत यात्रा का प्रारंभ मात्र है। इस यात्रा की आद्य प्रेरणा उसने पाई है महान प्रेमानुभूति से। आत्मोत्सर्ग पर प्रतिष्ठित पवित्र प्रेम ने उसे नीरव कर दिया है, केवल सुनाई पड़ती है उसकी पदध्वनि—कलिंग के वन, पर्वत एवं जनपद पर ।

बिंब *(हिं० पारि०)*

यह अँग्रेज़ी शब्द 'इमेज' का हिंदी रूपांतर है। 'इमेज' का सामान्य अर्थ है प्रतिमा, जिसकी रचना कवि अपने मानस में स्मृति, विगत अनुभव, विशुद्ध कल्पना अथवा संयुक्त रूप से स्मृति और कल्पना के आधार पर करता है । काव्य में जब यह मानस प्रतिमा कवि की अनुभूति के संप्रेषण का शब्दार्थमय माध्यम बनती है तो उसे काव्य-बिंब कहा जाता है ।

इस प्रकार कवि अपनी अनुभूति को बिंब के रूप में मूर्त करके शब्दार्थ के माध्यम से काव्यबद्ध करता है । प्रमाता उस काव्य बिंब को अपनी कल्पना में साकार करता हुआ उसके भीतर निहित कवि की अनुभूति को आत्मसात् कर लेता है।

बिंब के प्रकारों का वर्गीकरण अनेक आधारों पर किया जाता है । मुख्य आधार निश्चय ही बिंब का ऐंद्रिय माध्यम है । इस दृष्टि से बिंब के प्रकार हैं चाक्षुष, श्राव्य, स्पृश्य, घ्रातव्य आस्वाद्य । चाक्षुष बिंबों का काव्य में प्राधान्य रहता है । इन ऐंद्रिय बिंबों को यदि स्थूल 'संवेदनात्मक बिंब' माना जाए तो 'छठी इंद्रिय' मन सूक्ष्मेंद्रिय द्वारा संवेद्य बिंबों को 'सूक्ष्म संवेदनात्म बिंब' कहा जा सकता है । बिंब के वर्गीकरण के अन्य आधारों का आकलन *डा० नगेंद्र (दे०)ने इस प्रकार किया है 'सर्जक* कल्पना' (स्मृत, कल्पित । लक्षित, उपलक्षित), 'प्रेरक अनुभूति' (सरल, संश्लिष्ट, खंडित, समाकलित), 'काव्य-दृष्टि' (वस्तुपरक, स्वच्छंद) ।

भारतीय काव्यशास्त्र में भी प्रकारांतर से *बिंब-विवेचन के संकेत उपलब्ध होते हैं। कल्पना प्रसूत* होने के कारण बिंब भारतीय काव्यशास्त्र में विवेचित अलंकार (दे०) ध्वनि (दे०), और वक्रोक्ति (दे०) से स्वभावत: संबद्ध हैं। सादृश्यमूलकअलंकार बिंबात्मक ही होते हैं।

बिंबवाद *(हिं० पारि०)*

यह काव्य में बिंब (दे०) को प्रमुखता देने वाले कुछ अँग्रेज और अमरीकी कवियों द्वारा प्रवर्तित एवं पाश्चात्य काव्यवाद है। *बिंबवादी संप्रदाय की स्थापना* 1912 ई० में प्रसिद्ध अमरीकी कवि एज़रा पाउंड द्वारा हुई थी किंतु 1914 ई० में उन्होंने बिंबवाद में मिलते जुलते एक नये काव्यवाद 'वॉर्टिसिज़्म' का प्रवर्तन करते हुए बिंब-

वाद के आंदोलनात्मक रूप से अपने-आपको अलग कर लिया था। इसके बाद बिंबवादी संप्रदाय का नेतृत्व एमी लॉवेल ने किया था। बिंबवाद के दो मुखपत्र थे : अमरीका में 'पोइट्री' (1962) और इंगलैंड में 'इगोइस्ट' (1914)। इस शती के दूसरे दशक में ही बिंबवादी काव्य के चार संकलन प्रकाशित हुए थे : 'दा एमेजिस्ट' (1914), तथा 1915-16-17 ई० में एमी लॉवेल द्वारा संपादित 'सम् एमेजिस्ट' के तीन अंक। आंदोलन के रूप में बिंबवाद का अवसान इसके जन्म के सात-आठ वर्ष के भीतर ही हो गया था।

बिंबवादी आंदोलन के दो रूप थे : 'भावात्मक'—काव्य-भाषा में अभिव्यक्ति के उच्छ्वासपूर्ण एवं रोमानी आतिशय्य के स्थान पर सही शब्दों के प्रयोग पर बल तथा अपने काव्य में सटीक एवं सार्थक बिंब-विधान। 'अभावात्मक'—स्वच्छंदतावादी काव्यशिल्प, प्रतीकवादियों के आधिभौतिक रहस्यात्मक बिंब-विधान तथा तत्कालीन काव्य-वाद 'भविष्यवाद' (फ्यूचरिज्म) एवं कलावाद 'घनवाद' (क्यूबिज्म) का विरोध। 1915 ई० में बिंबवादी काव्य-संकलन (सम् इमेजिस्ट) में प्रकाशित बिंबवाद के घोषणा-पत्र में निर्दिष्ट बिंबवाद के कुछ लक्षण इस प्रकार हैं : (1) अलंकृत भाषा के स्थान पर बोलचाल की सामान्य भाषा और 'सही' शब्दों का प्रयोग, (2) नयी मनोदशाओं की अभिव्यक्ति के लिए नया लय-विधान, (3) काव्य-विषय के निर्वाचन में पूरी स्वतंत्रता, (4) ठोस और स्पष्ट काव्य का सृजन, अस्पष्ट और अमूर्त-अनिश्चित काव्य का नहीं।

बिंबवादी कवियों में एज़रा पाउंड और एमी लॉवेल के अतिरिक्त रिचर्ड एल्डिंगटन, हिल्डा डूलिटिल, जॉन गॉल्ड, फ्लेचर, जेम्स जॉयस, डी० एच० लॉरेंस तथा एफ़० एस० फ़्लिन्ट के नाम उल्लेखनीय हैं।

बिंबसार (*हिं० पा०*)

मगध-सम्राट बिंबसार जयशंकर प्रसाद (दे०)-कृत 'अजातशत्रु' (दे०) नाटक का एक ऐसा प्रमुख पात्र है जिसमें राग-विराग का अत्यंत स्वाभाविक अंतर्द्वंद्व देखने को मिलता है। रानी छलना (दे०) की धमकी, गौतम के उपदेश तथा पुत्र-विद्रोह की आशंका के फलस्वरूप यह अत्यंत अनिच्छापूर्वक अपने पुत्र अजात (दे० अजातशत्रु) को राज्यभार तो अवश्य सौंप देता है किंतु वानप्रस्थ लेने के बाद भी इसे मानसिक सुख नहीं मिलता। अजात का दुर्व्यवहार, पारिवारिक कलह तथा छलना की मर्मभेदी व्यंग्योक्तियाँ इसे निरंतर दुःखी किए रहती हैं और एकाध स्थल पर यह छलना की भर्त्सना करता हुआ अपना आंतरिक रोष व्यक्त भी कर देता है। फिर भी वह पुनः सत्ता हस्तगत करने के स्थान पर निरंतर विरक्ति की ओर ही अग्रसर होता है—यहाँ तक कि इसे अपने लिए सम्राट तक का संबोधन अरुचिकर लगता है। घटनाओं के घात-प्रतिघात के फलस्वरूप हुए हृदय-परिवर्तन के अनंतर जब छलना तथा अजातशत्रु विनम्रतापूर्वक अपने कुकृत्यों के लिए क्षमा माँगने आते हैं और अजातशत्रु के विवाह तथा पद्मा के पुत्र-जन्म का सुखद समाचार देते हैं तब हर्षातिरेक के कारण बिंबसार का क्षीण हृदय सहसा बैठ जाता है और वह कह उठता है—'इतना सुख एक-साथ मैं सहन न कर सकूँगा। तुम सब विलंब करके आए।' समग्रतः बिंबसार प्रसाद जी की अत्यंत सजीव चरित्र-सृष्टि है।

बिक्रमादित्य (*उ० कृ०*)

'बिक्रमादित्य' चिंतामणि महांति (दे०) का ऐतिहासिक काव्य है। यह उनकी सर्वोत्तम रचना है। इस बृहदाकार ग्रंथ में मुक्त छंद का प्रयोग हुआ है। भारतीय इतिहास में सर्वाधिक किंवदंतीमूलक एवं महीयसी व्यक्तित्व श्री विक्रमादित्य का रहा है। प्रतिपाद्य की गौरव-गरिमा ने काव्य को स्वतः ही उच्च स्तर प्रदान कर दिया है। इस काव्य में विक्रमादित्य के जीवन की अनेक साहसिक एवं संकटपूर्ण यात्राओं तथा भयंकर युद्धों का चित्रण हुआ है। रोम के लोगों के साथ युद्ध करते हुए यह महान सम्राट् भूमध्यसागर एवं लालसागर तक चला जाता है। पढ़ते समय पाठक को इन रोमांचकारी घटनाओं की प्रत्यक्षानुभूति होने लगती है।

बिचित्र-रामायण (*उ० कृ०*)

'बिचित्र-रामायण' त्रिशि-रामायण के रूप में उडीसा में प्रसिद्ध है। कवि विश्वनाथ खुँटिया (दे०) ने अपने इसी नाम का प्रयोग रामायण में किया है।

रामचरित के मुख्य जनप्रिय प्रसंगों का इसमें वर्णन हुआ है। इसमें राग के साथ अधिकांश छंदों की ताल भी निर्दिष्ट है। आज भी थी रामनवमी-उत्सव पर खुले मंच पर इसका नृत्याभिनय होता है। यह लंबे समय से बहुजनादृत नृत्य-रामायण के रूप में गृहीत है।

इसमें विभिन्न रसों की सुंदर नियोजना हुई

है। युद्ध-वर्णन सजीव है। भाषा रसानुरूप तथा जीवत है। सुष्ठु एव ग्रामीण दोनो प्रकार की भाषाओ का कवि ने प्रयोग किया है।

कवि ने न तो सस्कृत रामायण (दे०) का और न बलरामदास (दे०) की 'जगमोहन रामायण' (दे० 'दाडीरामायण') का ही अनुकरण किया है। केवल प्रत्येक काड की मार्मिक एव प्रमुख घटनाएँ ही इसमे गृहीत हैं। इसके *राम, लक्ष्मण, सीता,* देवोपम होते हुए भी *मानवीय* चारित्रिक दोष-दुर्बलताओ से युक्त हैं।

इसकी लोकप्रियता ने परवर्ती कवियो को रामलीला-काव्य लिखने की प्रेरणा दी है।

बिजली *(म० पा०)*

यह मामा वरेरकर (दे०) के समस्यानाटक 'सोन्याच्या कळस' (दे०) की नायिका है। यह स्वभाव से कर्कशा है परतु इसके लिए इसकी परिस्थितियाँ ही *मुख्यत* उत्तरदायी हैं। मिल मे *कार्य* करते समय ही इसके पिता की दुर्घटना मे मृत्यु हो जाती है। पिता के देहावसान के पश्चात् देखरेख करने वाली धात्री बचपन मे ही इसका विवाह एक वृद्ध से सपन्न कराके अपने कार्यभार से छुट्टी पा लेती है, परतु दैवयोग से इसके वृद्ध पति की मृत्यु हो जाती है। वैधव्य के दुर्वह भार एव सामाजिक परिस्थितियाँ इसके स्वभाव को अतिशय प्रखर एव उद्दड बना देती है। मिल मजदूरो की समस्याओ से पूर्णत परिचिता बिजली स्वय मिल में *कार्य करने* के पक्ष मे नही है, परतु श्रमिको के दुख-दर्द को दूर करने के लिए यह सचेष्ट अवश्य रहती है। इसी से साम्यवादी विचारा के प्रबल समर्थक बाबा शिगवण के सिद्धातादर्शों की यह प्रबल समर्थक है। मिल मालिक का पुत्र विट्ठल जो स्वय साम्यवादी विचारो का समर्थक है और मिल मे श्रमिक का कार्य करता है, बिजली के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित होता है। विट्ठल की प्रणय-याचना स बिजली का आहत नारीत्व फुफकार उठता है। यह विट्ठल की कडे शब्दा मे भर्त्सना करती है। अपने प्रखर व्यक्तित्व एव कठोर स्वभाव के कारण ही यह अपने सहयोगियो मे भी भय का कारण बनी रहती है। यहाँ तक कि मिल का मैनेजर भी इसके वाक्चातुर्य एव कठोर व्यक्तित्व का लोहा मानता है। बिजली का चरित्र नारी-नवोत्थान के महद आदर्शों का सवहन करता है जो नाटककार के पूर्वनिश्चित प्रारूप मे ही निश्चित हुआ है।

बिडबना *(हिं० पा०)*

यह पाश्चात्य साहित्य मे प्रचलित अँग्रेज़ी शब्द 'आयरनी' का हिंदी-पर्याय है। यूनानी शब्द 'ईरोनिया' से व्युत्पन्न 'ग्रायरनी' का अर्थ है अपेक्षित भाव अथवा स्थिति से विपरीत विधि अथवा भाग्य का आकस्मिक विधान। ईरोनिया' का प्रयोग प्राचीन यूनानी कामदी (दे०) मे *दीनहीन दिखाई देने वाले ईरोन नामक एक पात्र के बोलने के* विशिष्ट ढग के लिए *किया जाता था*। जिसके द्वारा यह 'एलेज़ान' शेखीखोर पात्र के खोखलेपन का अपनी नैसर्गिक चतुराई से पर्दा फाश कर देता है। अत यह एक प्रकार से दिखावे और झूठेपन के भीतर छिपी वास्तविकता का नाटकीय उद्घाटन था और प्राचीन यूनानी नाट्यकारो को इसकी प्रेरणा अपने नीतिवादी जीवन-दर्शन से ही प्राप्त थी।

यद्यपि बिडबना का तत्त्व मूलत कामदी से सबद्ध था, किंतु बाद मे इसकी सार्थकता और उपयोगिता त्रासदी मे *अधिक व्यापकता और गहनता के साथ प्रकट* हुई। बिडबना म इन तत्त्वो का होना अनिवार्य है विधि की बिडबनापूर्ण इच्छा (भारतीय सदर्भ मे 'हरि-इच्छा'); विधि के हाथो समस्त, किंतु अपनी ही दुर्बलताओ का शिकार एक पात्र ('बिडबना' का मूल चरित्र), प्रेक्षक जो स्वय नाटक मे मुख्य पात्र से भिन्न कोई अन्य पात्र भी हो सकता है। बिडबना की उपहासपूर्ण स्थिति का 'आनद' यही पात्र लेता है।

पाश्चात्य साहित्यालोचन मे बिडबना के अनेक प्रकारो का उल्लेख किया गया है 'शाब्दिक बिडबना' जिसमे प्राय शब्दो के द्वयर्थक प्रयोग द्वारा असली-नकली के भेद को प्रकाशित किया जाता है, 'नाटकीय बिडबना' (त्रासदीय बिडबना) जिसके कथानक के सर्वांग मे ही बिडबना का भाव अनुस्यूत रहता है, 'पूर्ण बिडबना' ('रैडिकल आयरनी') जिसमे स्वय मुख्य पात्र ही जाने-अनजाने अपनी बिडबनापूर्ण स्थिति का उद्घाटन करता है, और *'रोमानी बिडबना' जिसका प्रयाग फ्रीडरिक* श्लेगल न लेखकी की ऊपरी वस्तुपरकता और तटस्थता के भीतर छिपी घोर वैयक्तिकता की बिडबनापूर्ण स्थिति के लिए किया था। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य साहित्य के इतिहास मे 'सुकरातीय बिडबना' ('साक्रेटिक आयरनी') का उल्लेख भी मिलता है जिसमे सुकरात की उस विशेषता की ओर सकेत है जिसके द्वारा वे स्वय अत्यत विनम्र बने रहते हुए *अपने विरोधियो के तर्क को पूर्णतया खडित* कर देते थे।

विदग्ध चिंतामणि (उ० कृ०)

'विदग्ध चिंतामणि' श्री अभिमन्यु सामंतसिंहार (दे०) द्वारा रचित वैष्णव धर्म एवं दर्शन का एक प्रधान ग्रंथ है। गोविंद-चरित्र-वर्णन के कारण कवि ने इसे अपनी रचनाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना है। वह गोपी-प्रेम-लीला का उपासक है। इसमें उसकी भक्ति-भावना का पूर्ण परिपाक हुआ है। विदग्ध कवि अभिमन्यु वास्तव में विदग्ध पंडित एवं भक्त है। कवि सम्राट् उपेंद्र भंज (दे०) के काव्य में उपमा और अर्थ-गौरव का तथा दीनकृष्णदास की सरस रचना 'रसकल्लोल' (दे०) में पद-लालित्य का सन्निवेश है। यह ग्रंथ इन तीनों गुणों का संगम है।

'विदग्ध चिंतामणि' में रीतियुग की परंपरा सुरक्षित है। इसका पद-लालित्य, अर्थ गौरव, उपमा, शैली, धर्ममत, उज्ज्वल भक्तिरस, प्रेम-वर्णन, रूप-सौंदर्य-चित्रण आदि विषयों की परीक्षा करने पर कवि की बहुमुखी प्रतिभा का अच्छा परिचय मिलता है। नाटकीय संवाद इसकी एक और विशेषता है। इस पर उपेंद्र की रचना 'लावण्यवती' का प्रभाव स्पष्ट है। फिर भी कवि की प्रकाशन-भंगी अभिनव है। कृष्ण के रूप-वर्णन में भक्त कवि ने जिन भावों की अभिव्यक्ति की है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

राधा-कृष्ण की वृंदावन-लीला इसका प्रतिपाद्य है। किशोर कृष्ण एवं किशोरी राधा पूर्वराग, मिलन, विरह आदि का सुंदर, निरूपण हुआ है। इस ग्रंथ का रस शृंगार है—उज्ज्वल एवं मधुर। कृष्ण माधुर्यमय है, राधा माधुरीमयी। काव्य की मुख्य वस्तु है परकीया प्रेम-लीला। चंद्रावली एवं राधा दोनों विवाहिता नायिकाएँ हैं।

इसमें प्रकृति-वर्णन सजीव है। वह मानव के सुख एवं दुःख के साथ संबद्ध है। विभिन्न ऋतुओं के वर्णन में कवि ने उनके स्वाभाविक प्रभाव को स्वीकार किया है। अलंकारों का समुचित प्रयोग हुआ है। भाषा संस्कृतनिष्ठ अवश्य है, पर दुरुह नहीं। वैसे क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से पद-लालित्य को यदाकदा आघात अवश्य पहुँचा है। भाषा सामान्यतः परिमार्जित है। तत्व-विवेचन में संस्कृत-बहुल पदावली का प्रयोग हुआ है जबकि मंगलाचरण की भाषा मिश्रित है। उनकी कोमलकांत पदावली भावानुगत एवं भावव्यंजक होने के कारण रमाल है।

इसके अध्ययन से कवि की बहुज्ञता स्पष्ट हो जाती है—उसे वेदांग, पुराण, दर्शन, काव्य, नाट्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, आयुर्वेद, ज्योतिष, संगीत का अच्छा ज्ञान है तथा शब्द-भंडार भी समृद्ध है। सामाजिक रीति-नीतियों की चर्चा भी इसमें हुई है।

विद्या (बँ० आ०)

'विद्यासुंदर' (दे० सुंदर) काव्य की नायिका विद्या है। अनूढ़ा यौवनवती वर्धमान राजकन्या विद्या के साथ कांचीराज गुणसिंधु के पुत्र सुंदर के सुरंग के रास्ते गुप्तप्रणय-विधान में उस युग के कवियों ने सर्वाधिक उत्साह दिखाया था यद्यपि कवि एवं जनता की रुचि के धागे में विद्या एवं सुंदर कठपुतली की अपेक्षा और कोई महत्त्व-पूर्ण भूमिका ग्रहण नहीं कर पाए। सुंदर की कामनामय पुष्पमालिका के प्रत्युत्तर में विद्या का तप्त आमंत्रण एवं विद्या तथा सुंदर के गुप्त मिलन की काम-क्रीड़ा-चंचल मूर्तियों में निस्संदेह शालीनता का अभाव है। आदिर साश्रित काव्य मात्र ही अशालीन एवं ग्राम्यतादुष्ट नहीं होता है। कवि की रुचि एवं शिल्प-प्रतिभा इसके लिए उत्तरदायी होती हैं। विद्या काम-कला-निपुण व्यभिचारी के रूप में अंकित हुई है और यह मूर्ति स्पष्टतः कृत्रिम प्रतीत होती है यद्यपि सजीवता के अभाव में भी विद्या को उस युग में अपार जनप्रियता प्राप्त हुई थी। काव्य-कला दृष्टि से अशालीन आदिरसंभूता नायिका विद्या युग, एवं साथ ही कवियों, की व्यर्थता की प्रतीक है।

विद्यासुंदर (बँ० कृ०)

अन्नदामंगल (दे०) का दूसरा खंड कालिका-मंगल ही 'विद्यासुंदर' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। कवि बिह्लण के 'चौरी सुरत पंचाशिका' अथवा वररुचि के 'विद्यासुंदरम्' ग्रंथों की पथरेखा का अनुसरण करते हुए भारतचंद्र (दे०) ने 'विद्यासुंदर' की कहानी रची है। एवं सुंदर की गोपन प्रणयकहानी का विश्लेषण ही यहाँ प्रधान विषय है, देवी कालिका की भूमिका नितांत गौण है तत्कालीन कामतप्त जनसमाज की रुचि की पोषकता में इस आदिरसात्मक काव्य ने बहुत ही स्वाभाविक ढंग से अपनी भूमिका निभाई है। मंगलकाव्य तो आवरण मात्र है, यों यह काव्य मानवीय भावानुभूति के यथार्थ राज्य में सुप्रतिष्ठित है। इसमें संदेह नहीं कि कवि भारतचंद्र प्रथम श्रेणी के कवि थे। युगरुचि की पोषकता में सहायक बनने के अतिरिक्त इस काव्य में चिरंतन शक्ति का कहीं कोई

परिचय नही मिलता है। चरित्र सृष्टि मे भी कही कोई स्पष्ट सफलता दृष्टिगोचर नही होती। फिर भी यह कहना ही पडता है कि उस युग मे 'बिद्यासुदर' की जनप्रियता ही इस काव्य की सबसे बडी विशेषता रही है।

बिद्युत प्रभादेबी *(उ० ले०)* [*जन्म*—1929 ई०]

इनका जन्म लाटरा, कटक मे हुआ था। आधुनिक लेखिकाओ मे श्रीमती बिद्युतप्रभा देवी का स्थान उल्लेखनीय है। इन्होने विपुल मात्रा मे काव्यो की रचना की है। छद की निर्भर-सी स्वच्छद गति, पदावली की कोमलता, स्वाभाविकता व मधुरता, इनकी रचनाओ के विशिष्ट गुण है।

'बिद्युत्प्रभा सचयन', 'गछपत्र', 'स्वप्नदीप' (दे०), 'झराश्उिळि' आदि इनकी रचनाएँ है।

बिनोदिनी *(बँ० पा०)*

मधुरभाषिणी बिनोदिनी (दे० 'चोखेरबालि'—रवीद्रनाथ) अपरूपा है। यौवनैश्वर्य से वह विजयिनी लगती है और उसके साथ उसकी अपराजित बुद्धि की भी दीप्ति है। फिर भी वह भाग्यहीना है। विधवा बिनोदिनी की *यौवन-तृष्णा तथा जीवन-तृष्णा का* पहले महेद्र एव बाद मे बिहारी शिकार हुआ है। बिहारी के लिए बिनोदिनी अग्निशिखा के रूप मे थी। यह अग्नि जीवन को राख कर दे सकती है ऐसी सभावना भी उसके मन मे आई थी। इसलिए उसने बिनोदिनी को सयत्न दूर ही रखना चाहा था। बिनोदिनी के अनुसार महेद्र को वशीभूत करने मे विजय का गौरव नही है। बिनोदिनी का व्यक्तित्व बोध प्रबल है। नि शेष आत्मनिवेदन के द्वारा उसने बिहारी को जीता है और बिहारी ने उसके बदले मे सयत्न निर्मित अपनी समुन्नत चारित्रिक महिमा को विसर्जित कर जब विनोदिनी को जीवन सिहासन पर सम्राज्ञी के रूप मे प्रतिष्ठित करना चाहा तब ठीक उस मुहूर्त मे विजयिनी बिनोदिनी कलक स्पर्शहीन प्रेम के जगत मे अपने को निवासित करती है। कवि रवीद्रनाथ ने एक क्षण मे बिनोदिनी को सीमा से असीम के राज्य मे ला उपस्थित किया है। यथार्थ जीवन-बोध के क्षेत्र मे बिनोदिनी की परिणति म साम्य का अभाव है परतु यह साम्यहीनता ही उसे काव्य-महिमा की स्निग्ध दीप्ति की उज्ज्वलता प्रदान करती है, इसमे सदेह नही।

बिभिन्न क राछ (कोरस) *(अ० कृ०)* [रचना काल—1957 ई०]

इस सग्रह की कहानियो का सबध प्राय प्रेम, मृत्यु और यौनव्यभिचार से है। चरित्र अस्वाभाविक मनोवृत्ति के हैं और सामाजिक मर्यादाओ के बाहर के है। ये दानवीय उग्रता के प्रतीक है। कहानियो पर फ्रायड के मनोविज्ञान का गभीर प्रभाव है।

बियानाम *(अ० पारि०)*

ये स्त्रियो के विवाह-गीत है। इन गीतो का गायन वैवाहिक कार्यो के विविध अवसरो पर होता है, जैसे कि वर कन्या के स्नान के समय। इनमे स्त्रियो की सरल कल्पना शक्ति और मधुर उपमाओ का परिचय मिलता है। अधिकाशत इनमे करुण रस होता है—विशेषत कन्या-विदा के समय के गीतो मे। बियानाम गीतो मे हर-गौरी, राम-सीता, अर्जुन-सुभद्रा और उषा-अनिरुद्ध की कथाओ का वर्णन होता है। इनमे राम आदर्श पुरुष और सीता आदर्श नारी मानी गई है, रुक्मिणी अप्रसम देश की स्वीकार की गई है, उसका भी उल्लेख इन गीतो मे मिलता है। विवाह-गीतो के अतर्गत ऐसे गीतो का समावेश भी है जो हिंदी प्रदेश के गाली गीतो से सादृश्य रखते है।

बिरहले *(प० पारि०)*

मध्ययुगीन पजाबी काव्य परपरा म लोक-काव्य के स्तर पर बहुमान्य एक काव्य रूप जिसमे वियोग-भावना को अभिव्यक्त किया जाता है। इसके माध्यम स आध्यात्मिक विचारो की ओर सकेत किया जाता है।

बिरिंचिबाबा *(बँ० पा०)*

परशुराम (दे०) (छद्मनाम—राजशेखर बसु) के सदाप्रसन्न, सानद हास्यरस की अविरल धारा म बगाली पाठक चित्त ने सर्वदा निमज्जित होकर अपार आनद प्राप्त किया है। राजशेखर के हास्य मे व्यग्य अनुपस्थित नही — यह बात सच है, परतु व्यग्य के लिए ही हास्य की अवतारणा हुई हो ऐसी बात भी नही। मूलत उनकी हँसी एव अश्रु के बीच निश्चित प्रसन्नता, सकौतुक तिरस्कार एव उदार समवेदना का गहरा आश्वास एव प्रशान्ति मिलती है।

विरिंचिबाबा धार्मिक व्यभिचार के प्रतीक हैं। वैवस्वत, ईसा मसीह, बुद्ध हरेक को ही उन्होंने उपदेशामृत प्रदान किया है। उनकी उमर की जिस प्रकार कोई सीमा नहीं, उसी प्रकार उनके शिष्य की उम्र की भी। साधारण मनुष्य के सरल धार्मिक विश्वास को लेकर ही इनका व्यवसाय चलता है। पकड़े जाने पर जिस निर्लज्जता के साथ दैवी व्याख्या का आरोप किया गया है वह क्रोध को अनाविल हास्य में परिणत कर देता है। चंद्र-सूर्य के अधिकारी विरिंचिबाबा इसीलिए सकौतुक आनंद के अपरिमेय उत्स हैं।

बिल्वमंगळ्ळडु *(ते० पा०)*

यह काळ्ळकूरि नारायणराव् (दे०)-कृत 'चितामणि' (दे०) नाटक का प्रधान पात्र है। सुपुत्र, आदर्श पति, गृहपति (यजमान), उत्तम आचरण वाला यह लब्धप्रतिष्ठ आदर्श व्यक्ति चितामणि नामक वेश्या के मोहजाल में फँसकर, अनेक व्यसनों का दास बनता है और अंत में भगवान श्रीकृष्ण के माहात्म्य के कारण वैराग्य धारण कर लेता है।

माना जाता है कि 'कृष्णकर्णामृत' के कर्ता लीलाशुक ही पूर्वाश्रम में बिल्वमंगल थे।

बिशु *(उ० पा०)*

बिशु श्री अश्विनीकुमार घोष (दे०) के 'कोणार्क' (दे०) नाटक का प्रमुख पात्र है। उड़िया भाषा की एक किंवदंती के आधार पर बनी लोकोक्ति 'बारह सौ बढ़ई दाय या पुत्र दाय' के आधार पर इस चरित्र की सृष्टि की गई है।

तेरहवीं शती का समय है। ज्योतिर्मंदिर कोणार्क का निर्माण हो रहा है। ठक-ठक शब्द से वायुमंडल निनादित है। बारह सौ शिल्पी कार्य-मग्न हैं। शिल्प-सम्राट् बिशु महारणा के भाल पर चिंता की रेखाएँ हैं। महाराज नरसिंह देव का निष्ठुर आदेश है कि 'यदि कल सूर्योदय तक मंदिर के 'दधिनेउत' की स्थापना नहीं हुई, तो बारह सौ शिल्पियों को प्राण-दंड मिलेगा।'

बिशु का एकमात्र बारह वर्षीय पुत्र धरमा, जिसके जन्म के पूर्व ही कोणार्क निर्माण के लिए बिशु को बुला लिया गया था; पितृ-दर्शन की इच्छा से कोणार्क पहुँचता है। पिता व पुत्र में परिचय होने के पूर्व ही धरमा को महाराज की निर्मम आज्ञा ज्ञात हो जाती है। धरमा बिशु के समक्ष दंडायमान है। पुत्र का हृदय पिता के प्रति श्रद्धावनत है, पिता का हृदय अनजाने रूप से स्नेह-उर्मिल है। दोनों अपरिचित हैं। धरमा खड़ा है बिशु का प्रतिद्वंद्वी बनकर, जो अहंकारी शिल्पी को एक चुनौती है। धरमा को बिशु से मंदिर-निरीक्षण की अनुमति मिल जाती है। धरमा 'दधिनेउत' की स्थापना कर देता है। शिल्पी-समाज गौरव हानि की आशंका से उसकी मृत्यु की कामना करता है। गर्वित बिशु के उज्ज्वल शिल्पी-जीवन पर यह अमिट कलंक-बिंदु है, जिसे वह अविलंब धो देना चाहता है। अपने प्रतिबिंदु के विनाश का भार वह अपने ऊपर लेता है। धरमा की हत्या को उद्यत बिशु अँगूठी से पुत्र को पहचानता है। रक्त-पिपासु हाथ थम जाते हैं—मन में द्वंद्व आरंभ हो जाता है— पिता व शिल्पी में, वैयक्तिक व सामूहिक हित में। बिशु किंकर्तव्यविमूढ़ है। चारों ओर से एक ही प्रश्न, एक ही माँग है—'बारह सौ बढ़ई दाय कि पुत्र दाय?' पिता की ओर से पुत्र का उत्तर है 'निश्चित रूप से बारह सौ बढ़ई दाय।' पुत्र का बलिदान कर बिशु पागल हो जाता है।

शिल्पियों को पुरस्कार देते समय महाराज को बिशु के प्रलाप से सत्य का ज्ञान होता है। क्षुब्ध नरसिंह देव शिल्पी-समाज को पुनः प्राणदंड देते हैं, किंतु महान पुत्र की महान जननी महाराज से शिल्पी-समाज के प्राणों की भिक्षा माँग लेती है। मंदिर में धरमा की प्रतिमूर्ति की स्थापना का आदेश होता है। जाति के लिए प्राणोत्सर्ग का वह आदर्श आज भी जीवित है।

बिश्वाल, मंगलुचरण *(उ० ले०)* [जन्म—1935 ई०]

मंगलुचरण बिश्वाल कवि, कहानीकार एवं उपन्यासकार हैं। 'पाउँश तलरनिश्रां', 'दरिआ पारिर कविता', 'सीमा' आदि इनकी काव्य-पुस्तकें हैं। 'स्मृति मग्ना', 'दूर बसंत' उपन्यास, तथा 'अस्तरागर कवि', 'अग्नि-संभवा' कहानी-संग्रह हैं। आजकल ये व्यापारी हैं। इनका जन्म पिताबाली, संबलपुर में हुआ था।

बिहारी *(भाषा० पारि०)*

मैथिली, मगही तथा भोजपुरी बोलियों का एक वर्ग मानते हुए ग्रियर्सन (दे०) ने इस वर्ग को 'बिहारी' नाम से अभिहित किया था। इस तरह बिहारी हिंदी भाषा की एक उपभाषा है जिसमें ये तीनों बोलियाँ आती हैं। इस

का क्षेत्र मुख्यत बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश है। बिहारी का विकास मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है। इसी कारण इस वर्ग की भोजपुरी, मैथिली आदि बोलियो की कई विशेषताएँ हिंदी की तुलना मे मागधीजात बँगला आदि भाषाओ के अधिक निकट है।

बिहारी *(हिं० ले०)* [जन्म—1603 ई०, मृत्यु—1663 ई०]

बिहारी (बिहारीलाल) का जन्म बसुआ गोविंदपुर (ग्वालियर) मे और निधन मथुरा मे हुआ। युवावस्था मे ये कुछ वर्षों तक जयपुर के राजा जयसिंह के यहाँ रहे और वही अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'बिहारी सतसई' (दे०) की रचना की। बिहारी रीतिकालीन कवि है किंतु उन्होने चितामणि (दे०), कुलपति (दे०) आदि के समान लक्षण-लक्ष्यबद्ध ग्रथ न लिखकर लक्ष्यबद्ध ग्रथ लिखा है। यह इस तथ्य का सूचक है कि इनके समक्ष भारतीय काव्यशास्त्र के विभिन्न तत्व—विशेषत नायक नायिका प्रसग, अलकार और सभवत ध्वनि—के विभिन्न भेदोपभेद थे, जिनके स्वरूप के आधार पर इन्होने प्रमुख वर्ण्य विषय शृगार रस के चित्र प्रस्तुत किए है। अत इस दृष्टि से इन्हे रीतिबद्ध आचार्य माना जाता है। शृगार के अतिरिक्त इन्होने भक्ति और नीतिपरक दोहे भी लिखे हैं, पर काव्यत्व की दृष्टि से वे उच्च कोटि के नही हैं। इनके शृगारपरक दोहो मे सयोग और वियोग के विभिन्न प्रसग अत्यत मादक एव मोहक रूप मे प्रस्तुत हुए हैं—छोटे से छद दोहा (दे०) अथवा सोरठा (दे०) मे पूर्ण और सजीव चित्र उपस्थित कर देना बिहारी की कल्पना प्रवणता के अतिरिक्त समाहार क्षमता का भी परिचायक है। इनकी रचना मे हास्य एव व्यग्य का भी सफल समावेश है। यद्यपि बिहारी के सम्मुख सस्कृत-प्राकृत के शृगारपरक मुक्तक काव्यो—'आर्यासप्तशती (दे०), 'गाथासप्तशती', (दे० गाहासतसई), 'अमरुकशतक' (दे०)—का आदर्श रहा होगा, फिर भी, इन्होने अपनी रचना को हिंदी के रीतिकालीन वातावरण मे ढालकर उसे मौलिक रूप प्रदान किया है। इनकी रचना की भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है, जिसकी वाक्य-रचना सुव्यवस्थित है और अन्य ब्रजभाषा कवियो के समान इन्होंने शब्दो को तोडा-मरोडा भी नही है। बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि हैं। यही कारण है कि एक ओर तो इनकी रचना पर पचास से भी अधिक टीकाएँ, आलोचनाएँ, प्रत्यालोचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं तथा दूसरी ओर अनेक कवियो ने 'बिहारी सतसई' के अनुकरण पर सतसइयो का निर्माण कर सतसई परपरा का विस्तार किया है।

बिहारी के अनेक दोहो से ज्ञात होता है कि वे ज्योतिष, राजनीति, वैद्यक साख्यशास्त्र आदि के भी ज्ञाता थे। पर इनकी ख्याति तो उनके काव्य कौशल के कारण ही है, जिसके आधार पर इन्हे हिंदी का एक मूर्धन्य कवि माना जाता है।

बिहारी सतसई *(हिं० कृ०)*

रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि बिहारी (दे०) ने सात सौ दोहे लिखकर हिंदी साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान बना लिया और यही मुक्तक-रचना 'बिहारी-सतसई' के रूप मे ग्रथित की गई है। कहा जाता है कि जयपुर के राजा जयसिंह ने इन्हें प्रत्येक दोहे पर एक-एक अशर्फी पुरस्कार-स्वरूप प्रदान की थी। एक प्रसिद्धि यह भी है कि 'बिहारी-सतसई' को सर्वप्रथम औरगजेब के पुत्र आजमशाह ने क्रमबद्ध कराया था और यह क्रम 'आजमशाही'-क्रम से विख्यात है। बिहारी के अधिकतर दोहे शृगार रस से सबद्ध हैं, कुछ-एक भक्ति और नीति से भी सबधित हैं। शृगार विषयक दोहो मे शृगार के दोनो पक्षो— सयोग और वियोग के सजीव चित्र दृष्टिगत होते हैं। इन दोहो मे विचित्र मादकता, तीव्रता और मार्मिक अभिव्यजना मिलती है। दोहा (दे०) अथवा सोरठा (दे०) जैसे छोटे से छद मे भावो की गभीरता और विशदता भर देना बिहारी जैसे सिद्धहस्त कवि का काम है। इनसे कवि की सूक्ष्म अन्वीक्षण शक्ति का भी परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि प्रतिभाशाली कवि बिहारी विभिन्न विषयो के भी ज्ञाता थे। अनेक दोहो मे ज्योतिष, राजनीति वैद्यक, साख्य-शास्त्र, वेदातशास्त्र आदि विभिन्न ज्ञानो का कलापूर्ण रीति से प्रयोग हुआ है, पर इस प्रयोग से वे इन विषयो के प्रकाड पाडित्य मालूम नही होते।

'बिहारी सतसई' लक्षण रहित रीति ग्रथ है। अलकार, रस, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि सभी काव्यागो के उदाहरण 'गागर मे सागरवत' इसमे उपलब्ध हैं। नायिका भेदो के उदाहरणो का तो यह अपूर्व भाडार है। इस रचना मे मानव जीवन के साधारण एव स्वाभाविक प्रणय-व्यापारो का सूक्ष्मतम निरीक्षण, कला कुशलता और

वाग्वैदग्ध्य—ये तीनों गुण विशेष रूप से विद्यमान हैं। साथ ही, इसमें विरह भावना के साथ खिलवाड़ करने तथा अनेक अत्युक्तिपूर्ण मजमून बाँधने का दोष भी आ गया है।

'बिहारी-सतसई' पर संस्कृत के मुक्तक काव्यों 'अमरुकशतक'-(दे०), 'गाथासप्तशती' (दे० गाहा-सतसई), 'आर्यासप्तशती' (दे०) का प्रभाव स्पष्टतः लक्षित होता है। इसकी अभिव्यंजना-शैली पर फ़ारसी साहित्य का भी प्रभाव है। किंतु फिर भी, बिहारी ने उक्त प्रभाव को हिंदी-रीतिकालीन वातावरण में ढाल कर अपनी मौलिक प्रतिभा का दिग्दर्शन कराया है। इस रचना की भाषा ब्रजभाषा है, जो कि चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य-रचना सुव्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है।

बिहारी के पश्चात् इस रचना के अनुकरण पर सतसइयों (दे०) की एक परंपरा-सी चल पड़ी—'मतिरामसतसई', 'वृंदसतसई', 'विक्रमसतसई', 'वीरसतसई', 'करण सतसई' आदि। 'बिहारी-सतसई' की लोकप्रियता का एक और प्रबल प्रमाण यह भी है कि इस पर आज तक पचास से भी अधिक टीकाएँ, आलोचनाएँ, प्रत्यालोचनाएँ आदि हो चुकी हैं। इस प्रकार यह रचना हिंदी-साहित्य का एक उज्ज्वल रत्न है।

बिहुगीत *(अ० पारि०)*

बिहु असम का जातीय उत्सव है। यह वसंतोत्साह की अभिव्यक्ति है। नयी फसल के कारण कृषि-जीवी जनों में नया उल्लास होता है। ये लोग नाच-गाकर इसे मनाते हैं। यौवन की उद्दाम वासना, मिलन की तीव्र आकांक्षा, विरह का उत्ताप, प्रेम की विनय और धुनी हुई रुई जैसे उड़नशील मन की सम्यक् अभिव्यक्ति बिहुगीतों में प्राप्य है। इनका गायन पर्वत, वनप्रदेश नदी आदि स्थानों पर काम करने वाले लोगों द्वारा अपने-अपने कार्य में संलग्न रह कर भी होता है। बिहुगीतों के कुछ संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं—डा० डिंबेश्वर नेओग के 'आकुल पथिक' और 'भोगजरा'; नकुलचंद्र भुजा (दे०) का 'बहागी' तथा लीला गर्ग (दे०) का 'बिहुगीत', 'आरु बनघोषा'।

बी (नारायण मुरलीधर गुप्ते) *(म० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1947 ई०]

बी का जन्म विदर्भ प्रदेश के मलकापुर नगर में हुआ था। पिता की अकाल मृत्यु के कारण पढ़ाई इन्होंने छोड़ दी थी और सरकारी क्लर्क बन गए थे। क्लर्की के साथ 'बी' उपनाम से काव्य-रचना करते थे।

इनका 'फुलांची ओंजळ' नामक एकमात्र काव्य-संग्रह उपलब्ध है। 'कमला' (दे० थोरातांची कमला) इनका ऐतिहासिक खंडकाव्य है।

ये सौंदर्यवादी तत्वान्वेषी कवि हैं। काव्य और अध्यात्म के प्रति रुचि होने के कारण इनके काव्य में सर्वत्र गांभीर्य व्याप्त है। शब्द-लाघव के द्वारा रूप, रंग और रेखाओं को मूर्तिमान करने में ये सिद्धहस्त हैं।

मराठी नाट्याचार्य श्री कृ० कोल्हटकर (दे०) ने इन्हें 'आधुनिक कवियों का भीष्माचार्य' कहा है।

बीचि *(क० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

कन्नड के ख्यातनामा हास्य लेखक भीमसेन राव का काव्य नाम है 'बीचि'। उनका जन्म 1912 ई० में बल्लारी जिले के हरपनहल्ली में एक श्रोत्रिय ब्राह्मण के यहाँ हुआ। शिक्षा समाप्त कर वे पुलिस विभाग में काम करने लगे। छुटपन में ही उनके लेख, कहानियाँ आदि 'प्रेम', 'जयंती' आदि पत्रिकाओं में छपने लगी थीं। 1942 ई० में उन्होंने पत्रकारिता का क्षेत्र चुना और हुबली के 'विशाल कर्णाटक' में काम शुरू किया। अब तक उनकी दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें 'तिम्मन-तले', 'तिम्मरसायन', 'दासकूट', 'हुच्चुहुरुकु', 'हन्नोंदने अवतार', 'बंगारदकत्ते', आदि प्रमुख हैं। समकालीन समाज की विकृतियों एवं बीभत्सता के प्रति व्यंग्य करने में वे सिद्धहस्त हैं। 'दासकूट' में उन्होंने यह दिखाया है कि हमारे समाज के सब लोग किसी न किसी के दास हैं। हमारा मानसिक दास्य मिटा नहीं है। ललित हास्य और सरल भाषा इनके लेखन की विशेषता है।

बीम्स, जॉन *(भाषा० ले०)*

इंगलैंड-निवासी जॉन बीम्स 1857 ई० में इंडियन सिविल सर्विस में आए तथा बंगाल में नियुक्त हुए। बाद में पंजाब, बिहार, उड़ीसा, आदि में भी कलेक्टर तथा मजिस्ट्रेट रहे। भाषाओं के अध्ययन में ये बचपन से ही रुचि लेते थे। भारत आने के लगभग 10 वर्ष बाद इनका पहला ग्रंथ 'एन आउटलाइन ऑफ इंडियन फ़िलोलॉजी' प्रकाशित हुआ। कैल्डवेल का द्रविड़ भाषाओं

का व्याकरण देखकर इन्हे भारतीय आर्य-भाषाओ पर वैसा ही काम करने की प्रेरणा मिली और लगभग 24 वर्षों तक इस विषय पर कार्य करते हुए इन्होने अपना प्रसिद्ध ग्रथ 'कम्पैरेटिव ग्रामर ऑफ द मॉडर्न आर्यन लैंग्विजिज़ ऑफ इडिया' तीन भागो (भाग 1 1872, भाग 2 . 1875, भाग 3 · 1879) मे प्रकाशित किया। भारतीय आर्य-भाषाओ के तुलनात्मक विकास पर यह पहला कार्य है। इस विषय पर अब तक कोई दूसरा कार्य नही हुआ है। एक हजार से अधिक पृष्ठो के इस विस्तृत ग्रथ मे प्रारभ मे भारतीय आर्य-भाषाओ के उद्‌भव और विकास पर 121 पृष्ठो की एक लबी-सी भूमिका है तथा आगे हिंदी, पजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, उडिया तथा बँगला की ध्वनियो तथा उनके सज्ञा, सर्वनाम, सख्यावाचक विशेषण तथा क्रिया रूपो का सस्कृत से तुलनात्मक विकास दिखलाया गया है।

बीम्स ने हार्नले के साथ मिलकर 'पृथ्वीराज रासो' (दे०) के आदि पर्व का सपादन भी किया था।

बीरबल *(बँ० ले०)*

दे० चौधुरी प्रथमनाथ।

बीरबलेर हालर वाता *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1902 ई०]

यह प्रथमनाथ चौधुरी (बीरबल) (दे० चौधुरी) के निबधो का सकलन है। इसमे उस युग के राजनीतिक, सामाजिक तथा समसामयिक विषयो पर व्यग्यात्मक ढग से स्पष्ट एव निर्भीक मत प्रकट किया गया है। इस गद्य-रचना के लिए उन्होने बीरबल का छद्‌मनाम ग्रहण किया था। इन निबधो मे लेखक ने अकबर के सभासद बीरबल की सूक्तियो की तरह मर्मभेदी सत्य को सक्षिप्त किंतु मनोहारी ढग से व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। लेखक का कहना है कि मजाक के व्याज से कुछ सत्य बातें मैं लोगो से कहना चाहता था, तब मैंने बिना सोचे-समझे 'बीरबल' का नाम ग्रहण किया। ऐसा करके मैंने अपनी स्वजाति को बादशाह का पद दे दिया, इसलिए उन्हे खुश ही होना चाहिए। इन निबधो में शब्द के साथ-साथ डक भी है। इन निबधो की शैली बहुत ही शिथिल है। निबध के शीर्षक के एकदम विपरीत वे अवातर प्रसगो का उत्थापन करते हैं और यदृच्छ विचरण करते हुए इस प्रकार की दीर्घ भूमिका की अवतारणा कर अत मे निबध के विषय पर आते हैं। वे बीरबल की तरह हास्ययुक्त मन की आलोकच्छटा से, श्लेष और व्यग्य के कशाघात से जीवन की अस्वस्थता को दूर करना चाहते हैं। इससे वे बुद्धिहीन भावुकता, अध-सस्कार, ऐहिक-जीवनचर्याहीन अध्यात्म स्वप्न, विदेशी आचार-व्यवहार का अनुकरण, यथार्थबोध शून्य राजनीतिक चपलता के विरोधी के रूप मे प्रकट होते हैं।

इस निबध-सकलन की सबसे बडी विशेषता इसकी कथ्य भाषा का प्रयोग कर उन्होंने उस युग मे लेखको को एक नयी दिशा दी थी।

बीर सुरेंद्रसाए *(उ० कृ०)*

यह अनिरुद्ध दास-(दे०) कृत जीवनी है। 1857 ई० के सिपाही विद्रोह ने अल्पाधिक रूप से सपूर्ण भारत मे एक चमक फैला दी थी। कलकत्ता, उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली मे इसने व्यापक आकार पाया था। उस समय इस स्रोत से विच्छिन्न उडीसा जैसे राज्य से भी स्वाधीनता प्रेमी देश-सेवक खिचे चले आये थे। पश्चिम उडीसा मे अवस्थित सबलपुर के बीर सुरेंद्रसाए ने भी भारत-माता की एक योग्य सतान के रूप मे अपना जीवन अर्पित कर दिया था। इस पुस्तक मे उनके घटना-बहुल नाटकीय जीवन को सुदर रूप दिया गया है।

बीरागना *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1862 ई०]

माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) का 'बीरागना काव्य' इतली के कवि ओविद के 'हिरोइक एपिसल्स्' के आदर्श पर रचित एक पत्रकाव्य है। इसमे कुल मिलाकर ग्यारह पत्र हैं। पुराणो के स्त्री पात्र शकुतला, तारा, रुक्मिणी, केकयी, शूर्पणखा, द्रौपदी, भानुमति, दु शला जाह्नवी, उर्वशी तथा जना (दे०) के पत्रो मे कही अपूर्व कोमलता है तो कही गाभीर्य एव तेज की अद्वितीय छटा विद्यमान है। नारी-प्रेम इस काव्य की विषय-वस्तु है। प्रेम, आवश्यकता पडने पर, नारी को दुर्जन शक्ति की अधिकारिणी बनाता है।

'बीरागना' काव्य मे कवि ने नारी-हृदय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म कामना एव वेदना को सुतीक्ष्ण अतर्दृष्टि एव गहरी सहानुभूति की सहायता से प्रकट किया जाता है। पुराण के इतिवृत्त को निमित्त बनाकर कवि ने रोमानी

दृष्टिकोण की सहायता से एक-एक पत्र मे एक-एक रस का विकास दिखाया है। भाव एवं भाषा पर कवि का पूर्ण संयम उल्लेखनीय है। 'बीरांगना' काव्य आत्मगत भावोच्छ्वास है और कवि की एक सफल कृति है।

बुंदेली *(भाषा० पारि०)*

पश्चिमी हिंदी की एक बोली जो शुद्ध रूप में झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भोपाल, ओरछा, सागर, नृसिंहपुर तथा होशंगाबाद में बोली जाती है। इसके सीमांत रूप सीमावर्ती भाषाओं और बोलियों से प्रभावित हैं जो आगरा, दतिया, चरखारी, दमोह आदि में बोले जाते हैं। बुंदेली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ है। बुंदेली में साहित्य-रचना नहीं हुई है। यहाँ के मध्यकालीन कवि ब्रजभाषा में लिखते रहे हैं। लाल कवि का ग्रंथ 'छत्रप्रकाश' अपवाद है जिसकी भाषा मुख्यतः बुंदेली है। बुंदेली की मुख्य उपबोली बनाफरी है। प्रसिद्ध लोकगाथा 'आल्हा' मूलतः बनाफरी में ही लिखी गई थी।

बुच्चिबाबू *(तें० ले०)*

ये तेलुगु के मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार एवं नाटककार है। इनकी रचनाओं में अव्यक्त मानसिक स्थिति के चित्रण की प्रधानता देखी जा सकती है। मानव-व्यवहार के बाह्य आवरण को भेदकर उसके अवचेतन की प्रेरणा तक पहुँचकर उसका विश्लेषण करने में इनको विशेष सफलता मिली है। चरित्रों के मन में क्षण-काल में उत्पन्न होकर तुरंत विलीन होने वाले भावों के चित्रण में ये अत्यंत कुशल हैं।

इनकी प्रमुख रचनाएँ—'चिवरकु मिगिलेदि' (दे०), 'तिष्यरक्षिता', 'नालुगोपरिमाणमु' आदि हैं। विज्ञान के विकास के कारण मानव की तात्त्विक दृष्टि में प्रकट होने वाले परिवर्तन को चित्रित करने वाली नाटिका 'नालुगोपरिमाणमु' है। 'तिष्यरक्षिता' इनकी एक ऐतिहासिक नाटिका है जिसमें प्रेम और विवाह, धर्म और समाज बंधनों के संबंध में एक नवीन दृष्टि का परिचय दिया गया है। 'चिवरकु मिगिलेदी' इनका सर्वोत्तम उपन्यास है। इसमें अपनी माँ के संबंध में सुनी गई निंदा से सदा पीड़ित होकर अंत तक अपनी समस्त शक्तियों को नष्ट करने वाले एक युवक का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। गतिमय शैली एवं अभिव्यक्ति के नूतन इनकी रचनाओं के प्रभाव को बढ़ाने में सहायक हुए है।

बुच्चि सुंदर रामशास्त्री, माधवपेद्दि *(तें० ले०)* [जन्म—1890; मृत्यु—1950 ई०]

ये गुंटूर ज़िले के निवासी थे। काव्य-रचना की प्रेरणा इन्हें तिरुपति कवियुग्म की अद्भुत काव्य-साधना से मिली। उन्हीं के यहाँ शास्त्री जी ने संस्कृत का अध्ययन किया। शास्त्री जी स्वतंत्र-चेता व्यक्ति थे और संगीत के उत्कट प्रेमी थे। शास्त्री जी का जीवन कई विकट परिस्थितियों से गुजरा था। अपने जीवन की वेदना को ही इन्होंने काव्य का कमनीय रूप दिया था। 'बृंदावनमु', 'सती स्मृति' आदि रचनाओं में इनकी यही व्यक्तिगत वेदना कला का अवगुंठन लेकर प्रकट हुई। तेलुगु के शतक (दे०) साहित्य में इनके 'मृत्युंजय शतकमु' का विशिष्ट स्थान है। 'पंचवटी (दे०) और 'शबरी' इनके प्रसिद्ध खंडकाव्य हैं।

राष्ट्रीय विचारधारा से ओतप्रोत कविता लिखने में भी इन्होंने काफ़ी सफलता प्राप्त की है। इनके जीवन का अंतिम भाग घोर दरिद्रता में बीता।

बुद्ध *(सं० पा०)* [स्थिति-काल—छठीं शती ई० पू०]

इनका वास्तविक नाम गौतम था। इनका जन्म 563 ई० पू०, वैशाख शुक्ल पूर्णिमा को कपिलवस्तु के समीप लुंबिनी नामक ग्राम में हुआ था। इनकी माता माया देवी का, जब ये सात दिन के ही हुए थे, स्वर्गवास हो गया था। इनके पिता का नाम शुद्धोदन था, जो शाक्यों के अधिपति थे। गौतम का विवाह क्षत्रिय कन्या से संपन्न हुआ था। इनका एक पुत्र था, जिसका नाम राहुल था। जब गौतम ज्ञान-प्राप्ति के लिए बोधगया गए तो वहाँ इन्होंने पीपल के वृक्ष के नीचे तपस्या की थी। वहीं इन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई थी और उसी समय से ये बुद्ध कहलाए। वह पीपल का वृक्ष भी ज्ञानवृक्ष के नाम से प्रख्यात हो गया।

बुद्ध ने जिस धर्म एवं दर्शन का प्रचार किया था, वह मूल तया लोककल्याण, सत्य एवं अहिंसा की दृढ़ नींव पर आधारित था। भारत ही नहीं, समस्त विश्व को बौद्ध धर्म एवं दर्शन की देन अत्यंत महनीय है।

बुद्धचरित *(स० कृ०)*

इस महाकाव्य के प्रणेता अश्वघोष (दे०) हैं, जिनका समय प्रथम शती ई० माना जाता है। इसमे बुद्ध के जन्म से लेकर महानिर्माण तक की कथा वर्णित है मूलत इसमे 28 सर्ग थे। चीनी और तिब्बती भाषा मे इसके 28 सर्गों का अनुवाद उपलब्ध है किंतु सस्कृत मे प्राय इसके पहले 14 सर्ग मिलते हैं, और चौदहवें सर्ग मे भी 31वें श्लोक तक पाठ मिलता है। इस ग्रथ की शैली की प्रमुख विशेषता है सरसता एव सुबोधता, तथा इस काव्य मे वैदर्भी रीति की प्रधानता मानी गई है। स्वभावत इसमे प्रसाद और माधुर्य गुण का आधिक्य है। इसके वर्णनो मे यथार्थता, सजीवता एव स्वाभाविकता है। इसमे आश्रम, नदी, वन, वृक्षादि प्राकृतिक दृश्यो का वर्णन अति मनोरम है। इसके अतिरिक्त ग्रथकार का व्याकरण, दर्शन, पुराण, राजनीति, नीतिशास्त्र, आयुर्वेद, कामशास्त्र पर असाधारण अधिकार है। कवि ने इन शास्त्रो से सबद्ध विषयो को भी निसदेह कुछ एक स्थलो को छोडकर, सरल-सुबोध रूप मे प्रस्तुत किया है।

बुद्धघोष *(पा० ले०)* [समय—पाचवी शती ई०]

इनका जीवन-वृत्त कुछ तो महावश के 33 पद्यों से और कुछ ब्रह्मा के भिक्षु महामगल लिखित 'बुद्धघोष उसपत्ति' से ज्ञात होता है। इसके माता पिता केशी गया के निकट घोष ग्राम के निवासी थे। ब्राह्मण धर्म में अनास्था के कारण जब ये उसका खडन करते हुए इधर-उधर घूम रहे थे तो इनका परिचय रेवतक नामक भिक्षु से हुआ जिससे प्रभावित होकर ये बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुए। बाद मे उनके ही परामर्श से ये लका चले गए जहाँ इन्होने बौद्ध-साहित्य का गहराई से अध्ययन और अनेक ग्रथो का प्रणयन किया। बाद मे बोधिवृक्ष के नीचे साधना करने भारत लौट आये। कुछ दिन बाद मे ब्रह्मा चले गए।

बुद्धघोष का साहित्य अत्यत विशाल है। भारत मे ही इन्होंने दो पुस्तको की रचना की थी 'ज्ञानोदय' और 'आत्मशालिनी' (दे० अट्टशालिनी)। दूसरी पुस्तक 'अभिधम्मपिटक' (दे०) के एक भाग 'धम्मसगनी' की व्याख्या है। इनकी सर्वाधिक प्रतिष्ठित पुस्तक विसुद्धिमग्ग' (दे०) है जिसमें तीनो पिटको का सार दिया हुआ है।

बुद्धघोष प्रतिभा और अभिव्यजना-शक्ति दोनो के ही धनी थे। बौद्ध धर्म का इनका अत्यत गहन था। बुद्ध के उपदेशो को समझना ही इनका लक्ष्य था जिससे मौलिक चितन के लिए विशेष अवसर नही मिला। सामान्य भूमिका, इतिहास, सुत्त या सवाद का समय, पाठ भेदो पर विचार और निर्णय तथा व्याख्या, यह इनकी टीकाओ की सामान्य रूपरेखा है। ये विवेचन मे नीरसता के परिहार के लिए विशेष सचेष्ट हैं और पाठकों की रुचि बनाये रखने के लिए कोई-न-कोई कथा छेड देते हैं जो पौराणिक, ऐतिहासिक, तत्कालीन लोकप्रसिद्ध इत्यादि किसी प्रकार हो सकती है। इन कथाओ से उस समय के सामाजिक रीति-रिवाज, व्यापारिक परिस्थिति, लोक-साहित्य आदि का अच्छा परिचय मिल जाता है। केवल भारत मे ही नही समस्त बौद्ध-जगत् मे बुद्धघोष का साहित्यिक योगदान महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

बुद्धदत्त *(पा० ले०)* [समय—पाँचवी शती ई०]

इनके जीवन-वृत्त का कोई विशेष परिचय प्राप्त नही होता। प्रसिद्धि के अनुसार इनका जन्म भारत मे हुआ था और इन्होंने कई बार भारत से लका और लका से भारत की यात्राएँ की थी। ये दक्षिण भारत के अनेक नगरो मे रहे थे। यह भी प्रसिद्ध है कि इनका साक्षात्कार बुद्धघोष (दे०) से हुआ था, किंतु कतिपय विचारको के मत मे इन्हे अधिक प्राचीन सिद्ध करने और इन्हे महत्व प्रदान करने के मतव्य से इन लेखको के मिलने की कहानी गढ ली है।

बौद्ध-साहित्य मे इनकी लिखी कई पुस्तकें प्रसिद्ध हैं जो अधिकाश टीकाएँ ही हैं। इन्होने 'बुद्धवश' (दे० सुत्तपिटक) पर एक टीका लिखी थी। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'अभिधम्मपिटक' (दे०) का पूर्ण परिचय 'अभिधम्मावतार' नामक पुस्तक मे और 'विनयपिटक (दे० का विवेचनात्मक परिचय 'विनयनिच्चय' मे दिया है। इनकी लिखी हुई एक पुस्तक रूपारूपविभग' भी है। इन पुस्तको का सकलन और सपादन इस शती के दूसरे दशक मे बुद्धदत्त नामक एक भिक्षु ने किया था। इसके नाम पर एक अन्य पुस्तक भी प्रसिद्ध है 'जिनालकार जिस पर बुद्ध-रक्षित की टीका है। टीकाकार ने अपना समय बुद्धनिर्वाण के 1700 वर्ष बाद दिया है। जिसमे टीका का रचना काल बारहवी शती ज्ञात होता है। पुस्तक की विषय वस्तु की दृष्टि मे यह रचना बारहवी शती के पहले की ज्ञात भी नही होती। अत. कुछ लोगो के विचार से पुनर्नव

की रचना भी बुद्धरक्षित ने ही की थी।

बुद्धदत्त की पुस्तकें बौद्ध धर्म तथा बौद्ध धर्म का अध्ययन करने की दिशा में अत्यंत उपयोगी हैं। इनकी शैली साफ-सुथरी तथा प्रसाद गुण-पूर्ण है। किसी विस्तृत विषय का समाहार करने की इनमें उच्चकोटि की क्षमता है। बुद्धघोष की शैली का अनुकरण करने की इन्होंने सफल चेष्टा की है।

बुद्धरक्खित *(पा० ले०)*

ये पाली बौद्ध-साहित्य के लेखक हैं। इनका समय बारहवीं शती है। इन्होंने 'जिनालंकार' नामक पुस्तक की रचना 1156 ई० में की थी। इस पुस्तक में आडंबरपूर्ण शैली में भगवान् बुद्ध के जीवन पर 250 पद्य हैं और बौद्ध-साहित्य के अलंकृत काव्यों का एक उदाहरण है। शब्दालंकारों के साथ चित्रकाव्य (दे०) को भी इसमें महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। कहीं पद्य व्यंजन-वर्ण रहित हैं और कही एकाक्षर पद्य। इसमें पौराणिक अत्युक्तियाँ भी हैं।

बुद्धारेड्डी, गोन *(तें० ले०)* [समय—चौदहवीं शती ई०]

काकतीय राजाओं के सामंत नरेश गोन बुद्धारेड्डी तेलुगु-साहित्य में राम-काव्य के प्रणेताओं में अग्रगण्य माने जाते हैं। ये और इनके पिता विट्ठलराज भगवान विष्णु के अनन्य भक्त थे। पिता की इच्छा पर ही बुद्धारेड्डी ने रामायण की रचना की और उसे उन्हीं को समर्पित किया। पिता के नाम पर ही इन्होंने अपनी कृति का नाम 'रंगनाथ रामायणमु' (दे०) रखा। विट्ठल, पांडुरंग और रंगनाथ कवि के आराध्य प्रभु के पर्यायवाची नाम होने के कारण उनकी कृति का नाम उनके आराध्यदेव और पितृ-पाद दोनों का बोधक बन सकता है। कुछ लोग 'रंगनाथ रामायणमु' का कर्ता रंगनाथ नाम के किसी अन्य कवि को मानते हैं। पर इसके समर्थन में कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता। अतः विद्वान लोग गोन बुद्धारेड्डी को ही इस ग्रंथ का लेखक मानते हैं। इनके जीवन-काल के संबंध में भी मतभेद है। कुछ लोग इनको चौदहवीं शती के आरंभ के बताते हैं और कुछ लोग तेरहवीं शती के अंत के। बुद्धारेड्डी के पूर्व तेलुगु में शैव-वाङ्मय का प्रचार जनभाषा में साधारण जनता में अधिक प्रचलित द्विपद शैली में किया जा रहा था। लोकरुचि को पहचान कर बुद्धारेड्डी ने भी उसी भाषा और उसी शैली में अपनी काव्य-साधना चलाई और जन-मानस को रामकथापीयूष से आप्लावित कर दिया था। बुद्धारेड्डी की भाषा में जन-मन को रंजित करने वाली मंजुल मनोहारिता भी है और परिष्कृत रुचि के पंडितों को प्रभावित करने वाली प्रौढ़ एवं परिमार्जित प्रवहमानता भी।

बुरंजी *(अ० पारि०)*

असमीया भाषा में बहुत से शब्द आहोम भाषा के आ गए हैं। बुरंजी भी एक ऐसा ही शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है बु=प्राचीन वार्त्ता + रंज= विवरण। अब असमीया भाषा में इतिहास शब्द के लिए 'बुरंजी' शब्द का ही प्रयोग होता है। इसका दो दृष्टियों से महत्व है—(1) जिस समय किसी भी भारतीय भाषा में साहित्य नहीं लिखा जा रहा था, उस समय असमीया में लिखा गया, (2) भारतीय साहित्य में जब गद्य का प्रचार नहीं हुआ था, उस समय गद्य में इतिहास जैसे महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखे जा रहे थे। आहोम लोग तेरहवीं शती में असम देश में बस गए थे। पहले वे अपनी आहोम भाषा और लिपि में इतिहास लिखाते थे; कालांतर में उन्होंने कभी आहोम भाषा और असमीया लिपि का प्रयोग किया तो कभी इसका उल्टा किया। सोलहवीं शती के लगभग उन्होंने पूरी तरह असमीया लिपि और भाषा में बुरंजी (इतिहास) लिखाना आरंभ किया। बुरंजियों में देश की राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों आदि का वर्णन किया जाता था, घटनाओं के साथ वर्ष, मास, दिन और दंड-पल तक दिए जाते थे। इनमें रोचकता का समावेश होने के कारण इनका साहित्यिक मूल्य भी है। अब तक 150 बुरंजी ग्रंथ लिखे गए है; इनमें सबसे प्राचीन ग्रंथ है 'पुरणि असम बुरंजी' (1516 शक) आहोम राजाओं के इन ग्रंथों की प्रेरणा से कोच राजाओं ने वंशावली-ग्रंथ लिखाए थे। सत्रों (मठों) में भी वंशावली लिखने का प्रचार चल पड़ा था।

बुर्रकथा *(तें० पारि०)*

यह कथा कथनात्मक प्रदर्शन की एक प्रक्रिया है। कथक द्वारा बजाए जाने वाले वाद्यविशेष के कारण इसको यह नाम दिया गया है। इसमें पहले साधारणतया सितार के समान दिखने वाले एक वाद्य को लेकर कथा

कहने वाला एक पुरुष होता है। और उसके दोनो ओर दो व्यक्ति ढोलक जैसे वाद्य को लेकर कथा की पुष्टि करते हुए बीच-बीच मे कथा का विवरण पूछते हैं तथा हास्यपूर्ण प्रसगो की सृष्टि किया करते हैं। ये दो व्यक्ति पहले प्राय स्त्रियाँ होती थी। अत बुर्रकथा सुनाने वाला व्यक्ति दो स्त्रियोसे विवाह किया करता था। अब बुर्रकथा मे तीनो पुरुष भी होते है। बुर्रकथा आध्र मे बहुत पुराने समय से प्रचलन मे है। इसका सबध शिष्ट साहित्य से कम और लोक-साहित्य से अधिक होता है। इसमे मुख्य रूप से वीर एव करुण रसो का परिपाक होता है और इसमे सहज एव सरल व्यावहारिक भाषा का अधिक प्रयोग होता है। इसमे कथक वीर रसात्मक प्रसगो मे परवश होकर नृत्य करते हैं और दर्शक के हृदय मे भी रसावेग उत्पन्न हो जाता है। बुर्रकथा ने मुख्य रूप से आध्र की कई लोक-कथाओ को अपनाया है जिनमे 'पलनाटि वीर चरित्र (दे०), 'बोब्बिलि कथा', 'बालनागम्म कथा' आदि प्रसिद्ध हैं। इसमे सगीत, साहित्य एव नृत्य का सम्यक् समावेश हो जाने से शिक्षित एव अशिक्षित दोनो प्रकार की जनता को यह प्रभावित करती है।

बुल्बुल, शम्सुद्दीन (*सि० ले०*) [जन्म—1857 ई०, मृत्यु—1919 ई०]

शम्सुद्दीन बुल्बुल मेहड सिंध के जमीदार थे। ये बाद मे कुछ वर्षो के लिए कराची मे जाकर रहे थे जहाँ मद्रसे की तरफ से प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'मुआविन' का सपादन करने लगे थे। इन्होने सिंधी, उर्दू और फारसी मे कविताएँ लिखी हैं। इन्होने अपनी रचनाओ द्वारा सिंध के मुसलमानो को नवचेतना प्रदान की थी और उन्हे अँग्रेजी सीख कर नया ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया था। इनकी दो काव्यकृतियाँ 'दीवान-बुल्बुले' और 'करीमा नेचरल' बहुत प्रसिद्ध हैं। उर्दू के शायर अक्बर इलाहाबादी की तरह इन्होने भी फैशनपरस्त और अँग्रेजो की नकल करने वाले हिंदुस्तानी लोगो की कटु आलोचना की है। बुल्बुल के काव्य की भाषा हास्य और व्यग्य से पूर्ण है। इस दृष्टि से अभी तक और कोई सिंधी कवि इनका स्थान नही ले सका है।

बुल्लेशाह (*प० ले०*) [जन्म—1680 ई०, मृत्यु—1754 ई०]

इनका जन्म लाहौर नगर मे 1680 ई० मे हुआ और मृत्यु कसूर मे 1754 ई० मे हुई। जीवन का अधिकाश समय कसूर मे बीता। इन्होने अठवारे, काफियाँ, बार माह, सीहरफियाँ और दोहे लिखे हैं। सबसे अधिक काफियाँ प्रसिद्ध हैं। काव्य का विषय सूफी मत के अनुसार प्रेम-वर्णन है। प्रेम की अभेदता का चित्रण मार्मिक है। इनके काव्य मे भाव प्रवणता एव रागात्मकता का प्राधान्य है। अनुभूति की तीव्रता भी काव्य मे विद्यमान है। फारसी काव्य के उपमानो एव प्रतीको की अपेक्षा पजाब के सामान्य जीवन से ही उपमानो तथा प्रतीको की योजना काव्य मे दृष्टिगत होती है। फूल, बुलबुल शराब इत्यादि की अपेक्षा कुआँ, चरखा, मायका, विवाह आदि के द्वारा उपमान-योजना की गई है। कवि बुल्ले शाह का बैंत (दे०) छद मे लिखा काव्य सगीत की मादकता का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है। वैष्णव धर्म के प्रभाव के कारण इनका काव्य भारतीय सूफीवाद का रूप ले गया है जिसमे विदेशी आध्यात्मिकता-बोधक शब्दो की अपेक्षा भारतीय रहस्यवादी शब्दावली का प्रयोग अधिक हुआ है। उदाहरणत —

इक अँधेरी कोठडी दूजा दीवा ना वत्ती।
बाहो फडके लै चले, शाम वे, कोई सग न साथी॥

इनके काव्य की भाषा मे लहदी, हिंदी, फारसी एव अपभ्र श का मेल है।

बूंद और समुद्र (*हिं० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1956 ई०]

यह अमृतलाल नागर (दे०) का बहुचर्चित एव लोकप्रिय उपन्यास है जिसमे मध्यवर्गीय नागरिक-जीवन को आधार बनाकर व्यक्ति तथा समाज के पारस्परिक सबधो मे सतुलन तथा समन्वय की समस्या पर विचार किया गया है। उपन्यास का कथानक लखनऊ के एक ऐसे मोहल्ले से सबधित है जो भारतीय समाज के विविध वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है। रायसाहब, कवि विरहेश, महिपाल, सज्जन, कर्नेल आदि ऐसे पुरुष पात्र हैं जो दभी, स्वार्थी, शराबी, वेश्यागामी, बुद्धिजीवी, सुधारक आदि विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं तो 'ताई' (दे०) बडी, नदो, तारा, श्रीमती राजदान, शीला स्विग, वनकन्या आदि ऐसी स्त्री पात्राएँ हैं जो नाना प्रकार की प्राचीन रूढियो, टोने-टोटको भूत-प्रेत, जतर मतर आदि मे विश्वास करने वाली, अतृप्त प्रेम तथा वासना मे घुलने वाली, घर मे ही कुट्टिनी का काम करने वाली, नये फैशन तथा नयी शिक्षा मे दीक्षित होकर स्वतत्रता का

उपभोग करने वाली, कर्तव्य के प्रति जागरूक तथा स्वावलंबी वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं। ताई इस उपन्यास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं अजर-अमर सृष्टि है। यह बाहर से विश्व भर की कृपा तथा हिंसा का पुंजीभूत रूप प्रतीत होने पर भी भीतर से अत्यंत करुणापूर्ण एवं ममतामयी है। लेखक ने इसके माध्यम से मानव-समाज में अपनी गहरी पैठ का अत्यंत सफल परिचय दिया है। हास्य-व्यंग्य-गर्भित कथोपकथन तथा छोटे-छोटे व्यंजक विवरणों द्वारा सजीव वातावरण की सृष्टि करके लेखक ने इस उपन्यास को अत्यधिक प्रभावपूर्ण बना दिया है। अत्यंत विस्तृत आधारफलक ग्रहण किए जाने के कारण इसमें घटनाओं तथा पात्रों की बहुलता अवश्य है; लेकिन इन सबको ऐसी कुशलता के साथ सँजोया गया है कि न तो औपन्यासिक गठन को आँच पहुँची है और न किसी प्रकार की अस्वाभाविकता ही आने पाई है।

बूढ़ो शालिकेर घाड़े रौं *(बं० कृ०)* [रचना-काल—1860 ई०]

माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) के पहले प्रहसन में पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण के दुष्परिणाम दिखाए गए थे। इस प्रहसन में उन्होंने ग्रामीण-समाज में अधिकार संपन्न लोगों के अत्याचार एवं दुराचार का वास्तविक चित्र खीचा है। भक्त प्रसाद (दे०) एक ऐसा ही विधुर व्यक्ति है जो असामियों की विवशता का लाभ उठाकर अपनी लंपट-वृत्ति का परितोष करता है। भक्त ने हनीफ़ का लगान इसलिए माफ़ कर दिया ताकि उसकी सुंदर पत्नी फ़ातिमा को पा सके। इसके लिए षड्यंत्र-जाल तो रचता ही है परंतु दुर्भाग्य से उसी में स्वयं फँस जाता है। एक दूसरे असामी वाचस्पति की सहायता से भक्त को रँगे हाथों पकड़ लिया जाता है। अपने कुकर्म के एहसास से उसे पश्चात्ताप एवं ग्लानि तो होती है परंतु इसका मूल्य भी उसे चुकाना पड़ता है। इस प्रकार इस प्रहसन में व्यंग्य का आधार है भक्त के आचरण में विसंगति तथा विकृति।

इस प्रहसन के कथानक का विकास-क्रम चरम उत्कर्ष की ओर है। इस बिंदु पर पहुँचकर नाटककार सभी पक्ष उद्घाटित कर देता है। प्रहसन के दो अंक और प्रत्येक अंक के दो गर्भांक हैं। संवाद सहज एवं स्वाभाविक हैं। भाषा पात्रानुसार है। अभिनय की दृष्टि से यह प्रहसन पर्याप्त सफल एवं लोकप्रिय रहा है। पात्र तो कई हैं परंतु सर्वाधिक सशक्त पात्र भक्त प्रसाद हैं।

अंत में सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाने के कारण प्रहसन का व्यंग्य कुंठित हो गया है। माइकेल के दोनों प्रहसन एक-दूसरे के पूरक हैं। दोनों प्रहसनों (दे० भक्त प्रसाद) का परवर्ती नाटककारों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है।

वृत्रसंहार *(बं० कृ०)* [रचना-काल—प्रथम खंड : 1875 ई०; द्वितीय खंड : 1877 ई०]

'वृत्रसंहार' काव्य की रचना हेमचंद्र बंद्योपाध्याय (दे०) ने 'मेघनाद वध' (दे०) के अनुकरण पर की थी। वृत्रासुर के द्वारा स्वर्ग-विजय एवं इंद्र के द्वारा पुनः स्वर्ग पर अधिकार एवं वृत्र-वध के लिए दधीचि के महान् आत्मत्याग की कथा के प्रति हेमचंद्र का कविमानस बहुत अधिक आकृष्ट हुआ था। इसी पुराणाश्रित कहानी के आश्रय से कवि ने 'वृत्रसंहार' काव्य में स्वदेश-प्रेम की अभिव्यक्ति की है। वस्तुतः देशानुराग एवं आत्मत्याग ही इस काव्य का मूल स्वर है। हेमचंद्र ने पौराणिक वृत्र-वध की कहानी को युगोपयोगी बनाने का सफल प्रयत्न किया है।

कहानी भिन्न होने पर भी 'वृत्रसंहार' की भाव-परिकल्पना, रूप-विधान, चरित्र-चित्रण एवं छंद-विधान में 'मेघनाद-वध' का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है यद्यपि देव-दैत्य-संग्राम की उद्दीपना में लेखक की मौलिकता स्पष्ट है। वीर एवं रौद्र रस की वर्णना में हेमचंद्र का कौशल बहुत ही सुंदर ढंग से प्रकट हुआ है। वीरत्व, गांभीर्य एवं अलौकिक महिमा के वर्णन में कवि सिद्धहस्त है। इसमें गार्हस्थ्य जीवन का रूप, रस, साधारण द्वंद्व-जटिलता एवं करुण अनुभूति महाकाव्य की कठोर, आदर्श-नियंत्रित सीमा का अतिक्रमण कर परिव्याप्त है। माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) के समकक्ष न होने पर भी विषय-गौरव, समसामयिक रुचि के अनुवर्तन एवं काव्य-शक्ति के प्रकाश के द्वारा हेमचंद्र ने अपनी कवित्व-शक्ति का सुंदर परिचय दिया है।

बृहत् पिंगल *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1955 ई०]

रामनारायण विश्वनाथ पाठक (दे०) द्वारा लिखित तथा गुजराती साहित्य परिषद्, बंबई द्वारा प्रकाशित 'बृहत् पिंगल' नामक ग्रंथ गुजराती-साहित्य में पिंगल-शास्त्र पर सर्वाधिक आधिकारिक ग्रंथ है। छंदों से संबंधित इस आकर-ग्रंथ में विद्वान् लेखक ने छंदों के विकास की यथाशक्ति ऐतिहासिक भूमिका को उठाते हुए छंदों के

अवलबन तत्व वाणी के अक्षर की चर्चा की है, उनकी गणना का आधार प्रस्तुत किया है और गुजराती मे सस्कृत से भिन्न उच्चारण की स्थितियो को स्पष्ट कर उनका परीक्षण किया है। परिणामस्वरूप इस ग्रथ मे गुरु-लघु के निर्णय से सबद्ध नियमो को एक निश्चित ऐतिहासिक आयाम मे देखने का उपक्रम किया गया है। लौकिक और वैदिक—इस प्रकार छदो के दो भेद मानकर उनके पृथक् होने के परपरागत आधारो को खोजने की चेष्टा की गई है। वर्णवृत्तो के परपरागत स्वरूप का विवेचन, मात्रा-गर्भवृत्त और अनुष्टुप (मानात्मक और लयात्मक होने के कारण) की समस्या का प्रस्तुतीकरण, यति और यतिभग, सधि और वृत्तो के सयोग से उत्पन्न नये वृत्तो की समस्या का उद्घाटन, विभिन्न मात्रा वाले गणो की चर्चा, देशी पद की स्वरूप-चर्चा तथा समसख्यसधिबद्ध और असमसख्य-सधिबद्ध देशियो की चर्चा आदि इस ग्रथ के मुख्य प्रतिपाद्य विषय रहे हैं। इन सभी विषयो की चर्चा मे समाविष्ट न हो सकने वाल अन्य सबद्ध विषयो को भी लेखक ने परिशिष्टो मे समाविष्ट कर लिया है। परिशिष्ट दो प्रकार के दिखाई देते हैं प्रकरणात में 1, 2, 3 आदि के क्रम से ज्ञापित तथा (क), (ख), (ग) से विज्ञप्त। क्रमाक मे दिए गए परिशिष्टो मे अक्षर, ऐतिहासिक दृष्टि से लघु-गुरु का विवेक, उसमे अपवाद शैथिल्य और छूट, वैदिक छद और छदो के प्रकार, सस्कृत पिंगलशास्त्र मे यति चर्चा भरत (दे०) और प्राकृतपैंगलम् के आधार पर निरूपण-पद्धतियो की चर्चा, आवृत्तिसधि अक्षरमेल वृत्त और वृत्तो का परपरागत पठन, अनुष्टुप, यतिपूर्ण अक्षरो का गुरुत्वऔर यति-सबधी अर्वाचीन लेखको की चर्चा, काव्यनिरूपण की रीतियाँ, अनावृत्ति-सधि सबधी के० ह० ध्रुव के मत की विवेचना, लयगान-पठन से सबद्ध अन्य मतो की चर्चा, मराठी घनाक्षरी का स्वरूप और ओवी और अभग आदि समाविष्ट हैं। दूसरी ओर (क), (ख), (ग) के रूप मे दिए गए परिशिष्ट जाति छद (डिंगल के छद और गज़ल,) पद तथा प्रवाही छद अथवा अबाध पद्य-रचना के प्रयत्न आदि विषयो से सयुक्त हैं। इस ग्रथ-लेखक ने पिंगल निरूपण के मुख्य-मुख्य सिद्धात निश्चित करने का प्रयत्न किया है। छदो को सगीत के परिप्रेक्ष्य मे देखने का प्रयत्न भी किया गया है। छदो के रचना विधान मे समय-समय पर हुए परिवर्तनो के कारणो पर भी उपसहार मे विचारकिया गया। सपूर्ण ग्रथ गुजराती मे लिखा होने पर भी मुद्रित देवनागरी मे हुआ है। लेखक ने इसका कारण देते हुए स्पष्ट लिखा है कि इसे देवनागरी म मुद्रित कराने का हेतु यह है कि हिंदी-मराठी के लोग छद शास्त्र पर विचार करते समय इस ग्रथ पर भी ध्यान दें। गुजराती साहित्य मे तो क्या भारतीय आधुनिक भाषाओ के पूरे साहित्य मे छद शास्त्र पर इतने सूक्ष्म इतिहासपरक तथ्यान्वेषण से युक्त शायद ही कोई दूसरा ग्रथ हो। इस ग्रथ की शैली तर्कयुक्त, प्रमाण-पुष्ट ऐतिहासिक निरूपण को लेकर चली है।

बृहद व्याकरण (गु० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1919 ई०]

कमलाशकर त्रिवेदी (1857-1925 ई०)-विरचित गुजराती भाषा का यह प्रथम विस्तृत व्याकरण है। सस्कृत के पडित होने के कारण लेखक ने यह व्याकरण सस्कृत व्याकरण के आधार पर लिखा है। व्याकरण के समूचे अग लेकर लेखक ने प्रचुर दृष्टात देकर और मराठी तथा हिंदी भाषा से गुजराती भाषा की विशेषता की तुलना करते हुए और साथ साथ सस्कृत भाषा तथा अन्य भाषाओ के रूपातर से गुजराती शब्द समृद्धि किस प्रकार हुई—इसका क्रमिक निरूपण किया है। इस पुस्तक के प्रकाशन के फलस्वरूप गुजराती-लेखन मे शुद्धता आई क्योंकि समसामयिक साहित्यिक रचनाओ को लेकर लेखक ने उन रचनाओं के व्याकरण दोष भी दर्शाए हैं।

बेंद्रे, द० रा० (क० ले०)

बेंद्रे जी आधुनिक युग के विख्यात कवि है। इनका उपनाम 'अबिकातनयदत्त' है। इन्होने धारवाड मे 'गेळयर गुपु' (मित्र-मडली) की स्थापना कर उसके द्वारा अनेक कवियो और लेखको को प्रेरणा दी है। विनायक कृष्ण गोकाक (दे०), मुगळि (दे०), मधुरचेन्न (दे०), आनदकद (दे० कृष्णशर्मा, बेटगेरी) आदि साहित्यकार इनसे प्रेरित हुए हैं।

बेंद्रे जी की प्रतिभा बहुमुखी है। ये एक-साथ कवि, नाटककार, गद्यकार और आलोचक हैं। कवि और नाटककार की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है। 'मुगलि-मल्लिग' (मेघ मल्लिका), 'उत्तरायण', 'नमन', सचयन', 'हृदय-समुद्र', 'मुक्तकठ', 'सखीगीत, गगावतरण', 'यक्ष-यक्षि', 'मेघदूत' आदि इनके काव्य-सग्रह हैं। इनमे उनके भावगीत (गीति-मुक्तक) और लबी कविताएँ सगृहीत है। इन सग्रहो मे वस्तु की विविधता और प्रयागानिश्चय देखने योग्य है। बेंद्रे जी आशु कवि हैं। इन्होन अपनी कविता के लिए निसर्गसिद्ध सुषमा, राष्ट्रप्रेम, प्रेयमी-

प्रियतम का प्रेम, पारिवारिक सुख-दुःख, कला, आत्मानुभूति ऐसे सभी विषय चुने हैं। इनकी दृष्टि में सभी वस्तुएँ—मूर्त हों या अमूर्त—काव्य की वस्तुएँ बन सकती है। 'कृष्णकुमारी' में इतिहास-प्रसिद्ध करुण कथा वर्णन हैं। 'सखीगीत' में कवि के दांपत्य जीवन की आत्मकथा है। 'मूर्ति' नामक कविता में एक प्रतीक-योजना है।

जीवनद्रष्टा होने के कारण वेंद्रे जी रचनाओं में जीवन की मार्मिक अनुभूतियों को मूर्त रूप प्राप्त हुआ है। कुछ विद्वानों ने इनके काव्य को 'शब्द-स्मृति' कहा है। प्रकृति-चित्रण हो अथवा अन्य कोई चित्र, उसको 'शब्द-शरीर' प्रदान करने में इनको विशेष सफलता मिली है। इनकी चेतनशील कल्पना के कितने रूप होते हैं, यह कहना कठिन है। एक-एक कविता में एक-एक प्रकार का कल्पना-विलास है। इनकी कविताओं में 'कुणियोणु बार' (नाचेंगे आओ), 'सखीगीत', 'गंगावतरण', 'हक्कि हारुतिदे' (चिड़िया उड़ रही है), 'युगादि', 'नादलीला आदि अत्यंत लोकप्रिय हुई है।

'नगेय होगे' (हँसी का धुआं) और 'उद्धार' जैसे नाटकों के अतिरिक्त वेंद्रे जी ने कतिपय उत्कृष्ट साहित्यिक निबंध भी लिखे हैं जो उनकी अपार विद्वत्ता और प्रतिभा के सुंदर निदर्शन हैं।

बेक्स, मुहम्मद मुहसिन *(सि० ले०)* [जन्म—1858 ई०; मृत्यु—1880 ई०]

मुहम्मद मुहसिन 'बेकस' सिंध के प्रसिद्ध सूफ़ी कवि कादिर बख़्श (दे०) बेदिल के सुपुत्र थे। इन्होंने अरबी और फ़ारसी की प्रारंभिक शिक्षा तो अपने पिता से प्राप्त की थी किंतु बाद में ये आखूंद अब्दुल्ला के पास पढ़ने लगे। इन पर बचपन से ही पिता की आध्यात्मिक वृत्ति का प्रभाव पड़ चुका था। ये सितार बजाने और गाने में सिद्धहस्त थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने लिखना-पढ़ना छोड़ दिया था और अपने मित्रों के साथ अलबेलों की तरह बाज़ारों में घूमते रहते थे। ये दरवेशों और फ़क़ीरों की दरगाहों में जाकर अपने रचे हुए सिंधी गीत और काफ़ियाँ गाकर सुनाया करते थे। ऐसे अवसरों पर गाते-गाते ये प्रायः भावविभोर हो आत्मविस्मृति की अवस्था को पहुँच जाते थे। इनकी कविता प्रेम की मादकता, पीड़ा की भावना और संगीतात्मकता के गुणों से पूर्ण है।

'बेख़ुद' देहलवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1862 ई०; मृत्यु—1955 ई०]

पूरा नाम—सैयद वहीदुद्दीन, उपनाम—'बेख़ुद'; पिता का नाम—सैयद शम्सुद्दीन अहमद, जन्म-स्थान—भरतपुर। इनका लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षा दिल्ली में हुई। मौलाना 'हाली' (दे०) इनके काव्य-गुरु थे। मौलाना हाली के बाद 'दाग़' (दे०) देहलवी का भी शिष्य बनने का सौभाग्य इन्हें प्राप्त हुआ। शिकार, घुड़सवारी और तलवार चलाने में इन्हें बहुत रुचि थी किंतु काव्य-प्रेम अन्य सभी रुचियों पर छाया हुआ। इनके दो काव्य-संग्रह—'गुफ़्तार-ए-बेख़ुदी' और 'दुर्र-ए-शहवार' प्रकाशित हो चुके हैं। ग़ज़ल-लेखन में इन्हें विशेष दक्षता प्राप्त थी। भाषा इनकी सरस, सजीव और प्रसाद गुण-संपन्न है। मुहावरों का सफल प्रयोग तथा संगीतात्मकता इनके काव्य की विशेषताएँ हैं 'बेख़ुद' साहब दिल्ली में अँग्रेज़ अफ़सरों को उर्दू-फ़ारसी पढ़ाया करते थे।

बेजबरुवा, लक्ष्मीनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1868 ई०; मृत्यु—1938 ई०]

इन्होंने कलकत्ता से एम० ए०, बी० एल० तक शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने उड़ीसा के संबलपुर में व्यवसाय किया था। ये कई पत्रिकाओं के संपादक थे। 1924 ई० इन्होंने असम-साहित्य-सभा का सभापतित्व किया था। 1931 ई० में साहित्य-सभा ने इनका अभिनंदन कर रसराजि की उपाधि प्रदान की थी।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'कदमकलि' (दे०) (1913); प्रहसन : 'लितिकाइ' (दे०) (1889-90), 'पाँचनि' (1913), 'नोमल' (दे०) (1913), 'चिकरपति निकरपति' (1913); ऐतिहासिक नाटक : 'चक्रध्वज सिंह' (दे०) (1915), 'जयमती कुँवरी' (दे०) (1915), 'बेलिमार' (दे०); उपन्यास : 'पद्म कुँवरी' (1905); कहानी : 'सुरभि' (1909) 'साधुकथार कुकि' 'जोनबिरि' (1913); निबंध और जीवनी : 'भागवतकथा' (1915), 'शंकरदेव' (1912)।

ये असमीया रोमांटिक कविता के स्तंभ के स्वरूप हैं। 'कदमकलि' की कविताओं में भावुकता और कवित्व-शक्ति है। इनके शृंगार में लौकिकता के साथ अध्यात्मवाद भी है। इनकी कुछ कविताएँ देशभक्तिपरक हैं। इनका बैलेड 'धनवर रतनी' विशेष महत्त्वपूर्ण है।

इनके नाटकों के मध्य भी सुंदर गीत हैं। प्रहसनों की अपेक्षा इन्हें ऐतिहासिक और सामाजिक नाटकों के लेखन में विशेष सफलता मिली। इन्होंने छात्रावस्था में 'पद्म कुँवरी' उपन्यास लिखा था। यह यद्यपि सफल कृति नहीं है, किंतु इसे असमीया का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है। इनकी कहानियों में तीव्र व्यंग्य है। इनमें लोक-कथा-शैली और पाश्चात्य कथा-शिल्प का समन्वय है। 'कृपाबर बरुवा' के छद्मनाम से इन्होंने अनेक निबंध लिखे थे। हास्य और व्यंग्य से युक्त निबंधों के अतिरिक्त इन्होंने गंभीर निबंध भी लिखे थे।

ये श्रेष्ठ कवि, नाटककार, कथाकार, निबंध-लेखक और पत्रकार थे।

'बेताब' देहलवी *(उर्दू॰ ले॰)*

नाम—पं॰ नारायण प्रसाद उपनाम—'बेताब', पिता का नाम—पं॰ ढलाराय देहलवी। ये उर्दू नाटककार भी थे और अच्छे कवि भी। इनके नाटकों में 'रामायण', 'महाभारत', 'कृष्ण-सुदामा', 'गोरखधंधा', 'फरेब-ए-मुहब्बत' और 'जहरी साँप' बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने बंबई से 'शेक्सपीयर' नामक पत्रिका भी निकाली थी। इस पत्रिका में शेक्सपीयर के नाटकों के उर्दू अनुवाद छपा करते थे। अल्फ्रेड थिएट्रिकल कंपनी ने 'अहसन' लखनवी के पश्चात नाटक-लेखन का कार्य-भार इन पर ही डाला था।

बेताल पचविंशति *(बँ॰ कृ॰)*

'बेताल पचविंशति' का अनुवाद 1847 ई॰ में *मूल हिंदी से फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के तत्कालीन अध्यक्ष* श्री मार्शल की प्रेरणा से श्री ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने किया था। यद्यपि यह ग्रंथ मूलतः कालेज की पाठ्य-पुस्तक के रूप में रचा गया था, फिर भी बँगला-साहित्य के पाठकों के बीच इसका अच्छा प्रचार हुआ। विषयानुरूप भाषा और शिल्प का प्रयोग इस ग्रंथ का उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है।

बेदिल, कादिर बख्श *(सिं॰ ले॰)* [जन्म—1814 ई॰, मृत्यु—1872 ई॰]

कादिर बख्श 'बेदिल' का जन्म सिंध के रोहिड़ी नामक गाँव में हुआ था। इनका नाम तो अब्दुल कादिर रखा गया था, परंतु जब ये बड़े हुए तो इन्होंने अपना नाम बदलकर कादिर बख्श रख लिया था। इनकी रचनाएँ सिंधी, उर्दू, अरबी और फारसी में मिलती हैं। सिंधी में इनकी मुख्य काव्यकृतियाँ हैं—'बहदतनामो' और 'सुल्द-नामो'। इनके सिंधी कलाम का प्रामाणिक संस्करण 'दीवान 'बेदिल' नाम से *1954* ई॰ में सिंधी अदबी बोर्ड, हैदराबाद (सिंध) से प्रकाशित हुआ है जिसके संपादक हैं अब्दुल हुसैन शाह मूसवी। गिदूमल हरजाणी ने भी इस सूफी कवि के कलाम का संपादन कर उसे प्रकाशित करवाया है। 'बेदिल' ने सूफी मत के गहन सिद्धांतों को अपनी प्रसाद पूर्ण और ओजस्विनी भाषा के द्वारा सरल ढंग से समझाया है। इनके काव्य में संगीतात्मकता और माधुर्य के गुण अधिक मिलते हैं। उन्नीसवीं शती ई॰ सदी के सूफी कवियों में इनका प्रमुख स्थान है।

बेदी राजेन्द्रसिंह *(उर्दू॰ ले॰)* [जन्म—1910 ई॰]

राजेंद्रसिंह बेदी उर्दू के प्रसिद्ध कहानीकारों में हैं। बेदी बहुत कम लिखते हैं किंतु जो कुछ लिखते हैं वह उत्कृष्ट होता है। जनजीवन की समस्याएँ इनकी कहानियों का विषय हैं। इनकी कहानियाँ सजीव, सुंदर, सुगठित तथा प्रभावपूर्ण होती हैं। 'दाना-ओ-दाम', 'ग्रहन', 'कोखजली', 'लंबी लड़की', 'अपने दुख मुझे दे दो' आदि इनकी कहानियों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

बेदी ने नाटक भी लिखे हैं जिनका संग्रह 'सात खेल' है और एक उपन्यास 'एक चादर मैली सी' प्रकाशित *होकर सम्मानित हो चुका है।*

'बेनज़ीर' *(उर्दू॰ पा॰)*

शहज़ादा 'बेनज़ीर' मीर हसन (दे॰) की मसनवी 'सिह्-उल बयान' (दे॰) का नायक है। इसका रूप-लावण्य अद्वितीय है। इसके जन्म पर महोत्सव मनाया जाता है, पुरस्कारों तथा दान आदि में विपुल धनराशि का व्यय किया जाता है। इसे शिक्षा देने के लिए अनेक शिक्षक नियुक्त किए जाते हैं जो इसे अनेक विद्याओं में पारंगत बना देते हैं।

एक रात महल की छत पर चाँदनी में सोते हुए *शहज़ादे को माहरुख नाम की परी उड़ा कर परिस्तान* ले जाती है। सारे राजप्रासाद में दुहाई मच जाती है। माता पिता, सगे-संबंधी, दास-दासियाँ सभी इसके खो जाने

पर गहरे दुःख-दर्द में डूब जाते हैं। इसके सौंदर्य पर मुग्ध माहरुख परी इसके बिना क्षण भर भी नहीं रह सकती। वह इसे संध्या समय भूलोक का भ्रमण कर आने के लिए एक जादुई घोड़ा देती है।

सैर को निकला हुआ 'बेनज़ीर' बद्र-ए-मुनीर (दे०) के बाग़ में पहुँचता है। दोनों के एक-दूसरे से मिलते ही दिल मिल जाते हैं। 'बेनज़ीर' परिस्तान से यहाँ आता-जाता रहता है। एक देव के द्वारा माहरुख को इस प्रणय-क्रीड़ा का रहस्य ज्ञात हो जाता है। वह 'बेनज़ीर' को एक कुएँ में बंदी बनवा देती है।

'बेनज़ीर' का चरित्र जैसा प्रभावशाली तथा आकर्षक प्रारंभ मे दिखाया गया है, आगे चल कर वैसा नहीं रहा। बद्र-ए-मुनीर से भेंट के बाद इसमें एक मोड़ आ जाता है और इसका चारित्रिक अपकर्ष हो जाता है।

बेनीपुरी, रामवृक्ष *(हि० कृ०)* [जन्म—1902 ई०]

इनका जन्म बिहार प्रांत के मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के बेनीपुर गाँव में हुआ था। इन्होंने पत्रकारिता से साहित्य-सेवा प्रारंभ की थी तथा एक दर्जन से अधिक साप्ताहिक, मासिक, दैनिक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया था। ये भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के सेनानी रहे हैं तथा इन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, रेखाचित्र, संस्मरण, बाल-साहित्य आदि विविध विधाओं को अपने कृतित्व से समृद्ध किया है। इनका विशेष प्रदेय रेखाचित्र के क्षेत्र में है तथा 'माटी की मूरतें', 'गेहूँ और गुलाब' आदि कृतियाँ इस विधा की स्थायी निधि बन चुकी हैं। बेनीपुरी जी शब्दों के जादूगर हैं तथा भावपूर्ण अलंकृत शैली का प्रयोग इनके लेखन की अनिवार्य विशेषता है।

बेनीप्रवीन *(हि० कृ०)*

बेनीप्रवीन (बेनीदीन 'प्रवीन') लखनऊ के बाजपेयी परिवार से संबद्ध थे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'नवरसतरंग' है, जिसका रचना-काल 1817 है, इसके अतिरिक्त इनकी अन्य दो रचनाएँ हैं—'शृंगार-भूषण' और 'नानाराव-प्रकाश'। इनमें से केवल 'नवरसतरंग' उपलब्ध है। इसमें शृंगार रस, विशेषतः नायक-नायिका भेद का वर्णन है। यद्यपि ग्रंथ का उदाहरण-भाग अत्यंत ललित है। इनकी कविता में सरसता तथा भावुकता है। इस रचना में प्रकृति-वर्णन के छंद भी अति प्रभावशाली, चित्रात्मक और मर्मस्पर्शी हैं। इस ग्रंथ के कारण बेनी-प्रवीन रीतिकाल में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

बेरलगे कोरल् *(क० कृ०)*

यह महाकवि कुवेंपु (के० वी० पुट्टप्पा—दे०) का नाटक है। इसके तीन दृश्यों के नाम नाटक के उद्देश्य को बड़ी मार्मिकता के साथ प्रकट करते हैं। ये हैं—'गुरु', 'कर्म', 'यज्ञ'। इनके द्वारा यह सूचित किया गया है कि नाटक का प्रधान पात्र एकलव्य गुरु के प्रति निष्ठावान था, कि कर्मपाश कितना बलवत्तर होता है। और एकलव्य द्वारा किया गया त्याग 'यज्ञ' ही है। एकलव्य की गुरुभक्ति और उसके प्रति उसकी माता के ममत्व का दर्शन प्रथम दृश्य में होता है। द्वितीय दृश्य में द्वापर के सीमापुरुष द्रोण का दर्शन होता है। उनके औदार्य से एकलव्य धनुर्विद्या में निपुण होता है। अर्जुन के एहसास के कारण द्रोण एकलव्य से अँगूठे का दान माँगने को बाध्य होते हैं। तीसरे दृश्य मे एकलव्य के त्याग का दर्शन होता है। रक्त की धार में पड़े हुए एकलव्य के अँगूठे को देखने के लिए द्रोण सिर झुकाते हैं कि उसमें उन्हें एक सिर-रहित धड़ दिखाई पड़ता है। उनको भविष्य का ज्ञान होता है कि एकलव्य के अँगूठे के बदले उनको एक दिन अपने सिर की आहुति देनी होगी। एकलव्य की माता का शाप भी इस अनिवार्य कर्म का फल बन जाता है। नाटककार ने एकलव्य, उसकी माता और द्रोण का बड़ा रम्य चित्रण उपस्थित किया है। नाटक की कवित्वपूर्ण भाषा-शैली, रसयुक्त संभाषण और बिंब-योजना व दर्शन मानो उसकी सफलता की घोषणा करते हैं।

बेलिफुलर सपोन *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1963 ई०]

अणिमा भराली के इस कहानी-संग्रह की भाषा में बहती हुई धारा का सरल सौंदर्य है। इसकी कहानियाँ मेलोड्रामिक हैं।

बेलिमार *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1915 ई०]

यह लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०) का दूसरा ऐतिहासिक नाटक है, यह दुःखांत है। इसमें बर्मियों के आक्रमण के फलस्वरूप आहोम राज्य के पतन का चित्रण है। इसमें ऐतिहासिक तथ्यों से हटकर वर्णन कम किए

गए है। सवादो की अनाटकीयता और चरित्रो के सख्या-बाहुल्य के कारण नाटक रगमचोपयोगी नही है। इस पर शेक्सपियर के 'किंग लेयर' और 'हेमलेट' के नाटको का प्रभाव है। नाटक मे करुण दृश्यो के मध्य हास्य-रस के दृश्य भी प्रस्तुत किए गए हैं।

बेल्लावि नर हरि शास्त्री *(क० ले०)*

श्री शास्त्री का जन्म तुकूर जिले के बेल्लाळि मे 1882 ई० मे हुआ था। आप एक सफल कवि, नाटककार तथा चित्रकार और अध्यापक थे। अपने कई चित्र-कथाएँ भी लिखी है। आप 'कर्नाटक-कविकेसरी' विरुदालकृत थे। आपकी रचनाएँ सौ से अधिक हैं। कन्नड मे गुब्बी कपनी आदि नाटक-कपनियो के लिए आपने बीसो नाटक लिखे तथा उनका मचन भी करवाया। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है—'कल्याणगीत-मजरी', 'आकाश-गमन-साहस', 'जलधर' (नाटक), 'दशावतार', 'दामाजि-पतु', 'नाटक मजरी', 'प्रभावती', 'प्रह्लाद', 'पापियारु' (विक्टर ह्यू गो के 'लामिजराबेल' का अनुवाद) 'पाडव-विजय', 'बलिचक्रवर्ती', 'भोज कालिदास', 'मदनमोहन राज-चरित्रे', 'महात्मा बसवेश्वर', 'मार्कंडेय', 'श्रीकृष्णगारुडि', 'श्रीकृष्ण पारिजात', 'रुक्मिणी-स्वयवर', 'सती सुलोचना', 'सपूर्ण रामायण', 'स्यमतकरत्न नाटक', 'साध्वी अनुसूया', 'साधु तुकाराम', 'हास्य कल्लोल', आदि। आपके अधिकाश नाटक रगमच के उपयुक्त है। कृतियो मे रूढिपालन का विशेष ध्यान रखा गया है। आपकी पद्यरचना सरस है।

'बेवस', किशिनचद तीर्थदास खत्री *(सिं० ले०)* [जन्म—1885 ई०, मृत्यु—1947 ई०]

'बेवस' का जन्मस्थान लाडकाणा (सिंध) है। ये सरकारी स्कूलो मे अध्यापन कार्य करते थे और आर्थिक स्थिति अच्छी न होते हुए भी हमेशा प्रसन्नचित्त रहते थे। ये नम्रता की साक्षात् मूर्ति थे। जब सिंधी मे फारसी-तर्ज की शृगार रस से पूर्ण कविता लिखने का युग चल रहा था। तब इन्होंने सिंधी काव्यधारा को नया मोड दिया था। इनकी कविता मे किसानो और गरीबो के लिए सहानुभूति, मजदूरो के लिए स्नेह, पूंजीपतियो की निंदा, हिंदू-मुस्लिम-एकता, नारी की महानता, राष्ट्रीय प्रेम और दशभक्ति आदि भावो की अभिव्यक्ति यत्रतत्र मिलती है। इनकी मुख्य काव्यकृतियाँ हैं—'शीरी शइर', 'मौजी गीत', 'गुरु नानक जीवन कविता', 'बेवस-गीताजली' और 'शहर बेवस'। इन्होंने कुछ नाटक और निबध भी लिखे है, परतु इन्हे अधिक प्रसिद्धि कविता के कारण ही मिली है। इनका मुख्य उद्देश्य था जीवन की यथार्थता को सरल और स्वाभाविक भाषा मे अभिव्यक्त करना। ये अपने युग के निराली प्रतिभा वाले कवि थे। विषय की विविधता के साथ-साथ इनकी कविता मे भाषा-शैली और छद के नये-नये प्रयोग भी मिलते है। इनके बताये हुए मार्ग पर आज इनके शिष्य कवि चल रहे हैं, जिनमे हूदराज 'दुखायल' (दे०), हरि 'दिलगीर', (दे०), राम पजवाणी (दे०) और खीअलदास फानी के नाम उल्लेखनीय है।

बेहुला *(बँ० पा०)*

मध्ययुगीन बँगला मगलकाव्यो के नारी-चरित्रो मे बेहुला जनप्रियता एव उत्कर्ष की दृष्टि से सर्वोत्तम है। रामायण की सीता की सहनशीलता तथा स्वामी के पुनर्जीवन के लिए काल के साथ सग्राम करने की सावित्री-जैसी अपरिमेय शक्ति बेहुला के चरित्र मे युगपत् प्रकट हुई है। बेहुला के माध्यम से ही मगलकाव्य (दे०) की परिधि मे दिव्य और मर्त्य का इकट्ठा चित्रण हो पाया है। यह चरित्र केवल आदर्शवाद की भावभूमि पर विकसित नही हुआ है। सीमाहीन मानवीय बोध की उदात्त महिमा ने इस चरित्र को माधुर्य-मडित और औज्ज्वल्य से अभिनदित किया है। नाव खेती हुई जब वह स्वर्ग के लिए चल देती है तो यात्रा-पथ के विचित्र अनुभवो के माध्यम से बेहुला ने उस युग के पथ-वृत्तात, शिक्षा-सस्कार, पाप-पुण्य, दया-धर्म के विचित्र चित्र अकित किए हैं।

नारायण देव, विजय गुप्त (दे०), केतकादास क्षेमानद (दे०), तत्र-विभूति आदि कवियो के 'मनसा-मगल' मे बेहुला का चरित्र-चित्रण लगभग एक जैसा ही है। थोडा व्यतिक्रम है केवल विप्रदास पिपलाई (दे०) के काव्य मे। स्वर्ग मे बेहुला के नर्तकी-रूप को उन्होंने प्रश्रय नही दिया है, वहाँ उनके 'विद्याधरी' रूप को ही प्रकट किया है।

बेहेरा, चिंतामणि *(उ० ले०)*

श्री चिंतामणि बेहेरा आजकल रेवेंसा कालेज, कटक मे उडिया के प्राध्यापक हैं। ये समीक्षक, कहानीकार एव कवि हैं। इनके आलोचनात्मक निबधो का उच्च-

स्तरीय शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कहानियाँ यथार्थ-मूलक एवं सूक्ष्म कलानुभूति से समृद्ध हैं। कविताएँ प्रायः प्रेममूलक हैं। 'कथा ओ कथाकार', 'फकीर मोहन परिक्रमा', 'ओड़िया साहित्य परिक्रमा', 'आधुनिकतार क ख ओ अन्यान्य आलोचना' (दे०) आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

बैंत *(पं० पारि०)*

यह पंजाबी क़िस्सा-काव्य में प्रयुक्त सुप्रसिद्ध छंद है जिसे अरबी शब्द 'बैत' का पंजाबी रूपांतर माना जाता है। बैत (दरवाज़ा) के दो किवाड़ों के समान 'बैत' मे भी समतुकांत दो चरणों का एकक बनता है; परंतु पंजाबी में दो चरणों का बैंत प्रचलित नहीं हुआ। इसका सर्वप्रथम प्रयोग 'हीर अहमद' (1692 ई०) में हुआ जिसमें इसके प्रति छंद में चार या चार से अधिक चरण मिलते हैं। इसके पश्चात हामद और मुकबल ने चार-चार चरणों वाले बैंत को लोकप्रिय बनाया परंतु बैंत लिखने में सिद्धहस्त वारिसशाह (दे०) और फ़ज़लशाह (दे०) ने इसे चरण-संख्या के बंधन से मुक्त कर दिया। इन कवियों के बैंतों में चार से चालीस तक चरण मिलते हैं। भाई कान्हसिंह ने 'गुरुशब्दरत्नाकर महान् कोश' में मात्रा-गणना के आधार पर इसके सुप्रसिद्ध आठ भेदों का परिचय दिया है जिनमें चालीस मात्राओं (बीस-बीस पर यती) वाला रूप एक प्रकार से टकसाली माना जाता है। इसके विपरीत फ़ारसी लिपि में पंजाबी कविता करने वाले लेखक इसकी परि-भाषा फ़ारसी पिंगल के नियमों के अनुसार करते हैं। परंतु पंजाबी कवियों के बैंत इन दोनों से स्वतंत्र हैं। उन्होंने इस छंद में विभिन्न तोलों का प्रयोग किया है और अंत्यानुप्रास (काफ़िया) तथा अंत्यानुप्रास के अनंतर प्रयुक्त समान शब्दावृत्ति (रदीफ़) के प्रयोग से इसमें तरलता का संचार किया है। इस छंद का प्रयोग विशेषतः किस्सा-काव्य में हुआ है, किंतु बीसवीं शती में कवि-दरबारों का प्रचलन हो जाने पर मुक्तक काव्य के रूप में भी बैंत की लोकप्रियता में वृद्धि हुई।

बैदेहीशबिलास *(उ० कृ०)*

कवि-सम्राट् उपेंद्र भंज (दे०) काव्यों में 'कोटिब्रह्मांड सुंदरी' (दे०), 'लावण्यवती', 'बैदेहीशबिलास', असाधारण काव्यत्रयी हैं। उड़ीसा के रामकाव्यों में बैदेहीश-बिलास' सर्वाधिक अलंकार विभूषित, चारुचित्रावली-शोभित रचना है। रामायण की कथा यद्यपि इसकी विषय-वस्तु है तथापि स्वतंत्र काव्य की दृष्टि से यह एक उच्च-कोटि की रचना है, इसमें संदेह नहीं। उपेंद्र ने अपने ग्रंथों में रामतारक मंत्र जपकर सिद्धि-लाभ की बात कही है जिसके कारण उनमें कवित्व-स्फूर्ति जागृत हुई। इस महान् शक्ति को प्राप्त करने के उपलक्ष्य में कवि का यह सानुनय प्रतिदान है। 'बैदेहीशबिलास' की रचना की प्रेरणा उपेंद्र ने पितामह धनंजय भंज की कृति 'रघुनाथबिलास' से पाई थी। 'रघुनाथबिलास' देख लेने के बाद उपेंद्र ने पितामह से उससे भी श्रेष्ठ रामचरितमूलक काव्य लिखने की बात कही थी। धनंजय ने अपनी प्रसन्नता एवं संतोष व्यक्त किया था तथा उपेंद्र को इस कार्य में सफल होने का आशीर्वाद भी दिया था। उपेंद्र यथासमय पितामह को यह शुभ प्रदान कर धन्य हुए। उपेंद्र स्वयं रामभक्त थे तथा यह उनका कुल-धर्म भी था।

उपेंद्र की दृष्टि में उत्कल की महत्ता किसी से कम नहीं है। देवाधिदेव अवतारी, वैकुंठ-विहारी विष्णु जगन्नाथ के रूप में उड़ीसा में अवतीर्ण हुए हैं। इसलिए ग्रंथारंभ में जगन्नाथ-स्तुति है।

यह काव्य 52 छंदों के साँचों में ढाला गया है। प्रत्येक चरण का आद्य वर्ण 'ब' है। इस प्रकार यह महा-काव्य शब्द एवं अर्थालंकार गुंफित 'ब' अक्षर के आद्य नियम से विरचित है। मंगलाचरण में पहले विष्णु (राम विष्णु के अवतार हैं) तथा बाद में सूर्य की (सूर्यवंशी होने के कारण) स्तुति की गई है। अनेकार्थी शब्द-प्रयोग एवं नूतन शब्द-गठन सहित गंभीर चिंतनशील शताधिक पद इस काव्य में दिखाई पड़ते हैं। भाषा सरस, भावानुरूपिणी एवं रसाल है। उपेंद्र के स्व-अंचल, गंजाम के भी कई प्रच-लित शब्द-व्यवहृत हुए हैं। सूक्ति एवं गूढ़-गुंफित सामासिक शैली के कारण भाषा की शक्तिमत्ता बढ़ गई है। 'बैदेहीश-बिलास' में रामायण के समस्त प्रसंगों की अवतारणा नहीं हुई है। अनेक कथाओं एवं उपकथाओं की मात्र सूचना दे दी गई है। प्रकृति की सजीव रमणीयता, कल्पना-छवियों की भास्वरता एवं सुरुचि-संपन्नता इस काव्य को सार्थकता प्रदान करती हैं। दैवी कथा के प्रति कवि का मानवीय दृष्टिकोण काव्य को अधिक रमणीय बना देता है।

बैष्णव पाणि *(उ० ले०)* [जन्म—1882 ई०; मृत्यु—1926 ई०]

बैष्णवपाणि का जन्म कटक जिले के कोठापद

गाँव मे एक निर्धन ब्राह्मण सुदर्शन पाणि के यहाँ हुआ था। कोठापद-महत की कृपा और अपने अध्यवसाय से इन्होने विभिन्न वाद्ययन्त्र, सगीत, उडिया और सस्कृत-साहित्य आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इनकी रचनाओ की सख्या प्राय. 200 है।

आधुनिक युग मे गण-कवि वैष्णव पाणि का उडीसा की गण-सस्कृति के विकास मे विशेष योगदान है। वैष्णव पाणि ने शताधिक गीति-नाटयो की रचना कर तथा उन्हे हृदयस्पर्शी रूप से गाँव-गाँव मे प्रस्तुत कर उडीसा के जन-जीवन को जितने *व्यापक* रूप से प्रभावित किया है, उतना भागवतकार जगन्नाथदास (दे०) के अतिरिक्त अन्य किसी कवि ने नही किया।

वैष्णव पाणि की अम्लान प्रतिभा ने उडिया जात्रा (दे०)-साहित्य को आधुनिक रूप दिया है। इनकी रचनाओ की भाषा शैली नितात ग्रामीण है। चरित्र-चित्रण एव शब्द-विन्यास मे असाधारण दक्षता का परिचय मिलता है। इनकी गण-नाट्य-कृतियाँ शिल्प-कौशल से मडित एव आधुनिक चेतना से अनुप्राणित हैं। अपने पौराणिक तथा ऐतिहासिक गीति-नाटयो मे कवि ने समसामयिक सामाजिक समस्याओ एव राष्ट्रीय चेतना का चित्रण किया है। वैष्णव पाणि इस शती के पूर्वार्द्ध के प्रमुख कवि हैं।

बोधा *(हि० ले०)* [जन्म—1747 ई०]

ये राजापुर (जिला बाँदा) के सरयूपारीय ब्राह्मण थे। पुराना नाम बुद्धिसेन था, पर पन्ना-नरेश प्यार मे बोधा कहते थे। ये 1773 से 1803 ई० तक कविता करते रहे। सुबहान (सुभान) नामक वेश्या से प्यार करने के कारण 6 मास के लिए इन्हे देश-निष्कासन मिला। इस बीच मे 'विरह वागीश' नामक पुस्तक लिखी। 'इश्कनामा' दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक है। रीतिमुक्त (दे० रीतिमुक्त काव्य) कवियो मे प्रेम की प्रेम की 'पीर' की व्यजना करने वाले ये बहुत ही मर्मस्पर्शी कवि है। बहुत से स्फुट कवितो मे 'नेजे', 'कटारी' और 'कुरबान' वाली बाजारू ढग की रचनाएँ पाई जाती हैं। निश्चय ही ये भावुक, फक्कड और रसिक जीव थे।

बोधि *(पा० पारि)*

इस शब्द की निष्पत्ति 'बुधअवगमन' धातु से हुई है जिसका अर्थ है ज्ञान या पूर्ण ज्ञान। इसे ही सम्यक-सबोधि की सज्ञा दी जाती है। इस प्रकार का ज्ञान बोधिसत्त्व का अतिम लक्ष्य होता है और इसे प्राप्त करके ही उसे बुद्धत्व का अधिगम हो जाता है। इस ज्ञान का स्वरूप—बुद्धज्ञान, सर्वज्ञता, सर्वाकारज्ञता अर्थात् ऐसा ज्ञान जिसमे सभी कुछ अपने वास्तविक रूप मे दिखलाई देता है, अनुत्तरज्ञाता अर्थात् ऐसा ज्ञान जिसके आगे कुछ नही और अचित्यज्ञता अर्थात् ऐसा ज्ञान जिसको सोचा भी न जा सके। बोधि को अज्ञेय बतलाया गया है क्योकि इसको प्राप्त करने वाले तथागत (दे०) बुद्ध अचित्य है और उनके गुण भी *अचित्य तथा असीमित* है। *इस परिपूर्ण तथा शुद्ध ज्ञान* मे अनिश्चय तथा अस्पष्टता को स्थान नही तथा यह आकाशवत *व्यापक* उच्चतम अवस्था है। महायान (दे०) मे इसे लक्ष्य के रूप मे स्वीकार किया गया है। माध्यमिक (दे०) इसे शुद्ध ज्ञान-रूप मानते हैं जबकि योगाचार योग और आचार द्वारा प्राप्य कहता है। यह क्लेशावरण और ज्ञेयावरण दोनो को नष्ट कर देता है।

बोधिसत्त (स० बोधिसत्त्व) *(पा० पारि०)*

बौद्ध धर्म की महायान शाखा (दे०) मे बोधि का अर्थ है सर्वोच्च ज्ञान। वही जिसका सारतत्त्व है उसे बोधिसत्त्व की सज्ञा प्राप्त होती है। यह अरहत् (दे०) से भी बडा होता है और प्रत्येक बुद्ध से भी, क्योकि ये दोनो आश्रव-समाप्ति-रूप निर्वाण से ही तृप्त हो जाते हैं जबकि बोधिसत्त्व अनुत्तर सम्यक् सबोधि की ओर अग्रसर होता है। बोधिसत्त्व आत्मकल्याण से ही तृप्त नही होता अपितु सभी प्राणियो को बुद्ध-पदवी तक पहुँचाकर ही स्वय बुद्धत्व प्राप्ति की प्रतिज्ञा लेता है। उसकी 10 प्रतिज्ञाएँ निषेधात्मक दोनो से विरक्तिपरक ही नही दानादि तात्त्विक गुणपरक भी होती हैं। वह प्राणियो के उद्धार के लिए अथक परिश्रम करता है और यही उसकी पहचान होती है। बोधिसत्त्वचर्या कई प्रकार की होती है: 'प्रकृति-चर्या'—इसमे बौद्ध धर्म की साधारण भूमिका होती है, 'स्पृहचर्या' अर्थात् सभी प्राणियो के उद्धार के लिए आकाक्षा, 'अनुलोमचर्या' अर्थात बोधिसत्त्व-पद प्राप्ति का प्रथम अभ्यास, 'अनिवर्तनचर्या' अर्थात् पुनरावृत्ति के अभाव का निश्चय। इसी प्रकार बोधि पक्ष्मचर्या, अभिज्ञाचर्या, पारमिताचर्या, सत्त्वपरिपाचर्या इत्यादि भी होती हैं। चीन और जापान मे अन्य धर्मों के देवताओ को भी यह नाम दिया जाता है।

बोयि भीमन्ना *(ते० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

ये गोदावरी जिले के निवासी हैं तथा आंध्र-प्रदेश सरकार में तेलुगु-अनुवादक हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'दीपसभा', 'भीमन्नकाव्यकुसुमालु' (कविता-संग्रह), 'रागवाशिष्ठमु' (नाटिका), 'पैरुपाटो' (नृत्य-संगीत-नाटक) और 'मधुवाला', 'रागोदयमु' आदि। इनकी रचनाओं पर समाजवादी सिद्धांतों का प्रभाव है। 'पालेरु', 'कूलिवाडु' इसके अच्छे उदाहरण हैं। 'कोव्वरितुंट' जैसी रचनाओं में दलित वर्ग के सुधार के लिए इनकी विह्वलता व्यक्त हुई है। इनकी कविता प्रधानतः गीतिबद्ध है तथा प्राकृतिक और ग्रामीण जीवन से संबद्ध है। इनकी रचनाओं में भावों की तरह भाषा भी बहुत सरल है। कविता तथा जनजीवन के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित करने वाले कवियों में भीमन्ना का स्थान विशिष्ट है। हाल में आंध्र विश्व-विद्यालय ने इन्हें 'कलाप्रपूर्णोदय' की उपाधि से सम्मानित किया है।

बोरकर, बालकृष्ण भगवंत (म० ले०) [जन्म—1910 ई०]

बोरकर का जन्म गोवा में हुआ था। कुछ समय तक अध्ययन-कार्य करने के उपरांत इन्होंने आकाश-वाणी की नौकरी की।

इनके काव्य-संग्रह हैं— 'प्रतिभा', 'जीवन-संगीत', 'दूधसागर', 'आनंद भैरवी', चित्रवीणा' तथा 'गितार'।

उपन्यास—'भावीण', 'मावळताचंद्र', 'अंधारां-तील वाट'।

'आनंद यात्री' [रवींद्रनाथ (दे०) ठाकुर का चरित्र-वर्णन]

ये अत्याधुनिक काल के सौंदर्यवादी कवि हैं। इनका काव्य मांगलिक भावनाओं से पूर्ण है। भावमधुर मोहक प्रेम-गीतों के रचयिता के रूप में बोरकर को अति-शय ख्याति मिली है। इनकी वैयक्तिक प्रेम-भावना 'स्वातंत्र्यलक्ष्मीस लोकसागरास', 'महात्मायन' आदि कवि-ताओं में विशाल मानवतावादी स्तर पर व्यक्त हुई है।

गोवा के समृद्ध प्रकृति-परिवेश के अनेक नयनाभिराम दृश्य इनकी कविताओं में रेखांकित हैं।

बोरकर शब्द-शिल्पी हैं। इनके काव्य में सर्वत्र प्रादेशिकता की सुंदर छाप है। ये मराठी के आंचलिक उपन्यासकार भी हैं और इन्होंने गोमांतक के अंचल पर उपन्यास लिखे हैं।

बोराडे, रा० रं० *(म० ले०)* [जन्म—1940 ई०]

ये मराठवाडा के वैणापुर नामक नगर में स्था-नीय कॉलिज के प्रधानाध्यापक कुशल प्रबंधक और विद्वान अध्यापक ही नहीं सफल साहित्यकार भी हैं। छोटी वय में में ही इनके 6 कथा-संग्रह और 1 उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इनका उपन्यास महाराष्ट्र शासन द्वारा पुरस्कृत भी हो चुका है।

बोली *(उ० पारि०)*

प्राचीन काल में 'बोली' नाम से अनेक रच-नाएँ मिलती हैं। 'बोली' का अर्थ है बोली जा सकने वाली रचना। इसमें कोई उल्लेखनीय वैशिष्ट्य नहीं होता। 'कृष्णदास बोली', 'अळंकार बोली', 'दीनकृष्ण दास' (दे०) बाळबोली', 'बलराम दास (दे०) बोली' आदि सुपरिचित बोली रचनाएँ हैं।

बोली *(पं० पारि०)*

यह एक लोकगीत-रूप है। ग्रामीण लोग अपने सीधे सरल भावों को अभिव्यक्त करने के लिए इसका सहारा लेते हैं। बोलियों का प्रधान विषय प्रेम ही होता है परंतु इनके द्वारा छेड़छाड़, व्यंग्य-उपहास भी किया जाता है। आधुनिक भारतीय फ़िल्म-संगीत में बोलियों और इनके संगीत-लय को बड़े चाव से अपनाया जा रहा है।

यथा—पल्ले नाल बुझा गई दीवा
अख नाल गल्ल कर गई।
× ×
लोक आखड़े कयामत आई
नीं घुम्म घुम्म आ वंतो।

बौद्धन्याय का संप्रदाय *(पा० पारि०)*

बौद्धन्याय को हेतु-प्रमाण विद्या, तर्कशास्त्र आदि अनेक नामों से अभिहित किया जाता है। छठी शती में दिङ्नाग ने और सातवीं शती में धर्मकीर्ति ने न्याय-वैशेषिक

परंपरा को बौद्ध दर्शन की दृष्टि से व्यवस्थित रूप दिया जिसमे प्रमाणवाद, पदार्थ निरूपण आदि न्यायशास्त्रीय सिद्धातो के अतिरिक्त बौद्ध-ज्ञान-मीमासा को भी स्थान दिया गया है और चार्वाक, जैन, साख्य, योग मीमासा, वेदात, न्याय वैशेषिक दर्शनो द्वारा प्रतिपादित सिद्धातो का या तो प्रतिषेध किया गया है या आशिक मान्यता प्रदान की गई है। बौद्धन्याय के सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रथ हैं—धर्मकीर्ति-कृति 'प्रमाणवार्तिक'। 'बौद्धन्याय' शब्द से दिङ्नाग और धर्मकीर्ति का तर्कशास्त्र और ज्ञानमीमासा ही अभिप्रेत मानी जाती है जिसके विकास मे प्रारभिक बौद्धधर्म कारण हुआ है और परवर्ती बौद्धन्याय इन्ही की कृतियो को आधार मानकर चला है।

बौद्धन्याय मे दो प्रमाण माने जाते हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। प्रत्यक्षोपलब्ध जगत् ऐंद्रिय बुद्धिग्राह्य तथा स्वलक्षण माना जाता है। यह इद्रियग्राह्य जगत्-सस्कारो का क्षणिक प्रकटन मात्र है, ईश्वरादि शाश्वत वस्तुओ की कल्पना सर्वथा मिथ्या है। बौद्धो का यथार्थ क्षणिक सस्कारो की केवल एक परपरा है। ऐसा कोई यथार्थ नहीं जो प्रतीत्य समुत्पात (दे०) के द्वारा कारण न हो सके। इस प्रकार इनका यथार्थ सर्वथा गतिशील है, निष्क्रिय नही। पूर्णयथार्थ का ज्ञान असभव है। नीले रग के विषय मे केवल इतना ज्ञात हो सकता है कि यह श्वेत इत्यादि नही है। इस प्रकार इतर व्यावृति-रूप अपोह को शब्दार्थ के रूप मे स्वीकार करते हैं। अनुमानगम्य जगत् अनैंद्रिय, सामान्य लक्ष्य वाला होता है। अनुमान दो प्रकार का होता है—स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। प्रथम स्वज्ञान के लिए उपयोगी है और द्वितीय दूसरे को समझाने के लिए। परार्थानुमान मे ही हेत्वाभासो की भी कल्पना की गई है जो न्याय और वैशेषिक से कुछ भिन्न हैं। बौद्ध-न्याय का मुख्य विषय परार्थानुमान नही है, क्षणिकता-वाद, अध्यवसाय (निश्चय और विकल्प), अपोहवाद, स्वार्थानुमान आदि इसी के उपबध हैं।

ब्योमकेश *(बं० पा०)*

शरदिंदु वद्योपाध्याय (दे०) का 'ब्योमकेश' श्रुत-कीर्ति सत्यानुसधानी है। उनके सहकारी हैं लेखक अजित। पाँचकड़ि दे, दीनेंद्रकुमार राय आदि लेखको ने जासूसी ग्रथो की रचना की है। इसमे सदेह नही कि इन ग्रथों से लेखको की प्रत्याशा पूरी हो पायी थी। परतु ब्योमकेश की प्रतिष्ठा जासूसी रचना के बीच से होने पर भी उनका चरित्र नवीन वैशिष्ट्य से समुज्ज्वल है। पाठको का मन तृप्त होने के अतिरिक्त एक प्रकार का सानद रस सुदर माधुर्य पाठक चित्त को अपरूप प्रसन्नता से स्निग्ध एव विस्मित करता है। कॉनन डायल, एडगर एलेन पो, एडगर वालेस, अगाथा क्रिस्टी का चातुर्य यहाँ विद्यमान है परतु मनोविज्ञान-सम्मत पथा का अनुसरण करते हुए लेखक ने अपने चरित्र को सकौतुक सरसता एव सारल्य के द्वारा उपस्थित किया है। ब्योमकेश शौकिया जासूस होने पर भी सत्यानुसधान ही उसका व्रत है। बुद्धि की प्रखर दीप्ति के साथ हृदय की सुगभीर उष्णता ने इस चरित्र को बँगला साहित्य के पाठको का केवल प्रिय ही नही बनाया है वरन् उनके हृदय को हमेशा के लिए सानद प्रतिष्ठा प्रदान की है।

ब्रजबुलि *(भाषा० पारि०)*

ब्रजबुलि बँगला का एक कृत्रिम मिश्रित रूप है। मुख्यत इसमे बँगला तथा मैथिली के रूप हैं किंतु कुछ रूप ब्रजभाषा आदि पश्चिमी हिंदी की बोलियो के भी हैं (यद्यपि बहुत कम हैं)। ब्रजबुलि मे कृष्णभक्ति पद बगाल तथा उडीसा मे लिखे गये। इनका लेखन-काल पद्रहवी शती से आधुनिक काल तक है। इसके प्राचीन कवियो मे गोविंददास (दे०) तथा ज्ञानदास (दे०) आदि उल्लेख्य हैं। आधुनिक काल मे रवि बाबू (दे०) ने ब्रजबुलि मे भानुसिंह नाम से रचनाएँ की हैं। कृष्ण का सबध व्रज से होने के कारण ही इस भाषा-रूप को ब्रजबुलि कहा गया। इस नाम का प्रथम प्रयोग उन्नीसवी शती मे बँगला कवि ईश्वरचद्र गुप्त (दे० गुप्त, ईश्वरचद्र) ने किया है।

ब्रजभाषा *(भाषा० पारि०)*

ब्रजभाषा, ब्रजी या ब्रज हिंदी की एक अत्यत प्रमुख तथा महत्वपूर्ण बोली है। यह हिंदी के पश्चिमी हिंदी वर्ग मे आती है। ऋग्वेद मे 'व्रज' शब्द का प्रयोग 'पशु-समूह' अथवा 'चरागाह' के अर्थ मे हुआ है। ब्रजभाषा-क्षेत्र को इन्ही अर्थों मे 'ब्रज' कहा गया होगा। ब्रजभाषा का उद्भव दसवी शती के आस पास शौरसेनी अपभ्रश के मध्यवर्ती रूप से हुआ। यो भाषा के अर्थ मे ब्रजभाषा का प्रयोग सोलहवी शती के पहले का नही मिलता। प्राप्त साहित्य मे ब्रजभाषा का प्रयोग आदि काल से ही—जैसे 'प्रद्युम्नचरित', 'महाभारतकथा', 'स्वर्गारोहण', 'छिताईवार्ता'

आदि में—मिलने लगता है किंतु इसके प्रथम प्रसिद्ध कवि सूरदास (दे०) ही हैं। उनके बाद नंददास (दे०), तुलसीदास (दे०), बिहारी (दे०), मतिराम (दे०), भूषण (दे०), देव (दे०), भारतेंदु (दे०) तथा रत्नाकर (दे०) में इसकी काव्य-परंपरा आगे बढ़ी है।

व्रजभाषा में मुख्यतः काव्य-रचना ही हुई है। अब साहित्य में इसका प्रयोग प्रायः नहीं के बराबर हो रहा है। यों हिंदी के मध्यकालीन साहित्य का बहुत बड़ा भाग व्रजभाषा में ही है। व्रजभाषा बड़ी मधुर है। व्रजभाषा अपने शुद्ध रूप में मथुरा, आगरा, अलीगढ़ तथा धौलपुर में बोली जाती है। इसके अन्य सीमांत क्षेत्र के रूप पार्श्ववर्ती बोलियों से प्रभावित हैं। इसकी मुख्य उपबोलियाँ गाँववारी, ढोलपुरी, भरतपुरी जादोबाटी, सिकरबाड़ी, कठेरिया, तथा डाँगी आदि हैं। कुछ लोग व्रजबुलि तथा व्रजभाषा को एक समझते हैं, किंतु वस्तुतः दोनों एक नहीं हैं।

व्रतकथा ओ ओपाकथा *(उ० पारि०)*

उड़िया-साहित्य में व्रतकथा एवं ओपाकथाओं का स्वतंत्र स्थान है। प्राचीन उड़िया साहित्य के विवेचन में इन कथाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती। समय के वृत्त पर प्रवाहित लोक-साहित्य की यह निर्झरिणी धीरे-धीरे विराट् तथा कमनीय साहित्य-धारा की सृष्टि करने में सहायक हुई है। उड़िया गद्यभाषा के विकास में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

'व्रत' संस्कृत शब्द है तथा 'ओषा' ग्रामीण एवं उपासना का रूपांतर। इनमें कतिपय कथाएँ यद्यपि संस्कृत व्रतकथाओं के अनुवाद हैं, किंतु 'तअपोइ व्रतकथा' तथा 'नागल चउठी व्रतकथा' आदि उड़िया भाषा व साहित्य की निजत्व-संपन्न रचनाएँ हैं। इन कथाओं की भाषा इतनी परिवर्तित हो गई है कि आज उसके मूल स्वरूप को जानना कठिन हो गया है। फिर भी कहीं-कहीं भाषा की प्राचीनता का संकेत मिल जाता है। भाषा एवं वर्णित धर्म के आभ्यंतरिक साक्ष्य के आधार पर विद्वानों ने इन्हें पंद्रहवीं शती के पूर्व की रचना माना है।

प्राचीन व्रतकथाओं में गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है। भाषा में आलंकारिक छटा अधिक है। विशेषणों की बहुलता है।

समाज में नैतिकता का प्रचार, धार्मिक भावना का उद्रेक एवं देवी-देवताओं के प्रति भक्ति का उद्रेक करना ही इन व्रतकथाओं का उद्देश्य है। तत्कालीन सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष इनमें चित्रित हुए हैं। इन सबमें विशिष्ट है 'तअपोइ व्रतकथा'। इसमें तत्कालीन समाज के अनेक आचार-व्यवहार अंकित हैं। समुद्री यात्रा, प्रवास, यात्रारंभ एवं वापसी पर नाव-पूजा आदि का सुंदर वर्णन है।

ब्रह्मसूत्र *(सं० कृ०)* [रचना-काल—300 ई०]

बादरायण, व्यास (दे०)-कृत 'ब्रह्मसूत्र' को ही 'वेदांतसूत्र' भी कहते हैं। 'ब्रह्म-सूत्र' में चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में 138 सूत्र हैं, द्वितीय अध्याय में 149 सूत्र हैं, तृतीय अध्याय में 182 और चतुर्थ अध्याय में 76 सूत्र हैं।

'ब्रह्मसूत्र' के प्रथम अध्याय में ब्रह्म को जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय का कारण बताया है। दूसरे अध्याय के अंतर्गत सांख्य एवं बौद्ध-दर्शन आदि का खंडन किया गया है। तृतीय अध्याय में पुनर्जन्म एवं स्वप्न तथा सुषुप्ति आदि अवस्थाओं के संबंध में विचार किया गया है। चतुर्थ अध्याय में ब्रह्मज्ञान के फल-मुक्ति आदि विषयों पर विचार किया गया है।

ब्रह्मसूत्र' के अनुसार यद्यपि मुक्ति का साधक ज्ञान को बतलाया गया है, परंतु परंपरया कर्म भी मुक्ति का साधक है। 'ब्रह्मसूत्र' के अंतर्गत चित्तशुद्धि के लिए कर्म की उपादेयता का भी समर्थन किया गया है। पुनर्जन्म के संबंध में, 'ब्रह्मसूत्र' में बताया गया है कि जब जीव शरीर छोड़ता है तो उसके साथ उसका सूक्ष्म शरीर भी जाता है। जहाँ तक मुक्ति-संबंधी विचार का प्रश्न है, जीव का स्वरूप-बोध ही मुक्ति है। अविद्या जीव के स्वरूप-बोध में बाधक है। अविद्या की निवृत्ति होने पर ही मुक्ति संभव है, अन्यथा नहीं। जहाँ तक ज्ञानी ब्रह्मवेत्ता के कर्मनाश की बात है, मुक्त पुरुष के समस्त कर्मों का उच्छेद नहीं होता, अपितु उसे प्रारब्ध-कर्मों का भोग भोगना ही पड़ता है। यही स्थिति जीवन्मुक्ति की स्थिति है। परंतु जब ज्ञानी प्रारब्ध-कर्मों का भोग समाप्त कर लेता है तो फिर उसे शरीर ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी अवस्था को विदेहमुक्ति कहा जाता है। यह विचारणीय है कि मुक्ति के मौलिक स्वरूप में कोई अंतर नहीं है।

ब्रह्माडपुराणम् गद्यम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—चौदहवी शती का अतिम चरण]

मलयाळम के इस प्राचीन गद्य-ग्रंथ को 'कण्णश्श रामायण' के रचयिता निरणम् (दे०) रामपणिक्कर की कृति मानते हैं परतु यह मत अब भी विवादास्पद है। इसमे ब्रह्माडपुराण के कुछ अध्यायो का सरस सग्रह किया गया है। सगरोपाख्यान, कार्तवीर्य पर परशुराम की विजय आदि अश इसमे सम्मिलित हैं।

इस गद्यग्रथ की भाषा 'नपियातमिष' नामक प्राचीन भाषारूप है जो 'पाठकम्' नामक कथोपकथन-विधा के कथावाचको—नपियारो—द्वारा प्रयुक्त भाषा है। भाषा का यही रूप आगे चलकर नवीन गद्य की भाषा के रूप मे विकसित हुआ था।

ब्रह्मा, गौरीकुमार *(उ० कृ०)* [जन्म—1920]

श्री गौरीकुमार ब्रह्मा प्रधान रूप से आलोचक हैं। इनका जन्म पडगीपल्ली—गजाम मे हुआ था। विश्वविद्यालीय अध्ययन की दृष्टि से इनकी रचनाएँ उपयोगी है। इनके विवेचनात्मक निबध सरल और सूचना-विपुल होते हैं। भाषा और शैली सुस्पष्ट एव प्रसाद गुणमयी है। 'तपस्विनी ओ मेहेर साहित्य', 'चिलिका ओ राधानाथ', 'ओडिआ साहित्य रे प्रकृति', 'लेखा ओ लेखक', (दे०), 'सस्कृति ओ साहित्य', आदि इनकी रचनाएँ हैं।

ब्रह्मा, सदानद *(उ० कृ०)* [समय—अनुमानत अठारहवी शती ई०]

अठारहवी शती के यशस्वी कवियो मे सदानद जी का स्थान बहुत ऊँचा है। ये सस्कृत के महान पडित थे। हिंदी और बँगला का भी इन्हे ज्ञान था। ये मधुरा-भक्ति के उपासक थे और इनकी रचनाओ मे युगल-प्रेम की अपूर्व मदाकिनी प्रवाहित हो रही है। श्री किशोरदास से इन्होने दीक्षा ली थी और इनका दीक्षा-नाम 'साधु-चरण' था।

इनके महाकाव्य 'विश्वभर विलास' की रचना 'व' आद्य नियम से हुई है। इन्होने 'युगरसामृत लहरी' 'नामचितामणि', 'स्तुतिचितामणि', 'निष्ठानीलमणि', आदि अनेक जणाण (दे०) और चउतिशा (दे०) रचे हैं। भाव, भाषा, वर्णन, शैली सभी दृष्टियो से इनकी रचनाएँ उत्कृष्ट हैं। विरह-मिलन के प्रसगो मे सूक्ष्म मानसिक विश्लेषण मिलता है। प्राकृतिक दृश्यो के चित्रण मे कवि की उर्वर कल्पना-शक्ति एव शैली-सौष्ठव दर्शनीय है।

ब्राउन, चार्ल्स फिलिप *(ते० ले०)* [जन्म—1798 ई०, मृत्यु—1884 ई०]

चार्ल्स फिलिप ब्राउन का जन्म कलकत्ता नगर मे हुआ। इनके पिता डेविड ब्राउन कलकत्ते मे किसी गिरजाघर मे नौकर थे। बाल्यकाल मे पिता के प्रोत्साहन से इन्होने अरबी, ग्रीक, लैटिन, हिंदुस्तानी आदि भाषाओ का अध्ययन किया। चौदह साल की उमर मे ये इगलैंड गये। 1817 ई० मे ये मद्रास वापस आये। तब तक ब्राउन साहब को यह मालूम नही था कि तेलुगु नाम की एक भाषा है। 1817 से 1855 ई० तक का इनका कार्यकाल अधिकतर आध्रप्रदेश मे ही व्यतीत हुआ है। इस अवधि मे इन्होने न केवल तेलुगु भाषा का सम्यक् अध्ययन करके उसमे विद्वत्ता का अर्जन किया अपितु कई साहित्यिक ग्रथो का सपादन और प्रतिलिपीकरण किया, यही नही, तेलुगु भाषा के लिए एक सुबोध व्याकरण तथा तीन निघटुओ का निर्माण भी किया। इस प्रकार तेलुगु जनता ब्राउन साहब की साहित्यिक सेवाओ के लिए चिर ऋणी रहेगी।

ब्राउन साहब के साहित्यिक योगदान को हम पाँच भागो मे बाँट सकते हैं।

(1) तेलुगु के अनुपम सूक्तिकार कवि वेमना (दे०) के गिने-चुने छदो का आगलीकरण तथा सपादन। (2) तेलुगु काव्यो का जीर्णोद्धार तथा व्याख्या-सपादन : इस महान् साहित्यिक अनुष्ठान मे इनके सहयोगी विद्वान् थे—(i) जुलूरि अप्पय्या, (ii) राविपाटि गुरुमूर्ति शास्त्री, (iii) वठर्य अबत ब्रह्म शास्त्री आदि। इनकी सहायता से इन्होने तेलुगु के प्रसिद्ध प्रबध-काव्य 'मनुचरित्रमु (दे०), 'वसुचरित्रमु' (दे०) आदि का सपादन करके इनको व्याख्या-समेत प्रकाशित किया था। (3) तेलुगु के जिज्ञासु अँग्रेजो के लाभार्थ उसी प्रकार अँग्रेजी मे ज्ञानार्जन करने के इच्छुक तेलुगु भाषा-भाषियो के हितार्थ कोशनिर्माण करना। ब्राउन साहब ने (i) तेलुगु-इग्लिश डिक्शनरी, (ii) इग्लिश-तेलुगु डिक्शनरी का प्रकाशन 1852 ई० मे किया था। 'मिश्रभाषा निघटु' का प्रकाशन इन्होने 1854 ई० मे किया। हाल ही मे प्रथम एव तृतीय का पुनर्मुद्रण आध्र प्रदेश साहित्य अकादेमी ने किया है।

(4) पाठमाला तथा व्याकरण की रचना : ब्राउन साहब ने बड़े परिश्रम के साथ तेलुगु से अनभिज्ञ विलायती अफसरों के लाभार्थ अँग्रेज़ी माध्यम से कई पाठमालाएँ लिखीं। इनमें उल्लेखनीय हैं—(1) तेलुगु रीडर (2) अनालिसिस ऑफ़ दि वर्ड्स इन फर्स्ट चैप्टर ऑफ दि तेलुगु रीडर, (3) डायलाग्स इन तेलुगु ऐंड इंग्लिश आदि।

परंपरागत व्याकरण के विरोध में इन्होंने अपने विचार व्यक्त किये थे। इसके अनुसार आरंभ में तेलुगु व्याकरण के शब्दपरिच्छेद तथा क्रियापरिच्छेद पढ़ाना पर्याप्त है। आरंभ मे ही कला, द्रुत आदि प्रसंगों को उठाने से पाठक भयभीत हो जाता है। इसी प्रकार आरंभ में ही तेलुगु पद्यों को पढाना भी लाभप्रद नहीं है। अतः पहले पत्र, कहानी, आदि पढ़ाना ही उचित है। फलतः इन्होंने 1940 ई० मे एक तेलुगु व्याकरण लिखा था।

(5) प्रकीर्णक रचनाएँ : इसके अंतर्गत समय-समय पर इनके लिखे हुए साहित्यिक निबंध, ईसाई धर्म से संबंधित रचनाएँ, आदि आते हैं।

ये 1855 ई० में लंदन लौट गये और वहाँ कुछ समय तक लंदन विश्वविद्यालय में तेलुगु के आचार्य रहे। ब्राउन साहब का योगदान तेलुगु साहित्य के लिए चिरस्मरणीय रहेगा।

ब्रॉनसन, माइल्स (*अ० ले०*) [जन्म—1812 ई०; मृत्यु—1883 ई०]

ये 1836 ई० में सपरिवार सदिया, जयपुर और नामचाङ में काम करते रहे थे। सबसे पहले इन्होंने ही नगा-भाषा की शब्दावली सीखी थी। ये 1876 ई० में असम से चले गये थे।

प्रकाशित रचनाएँ—'असमीया-अँग्रेज़ी अभिधान' (1867 ई०)।

इन्होंने यादूराम बरुवा (दे०) के वर्ण-विन्यास की रीति को आधार मानकर 14,000 शब्दों का कोश तैयार किया था। इस ग्रंथ का वर्ण-विन्यास असमीया कथ्य-भाषा पर आधारित था जो कि लिखित शैली की पुष्टि नहीं करता था, अतः आज इस कोश की उपयोगिता समाप्त है।

वास्तव में असमीया-साहित्य को इनकी देन नगण्य है। ये उन मिशनरियों में थे जो भारत में ईसाइयत का प्रचार करने के लिए आए थे। इनका परिश्रम आज नागालैंड के रूप में फलित है।

असमीया के व्यवस्थित शब्दकोश के प्रथम प्रकाशक के रूप में ये चिरस्मरणीय रहेंगे।

ब्राह्मण (*सं० कृ०*) [रचना-काल—3000-2000 ई० पू० तक]

ब्राह्मणों के कर्त्ता अनेक ऋषि हैं, जिन्होंने ब्राह्मणों के अंतर्गत विशेष रूप से यज्ञ-संबंधी विधि-विधान का विवेचन किया है। ब्राह्मण ग्रंथों से संबंधित 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ यज्ञ एवं मंत्र दोनों है। ब्राह्मणों की संख्या विपुल है। 'ऐतरेय ब्राह्मण', 'कौषीतकि ब्राह्मण', 'तांड्य-ब्राह्मण', 'पड्विंश ब्राह्मण', 'जैमिनीय ब्राह्मण' एवं 'शतपथ ब्राह्मण' प्रमुख हैं। इनमें भी 'शतपथ ब्राह्मण' सर्वोपरि है।

शांवर भाष्य के अंतर्गत—"हेतुनिर्वचननिंदा-प्रशंसासंशयोविधिः। परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारणं कल्पना। उपमानं दशैते हि विधयो ब्राह्मणस्य तु॥" कहकर ब्राह्मणों के दश पक्षों का उल्लेख किया गया है। परंतु प्रधान रूप से ब्राह्मणों के विषयवस्तु के विधि तथा अर्थवाद के भेद से दो रूप माने जा सकते हैं। विधि रूप के अंतर्गत यज्ञ-संपादन की रीतियाँ एवं नियम आते हैं। उदाहरण के लिए 'शतपथ ब्राह्मण' की प्रथम कंडिका में ही सहेतुक विधि का सुंदर प्रयोग मिलता है। इसके अतिरिक्त विधि की व्याख्या में मत-मतांतरों का उल्लेख तथा उसकी सम्यक् मीमांसा अर्थवाद के अंतर्गत आती है। अर्थवाद के ही अंतर्गत निंदा, प्रशंसा, विनियोग और निरुक्ति आदि भी हैं।

ब्राह्मणों के महत्व की अनेक दिशाएँ हैं। कर्म-कांडिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक, साहित्यिक एवं भाषावैज्ञानिक दृष्टि से ब्राह्मणों का महत्त्व विशेष रूप से अध्येतव्य है। ब्राह्मणों का आख्यान एवं उपाख्यान-संबंधी महत्त्व भी कम नहीं है। आख्यानों में पुरूरवा और उर्वशी का आख्यान, जलौघ-संबंधी आख्यानों और उपाख्यानों में मन और वाक् का उपाख्यान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

ब्राह्मण-रोमन-कैथलिक-संवाद (*बँ० कृ०*) [रचना-काल—सत्रहवीं शती का अंतिम चरण]

किंवदंतियों के अनुसार भूषणा के राजपुत्र को 1966 ई० में डच दस्युओं ने अपहृत किया था और बाद

मे आरकान राज्य मे सेंट अगस्तिन-मडली के एक धर्म-याजक मनोयेत दा-रोज़ारियो के घर मे उसका पालन हुआ था। पालने वाले के द्वारा इन्हे मसीही धर्म मे दीक्षित किया गया। परवर्ती युग मे इन्होने ही ढाका एव चटग्राम इलाके मे व्यापक रूप से मसीही धर्म का प्रचार किया था। प्राय. तीस-चालीस हज़ार लोगो ने रोमन कैथलिक धर्म ग्रहण किया था। इस ग्रथ मे एक ब्राह्मण एव एक रोमन कैथलिक के प्रश्नोत्तर के माध्यम से ईसा की महिमा वर्णित हुई है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि मानोयेल दा आसुपसाँउ द्वारा रचित 'कृपार शास्त्रेर अर्थभेद' (1743 ई०) ग्रथ से पहले इसकी रचना हुई थी।

ब्राह्मी लिपि *(भाषा० पारि०)*

ब्राह्मी भारत की एक प्राचीन लिपि है जो सभी आधुनिक भारतीय लिपियो तथा भारत के बाहर की भी कई लिपियो की आदि जननी है। इसके प्राचीनतम नमूने पिपरावा (जिला बस्ती) तथा बडली (जिला अजमेर) मे मिले हैं जिनका काल पद्रहवी शती ई० पू० है। इस लिपि का नाम 'ब्राह्मी' कैसे पडा—यह प्रश्न अभी अनिर्णीत है। एक मतानुसार यह ब्रह्मा' की बनाई है तो दूसरे मतानुसार 'ब्रह्म' नामक किसी व्यक्ति ने इसे बनाया था। कुछ लोग यह मानते हैं कि 'ब्राह्मणो' मे प्रचार के कारण ही यह नाम पडा है। नाम की तरह ही इस लिपि की उत्पत्ति भी विवादास्पद है। किसी ने इसे चीनी लिपि से निकली माना है तो किसी ने यूनानी से, किसी ने फोनीशियन से तो किसी ने एकाधिक लिपियो से। कुछ लोग इसे सिंधु घाटी की लिपि से जोडने के लिए भी यत्नशील रहे हैं किंतु अभी तक यह प्रश्न अनिर्णीत है। ब्राह्मी का प्रयोग पाँचवी शती ई० पू० से 350 ई० तक होता रहा। इसके बाद उसकी उत्तरी और दक्षिणी दो शैलियाँ हो गईं। उत्तरी शैली से ही गुप्त लिपि, कुटिल लिपि से होते हुए प्राचीन नागरी (जिससे आधुनिक देवनागरी, गुजराती, महाजनी, कैथी, मैथिली, बँगला, उडिया, मेइतेइ आदि विकसित हुईं), शारदा (इससे टाकरी, डोगरी, चमेआली, जौनसारी आदि निकली) तथा खोतानी आदि विकसित हुई तथा इसकी पश्चिमी शैली से तेलुगु, कन्नड, ग्रथ, कलिंग, तमिल, सिंहली, बर्मी, कोरियाई, कबोडियाई, स्यामी, सुमात्री, जावानी आदि निकलीं। तिब्बती लिपि का सबध भी इसी से विकसित सिद्धमात्रिका लिपि से है।

भंज उपेंद्र *(उ० ले०)* [समय—1685 1725 ई०]

अपनी लोकोत्तर काव्य-प्रतिभा, असाधारण *शास्त्रज्ञान, सस्कृत-साहित्य के अगाध पाडित्य, सूक्ष्म सौंदर्य*-बोध, अनुपम शब्द योजना एव अद्भुत रचना-कौशल के कारण 'कवि-सम्राट्' की उपाधि पाने वाले उपेंद्र भज की कविता मे वस्तुत उडीसा की साहित्य-साधना की चरम परिणति मिलती है। मातृ साहित्य को सस्कृत-साहित्य की समकक्षता दिलाने के लिए इन्होने राज-कार्य त्याग कर जीवन-व्यापी साहित्य-साधना की थी। स्वच्छद शृगारिक जीवन, निरकुश नग्न भोगमय प्रेम के अतर से सयत आत्मा की एक हल्की विमल झाँकी दिखाना और आदर्श प्रेम की सूक्ष्म व्यजना करना उपेंद्र भज को अभीष्ट था।

उपेंद्र घुमसर राजपरिवार के वशावतस तथा नीलकठ भज के पुत्र थे। *पितामह धनजय भज* से इन्हें काव्य प्रेरणा मिली थी। उपेंद्र राम तारक मत्र के विशिष्ट साधक थे। इनकी रचनाओ की सुदीर्घ सूची देना यहाँ सभव नही है। प्रमुख रचनाओ मे 'वैदेहीशबिळास' (दे०) व 'सुभद्रा-परिणय' क्रमश 'ब' और 'स' आद्यनियम से रचित हैं। 'कळा कौतुक' मे आदि और अत वर्ण 'क' है। 'अबना-रस-तरग' मे केवल स्वर वर्ण व अकारात व्यजन-वर्णों का प्रयोग हुआ है। शृगार काव्य मे 'लावण्यवती' व 'कोटि ब्रह्माड सुदरी (दे०) मुख्य हैं। चित्रकाव्य 'बधोदय' मे वर्णों के साथ चित्रकला का भी प्रयोग हुआ है।

इनकी काव्य-रीति की विशेषता छद-वैविध्य, अलकार-विलास विशेषकर माला यमक तथा अन्य यमको एव श्लेष के प्रयोग मे देखी जा सकती है। बहिर्लिपि एव अंतर्लिपि के प्रयोग ने इनके काव्य को चिर नूतनता प्रदान की है। सगीत व ध्वनि की प्रसन्नता के कारण शब्द, अर्थ *व व्यजना* की *दुर्बोधता* होते हुए भी इनके *काव्य* सर्वजन-आदृत रहे हैं। भज की काव्य प्रतिभा अद्वितीय है। इनके रचना-कौशल का वैशिष्ट्य उडिया भाषा के अनिवार्य तत्त्वो से ओतप्रोत होने के कारण अन्य भारतीय व विदेशी भाषाओ मे इनकी रचनाओ का अनुवाद सभव नही हो सका। अत विश्व साहित्य मे विशेष गौरव के अधिकारी होने पर भी इनकी कलात्मक उपलब्धि उडिया-भाषियो तक ही सीमित रह गई।

भंज, धनजय *(उ० ले०)* [समय—सत्रहवी शती ई०]

सत्रहवी-अठारहवी शती मे उडिया काव्य के

विकास में घुमसर के राजपरिवार का प्रदेय महत्वपूर्ण है। धनंजय मंज का काव्य उर्वर कल्पना, संगीत-गुण तथा समृद्ध भाषा के कारण उच्चकोटि का है। संस्कृत के विद्वान होने के कारण इनके काव्य में संस्कृत-निष्ठ उड़िया का प्रयोग मिलता है। अपने पौत्र कविसम्राट् उपेंद्र भंज (दे०) के ये प्रेरणास्रोत थे। और इनके 'रघुनाथबिलास' से प्रेरित होकर उपेंद्र ने 'बैदहीशबिळास' की रचना की थी। धनंजय की शृंगारिक भावनाएँ उपेंद्र के 'लाण्वयवती', 'कोटि ब्रह्मांड सुंदरी' (दे०) काव्य की प्रेरक हैं। 'रघुनाथ-बिलास', 'त्रिपुर सुंदरी', 'मदनमंजरी', 'अनंगरेखा', 'इच्छावती' (दे०) आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त धनंजय ने कई चउतिशा (दे०) भी लिखी हैं।

भक्तप्रसाद *(बं० पा०)*

'एकेइ कि बले सभ्यता' (दे०) एवं 'बुड़ो शालिकेर घाड़े रों' (दे०)—ये दो प्रहसन आज भी माइकेल (दे०) मधुसूदन दत्त की नाट्य प्रतिभा की उज्ज्वल सृष्टि के रूप में स्वीकृत हैं। 'बूड़ो शालिकेर घाड़े रों' का बुड़ा शालिक (शालिक—एक प्रकार का पक्षी) 'भक्तप्रसाद' है। समसामयिक समाज-जीवन की प्रतिच्छवि इस चरित्र में प्रस्फुटित हुई है। धर्मकंचुकावृत वृंदों के गोपन लांपट्य का अपूर्व चित्र भक्तप्रसाद के चरित्र में उजागर हुआ है। प्रजापीडक जमींदार भक्तप्रसाद को जैसे ही अपने अनुचर गदाधर से हनीफ की सुंदरी स्त्री फ़ातिमा का पता लगा, उसने हनीफ़ को बकाया लगान के दाय से मुक्त कर दिया। लांपट्य के काम में जाति-धर्म का कोई अर्थ नहीं है। मुसलमान फ़ातिमा के साथ मिलने का स्थान है टूटा हुआ शिवमंदिर। भक्तप्रसाद के माध्यम से मधुसूदन ने इंद्रिय-परवश मनुष्य के जीवन-धर्म को सार्थक रूप में चित्रित किया है। भक्तप्रसाद किसी एक विशेष युग का नहीं है। भक्तप्रसाद की प्रवृत्ति एक चिरंतन मानवीय दुर्बलता की प्रतीक है एवं उसके चित्रण के द्वारा मधुसूदन ने मानव प्रकृति की कामवृत्ति की गोपन गुफा में आलोकपात किया है।

भक्तमाल *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1658 ई०]

इसके प्रणेता रामानंदी भक्त नाभादास (दे०) जी हैं। मध्ययुगीन भक्ति साहित्य से संबद्ध विचारधारा एवं उसके प्रवर्तकों तथा अनुयायियों की विशिष्टताओं को समझने के लिए 'भक्तमाल' का अध्ययन आवश्यक है। 'भक्तमाल' मध्ययुग की एक प्रामाणिक रचना है और समग्र वैष्णव संप्रदायों में इसको मान्यता प्राप्त है। इसमें मध्ययुग के भक्त कवियों के साथ-साथ रामानंद संप्रदाय के अनेकानेक भक्तों की प्रमुख-प्रमुख विशेषताओं का परिगणन बड़ी स्पष्टता के साथ किया गया है। 'भक्तमाल' भक्तों के बीच इतना लोकप्रिय रहा है कि आज उससे संबद्ध अनेक टीकाएँ प्रचलित हैं, इनमें प्रियादास की टीका सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रख्यात है। 'भक्तमाल' की भाषा ब्रज है। इसमें छप्पय, दोहा आदि छंदों का प्रयोग किया गया है। शैली की दृष्टि से संपूर्ण मध्ययुगीन साहित्य में 'भक्तमाल' अपने स्तर की एक ही आलोचनात्मक कृति कही जा सकती है।

भक्तिदीपिका *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

क्लासिक-रोमांटिक संक्रांति काल के कविवर उळ्ळूर् (दे०) परमेश्वरय्यर की रचना 'भक्तिदीपिका' पुराणकथाश्रित खंडकाव्य है, जिसकी कथावस्तु माधवाचार्य-कृत 'श्रीशंकरविजयम्' से संगृहीत है। इसका कथासार श्लोकार्ध में यों दिया गया है—

'भक्तिः किं न करोत्यहो वनचरो भक्तावतंसायते।'

श्री शंकर भगवत्पाद के शिष्य सनंदन 'महाभागवत' (दे० भागवत) के प्रह्लादोपाख्यान से प्रभावित होकर ज्ञान-दंभ से समझ रहे थे कि साधना एवं तपस्या से मैं नृसिंह का प्रत्यक्ष दर्शन कर लूंगा। नृसिंह के दर्शन कर वे उनसे शास्त्रार्थ करना चाहते थे। नृसिंह-साधना के लिए कठोर तप करते सनंदन को उस वन का प्रमुख निश्छल स्नेहपूर्ण वनचर चात्तन (दे०) श्रद्धा से देखता—उन्हें फल-मूल का उपहार चढ़ाता था। उसने तप का कारण जब जानना चाहा तब उस जिज्ञासु का उपहास करते हुए सनंदन ने तप का ध्येय बताया। उस भील की समझ में आया कि शेर का सिर और आदमी का तन रखने वाले जानवर की तलाश में ये तप रहे हैं। वनचर चात्तन् ने पहले शिकारी बनकर खोजा। बाद में वह भी अन्न-जल छोड़कर सच्चे भक्तिमय प्रेम से उस नृसिंह को पुकारने लगा। भक्ति की तीव्रता देख भगवान से नहीं रहा गया। उन्होंने स्वयं दर्शन दिए और उस वनचर की दी हुई घास-फूस खाई। उसके अनुरोध से बंधनस्थ होकर साथ चले और सनंदन को दर्शन दिये। यों सनंदन का ज्ञान-गर्व भील की भक्ति से पराजित हो गया।

इस काव्य के मुख्य प्रसंग तीन हैं—(1) सनंदन

की तपस्या, (2) चात्तन् से उनकी भेंट, (3) नृसिंह-दर्शन तथा उपदेश। प्रथम दो प्रसंगो मे कविता की माधुरी एव अलकारमय वर्णन की झाँकी है। अंतिम प्रसग मे धार्मिक तथा दार्शनिक भाव की झाँकी है।

भक्तिप्रस्थानम् *(मल० पारि०)*

अन्य भारतीय भाषाओं की तरह मलयाळम के मध्यकालीन साहित्य की भी प्रतिष्ठा मूलत भक्ति-साहित्य धारा के कारण है। वैसे तो लोक साहित्य मे भक्ति-पूर्ण लोकगीत, स्तोत्र आदि बडी सख्या मे मिलते हैं किंतु साहित्य की कोटि मे नही आते। वास्तव मे भक्ति-साहित्य का युग पद्रहवी शती की रचना 'कृष्णगाथा' के दिनो से प्रारभ होता है। कृष्णगाथा' है तो भक्तिकाव्य, पर इसमे *सरसता एव शृंगार की मात्रा पर्याप्त है। भक्तों की अपेक्षा* साहित्य-प्रेमी ही इसका अधिक सम्मान करते हैं।

'भक्तिप्रस्थानम्' का विशद विकास सोलहवी शती के उत्तरार्द्ध मे एष्तच्छन् के काव्यो मे उपलब्ध होता है। तुचत्तु रामानुजन् एष्तच्छन् को मलयाळम का तुलसीदास (दे०) कहा जाये तो अनुचित न होगा। उनके भक्ति मधुर काव्यो मे प्रमुख 'रामायणम्', 'भारतम्' और *'भागवतम' हैं। ये तीनों* संस्कृत के सुदर भावानुवाद हैं। इन कृतियो से कवि ने सस्कृत से अनभिज्ञ केरलीय जनता जनार्दन के मन मे भक्ति-मदाकिनी भर दी। इन काव्यो ने साहित्य को 'किलिप्पाट्टु' (दे०) नामक काव्य-रूप भी दिया।

भक्तिधारा मलयाळम मे किसी साप्रदायिक धारा के रूप मे नही फली फूली। उसका स्वरूप वैयक्तिक ही रहा। एष्तच्छन् के बाद भक्तिधारा के अनन्य कवि पूतानम् हुए। 'पूतानम्'(दे०) नपूतिरि का आकार मे लघु पर विचारो मे गभीर ग्रथ है। मलयाळम मे इनका प्रस्तुत 'कृष्णकर्णामृतम श्रीकृष्ण भक्ति का काव्यमय रसायन है।

कालातर मे कई कवियो ने भक्ति-प्रधान स्तोत्र रचे। *मलयाळम के भक्ति स्तोत्रों के प्रमुख आधार* गुरुवायूर के मगलमूर्ति भगवान कृष्ण भी हैं। परतु भक्ति-प्रस्थान एष्तच्छन् और पूतानम के युग मे ही फला-फूला और समाप्त भी हो गया।

भक्तिरसामृतसिंधु *(सं० कृ०)*

इस ग्रथ के लेखक रूपगोस्वामी (दे०) हैं। *इनका जन्म 1603 ई० के लगभग हुआ था।* इनके पूर्वज कर्नाटक प्रात के निवासी थे जो कि चौदहवी शती मे बगाल मे आ बसे थे। रूपगोस्वामी की शिक्षा दीक्षा बगाल मे हुई, और ये मुगल राज्य मे राजकर्मचारी नियुक्त हो गये किंतु बाद म चैतन्य (दे०) महाप्रभु के प्रभाव स्वरूप ये विरक्त हो गये और कृष्ण के उपासक बन गये। इनके रचे 13 ग्रथो मे से 'उज्ज्वलनीलमणि' (दे०) और *'भक्तिरसामृतसिंधु' का अधिक महत्व है। 'भक्तिरसामृतसिंधु'* मे भक्ति का रसशास्त्र की दृष्टि से निरूपण किया गया है। यह ग्रथ चार विभागो मे विभक्त है—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर। पूर्व विभाग मे चार लहरियाँ हैं, जिनमे क्रमश सामान्य भक्ति, साधनभक्ति, भावभक्ति और प्रेमभक्ति का सागोपाग निरूपण है। दक्षिण-विभाग की पाँच लहरियो मे विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, *व्यभिचारि भाव और स्थायि भाव का निरूपण है। पश्चिम*-विभाग की पाँच लहरियो मे शात रस, प्रीतिभक्ति, प्रेयोभक्ति, वत्सल भक्ति और मधुर भक्ति नामक रसो का निरूपण है। उत्तर विभाग की नौ लहरियो मे क्रमश हास्यभक्ति, अद्भुतभक्ति, वीरभक्ति, करुणभक्ति, रौद्र-भक्ति, भयानक भक्ति, बीभत्स भक्ति रसो तथा मैत्रीवैर-स्थिति भक्तिरस एव रसाभास का निरूपण है। स्पष्ट है कि इस प्रकार इस ग्रथ मे भक्ति को ही एकमात्र रस मान कर रूपगोस्वामी ने शृगार आदि सभी रसो को भक्ति मे पर्यवसित किया है। इनकी यह धारणा काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से मान्य नही है, किंतु भक्ति-सिद्धातो को लक्ष्य मे रखकर इस ग्रथ मे प्रतिपादित इनकी सभी मान्यताएँ भक्तजनो को अतीव इष्ट हैं।

भक्तिविजय *(म० कृ०)*

इसकी रचना महीपति बुवा ताहराबादकर ने 1762 ई० मे की थी। इसम अनेक सत-भक्तो के जीवन-चरित का श्रद्धा-भक्ति समन्वित वर्णन है। लिखने की *प्रेरणा के दो स्रोत थे— नाभादास' (दे०) जी का 'भक्त*-माल' (दे०) और उद्धवचिद्घन का 'सतचरित्र'। इन दोनो की रचनाओ के अतिरिक्त नामदेव (दे०) की 'तीर्थावली' तथा जन प्रचलित धारणाओ, कथाओ स भी मूल सामग्री सकलित की गई है। अपने समकालीन तथा अनेक पूर्ववर्ती भक्तों के चरित्रो की सामग्री उनके वशजो स भी प्राप्त की गई है। इसम आरभिक चरित्र-वर्णन नाभादास जी के 'भक्तमाल' के अनुरूप हैं। किंतु *नामदेव*

(दे०), ज्ञानेश्वर (दे०) आदि महाराष्ट्र के भक्तों के चरित्र-वर्णन में कुछ अधिक सामग्री उपलब्ध है। इनके चरित्र-वर्णन में भक्ति-भावना की उत्कटता है। कथा-वर्णन की शैली रोचक और आकर्षक है। भाषा में विशेष माधुर्य एवं सरलता है। 'भक्ति-विजय' का पारायण महाराष्ट्र के देहातों में प्रायः होता रहता है। इस ग्रंथ ने सर्वसाधारण जनता में बहुत प्रसिद्धि और आदर प्राप्त किया है। चरित्र-साहित्य में 'भक्ति-विजय' का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है।

भगवत गोमंडल कोश *(गु० क०)*

भगवंतसिंह जी (1850-1944 ई०) की यह पुस्तक नौ भागों में प्रकाशित हुई है। प्रथम भाग का प्रकाशन-वर्ष 1944 ई० था और अंतिम भाग का प्रकाशन-वर्ष 1952 ई०। गोंडल राज्य के महाराजा भगवंत सिंह जी साहित्य में रुचि रखते थे और उन्होंने राज्य की ओर से सहायता देकर एक बृहद् विश्वकोश की योजना बनाई, और एक विश्वकोश तैयार कराया भी। गुजराती में यह एकमात्र विश्वकोश है और संसार के सब विषयों की जानकारी इसमें दी गई है। उस पर एक लाख रुपया व्यय किया गया था।

भगवानदीन *(हि० लें०)* [जन्म—1867 ई०]

लाला भगवानदीन का जन्म जिला फ़तहपुर के बरवट ग्राम में हुआ। 1907 ई० में ये काशी के सेंट्रल हिंदू कॉलेज में अध्यापक नियुक्त हुए। इन्होंने 'शृंगार-तिलक', 'शृंगारशतक' तथा 'रामायण' के आधार पर अनेक कुंडलियाँ लिखीं। 'लक्ष्मी' नामक पत्रिका का संपादन किया तथा अनेक पत्र-पत्रिकाओं में इनके लेख प्रकाशित होते रहे। इन्होंने रामचरित्र-विषयक एक काव्य 'रामचरणांकमाला' लिखा तथा 'अलंकारमंजूषा' नामक एक अलंकार-ग्रंथ की रचना की। इन सबसे बढ़कर लाला जी की हिंदी-साहित्य को एक देन और है कि इन्होंने 'रामचंद्रिका' (दे०), 'दोहावली' (दे०), 'कवितावली', 'बिहारी-सतसई' (दे०) आदि पुराने ग्रंथों की टीकाएँ लिखकर विद्वानों एवं छात्रों का महान् उपकार किया।

भगवानसिंह *(पं० लें०)* [जन्म—1842 ई०; मृत्यु—1902 ई०]

'खुशी की कवीशरी दा रोज़ मैंनूं काज है' कहने वाले भगवानसिंह फ़िरोज़पुर और भटिंडा के सीमांत पर स्थित मर्राज नामक गाँव के एक खत्री-परिवार में जन्मे थे। इनके पिता का नाम रत्नसिंह था। गाँव के मौलवी से इन्होंने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। नौकरी भी शीघ्र मिल गई परंतु कवि के स्वाभिमान ने उसे अधिक देर तक वहाँ टिकने न दिया। शीघ्र ही उसे छोड़ कर काव्योपजीवी बन गए। नाभा और पटियाला के राजदरबारों के अतिरिक्त अनेक सामंत-सरदार भी कवि का सम्मान करते थे, अतः जीवन-निर्वाह सरलता से होता रहा। कवि संवेदनशील थे और उनकी अधिकांश रचनाएँ आसपास के वातावरण और सामयिक विषयों पर ही आधारित हैं। 'पच्चीए दा काल' (1868 ई०), 'चौत्तीए दी अग्ग' (1899 ई०), 'जज' और 'जीऊणा मोड़' (1894) जैसी सामयिक कृतियों के अतिरिक्त 'सोहणी-महीवाल', 'हीर-राँझा' (1878) और 'मिरज़ा-साहिबां' (1899) भी उपलब्ध होती हैं। इन्होंने अनेक फुटकर छंद भी लिखे जिनमें से अब एक बारामाँह और कुछ काफियाँ ही मिलती हैं। कवि की भाषा में ब्रज, खड़ी बोली तथा कुछ आंचलिक प्रयोगों का मिश्रण है परंतु उसका मूल स्वरूप पूर्वी पंजाबी का है। इनकी 'हीर-राँझा' (दे०) पूर्वी पंजाब में लोकप्रिय रही है।

भटिमा *(अ० पारि०)*

भाटों की शैली में श्री शंकरदेव (दे०) ने भटिमा काव्य की रचना की थी, इनमें वंदनाएँ हैं। ये तीन प्रकार की हैं—(1) रामभक्ति—महाराज नरनारायण के प्रति लिखी गई, (2) देवभटिमा—श्री कृष्ण के प्रति लिखी गई, और (3) नाट भटिमा—यह देव भटिमा से पृथक नहीं है, किंतु इसे नाटकों के लिए लिखा गया था। माधवदेव (दे०) ने भी 'भटिमा' नामक ग्रंथ की रचना की थी, यह शंकरदेव की वंदना में लिखी गई कृति है। इसमें दीनता का मार्मिक चित्रण है।

भटी, अब्दुल रऊफ़ *(सिं० लें०)* [जन्म—1682 ई०; मृत्यु—1752 ई०]

मख़दूम अब्दुल रऊफ़ भटी सिंध के हाला नामक

गाँव के निवासी थे। ये अपने समय के बडे दरवेश थे। इन्होने सिंधी मे 'मौलूद' (दे०) और 'मदाहे (दे०) रच कर हजरत मुहम्मद की महिमा गाई है। इनके द्वारा रचित 'मौलूद' और 'मदाहे' आज तक सिंधी मुसलमानो मे प्रसिद्ध हैं। ये पहले सिंधी कवि है जिन्होने फारसी छदो के आधार पर 'मौलूद' और 'मदाहे' लिखी हैं।

भट्ट, उदयशकर *(हिं० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

इनका जन्म इटावा मे हुआ। पूर्वज इदौर नरेश के न्यायाधीश नियुक्त होकर बुलदशहर के कर्णवास ग्राम मे बस गये थे। बचपन में घर पर शुद्ध सस्कृत का वातावरण था। इनके पिता फतेहशकर भट्ट ब्रजभाषा मे कवित्त रचा करते थे और उन्हे गोष्ठियो मे सुनाया करते थे। भट्ट जी को इन्ही गोष्ठियो से लिखने की प्रेरणा मिली। इन्होने काशी विश्वविद्यालय से बी० ए०, पजाब से शास्त्री और कलकत्ता से काव्यतीर्थ की उपाधियाँ प्राप्त की। लाहौर मे लाला लाजपतराय के नशनल कालेज, खालसा कालेज, सनातन धर्म कालेज आदि मे अध्यापन किया और तत्पश्चात् आकाशवाणी के परामर्शदाता और निदेशक रहे।

नाटक भट्ट जी की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है, फिर भी इन्होने कर्णवास के साधुओ के जीवन को लेकर ब्रजभाषा मे एक आचलिक उपन्यास लिखा है। भट्ट जी ने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, प्रतीकात्मक, समस्याप्रधान, हास्यपूर्ण सभी प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। 'अमृत और विष', 'विसर्जन', 'मानसी', 'यथार्थ और कल्पना', 'विश्वामित्र और दो भावनाट्य', 'अतर्दशन' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'अबा' और 'सगरविजय' पौराणिक, 'कमला' और 'अतहीन अत' सामाजिक तथा 'क्रातिकारी' क्राति-विस्फोटक नाटको के रूप मे प्रसिद्ध हैं। भट्ट जी की प्रतिभा के विकास का मुख्याधार उनके गीति-नाटक है। 'स्त्री का हृदय', 'आदिम युग', 'पर्दे के पीछे', 'आज का आदमी' इनके प्रमुख एकाकी हैं। भट्ट जी की रचनाओ मे वैदिक युग से लकर आज तक की सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि को चित्रित किया गया है। 'सागर लहरें और मनुष्य' सुदूर दक्षिण के मछुआरो मे रहकर उनके जीवन पर लिखा गया सजीव चित्र है। भट्ट जी मे प्राचीन के प्रति अनुराग और नवीन के प्रति आकर्षण है। इनकी प्रारभिक रचनाओं मे राष्ट्र-प्रेम का चढता-उतरता स्वर पाया जाता है, जबकि बाद की रचनाएँ वर्तमान के टूट-फूट को अभिव्यजित करके नये को स्वीकार करती हैं। नाटक के क्षेत्र मे, और वह भी भावनाट्य मे, भट्ट जी की स्थिति बहुत सुदृढ है। एक तरह से इस विधा के वे आद्य पुरस्कर्ता कहे जा सकते हैं।

भट्टगोपाल *(स० ले०)* [समय—अनुमानत पद्रहवी शती ई० के आसपास]

'काव्यप्रकाश' (दे०) के टीकाकार भट्टगोपाल का पूरा नाम लौहित्य भट्टगोपाल सूरि है। इन्होने 'काव्य-प्रकाश' पर 'साहित्यचूडामणि' नामक टीका लिखी है। कुमारस्वामी ने 'रत्नापण' (पृ० 93) मे एक गोपालभट्ट का उल्लेख किया है। यदि 'काव्यप्रकाश' के टीकाकार भट्टगोपाल, कुमारस्वामी द्वारा निर्दिष्ट गोपालभट्ट से अभिन्न हैं तो उनका समय पद्रहवी शती ई० से पूर्व होना चाहिए। श्री के० पी० त्रिवेदी का विचार है कि कुमार-स्वामी द्वारा निर्दिष्ट गोपालभट्ट ही हैं जिन्होने 'रसमजरी' (दे०) पर टीका लिखी है। इस प्रकार 'काव्यप्रकाश' के पूर्वोक्त टीकाकार भट्टगोपाल, 'रसमजरी' के टीकाकार से अभिन्न ठहरते हैं। इनके पिता का नाम हरिवश भट्ट द्रविड था। इन्होने 'काव्यप्रकाश पर उपर्युक्त टीका के अतिरिक्त भानुदत्त की 'रसमजरी' पर 'रसिकरजनी' नामक तथा रुद्रट (दे०) के 'शृगारतिलक' पर 'रस-तरगिणी' नामक टीकाएँ भी लिखी हैं।

भट्ट, जीवराम *(गु० पा०)*

कविवर दलपतराय डाह्याभाई (दे०)-रचित व पुरस्कृत गुजराती नाटक 'मिथ्याभिमान' (दे०) का प्रमुख पुरुष पात्र है—जीवराम भट्ट। 'मिथ्याभिमान' हास्यरस-प्रधान नाटक है। जीवराम भट्ट इसका मिथ्याभि-मानी नायक है—झूठे आत्मगौरव से पीडित। इस पात्र के आचरण से जहाँ उसके प्रति एक वितृष्णा जगती है वही उस पर दया भी आती है क्योकि वह अपने ही बनाये हुए जाल मे बुरी तरह फँसता चला जाता है। लेखक ने हास्य-व्यग्य के माध्यम से मिथ्या दभ और अहकार पर करारी चोट की है।

भट्टतिरिप्पाड्, एम० पी० *(मल० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

मलयाळम के नाटककार और कवि एम० पी०

भट्टतिरिप्पाड् सुप्रसिद्ध फ़िल्म अभिनेता हैं और 'प्रेमजी' के नाम से कविता लिखते हैं। इनके सामाजिक नाटक 'ऋतुमती' का नाटक-साहित्य के इतिहास में विशेष स्थान है। 'सपत्नी' और 'रक्त संदेशम्' इनके कविता-संग्रह हैं। 1945 ई० में प्रकाशित 'ऋतुमती' में भट्टतिरिप्पाड् ने समसामयिक नंपूतिरि-समाज में व्याप्त कुरीतियों का और उनके फलस्वरूप उस समाज में स्त्रियों की दुर्दशा का करुणाजनक और नाटकीय निरूपण किया है। उनकी कविताएँ क्रांतिकारी हैं और साहित्य के प्रगतिवादी आंदोलन में वे अग्रणी हैं।

भट्टतिरिप्पाड्, वी० टी० रामन् *(मल० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

ये सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक और नाटककार हैं। राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने के कारण ये जेल गये। अपनी जाति (नंपूतिरि) में उपस्थित कुप्रथाओं के विरुद्ध ये कार्यरत रहे और उसमें इनको पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई।

'अटुक्कळयिल् निन्नु अरङ्ङत्तेयक्कु' इनका महत्त्वपूर्ण नाटक है। इन्होंने कुछ कहानी-संग्रह और अपनी आत्मकथा भी प्रकाशित कराई है।

इनका उपर्युक्त नाटक नंपूतिरि-समाज में प्रचलित विवाह-संबंधी कुछ प्रथाओं के विरुद्ध अभिलक्षित था। मलयाळम के प्रारंभिक सामाजिक नाटकों में इसका विशेष स्थान है। आत्मकथा-लेखन में भी शायद के० पी० केशव मेनन (दे०) के बाद इन्हीं का नाम आता है।

भट्ट तौत (भट्ट तोत) *(सं० ले०)* [समय—950-980 ई०]

आचार्य अभिनवगुप्त (दे०) के साहित्य-गुरु भट्ट तौत भी काश्मीरी विद्वान् थे। इनका समय अभिनवगुप्त से कुछ पूर्व दसवीं शती ई० का उत्तरार्ध रहा होगा। इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

भट्ट तौत की कृति 'काव्यकौतुक' थी जो निश्चय ही साहित्य-शास्त्र विषयक थी जिस पर अभिनवगुप्त ने 'विवरण' नाम की टीका भी लिखी थी। परंतु दुर्भाग्यवश आज दोनों ही (मूल एवं टीका) अनुपलब्ध हैं। अभिनवगुप्त की कृतियों में इनका उल्लेख अनेक बार हुआ है तथा कुछ उद्धरण भी दिए गये हैं।

अभिनवगुप्त इनका उल्लेख अपने उपाध्याय के नाम से करते हैं। इन उल्लेखों एवं उद्धरणों से ज्ञात होता है कि भट्ट तौत एक सफल अध्यापक ही नहीं अपितु मौलिक चिंतक भी थे। शांत को रस की संज्ञा देने का श्रेय भट्ट तौत को ही है जिसका विस्तृत विवेचन उन्होंने अपनी अनुपलब्ध कृति 'काव्यकौतुक' में किया था। 'रसानुभूति सुखात्मक ही होती है' तथा रस ही नाट्य है यह मत भी भट्ट तौत के नाम से 'अभिनवभारती' में उद्धृत है। इनका कथन है कि काव्य (संभवतः नाट्य) का आस्वाद बिना प्रयोग के संभव नहीं है। क्षेमेंद्र (दे०) ने अपने 'औचित्यविचारचर्चा' (दे०) में यह बताया है कि 'प्रतिभा' (दे०) की परिभाषा 'प्रज्ञानवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता' भट्ट तौत-कृत ही है। भट्ट तौत रसवादी आचार्य थे तथा अनुकरण को काव्य नहीं मानते थे। उन्होंने श्री शंकुक (दे०) के अनुमितिवाद का भी खंडन अपनी कृति में किया था।

भट्टदेव *(अ० ले०)* [जन्म—1558 ई०; मृत्यु—1638 ई०]

ये कामरूप जिले के बरनगर नामक स्थान के निवासी थे। इनके पिता भी विद्वान् थे। इनका वास्तविक नाम बैकुंठनाथ था, पंडितों द्वारा प्रदत्त उपाधियों को जोड़कर इनका पूरा नाम बनता था—कविरत्न बैकुंठनाथ भागवत भट्टाचार्य। ये शाक्त ब्राह्मण थे। श्री शंकरदेव (दे०) की ख्याति से प्रभावित एवं उनके शिष्य दामोदर से तर्क में परास्त होकर ये वैष्णव बन गये थे। दामोदर की प्रेरणा से इन्होंने स्त्रियों और शूद्रों के लिए 'भागवत' (दे०) का गद्यानुवाद किया था, किंतु बृहत् ग्रंथ होने के कारण दामोदर ने इसे संक्षिप्त करने के लिए कहा था। अब बृहत् ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। ये श्री भट्ट पटबाउसी सत्र के महंत भी बनाए गये थे। इन्हें व्यास (दे० बादरायण, व्यास) का अवतार कहा जाता है।

रचनाएँ—'कथा भागवत' और 'कथा गीता' (दे०)। इनके अतिरिक्त कई असमीया और संस्कृत-ग्रंथ भी इन्होंने रचे थे।

'कथा भागवत' भागवत का अनुवाद मात्र नहीं है, इन्होंने अपनी ओर से भी इसमें जोड़ा है। शंकरदेव ने ब्रजबुलि-गद्य का प्रचार किया था और इन्होंने शुद्ध असमीया गद्य का। श्री सुनीतिकुमार चटर्जी (दे०) के अनुसार विश्व में इनका गद्य द्वितीय स्थान पाने योग्य है। 'कथा

गीता' (1598 99 ई०) मे गीता का अनुवाद है। इसकी भाषा भागवत से भी अधिक सुदर, सरस और ओजस्वी है। इसमे दार्शनिक तत्त्वो को सहज रूप मे समझाया गया है।

असमीया गद्य के जन्मदाता के रूप मे ये चिरस्मरणीय हैं। इस काल तक सभवत भारत की किसी भाषा मे इतना पुष्ट गद्य नही मिलता।

भट्टनायक *(स० ले०)*

सस्कृत-साहित्यशास्त्र के इतिहास मे भट्टनायक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके व्यक्तित्व एव कर्तृत्व दोनो के विषय में कोई निश्चित जानकारी नही है। अभिनवगुप्त (दे०), महिम भट्ट (दे०), मम्मट (दे०) एव हेमचद्र (दे०) प्रभृति ग्रथकारो ने अपनी कृतियो मे इनके नाम से इनके मत उद्धृत किए हैं।

इनकी कोई भी रचना उपलब्ध नही हो सकी है। 'ध्वन्यालोक' (दे०) की 'लोचन' नामक टीका मे अभिनवगुप्त ने तथा 'व्यक्तिविवेक' (दे०) नामक अपने ग्रथ मे महिम भट्ट ने 'हृदयदर्पण' नामक कृति का उल्लेख सोद्धरण किया है जिसमे आनदवर्धन (दे०) के ध्वनि-सिद्धात का खडन प्राप्त होता है। महिम भट्ट ने भी इनका ध्वनि-ध्वसक आचार्य के रूप मे ही प्रस्तुत किया है। पर यह कहना कठिन है कि 'हृदयदर्पण' एक स्वतत्र ग्रथ था, या ध्वन्यालोक की टीका। इस ग्रथ के नाम कई प्रकार से मिलते हैं—दर्पण, हृदयदर्पण, सहृदयदर्पण। ये 'नाट्यशास्त्र' (दे०) के रससूत्र के अन्यतम व्याख्याता भी हैं। तो क्या ये भरत-नाट्यशास्त्र (दे० नाट्यशास्त्र) के टीकाकार भी थे। यह प्रश्न भी अनुत्तरित ही रह जाता है।

भट्टनायक रसवादी आचार्य थे। इनके मत से काव्य की आत्मा रस ही है। इनके मत से रस की भुक्ति अर्थात् उसका आस्वाद होता है। भुक्ति के पूर्व विभावादि का साधारणीकरण परमावश्यक है। साधारणीकरण (दे०) का सिद्धात इनकी ही देन है। इनकी इस व्याख्या के आधार पर ही इन्हे साख्य-दर्शन का अनुयायी कहा जाता है।

भट्ट नारायण (स० ले०) [समय—सातवी शती का उत्तरार्द्ध]

भट्ट नारायण कान्यकुब्ज प्रदेश के निवासी तथा गौडदेश के आदिसूर नामक राजा के सभासद थे। कुछ विद्वान् इनको भवभूति (दे०) का समसामयिक मानते हैं।

इनकी एकमात्र नाट्यकृति 'वेणीसहार' (दे०) है। इसमे छह अक हैं। यह नाटक 'महाभारत' (दे०) की एक प्रसिद्ध घटना पर आधृत है। दु शासन के अपवित्र हाथो से द्रौपदी की वेणी जिस समय खुल गई उसी समय द्रौपदी ने यह दृढ प्रतिज्ञा की कि दुर्योधन और दु शासन की मृत्यु के बाद ही वह वेणी बाँधेगी। इसी घटना के आधार पर इस नाटक का नाम पडा। यह वीररस-प्रधान नाटक है। इसमे शास्त्रीय गुणो का अच्छा परिपाक हुआ है। इसके उद्धरण नाट्यशास्त्रीय ग्रथो मे शास्त्रीय नियमो के दृष्टात के रूप मे प्रयुक्त हुए हैं। 'वेणीसहार' के सवाद पात्रानुकूल तथा बडे सबल हैं। इसकी भाषा बडी सप्राण एव ओजगुण से युक्त है। अपनी एक ही कृति के आधार पर ये चोटी के नाटककारो की पक्ति मे आ गये हैं।

भट्ट, प्रकाश *(कश्० ले०)* [समय—अनुमानत पद्रहवी शती के प्रथम तीन चरण]

यद्यपि इनका जन्म-काल और मृत्यु काल अज्ञात है किंतु अतर्साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह पद्रहवी शती मे जैनुल् आबिदीन 'बडशाह' (1420-1472 ई०) के समकालीन रहे होगे। यह भी अनुमान लगाया जाता है कि इनका जन्म 1408 ई० के आसपास रहा होगा और मृत्यु 70 75 वर्ष की आयु मे हुई होगी। यह सस्कृत के अच्छे विद्वान् थे और फारसी का भी इन्हे ज्ञान था। इनको 'भटट-अवतार' भी कहा जाता था क्योकि यह शिव तथा राम की भक्ति मे इतने तल्लीन हो गये थे कि इनकी रचनाएँ भजन और लीला के रूप मे जगह-जगह गूँजने लगी थी, और भक्तजन इन्हे अवतार कहते थे। इनका दृष्टिकोण आध्यात्मिक है और इन्होने सस्कृतनिष्ठ कश्मीरी भाषा का प्रयोग किया है। इनकी शैली प्राचीन होते हुए भी व्यजनापूर्ण है। ये कश्मीरी साहित्य के प्रसिद्ध और लोकप्रिय ग्रथ 'रामावतारचरित', 'लवकुशचरित' और 'शिवलग्न' के रचयिता हैं। इनके उत्तराधिकारी कवियो ने इनकी शैली का अनुकरण करने का प्रयत्न भी किया किंतु सफल नही हो पाये।

भट्ट, बालकृष्ण *(हिं० ले०)* [जन्म—1844 ई०, मृत्यु—1914 ई०]

इलाहाबाद के एक व्यापारी घराने में जन्म

लेने पर भी साहित्य के प्रति इनका अत्यधिक अनुराग था। इसी के फलस्वरूप इन्हें अपना संपन्न पैतृक घर छोड़ कर आजीवन आर्थिक दुश्चिताओं का सामना करना पड़ा था। यद्यपि इन्होंने नाटक, कहानी, उपन्यास, आलोचना आदि विभिन्न विधाओं में लेखन-कार्य किया है, किंतु इनका मुख्य प्रदेय निबंध तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में है। इन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक आदि सभी विषयों पर एक हज़ार से अधिक निबंध लिखे हैं तथा आवश्यकतानुरूप भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक आदि विविध शैलियों का प्रयोग किया है। इनकी भाषा भावाभिव्यंजना में पूर्णतः समर्थ, सरल और मुहावरेदार है। 'भट्ट निबंधावली' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में इनकी देन 'हिंदी प्रदीप' के रूप में है जिसके माध्यम से इन्होंने तेंतीस वर्षो तक निर्भीक भाव से न केवल हिंदी के प्रचार-प्रसार में योग दिया था अपितु राष्ट्रीय चेतना को भी गति एवं शक्ति प्रदान की थी।

भट्ट, विश्वनाथ *(गु० ले०)* [जन्म—1898 ई०]

विश्वनाथ मगनलाल भट्ट का गुजराती साहित्य के विचक्षण आलोचकों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'साहित्यसमीक्षा', 'विवेचनमुकुर', 'निकषरेखा' तथा 'पूजा और परीक्षा' इनके विवेचनात्मक लेखों के संग्रह हैं। हडसन के 'इंट्रोडक्शन टु स्टडी ऑफ लिट्रेचर' के आधार पर इन्होंने 'साहित्यनो स्वाध्याय' नामक ग्रंथ तैयार किया। इनके द्वारा लिखित 'वीर नर्मद' सुंदर शैली में लिखा गया प्रामाणिक चरित्र है। 'विवेचन-शास्त्र की कला', 'साहित्यमां अपहरण' और 'कूपमडूकता' आदि लेखों के अतिरिक्त कवि दलपतराम (दे०), मेघाणी (दे०), कहानीकार रमणलाल (दे०) आदि कृतिकारों की पर्यालोचना, 'पंडितयुगना महाकाव्य'-विषयक चर्चा, आलोचक विश्वनाथ की क्षमता को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं। 'पारिभाषिक कोश', 'नर्मदनु मंदिर' (दो भाग), 'निबंधमाला', 'गद्यनवनीत' इनके द्वारा संपादित ग्रंथ हैं। इन्होंने 'प्रेमनो दंभ', 'लग्नसुख', 'स्त्री अने पुरुष', 'नवो अवतार' (तीन भाग), 'पतन अने प्रायश्चित' तथा 'कथावलि' भाग (1-2) नामक अनुवाद भी किए हैं। अतिशय विस्तार और पुनरुक्ति दोष को यदि उपेक्ष्य मान लें तो यह निःसंकोच भाव से कहा जा सकता है कि सरलता, विशदता, सर्वग्राहिता और तटस्थता के लिए विश्वनाथ भट्ट गुजराती आलोचना के क्षेत्र में सदा स्मरणीय रहेंगे।

भट्ट, शंकर *(क० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

ये कन्नड के कवि नाटककार और कथाकार के रूप में जाने जाते हैं। गुजरात विद्यापीठ से मैट्रिक और मद्रास विश्वविद्यालय से विद्वान की उपाधि प्राप्त होने के बाद मंगलूर के महिला कालेज में ये कन्नड प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हुए थे। 1953 ई० तक मंगलूर से प्रकाशित होने वाली साप्ताहिक पत्रिका 'राष्ट्रबंधु' के संपादक रहे। 'राष्ट्रमत' के संपादक के रूप में भी इन्होंने सेवा की है। इन्हें कन्नड साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष होने का गौरव प्राप्त हुआ है। इनकी कविताओं के संग्रह है—'काणिके' (उपहार), 'गांधी उपदेश', 'गुरु-दक्षिणे', 'घोषयात्रै', 'नल्मे' (प्रीति), 'वस्त्रापहरण' और 'हण्णु कायि' (फल)। इनके कथा-संग्रह हैं—'गाज़िन बले मतु हतर कथेगलु' (कांचका वलय और अन्य कहानियाँ), 'देवतामनुष्य', 'धूमकेतु' तथा 'हिंदिन कथेगुलु' (पिछली कहानियाँ)। इनके नाटकों के नाम ये हैं—'उषा', 'यज्ञकुंड' और 'हिडिम्बे'। ये अच्छे गद्यलेखक भी हैं। इनकी कविताओं में सौंदर्य और प्रेम की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

भट्टाचार्य, कमलाकांत *(अ० ले०)* [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

जन्मस्थान—तेजपुर।

इनकी आरंभिक शिक्षा संस्कृत पाठशाला में हुई थी। गौहाटी कालेजिएट हाई स्कूल से इन्होंने एंट्रेंस तक शिक्षा प्राप्त की थी। इन्होंने कुछ दिनों तक हाथी का व्यवसाय किया था। 1924 ई० में कलकत्ता से इन्होंने 'आसाम-हितैषी' का संपादन किया था। 1922 ई० में ये असम साहित्य-सभा (जोरहाट) के संपादक हुए थे।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य :** 'चितानल' (दे०) प्रथम भाग (1890), द्वितीय भाग (1922), 'चितातरंग' (1933); **निबंध :** 'कः पंथाः' (दे०) (1934)।

असमीया-साहित्य की सभी धाराओं से इनका परिचय रहा है। इनकी कविताओं में स्वदेश-प्रेम और अतीत के गौरव का वर्णन है। ओजस्वी कविताओं के रचयिता के नाते इन्हें 'अग्नि ऋषि कमलाकांत' के नाम से पुकारा जाता है।

इनके निबंध भी जोशीले हैं। 'कः पंथाः' ऐसे ही निबंधों का संकलन है। इस संग्रह में देश-प्रेम, सभ्यता और संस्कृति पर गंभीर निबंध हैं।

भट्टाचार्य जी के कई ग्रथ अप्रकाशित हैं। 'अष्टावक्रर आत्मजीवनी' के कुछ अश 'वाँही' पत्रिका मे प्रकाशित हुए थे। इनमे नास्तिकवाद का खडन है। 'त्रुटि दियेक चिंतार ढौ' के निबधो मे ब्रह्मसमाजी विचारधारा का परिचय मिलता है।

इन्होंने ही असमीया-साहित्य मे अपनी कविताओ के माध्यम से देशभक्ति का तूर्यनाद किया था।

भट्टाचार्य, बिजन *(बँ० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

बँगला मे नवनाट्य-आदोलन के सूत्रधारो मे बिजन भट्टाचार्य का उल्लेखनीय स्थान है। इनके प्रथम नाटक *'जबानबदी' मे नव्यधारा का प्रथम सुस्पष्ट परिचय* मिलता है। इनकी प्रतिभा का सार्थक निदर्शन इनके नाटक 'नबान्न' (1944 ई०) मे मिलता है। अगस्त आदोलन, बाढ तथा महामारी की पटभूमिका मे रचित नाटक का दृष्टिकोण मार्क्सवादी है। इसमे बगाल के दु खी कृषको का जीवन प्रतिफलित हुआ है। 'नबान्न' नाटक को इतनी ख्याति मिली कि उस दशक के बगाल नाट्य-युग का नाम *नबान्न-युग ही पड गया।* 'नबान्न' ने जनमानस मे एक नवीन नाट्य बोध की सचेतनता जगाई थी। भारतवर्ष मे 'नबान्न' से ही गणनाट्य सघ की दृढ भित्ति की स्थापना हुई थी।

'नबान्न' के उपरात बिजन बाबू के 'कलक', 'मराचाँद' (1946) नामक *नाटक* भी प्रकाशित हुए। 'मराचाँद' इनका प्रथम राजनीतिहीन नाटक था। लेखक के जीवन की सुख-दु ख-वेदना के करुण-मधुर रूप को इस नाटक मे प्रकट किया गया है। 1960 ई० मे इनका नाटक 'गोत्रातर' प्रकाशित हुआ था। पूर्वबगवासी विस्थापितो के भाग्यविपर्यय की कहानी को लेकर इस नाटक की रचना हुई है। इसके उपरात इन्होने दो और नाटक लिखे थे— *'अवबोध' तथा 'जीयन-कन्या'। 'जीयन-कन्या' गीतिनाट्य* है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित होने के कारण लेखक ने समग्र जनता को ही अपने नाटक मे नायक का स्थान देकर उनके दु ख-सुख की कहानी को सफल रसात्मक रूप प्रदान किया है।

विधायक, भट्टाचार्य *(बँ० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

अति-आधुनिक बँगला नाट्यकारो मे सामाजिक नाटको की रचना कर ख्याति प्राप्त करने वालो मे विधायक भट्टाचार्य का उल्लेखनीय स्थान है। इनके 'मेघमुक्ति' (1938), 'माटिर घर' (1939), 'बिश बछर आगे', 'माला राय', 'रक्तेर डाक' (1941), 'तुमि आर आमि' (1942), 'तेरशो पचाश' (1946), 'का तव काता' (1953), 'क्षुधा' (1957), 'कान्ना हासिर पाला' (1960) सामाजिक नाटक है। इन नाटको मे सर्वाधिक जनप्रियता 'क्षुधा' नाटक ने प्राप्त की थी। 'क्षुधा' की निर्मम आग से झुलसते हुए बगाल के निम्न मध्यवर्गीय परिवार के कतिपय लोगो की मर्मांतक कहानी इसमे लिपिबद्ध है। यह चित्र-प्रधान रचना है। इसमे जीवन की समस्याएँ हैं परतु कोई समाधान नही दिया गया है।

इन्होंने अपने नाटको मे एक ओर व्यग्य तो दूसरी ओर रहस्य-रोमाच का आश्रय लिया है और इस प्रकार से नाटक मे नये आस्वाद का परिचय दिया है। 'बिश बछर आगे' नाटक मे 'फ्लैश बैक' नाट्य-पद्धति का प्रयोग कर इन्होने बँगला रगमच मे एक नये आगिक का प्रवर्तन किया है।

नाट्यकार होने के साथ-साथ ये उत्तम अभिनेता भी हैं और आजकल व्यावसायिक रगमच से जुडे हुए हैं। आधुनिकतम नाट्यरचनाओ के प्रत्येक प्रयोग के साथ ये भली भाँति परिचित हैं। इनके संलाप सहज, सरल एव सरस है, इसीलिए नाट्य-प्रेमियो मे ये 'मधुसलापी' के नाम से परिचित हैं।

भट्टाचार्य, वीरेंद्रकुमार *(अ० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

1953 ई० मे इसमे गौहाटी विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इन्होंने अनेक पत्रो का सपादन किया था। 'रामधेनु' का सपादन करते समय नये कवियो का मडल तैयार किया था।

प्रकाशित रचनाएँ—**उपन्यास** 'राजपथेरिडि याइ' (1956), 'इयारुइगम' (दे०) (1960), 'आइ' 'शतघ्नी', कहानी-सग्रह 'कल आजि ओ बय' (दे०) (1962), 'सात सरी'। 'राजपथेरिडि याइ' प्रथम उपन्यास है, यह 1942 ई० के आदोलन पर आधारित है। 'इयारुइगम' नगा समस्या पर लिखा गया है, इस पर इन्हे साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला था। 'आइ' उपन्यास विधवा ब्राह्मणी पर लिखा गया है। 'शतघ्नी' उपन्यास चीनी आक्रमण के सदर्भ मे रचित हुआ है। इनके तीन उपन्यासो का हिंदी अनुवाद हो चुका है। इन्होने कथा मे

आधुनिक जीवन की समस्याएँ ली हैं। इनकी विशेषताएँ हैं: उदार दृष्टिकोण, मानवतावाद, भावों की अतिशयता का वर्णन और संयत अभिव्यक्ति।

ये असमीया भाषा के आधुनिक सशक्त कथाकार हैं।

भट्टाचार्य, सुकांत *(बँ० ले०)* [जन्म—1926 ई०; मृत्यु—1947 ई०]

अति आधुनिक कविता के क्षेत्र में सुकांत भट्टाचार्य एक विस्मय हैं। धूमकेतु की तरह इनका आविर्भाव एवं तिरोभाव मन को चौंका देने वाला है। अकाल मृत्यु के कारण इस नितांत तरुण कवि की प्रतिभा अंकुर में ही विनष्ट हो गई थी। कवि के जीवन में कोई काव्य-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ था। मृत्युपरांत 'छाड़पत्र', 'पूर्वाभास', 'घुम नेई', 'मिठे कड़ा' आदि काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हुए थे। 'अभियान' में दो स्वल्प परिधि के काव्य-नाटक संकलित हैं।

इन्होंने अपनी कविता में बौद्धिकता का संपूर्ण रूप से परिहार किया है। अपने व्यक्तिगत जीवन में दारिद्र्य की ज्वाला का इन्होंने अनुभव किया था इसीलिए इनकी कविता में शोषित जनसाधारण की क्षुधा की अभिव्यक्ति अधिक हुई है। इनकी 'चिल', 'सिंड़ि', 'देशलाइ काठि', आदि कविताएँ प्रतीकात्मक हैं। इनकी कविता में प्रथम श्रेणी के लिपिकुशल कवि-मानस का परिचय मिलता है। इन कविताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक प्रचार के घटनावर्त में फँस जाने पर यह किशोर कवि अपनी जन्मलब्ध कविप्रकृति के पूर्ण ऐश्वर्य को प्रकट नहीं कर पाया है।

भट्टिकाव्य *(सं० कृ०)* [समय—पाँचवीं शती ई०]

'भट्टिकाव्य' के प्रणेता भट्टि स्वामी वलभी के राजा धरसेन के सभापंडित थे। इनका समय 470 ई० से लेकर 500 ई० तक माना जाता है।

भट्टि स्वामी का 20 सर्गों का यह महाकाव्य इन्हीं के नाम पर 'भट्टिकाव्य' कहलाया। इसका दूसरा नाम 'रावणवध' भी है। इसके 3624 पद्यों में मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र के जीवन-चरित्र का अत्यंत सरल ढंग से वर्णन किया गया है।

इस महाकाव्य की विशेषता यह है कि इसमें मनोरंजन के साथ-साथ पाठकों को संस्कृत-व्याकरण का पूर्ण ज्ञान हो जाता है।

यह महाकाव्य व्याकरण जानने के इच्छुक व्यक्तियों के लिए बड़ा उपादेय है। व्याकरण जानने वालों के लिए यह ग्रंथ दीपक की तरह अन्य शब्दों को भी प्रकाशित कर देता है। व्याकरण-शिक्षण के साथ ही इस काव्य में महाकाव्यत्व के सभी गुण विद्यमान हैं। इसके प्रकृति-वर्णन इतने हृदयग्राही हैं कि माघ (दे०) के प्रभात-वर्णन पर इनका प्रभाव स्पष्टरूपेण झलकता है।

इस शैली का परवर्ती कवियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा और इसको आदर्श मानकर इसी प्रकार के कुछ अन्य काव्यों की रचना हुई। इनमें भट्ट भीम का 'रावणार्जुनीय' प्रसिद्ध है।

भट्टोजिदीक्षित *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1600-1650 ई०]

ये महाराष्ट्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर था। रंगोजिभट्ट इनके छोटे भाई थे। इनके द्वारा रचित पाणिनि (दे०) के लिंगानुशासन पर दो वृत्तियाँ मिलती हैं। एक—'शब्दकौस्तुभांतर्गत', और दूसरी—'सिद्धांतकौमुदी' (दे०) के अंत में। इनमें 'शब्दकौस्तुभांतर्गत' वृत्ति अपेक्षाकृत विस्तृत है। इसके अतिरिक्त, 'शब्दकौस्तुभ', 'सिद्धांतकौमुदी' एवं 'प्रौढमनोरमा' इनके प्रधान एवं प्रख्यात ग्रंथ हैं।

पाणिनि के उत्तरवर्ती वैयाकरणों में भट्टोजिदीक्षित का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। 'सिद्धांतकौमुदी' के अंतर्गत इन्होंने व्याकरणशास्त्र के सिद्धांतों की प्रक्रिया एवं प्रयोग की विस्तृत विवेचना की है। 'प्रौढमनोरमा' के अंतर्गत 'सिद्धांतकौमुदी' की फिट्सूत्रवृत्ति की व्याख्या भी शास्त्रीय दृष्टि से अत्यंत उपादेय है। 'शब्दकौस्तुभ' व्याकरणशास्त्र के विद्वानों का निकष-ग्रंथ है। इस प्रकार प्रक्रिया एवं सूक्ष्म शास्त्रीयता की दृष्टि से व्याकरणशास्त्र को इनकी महती देन है।

भणकार *(गु० कृ०)*

'भणकार' आधुनिक गुजराती साहित्य के भीष्मपितामह स्वर्गीय बलवंतराय ठाकोर (दे० ठाकोर) (1869-1950 ई०) का काव्य-संग्रह है। इसमें उनकी 1888 ई० से 1950 ई० तक की रचनाएँ संगृहीत हैं:

'पंडित युग' मे जन्मे श्री ठाकोर के इस सग्रह का जब 1917 ई० मे प्रथम सस्करण निकला था तो सहृदय पाठक को भावी गुजराती कविता की अनेकानेक सुखद सभावनाओ की प्रतीति हुई थी। 1951 ई० में इसका सशोधित एव सवधित सस्करण निकला।

आलोच्य सस्करण सात 'गुच्छो' (खडो) में विभक्त है जिसमे प्रत्येक गुच्छ का निजी आकर्षण है। प्रथम गुच्छ मे कवि और काव्य-विषयक कविताएँ हैं जिनमे 'भणकार' उत्कृष्ट है। दूसरे गुच्छ मे राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत कविताओ के साथ 'आजादी दिवस', 'गाधी की समाधि' जैसे सामयिक काव्यो के साथ अहमदाबाद, पूना और बबई पर भी कविताएँ हैं। सग्रह का 'तृतीय गुच्छ' आनरिक सबधो की मजूषा है। 'चतुर्थ गुच्छ' की 'जूनु पियेर-घर', 'रेण' तथा 'एक तोडेली डाल' आदि कविताएँ कवि की भिन्न भिन्न भाव-परपराओ की द्योतक हैं। पचम गुच्छ की कविताएँ कथा-काव्य हैं। इसी प्रकार छठे तथा सातवें गुच्छ का भी निजी वैशिष्ट्य है।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि 'भणकार' के आलोच्य सस्करण की विषय-वस्तु सुनिश्चित है। इसकी रचनाओ मे विषय-वस्तु तथा अलकार-योजना, छद और प्रतीक-विधान इत्यादि मे सवत्र ताजगी और आधुनिकता है। ओज तथा बलिष्ठता के गुणो से भरपूर इन कविताओ का अध्ययन इस बात को पुष्ट करता है कि बलवतराय ठाकोर एक महान् कवि हैं। असाधारण अभ्यासशीलता, धर्म, सस्कृति, चिंतन, जगत् का विशाल तथा गहरा आलोचन तथा अभिव्यक्ति के अनेकानेक मौलिक प्रयोगो से समृद्ध उनकी कविता का प्रभाव आगामी पीढियो पर गहरे और व्यापक रूप से पडा है।

भद्रभद्र *(गु० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1900 ई०]

कृतिकार रमणभाई नीलकठ (1868-1928 ई०)। यह गुजराती साहित्य मे पहला व्यग्य प्रधान उपन्यास है। इसमे समसामयिक साहित्य पर व्यग्य है। उस युग मे सस्कृत के प्रभाव के कारण साहित्य की भाषा अत्यत कठिन और दुर्बोध हो गई थी। इस उपन्यास के नायक भद्रभद्र एक सस्कृतमय गुजराती भाषा-लेखक हैं और उसके फलस्वरूप कैसी हास्यास्पद परिस्थिति निष्पन्न होती है—इसका निरूपण किया गया है। यह उपन्यास इतना लोकप्रिय हो गया था कि उस युग मे जो कोई सस्कृत-प्रचुर गुजराती बोलता था उसे 'भद्रभद्र' नाम दिया जाता था। इस उपन्यास के सारे हास्य-प्रसगो का उपादान एक ही पात्र 'भद्रभद्र' है। सुधारवादी होने के कारण जाति-भोजन, प्रेतभोजन, रीति रिवाज, इत्यादि पर व्यग्य करके लेखक ने सुधारवाद का प्रचार किया है।

भद्रभद्र *(गु० पा०)*

रमणभाई नीलकठ के हास्य-प्रधान उपन्यास का भद्रभद्र(दे०) नायक है। वह कट्टर सनातनी है—सस्कृत-प्रचुर *गुजराती बोलता है और एक जड व्यक्ति की भाँति* मूर्खतापूर्ण व्यवहार करता है। वह किसी को छूता नही; धार्मिक कार्यो मे लगा रहता है, कही किसी की बात नही सुनता है—बस, अपनी प्रशस्ति करता रहता है। आज भी जो व्यक्ति अपने चारो ओर की हुई दीवारो मे बद रहता है और सस्कृतमय गुजराती बोलता है, उसे मजाक मे भद्रभद्र कहा जाता है।

भद्रबाहु *(प्रा० ले०)*

जैनागम (दे० जैन-आगम) साहित्य के सर्वोत्कृष्ट लेखक भद्रबाहु श्रुतकेवली के रूप में स्मरण किए जाते हैं। कही कही इन्हें मुनि कहा गया है और इनकी प्रशसा तथा स्तुति मे कविताएँ बनाई गई हैं। इनका समय चद्रगुप्त मौर्य का राज्य-काल माना जाता है। महावीर के बाद ये छठ थेर हैं और इनकी मृत्यु महावीर-निर्वाण के 170 वर्ष बाद हुई थी। ये ही एकमात्र व्यक्ति थे जिन्हे महावीर-वाणी तथा 14 पूर्वो का ज्ञान था। एक बार अकाल पडने पर जब ये पाटलिपुत्र छोडकर कर्नाटक चले गये तब आगम-साहित्य और पूर्वों के लुप्त हो जाने की आशका से स्थूलभद्र ने सगीति का आयोजन किया और आगम साहित्य को लिपिबद्ध कराया। ये लोग श्वेत वस्त्र भी धारणा करने लगे थे। अत यही से श्वेतावर और दिगबर सप्रदायो का आविर्भाव हुआ था। एक बार जब ये नेपाल मे विद्यमान थे ता जैन सन्यासियो का एक दल इनसे पूर्वो का अध्ययन करन वहाँ पहुँचा। किंतु केवल स्थूलभद्र ही टिक सके, अन्य लोग बहाने बनाकर लौट आये। स्थूलभद्र ने 14 पूर्वो का इनसे अध्ययन किया जिसमे अतिम चार पूर्व गुप्त रखे गये। जैन-आगमो का बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाग इन्ही का लिखा हुआ है। 'आयार-दसाओ' नामक छेदसूत्र (दे०) इन्ही का लिखा हुआ बतलाया जाता है जिसमे आठवाँ अध्याय कल्पसूत्र तो

निश्चित रूप से इन्हीं का लिखा हुआ है। पाँचवाँ छेदसूत्र बृहत्कल्प भी इन्हीं का लिखा बतलाया जाता है जिसमें सदाचारों के अतिक्रमण का वर्णन है। दंडविधानपरक 'वावहार' भी इन्हीं का लिखा हुआ कहा जाता है। 'पंच-कल्प चूर्णी' में लिखा है कि 'निशीथ का रहस्यात्मक साहित्य भी इन्हीं की रचना है। इस प्रकार आगम-साहित्य का अधिकांश महत्वपूर्ण भाग इन्हीं की रचना है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कतिपय निर्युक्तियाँ भी लिखी हैं जिनमें 'पिंडनिज्जुत्ति', 'ओहानिज्जुत्ति' इतनी महत्त्वपूर्ण बन पड़ीं कि उन्हें आगमों में सम्मिलित कर लिया गया। परंपरा से ये 10 ग्रंथों पर निर्युक्तियों के लेखक माने जाते है—आचारांग, सूत्रकृतांग, सूर्यप्रज्ञप्ति, व्यवहार, कल्प, दशाश्रुतस्कंध, उत्तराध्ययन, आवश्यक, दशवैकालिक और ऋषिभाषित। हो सकता है कि निर्युक्तिकार भद्रबाहु (दे०) दूसरे (ई० पू० प्रथम शती के) भद्रबाहु हों। इनके नाम पर संसत्तनिज्जुत्ति तथा कतिपय स्फुट गाथाएँ भी प्रसिद्ध हैं।

भद्रायु भाटकर (म० पा०)

यह प्र० के० अत्रे (दे०) के प्रसिद्ध प्रहसन 'साष्टांग नमस्कार' का पात्र है। काव्य-प्रतिभा के अभाव में भी यह हठात् कवि होने का दुराग्रह करता है। इसका विश्वास है कि कवि स्वभावतः कोमल होते हैं, इसी से यह अत्यल्प आहार करता है। शरीर को सुकुमार बनाने के नानाविध उपाय करता है। समय-कुसमय काव्य की उद्धरणी अलापता रहता है। नायिका के सहोदर चंदू के पेड़ से गिर जाने पर उपचार की अपेक्षा यह कविता करने बैठ जाता है परंतु इसकी कविता बौद्धिक प्राणायाम मात्र है, लक्ष्यहीन जीवन के थपेड़े खाता हुआ यह 'कवि नियम' के अनुसार 35 वर्षों तक मृत्यु की अनवरत प्रतीक्षा करने के उपरांत 'माडकर' के तालाब में डूबकर आत्मघात की अपनी योजना को पूरी करना चाहता है। अपने अतिरिक्त क्रियाकलापों के माध्यम से यह हास्य-स्थिति का निर्माण करता है। एक समय था जब महाराष्ट्र में साष्टांग नमस्कार, ज्योतिष एवं काव्य-प्रेम सनक की सीमा तक पहुँच गया था। इसके चरित्र-निरूपण द्वारा इसी को रोकने का कलात्मक प्रयास कहा जा सकता है।

भद्रार्जुन (बँ० कृ०) [रचना-काल—1852 ई०]

बँगला नाटक-साहित्य में मौलिक नाटकों की परंपरा का सूत्रपात करने का श्रेय ताराचरण शिकदार के 'भद्रार्जुन' को है। प्रस्तुत नाटक की मूल घटना है अर्जुन द्वारा सुभद्रा का अपहरण। यहाँ नाटककार ने पौराणिक प्रसंग का यथावत् समापन न करके उसमें परिवर्तन किया है। कौरवों के अपमान तथा बलदेव के क्षोभ से सजीवता आ गई है। परंतु नाटक की वास्तविक उपलब्धि है पौराणिक प्रसंग के परिप्रेक्ष्य में युग का चित्रण। विवाह की परंपराएँ, विवाह योग्य कन्या की चिंता तथा स्त्री-चरित्र का विवेचन तत्कालीन बँगला-समाज के संदर्भ में हुआ है।

पश्चिमी नाट्य-पद्धति का अधिकाधिक अनुसरण करते हुए ताराचरण शिकदार ने कई नवीन प्रयोग किए हैं। कथा अंकों-दृश्यों में बँटी है। तथ्य के लिए संयोग-स्थल लिया गया है। पश्चिमी शैली पर प्रस्तावना का प्रयोग हुआ है। संवाद गद्य-पद्य में हैं। गद्य की भाषा सहज-सरल है। गीतों का प्रयोग अधिक हुआ है। इसी संदर्भ में इस नाटक का योगदान उल्लेखनीय है।

भद्रेश्वर दीक्षित (म० पा०)

भद्रेश्वर गोविंद बल्लाल देवल (दे०) के 'संगीत शारदा' नाटक का पात्र है जो विशिष्ट जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। वयोवृद्ध भुजंगनाथ की विवाहेच्छा की पूर्ति कर यह अपनी धनेच्छा पूरी करने का असफल प्रयास करता है। वृद्ध भुजंगनाथ को विवाह का आश्वासन देकर यह उससे पर्याप्त मात्रा में धन ऐंठता है। इसी से यह विवाहेच्छुक भुजंगनाथ को कायाकल्प के कृत्रिम साधनों की ओर प्रेरित करता है। उसके श्वेत केशों को खिजाब लगाकर काला करने, नकली दाँत लगवाने तथा शारीरिक शक्ति बढ़ाने हेतु अच्छे शक्तिवर्द्धक औषध आदि लेने का परामर्श देकर उसे छद्म नाम से प्रसिद्ध करता है, किंतु लोभी ब्राह्मण कांचनभट्ट को भुजंगनाथ के ऐश्वर्य से प्रभावित कर शारदा का विवाह करने का अनुमोदन करता है। शारदा-भुजंगनाथ के इस अनमेल-विवाह का विरोध कोदंड नामक नवयुवक करता है। कोदंड को अपने मार्ग में बाधक समझ कर भद्रेश्वर दीक्षित उस पर चोरी का अभियोग लगाकर उसे कैद करवा देता है। अपने को निष्कंटक जानकर यह शारदा-भुजंगनाथ का विवाह यथाशीघ्र संपन्न कराने का यत्न करता है, परंतु विवाह-वेदी पर बैठे भुजंगनाथ-शारदा के समक्ष सहसा पुलिस सहित कोदंड उपस्थित होकर भद्रेश्वर दीक्षित के झूठ का भंडाफोड़ कर

उपस्थित व्यक्तियो से सगोत्री विवाह का विरोध करने का अनुरोध करता है। भद्रेश्वर दीक्षित द्वारा कोदड पर आभूषण-चोरी के रहस्य का उद्घाटन स्वय उसके नौकर द्वारा प्रकट कर दिया जाता है। पुलिस द्वारा भद्रेश्वर एव भुजगनाथ को अपने साथ पकड ले जाने से भद्रेश्वर प्रकरण की समाप्ति होती है।

भुजगनाथ का चरित्र विकास मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है। लोभी प्रवृत्ति के कारण यह उचित-अनुचित के विवेक को भूल अपनी स्वार्थ-सिद्धि का यत्न करता है। अपने लक्ष्य की प्राप्त करने के लिए ही यह नाना प्रकार के छल कपट करता हुआ कथा-विकास मे सहायक सिद्ध हुआ है। नाटकीय सघर्ष एव औत्सुक्य के सतत विकास मे सहायक इस पात्र के माध्यम से नाटककार ने वर्ग-विशेष के चरित्र को मुखरित किया है। निजी स्वार्थ मे उचित-अनुचित का विवेक खो बैठने वाले व्यक्तित्व का पूर्ण प्रतिनिधित्व भद्रेश्वर दीक्षित के चरित्र मे हुआ है।

भरत *(स० ले०)* [समय—300 ई० पू० से 300 ई० के बीच]

इनको भरतमुनि भी कहते हैं। इनका समय अनिश्चित है। इनको ऐतिहासिक व्यक्ति मानने मे भी अनेक कठिनाइयाँ हैं। कुछ लोग भरत जातीय नाम मानते हैं। प्राचीन भारत मे जो जाति नाटक खेलने का व्यवसाय करती थी उसे भरत कहते थे।

भरतमुनि के नाम से 'नाट्यशास्त्र' (दे०) नामक ग्रथ मिलता है जो नाट्य एव काव्य तथा नृत्य, सगीत, चित्र एव वास्तुकलाओ का एक महनीय विश्वकोश है।

'नाट्यशास्त्र' की साक्षी के अनुसार भरतमुनि अपने सैकडो शिष्यो के साथ रहते थे। वे समय समय पर दिव्यलोक मे भी आते रहते थे। ब्रह्मा के कहने पर ही इन्होने उनके द्वारा प्रणीत नाट्यवेद का अभिनयात्मक प्रयोग किया था।

इनके अतिरिक्त आदिभरत और वृद्धभरत के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान 'नाट्यशास्त्र' का मूल सूत्रात्मक या जिसके कर्त्ता आदिभरत रहे होगे। अनतर उस पर कारिका वृद्धभरत ने लिखी जो 1200 श्लोको मे होने से 'द्वादशसाहस्रीसहिता' कहलाती। वर्तमान 'नाट्यशास्त्र' उसी का सक्षेप है जो लगभग 6000 श्लोको मे होने से 'षट्साहस्रीसहिता' कहलाता है। इसके कर्त्ता ही मुनि भरत हैं। कपिल (दे०) कणाद (दे०) की तरह एक शास्त्र के प्रवर्तक होने से ही इनको मुनि कहते है।

भरत मुनीचें नाट्यशास्त्र *(म० कृ०)*

इसका रचना-काल 1928 ई० है और 'लेखिका' हैं कु० गोदावरी केतलर। ग्रथ की दूसरी आवृत्ति 1963 ई० मे प्रकाशित हुई। भरत (दे०) मुनि के 'नाट्यशास्त्र' (दे०) पर लिखा गया यह एक शोध प्रबध है। इसमे कुल 11 प्रकरण हैं (1) नाट्यकला व नाट्यशास्त्र, (2) भारतीय नाट्य-गृह, (3) नृत्त, (4) नाट्य भावानुकीर्तनम्, (5) रस, (6) अभिनय, (7) नाट्यकाव्य, (8) वस्तु, नाट्य-पात्र, (10) दशरूप, (11) पूर्वरग। इस ग्रथ के अनेक प्रकरणो मे भरत-परवर्ती आचार्यों की मान्यताओ का भी उल्लेख किया गया है और मराठी-साहित्य से भी उदाहरण प्रस्तुत किए गये हैं। विद्वानो ने इस ग्रथ की गुणवत्ता की मुक्तकठ से प्रशसा की है।

भरतवाक्य नटवाक्य *(स० पारि०)*

नाटक के अत मे नाटककार द्वारा प्रस्तुत श्लोक जिसे नाटक के सभी पात्र मिलकर बोलते-गाते हैं। इसमे प्राय प्राणिमात्र के, विशेषत दर्शको के, कल्याण की कामना की जाती है।

भरतेश *(कृ० पा०)*

महाकवि रत्नाकर (दे० रत्नाकरवर्णि) के 'भरतेशवैभव' (दे०) मे भरतेश के उदात्त चरित्र का चित्रण है। वह काव्य का नायक है, कवि के आदर्श मानव का दिव्य रूप है। भारतीय साहित्य मे श्रीराम, जनक जैसे आदर्श पात्रो के चित्रण की कमी नही है। भागवत म जड-भरत जसे पात्र का चित्रण भी हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। परतु रत्नाकर ने जैन तत्त्वो के समन्वय के साथ भर-तेश के आदर्श मानव-रूप का जो वर्णन किया है, वह उन की समन्वय साधना का ही प्रमाण है।

रत्नाकर के भरतेश राजयोगी, जिनयोगी, भोगी-त्यागी और रसिक विद्वन हैं। उनके वर्णन मे कवि की रसज्ञता, कल्पना-विलास और तप साधना की अनुभूति

प्रकट होती है। काव्य के 'भोगविषय', 'दिग्विजय', 'योगविजय', 'अर्ककीर्तिविजय' तथा 'मोक्षविजय' नाम के पाँच भागों में, जिसको कवि ने 'पंचकल्याण' कहा है, भरतेश के चरित का वर्णन है। इन्हें पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भरतेश में लौकिक एवं अलौकिक गुणों का समावेश किया गया है। कमलपत्र पर पानी के सदृश रहने वाले भरतेश भोगी होते हुए भी योगी हैं। उनके प्रत्येक कार्य का वर्णन कर कवि ने उनकी उदात्तता का निरूपण किया है। वह राजा हैं, पति हैं, पुत्र हैं, भाई हैं, मित्र हैं, भक्त हैं। उनके व्यक्तित्व के इन रूपों का काव्य में अच्छा चित्रण हुआ है। उनके सौंदर्य और क्षात्रतेज का वर्णन काव्य के प्रारंभिक भाग में है। 'भोग में रहकर योग करते हुए तुम्हारे समान भवमुक्त होने वाले कौन हैं?' राजदरबार के कवि की यह स्तुति स्तुति नहीं है, उसके विषय में सर्वथा सत्य है। अपने भाई बाहुबलि (दे०) को वह अपनी मृदु वाणी से ही परास्त करते हैं। उनके चित्रण में कर्मयोगी के आदर्श रूप की ही प्रतिष्ठा नहीं की गई है, बल्कि स्थितप्रज्ञ के रूप की सहज सुंदर स्थिति भी है।

भरतेशवैभव *(क० कृ०)*

कन्नड के जैन कवि रत्नाकर (दे० रत्नाकरवर्णि) की प्रतिनिध कृति है 'भरतेशवैभव'। यह एक महाकाव्य है जो जिनसेन के संस्कृत 'पूर्वपुराण', पंप के 'आदिपुराण' (दे०) तथा चावुंडराय के 'चावुडराय पुराण' (दे०) आदि में वर्णित प्रथम तीर्थंकर के पुत्र भरत के जीवन पर लिखा गया है। मूल के अनुसार अपने अधिकार एवं विजयोल्लास से स्फीत भरत ग्रंत में अपने ही भाई बाहुबलि से पराजित होते हैं। किंतु यहाँ लेखक ने इन्हीं भरत को अपना काव्य-नायक बनाया है और उन्हें युद्ध में विजयी दिखाया है। उन्हें श्रीकृष्ण की भाँति योग-भोग-समन्वय-साधक रूप में चित्रित किया गया है। यह काव्य सांगत्य छंद में है। करीब दस हजार छंदों वाले इस काव्य में अस्सी संधियाँ हैं। कवि का दावा है कि उसने इसे नौ मास में समाप्त किया।

नाम से ही प्रकट होता है कि इस काव्य का उद्देश्य भरतेश का वैभव दर्शाना है। भरत असीम राज्य के प्रभु थे, असीम सुख में वह डूबे थे। ग्रंत में वही जिनयोगी बने। इस तरह जिनयोगी चक्रवर्ती के सम्यक् जीवन का, त्याग एवं भोग के समन्वय का उज्ज्वल चित्रण इसमें है। वास्तव में देखा जाये तो इसमें एक महाकाव्य के योग्य कथा-विस्तार नहीं है। भरतेश के गार्हस्थ्य जीवन का चित्र हमें कहीं भी नहीं मिलता। उसका ब्योरेवार वर्णन यहाँ है। भोगविजय, दिग्विजय, योगविजय, अर्ककीर्तिविजय, मोक्षविजय—इस प्रकार इस काव्य के पाँच भाग हैं। इनको कवि ने 'पंचकल्याण' की संज्ञा दी है।

'भरतेशवैभव' की महत्ता उसके दर्शन में है, नायक के चरित्र-चित्रण में है। भरतेश सौंदर्य-प्रेमी हैं, आदर्श-प्रेमी हैं, वीर हैं, धीरोदात्त हैं, धीरललित हैं, धीर प्रशांत हैं, राजर्षि हैं, 'जल में पदमपत्र' वाले आदर्श की प्रतिमूर्ति हैं। इसी बात को संगीत, शृंगार ग्रादि अनेक प्रसंगों द्वारा कवि ने स्पष्ट किया है। इसका प्रधान रस शृंगार है। बीच-बीच में नखशिख, समुद्र-संगीत, रणप्रयाण नृत्य आदि वर्णन ग्राते हैं। कवि ने वीतरागिता का ऐसा अद्‌भुत वर्णन प्रस्तुत किया है कि उसे कुछ लोगों ने 'अध्यात्मरस' की संज्ञा दी है। कवि की भाषा देशी है, छंद लोक-छंद हैं, उसमें कोमल एवं मसृण शैली की ही प्रधानता है।

'भरतेशवैभव' भरतेश का आत्म-वैभव ही नहीं, कवि का काव्य-वैभव भी है। रत्नाकर का भरतेश भारतीय साहित्य के लिए कन्नड की अपूर्व देन है।

भरतेश्वर-बाहुबली-रास *(अप०, गु० कृ०)* [रचना-काल—1184-85 ई०]

इस रास के रचयिता आचार्य शालिभद्र सूरि हैं। यह रास 203 छंदों में रचित है और 14 ठवणियों में विभक्त है। इस रास की कथावस्तु जैन-साहित्य की एक अति प्रचलित घटना है। यह कथा प्राय: सभी जैन-महापुराणों में मिलती है। गुजराती के प्राचीन 'रास' या 'रासा' काव्यों में यह एक महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है।

इस रास की कथा संक्षेप में इस प्रकार है—जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के भरत और बाहुबली आदि सौ पुत्र थे। ऋषभदेव ने जीवन के अंतिम भाग में सारा राज्य पुत्रों में बाँट दिया और तपस्या करने लगे। भरत के मन में चक्रवर्ती राज्य स्थापित करने की इच्छा हुई। बाहुबली के अतिरिक्त सब भाइयों ने भरत की अधीनता स्वीकार कर ली। बाहुबली और भरत में राज्याधिकार के लिए घोर युद्ध हुआ। अपने ज्येष्ठ भाई भरत पर प्रहार करते हुए बाहुबली को सहसा आत्मग्लानि हुई कि राज्य के लोभ से मैं सत्पथ से विचलित हो रहा हूँ। उन्होंने संकल्प किया कि मैं उसी पर प्रहार करूँगा जिसने

मुझे बड़े भाई पर प्रहार करने के लिए प्रेरित किया। वह आत्म शत्रुओं को पराजित करने के लिए तपस्या करने चले गये और अत मे उन्होने कैवल्यपद प्राप्त किया।

यह वीररस-प्रधान रास है किंतु वीर रस का शात रस मे पर्यवसान हो जाता है। इसकी भाषा प्राचीन राजस्थानी एव प्राचीन गुजराती से प्रभावित अपभ्रश है। इस कृति मे वस्तु, चउपई, रास, दोहा, त्रूटक आदि छदो का प्रयोग हुआ है। स्थान स्थान पर सुदर काव्यमय वर्णन भी दृष्टिगत होते हैं। इस कृति मे अनेक उत्साहपूर्ण दर्पोक्तियों और सूक्तियो के प्रयोग से भाव और भाषा मे सौंदर्य उत्पन्न किया गया है। इस रास मे लोक साहित्य की शकुन-अपशकुन परपरा का निर्वाह भी कृतिकार ने सुदर रूप से किया है।

तत्कालीन रासग्रथो के अध्ययन की दृष्टि से यह कृति अत्यत महत्त्वपूर्ण है।

भरद्वाज, रावूरि *(तें० ले०)*

आजकल ये हैदराबाद के आकाशवाणी केंद्र मे काम करते है। कारखाना, प्रेस आदि कई जगहो मे नौकरी करते हुए जीवन मे इन्होंने नाना प्रकार के अनुभव प्राप्त किए। ग्रामीण जीवन, साधारण जनता की समस्याओ आदि से इनका घनिष्ठ परिचय है। रावूरि भरद्वाज मूलत यथार्थवादी कहानीकार हैं। अपने समाज की स्त्रियो तथा पुरुषो की यथार्थ प्रवृत्तियो तथा परिस्थितियो का इन्होंने प्रभावशाली चित्रण किया है। मावूरु', 'चित्रगृह', 'पाकुडुराल्लु' आदि इनके उपन्यास हैं। पत्रिकाओ की ओर से आयोजित प्रतियोगिताओ मे इनको तीन बार स्वर्ण पदक प्राप्त हुए हैं। इन्होने बच्चो के लिए वैज्ञानिक विषयो पर भी कहानी के साँचे मे ढालकर पुस्तकें लिखी हैं।

भरसा *(उ० कृ०)*

गोपाल छोटाराय (दे०)-कृत 'भरसा' आधुनिक उड़िया-नाट्य-साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके कहानी सभार, चरित्र-चित्रण, भाषा सौष्ठव, हास्य-रस का उच्छ्वास, सगीत एव नृत्य की मूर्च्छना आदि तत्त्वो न इस एक उत्कृष्ट नाटक का सम्मान दिलाया है।

उत्कल के शिल्पी-जीवन की एक समस्या इसमे रूपायित है। इसकी कहानी सुगठित और चरित्र चित्रण प्राजल है। इसकी भाषा परिमार्जित एव समुन्नत है। हास्यरस नियोजन के लिए ऐसी शैली अपनाई गई है जिस मे स्वतत्र पात्र की अवतारणा के स्थान पर कथावस्तु मे ही उसकी सृष्टि का प्रयत्न है। आधुनिक रुचि के अनुसार इस नाटक का आकार छोटा है।

सस्पेंस इसकी सबसे बडी विशेषता है। यही दर्शक के मन मे कौतूहल की सृष्टि करता है। नाटक के अत तक नाटक की परिणति के विषय मे दर्शक सदिग्ध बने रहते हैं। सशय, कौतूहल, आवेग का कलापूर्ण समुचित निर्वाह ही इसका सौंदर्य है।

भराली, देवानद *(अ० ले०)* [जन्म—1883 ई०]

जन्मस्थान शिवसागर। ये कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातक हैं। प्रकाशित रचनाएँ—'असमीया भाषार मौलिक बिचार' (भाषाविज्ञान) (1930), 'आदिपुराण' (दर्शन) (1935), 'श्री शकर' (नाटक) (1945), 'भीमदर्प' (मेकबेथ का अनुवाद) (1916)।

इनकी ख्याति भाषाविज्ञान विषयक प्रथम खोजपूर्ण ग्रथ लिखने के कारण है।

भर्तृहरि *(स० ले०)* [स्थिति-काल—सातवीं शती के अतर्गत]

पुण्यराज ने भर्तृहरि के गुरु का नाम वसुरात बतलाया है। चीनी यात्री इत्सिग ने भर्तृहरि को बौद्ध कहा है, परतु यह असगत है। भर्तृहरि वस्तुत वैदिक मत का समर्थक था। उसने स्पष्ट लिखा है—'न चागमादृते धर्मस्तर्केण व्यवतिष्ठते' वाक्यपदीय ब्रह्मकाड ।।46।। अत इत्सिग का यह कथन भी असमीचीन है कि भर्तृहरि ने सात बार प्रव्रज्या ग्रहण की थी। भर्तृहरि द्वारा रचित ग्रथो मे 'महाभाष्यदीपिका', 'वाक्यपदीय' (दे०) 'वाक्यपदीय' की स्वपेक्ष टीका, 'शतकत्रय' (नीति, शृगार तथा वैराग्यशतक) 'मीमासाभाष्य', 'वेदात सूत्रवृत्ति' तथा 'शब्दधातु समीक्षा' प्रमुख हैं।

'वाक्यपदीय' के अतर्गत भर्तृहरि ने शब्द-तत्त्व के सबध मे गभीरता से विचार किया है। भर्तृहरि का दार्शनिक सिद्धात शब्द ब्रह्मवाद है। (विशेष देखिए 'वाक्यपदीय' की टिप्पणी) इनका दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रथ 'महाभाष्य दीपिका' है। 'दीपिका' मे महाभाष्य (दे०) के गूढातिगूढ सिद्धातो को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। भर्तृहरि केवल व्याकरणशास्त्र के ही विपश्चित्

नहीं थे, अपितु वे वेदांत-दर्शन के भी उद्‌भट विद्वान थे। इसके अतिरिक्त 'शतकत्रय' की रचना भी भर्तृहरि की बहुज्ञता की ही सूचक है। भर्तृहरि की जिन 'वाक्यपदीय' आदि रचनाओं का विषय गंभीर है उनकी शैली परिष्कृत ही है। 'शतकत्रय' (दे० भर्तृहरिशतक) तो अत्यंत हृदय-ग्राही शैली में लिखा गया है।

भर्तृहरिशतक *(सं० कृ०)* [समय—छठी शती ई०]

भर्तृहरि (दे०) संस्कृत-गीतिकाव्य एवं नीति-काव्य में अपने तीन शतकों के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके तीन शतक इस प्रकार हैं—'शृंगारशतक', 'नीतिशतक' तथा 'वैराग्यशतक'।

'शृंगारशतक' स्त्रियों के सौंदर्य-चित्रों से और वर्ष की परिवर्तनशील ऋतुओं के साथ बदलने वाले प्रेम के भावों तथा उसकी सफलता के सुखों से प्रारंभ होता है। तत्पश्चात् वे पद्य आते हैं जिनमें मनुष्य को तप तथा ज्ञान से प्राप्त होने वाली शाश्वत शांति से संभोग-सुखों का सादृश्य प्रदर्शित किया गया है। अंत में कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सौंदर्य एक प्रवंचना मात्र है, मानव-जीवन में आपाततः मधुर लगने वाली स्त्री सर्प की भाँति विषैली है, प्रेम सांसारिक आसक्ति की ओर ले जाता है और मनुष्य का वास्तविक लक्ष्य, वैराग्य, तथा शिव अथवा ब्रह्म में निहित है। 'नीतिशतक' में कवि ने नीति-संबंधी उत्तम वचन बड़ी सरस पदावली में प्रस्तुत किए हैं। 'नीतिशतक' के पद्य बड़े लोकप्रिय हुए हैं। 'वैराग्यशतक' में सांसारिक सुखों की अस्थिरता का सजीव एवं प्रभावो-त्पादक वर्णन है। इसमें मानव-जीवन की दुःखमयता बड़े मार्मिक रूप में चित्रित है।

भर्तृहरि की शैली प्रसादयुक्त, मुहावरेदार और परिमार्जित है। उसमें प्रवाह, पदलालित्य, भाव-प्रवणता और अर्थव्यक्ति है। भाषा इतनी सरल एवं सुबोध है कि कवि का तात्पर्य पद्यों को एक बार पढ़ने से ही समझ में आ जाता है। दैनिक जीवन के गूढ़ एवं प्रत्यक्ष सत्यों को भर्तृहरि ने बड़े हृदयग्राही ढंग से प्रस्तुत किया है।

भल्लुकर पुरापेंट ओ अन्यान्य मजागप *(उ० कृ०)*

'भल्लुकर पुरापेंट ओ अन्यान्य मजागप' डा० चौधुरी हेमकांत मिश्र (दे०) का कहानी-संग्रह है। इसमें सूक्ष्म व्यंग्यात्मक भाषा तथा एक नूतन प्रकार की कथायुक्त कहानियों को प्रस्तुत किया गया है। इन कहा-नियों में गांभीर्य व सूक्ष्म व्यंग्य का अपूर्व समन्वय दिखाई पड़ता है। प्रस्तुत पुस्तक के नामकरण में ही रचनाधारा की विशेषता प्रकट होती है।

भवभूति *(सं० ले०)* [समय—700-750 ई०]

भवभूति पद्मपुर के निवासी उदुंबर वंश के ब्राह्मण थे। इनके पितामह भट्टगोपाल, पिता नीलकंठ तथा माता जतुकर्णी थीं। इनका वास्तविक नाम श्रीकंठ था। 'भवभूति' नाम तो पार्वतीवंदना में बनाये गये पद्य में भवभूति शब्द के प्रयोग के कारण सहृदय पंडितों ने दिया था। इनको कुछ तो प्रसिद्ध मीमांसक कुमारिल भट्ट (दे०) के शिष्य उंबेक मानने के पक्ष में भी हैं। ये शिव के भक्त तथा अत्यंत प्रतिभाशाली विद्वान् थे।

इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं—'मालती-माधव' (दे०), 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित'। ये तीनों सफल नाट्यकृतियाँ हैं।

'मालतीमाधव' कल्पित प्रणयकथा पर आधृत 10 अंकों का प्रकरण है। इसमें प्रयुक्त रूढ़ियाँ तथा मुख्य-मुख्य घटनाएँ 'बृहत्कथा' के कई प्रणयवृत्तों से मिलती-जुलती हैं। 'महावीरचरित' राम की जीवन कथा को लेकर रचित सात अंकों का नाटक है। भवभूति की तीसरी तथा प्रौढ़ कृति है—'उत्तररामचरित'। यह इनकी नाट्यकला का उत्कृष्ट नमूना है।

भवभूति मूलतः कवि हैं। भावपक्ष की दृष्टि से कालिदास (दे०) के बाद इनका नाम बिना किसी हिचक के लिया जा सकता है। भवभूति कोमल तथा गंभीर दोनों तरह के भावों के कुशल कलाकार हैं। दांपत्य-प्रणय के संयोग तथा वियोग दोनों प्रकार के चित्रण 'उत्तररामचरित' में बेजोड़ हैं। इसी प्रकार ये अपने पात्रों के चरित्र को एक निखार देते हैं। इनकी कला में पांडित्य और प्रतिभा का अपूर्व सामंजस्य है। इनको समासांत पदावली तथा सानुप्रासिक चमत्कार से बड़ा मोह है। इनकी शैली गंभीर भावों के उपयुक्त है।

भविसयत्त कहा *(अप० कृ०)*

'भविसयत्त कहा' के रचयिता धनपाल (दे०) हैं।

इसमे एक लौकिक आख्यान के द्वारा श्रुत-पचमी व्रत का माहात्म्य प्रदर्शित किया गया है।

इसकी कथा सक्षेप मे इस प्रकार है—गजपुर (हस्तिनापुर) मे धनपति और उसकी स्त्री कमलश्री से भविष्यदत्त नामक पुत्र उत्पन्न होता है। कमलश्री से मनमुटाव होने पर धनपति सरूपा नामक एक सुदरी से दूसरा विवाह कर लेता है जिससे बधुदत्त नामक पुत्र उत्पन्न होता है। दोनो भाई प्रभूत धनसपत्ति के लिए कचन द्वीप की यात्रा करते हैं। बधुदत्त अपने सौतेले भाई को धोखा देता है। यात्रा से लौटने पर राजा बधुदत्त को दडित और भविष्यदत्त को उसकी सच्चरित्रता के कारण सम्मानित करता है।

पोदनपुर के राजा के साथ युद्ध मे गजपुर का राजा भविष्यदत्त की सहायता और वीरता से विजयी होता है। फलस्वरूप गजपुर का राजा अपनी पुत्री सुमित्रा का विवाह भविष्यदत्त से कर देता है और उसे युवराज बना देता है।

कालातर मे मुनि विमल बुद्धि भविष्यदत्त को उपदेश देते हैं और उसके पूर्व जन्म की कथा सुनाते हैं। भविष्यदत्त विरक्त होकर तपस्या द्वारा निर्वाण पद प्राप्त करता है। श्रुतपचमी-व्रत के माहात्म्य के साथ कथा समाप्त होती है।

कवि ने इस कृति मे सद्सद-वृत्ति वाले दो वर्गों के पात्रो का चरित्र चित्रण सफलता से किया है। एक का प्रतिनिधित्व भविष्यदत्त और कमल श्री करते हैं और दूसरे का बधुदत्त और सरूपा।

इस काव्य का कथानक गतिशील और कसा हुआ है। घटनाएँ कार्य कारण श्रृखला से बँधी हुई हैं। मुख्य कथा के साथ प्रासगिक कथाएँ भी हैं। पर वे किसी-न-किसी रूप मे मुख्य कथा के साथ सबद्ध है। प्रासगिक कथाओ की नियोजना कर्म-विपाक की दृष्टि से हुई है। इन भवातर कथाओ के कारण कथा प्रवाह मे कुछ शिथिलता आ गई है। पौराणिकता से हट कर लोक जीवन का यथार्थ चित्रण करना इस प्रबध काव्य की विशेषता है। कृतिकार ने सामान्य व्यक्ति को नायक स्वीकार कर भारतीय साहित्य मे शास्त्रीय विधान से अलग कथा काव्य का प्रचलन किया है।

इस काव्य म वस्तु-वणन परपराभुक्त है और साथ ही स्वाभाविक भी है। रूप-वर्णन के स्थलो मे बाह्य सौंदर्य और अतरग सौंदर्य दोनो के वर्णन मिलते हैं। इसमे अनेक स्थलो पर सुदर प्राकृतिक वर्णन हुआ है। प्रकृति वर्णन आलबनरूप, अलकृतरूप तथा लोक शैली मे किया गया है। कवि शास्त्रीयता से न बँध कर लोक-जीवन के स्वतत्र वातावरण मे प्रकृति को चित्रित करता है।

इस काव्य की रचना कडवकबद्ध शैली मे हुई है। इनमे मुख्य रूप से श्रृगार, वीर और शात रसो का ही परिपाक हुआ है।

इसकी भाषा साहित्यिक अपभ्र श है, पर यत्र-तत्र लोक-भाषा का पुट भी मिलता है। बीच बीच मे लोकोक्तियो और मुहावरो के प्रयोग भी दृष्टिगत होते हैं।

भावो की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए अलकार-योजना की गई है। अलकारो मे प्रमुखता साधर्म्यमूलक अलकारो की है।

इसमे मात्रिक और वर्णवृत्त—दोनो प्रयुक्त हुए है किंतु प्रमुखता मात्रिक वृत्तो की ही है।

कथानक रूढियो अथवा अभिप्रायो के अध्ययन की दृष्टि से यह कृति महत्त्वपूर्ण है।

भाडुदत्त (बँ० पा०)

'चडीमगल' काव्य का प्रधान पार्श्वचरित है भाडुदत्त। 'चडीमगल' काव्य के प्रथम कवि थे मानिक दत्त एव सर्वश्रेष्ठ कवि थे मुकदराम चक्रवर्ती (दे०) जो मध्य-युगीन बँगला काव्य मे कविकक्ण मुकदराम के नाम से प्रसिद्ध थे। पार्श्वचरित्र होने पर भी यह चरित्र समग्र काव्य के कथाविन्यास मे, एव शिल्प-चातुर्य की दृष्टि से, सर्वाधिक आकर्षक है। मुकदराम के काव्य मे ही इस चरित्र की यथार्थ सार्थकता प्रकट हुई है तो भी सगति-रक्षा की दृष्टि से इस चरित्र के चित्रण मे मानिकदत्त की सफलता असदिग्ध है।

भाडुदत्त खल, धूर्त, नीच, ईर्ष्यापरायण एव स्वजात्यभिमानी है। कालकेतु के द्वारा गुजरात नगर की स्थापना के साथ-साथ भाडुदत्त वहाँ उपस्थित होता है। कालकेतु न उसे आश्रय दिया परतु प्रतिष्ठा नही दी। फिर भी वह इसी बल पर प्रजा पर अत्याचार शुरू कर देता है तब कालकेतु उसकी भर्त्सना करता है। भाडुदत्त इस सह नही पाता और कालकेतु के सर्वनाश के लिए तत्पर हो उठता है। भाडुदत्त के उकसान स कलिगराज के साथ कालकेतु का युद्ध छिड जाता है। कालकेतु बदी बना लिया जाता है परतु देवी की कृपा स वह मुक्त हो जाता है। कालकेतु के दुर्योग के अवसान के समय प्रतारणा का

मुखौटा पहने और आंखों में धूर्तता के आंसू लिये भांडुदत्त फिर वहां उपस्थित होता है लेकिन कालकेतु धोखा नहीं खाता, उसे राज्य से निकाल देता है परंतु खल की खलता फिर भी नहीं जाती। कदाचित् मध्ययुगीन बँगला काव्य में खलनायक के रूप में इस प्रकार की और दूसरी चरित्र-सृष्टि नहीं हुई है।

भाओना *(अ० पारि०)*

आहोम शासकों की राजसभाओं में 'भाओना' नाम का विशिष्ट नाट्य-अनुष्ठान हुआ करता था। इन राजाओं की प्रेरणा से शंकरदेव (दे०) द्वारा प्रवर्तित अंकीयानाट (दे०) की शैली में विशेष प्रकार के संस्कृत नाट्य-साहित्य की रचना हुई थी। इन नाटकों में संवादों और सूत्रधार की भाषा संस्कृत थी, किंतु बीच-बीच में असमीया गीतों का प्रयोग होता था। कभी-कभी असमीया गीतों और लोकगीतों का संस्कृत-अनुवाद भी किया गया। उल्लेख-योग्य कृतियां हैं—'धर्मोदय' (धर्मदेव भट्ट), 'काम कुमार हरण' (कविचंद्र द्विज) और 'विघ्नेश जन्मोदय' (कवि सूर्य)।

भाऊ साहेबांची बखर *(म० कृ०)*

इसका रचना-काल 1763 ई० के लगभग है। इसमें मराठा और मुगलों के बीच हुए पानीपत के संग्राम का प्रमुख रूप से वर्णन है। फिर भी 1753 से 1760 ई० तक के मराठा-मुगलों के पारस्परिक संबंधों की इसमें विश्वस्त झांकी मिल जाती है। इसके रचयिता हैं कृष्णाजी शामराव। पानीपत की लड़ाई के उपरांत दो वर्ष के अंदर ही इसकी रचना हुई है, अत: उस समय की घटनाओं और प्रसंगों का इसमें बहुत सूक्ष्म वर्णन मिल जाता है। इसमें तत्कालीन व्यक्तियों के चरित्रों का पर्याप्त यथार्थ चित्रण है। भाऊ साहेब, दत्ताजी शिंदे, मल्हार राव होलकर, गोविंद पंत बुंदेले, बलवंतराव महेंदले आदि व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण में नजीबखान, सूरजमल जाट, कुतुबशाह, अबदाली आदि विरोधी व्यक्तियों के चरित्रों को पार्श्व भूमि के रूप में उल्लिखित किया गया है। ऐतिहासिक स्थानों, दुर्गों आदि का प्रामाणिक निरूपण है। इसकी रचना-शैली की अनेक स्वतंत्र विशेषताएँ हैं। भाषागत सौंदर्य दर्शनीय है। वर्णन है व्यंग्य-वैदग्ध्य की प्रचुरता है। भावनात्मक स्थलों में रसार्द्रता है। इस रचना का ऐतिहासिक मूल्य भी है और साहित्यिक भी। रचनाकार समकालीन है, घटना-प्रसंगों से सुपरिचित है। अनेक प्रसंग-वर्णनों में प्रत्यक्ष अनुभव का पुट है।

भागवत (श्रीमद्भागवत) *(सं० कृ०)* [रचना-काल—600 ई०]

'श्रीमद्भागवत' की रचना व्यास (दे० व्यास, बादरायण) द्वारा की गई है। 'श्रीमद्भागवत' 18 पुराणों (दे० पुराण) में से एक है। यह वैष्णव धर्म एवं दर्शन का प्रसिद्ध ग्रंथ है। 'श्रीमद्भागवत' पर अनेक टीकाओं की रचना हुई है। इन टीकाओं में श्रीधरी अत्यंत प्रसिद्ध एवं उपयोगी है।

'श्रीमद्भागवत' के अंतर्गत परमेश्वर को ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान् कहा गया है। परमात्मा स्वत: शुद्ध चिद्रूप है। परमेश्वर की दो शक्तियां हैं—एक विद्या शक्ति और दूसरी अविद्या शक्ति। परमात्मा की तीन शक्तियां और हैं—अंतरंग स्वरूप शक्ति, बहिरंग शक्ति और तटस्थ शक्ति। प्रथम अंतरंग शक्ति के ही अंतर्गत ह्लादिनी, संधिनी, तथा संवित् शक्तियां हैं। अंतरंग स्वरूप शक्ति को चित् शक्ति तथा आत्ममाया भी कहते हैं। बहिरंग शक्ति के द्वारा परमात्मा जगत् का स्रष्टा है। जीव परमेश्वर की तटस्थ शक्ति के ही परिणामरूप हैं।

परमात्मा का जिस साक्षात् शक्ति से संबंध है वह महालक्ष्मी है। 'भागवत' में सर्वोच्च सत्य को अनुत्पन्न एवं अनष्ट कहा गया है।

भारतीय धर्म एवं दर्शन की दृष्टि से 'भागवत' की महत्ता विख्यात है। 'भागवत' में वैष्णव धर्म ही नहीं, वेदांत एवं सांख्य आदि दर्शन पद्धतियों के विचारों का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

भाण *(सं०, हिं० पारि०)*

संस्कृत-नाट्यशास्त्र में विवेचित रूपक के दस भेदों में से एक। एक अंक पर आधारित भाण का प्रधान चरित्र धूर्त अथवा विट होता है, इसमें भारती वृत्ति और लास्या के दसों अंगों की योजना होती है। कथानक कल्पित और मुख अथवा निर्वहण संधियों (दे० नाट्य-संधियां) में से एक का होना अनिवार्य है। हास्य रस-प्रधान इस नाट्यरचना का उद्देश्य मात्र लोकरंजन है। इस एकपात्रीय रूपक में संवाद आकाशभाषित के रूप में

नियोजित होते है। नायक आकाश की ओर मुँह उठाकर किसी कल्पित पात्र से बडे जोरशोर से शृंगार अथवा शौर्य-विषयक बातचीत करता है। भरतमुनि (दे०) ने भाण के दो भेदो आत्मानुभूतशसी और परसश्रयवर्णन तथा शारदातनय (दे०) ने दस भेदो—गेयपद, स्थितपाठ्य, आसीन, पुष्पडिका, प्रच्छेदक, विमूढ, सैधव, विमूढक, उत्तमोत्तक और भाव्य का उल्लेख किया है। सस्कृत मे 'लीलामधुकर' और हिंदी मे 'विषस्य विषमौषधम्' [भारतेंदु (दे०)-कृत] भाण के प्रसिद्ध उदाहरण है।

भाणकोबाई *(म० पा०)*

यह न० चि० केळकर (दे०)*-कृत 'नवरदेवाची* जोडगोळी' (वरो की जोडी) शेरिडन के 'टूराय व्हल्स' रूपातरित नाटक की स्त्री पात्र है। पाश्चात्य सभ्यता और सस्कृति के जडीभूत प्रेम के कारण ही यह उसका अनुकरण करती है। पाश्चात्य जीवनादर्शो को भारतीय परिवेश मे यथावत उतारने की अपनी बलवती आकाक्षा के कारण ही यह अत्यधिक हास्यास्पद हो गई है। इसके अँग्रेजी भाषा के उच्चारण एव शब्दो के सर्वथा गलत प्रयोग के कारण तो स्थिति और भी अधिक विकट हो जाती है। अँग्रेज़ी भाषा के अल्प ज्ञान के कारण ही शब्दो को गलत अर्थ एव सदर्भ मे प्रयुक्त करती है। परिणामत *यह कहना कुछ चाहती है परतु श्रोता इसकी बात का* कोई और भी अर्थ ग्रहण करता है। इस प्रकार अपने असामान्य क्रिया-कलापो के द्वारा भाणकोबाई आलोच्य प्रहसन मे हास्य की सूत्र-सचालिका रही है। भाणकोबाई के चरित्र की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि बाद मे गलत अँग्रेज़ी बोलने वाले पात्रो को मराठी मे भाणकोबाई सज्ञा से अभिहित किया जाने लगा था।

भाणदास *(गु० ले०)* [समय—सत्रहवी शती]

सत भाणदास निर्गुणमार्गी कबीरपथी ज्ञानी कवि थे। इन्हे अखा (दे०) का समकालीन माना जाता है।

इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है—'हस्तामलक', 'प्रह्लादाख्यान', 'अजगर अवधूत सवाद', 'नृसिह जी नो हमची', 'बारमासा', 'हनुमान जी नी हमची' तथा 'प्रकीर्ण पद्य'। 'हस्तामलक' केवलाद्वैतवादी रचना है। इस रचना मे काव्य का चमत्कार तथा दर्शन की गभीरता के युगपत दर्शन होते हैं। ज्ञानी होते हुए भी इनमें सगुण-भक्तो की सी मधुरता व रसिकता दिखाई पडती है।

भात *(उ० कृ०)*

'भात' कविचद्र काळिचरण पटनायक (दे०) का नाटक है। जो रगमच की दृष्टि से अत्यत लोकप्रिय रहा है इसमे सामती प्रथा, आर्थिक समस्या और वर्गसघर्ष का चित्रण हुआ है। इस ठोस यथार्थवादी नाटक मे उत्सर्गमय प्रेम और सुकुमार मानवीय सवेदना ने जीवन की ऊष्मा और सुदरता की सृष्टि की है। कही कृत्रिमता नही है, फलतः *नाटक की छोटी-सी कथावस्तु भव्य-मधुर हो* उठी है।

नाटक की कथावस्तु सरल है, यद्यपि सघर्ष के कारण उसमे आद्यत सक्रियता है। इस सघर्ष के कई रूप है—दो वर्गो का (सपन्न और विपन्न) सघर्ष, शहरी सभ्यता के आदर्शो का सघर्ष, सर्वोपरि प्रेम और कर्त्तव्य का मानसिक सघर्ष आदि। अनुपात-बोध ने इस नाटक की वस्तु-सघटना को सुष्ठु बना दिया है।

वीर विक्रमराय जमीदार है। वे विधुर हैं। पुत्र जयी और पुत्री विजया के प्रति उनकी अगाध ममता है। अनत जयी का मित्र, उसका आदर्श तथा प्रगतिशील समाजवादी विचारो का युवक है। जयी हरिपुर गाँव की गरीब कृषक बालिका रमा से प्रेम करता है। किंतु पिता को यह स्वीकार नही। वे पुत्र का विवाह प्रतापपुर के जमीदार की कन्या से करना चाहते है। जमीदार के रूप मे विक्रमराय अत्यत उग्र-कठोर और असहिष्णु शासक है। प्रजा का शोषण और उत्पीडन वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। आभिजात्य का अहकार भी कुछ कम नही। जयी उनसे सर्वथा भिन्न है। वह दयालु, पर दुख-कातर, कला-प्राण और निरभिमान समाज-सेवक है। जयी के विवाह के प्रजा से बलपूर्वक धन वसूल किया जाता है। प्रजा बगावत कर देती है। जमीदार स्वय दमन के लिए जाते हैं। प्रजा के लिए जयी प्राण देने को आगे आ जाता है, किंतु तभी सबसे आगे रमा जमीदार साहब की गोली झेलने को लौह-कवच बनकर खडी हो जाती है। इन घटनाओ से जमीदार साहब मे परिवर्तन आता है। अत मे रमा और जयी तथा विजया और अनत का विवाह हो जाता है।

भाषा स्वाभाविक, सरल और पात्रानुकूल है। सुदर और प्रसगानुकूल गीतो की योजना से नाटक की प्रभविष्णुता बढ गई है। समस्या-निरूपण, चरित्र चित्रण,

अभिनय, नाटकीय क्रियाशीलता आदि सभी दृष्टियों से यह एक सफल नाटक है।

भादव्या *(म० पा०)*

यह गोविंद बल्लाल देवल (दे०) के प्रसिद्ध रूपांतरित नाटक 'संगीतसंशय कल्लोल' (फ्रेंच नाटककार मोलियर-कृत 'मानारेल' के मर्फी द्वारा अँग्रेज़ी अनुवाद 'ऑल इन दि रांग' का रूपांतर) का साधारण पात्र है जो अभिजात वर्ग की कृपणता पर कटु व्यंग्य करता है। भादव्या का नामकरण स्वदेशी मास 'भाद्रपद' के आधार पर रखा गया है। यह कृपण अभिजात वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले फाल्गुन (दे०) राव का नौकर है। फाल्गुन राव इसकी सहजता एवं संतोषी मनोवृत्तियों का अनुचित लाभ उठाता है। वह इसके वेतन बढ़ाने तथा समय-समय पर इनाम आदि देने की बात तो अवश्य करता है, परंतु देता कभी नहीं है। इस पर अपनी परिसीमा को देखते हुए भादव्या स्पष्टतः तो मालिक की बातों का प्रतिकार नहीं करता परंतु अपने कटु-तिक्त व्यंग्यपूर्ण संवादों में कटु प्रहार अवश्य करता है। अत्यल्प वेतन-भोगी होते हुए भी यह मालिक फाल्गुन राव के प्रत्येक कार्य में सहायता करता है। भादव्या के चरित्र के माध्यम से नाटककार ने अभिजात-वर्ग की कृपणता के शिकार नौकर-वर्ग की स्थिति का मार्मिक विश्लेषण किया है। भादव्या का चरित्र-विकास मनोविश्लेषणात्मक पद्धति पर होने के कारण अत्यधिक प्रभावोत्पादक हो गया है।

भादुड़ी, सतीनाथ *(बं० ले०)* [जन्म—*1906* ई०; मृत्यु—1960 ई०]

चतुर्थ दशक के उल्लेखनीय उपन्यासकार सतीनाथ भादुड़ी ने राजनीतिक एवं सामाजिक स्तर पर चेतना-प्रवाह तकनीक के आश्रय से उपन्यासों की सफल रचना की थी। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'जागरी' (दे०) (1948), 'ढोंडाचरितमानस', अचिन रागिनी', 'दिग्भ्रांत' आदि उल्लेखनीय हैं।

राजनीतिक संग्राम एवं राष्ट्र-चर्चा के स्तर पर लिखे गए उपन्यासों में 'जागरी' साहित्यिक मूल्य की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है। सन् 1942 के अगस्त आंदोलन में फ़रार बड़े भाई को कम्युनिस्ट छोटा भाई पकड़वा देता है। फाँसी की रात दोनों भाइयों एवं उनकी माँ के मन में जो कुछ घटित होता है उसी की चेतना-प्रवाह रीति से बहुत ही सशक्त वर्णन हुआ है। 'ढोंडाचरितमानस' आंचलिक उपन्यास की सिद्धि एवं शिल्प संभावना का उज्ज्वल परिचायक है। बिहार के किसी ग्राम के अंत्यज-समाज के एक किशोर को लेकर तीन खंडों में यह उपन्यास रचित हुआ है। मृत्यु से पूर्व लिखा हुआ 'दिग्भ्रांत' लेखक का सर्वथा नवीन उपन्यास है। अंतर्मन के निपुण विश्लेषण की दृष्टि से यह उपन्यास काफ़ी महत्वपूर्ण है।

विषय-वस्तु एवं रूप-विधान की दृष्टि से सतीनाथ के उपन्यासों का स्वतंत्र स्थान है। अभावनीय विषय-वस्तु एवं रीति का अभिनवत्व पाठकों को चौंकाने वाला है। 'अचिन रागिनी' एवं 'संकट' में लेखक के अस्तित्ववादी विचार का आभास मिलता है। परंतु सर्वोपरि अपने उपन्यासों में सतीनाथ बाबू ने मानव-मन के अकथित रहस्य की पर्यालोचना की है। फ़ायड की दृष्टि से मानव-मन रहस्यजनक होने पर भी जड़ है परंतु सतीनाथ के लिए मानव-मन रहस्यात्मक अवश्य है पर वह जड़ के विपरीत जीवनी शक्ति का प्रकाश है। ये सर्वदा विषय-वस्तु को नवीन ढंग से प्रस्तुत करना चाहते थे और कदाचित इस असाधारण मौलिकत्व के कारण ही ये बहुत अधिक जनप्रिय नहीं हो पाए।

भान, पुष्कर *(कश्० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

बहुत ही अच्छे अभिनेता, हास्यकार और व्यंग्यकार हैं। रेडियो कश्मीर के माध्यम से इन्होंने अपने सभी श्रोताओं का मनोरंजन किया है और समय की गुहार सुना दी है। जागरूक कलाकार के नाते इन्होंने अपनी *वाणी से व्यंग्य एवं हास्य के सुप्त अंत को सजीव* और उजागर किया है। रेडियो कश्मीर, श्रीनगर, से 'जिज़ः साब' और 'मचामः' रेडियो फ़ीचर (स्तंभ) सुनकर जब इन चरित्रों का चित्रण हमारे सामने आता है तो अँग्रेज़ी के प्रसिद्ध उपन्यासकार चार्ल्स डिकिन्स की याद ताज़ा हो जाती है। हास्य और व्यंग्य के प्रकरण में पुष्कर भान की सेवा बेजोड़ रही है। इन्होंने अख़्तर मुहीउद्दीन के सहयोग से 1962 ई० में 'दलीलः' नाम से कश्मीरी लोक-कथाओं का संग्रह एवं संपादन भी किया है।

भानुमति *(अ० कृ०)* [रचना-काल —1892 ई०]

लेखक—पद्मनाथ गोहाञि बरुवा (दे०)।
यह पारिवारिक शोकपूर्ण उपन्यास है। इसमें

दो प्रेमिकाएँ एक युवक से और दो प्रतिद्वंद्वी युवक एक नारी से प्रेम करते हैं। भानुमती और चारु गोहाञि मे प्रेम है, किंतु राजा भानुमती से विवाह करना चाहता है। चारु भीरु सिद्ध होता है, भानुमती आत्मगोपन करती है। चारु बदी बना लिया जाता है, भानुमती पुरुष-वेश धारण कर उसे छुडाना चाहती है। राजघराने की भी एक लडकी चारु से प्रेम करती है, वह भी छुडाने की चेष्टा करती है। वध्यभूमि मे चारु की मृत्यु वज्रपात से होती है। छल-प्रपच, आत्महत्या, मृत्यु तथा वैराग्य से युक्त अनेक घटनाएँ चलती रहती हैं। चरित्रो और कथा मे स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता का अभाव है। इस उपन्यास मे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे आधुनिक समस्याओ के चित्रण का भी प्रयास है। इसे *असमीया-साहित्य का प्रथम उपन्यास माना* जा सकता है।

भानुमतीपरिणयमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल —सत्रहवी शती ई०]

इसके लेखक का नाम रेटूरि रगराजु है। 'भानुमतीपरिणयमु' चार आश्वासो का काव्य है। भानुमती कृष्ण की चचेरी बहन है। सहदेव के साथ उसके विवाह का वर्णन ही इस काव्य का प्रधान विषय है। रचना सरस तथा शैली हृदयहारी है।

भामह *(स० ले०)* [समय—600 ई० के लगभग]

कश्मीर देश के वासी विद्वान भामह सस्कृत साहित्यशास्त्र के प्रमुख लेखको मे से हैं। 'काव्यालकार' *(दे०) इनकी मुख्य कृति है जो 6 परिच्छेदो मे विभक्त है और जिसमे कुल 400 श्लोक हैं। काव्यशरीर, काव्या*लकार, काव्यदोष, काव्य-न्याय एव शब्दशुद्धि, इन पाँच विषयो का निरूपण 'काव्यालकार' मे हुआ है। इसी प्रसग मे काव्य के लक्षण एव प्रयोजन का निरूपण उपलब्ध होता है।

भामह अलकारवादी आचार्य हैं। इनके मत से काव्य मे जिस तत्त्व से चमत्कार का आधान होता है वही अलकार है तथा वह शब्द और अर्थगत भेद से मुख्यतया दो प्रकार का है। कवि की जन्मजात प्रतिभा से ही काव्य हो सकता है। सुबोधता ही काव्य का प्राण है।

भामह ने ही सबसे पहले 'नाट्यशास्त्र' (दे०) से अलग कर काव्यशास्त्र का निरूपण स्वतत्र रूप से किया। 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' इनका ही काव्य-लक्षण है। ये माधुर्य, ओज एव प्रसाद काव्य के तीन ही गुण मानते हैं तथा 'नाट्यशास्त्र' के विपरीत गुणो को भावात्मक मानते हैं। *उत्तरकालीन प्राय सभी आचार्य किसी-न किसी रूप मे* इनके ऋणी हैं।

भामिनीविलास *(स० कृ०)* [समय—सत्रहवी शती ई०]

'भामिनीविलास' पडितराज जगन्नाथ (दे०) की रचना है। उन्होने इसे चार भागो मे विभक्त किया है। प्रथम विलास मे नैतिक उपदेश एव सुभाषित का, द्वितीय मे सयोग शृगार का, तृतीय मे विप्रलभ शृगार का और चतुर्थ मे निर्वेद एव *भक्ति रस का सजीव वर्णन है।*

'भामिनीविलास' के पद्यो मे स्वाभाविक प्रवाह *और कल्पना का अभिराम चमत्कार है। भगवान कृष्ण के* चरणो मे पडितराज की अपार निष्ठा थी। इसी कारण उनके पद्य भक्तिरस से स्निग्ध हैं। अन्य वर्णन भी बडे हृदयग्राही तथा प्रभावोत्पादक हैं।

भायाणी, हरिवल्लभ चुनीलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

सौराष्ट्र के महुवा नामक स्थान मे जन्मे श्री भायाणी की शिक्षा महुवा, भावनगर तथा बबई मे सपन्न हुई। इन्होने 1943 ई० मे सस्कृत (मुख्य) तथा अर्द्ध-मागधी (गौण) विषय लेकर एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा 1952 ई० मे स्वयमू-रचित महाकाव्य 'पउमचरिउ' के सपादन पर पी एच० डी० की उपाधि अर्जित *की। अध्ययन-अध्यापन इनका मुख्य व्यवसाय है। सप्रति ये गुजरात विश्वविद्यालय मे भाषाविज्ञान के प्रोफेसर के* रूप मे कार्य कर रहे हैं। इनकी रचनाएँ हैं—अपभ्रश भाषा साहित्य-विषयक 'सदेशरासक' (भूमिका और कोश सहित सपादन), धाहिल-कृत 'पउमसिरिचरिउ' (भूमिका, अनुवाद व शब्दकोश सहित सहसपादन), स्वयमू कृत 'पउमचरिउ', प्राचीन गुजराती भाषा-विषयक—'त्रण प्राचीन गुर्जर काव्यो','शामळछत्त', 'मदनमोहना', 'रस्तमनो सलोको', 'सिहासन बत्रीशी', 'वैताल पचीसी' (सपादन), भाषाशास्त्रीय अध्ययन—'वाग्व्यापार', 'अपभ्रंश व्याकरण' (सिद्ध-हेम का अपभ्रंश भाग), 'मुग्धबोध व्याकरण', 'जानक वार्ताओ', 'शब्दकथा', 'अनुशीलनो', 'शोध अने स्वाध्याय' तथा 'थोडोक व्याकरण विचार'। उक्त सभी रचनाओ को

देखने से यह बात बड़ी स्पष्ट हो जाती है कि श्री भायाणी जी की मूल रुचि भाषाविज्ञान में है। गुजराती साहित्य और गुजराती के अध्येताओं में भायाणी जी एक भाषाशास्त्री के रूप में प्रसिद्ध हैं। पर इससे यह सिद्ध नहीं होगा कि उनकी रुचि का कोई अन्य क्षेत्र नहीं है। प्राचीन भारतीय साहित्य, लोक-साहित्य तथा रस-मीमांसा भी इनकी रुचि के विषय हैं।

भारतचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1713 ई०; मृत्यु—1760 ई०]

इनका जन्म हावड़ा तथा हुगली के अंतर्गत भुरसुट परगना में पेंड़ो (पाण्डुया) ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम नरेंद्र नारायण राय था। इनके पिता ज़मींदार थे। उनको राजा की उपाधि मिली हुई थी। ये ब्राह्मण थे। इन्होंने अपने नाना के यहाँ शिक्षा प्राप्त की थी। इन्हें संस्कृत, बँगला, हिंदी एवं फ़ारसी भाषाओं का ज्ञान था। वर्द्धमान-नरेश महाराज कृष्णचंद्र ने इनको 'रायगुणाकर' की उपाधि प्रदान की थी। अनुमान है कि इनकी पत्नी का नाम 'राधा' था और इनके तीन पुत्र थे।

इनकी कृतियाँ हैं: 'सत्य पीरेर पांचाली', 'रसमंजरी', 'अन्नदामंगल (दे०), 'विद्यासुंदर' (दे०), 'नागाष्टक', 'गंगाष्टक'। 'अन्नदामंगल' सर्वापेक्षा प्रसिद्ध कृति है। कवि शाक्त-मतावलंबी हैं। अन्य मंगल काव्यों के समान पार्वतीय एवं शिव की कथा को आधार बनाकर प्रति-दिन के जीवन को सरस रूप में प्रस्तुत करना कवि का उद्देश्य है। इनके काव्य में भाव-गांभीर्य नहीं है। भाषा की दृष्टि से प्राचीन काल के कवियों में ये श्रेष्ठ हैं। ये उत्कृष्ट शब्द-कवि हैं। परिमार्जित एवं प्रसाद गुण-युक्त भाषा-नैपुण्य एवं शिल्पज्ञान में ये अनुपम हैं। इनका गुण है सरस-सुंदर वर्णना। नारी-चरित्र को चित्रित करने में ये प्राचीन बँगला कवियों में अद्वितीय हैं। छंद-प्रयोग में ये अत्यंत कुशल हैं। विभिन्न संस्कृत छंदों को अत्यंत कुशलता से इन्होंने बँगला में प्रयुक्त किया है। सरस परिहास, प्रसन्न जीवन-भोग का चित्र इनके काव्य में पग-पग पर मिलता है। गंभीर वेदना और करुण रस के चित्रों का इनकी रचनाओं में अभाव है। धार्मिक दृष्टि से इनके काव्य में उदारता मिलती है।

बँगला काव्य में इनके वर्णन-कौशल एवं वचन-चातुर्य ने गाँव के अशिक्षित वर्ग से राज-सभा तक में इन्हें आदरणीय स्थान दिलाया है।

भारत चंपू *(सं० कृ०)* [समय—लगभग ग्यारहवीं शती ई०]

'भारत चंपू' के कर्ता अनंतभट्ट माने जाते हैं।

'भारत चंपू' में 'महाभारत' (दे०) की कथा को संक्षेप में निबद्ध किया गया है। इसमें बारह स्तवकों में 1000 श्लोक तथा गद्य में वीरगाथा काव्य के रूप में 'महाभारत' (दे०) की कथा को प्रस्तुत किया गया है। यह वीररस-प्रधान काव्य है। इसमें कवि को युद्धों का वर्णन करने में पर्याप्त सफलता मिली है। इसके अतिरिक्त इस चंपू में करुणरस की बड़ी मार्मिक व्यंजना हुई है। इसका गद्य भी पद्य की ही भाँति अलंकृत शैली में है।

भारत दुर्दशा *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1880 ई०]

देशभक्ति की अनुगूँज से आद्यंत अनुपूरित इस छह अंकीय नाटक में भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र ने भारत के अतीतकालीन गौरव तथा समकालीन दुरवस्था का मार्मिक चित्रण किया है। नाटककार ने स्वार्थपरता, हठ, फूट, अपव्यय, आदि उन कारणों का भी स्पष्ट उल्लेख किया है जिनके फलस्वरूप भारत बल-वैभव की दृष्टि से ही नहीं अपितु आर्थिक तथा बौद्धिक दृष्टि से भी विपन्नावस्था को प्राप्त हुआ। नाटक में आशा का स्वर भी विद्यमान है। इस रचना के अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अत्यंत दुःखी होकर इस कृति का प्रणयन किया था। नाटककार ने इस कृति को नाट्यरासक अथवा नाट्य-रूपक माना है किंतु इस नाट्य-विधा के सभी लक्षण इस कृति में परिलक्षित नहीं होते।

भारतपर्यटनम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1950 ई०]

रचनाकार—कुट्टिकृष्ण मारार (दे०)।

श्री मारार मौलिक विचारक, समीक्षक एवं प्रसिद्ध निबंधकार हैं। संस्कृत-काव्यशास्त्रादि पर पूरा अधिकार करने के बाद ये समालोचना के क्षेत्र में आये। इनकी गद्य-शैली बड़ी संहित एवं प्रवाहमयी मानी गई है। मारार जी की रचनाओं में 'भारतपर्यटनम्' उनकी मौलिक प्रतिभा का सबसे पुष्ट प्रमाण है।

'भारतपर्यटनम्' का आधार वेदव्यास-कृत 'महाभारत' (दे०) है। यह अनुवाद नहीं प्रत्युत उसके चुने हुए प्रसंगों पर आधारित है। इस गद्य-ग्रंथ में 18 अध्याय

हैं। इनमे लेखक ने व्यास का अधानुकरण करने के बजाय पाडवो कौरवो के व्यवहार का औचित्य-अनौचित्य विवेचन किया है। अनेक प्रसगो मे वे दुर्योधन के तथाकथित स्वार्थ-पूर्ण व्यवहार को राजतत्र के सिलसिले मे उचित ही समझते हैं। श्रीकृष्ण को अपमानित करने का दुर्योधन का तथाकथित प्रयास मारार जी की सम्मति मे केवल कपोल-कल्पना है। यों 'द्रौपदीवस्त्रापहरण' मे 'शक्ति के सामयिक धर्म होने का सिद्धात दिखाया गया है।

आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य मे 'महाभारत' की कथाओ का पुनरीक्षण करने की प्रवृत्ति मारार में दर्शनीय है। कथावस्तु के सक्षेपण और गद्य-लेखन का दुर्लभ कौशल उनमें है। उनमे कृत्रिमता नही, प्रौढ चिंतन और निर्भय अभिव्यक्ति है। श्री नारायण मेनन (दे०) के शब्दो मे आख्यान व्याख्या और सार्थक मनोवैज्ञानिक प्रकाशन का समन्वय 'भारतपर्यटनम्' की अन्यतम विशेषता है।

भारतरत्न *(गु० कृ०)*

डा० भोगीलाल सांडेसरा (दे०) के अनुज श्री उपेंद्रराय सांडेसरा-रचित 'भारतरत्न' महाभारत की सूक्तियो के विवेचन का एक अपूर्व ग्रथ है। महाभारत व तत्सबधी साहित्य तथा समीक्षात्मक ग्रथो का गहन अध्ययन लेखक की विशेषता है।

व्यापार-वाणिज्य मे डूबे तथा सामान्य शिक्षा प्राप्त श्री सांडेसरा की भारतीय सस्कृति के प्रति गहरी आस्था, निष्ठा व रुचि का दर्शन इस ग्रथ से अनायास ही हो जाता है। लगभग 500 पृष्ठो के इस ग्रथ का प्रथम सस्करण लेखक के अग्रज डा० भोगीलाल सांडेसरा ने 1963 ई० मे निकाला था। काका कालेलकर (दे०) एव प० सुखलाल जी के पुरोवाक तथा आशीर्वाद इस ग्रथ को प्राप्त हैं। ग्रथ मे महाभारत के आधार पर धर्म, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मविद्या, भक्ति, गार्हस्थ्य, अर्थदोष, विद्या, कर्म, काल, व्यसन, सुख दुख, युद्ध की निरर्थकता, तत्त्व-ज्ञान, सज्जन-दुर्जन, विवेक-योग, सयम आदि अनेक विषयो का सुदर विवेचन हुआ है। सत्यवान आख्यान का नया सावित्री के चरित्र का तर्कबद्ध विवेचन भी इसमे हुआ है।

गुजराती भाषा मे रचित भारतीय सस्कृति-विषयक ग्रथो म इस ग्रथ का महत्वपूर्ण स्थान है।

भारतवर्षीय उपासक-सप्रदाय *(बँ० कृ०)*

'तत्त्वबोधिनी पत्रिका' के प्रख्यात सपादक अक्षयकुमार दत्त (1820 86) उन्नीसवी शती की भारतीय साधना के अन्यतम सार्थक प्रतिनिधि थे। 'भारतवर्षीय उपासक-सप्रदाय' (दो खड मे सपूर्ण 1870-1883) ग्रथ अक्षयकुमार की जीवन साधना का श्रेष्ठतम परिचय है। यह ठीक है कि इन्होने विल्सन के एसेज ऐंड लेक्चर्स ऑन द रिलीजन ऑफ द हिंदूज' ग्रथ के आश्रय से अपने ग्रथ की रचना की है किंतु विल्सन के ग्रथ मे जहाँ पैंतालीस उपासक सप्रदायो का वर्णन है वहाँ अक्षयकुमार ने एक सौ बयासी सप्रदायो का विवरण सकलित किया है। स्वदेश प्रेम एव स्वजाति कल्याण की ऐकातिक कामना ही अक्षयकुमार की अक्लात साहित्य साधना की मूल प्रेरणा थी। 'भारतवर्षीय उपासक सप्रदाय' अक्षयकुमार की ज्ञानतपस्या का सार्थक एव चिरकालीन श्रद्धा और विस्मय का प्रति-रूप है।

भारतिप्रिय *(क० ले)* [जन्म--1919 ई०]

इनका वास्तविक नाम एस० वेंकट राव है। कन्नड के कहानीकारो—विशेषत पुरानी पीढी के लेखको— मे इनका विशिष्ट स्थान है। इनकी कहानियो का सग्रह 'रुद्रवीणा' पर्याप्त ख्याति पा चुका है। 'रागिणी' और 'रूपसर्पिणी' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इनके अन्य ग्रथो मे 'ध्रुवतारेगळु' (ध्रुवतारागण) का नाम उल्लेखनीय है।

भारती, गोवर्धन महबूबाणी *(सिं० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

इनका जन्मस्थान सिंध का एक छोटा गाँव आराजी है। आजकल ये अजमेर मे रहते हैं और रेल-विभाग मे कर्मचारी हैं। इन्हे बचपन से ही कला और साहित्य से प्रेम रहा है। आज ये सिंधी-जगत मे कवि, कहानीकार और नाटककार के रूप मे प्रसिद्ध हैं। इन्होंने विभिन्न विषयो पर गीत लिखे हैं जिनमे से कई बहुत लोक-प्रिय बन चुके हैं। सिंधी-काव्य मे हास्यरस की रचनाएँ कम हैं। इन्होने अपनी कविताओ द्वारा इस कमी की काफी हद तक पूर्ति की है। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं—'गुल ऐं मुखिड़्यूं' (कविताएँ), 'लाल्यूं' (बालगीत), 'उठा मीह मलीर' (गीत), 'तूफानी रात' (नाटक), 'नई बस्ती'

(बाल-कहानियाँ), 'पीलो चंडु लाल' दाग' (कहानी-संग्रह)। ये न केवल कवि हैं, अपितु अच्छे गायक भी हैं। विभाजन के पश्चात् सिंधी-साहित्य के विकास में इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

भारतीदासन् *(त० ले०)* [जन्म—1891 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

इनका जन्म पुदुच्चेरी (पांडिचेरी) में हुआ था जो तब फ्रेंच शासन में था। इनका असली नाम कनकसुब्बुरत्तनम् है। इन्होंने तमिल तथा फ्रेंच भाषाओं का अध्ययन किया था। बचपन से ही इनके मन में तमिल के प्राचीन साहित्य के प्रति अटूट अनुराग उत्पन्न हो गया था। सामाजिक जीवन के प्रति भी इनकी दृष्टि क्रांतिकारी थी। जाति-पाँति की भावना को दूर करने के लिए ये कटिबद्ध रहते थे। अपने अठारहवें वर्ष में ही इन्होंने 'तमिल-विद्वान्' उपाधि प्राप्त कर ली थी और पुदुच्चेरी के कालेज में तमिल-प्राध्यापक हो गये थे। उस समय पुदुच्चेरी में श्री अरविंद आ बसे थे। ब्रिटिश सरकार की कोप-दृष्टि से बचकर कई क्रांतिकारी युवक फ्रेंच-शासन में स्थित पुदुच्चेरी में जाकर रहते थे। ऐसे ही व्यक्तियों में थे व० वे० सु० अय्यर, सुब्रह्मण्यम् भारती (दे०) आदि। कनकसुब्बुरत्तनम् पर इन लोगों की संगत का प्रभाव पड़ा। उनकी छत्रच्छाया में ये भी अच्छे कवि बन गये और अपना उपनाम भी अपने कविता गुरु भारती की स्मृति में 'भारतीदासन्' (तमिल उच्चारण के अनुसार पारदिदासन) रख लिया। देशभक्ति, स्वभाषा-भक्ति, समाज के नवनिर्माण की अभिलाषा, समाज-सुधार इत्यादि इनकी कविताओं की भावभूमि है। इनका प्रकृति-वर्णन अत्यंत सजीव होता है। 1938 ई० में 'पारदिदासन्-कविदैकल्' नाम से इनका प्रथम कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ था। बाद में ये तमिलनाडु में हुए द्रविड-आंदोलन में सम्मिलित हुए। 'द्रविड कलकम्' नाम से स्थापित संस्था के द्वारा उन दिनों यह प्रचार किया जाता था कि द्रविड संस्कृति तथा सभ्यता आर्य संस्कृति तथा सभ्यता से बिलकुल भिन्न तथा स्वतंत्र हैं; आर्य-प्रभाव के कारण ही जाति-पाँति, अंधविश्वास आदि बुराइयाँ उत्पन्न हुई हैं; वेद-उपनिषद्, रामायण आदि संस्कृत ग्रंथों पर आधारित धर्म भी द्रविड़ों के प्रतिकूल है, इत्यादि। 'भारतीदासन्' की कविता के ये सब विषय बन गये। 'क्रांतिकवि', 'कवि-सम्राट' आदि इनकी उपाधियाँ थीं। इनके अनेक खंडकाव्य तथा फुटकल कविताओं के संग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'पांडियन्-परसु' (दे०) (पांड्य का पुरस्कार) 'एदिर पारात मुत्तम्' (अप्रतीक्षित चुंबन), 'तमिलच्चियन् कात्ति' (तमिल स्त्री का करवाल), 'कुडुंबविलक्कु' (दे०) (परिवार-दीप), तथा 'कडलमेल् कुमिलिकल्' (समुद्र पर के बुलबुले) आदि खंडकाव्य हैं। 'तमलिक्कम्' (तमिल आंदोलन) नामक कृति में द्रविड़-समाज की कमियों का उल्लेख करते हुए उन्हें सुधारने के लिए प्रेरणा दी गई है।

'अलकिन्सिरिप्पु' (दे०) (सौंदर्य का हास) इनकी प्रकृति-वर्णन प्रधान कृति है। इनके गद्य-ग्रंथों में 'हिरण्य अथवा अनुपम वीर' और 'शिक्षित महिलाएँ' प्रसिद्ध हैं। ये 'कुयिल्' (कोयल) नामक कविता-पत्रिका का संपादन करते थे। 'इरुंडवीडु' (अँधेरा घर) इनकी हास्य-रसपूर्ण कृति है। इनका अपने युग पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। आज की तमिल कविता के क्षेत्र में इनकी परंपरा स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

भारती, धर्मवीर *(हिं० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

इनका जन्मस्थान इलाहाबाद है। इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से हिंदी में एम० ए० करने के पश्चात् 'सिद्ध-साहित्य' पर पी-एच० डी० की उपाधि के लिए शोध-प्रबंध लिखा। कुछ समय तक प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापन करने के उपरांत 1956 ई० में 'धर्मयुग' (दे०) के संपादन का दायित्व लेकर ये बंबई चले गये। इनका कृतित्व बहुमुखी है। कथा-साहित्य में 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' तथा काव्यक्षेत्र में 'अंधा युग' (दे०) और 'कनुप्रिया' को विशेष ख्याति मिली है। 'अंधा युग' नयी कविता की महती उपलब्धि माना जा चुका है। इस काव्य-नाटक में कवि ने द्वापर की कथा लेकर अपने युग की अनास्था को ध्वनित करते हुए आस्था की खोज का प्रयत्न किया है। 'कनुप्रिया' में काव्यात्मक उद्भावनाओं के द्वारा राधा-कृष्ण के पौराणिक रोमांस पर जो नूतन दृष्टिपात किया गया है उसके पीछे अस्तित्ववादी दृष्टि रही है। 'सात गीत वर्ष' नामक कविता-संग्रह में भी रूमानियत और बौद्धिकता का सम्मिश्रण दिखाई देता है।

भावात्मक सघनता और बिंबात्मक प्रतीक-प्रयोग की विशेषताएँ इनके कृतित्व को नयी कविता में एक पृथक् व्यक्तित्व प्रदान करती हैं।

भारती, नारायण *(सि० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

इनका जन्मस्थान लाडकाणा (सिध) है। देश-विभाजन के पश्चात् ये उल्हासनगर (महाराष्ट्र) मे स्थायी रूप से बस गये हैं और वही एक स्कूल मे अध्यापन कार्य करते है। गत कई वर्षों से ये 'सिधी टाइम्स' नामक पत्रिका का सपादन-कार्य भी कर रहे हैं। इन्होने सिधी साहित्य को अच्छी मौलिक कहानियाँ भी दी हैं, परतु कहानीकार की अपेक्षा इनको सिधी लोक साहित्य के अध्येता और अनुसधानकर्ता के रूप मे अधिक ख्याति प्राप्त हुई है। सिधी लोक साहित्य और लोक-कला पर इनकी प्रमुख पुस्तकें इस प्रकार है—'लोक गीत', 'होजमालो', 'सिधी लोक कहाण्यूं', 'सिधी लोक कला', 'सिंधुडी धीगास', 'सगीत जी तान', 'मेदीअ रता हथिडा', 'थरी लोक गीत'। भारत मे सिधी-लोक साहित्य के क्षेत्र मे इनका अनुसधान-कार्य अविस्मरणीय है।

भारती पर्व *(म० कृ०)* [रचना काल—1640 ई०]

मुक्तेश्वर (दे०) ने सस्कृत के 'महाभारत' (दे०) का मराठी रूप प्रस्तुत किया है। इनके 'महाभारत' के आदिपर्व, सभापर्व, वनपर्व, विराटपर्व और सौप्तिक पर्व ही उपलब्ध होते हैं। कुल ओवी सख्या है—14,687। कवि की मौलिकता कथावस्तु के नवीन आविष्कार की नही है वरन् कथा के अतिरिक्त शेष सभी अशो मे मौलिकता है। पात्रो के सवाद, उनके चरित्र चित्रण वातावरण की सजीव निर्मिति, प्रसगानुरूप सरस अलकार-योजना, भावानुरूप भाषा प्रयोग की दृष्टि से मुक्तेश्वर की कवित्व-प्रतिभा की जितनी प्रशसा की जाय थोडी ही प्रतीत होगी। मुक्तेश्वर मे पाडित्य का और कलात्मक सौदर्य निर्मिति का गुण चरमोत्कर्ष पर पहुँचा था। कथा का कहाँ सक्षिप्तीकरण हो और कहाँ विकास-विस्तार हो इसका निर्धारण करने मे उनकी काव्य प्रतिभा ने पूरा-पूरा कौशल दिखाया है। सौंदर्य चित्रण मे कवि का मन खूब रमा है। सौंदर्य चाहे मानवीय हो अथवा प्रकृति का हो, उसे मूर्तित करने मे कवि ने कोई कसर नही छोडी है। मुक्तेश्वर द्वारा लिखित 'द्रौपदी वस्त्र हरण', 'शाकुतला-दुष्यत-आख्यान', 'नारद नीति', 'जरासधाख्यान', 'नल दमयती-आख्यान' आदि प्रसग बहुत ही सरस-प्रभावोत्पादक हैं। इनके 'महाभारत' म समसामयिक महाराष्ट्र की सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का भी अतर्भाव हो गया है। यह काल नम का दोष है, ऐतिहासिक विपर्यय है। परतु इसमे कवि की देश-समाज के उद्धार की भावना भी अनुस्यूत है।

भारतीय काव्य-मीमासे *(क० कृ०)*

यह कन्नड के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो० वी० न० श्रीकठय्या (दे०) की शास्त्रीय कृति है। इसमे भारतीय काव्यशास्त्र परपरा के आरभ, विकास, आदि का सर्वेक्षण है। इसके तीन भाग हैं। प्रथम भाग मे सात अध्याय हैं। प्रथम अध्याय मे काव्यशास्त्र के उदय का विवेचन है। दूसरे मे भारत के नाट्यशास्त्र का विवेचनात्मक परिचय है। तीसरे मे अलकार एव रीति-सप्रदायो का आलोचनात्मक परिचय है तथा चौथे एव पाँचवें अध्यायो मे ध्वनि-सप्रदाय एव उसके विरोधियो आदि की व्यापक चर्चा है। 'परिष्कार-युग' नामक छठे अध्याय मे ध्वनिसिद्धात की दृष्टि से सभी काव्यागो की सर्वांगीण व्यवस्था करने वाले मम्मट, जगन्नाथ आदि आचार्यों की चर्चा है। सातवें अध्याय मे महिमभट्ट, कुतक, भट्टनायक आदि के विचारो के आलोक मे ध्वनि का विवेचन है। प्रो० श्रीकठय्या जी ने रस-सिद्धात को एक सिद्धात नही माना है। उनके अनुसार रस-सिद्धात सभी सप्रदायो का गतव्य है। उनका कहना है कि भारतीय काव्यशास्त्र की कथा रस-प्रतिष्ठापना की ही कथा है। उनके अनुसार काव्य-मदिर की बाह्य प्राचीर की परिक्रमा मे ही अलकारवादियो ने समय बिताया। रीति-सप्रदाय मदिर के भीतर गया। ध्वनिकारो ने आकर रस के महत्व को जाना। तब ज्ञात हुआ कि रस ही काव्य-मदिर का अधिदेवता है।

दूसरे भाग मे 17 अध्याय हैं। इनमे काव्य-लक्षण की विस्तृत विवेचना है, कविता के आकरो के रूप मे प्रतिभा, व्युत्पत्ति आदि की विस्तृत चर्चा है। प्रतिभा का विवेचन अत्यत सरस एव मौलिक बन पडा है। सहृदय' के लिए एक पूरा प्रकरण लिखा गया है। तीसरा भाग रस ध्वनि की व्यापक चर्चा के लिए निवेदित है। भाव-विभाव एव अन्य भावो का परिचय दे कर दो अध्यायो म रसानुभूति की चर्चा करते हुए इस सिद्धात की विभिन्न व्याख्याओ का विवेचन है। इन प्रभेदो की चर्चा के बाद शातरस के लिए एक स्वतत्र अध्याय रखा गया है। शात-रस का स्थायी भाव तथा उसकी अनुभूति एव रसत्व पर श्रीकठय्या जी की बहुत ही मौलिक स्थापनाएँ हैं। शात-रस का इतिहास, विशेषत बौद्ध एव जैनियो की देन, आदि की भी गभीर चर्चा है। लेखक ने सुदर तर्कों के द्वारा यह

प्रतिपादित किया है कि शांत एक पृथक् रस है। अंत में औचित्य पर एक अध्याय है। इस ग्रंथ के एक परिशिष्ट में कन्नड के लक्षण ग्रंथों का आलोचनात्मक परिचय है।

प्रो० श्रीकंठय्या कन्नड के श्रेष्ठ आलोचक एवं सुधी चिंतकों में थे। उन्होंने इस ग्रंथ में यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र का ही परिचय दिया है तथापि अपनी ओर से कई मौलिक बातें भी कही हैं। रसानुभूति तथा शांतरस पर व्यक्त उनके विचार उनकी अपनी देन हैं। प्रो० श्रीकंठय्या कन्नड के श्रेष्ठ ग्रंथकारों में भी परिगणित हैं। उनमें विचारों की गंभीरता है किंतु कहीं भी वे बोझिल नहीं बनते। संस्कृत एवं प्राकृत के पद्यों का अत्यंत सरस काव्यानुवाद इनकी एक विशेषता है। उदाहरणों के चुनाव में लेखक ने अपनी सदभिरुचि का परिचय दिया है।

भारतीय संस्कृति कोश *(म० कृ०)*

इस कोश के संपादक पं० महादेवशास्त्री जोशी (दे०) हैं। संस्कृति व्यक्ति की नहीं, समाज की होती है। सामाजिक परंपराएँ युगों तक चिरायु रहती हैं, इन्हीं चिरंतन परंपराओं से भारतीय मानस को परिचित कराने के उद्देश्य से इस कोश का निर्माण हुआ है।

संस्कृति के ये तीन अंग माने जाते हैं—आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक। इन्हीं के आधार पर इसके भीतर बाह्य संस्कारों पर विश्वास, खेती, पशु-पालन, अर्थ-वितरण आदि को आधिभौतिक वर्ग में भाग्य-वाद, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना आदि आधिदैविक में तथा धर्म, तत्त्वज्ञान, नीति-नियम, साहित्य, संस्कार आध्यात्मिक वर्गों में रखा गया है। इस प्रकार सांस्कृतिक मूल्यों का यह कोश है। यह संदर्भ-ग्रंथ के रूप में निर्मित हुआ है।

भारती, सुब्रह्मण्य *(त० ले०)* [जन्म—1882 ई०; मृत्यु—1921 ई०]

सुब्रह्मण्य भारती का जन्म तिरुनेलवेली ज़िले के एट्टयपुरम् नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने अध्यापक के रूप में अपनी जीविका आरंभ की थी। राजनीतिक दृष्टि से क्रांतिपूर्ण युग में जन्म लेने पर भी इन्होंने अनेक सुंदर भावपूर्ण कृतियों की सर्जना की है। इन्होंने अपनी स्फुट कविताओं में भारत देश, भारतवासी, तमिलनाडु, तमिल भाषा के प्रति अपने प्रेम की अभिव्यक्ति की है। इन्होंने देश के लिए अपना तन, मन, धन अर्पित कर दिया था। इनकी कविताओं के विषय हैं—व्यक्तिगत, मुक्ति, राष्ट्रीय स्वातंत्र्य, समाज-सुधार, विश्व-बंधुत्व की भावना आदि। 'भारतियार कविदैहळ्' में इनकी स्फुट कविताएँ संगृहीत हैं। इन्होंने बच्चों के लिए कुछ उपदेशात्मक और राष्ट्रीय भावना-प्रधान कविताएँ लिखी हैं, जैसे—'ओडि विळैयाडु पापा', 'पुदिय आत्तिशूडि' आदि। 'कृष्णन् पाट्टु' (दे०) में कवि की कल्पना-शक्ति और भक्ति-भावना का परिचय मिलता है। कवि ने कण्णन् (कन्हैया) को आदर्श माता, पिता, स्वामी, सेवक, मित्र, बालक, प्रेमिका आदि रूपों में देखा है। 'पांचाली शपदम्' (दे०) एक प्रभावशाली रूपक काव्य है जो कि महाभारत के एक प्रसंग पर आधारित है। 'कुयिल पाट्टु' मधुर शैली में रचित एक प्रेम-प्रधान कृति है। इसमें कवि की कल्पना-शक्ति एवं कवित्व-शक्ति का अच्छा परिचय प्राप्त होता है। 'ज्ञानरथम्' गंभीर चिंतन-प्रधान, 'चंद्रिकैयिन कदै' भावना-प्रधान और 'नवतंदिर कदैहळ्' इनकी नीति-प्रधान कृतियाँ हैं। इन्होंने कुछ निबंधों की रचना भी की है। इन्हें अँग्रेज़ी, संस्कृत, हिंदी, उर्दू, बँगला, फ्रेंच, तेलुगु, कन्नड आदि भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान था। इन्होंने टैगोर की कहानियों और 'भगवद्गीता' का तमिल में तथा अपनी कुछ कविताओं और 'दिव्य-प्रबंधम्' के कुछ पदों का अँग्रेज़ी में अनुवाद किया है। आधुनिक काल के तमिल कवियों में राष्ट्रीय कवि के रूप में इनका नाम अग्रगण्य है।

भारती, हृदय कौल *(कश्० ले०)* [जन्म—1937 ई०]

इन्होंने केवल कहानियाँ लिखी हैं जिनमें 'तेह', 'शिकस्त' और 'श्रावनूसुक रूलर, जिगरॅच्य मिश त मिलि हुंद दःह' बहुत ही उच्च कोटि की कहानियाँ हैं। इनकी और अनेक कहानियाँ कश्मीरी पत्र-पत्रिकाओं में छपती रही हैं। ये अपनी कहानियों में प्रतीकों का भरपूर सहारा लेते हैं जिससे पाठक के मन में विचारों को उत्तेजना मिलती है। मंत्रीकृत कृत्रिम जीवन के प्रति इनके मन में कुंठा और आक्रोश है और यही किसी-न-किसी रूप में इनकी कहानियों में देखने को मिलता है। इनकी भाषा में प्रवाह है और इनकी शैली में मार्मिकता एवं मौलिकता।

भारतेंदु हरिश्चंद्र *(हिं० ले०)* [जन्म—1850 ई०; मृत्यु—1885 ई०]

इनका जन्मस्थान वाराणसी है। इनके पिता

गोपाल चद्र, उपनाम 'गिरधरदास' वल्लभ सप्रदाय के कृष्ण-भक्त वैष्णव थे। अपने पिता से इन्हे साहित्यिक रुचि दाय मे प्राप्त हुई। देश-दर्शन ने इन्हे राजनीतिक और सामाजिक चेतना प्रदान की। जगन्नाथ जी की यात्रा के पश्चात् इन्होंने देशोत्थान के अनेक कार्यक्रम आरभ किए जिनमे से अँग्रेजी विद्यालय की स्थापना और अनवरत साहित्य सेवा का सकल्प उल्लेखनीय हैं। इन्होने हानि उठाकर भी अनेक पत्रो का सचालन निजभाषा उन्नति के उद्देश्य से किया। हिंदी के अनेक साहित्यकार इनकी प्रत्यक्ष प्रेरणा और सहायता के लिए ऋणी हैं।

इन्होंने दो सौ से अधिक रचनाएँ लिखी जिनमे नाटक और काव्य के अतिरिक्त सामाजिक उपयोग के इतिहास एव पुरातत्त्व-सबधी लेख आदि भी हैं। नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) ने इनकी रचनाओ का सकलन 'भारतेंदु-ग्रथावली' नाम से तीन खडो मे प्रकाशित किया है। मौलिक नाटको मे 'सत्य हरिश्चद्र' (दे०), 'भारत-दुर्दशा (दे०), 'विषस्य विषमौषधम्' आदि प्रसिद्ध हैं, और अनूदित नाटक कोरे अनुवाद न होकर रूपातर हैं। नाटको मे विषय का वैविध्य दर्शनीय है। ऐतिहासिक-पौराणिक कथाओ के साथ-साथ इन्होने सामाजिक-राजनीतिक समस्याएँ प्रस्तुत करने वाली घटनाओ को भी अपने नाटको का आधार बनाया है। भारतेंदु के काव्य मे भक्ति एव श्रृगार की परपरागत तथा देशभक्ति एव समाजसुधार की युगानुकूल नवीन भावनाएँ अभिव्यक्त हुई है। गद्य मे खडी बोली को प्रतिष्ठित करने के बाद भी ये कविता मे व्रजभाषा के प्रयोग का समर्थन करते रहे। प्रयोग के लिए ही कुछ कविताएँ इन्होंने खडी बोली मे लिखी हैं।

इस प्रकार इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। समय की गति को पहचानने की अद्भुत क्षमता इन्हे प्राप्त थी। ये युग-द्रष्टा साहित्यकार ही नहीं युग-नायक भी थे। अपनी प्रबुद्ध युग-चेतना के द्वारा इन्होंने हिंदी-साहित्य को ही नही पूरे देश की चेतना को एक नयी दिशा देने का स्तुत्य प्रयास किया। पुरातन के प्रति आकर्षित होकर भी ये नवयुग की शखध्वनि को पूरी तन्मयता से सुनते रहे। भारतेंदु आधुनिक युग के सूत्रधार हैं।

भारतेर साधक *(बँ० कृ०)*

प्राचीन भारत का श्रेष्ठत्व उसके धर्मचितन मे निहित है। सहस्रो वर्षो से भारतवर्ष के धर्म, समाज एव सस्कृति की जीवन जाह्नवी को जिन्होंने प्रवहमान रखा है, उन अध्यात्मजीवन के दिशानिर्देशक योगियो, वेदातिको, तात्रिको तथा महान् साधक समाज की विचित्र साधना एव मतवाद को व्यक्तिगत जीवन की पटभूमिका मे भक्त लेखक श्रीयुत प्रमथनाथ भट्टाचार्य ने शकरनाथ राय के छद्म-नाम से इसमे प्रस्तुत किया है। 'भारतेर साधक' शीर्षक से अब तक दस खडो मे प्रकाशित इन ग्रथो मे भारतवर्ष के विभिन्न सप्रदायो के नाना साधको की प्रामाणिक जीवनियाँ प्रकाशित हुई हैं। 'भारतेर साधक' ग्रथ के पूरक रूप मे लेखक ने 'भारतेर साधिका' ग्रथमाला की रचना शुरू की है। इसका पहला खड (1971) मे प्रकाशित हो चुका है। भारतवर्ष के धर्मचितन एव धर्मनायको के दिव्य-जीवन के इस नवप्रचार से लेखक ने समग्र देश के हृदय को जीत लिया है। 'भारतेर साधक' ग्रथमाला को 1963 ई० मे पश्चिम बग सरकार से 'रवीद्र पुरस्कार' प्राप्त हुआ था।

भारवि *(स० ले०)* [समय—600 ई० के आसपास]

भारवि सस्कृत के सुविख्यात कवि हैं। ऐहोल (अइहोड) के शिलालेख मे कालिदास (दे०) के साथ भारवि का नाम भी लिखा गया है। 'अवति सुदरी कथा' के अनुसार ये दक्षिण निवासी तथा चालुक्य-नरेश पुलकेशी द्वितीय के अनुज विष्णुवर्धन के सभापडित थे।

इनकी केवल एक ही कृति प्राप्त होती है—'किरातार्जुनीयम्'। यह 18 सर्गो का महाकाव्य है। इसका कथानक 'महाभारत' (दे०) स लिया गया है। इसके नेता अर्जुन हैं और उन्ही के चरित्र का उत्कर्ष दिखलाने के लिए किरातरूपधारी शकर का वर्णन किया गया है। इसका प्रधान रस वीर है तथा श्रृगारादि गौण।

भारवि अपने काव्य मे अर्थगौरव के लिए प्रसिद्ध हैं। ये थोडे शब्दो मे विपुल अर्थवैभव देने मे निष्णात हैं। इनका प्रकृति चित्रण भी मनोहारी है। 'किरात' के चतुर्थ सर्ग का शरद्वर्णन तो सस्कृत मे बेजोड है। ये चित्रकाव्य लिखने में भी बडे सिद्धहस्त हैं। चित्रकाव्य तथा श्लेष के कारण 'किरातार्जुनीयम्' एक क्लिष्ट काव्य बन गया है इसीलिए इसके टीकाकार मल्लिनाथ ने इनकी कविता की तुलना नारिकेल से की है। भारवि राजनीति के पडित हैं। इनकी सूक्तियाँ सस्कृत विद्वानो की जिह्वा पर नाचती रहती हैं। भारवि की ससार-विषयक अनुभूति बडी प्रखर है। उनका राजनीति ज्ञान भी शास्त्रीय नही व्यावहारिक है। अपनी कवित्व शक्ति एव नीतिज्ञता के कारण भारवि का सस्कृत-साहित्य मे विशिष्ट स्थान है।

भालण *(गु० ले०)* [समय—1434-1514 ई०]

मध्ययुगीन गुजराती आख्यान-काव्य-परंपरा के प्रवर्तक तथा भक्तियुग के महत्वपूर्ण रामोपासक कवि भालण पाटण के निवासी मोढ़ ब्राह्मण थे। इनका अपर नाम पुरुषोत्तम था।

भालण के नाम से प्राप्य कृतियाँ हैं—

'भीलडी-संवाद', 'सप्तशती', 'जालंधराख्यान', 'नळाख्यान' (प्रथम व द्वितीय), 'दुर्वासा आख्यान', 'मामकी आख्यान', 'राम विवाह', 'ध्रुवाख्यान', 'भृगी आख्यान', 'कृष्ण-विष्टि', 'कादंबरी', 'दशम-स्कंध', 'राम बालचरित', 'हर संवाद'। इनमें 'नळाख्यान' (दे०), 'दशमस्कंध' तथा 'कादंबरी' (दे०) विशेष प्रसिद्ध व लोकप्रिय रचनाएँ हैं। भालण ने ब्रजभाषा में कुछ फुटकर पद भी रचे थे। शिव पुराण, भागवत पुराण, महाभारत आदि इनकी रचनाओं के उपजीव्य ग्रंथ हैं।

गुजराती भाषा के लिए 'गुर्जर भाषा' संज्ञा का सर्वप्रथम प्रयोग भालण ने ही किया है। गुजराती में आख्यान-काव्यों की रचना का सूत्रपात भी भालण ने ही किया है। इन दो महत्वपूर्ण कारणों से भालण का गुजराती भाषा व साहित्य के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान है।

भाव *(क० कृ०)*

तीन संपुटों में लिखा यह बृहत् ग्रंथ कर्णाटक के मूर्धन्य साहित्यकार कहानी-सम्राट मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे० मास्ति) की आत्मकथा है हालांकि स्वयं उन्होंने इसे आत्मकथा स्वीकार नहीं किया है। वास्तव में यह एक मनीषी की लोकयात्रा का सरस इतिहास है। मैसूर राज्य के कोलार जिले के मास्ति ग्राम में एक सात्विक श्रीवैष्णव परिवार में उनका जन्म हुआ है। उनके वंश में किसी सास ने अपनी बहू को बहुत सताया। उसके छुटपन में ही पति चल बसा तो बहू ने भी अपने दो नन्हे बच्चों को भूलकर पति का सहगमन किया और वह सती हो गई। उसी के कारण उस गाँव का नाम भी महासती—मास्ति—पड़ गया। स्वयं यह घटना एक कहानी जैसी मर्मस्पर्शिनी है। मास्ति जी हमारे सिद्धहस्त जन्मजात कहानीकार हैं। अतः इसमें कई ऐसी घटनाओं का समावेश है जिनमें कहानी की रोचकता है। मास्ति जी का जन्म जब हुआ तब तक उनका परिवार विगत वैभव खो चुका था। मास्ति जी परम मेधावी विद्यार्थी रहे और बाद में एक अत्यंत सफल, समर्थ राज्याधिकारी। यदि जातीय संकीर्णता आड़े न आती तो वे मैसूर राज्य के दीवान भी बनते। 1944 ई० में त्यागपत्र देकर उन्होंने शेष सारा जीवन साहित्य की सेवा में समर्पित कर दिया। इस ग्रंथ में मास्ति जी की अपनी जीवन-यात्रा के संदर्भ में कर्णाटक का क़रीब आठ साल का राजकीय सांस्कृतिक एवं साहित्यिक इतिहास निरूपित है। मास्ति जी का कहना है कि इस लोकयात्रा में जो भाव उत्पन्न हुआ उसी को उन्होंने यहाँ लिपिबद्ध किया है। इन सारी घटनाओं के पीछे हमें एक सच्चे वैष्णव का, प्रपत्तिरत जीव का मार्मिक परिचय मिलता है। मास्ति जी साहित्यकार हैं। अतः हम जिसे मामूली धरती समझ कर पैरों तले रौंद देते हैं, वहाँ भी वे सपना देखते-दिखाते हैं। यह इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। सरल से सरल शैली में प्रबलतम अभिव्यक्ति मास्ति जी की सबसे बड़ी विशेषता है और इस दृष्टि से वे बेजोड़ हैं।

भाव *(सं०, हि० पारि०)*

भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार काव्य एवं काव्य-रस का मूलगत एवं केंद्रगत तत्त्व। मूल धातु 'भावय' से व्युत्पन्न भाव का सामान्य अर्थ है व्याप्त होना। काव्यशास्त्र में भाव का अर्थ है चित्त-विकार या मनोविकार। किसी व्यक्ति, स्थिति, वस्तु अथवा घटना के कारण हृदय की विशिष्ट परिणति अथवा प्रतिक्रिया को 'भाव' कहा जा सकता है। रस (दे०)-सिद्धांत के अंतर्गत भाव मूल वस्तु है, इसी के आधार पर विभाव (दे०), अनुभाव (दे०), संचारी भाव (दे० व्यभिचारिभाव) आदि की प्रकल्पना की गई है।

'भाव' का विवेचन सर्वप्रथम भरत (दे०) ने किया है। उनके अनुसार 'भाव' रस के स्रोत हैं (ना०शा० 6138)। मम्मट (दे०) (बारहवीं शती ई०) ने 'भाव' के आधार पर 'रस-ध्वनि' (दे०) के अतिरिक्त 'भावध्वनि' की प्रकल्पना की है। उनके अनुसार देवादि से संबद्ध रति आदि स्थायी भावों के वर्णन और संचारियों की स्वतंत्र अभिव्यंजना से भावध्वनि होती है। परवर्ती आचार्यों में विश्वनाथ (दे०) ने भी इसका स्पष्ट आख्यान किया है। हिंदी सहित भारतीय भाषाओं के आधुनिक आचार्यों ने काव्यमीमांसा के संदर्भ में भाव को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

भावकविता (तें० प्र०)

अंग्रेजी साहित्य के सपर्क से अन्य देशी भाषा-साहित्यो की तरह तेलुगु मे भी अनेक नयी प्रवृत्तियो का जन्म हुआ है। यह पश्चिमी साहित्य प्रभाव देशी भाषाओ के बहिरग तथा अतरग—दोनो पक्षो पर पडा है। अंग्रेजी साहित्य मे उन्नीसवी शती के अतर्गत 'रोमाटिक कविता' अत्यत प्रचलित थी। इसी के प्रभावातर्गत तेलुगु कविता क्षेत्र मे उत्पन्न एक विशिष्ट साहित्यिक प्रवृत्ति ही भावकविता' के नाम से प्रसिद्ध हुई। बीसवी शती के आरभ से ही तेलुगु मे भावकविता का प्रचलन तथा विस्तार होने लगा। रायप्रोलु सुब्बाराव् (दे०) तथा देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री (दे०) जैसे प्रतिभासपन्न कवियो की प्रेरणा से इसकी उल्लेखनीय प्रगति हो पाई है।

'रोमाटिक कविता' की तरह 'भावकविता' का लक्षण भी बहुत व्यापक है। कविता मे प्रधानत वस्तु अथवा कथानक, भाव तथा शैली प्रमुख होती है। उक्त तीनो के अतर्गत जिसमे भाव की ही प्रधानता होती है वही स्थूल रूप से 'भावकविता कही जाती है। अर्थात कथानक या शैली सबधी विशेषता की अपेक्षा भाव गौण नही होता। उसकी अभिव्यक्ति सीधी तथा प्रभावोत्पादक होती है। बहिरग पक्ष के विवरण की अपेक्षा अतरग पक्ष का विश्लेषण ही 'भावकविता' का ध्येय है। इसीलिए यह अन्य काव्यो की तरह परिमाण मे विस्तृत नही होती। इसमे किसी भी कथानक का आदि से अत तक ग्रहण नही किया जाता। भाव का विशेष महत्व रखने वाला अश मात्र ही लिया जाता है। परपरागत काव्यशास्त्र के नियमो का पालन करना 'भावकविता' के लिए न केवल अनावश्यक है बल्कि बाधक भी समझा जाता है। प्रकृति अथवा किसी भी घटना या वस्तु के बाह्य सौंदर्य की अपेक्षा आतरिक सौंदर्य की ही अभिव्यक्ति इस कविता का ध्येय है। इसका लेखक तटस्थ की तरह न होकर वर्ण्य विषय मे तल्लीन होकर रचना करता है। यह अधिकतर आत्माश्रयी होती है। इसीलिए कभी-कभी लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग होता है तथा अर्थ और भाव अपूर्ण और अस्पष्ट भी रह जाते हैं। इसकी विशेषता यह है कि आलकारिक शैली से बोझिल या सकीर्ण न होकर भाव प्रभावोत्पादक ढग से सीधे अभिव्यक्त किए जाते हैं। इसमें कवि की आत्मानुभूति प्रकट होती है। 'भावकविता' के अतर्गत विशेष रूप से प्रेम से सबद्ध रचनाएँ अधिक पाई जाती है। पर भक्ति, प्रकृति, प्रेम आदि से सबद्ध कई अन्य प्रकार की रचनाएँ भी इसके ही अतर्गत आती हैं। रायप्रोलु सुब्बाराव्, देवुलपल्लि कृष्णशास्त्री के अतिरिक्त अब्बूरि रामकृष्णराव् (दे०), नायनि सुब्बाराव् (दे०) नडूरि सुब्बाराव् (दे०), विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०), वेदुल सत्यनारायण (दे०) आदि अत्यत प्रतिभासपन्न कवियो की रचनाओ के द्वारा तेलुगु-साहित्य मे भावकविता ने अत्युच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।

भावचितारत्न (क० कृ०) [रचना काल—1513-1530 ई०]

सोलहवी शती के प्रसिद्ध कवि गुब्बि मल्लणार्य की रचना 'भावचितारत्न' वार्धक षटपदी मे रचित चरितकाव्य है। चरितकाव्यो के निर्माण के उस युग में सस्कृत 'मार्ग शैली से भिन्न देसी' शैली मे रचित लक्षण-युत काव्यो मे भावचितारत्न' का विशिष्ट स्थान है। उसमे कवि ने शिवलेंकमचण्ण, श्रीपति पडित और मल्लिकार्जुन पडित—इन वीरशैव पडित-त्रय' का स्तवन किया है।

कथानक की दृष्टि से विचार करने पर 'भावचितारत्न कोई अनठा काव्य प्रतीत नही होता परतु उसकी वर्णन शैली मे रम्यता है, आकर्षण है। उसमें उत्प्रेक्षालकार का प्रयोग पदे-पदे द्रष्टव्य है। ऐसा लगता है कि कवि उत्प्रेक्षा का कायल है। उस आलकारिक योजना मे उनकी कल्पना की उडान भी देखते ही बनती है। रसपूर्ण चित्रो के द्वारा काव्य को सवेद्य बनाने की शक्ति कवि मे है, यद्यपि एकाध स्थानो मे उत्प्रेक्षालकार के अनौचित्यपूर्ण प्रयोग के कारण रसभग भी हुआ है। तिरुकोळविनाचि के प्रसग मे करुण रस का अच्छा पोषण हुआ है। 'भावचितारत्न' गुब्बि मल्लणार्य के शुद्ध कन्नड प्रेम (अर्थात देसीप्रियता) तथा प्रौढ शैली का प्रमाण है।

भावनाडी, झमटमल खूबचद (सिं० ल०) [जन्म—1905 ई०]

इनका जन्मस्थान हैदराबाद (सिंध) है और आजकल ये बबई में रहते हैं। ये वकील हैं। कुछ वर्षों तक ये सिंधी के प्राध्यापक भी रह चुके हैं। इनकी प्रमुख कृतियाँ है 'सिंधी शइरु' (दो भाग), 'ढोला मारू', 'कोमिल जो कलाम', 'पज गज'। इन्होंने काव्यशास्त्र के सिद्धातो पर पुस्तकें लिखकर सिंधी-साहित्य में इस कमी की कुछ सीमा तक पूर्ति की है। सिंधी-साहित्य जगत मे ये आलोचक और काव्यशास्त्र के ज्ञाता के रूप मे विख्यात हैं।

भावना संधि प्रकरण (अप० कृ०) [रचना-काल— तेरहवीं शती ई० के लगभग]

'भावना संधि प्रकरण' जयदेव (दे०) मुनि द्वारा रचित छह कड़वकों की छोटी-सी कृति है। प्रत्येक कड़वक में दस पद्य हैं। आदि और अंतिम कड़वक में मंगलाचरण और स्तुति संबंधी एक-एक पद्य अधिक है।

इस कृति का विषय नैतिक और धार्मिक जीवन का उपदेश है। संसार की दुःख बहुलता, वैराग्य-भावना, विषय-त्याग, मानव-जीवन की दुर्बलता, पाप-त्याग, पुण्य-संचय इत्यादि विषयों का ही लेखक ने उपदेश दिया है। संसार को इंद्रजाल बनाकर प्रिय मित्र, गृह, गृहिणी आदि सब संबंधों को मिथ्या बताया है। संसार के दुःख जिनवर-प्रतिपादित धर्मपालन से ही छूट सकते हैं। सुकृतोपार्जन-दुष्कृत-त्याग और सब जीवों के प्रति मैत्री-भावना के उपदेश के साथ यह कृति समाप्त होती है।

इस कृति की भाषा सरल है। सुभाषितों और मुहावरों का बीच-बीच में प्रयोग किया गया है।

भावप्रकाशन (सं० कृ०) [समय—तेरहवीं शती]

शारदातनय के ग्रंथ 'भावप्रकाशन' का समय तेरहवीं शती सिद्ध होता है। नाट्यविषयक ग्रंथों में यह ग्रंथ अपना विशिष्ट स्थान रखता है। अनेक अज्ञात रसाचार्यों के जैसे वासुकि, नारद, व्यास (दे० व्यास, बादरायण) आदि के मतों का निर्देश इस ग्रंथ में किया गया है। प्राचीन नाट्याचार्यों के इतिहास तथा मतों को जानने के लिए भी यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है।

इस ग्रंथ में दश अधिकार हैं जिनमें भाव, रस का स्वरूप, रस के भेद, नायक, नायिका, नायिका-भेद, शब्दार्थ-संबंध, नाट्येतिहास तथा शरीर, दशरूपक, नृत्यभेद तथा नाट्यप्रयोग का विवरण क्रमशः प्रस्तुत किया गया है। जैसाकि नाम से ही विदित होता है कि 'भावप्रकाशन' भाव तथा रस की विविध समस्याओं का सुझाव प्रस्तुत करने वाला विपुल एवं महत्वशाली ग्रंथ है। नाट्य संबंधी उपकरणों तथा उपादेय प्रभेदों का विवरण भी इसमें विस्तृत रूप से किया गया है। साथ ही नाट्य के व्यावहारिक रूप का भी सुंदर विवेचन किया गया है। अतः यह कहा जा सकता है कि नाट्य तथा रस के विशिष्ट ज्ञान के लिए एक प्रामाणिक कोश की भांति यह ग्रंथ अति उपादेय है।

भावानंद (म० पा०)

हरिनारायण आपटे (दे०) के प्रसिद्ध सामाजिक-राजनीतिक उपन्यास 'मी' (मैं) का नायक भावानंद आपटे के समाज-सुधारक, आदर्श, देशभक्त पात्रों में मूर्धन्य है। शिवरामपंत जैसे आदर्श, कर्त्तव्यपरायण गुरु का यह शिष्य बचपन में अन्य साधारण बालकों के समान ही है, पर शनैः-शनैः यह तेजस्वी युवक समस्त सांसारिक सुख-वैभव को त्याग देश की मुक्ति को मोक्ष और देश के चिरकालिक हित को परमार्थ समझ संघर्ष में कूद पड़ता है। आदर्श देशभक्त युवक, पति और पिता होते हुए भी यह पात्र अविश्वसनीय नहीं हो पाया है क्योंकि शैशव के चित्र बालमनोविज्ञान पर आधारित हैं तो यौवन में सुंदरी के प्रति आसक्ति में उसकी मानवोचित दुर्बलता दिखाई गई है। इस प्रकार भावानंद मराठी के आदर्शोन्मुख यथार्थवादी पात्रों में शीर्ष-स्थान का अधिकारी है।

भावार्थरामायण (म० कृ०)

संत एकनाथ (दे०) और हिंदी-कवि संत तुलसीदास (दे०) का वाराणसी में परिचय हुआ था। दोनों समकालीन कवि थे। अतः तुलसी के राम और एकनाथ के राम प्रायः एक जैसे लोक-रक्षक अवतारी पुरुष बनकर दोनों के काव्यों में चित्रित हुए हैं। 'भावार्थरामायण' में 297 अध्याय हैं और 'रामायण' (दे०) के समान सात कांड हैं। एकनाथ ने पाँच कांड पूरे और छठे कांड के 44 अध्याय स्वयं रचे हैं, शेष उनके शिष्य गावबा ने, क्योंकि ग्रंथ-समाप्ति से पूर्व ही एकनाथ का स्वर्गवास हो गया था। इसके आधार-ग्रंथ हैं—'वाल्मीकि रामायण' (दे०), 'अध्यात्मरामायण' (दे०), 'भागवत' (दे०) और 'योगवाशिष्ठ'। मूल सामग्री प्राचीन काव्यों से ग्रहण करने पर भी इस काव्य की मौलिकता में संदेह नहीं हो सकता। इसका कथानक, पात्रों के संवाद, चरित्र-चित्रण, प्रकृति-वर्णन, आदि में कवि की निजी काव्य-प्रतिभा की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। वातावरण के चित्रण में कवि की समकालीन राजनीतिक, सामाजिक परिस्थितियों की विषमता-गंभीरता का स्पष्ट आभास मिल जाता है। आध्यात्मिक भावों और काव्य-गुणों का मणिकांचन योग इस रचना की महत्वपूर्ण विशेषता है। कवि की यह अंतिम रचना है, अतः इसमें विचारों की गंभीरता, भावों की परिपुष्टता और शैली की परिपक्वता इसमें मिलती है। यह

ग्रंथ महाकाव्य के मूलभूत गुणो तथा गरिमा से मडित है।

भावे, पु० भा० *(म० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

प्रणय भावना की विविध और सूक्ष्मतम झाँकियो का प्रभावशाली चित्रण करने वाले श्री भावे की कहानियो मे कल्पना विलास की अपेक्षा उत्कट भावना ही अधिक है। मानव जीवन मे काम-वृत्ति और प्रणय का विशिष्ट महत्व बताते हुए इन्होने असत्याचरण, दभ, ढोग आदि की कलई खोली है। व्यक्ति के मन मे होने वाले सघर्ष एव प्रतिक्रियाओ का रसभीना और प्रभावोत्पादक चित्रण करने मे ये अप्रतिम हैं। कही-कहीं शृगार के उत्तान चित्र होते हुए भी इनकी कहानियो मे भव्य और उदात्त तत्त्व मिलते हैं। इनकी कहानियो की भाषा ओजपूर्ण, रसभीनी और प्रभावोत्पादक है।

प्रमुख कथा-सग्रह—'पहला पावस', 'सात मजले', 'तपस्वी'।

भावे, विनोबा *(म० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

ये सर्वोदय नेता एव भूदान-यज्ञ के प्रणेता के रूप मे प्रसिद्ध हैं। वेद (दे० सहिता), 'उपनिषद' (दे०), 'गीता' (दे०) और भारतीय सत-साहित्य का इन्होंने गहरा मथन किया है।

'साहित्य के क्षेत्र मे अध्यात्मप्रवण, सद्वृत्तिप्रेरक नैतिकतावादी निबधकार के रूप मे प्रसिद्ध हैं। इनके निबधो मे उदात्त जीवन-दृष्टि प्रतिफलित है। जीवन मे और साहित्य-लेखन दोनो मे इन्होंने कर्मयोग, ज्ञानयोग एव भक्तियोग के समन्वय पर बल दिया है।

जैसे मकान मे एक कमरा हवादार होने से लाभ नही—सारे कमरे हवादार होने चाहिए, वैसे ही विनोबा जी के अनुसार धर्म स्वतत्र नहीं है; व्यक्ति का प्रत्येक व्यवहार धर्म से पुष्ट होना चाहिए।

इन्होंने 'गीता प्रवचन', 'स्वराज्यशास्त्र', 'स्थितप्रज्ञदर्शन', 'विचारपोथी', 'ईशावास्यवृत्ति' जैसे गभीर विचारोत्तेजक ग्रथ लिखे हैं। ये सत-साहित्य के मार्मिक विवेचक हैं। इन्होंने 'गीताई' नाम से 'भगवद्गीता' का काव्यबद्ध अनुवाद भी किया है। 'गीताई' को विनोबा जी अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना मानते हैं। 1923-1928 ई० तक वर्धा से प्रकाशित 'महाराष्ट्र धर्म' साप्ताहिक पत्र के सपादक रहे हैं। 'हरिजन' तथा 'ग्राम-सेवावृत्त' पत्रो में भी इनके निबध प्रकाशित हुए हैं। 'मधुकर', 'जीवन-दृष्टि', 'क्रातदर्शन' तथा 'सिहावलोकन' इनके चार निबध-सग्रह हैं।

निबधो मे मौलिक विचार सुबोधता से ग्रथित हैं। ये सत्यान्वेषी साहित्यकार हैं।

भाषाकौटलीयम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—बारहवी शती ई०]

चाणक्य के अर्थशास्त्र के इस प्राचीन मलयाळम गद्यानुवाद के रचयिता के सबध मे कोई सूचना नही है। मलयाळम के अभी तक प्राप्त गद्य-ग्रथो मे यह प्राचीनतम है। इसकी भाषा तमिल से मलयाळम की ओर साहित्यिक भाषा के सक्रमण का द्योतन करती है और इसे हम तत्कालीन जनभाषा के निकट मान सकते हैं। इसमे तमिल और मलयाळम के किसी व्यवस्थित सम्मिश्रण का अभाव है जिससे यह सिद्ध होता है कि भाषा का कोई मानक रूप तब तक विकसित नही हुआ था। किसी प्रादेशिक भाषा मे 'कौटलीय अर्थशास्त्र' के प्रथम अनुवाद के रूप मे भी इसका महत्व है।

भाषाचपु-प्रस्थानम् *(मल० पारि०)*

शुद्ध मलयाळम भाषा मे गद्य-पद्य मिश्रित कई काव्य लिखे गये हैं और वे भाषाचपू नाम से प्रसिद्ध हैं। मणि-प्रवाळ (दे०) पद्धति मे लिखे काव्य 'मणिप्रवाळ प्रस्थानम्' के अतर्गत आते हैं। उसी प्रकार 'भाषाचपू-प्रस्थानम्' मे कई चपू-ग्रथ केरली के भूषण हैं। वस्तुत 'मणिप्रवाळ-प्रस्थानम्' रूपी मथारवृक्ष के मधुर नाम तथा सुदर फल—भाषाचपू ग्रथ ही हैं।

चपू ग्रथो के युग को साहित्येतिहास ऋतुओ मे वसत कहने मे जरा भी अत्युक्ति न होगी। अधिकाश कृतियाँ वीर तथा शृगार रस की हैं। हास्य रस भी प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। 'उण्णियच्चिचरितम्', 'उण्णियाटिचरितम्', 'रामायण चपु' आदि ग्रथ प्रस्तुत पद्धति के वरेण्य फल हैं।

भाषानैषधचपू *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवी शती ई०]

यह मपमगलम् (दे०) (मष्टियमगलम्) नारायणन् नपूतिरि का मणिप्रवाळ (दे०) काव्य है। इसका

इतिवृत्त नलोपाख्यान की कथा है। कवि ने इस कथा को अपनी ही कल्पना के अनुसार स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत किया है।

साहित्यिक गुणों की दृष्टि से 'भाषानैषधचंपू' को मणिप्रवाळ चंपू काव्यों में सर्वोत्तम माना गया है। इसकी भाषा सुविकसित मणिप्रवाळ है। 'भाषा रामायण चंपू' की तरह इसमें भी सामाजिक विडंबनात्मक हास्य का सफल प्रयोग हुआ है। मषमंगलम् संस्कृत के भी विख्यात कवि और आचार्य थे और इसका प्रभाव भी 'भाषानैषध चंपू' की काव्य-गुण-संपन्नता का कारण हुआ है। चंपू-काव्यों में नैषध का स्थान अद्वितीय है।

भाषा-भगवद्‌गीता *(मल० कृ०)*

प्रस्तुत कृति भारतीय भाषाओं में भगवद्‌गीता का पहला रूपांतर है। रचयिता कवि हैं निरणम् (दे०) माधव पणिक्कर और रचना-काल पंद्रहवीं शती है। इसमें मूल भगवद्‌गीता के सात सौ पद्य 324 पद्यों में अनूदित किये गये हैं। भाषा सुंदर और मूल ग्रंथ के अनुरूप है। अनुवादक ने सर्वत्र मूलग्रंथ का अनुसरण कर उसके साथ पूर्ण न्याय करने का प्रयत्न किया है।

भाषाभगवद्‌दूत *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1892 ई०]

'भाषाभगवद्‌दूत' नटुवत्तु अच्छन् नंपूतिरि (दे०) द्वारा संस्कृत-नाटकों की शैली में रचित मौलिक नाटक है। इसकी कथावस्तु भगवान श्रीकृष्ण के पांडवों के दूत बनकर अर्धराज्य की माँग करने के लिए कौरव-सभा में जाने और वहाँ विश्वरूप के प्रदर्शन करने का संदर्भ है। इसकी वेण्मणि-शैली का नवीन मणिप्रवाळ (दे०)-रूप है। संस्कृत-शैली के मौलिक नाटकों में इसका स्थान प्रमुख है।

भाषाभारतम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1904 ई० से 1907 ई० तक]

लेखक—कुञ्ञिक्कुट्टन् तंपुरान्। श्री कुञ्ञिक्कुट्टन् तंपुरान् कोटुङ्ङल्लूर् नामक प्राचीन केरलीय नगर के राजमहल के सदस्य थे। 'तंपुरान्' का अर्थ ही 'राजपरिवार का सदस्य' है। इस राजमहल में अनेक केरलीय कवि एवं विद्वान रहे हैं। उळ्ळूर् (दे०) के शब्दों में ऐसी सरणियाँ दुर्लभ हैं जिनमें तंपुरान् ने अपनी कुशलता न दिखाई हो। इनकी कृतियों में मौलिक भी हैं, अनुवाद भी। काव्य, रूपक, गाथा, शास्त्रीय ग्रंथ आदि अनेक विधाओं को इन्होंने समृद्ध किया है। ये इतने कुशल आशुकवि थे कि सामान्य पत्र तक कविता में ही भेजते थे। यद्यपि इनकी कई रचनाएँ प्रसिद्ध हैं तथापि उन सबमें मूर्धन्य स्थान 'भाषाभारतम्' का ही है।

जिस 'भारतम्' के विशाल कलेवर के कारण उसके एक व्यक्तित्व की रचना होने में भी संदेह किया जाता है उसी का पूरा-पूरा पद्यमय अनुवाद तंपुरान् ने चार वर्ष के भीतर प्रस्तुत कर दिया। मौखिक अनुवाद-कला पर उनका स्तुत्य अधिकार था। तंपुरान् ने पहले सोचा था कि 'भारत' का अनुवाद सम्मिलित रूप से हो। लेकिन वह योजना सफल न होने पर उन्हें अकेले ही वह दायित्व वहन करना पड़ा।

'भारत' का अनुवाद प्रायः निर्दोष और सफल है। अनुवादक ने संस्कृत-छंद में ही अनुवाद किया है। एक-एक पद्य का अनुवाद एक-एक पद्य में है। प्रारंभ में इस विशाल ग्रंथ का प्रकाशन मासिक अंकों के रूप में हुआ। कालांतर में वृहत् ग्रंथ के रूप में यह प्रकाशित किया गया। अपनी इस विलक्षण प्रतिभा के कारण ही वे केरल-व्यास कहलाये।

भाषाभूषण *(हिं० कृ०)*

महाराजा जसवंतसिंह (दे०) द्वारा प्रणीत यह ग्रंथ संभवतः रीतिकाल का पहला अलंकार-निरूपक ग्रंथ है जो कि जयदेव-प्रणीत 'चंद्रलोक' (दे०) की शैली पर लिखा गया है और फिर इसी शैली का अनुकरण अनेक आचार्यों ने किया है। यद्यपि लक्षण और उदाहरण को एक ही दोहे में प्रस्तुत किया गया है, फिर भी, शैली सरल एवं सुबोध है। इसमें कुल 21 दोहे हैं। ग्रंथ के बहुभाग में अलंकारों का निरूपण है। ध्वनि, रस, नायिका-भेद आदि की सामान्य चर्चा है। लक्षण-भाग अनूदित है, किंतु उदाहरण प्रायः मौलिक एवं सरस हैं। अपने समय में यह एक प्रसिद्ध पाठ्य-ग्रंथ रहा होगा।

भाषामिश्रम् *(मल० पारि०)*

मलयाळम की प्राचीन कृतियों की मिश्र साहित्यिक भाषा जिसकी एक शाखा तमिल और मलयाळम के मिश्रण के रूप में और दूसरी शाखा तमिल और संस्कृत के

मिश्रण के रूप मे प्रचलित थी।

'रामचरितम्' (दे०) और पाट्टु (दे०) शैली की अन्य रचनाएँ तमिल मिश्र शाखा मे आती हैं। 'रामचरितम्' मे तमिल और मलयाळम के व्याकरण नियमो का समान अनुपात मे सम्मिश्रण हुआ है जो आगे चलकर निरणम् (दे०) कवियो की सुसस्कृत मलयाळम मे परिणत हुआ।

सस्कृत और मलयाळम का भाषा मिश्रण प्राचीन चपूकाव्यो की भाषा है जो आगे चलकर मणिप्रवाळम् (दे०) के रूप मे विकसित हुआ। सस्कृत-मिश्र शाखा के कवि न केवल सस्कृत विभक्त्युत रूपो का प्रयोग करते थे, वरन् मलयाळम के पदो को भी सस्कृत-व्याकरण के अनुसार ढालते थे। साहित्य के पोषण मे इस शाखा का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

भाषारामायणचपू *(मल० कृ०)* [रचना काल—पद्रहवी शती ई०]

यह पुनम् (दे० नपूतिरि) का मणिप्रवाळ चपू है। इसमे 'रामायण' की कथा बीस भागो मे कही गई है, जिसमे उत्तर काड भी सम्मिलित है। 'वाल्मीकि रामायण' (दे०) ही कवि का आधार-ग्रथ है, पर यथोचित सक्षेपण और विस्तार यथास्थान किया गया है। 'उत्तर-रामचरित' (दे०) आदि ग्रथो से भी प्रेरणा ग्रहण की गई है।

यह काव्य मलयाळम के चपू-काव्यो की परपरा मे नये मोड का प्रतिनिधित्व करता है। इससे पहले चपू-काव्यो के इतिवृत्त नायिका-प्रशस्ति पर आधारित होते थे। 'भाषारामायणचपू' के प्रसाद ही पुराण-सिद्ध कथावस्तुओ को चपू-काव्यो मे स्थान मिला था। इस काव्य मे उत्तम मणिप्रवाळ का प्रयोग हुआ है। 'भाषारामायणचपू' की रीति, वृत्ति, शय्या, पाक आदि काव्य-तत्त्व और ओज, काति आदि गुण प्रशसनीय हैं। इस काव्य मे हास्य रस का सफल प्रयोग हुआ है और यह बाद मे चपूकारो, और कुचन (दे०) नपियार आदि कवियो के लिए इस दिशा मे मार्गदर्शक रहा है।

'भाषारामायणचपू' मलयाळम की मणिप्रवाळ (दे०) शाखा की उत्तम कृतियो मे एक है।

भाषाविज्ञान *(हिं० पारि०)*

भाषा उच्चारण-अवयवो से उच्चरित ध्वनि-प्रतीको की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से विचारो का आदान प्रदान होता है। इस भाषा का सैद्धातिक तथा प्रायोगिक अध्ययन भाषाविज्ञान मे किया जाता है। भाषाविज्ञान की मुख्य शाखाएँ हैं 'ध्वनिविज्ञान', शब्दविज्ञान', 'रूपविज्ञान', 'वाक्यविज्ञान' तथा 'अर्थविज्ञान'। इनके अतिरिक्त भाषा की उत्पत्ति; भाषा, उपभाषा, बोली, उपबोली, आदि भाषा के विविध रूप, भाषा मे परिवर्तन के कारण; विश्व की भाषाओ का पारिवारिक सबध तथा रचना आदि की दृष्टि से वर्गीकरण; सर्वेक्षण पद्धति, लिपिविज्ञान तथा कोशविज्ञान आदि के बारे मे भी भाषाविज्ञान मे विचार किया जाता है। भाषाविज्ञान की कुछ नयी शाखाएँ शैलीविज्ञान, समाजभाषाविज्ञान, मनोभाषाविज्ञान आदि हैं। भाषाविज्ञान चार प्रकार का होता है। एककालिक भाषाविज्ञान मे किसी भाषा के किसी एक काल की सरचना का अध्ययन होता है। इसे 'सकालिक भाषाविज्ञान' भी कहते हैं। 'ऐतिहासिक भाषाविज्ञान', जैसाकि नाम से स्पष्ट है, भाषा के ऐतिहासिक विकास के अध्ययन से सबद्ध होता है। 'तुलनात्मक भाषाविज्ञान' मे दो या अधिक भाषाओ की तुलना की जाती है तथा समानताओ-असमानताओ का अध्ययन-विवेचन किया जाता है। इसे अब प्राय 'व्यतिरेकी (Contrastive) भाषाविज्ञान' कहते हैं। प्रायोगिक भाषाविज्ञान मे अनुवाद, भाषाशिक्षण (मातृभाषा, अन्य भाषा, विदेशी भाषा), कोश-निर्माण, पाठ्यपुस्तक-निर्माण, आशुलिपि-निर्माण, व्याकरण निर्माण, वाणी दोष सुधार, टाइपराइटर-कुजीपटल आदि के लिए भाषा का विश्लेषण किया जाता है।

भास *(स० ले०)* [समय—चौथी-पाँचवी शती ई० पू० अथवा ईसा की तीसरी शती]

भास सस्कृत के प्रथम नाटककार हैं। कालिदास (दे०) के समय मे इनके नाटक अत्यत लोकप्रिय हो चुके थे। अपने प्रथम नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' (दे०) मे कालिदास ने कई नाटककारो के नाम गिनाए हैं, उनमे भास का नाम प्रथम है। इनके वश-परिचय तथा जीवन-वृत्त के सबध मे अधिक कुछ ज्ञात नही। कुछ लोग इनको उदयन (दे०) की कथा को अपने नाटको का वृत्त बनाने के कारण उज्जयिनी निवासी बतलाते हैं। इनके भरतवाक्यो मे 'राजसिंह' पद आने के कारण कतिपय विद्वान् इनको इसी नाम के किसी समय राजा का आश्रित मानते हैं। पर इन बातो का कोई निश्चित प्रमाण नहीं उपलब्ध

होता।

काफ़ी समय तक हमें भास के नाटकों के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं था। 1909-10 ई० में म० म० गणपति शास्त्री को भास के तेरह रूपक मिले जिनको उन्होंने 'अनंतशयन' संस्कृत-ग्रंथावली में प्रकाशित करवाया।

इनके तेरह रूपकों में से 'अविमारक' (दे०), 'उरुभंग' (दे०), 'स्वप्नवासवदत्तम्' (दे०), 'प्रतिज्ञायौगंधरायण' (दे०), 'प्रतिमा' (दे०), 'चारुदत्त', 'दूतवाक्य' (दे०), 'कर्णभार' (दे०) तथा 'मध्यमव्यायोग' (दे०) अधिक प्रसिद्ध हैं। इनमें से कुछ नाटकों की कथावस्तु का मूल स्रोत 'महाभारत' (दे०) है, कुछ का 'रामायण' (दे०) और कुछ का अर्द्ध-ऐतिहासिक घटनाएँ तथा दंतकथाएँ।

इनके अधिकांश नाटक रंगमंच को दृष्टि में रखकर लिखे गये हैं। इनमें से कुछ तो नाटक की कोटि में आते हैं, कुछ एकांकी हैं। इन सभी रूपकों में 'नाट्यशास्त्र' (दे०) द्वारा निर्दिष्ट सभी तत्त्वों का समुचित समावेश हुआ है। उनके कथानक घटनाप्रधान तथा अंतर्द्वंद्व से युक्त हैं। प्रत्येक रूपक की कथावस्तु कतिपय सार्थक घटनाओं द्वारा इस प्रकार उद्घाटित एवं विकसित की गई है कि क्रियाशीलता के साथ उसमें रस की पुष्टि भी समुचित रूप से होती गई है। ये वर्णनचातुर्य एवं नाट्यनैपुण्य में बेजोड़ हैं। इनके पात्र बड़े जीवंत हैं। अपने पौराणिक पात्रों को इन्होंने वास्तविकता एवं मनोवैज्ञानिकता के साथ चित्रित कर बड़ा प्रभावोत्पादक बना दिया है। इनके रूपकों के संवाद बड़े चुस्त, संक्षिप्त, सहज तथा नाटकीय दृष्टि से प्रभावजनक हैं।

भास्कर *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—900 ई०]

उदयन ने 'न्यायकुसुमांजलि' (दे०) के अंतर्गत भास्कर का उल्लेख किया है। भट्टोजिदीक्षित (दे०) ने 'तत्त्वविवेक टीका-विवरण' के अंतर्गत भट्ट भास्कर का संकेत किया है। पद्मपादाचार्य की 'विज्ञानदीपिका' की विवृति में भी इनका उल्लेख है। वाचस्पति मिश्र (दे०) ने 'भामती' में भी इनका उल्लेख किया है। इस प्रकार ये शंकराचार्य (दे०) के समसामयिक या किंचित् परवर्ती सिद्ध होते हैं। इनकी प्रमुख रचना 'भास्करभाष्य' है। इसके अतिरिक्त 'छांदोग्योपनिषद्' की एक व्याख्या भी भास्कर-रचित बतलाई जाती है।

भास्कराचार्य का प्रमुख सिद्धांत 'भेदाभेदवाद' है। भास्कर का सिद्धांत था कि जीव संसार-दशा में परमात्मा से भिन्न है, किंतु मोक्ष-दशा में जीव परमात्मा ही में लीन हो जाता है। इस प्रकार जीव और परमात्मा में भेद तथा अभेद दोनों हैं। भास्कर ने ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद को भी स्वीकार किया है। इस सिद्धांत के अनुसार मुक्ति के लिए ज्ञान एवं कर्म दोनों की ही आवश्यकता है। मुक्ति के लिए जिस प्रकार ज्ञान प्राप्त्यर्थ शम, दम आदि की आवश्यकता है उसी प्रकार आश्रम कर्मों का संपादन भी आवश्यक है। कर्म का त्याग किसी भी दशा में असंभव है। इसीलिए भास्कर ज्ञान एवं कर्म के समुच्चय से मोक्ष की प्राप्ति स्वीकार करते हैं। भास्कराचार्य ज्ञानकर्मसमुच्चयवाद को ही 'ब्रह्मसूत्र' (दे०) का प्रतिपाद्य विषय मानते हैं।

भास्करन्, पी० *(मल० ले०)* [जन्म—1924 ई०]

मलयाळम के यशस्वी कवि, फ़िल्म-निर्देशक और अभिनेता। आरंभ में ये साम्यवादी दल के कार्यकर्ता रहे, बाद में आकाशवाणी में नौकरी कर ली और आजकल फ़िल्म-उद्योग से संबद्ध हैं। इनके फ़िल्मी गीत लोकप्रिय हैं। इनके निर्देशन में तैयार की गई फ़िल्मों को अखिल भारतीय पुरस्कार मिले हैं। 'ओर्कुक वल्लप्पोळुम्', 'वयलार गर्जिक्कुन्नु', 'मुळ्किरीटम्' आदि इनकी प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ हैं।

भास्करन् ने चङ्ङम्पुषा (दे०) की तरह संगीतात्मक शैली में भावपूर्ण कविताएँ लिखी हैं। मानवीय शोक-भावना को उत्तरोत्तर विकास के द्वारा चरम परिणति पर पहुँचा देने का कौशल इनमें है। इन्होंने क्रांतिकारी रचनाएँ भी लिखी हैं।

चङ्ङम्पुषा की काव्य-शैली को उसकी सभी विशेषताओं के साथ और अधिक व्यंजना-गर्भित कर देने वाले भास्करन् का स्थान काव्य-साहित्य में अक्षुण्ण है।

भास्कर भट्ट *(मल० ले०)*

महानुभाव पंथ के प्रमुख कवियों में इनकी गणना होती है। इनकी रचनाएँ हैं—'शिशुपाल-वध' (दे०), 'विरहाष्टक'। ये दोनों क्रमशः शृंगाररस और शांत रस से परिपूर्ण काव्य हैं। मराठी में 'निर्यमक' पद्य के ये प्रवर्तक हैं। 'कृष्णचरित्र' लिखकर इन्होंने मराठी गद्य को भी परिपुष्ट किया है। भास्कर के काव्य में विद्वत्ता, कवित्व और भक्ति का त्रिवेणी-संगम था।

भास्कररामायणमु (ते० कृ०)

'भास्कररामायणमु' तेलुगु-साहित्य का एक मूर्धन्य महाकाव्य है जिसका पारायण तेलुगु प्रदेश मे बडी श्रद्धा के साथ किया जाता है। इसकी कथावस्तु वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) से ली गई है और इसे अधिकाश मे उसी का अनुवाद माना जा सकता है। परतु, इसमे अवाल्मीकीय प्रसगो को भी प्रश्रय दिया गया है और इसके निर्माण मे कवियों ने अपनी मौलिक प्रतिभा से काम लिया है। यह बात तेलुगु-साहित्य के 'महाभारत' (दे० आध्रमहाभारत) आदि बृहद काव्यो के विषय मे सत्य है कि वे केवल अनुवाद ही नही प्रतिभावान् कवियो ने उनमे अपनी मौलिक प्रतिभा का भी प्रयोग किया है। इससे वे अनुसृष्टि मे परिणत हो गये हैं। 'भास्कररामायणमु' के विषय मे भी यह बात सत्य है कि यह वाल्मीकि-'रामायण' की एक महान् अनुसृष्टि है।

'भास्कररामायणमु' का प्रणयन चार कवियो के द्वारा सपन्न हुआ है। ये कवि थे—(1) हुलक्कि भास्करुडु (दे०), (2) मल्लिकार्जुन भट्टु, (3) कुमार रुद्रदेवुडु तथा (4) अय्यलार्युडु।

रचनाक्रम इस प्रकार है—(1) बालकाड मल्लिकार्जुन भट्टु, (2) अयोध्या काड कुमार रुद्रदेवुडु, (3) अरण्य काड भास्कर कवि, (4) किष्किधा काड : मल्लिकार्जुन भट्टु, (5) सुदरकाड मल्लिकार्जुन भट्टु, (6) युद्धकाड : 1139 छदो तक हुलक्कि भास्करुडु तथा 1140 से लेकर अत तक अय्यलार्युडु।

इनमे मल्लिकार्जुन भास्कर कवि के पुत्र थे। कुमार रुद्रदेव भास्कर के शिष्य थे तथा अय्यलार्य उनके मित्र थे। बाकी तीनो कवि भास्कर से अत्यत प्रभावित थे। कुल मिलाकर 'भास्कररामायणमु' मे पिता और पुत्र की रचना सर्वाधिक है। अतएव इसका नाम 'भास्कर-रामायण' पडा होगा। 'भास्कररामायणमु' मे कुल छदो की सख्या 6081 है जिनमे से पिता और पुत्र का रचना-परिमाण 4064 छदो का है।

वैसे चारो कवियो की काव्यशैली सस्कृत-शब्द-निविड, सालकृत तथा मनमोहक है फिर भी भास्कर के अनतर, उनके पुत्र मल्लिकार्जुन को ही वरेण्य स्थान प्राप्त है।

रसनिर्वाह तथा नाटकीय सवादो की रचना मे भास्कर ने बडी कुशलता दिखाई है। रावणापहृता सीता का क्रदन 'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्' वाली शैली मे भास्कर ने किया। राम की सीता वियोग-वेदना भी बहुत ही करुणाजनक है। सौंदर्यवर्णन भी भास्कर ने बडी सुरुचि के साथ किया। श्रीराम का सौंदर्यवर्णन शूर्पणखा के शब्दो मे बडा ही हृदयहारी रहा है। अन्य कवियो की शैली भी कमनीय है। कुल मिलाकर 'भास्कर-रामायणमु' कदलीपाक समन्वित है। शब्दालकारो मे अनुप्रास की छटा पदे-पदे अनुभूयमान है।

भास्करुडु, हुलक्कि (ते० ले०)

तेलुगु-साहित्य मे अत्यत प्रसिद्ध 'भास्कररामायणमु' (दे०) हुलक्कि भास्करुडु के नाम पर ही प्रसिद्ध हुआ है। हुलक्कि भास्कर अथवा हलक्कि भास्कर के जीवनवृत्त के विषय मे निर्विवाद तथ्य उपलब्ध नही हैं। अनुश्रुति के अनुसार भास्कर का वशनाम मगलपल्लि है। राजा के आदेशानुसार कविता सुनाने पर राजा ने इन्हे ताबूल प्रदान किया था। कन्नड मे ताबूल को हुलक्कि कहते हैं। तभी से इनका नाम हुलक्कि भास्कर हो गया।

हुलक्कि भास्कर का साहित्यिक व्यक्तित्व बहुत महत्वपूर्ण है। कुछ समालोचको के अनुसार 'भास्कररामायणमु' के मूल प्रणेता मत्रि भास्कर थे जो महाकवि तिक्कना (दे०) के पितामह थे। परतु इस मत के पीछे अनावश्यक अभिमान और दुराग्रह अधिक है, ऐतिहासिक सत्य कम। अत अब प्राय यह मत स्वीकृत है कि हुलक्कि भास्कर ही 'रामायण' के प्रधान प्रणेता थे और मत्रि भास्कर से 'रामायण' का कोई सबध नही है।

हुलक्कि भास्कर ने अपनी कृति को अपने आश्रयदाता राजा साहिणी मारन्ना को समर्पित किया। साहिणी मारन्ना तेरहवी तथा चौदहवी शतियो के सधिकाल मे विद्यमान एक सामत था। 'भास्कररामायणमु' एककर्तृका कृति नही है, बहुकर्तृका है। भास्कर कवि ने इसके प्रणयन मे अपने पुत्र, छात्र तथा मित्र का भी योगदान स्वीकार किया। इस प्रकार 'भास्कररामायणमु' चार कवियों द्वारा रची गई है।

हुलक्कि भास्कर ने अरण्य काड तथा युद्ध काड का लगभग आधा भाग लिखा था। इनका रचना परिमाण कुल 1874 छदो का है। अरण्य काड को इन्होंने दो आश्वासों मे लिखा है। इसकी छद-सख्या 784 है। भास्कर कवि अपने कथनानुसार 'सकलसुकविजन विनुत यशस्कर भास्कर थे। इससे पता चलता है कि कवि के रूप मे इनकी मान्यता बहुत थी।

कवि की कविता-शैली मनोज्ञ है। वह वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) का अनुवाद होते हुए भी कोरा अनुवाद नहीं है। कवि ने अपनी प्रतिभा के बल पर वर्णनों में मौलिकता का भी परिचय दिया है। यही नहीं, अपने काव्य में नये कथांशों को भी प्रश्रय दिया जो वाल्मीकि-'रामायण' में नहीं हैं। भास्कररुड पर जयदेव (दे०)-कृत 'प्रसन्नराघव' (दे०) का और अन्य रामायणीय कृतियों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

भिगारे, लक्षमण महादेव *(म० ले०)* [जन्म—1920 ई०]

इनका जन्म उत्तर सातारा के भिलवड़ी नामक स्थान में हुआ था। इन्होंने विलिंग्डन कॉलेज, सांगली तथा पूना के फर्ग्युसन कॉलेज में महाविद्यालयीन शिक्षा प्राप्त की थी। 'हरिभाऊ-चरित्र व वाङ्मय समीक्षण' पर इन्हें पी-एच० डी० की उपाधि मिली थी। आजकल कोल्हापुर में गोपाल कृष्ण गोखले कॉलेज में प्राध्यापक हैं।

'लवणाची मासोळी' नामक इनका उपन्यास प्रकाशित हो रहा है। साहित्य-संबंधी आलोचनात्मक परीक्षण 'टीकालेख-संग्रह' में संकलित है।

ये स्वातंत्र्योत्तर काल के साहित्यकार हैं।

भीम *(गु० ले०)* [समय—1485 ई० के आसपास]

ये प्राचीन जैनेतर वार्ताकार थे। इन्होंने 'सदयवत्स चरित' लिखा, जिसमें प्रसिद्ध लोक-वार्ता को काव्योपयोगी बना कर प्रस्तुत किया गया है। ठाकर असाई (दे०) के बाद लोक-वार्ता के क्षेत्र में भीम बड़े उल्लेखनीय कवि हैं।

600 पंक्तियों में रचित इस काव्य में सदेवंत सावळिंगा की कथा का सुंदर निरूपण है। इस प्रणय-कथा में वीर, शृंगार व अद्भुत रसों की योजना उत्तम और आकर्षक है। इसमें मात्रिक, वर्णिक एवं कहीं-कहीं गेय छंदों का प्रयोग भी है।

प्राचीन पद्य-वार्ताकारों में भीम महत्वपूर्ण कवि हैं।

भीम *(सं० पा०)*

यह राजा पांडु के पाँच पुत्रों में से एक था तथा इसकी माता का नाम कुंती (दे०) था। 'महाभारत' (दे०) के प्रमुख पात्रों में इसका विशेष स्थान है। यह अत्यंत बलवान् तथा बाल्यकाल से उद्दंड था। अन्य भाइयों के साथ इसने भी द्रोणाचार्य से अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की थी। गदा-युद्ध में अति निपुण था। इसके बल-शौर्य की बहुत-सी चमत्कार-पूर्ण कथाएँ प्रसिद्ध हैं। दुर्योधन (दे०) और इसके बीच आजीवन कलह बना रहा। एक बार दुर्योधन ने इसे सोते समय गंगा नदी में फेंक दिया था। लाक्षागृह से बचकर शीघ्रातिशीघ्र भाग निकलने में इसने अपने परिवार के लोगों की सर्वाधिक सहायता की थी। हिडिंब राक्षस का वध कर इसने कुंती के परामर्श से हिडिंबा राक्षसी के साथ विवाह किया तथा इससे उसे 'घटोत्कच' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। द्रौपदी पाँचों भाइयों की पत्नी होने के नाते इसकी भी पत्नी थी। इसने बकासुर का वध कर एकचक्रा नगरी की सुरक्षा की। जरासंध का भी इसने वध किया था। युधिष्ठिर (दे०) की आज्ञा से इसने पूर्व दिशा की ओर जाकर अनेक राजाओं को परास्त किया। राजसूय-यज्ञ के अवसर पर इसने पाठशाला के अधिपति के रूप में कार्य किया। द्रौपदी (दे०) के चीर-हरण के समय दुःशासन (दे०) की उच्छृंखलता का बदला चुकाने के लिए इसकी बायीं जाँघ तोड़ने और उसकी छाती फाड़कर उसका रक्त पीने की प्रतिज्ञा की थी, जिसे इसने महाभारत-युद्ध में पूरा किया। कुबेर ने भूलवश इससे विरोध किया था, किंतु बाद में इसका अति आदर-सत्कार किया। इसने द्रौपदी का हरण करने वाले जयद्रथ और उस पर बलात्कार करने वाले कीचक का वध किया। महाभारत-युद्ध में इसने अनेक शत्रु-राजाओं का वध कर अपने शौर्य और पराक्रम का परिचय दिया। युधिष्ठिर के महाप्रस्थान के समय इसका पतन हुआ। उस समय इसकी आयु एक सौ सात साल की थी।

भीम कवि, वेमुलवाडा *(ते० ले०)* [समय—बारहवीं शती ई०]

असाधारण पांडित्य और सिद्धवाणी के वरदान से संपन्न 'उद्दंड कवि' के नाम से प्रसिद्ध भीमकवि ने आंध्र के कोने-कोने में भ्रमण करके अपनी वाणी का प्रचार किया था। 'कविजनाश्रयमु', 'राघवपांडवीयमु', 'नृसिंह पुराणमु', 'शतकंठ रामायणमु' आदि कई रचनाएँ इनकी बताई जाती हैं। पर इनमें से कोई भी रचना आज पुस्तकाकार प्राप्य नहीं है। लक्षण-ग्रंथों में दिए गए उदाहरण ही इन रचनाओं के अस्तित्व के प्रमाण हैं। 'कविजनाश्रय' पिंगल से

संबधित ग्रथ है जबकि 'राघवपाडवीयमु', 'रामायण (दे०) और 'महाभारत' (दे०) दोनो इतिवृत्तो को व्यजित करनेवाला श्लेष-काव्य है। 'बसवपुराणमु' नाम की एक कन्नड काव्य-कृति भी इनकी रची हुई बताई जाती है। भीमकवि के कई फुटकर छद आध्र जनता में प्रसिद्ध हैं।

भीमसेनराव, प्रो० डी० के० *(क० ले०)* [जन्म—1904 ई०, मृत्यु—1969 ई०]

प्रो० भीमसेनराव उन कन्नड प्राध्यापको मे हैं जिन्होने अध्यापकत्व के द्वारा विद्यार्थी लोक मे लोकप्रियता तथा ठोस कार्य के द्वारा साहित्यलोक मे कीर्ति अर्जित की है। आप कन्नड, अँग्रेजी, मराठी उर्दू आदि भाषाओ के अच्छे पडित थे। बचपन से ही आपमे कन्नड सीखने की प्रबल इच्छा थी। परतु, उन दिनो इनके जन्मस्थान का रायचूर जिला हैदराबाद निज़ाम के अधीन था और वहाँ उर्दू का बोलबाला था। आपने बडे प्रयास से अपनी अभिलाषा पूर्ण की और 1929 ई० मे एम० ए० (कन्नड) किया और तदुपरात उस्मानिया विश्वविद्यालय मे कन्नड विभाग के अध्यक्ष पद पर रहकर कन्नड विभाग को विकसित किया। आपके ग्रथो में 'तेरहवीं' शती का कर्नाटकाध्र महाराष्ट्र साहित्यावलोकन', जो उस्मानिया विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ है, अधिक प्रसिद्ध है। 'शब्दमणिदर्पण', 'चायण भारत', 'कुमार कालेग' (कुमार-युद्ध), 'शिवरात्रि-माहात्म्ये' और 'गर्मगीता' आपके अप्रकाशित ग्रथ हैं। आपके लेख कन्नड, अँग्रेजी, उर्दू और तेलुगु मे प्रकाशित हुए हैं जिनकी सख्या चालीस से अधिक है। आपने शिलालेखो पर भी काम किया था। आप गभीर साहित्य चितक थे। आपकी आलोचना मे सतुलन और निबधो मे व्यक्तित्व की छाप है।

भीमा भोई *(उ० ले०)* [जन्म—1855 ई०, मृत्यु—1895 ई०]

भीमा भोई सत व तत्त्वद्रष्टा थे। इन्होने उडिया मे अलेख धर्म और अपने गुरु महिमा गोसाईं के उपदेशो का प्रचार मिशनरी के-से उत्साह से किया था। उन दिनो जब बगाल मे राजा राममोहन राय सामाजिक एव धार्मिक सुधार मे सलग्न थे, तब यह मनस्वी सत उडिया के वन-प्रदेश मे महान कार्य कर रहा था, जो प्रकाश मे नहीं आ सका है।

भीमा भोई का जन्म सबलपुर के पास रेढाखोल मे हुआ था। वे जाति के कध थे। इस नेत्रहीन, निरक्षर सत भिक्षु पर अपने उपदेशों के प्रचार का गुरुतर भार गुरु ने डाल दिया था। यह निम्नकुलोत्पन्न, निर्धन सत भिक्षु, उसी हिंदू समाज के धार्मिक पाखडो व नैतिक स्खलन और जातीयता पर कुठाराघात करता था, जिसकी भिक्षा पर उसका जीवन अवलबित था। फलत. उनका जीवन यत्रणामय रहा। किंतु इससे सत का उत्साह मद नही पडा और समाज के प्रति उसकी मागलिक भावनाओ मे कोई अतर नही आया। उज्ज्वल, उन्नत, चैतन्यमय समाज की उसकी परिकल्पना मलिन नही हुई। भीमा भोई ने एकेश्वरवाद, साधुता, सत्यवादिता एव सदाचारपूर्ण गार्हस्थिक जीवन का प्रचार किया है।

वे निरक्षर थे, अत उच्चकोटि की कलात्मकता उनके काव्य मे नही दिखाई पडती। शैली सरल व निराडबर है। तत्त्व-विवेचन की अस्पष्टता भी कही-कही मिलती है। अनेक स्थलो पर महिमागुसाईं व अलेख ब्रह्म एकाकार होकर जटिलता और दुर्बोधता की सृष्टि करते हैं। किंतु कवि की अत स्फूर्ति, ओज, पुनीत भावनाओ की सच्चाई, सकीर्णता-मुक्त मानवीयता आदि विशेषताएँ इनकी रचनाओ को आलोक मडित करती हैं। 'स्तुति चिंतामणि' (दे०) 'ब्रह्मनिरूपण गीता', 'भजनमाळा', 'चउतिशा' (दे०)आदि इनकी रचनाएँ हैं।

भीष्म *(स० पा०)*

इसका मूल नाम देवव्रत था। यह शातनु के द्वारा गगा नदी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, अत इसके अन्य नाम हैं, गागेय, भागीरथी पुत्र आदि। शातनु हस्तिनापुर का राजा था। उसके सुख के लिए आजन्म ब्रह्मचारी रहने की भीषण (भयकर) प्रतिज्ञा करने के कारण यह 'भीष्म' कहलाया। वसिष्ठ से इसने समस्त वेदो का अध्ययन किया, तथा बृहस्पति और शुक्राचार्य से अस्त्र-शस्त्र-विद्या सीखी। अपनी विमाता सत्यवती के दो पुत्रो चित्रागद और विचित्रवीर्य मे से चित्रागद को राज्य गद्दी पर बैठाकर भीष्म राज्य-कार्य चलाता रहा। अपनी विमाता पर कुदृष्टि रखने वाले राजा उग्रायुध का इसने वध किया। काशिराज की तीन कन्याओ—अबा, अबिका और अबालिका का हरण कर इसने अतिम दो कन्याओ स अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य का विवाह कर दिया। महाभारत के युद्ध मे भीष्म ने दुर्योधन (दे०) को अनेक बार सम-

समझाया कि वह पांडवों से युद्ध न करे, परंतु वह न माना। अंततः इसे कौरव-पक्ष सेना का सेनापति बनना पड़ा। इसने अपनी सेना को विभिन्न श्रेणियों में सुव्यवस्थित कर दिया था। इन्हीं दिनों भीष्म और कर्ण (दे०) का—यद्यपि ये दोनों कौरव पक्ष में थे—पारस्परिक वाक्कलह सदा चलता रहता था और दुर्योधन ने इस कलह को दूर करने का सदा प्रयास किया, किंतु सफल न हुआ। कौरव-सेना में इसके सैन्य-संचालन की सुव्यवस्था का परिणाम यह हुआ कि आरंभ के दस दिन तक पांडवों को विजय की आशा न रही, और यहाँ तक कि अर्जुन (दे०) और इसके बीच युद्ध में अर्जुन मूछित हो गया और इसी कारण श्रीकृष्ण (दे०) को भी अस्त्र ग्रहण करना पड़ा। दसवें दिन श्रीकृष्ण के परामर्श से तथा स्वयं भीष्म के बताये हुए उपाय से अर्जुन ने शिखंडी को सामने रखकर भीष्म को पराजित किया। रथ से गिरकर बाणों पर टिके हुए भीष्म के सिर के लिए तकिया बनाने के लिए अर्जुन ने तीन बाण भूमि में पिरो दिए तथा शर-प्रहार द्वारा गंगा नदी की जलधारा का जल इसे पिलाया। अर्जुन की इस सेवा से भीष्म अति प्रसन्न हुआ। इस अंतिम समय में कर्ण को भी इसने दृढ़ आलिंगन कर उसे सदुपदेश दिये। जब तक सूर्य दक्षिणायन में रहा, तब तक अपने प्राण इसने इच्छा-बल से रोके रखे। सूर्य के उत्तरायण में आ जाने पर इसने अपने प्राण त्याग दिये। दृढ़ प्रतिज्ञा और नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के उदाहरणस्वरूप भीष्म सदा के लिए अमर है।

मुजंगनाथ *(म० पा०)*

मुजंगनाथ गोविंद बल्लाल देवल (दे०) के 'संगीत शारदा' नामक नाटक का प्रतिनायक है। जीवन के अंतिम प्रहरों में अपनी अतुलित संपत्ति के उत्तराधिकार की चिंता से ग्रस्त होने के कारण वह विवाह के लिए लालायित है। अपनी इस इच्छा के कारण ही इसे समाज का उपहास भी सहना पड़ता है। भद्रेश्वर दीक्षित के सद्-परामर्श के कारण ही अपने श्वेत केशों को काला कर लेता है। नकली दाँत लगवा कर तथा शक्तिवर्धक खाद्य पदार्थों का सेवन कर अपनी आयु से कम दिखने का प्रयत्न करता है। लोगों द्वारा 'बुढ़ऊ' कहा जाने पर इसका मन बार-बार विद्रोह कर उठता है—'नहीं, मैं कहीं बुड्ढा दिखाई देता हूँ ?' भद्रेश्वर दीक्षित के सांत्वना-भरे शब्दों से इसका कृपण हृदय उदार हो उठता है। विवाह के भव्य स्वप्नों की रंगीनियों में यह मुक्त हस्त से धन लुटाने लगता है। कांचन भट्ट को प्रचुर धन का लोभ देकर यह शारदा से विवाह की सहमति प्राप्त कर लेता है। साक्षात्कार को आई शारदा को देखकर इसके संयम का बाँध टूट जाता है, किंतु शारदा के प्रतिशोध तथा पिता को बुलाने की बात से इसका उत्साह न केवल ठंडा पड़ता है, बल्कि यह अपने को दंड देने के लिए स्वयं अपने मुँह पर थप्पड़ मारने लगता है। स्वयं के थप्पड़ों के आवेश में उसके नकली दाँत निकल कर गिर पड़ते हैं, परंतु इतने पर भी वह साहस नहीं छोड़ता। भद्रेश्वर के सहयोग से यह कांचन भट्ट को शारदा से विवाह के लिए तैयार कर लेता है, परंतु विवाह-वेदी से उसे उठ जाना पड़ता है। अभियोग में भद्रेश्वर द्वारा फँसाए गए कोदंड के उपस्थित होने पर मुजंगनाथ के कश्यप गोत्रीय होने के रहस्योद्घाटन तथा उपस्थित समुदाय द्वारा सगोत्री विवाह-विरोध के कारण इसकी बलवती इच्छा अतृप्त ही रह जाती है।

मुजंगनाथ के चरित्र का विकास सहज मानवीय आधार पर हुआ है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति-हेतु ही यह अपनी कृपणता को छोड़ मुक्त हस्त से धन लुटाता है। समाज के उपहास का पात्र बनता है, नानाविध उपाय करता है। इसके इन प्रयासों से नाटकीय औत्सुक्य सतत बना रहा है। सहज मानवीय आधार पर विकसित इस चरित्र के विकास के कारण यह नाटकीय प्रभावान्विति में पूर्णरूपेण सक्षम रहा है।

मुआ, कृष्ण *(अ० ले०)*

इनकी कहानियाँ मुख्य रूप से असमीया की प्रसिद्ध पत्रिका 'आवाहन' में प्रकाशित हुई हैं।

कहानियों में कथावस्तु और टेकनीक पर विशेष ध्यान रहा है। अनावश्यक शब्दों और संवादों का प्रयोग नहीं है। कम समय में ही इन्होंने कहानीकार के रूप में प्रसिद्धि पा ली है।

मुआ, नकुलचंद्र *(अ० ले०)* [जन्म—1895 ई०]

जन्मस्थान—जिला शिवसागर।

ये प्रसिद्ध नाट्यकार हैं। इनके नाटक 'नुमली कुँवरी' पर असम-साहित्य-सभा ने 1965 ई० का सर्वश्रेष्ठ नाटक-पुरस्कार दिया है।

प्रकाशित रचनाएँ—'बहागी' (लोकगीत-संग्रह) (1923); नाटक : 'बदन बर फुकन' (1927), 'चंद्रकांत-

सिंह' (1931), 'विद्रोही मराण' (1938), 'नुमली कुँवरी' (1965), कहानी 'चोरां चोवार चरा' (1918), 'जोनोबाली' (1933), 'गल्पर शराइ' (1962), निबंध 'बारमुत्रार चमुबुरजी' (1960)।

इनके दो नाटक 'बदन बर फुकन' और 'चद्रकांतसिंह' असम के गौरव का वर्णन करते हैं। इन्होंने अपने ऐतिहासिक नाटको मे कुछ ऐसे पात्रो और स्थितियों का चित्रण भी किया जो काल्पनिक होते हुए भी ऐतिहासिक वातावरण को सजीव कर देते हैं। इनकी कहानियो मे रोमास एव नगर जीवन का चित्रण है। इन पर फ्रायड का प्रभाव भी देखा जाता है। इनके वर्णन सयत हैं। रचनाओ मे जटिलता नही है, बीच-बीच मे कथ्य भाषा का माधुर्य है।

नकुल जी असमीया के प्रसिद्ध वियोगात नाट्यकार माने जाते हैं।

भुञा, सूर्यकुमार *(अ० ले०)* [*जन्म—1894 ई०, मृत्यु—* 1964 ई०]

जन्मस्थान—नौगाँव।

इन्होने कलकत्ता से *बी०ए०, एम०ए०* और बी० एल० परीक्षाएँ उत्तीर्ण की थी। 1938 ई० और 1951 ई० मे इन्होने लदन विश्वविद्यालय से क्रमश पी-एच० डी० और डी० लिट्० की उपाधियाँ प्राप्त की थी। इन्होंने अनेक पदो पर कार्य किया था तथा रायबहादुर आदि अनेक खिताब पाए थे। ये 1952 54 ई० तक भारतीय राज्य सभा के सदस्य रहे थे। 1957 ई० मे ये गौहाटी विश्वविद्यालय के वाइस चासलर नियुक्त हुए थे। 1956 ई० मे इन्हे *पद्मश्री से विभूषित किया गया था।*

प्रकाशित ग्रथ—काव्य 'निम्मीलि' (1918), कहानी 'पचली' (1927), जीवनी 'गोपालकृष्ण गोखले' *(1916)*, ऐतिहासिक *निबंध सग्रह* 'कोंवर विद्रोह' (1948), 'रमणी गाभरू' (1951), 'मीर जुमलार असम आक्रमण' (1950), 'बुरजीर बाणी' (1951), संपादन: 'बरफुकनर गीतर संग्रह' (1924)।

'निम्मीलि' काव्य-सग्रह मे इनकी दो एक कविताओ मे सूक्ष्म काव्यानुभूति है। इन कविताओ मे 'आपोनसुर' विशेष महत्वपूर्ण है। श्री रवीद्रनाथ (दे०) ठाकुर जिस प्रकार भानुसिंह के नाम से पुरानी शैली की वैष्णव कविताएँ लिखा करते थे, उसी प्रकार इन्होने भी भुञा भानुनदन के नाम से लिखा था। ये वस्तुत इतिहास और ऐतिहासिक निबध-लेखक थे। इन्होने ऐतिहासिक विषयो पर सरस निबध लिखे हैं, जिनमे प्राचीन और *नवीन का समन्वय हुआ है।*

भुवन *(हिं० पा०)*

यह मध्य वर्ग का बुद्धिजीवी एव अध्यवसायी व्यक्ति तथा अज्ञेय (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'नदी के द्वीप' (दे०) का नायक है। यद्यपि यह भौतिकी मे डाक्टर है किंतु उपन्यासकार ने इसके वैज्ञानिक रूप का नही अपितु अतर्मन की घुमडन को रूपायित किया है। मध्यवर्गीय सस्कारो के फलस्वरूप इसमे सकोच एव झिझक तथा विज्ञान के अध्ययन के फलस्वरूप आत्मलीनता के गुण सहज ही आ गए हैं। कर्त्तव्य-भावना तथा अनौचित्य के प्रति भय भी सस्कारो के कारण ही है। इसके अतर्मन मे यौन प्रवृत्ति तथा विवेक बुद्धि का परस्पर सघर्ष चलता रहता है। रेखा इसकी यौन-प्रवृत्ति को उत्तेजित करती है तो गौरा (दे०) विवेक-बुद्धि को। अतत यह गौरा को स्वीकार कर लेता जिसके पीछे काम-भावना की उत्तेजना न होकर गौरा के प्रेम की गहराई ही है। यह विवाह को जीवन का सहज *धर्म मानता है तथा व्यक्ति की प्रगति तथा उत्तम अभि*व्यक्ति की एक स्वाभाविक सीढी।

भुवनविजयमु *(तें० पारि०)*

'आध्र-भोज' की उपाधि से विभूषित श्रीकृष्ण देवरायलु (दे०), (शासन-काल—1509-1530 ई०) के दरबार मे आयोजित साहित्यिक सभा का नाम ही 'भुवनविजय' है। *श्रीकृष्णदेवरायलु ने मुसलमानी शासकों तथा अन्य राजाओ को जीतकर कटक से लेकर कन्याकुमारी तक अपने राज्य का विस्तार किया था।* 'भुवनविजयमु' साहित्यिक *क्षेत्र तथा साम्राज्य-क्षेत्र मे इनकी अखड विजय का* उपलक्षक है। उक्त सभा के अतर्गत आठो दिशाओ मे आठ विशिष्ट स्थान निर्धारित रहते थे। अत्यत प्रतिभाशाली आठ कवि उन पर विराजमान रहते थे। पृथ्वी की आठों दिशाओ मे जैसे आठ दिग्गज हैं वैसे ही ये आठ महाकवि साहित्य-जगत् के आधार माने जाते थे। इसीलिए ये 'अष्टदिग्गज' के नाम से विख्यात हुए हैं। इनमे पेद्दन्ना (दे०), तिम्मना (दे०), धूर्जटि (दे०), मल्लना (दे०) तथा रामभद्रुडु (दे०) नामक कवियो के बारे मे विवाद नही है किंतु तनालि रामकृष्ण कवि (दे०), भट्टु-

मूर्ति (दे० रामराजभूषणुडु) तथा पिंगळि सूरना (दे०) के बारे में मतभेद है। उक्त साहित्यिक-सभा के कार्यक्रम के अंतर्गत कविता-पाठ, आलोचना, कृति-समर्पण, नूतन कृति-निर्माण की प्रेरणा, कवि-सम्मान, छलोक्ति, समस्या-पूरण, आशुकविता, साहित्य-संबंधी अन्य उत्सव सम्मिलित थे। हर साल 'भुवनविजयमु' का विशेष आयोजन वसंत के आगमन की तरह शोभा देता था।

आंध्र-जाति तथा आंध्र-साहित्य के इतिहास में सोलहवीं शती के उपर्युक्त 'भुवनविजयमु' का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है।

भूत ने भ्रम *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1924 ई०]

लेखक—पद्मनाथ गोहाञि बरुवा (दे०) इस सुधारवादी प्रहसन में समाज के अंधविश्वासों और रूढ़िवादिता की खिल्ली उड़ाई गई है। इसमें हास्य की सृष्टि सुंदर ढंग से हुई है। कथा-विकास और चरित्र-चित्रण पर कम ध्यान दिया गया है।

भूतरायर् *(मल० कृ०)*

श्री अप्पन् तंपुरान् (दे०) के इस ऐतिहासिक उपन्यास का प्रकाशन 1923 ई० में हुआ। केरल में वीरमार्तांडप्पेरुमाळ् नामक एक धूर्त नरेश राज्य करता था। उसके शासन-काल की एक घटना के आधार पर इस उपन्यास की रचना हुई है। भूतरायर् बड़ा अत्याचारी था। उसके अत्याचारों से क्षुब्ध होकर केरलीय जनता ने उसे सिंहासनच्युत कर दिया और उसके स्थान पर गुणवान्, बुद्धिमान्, चेरमान्, पेरुमाळ् को आसीन किया। यही है कथा-वस्तु। तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक-स्थिति का सुंदर-सर्वांगीण चित्रण इस कृति में हुआ है। अप्पन् तंपुरान् की उत्कृष्ट रचना के रूप में इस उपन्यास का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी गद्य-शैली अनूठी है और वर्णनों में सहजता है।

भूपति चउतिशा *(उ० कृ०)*

भूपति पंडित (दे०)-कृत 'भूपति चउतिशा' यद्यपि एक लघु काव्य है, तथापि भाव और अभिव्यंजना की दृष्टि से उत्कृष्ट है। कवि ने राधाकृष्ण-प्रेम-तत्त्व को ही सर्वश्रेष्ठ माना है। पूर्ण कामना के बिना राधाकृष्ण-प्राप्ति संभव नहीं है। इसका हर पद उच्चकोटि की भावना से संपन्न है। इसकी शैली मधुर और भाषा सर्वजन-सुलभ है।

भूपति पंडित *(उ० ले०)* [समय—अनुमानतः सत्रहवीं-अठारहवीं शती ई०]

ये अपने समय के प्रसिद्ध वैष्णव कवि थे। इनका 'प्रेमपंचामृत' काव्य उड़िया वैष्णव-साहित्य में एक समादृत रचना है। इसकी भाषा सरल है। भूपति जी ने गूढ़ वैष्णव-तत्त्वों को सर्वजन-सुलभ बनाने के लिए प्राकृत भाषा का प्रयोग किया है तथा इस लक्ष्य-सिद्धि में वे सफल रहे हैं। भूपति जी के लिए यह और भी श्रेय की बात है कि मातृभाषा उड़िया न होते हुए भी गूढ़ वैष्णव-तत्त्वों को ये इतनी सरलता से अभिव्यक्त कर सके हैं। ये मधुराभक्ति के उपासक थे।

भूपति पश्चिम के निवासी तथा सारस्वत ब्राह्मण थे, और राजा दिव्यसिंह देव के शासन-काल में उड़ीसा आए थे। इनकी कवि-प्रतिभा का परिचय पाकर दिव्यसिंह ने इन्हें सम्मानित किया था और ये कटक ज़िले के रथिपुर स्थान में बस गये थे इन्हें हिंदी और बँगला का भी ज्ञान था। इनकी अनेक रचनाओं में 'उद्धव चउतिशा', 'भूपति चउतिशा' (दे०) अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

भूमिकन्या सीता *(म० कृ०)*

राम द्वारा सीता के परित्याग की पौराणिक कथा पर आलोच्य नाटक की संरचना हुई है। वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) एवं भवभूति-कृत 'उत्तररामचरितम्' (दे०) से कथाधार लेकर भी मामा वरेरकर (दे०) ने प्रख्यात कथा में यत्किंचित् परिवर्तन किए हैं। राम-कथा के पौराणिक पात्रों के माध्यम से अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन मात्र इनका उद्देश्य रहा है जिसके परिणामस्वरूप मूल कथा का स्वरूप विकृत हो गया है। आलोच्य नाटक के राम समाज में प्रचलित सीता के चारित्रिक प्रवाद के उपरांत उनके परित्याग का निर्णय एकाकी न कर लक्ष्मण और सुमंत्र के परामर्श से करते हैं। उर्मिला द्वारा विरोध, सुमंत्र का पद-त्याग, सीता-शंबूक भेंट, वाल्मीकि-आश्रम से सीता को प्रश्रय न मिलना, शंबूक से संबद्ध घटना-प्रसंगों में आर्य-अनार्यों के संघर्ष आदि मौलिक उद्‌भावनाएँ नाटककार द्वारा की गई हैं। शंबूक से संबद्ध कथा-प्रसंग समसामयिक

परिस्थितियो के चित्रण की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।

प्रधान कथा के साथ तीन उपकथानको के सयोजन से नाट्य कथा विशृखलित जान पडती है, परतु अत एव बाह्य सघर्षों पर आधारित चरित्र-निरूपण के कारण कथा सगठन सबल बन पडा है। सहज मार्मिक भाषा से युक्त सवाद योजना मे नाटकीय चाचल्य है। प्रवाहपूर्ण सुबोध सरल भाषा पात्र, प्रसग एव रसानुकूल होने के कारण नाटकीय प्रभावान्विति को बनाए रखने मे पूर्णरूपेण सक्षम है।

भूले बिसरे चित्र *(हि० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1959 ई०]

भगवतीचरण वर्मा (दे०) के इस बृहद् उपन्यास मे भारतीय सामतीय जीवन के एक प्रतिनिधि परिवार की चार पीढियो के माध्यम से 1850 ई० से 1930 ई० तक के भारतीय जीवन की बदलती हुई राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियो एव जीवन-मूल्यो का अत्यत सशक्त चित्रण किया गया है। यह कालखड भारत के सामाजिक, राजनीतिक तथा सास्कृतिक जीवन के इतिहास मे अत्यत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यही वह काल-खड है जब स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए आदोलन प्रारभ हुए, पनपे और समूचे देश मे फैले। इन आदोलनो का हमारे देश के प्रत्येक वर्ग पर प्रभाव पडा और हमारे जीवन मूल्यो मे आमूल-चूल परिवर्तन हुआ। पाँच खडो मे विभक्त इस उपन्यास मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व ज्वालाप्रसाद का है। यही उपन्यास की कथा को आरभ से अत तक जोडते हैं। उपन्यास के पहले खड मे गाँव के सूदखोर महाजन प्रभुदयाल और बिगडे हुए रईस ठाकुर गजराजसिंह की अहमन्यता के उस सघर्ष को चित्रित किया गया है जिसमे ये दोनो अतत अपने प्राण गँवा बैठते हैं। इसी खड मे ज्वालाप्रसाद तथा प्रभुदयाल की विधवा पत्नी जैदेई के पारस्परिक आकर्षण तथा रति सबधो का चित्रण भी किया गया है। दूसरे खड मे ज्वालाप्रसाद को सयुक्त परिवार के बोझ मे पिसते और अततः इस शोषण-चक्र से मुक्त होते हुए चित्रित किया गया है। ज्वालाप्रसाद के पुत्र गगाप्रसाद के विलासी जीवन तथा जैदेई की मृत्यु आदि घटनाओ से उपन्यास के तीसरे खड का ताना-बाना बुना गया है। गगाप्रसाद की मानसिक पीडा और ऊहापोह का निरूपण चौथे खड मे हुआ है और पाँचवें खड मे उसकी मृत्यु दिखलाई गई है। इस प्रकार प्रस्तुत उपन्यास मे लेखक ने विवेच्य युग के भारतीय समाज का अत्यत कलात्मक प्रत्यकन किया है। सामत वर्ग के लोग सैक्स तथा अर्थ लाभ के पीछे अपना दीन-ईमान, सतीत्व, मर्यादा आदि किस प्रकार नीलाम कर देते हैं यह तो इस उपन्यास से ज्ञात होता ही है, इसके साथ-साथ ब्राह्मणों की अहमन्यतापूर्ण स्वार्थपरता, बनियो की शोषण वृत्ति, ठाकुरो की सीनाजोरी, कायस्थो की धूर्तता तथा साहूकारो और जमीदारो के पारस्परिक द्वद्व का वास्तविक परिचय भी प्राप्त होता है। लेखक ने सामतीय परिवेश मे पलने वाली वितृष्णा, घृणा, ईर्ष्या आदि का भी अत्यत सशक्त चित्रण किया है।

भूषण *(हि० ले०)* [अस्तित्व-काल—1613 ई० से 1715 ई०]

रीतिकालीन कवियो में वीररस की कविता का अनुसरण करने वालो मे भूषण का नाम अग्रगण्य है। ये रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे और यमुना के किनारे तिकवाँपुर (त्रिविक्रमपुर) मे रहते थे। चितामणि, भूषण, मतिराम, नीलकठ अथवा जटाशकर को इनका सहोदर कहा जाता है। यद्यपि इनके भ्रातृत्व के सबध मे विद्वानो मे विवाद है। भूषण शिवाजी के समकालीन थे और ये छत्रपति शिवाजी तथा छत्रसाल दोनो के ही दरबार मे रहे।

'शिवराज भूषण' (दे०), 'शिवा बावनी' (दे०) और 'छत्रसाल दशक' इनके प्रसिद्ध ग्रथ हैं। 'भूषण हजारा', 'भूषण उल्लास' और 'दूषण उल्लास' अभी तक अप्राप्त हैं। 'शिवराज भूषण' का रचना-काल 1673 ई० दिया गया है और इसमे शिवाजी से सबद्ध जो घटनाएँ दी गई हैं वे भी लगभग इसी काल की हैं। इसमे 384 छद हैं, दोहो मे अलकारो की परिभाषा तथा कवित्त एव सवैया छदो मे उनके उदाहरण दिए गये हैं। इसी तरह 'शिवा बावनी' स 52 छदो मे शिवाजी के शौर्य एव 'छत्रसाल दशक' मे दस छदो मे छत्रसाल की तलवार, उनके बाहुबल एव दानवीरता को सराहा गया है। भूषण की सारी रचनाएँ मुक्तक-पद्धति मे लिखी गई हैं। रीतिकार के रूप मे इन्हे सफलता नही मिली है, पर शुद्ध कवित्व की दृष्टि से इनका प्रमुख स्थान है। इनकी साहित्यिक भाषा व्रज है, जिसमे मुसलमानो के सदर्भ मे अरबी-फारसी के शब्दो का भी प्रयोग किया गया है। बुदेलखडी, बैसवाडी एव अतर्वेदी के शब्द भी इनकी भाषा मे पाये जाते हैं। ओज गुण की केंद्रबिंदु बनी भूषण की कविता यो तो रीति का निर्वाह करने के लिए लिखी गई है, पर उनमे मन को उल्लसित करने की अपरिमित शक्ति

है और उनकी कविता का यही सही विश्लेषण है। भूषण को याद भी इसीलिए किया जाता है।

भूसुनूरमठ (क० ले०)

पाठानुसंधान तथा ग्रंथ-संपादन के क्षेत्र में जिन विद्वानों ने परिश्रम किया है उनमें भूसुनूरमठ का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके द्वारा संपादित ग्रंथ हैं—'अदृश' : प्रौढ़राय का काव्य, 'गौरवांक' : मोलिगे नारय्या का पुराण, 'लिंगलीला-विलासचरित्र' : प्रभुदेव का वचन साहित्य-संग्रह, 'शून्यसंपादने' (दे०); 'जगज्योति बसवण्णनवर लोकप्रिय वचनगळु' तथा 'मारय्यागतु महादेवि वचनगळु' : चेनप्पा उत्तंगि जी के साथ संपादित। इनके अतिरिक्त इनका 'भवतसुधागार' भी उल्लेखनीय है।

भैया दादा (पु० पा०)

धूमकेतु (दे०) के कहानी-संग्रह 'तणखा-मंडल' (दे०) भाग 1 की कहानी 'भैया दादा' का प्रमुख पात्र भैया दादा है जिसका सही नाम बद्रीनाथ है। पच्चीस वर्ष से रेलवे क्रॉसिंग का फाटक बंद करने और खोलने की नौकरी करता है। क्रॉसिंग के पास ही उसकी छोटी-सी झोंपड़ी है जिसमें अकेला भैया दादा रहता है। परिवार के सभी सदस्य एक-एक कर चल बसे। 59 वर्ष का भैया दादा खंडहर-सी जिंदगी जीता है। रेलवे का सरिश्ते विनायकराव, अफसर होते हुए भी, भैया दादा का मित्र और शुभाकांक्षी है। भैया दादा का जीवन शांत, निर्द्वंद्व और क्रियाशील है।

एक बार क्रॉसिंग की दुर्घटना का दायित्व भैया दादा पर आ पड़ता है। ट्रैफिक सुपरिंटेंडेंट उसे कार्यमुक्त कर देता है। विनायकराव के अथक प्रयत्नों और भैया दादा के अनुनय-विनय के बावजूद साहब उसे बहाल नहीं करता। मोहवश झोंपड़ी छोड़ना उसके लिए संभव नहीं है। पर रेलवे विभाग फाटक खोलने, बंद करने के लिए दूसरे आदमी को नौकर रख लेता है और उसे भैया दादा की झोंपड़ी में रहने का आदेश देता है। विनायकराव और पानी जब झोंपड़ी में प्रवेश करते हैं तब भैया दादा का शव पाते हैं। इस प्रकार धूमकेतु ने 'भैया दादा' कहानी में भैया दादा के पात्र को दुःखांत कृति के नायक के रूप में प्रस्तुत किया है। भैया दादा का व्यक्तित्व जितना करुण है उतना ही काव्यमय है।

भैरप्पा, डा० एस० एल० (क० ले०) [जन्म—1934 ई०]

कन्नड़ उपन्यास-क्षेत्र के एक वर्चस्वी हस्ताक्षर डा० भैरप्पा हासन जिले के संत शिविर में 1934 ई० में श्रोत्रिय ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इन्होंने अपनी डाक्टरेट की उपाधि बड़ौदा विश्वविद्यालय से पाई। कन्नड़ उपन्यास के क्षितिज पर आप अचानक एक धूमकेतु के समान उदित हुए। आपके औपन्यासिक कृतित्व के गुणों—विषयगत नवीनतम निरूपण, निपुणता, अद्भुत घटना-परिवर्तन आदि—ने कन्नड़ साहित्य में एक युगांतर उपस्थित किया। ये कन्नड़ में छठे दशक की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि माने गये। अब तक इनके एक दर्जन से अधिक उपन्यास प्रकाशित हुए हैं जिनमें प्रमुख हैं—'भीमकाय', 'जलपात', 'धर्मश्री', 'वंशवृक्ष', 'तब्बलियुनीनादेमगने' तथा 'नायिय नेरळु'। 'वंशवृक्ष' (दे०) कन्नड़ उपन्यास-क्षेत्र की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में परिगणित है। प्राचीन एवं नवीन संस्कृतियों एवं मूल्यों के द्वंद्व के निरूपण में लेखक को कमाल हासिल है। उन्होंने कन्नड़ उपन्यास को नया आयाम दिया है। उसे वैचारिकता के ठोस धरातल पर प्रतिष्ठित करके एक नया मोड़ देने का श्रेय उन्हें प्राप्त है।

भोज (सं० ले०) [समय—1005-1054 ई०]

परमारवंशीय भोज धारा के शासक थे। वे कवि और साहित्य के महान् आश्रयदाता तथा स्वयं साहित्य-स्रष्टा थे। इसीलिए इन्हें कविबांधव कहा गया है। इनका स्थिति-काल ग्यारहवीं शती का पूर्वार्ध है।

राजा भोज बहुमुखी विद्वान् थे। उन्होंने विविध विषयों पर अनेक विशाल और लघु ग्रंथ लिखे। कहा जाता है कि भोज ने मध्यकालीन भारत के सभी वैज्ञानिक विषयों पर 84 ग्रंथ लिखे। अलंकारशास्त्र, धर्मशास्त्र, योगशास्त्र, वैद्यक, व्याकरण, ज्योतिष, स्थापत्य आदि विषयों से संबंधित इनके ग्रंथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी प्रमुख कृतियाँ ये हैं—'सरस्वती कंठाभरण' (दे०), 'शृंगारप्रकाश' (दे०) (दोनों अलंकारशास्त्र-विषयक), 'समरांगण सूत्रधार' (स्थापत्य-विषयक), 'युक्तिकल्पतरु' (नीति-विषयक), 'तत्त्वप्रकाश' (धर्म-दर्शन-विषयक), राजमृगांक' 'राजमार्तंड' (योग-सूत्र की टीका), (खगोल-विषयक) आदि। 'सरस्वतीकंठाभरण' नाम से इनका व्याकरण का ग्रंथ है।

अनेक विषयों के लेखक, विद्या के आश्रयदाता एवं विद्वान नृपति होने के कारण भोज की कीर्ति भारतीय

मानस मे आज तक प्रतिष्ठित है। साहित्यशास्त्र के क्षेत्र मे उनकी कीर्ति का मूलाधार उनकी दो कृतियाँ हैं—'सरस्वती-कठाभरण' और 'शृगारप्रकाश'। ये दोनो ग्रथ मौलिक कम, सग्रहात्मक अधिक हैं। 'सरस्वतीकठाभरण' पाँच परिच्छेदो मे विभक्त है तथा उसमे काव्यशास्त्र के समग्र तत्त्वो का प्रतिपादन किया गया है। 'शृगारप्रकाश' 36 प्रकाशो मे विभक्त है। (इसके केवल तीन ही प्रकाश अभी प्रकाशित हुए हैं। यह सस्कृत-काव्यशास्त्र का विशालतम ग्रथ है। इसमे काव्यशास्त्र और नाट्यशास्त्र दोनो विषयो का सागोपाग प्रतिपादन किया गया है। शृगार रस के सबध मे भोज की अपनी मौलिक मान्यता है जिसका प्रतिपादन सरस्वती कठाभरण' मे सक्षिप्त रूप मे और 'शृगारप्रकाश' मे व्यापक रूप मे किया गया है। यद्यपि इन्होंने परपरानुसार आठो रसो का परिगणन किया है परतु उनकी मान्यता है कि शृगार ही एकमात्र रस है जो अभिमान और अहकार से अभिन्न है तथा सभी रसो का मूल है।

भोज की इन दोनो कृतियो मे प्राचीन मतो का चयन बडी निपुणता से किया है। प्राचीन और नवीन मतो के समन्वय तथा यथास्थान अपनी मौलिकता के उपादान मे भोज ने अपना वैदग्ध्य दिखाया है। अलकारशास्त्र के क्षेत्र मे शृगार रस को एकमात्र और मूल रस मानकर उन्होने एक सर्वथा, नवीन, मौलिक और विलक्षण मान्यता स्थापित की है।

भोजप्रबध *(स० कृ०)* *[समय—सोलहवी शती का उत्तरार्द्ध]*

'भोजप्रबध' बल्लाल द्वारा रचित सस्कृत-साहित्य का प्रसिद्ध गद्यकाव्य है। बल्लाल के सबध मे विशेष जानकारी प्राप्त नही होती। एक परपरा के अनुसार इनका नाम बल्लाल देव देवज्ञ या बल्लाल मिश्र था और इनका जन्म काशी मे हुआ था।

भोजप्रबध मे 89 प्रबध हैं जिनमे 328 श्लोको का विनियोग किया गया है। इसमे मालवाधिपति भोज की कथा है। इनके चाचा मुज की भी इसमे चर्चा की गई है। परमारवशी राजा भोज (दे०) और वाक्पतिराज मुज दोनो महान् साहित्यानुरागी तथा विद्वान् थे।

इसमे बल्लाल ने गद्यमय कथा मे प्राचीन कवियो के पद्यो का चयन किया है। कुछ पद्य उनके अपने भी प्रतीत होते हैं। इस ग्रथ मे ऐतिहासिक तथ्यो पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। इसमे राजा भोज-सबधी अनेक कथाएँ सगृहीत हैं। यह ग्रथ नीति तथा काव्य का मनोहारी मिश्रण है। इसकी गणना सुभाषित ग्रथो मे होती है। इसके प्रकृति-चित्रण-सबधी पद्य विशेष चमत्कारपूर्ण हैं। इसका गद्य अत्यत प्रवाहपूर्ण तथा सरस है।

भोजराजीयमु *(त० कृ०)* *[रचना-काल—पद्रहवी शती ई०]*

इसके लेखक का नाम अनतामात्युडु है। 'भोजराजीयमु' सात आश्वासो का काव्य है। विक्रमार्क की कथाओ की तरह प्रसिद्ध भोजराज की कथाएँ इस काव्य मे वर्णित हैं। प्रसगवश कई अन्य कथाओ का भी इसमे प्रवेश हुआ है। गो-व्याघ्र-सवाद जैसी कथाएँ इसी प्रकार की हैं। नीत्युपदेश के साथ इसमे करुण रस का मार्मिक चित्रण किया गया है। शृगार-सबधी वर्णनो मे भी औचित्य का पालन किया गया है। भाषा सरल, सरस तथा मुहावरेदार है।

भोजो *(गु० ले०)* [समय—1785-1850 ई०]

ये सौराष्ट्र के अमरेली जिले के फतहपुर ग्राम के निवासी थे। ये पटेल (कृषक) जाति के थे। इन्होंने 12 वर्ष तक कठोर तप किया था और केवल दुग्धाहार पर ही रहकर हरि-नाम-स्मरण किया था। ये निरक्षर थे, किंतु आत्मानुभव का तेज इन्हे प्राप्त था। समाज की विकृतियो को दूर करने के लिए इन्होने अपनी काव्य-वाणी के चाबुक चलाये जो 'भोजा भगत ना चाबखा' के नाम से प्रसिद्ध थे।

'चेलैया आख्यान', 'नानी भक्तमाळ', 'ब्रह्मबोध', 'बावन अक्षर' तथा 'कक्को' आदि इनकी रचनाएँ हैं। 'काचबा-काचबी भजन नु' बहुत प्रसिद्ध है।

इन्होन प्रभातियाँ, होरी, काफी आदि गेय पदो का आश्रय लिया है तथा युद्ध के रूपक बाँधे हैं। कबीर की भाँति इन्होने भी भाषा की परवाह नही की। इनकी भाषा अक्खड, कठोर व व्यग्यपूर्ण है। इनके रचे कुछ पद हिंदी मे भी प्राप्त होते हैं।

भोनजीरूधर *(गु० पा०)*

स्वामी प्रानद (दे०) ने छोटे मानवो की महानता की सत्यकथाएँ लिखी हैं। उन कथाओ में भोनजीरूधर की कहानी के नायक भोनजी के चरित्र को लेखक ने निरूपित किया है। उसने हरिजनो के प्रति अन्याय के विरुद्ध क़दम उठाया था, इसलिए सारे गाँव का विरोध उसे सहना पडता है। गाँव वाले उसका सपूर्ण बहिष्कार करते

हैं, यहाँ तक कि उसकी पत्नी बीमार पडती है तो कोई दवा तक नहीं देता। पत्नी की मृत्यु के बाद अंत्येष्टि संस्कार भी उसे अकेले ही करना पडता है। सारा जीवन अपने सिद्धांतों के लिए उसे दुख झेलना पडता है पर उसे इसका तनिक भी दुख नहीं। यह पात्र गुजरात में वीरता का प्रतीक बन गया है।

मंकुतिम्मनकग्ग *(क० कृ०)*

कन्नड के धीमंत कवि डा० डी० वी० गुंडप्पा (दे०) की श्रेष्ठतम कृति है 'मंकुतिम्मनकग्ग'। इसमें करीब एक हजार मुक्तक हैं। इसे हम 'नये युग की गीता' कह सकते हैं। पाश्चात्य एवं प्राच्य संस्कृति के सार-रूप ने यहाँ काव्य-देह धारण कर ली है। इसे हम एक बौद्धिक विक्रम एवं साहित्यिक साहस कह सकते हैं। गुंडप्पा बहुत बडे विचारक हैं। उनके विचारों में एक ओर उपनिषद्, वेदांत आदि का आसव है तो दूसरी ओर अरस्तू, मिल, शेक्सपियर, कीट्स, शेली आदि पाश्चात्य मनीषियों का सार है। अपने को मंकुतिम्म (मूर्ख तिम्म=लक्कडचंद) कहने वाले एक गँवई पाठशाला के गुरु द्वारा लिखित अनगढ़ बातों की अनगढ पुस्तक ही यह 'कग्ग' है। इसमें कहानी नहीं, कला नहीं, चरित्र भी नहीं है। किंतु जीवन में नित्य निरंतर उठने वाले प्रश्नों तथा उनके जो उत्तर हो सकते हैं—उनकी अत्यंत सरस व्यंजना है। दर्शन काव्य का घुँघरू पहनकर यहाँ नाचता है। चार पंक्तियों वाले इन छंदों में विलक्षण गीत है। आज के जीवन की व्याख्या यों है : देह को छोड कर अभी कहीं नहीं गये प्रेत के समान लोक चंचल है, पुराने धर्म मर गये हैं, नया धर्म अभी पैदा नहीं हुआ है। क्या इस भटकाव का कहीं अंत भी है? पुस्तकीय ज्ञान की यहाँ यों खिल्ली उड़ायी गई है : 'पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान मस्तक में धरी मणि है, चित्त में उत्पन्न स्वानुभूति ज्ञान तरु में खिले फूल हैं।' इस तरह यहाँ केवल खंडन-मंडन नहीं, तटस्थ दर्शन भी है। जीवन से जूझने की प्रेरणा है। यह एक मनीषी की ज्ञान-साधना का सार-संग्रह है। इसमें काम है, दर्शन है, इतिहास है और यह कन्नड साहित्य की एक निधि एवं प्रतिनिधि ग्रंथ है।

मंकुतिम्म (कं० पा०) [illegible] डी० वी० गुंडप्पा (दे०) की 945 पद्यों की मुक्तक रचना 'मंकुतिम्मनकग्ग' (दे०) का [illegible]

है। 'काव्य-कथा' में इसका परिचय इस प्रकार दिया गया है—'गाँव के बच्चों का गुरु, ग्रामीणों का मित्र, अच्छा ब्राह्मण, गाय के समान साधु कहलाने वाला वह अपने को मूढ तिम्मा कहता था। वह भोला-भाला था। उसमें किसी को भय नहीं था। बच्चे बड़ी आत्मीयता से उसे 'मास्टरजी' कहकर पुकारते थे। वह जो भी सिखाता, प्यार से सिखाता और सरस कथाएँ कहकर बालकों के नटखटपन को दूर करता। उसने विवाह नहीं किया था। क्यों नहीं किया था?—यह कहना मुश्किल है। वह गरीब है, सुंदर नहीं है—यह सोचकर किसी ने उसे लड़की न दी हो अथवा शायद उसने ही विवाह करने से इनकार कर दिया हो। उसकी बहन पति के यहाँ सुखी थी। वह अपनी बूढ़ी माँ के साथ वहीं रहता था। वह नौकरी से निवृत्त होकर काशी जाने के पूर्व प्यारे भानजे के लिए एक पोथी छोड गया था।' इसका चरित्र पढने से पता चलता है कि इसके जीवन के अनुभव कितने गहरे हैं, इसका चिंतन कितना गंभीर है। यह विचारशील है, जीवनद्रष्टा है और ज्ञान-पिपासु है।

मंखक *(सं० ले०)* [समय—बारहवीं शताब्दी]।

मंखक कश्मीर-नरेश जयसिंह (1128-1149) के सभा-पंडित थे। प्रसिद्ध आलंकारिक रुय्यक (दे०) इनके गुरु थे। इनका केवल एक ग्रंथ मिलता है—'श्रीकंठचरित'। इसकी रचना इन्होंने अपने पिता की आज्ञा से की थी। इसमें 25 सर्ग हैं। इसमें इन्होंने भगवान शंकर और त्रिपुर के युद्ध का बडा मार्मिक वर्णन किया है। इस एक ही काव्य से इनकी विलक्षण कवित्व-शक्ति का परिचय मिल जाता है। वस्तु के स्वल्प होने के साथ ही इसमें वर्णनों का बाहुल्य तथा प्राकृतिक चित्रण की सौंदर्यमयी गरिमा है। पदों का सुंदर विन्यास, अर्थों की मनोहर कल्पना, भक्ति का उद्रेक आदि इसकी विशेषताएँ हैं। द्वितीय सर्ग में इन्होंने कवि और काव्य की मार्मिक समीक्षा की है।

मंगरस (मंगराज) (कं० ले०)

कन्नड साहित्य में मंगरस अथवा मंगराज नाम के लेखक तीन हुए हैं। इनमें 'खगेंद्रमणिदर्पण' (दे०) के लेखक मंगरस प्रथम (समय—1960 ई० के आसपास) का नाम यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'अभिनव मंगराज' नाम से मंगराज द्वितीय ने 'मंगराज निघंटु' अथवा

'अभिनव-निघटु' की रचना की है । मगरस तृतीय सम्यक्त्व कौमुदी' (दे०), 'जयनृपकाव्य', 'नेमिजिनेश-सगति', 'पाकशास्त्र', 'प्रभजनचरिते', 'श्रीपालचरिते' आदि ग्रथो के कर्ता हैं।

मगरस प्रथम होयसळ राज्य के देवळिगे जनपद के प्रधान नगर मुगुळियपुर के अधिपति और पूज्यपाद के शिष्य थे । वे जैन धर्मावलबी थे । उन्होने अपने पूर्व कवि केशववर्णि की स्तुति की है। सुललितकविपिकवसत, विभुवशललाम, कविजनैकमित्र, अगणितगुणनिलय, अखिल विद्याजलनिधि और पचगुरुपदाबुजभृग—ये उपाधियाँ उनको प्राप्त थी। उनका ग्रथ 'खगेंद्रमणिदर्पण' एक शास्त्र ग्रथ है जिसमे आयुर्वेदशास्त्र-विषयक विषवैद्य का सोलह अधिकारो (अध्यायो) मे 'कद वृत्त मे वर्णन है। शास्त्र-ग्रथ होने पर भी उसकी भाषा शैली मे लालित्य है और कविता मनोहारी है।

मगराज, रामचद्र *(उ० पा०)*

रामचद्र मगराज फकीर मोहन सेनापति (दे०) के उपन्यास 'छमाण आठ गुठ' का महत्वपूण पात्र हैं। यह सामतवादी सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने वाला जमीदार है। इसके शोषण उत्पीडन से परिपूर्ण जीवन मे न कही विराम है और न कही अनुताप। अनाथ होने के कारण बाल्यावस्था मे गरीबी के दिन देखता हुआ जमीदारी के ऐश्वर्यपूर्ण शिखर पर पहुँचा है। इसलिए साधन का औचित्यानौचित्य तथा आहत अह की अज्ञात प्रतिक्रिया इसके चरित्र की प्रधान विशेषताएँ हैं जिनमे दुष्टा चपा की कुमत्रणाओ का भी विशेष महत्व है।

मगराज आडे समय मे थोडी आर्थिक सहायता देकर शेख दिलदार मियाँ की जमीदारी धूर्तता से हडप लेता है। प्रजा व रिश्तेदारो की सपत्ति भी चालाकी से हथिया लेता है। चपा के परामर्श से अपने प्रतिद्वद्वी बाघ-सिह का घर जला कर उसका सर्वनाश कर देता है। इसकी लोलुप दृष्टि से भागिआ और सारिआ की छह एकड जमीन भी नही बच पाती। इतना ही नही, मुकदमे के खर्चे की वसूली मे उनके घर का सामान नीलाम कराके उनके घर को भी तुडवा देता है। भागिआ पागल हो जाता है क्योकि यह उसकी अत्यत प्रिय गाय भी नही छोडता तथा सारिआ निराहार रह रोते-रोते मगराज की बाडी के पीछे मर जाती है।

मगराज के घर पर चपा का शासन रहता है। इसकी धर्मपत्नी पति के क्रूर-कुत्सित जीवन के कारण घुल-घुल कर मर जाती है।

बाद मे इसे गाय की चोरी के अपराध मे कारावास मिलता है। जेल मे पागल भागिआ आकर इसकी नाक काट लेता है। जेल से घर आने के थोडे ही दिनो बाद इसकी हत्या गोविद नाई के हाथो हो जाती है। वकील रामलाल इसकी जमीदारी ले लेता है। इधर चपा दूसरे के जरिये इसके धन का अपहरण कर लेती है। इस प्रकार उपन्यासकार ने विभिन्न रूपो मे इसे दड दिया है। यहाँ तक कि मृत्युशैया पर भी आक्रमण को उद्यत सारिआ की विकराल मूर्ति इसे दिखाई पडती है। किंतु लेखक ने इसके प्रति कही घृणा प्रदर्शित न करके पाठक के हृदय मे इसके प्रति सहानुभूति ही जगाई है। कारण, उसके विचार मे पाप घृणित है, पापी नही।

मगलकाव्य *(बँ० प्र०)*

मध्ययुगीन बँगला साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण धारा शाक्तधर्मी काव्यधारा है जिसके लिए एक दूसरा नाम बहुत प्रचलित हुआ—मगलकाव्य। लोकमगल की भावना से प्रेरित इस काव्य के रचयिताओ ने किसी एक देवता के माहात्म्य का कीर्तन किया है। देवताओ मे स्त्री देवता की ही प्रधानता रही—मनसा, चडी, अन्नदा। इसके अतिरिक्त धर्म एव शिव को लेकर भी काव्य रचा गया है। साधारणतया इन मगल-काव्यो मे पहले ईश्वर-वदना होती है जिसमे हिंदू मुसलमान निर्विशेष असाप्रदायिक भक्ति-भावना रहती है। दूसरे अश मे ग्रथ रचना का कारण एव कवि का आत्म परिचय रहता है। तीसरे अश मे पौराणिक देवता के साथ लौकिक देवता का सबध स्थापित *किया जाता है। चतुर्थ अश मे काव्य-वर्णित देवता की पूजा* के प्रचार के लिए किसी किसी देवता के या किसी स्वर्गवासी के शापभ्रष्ट होकर ससार मे जन्म लेने का, और फिर *उसके ऐहिक जीवन का, वर्णन किया जाता है। इस काव्य* का यही मूल कथातत्तु होता है।

मगल-काव्यो का छद 14 मात्राओ का पयार छद है। इनमे गीतो की झकार होती है। यथार्थ मानवीय चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। पुरुष, स्त्री और उनके व्यवहार की सुदर अभिव्यजना होती है। इन मगलकाव्यो मे मनसा (सर्पों की देवी)-मगल की रचना सबसे पहले हुई। मनसा (दे०)-मगल के सैकडो कवियो म सर्वप्रमुख हैं विजयगुप्त। चडी के कीर्तन गान के लिए 'चडीमगल'

(दे०) के नाम से भी बहुत से कवियों ने काव्य-रचना की जिनमें सर्वप्रमुख हैं, कविकंकण मुकुंदराम चक्रवर्ती (दे०)। अन्नदा (पार्वती)-मंगल काव्य के सर्वश्रेष्ठ रचयिता है भारतचंद्र (दे०)। इन मंगल-काव्यों के अतिरिक्त धर्म-मंगल (दे०) और शिव के स्तुतिगान के लिए शिवायन की भी नाना कवियों ने रचना की जिनमें क्रमश: घनराम चक्रवर्ती (दे०) और रामेश्वर चक्रवर्ती के नाम सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं।

मंगलदेव शास्त्री *(सं० ले०)* [जन्म—1890 ई०]।

जन्मस्थान—बदायूं (उत्तर प्रदेश)।

ये हिंदी, संस्कृत, उर्दू, अँग्रेजी, फ्रेंच तथा जर्मन भाषा के वेत्ता हैं। इनके द्वारा रचित 'ऋग्वेद (दे०) प्रातिशाख्य', 'प्रबंधप्रकाश', 'भारतीय संस्कृति का विकास', 'जीवनज्योति' आदि 40 ग्रंथ हैं। ये गवर्नमेंट संस्कृत कालेज, बनारस के प्रधानाचार्य पद पर, गुरुकुल काँगड़ी, विश्वविद्यालय के विज़ीटर के पद पर तथा संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के उपकुलपति के पद पर कार्य कर चुके हैं। इन्हें 1966 ई० में राष्ट्रपति का सम्मानपत्र प्राप्त हुआ था। संप्रति ये भारतीय संस्कृत-शोध-संस्थान, दिल्ली के निदेशक के पद पर कार्य कर रहे हैं। वैदिक-पौराणिक अनुसंधान के क्षेत्र में इनका योगदान चिरस्मरणीय रहेगा।

मंगळमाला *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1876-1942 ई०]

इसके रचयिता रामवर्मा अप्पन तंपुरान् (दे०) कोचीन राजपरिवार के सदस्य तथा आदर्श विद्या-व्यसनी थे। संस्कृत-साहित्य, व्याकरण, न्याय, आयुर्वेद आदि विषयों के अलावा अँग्रेज़ी-साहित्य पर भी इनका अच्छा अधिकार था। इनके व्यक्तिगत प्रयास से ही प्रशस्त 'रसिकरंजिनी' और 'मंगळोदयम्' पत्रिकाएँ चलीं और इन पत्रिकाओं ने 'मलयाळम्' वाङ्मय की सराहनीय सेवाएँ की थीं। श्री तंपुरान् की निजी लेखन-कला काव्य, समालोचना, अनुशीलन, इतिहास आदि विभिन्न क्षेत्रों पर केंद्रित रही थी। इनकी रचना 'मंगळमाला' पाँच खंडों में प्रकाशित है। यह एक निबंधमाला है। इसके प्रथम खंड का संबंध इतिहास से है और दूसरा साहित्य-संबंधी है। तीसरा खंड जीवनी पर आधारित है। चौथे खंड में शास्त्रों की चर्चा है। पाँचवें खंड में विविध विषय हैं। महाकवि उळ्ळूर् (दे०) ने चौथे एवं पाँचवें खंडों की विशेष प्रशंसा की है। शास्त्रादि विषयों की चर्चा के योग्य नयी शब्दावली का गठन तंपुरान् ने किया था जिनकी सूची इस ग्रंथमाला में एक साथ दी गई है।

मंगेशराव, पंजे *(क० ले०)* [जन्म—1874 ई०; मृत्यु—1937 ई०]

पंजे मंगेशराव मंगळूर ज़िले के अंतर्गत बंटवाळ के निवासी थे। इनका बाल्यकाल ग़रीबी में व्यतीत हुआ। संघर्षमय जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना कर बी० ए० उपाधि पाने के बाद ये मंगळूर राजकीय कॉलेज में अध्यापक हुए। जब एल० टी० पास हुए तब कुछ समय तक डिप्टी एजुकेशन इंस्पेक्टर और कालांतर में मडकेरी राजकीय हाईस्कूल के प्रधान अध्यापक के पद पर रहे। संगीत की गमक-कला और शिशु-साहित्य में इनकी विशेष आसक्ति थी। मंगळूर के बाल-साहित्य-मंडल के संस्थापकों में इनका नाम भी आदर के साथ लिया जाता है।

नवीन काव्य के मार्गदर्शकों में पंजे मंगेशराव भी एक थे। परंतु इन्होंने शिशु-साहित्य और कहानी-साहित्य के क्षेत्र में विशेष काम किया है। कन्नड-कहानी-साहित्य के प्रारंभकर्ता लेखकों में केरूर वासुदेवाचार्य (दे०) और मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे० मास्ति) के अतिरिक्त पंजे भी कहे जाते हैं। इनके नौ ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं—'ऐतिहासिक कथावली', 'ओड्डन ओट' (ओड्ड की दौड़), 'कन्नडदल्लि सुधारणेगळु' (कन्नड में सुधार), 'कोक्कोक्कोळि' (मुर्गी की बाँग), 'कोटिचेन्नय', 'गुडुगुडु गुम्मट-देवरू', 'प्राणिगळ प्रदेशगळु', 'मूल व्याकरण' और 'हेनु सत्तु कागे बड्वायितु' (जूँ की मौत से कौआ दुबेला हुआ)। इनमें 'मूल व्याकरण' और 'कन्नडदल्लि सुधारणेगळु' को छोड़कर शेष ग्रंथ कहानी-साहित्य और शिशु-साहित्य से संबंधित हैं। इनकी कहानियों में यद्यपि पाश्चात्य अनुकरण स्पष्ट है, तथापि दक्षिण कन्नड ज़िले के जन-जीवन के ज्वलंत चित्र प्रस्तुत करने में भी इनको सफलता मिली है।

पंजे जी 1934 ई० में रायचूर में संपन्न कन्नड-साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रहे। इन्होंने दक्षिण कन्नड ज़िले में जिस निष्ठा से कन्नड-साहित्य का प्रचार किया, वह विस्मरणीय नहीं है। कन्नड-कहानी-साहित्य के जन्मदाता के रूप में ही नहीं, कन्नड-साहित्य के निष्ठावान्

प्रचारक के रूप मे भी उनका नाम अमर रहेगा ।

मगैयरकरशियिन कादल *(त० कृ०)* [रचना-काल—बीसवी शती का प्रथम चरण]

यह तमिल के प्रसिद्ध कहानीकार व० वे० सु० अय्यर की आठ कहानियो का सग्रह है । 'मगैयरकरशियिन कादल' इस सग्रह की सर्वाधिक प्रभावशाली कहानी है *जिसके आधार पर इस सग्रह का नामकरण किया गया है।* इसमे युवती मगैयरकरशि की युवा करुणाकरन के प्रति सच्चे प्रेम की कथा वर्णित है । मार्तंडन नामक अन्य युवक मगैयरकरशि को पाने की इच्छा से करुणाकरन का वध कर देता है । अत मे चडिका-रूप धारण कर मार्तंडन का वध कर मगैयरकरशि आत्महत्या कर लेती है । 'कुळत्तगरै अरशमरम' मे तालाब के किनारे स्थित पीपल का वृक्ष रुक्मिणी नामक नारी की करुण कथा कहता है जिसने ससुराल के झगडो से तंग आकर आत्महत्या कर ली थी । 'गागेयन' और 'अळेनळक्केन' मे कहानीकार ने निजी अनुभवो का वर्णन किया है । पहली मे देश निष्कासन का दड पाने वाले देशभक्तो के दु खो का और दूसरी मे प्रथम विश्व-युद्ध से सबधित एक घटना का वर्णन है । 'अनारकली' एवं 'लैला मजनूं' मे क्रमशः सलीम-अनारकली एव लैला-मजनूं की इतिहास-प्रसिद्ध प्रेम-कथा को मौलिक और प्रभावशाली रूप मे प्रस्तुत किया गया है । 'कमल-विजयम' एक काल्पनिक प्रेम-कथा है । 'एदिरोलियाळ' मे ग्रीक पुराण की एक कथा वर्णित है ।

ये सभी कहानियाँ कथा-शिल्प की दृष्टि से सुदर हैं । घटनाओ तथा दृश्यो का वर्णन तथा पात्रो का चरित्र चित्रण प्रभावशाली है । कहानियों मे कुछ सुखात हैं और कुछ दु खात । इनके माध्यम से कहानीकार तमिल लोगो के रीति-रिवाज, विश्वास आदि के वर्णन मे और प्रेम, शोक, वीरता, त्याग, करुणा, देशप्रेम आदि भावो की अभिव्यजना मे सफल हुआ है । विभिन्न कहानियो मे शृगार, करुणादि रसो की सफल व्यजना हुई है । सभी कहानियाँ गभीर, कवित्वपूर्ण, भावपूर्ण शैली मे रचित हैं । इनकी कवित्वमयता इन्हे गद्यकाव्य के निकट पहुँचा दती है ।

यह व० वे० उ० अय्यर का एकमात्र कहानी-सग्रह है । इसमे पूर्व भी तमिल मे अनेक कहानियाँ लिखी गई परतु इन कहानियो मे ही कहानी के सभी अपेक्षित तत्त्व प्राप्त होते हैं । इसी से इसे तमिल का प्रथम कहानी-सग्रह माना जाता है ।

मचना *(ते० ले०)* [समय—तेरहवी-चौदहवी शती]

मचना ने शैवमत के प्रचार के लिए अपना जीवन अर्पित किया था । इनका 'केयूरवाहुचरित्रमु' चार सर्गों का प्रबध-काव्य है । राजशेखर (दे०) द्वारा सस्कृत मे रचित *'विद्धसालभजिका' नाटक की यह अनुकृति है ।* इस काव्य मे तथा इसके मूल-नाटक मे इतिवृत्त की समता है । किंतु पात्रो के नाम आदि भिन्न हैं । कवि ने इसमे *'पचतत्र' (दे०) की कई कहानियो को भी जोड दिया है ।* इसकी रचना औचित्यपूर्ण वर्णनो तथा नीति-प्रतिपादक कथाओ के कारण पाठक को आकृष्ट करती है । इनकी शैली सरल एव रसमय है । *शैली मे क्लिष्टान्वय या दीर्घ* समास कही भी दिखाई नही देता ।

मजरीमधुकरीयमु *(ते० कृ०)*

कोराड रामचंद्रशास्त्री (दे०)-कृत 'मंजरी-मधुकरीयमु' (र० का० 1860 ई०) तेलुगु का प्रथम मौलिक नाटक है । यह चार अंको वाली नाटिका है । इसमे मधुकर नामक राजा तथा मजरी नामक राजकुमारी के विवाह की कथा प्रधान है । इस विवाह मे चडयोगिनी नामक क्षुद्रमत्रोपासिका अनेक बाधाएँ उपस्थित करती है ।

इस नाटक की कथा कवि-कल्पना-प्रसूत है । नायक-नायिका मे प्रेम स्वप्न-दर्शन (स्वप्न मे रतिसुख प्राप्त करना) से हो जाता है ।

यह सस्कृत-नाटिका के लक्षणो के अनुकूल है । चरित्र-चित्रण की अपेक्षा कथाकथन पर विशेष ध्यान दिया गया है । भाषा पात्रोचित है ।

अभिनय के योग्य न होने पर भी, यह सफल श्रव्य-नाटक है और तेलुगु भाषा का प्रथम नाटक होने के कारण इसका ऐतिहासिक महत्व है ।

मझन *(हिं० ले०)*

इनका रचना-काल 1493 ई० के निकट बैठता है । ये सूफी कवि कुतबन (दे०) के समकालीन थे । इन्होंने कनेसर के राजकुमार मनोहर और महारस की राजकुमारी की प्रेमकथा को 'मधुमालती' (दे०) नामक रचना मे वर्णित किया है । इसमे पाँच चौपाइयो के बाद एक दोहा रखा गया है । इसकी कल्पना बडी विशुद्ध है । कहानी काफी विशद है और आध्यात्मिक प्रेम-भाव की

सुंदर व्यंजना करती है। इस ग्रंथ के आधार पर दक्षिण के कवि नसरती ने 'गुलशने इश्क' (1643 ई०) लिखा है। कवित्त (दे०)-सवैया (दे०) बनाने वाले मंडन नामक एक कवि और हुए हैं। सूफ़ी काव्य के प्रथम तीन कवियों में इनका स्थान निश्चित है।

मॅझिनीचें चरित्र *(मल० कृ०)*

मराठी साहित्य का यह एक अनुपम चरित्र-ग्रंथ है। इसके लेखक विनायक दामोदर सावरकर (दे०) हैं और इसका प्रकाशन (1907 ई०) में हुआ था।

पश्चिम के विचारक एवं क्रांतिकारी जोसेफ़ मैज़िनी के जीवन-दर्शन से प्रभावित हो यह चरित्र-ग्रंथ लिखा गया है। मैज़िनी की राज्यक्रांति के तत्त्वज्ञान से प्रभावित होकर तथा स्वातंत्र्य के संदेशवाहक विचारों के प्रसार के उद्देश्य से इस ग्रंथ की रचना हुई है।

चरित्र-लेखन के अतिरिक्त इस ग्रंथ के महत्व का कारण सावरकर द्वारा लिखित इसकी ओजस्वी प्रस्तावना है। मुक्त हृदय की आकुलता एवं स्वतंत्रता-प्राप्ति की निष्ठा को इस प्रस्तावना में लेखक ने ऐसी प्रभावशाली रीति से व्यक्त किया है कि इसे पढ़कर कई देशप्रेमी युवक आवेश से पागल हो उठे थे। यह प्रस्तावना अत्यंत उत्तेजक है जो नवयुवकों की रगों में क्रांति का जोश भरती रही। इसमें क्रांति का समर्थन एवं नवयुवकों का क्रांति के लिए आह्वान किया गया है। इस प्रकार से यह प्रस्तावना क्रांतिकारियों की 'गीता' (दे०) रही है।

इसकी प्रभावोत्पादकता एवं उग्रता इसी बात से सिद्ध है कि इस चरित्र-ग्रंथ के प्रकाशित होते ही अँग्रेज सरकार ने इसे ज़ब्त कर लिया था और 1946 ई० तक यह ग्रंथ ज़ब्त ही रहा।

मंटो के अफ़साने *(उर्दू० कृ०)*

यह उर्दू के सुप्रसिद्ध, कहानीकार (सआदत-हसन) मंटो (दे०) की कहानियों का संग्रह है। इसमें मंटो की आरंभिक कहानियाँ हैं। इसके बाद उनकी अनेक और अच्छी कहानियाँ प्रकाशित हुईं।

इन कहानियों में समाज पर तीखा व्यंग्य है। बेकारी आदि समस्याओं को लेकर समाज की दुर्दशा और उसके घिनौने रूप का अनोखा प्रभावशाली चित्रण इन कहानियों में मिलता है। भाषा में तीखापन और पैने व्यंग्य का पुट है।

मंटो अपनी कहानियों में जीवन का यथार्थ रूप प्रदर्शित करते हैं। उनकी कहानियाँ जीवन से अतीत नहीं, उसके साथ गहरे में जुड़ी हुई हैं।

मंटो, सआदत हसन *(उर्दू० ले०)*

मंटो मनोवैज्ञानिक तथा यौन समस्याओं को प्रस्तुत करने वाले अत्यंत सफल उर्दू कथाकार थे। इनकी अति यथार्थवादी कटु शैली के कारण इन पर कई प्रकार के आरोप लगाए गए तथा अभियोग भी चलाए गए। 'सेक्स' मंटो के मन-मस्तिष्क पर छाया हुआ था। उन पर फ्रायड का भी गहरा प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

मंटो ने नैतिक एवं चारित्रिक रूप से शोषित पात्रों को वाणी प्रदान की है। मंटो का उद्देश्य संभवतः यह समझाना है कि समाज के हाथों विवश होकर कुछ लोग किस प्रकार अपना मान, मर्यादा तथा लज्जा आदि बेचने को मजबूर हो जाते हैं। कामवासनाओं का बड़ा सजीव चित्रण मंटो ने किया है किंतु कहीं-कहीं वह ऐसे परिवेश के प्रति पूर्ण रूप से घृणा पैदा करने में असफल भी रहे हैं। संभवतः मंटो जैसे कथाकारों के संबंध में ही इक़बाल ने कहा था—'आह, बेचारों के आसाब पे औरत है सवार'।

प्रगतिशील साहित्य का जो लक्ष्य है—पददलितों को उभारने का—वह मंटो के यहाँ कम ही मिलता है। मंटो की शैली में प्रवाह है, गहराई नहीं। प्रायः एक ही जैसी बातों की आवृत्ति है। 'ठंडा गोश्त', 'तीन आने', 'खोल दो', 'टोबा टेकसिंह' आदि मंटो की बहुत प्रसिद्ध कहानियाँ हैं।

मंडन मिश्र *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—800 ई०]

मंडन मिश्र की जन्मभूमि माहिष्मती पुरी थी। यह विवादास्पद है कि मंडन मिश्र, सुरेश्वराचार्य और विश्व रूप एक ही थे। मंडन मिश्र और शंकराचार्य (दे०) का शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है। मंडन मिश्र-रचित दो विशेष ग्रंथ मिलते हैं—एक 'विधिविवेक' और दूसरा 'ब्रह्मसिद्धि'। इनमें भी 'ब्रह्मसिद्धि' अत्यंत महत्वपूर्ण है। ब्रह्मसिद्धि के ब्रह्मकांड, तर्ककांड, नियोगकांड और सिद्धिकांड—ये चार भाग हैं।

मंडन मिश्र मीमांसक तथा वेदांती दोनों ही

थे। इन्होंने ब्रह्मसिद्धि के ब्रह्मकाड मे ब्रह्म का प्रतिपास किया है। तर्ककाड के अतर्गत सासारिक भेदरूपता का निराकरण किया है, नियोगकाड मे मीमासा का खडन किया है, और सिद्धिकाड के अतर्गत दृश्यजगत् की असत्यता का प्रतिपादन किया है।

मडन मिश्र ने अविद्या तथा माया को एक ही स्वीकार किया है। इन्होंने अविद्या का सबध विभिन्न जीवो से माना है।

मत्रगोप्य *(क० प्र०)*

कन्नड के वीरशैव साहित्य मे जो दार्शनिक प्रवृत्तियाँ दिखाई पडती हैं उनमे 'मत्रगोप्य' भी एक है। भक्ति-ज्ञान वैराग्य के बिना परवस्तु का साक्षात्कार सभव नही है। वह परवस्तु अपने से भिन्न नही है। सकल्प-विकल्प का मन जब निचली श्रेणी से ऊपर उठकर उन्मन स्थिति मे पहुँच जाता है तब 'शब्द-मुग्ध स्थिति' प्राप्त होती है। इस स्थिति मे मत्रमय मूर्ति अतरग मे प्रकाशित होती है। इसी का नाम 'मत्रगोप्य' है। कन्नड के वीरशैव भक्त-कवियो ने 'मत्रगोप्य' पर पुस्तकें लिखी हैं। अल्लम प्रभु (दे०), बसवेश्वर (दे०), चेन्नबसव (दे०), सिद्ध राम (दे०), अक्कमहादेवी (दे० महादेवि यक्का) और पुलिगेरे सोमेश प्रभृति कृतिकारो ने ऐसी पुस्तकें लिखी हैं। इनमे साधारणतया 27 पद्य होते हैं जो राग-ताल लयबद्ध होते हैं। शिवयोग की साधना करने वाले साधक के लिए ये अत्यधिक मूल्यवान हैं। जो साधक 'मत्रगोप्य' की साधना करता है, उसे लिगैक्य-लिगानुभव अथवा दिव्य आध्यात्मिक अनुभव होता है।

मदाक्राता *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

चद्रप्रसाद शाइकीया (दे०) के इस उपन्यास मे नागरिक जीवन का चित्रण सुकुमार भाषा मे है। इसमे रोमासवादी आदर्श का चित्रण है। लेखक की चेष्टा चित्रात्मक वर्णन की भी रही है। यह जनप्रिय उपन्यास है।

मदाक्रांता *(हि० पारि०)*

मदाक्राता का प्रत्येक चरण 17 वर्णों का होता है। इनमे क्रमश मगण, भगण, नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं।

उदाहरण—

फूलो पत्तो, सकल तरुओ, औ लता-वेलियो से,
आवासो से, ब्रह्म अवनि से, पथ की 'रेणुओ से।
होती सी थी, यह ध्वनि सदा सदा, कुज से काननो से,
मेरे प्यारे, कुँवर अब भी, क्यो नही गेह जाए।
(हरिऔध प्रियप्रवास)

मदिरमय भरत *(वँ० कृ०)* [रचना-काल—1956 ई०]

अपूर्वरतन भादुडी ने दो खडो मे 'मदिरमय भारत' (1956) की रचना कर भारत के प्राण-केंद्र विभिन्न हिंदू मदिरो, बौद्ध-चैत्यो तथा विहारो या सघारामो एव जैन मदिरो का बहुत सुदर ही विवरण प्रस्तुत किया है। मदिरो के विस्तृत विवरण एव मूर्तियो के विवरणो के अतिरिक्त इसमे पौराणिक युग से लेकर अब तक के भारतवासियो का इतिहास, उनकी सामाजिक रीति-नीति एव जीवन-यात्रा प्रणाली तथा स्थापत्य एव भास्कर्य के क्रम-विकास का पूरा विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन्ही मदिरो का विवरण देते हुए लेखक ने हिंदू, बौद्ध एव जैन धर्ममतवाद, उनका मूर्तितत्त्व, जातक कहानियाँ, भगवान बुद्ध के जीवन की प्रधान घटनावली की कहानियाँ एव पौराणिक कहानियाँ भी लिपिबद्ध की हैं।

लेखक ने इसी सदर्भ मे भारतवर्ष के स्थापत्य, शिल्प एव मूर्तिकला की निर्माण-पद्धति, उनका क्रमविकास एव क्रमोन्नति का विद्वत्तापूर्ण परिचय भी दिया है। भादुडी ने उचित ही कहा है कि इन मदिरो के द्वारा भारत की अखड सभ्यता, शिक्षा एव सस्कृति की महागौरवमय कीर्ति का निदर्शन होता है।

मकतुआ *(उर्दू० पारि०)*

गजल (दे०) या कसीदे (दे०) का अतिम या (कसीदे म अतिम से पहला) शेर जिसमे कवि अपना तखुल्लस (उपनाम) लाता है। जैसे—

नाशाँ हो जो कहत हो कि क्यो जीते हो 'ग़ालिब'।
किस्मत मे है मरने की तमन्ना कोई दिन और।
नही खेल ऐ 'दाग़' यारों से वह दो
कि आती है उर्दू जबाँ आते-आत।

मकबूलशाह क्रालवारी *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1820 ई०; मृत्यु—1876 ई०]

बहुमुखी प्रतिभा के आशुकवि जिन्होंने शैशव में छंद-रचना करके अपने परिवार वालों को आश्चर्यचकित किया था। इन्होंने 'ग्रीसनामा', 'पीरनामा', 'मुल्लानामा', 'बहरनामा', 'अय्यूबनामा', 'मनसूरनामा' की रचना की, किंतु इनकी सबसे प्रसिद्ध कृति है कश्मीर की प्रसिद्ध मसनवी 'गुलरेज', जिसका कश्मीरी संगीत में एक प्रमुख स्थान है। इनकी भाषा पर फ़ारसी का काफ़ी प्रभाव रहा है। इनकी शैली में व्यंग्य और वाग्विदग्धता है, और उदात्त होने के साथ-साथ उसमें माधुर्य भी है। इन्होंने प्रेम-सुधि एवं विरह-वेदना के ओजस्वी गीत भी लिखे हैं। अनुकरणात्मक पदों और शब्दचित्रों की कला में क्रालवारी को कमाल हासिल है।

मखदूम *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1914 ई०; मृत्यु—1969 ई०]

मुहीउद्दीन नाम था 'मखदूम' इनका तखल्लुस है। इनका जन्म मेदक (हैदराबाद) में हुआ था। इन्होंने प्रारंभिक शिक्षा भी वहीं पाई थी। जामिआ उस्मानिया से 1934 ई० में एम० ए० किया। तत्पश्चात् सिटी कालेज में उर्दू के प्राध्यापक नियुक्त हुए। साम्यवादी विचारधारा तथा राजनीतिक आंदोलनों में भाग लेने के आधार पर नौकरी छोड़ दी। दीर्घकाल तक अज्ञातवास में रहे, फिर हैदराबाद परिषद के सदस्य बने और दकन के विख्यात राजनीतिक नेता तथा कवि होने का गौरव प्राप्त किया।

इनके काव्य-संग्रह का नाम 'सुर्ख़ सवेरा' है।

मखी, आनंदराय *(सं० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती का उत्तरार्ध एवं अठारहवीं शती का पूर्वार्ध]

आनंदराय मखी तंजोर के राजा शाहजी (1684 1710 ई०) तथा शरभोजी (1711-1720 ई०) के प्रधानामात्य थे। ये प्रबल शैव तथा सरस्वती के आराधक थे। ये 'वेदकवि' नाम से विख्यात हैं। अपने वैदुष्य की गरिमा के कारण इनका राजदरबार में बड़ा सम्मान था। दक्षिण के कवियों में ये अग्रणी माने जाते थे।

संस्कृत में प्रतीक-नाटकों की एक विशिष्ट परंपरा है। इनके दो प्रतीक-नाटक उपलब्ध होते हैं—'विद्यापरिणयन' (दे०) तथा 'जीवानंदन'। 'विद्यापरिणयन' में सात अंक हैं। इसमें अद्वैत वेदांत के साथ शृंगार रस का समन्वय प्रदर्शित किया गया है। शिव-भक्ति के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, यही दिखलाना नाटककार को अभिप्रेत है। इसमें चार्वाकादि विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं का सन्निवेश 'प्रबोधचंद्रोदय' (दे०) की शैली पर किया गया है। नाटक की भाषा सरल एवं सुबोध है। 'जीवानंदन' में भी सात अंक हैं। इसमें विभिन्न रोगों का चित्रण पात्रों के रूप में किया गया है। शारीरिक व्याधियों में राजयक्ष्मा ही सब व्याधियों से बढ़कर है। इसके पाश में पड़े हुए जीव का छुटकारा पारद रस के प्रयोग से ही होता है। आयुर्वेद के तत्वों के नाटकीय पात्रों के रूप में प्रदर्शन का यह सफल प्रयास है।

मग्दलनमरियम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1921 ई०]

वळ्ळत्तोळ् (दे०)-विरचित 'मग्दलनमरियम्' की कथावस्तु बाइबिल के 'सेंट लूकास' प्रसंग से ली गई है। किसी धनी के यहाँ ईसा मसीह के आतिथ्य-ग्रहण करते वक्त मग्दलैना की बदनाम मेरी आ खड़ी हो गई। उसने आँसुओं से प्रभु के पाँवों को धोया, केशों से पोंछा और बारंबार चूमा। उनके सिर पर उस वक्त युवती ने सुगंधित तेल लगाया। उसने प्रभु से अपने अपराधों के लिए क्षमा माँगी। ईसा मसीह के पूजक गृहस्थ को उनका व्यवहार अजीब लगा। तब मसीह ने मेरी की सेवा और पछतावे का महत्व समझाया।

ईसाई धर्म पर आश्रित मलयाळम काव्य संख्या में बहुत कम हैं; जो हैं वे इसके समान हृदयहारी नहीं हैं। इसकी छोटी-सी कथावस्तु को कल्पना के वैभव से मंडित कर कवि ने अत्यंत विस्तृत रूप दे दिया है। प्रकृति का कवित्वमय चित्रण इस ग्रंथ की अन्य विशेषता है। गीतिमय द्राविड छंदों में सरल शब्दावली का प्रयोग करते हुए कवि ने मेरी की अमर गाथा गाई है।

मच्चाट्टिळयतु *(मल० ले०)*

इनके संबंध में किसी भी इतिहासकार ने पूर्ण रूप से परिचय नहीं दिया है। श्री उळ्ळूर (दे०) का मत है कि उन्नीसवीं शती में उनका जन्म हुआ है। 'पार्वती-स्वयंवरम्' नामक काव्यग्रंथ उनका लिखा हुआ है। कुछ

विद्वानो का मत है कि गोपालन् ए पुत्तच्छन ने इस ग्रथ का निर्माण किया है। ये ज्योतिष के बडे पडित थे। 'जातकादेशरत्नम्', 'रामायणम् यमक काव्यम्', आदि ग्रथो के अलावा इन्होने उन्नीस कृतियाँ विविध गीतो मे लिखी हैं। इनकी भाषा सरल है।

मजनूं *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित उर्दू लेखको मे 'मजनूं' एक विशेष स्थान रखते हैं। इनका जन्म पलडा, जिला बस्ती (उ० प्र०) मे हुआ था। ये अँग्रेजी कथाकार 'हार्डी' से अत्यधिक प्रभावित हैं। ये जीवन-मरण, नेकी और बदी के सघर्ष तथा मानव की स्वतत्रता समीपता आदि अनेक गभीर समस्याओ को अपनी कृतियो मे प्रस्तुत करते हैं। इनके पात्र अत्याचार-पीडित होते हैं, अत पाठको की सहानुभूति के पात्र होते हैं। ये वर्तमान समाज के प्रति विद्रोह की प्रेरणा देते हैं। इनका प्रत्येक पात्र शातिमय ससार की खोज मे लगा हुआ प्रतीत होता है। मजनूं की कहानियो मे प्रेम की भावनाओ का प्राधान्य रहता है। ये प्रेम की कोमलतम भावनाओ को प्रस्तुत करने मे समर्थ हैं। इनकी कहानियाँ प्राय. दु खात होती हैं। इन्होंने प्रकृति के दृश्य कम खीचे हैं परतु जितने हैं वे पर्याप्त आकर्षक हैं। ये अपने गद्य मे अवसरानुकूल शेर लिखकर उसे प्रभावशाली बना देते हैं। इनकी भाषा प्रवाहमयी है। ये कथानक की रोचकता बनाए रखने मे सिद्धहस्त हैं। इनकी कहानियो के दो सग्रह—ख्वाब-ओ-खयाल' और 'समनपोश' प्रकाशित हो चुके हैं।

आलोचना के क्षेत्र मे भी मजनूं का विशेष नाम है। सभवत ये कहानीकार से अधिक आलोचक के रूप मे याद किए जाएँग। पाश्चात्य आलोचना से इन्होंने उर्दू को समृद्ध किया है। 'अदब और जिंदगी' और 'तनकीदी हाशिये' इनके आलोचनात्मक निबधो के सग्रह हैं।

'मजबूर', अर्जुन देव *(कश्० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

जन्म कश्मीर की कुलगाम तहसील स्थित जैनपुरा गाँव में। ये समाज मे व्याप्त विषमता के प्रति आक्रोश व्यक्त करते रहे हैं। ये कुछ-कुछ वामपथी विचारधारा के हैं तथा जनकवि 'नादिम (दे०) से प्रभावित हैं। प्रेमाख्यान, सामाजिक विषमता, प्राकृतिक सौंदर्य आदि विषयवस्तुओ को लेकर काफी गीत और गजलें लिखी हैं। इनके गीतों मे जहाँ सघर्ष की भावना है वही प्राय निराशा भी झलकती रहती है। इनकी कविता का स्तर उदात्त है, शैली मौलिक एव मार्मिक है, और बुद्धिवादी होने के परिणामस्वरूप भाषा ठेठ कश्मीरी है। कही-कही स्पष्ट रूप से ग्रामीण प्रयोग झलकते हैं। लय, सुर एव गेयता की दृष्टि से इनकी कविताएँ ऊँचे स्तर की एव लोकप्रिय हैं।

मजमुदार, मजुलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

डॉ० मजुलाल रणछोडलाल मजमुदार मूलत नडियाद तहसील के महुधा नामक गाँव के निवासी हैं। बडौदा मे नियमित रूप से रहने के कारण इन्होंने अपना कार्य-क्षेत्र बडौदा को ही बना लिया है। 1929 ई० मे 'समाजशास्त्रनी दृष्टिए ब्रिटिश युग पहेलानो गुजरातनो सास्कृतिक इतिहास' नामक महानिबध पर इन्हे एम० ए० तथा 1943 ई० मे 'गुजराती कलानी सास्कृतिक भूमिका अने लघु पोथी चित्रो' नामक शोध-प्रबध पर पी-एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त हुई। लोक-साहित्य मे शोध स अपना कार्य आरभ करने वाले मजमुदार जी ने चित्रकला के क्षेत्र मे शोधपरक सिद्धियाँ प्राप्त की और 1938 ई० मे बडौदा कॉलेज मे गुजराती के अध्यापक के रूप मे नियुक्त हो कर साहित्य-क्षेत्र मे प्रवेश किया। 1952 ई० मे वहाँ से निवृत्त हो कर मजुलाल जी ने 'गुजराती पद्य साहित्यना स्वरूपो', 'रेवाने तीरे तीरे', 'मीराबाई एक मनन', 'क्रानो-लोजी ऑफ, गुजरात', 'वल्लभ भट्टनी वाणी', 'सदयवत्स वीरप्रबध', 'ब्रह्मदेवनी भ्रररगीता', 'गनीमनी लडाईनो पवाडो', 'कल्चरल हिस्ट्री ऑफ गुजरात', 'साहित्यकार प्रेमानद : नवु सपादन', 'दसे आगलीए वेढ', 'प्रेमानद त्रि शताब्दी ग्रथ', 'वडोदराना सारस्वतो', 'गुजरात इट्स आर्ट्स हेरिटेज', 'आपणी लोककथाओ' नामक ग्रथो के रूप मे गुजरात को अपनी अमूल्य सेवाएँ दी हैं। अध्यापन क्षेत्र मे प्रविष्ट होने पर तथा उसके भी पूर्व मजुलाल जी ने अनेक ग्रथो के सपादन किए हैं। श्री मजुलाल की इतनी व्यापक शोध-प्रवृत्तियो तथा कला विवेचनो की अभिशसास्वरूप गुजरात साहित्य सभा ने इन्हे 'रणजीतराम स्वर्ण पदक' प्रदान किया है।

मजरूह सुलतानपुरी *(उर्दू० कवि०)* [जन्म—1919 ई०]

इनका नाम असरार हसन है और 'मजरूह'

तखल्लुस है। इनका जन्म आज़मगढ़ में हुआ था। इनके पिता का नाम मुहम्मद हुसैन खां था। मजरूह शिक्षा-प्राप्ति के पश्चात् वैद्यक करने लगे। किंतु शेर-ओ-शायरी के कारण ऐसी ख्याति प्राप्त की कि वैद्यक का कार्य छोड़ दिया। आजकल फिल्म उद्योग में हैं और गीत लिखते हैं। इनकी गज़लों का संग्रह प्रकाशित होकर पाठकों में लोकप्रिय हो चुका है। इनकी गजलों ने ही इन्हें ख्याति दिलाई है। भाषा स्पष्ट सरल एवं सरस है।

'मजाज़', इसरारुलहक *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1913 ई०; मृत्यु—1956 ई०]

'मजाज़' अलीगढ़ विश्वविद्यालय के प्रगतिशील विद्यार्थी थे। यहीं से बी० ए० पास करने के बाद कुछ समय आल इंडिया रेडियो, दिल्ली में और कुछ दिनों बंबई सरकार के सूचना विभाग में नौकरी करते रहे।

मजाज समाज की विषमतापूर्ण, करुण एवं भयानक अवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने वाले क्रांतिकारी कवि थे। जागृति के दूत के समान ये इस जर्जरित व्यवस्था के साथ जूझने का संदेश देते हैं। इनकी शायरी जनता के दुःख-दर्द का बयान है। ये नौजवानों, ग़रीबों तथा बेरोज़गारों की भावनाओं को सच्चाई से बयान करते हैं और ऐसा करते हुए कवित्व पर भी आघात नहीं लगने देते। इनके काव्य में प्रवाह एवं सरसता है। निराशा तथा आत्म-हनन के भाव उसमें बहुत कम हैं। यौवन की मस्ती इनके काव्य का आकर्षण है। 1938 ई० में इनका काव्य-संग्रह 'आहंग' (दे०) के नाम से छपा था और उससे इन्हें पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। 1945 ई० में कुछ नयी नज़्मों के साथ 'आहंग' शीर्षक संग्रह 'शबताब' के नाम से पुनः प्रकाशित हुआ। इनका तीसरा संग्रह है 'सोज़-ए-नौ'।

मज़ामीन-ए-चकबस्त *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1937 ई०]

लेखक—पं० (ब्रजनारायण) चकबस्त (दे०) लखनवी। इंडियन प्रेस लि०, इलाहाबाद से प्रकाशित इस कृति में अल्लामा चकबस्त लखनवी के निबंधों का संकलन प्रस्तुत किया गया है। विषय की दृष्टि से ये निबंध बहुमुखी हैं। इसमें कतिपय साहित्यकारों, कविसम्मेलनों और काव्यकृतियों के अतिरिक्त इतिहास, समाज-सुधार और राजनीतिक नेताओं पर भी लेखनी उठाई गई है। 'भारत-दर्पण', 'उर्दू शायरी', 'गुलज़ार-ए-नसीम' (दे०) गुलज़ार-ए-नसीम की भूमिका', 'दाग़' और 'पं० रतननाथ सरशार' आदि निबंध इस कृति में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त 'पं० दयाशंकर कौल 'नसीम', 'पं० त्रिभुवन नाथ सप्रू हिज्र', 'मिर्ज़ा मच्छूबेग सितम ज़रीफ़', 'मुंशी ज्वाला प्रसाद बर्क़'', और अवध-पंच पर लिखे निबंधों का भी अपना ऐतिहासिक महत्व है। इन निबंधों की भाषा-शैली और प्रतिपादन-शैली अत्यंत प्रौढ़ और उदात्त है। कहीं-कहीं अनुसंधान के स्तर के तथ्यों का निरूपण भी हुआ है। इसमें कवियों के काव्य की आलोचना निष्पक्ष भाव से की गई है और प्रत्येक प्रतिपाद्य तथ्य के संदर्भ में उदाहरण और प्रमाण भी प्रभूत मात्रा में जुटाए गए हैं। इस कृति के अनुशीलन से इस निर्विवाद सत्य का उद्घाटन हो जाता है कि राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण का यह अमर गायक महान कवि चकबस्त-लखनवी गद्य-लेखन मे भी सिद्धहस्त था और मौलिक आलोचना तथा अनुसंधान की प्रतिभा भी उसमें प्रचुर मात्रा में थी।

मज़ामीन-ए-पतरस *(उर्दू० कृ०)*

यह ज़ेड० ए० बुख़ारी 'पतरस' (दे०) के हास्य-व्यंग्य-निबंधों का संग्रह है जो उर्दू के व्यंग्य-साहित्य की एक अद्भुत कृति है। इसके माध्यम से उर्दू में पाश्चात्य शैली का समावेश हुआ। इसमें समाज के जीवन में विद्यमान अंधविश्वासों और वहमों पर करारी और गहरी चोटें की गई हैं तथा मानव-प्रकृति के गुणों एवं विशेषताओं को उभारने और उजागर करने का प्रयास किया गया है। 'सवेरे जो कल मेरी आँख खुली' शीर्षक निबंध में उन लोगों पर चोट है जो सवेरे-सवेरे उठकर तंग करते हैं। 'कुत्ते' भी एक सुंदर व्यंग्य-रचना है। लेखक के अनुसार कुत्ते एक मोहल्ले में जब भौंकते हैं और दूसरी ओर से दूसरे कुत्ते जब जवाब देते हैं तो ऐसा लगता है मानो 'तरह-मिसरा' देकर मुशायरा शुरू हो रहा हो।

लेखक शब्दों और घटनाओं से ही हास्य की स्थिति उत्पन्न कर लेता है। भाषा चुटीली, आकर्षक, सुंदर और रसीली है। 'मज़ामीन-ए-पतरस' उर्दू की एक अनमोल रचना है।

मजीद *(मल० पा०)*

यह वैकम, मुहमद (दे०) बशीर वैकम के

लघु उपन्यास 'बाल्यकालसखी' (दे०) का नायक है। मजीद एक होनहार युवक है जिसकी पैतृक संपत्ति बाद मे नष्ट हो जाती है और दुर्घटना मे स्वय लँगडा हो जाता है। घर से दूर एक होटल मे मजदूरी करने वाले इस विकलाग युवक को मनोबल प्रदान करने वाली बचपन की सखी सुहरा (दे०) का भी तपेदिक से देहात हो जाता है।

यह उन युवकों का प्रतीक है जिनका जीवन प्रगति के सभी साधन होते हुए भी विफल हो जाता है। अपने वृद्ध माता-पिता, युवा बहनो और व्याकुल प्रेमिका के प्रति अपने कर्तव्यो को यह जानता है और उनको निभाने की कामना करता है परन्तु इसके सभी स्वप्न मिट्टी मे मिल जाते हैं। इसके चरित्र मे मनुष्य-जीवन के सभी दु खो को समेटने के प्रयत्न मे बशीर को सफलता मिली है।

मजुमदार बरुवा, दुर्गाप्रसाद *(अ० ले०)* [जन्म—1870 ई०, मृत्यु—1928 ई०]

जन्मस्थान—शिबसागर का शुकानपुखुरी स्थान। प्रकाशित रचनाएँ—काव्य 'उजु कविता' (1895), 'लोरा कविता' (1899), 'फुल' (1899)। नाटक . 'महरि' (दे०) (1896), 'निग्रो', 'गुरुदक्षिणा' (1903), 'कलियुग' (1904), 'वृषकेतु'।

इनके 'महरि', 'निग्रो' और 'कलियुग' व्यग्य-नाटक हैं। 'महरि' (क्लर्क) में चाय बगीचे के जीवन का चित्रण है। 'गुरुदक्षिणा' मे कृष्ण सदीपन और 'वृषकेतु' मे कर्ण-पुत्र वृषकेतु के त्याग का वर्णन है। ये दोनो नाटक शिशुओ के लिए हैं। 'निग्रो' नाटक की प्रतियाँ अब अनुपलब्ध हैं। इन्होने ग्राम्य-जीवन का सुदर चित्रण किया है। इन्होने गाँव के दोषो पर निर्मम प्रहार न कर हास्य कोमल दृष्टि से ही उन्हें देखा है। इनकी ख्याति नाट्यकार और शिशु साहित्य-लेखक के रूप मे है।

मजुमदार, मोहितलाल *(बँ० ले०)* [जन्म—1888 ई०, मृत्यु—1952 ई०]

कवि मोहितलाल ने बँगला काव्य मे देहवाद तथा भोगवाद के एक नये स्वर की सयोजना की है। रवीद्रनाथ (दे० ठाकुर) की प्रारंभिक कविताओ मे देहवाद का प्रकाश दिखाई पडता है परतु देहातीत अतीद्रिय लोक की अभिव्यक्ति उनके परवर्ती काव्य मे द्रुत एव स्वच्छद ढग से हुई है। मोहितलाल ने अध्यात्मवाद के राज्य मे कभी पदार्पण नही किया। उन्होने देहवाद के आधार पर जीवन के रूपो की अभिव्यक्ति की है। रूप-सौंदर्य के कवि होने के कारण उन्होने सौंदर्य के नाना रहस्यमय क्षेत्रो मे पदार्पण किया है। रवींद्रनाथ के मार्ग का तो उन्होंने अनुसरण किया ही है, ऊपर से देवेंद्रनाथ (दे० ठाकुर), सत्येंद्रनाथ (दे० दत्त) आदि समकालिक कवि-गोष्ठी के प्रति भी वे विमुख नही रहे हैं। सौंदर्यविलास के कवि के लिए देहवाद ही जीवनवाद होता है। वीराचारी तांत्रिकों का हृदय लेकर कवि देह के भीतर देहातीत की कुंदन-ध्वनि सुनता है। और वही उसकी कविताएँ यथार्थ रूप से रसोत्तीर्ण हैं।

इनके प्रसिद्ध काव्य-सग्रह हैं—'स्वपन पसारी' (1921), 'विस्मरणी' (1926), 'स्मरगरल' (दे०) (1936), 'हेमत गोधूलि' (1942) एव 'छद-चतुर्दशी' (1941)।

'भारती' पत्रिका के पन्नो मे 'श्री सत्यसुदर दास' के छद्म नाम से इन्होंने आलोचनात्मक निबध लिखना शुरू किया। मोहितलाल का प्रथम परिचय इनके कविरूप मे प्राप्त होता है किंतु इनका प्रधान परिचय इनके प्रबधो मे उपलब्ध है। इनके प्रबध ग्रथ हैं 'साहित्य कथा', साहित्य-विज्ञान', 'आधुनिक बाँगला' साहित्य', 'नवयुगेर बाँगला', 'बकिम चरण', 'कविश्री मधुसूदन', 'श्रीकान्तेर शरत्चन्द'। कवि एव समालोचक मोहितलाल बँगला साहित्य के क्षेत्र मे स्वकीय वैशिष्ट्य से चिर-उज्ज्वल हैं।

मज्झिमापटिपदा (स० मध्यमाप्रतिपदा) *(पा० पारि०)*

'प्रतिपदा' शब्द का अर्थ मार्ग तथा ज्ञान भी है। इस प्रकार मध्यमाप्रतिपदा का अर्थ हुआ मध्यम मार्ग या ज्ञान का अवलबन करना। भगवान् बुद्ध ने अपने प्रथम प्रवचन 'धम्मचक्कपवत्तनसुत्त' मे ही इस सिद्धात का प्रतिपादन किया था कि ससार मे दो अतिवाद मनुष्य को दु ख से छुटकारा नही दे सकते। ये दो अतिवाद हैं इद्रिय सुख का उन्मुक्त उपभोग और आत्मदमन के साथ तपस्या। भगवान् बुद्ध दोनो अतिवादो से होकर निकले थे किंतु उनमे दु ख से छुटकारा दिखलाई नही पडा। इसलिए भगवान् बुद्ध ने दोनो अतिवादो को छोडकर मध्य मार्ग का अवलबन करने का उपदेश दिया। ये अतिवाद साधना-क्षेत्र मे ही नही, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे दृष्टिगत होते हैं। यही सघर्ष और जय-पराजय का मूल है। पहले नैतिक और व्यावहारिक जगत् म ही मध्यम मार्ग का

प्रतिपादन किया गया। आगे चलकर माध्यमिक संप्रदाय के रूप में दार्शनिक जगत् में भी उदित हुआ। उसमें बतलाया गया है कि मध्यम मार्ग का अवलंबन बाह्य सत्ता की अस्वीकृति और परमतत्व की मान्यता में ही संभव है।

मटक (पं० ले०)

ये पंजाबी के एक वीर-कवि हुए हैं जिनके द्वारा रचित 'जंगनाम फिरंगियां ते सिंधां दा' (दे०) नामक कृति उल्लेखनीय है। इनके जीवन के संबंध में कोई निश्चित जानकारी प्राप्त नहीं है। प्रोफ़ेसर गंडासिंह द्वारा संपादित 'पंजाब दीयां वारां' नामक संग्रह में इनकी कविता का जो नमूना दिया गया है उससे ये महाराजा रणजीतसिंह के समकालीन प्रतीत होते हैं क्योंकि इनके द्वारा उक्त 'जंगनामा' में दिए गए तथ्य ऐतिहासिक साक्ष्यों के सर्वथा अनुकूल हैं।

इनकी रचना 'ड्योढ' छंद में लिखी गई है जो कवि की कुशल काव्य-प्रतिभा की परिचायक है। उदा०—'दोवें करी तंबूर खड़कदे, जुद्ध की भई तियारी; लशकर भारी'।

मटक हुलारे (पं० कृ०)

यह भाई वीरसिंह (दे०) का दूसरा महत्वपूर्ण कविता-संग्रह है। प्रकाशन-क्रम की दृष्टि से 'लहरां दे हार' और काव्य-श्रेष्ठता की दृष्टि से 'मेरे साइयांजी' का स्थान प्रथम है। 'मटक हुलारे' में भाई वीरसिंह की अनेक छोटी कविताएँ संगृहीत हैं जिन्हें कवि ने स्वयं विधान या भावानुसार विभिन्न उपखंडों में विभक्त किया है, जैसे 'पत्थर कंवणीआं' तथा 'कशमीर नज़ारे' आदि। इस संग्रह की कविताओं का प्रतिपाद्य अतीत का गौरव-गान, वर्तमान दुरवस्था का चित्रण, आध्यात्मिक प्रेम, प्रकृति-सौंदर्य और व्यक्तिवादी-अंतर्मुखी आत्मानुभूति का प्रकाशन है।

यह रचना एक ओर भाई वीरसिंह के जीवन-दर्शन को पूर्व-रचनाओं की अपेक्षा कुछ अधिक स्पष्ट रूप देती है तो दूसरी ओर उनके काव्य-व्यक्तित्व के विकास के नये चरण की भी द्योतक है। अधिकांश कविताएँ तुरपाई (दे०) छंद में लिखी गई हैं और उनमें भाव-प्रवाह एवं संगीत-प्रवाह का सुंदर संयोग है।

मडिया, चुनीलाल (गु० ले०) [जन्म—1922; मृत्यु—1968 ई०]

इन्होंने प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा सौराष्ट्र तथा उच्च शिक्षा अहमदाबाद में प्राप्त की थी। लेखन का प्रारंभ इन्होंने कहानी से किया था। 'घूघवतां पुर' नामक इनका प्रथम कहानी-संग्रह आंचलिक गुणों से भरपूर है जिसके द्वारा इन्होंने गुजराती कहानी-साहित्य को नया मोड़ दिया है। 'व्याजनो वारस' नामक आंचलिक उपन्यास में इन्होंने सौराष्ट्र के जनजीवन का प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है। इनके 12 कहानी-संग्रह, 16 उपन्यास, 5 एकांकी-संग्रह, नाटक तथा दो आलोचना-संग्रह इनकी बहुमुखी प्रतिभा के परिचायक हैं।

आंचलिकता और व्यंग्यात्मकता इनके रचना-कौशल का वैशिष्ट्य है। 'सधरा जेयसंग नो सालो' (दे० सधरा जेसंग) तथा 'सधरा जेसंग नो सालोनो सालो' नामक उपन्यास तथा 'रामलो रोबिन हुड' नामक नाटक व्यंग्य-प्रधान है। इनका विषय आज की राजनीति है। इनके आलोचना संग्रहों में इनकी बहुज्ञता का परिचय मिलता है। इस प्रकार अनेक विधाओं में विपुल और वैविध्यपूर्ण साहित्य-सर्जक के रूप में गुजराती-साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान है।

मढ़ी दा दीवा (पं० कृ०)

यह गुरुदयाल सिंह (दे०) का प्रथम उपन्यास है। इसमें जागीरदारी समाज को पृष्ठभूमि बनाकर 'सीरी श्रमिकों' के जीवन का एक सार्थक दुःखांत चित्र प्रस्तुत किया है। इस चित्र में जागीरदारी तथा मानव-विरोधी श्रेणिक चरित्र पर—जिसका प्रतिनिधित्व मंता सरदार करता है—ज़ोरदार व्यंग्य किया है। व्यंग्य के सैद्धांतिक अर्थ बड़े स्पष्ट हैं।

इस उपन्यास का प्रमुख पात्र जगसीर है जो एक प्रकार से छोटे आदमी के जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। गुरुदयाल सिंह ने प्रथम बार ऐसा मुख्य पात्र प्रस्तुत किया है जो पंजाबी उपन्यास के परंपरागत नायक के संकल्प से एकदम अलग है।

मणक्कुडवर (त० ले०) [समय—सत्रहवीं शती ई०]

तमिल के प्रसिद्ध ग्रंथ 'तिरुक्कुरळ्' (दे०) के

व्याख्याकारो मे 'परिमेललकर' के साथ ही 'मणक्कुडवर' का भी नाम है। इनके बारे मे प्रामाणिक रूप से कुछ ज्ञात नही हुआ है। इनकी व्याख्या से पता चलता है कि ये तमिल-वाङ्मय के अच्छे ज्ञाता थे। 'परिमेललकर' की व्याख्या मे सस्कृत-ग्रथो के उद्धरण यत्र तत्र प्राप्त होते हैं, किंतु इनकी व्याख्या शुद्ध तमिल-परपरा की अनुगामिनी है। भाषा सरल और विवेचन गर्भित है। इनके और किसी ग्रथ का पता नही लगा है।

मणिकोवर (अ० कृ०) [रचना-काल—अनुमानत सातवी शती]

यह असमीया के प्रसिद्ध बैलेडो मे एक है। भाटो का एक वर्ग पर्वो के अवसर पर असम मे बैलेडो का गायन करता है। जनता के मध्य इनका मौखिक प्रचार रहा है, इनमे प्रक्षेप भी होते रहे है। इनमे असमीया-जीवन और सस्कृति का प्रतिबिंब है। हेम बरुवा (दे०) के शब्दो मे यह पद्य मे लिखित उपन्यास है। अब तक खोजे गए प्राचीनतम असमीया बैलेड हैं—'मणिकोवर' और 'फुलकोवर'। कामरूप के राजा शकलादिब एक कुशल योद्धा थे, इनके पुत्र का नाम मणिकोवर था, जिसकी मृत्यु 16 वर्ष की आयु मे हो गयी थी। मणिकोवर के शोक मे बैलेड की रचना हुई थी। इनके पुत्र फुलकोवर पर भी गीतो की रचना हुई। बैलेड की कथा शैली सरल, सहज और अकृत्रिम है।

मणिमेखलै (त० कृ०) [रचना-काल—दूसरी शती]

चात्तनार की 'मणिमेखलै' कृति को तमिल के पाँच प्रसिद्ध महाकाव्यो मे परिगणित किया जाता है। इस महाकाव्य की नायिका है मणिमेखलै (दे०)। मणिमेखलै 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) के नायक कोवलन और उसकी प्रेयसी माधवी (दे०) की पुत्री थी। इन महाकाव्यो की कथा के परस्पर एक-दूसरे से सबद्ध होने के कारण ही इन्हे जुडवाँ महाकाव्य कहा जाता है। यह कृति 30 कथा खडो मे विभाजित है। मणिमेखलै की नायिका धर्म-पुत्री के रूप मे हमारे समक्ष आती है। इस महाकाव्य के रचयिता चात्तनार बौद्ध मतानुयायी थे अत उन्होने स्थान स्थान पर बौद्ध धर्म के सिद्धातो का विवेचन किया है। चात्तनार ने उस युग म समाज मे प्रचलित प्रसिद्ध धर्मों की चर्चा करते हुए बौद्ध धर्म की महिमा का वर्णन किया है। कहीं-कहीं जहाँ धार्मिक सिद्धातो का विवेचन प्रधान हो गया है वहाँ काव्यत्व क्षीण हो गया है। मणिमेखलै को तमिल मे रचित प्रथम धार्मिक महाकाव्य कहा जा सकता है। विद्वानो का मत है कि इस महाकाव्य की रचना समाज मे प्रचलित अनेक कुरीतियो को दूर करके जनता को सदमार्ग की ओर अग्रसर करने के लिए की गई थी। उत्तर भारत मे उत्पन्न बौद्ध मत का विवेचन करने के कारण चात्तनार की भाषा मे सस्कृत तथा पालि के अनेक शब्दो का सहज समावेश हो गया है। अनेक स्थलो पर मणिमेखलै की शब्दावली, प्रसग और उपमाएँ 'शिलप्पदिकारम्' से मेल खाती हैं। साहित्य-मर्मज्ञो, धार्मिक सिद्धात विशारदो और इतिहासज्ञो सभी की दृष्टि मे 'मणिमेखलै' का महत्व अक्षुण्ण है।

मणिमेखलै (त० पा०)

मणिमेखलै का सबध मूलत तमिल के दो प्रसिद्ध महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) और 'मणिमेखलै' (दे०) से है। ये महाकाव्य जुडवाँ महाकाव्य कहलाते हैं क्योंकि एक की कथा ही दूसरे मे विकास पाती है। 'शिलप्पदिकारम्' मे मणिमेखलै नायक कोवलन् और उसकी प्रेमिका वेश्या माधवी (दे०) की पुत्री के रूप मे चित्रित है। मणिमेखला नामक एक देवी ने कोवलन् के किसी पूर्वज को सहायता की थी, इसी से कोवलन् ने अपनी पुत्री को मणिमेखलै नाम दिया। कोवलन् की मृत्यु पर माधवी ने सन्यास ग्रहण कर लिया और वह बौद्ध भिक्षुणी बन गई। उसने मणिमेखलै को भी सन्यास ग्रहण करने की प्रेरणा दी। चात्तनार-कृत 'मणिमेखलै' महाकाव्य मे मणिमेखलै नायिका के रूप मे चित्रित है। वेश्याकुल मे उत्पन्न होते हुए भी वह अपनी माँ माधवी के समान वेश्या-कर्म से विमुख रहती है। कोवलन् की मृत्यु पर माँ माधवी के बौद्ध भिक्षुणी बन जाने पर यह भी बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है और दीन-दुखियो की सवा मे लग जाती है। दीवतिलकै नामक देवी की सहायता स प्राप्त 'अमुद सुरभि' नामक अलौकिक पात्र के सहारे यह निर्धन, क्षुधातुर व्यक्तियो के कष्ट दूर करती है। मणिमेखलै साक्षात् देवी के समान जनता के लिए आत्म सुखो का त्याग कर देती है।

मणिमेखल की कल्पना मूलत अंग्रेजो के ईसाई धर्म-प्रचार के विरुद्ध बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए तथा उसे मानव-मात्र के दु खो का नाश करने वाला उच्च धर्म सिद्ध करने के लिए की गई थी।

मणिमेखलै संबंधी परवर्ती कृतियों में सर्वप्रमुख है 'भारतीदासन्' (दे०)-कृत 'मणिमेखलै वेण्बा' (इस काव्य कृति में कवि ने मणिमेखलै एवं माधवी के चरित्र को उभारा है)।

मणिराम देवान *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1948 ई०]

प्रवीण फुकन (दे०) के तीन अंक के इस नाटक के नायक देशभक्त निर्भीक मणिराम देवान हैं। अंग्रेज़ों ने जो अत्याचार किए उससे उनके बंधु मणिराम भी असंतुष्ट होकर विद्रोही हो गए। उन्होंने एक ओर कलकत्ता के गवर्नर को आवेदन किया था तो दूसरी ओर असमीया-जनता को संघर्ष के लिए सन्नद्ध किया था। इस नाटक के संवाद नाट्य-गुण-पूर्ण एवं भाषा सजीव है।

मणिनादम् *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1937 ई०]

यह इटप्पळ्ळि राघवन् पिळ्ळा (दे०) का कविता-संग्रह है जो उनकी आत्महत्या के बाद प्रकाशित हुआ था। इसमें उनकी अंतिम कविताएँ संगृहीत हैं।

इस संग्रह की 'मणिनादम्' शीर्षक कविता कवि की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें कवि की मानसिकता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। इसमें उन्होंने अपने को इस संसार के छल-कपट सहन करने में असमर्थ कहा है। कवि आदर्शनिष्ठा को अपनी पराजय का कारण मानता है और मृत्यु को ही सभी समस्याओं का एकमात्र समाधान मानता है।

राघवन् पिळ्ळा की आत्महत्या मलयाळम-साहित्य की एक गंभीर दुःखदायी घटना के लिए प्रेरक मनःस्थिति को प्रदर्शित करने वाले इस काव्य-संग्रह का साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

मणिप्रवालम् *(मल० पारि०)*

शुद्ध मलयाळम-शब्दों तथा सरल संस्कृत-शब्दों को मिलाकर जो राज्य-समुच्चय बनाया जाता है उसे 'मणिप्रवाळम्' कहते हैं: 'भाषा संस्कृतयोगो मणिप्रवाळं'। माणिक्य तथा विद्रुम मिलाकर एक ही सूत्र में पिरोने के बाद जिस प्रकार उन्हें अलग-अलग करना असंभव है उसी प्रकार सरल कोमल मलयाळम तथा संस्कृत के शब्दों को मिलाकर जो कविता लिखी जाती है वह 'मणिप्रवाळ'-शैली की कविता मानी जाती है। 'उणियच्चिचरितम्' (दे०) 'उण्णुनीलि संदेशम्' (दे०) 'रामायणम् चंपू' जैसे काव्य-ग्रंथ मणिप्रवाल शैली में लिखे गए हैं।

मण्णाशै *(त० कृ०)* [रचना-काल—1939 ई०]

रचयिता शंकरराम। यह उपन्यास मूलतः अंग्रेज़ी में 'लव ऑफ़ डस्ट' के नाम से 1932 ई० के लगभग प्रकाशित हुआ। 1939 ई० के लगभग लेखक ने इसे तमिल में प्रस्तुत किया। इसमें तिरुच्चिरापळ्ळि जिले के एक गाँव वीरमंगलम के निवासी वेंकटाचलम के भूमिप्रेम (मण्णाशै) का वर्णन है। गाँव के वयोवृद्धों के मुख से अधिक उपज देने वाले विदेशी चने के विषय में सुनकर वेंकटाचलम ऋण लेकर चने की खेती करता है। दुर्भाग्यवश उसके खेत में आग लग जाती है। लोगों का यह उपदेश कि 'भूमि का एक हिस्सा बेच कर ऋण चुका दो' उसे तनिक भी नहीं भाता। वह स्पष्ट कह देता है कि 'यह भूमि मेरा जीवन है। इसे मैं अपने पेट के लिए नहीं बेचूँगा।' भूमि की रक्षा के प्रयत्न में नाना कष्ट झेलते हुए वह मर जाता है। उपन्यास में इस मूल कथा के साथ-साथ वेंकटाचलम के पुत्र वेलन और वळ्ळि की प्रेम-कथा की भी सफल नियोजना है। उपन्यास में ग्रामीण जनता के जीवन-संघर्ष, आशा-आकांक्षा, ईर्ष्या-द्वेष, प्रेम, प्रतिशोध-भावना, भीरुता धनाधिक्य से उत्पन्न गर्व आदि का सफल चित्रण है। इसमें कथा कहने की प्राचीन परिपाटी अपनाई गई है। कथा में सहज प्रवाह है। पात्र उपन्यासकार के हाथों की कठपुतली नहीं, उनका निजी व्यक्तित्व है। पात्रों का चित्रण प्रायः यथार्थ के धरातल पर हुआ है। उपन्यास में तिरुच्चिरापळ्ळि जिले के वीरमंगल गाँव के जीवन का सजीव-प्रभावशाली चित्रण है। वेंकटाचलम के माध्यम से ग्रामीण जनता के माटी-प्रेम का सफल चित्रण किया गया है। सरल, प्रवाहपूर्ण शैली में रचित इस उपन्यास को ग्रामीण जीवन का अमर काव्य कहा जा सकता है। तमिल के यथार्थवादी, सामाजिक-आंचलिक उपन्यासों में इसका अपना विशिष्ट स्थान है।

मतलूआ *(उर्दू० पारि०)*

ग़ज़ल या क़सीदा (प्रशस्ति-गान) का पहला शेर जिसके दोनों मिसरे (चरण) हमक़ाफ़िया (तुकसाम्य से युक्त) होते हैं 'मतलूआ' कहलाता है। 'मतले' के बाद

दूसरा, तीसरा और चौथा मतल्आ भी हो सकते हैं जिन्हें 'हुस्न मतल्आ' कहा जाता है। उदाहरण के लिए 'मोमिन' (दे०) की गजल का मतल्आ और हुस्न मतल्आ नीचे लिखे जाते हैं—

मतल्आ—डर तो मुझे किसका है कि मैं कुछ नही कहता
पर हाल यह अफशा है कि मैं कुछ नही कहता।

हुस्न-मतल्आ—
नासिह ! यह गिला क्या है कि मैं कुछ नही कहता
तू कब मेरी सुनता है कि मैं कुछ नही कहता।

मधू (म० पा०)

मामा (भा० वि०) वरेरकर (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'विधवा कुमारी' की नायिका मधू के माध्यम से लेखक ने अपने समाज और धर्म-सबधी प्रगतिशील विचारो को व्यक्त किया है। दरिद्र भिक्षुक की कन्या मधू बचपन मे ही विधवा हो जाती है पर लेखक का उद्देश्य विधवा की असहाय स्थिति के प्रति पाठको की सहानुभूति उत्पन्न करना मात्र नही है। वह एक पग आगे बढकर मधू को *अपने अन्य उपन्यासो की नायिकाओ के समान नटखट,* हठीली, चतुर और बातून चित्रित करता है। वह प्रोत्साहन पाकर शिक्षा ग्रहण करती है, विलायत जाती है, विधवा होने पर भी कुकुम लगाती है, सभाओ मे भाषण देती है, पर इतनी क्रांतिकारी होते हुए भी पुनर्विवाह नही करती। उपन्यास के पूर्वार्ध मे लेखक को मधू के चित्रण मे जितनी सफलता मिली है, उतनी उत्तरार्ध मे नही। पूर्वार्ध मे वह नायिका की उत्कट भावनाओ से तादात्म्य स्थापित कर उसके स्वभाव मे आयी कटुता को सफलतापूर्वक चित्रित करता है परतु उत्तरार्ध मे उसके चरित्राकन मे अतिरजना और अस्वाभाविकता आ गई है।

मदनतिलक (क० कृ०) [समय—ग्यारहवी शती ई० का पूर्वार्ध]

'मदनतिलक' के कवि चद्रराज (1025 ई० के आसपास) चालुक्य राजा जयसिह (1012-42 ई०) के राजत्वकाल मे जीवित थे। महासामत रेच उनके आश्रयदाता थे। कामशास्त्र पर ग्रथ-रचना करने वालो मे चंद्रराज का ही नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। वे वाजिगोत्र के ब्राह्मण कवि थे। उनके ग्रंथ से मल्लिकार्जुन ने अपने 'सूक्ति-सुधार्णव' (दे०) के लिए पद्य चुने हैं। कुछ कवियो ने 'चद्र', *'चद्रभट्ट' कहकर उनकी स्तुती की है।*

'मदनतिलक' चपू ग्रथ है। उसके प्रारभिक गद्य मे कहा गया है कि चद्रराज ने अठारह अधिकरणो मे नाना छदो का प्रयोग करते हुए गद्य-पद्यात्मक ग्रथ विश्रुत किया है। उन्होने प्रारभ मे मन्मथ की स्तुति की है, तत्पश्चात् चालुक्य जयसिह तथा अपने आश्रयदाता रेच की प्रशसा की है। आकार की दृष्टि से उनका ग्रथ छोटा है, पर उसके प्रत्येक पद्य मे शब्दालकार-वैचित्र्य तथा रचना-कौशल प्रकट होते है। उनकी कविता 'चित्रकविता' होने पर भी उसमे लालित्य है, रस-प्रवणता है।

मदाह (सि० पारि०)

'मदाह' का शाब्दिक अर्थ है स्तुति, प्रशसा, महिमा। इसका मूल अरबी शब्द 'मद्ह' है जिसका भी वही अर्थ है। *अरबी मे प्रशसा करने वाले को 'मादिह'* या 'मद्ह' कहते हैं, परतु सिंधी मे 'मदाह' से कर्तावाचक *सज्ञा का रूप 'मदाही' (मदाह कहने वाला) अधिक* प्रच-लित है। सिंधी साहित्य मे 'मदाह' उस कविता या गीत को कहा जाता है, जिसमे इस्लाम के किसी पैगंबर, दरवेश, नबी आदि की महिमा गाकर उसके लिए प्रेम और श्रद्धा की अभिव्यक्ति की गई हो।

'मदाहू' और मुनाजातू' नाम से डा० नबी बख्श खान बलोच (दे०) ने चुनी हुई सिंधी-मदाहो और मुनाजातो (देखिए 'मुनाजात') का एक प्रामाणिक सग्रह तैयार किया है जो 1959 ई० मे सिंधी-अरबी बोर्ड, हैदराबाद सिंध से प्रकाशित हो चुका है। सिंधी-मुसलमान मसजिदो और मदरसो मे तथा ईद, विवाह आदि अवसरो पर मदाहे गाते हैं। जुमन चारण और मियाँ मुहम्मद सरफराज खान की रचित मदाहे आज भी सिंध मे बहुत लोकप्रिय हैं।

मधुमालती (हिं० कृ०) [रचना-काल—1545 ई०]

यह मभन (दे०)-प्रणीत हिंदी की प्रसिद्ध सूफी प्रेमाख्यानक रचना है। इसकी कथा लोक-प्रचलित कहानी पर आधारित है। इसमे कनेसर के राज-कुमार मनोहर और महारस की राजकुमारी 'मधुमालती' की प्रेमकथा को आधिकारिक कथा के रूप में वर्णित किया गया है। ताराचद और प्रेमा की प्रेमकथा गौण कथा के रूप मे विकसित हुई है। कहानी कहने मे

कवि ने भारतीय कथानक तथा काव्य-रूढ़ियों का मुक्त रूप से प्रयोग किया है। बीच-बीच में आध्यात्मिक तत्त्वों का समावेश भी है। अन्य सूफ़ी कवियों की भांति कवि ने गुरु की प्रशंसा की है, प्रेम को सर्वोपरि माना है और दोहे-चोपाइयों में अपने काव्य का निर्माण किया है। कवि ने हिंदू विचारधारा से प्रभावित होकर पूर्वजन्म, कर्मफल, पिंडदान आदि की चर्चा भी की है। उपमान-योजना में भी भारतीय परंपरा का ध्यान रखा गया है। ग्रंथ में शृंगार-वर्णन विस्तार के साथ किया गया है और वह निश्चय ही रसराजत्व की कोटि तक पहुंच गया है सब। मिलाकर ग्रंथ काफी रोचक और महत्वपूर्ण है।

मधुरचेन्न *(क० ले०)* [समय—1903-1952 ई०]

आधुनिक कन्नड के सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कवि मधुरचेन्न का जन्म 31 जुलाई, 1903 ई० को उत्तर कर्नाटक के बिजापुर ज़िले के हलसंगी ग्राम के एक सात्विक वीरशैव परिवार में हुआ था। छुटपन में ही पिता को खो देने के कारण आपकी शिक्षा की ठीक व्यवस्था नहीं हो पाई। स्वाध्याय से हिंदी, बँगला, संस्कृत, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं पर अच्छा अधिकार प्राप्त किया। बचपन से ही धर्म और ईश्वर की ओर उनकी जिज्ञासा थी। फलतः उन्होंने सभी धर्मों के आधार-ग्रंथों का अध्ययन किया। कन्नड के श्रेष्ठ कवि बेंद्रे (दे०) तथा उनके 'गेळेयरगुंपु' के संपर्क में आने से उनके काव्य-प्रेम तथा आध्यात्मिकता को ओर बल मिला। रामनरेश त्रिपाठी (दे०) के 'मिलन' काव्य का कन्नड अनुवाद भी उन्होंने प्रस्तुत किया। इस बीच उनकी आध्यात्मिक साधना अबाध रूप से चलती रही।

महर्षि अरविंद, रामकृष्ण परमहंस तथा पाश्चात्य रहस्यवादी विचारधारा से वे विशेष प्रभावित हुए। अरविंद दर्शन से उनकी साधना को एक निश्चित गति मिली। 'नन्न नल्ल' (मेरा प्रीतम) आपकी सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कृति है जिसमें आपकी मधुररस-मंडित गीतिकविता है। आपने परमात्मा को प्रियतम के रूप में देखा है। इसके भाव मधुर हैं, भाषा मधुर है। 'आत्मसंशोधन' में आपने अपने आध्यात्मिक विचारों को वाणी दी है। ऋग्वेद के कई सूत्रों तथा रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) के 'विसर्जन' नाटक का अनुवाद भी आपने किया है। भाषा लोकभाषा एवं संस्कृति से अनुप्राणित है।

मधुरवाणी *(ते० पा०)*

यह गुरजाडा अप्पाराव (दे०) के 'कन्या-शुल्कमु' (दे०) नाटक की प्रसिद्ध स्त्री-पात्र है। पेशे से वेश्या होने पर भी सौजन्यशीला है। जहाँ तक हो सके अन्याय का विरोध करने का प्रयत्न करती है। यह गिरीशमु (दे०) के वाक्-कौशल से मुग्ध रहती है। लुब्धावधानी के मुकदमे के सिलसिले में सौजन्याराव नामक वकील के पास जाती है। वे उसे चूमने को उद्यत होते हैं तो यह कहकर हट जाती है कि जो पतित नहीं हुए हैं, उन्हें बिगाड़ना नहीं चाहिए।

पतिता होने पर भी अपने साधु और निष्कपट स्वभाव के कारण मधुरवाणी लोकप्रिय हुई है।

मधुरामंगळ *(उ० कृ०)*

भक्त चरणदास (दे०)-रचित 'मधुरामंगळ' कृष्ण-काव्य-धारा की एक मूल्यवान उपलब्धि है। कंस-वध द्वारा कृष्ण ने मथुरा का मंगल-विधान किया था, अतः इस काव्य का नाम 'मथुरामंगळ' है। 'मथुरा-मंगळ' की विषय-वस्तु चिरपरिचित कृष्ण-कथा है। कृष्ण-काव्य की दार्शनिकता के घटाटोप में तथा आलंकारिकता के पृथुल भार से यह ग्राम्य घटना इस कृति में अपना निजत्व नहीं खो बैठी, यही कवि की उपलब्धि है।

इसमें कृष्ण-जीवन-संबंधी अनेक घटनाएँ आई हैं। कृष्ण-जन्म, बाललीला, शोकाकुल वृंदावन से कृष्ण का मथुरागमन, कंसवध, मथुरा-निवास, उद्धव से गोपियों की विरहजनित स्थिति का परिचय पाकर कृष्ण का दुखी होना आदि बातें वर्णित हैं। मुख्य रूप से यह एक विरह-काव्य है। नटखट कन्हैया की क्रीड़ाओं पर अपना सर्वस्व लुटा देने को तत्पर माँ के आकुल अंतर की अनकही व्यथा, प्रेममूर्ति राधा की मौन वेदना, अनुरागमयी गोपियों की सजल कहानी काव्य की करुण मूर्च्छना में साकार हो उठी है। भाषा की सरलता में ग्रामीण जीवन की सहजता अक्षुण्ण रह सकी है, गतानुगतिकता के बीच भी यह ग्रामीण है, कम कृत्रिम है। दर्शन की गंभीरता में जीवन उच्छल संगीत है, इन्हीं बिंदुओं में इस रचना की लोकप्रियता एवं मार्मिकता अंतर्निहित है।

इसमें प्राकृत-भक्ति का प्रतिपादन हुआ है। वृंदावन के उमड़ते प्रेम-प्रवाह में उद्धव का निर्गुण ज्ञान बह जाता है। माँ अपने कान्ह को ब्रह्म मानने को प्रस्तुत नहीं।

ब्रह्म क्या है, वह समझती भी नहीं, वह तो जानती है केवल अपने लाडले पुत्र को जिसकी वह माँ है—केवल माँ, शाश्वत माँ, जिसका वह बेटा है—केवल बेटा, सदा से और सदा के लिए। गोपियाँ तत्त्वज्ञानी उद्धव से केवल अपने कृष्ण को चाहती हैं, जिनके साथ उनका तिक्त-मधुर वैयक्तिक सबध है। उद्धव निरुत्तर हैं, उनकी ज्ञान गरिमा असहाय है। ज्ञानी उद्धव प्रेमी भक्त बन गोपी जन-वल्लभ-श्याम के पास पहुँचते हैं। योगेश्वर, युगनायक कृष्ण भी प्रेम-मग्न हैं। यही सार्थकता है, यही सुदरता है और इसलिए यह वैष्णवो का कठहार है।

मधुरोय *(गु० ले०)* [जन्म—1942 ई०]

इनका जन्म द्वारका मे हुआ था और इन्होने अपनी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा द्वारका तथा उच्च-शिक्षा कलकत्ता मे प्राप्त की थी। कलकत्ता के अपने अध्ययन काल मे ही ये कहानी-रचना करने लगे थे। शिल्प की नवीनता तथा घटना-विहीनता जैसे तत्त्वो के कारण इनकी कहानियाँ आधुनिक कहानियो के रूप मे प्रतिष्ठित हुई हैं। 'चेहरा' इनका प्रख्यात उपन्यास है जिसमे इन्होने आधुनिक मानव के दभ एव विच्छिन्न जीवन का निरूपण आत्मकथात्मक मनोवैज्ञानिक शैली मे किया है। इनके द्वारा रचित 'कामिनी' नामक कृति उपन्यास तथा नाटक का मिश्रण होने के कारण एक नया प्रयोग है। इसका सफल रगमचीय प्रस्तुतीकरण पहले 'कोई एक फूलनो नामलो' नाम से नाटक के रूप मे हुआ था। उसकी सफलता से उत्साहित होकर इन्होने उसे वर्तमान प्रयोगात्मक रूप दिया।

ये प्रयोगशील कथाकार हैं। मानव-मन की गतिविधियो पर इनकी पकड अत्यत गहरी है। इनकी कृतियो मे चित्रित मनोवैज्ञानिक तत्त्व तथा यौन सबधो की निवृत्ति इन्हे आधुनिक लेखको की श्रेणी मे ले आई है।

मधुसूदन ओझा *(स० ले०)* [जन्म—1866 ई०, मृत्यु—1939 ई०]

ओझा जी का जन्म बिहार प्रात के मुजफ्फरपुर जिले के गाढा नामक ग्राम मे कृष्णजन्माष्टमी की रात्रि मे हुआ था। इनके पिता का नाम वैद्यनाथ ओझा था। मधुसूदन ओझा को इनके ताऊ पडित राजीवलोचन ओझा ने, जो जयपुर मे रहते थे, गोद ले लिया था।

मधुसूदन ओझा-रचित ग्रथो मे 'ब्रह्मविज्ञान', 'यज्ञविज्ञान', 'पुराणसमीक्षा' तथा वेदागसमीक्षा' प्रमुख हैं। 'ब्रह्मविज्ञान' सात प्रकरणो मे विभक्त है। ये प्रकरण दिव्यविभूति, उक्थवैराजिक, आर्यहृदयसर्वस्व, निगमबोध, विज्ञानमधुसूदन, विज्ञानप्रवेशिका तथा पाश्चात्य-विज्ञान-पचिका हैं। इनमे दिव्यविभूति ब्रह्मविज्ञान की उपोदघात रूप है। 'ब्रह्मविज्ञान' के अतर्गत ब्रह्मविज्ञान एव उसके विज्ञाताओ के सबध मे गभीर विवेचन किया गया है। 'यज्ञविज्ञान' चार प्रकरणो मे विभक्त है। ये प्रकरण हैं—निवित् कलाप, यज्ञमधुसूदन, यज्ञविनयपद्धति तथा प्रयोगपारिजात। वेदाग समीक्षा के भी वाक्पदिका ज्योतिश्चक्रधर, आत्म-सस्कारकल्प तथा परिशिष्टानुग्रह चार प्रकरण विषय के आधार पर हैं।

मधुसूदन ओझा विरचित साहित्य बीसवीं शती की विशेष देन है। ओझा जी की शैली परिष्कृत एव वैज्ञानिक है। इनकी भाषा परिमार्जित एव रोचक है।

मधुसूदन सरस्वती *(स० ले०)* [स्थिति-काल—1600 ई०]

मधुसूदन सरस्वती अकबर के समकालीन थे। कहते हैं, अकबर के दरबार मे इनका बडा सम्मान था। ये अद्वैत सप्रदाय के प्रधान आचार्यों मे से हैं। इन्होने 'सिद्धातबिंदु', 'अद्वैतसिद्धि' (दे०) अद्वैतरत्नरक्षण', 'वेदात-कल्पलतिका', 'गूढार्थदीपिका तथा 'प्रस्थानभेद' आदि ग्रथो की रचना की थी।

मधुसूदन सरस्वती ने वेदात के सिद्धातो का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है। सुषुप्तिकाल मे होने वाले —'मैं सुखपूर्वक सोया' इस अनुभव के सबध मे शकराचार्य (दे०) के परवर्ती विद्वानो ने भिन्न भिन्न मतो की प्रतिष्ठा की है। उदाहरण के लिए, सुरेश्वराचार्य सुषुप्ति के अवरवर्ती ज्ञान को 'विकल्प' कहते हैं। इस सबध मे मधुसूदन सरस्वती का विचार है कि सुषुप्ति अवस्था मे तामसी वृत्ति से विशिष्ट अज्ञान का अनुभव होता है और जब सुषुप्ति-अवस्था को प्राप्त-जीव जाग्रत अवस्था को प्राप्त होता है तो उसकी तामसी वृत्ति की विभूति हो जाती है। इस वृत्ति के निवृत्त हो जाने पर तामसीवृत्ति-विशिष्ट अज्ञान की विवृति हो जाती है।

मधुसूदन सरस्वती की वेदात-दर्शन को यह विशेष देन कही जा सकती है कि उन्होने वेदान्त और भक्ति के सम्मिश्रण का प्रयत्न किया है।

मध्यकालना साहित्यप्रकार *(गु० ले०)* [प्रकाशन-वर्ष—1955 ई०]

मध्यकालीन गुजराती साहित्य की भिन्न-भिन्न विधाओं पर लिखी गई डॉ० चंद्रकांत मेहता की यह कृति पी-एच० डी० का शोध-प्रबंध है। इस ग्रंथ में मुक्तक, पद, रासा, आख्यान, कथावार्ता, फागु और गद्य-विधाओं का उद्‌गम, विकास, उनका सामाजिक परिवेश और विकासक्रम दिया गया है। पद-विषयक तीन प्रकरण हैं क्योंकि मध्यकाल में पद बहुत प्रचलित विधा थी। प्रत्येक विधा का विषय की दृष्टि से और काव्यशिल्प की दृष्टि से विश्लेषण किया गया है और उनका आलोचनात्मक विवेचन भी। प्रत्येक विधा का सामाजिक संस्थाओं के साथ संबंध और उसके उद्‌भव और विकास में सामाजिक परिस्थिति के योगदान का निरूपण ग्रंथ की विशेषता है।

मध्यकालीन चरित्रकोश *(म० कृ०)*

इसके संपादक श्री सिद्धेश्वर शास्त्री चित्राव हैं। इसमें ईसा पूर्व 500 से 1818 ई० तक के प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित्रों का अकारादि क्रम से उल्लेख किया गया है।

यह एक संदर्भ ग्रंथ है। इसके द्वारा किसी भी ऐतिहासिक पात्र के व्यक्तित्व-संबंधी बातें सुलभ ही खोजी जा सकती हैं।

मध्यपद लोपी *(उ० कृ०)*

'मध्यपद लोपी' सौभाग्यकुमार मिश्र (दे०) का कविता-संग्रह है। इसमें कवि की मौलिक-दृष्टिभंगी अपनी समस्त संभावनाओं के साथ आलोकित हो उठी है। इसमें कवि-चेतना के तीन रूप दिखाई पड़ते हैं। रोमांटिक, प्रयत्नवादी एवं परीक्षामूलक। इसमें जीवन के प्रति कहीं प्रगाढ़ अनुरक्ति है तो कहीं विरक्ति—कहीं घृणा व्यक्त हुई है तो कही शोक, क्रोध और अनासक्ति। सौभाग्यकुमार भाषा-व्यवहार-कला के सिद्धहस्त कवि हैं। प्रत्येक शब्द का एक व्यावहारिक गुण है। प्राय: प्रत्येक कविता में शब्द का विचित्र एवं सुतीक्ष्ण प्रयोग मिलता है जो कविता की मूल ध्वनि के साथ गतिशील है। वाकभंगी पर भी कवि का असाधारण अधिकार है। ध्वनि-चेतना के कारण इनकी कविताओं में एक भास्वरता मिलती है।

मध्यम व्यायोग *(सं० कृ०)* [समय—तीसरी शती ई०]

यह महाकवि भास (दे०) का सुप्रसिद्ध व्यायोग है। इसमें मध्यम पांडव (भीम) का हिडिंबा से प्रेम, मध्यम ब्राह्मण कुमार की रक्षा में घटोत्कच के कहने पर हिडिंबा के पास जाना और हिडिंबा से मिलने आदि का वर्णन है।

इसमें हिडिंबा की अपने वर्षों पूर्व के पति से मिलने की अभिलाषा और घटोत्कच एवं मध्यम (भीम) दोनों द्वारा प्रदर्शित मातृभक्ति की विषय-वस्तु का परिष्कृत रूप में उपयोग किया गया है। माता की आज्ञा पिता की आज्ञा से गुरुतर होती है। पुत्र (घटोत्कच) का पिता (भीम) को न पहचानते हुए धृष्टतापूर्वक माँ के सम्मुख ला उपस्थित करना बड़ा ही सरस और कौतूहल-पूर्ण है। वास्तव में यह योजना हिडिंबा की ही थी। भास ने 'मध्यम व्यायोग' तथा दूतघटोत्कच' की कथावस्तु में नयी उद्‌भावनाएँ की हैं। इस व्यायोग में भास ने भीम के उज्ज्वल तथा त्यागमय चरित्र का सुंदर चित्रण किया है। भाव तथा भाषा की दृष्टि से भी यह एक सफल नाट्यकृति है।

मध्याह्न *(गु० कृ०)*

'मध्याह्न' सुप्रसिद्ध कवि करसनदास 'माणेक' (दे०) का प्रख्यात काव्य-संग्रह है। 'माणेक' की कविता गांधीवादी और समाजवादी दोनों प्रभावों को समेटे हुए है। कवि हास्य-व्यंग्य का प्रश्रय लेकर यथार्थ के चित्रण में प्रवृत्त होता है, इसलिए जीवन के वास्तविक चित्रणों के आलेखन में भी विषाद की गहरी छाया नहीं है।

'मध्याह्न' में मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन पर आधृत अनेक कविताएँ हैं। ऐसी ही 'भले सजनी संवारो' नामक एक कविता में प्रेम के उभार और ह्रास का व्यंग्यात्मक चित्रण है। आलोच्य संग्रह की अधिकांश कविताएँ प्रगीत के सुंदर उदाहरण हैं। छंदोबद्धता और गेयता के गुणों से भरपूर इन कविताओं में लेखक की प्रयोगशीलता तथा अभिव्यक्तिजन्य कलात्मकता सर्वत्र व्याप्त है।

मध्वमुनीश्वर के पद *(म० कृ०)*

मध्वमुनि का पहला नाम था—त्र्यंबक। इनका कुल माध्व-संप्रदाय का कट्टर अनुयायी था। इन्होंने अनेक

तीर्थों मे भ्रमण किया और औरगाबाद मे निवास करते समय 'ज्ञानेश्वरी' (दे०) का प्रवचन करना इनका मुख्य कार्य बन गया था। सर्वसाधारण जनता की रुचि को ध्यान में रखकर इन्होने सरस पदो की रचना की है जो कीर्तनो में गाए जाते हैं। मराठी के साथ कुछ पद हिंदी मे भी हैं जिन पर दक्खिनी उर्दू का पर्याप्त प्रभाव है और अरबी-फारसी के प्रचलित शब्द अनायास आ गए हैं। इनकी रचनाएँ मराठी हिंदी-सस्कृत तीनो भाषाओ मे मिलती हैं।

मध्वाचार्य *(स० ले००)* [समय—1199-1303 ई०]

मध्व वायु के अवतार कहे जाते थे। इनके पिता का नाम मध्यगेह भट्ट तथा माता का नाम देवता था। इनकी जन्म-भूमि कन्नड प्रदेश में रजतपीठ नामक ग्राम है। *आनदतीर्थ और पूर्णप्रज्ञ*—इनके ये दो नाम और प्रसिद्ध थे। पिता इन्हे वासुदेव कहा करते थे। ये अल्प अवस्था मे ही सन्यास ग्रहण करना चाहते थे। परतु जब इनके पिता को दूसरे पुत्र की प्राप्ति हो गई तभी ये सन्यास ले सके। सन्यास लेने पर ही ये पूर्णप्रज्ञ (दे० ब्रह्मसूत्र) के *नाम से प्रसिद्ध हुए। मध्वाचार्य द्वारा रचित ग्रथो मे* 'ब्रह्मसूत्रभाष्य', 'उपनिषद्भाष्य' (दे० उपनिषदो) एव 'गीताभाष्य' (दे० गीता) प्रमुख हैं।

मध्वाचार्य का दार्शनिक सिद्धात द्वैतवाद है। इनके द्वैतवाद के अनुसार जगत् ब्रह्म का शरीर अथवा विशेषण न होकर अपना *स्वतत्र अस्तित्व* रखता है। इसी प्रकार जीव का भी ब्रह्म से पृथक् अस्तित्व है। मध्व ने ईश्वर एव जीवादि मे पाँच प्रकार के भेद की स्थापना की है। यह भेद ईश्वर और जीव, ईश्वर और जड जगत्, जीव और जगत्, जीव और जीव तथा जड और जड का भेद है। ब्रह्म को मध्व ने विष्णु का रूप दिया है। ब्रह्म-रूप विष्णु की शक्ति लक्ष्मी है। मध्व ने तीन प्रकार के जीव माने हैं—*मुक्ति-योग्य नित्यससारी तथा तमोयोग्य*। मध्व-दर्शन के अनुसार जीव जब परमात्मा के साथ परमसाम्य को प्राप्त करता है तो वही *मुक्ति की अवस्था* कहलाती है।

द्वैतवादी दार्शनिक के रूप मे मध्व का महत्व नितात स्पष्ट है। मध्व ने जीव, जगत् एवं ब्रह्म की पृथक्-पृथक् सत्ता स्वीकार करके अपने दर्शन को अधिक *सरल एव सामान्य जन* के लिए उपयोगी बना दिया है।

मनतुक्कु इनियवळ *(त० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

इस उपन्यास की लेखिका आ० चूडामणि हैं। *'कलैमहळ'* नामक मासिक पत्रिका मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित इस उपन्यास पर इन्हे *नारायणस्वामी अय्यर* पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस चरित्र-प्रधान उपन्यास की नायिका लक्ष्मी अपाहिज होने के कारण सबकी सहानुभूति और सहायता की सदा आकाक्षा करती है पर स्वय सबके प्रति निर्दयतापूर्ण व्यवहार करती है। वह अपने घर मे ही एक स्कूल चलाती है। वर्षा के दिन एक बच्चा देर से स्कूल पहुँचता है और स्कूल के बद द्वार के बाहर खडा ठिठुरता रहता है। कालातर मे उस बच्चे की मृत्यु से लक्ष्मी का हृदय-परिवर्तन होता है। वह अपनी क्रूरता छोड-कर सबके साथ प्रेम का वर्ताव करने लगती है। इस उपन्यास मे लेखिका को पात्रो के चरित्र चित्रण मे—उनके आतरिक सघर्ष के चित्रण मे —विशेष सफलता मिली है। इसका तमिल के चरित्र-प्रधान उपन्यासो मे विशिष्ट स्थान है।

मनसा *(बँ० पा०)*

मगलकाव्य (दे०) की परिधि मे अमर्त्य और मर्त्य बहुत ही सहज रूप मे आकर मिल गए हैं। देवी मनसा की पूजा के प्रचारार्थ ही *'मनसा-मगल'* की रचना हुई थी और इसमे देवी *मनसा* की दैवी महिमा के विकास से अधिक उनके मानवीय-चरित्र गुणो का विकास दिखाया गया है। साधारण मानव मानवी के द्वेष, क्रूरता, हिंसा, मान-अपमान, भावोद्वेलन – सब कुछ ही इस चरित्र मे प्रति-फलित हुआ है। *मनसामगल काव्यकारो के यथार्थबोध से* यह चरित्र विशेष रूप से प्रभावित है। चाँद सौदागर के निकट पूजा-लाभ के लिए मनसा सकरुण विनती करती है तो फिर प्रत्याख्यान मे निर्मम कठोरता का भी प्रदर्शन करती है। बीच मे घृण्य नीचता के स्तर पर उतरने मे भी *मनसा झिझकती नही। देव-सभा मे मिथ्याभाषण से भी* वह कुठित नहीं होती। फिर उद्देश्य-सिद्धि की आशा मे प्रसन्न स्निग्ध दिखाई पडती है। एकमात्र कवि विप्रदास (दे०) के मनसा-चरित्र मे भक्त की दृष्टि मे स्वाभाविक ढग से स्नेह, ममता एव कारुण्य की अभिव्यक्ति हुई है। प्रत्येक कवि के काव्य मे ही, विशेष रूप से शिव प्रसग म शृगार रसाधिक्य का परिचय मिलता है। मनसा के प्रति

शिव के संभाषण में हास्यरस की अभिव्यंजना हुई है। चंडी-मनसा-गंगा के झगड़े के द्वारा मनसा का स्त्री-रूप प्रकट हुआ है।

मनसामंगल *(बँ० कृ०)*

'मनसामंगल' के आदि कवि के रूप में काना हरिदत्त (दे०) का उल्लेख किया जाता है। 'मनसामंगल' के सबसे प्रसिद्ध कवि विजयगुप्त (दे० गुप्त) ने इसकी स्वीकृति दी है। विजयगुप्त की उक्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि हरिदत्त विजयगुप्त से सौ वर्ष पूर्व के कवि थे। दास हरिदत्त की भणिता में 'कालिकामंगल' की एक पांडुलिपि मिली है। बहुत-से विद्वान् 'कालिकामंगल'(दे०) के इस कवि के साथ काना हरिदत्त को अभिन्न मानते हैं।

'मनसामंगल' के जनप्रिय कवि थे विजयगुप्त। परंतु श्रेष्ठ कवि नारायणदेव को ही कहा जाता है। कदाचित् वे चैतन्य-पूर्ववर्ती काल के कवि थे। चरित्र-चित्रण एवं कहानी-विन्यास की दृष्टि से नारायणदेव की श्रेष्ठता स्वतः प्रमाणित है। तिथि और संवत् से युक्त प्रथम मनसामंगल काव्य के रचनाकार विप्रदास पिपिलाई हैं। मध्ययुगीन मंगलकाव्य (दे०) की धारा में साँपों की देवी मनसा (दे०) की पूजा के प्रचार के निमित्त मनसामंगल की रचना शुरू हुई थी।

मनाकिबो *(सि० पारि०)*

'मनाकिबो' (मूल 'अरबी मनकबत्') का शाब्दिक अर्थ है धार्मिक महापुरुषों का यशोगान। सिंधी-साहित्य में 'मनाकिबो' उस वर्णनात्मक कविता को कहा जाता है जिसमें इस्लाम के किसी पैग़ंबर, दरवेश, धार्मिक महापुरुष के जीवन की किसी-न-किसी साधारण और स्वाभाविक घटना का वर्णन कर उसका यशोगान किया जाता है। 'मदाह' (दे०) और 'मुनाजात' (दे०) में भी धार्मिक महापुरुषों का गुणगान होता है, परंतु मनाकिबो उनसे इस बात में भिन्न है कि इसमें किसी महापुरुष का गुणगान अनिवार्यतः उसके जीवन की किसी-न-किसी स्वाभाविक घटना का वर्णन करके किया जाता है। 'मनाकिबा' (मनाकिबो का बहुवचन) नाम से डा० नबी बख्श खान बलोच (दे०) ने इस प्रकार की चुनी हुई कविताओं का संग्रह किया है जिसका प्रकाशन 1960 ई० में सिंधी अदबी बोर्ड हैदराबाद (सिंध) से हो चुका है।

मनु *(हिं० पा०)*

भारतीय इतिहास का यह आदि पुरुष जयशंकर प्रसाद (दे०) के महाकाव्य 'कामायनी' (दे०) का नायक है। उसका चरित्र तीन रूपों में हमारे सामने आता है—ऐतिहासिक-रूप में, स्वच्छंद व्यक्ति-रूप में और प्रतीक-रूप में। ऐतिहासिक-रूप में वह देवसृष्टि का अवशेष और मानव-सृष्टि का अग्रदूत है। श्रद्धा (दे०) के संपर्क में आकर वह कर्मोन्मुख होता है, कर्मकांडमय यज्ञों का विधान करता है और इड़ा (दे०) के सहयोग से सारस्वत नगर का शासन करता है। व्यक्ति-रूप में उसका चरित्र भोग-प्रधान और असामाजिक है। इसीलिए वह श्रद्धा जैसी पत्नी का त्याग और इड़ा जैसी सहचरी का अनादर करता है। इतना होने पर भी उसमें श्रेष्ठ मानवीय गुणों का नितांत अभाव नहीं है। उसका व्यक्तित्व बलिष्ठ और तेजस्वी है, हृदय राग-मय और द्रवणशील है। तीसरे रूप में वह मननशील मन का प्रतीक है, जिसकी रागात्मक और बौद्धात्मक वृत्तियों का प्रतिनिधित्व क्रमशः श्रद्धा और इड़ा करती हैं। संभवतः उसके सूक्ष्म रूप पर दृष्टि रखने के कारण ही कवि उसके स्थूल चरित्र को अधिक प्रभावशाली नहीं बना पाया है।

मनुचरित्रमु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1519-1552 ई० का मध्य]

कवि—आंध्रकविता-पितामह अल्लसानि पेद्दन्ना (दे०)।

'मनुचरित्रमु' अथवा 'स्वारोचिष मनुसंभवमु' तेलुगु-साहित्य का सर्वांगपूर्ण सर्वप्रथम प्रबंध-काव्य है। यह तेलुगु के पंचकाव्यों में प्रथमगण्य है। इस कृति को अल्लसानि पेद्दन्ना ने 'साहिती समरांगण चक्रवर्ती' श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) को समर्पित किया था। समर्पण-समारोह के संदर्भ में रायलु ने स्वयं स्वर्णवल्यंकिका में कवि पेद्दन्ना को आसीन कर उसे अपने कंधों पर वहन किया था। परिणामतः पेद्दन्ना को कई अग्रहार आदि पुरस्कार रूप में मिले।

'मनुचरित्रमु' में अभिवर्णित कथावस्तु का उत्स मार्कंडेय पुराण है। इस पुराण का काव्यानुवाद मारन कवि ने चौदहवीं शती ई० के प्रथम चरण में किया था। संस्कृत मूल तथा अनूदित तेलुगु-काव्य से प्रेरणा लेकर पेद्दन्ना ने अपनी काव्य-प्रतिभा के द्वारा इस प्रबंध-काव्य का प्रणयन किया।

'मनुचरित्रमु' आश्वासो मे निबद्ध है। कथा-वस्तु इस प्रकार है। अरुणास्पद प्रवरुडु (दे०) नामक एक मदन-सुदर, शास्त्रपारगत कर्मनिष्ठ ब्राह्मण रहता था। एक सिद्धपुरुष के दिए हुए पादलेप के प्रभाव से वह हिमालय के सुदर दृश्यो को देखने के लिए गया। दोपहर के समय तक वह पुन घर लौटकर अग्नि-कार्य करना चाहता था परतु तब तक पादलेप के पिघल जाने से वह घर नही लौट सका। वहाँ वरूधिनी (दे०) नाम अप्सरा से इसका साक्षात्कार हुआ। वरूधिनी प्रवरुडु पर आसक्त हो गई, पर शात एव धीर प्रकृति के प्रवरुडु पर इसका कोई असर नही पडा। वह अग्नि का आह्वान कर उसकी सहायता से अपने घर पहुँच गया। इधर वरूधिनी पर आशक्त एक गधर्व था जो मौके की प्रतीक्षा मे था। उसने प्रवरुडु का वेश धारण कर लिया और विरहिणी वरूधिनी से सभोग किया। वरूधिनी के गर्भ से स्वरोचि का जन्म हुआ था। पेद्दन्ना की काव्यप्रतिभा, अद्भुत है। वरूधिनी प्रवरुडु दो नितात भिन्न प्रकृति के पात्र हैं—वरूधिनी शृगारप्रिया, कलाशीलिनी एव भोगपरायणा है, प्रवरुडु इसके विपरीत शात, वैदिक कर्मनिष्ठ एव एक पत्नीव्रत। पेद्दन्ना की प्रतिभा की पराकाष्ठा इस बात मे है कि उन्होने इन दोनो पात्रो के माध्यम से शृगार तथा शात रसो का सघर्ष प्रस्तुत कर अत मे शात रस की विजय दिखाई है। इस काव्य में शात अगी रस है और शृगार अग रस है। कुछ समालोचको के अनुसार वरूधिनी और प्रवरुडु मे रसाभास का उज्ज्वल उदाहरण है परतु काव्यशास्त्र के पारखी यह जानते हैं कि सम्यक् निर्वाह होने पर रसाभास भी काव्य मे उपादेय होता है।

मनुस्मृति *(स० कृ०)* [रचना-काल—300 ई० पू० से 200 ई० तक]

'मनुस्मृति' के जन्मदाता मनु ही हैं। 'मनुस्मृति' मे बारह अध्याय हैं, जिनमे 2694 श्लोक हैं। 'मनुस्मृति' भारतीय धर्म एव प्राचीन विधि पद्धति का ही महनीय ग्रथ है।

'मनुस्मृति' मे राज्य की न्यायव्यवस्था का सूक्ष्म एव व्यापक वर्णन मिलता है। मनु ने राज्य की न्याय-व्यवस्था के लिए दो विशेष स्रोत माने थे। इन स्रोतो मे प्रथम मे शिष्ट जनो का परपरागत व्यवहार था और द्वितीय मे आत्मतुष्टि। 'मनुस्मृति' के अनुसार राजा सारी प्रजा का पिता है। राजा को समाज की आर्थिक दशा का सुधार करना चाहिए। इसके अतिरिक्त राजा को वस्तुओ के मूल्य का निर्धारण करना चाहिए। राजा का यह भी कर्तव्य है कि वह रोगियो की सहायता न करने वाले वैद्यो को दड दे।

'मनुस्मृति' के अतर्गत ग्राम और नगरो की शासन व्यवस्था का भी वर्णन किया गया है। 'मनुस्मृति' के अनुसार ग्राम का शासन मुखिया एव नगर का शासन सर्वार्थ चितक के द्वारा सपन्न होता था। मनु का मत है कि जो अधिकारी भ्रष्टाचारी या उत्कोच लेने वाले हैं, उन्हे देश से बाहर निकाल देना चाहिए तथा उनका जीवन-सर्वस्व छीन लेना चाहिए। मत्री अथवा न्यायाधीश आदि भ्रष्टाचारी यदि हो, तो उनसे 1000 पण दड रूप मे लेना चाहिए।

मनु के न्यायविधान की उपयोगिता विश्व के अनेक क्षेत्रो के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है।

मनोन्मणीयम् *(त० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1891 ई०]

इस नाटक का प्रकाशन आधुनिक तमिल नाटक-परपरा का सूत्रपात करने वाली घटना माना जाता है। लेखक प्रो० सुदरम् पिळ्ळै (दे०) ने शेक्सपियर के पद्य-नाटको का आदर्श सामने रखकर इस सफल नाटक की रचना की है। इसकी कथा वस्तु लार्ड लिटन के 'रहस्य मार्ग' (द सीक्रेट वे) नामक नाटक पर आधारित है पर शैली, पात्र-सृष्टि तथा वातावरण, सबका ऐसा 'तमिलीकरण' हुआ है कि सपूर्ण नाटक तमिल साहित्य धारा की एक स्वाभाविक, पर नवीन, उपलब्धि लगता है। इसमे नाटको का-सा विलक्षण व्यक्तित्व-टकराव नही है, इसलिए इसे एक नाटककार का काव्य कहना समीचीन होगा। नर-नारी-प्रेम, राष्ट्र-भक्ति, आदि भावनाओ का प्रकाशन, सुदर प्रकृति-वर्णन, लोकानुभूतियुक्त उक्तियाँ तथा अन्योक्तिपरता—ये अश आस्वाद्य हैं।

इसमे पाड्य राजा 'जीवकन्' के अपने मत्री 'कुटिलन्' के षड्यत्रो का शिकार बनकर अतत उनसे मुक्त होने की कथा वर्णित है। नाटक का शीर्षक राजा की रूपवती और एकमात्र कन्या मनोन्मणी' के नाम पर है और मत्री इस कन्या-रत्न को अपने अयोग्य पुत्र की वधु बनाना चाहता है। जिस 'चेर'(केरल) राजा 'पुरुषोत्तमन्' से राजकन्या का विवाह होने वाला है, उसे मत्री अपने पुत्र द्वारा युद्ध की ललकार का सदेश भेज देता है। युद्ध छिड जाने पर 'पाड्य' सेनाएँ जब हारने की स्थिति मे

होती हैं तो दैववश राजगुरु 'सुंदर मुनिवर्' द्वारा रक्षा के लिए बनाई गई सुरंग में 'मनोन्मणी' और 'चेर' राजा का साक्षात्कार हो जाता है जिससे उन दोनों के हृदयों में पहले ही उत्पन्न पूर्वराग सफल प्रेम-बंधन बन जाता है। अर्धरात्रि में 'कुटिलन्' स्वयं 'पुरुषोत्तमन्' के हाथों फँस जाता है और पांड्य राजा के ही सामने उसकी राजद्रोही योजनाएँ खुल जाती हैं। वैवाहिक मंगल-कामनाओं के साथ नाटक का अवसान होता है।

यह नाटक पाँच अंकों में विभक्त है। इस विभाजन के अलावा पात्रों द्वारा एकांत कथन यत्र-तत्र गीतों का समावेश तथा प्रवाहमय 'आचिरिय विरुत्तम्' छंद का निर्वाह शेक्सपियर की नाटक-शैली का स्मरण दिलाने वाले हैं। लेखक ने स्वयं संकेत किया है कि यदि अन्योक्ति-परक व्याख्या की जाए, तो 'चीवकन्' जीवात्मा, 'कुटिलन्' मायाशक्ति, 'मनोन्मणी' परिपक्वावस्था का शुद्ध तत्त्व, तथा 'पुरुषोत्तमन्' अनुग्रह-शक्ति इत्यादि माने जा सकते हैं।

मनोमती (अ० कु०) [रचना-काल—1900 ई०]

यह रजनीकांत बरदलै (दे०) का द्वितीय किंतु प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। कथा इस प्रकार है—हलकांत बरुवा और चंडी बरुवा में पीढ़ियों से झगड़ा चला आता है। उद्धत हलकांत बरुवा चंडी पर बर्मियों द्वारा आक्रमण करा देता है। आक्रमण के फलस्वरूप दोनों परिवारों के जन-धन की क्षति होती है। पहले परिवार के युवक लक्ष्मीकांत और दूसरे परिवार की युवती मनोमती में प्रेम हो जाता है। इन दोनों का मिलन होता है। इन दोनों के प्रेम में रोमियो-जूलियट और उषा-चित्रलेखा नामक पौराणिक चरित्रों का प्रतिबिंब देखा जा सकता है। उषा को जिस प्रकार चित्रलेखा ने अनिरुद्ध से मिला दिया था, उसी प्रकार मनोमती की सखी पमीला उसे लक्ष्मीकांत के साथ मिला देती है। वह स्वयं अपने प्रेमी शांतिराम की स्मृति में झुलसती उपेक्षित रह जाती है। उपन्यास की पटभूमि ऐतिहासिक है किंतु आंशिक रूप से जनश्रुति का भी आश्रय लिया गया है। इसमें कल्पना का भी प्रचुर प्रयोग है। अधिकांश चरित्र काल्पनिक हैं। इसे शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं कहा जा सकता। यह लेखक की श्रेष्ठ कृति है।

मनोमुकुर (गु० कृ०)

नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया द्वारा समय-समय पर लिखे गए विवेचनात्मक लेखों का संग्रह है 'मनोमुकुर'। 'मनोमुकुर' चार ग्रंथों में बँटा हुआ है। प्रथम ग्रंथों में 'अवलोकन तथा ग्रंथ-परिचय', 'रस तथा कलामां तत्त्वान्वेषण', 'जीवन-दर्शन', 'धर्म और तत्त्व-दर्शन', 'हास्यरस अने कटाक्ष-लेख', व्याकरण, भाषा, इत्यादि शीर्षकों के अंतर्गत क्रमशः 'संन्यासी', 'उत्तररामचरित' और 'विलासिका' नामक ग्रंथों का विवेचन, 'एक चित्रे जोइ सुझेलो विचार', 'वसंतोत्सव उपर चर्चा', 'गुजराती कविता अने संगीत', 'कवितामां असंभव दोष', 'ठगाएली विप्रवानो न्याय', 'असत्यभावारोपण', 'दूरथी गीतध्वनि', 'नारायण हेमचंद्र' और 'नवल राम' के जीवन-दर्शन, 'विश्वरचना और स्वेच्छा स्वीकार' नामक दर्शन संबंधी लेख, 'उत्तर भद्रं-भद्र', 'अमूल्य ग्रंथनी शोध', 'प्रयोजित परिहासनां माठां फल' तथा 'उद्देश्य अने विधेय तथा अध्याहारनुं स्वरूप' और 'गुजराती भाषानुं बंधारण' नामक गुजराती भाषा से संबंधित लेख संग्रथित हैं। अन्य ग्रंथों में भी इसी प्रकार के लेख हैं। विषय-वैविध्य, सूक्ष्म और मार्मिक विषय-विश्लेषण, समशीतोष्ण भाव से किया गया गुण-दोष-दर्शन, स्पष्ट मताभिव्यक्ति तथा सौंदर्योद्घाटन इन निबंधों की प्रमुख विशेषताएं हैं। इन लेखों में लेखक की दृष्टि दोष-दर्शन में अधिक रमी है। इनकी शैली शिथिल और विषय-निरूपण लेखक की प्रकांड विद्वत्ता, निर्भयता आदि का परिचायक है।

मनोरमा (उ० पा०)

श्री मन्मथ कुमारदास (दे०) के उपन्यास 'महाश्वेता' (दे०) की नायिका महाश्वेता है मनोरमा। इसका जन्म एक संभ्रांत आभिजात्यपूर्ण परिवार में होता है किंतु समय के घात-प्रतिघात से सब-कुछ बदल जाता है।

पिता दूसरों की चाल में फँसकर आज सर्वहरा है। प्रथम प्रेम में मनोरमा को मिलती है प्रताड़ना। जीवन में विडंबना की सृष्टि होती है। एक व्यक्ति से हटाकर दूसरे व्यक्ति को प्यार करने को इसे बाध्य किया जाता है। किंतु केवल इतने से ही अंत नहीं होता''' अनंत प्रतारणा। अपने ही भाई-भाभी के द्वारा यह प्रताड़ित होती है। साथ ही प्रताड़ित है धनिक-पुत्र अबनी द्वारा

जिसके लिए यह अभिसारिका, प्रेमिका, प्रणयिनी है ·· जननी के गौरव से यह वचित नही है, किंतु इसे मातृत्व का अधिकार नही है। अवैध सतान समाज को स्वीकार्य नही है। अत सभी के अज्ञात मे नवजात शिशु को जगल मे छोड आती है।

किंतु इन कलक गाथाओ को यह गुप्त रखने की चेष्टा नही करती। इस पर ही सारी बातें घटित होती हैं, किंतु यह निर्विकार भाव से, निर्लिप्त रूप से दृढता के साथ इस आंधी तूफान का अवलोकन करती दिखाई पडती है। सामाजिक दृष्टि से यह महापापिनी है, किंतु यह सतेज 'महाश्वेता' होकर अमृतमय हो उठी है। अत मे मनोरमा पुत्र को वापस पा लेती है, किंतु जीवन मे फिर मिलन नही। प्रथम प्रेम की स्मृति ही पर्याप्त है। नारी जाति की निस्सहायता के अतराल मे व्याप्त हो जाती है और एक करुण कहानी।

मनोरमा *(क० पा०)*

प्राचीनता तथा आधुनिकता के सधिकाल मे कवि मुद्दण (दे०) का जन्म हुआ था जिन्होंने अपनी अल्पायु मे तीन काव्य लिखे। उनके 'श्रीरामाश्वमेध' काव्य के पात्रो मे मनोरमा का अत्यत महत्वपूर्ण स्थान है। काव्य के कथानक से उसका प्रत्यक्ष सबध नही है परतु ऐसा भी नही कहा जा सकता कि सबध नही है। काव्य की वस्तु श्रीराम के द्वारा सीता परित्याग और अश्वमेध स सबधित है। अत प्रत्यक्षत मनोरमा का पात्र उससे सबधित नही है। परतु, इस कथा के प्रवाह मे, उसमे नवीनता का सचार करने मे और कवि के दृष्टिकोण को समझने मे यह पात्र बडा सहायक है, अतएव उसके बिना काव्य मे कोई सार भी नही है। कन्नड-साहित्य-जगत मे 'मनोरमा' एक अविस्मरणीय पात्र है। उसकी सृष्टि मे उसके कवि ने अपनी पूरी कुशलता, कल्पनाशक्ति और अनुभवशीलता का परिचय दिया है। वह कवि 'मुद्दण' की पत्नी है। मनोरमा-मुद्दण का सवाद काव्य का रसपूर्ण अग है।

मनोरमा कवि की रसज्ञता की प्रमाण है। कवि (मुद्दण) प्राचीन परपरा का प्रतीक है तो मनोरमा आलोचना की नयी दृष्टि से सपन्न कवि की आतरिक भावनाओ का बाह्य रूप है। वह सीता-स्वयवर की कथा सुन चुकी है। सीतापहरण की कथा उसे पसद नही। उसने रामाश्वमेध की कथा नही सुनी। पद्य मे कवि उसे सुनाना चाहता है तो वह रोकती है, क्योकि 'पद्य वद्य, गद्य हृद्यम्'। हृद्य गद्य मे ही वह सुनना चाहती है। इस प्रकार वह गद्य की प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है। वह कन्नड की सहज, सरल शैली की मांग करती है। 'प्राणेश्वरी', 'रानी', 'मोहनागी', 'सुदरी' आदि शब्दो के सबोधन से कवि उसके प्रति अपना प्रेम प्रकट करता है तो वह भी अपने कटाक्षपात से और कभी-कभी 'रमण', 'मोहनाग' जैसे मित शब्दो से अपना प्रेम व्यक्त करती है। बुद्धिमती होने पर भी मनोरमा अपने प्रियतम के क्लिष्ट शब्दो को नही समझ पाती। वह कभी-कभी पति की वक्रोक्तियो को सच समझ लेती है। कवि जब मत्र-सिद्धि की बात करता है तो वह मत्र जानने का हठ करती है। बहुत देर सभाषण करने के बाद जब कवि 'भवति भिक्षा देहि' मत्र बताता है तो वह चमत्कृत हो जाती है और पति की जादू-भरी वाणी का प्रभाव स्वीकार करती है। वह सीता को बहुत पसद करती है। उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करती है। 'राम ने दूसरा विवाह नही किया' कथा का यह भाग सुनकर वह राम के प्रति भी सहानुभूति प्रदर्शित करती है।

मनोविहार *(गु० क०)* [प्रकाशन-वर्ष—1956 ई०]

'मनोविहार' रामनारायण विश्वनाथ पाठक के 28 लेखो का सग्रह है। इस सग्रह का सर्वप्रथम प्रकाशन गुर्जर ग्रथरत्न कार्यालय, अहमदाबाद से 1956 ई० मे हुआ था और उसकी दूसरी आवृत्ति (पुनर्मुद्रण) 1958 ई० मे प्राप्त हुई। पुस्तक के अत मे उक्त ग्रथ मे ग्रथित लेखो के प्रकाशन की तिथियाँ दी गई हैं जिन्हे देखने से पता चलता है कि ये लेख 1926 ई० से लेकर 1953 ई० के बीच मे लिखे-प्रकाशित हुए हैं। प्रस्तुत ग्रथ लेखक के अनेक रुचि-पूर्ण विषयो का मनोविहार है। इनमे से कुछ निबध तत्त्व चिंता से पूर्ण हैं, यथा—'प्रेम', 'मानवनी विशेषता', 'मृत्यु विषे कइक' तथा 'सत्यमेव जयते'। इनके अतिरिक्त पुराण तथा लोक-कथा-सबधी लेखो मे पर्याप्त तात्त्विक चिंतन प्राप्त होता है। 'भाई इनदुलालनो मुकदमो', 'गिजूभाईना सस्मरणो', 'सद्गत आनदशकरभाई', 'कविश्री नानालाल', 'महादेवभाई', 'मेघाणीभाईना सस्मरणो', 'पूज्य गाधीजी अने कस्तूरबा' और 'कस्तूरबा' नामक लेख व्यक्ति विशेष से सबद्ध होने के कारण पूर्णत वैयक्तिक परिवेश मे लिखे गए हैं अत सस्मरणात्मक हैं। 'मोढेरा', 'अडालजनी वाव', 'धुंवाधार अने भेडाघाट', तथा 'वाराणसी' स्थान सबधी लेख हैं जिनमे सबद्ध स्थानो के स्थापत्य-शिल्प की चर्चा समाविष्ट है। 'शारदुत्सवो', 'शापमोचन', 'मुरईमां नव-

रातना उत्सवो', 'संगीत अने कथकलि' और 'कथकलि विषे कंइक' लेख कला-संस्कृति पर प्रकाश डालते हैं। शेष निबंध प्रकीर्ण में रखे जा सकते हैं। ये प्रकीर्ण निबंध-लेखक की समाज को देखने-परखने और सेवा करने की वृत्ति को उजागर करते हैं। तात्त्विक चर्चा में लेखक की गंभीर मौलिक सर्जनात्मक शक्ति का परिचय मिलता है। व्यक्ति-परक निबंधों में लेखक ने अपने पूर्ण परिवेश को लेकर व्यक्तियों का मूल्यांकन किया है। इस प्रकार के लेखों में लेखक की शैली वस्तुपरक होते हुए भी अनेक स्थानों पर भावप्रधान हो गई है और संबद्ध व्यक्ति के संबंध में ऊष्मा-युक्त वक्ष से उद्गार निकल गए हैं। स्थापत्य-शिल्प संबंधी लेखों में पौरस्त्य कला का निदर्शन एवं उस पर पड़े विजातीय प्रभावों की चर्चा विद्यमान है जो लेखक की ज्ञान-पिपासा को प्रकट करते हैं। 'वार डोलीना पत्रो' लेखक की सामाजिक चेतना और समाज के विविध अंगों-उपांगों की समस्या में उसकी रुचि के परिचायक हैं। सभी स्थानों पर लेखक की तर्कशुद्धता और वस्तुनिष्ठता परिलक्षित होती है। शैली विषयानुकूल है और भाषा प्रायः सरल है—गांधी-चेतना के समान ही सभी कुछ है।

मनोहरन् *(त० पा०)*

मनोहरन् पम्मल संबंद मुदलियार (दे० संबंद मुदलियार)-कृत ऐतिहासिक नाटक 'मनोहरन्' का नायक है। इसमें शारीरिक एवं मानसिक वीरता है। इसमें अपनी माँ के प्रति अपार श्रद्धा का भाव है। इसकी मातृभक्ति के कारण नाटक में अनेक नाटकीय मोड़ आए हैं। नाना गुणों से भूषित आदर्श युवक मनोहरन् के दो महत्वपूर्ण कार्य हैं—अपने नाना के शत्रु पुरुविजय पाडियन् को हराना तथा दासी वसंतसेना को अपने माता-पिता के बीच से हटा कर उन्हें सिंहासन पर बैठाना।

मन्नादियार्, चात्तुक्कुट्टि *(मल० ले०)* [समय—1857 ई० से 1902 ई० तक]

मध्य केरल में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने संस्कृत के कई नाटकों का मलयाळम में अनुवाद किया जिनमें 'उत्तररामचरितम्' की विशेष ख्याति है। रसानुकूल शब्दों के प्रयोग में इनका कौशल प्रशंसनीय है। रामभक्त दीक्षितर् के लिखे 'जानकीपरिणयम्' नाटक का भी रूपांतर इन्होंने किया है।

मन्मथराय *(बँ० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

पौराणिक विषय-वस्तु के आश्रय से अति आधुनिक युग के मनोभाव को सार्थक ढंग से प्रकट किया जा सकता है, इस युग के सुपरिचित नाट्यकार मन्मथराय के नाटक इसके प्रमाण हैं। पौराणिक कहानी को सम-सामयिक राजनीतिक चिंतन का बाना पहनाकर इन्होंने नाटक की रचना की थी। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं: 'कारागार' (1923), 'मुक्तिर डाक' (1924), 'समाज-बीर' (1925), 'चाँद सदागर' (1927), 'देवासुर' (1928), 'सावित्री' (1931), 'श्रीवत्स', 'सती', 'विद्युत्पर्णा' आदि। मन्मथराय का पूर्णांग ऐतिहासिक नाटक है 'अशोक'। सामाजिक नाटक है 'ममतामयी हासपाताल'।

पौराणिक नाटकों में इन्होंने नीति या धर्म का गुण-कीर्तन नहीं किया है वरन् नीति या धर्म से महत् मानव एवं उसकी समस्याओं को लेकर नाटकों की रचना की है। इनकी निरूपण-पद्धति में द्विजेंद्रलाल राय (दे०) एवं रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इनकी भाषा कवित्वमयी है यद्यपि कथा की गति में कौतूहल का गुण पूर्ण रूप से विद्यमान है। घटनाएँ अधिकतर रोमांचकर हैं परंतु रोमांचकर घटना-प्रवाह के साथ नाटकीय चरित्र के अंतर्द्वंद्व का विश्लेषण भी है। यही इनका प्रधान गुण है।

मन्मथराय बँगला साहित्य में आधुनिक एकांकी नाटक के जन्मदाता हैं। वास्तव में एकांकी नाटक के रचयिता के रूप में बँगला साहित्य-क्षेत्र में मन्मथराय का प्रथम आविर्भाव हुआ था। 1923 ई० में इनका प्रथम एकांकी नाटक 'मुक्तिर डाक' प्रकाशित हुआ था। इनके एकांकी नाटकों का पहला संकलन 'एकांकिका' 1931 ई० में प्रकाशित हुआ था। इनके एकांकियों में वे सभी गुण विद्यमान हैं जिनसे कोई भी एकांकी नाटक उत्तीर्ण हो पाता है। आज बँगला एकांकी नाटक की जनप्रियता के पीछे इनके अपरिसीम योगदान को नहीं भुलाया जा सकता।

मम्मट *(सं० ले०)* [समय—लगभग 1010-1100 ई०]

काश्मीर की घाटी ने अलंकारशास्त्र के जगत् में जो विभूतियाँ उत्पन्न कीं उनमें मम्मट अन्यतम हैं। इनका स्थितिकाल ग्यारहवीं शती ई० का उत्तरार्ध है।

इनके व्यक्तिगत जीवन के विषय मे विशेष जानकारी नही मिलती। काश्मीरी पंडितो के मतानुसार मम्मट 'नैषधीयकाव्य' (दे०) के रचयिता श्रीहर्ष (दे०) के मामा थे।

मम्मट की दो अलकारशास्त्रीय कृतियाँ हैं—(1) 'काव्यप्रकाश' (दे०) और (2) 'शब्दव्यापार-विचार' या 'शब्दव्यापारपरिचय'। इन्हे सगीत के एक ग्रथ 'सगीत-रत्नावली' का भी कर्ता बताया जाता है। मम्मट ने 'शब्दव्यापारविचार' नामक अपने लघु ग्रथ मे 'काव्यप्रकाश' के द्वितीय उल्लास मे सक्षिप्त वर्णित विषय (अर्थात् अभिधा और लक्षणा) का ही सविस्तर विवेचन किया है। मम्मट की ख्याति तथा प्रतिष्ठा का आधार है। उनका महनीय ग्रथ 'काव्यप्रकाश'। इसमे दस उल्लास हैं जिसके अतर्गत नाट्यशास्त्र को छोड कर काव्यशास्त्र के सभी विषयो का अविकल विवेचन किया गया है। उनका विवेचन सर्वांगपूर्ण है। इसीलिए वह अलकारशास्त्र के भावी सिद्धातो के विकास का प्रस्थानग्रथ बन गया। मम्मट उद्भावक नही प्रत्युत सग्राहक आचार्य हैं। उन्होने 'काव्यप्रकाश' मे शताब्दियो पूर्व से अपने समय तक प्रचलित सभी अलकारशास्त्रीय सिद्धातो का सार प्रस्तुत कर दिया है। ये ध्वनिवादी आचार्य हैं। इन्होने ध्वनि-विरोधी तर्कों को ध्वस्त कर ध्वनिसिद्धांत की प्रतिष्ठा सदा-सदा के लिए कर दी है। इसीलिए ये 'ध्वनिप्रस्था-पनपरमाचार्य' कहलाते हैं। यद्यपि मम्मट का विवेचन अपने पूर्ववर्ती भामह (दे०), ध्वनिकार, आनदवर्द्धन (दे०), वामन (दे०), अभिनवगुप्त (दे०) आदि पर आधारित है तथापि उन्होंने अधानुकरण की प्रवृत्ति नही अपनाई है।

मम्मट एक स्वतत्र और निरपेक्ष आलोचक हैं। प्राचीन आचार्यो के प्रति श्रद्धाभाव रखते हुए भी अवसर आने पर उनकी आलोचना करने मे उन्होंने लेशमात्र भी सकोच नही किया है।

मम्मट की सबसे बडी देन है उनकी समन्वय-वादिनी दृष्टि ध्वनिवादी होते हुए भी उन्होने अलकार, गुण, रीति-वृत्ति आदि का व्यवस्थित मूल्याकन कर उन्हें अपनी व्यवस्था मे उचित स्थान प्रदान किया। यही कारण है कि काव्यप्रयोजन, काव्यलक्षण, काव्यहेतु, काव्य के भेद, शब्दशक्ति, गुण, अलकार, दोष आदि के सबध मे उनके विचार ही परवर्ती काल मे प्राय मान्य रहे और आज भी वे अतिम वाक्य के रूप मे ग्रहण किए जाते हैं।

मयनामतीर गान *(बँ० कृ०)*

इसके कृतिकार हैं भवानीदास। मयनामती या गोपीचद्र की कहानी नाथ सिद्धपथियो की प्रचलित कहानी है। गोपीचद्र की माता ने अपने पुत्र को पहले से ही सन्यासी बनाने का प्रयत्न किया है एव साथ ही अपने घर मे उसकी प्रतिक्रिया की ओर भी ध्यान दिया है। गोपीचद्र के सन्यास-ग्रहण के समय उनकी 120 रानियो—विशेषकर प्रधाना अदुना-पदुना—के अतर्भेदी विलाप का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। धर्म-देवता की वदना कर काव्य का शुभारभ किया गया है। भवानीदास कदाचित् त्रिपुरा के रहने वाले थे। इनकी रचना मे दुर्लभ मल्लिक का प्रभाव दिखाई पडता है। यह ग्रथ नलिनीकात भट्टशाली और वैकुठनाथ दत्त के सपादन मे 1914 ई० मे 'मयना-मतीर गान' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसी ग्रथ का पुनर्मुद्रण कलकत्ता विश्वविद्यालय से 'गोपीचद्रेर गान' के नाम से 1922-24 ई० मे हुआ।

मयमनसिंह गीतिका *(बँ० कृ०)*

दे० पूर्वबग गीतिका।

मयूर *(स० ले०)* [समय—सातवी शती]

मयूर पूर्वी उत्तर प्रदेश के निवासी और बाण (दे०) के समकालीन थे। महाराज हर्षवर्धन के दरबार मे इनकी भी पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। इनको बाण का सबधी कहा जाता है।

इनकी एक रचना प्राप्त है—'सूर्यशतक'। कहते हैं कि किसी कारणवश इनको कुष्ठ रोग हो गया था। उसी के निवारणार्थ इन्होने भगवान सूर्य की स्तुति लिखी। स्तोत्र-साहित्य मे 'सूर्यशतक' का अपना विशिष्ट स्थान है। स्रग्धरा वृत्त मे रचित यह काव्य अत्यत प्रौढ तथा सुदर है। इसको पढकर पता चलता है कि मयूर कवि ही नही, सस्कृत भाषा के प्रकाड पडित भी थे। सूर्य के अग-प्रत्यग और रथ, घोडे आदि साधनो का वर्णन इन्होंने बडी सफलता से किया है। अनुप्रासो के प्रयोग मे ये बेजोड हैं।

मयूरध्वज *(क० पा०)*

कन्नड-'जैमिनि भारत' (दे०) के पच्चीसवें

और छब्बीसवें अध्याय में मयूरध्वज के पावन चरित्र का वर्णन है। महाकवि लक्ष्मीश (दे०) ने जिन जीवंत पात्रों का निर्माण किया है, उनमें यह भी एक है। यह रत्नपुर का राजा था। कवि ने इसकी हरिभक्ति का बहुत ही अच्छा उद्घाटन किया है। इसकी एकांत भक्ति इसके प्रत्येक वचन में अभिव्यक्त होती है। इसकी भक्ति की परीक्षा लेने के उद्देश्य से जब कृष्ण अर्जुन के साथ विप्र-वेश में जाते हैं, तब यह विनय प्रकट करता है। उन्हें अपने शरीर-दान से संतुष्ट करता है। सूदकर्म के लिए नियुक्त व्यक्तियों को अलग होने की आज्ञा देकर श्रीकृष्ण की इच्छानुसार अपनी पत्नी और पुत्र के द्वारा ही अपने शरीर को आरे से कटवाता है। इसके त्याग से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण अपने दिव्य दर्शन देकर अनुग्रह करते हैं। इसके चित्रण में एक श्रेष्ठ भक्त के पावन हृदय का सुंदर दर्शन मिलता है।

मयूरसंदेशम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1894 ई०]

यह केरलवर्मा वलिय कोयित्तंपुरान् (दे०) का संदेश-काव्य है। अपने स्याल त्रावनकोर महाराजा की अप्रसन्नता का पात्र बनकर कवि को पाँच वर्ष अपनी पत्नी के वियोग में व्यतीत करने पड़ते थे। प्रवास-काल में मोर को संदेशवाहक बनाकर हरिप्पाड् से त्रिवेंद्रम् तक भेजने की कल्पना करके इस काव्य की रचना की गई है। संदेश-काव्य की परिपाटी के अनुसार दूत-दर्शन, दूत-प्रशंसा, मार्ग-निर्देश, संदेशवाक्य आदि सभी तत्त्व इसमें सम्मिलित हैं। स्वानुभूति की तीव्रता काव्य में आद्योपांत दर्शनीय है। संस्कृतनिष्ठ मणिप्रवाल शैली में रचित इस संदेश-काव्य में शब्दपरक और अर्थपरक अलंकारों का सामंजस्य है।

मलयाळम कविता के नवोत्थान-काल में नव-क्लासिक शैली में रचित काव्यों में 'मयूरसंदेशम्' का स्थान अद्वितीय है।

मरद अगंमडा *(पं० कृ०)*

यह अवतारसिंह आज़ाद (दे०) का एक प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसमें गुरु गोविंदसिंह जी (दे०) के जीवन की प्रसिद्ध घटनाओं का प्रभावशाली ढंग से निरूपण किया गया है। कवि का दृष्टिकोण प्रगतिशील है। इसमें गुरु जी के अद्वितीय व्यक्तित्व की भी भव्य झाँकी प्रस्तुत की गई है। इस माध्यम से कवि अपनी क्रांतिकारी भावना को भी व्यक्त कर सका है। इस महाकाव्य में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों और वातावरण का भी सजीव अंकन हुआ है।

इस कृति में महाकाव्य के प्राय: सभी परंपरागत नियमों का पालन किया गया है। यह 34 कांडों में विभक्त है और इसमें मंगलाचरण भी है। इसमें कई रसों का सुंदर परिपाक हुआ है पर प्रधानता वीर रस की ही है।

इस महाकाव्य को ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक कहा जा सकता है, भले ही लेखक ने कल्पना द्वारा कुछेक घटनाओं में हेरफेर किया हो।

गुरु गोविंदसिंह के जीवनवृत्त पर आधारित यह एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है।

मरळि मण्णिगे *(क० कृ०)*

यह डॉ० शिवराम कारंत (दे०) का श्रेष्ठ उपन्यास और कन्नड की प्रतिनिधि कृतियों में एक है। अनंत-अपार सागर तथा उससे भी विशाल एवं व्यापक जीवन-सागर उसकी प्रेरणाभूमि है। पश्चिम समुद्र के तटीय जीवन के संघर्ष व सौंदर्य का मनोहर चित्रण इसमें है। इस दृष्टि से यह एक आंचलिक उपन्यास भी है।

इसमें तीन पीढ़ियों की कहानी है। गरीबी से पिसते-पिसते जीवन का मर्म समझने वाली पीढ़ी का चित्रण इसमें है। राम ऐताल कोडि के वैदिक ब्राह्मण हैं। पित्रार्जित संपत्ति इनकी बहुत कम थी, पौरोहित्य किया करते थे। उनके घर में उन्हें मिलाकर सिर्फ़ तीन ही लोग थे। एक स्वयं, दूसरी उनकी विधवा बहिन सरसोति, तीसरी पत्नी पारोति। तीनों मेहनत करते हैं। ननद-भौजाई में खूब बनती है। उनकी एकमात्र चिंता थी उनका निस्संतान होना। इसके लिए वे पडुमुन्नीर से सत्यभामा को दूसरी पत्नी के रूप में लाए। शुरू-शुरू में सौतों में झगड़ा हुआ, किंतु अंत में स्नेह हुआ। दूसरी पत्नी से लच्चणा नामक एक लड़का तथा सुब्बी नामक एक लड़की हुई। लच्चणा के पालन-पोषण तथा शिक्षा-दीक्षा पर पिता ने काफ़ी पैसा खर्च किया। इसी में उनका जीवन समाप्त हुआ। लच्चणा किसी प्रकार अपनी शिक्षा में आगे बढ़ता है किंतु अपने पिता से असंतुष्ट रहता है कि वह उसे काफ़ी खर्चा नहीं देते। वह बुरी संगत में पड़ जाता है। वह अपने पिता से ठीक तरह बात भी नहीं करता, उसे सही रास्ते पर लाने के उद्देश्य से पिता उसका विवाह करा देते हैं। उसके संग

से उसकी पत्नी नागवेणी तरह तरह के रोगो का शिकार होती है। उसकी उच्छृखलता का क्लेश मन मे लिये पारोति मरी, पिता मरे। किंतु वह नही चेता। पिता ने अपनी सपत्ति पुत्र के नाम नही, पुत्रवधू के नाम लिख दी थी। इससे वह और भी भडका और जुए तथा औरतो मे डूब कर सर्वनाश को प्राप्त हुआ। नागवेणी के दो बच्चे हुए और मरे। अब तीसरा बच्चा हुआ। किंतु पति घर आया ही नही। पति के रहते हुए भी वह विधवा की भाति रहने लगी। सत्यभामा और सरसोति भी मर गई। नागवेणी अपने लडके की शिक्षा के लिए मायके गई। उसे डर था कि बच्चा भी बाप जैसा बना तो क्या होगा किंतु वह अपने दादा पर गया। लच्चणा भी इसी बीच मर गया। अनाथ नागवेणी अपने गाँव लौटी। लडका रामराव मद्रास मे पढने गया बी० ए० मे पढ रहा था कि इसी बीच नमक सत्याग्रह शुरू हो गया। राम भावावेश मे आकर अपनी माँ के कष्ट को न समझ उसमे कूद पडा और जेल चला गया। जेल से लौटने पर वह बी० ए० पास हुआ। किंतु नौकरी उसे कही भी नही मिली। अत मे वह होटल मे अपने दादा के एक बैरी के यहाँ काम करने जाता है। वहाँ से बबई जाता है। वहाँ भी उसे निराश होना पडता है। उधर गाँव मे उसकी माँ प्रतीक्षा कर रही थी कि बेटा आएगा और उसे बबई ले जाएगा। अत मे वह अपने गाँव लौटता है। वही गाँव मे स्कूल मास्टर बन जाता है। धरती माँ ही उसे शरण देती है। खूब मेहनत कर वह अपने दादा की जमीन छुडा लेता है और अपने घर का उद्धार करता है तथा माँ को खुश करता है।

इस उपन्यास मे आने वाले पात्रो मे मनुष्य-स्वभाव की एक छोटी सी चित्रशाला है। सरसोति हमारी प्राचीन सस्कृति की प्रतीक है, नागवेणी का चरित्र अत्यत सजीव है। लच्चणा एक मानसिक समस्या है। पात्र अत्यत रोचक है। उपन्यास की शैली बहुत ही मनोहारी है। आचलिक भाषा, शब्द तथा खान-पान की वस्तुओ और प्रथाओ के चित्रण मे लेखक को अपूर्व सफलता मिली है। यह कन्नड की सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक कृतियो मे परिगणित है।

मराठी चें साहित्यशास्त्र *(म० कृ०)*

इस शोध प्रबध का रचना-काल 1941 ई० है। डा० मा० गो० देशमुख ने इसमे ज्ञानेश्वर (दे०) से रामदास (दे०) तक के मराठी सत-कवियो के काव्य-सिद्धातो का अन्वेषण किया है। इसके मुख्य विषय हैं—भक्तिकालीन मराठी काव्य की भाषा प्रयोजन, हेतु विषय, वर्गीकरण, रस आदि के यथार्थ स्वरूप का उद्‌घाटन।

मराठी वाक्प्रचार आणि म्हणींचा कोश *(म० कृ०)*

महाराष्ट्र शब्दकोश-मडल ने यह कोश दो भागो मे प्रकाशित कराया था। यह एक विशाल सग्रह-ग्रथ है। इसमे मराठी बोली मे प्रचलित विभिन्न एव विविध कहावतो का सग्रह किया गया है। दूसरे भाग की दीर्घ प्रस्तावना श्री यशवत रामकृष्ण दाते ने लिखी है।

इस कोश का यह वैशिष्ट्य है कि इसमे वरहाड गोमातक, कोकण तथा खानदेश मे प्रचलित कहावतो का भी अतर्भाव हुआ है। यथास्थान तुलना के लिए समानार्थक सस्कृत, अँग्रेजी, हिंदी तथा गुजराती कहावतो को भी उद्धृत किया गया है। अत इस कोश के दोनो भागो मे चालीस हजार से अधिक वाक्प्रचारो का सोदाहरण उल्लेख मिलता है।

कहावत कोश रचने का यह नवीन तथा स्तुत्य प्रयास है। इतना बडा कहावत-कोश किसी अन्य भारतीय भाषा मे तो क्या किसी विदेशी भाषा मे भी दुर्लभ है।

मराठे, सजीवनी *(म० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

मराठी नयी कविता के साथ कलात्मक कविता की जो धारा है, उसमे कवयित्रियो का प्रमुख योगदान रहा है। इन्ही कवयित्रियो मे सजीवनी मराठे भी है।

काव्य-सग्रह 'काव्यसजीवनी', 'राका', 'ससार' तथा 'छाया'।

इनके सवेदन की परिधि यद्यपि पति प्रेम तथा वात्सल्य तक परिमित है, तथापि आजकल ये राष्ट्रीय भावनाओ की पोषक काव्य रचना मे भी सलग्न हैं।

रूपविधा की दृष्टि से इनका काव्य प्रगीतात्मक है। साहित्य-सम्मेलनो मे इन्होने सस्वर गीत गाकर असख्य श्रोताओ को श्रवणसुख प्रदान किया। इनके काव्य मे सुदरम् की अभिव्यक्ति हुई है। ये महाराष्ट्र साहित्य-जगत की काव्य-कोकिला मानी जाती हैं।

मराठ्याचीं सग्रामगीतें *(म० कृ०)*

यह राष्ट्रीय एव ऐतिहासिक कविताओ का

संग्रह है जिसके लेखक हैं दुर्गाराम आसाराम तिवारी। इसका प्रकाशन 1920 ई० में हुआ था। ढाई सौ साल पूर्व के युद्धों को कवि ने शब्दों द्वारा साकार कर दिया है।

यों तो तिवारी जी ने विपुल काव्य-रचना की है, पर इनकी 'मराठ्यांचीं संग्रामगीतें' कृति का विशेष महत्व है। इनकी मातृभाषा हिंदी थी। हिंदी भाषा-भाषी के लिए निःसंदेह यह गौरव की बात थी। उसने मराठों के इतिहास पर ओजस्वी गीतों की रचना की और इन गीतों को स्वयं गाकर जनता में स्फूर्ति और जागृति का संचार किया।

राष्ट्रीय काव्य-परंपरा को लोकप्रिय बनाने तथा पुष्ट करने के कारण भी इनका महत्व है। इनकी वाणी में ओज है, ये जब 'उद्धवा शांतवन कर जा' की करुण स्वर-लहरी पर गीत गाते थे, तो श्रोताओं की रगों में खून खौलने लगता था। 'झांशीची संग्राम देवता', 'महाराणाप्रताप सिंह' आदि इनके ओजस्वी आख्यान-काव्य हैं।

मरासि-ए-अनीस *(उर्दू० कृ०)*

मीर बबर अली 'अनीस' (दे०) लखनवी के मर्सियों के संग्रह का नाम है 'मरासि-ए-अनीस'। मर्सिये हुजरत हुसैन की शहादत की याद में कहे गए शोक-गीत होते हैं। अनीस ने मर्सिया कहने की कला में अपने लिए सर्वोच्च स्थान बना लिया है। संस्कृत एवं हिंदी साहित्य में जिस प्रकार महाकाव्यों में युद्धवर्णन तथा योद्धाओं के वीर-गति पाने एवं बलिदानों का गौरवपूर्ण वर्णन मिलता है उसी प्रकार उर्दू साहित्य को महाकाव्यात्मक गौरव से युक्त काव्य से समृद्ध बनाने का श्रेय 'अनीस' को ही है। भाव तथा कला दोनों पक्षों से सशक्त इन मर्सियों को पढ़कर ज्ञात होता है कि अनीस को भाषा पर अद्भुत अधिकार था। अनीस की भाषा भावों की अनुगामिनी है। भाषा जैसे कवि के आगे हस्तबद्ध-सी खड़ी है। मुहावरों का अत्यंत मोहक प्रयोग किया गया है।

अनीस के मर्सियों में चित्रात्मकता भी विशेषता है। 'बच्चों-बूढ़ों, स्त्री-पुरुषों, स्वामी-सेवकों, मित्र-शत्रुओं, नदी-नालों, वन-पर्वतों तथा पशु-पक्षियों के स्वाभाविक एवं मुँह बोलते चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। प्रातः, संध्या, दोपहर आदि का समां शब्दों में ऐसा व्यक्त करते हैं कि चित्रकार के चित्र भी ऐसे मुखर न हो सकें। युद्ध-वर्णन करते हैं तो तलवारों के चलने, बरछों के चमकने, घोड़ों फुर्ती, पैंतरों के बदलने आदि के सब दृश्य चलचित्र की तरह आँखों के सम्मुख घूमने लगते हैं।

मरिगंटि कवुलु *(तें० ले०)*

विशिष्टाद्वैत सिद्धांत के प्रवर्तक रामानुजाचार्य के वंशज ही मरिगंटि गृहनाम वाले कविजन हैं। ये आंध्र प्रदेश के नलगोंडा ज़िले के देवरकोंडा तालुके के 'सनगल्लु' ग्राम के निवासी हैं। इस वंश के 16 कवि प्रकांड पांडित्य तथा प्रौढ़ काव्य-रचना के कारण उल्लेखनीय हैं। इनमें भी सिंगराचार्य, वेंकट नरसिंहाचार्युलु, नरसिंहाचार्य अधिक प्रसिद्ध हैं।

सिंगाराचार्य (सोलहवीं शती के तृतीय भाग में जीवित) ने 'दशरथ-राजनंदनचरित्र' नामक काव्य की रचना की थी। यह तेलुगु भाषा की प्रथम निरोष्ठ्य (ओष्ठ्य वर्णों से रहित) रामायण है। पाँच आश्वासों के इस काव्य में अनावश्यक वर्णन नहीं हैं। कथाकथन में प्रवाह है किंतु निरोष्ठ्यता के नियम का सर्वत्र पालन करने से, कहीं-कहीं अर्थबोध में बाधा पहुँची है। इनका दूसरा काव्य 'शुद्धांध्र (ठेठ तेलुगु) निरोष्ठ्य सीता कल्याणमु' है। इस काव्य में तीन आश्वासों में सीता-कल्याण के प्रसंग का वर्णन किया गया है। 'इन्होंने दशरथराजनंदनचरित्र' में केवल निरोष्ठ्यता के साथ शुद्ध आंध्र भाषा (केवल तद्भव और देशी शब्दों से युक्त) तथा निरोष्ठ्यता के नियम का पालन किया है। इन दो काव्यों के अतिरिक्त इन्होंने 15 अन्य काव्यों की भी रचना की है।

वेंकट नरसिंहाचार्युलु (1770 के आसपास जीवित) ने कुल मिलाकर 13 रचनाएँ की थीं। इनमें केवल 'गोदावधूपरिणयमु' प्रकाशित है। तथा 'श्रीकृष्ण-शतानंदीयमु', 'चिलुवपडिगरेनिपेरमु' अप्रकाशित हैं। 'चिलुवपडिगरेनिपेरमु' ठेठ तेलुगु में लिखा गया है। कवि की शैली प्रौढ़ तथा क्लिष्ट है।

नरसिंहाचार्युलु ने 'तालांकदिनीपरिणयमु' नामक काव्य की रचना की थी। यह 1764 ई० में समाप्त हुआ था। इसमें तालांक अर्थात् बलराम (हलधर) की पुत्री शशिरेखा और अभिमन्यु के विवाह की कथा वर्णित है।

मरियप्पभट्ट *(क० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

ये कन्नड के वरिष्ठ साहित्यकार हैं। मद्रास विश्वविद्यालय में कन्नड प्रोफ़ेसर के पद पर रहकर

इन्होंने अनेक उल्लेखनीय कार्य किए। इनकी सपादित पुस्तकें ये हैं,—'सगीतरत्नाकर', 'पार्श्वनाथपुराण', अभिनव मगराज निघटु', काव्य-सग्रह और 'राजादित्य का व्यवहारगणित'। हाल ही मे मद्रास विश्वविद्यालय से प्रकाशित किट्टल (दे०) कन्नड-अँग्रेजी-कोश के सशोधन व परिवर्धन का कार्य इनके द्वारा सपन्न हुआ है। ये अच्छे निबधकार तथा आलोक हैं। इनकी पुस्तक 'सक्षिप्त कन्नड साहित्य चरित्रे' अधिक लोकप्रिय हुई है।

मरुतीर्थ हिंगलाज *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1955 ई०]

'मरुतीर्थ हिंगलाज' अवधूत (छद्मनाम) की उपन्यास-लक्षणान्वित एक सुदर भ्रमण-कहानी है जिसके प्रकाशन के साथ-साथ बँगला उपन्यास-क्षेत्र मे एक क्राति मच गई थी। हिंगलाज तीर्थ-दर्शन के अभिलाषी तीर्थ-यात्रियो के जीवन के नाना पक्षो का इसमे सूक्ष्मातिसूक्ष्म उदघाटन हुआ है। मरुभूमि का असहनीय क्लेश, बालुका-राशि की तीव्र अग्निज्वाला लेखक के वर्णन कौशल से बहुत ही सजीव हो उठी है और पाठक उसके साथ पूर्ण तादात्म्य कर लेता है। पथ-वर्णन के साथ-साथ लेखक ने तीर्थयात्रियों की मननक्रिया एव जीवन-समीक्षा के द्वारा ग्रथ की सरसता बढा दी है। इन यात्रियो के मन के गोपन रहस्य तथा अपराध-बोध एव व्यक्तिगत समस्याओ की लेखक ने मनोवैज्ञानिक ढग से अभिव्यक्ति की है। इस भ्रमण-गाथा मे व्यक्ति-मन के नाना रहस्यो का आभास देते हुए अतर्दाह के तीव्र उत्ताप को लेखक बहुत ही व्यजक रीति से प्रकट करता है। यात्रा-पथ मे नाना आकस्मिक विपत्तियो एव प्राण सशयकारी दुर्घटनाओ एव मानव-मन के विचित्र आवेगमय व्यवहार से कहानी रोमाचकारी एव आकर्षक बन गई है। लेखक का अभिव्यक्ति-कौशल, मानव-जीवन के सबध मे अतर्भेदी दृष्टि एव नाटकीयता का सुष्ठु प्रवर्तन प्रशसनीय है।

मरुदम् *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य मे वर्णित पाँच भूभागो मे एक है मरुदम्। मरुदम् आदि पाँचो भूभागो का वर्णन 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ) और 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ) दोनो वर्गो की रचनाओ मे प्राप्त होता है। नदी तट के आसपास की भूमि को 'मरुदम्' कहते हैं। यहाँ के निवासी ऊरन्, मकिलनन् कहलाते हैं। मरुदम्वासियो का मुख्य व्यवसाय है कृषि। यहाँ के निवासी वेंदन् (इद्र) की उपासना करते है। इस प्रदेश की अनुकूल ऋतुएं छहो ऋतुएँ हैं और अनुकूल वेला है प्रात काल। यहाँ के प्रमुख प्राणी हैं हस, बतख, सारस, गाय, बैल, भैंस आदि। मरुदम्-निवासियो का वाद्ययत्र मरुदयाल् है। इस प्रदेश मे मरुदम् नामक वृक्ष प्रभूत माना मे हैं। इसी आधार पर इस प्रदेश को तथा यहाँ के निवासियो की सभ्यता और सस्कृति को 'मरुदम्' कहा गया है। मरुदम्वासी अन्य प्रदेश के निवासियो की अपेक्षा सभ्य, सपन्न और सुखी माने जाते हैं। 'मरुदम्' से सबधित 'अहम्-काव्यो मे ऊडल् अर्थात् नायिका के मान का वर्णन होता है। नायिका के इस मान का कारण नायक का परस्त्री प्रेम या दुराचरण होना है। इसके साथ-साथ कविगण गृहस्थ-जीवन के सुख-दु खात्मक अनुभवो का वर्णन करते हैं। इन अनुभवो को स्पष्ट करने के लिए प्रदेश-विशेष की प्राकृतिक अवस्था का व्यापक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। मरुदम् प्रदेश मे पाई जाने वाली विभिन्न वस्तुएँ नायिका के मान तथा पति पत्नी के सुख-दु खात्मक अनुभवो को व्यक्त करने मे सहायक सिद्ध होती हैं।

मरुदायी किलवी *(त० पा०)*

'मरुदायी किलवी' पुदुमैप्पित्तन (दे०)-कृत 'मरुदायी किलवी' नामक कहानी की नायिका है। इस चरित्र-प्रधान कहानी मे लेखक ने इस पात्र के माध्यम से यह बताना चाहा है कि जब व्यक्ति अनुभव के बल पर जीवन के रहस्य को जान जाता है तब उसमे भय की भावना बिल्कुल भी नहीं रहती। कभी-कभी 'मरुदायी' किलवी' जैसे सामान्य व्यक्ति भी ऐसे विचित्र प्रश्न पूछ बैठते हैं जिनका उत्तर देना बुद्धिमानो के लिए कठिन हो जाता है।

म रैमलै-अडिह्ळ् *(त० लें०)* [समय—1876-1950 ई०]

उन्नीसवी शती के आरभ काल मे तमिल-प्रदेश मे जो अनेक सास्कृतिक आदोलन हुए उनमे एक प्रमुख आदोलन था—'शुद्ध तमिल आदोलन'। इसका प्रमुख उद्देश्य था तमिल भाषा को सस्कृत के प्रभाव से मुक्त करना। इस आदोलन के प्रधान प्रवर्तक थे म रैमलै-अडिह्ळ्'। इनका बचपन का नाम था 'वेदाचलम्' जिसे सस्कृत शब्द होने के कारण इन्होने तमिल मे रूपान्तरित कर लिया था। इनका जन्म 'नागपट्टिनम्' के पास के एक

गांव में हुआ था। ये बचपन से ही बड़े प्रतिभाशाली थे। स्कूल में इन्होंने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की थी। तमिल भाषा तथा साहित्य के प्रति बचपन से ही इनकी रुचि थी। 'नारायण पिळ्ळै' नामक विद्वान से इन्होंने तमिल के अनेक प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन किया था, व्याकरण, अलंकार छंद तथा काव्य-वाङ्मय का अभ्यास करते-करते इन्होंने प्राचीन तमिल-शैली पर, जिसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग नगण्य-सा है, अच्छा अधिकार प्राप्त कर लिया था। सोमसुंदर नायकर् नामक विद्वान के भाषणों से प्रभावित होकर ये शैवसिद्धांत' (तमिलनाडु में प्रचलित पाशुपत संप्रदाय) की ओर आकृष्ट हुए थे। ये कुछ समय तक 'तिरुवनंतपुरम्' में और बाद में मद्रास के क्रिश्चियन कालेज में तमिल-अध्यापक रहे। कुछ वर्ष पश्चात ये नौकरी छोड़ शैव सिद्धांत पर व्याख्यान देने तथा ग्रंथ रचने में ही संलग्न हो गए थे। श्रीलंका तथा तमिलनाडु और भारत के अन्य स्थानों में जाकर इन्होंने अनेक व्याख्यान दिए। संस्कृत तथा अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान होने से उनके साहित्यों के साथ तमिल की तुलना करने में ये समर्थ थे। इन्होंने 'शैवसिद्धांत महासमाज' नाम से एक संगठन बनाया था जो आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज जैसे ही व्यापक ढंग से जनता में जागरण उत्पन्न करने वाला था। इसके परिणामस्वरूप 'शैवधर्म' के प्रति लोगों में रुचि बढ़ी। 'ज्ञानसागरम्' नामक पत्रिका के माध्यम से इन्होंने अनेक गहन विषयों पर शोध तथा चर्चा की है। इन्होंने न केवल भाषा में, अपितु धर्म, नीति, जीवन-क्रम तथा समाज के अन्यान्य पक्षों में भी 'आर्यों' के प्रभाव को हटाने और 'प्राचीनकालिक तमिल-समाज में स्थित शुद्ध संस्कृति को पुनःस्थापित करने का यत्न किया।

म.रैमलै-अडिहळ् वरलारु *(त० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1959 ई०]

यह बृहदाकार ग्रंथ तमिल साहित्य एवं शैव-सिद्धांत के प्रसिद्ध प्रचारक तथा उन्नायक म.रैमलै-अडिहळ् (दे०) की विस्तृत जीवनी है। जीवनीकार है चरितनायक के तीसरे पुत्र 'तिरुनावुक्करसु'। ग्रंथ में चरितनायक के व्यस्त एवं तपोरत जीवन की घटनाओं का क्रमागत विवरण है। पिता के प्रति जीवनीकार का आदर-भाव स्वाभाविक है जिसके फलस्वरूप वस्तुपरकता की हानि तथा एकांगिता का समावेश भी उतना ही स्वाभाविक है।

मर्ढेकर, बाळ सीताराम *(म० ले०)* [जन्म—1909 ई०; मृत्यु—1956 ई०]

खानदेश में इनका बाल्यकाल व्यतीत हुआ था। उच्च शिक्षा के लिए पहले ये पूना गए थे तदंतर इंग्लैंड। वहाँ इन्होंने अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओं के साहित्य का अध्ययन किया था। विदेश से लौटने पर कुछ दिन प्राध्यापक का कार्य किया था और बाद में भारतीय आकाशवाणी में उच्च पद पर नियुक्त हुए थे।

इनके काव्य-संग्रह हैं—'शिशिरागम', 'काही कविता', 'आणखी काही कविता' तथा उपन्यास हैं—'तांबडी माती', 'पाणी', 'रात्रीचा दिवस'।

कवि और उपन्यासकार के अतिरिक्त साहित्य सौंदर्यशास्त्रज्ञ के रूप में भी ये प्रसिद्ध हैं। 'वाङ्मयीन महात्मता', 'सौंदर्य आणि साहित्य' इनकी सौंदर्यशास्त्र-संबंधी समीक्षात्मक रचनाएँ हैं।

ये मराठी की नयी कविता के जनक माने जाते हैं। यांत्रिक युग में मानव भी यंत्रवत भावशून्य आचरण कर रहा है। आज का मानव वित्त, वनिता और वारुणी को सुख का केंद्र मानता है, धर्म की आड़ लेकर नृशंस हत्या करता है, चारों ओर भ्रष्टाचार और लूट है तथा मूल्यों में विघटन हो गया है। इन कारणों से आधुनिक मानस अश्रद्धा, अस्थिरता, असमाधान और अशांति से भरा है। यांत्रिक युग तथा आर्थिक दुरवस्था के शिकार अद्यतन मानव के निष्ठाहीन कुंठाग्रस्त मन का विश्लेषण यथार्थवादी शैली में इन्होंने किया है। इनकी कविता में निराशा का भाव है।

नयी कविता में समाजवादी चेतना की मुखर अभिव्यक्ति हुई है। इनके अनुसार कोयले वाले श्रमिक की काली परंतु सतेज मूर्ति ही नवयुग के मानव के लिए गिरिधर की प्रतिमूर्ति है। 'न्हालेल्या जणु गर्भवतीच्या', 'पोरसवदा होतीस', 'दवात आलिस भल्या पहाटे' जैसी कुछ गिनी-चुनी कविताओं को छोड़ा जाए तो इनके काव्य में मंगलमय पक्ष का विधान ही नहीं है।

रूप, रंग, रस, गंध, नाद एवं स्पर्शिक बिंबों के सर्जन से समृद्ध कल्पना-चित्र इन्होंने रूपांकित किए हैं। इतना अवश्य है कि रूढ़ उपमानों की अवहेलना कर नवीन उपमानों और प्रतीकों की इन्होंने योजना की है, जो स्वाभाविक है। भाव-बोध के परिवर्तन के कारण सूर्य, चंद्र, कमल आदि उपमानों की अपेक्षा क्रिस्टल, ऑसेट, स्विच, दुर्बिन, आदि जीवविज्ञान तथा मनोविज्ञान के शब्द

अधिक सवेदन-क्षम हैं।

उपन्यासो मे भी इन्होने शिल्प सबधी अनेक प्रयोग कर सज्ञा-प्रवाहात्मक शैली मे मनोवैज्ञानिक उपन्यासो की रचना की है।

मर्सिया (उर्दू० पारि०)

किसी व्यक्ति के निधन पर लिखित शोक-गीत मर्सिया कहलाता है। परतु कर्बला के मदान मे हजरत इमाम हुसैन और उनके परिवार के आत्म-बलिदान की घटनाओ से सबद्ध उर्दू कविताग्रो की गणना विशेष रूप से 'मर्सिया' के अतर्गत होती है। इस प्रकार के शोक-गीत लिखने वाले 'मर्सिया-गो' कहलाते हैं। उर्दू साहित्य मे 'ग्रनीस' (दे०), और 'दबीर' (दे०) ऐसे ही प्रसिद्ध मर्सिया-गो कवि हुए हैं। मर्सिया का कोशगत अर्थ है—किसी दिवगत व्यक्ति की प्रशसा मे काव्यबद्ध मार्मिक श्रद्धाजलि'। इस काव्य-विधा मे किसी विशिष्ट छद के प्रयोग का प्रतिबध नही है। किसी भी छद मे इसकी रचना सभव है। आकार-प्रकार पर भी कोई बधन नही है। 'ग्रनीस' और 'दबीर' के मर्सिये प्राय मुसद्दस मे लिखे हुए मिलते हैं। मुसद्दस ऐसी कविता को कहते है जिसमे छह-छह पक्तियो के अनेक पद हो। शहीदो एव हतात्माओ के प्रति सवेदना की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त मर्सिया-लेखको ने अन्य वर्ण्य विषयो—ऋतु वर्णन, तलवार नेजे ग्रौर घोडे के प्रशस्ति-गान तथा प्रकृति चित्रण आदि की ग्रोर भी यथेष्ट ध्यान दिया है।

मलयविलासम् (मल० कृ०) [रचना-काल—1900 ई०]

यह ए० आर० राजराज वर्मा (दे०) का काव्य है। कवि को मद्रास यात्रा के दौरान पश्चिमी घाट के दृश्यो की जो सौंदर्यानुभूति हुई उसका वर्णन काव्य की विषय वस्तु है।

यह वर्णन महाकाव्यकारो ग्रौर अन्य क्लासिक कवियो के शैलवर्णन से भिन्न था और इसमे मलयाळम के स्वच्छदवादी आदोलन की पहली झलक दर्शनीय है। पश्चिमी घाट को कवि केरल के रक्षा दुर्ग के रूप मे और जनता के ग्रात्म-विश्वास के प्रतीक के रूप मे देखते हैं। देश के गौरव के प्रति पाठक को जागरूक करके विदेशी आधिपत्य की ओर सकेत करना उसका उद्देश्य है। इस काव्य के साथ ही मलयाळम मे रोमाटिक कविता पल्लवित हुई थी ग्रौर एकाध विलाप-काव्यो के बाद आशान् (दे०) की रचनाग्रो मे पूर्ण विकसित हुई थी।

मलयाट्टूर् रामकृष्णन् *(मल० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

ये मलयाळम के लोकप्रिय उपन्यासकार है। ये केरलवासी तमिल ब्राह्मण हैं और भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई० ए० एस०) के सदस्य हैं। केरल सरकार के विभिन्न उन्नत पदो पर इन्होने कार्य किया है। ये व्यग्य-चित्रकार भी हैं।

इन्होने 'वेरुकळ्', 'वेषापल्', 'यक्षी', 'पोन्नी', 'अभ्रम', 'यत्रम्' आदि अनेक लोकप्रिय उपन्यासो की रचना की हैं। इनके कई उपन्यासो का फिल्मीकरण भी हुआ है।

अपने उपन्यासो मे अनुभूति की तीव्रता से सशक्त वातावरण की सृष्टि करने मे इन्होने पर्याप्त कुशलता दिखाई है। 'वेरुकळ्' मे तमिल ब्राह्मणो के सामाजिक जीवन का जो चित्र खीचा गया है वह मलयाळम मे अभूतपूर्व रचना कौशल का उदाहरण प्रस्तुत करता है। आधुनिक उपन्यासकारो मे इनका स्थान अद्वितीय है।

मलर्विळ (त० कृ०)

यह डा० मु० वरदराजन (दे०) का उपन्यास है। इसमे अच्छे-बुरे पहलुओ के दो व्यतिरेकी चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। एक ओर 'मुत्तय्यन' निम्न मध्यवर्गीय परिवार का युवक है जो कलेक्टर 'चेल्वनायकम्' की सिफारिश से रेलवे टिकट इसपेक्टर की नौकरी मे लगकर एक समतल मैदानी जीवन बिताता है। विधवा माँ के साथ रहने वाला यह युवक अपने से भी निम्न स्थिति वाली ग्राश्रय-रहित पत्नीमिन बालिका की विनम्र सेवा भावना तथा अव्यक्त, पर ग्रटल, प्रेम का ग्राकर्षण अनुभव करते हुए उसके हाथो अपने को बेच देता है। दोनो के बीच की ग्रार्थिक विषमता पाटने के लिए तथा बालिका को आत्मनिर्भर बनाने के लिए, ग्रपने शुभचितक मित्र की सलाह के अनुसार यह युवक उसे स्कूल मे भरती कराके प्रशिक्षित अध्यापिका बना देता है। इस कार्य मे दो साल लगते हैं जिसके दौरान पहले से अकुरित प्रेम स्वस्थ रूप से पल्लवित एव पुष्पित होने के कई भावुक प्रसग वर्णित होते हैं। दूसरी ओर मुख्य पात्र के हितकारी कलेक्टर साहब का पारिवारिक जीवन परोपकारिता, कलाप्रेम आदि अपने श्लाघ्य गुणो के बावजूद अधःपतन की ओर जाता है। उनकी पत्नी पढी-

लिखी चित्रकार महिला है पर धनलोलुपता एवं असंयम उसके चारित्रिक दोष हैं। असीम नारी-स्वतंत्रता-समर्थक कलेक्टर साहब उस पर अंकुश नहीं लगा पाते हैं। पत्नी अपने यहां धर्मार्थ पाले हुए एक युवक को पूंजी देकर काले धंधे में लगा देती है और उसके साथ घूमते-फिरते हुए पति की अकाल मृत्यु का कारण बनती है। युवक को ब्याही गई बेचारी मलर्‌विळि उपेक्षित होकर अपने मायके चली जाती है जहां से मुख्य पात्र की सहायता से वह प्रशिक्षित अध्यापिका बन जाती है। कलेक्टर की पत्नी व्यापार के नुकसानों के साथ आत्महत्या कर लेती है तथा उसका साथी युवक भागकर सेना में भर्ती होता है जहाँ उसका अंत होता है। उसकी कर्तव्यनिष्ठ पत्नी मलर्‌विळि तपस्या का जीवन बिताती है।

इस उपन्यास की सार्थकता इसके द्वारा इंगित सादगी, संयम आदि मूल्यों की स्थापना में है। गृह-जीवन के कई अच्छे वर्णन प्रस्तुत हैं।

मलाजन्ह *(उ० कृ०)*

'मलाजन्ह' श्री उपेंद्र किशोर दास (दे०) का उपन्यास है। इसमें सामाजिक क्रांति का स्वर मुखर है। इसका स्वरूप संस्कारमूलक नहीं है। जिस आत्मिक अनुभूति से इसकी रचना हुई है, वह व्यक्ति-केंद्रित नहीं। वह समग्र जाति की अनुभूति है। यह सती के करुण जीवन की आत्मलिपि है।

सत्यभामा [सती (दे०)] और लोकनाथ [नाथनना] शांत गाँव के निवासी हैं। सती एवं नाथनना की पारस्परिक बाल्य ममता, सामाजिक परिवेश के कारण परिणय में सार्थक नहीं हो पाती है। सती का विवाह धूर्त, वृद्ध नरहरि से हो जाता है। कालांतर में नरहरि, सती का परित्याग कर देता है। आकस्मिक रूप से सती को नाथनना का आश्रय मिल जाता है। किंतु समाज को यह निष्कलंक संबंध स्वीकार नहीं होता। फलतः लांछनाओं, अपवादों, उपेक्षा, घृणा, विद्रूपता से उनका जीवन भर जाता है। अपने लिए नाथनना के जीवन को विषैला बनाना सती को सह्य नहीं। उसका स्वाभिमान भी आहत होता है। वह आत्महत्या कर लेती है। निर्भीक, उदार, परम पुरुषार्थी नायनना की सामाजिक क्रांति उसकी आत्महत्या के साथ समाप्त हो जाती है।

जीवंत चरित्र, सफल परिवेश, हृदयस्पर्शी समस्या के चित्रण के कारण उपन्यास जितना मार्मिक है, उतना ही कलात्मक भी। उड़िया ग्राम-जीवन ही इसमें उभर कर आया है। स्वाभाविक परिपाटी में ग्राम्य जीवन का चित्रण हुआ है। सहज, सरल भाषा इसके सारभूत प्रभाव को और भी गहरा, और भी सुंदर बना देती है।

मलूकदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1574 ई०; मृत्यु—1682 ई०]

मथुरादास की 'मलूक परिचई' के अनुसार, प्रयाग के निकट कड़ा नामक कस्बे में मलूकदास का आविर्भाव वैशाख कृष्ण पंचमी 1631 वि० अर्थात् 1574 ई० में और तिरोभाव 1682 ई० में हुआ। इनके पिता सुंदरदास खत्री थे। कहते हैं कि पाँच वर्ष की अवस्था में जब इनकी पट्टी पर इनके गुरु ने अभ्यास के लिए वर्णमाला लिखी तो इन्होंने प्रत्येक वर्ण पर एक साखी लिख डाली। ये बाल्यकाल से ही भगवद्-भजनी थे। इनके यहाँ कंबलों का व्यापार होता था; जिनमें से कुछ तो ये बेचते और कुछ बाँट देते थे। अनुमानतः इनका विवाह हुआ और एक कन्या भी उत्पन्न हुई; किंतु तभी उसकी और उसकी माँ की मृत्यु हो गई। कहते हैं कि इन्होंने बहुत पर्यटन किया था। इनकी कविता सरस और भावपूर्ण है। इनकी रचनाएँ लगभग एक दर्जन हैं। 'ज्ञानबोध' में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य की चर्चा है; और 'रामावतार लीला' में श्रीराम का विस्तृत चरित्र है।

मलेगळल्लि मदुमगळु *(क० कृ०)*

यह आधुनिक कन्नड के महाकवि कुवेंपु (दे०) का एक बृहत् उपन्यास है। उनकी पूर्ववर्ती कृति 'कानूरु हेग्गडिति' (दे०) की तरह इसे भी हम एक आंचलिक उपन्यास कह सकते हैं। इसमें कर्णाटक के अरण्य-प्रदेश 'मलेनाडु' के निसर्ग-रमणीय प्रदेशों में रहने वाले कुनबी किसानों, ज़मीदारों तथा उनके मातहत रहने वाले कुली, बेगार तथा उनके जीवन के राग विराग का चित्रण है। यह कहना कठिन है कि इस उपन्यास का नायक कौन है। सारा पार्वत्य प्रदेश (मलेनाडु) ही इसका नायक है। कहने के लिए तो एक चिन्नम्मा इसकी नायिका है। उसका विवाह एक बूढ़े के साथ निश्चित हुआ था किंतु बचपन से ही उसका प्रेम मुकुंदय्या से था। वह अपने मित्रों की मदद से एक षड्यंत्र रचता है और विवाह के दिन ही उसका अपहरण किया जाता है। अपहरण के पश्चात् वह जंगलों

मे रखी जाती है। इसी जगह उसके मित्र गुत्ति ने एक वर्ष पूर्व अपनी प्रेयसी तिम्मि को चुरा लाकर रखा था। उपन्यास के शीर्षक (मलेगळल्लि मदुमगळु—पहाडियो म दुलहिन) से ज्ञात होता है कि यही उसकी प्रधान घटना है। मलेनाडु जनजीवन का चित्रण करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य है। वहाँ के लोगो मे प्रचलित बेमेल विवाह, पुर्नविवाह छुआछूत, अधविश्वास, भूतप्रेत आदि की उपासना, ऋणग्रस्तता, व्यभिचार, पुरोहित लोगो द्वारा होने वाला शोषण हिंदू धर्म की दुर्बलताओ का फायदा उठाने वाले ईसाई मिशनरी, महाजन तथा उनके द्वारा होने वाले अत्याचार आदि का अत्यत यथार्थ चित्रण इस उपन्यास मे हुआ है। इसके लेखक मूलत कवि हैं। अत उपन्यास मे आद्यत उनका प्रकृति प्रेम अनुस्यूत मिलता है। शिकार, कृषि, बागबानी आदि के बहाने लेखक ने किसानो के जीवन का अच्छा चित्रण प्रस्तुत किया है। हिंदू समाज की कमजोरियों— जैसे वर्णाश्रम-व्यवस्था, छुआछूत, वैधव्य मे नारी के शिरोमुडन आदि —पर कटाक्ष भी किया है। इन यथार्थवादी चित्रो के साथ कुछ अलौकिक घटनाएँ भी हैं। लेखक की शैली अत्यत सयत है जिसमे आचलिक तत्त्वो का यथायोग्य समावेश है। यह कन्नड के श्रेष्ठ उपन्यासो मे परिगणित है।

मळेला जीव *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1949 ई०]

श्री पन्नालाल पटेल-रचित व 1949 ई० मे प्रकाशित 'मळेला जीव' गुजराती का एक प्रसिद्ध आचलिक उपन्यास है। कावडिया पहाडी, जींगीपरा गाँव, उधडियु, गाँव तथा नागधरा स्थलो को समाविष्ट करती हुई इस *कथा-धारा सतत एक गति से बहती प्रतीत होने पर भी* मन की अतल गहराइयो का स्पर्श करती है। कानजी (पटेल जाति का युवक) और जीवी (नाई जाति की युवती) का प्रथम दृष्टि-जनित प्रेम जात-पाँत के बाह्य आवरणो को भेद कर आत्मा के पूर्ण मिलन मे परिणत हो जाता है। समाजगत बधनो से बद्ध और पिता को दिए वचनो को पूर्ण करने की इच्छा से कानजी अपने मित्र हीरा के परामर्श से जीवी का विवाह गाँव के ही धूला नाई से कराने को राजी हो जाता है और जीवी न चाहते हुए भी अपने प्रेमी की इच्छा को आदेश रूप मे ग्रहण कर न केवल विवाह के लिए ही तैयार हो जाती है अपितु वह माता पिता को बिना सूचना के दिए ही धूला के साथ—कानजी के कहने पर—भाग भी आती है। कुछ तो गाँव के वातावरण, कुछ धूला की ईर्ष्या और कुछ बदनामी के डर से जीवी के साथ मिलने-जुलने मे कानजी के सकोच के कारण जीवी और खुद कानजी का जीवन सर्वथा असहाय बन जाता है। जीवी धूला की पाशविकता का शिकार हो पिटती और कानजी अपनी निरुपायता मे तडपता पर कुछ न कर पाता। विवश हो कानजी गाँव ही छोड जाता है। एक बार लौटता है, जीवी से मिलता है। दूसरी बार जब आता है तो जीवी के द्वारा बनाई गई विषाक्त रोटी खा कर उसका पति मर चुका होता है और जीवी विधवा हो जाती है। इस बार लौटते समय कानजी जीवी से बिना मिले ही चला जाना है और जीवी टूट जाती है, पागल हो जाती है। अत मे नाना द्वारा नागधरा लाई गई पागल जीवी को कानजी सभी के देखते-देखते शहर जाने वाली मोटर मे बिठा कर ले जाता है और भगत, जो इस समस्त उपन्यास मे घटनाओ का द्रष्टा है, कह उठता है "वाह रे मानव, तेरा हृदय! एक ओर खून के कुल्ले करता है तो दूसरी ओर प्रीति के घूँट लेता है।" इस उपन्यास के प्रस्तावना लेखक भवेरचद मेघाणी इसे 'शोकात कृति' कहते हैं। वस्तुत सपूर्ण उपन्यास को देखने पर मानव-मन मे गहरा अवसाद-बोध ही जगता है और कुछ नही। इस उपन्यास की भाषा सबद्ध अचल के सभी गुणो से पूर्ण व अभिव्यक्ति की दृष्टि से समर्थ है। उधडियु गाँव से जीवन की कुछ झलकियाँ प्रस्तुत उपन्यास मे उपलब्ध होती हैं, *पूरा जन-जीवन उभर कर नहीं आता फिर भी लोक-जीवन* की अभिव्यक्ति की दृष्टि से 'मळेला जीव' अपने युग की अत्यत समर्थ रचनाओ मे से है।

मल्काणी, नारायणदास रतनमल (सिं० ले०) [जन्म—1890 ई०]

इनका जन्मस्थान हैदराबाद (सिंध) है। इन्होने एम० ए०, एल-एल० बी०, तथा बी० टी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के पश्चात् कुछ वर्षों तक प्राध्यापक के रूप मे भी कार्य किया है। इन्होने अपने जीवन का अधिक भाग समाज-सेवा, देश सेवा और हरिजनो की उन्नति मे व्यतीत किया है। इन्होंने सिंध तथा भारत के कई भागो का भ्रमण भी किया है। कुछ वर्षों ये राज्यसभा के सदस्य भी रह चुके हैं। इन्होने लगभग 15 पुस्तकें लिखी हैं, जिनमे से कुछ कृतियो के नाम हैं—'बाराण्यूं' 'बोल्यूं', 'गोठाणी चहर', 'कश्मीर जो सैरु', 'सिंध जा हुनर' 'अनारदाना', 'जवाहर आत्मकथा'। ये सिंधी के

प्रसिद्ध गद्यकार हैं और अपनी विशेष गद्यशैली के कारण सिंधी-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। इनकी भाषा मँजी हुई, मुहावरेदार और हास्य-व्यंग्य से पूर्ण हैं। सिंध के ग्रामीण जीवन का चित्रण करते समय ये संबद्ध क्षेत्रों की उपभाषाओं का प्रयोग कर अपनी रचनाओं को स्वाभाविक बना देते हैं। सिंधी-गद्य के विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय है।

मल्काणी, मंघाराम उधाराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

ये सिंध में अँग्रेज़ी के प्राध्यापक थे और विभाजन के पश्चात् जयहिंद कालेज, बंबई में इसी विषय के प्राध्यापक नियुक्त हुए थे। वहाँ से निवृत्त होने के पश्चात् ये कलकत्ता चले गये थे और वहीं वृद्धावस्था में भी समय निकाल कर साहित्य का सृजन और अध्ययन कर रहे हैं। इनकी प्रमुख मौलिक रचनाएँ ये हैं—**नाटक:** 'खिन जी खता' (1930), 'अनारकली' (1930); **एकांकी-संग्रह:** 'पंज नंडिडा नाटक' (दे०) (1937), 'पंगली पर्दा (1938), 'जीवन चहिन्विटा (1957), 'पापु कीन पुत्र' (1962), 'खुडखुबीता प्या टिमकिनि' (1967) **आलोचना:** 'अदबी उसूल' (1950); **यात्रा वर्णन:** 'पच्छिमी यात्रा' (1963)। 1968 ई० में इनकी रचना 'सिंधी नस्र जी तारीख' प्रकाशित हुई थी जिसमें इन्होंने सिंधी-गद्य के विकास का इतिहास विस्तार से प्रस्तुत किया है। इसी पुस्तक पर इन्हें साहित्य अकादमी, नई दिल्ली से पाँच हज़ार रुपयों का पुरस्कार प्राप्त हुआ है। ये सिंधी साहित्य में नाटककार तथा आलोचक के रूप में अधिक विख्यात हैं। सिंधी के एकांकी नाटकों के विकास में इनका योगदान अविस्मरणीय है। ये 'कला जीवन के लिए' सिद्धांत के पक्के समर्थक हैं, अतः इन्होंने एकांकी नाटकों में जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर समाज को सुधारने के लिए कुछ आदर्श भी सामने रखे हैं। हाल ही में इनकी साहित्यिक सेवाओं को ध्यान में रखकर साहित्य अकादमी ने इन्हें अपना फेलो नियुक्त कर इनका सम्मान किया है।

मल्लना, चेदलुवाड् *(ते० ले०)* [समय—सोलहवीं शती ई०]

इनके पिता का नाम चेदलुवाड् लिंगन्ना था और वासस्थान थे गुड्लूरु के समीप अवस्थित चेदलवाडा, कानहस्ति, तथा कार्वेटिगर।

कृतियाँ: (1) 'रुक्मांगदचरित्रमु' (दे०) तथा (2) 'विप्रनारायणचरित्रमु'।

'रुक्मांगदचरित्रमु' का रचना-काल 1950 ई० माना जाता है। यह एक सरस द्विपद-काव्य है जो अनुपलब्ध है। इस काव्य की कतिपय पंक्तियाँ रीतिग्रंथों में उदाहृत हुई हैं। 'विप्रनारायणचरित्रमु' (दे० विप्रनारायणुड्) सुंदर प्रबंध-काव्य है जिसमें तमिलनाडु के बाहर आळ्वार भक्तों में अन्यतम तोंडर डिप्पोडि आळ्वार का—जीवनवृत्त वर्णित है। इनसे पहले दो अन्य कवियों ने इसी कथावस्तु को लेकर कविता लिखी थी। परंतु मौलिक काव्य के रूप में मल्लना की कृति ही प्रसिद्ध है। यह पाँच आश्वासों का कमनीय काव्य है जिसमें विप्रनारायणुडु भक्तिपथच्युत होकर भी भगवान की कृपा से पुनः सन्मार्ग पर लौट आता है।

मल्लना, नंदि *(ते० ले०)* [जन्म—पंद्रहवीं शती का उत्तरार्ध]

नंदि मल्लना तथा 'घंट सिंगना' दोनों कवियों ने मिल कर सम्मिलित रचनाएँ कीं। इस प्रकार सम्मिलित रचना करने वाले तेलुगु-कवियों में ये सर्वप्रथम हैं। 'प्रबोधचंद्रोदयमु', 'वराहपुराणमु' आदि इनकी रचनाएँ हैं। प्रबोधचंद्रोदयमु' कृष्ण मिश्र (दे०) द्वारा संस्कृत में रचित दार्शनिक नाटक का पद्यानुवाद है। इसमें 'महाभारत' (दे०) की कथा के आधार पर मनुष्य के हृदय में संघर्ष करने वाली सत् एवं असत् प्रवृत्तियों का चित्रण तथा प्रबोध के चंद्र के उदय की कथा वर्णित है। अपने अनुवाद में कवि ने प्रबंध-काव्य के लिए आवश्यक कई वर्णन जोड़े हैं।

'वराहपुराणमु' संस्कृत मूल के सरस प्रसंगों का चयन करके प्रबंध—रीति से रचा गया—काव्य है। दोनों कवियों ने स्वयं शिव-भक्त होकर भी विष्णु के अवतार-संबंधी पुराण की रचना करके अपनी समदर्शिता का परिचय दिया है। इनकी रचना सरल, सुग्राह्य तथा मधुर है। इसी कारण से क्लिष्ट दार्शनिक तत्त्वों को भी सहज एवं रमणीय रीति से प्रस्तुत करने में ये सफल हुए हैं।

मल्लना, पावुलूरि *(ते० ले०)*

गणितशास्त्र को काव्य का रूप देने वाले 'पावुलूरि गणितमु' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ के ये यशस्वी लेखक थे।

ईसा की नवी शती मे आचार्य महावीर नामक जैन विद्वान् ने 'गणित सार सग्रहमु', नामक गणित ग्रथ की रचना की थी। इस ग्रथ से मूल सूत्र, सिद्धात और प्रक्रिया को अभी अपनाकर पावुलूरि ने मल्लना ने अपनी तरफ से उदाहरण आदि जोडकर तेलुगु मे इस शास्त्र ग्रथ की रचना की। इस ग्रथ का गाँवो के पटवारी लोगो के बीच विशेष प्रचार हुआ। कन्नड मे राजादित्य (1120 ई०) के समय रचित 'राजादित्यगणितमु' का इस रचना पर प्रभाव दिखाई देता है। अत इसका रचना-काल बारहवी शती का अतिम चरण हो सकता है।

मल्लना, मादयगारि *(ते० ले०)* [समय—पद्रहवी-सोलहवी शती ई०]

ये तेलुगु के 'अष्टदिग्गज' (दे०) कवियो मे से एक हैं। इनकी प्रसिद्ध रचना 'राजशेखर चरित्रमु है, जिसका कथानक कल्पित है। इसमे शिव के वरदान से जनमा हुआ राजशेखर नामक राजकुमार विशकट नामक राक्षस का वध करके जटिल कौशिक नामक मुनि की पुत्री को मुक्त करता है तथा अनेक साहसपूर्ण कार्य करने के उपरात सिंधुराज की पुत्री कातिमती का पाणिग्रहण करता है। इसमे दोनो प्रेमियो के बीच एक शुक के द्वारा किया गया प्रणय दौत्य अत्यत सुदर बन पडा है।

इस कवि की रचना मृदु मधुर शब्दावली, रस-परिपाक तथा सजीव वर्णनो की दृष्टि से विशेष महत्व रखती है। इसमे कवि ने सार्वजनिक तथा सार्वकालिक अनुभूतियो का मार्मिक चित्रण किया है। तेलुगु की लोकोक्तियो का सार्थक प्रयोग कवि की एक और विशेषता है। तेलुगु के सुप्रतिष्ठित कवियो मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

मल्ला रेड्डी *(ते० पा० एव कृ०)*

यह तेलुगु के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास श्री नोरी नरसिंहशास्त्री (दे०) द्वारा रचित मल्ला रेड्डी' नामक ऐतिहासिक उपन्यास का प्रधान पात्र है। प्रतापरुद्र चक्रवर्ती ने दिल्ली की आक्रमणकारी मुसलमान सेनाओ को सात बार पराजित करके भगा दिया था। किंतु आठवी बार 1323 ई० मे वह बदी बना लिया गया था। उसके उपरात चार-पाँच वर्ष तक आध्र मे मुसलमान सेनाओ द्वारा अवर्णनीय अत्याचार होते रहे। सत्रस्त आध्र के उद्धार के लिए कटिबद्ध होकर कृष्णानदी के दक्षिण के वेमा रेड्डी, मल्ला रेड्डी आदि ने अपने सबधियो के सहयोग से मुसलमान सेनाओ को ध्वस्त किया था और फिर से धर्म तथा न्याय से पूर्ण शासन की स्थापना की थी। इस धर्मयुद्ध मे मल्ला रेड्डी द्वारा मोटुपल्लि बदरगाह पर अधिकार पा लेना सर्वाधिक महत्वपूर्ण विजय थी। मल्ला रेड्डी एक सुयोग्य शासक ही नही साहित्य एव कला का महान् पोषक भी था।

मल्ला रेडडी, कामिनेनि *(ते० ले०)* [समय—सोलहवी शती ई०]

इनके पिता मेदक जिले के बिक्कवोल नामक एक छोटी सी जागीर के मालिक थे। मल्ला रेड्डी कवि तथा पडित थे। इनके ग्रथ हैं—'षट्चक्रवर्तिचरित्र', 'शिवधर्मोत्तमु' और पदमपुराणमु'। ये तीनो रचनाएँ काव्यबद्ध हैं। 'षटचक्रवर्तिचरित्र मे इतिहास प्रसिद्ध हरिश्चद्र, नल आदि छह राजाओ के चरित्रो का वर्णन है। इसमे श्लेष तथा शब्दालकारो का प्रचुर प्रयोग किया गया है। 'शिवधर्मोत्तमु शैवधर्म सबधी रचना है। इसमे धर्म-सबधी तत्वो का सरल शैली मे विवरण दिया गया है। पद्मपुराणमु' सस्कृत पद्मपुराण' की कथा को लेकर रचा गया काव्य है। इसमे कथाएँ मनोरजक ढग से प्रस्तुत की गई है और इसकी शैली पाडित्यपूर्ण है।

मल्लिक, कुमुदरजन *(बँ० ले०)* [जन्म—1883 ई०, मृत्यु—1970 ई०]

रवींद्रानुसारी कविगोष्ठी मे कुमुदरजन यथार्थभक्त तथा वैष्णव कविरूप मे सुपरिचित हैं। निरलस साधना मे निमग्न जीवन के अतिम दिनो तक ये कविता की रचना करते रहे थे। 1906 ई० मे इनका पहला काव्यग्रथ शतदल' प्रकाशित हुआ। उसके उपरात 'बनतुलसी' (1911), 'उजानि' (1911), 'एकतारा' (1914), 'वीथि' (1916), बीणा (1916), 'बनमल्लिका' (1919), 'नूपुर' (1921), 'रजनीगधा' (1922), अजय (1921), तूणीर (1928), 'चनकालि' (व्यग्यकाव्य) (1930), 'स्वर्णसध्या' (1948) आदि कविरचित काव्य ग्रथ वगभरस्वती के प्रति निवेदित हुए हैं। 'द्वारावती' (1920) शीर्षक से एक नाटक की भी इन्होंने रचना की थी।

स्वय कवि न बड़ सवर्ग के प्रभाव की बात को, श्रद्धा के साथ स्वीकार किया है। गाँव से गुँथी हुई बगाल

की ग्राम्य-प्रकृति के प्रति कवि की अनाविल सहृदयता प्रकट हुई है। इनके काव्य में बंगाल की चिरंतन भाव-साधना तथा संस्कृति के अपूर्व समन्वय का परिचय मिलता है। बंगाल के गाँव के चिरपरिचित दृश्य तथा ग्रामीण जीवन की प्रत्येक छोटी-मोटी घटना से युक्त इनके काव्य में अपूर्ण प्राणरस का स्फुरण दिखाई पड़ता है। इनका काव्य आडंबर-हीन है किंतु जीवन की अकृत्रिम स्नेहरस-सुधा से भरा हुआ है।

मल्लिकार्जुन पंडिताराध्य *(तें० ले०)* [समय —1120 ई० से 1990 ई० तक]

ये प्रसिद्ध वीरशैव पंडितत्रय में से एक हैं। अन्य दो पंडित हैं—1. श्रीपति पंडित तथा 2. मंचन पंडित।

इनके पिता का नाम बानस भीमन्ना तथा माता का नाम गौरांबा था। इनके गुरु कोटिपल्लि आराध्य देव थे।

मल्लिकार्जुन पंडित जन्मतः वेलनाडि ब्राह्मण थे परंतु बाद में माहेश्वर दीक्षा ग्रहण कर इन्होंने आंध्रप्रदेश में शैवमत का विपुल प्रचार किया। वीरशैवमत के प्रवर्तन के प्रबल प्रशंसक होते हुए भी पंडिताराध्य ने अपने जन्मजात ब्राह्मणत्व के चिह्नों—यज्ञोपवीत और शिखा को नहीं छोड़ा। इस प्रकार पंडिताराध्य ने शैवमत और ब्राह्मणत्व में विशेष प्रकार के संतुलन की साधना की। इनके अनुयायी ब्राह्मण-वंशधर आंध्र में आराध्य ब्राह्मण कहे जाते हैं। मल्लिकार्जुन पंडित का धार्मिक व्यक्तित्व साहित्यिक व्यक्तित्व की अपेक्षा अधिक प्रभावात्मक था। जैन-बौद्ध धर्मों के उन्मूलन में इनका बड़ा हाथ रहा। इनकी कृतियों में 'शिवतत्त्वसारमु' (दे०) एकमात्र उपलब्ध कृति है। यह कुछ समालोचकों के अनुसार तेलुगु का प्रथम शतक (दे०)-काव्य है।

मल्लिनाथ *(सं० ले०)*

ये एक प्रसिद्ध टीकाकार हैं। इनका नाम पेद्द-भट्ट भी कहा जाता है तथा इन्हें कोलाचल में मल्लिनाथ भी कहते हैं इनका समय चौदहवीं शती का उत्तरार्द्ध माना जाता है। इनके पिता का नाम कोल्लाविनिर्नृसिंह सूरि माना जाता है, जो कि श्रीवत्सगोत्र के थे। इन्होंने अनेक ग्रंथों की टीका प्रस्तुत की थी, जैसे—'अमरकोष' (दे०), 'एकावली' (दे०), किरातार्जुनीय' (दे०), 'कुमारसंभव' (दे०), 'नैषधीयचरित' (दे०), 'भट्टिकाव्य' (दे०), 'मेघ-दूत' (दे०), 'रघुवंश' (दे०), 'शिशुपाल-वध' (दे०) आदि।

मल्लिनाथपुराण *(क० कृ०)*

'मल्लिनाथपुराण' के कवि नागचंद्र (दे०) अथवा अभिनव पंप (समय—1100 ई० के आसपास) कन्नड के एक ख्यातनामा कवि हैं। उनका 'रामचंद्र-चरितपुराण' अथव 'पंपरामायण' (दे०) कन्नड का एक ग्रंथरत्न है। उनके 'मल्लिनाथपुराण' में उन्नीसवें जैन तीर्थंकर मल्लि-नाथ का चरित निरूपित है। यह चंपू-काव्य है जिसमें कथा चौदह आश्वासों में विभक्त है। कवि ने प्रारंभ में कहा है, 'यह छोटी कथा है, इसको कवितारस-पूर्ण कर इसके पहले किसी महाकवि ने नहीं कहा है, अतएव मैंने इसकी रचना का विचार किया, अन्यथा क्या मल्लिजिनेंद्र महापुराण कहना आसान है ?' इससे स्पष्ट है कि कथा छोटी है, परंतु कवि ने अपनी प्रतिभा से उसे विकसित किया है। इस दृष्टि से उसके महापुराणत्व पर शंका नहीं की जा सकती। वैश्रवण नामक राजा ने सुख-भोग में निरत रहते समय एक दिन आँधी से गिरे एक बड़े बरगद के वृक्ष को विस्मय से देखा। वही विस्मय उसके वैराग्य रस के लिए सेतु हुआ, उसने संसार की असारता पहचानी। अपने पुत्र का राजतिलक कर नागपति से धर्म-श्रवण कर वह तपोनिरत हुआ और कालांतर में अहमिंद्र हुआ। दूसरे जन्म मल्लिनाथ हुआ, कौमार्य में ही वीतराग हो परि-निष्क्रमण कर तीर्थंकर हुआ। इसी कथा का वर्णन कर नागचंद्र ने अपार यश प्राप्त किया। उन्होंने भोग और त्याग का मनोहारी वर्णन किया है। उनकी कल्पना में कमनीयता और शैली में उज्ज्वलता है। शांत रस उनके काव्य का अंगी रस है, अन्य रसों का वर्णन भी उसमें हुआ है।

मल्लियम् मंगळम् *(त० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1958 ई०]

यह वि० एस० रामैया द्वारा लिखित नाटक है। 'सहस्रनामम्' की नाटक मंडली द्वारा कई रंगमंचों पर अभि-नीत होने से इसकी प्रसिद्धि है। इस नाटक की विषय-वस्तु उच्च संयुक्त हिंदू परिवारों के सदस्यों के बीच सामान्यतः

होने वाली हलचलो का चित्रण है। घर सर्वथा सपन्न होते हुए भी गृह-स्वामिनी 'मल्लियम् मङ्ळम्' की पक्षपातिता एव दुराग्रह के कारण, उसका शालीन पति, लडके और बहुएँ—सभी उत्पीडन का अनुभव करते हैं। उसकी लडकी मालि अपने पति के आग्रह के बावजूद ससुराल जाने से इनकार करती है तथा गृह-कलह कराने मे रस लेती है। इसकी कुछ दुष्टतापूर्ण उक्तियो के कारण बडे भाई 'राजू' को अपनी पतिव्रता पत्नी 'पाकक्कियम्' (भाग्यम्) पर सदेह हो जाता है कि कही वह उसके छोटे भाई गोपु से तो प्रेम नही करती। अतत 'पाकक्कियम' की चिंताजनक बीमारी हो जाने पर मालि के बोये विष-बीज का पता लगता है। नाटक के समस्त पात्र वास्तविक जीवन स लिये प्रतीत होते हैं। गृह लक्ष्मी 'मल्लियम मगळम् पुरानी पीढी की स्वेच्छाचारी वृद्धा सास है जिसे कनिष्ठ पुत्र 'गोपु' विनोद हास्य करते हुए आघात पहुँचाता है। लडकी 'मालि' का ससुर 'मेजर वेलु' एक हास्योत्पादक पात्र है जिस पर विगत फौजी जीवन की सनक इतनी सवार है कि वह हिंदुस्तानी के अलावा और भाषा बोल नही पाता। बोलचाल की ठेठ शैलियो के उपयोग ने इस नाटक का आकर्षण बढा दिया है।

मवाज़्मा ए-अनीस ओ दबीर *(उर्दू० कृ०)* [रचना काल—1907 ई०]

'मवाज़्मा-ए-अनीस ओ-दबीर' अल्लामा मुहम्मद शिबली निअमानी की रचना है। इसमे उर्दू क दो प्रसिद्ध मर्सिया निगारो (शोक काव्य रचयिताओ) 'अनीस' और 'दबीर' लखनवी की काव्य-कला का तुलनात्मक विवेचन है। अल्लामा की अन्य सभी रचनाएँ अरब और ईरान तथा अरबी फारसी साहित्य से सबद्ध हैं। केवल यही मवाज़्मा हिंदुस्तान और उर्दू भाषा से सबध रखता है। इसकी रचना करने की प्रेरणा उन्हें हैदराबाद मे होने वाली 'मर्सिया ख्वानी' की मजलिसो (शोक-सभाओ) से प्राप्त हुई थी।

अल्लामा शिबली की यह रचना उर्दू मे अपने ढग की पहली और सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमे बडी सूक्ष्मता और गभीरता के 'अनीस' और 'दबीर' के मर्सियो की तुलना की गई है। अल्लामा के मतानुसार अनीस जिस बात को सक्षेप मे प्रभावशाली ढग से प्रस्तुत कर जाते हैं उसे 'दबीर' विस्तार स व्यक्त करते हैं। दबीर जहाँ दूरयाक्त मे अनीस का अनुकरण करते हैं वहाँ श्लीलता का ह्रास हो जाता है। प्रसगानुकूल शब्द चयन मे भी 'अनीस', 'दबीर' की अपेक्षा अधिक सिद्धहस्त हैं। 'अनीस' और दबीर' दोनो मर्सिया लिखने की कला को चरमोत्कर्ष पर पहुचा दिया था। दोनो को पर्याप्त यश मिला। दोनो के अपने अपने 'सप्रदाय' बन गए थे। 'अनीस' के अनुयायी 'अनीसिए' और 'दबीर' के साथी 'दबीरिए' कहलाए।

मशरूवाला, किशोरीलाल घनश्यामलाल *(गु० ले०)* *[जन्म—1890 ई०, मृत्यु—1952 ई०]*

गाधीजी के आश्रम और उसके धर्मनिरपेक्ष वातावरण मे रहते हुए भी किशोरीलाल मशरूवाला स्वामिनारायण सप्रदाय मे आस्था रखत थे। गाधी दर्शन को अपने लेखो द्वारा प्रचारित-प्रसारित करने वाले मशरूवाला जी अनेक बातो मे गाधीजी से सहमत नही हो पाए; मूर्तिपूजा और अध्यात्म आदि विषयो मे इनका गाधी जी से सदा मतभेद रहा। गाधी सेवा सघ के अध्यक्ष तथा गाधी जी के मत्री के रूप मे इन्होने अत्यत निष्ठा और गौरव के साथ अपन दायित्व का निर्वाह किया था। 1942, 1946 तथा गाधी जी के निर्वाण के पश्चात साढे चार वर्ष तक 'हरिजन' पत्र का सचालन कार्य इन्ही के हाथो होता रहा था। गाधी जी ने इनकी क्षमता को पहचान कर इन्हें राष्ट्रीय शाला का काम सौंपा था। मशरूवाला जी स्वामिनारायण सप्रदाय की आचारशुद्धि की भावना से सदा प्रभावित रहे। इनकी रचनाएँ हैं (1) चरित्र-ग्रथ—'बुद्ध अने महावीर', 'राम अने कृष्ण' सहजानद स्वामी' और 'ईशुख्रिस्त', (2) शिक्षा सबधी पुस्तकें—'केलवणीना पाया', 'केलवणी विवेक', और 'केलवणीविकास', (3) तत्त्वचिंतन और धर्म सबधी साहित्य—'जीवनशोधन', 'अहिंसाविवेचन', 'गीतामथन' 'सत्यमय जीवन याने सत्यासत्यविचार', 'समूलीक्राति' और 'ससार अने धर्म' (भाग 1-2)। इनकी दृष्टि मे तत्त्वज्ञान केवल बौद्धिक विलास नही था, वह तो जीवन-निर्माण के लिए आधार था। जिन मान्यताओ का सबध-जीवन से नही था उनमे इन्ह कोई रुचि नही थी। इनकी तत्त्वचिंता मे मौलिकता, स्वतत्रता व विवेकबुद्धि का प्राधान्य तो है ही, साथ ही धर्म, परमात्मा, जीवन के लक्ष्य, मनुष्य के ऐहिक और आध्यात्मिक पुरुषार्थ आदि के विषय मे बिल्कुल नूतन और अभिगम हैं। इनकी शैली सघन, सूत्रात्मक व मार्मिक है तथा दृष्टातो और भौमितिक आकृतियो से समन्वित है। गुजराती के प्रमुख तत्त्वचिंतको मे मशरूवालाजी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

मपमंगलम् *(म० ले०)* [जन्म—1535 ई०; मृत्यु—1595 ई०]

केरल के नंपूतिरि ब्राह्मणों के घर (आलय) को 'इल्लम्' कहते हैं। ऐसे घरों (इल्लम्) में एक प्रसिद्ध घर का नाम है मपमंगलम्। वहाँ शंकरन् नंपूतिरि और 'नारायणन्' नंपूतिरि ने जन्म लिया। उन दोनों ने केरली में अनेक ग्रंथ रचे हैं। शंकरन् नंपूतिरि ने 1540 ई० से 1554 ई० के बीच में 'लघु भास्करीयम्', 'गणितसारम्', 'चंद्रगणितम्' आदि ज्योतिषशास्त्रीय ग्रंथ लिखे। उसी घर में (मपमंगलम्) नारायणन् नंपूतिरि ने सुख्यात 'नैषधचंपु' का निर्माण किया। 'राजरत्नावलीयम्' और बाणयुद्धम्' कवि के लिखे हुए चंपू-ग्रंथ हैं। उनके अतिरिक्त 'कोटिय विरहम् चंपू' की रचना कर नंपूतिरि ने बड़ा यश पाया।

मसऊद हसन रिज़वी 'अदीब', सैयद *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

लखनऊ विश्वविद्यालय के फ़ारसी विभाग में प्राध्यापक पद से उन्नति करते-करते रीडर और फिर प्रोफ़ेसर की पदवी प्राप्त कर 1954 ई० में इन्होंने सेवा से अवकाश ग्रहण किया था। तब से इन्होंने अपनी साहित्यिक सेवाएँ 'किताबनगर अदबिस्तान' को समर्पित कर दीं। अध्ययन और स्वाध्याय में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण ये अपनी काव्य-प्रतिभा के साथ यथेष्ट न्याय नहीं कर पाए। अतः उर्दू साहित्य-जगत् में गद्य-लेखक के रूप में ही इन्हें जाना जाता है। इनकी गद्य-कृति 'हमारी शायरी' उर्दू-आलोचना-शास्त्र की अमूल्य निधि है। इस कृति का प्रकाशन 'अंजुमन-तरक़्क़ी-ए-उर्दू' द्वारा हुआ है। इसकी लोकप्रियता एवं उपादेयता के फलस्वरूप इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। इस कृति के अतिरिक्त अन्य अनेक कृतियों के संपादक एवं संकलनकर्ता के रूप में भी इन्हे देखा जा सकता है। इन कृतियों में 'रूह-ए-अनीस', 'फ़ैज़-ए-मीर', 'इंद्र-सभा', 'शाहकार-ए-अनीस', 'दीवान-ए-फ़ाइज़', 'लखनऊ का शाही अस्टेज', 'रज्मनामा-ए-अनीस', 'आब-ए-ह्यात का तनक़ीदी मुतालिया' और 'लखनऊ का अवामी अस्टेज' उल्लेखनीय हैं। इन कृतियों की विस्तृत भूमिकाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण और स्थायी मूल्य की हैं। व्याकरण-सम्मत और प्रसाद-गुण-संपन्न आकर्षक भाषा-शैली में इन्होंने विवेच्य विषयों पर इस प्रकार प्रकाश डाला है कि पाठक के लिए इनके निष्पक्ष दृष्टिकोण का विरोध करना कठिन हो जाता है। सशक्त अभिव्यंजना-कौशल इनकी कला का मेरुदंड है। आलोचक के रूप में इन का दृष्टिकोण पुरातनवादी है; अतः आधुनिक उर्दू शायरी में इन्हें प्राचीन शैली की भावुकता का अभाव बुरी तरह खलता है। इनके विचार में आधुनिक उर्दू शायरी मानसिक संतोष और आध्यात्मिक परितृप्ति की प्राप्ति में सर्वथा असमर्थ है। डा० सैयद एजाज़ हुसैन के अनुसार—'मसऊद हसन साहब जिस अध्यवसाय के साथ अपने अनुसंधान और आलोचना की गरिमा को बनाए हुए हैं और जिस विस्तृत दृष्टिकोण का प्रमाण अब तक उन्होंने दिया है; उससे विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वे आधुनिक साहित्यिक प्रवृत्तियों से भी अपने को दूर नहीं पाएँगे।'

मसनवी *(उर्दू० पारि०)*

'मसनवी' उर्दू शायरी का एक ऐसा काव्य-रूप है जिसमें प्रेम, स्तुति, प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण सभी कुछ मौजूद होता है। इसमें शोक-गीत भी लिखे जाते हैं और ऐतिहासिक घटनाओं का भी वर्णन किया जाता है। अतः इसमें गज़ल, कसीदा, मरसिया आदि सभी के नियमों का पालन अनिवार्य हो जाता है। यह एक प्रबंधात्मक कविता है जिसके प्रत्येक पद्य का दूसरे से संबंध होता है। यह संबद्धता ही इसका विशेष गुण है। इसका प्रत्येक पद एक-दूसरे से जंजीर की कड़ी के समान जुड़ा रहता है। इसके प्रत्येक पद अथवा शेर की पृथक्-पृथक् तुक होती है।

पुराने समय में इसके लिए छोटी-छोटी बहरें (छंद) ही प्रयुक्त होती थीं। उर्दू में अनगिनत सुंदर मसनवियाँ लिखी गई हैं।

मसनवी एक लंबी कविता होती है। इसका आरंभ प्रशंसा या स्तुति से होता है और फिर आख्यान होता है। अंत में उन्हीं बातों की पुनरावृत्ति की जाती है जो मूल या आख्यान से संबंधित होती हैं। मसनवी का अंत प्रायः किसी नैतिक शिक्षा में होता है।

मसनवी सह्‌रुलबयान *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1785 ई०]

उर्दू की सबसे प्रसिद्ध मसनवी 'सह्‌रुलबयान' मीर हसन (दे०) की अमर कृति है। उर्दू में इस स्तर

की मसनवी न इससे पहले लिखी गई है और न ही सभवत अब लिखी जा सकेगी। इस ममनवी मे बेनजीर (दे०) और बद्र-ए-मुनीर (दे०) की प्रणय-गाथा का सुदर एव रोचक वर्णन है। यह मसनवी अपने युग के सामाजिक जीवन का दर्पण है। इससे तत्कालीन रीति-रिवाजो तथा सभ्यता पर भरपूर प्रकाश पडता है। शैली इतनी रोचक है कि यह आज भी उसी चाव से पढी जाती है जिस चाव से कि अपने रचना-काल मे पढी जाती थी। मीर हसन भावनाओ का सजीव चित्रण करने मे सिद्धहस्त हैं। भाव तथा भाषा पात्रानुकूल हैं। इस मसनवी की लोकप्रियता का यही सबसे बडा प्रमाण है कि इसके बहुत से शेर सूक्तियो के रूप मे प्रयुक्त होते हैं।

मस्तान चाकिपु *(त० ले०)* [*समय—उन्नीसवी शती*]

तत्सम शैली मे नाम *'मस्तान साहिब'* है और इसके साथ इनके गाँव 'कुणड्कुटि' का भी उल्लेख किया जाता है। ये इस्लाम धर्मावलबी कवि थे पर इन्होंने न केवल मुहम्मद नबी पर बल्कि हिंदू देवताओ पर भी 'शलक' काव्य रचना की है। ये तमिल प्रदेश के घुमक्कड 'सिद्ध' योगी के उदार वाम-मार्ग का अनुसरण करने वाले थे और उनकी भाँति दुर्गोपासना भी करते थे। कहा जाता है कि अपनी शादी के दिन ये घर से निकल पडे थे और विरक्त हो गए थे। इनकी पद्यकृतियो मे 'अकत्तीचुरचतकम्' (अगस्तीश्वर-शतकम्), 'नन्तीचनचतकम्' (नदीश्वर शतक), 'मनो-मणिक्कण्णि' (नायक-नायिका पद्धति का रहस्यवादी उद्गार) इत्यादि हैं। इन्होंने मसीही मत के खडन के रूप मे 'किरिस्तुमतकणटनवज्रतणटम्' (ख्रीस्त मत खडन के का वज्रदड) नामक पुस्तक भी लिखी थी।

महत, केशव *(अ० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

जन्मस्थान—चतिया। इन्होंने 1956 ई० मे बी० ए० की परीक्षा प्राइवेट छात्र के रूप मे उत्तीर्ण की थी। ये कई वर्ष तक अध्यापन कार्य करते रहे थे। इन्होंने 'मिलन' और 'प्रवाह नामक पत्रो का सपादन किया था। इस समय ये गोहाटी विश्वविद्यालय के प्रकाशन-विभाग मे सहअनुवादक हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य 'आमार पृथिवी' (1946), 'रद जिकिमिकि' (1959), 'कुँवली ओंनरि जाय'।

ये नयी कविता-धारा के नीति कवि हैं। इनकी कविताएँ मानवतावादी एव हृदयस्पर्शी हैं, किंतु निराशावादी नही। ये आस्थावादी नये कवि हैं।

महत, मित्रदेव *(अ० ले०)* [*जन्म—1894 ई०*]

जन्मस्थान—जोरहाट।

ये कई शिक्षा-सस्थाओ मे शिक्षक, अधीक्षक और प्रधानाध्यापक के रूप मे कार्य कर चुके हैं। 1916 ई० से 1950 ई० तक जोरहाट के थियेटर से सबद्ध रहे थे।

प्रकाशित रचनाएँ—कविता 'गीति शतदल' *(1950)*, कहानी 'चद्रहार' *(1924)*, हास्य नाटक 'कुकुरी कणवार आठ मगल' (1916), 'बिया बिपर्यय' (1926), सामाजिक नाटक 'एटा चुरुट' (1935), 'टिपचही' (1939), 'मेलटरी' (1946), 'भाकुट कूट' (1948), 'भोटर रगर' (1952), गभीर नाटक 'बैदेही बियोग' *(1952)*, *'बलिछलन' (1957)*, *'प्रच्छन्न पाडव'* 1956)।

ये हास्य रस के कवि और नाट्यकार हैं। इन्होने हलकी कविताओ के अतिरिक्त कुछ गभीर गीत भी लिखे है। हास्य नाटको मे इनका 'बिया बिपर्यय' नाटक विशेष ख्याति पा सका है। इनके व्यग्य की चोट व्यक्ति पर नही वर्ग पर होती है। गभीर नाटको मे इन्हे सफलता नहीं मिली है।

हास्य लेखको मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

'महजूर', गुलाम अहमद *(कश्० ले०)* [जन्म—1885 ई०, मृत्यु—1952 ई०]

इनका जन्म कश्मीर के पुलवामा तहसील के एक गाँव मात्रिगाम मे, एक मध्यवर्गीय 'पीर' परिवार मे हुआ था। मकतब मे फारसी और अरबी भाषाओ का ज्ञान प्राप्त किया। कश्मीर से बाहर कई स्थानो की यात्रा की। *19 वर्ष की आयु मे 1907 ई० मे पटवारी (लेखपाल)* बने। अपने समय से पूर्व के कई कवियो, विशेषत रसूल मीर (दे०), से प्रेरणा प्राप्त की। प्रारभ मे उर्दू भाषा मे कविता की किंतु फिर भी मन अशात रहा और अतर्मन का कवि सुप्त बना रहा। कश्मीर के जनसाधारण को अपने *मन की बातें बताने के लिए* इन्होंने उर्दू छोडकर कश्मीरी भाषा मे कविताएँ लिखना प्रारभ किया। गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) ने इनकी कविताओ की काफी सराहना की। इन्होंने बडे गर्व से प्राचीन कश्मीरी सस्कृति,

जनश्रम और जनसमस्याओं को विषयवस्तु बनाकर बहुत ही उच्चकोटि की ग़ज़लों, प्रगीतों आदि की रचना की। इन्होंने प्रकृति के आँचल का सहारा लेकर उसी के रूप-लावण्य का चित्रण किया। 'महजूर' कश्मीरी कविता में प्रकृति के रंग भरने वाले ऐसे उपासक चितेरे थे जिन्होंने प्रेम-लालसा और रूपाकृति के गाने गाकर कश्मीरी कविता में नये युग का सूत्रपात किया। यह हिंदू-मुस्लिम एकता के अलमबरदार थे। अपने ही जीवन में लोकप्रिय होकर प्रसिद्धि एवं ख्याति प्राप्त करने वाले इस गुणी कवि की रचनाएँ उदात्त एवं श्रेष्ठ तो हैं ही, उसके साथ-साथ वे राष्ट्रीयता का भी पाठ पढ़ाती हैं। महजूर जहाँ प्रकृति का चितेरा गायक है वहाँ वह कहीं-कहीं क्रांति का संदेश भी सुनाता है। इनकी रचनाएँ 'पयाम-ए-महजूर' (6 खंडों में) तथा 'कलाम-ए-महजूर' (9 खंडों में) के नाम से प्रकाशित हुई हैं। कवि अपने समय का प्रतिनिधित्व करता है ही, अतः महजूर की कुछ एक रचनाएँ भी सामयिक राजनीति के रंग में रँगी हुई हैं। इन्होंने कई भक्तिभाव-प्रधान गीतों की भी रचना की है।

महताब, हरेकृष्ण *(उ० ले०) [जन्म—1899 ई०]*

डा० हरेकृष्ण महताब कुशल राजनीतिज्ञ तथा उच्चकोटि के लेखक हैं। उड़ीसा में गांधीजी के आदर्शों से अनुप्राणित और समसामयिक राजनीतिक चेतना से अनुप्रेरित उपन्यासों की रचना में डा० महताब को प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इनके उपन्यास 'नूतन धर्म', 'प्रतिभा' (दे०), 'टाउटर', 'अव्यापार' आदि के पात्र गांधी जी के असहयोग आंदोलन से प्रभावित हैं। अहमदनगर जेल में लिखित 'ओडिशार इतिहास' इनकी एक महत्वपूर्ण रचना है। डा० महताब के पिता श्री कृष्णदास अगरपड़ा, बालेश्वर के निवासी थे। नानी के गोद ले लेने के कारण इनका लालन-पालन ज़मींदार मामा के यहाँ राजसी ढंग से हुआ था। कटक से बी० ए० करने के बाद से इनका राजनीतिक जीवन प्रारंभ होता है। स्वतंत्रता के बाद ये केंद्रीय मंत्री, बंबई के गवर्नर और उड़ीसा के मुख्य मंत्री रह चुके हैं। उत्कल विश्वविद्यालय ने इन्हें 'डाक्टर ऑफ़ लिटरेचर' की उपाधि देकर सम्मानित किया है। साहित्य-सर्जना के लिए नयी प्रतिभाओं को आकर्षित करने में इनकी पत्रिका 'झंकार' एवं 'प्रजातंत्र' का विशेष योगदान रहा है।

महमूद गामी *(कश्० ले०) [जन्म—अनुमानतः 1800-1805 ई०; मृत्यु—1855 ई०]*

इनका जन्म कश्मीर स्थित ऑरवादी डूरू (शाहाबाद) में हुआ था।

इनके जीवन के संबंध में कोई विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध नहीं, किंतु अंतर्साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन्हें फ़ारसी और अरबी का अच्छा ज्ञान था। इन्होंने विषयवस्तु आदि में ईरानी कवियों का ही अनुकरण किया है। कश्मीरी भाषा में 'लैला-मजनूँ', 'यूसुफ़ जुलेखा', 'शीरीं-खुसरो', 'हारूनुल्-रशीद', 'शेख सना' आदि की रचना की। इनकी शैली में ओज है, और छंदों में प्रेमाख्यान कहने का ढंग मौलिक। इन्होंने फ़ारसी-युक्त कश्मीरी भाषा का प्रयोग किया है। 'पंज गंज' की भी रचना की है। महमूद गामी ने केवल कश्मीरी में ही कविता की है, किसी अन्य भाषा में नहीं। इन्होंने गीत, ग़ज़ल, 'रोफ', आशिकाना नग्मे, आदि भी लिखे हैं।

महमूद शीरानी *(उर्दू० ले०) [जन्म—1881 ई०; मृत्यु—1946 ई०]*

जन्मस्थान—रियासत टौंक।

इन्होंने 1895 ई० में फ़ारसी परीक्षा 'मुंशी फ़ाज़िल' उत्तीर्ण की थी। तदुपरांत ये इस्लामिया कालेज, लाहौर में उर्दू प्राध्यापक के रूप में कार्य करने लगे थे। और 1940 ई० अर्थात् सेवा-मुक्त होने तक इसी पद पर बने रहे थे। इन्हें शैक्षिक अनुसंधान के प्रति अत्यधिक रुचि थी। इनका अनुसंधान-कार्य अत्यंत विस्तृत है। अनेक खोजपूर्ण लेख और शैक्षिक तथा ऐतिहासिक महत्व के सहस्रों पत्र इन्होंने बड़े परिश्रम से एकत्रित किए। इनका समस्त शोध-कार्य पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर के अधिकार में है। एक कुशल अनुसंधाता के अतिरिक्त ये भाषा-विशेषज्ञ और उच्च कोटि के आलोचक भी थे। छंद-शास्त्र पर इन्हें अद्भुत अधिकार प्राप्त था। 'पंजाब में उर्दू' इनकी प्रसिद्ध कृति है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अनुसंधानात्मक स्तर की इस कृति का उर्दू साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान है।

महरि *(अ० कृ०) [रचना-काल—1896 ई०]*

दुर्गाप्रसाद मजुमदार बरुवा (दे०) द्वारा रचित

तीन अक के इस नाटक मे चाय बागान का परिवेश और महरिर' (मुहर्रिर—क्लर्क) के पद का हास्यास्पद वर्णन है। मुख्य पात्र भाविराम का विरोध बडा क्लर्क करता है। अँग्रेज़ी न जानने के कारण भाविराम हास्य का कारण बनता है। साहब और उसकी असमीया रखैल के सवादो मे स्थूल हास्य है, जो कि अमार्जित एव अश्लील है। यह प्रहसन लोकप्रिय अवश्य हुआ है किंतु इसमे सुसस्कृत हास्य का अभाव है।

'महरूम', तिलोकचद *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1887 ई०, मृत्यु—1966 ई०]

प्रोफेसर तिलोकचद 'महरूम का जन्म ईसा खेल, जिला मियाँवाली (पाकिस्तान) मे हुआ था। दिल्ली मे ये कैप कालेज मे उर्दू-फारसी के प्राध्यापक रहे।

पजाब की भूमि पर जन्म लेने वाले शायरो मे डा० इकबाल (दे०) के बाद प्रो० महरूम का महत्वपूर्ण स्थान है। महरूम की नज़्मे राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत हैं। 'कारवान ए-वतन' इनकी राष्ट्रीय कविताओ का सग्रह है। नज़्मो के अतिरिक्त इन्होने गज़लें और रुबाइयाँ भी कही हैं। बालापयोगी कविताएँ लिखने मे भी ये सिद्धहस्त थे। 'गज ए-मुआनी', 'कलाम-ए महरूम, ग्रोल-ए-नवा', 'रुबाइयात-ए महरूम', 'महर्षि दर्शन, बच्चो की दुनिया' और 'बहार-ए तिफली' इनके अन्य काव्य सग्रह हैं। इनके काव्य मे गभीर एव तीव्र पीडा की अनुभूति पाई जाती है। सर अब्दुल कादिर के अनुसार 'बहार हो या पतझड, कुदरत के हर मजर को देखकर उनके दिल का कोई न कोई जख्म ताजा हो जाता है।'

'नूरजहाँ का मज़ार', 'ख्वाब ए जहाँगीर' और पत्नी तथा पुत्री के देहात पर लिखी गई कविताएँ करुणा तथा प्रभाव से ओतप्रोत हैं। इनकी भाषा सहज स्वाभाविक एव सरल है तथा शैली स्पष्ट तथा सादा। इनके सुपुत्र जगन्नाथ 'आज़ाद' भी उर्दू के प्रतिष्ठित कवि हैं।

महशर-ए-ख्याल *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1950 ई०]

यह रचना असर सज्जाद अन्सारी के निबधो, नाटको तथा काव्य का सकलन है जिसे प्रोफेसर ख्वाजा मसूर हुसैन ने सकलित किया है। इस सकलन मे नाटक एक ही है जिसका नाम 'रोज़ ए-जज़ा' है। हसरत मोहानी (दे०), शिबली (दे०) आदि की स्मृति मे लिखी कविताएँ तथा कुछ उर्दू गज़लें भी इसमे शामिल की गई हैं। एक अन्य कविता मुस्तफा कमाल पाशा के दरबार मे याचना के रूप मे है।

निबध बहुत ऊँचे स्तर के हैं। साहित्यिक, सामाजिक समस्याओ से सबद्ध निबधो के अतिरिक्त इसमे ऐसे निबध भी सम्मिलित हैं जिनकी आधारभूमि मनोविज्ञान है। कुछ विषय, जिन पर निबध अथवा टिप्पणियाँ लिखी गई हैं, निम्नलिखित हैं—

(1) आँसू, (2) झूठ, (3) शबाब (यौवन), (4) वफा, (5) दुआ, (6) मुहब्बत, (7) तबस्सुम, (8) बीवी, (9) औरत, (10) इसान (मानव) आदि।

एक अन्य आलोचनात्मक साहित्यिक निबध 'रूह ए-अदब' है। इसमे जोश मलीहाबादी (दे०) की रचना रूह-ए-अदब' पर समालोचना की गई है। निस्सदेह यह कृति उर्दू साहित्य की एक मूल्यवान निधि है।

महांति, कान्हुचरण *(उ० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

ये नागबाली, कटक जिले के रहने वाले हैं, किंतु इनका जन्म बलांगीर जिले के सोनपुर गाँव मे हुआ था। उस समय इनके पिता श्री सूर्यनारायण महांति वहाँ ओवरसियर थे। बी० ए० और एकाउट्स की परीक्षा पास करने के बाद इन्होने अपना व्यावसायिक जीवन प्रारभ किया, किंतु साहित्य-साधना सदा अविच्छिन्न चलती रही। आज भी इनकी सर्जनात्मक प्रतिभा कुठित नहीं हुई है। इनके कतिपय प्रमुख उपन्यास हैं—'हा अन्न', 'शास्ति', 'वज्रबाहु', 'तुडबाइद', 'अदेखा हाथ', झडर शेष', 'शर्बरी' आदि।

परिमाण और जनप्रियता की दृष्टि से कान्हुचरण महांति आधुनिक उडिया उपन्यासकारो मे अत्यत प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं। अब तक इनके चालीस उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। यद्यपि 'का' उपन्यास ओडिशा साहित्य एकादेमी द्वारा पुरस्कृत रचना है, फिर भी इनका 'शास्ति' (दे०) नामक उपन्यास ही सर्वश्रेष्ठ एव लोकप्रिय है। इनके कई उपन्यास रगमच और सिनेमा की दृष्टि से भी सफल हुए हैं।

इनके उपन्यासो की सफलता का कारण पात्रो की सजीवता एव स्वाभाविकता, चरित्र-चित्रण की नाटकीयता और प्रत्यक्षता, भाषा तथा शैली की सरलता,

सहजता और अनेकरूपता है। परिवेश के चित्रण को व्यापकता मिलती है।

महांति, गुरु प्रसाद *(उ० ले०)* [जन्म—1940 ई०]

श्री गुरुप्रसाद महांति का जन्म मंडासाहि (कटक) में हुआ था और ये अध्यापक हैं। यद्यपि आजकल इनकी कविताओं का बहिरंग नवीन है, किंतु उसके अंतरंग पर रोमेंटिक भावधारा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। आधुनिक जीवन का तनाव ही इस रोमेंटिक एटिट्यूड द्वारा व्यक्त हुआ है। जीवन के छोटे-छोटे क्षणिक सुखों की कोमल क्रोड़ में इन्होंने क्षणिक विश्राम ढूंढा है। इनकी कविता में कल्पना के माध्यम से कठोर यथार्थ का प्रकाशन हुआ है। इन पर इलियट का विशेष प्रभाव है इसीलिए इनके प्रतीकों के प्रयोग में गंभीर मननशीलता एवं बौद्धिकता दिखाई पड़ती है। टी० एस० इलियट की रचना 'वेस्टलैंड' की छाया में लिखित इनकी दीर्घ कविता 'काळपुरुष' (दे०) उड़िया आधुनिक काव्य-जगत् में एक सफल सृष्टि है। 'समुद्र-स्नान' इनकी कविताओं का संकलन है।

महांति, गोपीनाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

इनका जन्म नागबाली, कटक ज़िले में हुआ था। अब तक इनकी 25 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'परजा', 'दादी बूढ़ी', 'हरिजन', 'राहुर छाया', 'दानापाणि' (दे०) आदि इनके कतिपय प्रमुख उपन्यास हैं।

गोपीनाथ महांति के उपन्यास परिमाण में अपने अग्रज कान्हुचरण महांति (दे०) से कम होने पर भी सरसता और रचना-विधान की दृष्टि से श्रेष्ठतर हैं। आदिवासी जीवन के चित्रण में, भारतीय उपन्यास-क्षेत्र में गोपीनाथ अग्रणी हैं। इनका उपन्यास 'अमृत संतान' (दे०) साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत हो चुका है।

गोपीनाथ महांति अनेक दृष्टियों से नवीन पथ के प्रवर्तक हैं। सबुज उपन्यासों (दे० सबुज साहित्य) के सभ्य व शालीन मध्यवर्गीय परिवेश के बाद गोपीनाथ के उपन्यासों ने अपने कठोर और अनगढ़ परिवेश, प्रखर एवं अपरिमार्जित गद्य-शैली आदि के साथ, साहित्य-संसार में प्रवेश किया। यह निश्चित रूप से एक अभिनव प्रयास था। इनकी गद्य-शैली का बीहड़पन, इनके असाधारण व्यक्तित्व का परिचायक है।

लेखक को आदिवासियों की सूक्ष्म और भोली मनोवृत्तियों के चित्रण में आश्चर्यजनक सफलता मिली है। परिवेश-चित्रण में एक विशेष आकर्षण है। उड़िया-मुहावरों से सज्जित सरल भाषा में कवित्वपूर्ण वर्णन करने में गोपीनाथ सिद्धहस्त हैं। 1974 ई० में 'माटी मटाळ' (उपन्यास) पर इन्हें 1973 का ज्ञानपीठ पुरस्कार भी मिला है।

महांति, चिंतामणि *(उ० ले०)* [जन्म—1867 ई०; मृत्यु 1943 ई०]

श्री चिंतामणि महांति का जन्म कुलमल्लाइ ग्राम-भद्रख-बालेश्वर में हुआ था। जीवन-संघर्ष एवं विषमताओं के बीच निरविच्छिन्न रूप से इनकी साहित्यिक प्रतिभा साहित्य-सृष्टि करती रही है और विपुल साहित्य से आधुनिक उड़िया साहित्य को समृद्ध करती रही है। बाल्यकाल से पितृहीन एवं निर्धन होने के कारण तथा अल्पायु से पारिवारिक बोझ संभालने के कारण ये उच्चशिक्षा से वंचित रहे। वर्नाक्यूलर पास करने के बाद इन्हें शिक्षक का कार्य करना पड़ा था। 20 वर्षों तक ये उस पद पर कार्य करते रहे थे। 1903 ई० में ये 'गंजाम ओड़िआ-हितवादिनी' पत्रिका के संपादक बने थे। उसके बाद कई अन्य पत्रिकाओं का भी इन्होंने संपादन किया था। काव्य, उपन्यास, निबंध—सभी में इनकी एक-सी दक्षता दिखाई पड़ती है। राधानाथ युग के काव्यादर्श से अनुप्रमाणित होते हुए भी इन्होंने प्राचीन साहित्यिक परंपरा को अक्षुण्ण रखा है।

इनकी रचनाएँ हैं—काव्य : 'विक्रमादित्य' (दे०), 'श्री मुकुंददेव', 'सुभद्रा परिणय', 'धुमुपर काव्य'; उपन्यास—'टंकासच्छ', 'त्रिवेणी', 'शनिशप्ता' आदि।

महांति, डा० जानकीवल्लभ (भारद्वाज) *(उ० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

प्राध्यापक डा० जानकी वल्लभ महांति (भारद्वाज) (एम० ए०, पी-एच० डी०) की समस्त रचनाओं में उनके अध्यवसाय, विस्तृत ज्ञान, गंभीर चिंतनशीलता, प्रसिद्ध है। यद्यपि गद्य एवं पद्य दोनों में इन्होंने रचना की है, किंतु प्रधान रूप से ये निबंध-लेखक एवं समीक्षक हैं। इनकी आलोचनाएँ निरपेक्ष और गवेषणात्मक होती हैं। शैली निर्वैयक्तिक एवं विश्लेषणात्मक है। इनकी

प्रारंभिक कविताएँ गीतिमय होने के कारण अत्यंत लोकप्रिय रही हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'तीर्थंक' (काव्य), 'से देशर गप' (कहानी); 'कथा श्रो कथाकार', 'आधुनिक ओडिया साहित्य', 'फकीर मोहन परिक्रमा' 'श्रोडिआ गीतिकाव्य' (आलो०) (दे०)।

महाति, बशीधर *(उ० ले०)* [जन्म—1924 ई०[

श्री बशीधर महाति का जन्म बागसाहि (कटक) मे हुआ था। इनके निबध गवेषणामूलक एव पाडित्यपूर्ण होते हैं। उडिया-नाथ साहित्य पर इन्हें उत्कल विश्वविद्यालय ने डॉक्टरेट की उपाधि प्रदान की थी। सारलादास के महाभारत (दे०) पर इन्होने अनेक गवेषणामूलक लेख लिखे हैं। सास्कृतिक विषयो पर भी इनकी अनेक विद्वत्तापूर्ण आलोचनाएँ हैं। इन्होने ताडपत्रो पर लिखे, बिखरे हुए शताधिक प्राचीन ग्रथो का सग्रह किया है तथा अब भी कर रहे हैं। अब तक इनकी कई गवेषणात्मक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, यथा—'साहित्य और धर्म', 'ओडिशा आदिवासी सस्कृति', 'ओडिशा में बौद्ध सस्कृति', 'ओडिआ भाषार उत्पत्ति श्रो क्रम बिकाश' (दे०) आदि।

महाति, ब्रजमोहन *(उ० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

श्री ब्रजमोहन महाति का जन्म गोपालपुर (कटक) मे हुआ था। इन्होने उपन्यास, नाटक, कविता, आलोचना आदि की रचना कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी विषयवस्तु मे व्यापकता है, भाषा और शैली विषयानुरूप एव सरल है। इनकी आलोचनाएँ सूचनात्मक अधिक हैं। 'जगन्नाथ परिक्रमा', 'आधुनिक उडिया-साहित्य परिक्रमा' (आलो०), रक्तर स्वप्न', पारिजात', 'स्वर्ग ओ नरक', 'कहानी तिनिबधर' (उप०) (दे०), 'अमापल्ली', 'वैज्ञानिकर ससार' (ना०), 'छायापथ' (काव्य) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

महाति, मुकुद प्रसाद *(उ० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

श्री मुकुद प्रसाद महाति का जन्म सुसुआ (भद्रख) मे हुआ था। ये होमिओपैथी के डॉक्टर हैं। कुछ वर्षो तक प्रशासनिक कार्यभार भी इन्होंने सँभाला, किंतु इनकी साहित्य साधना निरविच्छिन्न चलती रही। इन्होंने सर्वव्यापक प्रेम को जागतिक जीवन का नियामक माना है। आज की तकनीकी सभ्यता का यह दुर्भाग्य है कि वह प्रेमहीनता की ओर गतिशील है। यही आज की समस्त विसगतियो का कारण है। इनकी कविता, उपन्यास आदि मे इसी दृष्टिकोण का प्रसार मिलता है। 'मरुपल्ली', 'छाइर स्वप्न', 'पिपासार स्वर-लिपि' (काव्य), 'हजिला स्वप्न जळिला आशा' (उप०) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

महाति, सुरेन *(उ० ले०)*

श्री सुरेन महाति आधुनिक साहित्य के एक प्रमुख एकाकीकार हैं। रेडियो एकाकी और ध्वनिरूपक लिखने मे इन्हे विशेष ख्याति मिली है। भाषा नित्यप्रति बोलचाल की है अत सप्रेषण की उसमे प्रचड शक्ति है। सप्तस्वरी' (दे०) इनके एकाकियो का मनोज्ञ सकलन है।

महाति, सुरेंद्र *(उ० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

कथाशिल्पी सुरेंद्र महाति आधुनिक उडिया-कहानी-साहित्य के प्रतिभावान् कहानीकार हैं। द्वितीय महायुद्ध के बाद के उडिया-कहानी-साहित्य मे इन्होने युगातर उपस्थित कर दिया है। इनकी कहानियो का विषय-क्षेत्र अत्यत विस्तृत है। आधुनिक जीवन की बहुमुखी समस्याओ को इन्होंने सशक्त रूप से अपनी कहानियो मे प्रस्तुत किया है। इनकी गद्य-शैली मे अभिभूत कर लेने की अपूर्व शक्ति है। ये इस युग के एक सशक्त गद्यकार हैं।

महाति जी का जन्म कटक जिले के पुरुषोत्तमपुर गाँव मे हुआ था। सप्रति ये 'कलिंग' पत्रिका के सपादक हैं। ये ससद-सदस्य भी रहे हैं। इनके महत्वपूर्ण कहानी-सग्रह हैं—'कृष्ण-चूडा', 'महानगरीर रात्रि', 'रुटि ओचद्र' आदि।

साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत इनका उपन्यास 'नीलशैल' (दे०) केवल एक महान रचना ही नही, अपितु उडीसा की सस्कृति एव परपरा की अमूल्य निधि है। यह ऐतिहासिक उपन्यास सत्रहवी-अठारहवी शती के उडीसा का चरित्रागार है। विषयवस्तु जगन्नाथ-मदिर से सबधित है। अठारहवी शती मे खोर्धा के गजपति श्री रामचद्र (दे०) देव उर्फ़ कादरबेग परिस्थितियोवश मुसलिम धर्म ग्रहण करते हुए भी कटक के तत्कालीन मुसलमान शासक तकी खाँ के आक्रमण मे जगन्नाथ की रक्षा किस प्रकार करते हैं, यही इसका वर्ण्य-विषय है। दृष्टिकोण की सर्वांगीणता, चरित्रों की विराट् योजना तथा सशक्त भाषा-

शैली के कारण आधुनिक उड़िया-उपन्यास-साहित्य में इनका अन्यतम स्थान है। इनका दूसरा उपन्यास 'अंधदिगंत' भी उच्चकोटि की रचना है। निबंध एवं आलोचनात्मक साहित्य के अतिरिक्त इनकी अन्य कृतियों में 'ओड़िआ साहित्यर आदिपर्व' एवं 'ओड़िआ साहित्यर मध्यपर्व' उल्लेखनीय हैं।

महाकवि (त० ले०) [जन्म—1927 ई०]

इनका जन्म जाफना (लंका) में हुआ था। वहीं इन्होंने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की थी। महाकवि की गणना आधुनिक नवजागरण-काल अर्थात् 1950 ई० के बाद लंका के प्रसिद्ध तमिल कवियों में होती है। 'वळ्ळि' इनकी कविताओं का संग्रह है। 'कोलम्', 'कोडै' आदि इनके काव्य-रूपक हैं। 'कण्मणियाळ् कादै' एक कथा-काव्य है। यह विल्लुपाट्टु नामक लोकगीतों की एक शैली में रचित है। इनके अन्य कथाकाव्य हैं—'कल्लळहि', 'शडंगु' और 'ओरु साधारण मनिदनिन चरित्तिरम्' इनमें उत्तरी लंका में रहने वाले तमिल-भाषियों के जीवन का यथार्थ चित्रण है। 'कुरुंबा' (दे०) इनके हास्य-व्यंग्य-प्रधान पदों का संग्रह है। इन पदों में हास्य-व्यंग्य-प्रधान शैली में सामाजिक कुरीतियों की निंदा की गई। 'कुरुंबा' पाश्चात्य तुक्तक (लिमरिक) की शैली में रचित है। यद्यपि महाकवि ने अनेक कथा-काव्यों, रूपक-काव्यों और प्रगीत-काव्यों की रचना की है तथापि ये अपनी काव्य-कृति 'कुरुंबा' के लिए प्रसिद्ध हैं जो कि आधुनिक तमिल-काव्यों में एक मोड़ लाती है।

महाकाव्य (सं० पारि०)

अपने विशद आकार तथा उदात्त स्वरूप के कारण महाकाव्य विश्व-साहित्य में सदा से ही समादृत रहा है। अन्य काव्यरूपों की अपेक्षा इस विधा में जीवन की समग्रता का सुसंबद्ध चित्र अंकित करने की शक्ति तथा व्यापक जीवन-दर्शन को अभिव्यक्त करने की क्षमता अधिक होती है। संस्कृत-काव्यशास्त्र में भामह (दे०), रुद्रट (दे०), विश्वनाथ (दे०), हेमचंद (दे०), कुंतक (दे०), आदि आचार्यों तथा पश्चिम में अरस्तू से लेकर एम० डिक्सन, एबर क्रांबी, टिलियर्ड, सी० एम० बावरा और डब्ल्यू पी० कर आदि प्राचीन-अर्वाचीन आलोचकों ने महाकाव्य का स्वरूप-विवेचन किया है।

महाकाव्य की कथा के संबंध में भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यों ने लगभग एक स्वर से उसके प्रख्यात होने पर बल दिया है। भारतीय आचार्यों ने जहाँ एक ओर इसके महत् कथा-सूत्रों के संकलन का आधार इतिहास और पुराणों को माना है, वहाँ पाश्चात्य आलोचक इसके लिए राष्ट्रीय लोक-कथाओं (लीजेंड्स) को भी आवश्यक मानते रहे हैं। कथानक के संयोजन और उसके वस्तु-शिल्प पर भी भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों में विशेष मतभेद नहीं हैं। आचार्य कुंतक ने प्रबंध-काव्य के सौंदर्य को कथा के सामान्य इतिवृत्त-वर्णन के स्थान पर विधिवत् घटनाओं के कुशल संयोजन में निहित माना है। कुंतक द्वारा प्रतिपादित 'विविध घटनाओं के कुशल संयोजन' के लिए 'कार्य की एकान्विति' को तथा पाश्चात्य साहित्य-समीक्षक ई० एम० डब्ल्यू० टिलियर्ड ने व्यापकता और विविधता के मध्य एकान्वय की सिद्धि को महाकाव्यकार की महानतम उपलब्धि माना है। भारतीय काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य की शैली के आंतरिक गुणों की सूक्ष्मताओं को प्रायः उपेक्षित करते हुए महाकाव्य की सर्गबद्धता, उसके नामकरण आशीर्वचन (मंगलाचरण), वस्तु-निर्देश, सर्गांत में भावी कथा की सूचना और छंद-परिवर्तन आदि बहिरंग एवं स्थूल तत्त्वों का निर्देश मात्र कर दिया है। परंतु पाश्चात्य काव्यशास्त्र में प्रारंभ से ही महाकाव्य की शैली के अंतरंग विवेचन की प्रवृत्ति रही है। अरस्तू ने महाकाव्य की शैलीगत गरिमा और भव्यता के आधार-तत्त्वों के रूप में 'अप्रचलित एवं असामान्य भाषा प्रयोग', 'अलंकार-समृद्धि' तथा छंद-लय के अप्रतिहत वेग का सूक्ष्म विवेचन किया है।

वस्तुतः महाकाव्य का प्राणतत्त्व है औदात्य—और यह गुण उसके समग्र रूप में—उसकी वस्तु-संयोजना, भाषा-शैली, छंद-प्रवाह आदि में प्रतिफलित रहता है।

महात्मा गांधी (गु० ले०)

दे० मोहनदास करमचंद गांधी।

महादेव देसाई (गु० ले०) [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1942 ई०]

पूज्य बापू के आजीवन अनुगत एवं निजी सचिव स्व० महादेव देसाई का जन्म 1892 ई० में हुआ था। 1942 ई० में 50 वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु हुई। गुजराती में उत्तम अनुवाद करने का महत्वपूर्ण कार्य इन्होंने किया।

रचनाएँ मौलिक—(1) महादेव भाई नी डायरी (भाग 1 से 5), (2) बारडोली सत्याग्रह नो इतिहास, (3) सत फ्रासिस, (4) वीर वल्लभभाई (जीवनी), बेखुदाई खिदमतगारो ।

अनूदित—(1) सत्य ना प्रयोगो (दे०), गाधी जी की आत्मकथा), (2) प० जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा, (3) सत्याग्रह नी मर्यादा, (4) प्राचीन साहित्य, (5) चित्रागदा, (6) विदाय, (7) अभिशाप, (8) विराज बहू ।

गुजराती साहित्य मे दैनदिनी (डायरी)-साहित्य का एक मानक स्थापित करने मे महादेव भाई का महत्वपूर्ण योगदान है । निर्दोष, शुद्ध, किंतु सरल अनुवादो का कार्य भी इन्होने किया है ।

गुजराती साहित्य मे डायरी व अनुवाद के क्षेत्र मे इनका नाम अविस्मरणीय है ।

महादेव भाई नी डायरी *(गु० कृ०)*

स्व० महादेव देसाई (दे०) गाधी जी (दे० मोहनदास करमचद गाधी) के निकटतम अतेवासी थे। 1917 ई० से लेकर मृत्यु पर्यंत (1942 ई० तक) 25 वर्ष तक वे गाधी जी के साथ रहे । इन 25 वर्षो मे उन्होने अपनी कई डायरियाँ लिखी । इन डायरियो का महत्व वही है जो अँग्रेज़ी मे बोज़वेल द्वारा लिखित जॉनसन की जीवनी का है । गाधी जी की जीवनी व उनके कार्यों के सबध मे इन डायरियो मे प्रभूत सामग्री भरी पडी है । वे उत्तम साहित्यिक रचनाएँ हैं । इनमे से एक अति महत्वपूर्ण डायरी का सपादन स्व० नरहरि परीख ने किया है । 10 3-32 ई० से 4 9-32 ई० तक गाधी जी के साथ यरवडा जेल मे बिताए गए दिनो की यह डायरी विशेष महत्वपूर्ण है । मानव-जाति के प्रेरक प्रसग, मनुष्य-चरित्र गठन की उपयोगी सामग्री, गाधी जी का जीवन-दर्शन, सरदार वल्लभभाई का विनोदपूर्ण किंतु प्रखर व्यक्तित्व, महादेव भाई की प्रकृति, उनकी कर्तव्यनिष्ठा, उनका भक्त हृदय, उनका विस्तृत अध्ययन, विविध विषयो मे उनकी रुचि, उनका साहित्यिक व्यक्तित्व इस डायरी मे प्रतिबिंबित होता है ।

निर्मल-चरित्र वाले सत्योपासक गाधी जी के व्यक्तित्व के अनेक पहलू यहाँ साफ उभर कर आए हैं । गाधी जी का पत्र-व्यवहार, उनके सपर्क मे आने वाले व्यक्तियो का उल्लख, उनके चिंतन, मनन व अध्ययन का सारभूत तत्त्व, गाधी जी को परेशान करने वाली समस्याएँ, जेल-जीवन की यातनाएँ एव मधुर स्मृतियाँ सब कुछ साहित्यिक रूप धारण कर यहाँ अभिव्यक्त हुआ है ।

सरदार पटेल के ऊपर से वज्रसम कठोर और भीतर के कुसुम-सदृश कोमल व्यक्तित्व, जेल मे अनेक दु खो के बीच भी विनोदशील प्रकृति का परिचय यहाँ मिलता है । 396 पृष्ठो मे न जाने कितने व्यक्तियो, कितने प्रसगो कितने भावो विचारो का समावेश हुआ है । साहित्यिक गुणो का इन डायरियो मे पूरा पूरा निर्वाह भी हुआ है ।

गुजराती मे जो कुछ डायरी-साहित्य है, महादेव भाई की डायरी का उसमे प्रथम व प्रमुख स्थान है । इसका प्रथम भाग 1948 ई० मे प्रकाशित हुआ ।

महादेवय्या, शिवगणप्रसादि *(क० ले०)*

कन्नड के सपादित ग्रथो मे 'शून्यसपादने' (दे०) का विशिष्ट स्थान है जो वीरशैव धर्म का एक प्रमुख ग्रथ है । शिवगणप्रसादि महादेवय्या 'शून्यसपादने' के प्रथम सस्करण के सपादक हैं । उनका समय तथा जीवनवृत्त ठोस प्रमाणो से ज्ञात नही हो सका है। 'राघवाकचरित्र' (दे०) के कवि चिक्कनजेश (समय—1650 के आसपास) ने 'शुद्धप्रसादि महादेवय्या' नामक एक व्यक्ति का बडे आदर के साथ उल्लेख किया है । अनुमान है कि यह शिवगणप्रसादि महादेवय्या ही होगे । 'शून्यसपादने' के अन्य सपादको ने इनका नाम लिया है । सभव है कि इनका पाठ ही 'शून्यसपादने' का मूलपाठ हो। एक हस्तलिखित ग्रथ के अत म ये पक्तियाँ दिखाई पडती हैं—"यह परमगुरु परम वीरशैव सिद्धात का तत्त्वज्ञान है। यह वीरशैवाचार प्रतिष्ठापनाचार्य है । यह दिव्य वेदात-शिरोमणि है । यह समस्तशास्त्रमुख्य मुखदर्पण है ।··· शिवगणप्रसादि महादेवय्या ने · समर्पित किया ।"

महादेवियक्का *(क० ले०)* [समय—बारहवी शती का उत्तरार्ध]

महादेवियक्का अथवा अक्कमहादेवी महात्मा बसवेश्वर (दे०) की समकालीन थी । इन्हें कन्नड-साहित्य की प्रथम कवयित्री होने का गौरव प्राप्त है । महादेवी के जीवनचरित की प्रामाणिक बातें बहुत कम ज्ञात हैं । इनका उपस्थिति-काल 1160 ई० (द०) के आसपास

माना जाता है। इनका जन्म उडुतडी गाँव के एक दरिद्र परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से इनके हृदय में भगवान् चेन्नमल्लिकार्जुन के प्रति अनुरक्ति थी। इनके सौंदर्य को देखकर कौशिक नाम का राजा इन पर मुग्ध था। वह इनसे विवाह करने को उत्सुक था। एक मत के अनुसार इन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। दूसरे मत के अनुसार इन्होंने तीन शर्तें रखकर कौशिक से विवाह किया था। वासनाग्रस्त कौशिक ने इनको अपनी ओर आकर्षित करने का असफल प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि उसे चेन्नमल्लिकार्जुन को ही पति माननेवाली, विरक्ता भक्तिन महादेवी को खोना पड़ा। महादेवी गृह-त्याग कर कल्याण गईं और अल्लमप्रभु (दे०) और बसवेश्वर (दे०) जैसे ज्ञानी भक्तों से मिलीं। शिवानुभवमंडप में अपने अनुभवों की छवि दिखाकर अंत में इन्होंने श्रीशैल में शिवैक्य प्राप्त किया। इनके वचनों में इनके आत्मचरित और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति हुई है। शिव को पति और अपने को पत्नी मानकर इन्होंने जो तन्मयतापूर्ण आध्यात्मिक साधना की वही इनके गीतों में प्रस्फुटित हुई।

प्रेम की पराकाष्ठा, उन्माद, विरह, मिलन—इन सबके उत्कृष्ट रूप महादेवी के वचनों में व्यक्त हुए हैं। इनकी वाणी में भावों की तीव्रता, अद्भुत माधुर्य और काव्य का सहज स्वाभाविक सौकुमार्य देखने को मिलता है।

महादेवी, रानी *(क० ले०)* [समय—बारहवीं शती का उत्तरार्ध]

बारहवीं शती शिवभक्त कवियों के आविर्भाव का काल है जबकि अनेक कवि तथा कवयित्रियों का जन्म हुआ। प्रसिद्ध कवयित्री अक्कमहादेवी (दे० महादेवियक्का) (समय—1160 ई०) के बाद उन्हीं की समकालीन कवयित्री रानी महादेवी (समय—1160 ई०) का नाम वचनकर्त्री वीरशैव भक्तिनों में विशेष आदर के साथ लिया जाता है। ये मोळिगे मारय्या की पत्नी थीं। पति के समान इन्होंने भी वचनों की रचना की है। इनके 'वचन' इनके पति के वचनों के प्रत्युत्तर के रूप में हैं। 'कर्णाटक-कवि-चरिते' (दे०) के लेखक स्व० आरनरसिंहाचार (दे०) ने इनके वचनों की संख्या इकतालीस बताई है। इन वचनों में 'इम्मडि निःकळंक मल्लिकार्जुन' की छाप है। इनके वचनों की भाषा सरल और भावों की अभिव्यंजना सुंदर है। इनके एक प्रसिद्ध वचन का हिंदी रूपांतर नीचे दिया जाता है—

"संसार सागर से उत्पन्न सुख ही दुःख है, यह न जानकर उस सुख को पसंद कर भवदुःखरूपी क्रूर जन्म-चक्र में फंसे रहकर, वहाँ अपने को मूल अपने से असंबद्ध भ्रम को अपना समझकर, वैसे घोर (रूप) में विकल और विमग्न रहने वाले अज्ञानी जीव तुमको कैसे जानते हैं, हे मेरे पिता! प्रिय इम्मडि निःकलंक मल्लिकार्जुन।"

महानाच *(पं० कृ०)*

'महानाच' बावा बलवंत का कविता-संग्रह है। इस संग्रह की कविताओं को पढ़ने से लगता है कि इन्हें लिखते हुए कवि के सामने महाशक्ति की एक विराट कल्पना रही होगी। यह कल्पना इस संग्रह की अनेक कविताओं में चरितार्थ हुई है। 'बागी' और 'शिवनाच' ऐसी ही कविताएँ हैं जो कर्मक्षेत्र में संघर्षशील होने की प्रेरणा देती हैं।

इस संग्रह में कवि के तीन रूप सामने आते हैं। क्रांतिकारी का, देशभक्त का, और मानवतावादी का। पर केंद्रीय भाव सामाजिक परिवर्तन के आह्वान और क्रांति का है। कवि ने शिव-शंकर के पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से इस क्रांति भावना को बड़े सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया है। इस संग्रह की कुछेक कविताओं में शृंगार के संयोग और वियोग पक्षों का भी सुंदर निरूपण किया गया है। नारी के प्रति उनके मन में श्रद्धा भाव था। उन्होंने नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व को मान्यता दी है। इस संग्रह की कुछेक कविताएँ छायावादी हैं जैसे 'परछावें', 'सुनहरी शाम', 'शाम दी लाली' आदि कविताएँ। कतिपय कविताएँ रहस्यवादी रंगत की भी हैं।

यह अपने समय का एक विशिष्ट और प्रतिनिधि संग्रह है।

महापरिनिब्बान सुत्त *(पा० कृ०)*

यह 'सुत्तपिटक' (दे०) के अंतर्गत 'दीघनिकाय' का सोलहवाँ सुत्त है। इसमें भगवान् बुद्ध के अंतिम जीवन, अंतिम उपदेश, कुशीनरा में उनके महापरिनिर्वाण और उनके अंतिम संस्कार का वर्णन है। विद्वानों के मत मे पाली भाषा में भगवान् के जीवन-चरित्र लिखने का यह पहला प्रयास है। इस सुत में बहुत-कुछ परवर्ती भी है;

किंतु इसका मूल रूप प्राचीन है। इसमे भिक्षुओं की शोक-दशा का भी अच्छा भावनात्मक चित्रण किया गया है।

महापात्र, केदारनाथ *(उ० ले०)*

श्री केदारनाथ महापात्र का जन्म भुवनेश्वर मे हुआ था। ऐतिहासिक गवेषणा मे इनकी प्रारभ से रुचि रही है। पुरातात्विक खोजो मे इनकी उपलब्धि भी कम नही, फलत इनका रचनात्मक साहित्य भी तदनुकूल है। खारवेल, तोपली पर इनके ऐतिहासिक ग्रथ उडिया मे हैं। इनकी पुस्तक 'खोरधा इतिहास (दे०) इतिहास और साहित्य दोनो ही दृष्टियो से *अक्षय* कीर्ति की अधिकारिणी है। भोइवश पर इनकी पुस्तक महत्वपूर्ण है। उडीसा के प्राचीन स्मृतिकार, नाट्यकार, सगीतज्ञ, अलकार प्रणेताओ आदि पर अँग्रेजी मे इनके दो ग्रथ है। 'सस्कृत साहित्य-केटलाग' इनका अविनश्वर स्मृति चिह्न है। आजकल ये उडीसा के स्टेट म्यूजियम मे कार्य कर रहे हैं। 'कलिंग ऐतिहासिक गवेषणा समिति' की पत्रिका के ये सपादक भी रहे है।

महापात्र, गोदाबरीश *(उ० ले०)* [जन्म—1901, मृत्यु—1965 ई०]

गोदाबरीश जी का जन्म बाणपुर पुरी मे हुआ था। सत्यवादी गोष्ठी स्कूल (दे० सत्यवादी साहित्य) के सदस्य श्री *गोदाबरीश महापात्र समसामयिक युग* मे सर्वाधिक अधीन लेखक थे। इन्होने अपने को बाहरी कोलाहल से दूर रखा, किंतु आश्चर्य की बात है कि इस नीरव-साहित्य-साधक की सशक्त लेखनी ने उडीसा के सामाजिक और राजनीतिक जीवन मे तीस-चालीस वर्ष तक एक हलचल पैदा कर दी थी। 'निआँखुटा' पत्रिका के सपादन के रूप मे इन्होने अक्षय कीर्ति अर्जित की है। इनके पास कोई डिग्री नही थी किंतु हास्य व्यग्य की अद्भुत शक्ति थी।

गोदाबरीश कुशल सपादक ही नही उच्च कोटि के कहानीकार, उपन्यासकार और कवि भी थे। विदेशी कथावस्तु के आधार पर कथावस्तु का निर्माण कर उत्कलीय परिवेश मे *रूपायित करने* वालो मे गोदाबरीश महापात्र प्रमुख हैं। इन्होने मेरी कॅरेली के 'वेंडेटा' 'उपन्यास के आधार पर 'रक्तपात' की रचना की है। इनका उपन्यास 'राजद्रोही' मुगल-शासन-कालीन उडीसा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर आधारित है। उपन्यास की अपेक्षा लेखक को कहानी मे अधिक सफलता मिलती है। इनकी कुछ कहानियो को उडिया भाषा की सर्वश्रेष्ठ कहानियो मे स्थान दिया जा सकता है। 'पल्ली छाया', 'एबे मध्य बचिछि' (दे०) '*मुँ दिने मत्री थिली*' *आदि कहानी-सग्रह हैं।* इनकी कुछ व्यग्यात्मक कविताएँ—'कटा ओ फुल' तथा 'जे फुल फुटिथिला' काव्य-पुस्तको मे सकलित हैं। 'हे मोर कलम' 'हाँडिशाळर विप्लव इनकी अन्य उल्लेखनीय काव्यकृतियाँ हैं।

महापात्र, चक्रधर *(उ० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

इनका निवास-स्थान नरसिंहपुर (कटक) है। चक्रधर महापात्र तथा उनकी पत्नी तीस चालीस वर्षो तक नाशोन्मुख जातीय सपदा के उद्धार की भावना से लोक-कथा और लोकगीतो का सग्रह करते रहे हैं। इस मूल्यवान निधि की ओर सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित करने का श्रेय इन्ही को है और महापात्र की पाडित्यपूर्ण भूमिका के साथ यह ग्रथ प्रकाशित हो चुका है। लोक-जीवन, लोक-साहित्य, लोक-सस्कृति, लोक-सगीत और लोक-नृत्य के सबध मे महापात्र का ज्ञान अत्यत सूक्ष्म और सर्वांगीण है। इनके द्वारा सपादित यदुमणि-ग्रथावली इनकी साहित्यिक विद्वत्ता का प्रमाण है। भाषा परिमार्जित और शास्त्रनिष्ठ है।

'कलिंग कहानी', 'उत्कल गाँउली कहानी', 'उत्कल गाँउली गीत', 'गोबर गोटेइ', 'अपूर्ण प्रेम', 'रणमाधुरी' (उ१०), 'बलागी', 'रोइग वक्सि' (दे०) (एति० उप०), 'मिशन बालक' (कहानी), आदि इनकी रचनाएँ हैं।

महापात्र, नित्यानद *(उ० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

जन्म-स्थान—भद्रख।

नित्यानद महापात्र उपन्यासकार, सपादक एव राजनीतिज्ञ हैं। इन्होने अपने पिता श्री लक्ष्मीकात महापात्र (दे०) द्वारा प्रतिष्ठित 'डगर' मासिक पत्रिका का सपादन कई वर्षों तक किया है। *सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक* विश्लेषण, गूढ दार्शनिकता, आवेगप्रवणता, विस्तृत ज्ञान, सशक्त अभिव्यजना इनकी रचनाओ की विशेषताएँ हैं। फकीर मोहन सेनापति (दे०) के बाद उपन्यास के क्षेत्र मे ग्रामीण भाषा को साहित्यिक सौष्ठव प्रदान करने मे नित्यानद जी को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। इस दृष्टि

से इनके समस्त उपन्यासों का उड़िया-आधुनिक-साहित्य में अपना महत्व है।

अब तक इनकी 20 रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। 'मूल', 'हिड़माटी' (दे०) 'मंगाहाड़', 'जिअंता मणिष', 'एगारटी' (कहानी); 'मरमा', 'काळ्रड़ी' (काव्य) आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

महापात्र, नीळमणि साहू *(उ० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

श्री महापात्र नीळमणि साहू का जन्म निआळि (कटक) में हुआ था। इनके अनेक उपन्यास, कहानी-संग्रह, काव्य एवं निबंध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हास्य एवं व्यंग्य के द्वारा जीवन की विसंगतियाँ इनकी रचनाओं में प्रकाशित हुई है। पहले 'गंजेइ ओ गवेषणा' (दे०) जैसी हास्यरसात्मक कहानी लिखते हुए भी इन्होंने परवर्ती काल में अनेक गंभीर कहानियों एवं उपन्यासों की रचना की है।

'प्रेम ओ त्रिभुज', 'तामसी राधा', 'बिष्णु माया' (उपन्यास); 'मिछ बाघ', सुमित्रार हस' (कहानी); 'थाकुबि कविता कहि' (काव्य) आदि इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं।

महापात्र, यतींद्रकुमार *(उ० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

श्री यतींद्रकुमार महापात्र का जन्म भद्रख में हुआ। ये उपन्यासकार हैं। 'असंलग्न' (दे०) इनका अन्यतम उपन्यास है तथा आधुनिक उपन्यास-साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है। चेतना-प्रवाह मूलक इस उपन्यास में *नायक स्वयं अपना ही आविष्कार करता जाता है।* प्रत्येक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण कृति है। 'ज्वालामुखी', 'शत्रु-शिबिर', 'अभिशप्त उपत्यका' इनके अन्य उपन्यास हैं।

महापात्र, यदुमणि *(उ० ले०)* [जन्म—1781 ई०; मृत्यु—1866 ई०]

यदुमणि का जन्म गंजाम आठगढ़ में हुआ था; किंतु छोटी आयु में ही ये वहाँ से आकर नयागढ़ में बस गए थे। प्राचीन कवियों में अपने असाधारण पौरुषमय व्यक्तित्व के लिए ब्रजनाथ बड़जेना (दे०) एवं यदुमणि महापात्र वंदनीय हैं।

आशु कवि, प्रथम गद्यकार, राजविदूषक यदुमणि महापात्र अपनी निर्भीकता, सत्यवादिता, प्रत्युत्पन्नमति, शिष्ट चातुर्यपूर्ण सफल हास्य, विनम्र चुभते व्यंग्य, अगाध पांडित्य व उच्च कोटि की काव्य प्रतिभा के लिए सुविख्यात हैं। इनकी व्यंग्य-विनोदपूर्ण रचनाएँ 'यदुमणि रहस्य' में संगृहीत हैं। 'प्रबंधपूर्णचंद्र' (दे०) तथा 'राघव-विलास' दोनों क्लिष्ट शैली की आलंकारिक रचनाएँ हैं। इसे भंजीय प्रभाव माना जा सकता है। उस समय क्लिष्ट व आलंकारिक शैली उच्चकोटि के काव्य की अनिवार्य विशेषता थी। 'राघव-विलास' में धनंजय भंज (दे०) व उपेंद्र भंज की (दे०) की शैली के अनुरूप रामचंद्र जी का वर्णन हुआ है, किंतु फिर भी कवि की मौलिकता असंदिग्ध है। आदिरस की सजीव उज्ज्वलता दर्शनीय है। 'प्रबंध-पूर्णचंद्र' भी भाव-संपदा व रचना-कौशल दोनों ही दृष्टि से उच्च कोटि की रचना है। दोनों में तत्सम-पदावली की बहुलता है। 'चतुर-विनोद' इनकी गद्य-रचना है।

महापात्र, रबिनारायण *(उ० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

श्री रबिनारायण महापात्र का जन्म ढेंकानाल में हुआ था। ये उदीयमान बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न लेखक हैं। इनकी रचनाओं में सर्वत्र एक वैज्ञानिक दृष्टिभंगी मिलती है—प्रतिपाद्य एवं अभिव्यंजना दोनों ही दृष्टियों से। आज का युग, युगीन जीवन-बोध की जटिलताएँ, बिखराव और विसंगतियों के बीच नवीन दिशा की खोज, आदि का विवेचन होने के कारण इनकी रचनाओं में बौद्धिकता का तत्त्व प्रमुख है। इनकी रचनाएँ हैं—'उन्मुक्ता', 'अज्ञातबास', 'एकांकी' (उप०) (दे०); 'बिश शताब्दी', *'पहिली अषाढ़', 'बसंतर मोह', (कहा०) (दे०);* 'सबुज बनानी', 'असुरभि' (काव्य)।

महापात्र, लक्ष्मीकांत *(उ० ले०)* [जन्म—1888 ई०; मृत्यु—1953 ई०]

कांत कवि लक्ष्मीकांत का जीवन नियति के साथ मनुष्य की अविजित आत्मशक्ति के संग्राम की करुण गाथा है। कुष्ठ रोग से तिल-तिल कर गलते अंगों की असह्य वेदना मन में छिपाए दूसरों को हँसाने का प्रयत्न केवल लक्ष्मीकांत-जैसे महत्-प्राण ही कर सकते हैं। रोग के सामने न कभी इनका कवि संकुचित हुआ और न ये कभी साहित्य-साधना से विरत हुए। इसके विपरीत इन की सर्वोत्तम रचनाएँ उस समय लिखी गईं, जब इनकी

यातना अपनी चरम सीमा पर थी।

बालेश्वर के एक प्रतिष्ठित परिवार मे इनका जन्म हुआ था। दुर्भाग्य से युवक लक्ष्मीकात के भव्य-सौदर्य को कुष्ठ रोग ने आक्रात कर लिया। ये जीवन-भर के लिए पंगु ही नही बन गए वरन् इनकी सुदर अगुलियाँ भी लेखनी का भार वहन करने मे असमर्थ हो गई। ऐसी स्थिति मे किसी भी प्रकार की वृहत् साहित्यिक योजना संभव नही थी।

लक्ष्मीकात अपने हास्यनिष्ठ गूढ व्यग्य व गीतो के लिए उडीसा मे प्रसिद्ध है। इनकी रचनाओ मे सर्वत्र व्यथित प्राणो का स्पर्श मिलता है। लक्ष्मीकात बहुमुखी प्रतिभा-सपन्न कलाकार हैं। काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, नाटिका, सभी मे इनकी दक्षता दिखाई पडती है। निबंध के क्षेत्र मे भी इनका योगदान कम महत्वपूर्ण नही है। 'डगर' मासिक पत्रिका के ये सस्थापक रहे है जो आज तक निरंतर साहित्य-सेवा करती आ रही है। लक्ष्मीकात मे हम शास्त्रीय व आधुनिक विभिन्न साहित्यिक धाराओ का समन्वय पाते हैं। 'कणामामु' (दे०) इनका प्रसिद्ध उपन्यास है।

महापात्र, श्रीधर *(उ० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

इनका जन्म कुमारगाशासन, बाणपुर पुरी मे हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गगाधर विद्याभूषण हैं। इन्होने दतकथाओ के आधार पर जिस साहित्य-सौध का निर्माण किया है, वह अत्यत मनोहारी है। दतकथाओ की रहस्यमयता तथा सुखपाठ्य शैली ने इनकी बाल-कथाओ को शिशु-जगत् का कठहार बना दिया है। 'रक्त-गोलापर रक्तस्रोत' (दे०) इनका सफल ऐतिहासिक उपन्यास है। वार्द्धक्य के कारण आजकल इन्होंने लिखना बद कर दिया है।

महापात्र, सीताकांत *(उ० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

श्री सीताकात महापात्र आधुनिक उडिया-साहित्य के एक प्रमुख कवि हैं। ये उडिया एव अंग्रेजी दोनो मे लिखते हैं। इनकी कविताओ का अनुवाद फ्रेंच, जर्मन तथा कई भारतीय भाषाओ मे हुआ है।

'इटरनेशनल हू इज हू इन पोइट्री एथॉलॉजी' मे इन्हें भी स्थान मिला है। ये उत्कल विश्वविद्यालय मे दो वर्षों तक प्राध्यापक रहे थे; तत्पश्चात् इन्होने आई० ए० एस० की परीक्षा दी थी और उसमे प्रथम स्थान प्राप्त किया था। 'भुवनेश्वर रिव्यू' अंग्रेजी पत्रिका मे ये सपादक थे। आधुनिक जीवन की आशा, आकाक्षा, पीडा-सत्रास आदि का चित्रण इनकी रचनाओ मे हुआ है। भाषा मे प्राजलता तथा शैली मे सहज अबाध गति मिलती है। अष्टपदी' (दे०) 'दीप्ति ओ द्युति' 'शब्दर आकाश' आदि इनकी काव्य-कृतियाँ हैं।

महापुराण *(स० पारि०)*

दिगबर जैन धार्मिक साहित्य प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग—इन चार अनुयोगो मे विभक्त है। प्रथमानुयोग मे तीर्थंकरो या प्रसिद्ध महापुरुषो का जीवन एव तत्सबधी कथा-साहित्य, द्वितीय मे विश्व का भूगोल-खगोल, काल-विभाग, तृतीय मे गृहस्थो और भिक्षुओ के लिए आचार एव विनय और चतुर्थ मे जैन दर्शनादि का विवेचन पाया जाता है। इस प्रकार 'महापुराण' प्रथम अनुयोग की एक शाखा है।

हिंदुओ के पुराणो या महापुराणो का वर्ण्य-विषय जैन पुराणो और महापुराणो से भिन्न है। सस्कृत साहित्य मे ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु आदि प्रसिद्ध 18 पुराणो को ही कभी-कभी महापुराण कह दिया जाता है। किंतु जैन-साहित्य मे 'पुराण' (दे०) प्राचीन कथा का सूचक है। 'महापुराण' का अभिप्राय प्राचीन काल की महती कथा से है। 'पुराण' मे एक ही धर्मात्मा पुरुष या महापुरुष का जीवन अकित होता है, जबकि 'महापुराण' मे अनेक महापुरुषो का 'महापुराण' मे 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव और 9 बलदेव—इन 63 महापुरुषो—शलाका पुरुषो के चरित्र का वर्णन होता है। इस प्रकार 63 महापुरुषो के वर्णन के कारण ऐसे ग्रथो को त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित या तिसट्ठि का महापुरिस गुणालंकार भी कहा गया है। प्रत्येक कल्प के 63 महापुरुषो मे से 9 बलदेव, 9 वासुदेव और 9 प्रतिवासुदेव माने जाते हैं। ये तीनो सदा समकालीन होते हैं। जैन धर्म के अनुसार बलदेव और वासुदेव किसी राजा की भिन्न-भिन्न रानियो के पुत्र होते हैं। वासुदेव अपने बडे भाई बलदेव के साथ प्रतिवासुदेव से युद्ध करते हैं और अत मे उसे मार देते हैं। फलस्वरूप जीवन के बाद वासुदेव नरक मे जाते हैं। बलदेव अपने भाई के मरणोपरात दु:खाकुल हो जैन धर्म मे दीक्षित हो जाते हैं और अत मे मोक्ष प्राप्त करते हैं।

'महापुराण' इतिवृत्तात्मक घटनाओ का सग्रह

मात्र नहीं होते अपितु नाना काव्यात्मक वर्णनों के कारण और महाकाव्य के लक्षणों से समन्वित होने के कारण महाकाव्य माने जाते हैं।

महाप्रस्थान *(गु० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1965 ई०]

'महाप्रस्थान' गुजराती के ख्यातनामा कवि उमाशंकर जोशी (दे०) (जन्म—1911 ई०) की रचना है जिसमें प्राचीन भारतीय साहित्य के प्राणस्रोत को धारण करने वाली उनकी सात कृतियों—(1) 'महाप्रस्थान', (2) 'युधिष्ठिर', (3) 'अर्जुन-उर्वशी', (4) 'कच', (5) 'निमंत्रण', (6) 'मंथरा, तथा (7) 'भरत' का संग्रह हुआ है। इनमें प्रथम दो कृतियों के नायक हैं युधिष्ठिर। अर्जुन-उर्वशी तथा कच की कथा भी सुविदित है। 'निमंत्रण', 'महापरिरस्व निब्बान सुत्तांत्त' (2-96) के वृत्तांत से स्फुरित आम्रपाली के जीवन-प्रसंग पर आधृत है। 'मंथरा' तथा 'भरत' के कथानायक राम हैं।

लेखक ने इन कथाओं के केवल प्राचीन वृत्त को ग्रहण कर अपनी उद्भाविका शक्ति से उन्हें सर्वथा नवीन रूप दे दिया है।

'महाप्रस्थान' में शाश्वत धर्मगोप्ता के रूप में युधिष्ठिर का अभिनव रूप प्रस्तुत हुआ है। भीम भी यहाँ महत्वपूर्ण है। 'युधिष्ठिर' उमाशंकर का सर्वाधिक प्रिय काव्य है। इसमें युधिष्ठिर के चरित्र का विकास होता है—अंत में दुर्योधन के प्रति भी उनका प्रेम उमड़ता है। 'अर्जुन-उर्वशी' अर्जुन द्वारा आचरित सुप्रसिद्ध आर्यता का सुंदर स्तोत्र है तो 'कच' में प्रणय-पात्र द्वारा संजीवनी लाकर प्रणय-पात्र खो देने वाले कच का मार्मिक चित्र है। 'निमंत्रण' में भगवान बुद्ध की विश्वोन्मुखी करुणा का उज्ज्वल उदाहरण प्रस्तुत करती है नगरवधू आम्रपाली। वह लिच्छवी श्रेष्ठि द्वारा दिए गए गणिका पद से मुक्त हो शाश्वत नारीत्व की प्राप्ति-जैसे प्रलोभन का परित्याग कर बुद्ध को इसलिए भिक्षार्थ निमंत्रित करना चाहती है ताकि युग-युगों तक इसका साक्ष्य मिलता रहे कि भगवान् बुद्ध पतितों के भी उद्धारक और प्रेरक थे। 'मंथरा' काव्य का प्रारंभ, मंथरा और कालरात्रि का वार्तालाप और अंत सब विशिष्ट हैं। 'भरत' राम तथा भरत की महानुभावता का गौरवगान है। सीता तथा लक्ष्मण का भी यहाँ निजी वैशिष्ट्य है।

छंदों के वैविध्य तथा सौष्ठव की दृष्टि से भी यह कृति सहृदय का आह्लादन करती है। इसमे उपजाति, अनुष्टुप, पृथ्वी, वनवेली, शिखरिणी आदि छंदों का समृद्ध प्रवाह है। अलंकारों की चारुता तथा पदावली के मार्दव से रोमांचित तथा आनंद रूप रस-स्रोत में अवगाहन करते पाठक को सुंदरम् के ये शब्द अत्यंत सार्थक प्रतीत होते हैं कि—'हमारी सारी संस्कृति की आधार रूप विभूतियों के चित्र यहाँ उमाशंकर के हाथ से रचे गए हैं।'

महाप्रस्थानम् *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1930 ई०]

यह श्री श्री (श्रीरंगम् श्रीनिवास राव्) (दे०) की आधुनिक तेलुगु-काव्य में युगांतर लाने वाली कृति है। तेलुगु-प्रगतिवादी काव्य-धारा का नाटकीय श्रीगणेश करने वाली तथा उस धारा की सर्वोत्कृष्ट कृति यही है। आज तक प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रतिनिधि रचना के रूप में यह कृति सर्वत्र विख्यात है। मार्क्सवाद से प्रेरित कवि ने इसमें किसान, मजदूर, आदि समाज के दलित, पीड़ित और अपमानित मानव-समाज को एक संसार की रचना करने का आवाहन दिया है। आर्थिक एवं सामाजिक बंधनों में जीर्ण एवं जर्जर होने वाले दीन श्रमिकों को उन बंधनों को उच्छिन्न करके, अत्याचारी शक्तियों को ध्वस्त करके अपने नमोन्मेष को पाने का उद्बोधन किया है। इसी नव्य विश्व के सृजन के लिए 'महाप्रस्थान' करने की प्रेरणा देने के लिए इसकी रचना हुई है।

कवि ने इसमें मानव के समस्त इतिहास को परपीडन की तत्परता की कहानी के रूप में निदित किया है। उनके उग्र भाव पटु एवं शक्तिशाली शब्दों में यहाँ व्यक्त हुए हैं। कवि को तेलुगु भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त है और उसको अपने क्रांतिकारी संदेश के वहन में समर्थ बनाकर उसने प्रस्तुत किया है। आग उगलने वाले और विरोधी को ध्वस्त करने वाले पौरुषपूर्ण इनके गीत दीन-दरिद्रों में भी स्वाभिमान, आक्रोश एवं नवीन आशा को जन्म देते हुए आंध्र की जनता द्वारा समादृत हुए हैं।

इसका रचना-विधान भी इनके संदेश के समान ही अतिनूतन है। इनकी सभी कविताएँ मुक्त छंद में लिखी गई हैं। आधुनिक तेलुगु-काव्य-धारा में इनका अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

महाबलि *(मल० पा०)*

असुर चक्रवर्ती महाबलि पर केरली में कई गीत

रचे गये हैं। लोक-गीतो मे भी उनका बडा स्थान है। केरल के देशीयोत्सव 'ओणम्' और महाबलि का अटूट सबध है। ये अपनी प्रजा की सुख समृद्धि देखने 'ओणाम्' के दिन पधारते हैं। लोगो को प्रसन्न तथा सुखी देख कर लौट जाते हैं। इसी कथा के आधार पर इनके गीत गाए जाते हैं। इनके राजत्व काल मे अनीति का नामोनिशान भी नही है। यही है कुछ गीतो का साराश।

महाब्राह्मण (क० कृ०)

'महाब्राह्मण' कन्नड के श्रेष्ठ उपन्यास स्व० देवुडु (दे०) जी की महान कृति है जिसे साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिल चुका है। यह एक पौराणिक उपन्यास है जिसमे वैदिक काल का उज्ज्वल चित्रण है। एक दृष्टि से यह विश्वामित्र के साहसपूर्ण आर्ष जीवन की कहानी है। वेदो, उपनिषदो, रामायण तथा महाभारत आदि मे बिखरे हुए उनके जीवन सूत्रो को सकलित कर देवुडुजी ने उसमे प्राण-प्रतिष्ठा की है। विश्वामित्र तथा वसिष्ठ के वैमनस्य से शुरू हुई कहानी यहा विश्वामित्र के गायत्री मत्र-स्रष्टा बनकर ब्रह्मर्षि बनने तक फैली हुई है। वामदेव का सदर्शन, रुद्र की उपासना, त्रिशकु का स्वर्ग-प्रवेश, मेनका का प्रसग आदि कई कथाएँ इसमे आई हैं। यह बृहत् कथा तीन युगो तक व्याप्त है। इसके पात्र हज़ारो वर्ष तक जीवित रहने वाले देवताओ से सबद्ध हैं। विश्वामित्र का चरित्र अत्यत मनोवैज्ञानिक है। वसिष्ठ की त्रिकालदर्शिता सिद्धि आदि विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि बनने की प्रेरणा देती हैं। विश्वामित्र का अह अदर से पौरुष बनकर बाहर विघ्न के रूप मे प्रकट होता है। उनकी तपस्या उनके अह की ही वृद्धि करती है। लेखक ने विश्वामित्र के अतरग एव बहिरग सुदर विश्लेषण किया है। कन्नड भाषा की ध्वनि-शक्ति एव का अर्थवत्ता इससे बढ़ी है। 'महाब्राह्मण' मे कन्नड की समग्र शक्ति की व्यजना हुई है। वह कन्नड की श्रेष्ठ कृतियो मे एक है।

महाभागवतमु (तें० कृ०) [रचना-काल—पद्रहवी शती ई०]

इसके लेखक का नाम बम्मेर पोतना (दे०) है। सस्कृत के काव्य, पुराण तथा इतिहास आदि के अन्य तेलुगु-अनुवादो की तरह यह भी सस्कृत 'भागवत' का प्रतिशब्दानुवाद न होकर स्वतत्र अनुवाद है। बारह स्कधो के इस सपूर्ण अनुवाद के कर्तृत्व के बारे मे कुछ विवाद है। एक मत के अनुसार पोतना ने सपूर्ण ग्रथ का अनुवाद प्रस्तुत किया, पर कालातर मे उसके कुछ अश नष्ट हो गए और गगन, सिगन तथा नारय नामक तीन लेखको ने उन्हें पूरा किया। दूसरे मत के अनुसार पोतना ने 1 से 4 तथा 7 से 10 स्कधो तक का अनुवाद ही प्रस्तुत किया और उपर्युक्त लखको ने उसे पूरा किया। पर इनमे पहला मत ही अधिकाश आलोचको को मान्य है। पोतना ने अपने 'भागवत' को श्रीरामचद्र जी को अर्पित कर दिया। इसी कृति के लिए स्वय एक राजा से की गई प्रार्थना को इन्होने ठुकरा दिया। 'भारत' रचना के बाद व्यास से नारद ने कहा कि भक्तिशून्य ज्ञान तथा कर्म दोनो व्यर्थ हैं, अत भक्तिपूर्वक श्री महाविष्णु के गुणगान करने मे ही सार्थकता है। इसके अनुवादक पोतना का दृष्टिकोण भी इस तथ्य के अनुकूल ही था। भक्ति के आवेश मे इन्होने अनेक स्थानो पर मूल भावो का विस्तार किया। इसीलिए इनका अनुवाद मूल ग्रथ से परिमाण मे लगभग डेढ गुना बडा है। 'भागवत' मे विष्णु के इक्कीस अवतारो का वर्णन, कुछ भक्तो की रक्षा तथा दुष्टो के दमन से सबद्ध कथाएँ, सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पुराण-सबधी अन्य अश भी विद्यमान हैं।

एक अत्यत प्रतिभा-सपन्न कवि होने के कारण पोतना के 'भागवत' मे शब्दो का चयन, भावो की अभिव्यक्ति, रस परिपाक और चरित्र-चित्रण आदि सबके सब मार्मिक हैं। लेखक की भक्तिमय प्रवृत्ति ने पूरे अनुवाद को एक मधुकोश के समान अत्यत रुचिकर बना दिया है। उसकी रचना मे सस्कृत-शब्दो की सुगध तथा तलुगु शब्दो की मधुरिमा दोनो का सगम पाया जाता है। अत्यानुप्रास का प्रयोग उसकी शैली की एक प्रमुख विशेषता है। पर यह प्रयत्नपूर्वक न होकर परम स्वाभाविक तथा सौंदर्यकारक होकर आया है। 'भागवत' मे कृष्ण की शैशव अवस्था सबधी क्रीडाएँ, प्रह्लाद चरित्र, गजेंद्रमोक्ष, वामन-अवतार, रुक्मिणी कल्याण ध्रुवोपाख्यान तथा अबरीषोपाख्यान आदि कथाएँ मधुर और प्रचलित हैं। हिंदी-भाषी प्रात मे तुलसी (दे०) के 'रामचरितमानस' (दे०) की तरह तेलुगु भाषी जनता मे पोतना का 'भागवत' अत्यत लोकप्रिय रचना है। साहित्य-मर्मज्ञो का कहना है कि यह अनुवाद मूलग्रथ से भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। चाँदनी रूपी इस रचना के कारण ही पोतना को तेलुगु साहित्य-गगन का चद्रमा माना जाता है।

महाभारत *(उ० कृ०)*

सारलादास के 'महाभारत' के बाद कृष्णसिंह (दे०) की यह रचना उड़ीसा में सर्वाधिक समादृत है। संस्कृत 'महाभारत' (दे०) का वह पूर्णांग अनुवाद है। यह 'महाभारत' का आक्षरिक अनुवाद है। भाषा पांडित्यपूर्ण है, फिर भी उड़िया भाषा की निजता की रक्षा हुई है। उड़िया समाज के आचार-व्यवहार को भी इसमें स्थान मिला है। इस प्रकार संस्कृत-'महाभारत' की विशिष्टता के साथ इसके उत्कलीय स्वरूप की भी रक्षा हुई है, यही इसकी सुंदरता है।

महाभारत *(बँ० कृ०)*

अनुवादक : काशीराम दास। बँगला साहित्य में महाभारत का अनुवाद रामायण के अनुवाद के लगभग सौ वर्ष बाद हुआ था। महाभारत वीररस-प्रधान काव्य है। बँगला देश का कवि कूटनीति अथवा युद्धवर्णना की अपेक्षा कृष्ण-माहात्म्य के वर्णन में अधिक मुखर है। समसामयिक सामाजिक रुचि का अनुसरण करते हुए बंगाली कवि ने महाभारत में नाना प्रकार की नयी कहानियों की रचना की है एवं चारित्रिक परिवर्तन किए हैं। बँगला भाषा में कम-से-कम सत्रह कवियों ने महाभारत की रचना की है परंतु सर्वप्रथम अनुवादकार कौन है—इस संबंध में अभी तक अंतिम निर्णय नहीं लिया जा सका है। आदि-युग के अनुवादकों में कवींद्र परमेश्वर, श्रीकर नंदी, विजय पंडित, संजय, रामचंद्र, अनिरुद्ध राम सरस्वती एवं द्विज रघुनाथ का उल्लेख किया जाता है। महाभारत के अनुवादकों में जनप्रियता एवं श्रेष्ठता की दृष्टि से काशीराम-दास की यह कृति निस्संदेह सबसे आगे है।

व्यास-महाभारत के अनुसरण पर काशीराम दास ने अपने काव्य की रचना की थी किंतु उनकी स्वकीय कल्पना के प्रकाश ने उन्हें स्वतंत्र काव्य-रचयिता की प्रतिष्ठा प्रदान की है। काशीराम दास का जन्म कदाचित् सोलहवीं शती के अंतिम भाग में हुआ और इसीलिए उनके काव्य में चैतन्यप्रभाव की धारा प्राण-गंगा के रूप में तरंगित है।

परवर्ती युग में विष्णुपुर के कवि शंकर चक्रवर्ती ने संभवतः गोपाल सिंहदेव के राज्यकाल (1712-1748 ई०) में समग्र भारत का अनुवाद किया था। ढाका के षष्ठीवर सेन ने भी महाभारत के अनुवादक के रूप में आंचलिक ख्याति प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त विभिन्न पर्वों के अनुवादक के रूप में द्विज हरिदास (अश्मेध पर्व), कृष्णानंद (शांतिपर्व), अनंत मिश्र (अश्वमेध पर्व) गोपीनाथ पाठक (सभापर्व), राजेंद्रदास (आदि पर्व) का उल्लेख किया जाता है। महाभारत-अनुवाद के क्षेत्र में यह अप्रधान-कविसमाज काशीराम का थोड़ा-बहुत ऋणी अवश्य है।

महाभारत *(सं० कृ०)* [रचना-काल—400 ई० पू०]

'महाभारत' के रचयिता कृष्णद्वैपायन व्यास (दे० व्यास, बादरायण) हैं। 'महाभारत' में 18 पर्व हैं। आज 'महाभारत' में एक लाख श्लोक मिलते हैं। 'महाभारत' को पंचम वेद भी कहा जाता है। 'महाभारत' एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें भारतीय धर्म के स्वरूप का रोचक वर्णन मिलता है। धर्मग्रंथ के अतिरिक्त 'महाभारत' इतिहास, पुराण एवं महाकाव्य की दृष्टि से भी लब्धप्रतिष्ठ है।

व्यास-रचित मूल 'महाभारत का नाम जय, वैशंपायन द्वारा रचित का नाम 'भारत' तथा सौति द्वारा परिवर्द्धित का नाम 'महाभारत' पड़ा है। 'महाभारत' का प्रधान विषय कौरव-पांडवों के युद्ध का वर्णन है। परंतु इसमें अनेक अंतर्कथाएँ वर्तमान हैं। 'महाभारत' के अंतर्गत 'रामायण' (दे०) पर आधारित रामोपाख्यान भी मिलता है। कौरवों एवं पांडवों के महान् संघर्ष के द्वारा 'महाभारत' में भीषण राजनीति का चित्रण हुआ है। इस समग्र राजनीति के प्रधान नेता श्रीकृष्ण हैं जो धर्मावतार के रूप में पांडव-वीर अर्जुन को धर्म-पथ में प्रेरित करते हुए साहाय्य प्रदान करते हैं। कौरव अधर्म एवं पांडव धर्म के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित किए गए हैं। इस प्रकार पांडवों की विजय के द्वारा 'महाभारत' में धर्म की विजय प्रदर्शित की गई है।

सामान्यतया महाभारत' की संस्कृत सरल एवं रोचक है। इस ग्रंथ में अनेक उज्ज्वल चरित्र वर्तमान हैं। 'महाभारत' के चरित्रचित्रण के द्वारा यथार्थ एवं आदर्श का सुंदर समन्वय प्रस्तुत किया गया है। 'महाभारत' कर्म-प्रधान युग का निदर्शक है। वीर रस तो 'महाभारत' का प्रधान रस ही है। 'महाभारत' का पाठक पद-पद पर विपत् का अनुभव करते हुए भी भयभीत नहीं होता, अपितु तीव्रोत्साह का ही अनुभव करता है। विंटरनित्ज़ ने तो 'महाभारत' को वीर-काव्य के रूप में ही स्वीकार

किया है। यह निश्चित है कि 'महाभारत' पुराणकालिक भारतीय धर्म दर्शन एव सामाजिक तथा राजनीतिक परपराओ का प्रमाणभूत ग्रथ है।

महाभारत *(म० कृ०)*

तजौर के निकट तिरुवेळ दूर ग्राम के निवासी माधव स्वामी ने इस 'महाभारत' की रचना की थी। इसका रचना-काल 1703 ई० से 1709 ई० है। इस ग्रथ मे पर्वों की सख्या 18 नही वरन 21 है और ओवी-छदो की कुल सख्या है—88,274। महाराष्ट्र से सैकडो मील दूर तामिलनाडु मे इतने विशाल 'महाभारत की रचना मराठी भाषा मे हुई—यह आश्चर्य की बात है। भाषा सरल और सुबोध है और ग्रथ की विशालता ने रचना पद्धति मे शिथिलता या अव्यवस्था नही आने दी। मराठी-साहित्य के इतिहास मे इस ग्रथ का महत्वपूर्ण स्थान है।

महाभारतम् किळिप्पाट्टु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवी शती ई०]

यह तुचत्तु एषुत्तच्छन् (दे०) की अमर कृति है। इसमे 'महाभारत' (दे०) का औचित्यपूर्ण सक्षेप किया गया है। भगवद्गीता, 'सनत्सुजातीयम आदि भागो को इस सक्षेप मे सम्मिलित नही किया गया है। पर्वों की सख्या मूल पुस्तक की अपेक्षा तीन अधिक हैं। एषुत्तच्छन् की अन्य मुख्य कृतियो की तरह इसमे भी शुकी के मुख से ही कथा सुनाई गई है।

साहित्य गुणो की दृष्टि से 'महाभारत' को एषुत्तच्छन् की सर्वोत्कृष्ट कृति माना गया है। 'अध्यात्म-रामायणम्' की तरह इसमे भी मुख्य धारा भक्ति ही है। अवसर प्राप्त होने पर, और अवसरो की सृष्टि करके भी कवि श्रीकृष्ण के ऐसे शब्द-चित्र खीचता है कि वे नास्तिक को भी पुलकित करके ही छोडते हैं। कर्ण पर्व की श्रीकृष्ण स्तुति इसका उदाहरण है। शृगार आदि समस्त रसो का निष्पादन सुदर हुआ है। गाधारी-विलाप, दुशासन-वध आदि प्रसगो मे एषुत्तच्छन् की कविता का उदात्त रूप दर्शनीय है। यद्यपि प्रचार और आध्यात्मिकता की दृष्टि से 'रामायणम्' (दे०) का महत्व अधिक है तो भी महान् साहित्यिक रचना के रूप मे 'महाभारतम्' का स्थान सर्वोपरि है। ऐसा माना जाता है कि 'रामायणम्' कवि की पहली रचना है और 'महाभारतम्' की रचना तक उसकी काव्यकलात्मक सिद्धियाँ पूर्ण विकास को प्राप्त कर चुकी थी। महाकवि उळ्ळूर (दे०) के शब्दो मे यह कहना भूतार्थ-कथन मात्र है कि इस एक ही कृति के द्वारा भाषा को जो उद्गति प्राप्त हुई है उसकी इयत्ता और ईदृकता अवाङ्मनगोचर है।

महाभारताचा उपसंहार *(म० कृ०)*

भारताचार्य चिं० वि० वैद्य ने 1919 ई० मे 'महाभारताचा उपसहार' पुस्तक मे 'महाभारत' (दे०) ग्रथ की विस्तृत समीक्षा की थी।

'महाभारत' ललित सस्कृत मे लिखित सरल, ऋजु शैली का ग्रथ है। 'महाभारत' प्राचीन हिंदुस्तान की परिस्थितियो का विश्वसनीय विस्तृत इतिहास देने वाला ग्रथ है। भारतीय मानस इसे धार्मिक ग्रथ मानता है और इसके प्रति भारतीयो के मन मे अपार श्रद्धा है। अनेक प्राच्य तथा पाश्चात्य मनीषियो ने इसे अपने चितन का आधार बनाया है।

चिं० वि० वैद्य ने 'महाभारताचा उपसहार' मे ऐतिहासिक दृष्टि से 'महाभारत' का सागोपाग अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमे ग्रथकार ने 'महाभारत' का रचयिता कौन है इसका आकार इतना विशाल कैसे हुआ, यह कब रचा गया, महाभारत युद्ध ऐतिहासिक घटना है या अनैतिहासिक तथा यह युद्ध किन के बीच हुआ था—इन प्रश्नो पर अपनी दृष्टि केंद्रित की है। महाभारत काल मे वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, शिक्षण-व्यवस्था, सामाजिक परिस्थिति, राजनीतिक दशा, सैन्यपद्धति, व्यवहार तथा उद्योग, वाङमय तथा उस काल मे बहुचर्चित धार्मिक तथा दार्शनिक सस्थाएँ आदि विषयो का गभीर विवेचनात्मक अध्ययन 'महाभारत' के आधार पर इस ग्रथ मे किया गया है। इसके अतिम अध्याय मे उपसहार मे 'भगवद्गीता' (दे०) पर पुनर्विचार किया गया है।

इस प्रकार 'महाभारत' की सर्वांगीण समीक्षा प्रस्तुत करने वाला यह ग्रथ लेखक की तीक्ष्ण बुद्धि तथा विवेचन क्षमता का प्रभावकारी उद्घाटन करता है। इसकी भाषा-शैली सरल तथा सरस है।

महाभाष्य *(स० कृ०)* [रचना काल—200 ई० पू०]

लेखक—पतजलि (दे०)।

कतिपय विद्वान् 'योगसूत्र' (दे०) और 'महा-

भाष्य' के लेखक को एक ही मानते हैं। हमारे से विचार ये दोनों भिन्न विद्वान् हैं। 'महाभाष्य' पाणिनीय (दे० पाणिनि) व्याकरण की महती व्याख्या है। 'महाभाष्य' के अंतर्गत आठ अध्याय, चार पाद तथा पिचासी श्रह्निक हैं। 'महाभाष्य' पर भर्तृहरि (दे०), मैत्रेय रक्षित तथा पुरुषोत्तम देव आदि उत्कृष्ट कोटि के विद्वानों के द्वारा महत्वपूर्ण टीकाएँ लिखी गई थीं।

'महाभाष्य' के अंतर्गत पाणिनीय व्याकरण के सिद्धांतों को जिस सरल शैली में प्रस्तुत किया गया है, वह विलक्षण है। 'महाभाष्य' की वर्णन-शैली इतनी रोचक है कि प्रत्येक अध्येता इसके अनुशीलन से गद्गद हो उठता है। 'महाभाष्य' के अंतर्गत 'अष्टाध्यायी (दे०) के प्रतिपाद्य विषय के संबंध में भी विचारा गया है। महाभाष्यकार के अनुसार शब्दानुशासन को ही 'अष्टाध्यायी' का प्रतिपाद्य विषय बतलाया गया है। शब्द का अर्थ 'महाभाष्य' में ध्वनि बतलाया गया है। 'महाभाष्य' में इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है कि शब्द के उच्चारण से द्रव्य, गुण और आकृति (जाति) का ज्ञान होता है। इस प्रकार शब्द द्रव्य आदि से भिन्न होने पर भी द्रव्य आदि का वाचक है। इसी प्रकार अनेक महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन 'महाभाष्य' के अंतर्गत उपलब्ध है। 'महाभाष्य' के अनुसार व्याकरणशास्त्र को मोक्ष का साधक बतलाया गया है।

महायात्रा (उ० कृ०)

'महाभारत' (दे०) की विषयवस्तु का यत्किंचित् आश्रय लेकर, उसी के माध्यम से विदेशी साहित्य-सृष्टि के आदर्श पर एक स्वतंत्र काव्य-सौध का निर्माण करना, राधानाथ राय (दे०) का प्रधान एवं मौलिक लक्ष्य था। 'महायात्रा' काव्य में पांडवों के शेष जीवन की स्वर्ग-यात्रा का चित्रण है; और साथ ही है कवि के शेष जीवन के सृष्टि-शिखर-आरोहण की एक अभिनव जययात्रा। केवल 'महायात्रा' काव्य ही राधानाथ के समूचे कवि-जीवन और उनकी सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा के स्फुरण का निदर्शन है। 'महाभारत' की कथावस्तु पर विदेशी सृष्टि-परिकल्पना के आरोपण के वैचित्र्य पर ही इसके सृष्टि-यथार्थ की सार्थकता प्रतिष्ठित है। ऐतिहासिक माध्यम से जाति का अधःपतन बतला कर कवि ने इसमें एक गंभीर करुण रस की प्रतिष्ठा की है। यह करुण रस राधानाथ के दूसरे काव्यों में पात्रों में केंद्रित होकर उपस्थित हुआ है। लेकिन इस ग्रंथ में यह संपूर्ण जाति को केंद्रित किए हुए है।

'महायात्रा' के अतिरिक्त राधानाथ ने अपने किसी भी काव्य में देवस्तुति से काव्यारंभ नहीं किया है। इसमें सारला की स्तुति है। इसी वाक्देवी की कृपा से उड़ीसा के व्यास सारलादास (दे०) ने 'महाभारत' की रचना की थी। वाक्-देवी के रूप में वंदिता सारला देवी पर ग्रीक वाक्देवी का आरोप है।

संस्कृत-'महाभारत' के महाप्रस्थान पर्व में पांडवों का महाप्रस्थान एवं स्वर्गारोहण वर्णित है। इस अपूर्ण ग्रंथ में महाप्रस्थान कई परिवर्तनों के साथ अंकित है। यदि यह काव्य पूर्ण होता, तो हमें स्वर्गारोहण की संपूर्ण कथा मिलती। परीक्षित का राज्याभिषेक, पांडवों की तीर्थयात्रा, तत्पश्चात् लौहित्य आगमन, वहाँ अग्निदेव का आविर्भाव, उनके अनुरोध से अर्जुन का गांडीव एवं अक्षय तूणीर का सागरजल में निक्षेप—इतने ही विषय मूल संस्कृत-'महाभारत' से गृहीत हैं। कवि की मौलिक परिकल्पनाएँ हैं—तीर्थाटन के बाद पांडवों का पुरी आगमन एवं पुरी में धनु-निक्षेप और अग्निदेव के साथ मध्यदेश के रास्ते सह्याद्रि के निकट गमन एवं द्वापरयुग का अवसान और कलि का आगमन। संस्कृत-'नैषध' (दे०) काव्य का सप्तदश सर्ग कलि आगमन एवं उसके सहचर-वर्ग के गुण-कीर्तन से मुखरित है। राधानाथ ने कुछ अंगों में इसका अनुसरण किया है। साथ ही वर्जिल के 'एनिड', दांते के 'डिवाइन कामेडी' एवं मिल्टन के 'पैराडाइज लास्ट' के नरक-वर्णन यहाँ प्रधान रूप से अनुकरणीय उपादान के रूप में गृहीत है। इनके अतिरिक्त भविष्य-दर्शन की क्षमता प्रदान करने के लिए अग्निदेवता पांडवों के नेत्रों में दिव्यांजन लगाते हैं। द्वैपायन ऋषि संजय की आँखों में अंजन लगाकर उन्हें महाभारत-युद्ध-अवलोकन की शक्ति देते हैं। युधिष्ठिर इस दिव्यांजन से भारत का भविष्य-दर्शन करते हैं। मनुष्य का भाग्य-विपर्यय दिखाने के लिए मिल्टन के माइकेल ने आडामस के चक्षुओं में जो अंजन लगाया था युधिष्ठिर के नेत्रांजन में भी उसी का अनुसरण है। दोनों अंजन एक हैं किंतु उनकी शक्ति पृथक् है। एक दिखाता है वर्तमान (संजय) और दूसरा दिखाता है भविष्यत् (युधिष्ठिर एवं आडामस)। इस अंजन की सहायता से युधिष्ठिर देखते हैं भारत का भविष्य जो इतिहास के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वर्जिल के 'एनिड' काव्य में एनिड पिता के दर्शन के लिए पहले नरक फिर स्वर्ग की यात्रा करते हैं। साक्षात के समय पिता 'आनचिसेस' पुत्र को रोम साम्राज्य का भावी अधःपतन का चित्र दिखाते

हैं। इस नरक-स्वर्ग-यात्रा-वर्णन मे 'डिवाइन कामेडी' एव भविष्यत् इतिहास-चित्रण मे 'पैराडाइज़ लास्ट' मे अकित मनुष्य के दुर्भाग्य का चित्र स्पष्टत अनुकृत है। पाडवो को हिमालय की ओर न लाकर पुरी एव सह्याद्रि लाने के दो कारण हो सकते हैं—दीर्घपथ-परिभ्रमण से भारत की नैसर्गिक प्रकृति-सुषमा का चित्रण तथा अतीत के साथ वर्तमान का सयोग।

'महायात्रा' के इस आरोपण की विशेषताएँ स्वय 'महाभारत' की कथा मे अतर्निहित हैं। युधिष्ठिर के मिथ्या कथन का 'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुजरो वा' नरक-स्वर्ग आरोपण की अनुमति देता है।

महाकाव्योचित गरिमामयी शैली, अमित्राक्षर छद की स्वर-झकार व्यापक जीवन-दृष्टि, अनुपम शब्द-योजना, अपूर्व चित्रमयता, मनोरम कल्पना आदि गुणो के कारण 'कोणार्क' क समान 'महायात्रा' अपूर्ण होते हुए भी महत्वपूर्ण है।

महायान *(पा० पारि०)*

बौद्धधर्म का यह एक परवर्ती विकसित सप्रदाय है। बौद्ध धर्म का भावनाहीन अनस्तित्ववाद बहुत समय तक सर्वसाधारण का आकर्षण-केंद्र नही हो सकता था क्योकि इसमे किसी उच्चतर स्पृहणीय सत्ता का सर्वथा अभाव था जिसके प्रति जनमानस आकृष्ट हो सकता। इसीलिए अशोक के समय से क्षुधित कल्पना इस प्रकार की उच्चसत्ता की खोज मे लग गई और अत मे आश्रय देने वाले 'महायान' (विशाल गाडी) का आविर्भाव हुआ जिस पर आरूढ होकर सर्वसाधारण भी मोक्ष-मार्ग की ओर अग्रसर हो सका। इस मत का प्रचार काश्मीर, तिब्बत, मध्य एशिया, नेपाल, चीन, जापान, इत्यादि उत्तर के देशो मे हुआ। इसका साहित्य सस्कृत मे है तथा यह विभिन्न सस्कृतियो को आत्मसात किए है।

'महायान' के अनुसार बुद्ध के उपदेशो के अतिरिक्त उनकी पूजा भी निर्वाण की साधक होती है। यह मत 'गीता' के भक्ति-सिद्धात से पर्याप्त प्रभावित है और ईश्वर, जीव इत्यादि के विषय मे निश्चित सिद्धात रखता है। इसमे बुद्ध ब्रह्म रूप माने गए हैं और उनके प्रति श्रद्धा भक्ति के द्वारा मोक्ष-लाभ की निश्चित योजना प्रस्तुत की गई है। इस प्रकार इस सप्रदाय के अनुसार जीव निराश्रित नही है अपितु एक उच्च शक्ति उसे मोक्ष प्रदान कर सकती है। इसमे ससार का निषेध नही है अपितु मानव अपने सामाजिक तथा धार्मिक दायित्वो को पूरा करते हुए कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर होता है।

'अरहत्' (दे० अरहत्) के समकक्ष इस मत मे बोधिसत्व (दे० बोधिसत्त) को रखा गया है जिनका व्रत है कि जब तक विश्व के सभी प्राणी निर्वाण प्राप्त नही कर लेंगे तब तक वे स्वय मोक्ष प्राप्त नही करेंगे, वे विश्व का मार्ग दर्शन करने के लिए बार-बार किसी रूप मे ससार मे आते रहते हैं और अनुयायियो के उद्धार के लिए प्रयास कर अतर्हित हो जाते हैं। उनमे निषेधात्मक ही नही तात्विक गुण भी हैं।

'महायान'-शाखा मे बुद्ध-रूप आध्यात्मिक अधिष्ठान को छोडकर सभी कुछ अयथार्थ है। दृश्यमान जगत् आभास मात्र है जिसकी तुलना मृगतृष्णिका और स्वप्नजगत् से की गई है। इसको जन्म देने वाले तत्व अविद्या और अज्ञान हैं। आदर्शवाद, अभाववाद, शून्यता (दे०), आलयविज्ञान, पारिमिताए (दे० पारमिता) आध्यात्मिक ज्ञान, त्रिकाय (दे०), श्रद्धा-भक्ति, चतुर्विध निर्वाण (दे०), सबका मोक्ष इत्यादि 'महायान' की विशेषताएँ हैं।

महारणर बिनति *(अ० कृ०)*

सुरेशचद्र गोस्वामी का यह उपन्यास विगत महायुद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित है। शिल्प की दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण है।

महाराष्ट्र भाषेचा कोश *(म० कृ०)* [रचना-काल—1829 ई०]

किसी भी भाषा के साहित्य को समृद्ध करने मे कोशग्रथो का विशेष योगदान रहता है। इसी बात को दृष्टि मे रख मराठी भाषा का समृद्ध भाषा बनाने के लिए 'बाबे नेटिह्व एज्युकेशन सोसाइटी' ने बबई सरकार की आज्ञा से एक शास्त्री-मडल की स्थापना की थी। मडल के सदस्यो ने एक दूसरे के सहयोग स 1829 ई० मे मराठी से मराठी मे पहला कोश रचा। श्री बालशास्त्री घगवे, श्री परशुराम पत गोडबोले, श्री सखाराम जोशी तथा श्री दाजीशास्त्री इस कोशग्रथ के लेखक रहे थे। यह कोश दो भागो मे प्रकाशित हुआ था।

मराठी-कोश ग्रथ लिखने का यह पहला अर्वाचीन महत् प्रयत्न था। इसका विस्तारपूर्वक परिचय

'महाराष्ट्र शब्दकोश' (प्रथम भाग) की प्रस्तावना में उपलब्ध है।

महाराष्ट्र सारस्वत *(म० कृ०)* [रचना-काल—1919 ई०]

यह ग्रंथ मराठी वाङ्मयेतिहासोपयोगी संशोधन की क्रांति का इतिहास है। इसमें वि० ल० भावे ने तेरहवें शतक के महानुभाव पंथी वाङ्मय से पेशवा-काल के अंत तक के संपूर्ण प्राचीन मराठी-साहित्य का विवेचन अत्यंत गंभीरता के साथ किया है।

महाविद्यालय में भावे ने स्नातक परीक्षा के लिए वनस्पतिशास्त्र का अभ्यास किया था और बाद में नमक का व्यापार। अतः न तो शैक्षणिक काल में और न व्यापार में ही इन्हें मराठी-साहित्य का अध्ययन करने का अवकाश मिला था। परंतु फिर भी इन्होंने स्वयं यत्रतत्र भ्रमण कर सामग्री उपलब्ध की, उसकी प्रामाणिकता की परीक्षा की और फिर विश्वसनीय सामग्री के आधार पर इस ग्रंथ की रचना की। इसी कारण इनका यह गुरु-गंभीर प्रयास अभिनंदनीय है।

प्राचीन मराठी-साहित्य भक्तिपरक है, परंतु भावे जी ने भक्त की दृष्टि से नहीं वरन् एक सहृदय काव्य-रसिक की दृष्टि से इसके प्राचीन काव्य का अध्ययन मनःपूर्वक कर इसकी समीक्षा भी प्रभावोत्पादक रीति से की थी।

यह ग्रंथ अत्यंत सुंदर शैली में रचित है। नामदेव (दे०) तथा ज्ञानेश्वर (दे०) के साहित्य-गुणों को लक्ष्य कर उन पर जो कुछ इन्होंने लिखा है वह अद्वितीय है। यत्र-तत्र भावे जी ने दोषों का निर्देश भी किया है परंतु वह भी इतनी खूबी से कि दोषों पर एकदम ध्यान नहीं जाता, गुण ही उभर कर सामने आते हैं। इस ग्रंथ के लेखन में काव्य-रसिक की भूमिका अपनाने के कारण मुक्तेश्वर (दे०) तथा शाहीर-काव्य के रसोद्घाटन में लेखक विशेष तन्मय हुआ है। यत्र-तत्र तुलनात्मक पद्धति का अवलंब लिया गया है। इसका अंतिम प्रकरण सर्वोत्कृष्ट तथा अत्यंत सशक्त है।

महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश *(म० कृ०)*

संसार के समस्त ज्ञान-संदर्भों के लिए सुलभ यह कोश है। यह अँग्रेजी 'एनसाइक्लोपीडिया' के आदर्श पर लिखा गया विश्वकोश है। इसके रचयिता श्रीधर व्यंकटेश केतकर (दे०) हैं। केतकर जी से पूर्व श्री जनार्दन हरि आठल्ये ने 1878 ई० में 'ज्ञानकोश' का प्रकाशन प्रारंभ किया था परंतु 200 से अधिक पृष्ठ नहीं लिखे जा सके थे।

1914 ई० में केतकर विलायत से नवीन दृष्टि, प्रबल आत्मविश्वास तथा पाश्चात्य शिक्षा लेकर आए थे। जब इन्होंने 'ज्ञानकोश'-निर्माण की आवश्यकता अनुभव की तो अगले दो वर्षों तक पूरे हिंदुस्तान का भ्रमण किया तथा 1916 ई० में 'ज्ञानकोश' के लिए लिमिटेड कंपनी की स्थापना की। 'ज्ञानकोश' एक शास्त्रीय ग्रंथ है। इसके निर्माण में अनेक लोगों का सहयोग अपेक्षित था। अत 1920 से 1929 ई० तक अनेक व्यक्तियों के सहयोग से इसके 23 भाग निकाल कर इस कार्य का समापन हुआ। ये तेईस भाग तीन खंडों में संगृहीत हैं। पहले पाँच खंड प्रस्तावना खंड में हैं। यह प्रस्तावना अद्वितीय है। इस पर केतकर जी के व्यक्तित्व की छाप है। इसमे विश्व के विशाल पार्श्व पर जगज्जेत्री भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य स्पष्ट किया गया है। मौलिक समाजशास्त्रीय भूमिका के कारण भी प्रस्तावना अमूल्य है। वेदविद्या एवं बुद्धपूर्व संसार खंड में ज्ञानकोशकार की शोधपरक दृष्टि का पता चलता है।

यह कोश निर्दोष एवं व्यवस्थित है। इसने उन्नत विश्व तथा पिछड़े हुए महाराष्ट्र के बीच बौद्धिक अंतराल को पाटने में सहायता की है। इसी से मराठी मे संदर्भ-ग्रंथों के प्रणयन के युग का शुभारंभ हुआ।

महावंस *(पा० कृ०)*

समय पाँचवीं शती ई०। यह सीलोन के महानाम की रचना है। इसे पुराणरूपता और काव्य-रूपता प्रदान करने की चेष्टा की गई है; इसकी भाषा-शैली छंद, वस्तु सभी-कुछ काव्यात्मक ही है। इसमें बुद्ध का लंका को जाना, वहाँ की तत्कालीन परिस्थिति, धर्म-प्रचार, बोधिवृक्ष का लंका को ले जाना, संगीतियों की कथा, अशोक के धर्म-प्रचार इत्यादि का वर्णन किया गया है और बहुत-कुछ परवर्ती तत्त्व भी मिला दिया गया है। इसे उच्चकोटि की कलाकृति के रूप में न भी स्वीकार किया जाय फिर भी साहित्य के इतिहास में इसका पर्याप्त महत्व है।

महावीर (प्रा० पा०)

आधुनिक विद्वान् महावीर स्वामी को जैन धर्म का प्रवर्तक मानते हैं। किंतु ये उस अर्थ मे धर्म-प्रवर्तक नही थे जिस अर्थ मे गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म के प्रवर्तक थे। इन्होने परपरा-प्रचलित पैतृक धर्म को स्वीकार किया था और उसी का नेतृत्व किया। बौद्ध ग्रथो मे भी महावीर को प्रचलित प्राचीन धर्म का अनुयायी बतलाया गया है। ये ज्ञाता जाति के क्षत्रिय वश मे वैशाली के निकट कुडग्राम में उत्पन्न हुए थे। ये सिद्धार्थ और त्रिशला के द्वितीय पुत्र थे। श्वेताबरो के अनुसार महावीर ने देवानदा के गर्भ मे प्रवेश किया था किंतु बाद मे इद्र की आज्ञा से वह गर्भ त्रिशला के उदर मे सन्निविष्ट कर दिया गया। किंतु दिगबर-सप्रदाय मे इस कथा पर विश्वास नही किया जाता। इनके माता-पिता पार्श्वनाथ के पूजक थे और और उन्होने इनका नाम वर्धमान रखा था। बौद्ध धर्म मे इन्हे निग्गथ (बधनहीन) नात पुत्र के रूप मे प्राय स्मरण किया गया है। महावीर इनका नाम नही किंतु केवली बन जाने के बाद इनकी महती वीरता के पुरस्कार के रूप मे दी हुई उपाधि है। इनका विवाह बसतपुर नगर के महाराज समरवीर की कन्या यशोदा से हुआ था और इनके अनोज्जा प्रियदर्शना नाम की एक कन्या भी उत्पन्न हुई थी। इनकी 30 वर्ष की आयु मे इनके माता पिता की मृत्यु हो गई थी और इनके पिता का स्थान इनके बडे भाई नदिवर्धन ने लिया था जिनकी सम्मति से इन्होने चिराकाक्षित सन्यास धारण किया था। 13 महीने बाद ही इन्होने वस्त्र भी छोड दिए थे। फिर 12 वर्ष की साधना के बाद केवली तीर्थंकर बनकर लगभग 42 वर्ष पर्यंत घूम फिर कर उपदेश देते रहे थे और 72 वर्ष की आयु मे निर्वाण पदवी पर आरूढ हुए थे। इनकी मृत्यु बुद्ध से पहले हुई थी। श्वेताबरो के अनुसार इनका समय 527 ई० पू० और दिगबरो के अनुसार 480 ई० पू० है। श्वेताबर आगम-साहित्य (दे० जैन आगम) का कर्ता इन्हे ही मानते हैं जबकि दिगबर सप्रदाय मे 14 पूर्वों के लुप्त हो जाने के बाद अवशिष्ट 'षट्खडागम' (दे०) के अनेक भागो को इनकी कृति के रूप मे स्वीकार करते हैं। इनके धर्म का सार है—वस्तुतत्व की यथार्थता और अनेकता, जीवो का कर्म से बधन और सम्यक्ज्ञान, दर्शन और चरित्र से कैवल्य-प्राप्ति तथा ईश्वर-रूप मे परिणति तथा सभी धर्मों मे आशिक सत्य की उदारतापूर्वक स्वीकृति।

महाश्वेता (उ० कृ०)

यह मन्मथ कुमार दास (दे०) का उपन्यास है। इसकी विषय वस्तु है एक नारी की समस्या। क्या नारी केवल एक यौन सकेत है? समाज मे अनेक लोग ऐसा सोचते हैं और अनेक नारियाँ भी इसका शिकार हो जाती हैं। किंतु नारी यौन-सकेत से परे भी बहुत-कुछ है, यह तथ्य 'महाश्वेता' की नायिका मनोरमा (दे०) के जीवन के अनेक बिखरावो के द्वारा प्रतिपादित हुआ है। वह प्रेम करते हुए भी विवाह नही कर पाती तथा माँ होते हुए भी कुमारी रह जाती है। नारी-जीवन की इस अद्भुत अनुभूति को रूप देने की चेष्टा उपन्यासकार ने की है।

महाश्वेता (स० पा०)

बाण (दे०) भट्ट की 'कादबरी' (दे०) की दूसरी प्रमुख पात्र महाश्वेता है। यह गधर्वराज के मत्री की पुत्री थी। स्वय महाश्वेता के शब्दो मे उसका लालन-पालन बडे ही राजकीय वातावरण मे हुआ था। वह जब एक बार माता के साथ अच्छोद सरोवर से नहाकर लौट रही थी तो बसत की श्री मे बहक गई और तब उसने अपने को एक ऐसे युवक के समक्ष पाया जो स्वय उसकी रूप-राशि से आहत होकर उद्यान मे घूम रहा था। वह था ऋषि श्वेतकेतु का पुत्र पुडरीक (दे०) जिसने उसी दिन महाश्वेता के वियोग मे अपने प्राण छोड दिए। महाश्वेता तभी उसके मृत शरीर की रक्षा करते हुए उस आकाशवाणी की सत्यता की प्रतीक्षा कर रही थी जिसके अनुसार पुडरीक को शीघ्र ही महाश्वेता से मिलकर और उससे विवाह कर उसे कृतकृत्य करना था। वियोगिनी महाश्वेता ने तापसी का जीवन यापित करते हुए अपने उन दिनो को जिस किसी प्रकार बिताया और शापात होने पर चद्रापीड का मित्र ही पुडरीक सिद्ध हो गया।

महाश्वेता के चरित्र की विशेषता उसके अनिद्य सौंदर्य के साथ साथ उन श्लाघ्य गुणो मे है जिनमे निर्भीकता के साथ साथ अदम्य स्नेह एव स्नेही के प्रति उसकी अपार आस्था निहित है।

महास्थविर (बँ० पा०)

बीसवी शती के प्रथमार्ध के कलकत्ता शहर एव समग्र उत्तर भारत को लेकर चार खड मे 'महास्थविर

जातक' (दे०) का निर्माण हुआ है। महास्थविर (महास्थविर जातक) नाम के पीछे लेखक प्रेमांकुर (दे० आतर्थी, प्रेमांकुर) का आत्मगोपन किए हुए है। लेखक के जीवन का अतिविचित्र अनुभव अपरूप साहित्य कर्म में अभिव्यक्त हुआ है। युग-जीवन के परिवर्तन के स्वर ने लेखक की चित्त-वीणा में अपरूप रागिनी की सृष्टि की है। महास्थविर के हृदय-स्पंदन में समग्र भारतवर्ष अपना दुःख-दैन्य, हताशा, आनंद, आशा, आवेग लेकर समुपस्थित है। महास्थविर द्रष्टा एवं भोक्ता है किंतु सर्वोपरि वह स्रष्टा है। आत्मकथात्मक शैली से शिल्पकर्म में बाधा नहीं पहुँचती वरन् उसकी श्रीवृद्धि ही हुई है। असंख्य अनजाने चरित्र की अपरूप शोभा-यात्रा मनुष्य को मनुष्यत्व के तीर्थपथ की ओर पता नहीं कौन-से अलक्ष्य निर्देश से परिचालित कर रही है—उसी का अतिविचित्र कल्लोल महास्थविर के चित्त-समुद्र में निरंतर ध्वनित है।

महास्थविर जातक *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1944 ई०]

प्रेमांकुर आतर्थी (दे० आतर्थी, प्रेमांकुर) के उपन्यासों में सर्वाधिक आकर्षक है 'महास्थविर जातक'। तीन खंडों में समाप्त यह एक जीवन-स्मृतिमूलक उपन्यास है। पहले खंड में आज से 50-60 साल पहले के मनुष्य के बाल्य या शिक्षा-जीवन के एक यथार्थ चित्र को इसमें अनावृत किया गया है। गृह-जीवन में पिता के निरंकुश शासन का अत्याचार एवं स्कूली वातावरण की भयावहता को लेखक ने विभिन्न चित्रों के माध्यम से प्रकट किया है। इस प्रकार की रचनाओं में लेखक का अनायास भावविह्वल हो जाना स्वाभाविक है; परंतु उसके कौतुक एवं श्लेष-मिश्रित रचना-कौशल से पाठकों का कौतूहल एवं आग्रह क्षीण नहीं हो पाता। दूसरे खंडों में शिशु-जीवन के स्थान पर भ्राम्यमान लेखक के कैशोर एवं यौवन की नाना प्रकार की रोमांचकारी घटनाएँ संगृहीत हुई हैं। इनमें विभिन्न अंचलों का यथार्थ 'खंडचित्र' विद्यमान है परंतु परिणति में समग्र रूप में कहानी की कोई क्रमिक अग्रगति दिखाई नहीं पड़ती। उपन्यास के अंतिम दो खंड मानो पथिक-जीवन की पलायमान कहानी मात्र हैं जहाँ दृश्य एवं अनुभूति के द्रुत परिवर्तित परिवेश एवं रोमांचकारी परिस्थितियों में लेखक की विशिष्ट सत्ता का पता नहीं चलता। घटनाओं के आवर्त में लेखक का खो जाना इस आत्मचरितात्मक उपन्यास के अंतिम दो खंडों की सबसे बड़ी दुर्बलता है। फिर भी इसमें युग-परिचय के जिस रूप का उद्घाटन हुआ है उसका साहित्यिक मूल्य अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

महिपति बावा *(म० ले०)* [जन्म—1715 ई०; मृत्यु—1790 ई०]

ये नगर जिला में स्थित 'ताहराबाद' के निवासी थे और इनके माता-पिता वारकरी संप्रदाय के अनुयायी थे। बाल्यावस्था से ही महिपति में भक्ति-भावना के संस्कार दृढ़ होने लगे थे, ये पंढरपुर की यात्रा प्रतिवर्ष करते थे। संत ज्ञानेश्वर (दे०), नामदेव (दे०), एकनाथ व तुकाराम (दे०) की रचनाओं का इन्होंने गंभीर अध्ययन किया था और 1762 ई० में 'नाभादास' (दे०) के 'भक्तमाल' (दे०) के आधार पर 'भक्ति विजय' नामक चरित्र-ग्रंथ की रचना की थी। इसके बाद 'संत लीलामृत' (1767), 'भक्तलीलामृत' (1774), 'संतविजय' (1789), ग्रंथों की रचना की। इन सभी रचनाओं में मराठी के आदि कवि मुकुंदराज (दे०) से रामदास (दे०) तक प्रायः सभी संतों के चरित्रों का सरस भक्तिभावपूर्ण वर्णन है। अंतिम रचना 'संतविजय' विशाल ग्रंथ है, जिसमें 40,628 ओवियाँ हैं। संतों के चरित्र से संबद्ध सामग्री का संचय इन्होंने अत्यंत परिश्रम से किया है; संतों के प्रति श्रद्धा और भक्ति-भावना के कारण इनके कथा-वर्णन में अद्भुत आकर्षण मिलता है। भाषा-शैली में माधुर्य और सरसता है। संतचरित्रकार के रूप में महिपति का महत्वपूर्ण स्थान है।

महिमभट्ट *(सं० ले०)* [समय—1000 ई० के लगभग]

इनका पूरा नाम राजानक महिमभट्ट था। ये काश्मीर देश के निवासी थे। इनके पिता का नाम श्रीधैर्य तथा गुरु का नाम श्यामल था। इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति 'व्यक्तिविवेक' (दे०) है जो त्रिवेंद्रम तथा चौखंभा वाराणसी से प्रकाशित है। इसी पुस्तक में इनकी दूसरी कृति 'तत्त्वोक्तिकोश' का उल्लेख मात्र हुआ है।

'व्यक्तिविवेक' साहित्यशास्त्र का ग्रंथ है। इसमें आनंदवर्धन (दे०) के ध्वनि-सिद्धांत का खंडन कर यह बताया गया है कि 'ध्वनि' (दे०) अनुमान से भिन्न तत्त्व नहीं है। इसके तीन विमर्शों में से प्रथम में 'ध्वनि' के लक्षण एवं 'रस' (दे०) की अनुमेयता का विवेचन

हुआ है, तथा यह बताया गया है कि शब्द की एकमात्र शक्ति अभिधा ही सभव है। लक्षणा एव व्यजना दोनो ही अर्थ की शक्तियाँ हैं। अत दोनो का अतर्भाव अनुमान मे हो जाता है। द्वितीय विमर्श मे अनौचित्य के नाम से काव्य दोषो का विस्तृत विवेचन कर तृतीय मे 'ध्वनि' के उदाहरणो मे अनुमान की प्रक्रिया के प्रदर्शन द्वारा उनकी व्याख्या की गई है।

महिमभट्ट मुख्यत वैयाकरण थे। इनके ग्रथ मे भाषावैज्ञानिक तथ्यो का पर्याप्त विवेचन हुआ है। इसके अतिरिक्त ये काव्य को कवि-प्रतिभा द्वारा वस्तु के विशिष्ट स्वरूप के दर्शन की भूल मानते हैं। ये रस को आत्मानद न मानकर वस्तु का ही धर्म कहते हैं। इनकी विद्वत्ता का लोहा सभी मानते हैं।

महिमा-धर्म (उ० परि०)

'महिमा धर्म' बौद्ध एव नाथ-धर्म से प्रभावित होते हुए भी वेदात पर आधारित एक स्वतत्र दार्शनिक विचारधारा है। ईश्वर की वह 'महिमा' जो चित्र या मूर्तियो मे व्यक्त नही की जा सकती उसकी आराधना पर बल देने वाला यह धर्म है। 'महिमा' सस्कृत के महत्' शब्द से बना है। कपिल ने अपने साख्य-दर्शन मे बुद्धि को महत् कहा है। बुद्धि का धर्म बौद्ध धर्म है पर महिमा धर्म' कई दृष्टियो से बौद्ध धर्म से भिन्न है। और वेदात के समान है। वेदात के अनुसार दृश्य जगत् ब्रह्म की माया है। महिमा-धर्मावलबी चैतन्यदास ने भी 'विष्णुगर्भ' पुराण मे दृश्य जगत् को अलेख की विकृति माना है। वेदातिक ब्रह्म भी अलेख व निर्गुण स्वभाव-विशिष्ट है।

'महिमा-धर्म' हिंदुओ की जातिप्रथा एव मूर्ति-पूजा का घोर विरोधी है। इस धर्म का आदर्श है कि सृष्टि-रचयिता—अदृश्य शक्ति मे विश्वास रखो। उसी की आराधना करो। यह धर्म अपने अनुयायियो को सत्य, साधुता, ब्रह्मचर्य आदि कतिपय नियमो के पालन का उपदेश देता है। हिंदू धर्म के अगणित मतवादो मे सन्यास जीवनादर्श रूप मे प्रतिष्ठित है। किंतु 'महिमा धर्म' साधुतापूर्ण गृहस्थ-जीवन को पुण्यार्जन का उदार उत्स मानता है।

इस विद्रोही धर्म के प्रचारक थे महिमा गुसाई, जिनकी कोई रचना नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे निरक्षर थ। इनके शिष्य भीमा भोई (दे०) को यह कठिन कार्य पूरा करना पड़ा था।

महिराण (सिं० कृ०)

सिंधी भाषा मे 'महिराण' उच्च स्तर की त्रैमासिक पत्रिका है। 1946 ई० मे 'सिंधी अदब लाइ अर्मजी सलाहकार बोर्ड' की तरफ से इस पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ था, परतु देशविभाजन के कारण एक वर्ष के पश्चात् यह पत्रिका बद हो गई थी। विभाजन के पश्चात् सिंध मे सिंधी भाषा और साहित्य के विकासार्थ सिंधी अदबी बोर्ड' की स्थापना की गई थी। इस सस्था ने महिराण को पुनर्जीवित किया था। 1955 ई० से यह त्रैमासिक पत्रिका नियमपूर्वक प्रकाशित हो रही है। महिराणा का शाब्दिक अर्थ है महासागर (महा+अर्णव)। इस पत्रिका मे कविता, कहानी, एकाकी आदि के अतिरिक्त विभिन्न विषयो पर उच्च स्तर के विचारात्मक और अनुसधानात्मक निबध भी प्रकाशित होते रहते हैं। सिंधी-साहित्य के क्षेत्र मे इस प्रकार की और कोई भी पत्रिका अभी तक प्रकाशित नही हुई है। साहित्य सृजन और शोध-कार्य के क्षेत्र मे इस पत्रिका का योगदान अविस्मरणीय है।

महिला काव्य (बँ० कृ०) [प्रकाशन वर्ष—1880 ई०, 1883 ई०]

आधुनिक बँगला कविता के प्रारभिक गीतकारो मे सुरेंद्रनाथ मजुमदार (1838-1878 ई०) का नाम उल्लेखनीय है। कवि ने माता जाया, भगिनी एव नदिनी की ममता का ऋण चुकाने के लिए 'महिला-काव्य' की रचना शुरू की थी परतु माता एव जाया अश को सपूर्ण कर भगिनी-अश' की रचना के दौरान कवि की मृत्यु हो गई। बाद मे यह असपूर्ण काव्य दो अशो मे विभक्त होकर क्रमश 1880 एव 1883 ई० मे प्रकाशित हुआ। काव्य का शीर्षक भी कवि का दिया हुआ नही है।

काव्य के प्रथम अश 'उपहार' मे सृष्टि की अपूर्णता को दूर करने के लिए विधाता के द्वारा नारी-सृष्टि का उल्लेख किया गया है। द्वितीय अश 'माता' म बगाली परिवार मे स्त्रियो की दुरवस्था का वर्णन है। तृतीय भाग 'जाया' मे पत्नी के प्रति कवि के प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। चौथे भाग 'भगिनी' मे केवल चार स्तवक हैं। सुरेंद्र बाबू गीतिकार होने पर भी प्रधानत अभिजातवादी सस्कृत-निष्ठ गभीर रीति के अनुवर्ती हैं। इसीलिए 'महिला-काव्य' मे दृढ़बद्ध अभिजातवादी रूपधारा के अतराल मे स्पर्श-

कातर रोमानी भावुकता की अंतःसलिला प्रवाहित है।

महीधर *(सं० ले०)*

इन्होंने शुक्ल यजुर्वेद का भाष्य 'वेददीप' नाम से किया है। इस भाष्य पर ऊवट-कृत भाष्य की छाया है। ये नागर ब्राह्मण थे और काशी-निवासी थे। इनका समय वि० सं० 1645 (1588 ई०) माना जाता है।

महुआ *(बं० पा०)*

बंगला ग्राम-गीतिका सरल प्राण के निराभरण सानंद आवेदन से स्वय-संपूर्ण है। 'मैमनसिंह गीतिका' (दे०) की प्राणस्पर्शी गाथा का नाम महुआ है। ब्राह्मण ज़मींदार के पुत्र नदेर चाँद के साथ बनजारा-पालिता कन्या यौवन-धन्या रूपवती महुआ के रोमानी प्रणय का विचित्र-सुंदर आख्यान ही महुआ-गाथा की मूल कथावस्तु है। महुआ के सारल्य, सलज्ज प्रेम की चंदन-सुरभि एवं उसके वेदनादीन जीवन की करुण-रंगीन अनुभूमि के विचित्र वर्णवैभव ने अगर्त्य को मर्त्य बंधन में बाँधकर नूतन महिमा प्रदान की है। इसीलिए महुआ बंगला गाथाकाव्य के जगत् में चिरकाल की रोमांटिक नायिका है। महुआ की मधुगंध मन को व्याकुल करती है किंतु उसकी उग्रता उसे अंधा नहीं बनाती। हृदय के दीपे में प्रेम की यह नित्य-आरती मानव-धर्म के जयोच्चारण मंत्र से महीयान हो गई है।

महुदूम *(त० ले०)*

महुदूम तमिल-भाषी मुस्लिम साहित्यकारों में से हैं। ये मूलतः कहानीकार हैं। इन्होंने लगभग 200 कहानियों की रचना की। अधिकांश कहानियों में तमिलनाडु के उन मुसलमानों की समस्याओं का चित्रण है जो अपने परिवार को यहीं छोड़कर जीविकोपार्जन के लिए सिंगापुर, मलेशिया आदि देशों को चले गए हैं। कुछ कहानियों में इस्लामी विचारधारा एवं दर्शन के प्रकाश में जीवन के रहस्यों का उद्‌घाटन करने की चेष्टा की गई है। विभिन्न कहानियों में लेखक के यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। इनमें कहीं-कहीं भावात्मकता का पुट भी है। महुदूम मुस्लिम तमिल कहानीकारों में सर्वप्रसिद्ध हैं और समग्रतः तमिल कहानीकारों में भी उनका विशिष्ट स्थान है।

महेंद्र विक्रम वर्मा *(सं० ले०)* [समय—600-650 ई०]

प्रहसन (दे०) संस्कृत-नाट्य-साहित्य की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विधा है। 'मत्तविलास' संस्कृत का प्राचीनतम प्रहसन है। इसके रचयिता महेंद्र विक्रम वर्मा पल्लव नरेश सिंहविष्णु वर्मा के पुत्र थे। इन्हें पुलकेशी द्वितीय तथा हर्षवर्धन का समकालीन माना जाता है।

'मत्तविलास' इनकी एकमात्र कृति है। यह प्रहसन आकार में लघु होते हुए भी बड़ा रोचक है तथा तत्कालीन धार्मिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। इसमें एक युवती के साथ बैठकर एक कापालिक के मद्यपान का वर्णन है। कापालिक का कपाल एक कुत्ता उठा ले जाता है पर चोर एक बौद्ध भिक्षु को समझकर वह उससे झगड़ा कर बैठता है। अंत में कपाल एक पागल के पास मिलता है। बस इसी कथा में हास्य रस पिरोकर इसे अत्यंत मनोरम बना दिया गया है। भाषा में कहीं भी अश्लीलता नहीं है। विभिन्न धर्मावलंबियों के संघर्ष को इसमें बड़ी ही संयत भाषा में निबद्ध किया गया है।

महेता, गगनविहारी *(गु० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद श्री महेता तीन वर्ष अमरीका में भारत के राजदूत रहे हैं। वे हास्यरस के लेखक हैं। उनकी दो पुस्तकें 'आकाशनां पुष्पो' तथा 'अवलोगंपा' प्रकाशित हुई हैं। उन्होंने बर्ट्रेंड रसेल पर भी एक पुस्तक लिखी है। उनके हास्यरस की विशेषता यह है कि वे परिस्थिति को उल्टी दृष्टि से प्रस्तुत करके हास्य निष्पन्न करते हैं।

महेता, चंद्रवदन *(गु० ले०)*

चंद्रवदन महेता कवि, नाटककार, कहानी-लेखक, आत्मकथा-लेखक तथा अभिनेता हैं। उनको अपनी 'नाट्य-गठरियां' पुस्तक पर 1971 में साहित्य अकादेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ और उसी वर्ष संगीत नाटक अकादेमी द्वारा 'होहोलिका' नृत्यनाटिका के लिए भी वे पुरस्कृत हुए। कविता में 'इलाकाव्यो' लिखकर भाई-बहन के प्रेम के काव्य गुजरात को देकर उन्होंने काव्य-क्षेत्र में एक नयी दिशा दी। नाटककार के रूप में वे गुजरात के मूर्धन्य नाटककार हैं जिनकी प्रतिष्ठा विदेश में भी है। फ्रांस में 1969 की 'अभिनय-प्रतियोगिता' में उन्होंने प्रथम पारितोषिक प्राप्त

किया। अब तक उनके चौदह नाटक और एकांकी-संग्रह, दो कहानी-संग्रह तथा आत्मकथा के भाग—जिन्हें उन्होंने 'बाघ गठरिया', 'छोड गठरिया', 'सफल गठरिया', 'नाट्यगठरियाँ' आदि नाम दिए हैं—प्रकाशित हो चुके हैं।

महेता, धनसुखलाल कृष्णलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1890 ई०]

धनसुखलाल ने अपने मामा रणजीतराम और अग्रज जयसुखलाल की प्रेरणा से साहित्य-जगत् मे पदार्पण किया। आरभ मे इन्होने 'शरलोक होम्सना पराक्रमो', 'मेटरलिंकना निबधो' तथा मोलियर के नाटको के अनुवाद किए। 'हास्यविहार', 'हास्यकथामजरी', 'विनोदविहार', 'वार्ताविहार', 'पहलो पाल' आदि मे इनकी कुछ रचनाएँ मौलिक हैं और शेष अनूदित-रूपातरित। 'छेल्लो फाल' इनकी मौलिक तथा रूपातरित कहानियो और नाटिकाओ का सग्रह है। इसी प्रकार 'जमाइराज' और प्रेमनू परिणाम' क्रमश मौलिक और रूपातरित रेखाचित्रो तथा एकांकियो के सग्रह हैं। 'आराम खुरशीअे थी' और 'सर्जनने आरे' इनके सरल-गभीर विवेचनो के सग्रह हैं। धनसुखलाल ने श्री अविनाश व्यास, गुलाबदास ब्रोकर, ज्योतीद्र दवे (दे०) तथा धीरुबहन पटेल (दे०) के सहयोग से क्रमश नृत्य-नाटिका अर्वाचीना', नाटक 'धूम्रसेर', उपन्यास 'सरी जतु सूरत' और नाटक 'पखीनो मेळो' रचनाएँ साहित्य-जगत् को भेंट की हैं। 'गरीबनी झूपडी' इनका मौलिक त्रिअकी नाटक है। 'रग माधुरी' और 'रसरजन' इनके दूसरे नाटिका-सग्रह हैं। इनके इस विशाल सृजन फलक को देखते हुए कहा जा सकता है कि धनसुखलाल मे हास्य-प्रसगो, कहानियो, नाटको, उपन्यासो, रेखाचित्रो आदि साहित्यिक विविध रूपो मे अपनी बात कहने की अद्भुत सामर्थ्य है। इनकी शैली रोचक व मृदुल है। नाट्यकार और नाट्यविद् के रूप मे गुजराती साहित्य के प्रति इनकी सेवाएँ स्मरणीय हैं।

महेता, यशोधर *(गु० ल०)* [जन्म—1909 ई०]

गुजराती के प्रसिद्ध लेखक व दार्शनिक नर्मदा-शकर मेहता (दे०) के पुत्र यशोधर मेहता का जन्म अहमदाबाद मे हुआ था। इनकी माता का नाम भागीरथी है। यशोधर भाई ने बबई विश्वविद्यालय से बी० ए० तथा विदेश से बैरिस्टर-एट-लॉ की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। ऐतिहासिक उपन्यासकार, जीवनी-लेखक, रेडियो नाटक-लेखक, प्रवास वर्णनकार, प्रेम व साहस-कथाओ के सर्जक, ज्योतिष व दर्शन के लेखक के रूप मे यशोधर भाई विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। पिता की दार्शनिकता का तथा श्रीमन्नृसिंहाचार्य के ग्रथो का इन पर पर्याप्त प्रभाव पडा है।

'रणछोड लाल अने बीजा नाटको', 'सरीजती रेती' भाग 1 और 2, 'नदी ओ अने नगरो', 'मबो जबो', 'घेलोबबल', 'महारात्रि', 'सरीजती कलम', 'वहीजती जेलम', 'यशोधरा', 'तुगनाथ', 'शिवसदन नु स्नेह कारण', 'समर्पण', 'श्रीनदा', 44 रात्रिओ', 'अप्रमनिगम' (दे०), 'किमिया-गिरो', प्रेमगगा', 'रसनदा', 'भाविनोभेद', 'भाविना रहस्यो', 'सध्या राग', 'महमूद गजनवी', आदि इनकी रचनाएँ हैं।

इनकी 'सरीजती रेती' (भाग 1 और 2) गुजराती साहित्य की बहुचर्चित रचना है। उपन्यास का प्रथम भाग स्थूल-मासल शृगार-विलास से परिपूर्ण और दूसरा भाग आध्यात्मिकता मे परिणत है। 'महारात्रि' इनका प्रसिद्ध उपन्यास है। 'समर्पण', 'रणछोडलाल अनेबीजा नाटको' इनके रेडियो नाटक हैं। 'रणछोडलाल अनेबीजा नाटको' पर इन्हे 1946 मे पुरस्कार तथा 'कुमारचद्रक' प्राप्त हुआ था। मबो जबो' और 'घेलोबबल' प्रहसन हैं। 'किमिया-गरो' मे जीवनियाँ हैं। 'श्रीनदा' और '44 रात्रिओ' अच्छे प्रवास-वर्णन हैं। 'सरीजती कलम' इनके ललित निबधो का सग्रह है।

गुजराती के लोकप्रिय नाट्यकार, उपन्यासकार, प्रवासवृत्तकार, ज्योतिष व दर्शन के ज्ञाता के रूप मे ये सदैव स्मरणीय रहेंगे।

महेता, रणजीतराम बावाभाई *(गु० ले०)* [जन्म—1838 ई०; मृत्यु—1917 ई०]

श्री रणजीतराम महेता प्रसिद्ध अर्थशास्त्री व समाजवादी चितक अशोक महेता के पिता और गुजराती साहित्य-परिषद् व गुजरात साहित्य सभा के आदि सस्थापक थे। जुहू के सागर तट ने इन्हे आकस्मिक रूप से लील लिया। इनकी एकमात्र पुस्तक 'रणजीतरामना निबधो' प्राप्त है। निबधो के अलावा इन्होंने कुछ कहानियाँ भी लिखी थी। इनकी रचनाओ मे साहित्य के प्रति गभीर दृष्टि, गुजरात के प्रति अटूट भक्ति और गभीर भाषा-शैली के दर्शन होते हैं। प्रत्यक्ष साहित्य-सेवा की अपेक्षा इन्होंने अपनी सुचिंतित योजनाओ के द्वारा साहित्य की

अधिक सेवा की है। इस प्रकार गुजराती साहित्य के विकास में इनका अमूल्य योग रहा है।

महेता, सितांशु यशश्चंद्र *(गु० ले०)* [जन्म—1941 ई०]

इनका जन्म भुज (कच्छ) में हुआ था। इनका अध्ययन-काल अत्यंत उत्कृष्ट रहा था। कालेज-जीवन में इन्होंने न केवल काव्य-प्रणयन ही आरंभ कर दिया था प्रत्युत अल्प अवधि में ही एक कवि के रूप में स्थान भी बना लिया था।

गुजराती कविता मे अति-यथार्थवाद का प्रारंभ इन्हीं की रचनाओं को माना जाता है। विषय, प्रतीक-विधान, बिंब-योजना तथा प्रस्तुतीकरण सभी दृष्टियों से इनकी कविता आधुनिक है।

महेश्वर सूरि *(अप० ले०)*

महेश्वर सूरि के जन्म, काल और स्थान के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता। इनकी लिखी 'संयम मंजरी' नाम की 35 दोहों की एक छोटी-सी कृति उपलब्ध हुई है। इस कृति में श्री पार्श्वनाथ के मंगलाचरण, जिनवर की स्मृति तथा सूरि पदांत नाम से इनके जैन होने की कल्पना सहज ही की जा सकती है।

मांकड, डोलरराय *(गु० ले०)*

1902 ई० में जन्मे डोलरराय मांकड संस्कृत के विद्वान अध्यापक थे। अपने जीवन का अधिकांश समय इन्होंने संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन और पुरातत्व-संबंधी खोज में बिताया। मरने के समय मांकड जी सौराष्ट्र यूनिवर्सिटी के उपकुलपति-पद को सुशोभित कर रहे थे। इन्होंने दशरूपक, संस्कृत नाटक, प्राचीन भारतीय रंगमंच, पुराण, ऋग्वेद का काल-निर्णय तथा कालिदास और गुप्त राजाओं को लेकर अँग्रेज़ी में ग्रंथ लिखे हैं। 'काव्यविवेचन' इनका गुजराती में लिखित आलोचनापरक लेखों का संग्रह है। 'नैवेद्य' ग्रंथ इनके प्रकीर्ण आलोचनात्मक व शोधात्मक लेखों का संग्रह है जो इनकी षष्टिपूर्ति के अवसर पर मित्रों व शिष्यों के द्वारा संपादित होकर इन्हें भेंट किया गया था। बंबई विश्वविद्यालय में ठक्कर व्याख्यानमाला के अंतर्गत दिए गए इनके भाषण 'गुजराती कविताप्रकारो' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। ग्रंथावलोकनों में इन्होंने सामाजिक स्थिति और जीवन-दर्शन को अत्यंत महत्व दिया है। इनकी शैली विश्लेषणपरक, वस्तुग्राहिणी, सरल, स्वस्थ और विशद पर्येषणा से युक्त दिखाई देती है। गुजराती के 'पंडित युग' की परंपरा में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

मांकड, महमद *(गु० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

स्वातंत्र्योत्तर काल के अस्तित्ववादी और मनोवैज्ञानिक कहानीकार और उपन्यासकार। इन पर एक ओर फ़्रायड और युंग का प्रभाव है तो दूसरी ओर सार्त्र, कामु, आदि का। ये संस्कृत के पंडित हैं और संस्कृत साहित्य के अध्ययन का प्रभाव भी उनकी रचनाओं मे दिखाई देता है। अपने उपन्यास 'वेलाना वछूट्यां' पर इन्हे गुजराती-साहित्य-परिषद् का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। इनके 'कायर' और 'तरस' उपन्यास अस्तित्ववाद से प्रभावित हैं। 'वेलानां वछूट्यां', 'मनोरमा', 'अजाण्यां बेजण' 'ग्रहणरात्री' मनोवैज्ञानिक उपन्यास हैं। 'माटीनी चादर' राजनीतिक उपन्यास है। उनके कहानी-शिल्प में घटनाओं की विरलता एवं क्षीणता दृष्टिगोचर होती है।

मांचाला *(तें० पा०)*

यह महाकवि श्रीनायुडु द्वारा रचित 'पलनाटि वीरचरित्र' (दे०) नामक ऐतिहासिक प्रबंध-काव्य की प्रधान नारी-पात्र है। यह वीर बालचंद्रुडु की अल्पायु, नवविवाहिता पत्नी है। जब इसके पति को न्याय एवं धर्म की विजय के लिए युद्ध-भूमि में जाना पड़ता है तब यह अपने भौतिक सुख-संतोष की कामना का त्याग करके, पति को स्वयं सुसज्जित करके रणक्षेत्र में भेजती है। जिस समय यह पति के लिए जयमाला गूँथ रही होती है उस समय इसे पति की मृत्यु का समाचार मिलता है। यह एक वीर नारी के समान निश्चल भाव से सहगमन करती है। यह आंध्र की वीर नारियों का आदर्श मानी जाती है।

माइकेल मधुसूदन *(बँ० ले०)* [जन्म—1824 ई०; मृत्य—1873 ई०]

माइकेल मधुसूदन दत्त ने नवयुग के बँगला-साहित्य को प्रतिष्ठित करने की दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान किया है। पाश्चात्य और प्राच्य काव्यधारा का समन्वय कर मनुष्यत्व को प्रधानता देते हुए इन्होंने

अमित्राक्षर छद के आधार पर बँगला-काव्य के नये पथ का निर्देश दिया है। केवल काव्य ही नही, इन्होने अपने युग के बँगला नाट्यकारो के उद्देश्यहीन नानामुखीन उद्भ्रात व्यापारो से नाटक को मुक्त कर उसके गतिपथ को सुस्थिर भी बनाया है।

'तिलोत्तमासभव' (1860) तथा 'मेघनाद-बध' (दे०) (1861) इनके दो प्रसिद्ध महाकाव्य हैं, 'तिलोत्तमासभव' मे महाकाव्य के बहिरग के साथ कवि की अत - प्रेरणा का कोई सार्थक समन्वय नही हुआ है। परतु 'मेघनाद बध' मे महाकाव्य का पूर्णांगरूप अनवद्य रूप मे प्रकट हुआ है। उदात्त भाषण, छद कौशल एव मानवीय रस-वैचित्र्य की दृष्टि से यह एक महान काव्य है। इसका चरित-नायक रावण है परतु राम को छोटा कर रावण को बडा नही बनाया गया है। राम एक महान व्यक्तित्व है परतु रावण भी एक अपूर्व मनुष्य है। रावण विचित्र है जटिल है, आधुनिक युग का दुरूह मनुष्य है। वह केवल उदात्त ही नही, 'ट्रैजिक' भी है। कवि के विप्लवचित्त का यत्रणादाह रावण के चरित्र के माध्यम से प्रकट हुआ है। माइकेल का 'व्रजागना काव्य' (1861) व्रजबुलि (दे०) मे लिखित वैष्णव पदावली के श्रुतिलालित्य से युक्त श्री राधा की विरहगाथा है। चतुर्दशपदी कवितावली' (दे०) (1866) की रचना कर माइकेल ने बँगला साहित्य को एक नया काव्य-रूप प्रदान किया था। गीतिकविता के तारल्य को इन्होने चौदह पक्तियो के कठोर नियम मे बाँध दिया था परतु कही भी स्वच्छद-प्रवाहित भावोच्छ्वास की सहति टूट नही पाई। इनके काव्य मे करुण रस से ओतप्रोत सार्वजनीन जीवनबोध की अभिव्यक्ति हुई है।

केवल काव्य ही नही, बँगला-साहित्य को भी इन्होने अपनी प्रतिभा के स्पर्श से परिपूर्णता प्रदान की है। 'शर्मिष्ठा' (1856), 'पद्मावती' (1960), 'कृष्णकुमारी' (दे०) (1861) इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। 'कृष्णकुमारी' बँगला का पहला ऐतिहासिक नाटक है। इनके अतिरिक्त इनके द्वारा लिखित प्रहसन 'एकेइ कि बले सभ्यता' (दे०) एव 'बूडो शालिकेर घाडे रौं' (दे०) उल्लेखनीय हैं। अपने नाटको मे इन्होने सस्कृत एव पाश्चात्य नाट्यसूत्रो से प्रभावित हुए भी नाटकीय द्वद्व और सघात के आधार पर नाट्य रस के परिवेश मे, घटना विन्यास और चरित्र-सृष्टि तथा जीवन-मूल्यो की अभिव्यजना मे अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है। अपने प्रहसनो मे इन्होने सामाजिक अनीति के विरुद्ध तीक्ष्ण व्यग्य कसा है।

बँगला साहित्य मे अमित्राक्षर छद का प्रवर्तन माइकेल की सबसे बडी उपलब्धि रही है।

मागुणि (उ० पा०)

मागुणि गोदावरीश महापात्र (दे०) के कहानी-सग्रह 'ऐबे मध्य बचिछि' का एक पात्र है। यह गाडीवान है। इसके जीवन-साथी दो बैल हैं। इनकी सहायता से यह अपनी जीवन-यात्रा पूरी कर लेना चाहता है। परतु यात्रिक सभ्यता की दौड मे यह हार जाता है और इसका अस्थि-ककाल तकनीकी युग से पूछता है—'यह तूफानी रफ्तार किसलिए ? इस अध-दौड का गतव्य क्या है ? युग मौन है, प्रश्न निरुत्तरित है।'

मागुणि न तो राजा है न नेता, न देश सेवक और न तपस्वी ही। किंतु इसकी मृत्यु पर खल्लीकोट के दो लाख व्यक्ति हाहाकार कर उठते हैं मानो मानव की इस दु खद पराजय पर मानव आत्मा चीत्कार कर उठी है।

मागुणि ने अपने जीवन मे केवल एक ही काम किया है—पेट के लिए अविराम रूप से बैलगाडी चलाना। दो बैलो के अतिरिक्त न कोई उसका सगी है, न कोई साथी। वही दो मूक प्राणी उसके सहकर्मी बधु हैं। खल्लीकोट मे मोटर बस के प्रादुर्भाव के पूर्व इसकी गाडी ही एकमात्र वाहन है। और यह जीवन सग्राम का अविजित सैनिक है। किंतु खल्लीकोट मे यत्रदानव का आगमन होते ही यह सोचता है कि लोग मोटर बसो के आने के बाद भी इसकी गाडी को पसद करेंगे। किंतु इसकी यह आशा नैराश्य मे परिणत हो जाती है। यद्यपि यह गाडी को खूब सजाता है, बैलो को खूब दौडाता है किंतु लोगो का ध्यान वह आकर्षित नही कर पाता। इस प्रकार यह जीवन का दाँव हार जाता है। इसका निराहार शरीर अधिक दिनो तक प्राणो की रक्षा नही कर पाता। जीर्ण कुटी मे फटे-पुराने कपडो पर इसकी लाश के पास पडी रह जाती है, चिरसगिनी, बैल हाँकने की छडी।

वास्तव मे यह मागुणि की मृत्यु नही, यत्र-सत्ता के हाथो मानव की मृत्यु है—गाधी के आदर्श की और भारतीय अर्थ व्यवस्था की मृत्यु है।

माघ (स० ले०) [समय—सातवी शती का उत्तरार्द्ध]

सस्कृत-महाकाव्यकारो मे माघ का प्रमुख स्थान है। इनका जन्म गुजरात के प्रसिद्ध नगर भीनमाल या

श्रीमाल में हुआ, जिसे बहुत दिनों तक वहाँ की राजधानी तथा विद्याकेंद्र होने का गौरव प्राप्त था। ये एक धनी परिवार में उत्पन्न हुए थे। इनके पितामह सुप्रभदेव वर्मलात नामक राजा के प्रधान मंत्री थे। इनके पिता दत्तक भी उसी प्रकार धनी-मानी और दानी थे। किसी राजा भोज के साथ माघ की बड़ी प्रगाढ़ मैत्री थी।

भारवि (दे०) की भाँति माघ की भी केवल एक कृति प्राप्त है—'शिशुपालवध' (दे०)। केवल यही कृति उनका उत्कृष्ट कलावादी दृष्टिकोण स्पष्ट करने में समर्थ है। माघ कवि होने के साथ ही महान् पंडित भी थे। वे विभिन्न दर्शनों, नाट्य एवं साहित्य-शास्त्र, व्याकरण एवं संगीत आदि में निष्णात थे। अपने पूरे ज्ञान को इन्होंने अपनी कविता के माध्यम से व्यक्त किया है। माघ की कविता में कालिदास (दे०) की उपमा, भारवि (दे०) के अर्थगौरव तथा दंडी (दे०) के पदलालित्य का उत्कृष्ट समन्वय है। अलंकारों के प्रयोग द्वारा वे अपनी विलक्षण कवित्व-शक्ति का परिचय देते हैं।

'शिशुपालवध' के प्राकृतिक वर्णन बड़े सजीव हैं। उनके वर्णनों में स्वाभाविकता तथा यथार्थता है। माघ का प्रभात-वर्णन संस्कृत-साहित्य में बेजोड़ समझा जाता है। साथ ही ग्राम-जीवन के नाना रूपों के चित्रण में भी उनकी लेखनी बड़ी सिद्ध है।

इन्हीं विशेषताओं के कारण 'शिशुपालवध' संस्कृत का उत्कृष्ट महाकाव्य माना जाता है। उसका स्थान संस्कृत महाकाव्यों की बृहत्त्रयी में है।

माझी जन्मठेप (म० कृ०)

'माझी जन्मठेप' सावरकर (दे०)-रचित आत्मकथा है। 1910 ई० में अँग्रेज सरकार ने राजद्रोही सिद्ध कर अंडमान द्वीप भेजा था। वहाँ से 1924 ई० में मुक्त होकर ये रत्नागिरी में रहने लगे थे। रत्नागिरी में निवास करते हुए इन्होंने 'केसरी' नामक समाचारपत्र में 1927 ई० तक 'माझी जन्मठेप' आत्मकथा क्रमशः प्रकाशित कराई थी। इस आत्मकथा का कुछ अंश 'ब्रह्मानंद' पत्र में भी प्रकाशित हुआ था। खंडशः प्रकाशित इन अनुभवों का अखंड रूप ही 'माझी जन्मठेप' नामक ग्रंथ है।

'माझ्या आठवणी' नामक आत्मकथा इनके जीवन का पूर्वार्द्ध (जन्म से लेकर 1902 ई० तक) प्रस्तुत करती है और 'माझी जन्मठेप' आत्मकथा उनके क्रांतिकारक जीवन के उत्तरार्द्ध का वृत्तांत है।

'माझी जन्मठेप' ग्रंथ में अंदमान द्वीप में अमानुषिक अत्याचारों को सहते हुए श्रद्धापूर्वक आशा को पल्लवित कर जीवन के व्यतीत किए गए पंद्रह वर्षों की रोमांचकारी कथा का निवेदन है। यह अद्भुत भीषण और रोमांचकारी आत्मकथा है। पचास वर्ष की प्राणलेवा सज़ा मिलने पर इनके मन की क्या अवस्था हुई थी तथा उद्विग्न मन को 'भगवद्गीता' (दे०) के श्लोक पढ़कर कैसे शांत किया था, इस सबका वर्णन लेखक ने किया है।

उन दिनों अंदमान द्वीप जाने का अर्थ था साक्षात् मृत्यु-मुख में प्रवेश। सावरकर जी ने अंदमान द्वीप में आई अनेक आपत्तियों एवं कष्टों का वर्णन किया है। परंतु मानना पड़ेगा कि वीर सावरकर का उत्साह, आवेग तथा जीवन-निष्ठा इतनी प्रबल थी कि मृत्यु के मुख में वापस करते हुए भी ये हतोत्साहित न हुए। इन्होंने वहाँ रहने वाले बंदियों को शिक्षित बनाया तथा संगठित किया। प्रौढ़ एवं ओजस्वी शैली में कही गई उनके अद्भुत तथा पराक्रमी जीवन की यह रोमांचक कथा है।

सावरकर जी के अतिरिक्त अन्य लेखकों ने भी अंदमान द्वीप-विषयक अपने अनुभव लिखे हैं, पर उन सभी में सावरकर जी का यह ग्रंथ सर्वोच्च है। इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद ही यह ज़ब्त कर ली गई थी।

यह ग्रंथ स्वतंत्रता-प्राप्ति के लिए उत्सुक देशप्रेमियों के मार्ग में आने वाली विपत्तियों का इतिहास प्रस्तुत करता है, और साहित्यिक गुणवत्ता की दृष्टि से भी अद्वितीय है। अतः इसका राष्ट्रीय तथा साहित्यिक दोनों दृष्टियों से महत्त्व है। यह मराठी आत्मचरित्र-ग्रंथों का मेरुमणि है।

माझें रामायण (म० कृ०) [रचना-काल—1927 ई०]

दत्तो अप्पाजी तुळजापूरकर ने केवल यही उपन्यास लिखा है। इसकी रूपरेखा उन्होंने बड़े उत्साह और महत्त्वाकांक्षा से बनाई थी और पृष्ठभूमि के लिए सामग्री भी बड़े परिश्रम से एकत्र की थी। 1857 ई० के स्वातंत्र्य-युद्ध से लेकर जलियानवाला बाग़ के हत्याकांड तक की मुख्य घटनाओं तथा महाराष्ट्र में प्रचरित विचार-धाराओं को कथा का विषय बनाने के कारण इस उपन्यास का पाट बड़ा लंबा है रानडे आदि महान नेताओं के प्रभाव के अतिरिक्त फलज्योतिष, पुनर्विवाह, देशी रजवाड़े, वकालत आदि अनेक विषयों का ऊहापोह इसमें मिलता है। पर पाठक उनसे रामरस नहीं हो पाता। अतः उपन्यास के

रूप मे यह सफल कृति नही कही जा सकती। शिल्प की दृष्टि भी यह सफल नही है। क्योकि इसमे जिस आत्म-चरितात्मक शैली का प्रयोग किया गया है उसमे सजीवता नही है। अत उसका महत्व केवल ऐतिहासिक घटनाओ और व्यक्तियो का इतिवृत्त प्रस्तुत करने के कारण ही है।

माटिर मणिष *(उ० कृ०)*

बीसवी शती के तृतीय दशक मे जब गाधी जी की सत्य, अहिंसा, असहयोग की वाणी भारत के पल्ली-अचलो मे निनादित हो रही थी, उस समय कालिंदीचरण पाणिग्राही (दे०) का यह उपन्यास प्रकाशित हुआ था। इस पर गाधी दर्शन का गहरा प्रभाव है। इस उपन्यास का नायक बरजू (दे०) गाधी आदर्श का मूर्तिमान रूप है। तब से आज तक यह उपन्यास विपुल गौरव का अधिकारी रहा है।

इसमे उपन्यासकार ने यद्यपि एक पारिवारिक प्रश्न—सयुक्त परिवार का विघटन—उठाया है किंतु इसके द्वारा कृषिप्रधान भारतवर्ष की आर्थिक व्यवस्था का चित्रण हुआ है, जिस पर हमारा समाज टिका हुआ है। भारत की अर्थ व्यवस्था की रीढ है कृषि। उस पर जनसख्या का भारी बोझ है। अत उन्नत देशो की कृषि-पद्धति का प्रयोग हम सीमित रूप मे ही कर सकते हैं। इतनी बडी जनसख्या को कृषि से हटाकर उद्योग-धधे मे लगाना भी सभव नही है। अत यदि सयुक्त परिवार टूट जाता है तो भूमि के और भी छोटे टुकडे हो जाएँगे और यह स्थिति भारत की सामाजिक एव आर्थिक स्थिति के लिए घातक सिद्ध होगी। अत इस विघटन को रोकना होगा। किंतु यह कार्य बाह्य प्रयासो से पूरा नही हो सकता, इसके भावात्मक क्राति लानी होगी। समस्या का समाधान मूल रूप से आतरिक है, मनोवैज्ञानिक है। 'माटिर मणिष' मे सहिष्णुता, उदारता, स्नेह, और अततोगत्वा सर्वस्व त्याग मे इसका समाधान बताया गया है।

इसमे एक कृषक परिवार की कथा है। शाम-प्रधान मरते समय अपने दोनो पुत्रो बरजू एव छकडी से अलग न होने का आग्रह करता है। बरजू सदा इसे पूरा करने का प्रयास करता है। किंतु अकर्मण्य छकडी अत मे पत्नी तथा हरिमिश्र के बहकावे मे आ जाता है एव भाई से विलग होने मे ही सुख मानता है। बरजू के सारे प्रयत्न विफल होते हैं। अन्य उपाय न देखकर बरजू घर, जमीन सभी कुछ छोटे छकडी को सौंप कर अकिंचन परिवार को लेकर घर से निकल पडता है। सारा गाँव हाहाकार कर उठता है।

भाई के गृहत्याग के बाद छकडी को अपनी भूल की प्रतीति होती है। भाई का वात्सल्य, भाभी का दुलार, बच्चो का प्यार, सभी मिलकर उसे अस्थिर कर देते हैं। पत्नी का प्रेम भी उसे बाँध नही पाता। भाई व बच्चो को लौटा लाने को वह निश्चित दृढ कदमो से चल पडता है।

माटे, श्रीपाद महादेव *(म० ले०)* [जन्म—1886 ई०; मृत्यु—1957 ई०]

विदर्भ के शिरपुर गाँव मे इनका जन्म हुआ था। अस्पृश्योद्धार के लिए स्वत को अर्पित करते हुए इन्होने पाठशाला मे अध्यापन कार्य किया था। 1935 ई० मे ये सर परशुराम महाविद्यालय मे मराठी-प्राध्यापक पद पर नियुक्त हुए थे।

समाज-सुधार कार्य करने की बलवती इच्छा से इन्होने 'विचार मडल' नामक सस्था बनाई थी। 1935 ई० के बाद इन्होने अध्ययन, अध्यापन और लेखन-कार्य मे स्वत को अर्पित किया था।

इन्होने अपना साहित्य-लेखन समाचार-पत्रो के लिए लिखकर प्रारभ किया था। ये बहुश्रुत-बहुमुखी प्रतिभा-सपन्न साहित्यकार थे।

'उपेक्षितार्चे अतरग', 'अनामिका', 'माणुसकीचा गहिंवर', 'भावनाचे पाझर', 'भावनाची माडवी' इनके लघु-कथा सग्रह हैं। इन कहानियो का उद्देश्य केवल मनोरजन करना नही है, इनमे इन्होने समाजशास्त्रीय दृष्टि से जीवन का अध्ययन कर कुछ पहलुओ पर नवीन रूप मे विचार किया गया है।

इन्होने विचारप्रधान निबध लिखे हैं। 'साहित्य-धारा', 'साहित्यमजिरी', 'विचारशलाका', 'विवेकमडन', 'विज्ञानबोध' आदि इनके निबध-सग्रह हैं। इन ललित निबधो मे विषय-वैविध्य है और विषय-वैचित्र्य भी। साहित्य, समाजशास्त्र, तत्वज्ञान, भौतिकशास्त्र आदि विषयो पर इनके निबध हैं। वक्तृत्व तथा नाट्यतत्व इनके निबधो का प्राण है।

माटे एक सफल जीवनी लेखक भी हैं। 'पाश्चात्य पुरुषश्रेष्ठ', 'वाराशास्त्र' आदि इनकी जीवनियाँ हैं।

'चित्रपट वर्मा व मला दिस लेले जग' नामक इनकी आत्मकथा भी उपलब्ध है।

इनकी साहित्य-भाषा विषयानुकूल है, जिसमें यत्र-तत्र ग्रामीण पात्रों के मुख से ग्राम्य वाक्प्रचारों का प्रयोग हुआ है। अतः माटे अखंड ज्ञानोपासक, श्रेष्ठ शैलीकार व मौलिक साहित्यकार कहे जा सकते हैं।

माट्टोलि *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1944 ई०]

यह प्रो० जोज़फ़ मुंटश्शेरि (दे०) का प्रसिद्ध समालोचना-ग्रंथ है। इसमें लेखक की एक अन्य कृति 'अंतरीक्षम्' (दे०) की तरह मलयाळम के कवित्रय आशान् (दे०), वळ्ळत्तोळ् (दे०) और उळ्ळूर (दे०) की तीन प्रख्यात कृतियों की तुलनात्मक समालोचना है। आशान् की 'चिंताविष्टयाय सीता' (दे०), वळ्ळत्तोळ् का 'शिष्यनुम् मकनुम्' और उळ्ळूर का कर्णभूषणम्' (दे०) इसके समीक्षाधीन खंडकाव्य हैं। इन तीनों के इतिवृत्त प्राचीन भारतीय उपाख्यानों एवं संदर्भों पर आधारित हैं। लेखक के मतानुसार इनमें 'चिंताविष्टयाय सीता' अधिक मौलिक काव्य है और इन तीनों में सर्वश्रेष्ठ है।

'अंतरीक्षम्' की तरह 'माट्टोलि' भी प्रो० मुंटश्शेरि के प्रौढ़ समालोचना-ग्रंथों में से एक है।

माडखोलकर, ग० त्र्यं० *(म० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

संपन्न परिवार में उत्पन्न माडखोलकर की रुचि पाठ्य-क्रम की पुस्तकों में नहीं थी, अतः ये मैट्रिक की परीक्षा में भी उत्तीर्ण न हो सके परंतु पाठ्य-क्रम से बाहर की संस्कृत, मराठी और अंग्रेज़ी पुस्तकों—विशेषतः काव्य और नाटक का इन्होंने गहरा अध्ययन किया। ग्यारहवें वर्ष से कविता और पंद्रहवें वर्ष से गद्य लिखने वाले माडखोलकर की गणना आज के मराठी उपन्यासकारों, कहानी-लेखकों, कवियों, संपादकों और आलोचकों में होती है पर इन्हें सर्वाधिक प्रसिद्धि मिली है आलोचक के रूप में ही। यद्यपि ये कला का उद्देश्य केवल सौंदर्य-निर्मिति न मानकर उद्बोधन मानते हैं और इन्होंने अपने उपन्यासों में समसामयिक राजनीति, साम्यवादी विचारधारा, शोषण और उत्पीड़न का करुण चित्र खींचा है तथापि उत्कट शृंगार के चित्र, नैतिक सीमोल्लंघन आदि के कारण इन्हें पलायनवादी लेखक कहा गया है। अपनी रचनाओं में समसामयिक व्यक्तियों की—गांधी जी तक की कटु एवं असंगत आलोचना कर इन्होंने उन्हें विकृत कर दिया है। कथानक-गुंफन में कुशल होते हुए भी इनके संवाद स्वाभाविक और पात्र सजीव नहीं हैं। भाषा अलंकार-प्रधान होने के कारण कृत्रिम है और शैली भावनापूर्ण। हाँ, शब्द-चित्र अवश्य मोहक हैं। प्रकृति के रम्य और रौद्र दोनों स्वरूपों का, नारी-शरीर और उसकी विभिन्न भंगिमाओं का तथा कारखाने आदि का वर्णन अत्यंत सजीव एवं जीवंत है। इस प्रकार मराठी के प्रथम राजनीतिक उपन्यास-लेखक का मान पाने वाले माडखोलकर का कृतित्व बहुत प्रभावशाली नहीं है।

मुख्य कृतियाँ—'मुक्तात्मा', 'चंदनवाडी', 'नवे संसार', 'दुहेरी जीवन', 'नाग-कन्या', 'रुक्मिणी' (दे०) आदि उपन्यास। 'दोन तपें' तथा 'एक निर्वासिताची डायरी' आत्मकहानीपरक ग्रंथ।

माडगूळकर, गणेश दिगंबर *(म० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

ये चित्रपट-कथा-लेखक के रूप में ही प्रसिद्ध हैं। 'लपलेला ओघ' 'बोलका शंख', इनके कहानी-संग्रह हैं। इनकी 'हिमांगी' नामक प्रतीकात्मक कहानी आज के सभ्य, सज्जन समझे जाने वाले दोमुँहे लोगों पर व्यंग्य है। इसमें 'हिमांगी' नामक छिपकली के माध्यम से मनुष्य के विश्वासघाती स्वभाव के कटु अनुभव का सरस, चुटीली शैली में निवेदन किया गया है।

'सुगंधी वीणा' नामक इनका एक काव्य-संग्रह है, जो 1949 ई० में प्रकाशित हुआ। इसकी प्रस्तावना में कवि ने लिखा है कि मेरी कविता केवल सूँघने के लिए है। पर इस कथन को केवल कवि के सहज निवेदन के रूप में ही लेना चाहिए, गंभीरता से नहीं। कुछ कविताओं में राधा-कृष्ण की अनन्य प्रीति का अर्थमधुर शब्दों में कथन किया गया है। इनका काव्य प्रसाद एवं माधुर्यगुण-युक्त है।

चलचित्र तथा रेडियो पर प्रसारण के कारण इनके गीतों से जनसाधारण परिचित हैं। इनके गीतों की धुनें आकर्षक तथा शब्द सुरीले हैं।

माणिक्कवाशगर *(त० ले०)* [समय—नवीं शती ई०]

दक्षिण के शैव संतों में माणिक्कवाशगर का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म तिरुवादवूर में हुआ था। सोलह वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने अपार ज्ञान अर्जित कर लिया था और ये पांड्य राजा के मुख्य मंत्री बन गये थे। कुछ समय के उपरांत ये राजा की नौकरी छोड़ कर

शिव की उपासना करने लगे। तिरुपेरुन्तुरै के ईश—शिवजी इनके इष्टदेव थे। इन्होंने बौद्ध साधुओं को शास्त्रार्थ मे परास्त कर शैव धर्म की उच्चता का प्रतिपादन किया था। 18 वर्ष की अल्पायु मे चिदम्बरम् नामक स्थान मे इनका स्वर्गवास हुआ था। इनकी दो प्रसिद्ध रचनाएं हैं—'तिरुवाशगम्' (दे०) और तिरुक्कोवैयार' (दे०) 'तिरुवाशगम्' के पदो का अनूठा माधुर्य पाठको को सहसा द्रवीभूत कर देता है। इसी से तमिल मे यह कहावत प्रचलित हो गई—'तिरुवाशगत्तुक्कु उरुकातार ओरु वाशगत्तिर्कुम् उरुकार' अर्थात् 'तिरुवाशगम् के पदो से द्रवित न होने वाला किसी भी काव्य से द्रवित नही हो सकता'। 'तिरुक्कोवैयार' मे चार सौ रहस्यवादी पद्य सगृहीत हैं। इस ग्रथ मे इन्होंने लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यजना की है। 'तिरुवाशगम्' के एक खड 'तिरुवेम्पावै' मे 20 पद हैं। इनका सामाजिक एव धार्मिक दोनो दृष्टियो से अपार महत्व है। इन पदो मे भागवत मे वर्णित कात्यायनी व्रत के समान दक्षिण मे प्रचलित एक देवी-व्रत—'मार्गलि नोन्बु'—का वर्णन है। मार्गशीर्ष माह मे शैव भक्त इन पदो का पाठ करते हैं। इनकी रचनाओं मे प्राप्त इनके भक्तिरसपूर्ण पद शिव भक्तो की अमूल्य निधि हैं।

माणिक्यचंद्र *(स० ले०)* [समय—अनुमानत 1125-1225 ई०]

'काव्यप्रकाश' (दे०) के टीकाकार माणिक्यचद्र गुजरात के जैन लेखक थे। ये कोटिकगण, बज्रशाखा, राजगच्छ के निवासी थे। अपनी टीका के अत मे इन्होंने अपनी गुरु-परपरा का उल्लेख किया है। इनका कथन है कि ये नेमिचद्र और उनके उत्तराधिकारी सागरेंदु के शिष्य थे। पीटरसन के अनुसार ये सागरेंदु वस्तुत वही सागरेंदु हैं जिन्होने 1196 ई० मे पट्टन मे 'अभयस्वामी-चरित' की प्रथम प्रतिलिपि तैयार की। 'काव्यप्रकाश' के टीकाकार माणिक्यचद्र 'पार्श्वनाथचरित' के रचयिता माणिक्यचद्र से अभिन्न प्रतीत होते हैं जिन्होने अपने इस ग्रथ की पूर्ति 1220 ई० मे देवकूप (द्विवदर) मे की। इस ग्रथ मे लेखक ने अपनी जो गुरु-परपरा दी है वह 'काव्य-प्रकाश' के टीकाकार माणिक्यचद्र द्वारा दी गई गुरुपरपरा से मिलती है। इन्होंने 'काव्यप्रकाश' की टीका 1159-60 ई० मे लिखी। इससे प्रतीत होता है कि इनका साहित्यिक काल बारहवी शती के उत्तरार्ध से लेकर तेरहवी शती के प्रथम चरण तक था।

'काव्यप्रकाश' पर माणिक्यचद्र-कृत टीका का नाम 'सकेत' है। ये 'काव्यप्रकाश' के प्राचीनतम टीकाकारो मे हैं। माणिक्यचद्र एक और ग्रथ के रचयिता प्रतीत होते हैं जिसका नाम 'नलायण' या 'कुबेरपुराण' है। मेरुत्तुग की 'प्रबधचितामणि' मे भी एक माणिक्यचद्र का उल्लेख हुआ है जो गुजरात के शासक जयसिंह के शासन-काल मे हुए थे। परतु ये 'काव्यप्रकाश' के टीकाकार से भिन्न प्रतीत होते हैं।

माणिक्य सूरि *(गु० ले०)* [1422 ई० मे विद्यमान]

गुजराती के प्राचीन गद्यकार माणिक्य सूरि जैन यति थे। कुछ ग्रथो मे इनका नाम माणिक्य सुदर सूरि भी पाया जाता है।

इन्होंने 'पृथ्वीचद्र चरित्र' (दे०) की रचना की है। यह रचना गद्य मे है और कथा पाँच खडो मे विभक्त है। इनका गद्य लय-प्रधान है। गुजराती के अति प्राचीन गद्य का यह एक सुदर नमूना है। इनकी गद्य-शैली बाणभट्ट (दे० कादबरी) की शैली की अनुगामिनी है। सभा, नगर, सेना, जगल, युद्ध, स्वयवर, रूप-गुण-कथन, वर्षा, वसत, प्रभात, रात्रि आदि के वर्णन बडे भव्य, सजीव व प्रभाव-शाली हुए हैं। लगता है, लेखक ने बाणभट्ट की शैली की समता करने के लिए ही इसे रचा था।

गुजराती गद्य के आदि-लेखक के रूप मे माणिक्य सूरि का नाम अविस्मरणीय है। और गुजराती के गद्य के प्राचीनतम रूप व नमूनो की दृष्टि से इनकी 'पृथ्वीचद्र चरित्र' उल्लेख्य रचना है।

माथुर, गिरिजाकुमार *(हि० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

इनका जन्म अशोकनगर (म० प्र०) मे हुआ। इन्होने एम० ए० (अंग्रेजी) और एल-एल० बी० की परीक्षाएँ लखनऊ से पास की। 1943 ई० मे आकाशवाणी से सबद्ध हो जाने के पश्चात् इन्होंने रूस, चेकोस्लोवाकिया, स्विट्जरलैंड आदि की यात्राएँ कीं। 'तार सप्तक' (दे०) के इस प्रयोगी कवि की प्रौढ रचनाएँ 'धूप के धान', 'शिला पख चमकीले' और 'जो बँध नही सका' आदि मे सगृहीत हैं। इन्होने अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं मे छायावादी (दे० छायावाद) आभा को रूपात्मक आधार और प्रगति-वादी (दे०) अनगढता को सुरुचि-सस्कार प्रदान किया।

इनकी परवर्ती रचनाओं में वैज्ञानिक चेतना या स्थिति से प्रेरित अनुभूतियों और युगीन विसंगतियों पर किए गए कटाक्षों का समावेश भी हो गया है। छंद-लय के संधान, शब्द-सौंदर्य की पहचान और काव्यात्मक बिंबों के निर्माण की दृष्टि से इन्होंने नये कवियों में एक विशेष स्थान बना लिया है।

माथुर, जगदीशचंद्र *(हिं० ले०)*

इनका जन्म उत्तरप्रदेश के बुलंदशहर ज़िले की खुर्जा तहसील में हुआ। लेखन और अभिनय के प्रति इन्हें बचपन से ही रुचि थी। यही कारण है कि इंडियन सिविल सर्विस में चुने जाने के बाद भी साहित्य-सृजन का कार्य जारी रखा तथा एक सफल नाटककार के रूप में ख्याति प्राप्त की। इनका प्रारंभिक एकांकी 'मूर्खेश्वर राजा' 'बालसखा' में प्रहसन के रूप में (1929 ई०) में प्रकाशित हुआ। 'चौदह-पंद्रह वर्ष की आयु में इन्होंने बँगला के प्रसिद्ध नाटककार डी० एल० राय (दे०) की शैली में शिवाजी पर एक एकांकी लिखा। 1936 ई० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के 'म्योर होस्टल' के रंगमंच पर इनका एकांकी 'मेरी बाँसुरी' खेला गया। यह एकांकी आगे चलकर 'सरस्वती' (दे०) पत्रिका में प्रकाशित हुआ। आगे चलकर इन्होंने अनेक महत्वपूर्ण एकांकी लिखे जिनमें 'भोर का तारा', 'रीढ़ की हड्डी', 'मकड़ी का जाला', 'घोंसले', 'बंदी' आदि उल्लेखनीय हैं। 'भोर का तारा' (1957 ई०) तथा 'ओ मेरे सपने' (1953 ई०) में इनके प्रतिनिधि एकांकी संकलित हैं। इनके एकांकियों में झूठ, फ़रेब, मिथ्याडंबर आदि सामाजिक विकृतियों पर पैना व्यंग्य किया गया है। कभी लेखक ने भारतीय वैवाहिक व्यवस्था पर करारी चोट की है तो कभी किसी सभा आदि में दूसरों द्वारा लिखे गए भाषण पढ़ने और बीच-बीच में ताली बजाने की व्यवस्था करने वाले व्यक्तियों को अपने व्यंग्य का केंद्र बनाया है।

यद्यपि यह सत्य है कि श्री माथुर की प्रतिभा सर्वप्रथम हिंदी-एकांकी के क्षेत्र में ही प्रतिफलित हुई किंतु धीरे-धीरे इन्होंने नाटकों के क्षेत्र में भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। 'कोणार्क' (1951 ई०), 'शारदीया' (1961 ई०), 'पहला राजा' (1969 ई०) नामक इनके तीनों ऐतिहासिक नाटक हिंदी-नाट्य-साहित्य की अक्षय निधि हैं। 'कोणार्क' में उड़ीसा प्रदेश के पुरी जिले में जगन्नाथपुरी से लगभग अट्ठाईस किलोमीटर उत्तर-पूर्व की ओर चंद्रभागा नदी के किनारे बने हुए कोणार्क नामक प्रसिद्ध सूर्य-मंदिर के अतीतकालीन इतिहास को कथ्य के रूप में संकलित कर प्रभुसत्ता तथा शिल्पी के बीच के संघर्ष को रूपायित किया गया है। अन्याय तथा अत्याचार के विरुद्ध कलाकार का यह विद्रोह किसी युग-विशेष तक सीमित न रहकर वर्तमान जीवन के साथ भी पूरी तरह संपृक्त है। सहनशील विशु तथा विद्रोही धर्मपद के माध्यम से कला के प्राचीन और नवीन युग मानो साकार हो उठे हैं। 'शारदीया' माथुर जी का दूसरा ऐतिहासिक नाटक है। नरसिंहराव इस नाटक का नायक है। महाराष्ट्र के कागल ग्राम की रूपवती कन्या बायजाबाई का वैवाहिक संबंध उसकी माता के अनुरोध-स्वरूप नरसिंहराव से निश्चित हो गया था। लेकिन माता की मृत्यु के बाद पिता शर्जेराव घारगे राजनीतिक सत्ता के लोभ के कारण कन्या की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह दौलतराव सिंधिया से कर देते हैं। शर्जेराव घारगे के षड्यंत्र के कारण नरसिंहराव को ग्वालियर की जेल में बंदी बनाकर रखा जाता है जहाँ वह बायजाबाई को उपहार में देने के निमित्त अपने अँगूठे की ढरकी बनाकर केवल पाँच तोले भार वाली पाँच गज की की साड़ी तैयार करता है। उधर बायजाबाई नरसिंहराव के बंदी-जीवन का समाचार पाकर महाराजा सिंधिया से उसकी मुक्ति का आज्ञा-पत्र प्राप्त करती है, उसे मुक्त कराने के लिए दुर्ग में जाती है और वहाँ नरसिंहराव की अँगुली के सुराख से बनी साड़ी को देखकर स्तंभित हो जाती है। इस नाटक में राजकर्मचारियों की दुरभिसंधि तथा तद्युगीन शासन-व्यवस्था के भ्रष्टाचार की झाँकी प्रस्तुत की गई है। हिंदू-मुसलमानों की धार्मिक सहिष्णुता की दृष्टि से भी यह एक महत्वपूर्ण नाटक है। तीन अंकों में विभक्त 'पहला राजा' में पौराणिक कथानक को युगीन संदर्भों के साथ जोड़ते हुए महाराज पृथु के माध्यम से स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व तथा नेहरू-युग की समस्याओं को रूपायित किया गया है। युग संदर्भ से जुड़ा, नपा-तुला एवं कसा हुआ कथानक, प्रभावी चरित्र-सृष्टि, पात्रानुरूप तथा बोलचाल की भाषा, संक्षिप्ताकार और प्रवाहपूर्ण संलाप तथा अभिनेयता श्री माथुर के नाट्य-शिल्प की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

मादळापांजी *(उ० कृ०)*

उपलब्ध उड़िया लेखों में 'मादळापांजी' सर्वा-

धिक प्राचीन किंतु विवादास्पद गद्य-रचना है। उडीसा के इतिहास, राजनीति, समाजनीति एव सस्कृति के अनेक उपादान इसमे मिलते हैं। विशुद्ध मुद्रित सस्करण के अभाव मे तथा अन्य कई प्रकार की प्रकाशन-सबधी त्रुटियो के कारण इसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता मे मतभेद है, फिर भी यह उडीसा के पारपरिक ऐतिहासिक आधार पर विरचित है।

ताडपत्र पर लिखित उडिया राजवशो की मह विवरणी जगन्नाथ-मदिर मे सुरक्षित है। ताडपत्र मादळा (मर्दळ) आकार मे बाँधकर रखे जाते हैं, अतएव इसे 'मादळापाजी' कहते हैं। यह दो भागो मे विभक्त है। प्रथम खड मे जगन्नाथ की उपासना-विधि सविस्तर वर्णित है। अनेक शतियो से इनका पालन होता आ रहा है। अत पाजी लेखन भी जगन्नाथ की एक सेवा है। दूसरे खड मे उडीसा के विभिन्न राजवश एव प्रमुख राजाओ का शासन वर्णित है। हिंदू राजा एव महाराजा जगन्नाथ के प्रतिनिधि माने जाने के कारण उनका इसमे वर्णन होता है। इसे लिखने के लिए श्री मदिर मे 'पाजियासेवक' नाम से एक सेवक-सप्रदाय अभी भी है। उडीसा के विभिन्न स्थानो मे, विशेषकर खोर्धा अचल मे प्राप्त विभिन्न मादळापाजियो की विषय-वस्तुओ मे कई स्थानो पर अतर दिखाई पडता है। पुरी-राजवश के अतिरिक्त कतिपय अन्य सामत राजवशो मे भी 'मादळापाजी' का प्रचलन है।

इसके रचना-काल के सबध मे विद्वानो के दो वर्ग हैं। पहला वर्ग इसका सूत्रपात ग्यारहवी-बारहवी शती गगवशी राजा चोड गगदेव के शासन-काल से मानता है और दूसरा वर्ग सोलहवी शती खोर्धा भोई वश या गजपति वश से इसका प्रारभ मानता है। श्री मदिर पर बारबार वैदेशिक आक्रमण होते रहने के कारण मूल मादळापाजी का सटीक निर्णय करना कठिन हो गया है। समस्त अर्धसत्य, अतिरजना, या कल्पना के होते हुए भी पाजी की प्राचीनता स्वीकार करनी ही पडती है। पाजी मे द्वादश शती अर्थात् गग लोगो के आगमन के पश्चात् वर्णित घटनाएँ ऐतिहासिक साक्ष्य द्वारा सामान्य रूप से समर्थित होने के कारण यह चोड गग प्रवर्तित है, इस कथन को असत्य भी नही कहा जा सकता।

राज्य की ओर से वेतनभोगी सेवक लोगो की रचना होने के कारण इसका साहित्यिक मूल्य उतना नही है जितना ऐतिहासिक प्राचीनता का। फिर भी उडिया भाषा एव गद्य-शैली के विकास की दृष्टि से इसका महत्व है। अँग्रेज़ी हॉलिनशेड के इतिहास—'हॉलिनशेड्स क्रॉनिकल्स' के समान इस अमुद्रित ग्रथ ने अनेक उडिया काव्यो, कविताओ एव नाटको के लिए उपकरण जुटाने का कार्य किया है। राजाओ की जीवनी के साथ अनिवार्य रूप से जुडी वीरता एव रोमास की कथाएँ साहित्य-सर्जना की उत्स सिद्ध हुई। इस प्रकार अनेक दृष्टियो से यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

माधव जूलियन (*माधव त्र्यंबक पटवर्धन*) (*म० ले०*) *जन्म—1894 ई०, मृत्यु—1939 ई०*]

माधव जूलियन का जन्म बडौदा मे हुआ था। ये अँग्रेज़ी भाषा एव साहित्य तथा फारसी के मर्मज्ञ थे। ये फारसी के लब्ध-प्रतिष्ठित प्राध्यापक थे। इनके काव्य मे एक ओर अँग्रेज़ी साहित्य की स्वच्छद प्रवृत्ति है, तो दूसरी ओर फारसी-काव्य की मस्ती।

इन्होने कवि-रूप मे ही साहित्य-क्षेत्र मे पदार्पण किया था। इनके मुक्तक काव्य सग्रह —'गज्जलाजली', 'स्वप्नरजन', 'तुटलेले दुवे' तथा 'मधुलहरी' है, तथा खडकाव्य—'सुधारक' (दे० रायबहादुर ठोसर), 'विरह-तरग' तथा 'नकुलालकार'।

इन्होने मराठी मे उमरखय्याम की रुबाइयो के तीन अनुवाद किए—एक मूल फारसी रुबाइयो का, दूसरा रुबाइयो के अँग्रेज़ी अनुवाद का, और तीसरा 'द्राक्षकन्या' नाम के मूल फारसी रुबाइयो के छद मे।

इनकी स्फुट कविताओ मे प्रेम-गीतो का ही आधिक्य है। 'विरहतरग' मे भी आधुनिक युवक-युवती के उदात्त प्रेम की परिकल्पना को रूपायित किया गया है। 'सुधारक' तथा 'नकुलालकार' उपहार-काव्य हैं। इन्होंने महाराष्ट्र के बुद्धिजीवी वर्ग के शिथिल युवा-मानस मे आलोडित प्रेम-भाव का अकन किया है।

इन्होने पद्य के साथ-साथ गद्य रचना कर मराठी भाषा के परिष्कार का प्रयत्न किया था। भाषा-सशोधन और ज्ञानोपासना मे इन्हें रुचि थी। सावरकर (दे०) द्वारा प्रवर्तित भाषा-शुद्धि आदोलन का इन्होंने समर्थन किया था। इसी के परिणामस्वरूप इन्होंने बाद म विदेशी-शब्द-विरहित शुद्ध मराठी के प्रयोग पर विशेष बल दिया था।

'काव्यविहार' इनके विचारोत्तेजक निबधो का सग्रह है। इनमे कुछ कवि, काव्यशास्त्र, लिपिसुधार, भाषा-शुद्धि, आदि पर कुछ केशवसुत (दे०), ताबे (दे०) आदि

कवियों पर तथा शेष कतिपय पुस्तकों की समीक्षाओं के रूप में निबंध हैं।

'सुटलेले दुवे' इनके सौ सुनीतों (सानेट) का संग्रह है। मराठी में गजल छंद को लोकप्रिय बनाने का श्रेय इन्हीं को है।

इन्होंने 'फ़ार्सी-मराठी कोश' का निर्माण किया था। 'छंदोरचना' पर इन्हें डी० लिट० की उपाधि मिली थी। ये रवि-किरण मंडळ के प्रतिष्ठित सदस्य भी थे।

माधवदेव *(अ० ले०)* [जन्म—1489 ई०; मृत्यु—1596 ई०]

जन्मस्थान—लखीमपुर का नारायणपुर अंचल।

ये पहले शक्ति-मतावलंबी एवं शक्ति विद्वान् थे। ये शंकरदेव (दे०) से परास्त होकर उनके शिष्य बन गए थे। गुरु की सेवा के लिए इन्होंने आजन्म कौमार्य-व्रत धारण कर लिया था। गुरु के समान इनकी प्रतिभा भी बहुमुखी थी। ये धर्म-प्रचारक, शास्त्रवेत्ता, भक्त, कवि, नाटककार और सुगायक थे।

रचनाएँ—'रामायण आदि कांड', 'राजसूय काव्य', 'नामघोषा' (दे०), 'भक्ति रत्नावली', 'विपरागु-घोवा', 'भूमि लेटोवा नाट', 'अर्जुन-भंजन' (दे०), 'गोवर्द्धन यात्रा', 'वरगीत', 'जन्म-रहस्य', 'नाममालिका' का अनुवाद नाटक : 'चोरधरा' (दे०), 'भोजन-विहार', 'दधि-मंथन', 'नृसिंह यात्रा', 'रामयात्रा'।

इनका सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ 'नामघोषा' है। इसमें कृष्ण नाम की महत्ता, भक्ति की श्रेष्ठता, गुरु-महिमा आदि का वर्णन कवित्वपूर्ण शैली में हुआ है। 'राजसूय' काव्य भी उत्कृष्ट है। 'बरगीतों' में ललित भाषा के माध्यम से कृष्ण की बाल-लीलाओं का सुमधुर वर्णन किया गया है। माधवदेव ने गीतों का ताल-राग और समय भी निश्चित किया है। गुरु शंकरदेव के समान इन्होंने भी नाटक रचे थे, जिनकी संख्या आठ है। इनका अभिनय होता था। इनके भी बरगीतों और नाटकों की भाषा व्रजबुलि है। इन्होंने 'रामायण' (दे०) का आदि कांड लिखकर माधव कंदली (दे०) की 'रामायण' में जोड़ा था। अपने इस कांड में इन्होंने वाल्मीकि-'रामायण' का अनुसरण नहीं किया है।

असमीया साहित्य में शंकरदेव के पश्चात् महत्वपूर्ण पद के ये ही अधिकारी कहे जा सकते हैं।

माधवराम शर्मा, जंमलमडक *(ते० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

श्री शर्मा तेलुगु एवं संस्कृत के प्रकांड पंडित एवं समालोचक तथा प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र के अधिकारी विद्वान और तत्संबंधी अनेक ग्रंथों के लेखक हैं। अनेक वर्षों से ये गुंटूर में तेलुगु के प्राध्यापक के रूप में कार्य कर रहे हैं तथा आंध्र प्रदेश साहित्य अकादेमी के सदस्य भी हैं।

'नवरसगंगाधरमु', 'ध्वनिसारमु', 'नाट्यवेदमु' आदि इनकी कुछ प्रमुख रचनाएँ हैं। तेलुगु के समालोचना-साहित्य की वृद्धि में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

माधवशर्मा, पाटिबंड *(ते० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

इनका जन्म कृष्णा जिले के तेलप्रोलु ग्राम में हुआ। तेलुगु में इन्होंने आंध्र विश्वविद्यालय से एम० ए० ऑनर्स की परीक्षा पास की। शर्मा जी सफल संपादक, प्राध्यापक तथा कुशल कवि एवं समालोचक भी हैं। कई वर्ष इन्होंने 'उषा' तथा 'वीणा' नामक साहित्यिक पत्रिकाओं का संपादन सुचारु रूप से किया। ये पत्रिकाएँ तेलुगु की कविता, कहानी तथा समालोचना में पर्याप्त योगदान देती रही हैं और इन विधाओं में ये नया मोड़ लाने का सफल प्रयत्न करते रहे हैं। तेलुगु के प्राध्यापक के रूप में विजयवाडा में कई साल रहने के बाद आजकल उस्मानिया विश्वविद्यालय में तेलुगु के रीडर-पद पर सुशोभित हैं। अनंतरकाल में उस्मानिया विश्वविद्यालय से 'महाभारतमु लोनि छंदःशिल्पमु' नामक विषय पर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। इनकी कृतियों में उल्लेखनीय हैं—1. 'चारुणी' (कविता), 2. राजशिल्पि' (उपन्यास)। 'राजशिल्पि' पर आंध्र विश्वविद्यालय का पुरस्कार इन्हें प्राप्त हुआ है।

माधवस्वामी रामायण *(म० कृ०)*

इसके दो रूप हैं—एक 'श्लोकबद्ध रामायण' और दूसरा 'ओवीबद्ध रामायण'। तंजौर (मद्रास) के कवि माधव स्वामी ने 1707 ई० में इसकी रचना की थी। मद्रास सरकार ने श्लोकबद्ध रामायण को ओरिएंटल सीरीज (1951) में प्रकाशित किया है। ओवीबद्ध रामायण की ओवी-संख्या है 18,975। ग्रंथ की भाषा सरल है, काव्य-रचना-पद्धति पर संत एकनाथ का प्रभाव है।

माधवाचार्य (बँ० ले०)

माधवाचार्य के वश नाम आदि के सबध में निर्विवाद रूप से कुछ कह सकना कठिन है। किन्ही के मत से ये विष्णुप्रिया (चैतन्य महाप्रभु की पत्नी) के भाई थे परतु अन्य मत इसके विपरीत है।

यह कहना अधिक समीचीन होगा कि ये नवद्वीपवासी एक भक्त कवि थे और चैतन्य महाप्रभु के किसी मुख्य भक्त के शिष्य अथवा अनुचर थे। इनकी प्रमुख कृति 'श्रीकृष्ण मगल' है। काव्य-रचना-काल भी सभवत सोलहवी शती का शेषार्द्ध है। कवि ने भागवत के दसवें स्कध को आधार बनाकर काव्य-रचना की है। अन्य स्कधो, महाभारत, हरिवश, विष्णु पुराण आदि से अनेक उपादान लेकर इस काव्य को उपादेय बनाया गया है।

ग्रथ न तो अक्षरश अनुवाद है, न भावानुवाद। मूल ग्रथ के भाव लेकर निज की भाषा मे रचना की गई है। ग्रथ की भाषा सरल एव प्रसाद गुण-युक्त है। 'श्रीकृष्ण मगल' काव्य को उत्कृष्ट काव्य की सज्ञा नही दे सकते। इससे कवि का परिपक्व लेखन प्रकट नही होता। कही-कही वर्णना मनोरम बन पडी है। अनेक प्रसगो मे 'व्रजबुलि' (दे०) के दर्शन होते हैं। किन्ही विद्वानो के मतानुसार 'चडीमगल' (दे०) के रचयिता माधवाचार्य हैं।

माधवानल कामकदला (गु० कृ०) [रचना-काल—सोलहवी शती]

मध्ययुगीन गुजराती साहित्य मे 'माधवानल कामकदला' की कथा इतनी लोकप्रिय रही कि इस नाम की एक से अधिक कृतियाँ—रास, पद्य-कथा आदि रूपो में—मिलती हैं। किंतु इनमे जैनेतर कवि गणपति-रचित 'माधवानल कामकदला' जिसे 'माधवानल कामकदला दोग्धक' भी कहते हैं, बहुत उल्लेख्य है।

दोहा छद मे रचित यह एक सुदर लोकवार्ता है। इसमे 2500 दोहे हैं।

विप्रलभ शृगार की इस रचना की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमे बारहमासा पद्धति पर पुरुष के (नायक के) विरह का सुदर व विस्तृत निरूपण किया गया है। रचना अलकार-प्रधान है। भाषा का स्वरूप अपभ्रश से प्रभावित है। वर्णन-शैली अपभ्रश परपरा की अनुवर्त्तिनी है।

माधवानल कामकदला (हि० कृ०) [रचना-काल—1583 ई०]

इसमे अकबर के समकालीन सूफी कवि आलम (दे०) ने माधवानल और कामकदला के पारस्परिक प्रेम की कथा प्रेमाख्यानक शैली मे सूफी प्रभाव के साथ वर्णित की है। आलम के अतिरिक्त जैसलमेर के वाचक कुशललाभ ने 'माधवानल कामकदला चरित्र' तथा गणपति ने माधवानल प्रबधदोग्ध बध' नामक रचनाओ मे इसी कथा का वर्णन किया है। कहते हैं कि 'गुरु-ग्रथ साहब' (दे० नानक, गुरु) के अतिम भाग मे दी हुई 'रागमाला' इनके ग्रथ 'माधवानल कामकंदला' का अश है। कवि ने कामकदला के नृत्य गान मे अपने सगीत-ज्ञान का विशेष परिचय दिया है। भाषा और विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से यह ग्रथ आलम की ख्याति का मुख्य स्तभ है। अन्य रीतिमुक्त कवियो (दे० रीतिमुक्त काव्य) की भाँति आलम मे प्रेम की पिपासा विशेष लक्षित होती है, पर जो तन्मयता और उत्सर्ग-भावना इनमे पाई जाती है वह इनके व्यक्तित्व की निजी विशेषता है और वही इनके काव्य का सही परिचय है। भिखारी दास (दे०) ने 'काव्य निर्णय' मे इन्हें रहीम (दे०) रसखान (दे०) और रसलीन (दे०) से पूर्व गिनाया है, सचमुच ही 'माधवानल कामकदला' कवि की अन्यतम कृति है, अपनी कोटि की अभूतपूर्व रचना।

माधविक्कुट्टि (मल० ले०) [जन्म—1932 ई०]

सुप्रसिद्ध अँग्रेज़ी कवयित्री कमलादास माधविक्कुट्टि के नाम से मलयाळम मे कहानियाँ लिखती हैं। वे प्रसिद्ध कवयित्री नालप्पाट्टु बालामणियम्मा की पुत्री और नालप्पाट्टु नारायण मेनन की भागिनेयी हैं। 'चुवन्न पावाटा', 'पक्षियुटे मणम्', 'एंटे स्नेहहिता अरुणा' आदि दस ग्रथो मे उनकी कहानियाँ सगृहीत हैं। इनका अँग्रेज़ी कविता-सग्रह 'समर इन कलकत्ता' बहुचर्चित है।

पाठक को चौंका देने की सामर्थ्य, जो आधुनिक कहानियो के रचना-शिल्प का एक मुख्य लक्षण है, माधविक्कुट्टि की कहानियो की विशेषता है। उच्च-मध्य वर्ग के निस्सार-निरर्थक जीवन का अर्थगर्भित चित्रण उनकी कहानियो मे दर्शनीय हैं। उनमे कुछ ऐसे मानसिक भावो और विचारो का प्रकाशन होता है जिनका हम अस्पष्ट रूप में अनुभव तो करते हैं परतु जिनको अभिव्यक्ति देने में असमर्थ रह जाते हैं।

मलयाळम के नयी पीढ़ी के कहानीकारों में माधविक्कुट्टि का स्थान अद्वितीय है।

माधवी *(त० पा०)*

माधवी तमिल के प्रसिद्ध महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम' (दे०) के प्रसिद्ध नारी पात्रों में से है। कवि इळंगोवडिहळ् (दे०) ने उसे नायक की प्रेयसी के रूप में चित्रित किया है। चात्तनार्-कृत 'मणिमेखलै' नामक महाकाव्य में यह नायिका मणिमेखलै की माँ के रूप में चित्रित है। 'शिलप्पदिकारम्' में माधवी को संगीत, नृत्य और शृंगार-कला में पटु नारी कहा गया है। नायक कोवलन् की प्रेयसी होते हुए भी यह उससे पत्नी का-सा व्यवहार करती है। कोवलन् के लौटकर अपनी पत्नी कण्णकि (दे०) के पास चले जाने पर वह अपने मन को यह कहकर शांत करने का प्रयत्न करती है कि 'वह दूसरे का पति है, उस पर मेरा अधिकार नहीं।' वेश्या-कुल में उत्पन्न होने पर भी वह वेश्यावृत्ति नहीं अपनाती। कोवलन् के चले जाने पर यह विधवा का-सा सादा जीवन व्यतीत करती है और उसकी मृत्यु पर बौद्ध भिक्षुणी बन जाती है। 'मणिमेखलै' महाकाव्य में माधवी आदर्श नारी के रूप में चित्रित है। अपनी माँ की इच्छा के विरुद्ध यह अपनी पुत्री को बौद्ध भिक्षुणी बना देती है क्योंकि इसकी दृष्टि में मणिमेखलै इसकी नहीं अपितु सती कण्णकि की पुत्री है।

कोवलन्-कण्णकि-संबंधी लोककथाओं में, लोक-नाटकों में माधवी का रूप धन-लोभी वेश्या का है। आज तमिल में माधवी के चरित्र को लेकर अनेक काव्य-कृतियाँ, निबंध, नाटक आदि रचे जा चुके हैं जिनमें प्रसिद्ध हैं— 'विधियो वीणैयो' (1957 ई०) (इस गेय नाटक में कोवलन् के कण्णकि के पास चले जाने पर माधवी की मनोदशा का विस्तृत वर्णन है) इलंगैयर्कोन् (दे०)-कृत 'माधवी मडंदै' (1958 ई०) (इस नाटक में माधवी के चरित्र को) तथा भारतीदासन् (दे०)-कृत 'मणिमेखलै वेण्बा' (1962 ई०) (इसमें मणिमेखलै एवं माधवी दोनों के चरित्रों को उभारा गया है)। 'शिलप्पदिकारम्' और 'मणिमेखलै' में यह दिखाया गया है कि माधवी वेश्या होते हुए भी आदर्श पत्नी के समान जीवन-यापन करती है। इन कृतियों में माधवी के चरित्र के माध्यम से जैन एवं बौद्ध धर्म की अधोपतित. के उद्धार की प्रवृत्ति की ओर संकेत किया गया है। परवर्ती कृतियों में माधवी के माध्यम से आदर्श नारीत्व का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।

माधवी कंकण *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1876 ई०]

रमेशचंद्र दत्त (दे० दत्त, रमेशचंद्र) द्वारा रचित 'माधवी कंकण' अपने युग का बहुत प्रसिद्ध नाटक है। शाहजहाँ के जीवन की अंतिम अवस्था में राज्यलोलुप पुत्रों के अंतर्विद्रोह एवं राष्ट्रविप्लव की ऐतिहासिक पट-भूमिका में इस पारिवारिक नाटक की रचना हुई है। लेखक ने एक ओर ऐतिहासिक घटनाओं का यथार्थ, तथ्यपूर्ण एवं सजीव चित्र उपस्थित किया है और दूसरी ओर चरित्रांकन में अपनी अपूर्व पारदर्शिता का परिचय दिया है। ऐतिहासिक घटना-चक्र का अंकन इतना सजीव हुआ है कि उस समय के भयानक राजनीतिक विप्लव की तरंगधारा हमारे हृदय को भी छू जाती है। रमेशचंद्र की लेखनी इतनी तीव्र एवं शक्तिशाली है कि हम भी उस वीरत्वपूर्ण गौरव-मय युग में जा पहुँचते हैं।

परिवेश-रचना के साथ-साथ लेखक ने चरित्र-चित्रण के प्रति भी विशेष ध्यान दिया है। चरित्र सृष्टि ही रमेशचंद्र का प्रथम एवं श्रेष्ठ कृतित्व है। बाल्य-प्रणय के स्मृति-निदर्शन के रूप में नायक ने अपनी प्रणयिनी को जो 'माधवी कंकण' पहना दिया था उसकी प्रणयिनी उसे वह वापस दे देती है और समस्त संपर्क छिन्न हो जाता है और पाठक का रसज्ञ हृदय विषाद की गहराइयों में डूब-कर रह जाता है।

माध्यमिक *(पा० पारि०)*

यह महायान (दे०)-शाखा का सर्वप्राचीन और सर्वाधिक प्रतिष्ठित सिद्धांत पक्ष है। इसका प्रवर्तन दाक्षिणात्य नागार्जुन ने किया था और अत्यधिक प्रतिष्ठित विचारकों द्वारा इसके प्रचार और प्रसार में योगदान दिया गया। प्रसिद्ध कवि अश्वघोष (दे०) इसी संप्रदाय के अनुयायी थे। भगवान बुद्ध ने व्यवहार-जगत् में मध्यम मार्ग का अवलंबन करने का उपदेश दिया था किंतु इस संप्रदाय में अस्ति और नास्ति के बीच मध्यम मार्ग का अवलंबन करने का उपदेश दिया जाता है। इसीलिए इसे माध्यमिक संप्रदाय की संज्ञा प्राप्त हुई है। बाह्य वस्तुओं की शून्यता का उपदेश करने के कारण इन्हें शून्यवादी भी कहा जाता है।

इस मत में ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान सभी को वस्तु-शून्य माना जाता है। रज्जु में सर्प असत्य है, वह ज्ञान असत्य है और उसका ज्ञाता मस्तिष्क भी इसीलिए असत्य

है। वस्तु का प्रारभ, परिसमाप्ति, विनाश, नित्यता, एकता, अनेकता, आना, जाना ये सब असत्य हैं। इस प्रकार इन लोगो के मन मे भौतिक जगत् भी वस्तु-शून्य है और मानसिक जगत् की भी सत्ता नही है जिस प्रकार स्वप्न जगत् मे मानसिक और भौतिक दोनो जगत् वस्तु-शून्य होते हैं। किंतु माध्यमिक सप्रदाय में केवल दृश्यमान जगत् की शून्यता स्वीकार की जाती है, इसके पीछे जो वास्तविकता अन्तर्हित है वह अनिवार्य है। 'भौतिक या स्वप्न जगत् है' यह नही कहा जा सकता क्योकि उसका तिरोभाव होता है, 'नही है' ऐसा भी नही क्योकि प्रतीत होता है, 'है और नही है' ये परस्पर विरोधी हैं, अत. यह सब मिथ्याभूत अनिर्वाच्य तत्त्व है जो एक-दूसरे के आधार पर टिका होने के सकारण कहा जा सकता है। सकारणता तथा निर्भरता ही वस्तु की शून्यता है। बाह्य जगत् की प्रतीति-सवृति सत्य है, जिसका बोध होता है इसके प्रतिकूल परमार्थ सत्य है जो कार्य-कारण रहित परम सत्य के रूप मे स्थित है। उस परम तत्त्व का ज्ञान निर्वाण (दे०) के लिए अनिवार्य है। परम तत्त्व भी अनिर्वाच्य है और निर्वाण मे उसकी अभिन्नता प्राप्त होती है। अनिर्वाच्यता के कारण ही कुछ ने इन विषयो पर विवाद करने का निषेध किया है।

माध्यमिक कारिका *(स० कृ०)* [रचना-काल—200 ई०]

नागार्जुन (दे०)-विरचित 'माध्यमिक कारिका' का वास्तविक नाम 'मूलमाध्यमिक कारिका' है। इसे 'शून्य-कारिका' भी कहते हैं। माध्यमिक कारिका का 'शून्य-कारिका' नाम इसलिए पडा है क्योकि इसमे शून्यवाद का प्रतिपादन किया गया है। नागार्जुन ने अपनी माध्यमिक कारिका पर एक टीका भी लिखी थी, जिसका नाम 'अकुतोभया' है।

'माध्यमिक कारिका' के अतर्गत 'मध्यमा प्रतिपत्' सिद्धात का प्रतिपादन किया गया है। इस सिद्धात के अनुसार जगत् की स्थिति सत् एव असत् के बीच की स्थिति है। दूसरे शब्दो मे नागार्जुन ने बाह्य जगत् को शून्य तथा अशून्य के मध्य की स्थिति कहा है। 'माध्यमिक कारिका' का शून्य 'अपर प्रत्यय' तथा 'शात' है। यह शून्य परिभाषाओ का विषय नही है। यद्यपि शून्य ही 'माध्यमिक कारिका' के अनुसार सत्य है, परतु शून्यता (शून्यधर्मता) की दृष्टि से युक्त जनो को 'माध्यमिक कारिका' मे असाध्य रोगी कहा गया है। इस प्रकार नागार्जुन के मतानुसार शून्य के दो अर्थ हैं—एक धर्म-रूप शून्य और दूसरा सत्य-रूप शून्य। इस प्रकार सत्य के उपासक साधक के लिए वस्तुओ की शून्यधर्मता का त्याग आवश्यक है।

जहाँ तक वस्तुओ की सत्ता का प्रश्न है शून्यवादी के मतानुसार समस्त वस्तुएँ अनुत्पन्न ही हैं। इस सबध मे शून्यवादी प्रतीत्यसमुत्पादवाद सिद्धात का प्रवर्तक है। इस सिद्धात के अनुसार वस्तुओ की उत्पत्ति प्रतीति मात्र है, वास्तविकता नही।

शून्यवाद के प्रतिपादन की दृष्टि से 'माध्यमिक कारिका' बौद्ध दर्शन का अद्वितीय ग्रंथ कही जा सकती है।

मान कवि *(हिं० लें०)*

इनका पूरा नाम मानसिंह था। इनका रचनाकाल—1677-1683 ई० तक रहा। ये विजयगच्छीय जैन यति थे तथा मेवाड के राजवंश से इनका संपर्क था। इनके जन्म-मरण-काल तथा जन्म-स्थान आदि के विषय मे कोई निश्चित प्रामाणिक सूचना नही मिलती। 'राजविलास' नामक वीररस-प्रधान काव्य इनकी महत्वपूर्ण रचना है, जिसमे 18 विलास हैं। इसमे मेवाड के महाराणा की वीरता एवं जीवन का चित्रण है। मान की कविता मे भाव-व्यजना की मार्मिकता तथा ध्वन्यात्मकता विशेष रूप से मिलती है। इन्होंने 'बिहारी-सतसई' (दे०) की एक पद्यबद्ध टीका भी लिखी है।

मान विजयम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1952 ई०]

'मान विजयम्' सूर्य नारायण शास्त्री (दे०)-कृत एक पद्यबद्ध ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक का नायक है वर्णक्कालिरुम्पोरै जो मान को प्राणो से बढकर मानता है और मानहानि होने पर प्राणो का त्याग कर देता है। इस नाटक का आधार है 'कळवलि नार्पद' नामक काव्यकृति और पुरनानूरु (दे०) मे प्राप्त वर्णक्कलिरुम्पोरै-कृत एक गीत। ईश-स्तुति से नाटक का आरभ होता है। इसके उपरात छह अको मे चेर-सम्राट् वर्णक्कलिरुम्पोरै, उनके मित्र एव गुरु कवि पोयगैयार, चोल-सम्राट् सेंगणान आदि से सबधित कथा वर्णित है। यह एक अभिनेय नाटक है। नाटक मे पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। नाटक मूलत अहवल छद में रचित है, कहीं-कहीं वेण्बा और विरुत्तप्पा छदो का प्रयोग दृष्टिगत होता है। पद्यबद्ध नाटक लिखने की प्रेरणा लेखक को समवतः शेक्सपियर से मिली है।

मानवीकरण (हि० पारि०)

साहित्य में अभीप्सित, सार्थक एवं प्रभावी अभिव्यक्ति के निमित्त प्रकृति के जड़ पदार्थों, ऐतिहासिक-पौराणिक घटनाओं, विचारों, भावों, आदि पर मानवीय चेतन- और क्रियाव्यापारों के आरोपण की प्रविधि को 'मानवीकरण' कहा जाता है। यह एक प्रकार का सादृश्य-विधान है जिसमें मानवेतर वर्ण्य-विषय के वैशिष्ट्य को उभारने के लिए कवि मनुष्य के तदनुरूप क्रियाकलापों और भावों का समानांतर निरूपण करता है। जिस प्रकार मानवीय सौंदर्य आदि विषयों के वर्णन में प्रकृति के अंगों का आरोप किया जाता है उसी प्रकार जड़ वर्ण्य को सक्रियता प्रदान करने और चैतन्य-रूप में मूर्तित करने के लिए मानवीकरण अत्यंत उपयोगी है। अमूर्त विषयों के मूर्तीकरण का भी यह एक अत्यंत सुलभ साधन है। मूलतः पाश्चात्य साहित्य में उपलब्ध अलंकार की यह प्रणाली कालिदास (दे०) आदि कवियों की जड़ पदार्थों को मानवीय रूपाकार में मूर्तित करने की प्रवृत्ति तथा काव्यशास्त्र में निरूपित 'उपादान लक्षणा' आदि में सहज ही देखी जा सकती है। हिंदी-कविता के कुछ उदाहरणों से इसका स्वरूप स्पष्ट हो सकता है: 'घूंघट खोल उषा ने झाँका' (जयशंकर प्रसाद), 'यह चंचल सपने भोले हैं' (महादेवी वर्मा)।

मानवीनी भवाई (गु० कृ०)

पन्नालाल पटेल (दे० पटेल) द्वारा रचित और और सर्वप्रथम 1947 में प्रकाशित 'मानवीनी भवाई' एक आंचलिक कालप्रधान उपन्यास है। 'भवाई' शब्द अभिधात्मक अर्थ (निम्न कोटि का नाटक) के अतिरिक्त 'संपत्ति' के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। पन्नालाल पटेल ने उपन्यास के रचना-काल के लगभग चार दशक पूर्व के ऐतिहासिक संदर्भ को उठा कर नये-पुराने युग के संधि-काल में गाँवों के बदलते हुए रूप को 'ढाकलिया' गाँव के माध्यम से और कालू-राजू की प्रणय-कथा को निमित्त बना कर लिपिबद्ध करने का प्रयास किया है। इस उपन्यास में काल-प्रवाह है। कथा गौण है। बालाभाई के बुढ़ापे में कालू नामक लड़का—आत्मकर्मी लड़का—पैदा हुआ। फूलीकाकी की कृपा से कालू की सगाई गलाभाई की लड़की राजू से हुई। गलाभाई, बालाभाई और फूलीकाकी के मरणोपरांत बालाभाई के भाई परमा के लड़के रणछोड़ और पत्नी माली की ईर्ष्या और द्वेष के कारण आयोजित षड्यंत्र की वजह से कालू का विवाह राजू के साथ न हो कर भली के साथ हो जाता है और राजू भली के काका के साथ उसी मुहूर्त में ब्याह दी जाती है। राजू की ससुराल निर्धन और पति बीमार है। कालू उसकी मदद करता है। राजू के दृढ़ स्वभाव और कालू के चेताने के कारण राजू रणछोड़ के छोटे भाई नानू के षड्यंत्र में फँसने से बच गई। इसी बीच 'छप्पनिया दुष्काल' पड़ा। अनावृष्टि हुई। आदमी बदल गया। गाँवों में चोरियाँ हुईं। भूख से आदमी दम तोड़ने लगा। भीलों को कच्चा माँस खाते देख कर कालू का हृदय द्रवित हो गया और ही भैंस को मारने के लिए अपनी ही तलवार दे कर घर चला आया। गाँव में लूट मची, कालू के पास हथियार होते हुए उसने सब कुछ लुट जाने दिया। गाँव वालों के लिए गाँव में से गुजरती हुई अन्न से भरी हुई गाड़ियों को लूटते समय कालू अपना एक हाथ खो बैठा। भूख से पीड़ित लोग शहरों की ओर भागे—मिली पेट की अथाह भूख और बंदूक की गोलियाँ। सुंदरजी सेठ की समझदारी से महाजनों ने सदाव्रत खोले। पर कालू के स्वाभिमान ने (अपने द्वारा दिया गया अन्न भीख में कैसे माँगा जाय!) भीख माँगने से इनकार कर दिया। सेठ के समझाने पर कालू ने चावल तो ले लिये पर उन्हें मन पचा न सका। राजू को छोड़ कर सभी कालू की उपेक्षा करने लगे। एक दिन कालू-राजू दोनों मरने की कामना ले कर घर से निकल पड़े। कालू एक पेड़ के नीचे दम तोड़ने की स्थिति में आ गया। गला सूखने लगा। राजू ने अपना आँचल हटा कालू को अपना दूध पिला दिया। इतने में बादल घिर आए और बूँदें पड़ने लगीं। कालू की खोई हिम्मत पुनः लौट आई। राजू को भी लगा कि यम तो क्या अगर यमराज भी आ जाएँ तो भी उनकी शक्ति नहीं कि कालू को मार सकें। इस कथा के बीच-बीच में कालू और राजू के मौन प्रणय के सूत्र बुने हुए हैं संपूर्ण कथा पूर्वदर्शक पद्धति में कही गई है। इस कथा में लेखक ने काल के विस्तृत फलक पर जीवन के मधुर और तीखे चित्रों को अंकित करने का सफल प्रयास किया है।

मानसिंह कालिदास, पं० (पं० ले०) [जन्म—1865 ई०; मृत्यु—1944 ई०]

इनका जन्म गुजराँवाला (अब पाकिस्तान) में हुआ। ये ब्राह्मण-वंशीय थे। इनके पूर्वज अयोध्या-वासी थे। पिता का नाम था पं० जयदयाल। इन्हें उर्दू, फ़ारसी,

सस्कृत तथा हिंदी-साहित्य का अच्छा ज्ञान था। बीसवें वर्ष मे काव्य-रचना का आरभ किया। ये प्रधानतया किस्सा-लेखक थे। प्रसिद्ध किस्सा-रचनाएँ (1) रूप बसत, (2) राजा हरिश्चद्र, (3) पूर्णभगत, (4) गोपीचद, (5) राजा रसालू एव किस्सा प्रह्लाद-भगत। 'रामायण' (दे०) महाकाव्य दोहा छद मे लिखा। यह महाकाव्य वाल्मीकि एव तुलसी से प्रभावित है। इनकी भाषा पजाबी परतु हिंदी सस्कृत शब्दावली से प्रभावित है।

इनकी विशेष रुचि किस्सा-कथन मे थी परतु मनोरजन की अपेक्षा आचार-विचार एव धार्मिक प्रेरणा से साहित्य लिखा है। कवि की निजी उक्ति है—'मैंने इन किताबों के जरिये से इलावा इखलायक के इखलाक और नीतिशास्त्र, ब्रह्म विद्या की तालीम का उपदेश दिया है।' काव्य शैली वर्णनात्मक-परपरागत है। ये महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र महाराजा शेरसिंह के प्रतिष्ठित दरबारी कवि भी रहे।

मानसी *(अ० कृ०)* [रचना-काल –1942 ई०]

नीलमणि फुकन (दे०) के इस काव्य-सग्रह मे कवि की सौंदर्य-पिपासा का परिचय मिलता है। इसमे रहस्यवादी दर्शन भी है। कवि अपनी रचनाओ मे बौद्धिक एव अतीद्रिय सौंदर्य की खोज करता है। 'अरूपर रूप', 'मानस-प्रतिमा', 'तुमि कोत' आदि सुदर कविताएँ हैं।

माप्पिळा कटत्तिल्, वर्गीस *(मल० ले०)* [जन्म—1858 ई०, मृत्यु—1904 ई०]

भारतीय भाषाओ मे पत्रकारिता के क्षेत्र मे एक प्रात स्मरणीय नाम कटत्तिल् वर्गीस माप्पिला का है। वर्गीस माप्पिळा ने अपना सपूर्ण जीवन पत्रकारिता और सगठित साहित्यिक प्रयासो के प्रति समर्पित कर दिया था। 1881 ई० मे उन्होने एक गुजराती उद्योगपति को प्रेरणा देकर मलयाळम का प्रथम राजनीतिक-साहित्यिक दैनिक पत्र केरलमित्रम्', निकलवाया और स्वय उसके सपादक बने। 1890 ई० मे उन्होने 'मलयाळम मनोरमा' का प्रकाशन आरभ किया। 1892 ई० मे भाषापोषिणी सभा की स्थापना की और बाद मे 'भाषापोषिणी' मासिक का भी प्रकाशन शुरू किया। सर्जनात्मक साहित्य मे भी उनका योगदान रहा है। बाइबिल की एक कथा पर आधारित उनका नाटक 'एन्नायक्कुट्टी' पाश्चात्य विधाओ के अनुरूप रचित प्रथम मलयाळम नाटक है। शेक्सपियर के नाटक 'टेमिंग ऑफ् द श्रू' का उन्होने 'कलहिनीदमनकम्' के नाम से अनुवाद किया है।

वर्गीस माप्पिळा द्वारा स्थापित 'मलयाळम' मनोरमा का केरल की शिक्षा की उन्नति मे स्तुत्य योगदान रहा है भारतीय भाषाओ के पत्रो मे आज भी इसका स्थान बहुत ऊँचा है। भाषापोषिणी सभा की वे जान थे। केरलवर्मा वलिय कोयित्तपुरान (दे०), कुञ्ञिक्कुट्टन (दे०) तपुरान् आदि महारथियो का सहयोग प्राप्त करके उन्होने इस सभा के माध्यम से काव्य प्रतियोगिताएँ चलाई और नयी प्रतिभाओ को ढूंढ निकाला। भाषा और साहित्य के इस अनन्य सेवक के प्रयत्नो से उन्नीसवी शती के अत मे मलयाळम-साहित्य को नयी स्फूर्ति प्राप्त हुई। साहित्य के इतिहास मे इनका स्थान अद्वितीय है।

माप्पिळा के० सी०, मामन *(मल० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1953 ई०]

मलयाळम के सुप्रसिद्ध पत्रकार। कटत्तिल् वर्गीस माप्पिळा (दे०) द्वारा सस्थापित 'मलयाळम मनोरमा' का प्रकाशन उनके देहात के बाद इस उत्साही पत्रकार ने अपने हाथो मे लिया और उसे और अधिक उत्कर्ष एव प्रभावात्मकता प्रदान की। साहित्यिक और सास्कृतिक आदोलनो को इन्होंने सदा प्रोत्साहन-समर्थन दिया। ये स्वतत्रता सैनिक और प्रमुख उद्योगपति भी थे। इनके प्रकाशनो मे इनकी आत्मकथा के अश प्रमुख हैं।

मामा वरेरकर (मा० वि० वरेरकर) *(म० ले०)* [जन्म—1883, मृत्यु—1964 ई०]

मामा वरेरकर की ख्याति स्त्री-स्वातत्र्य के पक्षधर के रूप मे है। अपने नाटको तथा उपन्यासो—दोनो मे इन्होंने समसामयिक सामाजिक एव राजनीतिक विषयो—विधवा विवाह, तलाक, ग्राम सुधार, मिल जीवन, शराब-बदी आदि को अपनाया है। 'विधवा कुमारी' मे यदि विधवा की समस्या पर लिखा गया है तो 'धावता धोटा' मे मिल मजदूरो की समस्या पर। इनकी कृतियो की नायिकाएँ—मयू, बिजली, गोदू, वेणू आदि ऐसी अत्यत तेजस्विनी, प्रगतिशील, आत्मनिर्भर, कर्मठ एव दृढ स्त्रियाँ हैं जो उत्पीडित नारी के लिए आदर्श एव प्रेरणा का कार्य

करती हैं। इनके उपन्यासों के विषय सामयिक महत्व के थे, अतः उनका स्थायी महत्व संदिग्ध ही है। शरत् (दे० शरच्चंद्र) के बँगला कथा-साहित्य के अनुवाद करने का श्रेय भी इन्हें है। उपन्यास-शिल्प की दृष्टि से इन उपन्यासों में कतिपय दोष भी हैं—उनके नायक-नायिकाएँ। नायिकाओं के माता-पिता एक-से हैं। इनके कथानक त्रिकूट के चारों ओर केंद्रित हैं और अंत में विशृंखलित, अविश्वसनीय और प्रभावहीन हो जाते हैं। पर पलायनवाद और स्वप्नरंजन के युग में यथार्थ की पताका फहराने, तेजस्वी स्त्री-पात्रों की सृष्टि करने, विचार-प्रधान उपन्यास का मराठी में श्रीगणेश करने के कारण मामा वरेरकर का महत्व अक्षुण्ण है।

मुख्य ग्रंथ—उपन्यास : 'चिमणी', 'विधवा कुमारी' (दे० मधू), 'धावता धोटा', 'गोदू गोखले' भाग 1-2, 'कुलदैवत', 'फाटकी वाकळ', 'शिपायाची बायको'।

नाटक : 'सोन्याचा कळस' (दे०), 'भूमिकन्या सीता' (दे०) आदि।

मामूँ (उ० कृ०)

'मामूँ' फ़क़ीर मोहन सेनापति (दे०) का सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास है। ओड़िशी-जीवन का सहज स्वाभाविक रूप इसमें उभरकर आया है। गण-जीवन की अकृत्रिम झाँकी अपने कोमल-कठोर रूप में हमें मुग्ध कर लेती है। व्यक्ति-मानस की जटिलताओं का सफल उद्घाटन हुआ है। कथावस्तु, परिवेश, चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली आदि सभी दृष्टियों से उपन्यास का ओडिशीपन हमें मुग्ध कर लेता है।

मामूलनार (त० ले०) [समय—प्रथम शती ई०]

ये तृतीय संघ के सदस्य थे। 'तोलकाप्पियम्' (दे०) (लक्षण-ग्रंथ) के व्याख्याता—'नच्चिनारक्किनियर्' ने लिखा है कि ये महर्षि अगस्त्य के गोत्रज थे और त्रिकालज्ञ योगी थे। इनके 31 पद्य संघकालिक संकलनों में प्राप्त होते हैं। इनकी रचना की एक विशेषता है—अपने समय की प्रसिद्ध कई राजनीतिक या सामाजिक घटनाओं का उल्लेख; दूसरी विशेषता है—अत्यंत मनोहारी विरह-वर्णन। इनकी रचनाओं से पता चलता है कि महाराज चंद्रगुप्त का पुत्र 'तुलु' था, जिसने 'तुलु-प्रदेश' का निर्माण किया था (जो कर्णाटक का एक भाग है)। इनकी रचनाओं से ज्ञात होने वाले कुछ तथ्य हैं—महाभारत का युद्ध जब हुआ था, तब कौरव तथा पांडव दोनों की सेना के लिए 'उदियञ्चेरल्' नामक पांडव राजा ने रसद भेजी थी और प्रभूत मात्रा में चावल भेजा था। प्रसिद्ध चोलराजा करिकाल से युद्ध में परास्त 'पेरुम्चेरल्आदन्' अपनी पीठ पर घाव लग जाने से लज्जित होकर उत्तराभिमुख होकर युद्ध-रंग में बैठ गया था और अनशन कर उसने प्राण त्याग दिए थे। 'मत्ति' नामक राजा ने अपने द्वारा परास्त एक अन्य राजा के दाँत उखड़वा दिए थे और अपने प्रासाद के एक किवाड़ में उन्हें जुड़वा दिया था। इसी प्रकार उस समय के अनेक दुर्गों तथा राजाओं का वर्णन इनकी रचनाओं में प्राप्त होता है।

मायन् (मल० पा०)

यह उरूब (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'उम्माच्चु' (दे०) का मुख्य पुरुष पात्र है। यह उम्माच्चु से विवाह करना चाहता है, पर असफल रहता है। यह कुशलतापूर्वक उम्माच्चु के पति की हत्या करता है, पर जब कई साल बाद इसको यह पता लग जाता है कि मृतक और उम्माच्चु का पुत्र बालक अब्दु इसके अपराध का साक्षी था तो यह विह्वल होकर आत्महत्या कर लेता है।

यह एक सत् पात्र है। अपनी प्रेमिका के प्रति अपना कर्तव्य निभाने के लिए यह नर-हत्या भी करता है, पर इसका अंतःकरण इस पाप को सह नहीं सकता। इसका पाप-बोध एक समय तक प्रसुप्त रहता है और समय पाकर इसकी जान भी ले लेता है। इसके चरित्र को मनोवैज्ञानिक रूप से विकसित करने में उरूब को पूरी सफलता मिली है।

माया (उ० पा०)

माया श्रीमती बसंतकुमारी पटनायक (दे०) के उपन्यास 'अमड़ाबाट' (दे०) की प्रधान स्त्री-पात्र है। इसके चरित्र के माध्यम से लेखिका ने बताया है कि नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व व स्वच्छंद व्यवहार को परंपरा से सर्वथा भिन्न देखकर, उसके प्रति किसी भी प्रकार की भ्रांति या दुर्भावना नहीं होनी चाहिए। अंततोगत्वा उसकी विचारशीलता व नारी-सुलभ भावनाएँ ही उसके चरित्र का निर्माण करती हैं।

माया इकलौती पुत्री व अकेली बहिन होने के कारण अत्यत लाडली है, फलत निर्द्वंद्व व जिद्दी है। लोग इसके बाह्य व्यवहार को देखकर इसके सबध मे गलत धारणा बना लेते हैं। इसकी उच्च शिक्षा से इस भ्राति को और बल मिलता है। इसे मर्दानी कहा जाने लगता है। इसके उन्मुक्त व्यवहार के कारण लोग वितृष्णा से मुँह मोड लेते हैं। इसके अत सौंदर्य, भव्य भावो और उच्च मानवीयता के प्रति कोई ध्यान नही देता। माता-पिता उसके विवाह को लेकर चिंतित रहते हैं।

माया की सुशिक्षिता, व्यवहारकुशला और सुदरी भाभी यद्यपि इसे शिक्षा लेने की ताडना देती रहती है, तथापि उसकी कृत्रिम शिष्टता, नकली सेवापरायणता, छलनामयी ममता, कुटिल बुद्धि अधिक दिनो तक इस दिखावे की ओट मे छिप नही पाती। उसका सच्चा रूप विवाह के कुछ दिनो बाद ही प्रकट हो जाता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य के प्रति असहिष्णु रहकर वह अपने पति के साथ अलग हो जाती है।

शशिभूषण की माँ की पारखी दृष्टि माया के भव्य गुणो को पहचान लेती है और कुलवधू के रूप मे सप्रेम ले जाती है। इसके पति शशिभूषण ने वकालत पास की है, किंतु वह निर्धन है। विदाई के समय माँ ने इसे शिक्षा दी थी कि 'वधू का धर्म निबाहना'। ससुराल मे यह अपने ममत्वपूर्ण व्यवहार त्याग एव सेवा से सुख-शाति की वर्षा कर देती है। रुग्ण मातृ तुल्य सास की सेवा लगन व श्रद्धा से करती है। उनके उपचार के लिए अपने आभूषणो को सहर्ष बेच देती है।

सास की गभीर स्थिति मे मरणासन्न पिता की इसे देखने की अतिम इच्छा का पत्र मिलता है। इसे दुविधा मे छोड यही पर उपन्यास समाप्त हो जाता है। यह औत्सुक्यपूर्ण अत मे इसके चरित्र-विश्लेषण का अवसर पाठक को दे देता है। माया अवश्य ही माँ को दिए अपने वचन को पूरा करेगी और वधू का धर्म निबाहेगी।

माया (मल० कृ०) [रचना-काल—1961 ई०]

यह के० सुरेंद्रन (दे०) का सामाजिक उपन्यास है। इसका मुख्य पात्र डीसट शकर पिळ्ळा अपनी निम्न आर्थिक स्थिति को कठोर यत्न के द्वारा सुधारता है और अपनी सतात की भलाई के लिए उन्ही को मोहरे बनाकर विचित्र खेल खेलता है। अपनी सुचिंतित योजनाओ को अपनी ही सतानो के हाथो ढहाए जाते देखकर शकर पिळ्ळा टूट जाता है और आत्महत्या कर लेता है।

इस उपन्यास मे डीसट शकर पिळ्ळा का चरित्र चित्रण सुदर हुआ है। उसकी महत्वाकाक्षा और इच्छा-शक्ति प्रबल है। परतु मानवीय सबधो का बलिदान देकर बनाई गई योजनाएँ प्रकृति भी सहन नही कर सकती। यही शकर पिळ्ळा पराजित हुआ। इस इतिवृत्त के प्रभावशाली प्रस्तुतीकरण मे सुरेंद्रन सफल हुए हैं।

मायादेवी (उ० कृ०)

डा० नीलकठ दास (दे०) का यह काव्यग्रथ 'मायादेवी' काव्य भारतीय नारीत्व की गौरव-गाथा है। नारी के उज्ज्वल व्यक्तित्व एव भव्य त्याग का स्मारक है —ज्योतिर्मदिर 'कोणार्क'। नारी भी जीवन-उदधि मे उत्सर्गित प्रेम-मदिर है, जहाँ से रश्मि-रेखाएँ विकीर्ण होती हैं। अर्ध मानवी और अर्ध देवी के रूप मे चित्रित मायादेवी नारी-जगत् की विभूति है।

राधानाथ राय (दे०) के प्रणयमूलक काव्यो मे जो प्रणयचित्र उपलब्ध हैं, वे भारतीय परपरा एव जीवनादर्श के सर्वथा विरोधी हैं। 'मायादेवी' काव्य राधानाथ को यथोचित प्रत्युत्तर है।

उत्कल नरेश अनतभीम देव के पुत्र नरसिंह देव का परिचय शिशुपालगढ की राजकुमारी मायादेवी (दे०) से दस्युदमन का कार्य करते हुए होता है। समय के अतराल मे वह प्रणय मे बदल जाता है। नरसिंह देव मायादेवी को विवाह की प्रतिश्रुति देकर लौट आते हैं। इस घटना से अनभिज्ञ पिता जबू राजकुमारी से उनका विवाह निश्चित कर देते हैं। वस्तुस्थिति स्पष्ट होने पर दोनो धर्म-सकट मे पड जाते हैं। उपाय न देखकर नरसिंह देव सारी बातें मायादेवी को बताते हैं। मायादेवी सहर्ष अपनी स्वीकृति ही नहीं देती है, साथ ही पुत्र के रूप मे पितृवचन की रक्षा का कर्तव्य-बोध भी उन्हें कराती है। अत मे जबूकुमारी की सेवा कर अपने को कृतार्थ कर लेन की इच्छा भी प्रकट करती है।

अनग भीमदेव की मृत्यु के पश्चात् नरसिंह देव का विवाह जबू राजकुमारी से हो जाता है। नरसिंह देव उन्हें मायादेवी के बारे मे पूरी बातें बता देते हैं और उन्हें बडी बहन के रूप मे ले आने को कहते हैं। नरसिंह देव जल-दस्यु दमनाथ ताम्रलिप्त जाते हैं एव जबू राजकुमारी मायादेवी को लाने के लिए भी दोनो परस्पर के व्यवहार

से मुग्ध होती हैं। किंतु जंबू राजकुमारी द्वारा आलिंगन करते समय मायादेवी की मृत्यु हो जाती है। एक संदूक में उनके शव को रखकर नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है।

नरसिंह देव वापस आने पर मायादेवी की मृत्यु से अत्यंत दुःखी होते हैं। वह संदूक बहता हुआ मित्रवन (कोणार्क) में लगता है। मायादेवी के अतींद्रिय प्रेम का उज्ज्वल स्मारक है आज का कोणार्क।

परिशिष्ट में कवि ने इस आदर्श प्रेम-गाथा को दैविक स्वरूप देकर उसे रहस्यमय बना दिया है। नरसिंह देव सूर्य एवं मायादेवी तथा जंबू कुमारी उनकी पत्नी छाया एवं सवर्ज्ञा बताई गई हैं। पूर्व अभिशाप के कारण माया-देवी जंबू राजकुमारी के शरीर में लीन होकर स्वर्ग को लौट जाती है।

काव्य की मौलिकता तथा नवीनता असंदिग्ध है। भावों की दीप्ति, प्रकृति की मनोहर छटा, भाषा का अभिव्यंजना-लालित्य, चरित्रचित्रण की अपूर्व भंगिमा आदि गुण काव्य को मनोहारिता प्रदान करते हैं।

मायादेवी *(उ० पा०)*

मायादेवी डा० नीलकंठ दास (दे०) के 'माया-देवी' (दे०) काव्य की नायिका है। यही अर्द्धदेवी तथा अर्द्धमानवी है। इस काव्य की कथावस्तु द्वादश व त्रयोदश शती की एक किंवदंती पर आधृत है। इस काव्य में माया देवी के दुग्ध-धवल व्यक्तित्व पर कवि ने रहस्यमयता का झीना अवगुंठन डाल कर उसे और भी सुंदर बना दिया है। प्रेम की ऊष्मा और त्याग की शीतलता ने इसके व्यक्तित्व को धरती की मनोज्ञता और स्वर्ग की दिव्यता दोनों ही प्रदान की हैं।

मायादेवी भुवनेश्वर समीपवर्ती शिशुपालगढ़ की एक निर्धन सामंत-कन्या है। दस्यु-दमनार्थ गए नरसिंह देव के साथ इसका आकस्मिक रूप से परिचय होता है जो बाद में प्रणय में बदल जाता है। इस घटना से अनभिज्ञ पिता अनंग भीमदेव, जंबूदेश की राजकुमारी के साथ नर-सिंह देव का विवाह-संबंध निश्चित कर देते हैं। नरसिंह देव को अपने पिता के इस कार्य का ज्ञान नहीं है। पिता पुत्र पर अपनी इच्छा थोपना नहीं चाहते; अतः अंतिम निर्णय पुत्र पर छोड़ देते हैं। इधर पुत्र सत्यभ्रष्ट, उधर पिता सत्यभ्रष्ट। भीषण आत्मग्लानि के साथ नरसिंह देव समस्त वृत्तांत मायादेवी को बताते हैं। मायादेवी निरुद्विग्न रूप से अपने सुख का त्याग करने को प्रस्तुत हो जाती हैं।

विवाह के तुरंत बाद युवराज को ताम्रलिप्त के जलदस्युओं के दमन के लिए जाना पड़ता है। जाते समय उसका युवराज्ञी को स्पष्ट निर्देश होता है कि वह अविलंब मायादेवी से साक्षात्कार कर उसे बड़ी बहन का सम्मान दे। परंतु मिलते ही इसकी मृत्यु हो जाती है और इसके मृत शरीर को सुंदर संदूक में बंद कर दया नदी में बहा दिया जाता है। नरसिंह देव के वापस आने तक संदूक बहता हुआ 'मित्रवन' या कोणार्क में आकर लगता है। कवि के अनुसार कोणार्क इसी स्मृति का तुलनात्मक स्मारक है।

अंत में दैवी शक्ति का आश्रय लेकर कवि ने मायादेवी के चरित्र को रहस्यमय बना दिया है—पूर्व जन्म के सूर्य एवं छाया ही इस जन्म में नरसिंह देव एवं माया-देवी हैं। इसे स्वार्थ अभिमान और विलास-वासना छू तक नहीं गई है—केवल प्रेम के लिए वह त्याग करती है और त्याग के लिए प्रेम।

मायाधर मानसिंह, डा० *(उ० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

सबुज-साहित्यिकों के प्रायः समसामयिक डा० मायाधर मानसिंह में सबुज-साहित्य (दे०) चेतना से एक बहुत बड़ा व्यतिक्रम परिलक्षित होता है, जो इनके 'पर धर्म' निबंध से स्पष्ट है। इसी व्यतिक्रम में मानसिंह की रचनात्मक मौलिकता अंतर्निहित है। उड़िया-साहित्य में मानसिंह का आगमन सबुज-साहित्य से एक नये मोड़ की सूचना देता है। विगत अर्द्धशती से उड़िया-साहित्य को मानसिंह ने *काव्य, नाटक, समीक्षा, निबंध, इतिहास आदि* का विपुलदान दिया है। इनकी चेतना समस्त मानवता की मुक्ति का संधान करती रही है।

स्निग्ध प्राकृतिक परिवेश से मंडित बदला (पुरी) में इनका जन्म हुआ था। उसके चित्रमय सौंदर्य को कवि ने तरुणाई की तरलता देकर चित्रित किया है। प्रणय, सौंदर्य, स्वदेशानुराग और मानवतावाद को इनके काव्य में सरस अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। 'मसल व ऐंद्रिय प्रेम नूतन-अभिव्यंजना-शैली में थिरक उठा है। इनके साहित्य में एक ओर मध्ययुगीन इतिहास पुनर्जीवित हो उठा है, और दूसरी ओर वियोग की आशा-आकांक्षा को भी वाणी मिली है।

अब तक इनकी 25 रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें 'कमलायन' (दे०) काव्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण

है। इसमे इस युग का जीवन बोध एव मानव-वेदना का बृहत्तर चित्र मिलता है। काव्य के समान गद्य के क्षेत्र मे भी मानसिह का योगदान महत्वपूर्ण है। उडिया गद्य-साहित्य के विकास मे मानसिह का निबध आलोचनात्मक साहित्य अपने सत्य और सौंदर्य के लिए अविस्मरणीय रहेगा।

मायामरीया रणुवार गीत *(अ० कृ०)*

यह ऐसा असमीया बैलेड है जो बहुत प्राचीन नही है। इसमे मायामरीया लोगो को विद्रोह के लिए उत्तेजित किया गया है।

मायावी *(त० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

ये तमिल के उन अर्वाचीन लेखको मे हैं जो उपन्यास, लघुकथा आदि सृजनात्मक लेखन मे यशस्वी हो चुके हैं। *'मायावी'* इनका *उपनाम* है और एस० के० रामन् वास्तविक नाम है। बबई आदि शहरो मे तमिल प्रदेश के बाहर रहने वाले तमिलभाषी लोगो के जीवन पर आधारित रोचक कथाओ का लेखन इनकी मुख्य विशेषता है। ये स्वय बबई के रहने वाले हैं। 'कलैमहल्', 'आनतविकटन्' आदि लोकप्रिय पत्र-पत्रिकाएँ इनके लेखन के लिए स्थान देती आई हैं। इनके कुछ प्रकाशन ये हैं—'मरमलर्च्चि', 'वाटामलर्' 'चन्तिरकिरकणम्' (तीनो उपन्यास), 'अकति', 'चामुण्टियिन्चापम्' (दोनो लघुकथा-सग्रह), 'इळमैयिन कुरल्' (नाटक) इत्यादि। 'तमिल वळर्च्चिक्कलम्' नामक साहित्य-सस्था द्वारा इनका 'वाटामलर्' नामक उपन्यास 1953 ई० मे पुरस्कृत हुआ था। 'अन्पिन् ओळि' नामक उपन्यास 'कलैमहल्' पत्रिका मे धारावाहिक रूप मे प्रकाशित होकर जनप्रिय सिद्ध हुआ था।

मारना *(ते० ले०)* [समय—तेरहवी-चौदहवी शती ई०]

ये 'कवित्रय' के तिक्कना सोमयाजी (दे०) के शिष्य थे। इनकी प्रमुख रचना 'मार्कंडेयपुराणमु' है जो सस्कृत मूल के अनुवाद-रूप मे लिखा गया आठ सर्गो का विशालकाय काव्य है। यह धर्म-प्रतिपादक काव्य है। इसमे अनेक धार्मिक तथा आध्यात्मिक कथाएँ सम्मिलित की गई हैं।

इस काव्य की रचना के उपरात लिखे गये 'हरिश्चद्रोपाख्यानमु' (दे०), 'मनुचरित्रमु (दे०) आदि कई विख्यात तेलुगु प्रबधकाव्यो की कथा-वस्तु इसी मार्कंडेयपुराणमु' से ली गई है। इस काव्य की रचना प्रौढ तथा मनोरम है। कवि ने अपने गुरु तिक्कना सोमयाजी की शैली का अनुकरण करने का यत्न किया है। अत इनके काव्य मे अनुवाद की कृत्रिमता का आभास नही होता।

मारार, कुट्टिकृष्ण *(म० ले०)* [जन्म—1900 ई०; मृत्यु—1973 ई०]

ये मलयाळम के शीर्षस्थानीय समालोचक हैं। इन्होने अपने जीवन का काफी अश महाकवि वळ्ळत्तोळ (दे०) के सहयोगी के रूप मे बिताया था। इस बीच 'केरल कला मडलम्' मे ये कथकली के विद्यार्थियो के साहित्याध्यापक भी रहे थे। अत मे ये 'मातृभूमि' पत्रिका मे कार्य करके सेवा निवृत्त हुए।

मारार की समालोचनाओ का सग्रह 'कला जीवितम् तन्ने' केंद्रीय साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत है। 'राजाकणम्' (दे०), 'चर्चायोगम', 'दत्तगोपुरम्' आदि अन्य निबध सग्रह हैं।' साहित्यभूषणम्', 'वृत्तशिल्पम्' (दे०), 'मलयाळशैली' आदि इनके साहित्यशास्त्रीय लक्षण-ग्रथ हैं। कालिदास (दे०) के तीनो महाकाव्यो और 'शाकुतलम्' (दे० अभिज्ञान शाकुतलम्) नाटक के व्याख्या-सहित अनुवाद भी मारार ने प्रस्तुत किए हैं।

मारार कला को जीवन से अभिन्न मानते हैं। ये पाश्चात्य और पौरस्त्य दोनो पद्धतियो की समालोचना मे सिद्धहस्त हैं। इनकी कृतियो मे इन दोनो का समुचित सम्मेलन दर्शनीय है। 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) के विभिन्न पात्रो और प्रसगो का सूक्ष्म विश्लेषण करके इन्होंने अनेक नूतन मतो की स्थापना की है। वळ्ळत्तोळ, आशान् जैसे कवियो की रचनाओ का आस्वादन मारार की समालोचना के प्रकाश मे ही पूर्ण होता है। इनके मत मे उत्तम समालोचना मे समालोचक के व्यक्तित्व का प्रकाशन मुख्य है और निष्पक्षता का दावा ढोंग है।

सशक्त समालोचक, भारतीय कवियो के मूल्याकन और साहित्यशास्त्री के रूप मे मलयाळम मे इनका स्थान अद्वितीय है।

मारी हकीकत *(गु० कृ०)* [रचना-काल—1866 ई०]

गुजराती गद्य के जनक व आधुनिक युग के प्रवर्तक कविवर नर्मदाशंकर (दे० नर्मद) की यह आत्मकथा है। इसकी कुछ मुद्रित प्रतियाँ कवि ने अपने मित्रों को इस सूचना के साथ दे रखी थीं कि कवि की मृत्यु के बाद, इसमें वर्णित कुछ पात्रों के न रहने पर इसे प्रकट किया जाए।

'नर्मगद्य' (दे०) भा० 2 के पृ० 60 से 132 तक में प्रकाशित इस आत्मकथा के आधार पर 1887 ई० में स्व० नवलराम पंड्या (दे०) ने 'कवि-जीवन' लिखा। 'गुजराती' पत्र के संपादक इच्छाराम देसाई की इच्छा इस आत्मकथा को प्रकाशित करने की थी, जो उनके पुत्र नटवर लाल देसाई ने 'नर्मद शताब्दी वर्ष' 1933 ई० में पूर्ण की। संपादक ने इस आत्मकथा को अध्याय, शीर्षक, उपशीर्षक देकर मूल को अधिक सुपाठ्य बना दिया। इसमें प्रारंभ में संपादक ने नर्मद-दलपत-मिलन प्रसंग जोड़ दिया है। इस आत्म-वृत्तांत में नर्मद-जन्म (1833) से लेकर सितंबर 1866 तक (अर्थात् 33 वर्षों की) की घटनाएँ निरूपित हैं। नर्मद का जन्म 1833 ई० में और मृत्यु 1886 ई० में हुई।

दस अध्यायों व 94 पृष्ठों में प्रकाशित इस आत्मकथा के प्रथम विराम (अध्याय) में नर्मद ने अपने जन्म, गोत्र व जाति का परिचय दिया है। औक्ष्णस गोत्र में उत्पन्न, वडनगरा नागर नर्मद के पिता लालशंकर दवे बड़े परिश्रमी, उद्यमी व पुत्र-प्रेमी थे। नर्मद की माँ का नाम नवदुर्गा (ससुराल में रुक्मिणी) था। दूसरे विराम में बचपन, तीसरे में शिक्षारंभ का वर्णन है। नर्मद ने पाँच वर्ष की अवस्था में बंबई में नाना मेहता की पाठशाला में अक्षरारंभ किया था। आठवें वर्ष में उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। चौथे विराम में नर्मद के कौमार-काल तथा उच्चशिक्षा का वर्णन है। पाँचवें विराम में अध्यापकीय जीवन के प्रारंभ की कथा है। छठे विराम में नौकरी छोड़ कर इनके पुनः बंबई कालेज में पढ़ने चले जाने का वर्णन है। इसी बीच इनके विवाह और दो प्रसूतियों के बाद पत्नी की मृत्यु का उल्लेख किया गया है। सातवें विराम में भी कवि की पारिवारिक स्थितियों की चर्चा है। आठवें विराम में सुधार-वृत्ति का उदय, नौवें में कवि के यशःकाल का तथा दसवें में कवि के मध्याह्न-काल का वर्णन है।

अंतिम पृष्ठ पर कवि के हस्ताक्षर व अंग्रेज़ी तथा भारतीय तिथियों का उल्लेख है। इस प्रकार, नर्मद के जीवन के 33 वर्षों का यह प्रामाणिक आत्मवृत्तांत है।

इसमें नर्मद की स्पष्टवादिता और बेबाकी के दर्शन होते हैं। लेखन-शैली में नर्मद की निजी छाप है। भाषा सरल तथा आज से 125 वर्ष पूर्व के रूप की परिचायक है। पिता, गुरु, प्रोफ़ेसर सब के प्रति आदर भाव होने पर भी सूरती शैली के प्रभाव के कारण एकवचन का प्रयोग हुआ है।

गुजराती की प्रथम आत्मकथा के रूप में विद्वान् लोग इसका अपूर्व ऐतिहासिक महत्व आँकते हैं।

मारुई *(सिं० पा०)*

सिंधी-साहित्य में उमर-मारुई की प्रेमगाथा प्रसिद्ध है। मारुई इसी प्रेम गाथा की नायिका है। यह जाति की गड़ेरिन थी और थरपारकर जिले के मलीर नामक गाँव में रहती थी। यह जितनी ही सुंदर थी उतनी ही शीलवती थी। अमरकोट के बादशाह उमर ने जब मारुई के सौंदर्य की प्रशंसा सुनी तब वह इसे भगाकर अपने यहाँ ले आया। उमर ने बहुत ही प्रयत्न किए कि यह उससे विवाह करे, परंतु उसके सभी प्रयत्न विफल सिद्ध हुए। इसकी सगाई अपनी जाति के एक युवक खेलसेन से हो चुकी थी। अतः वह परपुरुष का सपने में भी ध्यान नहीं कर सकती थी। उमर ने जब इसकी पवित्रता, शील और दृढ़ निश्चय को देखा तब उसके मन में परिवर्तन आया और उसने आदरपूर्वक इसे इसके गाँव भेज दिया। सिंधी-साहित्य में यत्र-तत्र इसके संदर्भ मिलते हैं। सूफ़ी संत कवियों ने इसे आत्मा के रूप में चित्रित किया है जो सांसारिक आकर्षणों में न फँसकर परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल है। सिंधी-साहित्य में मारुई पवित्रता, शील, त्याग और देशप्रेम का प्रतीक मानी गई है।

मारी इंग्लैंडनो प्रवास (गु० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1966 ई०]

लेखक—करसनदास मूलजी (1832-1871) गुजराती साहित्य में यह विदेश-यात्रा का प्रथम वर्णन है। मूलजी इंग्लैंड की यात्रा करने वाले प्रथम गुजराती थे। लेखक की शैली में आकर्षण है, और माधुर्य भी है। केवल विदेश-यात्रा विषयक प्रथम कृति की दृष्टि से ही नहीं अपितु कथन और वर्णन के सौंदर्य के लिए इसका प्रवास-साहित्य में उच्च स्थान है।

मार्कंडदास *(उ० ले०)* [समय— अनुमानत पद्रहवी शती ई०]

विद्वानो का मत है कि मार्कंडदास का जन्म ब्राह्मण-कुल मे हुआ था। इनकी रचना 'केशव-कोइलि' (दे०) निर्दिष्ट समय वाली कोइलि रचनाओं मे प्रथम है। चउतिशा (दे०) शैली मे लिखी गयी यह रचना अत्यत लोकप्रिय है। इसकी करुणार्द्र मूर्च्छना पाठक को द्रवित कर देती है। कृष्ण के वियोग मे माता यशोदा का उमडता वात्सल्य, कोयल को संबोधित कर, अपने स्नेह-तरल-व्याकुल भावो को अभिव्यक्त करता है तथा कोयल से सात्वना-प्राप्ति की आकाक्षा रखता है। इसमे उडिया गार्हस्थिक-सामाजिक चित्र आचार-व्यवहार आदि बडे सुदर रूप से उभर आये हैं।

साधारणत बाह्य दृष्टि से यह काव्य पुत्र-विरह-जनित माता यशोदा का विलाप ही प्रतीत होता है, किंतु अतिबडी जगन्नाथदास (दे०) ने इसके अतर्निहित गूढ दार्शनिक अर्थ की भी पाडित्यपूर्ण व्याख्या की है। जीव, परमपिंड, पिंड मे जीव की लीला, परमात्मा के वियोग मे जीवात्मा की विरह-वेदना आदि दार्शनिक तत्त्वो की *व्याख्या, जगन्नाथ जी ने अपनी रचना मे 'केशव कोइलि-*टीका' मे की है।

मार्कंडदास पचसखा (दे०)-युग के पूर्ववर्ती कवि हैं। उस समय लौकिक उदाहरणो के माध्यम से गूढ दार्शनिक तत्त्वो की व्याख्या की परिपाटी थी। पचसखा तथा कवियो ने भी इस परपरा का पालन किया है।

मार्ग *(क० पारि०)*

कन्नड के प्राचीन काव्यशास्त्रकारो ने काव्य के दो रूप बताये हैं—*मार्ग और देसि। मार्ग-काव्य को ही* 'वस्तुक काव्य', 'चपू-काव्य', भी कहा जाता है। देसिकाव्य को 'वर्णक' (दे०) अथवा 'हाडुगब्ब' कहा जाता है। कन्नड के सर्वप्रथम काव्यशास्त्रीय ग्रथ 'कवि-राजमार्ग' (दे०) 'मार्ग के अनत भेद हैं' कहकर उत्तर मार्ग और दक्षिण मार्ग, का उल्लेख किया गया है। विद्वानो के अनुसार यह भेद काव्य के उक्तिवचित्र्य और गुण-वैशिष्ट्य पर आधारित है। *'मार्ग-काव्य'* के स्वरूप के सबध मे विचार करने से ज्ञात होगा कि इसमे सस्कृतपन अधिक रहता है। छद, अलकार आदि सभी विषय सस्कृत से गृहीत होने हैं अथवा उससे प्रभावित रहते हैं। सस्कृत काव्यशास्त्र मे इनके सबध मे जो नियम बताये गये हैं, वे ही नियम यहाँ भी लागू होते हैं। आधुनिक युग के कतिपय कवियो ने प्राचीन परपरा का पालन किया है। जिन काव्यो मे ऐसी परपरा का पालन हुआ हो, उन्हें आधुनिक काल मे रचित होने पर भी 'मार्ग-काव्य' ही कहा जा सकता है। सक्षेप मे 'मार्ग-साहित्य' को 'क्लासिकल लिटरेचर' कह सकते हैं।

मार्ग कविता *(तें० पारि०)*

'कुमारसभवमु' (दे०) के कवि नन्नि चोड्डु (दे०) (शासन-काल 1130—1150 ई०) ने नृत्य, सगीत आदि कलाओ में स्थित मार्गी तथा देशी भेद को कविता पर भी लागू कर दिया था।

सस्कृत भाषा-साहित्य के लक्षणो के प्रभाव को *भासित करते हुए, पडितो को ध्यान मे रखकर,* उनकी प्रशसाएँ प्राप्त करने के लिए रची गई कविता 'मार्ग' तथा सस्कृत-प्रभाव से मुक्त, इतिवृत्त, भाषा, छद आदि मे देशी लक्षणो से समन्वित, देशी प्रजा-जीवन को प्रतिबिंबित *करती हुई, साधारण जनता के लिए लिखी गई कविता* 'देशी' कहलाती है।

मार्त्तांडवर्मा *(मल० कृ०)* [रचना-काल —1858 से 1922 ई० के बीच]

सि० वि० रामन् पिळ्ळा (दे०) का यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। 'वचि' राज्य (त्रावनकोर) के राजा के देहात के बाद उनके भानजे मार्त्तांडवर्मा गद्दी पर बैठते हैं। उन्हे गद्दी से उतारने के लिए मृतक राजा का पुत्र अपने कुछ ईमानदार सेवको की सहायता से बडा यत्न करता है। किंतु युवराज की चतुरता से वह यत्न सफल नही होता और मार्त्तांडवर्मा निष्कटक बन कर राज-काज करने लगते हैं। इसी ऐतिहासिक घटना पर सुदृढ से लिखा हुआ प्रस्तुत उपन्यास शैली-कलेवर का एक सुदर आभूषण बन गया है। कई पात्रो की सृष्टि करके विविध कथासूत्रो को अनुस्यूत करने मे उपन्यासकार ने अपनी कल्पना-शक्ति, आविष्कार-प्रतिभा, मर्मज्ञता आदि *गुणो का परिचय दिया है। यह एक अनूठी रचना* है।

मालतीमाधव (सं० कृ०) [समय—आठवीं शती]

'मालतीमाधव' भवभूति (दे०) द्वारा रचित 10 अंकों का प्रकरण है। इसमें इन्होंने कल्पित इतिवृत्त को आधार बनाकर वस्तुसंधान किया है।

'मालतीमाधव' की प्रणयकथा का स्रोत, बहुत संभव है 'बृहत्कथा' रही हो। इसमें विनियुक्त रूढ़ियाँ तथा प्रमुख घटनाएँ 'बृहत्कथा' के कई प्रणय-वृत्तों से मिलती-जुलती हैं। भवभूति ने 'बृहत्कथा' अथवा किन्हीं लोक-कथाओं से बीज लेकर कथा को स्वयं पल्लवित किया है। पद्मावती और विदर्भ के मंत्री भूरिवसु और देवरात घनिष्ठ मित्र थे। इन्होंने अपने पुत्र-पुत्रियों का विवाह करने की प्रतिज्ञा की। समय पर देवरात के पुत्र उत्पन्न हुआ और भूरिवसु को कन्या। देवरात ने अपने पुत्र माधव को भूरिवसु की पुत्री मालती से विवाह करवाने की आशा से भेजा। अनेक कठिनाइयों के बाद कामंदकी की सहायता से विवाह संपन्न हुआ।

रचयिता के अपने शब्दों में इस कृति के अंतर्गत रस प्रचुर गंभीर अभिनय, नायकादि के मिश्रतापूर्ण व्यवहार, शृंगार रस के साथ नायक का वीर, बीभत्सादि वाला उद्धत रूप, सुंदर कथा और बाण (दे०) की चतुरता का निबंधन किया गया है। इसकी कथावस्तु में शिथिलता है फिर भी दर्शक की उत्कंठा जागृत करने में नाटककार सफल है। काव्य की दृष्टि से यह एक उत्तम कृति है।

मालदासरी (तें० पा०)

यह विजयनगर के विख्यात सम्राट श्रीकृष्णदेव रायलु (दे०) के प्रौढ़ प्रबंध 'आमुक्तमालयदा' (दे०) (सोलहवीं शती) का एक प्रमुख पात्र है। यह नीच कुल में उत्पन्न होकर भी विष्णु का परम भक्त और संकीर्तन में निपुण है। यह भगवत् संकीर्तन द्वारा मोक्ष-प्राप्ति में विश्वास रखता है। एक दिन मंदिर के मार्ग में जब एक भयंकर राक्षस इसे पकड़कर खाने का उपक्रम करता है तब यह उस राक्षस के मंदिर के संकीर्तन के व्रत को पूरा कर आने तक का समय माँग लेता है। व्रत समाप्ति के उपरांत यह अपने वचन के अनुसार राक्षस का भोजन बनने के लिए मंदिर से शीघ्र लौट आता है। सच्चाई, त्याग और पारमार्थिकता के इस पुजारी को मृत्यु का वरण करने के लिए अपने सामने उपस्थित देखकर वह राक्षस भक्ति एवं श्रद्धा के भाव से अभिभूत हो जाता है। मालदासरी को भगवान् का साक्षात् अवतार मानकर वह उसकी स्तुति करने लगता है। अंततः मालदासरी की भक्ति की महिमा से वह राक्षस अपने पूर्व-जन्म के शाप से मुक्त होकर विष्णु का सारूप्य पा लेता है।

मालपल्लि (तें० कृ०)

तेलुगु के उपन्यास साहित्य में 'मालपल्लि' अथवा 'संगविजयमु' का अप्रतिम स्थान है। इसके प्रणेता स्वनामधन्य उन्नव लक्ष्मीनारायण (दे०) थे।

'मालपल्लि' गांधीयुगीन विचारधारा से प्रभावित आदर्शवादी यथार्थोन्मुख रचना है जिसमें तत्कालीन तेलुगुभाषा-भाषियों के सामाजिक जीवन का चित्रण बड़ी सफलता के साथ हुआ है। इस बृहदकाय उपन्यास में लेखक ने तत्कालीन राजनीतिक हलचल, समाजसुधार-आंदोलनों, परिश्रमी श्रमिक वर्ग और दलित जातियों की दयनीय दशा का जीवंत चित्रण किया है। यहाँ तक कि हरिजनों पर ईसाई पादरियों के अनुचित दबावों तथा कतिपय पादरियों की कामुक प्रवृत्ति के यथातथ्यात्मक वर्णन इस कृति में पाए जाते हैं। अतः यह उपन्यास तत्कालीन तेलुगु भाषा-भाषियों का सामाजिक अभिलेख माना जाता है।

'मंगलापुरम्' में रामदास एक संतस्वभाव का हरिजन था। महालक्ष्मी इसकी पतिव्रता नारी थी। इसके तीन पुत्र थे तथा एक पुत्री। उनके नाम थे—क्रमशः वेंकटदास, संगदास, रंगड़ तथा ज्योति। इनमें संगदास गांधी विचारधारा का आस्थावान अनुयायी था। यह गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को अपनी योग्यता के अनुसार आगे बढ़ाने के कारण जनप्रिय बनता गया। ज्योति अपने चरित्र-बल से सारे उपन्यास को ज्योतित करती है। ज्योति अपनी फूफी के पुत्र अप्पादास पर अनुरक्त थी। परंतु इनका यह प्रणय अंत तक अमलिन तथा अकायिक रहा। उस गाँव में चौधरय्या एक मोतबर असामी था। इसका स्वभाव सरल नहीं था। चौधरय्या का पुत्र रामानायुडु संगदास के निश्छल सेवाभाव से आकृष्ट होकर उसका एक घनिष्ट मित्र बन गया। यह बात चौधरय्या की आँखों में अखरी क्योंकि एक हरिजन बालक के साथ मैत्री निभाने से उसके आभिजात्य को आघात पहुँचाता था। संगदास ने हरिजनों को अपने उपदेशों तथा भाषणों से जागृत किया। अतः चौधरय्या की उसके सामने एक भी नहीं चली। असामी लोग हरिजन मजदूरों को अनाज की जगह पैसे

देना चाहते थे। पर सगदास की सलाह पर सब अनाज चाहने लगे। रामानायुडु को अपने साथ सगदास सभा समाजो मे ले जाता था। एक बार रामानायुडु सगदास के साथ विजयवाडा गया। इन सब बातो से चौधरय्या बिगड गया। हृगी से सगदास के सिर पर चोट मारी जिससे सगदास की मृत्यु हो गई। सगदास अत्यत जनप्रिय था। अत लोगो ने उसकी समाधि बनाई तथा उसके समीप ही 'सगपीठम्' की स्थापना की। चौधरय्या अपने पैसे के बल पर इस हत्या से बच गया। निरीह रामदास इसके विरुद्ध अदालत मे नही गया। परतु ईश्वरीय न्याय काम किए बिना नही रहा। रामानायुडु की पत्नी कमला मोहन-राव के साथ मद्रास भाग गई तथा कमला चेचक से पीडित हो गई।

उधर अप्पादास 'सगपीठम मे अध्यापन कार्य कर रहा था। उसकी गति तेलुगु के प्राचीन काव्यो तक मे अच्छी थी। ज्योति भी तब तक सुशिक्षता बन गयी थी और अध्ययन अध्यापन कार्य मे अप्पादास की सहायता पहुचाती थी। इसी समय पादरियो मे और अप्पादास मे धार्मिक विवाद चला। जगडु की डकैती के बहाने रामदास के परिवार के पादरी लोगो ने गिरफ्तार करा दिया और ज्योति को पादरी लोगो के साथ रहना पडा। ज्योति पर बलात् आक्रमण के प्रयत्न चले। उसने नदी मे कूद कर आत्मघात कर लिया। अप्पादास ने भी उसके साथ सहमरण किया।

रामदास जेल से विमुक्त होकर मगलापुरम् लौटा। जगडु उर्फ वेंकटदास ने 5 लाख रु० का चेक भेजा जिससे एक विद्यालय का निर्माण हुआ। अत मे अविचलित एव निरीह रामदास अपना कर्त्तव्यपालन नीरव निरीहता के साथ सपन्न करके एक दिन जगल मे चला गया। इस प्रकार रामदास के रूप मे हमे गाधीजी द्वारा उपदिष्ट अनासक्ति योग के दर्शन होते हैं।

मालवाड, एस० एस० *(क० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

श्री सगप्पा सगनवसप्पा मालवाड कर्नाटक कालेज, धारवाड म कन्नड प्रोफेसर के पद पर रह हैं। ये कन्नड के श्रेष्ठ निबधकारो मे हैं। इनके आलोचनात्मक निबधो के सग्रह प्रकाशित हुए हैं। 'कर्नाटक विश्व विद्यालय', 'हरिहरन' मूरु रगळेगलु' (हरिहर के तीन रगले), 'साहित्य समालोचन (साहित्य समालोचन), 'हरिहरन रगळेगलल्लि जीवनदर्शन' जैसे ग्रथो मे इनके निबधकार और आलोचक के व्यक्तित्व का विकास हुआ है। 'कर्नाटक साहित्य-सस्कृति-दर्शन' इनका शोध-प्रबध है। इन्होने 'राघवाक चरित्रे' (दे०) का सपादन भी किया है।

मालविका *(स० पा०)*

यह कालिदास (दे०) के प्रथम नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' (दे०) की नायिका है। यह परम सुदरी कन्या है। कालिदास ने इसके सौंदर्य की तुलना विष से बुझे हुए काम बाण से की है—परिकल्पितो विधात्रा बाण कामस्य विषदग्ध। यह विदर्भ के राजा की कन्या है। इसका विवाह विदिशा के राजा अग्निमित्र (दे०) से होना था, किंतु विदर्भ पर यज्ञसेन द्वारा आक्रमण किये जाने के कारण यह अपने प्राण बचाकर उसकी (अग्निमित्र की) पत्नी धारिणी के यहाँ आकर दासी के रूप मे रहने लगती है। धारिणी उसे नृत्यकला की शिक्षा दिलाती है। राजा उसका चित्र देखकर उस पर मोहित हो जाता है। राजा को इसका साक्षात् दर्शन कराने के उद्देश्य से विदूषक नृत्य-प्रतियोगिता का आयोजन करता है और राजा इसके नृत्यकौशल को देख कर इसके प्रति और भी अधिक आकृष्ट हो जाता है। प्रमदवन मे मनाये गये 'अशोक-पादाघातमहोत्सव' मे राजा का इसके साथ मिलन हो जाता है। इस पर अग्निमित्र की रानी इरावती राजा को बुरा भला कहती है और महिषी धारिणी मालविका को जेल मे डाल देती है। विदूषक सर्प मुद्रा युक्त अँगूठी के माध्यम से मालविका को जेल से छुडा लेता है। इसी बीच ज्ञात होता है कि मालविका तो विदर्भराज की कन्या है। अतत धारिणी की अनुमति से अग्निमित्र के साथ इसका विवाह सपन्न हो जाता है।

मालविकाग्निमित्रम् *(स० कृ०)* [समय—अनुमानत प्रथम शती ई० पू०]

यह कालिदास (दे०) की प्रथम नाट्यकृति है। इनकी यौवनकालीन रचना होने के नाते इस नाटक मे कालिदास की कला पूर्ण विकसित रूप मे हमारे समक्ष नही आती।

यह पाँच अको का नाटक है। इसमे शुग सम्राट अग्निमित्र (दे०) तथा मालविका की प्रणय कथा को बडी रमणीयता के साथ उपनिबद्ध किया गया है। तरुण

कवि कालिदास ने अग्निमित्र के अंतःपुर की चहल-पहल, रानियों की पारस्परिक स्पर्द्धा, उसकी कामुकता तथा महिषी धारिणी की धीरता आदि का चित्रण बड़ी कुशलता के साथ किया है। गौण पात्रों का चित्रण कालिदास ने बहुत थोड़े में किया है। हरदत्त और गणदास दो नाट्याचार्यों का अपनी कला मे अभिमान और एक-दूसरे से स्पर्धा, बकुलावलिका का मालविका पर निष्कपट प्रेम आदि बातें कालिदास ने भली भाँति स्पष्ट की है।

'मालविकाग्निमित्रम्' की भाषा प्रसादगुण-पूर्ण और मनोहर है। इसमे कहीं भी क्लिष्टता नहीं है। इसमें कवि यथासंभव अलंकारों के प्रयोग से बचा है फिर भी अनुप्रास, श्लेष, उपमादि अलंकारों का प्रयोग जहाँ कहीं किया है वहाँ अत्यंत स्वाभाविक ढंग से किया है। इस नाटक से कालिदास का नाम निश्चय ही सर्वत्र प्रसिद्ध हो गया होगा और उसको विक्रमादित्य का आश्रय मिल गया होगा।

मालि (मल० ले०) [जन्म—1915 ई०]

बी० माधवन् नायर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं और आकाशवाणी में कार्य करने के बाद नेशनल बुक ट्रस्ट में सहायक संपादक रहे हैं। 'मालि' के उपनाम से उन्होंने अनेक बालकोपयोगी ग्रंथों की रचना की है। 'रामायण' (दे०), 'महाभारत' (दे०), 'कथासरित्सागर' (दे०) आदि के बालकोपयोगी संस्करणों के अलावा अनेक मौलिक रचनाएँ भी उन्होंने लिखी हैं। संगीतशास्त्र पर भी उन्होंने बहुत-कुछ लिखा है। अंग्रेज़ी भी उनके लिए अभिव्यक्ति का एक माध्यम रही है। बाल-साहित्य के लेखकों में उनका स्थान अद्वितीय है।

माळिका (उ० पारि०)

मालिका का दूसरा नाम 'आगत-भविष्य-कथा' है। इसमें भविष्य के संबंध में अनेक तथ्य लिपिबद्ध रहते हैं। पंचसखा (दे०) एवं उनके शिष्यों ने अनेक माळिकाओं की रचना की है। ये हठयोगी एवं तांत्रिक साधक थे और मंत्र-शक्ति के द्वारा भविष्य-दर्शन करने में समर्थ थे। इनकी भविष्यवाणी पर लोगों का विश्वास आज भी अक्षुण्ण है। माळिकाएँ लोगों को भविष्य के प्रति सजग रहकर एक संयत एवं संगठित जीवन-यापन की शिक्षा देती है। सबसे अधिक माळिकाओं की रचना अच्युतानंददास (दे०) ने की है। यशोवंतदास (दे०) की 'आगत भविष्य', अनंत दास की 'आगत चुंबक' तथा हरिदास की माळिकाएँ प्रसिद्ध हैं।

माल्ही, गोबिंद (सिं० ले०) [जन्म—1921 ई०।]

गोबिंद माल्ही का जन्म सिंध के ठारूशाह नामक नगर में हुआ था। इन्होंने बी० ए०, एल-एल० बी० की परीक्षाएं उत्तीर्ण की थीं और काफ़ी समय तक अध्यापन कार्य किया था। सिंधी-साहित्य में प्रगतिशील विचारधारा को प्रवाहित करने वाले साहित्यकारों में ये मुख्य स्थान रखते है। इन्होंने कहानी, उपन्यास, एकांकी और निबंध के क्षेत्र में अनेक रचनाएँ की हैं, परंतु इन्हें विशेष ख्याति सफल उपन्यासकार के रूप में ही प्राप्त हुई है। इन्होंने सिंधी-साहित्य को जितने उपन्यास दिए हैं उतने और किसी ने नहीं दिए। इनके उपन्यासों की संख्या बीस से अधिक है, जिनमे से कुछ के नाम इस प्रकार हैं—'आँसू', 'जिंदगीअ जे राहते', 'जीवन साथी', 'शर्मबूटी', 'मन जो मीनु', 'पखीअड़ा वलर खाँ विछुड़्या', 'ललकार', 'इश्कु नाहे रांदि', 'लोकु आहे बोकु', 'देसी सेण कजनि'। ये 'कला जीवन के लिए' सिद्धांत में विश्वास रखते हैं। इन्होंने अपनी अधिकांश रचनाओं में देश-विभाजन के पश्चात् भारत में सिंधियों की परिस्थितियों के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए हैं। आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विषयों को लेकर इन्होंने सिंधी-साहित्य को सफल उपन्यास दिए हैं। इन्हें सिंधी उपन्यासकारों की श्रेणी मे प्रथम स्थान प्राप्त है।

मास्तर (म० पा०)

वसंत कानेटकर (दे०) के उपन्यास 'पंख' का यह अभागा कला-प्रेमी पात्र सहज ही पाठकों की सहानुभूति आकृष्ट कर लेता है। वह शिक्षक न होकर अभिनयशाला का मास्टर है। बचपन से ही नाटक मे अभिनय करने की आकांक्षा से अनुप्रेरित पांडु अभिनय में कुशल बन जाता है। एक बार ध्रुव की भूमिका में अभिनय करते हुए भावनाओं के तनाव के कारण उस पर कंपवायु का आघात होता है और वह भविष्य में अभिनय करने के अयोग्य हो जाता है, पर नाट्य-प्रेमी होने के कारण वह अभिनयशाला का काम नहीं छोड़ता और पर्दे खींचने जैसे छोटे-मोटे कार्य करता रहता है। उसके जीवन की एकमात्र आकांक्षा है

नाटक मे पुन ध्रुव की भूमिका करने की, वह स्वय तो अभिनय करने मे असमर्थ है, अत उसकी यह महत्वाकाक्षा उसकी पुत्री द्वारा पूरी होती है। उसे भय है कि कही उसकी पुत्री भी उसके समान ही भावनाओ के तनाव के कारण ध्रुव की भूमिका करते-करते पशु न बन जाय। पर ऐसा नही होता और उसकी आकाक्षा पूरी हो जाती है। लेखक ने बडी सहृदयता से पात्र का चित्राकन किया है। उसकी भावोर्मियो का विश्लेषण किया है, अत सहज ही पाठक का उसके साथ तादात्म्य हो जाता है।

मास्ति वेंकटेश अय्यगार *(क० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

मास्ति वेंकटेश अय्यगार आधुनिक कन्नड-साहित्य के वयोवृद्ध साहित्यकारो मे से हैं। छात्र-जीवन मे ही इनकी प्रतिभा का परिचय मिलने लगा था। एम० ए० उपाधि प्राप्त करन के बाद ये मैसूर सिविल सर्विस परीक्षा मे उत्तीर्ण हुए और मैसूर सरकार के विविध विभागो मे ऊँचे पदा पर रहकर 1947 ई० मे अवकाश प्राप्त कर लिया। 'श्रीनिवास' उपनाम से मास्ति जी अत्यत लोकप्रिय लेखक हुए हैं। 1943 ई० स प्रकाशित कन्नड-मासिक 'जीवन' के ये सपादक हैं।

मास्ति जी की प्रतिभा बहुमुखी है। ये कवि, नाटककार, उपन्यासकार, कहानीकार, गद्यलेखक और पत्रकार हैं। इनकी रचनाओ मे भारतीय और कर्नाटक सस्कृति के सार के साथ नवीन जीवन-दृष्टि का भी सुदर समन्वय हुआ है। देशप्रेम, राष्ट्रीयता, स्त्रियो के प्रति आदर, सात्विक श्रद्धा आदि सद्गुण उनकी कृतियो मे प्रकट हुए हैं जो इनके व्यक्तित्व के महान अश हैं। इनकी सरल, सीधी सादी भाषा शैली मे बडा आकर्षण है। इनकी जैसी कथन शैली शायद ही किसी दूसरे कलाकार मे देखने को मिले।

'बिन्नह' (विनय), 'मनवि' (प्रार्थना), 'मलार', 'अरुण', 'तावरे' (कमल), 'चेलुवु' (सौंदर्य) और 'सुनीत' म इनकी फुटकर कविताओ और गीतो का सग्रह है। उपर्युक्त प्रथम दो सग्रहो मे इनकी भक्ति-भावना भी प्रकट हुई है जो परपरागत है, परतु उसम नवीन काति और जीवनस्फूर्ति विद्यमान है। इनकी कविताओ म सहज सौंदर्य और गीतो मे भावना की स्पष्टता और सचाई है। उनमे कल्पना-विलास की अपेक्षा विषय की नवीनता, छदो की विविधता और भाव प्रवणता का विशेष महत्व है। स्निग्ध प्रकृति और मानव प्रकृति का चित्रण प्रस्तुत करन मे इनको अत्यधिक सफलता मिली है। 'रामनवमी', 'गौडर मल्लि', 'मूकन मक्क' (गूंगे के बच्चे) और 'नवरात्रि' इनके कथाकाव्य हैं। इनमे पाठको को जो अनुपम रसानुभव प्राप्त होता है, वह कवि की काव्य-साधना की सफलता का प्रमाण ही है।

'उषा', 'काकन कोटे' (काक का किला), 'चित्रागदा', 'यशोधरा', 'शिव छत्रपति' और 'शान्ता', 'सावित्री' आदि मास्ति जी के नाटक हैं। 'चेन्नबसवनायक' (दे०) और 'सुब्बण्ण' (दे०) उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'सुब्बण्ण' कन्नड साहित्य की एक श्रेष्ठ कलाकृति है। कुछ लोग उसे लबी कहानी मानते है तो अन्य लोग छोटा उपन्यास मानते हैं।

कहानीकार के रूप मे मास्ति जी की विशेष ख्याति है। इन्ह कन्नड-कहानी-साहित्य का अग्रणी कहना चाहिए। इनके भिन्न भिन्न सग्रहो मे अब तक लगभग साठ कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। जीवन-दर्शन और लोक-कथाओ मे विशेष कौतूहल इनकी कहानियो की विशेषताएँ हैं। उनकी 'आचार्यर हेडति', 'इदिरेयो अल्लवो' (इदिरा या नही), 'कविय कोनेय दिन' (कवि का अतिम दिन) आदि कहानियाँ अधिक लोकप्रिय हुई हैं।

'कन्नडद सेवे' (कन्नड की सेवा), 'कर्नाटकद जनतेय सस्कृति' (कर्नाटक की जनता की सस्कृति), 'कर्नाटकद जनपद साहित्य' (कर्नाटक का लोक-साहित्य), 'साहित्य विमर्श' (आलोचना), 'रवीद्रनाथ ठाकुररु' और 'श्रीरामकृष्ण' जैसी रचनाओ मे उनकी सुदर गद्य शैली द्रष्टव्य है। ये अंग्रेजी के भी अच्छे लेखक हैं।

मिअराज उल आशिकीन *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1422 ई० के आसपास]

'मिअराज-उल-आशिकीन' हजरत ख्वाजा बदा गेसूदराज (दे०) की गद्य-रचना है। इसका उर्दू की प्रारभिक गद्य-रचनाओ मे महत्वपूर्ण स्थान है। इसम सूफी सिद्धातो की शिक्षा तथा नैतिकता का प्रतिपादन किया गया है। इसकी शैली वर्णनात्मक है। ऐसा लगता है जैसे कोई गुरु अपने शिष्यो को पाठ पढा रहा हो। इसमे 'मिअराज' की घटना को आधार बना कर सूफी सिद्धातो-सूत्रो की व्याख्या की गई है।

'मिअराज-उल-आशिकीन' मे दकन की प्रारभिक उर्दू का नमूना हमारे सामने आता है। यह भाषा आज स पाँच सौ वर्ष पूर्व की है। उस समय उर्दू के रूप की रेखाएँ भी

स्पष्ट नहीं हुई थीं। इस कृति में ऐसे अनेक शब्द हैं जो बाद में प्रयोग में आने बंद हो गए। शब्द-प्रयोग व्याकरण-सम्मत नहीं। कहीं-कहीं वाक्य असंबद्ध से हैं और कहीं-कहीं भाव ही अगम रह जाता है। फिर भी 'मिअ्राज-उल-आशिक़ीन' की ज़ुबान 'सबरस' (दे०) और 'गुलशन-ए-इश्क़' की भाषा से साफ़ है। इसकी भाषा पर उत्तरी भारत की भाषा का प्रभाव अधिक है क्योंकि लेखक का दो-तिहाई जीवन उत्तरी भारत में ही बीता है। इस कृति से उर्दू के दिल्ली से दकन जाने की सूचना मिलती है।

भाषा-वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से इस कृति का उर्दू की प्राथमिक गद्य-कृतियों में महत्वपूर्ण स्थान है।

मित्र, गजेंद्रकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

गजेंद्रकुमार मित्र आधुनिक बँगला के उन उपन्यासकारों मे है जिन्होंने 'कलकातार काछेइ' (1957), 'उपकंठे' (1961) एवं 'पौष फागुनेर पाला' (1964) इन तीन उपन्यासों की रचना कर बँगला उपन्यास के क्षेत्र में अपना स्थायी स्थान बना लिया है। इन तीनों में उन्नीसवीं शती के अंतिम दिनों के अति दरिद्र भद्र परिवार की रूढ एवं कठोर जीवन-कहानी के प्रारंभ से लेकर आधुनिक युग तक के प्रसार की कहानी लिपिबद्ध है। इन उपन्यासो में बंगाल के समाज-इतिहास के इस पक्ष का उद्घाटन हुआ है कि किस तरह बंगाल का गार्हस्थ्य जीवन प्रबल घात-प्रतिघातों में अपनी दुर्दमनीय प्रतिरोध-शक्ति के सहारे टिका हुआ है—यद्यपि इस संग्राम मे चरित्र की सुकुमारता एवं आदर्शनिष्ठा का क्रमिक अवक्षय ही एकमात्र सत्य है। छोटी-से-छोटी घटनाओं की वर्णना मे लेखक ने असाधारण शिल्पबोध का परिचय दिया है एवं पाठकों के मन में भाववैचित्र्य के संचार में लेखक की कुशलता प्रशंसनीय है। इन ग्रंथों से जहाँ उसे असीम जनप्रियता मिली है वहीं दूसरी ओर इन्हें 'जूठन फेंकने एवं बरतन मलने का महाकाव्य' कहकर उसकी सृजन शक्ति पर श्लेष-कटाक्ष भी किया गया है। इसका कारण कदाचित् यह है कि तुच्छ, गतानुगतिक जीवन-निष्ठा की अभिव्यक्ति के द्वारा साधारण भद्र परिवार के अंतर-रहस्य की कथा अनेक आलोचकों के मनोनुकूल नहीं रही। इन उपन्यासों में अंकित निम्न-मध्य-वित्त बंगाली परिवार के प्राण-रहस्य की कथा बँगला-साहित्य में चिरकाल तक स्मरणीय रहेगी।

लेखक के अन्यान्य उपन्यासों में 'मने छिल आशा' 1941), 'बहुविचित्र' (1945) और 'मिलनांत' (1949) प्रसिद्ध हैं। 'रजनीगंधा' (1941) उल्लेखनीय कहानी-संग्रह है।

मित्र, नरेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

आधुनिक कथासाहित्यकार नरेंद्रनाथ मित्र अपने सीमित परिचित जीवन-वृत्त में से साहित्य का उपकरण संग्रह करते हैं। इनकी कहानियों या उपन्यासों की सार्थकता इसी में है कि उनमें व्यक्तिगत हृदय-द्वंद्व ही नहीं बृहत्तर सामाजिक समस्या प्रतिफलित होती है। वस्तुतः दैनंदिन तुच्छतापूर्ण कतिपय पारिवारिक घटनाओं के उन सुनिर्वाचित अंशों को लेखक हमारे सामने प्रस्तुत करता है जिनके माध्यम से समस्या-पीड़ित मानव-जीवन की हीनता, नीचता, मिथ्याचार आदि के चित्र खींचे जा सकें। इनके उपन्यासों में आदर्शवाद का आधिक्य तथा भावोच्छ्वास या मनोवैज्ञानिक आतिशय्य के स्थान पर सहज जीवन-यात्रा के वस्तुनिष्ठ चित्र अधिक मिलते हैं। उपन्यासों में 'चेनामहल', 'द्वीपपुंज' (1952), 'देहमन' (1952), 'दूरभाषिणी' आदि में यौन एवं अर्थनीतिक समस्या के नाना पहलुओं के रहस्य के उन्मोचन में लेखक ने प्रखर अंतर्दृष्टि का परिचय दिया है। नरेंद्रनाथ मन के निपुण विश्लेषक हैं, जीवन के जटिल कथाकार है। जीवन के अप्रीतिकर यथार्थ को प्रकट करने पर भी वे नेतिवाचक नहीं हैं। जीवन के ऊपर वे रोमांटिकों की तरह झूठ का आलेपन नहीं चढ़ाते, फिर भी, शुभ बुद्धि की विजय पर उनकी असीम आस्था है।

कहानी के क्षेत्र में भी नरेंद्रनाथ की प्रतिभा का सार्थक विकास हुआ है। मानव-संपर्क की जटिलता, मन की दुर्ज्ञेयता एवं कठिन यथार्थ के प्रति आनुगत्यता इनकी कहानी की विशिष्टता है परंतु इसी में जीवन-सत्य उद्भासित हो उठता है। इस जीवन-सत्य की अभिव्यक्ति सर्वदा सामाजिक न्याय-अन्याय के आधार पर नहीं होती। जीवन के यथार्थ को स्वीकार कर उसके भारसाम्य को बनाये रखना ही लेखक के अनुसार जीवन-सत्य की अभिव्यक्ति है। एक छोटी-सी घटना, कि छोटे से संकट का क्षण—और उसी में बिजली के तीव्र प्रकाश की तरह जीवन का सत्य आभासित हो उठता है। नरेंद्रनाथ यथार्थतः मौलिक लेखक हैं क्योंकि अपने जीवनानुभव एवं उपलब्धि के आश्रय से ही वे जीवन के चित्र खींचते हैं।

मित्र, प्यारीचाँद *(बँ० ले०)* [जन्म—1813 ई०; मृत्यु—1883 ई०]

टेकचाँद ठाकुर के नाम से प्रख्यात प्यारीचाँद मित्र ने *'आलालेर घरेर दुलाल'* (दे०) (1858 ई०) की रचना कर बँगला साहित्य मे हमेशा के लिए व्यग्य-चित्रकार के रूप मे स्थान बना लिया है। 'आलालेर घरेर दुलाल' को बहुत दिनो तक बँगला साहित्य का प्रथम उपन्यास माना जाता रहा। इसी एक ग्रथ के लिए वे बँगला साहित्य के इतिहास मे अविस्मरणीय हैं।

टेकचाँद ठाकुर के बँगला-अंग्रेजी के निबधो के बहुत-से सग्रह प्रकाशित हुए हैं—यथा, 'कृषिपाठ' (1862), 'यत्किंचित्' (1865), 'डेविड हेमारेर जीवन-चरित' (1878) आदि। 'आलालेर घरेर दुलाल' के अतिरिक्त इनका दूसरा व्यग्य-चित्र 'मद खाओया बढ दाय जात थाकार कि उपाय' 1859 ई० मे प्रकाशित हुआ था।

टेकचाँद ठाकुर ने विद्यासागर द्वारा प्रवर्तित गुरु गभीर भाषा-शैली के स्थान पर जीवन के लघु पक्ष अर्थात् व्यग्य-विद्रूप, हास-परिहास के उपयुक्त सहज, सरल भाषा का प्रचार किया। साहित्यिक गद्य को दैनदिन जीवन के निकट लाने मे इनका बडा योगदान रहा है। बँगला गद्य के क्षेत्र मे इनकी भाषा 'आलाली भाषा' के नाम से अमर है। इनकी रचनाओ मे वास्तव जीवन चित्रण तथा कथा-रस की अभिव्यक्ति मिलती है। घटनाओ के माध्यम से चरित्र-चित्रण तथा जीवन के विच्छिन्न खडो के रससिक्त वर्णनो मे इन्होने औपन्यासिक आदर्शों का सायास अनुसरण किया है। यद्यपि सामाजिक कुरीतियो को दूर करने के लिए प्रयत्नशील इनकी रचनाएँ नीतिवाद से प्रभावित है, फिर भी उपन्यास-कला की दिशा मे इन्होने निश्चय ही कुछ प्रगतिशील कदम उठाये।

मित्र, प्रेमेंद्र (बँ० ले०) [जन्म—1904 ई०]

प्रेमेंद्र मित्र आधुनिक बँगला उपन्यास और काव्य के अन्यतम प्रधान स्रष्टा के रूप मे स्वीकृत हैं। इनके प्रारभिक उपन्यासो—'पाँक' (1926) एव 'मिछिल' (1932) को आधुनिक उपन्यास के सार्थक दृष्टात रूप मे स्वीकार किया गया था। साधारण जीवन एव निम्न श्रेणी के लोगो का तटस्थ एव यथार्थ चित्रण करते हुए मनुष्य के प्रति एव उदार मनोभाव की अभिव्यक्ति इनकी उपन्यास-कला की प्रधान विशेषता है। उपन्यास के माध्यम से इन्होने जीवन की शुष्क, आवेगहीन, बुद्धिप्रधान समालोचना की है। इसमे कही भी बगाली-सुलभ भावार्द्रता एव आवेग-प्रवणता दिखाई नही पडती। इनके दूसरे उपन्यासो मे 'बाँकालेखा', 'उपनयन', 'कुयाशा', 'प्रतिध्वनिफेरे' उल्लेखनीय हैं। इनमे 'प्रतिध्वनिफेरे' जीवन के सत्य-अन्वेषण की कहानी है। यह उल्लेख-योग्य है कि उपन्यास की अपेक्षा कहानी-रचना मे इन्होने अधिक सफलता प्राप्त की थी। इनके कहानी-सग्रह ये है: 'पचशर' (1926), 'बेनामी बदर' (1930), 'पुतुल ओ प्रतिमा' (1932), 'मृत्तिका' (1932), 'अफुरत' (1934) आदि। कहानी के रूप एव रीति के आश्रय से मानव-जीवन की विपण्ण व्यर्थता को इतनी गहराई से अकित करने की शक्ति कम ही लेखको मे दिखाई पडती है। इनकी कहानियो की आवेगलेशहीन उपस्थापना के पीछे कभी-कभी गभीर अनुभूतिशील व विप्राण प्रकट हो जाता है; कदाचित् इसीलिए इनके कथा-साहित्य को विपरीत स्वच्छदतावाद की सज्ञा दी जाती है। लेखक ने बच्चो के लिए उत्कृष्ट अयथार्थ वैज्ञानिक कहानियो की रचना की है एव कतिपय सुदर जासूसी उपन्यास भी लिखे है।

कथा-साहित्य के अनुरूप प्रेमेंद्र मित्र की कविता भी उग्रतामुक्त एव कमनीय है। इनके 'प्रथमा' (1932), 'सम्राट' (1940), 'फेरारि फौज' (1948), 'सागर थेके फेरा' (1956), 'हरिण चिता चित' (1960) आदि काव्य-सग्रहो मे अतर्निहित बृहत् मानवता की वाणी विशेष रूप से प्रशसनीय है। जगत् एव जीवन-चेतना के साथ अपने को मिलाकर वे पथचारी मनुष्यो के सहचर बन गए हैं एव अहकेंद्रिक रोमास की पाडुरता से हटाकर आधुनिक बँगला काव्य को जीवन के बृहत् एव महत् का परिचय दिया है। निबध और आलोचना के क्षेत्र मे भी प्रेमेंद्र बाबू का विशिष्ट स्थान है।

मित्र, वामाचरण (उ० ले०) [जन्म—1915 ई०]

आधुनिक उडिया-कहानी-साहित्य को श्री वामाचरण मित्र का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इनकी कहानियाँ प्राय सामाजिक होती हैं। इनकी गद्य शैली की सावलीलता, गत्यात्मकता एव सक्षिप्तता आदि विशेषताएँ कहानियो को सशक्त एव मार्मिक बना देती हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'पराग' (उपन्यास), 'बट महापुरुष' (दे०), 'कीर्तिर्यस', 'नरछवाण', 'स्वप्नसिद्ध', 'पाषाणर प्राण', 'असीम' (कहा०) आदि।

मित्र, विमल (बँ० ले०) [जन्म—1912 ई०]

आधुनिक बँगला उपन्यासकारों में विमल मित्र ने अनतिपुरातन इतिहास के आश्रय से दैनंदिन जीवन के जटिल चित्रों को महाकाव्य की विशालता प्रदान की है। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'साहब बिबि गुलाम' (दे०) 'कड़ि दिये किनलाम', 'एकक दशक शतक', 'कन्यापक्ष', 'बेगम मेरी विश्वास' आदि उल्लेखनीय हैं। अनतिपुरातन इतिहास अर्थात् उन्नीसवीं शती के बंगाल के जमीदार-वर्ग के जीवन-चित्रण का अनुसरण करते हुए लेखक ने अपने उपन्यासों में आधुनिक युग के साधारण मनुष्यों की दुःख-दुर्दशा, क्षणिक सुख एवं शांति का चित्र खींचा है। इस दृश्यपट-परिवर्तन एवं चित्रांकन की व्यापकता तथा व्यंजना-पूर्णता में ही लेखक की मौलिकता प्रकट हुई है। लेखक के उपन्यासों में केवल नायक एवं नायिकाएँ ही प्रधान नहीं हैं वरन् दास-दासियों, नौकर-नौकरानियों की सहयोगिता से ही चित्र पूर्ण बन पाया है।

लेखक के उपन्यासों में जीवन का यथार्थ बहुत ही स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ है। कदाचित् इनके उपन्यासों की महाकाव्यात्मक विशालता के कारण ही अतिप्रत्यक्ष यथार्थ चित्रों को ये इतने अकुंठित ढंग से प्रकट कर पाये हैं। विमल मित्र नारी-मनोविज्ञान के चतुर चितेरे माने जाते हैं। इन्होंने नारी के जटिल मन के हर पक्ष के रहस्य का उद्‌घाटन किया है। परंतु इनकी नारी अपनी इच्छाओं को दबाना जानती है और आवश्यकता पड़ने पर सीता की तरह हमेशा के लिए संसार से लुप्त हो जाती है। लेखक के 'कड़ि दिये किनलाम' (दो खंड) के नायक दीपंकर का चरित्र हमारे जीवन के विश्व-धरातल में विस्तार का प्रतीक है। बंगाल के आधुनिकतम मानस के चित्र-रूप में यह उपन्यास हमेशा स्मरणीय रहेगा। विमल मित्र की लगभग प्रत्येक रचना घटना-प्रधान है और साधारणतः घटना-प्रधान रचना अप्रीतिकर होती है किंतु इनकी भाषा की गतिशीलता, नाटकीयता एवं उत्कंठा-सृष्टि के कौशल के परिणामस्वरूप इनकी वर्णना भी आकर्षक बन गई है।

मित्र, मजुमदार, दक्षिणारंजन (बँ० ले०) [जन्म—1877 ई०; मृत्यु—1957 ई०]

कदाचित् संपूर्ण भारतवर्ष में शिशु-साहित्य की दृष्टि से बँगला भाषा सर्वाधिक समृद्ध है। बच्चों के लिए परियों की कथा लिखकर जिस प्रकार हैंस क्रिस्चिन एंडरसन ने शिशु-साहित्य को एक नया आयाम प्रदान किया था उसी तरह बंगाल में दक्षिणारंजन मित्र मजुमदार ने परियों की कथा (बँगला में 'रूपकथा' कहते हैं) में काव्य-रस का सम्मिश्रण कर साहित्य के क्षेत्र में शिशु-साहित्य को स्थायी रूप से प्रतिष्ठित किया है। बच्चों के लिए इनकी पहली पुस्तक 'ठाकुरमार झुलि' 1908 ई० में प्रकाशित हुई थी। 1957 ई० में इसका सत्तरवाँ संस्करण प्रकाशित हुआ था। इसकी भूमिका लिखी थी रवीन्द्रनाथ (दे० ठाकुर) ने। इस भूमिका में लिखा है कि इस पुस्तक का प्रत्येक पन्ना हरा और ताज़ा है। परियों की कथाओं की विशेष भाषा, विशेष रीति एवं उनकी प्राचीन सरलता को अकृत्रिम ढंग से व्यक्त कर लेखक ने अपना सूक्ष्म रसबोध एवं स्वाभाविक कलानैपुण्य प्रकट किया है।

'ठाकुरमार झुलि' की जनप्रियता को देखकर 'द टाइम्स' लंडन ने इसकी समीक्षा करते हुए इसे 'द मोस्ट वंडरफुल वाल्यूम' कहा था। बीसवीं शती के दूसरे एवं तीसरे दशक के लगभग सभी बंगाली लेखकों ने इसकी प्रशंसा में पुल बाँधे थे। इस पुस्तक की एक-एक कहानी बच्चों के लिए दुनिया की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। इस पुस्तक के उपरांत लेखक ने 'ठाकुरदादार झुलि' (1910), 'ठानदिदिर थले' (1911), 'दादामहाशयेर थले' आदि और भी कई पुस्तकों की रचना की। इन पुस्तकों में लेखक के द्वारा अंकित चित्र भी हैं।

मित्रविंदागोविंद (क० कृ०)

'मित्रविंदागोविंद' कन्नड का प्रथम उपलब्ध नाटक है। इसके लेखक सिंगरार्य (दे०) हैं जो मैसूर के राजा चिक्कदेवराज (दे०) (1672-1704) के आश्रय में रहते थे। यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि सत्रहवीं शती के पूर्व का कोई कन्नड नाटक उपलब्ध नहीं है। सिंगरार्य का यह नाटक 'प्रथम नाटक' का गौरव प्राप्त करता है यद्यपि यह संस्कृत के 'रत्नावली' नाटक का कन्नड रूपांतर है। फिर भी लेखक ने इसे रूपांतर स्वीकार नहीं किया है। डा० मुगळि (दे०) ने इस संबंध में लिखा है कि मूल में किंचित् परिवर्तन कर मूल का अनुकरण करते हुए रूपांतर करने पर भी स्वतंत्र कृति के रूप में इसे प्रकाशित करने का जो प्रयास किया गया है, वह चौर्य का ही निदर्शन है। कथानक में इतना परिवर्तन किया गया है कि इसके नायक कृष्ण हैं जो शृंगार-नायक न होकर 'पुरुषोत्तम' बनते हैं। नायक की परिकल्पना के अनुसार

अन्य पात्रो के नाम भी इसमे बदल दिये गये हैं। कृष्ण का चित्रण साधारण मानव और अवतार-पुरुष दोनो रूपो मे किया गया है। कतिपय आलोचको की दृष्टि मे ऐसे चित्रण मे स्वाभाविकता का अभाव है। इसकी कथा की रचना जैसी भी हो, इसमे सदेह नही कि इसकी भाषा-शैली प्रभावशाली है और इसी मे इसकी सफलता है।

मिथ्याभिमान (गु० कृ०)

ठक्कर गोविद जी पुरस्कार-प्रतियोगिता मे भेजा गया व पुरस्कृत मिथ्याभिमान प्रहसन कविवर दलपतराम डाह्याभाई (दे० दलपतराम)-रचित एक शिष्ट व रगमचीय नाटक है। नाटक की रचना 1869 ई० मे हुई तथा प्रथम सस्करण 1870 ई० मे प्रकाशित हुआ।

इसमे एक मिथ्याभिमानी रतौंधे ब्राह्मण जीवराम भटट (दे० भटट जीवराम) की कथा वर्णित है। नायक जीवराम मे अपने ब्राह्मणत्व का, अपने कौलीन्य का अपने पाडित्य का मिथ्या गौरव अधिक है। वह रात्रि मे कुछ नही देख पाता किंतु इस तथ्य को सदैव छिपाता है। वह पडित नही है, मगर सदैव पडित होने का दभ करता है। झूठे गौरव की रक्षा मे अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर लेता है।

एक दिन ससुराल जाते ही रास्त मे सध्या हो जाती है। मार्ग न देख पाने के कारण वह गाँव के बाहर एक गडढे मे गिर जाता है। उसके ससुर तथा साले आकर उसे जगाकर घर ले जाते हैं। रात्रि म किसी तरह भोजनादि से निवृत्त होकर अँधेरे मे लघुशका के लिए उठता है और जैस तैस मोरी तक पहुँचता है कि लौटते समय सास की शैया पर गिर पडता है। सास घबराकर 'चोर-चोर की आवाज लगाती है। पुलिस के आदमी आकर उसे पकड ले जाते हैं। रातभर अच्छी पिटाई होती है और सवेरे मुक्ति होती है।

साधत हास्यरस प्रधान होने से यह 'प्रहसन' है। पूर्वरग, नादी, सूत्रधार, विष्कभक, विदूषक, भरत-वाक्य आदि की योजना का अनुसरण कर शुद्ध भारतीय नाट्य-परपरा पर यह रचित है। व्यावसायिक रगमच के प्रभाव स बीच मे एक फार्स भी जोडा गया है। आठ अको के इस नाटक मे कुछ 15 प्रवेश (दृश्य) हैं। सवादो के बीच पद्य के लिए सस्कृत वृत्त — इद्रवज्रा, स्रग्धरा, उपजाति, शार्दूलविक्रीडित, उपेंद्रवज्रा, वशस्थ, वसत-तिलका आदि का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त दोहा (दोहरा) भी इसमे प्रयुक्त हुआ है।

भारतीय नाट्य शैली का अनुगमन, सामाजिक सुधारवृत्ति, व्यग्य विनोद का आयोजन इसका लक्ष्य प्रतीत होता है।

गुजराती के प्रारभिक नाटको मे शिष्ट हास्य-प्रधान रगमचीय नाटक व सुधारवादी कृति के रूप मे इसका उल्लेखनीय महत्व है।

मियाँ फूसकी (गु० पा०)

कृतिकार—जीवराम जोशी। यह लेखक की दस भागो मे विभाजित कथा का नायक है। 'मियाँ फूसकी' मुसीबत मे से अपनी बौद्धिक शक्ति से मार्ग निकाल लेने वाले पर बाहर से मूर्ख दिखने वाले व्यक्ति का प्रतिनिधि है। 'मियाँ फूसकी' बालसाहित्य का अत्यत प्रिय नायक है।

मियाँ मुहम्मद बख्श (प० ले०) [जन्म—1830 ई०; मृत्यु—1906 ई०]

ग्राम खडी ज़िला मीरपुर (जम्मू)-निवासी मियाँ शमशुद्दीन कादरी के पुत्र मियाँ मुहम्मद बख्श अरबी-फारसी के विद्वान फिका और हदीस के मर्मज्ञ तसव्वुफ के प्रेमी थे। इनकी अनेक आख्यानक तथा मुक्तक रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमे सैफुलमुलुक' (दे०), 'किस्सा सख़ी ख्वास खा' 'मिरज़ा साहिबा, हिदायतुल मुसलमीन', 'मोहणी महीवाल', 'शीरो फरहाद 'किस्सा शाह मसूर', 'तुहफाए मीरा, 'गुलज़ारे फकर', आदि प्रसिद्ध हैं। तसव्वुफ इनकी रचनाओ का मुख्य वर्ण्य है। इनका प्रसिद्ध प्रेमाख्यान 'सैफुलमुलुक' पजाबी साहित्य का वृहत्तम प्रबध-काव्य है। कल्पना वैभव, शब्द-प्रयोग-कौशल और अलकार-सौंदर्य की दृष्टि स इनका काव्य पजाबी साहित्य मे विशिष्ट स्थान का अधिकारी है।

मिरज़ा साहिबा (प० कृ०) [रचना-काल—सोलहवी शती का उत्तरार्द्ध]

लोककवि पीलू (दे०) की यही एक कृति प्राप्त होती है। इसमे मिरज़ा और साहिबा नामक स्थानीय प्रेमी युगल के परस्पर आकर्षण और विवाह पूर्व नायक के साथ नायिका के गृह त्याग की दु खात कथा है। अपने भाइयो की प्राण-रक्षा के मोह म नायिका प्रेमी की हत्या का परोक्ष कारण बन जाती है और पश्चात्ताप से व्याकुल

होकर आत्महत्या कर लेती है। पीलू की मूल रचना के स्वरूप के विषय में आज कुछ कह सकना असंभव है। इस प्रकार के पाठ की प्रामाणिकता संदिग्ध है। उपलब्ध पाठ पूर्वापर-संबंधरहित घटनाओं का वर्णन करने वाले कुछ फुटकल पद्यों का संग्रह मात्र प्रतीत होता है। छंद की लयात्मकता एवं प्रवाह इसकी लोकप्रियता का मुख्य कारण है और उधर चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी यह रचना पर्याप्त सशक्त है। पंजाबी युवक-युवती अपनी संपूर्ण विशेषताओं के साथ 'मिरजा-साहिबां' में रूपायित हुए हैं। संवादों की नाटकीयता, भाषा की ग्रामीणता और वर्णनों की अतिशयोक्तिपूर्णता इस कृति की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

मिरात-उल-उरूस (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1869 ई०]

'मिरात-उल-उरूस' डिप्टी नज़ीर अहमद (दे०) का उपन्यास है। यह पहला उपन्यास है जो महिलाओं से संबद्ध है। इसमें देहली के शिष्ट परिवारों के रहन-सहन का सजीव चित्रण किया गया है। यह इतना लोकप्रिय हुआ था कि इसके पात्र—असग़री, अक़बरी और मामा अज़मत—आज भी लोगों को याद हैं और परस्पर बातचीत में प्रसंगानुसार उनके नाम प्रतीक-स्वरूप उद्धृत किए जाते हैं। इसमें अँग्रेज़ी 'ड्रामे' की तरह संवाद लिखने की शैली अपनाई गई है। इसके लंबे तथा उपदेशात्मक वक्तव्य यद्यपि खटकते हैं तथापि दिल्ली की टकसाली बोली तथा स्त्रियों के मुहावरों का सफल प्रयोग होने के कारण यह उपन्यास नीरस नहीं हो पाया है।

मिरि जीयरी (अ० कृ०) [रचना-काल—1895 ई०]

यह रजनीकांत बरदलै (दे०) का प्रथम उपन्यास है। न्यायाधीश बरदलै को 1894 ई० में कार्यवश नेफा जाने का अवसर मिला था। वहाँ उन्होंने मिरि नामक जनजाति के रहन-सहन, आचार-विचार का अध्ययन किया था। उन्होंने अपने अध्ययन का उपयोग इस ग्रंथ में किया है। जंकि (दे० पानेई-जंकि) और पानेई (दे० पानेई-जंकि) बालसखा हैं, यौवन आने पर वे प्रणयी बन जाते हैं। गाँव और परिवार की प्रथा के अनुसार उनके प्रेम को स्वीकृति नहीं मिलती। उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। जनजाति की अदालत के अनुसार उन्हें मृत्यु-दंड दिया जाता है। जीवित अवस्था में वे नहीं मिल सके किंतु सुवर्ण-श्री नदी में दोनों के शव एकसाथ तैरते दिखाई देते हैं। यह दुःखांत उपन्यास असमीया-साहित्य का (और वह भी जनजाति पर आधारित) प्रथम सामाजिक उपन्यास है।

मिर्ज़ा कलीच बेग (सि० लें०) [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1929 ई०]

मिर्ज़ा कलीच बेग का पिता फ़रीदून बेग असल में जार्जिया का ईसाई था और बचपन में मुसलमान बना कर सिंध में लाया गया था। मिर्ज़ा कलीच बेग की शिक्षा-दीक्षा सिंध और बंबई में हुई थी। बी० ए० तक पढ़ाई करने के पश्चात् ये सिंध में सरकारी नौकरी करने लगे थे और डिप्टी कलेक्टर के पद से 1910 ई० निवृत्त हुए थे। बचपन से ही कविताएँ लिखने लगे थे और आगे चलकर ये सिंधी-कवियों और गद्य-लेखकों में अग्रगण्य बन गए थे। इनकी रचनाएँ साहित्य की प्रत्येक विधा में मिलती हैं। इनकी प्रकाशित मौलिक तथा अनूदित पुस्तकें लगभग 150 हैं। इतनी ही इनकी रचनाएँ और भी कही जाती हैं जो अभी तक अप्रकाशित हैं। कविता के क्षेत्र में इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'सौदाए ख़ाम', 'दीवान-कलीच', 'अमुल्हं माणिक', 'चंदनहार', 'मोत्युनि जी दबुली', 'रुबाइयात उमर ख़य्याम'। इनके अतिरिक्त इन्होंने उपन्यास 'दिलाराम' (1888) और 'ज़ीनत' (1890), नाटक 'लैला-मजनू' (1880) और निबंध 'मकाला त अल् हिकमत' (1870) की रचना और की है। मिर्ज़ा कलीच बेग की कविताएँ कलापक्ष की दृष्टि से सफल रचनाएँ होते हुए भी भाव-सौष्ठव की दृष्टि से निर्जीव-सी हैं। गद्य के क्षेत्र में इन्होंने भाव तथा कला की दृष्टि से प्रभावपूर्ण रचनाएँ दी हैं। इनकी भाषा स्वाभाविक और बोलचाल की है।

मिर्ज़ा ज़ाहिरदार बेग (उर्दू० पा०)

मिर्ज़ा ज़ाहिरदार बेग डिप्टी नज़ीर अहमद (दे०) की कृति 'तौबातुन्नसूह' (दे०) का पात्र है। यह बच्चा ही था कि इसके पिता का देहांत हो गया। तब यह अपनी विधवा माता के साथ एक जमादार साहब के संरक्षण में रहता था। जमादार साहब के स्वर्ग सिधारने पर इनकी महलसराय का एक छोटा-सा भूमिभाग और चार रुपये मासिक किराये की दुकानें मिर्ज़ा के नाम हो गईं। मिर्ज़ा ज़ाहिरदार, उसकी माँ तथा पत्नी तीनों की कुल आय

यही सात रुपये मासिक थी। किंतु मिर्जा था कि जमादार साहब के बेटो की बराबरी करना चाहता था। ज़ाहिरदार मे नाम के अनुरूप गुण भी था—जाहिरदारी या बाह्याडबर का। इसने सारी आदतें अमीरज़ादो वाली अपना ली थी किंतु अमीरी निभती कैसे? दुकानें गिरवी होती जा रही थी। माँ बहुतेरा समझाती किंतु वह सुनता ही न था। कलीम पर इसने अपनी धनाढ्यता की ऐसी धाक बिठा रखी थी कि कलीम समझता था, जमादार की सारी सपत्ति मिर्जा को बपौती मे मिली है और जमादार के बेटो-पोतो के नौकर सब मिर्जा के नौकर-चाकर है। यह हर जगह अपने को जमादार का बेटा ही बताया करता है। छोटे कद का यह दुबला-पतला, पीला-पीला दिखने वाला आदमी अपने आपको खूब बना-सँवार कर रखता है और बडप्पन जताने की असफल चेष्टा करता रहता है।

मिलिंदपन्ह (पा० कृ०)

यह किसी अज्ञातनामा लेखक की कृति है। इस पुस्तक की रचना उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रात मे हुई होगी, क्योकि राजा मिलिंद (ग्रीक मिनेंड्रस) ई० पू० दूसरी शती मे इसी प्रदेश का शासक था। इसमे राजा मिलिंद की शकाएँ और नागसेन भिक्षु द्वारा उनके उत्तर लिखे हुए हैं। *निस्सदेह इस पुस्तक की रचना उसी समय* हुई होगी जब या तो राजा मिलिंद का शासन चल रहा होगा या शासन की समाप्ति को कुछ ही समय व्यतीत हुआ होगा। हो सकता है कि नागसेन और मिलिंद के मिलन की घटना सत्य हो और यह भी हो सकता है कि किसी ने काल्पनिक कथा बना ली हो। इस पुस्तक मे 7 खड हैं जिनमे केवल पहले 3 खड ही प्रारभिक हैं, शेष खड बाद मे जोडे हुए हैं। इस पुस्तक मे राजा के प्रश्नो के नागसेन ने बहुत युक्तियुक्त उत्तर दिये हैं और उनसे बौद्ध सिद्धातो का सतोषजनक स्पष्टीकरण हो जाता है।

मिश्र, कृपासिंधु (उ० ले०) [जन्म—1887 ई०, मृत्यु—1926 ई०]

'सत्यवादी गोष्ठी' के लेखको मे पडित कृपासिंधु मिश्र इतिहासकार के रूप मे प्रसिद्ध थे। इनके ग्रथ इतिहास और साहित्य दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण हैं। *उडिया-इतिहास की रचना मे इन्होने एक सशक्त और* नया मोड दिया है। इनकी रचना 'कोणार्क' (दे०) अपने विषय का एक गौरव ग्रथ है। 'बारबाटी दुर्ग', 'उत्कळ इतिहास', 'हिस्टरी ऑफ इगलैंड' आदि इनकी रचनाएँ हैं।

पुरी के बीरहरे कृष्णपुर-शासन मे इनका जन्म हुआ था। पिता श्री जनार्दन रथ की ये द्वितीय सतान थे। मौसी के दत्तक पुत्र होने के कारण इनकी उपाधि 'मिश्र' हो गयी थी। रेवेंसा कालेज, कटक से दर्शन लेकर बी० ए० ऑनर्स करने के बाद इन्होने कलकत्ता से दर्शन मे एम० ए० और बी० ए० किया। उडीसा का यह दुर्भाग्य है कि जब इनकी प्रतिभा प्रौढता को प्राप्त कर रही थी, तभी इनकी अकाल मृत्यु हो गई।

मिश्र, डा० कृष्णप्रसाद (उ० ले०)

इनका जन्मस्थान कटक है। डा० मिश्र दर्शन मे एम० ए० हैं *तथा टोरोंटो विश्वविद्यालय, केनेडा से* इन्होने दर्शन मे पी-एच० डी० किया है। आजकल उत्कल विश्वविद्यालय मे दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक हैं।

डा० कृष्णप्रसाद मिश्र कहानीकार, उपन्यासकार एव समीक्षक हैं। विदेशी पृष्ठभूमि पर लिखी इनकी अनेक कहानियाँ हैं। इनकी शैली मुख्य रूप से वर्णनात्मक एव सवादात्मक है। इनकी अब तक 20 से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है। 'नाएग्रा ओ देवयानी' (दे०) इनकी ग्यारह कहानियो का प्रसिद्ध सकलन है।

मिश्र, कृष्णबिहारी (हि० ले०)

यद्यपि इन्होने बी० ए० एल-एल० बी० तक शिक्षा प्राप्त की थी, तथापि साहित्य के प्रति इनका अनुराग इतना अधिक था कि कुछ समय तक वकालत करने के बाद य पहले माधुरी' और फिर 'साहित्य समालोचक' नाम की पत्रिकाओ का सपादन करने लगे थे। ये कुछ समय तक काशी के प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'आज' के सपादकीय विभाग म भी रहे थे। हिंदी-साहित्य के इतिहास मे इनकी ख्याति मुख्यत 'देव और बिहारी' नामक आलोचना ग्रथ पर आधृत है जिसमे देव तथा बिहारी की तुलनात्मक समीक्षा की गई है। इन्होंने अनेक ग्रथो का सपादन भी किया जिनम 'गगाभरण', 'नवरस तरग', 'मतिराम ग्रथावली', 'नटनागर विनोद' आदि प्रसिद्ध हैं। प० कृष्णबिहारी मिश्र शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचद्र)-पूर्व हिंदी-आलोचना के आधारस्तभ हैं।

मिश्र, गोदावरीश *(उ० ले०)* [जन्म—1888 ई०; मृत्यु –1956 ई०]

बीसवीं शती का पूर्वार्द्ध उड़िया जातीय चेतना का युग था, जिसका जीवंत प्रतिरूप सत्यवादी बकुल-वन-विद्यालय था। इसी सत्यवादी चेतना की साकार प्रतिमूर्ति हैं गोदावरीश मिश्र, जिनका साहित्य जातीय महिमा से उज्ज्वल है। उड़ीसा के इतिहास का गौरवगान तथा वैयक्तिक शौर्य-चित्रण इनको अभीष्ट है, इसलिए ये किंवदंती, लोक-विश्वास, पुराण व इतिहास का आश्रय लेते हैं।

इन्हें गाथा-कविताओं में सर्वाधिक सफलता मिली है। इन गाथा-काव्यों का प्रधान प्रतिपाद्य जातीयता है, किंतु इनकी गहन रसात्मकता में ही इनकी काव्यिक महत्ता अंतर्निहित है। संक्षिप्त स्वरूप में विषय-वस्तु की अत्यंत कलात्मक नियोजना इनके गाथा-काव्यों की अपनी विशेषता है। 'आलेखिका' काव्य जातीय चित्तवृत्ति की चित्रशाला है। इनके गीत-काव्यों की सरल-तरल भाव-राशि, करुण-सजल अनुभूति, आडंबरहीन, सहज भाषा, स्वाभाविक शैली आदि विशेषताएँ इन्हें चिरंतनता प्रदान करती हैं।

वाणपुर (पुरी) गोदावरीश जी का जन्मस्थान है। कलकत्ता मुख्यतः इनकी शिक्षा का केंद्र रहा। 'कळिका', 'किशळय' अन्य काव्य-कृतियाँ हैं। 'पुरुषोत्तमदेव' (दे०) इनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है। 'अर्द्धशताब्दीर ओडिशा ओ ताहिरे मो स्थान' (दे०) उड़िया साहित्य-जगत् में इनकी सुविख्यात आत्मजीवनी है। अनुभूति की निष्कपट सरस अभिव्यक्ति सरल चित्ताकर्षक भाषा-शैली एवं रोमांचक अनुभवों की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

मिश्र, डा० गोपाळचंद्र *(उ० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

डा० गोपाळचंद्र मिश्र (एम० ए०, डी० लिट्०) ने कविता, नाटक, कहानी, आलोचना आदि साहित्य के विविध रूपों का स्पर्श किया है, किंतु उन्हें सर्वाधिक सफलता कविता एवं कहानी के क्षेत्र में मिली है। इनकी आलोचनाएँ मुख्य रूप से विवरणात्मक हैं। संप्रति ये संबलपुर विश्वविद्यालय में उड़िया के प्रोफेसर हैं। इनकी रचनाएँ हैं—'विद्रोही दिवाकर', 'रासनी', 'निवेदिता', 'पूर्वराजा', 'से पारे प्रियार गाँ', 'आधुनिक ओड़िआ साहित्यर गतिपथ' (दे०)।

मिश्र, चौधुरी हेमकांत *(उ० ले०)* [जन्म—1935]

चौधुरी हेमकांत मिश्र व्यंग्यात्मक और मनोवैज्ञानिक कहानी-रचना में अग्रणी हैं। विद्यार्थी-जीवन में ही सफल कहानीकार के रूप में इन्हें ख्याति प्राप्त हो गई थी। तब से अब तक 'डगर', 'दिगंत', 'झंकार', 'तरंग', 'आसंता कालि', 'साप्ताहिक प्रजातंत्र' आदि में इनकी कहानियाँ निरंतर प्रकाशित होती आ रही हैं।

इनकी व्यंग्यात्मक रचनाओं में गहरी सामाजिक अंतर्दृष्टि सूक्ष्म व तीखी व्यंग्यात्मक शैली में इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है कि कई स्थानों पर इनकी कृति करुण कामदी-सी प्रतीत होती है। मानवीय संवेदना, भाव-गांभीर्य, वैचारिक प्रौढ़ि, गहन अध्ययन आदि इनकी रचना के विशेष गुण हैं। 'भल्लुकर पुरार्पेट ओ अन्याय मजागप' (दे०) (1963 ई०) इनकी सर्वप्रथम प्रकाशित पुस्तक है, जिसमें व्यंग्यात्मक रचनाओं का संग्रह है।

मनोवैज्ञानिक कहानियों में इन्होंने चेतना-प्रवाह शैली का पैने व्यंग्य के साथ प्रयोग किया है। इनकी छायावस्था की 'कथक', 'प्रेमिका', 'दर्शक' आदि और परवर्ती काल की 'तथ्यक', 'निषिध-पुस्तक', 'अल्प' आदि कहानियाँ मर्मज्ञ पाठकों में निरंतर लोकप्रिय रही हैं।

मिश्र, दुर्गामाधव *(उ० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

श्री दुर्गामाधव मिश्र, आई० पी० एस० का जन्म नयागढ़—पुरी में हुआ था। ये कहानीकार हैं। इनकी रचनाएँ अत्यंत सुख-पाठ्य हैं। घरेलू दैनंदिन जीवन की अनुभूतियाँ इनकी छोटी-छोटी कहानियों में नवीन शैलियों में अभिव्यक्त हुई हैं। 'सेइ हस टिकक', 'जउतिपे कहिछंति', 'सीमेंट ओ कंक्रिट', 'पथर कहंछ', 'तारा ओ तिमिर' (दे०) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

मिश्र, द्वारिकाप्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

इनका जन्म पड़री ग्राम, जिला उन्नाव में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० अयोध्याप्रसाद मिश्र है। शिक्षा की दृष्टि से ये बी० ए०, एल-एल० बी० हैं। ये साहित्यिक व्यक्ति होते हुए भी कुशल राजनीतिज्ञ हैं। सर्वप्रथम ये मध्य प्रांत में कांग्रेस दल के एम० एल० ए० तथा सचिव रहे थे। ये रविशंकर शुक्ल के मंत्रिमंडल में गृहमंत्री, अनेक वर्षों तक सागर विश्वविद्यालय के उप-

कुलपति तथा बाद मे अनेक वर्षों तक मध्यप्रदेश के मुख्य-मंत्री रहे। आजकल इन्होने राजनीति से सन्यास ग्रहण कर लिया है। 'लोकमत', 'श्री शारदा' और 'सारथी' पत्रो के सचालक एव सपादक रह चुके हैं। इन्होने कारावास मे रहकर 'कृष्णायन' का निर्माण किया था। 'कृष्णायन' लोक-नायक कृष्ण का चरित्राख्यान है। अभी तक गुमानी मिश्र को छोडकर किसी भी कवि ने कृष्ण के विविधता भरे जीवन को समेटने की चेष्टा नही की है, पर मिश्र जी ने कृष्ण के लोकरक्षक एव रजक रूपो मे सामजस्य स्थापित करके उद्देश्य की महत्ता, जीवन की समग्रता, राष्ट्रव्यापी महाप्राणता एव युग-युगातरपरक दूरदर्शिता सहेज कर कृष्ण के चरित्र को राम के समान आदर्शपरक बनाकर नितात प्रभावशाली बना दिया है। निश्चय ही मिश्र जी ने रामचरित के समानातर कृष्णचरित देकर भारतीय चिताधारा मे एक नया मोड प्रस्तुत किया है। कवि की दृष्टि बडी सुलझी हुई है, भाषा मे एक अजीब-सा मार्दव और सुघडता है।

मिश्रबंधु *(हिं० ले०)*

जिन दो भाइयो—श्याम बिहारी मिश्र (1872-1947) और शुकदेव बिहारी मिश्र (1 78-1952)—का व्यक्तित्व एक बनकर साहित्य-रचना मे प्रवृत्त हुआ वे मिश्रबधु के नाम से हिंदी जगत् मे विख्यात हैं। इन दोनो ने उच्च शिक्षा प्राप्त की और ब्रिटिश शासन मे उच्च पदो पर रहे। सरकार ने दोनो को रायबहादुर की और विश्व-विद्यालयो ने डी० लिट्० की उपाधि से विभूषित किया। आरभ मे साहित्य के प्रति उनकी रुचि शौकिया थी, परतु बाद मे उनकी सपूर्ण शक्ति तथा जीवन साहित्य को समर्पित हो गया।

द्विवेदी (दे० द्विवेदी, महावीरप्रसाद) युग मे हिंदी-आलोचना के जो पाँच रूप दृष्टिगत होते हैं—शास्त्रीय, निर्णयात्मक, व्याख्यात्मक, तुलनात्मक एव शोधपरक आलोचना—वे सब तो मिश्रबधुओ की समीक्षा मे मिलते ही हैं, प्रभावात्मक और परिचयात्मक आलोचना पद्धति भी मिश्रबधुओ के माध्यम से स्थिरता को प्राप्त हुई। मिश्रबंधुओ ने कृतियो मे दोष-दर्शन की अपेक्षा गुणो का उद्घाटन अधिक किया, कवियो की कला, भाव-सवेदन विचारधारा और जीवन-सदेश का अधिक विवेचन किया, कृति को युग के परिप्रेक्ष्य मे रखकर मूल्याकन करने का प्रयास किया। अब तक समीक्षक काव्य की परीक्षा-रस, ध्वनि, गुण, अलकार के आधार पर करते थे, मिश्रबधुओ ने कहा कि समीक्षक को उसके अभिव्यजना-सौष्ठव, विचार-सपदा और भाव-सवेदन पर भी ध्यान केंद्रित करना चाहिए; काव्य-भाषा की परीक्षा केवल व्याकरण के नियमो पर न होकर, उसकी साहित्यिक सामर्थ्य और अभि-व्यजना-कौशल की दृष्टि से होनी चाहिए। 'हिंदी नवरत्न' मे हमे निर्णयात्मक आलोचना का प्रथम व्यवस्थित प्रयोग मिलता है। यद्यपि उन्होने अधिकतर भारतीय काव्यशास्त्र के मानदडो को आधार मानकर ही अपने दोनो ग्रथो 'हिंदी नवरत्न' तथा 'मिश्रबधु-विनोद' मे कवियो की आलोचना की है, तथापि तुलसी (दे० तुलसीदास), बिहारी (दे०), देव (दे०) इत्यादि के छदो की व्याख्या मे व्याख्यात्मक आलोचना-पद्धति, और विभिन्न हिंदी-कवियो की परस्पर तुलना, तुलसी तथा शेक्सपीयर की तुलना, कवियो के श्रेणी-विभाजन तथा कोटि-निर्धारण मे तुलनात्मक आलोचना-पद्धति दृष्टिगत होती है। देव को बृहत्त्रयी मे स्थान देने के पीछे प्रभाववादी आलोचना-पद्धति के दर्शन होत हैं। शोधपरक आलोचना-पद्धति हमे 'मिश्रबधु विनोद' मे मिलती है जहाँ उन्होने कवियो का वृत्तसग्रह करने और उनकी प्राप्य अप्राप्य कृतियो का पता लगाने के लिए परिश्रमपूर्वक अनुसधान किया।

उन्होने 'मिश्रबधु-विनोद' को इतिहास नही कहा पर उनका प्रयत्न इसे आदर्श इतिहास बनाना अवश्य था। उन्होने लगभग 5000 कवियो और उनके काव्य की खोज कर उन पर सुव्यवस्थित प्रकाश डाला, उनका सापेक्षिक महत्त्व बताया, साहित्य के अन्य विविध अगो का विवेचन किया और उसे तीन मुख्य कालो—पूर्व, मध्य और उत्तर—मे विभाजित किया। आचार्य रामचद्र शुक्ल (दे०) ने काल-विभाजन मे उनका अनुसरण किया, तो हजारी-प्रसाद द्विवेदी (दे०) ने 'आदिकाल' नामकरण के लिए मिश्रबधुओ द्वारा दिये गये 'प्रारभिक काल' स प्रेरणा ली। उनके इस ग्रथ मे कुछ त्रुटियाँ अवश्य हैं जैस उन्होने अष्ट-छाप (दे०) के चतुर्भुजदास को राधावल्लभ-सप्रदाय (दे०) साथ मिलाकर एक कर दिया है, पर कुल मिलाकर हिंदी-साहित्य के इतिहास-लेखन मे उनका योगदान अमर है।

कवि, उपन्यासकार और नाटककार के रूप मे भी मिश्रबधुओ का कृतित्व अविस्मरणीय है। ब्रजभाषा और खडी बोली मे लिखे गय काव्य के 1000 पृष्ठ, 'उदयन', 'चद्रगुप्त मौर्य', 'चद्रगुप्त विक्रमादित्य', 'वीरमणि', 'स्वतत्र भारत' आदि ऐतिहासिक उपन्यास और 'नेत्रो-मीलन'

नाटक उनके कृतित्व के साक्षी हैं। वे इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान और विशाल अध्येता थे। 1930 ई० में पटना विश्वविद्यालय में दी गयी उनकी व्याख्यानमाला और 'रूस का इतिहास' तथा 'भारतवर्ष का इतिहास' इसका प्रमाण हैं।

हिंदी-साहित्य के इतिहास-लेखन और समीक्षा के क्षेत्र में मिश्रबंधुओं का योगदान इतना महत्वपूर्ण है कि उन्हें महावीरप्रसाद द्विवेदी के बाद इन दोनों कार्यों को आगे बढ़ाने वाला कहा गया है।

मिश्र, बलभद्र *(हिं० ले०)*

ये ओरछा निवासी सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनका 'नखशिख' ग्रंथ शृंगार-विषयक है, जिसमें नायिका के विभिन्न अंगों का वर्णन कवित्वपूर्ण शैली में किया गया है। गोपाल कवि ने इसी ग्रंथ पर एक टीका लिखी थी। उनके कथानुसार इनके लिखे तीन ग्रंथ और भी हैं— 'बलभद्री व्याकरण', 'हनुमन्नाटक' और 'गोवर्धन-सतसई'। इनका एक अन्य ग्रंथ 'दूषण-विचार' भी मिलता है। बलभद्र केशवदास (दे०) के समकालीन कवि थे। अतः इस दृष्टि से इनका एक ऐतिहासिक महत्व भी है कि इन्होंने भी रीतिकाल के प्रारंभ होने से पूर्व ही केशव के समान काव्य-शास्त्र-विषयक ग्रंथ लिखे थे।

मिश्र, विजयकुमार *(उ० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

श्री विजयकुमार मिश्र उड़िया नवनाट्य आंदोलन के अग्रणी नाटककार हैं। अब तक इनके तीस से अधिक नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। उद्भटनाटक (एब्सर्ड ड्रामा) लिखने वाले प्रमुख नाट्यकारों में इनका नाम भी लिया जा सकता है। इनका नाटक 'शबवाहक माने' (दे०) लोकप्रिय एवं अभिनय की दृष्टि से भी सफल रहा है। व्यावसायिक एवं शौकिया दृष्टि से इनके नाटक अत्यंत सफल हैं। लेखक अपने नाटकों में आधुनिक जीवन की मूल्यहीनता, विघटन, आपाधापी का चित्रण, क्रिया, परिवेश एवं परिस्थिति-निरूपण के द्वारा करता है। फलतः उसका घनीभूत प्रभाव गहरा होता है। संवादों का अत्यल्प प्रयोग हुआ है।

'चंद्रभोरी' तथा 'सूर्यदग्धकुल गानन्कुरु' इनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

मिश्र, बिनायक *(उ० ले०)* [जन्म—1894 ई०; मृत्यु—1971 ई०]

इनका जन्मस्थान नया गढ़ है और पिता का नाम है कृष्णचंद्र मिश्र। 'ओड़िआ-साहित्य-परिचय' के संकलन में ये स्व० बिजयचंद्र मजुमदार के सहायक थे। 1921 ई० में ये कलकत्ता विश्वविद्यालय के सहायक अध्यापक नियुक्त हुए। 1931 ई० में अध्यापक बने और 1949 ई० में इन्होंने अवकाश ग्रहण किया।

श्री बिनायक मिश्र अध्यवसायी विद्वान एवं मौन साधक हैं। भारतीय इतिहास के एक गौरवमय अध्याय भौमवंश पर लिखने वाले ये एकमात्र उड़िया लेखक हैं। हाई स्कूल या कालेज की सीमा में प्रवेश न करने पर भी मिश्र अँग्रेजी जी के साथ-साथ अन्य कई भाषाओं के प्रकांड विद्वान हैं। इनके 'ओड़िआ भाषार इतिहास' एवं 'ओड़िआ साहित्यर इतिहास' (दे०) अपने-अपने क्षेत्र की मूल्यवान उपलब्धियाँ हैं। इनके अतिरिक्त 'ओड़िया अंडर भौमे किंग्स', 'डायनेस्टीज़ ऑफ ओडीसा', 'मैडिवल ओड़ीसा', 'भारतीय दर्शन-प्रवेश', 'ओड़िआ साहित्य प्रकाश', आदि अन्य प्रमुख कृतियाँ हैं। सभी में लेखक का गंभीर अध्ययन, मौलिक प्रतिभा, सूक्ष्म गवेषणात्मक शक्ति एवं सशक्त भाषा-शैली आदि विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं।

मिश्र, भवानीप्रसाद *(हिं० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

इनका जन्मस्थान होशंगाबाद (म० प्र०) है। साधारण शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर ये साधारण लोगों के बीच मे रहे। कुछ वर्ष आकाशवाणी में रहकर आजकल ये गांधी वाङ्मय का संपादन कर रहे हैं। स्वतंत्रता-संग्राम में ये जेल-यात्रा भी कर चुके हैं। 'दूसरा सप्तक' में संगृहीत होने के पश्चात् इनकी रचनाएँ 'गीतफरोश', 'चकित है दुख', 'अँधेरी कविताएँ', 'गांधी पंचशती', आदि कविता-संग्रहों में प्रकाशित हुई है। 'बुनी हुई रस्सी' पर इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इनकी कविताओं में साधारण जीवन के सहज अनुभव पूरी अनौपचारिकता के साथ व्यक्त हुए हैं। जैसा हम बोलते हैं, वैसा ही लिखकर उसे असाधारण बना देने के लिए ये कृत-संकल्प रहे है। वर्तमान जीवन की सभी विसंगतियों को भोगते हुए भी गांधीवादी आस्था के कारण इनका स्वर निराशाविगलित नहीं है। इस प्रकार परिवेश से संपृक्त

सहज अनुभव, जीवन में से प्राप्त आस्थापूर्ण चिंतन और शैली की अनौपचारिकता ने इन्हे नये कवियो मे विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया है।

मिश्र, रामदहिन *(हिं० ले०)*

विद्यावाचस्पति प० रामदहिन मिश्र ने 'काव्य-दर्पण','काव्यलोक', 'काव्यविमर्श','काव्य मे अप्रस्तुतयोजना' आदि अनेक ग्रथो का प्रणयन किया है, और इनमे सर्वाधिक ख्यात ग्रथ है—'काव्यदर्पण'। वस्तुत यह उनका अतिम ग्रथ है। अतः इनके काव्यलक्षण-विषयक सभी ग्रथो की सामग्री इसमे एकत्रित है। इसमे काव्यलक्षण, शब्दशक्ति, रस, ध्वनि, काव्य-भेद, नाटक, दोष, गुण, रीति और अलकार —इन सभी काव्यागो का विवेचन स्पष्ट एव व्यवस्थित रूप मे प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रथ मे भारतीय दृष्टि-कोण के साथ-साथ तद्विषयक पाश्चात्य मतव्य भी यत्र-तत्र अनुस्यूत हैं। उदाहरण प्राचीन तथा अर्वाचीन हिंदी-ग्रथो से लिये गए है। इस ग्रथ के माध्यम से ग्रथकार ने प्राचीन भारतीय काव्यागो के लिए न केवल प्राचीन, अपितु आधुनिक कवियो की रचनाओ से भी उदाहरण प्रस्तुत करने का सर्वप्रथम प्रयास किया है।

मिश्र, लक्ष्मीनारायण *(हिं० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

इनका जन्म आजमगढ जिले के बस्ती गाँव मे हुआ। इन्होने 1928 ई० मे सेंट्रल हिंदू कालेज, काशी से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की। यद्यपि इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का आरभ अट्ठारह वर्ष की अल्पायु मे काव्य-सृजन से किया किंतु आगे चलकर ये नाट्य-लेखन की ओर मुड गए और तदनतर अपनी अभिनय नाट्यकला के फलस्वरूप इस दिशा में स्थायी यश अर्जित किया। 'अशोक', 'मुक्ति का रहस्य', 'सिंदूर की होली' (दे०), 'वत्सराज', 'दशाश्वमेध' आदि इनकी उल्लेखनीय रचनाएँ है। इन्होंने मुख्यत समस्याप्रधान एव ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं और अपनी रचनाओ मे भावुकता तथा कल्पना के स्थान पर यथार्थ जीवन की जटिलताओ का प्रत्यकन किया है। शिल्प की दृष्टि से इनकी रचनाओं पर पश्चिमी नाटककारो, मुख्यत इब्सन और शॉ का विशेष प्रभाव पडा है। समग्रतः (दे० प्रसाद) नाट्य-साहित्य मे इनका विशिष्ट स्थान है।

मिश्र, श्रीपति *(हिं० ले०)*

श्रीपति कालपी नगर के निवासी थे। इनकी प्रसिद्ध रचना 'काव्य-सरोज' है, जिसका रचना-काल 1720 ई० है। इसके अतिरिक्त इन्होने 'कवि-कुलकल्पद्रुम', 'रससागर', 'अलंकारगगा', 'अनुप्रासविनोद', 'विक्रम-विलास', 'सरोजलतिका' आदि अन्य ग्रथ भी लिखे जो आज अनुपलब्ध हैं। 'काव्य-सरोज' मे विविध काव्यागो का निरूपण मम्मट (दे०) की पद्धति पर किया गया है। इसकी वर्ण्य सामग्री सुलझी हुई तथा स्पष्ट है। इसका उदाहरण-पक्ष सरस और प्राय अनुप्रासमय है। दोष-प्रसग मे इन्होने स्वनिर्मित उदाहरण प्रस्तुत न कर पूर्ववर्ती हिंदी-कवियो के उदाहरण प्रस्तुत किए है, जिनमे से केशव-दास (दे०) के अतिरिक्त सेनापति (दे०) और ब्रह्म के नाम उल्लेख्य हैं। रीतिकालीन आचार्य दास (दे०) के सबध मे कहा जाता है कि उन्होने अपने 'काव्य-निर्णय' (दे०) मे बहुत-सी बातें इनके 'काव्य-सरोज' से अपना ली हैं, किंतु दोनो ग्रथो की विभिन्न निरूपण शैली तथा शास्त्रीय धारणाओ को देखते हुए यह मान्यता ठीक प्रतीत नही होती।

मिश्र, सुखदेव *(हिं० ले०)*

ये कपिला के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका जीवन-काल 1633-1703 ई० माना जाता है। ये अनेक राजाओ के यहाँ रहे थे। इनके द्वारा रचित ये ग्रथ कहे जाते है—'वृत्तविचार', 'छदविचार', 'अध्यात्मप्रकाश', 'फाजिलअलीप्रकाश', 'रसरत्नाकर', 'रसार्णव', 'शृगार-लता' आदि। 'रसरत्नाकर' तथा 'रसार्णव' भानुमिश्र की 'रसमजरी' (दे०) के आधार पर लिखे गये नायक-नायिका-भेद-विषयक ग्रथ हैं। इन ग्रथो के उदाहरण सरस तथा कवित्वपूर्ण हैं। शैली सहज भावमयी है, जिसम आलकारि-कता का पुट अधिक नही है।

मिश्र, सूरति *(हिं० ले०)*

सूरति मिश्र आगरा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके लिखे ये 7 ग्रथ बताए जाते हैं—'अलकारमाला', 'रसमाला', 'सरसरस', 'रसग्राहकचद्रिका', 'नखशिख', 'काव्य-सिद्धात' और 'रसरत्नाकर'। इनके अतिरिक्त इन्होंने तीन टीकाएँ भी लिखी थी—'अमीरचद्रिका' नाम

से बिहारी-'सतसई' (दे०) की टीका), 'कविप्रिया' (दे०) और 'रसिकप्रिया' की टीका, तथा इन्होंने 'वैतालपंच-विंशति' का ब्रजभाषा में अनुवाद भी किया था। इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) ने अपने ग्रंथ 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' (दे०) में इनका एक पद्य उद्धृत किया है जो कि अति सरस है। इससे इनकी कवित्वक्षमता का अनुमान-मात्र लगाया जा सकता है।

मिश्र, सौभाग्यकुमार *(उ० ले०)* [जन्म—1941 ई०]

श्री सौभाग्यकुमार मिश्र नयी कविता के एक अग्रणी कवि हैं। इनका जन्म ब्रह्मपुर (गंजाम) में हुआ था। रेवेंसा कालेज, कटक से इन्होंने अँग्रेजी-साहित्य में एम०ए० किया है। नयी कविता के नये प्रयोगों में इनकी सफलता असंदिग्ध है। इनकी कविताओं में आधुनिक मानव की दुबिधा एवं भ्रांति की अभिव्यक्ति हुई है। फिर भी कवि आशान्वित है। इनकी कविताओं में गेयता और बौद्धिक शक्ति-संपन्नता मिलती है। भाव एवं परिवेश के चित्रण में कवि का दृष्टिकोण यथार्थवादी एवं नाटकीय है। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है। उड़िया भाषा के विभिन्न सूक्ष्म अर्थ-भेदों के प्रति कवि अत्यंत सजग है। ये साहित्य के सौंदर्य और नैतिक मूल्यों के प्रति जागरूक एवं गंभीर है। 'आत्मनेपदी', 'मध्यपद लोपी' (दे०) काव्य-संग्रह इनके कवि-व्यक्तित्व की समस्त संभावनाओं से उज्ज्वल है।

मिहरबान *(पं० ले०)*

ये पंजाब में बाबा श्रीचंद द्वारा प्रवर्तित 'उदासी' संप्रदाय के अंतर्गत 'दीवाला' मत के संस्थापक माने जाते है। ये सिखों के चौथे गुरु रामदास जी के पौत्र, बाबा पृथ्वीचंद्र के पुत्र और पाँचवें गुरु अर्जुनदेव के भानजे थे। सिख-पंथ की गुरु-परंपरा के समानांतर चलने वाली उदासी-मत-परंपरा के अग्रणी अधिकांशतः गुरु-परिवार के वे ही व्यक्ति रहे जिनका किसी-न-किसी कारण गुरु-मत से विरोध था। सोढी मिहरबान भी इनके द्वारा लिखित 'गुरु नानक देव जी की 'जनम-साखी' सिख-पंथ में बहुत विवादास्पद रचना मानी जाती है क्योंकि इसमे बहुत-सी बातें गुरु-मत के विरुद्ध है।

पंजाबी-साहित्य के अंतर्गत मिहरबान की गणना प्रारंभिक गद्यकारों में की जाती है क्योंकि इनके द्वारा लिखित 'जनमसाखी' पंजाबी की प्राचीनतम गद्य-रचनाओं में से है। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य कृति 'रामायण' की हस्तलिखित प्रतियाँ भी पंजाब के विभिन्न पुस्तक-संग्रहालयों में विद्यमान हैं।

मीनलदेवी *(गु० पा०)*

पाटण के राजा कर्णदेव की रानी और दक्षिण के राज्य चंद्रपुर की राजकुमारी मीनलदेवी कन्हैयालाल मुंशी (दे०) द्वारा रचित 'पाटणनी प्रभुता' (दे०) का एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्त्री पात्र है। मुंजाल (दे०) नामक वणिक् के साथ प्रेम होने के कारण और किसी भी प्रकार गुजरात में रहने की आकांक्षा रखने वाली मीनल चूंकि मुंजाल से विवाह नहीं कर सकती, अतः मुंजाल के प्रयत्नस्वरूप कर्णदेव से विवाहित हो कर पाटण आती है। पाटण में आ कर मुंजाल के प्रति उसके प्रेम में थोड़ी सात्विकता आ जाती है। अत्यंत महत्वाकांक्षिणी मीनल राज्य के सभी अधिकार अपने हाथ में रखना चाहती है और उसके इस अबाध अधिकार-भोग में जो बीच में आता है उसे साफ़ कर देने तक की निर्ममता में कहीं भी नहीं चूकती। जैन धर्मानुसार एकचक्र शासन की स्थापना करने का लोभ उसके मन में आनंदसुरि के संपर्क से आया है। अपने मार्ग का कंटक समझ कर वह मुंजाल को भी पाटण से बाहर भेजने की व्यवस्था करती है। देवप्रसाद और मुंजाल कहीं मिल न जायें इसलिए षड्यंत्र रचती है। आरंभ में तो ऐसा लगता है कि मीनल सफल हो जायेगी पर आखिर में उसकी स्थिति बड़ी खराब हो जाती है। वह अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए प्रसन्न को मालवराज से ब्याह देना चाहती है। मीनल जब गुप्त रूप से पाटण छोड कर चली जाती है और पाटण पर आक्रमण करने के लिए चंद्रपुर की सेना आती है तब पट्टणी उससे क्रुद्ध हो जाते हैं और उसे पाटण में प्रवेश नहीं करने देते और विवश हो कर वह पुनः मुंजाल की शरण जाती है। मुंजाल उसे क्षमा कर देता है और उसकी सहायता करता है। किसी वस्तु का किस प्रकार और कहाँ उपयोग किया जाय, यह मीनल अच्छी तरह जानती है और इसी संदर्भ में वह हंसा को अपना 'ब्रह्मास्त्र' मानती है। चारों तरफ़ की असफलता ने मीनल के चरित्र को ही बदल दिया है और अंत में मीनल यह कहती सुनी जाती है: 'जीवीश तो पाटणनी मरजीथी, मरीश तो पाटणनूं गौरव वधारवा।' (जिऊँगी तो पाटण की इच्छा से और मरूँगी तो पाटण की गौरव-वृद्धि के लिए।) रानी मीनल के हृदय-परिवर्तन की उदात्त कथा

मुशी जी ने अपने दूसरे उपन्यास 'गुजरातनो नाथ' मे वर्णित की है। समग्रत देखने पर यह कहा जा सकता है कि मीनल आरभ मे महत्त्वाकाक्षिणी है, निर्मम है पर अत मे उदात्त भावो से पूर्ण हो जाती है और पाटण की समृद्धि ही उसका लक्ष्य रह जाता है। ऐतिहासिक उपन्यासों मे मीनल सा चरित्र कम देखने को मिलता है।

मीनाक्षिसुदरम्, ते० पो० *(त० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

तमिल भाषा एव साहित्य के अलावा भाषा-विज्ञान, दर्शन, सस्कृति आदि सबद्ध क्षेत्रो मे भी ये आधुनिक युग के शीर्षस्थानीय विद्वान माने जाते हैं। गत दो दशको मे मद्रास एव 'अण्णामलै' विश्वविद्यालयो के अतर्गत तमिल के प्रोफेसर होने के बाद 1965-70 ई० की अवधि मे ये मदुरै विश्वविद्यालय के कुलपति रहे। प्रारभिक जीवन म ये ख्याति प्राप्त गाधीवादी सामाजिक कार्यकर्ता थे और शिक्षा-क्षेत्र मे आकर इन्होने तमिल और द्रविड भाषाओ के अनुशीलन-अनुसधान के सवर्धन के लिए महती सेवाएँ की थी। तमिल भाषा, साहित्य और सस्कृति-सबधी अध्ययनो के लिए विश्वस्तरीय व्यापकता एव सम्मान दिलाने की महत्वाकाक्षा से प्रेरित 'तमिल अनुसधान की अतर्राष्ट्रीय सस्था' के आरभकर्ताओ मे इनका नाम प्रमुख है। अमरीका के शिकागो विश्वविद्यालय के तमिल विभाग का सगठन इनके द्वारा हुआ था और वहाँ इन्होने तमिल साहित्य के इतिहास पर अँग्रेजी म कुछ व्याख्यान दिये थे जो पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। इनकी अँग्रेजी मे लिखित तथा भारतीय भाषाविज्ञान परिषद्, पूना द्वारा प्रकाशित 'तमिल भाषा का इतिहास' नामक पुस्तक न आधुनिक भाषावैज्ञानिक पद्धतियो के अनुसार तमिल का ऐतिहासिक और सकालिक वर्णन प्रस्तुत करके उच्च अध्ययन का एक मानदड स्थापित किया है। इनकी तमिल कृतियाँ ये हैं— वळ्ळुवर् नाट्टुम् मक्कळिरुम' (प्रसिद्ध कृति तिरुक्कुरळ् (दे०) की समालोचना), 'तमिला निनैंलुप्पार्' (इतिहास एव सस्कृति पर लेख) 'पिरनूततु एप्पटियो (विविध विषयक निवध इत्यादि)।

इन पुस्तकाकार कृतियो के अतिरिक्त इन्होंने 'तमिल क्लैक्कळञ्चियम्' (तमिल विश्वकोश) मे तमिल भाषा तथा साहित्य-सबधी प्रविष्टियो के रूप मे अनेक खोजपूर्ण लेख भी प्रस्तुत किय हैं।

मीनाक्षिसुदरम् पिळ्ळै, महाविद्वान् *(त० ले०)* [जन्म—1815 ई०, मृत्यु—1876 ई०]

अपनी विशेष उपाधि 'महाविद्वान' के अनुरूप ये अपार विश्रुत महानुभाव और सिद्ध कवीश्वर भी थे। किसी भी विषय पर सोचते सोचते इनके मुख से आभिजात्यपूर्ण कविता की धारा अबाध गति से नि सृत हो उठती थी और इनका कोई शिष्य इसे लिपिबद्ध करता चला जाता था। ये तमिल प्रदेश के धनी शैव मठाधीशो के आश्रय मे रहा करते थे और इनकी अधिकाश कविता-रचनाएँ मदिर के माहात्म्य, धार्मिक महापुरुषो, उपास्य देवी देवताओ की महिमा इत्यादि विषयो पर आधारित होकर उत्तरकालीन 'पुराणम्', 'पिळ्ळैत्तमिल्' (दे०), 'अदादि', (दे०), 'कलबकम्' (दे०) इत्यादि विधाओ मे ढली हुई हैं। ऐसी रचनाओ मे इनकी 'चेक्किलार्पिल्लैत्तमिल्', जो 'चेक्किलार' नामक प्रसिद्ध साहित्यिक एव धार्मिक नेता का गौरव-गान है, विद्वद्जन प्रिय हो गयी है। इनके मुख्य शिष्यो मे महामहोपाध्याय डा० सामीनाद अय्यर (दे०) थे जो तमिल भाषा के मुख्य गौरव ग्रथो के ताडपत्रों की सफल खोज करके उनके आदर्श सस्करण निकालने से एक नये युग के प्रवर्तक हो गये।

मीनाक्षीयम्मै पिळ्ळैत्तमिल *(त० कृ०)* [रचना-काल—सत्रहवी शती ई० का पूर्वार्द्ध]

इसके रचयिता कुमरगुरुपरर (दे०) नामक शैव सत थे। इस कृति के 100 पदो मे कवि ने भगवान शिव की अर्द्धांगिनी मीनाक्षी देवी के जीवन म सबधित अनेक पौराणिक घटनाओ का सरस वर्णन किया है। प्रसिद्ध है कि एक बार दवी मीनाक्षी मदुरै नगरी के पाडय राजा की पुत्री के रूप मे उत्पन्न हुई। उसका नाम तडातकै रखा गया। अपने विलक्षण गुणो और क्रियाकलापो के कारण वह पार्वती देवी का अवतार मानी गई। इस कृति मे कुमरगुरुपरर ने देवी मीनाक्षी (पार्वती) मे सबधित पौराणिक कथाओ को पाड्य राजा की पुत्री म सबधित लोक-प्रचलित कथाओ से मिला दिया है। इस कृति के विभिन्न पदो म मदुरै की अधिष्ठात्री देवी मीनाक्षी की बाल-चेष्टाओं का सरस-हृदयहारी वर्णन प्राप्त होता है। कवि की उर्वर कल्पना-शक्ति और प्रभावशाली सुदर शैली ने 'पिळ्ळैत्तमिल' नामक काव्यविधा को नूतन आभा प्रदान की है। इसे 'पिळ्ळैत्तमिल' विधा म रचित सर्वश्रेष्ठ कृति

माना जाता है। कुमरगुरुपरर के परवर्ती कवियों और विद्वानों ने मुक्तकंठ से इसके काव्य-सौंदर्य की प्रशंसा की है।

मीर अम्मन 'देहलवी' *(उर्दू० ले०)*

दे० अम्मन 'देहलवी', मीर।

मीर ख़लीक़ *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1774 ई०; मृत्यु—1814 ई०]

इनका वास्तविक नाम मीर मुसतहसिन था। उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि मीर अनीस (दे०) इन्ही के सुपुत्र थे। इनके पिता का नाम मीर हसन सेहहलवयाँ था। आरंभिक शिक्षा इन्होंने अपने पिता से प्राप्त की थी। तदुपरांत ये प्रसिद्ध कवि मुसहफ़ी (दे०) के शिष्य बने थे और इस पथप्रदर्शन से इनकी काव्य-प्रतिभा का अत्यधिक विकास हुआ था। काव्य-रचना की दृष्टि से इन्होंने यथेष्ट उन्नति की थी। एक बार फ़ैज़ाबाद के प्रसिद्ध मुशायरे में इनकी गज़ल को इतनी अधिक प्रशंसा एवं लोकप्रियता प्राप्त हुई थी कि 'आतिश' (दे०) जैसे दिग्गज काव्य-गुरु ने मीर ख़लीक़ के बाद अपनी गज़ल प्रस्तुत करना व्यर्थ समझा था जबकि वे लखनऊ से विशेष अतिथि के रूप में उस मुशायरे के लिए आये थे। मर्सिया-लेखन की दृष्टि से इनकी गणना उर्दू के प्रथम श्रेणी के कवियों में होती है। मर्सिया-लेखन के विकास में इनका योगदान ऐतिहासिक महत्व का है। इनके शिष्य-मंडल ने भी उक्त काव्य-विधा के विकास में यथासामर्थ्य योग दिया था।

'मीर', मीर तक़ी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1724 ई०; मृत्यु—1810 ई०]

इनका पूरा नाम मीर मुहम्मद तक़ी और उपनाम 'मीर' था। इनके पिता मीर अब्दुल्ला अकबराबाद (आगरा) के गण्यमान्य व्यक्तियों में से थे। मीर की आयु केवल दस वर्ष की थी जब इनके पिता का देहावसान हो गया। पिता की मृत्यु के बाद ये दिल्ली चले आये और अपने सौतेले भाई के पास रहकर शिक्षा प्राप्त की। बाल्यावस्था में ही मीर की काव्य-रचना में रुचि थी।

मीर का कद मध्यम, शरीर दुबला-पतला, रंग गंदुमी तथा स्वभाव कठोर था। वैसे तो इन्होंने सभी काव्य-रूपों में रचना की है किंतु ग़ज़ल इनका प्रिय विषय था। ग़ज़ल लिखने में इनकी समता कोई नहीं कर पाया, इसीलिए ये गज़ल-लेखन में उस्ताद माने जाते हैं।

इनके काव्य में सरलता, स्वच्छता इतनी है कि पाठक को इसे समझने में अधिक बौद्धिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। भाव सहज ही हृदय में उतर जाते हैं। युवावस्था में किसी मानसिक आघात के कारण पीड़ा, निराशा और वेदना इनके स्वभाव के अभिन्न अंग बन गये थे जो प्रमुखत. इनके काव्य में परिलक्षित होते हैं। अधिक आयु प्राप्त करने के कारण इनकी रचनाओं की संख्या भी अधिक है। 'नुकातुल-शोअरा' फ़ारसी भाषा में इनकी सुप्रसिद्ध रचना है। इसमें उर्दू कवियों का विवरण है।

इसके अतिरिक्त इनके छह दीवान उर्दू काव्य के हैं और एक दीवान फ़ारसी भाषा में है। मीर ने बहुत सी मसनवियाँ और क़सीदे भी लिखे हैं। मसनवियों में सुप्रसिद्ध ये हैं :

(1) अखगर नामा, (2) शोअ़ला-ए-इश्क़, (3) जोश-ए-इश्क़, (4) दरया-ए-इश्क़, (5) इअ़जाज-ए-इश्क़, (6) मुआ़मलात-ए-इश्क़, (7) ख़ाबो-ख्याल। इन मसनवियों में प्राकृतिक दृश्यों तथा दार्शनिक समस्याओं का सुंदर वर्णन है।

मीर साहब ने उर्दू काव्य में वासोख़्त रचना की नींव रखी। 'वासोख़्त' का शाब्दिक अर्थ है 'जलना'। यह वह काव्य-रूप है जिसमें प्रेमी अपनी प्रेमिका से अपने प्रति बेवफ़ाई तथा अपने प्रतिद्वंद्वी के प्रति सहानुभूति और प्रेम भावना दर्शाने का उपालंभ देता है और अपनी विरह-वेदना की मार्मिक तथा प्रभावशाली अभिव्यक्ति करता है।

मौलाना मुहम्मद हुसेन आज़ाद (दे०) ने इन्हें उर्दू-काव्य का 'सादी' माना है। इनका देहांत लखनऊ में हुआ।

मीर तक़ी 'मीर'—हयात और शायरी *(उर्दू० कृ०)* [रचना काल—1954 ई०]

लेखक : डा० ख्वाजा अहमद फ़ारूक़ी (दे०)। अंजुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दू (हिंद), अलीगढ़ से प्रकाशित यह कृति उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि मीर तक़ी 'मीर' के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से संबद्ध है। 632 पृष्ठों की इस कृति में शास्त्रीय साहित्य की दृष्टि से 'मीर' के स्थान एवं स्तर का

मूल्याकन भी किया गया है। आलोचना की दृष्टि से 'मीर' पर लिखी गई श्रेष्ठ पुस्तको मे इसकी गणना होती है। *'मीर' ने अपने युग पर जो प्रभाव डाला और भविष्य के* लिए जो मार्ग प्रशस्त किया, इस विषय मे यथेष्ट सामग्री इस कृति मे जुटाई गई है। 'मीर' से सबद्ध बहुत से अनुपलब्ध और दुर्लभ तथ्यो का परिश्रमपूर्वक सकलन कर लेखक ने इस कृति को अधिकाधिक तथ्यपूर्ण आधार देने का भरसक प्रयत्न किया है। उपलब्ध तथ्यो को एक लडी मे पिरोकर उसे सामाजिक वास्तविकताओ के आलोक मे इस क्रम से उद्घाटित किया गया है कि 'मीर' और उन का युग साकार हो उठा है। *प्रामाणिक तत्त्वो की सहायता* से 'मीर' की प्रतिभा और तत्कालीन परिस्थितियो का अकन कर साहित्य के इतिहास मे उसके काव्य का योगदान तथा स्थान निर्धारित करने मे लेखक को यथेष्ट सफलता प्राप्त हुई है।

इस कृति मे सिद्ध किया गया है कि उर्दू के प्रचार, प्रसार और विकास मे 'मीर' ने अपने युग मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और उर्दू को नवीन अभि-*व्यजना-शैलियो से समृद्ध किया है।* उन्होने हिंदी की कोमल-कात शब्दावली को भी अपनाया है। दिल्ली की दैनिक बोलचाल, मुहावरो और लोकोक्तियो का सटीक प्रयोग कर और व्याकरण-सम्मत परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग कर 'मीर' ने साहित्य का पथप्रदर्शन किया है। 'मीर' की उन सभी विशेषताओ का विस्तृत परिचय इस कृति मे दिया गया है जिनके बल पर उन्हे अविस्मरणीय गौरव, प्रसिद्धि तथा अमरत्व प्राप्त हुआ है।

मीर मशर्रफ हुसैन *(बँ० ले०)* [जन्म—1848 ई० ; मृत्यु—1912 ई०]

उन्नीसवी शती के मुसलमान लेखको मे मीर मशर्रफ हुसैन विशेष उल्लेखनीय हैं। तीन खडो मे रचित 'विषाद सिंधु' से उनकी ख्याति का प्रसार हुआ जिसकी रचना कर्बला की करुण कहानी के आधार पर हुई थी। *'रत्नावली'* (*1869*), 'उदासी पथिक मनेर कथा' (*1891*) तथा 'गाजी मिंचार बस्तानी' (1896) के नाम से उन्होंने तीन घटना-प्रधान रोमाटिक उपन्यासो की रचना की। 'बसत कुमारी नाटक' (*1872*), 'जमीदार दर्पन नाटक' (1873) इनके दो प्रसिद्ध नाटक हैं। सरल कथ्य-भाषा एव अमित्राक्षर छद के ऊपर इनका विशेष अधिकार था।

मीर हसन *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1736 ई० ; मृत्यु—1786 ई०]

इनका पूरा नाम मीर गुलाम हसन और उप-नाम 'हसन' था। इनके पुरखो का वतन हरात था किंतु ये देहली के ही रहने वाले थे। इनका जन्म भी पुरानी दिल्ली मे हुआ था। दिल्ली की दशा जब बिगडी तो ये अपने पिता मीर गुलाम हसन 'जाहक' के साथ अवध की तत्कालीन राजधानी फैजाबाद मे आ गए। जब आसफुद्दौला ने लखनऊ आबाद किया तो ये भी लखनऊ चले गए। *ये गौर वर्ण और मध्यम कद के थे। स्वभाव से* हँसमुख तथा विनोदप्रिय थे।

इनके परिवार मे काव्य-सृजन का कार्य इनके पूर्वजो के समय से चला आ रहा था। इनके पिता स्वयं एक उच्च कोटि के कवि थे। आरभ मे मीर हसन अपने पिता से ही काव्य-शुद्धि कराते थे। बाद में मीर दर्द (दे० दर्द) के शिष्य बन गए। इनका एक ही दीवान छपा है।

इनके काव्य मे भाषा की स्वच्छदता विशेष रूप *से विद्यमान है। ये मुहावरो का प्रयोग अधिक करते हैं* तथा इनकी गजल शैली विशेषतः सराहनीय है। इनकी मसनवियो ने तो इन्हे अमरत्व प्रदान कर दिया है।

इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना 'सहरुल-बयान' (दे० मसनवी सहरुल-बयान) है। इसमे बद्र-ए-मुनीर (दे०) की कथा है। इस रचना के सबध मे मौलाना आजाद (दे०) लिखते हैं कि 'यह रचना अपने समय के सामाजिक जीवन का दर्पन है'। इनके भाव सजीव तथा अभिव्यजना-शैली *इतनी हृदयस्पर्शी है कि पाठक इनकी रचना मे सहज ही* आत्मविभोर हो जाता है। इनके वर्णन भी इतने सजीव हैं कि घटनाएँ और दृश्य साकार हो उठते हैं। इनकी एक और मसनवी 'गुलजारे इरम' (दे०) है। इनकी *अन्य प्रसिद्ध पुस्तक 'शोअरा-ए-उर्दू है।* इसमे उर्दू के प्रसिद्ध कवियो का ब्योरा दिया गया है। मीर हसन ने कुछ कसीदे भी लिखे हैं जो इतने जोरदार नही हैं। मीर अनीस (दे०) इनके पोते थे।

मीरांबाई *(हिं०, गु० ले०)* [जन्म—1503 ई०, मृत्यु—1573 ई०]

राजस्थान के मेडता परगने के कुडकी गाँव मे प्रसिद्ध राठौर वश मे इनका जन्म हुआ था। बचपन से ही इनमे कृष्णभक्ति का प्राबल्य था। यथासमय चित्तौडाधि-

पति साँगा के ज्येष्ठ पुत्र भोजराज से इनका विवाह हुआ था। कृष्णप्रेम में अनुरक्त मीराँ वृंदावन आई थीं और वहीं रहने लगी थी, बाद में पति के कहने पर पुनः चित्तौड़ चली गयी थी। पति की मृत्यु के बाद इनके देवर विक्रम-सिंह ने इन्हें कृष्ण-भक्ति से विमुख करने के लिए अनेक कष्ट दिये थे।

मीराँ के गीतों में विरह की कसक, पीड़ा की तीव्रतर अनुभूति, आत्मसमर्पण एवं आत्मानुभूति की गहराई सर्वत्र देखने को मिलती है। इस प्रेमयोगिनी का प्रत्येक कार्य-व्यापार, व्यवहार एवं नैत्यिक गतिविधि सभी प्रियतम को रिझाने के लिए प्रकट हुई हैं। यों तो मीराँ के नाम से 'नरसी जी रो माहेरो', 'गीतगोविंद की टीका', 'रागगोविंद' 'सोरठ के पद', 'मीराँबाई का मलार', 'गर्वागीत', 'राग-विहाग', 'फुटकर पद' आदि आठ कृतियों को संबंधित किया जाता है, परंतु इनकी एकमात्र प्रामाणिक रचना 'पदावली' (दे० मीराँ की पदावली) है। इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। निस्संदेह गीतिकाव्य की परंपरा में मीराँ-काव्य एक अभूतपूर्व मोड़ है और परवर्ती कवियों के लिए एक बहुत बड़ा आदर्श है। इनके पदों की भाषा में राजस्थानी, ब्रज और गुजराती का मिश्रण पाया जाता है। कहीं-कहीं पंजाबी, खड़ीबोली और पूर्वी प्रयोग भी पाये जाते हैं। अन्यान्य भाषाओं का मिश्रण इनके काव्य में दीर्घ प्रचार एवं मौखिक परंपरा का ही फल है। आत्मगरिमा से मंडित प्रेमयोगिनी मीराँ का स्थान राजस्थानी और हिंदी-साहित्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

मीराँ को गुजराती-साहित्य में भी उतनी ही मान्यता प्राप्त है जितनी हिंदी में। मतवाली मीराँ दर्द का पर्याय बना गई है। भक्ति, प्रेम, विरह की पीर की मार्मिकता की सटीक किंतु सरल अभिव्यक्ति, सर्वस्व-समर्पण की निष्कपट भावना मीराँ के भक्त एवं कवि—व्यक्तित्व की स्पष्ट रेखाएं हैं।

मीराँ की पदावली *(हिं०कृ०)* [रचना-काल—1533-34 ई०]

प्रस्तुत रचना मीराँ (दे० मीराँबाई) की ख्याति का मुख्याधार है। यह उनकी सर्वमान्य प्रामाणिक रचना है, परंतु फिर भी अन्यान्य भक्तों के पद इनके पदों में सम्मिलित हो जाने के कारण इनके पदों की वास्तविक संख्या का निर्णय करना अत्यधिक कठिन हो गया है। अब तक सब मिलाकर 'पदावली' के लगभग दो दर्जन संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

'पदावली' का वर्ण्यविषय काफ़ी सीमित है। कुछ पद मीराँ के व्यक्तिगत जीवन की ओर संकेत करते हैं। अधिकांश में परमाराध्य की विनय और स्तुति, सौंदर्य-कल्पना, प्रणयानुभूति, आत्मसमर्पण, विरहोद्गार, अव्यक्त की अनुभूति और रागात्मकता का समावेश है। इस तरह के पदों में प्रेम भौतिकता से अध्यात्म की ओर मुड़ा है। इसकी भाषा के संबंध में तीन मत प्रचलित हैं—कुछ विद्वान् राजस्थानी को इसकी मूल भाषा मानते हैं, कुछ ब्रज को और कुछेक राजस्थानी, गुजराती, ब्रज और पंजाबी आदि के सम्मिश्रित रूप को इसकी भाषा मानते हैं। गेयत्व की दृष्टि से यह कृति हिंदी-साहित्य की अन्यतम कलाकृति है। साधना के अखंड क्रम में प्रेम-कोकिला मीराँ की हृदयस्थ अनुभूतियाँ जिस मार्दव और सहजता से 'पदावली' में व्यक्त हुई हैं वही सच्चा काव्य है और वही भाव विभोरता मीराँ के काव्य की एकमात्र सहज आत्मा है।

मीशा, एस० एस० *(पं० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

पंजाबी की नई कविता के विलक्षण सुरताल मीशा की कविता में सुने जा सकते हैं। उनकी कविता की रूप-विधि व्यंग्य के माध्यम से ढलती है। उनकी कविता प्रायः कथन के स्तर पर ही शब्दबद्ध हुई प्रतीत होती है, काव्य-संरचना का शुद्ध रूप उससे नहीं उभरता। परंतु उनकी रचना का सौंदर्य उस वाग्वैदग्ध्य में है जो उसमें कहीं न कहीं समाविष्ट रहता है और जिसके कारण वह सामान्य कथन से भिन्न कोटि में बदल कर काव्य के समीप की वस्तु बन जाती है। मीशा ने मध्य श्रेणी के नागरिक जीवन की समस्याओं एवं तनावपूर्ण संबंधों को ऐसी भाषा में प्रस्तुत किया है जिसमें पूर्ववर्ती कवियों जैसी भावुकता अथवा रोमानी मोह-भावना का अभाव है। 'चुरस्ता' (चौराहा) एवं 'दस्तक' (दे०) उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। आजकल ये आकाशवाणी के जालंधर केंद्र पर प्रोड्यूसर के पद पर कार्य कर रहे हैं।

मुंज *(गु० पा०)*

मुंज श्री कन्हैयालाल मुंशी (दे०) के उपन्यास 'पृथ्वीवल्लभ' का अविस्मरणीय पात्र है। यों तो इतिहास भी मुंज की महत्ता का साक्षी है किंतु मुंशीजी ने पौरुष तथा रसिकता-विषयक इसकी प्रभविष्णुता तथा चारित्रिक रेखाओं को और भी उभार दिया है।

इसमे असाधारण पौरुष, अप्रतिम बल, सौंदर्य, तप, रसिकता तथा राजनीति कौशल प्रभृति दुर्लभ गुणो का मेल है। इसकी वाणी की स्वाभाविकता तथा आत्मीयता मे एक चुबकीय आकर्षण है।

इसका प्रथम दर्शन उपन्यास मे कैदी के रूप मे होता है किंतु अपने व्यक्तित्व के कारण उसका पृथ्वीवल्लभत्व और भी सार्थक लगता है। मृणाल जैसी वीतरागिनी को वह प्रथम साक्षात्कार मे ही अनिर्वचनीय भावो से भर देता है। इसे पिंजडे मे बद किया जाता है। किंतु हाथ जलाने वाली मृणाल सहित समस्त प्रजा इसकी हो जाती है। विपम से विपम परिस्थिति मे भी यह आनदमग्न रहता है। विजयी राजा तलप की राज्यसभा मे भी इसकी यह लोकप्रियता अखडित रहती है।

इसका प्रणय एक वीर पुरुष का प्रणय है। शत्रु के राज्य मे सभावित विपत्ति से अवगत होते हुए भी यह मृणाल को छोडकर भागता नही है। मृत्यु की वेला मे भी इसके व्यवहार मे पूर्ववत् निश्चितता, आनद तथा प्रफुल्लता मे परिवर्तन नही आता। इसीलिए लेखक ने हाथी के पाँवो तले रौंदे जाने की इसकी अमानवीय मृत्यु को 'हाथी की सूंड मे मदहास से रमण करते हुए' स्वर्ग मे जाने की सज्ञा दी है।

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि यह महान ऐतिहासिक पात्र लेखकीय विशेषताओ से अनुप्राणित हो ऐतिहासिक मुज से महत्तर लगने लगता है। मृणाल के प्रति इसके प्रेम को यद्यपि विश्वसनीय आधार नही मिला है, तथापि यह पाठक के हृदय पर अपनी गहरी और निश्चित छाप छोड जाता है। मुशी-साहित्य का तो यह उत्तम पात्र है, इसमे सदेह नही।

मुजाल *(गु० पा०)*

कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी (दे०) के सर्वोत्तम उपन्यास 'पाटण नी प्रभुता' (दे०) का मुख्य पात्र मुजाल है। वह गुजरात की राजधानी पाटण का नगरश्रेष्ठि है। अपरिमित सपत्ति का स्वामी मुजाल अत्यत सुदर, रसिक और विविध विषयो का ज्ञाता है। दक्षिण की यात्रा मे वह चद्रपुर की राजकुमारी मीनल (दे०) से परिचित होता है और उसके व्यक्तित्व के प्रति आकर्षित होता है। मीनल भी उसकी प्रेयसी बनती है। मुजाल के समीप रहने के लिए वह गुजरात के राजा कर्णदेव से देह लग्न करती है, पर उसका हृदय-लग्न तो मुजाल से ही होता है। मुजाल, स्वप्नदर्शी, महत्वाकाक्षी और देशप्रेमी है। गुजरात को सर्वोपरि देश बनाने की उसकी महेच्छा उसे राजनीति मे सक्रिय रस लेने के लिए प्रेरित करती है। दूरदर्शिता, कूटनीतिज्ञता, व्यवस्था-शक्ति और आत्मबल से वह महामात्य के पद पर प्रतिष्ठित होता है। मीनल उसकी प्रेरणा मूर्ति और प्रेरक शक्ति है। महत्वाकाक्षा की कठोरता ने उसे निष्ठुर, उग्र और अहकारी बनाया है। राजनीतिक कुचक्र और सत्तालोलुपो के षडयत्र उसे कदापि भयभीत नही करते। मीनल की पदलोलुपता और हीन चेष्टाओ को नियत्रित करने की शक्ति केवल मुजाल मे है। वही उसे अकुश में रखता है, अपनी योजनाओ को कार्यान्वित करता है और गुजरात की कीर्ति की अभिवृद्धि करता है। कर्णदेव के अवसान के समय 'पाटण की प्रभुता' का कही ह्रास न हो, इसके लिए मुजाल सयम, विवेक और कार्यदक्षता से शासन प्रबध करता है और अपने राष्ट्रप्रेम एव उदार हृदय का परिचय देता है। प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर उसने ऐसा कोई कार्य नही किया जो अशोभनीय हो। उसका प्रभाव सर्वव्यापी है। उसके प्रभाव और प्रताप से सभी आतकित हैं। वह इतना स्पष्टवादी है कि जब धर्मांधता से आनदसूरि मीनल को कुमार्ग पर ले जाता है तब वह कटु सत्य कह देता है। मीनल की सेना से लडने का मौका देखकर वह पारस्परिक कलह को दूर करने के लिए अपने हथियार फेंक कर स्वेच्छापूर्वक मीनल का कैदी बनता है। 'गुजरात नो नाथ' उपन्यास मे मुजाल का व्यक्तित्व और अधिक निखरता है। यहाँ मीनल तथा मुजाल का स्नेहाकर्षण पार्थिवता से ऊपर उठकर सात्विक धरातल पर पहुँचता है और भव्य एव दिव्य बनता है। 'गुजरात नो नाथ' मे ये दोनो चरित्र ऊर्ध्वगामी हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मुजाल एक सफल राजनीतिज्ञ के सभी गुणो से अलकृत है।

मुटश्शेरि, जोजफ *(मल० ले०)* [जन्म—1902 ई०]

इनका जन्मस्थान त्रिचूर के पास का एक गाँव है। शिक्षा की दृष्टि से एक पिछडे परिवार की सतान जोजफ ने अपने पुरुषार्थ से भौतिकी मे बी० एस-सी० की उपाधि पाई तथा मलयाळम मे एम० ए० किया और अपनी योग्यता के बल पर सेंट थॉमस कालेज, त्रिचूर मे मलयाळम के प्रोफेसर नियुक्त हुए। राजनीति मे ये वामपक्षीय विचारधारा के पोषक हैं। वैचारिक मतभेद के कारण अत मे इस्तीफा देकर ये सार्वजनिक क्षेत्र मे आ गये।

तर्कशक्ति और वक्तृत्व इनकी बहुत बड़ी शक्तियाँ हैं।

अपना साहित्यिक जीवन इन्होंने कविता से आरंभ किया था परंतु प्रौढ़ होने पर ये समालोचना के क्षेत्र में आये और उसी रूप में प्रतिष्ठित हो गये हैं। कवित्रयी—आशान् (दे०), वळ्ळत्तोळ् (दे०) और उळ्ळूर (दे०)—के ग्रंथों को समालोचना से इन्हें यश मिला। अलंकारमय संस्कृत-प्रधान काव्यशैली की जगह सरल, सरस और मानवीय भावों की गहराई में पैठने वाली काव्यशैली को ये पसंद करते हैं। 'माट्टोलि' (दे०), 'काव्यपीठिका', 'मानदंडम्', 'नाट्कांत कवित्वम्', 'रूपभद्रता' आदि इनके सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक समीक्षा-ग्रंथ हैं। इनके सबसे प्रिय मलयाळम कवि आशान् हैं।

'प्रोफ़ेसर', 'पारप्पुरत्तु वितच्च वित्तु' दोनों इनके औपन्यासिक प्रयोग हैं। 'कौपिच्च इलकळ्' इनकी आत्मकथात्मक रचना है। साहित्य की सोद्देश्यता पर पूरा विश्वास रखने वाले मुंदश्शेरि आधुनिकतम अतिवैयक्तिकता और दुरूहता दोनों का जोरों से खंडन करते हैं।

मुंशी, क० मा० *(गु० ले०)*

दे० कन्हैयालाल माणिक्लाल मुंशी।

मुअजज़ो *(सिं० पारि०)*

यह सिंधी-कविता का एक प्रकार है जिसमें इस्लाम के किसी पैग़ंबर, नबी, या धार्मिक महापुरुष का यशोगान करने के लिए उसके जीवन की किसी सुनी या पढ़ी हुई अलौकिक घटना अथवा करामात का वर्णन किया जाता है। 'मुनाकिबो' (दे०) और 'मुअजज़ो' में यह अंतर है कि 'मुनाकिबो' में वर्णित घटना स्वाभाविक और साधारण होती है, परंतु 'मुअजज़ो' में वर्णित घटना अलौकिक होती है जो जनसाधारण के जीवन में कभी देखी या सुनी नहीं गई। 'मुअजज़ा' (मुअजज़ो का बहु-वचन) नाम से डा० नबी बख़्श ख़ान बलोच (दे०) ने इस प्रकार की चुनी हुई कविताओं का संग्रह तैयार किया है जो 1960 ई० में सिंधी-अरबी बोर्ड, हैदराबाद (सिंध) से प्रकाशित हो चुका है।

मुआमलाबंदी *(उर्दू० पारि०)*

उर्दू काव्य में 'मुआमलाबंदी' वह काव्य-विधा है जिसमें अपने माशूक़ (प्रेमिका) के साथ आशिक़ (प्रेमी) बराबरी करता है। वह अपने स्वाभिमान का परित्याग कर प्रेमिका के साथ वार्तालाप करता है तथा निचले एवं बाज़ारी प्रेम को अभिव्यक्त करता है। उर्दू काव्य में 'जुरुअत' इस रंग के आविष्कारक समझे जाते हैं। 'नासिख़' एवं 'आतिश' के युग में इस विधा ने ख़ूब रिवाज पाया और 'दाग़' ने भी इसी रंग को अपनाया।

मुक़द्दमा-ए-शेर-ओ-शायरी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1893 ई०]

'मुक़द्दमा-ए-शेर-ओ-शायरी' हाली (दे०) पानीपती के काव्य-संग्रह—'दीवान-ए-हाली'—की भूमिका के रूप में लिखा गया एक विस्तृत आलोचनात्मक निबंध है। बाद में यह एक स्वतंत्र पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुआ। उर्दू में आलोचनात्मक साहित्य के रूप में यह सर्वप्रथम एवं महत्वपूर्ण प्रयास है। हाली उर्दू-समालोचना के जनक माने जाते हैं। उन्हें 'उर्दू का ड्राइडन' कहा जाता है।

हाली ने इस मुक़द्दमा में उर्दू काव्य के विभिन्न रूपों की समीक्षा की है। काव्य, काव्य-प्रयोजन, उत्तम काव्य के गुण, उर्दू ग़ज़ल की परंपरागत त्रुटियाँ इत्यादि अनेक विषयों पर विद्वत्तापूर्ण ढंग से प्रकाश डाला गया है। विभिन्न अंग्रेज़ी काव्यशास्त्रियों के मत भी साथ-साथ व्यक्त किए गए हैं। मिल्टन के कथनानुसार शेर में सहजता, सत्यता एवं सशक्तता का होना हाली भी अनिवार्य मानते हैं। हाली ने 'कला जीवन के लिए' के सिद्धांत को मान्यता प्रदान की है। साहित्य को जीवनोपयोगी होना चाहिए तथा जीवन से घनिष्ठ रूप से संबद्ध होना चाहिए। हाली के अनुसार साहित्य जीवन की उन्नति का साधन है। हाली ने अपने इस मुक़द्दमे में उपयुक्तता एवं नैतिकता के पक्षों पर अधिक बल दिया है। हाली ने उर्दू वाद्य के क्षेत्र में वही प्रेरणा प्रदान की है जो आंग्ल-साहित्य में बेकन ने प्रदान की थी।

मुक़बल *(पं० ले०)* [समय—अठारहवीं शती]

कवि मुक़बल ने स्वरचित 'जंगनामा इमाम हुसैन' में अपने जीवन के बारे में कुछ जानकारी दी है। इस अंतर्साक्ष्य से पता चलता है कि इनका पूरा नाम शाहजहाँ मुकबल था और वे नेत्रहीन थे। 'जंगनामा' के अतिरिक्त इनकी अन्य दो कृतियाँ 'मछह मुक़बल' और 'हीर-

रांझा' भी मिलती हैं। 'मछह मुकबल' मे कादरी सप्रदाय के सचालक सूफी सत अब्दुलकादर जीलानी की अलौकिक शक्तियो का वर्णन है। 'जगनामा' का विषय कर्बला-युद्ध की घटना है। करुण रस-पूर्ण यह कृति जगनामा-परपरा की प्रथम पजाबी रचना मानी जाती है। कवि की अन्य रचना 'हीर-रांझा' भावपक्ष और कलापक्ष की दृष्टि से उत्कृष्ट है। इनकी ख्याति का मुख्य आधार यही कृति है।

मुकुंदराज *(म० ले०)* [जन्म—1250 ई०, मृत्यु—1350 ई०]

इन्हे मराठी भाषा का आदि कवि कहा जाता है। ये आबे जोगाई नामक स्थान के निवासी थे। श्री शकराचार्य (दे०) के अद्वैत सिद्धात तथा ब्रह्मज्ञान का प्रचार इनका उद्देश्य था। इन्होने 1188 ई० मे 'विवेक-सिंधु' (दे०) नामक ग्रथ की रचना की थी। इनका दूसरा ग्रथ है, 'परमामृत'। दोनो ही ग्रथ 'ओवी' छद में रचित हैं और दोनो का प्रतिपाद्य विषय आध्यात्मिक है। मुकुंदराज ने उपनिषद् (दे०), साख्य, योग, वेदात, गीता (दे०), भागवत (दे०) आदि का आधार लेकर उपर्युक्त ग्रथो की रचना की है। मराठी-साहित्य के आदिकाल मे ही आध्यात्मिक साहित्य के प्रवर्तन का श्रेय इन्ह प्राप्त है।

मुकुंदराय *(गु० पा०)*

स्व० रामनारायण विश्वनाथ पाठक 'द्विरेफ' (दे०)-रचित 'मुकुंदराय' शीर्षक कहानी का नायक मुकुंदराय सौराष्ट्र के रावँया गाँव के कर्मकाडी, अल्पसाधन-सपन्न, ब्राह्मण रघनाथ भट का एकमात्र अंग्रेजीदा बी० एस-सी० मे पढता हुआ पुत्र है। माँ हरकोर उसे 6 वर्ष का और उसकी बहन गगा को 2 वर्ष का छोडकर चल बसी थी। गगा बचपन मे ही विधवा बन चुकी है। बच्चो की खातिर ही पिता ने दूसरा विवाह नही किया।

पढ लिखकर मुकुद बडा आदमी बनेगा और परिवार की सारी चिता दूर करेगा—इसी सहज विश्वास के साथ रघनाथ भट ने कष्ट सहकर भी उसे कालिज भेजा किंतु कालिज मे जाकर मुकुद बदल गया।

टेनिस, चाय-सिगरेट और महिला-मित्रों का आकर्षण उसकी मुख्य प्रवृत्ति थी। प्रतिष्ठा और सपन्नता का मुखौटा लगाकर वह धीरे-धीरे स्वच्छद, तुनकमिजाज, स्वार्थपरायण बन गया और परिवार की उपेक्षा भी करने लगा। कालिज मे सभ्यता व शिष्टता का भक्त घर पर गगा बहन से रूखा व्यवहार करने लगा।

तार से पूर्व-सूचना देकर वह अपने कुछ मित्रो के साथ छुट्टियाँ बिताने गाँव आया किंतु तार उसके आने के कुछ क्षण पूर्व ही आया। पिता और बहन ने यथाशक्ति यथाशीघ्र जितना सुदर प्रबध हो सकता था किया, मगर शहर की हवा लगने के कारण उसे सब बेमजा लगने लगा। पद-पद पर अपनी दरिद्रता प्रकट हो जाने व पोल खुल जाने का भय उसे सताने लगा। शाम को बिना सूचना दिए ही वह मित्रो के साथ लौट चला।

पुत्र के व्यवहार से पीडित व दिनभर के भूखे पिता इस परिवर्तन से बडे निराश हुए और टूटते हुए स्नेह-ततुओ को जोड पाना उन्हे कठिन प्रतीत हुआ। वे अपनी बेटी के सामने कहने लगे कि 'वह अब हमारा नही रहा है।' और एक अतर्कथा के द्वारा उन्होने यह प्रकट किया कि ऐसे पुत्र से तो निपूते ही मरते तो अच्छा था।

बदलते मूल्य, समय व परिवेश के साथ-साथ दो पीढियो की खाई, मिथ्या दभ का पर्दाफाश करने वाली इस कहानी की नुकीली समस्या है पुत्र की सवेदनहीनता एव टूटते हुए स्नेह-ततु।

मुक्कूडरपळ्ळु *(त० कृ०)* [रचना-काल—ईसा की चौदहवी-पद्रहवी शती]

इसके रचयिता अज्ञात हैं। तिरुनेलवेली जिले मे जहाँ शिट्टारु और कोदडराम नदी ताम्रपर्णी नदी मे आकर मिलती हैं उस स्थल को 'मुक्कूडल' कहते हैं। इस स्थल के अधिष्ठाता देवता 'मुक्कूडल अलगर' कहलाते है। इस कृति मे उन्ही को सबोधित किया गया है।

अन्य पळ्ळु-कृतियो के समान इनमे कृषकों के जीवन का सरस-सजीव चित्रण है। अलगुक्कुडुबन नामक कृषक इस पद्यबद्ध नाटक का नायक है। उसकी दो पत्नियाँ हैं। बडी मुक्कूडर पळ्ळि विष्णु की और छोटी मरदूर पळ्ळि शिव की उपासिका है। अपने पति को छोटी पत्नी मे अनुरक्त देखकर बडी उसे उलाहना देती है। दोनों पत्नियो मे सरस वाक्युद्ध होता है। दोनो एक-दूसरे के इष्टदेवता की निंदा करती हैं। अतत सभी वैर-भाव भुलाकर मुक्कूडल अलगर की वदना करती हैं। इसमे विषय का प्रतिपादन अत्यत सुदर ढग से किया गया है। सर्वत्र हास्य और व्यग्य की छटा दीख पडती है। काव्य-सौंदर्य की दृष्टि से

विद्वानों ने इसे पळ्ळु कृतियों में सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया है।

मुक्तक (हिं० पारि०)

संस्कृत-काव्यशास्त्र में वर्णित बहुप्रचलित अनिबद्ध का काव्य-रूप। संस्कृत काव्यशास्त्र में 'मुक्तक' की स्वरूप-व्याख्या दो रूपों में हुई है : दंडी (दे०) और भामह (दे०) ने इसे केवल एक ही श्लोक या छंद का पर्याय मान कर प्रबंध-काव्य के अंग-रूप में इसका लक्षण-निरूपण किया है (दंडी : 'काव्यादर्श', प्रथम परिच्छेद; भामह : 'काव्यालंकार', 1.30)। परवर्ती हेमचंद्र (दे०), विश्वनाथ (दे०) आदि आचार्यों ने इसे पूर्वापर-प्रसंग से निरपेक्ष एक स्फुट एवं स्वतंत्र रचना-बंध के रूप में ग्रहण किया है। इनमें से प्रचलित, तर्कसंगत एवं मान्य मत दूसरा ही है। किसी क्षणिक एव अस्थिर अनुभूति या भावखंड की सघन अभिव्यक्ति होने के कारण यद्यपि 'मुक्तक' प्रायः एक ही छंद का रूप धारण करता है तथापि प्रत्येक स्थिति में यह एक ही छंद का सूचक नहीं है—इसका रूपाकार बहुत कुछ इसकी मूल अनुभूति अथवा भाव की सघन तीव्रता एवं प्रसार पर निर्भर रहता है। इसके अतिरिक्त 'मुक्त' संज्ञा में कन् प्रत्यय के संयोग से व्युत्पन्न ('मुक्तमिति। मुक्तकमन्येननालिंगित तस्य संज्ञाया कन्।' —'ध्वन्यालोक-लोचन' : व्या० डा० रामसागर त्रिपाठी, तृतीय उद्योत, पृ० 756)। अतएव, यह पूर्वापर क्रम से दृढ़तापूर्वक परस्पर आबद्ध छंदों से युक्त प्रबंध-काव्य का अंग कैसे हो सकता है? संस्कृत में काव्यशास्त्रीय विचारधारा के विकास ने 'मुक्तक' के स्वरूप में भी अंतर उपस्थित किया। प्रारंभिक आचार्यों ने जहाँ चमत्कार-संपादन पर विशेष बल दिया था, वहाँ ध्वनिवादी आचार्यों ने इसमें रस-चर्वणा की शक्ति का अनुसंधान किया—('मुक्तकं श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षमः सताम्। —'अग्निपुराण' का काव्यशास्त्रीय भाग, सं० तथा अनु० रामलाल वर्मा, पृ० 31; 'पूर्वापरनिपेक्षेणापि हि मेन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकम्'।—ध्वन्यालोक-लोचन, व्या० डा० रामसागर त्रिपाठी, तृतीय उद्योत, पृ० 764)। इसके अतिरिक्त आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) ने मुक्तक-रचना के लिए कवि में 'कल्पना की समाहार-शक्ति' और 'भाषा की समास-शक्ति' अपेक्षित मानी है।

इस प्रकार प्रायः सभी प्राचीन-अर्वाचीन भारतीय आचार्यों के मत में 'मुक्तक' पूर्वापरक्रम-निरपेक्ष तथा स्वतः-पूर्ण रचना-बंध है जो अपने संक्षिप्त आकार में ही प्रबंध के समान रस-संचार की क्षमता रखता है।

मुक्त छंद (हिं० पारि०)

'मुक्त छंद' किसी भी प्रकार के वर्ण, गण, यति, तुक (दे०), मात्रा आदि छंदःशास्त्रीय नियमों से सर्वथा मुक्त भाषा की सहज ध्वन्यात्मक लय (दे०) पर आधारित अनिश्चित आकार की पंक्तियों के छंद को कहा जाता है। हिंदी में प्रयुक्त मुक्त छंद अभिधान अँग्रेज़ी के 'फ्री वर्स' तथा उसके मूल प्रेरक और पर्याय फ्रेंच शब्द 'वेर लीब्र' (Vers Libre) के समानार्थी शब्द के रूप में अपनाया गया है। पश्चिम में मुक्त छंद का आविर्भाव उन्नीसवीं शती की घटना है, यहाँ अँग्रेज़ी काव्य के विख्यात उन्नायकों—मिल्टन ('सैमसन') और शैले ('क्वीन मैब') की तुकविहीन भिन्न आकारों की पंक्तियों में इस प्रवृत्ति का प्रारंभिक रूप निश्चय ही विद्यमान था। बाद के पॅटमोर और हैनले जैसे कुछ कम विख्यात कवियों ने भी गद्य की लय के आधार पर काव्य-रचना के कुछ सफल प्रयोग किए। आधुनिक मुक्त छंद का जनक फ्रेंच कवि और संपादक गुस्ताव काह्न को माना जाता है। अँग्रेज़ी कविता में अमरीकी कवि ह्विटमैन ('लीव्ज़ आफ़ ग्रास') मुक्त छंद के सर्वश्रेष्ठ प्रयोक्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। जर्मन मुक्त छंद के उन्नायकों में अर्नो-होल्ज़ का योगदान विशिष्ट है, जिन्होंने अर्थ-व्यंजना के लिए आड़े-तिरछे आकारों के मुद्रण द्वारा मुक्त छंद के स्वरूप में नयी संभावनाओं का संधान किया।

हिंदी में मुक्त छंद के प्रवर्तन का श्रेय सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (दे०) को है। पश्चिम में उन्नीसवीं शती के प्रतीकवादियों ने जिस प्रकार की विद्रोहात्मक परिस्थितियों में 'वेर लीब्र' को जन्म दिया था, लगभग वैसी ही परिस्थितियों में 'निराला' ने छंद को शास्त्रीय बंधनों से मुक्त किया। आज भी हिंदी और भारतीय भाषाओं की अधिकांश कविताएँ मुक्त छंद में ही लिखी जा रही हैं।

मुक्त छंद मुक्त होते हुए भी स्वरूपतः छंद ही है; उसकी मुक्ति शास्त्रीयता से है, छंद से नहीं। मुक्त छंद का आधार है उसके चरणों का मुक्त प्रवाह और आत्मा है स्वच्छंद लय। लेकिन गद्य की लय और मुक्त छंद की लय में तात्त्विक अंतर है : 'गद्यशैली मे जहाँ लयात्मक इकाइयों में केवल विभिन्नता ही होती है, वहाँ मुक्त छंद में उसकी पुनरावृत्ति आवश्यक है (डी० वीसां)। तुक का प्रयोग मुक्त छंद में अधिकतर अंत्यानुप्रास के रूप में नहीं होता, प्रायः पंक्ति के बीच में होता है; इससे विशेष प्रकार

के बलाघात की योजना हो जाती है, जो इसकी एक विशेषता है। 'निराला' मुक्त छद का केवल वर्णिक अथवा अक्षर-छंद पर आधारित होना आवश्यक मानते हैं। इस-लिए कवित्त-आधार पर उनका विशेष आग्रह था। इसी प्रकार अंग्रेज़ी का मुक्त छंद अब क्रमशः विशेष आकार एवं रूप की ओर झुकता जा रहा है। वह प्रकृत्या प्राय 'आयंबिक' होता है।

मुक्तधारा *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1922 ई०]

यह रवींद्र (दे० ठाकुर, रवींद्रनाथ) का प्रतीक-प्रधान नाटक है जिसमे लेखक ने यांत्रिकता से उत्पन्न जातीय संकीर्णता, साम्राज्यवादी शोषण तथा हिंसा का प्रश्न उठाया है। उत्तराकूट के लोग मुक्तधारा पर बाँध बनाकर शिवतराई के असहाय वासियों को सदा के लिए पराश्रित एवं पराधीन बनाना चाहते हैं। यत्र-शक्ति के इस दुरुपयोग का विरोध अभिजित करता है। वह बाँध के कमज़ोर स्थल को जानता है। वह अपने जीवन की आहुति देकर शिवतराई के लोगों को मुक्तधारा के समान सदा के लिए मुक्त कर देता है। यंत्र और जीवन का सघर्ष नाटक की मूल समस्या है जिसे विभूति और अभिजित (प्रतीका-त्मक पात्र) के द्वद्व के आधार पर व्यक्त किया गया है। धनंजय सत्याग्रह एवं अहिंसा का प्रतीक है। इस प्रकार रवींद्र ने अधिकार-लोलुप मानव की यत्र-पूजा का प्राकृतिक प्रतिकार दिखाया है।

यह रवींद्र की नाटकीय प्रतिभा का ही प्रमाण है कि अतर्मुखी समस्या होते हुए भी क्रियाशीलता मे शिथि-लता नही आने दी और सारा दृश्य-विधान निभाया। यह रचना युग-सापेक्ष होने के कारण महत्वपूर्ण है तथा इस श्रेणी की ख्याति-प्राप्त कृति है।

मुक्तानंद *(गु०ले०)* [समय—1761 ई०-1830 ई०]

ये स्वामीनारायण सप्रदाय के एक प्रमुख और महत्वपूर्ण कवि हैं। इनका पूर्वाश्रम का नाम मुकुददास था। सौराष्ट्र के प्रसिद्ध संत स्वामी रामानंद के ये पट्टशिष्य थे। बाद मे इन्होने स्वामी नारायण-सप्रदाय के आद्य सस्थापक स्वामी सहजानंद से दीक्षा ग्रहण की थी।

'मुकुद बावनी', 'उद्धवगीता' और 'सतीगीता' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'धर्मामृत', 'प्रेमलीला', 'रामलीला' तथा असंख्य पदों की रचना की थी। इनकी भाषा परिमार्जित, शुद्ध, संस्कृत एव सरल-बोधगम्य है।

आचार-प्रधान स्वामी नारायण-संप्रदाय के प्रति-निधि कवि के रूप मे इनकी विशेष ख्याति है।

मुक्ताबाई *(म० ले०)* [जन्म—1279 ई०; मृत्यु—1290 ई०]

मुक्ताबाई मूलत कवयित्री थी। बाल्यावस्था से ही काव्य-रचना मे इनकी प्रवृत्ति रही। संतकवि ज्ञानेश्वर (दे०) की ये अनुजा थी और हठयोगी चांगदेव को इन्होंने ही अद्वैत भक्तिमार्ग मे प्रवृत्त किया था। इनकी वाणी मे अद्‌भुत शक्ति थी। इनके रचे अभगो मे भक्ति-भावना की उत्कटता और अपूर्व सरसता है। भक्त लोगो को इनकी रचनाओ के गायन मे विशेष आनद आता है। मराठी के भक्ति-साहित्य मे एक कवयित्री के रूप मे इनका विशिष्ट स्थान है।

मुक्तामाला *(म० कृ०)* [रचना-काल—1861 ई०]।

ले० लक्ष्मणशास्त्री हळवे (दे०)।

यह प्रारंभिक अंग्रेज़ी-काल की प्रतिनिधि उप-न्यास-रचना है जिसमे रम्याद्‌भुत तत्त्वो की प्रधानता है। मराठी भाषा और साहित्य के प्रति पाठको का प्रेम जगाने, उन्हे नीति और शिक्षा देने तथा उनका मनोरंजन करने के लिए इसका प्रणयन हुआ था। कथानक की रचना का उद्देश्य यही है कि जो सन्मार्ग पर चलेंगे—धर्म का अनु-सरण करेंगे वे अनेकानेक विपत्ति झेलकर भी अत मे सुखी होगे। उपन्यास का नायक धनशकर खलनायक शुक्लाक्ष के हाथो अनेक कष्ट पाता है पर अत मे सोमदत्त की सहा-यता से अपनी प्रेमिका मुक्तामाला को प्राप्त कर लेता है। 175 पृष्ठ की इस कृति के नौ भाग हैं—प्रत्येक भाग के आरंभ मे उस भाग का साराश देने वाले सुभाषित के बाद संस्कृत की शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करनेवाला प्रकृति-वर्णन है। पात्र गुण या दोषो के पुंज स्थिर-चरित्र व्यक्ति हैं जिनके नाम से ही उनके स्वभाव का पता चल जाता है।

यथार्थ वातावरण, सस्कृत की शास्त्रीय अलकृत भाषा-शैली और वर्तमान कालीन सामाजिक समस्याओं के ताने-बाने से बनी इस रचना का कालक्रम की दृष्टि से ही नही, गुणों की दृष्टि से भी रम्याद्‌भुत उपन्यासो मे शीर्ष-स्थान है।

मुक्तिबोध, गजानन माधव *(हि० ले०)* [जन्म—1917 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

इनका जन्म श्योपुर (जिला ग्वालियर) में हुआ। शिक्षा उज्जैन और इंदौर में हुई। 1938 ई० में बी० ए० करके ये कुछ समय तक अध्यापन और संपादन करते रहे। 1914 ई० में एम० ए० करके राजनांद गाँव में प्राध्यापक हो गये। इन्होंने मार्क्सवाद और मनोविश्लेषण-शास्त्र का गंभीर अध्ययन किया था। ये प्रमुखतः कवि थे। 'तार सप्तक' (दे०) में इनकी कविताएँ महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। 'चाँद का मुंह टेढ़ा है' (दे०) इनकी परवर्ती कविताओं का संग्रह है। कविताओं के अतिरिक्त 'काठ का सपना' (कथाकृति), 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध' (आलोचनात्मक निबंध), 'एक साहित्यिक की डायरी' (साहित्यिक चिंतन) और 'कामायनी : एक पुर्नविचार' (मार्क्सवादी आलोचना) गद्य रचनाएँ हैं।

मुक्तिबोध की दृष्टि द्वंद्वात्मक भौतिकवादी है। जनमुक्ति के प्रयासों से तादात्म्य-स्थापन के लिए ये अपने व्यक्तित्व की निर्मम काट-छाँट करते हैं। प्राप्य और प्रस्तुत का संघर्ष इनकी रचनाओं में व्यक्त हुआ है। इस संघर्ष को रूपायित करने के लिए रूपक-कथाओं का सफल उपयोग किया गया है। इनके अधिकांश बिंब और प्रतीक मांसल, पौरुषेय और उदात्त हैं। कवि के रूप में ये नयी कविता के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। इनका गद्य चिंतन की गहराई और ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध है।

मुक्तिबोध, शरच्चंद्र *(म० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

व्यवसाय—नागपुर में सरकारी नौकरी।

प्रमुख नव कवियों में इनका नाम लिया जाता है। इनके काव्य-संग्रह हैं: 'नवी मळवाट' और 'यात्रिक'।

इन्होंने अपनी कविताओं में उत्कट अनुभूतियों की ओजस्वी अभिव्यक्ति की है। 'यात्रिक' संग्रह की भूमिका में इन्होंने स्वयं लिखा है, 'मैं अपने हृदय के रक्त से नयी पंक्तियों की रचना करता हूँ।'

मुक्तिबोध प्रगतिशील विचारक कवि हैं। समाज-व्यवस्था में प्रचलित दारुण शोषण का निराकरण कवि के अनुसार शांति से नहीं, वरन् क्रांति द्वारा संभव है। यही मानवता कवि-जय का राजमार्ग है। सामाजिक तथा आर्थिक वैषम्य के प्रति जहाँ इनका आक्रोश और क्रोध प्रकट हुआ है, उन स्थलों पर कवि का दाहक व्यक्तित्व दर्शनीय हो गया है। इनकी कविताएँ तेजस्वी एवं किंचित् उग्र हैं। किंतु यह उग्रता कालुष्य के प्रति है, इसी कारण इनकी रचनाएँ ध्वंसात्मक न होकर निर्माण की प्रेरक हैं।

मुक्तिबोध की कविताएँ आकार में दीर्घ हैं, पर भाव-गांभीर्य से युक्त हैं। इनका दृष्टिकोण सर्वत्र स्वस्थ एवं संतुलित है। ये आशावादी कवि हैं।

प्राचीन रूढ़ एवं निरर्थक शब्दों को छोड़कर इन्होंने नवीन अर्थगर्भित विचारानुकूल शब्दों का प्रयोग किया है। भावाभिव्यक्ति के साधन-रूप में इन्होंने नवीन उपमा एवं मूर्त बिंबों की भी योजना की है।

मुक्तेश्वर *(म० ले०)* [जन्म—1609 ई०; मृत्यु—1660 ई०]

इसके जन्म-काल और मृत्यु-काल के विषय में मतभेद है, परंतु उपर्युक्त काल-निर्णय प्रायः सर्वमान्य-सा हो गया है। ये एकनाथ महाराज के दौहित्र थे। इनके पिता का नाम 'चिंतामणि' था। गोदावरी नदी के तट पर स्थित 'पैठण' नगरी में इनका विद्याभ्यास हुआ था। इनका अध्ययन गंभीर था। ये संस्कृत के काव्यशास्त्र और काव्य-नाटकों के ज्ञाता थे। न्याय, मीमांसा, वेदांत आदि संस्कृत के दर्शनों से भी इनका गहरा परिचय था। इन्होंने एक ओर अपने पूर्ववर्ती संस्कृत-मराठी-साहित्य का गंभीर अध्ययन किया था, दूसरी ओर देशाटन करके मानव-स्वभाव और चरित्र के वास्तविक स्वरूप का व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त कर लिया था। इस प्रकार अध्ययन की गहराई और लोक-निरीक्षण की व्यापकता इनकी रचनाओं में सहज प्रतिफलित हुई है। मुक्तेश्वर की कृतियों में 'रामायण' (दे०) पर आधारित 'संक्षेप रामायण' और 'महाभारत' (दे०) पर आधारित 'भारत रचना' प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त 'समपद्य गीता टीका', 'हरिश्चंद्राख्यान', 'शुक-रंभा-संवाद', 'एकनाथचरित्र', 'गजेंद्रमोक्ष', 'हनुमंताख्यान', 'विश्वामित्र-भोजन', 'शतमुखरावणवध', 'मूर्खांची लक्षणें' इत्यादि प्रकरण उपलब्ध होते हैं।

मुक्तेश्वर की कीर्ति का आधार उनका 'भारत-रचना' ग्रंथ है, जो संभवतः 'महाभारत' के संपूर्ण अठारह पर्वों पर मराठी में रचा गया था। अब इसके केवल पाँच पर्व—(1) आदि, (2) सभा, (3) वन, (4) विराट, और (5) बीच का ही ग्यारहवाँ सौप्तिक पर्व प्राप्त है। कहा जाता है कि इन्होंने 'भागवत' (दे०) के आधार पर भी रचना की थी, परंतु वह उपलब्ध नहीं है। आज तक इनकी

उपलब्ध रचनाओ निहित श्लोक-पद-ओवी आदि छदो की कुल मिलाकर सख्या लगभग अठारह से उन्नीस हजार के बीच निर्धारित की जाती है।

मुक्तेश्वर की ख्याति भक्त कवि की अपेक्षा कला कवि या पडित कवि के रूप मे अधिक प्रसारित हुई। ये पडित कवियो मे अग्रणी थे। इन्हे मराठी मे कला-काव्य का प्रवर्तक कवि माना जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

मुखोपाध्याय, त्रैलोक्यनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1847 ई०, मृत्यु—1919 ई०]

प्रसिद्ध हास्य उपन्यासकार त्रैलोक्यनाथ की ये रचनाएँ उल्लेखनीय हैं—'कंकावती' (दे०), 'मुक्तमाला', 'डमरुचरित'। एक ओर लेखक भूत, प्रेत, पिशाच, जिन, परी आदि अलौकिक जीवो के द्वारा कौतुकपूर्ण कथा की कल्पना करता है तो दूसरी ओर इन्ही के परिप्रेक्ष्य मे बगाली समाज के कुसस्कारो पर कटु प्रहार करता है। इस दृष्टि से 'डमरुचरित' चमत्कृत करने वाली रचना है। डमरुधर (दे०) की जैसी स्थूल कृष्ण काति देह वैसा कृष्ण-चरित्र। ससिलष्ट प्रभाव के लिए लेखक ने रूपक शैली का आश्रय लिया है। अपने विशिष्ट क्षेत्र मे मुखोपाध्याय को अद्वितीय सफलता मिली है।

मुखोपाध्याय, प्रभातकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1873 ई०, मृत्यु—1932 ई०]

बकिम-परवर्ती युग के ख्याति-प्राप्त कथाकार प्रभातकुमार ने उपन्यास भी लिखे हैं परतु इनकी उपलब्धि और प्रतिभा का क्षेत्र कहानियाँ हैं। इन्होने कई उपन्यास लिखे हैं, उनमे चरित्र-विश्लेषण तथा अध्ययन की अपेक्षा घटना-विन्यास पर बल है। दैव और सौभाग्य का आश्रय लिया गया है। इसलिए प्रभातकुमार के उपन्यास पठनीय हैं। 'रत्नदीप' (दे०) और 'सिंदूर काँटा' उनके सर्वोच्च एव सशक्त उपन्यास हैं। शेष कई उपन्यासो मे अद्भुत घटना-कौशल तो है, परतु उनकी आत्म-शक्ति क्षीण है।

प्रभातकुमार एक सिद्धहस्त कहानीकार हैं। इनमे जीवन की साधारण-सी लगने वाली विसगतियो एव विषमताओ के असाधारण रेखाकन का नैपुण्य है। इनकी कहानियो का आधार है हास्य, व्यग्य तथा विद्रूप। ये घटनापरक भी हैं और चरित्रमूलक भी। 'बलवान', 'जामाता', 'रसमयीर', 'रसिकता', 'वायु-परिवर्तन', 'खोकार काड', 'यज्ञ-भग', 'सरदार-कीर्ति' लेखक की अन्यतम उपलब्धियाँ हैं। इनकी कुछ कहानियाँ स्वदेशी आदोलन पर, कुछ शासन-तत्र के अत्याचार पर, कुछ विदेशी आचार-विचार के अधानुकरण पर हैं।

प्रभातकुमार मे सूक्ष्म अतर्दृष्टि तथा भाव-गभीरता उभर नही पाई। इसीलिए समकालीन होते हुए भी ये रवीद्र के समकक्ष नही ठहरते। कहानीकार के नाते ये अवश्य स्मरणीय रहेगे।

मुखोपाध्याय, बलाइचद्र *(बँ० ले०)*

दे० बनफूल।

मुखोपाध्याय, बिभूतिभूषण *(बँ०ले०)* [जन्म—1899 ई०]

बिभूतिभूषण मुखोपाध्याय ने बँगला कथा-साहित्य मे यथार्थ रूप से उच्चतर साहित्यिक कोटि के हास्य रस की स्थापना की है। कौतुक रस के साथ चित्त के सदा-प्रसन्न रूप, वात्सल्य रस के साथ हास्य के सम्मिश्रण एव हास्य के साथ करुण रस को मिलाकर लेखक ने मधुर आस्वादित एक नये प्रकार के कथा-साहित्य की सृष्टि की है। इनके राणु, गन्सा एव घोटना के दल को बगाली पाठक कभी भी नही भूल सकता। लेखक के 'राणुर'—प्रथम भाग (1937), 'राणुर'—द्वितीय भाग (1938), 'राणुर'—तृतीय भाग (1940), 'राणुर कथामाला' (1941), आदि कहानी-सग्रह एव 'बरयात्री' (दे०) (1942), 'काचनमूल्य' (1956) आदि उपन्यास हास्यरसात्मक रचना-रूप मे विशेष ख्यातियुक्त हैं। हास्यरसिक की लघु दृष्टि-भगी के अतराल मे कविसुलभ सौंदर्यबोध एव दार्शनिक की सूक्ष्मदर्शिता छिपी हुई थी—इसका सकेत इनकी परवर्ती रचनाओ मे स्पष्ट मिल जाता है। 'नीलागुरीय' (1945), 'रिक्सार गान' (1956), 'मिलनान्त' (1956) 'नयान बो' (1961) आदि उपन्यासो मे लेखक के गभीर जीवन-चितन की अभिव्यक्ति हुई है।

बिभूति बाबू ने जीवन की जिन असगतियो के आश्रय से हास्यरस की सृष्टि की है उनमे कही भी किसी पर आघात नही किया। इनका कौतुक-हास्य जीवन के आनद का ही विस्तार करता है। विशुद्ध हास्य की उपस्थापना मे बँगला साहित्य म इनका कोई प्रतिद्वद्वी नही है।

मुखोपाध्याय, भूदेव *(बँ० ले०)* [जन्म—1825 ई०; मृत्यु—1894 ई०]

मधुसूदन (दे० माइकेल) के सहपाठी भूदेव मुखोपाध्याय ने बँगला प्रबंध-साहित्य में रक्षणशीलता के साथ युक्तिवाद एवं उच्छ्वासरहित प्रकाशभंगिमा की प्रतिष्ठा की है। भारतीय आदर्श में जो कुछ भी सत्य या शाश्वत है उसके प्रति उन्होंने जनसाधारण की दृष्टि आकर्षित की है। इनकी शिक्षात्मक एवं कल्याणात्मक रचना के रूप में 'पारिवारिक प्रबंध' (दे० 1881), 'सामाजिक प्रबंध' (1892), 'आचार प्रबंध' (1894) विशेष मूल्यवान हैं। 'ऐतिहासिक उपन्यास' (दे०) एवं 'स्वप्नलब्ध भारतवर्षेर इतिहास' भी विशेष उल्लेखनीय हैं। बंकिमचंद्र (दे०) के 'दुर्गेशनंदिनी' (दे०) पर इनके उपन्यास 'अंगुरीय विनिमय' के प्रभाव को अस्वीकारा नहीं जा सकता।

मुखोपाध्याय, शैलजानंद *(बँ० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

बँगला कथा-साहित्य के क्षेत्र में शैलजानंद मुखोपाध्याय का एक विशिष्ट स्थान है। कोयले की खानों में काम करने वाले संथाल कुलियों की जीवन-यात्रा के यथार्थ अनुभवों की रचना कर इन्होंने बँगला कथा-साहित्य में आंचलिकता का सूत्रपात किया था। उपन्यास की अपेक्षा कहानी में इनका शिल्प-कौशल अधिक प्रस्फुटित हुआ है। इनके उपन्यास या कहानी-संग्रहों की संख्या लगभग सौ है जिनमें 'झड़ो हाओया' (1923), 'बांगलार मेये' (1925), 'खरस्रोत' (1932), 'गंगा-यमुना' (1933), 'शुभदिन' (1935), आदि उपन्यास एवं 'कयला कुटि' एवं 'नारी-मेध' आदि कहानी-संग्रह बहुत प्रसिद्ध हैं।

बँगला कथा-साहित्य के क्षेत्र में प्रकृतवादी रचनाकार के रूप में ख्यातिमान होने पर भी इनकी रचना में बौद्धिकता के स्थान पर हृदय की आंतरिकता अधिक मिलती है। गहरे करुणा-बोध के साथ अनुच्छ्वसित भाषा में इन्होंने मनुष्य के दुःख को चित्रित किया है। इसके साथ ही इन्होंने दुःख की सामाजिक अपरिहार्यता के परिवेश की भी रचना की है अर्थात् अत्याचारी के व्यवहार के पीछे भी कोई सामाजिक कारण विद्यमान है—यह उपलब्धि इनकी सहानुभूति को अधिक व्यापक बना देती है। गहरे दुःख में भी मनुष्य की कतिपय मानवीय वृत्तियाँ अम्लान रहती हैं यह चेतना इनकी नैराश्य-पीड़ित कहानियों में सांत्वना का स्वर भर देती है।

लेखक की 'कयला कुटि' एवं 'नारी-मेध' कहानी-संग्रहों की कहानियाँ बँगला साहित्य में चिरकाल तक स्मरणीय रहेंगी। संथाल कुलियों के आचार-नियम, इनके विशिष्ट नीतिबोध तथा इनके असहनीय दारिद्र्य के यथार्थ चित्रण उसने श्रेणी-संग्राम के उल्लेख के स्थान पर शैल्पिक दृष्टि से इनकी तीव्र जीवनी-शक्ति एवं जीवन-निष्ठा की अभिव्यक्ति की है। संथाल चरित्रों—विशेषतः संथाल स्त्री-चरित्रों—की सृष्टि में लेखक की सफलता सर्वाधिक उल्लेखनीय है।

मुखोपाध्याय, सुभाष *(बँ० ले०)* [जन्म—1919 ई०]

अति आधुनिक कविता के क्षेत्र में साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत सुभाष मुखोपाध्याय प्रारंभ से ही कविता-कर्म में साम्यवाद के वाणीवाहक रहे हैं।

इनके काव्य-ग्रंथ हैं: 'अग्निकोण' (1948), 'चिरकुट' (1950), 'पदातिक' (तृतीय संस्करण, 1952), 'यत दूरे जाइ' (1952) आदि। सुभाष बाबू मध्य वर्ग के परिवार के हैं और मध्य वर्ग के संसार का टूटना इन्होंने गहराई से अनुभव किया है—इससे इन्हें खुशी हुई है क्योंकि नये समाज के निर्माण के लिए प्राचीन का टूटना आवश्यक है। इनकी कविता में कहीं-कहीं प्रचार की गंध है परंतु अपनी विदग्धता एवं निपुणता के आश्रय से इन्होंने कविता को स्थायी मूल्य प्रदान किया है। साम्यवादी कविता में उद्धृति तथा उल्लेख के प्राचुर्य के फलस्वरूप कविता दुर्बोध हो जाती है परंतु इनकी कविता में यह दुर्बलता नहीं है। राजनीति की लालिमा होने पर भी इनकी अभिव्यंजना-पद्धति बहुत आकर्षक है।

मुखोपाध्याय, सौरींद्रमोहन *(बँ० ले०)* [जन्म—1884 ई०]

सौरींद्रमोहन मुखोपाध्याय बँगला कथा-साहित्य के क्षेत्र में बीसवीं शती के प्रारंभ से लेकर तीसरे दशक तक छाये रहे थे। इस काल में 'भारती' पत्रिका के सह-संपादक के रूप में इन्होंने पहले स्वर्णकुमारी देवी एवं बाद में मणिलाल गंगोपाध्याय के साथ काम किया था। पहले-पहल इन्होंने कहानियाँ लिखनी शुरू की थीं परंतु भाव-विचार की दृष्टि से उनमें कोई नवीनता नहीं आ पाई थी। इनकी अधिकांश कथा-वस्तु में कोई वैचित्र्य नहीं है। अविवाहित की प्रेम-प्रत्याशा अथवा नवविवाहित की प्रेम-पिपासा ही इनकी

अधिकांश कहानियो की विषय-वस्तु है, परंतु यह सत्य है कि इनकी कहानियो मे एक विशेष प्रकार की सरसता है जिसके फलस्वरूप इन्हे विशेष जनप्रियता प्राप्त हुई थी। इनके कहानी-सग्रहो म 'शेफालि' (1913), 'निर्भर' (1911), 'पुष्पक' (1913), 'मृणाल' (1922), 'यौवराज्य' (1922), 'पियासी' (1922) आदि उल्लेखनीय हैं।

विदेशी कहानी, उपन्यास एव नाटक के अनुवाद की दिशा मे इन्होने महत्वपूर्ण कार्य किया है। 'परदेशी' (1910) इनकी विदेशी कहानियो का सग्रह है। 'यत्किंचित्' (1900) एव 'दरिया' (1912) क्रमश मोलियर एव गोल्डस्मिथ के नाटको के अनुवाद हैं। 'बदी' (1911), 'मातृऋण', 'अबधना', 'असाधारण' क्रमश ह्यूगो, दोदे, गोर्की एव तुर्गनेव के उपन्यासो के अनुवाद हैं।

सौरीद्रमोहन के मौलिक उपन्यासो की सख्या कम नही है। इनमे 'काडारी', 'आँधि', 'बाबला' आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने दैनदिन जीवन की घटनाओ के आश्रय से उपन्यासो की रचना की थी परतु विषय-प्रतिपादन की सरसता एव प्रसाद गुण-सपन्न एव भावातिशय्य-वर्जित भाषा के कारण ये उस युग मे बहुत अधिक लोकप्रिय हुए थे।

मुगळि, र० श्री० *(क० ले०)*

ये कन्नड के प्रबुद्ध आलोचक है। स्व० आर० नरसिहाचार्य (दे०) के 'कविचरिते' (तीन भाग) के बाद इनके 'कन्नड साहित्य चरित्रे' (दे०) और 'कन्नड साहित्य का इतिहास' ही साहित्य के इतिहास ग्रथो मे अधिक लोकप्रिय और उपयुक्त सदर्भ ग्रथ माने गये हैं। 'रन्नन कृतिरत्न' (रन्न का कृतिरत्न), 'विमर्शय व्रत' आदि रचनाओ के द्वारा भी इन्होंने अपने आलोचक व्यक्तित्व को स्थिर रखा है। इनको हम निर्भीक और तटस्थ आलोचक कह सकते है। इनकी आलोचना निर्णयात्मक होती है। इनकी मान्यताओ से हम लोग सहमत हो या न हो, पर इसमे सदेह नही कि इनके विशाल अध्ययन और पाडित्य से प्रभावित हुए बिना नही रहते। आलोचक होने के साथ-साथ ये उच्चकोटि के कवि भी है। इनकी कविताओ के तीन सग्रह 'बासिग' (पुष्पमाला), 'अपार करुणा' और 'ओ अराति' प्रकाशित हुए हैं। 'चातकव्रत और जक्कव्व जाणि' (जक्कव्व चतुर है) जैसी इनकी लबी कविताएँ सुदर हैं। ये अच्छे गद्य लेखक भी हैं, साहित्य की विविध विधाओ मे इनकी लेखनी विशेष सफलता प्राप्त कर चुकी है। महाकवि बेंद्रे (दे०) और गोकाक (दे०) जी से इनको साहित्यिक प्रेरणा मिली है। साहित्य के इतिहासकार के रूप मे ये चिर-यश के अधिकारी हैं। 'विमर्शय व्रत' इनकी सैद्धातिक आलोचना-सबधी कृति है।

मुजीब, मुहम्मद *(उर्दू० ले०)*

मुजीब साहब एक लबे समय तक जामिया मिलिया इस्लामिया के प्राध्यापक-कुलपति रहे और उदात्त विचारो के विद्वान थे। रूसी भाषा के अफसानो का इन्होने परिमार्जित उर्दू मे उत्कृष्ट अनुवाद किया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे इनके साहित्यिक निबध प्रकाशित होते रहे जिन्होने इनको ख्याति प्रदान की। इन्होने एक नाटक 'खती' बडी आकर्षक शैली मे लिखा है। इस नाटक मे कोई स्त्री पात्र नही और देश की दशा के सुधार का चित्र खीचा गया है। इसके अतिरिक्त इनकी अय रचनाएँ 'खाना जगी' और 'हब्बा खानक' हैं जिनमे आधुनिक अर्थ-व्यवस्था पर करारी चोट है।

मुडियरसन् *(त० ले०)* [जन्म—1920 ई०]

'मुडियरसन्' लेखक का उपनाम है, असली नाम है 'का० चु० तुरैराचु'। 1920 ई० मे जन्मे इस लेखक ने प्रसिद्ध विद्रोही स्वर वाले कवि भारतीदासन (दे०) के शिष्य के रूप मे काव्य-क्षेत्र मे पदार्पण किया था। आकाशवाणी द्वारा समय-समय पर आयोजित कवि-सम्मेलनो मे इनकी कविताएँ प्रस्तुत हुईं जिनका एक सग्रह 1964 ई० मे भी निकल चुका है। इनकी कुछ अन्य काव्य-रचनाएँ ये हैं—'मुडियरसन् कवितैकळ्' (स्फुट कविताओ का सग्रह, जो तमिलनाडु सरकार द्वारा पुरस्कृत हुआ), 'पूड्कोटि', 'वीरकावियम्', 'कावियप्पावै' (काव्य-कृतियाँ) इत्यादि। इन कृतियो मे युग प्रवृत्ति के अनुसार तमिल प्रदेश की विशिष्ट सस्कृति की प्रशसा का स्वर यत्र-तत्र मुखरित है।

मुत्तोळ्ळायिरम् *(त० कृ०)* [समय—अनुमानत छठी शती ई०]

आजकल यह प्राचीन काव्य-कृति लुप्तप्राय है। इसके शीर्षक के दो अर्थों से अनुमान किया जा सकता है कि इस काव्य मे या तो तमिल मूसड के तीन प्रमुख

'चेरचोलपाण्ट्यि' राजाओं पर कुल नौ सौ पद्य थे या प्रत्येक राजा पर नौ सौ पद्य थे। संप्रति केवल 150 से कम पद्य उपलब्ध हैं जो कि 'पुरत्तिरट्टु' नामक चौदहवीं शती ई० के पद्य-संग्रह तथा 'तोलकाप्पियम्' (दे०) व्याकरण की टीकाओं के उद्धरणों से इकट्ठे किए गए हैं।

छंद-विधान तथा अभिव्यंजना-शैली में यह रचना यद्यपि प्रसिद्ध 'संगम'-साहित्य से भिन्न है तथापि विषय-प्रतिपादन में उसके समान है। इसके विषय 'अहम्' (दे० अहप्पोरुल) और 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुल) पद्धतियों में वर्णित शृंगार एवं शृंगारेतर प्रसंग हैं। तमिल भूखंड के तीन राजाओं के यश, नगर, घोड़े एवं हाथी के गौरव, युद्ध-कौशल, शत्रु-निंदा, विजय, राजाओं पर काम-मोहित नारियों की उक्तियाँ—ऐसे प्रकरणों से इसका संबंध है। 'पांड्य', 'चोल' तथा 'चेर' राजाओं के बारे में क्रमशः 61, 46 एवं 22 पद्य उपलब्ध होते हैं।

चतुष्पदी 'वेण्पा' छंद का समर्थ उपयोग इसमें देखा जा सकता है जो संगम-साहित्य के पद्य-संग्रहों में नहीं मिलता। राजाओं की प्रशंसा में कल्पना की उड़ान द्रष्टव्य है। कभी यह शुद्ध भावात्मक है और कभी ऊहापरक। यथा, पांड्य राजा की राजधानी के प्रासादों पर स्थित वनिताओं द्वारा नायकों के साथ प्रणय-कलह करते हुए वीथियों पर फेंके गए कुंकुम-मिश्रित चंदन के समूह से उत्पन्न कीचड़ पथिकों को कष्ट देने वाला है। दूसरा उदाहरण है—एक कामविह्वल नायिका अपनी सखी द्वारा राजा को संदेश भेजती है कि उनके सामने मेरा विषय मत छेड़ना, मेरा नाम या गाँव मत बताना, केवल यही (परोक्ष रूप से) कहना कि तमिल लोगों के विशाल हाथी-संपत्ति वाले राजा के कारण एक नारी की आँखें रात-भर नहीं मुँदतीं।

मुत्यालसरालु (तें० कृ०) [रचना-काल—1910 ई० के लगभग]

इसके लेखक गुरजाडा अप्पाराव (दे०) हैं जो आधुनिक तेलुगु-साहित्य के प्रवर्तकों में से एक हैं। यह एक कविता-संग्रह है। 'मुत्यालसरालु' एक देशी छंद का नाम है। जिसके जन्मदाता स्वयं अप्पाराव ही थे। प्रस्तुत संग्रह-ग्रंथ में उक्त शीर्षक वाली एक कविता के अतिरिक्त 'पूर्णम्मा' (दे०) 'डामन्-पिथियस्', 'कन्यका' तथा 'लवण-राजुकला' नामक चार अन्य कथात्मक खंड कविताएँ भी हैं। इसमें 'मुत्यालसरालु' पति-पत्नी के संभाषण के रूप में सुधारात्मक दृष्टि से लिखी गई कविताएँ हैं। लेखक पुच्छल तारा को समाज-सुधार की पताका मानता है। परंपरा को मानने वाली पत्नी को उसका पति समाज-सुधार संबंधी आदर्शों का उपदेश देता है। एक वृद्ध के साथ ब्याही गई कन्या की करुण-कहानी ही 'पूर्णम्मा' में वर्णित है। 'डामन्-पिथियस्' में सच्चाई, प्रेम तथा स्नेह आदि समाज-कल्याणकारी गुणों के महत्त्व को मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। ऐश्वर्य तथा अधिकार के मद में एक राजा एक स्वाभिमानिनी कन्या का अपमान करने का प्रयत्न करता है। उस दुष्ट से बचकर अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए वह कन्या आग में कूदकर अमर हो जाती है। यही कथानक 'कन्यका' नामक कविता में वर्णित है। 'लवण-राजुकल' (लवण राजा का स्वप्न) नामक कविता में एक राजा तथा एक हरिजन-कन्या के स्वच्छ प्रेम का वर्णन है। इन कथात्मक कविताओं के माध्यम से लेखक ने कुछ उच्च कोटि के सुधारात्मक आदर्शों को प्रस्तुत किया है। उस समय की सामाजिक स्थिति का मार्मिक चित्रण, व्यावहारिक रूप के निकट की सरस भाषा और नये तथा मधुर मात्रिक छंदों का प्रयोग इन कविताओं की कुछ विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं के द्वारा ही अप्पाराव ने आधुनिक तेलुगु-साहित्य के विकास में एक नयी तथा महत्वपूर्ण दिशा दिखाई है। आधुनिक तेलुगु-कविता के अंतर्गत 'मुत्याल-सरालु' कई दृष्टियों से एक क्रांतिकारी रचना मानी जा सकती है।

मुद्दुकृष्ण (तें० ले०) [जन्म—1899 ई०]

इन्होंने बी० ए० बी० एल० की परीक्षाएँ पास की तथा हरींद्रनाथ चट्टोपाध्याय के साथ अंग्रेज़ी नाटकों के अभिनय में भाग लिया। उसके बाद अपने नाटकों को अभिनीत करते हुए समस्त आंध्र देश में भ्रमण किया और अंत में मद्रास पहुँचे। सिनेमा में व्यावहारिक (बोलचाल की) भाषा का प्रयोग करने का सर्वप्रथम श्रेय इन्हीं को है।

'अशोकुडे' (1934), 'टीकप्पु लो तुपानु' (चाय की प्याली में तूफ़ान) (नाटक), 'भीमाविलापमु लो भामा-कलापमु' [भीमा के विलाप में भामा (सुंदरी) का कलाप] (नाटिका) आदि इनकी प्रख्यात रचनाएँ हैं। 'ज्वाला' नामक पत्रिका का संपादन इन्होंने पर्याप्त समय तक किया। इसके अतिरिक्त 'वैताळिकुलु' नामक पुस्तक का संपादन भी किया, जिसमें 'भाव-कविता' (दे०) (छायावादी)-युग की श्रेष्ठ कविताएँ संकलित हैं। 'भाव-कविता' के विकास-क्रम

को जानने के लिए यह सकलन अपरिहार्य है। 'भाव कविता' का निरास करते हुए इन्होने अभ्युदय(प्रगति)वादी कविताएँ भी लिखी हैं। 'अशोक' नामक नाटक मे इन्होने आधुनिक मनोविश्लेषणात्मक (साइको एनालिटिकल)दृष्टिकोण से सीता, राम और रावण का चरित्र-चित्रण किया है। राम को केवल कीर्तिकामी तथा रावण को महापुरुष और पुण्यमूर्ति के रूप मे चित्रित किया है। अवाल्मीकीय कल्पनाओ से युक्त इस नाटक ने साहित्य क्षेत्र मे तहलका मचा दिया था।

मुद्दण *(क० ले०)* [समय—1869 1901 ई०]

नदळिके लक्ष्मीनारणप्पा, उपनाम 'मुद्दण', प्राचीन और नवीन साहित्यो के सधिकाल के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार हैं। नदळिके इनका जन्मस्थान था। ये केवल 32 वर्ष जीवित रहे। इतनी अल्पायु मे इन्होन साहित्य की अपार सेवा की। दरिद्रता के कारण ये उच्च शिक्षा प्राप्त नही कर सके थे तथापि इनकी मेधा-शक्ति अद्भुत थी। इन्होने स्वाध्याय के बल पर कन्नड मे तीन काव्य लिखे—(1) 'श्रीरामपट्टाभिषेक', जो वार्धक षट्पदी (कन्नड का एक छद) मे है, (2)'अद्भुत रामायण' और(3) रामाश्वमेध'। इनके अतिरिक्त इन्होने 'रत्नावली-कल्याण' और 'कुमार विजय' नामक यक्षगानो की भी रचना की है। इनके 'गोदावरी' नामक उपन्यास के कुछ परिच्छेदो, भगवद्गीता तथा रामायण के कन्नड-अनुवादो, कामशास्त्र पर एक ग्रथ और अनुसधान सबधी कुछ लेखो का भी पता चला है। कहते हैं कि इन्होंने व्याकरण और कोश-कार्य की योजना भी बनाई थी।

मुद्दण के काव्य प्राचीन और नवीन सस्कारो के सगम स्थान हैं। उनमे प्राचीन शिल्प और नवीन तक्नीक अपनाने की अदभुत क्षमता थी। प्राचीन शैली मे वे न लिखते तो सभवत इनको प्रकाशक न मिलते। 'मुद्दण' उपनाम प्राचीन कवि के रूप मे ही गृहीत हुआ था।

'श्रीरामपट्टाभिषेक' मे वनवास के बाद राम के राजतिलक की कथा का वर्णन है। इसमे भरत का भव्य चित्र खीचा गया है। कवि ने अपने काव्य के सबध मे कहा है कि यह 'रामनामामृत घटिका' है। मनोहर वर्णनो से सुशोभित यह काव्य पाठको मे उल्लास तरगायित करता है। 'अद्भुत रामायण' नवीन शैली मे लिखित गद्य-काव्य है। इसका आधार शाक्त सप्रदाय की रामायण है। इसमे प्राचीन कन्नड गद्य-शैली का मनोरम रूप प्राप्त होता है। 'रामाश्वमेध' मुद्दण की अतिम और सर्वश्रेष्ठ रचना है। वर्षा वर्णन से इस काव्य का प्रारभ होता है। इसकी कथा का आधार पदमपुराणातर्गत रामायण है। परतु मुद्दण ने अपनी प्रतिभा के बल पर इसे सुदर गद्यकाव्य बनाया है। इन्होने कथा मे नूतन उद्भावनाएँ भी की हैं। काव्य के प्रारभ मे देव-स्तुति आदि का न होना इनके क्रातिकारी व्यक्तित्व को ही प्रकट करता है। काव्य मे मनोरमा (दे०) और मुद्दण का जो सवाद है, वह इनकी नूतन कल्पना का परिचायक है। मनोरमा की सृष्टि साहित्यलोक की एक अदभुत सृष्टि है। दरिद्र-जीवन व्यतीत करने पर भी मुद्दण प्रसन्न रहे होगे, स्वय हँसकर लोगो को हँसाते रहे होगे, मनोरमा और मुद्दण का सवाद इस बात का ज्वलत उदाहरण है। 'रामाश्वमेध' मुद्दण की अमर कृति है।

मुद्दुपळनी *(ते० ले०)* [समय—अठारहवी शती ई०]

दक्षिणापथ के राजा प्रतापसिंह के दरबार मे मुद्दुपळनी कवयित्री के रूप मे रहती थी। इनके 'राधिका स्वांतनमु' (दे०) नामक काव्य मे इला, राधा और कृष्ण के बीच मे प्रेम के त्रिकोणात्मक सघर्ष और अत मे राधिका के प्रेम की विजय का हृदयग्राही वर्णन है। इला के साथ कृष्ण का विवाह राधा स्वय अपनी इच्छा से करा देती है। पर बाद मे इला के ऊपर कृष्ण को अनन्य रूप मे अनुरक्त पाकर राधा अपनी विवेकशून्यता पर पछताती है। कृष्ण को फिर अपनी ओर उन्मुख कर लेने मे राधा को अनेक प्रयास करने पड़ते हैं। विप्रलभ और सयोग शृगार का इतना विपद वर्णन इस काव्य मे मिलता है कि सयत शृगार के अभ्यस्त पाठक नाक-भौं सिकोडने लगते हैं। पर यह तत्कालीन जनरुचि के अनुकूल ही लिखा गया था। मुद्दुपळनी की रचना मे शब्दो की रमणीयता, भावों की हृदयग्राहिता और मानव मन की मर्मज्ञता पाई जाती है। तेलुगु के शृगार काव्यो मे मुद्दुपळनी के 'राधिका स्वांतनमु' का उत्कृष्ट स्थान है।

मुद्रामंजूषा *(क० कृ०)* [रचना काल—1823 ई०]

केंपुनारायण की गद्यकृति 'मुद्रामजूषा' प्राचीन और आधुनिक कन्नड के सधिकाल की रचना है। वह सस्कृत के 'मुद्राराक्षस' (दे०)नाटक का गद्य-रूपातर नही है, इसमे 'मुद्राराक्षस' की कथा सूच्य रूप म आयी है अथवा यों कहें कि मुद्राराक्षस के प्रारभ मे जिस कथा की

सूचना मात्र है, उसका 'मुद्रामंजूषा' में बारह प्रकरणों में विस्तार है। उसमें कहा गया है कि 'पुराण में कही गई कथा अब केंपुनारायण नामक कवि ने कर्णाट भाषा में वर्णित कर इसे 'मुद्रामंजूषा' नाम दिया।' इससे पता चलता है कि लेखक ने कथावस्तु कहाँ से ली है। कथा में यत्र-यत्र परिवर्तन कर नवीनता लाने का प्रयास किया गया है। उसमें लेखक की स्वतंत्र कल्पना स्पष्टत: दिखाई पड़ती है।

'मुद्रामंजूषा' का महत्व उसकी भाषा-शैली की दृष्टि से है। उसमें आधुनिक कन्नड़ के अरुणोदय के स्पष्ट लक्षण दिखाई पड़ते हैं। उसकी शैली में एकरूपता नहीं है। कहीं बाणभट्ट (दे०) की 'कादंबरी' (दे०)-सी संस्कृतनिष्ठ प्रौढ़ शैली है तो कहीं इसके विपरीत सरल शैली। यह संधिकाल की विषमता का परिणाम है। परंतु, इसमें संदेह नहीं कि केंपुनारायण में प्रतिभा है, उनकी नवीन दृष्टि उनकी शब्द-प्रयोग-सामर्थ्य से प्रकट है।

मुद्राराक्षस *(सं० कृ०)* [समय—पाँचवीं शती]

'मुद्राराक्षस' संस्कृत के यशस्वी नाटककार विशाखदत्त की एकमात्र नाट्यकृति है। विशाखदत्त का समय अभी भी विवाद का विषय बना हुआ है। विविध प्रमाणों के आधार पर इनका समय पाँचवीं शती के बीच में पड़ता है।

'मुद्राराक्षस' अपने ढंग का अनूठा नाटक है। इसमें नाट्यशास्त्रीय परंपराओं का अक्षरश: पालन नहीं किया गया है। इसके कथानक का स्रोत 'रामायण' (दे०) या 'महाभारत' (दे०) न होकर भारतीय इतिहास की एक घटना है। कथा इस प्रकार है—सिकंदर के आक्रमण के पश्चात् चाणक्य नंदवंश का मूलोच्छेदन करके चंद्रगुप्त मौर्य को मगध का सम्राट बनाता है। नंदवंश का अत्यंत योग्य तथा राजनीतिकुशल मंत्री राक्षस चंद्रगुप्त को राजा नहीं मानता और स्वामी के विनाश का प्रतिशोध लेना चाहता है। किंतु चाणक्य अपनी कूटनीति से राक्षस को चंद्रगुप्त के पक्ष में कर लेता है तथा उसे चंद्रगुप्त का मंत्री बना देता है।

इस नाटक में राजनीतिक दाँव-पेचों का अत्यंत कौशलपूर्ण चित्रण है।

इसमें स्त्रीपात्र, विदूषक तथा नायिका आदि की कल्पना नहीं की गई। वास्तव में इस नाटक की नायिका राजनीति को माना गया है। अन्य नाटकों की भाँति इसमें ललित पद्यों की योजना है। इस नाटक में अंगी वीर रस है जिसकी व्यंजना शस्त्रों की झनझनाहट तथा नगाड़ों की गड़गड़ाहट से होती है। इसमें चाणक्य तथा राक्षस की कूटनीति एवं बुद्धि का चमत्कार दर्शक को आश्चर्यचकित कर देता है।

इसका वस्तु-विन्यास अत्यंत सुव्यवस्थित तथा सबल है। चरित्रों में आदर्श एवं यथार्थ का समुचित समन्वय हुआ है। विशाखदत्त ने चाणक्य तथा राक्षस के चरित्रों का तुलनात्मक चित्रण करके अपूर्व नाट्यकौशल का परिचय दिया है। इसके संवाद सप्राण हैं तथा रंगमंच की दृष्टि से यह अत्यंत सफल नाटक है।

मुनाजात *(सिं० पारि०)*

'मुनाजात' मूलत: अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है ईश-प्रार्थना; कष्ट-निवारण के लिए की हुई परमात्मा की स्तुति। 'मुनाजात' गीत का वह प्रकार है जिसमें कवि अपने दु:खों का वर्णन कर परमात्मा की स्तुति करता हुआ कष्ट-निवारण के लिए उससे प्रार्थना करता है। कभी-कभी इस प्रकार के गीत में इस्लाम के किसी पैगंबर, दरवेश आदि की स्तुति कर उसे दु:ख में सहायक होने के लिए भी पुकारा जाता है। 'मदाह' (दे०) में इष्ट देव की स्तुति का स्वर प्रधान होता है, परंतु 'मुनाजात' में कवि के कष्टों का वर्णन और सहायता की प्राप्ति के लिए आत्मनिवेदन का स्वर मुख्य होता है। 'मदाहूं और मुनाजातूं' (मदाहें और मुनाजातें) नाम से डा० नबीबख्श खान बलोच (दे०) ने चुनी हुई सिंधी 'मदाहों' और 'मुनाजातों' का एक प्रामाणिक संकलन तैयार किया है जो 1959 ई० में सिंधी-अरबी बोर्ड, हैदराबाद (सिंध) से प्रकाशित हो चुका है।

मुनाज़िरो *(सिं० पारि०)*

सिंधी-लोक-साहित्य में 'मुनाज़िरो' नामक कविता का महत्वपूर्ण स्थान है। 'मुनाज़िरो' एक प्रकार की दीर्घाकार वर्णनात्मक कविता है जिसका विषय दो सजीव अथवा निर्जीव पक्षों के बीच में या दो भावनाओं अथवा दृष्टिकोणों के बीच उत्पन्न विवाद या बहस पर आधारित होता है। इस प्रकार के विवाद में प्रत्येक पक्ष अपनी महानता और श्रेष्ठता को सिद्ध करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की कविता का मुख्य उद्देश्य हँसी-मज़ाक और व्यंग्य के द्वारा श्रोता अथवा पाठक का मनोरंजन

करना होता है। इसके साथ-साथ 'मुनाजिरो' से शिक्षा भी दी जाती है। अक्ल और इश्क, जवानी और बुढ़ापा, विद्या और धन, टोपी और पगडी, सोना और लोहा, गर्मी और सर्दी, गीदड और शेर, तोता और मैना, सास और बहू—ये 'मुनाजिरो' मे वर्णित दो पक्षो के कुछ उदाहरण हैं। 'मुनाजिरो' मे ग्रामीण जीवन के चित्र मिलते हैं और उन मे ठेठ सिंधी भाषा का प्रयोग किया जाता है। डा० नबी-बख्श खान बलोच (दे०) ने 'मुनाजिरा' ('मुनाजिरो' का बहुवचन) नाम से इस प्रकार की चुनी हुई कविताओ का बृहत् सकलन तैयार किया है, जिसे सिंधी-अरबी बोर्ड, हैदराबाद (सिंध) 1961 ई० मे प्रकाशित कर चुका है।

मुनि कनकामर *(अप० ले०)* [रचना-काल—1065 ई०]

मुनि कनकामर ब्राह्मणो के चद्र ऋषि गोत्र मे उत्पन्न हुए थे। कालातर मे ये देह-भोगो से विरक्त होकर दिगबर-जैन-सप्रदाय मे दीक्षित हो गये थे। इनके गुरु का नाम बुध मगल देव था। देशाटन करते हुए आसाइया नगरी मे पहुँच कर इन्होने 'करकडु चरिउ' (करकडु-चरित) दे० नामक अपभ्रश चरित-काव्य की रचना की थी। इस कृति मे इन्होने अपने जन्म आदि का उल्लेख नही किया है। ये धार्मिक सकीर्णता से रहित उदारहृदय व्यक्ति थे।

इन्होने किसी अपने भक्त श्रावक के आग्रह एव अनुराग के कारण 'करकडु-चरिउ' की रचना की थी। इन्होने इस श्रावक का सक्षिप्त परिचय भी दिया है किंतु इसके नाम का उल्लेख नही किया। प्रो० हीरालाल जैन ने इनका समय 1043-1068 ई० के बीच अनुमित किया है।

मुबारक *(हिं० ले०)*

ये फारसी, अरबी तथा सस्कृत के अच्छे ज्ञाता और हिंदी के सहृदय कवि थे। 1933 ई० इनका कविता-काल रहा। इन्होंने 'ममारख' छाप से भी रचना की है। मुख्यत शृगारी कवि होने के कारण नायिका के अंगो का वर्णन बडे विस्तार से किया है। इसके बारे मे प्रसिद्ध है कि इन्होंने नायिका के दस अगो की शोभा-वर्णन मे लगभग 1000 दोहे बनाये। 'अलकशतक' और 'तिलकशतक' नामक प्राप्त ग्रथ उन्ही के अतर्गत कहे जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त स्फुट रूप मे भी कवित सवैया लिखे हैं। इनकी उत्प्रेक्षाएँ काफी सुंदर होती हैं, कल्पना की उडान मे ये अपने समसामयिको से बढकर हैं।

मुम्मडि कृष्णराज *(क० ले०)*

दे० कृष्णराज, मुम्मडि।

मुरारि *(स० ले०)* [समय—आठवी शती का उत्तरार्द्ध]

नाटककार मुरारि मौद्गल्यगोत्री श्री वर्धमानक तथा तनुमती के पुत्र थे। इनको 'बालवाल्मीकि' की उपाधि दी गई थी। अनेक साक्ष्यो के आधार पर इनका समय आठवी शती का उत्तरार्ध निश्चित किया जा सकता है।

इनका केवल एक नाटक मिलता है—'अनर्घराघव'। यह नाटक सात अको मे समाप्त हुआ है। इसकी प्रस्तावना मे ये भवभूति (दे०) के ऊपर कटाक्ष करते हुए प्रतीत होते हैं। इनका कहना है कि 'अनर्घराघव' वीर तथा अद्भुत रस और गभीर एव उदात्त वस्तु से सपन्न है। पर यह उक्ति कुछ सही नही बैठती। 'अनर्घराघव' नाटक की दृष्टि से एक सफल प्रयास नही कहा जा सकता। इसमे मानवीय हृदय के भावो का उतना विकास नही दृष्टिगोचर होता जितना भवभूति के नाटको मे होता है। कविता की दृष्टि से नाटक अवश्य सुदर है। इसमे ओज है, प्रौढता है और प्रवाह है।

मुरुकैयन *(त० ले०)* [जन्म—1935 ई०]

इनका जन्म जाफना (लका) मे हुआ और वही इन्होने आरभिक शिक्षा प्राप्त की। मुरुकैयन ने लगभग 15 वर्ष की आयु से ही कविता लिखना आरभ कर दिया था। इनकी कविताओ के सग्रह हैं—'नेडुम पहल्', 'ओरु वरम्' और 'दरिशनम्'। इनकी नवीनतम कृति है 'गोपुल वासल' नामक काव्य-रूपक। इसमे उन्होंने 'पेरिय-पुराणम्' (दे०) मे प्राप्त नदनार (दे०) की कथा का आश्रय लेते हुए एक सामाजिक दोष—अस्पृश्यता—की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। 'कविर्दनयम्' इनकी आलोचनात्मक कृति है। इन्होंने आधुनिक विज्ञान के विभिन्न वर्गों से सबधित विषयो पर निबध लिखे हैं। मुरुकैयन गीतकार भी हैं। इन्होने चलचित्रों के लिए भी कुछ गीतो की रचना की है। मुरुकैयन श्रीलका के शैक्षिक प्रकाशन-विभाग मे सपादक के पद पर नियुक्त हैं।

श्रीलंका के तमिल साहित्यकारों में इनका विशिष्ट स्थान है।

मुळिय तिम्मप्पय्या *(क० ले०)* [जन्म—1891 ई०; मृत्यु—1950 ई०]

दक्षिण कन्नड के पुत्तूर तालुके के मुलिया में आपका जन्म हुआ। मंगलूर के कालेज में ये कन्नड के अध्यापक थे। इन्होंने 'कन्नडकोगिले' नामक पत्रिका का संपादन किया। ये कन्नड के आदि कवि पंप (दे०) के विशेषज्ञ और अधिकारी विद्वान थे। आपकी कृतियों में प्रमुख ये हैं—'आदिपुराण-संग्रह', 'कविराजमार्ग-विवेक', 'चंद्रावली-विलास', 'त्रिपुरदाह', 'नवनीत-रामायण', 'पार्ति सुब्ब', 'समस्त भारत-सार', 'सोबगिन बळ्ळि', आदि। शैली पंडिताऊ होने पर भी प्रभावी है।

मुल्लै *(त० पारि०)*

प्राचीन तमिल साहित्य में वर्णित पाँच भूभागों में से एक है मुल्लै। मुल्लै आदि पाँच भूभागों का वर्णन 'अहम्' (दे० अहप्पोरुल) और 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुल) दोनों वर्गों की रचनाओं में होता है। 'मुल्लै' से तात्पर्य है वन-प्रदेश। यहाँ के निवासी इडैयर या आयर कहलाते हैं। इनका मुख्य व्यवसाय है खेती करना, ढोर पालना, पशु चराना आदि। मुल्लैवासियों के आराध्य देव मायोन् (विष्णु) है। इस प्रदेश की अनुकूल ऋतु वर्षा-ऋतु (सावन-भादों) है और अनुकूल वेला है रात्रि का प्रथम प्रहर। यहाँ के प्रमुख प्राणी हैं जंगली मुर्गी, हिरन, खरगोश आदि। मुल्लैवासी 'एरंकोट्टपरै' नामक ढोल का प्रयोग करते हैं। यहाँ के निवासी बाँसुरी बजाकर, साँड़ों को भिड़ाकर, कुरवै नृत्य करके और जलक्रीड़ा करके अपना मनोरंजन किया करते हैं। इस प्रदेश में प्रभूत मात्रा में प्राप्त मुल्लै पू (चमेली का फूल) के आधार पर ही इस प्रदेश का तथा यहाँ के निवासियों की सभ्यता और संस्कृति का नामकरण हुआ है। मुल्लै प्रदेश से संबंधित अहम् काव्यों में सफल वैवाहिक जीवन का वर्णन प्राप्त होता है। कवियों ने पति-पत्नी की मनोदशा को व्यक्त करने के लिए मुल्लै प्रदेश की प्राकृतिक अवस्था का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। इस प्रदेश में पाई जाने वाली विभिन्न वस्तुएं, सफल दांपत्य जीवन प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध होती हैं।

मुसद्दस *(उर्दू० पारि०)*

'मुसद्दस' उर्दू कविता का वह भेद है जिसमें हर बंद छह मिसरों का होता है। पहले चार मिसरे हमक़ाफ़िया (तुकसाम्यमय) होते हैं और पाँचवें और छठे मिसरे में (पहले चारों मिसरों से अलग) अंत्यानुप्रास होता है। यह तीसरा शेर टीप का शेर कहलाता है। बंदों की कोई संख्या निश्चित नहीं है।

उर्दू के कवियों ने मुसद्दस विभिन्न छंदों में कहे हैं। मुसद्दस के लिए विषय का भी कोई बंधन नहीं है। किसी भी वर्णनात्मक विषय के लिए मुसद्दस बहुत उपयोगी होता है। उर्दू में सबसे बड़ा मुसद्दस मौलाना अलताफ़ हुसैन 'हाली' (दे०) पानीपती का 'मद्द-ओ-जज़्र-ए-इस्लाम' है जिसमें मुसलमानों के उत्थान-पतन का चित्र प्रस्तुत किया गया है। हिंदू जाति के संबंध में 'कैफ़ी' (दे०) देहलवी का मुसद्दस 'भारत-दर्पण' भी बहुत सुंदर है। 'अनीस' (दे०) और 'दबीर' (दे०) ने तवील मर्सिए (लंबे-लंबे शोक-गीत) मुसद्दस के रूप में ही लिखे हैं।

मुसद्दस-ए-हाली *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1879 ई०]

ख्वाजा अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' (दे०) पानीपती उर्दू के विख्यात कवि एवं प्रथम आलोचक थे। इन्होंने उर्दू काव्य तथा मुस्लिम समाज दोनों के सुधार के लिए प्रशंसनीय कार्य किया। हाली ने जहाँ काव्यालोचना-विषयक निबंध 'मुक़द्दमा-ए-शेर-ओ-शायरी' (दे०) की रचना की वहाँ मुस्लिम-समाज के उत्थान-पतन की छंदोबद्ध गाथा के रूप में एक कामयाब मुसद्दस 'मद्द-ओ-जज़्र-ए-इस्लाम' की भी रचना की। इसमें मुसलमानों के अतीत-गौरव तथा वर्तमान-पतन का चित्रण किया गया है। यही मुसद्दस अब 'मुसद्दस-ए-हाली' के नाम से विख्यात है। यह 'हाली' की अत्यंत प्रभावशाली, लोकप्रिय एवं अमर कृति है।

'हाली' की शायरी का सबसे महत्वपूर्ण पहलू राष्ट्रीय सुधारात्मक पक्ष है। 'हाली' पर प्रसिद्ध मुस्लिम सुधारक (सर) सैयद अहमद खाँ (दे०) का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। डॉ० हामिद हसन कादरी के मतानुसार 'मुसद्दस-ए-हाली' की अज़मत (श्रेष्ठता), क़बूलियत (लोकप्रियता और तासीर (प्रभावशालिता) को उन्नीसवीं शती की कोई दूसरी नज़्म नहीं पहुंचती।'

मुसलम्म मरणमु (तें० कृ०)

सर सी० पी० ब्राउन द्वारा सकलित 'अनतपुर का इतिहास' नामक पुस्तक की एक कथा का आधार लेकर डा० कट्टमचि रामलिगा रेड्डी (दे०) के इस खड काव्य की रचना की है। सामाजिक दुराचारो के कारण, समाज के कल्याण की भावना से आत्माहुति वाली एक ग्रामीण-युवती (जिसका नाम मुसलम्मा है) की विषादपूर्ण जीवन-कथा का वर्णन इस काव्य मे किया गया है। यह खड-काव्य करुण रस-प्रधान है।

प्राचीन काव्य के अनुकरण पर लिखे जाने पर भी, इस काव्य के वर्णन तथा विचार नवीन शैली के अनुरूप हैं।

तेलुगु के आधुनिक काव्यो मे इस रचना का विशिष्ट स्थान है।

'मुसहफी' (उर्दू० ले०) [जन्म—1750 ई०, मृत्यु—1824 ई०]

जन्मस्थान—अमरोहा (जिला मुरादाबाद), नाम—गुलाम हमदानी, उपनाम 'मुहसफी'। आरभ मे इनका निवास-स्थान दिल्ली रहा परतु बाद मे इन्हे लखनऊ के शहजादा सुलेमान शिकोह का आश्रय प्राप्त हो गया था। 'आतिश' (दे०) और नासिख' (दे०) जैसे समर्थ उर्दू कवि इनकी शिष्य-मडली मे थे। इनके 8 उर्दू दीवान काव्य सकलन) और बीस मसनवियाँ आज भी उपलब्ध हैं। ये उच्चकोटि के गद्य-लेखक भी थे। इनके काव्य मे भावात्मकता, रागात्मकता, भाव समृद्धि, सहिति, सगीत-गुण और प्रवाह आदि विशेषताएँ सर्वत्र देखन मे आती हैं। दार्शनिकता, नैतिकता और आध्यात्मिकता का अपूर्व सामजस्य इनकी गजलो की विशेषता है।

मुहम्मद अमीन 'कामिल' (कश्० ले०) [जन्म—1929 ई०]

जन्म कश्मीर स्थित 'कापरेन' नाम के गाँव मे। बाल्यकाल से ही इनमे साहित्यिक रुचि और प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। कश्मीर कल्चरल अकादेमी द्वारा प्रकाशित कश्मीरी भाषा के सूफी रहस्यवादी कवियो के कविता सग्रह 'सूफी शायिर' के तीनो खडो का सपादन किया है। 'मस मलर' (मदिरा घट) नाम की पुस्तक मे इनकी अपनी कविताओ का सग्रह प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त 'लवँ त प्रव' (ओस के कण और किरणें), 'नूर नामा' (नूरुद्दीन ऋषि की जीवनी) तथा 'गटि मज़ गाश' (अँधेरे मे उजाला) नाम की इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ भी प्रकाशित हुई हैं। चतुर्दशपदी की सौ कविता करके इन्होने भी कुछ नये प्रयोग किए हैं। कामिल साहब को उर्दू-फारसी का अच्छा ज्ञान है और इनकी शैली मे प्रौढता झलकती है। इनकी भाषा जहाँ कुछ-कुछ फारसी मिश्रित है वहाँ इनके पद्य और गद्य दोनो मे ही काफी प्रवाह है। इनकी रचनाओ मे जहाँ विचारगाभीर्य है वही आधुनिक स्वच्छदवाद की कुछ प्रवृत्तियाँ भी पाई जाती हैं। 'कथि मज़ कथ' नाम का इनका कहानी-सग्रह भी छपा है।

मुहम्मद, के० टी० (मल० ले०) [जन्म—1929 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध नाटककार और कहानीकार हैं। 1954 ई० मे टाइम्स आफ इडिया द्वारा सगठित कहानी-प्रतियोगिता मे इन्होने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया था। ये डाक-तार विभाग के कर्मचारी हैं।

'इतु भूमियाणु', 'करवट्ट पशु', आदि इनके नाटक साहित्यिक और रगमचीय दोनो दृष्टियो से सफल हुए हैं। इनके बारह नाटक, दो कहानी-सग्रह, तीन उपन्यास और एक एकाकी-सग्रह प्रकाशित हुए हैं।

मुहम्मद के नाटको मे मानव-मन की जटिल समस्याओ के हल ढूँढे गए हैं। धार्मिक अधविश्वासो के जजाल मे फँसे हुए केरलीय मुस्लिम समाज की समस्या को भी इन्होने प्रकाश दिया है। आधुनिक नाटककारो मे के० टी० मुहम्मद का स्थान समुन्नत है।

मुहम्मद तुग़लक (क० पा०)

यह गिरीश कर्नाड के नाटक 'मुहम्मद तुगलक' का प्रधान पात्र है। इसके व्यक्तित्व का विश्लेषण सर्वथा नये ढग से हुआ है। इतिहास मे तुगलक के पागलपन का उल्लेख मिलता है। लेखक ने यह दिखाया है कि यह पागलपन इसके राजनीतिक व्यक्तित्व के कारण था। यह अपनी आकाक्षाओ को पूरा करने के उद्देश्य से अपने पिता, भाई और सौतेली माँ को भी मरवा डालता है। बगावत करने वालो को यह कठोर से कठोर दड देता है। इसकी राजनीतिक प्रज्ञा इतनी खरी है कि उसको परास्त करने या मार डालने का षड्यत्र करने वाली समस्त शक्तियाँ असफल हो जाती हैं। वह शेख इमामुद्दीन और शिहाबुद्दीन को

बड़ी कुशलता और निर्दयता से मृत्यु का ग्रास बना देता है। अपने को न्यायी घोषित कर कूटनीति का पल्ला पकड़ता है। प्रजा की भलाई चाहता है, पर आज्ञा-पालन न करने वाले के प्रति अत्यंत क्रूर व्यवहार करता है। राजधानी दिल्ली से दौलताबाद ले जाने में जहाँ इसकी राजनीतिक सूझ-बूझ का परिचय मिलता है वहीं निर्दयता का भी प्रमाण मिलता है। ताँबे के सिक्के चलाकर वह जनता के कष्ट को बढ़ा देता है। दोआब के अकाल का कारण इसकी अदूरदर्शिता ही है। यह इस त्रुटि को मानता है। यह धैर्य और निष्ठा को उचित मूल्य देता है। यही कारण है कि यह वज़ीर मुहम्मद नजीब को अपना हितैषी मानता है, और उसकी हत्या का दोष स्वीकार करने वाली सौतेली माँ को दंड देने से नहीं चूकता। शिकनार के धोखेबाज़ धोबी अज़ीज़ को उसके अपराध जानते हुए भी उसके धैर्य को देखते हुए दक्षिण का सरदार बनाता है। अपने राजनीतिक 'पागलपन', हठवादिता और दृढ़ता के कारण वह धर्मगुरुओं की भी परवाह नहीं करता। दो राज्यों के बीच में इसका व्यक्तित्व कैसे उभर कर आया, यही नाटककार ने दिखाया है।

मुहम्मद बशीर, वैकम *(मल० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

ये मलयाळम के प्रतिभाशाली उपन्यासकार और कहानीकार हैं। राष्ट्रीय आंदोलन में ये पढ़ाई छोड़कर जेल गए थे। बाद में साम्यवादी आंदोलन में भी इन्होंने भाग लिया और अनेक यातनाएँ सहीं। अंत में सार्वजनिक जीवन से संन्यास ले लिया। केंद्रीय साहित्य अकादेमी के ये फ़ैलो हैं।

'बाल्यकाल सखी', (दे०) 'न्टुप्पुप्पाक्कोरानेंटान्नु', (दे०) 'अनर्घनिमिषम्', 'शब्दङ्ङळ्', आदि अनेक उपन्यास और कई कहानी-संग्रह प्रकाशित किए हैं। इनमें से प्रथम दो उपन्यास हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित हैं।

मलयाळम कथा-साहित्य में नवजागरण स्थापित करने वाले साहित्यकारों में बशीर प्रमुख हैं। इन्होंने अत्याचारों से पीड़ित मनुष्य का जीवन चित्रित किया है। अपना सारा विभव समाप्त होने पर भी कुल-महिमा के गर्व पर ज़िंदा रहने वालों पर इन्होंने खूब व्यंग्य किया है। इनकी कृतियों में यथार्थ का चित्रण है। यद्यपि ये किसी वाद में विश्वास नहीं करते। इनकी भाषा सरल और शैली विनोदात्मक है। इन्होंने अपनी कहानियों मे जिन हास्यरस के पात्रों की सृष्टि की है वे ऐतिहासिक हो गए हैं और वे पात्र पाठकों को हँसाने के अलावा उसकी चिंता को भी उद्दीप्त करते हैं।

आधुनिक कथा-साहित्य में मुहम्मद बशीर की देन अमूल्य है।

मुहम्मद शहीदुल्लाह *(बँ० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1966 ई०]

बँगला भाषा-तत्त्व एवं साहित्य-इतिहास के क्षेत्र में आचार्य मुहम्मद शहीदुल्लाह एक पुण्य नाम है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में बँगला विभाग में उन्होंने अध्यापन प्रारंभ किया था। तदनंतर तीस वर्ष तक ढाका विश्वविद्यालय के बँगला विभाग में अध्यापक एवं बाद में प्रधान अध्यापक के रूप में साहित्य-सेवा की। सर आशुतोष मुखोपाध्याय, दिनेशचंद्र सेन, बसंतरंजन राय आदि विद्वानों ने अंतरंग साहचर्य ने उनकी साहित्य सेवा-भावना को उद्दीप्त किया था राजशाही विश्वविद्यालय के बँगला विभाग के प्रारंभ से ही वे उसके अध्यक्ष थे। 1960 में उन्होंने बँगला अकादेमी के लिए आंचलिक बँगला-भाषा-कोश का संपादन-कार्य समाप्त किया। उनके द्वारा रचित नाना ग्रंथों एवं प्रबंधों में 'भाषा ओ साहित्य' (1931), 'बाँगला व्याकरण' (दे०) (1935), 'बाँगला साहित्येर कथा'—प्रथम एवं द्वितीय (1953, 1965), 'बाँगला भाषार इतिवृत्त' (1959), 'विद्यापति-शतक' (1954) आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उर्दू एवं फ़ारसी में भी उन्होंने ग्रंथों की रचना की है। तमिल, तेलुगु, उड़िया, असमी, आदि भाषाओं में भी उनकी असाधारण गति थी। डाक्टर शहीदुल्लाह बँगला साहित्य एवं संस्कृति की आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका में सुप्रतिष्ठित हैं।

मुहम्मद हसन *(उर्दू ले०)* [जन्म—1925 ई०]

डा० मुहम्मद हसन की प्रसिद्ध पुस्तकें हैं: 'अदबी तनकीद', 'पैसा और परछाईं' (नाटक) (दे०) 'ज़ुल्फ़े ज़ंजीर' (उपन्यास), 'हिंदी अदब की तारीख़', 'जलाल लखनवी', 'मुतालअ सौदा' (आलोचना), 'उर्दू शायरी का फ़िक्री पसे-मंजर', तथा 'उर्दू अदब में रूमानी तहरीक' (शोध-प्रबंध)।

डा० मुहम्मद हसन कथाकार, नाटककार और आलोचक के रूप में विख्यात हैं। उपन्यास एवं नाटकों के

प्रति इनका विशेष आकर्षण है परतु आलोचना की गहरी दृष्टि भी इन्हे प्राप्त है। 'अदबी तनकीद' इनका प्रथम समीक्षा-ग्रथ है। जिसमे साहित्य के विविध पक्षो पर विचार किया गया है। इस पुस्तक से इनकी समीक्षा-विषयक मान्यताएँ स्पष्ट होती हैं। 'कला कला के लिए' और 'कला जीवन के लिए'—ये दोनो दृष्टियाँ इनके समीप एक-दूसरे की सहायिका हैं, न कि परस्पर विरोधी। उनके विचार मे कविता केवल भाव-सौंदर्य से ही उत्कृष्ट नही बन सकती। विचारो की ठोस सच्चाई भी आवश्यक है। मुहम्मद हसन कट्टर *प्रगतिवादी नहीं पर सामाजिक चेतना की पृष्ठभूमि* मे आलोचना करने वाले आलोचक हैं।

मुहसिन-ए-कलाम-ए-ग़ालिब *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1935 ई०]

अजुमन तरक्की-ए-उर्दू औरगाबाद (दक्कन) द्वारा प्रकाशित यह कृति स्वर्गीय डा० अब्दुर्रहमान बिजनौरी (दे०) की रचना है।

योग्य लेखक ने इस पुस्तक मे महाकवि गालिब की काव्य शैली के गुणो का प्रतिपादन किया है। उन्होंने गालिब की तुलना सुप्रसिद्ध जर्मन कवि गोयटे से की है। लेखक के विचार से गालिब के काव्य मे केवल छदो का ठीक प्रयोग ही नही हुआ अपितु उनके काव्य मे अपूर्व सरलता सगीतात्मकता तथा मधुरता भी है। लेखक के विचार मे काव्य-सृजन का दूसरा नाम शब्दो मे चित्र *खीचना है और यह चित्रात्मकता गालिब के काव्य मे* प्रचुर मात्रा मे मिलती है और उसकी प्रभाव शक्ति अद्भुत है। इस प्रकार लेखक ने गालिब के उदाहरण प्रस्तुत कर उनके भागवत तथा शैलीगत गुणो का विश्लेषण करने का सफल प्रयास किया है। लेखक अपने उद्देश्य मे सफल रहा है क्योकि इस पुस्तक को पढकर ग़ालिब के काव्य-गुणो का पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। यद्यपि पुस्तक केवल 106 पृष्ठ की है किंतु इस छोटे कलेवर मे भी लेखक अपने उद्देश्य की पूर्ति भली भाँति करने मे पूर्णतः सफल हुआ है।

मुहावरा *(हिं० पारि०)*

किसी भाषा मे प्रयुक्त विशिष्ट प्रयोग जिनका *अभिधार्थ से भिन्न विशिष्ट अर्थ लिया जाता है 'मुहावरा'* कहलाता है। उदाहरण के लिए मारे शर्म के मैं पानी-पानी हो गया' वाक्य मे 'पानी-पानी होना' मुहावरा है जिसका अभिधार्थ नही लिया जा सकता। 'पानी-पानी होना' बहुत अधिक शर्मिंदा होना' अर्थ मे हिंदी मे रूढ हो गया है। हर भाषा के अपने मुहावरे होते हैं। समय के साथ साथ उनकी सख्या तथा प्रयोग मे परिवर्तन होता रहता है। हिंदी मे ही जो मुहावरे आदिकाल मे थे, वही भक्तिकालीन साहित्य मे नही थे, और रीतिकाल तथा आधुनिक काल मे भी उनमे परिवर्तन हुआ है। एक यह बात भी ध्यान देने की है कि हर भाषा मे बहुत सी अभिव्यक्तियाँ मूलत मुहावरेदार होती हैं किंतु धीरे धीरे हम *उनके प्रयोग के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि वे सामान्य* प्रयोग समझी जाने लगती हैं। उदाहरण के लिए, 'उसकी मधुर बातें सुनकर कौन नही झुक जाता'। इसमे 'मधुर बात' तथा 'झुक जाना' दोनो ही मूलत मुहावरे हैं, किंतु अब ये इतने प्रचलित हो गए हैं कि मुहावरे के रूप मे इनका नयापन समाप्त हो गया है, और अब वक्ता, श्रोता या पाठक का ध्यान इस बात की ओर कतई नही जाता कि ये मुहावरे हैं। मुहावरे लोकोक्ति से इस बात मे भिन्न होते हैं कि वे प्रयोग के स्तर पर अपने-आप मे स्वतत्र इकाई या उक्ति नही होते, बल्कि वाक्य मे घुलमिलकर आते हैं, जबकि इसके विपरीत लोकोक्तियाँ स्वतत्र इकाई के रूप मे लोक मे प्रचलित उक्ति होती हैं, और वाक्य मे भी उनकी स्वतत्र सत्ता बनी रहती है 'जोर से मत बोलो उसकी आँख लग गई हैं', 'अरे तुम्हारा कल का नौकर मेरे पुराने नौकर का क्या खाकर मुकाबिला करेगा, जानते नही नया नौ दिन पुराना सौ दिन'।

मून्ऱुरैयरैयनार *(त०ले०)* [समय — ईसा की पाँचवी शती]

'मून्ऱुरैयरैयनार' तमिल साहित्य-जगत मे 'पलमोलि' नानूरु' के रचयिता के रूप मे विख्यात हैं। इस कृति मे तमिल की 400 कहावतें सगृहीत हैं। लेखक ने विभिन्न कहानियो और प्राचीन ऐतिहासिक घटनाओ का आश्रय लेते हुए इन कहावतो के अर्थ समझाये हैं। 'मून्ऱुरैयरैयनार' को तमिल मे कहावतो के सकलन-कार्य का प्रवर्तक होने का श्रेय प्राप्त है।

मूमल *(सि० पा०)*

सिंधि-साहित्य मे मूमल-राणो की प्रेमगाथा प्रसिद्ध है। मूमल इसी प्रेमगाथा की नायिका है। मूमल ने अपनी बहिन सूमल के साथ काक नदी के किनारे पर

एक तिलिस्म बनवाया था जहाँ ये दोनों वहिनें रहती थीं। मूमल की सुंदरता की प्रशंसा सुनकर कई राजकुमार वहाँ आते थे और तिलिस्म में फँसकर अपने धन से हाथ धोकर टका-सा मुँह लेकर लौट जाते थे। सिंध के सूमरा वंश (1050-1350 ई०) के राजा हमीर का मंत्री राणा मेंधरो तिलिस्म की कठिनाइयों को पाकर मूमल तक पहुंचा और शर्त के अनुसार मूमल से विवाह करने में सफल हुआ। विवाह के कुछ समय पश्चात् राणो मेंधरो ने मूमल की पवित्रता में शक कर उसे त्याग दिया। मूमल ने कई प्रयत्न किए कि उनके पति का यह भ्रम दूर हो जाए पर वह इसमें सफल न हुई। आखिर उसने निराश होकर आग में कूद कर अपने प्राणों का अंत किया। यह देखकर राणो मेंधरो बहुत पछताने लगा और उसने भी आग में कूदकर जीवन की आहुति देकर अपने सच्चे प्रेम को सिद्ध किया। सिंधी-कवियों ने मूमल के सौंदर्य और विप्रलंभ शृंगार का वर्णन प्रभावपूर्ण ढंग से किया है। सिंधी-साहित्य में यत्र-तत्र मूमल के प्रसंग मिलते हैं।

मूर्कोत्तु कुमारन्, *(मल० ले०)* [जन्म—1874 ई०; मृत्यु—1941 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध गद्य-लेखक, पत्रकार और कवि थे। इन्होंने कीट्स की कृति 'इसाबेला' का 'आशाकुला' नाम से मलयाळम में पद्यानुवाद किया है। 'वसुमती' (उपन्यास), 'काकन' (वैज्ञानिक निबंध-संग्रह), 'गद्यमंजरी' (समालोचना) आदि गद्य-ग्रंथों के अलावा इन्होंने नाटक, जीवनियाँ और कहानियाँ भी लिखी हैं।

मलयाळम के ललित-निबंधकारों और जीवनी-लेखकों के लिए मूर्कोत्तु कुमारन् मार्गदर्शक हैं। वैज्ञानिक विषयों पर सरल भाषा में निबंध लिखने में ये सिद्धहस्त थे। इनके द्वारा रचित श्री नारायण गुरु की जीवनी एक प्रौढ़ और प्रामाणिक कृति है। गद्य-साहित्य के विकास में मूर्कोत्तु कुमारन् का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है।

मूर्ति, ए० एस० *(क० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

ये कर्नाटक के प्रसिद्ध कलाकार हैं। इनका जन्म बेंगलूर में हुआ था। ये अच्छे निबंधकार हैं जिनमें हास्य और व्यंग्य के लिए प्रमुख स्थान है। 'अध्यक्षते' इनके ऐसे ही निबंधों का संग्रह है। इन्होंने सामाजिक नाटकों की रचना भी की है। इस दृष्टि से इनके 'कुड़का' (शराबी), 'हुच्चा' (पागल) नाटकों के नाम उल्लेखनीय हैं।

मूर्तिराव, ए० एन० *(क० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

ये कन्नड के प्रख्यात निबंध-लेखक हैं। मैसूर विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी प्रोफ़ेसर के पद पर रहकर अब अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। मैसूर सरकार के साहित्य-संस्कृति-विकास विभाग के निदेशक के रूप में भी इन्होंने सेवा की है। 1954 से 1956 ई० तक बेंगलूर कन्नड-साहित्य-परिषद् के अध्यक्ष भी रहे हैं। इनके निबंध-संग्रहों में 'अलेयुव मन' (घूमता मन), 'हगलुगनसुगळु' (दिवा-स्वप्न)' के नाम उल्लेख योग्य हैं। 'योधन पुनरागमन' (योद्धा का पुनरागमन), और 'पाश्चात्य सण्ण कथगळु' अंग्रेज़ी से अनूदित इनकी कहानियों के संग्रह हैं।

मूलसूत्र *(प्रा० कृ०)*

महाराष्ट्री प्राकृत के चार ग्रंथ 'मूलसूत्र' कहे जाते हैं। इन्हें आगमों में स्थान प्राप्त है। पहला 36 अध्यायों 'उत्तरज्झयन' (उत्तराध्ययन सूत्र) आलंकारिकता और काव्यात्मकता की दृष्टि से जैन आगमों में अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है। इसमें बहुमूल्य कविताएँ, नीति-सूक्तियाँ, रूपक, संवाद, गीति, प्रगीत इत्यादि सभी कुछ हैं। मुख्य विषय जैन धर्म और तीर्थंकरों (दे०) का वर्णन है किंतु एक अध्याय कपिल के विषय में भी है। इसके अनेक वर्णन बौद्ध-साहित्य और 'महाभारत' के बहुत निकट पड़ते हैं। दूसरा मूलसूत्र 'आवस्सय' या 'आवस्सग' है जिसमें 6 अध्यायों में 6 आवश्यक (अनिवार्य) कर्तव्यों का उपदेश है और साथ में कथाएँ भी हैं। तीसरा मूलसूत्र 'दसवेयालीय' सज्जंभव (स्वायंभुव) रचित कहा जाता है। यह सूत्र स्वायंभुव ने अपने पुत्रशिष्य मानक की आसन्न मृत्यु मानकर उसे छुटकारा देने के मंतव्य से उपदिष्ट किया था। इसमें संन्यासियों के धर्म-कर्म और सूक्तियों के साथ अनेक कथाएँ जुड़ी हैं। चौथे मूलसूत्र के रूप में भद्र-बाहु लिखित 'पिंडनिज्जुत्त', और कभी भी 'ओहानिज्जुत्ति' माने जाते हैं। इनमें पवित्र जीवन-चर्या और संन्यासाश्रम के अनुशासनों का वर्णन है। कभी-कभी इन्हें 'छेदसूत्र' भी कहा जाता है। तब चौथे मूलसूत्र के रूप में पक्खी को स्वीकार किया जाता है जिसमें पाक्षिक प्रतिक्रमण और 5 महाव्रतों का वर्णन है।

मूवर-उला *(त० कृ०)* [समय —ई० बारहवी शती]

इस काव्य के रचयिता 'सर्वज्ञ कवि', 'कवि-राक्षस' आदि उपाधिकारी 'ओट्टक्कत्तूर' है। तीन पीढियो तक 'चोल'-सम्राटो की राज-सभाओ को सुशोभित करने का विशिष्ट सुयोग इन्हे मिला था और इनका सम्मान करने वाली अन्य कृतियो के अतिरिक्त इन्होने 'उला' नामक काव्य-विधा मे तीन रचनाएँ की थी जो सामूहिक रूप से 'मूवरा उला' कहलाती हैं। ये तीन 'चोल' सम्राट क्रमश 'विक्किरमन' (1118-1136 ई०) 'कुलोत्तुङ्ङ्न् द्वितीय' (1133-1150 ई०) तथा 'राजराजन् द्वितीय' (1146-1163 ई०) थे। प्रसिद्ध है कि 'राजराजन्' राज-सभा मे 'उला' काव्य की प्रत्येक द्विपदी सुनाने पर हजार हजार *स्वर्ण मुद्राएँ भेंट मे दिया करते थे।*

'उला' पद्य-विधा की रूढ पद्धति के अतर्गत काव्य नायक की रथ-गज तुरगादि-सपन्न शोभा-यात्रा तथा देखकर नारियो की मन स्थिति के वैचित्र्य का वर्णन ही मुख्य विषय होते हैं। आयु के क्रमानुसार अबोध बालिका (पेतै) से लेकर प्रौढ युवती (पॅरिळमपेण) तक नारी जाति के सात वर्ग किये जाते है और कामातुर अवस्था मे इनके विभिन्न हाव-भाव तथा कदुक-क्रीडा, नायक के रग के अनुकूल पोशाक परिवर्तन, मधु-पान, पुष्प-चयन इत्यादि कामप्रेरित क्रियाएँ वर्णित होती हैं। प्रस्तुत काव्य के उक्त वर्णनो मे सचारी एव अनुभावो का सुदर वर्णन है। इन वर्णनो के दौरान 'चोल'-सम्राटो से सबधित अनेक तथ्य ज्ञात होते हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। आलोच्य तीन 'उलाओ' मे प्रवाहपूर्ण शैलीयुक्त *'कलिवेण्पा'* छद के द्विपदी पद्य क्रमश 342, 381 एव 391 हैं और अत मे एक चतुष्पदी *'वेण्पा' तीनो कृतियो में है।*

मृगनयनी *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—*1950* ई०]

यह वृदावनलाल वर्मा (दे०) का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास माना जाता है जिसमे लेखक ने तोमर शासन-काल के स्वर्ण युग का अत्यत कलात्मक ढग से अकन किया है। उपन्यासकार ने अपनी कृति का ताना-बाना बुनते समय ऐतिहासिक तथ्यो के साथ-साथ अनेक किंवदतियो तथा जनश्रुतियो का भी प्रयोग किया है। मृगनयनी (दे०) तथा मानसिंह की प्रेम-कथा इस उपन्यास की मूल-*कथा है जिसके माध्यम से लेखक ने राजमहलो के अतरग* जीवन की रम्य झाँकी प्रस्तुत की है। प्रासगिक कथाओ के अतर्गत यो तो अनेक कथाएँ हैं किंतु अटल तथा लाखी की प्रेम-कथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस उपकथा के माध्यम से लेखक ने तद्युगीन भारतीय समाज के रीति-रिवाजो तथा सघर्षपूर्ण जीवन को वाणी प्रदान की है। यथास्थान उस युग का राजनीतिक जीवन भी पूरी तरह उभर आया है। उपन्यासकार ने उस युग की युद्ध-प्रणाली तथा मुसलमान शासको की रीति नीति, निरतर आक्रमण तथा लूट-मार के फलस्वरूप जन जीवन मे आई अस्थिरता का वर्णन करने के साथ-साथ जनता द्वारा मनाए जाने वाले उत्सव-त्यौहारो आदि का भी सशक्त अकन किया है। प्रतिकूल परिस्थितियो के रहते हुए भी जनता द्वारा मनाए जाने वाले उत्सवो आदि के चित्रण से *उपन्यासकार का उद्देश्य यह* बतलाना रहा है कि मानव-जीवन का सच्चा सुख शरीर, *मस्तिष्क तथा हृदय के उपयुक्त समन्वय मे ही निहित है।* सारे जीवन मे अनेक बार ऐसे क्षण आते हैं जब कर्त्तव्य तथा भावना के बीच सघर्ष छिड जाता है। ऐसी स्थिति मे दोनो का समन्वय ही श्रेयस्कर होता है। चरित्र-सृष्टि की दृष्टि से मृगनयनी इस उपन्यास की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा सकती है जो अपने अनुपम सौंदर्य तथा अद्भुत साहस के फलस्वरूप सामान्य गूजर-कन्या से रानी-पद को प्राप्त कर लेती है। उसके चरित्र मे कर्त्तव्य तथा प्रेम का सहज सगुफन है। उसके समान विवेक-बुद्धिपूर्ण तथा शक्तिसपन्न रानी को पाकर मानसिंह के नैसर्गिक गुण भी पूर्णत प्रोद्भासित हो उठते है और वह अपने दुर्जेय पराक्रम युद्ध-निपुणता, धर्म तथा देश के प्रति निष्ठा, सहृदयता तथा कलाप्रियता की अमिट छाप पाठक के मन पर छोड देता है। *अटल तथा लाखी का कर्त्तव्य-भावना से* पूरित एकनिष्ठ प्रेम भी पाठक के स्मृति-पटल से कभी *उतरता नही है। बुदेलखडी पुट लिये जिस सहज कला-*त्मक भाषा का प्रयोग इस उपन्यास मे किया गया है उससे न केवल कथोपकथन रोचक हो उठे हैं अपितु कथ्य की प्रेषणीयता मे भी अभिवृद्धि हुई है।

मृगनयनी *(हिं० पा०)*

यह वृदावनलाल वर्मा (दे०) के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'मृगनयनी' (दे०) की अमर पात्रा है। लेखक ने इसे अबला रूप मे चित्रित करने के स्थान पर सयत निर्मल प्रेम, देश, जाति तथा धर्म के कल्याण व उत्थान के लिए इच्छुक एव प्रयत्नशील, कला-मर्मज्ञ एव कर्त्तव्य-पालन पर बल देने वाली एक ऐसी नारी के रूप

में चित्रित किया है जो राई गांव की एक साधारण गूजर-कन्या के पद से उठ कर रानी-पद प्राप्त कर लेती है। इसमें सौंदर्य तथा साहस का अपूर्व समन्वय परिलक्षित होता है। आत्मविश्वास तथा आत्मगौरव के गुणों से परिपूर्ण इसका संपूर्ण जीवन कर्त्तव्य-भावना द्वारा संयत रहता है। उपन्यासकार ने मृगनयनी के इन सभी चारित्रिक गुणों का विकास इतनी सतर्कता के साथ किया है कि वे पाठक को एक क्षण के लिए भी असंगत एवं अस्वाभाविक प्रतीत नहीं होते।

मृगावती *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1603 ई०]

सूफ़ी 'प्रेमाख्यानक काव्यों' (दे०) में कुतबन (दे०)-प्रणीत 'मृगावती' का स्थान प्रथम है। इसमें चंद्रगिरि के राजा गणपति देव का पुत्र मृगावती पर मुग्ध हो जाता है। उसे पाने के लिए अनेक कष्ट भोगता है और अंत में बहुत-सी विघ्न-बाधाओं को पार करता हुआ राजकुमारी को प्राप्त कर लेता है। मृगावती उड़ने की विद्या में निपुण होने के कारण राजकुमार को छोड़कर समुद्र से घिरी पहाड़ी में पहुँच जाती है। राजकुमार उसे खोजते हुए रुक्मिनी नामक अन्य राजकुमारी से विवाह करता है। उधर पिता की मृत्यु के अनंतर मृगावती अपने देश का शासन करती है। राजकुमार के आदेश पर दोनों पत्नियाँ उसके देश चली आती हैं। हाथी से गिरकर राजकुमार की मृत्यु हो जाती है और दोनों रानियाँ उसके साथ सती हो जाती हैं।

राजकुमार का ऐकांतिक प्रेम और नायिका की प्राप्ति के लिए कठिन साधना एवं राजकुमारी का धोखा देकर उड़ जाना तथा दूर देश में राज्य करना ऐसी कथानक-रूढ़ियाँ हैं जो कम-से-कम इस देश के लिए तो अपरिचित ही हैं। इन्हें छोड़ कर 'मृगावती' की कथावस्तु पूर्णरूप से भारतीय है। 'मृगावती में उत्कट प्रेम और वियोग-चित्रण हुआ है। कवि ने बीच-बीच में राजकुमार और राजकुमारी के माध्यम से परोक्ष सत्ता की ओर संकेत किया है।

सूफ़ी मार्ग की सातों मंजिलों का इसमें उल्लेख हुआ है। इसकी भाषा अवधी है, छंदों के प्रयोग में वैविध्य पाया जाता है एवं अलंकार तथा उपमान-योजना भारतीय साहित्य एवं वातावरण से प्रभावित है।

मृच्छकटिक *(सं० कृ०)* [समय—अनुमानतः पाँचवीं शती ई०]

'मृच्छकटिक' संस्कृत का एकमात्र सामाजिक नाटक है। इसके कर्त्ता शूद्रक का अस्तित्व तथा समय विवादास्पद है। कुछ लोग इसे काल्पनिक नाम मानते हैं। दस अंक के इस प्रकरण की रचना महाकवि भास (दे०) के नाटक 'दरिद्र चारुदत्त' के आधार पर हुई थी। इसमें चारुदत्त तथा वसंतसेना (दे०) की प्रणय-कथा कही गई है।

'मृच्छकटिक' तत्कालीन समाज का पूरा प्रतिनिधित्व करता है। इसमें उस समय के भारतीय समाज का समग्र चित्र उपस्थित हुआ है। राजा, ब्राह्मण, चोर, जुआरी, गणिका, पुलिस एवं न्याय-कर्मचारी सभी प्रकार के चरित्रों के कार्यकलाप के माध्यम से शूद्रक ने हमारे सामने समाज का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है। इसका नायक चारुदत्त (दे०) सद्गृहस्थ एवं प्रतिष्ठित ब्राह्मण होते हुए भी वसंतसेना नाम की गणिका के गुणों पर रीझ कर उसके प्रेम-पाश में बँध जाता है। चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को मिट्टी की गाड़ी से खेलता देखकर वसंतसेना उसे सोने की गाड़ी बनाने के लिए अपना आभूषण दे देती है। यह घटना नाटक के कथाचक्र को अंत तक प्रभावित करती रहती है। इसी के आधार पर इस नाटक का नामकरण हुआ। वास्तव में 'मृच्छकटिक' (मिट्टी की गाड़ी) के नाम के माध्यम से नाटककार ने मानस-जीवन के रहस्य की ओर संकेत किया है।

'मृच्छकटिक' में प्रणय-कथा राजनीतिक घटनाओं में गुंफित होकर सामाजिक पृष्ठभूमि पर प्रदर्शित हुई है। इसमें शूद्रक ने समाज के हर पहलू पर अपनी नज़र डाली है। इसके सभी पात्र अपने-अपने वर्ग के प्रतिनिधि हैं। वास्तव में यह चरित्र-प्रधान रूपक है। साहित्यिक दृष्टि से भी इसका कम महत्व नहीं है। इसकी भाषा तथा शैली में सरलता एवं स्वाभाविकता है। यह संस्कृत की एक उत्कृष्ट नाट्य-कृति है।

मृणाल *(हिं० पा०)*

यह जैनेंद्रकुमार (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' (दे०) की प्रमुख पात्रा है। दया, स्नेह, त्याग, धैर्य आदि स्त्रियोचित गुणों से संपन्न होने पर भी यह भाग्यहीना युवती समाज की क्रूरताओं की शिकार होकर

आजीवन आत्मपीडन सहती हुई अपने जीवन की बलि दे देती है। मनोविज्ञान की सहायता से मृणाल की विवश इच्छाओं तथा दमित स्वप्नों को उभार कर लेखक ने स्वस्थ चरित्र-निर्माण में बाधक सामाजिक परिस्थितियों पर अत्यंत तीखा प्रहार किया है। समग्रत मृणाल हिंदी साहित्य की स्मरणीय सृष्टि है।

मृत्तिका दर्शन *(उ० कृ०)*

संतान-वियोग पर रचित 'मृत्तिका दर्शन' श्री बैकुंठनाथ पटनायक (दे०) की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसमें पितृ हृदय की हृदय-विदारक व्यथा का चित्रण है। इसमें चित्रित गहन वैयक्तिक दुःख ने सार्वजनिक रूप ले लिया है तथा उसमें एक गंभीर दार्शनिक दृष्टि-भंगी मिलती है। *कवि का रहस्यवादी दृष्टिकोण मृत्यु-दर्शन के विवेचन में* मुखर हो उठा है। सबुज-साहित्य (दे०) में इसका विशेष स्थान है।

मृत्युंजय कवि, कोत्तलका *(ते० ले०)*

विश्वनाथ के पुत्र मृत्युंजय कवि 1800 ई० के आसपास जीवित थे। ये गोदावरी जिले के, कौशिकी नदी के तीरस्थ, कोमरगिरि के निवासी थे। इन्होंने 'धरात्मजा परिणयमु' नामक द्वयर्थि काव्य की रचना की है। 4 आश्वासों के इस काव्य में सीता और पार्वती के विवाह वर्णित हैं। इनका 'निरोष्ठ्य नलचरित्रम्' 5 आश्वासों का चित्रकाव्य है और अंतर्वेदी नामक पुण्यक्षेत्र में स्थित नरसिंह स्वामी को समर्पित किया गया है। इसके अतिरिक्त 'बृहन्नारदीयमु' 6 आश्वासों का इनका पुराण काव्य है। चित्रकाव्य में भी सरसता का सन्निवेश करने के कारण ये अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

मृत्युंजय विद्यालंकार *(बं० ले०)* [जन्म—1762 ई०, मृत्यु—1819 ई०]

मृत्युंजय विद्यालंकार फोर्ट विलियम कालेज की *बंगला-लेखक-गोष्ठी* में मूर्धन्य थे। विभिन्न विषयों में ग्रंथों की रचना कर जहाँ इन्होंने अपनी अनेकमुखी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया है वहीं यह भी स्पष्ट कर दिया है कि कालेज के अंग्रेज-अधिकारियों को खुश रखने के लिए फरमाइशी लेखक बनना मात्र उनका उद्देश्य नहीं था।

उन्होंने 1802 ई० में 'बत्तिश सिंहासन' की रचना की। उसके बाद उनके तीन ग्रंथ 'हितोपदेश' (1808 ई०), 'राजवलि' (1808 ई०) तथा 'प्रबोध-चंद्रिका' (1813 ई०) में प्रकाशित हुए। राजा राममोहन राय के 'वेदांत-ग्रंथ' के प्रतिवाद-स्वरूप इन्होंने 1817 ई० में 'वेदांत तत्त्वचंद्रिका' ग्रंथ की भी रचना की।

बंगला गद्य के आदियुग में मृत्युंजय विद्यालंकार ने भाषा की विशुद्ध रीति-प्रकृति का स्वरूप निर्धारित किया और बंगला गद्य को विभिन्न विषयों के अनुकूल ढाला। अंग्रेज पादरी उनके संस्कृत ज्ञान, तथा बंगला रचना-रीति से मुग्ध थे। *यद्यपि गद्य-रचना के क्षेत्र में संस्कृत के अनुसरण* के मोह में कहीं-कहीं बंगला गद्य की स्वाभाविक गति में बाधा पड़ी है। फिर भी बंगला गद्य के इतिहास में भाषा को *उद्देश्यानुकूल तथा विषयोचित स्वरूप* देने *वालों में* उनका स्थान प्रथम है।

मेघदूत *(सं० कृ०)* [*समय—प्रथम शती ई० पू०*]

'मेघदूत' संस्कृत-साहित्य का एक अनमोल रत्न है। इसके द्वारा संस्कृत में गीति काव्य का आविर्भाव होता है। कालिदास (दे०) की यौवनकालीन रचना होने के कारण इसमें इनकी कला अत्यंत उत्कृष्ट रूप में अभिव्यक्त हुई है।

देवताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर के शापवश अपनी *प्रियतमा से बिछुड़ा हुआ यक्ष* (दे०) *आषाढ़ मास में बादलों* को देखकर विरह से तड़प उठता है और वह मेघ को दूत मानकर अपनी अलका स्थित प्रेयसी के पास संदेश भेजना चाहता है। रामगिरि पर्वत पर शापवश निवास करने वाले यक्ष का मेघ के प्रति संदेश निवेदन बड़ा ही मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी है। इसी प्रसंग में यक्ष मेघ को रामगिरि से अलका तक का मार्ग बतलाता है और मार्ग में आने वाले पर्वतों, नदियों तथा अन्य प्राकृतिक दृश्यों का बड़ा हृदय-ग्राही वर्णन करता चलता है।

'रामायण' (दे०) के कथानक को बीज रूप में लेकर कालिदास ने उसका नितांत मौलिक ढंग से विकास किया तथा *संस्कृत-साहित्य में इस काव्य-परंपरा को जन्म* दिया। 'मेघदूत' में यक्ष के आदर्श प्रेम की अभिव्यंजना हुई है। यक्ष काम पीड़ित नहीं है, वह तो निर्व्याज आदर्श प्रेमी है। वह अपनी प्रियतमा की कुशल चाहता है। बहुत संभव है कालिदास ने 'मेघदूत' में विरही यक्ष की कल्पना

करके अपने जीवन की किसी घटना की ओर संकेत किया हो। इसकी भाषा-शैली एवं छंद विषयानुरूप हैं। 'मंदाक्रांता' में रचित इस काव्य में विप्रलंभ शृंगार के कोमल भाव स्वत: स्फुटित हो उठते हैं।

संस्कृत-गीतिकाव्यों में 'मेघदूत' का शीर्षस्थ स्थान है। इसकी लोकप्रियता का प्रमाण इस पर लिखी लगभग 50 टीकाओं में तो है ही, साथ ही तिब्बती तथा सिंहली भाषाओं में इसके अनुवाद इसे और भी पुष्ट कर देते हैं। 'मेघदूत' को आदर्श मान कर संस्कृत में उपनिबद्ध एक विपुल काव्यमाला है, जो 'संदेश-काव्य' के नाम से प्रख्यात है।

मेघनाद (इंद्रजित्) *(सं० पा०)*

मेघनाद लंकापति रावण (दे०) का ज्येष्ठ पुत्र था। इसकी माता का नाम मंदोदरी था। इसका दूसरा नाम इंद्रजित था, क्योंकि इसने इंद्र को जीता था। यह महान् भयंकर था। सीता (दे०) की खोज में आये हनुमान (दे०) पर इसने ब्रह्मास्त्र चलाया था, पर उस पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा था। राम के साथ युद्ध करने सर्वप्रथम मेघनाद ही आया था। लक्ष्मण (दे०) के साथ छह बार युद्ध हुआ था तथा अंतिम युद्ध में लक्ष्मण द्वारा ऐंद्रास्त्र के प्रयोग से इसकी मृत्यु हो गयी।

मेघनाद-बध *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1904 ई०]

लेखक—चंद्रधर बरुवा।

मेघनाद-बध नाटक का पौराणिक आख्यान अतुकांत छंद में प्रस्तुत किया गया है। मधुसूदन दत्त (दे०) का प्रभाव ग्रहण करने से घटना-विकास एवं चरित्र-चित्रण में मौलिकता नहीं है। रावण और मेघनाद के चरित्र को विशेष महत्ता दी गयी है। लक्ष्मण का चरित्र उपेक्षित हुआ है। राम को एक उदारमना नायक दिखाया गया है। मेघनाद की पत्नी प्रमिला के चरित्र को इतना गौरव दिया गया है कि वह मधुसूदन दत्त की सीता से भी अधिक महत्ता प्राप्त कर लेती है।

मेघनाद-बध *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1861 ई०]

नवयुग की बँगला कविता के प्रतिष्ठाता माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) ने पाश्चात्य और प्रतीच्य काव्यधारा का समन्वय कर मनुष्यत्व को प्रधानता देते हुए 'मेघनाद-बध' काव्य में रावण एवं उसके पुत्र मेघनाद को लेकर एक अपूर्व काव्य की सृष्टि की। 'मेघनाद-बध' में यूनानी महाकाव्य का प्रभाव यथेष्ट है और वाल्मीकि की कहानी का भी यथारूप अनुसरण नहीं किया गया है फिर भी काव्य की भारतीयता अक्षुण्ण है। 'मेघनाद-बध' की पटभूमिका में आहत, क्लांत, पराजित रावण के महिमामय चरित्र का चित्रण किया गया है एवं इसी के माध्यम से करुण रस से ओतप्रोत सार्वजनीन जीवन-बोध की अभिव्यक्ति हुई है। इस काव्य मे रावण नायक है परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि राम को छोटा दिखाकर रावण को बड़ा बनाया गया है। माइकेल के शब्दों में राम तो मनुष्य हैं ही, रावण भी एक अपूर्व मनुष्य है—वह एक उदात्त चरित्र है। वह केवल उदात्त ही नहीं, 'ट्रेजिक' भी है। राम और रावण का युद्ध कवि की दृष्टि से केवल पाप और पुण्य का युद्ध नहीं। रावण भी एक गौरवमय आदर्श का प्रतीक है। कवि के विप्लवी चित्त के यंत्रणादाह का प्रतीक हैं रावण एवं अग्निदाध-विशुद्ध स्वर्ण की उज्ज्वलता हैं सीता और प्रमिला। 'मेघनाद-बध' उन्नीसवीं शती के नवजाग्रत बंगाल की विद्रोहाग्नि से तप्त उस युग की जीवन-वेदना का महाकाव्य है।

'मेघनाद-बध' में दैहिक वीर्य-उत्साह के स्थान पर मानसिक शौर्य-दृढ़ता एवं पौरुष के काठिन्य के स्थान पर नारी के कोमल स्पर्श की आतुरता अधिक लक्षित होती है—कदाचित् इसीलिए बहुत-से विद्वान् इसे महाकाव्य कहने में संकोच करते हैं। परंतु युग-मानस के प्रतिनिधि काव्य के रूप में इसे निश्चय ही महाकाव्य कहना पड़ेगा। उदात्त भाषण एवं मानवीय रस-वैचित्र्य की दृष्टि से भी इसका रूप महाकाव्यमय है। युग-मानस की विशेष अभिलाषा को, युग-चेतना के काम्यतम स्पंदन को स्फुरित कर लेखक ने इसे महाकाव्य का गौरव प्रदान किया है।

मेघाणी, झवेरचंद *(गु० ले०)* [जन्म—1897 ई०; मृत्यु—1847 ई०]

सौराष्ट्र के लोक-साहित्य के शोधकर्ता, संग्रहकर्ता एवं संरक्षक कवि झवेरचंद मेघाणी का जन्म सौराष्ट्र के एक जैन परिवार में हुआ था। बचपन से ही इन्हें काठियावाड़ की उन छोटी-छोटी रियासतों में आने-जाने का मौक़ा मिला था जहाँ दैनंदिन चारण-कवियों का जमघट लगा रहता था। वहाँ उनसे ये चारण-साहित्य सुनते।

मेघाणी के बाल-मानस पर इसके संस्कार पडते गये । वे भी उसे गाने लगे । कठ मे माधुर्य और प्रस्तुतीकरण मे नवीनता होने के कारण मेघाणी ने एक श्रोता-वर्ग एकत्रित कर लिया और उससे प्रशसा एव प्रीति प्राप्त करने लगे । इसकी ऐसी धुन लगी कि उन्होने अपना सारा समय, शक्ति और सामर्थ्य लोक-गीतो, लोक कथाओ लोक-सगीत और लोक-जीवन-विषयक अन्य साहित्य के शोध और सग्रह मे लगा दिया । अथक परिश्रम के बाद गुजरात को उनके द्वारा सगृहीत विपुल लोक-साहित्य प्राप्त हुआ । 'सौराष्ट्रनी रसधार' भा० 1-5, 'सोरठी बहारवटिया' भाग 1-3, 'रढियाली रात' भा० 1-4 'चूदडी' भाग 1 2 'कँकावटी' भा० 1-2, 'ऋतुगीती 'सोरठी गीत कथाओ', 'सोरठी सतो', 'सोरठी सतवाणी', 'पुरातन ज्योत' वगैरा इनके कई लोक-साहित्य-सग्रह हैं । गुजराती मे इस क्षेत्र मे मेघाणी का स्थान अनन्य है ।

मेघाणी कथाकार भी हैं । 'वेवीशाल', 'तुलसी क्यारो', 'वसुधराना वहाला दवला', 'सोरठ तारा वहेता पाणी' (दे०) आदि इनके उपन्यास और 'प्रतिभाओ' 'चिताना अगारा', 'जेल ओफिसनी बारी प्रभृति इनके कहानी सग्रह हैं । इस कथा-साहित्य मे जीवन का यथार्थ अपनी सुदरताओ और कुरूपताओ के साथ उभरा है । मेघाणी गाधी-भक्त थे राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावनाओ से ओतप्रोत थे । राष्ट्र-भावना से प्रेरित होकर इन्होने जो कविताएँ रची वे 'युगवदना' और वेणीना फूल मे सगृहीत हैं । राष्ट्रीय कवि के रूप मे उनका योगदान स्तुत्य रहा है ।

मेदिनी वेण्णिलावु *(मल० पा०)*

यह 'चद्रोत्सवम्' (दे०) नामक मणिप्रवाल (दे०) शैली काव्य की प्रधान नायिका है । यह एक परम सुदरी, धनवती वेश्या है । चद्रोत्सव के लिए इधर इसने दीपादान मे सुगधित द्रव्यो को प्रज्वलित किया उधर इसकी सुगधि पृथ्वी से स्वर्ग तक फैल गयी । मरकत पर्वत के शृग पर विहार-रत गधर्व की पत्नी उस सुगधि से आकृष्ट हुई । पत्नी के आग्रह पर गधर्व सुगधि-स्रोत का अन्वेषण करता हुआ कथा की नायिका वेश्या के परिवेश मे पहुँचा और उसके प्रति मोहित होकर उत्सव-पूर्ति तक उसी के यहाँ रहने लगा । वेश्या की क्रीडा, विलास लीला, शतरज मे उसके कौशल आदि का सुदर वर्णन इसमे पाया जाता है ।

मेनन, ओटुविल् कुञ्ञिकृष्ण *(मल० ले०)* [जन्म—1880 ई०, मृत्यु—1916 ई०]

जन्मस्थान—वटक्कचेरी गाँव । पारिवारिक-आर्थिक सघर्ष का सामना करते हुए इन्होने बी० ए० की उपाधि पाई और सरकारी सेवा की । कवि-प्रतिभा इनमे शिक्षा के दिनो से ही मौजूद थी । शिक्षा के दिनो मे 'रामराज' पत्रिका के सपादकत्व के फलस्वरूप इनकी साहित्यिक प्रवृत्ति पनपी बढी । मगर सस्कृतज्ञ होते हुए भी श्री मेनन ने शास्त्र-ज्ञान के लिए प्रयत्न नही किया । ये सस्कृत एव द्रविड—दोनो प्रकार के छदो मे समान अधिकार से कविता रच सकते थे । इन्होने समसामयिक सामान्य घटनाओ को ही काव्यवस्तु के रूप मे चुना है ।

श्री कुञ्ञिकृष्ण मेनन ने कथा-साहित्य के क्षेत्र मे भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है । उळ्ळूर के शब्दो मे मेनन ने सामाजिक तथा साप्रदायिक आधार पर ही कहानियाँ लिखी हैं । इन कहानियो मे मनोरजन का ध्येय भी गौण नही रहा । व्यग्य-विधान मे इसकी कुशलता तरह-तरह से प्रकट हुई है । सक्षेप मे, ओटुविल् का साहित्य सृजन वेण्मणि युग का भरपूर प्रतिनिधित्व करता है । वेण्मणि युग (दे०) युग के कविगण प्रकृति से शृगारी, सरस, विनोदप्रिय थे । इनकी कविता पाडित्य के बोझ से दब नही गई है । श्री मेनन के साहित्यिक व्यक्तित्व पर अँग्रेजी की शिक्षा का विशेष प्रभाव था ।

मेनन, ओय्यारत्तु, चतु *(मल० ले०)* [समय—1847-1900 ई०]

जन्मस्थान—तलशेरी । अपने दिनो मे मध्य-वर्गीय बुद्धिजीवियो के समान ये भी सरकारी सेवा मे भरती होकर सब-जज बन गये । सगीत, चित्रकला आदि के प्रति इनमे सहज प्रेम था। परतु इनकी प्रतिष्ठा मलयाळम उपन्यास साहित्य के प्रवर्तक के रूप मे है । अँग्रेजी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन कर इन्होंने मलयाळम मे सामाजिक उपन्यास लिखने का सफल प्रयत्न किया । 'इदुलेखा' (दे०) इनका प्रथम उपन्यास है । अपने 'शारदा (दे०) उपन्यास का प्रथम भाग भी इन्होंने लिख लिया था । प्रारंभिक उपन्यासो की हैसियत से दोनो सफल रचनाएँ हैं । चतु मेनन ने इन रचनाओ के माध्यम से अपनी समकालीन न रूढिवादी समाज व्यवस्था की कठोर आलोचना की है ।

मेनन, कुंदूर, नारायण *(मल० ले०)* [जन्म—1862 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

केरल के त्रिचूर जिले में जन्मे कुंदूर ने तीसेक कृतियों की रचना करके 'कवि तिलक' की उपाधि अर्जित की। शुद्ध मलयाळम में कविता रचने वालों में इनका स्थान प्रथम माना जाता है। 'नाल्लु भाषा काव्यङ्ङळ्', (दे०) 'अकबर' 'चातन्', 'नाराणत्तु', 'भ्रान्तन्', 'पट्टुतल नायर', कालिदास (दे०) की कई रचनाओं के रूपांतर तथा 'गीतांजलि' आदि बीस पुस्तकों के ये रचयिता हैं। केरलीय संस्कृति, वहाँ की मिट्टी की गंध तथा चेतना का गहरा अनुभव इनकी रचनाओं में पाया जाता है।

मेनन, के० पी०, केशव *(मल० ले०)* [जन्म—1886 ई०]

के० पी० केशव मेनन स्वतंत्रता-संग्राम के मुख्य सेनानियों में से हैं। वे श्रीलंका के भारतीय उच्चायुक्त रहे हैं और प्रमुख पत्र 'मातृभूमि' के संस्थापक और मुख्य संपादक हैं। उनकी आत्मकथा 'कपिञ्ञ कालम्' (दे०) साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत है। महात्मा गांधी, ईसा मसीह आदि अनेक महापुरुषों की जीवनियाँ उन्होंने लिखी हैं। दो कहानी-संग्रह, एक रंगमंचीय नाटक 'महात्मा' और अनेक निबंध-संग्रह भी उन्होंने प्रकाशित किए हैं।

केशव मेनन ने अपनी कृतियों में गांधीवादी नैतिकता के आदर्शों का समर्थन किया है। उनकी भाषा सरल और प्रभावशाली है। मलयाळम के आत्मकथा-साहित्य में 'कपिञ्ञ कालम्' का स्थान सर्वोपरि है।

वयोवृद्ध और प्रज्ञाचक्षु होने पर भी वे अपनी अनवरत साहित्य-साधना से नवयुवकों में नवचैतन्य और आत्मविश्वास की धारा प्रवाहित कर रहे हैं।

मेनन, डा० चेलनाट अच्युत *(मल० ले०)* [जन्म—1896 ई०; मृत्यु—1952 ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध समालोचक, भाषा-वैज्ञानिक और शोधकार हैं। इन्होंने तुंचत्तु एऴुत्तच्छन् (दे०) पर शोध करके पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की और मद्रास विश्वविद्यालय में मलयाळम के आचार्य रहे। 'प्रदक्षिणम्' (साहित्य का इतिहास), 'तच्चोळि चंतु' (नाटक) आदि ग्रंथों की रचना के अलावा इन्होंने अनेक प्राचीन लोकगीतों का संपादन भी किया है।

डा० चेलनाट अच्युत मेनन का सबसे महत्वपूर्ण योगदान अनेक दुर्लभ लोक-गीतों का अन्वेषण और प्रकाशन है। ये स्वयं उच्च कोटि के शोधकर्ता थे और अनेक विद्वानों के लिए शोधकार्य के मार्गदर्शक भी रहे। आचार्य के रूप में भी ये बहुत प्रसिद्ध रहे हैं।

मेनन, नालप्पाट्टु, नारायण *(मल० ले०)* [समय—1888 ई०-1955 ई०]

आधुनिक कवियों में केरल के उत्तर भाग में जन्मे इस कवि का विशिष्ट स्थान है। इन पर आशान की काव्य-शैली का प्रभाव था और ये महाकवि वळ्ळत्तोळ् के सहचारी थे। इनकी 'कण्णुनीरत्तुळ्ळि' (दे०) आँसू की बूँद) विलाप-काव्य के क्षेत्र में अन्यतम कृति मानी जाती है। 'चक्रवाळम्' में आधुनिक शास्त्र की प्रवृत्तियों की झाँकी मिलती है। बुद्धचरित के आधार पर लिखित इनके 'पुळकांकुर' का भी ऊँचा स्थान है।

मेनन, पंचु *(मल० पा०)*

पी० के० राजराज वर्मा की अनेक हास्य-कृतियों, मुख्यतः 'पंचुमेनवनुम् कुंचियम्मयुम्' के आठ भागों का मुख्य पुरुष-पात्र। पंचु मेनन प्रायः विचित्र परिस्थितियों में अपने को हास्यास्पद संदर्भ में पाता है और पाठक के लिए विनोद की सामग्री प्रस्तुत करता है।

पंचु मेनन मध्यवर्ग के साधारण गृहस्थ का प्रतिनिधि है। नित्य जीवन में अनुभूत सभी समस्याओं का समाधान उसे निकालना है और उन्हें ढूँढ निकालने के प्रक्रम में वह हास्य का पात्र बन जाता है। अपनी पत्नी कुंचियम्मा (दे०) से भी उसे बहुत सावधान रहना पड़ता है।

शुद्ध हास्य के माध्यम से सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालने वाले पात्रों में पंचु मेनन प्रमुख है।

मेनन, पुत्तेपत्तु, रामन् *(मल० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1974 ई०]

इनका जन्म मणलूर गाँव में हुआ था। श्री मेनन की शिक्षा-दीक्षा एरणाकुलम् तथा मद्रास में हुई थी। कुछ वर्ष तक वकालत करने के बाद कोचिन राज्य के विधि-विभाग की सेवा में नियुक्त हुए थे। सेवा के अंतिम दिनों

मे ये कोचिन राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर पहुँच गये थे। बाद मे ये राज्य की धारा-सभा के सदस्य भी मनोनीत हुए थे।

वकालती या सरकारी सेवा के क्षेत्र से बढकर साहित्य-क्षेत्र ही श्री मेनन के यश का क्षेत्र कहा जा सकता है। मलयाळम-गद्य पर इनका जबरदस्त अधिकार है। विद्वत्ता के साथ-साथ हास्य चेतना श्री पुत्तेपत्तु की विशेषता है। साहित्य-साधना को इन्होने व्यवसाय न मानकर शगल ही माना है। इसी के फलस्वरूप इन्होने विविध-विषयक चालीस ग्रथ मलयाळम मे लिखे हैं। 'शक्तन तपुरान' इनकी जीवनी है जो उपन्यास का-सा आनद देती है। श्री रवीद्रनाथ (दे०) टैगोर की कहानियो का सर्वप्रथम मलयाळम अनुवाद प्रस्तुत करने का गौरव श्री पुत्तेपत्तु को ही प्राप्त है। 'चवट्टुकोट्टा (रद्दी को टोकरी) आदि सात ग्रथ इन के हास्यमय कृतित्व के उदाहरण हैं। इनके कुछ अन्य ग्रथ हैं—(1) 'गीताप्रातड्डकिल', (2) एट शबरिमलयात्रा', (3) 'पुस्तकपरिचयम्' आदि। श्री मेनन की ग्रथ-समीक्षा गहरे अध्ययन का परिचय देती है। साथ ही नवप्रतिभा को बधाई एव प्रोत्साहन देने की इनकी उदारता भी इसमे झलकती है। इन्होंने धार्मिक एव भक्ति सबधी ग्रथ भी लिखे हैं। इनके प्रोत्साहन से 'रामचरितमानस' (दे०) का सुदर मलयाळम अनुवाद भी प्रकाशित हो सका है। यह विशेष उल्लेखनीय है। तत्सम-शब्दो तथा प्रौढ वाक्यो की शैली इनकी रचनाओ मे दर्शनीय है।

मेनन, वैलोप्पिळ्ळी, श्रीधर *(मल० ले०)* [जन्म—1911 ई०]

श्रीधर मेनन मलयाळम के उल्लेखनीय कवियो मे हैं। जीवविज्ञान मे स्नातक की उपाधि प्राप्त करके इन्होने अध्यापक के रूप मे जीवन का आरभ किया। 1966 ई० तक सरकारी विद्यालयो मे नौकरी करने के बाद ये सेवा-निवृत्त हुए और अब अपनी काव्य-साधना मे निरत रहकर शात जीवन व्यतीत कर रहे हैं। 'कुटियोपिक्कल' (दे०) इनका खडकाव्य है। 'कन्निक्कोयत्तु' (दे०) 'श्रीरेखा', 'ओणप्पाट्टुकार', 'विटा' आदि कविता-सग्रह हैं। 'विटा' पर इन्हें साहित्य अकादेमी का पुरस्कार (1971) प्राप्त हुआ है।

मानसिक भावो को सवेदनात्मक शैली मे व्यक्त करने मे वैलोप्पिळ्ळी का कौशल अद्वितीय है। इनकी कविता 'माम्पपम्' मे एक ऐसी माँ के तप्त हृदय का चित्रण मिलता है जो अपने बच्चे को आम के फूल तोडने से टोकती है और आम के प्रथम फल के पकने से पहले ही अपने पुत्र को खो बैठती है। वैलोप्पिळ्ळी-कविता की दूसरी विशेषता इनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। समसामयिक विषयो पर पर भी इन्होने कविताएँ लिखी हैं। बंगला देश की मुक्ति के अवसर पर रचित कविता 'नम्मुटे भीमसेनन्' मे जरासध के शरीर की तरह फाडे गए पाकिस्तान के दो खंडो का दर्शन कवि ने कराया है। इनकी शैली व्यजना-गर्भित और वाग्मितापूर्ण है।

वैलोप्पिळ्ळी का स्थान आज के मलयाळम कवियो मे जी० शंकर कुरुप्प् (दे०) के समकक्ष है। साहित्य की श्रीवृद्धि मे इनका योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

मेना *(गु० पा०)*

मेना गुर्जरी गुजराती लोकगीतो की नायिका और लोक-साहित्य की गौरवान्वित पात्र है। मेना कुतूहलवश मालिन का वेश धारण कर बादशाह के तबू देखने जाती है। वहाँ बादशाह उसे अनेक प्रलोभन देता है पर वह बादशाह का तिरस्कार करती है। बादशाह उसको उठा कर दिल्ली ले जाता है लेकिन यहाँ से वह भाग जाती है और घर आकर पति और देवर को बादशाह पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रकार वह साहस और शौर्य की प्रतीक है।

मेमुण, मुहम्मद सिदीक *(सि० ले०)* [जन्म—1890 ई०; मृत्यु—1958 ई०]

ये हैदराबाद (सिंध) मे 'ट्रेनिंग कालेज फॉर मेन' के मुख्याध्यापक थे और इन्होने सिंध मे नारी शिक्षा के प्रचारार्थ तथा मुसलमानो मे नवचेतना लाने के लिए कमर कस ली थी। सिंध और सिंधी-साहित्य के इतिहास का अन्वेषण करने के लिए इन्होने हैदराबाद मे सिंध मुस्लिम अदबी सोसाइटी की नीव डाली थी। जिसकी ओर से कई महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'सिंध जी अदबी तारीख' (दो भागो मे), 'हयातीअ जो दौरू', 'कामिल रहनुमा, 'शाह जो रिसालो' (सपादन)। सिंधी-साहित्य के इतिहास पर इनकी पुस्तकें बुनियादी रचनाएँ हैं, जो परवर्ती इतिहास-लेखको के लिए काफी सहायक सिद्ध हुई हैं। सिंधी-गद्य-लेखकों मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

मेयुप्पाट्टु *(त० पारि०)*

अक्षरश: इस शब्द का अर्थ 'अंगचेष्टादि शारीरिक कृत्य' है जिसके माध्यम से किसी व्यक्ति के आंतरिक भाव की अभिव्यक्ति होती है। इस शब्द का साधारण प्रयोग 'अभिनय' के अर्थ में होता है। प्राचीन व्याख्याताओं ने इस शब्द को भरतमुनि के 'सात्विक भाव' का समानार्थक माना है।

तमिल भाषा के प्राचीनतम व्याकरण-ग्रंथ 'तोलकाप्पियम्' (दे०) मे 'मेयुप्पाट्टु' का विवेचन 27 सूत्रों के एक पृथक् अध्याय मे हुआ है। इस कृति के रचना-काल के संबध मे मतभेद है। कई विद्वानों के अनुसार इसका समय ई० पू० चौथी शती है और कुछ की सम्मति में यह पाँचवी शती ई० तक की कृति हो सकती है। इस व्याकरण-ग्रंथ में तत्कालीन नृत्य-परंपरा में विहित 32 शारीरिक चेष्टाओं का उल्लेख मिलता है। उसके अनुसार इनकी गणना 16 हो सकती है तथा घटाकर 8 कर देने की प्रथा भी है।

आठ 'मेयुप्पाट्टु' ये हैं—हँसी, रुदन, तिरस्कार, आश्चर्य, भय, गर्व, क्रोध व उल्लास। आगे इन आठों भावों के चार-चार विभाग बताये गये हैं जो कि इनके उद्‌भव-स्थल माने जा सकते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है—

मेयुप्पाट्टु	विभागीकरण	भरतमुनि का समानांतर प्रयोग
1. हँसी (नकै)	उपालंभ, बाल्यावस्था, भोपालन तथा मूढ़ता	हास्य
2. रुदन, (अलुकै)	अपमान, क्षति, परिवर्तन, तथा दरिद्रता	करुणा
3. तिरस्कार (इळिवरल्)	वार्धक्य, रोग, दुःख तथा दौर्बल्य	बीभत्स
4. आश्चर्य (मरुट्कै)	नवीनता, बड़प्पन, छोटापन तथा विकास	अद्‌भुत
5. भय ('अचच्म्')	भूत, हिंसक पशु, चोर तथा राजा	भयानक
6. गर्व (पेरुमितम्)	शिक्षा, निर्भीकता, यश तथा दान	वीर
7. क्रोध ('वेकुळि')	अंगच्छेद, कुटुंब-नाश, लूट तथा हत्या	रौद्र
8. उल्लास (उवकै)	धन-समृद्धि, विद्वत्ता, कामानुभव तथा क्रीड़ा	शृंगार

मेरा वलैती सफ़रनामा *(पं० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

पंजाबी लेखक लालसिंह 'कमलाअकाली' (दे०)-रचित 'मेरा वलैती सफ़रनामा' आधुनिक पंजाबी गद्य की एक महत्वपूर्ण कृति है। इसकी रचना से पूर्व यात्रा-वर्णन-संबंधी रचनाओं का पंजाबी गद्य में अभाव है। इनका श्रीगणेश इसी कृति से हुआ। इस कृति का शैलीगत सौंदर्य प्रशंसनीय है। भौगोलिक परिचय एवं विदेशों से संबद्ध ज्ञानवर्धक ब्योरे देने के साथ-साथ लेखक ने इसमें रोचकता एवं कौतूहल भी बनाए रखने में सफलता प्राप्त की है। सामग्री की नवीनता एवं शैली के इसी द्वंद्व के कारण यह पुस्तक बड़े चाव से पढ़ी जाती है।

मेरी दुनिआ *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1949 ई०]

यह नानकसिंह (दे०) की आत्मकथा है। इसमे उन्होंने अपने जीवन के ऐसे क्षणों का निरूपण किया है, जिनसे वे समय-समय पर प्रभावित होकर किसी-न-किसी रूप मे साहित्य-सृजन की ओर प्रेरित हुए। पुस्तक पाँच शीर्षकों में विभाजित है : बचपन से युवावस्था तक, जीवन-पथ पर मिले कुछ व्यक्ति, 1947 ई० के प्रभाव में, फुटकल, और मेरा घरेलू जीवन। प्रथम शीर्षक के अंतर्गत जन्म, बचपन, असफल जेलयात्रा का वर्णन हुआ है। दूसरे शीर्षक मे प्रीतनगर मे संबद्ध घटनाओ एवं कतिपय कलाकारो के संपर्क का चित्रण हुआ है। तीसरे शीर्षक के द्वारा देश-विभाजन के समय धर्मशाला तथा अमृतसर में होने वाले संप्रदायिक दंगों और मानवता-हनन का उल्लेख है। चौथे में नानकसिंह की रचना-प्रक्रिया और जीवन की कुछ रोचक तथा उल्लेखनीय घटनाओ का निरूपण है। अंतिम शीर्षक के अंतर्गत गृहस्थ-जीवन के विभिन्न प्रसंगों का वर्णन है। इसमे नानकसिंह ने घटनाओं तथा कथानक पर अधिक बल दिया है। यहाँ जीवनी का अंश अपेक्षाकृत कम है, जिससे वे अपने अनुभवों को सूत्र-बद्ध नही कर सके हैं। शैली सहज और सरल है; भाषा में प्रवाह है, विषय में रोचकता एवं सरसता है।

मेरे साईआं जीउ *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1953 ई०]

भाई वीरसिंह (दे०)-रचित यह 'मेरे साईआंजीउ' काव्य कृति 1955 ई० में साहित्य-अकादेमी की ओर

से स्वातत्र्योत्तर सर्वश्रेष्ठ पजाबी रचना के रूप मे पुरस्कृत हुई। इसमे भाई वीरसिंह की छोटी-बडी 72 कविताएँ सगृहीत हैं जो विषयवस्तु, भाव व्यजना और रचना-शिल्प सभी दृष्टियो से कवि के लगभग छह दशको के पिछले साहित्यिक कृतित्व से सर्वथा पृथक् और नये प्रतिमान प्रस्तुत करती हैं। ये कविताएँ कवि के अतर्जगत का दर्पण हैं। इनमे उसके आध्यात्मिक और रहस्यवादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति 'नये' शिल्प के माध्यम से हुई है। उसकी अतश्चेतना इन कविताओ मे पूरी आभा के साथ प्रस्फुटित हुई है। यहाँ कवि 'पथक-चारण', 'गुरु-मत-व्याख्याती' अथवा 'परपरावादी नैतिक मूल्यो का सदेशवाहक' न रहकर पूर्णत 'व्यक्तिवादी' बन गया है। रचना-पक्ष की दृष्टि से इस कृति का वैशिष्टय यह है कि इससे पूर्व भाई वीरसिंह ने अपनी प्रत्येक कविता मे लय-ताल, रागानुकूलता एव सूक्ष्म छद-विधान का बडी सतर्कता से पालन किया है किंतु इस काव्य-सग्रह की अधिकाश कविताएँ अतुकात एव छद-मुक्त है। कवि के अपने शब्दो मे यह रचना 'गद्य, पद्य एव मिश्रित' है। इन कविताओ की भाषा भाव-प्रवणता की दृष्टि से अधिकाधिक गहनता लिये हुए भी अपने बाह्य स्वरूप मे पर्याप्त सरल और सहज-सवेद्य है।

मेल कणक्कु *(त० पारि०)*

सघकालीन कृतियो के तीन वर्ग हैं—'एट्टु-त्तोगै' (अष्टपद्य-सग्रह), 'पत्तुप्पाट्टु' (दस दीर्घ कविताएँ) और 'पदिनेणकील कणक्कु' (अठारह गौण रचनाएँ)। तमिल साहित्य के आधुनिक काल मे विद्वानो ने इन रचनाओ को 'कील कणक्कु' और 'मेल कणक्कु' इन दो वर्गों मे बाँटा है। उन्होने चार या चार से कम चरणो वाले पदो से युक्त रचना को 'कील कणक्कु' (गौण रचनाएँ) के अतर्गत और उससे अधिक चरणो वाले पदो से युक्त रचनाओ को 'मेल कणक्कु' (प्रमुख रचनाएँ) के अतर्गत रखा है। इस दृष्टि से 'एट्टुत्तोगै' और पत्तुप्पाट्टु' को 'मेल कणक्कु' के वर्ग मे रखा गया है। ये रचनाएँ हैं—'नट्रिणै' (दे०), 'कुरुत्तोगै' (दे०), 'अकनानूरु' (दे०), 'ऐंकुरुनूरु' (दे०), 'कलित्तोगै' (दे०), 'पुरनानूरु' (दे०), 'परिपाडल' (दे०), 'पदिट्रुप्पत्तु' (दे०), 'तिरुमुरुकाट्रुप्पडै', 'पोरुनर आट्रुप्पडै', 'शिरुपाणाट्रुप्पडै', 'मलैपडुकडाम', 'मुल्लैप्पाट्टु', 'मदुरैक्काजि', 'नेडुनलवाडै', 'कुरिंजिप्पाट्टु', और 'पट्टिनप्पालै', ।

मेहता, चद्रवदन *(गु० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

गुजराती नाट्य-साहित्य व रगमच के क्षेत्र मे अति प्रसिद्ध चद्रवदन चिमनलाल मेहता का जन्म सूरत मे हुआ। माध्यमिक शिक्षा सूरत मे पाने के बाद मे 1919 ई० मे बबई के एल्फिस्टन कालेज मे प्रविष्ट हुए। बी० ए० पास की उपाधि के बाद एम० ए० व एल-एल० बी० की तैयारी कर रहे थे किंतु शिक्षा पूर्ण नही कर सके। 1928-30 के बीच असहयोग आदोलन मे कूद पडे। 1938 मे पत्नी से सबंध विच्छेद करके उसकी शादी अपने ही एक मित्र से (जिसे वह चाहती थी) करा दी।

सर्जक चद्रवदन का व्यक्तित्व और कृतित्व बहु-मुखी है। इनकी रचनाएँ—'बाँध गठरियाँ' (दे०) भाग 1 और 2, 'छोड गठरियाँ', 'रग गठरियाँ, 'रूप गठरियाँ', (ये आत्मकथात्मक व प्रवास-कथाएँ है) 'खमाबापू' 'वातचकरावो' 'सिनोरिटा, 'आगगाडी' (दे०) 'धारा-सभा', 'मूगी स्त्री', 'देउकानी पाच शेरी', 'त्रियाराज', 'अखो', 'नर्मद', 'नागा बावा', 'आराधना', 'आणलदे', 'धरा गुर्जरी', 'सध्याकाल', 'सीता', 'शकुतला', 'रमकडा', नी दुकान', 'सताकुकडी', 'अत्रलुप्ता सरस्वती', 'गुजरात दर्शन', 'होहोलिका', 'शिखरिणी', 'पाजरापोल', सोना-वाटडी', 'रगभडार', 'अतरवहिर', आदि (कथा-साहित्य व नाट्य साहित्य), 'यमल ईला', 'काव्यो', 'रतन', 'आछो', 'अर्द्ध कथा' (काव्य सग्रह), 'लिरिक अनेलगरिक', (समीक्षा) आदि।

चद्रवदन का कृतित्व जितना विशाल है, व्यक्तित्व उतना ही विस्तृत व महान है। विश्व-भ्रमण, वह भी एक से अधिक बार, देश-विदेश की नाट्य-प्रवृत्तियो मे रुचि, रेडियो की सेवा, और फिर म० स० विश्व-विद्यालय मे नाट्यशास्त्र के अवैतनिक प्रोफेसर के रूप मे क्रियाशील रहे।

नर्मद स्वर्णपदक, रणजीत राम स्वर्णपदक तथा 1967 मे 'पद्म श्री' मे विभूषित श्री मेहता गुजराती-साहित्य के क्षेत्र मे—विशेषत नाटक व रगमच के क्षेत्र मे एक अति महत्वपूर्ण व्यक्ति के रूप मे स्मरणीय रहेंगे।

मेहता, नरसिंह *(गु० ले०)*
दे० नरसिंह मेहता।

मेहता, नर्मदाशकर *(गु० ले०)*
दे० नर्मदाशकर मेहता।

मेह्दी इफ़ादी *(उर्दू० ले०)*

निबंधकार के रूप में उर्दू जगत् में इन्होंने यथेष्ट यश प्राप्त किया है। इनकी साहित्यिक चेतना अत्यंत प्रौढ़ और सुरुचिपूर्ण थी। गद्य की मौलिकता के प्रति इन्हें बड़ा मोह था। अपने विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति में ये पूर्णतः समर्थ थे। यूरोप में रूमानी आंदोलन से ये अत्यधिक प्रभावित थे। यह प्रभाव इनके गद्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इनके लेखों का संकलन 'इफ़ादात-ए-मेह्दी', (दे०) के नाम से प्रकाशित हुआ है। इस कृति की गणना उर्दू-गद्य की प्रतिनिधि रचनाओं में होती है। मेह्दी साहब के पत्र-लेखन की शैली भी साहित्यिक महत्व की वस्तु है। आधुनिक उर्दू-साहित्य के निर्माताओं से संबद्ध अनेक सारगर्भित लेख इनकी प्रतिभा के ज्वलंत उदाहरण हैं। औचित्य और संतुलन इनके लेखों की विशिष्टता है।

गहन चिंतन और सूक्ष्म विश्लेषण के साथ-साथ इनका सप्रवाह एवं प्रसाद-गुण-संपन्न अभिव्यंजना-कौशल देखते ही बनता है। 1921 ई० में इनका निधन हुआ था।

मेहेर, गंगाधर *(उ० ले०)* [जन्म—1862 ई०; मृत्यु—1924 ई०]

बरपाली (संबलपुर) के वरदपुत्र गंगाधर मेहेर नैसर्गिक प्रतिभा-संपन्न कवि थे। निर्धनता के कारण इन्हें अधिक शिक्षा नहीं मिल सकी थी। लंबे समय तक इन्हें पैतृक व्यवसाय करना पड़ा था, और कपड़ा बुनकर पीठ पर लादकर बेचना पड़ा। अपने ही परिश्रम से इन्होंने हिंदी, संस्कृत, बँगला, आदि भाषाएँ सीख ली थीं और अँग्रेजी का भी इन्हें सामान्य ज्ञान था। 'कीचक-वध' के प्रकाशन ने इन्हें संपूर्ण उड़ीसा में प्रसिद्ध कर दिया। इसमें परोक्ष रूप से विदेशी शासन के विरुद्ध क्रांति का संदेश है।

मेहेर जी ने मध्ययुगीन काव्यादर्श पर अपना कवि-जीवन प्रारंभ किया था, किंतु आगे चलकर इन्होंने आधुनिक काव्य-पद्धतियों को ग्रहण कर लिया। प्राचीन और नवीन दोनों ही काव्य-शैलियों में मेहेर की मौलिकता व प्रतिभा का प्रस्फुटन हुआ है। राधानाथ के समान इन्होंने भी काव्य-भाषा को सरल, कोमल व मधुर बनाने का प्रयास किया है। इन्होंने अपने छोटे-से अंचल को कवि की दृष्टि से भरपूर देखा और उसके नख-चित्रों को सुकुमार हाथों से अलंकृत किया। संबलपुर की प्रकृति इनकी तूलिका के स्पर्श से अमर हो गयी। मेहेर की सर्वोत्तम रचना 'तपस्विनी' (दे०) में प्रकृति का मानवीकरण अत्यंत सुंदर रीति से हुआ। इनकी स्वच्छंद, मूर्ति-विधायिनी शैली के प्राणद स्पर्श से प्रकृति का हर क्रिया-कलाप सजीव, और साकार हो गया है। कवि की युगीन चेतना जितनी व्यापक एवं गहन है, उसकी भविष्य दृष्टि उतनी ही तात्त्विक तथा तलस्पर्शी है। कृषक वर्ग की उन्नति एवं प्रबुद्ध लोकचारित्र्य पर गणतांत्रिक पंचायती शासन की स्थापना की परिकल्पना आज स्वतंत्र भारत का जीवन-स्वप्न है। इनकी अन्य काव्य-कृतियाँ हैं—'प्रणयवल्लरी', 'इंदुमति', 'उत्कळ लक्ष्मी', 'भारती-भावना', 'कृषक-संगीत' आदि।

मैकडॉनेल *(सं० ले०)*

मैकडॉनेल का जन्म 11 मई, 1854 ई० को मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार) में हुआ। इनके पिता अलेक्ज़ेंडर मैकडॉनेल भारतीय सेना में उच्च अधिकारी थे। इनकी शिक्षा जर्मनी तथा इंग्लैंड में हुई। संस्कृत तथा संस्कृत-विद्वानों के प्रति इनके मन में अटूट श्रद्धा थी; एक बार इन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया और कुछ अनुपलब्ध ग्रंथ तथा पांडुलिपियाँ खोज निकालीं।

वैदिक साहित्य में विशेष रुचि होने के कारण इन्होंने वैदिक क्षेत्र में अधिक काम किया। ऋग्वेद (दे० वेद) कात्यायन (दे०)-कृत 'सर्वानुक्रमणी' का पाठ-शोध इनकी सर्वोत्तम कृति है। इससे संस्कृत-जगत् का बड़ा उपकार हुआ है। इसी पर इनको लिपज़िग विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली थी। इनकी दूसरी महत्वपूर्ण कृति है—'हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिट्रेचर'। इसके अतिरिक्त 'वैदिक रीडर', 'वैदिक ग्रामर', 'वैदिक इंडेक्स 'तथा' 'वैदिक माइथॉलोजी' आदि इनकी अमर कृतियाँ हैं।

मैक्समूलर *(सं० ले०)*

इनका जन्म देसाऊ नामक नगर (जर्मन) में 6 दिसंबर, 1823 ई० को हुआ था। लिपज़िग यूनिवर्सिटी में पाँच वर्ष तक लैटिन भाषा का अध्ययन करने के बोन (बर्लिन) में इन्होंने संस्कृत के एक बृहद् पुस्तकालय में

वेदात तथा संस्कृत का अध्ययन किया। इन्होने संस्कृत-साहित्य तथा भाषा से संबद्ध निम्नोक्त ग्रथो का प्रणयन अथवा सपादन किया—(1) 'ऋग्वेद' (सपादन), (2) 'दि सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट' सीरीज़ के अतर्गत 48 खंडो का सपादन, (3) 'हिस्ट्री ऑफ दि एश्येंट संस्कृत लिट्रेचर', (4) 'लैक्चर्स ऑन दि साइस ऑफ लैंग्वेज' (दो भाग), (5) ऑन स्ट्रैटीफिकेशन ऑफ लैंग्वेज', (6) 'लैक्चर्स ऑन ऑरिजस ऐंड ग्रोथ ऑफ रेलिजन', (7) 'इट्रोडक्शन टु दि साइस ऑफ रेलिजन' (8) 'नेचुरल रेलिजन', (9) 'फिजिकल रेलिजन', (10) 'ऐंथ्रोपोलॉजिकल रेलिजन', (11) 'थियोसॉफी ऑर साइकोलॉजिकल रेलिजन' (12) 'कांट्रिब्यूशन टु दि साइस ऑफ साइकोलॉजी', (13) 'बायोग्राफीज ऑफ वर्डर्स ऐंड होम ऑफ आर्याज़, (14-17) 'उपनिषद्' (दे०) 'हितोपदेश', 'मेघदूत' (दे०) तथा 'धम्मपद' (दे०) का जर्मन अनुवाद, आदि। यहाँ यह उल्लेख्य है कि इनके द्वारा सपादित 'ऋग्वेद' की पृष्ठ-सख्या 6 हजार है, तथा इसमे इन्होने सायण-भाष्य भी प्रस्तुत किया। इनका निधन जुलाई 1900 ई० मे हो हुआ।

मैत्यु *(मल० पा०)*

पारप्पुरत्तु (दे०) के सैनिक उपन्यास 'निण-मणिञ्ञ काल्पाटुकळ्' (दे०) का मुख्य पात्र। अपनी विधवा माँ और छोटी बहनो के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिए अपनी प्रेमिका की प्रेरणा पर सेना मे भरती होने वाला मैत्यु वापस आने पर उसी प्रेमिका तकम्मा के सबध मे प्रचारित दुष्प्रवादो पर विश्वास कर लेता है। सेना से सेवा-निवृत्त होने पर उसका विवाह हो जाता है और बाद मे तकम्मा की वास्तविक दुखभरी कहानी सुनकर वह आत्मग्लानि का अनुभव करता है।

पारप्पुरत्तु के प्राय सभी पात्र मानव-साधारण गुणो और अवगुणो से युक्त औसत मनुष्य होते हैं। वे अपने पात्रो के आदर्शीकरण पर विश्वास नही करते। मैत्यु का चरित्र-चित्रण इस तथ्य का प्रमाण है। अपने परिवार के प्रति कर्तव्यनिष्ठा उसके चरित्र की विशेषता है, परतु यह नही कहा जा सकता कि अपनी प्रेमिका के प्रति भी उसकी वही निष्ठा है। सैनिक पृष्ठभूमि मे चित्रित मैत्यु के चरित्र का विकास बहुत ही सुदर हुआ है। एक सैनिक नायक के रूप मे मलयाळम के उपन्यास-साहित्य मे मैत्यु का उत्कृष्ट स्थान है।

मैत्र रवींद्रनाथ *(बँ० लें०)*

आधुनिक बँगला नाट्यकारो मे रवीद्रनाथ मैत्र ने एक सामाजिक प्रहसन 'मानमयी गर्ल्स स्कूल' (1932) की रचना कर अभूतपूर्व जनप्रियता प्राप्त की थी। इस नाटक ने हास्यरुचि प्रहसन का नया आदर्श उपस्थित किया था। लघु कौतुकपूर्ण परिवेश के बीच से भिन्न धर्मावलबी नर-नारी के जीवन की जटिलतम समस्या का हल प्रस्तुत करते हुए लेखक ने चरित्र के सूक्ष्म क्रम-विकास का बहुत ही प्रशसनीय उद्घाटन किया है। लेखक का सबसे बडा कृतित्व इसी मे है कि पिछले 40 वर्षों से इसका लगातार अभिनय होने पर भी इसकी लोकप्रियता थोडी भी अक्षुण्ण नही हुई है।

मैत्रेय *(स० पा०)*

मैत्रेय भास (दे०) की प्रतिभा की कल्पना है जिसके चरित्र का चित्रण दरिद्र चारुदत्त' मे किया गया है। अनतर मैत्रेय के व्यक्तित्व को 'मृच्छकटिक (दे०) मे पूर्णता प्राप्त होती है।

हास जीवन का एक अविच्छिन्न ही नही अनिवार्य तत्त्व है। सकट की घडियो मे भी हास की सृष्टि अस्वाभाविक न लगे, ऐसी कला मैत्रेय को प्राप्त है। वह जन्मजात ब्राह्मण है पर अपने मित्र चारुदत्त (दे०) की सपत्ति के अकारण चले जाने पर इतना क्षुब्ध है कि देवी-देवताओ की पूजा पर से उसका विश्वास उठ-सा जाता है। वह एक प्रौढ अवस्था का व्यक्ति है पर जीवन की वास्तविकताओ से पूर्वपरिचित है। वह चारुदत्त का साथ इसलिए नही छोडता क्योकि मानता है कि चारुदत्त भावुक प्रकृति का व्यक्ति है और उसे उन्ही दिनो म उस जैसे मित्र के सरक्षण की आवश्यकता है। वह चारुदत्त को बहुत मानता है। यद्यपि वसतसेना (दे०) के साथ उसके प्रणय की बात इसे अच्छी नही लगती पर वह स्पष्ट शब्दो मे चारुदत्त को मना नहीं करता, और अपना को उससे अलग रखता है। एक विचक्षण बुद्धिमान की भाँति वह भावी विपत्ति का आभास पा लेता है। मैत्रेय एक सच्चा मित्र ही नही, वह अभिभावक की तरह चारुदत्त एव उसके परिवार की देखभाल करता है। उसे उचित अनुचित का विवेक भी है। उसकी बातें बडी ही चुटीली होती हैं। वह प्रत्येक बात को प्राय हास्य का पुट देकर करता है।

मैथिली *(भाषा० पारि०)*

हिंदी प्रदेश की पूर्वी बोलियों को 'बिहारी' (दे०) नाम से अभिहित करते हैं। इसमें भोजपुरी, मगही और मैथिली, ये तीन बोलियाँ आती हैं। इन तीनों में साहित्यिक दृष्टि से मैथिली ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मैथिली की उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुई है। इसका क्षेत्र पूर्वी चंपारन, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर, दरभंगा, पूर्णिया, तथा उत्तरी संथाल परगना आदि हैं। मैथिली का जन्म अन्य हिंदी बोलियों की भाँति ही 1000 ई० के आस-पास हुआ। इसके प्रमुख कृती कवि विद्यापति (दे०) हैं। मैथिली के अन्य साहित्यकारों में उमापति, नंदीपति, रमापति, आदि मुख्य हैं। मैथिली में आज भी साहित्य-रचना (गद्य तथा पद्य दोनों में) हो रही है।

मैदान-ए-अमल *(उर्दू० कृ०)*

यह प्रेमचंद के उपन्यास 'कर्मभूमि' का उर्दू रूप है। 'कर्मभूमि' प्रेमचंद की प्रौढ़तम औपन्यासिक रचनाओं में परिगणित है--यहाँ तक कि कुछ विद्वान उसे प्रेमचंद की सर्वश्रेष्ठ कृति और गांधीयुग की सबसे प्रतिनिधि कृति मानते हैं। गांधीयुग की प्रायः सभी सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियाँ इसमें परिलक्षित होती हैं। 'कर्मभूमि' की मूल भावना संघर्ष है—वैयक्तिक और सार्वजनिक दोनों धरातलों पर जीवन संघर्ष-भावना से विभक्त है। आंदोलन की भावना इस संपूर्ण उपन्यास में परिव्याप्त है। जीवन को युद्धक्षेत्र के रूप में चित्रित करते हुए प्रेमचंद ने कर्म की महत्ता प्रतिपादित की है। व्यक्ति का कर्तव्य है जीवन को सुंदरतर बनाना और उसके लिए वैषम्य का उन्मूलन आवश्यक है। विचार और कर्म के सामंजस्य में ही जीवन की सार्थकता है—यही 'कर्मभूमि (मैदान-ए-अमल) का मंतव्य है। 'मैदान-ए-अमल' गांधीयुग की जनचेतना का व्यापक जन जागरण सफल-सरस अभिलेख है।

मैरावण-चरित्र *(ते० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

इस काव्य के लेखक मादय्या कवि विजयनगर के राजा वीरनसिंहरायलु (शासन-काल 1505-1599 ई०) के समसामयिक थे। इसका कथानक इस प्रकार है—राम-रावण युद्ध के बीच हनुमान सोते हुए मैरावण को मार डालते हैं और राम तथा लक्ष्मण को निद्रावस्था में वापस ले आते हैं। मैरावण-वध के बाद वे पातालवासियों को रामनाम के प्रभाव का उपदेश देते हैं। रामभक्ति का प्रभाव तथा उससे अनुगृहीत हनुमान के पराक्रम का वर्णन ही तीन आश्वासों के इस काव्य का उद्देश्य है। इसके वर्णन प्रसंगानुकूल हैं तथा शैली सरल और सरस।

मैला आंचल *(हिं० कृ०)*

हिंदी-साहित्य में आंचलिक उपन्यासों के उन्नायक फणीश्वरनाथ रेणु (दे०) की लेखनी से प्रसूत यह कृति हिंदी का अत्यंत लोकप्रिय आंचलिक उपन्यास है। इसमें बिहार प्रांत के पूर्णिया जिले के अंचल-विशेष—मेरीगंज—के जनजीवन के विविध पक्षों यथा लोक-विश्वासों, राजनीतिक जागरण आदि का अत्यंत सूक्ष्म और हृदय-स्पर्शी चित्रण किया गया है। कथ्य को स्वाभाविक और सहज रूप प्रदान करने के लिए पात्रों के मुख से स्थानीय भाषा का प्रयोग कराया गया है। उपन्यास का कथानक बिखरा हुआ है तथा विभिन्न जीवन-स्थितियों एवं छोटे-छोटे कथाप्रसंगों का संग्रह मात्र प्रतीत होता है। इसी प्रकार इसमें दर्जनों पात्रों की भीड़ है तथा मुख्य कथा जैसी चीज का भी अभाव है। नायक की परंपरागत परिकल्पना भी इसमें नहीं है क्योंकि स्वयं अंचल ही इसका नायक है। यह उपन्यास अपने यथार्थ, कथा, जीवन-चित्रों के कारण सदैव स्मरण किया जाता है तथा नूतन शिल्प-प्रयोग के फलस्वरूप हिंदी-उपन्यास-साहित्य में एक कीर्ति-स्तंभ माना जाता है।

मोगर्याचीफुले *(म० कृ०)*

इस काव्य-संग्रह के लेखक श्री गंगाधर रामचंद्र मोगरे हैं। इनका 'मोगर्याचीफुले' संग्रह पाँच भागों में है, जिनका प्रकाशन 1902 से 1920 ई० की कालावधि में हुआ था।

इन संग्रहों की अधिकांश कविताएँ किसी के निधन, जन्मदिन, विवाह, सम्मेलन, सभा, अभिनंदन आदि अवसरों के उपलक्ष्य में लिखी गई हैं।

ये मराठी उपहास-काव्य के प्रवर्तक हैं। 'अभिनव धर्म संस्थापना', 'पदवीचा पाडवा', 'भेयाजींची मजलस'

आदि इनकी उत्कृष्ट व्यग्यपरक कविताएँ हैं। भिन्नाभिन्न कार्य क्षेत्रो मे काम करने वाले नेताओ की मृत्यु होने पर लेखक ने विलापिकाएँ भी लिखी हैं। मृत व्यक्ति से व्यक्तिगत परिचय के अभाव मे दुख वैयक्तिक नही, बुद्धि से आकलित है। इन विलापिकाओ मे मृत व्यक्ति के कृतित्व का उल्लेख कर उनकी मृत्यु से हुई समाज-हानि का कवित्वपूर्ण शैली मे निवेदन है।

मार्मिक व्यग्य-विनोद, व्यवस्थित रचना समुचित शब्द-योजना के कारण इनका यह काव्य अपूर्व बन गया है।

मोचनगड (म० कृ०) [रचना-काल—1871 ई०]

यह शिव-काल पर लिखा गया प्रथम उच्चकोटि का ऐतिहासिक उपन्यास है। स्वय लेखक रा० भि० गुजीकर ने इसे 'कल्पित गोष्ठ' कहा है, पर वस्तुत यह न केवल ऐतिहासिक उपन्यास है अपितु अ० का० प्रियोळकर के अनुसार ऐतिहासिक उपन्यास का आदर्श प्रस्तुत करता है। इसका महत्व यह है कि जिस समय अन्य मराठी उपन्यासकार रम्याद्भुत कथा साहित्य की सृष्टि मे सलग्न थे, गुजीकर ने ऐसी कृति का प्रणयन किया जिसमे लेखक ने युग से एकात्म हो यथार्थ वातावरण की सृष्टि की। वस्तुत उपन्यास मे वातावरण की सृष्टि इतनी मनोज्ञ है कि शिवाजी का जीवन-काल साकार हो उठता है। उपन्यास का नायक गणपतराव अपने हाथी भगवतराव के साथ दो वर्ष तक कारागृह मे रहकर दीवार फोडकर निकल भागता है, अपनी पत्नी के साथ कष्टमय जीवन बिताता हुआ, अत मे शिवाजी द्वारा किले पर आधिपत्य कर लेने के बाद यातना से मुक्ति लाभ करता है। इस उपन्यास का महत्व अनेक दृष्टियो से है—हरिनारायण आपटे (दे०) के 'उष काल' (दे०) पर इसका प्रभाव परिलक्षित होता है। दौलत्या नामक पात्र की सृष्टि कर लेखक ने मराठी उपन्यासो मे विनोदी पात्र-सृष्टि का श्रीगणेश किया है और ऐतिहासिक उपन्यासकारो को युग स तादात्म्य स्थापित कर, सजीव वातावरण उपस्थित करने की प्रेरणा दी है।

मोतीलाल साकी (कश्० ले०) [जन्म—1936 ई०]

शैशव से ही भावुक और सवेदनशील एव चितनशील। सामाजिक असमानताओ और अन्याय के कारण मन मे आरभ से ही एक आक्रोश का जन्म हुआ। ये पैनी दृष्टि के कवि हैं। इनके गीत कश्मीर के पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते हैं। भाषा ठेठ कश्मीरी है और शैली मार्मिक और ओजमयी। कवि के रूप मे काफी प्रसिद्धि पा चुके हैं। नाजी मुनव्वर के साथ मिलकर इन्होने 'काशिरि लूक बाँथ' (कश्मीरी लोक-गीत) नाम से एक सग्रह का सपादन (1965) किया है। इनकी स्फुट रचनाओ मे वेदना, पुकार और चोट है जिसे पढ या सुनकर श्रोता प्रभावित हुए बिना नही रह सकता।

मोदी, चीनु (गु० ले०) [जन्म—1939 ई०]

इनकी प्राथमिक, माध्यमिक एव उच्चशिक्षा अहमदाबाद मे हुई थी तथा 'गुजराती के प्रगीत' विषय पर इन्हे पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। काव्य-रचना का आरभ इन्होने कालेज-जीवन मे ही कर दिया था। गुजराती के पिछले दशक के अग्रगण्य कवियो मे इनका प्रमुख स्थान है।

इनकी कविताओ मे भाव-तत्त्व स अधिक बुद्धि पर बल है तथा सहज तत्त्व की अपेक्षा आयास अधिक दृष्टिगत होता है। गजलो मे इन्होने विशेष सफलता प्राप्त की है। इनकी गजलो मे मस्ती का भाव आह्लादक रूप से व्यक्त हुआ है। यो तो गीतो मे भी इन्हे ख्याति मिली है किंतु इनका सर्वोपरि रूप अत्याधुनिक कवि का ही है। अस्तित्ववाद, कुठा, क्षण का महत्व, अपरिचित प्रतीक प्रभृति तत्त्वो का इनकी कविता मे प्राधान्य है।

'डायल नु पखी' नामक इनका एब्सर्ड एकाकी भी इनकी प्रयोगशीलता का परिचायक है। इसके अतिरिक्त इन्होने 'शैला मजुमदार' नामक लगभग घटना-तत्त्व-विहीन मनोवैज्ञानिक लघु उपन्यास भी लिखा है जिसका मुख्य विषय यौन भावना है।

इस प्रकार कविता, नाटक, उपन्यास तथा आलोचना आदि समस्त साहित्य-विधाओ मे इन्होने अपना रचना कौशल दिखाया है।

मो दृष्टिरे साप्रतिक साहित्य (उ० कृ०)

परीक्षित नद द्वारा सपादित इस पुस्तक मे कतिपय लब्धप्रतिष्ठ और नवागतुक लेखको के निबधो का सग्रह है। इसके प्रथम भाग मे समकालीन साहित्यिक धाराओ का और दूसरे भाग मे समकालीन कविता का विवेचन हुआ है। क्या समकालीन साहित्य परपरा से विच्छिन्न होकर फल-फूल सकता है? क्या इसमे हमारा

सामाजिक परिवेश पर्याप्त रूप से प्रतिबिंबित होता है ? यह साहित्य किसके लिए लिखा गया है ? आदि कुछ प्रश्न हैं, जिन्हें पहले खंड में उठाया गया है। नयी कविता (दे०) से संबंधित निबंधों में उन आरोपों की परीक्षा की गयी है, जो साधारणतः नयी कविता पर लगाये जाते हैं; जैसे—दुर्बोधता, अश्लीलता तथा अनावश्यक नैराश्यबोध आदि। एक समीक्षक ने संपूर्ण आधुनिक काव्य-आंदोलन को अकविता आंदोलन की संज्ञा दी है। गत दशाब्दी के के अंत में कविता में जो आक्रोश और नैराश्य की भावना दिखाई पड़ती है, उसका सहानुभूतिपूर्ण विवेचन हुआ है। कुछ नये लेखकों में कृत्रिम विप्लव का जो उत्साह दिखाई पड़ता है, उसका अधिकांश लेखकों ने स्पष्ट रूप से खंडन *किया है। अधिकांश लेखकों ने बड़ी निर्भीकता और* स्पष्टता के साथ अपने विचारों को प्रस्तुत किया है।

मोना *(मल० पारि०)*

यह पाट्टु (दे०) शैली के प्राचीन मलयाळम काव्यों के लक्षणों में निर्दिष्ट एक छंद-संबंधी पारिभाषिक शब्द है। पाट्टु के किसी एक छंद के प्रत्येक पाद के प्रथम एवं द्वितीय पादों के प्रथम अक्षर परस्पर सजातीय होते हैं। प्राचीन लक्षण-ग्रंथ 'लीलातिलकम्' (दे०) में पाट्टु के लिए इस लक्षण को अपेक्षित माना है। तमिल के छंद-नियमों के अनुसार 'मोना' (दे०) तोटै नामक गीत-लक्षण के अंतर्गत आता है।

मोनिड़ो मीरबहर *(सिं० पा०)*

मोनिड़ो मीरबहर प्रसिद्ध सिंधी-वीरगाथा 'मोनिड़ो ऐं मांगरमच्छ' का नायक है। सूमरा वंश (1050-1350 ई०) के राजाओं के समय में सिंधु नदी के किनारे पर मल्लाहों का एक कुटुंब रहता था जिसमें 'मोनिड़ो' का जन्म हुआ था। 'मोनिड़ो' सात भाइयों में सबसे छोटा था और लँगड़ा होने के कारण मछली मारने के लिए नदी पर नहीं जाता था। वह अपाहिज तो था, परंतु अपने सभी भाइयों से बुद्धि में तेज था। एक दिन उसके छह भाई मछली मारते-मारते कलाची (कराची) निकट सिंधु नदी के एक भँवर में जा फँसे और उस भँवर में रहने वाला एक बड़ा मगरमच्छ उन्हें निगल गया। आग की तरह यह खबर चारों तरफ़ फैल गई। मोनिड़ो ने मगरमच्छ से बदला लेने के लिए लोहे का एक पिंजरा बनवाया जिसमें बाहर की तरफ़ चारों ओर बड़ी-बड़ी कीलें लगी हुई थीं। वह उस पिंजरे में बैठ गया, रस्सों से बाँध कर पिंजरा भँवर में उतारा गया। जब मगरमच्छ पिंजरे को निगलने लगा तब मोनिड़ो ने एक कल को घुमाया जिससे पिंजरे की कीलें मगरमच्छ के मुख में अटक गईं। ऐसी हालत में मोनिड़ो ने रस्सों को हिलाकर नदी के किनारे पर खड़े हुए अपने साथियों को संकेत भेजा, जिन्होंने पिंजरा खींचना शुरू किया जिससे मगरमच्छ भी बाहर निकल आया। फिर सभी ने उसे मारकर मोनिड़ो को पिंजड़े से बाहर निकाला और मगरमच्छ को चीरकर मोनिड़ो के भाइयों की लाशें बाहर निकालकर उन्हें दफ़न किया। 'मोनिड़ो' सिंधी-साहित्य में वीरता और बुद्धिमानी का *प्रतीक माना गया है। कई चारणों और कवियों ने इसकी* वीरता के गीत गाए हैं। 'मोनिड़ो ऐं मांगरमच्छ' नामक पुस्तक में डा० नबी बख्श खान बलोच (दे०) ने मोनिड़ो की विभिन्न वीरगाथाओं को संगृहीत किया है। यह 1967 ई० में 'सिंधी अदबी बोर्ड', हैदराबाद (सिंध) से प्रकाशित हुई थी।

मोमिन *(उर्दू० ले०)* *[जन्म—1800 ई०; मृत्यु—1851 ई०]*

इनका पूरा नाम हकीम मोमिन खाँ और उपनाम 'मोमिन' था। इनके पिता हकीम गुलाम नबी खाँ कश्मीर के एक गण्यमान्य व्यक्ति थे। मोमिन बहुत प्रतिभावान बालक थे। एक बार जो सुन लेते थे, उन्हें अक्षरशः याद हो जाता था।

काव्य, चिकित्सा तथा ज्योतिष पर इन्हें समान अधिकार था किंतु इन्होंने किसी को भी अपनी आजीविका का साधन न बनाया। ये स्वभाव से बड़े ही संतोषी जीव थे। इन्होंने किसी अमीर की कभी प्रशंसा नहीं की। हाँ, धार्मिक महापुरुषों का गौरव-गान अवश्य किया और उनकी स्तुति में अनेक कसीदे लिखे। मोमिन सिद्धहस्त कवि थे। ग़ज़ल लिखने में उनका अपना रंग था। इनके काव्य में मीर (दे०) की-सी वेदना तो है किंतु उन जैसी निराशा नहीं। हाँ, किसी सीमा तक इनके काव्य में स्वाभिमान तथा मुक्त चिंतन अवश्य झलकता है। ये उपमानों तथा रूपकों के माध्यम से पुराने विचारों को भी नया परिधान पहना कर प्रकट करते हैं। इनके भावों में उत्कृष्टता तथा कोमलता है। कुछ पद तो प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से मीर के पदों से भी आगे हैं। इनके पद दार्शनिकता से भी रीते नहीं।

मोमिन ने छह मसनवियाँ लिखीं जिनमे ये तीन प्रसिद्ध हैं —(1) शिकायत-ए-सितम, (2) किस्सा-ए-गम, (3) कौसे-गमी।

इनका एक दीवान भी प्रकाशित है।

मोबेद रुस्तम पेशोतन *(गु० ले०)* [समय—सत्रहवी शती]

गुजराती के प्रथम पारसी लेखक श्री मोबेद रुस्तम पेशोतन सूरत के निवासी थे। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ चार हैं 'जरथोस्त-नामेह', 'श्यावक्ष-नामेह', विराफ-नामेह' एव अस्पदयार नामेह। नामेह का अर्थ होता है—*चरित्र। इस प्रकार चारो कृतियो मे पारसी मिश्रित गुज*-राती पद्य मे चरित्र अकित किये गये हैं। इनमे पारसी सत महात्माओ के चरित्र वर्णित हैं। इन कृतियो की भाषा पर पारसी प्रभाव अधिक है। इतिहास और कल्पना के सयोग से कृतियाँ अधिक प्रभावपूर्ण व चमत्कारमय बन गई हैं। पहलवी और फारसी शब्दो के कारण रचनाएँ किंचित् दुर्बोध हो गई हैं।

गुजराती के प्रथम पारसी कवि के रूप मे तथा जीवनीकार के रूप मे इनका महत्व भुलाया नही जा सकता।

मोरोपतचरित्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1882 ई०]

इसके लेखक हैं श्री बा० म० हस। इसमे मराठी के कवि मोरोपत के काव्य की समीक्षा अंग्रेजी-समीक्षा पद्धति का आधार ग्रहण कर प्राय सर्वप्रथम प्रस्तुत की गई है। इस रचना मे प्रौढ, सालकार और साभिप्राय भाषा प्रयोग मिलता है। काव्य समीक्षा मे दोषा-रोपण की अपेक्षा गुण कीर्तन पर अधिक बल है।

मोरोपत चरित्र *(म० कृ०)*

लक्ष्मण रामचद्र पागारकर (दे०) ने मराठी के पडित कवि मोरोपत का चरित्र 1908 ई० मे लिखा था। इसकी रचना मे लेखक ने 1900 से 1908 ई० तक परिश्रमपूर्वक शोध किया था। मूल रचनाओ, पाडुलिपियो, पत्रो आदि का सूक्ष्म अध्ययन करके पागारकर ने मोरोपत की प्रामाणिक जीवनी लिखी है। उत्तरार्ध मे मोरोपत के समग्र काव्यो के सौंदर्य का मार्मिक उद्घाटन किया गया है। *मोरोपत के चरित्र और काव्य के अध्येताओ के लिए यह ग्रथ प्रकाश-स्तभ है।*

मोल्लरामायणमु *(तें० कृ०)* [सोलहवी शती ई०]

तेलुगु के रामकथा पर आधृत काव्यो मे आतु-कूरि मोल्ला (दे०) नामक कवयित्री के द्वारा रचित 'रामायण' का विशिष्ट स्थान है। इस काव्य की रचना के समय जितने रामकाव्य लिखे जा चुके थे, उन सब मे इसी का प्रचार अधिक था। जिस प्रकार बम्मेर पोतना (दे०) ने भक्तिभावना की सहज अभिव्यक्ति के रूप मे 'भागवत' (दे० महाभागवत) की रचना की उसी प्रकार कवयित्री *मोल्ला ने अपनी रामायण की रचना की।* इसके छह काडो मे कुल मिलाकर लगभग एक हज़ार छद हैं। पहले तीन काडो की अपेक्षा अतिम तीन काडो मे रचना अधिक प्रौढ और परिमार्जित दिखाई देती है। सहज वर्णनशैली, अनायास अलकार-योजना, सरल शब्दो का प्रयोग इनकी रचना की विशेषताएँ है। भाषा और शैली की इस निसर्ग मनोहारिता ने कई परवर्ती कवियो को भी प्रेरणा दी। *शबरी से राम के वार्तालाप का वर्णन भी विशेष उल्लेख-नीय है। तेलुगु की प्रथम कवयित्री की उत्कृष्ट रचना के* रूप मे 'मोल्लरामायणमु' तेलुगु-साहित्य मे चिरस्मरणीय रहेगी।

मोल्ला, आतुकूरि *(तें०ले०)* [समय—सोलहवी शती ई०]

तेलुगु मे राम काव्य-प्रणेताओ मे इस विदुषी का विशिष्ट स्थान है। 'मोल्लरामायणमु' (दे०) इनकी एकमात्र उत्कृष्ट रचना है जिसके बल पर इस कवयित्री का नाम अमर है। कहते हैं कि ये अत्यत साधारण कुम्हार परिवार की थी और कृष्णदेवरायलु (दे०) की समकालिक थी। पर कृष्णदेवरायलु के दरबार मे इस कवयित्री को कोई प्रवेश नही मिला था। शायद राम की अनन्य साधना मे अपने जीवन को समर्पित करने के कारण इन्होने राजाश्रय को स्वीकार ही नही किया हो। तेनालि रामकृष्ण कवि (दे०) के साथ इनके परिचय और परि-चर्या को लेकर कई कहानियाँ कही जाती हैं। इनकी रच-नाओ मे कहीं इनके पति का नाम नहीं दिया गया है। पिता का नाम केसनसेट्टी था। इनकी रचना 'मोल्लरामा-यणमु' का आध्र जनता मे काफी प्रचार है। भगवान राम से प्रेरणा पाकर इन्होने इस कृति का प्रणयन किया था।

तेलुगु-साहित्य की श्रीवृद्धि करनेवाली प्रथम कवयित्री के रूप में मोल्ला का नाम हमेशा याद किया जाएगा।

मोल्सवर्थ-मराठी-इंग्रजी कोश *(म० कृ०)*

इस कोश के कोशकार जेम्स टी० मोल्सवर्थ हैं। ये ईस्ट इंडिया कंपनी में नौकरी करते थे। 1824 ई० में इस कोश पर कार्य प्रारंभ हुआ था और 1831 ई० में इसका समापन हुआ।

अँग्रेज शासकों ने भारतवासियों के शिक्षण के लिए 1821 ई० में पूना में एक पाठशाला खोली थी। विदेशी अधिकारियों तथा इस पाठशाला के विद्यार्थियों को मराठी-अँग्रेजी अध्ययन में सुविधा हो—इसलिए 1831 ई० मे जे० टी० मोल्सवर्थ ने जार्ज कैंडी, थाम्स कैंडी तथा अन्य पंडितों की सहायता से मराठी-अँग्रेजी कोश की योजना बनाई थी। कोश की पहली आवृत्ति में 40,000 शब्द थे। 1857 ई० में इस कोश का दूसरा संस्करण निकला था। दूसरे संस्करण में मराठी कहावतें, वाक्-प्रचार तथा शब्द आदि कुल मिलाकर 20,000 शब्दों की और अभिवृद्धि की गई थी तथा संपूर्ण कोश को व्यवस्थित रूप से क्रमबद्ध किया गया था।

मराठी से अँग्रेज़ी में अनुवाद करने वालों के लिए यह कोश लाभप्रद है। 1932 ई० में प्रकाशित शास्त्र-शुद्ध महाराष्ट्र शब्दकोश से पूर्व मोल्सवर्थ जितना बृहद् आकार का 'मराठी-इंग्रजी कोश' मराठी में नहीं था। कोश से भी अधिक महत्वपूर्ण इसकी विस्तृत प्रस्तावना है—जिसमें मराठी-भाषा के विकास का इतिहास दिया गया है।

मोहनतरंगिणी *(क० कृ०)*

मोहनतरंगिणी के कवि भक्त-श्रेष्ठ कनकदास (दे०) (समय —1550 ई०) हैं। उनकी अन्य रचनाओं—'नळचरित्रे'(दे०), 'रामधान्यचरित्रे'(दे०) और 'हरिभक्तिसार' की अपेक्षा यह आकार में काफ़ी बड़ी है। कवि ने इस रचना के लिए ऐसी वस्तु चुनी है जिससे उनकी कृष्ण-भक्ति निर्बाध रीति से प्रकट हो सकी है। महाभारत और भागवत मे वर्णित कामदहन, अनिरुद्ध-प्रणय और बाणासुर-कृष्ण-युद्ध जैसे प्रसंगों के आधार पर इसका कथानक 'सांगत्य' रूप में प्रकट हुआ है। 'सांगत्य' (दे०) छंद का प्रयोग होने के कारण यह रचना जनता में अधिक लोकप्रिय हुई है। इसमें तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन की झाँकी भी मिलती है। आलोचकों ने लिखा है कि ऐसे वर्णनों में कहीं-कहीं काव्य के साथ इतिहास मेल नहीं खाता, परंतु कवि ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है। इसमें लंबे-लंबे वर्णन हैं और अद्‌भुत रस-पूर्ण चित्र हैं। उनमें करुण और वीर रस के वर्णन अत्यंत हृदयहारी हैं। इसमें स्वभावोक्ति का अधिक प्रयोग हुआ है। कवि की कल्पना की शालीनता और कविता-शक्ति की परिपक्वता इसमें देखी जा सकती है। इसमें लोकोक्तियों और मुहावरो का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। इसमें अष्टादश वर्णन भी हैं। प्रबंध की दृष्टि से यह एक सफल प्रबंध-काव्य है। इसका कवि सामान्य कोटि का कवि नहीं है, इसका संदेश भक्ति का चिरंतन संदेश है, पौराणिक काव्यों में इसका निश्चय ही महत्वपूर्ण स्थान है।

गांधी, मोहनदास करमचंद [जन्म—1869 ई०; मृत्यु—1948 ई०]

महात्मा गांधी का संपूर्ण जीवन राजनेता के रूप में व्यतीत हुआ। भारत में गांधी जी का कार्य-काल सन् 1918 ई० से आरंभ होता है और उसकी समाप्ति 30 जनवरी, 1948 को उनकी हत्या के साथ हो जाती है। गांधी जी में साहित्यिक महत्वाकांक्षा बहुत अधिक नहीं थी परंतु राजनीति की भाँति ही साहित्य पर भी उनका प्रभाव अत्यंत व्यापक रहा। 1922 में इन्होंने गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की जिसने शिक्षा, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्रों में अद्‌भुत योगदान किया। गांधी जी के जीवन का प्रेरक बल सत्य और अहिंसा हैं। धर्म की सर्वोच्च भावना को सामुदायिक रूप प्रदान करने का सर्वाधिक श्रेय गांधी जी को दिया जा सकता है। इन्होंने देश को मातृभाषा और राष्ट्रभाषा हिंदी मे काम करने की प्रेरणा दी। इनकी साहित्यिक निष्ठा किसी भी प्रकार कम नहीं थी, 'तरजुमिया भाषा' के ये कभी हिमायती नही रहे।

गांधी जी द्वारा लिखित कृतियाँ इस प्रकार हैं: **आत्मकथा**—'सत्यना प्रयोगो' (दे०); **गांधीवादी चिंतन**—'अहिंसा', 'असहकार', 'गांधीजीनी जुबानी', 'धर्मयुद्धनुं रहस्य', 'एक सत्यवीरनी आत्मकथा', 'सोक्रेटीज़नो बचाव', 'दक्षिण अफ़्रीकाना सत्याग्रहनो इतिहास'; **धर्म और नीति**—'अनासक्तियोग', 'आश्रमवासी प्रत्ये', 'आश्रमजीवन', 'आश्रमनी बहेनो', 'गीता पदार्थ कोश', 'गीताबोध', 'दयाधर्म', 'दिल्ली डायरी', 'धर्ममंथन', 'नीतिधर्म', 'मंगलप्रभात', 'व्यापक

धर्मभावना', व्रतविचार', 'रामनाम', सामाजिक विषय— *'गामडानी बहारे'*, *'त्यागमूर्ति अने बीजा लेखो'*, *'समाजमा स्त्रीओनु स्थान'*, 'रचनात्मक कार्यक्रम', 'संपूर्ण दारुनिषेध', 'नीति नाशने मार्गे', 'आरोग्यनी चावी', 'आरोग्य विषे सामान्य ज्ञान', अस्पृश्यता संबधी लेखन—'अस्पृश्यता-निवारण', 'धर्मसस्थापक', हरिजन भागवत', 'हिंदू आचार', 'हिंदू धर्मनी कसौटी', 'वर्णव्यवस्था', राजनीति-चितन—'हिंद स्वराज्य', 'आखरी फेसलो', 'गाधी वाइस-राय पत्रव्हेवार', 'देशीराज्योनो प्रश्न', 'चाल्या जाव', अर्थशास्त्रीय विचार— गोसेवा', 'सपत्तिशास्त्र', 'सर्वोदय', 'सो टका स्वदेशी', अन्य—'गाधी विचार दोहन', 'अगत विचार', 'गाधी गिरामृत', 'गाधीजीना वचनामृत', 'गाधीजीनी दिव्य वाणी', 'महात्मा गाधीजीनु मनोमदिर', 'महात्मा गाधीजीना पत्रो', 'महात्मा गोखलनो वारसो', 'स्व० महात्मा गोखलेजीनो जीवनसदेश', 'इजिप्तनो उद्धारक'। इसके अतिरिक्त गाधीजी का सबध', 'इडियन ओपीनियन', नवजीवन', 'हरिजनबधु', 'यग इडिया' और 'हरिजन' नामक पत्र पत्रिकाओ से रहा है।

गाधीजी का उक्त विपुल साहित्य साहित्य-सर्जन के लिए नही था, लोकहित की भावना से रचा गया था। इसमे विचारो की नवीनता और भाषा की सरलता दर्शनीय है। वर्तनी के कट्टर आग्रही गाधी जी की प्रेरणा से तैयार 'गुजराती सार्थ कोश' भाषाशुद्धि के आदोलन को पुष्ट करने मे अत्यत सहायक सिद्ध हुआ। गाधी जी का गुजराती साहित्य पर इतना अधिक प्रभाव पडा कि विवेचको ने इस युग का नाम ही गाधी युग रख दिया।

मोहन राकेश (*हिं० ले०*) [जन्म—1925 ई०, मृत्यु—1972 ई०]

इनका जन्म पजाब प्रात के अमृतसर नगर मे हुआ तथा शिक्षा दीक्षा लाहौर मे। यही से इन्होने शास्त्री के अतिरिक्त हिंदी और सस्कृत मे एम० ए० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। यद्यपि इन्होने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारभ काव्य सृजन से किया था, किंतु इनका प्रमुख प्रदेय नाट्य-रचना के क्षेत्र मे रहा है। 'इसान के खंडहर', 'नये बादल', 'जानवर और जानवर', 'रोएँ-रेशे' आदि मे इनकी प्रतिनिधि कहानियाँ सकलित हैं तो *'अँधेरे बद कमरे'*, (द०), 'नीली रोशनी की बाँहे', 'काँपता हुआ दरिया' और 'न आने वाला कल' इनकी प्रसिद्ध औपन्यासिक कृतियाँ हैं। 'परिवेश' मे इनके निबध सकलित हैं तो 'आखिरी चट्टान तक' मे यात्रा-विवरण। 'आषाढ का एक दिन' (दे०) *'लहरो के राजहस'* और *'आधे अधूरे'* इनकी प्रसिद्ध एव प्रतिनिधि नाट्य-रचनाएँ हैं। 'आषाढ का एक दिन' तथा 'लहरो के राजहस' मे लेखक ने ऐतिहासिक कथानक को ग्रहण करते हुए भी उसे वर्तमान युगीन सदर्भो के साथ बखूबी जोड दिया है। 'आषाढ का एक दिन' मे कालिदास के माध्यम से स्वतत्र लेखन तथा राजाश्रित लेखन की समस्या को उभारते हुए इस तथ्य पर बल दिया गया है कि राजाश्रय सृजनात्मक प्रतिभा को कुठित कर देता है तो 'लहरों के राजहस' मे राजकुमार नद तथा उसकी पत्नी सुदरी के माध्यम से इस चिरतन प्रश्न को उठाया गया है कि प्रवृत्ति तथा निवृत्ति मे कौन बडा है। नाटककार ने इस द्वद्व से जूझने वाले व्यक्ति के अतर्द्वद्व का जो मनोवैज्ञानिक निरूपण किया है वह इस नाट्य-कृति की ही नही अपितु मोहन राकेश की लेखन-शैली की निजी विशेषता है। 'आधे-अधूरे' मे मध्यवर्गीय परिवार के जीवन का अत्यत सशक्त चित्र प्रस्तुत किया गया है। उच्चवर्गीय बनने की आकाक्षाओ मे अपने चारो ओर अनावश्यक आवश्यकताओ तथा कामनाओ का जाल फैलाते हुए मध्यवर्गीय परिवार किस प्रकार निम्नवर्गीय होकर रह जाता है और इस बीच पारिवारिक जीवन मे विषमता, कुत्सा, बिखराव तथा टूटन की जो स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं उनका जैसा जीता-जागता चित्रण इस नाटक म मिलता है वैसा अन्यत्र नही मिलता। भारतीय नाट्य-शैली का सर्वथा परित्याग न करते हुए भी पश्चिमी नाट्य शैली के समुचित उपयोग से अपने नाट्य शिल्प को निखार कर सार्थक प्रतीको के सहारे अतीत को वर्तमान सदर्भो से जोडकर सफल रग नाटको का प्रणयन मोहन राकेश के नाट्य लेखन की सर्वप्रमुख विशेषता रही है।

मोहनसिंह (*प० ले०*) [जन्म—1905 ई०]

मोहनसिंह का जन्म होती मरदान (पश्चिमी पाकिस्तान) मे हुआ था। मोहन सिंह की काव्य-चेतना पर इस इलाके की लोक-कथाओ, सामाजिक रुचियो तथा भव्य प्राकृतिक पृष्ठभूमि का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

'सावे पत्तर' (दे०) मोहनसिंह की प्रारभिक कविताओ का सग्रह है। इनमे रोमानी आदर्शवाद का स्वर प्रमुख है और उर्दू व फारसी का पर्याप्त प्रभाव है। 'कसुमडा' कवि की काव्य-चेतना के विकास को सूचित

करता है। इस संग्रह की कविताएँ सामाजिक दायित्व के विचार से जुड़ी हुई हैं। इनमें कवि का काव्य और शैली उसकी अपनी है और वह वाह्य प्रभावों से मुक्त रहा है। दूसरे काव्य-संग्रह 'अधवाटे' में मानसिक उलझनों और सामाजिक द्वंद्वों का चित्रण है और 'कच-सच' (दे०) और 'आवाजां' में समाजवादी विचारधारा को काव्यात्मक अभिव्यक्ति मिली है। 'वड्डा वेला' की रचनाओं में विद्रोह भी है और आत्मपीड़ा भी, प्रकृति का कलात्मक चित्रण भी है और प्रतीकवादी भावाभिव्यंजना भी। इस कवि के काव्य के विशिष्ट गुण हैं: भाव की ऊष्मा, उदात्त स्वर, रसमयता और अंतःस्पंदनकारी अप्रस्तुत-विधान।

मोहनसिंह पहले पंजाबी कवि हैं जिनके काव्य में आधुनिक भावबोध प्रतिफलित हुआ है। शब्दों की तराश, संगीतात्मक लय, मौलिक अलंकार-विधान और छंद की संरचना आदि की दृष्टि से इनका कोई सानी नहीं। इन्होंने भाई वीरसिंह (दे०) की परंपरा से अलग हट कर एक नयी काव्य-धारा का प्रवर्तन किया।

मोहनसिंह, डाक्टर *(पं० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

डा० मोहनसिंह की गणना पंजाबी के मूर्धन्य आलोचकों में की जाती है। इन्होंने पंजाबी तथा अंग्रेज़ी भाषाओं में पंजाबी-साहित्य का इतिहास लिखा है। वस्तुतः पंजाबी में साहित्य के इतिहास-लेखन का विधिवत् सूत्रपात सच्चे अर्थों में डा० मोहनसिंह के इतिहास से ही होता है।

आलोचक के साथ ही साथ डा० मोहनसिंह पंजाबी में भाई वीरसिंह (दे०)-युग एवं प्रवृत्ति के प्रमुख कवि भी हैं। 'मस्ती' नामक काव्य-संग्रह में इनकी लगभग तीन सौ रुबाइयाँ संगृहीत हैं, जिनमें रहस्यवादी धारणा की पुष्टि होती है। इन्होंने गुरुवाणी, वेदांत, योग और सूफ़ी प्रभाव को उन्मुक्त रूप से स्वीकार किया है।

डा० मोहनसिंह का पहला कविता-संग्रह 1929 ई० में 'घुप्प घां' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् उनका तीसरा संग्रह 'जगत तमाशा' नाम से प्रकाशित हुआ।

काव्य-क्षेत्र में इनकी विशेष प्रतिष्ठा इनकी 'रुबाइयों' के कारण है। इन रुबाइयों में कवि की दार्शनिक गंभीरता और काव्य-प्रतिभा की गहरी चमक है।

अन्य प्रमुख कृतियाँ—'सूफ़ीआं दे कलाम', 'भगती काल', 'हीर बारस' (समालोचना); जितेंदर साहित सरोवर' (निबंध-संग्रह); 'सोमरस' (कविता-संग्रह); 'दविंदर बत्तीसी', 'रंग तमाशे' (कहानी-संग्रह)।

मोहनसिंह वैद, भाई *(पं० ले०)* [जन्म—1881 ई०; मृत्यु—1936 ई०]

ये पंजाबी गद्य साहित्य के प्रसिद्ध लेखक हैं जिन्होंने दो सौ से अधिक पुस्तकें हिंदी-अंग्रेज़ी साहित्य से अनूदित की हैं। बेकन, वालेस, पीसो आदि पश्चिमी लेखकों की कृतियों के आधार पर इन्होंने स्वयं भी रचनाएँ की हैं। 'इनमें दंपति विचार', 'इक सिक्ख घराना', 'श्रेष्ठ कुलां दी चाल' (दे०), 'सुभाग कौर' आदि प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं में भारतीय सदाचार एवं सनातन रीति-नीति पर अधिक बल दिया गया है। ये 'दुःख-निवारण' मासिक पत्र के संपादक भी रहे थे जो अब भी तरनतारन से प्रकाशित होता है।

मोहमुळ् *(त० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1961 ई०]

यह आधुनिक उपन्यासकार ति० जानकीरामन् (दे०) का ख्याति-प्राप्त उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास की विशेषताएँ हैं—आंचलिकता, प्रायः पात्रों के वार्तालाप द्वारा कथा-सूत्र का संचालन तथा पात्र-मनोवृत्तियों पर बल देने वाली वर्णन-शैली का उपयोग। तमिल प्रदेश के तंजौर ज़िले का प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण तथा उस क्षेत्र की बोली का वैशिष्ट्य इस रचना में विलक्षण रूप से प्रस्तुत है। तंजौर ज़िले में एक संपन्न भूस्वामी घराने के युवक 'बाबू' के हृदय में 'यमुना' नामक बालिका के प्रति 'मोह' (प्रेम) उत्पन्न होता है पर सामाजिक बंधनों के काँटे उसके विकास में बाधा उपस्थित करते हैं। एक और स्थानीय भू-स्वामी की रखैल महाराष्ट्रीय नारी की संतान होने से 'यमुना' से 'बाबू' का विवाह होना असंभव है। कुछ दिनों में यमुना के पिता गाँव में मर जाते हैं और वह ग़रीबी की यातनाएँ झेलते हुए मद्रास शहर के उस बीमा-दफ़्तर तक पहुँच जाती है जहाँ उसका प्रेमी 'बाबू' नौकरी कर रहा है। विवश होकर युवक अपनी प्रेमिका को एक अनाथालय में भरती करा देता है। समय के हेर-फेर के साथ अंततः बाबू के रूढ़िवादी पिता को अपने पुत्र और उसके बचपन की सहेली दोनों की मनःस्थितियों का सही परिचय हो जाता है और वह उदार बनकर उनके युगल जीवन की सहमति दे देता

है। इस प्रकार प्रेम-रूपी 'मोह' काँटे (मुल) दूर करके अपना रास्ता निकाल ही लेता है। इस उपन्यास की कथा-वस्तु-योजना मे जटिलता नही है। इसकी सार्थकता वातावरण-सृष्टि मे है।

मोहराजपराजय (स० कृ०) [समय—तेरहवी शती]

'मोहराजपराजय' एक प्रतीक नाटक है। इसके कर्ता जैन कवि यशपाल (दे०) गुजरात अभयदेव (समय—1229-1238 ई०) के कृपा-पात्र थे।

प्रस्तुत नाटक मे पाँच अक हैं। इसकी रचना जैन धर्म के प्रचार के लिए की गई है। इसका प्रथम प्रयोग कुमारविहार मे महावीर के उत्सव पर हुआ। इसमे गुजरात के चालुक्य वशी राजा कुमारपाल का जैन धर्म स्वीकार करना, पशुओ की हिंसा का निषेध करना, तथा हेमचद्र की आज्ञा से नि सतान मरने वालो की सपत्ति को राज्याधीन न करना आदि विषयो का वर्णन किया गया है।

इसमे कुमारपाल, हेमचद्र तथा विदूषक तो मनुष्य पात्र हैं, तथा पुण्यकेतु, विवेक, कृपासुदरी, व्यवसाय सागर आदि शोभन तथा अशोभन गुणो के प्रतीक हैं। इस प्रकार इस नाटक मे मूर्त तथा अमूर्त पात्रो के परस्पर सम्मिलन तथा वार्तालाप का समावेश किया गया है। सरल तथा सुबोध सस्कृत मे लिखे इस नाटक को लबे समास तथा भडकीले गद्य के प्रयोग से बचाया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह नाटक बडा महत्वपूर्ण है।

मौज-ए तबस्सुम (उर्दू० कृ०)

यह एक हास्य निबध-सग्रह है। इसके लेखक अजीम बेग चुगताई (दे०) हैं। इसमे विभिन्न विषयो पर निबध मिलते हैं। अजीम बेग चुगताई खिलदडे लेखक हैं। उन्हें हर बात मे हँसी का पहलू और हर घटना मे प्रहसन की बात दिखाई दे जाती है। वे स्वय हँसते हैं और दूसरो को भी हँसाते हैं। वे विचार की आफ्त से दूर रहते हैं और बौद्धिक व्यायाम की ओर दृष्टिपात नही करते। गभीर स्थिति उनके लिए वही कुछ है जो मनातोले फ्रास के लिए मजहब या एक मौलवी के लिए शैतान।

चुगताई साहब हल्की-फुल्की चीजें लिखते हैं लेकिन उनमे जवानी का-सा जीवन है और जीवन मे वे जवानी भर देन हैं। उनकी भाषा मधुर है तथा उसमे फूलो की गमक और प्रफुल्लता है।

मौलाबख्श कुश्ता (पं० ले०) [जन्म—1876 ई०]

श्री कुश्ता का जन्म अमृतसर मे हुआ था जहाँ वे भारत-विभाजन तक रहे। बाद मे वे लाहौर जाकर बस गए थे। काव्य-रचना का शौक इन्हे बचपन से ही था। इन्होंने लाला धनीराम चातरिक (दे०) और श्री एम० एम० चरणसिंह के साथ मिल कर पजाबी काव्य-दरबारो को लोकप्रियता दिलाई थी।

इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं: 'दीवाने कुश्ता', 'हफत पाकर' और 'हीर-राँझा'। 'हीर-राँभा' बहुत लोकप्रिय हुई थी। इनकी कविताओ मे उर्दू और फारसी के शब्दो का काफी प्रयोग हुआ है। पर ऐसे शब्दो का प्रयोग इन्होने इस प्रकार किया है कि वे पजाबी भाषा मे सहज रूप से रसे-बसे प्रतीत होते हैं।

इनकी कविताओ मे नैतिक मूल्यो का विशेष रूप से आग्रह किया गया है।

मौलूद (सिं० पारि०)

यह सिंधी कविता का एक प्रकार है जिसमे इस्लाम मजहब के किसी पैगबर, दरवेश अथवा धार्मिक महापुरुष के जन्म लेने का उल्लेख कर, प्रसन्नता की अभिव्यक्ति करते हुए भक्त कवि उसके लिए अपनी श्रद्धा और प्रेम को प्रकट करता है। मौलूद का शाब्दिक अर्थ है 'इसान उत्पन्न हुआ अथवा उत्पन्न बालक'। सिंधी-भक्ति-काव्य के भीतर इस्लाम मे श्रद्धा रखने वाले कई मुसलमान भक्त कवि हुए हैं जिन्होंने 'मौलूद' रचे हैं। ईद, विवाह और खुशी के अवसरो पर सिंध म मुसलमान अभी तक 'मौलूद' गाते हैं। डा० नबी बख्श खान बलोच (दे०) ने 'मौलूद' नामक कविताओ का वृहत् सग्रह तैयार किया है जो 1961 ई० मे 'सिंधी अदबी बोर्ड', हैदराबाद (सिंध) से प्रकाशित हो चुका है।

यक्ष (स० पा०)

मेघ को अपनी विरहिणी प्रिया पत्नी के पास भेजने वाला यक्ष कालिदास (दे०) की कल्पना है जिसका सृजन उन्होंने 'मेघदूत' (दे०) मे किया है।

यक्ष के पूर्ववृत्तात के विषय मे अनेक प्रकार की अटकलबाजियाँ की गई हैं। पर कालिदास ने केवल उसके अपने कर्तव्यपालन से च्युत होने का ही सकेत किया

है। कुबेर के द्वारा वर्ष-पर्यंत के निर्वासन के दंड को भी वह भारी नहीं मानता यदि उसकी दिव्य शक्तियाँ छीन न ली गई होतीं।

वह विंध्य की एक श्रेणी रामगिरि के आश्रमों में अपने दिन काट रहा था कि बरसात आ गई। बादल को देखकर अपनी दशा से ही उसने सोचा कि यदि प्रिया पत्नी को सांत्वना का कोई संदेश न गया तो वह इन बादलों को देख प्राण त्याग देगी। इतनी दूरी पर स्थित अपनी नगरी अलका में स्थित अपने भवन की स्वामिनी को संदेश ले जाने वाला कौन हो सकता है। उसने सोचा, इसी बादल के द्वारा संदेश भेजना ठीक होगा।

यक्ष ने इसी निमित्त मेघ को रामगिरि से लेकर अलकापुरी के मार्ग का विवरण दिया। बीच में पड़ने वाले नगरों, पर्वतों एवं नदियों तथा जंगलों का वर्णन देना भी अनिवार्य था। अलकापुरी, उसके वैभव एवं भवनों का वर्णन तथा उसमें रहने वाले व्यक्तियों के क्रिया-कलाप का विवरण कवि के मस्तिष्क की कल्पना मात्र नहीं, अपितु तत्कालीन उच्चवर्ग के समाज का चित्र है।

यक्ष की मनोदशाएँ मानव-मन की दशाएँ हैं। उसकी वेदना प्रत्येक विरही की वेदना है।

यक्षगान बयलाट *(क० कृ०)*

कर्नाटक के सुप्रसिद्ध साहित्यकार डा० शिवराम कारंत (दे० कारंत) की कृति 'यक्षगान बयलाट' 1957 ई० में प्रकाशित हुई। इस कृति को 1958 ई० में साहित्य अकादेमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ। लोकगीत-नाट्य को 'यक्षगान' कहा जाता है। 'बयलाट' (बयलु-आट) का अर्थ है मैदान (खुले स्थान) का खेल साहित्य की यह विधा कन्नड और तेलुगु साहित्य की ही विशेषता है। केरल की 'कथकळि' इससे मिलता-जुलता रूप है, परंतु कुछ बातों में भिन्न भी है।

'यक्षगान' एक समष्टि कला है। कर्नाटक की सांस्कृतिक परंपरा का यह अत्यंत सुंदर अंग है। एक समय था जबकि यह कला जन-जीवन के लिए सर्वाधिक स्फूर्तिदायिनी थी। कर्नाटक के मेलनाडु (पर्वतीय प्रदेश) में यह अब भी जीवंत कला है। अन्य स्थानों में इसका रूप बहुत कम दृष्टिगत होता है। पुस्तक के प्रथम भाग के अंतर्गत पहले अध्याय 'समष्टि कला, स्थूल पृष्ठभूमि' में लेखक ने इस काल के स्वरूप पर विचार करते हुए इसका ऐतिहासिक महत्व स्पष्ट किया है। दूसरे अध्याय में ऐसे खेल खेलने वाली संस्थाओं का परिचय दिया गया है। दक्षिण और उत्तर कन्नड जिलों में ही ऐसी संस्थाएँ विशेषतः विद्यमान हैं। 'बयलाट' खेलने वाले लोगों के दल को 'मेळ' कहते हैं। उनके खेलों के कथानक अधिकतर दशावतारों से संबंधित होने के कारण ऐसे दल को 'दशावतार मेळ' भी कहते हैं। 'मेळ' की अधिष्ठात्री देवी शक्ति अर्थात् दुर्गा का कोई रूप है। कुछ 'मेळ' गणपति के नाम से भी हैं। ये कला-संस्थाएँ जन्म-मरण के सिद्धांत से रहित नहीं हैं। तीसरे अध्याय में 'नाटक की वस्तु, चित्रण माध्यम' पर विचार किया गया है और बताया गया है कि महाभारत, रामायण और भागवत प्रसंगों से संबंधित यक्षगानों का प्रकाशन हुआ है। बयलाट के उद्‌भव पर चौथे अध्याय में विचार किया गया है। पाँचवें में रंगमंच की पद्धतियों पर प्रकाश डाला गया है। 'बयलाट' का रंगमंच क्या है, चार खंभों के बीच का, सुरक्षित, खुला स्थान है जिसके चारों ओर लोग बैठ सकते हैं। एक तरफ़ भागवत (बाजा बजाने वाला गायक) बाजे के साथ खड़ा रहता है। आवश्यकता पड़े तो उसके बैठने के लिए स्थान रहता है। साधारणतया पंद्रह फ़ुट चौकोर स्थान रंगमंच का होता है। 'सभा-लक्षण-परिचय' छठे अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। सातवें अध्याय से लेकर बारहवें अध्याय तक यक्षगान की परंपरा और स्वरूप, नृत्य की महत्ता, लिखित पद्य और खेलने में प्रयुक्त गद्य, वेश-भूषाएँ, खेल के विविध रूप और इस कला के पुनरुत्थान के कार्य—इनके संबंध में विचार किया है।

पुस्तक का द्वितीय भाग चार अध्यायों में यक्षगान-कला का इतिहास प्रस्तुत करता है। प्रथम तीन अध्यायों में क्रमशः सत्रहवीं, अठारहवीं और उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध यक्षगान-कलाविदों का—यथा देविदास, नागप्पय्या, सुब्ब, सिद्धय्या, राम मूलिक राम हळेमक्कि, नगरद सुब्ब, रामकृष्णय्या, नंदलिके लक्ष्मीनारायणप्पा आदि का परिचय मिलता है। अंतिम अध्याय में बीसवीं शती के कलाविदों के नामोल्लेख के साथ उपसंहार किया गया है। पुस्तक के अंत में परिशिष्ट दिया गया है जिसमें ताड़पत्रों का अत्यंत उपयोगी विवरण है। कारंत जी की रचनाओं में इस पुस्तक का विशेष स्थान है, इस विधि को लेकर लिखी नयी पुस्तकों में यह सर्वश्रेष्ठ और अत्यंत प्रामाणिक है।

यक्षगानमु *(तें० पारि०)*

आंध्र का एक प्रकार का देशी नाटक 'यक्ष-

गानमु' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका आरभ आध्र प्रात मे होते हुए भी क्रमश यह दक्षिण के अन्य प्रातो मे भी प्रचलित हुआ। तेलुगु मे चेबरौलि के द्वारा लिखा गया (पद्रहवी शती) 'सौभरिचरितमु' सर्वप्रथम यक्षगान माना जाता है। पर यह आज अनुपलब्ध है। उपलब्ध यक्षगानो मे कदूकूरि रुद्रकवि कृत (सोलहवी शती) सुग्रीव विजयमु ही सबसे प्राचीन है। यक्षगान का विस्तार तो सत्रहवी शती ई० के लगभग दक्षिण की तजौर नामक रियासत मे ही सपन्न हुआ था। उक्त काल यक्षगान का स्वर्णयुग कहा जाता है। तजौर के शासक विजयराघव नायक इसके प्रमुख पोषक थे। उस समय उक्त रचना की लोकप्रियता ऐसी थी कि नायक राजाओ के बाद आए हुए शाहजी जैसे मरहठा शासको ने भी कई यक्षगानो की रचना की थी। अठारहवी तथा उन्नीसवी शतियो मे भी यक्षगान बराबर लिखे जाते थे।

आरभ मे यक्षो द्वारा गाए जाने के कारण इसका नाम 'यक्षगान' से रूप मे प्रचलित हुआ था। अर्थात यह आरभ मे गेय तत्त्व-प्रधान था। पर क्रमश नाट्य तथा अभिनय को भी इसमे स्थान मिलता गया। सडको पर प्रदर्शित होने वाले 'यक्षगान' को राजदरबार मे प्रवेश प्राप्त हुआ। इसके परिवर्तन मे यह एक प्रबल कारण है। 'रगडा', 'द्विपदा' आदि देशी छद तथा अन्य गीत और पद्य 'यक्षगानमु' के प्रमुख अग हैं। इन छदो तथा गीतो के बीच प्रकरण के अनुसार मिलाने वाले छोटे-छोटे गद्याश भी प्रयुक्त होते थे। क्रमश इन छोटे गद्याशो के स्थान पर नाटको के बीच की तरह गद्यबद्ध भाषणो का प्रयोग होने लगा। गीत और नाट्य के साथ-साथ अभिनय भी प्रमुख होने लगा। वैसे ही नाट्य भरत-विद्या स प्रभावित तथा छद पाडित्यपूर्ण होने लगे। महाराष्ट्र शासको के समय यक्षगान पर सस्कृत-नाटक का भी अधिक प्रभाव पडा। नादी, प्रस्तावना आदि का प्रवेश कर दिया गया और कथानक अको मे विभाजित किया गया।

प्रधानत काव्य, पुराण तथा इतिहास आदि से सरस और प्रचलित कथाश लेकर यक्षगान लिखे जात थे। पर तजौर के नायक-राजाओ के समय स्थानीय तथा समसामयिक प्रसगो को लेकर भी अनेक यक्षगान लिखे गए। अधिकतर इनमे शृगार तथा हास्य का प्राधान्य रहता था। 'यक्षगान' के विकासक्रम का इस प्रकार निर्देश किया जा सकता है—साधारण जनता के बीच प्रचलित स्वतत्र देशी-प्रदर्शन का रूप, राजदरबारो म प्रविष्ट शास्त्र-पाडित्य-प्रभावित रूप तथा सस्कृत-नाटक से प्रभावित रूप।

'यक्षगानमु' न तो विशिष्ट साहित्यिक महत्त्व रखने वाली रचनाओ के अतर्गत आता है और न आधुनिक नाटक का पूर्वरूप कहा जा सकता है। पर एक स्वतत्र देशी नाटक-रचना के रूप मे तेलुगु साहित्य के अतर्गत यक्षगान' कम महत्त्व का नही कहा जा सकता।

यज्ञनशास्त्री, सोमवि (ते० ल०) [जन्म—1913 ई०]

ये कथाकार एव नाटककार हैं। इनकी रचनाओ मे हास्य तथा व्यग्य की प्रधानता रहती है। अपने नाटको मे इन्होने पश्चिमी नाटको के विधान का अनुसरण किया है और इनमे निर्मल हास्य की छटा दर्शनीय है। 'लचपट्टिन आफीसरु' (घूसखोर अफसर), 'लाभ चेसिन गोल्लदि' (ग्वालिन जिसने लाभ पहुँचाया) आदि इनके कहानी सग्रह हैं और 'कल्याणी', 'महानुभावुलु' आदि इनकी नाटिकाएँ हैं।

यथार्थदीपिका (म० कृ०)

वामन पडित (दे०) की यह रचना श्रीमदभगवद्-गीता (दे०) की काव्यबद्ध टीका है। सत ज्ञानेश्वर (दे०) ने अपनी गीता टीका का नाम भावार्थदीपिका' (दे० ज्ञानेश्वरी) रखा था परतु वामन पडित न 'यथार्थ' शब्द पर बल देकर अपने भाष्य को मूल ग्रथ के अधिक निकट सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। अत दोनो टीकाओ की शैली मे भी मूलभूत अतर हो गया है। ज्ञानेश्वर की टीका मे सरसता और काव्यत्व अपने उत्कर्ष पर हैं किंतु 'यथार्थ-दीपिका' म छद मात्र ही काव्यत्व का बोधक है और अनेक स्थानो पर उसका रूप गद्यात्मक बनाया गया है। इसकी ओवी सख्या बाईस हजार दो सौ छब्बीस है। वामन पडित ने अनेक स्थानो पर सत ज्ञानेश्वर स अपनी मत भिन्नता व्यक्त की है।

ज्ञानमार्ग की दृष्टि से अद्वैत सिद्धात को तथा भक्तिमार्ग की दृष्टि से सगुण-भक्ति सिद्धात का मिश्रण कर ज्ञानयुक्त सगुण भक्ति की मान्यता पर वामन पडित न सर्वत्र बल दिया है। इस रचना मे कृष्ण-भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन है। इनकी भाषा-शैली मे तर्क की प्रधानता के कारण पाडित्य का वैभव तो है पर काव्य की मसृणता नही है। इस रचना म वामन पडित की सत्य निष्ठा, व्यवहारज्ञान और आध्यात्मिक चिंतन की प्रखरता का महत्त्व व्यक्त हो जाता है।

यथार्थवाद (हिं० पारि०)

यह अंग्रेजी शब्द 'रियलिज़्म' का हिंदी-पर्याय है। इसके अनुसार साहित्य में जीवन और जगत् का यथातथ्य अंकन होना चाहिए। साहित्य में न तो कथा की अतिरंजना, आरोपित भव्यता एवं आदर्शमयता, कल्पित एवं असंभाव्य घटना-विधान और रोमानी रंग के लिए स्थान है और न अभिव्यंजना के शैली-शिल्प के चारुत्व एवं अलंकरण-प्रसाधन के लिए ही। इस प्रकार यह वाद लेखक से नितांत निर्वैयक्तिक एवं निस्संग दृष्टि तथा तटस्थ निरूपण की माँग करता है। आभिजात्यवाद (दे०), आदर्शवाद (दे०) और स्वच्छंदवाद (दे०) इसका सीधा संघर्ष है।

साहित्यिक आंदोलन के रूप में यह वाद पश्चिम में 1830 ई० की फ्रांसीसी क्रांति के बाद अस्तित्व में आया। इस युग के साहित्यकारों ने उच्च वर्ग के ही पात्रों को अपनाए जाने का विरोध किया था तथा 'निम्न वर्ग के पात्रों को नायक के रूप में अपनाए जाने का आग्रह किया था। 1839 ई० में फोटोग्राफ़ी के आविष्कार ने भी इसकी 'यथातथ्य' प्रत्यंकन' की अवधारणा के विकास में किसी सीमा तक योग दिया था। इसके अतिरिक्त उस युग में प्रचलित सत्य पर आधारित विभिन्न दार्शनिक मान्यताएँ तथा विज्ञान के प्रति नवोदित चेतना भी इसके स्वरूप-निर्माण में सहायक हुई थीं।

यथार्थवाद को सर्जनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले पश्चिम के प्रारंभिक रचनाकारों में फ्रांसीसी लेखक बालज़ाक और अंग्रेज लेखक डिकेंस उल्लेखनीय हैं। 1857 ई० मे प्रकाशित फ़्लॉबर्ट के विख्यात उपन्यास 'मेडम बोवेरी' ने यथार्थवाद को एक सुनिश्चित दिशा प्रदान की थी। इसके बाद उन्नीसवीं शती के अनेक लेखकों ने कथा-साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवादी दृष्टि को साग्रह अपनाया था जिनमें इंग्लैंड के थैकरे और इलियट, रूस के तुर्गनेव तॉल्स्तॉय और दॉस्तोव्यस्की तथा जर्मनी के फ़ॉन्तेन और थॉमसमान मुख्य हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओं का कथा-साहित्य भी यथार्थवाद से बहुत दूर तक प्रभावित है।

यथार्थवाद निश्चय ही एक महत्वपूर्ण और स्वस्थ साहित्य-दर्शन है, किंतु इसकी सतर्कता एक सीमा तक ही सीमित है। इसे बहुत दूर तक घसीटे जाने में दो प्रकार की हानियाँ हो सकती हैं : एक तो यथातथ्यता की रक्षा के लिए घटना एवं वस्तु-वर्णन के अनावश्यक विस्तार से उत्पन्न होने वाली ऊब तथा दूसरी, भाषा और वर्ण्य दोनों स्तरों पर अश्लीलता के सीमांतों तक पहुँच जाने की प्रवृत्ति।

यमुना (म० पा०)

हरिनारायण आपटे (दे०) के सामाजिक उपन्यास 'पक्ष लक्षांत कोण घेतो' (दे०) (ध्यान कौन देता है) की नायिका यमुना अथवा यमू तत्कालीन महाराष्ट्र की उन उत्पीड़िता और पददलित स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है जो समाज की अनेक अंधरूढ़ियों और सम्मिलित परिवार में विधवा पर होने वाले विविध अत्याचारों के कारण नाटकीय जीवन बिताते हुए अंत में मृत्यु द्वारा उस पीड़ा से मुक्ति पाती थीं। उसके बचपन का चित्रण यदि बालिका के मन का यथार्थ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है तो विवाह से पूर्व और बाद में उसके मन में उठने वाली भाव-तरंगों का चित्रण युवती-मन का परिचय देता है। पति को देवता मान उसकी प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य कर उसके तथा परिवार के लिए सब कुछ सहने वाली यह स्त्री चतुर, मधुर और स्वच्छंद स्वभाव की तो है ही, उसमें शालीनता, निरहंकारिता और प्रगतिशीलता भी है। कुल मिलाकर वह एक आदर्श हिंदू पत्नी और प्रगतिशील होते हुए भी परिस्थितियों में अवश नारी है।

यमुना पर्यटन (म० कृ०) [रचना-काल—1857 ई०]

यदि कुछ विद्वान बाबा पदमनजी (दे०)-कृत इस रचना को मराठी उपन्यास मानते हैं तो कुछ अन्य उसके आकार और रचना-शैथिल्य के कारण इसे उपन्यास ही स्वीकार नहीं करते। ईसाई धर्म की पुस्तकों का प्रभाव होने के कारण यह पुस्तक लोकप्रिय नहीं हो सकी, परंतु पारिवारिक जीवन के यथार्थ-चित्रण और विधवाओं की दयनीय स्थिति के प्रति सहानुभूति जगाने, समाज-सुधार की उत्कट आकांक्षा, मानवतावादी दृष्टि, सरल और अनलंकृत भाषा के कारण यह उपन्यास हरिनारायण आपटे (दे०) के सामाजिक उपन्यासों का पूर्वचिह्न कहा जा सकता है।

ययाति (म० कृ०) [रचना-काल—1959 ई०]

वि० स० खांडेकर (दे०) का यह उपन्यास नाम से पौराणिक होकर भी पौराणिक नहीं है। वस्तुतः लेखक ने 'महाभारत' (दे०) के एक उपाख्यान के कथासूत्र के आधार पर स्वतंत्र उपन्यास लिखा है। कथावस्तु में परिवर्तन ही नहीं पौराणिक पात्रों की नवीन संरचना और अनेक काल्पनिक पात्रों की उद्भावना भी इस तथ्य की ओर

संकेत करती है। पौराणिक उपाख्यानो मे मानव हृदय को रससिक्त और विचारो को झकझोरने वाली अपार सामग्री होते हुए भी मराठी उपन्यासकार उनके प्रति प्राय उदासीन रहे, इसे लक्ष्य कर लेखक ने पौराणिक उपन्यास लिखने का विचार किया। साथ ही 1942 से 1952 ई० के दशक मे देश की भौतिक प्रगति तथा नैतिक अधोगति देख उसका मन कचोट उठा और पौराणिक ययाति तथा भोग-लिप्सा के पीछे अधा होकर दौडने वाले मानव मे साम्य देख उसे 'ययाति' लिखने की प्रेरणा मिली। पात्रो का जो चित्र पुराणो मे उपलब्ध होता है उसके प्रति आश्वस्त न होकर तथा उनके प्रति न्याय-भावना से प्रेरित होकर ही उसने यह उपन्यास लिखने का निश्चय किया। अत उपन्यासकार का उद्देश्य केवल पौराणिक कहानी कहना मात्र नही है। उसमे इसने पात्रो का मनोवैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत किया है— यहाँ शर्मिष्ठा केवल वासना की तृप्ति के लिए ययाति (दे०) को अपने प्रेम-पाश मे आबद्ध करने वाली क्षत्राणी, वात्सल्यमयी माता तथा प्रेमल पत्नी है।

'महाभारत' का कच सजीविनी विद्या का हरण करने के बाद देवलोक चला जाता है, फिर दृष्टिगत नही होता पर यहाँ उसका उत्तर चरित्र भी प्रस्तुत किया गया है। वह आत्मविकास के लिए प्रयत्नशील मानव का प्रतिनिधि है तो ययाति आठो पहर सुख-भोग मे लिप्त आज के अतृप्त मानव का।

लेखक ने उपन्यास में प्रेम के विविध रूप प्रस्तुत किये हैं। एक ओर यदि कच के माध्यम से उसने उदात्त प्रेम का चित्र प्रस्तुत किया है तो दूसरी ओर ययाति और देवयानी के दु खी वैवाहिक जीवन का कारण पति पत्नी का स्वभाव और रुचि-वैषम्य बताया है। लेखक ययाति के जीवन-चित्र तथा मानसिक सघर्ष द्वारा बताना चाहता है कि मनुष्य भोग एव इद्रिय-सुख के सागर मे कितना ही डूबे, उसकी वासना कभी तृप्त नही हो सकती, अत मर्यादित उपभोग ही वाछनीय है। कच के माध्यम से लेखक सदेश देता है कि मानव आत्मा अनेक गुप्त, सात्विक शक्तियो का भाडार है, आज के त्रस्त मानव को इन्ही शक्तियो का विकास करना चाहिए। वासना एव मनोविकारो का नियत्रण और उदात्तीकरण कर, नव जीवन-मूल्यो को अपना कर ही सुख-शाति स्थापित की जा सकती है, शुक्राचार्य के समान केवल सदिच्छा और शुभकामना व्यक्त करने से काम नही चलेगा।

आत्मा परमात्मा, सुख दु ख, जीवन मृत्यु, सुख-आनद आदि विषयो पर गभीर तात्त्विक विमर्श, काव्यात्मक भाषा, काव्यमय रमणीय कल्पना, गूढार्थ सूक्तियाँ उपन्यास को कलात्मक सौंदर्य प्रदान करती हैं।

ययाति *(म० पा०)*

यह वि० स० खाडेकर (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'ययाति' (दे०) का नायक है।

ययाति पौराणिक पात्र होते हुए भी आज के नये-नये सुखोपभोग के पीछे पागल बने उस अतृप्त मनुष्य का प्रतिनिधि है जिसके परपरागत जीवन-मूल्य नष्ट हो गए हैं और अभी नवीन जीवन-मूल्यो का निर्माण नही हुआ है। पौराणिक ययाति के समान वह वीर, साहसी और पराक्रमी है, आरभ से ही सौंदर्य और सामर्थ्य का उपासक है, ममता, मैत्रीभाव, सहानुभूति और सवेदना होते हुए भी यदि वह अमर्यादित होकर उन्मुक्त वासना के मार्ग पर चल पडता है तो उसका कारण कुछ तो उसकी धमनियो मे प्रवाहित होने वाला कामुक, व्यसनी पितृ कुल का रक्त है और कुछ उसकी पत्नी देवयानी का अहकारी, महत्वाकाक्षी और प्रेमभग के कारण कुठाग्रस्त स्वभाव है। लेखक ने ययाति के इन गुण-दोषो का चित्रण इतनी कुशलता एव उसकी भाव-वीचियो का विश्लेषण इतनी सूक्ष्म मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि से किया है कि वह पौराणिक पात्र प्रतीत न होकर किसी मनोवैज्ञानिक उपन्यास का पात्र प्रतीत होता है। देवयानी को अपनाने के पीछे माँ से बदला लेने का भाव तथा देवयानी जैसी सुदर पत्नी के होते हुए भी शर्मिष्ठा के प्रति आसक्ति का कारण मन की अतृप्ति है। शर्मिष्ठा को त्यागने के बाद उसके हृदय का द्वद्व एव पश्चात्ताप दिखाकर लेखक ने उसे वस्तुत आज के सामान्य मानव का प्रतिनिधि बनाने का प्रयास किया है।

ययातिचरित्रमु *(तें० ले०)* [रचना-काल—सोलहवी शती ई०]

इसके लेखक पोन्निकटि तेलगन्ना (दे०) हैं। गोलकोंडा के मुसलमानी शासक तथा उनके आश्रित कर्मचारियो ने भी तेलुगु-कविता की श्रीवृद्धि मे अधिक योगदान किया था। तेलगन्ना अमीनखान नामक एक ऐसे ही पदाधिकारी को अपना 'ययातिचरित्रमु' समर्पित किया था। यह 'स्वच्छ तेलुगु' मे लिखा गया एक काव्य है। इसमे कुल मिलाकर 737 गद्य और पद्य हैं। देवयानी और शर्मिष्ठा नामक कन्याओ तथा ययाति नामक राजा के विवाह से

संबद्ध कथा इसमें वर्णित है। इसका कथानक 'महाभारत' (दे०) से लिया गया है। इसके अंतर्गत प्रसंगवश संक्षिप्त रामकथा का भी वर्णन किया गया है। पुर-वर्णन, ऋतु-वर्णन, विरह-वर्णन आदि काव्य-रचना-संबंधी विविध वर्णन भी इसमें पाए जाते हैं।

'स्वच्छतेलुगु' (अच्चतेलुगु) एक प्रकार की शैली है। आरंभ से लेकर तेलुगु-भाषा के अंतर्गत संस्कृत और प्राकृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता रहा है। किसी-किसी कवि की रचना में खास तेलुगु-शब्दों की अपेक्षा इन्हीं की संख्या अधिक पाई जाती है। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में 'अच्चतेलुगु' में रचना करने का प्रयास किया गया था। इसमें भी केवल तत्सम शब्दों को छोड़कर देशज तथा तद्भव शब्दों की तेलुगु भाषा-शैली अवतरित हुई थी जिसका नाम 'अच्च-तेलुगु' रखा गया था। इस शैली के प्रवर्तक पोन्नेकंटि तेलगन्ना थे। इनका कहना है कि काव्यों के बीच यत्र-तत्र पाए जाने वाले 'अच्चतेलुगु' शब्द तथा 'अच्च-तेलुगु' छंद भी प्रशंसा के योग्य हैं तो पूरा काव्य 'अच्च-तेलुगु' में लिखा जाता तो कितना महत्त्वपूर्ण होता।

तेलुगु भाषा-शैली संबंधी आत्मनिर्भरता को प्रमाणित करने संबंधी इनका प्रयास सचमुच सराहनीय है। इन्हीं का अनुकरण कर कूचिमंचि तिम्मकवि (दे०) जैसे कुछ अन्य लेखक भी अच्चतेलुगु-शैली में काव्य लिखने लगे थे। पर इस प्रकार की शैली प्रचलित नहीं हो पाई। कारण, संस्कृत तत्सम शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त 'अच्च-तेलुगु' शब्दों का संयोजन अव्यावहारिक तथा दुरूह ही रह गया था। लेखक तथा पाठक दोनों की दृष्टि से इस प्रकार की शैली क्लेशपूर्ण ही होती है। पर इस दिशा में प्रथम प्रयास करके स्वतंत्र 'अच्चतेलुगु'-काव्य लिखने में तेलगन्ना की सफलता अत्यंत स्तुत्य है।

तेलुगु-भाषा-शैली के विकास के अंतर्गत प्रति-क्रिया के रूप में उत्पन्न 'अच्चतेलुगु' शैली की प्रतिनिधि-कविता के रूप में 'ययातिचरित्रमु' का स्थान विशेष महत्त्व का है।

यश:पाल *(सं० ले०)* [समय—तेरहवीं शती]

'मोहराजपराजय' (दे०) नामक प्रतीक नाटक के कर्ता यश:पाल मोढ जाति के बनिये थे तथा राजा अजयदेव चक्रवर्ती के कृपापात्र थे। इनके पिता का नाम धनदेव तथा माता का नाम रुक्मिणी देवी था।

'मोहराजपराजय' इस परंपरा का प्रसिद्ध नाटक है। इसका प्रथम प्रयोग महावीर-जन्मोत्सव के समय कुमारविहार में हुआ था। इसमें पाँच अंक हैं। इसमें हेम-चंद्र द्वारा चालुक्य नरेश कुमारपाल को जैन धर्म में दीक्षित करना, पशुओं की हिंसा का निषेध करना आदि बातों का वर्णन किया गया है। इसमें कुमारपाल, हेमचंद्र एवं विदूषक तो मनुष्य पात्र हैं, शेष पुण्यकेतु, विवेक आदि प्रतीक।

सरल तथा सुबोध संस्कृत में लिखा गया यह नाटक बड़ा महत्त्वपूर्ण है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह बड़ा उपादेय है।

यश न.शाह *(गु० पा०)*

चंद्रकांत बक्षी (दे०) के उपन्यास 'आकार' का नायक यश न. शाह है। यश न.शाह का जीवन बड़ा ही लापरवाही-पूर्ण है, वह अस्तित्ववादी ढंग से जीवन को जी लेने का उपक्रम करता है। उसकी महत्वाकांक्षा है कि वह सात-आठ वर्षों की सक्रिय ज़िंदगी जी ले। जीवन को लेकर उसकी एक विचित्र धारणा बन गई है: मनुष्य अगर समझदारी से विचार करे तो जीवन का एक ही उचित अंत हो सकता है और वह है आत्महत्या। यही कारण है कि वह शराब पीता है और हर पेग के साथ यह अनुभव करता है कि वह आत्महत्या की एक खुराक पी रहा है। वह जेल जाता है, वेश्यागृहों की यात्रा करता है और कोयला-खान में नौकरी करता है, पर सभी कुछ तटस्थ और आत्मरत भाव से। वेदना को भोग लेने की उसमें ग़जब की शक्ति है। अपने पिता की रखैल के यहाँ जाने में भी उसे संकोच नहीं होता। वह वर्तमान को बड़े ही तटस्थ व निःस्पृह भाव से जीता है, निराशा और एकाकी-पन में भी जिए जाता है। सुनसान रातों में वह अकेला ही, दुनिया में एक भी स्पंदन जगाए बिना, एक 'आकार' के रूप में निरुद्देश्य भटकता रहता है। उसका संपूर्ण जीवन माँग के खाने में सोने की एकमात्र इच्छा में व्यतीत हो जाता है। यश न.शाह का चरित्र अस्तित्ववादी चिंता के व्यवस्थित समायोग को सूचित करता है।

यशपाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

हिंदी-कथा साहित्य के अत्यंत महत्वपूर्ण हस्ता-क्षर यशपाल का जन्म फ़िरोज़पुर छावनी में एक मध्य-

वर्गीय परिवार मे हुआ। इनकी माँ इन्हे आर्य समाज के तेजस्वी प्रचारक के रूप मे देखना चाहती थी। फल। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गुरुकुल काँगडी मे हुई। वहाँ के राष्ट्रीय वातावरण ने बालक यशपाल के हृदय मे देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भर दी। तदनतर लाहौर के नेशनल कॉलेज मे शिक्षा प्राप्त करने पर इनका परिचय भगतसिंह तथा सुखदेव जैसे क्रातिकारियो से हुआ। यद्यपि यशपाल प्रारभ मे कांग्रेस के अहिंसावादी सिद्धान्तो मे आस्था रखते थे किंतु अनुभव की कसौटी पर परखने के बाद इन्हे यह रास्ता ठीक नही जँचा और इन्होने बम तथा तमचे वाले मार्ग को ठीक समझकर सशस्त्र क्राति के आदोलन में भाग लेना शुरू कर दिया। प्रसिद्ध क्रातिकारी होने के फलस्वरूप ये तद्युगीन भारत की ब्रिटिश सरकार की आँखो मे सदैव खटकते रहते थे और परिणामत या तो फरार रहते थे या फिर जेलो मे अतिथि बनते थे। 1932 ई० मे पुलिस से मुठभेड होने और गोलियो के अच्छे-खासे प्रतिदान के बाद ये गिरफ्तार कर लिये गए। चौदह वर्ष के कठोर कारावास के भागी हुए। जब 1938 ई० मे उत्तर प्रदेश मे कांग्रेसी मन्त्रिमडल बना तब अन्य राजनीतिक बंदियो के साथ इन्हे भी छोड दिया गया। तदुपरात इन्होने 'विप्लव' नामक मासिक पत्रिका निकाली। यह पत्रिका अत्यल्प समय मे ही लोकप्रिय हो गई, लेकिन 1941 ई० मे ये फिर गिरफ्तार कर लिये गए और इस प्रकार यह पत्रिका बद हो गई। जेल मे रहते हुए इन्होंने देश-विदेश के अनेक लेखको की रचनाओ का अध्ययन किया।

यशपाल ने हिंदी-गद्य को अनेक विधाओ—कहानी, उपन्यास, निबंध, यात्रावृत्त, आत्मकथा, सस्मरण आदि द्वारा समृद्ध किया है, किंतु इनका मुख्य प्रदेय कथा-साहित्य के अतर्गत ही है। 'ज्ञानदान' (1943 ई०), 'अभिशप्त' (1943 ई०), 'भस्मावृत चिंगारी' (1947 ई०) 'वो दुनिया' (1948 ई०), 'फूलो का कुरता' (1949 ई०), 'उत्तराधिकारी' (1951 ई०), 'चित्र का शीर्षक' (1951 ई०), 'तुमने क्यो कहा था मैं सुदर हूँ' (1954 ई०), 'तर्क का तूफान' (1954 ई०), 'ओ भैरवी' (1958 ई०), 'सच बोलने की भूल' (1962 ई०), 'खच्चर और आदमी', (1965 ई०), आदि इनके प्रसिद्ध कहानी-सग्रह हैं तो 'दादा कामरेड' (1941 ई०), 'देश-द्रोही' (1943 ई०), 'पार्टी कामरेड' (1947 ई०), 'मनुष्य के रूप' (1949 ई०), 'दिव्या' (दे०) (1954 ई०), 'अमिता' (1956 ई०), 'झूठा सच' (दे०) (दो भाग) (1960 ई०) इनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। 'न्याय का सघर्ष' (1940 ई०), 'गाधीवाद की शव परीक्षा' (1942 ई०), 'देखा सोचा समझा' (1951 ई०), 'मार्क्सवाद' आदि इनके लोकप्रिय निबध-सग्रह हैं तो 'लोहे की दीवार के दोनो ओर' (1953 ई०), 'राह बीती' (1956 ई०) आदि यात्रावृत्त-विषयक कृतियाँ हैं। 'सिंहाव-लोकन' (1952 ई०) सस्मरणात्मक शैली मे लिखी गई आत्मकथात्मक रचना है।

हिंदी-साहित्य के इतिहास मे यशपाल सर्वप्रथम कहानीकार के रूप मे ही उभर कर आए। भारतीय समाज मे व्याप्त आर्थिक और सामाजिक विषमता, निरर्थक आदर्शवादिता, रूढिवादिता, यथार्थ विमुखता, दीनता, भूख, बेकारी, आदि का चित्रण और उनके विरुद्ध निर्मम प्रहार, नये नैतिक मूल्यो की स्थापना आदि इनकी कहानियो का मूल स्वर है। मध्यवर्गीय भारतीय समाज की असगतियो विरोधाभासो, झूठी प्रतिष्ठा आदि विभिन्न विषमताओ को उजागर करने मे इन्हे कमाल हासिल है। घटनाओ का समुचित नियोजन करते हुए रोचकता की सृष्टि और निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति इनकी कहानियो के शिल्प-विधान की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

यशपाल हिंदी-उपन्यास के इतिहास मे भी अन्यतम स्थान रखते हैं। कहानियो के समान उपन्यासो मे भी इन्होने सडी-गली पुरानी मान्यताओ तथा रूढियो का विरोध करते हुए नये जीवन-मूल्यो की स्थापना पर बल दिया है। मार्क्सवादी जीवन दृष्टि मे आस्था रखने के कारण इनकी औपन्यासिक कृतियो मे भी मार्क्सवादी विचारधारा अनुस्यूत है। यह स्थिति इनकी प्रथम औपन्यासिक कृति 'दादा कामरेड' से लेकर 'झूठा सच' जैसे बहुआयामी एव विस्तृत आधारफलक वाले उपन्यासो तक म देखी जा सकती है। राजनीति तथा रोमास का अपूर्व सम्मिलन करते हुए यौनाकर्षण को मनुष्य की सर्वाधिक स्वाभाविक सहज एव तीव्रतम अनुभूति के रूप म स्वीकार करने की प्रवृत्ति भी इनके उपन्यासो म प्राप्त होती है। मतवाद के घेरे मे घिरे रहने के कारण अनेक बार इनके पात्र यात्रिक हो गए हैं। फिर भी 'दिव्या' और 'झूठा सच' इनकी औपन्यासिक क्षमता को प्रतिफलित करने वाली महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। 'दिव्या' एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसम बौद्धयुगीन पृष्ठभूमि मे युग युगान्तर स दलित-पीडित नारी की करुण कथा तथा प्रगतिशील दृष्टिकोण के आधार पर नारी-जीवन की सार्थकता को स्थापित किया गया है। दो खडो मे विभक्त 'झूठा सच' 1942 ई० से 1952 ई०

तक के भारत को उसकी समग्रता में रूपायित किया गया है—विभाजन से पूर्व के पंजाब के मध्यवर्गीय समाज के रहन-सहन, सामाजिक-मानसिक गठन, राजनीतिक दाँव-पेंच, भारत-विभाजन और उसके फलस्वरूप हुए सांप्रदायिक दंगे, भीषण रक्तपात, लाखों व्यक्तियों का बेघरबार होना, कांग्रेसी शासन, नेताओं की स्वार्थपरता, स्वतंत्र भारत का सामाजिक जीवन आदि विभिन्न प्रवृत्तियों का मार्मिक प्रत्यंकन किया गया है।

निबंध-रचना के क्षेत्र में यशपाल ने अनेक शैलियों का प्रचार किया है। 'गांधीवाद की शव परीक्षा', 'मार्क्सवाद' आदि को राजनीतिक प्रबंध की संज्ञा दी जा सकती है तो 'देखा सोचा समझा' में संकलित अधिकांश निबंध विचारात्मक निबंधों की श्रेणी में आते हैं। 'चक्कर क्लब', 'बात बात में बात', 'बीवी जी कहती हैं मेरा चेहरा रोबीला है' आदि में संकलित निबंधों में कथात्मक शैली का प्रश्रय लिया गया है तो 'मेरी पचपनवी वर्षगाँठ', 'नया वर्ष' आदि कतिपय निबंध ऐसे भी हैं जिन्हें शुद्ध वैयक्तिक निबंधों के अंतर्गत रखा जा सकता है।

'लोहे की दीवार के दोनों ओर', 'राहबीती' में संकलित यात्रावृत्तों के अंतर्गत लेखक ने अपनी विदेश-यात्रा में पड़ने वाले विभिन्न स्थानों, स्कूलों, संग्रहालयों, अस्पतालों, कार्यालयों, स्टेशनों, प्रेसों, निवासियों की जीवन-पद्धति आदि का मनोहारी चित्रण किया है।

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि यशपाल ने विषय के निर्भ्रांत प्रतिपादन, आवश्यकतानुरूप जन-भाषा-प्रयोग, हास्य-व्यंग्य से परिपूर्ण सहज एवं बोधगम्य शैली का आश्रय लेते हुए हिंदी-गद्य-साहित्य को विभिन्न साहित्य-रूपों के माध्यम से समृद्ध किया है।

यशवंत उर्फ यशवंत दिनकर पेंढरकर *(म० ले०)*

[जन्म—1899 ई०]

यशवंत का जन्म सातारा जिले के गाँव के निकटवर्ती तारल स्थान में हुआ था। इनका बाल्यकाल गाँव में ही बीता था और तत्पश्चात् नौकरी के निमित्त पूना आए थे। येरवदा केंद्रीय कारावास की रिफ़ॉर्मेटरी में अध्यापन करते हुए इन्होंने बाल अपराधियों की मनोवृत्ति का सूक्ष्म अध्ययन किया था। इसी के प्रभावस्वरूप 'बंदीशाला' नामक खंडकाव्य की इन्होंने रचना की थी। 1939 ई० में ये बड़ौदा के राजकवि बने थे और भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् जब महाराष्ट्र राज्य बना तो ये महाराष्ट्र कवि बने।

इनकी रचनाएँ ये हैं—

(1) मुक्तक : 'यशवंती', 'यशोधन', 'भावमंथन', 'यशोगंध' 'यशोनिधि', 'यशोगिरी', 'ओजस्विनी' 'पाणपोई', 'वाकळ', 'पर्वकाल ये नवा', आदि।

(2) खंडकाव्य : 'बंदिशाळा', 'जयमंगला', 'काव्य-किरीट'।

(3) महाकाव्य : 'छत्रपति शिवाजी'।

संस्कृत-कवि बिल्हण-रचित 'चौरपंचाशिका' (दे०) में वर्णित प्रेमकथा को आधुनिक संस्पर्श प्रदान कर इन्होंने 'जयमंगला' की रचना की थी तथा बड़ौदा के राजा महाराज प्रतापसिंह गायकवाड़ के सिंहासनारूढ़ होने की घटना के आधार पर इन्होंने 'काव्य-किरीट' की रचना की। आधुनिक काल में स्वराज्य-संस्थापक छत्रपति शिवाजी के भव्य आदर्श के पुनराख्यान की आवश्यकता का अनुभव कर इन्होंने 'छत्रपति शिवाजी' महाकाव्य रचा था। इसका अधिकांश काव्य प्रगीतात्मक है।

मराठी में नूतन काव्य-प्रयोग की दृष्टि से 1923 ई० में 'रविकिरण-मंडळ' नामक संस्था की स्थापना हुई थी। कवि यशवंत उक्त संस्था के प्रतिष्ठित सदस्य थे। इस मंडल के कवियों ने स्वरचित कविता के सस्वर गायन की परिपाटी चलाई थी। यशवंत का काव्य इस बात का प्रमाण है कि जनकवि जनकाव्य भी हो सकता है।

यशवंत महाराष्ट्र की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के गायक कवि हैं। इन्होंने अंगी भारत की समृद्धि के लिए अंग रूप महाराष्ट्र का उद्बोधन किया है। कवि की महाराष्ट्र-भक्ति देशभक्ति की ही पर्याय है। इन्होंने ऐसे अनेक प्रेमगीतों की रचना की है जो कलात्मकता की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं।

यशवंत की काव्य-भाषा में अबाध प्रवाह है तथा शैली सुष्ठु एवं मार्दवयुक्त है। ग्रामीण भाषा में इन्होंने 'म्याहरीचा वकुल', 'घर' आदि ग्रामगीतों की रचना कर परंपरा का सूत्रपात किया।

यशवंतराव महाकाव्य *(म० कृ०)*

इस महाकाव्य के लेखक वासुदेव वामन शास्त्री खरे हैं। ये साहित्य-क्षेत्र में कवि, नाटककार और इतिहास संशोधक के रूप में प्रसिद्ध हैं। इस महाकाव्य का प्रकाशन 1888 ई० में हुआ था।

संस्कृत के महाकाव्यों के आदर्श पर इसकी रचना हुई है। यशवंतराव होळकर के ऐतिहासिक चरित्र पर प्रस्तुत महाकाव्य रचा गया है। यह काव्य ऐतिहासिक तो नाममात्र के लिए है क्योंकि इसमें कवि का उद्देश्य ऐतिहासिक तथ्यों का आलेखन करना न होकर उस समय की परिस्थिति का चित्रण करना रहा है। यही कारण है कि इसमें यद्यपि मल्हारराव होळकर, सदाशिवराव, राघोबा, दिलेरखान जैसे ऐतिहासिक पात्र हैं तथापि इसकी कथा काल्पनिक ही है। इसकी एक भी घटना इतिहास, दंतकथा या पोवाडे पर आश्रित नहीं।

कवि ने आद्यंत रहस्यमय वातावरण का निर्माण किया है, जिससे अंत तक पाठक को यह पता नहीं चलता कि यशवंतराव व मल्हारराव का संबंध पिता-पुत्र का है। अंत में इसका कुशलता से रहस्योद्घाटन हुआ है।

महाकाव्य के अनुकूल यह 24 सर्गों में बद्ध काव्य-रचना है, जिसमें पर्याप्त छंद वैविध्य और प्रकृति वर्णनात्मक स्थल हैं। वीर रस इसका अंगीरस है तथा रौद्र, अद्भुत, वात्सल्य, शृंगार एवं करुण गौण रस हैं। प्रसन्न शैली में इसकी रचना हुई है। इसने निश्चय ही मराठी का गौरव बढ़ाया है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) ने भी हिंदी लेखकों के सामने इस महाकाव्य का आदर्श रखा था।

यशस्तिलकचंपू *(सं० कृ०)* [समय—959 ई०]

इसकी रचना दिगंबर जैन सोमप्रभसूरि ने की थी। इस चंपू में आठ उच्छ्वास हैं। इनमें अवंति के राजा यशोधर, उसकी पत्नी की कपट-धूर्तता, राजा की मृत्यु, नाना योनियों में जन्म तथा अंत में जैन धर्म में दीक्षित होने का वृत्तांत बड़ी निपुणता से दिया गया है। यह कथा गुणभद्र के 'उत्तर पुराण' पर आधृत है। इसी के आधार पर पुष्पदंत का 'जसहरचरित' नामक अपभ्रंश-काव्य तथा वादिराज सूरि का 'यशोधरचरित' नामक संस्कृत काव्य लिखा गया है। इसकी रचना शैली तथा जन्मांतर-वर्णन का बाण (दे०) की 'कादंबरी' (दे०) से साम्य है। अंतिम तीन उच्छ्वास कवि ने जैन धर्म के विवेचन के लिए दिए हैं। इसकी शैली अलङ्कृत तथा भाषा प्रांजल है।

यशोधरचरिते *(क० कृ०)*

मध्यकाल के प्रसिद्ध कवि जन्न (दे०) जो वीरबल्लाल नरसिंह *(1173-1220 ई०)* के आश्रय में थे, की रचना 'यशोधरचरित' कन्नड साहित्य का एक गौरव ग्रंथ है। जैन परंपरा में विश्रुत कथानक का वर्णन 'यशोधरचरित' में किया गया है। संस्कृत तथा प्राकृत में इस विषय से संबंधित ग्रंथ मिलते हैं। यद्यपि जन्न ने यह बताया है कि उनके पूर्व कन्नड में भी इस विषय पर काव्य लिखे गये थे तथापि वे ग्रंथ अब प्राप्त नहीं हैं। अतः जन्न की रचना ही इस विषय की प्रथम रचना मानी जा सकती है।

जन्न ने 'सरस पदों में *'यशोधरचरिते'* का निर्माण किया है। जैन लोगों में प्रचलित *'जीवदयाष्टमी'* व्रत-कथा में यशोधर की कथा का रूप विद्यमान है। जन्न के काव्य में वर्णित कथा संक्षेप में यों है: 'मारिदत्त नामक राजा राजकुमार अभयरुचि और राजकुमारी अभयमति को चंडमारी (काली) के सामने बलि देना चाहता है। तब वे दोनों अपने जन्मांतर की कथाएँ कहते हैं जिन्हें सुनकर मारिदत्त अहिंसा के महत्व को समझ जाता है और सन्मार्ग ग्रहण करता है। राजा यशोधर और उसकी माता चंद्रमति इस जन्म में अभयरुचि और अभयमति के रूप में उत्पन्न हुए हैं। यशोधर की रानी अमृतमति राजप्रासाद के एक विकलांग और कुरूप महावत का गीत सुनकर उसके प्रति आसक्त हो जाती है और चरित्रभ्रष्ट हो जाती है। यशोधर और चंद्रमति हिंसा की कल्पना करने मात्र से पशु-पक्षी आदि योनियों में जन्म लेकर नाना कष्ट भोगने के बाद अभयरुचि और अभयमति के रूप में जन्म लेते हैं। *अमृतमति नरक का कीड़ा बन जाती है।' अमृतमति की कामांधता ही कथा का केंद्रबिंदु* है। यह अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारकर अधःपतित हो जाती है।

जन्न ने अपने काव्य के लिए जो कथानक चुना, वह छोटा है। परंतु उसका प्रभाव गहन है। प्रसंगोद्भावना में नवीनता और चारुता लाने में उनको विशेष सफलता मिली है। वर्णन करने में कवि जितना निपुण है, पात्रों का मनोविश्लेषण करने में भी वह उतना ही चतुर है।

'यशोधरचरिते' में संयमशीलता, उदात्तता, धार्मिक भावना और मानव दुर्बलताओं का वर्णन हुआ है। मनसिज की माया और बलीयसी विधि की लीला मनुष्य को पतित कर देती है' जैसी सुंदर उक्तियाँ तो इस काव्य में भरी पड़ी हैं। उसमें रति-रहस्य का उद्घाटन और प्रणय-समस्या का समाधान है। उसमें चित्रित शृंगार, रौद्र, शांत आदि रसों, मनोहर चरित्र-चित्रण तथा प्रसादपूर्ण

भाषा-शैली को देखकर सहज रूप से उसको हम सफल महाकाव्य कह सकते है।

यशोधर महेता (गु० ले०)

(दे०) महेता, यशोधर।

यशोधरा (क० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1933 ई०]

यह मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे० मास्ति) का गीत-नाट्य है जिसमें उनका कवि-हृदय अत्यंत उदात्त रूप में प्रकट हुआ है। हिंदी में स्व० मैथिलीशरण गुप्त (दे०) ने 'यशोधरा' काव्य लिखा है। मास्तिजी की कृति की तुलना उससे ही सकती है। नाटक की दृष्टि से मास्तिजी की यह कृति अत्यंत सफल है। काव्य की दृष्टि से भी एक सुंदर रचना कही जा सकती है।

इसमें छह स्थान अथवा प्रवेश हैं। प्रथम प्रवेश में सूत्रधार के आगमन के बाद सिद्धार्थ के पिता, उनकी पत्नी यशोधरा, पुत्र राहुल और अंतःपुर की परिचारिका अंबिका का परिचय प्राप्त होता है। दस वर्षों के दीर्घ विरह को सहने वाली यशोधरा को प्राप्त परिचारिका वृद्धा अंबिका सांत्वना देती हुई दिखाई पड़ती है। रात में देखे गये स्वप्न से भीत यशोधरा को अंबिका धैर्य बँधाती है। इसी समय राहुल का आगमन होता है। राहुल निज जनक को बुला लाने की बात करता है तो यशोधरा घबराती है। वह राजा को बुला भेजती है। राजा समयोचित शब्दों से यशोधरा को धैर्य बँधाते हैं राहुल के हठ को वे स्वीकार करते हैं, उसको अंबिका के साथ सिद्धार्थ के पास भेजते हैं। द्वितीय प्रवेश में वेनुवन की ओर वे दोनों जाते हुए दीखते हैं। तृतीय प्रवेश में शिष्यों सहित गुरुदेव बुद्ध को देखकर अंबिका प्रभावित हो जाती है। वह उनको गुरु स्वीकार कर लेती है। बुद्ध राहुल की प्रार्थना मान लेते हैं। आश्रम के समस्त लोग—अंबपाली भी—राहुल के दर्शन से असीम आनंद में निमग्न हो जाते हैं। चतुर्थ प्रवेश में दो ब्राह्मण कौंडिन्य और कौशिक के संभाषण द्वारा तथा एक वृद्धा, तरुणी और बच्चे के मुँह से बुद्धदेव की महत्ता का उद्घाटन किया गया है। पंचम प्रवेश में यशोधरा के अंतःपुर का वर्णन है। बुद्ध कपिलवस्तु आये है। सब लोग उन्हें देखने जाते हैं परंतु मानिनी यशोधरा नहीं जाती। आनंद वहाँ आता है। उसके साथ यशोधरा का संभाषण बड़ा मार्मिक है। अंतिम प्रवेश में स्वयमेव बुद्धदेव का यशोधरा के पास आने का वर्णन है। यशोधरा गुरु-पति से उपदेश की याचना करती है। भय-संशय, आशा निराशा, धर्मसंकट-अंतर्द्वंद्व का इस प्रवेश में अच्छा चित्रण हुआ है। मास्तिजी की यशोधरा सीता से कम नहीं है, वह शकुंतला के समकक्ष है। उसके चित्रण में उनकी प्रतिभा पूर्ण रूप से प्रकट हुई है। बुद्धदेव आनंद, राजा, अंबिका आदि के चरित्रों का चित्रण भी रम्य है।

यशोधरा (हिं० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1932 ई०]

मैथिलीशरण गुप्त (दे०) का यह प्रगीतात्मक नाट्य-प्रबंध बौद्ध-साहित्य की उपेक्षित यशोधरा (दे०) का उद्धार करने के उद्देश्य से लिखा गया है। कवि को 'भगवान् बुद्ध के अमृत-तत्त्व' की अपेक्षा 'गर्विणी गोपा की स्वतंत्र सत्ता और महत्ता' ने ही अधिक आकृष्ट किया है। गोपा के माध्यम से उसे अपनी वैष्णव भावना का नैवेद्य भगवान् बुद्ध के चरणों में रखने का अवसर मिल गया है। कथानक बौद्ध होते हुए भी उसका प्रतिपाद्य वैष्णव-भावना से ओतप्रोत है।

सिद्धार्थ जरा, रोग और मृत्यु का साक्षात्कार कर अभिनिष्क्रमण करते हैं। परित्यक्ता यशोधरा को इस बात का दुःख होता है कि पति उससे कह कर नहीं गये। परंतु उसका विश्वास है कि प्रेम की शक्ति से वह अपने पति को खींच लेगी और इस प्रकार अपने मान की रक्षा करेगी। राहुल-जननी जब नटखट पुत्र के प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर देने में और गृह-भार ढोने में असमर्थ होने लगती है तो वनवासी को पुकार उठती है। बुद्ध भगवान् उसकी प्रार्थना सुन लेते हैं और स्वयं उसके द्वार तक आते है। वह अपने भिक्षुक पति को पुत्र का दान कर देती है।

इस कृति में शृंगार और वात्सल्य के चित्र अधिक हैं। शृंगार में भी विप्रलंभ की प्रधानता है। वात्सल्य-वर्णन की दृष्टि से राहुल की बाल चेष्टाएँ और जननी की प्रतिक्रियाएँ आधुनिक मनोविज्ञान के अनुकूल हैं। आधुनिक हिंदी-काव्य की संभवतः यह एकमात्र उत्कृष्ट कृति है जिसमें वात्सल्य के प्रसंगों की इतनी सुंदर रसात्मक योजना हुई है।

जाया और जननी के उद्गारों ने अनेक श्रेष्ठ गीतों को जन्म दिया है। ये गीत आधुनिक हिंदी-काव्य में बेजोड़ हैं। यशोधरा और राहुल-संबंधी मौलिक उद्भावनाएँ भी रमणीय हैं। बुद्ध-संबंधी परवर्ती हिंदी-साहित्य पर इस कृति का गहरा प्रभाव पड़ा है।

यशोधरा *(हिं० पा०)*

यशोधरा मैथिलीशरण गुप्त (दे०) द्वारा रचित प्रगीतात्मक नाट्य-प्रबंध 'यशोधरा' (दे०) की नायिका है। सिद्धार्थ की पत्नी यशोधरा के जाया और जननी रूपों का चित्रण विस्तार से किया गया है। उसका प्रेयसी रूप केवल स्मृति-चित्रों द्वारा ही सूचित है। विरक्त-विहारी पति द्वारा परित्यक्ता का रूप गर्व खंडित हो जाता है और अर्द्धांगिनी की अधिकार चेतना जागृत हो जाती है। वह पति की खोज कर उनके मार्ग में बाधा बनना नहीं चाहती। यदि उसकी कर्तव्य-साधना प्रबल है तो पति को स्वयं आना पड़ेगा। वह चल कर पति के पास नहीं जायेगी। जो कुछ वे लायेंगे उसमें से आधा भाग उसका होगा। अतः यह संकल्प करती है कि उनके आने तक राहुल को थाथी समझ कर पालेगी। जननी का यह दायित्व भी कठिन है। राहुल नटखट है। ऐसे-वैसे प्रश्न पूछता है। बाल-हठ करता है। एक दिन तो हठपूर्वक माला पहनाकर निरलंकार रहने की प्रतिज्ञा ही भंग करा देता है। बाल मनोविज्ञान से परिचित होकर भी यशोधरा तंग आ जाती है और संन्यासी को पुकार उठती है। संन्यासी आ गये और मानिनी के मान की रक्षा भी हुई। जब पति भिक्षुक बनकर द्वार पर आ गये तो उसने बेटे राहुल का दान कर दिया।

यशोधरा का चरित्र कवि की नवोन्मेषशालिनी कल्पना के संस्पर्श से अत्यधिक उज्ज्वल बन गया है। उसके जाया और जननी रूपों के चित्रण में कवि ने अनेक उद्भावनाएँ की हैं। पुत्र का दान करने वाली बौद्ध साहित्य की यह उपेक्षिता अपने पति से भी अधिक गौरवान्वित हो गई है। इस वैष्णवी की विचारधारा इतनी परिपक्व है कि वह अपने पति के सिद्धांतों का तर्क-युक्तिपूर्वक खंडन करती है। यहाँ ऐसा लगता है कि वैष्णव कवि के पक्षपात के कारण पति के पीछे भिक्षुणी बन जाने वाली साध्वी थोड़ी सी भटक गई है। फिर भी सब मिलाकर यशोधरा कवि की अमर सृष्टि है। उसका प्रभाव इसी से आँका जा सकता है कि हिंदी के अनेक परवर्ती नारी-पात्रों में उसकी प्रतिच्छवि मिलती है।

यशोवंतदास *(उ० ले०)* [समय—पंद्रहवीं-सोलहवीं शती० ई०]

यशोवंतदास चैतन्यदेव (दे०) के समकालीन ज्ञान मिश्रा भक्ति के उपासक, जगन्नाथ के भक्त एवं पंचसखाओं (दे०) में से एक थे। इनके पिता जगू मल्लिक कटक जिले के जगतसिंहपुर के निकट अडंग ग्राम के निवासी थे। वही इनका जन्मस्थान है। बाल्यावस्था से ही ये सांसारिकता के प्रति उदासीन थे। पुरी में दीक्षा लेने के बाद ये अडंग लौट आये, जहां इनका विवाह तत्कालीन जमींदार रघुराम दास की बहन अंजना देवी से हुआ। अडंग में आज भी इनका मठ है।

इनके 'शिव स्वरोदय' ग्रंथ की रचना संस्कृत के 'स्वरोदय' ग्रंथ की विषय-वस्तु के आधार पर हुई है। इसमें सरल भाषा में योग, तंत्र, मंत्र आदि का वर्णन हुआ है। 'प्रेम भक्ति ब्रह्म गीता' में ज्ञान मिश्रा भक्ति की श्रेष्ठता सरल भाषा में प्रतिपादित की गई है। गोविंदचंद्र में बंगदेश के राजा के सर्वस्व-त्याग एवं हड़प्पा से दीक्षा लेने की बात वर्णित है। 'चौरासी आज्ञा' तथा इनकी मालिकाएँ (दे०) जनप्रिय भजनों के रूप में प्रसिद्ध हैं।

यहूदी की लड़की *(उर्दू० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1955 ई०]

'यहूदी की लड़की' उर्दू के प्रसिद्ध नाटककार आगा हश्र काश्मीरी (दे०) का लिखा हुआ नाटक है। आगा हश्र ने अपने नाटकों द्वारा बदलते हुए समय के तकाज़ों को पूरा किया है।

'यहूदी की लड़की' नाटक की लोकप्रियता का रहस्य इसके स्वस्थ संवादों तथा कथानक के गठन में निहित है। आगा हश्र ने अपनी लेखनी के बल से सफलतापूर्वक त्रासदी को कामदी अथवा दुःखांत होते जा रहे कथानक को सुखांत बना दिया है। इसका पाठक पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अच्छा प्रभाव पड़ता है। लेखक की भाषा स्वस्थ एवं पात्रोपयोगी है।

याज्ञवल्क्यस्मृति *(सं० कृ०)* [रचना-काल—100 ई० पू० से 300 ई० तक]

याज्ञवल्क्य की इस कृति के रचना-काल के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। डा० जॉली ने इस स्मृति का रचना-काल 400 ई० माना है और डा० जैकोबी ने इसे 200 ई० के बाद की रचना स्वीकार किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति' पर विज्ञानेश्वर की 'मिताक्षरा' टीका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

'याज्ञवल्क्यस्मृति' के अंतर्गत कहा गया है कि मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का राजनीति से संबंध है।

याज्ञवल्क्य ने इस विधान का निर्माण किया था कि एक न्यायालय के द्वारा दिए निर्णय के संबंध में दूसरे न्यायालय में अपील करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

प्रायः 'याज्ञवल्क्यस्मृति' के सिद्धांत 'मनुस्मृति' (दे०) के सिद्धांतों के ही संक्षिप्त एवं संयत रूप हैं। परंतु फिर भी दोनों के सिद्धांतों एवं शिल्प में पर्याप्त भेद है। 'मनुस्मृति' में जहाँ सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में विशद रूप से वर्णन किया गया है वहाँ 'याज्ञवल्क्यस्मृति' में यह विषय अस्पष्ट-सा ही है। 'याज्ञवल्क्यस्मृति' में ग्रहशांति एवं विनायकशांति का जो उल्लेख मिलता है। उसका 'मनुस्मृति' में अभाव है। 'मनुस्मृति' के विपरीत 'याज्ञवल्क्यस्मृति' के अंतर्गत ब्राह्मण को शूद्र-कन्या के साथ विवाह का अधिकार दिया गया है। इसके अतिरिक्त मनु के विपरीत याज्ञवल्क्य नियोग के निंदक न होकर समर्थक हैं। मनु के समान याज्ञवल्क्य द्यूत निंदक भी नहीं हैं। जहाँ तक 'मनुस्मृति' एवं 'याज्ञवल्क्यस्मृति' के भाषा-शिल्प का प्रश्न है, 'याज्ञवल्क्यस्मृति' की भाषा-शैली 'मनुस्मृति' की अपेक्षा अधिक परिष्कृत एवं आकर्षक है।

यात्रा (गु० कृ०)

1940 ई० में सुंदरम् (दे०) श्रीअरविंद के पूर्णयोग से प्रभावित होकर आध्यात्मिक साधना में प्रवृत्त हुए और अहमदाबाद छोड़कर पांडीचेरी के निवासी बने। उनके जीवन में इससे नये आयाम खुले। उनकी प्रबुद्ध चेतना ने नये आध्यात्मिक संदर्भ पाये। इसी के परिपाक-रूप 'यात्रा' कविता-संग्रह (1951) प्राप्त हुआ। गुजराती कविता की विकास-यात्रा में यह एक अभूतपूर्व घटना मानी जाती है। इसमें गुजराती कविता ने नया मोड़ लिया है, नया आध्यात्मिक विषय अंगीकार किया है, नयी अभिव्यक्ति, नयी शब्दावली, नये प्रतीक और नये बिंब अपनाये हैं। इस दृष्टि से 'यात्रा' युगांतरकारी रचना है।

कवि सुंदरम् ने 'यात्रा' में श्रीअरविंद के पूर्ण योग का भावात्मक रूप प्रस्तुत किया है। यह कृति काव्य के सौंदर्य-तत्त्व की अपेक्षा सत्य-तत्त्व पर विशेष बल देती है। इसमें कवि की साधना और 'अतिमनस' के प्रति उसकी अविचल श्रद्धा का स्वर मुखरित है। 'यात्रा' में नूतन विकास की चैतन्यमयी आशा की कविताएँ हैं। कवि का विचार है कि यंत्रयुग की निराशा और कुंठा का वातावरण अंततोगत्वा छिन्न-भिन्न होगा और मानव को दिव्य तत्त्व का आनंद एवं प्रकाश प्राप्त होगा। इस कृति में ऐसा अनुभव होता है मानो कवि की भाषा-शैली, छंद-योजना और कल्पना इस 'मंत्र कविता' के लिए ही निर्मित हुई हो। 'कस्मै'''', 'हे चकवा', 'राघवनुं हृदय', 'पूर्ण मयंक', 'विश्व आखुं' प्रभृति कविताएँ आध्यात्मिक स्पर्श और ऊर्ध्वचेतना से प्रेरित-प्रभावित हैं जिनमें कवि हमें दृश्यात्मक इहलोक से ऊपर 'अतिमनस' की अलौकिक सृष्टि का तेजोमय दिव्य दर्शन कराता है। निस्संदेह इन चिंतनपरक कविताओं से गुजराती कविता समृद्ध और नूतन हुई है।

यात्रा (बँ० प्र०)

लोकनाट्य-परंपरा के आश्रय से बंगाल में यात्रा का गठन हुआ था। यात्राभिनय को बहुत-से विद्वान् पांचाली (दे० 'पाचाली') का परिणत रूप मानते हैं। परवर्ती युग में यात्रा-नाट्याभिनय में विभिन्न भूमिकाओं में पृथक्-पृथक् व्यक्तियों ने अभिनय करना शुरू किया। लोक-परंपरा से प्रचलित बंगाल की 'यात्रा' जनसाधारण की नाट्यरस-पिपासा को चरितार्थ करती आयी है। सभा के बीच में यात्रा के रंगमंच की स्थापना की जाती है। उसमें कोई दृश्य-पट नहीं होता। नट-नटी पास ही स्थित सज्जा-कक्ष से चलकर रंगमंच पर आकर नाटक शुरू करते हैं और अपना अभिनय समाप्त कर फिर चले जाते हैं। रंगमंच के साथ ही गाने-बजाने वाले बैठते हैं और वे बीच-बीच में गीतों की सहायता से कथा को गति प्रदान करते हैं।

'यात्रा' शब्द का मूल अर्थ है देवताओं के उत्सव के उपलक्ष्य में शोभायात्रा या उत्सव। उसके बाद एक नया अर्थ हुआ—देवताओं के उत्सव के उपलक्ष्य में नाट्यगीति। और फिर इसी के साथ देवलीलात्मक अथवा अन्य कहानियों को लेकर नाट्यगीति की परंपरा चल पड़ी। यात्रा का प्राण गीत है, अभिनय एवं संलाप उसमें गौण हैं। ग्राम्य समाज की रुचि के अनुसार इसमें स्थूल हास्य रस की भी अवतारणा करनी पड़ती है। प्राचीनता की दृष्टि से यात्रा का प्रचलन कविगान (दे०) से भी बहुत पहले से था। उन्नीसवीं शती में शिवराम अधिकारी ने इसे पुनर्जीवित किया। बाद में श्रीदाम, सुबल एवं परमानंद आदि ने यात्रा के विस्तार में प्रधान भूमिका ग्रहण की। पहले यात्रा में एकमात्र वर्णित विषय थी कृष्णलीला; इसीलिए पहले इसे 'कृष्ण-यात्रा' कहा जाता था। बाद में नाना-विषयक यात्रा की अवतारणा हुई। उन्नीसवीं शती में यात्रा के पुनर्जीवन के बाद 'विद्यासुंदर यात्रा' अपनी

अश्लीलता एव स्थूल हँसी-मसखरेपन के लिए बहुत ही अधिक जनप्रिय हुई थी। इस समय के प्रसिद्ध यात्राभिनेता थे गोपाल उडे। बीसवी शती मे एव साम्प्रदायिक काल मे यात्रा की जनप्रियता को देखकर नाना प्रकार की यात्रा-मडलियाँ स्थापित हुई हैं और आजकल विशेषकर ऐतिहासिक एव राजनीतिक तथा सामाजिक विषयो को लेकर भी यात्राएँ की जाती हैं। गीत यात्रा की जनप्रियता का एक प्रधान कारण है, इसीलिए यात्रा को 'यात्रा गान' कहने की भी प्रथा है।

यात्रिक क्रमण *(म० कृ०)* [रचना-काल—1841 ई०]

यह जेम्स फेरिश के आग्रह पर स्कॉटिश मिशन सोसाइटी के लिए हरिकेशव पाठारे द्वारा प्रस्तुत अंग्रेज़ी लेखक जॉन बनियन की प्रसिद्ध रूपक कथा 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' का मराठी अनुवाद है। प्रतिपाद्य है—'सन्मार्ग पर चलने वाला बाधाओ को पार कर अतत परमार्थ की प्राप्ति करता है।' नायक ख्रिस्ती दुराग्रही' और 'चलमति' आदि की बात न मानकर 'सुवार्तिका' के परामर्श से मोह-माया त्याग कर यात्रा पर चल देता है और मार्ग के अनेक सकटो को झेलता हुआ अत मे अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाता है। उपन्यास मे अनेक ईसाई धर्मग्रथो के अवतरण बिखरे पडे हैं जिनका सदर्भ परिशिष्ट मे दिया गया है। मूल पुस्तक के सोनो का सुदर पद्यबद्ध अनुवाद है जो भाव दृष्टि से उदात्त एव काव्य-दृष्टि से सरस हैं और जिन्हें पढते समय वामन पडित की श्लोक-रचना का सहज ही स्मरण हो आता है। ईसाई धर्म की सैद्धातिक चर्चा से युक्त और रूक्ष होते हुए भी अनुवाद सुदर है। परतु मूल पुस्तक का वातावरण और उद्देश्य महाराष्ट्र-समाज के लिए अपरिचित था, इसलिए प्रस्तुत कृति का महत्व केवल इतना ही है कि इससे मराठी भाषा मे लिखने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला।

यादगार-ए-गालिब *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1897 ई०]

'यादगार-ए-गालिब' ख्वाजा अल्ताफ हुसैन 'हाली' (दे०) पानीपती द्वारा लिखी गई अपने उस्ताद मिर्ज़ा असद-उल्लाह खाँ 'गालिब' (दे०) की जीवनी है। 'हाली' मिर्ज़ा 'गालिब' के प्रति गहरी श्रद्धा रखते थे और उन्हे एक महान विभूति मानते थे। उनकी स्मृति को शाश्वत बनाने के लिए ही उन्होने इस कृति की रचना की थी।

इसमे मिर्ज़ा 'गालिब' का मानव, मित्र, मार्ग-दर्शक, कवि एव लेखक के रूप मे चित्रण किया गया है। लेखक ने अपने उस्ताद के स्वभाव, रहन-सहन, खानपान, समाज मे प्राप्त होने वाले मान अपमान, पद्य एव गद्य की लेखन शैलियो पर भरपूर प्रकाश डाला है और इस प्रकार गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा भली भाँति व्यक्त की है।

'यादगार-ए-गालिब' का उर्दू के जीवनी-साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान है। इस पुस्तक पर एक आक्षेप यह है कि इसमे मिर्ज़ा के काव्य के विभिन्न अवस्थानो का, उनके समकालीनो मे उनके स्थान का निर्धारण नही किया गया तथा विभिन्न काव्य विधाओ मे उनकी सिद्धहस्तता पर प्रकाश नही डाला गया।

यादगार मुशायरा *(उर्दू० कृ०)*

मुगल युग मे मुशायरे आम हुआ करते थे। इस पुस्तक मे उस युग के एक मुशायरे का वृत्तात है जो मुगल युग के अतिम दिनो मे लाल किला मे हुआ था। इस मुशायरे मे उच्चकोटि के उस्ताद शायर सम्मिलित हुए थे। इस छोटी सी पुस्तक मे उस समय के मुशायरो के आयोजन तथा तौर-तरीक़ो पर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक के अध्ययन से पता चलता है कि मुशायरो की कार्यवाही कैसे चलती थी, सभा मे बैठने तथा कविता-पाठ के क्या नियम थे, मुशायरो मे 'शम्मा' कैसे जलाई जाती थी आदि।

उस समय के मुशायरो के रूप तथा वातावरण को चित्रित करने वाली यह एक सुदर पुस्तक है। इसके लेखक *श्री* राशिद-उल खैरी (दे०) हैं।

यादें *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1961 ई०]

अख्तर-उल ईमान (दे०) की इस काव्य-कृति मे उनकी नज़्मे सगृहीत हैं। प्रतीकात्मक शैली मे लिखित यह सग्रह प्रगतिशील विचारो और क्रातिकारी भावनाओ से ओतप्रोत है। इसमे उल्लिखित सक्षिप्त नज़्मो (कविताओ) के सबध म आलोचको का मत है कि इनम जापानी काव्य की झलक दिखाई देती है। अनुभूति की तीव्रता इस कृति की मुख्य विशेषता है। लेखक का कथन है कि उसने सक्षिप्त कविताएँ किसी योजना के अनुसार नही, बल्कि चलत-फिरत पद्यबद्ध की हैं। परतु इसके विपरीत विस्तृत कविताएँ सदैव योजनाबद्ध ढग से कही हैं। इसमे कविताओ का वर्गीकरण इन शीर्षको के अतर्गत किया

गया है : तारीक सय्यारे से पहले, तारीक सय्यारा, जंग, और तारीक सय्यारा के बाद। इस संग्रह में रचयिता का तीस वर्ष का काव्य संकलित है। विवेच्य विषय की दृष्टि से यह काव्य अधिकतर प्रगतिवादी विचारधारा का पोषक है और विवेक के आलोक में बड़ी भावुकता के साथ लिखा गया है।

यामा *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष--1939 ई०]

रहस्यवाद (दे०) की एक ही दिशा में बिना पश्चात्ताप किए विश्वासपूर्वक बढ़ती रहने वाली काव्य-प्रतिभा छायावादियों (दे० छायावाद) में केवल महादेवी वर्मा (दे०) को प्राप्त हुई है। प्रतिभा की इस निष्कंप यात्रा के अश्रुपुलकमय अनुभव 'दीपशिखा' (दे०) से पूर्व जिन चार संग्रहों में प्रकाशित हुए हैं, उनके नाम हैं— 'नीहार' (1930 ई०), 'रश्मि' (1932 ई०), 'नीरजा' (1934 ई०) और 'सांध्यगीत' (1936 ई०)। इन चारों संग्रहों का एकत्र ग्रंथन ही 'यामा' में हुआ है। इसके नाम की सार्थकता कवयित्री के 'अंतर्जगत् के चार यामों का छाया-चित्र' होने में है। संग्रथित चारों संग्रहों में क्रमश: 47, 35, 58 और 45 रचनाएँ हैं। 'नीहार' की वेदना में बाल-कुतूहल का मिश्रण है और 'रश्मि' में कवि-अनुभूतियों का चिंतन अधिक प्रिय हो गया है। 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' में कवयित्री के हृदय ने सुख-दुःख में ऐसा सामंजस्य स्थापित कर लिया है कि 'एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।'

इन रचनाओं का भावलोक मुख्यत: अज्ञात प्रियतम के प्रति निवेदित आत्म-समर्पण तक सीमित है। इन उद्गारों में अनुभूतिगत सत्यता है या कल्पनागत रमणीयता, इस प्रश्न का निर्णय अत्यंत कठिन है। सांध्यगीत की भूमिका में कवयित्री ने इतना अवश्य कहा है कि आज के नये रहस्य-वादी गीतों में पराविद्या की अलौकिकता, अद्वैत वेदांत की छाया और लौकिक प्रेम की तीव्रता को कबीर (दे०) के दांपत्य-भाव-सूत्र में बाँधकर 'एक निराले स्नेह-संबंध की सृष्टि' की गई है जो मनुष्य के हृदय का आलंबन बनकर 'उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका है।' अस्तु, इन विरहानुभूतियों का मूल उत्स जो भी हो, अपने वर्तमान रूप में ये सीमाबद्ध असीम की पीड़ा को ही नहीं संसार को एकसूत्र में बाँधने वाली करुणा के स्पंदन को भी ध्वनित करती हैं। कुछ गीतों में मानव की सहोदरा प्रकृति के रमणीय चित्र भी अंकित किए गए हैं। परिणामः इन चित्रों में 'प्रकृति का एक-एक अंश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा' है।

कलात्मक दृष्टि से इस संग्रह के अनेक गीत हिंदी गीतिकाव्य की विभूतियाँ हैं। कवयित्री ने अनेक उद्दीप्त अनुभूतियों को असाधारण संयम के साथ गिने-चुने शब्दों में बाँध लिया है। यह शब्दावली स्वर-साधना के उपयुक्त और अनूठी व्यंजनाओं से संपृक्त है। ऐसी व्यंजक पद-योजनाओं का सूक्ष्म वैचित्र्य अप्रस्तुत-क्षेत्र में वैविध्य के अभाव को खलने नहीं देता। इस कृति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को मिली वैसी और किसी को नहीं।'

यायावर *(बँ० ले०)*

युद्धोत्तर युग में बँगला में एक नये ढंग के गद्यात्मक रचना-रूप का विकास हुआ जिसे 'रम्यरचना' (दे०) के नाम से अभिहित किया गया था। यायावर ने 'दृष्टिपात' (1947) की रचना कर उपन्यासमूलक रम्यरचना का सूत्रपात किया था। इस प्रकार के उपन्यासों में समाचार-पत्रों के रिपोर्ताज के ढंग पर एक के बाद एक अतिनाटकीय रोमांचकारी घटनाओं के वर्णन के साथ ही किसी एक साहित्यिक कथावस्तु की अभिव्यक्ति की जाती है। इसी के साथ बीच-बीच में विच्छिन्न घटनाओं एवं साथ ही स्थान और काल के बहुत से किस्से जुड़े रहते हैं। 'दृष्टिपात' में भारत के स्वाधीन होने से पूर्व 4-5 महीने की राजनीतिक हलचल एवं कांग्रेस तथा अँग्रेज नेताओं के राजनीतिक दाँव-पेच के विवरण के साथ नायक के दुःखांत प्रेम की कहानी एवं नायिका के अंतर्लोक का परिचय दिया गया है। इस प्रकार एक ओर पाठक की ज्ञान-वृद्धि होती है और दूसरी ओर वह एक कहानी के रस का उपभोग करता है। उपन्यास का केंद्र-स्थल है दिल्ली। लेखक ने विच्छिन्न रूप से दिल्ली के प्राचीन इतिहास एवं घटनाओं का साहित्यिक शैली में बीच-बीच में ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के विवरण से पाठकों का कौतूहल बढ़ता है और वह इन विच्छिन्न दृश्यों का उपभोग करता है।

'यायावर' (छद्मनाम) का वास्तविक नाम है विनयकुमार मुखोपाध्याय और ये भारत सरकार के सूचना-विभाग के अध्यक्ष के रूप में बहुत सालों तक काम करते रहे हैं। इनके दूसरे उपन्यास 'जनांतिक', 'पद्मपाताय जल' आदि को भी विशेष जनप्रियता मिली।

यालप्पाण कदेहळ् (त० कृ०) [रचना-काल—1965 ई०]

इसमे जाफना निवासी के० वी० नडराशन की 11 कहानियाँ सगृहीत हैं। इनमे प्रसिद्ध हैं—'करै', 'वेली', 'इळवु' और 'विडिवु'। 'करै' मे लेखक ने मध्यवित्तवर्गीय ऐसे पिता का चित्र अकित किया है जो अपनी पुत्री से दुर्व्यवहार करता है। 'वेली' मे उच्चवर्गीय समाज के पाखडपूर्ण व्यवहार का वर्णन है। 'इळवु' मे एक युवा व्यक्ति के अमानवीय व्यवहार तथा परिवार पर उसके अप्रत्यक्ष प्रभाव का वर्णन है। इस कहानी के तीनों पात्र अत्यत प्रभावशाली हैं। 'विडिवु' मे उच्च वर्ग की ऐसी नारी के अनुभवो का वर्णन है जिसने अछूत व्यक्ति से विवाह किया है। इस कहानी मे लेखक ने चेतना प्रवाह शैली का प्रयोग करते हुए उस नारी के मनोभावो की अभिव्यक्ति की है। यह लेखक की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इन कहानियो मे लेखक ने जाफना निवासियो के जीवन के विविध पक्षो का अकन किया है। जाफना का तमिल समाज घोर जातिवादी है, प्राचीन प्रथाओ से ग्रस्त है। उच्चवर्ग के व्यक्तियो का जीवन कृत्रिमता से पूर्ण है। लेखक की इन विचारधाराओ की अभिव्यक्ति सभी कहानियो मे हुई है। प्रदेश विशेष की भाषा के प्रयोग के कारण ये कहानियाँ अत्यत प्रभावशाली बन पडी हैं।

यास यगाना चगेजी (उर्दू० ले०) [जन्म—1883 ई०, मृत्यु—1956 ई०]

मिर्जा वाजिद हुसैन पहले 'यास' तखल्लुस करते थे बाद मे 'यगाना' हो गए। इनके पूर्वज ईरान से हिंदोस्तान आए थे और सेना मे भरती हो गए थे। ये पटना मे पैदा हुए थे। इन्होने क्रमश मौलवी सैयद अली खाँ 'वेताब' (दे०) और मौ० 'शाद' अजीमाबादी (दे०) से इस्लाह ली और 1904 मे ये लखनऊ जा बसे थे। इनका विवाह भी वही हुआ था।

'यगाना' की शायरी के विशेष आकर्षण जोर, बदिश की चुस्ती तथा व्यग्य हैं। इनके कलाम मे ओजपूर्ण कल्पना के दर्शन होते हैं। इन्होने नीति एव ज्ञान की बात बडी सफाई से पश की है। 'यगाना' का कलाम पाठक को कर्मवीरता एव साहसिकता का सदेश देता है। निराशा की बात इनके यहाँ बहुत कम है। विचारो की प्रधानता एव गभीरता के कारण इनकी ग़ज़लो मे भी तगज़्ज़ुल की शान पैदा नही हो सकी बल्कि नज़्म का रग छाया हुआ है। इनकी रचनाओ मे फारसी समासो का अधिक प्रयोग हुआ है। 'यगाना' ने रुबाइयाँ भी कही हैं किंतु वे कुछ अधिक लोकप्रिय नही हो सकी। 'यगाना' के काव्य-सग्रह का नाम 'आयात-ए-वजदानी' है।

युगवदना (गु० कृ०)

'युगवदना' राष्ट्रीय शायर श्री झवेरचद मेघाणी (दे० मेघाणी) (1897 ई०) का काव्य-सग्रह है जिसमे गाधीयुग की समग्र चेतना को ओजस्वी शब्दो मे अभिव्यजित किया गया है।

मेघाणी का प्रेरणास्रोत सौराष्ट्र की समग्र प्रकृति और वहाँ का लोक साहित्य है। 'युगवदना' की कविताओ मे राष्ट्रीय चेतना बलिष्ठ लोकलय मे व्यक्त हुई है। कवि के ही शब्दो मे 'भीषण रात्रि केरा पहाडोनी—जाडीए चोप्यो कसुबीनो रग'। यह रग ही इनके काव्य को तेजस्विता प्रदान करता है। प्रस्तुत सग्रह की 'माता तारो बेटरो आवे', छेल्लो कटोरो', 'फूल माल', 'तरणोनु मनोराज्य' तथा 'कदम' प्रभृति रचनाएँ विविध भाव-भूमियो पर आधारित हैं। शहीद वोलता है—'अमारे घर हता व्हालां हता' मे कवि ने शहीदो के मानस की पारदर्शक अभिव्यक्ति की है।

सग्रह के 'पीडित दर्शन' नामक भाग मे मेघाणी का पुण्य प्रकोप प्रकट हुआ है—कभी प्रत्यक्ष रूप म तो कभी व्यग्य मे। 'कोदाली 'वालो', 'काल सैन्य आवया' 'काल जागे', 'विडियोवाल नारीनो गीत' इसके उदाहरण हैं। 'सूना समदर नी पाळे' और 'कोईनो लाडकवायो' जैसे कथाकाव्यो मे घायल सैनिक के अतिम क्षणो की अत्यत हृदय द्रावक एव जीवत अभिव्यक्ति है।

'आत्म सवेदन' शीर्षक से चतुर्थ खड मे 'कदमो भरजे कटक पर एकलो' जैसी कविताएँ कवि की सिद्धि हैं। इस सग्रह मे अनुवादक मेघाणी अनुसर्जक के रूप मे भी असाधारण रूप से प्रकट हुए हैं।

समग्रतया कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय चेतना की ओजस्वी अभिव्यक्ति, लोकलय की बलिष्ठता तथा क्वचित् प्रकट होती हुई ऊँची कल्पना और तज्जन्य बिंबयोजना म कवि न काव्य द्वारा युग की वदना की है।

युग सधि (त० कृ०) [रचना काल—1963 ई०]

'युग-सधि' डॉ० जयकातन् (दे०) की कहा-

नियों का संग्रह है। इसमें उनकी 'युग-संधि' आदि 16 कहानियाँ संगृहीत हैं। इन कहानियों में मानव-जीवन से संबंधित विभिन्न समस्याओं को उठाया गया है। कहानियों के पात्र समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि हैं अतः उनकी समस्याएँ समाज की चिरंतन समस्याएँ हैं। इस संग्रह की चार प्रसिद्ध कहानियों में प्रथम है 'युग-संधि'। इसमें गोगी दादी और उसकी पोती गीता के माध्यम से दो विभिन्न युगों में भारतीय विधवा की स्थिति का दिग्दर्शन कराया गया है। 'मौनम् ओर भावे' और 'किलवकुम् मेर्कुम्' नामक कहानियों में बताया गया है कि नारी की भावनाएँ, समस्याएँ, सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक हैं। नारीत्व और मातृत्व सभी बंधनों से परे हैं। गंभीर समस्याओं से युक्त इन कहानियों की रचना जयकांतन् ने पाठकों के मनोरंजन की दृष्टि से नहीं की। उन्होंने इनके द्वारा पाठकों के मस्तिष्क को कुरेदने की सफल चेष्टा की है।

युगांत *(हि० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

इस रचना में सौंदर्यवादी कवि सुमित्रानंदन पंत (दे०) सौंदर्य-युग का अंत कर देते हैं। 'संग्रह की अधिकांश कविताएँ लोकमंगल की गांधीवादी धारणा से ओत-प्रोत हैं। 'बापू के प्रति' शीर्षक रचना इस 'माला का सुमेरु' है। कहीं-कहीं आंदोलनों का प्रभाव और दर्शन की मुख्यता काव्य-तत्त्व में बाधक हो गये हैं, परंतु अधिकांश रचनाओं में कल्पना की रमणीयता, भाषा की महाप्राणता और कला की स्वस्थ मांसलता दर्शनीय हैं।

युगे-युगे *(गु० कृ०)* प्रकाशन-वर्ष—1969 ई०]

'युगे-युगे' हरींद्र दवे द्वारा रचित एकांकी नाटक है। गांधी शताब्दी की भूमिका ले कर रचे गए इस नाटक में छह दृश्य हैं और लगभग 16 पात्र हैं। चूंकि प्रस्तुत नाटक राजनीतिज्ञों पर प्रहार करता है, अतः लेखक को घोषणा करनी पड़ी है कि इस नाटक के सभी पात्र कल्पित हैं। नाटक का आरंभ गांधी शताब्दी के आयोजन के लिए एकत्र हुए मंत्रियों की बैठक से होता है। लगता है, सभी अपनी-अपनी रोटियाँ सेंकने में लगे हुए हैं। स्वदेशी भवन का नक्शा ही बदल देने के आदेश दिए जा चुके हैं। गांधी जी के तीन बंदर अब बोध की वस्तु नहीं, अपितु शो-केस में रख देने की वस्तु बन गए हैं और उन्हें यथास्थान पहुँचा देने की आज्ञा भी कर दी गई है। इस बदले हुए माहौल में अगर गांधी जी आ जाएँ तो बकौल एक पात्र के उन्हें स्वदेशी भवन का गुरखा अंदर ही नहीं घुसने देगा और अगर आने भी दिया गया तो उनके साथ दो आदमी सतत रहेंगे—यह देखने के लिए कि कहीं यह बुड्ढा कुछ उठाकर तो चलता नहीं बनता। गांधीवादियों की कुछ रंगतें देखिए: 'अगर गांधीजी को सभी कुछ (आश्रमवासियों के बारे में) पता चल जाता तो उन्हें इतने उपवास करने पड़ते कि गोडसे को गोली मारने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। (महामंगलप्रसाद); 'गांधीवादी किसी निश्चित उम्र में रागद्वेष, मोहमाया छोड़ देते हों, ऐसा कभी हुआ है क्या ? उल्टे जैसे उम्र बढ़ती है वैसे मोह बढ़ता जाता है'। (सोहिनी) प्रसिद्ध गांधीवादी दिलावरसिंह एक घोषणा करके सभी को चौंका देते हैं: 'प्रसिद्ध वैज्ञानिक वेंकटराघवन गांधी को सदेह पृथ्वी पर ला रहे हैं।' यह सुनते ही सभी गांधीवादियों की नींद हराम हो जाती है। वेंकटराघवन और दिलावरसिंह की हत्या करने के उपाय होते हैं। असफल होने पर सभी पक्षों की एक गुप्त सभा होती है। चर्चा का विषय है कि किस प्रकार गांधीजी को, अगर वे आ ही जायें तो, प्रभावहीन बनाया जाय! अंत में एक व्यक्ति सुझाव देता है कि उन्हें फिर से गोली मार दी जाये। इसी के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। सनातन नामक एक पात्र प्रश्न पूछता है: 'यह नाटक यहाँ पूरा होता है या यहाँ से आरंभ होता है?' नाटक की भाषा बड़ी व्यंग्यप्रधान और चुटीली है। नाटक समग्रतः सुंदर है।

युधिष्ठिर *(सं० पा०)*

यह राजा पांडु के पाँचों पुत्रों में ज्येष्ठ था। इसकी माता का नाम कुंती (दे०) था। पाँचों पांडवों की पत्नी होने के नाते द्रौपदी (दे०) इसकी भी पत्नी थी। अपने सद्गुणों के कारण इसे धर्मपुत्र कहा जाता था। इसे अजातशत्रु भी कहते थे। ज्येष्ठ भ्राता होने के नाते अपने भाइयों का यह सदा नेता रहा। इसके गुरु कृपाचार्य तथा द्रोणाचार्य थे। भीष्म (दे०) की आज्ञा से धृतराष्ट्र (दे०) ने इसका यौवराज्याभिषेक किया। इसने श्रीकृष्ण (दे०) की आज्ञा से राजसूय यज्ञ किया था जिसमें प्रतिदिन दस सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता था। किंतु शकुनि के साथ द्यूतक्रीड़ा में यह अपना सर्वस्व हार गया, यहाँ तक कि द्रौपदी को भी दाँव पर लगाकर हार गया। परि-

णामत. इसे भाइयो समेत बारह वर्ष का वनवास और फिर एक वर्ष का अज्ञातवास भोगना पडा। यम के साथ इसका सवाद इस तथ्य का सूचक है कि यह एक तत्त्व-चितक व्यक्ति था। अज्ञातवास के बाद इसने काफी प्रयास किया कि 'महाभारत' (दे०) का युद्ध टल जाए, किंतु द्रौपदी के तर्कों के आगे इसकी एक न चली और युद्ध करना अनिवार्य हो गया। इस युद्ध मे इसका यह वाक्य कि 'अश्वत्थामा हत नरो वा कुजरो वा' द्रोणाचार्य की मृत्यु का कारण बना। जब भीम (दे०) ने द्वद्व युद्ध मे दुर्योधन (दे०) की जघा का भग किया तो युधिष्ठिर ने भीम की पर्याप्त भर्त्सना की थी। महाभारत-युद्ध के बाद इसका राज्याभिषेक किया गया। फिर इसने तीन अश्वमेध यज्ञो का आयोजन किया। अतत इसने अपने भाइयो के साथ महाप्रस्थान किया। अन्य भाइयो तथा द्रौपदी का तो मार्ग मे पतन हो गया किंतु यह स्वर्ग-द्वार मे पहुँच गया। साथ में श्वान-रूपधारी यम भी इसके साथ था। इस समय इसकी आयु सभवत 108 वर्ष थी।

यूसफ जुलेखा (प० कृ०) [रचना-काल—1679 ई०]

हाफिज बरखुरदार (दे० हाफिज)-कृत 'यूसफ जुलेखा' कवि की अन्य दो किस्सा-कृतियो—'मिरजा साहिबाँ' और 'सस्ती पुन्नू'—से अधिक प्रसिद्ध है। इसमे नबी याकूब के पुत्र यूसफ के सदाचरण और सुलतान तैमूर की पुत्री जुलेखा के वासनापूर्ण प्रेम का सुखात वर्णन है। फारसी मसनवियो की रचना-पद्धति और फारसी उपमानो तथा शब्दावली के प्रयोग का आधिक्य होने पर भी रीति-रिवाज और वस्त्रालकार के वर्णन द्वारा कवि ने इस विदेशी कथा को भी पजाबी वातावरण मे ढाल दिया है। इस रचना मे शृगार का वियोग-पक्ष विशेष रूप से उभरा है, परतु कवि का कौशल प्राय अनुभाव-चित्रण तक ही सीमित रह जाता है। हृदय के सूक्ष्म भावो की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति करने मे वह सफल नही हुआ। पजाबी किस्सा-काव्यधारा को फारसी की मसनवी-पद्धति की ओर उन्मुख करने की दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण है। भाषा विभाग, पटियाला ने इस रचना को गुरुमुखी लिपि मे मुद्रित कर प्रकाशित किया है।

येंडकुडुक रत्न (क० पा०)

'येंडकुडुक रत्न' (यानी 'पियक्कड रत्न') राजरत्नम् (दे०) जी की एक अमर सृष्टि है। उन्होंने इसमे पियक्कडो की दुनिया मे बैठकर उनकी दृष्टि से दुनिया को देखा है। पियक्कड भी मनुष्य होता है। अन्यो के समान आस्तिक हो सकता है। वह शराब ही भेंट के रूप मे चढाता है। शराब उसकी जान है। उसका दावा है कि उसकी हर बात, चाल-चलन सब शराब से परिचालित हैं। उसका दावा है कि जिसे रवि नही देख सकता उसे कवि देख सकता है और जिसे कवि भी नही देख सकता उस पियक्कड देख सकता है। पियक्कड होने पर भी वह स्वाभिमानी है। रत्न जो कुछ प्राप्त है उससे सतुष्ट है, उसमे दूसरो को बरबाद कर अपनी प्रगति करने की मनोवृत्ति नहीं है। उसके पास समदृष्टि है। रत्न का दावा है कि सारा जगत् पियक्कड है। सूरज भी शाम के वक्त मधुशाला जाकर शराब पीता है और सारी रात इधर-उधर भटकता रहता है। इस पियक्कड मे पढे लिखे सुसस्कृत कहे जाने वाले लोगो से अधिक मानवता है। पियक्कड-रत्न प्रकृति प्रेमी भी है। कोडगु के निसर्ग सौंदर्य पर वह सौ जान से निसार है। वह भावुक ही नहीं, चितक भी है। वह देखता है कि समता के स्वाँग मे गरीब और गरीब, अमीर और अमीर होते जा रहे हैं, भेद-भाव, विषमता और बद्धमूल हो रहे हैं, अमीर के हितो के लिए शास्त्र बदल जाते हैं। इस तरह राजरत्नम जी का 'येंडकुडुक रत्न' गरीबो का प्रतिनिधि है। वह अपनी मदिरा के दर्पण मे सारे विश्व को देख सकता है, उस पर आलोचना कर सकता है। आधुनिक कन्नड साहित्य के अमर चरित्रो मे येंडकुडुक रत्न भी एक है।

योगाचार (पा० पारि०)

यह महायान शाखा (दे०) की अन्यतम दार्शनिक शाखा है। इसका प्रवर्तन पाँचवी शती मे असग ने किया था। वसुबधु दिङ्नाग इत्यादि इसके दूसरे प्रतिष्ठित आचार्य हैं और योगाचार', 'भूमिशास्त्र', 'महायान', 'सूत्रालकार', 'लकावतारसूत्र' इत्यादि प्रतिष्ठित ग्रथ हैं। इसमे महायान के परम ज्ञान बोधि (दे०) को प्राप्त करने के लिए योगसाधना और आचार दोनों पर बल दिया जाता है इसीलिए इसे योगाचार (दे०) की सज्ञा प्राप्त हुई है। इस सिद्धात मे समस्त भौतिक जगत् का निषेध कर केवल विचार जगत् को स्वीकार किया जाता है और समस्त यथार्थ जगत् को विज्ञान की परिणति के रूप मे स्वीकार किया जाता है, अत इस 'विज्ञानवाद' की सज्ञा

भी प्रदान की जाती है।

इस संप्रदाय में बाह्य जगत् की सत्ता का निषेध किया जाता है और उसे मिथ्या भ्रमात्मक माना जाता है, किंतु मानसिक जगत् का प्रतिषेध नहीं किया जाता। मानसिक जगत् को सत्य मानने पर ही विचार-जगत् का भी परिष्कार हो सकता है। जिस प्रकार स्वप्न में मानसिक विचार वस्तुओं के रूप में परिणत हो जाते हैं तथा वस्तुएँ स्वरूपतः मिथ्या होती हैं उसी प्रकार दृश्यमान जगत् भी अयथार्थ है और मानसिक जगत् का विपरिणाम मात्र है। जिस प्रकार दृष्टि-दोष से चंद्रमा दो प्रतीत होते हैं उसी प्रकार भौतिक जगत् अज्ञान के कारण मानस-जगत् से भिन्न प्रतीत होता है। वस्तुतः दोनों की पृथक् सत्ता नहीं है। भौतिक पदार्थ मानसिक भावना से भिन्न कभी प्रतीत नहीं होते। घटनाओं की सारी प्रक्रिया व्यक्तिगत चेतना में भावरूप में संकलित रहती है। समस्त प्रतिकृतियों का संग्रह होने के कारण इसे आलयविज्ञान की संज्ञा दी जाती है। पूर्वकालीन विभिन्न विचारों और घटनाओं की भावना के अवशेष रहने के कारण भौतिक जगत् की प्रतीति भी अनेकरूपात्मक होती है। मन क्षणिक चेतनाओं की एक धारा है जिसमें पुराने अनुभवों के संस्कार दबे पड़े रहते हैं। अनुकूल परिस्थिति के अनुसार विभिन्न संस्कार उद्भूत होते रहते हैं। परिस्थिति की सापेक्षता के कारण सर्वत्र सभी अनुभव प्रकट नहीं होते, किसी एक क्षण में कोई विशिष्ट संस्कार ही भौतिक तत्व का रूप धारण कर प्रकट होता है। मानस संस्कार आत्मा के समान अपरिवर्तनीय नहीं। निर्वाण (दे०)-प्राप्ति के लिए आत्म-निग्रह द्वारा इस चेतना-धारा का अवरोध संभव है।

योगरूढ़ शब्द (*हि० पारि०*)

ऐसे शब्द जो रचना की दृष्टि से यौगिक होते हैं, किंतु अर्थ की दृष्टि से रूढ़ होते हैं—जैसे 'जलज'। रचना की दृष्टि से यह 'जल+ज' है किंतु इसका रूढ़ अर्थ है 'कमल'। जल में जन्मी अन्य चीजें या जीव आदि इसके अर्थ नहीं हैं। हाथी, पंकज, पक्षी आदि भी ऐसे ही शब्द हैं। हाथी किसी भी हाथयुक्त जीव का नाम नहीं है, न पंक में जनमी हर चीज़ पंकज है और न हर पक्षयुक्त पक्षी ही है।

योगसार (अप० कृ०)

'योगसार' के लेखक का नाम योगिंदु (दे०) अथवा जोगिचंद्र है। ग्रंथ में रचना-काल का उल्लेख नहीं है।

इस ग्रंथ का विषय भी 'परमात्म-प्रकाश' के विषय के समान है। इसमें लेखक ने बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा का स्वरूप बताते हुए परमात्मा के ध्यान पर बल दिया है और पाप-पुण्यात्मक दोनों प्रकार के कर्मों के त्याग का आदेश दिया है। लेखक का मत है कि सांसारिक बंधनों और पाप-पुण्यों का त्याग कर आत्म-ध्यान में लीन ज्ञानी ही मोक्ष को प्राप्त करता है।

ग्रंथ की भाषा हृदयस्पर्शी है। सीधी और सरल भाषा में भावों की अभिव्यक्ति हुई है और दोहा छंद का प्रयोग किया गया है।

तत्कालीन भाषा के स्वरूप और संत-साहित्य के पूर्वरूप के ज्ञान के लिए यह ग्रंथ उपादेय है।

योगसूत्र (*सं० कृ०*) [रचना-काल—200 ई० पू०]

'योगसूत्र' के लेखक 'पतंजलि' (दे०) है। योगसूत्र में चार पाद हैं—समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद, और कैवल्यपाद। 'योगसूत्र' पर व्यास-कृत भाष्य भी है। परंतु ये व्यास 'महाभारत' दे० के रचयिता व्यास से भिन्न हैं।

'योगसूत्र' योग-दर्शन का आधार-ग्रंथ है। योग-दर्शन के अंतर्गत विशेष रूप से चित्त के आधार पर ही योग-विषयक विश्लेषण किया गया है। योग-दर्शन के अनुसार 'योग' शब्द का अर्थ समाधि है। योग-भाष्य के लेखक ने योग को चित्तवृत्ति का निरोध कहा है। योग-दर्शन में चित्त की पाँच भूमियाँ स्वीकार की गई हैं। चित्त की ये भूमियाँ या अवस्थाएँ—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र तथा निरुद्ध हैं। योग-दर्शन के अनुसार मुक्ति के लिए चित्त-वृत्तियों का मूल कारण अज्ञान है। ये अज्ञानजन्य वृत्तियाँ भी दो प्रकार की हैं। एक क्लिष्ट और दूसरी अक्लिष्ट। क्लिष्ट वृत्तियाँ धर्म, अधर्म तथा वासनाओं की उत्पत्ति का कारण हैं और अक्लिष्ट वृत्तियाँ 'ख्याति' को देने वाली हैं। 'ख्याति' शब्द का अर्थ योग-दर्शन में रजस् और तमस् से रहित बुद्धि सत्व की प्रशांत वाहिनी प्रज्ञा है। ये वृत्तियाँ संस्कारों की निर्मात्री हैं। चित्तवृत्ति के निरोध की स्थिति में ये वृत्तियाँ केवल संस्कार-रूप में शेष रह जाती हैं। योग-दर्शन में समाधि के दो भेद हैं—एक संप्रज्ञात और दूसरी असंप्रज्ञात। असंप्रज्ञात के भी भाव-प्रत्यय और उपाय-प्रत्यय ये दो भेद हैं।

योग-दर्शन की भाषा-शैली सुबोध एव वैज्ञानिक है।

योगिंदु (योगींद्र) *(अप० ले०)* [रचना-काल—आठवी-नौवी शती ई०]

योगिंदु की दो कृतियाँ—'परमप्पयासु' (दे०) और 'योगसार' (दे०) प्राप्त होती हैं। इनके रचे अनेक ग्रंथ कहे जाते हैं किंतु 'परमप्पयासु' और 'योगसार' के समान भावधारा उनमे नही मिलती। योगिंदु ने इन कृतियो मे अपने विषय मे कोई सूचना नही दी।

योगिंदु किस काल मे हुए यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। परतु भाषा पर विचार करने से इनका समय आठवी-नौवी शती के लगभग प्रतीत होता है।

योगिंदु विचारो मे उदार थे। इनकी जैन धर्म मे आस्था थी किंतु इन्होने किसी सप्रदाय विशेष के प्रति अनावश्यक आग्रह प्रकट नही किया और धर्म के बाह्य रूप एव कर्मकाड की अपेक्षा धर्म के आतरिक रूप और सदाचारमय जीवन पर ही बल दिया है।

योगिंदु की कृतियो का प्रधान छद दोहा है। इनकी कृतियो की अपभ्रंश भाषा शास्त्रीय अपभ्रंश की अपेक्षा लोक भाषा के अधिक निकट है।

योगियार, स० तु० सु० *(त० ले०)*

सस्कृत तत्सम शैली मे इनका पूरा नाम 'सुब्रह्मण्य योगी' है। प्रबल वाणी के इस आधुनिक कवि का स्वर्गवास अभी कुछ साल पूर्व हुआ।

ये 'कोयपुत्तूर' जिले के निवासी थे और प्रारभिक जीवन मे गाधीवादी कार्यकर्त्ता रहे थे। मद्रास शहर मे इन्होने अपना बाद का जीवन बिताया था जहाँ आकाशवाणी के विभिन्न कार्यक्रमो मे ये भाग लेते थे तथा सिनेमा के कथा एव सवाद-लेखन का कार्य करते थे।

इनकी कविताओ की छाप अलग है। राष्ट्र-प्रेम तथा अपूर्व ओज इनकी वाणी की विशेषताएँ हैं। इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध कविता-सग्रह 'तमिलक्कुमरि पाटल्कळ' (तमिल प्रदेश की 'कन्याकुमरि' आदि कविताएँ) है और इसी एकमात्र रचना के वाग्वैदग्ध्य और प्रभावशाली छद के निर्वाह ने इनका नाम अमर कर दिया है।

यौगधरायण *(स० पा०)*

वत्सराज उदयन (दे०) का मत्री यौगधरायण भास (दे०) की प्रतिभा की देन है। भास कृत 'स्वप्नवासवदत्तम्' (दे०) नामक नाटक तथा श्रीहर्ष (दे०) की 'रत्नावली' नाटिका में आर्य यौगधरायण एक मुख्य पात्र के रूप मे चित्रित है। उदयन की तरह ही वह भी साहसिक कार्यों मे रुचि लेता है।

उज्जयिनी के प्रबल राजा चडप्रद्योत के नलगिरि हाथी को पकडने के प्रयास मे जब छद्मवेशी उदयन पकड लिया जाता है तो यौगधरायण को ही वह सदेश भिजवाता है। यौगधरायण उदयन को छुडाने के लिए अनेक लोगो के साथ छद्मवेश मे उज्जयिनी पहुँचता है और पागल बनकर इधर-उधर घूमते हुए उदयन को वासवदत्ता (दे०) के साथ निकाल ले आता है। प्रद्योत के कोप से बचने के लिए वह मगधराज से सधि करना चाहता है। इसके लिए लावाणक से वासवदत्ता के जल मरने की अफवाह उडाकर वासवदत्ता को मगधराज-पुत्री पद्मावती के यहाँ धरोहर रखता है जिससे एक तो मगधराज अपनी पुत्री की शादी उदयन से करके वत्सराज उदयन की मदद करें, दूसरे बाद मे जब वासवदत्ता के जीवित होने की बात हो तब तक पद्मावती की उसके साथ मित्रता हो जाय।

यौगधरायण के क्रियाकलाप मे गोपनीयता एव साहस का विलक्षण योग है। वह एक चतुर मत्री, कुशल प्रेक्षक एव कल्याणकारी चरित्र का व्यक्ति है। उसकी दृष्टि से जीवन की सार्थकता पौरुष मे है।

यौगिक शब्द *(हि० पारि०)*

ऐसे शब्द जिनमें एक से अधिक सार्थक इकाइयाँ हो, अर्थात् जिनके सार्थक खड हो सकें। जैसे डाकखाना (डाक+खाना), मानवता, (मानव+ता), प्रबल (प्र+बल)। यौगिक तीन प्रकार के होते हैं समस्तपद—जो एकाधिक शब्दो को समास द्वारा एक मे मिलाकर बने हों। जैसे घुडदौड, रसोईघर, जेलखाना। प्रत्ययुक्त—जिसकी रचना प्रत्यय के योग से हुई हो। जैसे जापानी (जापान+ई), सुदरता (सुदर+ता), चालू (चाल्+ऊ)। उपसर्गयुक्त—जिसकी रचना उपसर्ग के योग से हुई हो। जैसे प्रयत्न (प्र+यत्न), अनुमति (अनु+मति), सपूत (स+पूत)। कुछ यौगिक शब्द ऐसे भी होते हैं जिनमे

कई भाषिक इकाइयों का योग होता है। जैसे 'अनबोलता' (अन्+बोल+त् +आ)।

रंगण्णा, एस० वी० *(क० ले०)*

प्रोफ़ेसर डा० एस० वी० रंगण्णा जी कन्नड के शैलीकार गद्यलेखक हैं। कुछ समय पूर्व ये मैसूर विश्वविद्यालय में अँग्रेज़ी प्रोफ़ेसर के पद पर विराजमान थे; अब विश्वविद्यालय-सेवा से निवृत्त हो गये हैं। ये महाराजा कालेज, मैसूर के प्रिंसिपल भी थे। अँग्रेज़ी-कन्नड-कोश के संशोधन-विभाग में प्रधान संपादक के रूप में भी इन्होंने उल्लेखनीय सेवा की है। ये कन्नड और अँग्रेज़ी के प्रकांड पंडित हैं—इन दोनों भाषाओं में समान रूप से लिख सकते हैं। इनकी पुस्तकें 'रंगबिन्नप' (दे०) अर्थात् 'रंग की विनय' साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत है। यह कन्नड-वचन-वाङ्मय के लिए एक सुंदर देन है। मध्यकाल में वीरशैव भक्त कवियों के कारण वचन-वाङ्मय संपन्न और समृद्ध हुआ था। आधुनिक काल में इस साहित्य-विधा को इन जैसे प्रबुद्ध साहित्यकारों के कारण नया जीवन मिला है।

'शैली' पर इनकी पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हुई हैं। कन्नड के महाकवि कुमारव्यास (दे०) की शैली का भी इन्होंने अच्छा विवेचन किया है। आलोचना के क्षेत्र में इनका प्रयास नया और आदर्श स्थापित करने वाला सिद्ध हुआ है। 'पाश्चात्य गंभीर नाटकगळु' (पाश्चात्य त्रासद) इनका एक बहुत बड़ा ग्रंथ है।

रंगनायन्, ति० ज० *(त० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

वरिष्ठ लेखकों में इनका स्थान रहा है। इस शती के तीसरे दशक की सृजनात्मक साहित्य-पत्रिका 'मणिक्कोटि' में लिखने वालों में ये भी एक थे। पत्रकारिता इनकी आजीविका रही है। संप्रति ये 'मंजरि' नामक तमिल 'डाइजेस्ट' पत्रिका के संपादक हैं। लघुकथा तथा बाल-साहित्य इन दोनों विधाओं के लेखक के रूप में इनकी ख्याति है। इनका पहला लघुकथा-संग्रह 'चंतनक् कावटि' (चंदन का काँवर) प्रसिद्ध हो चुका है। अन्य संग्रह 'मचळ्तुणि' (पीला कपड़ा) तथा 'विचैवात्तु' (द्रुतगामी बत्तख) तथा 'नोण्टिक् किळि' (पंगु तोता') हैं। कुछ बालोपयोगी रचनाओं के नाम ये हैं—'रोजाप्पेण' (गुलाब-कन्या) तथा 'वण्णात् तिप्पूच्चि' (तितली)। इनमें से कुछ मद्रास सरकार द्वारा पुरस्कृत हो चुकी हैं। इनकी लघुकथाएँ एक ही भाव-बिंदु का विवरण प्रस्तुत करते हुए अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो गई हैं।

रंगनाथ रामायणमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—चौदहवीं शती ई०]

अपने पिता के आदेश पर प्रसिद्ध कवि गोन बुद्धा रेड्डी (दे०) द्वारा रचित 'रंगनाथ रामायणमु' सरल और सुबोध शैली में होने के कारण वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) की भाँति 'पाठ्ये गेये च मधुरम्' कही जा सकती है। यह काव्य छह कांडों में द्विपद (दोहा जैसा छंद) छंद में निबद्ध है। कथा वाल्मीकि-'रामायण' के अनुसार ही चलती है, पर यत्र-तत्र कुछ नयी उद्भावनाएँ भी पाई जाती हैं। अहल्या के प्रसंग में देवराज इंद्र गौतम के आश्रम में कुक्कुट का रूप धारण करके आता है और आधी रात के वक्त मुर्गे की बाँग सुनकर गौतम सवेरा हुआ समझ कर नदी में स्नान करने चले जाते हैं। इस प्रकार इंद्र को अहल्या से मिलने का मौका मिलता है। इसी प्रकार अयोध्याकांड में मंथरा का राम से बाल्यकाल से ही कुछ विरोध बताया जाता है जिसके कारण वह कैकेयी को राम को वन भेजने के लिए उकसाती है। कुछ अन्य प्रसंगों में भी कवि की मौलिक भावनाएँ परिलक्षित होती हैं। रावण की माता कैकेशी और मेघनाद की पत्नी सुलोचना और रावण की राजमहिषी मंदोदरी का चरित्र चित्रित करने में कवि को जो सफलता मिली है, वह अन्य किसी भी रामकथाश्रयी काव्य में दुर्लभ है। तेलुगु में जितने रामकाव्य हैं, उनमें 'रंगनाथ रामायणमु' ही सबसे सरल, सुबोध और सरस रचना मानी जा सकती है। इसके उत्तरकांड का पता नहीं चलता।

रंगनायकम्मा, मुप्पाळ्ळ *(ते० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

इन्हें नयी पीढ़ी की तेलुगु-उपन्यास-लेखिकाओं में आदरणीय स्थान प्राप्त है। 'पेकमेडलु' (दे०) (ताश के महल), 'बलिपीठमु', 'रचयित्री', 'कृष्णवेणी', 'स्त्री', कूलिन गोडलु (गिरी हुई दीवारें), 'स्वीट होम' आदि कई उपन्यास पाठक-समाज में अत्यंत लोकप्रिय हैं। अनुभूति की तीव्रता, वास्तविकता के प्रति सजग निष्ठा और नारी-गौरव को प्रतिष्ठित करने में अकुंठित आत्मीयता इनकी रचनाओं की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इन सभी रचनाओं में आनंदमय जीवन की कामना कई रूपों में मुखरित हुई है।

रंगबिन्नप (क० कृ०)

आधुनिक समय के कन्नड-साहित्यकारो मे डा० एस० वी० रगण्णा (दे०) का सम्मान्य स्थान है। 'शैली', 'रुचि', 'शाकुतल', 'कुमारव्यास', 'पाश्चात्य गभीर नाटकगळु' (दे०) (पाश्चात्य त्रासद) जैसी कृतियो के द्वारा जहाँ आपने कन्नड आलोचना की स्वस्थ परपरा चलाई वहाँ 'रगबिन्नप' (रग की विनय) की रचना करके आधुनिक कन्नड मे मनोहर गद्य शैली का उदाहरण भी प्रस्तुत किया है। 'रगबिन्नप' साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत उत्कृष्ट कृति है। कन्नड मे वचन' नामक साहित्य-विधा का प्रचलन है जिसका इतिहास बारहवी शती से भी पुराना है। वीरशैव भक्त-कवियो ने बारहवी शताब्दी से वर्तमान समय तक कन्नड के वचन-वाड्मय को समृद्ध किया है। प्रो० रगण्णाजी की कृति प्राचीन और आधुनिक वचन-परपरा की एक सुदर कडी है।

मैसूर विश्वविद्यालय की साहित्य-पत्रिका 'प्रबुद्ध कर्नाटक' मे प्रो० रगण्णा के वचन 'रगय्यन वचनगळु' शीर्षक से प्रकाशित होते थे जो बाद मे 'रगबिन्नप' के रूप मे पाठको के सामने आये। ये वचन वचनकार के इष्टदेव 'रगय्या' की छाप से सुशोभित हैं। 'रगबिन्नप' की प्रस्तावना काफी लबी है और उसमे लेखक को किन-किन स्रोतो से प्रेरणा मिली है, इसका उल्लेख है। प्रत्येक वचन अपने आप मे पूर्ण है और उसमे लेखक के अभीष्ट भाव या विचार की सुदर अभिव्यजना दृष्टिगत होती है। गति, लय, नाद-माधुर्य, शब्द-सौष्ठव, बध विलास, आदि गुणो से परिपूर्ण प्रो० रगण्णाजी के वचन निश्चित रूप स आधुनिक कन्नड-गद्य-साहित्य मे नया मोड लाने वाले सिद्ध हुए हैं। इन वचनो मे शब्द लालित्य तथा ताल-लय-लालित्य के साथ-साथ छद के विशिष्ट गुण प्लुत के भी दर्शन होते हैं। इनमे कल्पनालोक का काव्य तत्व माधुर्य की सृष्टि कर सहृदय के हृदय को आनदोल्लास से परिपूर्ण कर देता है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और नैतिक विषयो का चित्रण, भक्ति-ज्ञान का वर्णन, ज्ञान-विज्ञान का मथन, पाडित्य और लोकानुभव का मिलन एव कल्पना और भावुकता का सयोग इन वचनो म जैसा देखा जाता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

रगभूमि (हिं० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1924 ई०]

प्रेमचद (दे०) ने राष्ट्रीय समस्याओ को आधार बना कर जिन उपन्यासो की रचना की थी उनमे 'रगभूमि' का उल्लेखनीय स्थान है। इस उपन्यास मे लेखक ने अधे भिखारी सूरदास (दे०) के माध्यम से महात्मा गाधी के मूलभूत सिद्धातो—अहिंसा, सत्याग्रह, हिंदू-मुस्लिम एकता, आदि का अत्यत सहज प्रतिपादन किया है और यह बताया है कि सत्य तथा अहिंसा का साधक किस प्रकार अत तक धन, सत्ता तथा शासन से टक्कर लेता हुआ अपने प्राणो की बलि दे देने म भी सकोच नही करता। यदि वह हारता भी है तो वह हार ऐसी होती है कि उसके समक्ष विजेता की जीत भी सर्वथा निष्प्रभ हो उठती है। जान सेवक, राजा महेंद्र सिंह, कुंअर भरत सिंह आदि के माध्यम से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दोषो को बखूबी उभारा है और इस तथ्य का निरूपण किया है कि यत्रपरिचालित उद्योग सामाजिक जीवन मे किस प्रकार आवास, बेरोजगारी, मद्यपान आदि अनेक समस्याओ को जन्म देते हैं।

अपने युग की सामाजिक, धार्मिक एव राष्ट्रीय समस्याओ के आकलन के साथ-साथ प्रेमचद ने इस उपन्यास मे जीवन के प्रति अपने दृष्टिकोण को भी रूपायित किया है। उनके अनुसार यह जीवन एक रगभूमि है और इस रगभूमि मे सभी व्यक्ति खेल खेलने आए हैं। लेकिन खेल खेलते समय हमे किसी प्रकार की धाँधली नही करनी चाहिए। इसी स यश तथा कीर्ति मिलती है। अपने व्यापक आधारफलक के कारण इस उपन्यास को महाकाव्यात्मक उपन्यास की सज्ञा दी गई है जो सर्वथा उचित ही है।

रगमच (प० कृ०)

प्रसिद्ध नाटककार बलवत गार्गी (दे०) ने नाटक लिखने के साथ ही उन्हे रगमच पर पर प्रस्तुत करने मे भी विशेष रुचि ली है। प्रस्तुत पुस्तक म उन्होने भारत मे नाटक की परपरा का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत किया है। इसमे पजाब और भारत के अन्य प्रदेशो मे नाटक-लेखन और 'मचन' की परपरा का प्रामाणिक वर्णन है। इसम डा० गार्गी के सुदीर्घ अध्यवसाय के निष्कर्ष अकित हैं।

विभिन्न प्रदेशो म रगमच के विकास के भिन्न-भिन्न स्तरो की बानगियाँ दी गई हैं। ऐतिहासिक दृष्टि इस रचना का उल्लेखनीय गुण है। इसका हिंदी रूपातर भी उपलब्ध है।

रंगमंच *(हि० पारि०)*

रंगमंच से अभिप्राय उस उन्नत मंच से है जिस पर नाट्याभिनय प्रस्तुत किया जाय। भरत (दे०) के 'नाट्यशास्त्र' (दे०) में नाट्यशाला का समृद्ध विवरण इस बात का संकेत है कि उससे पूर्व सुरुचिपूर्ण रंगशालाएँ होंगी, पर भरत का 'नाट्यशास्त्र' अत्यंत व्यवस्थित ग्रंथ है। इसके अनुसार भारत में तीन प्रकार की रंगशालाएँ होती थीं—आयताकार विकृष्ट, वर्गाकार चतुरस्र तथा त्रिकोण-रूप त्र्यस्र। इनमें विकृष्ट मध्यम आदर्श मानी जाती थी। इसके दो खंड—रंगमंच और प्रेक्षक-कक्ष—होते थे। रंगमंच के फिर दो भाग होते थे। —ऊपर का भाग नेपथ्य (दे०) और नीचे का भाग रंगमंच। रंगमंच के दोनों ओर पात्रों के आने-जाने के लिए दो गैलरी बनाई जाती थीं जिन्हें मत्तवारणी कहते थे। रंगमंच के पीछे वाला भाग रंगशीर्ष कहलाता था जहाँ अभिनेता अपनी साज-सज्जा करते थे। हिंदी-रंगमंच अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। वाजिदअली शाह के महल में 'इंदरसभा' (दे०) का अभिनय हुआ था, साथ ही पारसी-कंपनी का अपना अलग रंगमंच था जिसमें पिछले और अगले पर्दों के अतिरिक्त बीच में साधारण पर्दे रहते थे जो दृश्य-परिवर्तन के काम आते थे। अगला पर्दा नाटक के आरंभ में उठकर मध्यांतर में अथवा समाप्ति पर गिरता था। पर्दों की सहायता से विभिन्न दृश्य—राजमहल, मंदिर, कुटी आदि बना लिये जाते थे। भारतेंदु (दे०) ऐसे रंगमंच को जन्म देना चाहते थे जिसमें कलात्मक प्रौढ़ता हो, पर पारसी-रंगमंच का प्रभाव बना रहा जो अभी तक दृष्टिगत होता है। अव्यावसायिक नाट्य-संस्थाओं और सांस्कृतिक क्लबों द्वारा इस दिशा में पर्याप्त प्रगति हुई है। कुछ सरकारी संस्थाएँ भी कार्य कर रही हैं। अभिनव भरत ने कुछ नाट्य-प्रयोग—पेटिका रंगमंच, रूपकार-दृश्यपीठ मंच, त्रि-परिमाणीय खुले मंच, मध्यस्थ केंद्रीय रंगमंच, त्रि-परिमाणादि आकाश-रेखा स्वाभाविक स्थिर रंगपीठ आदि किये हैं। यूरोप में भी यूनानी खुले रंगमंच से आधुनिक रंगमंच तक अद्भुत विकास हुआ है। वहाँ छज्जों वाले तथा होर्स-शू रंगमंच से आगे बढ़कर रेखा-वादी (क्यूबिस्ट), निर्माणवादी (कंस्ट्रक्टिव), चलमंच, उन्नयन मंच, चक्रिल रंगमंच आदि अनेक प्रयोग हुए हैं।

रंगाचार, आद्य *(क० ले०)*

दे० श्रीरंग।

रंगाजम्मा *(ते० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती ई०]

आंध्र प्रांत से बाहर आंध्र-भारती का प्रचार और प्रसार करने का श्रेय तंजौर के नायक राजाओं को प्राप्त है। इन्हीं राजाओं में अंतिम विजयराघव नायक के दरबार में रंगाजम्मा रहती थीं। रंगाजम्मा केवल राज-कवयित्री ही नहीं थीं, राजा की हृदयेश्वरी भी थी। रंगाजम्मा की प्रतिभा और रूपमाधुरी पर मुग्ध होकर राजा ने उनका कनकाभिषेक किया था। रंगाजम्मा भी राजा को अपने आराध्य पति के समान मानती थी। उनके पुत्र मन्नारुदास पर 'मन्नारुदासविलासमु' नामक प्रबंध और 'यक्षगानमु' (दे०) की रचना इस कवयित्री ने की थी। इसके अलावा 'उषापरिणयमु' नामक प्रबंधकाव्य भी इनके नाम से प्रसिद्ध है। कहते हैं 'भागवत' (दे०), 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) के इतिवृत्तों पर आधारित काव्य भी इस कवयित्री ने लिखे थे। इस कवयित्री की रचना में कोमल भावों की कांतासम्मित ललित अभिव्यंजना पाई जाती है।

'रंगीन' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1755 ई०; मृत्यु—1835 ई०]

नाम—सआदत यार खाँ, उपनाम—'रंगीन'; जन्म-स्थान—सरहंद। ये 'इंशा (दे०) के घनिष्ठ मित्र थे। ये सर्वप्रथम शाह हातिम (दे०) के शिष्य बने थे परंतु बाद में इन्होंने 'मीर' (दे०) का शिष्यत्व ग्रहण करना चाहा था। मीर साहब ने इन्हें यह कहकर अपना शिष्य बनाने से इनकार कर दिया था कि तुम धनवान व्यक्ति हो, अतः तुम काव्य-कला सीखने में असमर्थ रहोगे। हातिम के बाद ये मुहम्मद अमान 'निसार' (दे०) और 'मुसहफ़ी' (दे०) से अपनी कविताओं का संशोधन कराने लगे थे।

इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं—'मसनवी दिलपज़ीर', 'ईजाद-ए-रंगीन' (मसनवी), चार-दीवान, 'मसनवी मज़हर-उल-अजाइब' और 'मजालिस-ए-रंगीन'। 'मजालिस-ए-रंगीन में तत्कालीन काव्य-संबंधी मान्यताएँ और आलोचनात्मक लेख हैं। इन कृतियों के अतिरिक्त उनकी एक और कृति 'फ़रसनामा' भी है। इसमें घोड़ों की बीमारियों के नुस्खे और उनकी पहचान आदि का वर्णन है।

रजाबती *(बँ० पा०)*

लाउसेन की जननी रजाबती (धर्ममगल दे०) का चरित्र दुख और विस्मय का उद्रेक करने वाला चरित्र है। यह दुख एव विस्मय उसके चरित्र की विपरीत धर्मिता से उद्भूत है। वृद्ध पति के प्रति अविचलित श्रद्धा एव पुत्र प्राप्ति के लिए ऐकातिक निष्ठा इस चरित्र को महिमान्वित करती है परतु परवर्ती जीवन विन्यास मे चरित्र का यह सामजस्य रह नही पाया है। वीर नायक की जननी के रूप मे यह चरित्र केवल निष्प्रभ ही नही, ग्लानिमय भी हो गया है। वीरत्व के आदर्श से रजाबती गिर जाती है। सतान स्नेहातुरा जननी के रूप मे उसने जिस हीन कौशल से पुत्र को घर मे अबद्ध रखने की कोशिश की है उससे उसका चरित्र केवल भ्रष्ट ही नही होता, मलिन भी दिखाई पडने लगता है। इस चरित्र की यह पारपर्यहीनता खटकती है। सामजस्य के अभाव मे रजाबती के चरित्राकन मे लेखक की व्यर्थता प्रकट हुई है।

रधावा, महिंदर सिंह *(प० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

डा० रधावा बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। साहित्य, लोकधारा और कला के क्षेत्र मे उनकी खोज और सुरुचिपूर्ण सगठन सयोजन के कारण उनका व्यक्तित्व एक सस्था का स्वरूप धारण कर चुका है। पजाब की मौलिक सस्कृति के विभिन्न प्रसारो के प्रति उनके मन मे अटूट आकर्षण है और वह जिन जिन रूपो मे अभिव्यक्त हुई है, रधावा ने उन्हें सँभालने और प्रचारित करने के लिए अपना सपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया है। आप व्यवसाय से एक वनस्पति विज्ञानी हैं और इस क्षेत्र मे आप अतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के व्यक्ति हैं परतु आपकी रुचि साहित्य और कला के क्षेत्र मे भी अभूतपूर्व है। आपने स्वय तो कार्य किया ही है, साथ साथ अनेक कलाकारो साहित्य-स्रष्टाओ और कला अनुसधित्सुओ को अपने अपने क्षेत्र मे कार्य करने के लिए प्रोत्साहित भी किया और यथासभव सुविधाएँ भी उपलब्ध की कराईं। डा० रधावा सूक्ष्म बुद्धि के और सुरुचिपूर्ण व्यक्ति हैं, फलत पजाब की कलागत और बौद्धिक गतिविधियो के प्रचार प्रसार मे आप निरतर योग देते रहे हैं। नये पजाब के नवनिर्माण में आपके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दृष्टिगत होती है। पजाबी चित्रकारी पजाबी लोक-साहित्य और पजाबी लोक-कलाओ पर आपकी निम्नलिखित रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

1 *हिमालयन आर्ट*, 2 *कांगडा वैली पेंटिंग्ज*, 3 कृष्ण लीजेंड्स इन आर्ट, 4 कांगडा पेंटिंग्ज इन भागवत पुराण 5 पजाबी लोक-गीत, 6 कांगडे दे लोक गीत, 7 पजाब।

रक्त करबी *(बँ० कृ०)* [रचना काल—1926 ई०]

इस नाटक मे रवींद्र (दे० ठाकुर) ने प्रतीकात्मक शैली के द्वारा भौतिक एव यात्रिक सभ्यता के साथ जीवन के सहज आनद और प्रकृति के सरल सौंदर्य का तीव्र सघर्ष दिखाया है। यक्षपुरी और उसका राजा यात्रिक जाल तथा व्यावसायिक लिप्सा का प्रतीक है जिसकी लपेट मे सारा परिवार है। उसका अनुशासन एव तनाव इतना उग्र है कि जीवन का सहज उन्मुक्त प्रवाह अवरुद्ध हो गया है। ऐसे दूषित वायुमडल मे फागुलाल जैसे भोले किसान, विशु जैसे भावुक सरल व्यक्ति तथा किशोर जैसे निश्छल स्वाभिमानी युवक के लिए कोई स्थान नही है। रजन जैसे सजीव और प्रभावशाली पात्र को भी जीवन की आहुति देनी पडती है। यत्र और धनतत्र के दमघोट वातावरण मे उत्साह और उल्लास का प्रतीक है नदिनी। नदिनी के अनुसार जीवन का स्वस्थ रूप प्रेम सौहाद मे है, भौतिक सुखो की मरीचिका मे नहीं। इस तरह रवींद्र ने इस नाटक के माध्यम मे पश्चिम के भौतिक मूल्यो के स्थान पर आध्यात्मिक मूल्यो की प्रतिष्ठा पर बल दिया है। इस विचारधारा के अनुरूप 'लाल कनेर' उपयुक्त प्रतीक है। नाटक की दृष्टि मे भी यह सशक्त एव सफल रचना है। यह रवींद्र की उत्कृष्ट रचना तो है ही, इस युग की उपलब्धि का गौरव भी प्राप्त है।

रक्तगोलापर रक्तस्रोत *(उ० कृ०)*

यह श्रीधर महापात्र (दे०) का ऐतिहासिक उपन्यास है। उडीसा के घुमसरगड का राजपरिवार तत्कालीन राजपरिवारो म एक है। उन्नीसवी शती म उसका रक्तरजित इतिहास अत्यत महत्वपूर्ण है। इसम इसी इतिहास को उपन्यास का स्वरूप दिया गया है। उडिया भाषा म ही नही, अन्य भारतीय भाषाओ म लिखे जाने वाले कतिपय सफल ऐतिहासिक उपन्यासो म न यह एक है।

रक्ताक्षि (क० पा०)

'कुवेंपु' (दे०) उपनामधारी राष्ट्रकवि डा० के० वी० पुट्टप्पा की 'रक्ताक्षि' कन्नड की एक प्रसिद्ध नाट्यकृति है। उसके स्त्री-पात्रों में 'रक्ताक्षि' का ही प्राधान्य है। उसी के आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है। 'रक्ताक्षि' शेक्सपियर के 'हैमलेट' के अनुकरण पर लिखा गया नाटक है, जिसमें कर्नाटक के इतिहास का दर्शन होता है। परंतु 'हैमलेट' और 'रक्ताक्षि' में अंतर भी स्पष्ट है : 'हैमलेट' नायक-प्रधान नाटक है तो 'रक्ताक्षि नायिका-प्रधान। बिदनूर राज्य के मंत्री लिंगण्णा की प्रिय पुत्री रुद्रांबा अनुपम सुंदरी है। परिस्थितियों के घात-प्रतिघात के कारण वह रक्त की आकांक्षा करने वाली होकर 'रक्ताक्षि' बन जाती है। वह बसवय्या से इतना प्रेम करती है कि उसके सामने वह किसी की परवाह नहीं करती। रूपवान, धनी युवक शिवय्या उसके प्रेम को पाने का विफल प्रयत्न करता है, उसे लोभ के जाल में फँसाना चाहता है, परंतु बसवय्या से एकनिष्ठ प्रेम करने वाली रुद्रांबा उसका तिरस्कार करती है। बसवय्या की सौतेली माँ चेलुवांबा अपने प्रियतम निंबय्या की सहायता से अपने पति राजा बसप्पनायक की हत्या करा देती है। यह रहस्य बसवय्या को राजा के प्रेत से ज्ञात होता है। वह जब चिंतित रहता है तब मंत्री लिंगण्णा द्वारा प्रेषित रुद्रांबा उसको सांत्वना देती है। राज्य की सुव्यवस्था और शांति के लिए प्रयत्न करने वाले अपने पिता और प्रियतम को हर प्रकार से सहायता पहुँचाने की आकांक्षा से वह पगली के समान व्यवहार करती है। शिवय्या के पैशाचिक प्रेम को जानकर भी उससे प्रेम करने का अभिनय कर वह रानी चेलुवांबा और निंबय्या के षड्यंत्र के कारण कारागार में पड़े अपने पिता और प्रेमी बसवय्या को छुड़ाती है। उनके जाने के बाद शिवय्या बसवय्या के मित्र के समान अभिनय कर उसका अनुगमन करता है। शिवय्या बसवय्या के अंतःकरण को जानने के उद्देश्य से होन्नय्या पर झूठा आरोप लगाता है कि वह रुद्रांबा से प्रेम करता है। निष्कपट हृदयवाला बसवय्या कहता है कि "मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता। यदि वह सचमुच ऐसा व्यवहार करता है तो उसको दंड दिया जाएगा।' शिवय्या बसवय्या के मन को पहचान लेता है और अवसर देखकर उसे प्रपात (खाई) में गिरा देता है। एक बड़े पत्थर से उसे मारना चाहता है। इतने में घोड़े की टाप सुनकर वह छिप जाता है। होन्नय्या और लिंगण्णा वहाँ आते हैं, पर वे मरने वाले बसवय्या को बचा नहीं सकते। लिंगण्णा हैदरअली की सहायता पाने उसके पास जाता है और होन्नय्या को बसवय्या के दाहसंस्कार के लिए छोड़ जाता है। होन्नय्या राज्य की अव्यवस्था को दूर करने के उद्देश्य से अपने को बसवय्या का हंता घोषित करता है। रुद्रांबा इसे सच समझकर उसे मार देती है। परंतु बाद में जब सत्य ज्ञात होता है, वह अत्यधिक खिन्न हो जाती है। वह उसका प्रायश्चित्त भी करती है। षड्यंत्रकारी निंबय्या और चेलुवांबा को बंद कमरे में जीवसहित अग्नि-समाधि लेने को बाध्य करती है, छुरी भोंक कर शिवय्या की जान ले लेती है और स्वयं भी मृत्यु का आलिंगन कर लेती है। वह सुकोमल नारी भयंकर रक्ताक्षि बन जाती है। उसके चित्रण में लेखक ने प्रेम की दृढ़ता, हृदय की स्थिरता एवं कोमलता और परुषता का संयोग दिखाया है।

रक्षकुमार (अ० कृ०) [रचना-काल—1952 ई०]

यह कृत्तिवासी 'बंगला-रामायण' (दे०) से प्रेरणा लेकर विभीषण-पुत्र तरणीसेन की वीर-मृत्यु के आधार पर लक्ष्यधर चौधुरी द्वारा लिखा गया नाटक है। कथा सीता-हरण से लेकर तरणीसेन की मृत्यु तक है। 'रामायण' की घटना को अविकृत रखकर पात्रों के कार्यों के अंतराल में नूतन नाटकीय अभिप्राय आरोपित किया गया है। तरणीसेन अल्प वय का होते हुए भी साहसी, कर्तव्य-परायण, देशप्रेमी और रामभक्त दिखाया गया है। रावण के प्रचंड चरित्र के मध्य भी रामभक्ति प्रच्छन्न रूप से दिखायी गयी है। नाटक के संवाद लंबे हैं और नाट्य-कला का निर्वाह ठीक से नहीं हो पाया है।

रघु (सं० पा०)

इक्ष्वाकुवंशीय रघु अयोध्या का राजा था। इसके पिता का नाम राजा दीर्घबाहु था, तथा पितामह का नाम दिलीप खट्वांग था, किंतु कालिदास (दे०) के 'रघुवंश' (दे०) के अनुसार इसके पिता का नाम राजा दिलीप (दे०) था, जिसे यह नंदिनी नामक धेनु की सेवा से प्राप्त हुआ था। इसी के बल-पराक्रम के कारण ही इक्ष्वाकु वंश 'रघुवंश' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसने दिग्विजय प्राप्त कर अतुल संपत्ति प्राप्त की, किंतु गुरु वसिष्ठ की आज्ञा से विश्वजित् यज्ञ करके सारा धन दान में दे दिया और धन-हीन होकर वन में चला गया। इसी स्थिति में ऋषि

विश्वामित्र का शिष्य कौत्स गुरु-दक्षिणा के लिए धन की याचना करने इसके पास आ पहुँचा। उसकी अभिलाषा-पूर्ति के लिए इसने कुबेर पर आक्रमण कर दिया जिससे कौत्स को चौदह करोड स्वर्ण-मुद्राएँ प्राप्त हुईं। रघु के बाद इसका पुत्र अज अयोध्या का राजा बना, जो कि दशरथ का पिता और राम का पितामह था।

रघु अरक्षित *(उ० कृ०)*

'रघु अरक्षित' उपन्यास डा० कुंतला कुमारी सावत (दे०) का सर्व बृहत् उपन्यास है। कुंतला उत्कल-मणि गोपबंधु (दे०) से प्रभावित थी। नारी सुलभ आवेशमयी तरल जातीय चेतना की दीप्ति से उनकी रचनाएँ आलोकित हैं। इनके चरित्र क्रांतिकारी, प्रगति-शील एवं संस्कारोन्मुखी हैं। मध्यम वर्ग के चित्रण के द्वारा इन्होंने फकीर मोहन सेनापति (दे०) की परंपरा ही निबाही है। इस उपन्यास में लेखिका ने धनी एवं निर्धन के बीच साम्य स्थापित करने की चेष्टा की है।

उपन्यास का नायक रघुनाथ (दे०) मातृ-पितृ-हीन है। अपने प्रयास से वह धनवान बनता है। सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने के बाद उसका एक धनी की कन्या सीता से प्रेम होता है। किंतु प्रेम सफल नहीं हो पाता। परिस्थितिवश वह ब्राह्मधर्मावलंबी कृष्णबाबू की गुणवती शिक्षिता कन्या से विवाह करता है। किंतु दांपत्य जीवन का सुख स्थायी नहीं हो पाता। व्यर्थकाम होकर अंत में अपने को देश-कल्याण में लगा देता है।

उपन्यास की विषयवस्तु यद्यपि व्यापक नहीं है तथापि आधुनिक जीवन के अनेक घात-प्रतिघातों के साथ नायक के चरित्र का उत्साह, उद्यम एवं संयम का परिपूर्ण विकास इस उपन्यास में अंकित है। उडीसा की किसी भी दरिद्र हतभाग्य संतान के साथ उसकी तुलना की जा सकती है। लेखिका ने रघुनाथ के चरित्र के माध्यम से जिस गुणधर्म की प्रतिष्ठा की है वह यथार्थतः गोपबंधु के आदर्श के अनुकूल है।

कुंतला मूलतः दार्शनिक हैं। यहाँ भी उनका यह आत्मदर्शन प्रकाशित हुआ है कि शरीर कुछ भी नहीं, आत्मा सब कुछ है। दैहिक मिलन पूर्ण मिलन नहीं है। कायिक कर्म आत्मा का स्पर्श नहीं करते। अतः अंतर्निहित सत्ता ही सर्वशक्तिमान है।'

कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, अभिव्यंजना, शैली, उद्देश्य सभी दृष्टियों से यह उच्चकोटि की रचना है।

रघुनाथ दास *(उ० पा०)*

डा० कुंतला कुमारी सावत (दे०) के सर्वबृहत् उपन्यास 'रघु अरक्षित' (दे०) का मुख्य चरित्र है रघुनाथ। रघु मातृ-पितृहीन है। वह चाचा-चाची के पास रहता है। चाची का उस पर अगाध स्नेह है। किंतु चाचा का मत है कि यह घर के लिए विष बीज है।

रघुनाथ का जीवन घटना-बहुल है। अपने देश से दूर बर्मा में नौकरी करता है। जीवन में प्रेम, विवाह, गृहस्थी—सभी कुछ करता है। इसकी संतान भी है। किंतु इन सबके बावजूद इसका जीवन आदि से अंत तक दुःखमय है। यह मन ही मन सोचता है—'क्यों उसके जीवन में इतना दुःख है, इतना विच्छेद है?' आँखों के सामने न जाने कितने परिवर्तन घटित हो जाते हैं। अपने परवर्ती जीवन में रघुनाथ देश-सेवक बन जाता है। सुदूर रंगून में यह अपना कर्म-पथ निश्चित कर लेता है। अपने शेष जीवन में, अपनी कन्या का सान्निध्य पाने का इसे सौभाग्य मिलता है।

आधुनिक युग के घात प्रतिघात ने रघुनाथ के चरित्र में परिपूर्ण विकास पाया है। उडीसा की किसी भी हतभाग्य संतान के साथ रघु के चरित्र की तुलना की जा सकती है। इस चरित्र के माध्यम से लेखिका ने जिस गुण-धर्म की प्रतिष्ठा की है, वह आश्चर्यजनक है। रघु का चरित्र संस्कारोन्मुखी है। लेखिका इसके माध्यम से सामाजिक वर्जनाओं को दूर करना चाहती है।

रघुनाथ दास *(गु० ले०)*

अठारहवीं शती के प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवि। मध्यकालीन भक्ति कविता में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। इन्होंने भागवत, रामायण, ध्रुवाख्यान, कीर्तन के पद, छप्पय, और कृष्ण-लीला की गरबियाँ लिखी हैं। कृष्ण-लीला की गरबी और पदों में उन्होंने दानलीला, होली के पद, कृष्ण जब गोकुल छोडकर मथुरा चले गये उस समय की नंद, गोपी और यशोदा की मन स्थिति के करुण रस के पद लिखे हैं। गोपियों की विरहावस्था का अत्यंत करुण चित्र उन्होंने खींचा है। उनके पदों में विविधता है। प्रस्तुतीकरण की रीति में माधुर्य है और भावों की अभि-व्यक्ति में उनकी अभिराम काव्यकला का परिचय मिलता है। कोमल भावों की अभिव्यक्ति उनकी विशेषता है।

रघुनाथ नायकुडु *(त० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती]

दक्षिण भारत में तंजौर के नायक राजाओं में रघुनाथ नायकुडु का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इनका राज्य-काल 1600 से 1631 ई० तक माना जाता है। ये बड़े पराक्रमी थे और साथ ही कलापोषक और साहित्य-स्रष्टा भी। 'पारिजातापहरणमु', 'रघुनाथ रामायणमु', 'वाल्मीकि-चरित्र' आदि प्रबंध-काव्यों के अतिरिक्त इन्होंने 'गजेंद्रमोक्षमु', 'रुक्मिणी-कृष्णविवाहमु', 'जानकी परिणयमु' आदि यक्षगानमु (दे०) तथा 'नलचरित्रमु' (दे०) जैसे द्विपद (दोहा जैसे देशी छंद में निबद्ध) काव्य भी लिखे थे। इनके द्वारा रचित 'अच्युताभ्युदयमु' अभ्युदय नाम की काव्यपरंपरा का सिरमौर है। इनकी रचनाओं में कोमल शृंगार की भावनाओं के साथ कमनीय दार्शनिक चिंतन का स्तुत्य सामंजस्य दिखाई देता है। कहा जाता है कि इन्होंने 'पारिजातापहरणमु' नामक काव्य का प्रणयन आशु रचना के रूप में छह छंदों में किया था। इस पर प्रसन्न होकर इनके पिता ने इनका कनकाभिषेक किया था। 'वाल्मीकि-चरित्र' इनकी अनुपम काव्यकृति है।

रघुनाथन *(त० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

तत्सम शैली में इनका नाम 'रघुनाथन' है। आधुनिक तमिल साहित्य में प्रयोगवादिता का विद्रोही स्वर ऊँचा उठाने वाले स्व० लेखक 'पुदुमैप्पित्तन' (दे०) के अनुयायी के रूप में ये साहित्यिक क्षेत्र में आये थे। सोवियत रूस की कविताओं का तमिल अनुवाद प्रस्तुत करने के साथ इन्होने अपनी कविताओं का एक संग्रह भी निकाला है। इनके 'पचुम् पचियुम्' (रुई और भूख) नामक उपन्यास में कपड़ा मिल-मजदूरों की दुर्दशा की सामयिक समस्या का प्रस्तुतीकरण है। प्रो० कामिल ज्वेलेबिल् द्वारा चेक भाषा में इसका अनुवाद भी किया गया है। इनकी उल्लेखनीय अन्य कृतियाँ 'पुदुमैप्पित्तन' की जीवनी, 'चेरिल्मलर्न्त चेंतामरै' ('कीचड़ में फूल उठे कमल'—लघुकथाएँ), 'नान् इरुवर्' ('मैं दो व्यक्ति हूँ'—उपन्यास) तथा 'पुयल्' ('तूफ़ान'—उपन्यास) हैं।

रघुपति *(बँ० पा०)*

राजपुरोहित रघुपति (विसर्जन—दे०) त्रिपुरेश्वरी मंदिर का भक्तिनिष्ठ तेजस्वी ब्राह्मण है। प्राचीन संस्कार उसके अंतर में बद्धमूल हैं। रघुपति की प्रतिष्ठा उसकी सुदृढ़ निष्ठा में निहित है। संस्कारों के बंधन में बँधा हुआ धर्मबोध रघुपति के रोम-रोम में भरा हुआ है। इस धर्मबोध की रक्षा में उसका जीवन उत्सर्ग है। प्रतिहिंसापरायणता इसलिए उसके चरित्र का सहज गुण है क्योंकि वह प्रवारक नहीं, अपने निकट वह सच्चा है। जीवरक्त के बिना देवी की तृष्णा खतम नहीं होती—इसी विश्वास से उसका समस्त कर्म नियंत्रित है। रघुपति का अंधविश्वास पूर्ण हो गया है उसी की आँखों की पुतली जयसिंह के आत्मविसर्जन के द्वारा। जीवन-रहस्य एवं धर्म-रहस्य का संधान उसे अपर्णा से मिला है। अहंबोध की अमारात्रि के अवसान लग्न में, इसीलिए, रघुपति आत्मोपलब्धि के स्वर्ण-शिखर प्रांगण में प्रणति-भग्न प्रशांत-सुस्थिर है।

रघुवंश *(सं० कृ०)* [समय—प्रथम शती ई० पू०]

'रघुवंश' कालिदास (दे०) की अत्यंत प्रौढ़ तथा उत्कृष्ट कृति है। इसी के आधार पर कालिदास को 'रघुकार' कहा जाता है।

'रघुवंश' 19 सर्गों में उपनिबद्ध एक बृहत् महाकाव्य है। इसका आरंभ रघु के जन्म की पूर्वपीठिका से हुआ है। दिलीप के गोचारण से रघु का जन्म होता है। अपने अदम्य पराक्रम से वे पूरे भारत पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और अद्भुत दानशीलता का परिचय देते हैं। इसके अनंतर तीन सर्गों में इंदुमती का स्वयंवर, अन्य समवेत राजाओं को परास्त कर अज का इंदुमती से परिचय तथा कोमलमाला के गिरने से इंदुमती का मरण और अज का करुण विलाप क्रमशः वर्णित है। दसवें से लेकर पंद्रहवें सर्ग तक राम के चरित का वर्णन है। अंतिम सर्ग सामान्य से है पर अंतिम सर्ग में कामुक अग्निवर्ण का चित्रण बड़ी ही मार्मिक शैली में किया गया है।

कालिदास ने रघुवंश में 'रघु' के वंश की सुविख्यात कथावस्तु लेकर एक उदात्त एवं सरस महाकाव्य की सृष्टि की है। कथावस्तु की महनीयता, मार्मिक स्थलों के सरस वर्णन, विविध मनोभावों की सरस एवं प्रभावोत्पादक व्यंजना अत्यंत उत्कृष्ट है। पात्रों के स्पष्ट चरित्र-चित्रण और मनोहर संवादों ने महाकाव्य की लोकप्रियता की अभिवृद्धि की है। प्राकृतिक दृश्यों के सहज एवं चित्ताकर्षक वर्णन का तो 'रघुवंश' मानो भांडार है। अलंकारों के उपयुक्त एवं मौलिक प्रयोग छंदों के सौंदर्य एवं

शैली की स्पष्टता तथा भाषा के प्रांजल एव परिमार्जित प्रयोग ने इस महाकाव्य को चोटी पर पहुँचा दिया है। इसी काव्य की एक उपमा के आधार पर कालिदास को 'दीपशिखा' कालिदास कहा जाने लगा।

इस ग्रथ पर विभिन्न कालो मे जो 40 टीकाएँ लिखी गई हैं वे इस ग्रथ की लोकप्रियता एव उत्कृष्टता की स्पष्ट परिचायक हैं।

रघुवीर *(भापा० ले०)* [जन्म—1902 ई०, मृत्यु—1963 ई०]

डा० रघुवीर का जन्म रावलपिंडी मे तथा शिक्षा लाहौर मे हुई। बाद मे वे वही सस्कृत के अध्यापक रहे तथा विभाजन के बाद दिल्ली मे 'सरस्वती विहार' (इटरनेशनल एकेडमी आफ इडियन कल्चर) नामक सस्था की स्थापना की और आजीवन उसके निदेशक रहे। डा० रघुवीर का सबसे महत्वपूर्ण कार्य था भारतीय सस्कृति के विश्वव्यापी प्रभाव का सधान। आपने तिब्बत, चीन, जापान, कोरिया, मगोलिया, कबोडिया, वियतनाम, स्याम, इडोनेशिया, मलेशिया, बर्मा, लका आदि देशो की यात्रा कर कई हजार (सस्कृत से विभिन्न भाषाओ मे हुए अनुवादो की) पाडुलिपियाँ, शिलालेख, ताम्रपत्र, स्वर्णपत्र, भूर्जपत्र, कलाकृतियाँ तथा शिल्पकृतियाँ एकत्र की जो अपने मूल या फोटो रूप मे 'सरस्वती विहार' मे सगृहीत है। डा० रघुवीर का विचार था कि भारतीय भाषाओ को भारतीय शब्दो का ही प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए उन्होने 'बृहद् अँग्रेजी हिंदी कोश' सपादित किया जिसमे लगभग चार लाख शब्द हैं। आपने लगभग दो लाख शब्दो का तिब्बती सस्कृत कोश भी तैयार किया। पारिभाषिक शब्दो के शिल्पी और कोशकार के रूप मे वयक्तिक स्तर पर उनका कार्य भारतीय भाषाओ में अन्यतम है, यद्यपि इस बात मे उनसे कम ही लोग सहमत रहे हैं कि प्रचलित अरबी फारसी-अँग्रेजी शब्दों को छोडकर भारतीय भाषाओ को सस्कृत या सस्कृत-अनुरूप शब्दो को अपना लेना चाहिए।

रडि्गली *(अ० कृ०)* [रचना काल—1907 ई०, प्रकाशन वर्ष—1925 ई०]

रजनीकात बरदलै (दे०)-कृत इस उपन्यास मे बर्मियो के प्रथम आक्रमण की पृष्ठभूमि बनाकर असम के शासको की अदूरदर्शिता एव गृह-कलह का दुष्परिणाम प्रस्तुत किया गया है। इसमे चार-चार प्रेमकथाएँ एक-साथ चलती हैं, सत्‌राम-रडि्गली, शातिराम-पदुमी, जयराम-केतेकी और विचित्री-मनाइ की। इसमे प्रथम दो मुख्य हैं। रडि्गली और पदुमी मे कौन नायिका है बता सकना कठिन है, उपन्यास का नाम अवश्य रडि्गली के नाम पर है। चारो कथाओ मे पूर्ण सुसबद्धता का अभाव है। लेखक ने कहानी के साथ साथ असमीया समाज-सस्कृति के वर्णन मे अत्युत्साह दिखाया है, फलत कहानी की ओर सजगता कम हो गयी है। आठो मुख्य पात्रो मे केवल सत्‌राम ही ऐतिहासिक पुरुष है। चद्रकातसिह आदि अन्य पात्र ऐतिहासिक हैं किंतु वे प्रधान चरित्र नही हैं।

रंट्टिङ्‌डषि *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1957 ई०]

उपन्यासकार तकषि (दे०) शिवशकर पिळ्ळा के इस सामाजिक उपन्यास का हिंदी मे 'दो सेर धान' नाम से अनुवाद हुआ है। कुट्टनाट के कृषकों तथा खेत के मालिको का जीवन, इसमे चित्रित किया गया है। निम्न जाति के लोगो के प्रति जमीदारो के व्यवहार, उनके बीच की स्पर्धा आदि पर लेखक ने जमीदार औसेप, उसके पुत्र चाक्को, खेत मे काम करने वाले निम्न जाति के कोरन्, उसकी पत्नी चिरुता, कोरन के साथी चात्तन् आदि पात्रों के द्वारा प्रकाश डाला है। कथा के गठन मे उपन्यासकार तकषि सर्वथा सफल रहे।

रणछोडभाई उदयराम *(गु० ले०)* [जन्म—1837 ई०, मृत्यु—1923 ई०]

रणछोडभाई गुजराती रगभूमि के जनक माने जाते हैं। सर्वप्रथम भवाई मे प्रदर्शित निर्लज्जता और अश्लील चेष्टाओ के विरुद्ध शिष्ट नाटकों को रगमच पर लाने के उच्चाशय स रणछोडभाई ने काबराजी के साथ मिलकर नाटक प्रेरक-मडली की स्थापना की। इस नाटक मडली द्वारा रणछोड जी लिखित 'हरिश्चद्र' और 'नल-दमयती' नामक नाटक अभिनीत किए गए। तदुपरात पारसियो की चुनौती को स्वीकार कर बबई के कुछ गुजराती बधुओ ने रणछोडभाई की सहायता स इनके नाटक 'ललिता-दु खदर्शक (दे०) का सुदर अभिनय किया। इस नाटक के अभिनय के साथ ही 'गुजराती नाटक मडली' की विधिवत् स्थापना हुई। रणछोडभाई की नाट्य दृष्टि सुशिक्षित थी,

इन्होंने ऐतिहासिक नाटकों में कालानुसार वेशभूषा रखने का आग्रह किया तथा लोक-रुचि और लोक-मन को ऊँचा उठाने की सतत चेष्टा की। 'मालविकाग्निमित्र' (दे०), 'रत्नावली', 'विक्रमोर्वशीय' (दे०) तथा 'हरिश्चंद्र' नामक नाटकों के अनुवादों के अतिरिक्त इनके अपने मौलिक नाटक हैं : 'बालासुरमदमर्दन', 'मदालसा अने ऋतुध्वज', 'वंठेला विरहनां कूडां कृत्य', 'वैरनो वांसेवस्योवारसो', 'नियशृंगार-निषेधक' आदि दस नाटक। 'रणपिंगल' और 'नाट्यप्रकाश' इनके सुंदर ग्रंथ हैं। गुजराती रंगमंच और नाट्यपरंपरा की दृष्टि से रणछोड़भाई का नाम गुजराती साहित्य में अविस्मरणीय है।

रणमल्ल छंद *(गु० कृ०)* [चौदहवीं शती]

'रणमल्ल छंद' जैनेतर कवि श्रीधर (दे०)-रचित वीररस-प्रधान काव्य है।

ईडर के राजा राव रणमल्ल ने पाटण के मुसलमान सूबेदार ज़फ़रखाँ को पराजित किया था। राव रणमल्ल की इस विजय का वर्णन इस छोटे से वीर रस-प्रधान काव्य में हुआ है।

इसमें प्रयुक्त भाषा अवहट्ट का विकासशील देशी रूप है। अरबी-फ़ारसी शब्दों का भी इसमें प्राधान्य है। कुल 70 छंदों की इस छोटी रचना में मात्रिक छंदों का प्रयोग अधिक हुआ है। ओजपूर्ण भाषा, सजीव वर्णन और नाद-सौंदर्य से मंडित इस रचना का महत्व स्वतः सिद्ध है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) ने इसे प्राचीन हिंदी की तथा डा० उदयसिंह भटनागर ने प्राचीन शुद्ध डिंगल की रचना माना है।

रतनसिंह 'भंगू', ज्ञानी *(पं० ले०)*

ये सिख-पंथ के प्रसिद्ध इतिहास-ग्रंथ 'पंथ-प्रकाश' (प्राचीन) (दे०) के रचयिता हैं। ये सरदार मताबसिंह मीरांकोटिए भंगू के पौत्र, सरदार रामसिंह के पुत्र तथा सरदार शामसिंह जी करोड़िया के दौहित्र थे। ज्ञानी रतनसिंह सिख-पंथ के इतिहास के विशेषज्ञ थे। विक्रमी 1809 ई० में इनसे ही कप्तान मरे ने सिख-मत-संबंधी वृत्तांत प्राप्त कर उसे लिपिबद्ध किया था, जिसे इन्होंने स्वयं 1841 ई० में पद्यबद्ध कर 'पंथ-प्रकाश' के नाम से प्रस्तुत किया। इनका देहावसान 1846 ई० में हुआ। इनके वंशज जिला लुधियाना की तहसील समराला के भड़ी नामक गाँव में रहते हैं।

रतनसेन *(हि० पा०)*

राजा रतनसेन जायसी (दे०) कृत 'पदमावत' (दे०) नामक प्रेमगाथा का नायक है। यह पूर्णतः ऐतिहासिक पात्र है, परंतु कवि ने अपनी सुविधा के अनुसार इससे संबद्ध घटनाओं को कल्पना के 'खोल' में तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया है, जैसे इसे चित्तौड़गढ़ के राजा चित्रसेन का पुत्र बतलाना, इसके द्वारा सिंहल की यात्रा करवाना, इसके दुर्ग का अलाउद्दीन द्वारा 6 या 7 मास की जगह 8 वर्ष तक घेरा डाले रखना आदि। 'पदमावत' में चित्रसेन एक आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित हुआ है। यह हीरामन तोते से पदमावती (दे०) के रूप-सौंदर्य की चर्चा सुनकर एक साधक की भाँति योगियों के कटक के साथ मार्गजनित बाधाओं को पार करता हुआ सिंहल पहुँचता है और अनेक कठिनाइयों के बीच पदमावती को प्राप्त करता हुआ सूफ़ी-मार्ग के सिद्धांतों के अनुसार समुद्र में एक बार खोकर पुनः प्राप्त करता हुआ चित्तौड़ पहुँचता है। राघवचेतन के व्याघात को सहते हुए अलाउद्दीन से जूझता है और अंत में वीरगति को प्राप्त होता है।

इतिहास इसका शासन-काल 1301-2 ई० से 1303 ई० तक तथा अंतिम 6 मास अलाउद्दीन से युद्ध करने में व्यतीत होते मानता है। जायसी ने अपने नायक को धीरोदात्त नायक की परिखा में रखकर परमवीर, सच्चे प्रेमी, सौंदर्य-साधक और दार्शनिक के रूप में चित्रित किया है। यह सचमुच ही सूफ़ी-साधकों का पूर्ण आदर्श है।

रतनू वीरभाण *(हि० ले०)* [जन्म—1688 ई०; मृत्यु—1735 ई०]

ये रतनू शाखा के चारण थे तथा जोधपुर राज्य के घड़ोई ग्राम में निवास करते थे। इनका 'राजरूपक' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ नागरी (दे०) प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रंथ में जोधपुर-नरेश अभयसिंह तथा गुजरात के सूबेदार बिलंदखाँ के युद्ध का ऐतिहासिक तथ्यों से पुष्ट ओजपूर्ण वर्णन किया गया है। वीरभाण आलंकारिक शब्द-योजना तथा प्रभावशाली छंद-विधान के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं।

रत्नदीप (*बं० कृ०*) [रचना-काल—1915 ई०]

प्रभातकुमार मुखोपाध्याय के बृहत् उपन्यासो मे 'रत्नदीपा' का स्थान सर्वोच्च है। घटना वैचित्र्य पर प्रतिष्ठित होते हुए भी इनके चरित्र पाठको के मन पर गहरा प्रभाव डालते हैं। हिंदू नारी के स्वामी-सस्कार के चित्र को प्रदर्शित करने के लिए ही यह उपन्यास रचा गया है। नायक राखल बौराणी का पति है यह सोचकर बौराणी ने अपने हृदय के समस्त भावावेग को राखल के चरणो पर उँडेल दिया है परतु जिस दिन उसे पता चलता है कि राखल उसका वास्तविक पति नही है तो बिना किसी दुविधा के वह हृदय को अपने मे खीच कर रिक्तता का रास्ता अपना लेती है। बौराणी के चरित्र के कोमल विषाद-मडित माधुर्य के साथ अविचलित पातिव्रत का सुदर समन्वय हुआ है। राखल का चरित्र-सयम एव आत्मविसर्जनकारी प्रणय भी हमे अभिभूत करता है। हिंदू नारी के मन पर सामाजिक संस्कार के तीव्र प्रभाव का एव उसके मूल्य का लेखक ने विस्तार से विश्लेषण किया है। परतु दयावेग एव मनस्तत्व के ऊपर नैतिक चिंतन को थोपकर लेखक ने उपन्यास की सार्थकता थोडी घटा दी है। उपन्यास उच्च श्रेणी का न होने पर भी सुखपाठ्य है एव सभी श्रेणियो के पाठको के लिए आकर्षक है।

रत्नाकर (*स० ले०*) [समय—नवी शती]

महाकवि रत्नाकर कश्मीर नरेश जयापीड के राजकवि थे। इनके पिता का नाम 'अमृतभानु' था। 'राजतरगिणी' (दे०) मे इनका परिचय दिया गया है। अवतिवर्मा के समय मे भी यह विद्यमान थे।

इनका केवल एक ग्रथ उपलब्ध होता है। वह है —'हरविजय'। यह एव महाकाव्य है जिसमे 50 सर्ग तथा 4329 श्लोक हैं। इसमे शिव द्वारा अधकासुर-वध की कथा वर्णित है। पार्वती ने शिव के नेत्रो को विनोद में हाथो से ढक लिया, अत शिव से उत्पन्न अधक नेत्रहीन हुआ। किंतु तप करके उसने शिव से दृष्टि पाई और त्रैलोक्य का स्वामी बन बैठा। अत मे शिव ने उसे मार डाला। कथानक छोटा होते हुए भी कवि ने अपनी वर्णना शक्ति से ग्रथ को विपुलकाय बना दिया है। कहते हैं कि रत्नाकर ने माघ (दे०) की ख्याति को कम करने के लिए अपने महाकाव्य की रचना की थी। प्रतिभा मे तो रत्नाकर माघ स वास्तव मे आगे प्रतीत होते हैं। इनका अध्यात्म-सबधी काव्य कभी बहुमुखी था। पर निर्वाह मे माघ आगे हैं। राजशेखर (दे०) ने 'हरविजय' की प्रशसा की है पर इसमे पाडित्य-प्रदर्शन अधिक बताया है।

रत्नाकर, जगन्नाथ (*हि० ले०*) [जन्म—1866 ई०, मृत्यु—1932 ई०]

इनका जन्म काशी के एक सपन्न घराने मे हुआ। शिक्षा का समारभ उर्दू-फारसी से हुआ। आगे चलकर हिंदी और अँग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया। क्वीस कालेज से बी० ए० पास करके ये अवागढ खजाने के निरीक्षक, अयोध्या नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी और उनकी मृत्यु के बाद महारानी के प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए। इन्होने 'साहित्य-सुधानिधि' और 'सरस्वती' पत्रिकाओ के सपादन, 'रसिक-मडल' प्रयाग की स्थापना एव काशी नागरी (दे०) प्रचारिणी सभा के विकास मे अत्यधिक योग दिया। ये कलकत्ते के बीसवें अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन एव चौथी ओरिएटल कार्फ्रेंस के हिंदी-विभाग के सभापति रहे थे।

'हिंडोला' समालोचनादर्श', 'हरिश्चद्र', 'कलकाशी', 'शृगार लहरी', 'प्रकीर्ण पद्यावली', 'रत्नाष्टक तथा वीराष्टक', 'गगावतरण', 'उद्धव शतक' (दे०) आदि इनकी मौलिक कृतियाँ हैं, सपादित ग्रथो मे 'सुधासार', 'कविकुल कठाभरण', 'हिततरगिणी', 'सुजान सागर', 'बिहारी रत्नाकर', 'सूरसागर' (अपूर्ण) आदि प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त इनक अनेक ऐतिहासिक एव साहित्यिक लेख भी प्रकाशित हुए हैं।

रत्नाकर अनेक भाषाओ के ज्ञाता और बहुज्ञ व्यक्ति थे। इनकी भक्ति का दार्शनिक आधार मध्व, वल्लभ और चैतन्य की समन्वित विचारधारा है। रत्नाकर ने ब्रजभाषा के अभिजात रूप की रक्षा करते हुए उसे नवीन भाव-बोध से समादृत किया। 'उद्धव शतक' तथा अन्यान्य ग्रथो मे भावो की प्रौढता, शैली की मनोरमता, वक्रता एव उक्ति-वैचित्र्य, अलकारो की सजावट, ब्रजभाषा का माधुर्य एव भक्ति की मधुरिमा मे अभिनिवेशित सूक्तियो का सौंदर्य कवि के अनूठे काव्य-कौशल का परिचायक है। इनकी कृतियाँ भक्ति, शृगार, वीर तथा नीति आदि सभी प्रवृत्तियो का प्रतिनिधित्व करती हैं। भावना से रससिद्ध, अभिरुचि से अलकारवादी एव प्रवृत्त्या समन्वयवादी इस कलाकार का काव्य पुरातनता का नवीन सस्करण है, भक्ति के परिवेश मे रीति का शृगार है एव ब्रजभाषा के साथ

खड़ी बोली का नूतन अभिनंदन है। राजनीतिक दृष्टि से वे सर्वतोमुखी क्रांति के समर्थक थे और राष्ट्रीय गौरव के उन्नायक थे। उनकी राष्ट्रीयता जातीय भावना से ओत-प्रोत है। सामाजिक कुरीतियों का उन्मूलन करके स्वस्थ परंपराओं का पोषण उनका साहित्यिक प्रतिमान था।

रत्नाकरवर्णि *(क० लें०)*

सोलहवीं शती के श्रेष्ठ कन्नड-कवियों में शुक्र-तारा के समान सुशोभित हैं। इनको उस युग का 'कन्नड-कोकिल' कहा गया है। ये रत्नाकर, रत्नाकरसिद्ध, रत्ना-करवर्णि और अण्णा नामों से अभिहित होते थे। ये योगी थे, अतः इनके काव्य में दर्शन की सुषमा 'देशि' (दे०) शैली की मधुरता के साथ प्रकट हुई है।

रत्नाकर के जीवनचरित के विषय में अनेक दंतकथाएँ प्रचलित हैं। देवचंद्र (1770-1841 ई०) ने अपनी रचना 'राजावळिकथा' (दे०) में इनके संबंध में जो कुछ लिखा है, उसके तथा आंतरिक साक्ष्य के आधार पर यह कहा जाता है कि इनका जन्म मूडबिदरे के एक जैन-कुल में हुआ था और यहीं इनका बाल्यकाल बीता था। उन दिनों मूडबिदरे और कार्कळ जैन धर्म के केंद्र थे। रत्नाकर जैन धर्मानुयायी थे, पर क्षत्रिय थे। इनके दीक्षा-गुरु चारुकीर्ति तथा मोक्षगुरु हंसनाथ थे। ये योगविद्या तथा 'काव्यालंकार-लक्षणशास्त्र'-निपुण थे। कार्कळ के राजा भैरव के दरबार में इनका सम्मान हुआ था, वहाँ ये 'शृंगार-कवि' के रूप में रहे। राजपुत्री के साथ इनके प्रेम-व्यवहार का उल्लेख देवचंद्र ने किया है।

रत्नाकर के ग्रंथ हैं—'भरतेश-वैभव' (दे०), 'त्रिलोक-शतक', 'अपराजितेश्वर-शतक' और 'अण्णन पदगळु' (अर्थात् गीत)। इनके अतिरिक्त 'रत्नाकराधीश्वर-शतक' भी इनका लिखा हुआ कहा जाता है। परंतु, इसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है।

'भरतेश-वैभव' रत्नाकर की सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृति है। इसमें आदि तीर्थंकर के पुत्र भरतेश के राजयोग का वर्णन है। कन्नड में यह कथा पहली बार नहीं कही गई है। महाकवि पंप (दे०) के 'आदिपुराण' और चावुंडराय के 'चावुंडरायपुराण' (दे०) में भरत और बाहुबलि की कथा अभिवर्णित है। परंतु, रत्नाकर ने भरत के भव्य चरित्र की सृष्टि की है। इन्होंने भरत को जिनयोगी के रूप में चित्रित कर उनके आदर्शमय जीवन का वर्णन किया है। इनके भरत सिद्ध पुरुष हैं, श्रीकृष्ण के समान वे योगी हैं। श्रीकृष्ण का जीवन 16 सहस्र गोपियों के बीच में बीता तो भरत का जीवन 96 सहस्र रानियों के बीच में व्यतीत हुआ। कवि ने उनके भोग और योगमय जीवन का सविस्तर वर्णन किया है। काव्य में पंचकल्याण के ये रूप हैं, जो काव्य के पाँच भाग हैं—भोगविजय, दिग्विजय, योगविजय, मोक्षविजय एवं अर्ककीर्तिविजय।

कन्नड के प्रसिद्ध लोक-छंद 'सांगत्य' में 'भरतेश-वैभव' लिखा गया है। यह 84 संधियों का एक वृहद् महाकाव्य है। इसमें भरत के अतिरिक्त उनके भाई बाहु-बलि, उनके मंत्री बुद्धिसागर, सेनापति जयराज, मामा नमिराज, राजमाता यशस्वति देवी, भरत की प्रिय रानी कुसुमाजि और राजमहिषी सुभद्रादेवी का मनोरम चित्रण है। 'काव्य ईख के समान होना चाहिए, बाँस के समान नहीं' कहने वाले रत्नाकर का काव्य सचमुच सरस है। उसमें अनेक वर्णन हैं, पर सभी स्वाभाविक हैं। कई अलं-कारों का प्रयोग हुआ है, पर वे कहीं भी कृत्रिम नहीं लगते। इनकी भाषा-शैली की जितनी भी प्रशंसा की जाए, कम ही है।

रत्नो *(गु० लें०)* [समय—अठारहवीं शती का पूर्वार्द्ध]

ये खेडा नामक ग्राम के निवासी और भावसार जाति के थे।

इनकी उपलब्ध रचनाएँ हैं—'बारमासी' और 'दाणलीला'। 'बारमासी' अर्थात् बारहमासा एक विरह-काव्य है, जिसमें बारह महीनों के प्रकृति-वर्णन के माध्यम से राधा की विरहावस्था का सुंदर निरूपण किया गया है।

मध्ययुगीन गुजराती के कृष्ण-भक्तों में 'रत्नो' एक अमूल्य रत्न है तथा उनका बारहमासा एक उत्तम विरह-काव्य है।

रथ, चंद्रशेखर *(उ० लें०)* [जन्म—1929 ई०]

श्री चंद्रशेखर रथ कहानीकार एवं उपन्यास-कार हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से ये सांप्रतिक जीवन का खुला साक्षात्कार करना चाहते हैं—उसकी संपूर्ण उप-लब्धि और सीमा के साथ। उनकी चिंतनशीलता एवं दार्श-निक दृष्टि उनकी रचनाओं को गंभीर, वैचारिक स्वरूप प्रदान करती है। निश्चित रूप से ये पाठक से एक निश्चित मानसिक स्तर एवं विचारशील व्यक्तित्व की अपेक्षा रखते हैं। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इनकी अनेक कहानियाँ

प्रकाशित हुई हैं। 'जत्रारूढ' (दे०) एवं 'असूर्य उपनिवेश' इनके दो महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

रथचक्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

श्री० ना० पेंडसे (दे०) ने अपने इस उपन्यास मे एक ऐसी स्त्री की कष्ट-कथा प्रस्तुत की है जिसका पति चार बच्चो एव पत्नी को त्यागकर सन्यासी हो जाता है। टूटती हुई सम्मिलित परिवार-व्यवस्था की शिकार यह स्त्री अपनी सतान की समुचित शिक्षा दीक्षा और व्यवस्था के लिए परिवार स नाता तोड जिले के सदर मुकाम मे एक ऐसे मुहल्ले मे किराये का घर लेकर रहती है जहाँ नीच जाति के लोगो की बस्ती है। घरवालो द्वारा सहायता बद किये जाने पर वह नौकरी करती हुई बीमार पडती है। उधर पढने मे कुशाग्र-बुद्धि छोटा लडका धाबे मे काम करता हुआ उस धाबे की स्वामिनी की वासना से बाल बाल बचता है। सतान के लिए इतना सब कुछ करने पर भी उसे मिलता है लाछन—समाज से, घरवालो से और अपनी सतान तक से। इस पीडा को न सह सकने के कारण वह आत्महत्या करने को बाध्य होती है। लेखक ने सम्मिलित परिवार-व्यवस्था अधविश्वास ग्रस्त समाज तथा गृहस्थ के प्रति अनुत्तरदायी लोगो पर कटाक्ष करते हुए एक कर्त्तव्य-परायण स्त्री की त्रासदीय कथा प्रस्तुत की है और साथ ही यह सकेत दिया है कि अश्रद्धा भी दुख का मूल कारण है। उपन्यास की नायिका के दुख का मूल कारण है उसकी अश्रद्धा—भगवान के प्रति, सामाजिक मान्यताओ के प्रति और स्वय अपने पति के प्रति भी।

रथ, बळदेव *(उ० ले०)* [जन्म—1789 ई०, मृत्यु—1845 ई०]

बलदेव रथ गजाम जिलान्तर्गत आठगढ स्थान के निवासी थे। वे बहुभाषाविद् थे। अनेक गीतिकाओ तथा रत्नाकर चपू आदि कई अन्य चपूओ की रचना भी इन्होने की है।

उडिया सगीत की अन्यतम रचना 'किशोर चद्रानन चपू' (दे०) बळदेव रथ की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इसी एक लघु रचना क कारण महाराज दिव्यसिंह देव ने इन्हे 'कविसूर्य' की उपाधि स विभूषित किया था। यह रचना अपनी रसात्मकता, भाव-समृद्धि, सगीतमयता एव पद-लालित्य मे 'गीत-गोविंद' (दे०) को भी कहीं-कहीं पीछे छोड जाती है। यद्यपि उडिया मे अनेक चपू-रचनाएँ मिलती हैं, किंतु चपू कहने से उडीसा की जनता किशोर चद्रानन 'चपू' को ही समझती है, जो उसकी लोकप्रियता का द्योतक है। सामाजिक पर्वों पर नगर व ग्रामो में सामूहिक रूप से इसका गायन होता है, यह भी इसकी जनप्रियता का प्रमाण है।

चउतिशा (दे०)-शैली पर रचित प्रत्येक गीत एक स्वयपूर्ण मिनिएचर चित्र है। इसके गीत अपनी सवेदना और परिवेश के अनुकूल विशिष्ट राग व अलकारो से पुष्ट हैं। कथावस्तु एक होते हुए भी 'गीत-गोविंद' की अपेक्षा अधिक सयत एव पारमार्थिक है। भजीय काव्य-रीति (दे० भज, उपेंद्र) के स्थान पर यदि कवि ने इसमे सहज, सरल शैली प्रयुक्त की होती तो निस्सदेह रूप से इसका मूल्य और भी बढ गया होता।

'सर्प जणाण' इनकी एक अन्य भक्तिरस-पूरित महत्वपूर्ण रचना है, जिसमे श्रुतिहीन जगन्नाथ जी की तुलना सर्प से की गयी है। इसमे इन्होंने भगवान को गाली देकर व उस पर दोषारोपण कर प्रार्थना की एक नूतन रीति प्रचलित की है। भक्ति के अतर की आवेगमयी पावन भाव-राशि कविप्रतिभा के स्पर्श से मुखरित हो उठी है।

रथ, मृत्युंजय *(उ० ले०)* [समय—1887-1923 ई०]

मृत्युजय रथ का उडिया-साहित्य को विशिष्ट योगदान है—सारलादास तथा अन्य प्राचीन एव मध्ययुगीन उडिया कवियो की जीवनीयुक्त समालोचना। सस्कृत के पडित होते हुए भी इनकी शैली असाधारण रूप से सरल, निराडबर, सयत और यथार्थ है। साहित्य के अतिरिक्त ऐतिहासिक गवेषणा के क्षेत्र मे भी इन्होंने विशेष कार्य किया और कालिदास (दे०) के 'कुमारसभव' काव्य तथा कई सस्कृत नाटको का अनुवाद किया है।

अपने उपन्यास 'अद्भुत परिणाम' (दे०) मे श्री रथ ने उन्नीसवी शती मे उडीसा मे मिशनरियो द्वारा ईसाई धर्म के प्रचार, प्रलोभनवश दरिद्र जनता के धर्म-परिवर्तन तथा तज्जनित विषम परिणाम का निर्देश किया है। 'पकेट ओडिआ अभिधान', 'प्रबध पाठ', 'नारी दर्पण', 'सारळा चरित्र', 'मुद्राराक्षस' (अनु०) 'विक्रमोर्वशीय' (अनु०) आदि इनकी अन्य कृतियाँ हैं।

पुरी इनका जन्म-स्थान है। जब इनकी रचना-क्षमता चरम विकास पर थी तभी इनका देहात हो गया।

रथ, रमाकांत *(उ० ले०)* [जन्म—1934 ई०]

श्री रमाकांत रथ नयी उड़िया कविता के प्रमुख कवि हैं। इन्हें नूतन प्रतीक, नये बिंब, नवीन छंद व शैली-विन्यास में श्री सच्चिदानंद राउतराय (दे०) के बाद सर्वाधिक सफलता मिली है। सामाजिक परिवेश के प्रति इनमें एक बौद्धिक प्रतिक्रिया मिलती है। दृष्टि की स्पष्टता, वास्तविक समन्वय-चेतना, इनकी काव्यिक चेतना के उपादान हैं। इनकी कविताओं का अनुवाद एकाधिक भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में हो चुका है।

'केते दिनर', 'अनेक कोठरी', 'संदिग्ध मृगया' (दे०) आदि इनकी प्रमुख काव्य-कृतियाँ हैं।

रथ, डा० राधानाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1920 ई०]

ये लंदन से मनोविज्ञानशास्त्र में पी-एच० डी० हैं। 1960 ई० से ये उत्कल विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान-शास्त्र के प्राध्यापक हैं। ये प्रधान रूप से निबंधकार हैं। इन्होंने देश की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति पर निबंध लिखे हैं। ये समाजवादी लेखक हैं, अतः प्रतिपाद्य एवं शैली दोनों में समाजवादी जीवन-दृष्टि और समाजवादी साहित्य-चेतना की विशेषताएँ मिलती हैं। कहानी, निबंध, सभी में इन्होंने सामाजिक अस्तित्व के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इनकी रचनाएँ हैं—'छाइ कथा कहे' (कहा०), 'प्रगति' (दे०) (आलोचनामूलक निबंधों का संकलन)। इन्होंने अँग्रेज़ी में भी अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

रदीफ़ *(उर्दू० पारि०)*

'रदीफ़' का शाब्दिक अर्थ है वह व्यक्ति जो घुड़सवार के पीछे बैठे किंतु पारिभाषिक अर्थों में उस शब्द या शब्द-समूह को रदीफ़ कहते हैं जो मिसरे या चरण में क़ाफ़िआ के पीछे आते हैं। हर शेर के दूसरे मिसरे में रदीफ़ की आवृत्ति होती है। ग़ज़ल के मतलआ और नज़्म के पहले शेर के दोनों मिसरों में रदीफ़ का प्रयोग होता है। रदीफ़ एक प्रकार की झालर है जो ग़ज़ल के नाद-सौंदर्य की संरक्षिका है। उदाहरणतया—

नर्गिस ! तू दिखा किधर गया गुल।
सोसन ! तू बता किधर गया गुल।।

इस शेर में 'दिखा' क़ाफ़िआ और 'किधर गया गुल' रदीफ़ है।

रन्न *(क० ले०)*

'रन्न' शब्द संस्कृत 'रत्न' का तद्भव है। कवि रन्न सचमुच कन्नड़ के कविरत्न हैं। 'रत्नत्रय' में पंप (दे०) और पोन्न (दे०) के बाद रन्न का नाम आता है। इन्होंने अपनी जीवनगाथा पंप की अपेक्षा अधिक विस्तार के साथ कही है। इनके दो पत्नियाँ थीं—जक्कि और शांति। इनके पुत्र का नाम 'राय' और पुत्री का नाम अत्तिमब्बे था। अजितसेनाचार्य इनके गुरु थे। श्रवणबेळगोळ के विद्या-केंद्र में इन्होंने शिक्षा पायी थी। कुछ समय तक चावुंडराय के आश्रय में रहे, फिर सम्राट् तैलप और उनके पुत्र के आश्रय में रहने लगे।

रन्न की तीन रचनाएँ प्राप्त हुई हैं: (1) 'अजितनाथपुराणहो' (दे०), (2) 'गदायुद्ध' (दे० साहसभीम-विजय) और (3) 'रन्नकंद' (दे०) (निघंटु)। कहा जाता है कि इन्होंने 'परशुरामचरित' और 'चक्रेश्वरचरित' नाम के भी दो काव्य लिखे थे जो आज उपलब्ध नहीं हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि 'गदायुद्ध' का ही दूसरा नाम 'चक्रेश्वरचरित' है। 'परशुरामचरित' समर परशुराम नाम से विख्यात चावुंडराय को नायक बनाकर लिखा गया काव्य होगा।

पंप की तरह रन्न ने भी एक धार्मिक काव्य और एक लौकिक काव्य लिखा है। 'अजितपुराण' धार्मिक काव्य है। उसके आधार पर रन्न की जन्मतिथि 949 ई० ठहरती है। यह चंपू शैली में लिखित 12 आश्वासों का सरस काव्य है। इसमें अजितनाथ की पूर्वजन्म-कथा का वर्णन है, यह 'भवावलियों' के नीरस वर्णन से मुक्त है। 'गदायुद्ध' रन्न का लौकिक काव्य है। इसके रचना-काल के विषय में मतैक्य नहीं है। कुछ लोग इसका रचना-काल 982 ई० मानते हैं तो अन्य लोग 993 ई० मानते हैं। इसका पूरा नाम है 'साहसभीम-विजय'। जिस प्रकार पंप ने अपने आश्रयदाता को नायक बनाकर 'विक्रमार्जुन-विजय' (दे०) लिखा, उसी प्रकार रन्न ने अपने आश्रयदाता चालुक्य चक्रवर्ती 'इरिव बेडंग' उपाधिधारी सत्याश्रय को काव्य-नायक 'साहसभीम-विजय अथवा गदायुद्ध' लिखा। इन्होंने सत्याश्रय और भीम में अभेद स्थापित किया है। ध्यान देने की बात है कि इनका काव्य औचित्य की सीमा से बहिर्गत नहीं हुआ है। 'महाभारत' का मुख्य कारण द्रौपदी है। द्रौपदी को अर्जुन की धर्मपत्नी बनाने के कारण पंप को 'वेणी-संहार' प्रसंग में कठिनाई हुई। इन्होंने औचित्य की सीमा पार कर भीम के द्वारा वेणीसंहार कराया, यह कहकर कि

द्रौपदी तलोदरी है।' परतु रन्न को ऐसी कोई कठिनाई नही थी। उनका मार्ग साफ-सीधा था।

रन्न को पपभारत के तेरहवें आश्वास से प्रेरणा मिली थी, अत पप इनके लिए गुरु-तुल्य थे। परतु गदा-युद्ध मे ये गुरु से भी आगे बढ गए हैं। इनमे उत्साह अधिक है, आत्मप्रशसा की भी कमी नही है। परतु यह आत्म-प्रशसा थोथी नही है।

'गदायुद्ध' की विशेषता यह है कि वह श्रव्य-काव्य होते हुए भी दृश्य-काव्य के गुणो से विभूषित है। 'गदायुद्ध' के अगी रस और नायक के विषय मे पर्याप्त चर्चा हुई है। कुछ लोग इसे वीर रस-प्रधान मानते हैं तो अन्य लोग रौद्र रस-प्रधान मानते हैं। 'वीर' को अगी रस मानने वाले दुर्योधन को नायक मानते हैं, 'रौद्र' को अगी मानने वाले भीम को नायक मानते हैं। रन्न का दुर्योधन साधारण व्यक्ति नही है, वह 'महापुरुष' है। इन्होने भीम की महानता दिखाई है, पर दुर्योधन का महत्व घटाया नही है। कुछ विद्वानो की दृष्टि मे अरस्तू द्वारा प्रतिपादित त्रासद-नायक का रूप हम दुर्योधन मे देख सकते हैं। अततोगत्वा यह कहा जाना चाहिए कि वर्णन, सभाषण, रस-निरूपण, औचित्य-निर्वहण आदि सभी दृष्टियो से रन्न का 'गदायुद्ध' अत्यत सफल महाकाव्य है। यह कन्नड का कृतिरत्न है।

रन्न कद *(क० कृ०)*

रन्न (दे०) (समय—*993* ई०) कन्नड के श्रेष्ठ कवियो की पक्ति मे महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। उनके प्राप्त ग्रथो मे 'अजितपुराण' और 'साहसभीम-विजय' (दे०) (गदायुद्ध) के अतिरिक्त 'रन्न कद' भी है जिसके केवल 12 कद पद्य मात्र उपलब्ध हुए हैं। इन पद्यो की समाप्ति साधारणतया 'कविरन्न' शब्द से होती है। रन्न का एक दूसरा नाम है 'कवि रन्न'। अतएव यही छाप 'रन्न कद' के पद्यो मे है। 'रन्न कद' एक निघटु अथवा कोश-ग्रथ है। सस्कृत के 'अमरकोश' के ढग के इस निघटु मे कन्नड शब्दो के अर्थ कन्नड मे दिये गए हैं। 'कद' छद मे रचित होने के कारण पद्य आसानी से याद किये जा सकते हैं। इस ग्रथ को कन्नड का सर्वप्रथम कोश होने का गौरव प्राप्त है।

रविसिह *(उ० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

श्री रविसिह आधुनिक उडिया-कविता मे विद्रोही चेतना के अग्रणी कवि हैं। इनकी कविता का स्वर उग्र होते हुए भी प्राजल और प्रभावकारी है। बडी सच्चाई और दृढता के साथ इन्होने अपने जर्जर हृदय की बेसुरी रागिनी सुनाई है। कवि प्रचलित जीवन-पद्धति से सम-झौता करने को प्रस्तुत नही है। सप्रति उडिया काव्य जगत मे इस रुग्ण और निर्धन कवि का कोई भी सगी-साथी नही, वह अकेला पदयात्री है। असीम साहस व अक्लान धैर्य है इसकी साधना मे। अभी विप्लवी का विद्रोही स्वर प्रखर है, सुस्थिर कवि के सयत स्वर की प्रतीक्षा है। इनके कविता सकलन हैं— लाल पागोडार प्रेत', 'विषवाणी 'चरमपत्र', 'शिथिल बलया' (दे०), 'भृकुटि' आदि।

रमजान बट (भट्ट) 'गनस्तान' *(कश्० ले०)*

कश्मीर के बडगाम तहसील के धारमुँह गाँव मे जन्म, अतर्साक्ष्य के आधार पर अनुमानत 1885 87 ई० मे। मृत्यु-काल अज्ञात किंतु बहिर्साक्ष्य के आधार पर 1917-18 के आसपास रहा होगा। इनकी अमर कृति 'अकनदुन' गाथागीत के रूप मे बहुत ही लोकप्रिय है और लोकगीत के रूप मे कश्मीरियो की जबान पर है। इस गाथागीत की विषयवस्तु है चिकनावेग और रत्ना नाम के हिंदू राजा-रानी की वेदना-भरी कहानी, शब्दो की सरलता स्वरावली, कर्णप्रियता, माधुर्य और भावगाभीर्य की दृष्टि से रमजान बट की शैली का अभी तक कोई भी कवि अनु-सरण नहीं कर सका है यद्यपि इसी विषयवस्तु को लेकर अहद जरगर, समद मीर और अली वानी जैसे प्रौढ कवियो ने भी 'अकनदुन' की रचना की थी।

रमणन् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—दूसरी से पाँचवी शती के मध्य]

इसके रचयिता गान-गधर्व नाम से सुख्यात चड्डपुषा (दे०) कृष्णपिल्ला हैं। चौंतीस वर्ष की अल्पायु मे सरल कोमलकात पदावली मे पचास सुदर कृतियो की रचना कर श्रीकृष्ण पिल्ला दिवगत हुए। प्रस्तुत काव्य-ग्रथ का विषय उनके प्रिय मित्र तथा युवाकवि राघवन् पिळ्ळा की प्रणय-कथा है। करुण-रस-प्रधान यह कृति केरलीय खासकर युवावर्ग मे विशेष प्रिय है। प्रेमी मदन एक साधारण परिवार का व्यक्ति है। पर उसकी प्रेमिका सभ्रात परिवार की युवती है। समाज की कुरीति-कुव्यवस्था मिलन मे बाधक होती है और निराश नायक आत्महत्या

कर लेता है। यही है इसकी कथा-वस्तु। समाज की कुरीतियों के प्रति कवि-मन का विद्रोह और आक्रोश सशक्त भाषा में व्यक्त हुआ है। संक्षेप में कहा जाय तो यह एक ग्रामीण विलाप-काव्य है। भाषा कोमल, सरस और मर्मस्पर्शी है।

रम्यरचना *(बँ० प्र०)*

युद्धोत्तर युग में बँगला में एक नये ढंग के गद्यात्मक रचना-रूप का विकास हुआ जिसे 'रम्यरचना' के नाम से अभिहित किया गया था। रम्यरचना व्यक्तिगत प्रबंध-रचना का एक रूप है जिसे मूल रूप से कहानी या उपन्यास का बाना पहनाकर प्रस्तुत किया जाता है। कभी-कभी भ्रमण या हल्के व्यक्तिगत प्रबंध के रूप में भी रम्यरचना लिखी जाती है। रम्यरचना में विषय का प्रतिपादन समाचारपत्रीय ढंग से होता है जहाँ लेखक शिल्प-रूप के बंधन से यथेष्ट मुक्त होकर कल्पना का प्रयोग करता है। धारजाल की रचना करना या व्यंग्यात्मक टिप्पणी एवं भाषा-प्रयोग में कृत्रिमता या अतिशय व्यक्तिनिष्ठता का प्रयोग करना एवं तथ्य और ज्ञान के वितरण के साथ-साथ कल्पित कहानी को रूप देना रम्यरचनाकार का कर्तव्य-कर्म है। वास्तव में साहित्य एवं पत्रकारिता का अपूर्व संयोग है रम्यरचना। रम्यरचना की तेज व्यंजनाधर्मिता एवं भावावेग-बाहुल्य-वर्जित बलिष्ठता पाठकों को बहुत ही रुचिकर होती है।

रयधू *(अप० ले०)* [रचना-काल—पंद्रहवीं शती ई०]

रयधू ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में रचना की थी। अपभ्रंश भाषा में सबसे अधिक रचनाएँ करने वाले यही कवि हैं। ये ग्वालियर के निवासी थे। वहीं तोमर वंशी राजा डूँगरसिंह और उनके पुत्र कीर्तिसिंह के राज्यकाल में इन्होंने अपने ग्रंथों का प्रणयन किया था। इनके विभिन्न भाषाओं में लिखे लगभग 25 ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। इनके पिता का नाम हरिसिंह था। यश, कीर्ति एवं कुमारसेन इनके गुरु थे। इनकी कृतियों में अपने आश्रयदाता एवं ग्रंथ-रचना की प्रेरणा देने वाले श्रावकों की मंगल-कामना एवं आशीर्वादपरक अनेक संस्कृत-पद्य मिलते हैं। इनकी 'सुकौशलचरित', 'सन्मतिनाथचरित' और 'बलभद्रपुराण' नामक अपभ्रंश कृतियाँ प्रसिद्ध हैं।

रयधू के समय में आधुनिक काल की भारतीय आर्यभाषाएँ अपनी प्रारंभिक अवस्था में साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी थीं। यद्यपि इनके बाद भी अपभ्रंश में अनेक रचनाएँ की गयीं किंतु इस परंपरा में रयधू ही अंतिम प्रतिष्ठित आचार्य माने जा सकते हैं।

रवाँ *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1889 ई०; मृत्यु—1934 ई०]

पूरा नाम—चौधरी जगत मोहन लाल, उपनाम—'रवाँ'। उर्दू भाषा के इस प्रतिभाशाली कवि की अकस्मात् ही मृत्यु हो गयी। यदि ये कुछ समय तक और जीवित रहते तो उर्दू-साहित्य की और अधिक श्रीवृद्धि करते। इनका काव्य-संग्रह 'रूह-ए-रवाँ' उर्दू जगत में लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है। इनकी शैली में जहाँ तीव्र अनुभूति, सजीवता, सरसता और प्रवाह के गुण विद्यमान हैं वहीं संगीतात्मकता भी कम नहीं है। करुण रस से ओतप्रोत इनकी अभिव्यक्ति अत्यंत सशक्त है। ये नज्म-लेखन में विशेष रूप से सिद्धहस्त थे और इनकी रुबाइयाँ भी बड़े मार्के की हैं।

'रविश' सिद्दीक़ी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1911 ई०; मृत्यु—1971 ई०]

पूरा नाम—शाहिद अजीज, उपनाम—'रविश'; पिता का नाम—तुफ़ैल अहमद 'शाहिद'। इनका जन्म ज्वालापुर (जिला सहारनपुर) में हुआ था। इस प्रतिभाशाली कवि ने काव्य के क्षेत्र में अपने से नेतृत्व प्राप्त किया। आरंभ में इनकी अभिरुचि ग़ज़ल-लेखन तक ही परिसीमित रही; परंतु शीघ्र ही ये नज्म-लेखन की ओर प्रवृत्त हुए और इसी काव्य-विधा के बल पर इन्होंने उर्दू काव्य-जगत् में यथेष्ट यश एवं कीर्ति प्राप्त की। इनका एक काव्य-संग्रह 'महराब-ए-ग़ज़ल' प्रकाशित हो चुका है। इनकी ग़ज़लों के विवेच्य विषय प्रायः आध्यात्मिक और दार्शनिक हैं। इनकी नज्मों में कहीं-कहीं आदर्शवादी स्वर अत्यंत मुखर हो गया है।

रवींद्रनाथ ठाकुर *(बँ० ले०)*

दे० ठाकुर, रवींद्रनाथ।

रवींद्र संगीत (बं० प्र०)

रवींद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) ने लगभग 3000 गीतो की रचना की है। 'गीतवितान' के तीन खडो (1931-32) मे ये गीत सकलित हैं। इन गीतो मे सुर रवीद्रनाथ ने स्वय दिया है—इसीलिए इन गेय गीतो को 'रवींद्र संगीत' के नाम से पुकारा जाता है। प्राचीन सुर, प्रचलित राग-रागिनी एव प्राचीन भारत की अपनी सुर-सस्कृति के साथ इस सगीत का गहन सबध है। इन गीतो को स्वर देते हुए उन्होने यह अनुभव किया था कि भारतीय शास्त्रीय या दरबारी सगीत मे राग का ही प्राधान्य है, शब्द का वहाँ कोई मूल्य नही। इसीलिए उन्होंने राग-रागिनी की निर्वैयक्तिक सुर-धारा मे व्यक्ति की विचित्र अनुभूति से युक्त शब्दो का महत्वपूर्ण सबध-स्थापन किया। इन गीतो मे वे अपनी मौलिकता प्रकट नही कर पाये, इनमे तो केवल शब्दो की असामान्यता ही प्रकट हो सकी है। मौलिकता की सृष्टि के लिए उन्होने बगाल के बाउल, सारिगान आदि लोकगीतों मे नाना प्रकार की राग-रागिनियो का सम्मिश्रण किया एव अपने सगीत में व्यक्ति-सत्ता की प्रतिष्ठा की। उन्होंने पाश्चात्य सगीत क स्वर मे अपने शब्द भरकर नये गीतो की सृष्टि की। हिंदुस्तानी सगीत, ठगरी, ठप्पा आदि मे पिलु, भैरवी आदि रागो का सम्मिश्रण कर कवि ने अपने सगीत को नया रूप दिया है। इस प्रकार प्रचलित निर्दिष्ट स्वरो को तोडकर एव दसारें का सम्मिश्रण कर रवीद्र सगीत की सृष्टि हुई है। राबींद्री-भैरवी इनकी एकदम मौलिक सृष्टि है जिसमे कवि ने लगभग 300 गीतो की रचना की है। अभिव्यक्ति की परिपूर्णता रवींद्र सगीत मे भरपूर मिलती है।

रशीद अहमद सिद्दीकी (उर्दू० ले०) [जन्म—1896 ई०]

उर्दू गद्य के हास्य और व्यग्य-लेखकों मे रशीद अहमद सिद्दीकी का नाम अत्यत महत्वपूर्ण है। व्यग्य लेखो मे इनकी प्रतिभा का उत्कर्ष देखते ही बनता है। इनके द्वारा प्रयुक्त भाषा मे यद्यपि दुर्बोध एव क्लिष्ट फारसी एव अरबी शब्दो की प्रचुरता दृष्टिगोचर होती है, तथापि राजनीति और इतिहास के विद्वानो को चमत्कृत करने म ये पूर्णत' समर्थ हैं। इनका व्यग्य बडा तीखा और प्रखर होता है। पाठक पर उसका गभीर प्रभाव पडे बिना नहीं रह सकता। इनमे विचारो की गहनता और सूक्ष्मता है। डा० सैयद एजाज हुसैन (दे०) के अनुसार . 'रशीद अहमद के यहाँ पग पग पर इनकी प्रतिभा मुखर है। इनके दृष्टांत इनके लेखो का प्राण है। वह 'अरहर का खेत' ही क्यो न हो, किंतु वह उसको असेंबली और पार्लियामेंट के साथ-साथ दिखा सकते हैं।' इनकी कृतियो मे 'मज़ामीन-ए-रशीद','खदाँ' और 'गजहा ए-गिरा माया' के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कृतियो मे गभीर व्यग्य के साथ रुक्ष और नीरस विषयो तक मे भी सरसता और सजीवता का सचार सर्वत्र परिलक्षित होता है।

रश्मि (म० पा०)

यह प्र० के० अत्रे (दे०) की 'लग्नाची बेडी' प्रहसन की नायिका है। वैवाहिक सबधो को बधन एव भारस्वरूप स्वीकार कर यह स्वच्छद प्रेम के समर्थको की कुचेष्टाओ के रहस्योदघाटन द्वारा वैवाहिक बधनो की अनिवार्यता की घोषणा करती है। यह पुरुष की भ्रमर-वृत्ति से पूर्णत परिचित है तभी तो यह अपने ससर्ग मे आने वाले प्रत्येक पुरुष पात्र को अपनी इच्छानुसार चलाती है। अपने रूप सौंदर्य के लोलुप इन पुरुष पात्रों का उचित पाठ पढाने के लिए ही यह उनसे अपने पादत्राण (जूते) तक साफ करवाती है। अपने सपर्क मे आने वाले उन सभी पुरुष पात्रो को, जो इससे प्रणय-याचना के उपरात विवाह-सूत्र मे बँधने का अनुरोध करते हैं, विवाह करने का वचन दे देती है परतु सबको आँखें बाँधकर उनकी स्त्रियो अथवा प्रियतमाओ के साथ ही विवाह सपन्न कराने मे सफल हो जाती है। अपने बुद्धि चातुर्य के बल पर ही यह कामुक पुरुषो की लोलुप दृष्टि स अपने को सर्वथा बचाए रखती है। वहाँ अपने प्रति आकृष्ट लोगो की कौतूहलपूर्ण दृष्टि से देखते रहने पर भी तटस्थ भाव बनाए रखती है। अपने रूप की मोहिनी से अभिभूत स्वच्छद प्रेम का उपहास उडा वैवाहिक बधनो की श्रेष्ठता घोषित करती है। यद्यपि रश्मि के चरित्र को विशिष्ट उद्देश्य की सपूर्ति के लिए नाटककार ने सयोजित किया है तथापि अपने विशिष्ट क्रिया-कलापो के द्वारा यह मराठी नाट्य-साहित्य का अविस्मरणीय चरित्र बन गई है।

रस (पारि०)

भारतीय साहित्यशास्त्र म सर्वाधिक परिपूर्ण एव सार्वभौम कला सिद्धात 'रस' का मूल प्रयोग प्रारभ म वनस्पतियो के द्रव के लिए होता था। क्रमश साशनिक

रूप में प्रयुक्त होते-होते आनंदमयी अनुभूति के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म अर्थ को ग्रहण कर यह साहित्य एवं कला के क्षेत्र में काव्यास्वाद एवं सौंदर्यानुभूति और दर्शन के क्षेत्र में आत्मास्वाद तथा ब्रह्मास्वाद का पर्याय बन गया। संस्कृत-काव्यशास्त्र के अनुसार रस इतर भावों और ज्ञानों से विनिर्मुक्त, देश-काल की सीमाओं से अनिबद्ध, व्यक्तिगत राग-विराग एवं स्व-पर की भावना से रहित, सत्वोद्रिक्त मनःस्थिति मे अनुभूयमान, ऐहिक भोगास्वाद से भिन्न, ब्रह्मास्वाद के समान सूक्ष्म-परिष्कृत, स्वतः-प्रकाशित आनंदमयी चेतना है।

कालक्रम की दृष्टि से सर्वप्रथम भरतमुनि (दे०)-कृत 'नाट्यशास्त्र' (दे०) में रस-विवेचन उपलब्ध होता है। उन्होंने रस को पदार्थ रूप-आस्वाद्य (आस्वाद्यत्वात्) माना है जो विभाव (दे०), अनुभाव (दे०) और व्यभिचारीभाव (दे०) के संयोग से निष्पन्न होता है। (विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।) भरत ने नाट्यकला की मीमांसा के अंतर्गत ही रस का विवेचन किया था। उन्होंने रंगमंच पर प्रस्तुत उत्कृष्ट कलात्मक दृश्यों में रस-सृष्टि की प्रकल्पना की थी। रस-सूत्र के प्रथम व्याख्याता भट्टलोल्लट (दे०) ने रस को पदार्थ-रूप न मानकर अनुकार्य की अनुभूति-रूप माना और उनके परवर्ती श्री शंकुक (दे०) ने उसे अनुकृत स्थायी भाव के रूप में स्वीकार किया। भट्टनायक (दे०) ने रस की सहृदय-निष्ठ व्याख्या करते हुए साधारणीकरण (दे०)-सिद्धांत की उद्भावना की, और अंत में अभिनवगुप्त (दे०) ने शैवाद्वैत के आधार पर रसानुभूति को आत्माभिव्यक्ति का पर्याय बना दिया। रस-सिद्धांत को संस्कृत के अनेक अन्य आचार्यों की प्रतिभा का अवदान प्राप्त हुआ जिनमें अग्निपुराणकार (ग्यारहवीं शती), रामचंद्र-गुणचंद्र (दे०) (बारहवीं शती), शारदातनय (दे०) (तेरहवीं शती), विश्वनाथ (दे०) (चौदहवी शती), रूपगोस्वामी (दे०) (सोलहवीं शती) और जगन्नाथ (दे०) (सत्रहवी शती) उल्लेखनीय है। आधुनिक भारतीय भाषाओं के समीक्षकों ने भी रस-सिद्धांत की पुनः प्रतिष्ठा और नवीन व्याख्या का महत्वपूर्ण कार्य किया है जिनमें हिंदी के आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०) और डा० नगेंद्र (दे०), मराठी के वाटवे (दे०) आदि प्रमुख हैं।

रसकलस (हिं० कृ०)

इस ग्रंथ के रचयिता अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (दे०) हैं। इस ग्रंथ की महत्ता इसके भूमिका-भाग से कहीं अधिक बढ़ गई है, जिसमें रस-विषयक प्रचुर सामग्री का प्रतिपादन किया गया है। इसमें रस-साधन, रस की उत्पत्ति, रसास्वादन-प्रकार, रस की आनंदस्वरूपता, रस की कल्पना, परस्पर विरोधी रस और रस-विरोध का परिहार, रस-दोष, रसाभास (दे०) आदि विषयों पर सम्यक् प्रकाश डालने के उपरांत ग्रंथकार ने शृंगार रस का विस्तृत निरूपण किया है। इसके अंतर्गत शृंगार रस की परिभाषा, विवेचन, व्यापकता, प्रधानता, उपयोगिता आदि विषयों के अतिरिक्त नायिका-भेद पर प्रकाश डाला गया है तथा अंत में वात्सल्य रस का विवेचन है। इस भूमिका भाग की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि ग्रंथकार ने आधुनिक लोक-प्रवृत्तियों के अनुसार रसशास्त्र की अनेक पुरातन मान्यताओं की नूतन व्याख्या की है तथा अनेक मौलिक धारणाएँ प्रस्तुत की हैं। ग्रंथ के मूल भाग में स्थायिभाव (दे०) संचारिभाव (दे०), आलंबन विभाव और इसके अंतर्गत नायक-नायिका-भेद (दे०), उद्दीपन-विभाव (दे०) और अनुभाव (दे०) के भेदोपभेदों के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं, और इसके उपरांत रस (दे०)-निरूपण के अंतर्गत सभी रसों के भेदोपभेदो के उदाहरण हैं। संभवतः ये सभी उदाहरण स्वयं 'हरिऔध' द्वारा प्रणीत हैं। ग्रंथ के मूल-भाग में भी ग्रंथकार ने अनेक नूतन भेदोपभेदों और मान्यताओं का प्रतिपादन किया है। प्रस्तुत रचना अपने विषय की एक अमूल्य संदर्भ-कृति है।

रस-कल्लोल (उ० कृ०)

उड़िया भाषा के उच्चकोटि के चार-पाँच काव्यों का यदि उल्लेख किया जाये, तो उनमें दीनकृष्णदास (दे०)-रचित 'रस-कल्लोल' भी एक होगा—इसमें संदेह नहीं। इस महाकाव्य का 'रस-कल्लोल' नाम सार्थक ही है। इसमें सर्वरसाश्रय लीलाप्रिय श्रीकृष्ण की लीला के वर्णन में कवि ने शृंगार, वीर, करुण, वात्सल्य आदि रसों की मंदाकिनी प्रवाहित कर सहृदय मानस को रससिक्त कर दिया है। कृष्ण की गोपलीला एवं कंसपुर-गमन इस काव्य की मुख्य विषयवस्तु हैं। किंतु दीनकृष्णदास जातीय कवि हैं। इसलिए रसेश्वर कृष्ण का चरित-वर्णन करते हुए भी उन्होंने ग्रंथारंभ में नीलगिरिपात कैवल्यदायक जगन्नाथ की वंदना की है। जगन्नाथ परम अवतारी हैं और कृष्ण अवतार मात्र। नीलांचल नाथ जगन्नाथ के पादपद्म में जीवन नैवेद्य अर्पण कर परमाराध्य लीलामय गोपीजन-वल्लभ कृष्ण के चरित-

वर्णन मे इस आदर्श वैष्णव ने अपने प्राण उँडेल दिए हैं। पुरी की नित्यता सर्वप्रथम उनके काव्य से सूचित होती है। यह भावना उनकी उत्कलीय वैष्णव भक्ति की प्रतीक है। उनके काव्य मे शुद्धाभक्ति का निर्देशन मिलते हुए भी योग-मार्ग, ज्ञान-मार्ग का परिहार नही हुआ है, जो उत्कलीय वैष्णव भक्ति की विशिष्टता है।

'रसकल्लोल' मे कवि ने अपनी असामान्य प्रतिभा का परिचय दिया है। प्रत्येक पद मे कविता-माधुरी कमल विकसित होकर जनमन हरण करता है। समग्र ग्रथ व्यापक रूप से मधुर, ध्वनिमय एव कोमल मसृण पदावली से सुशोभित है। भाषा परिमार्जित विविध अलकारो से युक्त एव रमणीय है। चित्रों की सूक्ष्म कारीगरी काव्य को रूपाभ प्रदान करती है। रूप-वर्णन मे कवि ने सुदर उपमाओ का प्रयोग कर चित्रो को मनोरमता दी है। कृष्ण के चरित्र चित्रण मे कवि ने अनेक उक्तियो एव अनेक आख्यानो की अवतारणा की है।

समग्र काव्य आद्यवर्ण 'क' से विरचित है। 'रसकल्लोल' 34 छदो मे पूर्ण है। विभिन्न राग रागिनियो के आधार पर ये छद रचे गए हैं। विरहिणियो की मन-स्थितियो का सुदर चित्रण हुआ है। 'रस कल्लोल' मे कवि ने स्थान-स्थान पर 'रघुवश (दे०), 'कुमारसभव' (दे०), 'नैषध' (दे०) 'गीत गोविद' (दे०), 'शकुतला' (दे० अभिज्ञानशाकुतलम्) नाटक, 'उज्ज्वल नीलमणि' (दे०), चडीदास कृत 'कवितावली (दे०) तथा अन्य अलकारशास्त्र के श्लोको का सरल-सरस अनुवाद किया है। अनेक स्थलो पर काव्य की नाटकीयता विशेष आकर्षण की सृष्टि करती है। इसकी जनप्रियता के कारण हैं—काव्य की सगीतमयता, आनददायिनी शक्ति, अलकारो का सहज समावेश, अद्भुत कल्पना विलास, कालिदास-सुलभ शब्द विन्यास, नैषधीय शब्द-पाडित्य एव वर्णन-कुशलता, तथा 'गीत-गोविद' सुलभ पद-लालित्य।

युगप्रभाव के कारण शृगार-वर्णन मे यदाकदा औचित्य की रक्षा नही हो सकी है, यत्रतत्र पदावली भी दुरूह एव क्लिष्ट है, तथापि काव्य की रसात्मकता अक्षुण्ण और उसकी उत्कृष्टता स्वत -सिद्ध है।

रसखान (हि० ल०) [जन्म—1548 ई०, मृत्यु—1628 ई०]

ये दिल्ली के पठान सरदार थे। मुसलमान होते हुए भी इनकी कविता वैष्णव-भाव मे सराबोर है, यही इनकी सबसे बडी विशेषता है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' (दे०) मे एक बनिये के लडके के प्रति इनकी आसक्ति एव मानिनी नायिका के प्रति इनके अटूट प्रेम की चर्चा वर्णित है। कुछ विद्वानो के अनुसार अपनी मानिनी नायिका से रुष्ट होकर ये वृदावन चले आए थे और वल्लभ-सप्रदाय मे दीक्षित होकर श्रीनाथ के स्वरूप की उपासना करने लगे थे।

इनके नाम स 'प्रेमवाटिका' और 'सुजान रसखान' नामक दो ग्रथ प्रसिद्ध हैं। वार्ता मे लिखा है कि इन्होने अनेक कीर्तनो की भी रचना की है, किंतु आज वे अनुपलब्ध हैं। 'सुजान रसखान' मे 129 छद हैं, जिनमे सवैया और घनाक्षरी की प्रचुरता है। इनकी व्रजभाषा आडबर विहीन और टकसाली है। आराध्य के प्रति प्रेम की प्रगाढता और निश्छल भावानुभूति के कारण इनका काव्य अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। रसखान की रससिक्त रचनाओ मे कवि का भावाकुल हृदय झलकता है। प्रेम के मनोहारी और सजीव चित्रण के लिए रसखान कृष्णभक्त कवियो मे अत्यत महत्वपूर्ण हैं। यह कवि प्रेम की तन्मयता, आत्म-विभोरता, आसक्ति और उल्लास के लिए उतना ही प्रसिद्ध है जितना अपनी भाषा की मार्मिकता, शब्द-चयन तथा व्यजक शैली के लिए विख्यात है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' मे लिखा है कि इन्होने अनेक कीर्तनो की रचना की, पर वे अनुपलब्ध हैं। सच तो यह है कि इस कवि ने अतर्मन की गहराई मे झाँककर भावुकता के परिवेश मे अपनी रससिक्त रचनाओ के माध्यम से अपना 'रसखान' नाम सार्थक कर दिया है।

रसगगाधर (स० कृ०) [रचना काल—1600-1700 ई०]

इस ग्रथ के रचयिता पडितराज जगन्नाथ (दे०) हैं। काव्यशास्त्र का यह महनीय ग्रथ है। इस ग्रथ मे रस, शब्दशक्तियो एव अलकारो का विशद एव वैज्ञानिक विवेचन किया गया है।

रसगगाधर के अतर्गत रस सिद्धात पर वेदातिक अद्वैतवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इसके अतिरिक्त रसशास्त्र का निरूपण भी इस ग्रथ म वैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है, यही इस ग्रथ की महती देन है।

रसतरंगिणी (स० कृ०)

इस सस्कृत-ग्रथ के रचयिता भानुमिश्र, भानु-

दत्त, अथवा भानुकवि हैं। ये मैथिल ब्राह्मण थे और इनका समय 1480 और 1570 ई० के बीच माना जाता है। 'रसतरंगिणी' ग्रंथ मे रस का विवेचन किया गया है। यह ग्रंथ गद्यबद्ध है। इसमें आठ तरंगें हैं। प्रथम सात तरंगों में क्रमशः स्थायिभाव, विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, व्यभिचारिभाव, शृंगार रस, शृंगारेतर हास्य आदि रसों का प्रतिपादन अथवा विवेचन है। आठवीं तरंग का नाम प्रमार्जक है, जिसमें रस-विषयक अन्य सामग्री प्रस्तुत की गयी है। इस ग्रंथ में प्रतिपादित अनेक धारणाएँ एवं मान्यताएँ उल्लेख्य हैं। इसमें विकारों को दो प्रकार का बताया गया है—आंतर और शरीर। आंतर विकारों के दो प्रकार हैं—स्थायी भाव और व्यभिचारी भाव। सात्त्विक भावों को शरीर कहा गया है। सात्त्विक भावों में 'जृंभा' को भी गिनाया गया है। व्यभिचारिभावों में 'छल' को जोड़ा गया है। 'वात्सल्य' और 'भक्ति' को रस नहीं माना गया। 'लौल्य' और 'कार्पण्य' भी रस नहीं हैं। इसमें 'मायारस' का भी उल्लेख किया गया है। इसमें 'हास्य', 'करुण', 'भयानक', 'बीभत्स' और 'अद्भुत' रसों के दो-दो भेद किए गए हैं—स्वनिष्ठ और परनिष्ठ। ग्रंथ की उल्लेख्य विशेषता है रस का विभाजन। रस दो प्रकार का है—लौकिक, अर्थात् मधुर आदि षड्रस, और अलौकिक। अलौकिक रस के तीन रूप हैं—स्वापनिक, मानोरथिक और औपनयिक (अथवा काव्यरस या नाट्यरस)। इसके अतिरिक्त इस ग्रंथ में रस का वर्गीकरण इस प्रकार से भी है—अभिमुख, विमुख और परमुख। परमुख रस दो प्रकार का है—अलंकार—मुख और भाव-मुख। हिंदी-रीतिकालीन आचार्यों ने भानुदत्त के अन्य ग्रंथ 'रसमंजरी' (दे०) के अतिरिक्त इस ग्रंथ से भी सामग्री ली है, पर उसकी अपेक्षा बहुत कम।

'रसनिधि' *(हिं० ले०)*

ये दतिया राज्य के बरौनी इलाके के एक संपन्न जमींदार थे। इनका वास्तविक नाम पृथ्वीसिंह था, किंतु कविता 'रसनिधि' नाम से करते थे। इनका प्रसिद्ध ग्रंथ 'रतनहजारा' है। इस ग्रंथ के वर्ण्य विषय और अभिव्यंजना-शैली पर बिहारी (दे०) की शृंगार-भावना और रचना-पद्धति का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। फिर भी, इस ग्रंथ की एक निजी विशेषता यह है कि इसमें फ़ारसी-शायरी की शैली पर इश्क की विविध भावनाओं और चेष्टाओं का वर्णन किया गया है। प्रेम की सरस उक्तियाँ प्रायः मनोरम हैं। किंतु कहीं-कहीं फ़ारसी शब्दों के अवांछनीय प्रयोग के कारण काव्यशिल्प विक्षत हो गया है। इस ग्रंथ के अतिरिक्त इनके कुछ और ग्रंथ प्राप्त होते हैं: 'विष्णुपद-कीर्तन', 'कवित्त', 'बारहमासी', 'रसनिधिसागर', 'गीति-संग्रह', 'अरिल्ल', 'हिंडोला' आदि।

रस-निष्पत्ति *(पारि०)*

भारतीय काव्यशास्त्र में रसास्वादन की प्रक्रिया के अध्ययन के अंतर्गत सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय है रस-निष्पत्ति। इसका सर्वप्रथम उल्लेख भरत (दे०) के रस-सूत्र में हुआ है: 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रस-निष्पत्तिः।' (नाट्यशास्त्र—6/32) इस सूत्र का शाब्दिक अर्थ है कि विभाव (दे०), अनुभाव (दे०) और व्यभिचारी भावों (दे०) के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इसमें प्रयुक्त 'संयोग' और 'निष्पत्ति' शब्द की व्याख्या भरत ने नहीं की। संस्कृत-रस-शास्त्र के परवर्ती इतिहास में इस विषय की सूक्ष्म-गहन मीमांसा की गयी है।

'निष्पत्ति' शब्द का कोशगत अर्थ है: निस्+पद् (गतौ)+क्तिन्—अर्थात् निःशेष रूप से स्थिति प्राप्त करने का भाव; दूसरे शब्दों में अस्तित्व प्राप्त करना अथवा सिद्धि। भरतसूत्र के चार प्रसिद्ध व्याख्याताओं में से प्रथम लोल्लट (दे०) ने 'निष्पत्ति' का अर्थ 'उपचिति' और संयोग का अर्थ विभावादि के साथ स्थायिभाव का संयोग माना। लोल्लट ने उसकी अवस्थिति मूलतः अनुकार्य में स्वीकार की है। अनुसंधान के बल पर गौण रूप में वह नट में भी हो सकती है। प्रमाता अभिनय-कौशल आदि से चमत्कृत होकर नट पर मूल पात्र का आरोप कर उसमें अनुकार्यगत रस की प्रतीति कर लेता है। कुछ विद्वानों के मत से लोल्लट के अनुसार निष्पत्ति का आशय है उत्पत्ति। भट्टलोल्लट के मत का खंडन उनके परवर्ती आचार्य श्री शंकुक (दे०) ने 'न्यायदर्शन' के आधार पर किया। शंकुक ने चित्र-तुरंग-न्याय के प्रमाण से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि न तो रस उत्पन्न होता है और न उसकी अनुभूति का आरोप किया जाता है। रस मूलतः नट द्वारा स्थायिभाव की अनुकृति का नाम है और सामाजिक उसकी अनुमिति करता है। जिस प्रकार चित्रित तुरंग मूल की प्रतिकृति होते हुए भी अवास्तविक प्रतीत नहीं होता, उसी प्रकार अभिनेता के कुशल अभिनय के कारण अनुमान पर आधारित प्रमाता की रसप्रतीति भी अवास्तविक नहीं होती। इस प्रकार शंकुक की दृष्टि में रस-निष्पत्ति का अर्थ है: प्रमाता द्वारा रस की अनुमिति।

शकुक का यह मत सस्कृत-व्याख्याता के इतिहास में 'अनुमितिवाद' के रूप मे प्रसिद्ध है। भरतसूत्र के तीसरे व्याख्याता भट्टनायक (दे०) का मत भुक्तिवाद के नाम से विख्यात है। इन्होने अपने पूर्ववर्ती दोनो व्याख्याकारो के मतो का निराकरण करते हुए शब्द की अभिधा के अतिरिक्त भावकत्व और भोजकत्व दो नयी शक्तियो की प्रकल्पना की। भावकत्व-शक्ति विभावादि को साधारणीकृत कर भाव्यमान बनाती है और भोजकत्व इस भाव्यमान स्थायिभाव को आस्वादनीय बनाती है। इस प्रकार भट्टनायक के अनुसार रस-प्रक्रिया के तीन अवस्थान हैं प्रथम काव्य के सामान्य अर्थ-बोध की प्रतीति, दूसरा भावन-व्यापार व्यक्ति-विशेष-सबधी निजत्व के भाव का निवारण, तीसरा अवस्थान सत्त्व के उद्रेक की स्थिति है जिसमे प्रमाता भोजकत्व-शक्ति द्वारा भावित स्थायिभाव का रस-रूप मे भोग करता है। अत भट्टनायक के अनुसार रस-निष्पत्ति का अर्थ है—रस भोग। भरतसूत्र के चौथे व्याख्याता और भट्टनायक के परवर्ती आचार्य अभिनवगुप्त (दे०) ने भट्टनायक की दोनो नवीन शक्तियो को अस्वीकार करते हुए व्यजना शक्ति को रस प्रक्रिया का आधार माना। इनके मतानुसार स्थायिभाव प्रमाता के अतर्मन मे वासना-रूप से स्थित रहते हैं। कवि-प्रतिभा के चमत्कार से यह स्थायिभाव साधारणीकृत रूप मे अभिव्यक्त होता है और प्रमाता सभी प्रकार के लौकिक विघ्नो से मुक्त हो उसके माध्यम से रसास्वादन करता है। इस प्रकार अभिनवगुप्त के अनुसार निष्पत्ति का अर्थ है अभिव्यक्ति। शैवाद्वैत पर आधारित उनका यह मत 'अभिव्यक्तिवाद' कहलाता है। भारतीय काव्यशास्त्र मे अभिनवगुप्त के मत को ही व्यापक मान्यता प्राप्त हुई है।

रसमजरी (स० कृ०)

'रसमजरी' का कर्ता भानुमिश्र, भानुदत्त, अथवा भानुकवि हैं, जिसका समय चौदहवी-पद्रहवी शती ई० माना जाता है। इस ग्रथ का नाम यद्यपि 'रसमजरी' है, किंतु इसमे केवल शृगार रस का—और उसमे भी केवल उसके आलवन विभाव के अतर्गत नायक-नायिका-भेद का—विवेचन प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रथ मे उक्त विषय का विकसित रूप प्रस्तुत किया गया है। भानुमिश्र से पूर्व भरत (दे०) और भोज (दे०) के नायक-नायिका-भेद के निरूपण मे विषय का विस्तार था, पर इतनी सुव्यवस्था नही थी, पर रुद्रट (दे०) और विश्वनाथ (दे०) के निरूपण मे व्यवस्था अवश्य थी, विषय-सामग्री सक्षिप्त थी। पर इस ग्रथ मे विषय को विस्तृत एव व्यवस्थित रूप मे विवेचित किया गया है। इस ग्रथ मे नायक एव नायिका के भेदोपभेदो के लक्षण इतने सयत हैं कि ग्रथकार आत्मविश्वास के साथ उनमे अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोषो के अभाव की सूचना भी आवश्यकतानुसार देता चलता है। इसके अतिरिक्त इस ग्रथ की दो अन्य विशेषताएँ हैं—स्थान स्थान पर तर्कसम्मत आख्यान, तथा सटीक और कवित्वपूर्ण उदाहरण। इन्ही सुपुष्ट विशेषताओ के बल पर ही, सस्कृत के नायिक नायिका-भेद-निरूपक ग्रथो मे इस ग्रथ का सर्वोच्च स्थान है, और यही कारण है कि लगभग रीतिकालीन आचार्यों का यह प्रमुख आधार ग्रथ रहा है।

रस भेद (स० पारि०)

भरत (दे०) ने मूल रूप मे चार रस माने हैं—शृगार, रौद्र, वीर और बीभत्स। फिर इनसे क्रमश हास्य, करुण, अद्भुत और भयानक रसो की उत्पत्ति मानी है। शृगार और हास्य, वीर और अद्भुत तथा बीभत्स और भयानक रस युग्म का पारस्परिक कारण-कार्यभाव होने के कारण उत्पाद्योत्पादक सबध स्वत सिद्ध सिद्ध है। रौद्र और करुण मे भी यह सबध मन स्थिति के आधार पर परिपुष्ट है—सबल पक्ष का निर्बल पक्ष पर अकारण और निर्दयतापूर्ण क्रोध सामाजिक के हृदय मे करुणा की ही उत्पत्ति कर देता है। इस प्रकरण मे भरत ने रसो के विभिन्न भेदो का भी उल्लेख किया है। आगे चलकर इनमे से कुछ तो प्रचलित रहे और कुछ अप्रचलित हो गए।

(क) प्रचलित भेद

शृगार के सभोग और विप्रलभ दो भेद। हास्य के (उत्तम, मध्यम और अधम कोटि के व्यक्तियो के प्रयोगानुसार) स्मित, विहसितादि छ भेद, तथा वीर के दानवीर, धर्मवीर और युद्धवीर—ये तीन भेद।

(ख) अप्रचलित भेद

शृगार के वाङ् नेपथ्यक्रियात्मक—तीन भेद।

हास्य के आत्मस्थ और परस्थ—दो भेद।

हास्य और रौद्र के अग-नेपथ्य-वाक्यात्मक—तीन-तीन भेद।

करुण के धर्मोपघातज, अपचयोद्भव और शोककृत—तीन भेद।

भयानक के स्वभावज, गत्यसमुत्थ और कुत्सक—तीन भेद, तथा व्याज-अपराध-आगत अन्य तीन भेद।
बीभत्स के क्षोभज, शुद्ध और उद्वेगी तीन भेद।
अद्भुत के दिव्य और आनंदज—दो भेद।

रसरत्नाकर (क० कृ०)

कन्नड के साहित्यशास्त्र-विषयक ग्रंथों में 'रस-रत्नाकर' का विशिष्ट स्थान है। इसके कर्ता साल्व (दे०) (समय—1550 ई०) पंडित कवि हैं। उन्होंने आचार्यत्व और कवित्व दोनों का अच्छा निर्वाह किया है। 'साल्व-भारत' और 'शारदाविलास' उनके अन्य ग्रंथ हैं। 'रस-रत्नाकर' की रचना उन्होंने संस्कृत के आलंकारिक अमृतानंदि रुद्रभट्ट, विद्यानाथ और हेमचंद्र के मार्ग का अनुसरण करते हुए नहीं की है, बल्कि कन्नड के आचार्य नागवर्मा और कविकाम के मार्ग के अनुसरण में की है। ग्रंथ के नाम से ही स्पष्ट है कि साल्व रस-संप्रदाय को मानने वाले आचार्य हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है, 'रसमिल्लद काव्यं नीरसमदरिं कृतिगे रसमे सारं' अर्थात् रस-रहित काव्य नीरस है; अतएव रस ही कृति का सार है। उन्होंने कन्नड के प्रसिद्ध कवियों के पद्यों को लक्ष्य के रूप में उद्धृत किया है। उनके ग्रंथ में नवरसों का सविस्तर प्रतिपादन हुआ है। उनकी प्रतिपादन-शैली अच्छी है और तदनुकूल भाषा का भी प्रयोग हुआ है। भारतीय रसवादी आचार्यों में साल्व का नाम उल्लेखनीय है।

रसराज (हि० कृ०)

इस ग्रंथ के लेखक मतिराम हैं। इसमें प्रधान रूप से रसराज अर्थात् शृंगार रस का निरूपण है। इसमें नायक-नायिका-भेद का वर्णन विस्तार से किया गया है जो कि भानुमिश्र-प्रणीत 'रसमंजरी' (दे०) पर आधारित है। ये भेदोपभेद प्राचीन परिपाटी पर ही निरूपित हुए हैं, अतः इनमें विवेचन अथवा सिद्धांत-संबंधी नूतनता नहीं है। किंतु इनके लक्षण अत्यंत स्पष्ट, सरल एवं सरस हैं। यह गुण रीतिकाल के बहुत कम आचार्यों में पाया जाता है। इसके उदाहरणों में सहज कोमल कल्पना और सुकुमार भावना का अद्भुत समन्वय है। इनसे वर्ण्यविषय का एकसजीव चित्र-सा प्रस्तुत हो जाता है। इनकी शैली मधुर और स्निग्ध है। साहित्य-सौंदर्य के अतिरिक्त इन उदाहरणों से तत्कालीन पारिवारिक संबंधों की भी एक झलक मिल जाती है।

रसलीन, गुलाम नबी (हि० ले०)

रसलीन का वास्तविक नाम सैयद गुलाम नबी था। ये बिलग्राम (जिला हरदोई) के निवासी थे। इनकी दो रचनाएँ प्रसिद्ध हैं—'अंगदर्पण' और 'रसप्रबोध'। 'अंगदर्पण' में नारी के अंगों का उपमा-उत्प्रेक्षा से युक्त चमत्कारपूर्ण वर्णन है। 'रसप्रबोध' में नौ रसों, विशेषतः शृंगार रस, का निरूपण है, इसके अंतर्गत नायक-नायिका-भेद को भी यथावत् स्थान मिला है। इसके कुछ स्थलों में केशव (दे० केशवदास)-प्रणीत 'रसिक-प्रिया' से सहायता ली गई है। इनकी वर्णन-शैली सरस, ललित एवं काव्य-चमत्कारपूर्ण है।

रसवंती (हि० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1936 ई०]

इस रचना का प्रणयन रामधारीसिंह 'दिनकर' (दे०) ने गर्जन-तर्जन से दूर रहकर कोमल कल्पना के साथ रमण करने के लिए किया है। इसकी अधिकांश रचनाओं में शृंगार की रम्य-कोमल व्यंजना मिलती है। 'दिनकर' की शृंगार-चेतना छायावादी (दे० छायावाद) अतींद्रियता और रीतिवादी मांसलता की मध्यवर्ती है। कुछ कविताओं में वैयक्तिक राग-द्वेष-चिंतन की प्रभावमयी अभिव्यक्ति है। महत्व की दृष्टि से यह संग्रह 'उर्वशी' (दे०) के उत्कर्ष का पृष्ठाधार माना जा सकता है।

रसविमर्श (म० कृ०)

इस ग्रंथ का रचना-काल 1942 ई० है और दूसरी आवृत्ति 1961 ई० में प्रकाशित हुई। डा० के० ना० वाटवे ने इसे शोध-प्रबंध के रूप में लिखा है। इसमें कुल 11 निबंध हैं। सबसे पहले संस्कृत-मराठी में विवेचित रस-सिद्धांत का काल-क्रमिक इतिहास दिया गया है। दूसरे निबंध में रस का मानसशास्त्रीय आधार खोजा गया है; और सहज प्रवृत्तियों (इंस्टिंक्ट्स), स्थिर वृत्तियों (सेंटिमेंट्स), साधित भावनाओं (डिराइव्ड इमोशंस), तथा प्राथमिक भावनाओं (प्राइमरी इमोशंस) से स्थायी-व्यभिचारी भावों का साम्य-वैषम्य दिखाया गया है। लेखक ने रस-निष्पत्ति, रसास्वाद, काव्यानंद आदि विषयों के विवेचन तथा रस और रसेतर ललित कलाओं एवं काव्य-शास्त्र के अलंकार आदि सिद्धांतों के विवेचन में तुलनात्मक दृष्टि अपनाई है। इस ग्रंथ में भक्तिरस के स्वतंत्र अस्तित्व

का प्रतिपादन किया गया है। मराठी मे रस-सिद्धात पर लिखित ग्रथो मे इसका अन्यतम स्थान है।

रस-सिद्धात *(हिं० कृ०)*

'रस-सिद्धात' के लेखक हैं डा० नगेंद्र (दे०)। इसमे छह अध्याय हैं, जिनमे रस-विषयक सामग्री का विवेचन मूलत भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से और प्रसगवश पाश्चात्य काव्यशास्त्र तथा मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। 'रस' शब्द का अर्थविकास, 'रस' की परिभाषा एव स्वरूप, करुण रस का आस्वाद, रस की निष्पत्ति, साधारणीकरण, भाव विवेचन, रससख्या, रसो का पारस्परिक सबध आदि विषयो पर शास्त्र-पुष्ट सामग्री गभीर एव सरल शैली मे प्रस्तुत करने के उपरात 'रस-सिद्धात' की शक्ति और सीमा के सबध मे लेखक ने अपना मतव्य इन शब्दो मे व्यक्त किया है—'साहित्य की भूमिका मे जब तक मानव-सवेदना से अधिक रमणीय सत्य की उद्भावना नही होती तब तक रस-सिद्धात से अधिक प्रामाणिक सिद्धात की प्रकल्पना नही की जा सकती।' इसी ग्रथ के माध्यम से ग्रथकार ने रस-सिद्धात को नवीन ज्ञानालोक से विभूषित कर इसके शाश्वत मूल्य का उद्घाटन किया है। वस्तुत अभिनवगुप्त (दे०) और पडितराज जगन्नाथ (दे०) के बाद डा० नगेंद्र ने ही इस शास्त्रीय विधा का पुनराख्यान एव पुनर्मूल्याकन किया है। इस ग्रथ का बँगला तथा गुजराती भाषाओ मे अनुवाद हो चुका है। यह ग्रथ साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत हो चुका है।

रसाभास *(पारि०)*

रसावयवों अथवा सपूर्ण रस चक्र के अनौचित्य के साथ प्रवृत्त के होने के कारण प्रमाता को रस की वास्तविक अनुभूति न होकर केवल उसका *आभास* ही होता है, सस्कृत-काव्यशास्त्र मे इस स्थिति को 'रसाभास' की सज्ञा दी गई है। आभास का अर्थ है वास्तव की छाया की भाँति अवास्तव रूप—एक प्रकार का भ्रम। अभिनवगुप्त (दे०) ने रसानुभूति के इस आभास को सीपी मे रजत के आभास के समान बताया है। भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि मत के अनुसार रसाभास की स्थिति अनौचित्य के साथ प्रवृत्त स्थायिभाव से उद्भूत होती है। पडितराज जगन्नाथ (दे०) ने आलबन विभाव के अनुचित होने को रसाभास कहा है ('अनुचित विभावालम्बनत्व रसाभासत्व'—'रसगगाधर', प्रथम आनन)। आचार्य विश्वनाथ (दे०) ने रसप्रतीति को आभास मे परिवर्तित करने वाले अनौचित्य के उदाहरण के रूप *शृंगाराभास* के अतर्गत उपनायक-रति, मुनि गुरु पत्नी-रति, बहु-नायक-रति केवल नायक-विषयक अथवा नायिका-विषयक एकपक्षीय रति, अधम प्रकृति-विषयक रति, पशु-पक्षीनिष्ठ रति, आदि का उल्लेख किया है। वस्तुत अनौचित्य का वास्तविक आधार लोकव्यवहार या लोकादर्श तथा शास्त्र के विपरीत आचरण ही है। इस प्रकार 'रसाभास' की प्रकल्पना युग और समाज-सापेक्ष सिद्ध होती है। विशिष्ट स्थितियो मे लोकरुचि की अपेक्षा व्यक्ति-रुचि भी 'रसाभास' के लिए उत्तरदायी हो सकती है।

रसिकगोविद *(हिं० ले०)*

रसिकगोविद सभवत जयपुर-निवासी थे। आचार्य रामचद्र शुक्ल (दे०) ने इनका रचना काल 1793 से 1833 ई० (स० 1850-1890 वि०) माना है। इनके बनाये 9 ग्रथ कहे जाते हैं—'रामायण-सूचनिका', 'रसिकगोविद आनदघन', 'लछिमन-चद्रिका', 'अष्टदेव भाषा', 'पिंगल', '*समयप्रबध*', '*कलियुगरासो*', '*रसिकगोविद*' और '*युगल रस-माधुरी*'। इनमे 'रामायण-सूचनिका' रामकथा है, 'अष्टदेव भाषा' तथा 'युगल रसमाधुरी' राधाकृष्ण लीला से सबद्ध हैं। 'समयप्रबध' मे ऋतुचर्या का वर्णन है और 'कलियुग-रासो' मे कलियुग की बुराइयो का। शेष ग्रथ काव्यशास्त्र-विषयक हैं। इनमे कुल मिलाकर *नायक-नायिका-भेद* के अतिरिक्त अलकार गुण, दोष, रस आदि का निरूपण है। यह निरूपण सर्वांगपूर्ण है। ग्रथो के उदाहरण प्रस्तुत करने मे उन्होने स्वनिर्मित पद्य तो प्रस्तुत किए ही हैं, साथ ही पूर्ववर्ती हिंदी-कवियो की रचनाओ का भी समावेश किया है, और कहीं कही सस्कृत-पद्यो का अनुवाद भी प्रस्तुत कर दिया है। 'रसिकगोविद' महत्वपूर्ण रीतिकवि हैं।

रसिकजनमनोभिरामम् *(ते० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

इसके लेखक कूचिमचि तिम्मकवि (दे०) हैं। यह शृंगारप्रधान काव्य है। इसका कथानक 'ब्रह्मपुराण' के गोदावरी खड पर आधारित है। श्यामा नामक गधर्व-कन्या तथा राजा ऋतुध्वज का विवाह और बाद मे उनकी पुत्री तथा गौतम ऋषि का परिणय इस काव्य का मुख्य विषय है। शैली सरल है।

रसिक संप्रदाय *(हिं० प्र०)*

अनेक ग्रंथों में सीता और राम के संयोग शृंगार के वर्णन हैं, यथा : वाल्मीकि-'रामायण' (दे०), 'उत्तर रामचरित' (दे०), 'जानकीहरण', 'हनुमन्नाटक' (दे०) में। 'आनंद रामायण' और 'सत्योपाख्यान' श्रीकृष्णलीला से प्रभावित रामकाव्य हैं। 'भुशुंडिरामायण', 'महारामायण', 'हनुमत्संहिता', 'वृहत् कोशलखंड' और 'संगीत रघुनंदन' में राम की रासलीला भी है। 'अद्भुत रामायण' के एक कांड का नाम ही रामरास है और 'आत्मबोध' में राम को रसराज कहा गया है। कृपानिवास, मधुराचार्य आदि रसिक संप्रदायी आचार्यों के अनुसार न सीता हरण हुआ और न राम ने रावण-वध के लिए धनुष-बाण धारण किया। वास्तविक सीता-राम तो चित्रकूट में ही तब तक विलास, और लक्ष्मण उनका कैंकर्य तथा प्रबंध करते रहे जब तक कि वे वहाँ से अयोध्या नहीं लौटे। उनका अन्य सब कार्य उनके प्रतिनिधि लक्ष्मी, नारायण और शेष ने किया। सीता-त्याग अवास्तविक था।

रामप्रियाशरण, विश्वनाथसिंह, जनकराज किशोरीशरण, रामचरणदास, जनकदास, प्रतापसिंह, रामनाथ प्रधान तथा भगवतदास की रचनाएँ कृष्ण-काव्य से प्रभावित हैं, जिनमें सीता और राम शृंगारिक लीलाओं में प्रवृत्त प्रतीत होते हैं।

रस्म-ए-देहली *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1905 ई०]

मौलवी सैयद अहमद देहलवी की इस गद्य-कृति का प्रथम प्रकाशन मखज़न प्रेस, दिल्ली से हुआ था। तदुपरांत दिल्ली प्रिंटिंग प्रेस, रामपुर द्वारा 1965 ई० में इसे दूसरी बार प्रकाशित किया गया। इस कृति के लेखक उर्दू शब्दकोश—'फ़रहंग-ए-आसफ़िया' के सुप्रसिद्ध संपादक हैं। यह साहित्यिक महत्व की कृति नहीं है, और न इसका लेखक वस्तुतः कोई साहित्यकार ही था। इसका सामाजिक और ऐतिहासिक महत्व है। इसमें इस्लामी सभ्यता से संबद्ध विभिन्न रस्मों, रिवाजों और रीति-नीतियों का आकलन दिल्ली के विभिन्न युगों के आलोक में किया गया है। भारत की इस्लामी सभ्यता की परिचायक यह कृति उन लोगों के लिए विशेष आकर्षण का विषय है जो अपने सांस्कृतिक और सामाजिक इतिहास में यथेष्ट अभिरुचि रखते हैं। इसमें बच्चा पैदा होने की रस्में, जच्चा का तारे देखना, लोरी, दाँत निकलने की रस्म, सालगिरह, दूध बढ़ाना, रस्म ख़तना, घोड़ी चढ़ाना, नाक-कान छिदवाने की रस्म, रस्म-ए-बिस्मिल्लाह, विवाह-शादी की रस्म, मँगनी, मेंहदी, बारात की तैयारी, सेहरा, दहेज, रुखसत के गीत, यात्रा की रस्म आदि-आदि का खोजपूर्ण तथा प्रामाणिक वर्णन है।

रसूल मीर *(कश० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1807-1820 ई०; मृत्यु—1870 ई०]

कश्मीर-स्थित शाहाबाद (डूरू)-निवासी। इनकी भाषा और शैली के आधार पर यही कहा जा सकता है कि यह काव्य-रचना के शिल्प में कहीं-कहीं महमूद गामी (दे०) तथा मकबूल शाह क्रालवारी (दे०) जैसे सिद्धहस्त एवं वरिष्ठ कवियों से बहुत आगे बढ़े हैं। इनकी भाषा में यद्यपि फ़ारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है फिर भी शब्दचयन इस ढंग का है जो कर्णप्रिय और सुरीला है। यही कारण है कि लोग इनकी ग़ज़लें गुनगुनाते रहते हैं। यों तो इनकी भाषा ठेठ और शुद्ध कश्मीरी है। इन्हें निठल्ला रहने से घृणा थी, अतः यत्र-तत्र उन्होंने ठाली बैठने वालों की भर्त्सना की है। इन्होंने सूफ़ियाना कलाम भी कहा है और ऐहिक प्रेम को परमार्थ साधने का साधन माना है। उन्होंने कश्मीरी भाषा की ऐसी ग़ज़लों की रचना की है जो भाषा और शैली में सर्वथा मौलिक हैं। इनके बाद इनकी शैली का अनुकरण करने वाले अनेक कवि हो चुके हैं किंतु कोई भी वैसा प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सका है।

रहदैलगिरि *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1930 ई०]

यह रजनीकांत बरदलै (दे०) के सभी उपन्यासों में सबसे बड़ा है। यह तीन खंडों में विभाजित है। प्रथम खंड में रहदै दयाराम के प्रणय का उन्मेष, उनका विच्छेद राजगृह में रहदै का दासी रूप में रहना, चंद्रकांत की उसके प्रति आसक्ति देख राजमाता आदि का विरोध, रहदै की दयाराम से पुनः भेंट, राजमाता के षड्यंत्र से दयाराम का निर्वासन और रहदै का एक अन्य व्यक्ति को समर्पण, किंतु रहदै द्वारा सतीत्व-रक्षा के लिए आत्महत्या की चेष्टा करना आदि का वर्णन है। इसमें ऐतिहासिक व्यक्ति के काल्पनिक कार्यों का उल्लेख तथा सामयिक राजनीतिक घटनाओं का समावेश है। द्वितीय खंड में रहदै नूतन जीवन-यापन करती है। वह हठयोगी साधु की शरण में जाकर साधना द्वारा अपने यौवन-सुलभ सौंदर्य को त्याग कर वृद्धा का

शरीर प्राप्त करती है। तृतीय खंड में वह तपस्विनी कृष्ण-दासी वैष्णवी बनकर वर्मियों के आक्रमण का पूर्व संकेत देती है लोगों को संघर्ष के लिए संगठित होने का उपदेश देती है और पीड़ितों की सेवा सुश्रूषा करती है। अंत में वह दयाराम को 'मानव सेवा ही ईश्वर है' का मंत्र देकर वृंदावन की यात्रा करती है। अब ये दोनों प्रेमी प्रेमिका नहीं, अपितु भक्त और सत्संगी नर नारी हैं। कहानी का विकास प्रथम खंड में ही पूरा हो जाता है, शेष दो खंड परिशिष्ट-से हैं। गौण चरित्रों में राजा चंद्रकांतसिंह का चरित्र आकर्षक है, वह कामुक है, किंतु पशु नहीं है।

'रहबर', अवतार कृष्ण *(कश० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

ये कश्मीरी गद्य के अच्छे लेखक हैं और अनेक कहानियाँ लिखी हैं। कहानीकार के अतिरिक्त 'रहबर' साहब एक अच्छे आलोचक भी हैं, और इन्होंने कश्मीरी साहित्य के विकास और वृद्धि पर 'काशिरि अदबच्य तारीख' (कश्मीरी साहित्य का इतिहास) नाम का एक सुंदर शोध-ग्रंथ भी लिखा है जो पुरस्कृत हुआ है। इस कृति का पहला खंड प्रकाशित हो चुका है। 'रहबर' साहब का यह कार्य उनकी लगन और विद्वत्ता का प्रमाण है। गुलाम नबी खयाल (दे० खयाल) के साथ मिलकर इन्होंने 'काशुर नसर' (कश्मीरी गद्य) का संकलन एवं संपादन किया है, जो वास्तव में बड़ा प्रशंसनीय कार्य है। 'रहबर' साहब की शैली मौलिक और स्पष्ट है। इन्होंने 'त्ववेंरुत' (मेंट/प्रसाद) नाम का अपना एक कहानी संग्रह प्रकाशित किया है। गोल्डस्मिथ के नाटक 'She Stoops to Conquer' और रवींद्र ठाकुर (दे०) के नाटक 'चित्रा' का भी कश्मीरी में अनुवाद किया है।

रहमान एम० ए० *(त० ले०)* [*जन्म—1929 ई०*]

इनका जन्म मद्रास में हुआ। श्रीलंका जाने के उपरांत ये साहित्य-सर्जना की ओर आकृष्ट हुए। 'मरपु' इनकी प्रतीकात्मक कहानियों का प्रसिद्ध संग्रह है। विभिन्न महापुरुषों के आरंभिक जीवन से संबंधित अपनी रचनाओं के द्वारा वे बाल साहित्य प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हुए। रहमान 1960 से अपनी साहित्यिक पत्रिका 'इळमपिरै' के संपादक के रूप में कार्य कर रहे हैं। अपनी प्रतीकात्मक कहानियों द्वारा इन्होंने श्रीलंका एवं भारत के तमिल कहानीकारों में विशिष्ट स्थान बना लिया है।

रहस्यवाद *(हि० पारि०)*

चिंतनपरक साधना अथवा अंतःस्फुरित रागमय अनुभूति द्वारा परम तत्त्व का अंतःसाक्षात्कार करने की प्रवृत्ति रहस्यवाद है, 'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहता है और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में अंतर नहीं रह जाता।' रहस्यवादी परम सत्ता को 'ज्ञेय' न मानकर 'गेय' मानता है और ज्ञाता तथा ज्ञेय के तादात्म्य के लिए साधना या प्रणय-अनुभूति को साधन मानता है। इसीलिए 'रहस्यवाद' के दो भेद किये गये हैं—साधनात्मक एवं भावनात्मक। 'रहस्यवाद' में साध्य तक पहुँचने के लिए पाँच सोपान माने गये हैं—परम सत्ता के प्रति जिज्ञासा और विस्मय की भावना, परम सत्ता की व्यापकता का आभास और उस पर मधुर व्यक्तित्व का आरोपण, असीम सत्ता के साथ रागात्मक संबंध की स्थापना, विरहानुभूति, साधना मार्ग की कठिनाइयाँ (अंधकारपूर्ण स्थिति) तथा तादात्म्य। पश्चिम में रहस्यवादी चिंतन के सूत्र यूनान के पाइथागोरस एवं प्लेटो के शिष्य प्लोटाइनस में मिलते हैं। वहाँ के साहित्य और साहित्यालोचन पर भी रहस्यवाद का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगत होता है। दांते और पुनर्जागरण-युग के प्रणय सिद्धांत, स्पेनिश साहित्य का आभिजात्य युग, इंग्लैंड के अधिमानसिक कवियों का काव्य, फ्रांस का शास्त्रवाद—सभी रहस्यवाद से प्रभावित हैं। भारतीय रहस्यवाद की प्राचीनता के संबंध में दो मत हैं—शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचंद्र) जी उसे विदेशागत प्रवृत्ति मानते हैं जबकि पाश्चात्य आलोचक तथा अनेक भारतीय विद्वान—डा० बड़थ्वाल, प्रसाद (दे०), महादेवी (दे० वर्मा) आदि उसके बीज उपनिषदों या शैवागमों में मानते हैं। हिंदी काव्य में रहस्यवादी प्रवृत्ति प्राचीन और आधुनिक काव्य दोनों में पायी जाती है, अंतर केवल यह है कि प्राचीन कविता में अनुभूति की प्रधानता थी तो आधुनिक कविता में कल्पना (दे०) की प्रधानता रही है।

रहीम *(हि० ले०)* [*जन्म—1553 ई०, मृत्यु—1626 ई०*]

ये अकबर बादशाह के अभिभावक बैरमखाँ खानखाना के पुत्र थे। इन्हें संस्कृत अरबी और फारसी का अच्छा ज्ञान था। ये दानवीर और कविता-प्रेमी थे।

जहाँगीर के समय में एक युद्ध में धोखा देने के कारण क़ैद किये गये और कैद से छूटने के बाद इन्होंने विपन्नता का जीवन बिताया। कहा जाता है कि गोस्वामी तुलसीदास (दे०) से इनकी अच्छी मित्रता थी।

इन्हें संसार का बडा गहरा अनुभव था। अपने उदार, संवेदनशील और सहिष्णु हृदय को वास्तविक अनुभवों के बीच में रखकर इन्होंने जिस मार्मिकता का परिचय दिया है वही अबाध गति से इनके दोहों में प्रवाहित है। 'रहीम दोहावली' या 'सतसई', 'बरवै नायिकाभेद', 'शृंगार सोरठा', 'मदनाष्टक', 'रासपंचाध्यायी' आदि इनकी अनेक रचनाएँ है। मायाशंकर याज्ञिक ने 'रहीम रत्नावली' नाम से इनका एक संग्रह प्रकाशित किया है। इन्होने फारसी का एक दीवान भी रचा है तथा 'वाक़आत-बाबरी' का तुर्की से फ़ारसी में अनुवाद किया है। इनकी भाषा में हिंदी-संस्कृत अथवा संस्कृत-फ़ारसी के मिश्रित रूप पाये जाते हैं। इनके दोहों में वृंद (दे०) और गिरिधर (दे०) दास की भाँति कोरी नीति का पुट नहीं वरन् हृदय की सच्ची मार्मिकता के दर्शन होते हैं। हिंदी-भाषी क्षेत्र में तुलसीदास के समान ही बरवै (दे०) छंद के प्रवर्तक रहीम के शब्द लोगों की जिह्वा पर आज तक विद्यमान हैं।

रहीम के काव्य का मुख्य विषय शृंगार, नीति और भक्ति है। इनकी विष्णु और गंगा-संबंधी भक्ति भावमयी रचनाएँ वैष्णव-भक्ति आंदोलन से प्रभावित हैं; नीति और शृंगारपरक रचनाएँ दरबारी वातावरण के अनुकूल हैं। व्यास, वृंद और रसनिधि (दे०) की नीति-परक रचनाएँ रहीम से प्रभावित हैं। इन्होंने बरवै के अतिरिक्त दोहा, सोरठा, कवित्त (दे०), सवैया (दे०), मालिनी आदि छंदों का प्रयोग किया है। इनके 'बरवै-नायिका-भेद' में जहाँ एक ओर काव्यरीति का पालन हुआ है, वहाँ दूसरी ओर गार्हस्थिक जीवन के लुभावने चित्र अंकित किये गये हैं। मार्मिक होने के कारण ये अपनी उक्तियों को लेकर समाज में समादृत हुए। ये उदार, विनम्र और दानशील व्यक्ति थे। इनके व्यक्तित्व से जहाँ एक ओर अकबर का दरबार गौरवान्वित हुआ, वहाँ दूसरी ओर हिंदी-साहित्य इनकी माधुर्य-चर्चित कृतियों से अभिवृद्ध हुआ।

राइकमल *(बँ० पा०)*

वैष्णवों की रस-सुंदर आश्रय-भूमि पर 'राइकमल' प्रतिष्ठित है। प्रेम का राज्य, नयनजल का राज्य ही राइकमल का हृदय-देश है। ताराशंकर ने राइकमल चरित्र में जिस रोमानी रसचेतना के निगूढ़ प्रकाश को चित्रित किया है वह निस्संदेह शरत्चंद्र (दे०) की कमललता के अनुसरण पर ही हुआ है। परंतु कमल-लता के असंयत आदर्शवाद में ही उसकी अंतिम परिणति नहीं हुई है। यथार्थ जीवन के बीच से ही राइकमल चरित्र का विकास हुआ है। समग्र जीवन-चेतना की एक गहरी अपार्थिव पीड़ा ने इस चरित्र को पदावली के छंद-रस से अभिस्नात किया है। 'राइकमल' रोमांटिक कवि के मानस का स्वर्ण शतदल है।

राई *(गु० पा०)*

स्व० रमणभाई महीपतराम नीलकंठ (दे०)-रचित नाटक 'राई नो पर्वत' (दे०) का नायक राई मूलतः गुजरात के राजा रत्नदीप देव का राजकुमार जगदीपदेव है जो अपनी राज्यहीन विपन्नावस्था में माली बनकर 'राई' नाम धारण कर कनकपुर की विसलवाडी में रहता है। उसकी माता अमृतदेवी ने भी मालिन का वेश धारण कर 'जालका' नाम रख लिया है (दे० राई नो पर्वत)।

लेखक ने संस्कृत 'नाटक' के लक्षणों की परिपाटी पर इस नाटक की रचना की है। अतः नायक के के रूप में भी राई में वे सब गुण दिखाये गये हैं जो धीरोदात्त नायक में होते हैं। लेखक अपनी सुधार-वृत्ति को भी इसमें समाविष्ट कर देता है। फलतः नारी के अधिकार, नारी की प्रतिष्ठा, बाल-विवाह का विरोध, विधवा-विवाह-समर्थन, अंधविश्वासों का खंडन, आदि भी नाटक में पात्रों के माध्यम से सन्निविष्ट हुए हैं।

एक सत्यनिष्ठ, अनन्य प्रेमी व वीर व्यक्ति के रूप में राई का चरित्र गुजराती-साहित्य में चिरकाल तक जीवित रहेगा।

राई नो पर्वत *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1913 ई०]

स्व० रमणभाई महीपतराम नीलकंठ (दे०)-रचित इस गुजराती नाटक का प्रथम संस्करण 1913 ई० में निकला था। गुजराती नाट्य साहित्य के उषःकाल में शिष्ट किंतु रंगमंचीय नाटकों का अभाव-सा था। इस अभाव की पूर्ति का प्रयत्न स्व० रणछोड़भाई उदयराम (दे०) ने किया। उन्हीं की परंपरा में स्व० रमणभाई

नीलकंठ ने इस नाटक की रचना की। नाटक की वस्तु गुजरात के लोक-नाट्य भवाई के एक 'वेश' (लालजी मनीआर के वेश) मे प्राप्त कथा पर आधारित है।

गुजरात के राजा रत्नदीप देव के पुत्र जगदीप देव का राज्य पर्वतराय ने हड़प लिया था। जगदीप अपनी माता अमृतदेवी को लेकर एक बगीचे मे माली के रूप मे रहने लगा। उसने अपना नाम राई (दे०) रखा तथा अमृतदेवी ने जालका नाम धारण किया। मालिन के रूप मे जालका महल मे आती जाती थी। वृद्ध राजा पर्वतराय से उसने कायाकल्प करने के एक प्रयोग की बात की। बगीचे मे रात्रि मे दक्षिण द्वार से प्रवेश करते समय राई के बाण से पर्वतराय की मृत्यु हुई। राजा का विश्वस्त सामंत शीतलसिंह उनके साथ था। जालका तथा शीतलसिंह ने मिलकर योजना बनाई और यह घोषणा कराई कि राजा कायाकल्प के लिए एक तहखाने मे 6 महीने तक उपचार करा रहे हैं। तब तक आमात्य ही राज्य सचालन करेंगे।

6 महीने बाद राई पर्वतराय के रूप मे प्रगट हुआ। महल मे जाकर वह रानी लीलावती के सामने सारा रहस्य खोल देता है। सभा मे भी यह प्रकट कर देता है कि मैं पर्वतराय नही हूँ किंतु 'राई' नामधारी माली के रूप मे रहने वाला जगदीपदेव हूँ। 15 दिन के उपद्रव व सघर्ष के बाद जनता उसे अपना राजा स्वीकार कर लेती है।

सस्कृत नाट्य परपरा का पूर्ण अनुकरण कर लेखक ने इस एक आदर्श नाटक बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। नादी, सूत्रधार भरतवाक्य, विदूषक आदि की योजना सवादो के बीच बीच मे सस्कृत वृत्तो म पद्य रचना व अको व प्रवेशो की योजना पूर्णत भारतीय नाट्य-सिद्धातो की परिपाटी पर हुई है। 7 अको मे रचित यह नाटक गुजराती के प्रारभकालीन नाटको के रूप का परिचय देता है।

राउतराय, विनोद *(उ० ले०)* [जन्म—1930 ई०]

श्री विनोद राउतराय उड़िया शिल्प-कला के मर्मज्ञ लेखक हैं। इनकी रचना 'ओडिशी चित्र' म उड़िया-शिल्प कला पर इनके आलोचनात्मक निबंध सकलित हैं। यह एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इसम जहाँ लेखक का तत्सबधी गभीर अवबोध प्रकट होता है, वही उड़िया शिल्प-कला की विशिष्टताएँ प्रकाश म आती हैं। इनकी कविताओ का मुख्य प्रतिपाद्य प्रणय है। आजकल य खलीकोट स्कूल ऑफ आर्ट्स मे अध्यापक हैं। इनकी कृतियाँ हैं—'शिल्प तीर्थ (दे०), 'कोणार्केपीर स्वाक्षर', 'शिलालिपि' आदि।

राउतराय, सच्चिदानद *(उ० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

पुरी जिलातर्गत खोर्धा निकटवर्ती गुरुजग ग्राम मे राउतराय का जन्म हुआ था। प्रतिभावान कवि और समर्थ कहानीकार के रूप मे ये प्रसिद्ध हैं। इनकी अब तक 22 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

पदमश्री राउतराय उत्कलीय मार्क्सवादी साहित्य के प्रवर्तको मे अन्यतम हैं। कवि, कहानीकार, उपन्यासकार एव निबंधकार राउतराय आधुनिक साहित्य के एक सशक्त लेखक हैं, इसमे कोई सदेह नही। वामपथी लेखको मे राउतराय ही सर्वाधिक समर्थ लेखक हैं। अपने को 'टाणकवि' कहने की परपरा इस गोष्ठी के कवियो मे इनसे ही चली है। इनकी प्रगतिशील रचनाओ म श्रेणीहीन समाज की स्थापना, शोषण का ध्वस उत्पीडित सर्वहारा वर्ग के अधिकारो की रक्षा आदि विषयो का निरूपण मिलता है।

राउतराय की 'पाथेय' और 'पूर्णिमा काव्य-पुस्तकें सबुज साहित्य (दे०) के आदर्श पर रची गयी हैं। 'पल्ली श्री' म इनकी काव्य-प्रतिभा का चरम विकास है। 'अभियान' काव्य और 'चित्रग्रीव' उपन्यास मे इनकी विद्रोही मनोवृत्ति अभिव्यक्त हुई है। 'बाजीराउत' (दे०) काव्य मे इनकी विप्लवी विचाधारा का सशक्त प्रकाशन है। 'भानुमतीर देश' प्रतीकात्मक रचना है और *कविता 1962'* नवीनतम रचनाओ का सकलन है। 'मशाणिर फुल' एव 'माटिर ताज' उच्चकोटि के कहानी सग्रह हैं। अपनी कहानियो म इन्होंने ग्रामीण जीवन को ग्रामीण जनभाषा म ही चित्रित किया है। यही कारण है कि परिवेश चित्रण म एक सजीवता एव भास्वरता है।

राओ, मधुसूदन *(उ० ले०)* [जन्म—1853 ई०, मृत्यु—1912 ई०]

उत्कल साहित्य समाज के जन्मदाता भक्त व रहस्यवादी कवि, मधुसूदन राओ, साहित्य म परिष्कृत रुचि के प्रवर्तक हैं। बीसवी शती के प्रारभ म साहित्य म जो परिष्कृत रुचि दिखाई पडती है, उसका श्रेय मधुसूदन जी

को है। 'कवितावळी' (दे०) जिसमें अधिकांश कविताएँ मधुबाबू की है, आधुनिक युग की नवीन चेतना की प्रथम अभिव्यक्ति हैं।

इनका जन्म पुरी में एक हिंदू-परिवार में हुआ था। कटक में पढ़ते समय इन्होंने ब्राह्म धर्म स्वीकार कर लिया था, जिसका व्यापक प्रभाव इनके साहित्य में दिखाई पड़ता है। जीवनभर शिक्षा-विभाग में कार्य करने के कारण कवि की अपेक्षा, इनका शिक्षक रूप प्रधान रहा, जो इनकी रचित पाठ्य पुस्तकों से स्पष्ट है।

मधुबाबू मुख्यतः गीतकार हैं। इनके गीतों में इनकी दार्शनिक चिंतना व्यक्त हुई है। काव्य कृतियों में 'ऋषि प्राणे देवावतरण' मुख्य है। इसमें भक्त कवि की आध्यात्मिक अनुभूति, दिव्य अभिव्यंजना के माध्यम से प्रकट हुई है। 'कुसुमांजळी', 'उत्कल गाथा', 'ब्राह्म संगीत', 'बसंत गाथा' आदि इनकी अन्य काव्य-कृतियाँ हैं। मधुसूदन का काव्य-साहित्य इनके गद्य-साहित्य से श्रेष्ठ है। ये सफल अनुवादक भी हैं। 'निर्वासितर विलाप' और 'उत्तर रामचरित' इनकी सफल अनूदित रचनाएँ हैं।

राक्षसतागडीची बखर *(म० कृ०)*

विजयनगर के साम्राज्य की पराजय का वृत्तांत इसमें वर्णित है। 'राक्षसतागडी' नामक स्थान पर युद्ध हुआ था, अतः इस बखर की संज्ञा उसी के आधार पर रखी गई है। यह बखर मूलतः कानड़ी भाषा में रामजी तिरमल ने 1565 ई० में लिखी थी। मूल लेखक विजयनगर के दरबार में रहता था और 'तालिकोट' अथवा 'राक्षसतागडी' के युद्ध को प्रत्यक्ष देख चुका था। इस मराठी बखर का आधार कानड़ी बखर है, अतः भाषा पर कानड़ी प्रभाव स्पष्ट है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस बखर का विशेष महत्व है। साहित्यिक गुणों का भी इसमे सहज अंतर्भाव है। इसमें व्यक्ति-चरित्र का सूक्ष्म चित्रण, घटनाओं का यथार्थ वस्तुनिष्ठ निरूपण है। अभिव्यक्ति-पद्धति सरल है किंतु हृदयस्पर्शी है। घटना-क्रम स्वाभाविक है। एक के बाद दूसरी घटना सहजसंभवी लगती है। इसमें राजनीतिक चर्चा, दूत-कर्म, युद्ध की तैयारी आदि का अत्यंत प्रत्यक्षदर्शी चित्रण है। यह मराठी में अनूदित कृति है, फिर भी नितांत मौलिक-सी प्रतीत होती है। तत्कालीन अनेक राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियाँ इसमें यथार्थ रूप में प्रतिबिंबित हो उठी हैं।

रागणेकर, मो० ग० *(म० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

चलचित्रों के जड़ीभूत प्रभाव से हत-तेज मराठी-रंगमंच को रागणेकर के नाटकों से जीवंत बल प्राप्त हुआ है। 'आशीर्वाद' (1941), 'कुलवधू' (1942), 'कन्यादान' (1943), 'अलंकार' (1944), 'माझेंघर' (1945), 'माहेर' आदि पूर्ण नाटक तथा 'माभंजमेना', 'सतरावर्ष', 'फरारी' (1947), 'बड़े बाप के बेटे', 'आजचे संसार' आदि इनकी प्रमुख एकांकी रचनाएँ है। इनके नाटक अधिकांशतः टूटते-जुड़ते मध्यवर्गीय परिवारों की जानी-पहचानी व्यथा-कथा है। सवाक् चित्रपटों की लोकप्रियता के समक्ष निष्प्रभ मराठी-नाटकों की प्रदीर्घ अभिनयावधि के साथ ही संगीत एवं गीतों की संख्या को सीमित करते हुए इन्होंने समसामयिक समस्याओं का मनोहारी अंकन किया है। संक्षिप्त किंतु तीखे कथा-विकास में सहायक संवाद, अभिनयोचित चांचल्य से परिपूर्ण भावानुरूपिणी सहज बोधगम्य भाषा प्रभान्विति की दृष्टि से इनके नाटकों की अनूठी विशेषता है। इब्सन के यथार्थवादी नाटकों का-सा कथा-विन्यास—एक अंक में एक दृश्य की योजना—तथा का संघर्षमय विकास तथा विस्तृत रंग-संकेत इनके नाट्य-शिल्प पर पाश्चात्य नाट्य-तंत्र के प्रभाव के द्योतक हैं। रंगमंच के व्यावहारिक परिज्ञान के कारण इनकी रचनाओं का साहित्य की अपेक्षा प्रायोगिक मूल्य है।

रागिणी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1915-1916 ई०]

समकालीन उपन्यासों में ही नहीं, आधुनिक मराठी-उपन्यास-साहित्य में भी वामन मल्हार जोशी (दे०)-रचित इस उपन्यास का अपने विशिष्ट गुणों के कारण पृथक् एवं महत्वपूर्ण स्थान है। इसने अपने तात्त्विक विवेचन, गंभीर प्रश्नों से संबद्ध विचारों के कारण साधारण पाठकों को ही नही अपितु बुद्धिनिष्ठ, अभिजात और उच्च शिक्षा-प्राप्त पाठक-वर्ग को भी आकृष्ट किया है। तत्कालीन उपन्यासों में नये विचारों का प्रतिपादन और नये आदर्शों की प्रतिष्ठा न थी, जबकि इस उपन्यास में वामन मल्हार जोशी ने नये विचारों और आदर्शों को पहली बार अभिव्यक्ति दी है जिसके कारण उन्हें 'तात्त्विक उपन्यास का जनक' कहा गया है। इसमें नवीन विचारों एवं प्राचीन शास्त्रीय विचारों का समन्वय है। स्त्री-स्वातंत्र्य पर तो विस्तृत चर्चा है ही, ब्रह्म निर्गुण है या सगुण, ईश्वर का अस्तित्व है या नहीं—इन विषयों का भी विवेचन है।

एक ओर पाश्चात्य दार्शनिको—स्पेन्सर, बर्गसा आदि के विचारों का, तो दूसरी ओर मनु याज्ञवल्क्य आदि पौर्वात्य मनीषियो के सिद्धातो का हवाला दिया गया है। महाराष्ट्र के सामाजिक एव पारिवारिक जीवन मे उस समय जो वैचारिक सघर्ष चल रहा था, उसमे जो नया मोड आ गया था, उसको कथा-साहित्य मे सर्वप्रथम अभिव्यक्ति प्रदान करने का श्रेय इसी उपन्यास को है।

इसका कथानक सुशिक्षित, सुसस्कृत एव स्वतत्र विचारो की दो युवतियो के चारो ओर गुफित है। ये दोनो युवतियाँ स्वभाव से एक दूसरे के विपरीत हैं। रागिणी (दे०) यदि शात, नि स्वार्थ एव सहिष्णु है तो उत्तरा अधीर, अक्खड, वाचाल, तर्कप्रिय एव स्वतत्र नारी है। इन दोनो के कौटुबिक जीवन का चित्रण कर लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार नई शिक्षा का प्रभाव दो भिन्न स्वभावो वाली युवतियो पर भिन्न भिन्न रूप मे पडता है। रागिणी के आदर्श का अनुगमन करने की प्रेरणा देकर उन्होने तत्कालीन महाराष्ट्रीय समाज का मार्ग-दर्शन किया है। सैद्धातिक चर्चा, अद्भुत घटना और अस्वाभाविक एव कृत्रिम वर्णनो के कारण इसका रचना-शिल्प शिथिल है, पर इसका ऐतिहासिक महत्व असदिग्ध है।

रागिणी *(म० पा०)*

वामन मल्हार जोशी (दे०) के विचार-प्रधान उपन्यास 'रागिणी' (दे०) की नायिका रागिणी शात, विनम्र, शालीन नि स्वार्थ और सहिष्णु स्वभाव की है। इसके विपरीत उत्तरा नामक युवती सफ़ेजेट है—अक्खड, वाचाल, तर्कप्रिय और अधीर स्वभाव की है। इन दोनो विपरीत स्वभाव की युवतियो के चित्रण द्वारा लेखक एक ओर यह बताना चाहता है कि किस प्रकार नयी शिक्षा का प्रभाव दो भिन्न स्वभाव वाली युवतियों पर अलग अलग पडता है और दूसरी ओर वह रागिणी के मार्ग का अनुगमन करने की प्रेरणा देता है। रागिणी के माध्यम से लेखक ने निष्ठावान, पतिव्रता आदर्श नारी की स्वरूप-रचना कर महाराष्ट्रीय स्त्री-जीवन को एक नया उन्मेष प्रदान किया है। 1920 ई० के लगभग सुशिक्षित घरो मे रागिणी और उत्तरा के उदाहरण दिये जाते थे, इसी से इस पात्र की लोकप्रियता का पता चलता है। महत्व की बात यह है कि आत्मविद्या विभूषित होते हुए भी रागिणी अमहाराष्ट्रीय नही लगती, क्योंकि लेखक ने महाराष्ट्रीय स्त्री-जीवन के निकट परिचय के आधार पर उसकी चरित्र सृष्टि की है।

राघवन, प्रो० वेंकटेश *(स० ले०)* [जन्म 1908 ई०]

डा० वेंकट राघवन का जन्म मद्रास प्रात के तजौर जिले मे, तिरुवरूर मे, एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। डा० राघवन आरभ से ही विशिष्ट प्रतिभाशाली थे। इन्होने महामहोपाध्याय कुप्पूस्वामी शास्त्री के निर्देशन मे भोज के 'शृगार-प्रकाश' पर पी एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। इनके इस प्रबध के परीक्षक सिल्वा लेवी, एफ० डब्ल्यू थॉमस तथा ए० बी० कीथ थे। इन्होने 'The new Catalogus Catalogoram', 'भोज का शृगार-प्रकाश' का शोधपूर्ण सपादन, *'The number of Rasas'*, 'Some concepts of Alamkarasendras', 'Love in the poems and plays of Kalidasa' तथा Modern *Sanskrit Writings' आदि 50 स अधिक ग्रथो की रचना* की है। इनकी गणना विश्व के विशिष्ट काव्यशास्त्र विद्वान के रूप मे की जाती थी।

डा० राघवन ने अपने कवित्व के उत्कर्ष के कारण 'कवि-कोकिल' की उपाधि प्राप्त की थी। 1962 ई० मे इन्हे 'पदम भूषण' की उपाधि से सम्मानित किया गया था। 1966 ई० मे डा० राघवन को साहित्य अकादेमी के महनीय पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया। डा० राघवन को देश विदेश मे अनेकविध सम्मान प्राप्त हुए। अत्यत सक्षेप मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि कवित्व, काव्यशास्त्र एव भाषाशास्त्र आदि क्षेत्रो मे डा० राघवन का नाम अत्यत सम्मान के साथ लिया जाता है। कुल मिलाकर भारत ही नही, विश्व भर म सस्कृत के विशिष्ट विद्वान के रूप मे डा० राघवन की प्रतिष्ठा रही है। डा० राघवन की प्रतिभा ने एक समीक्षक एव साहित्यस्रष्टा के रूप मे भारतीय वाङ्मय की जो श्रीवृद्धि की है, वह अतुलनीय है। *सस्कृत-जगत् को डा० राघवन की देन चिरस्मरणीय* रहेगी।

अभी कुछ समय पहले ही उनके निधन स सस्कृत-क्षेत्र की एक प्रखर प्रतिभा लुप्त हो गई।

राघवपाडवीयमु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1545 ई०]

यह पिंगळि सूरना (दे०), रचित चार सर्गो का द्वयि काव्य है जिसम 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) की दोना कथाएँ एक-साथ वर्णित हैं। अब तक उपलब्ध तेलुगु के श्लेषकाव्यो म यह सर्वप्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ है। तेलुगु मे श्लेषकाव्य की रचना

अत्यंत दुष्कर है। फिर भी इन दो असंबद्ध कथाओं का वर्णन एक-साथ अद्भुत दक्षता के साथ घटित करनेवाले इस कवि को संस्कृत और तेलुगु दोनों भाषाओं पर असाधारण अधिकार प्राप्त था तथा इनकी बुद्धि नवनवोन्मेषशालिनी थी। इसमें अधिकांश छंद नाना प्रकार के चित्र-विचित्र श्लेषालंकारों से भरे हुए हैं।

इसमें कवि ने दोनों कथाओं का संक्षेप में भी पूरा वर्णन नहीं किया है। क्योंकि दोनों में आरंभ से अंत तक मेल नहीं बैठाया जा सकता। अतः कवि ने एक कथा-प्रणाली का निर्माण कर लिया है। रामायण की कथा से, उसके विवरणों का परित्याग करके, केवल स्थूल रेखाओं की कल्पना कर, उन रेखाओं की छाया से मेल खाने वाले 'महाभारत' के कथांशों को ग्रहण करके, रामायण की स्थूल मूर्ति के अनुरूप 'महाभारत' की स्थूल मूर्ति का निर्माण करके, इन दोनों को कवि ने इस प्रकार जोड़ा है कि दोनों में सादृश्य का आविर्भाव हो गया है। इस प्रणाली में 'रामायण' मूल आधार के रूप में तथा 'महाभारत' उसकी प्रतिवृत्ति के रूप में दिखाई देने पर भी दोनों कथाओं को समान महत्व प्राप्त हुआ है।

यह दुस्साध्य कार्य कवि की प्रबल बुद्धि-चातुरी तथा प्रखर पांडित्य का प्रमाण है न कि उनकी कविता-शक्ति या शिल्प-रचना का। तेलुगु के परवर्ती श्लेषकाव्यों के लिए यह काव्य आदर्श बना रहा।

राघवांक (क० ले०)

कन्नड-साहित्य के स्वतंत्र युग के वीरशैव-कवियों में महाकवि राघवांक का नाम अत्यंत आदर के साथ लिया जाता है। ये हरिहर (दे०) के भानजे थे और उनसे ही इन्होंने शिक्षा-दीक्षा पाई थी। उनके शिष्य होकर ये पंडित हुए थे और भक्त भी। इन्होंने अपने गुरु का मार्गानुसरण किया, परंतु स्वतंत्र प्रतिभा भी प्रदर्शित की। कन्नड-साहित्य में हरिहर ने 'रगळे' (एक छंद) का सर्वाधिक प्रयोग कर क्रांति का सूत्रपात किया और 'रगळेय हरिहर' नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की तो राघवांक ने कन्नड में 'षट्पदी' (दे०) छंद के द्वारा उस क्रांति को आगे बढ़ाया। हरिहर और राघवांक जैसे प्रभविष्णु कवियों के काव्यों से कन्नड-साहित्य श्रीसंपन्न हुआ है। राघवांक का षट्पदी-प्रयोग आगे के कवियों के लिए मार्गदर्शक बना और वह लोक-विश्रुत हुआ।

राघवांक की छः रचनाएँ हैं—(1) सोमनाथचरिते (दे०), (2) वीरेशचरित (दे०), (3) सिद्धरामपुराण (दे०), (4) हरिश्चंद्रचरित्र या हरिश्चंद्र काव्य (दे०), (5) शरभचारित्र और (6) हरिहर-महत्व।

'सोमनाथचरिते' में सौराष्ट्र के प्रसिद्ध शिव-भक्त आदय्या की कथा का वर्णन है। आदय्या ने सौराष्ट्र से सोमनाथ का लिंग लाकर कर्नाटक के पुलिगेरे में उसकी स्थापना की थी। उन्होंने अनेक चमत्कार दिखाकर जैनों को वीरशैव बनाया था। हरिहर ने आदय्या पर 'रगळे' लिखा है, संभवतः उससे राघवांक को प्रेरणा मिली थी। 'सोमनाथचरिते' के वर्णनों में सजीवता है, संभाषणों में नाटकीय दीप्ति है और कल्पना तथा भाषा-शैली में स्वाभाविकता है।

'वीरेशचरित' एक छोटा काव्य है। फिर भी इसमें कवि की प्रतिभा अधिक मात्रा में प्रकट हुई है। इसमें दक्षयज्ञ के विध्वंस की कथा का वर्णन है। हरिहर के 'वीरभद्रदेव-रगळे' से प्रभावित होकर राघवांक ने इस काव्य का प्रणयन किया है, तथापि इसमें राघवांक की मौलिकता स्पष्ट है। 'सिद्धरामपुराण' नौ संधियों का बड़ा काव्य है। सोन्नलिगे के सिद्धराम का जीवनचरित इसका वर्ण्य विषय है। सिद्धराम को कवि ने मनुष्य नहीं, रुद्र का अवतार ही माना है। विश्वप्रेमी और कर्मयोगी के रूप में सिद्धराम का चित्रण अत्यंत मनोरम है।

'हरिश्चंद्र काव्य' राघवांक की यशोदीप्ति का प्रधान आधार है; कवि की चरम सिद्धि का सुंदर प्रमाण है। अन्य काव्यों में सांप्रदायिक प्रवृत्तियों के लिए जो स्थान था, वह 'हरिश्चंद्र काव्य' में नहीं है। इसमें 14 स्थल अथवा सर्ग हैं। 'हर ही सत्य है, सत्य ही हर है'—यह काव्य का महान् संदेश है। कवि ने पूर्व परंपरा से कथा-बीज लेकर उसे काव्यवृक्ष बनाया है और सचमुच नूतन सृष्टि की है। कथा-रचना में रमणीयता, पात्रों का चरित्र-चित्रण, रस-निरूपण, संभाषणों में नाटकीयता, सुंदर छंद और शैली की प्रभावशीलता आदि कितने ही गुण 'हरिश्चंद्र काव्य' को श्रेष्ठ महाकाव्य घोषित करते हैं। श्रव्य काव्य होते हुए भी उसमें सर्वत्र कवि की नाट्य-प्रतिभा विलसित हुई है। 'हरिश्चंद्र काव्य' जैसी अद्वितीय कृति देकर महाकवि राघवांक अमर हो गये हैं।

राघवांकचरित्र (क० कृ०)

चिक्कनंजेश अथवा सिद्ध नंजेश (समय—1650 ई०) की कृति 'राघवांकचरित्र' मध्यकाल के प्रसिद्ध

कन्नड कवि राघवाक (समय —1165 ई०) के चरित को चित्रित करने वाली एकमात्र रचना है। मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में कई वीरशैव चरित काव्य लिखे गये, उनमे सिद्ध नजेश के काव्य का नाम मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। उसमे राघवाक की जीवनी का विवरण इस प्रकार दिया गया है, 'कुतलदेश मे तुगभद्रा के तट पर पपापुर मे इनका जन्म हुआ। इनके पिता महादेव भट्ट माता रुद्राणी और मामा एव गुरु हपा के हरीश्वर थे। कविता शक्ति प्राप्त होने पर पपापुर के राजा देवराज के दरबार मे इन्होने 'हरिश्चद्र-काव्य' रचकर पढा जिससे सभी पडित प्रसन्न हुए। नर स्तुति करने के कारण हरीश्वर ने इनके दॉत तोड दिये तो हरीश्वर की इच्छानुसार सोमनाथ-चरित' आदि ग्रथ लिखकर पुन दॉत प्राप्त किये।' यह नही कहा जा सकता कि हरीश्वर से सबधित इस घटना मे कितना सत्याश है। सिद्ध नजेश के कथनानुसार राघवाक ने ओरुगल्लु (वरगल) के रुद्रप्रताप (अथवा प्रताप रुद्र) की सभा मे एकद्वित्रिसधिग्राही नाम के कुकवियो को परास्त किया था। षट्पदी मे उनके पूर्व किसी ने काव्य-रचना नही की थी। इस कारण वे षट्पदी के जन्मदाता हैं। सिद्ध नजेश की भाषा-शैली सरल और प्रवाहपूर्ण है। राघवाक के चरित्र के निरूपण मे उनको सफलता मिली है।

राघवैयगार, मु० *(त० ले०)* [जन्म—1878 ई०, मृत्यु—1960 ई०]

इस शती के पूर्व भाग मे तमिल भाषा साहित्य एव इतिहास के अध्ययन को गति प्रदान करनवाले मार्गदर्शी विद्वानो मे इनका अपना स्थान है। 1902 ई० मे 'मदुरै' नगर मे साहित्यानुशीलन-अनुसधान के लिए 'चेंतमिल' नामक मासिक प्रकाशन आरभ हुआ था जो उस नगर के नवोदित तमिल सघ—का मुख-पत्र था और हिंदी प्रदेश के 'सरस्वती' पत्र के समकक्ष तत्कालीन विद्वत्समाज पर प्रभाव डालने वाला था। इस पत्र के उप सपादक और सपादक के रूप मे इन्होने अपना साहित्यिक जीवन प्रारभ किया था और तमिल-भाषियो के विस्मृत ग्रथ-रत्नो का सपादन तथा मौलिक अनुसधान आदि कार्यों मे नये मानदड स्थापित किये थे। 1913 से 1938 ई० तक पच्चीस साल के लिए मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'तमिल लेक्सिकन' (बृहत् कोश) के सपादन कार्य मे सहायक थे और सात जिल्दो मे प्रकाशित इस कोश की विपुल सामग्री जुटाने तथा सशोधित करने मे इनका योगदान विशेष महत्व का था। कोशकार्य सपन्न करने के पश्चात सात वर्ष तक तिरुवनतपुरम् स्थित केरल विश्वविद्यालय मे तमिल के प्रोफेसर के रूप मे रहकर इन्होने अविरल साहित्य-सेवा की थी। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ ये हैं—'वेळिर वरलारु' (तमिल सगमकालीन दानी प्रमुओ के बारे मे प्राचीन साहित्य मे उपलब्ध सामग्री का खोजपूर्ण प्रस्तुतीकरण), 'तोलकाप्पियम पोरुळतिकार आरायच्चि' ('तोलकाप्पियम' नामक प्राचीनतम तमिल व्याकरण-ग्रथ के कविता विषय-सबधी अध्याय की समीक्षात्मक व्याख्या जो एक साहित्यिक प्रतियोगिता मे पुरस्कृत हुई), 'चेरन् चेंकुट्टुवन' (तमिल साहित्य की खोज पर आधारित एक सम्राट का जीवन और समसामयिक परिस्थितियो का विवरण), 'आळवारकल कालनिलै' ('आळवार' सतो का काल-निर्णय जो तमिल साहित्य और ऐतिहासिक सामग्री दोनो के सयुक्त उच्च अनुसधान का रूप प्रस्तुत करता है), शासनत्तमिळक्कविचरितम्' (तमिल भाषा के पुराने शिला लेखो की खोज द्वारा ज्ञात कवि वृत्तातो का उद्घाटन), 'आरायच्चित्तोकुति' (लेखक की षष्टिपूर्ति पर प्रकाशित खोज लेखो का सग्रह), 'कट्टुरै विरुदु' (विशिष्ट निबधो का सग्रह) इत्यादि। इनके द्वारा सपादित प्राचीन ग्रथो मे 'नरिविरुत्तम् (जैन सप्रदाय का एक तमिल नीति ग्रथ), 'तिरुक्कुरल्' (प्रसिद्ध नीति ग्रथ), 'अरिच्चतिरवेण्बा' (हरिश्चद्रोपाख्यान का काव्य-रूप) इत्यादि हैं। खोजपूर्ण लेखन के लिए इनकी विशेष ख्याति है। तमिल साहित्य और भाषा के सभी क्षेत्र छू लेने वाल इनके निबधो मे सदैव मौलिक तथ्यो को ढूंढ निकालने की गहरी पैठ, तर्कयुक्त प्रस्तुतीकरण, प्रतिद्वद्वी के आग्रहो के उत्तर मे केवल प्रामाणिक साक्ष्य और तथ्या पर निष्ठा का प्रदर्शन तथा तेजस्वी शैली की प्रवाहमयी धारा विद्वज्जन-परितोषदायक है।

राघवैयगार, रा० *(त० ले०)* [जन्म—1871 ई०, मृत्यु—1949 ई०]

ये मु० राघवैयगार के फुफेरे भाई थ। अद्वितीय प्रभावशाली भाषणकर्ता प्राचीन तमिल साहित्य के सपादक और खोजकर्ता, परिष्कृत वाणीसपन्न कवि तथा दर्शनशास्त्र के मर्मज्ञ के रूप म इनका नाम विख्यात रहा है। 1902 ई० मे चार साल तक ये 'मदुरै तमिल सगम्' के मुख-पत्र 'चेंतमिल्' के सपादक थे। अपने जीवन काल मे ये स्थायी रूप से रामनाथपुरम् के 'सेतुपति' राजाओं के 'आस्थान-विद्वान' (राजसभा विद्वान) रहे थे। 1934 ई०

में सात साल के लिए ये 'अण्णामलै' विश्वविद्यालय में तमिल अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष भी रहे थे। विभिन्न कार्य-कलापों के मध्य ये समय-समय पर तमिल प्रदेश में साहित्य, दर्शन आदि से संबंधित भाषण दिया करते थे जिनकी भूरि-भूरि प्रशंसा पुराने विद्या-प्रेमियों द्वारा आज भी की जाती है।

इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृति 'पारिकातै' ('पारि' नामक तमिल के संघकालीन दानी प्रभु की गाथा), 'वेण्पा' (दे०) छंद में 'पुहलेंदि' (दे०) के बाद अन्यतम उपलब्धि है जो अण्णामलै विश्वविद्यालय के एक विशेष समारोह में विद्वानों के सामने प्रस्तुत होकर पुरस्कृत हुई थी। अन्य कृतियों में 'श्रीरामनामप्पाट्टु' (श्रीराम की स्तुति) तथा 'पुवियेलुपत्तु' (धरती का महिमा गान) उल्लेखनीय हैं। 'भगवद्गीता' तथा 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' (दे०) इन दोनों के सुंदर तमिल पद्यबद्ध रूपांतर इनके द्वारा प्रस्तुत हुए हैं। 'चेंतमिल' पत्र में प्रकाशित शोध-लेखों के अलावा इनके 'वंजिमानकर्' (तमिल भूमि के चेरवंशीय राजाओं की प्रधान नगरी 'वंजि' की स्थिति का तर्कपूर्वक अभिनिर्धारण), 'नल्लिचैप्पुलमैमेल् लियलारकळ' (विदुषी तमिल महिलाएँ), 'तमिल् वरलारु' (साहित्य का इतिहास), 'अंटिकोलपेयप्पोरुळ' (एक कूटोक्तिपूर्ण पद्यात्मक संदेश के रहस्यार्थ की मौलिक व्याख्या), 'पेरुंपाणारुप्पटै आरायच्चि' (एक संगम रचना की समालोचना तथा संबद्ध ऐतिहासिक तथ्यान्वेषण) इत्यादि अनेक ग्रंथों में शोध-क्षमता और बहुमुखी प्रतिभा दर्शनीय है। 'तोलकाप्पियम्' (दे०) का 'चेय्युळियल्' (छंद-अध्याय), 'तिरुनूर्रन्दादि' (जैन स्तुति-ग्रंथ), 'अकनानूरु' (दे०) (संगम पद्य-संग्रह) इत्यादि कई मूल्यवान तमिल रचनाएँ इनके द्वारा संपादित होकर सर्वप्रथम पुस्तकाकार प्रकाशित हुईं। 'कुरुंतोकै किळक्कम्' नामक रचना में प्राचीन तमिल-साहित्य की अद्भुत अंतर्दृष्टि-संपन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत हैं।

राजकाहिनी *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1909 ई०]

'राजकाहिनी' ग्रंथ में शिशु-मन के लिए उपयोगी बनाकर अवनींद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) ने राजस्थान के राजाओं के शौर्यवीर्य की कहानी की रचना की है। भाषा में ओजस्विता की अपेक्षा स्निग्धता अधिक प्रकट है। पद्मिनी-भीमसिंह की सरस वर्णना शिशुचित्त के निकट जिस प्रकार आकर्षणीय है, बड़ों के निकट भी उसका माधुर्य थोड़ा भी कम नहीं हुआ है। बच्चों के लिए रचित इस ग्रंथ में अवनींद्रनाथ ने सरस कहानीकार के स्वर का आश्रय लिया है। यह सहज ही लेखक-पाठक के अस्तित्व को 'एक' कर देता है और यही उसकी यथार्थ सार्थकता है।

राजकुमारी लतिका *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1948 ई०]

यह गुरुबख्शसिंह 'प्रीतलड़ी' (दे०) का प्रथम मौलिक नाटक है जिसकी रचना 1923 ई० में अमेरिका के एक नाट्यसंघ में प्रदर्शन के लिए की गई थी। इसके माध्यम से नाटककार ने समाजवादी सिद्धांतों की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। और प्रेम व आदर्श के स्वर को मुखरित करते हुए 'प्रीत-सिद्धांतों' के अनुकूल उनका निरूपण किया गया है। राजकुमारी लतिका राजसी जीवन का परित्याग कर समाजसेवी मनधीर से प्रेम करने लगती है और अंत में महाराज बलराज की गोली से दोनों काल-कवलित हो जाते हैं। चार अंकों वाले इस नाटक में 12 दृश्यों की योजना हुई है। कथा में घटनाधिक्य तथा वर्णनात्मकता के प्रवाह नहीं है और पात्र आदर्शों के प्रतीक हैं जिनमें परिस्थितियों के अनुसार कोई भी परिवर्तन नहीं होता है। पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप काव्यमय प्रतीत होते हैं। यह नाटक अनुभूति और कला की दृष्टि से अधिक सफल नहीं है फिर भी आदर्श-प्रतिपादन की दृष्टि से इसका महत्व है। अभिनेयता की दृष्टि से भी यह सफल है। यह पंजाबी साहित्य का सर्वप्रथम मौलिक दुःखांत नाटक है।

राजखोवा, बेणुधर *(अ० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1955 ई०]

इनकी शिक्षा एम० ए०, बी० एल० तक हुई। इन्होंने सब-डिप्टी कलेक्टर, एक्स्ट्रा असि० कमिश्नर और डिप्टी कमिश्नर के पदों पर कार्य किया था। इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं—काव्य : 'पंच कविता' (1895), 'असमीया भाइ' (1901); 'सिपुरीर बातरि' (1919), 'देहार प्रलय' (1929); पौराणिक नाटक : 'डेका गाभरु' (1889), 'सेउति किरण' (1894), 'दुर्योधन उरुभंग' (1901), 'दक्षयज्ञ' (1808); सामाजिक नाटक : 'कुरि शतकार सभ्यता' (1908), 'लखिमी तिरोता' (1909), 'अशिक्षिता घैनी' (1912), 'यमपुरी' (1931); हास्य नाटक : 'दरबार' (1902), 'कलियुग' (1904),

'जिनि पैती' (1928), 'चोरर सृष्टि' (1931), टोपनिर परिणाम' (1932)।

इन्हे पौराणिक नाटको मे सफलता नही मिली। सामाजिक नाटको और प्रहसनो मे इन्हे विशेष सफलता मिली है। इन्होने स्त्री शिक्षा के अभाव एव बहुविवाह के दुष्परिणाम आदि विषयो को लेकर ही लिखा है।

असमीया प्रहसन-लेखको मे ये अमर हैं।

राजखोवा, शैलधर *(अ० ले०)* [जन्म—1892 ई०, मृत्यु—1969 ई०]

जन्मस्थान—डिब्रूगढ।

इन्होने काटन कालेज से बी० ए० परीक्षा 1914 ई० मे उत्तीर्ण की थी। पहले ठेका व्यवसाय करते थे, फिर क्रमश शिक्षक, सब डिप्टी कलेक्टर, सब डिप्टी मजिस्ट्रेट और एक्स्ट्रा असि० कमिश्नर के पदो पर कार्य करते रहे थे। 1948 से 54 ई० तक ये गौहाटी विश्वविद्यालय के ट्रेजरार रहे थे। इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं—काव्य 'निजरा' (1935), नाटक 'विद्यावती' (1918), 'स्वर्ग देओ प्रतापसिंह' (1953), बहु अभिनीत किंतु अप्रकाशित नाटक : रजितसिंह' (1915), 'देवयानी' (1928)।

इनका एकमात्र कविता-सग्रह 'निजरा' है, इसकी कतिपय कविताओ के कारण ही इन्हें प्रसिद्धि मिल गयी थी। 'विद्यावती' नाटक किंवदती के आधार पर लिखा गया है, जिसमे राजा विक्रमादित्य की पाडित्य-गर्विता कन्या विद्यावती से पराजित पडित लोग षड्यत्र कर उसे महामूर्ख कालिदास से पराजित कराते हैं। नाटक मे ऐतिहासिक परिवेश का अभाव है, चरित्रो पर आधुनिक भावधारा का आरोप है। 'स्वर्ग देओ प्रतापसिंह' सत्रहवी शती के आहोम-मुस्लिम सघर्ष पर आधारित है।

ये प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार थे।

राजगोपालन् कु० पा० *(त० ले०)* [जन्म—1901 ई०, मृत्यु—1944 ई०]

इनकी प्रसिद्धि लघु कथा-प्रणेता के रूप मे है। कुछ समय तक सरकारी नौकरी करने के बाद ये स्वतत्र लेखन और सामयिक पत्रकारिता मे प्रवृत्त हुए। आर्थिक दृष्टि से इनकी स्थिति कभी अच्छी नही रही। मद्रास शहर मे ये 'पिच्चमूर्ति' (दे०) के साथ रहते थे और दोनो 'इरट्टैयर' (युगल पुरुष) कहलाते थे।

मानवतावाद की भावार्द्र-भूमि पर इनकी कहानियाँ स्थित हैं। इनका सबध विशेष रूप से टूटे स्वप्न, अपूर्णमनोरथ, असफल प्रेम-सबध-जैसे विषयो से है। मन स्थितियो का मार्मिक चित्रण इनकी लेखनी की विशेषता है यथा अर्ध-रात्रि की नीरवता मे अपने महल से निकलने के क्षण महात्मा बुद्ध के अन्तर्द्वंद्व का शब्द चित्र। तात्त्विक विश्लेषण की प्रवृत्ति इनकी लघु-कथाओ मे विद्यमान नही है और उनमे से अनेक को गद्य मे रचित भावना-पूर्ण गीति-काव्य कह सकते हैं। इनके तीन लघु कथा-सग्रह प्रसिद्ध है—'पुनर्जन्मम्', 'कनकांबरम्' (फूल-विशेष), 'कांचनमालै' (नारी नाम)। आर० एल० स्टीवेंसन् के 'डा० जेकिल् अड् मिस्टर हाइड' नामक उपन्यास और अन्य कई अँग्रेज़ी कृतियो के सफल तमिल अनुवाद भी इन्होने प्रस्तुत किये हैं।

राजगोपालाचारी, चक्रवर्ती *(त० ले०)* [जन्म—1878 ई०]

इनका जन्म सेलम जिले के तुरैप्पळ्ळी नामक स्थान मे हुआ। राजा जी तमिल और अंग्रेजी के अच्छे विद्वान् थे। राजा जी की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'व्यासर विरुदु', 'चक्रवर्ती तिरुमकन', 'कण्णन काट्टिय वलि', 'आत्मचिंतनै', 'राजा जी कदैहळ' आदि। इन्होने अँग्रेज़ी मे भी अनेक कृतियो की रचना की है। बच्चो के लिए इन्होने अनेक प्रतीकात्मक कहानियाँ लिखी हैं। वे 'कर्पनैक्काडु' मे सगृहीत हैं। 'कर्पनैक्काडु' अँग्रेज़ी, तलुगु, मलयाळम, कन्नड आदि भाषाओ म अनूदित हो चुकी है। 'व्यासर विरुदु' और 'चक्रवर्ती तिरुमकन' का अनुवाद अँग्रेज़ी तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में हो चुका है। इन्हे अपनी कृति 'चक्रवर्ती तिरुमकन' पर साहित्य अकादमी का और 'श्रीरामकृष्ण उपनिषदम्' पर मद्रास सरकार का पुरस्कार मिला। राजा जी तमिल के प्रसिद्ध साहित्यकारो मे गिने जाते हैं।

प्राय अस्सी वर्ष की परिपक्वावस्था प्राप्त कर उनका स्वर्गवास हुआ।

राजतरंगिणी *(स० कृ०)* [समय—बारहवीं शती]

'राजतरंगिणी' संस्कृत का ऐतिहासिक काव्य है। इसके कर्ता कल्हण (दे०) काश्मीर नरेश विजयसिंह (1100 के आसपास) के मत्री चपक के पुत्र थ।

'राजतरंगिणी' में काश्मीर का डेढ़ हज़ार वर्ष का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विवरण प्रस्तुत हुआ है। इसमें 1151 ई० तक के काश्मीर के प्रत्येक राजा का कालक्रमानुसार वर्णन किया है। आठ तरंगों में विभक्त इस काव्य में प्रथम सात तरंग तो संक्षिप्त हैं। आठवीं तरंग में कवि ने साक्षात् देखी हुई घटनाओं का प्रामाणिक एवं विस्तृत वर्णन किया है। अपने समय से पूर्व घटित घटनाओं के लिए कल्हण ने राजकथाओं के ग्यारह संग्रहों और 'नीलमत पुराण' को स्रोत बताया है। इसके अतिरिक्त राजकीय अधिकारपत्रों, शिलालेखों, दानपत्रों तथा हस्तलिखित ग्रंथों एवं स्थानीय दंतकथाओं का उपयोग भी कल्हण ने किया है।

'राजतरंगिणी' संस्कृत का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक काव्य माना जाता है। इस काव्य का अंगी रस शांत है। इसमें वैराग्य भावना का स्वर स्थान-स्थान पर मुखरित हुआ है। कवि के राजनीतिक विचार कौटिल्य (दे०) के 'अर्थशास्त्र' (दे०) पर आधृत हैं। इसकी भाषा सरल, स्वाभाविक एवं सुंदर है। वर्णन में प्रवाह है। संवादों की सुंदर योजना से इस काव्य में नाटकीयता आ गई है। 'राजतरंगिणी' नीति तथा सूक्तियों से संपन्न काव्य है।

इस काव्य की गरिमा से मुगल सम्राट् अकबर इतना प्रभावित हुआ कि अपनी काश्मीर विजय के पश्चात् उसने अलबदाऊँनी से इसका फ़ारसी में अनुवाद करवाया। जहाँगीर के समय में काश्मीर के ही फ़ारसी विद्वान् हैदर मलिक ने इसका संक्षिप्त फ़ारसी-संस्करण निकाला।

राजनीति *(म० कृ०)*

'राजनीति' ग्रंथ के रचयिता श्री मल्हारराभराव चिटणीस हैं। आधुनिक दृष्टि से जिस अर्थ में राजनीति शब्द का प्रयोग प्रचलित है उस दृष्टि से यह राजनीति-शास्त्र का ग्रंथ नहीं है। इसमें राजाओं के लिए राज्य-शासन-भार के संचालन की नीति का विशद विवेचन किया गया है।

इसमें सात प्रकरण है। पहले प्रकरण में राजा के राज्याभिषेक की विधि बताई गई है, दूसरे में सिंहासनारूढ़ राजा का स्थान तथा दरबार की व्यवस्था कैसी हो, यह बताया गया है। तीसरे प्रकरण में राजा के गुण तथा आचार-व्यवहार का स्पष्टीकरण है। चौथे प्रकरण में यह बताया गया है कि राजा, पटरानी, राजपुत्र, अष्टप्रधान तथा दो लेखक इस प्रकार कुल तेरह लोगों से राजमंडल की रचना होगी तथा इसी प्रकरण में आमात्य एवं युवराज के गुणों का उल्लेख किया गया है। पाँचवें प्रकरण में राजा की दिनचर्या बताई गई है। छठे में द्रव्य-प्राप्ति के साधन तथा उसका रक्षण तथा सातवें में सैन्यबल, शूर के लक्षण एवं क्षात्र-धर्म का निरूपण किया गया है।

अंत में लेखक ने स्पष्ट किया है कि इस राजनीति का निरूपण धर्मराज युधिष्ठिर के प्रति भीष्म ने किया है। जो राजा उक्त आधारों पर राज्य करेगा वह चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करेगा।

इस प्रकार इसमें आदर्श राजा के लक्षण तथा आदर्श राज्य-शासन-प्रबंध की नीति का विवेचन हुआ है।

राजन्, ओरवंकरा *(मल० ले०)* [जन्म—1857 ई०; मृत्यु—1916 ई०]

ये वेण्मणि (दे०) शैली के पोषक कवियों में से एक हैं। इनका नाम नीलकंठन् नंपूतिरि है और 'राजन्' उपनाम है। 'कोटुङ्डल्लूर' की कविसभा में इनका समुन्नत स्थान था। इनकी कृतियों में अधिकतर अपूर्ण हैं। उनमें 'बालोपदेशम्', 'कुचेलवृत्तम्', 'मैमीपरिणयम्' (नाटक) आदि सम्मिलित हैं। इनके कई मुक्तक आज भी लोगों को कंठस्थ हैं। हास्य रस के उन्मीलन में ये सभी समसामयिक कवियों में अग्रणी थे। मणिप्रवाळम् (दे०) शैली को आधुनिक रूप देने वालों में इनका नाम प्रमुख है।

राजम कृष्णन *(त० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

तमिलनाडु के तिरुच्चिरापल्लि में जन्म। कहानी एवं उपन्यास लेखिका के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त। साहित्यिक जीवन का आरंभ कहानी-लेखन से किया। विषय एवं शैली दोनों दृष्टियों से इनकी कहानियाँ पारंपरिक ढंग की हैं। अधिकांश कहानियाँ सामाजिक, पारिवारिक विषयों से संबद्ध हैं। प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं—'नित्तियमल्लिहै', 'अल्लि', 'अलैकडलिल', 'पवित्रा', 'ऊशीयुम उणर्वुम' आदि।

'पेण कुरल' नामक अपने प्रथम उपन्यास पर पुरस्कार प्राप्त करने के बाद इन्होंने उपन्यास-क्षेत्र में प्रवेश किया। आरंभिक उपन्यास सामाजिक समस्याओं—विशेषतः नारी जीवन की समस्याओं—से संबद्ध हैं। परवर्ती सामाजिक उपन्यासों में प्रदेश विशेष के जीवन का सांगोपांग वर्णन प्राप्त होता है। 'कुरिंजित्तेन' में नीलगिरि प्रदेश के आदिवासी, 'वळैक्करम' में गोआ-निवासी, 'वेरुक्कु' नीर में

वाराणसी और नीलगिरि के निवासी तथा 'मुल्लुम मलर्न्दडु' मे मध्य प्रदेश के डाकुओ के जीवन का सजीव चित्र प्राप्त होता है। इनके द्वारा रचित डा० रगाचारी नामक तमिलनाडु के प्रसिद्ध चिकित्सक की जीवनी का तमिल के जीवनी-साहित्य मे विशिष्ट स्थान है। विविध स्रोतो से सामग्री का चयन कर इस जीवनी की रचना करने के बाद इनकी वृत्ति सूचना प्रधान कहानी एव उपन्यास-रचना की ओर हो गई। इन्होने स्वतत्रता के बाद विभिन्न क्षेत्रो मे दीख पडने वाले परिवर्तनो को भी अपनी रचनाओ का आधार बनाया है। इन्हे मलयाळम और अँग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान है। इन्होने मलयाळम के अनेक निबघो और कहानियो को तमिल मे अनूदित किया है। तमिल लेखिकाओ मे इनका विशिष्ट स्थान है।

राजमन्नार, पी० वी० *(ते० ले०)* [रचना-काल—1901 ई०]

श्री राजमन्नार विद्वान समालोचक एव विख्यात नाटककार हैं। इन्होने कई कहानियाँ और लेख भी लिखे तथा 'कला' नामक चित्रकला पत्रिका का सपादन भी किया। श्री राजमन्नार उच्च न्यायालय के न्यायाधीश भी रह चुके हैं।

'एमि मगवाळ्ळु', 'मनोरमा' आदि इनकी रचनाएँ हैं। इनके प्राय सभी एकाकी सामाजिक समस्याओ को प्रस्तुत करते हैं। एक जागरूक साहित्यकार की दृष्टि से इन्होने इन समस्याओ का विश्लेषण किया है। 'एमि मगवाळ्ळु' (कैसे पुरुष हैं!) की नायिका एक पतिता स्त्री है। इसमे इन्होने पुरुषो की स्वार्थपरता की ओर सकेत करते हुए यही बताने का प्रयत्न किया है कि स्त्रियो के त्याग एव सदाशयता के प्रतिफल के रूप मे उनको उपहास एव निंदा ही प्राप्त होती है।

राजमल्लि *(मल० कृ०)* [रचना काल—1944 ई०]

'राजमल्लि' एस० के० पोट्टेक्काट् (दे०) का प्रथम कहानी सग्रह है। पोट्टेक्काट् मलयाळम मे कहानी-साहित्य के अभ्युदय-काल के एक प्रमुख लेखक हैं और उनके इस प्रथम सग्रह ने ही उनको प्रतिष्ठित कर दिया था। इस युग के अन्य कहानीकारो की मुख्य प्रवृत्ति यथार्थवाद की ओर थी और पोट्टेक्काट् ने भी इस धारा को अपनाया था, परतु स्वच्छदतावाद की प्रवृत्तियों से वे मुक्त नही हो सके हैं। पोट्टेक्काट् की कहानियाँ निजी अनुभूतियो के माधुर्य से सपन्न हैं। इस कृति की कहानियाँ प्राय सुदीर्घ हैं और उनकी भाषा काव्यात्मक है। 'राजमल्लि' लेखक का एक प्रमुख कहानी-सग्रह है।

राजरत्न *(क० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

श्री जी० पी० राजरत्न जी का जन्म मैसूर म एक विख्यात घराने मे हुआ। उनके बुजुर्ग गुडलु पडित लक्ष्मणाचार्य आयुर्वेद के यशस्वी विद्वान थे। राजरत्न जी ने महाराजा कालेज मैसूर स कन्नड मे एम० ए० किया। बी० एम० श्रीकठय्या (दे०), ए० आर० कृष्णशास्त्री (दे०) आदि कन्नड के आचार्य पुरुषो के ससर्ग का सौभाग्य उन्हे मिला। शिशु साहित्य, कविता, कहानी, नाटक, जीवनी, विडबन, निबध, आलोचना, आत्मकथा-साहित्य के समीक्षको मे वे सक्रिय रहे। अब तक उनकी करीब डेढ सौ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। बौद्ध-साहित्य के तो वे एकमात्र विद्वान हैं। उनकी बौद्ध-साहित्यिक कृतियो म मिलिंद जून, बुद्ध, कतेगळु, धम्मपद, भगवान् बुद्ध, धम्मपद, प्रवेशिका, 'धर्म दानि बुद्ध' आदि प्रमुख हैं। जैन साहित्य पर भी उन्होने महत्वपूर्ण काम किया है। कविता मे वे कन्नड के एकमात्र हालावादी कवि हैं। 'येंडकुडुक-रत्न' (पियक्कड रत्न), 'रत्ननपदगळु' आदि मे सगृहीत कविताओ न कन्नड-साहित्य मे एक नया तार छेड दिया। राजरत्न की भाषा पियक्कडो की ही भाषा है जिसकी नस-नस में मस्ती होती है। 'पुरुषसरस्वती' आदि में वे एक सफल विडबक के रूप में आते हैं। 'गडुगोडली', 'सभवामि युगे युगे', आदि उनके प्रसिद्ध नाटक हैं। 'हत्तुवर्ष' उनकी आत्मकथा है। शिशु-साहित्य में वे अद्वितीय हैं। कैलासम् (दे०), सस (दे०), गोविंद पै (दे०) आदि पर उनके लिख आलोचनात्मक ग्रथ हमारे गौरव ग्रथ हैं।

राजरत्न की भाषा विषयोपयोगी है, कभी सरल कभी ओजोमय। इस बहुमुखी प्रतिभासपन्न लेखक की साधना से कोई भी भाषा गौरवान्वित हो सकती है। राजरत्न प्रथम श्रेणी के वक्ता भी हैं। बेंगलूर के सेंट्रल कालेज में कन्नड प्राध्यापक के पद से अब व अवकाश ग्रहण कर चुके है।

राजलक्ष्मी *(बँ० पा०)*

राजलक्ष्मी (श्रीकान्त—दे०) की जीवन-कथा क

माध्यम से शरत्चंद्र (दे०) के प्रेम-संपृक्त जीवन दर्शन का परिचय मूर्त हुआ है। राजलक्ष्मी ने बालिकावस्था में वेंची की माला पहनाकर श्रीकांत का वरण किया था। उसके बाद अस्सी वर्ष के वृद्ध ब्राह्मण के साथ उसकी दोनों बहनों का विवाह होता है। विवाह की रात्रि में ही वह ब्राह्मण कन्या-दाय से पिता का उद्धार कर चला जाता है। परवर्ती युग में इस विवाह को केंद्र बनाकर राजलक्ष्मी का नवपरिचय उद्‌घाटित हुआ है। वह तब 'वंकु की माँ' है। बाई जी बनकर जब राजलक्ष्मी जीविका-निर्वाह कर रही थी तब आकस्मिक रूप से श्रीकांत के साथ उसका पुनर्मिलन होता है। श्रीकांत एवं राजलक्ष्मी का प्रेम सामाजिक स्वीकृति से परे है। उनका परिपूर्ण मिलन भी लेखक ने चित्रित नहीं किया है परंतु दोनों आत्माओं की अभिन्नता को लेखक ने सयत्न चित्रित किया है। श्रीकांत के साथ राजलक्ष्मी के मिलन में बड़ी बाधा यह है कि राजलक्ष्मी 'वंकु की माँ' है—अर्थात् सामाजिक अनुशासन। शरत्चंद्र ने सामाजिक अनुशासन के साथ हृदयवृत्ति के इस द्वंद्व का स्वरूप निर्णय किया है। अश्रु के सरोवर में प्रेम-पद्म का यह महनीय विकास, अनन्य साधारण शिल्प-कर्म में परिणति प्राप्त करता है। महत् प्रेम का अतिविचित्र संवाद राजलक्ष्मी के चरित्र के आश्रय से आश्चर्य-सुंदर शिल्परूप में प्रकाशित हुआ है। राजलक्ष्मी का प्रेम शांत संध्या की सुस्निग्ध दीपशिखा है। उसने धूपबत्ती की तरह अपनी विलुप्ति के माध्यम से जीवन की सकल सुरभि को परिव्याप्त किया है। यही राजलक्ष्मी के चरित्र का समस्त माधुर्य, समस्त महनीयता पूर्ण हुई है।

राजलक्ष्मी *(मल० ले०)* [जन्म—1930 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

मलयाळम की इस प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका के कथापात्रों में कई लोगों को अपनी या अपने संबंधियों की छाया दिखाई दी थी। लेखिका ने आत्महत्या से इनकी शिकायतों का जवाब दिया। राजलक्ष्मी का प्रथम उपन्यास 'ओरु वषियुम् कुरे निषलुकळुम्' 1958 ई० में प्रकाशित हुआ। दूसरे उपन्यास का धारावाहिक प्रकाशन बीच में बंद करके लेखिका ने स्वयं उसकी पांडुलिपि नष्ट कर दी थी। और तीसरे उपन्यास के धारावाहिक प्रकाशन के बीच में ही उन्होंने आत्महत्या कर ली। उनकी कई कहानियाँ भी प्रकाशित हुई हैं।

राजलक्ष्मी के उपन्यासों और कहानियों की विशेषता है लक्ष्यहीन-निरुद्देश्य और 'अहम्' की भावना से पीड़ित पात्रों—विशेषत. स्त्री-पात्रों—का चरित्र-चित्रण। अपने चरित्र-निरूपण की सफलता ही उनके लिए घातक सिद्ध हुई।

राजलक्ष्मी ने अपने अनतिदीर्घ जीवन में ही अपने योगदान से मलयाळम के कथा-साहित्य को अभूतपूर्व संपन्नता प्रदान की है।

राजवाडे, विश्वनाथ काशीनाथ *(म० ले०)* [जन्म—1864 ई०; मृत्यु—1926 ई०]

इतिहासाचार्य तथा पुरातत्त्ववेत्ता के रूप में विशेष प्रसिद्ध राजवाडे जी ने मराठी को जो अमूल्य एवं अगाध विचारधन दिया है उसका मूल्यांकन होना कठिन है। साहित्य के क्षेत्र में इनका योगदान कम है। ये मुख्य रूप से इतिहासाचार्य, समाजशास्त्रज्ञ तथा भाषाशास्त्रज्ञ के रूप में ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

इनका जन्म कुलाबा जिले के वरसई गाँव में हुआ था। इनका मूल उपनाम जोशी था। किंवदंती है कि शिवाजी के शासन-काल में इनके पूर्वज शासन में उच्च पद पर आसीन थे, तभी से जोशी उपनाम के बदले राजवाडे लिखने लगे। महाविद्यालय में पढ़ते समय इतिहासाध्ययन में इनकी विशेष रुचि थी। हिंदुस्तान व विशेषकर महाराष्ट्र के इतिहास पर यूरोपियन लेखकों की पुस्तकें एकांगी दृष्टिकोण से लिखी गई थीं। उन पुस्तकों की गलतियों का निर्देशन इन्होंने किया है। भारत का प्रामाणिक इतिहास लिखने की प्रेरणा से ही इन्होंने इतिहास-लेखन का कार्य किया था। 'मराठ्यांच्या इतिहासाचीं साधनें' नामक ग्रंथ के इन्होंने 23 खंड निकाले थे। इनमें इन्होंने भारत-भ्रमण कर अनेक उपलब्ध ऐतिहासिक पत्रों (दे० ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार) का उल्लेख कर उन्हें विश्वसनीय पृष्ठाधार प्रदान किया है। इन साधनों के प्रारंभ में इन्होंने विचारोत्तेजक गवेषणात्मक प्रस्तावनाएँ (दे० राजवाडे लेख-संग्रह) भी लिखी हैं।

राजवाडे मराठी-साहित्य के प्रौढ़ निबंधकार हैं। इनके निबंध स्थूलतः दो प्रकार के हैं—(1) ऐतिहासिक अन्वेषणात्मक, (2) भाषाशास्त्र, समाजशास्त्र तथा अन्य विषयों-संबंधी। 'श्री समर्थ रामदास' निबंध में इन्होंने 'दासबोध' (दे०) को इतिहास तत्त्व-निरूपण का प्रथम ग्रंथ कहा है। 'कादंबरी' निबंध में मराठी-उपन्यासों का ऐतिहासिक विकास बताते हुए उनका तात्त्विक विवेचन कर

पश्चिमी उपन्यासो से उनकी तुलना करते हुए अत मे उनका मूल्याकन किया है। महानुभाव-सम्प्रदाय का मराठी साहित्य मराठी का सर्वाधिक प्राचीन साहित्य माना जाता है। उस की साकेतिक लिपि का अध्ययन तथा पूर्व की 'ज्ञानेश्वरी' (दे०) कृति को खोजकर 'ज्ञानेश्वरी' का व्याकरण भी इन्होने प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त 'मराठी धातु-कोश', 'नामादिशब्द-व्युत्पत्ति कोश' की रचना भी इन्होने की है।

इनमे मराठी भाषा का अदम्य अभिमान था। इनकी भाषा विषयानुकूल तथा ओजस्वी है। विपक्षी पर प्रहार करते समय ये खडनात्मक पद्धति तथा उपहास का आश्रय लेते हैं। ऐसे स्थलो पर भाषा अत्यत भावावेशपूर्ण हो गई है।

राजवाडे लेख-सग्रह *(म० कृ०)*

इतिहासाचार्य श्री विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे (दे०) ने महाराष्ट्र का शुद्ध इतिहास प्रस्तुत करने के लिए अनेक ऐतिहासिक पत्रो की खोजबीन के आधार पर 'मराठ्याच्या इतिहासाची साधनें' पुस्तक के 21 खड लिखे थे और इन खडो की विवेचक, विचारप्रवण प्रस्तावनाएँ भी लिखी थी। ये प्रस्तावनाएँ 'राजवाडे लेख-सग्रह' (भाग-1) मे सगृहीत हैं।

पहले खड की 127 पृष्ठो की प्रस्तावना अद्वितीय है। उपलब्ध ऐतिहासिक पत्रो (दे० ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार) के आधार पर पानीपत की लडाई के कारणो एव परिणामो का विवेचन किया गया है। तीसरे खड की प्रस्तावना मे उच्च पद पर आसीन ब्रह्मेंद्र स्वामी की पोल खोल उन्हें सामान्य मानव घोषित किया गया है।

छठे तथा आठवें खड की प्रस्तावनाएँ इनकी प्रतिभाशाली लेखन-शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं, य एक प्रकार से स्वतत्र ऐतिहासिक प्रबध ही हैं। जयराम पड्ये-कृत 'राधामाधवविलास चपू' तथा केशवाचार्य-कृत 'महिकावतीच्या बखरी' कृतियो का स्वय सशोधन कर प्रारभ मे प्रस्तावनाएँ जोडी हैं। 'राधामाधवविलास चपू' की प्रस्तावना मे इन्होने शहाजी राजा का गुणगान किया है। इनके अनुसार शिवाजी ने स्वराज्य-स्थापन का महत् कार्य किया तो उसकी भूमिका के निर्माता शहाजी थे। 'बखर' की प्रस्तावना मे भारतोद्धार के लिए भारतवासियो को प्रबुद्ध किया गया है।

राजवाडे जी के अनुसार अंग्रेज लेखको द्वारा लिखा गया भारत का इतिहास पक्षपातपूर्ण है क्योकि वह विजेता की लेखनी से विजित का लिखा गया इतिहास है। अत निष्पक्ष शास्त्रशुद्ध इतिहास लिखने की प्रेरणा से ही इन्होने अनेक प्रस्तावनाएँ लिखी हैं तथा पत्रो का शोध कर 'मराठ्याच्या इतिहासाची साधनें' ग्रथ लिखा था।

ये प्रस्तावनाएँ राजवाडे जी के देशप्रेम एव देशोद्धार की प्रबल भावना का प्रतिफल हैं।

राजवेलु, कु० *(त० ले०)* [जन्म—1920 ई०]

इन्होने युवावस्था मे 'भारत छोडो' आदोलन मे भाग लिया था। तमिलनाडु शिक्षा-विभाग के महाविद्यालयो मे तमिल प्राध्यापक का काम करने के बाद ये सप्रति सरकारी अनुवाद विभाग के निदेशक हैं।

इनके प्रसिद्ध उपन्यासो मे ये हैं—'कातल् तूङ्-कुकिरतु' (प्रेम सोता है)—यह एक उपन्यास प्रतियोगिता मे पुरस्कृत हुआ था, 'अऴकु आटुकिरतु' (सुदरता नाचती है), तथा 'चालै ओरम्' (सडक का किनारा)। साहित्यानुशीलन-क्षेत्र में इन्होने 'कॊटैच्चिऴम्' (दान श्रेष्ठता), 'वळ्ळल पारि' (एक सगम कालीन दानी प्रभु का वृत्तात) आदि पुस्तकें लिखी हैं। 1971 मे प्रकाशित इनकी 'वानकुयिल्' नामक पुस्तक कविवर सुब्रह्मण्यम भारती (दे०) के 'कुयिल' नामक लघु काव्य की आलोचना-व्याख्या है। इस पुस्तक में इन्होने सुलझे हुए चितक तथा अंग्रेजी एव तमिल के अद्वितीय विद्वान स्व० रा० श्री दशिकन् का शिष्यत्व और प्रभाव स्वीकारा है। रा० श्री देशिकन् इन पक्तियो के लेखक के भी पितृ-तुल्य गुरुवर थे और इन्ही की समीक्षा-पद्धति की सर्वागीणता प्रस्तुत पुस्तक मे भी दर्शनीय है।

राजशेखर *(स० ले०)* [समय—लगभग 880-920 ई०]

सस्कृत के ख्यातनामा कवि एव आलोचक राजशेखर महोदय (आधुनिक कन्नौज) के राजा निर्भय (महेंद्रपाल) के उपाध्याय थे। इनके पिता का नाम दुर्दुक दुहिक तथा माता का नाम शीलवती था। राजशेखर के स्वय के विवरणो के अनुसार वे महाराष्ट्र चूडामणि विद्वान् अकालजलद के वशज चतुर्थ पीढी म थ। इन्होन अपने को यायावरीय कहा है जिसका अर्थ है निरतर विचरण करने वाले गोत्र मे उत्पन्न। सभवत इनके पूर्वज जीविका के लिए एक स्थान से दूसर स्थान पर जाते रहे हैं। पर

इनका मूल प्रदेश महाराष्ट्र था। इनका समय इन्हीं के उल्लेखों के अनुसार दशम शती का पूर्वार्द्ध ठहरता है।

राजशेखर की कृतियों में 'काव्यमीमांसा' (दे०) साहित्यशास्त्र-विषयक कृति है। इसके अठारह अधिकरणों में काव्यपुरुषोत्पत्ति, पदवाक्यविवेक तथा काव्यपाक प्रभृति विषयों का विवेचन हुआ है। 'काव्यमीमांसा' साहित्यशास्त्र की कृतियों में अनूठा ग्रंथ है जिसमें काव्य के प्रसिद्ध तत्त्व गुण, अलंकार एव रस का विवेचन नहीं है। इनकी काव्यात्मक कृतियों में —'बालरामायण', 'बालभारत' दो नाटक तथा 'विद्धशालभंजिका' एवं 'कर्पूरमंजरी' (दे०) नामक दो नाटिकाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'हरविलास' नामक महाकाव्य का उल्लेख हेमचंद्र (दे०) के 'काव्यानुशासन' (दे०) पर इनकी ही टीका 'विवेक' में उपलब्ध होता है, पर कृति अनुपलब्ध है।

राजशेखर की अपनी एक विशिष्ट काव्य-शैली है। 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) के कथानक को लेकर भी उनमें नवीनता का पुट देकर उसे चमत्कारपूर्ण बना देना इनके लिए सहज हो गया है। 'कर्पूरमंजरी' तो इनकी अनूठी कृति है। इसमें सर्वत्र मार्मिक अभिव्यक्तियाँ एवं चुभते हुए कटाक्षों की भरमार है। भाषा सभी कृतियों की सरल एवं स्वाभाविक है।

राजशेखर-चरित्र *(ते० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1880 ई०]

यह तेलुगु का प्रथम उपन्यास माना जाता है। तेलुगु-साहित्य में आधुनिक युग के प्रवर्तक कंदुकूरि वीरेशलिंगमु पंतुलु (दे०) इसके रचयिता हैं। इन्होंने इस उपन्यास को 1878 ई० की अपनी ही 'विवेकवर्द्धनी' पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया था। 1880 ई० में इसका स्वतंत्र रूप से प्रकाशन हुआ।

उपन्यास की कथा इस प्रकार है—नायक राजशेखरुडु दूसरों की सहायता करते-करते इतना निर्धन हो जाता है कि उसे विवश हो अपना स्थान छोड़ दूसरे शहर में जाना पड़ता है। जितने लोग उसके संपर्क में आते हैं वे सब उसके सद्व्यवहार का अनुचित लाभ उठाते हैं। फलतः राजशेखरुडु तथा उसके परिवार को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अंत में नायक के सच्चरित्र की विजय और दुष्टों की पराजय होती है।

यह रचना ओलिवर गोल्डस्मिथ-कृत 'विकार ऑफ वेकफ़ील्ड' नामक अंग्रेज़ी उपन्यास के आधार पर लिखी गई है। लेखक का कहना है कि तेलुगु में जनता के रहन-सहन आदि को अभिव्यक्त करने वाले गद्य-प्रबंधों के अभाव से प्रेरित होकर मैंने इसकी रचना की है। अपने देश की जनता के अंधविश्वासों और जर्जर रूढ़ियों को नष्ट करने की प्रेरणा देना इस उपन्यास का लक्ष्य है। शकुन, स्वर्णयोग आदि अंधविश्वासों, बालविवाह जैसी कुप्रथाओं तथा वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक कुरीतियों के दुष्परिणामों का इसमें सजीव निरूपण है। इसके लेखक सुधारक भी हैं और आधुनिक तेलुगु-साहित्य के उन्नायक भी। उनकी प्रायः सभी रचनाएँ समाज-सुधार के उद्देश्य से प्रेरित हैं।

तेलुगु में उपन्यास-साहित्य की सर्वप्रथम रचना होने का गौरव 'राजशेखर-चरित्र' को प्राप्त है। यह तत्कालीन समाज का स्पष्ट तथा व्यापक चित्र प्रस्तुत करने वाला एक प्रशस्त उपन्यास है। इसका कई देशी-विदेशी भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है।

राजशेखरविलास *(क० कृ०)*

मध्ययुग के विख्यात कन्नड कवि षडक्षरदेव (दे०) का 'राजशेखरविलास' कन्नड-साहित्य का एक उल्लेखनीय ग्रंथ है। कवि ने चम्पू शैली में उसकी रचना की है जिसमें चौदह आश्वास हैं। वीरशैव धर्म के अनुयायी होने के कारण उन्होंने हरिहर (दे०) के मार्ग का अनुसरण किया है। अपने काव्य के प्रारंभ में उन्होंने यह बात स्पष्ट रूप से कही है। काव्य की वस्तु के रूप में उन्होंने पंचाक्षरी मंत्र की महिमा प्रकट करने वाली एक शिवभक्त की कथा चुनी है। साधारण कथा को असीम मनोहारी बनाने की शक्ति उनमें है, अतएव पाठकों के मन को वे आकृष्ट कर सकते हैं। प्रारंभ में कथा मंदगति से चलती है, पर तेरहवें आश्वास से उसमें विशेष भव्यता का दर्शन होता है। तिरुकोळविनाचि का कथा-प्रसंग इसी संदर्भ में वर्णित है। यह स्थान करुण रस का आगार बन गया है। पुत्रशोक-कातरा तिरुकोळविनाचि का विलाप सहृदयों के हृदय को झकझोर देने वाला है। कल्पना और भावना के सुंदर मेल से उत्पन्न ऐसा रम्य चित्र अन्यत्र सुलभ नहीं है। मातृ-हृदय का स्वाभाविक वर्णन कर उन्होंने अपनी लेखनी का वैभव प्रदर्शित किया है।

'राजशेखरविलास' में शृंगार और भक्ति दोनों का पोषण हुआ है। शृंगार अंगी रस भले ही प्रतीत हो, परंतु काव्य की प्राणनाड़ी भक्ति ही है। अन्य रसों में करुण रस को ही विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। काव्य में प्रयुक्त

छदों में रमणीयता है और गद्य भी माधुर्यपूर्ण है। वस्तु, पात्र, वर्णन नैपुण्य, रस-पोषण आदि सभी दृष्टियों से यह काव्य एक उत्तम काव्य प्रतीत होता है। कवि की प्रारंभिक कृति होने पर भी इसमें उनकी प्रतिभा प्रकाश में आयी है।

राजशेखरविलासमु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

इसके लेखक कूचिमचि तिम्मकवि (दे०) हैं जिनकी गणना अठारहवीं शती ई० के प्रसिद्ध तेलुगु कवियों में की जाती है। इन्होंने अपनी रचनाएँ किसी राजा अथवा सपन्न व्यक्ति को समर्पित न करके भगवान को ही अर्पित की हैं। इनकी लिखी अनेक रचनाओं में 'राजशेखरविलासमु' प्रसिद्ध काव्य है। शिवभक्त लेखक का यह काव्य शिवभक्ति की भावना से ओतप्रोत है। तीन आश्वासों के इस काव्य में भल्लाण राजा का चरित्र वर्णित है। एक बार शिवजी 'जगम' (दक्षिण भारत के वीरशैव धर्म के अनुयायियों में एक प्रकार के शिवभक्तों को 'जगम' कहा जाता है जो एक स्थान पर स्थिर न रह बराबर घूमते रहते हैं) के रूप में राजा के पास जाते हैं तो भल्लाण राजा उन्हें अपनी पट्ट महिषी समर्पित कर देता है। शिवजी तुरत ही रानी के समक्ष शिशु बन जाते हैं और उन पर प्रसन्न होते हैं। यह अत्यंत सरस तथा मार्मिक काव्य कृति है।

राजशेखर शतावधानी, दर्भाक *(तें० लें०)* [जन्म—1888, मृत्यु—1957 ई०]

इनका जन्म कडपा जिले के जम्मुलमडुगु में हुआ था। वेंकटरामय्य और सुब्बम्म के ये पुत्र थे। इनका असली नाम कालहस्तय्य है। सस्कृत, आंध्र भाषा व साहित्य-ग्रंथ तथा नाटक अलंकार शास्त्रों का इन्होंने खूब अध्ययन किया। 1907 ई० में इन्होंने मैट्रिक पास की। मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज में एम० ए० में पढ़ते हुए इन्होंने पढ़ाई छोड़ दी थी। 1908 ई० में प्रोद्दुटूर के जिला मुंसिफ कोर्ट में ये गुमाश्ता नियुक्त हुए। 1921 ई० में इन्होंने नौकरी को त्याग दिया। उसके बाद ये वहीं म्युनिसिपल काउंसिलर, वाइस चेयरमैन, तालुका बोर्ड के उपाध्यक्ष, मद्रास सेनेट के सदस्य रहे। 1920-28 ई० के मध्य गडियारम् वेंकटशेष-शास्त्री के साथ इन्होंने कई बार शतावधान किया और इन अवधानों के आधार पर इन्होंने 'अवधान सार' नामक पुस्तक प्रकाशित की।

'वीर प्रबंध परमेश्वरुडु' आदि विरद नामों से समलंकृत इस महाकवि ने 'राणाप्रतापसिंहचरित्र' (दे०), 'अमरसिंह चरित्र', 'वीरमतीचरित्र', 'चंडनृपालचरित्र', 'पुष्पावती' आदि ऐतिहासिक काव्यों, 'सीताकल्याणमु', 'सीतापहरणमु', 'वृद्धिमूल संवादमु', 'पद्मावतीविजयमु' आदि पौराणिक पद्यकाव्यों, 'विलय-माधुर्यमु', 'स्वयंवरमु', 'अनघुडु', 'गोदानमु', 'शरन्नवरात्रमु' आदि नाटकों की तथा 'कामेश्वरीस्तोत्रमाला' (संस्कृत), 'द हिरोइन्स ऑफ हिंदुस्तान' (अँग्रेजी) की रचना की। कुछ रचनाएँ अप्रकाशित रह गई हैं। इनमें इनकी प्रौढ़-प्रांजल शैली का समुज्ज्वल उदाहरण 'राणाप्रतापसिंहचरित्र' है। इस प्रथम ऐतिहासिक चरित्र प्रधान काव्य के कारण शतावधानी जी आंध्र साहित्याकाश में अमर बने हुए हैं।

राजाकणम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1947 ई०]

'राजाकणम्' प्रसिद्ध समालोचक और साहित्य अकादेमी पुरस्कार-विजेता कुट्टिकृष्ण मारार (दे०) के बारह प्रौढ़ साहित्यिक निबंधों का संग्रह है। इन निबंधों में 'मेघदूत' (दे०), 'कुमारसंभव' (दे०), 'लाइट ऑफ एशिया' आदि ग्रंथों का मूल्यांकन है। दो लेखों का विषय है 'स्वप्नवासवदत्तम्' (दे०) और 'ईनक आर्डेन' तथा नलिनी और इवांजलिन' का तुलनात्मक अध्ययन। तीन अन्य लेखों के विषय हैं 'वाल्मीकि (दे०) के राम', 'हमारा सांस्कृतिक अपकर्ष' और 'साहित्य सर्जना के लिए प्रसिद्ध कथानकों का प्रयोग'। कुछ लेखों में मलयाळम के प्रशस्त कृतियों का मूल्यांकन है।

मारार ने पाश्चात्य और भारतीय समालोचनाओं के समन्वय से एक नई समालोचना शैली का प्रवर्तन किया था और 'राजाकणम' इस दिशा में उनकी प्रमुख रचना है। इसमें उन्होंने नूतन मतों को विचारोत्तेजक और प्रभावशाली भाषा में व्यक्त किया है। उनके मत में वाल्मीकि ने राम के चरित्र में केवल मानवीय गुणों और अवगुणों का आरोप ही किया है। इस तथ्य को समझने के लिए तुलसीदास (दे०) आदि भक्त कवियों के प्रभाव-क्षेत्र से हटकर रामकाव्य का अध्ययन करना आवश्यक है। कालिदास (दे०), भवभूति (दे०), कुमारन् आशान् (दे०) जैसे कुछ कवियों ने ही वाल्मीकि का मतव्य ठीक-ठीक समझा है। इस प्रकार के मौलिक चिंतनों को प्रकाश में लाने वाले इस ग्रंथ का मलयाळम के समालोचना साहित्य में विशेष महत्व है।

राजसिंह (पं० कृ०)

यह नानकसिंह (दे०) के 'आस्तक-नास्तक' उपन्यास का प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण पात्र है जो कि ईश्वर, धर्म, आस्तिकता, नास्तिकता-संबंधी विचारों के युगीन परिवेश के अनुरूप प्रतिपादन का समर्थक है। इसके माध्यम से परंपरागत तथा अंधविश्वासी मान्यताओं के कारण समाज में व्याप्त ढोंग और पाखंड को निरर्थक सिद्ध करते हुए निःस्वार्थ-निस्पृह जन-सेवा और दीन-हीनों की सहायता को ही महत्व प्रदान किया गया है। नानकसिंह के आध्यात्मिक विचारों को प्रस्तुत करने वाला यह सबल पात्र है।

राजसिंह (बँ० कृ०)

राजसिंह बंकिम (दे० चट्टोपाध्याय, बंकिमचंद्र) का एकमात्र प्रकृत ऐतिहासिक उपन्यास है। इस उपन्यास का समय है औरंगजेब का युग और संघर्ष का केंद्रबिंदु है चंचल कुमारी जिसको पाने के लिए औरंगजेब हिंदुओं के प्रति द्वेष-भावना और अत्याचार-वृत्ति से प्रेरित है। उधर हिंदुओं की स्वाधीनता और जातीय गौरव की रक्षा के राजसिंह तत्पर है। चंचल कुमारी का राजसिंह के प्रति आकर्षण एवं समर्पण वैयक्तिक से कहीं अधिक जातीय सम्मान और वीर-पूजा से अनुप्राणित है। जेबउन्निसा और मुबारक की प्रेम-कथा में ताजगी और प्राणतत्त्व हैं। इसके गठन-कौशल और कथा-निर्वाह में बंकिम को अद्वितीय सफलता मिली है।

पात्रों के ऐतिहासिक स्वरूप के साथ निजी मानवीय स्वरूप का उद्घाटन करने में बंकिम सफल रहे हैं। उपन्यास का उद्देश्य हिंदुओं की वीरता और बाहुबल का परिचय देना है। इसमें नए प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यास का सूत्रपात्र किया गया है, इसलिए यह स्मरणीय रहेगा।

राजस्थानी (भाषा० पारि०)

सामान्यतः राजस्थान की बोली को राजस्थानी कहते हैं, किंतु वस्तुतः 'राजस्थानी' कोई एक निश्चित बोली न होकर कई बोलियों का एक सामूहिक नाम है। हिंदी की पाँच उपभाषाओं में एक 'राजस्थानी' भी है, (अन्य हैं पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, पहाड़ी, बिहारी) जिसमें पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी, पूर्वी राजस्थानी या जयपुरी, उत्तरी राजस्थानी या मेवाती तथा दक्षिणी राजस्थानी या मालवी आती हैं। इनमें लोक-साहित्य तो सभी में है किंतु साहित्य मुख्यतः केवल मारवाड़ी में है। 'डिंगल' को भी राजस्थानी के अंतर्गत ही रखते हैं। राजस्थानी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है।

राजा, के० के० (मल० ले०) [जन्म—1893 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

मलयाळम के प्रसिद्ध दार्शनिक कवि। 'बाष्पांजली' उनका विलाप काव्य है जो अपने एक मित्र के देहांत के दुःख में लिखा गया है। उनकी कविताएँ 'तुलसीदासन्', 'वेळ्ळित्तोणी' आदि संग्रहों में संकलित हैं।

के० के० राजा की रचनाओं में शोक एवं विषाद की हल्की छाया आद्योपांत दर्शनीय है, परंतु वे उत्कट दुःख के उद्वेलन से अभिलक्षित नहीं हैं। उनकी कविताएँ दार्शनिक आत्मनियंत्रण से निबद्ध हैं। कवित्रय (दे०) के बाद मलयाळम-कविता को आगे बढ़ाने वाले कवियों में के० के० राजा का स्थान प्रमुख है।

राजा केशवदासन् (म० कृ०) [रचना-काल—1930 ई०]

यह ई० वी० कृष्ण (दे०) पिळ्ळा का ऐतिहासिक नाटक है। इसमें त्रावनकोर के देशभक्त मंत्री केशवदासन् के अंतिम दिनों की कथा प्रस्तुत की गई है जिसमें षड्यंत्रकारियों की सलाह पर उनके बंदी बनाए जाने और कारावास में उनकी मृत्यु की घटनाएँ वर्णित हैं। अंत में षड्यंत्रकारियों के दमन और दूसरे देशभक्त मंत्री वेलुतंपि दळवा के उदय के साथ नाटक समाप्त होता है।

यह नाटक सी० वी० रामन् पिळ्ळा (दे०) के ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा के घटना-चक्रों को और आगे बढ़ाता है। इसके आविर्भाव-काल में नाटक को अभूतपूर्व स्वागत मिला था। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को अवतरित करने में नाटककार को सफलता मिली है। मलयाळम के नाटक-साहित्य के विकास में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

राजा प्रतापादित्य-चरित्र (बँ० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1801 ई०]

फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के सहकारी अध्यापक

एव विलियम केरी के सस्कृत-भाषा शिक्षक रामराम बसु की पहली रचना 'राजा प्रतापादित्य चरित्र गद्य मे लिखित पहली इतिहासाश्रित कहानी है। मूल रूप से ऐतिहासिक किंवदती पर आश्रित इस कहानी के माध्यम से तीक्ष्ण बुद्धिसपन्न लेखक ने पराधीन जाति के स्वदेश-प्रेम को परोक्ष रूप से उदबुद्ध करने का प्रयत्न किया है। रामराम बसु सस्कृत की अपेक्षा फारसी मे अधिक पारदर्शी थे, उसका प्रमाण इस ग्रथ की गद्य-रचना है। एक ही क्रिया-पद पर परस्पर विरोधी कर्ताओ की स्थापना की है। फारसी शब्दो के मिश्रण से भाषा की एक अद्भुत अवस्था पैदा हुई है। उन्होने किसी निर्दिष्ट रीति या पद्धति का अनुसरण नही किया है। फिर भी उस युग के गद्य का एक विचित्र निदर्शन एव लेखक की मानसिकता के परिचयवाही इस ग्रथ ने रामराम बसु को स्मरणीय बना दिया है।

राजा रसालू *(प० कृ०)* [रचना काल—उन्नीसवी शती का पूर्वार्द्ध]

कादरयार (दे०) के इस प्रबधकाव्य मे लोक कथा-नायक पूरन भगत दे०) के भाई राजा रसालू और रानी कोकिला के कपट-प्रेम तथा उसके प्रेमी राजा होदी के साथ युद्ध की कथा का वर्णन है, इसीलिए इसे 'रानी कोकिला दी वार' भी कहते हैं। यह कृति सामतवादी समाज के पुरुषो की वासनावता और नारियो की कपट प्रेम लीला का उद्घाटन करती है। इसके साथ साथ कवि ने तोता मैना आदि पक्षियो के माध्यम से नैतिक उपदेशो की भी योजना की है। इस रचना मे साहित्यिक गुणो की अपेक्षा घटनाओ के वर्णन को प्रमुखता मिली है। भाव, भाषा तथा छदयन सगीत भी सामान्य कोटि के हैं। सपूर्ण रचना का प्रामाणिक पाठ उपलब्ध नही परतु जन-भावना को सबल अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले अनेक लोकगायको मे प्रसिद्ध रह हैं। 'राजारसाल' मे चित्रित प्रेम का स्वरूप किस्सा काव्य मे अभिव्यक्त आदर्श-प्रधान निष्ठापूर्ण प्रेम से भिन्न है प्रतिपाद्य की इस नवीनता के कारण यह रचना विशेष रूप से लोकप्रिय हुई। बावा बुधसिह (दे०)-कृत 'बबीहा बोले' (दे०) मे उसका पाठ सकलित है।

राजाराव, कंवार *(क० ले०)*

नाटक-रचना के द्वारा समाज के नाना रूपो तथा सामाजिक समस्याओ का चित्रण करने वाले नाटककारो मे इनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। इन्होने अपने नाटको मे विशेष समस्याओ पर ही नही, साधारण समस्याओ पर भी विचार किया है। 'प्रेमपरीक्षे' नाटक इसका परिचायक है। इसमे इन्होने प्रेम के नाम पर उत्पन्न समस्याओ और अस्थिर मानव-स्वभाव का निरूपण किया है। इनके नाटको मे सवाद अत्यन्त रहस्य-पूर्ण होते हैं। 'गडन जुलमाने', 'गळिमुव गृहिणी और 'वधूपरीक्षे' इसके उदाहरण हैं। विदेशी नाटककारो से भी इन्होने प्रेरणा ली है। 'ससार सत्याग्रह अथवा हुगसर वडायि' इनका अत्यत सुदर सामाजिक नाटक है।

राजावळीकथे *(क० कृ०)* [रचना-काल—1838 ई०]

उन्नीसवी शती के ग्रथकारो मे 'राजावळीकथे' (राजावली कथा) के लेखक देवचद्र का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। उनकी रचना की विशेषता यह है कि उन्होने कन्नड साहित्य मे प्रसिद्ध कई कवियो के जीवन-चरित तथा ग्रथो से सबधित घटनाओ का विवरण अपने ग्रथ म दिया है। इस प्रकार उनका ग्रथ एव सदर्भ-ग्रथ बन गया है। उसमे अधिकतर गद्य का ही प्रयोग हुआ है। जैन धर्म, आश्रयदाता राजाओ तथा कवियो के विषय मे उसमे ऐतिहासिक अश कल्पना विलास के साथ अकित हुए हैं। कल्पना को त्याग कर ऐतिहासिकता को ही ग्रहण करने से ग्रथ अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। उसमे उल्लिखित कुछ कवियो के नाम ये हैं—समत भद्र (समय 400 ई०), पूज्यपाद (समय 600 ई०), श्रीवर्धदेव (समय 650 ई०), नागार्जुन (देवचद्र के अनुसार ये पूज्यपाद के भानजे थे), नागचद्र (समय 1100 ई०— इनकी 'जिनमुनितनय' और 'जिनाक्षरमाला' रचनाओ का उल्लेख देवचद्र न किया जो उपलब्ध नही हैं), कवि (समय 1100 ई०), नेमिचद्र (दे०) (समय 1170 ई०), हस्तिमल्ल (समय 1290 ई०) केशववर्णि (समय 1359 ई०), वृत्तविलास (समय 1360 ई०) और रत्नाकरवर्णि (दे०) (समय 1560 ई०) आदि।

राजा विक्रम *(गु० पा०)*

मध्यकालीन गुजराती कथा साहित्य म उज्जैन के राजा विक्रम की अनेक कथाएँ जैन एव जैनेतर दोनो प्रकार के साहित्य म मिलती हैं। परदुःखभजन प्रजाहित परायण, साहसी राजा विक्रम साहित्य मे एक आदर्श पात्र रहा है। विक्रम और वैताल की 25 कथाएँ (दे० वैताल-

पच्चीसी) तो आज भी खूब प्रचलित हैं। विक्रम की कथाओं में बैताल कथाएँ, सिंहासन बत्तीसी, विक्रमरास, विक्रम-चरित्र, इत्यादि प्रचलित हैं। विक्रम-कथाएँ लोकसाहित्य में भी हैं, इसलिए गाँव का अनपढ़ आदमी भी विक्रम के नाम से सुपरिचित है।

राजा शिवाजी *(म० कृ०)*

इस काव्य की रचना श्री महादेव मोरेश्वर कुंटे ने की थी। मराठी जनता के सामने इस रचना द्वारा राष्ट्र में एकात्मकता के संस्थापक राजा शिवाजी महाराज का आदर्श प्रस्तुत करना ही इनका उद्देश्य था। इन्होंने बारह भागों में इस बृहद् काव्य की पूर्ति की योजना बनाई थी। 1869 ई० में इस काव्य के तीन भाग प्रकाशित हुए थे और अगले तीन 1871 ई० में। इन छः भागों के प्रकाशनोपरांत विद्वन्मंडली द्वारा हुई प्रतिकूल टीका-टिप्पणी के कारण यह काव्य अपूर्ण ही रह गया।

'राजा शिवाजी' काव्य के प्रारंभ में अँग्रेज़ी में लिखी दीर्घ प्रस्तावना मौलिक एवं महत्वपूर्ण है। इस प्रस्तावना में कुंटे ने अपनी काव्य विषयक मान्यताओं की स्थापना की है।

कुंटे ने अँग्रेजी 'एपिक' पद्धति पर 'राजा शिवाजी' काव्य-रचना की योजना बनाकर इस प्रकार का पहला अभिनव प्रयोग किया था। स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति वाला यह मराठी का पहला दीर्घ कथाकाव्य है। इसके अनुकरण पर मराठी में ऐतिहासिक काव्य-रचना की परंपरा का सूत्रपात हुआ था। इसके सभी भागों में छंद का ही प्रयोग हुआ है।

'राजा शिवाजी' काव्य की भाषा शैली आलोचकों की वक्र दृष्टि का प्रमुख कारण थी। आभिजात्य कलात्मक संस्कृतप्रचुर लोकजीवन से विमुख काव्य-रचना के विरुद्ध होने के कारण कुंटे ने इसमें सर्वत्र-शुद्ध, सर्वसाधारण मराठी का प्रयोग किया है। काव्य-भाषा को सरल एवं अधिकाधिक जन-सुलभ बनाने के प्रयास में इनकी भाषा में ग्राम्यता आ गई है और निःसंदेह ग्राम्यता काव्य-दोष है। भाषा-विषयक इसी दृष्टिकोण की कटु-आलोचना हुई थी। वि० कृ० चिपळूणकर ने भी इनके भाषा-प्रयोग पर कटु-तिक्त प्रहार किए हैं। जनता को काव्याभिमुख बनाने की अपेक्षा, कविता को सर्वसाधारण की बनाते-बनाते इनका काव्य श्री और प्रवाह को खो बैठा है।

राजू *(गु० पा०)*

पन्नालाल पटेल (दे०) के प्रख्यात आंचलिक उपन्यास 'मानवीनी भवाई' (दे०) की नायिका राजू झालकिया गाँव के गलाभाई की पुत्री है। फूली बुढ़िया के महाप्रयत्नों से राजू का, माँ के प्रसूतिकाल में ही, कालू के साथ संबंध घोषित कर दिया गया। फूली बुढ़िया ने कहा कि 'तुम यही समझ लो कि इस लड़की की सगाई बाला बुड्ढे के लड़के कालिया के साथ हो गई है। अंततः यही हुआ भी। छोटी किंतु नोकदार आँखों वाली, गोलमटोल मुँह, मोती से सफ़ेद दाँतों और गेहुँए रंगवाली राजू का चरित्र कालू के पिता के मरने के बाद ही विकसित होता है। आरंभ में उसमें बाल-सुलभ चंचलता और करुणा दृष्टिगत होती है। उपन्यास के 'गोटाला' नामक प्रकरण में वह जहाँ एक ओर छोटे से किसान कालू के माथे पर पसीने की दो बूँदें देखकर उसने पानी पी लेने का आग्रह करती है तो दूसरी ओर बैलों के बिदक जाने पर अपनी प्रसन्नता को तालियाँ बजाकर प्रकट करती हुई कहती है, "ले हाँक ले! मुझे नहीं हाँकने देता था न·· ले अब ले!" फूली काकी और गलाभाई के न रहने पर जाति-पंचों की धूर्तता के कारण राजू का कालू से विवाह नहीं हो सका। राजू का विवाह जगा नरसी के भाई के साथ और कालू का विवाह जगा नरसी की लड़की के साथ हो गया। दोनों की एक ही ससुराल होते हुए भी दोनों के बीच एक गहरा मौन व्याप गया। राजू अपने चरित्र की उदात्तता के कारण उन लोगों की भविष्यवाणियाँ गलत सिद्ध कर देती है जो यह मानते थे कि 'राजुड़ी अगर घर बाँध कर रहे तो हम लिख देंगे।' ससुराल के युवकों को भी यह मानना पड़ता है कि राजू को छेड़ सकना संभव नहीं है और यह कि राजू जैसी कोई इधर तो एक भी दिखाई नहीं देती। वह तो बहुत ही होशियार और समझदार है। यह ठीक है कि राजू अपने इस दुर्भाग्य को—कालू के साथ विवाह न होकर एक बीमार आदमी के साथ विवाह हो जाने को—कभी नहीं भूल सकी। एक प्रसंग में वह कहती भी है—'जिसने मेरा जीवन बिगाड़ा है—उसके घर! ···यह दंश मैं आजीवन भूल नहीं सकूँगी?' फिर भी वह इसे 'करम का अधूरा लेख' मानकर संतोष कर लेती है। ससुराल की दरिद्रता और भूख को सहती हुई भी वह अपने परिवार को नहीं छोड़ती। भयंकर दुष्काल में भी वह कालू को साहस प्रदान करती है और एक ऐसे अवसर पर जबकि कालू मरने की स्थिति में आ जाता है अपना दूध पिलाकर जीवन-दान देने तक की तत्परता

बरतती है। संपूर्ण उपन्यास में पराजित पात्रों के बीच वही अकेली है जो भाग्य और दुरवस्था के समक्ष पराजित नहीं होती। समग्रत देखने पर यह कहा जा सकता है कि राजू उज्ज्वल एवं दृढ चरित्र की भारतीय नारी है जो सब-कुछ सहती है पर झुकती नहीं।

राजे *(गु० ले०)* [1730 ई० में विद्यमान]

मध्ययुगीन गुजराती के मुसलमान कृष्ण-भक्त कवि राजे भडौच के निकटवर्ती केरबाडा ग्राम के निवासी थे। समाज के अति निम्न व साधारण स्तरीय परिवार में उत्पन्न इस कवि का कृष्ण-प्रेम उतना ही सराहनीय है जितना रहीम (दे०), रसखान (दे०) आदि हिंदी कवियों का।

'रासपचाध्यायी', 'गोकुल लीला', 'विरहगीता', 'बारमासी' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इनकी रचनाओं में गोपीभाव अर्थात् प्रेम लक्षणा भक्ति (माधुर्यभाव) का प्राचुर्य है। पदों की रचना में कहीं कहीं ये नरसिंह मेहता (दे०) व दयाराम (दे०) के से भावप्रवण व प्रभविष्णु हैं।

मध्ययुगीन गुजराती भक्ति साहित्य में इनका मुसलमान कृष्णोपासक के रूप में विशेष उल्लेखनीय स्थान है।

राज्यव्यवहार कोश *(म० कृ०)*

शिवाजी ने प्रशासन के कार्य को अपनी ही भाषा के माध्यम से चलाने के लिए इस कोश की रचना कराई थी। मूल कोशकार के नाम के विषय में मतैक्य नहीं है, कोई रघुनाथ पंडित, कोई रघुनाथ हणमंते तो कोई धुंडिराज व्यास को इसका मूल रचयिता मानता है। इस संस्कृत-फारसी-कोश में दस भाग हैं और कुल 384 श्लोक हैं। इसमें अनेक दरबारी फारसी शब्दों के संस्कृत पर्याय दिये हैं, जैसे—कारखाना=कार्यस्थान, खजाना=कोषागार, जामदार=कोषरक्षक आदि।

राठोड धाधल *(गु० पा०)*

गुणवंतराय, आचार्य (1909-1968) के उपन्यास 'सरकार बार' का नायक। गुजरात में बहुत विशाल समुद्र तट होने के कारण गुजरात की नौका द्वारा विदेशों से व्यापार किया जाता है। गुजरात के नाविक अपने साहस, शौर्य, देश विदेश में प्रवास, समुद्री डाकुओं के साथ मुकाबला, इन सबके लिए मशहूर थे। राठोड धाधल नाविक है जो वर्ष में दस महीने समुद्र में ही घूमता रहता है। राठोड धाधल गुजरात के नाविकों के जीवन का प्रतिनिधि है।

राठोड, पृथ्वीराज *(हिं० ले०)* [जन्म—1549 ई०, मृत्यु—1600 ई०]

ये बीकानेर-नरेश राव कल्याणमल के पुत्र थे। इनमें एक वीर सामंत तथा श्रेष्ठ कवि के गुण समान मात्रा में मिलते हैं। कर्नल टॉड ने इनकी बहुत प्रशंसा की है। नाभादास के 'भक्तमाल' में इनका उल्लेख है। मुगल सम्राट अकबर के दरबार में इनको पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। इन्होंने 'वेलि क्रिसन रुकमणीरी' (दे०), 'दसम भागवत रा दूहा', 'गंगालहरी', 'वसदेरावउत' तथा 'दसरथरावउत' नामक ग्रंथों की रचना की है। इन ग्रंथों में 'बेलि क्रिसन रुकमणीरी' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। पृथ्वीराज रस-सिद्ध कवि हैं। भाव व्यंजना तथा भाषा दोनों पर इनका समान अधिकार है। अलंकार-योजना इनकी शब्दावली का सहज रूप में साथ देती है। अकबर के आश्रित होने पर भी इन्होंने महाराणा प्रताप को अपनी कविता से स्वतंत्रता की प्रेरणा दी थी। साहित्य-जगत् में ये 'पीथल' के नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

राणा प्रतापसिंह-चरित्र *(ते० कृ०)*

इसमें शतावधानी दर्भाका राजशेखर (दे०) ने स्वतंत्रता-आंदोलन के समय, सामयिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर जनता को उद्दीप्त करने के लिए, स्वतंत्रता के अमर सेनानी राणा प्रतापसिंहडु की कथा को काव्यमय रूप दिया है। स्वयं अपने-आपको प्रताप समझकर, काव्य के नायक से तादात्म्य करते हुए लिखने के कारण यह काव्य अत्यंत प्रभावशाली बन पड़ा है। राणा प्रतापसिंहडु को अवतार पुरुष और पुराण पुरुष मानते हुए, स्वतंत्रता के लिए प्रताप द्वारा किए गए युद्ध को धर्मसमर के रूप में चित्रित किया गया है। प्रताप के साथ अकबर और मानसिंह के चरित्रों का भी उदात्तीकरण किया गया है। काव्य की शैली प्रवाहयुक्त, प्रभावशाली तथा वीररस के अत्यंत अनुकूल है।

तेलुगु के ऐतिहासिक चरित्र प्रधान काव्यों में यह काव्य प्रथम तथा आदर्श है।

राणा सूरतसिंह (पं० कृ०)

भाई वीरसिंह (दे०) का यह प्रथम महाकाव्य है जो 1904 ई० में लिखा गया था। पहले 1905 से 1910 ई० तक यह छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में छपा, फिर पुस्तकाकार में प्रकाशित हुआ। इसमें 35 कांड हैं जिनके नाम जीवन की विविध प्रवृत्तियों के प्रतीक हैं। यह मूलतः एक प्रेमकाव्य है जिसमें राणा सूरतसिंह के शत्रुओं से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो जाने के उपरांत उसकी विधवा रानी राजकौर की विरह-वेदना का मार्मिक चित्रण है। उसने राणा की समाधि बनवायी, उद्यान में उसकी प्रतिमा लगवाई। मन की शांति के लिए वह भटकती है, वन-उपवन घूमती है, कभी स्वप्नों में और कभी मूर्च्छा में खो जाती है। अंततः कवि-प्रेरित परिस्थितियाँ उसे सत्संग की ओर उन्मुख करती हैं और वह आध्यात्मिक शक्ति के प्रताप से सदेह मुक्ति-लाभ कर राणा का सान्निध्य प्राप्त करती है। विरहिणी रानी की यह पति-सान्निध्य-सिद्धि ही इस महाकाव्य का कथानक है। कथा-गठन की दृष्टि से कृति में पर्याप्त शिथिलता है क्योंकि इसमें घटनाओं के घात-प्रतिघात की अपेक्षा विचार-प्रवाह की अधिकता है, किंतु आध्यात्मिक प्रतीकों के माध्यम से इसे समझा जाये तो यह एक सफल महाकाव्य है। इसीलिए कई समीक्षक इसे एक 'रूपक-काव्य' या 'अन्योक्ति' भी मानते हैं। उनके विचार में रानी राजकौर की व्याकुलता, खालसा-राज्य के पतन से उत्पन्न सिक्ख-जाति की उस निराशा की प्रतीक है जिसे पुनः धार्मिक अभिरुचि और आध्यात्मिक चेतना जागृत करके दूर किया जा सकता है। भाषा परिमार्जित पंजाबी है। 'प्रेम', 'नींद', 'जाग' आदि अमूर्त प्रवृत्तियों का मानवीकरण इसके शैलीगत वैशिष्ट्य का परिचायक है।

राधावल्लभ-संप्रदाय (हिं० प्र०)

मध्ययुग के कृष्ण-भक्ति-संप्रदायों में राधावल्लभ-संप्रदाय एक प्रमुख संप्रदाय है। इसमें राधा को प्रधानता दी गई है, कृष्ण का ध्यान बाद में किया जाता है। हित-हरिवंश (दे०) इसके प्रवर्तक माने गये हैं। उनकी भजन की रीति बड़ी गूढ़ और रहस्यमयी कही गयी है। इस संप्रदाय की भक्ति का भाव अत्यंत विकट है। भगवत्कृपा ही इसकी प्राप्ति का एकमात्र साधन है, इसमें विधि और निषेध उपेक्षणीय हैं। इस संप्रदाय में राधा-कृष्ण अभिन्न तत्त्व हैं, वे प्रेमरूप हैं, प्रेम के कारण भी हैं और कार्य भी। वे जल-तरंग की तरह एक-दूसरे में ओतप्रोत हैं। 'हित' शब्द को प्रमुखता देते हुए इन साधकों ने सभी जीवों और जड़ सृष्टि को उसी एक 'हित-मित्र' प्रेम-तत्त्व का चित्र मात्र माना है। हितहरिवंश-कृत 'हित चौरासी' और 'राधा-सुधानिधि' इसके सिद्धांत-प्रतिपादक ग्रंथ हैं। सेवक, हरिराम व्यास, ध्रुवदास (दे०), चाचा हितवृंदावनदास (दे०), श्रीहरि आदि इस संप्रदाय के प्रमुख भक्त कवि हैं। साधना-क्षेत्र में वल्लभ-संप्रदाय के बाद ही राधावल्लभ-संप्रदाय को स्थान मिलता है।

राधिकारमणप्रसादसिंह (हिं० ले०) [जन्म—1891 ई०]

इनका जन्म बिहार प्रांत के शाहबाद जिले के सूर्यपुरा नामक स्थान में हुआ था। यद्यपि इन्होंने कहानी उपन्यास, नाटक, कविता आदि विभिन्न विधाओं में साहित्य-सृजन किया है, किंतु इनका विशेष प्रदेय कथा-साहित्य के क्षेत्र में है। 1913 ई० में इनकी एक कहानी 'कानों में कंगना' काशी से निकलने वाली 'इंदु' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी जिसने अपनी भावुकतापूर्ण तथा सरस रचना-शैली के कारण हिंदी-प्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था। 'राम-रहीम', 'पुरुष और नारी', 'चुंबन और चाँटा' आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं तथा 'कुसुमांजलि' और 'गांधी टोपी' में इनकी कहानियाँ संकलित हैं। आदर्शवाद इनकी कहानियों का मूल स्वर है तथा उपन्यासों में देश की सामाजिक-राजनीतिक गतिविधियों को रूपायित किया गया है। काव्यात्मक तथा मुहावरेदार भाषा-शैली के माध्यम से पाठक के अंतस्तल को छू लेने में इनकी सफलता का रहस्य निहित है।

राधिकास्वांतनमु (ते० कृ०) [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

इसकी लेखिका का नाम मुद्दुपळनी (दे०) है। यह चार आश्वासों का शृंगार-काव्य है। इसकी कथा इस प्रकार है—कुंभक की पुत्री इला बचपन से ही राधा के पालन-पोषण में रहती है। राधा चाहती है कि कृष्ण के साथ इला की शादी की जाय। अंत में राधा स्वयं ही उन दोनों का विवाह संपन्न करा देती है। किंतु इस घटना के फलस्वरूप वह स्वयं कृष्ण के प्रेम से वंचित होकर विरहिणी बन जाती है। उक्त स्थिति में कृष्ण को राधिका का अनुनय करना पड़ता है। यह अंतिम भाग ही कथा में प्रमुख

है। इस काव्य की रचना कहावतों तथा मुहावरों के कारण सशक्त और मार्मिक है। चरित्र-चित्रण में प्राणवत्ता है। कहीं कहीं सरस हास्य का भी प्रयोग किया गया है। पर इस काव्य के बारे में एक बात अवश्य कहनी पड़ती है कि इसमें शृगार-सबधी वर्णन तथा कथोपकथन औचित्य की सीमाओं के बाहर हैं। प्रधानतः एक स्त्री की रचना में इस प्रकार के वर्णन सहृदय पाठकों को और भी खटकते हैं। इस अवगुण को अलक्ष्य कर देखें तो इसकी कविता अनुपम ही कही जा सकती है।

राधेश्याम कथावाचक *(हिं० ले०)* [जन्म—1890 ई०]

इनका जन्म बरेली में हुआ था। इन्होंने लोक-नाट्य शैली पर, खड़ी बोली में जो पद्यबद्ध रामायण लिखी वह 'राधेश्याम रामायण' के नाम से विख्यात है। कथा कहने की इनकी शैली बड़ी रोचक थी, जो इनकी ख्याति का विशेष कारण रही। अतएव इनके कथाशों के ग्रामोफोन रिकार्ड भी प्रस्तुत हुए। एल्फ्रेड कपनी के नाटककार के नाते, इन्होंने कई नाटकों की सर्जना की, जिनमें उल्लेखनीय हैं 'वीर अभिमन्यु', 'भक्त प्रह्लाद' और 'श्री कृष्णावतार'।

रानडे, श्रीधर बाळकृष्ण *(म० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

ये बबई में जीवशास्त्र के प्राध्यापक रहे हैं। ये और इनकी पत्नी श्रीमती मनोरमाबाई रानडे दोनों मराठी-काव्य-जगत में प्रसिद्ध हैं।

श्री० बा० रानडे रविकिरण-मडळ के सदस्य-कवि रहे हैं। इनकी 'काळाच्या दाढेंतून' नामक रचना विशेष महत्वपूर्ण है। इसका आधार इनके जीवन में घटित घटना है। जब ये हैजे के कारण बीमार थे, तब मृत्यु के भय से इनका सपूर्ण जीवन चित्र इनके नेत्र-पटल के सामने मूर्तिमान हो उठा था। उस समय इनके मन में उठने वाली विचार-लहरियाँ इस ग्रथ में अंकित हैं।

इनकी कुछ स्फुट रचनाएँ भी हैं।

रानी केतकी की कहानी *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1800 तथा 1808 ई० के मध्य]

यह इशा अल्ला खाँ की अत्यत प्रसिद्ध गद्य-रचना है जिसमें राजा सूरजभान के पुत्र उदयभान तथा राजा जगतप्रकाश की कन्या केतकी की प्रेमकथा को सानुप्रास वाक्यावली तथा मुहावरेदार शैली में रूपायित किया गया है। पुस्तक के प्रारभ में ही लेखक ने किसी अन्य बोली का पुट मिलाए बिना ठेठ हिंदी में ही अपनी कृति की रचना करने की घोषणा की है और इस दिशा में उसे पर्याप्त सफलता भी मिली है—केवल वाक्य-रचना इसका अपवाद है जिस पर फारसी का अत्यत स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। समग्रत लेखक के गहन ज्ञान तथा व्यापक जीवन-अनुभव की परिचायिका यह कृति खड़ी बोली-हिंदी-गद्य के विकास के अध्ययन की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व की रचना है।

राम *(स० पा०)*

'राम' नाम के अनेक प्राचीन महापुरुष हुए हैं, किंतु इनमें से सर्वाधिक प्रसिद्ध दशरथ पुत्र राम हैं। कुछ अन्य राम नामक व्यक्ति हैं—(1) ऋग्वेद (दे० संहिता) में उल्लिखित एक दानी राजा, (2) श्री कृष्ण (दे०) के ज्येष्ठ भ्राता बलराम को भी राम कहते हैं, (3) परशुराम (जमदग्नि का पुत्र) भी राम कहाता है। उपस्विन् के पुत्र (औपस्विनि) का नाम राम था, जो कि एक यज्ञवेत्ता आचार्य था, आदि। दशरथ पुत्र (दाशरथि) राम अथवा रामचद्र—यह अयोध्या के रघुवशीय राजा दशरथ के चार पुत्रों में से ज्येष्ठ था। इसकी माता का नाम कौशल्या था। इसका जन्म सभवत ई० पू० 2000-1500 के बीच हुआ था। इसे श्री विष्णु का सातवाँ अवतार माना जाता है। इसने गुरु वसिष्ठ से शस्त्र और शास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। ऋषि विश्वामित्र के कहने पर उनके यज्ञ की राक्षसों से रक्षा करने के लिए राम को अपने भाई लक्ष्मण (दे०) सहित बाल्यावस्था में ही उनके साथ दडकारण्य जाना पड़ा। मार्ग में इसने ताडका नामक राक्षसी का वध किया तथा मारीच और सुबाहु नामक राक्षसों का सहार कर यज्ञ की सुरक्षा की। अयोध्या वापस लौटते समय मार्ग में अपने पाद-स्पर्श से अहल्या नामक एक शापित नारी का उद्धार किया तथा मिथिलाधीश जनक की कन्या सीता (दे०) के स्वयवर में धनुष-भग की शर्त जीतकर सीता से विवाह किया। इसी अवसर पर लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत के विवाह भी सपन्न हुए। विवाह के बाद इसका परशुराम के साथ सघर्ष हुआ। सत्ताईस वर्ष की आयु में दशरथ ने इसका यौवराज्याभिषेक करने की तैयारी की तो इसकी सौतेली माता कैकेयी (दे०) ने बाधा उपस्थित की। परि-

णामतः इसे लक्ष्मण और सीता के साथ 14 वर्ष के लिए वन में जाना पड़ा। ये लोग चित्रकूट पर्वत और फिर दंडकारण्य पहुँचे। वहीं पंचवटी में राम को शूर्पनखा की नाक तथा कान काटने पड़े। अपने द्वारा भेजे गये तथा स्वर्णमृग के रूप में आये हुए मारीच नामक राक्षस की सहायता से रावण (दे०) ने सीता का हरण किया। सीता को ढूँढ़ने के लिए निकले राम और लक्ष्मण को जटायु से सीता का सुराग मिला। ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचकर इसने सुग्रीव की रक्षा के लिए बालि का वध किया। सुग्रीव ने हनुमान (दे०) नामक बलवान् कपि तथा अन्य कपियों की सेना द्वारा राम को लंका पर चढ़ाई करने में सहायता दी। लंका पहुँचने से पूर्व इन्होंने समुद्र पर सेतु बाँधा। वहाँ राम को विभीषण (दे०) की पर्याप्त सहायता मिली। लंकापति रावण तथा उसके अन्य संबंधी मारे गये और सीता को लेकर दोनों भाई पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौट आये। यहाँ राम का राज्याभिषेक हुआ। कुछ समय बाद राम को अफ़वाहों के कारण सीता का परित्याग करना पड़ा। वाल्मीकि (दे०) ऋषि के आश्रम में पहुँचकर उसने लव और कुश नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। कुछ कथाकारों के अनुसार कुछ वर्षों के बाद राम सीता को अपने पुत्रों के साथ अयोध्या वापस ले आये और कुछ कथाकारों के अनुसार सीता राम के साथ न आकर पृथ्वी में समा गयी।

राम की मृत्यु सरयू नदी के तट पर हुई। राम हर दृष्टि से एक आदर्श व्यक्ति थे। ये विष्णु के अवतार के रूप में पूजे जाते हैं। वाल्मीकि से लेकर आज तक सैकड़ों लेखकों ने काव्य और नाटक लिखे हैं। राम हिंदू-संस्कृति के अद्भुत प्रतीक हैं।

रामकथप्पाट्टु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—सत्रहवीं शती ई०]

अय्यिप्पिळ्ळ आशान् (दे०)-रचित एक 'तेक्कन पाट्टु'। तमिल-मिश्र शाखा के अंतर्गत 'पाट्टु (दे०) शैली' के इस प्राचीन राम-काव्य का महत्व भाषा के विकास के विद्यार्थियों के लिए बहुत है। इसकी भाषा दक्षिण केरल की तत्कालीन जनभाषा मानी जाती है। यद्यपि 'रामकथप्पाट्टु' साहित्यिक दृष्टि से इस श्रेणी के प्रमुख काव्य 'रामचरित्रम्' के समकक्ष नहीं आता तथापि बोलचाल की भाषा में लिखित प्रथम रामायण के रूप में और समसामयिक भाषा के उदाहरण के रूप में इसका महत्व है।

राम अने कृष्ण *(गु० कृ०)*

स्व० किशोरलाल घनश्यामलाल मशरूवाला (दे०)-रचित 'राम अने कृष्ण' दो संक्षिप्त जीवनियाँ एक ही ग्रंथ में प्रकाशित हैं। पृ० 1 से 68 तक राम की जीवनी तथा पृ० 69 से 130 तक कृष्ण की जीवनी अंकित है। पृ० 131 से 140 तक उपासना-दृष्टि से इन जीवनियों की समालोचना है।

राम की जीवनी अंकित करने में लेखक ने अधिकांशतः वाल्मीकि 'रामायण' का आधार लिया है। इन चमत्कारपूर्ण, अद्भुत व असंभव प्रतीत होने वाले प्रसंगों को लेखक ने छोड़ दिया है जिनके आधार पर राम का अवतारी रूप प्रतिपादित किया जाता है, और जो आज के वैज्ञानिक युग में मानव-बुद्धि को असंगत व अग्राह्य प्रतीत होते हैं। बालि-वध, विभीषण को आश्रय, शंबूक-प्रसंग, आदि की लेखक ने औचित्य-अनौचित्यपरक व्याख्या की है। लेखक ने सत्यनिष्ठता, धर्मपरायणता, निःस्वार्थता, शूरता व स्नेहशीलता आदि राम के गुणों का प्रकाशन किया है।

कृष्ण के चरित्रांकन में भी महाभारत का आधार लिया गया है। कृष्ण के बाल्यकालीन अद्भुत व बुद्धि को असंगत प्रतीत होने वाले प्रसंग छोड़ दिये गये हैं। निःस्वार्थ लोक-सेवक रूप में कृष्ण का चरित्र अंकित हुआ है। पराक्रम, पितृभक्ति, गुरुभक्ति, दांपत्य प्रेम, परिवार-प्रेम, भूतदया, मित्रता, सत्यनिष्ठा, धर्मप्रियता, जीवन की पवित्रता के प्रति आदर भाव कृष्ण में भी उतना ही है जितना राम में। मगर राम के लिए जीवन-यज्ञ एक कठिन व्रत है, कृष्ण के लिए मंगलोत्सव।

आर्य-संस्कृति, आर्य जीवन के गठन में इन दो चरित्रों के योगदान व महत्व को भी लेखक ने अंकित किया है।

भाषा-शैली व प्रस्तुतीकरण इतना सरल है कि गंभीर होते हुए भी जीवनियाँ गंभीरता से आक्रांत नहीं हुई हैं। बालक, किशोर, पंडित सब के लिए समान रूप से ये आस्वाद्य हैं।

गुजराती साहित्य में किशोरोपयोगी जीवनियों के रूप में इन जीवनियों का अपना महत्व है।

रामकथा *(पं० कृ०)*

रचयिता—ब्रजलाल शास्त्री। यह रोचक कथा पद्य एवं गद्य में प्राप्त है परंतु इसका पद्यात्मक रूप ही

अधिक प्रसिद्ध हुआ है। यह 'राम कथा' वाल्मीकि 'रामायण' एव तुलसीदास (दे०)-कृत 'रामचरितमानस' (दे०) से प्रेरणा लेकर लिखी गई है। अनेक स्थल तो 'रामचरितमानस' के अनुवाद मात्र हैं। इस ग्रथ को पजाबी साहित्य के महाकाव्यो मे प्रमुख स्थान प्राप्त है। इसकी भाषा पजाबी है। ग्रथ गुरुमुखी तथा देवनागरी दोनो लिपियो मे प्राप्त है। विषय वर्णन मे पजाबी गीत-लय को अपनाया गया है। इस रामकथा के हनुमान के लका-प्रवेश-प्रसग की कतिपय पक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं:

टीसी ते खलोता हनुमान सोभदा।
जिवें आसमान मे बबान सोभदा॥
घरर घरा जिमे भौंरे डोलदा।
शेष नाग वाग सियाराम बोलदा॥
हरिहर विधि मन विच ध्यावदा।
पवन पिता तो वारे वारे जावदा॥
सागर दे वल्ल वुल चव तब कया।
फेर लका वल्ल दिल दव्व तव कया॥

रामकवीचा कोश (म० कृ०)

रामकवी के कोश का नाम 'भाषाप्रकाश' है। 'भाषाप्रकाश' से पूर्व के प्राचीन मराठी कोश अर्थ निर्णायक तथा गद्यात्मक थे। प्रस्तुत कोश सर्वथा निराला है। सस्कृत के 'अमरकोश' (दे०) के अनुवाद पर इसकी रचना हुई है। यह अनुष्टुप छद मे रचित पद्यबद्ध कोश है। इसकी रचना सभवत अठारहवीं शती के अत तथा उन्नीसवी के प्रारभ मे हुई थी।

यह कोश तेईस वर्गों मे विभाजित है। शिथिलता, अव्यवस्था, पुनरुक्ति आदि कुछ दोष इसमे हैं। लगभग साढे चार सौ मराठी शब्दो का विषयानुसार सग्रह करने वाला इस प्रकार का मराठी मे दूसरा कोश नही है। इसकी हस्तलिखित प्रति तजौर के सरस्वती महाल ग्रथालय मे सुरक्षित है।

रामकाव्य (प० प्र०)

पजाबी साहित्य मे रामकाव्य परपरा देश के अन्य प्रदेशो के रामकाव्य की भाँति चलती रही। आदि ग्रथ मे राम नाम सकीर्तन उपलब्ध है। 'हरिया जी का ग्रथ' मे रामावतार की चर्चा सर्वप्रथम मिलती है। हृदयराम भल्ला (दे०)-कृत 'हनुमान नाटक' (दे०) रामकाव्य का उत्कृष्ट ग्रथ है। भाई सुक्खासिंह (दे०)-कृत 'गुरु विलास' (दे०), भाई सन्तोखसिंह कृत 'गुरु प्रताप सूर्य' एव निर्मला पथी गुलाबसिंह के 'अध्यात्म रामायण' एव 'भाव रसामृत' मे श्री रामचरित का उल्लेख है। गुरु गोविंदसिंह (दे०)-कृत चौबीस अवतार' कृति मे 'रामावतार' रचना महत्वपूर्ण है।

आधुनिक काल मे प० मानसिंह कालिदास (दे०) ने 'रामायण' (दे०) तथा व्रजलाल शास्त्री ने 'रामकथा' (दे०) नामक काव्य-कृतियाँ लिखी हैं। इन पर वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) तथा तुलसीदास (दे०) के 'रामचरितमानस' (दे) का प्रभाव है। आधुनिक काल के पूर्ववर्ती रामकाव्य की भाषा व्रज है परतु आधुनिक रामकाव्य की भाषा शुद्ध पजाबी है।

'आदि ग्रथ' (दे०) की एक पक्ति मे गुरुनानक (दे०) को रामचद्र का तथा गुरु अगददेव को जनक का अवतार कहा है।

(1) त्रेतै ते माणिओ राम रघुवस कहाइओ।
(2) तू तां जनिक राजा अवतारु सबदु ससारिरु इहहि
आदि ग्रथ, पृ० 1380

रामकृष्णकवि तेनालि (तें० ले०) [समय—1505-1575 ई०]

इनकी परपरागत जीवनी के अनुसार ये श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) के दरबारी कवि तथा 'अष्ट-दिग्गजो' (दे०) मे से एक हैं। परतु अब यह विषय विवादास्पद हो गया है। इनसे सबधित अनेक हास्य कथाएँ तथा विभिन्न सदर्भों मे इनके कहे हुए पद्य बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्हे 'विकट कवि' कहा जाता है। कहा जाता है कि ये आरभ मे शैव थे और इनका नाम 'रामलिंग' था तथा बाद मे वैष्णव होकर 'रामकृष्ण' कहलाने लगे। ये शैव और वैष्णव दोनो प्रकार के पुराणो के तत्त्वो का अच्छा ज्ञान रखते थे और इन्होंने अपने काव्यो की रचना पुराणों की शैली मे की है। सस्कृत और तेलुगु दोनो भाषाओ के ये परम विद्वान् थे। इनकी रचनाएँ हैं - (1) 'पाडुरग महात्म्यमु', (दे०) (2) 'उद्भटाराध्य-चरित्रमु', (3) 'घटिकाचलमहात्म्यमु' आदि। ये ग्रथ मुख्य रूप से क्षेत्र महिमा का वर्णन करने वाले हैं।

'पाडुरगमहात्म्यमु' तेलुगु के प्रौढतम काव्यो मे से है। यह एक वैष्णव ग्रथ है जिसमे कवि ने अपनी गभीर भक्ति की मधुर एव मदावन अभिव्यक्ति दी है।

'उद्भटाराध्यचरित्रमु' एक शैव ग्रंथ है। इसमें शैवमत के आचार्य उद्भट के चरित्र का वर्णन किया गया है। 'घटकाचल महात्म्यमु' में उत्तर आर्काट के नृसिंह-क्षेत्र की महिमा का वर्णन पाया जाता है।

इस कवि की रचना संस्कृत-गर्भित तथा अत्यंत प्रौढ़ है। विद्वान् कवि की विद्वत्ता सर्वत्र दृष्टिगत होती रहती है। कहीं-कहीं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी कवि ने किया है। किंतु अधिकांशतः इनकी कविता प्रवाहमय, मधुर तथा रसपूर्ण है। इनके भाव अत्यंत स्वतंत्र रमणीय और गंभीर हैं तथा इन भावों को व्यक्त करने वाला इनका शब्द-जाल सशक्त और प्रौढ़। इनकी कविता का तो साधारण जनता में प्रसार नहीं हो सका किंतु इनसे संबंधित अनेक कथाओं के द्वारा आंध्र की समस्त जनता के लिए ये अत्यंत प्रिय कवि हैं।

रामकृष्ण कवि, मोचेर्ल *(ते० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

रामकृष्ण 'कवि कविशेखरुड्', 'सरस कवि', 'प्रसन्न मधुकर कवि' आदि विरुद नामों से सम्मानित हैं। ये संस्कृत और आंध्र भाषाओं के प्रकांड पंडित हैं। इन्होंने संस्कृत तथा तेलुगु में अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 'मारुति' 'गंगालहरी', 'रमणानंदलहरी', 'गिरजाकल्याणमु', 'आत्मबोधमु', 'हंससंदेशमु', 'अमृतकलशमु', 'अनर्गलभार्गवमु', 'प्रचंडभार्गवमु', 'गुरुदेवचरित्रमु', 'भुवरूपकमु', 'छत्रपति शिवाजी', 'स्वात्मार्पणमु', 'शारदाप्रसादमु' उल्लेखनीय है। इनकी कविता प्रौढ़ तथा गंभीर होती है।

रामकृष्ण पिळ्ळा, के० *(मल० ले०)* [जन्म—1878 ई०; मृत्यु—1916 ई०]

इनका नाम केरल के स्वतंत्रता-आंदोलन और पत्रकारिता के क्षेत्र में अविस्मरणीय है। 'स्वदेशाभिमानी' इनके द्वारा चलाये जाने वाले दैनिक पत्र का नाम था और देशप्रेमियों ने इन्हें यह उपाधि दी थी। अपने दैनिक में प्रकाशित लेखों में इन्होंने तत्कालीन त्रावनकोर-नरेश की नीतियों का विरोध किया था और जनता में स्वातंत्र्येच्छा जागृत की थी। 1910 ई० में ये त्रावनकोर से निष्कासित हुए थे। यह घटना स्वतंत्रता-आंदोलन में नये मोड़ का प्रतिनिधित्व करती है।

रामकृष्ण पिळ्ळा के लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे हुए हैं। इनकी कृतियों में सुकरात, मार्क्स आदि की जीवनियाँ और पत्रकारिता, कृषि आदि पर पुस्तकें सम्मिलित हैं।

इनका जीवन उस समय के साहित्यकारों के लिए आदर्श बन गया था। इनके निर्भीक विचारों ने बाद के कवियों में स्वातंत्र्य-तृष्णा जागृत की थी और इनके कृतित्व पर अमिट प्रभाव डाला था। इनका गद्य सरस और प्रभावशाली है और पत्रकारिता के लिए सर्वथा अनुकरणीय है।

इनका स्थान स्वतंत्रता-आंदोलन में जितना महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण स्थान साहित्य में भी है।

रामकृष्णमाचार्युलु, धर्मवरं *(ते० ले०)* [समय—1853-1912 ई०]

ये बल्लारि नामक शहर के रहने वाले वकील थे। अब यह स्थान मैसूर प्रांत के अंतर्गत है। ये प्रसिद्ध कवि, नाटककार, निर्देशक तथा अभिनेता थे। इनका रचना कार्य केवल नाटक-क्षेत्र के अंतर्गत सीमित था। तेलुगु में स्वतंत्र नाटक-रचना 1860 ई० में आरंभ हुई। पर रंगमंचीय नाटक लिखने की परंपरा का श्रीगणेश रामकृष्णमाचार्युलु के नाटकों के द्वारा ही संपन्न हुआ। 1886 ई० में बल्लारि में 'सरसविनोदिनी' नामक नाटक-समाज की स्थापना हुई। ये इसके अध्यक्ष थे। उक्त नाटक-समाज के द्वारा इनके नाटक प्रदर्शित होते थे और उसी से प्रेरणा पाकर ये एक के बाद दूसरा नाटक लिखते थे। कुल मिलाकर इन्होंने 27 नाटकों की रचना की, जिनमें 14 प्रकाशित तथा 13 अप्रकाशित हैं। इनके कुछ प्रमुख नाटकों के नाम हैं—'चित्रनलीयमु', 'पादुका पट्टाभिषेकमु', 'प्रह्लादो', 'सावित्रीचित्राश्वमु', 'मोहिनी रुक्मांगदा', 'विषाद-सा रंगधरा', 'बृहन्नला', 'प्रमीलार्जुनीयमु', 'पांचालीस्वयंवरमु', 'रोषनारा शिवाजी' (प्रकाशित) तथा 'उषापरिणयमु', 'अजामिलुडु', 'सीतास्वयंवरमु', 'घोषयात्रा', 'विभीषणपट्टाभिषेकमु', 'हरिश्चंद्रा', 'गिरजाकल्याणमु' आदि (अप्रकाशित)।

रामकृष्णमाचार्युलु ने केवल लेखक के रूप में ही नहीं बल्कि एक समर्थ निर्देशक तथा अभिनेता के रूप में भी अपने नाटकों की रचना की है। इनके सभी नाटक प्रदर्शन के उद्देश्य से लिखे गए हैं। वे सभी प्रदर्शित हो चुके हैं तथा उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। इनके नाटकों का कथानक प्रायः पुराणों तथा इतिहासों से लिया गया है। इनका 'रोषनारा शिवाजी' ऐतिहासिक नाटक है और शेष

प्राय पौराणिक हैं। इन्होने संस्कृत-नाटको के कई नियमो का उल्लघन किया है तथा अँग्रेज़ी-नाटको के अनेक नियमो का अनुसरण किया है। नादी-प्रस्तावना, भरतवाक्य (दे०) आदि का अभाव, अक का दृश्यो मे विभाजन, 'प्रोलोग' तथा 'एपिलोग' की तरह नाटक के आदि और अत मे क्रमश 'पूर्वरग' तथा 'उच्चरग' (दोनो छद-बद्ध) की रचना, जगह जगह पर भाषण मे भी गाने तथा छदो का प्रयोग, हास्यरस का समावेश और कही-कही काव्योचित शैली आदि लक्षण इनके नाटको मे पाए जाते हैं। इन्होंने दुखात नाटको की भी रचना की थी। इनके नाटको मे प्राच्य तथा पश्चिमी नाटक सप्रदायो का समन्वित रूप पाया जाता है। इनके अतर्गत जो गीत हैं वे फारसी-नाटको के प्रभाव से ही आये हैं।

फारसी नाटक-प्रदर्शनो के फलस्वरूप आध्र की जनता मे जो उत्साह उमड पडा उसको एक निर्दिष्ट दिशा दिखाने मे तथा मौलिक रगमचीय नाटको की रचना और असख्य नाटक-समाजो की स्थापना करने मे भी रामकृष्णमाचार्युलु का योगदान अत्यत महत्वपूर्ण है। 1902 ई० मे हैदराबाद मे आयोजित एक विराट सभा मे इनको 'आध्र नाटक-पितामह' की उपाधि दी गई।

रामकृष्णैया, कोराड *(तें० ले०)* [जन्म—1891 ई०]

ये मुख्य रूप से भाषाशास्त्री एव समालोचक हैं। इन्होने तेलुगु एव सस्कृत के क्रमिक विकास का गभीर अध्ययन किया है। ये मद्रास विश्वविद्यालय के पुरातत्व-विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। 'आध्र भारत कविता विमर्शनमु', 'कालिदासुनि कला प्रतिभलु', 'सारस्वत व्यासमुलु' आदि इनकी समालोचनात्मक कृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त इन्होने कई प्रगीतो की रचना भी की है।

रामकृष्णराव्, अब्बूरि *(तें० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

ये तेलुगु की 'भाव कविता' (दे०)-धारा के प्रमुख कवियो मे से हैं। 1914 ई० मे ये कलकत्ता से बँगला-साहित्य की सुरभि का आस्वादन करके आये थे और तब से भावना-प्रधान प्रगीतो की रचना करते रहे हैं। भावगीतो के साथ-साथ इन्होंने कथात्मक रचनाएँ भी की हैं। कवि, नाटककार तथा समालोचक के रूप मे ये विख्यात हैं। अभिव्यजना की सूक्ष्मता, भावना की उदात्तता तथा मधुर प्रगीतात्मकता इनकी रचनाओ की मुख्य विशेषताएँ हैं। प्रगाढ भाव-प्रवणता इनकी समस्त रचनाओ को आप्लावित करती हुई सर्वत्र प्रकट होती है। 'नदी सुदरी' (दे०), 'ऊहागानमु', 'पूर्वप्रेम', 'मल्लिकाबा' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। इनमे 'नदी सुदरी' नाटिका सर्वाधिक विख्यात हुई है। यह पौराणिक इतिवृत्त के आधार पर रचित मधुर रचना है।

रामचदर, मास्टर *(उर्दू० ले०)* [जन्म—लगभग 1817 ई०]

ये अपने समय के ससार के सुप्रसिद्ध गणित-विशेषज्ञो एव मनीषियो मे गिने जाते थे। अत तत्कालीन अँग्रेज़ी शासन ने इन्हे दिल्ली कालेज मे गणित का प्रोफ़ेसर नियुक्त कर दिया गया। ये बडे प्रतिभाशाली थे। गणित का एक नया सिद्धात खोजने के कारण इनकी परिगणना यूरोप के मूर्धन्य गणितज्ञो मे होने लगी थी। मौलवी 'ज़काउल्ला' (दे०) गणित मे अत्यधिक अभिरुचि रखते थे और इनके प्रिय शिष्यो मे गिने जाते थे। मौलाना आज़ाद (दे०) और नज़ीर अहमद (दे०) साहब को भी इनके शिष्यत्व का गौरव प्राप्त हुआ था। ये अत्यत निर्भीक, स्पष्टवक्ता, और दृढ सकल्प के व्यक्ति थे। प्रिंसिपल टेलर साहब के विचारो से प्रभावित होकर इन्होने ईसाई धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली थी जिसके कारण इनकी जाति ने इनका पूर्ण बहिष्कार कर दिया था। परिणामस्वरूप इन्हे जीवन मे अनेक आपत्तियो एव विकट परिस्थितियो का सामना करना पडा। 1857 ई० के स्वाधीनता सग्राम मे इन्हे प्राणो के लाले पड गए थे। किंतु किसी शिष्य द्वारा समय पर चेतावनी मिलने के कारण ये बाल-बाल बच गए। कुछ दिनो तक एक मकान मे छिपे रहे। फिर भेस बदलकर दिल्ली से बाहर चले गए थे। स्थिति के सामान्य होने पर ये वापिस दिल्ली आ गए। कुछ समय पश्चात् इनकी नियुक्ति रियासत पटियाला के शिक्षा-निदेशक के रूप मे कर दी गई थी। 'तज़्करात-उल-कामिलीन' इनकी प्रसिद्ध कृति है, जिसमे रोम और यूनान के विख्यात कवियो तथा दार्शनिको के जीवन-चरित प्रामाणिक अँग्रेज़ी और अरबी ग्रथो के आधार पर उल्लिखित हैं। इसमे इन्होंने कतिपय भारतीय दार्शनिको तथा वाल्मीकि (दे०), शकराचार्य, भास्कर ज्योतिषी आदि के जीवन पर भी यथेष्ट प्रकाश डाला है। इनकी अन्य कृतियो मे 'अजाइब-ए-रोज़गार' और 'उसूल-ए-इल्म-ए-हय्यत' उल्लेखनीय हैं। ये दोनो कृतियाँ अपनी उपादेयता के कारण आज भी अपना महत्व अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।

रामचंद्र उर्फ़ हाफ़िज़ कादरबेग *(उ० पा०)*

अष्टादश शती में खोर्धा भोइ राजवंश के राजा रामचंद्र देव 'श्री सुरेंद्रनाथ महांति' (दे०) के उपन्यास 'नील शैल' (दे०) के नायक हैं, जो परिस्थिति एवं तकी खाँ की कूटनीति का शिकार होकर इस्लाम धर्म स्वीकार कर हाफिज कादरबेग बनते हैं। इसके साथ ही तकी खाँ की बहिन रजिया बीबी से विवाह करते हैं; किंतु इसके द्वारा तकी खाँ अपने उद्देश्य की सिद्धि में सफल नहीं होता। रामचंद्र देव की सुदृढ़ जातीय चेतना राजनीति के हाथों बंदी बनने को प्रस्तुत नहीं है। राजनीतिक शक्ति और धार्मिक असहिष्णुता के विरुद्ध इनकी उन्मुक्त चेतना और निर्बंध आत्मा का संघर्ष होता है। उत्कल व उत्कल की महान संस्कृति के प्रतीक जगन्नाथ के लिए इनका सर्वस्व समर्पित है।

रामचंद्र देव जगन्नाथ के अनन्य उपासक ही नहीं, 'जगन्नाथ-संस्कृति' के मूर्त प्रतीक हैं। आदिवासी शबर जाति के देवता 'नील माधव' को जगन्नाथ के रूप में प्रतिष्ठित करने वाले इंद्रद्युम्न अपने जीवन की अंतिम घड़ी में जगन्नाथ के आग्रह पर निरवंशता का वरदान माँगते हैं ताकि वे इंद्रद्युम्न के वंशजों के निजी देवता न बन जायें अथवा समस्त धर्म व संस्कृति के समन्वय के प्रतीक किसी एक के हाथों बंदी न हो जायें। इनका आत्मोद्गार भी इसी विराट् चेतना की अनुगूंज मात्र है।

उड़ीसा की यह विशेषता है कि राज्य का प्रमुख जगन्नाथ को माना जाता है। समस्त प्रशासक उनके प्रतिनिधि मात्र हैं; अत: राज्य-प्रमुख की रक्षा ही सर्वोपरि है। रामचंद्र देव विधर्मी बनकर इस कर्त्तव्य को पूरा करते हैं। ये यद्यपि अपनी प्रजा द्वारा अपमानित होते हैं, अंतिम समय में भी इन्हें यवनत्व का प्रायश्चित भी करना पड़ता है तथापि इन्हें दुःख नहीं है क्योंकि जगन्नाथ आज सुरक्षित हैं। इस महान् लक्ष्य की सिद्धि के बाद इन्हें और कुछ करना शेष नहीं रह जाता है। राज-वैभव के बीच भी ये यायावर हैं।

रामचंद्रविजयमु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1894 ई०]

यह चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहमु (दे०)-कृत उपन्यास है। 'चिंतामणि' नामक मासिक पत्रिका की ओर से आयोजित उपन्यास प्रतियोगिता में 1894 ई० का प्रथम पुरस्कार 'रामचंद्रविजयमु' को प्राप्त हुआ। लक्ष्मीनरसिंहम् ने अनेक ऐतिहासिक उपन्यासों के अतिरिक्त जो कुछ सामाजिक उपन्यास लिखे थे उनमें से यह भी एक है। इसकी कथा इस प्रकार है: बचपन में ही माता-पिता से वियुक्त रामचंद्र को अपने सद्स्वभाव के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसने अपनी सरल प्रकृति के अनुसार जो कुछ किया है वह उसके लिए घातक सिद्ध हुआ है। किंतु उसने न तो कभी अपनी सद्वृत्ति पर विश्वास खोया है और न अपने भविष्य के प्रति निराशा प्रकट की है। अंत में उसके सच्चरित्र की विजय होती है। शिक्षात्मकता की विशिष्टता के साथ-साथ इसमें स्थानीय प्रकृति का और सामाजिक जीवन का भी सुंदर स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

रामचंद्र शर्मा *(क० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

श्री बी० सी० रामचंद्र शर्मा बेंगलूर के निवासी हैं। इन्होंने मैसूर विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई थी। कवि, नाटककार एवं कहानीकार के रूप में इनकी विशेष ख्याति है। 'हृदयगीत' और 'एलु सुत्तिन कोटे' (सात घेरों का किला) इनकी कविताओं के संग्रह हैं। 'भुवि नीडिद स्फूर्ति' में संगृहीत इनकी कविताएँ उपलब्धि की दृष्टि से नवीन हैं। 'मंदार कुसुम' तथा 'एलनेय जीव' (सातवाँ जीव) इनकी कहानियाँ हैं। 'बाल संजे' इनका नाटक है।

रामचंद्र शास्त्री, कोराड *(तें० ले०)* [जन्म—1816 ई०; मृत्यु—1900 ई०]

तेलुगु और संस्कृत में कविता लिखने में समर्थ शास्त्रीजी का साधना-केंद्र बंदर नामक स्थान रहा। काव्यशास्त्र के अलावा मंत्रशास्त्र में भी शास्त्रीजी की गति थी। संस्कृत में इनके कई ग्रंथ मिलते हैं जिनमें कालिदास (दे०) के 'मेघदूत' (दे०) की शैली में रचित 'घनवृत्त' काफ़ी प्रसिद्ध है। 'कुमारोदयमु', 'शृंगार-सुधार्णवमु', 'रामचंद्र-विजयमु', 'धीसौधमु' आदि अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं। कई ग्रंथों की व्याख्याएँ भी इनकी लिखी मिलती हैं। कल्पित इतिवृत्त पर आधारित 'मंजरीमधुकरीयमु' (दे०) नामक नाटिका भी इन्होंने लिखी जिसका तेलुगु नाटक-साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। कुछ लोग इसी को तेलुगु का पहला मौलिक नाटक मानते हैं। संस्कृत में इनकी रचना बहुत ही प्रौढ़ और प्रांजल है। 'उन्मत्तराघव', 'वेणीसंहार' (दे०), 'उत्तररामचरित' (दे०) आदि कई संस्कृत-ग्रंथों का इन्होंने

तेलुगु मे अनुवाद भी किया था। 'रथागदूतमु', 'नयप्रदीपमु', 'परशुरामविजयमु' आदि गद्य रचनाओ के द्वारा शास्त्रीजी ने तेलुगु मे गद्य-रचना का मार्ग भी प्रशस्त किया था।

रामचंद्रिका *(हि० कृ०)*

इसे 'रामचद्रचद्रिका' भी कहते हैं, जिसे हिंदी साहित्याकाश के 'उडुगण' महाकवि केशवदास (दे०) ने 1601 ई० मे रचा। समग्र ग्रथ मे उनतालीस प्रकाश हैं। इसका आधार है वाल्मीकि-'रामायण' (दे०), और इस पर छाया है 'प्रसन्नराघव' (दे०), 'हनुमन्नाटक' (दे०), और 'कादबरी' (दे०) की। इस ग्रथ की प्रस्तावना मे श्रीगणेश, सरस्वती जी और श्रीराम की वदनाएँ हैं, तदनतर कवि-वश-परिचय तथा ग्रथ-रचना-काल और कारण दिए गए हैं। रामकथा का सूत्रपात विश्वामित्र ऋषि के अयोध्यागमन से होता है, और उसका समापन रामाश्वमेधोपरात राम-सीता मिलन से, तथा पुत्रो और भतीजो को, राज्य-वितरण के पश्चात्, भगवान् राम का राजनीतिक उपदेश है। कवि ने अत मे राम-चरित्र और रामचद्रिका पाठ के माहात्म्य का निर्देश किया है।

उपदेशात्मक प्रवचन, नीतिकथन-छदो की झटिति परिवृत्ति तथा भाषा एव वर्णित छदो के अधिक व्यवहार के कारण कथा-प्रवाह को ऐसी क्षति पहुँची है कि रामकथा से अनभिज्ञ पाठक उसके रसास्वाद से वचित रह सकता है, ऐसी आशका है। संस्कृत-शब्दो के अत्यधिक प्रयोग एव आलकारिक चमत्कार के आवर्त से ब्रजी क्लिष्ट अवश्य हो गयी है।

परतु यदि गोस्वामी तुलसीदास (दे०) ने 'रामचरितमानस' (दे०) को जनहित के लिए तत्कालीन 'गिरा ग्राम्य' मे लिखा, तो महाकवि केशव ने 'रामचद्रिका' को विद्वानो के विनोद के लिए पाडित्यपूर्ण भाषा मे प्रणीत किया। यदि 'मानस' मे अवगाहन के द्वारा जनसाधारण की शारीरिक शुद्धि और शीतलता अपेक्षित है तो 'रामचद्रिका' की ज्योत्स्ना मे कलाविद रसिकों को औद्यानिक क्यारियो की ललित-कलिकाओ का सौरभ-सौंदर्य अभीसिप्त है। अतएव 'रामचद्रिका' की अपनी निजी विशेषता है। अवधपुरी, सरयू, पचवटी, दडक, वर्षा-कालिका, रावण-सीता-वार्ता, वानर-चमू-वर्णन, अगद-रावण-सवाद विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

जहाँ कही रामलीला होती है, 'रामचद्रिका' के सवादो का प्राय. उपयोग होता है, क्योकि केशवदास ने सवाद-योजना का नाटकीय ढग से उपयोग किया है जो बहुत रोचक प्रतीत होती है।

रामचरितम् *(मल० कृ०)*

रचनाकार श्रीराम वर्मा। रचना-काल अनुमानत सन् तेरहवी शताब्दी के प्रारभिक वर्ष। रचनाकार और रचना-काल के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। अधिकतर मतो के अनुसार यह त्रावनकोर-नरेश श्रीराम वर्मा की रचना हो सकती है। मलयाळम के रामकाव्यो मे 'रामचरितम्' भाषा, भाव आदि की दृष्टि स प्रशसनीय रचना है।

'रामचरितम्' मे बालकाड से लेकर सपूर्ण कथा का विस्तार नही है। इसमे मुख्यत युद्धकाड ही वर्णित है। आनुषगिक रूप मे अन्य काडो की कथा का सक्षिप्त सकेत है। इसके युद्ध-वर्णन बडे ही सजीव तथा अलकृत हैं। वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) की कथावस्तु ग्रहण करने पर भी रामचरितकार ने अपनी कल्पना का विलास खूब दिखाया है। साहित्य के इतिहास मे इस काव्य का उल्लेख विशेषत इसके छद-वैशिष्ट्य और तमिल मिश्रित मलयाळम भाषा के लिए किया गया है। यह काव्य कुल 164 वृत्तो मे रचा गया है। प्रत्येक वृत्त मे ग्यारह-बारह पाट्टु (दे०) होते हैं और कुल मिलाकर 1814 पाट्टु हैं। प्राचीन मलयाळम का तमिल-मिश्रित छदविशेष ही पाट्टु है। तमिल-साहित्य के अन्यतम ग्रथ 'कब-रामायणम्' (दे०) के कई प्रसगो से इसका साम्य है और इस दृष्टि से यह कृति उसकी ऋणी है।

रामचरितमानस *(हि० कृ०)*

गोस्वामी तुलसीदास (दे०) ने इस महाकाव्य को मगलवार 30 मार्च, 1574 ई० को प्रकाशित किया। बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किधा, सुदर, लका और उत्तर इन सातो काडो मे जन्म से लेकर लका-विजयोपरात राज्याभिषेक तक श्री रामचद्र का वर्णन है। तुलसी के राम दशरथ के पुत्र, विष्णु जी के अवतार विधि-हरि-हर को नचाने वाले तथा परात्पर ब्रह्म हैं, अतएव पाठको को इस इष्टदेव की महत्ता का स्मरण बार-बार कराया गया है। इस ग्रथ मे ज्ञानभक्ति की समन्वयात्मक चर्चा, उत्कृष्ट दर्शन की अभिव्यक्ति, मानवादर्शों की उपस्थिति तथा काव्यशास्त्रीय मान्यताएँ दर्शनीय हैं।

'मानस' के आधार 'नाना पुराण निगमागम' हैं। कुछ अन्य स्रोत भी हैं, यथा : वाल्मीकि'-रामायण' (दे०), श्रीमद्‌भागवत (दे०), 'श्रीमद्‌भगवद् गीता' (दे०), 'अध्यात्म रामायण' (दे०), 'प्रसन्नराघव' (दे०), 'हनुमन्नाटक' (दे०), 'आनंद रामायण', 'गर्ग संहिता' आदि-आदि। 'मानस' का कथानक कहीं-कहीं वाल्मीकि-प्रदत्त आधार से भिन्न भी है। उदाहरणतः वाल्मीकि-'रामायण' में पुष्प वाटिका-प्रसंग, धनुर्यज्ञ-मंडप में परशुराम जी की उपस्थिति, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद की नाटकीयता का अभाव है। कदाचित् इन व्यक्तियों ने तुलसीकालीन काशीवासियों को रुष्ट कर दिया था। वाल्मीकि के कुछ प्रधान पात्रों की तीक्ष्णता को तुलसी की लेखनी ने मृदुल कर दिया। 'मानस' में अनेक ऐसी बातें हैं जो 'अध्यात्म रामायण' में भी नहीं हैं।

'मानस' के संवाद रोचक हैं, यथा : परशुराम-लक्ष्मण, कैकेयी-दशरथ, भरत-राम, अंगद-रावण के। 'रूपकों के बादशाह' तुलसी ने अनेक सुंदर सांग-रूपकों की सृष्टि की है, यथा : 'मानस' का मानसरोवर, काव्य-रूप, संत-समाज, प्रयाग-राज, रंगमंच पर राम-रवि, पिनाक-पोत, कैकेयी-सर्पिणी, विजयरथ-ज्ञानदीप, भक्ति-मणि, मानस-रोग। 'मानस' की भाषा सरल ब्रजावधी है जो प्रधानतः दोहा-चौपाई और कभी-कभी संस्कृत श्लोकों तथा विविध छंदों और अलंकारों से सुसज्जित है। क्या नर क्या नारी, क्या बालक, क्या युवक, क्या वृद्ध सभी को यह ग्रंथ परम रुचिकर प्रतीत होता है। इसमें पिता-पुत्र, पति-पत्नी, राजा-प्रजा, सेव्य-सेवक, सभी के लिए आदर्श उपस्थित किया गया है।

गांधी जी को और कोई वस्तु इतना आनंद नहीं देती थी जितना कि गीता का संगीत और तुलसीकृत रामायण। ग्रिफ़िथ का कथन है कि इंगलैंड में बाइबिल जितनी आदृत और लोकप्रिय है, उत्तरी भारत में रामायण उससे भी अधिक है। ए० ए० मैकडोनल (दे०) का मत है कि धर्म और पवित्रता के आदर्श मान से समन्वित 'रामचरितमानस' करोड़ों लोगों के लिए एक प्रकार की बाइबिल है। एफ़० ई० के समझते हैं कि 'मानस' ऐसा महाकाव्य है जिसकी गणना विश्व-साहित्य के महान् अभिजात परमोत्कृष्ट साहित्य में होने योग्य है।

'मानस' की जितनी टीकाएँ हैं उतनी, 'बिहारी-सतसई' (दे०) को छोड़, अन्य किसी हिंदी-ग्रंथ की नहीं। 'मानस' का एक अनुवाद रूसी भाषा में और कई अंग्रेज़ी में विद्यमान हैं।

रामजोशांच्या लावण्या *(म० कृ०)*

ये पंडित कवियों और शाहीरों को जोड़ने वाली शृंखला है। ये स्वयं को सभी शाहीरों का सिरमौर कहते हैं।

रामजोशी प्रसिद्ध लावणीकार हैं। इनकी लावणियों में मराठों के शासनकाल में समाज की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। विषय की दृष्टि से इनकी लावणियाँ चार प्रकार की हैं—

(1) देवता तथा तीर्थों के वर्णन-संबंधी।
(2) शृंगारिक—
(i) कृष्णकथा पर आधृत
(ii) लौकिक
(3) उपदेशात्मक एवं नीतिपरक।
(4) फुटकल—'महाभारत' (दे०) के प्रसंगों से संबद्ध।
(कौरव-पांडव-युद्ध, भीष्मार्जुन-युद्ध आदि पर लावणियाँ)।

इनकी कविता में संभोग शृंगार की अपेक्षा वियोग शृंगार का प्राधान्य है। शृंगार-वर्णन गीर्वाण है, उसमें किसी प्रकार का उल्लंघन नहीं है। कीर्तनकार होने के नाते इन्होंने अनेक वैराग्यपरक लावणियाँ भी लिखी हैं।

इनकी लावणियों का वैशिष्ट्य सार्थक शब्द-संगुंफन, वर्णन-कौशल तथा लालित्यमयी पद-योजना में निहित है।

इनकी लावणियों में महाराष्ट्र के सांस्कृतिक जीवन की झाँकी मिलती है।

रामतनु लाहिड़ी ओ तत्कालीन बंग-समाज *(बँ० कृ०)*

[रचना-काल—1903 ई०]

पंडित शिवनाथ शास्त्री (दे०)-रचित 'रामतनु लाहिड़ी ओ तत्कालीन बंग-समाज' ग्रंथ में उन्नीसवीं शती के बंगाल का हृत-स्पंदन अनुभव किया जा सकता है। रामतनु लाहिड़ी का जन्म 1813 ख्रीष्टाब्द में हुआ था और मृत्यु हुई 1898 ई० में। ब्रह्मसमाज के प्रवक्ता देवेंद्रनाथ से रामतनु की उम्र अधिक थी। रामतनु उस युग की नवजागृति के इतिहास के एक अनन्य साधारण व्यक्तित्व थे। धर्म एवं सामाजिक इतिहास के जिस नव-आंदोलन ने उस युग के प्राण-तरंग को आदर्श से महिमान्वित किया था इस ग्रंथ में उसी की प्रतिष्ठा का इतिहास लिपिबद्ध है।

रामतनु के महाजीवन को केंद्र बनाकर शिवनाथ शास्त्री ने इस ग्रंथ में परोक्ष रूप से उन्नीसवीं शती के सांस्कृतिक इतिहास का एक अपरूप चित्र अंकित किया है। बहुत-से महान् पुरुषों के संपर्क में वे आए थे। पारिवारिक परिवेश की पृष्ठभूमिका में अंकित इस मर्मस्पर्शी चित्रण में उस युग का यथार्थ चरित्र प्रकट हुआ है। उन्नीसवीं शती के एक अंतरंग प्रलेख के रूप में इस ग्रंथ का मूल्य अपरिसीम है।

रामदास *(म० ले०)* [जन्म—1608 ई०; मृत्यु—1681 ई०]

इनका मूल नाम नारायण था। जब ये राम के उपासक बने तो नाम पड़ा—रामदास। पिता का नाम सूर्याजी पंत था और ये 'जांब' नामक स्थान के निवासी थे। रामदास ने नासिक के निकटस्थ 'टाकली' की गुफा में बारह वर्ष तक तपस्या की और इसके बाद बारह वर्ष तक तीर्थों में भ्रमण किया। काशी, प्रयाग, रामेश्वर, गोकर्ण, पैठण आदि प्रदेशों की परिस्थितियाँ देखकर इनका मन खिन्न हो उठा और कृष्णा नदी के तट पर 'चाफल' की गुफा में इन्होंने अपना निवास बना लिया। रामदास ने भारत में सैकड़ों हनुमान मंदिरों और मठों की स्थापना की और शिष्यों को संगठित कर प्रभावशाली उपदेशों के माध्यम से देशोद्धार का महत्वपूर्ण कार्य किया। ये शिवाजी के गुरु और प्रेरणास्रोत थे। 'दासबोध' (दे०) नामक ग्रंथ इनकी चिरस्थायी कीर्ति का आधार है। इसके अतिरिक्त 'सुंदर-रामायण', 'युद्ध-रामायण', 'लघु रामायण', 'मनोबोध' आदि अनेक इनकी स्फुट रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। इनके काव्य का बाह्य स्वरूप निरलंकृत, लालित्य हीन किंतु अंतरंग भाव विचारों की प्रखरता और दृढ़ता से ओत-प्रोत है। संसार के प्रति इनका दृष्टिकोण यथार्थवादी अर्थात् देश-समाजोद्धार की भावना से संभरित है। रामदास केवल पारलौकिक, धर्मोपदेशक संत कवि नहीं हैं—ये ऐहिक-पारमार्थिक दोनों दृष्टियों में संतुलन स्थापित करने में समर्थ हैं।

रामदासु, भक्त *(ते० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती का उत्तरार्द्ध]

इनका पहला नाम 'कंचर्ल गोपन्ना' था। किंतु रामभक्त के रूप में विख्यात होने से 'भक्त रामदासु' हो गये। ये भद्रादि के राम के परम भक्त थे। हैदराबाद के समीप भद्रादि तहसील में राज्याधिकारी के रूप में कार्य करते हुए राज्य के धन से इन्होंने राम के एक विराट् मंदिर का निर्माण करवाया था। फलस्वरूप इनको बारह वर्ष के कारावास का दंड दिया गया। कहा जाता है कि बाद में भगवान् राम ने स्वयं आकर वह धन लौटाया था और रामदासु मुक्त हो गये थे।

इनकी दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं—'दाशरथी शतकमु' (दे०) तथा 'रामदासु कीर्तनलु'। 'दाशरथी शतकमु' राम की महत्ता का गायन करने वाला स्तुतिपरक शतक-काव्य है। 'रामदासु कीर्तनलु' में उनके बंदी जीवन का दुःख एवं भक्ति का प्रबल आवेग प्रकट हुआ है। इसकी रचनाएँ पच्चीस विभिन्न रागों में निबद्ध हैं तथा इनमें संगीत या साहित्य से कहीं अधिक भक्ति की परवशता के दर्शन होते हैं। तेलुगु के शतककार एवं संगीतकार कवियों में इनका विशेष स्थान है।

रामधान्यचरित्रे *(क० कृ०)* [रचना काल—सोलहवीं शती का मध्यकाल]

कर्नाटक के वैष्णव भक्त कवियों में अग्रणी कनक-दास (दे०) (समय—1550 ई०) की रचना 'रामधान्य-चरित्र' एक अनुपम काव्य है। भामिनी षट्पदी में रचित इस काव्य की कथावस्तु सर्वथा कवि की ही कल्पित है। इसमें भगवान् की महानता और बड़प्पन का सुंदर विश्लेषण हुआ है। भगवान् दोनों के सहायक, गरीबनिवाज और भक्त-जनों के प्रति पक्षपात करने वाले हैं। कवि ने इसमें रागी (एक धान्य) तथा धान के बीच में वाद-विवाद उत्पन्न कर उसमें रागी की जीत दिखाई है और बताया है कि राम ने उसको 'राघव' अभिधान दिया। कवि की यह कल्पना बड़ी मनोरम है, इससे उनकी भक्ति तथा सार्वजनिक विचार-धारा स्पष्ट हो जाती है। यह एक सरस और सुंदर काव्य है।

रामनवमी *(अ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1881 ई०]

गुणाभिराम बरुवा (दे०) का यह नाटक पहले 'अरुणोदय' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, फिर दस वर्ष के पश्चात् पुस्तकाकार में छपा था। यह बाल विवाह और विधवा-समस्या लेकर रचित है। बाल विधवा नवमी और रामचंद्र में प्रेम हो जाता है, नवमी गर्भवती हो जाती है। वह सामाजिक उत्पीड़न के कारण आत्महत्या करती है।

रामचंद्र भी आत्महत्या कर लेता है। संपूर्ण समाज विधवा-विवाह की तर्कसंगत उपयोगिता स्वीकार करता है। नाटक पर विद्यासागर के 'विधवा-विवाह' का प्रभाव है। संस्कृत और पाश्चात्य नाट्य-शैलियों का इसमें मिश्रण है। नाटक अंकों और दृश्यों में विभक्त है, सूत्रधार को नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। नायक-नायिका के चरित्रों में विसंगतियाँ हैं, किंतु अन्य चरित्रों में यथार्थता है। आधुनिक असमीया-साहित्य का यह प्रथम नाटक है।

रामनारायण तर्करत्न *(बँ० ले०)* [जन्म—1822 ई०; मृत्यु—1886 ई०]

इनके नाटक इस प्रकार हैं—*सामाजिक नाटक:* 'कुलीन कुलसर्वस्व' (1854), 'नव नाटक' (1866); प्रहसन : 'जेमन कर्म तेमनि फल', 'चक्षुदान' (1869), 'उभयसंकट' (1869); **पौराणिक नाटक** : 'रुक्मिणी हरण' (1871), 'कंसवध' (1875), 'धर्म-विजय' (1875); **संस्कृत नाटकों के अनुवाद** : 'वेणीसंहार' (1856), 'रत्नावली' (1858), 'अभिज्ञान शाकुंतल' (1860), 'मालती-माधव' (1861)।

रामनारायण की प्रसिद्धि का कारण इनका पहला नाटक 'कुलीन कुलसर्वस्व' (दे०) है। इसमें उन्होंने कुलीन प्रथा के दोष तथा असंगतियों को लिया है। 'नव नाटक' में बहु-विवाह की बुराइयाँ दिखाई गई हैं। 'जेमन कर्म तेमनि फल' में पर-स्त्री-प्रेम तथा उससे उत्पन्न विकट स्थिति का रेखांकन किया गया है। 'चक्षुदान' में पुरुष की लंपट-वृत्ति की निंदा की गई है। 'उभयसंकट' में सपत्नी के प्रश्न पर विचार किया गया है। पौराणिक नाटकों में तर्करत्न कोई विशेष प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हो सके। उनके अनुवाद स्वच्छंद हैं अर्थात् नाटककार ने अनुवाद में पर्याप्त संशोधन-परिवर्धन किए। इनका दृष्टिकोण प्राचीन-पंथी होते हुए भी इनकी पकड़ और समझ यथार्थ-पुष्ट है।

नाट्य-शिल्प की दृष्टि से एक ओर नांदी-प्रस्तावना है, दूसरी ओर मृत्यु के दृश्य हैं। भाषा पात्रानुसार है। वस्तु-विन्यास साधारण है।

माइकेल (दे०) से पूर्व नाटक-जगत् में रामनारायण का महत्वपूर्ण स्थान है।

रामप्रसाद शुक्ल *(गु० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

श्री शुक्ल गुजराती के अध्यापक हैं। उन्होंने परंपरीण काव्य लिखे हैं। उनके दो काव्य-संग्रह प्रसिद्ध हुए हैं। मुक्तक काव्य-विधा को उन्होंने नया मोड़ दिया और सोनेट विधा के भी अनेक प्रयोग किये हैं। उनके काव्य-संग्रह 'बिंदु' में मुक्तक का नया स्वरूप मिलता है।

रामभद्रुडु, अय्यलराजु *(तें० ले०)* [समय—1510-1580 ई०]

इनका समय कृष्णदेवरायलु (दे०) के बाद का है। इन्होंने कृष्णदेवरायलु के द्वारा संस्कृत में रचित 'सकल-कथासारसंग्रहमु' (दे०) नामक षट् चक्रवर्तियों की कथाओं से युक्त काव्य का अनुवाद किया था। परंतु अब उस काव्य के कुछ अंश ही उपलब्ध हैं।

'रामाभ्युदयमु' (दे०) इनकी विशिष्ट रचना है। तेलुगु के संक्षेप काव्यों की परंपरा में यह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसमें राम के राज्याभिषेक तक की कथा का वर्णन है। इनकी रचना संस्कृत के दीर्घ समासों तथा नाना प्रकार के शब्दालंकारों से युक्त होकर कहीं-कहीं जटिल भी प्रतीत होती है। अष्टादशवर्णन आदि प्रबंध-काव्य के लक्षणों को समाविष्ट करने के प्रति कवि आग्रहक रहा है। इसके परवर्ती काव्यों में प्रचुरता से पाये जाने वाले कृत्रिम अलंकारों के लिए इनकी रचना मार्गदर्शक बनी रही। कहीं-कहीं औचित्य की दृष्टि से दोष भी इस कवि में पाये जाते हैं।

राममूर्ति, गिडुगु *(तें० ले०)* [जन्म—1863 ई०; मृत्यु—1940 ई०]

आधुनिक युग में तेलुगु-साहित्य के अंदर क्लिष्ट अव्यावहारिक ग्रांथिक भाषा के स्थान पर शिष्ट व्यावहारिक भाषा को प्रतिष्ठित करके साहित्य को जनता के अधिक समीप लाने का श्रेय इन्हीं को प्राप्त हुआ है। इस दिशा में इनकी अडिग निष्ठा, अथक परिश्रम एवं अपूर्व साहस के कारण एक युग-प्रवर्तक के रूप में ये सम्मानित हुए हैं। व्यावहारिक भाषा के समर्थन में इनके अकाट्य तर्कों एवं उग्रवादिता के कारण ये वज्र के समान प्रबल तथा विध्वंसक माने जाते थे। इनके प्रयासों के फलस्वरूप ही आज तेलुगु-साहित्य में सरल, जीवंत एवं सशक्त भाषा का प्रयोग हो रहा है।

इन्होंने 'सवर' नामक एक जंगली जाति की भाषा, जीवन-पद्धति और उसके आचार-विचारों का गहरा

ध्ययन किया था। इसके उपरात इन्होंने तेलुगु-सवर तथा सवर तेलुगु कोषो, उस जाति के लोक गीतो और लोक कथाओं से सबधित पुस्तको की रचना की थी। इस प्रकार तेलुगु मे भाषाविज्ञान के अध्ययन का सूत्रपात हुआ था। प्राचीन शिलालेखो के अनुसधान की दिशा मे भी इन्होने महत्वपूर्ण कार्य किया है। इनका 'एटिक्विटीज ऑफ मुखलिंग', नामक ग्रथ इसका प्रमाण है। उपर्युक्त ग्रथो के अतिरिक्त इन्होने 'बालकवि शरण्यमु', 'व्यास मजरी', पडित भिषक्कुल भाषा भेषजमु', 'गद्यचितामणि' आदि कई ग्रथो की रचना की है।

राममोहन राय, राजा *(बँ० ले०)* [जन्म—1774 ई०, मृत्यु—1833 ई०]

राजा राममोहन राय जहाँ एक ओर ब्रह्मसमाज के प्रतिष्ठापक के रूप मे विख्यात हैं वही बँगला-गद्य को एक व्यक्तित्व देने तथा उसे आधुनिक मन की अभिव्यक्ति के उपयुक्त बनाने मे उनका कार्य सुपरिचित है। सस्कृत, हिंदी अरबी, फारसी के वे पडित थे। उनकी पुस्तको मे विवेकवाद, व्यक्ति-स्वातत्र्य बोध, मानवाधिकारवाद तथा अतर्राष्ट्रीय मैत्री का स्वर गुजित है।

उनके 'वेदातसार' तथा 'वेदातग्रथ' (दे०) (1815 ई०) शिक्षित बगालियो के प्रति उद्दिष्ट गद्य ग्रथ हैं। सहमरण के विरोध मे उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रवर्तक ओ निवर्तकेर सवाद' 1818 ई० मे प्रकाशित हुई थी। मृत्युजय विद्यालकार की 'वेदात चद्रिका' के उत्तर मे 'भट्टाचार्येर सहित विचार' शीर्षक उनका ग्रथ 1817 ई० मे प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त 1821 मे 'ब्राह्मण सवधि तथा 'सबाद-कौमुदी' की रचना कर उन्होने हिंदू धर्म बनाम मसीही धर्म पर अपने विचार प्रस्तुत किए। केनोपनिषद् तथा ईशोपनिषद् का अनुवाद भी उन्होने किया। इसके अतिरिक्त अँग्रेजी, सस्कृत, अरबी तथा फारसी मे भी उनकी पुस्तकें प्रकाशित हुई। बँगला भाषा मे उनके और भी कई ग्रथ हैं।

राममोहन राय की भाषा मे जहाँ बोलचाल की भाषा की सरलता दिखाई पडती है वहीं प्रतितर्कों के खडन स्थिर बुद्धि स युक्त उनकी भाषा मे प्रभविष्णुता भी लक्षित होती है। निश्चय ही वे बँगला गद्य के निर्माण की दिशा मे सचेष्ट नही थे क्योकि धर्म तथा समाज सस्कारक के रूप मे अपने प्रखर व्यक्तित्व का प्रसार ही उनका मूल उद्देश्य था परतु उनकी अभिव्यक्ति से बँगला गद्य शरीर को एक स्वतत्र शैली प्राप्त हुई है—इसमे भी सदेह नहीं। साहित्यिक दृष्टि से यही उनकी प्रमुख उपलब्धि है, नहीं तो उनकी गद्य-शैली तथा अन्वय खडित है, शब्द-प्रयोग क्लिष्ट और दुर्बोध है।

राममोहन रावु, महीधर *(तें० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

श्री राममोहन रावु वर्तमान सामाजिक परिस्थितियो को परिप्रेक्ष्य मे रखकर रचना करने वाले उपन्यासकार एव नाटककार हैं। 'रथचक्रालु', 'दावानलमु' आदि इनके उपन्यास हैं और 'मब्बुतेरा' नाटक। इनके अतिरिक्त इन्होंने कई विदेशी साहित्य-कृतियो का अनुवाद भी किया है।

रामराजभूपणुडु [समय—सोलहवी शती ई० का मध्यकाल]

इनका वास्तविक नाम प्रबधाक भट्टमूर्ति था। रामराजभूपणुडु इनका विरुद नाम है जो इन्हे विजयनगर साम्राज्य के अतिम सम्राट अलिय रामरायलु की सभा के 'आभूषण'-कल्प कवि होने के नाते प्राप्त हुआ था। रामराजभूपणुडु की जीवनी से सबधित अनेक जनश्रुतियाँ हैं जिनमे वास्तविकता और कल्पना का सम्मिश्रण दिखाई देता है। जन्मत वे भाटकुल के थे और कवितापाठ आदि करके जीविका का निर्वाह करना इनके वशधरो का पेशा था।

रामराजभूपणुडु तेलुगु तथा सस्कृत के चूडात पडित थे। तेलुगु की विभिन्न कविता शैलियो पर इनका आश्चर्यजनक अधिकार था। इन्ही के कथानुसार ये दशविध कविता पाटव' इनके अधीन थे। 1 शतावधान कुशलता, 2 षटिंशतप्रकरण शक्ति अर्थात् एक घडी मे सौ अनुष्टुप छद—रचने की क्षमता, 3 आशुप्रबधबधाभिज्ञता आशुशैली मे प्रबधो का प्रणयन करना, 4 ओष्ठ्यनिरोष्ठ्यज्ञता—व्यजनों तथा स्वरो के आधार पर ओठो को मिलाने या न मिलानेवाली कविता बनाना, 5 अचलजिह्वाकिनैपुण्य—ऐसे अक्षरो मे कविता करना जिनमे जीभ हिलाने की आवश्यकता न पडे। 6 तत्समभाषावितानता—पूर्णत तत्सम शब्दो की सहायता से कविता करना, 7 बहुप्रयासाधित-व्यस्ताक्षरी-धुरीणता—व्यस्त अक्षरो को क्रमहीनता के साथ अलग-अलग सख्याओं मे मिला देना और तदनतर स्मरण शक्ति के आधार पर पूरा छद जबानी बता देना।

ऐसे अनेक छंदों का निर्वाह एक-साथ करना, 8. एक संधाग्राहित्वा—एक बार सुनकर अपरिचित छंद को शुद्ध रूप में सुनाना। 9. ओष्ठ्यविरोष्ठ्य संकरज्ञता : ओठों को हिलाने और न हिलाने के क्रम में कविता करना, 10. अमित यमकाशुधी शक्ति—यमकानुप्राणित कविता आशुरूप में कह सकना। इनमें काव्यगत बौद्धिक व्यायाम और कमनीय काव्य-शिल्प दोनों की अनुपम क्षमता थी। व्युत्पत्ति तथा *प्रतिभा की ऐसी युगपत् उपलब्धि अन्यत्र दुर्लभ है।*

इनकी कृतियों में उल्लेखनीय हैं : (1) 'वसुचरित्रमु' (दे०), (2) 'नरसभूपालीयमु', (3) हरिश्चंद्रनलोपाख्यानमु' (दे०)। तेलुगु-साहित्य में ये तीनों तीन विधाओं की उत्तम कृतियाँ हैं। 'वसुचरित्रमु' तेलुगु के पाँच महाकाव्यों में से एक है। 'नरसभूपालीयमु' रीतिग्रंथ है। तीसरी कृति हरिश्चंद्रनलोपाख्यानमु' द्वयर्थि काव्य है जिसमें हरिश्चंद्र तथा नल के उपाख्यानों का वर्णन युगपत् भाव से हुआ है।

रामलिंगम्पिळ्ळै, वी० नामक्कल *(त० ले०)* [*जन्म*—1888 ई०]

तमिल के आधुनिक कवियों में 'नामक्कल' निवासी वी० रामलिंगम पिळ्ळै का अग्रगण्य स्थान है। इनकी ख्याति का कारण है इनकी राष्ट्रीयता के भाव से परिपूर्ण सर्वजन-ग्राह्य सरल किंतु सरस कविताएँ तथा गेय पद। एक बार सुनने मात्र से मन में जम जाएँ—ऐसी रोचक पंक्तियाँ होती हैं इनकी कविताओं में। नमक-सत्याग्रह के दिनों में इनका विरचित एक गीत सभी लोगों, विशेषकर सत्याग्रहियों, की जबान पर था, जिसका भाव कुछ यों है : 'न खड्ग है, न रक्त है, युद्ध एक आया है, सत्य नित्य निश्च मानने वालो! सभी शरीक हो जाओ।' कदाचित् साहित्यिक गरिमा में इनसे भी श्रेष्ठतर कुछ अन्य समकालीन कवियों के रहते हुए इनकी ख्याति तथा लोकप्रियता उनसे भी अधिक होने का कारण जन-मानस को छूने वाली इनकी सरल पंक्तियाँ ही हैं।

स्कूली शिक्षा के बाद इन्होंने कालेज में उस समय की 'इंटर' (एफ० ए०) तक की पढ़ाई की थी। चित्रकला में निपुण थे और आजीविका का साधन चित्रकारिता ही था। स्वतंत्रता-संग्राम में इन्होंने कारावास भोगा था। देश स्वतंत्र होने के पश्चात् 'तमिल के प्रथम राजकवि' के रूप में इनकी नियुक्ति की गई थी। इनके दो उपन्यास, एक जीवनी, एक प्रबंध-काव्य तथा अनेक कविता-संकलन प्रकाशित हुए हैं। 'तिरुक्कुरल' (दे०) पर एक *व्याख्या भी इन्होंने लिखी है।*

रामलिंगारेड्डी कट्टमंचि (डा० सी० आर० रेड्डी) *(तें० ले०)* [जन्म—1880 ई०; मृत्यु—1951 ई०]

इनका जन्म चित्तूर जिले के कट्टमंचि ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम सुब्रह्मण्य रेड्डी था। चित्तूर के हाईस्कूल तथा मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज में अध्ययन करते हुए 1901 ई० में इन्होंने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और उसमें स्वर्णपदक प्राप्त किया। इसके बाद छात्रवृत्ति प्राप्त कर इंग्लैंड गए। 1903 ई० में राइट पुरस्कार प्राप्त कर ये इतिहास की परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। वहाँ पढ़ते समय ये 'कैंब्रिज यूनियन' (छात्र-संघ) के उपाध्यक्ष रहे। 1907 ई० में अमरीका जाकर इन्होंने शिक्षाशास्त्र का अध्ययन किया। देश लौटने के बाद ये बड़ौदा कॉलेज के वाइस-प्रिंसिपल बने। 1909 ई० में ये मैसूर के शिक्षा-विभाग में असिस्टेंट इंस्पेक्टर जनरल नियुक्त हुए। मैसूर महाराजा कॉलेज में ये प्रोफेसर भी रहे। यूरोप, कैनाडा, फ़िलिपाइन, जापान आदि देशों में भ्रमण कर लौटने के बाद ये मैसूर राज्य के शिक्षा-विभाग के इंस्पेक्टर जनरल बने। 1920 ई० में इन्होंने सरकारी नौकरी छोड़ दी और जस्टिक पार्टी के कार्यकर्ता बनकर, मद्रास विश्वविद्यालय की ओर से विधान सभा के दो बार सदस्य निर्वाचित हुए। 1926 ई० में स्थापित आंध्र विश्वविद्यालय के ये प्रथम कुलपति (वाइस-चांसलर) नियुक्त हुए। 1928 ई० में दुबारा उस पद के लिए चुने गए। 1930 ई० में ब्रिटिश सरकार की नीति के विरोध में इन्होंने त्यागपत्र दिया। 1935 ई० में ये मद्रास लेजिस्लेटिव काउंसिल के सदस्य हुए। 1936 ई० में ये फिर से आंध्र विश्वविद्यालय के कुलपति चुने गए और 1951 ई० तक (मरण-पर्यंत) उसी पद पर रहे। 1937 ई० में ये 'कलाप्रपूर्णुडु' की उपाधि से विभूषित हुए। आंध्र विश्वविद्यालय के विकास तथा औन्नत्य में इनका योगदान अनुपम है। ये तेलुगु और अँग्रेज़ी के अनुपम वक्ता तथा शिक्षाशास्त्र एवं राजनीति में पारंगत विद्वान् थे।

'मुसलम्म मरणमु' (दे०) नूतन शैली में, नवीन विचारधारा के अनुकूल लिखा गया इनका खंडकाव्य है। प्राच्य और पाश्चात्य आलोचना-पद्धतियों का समन्वय करते हुए इन्होंने 'कवित्व तत्व विचारमु' (दे०) नामक आलोचना-ग्रंथ की रचना की थी। तेलुगु में आधुनिक आलोचना

का श्रीगणेश इसी ग्रंथ द्वारा हुआ है। अन्य रचनाओं में 'नवयामिनी' (खंडकाव्य) तथा 'व्यासमंजरी' है।

आंध्र विश्वविद्यालय के संस्थापक तथा आधुनिक आलोचना के प्रवर्तक के रूप में रेड्डी जी चिरस्मरणीय हैं।

राम विजय-नाट *(अ० कृ०)* [रचना-काल— 1568 ई०]

शंकरदेव (दे०) के इस नाटक में 'रामायण' (दे०) के आदिकांड की कथावस्तु का वर्णन है। इसमें विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण के गमन और विवाहोपरांत अयोध्याप्रत्यावर्तन तक की मुख्य कथा ग्रहण की गई है। नाटक में सीता-स्वयंवर और धनुर्भंग और परशुराम-दर्पभंग के दृश्य सजीव हैं। कथावस्तु पाँच अवस्थाओं—आरंभ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम में विभाजित है। नांदी, नांदी गीत आदि का भी प्रयोग है। दशरथ की पुत्र वत्सलता, राम की विनय और वीरता, सीता की राम के प्रति आसक्ति, उनका मन संघर्ष और परशुराम का दर्प सुंदर शब्दों में चित्रित है। यह कृति भी ब्रजबुलि गद्य-युक्त अंकीया नाटकों में एक है।

रामसरस्वती *(अ० ले०)* [जीवन-काल—सोलहवीं-सत्रहवीं शती]

इनके आश्रयदाता कोचबिहार के नरनारायण आदि अनेक राजा थे। इनका मूल नाम अनिरुद्ध द्विज था, रामसरस्वती, कविचंद्र, भारतचंद्र और भारतभूषण इनके नामांतर अथवा उपाधियाँ थीं। ये नरनारायण ही नहीं उनके पुत्र-प्रपौत्रों तक के राजकवि रहे थे। इन्होंने नरनारायण की प्रेरणा से 'महाभारत' (दे०) की रचना की थी। इनकी रचनाएँ हैं—'महाभारत' (आदि पर्व, व्यंजन पर्व आदि), पंद्रह की संख्या में वध-काव्य और पाँच वीर-काव्य। ये पहले कवि थे तदनंतर भक्त। श्री शंकरदेव (दे०) से इनका परिचय हुआ था किंतु ये उनके अनुयायी नहीं थे। इन्होंने 'महाभारत' का अपनी शैली में अनुवाद किया था जिसमें अपनी ओर से जोड़-तोड़ भी की थी। इनके इस ग्रंथ का वजन लगभग एक मन होगा। असम में जब युद्ध चल रहा था, तब इन्होंने वध-काव्यों की रचना कर लोगों में शौर्य का संचार किया था। इन काव्यों में आख्यान के साथ रूपक भी है। रूपक के द्वारा देव और आसुरी शक्तियों का निरूपण है। वीर रस के काव्यों में शृंगार आदि अन्य रस भी हैं। 'भीम चरित' काव्य में हास्य रस है। इसमें असम के ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्र मिलता है। ये असमीया के वेदव्यास (दे०) हैं, शंकरदेव और माधवदेव (दे०) के पश्चात् प्राचीन कवियों में इन्हीं का नाम अग्रगण्य है।

रामसिंह (मुनि) *(अप० ले०)* [रचना-काल—1000 ई० के लगभग]

मुनि रामसिंह-कृत 'पाहुड दोहा' (दे०) नाम की ही एक कृति ही उपलब्ध है। लेखक ने कहीं भी अपने संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया है। इनके समय के विषय में भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलते।

इनकी कृति में प्राप्त जैन-संप्रदाय-संबंधी अनेक प्रसंगों से प्रतीत होता है कि ये जैन थे।

रामसिंह राठौड़ *(गु० ले०)* [समय—1920 ई०]

श्री रामसिंह राठौड़ को अपने सांस्कृतिक इतिहास पर 1970 ई० का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। गुजरात में सांस्कृतिक इतिहास की यह प्रथम पुस्तक है। कच्छ की विशिष्ट संस्कृति का उसमें विस्तार से परिचय दिया गया है। कच्छी भाषा की—जिसे भाषा-वैज्ञानिकों ने सिंधी भाषा की एक बोली माना है—विशेषताएँ, कच्छ के संगीत और नृत्य, कच्छ की संस्कृति पर सिंध और सौराष्ट्र का प्रभाव—इन सबका परिचय अनेक विद्वानों के उद्धरणों के साथ दिया गया है।

रामानुजाचार्य *(सं० ले०)* [समय—1037-1137 ई०]

रामानुजाचार्य के पिता का नाम केशव यज्वन् अथवा आसुरी केशव था। इनकी जन्मभूमि भूतपुरी है। इन्होंने अपने मौसेरे भाई गोविंद भट्ट के साथ कांची-निवासी यादव प्रकाश नामक उद्भट विद्वान से शिक्षा ग्रहण की थी। किंतु आगे चलकर अपने गुरु यादव प्रकाश से रामानुज का मतभेद हो गया। एक दिन प्रयाग जाते समय यादव प्रकाश ने रामानुज को गंगा में गिराने की योजना बनाई थी, परंतु रामानुज को गोविंद ने यादव प्रकाश की दुर्भावना पहले से ही बतला दी थी। इससे रामानुज के प्राण बच गए।

रामानुज-रचित ग्रंथों में 'श्रीभाष्य', 'वेदांतसार',

'वेदार्थ-संग्रह', 'वेदांतदीप' तथा 'गीताभाष्य' प्रमुख हैं। 'श्रीभाष्य' की रचना इन्होंने अपने एक शिष्य की सहायता से की थी। सुदर्शन सूरि ने इनके 'श्रीभाष्य' पर 'श्रुति-प्रकाशिका' नामक प्रख्यात टीका लिखी है।

रामानुजाचार्य का दार्शनिक सिद्धांत विशिष्टा-द्वैतवाद है। रामानुज-दर्शन के अनुसार विभिन्न जीव एवं जड़ जगत् ब्रह्म के शरीर, प्रकार एवं विशेषण कहे गए हैं। जीव चित् एवं जड जगत् अचित्। चित् एवं अचित् से विशिष्ट ब्रह्म ही रामानुज-दर्शन का विशिष्टाद्वैत तत्त्व है। इसीलिए रामानुज का दार्शनिक सिद्धांत विशिष्टाद्वैतवाद के नाम से प्रख्यात हुआ है। रामानुज दर्शन के अनुसार यद्यपि जीव तथा जगत् की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की गई है, तथापि परमेश्वर अंतर्यामी रूप से भोक्ता (=जीव) एवं भोग्य (=जगत्) में स्थित रहता है।

वैष्णव-दर्शन के सिद्धांतों मे रामानुज का दार्श-निक सिद्धांत सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। डा० थीबो ने तो रामानुज के 'श्रीभाष्य' को ही 'ब्रह्मसूत्र' (दे०) का समीचीन भाष्य माना है। इसके अतिरिक्त रामानुज ने ब्रह्म को चिर एवं अचिर से विशिष्ट सिद्ध कर दर्शन को व्याव-हारिक बनाने का प्रयत्न किया है।

रामाभ्युदयमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1550 ई०]

अय्यलराजु रामभद्रुडु (दे०)-कृत 'रामाभ्यु-दयमु' तेलुगु के संक्षेप-काव्यों मे सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इस काव्य में उत्तरकांड की कथा को छोड़कर राम के राज्या-भिषेक तक की कथा का वर्णन है। यह प्रबंध-काव्य के समस्त लक्षणों से परिपूर्ण एक सरस रचना है। इसकी शैली पूर्णत: आलंकारिक है। संस्कृत के दीर्घसमासों, श्लेष, यमक, अनुप्रास आदि शब्दालंकारों तथा चित्रकाव्य की रचना के प्रति कवि का विशेष अनुराग इसमें व्यक्त हुआ है। इनके परवर्ती काव्यों में अतिशय आलंकारिकता इन्हीं के अनुकरण के कारण प्रकट हुई है, इसमें कहीं-कहीं औचित्य की दृष्टि से दोष भी पाए जाते है जैसे—विश्वामित्र द्वारा सीता के सौंदर्य का वर्णन; ऋष्य शृंग की कहानी में वेश्याओं की माया तथा उनके विभ्रम का वर्णन आदि। अलंकारों के चमत्कार की दृष्टि से यह काव्य महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

रामामृदम्, ला० स० *(ते० ले०)*

निजी व्यवसाय में बैंक आफ़िसर होते हुए भी इन्होंने उपन्यासकार के रूप में ख्याति अर्जित की है। इस शती के तीसरे दशक से ही ये सृजनात्मक साहित्यिक लेखन में प्रवृत्त हुए थे। उस समय 'मणिक्कोटि' पत्रिका में इनकी कहानियाँ प्रकाशित होती थी। तमिल-भाषी पाठकगण आज 'कलैमकळ्', 'अमृतचुरपि' आदि पत्रिकाओं के माध्यम से इनके कई उपन्यासों से परिचित हो चुके हैं।

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों का लेखन इनका विशिष्ट क्षेत्र है। इस क्षेत्र का निर्वाह किसी भी लेखक के लिए एक चुनौती अवश्य है। फलत: इनकी रचनाओं में सर्वत्र प्रयोगात्मकता की मुद्रा द्रष्टव्य है। इनकी 'तकनीक' में जेम्स जायस, वर्जीनिया वुल्फ़ आदि पाश्चात्य उप-न्यासकारों की 'चेतना-प्रवाह' शैली का समानांतर रूप देखा जा सकता है। कथावस्तु-योजना का कोई अपना उप-योग नहीं है, वह पात्रों के व्यक्तित्वों के भीतर-ही-भीतर की झाँकियाँ प्रदर्शित करने के लिए एक उपाय-मात्र है। भाषा जकड़ और दुरूह है। अंतर्मन की प्रवृत्तियों तथा स्वप्नात्मक प्रक्रियाओं का चित्रण अत्यंत प्रभावोत्पादक है। यथा 'जननी' नामक लघु उपन्यास में कल्पना है कि काली देवी जी अपनी इच्छा-तृप्ति के लिए एक मानव-परिवार में पैदा होती हैं पर मानव-शरीर में घुस जाने के बाद उन्हें कितनी परेशानियाँ उठानी पड़ती है, नारी-जन्म में पुरुष के सामने कितने विचित्र लज्जाशील अनुभवों को भोगना पड़ा है—इनका मन:स्थितिप्रधान, वर्णन सूक्ष्म अंतर्दर्शिता से युक्त है। इनके 'गायत्री', 'पुत्र', 'अपिता' आदि उप-न्यासों में मानसिक अवस्थाओं का, व्यक्तित्वनिष्ठ समस्याओं का प्रतिपादन चमत्कारिक एवं विचारोत्तेजक है।

रामायण *(पं० कृ०)*

रचयिता—पं० मानसिंह 'कालिदास'। यह पंजाबी-साहित्य का एक प्रसिद्ध महाकाव्य है। यह वाल्मीकि (दे०) की 'रामायण' (दे०) एवं तुलसीदास (दे०)-कृत 'रामचरितमानस' (दे०) से प्रभावित दोहा छंद में लिखित कृति है। भाषा प्रधानतया पंजाबी परंतु हिंदी के तद्भव शब्दों से समन्वित। कथाक्रम में कहीं-कहीं अंतर। कल्पना का आश्रय। राम-लक्ष्मण-प्रसंग में, से कतिपय पंक्तियाँ पठनीय है—

लच्छमन देख एकांत समय नू प्रश्न करे प्रभ आगे।
असल उपाव मुकल दा केहड़ा प्रभ चरनी चित लागे।
राम चंदर महाराज आखदे सुन्यो लच्छमन भाई।
ऐसा तू परसंग छेड़या ए तेरी चतराई॥

रस अलकार की दृष्टि से भी महाकाव्य सुदर बना है। सर्गात मे छद परिवर्तन की परिपाटी का निर्वाह नही किया गया है।

रामायण (बँ० कृ०)

शाश्वत भारतवर्ष का हृत्स्पन्दन आज भी 'रामायण' एव महाभारत' के बीच नित्य-ध्वनित है। बँगला मे रामायण महाकाव्य के अनुवाद के द्वारा महाकवि कृत्तिवास ओझा ने जिस काव्य धारा को प्रवहमान किया था वह आज भी जीवन जाह्नवी के रूप मे विराजमान है। कृत्तिवास की 'आत्मविवरणी' के बारे मे पडितो मे सदेह है। 'आत्मविवरणी' के अनुसार इनके पिता का नाम वनमाली और माँ का नाम मेनका था एव ये फुलिया गाँव के निवासी थे। बहुतो की धारणा है कि इनका जन्म 1399 ई० मे हुआ था।

श्रीरामपुर मिशन प्रेस 1803 ई० म पाँच खडो मे सर्वप्रथम कृत्तिवास की 'रामायण' प्रकाशित हुई थी। इसके उपरात इसके विभिन्न सस्करण प्रकाशित हुए। कृत्तिवास के काव्य का मूलपाठ आज अतीत के अधकार मे है। इस सबध मे निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन ही है। फिर भी कृत्तिवास की 'रामायण' बगाल के ग्राम के निभृत निकुज से लेकर राजप्रासाद तक प्रत्येक स्थान मे समादृत है।

'रामायण' अनुवाद के द्वारा जिन्हे ख्याति मिली है, उनमे सर्वप्रथम स्मरण योग्य हैं नित्यानन्द आचार्य (अद्भुताचार्य) जिनका ग्रथ अद्भुत रामायण' के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। ये कदाचित् सत्रहवी शती एव रामप्रसाद राय (यथाक्रम पिता और पुत्र) ने एकत्र होकर 'अद्भुत आश्चर्य रामायण' की रचना की थी। पूर्व बगाल की महिला-कवि चद्रावती ने रामायण-रचना के माध्यम से अशेष ख्याति प्राप्त की थी। रघुनदन गोस्वामी-कृत 'राम रसायण', कविचद्र शकर चक्रवर्ती रचित विष्णुपुरी रामायण' के अतिरिक्त कैलास बसु, रामशकर दत्तराय, द्विज लक्षण आदि कवियो ने भी रामायण का अनुवाद किया है।

रामायण (स० कृ०) [रचना-काल – 500 ई० पू०]

'रामायण' के रचयिता वाल्मीकि दे० हैं। वाल्मीकि आदि कवि एव 'रामायण' आदि काव्य के रूप मे प्रख्यात है। 'रामायण' मे बालकाड, अयोध्याकाड, अरण्यकाड, किष्किधाकाड, सुदरकाड, लकाकाड तथा उत्तरकाड—ये 7 काड हैं। 'रामायण' पर— रामायण-तिलक', 'रामायणभूषण', 'तीर्थीय रामायणशिरोमणि' तथा 'मनोहरा' आदि अनेक टीकाएँ मिलती हैं।

'रामायण' मे विशेष रूप से रामचरित का वर्णन है। दाशरथि राम 'रामायण' की समस्त कथा के नायक है। 'रामायण' मे विशेष रूप से दो वर्गों के पात्र है— एक राम वर्ग के और दूसरे रावण वर्ग के। राम वर्ग के पात्रो मे भरत लक्ष्मण सीता, हनुमान एव सुग्रीव आदि तथा रावण वर्ग के पात्रो मे कुभकर्ण, मेघनाद तथा अगद आदि हैं।

रावण असत् अर्थात् अधर्म का प्रतीक है और राम सत् अर्थात् धर्म के अवतार रूप हैं। अधर्म के अधिष्ठाता के रूप म रावण के कृत्य ऋषियो के यज्ञ मे विघ्न उत्पन्न करना एव सीता-हरण आदि है। मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के धर्मकृत्य धर्मपोषक कृत्य हैं। इन कृत्यो मे रावण-वध सर्वाधिक प्रमुख है।

मानव धर्म का जैसा आदर्श रूप 'रामायण' मे उपलब्ध होता है, वैसा अन्यत्र नही। इसके अतिरिक्त विश्व परिवार के विविध धर्मों की स्थिति भी 'रामायण' की अद्भुत देन है, उदाहरण के लिए, राम के द्वारा आदर्श राजधर्म, सीता के द्वारा पत्नीधर्म, भरत एव लक्ष्मण के द्वारा भ्रातृधर्म, सुग्रीव द्वारा सुहृद्-धर्म एव हनुमान के द्वारा आदर्श सेवक के धर्म की प्रतिष्ठा 'रामायण' के अतर्गत की गई है।

मानवतावादी धर्म की स्थापना 'रामायण का प्रमुख उद्देश्य है। 'रामायण के आदर्श धर्म की प्रतिष्ठा राम के आदर्श चरित द्वारा हुई है। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'रामायण का धर्म जीवन-दर्शन के रूप म भी ग्राह्य है।

रामायण कल्पवृक्षमु (ते० कृ०) [रचना-काल—1933-1961 ई०]

'रामायण कल्पवृक्षमु' (भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत) विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) की काव्य-प्रतिभा की उत्कृष्ट परिणति है। इसम कवि की दीर्घकालीन साधना एव मदन का चरम रूप प्रतिफलित हुआ है। यह छह काडो मे विभाजित काव्य है। प्रत्येक काड मे पाँच-पाँच खड हैं। सपूर्ण ग्रथ म लगभग तरह

हजार छंद हैं।

अनेक कवियों द्वारा वर्णित रामायण की कहानी मे श्री सत्यनारायण ने कई स्थानों पर अपनी नयी उद्भावनाओं को भी समाविष्ट किया है—जैसे कैकेयी-प्रसंग में, बाल लीलाओं के वर्णन तथा प्रकृति-वर्णन। इनकी कैकेयी राम की कार्यसाधिका है।

विविध वर्णन-शैलियों, अलंकारों, छंदों एवं लाक्षणिक प्रयोगों की अतिशयता के कारण रचना क्लिष्ट एवं दुरूह हो गई है। यह काव्य भाव-संपत्ति तथा युगानुकूल चेतना एवं संदेश को प्रदान करने की दृष्टि से अधिक संपन्न नहीं कहा जा सकता। इस काव्य का प्रसार केवल विद्वान पाठकों तक ही हुआ है।

रामायण महाकाव्य *(म० कृ०)*

'रामायण महाकाव्य' के रचयिता गोपाळ गोविंद मुजुमदार (1883-1949 ई०) अर्थात् कवि साधुदास हैं। इन्होंने चार खंडों में राम-जीवन पर आश्रित 'रामायण महाकाव्य' रचना की योजना बनाई थी। इनमें से तीन खंड तो पूर्ण हुए पर 'पुरविहार' नामक चौथा पूर्ण न हो सका। 'वनविहार' की रचना 1914 ई० में हुई थी। 'रणविहार' की 1916 ई० में तथा 'गृहविहार' की 1928 ई० में।

कवि साधुदास आधुनिक काल के संक्रांति काल के कवि हैं। परंतु इस महाकाव्य की रचना के लिए इन्होंने संस्कृत के पंचमहाकाव्यों के आदर्श को सामने रखा है। 'वनविहार' में कवि को प्रकृति-वर्णन करने का पर्याप्त अवकाश मिला है। तीनों खंडों में 'गृहविहार' खंड सर्वाधिक सरस बन पड़ा है।

इनकी रचना में उदात्तता नहीं है, सर्वत्र सौम्यता है। इन्होंने विविध प्रकार के वर्णिक वृत्तों का प्रयोग किया है तथा प्रत्येक छंद अलंकृत है। संस्कृत एवं मराठी पर इनका असामान्य प्रभुत्व था। 'रामायण महाकाव्य' की भाषा संस्कृत-गर्भित है—यहाँ तक कि कहीं-कहीं दुरूहता का स्पर्श कर गई है। कवि ने स्वयं टिप्पणी में कठिन शब्दों के अर्थ दे दिए है जिससे इस काव्य को पढ़ने में सहृदय को कठिनाई न हो।

इस रचना में काव्य की कवित्व-शक्ति की अपेक्षा पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति ही देखने को मिलती है।

रामायणम् इरुपत्तिनालुवृत्तम् *(मल०कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

'रामायण' (दे०) की कथा को संकीर्तन शैली में चौबीस भिन्न-भिन्न छंदों में निबद्ध चौबीस भागों मे विभक्त करके प्रस्तुत किए गए इस ग्रंथ के रचयिता तुंचत्त् एष्ुत्तच्छन् (दे०) माने जाते थे। परंतु उळ्ळूर् (दे०) आदि इतिहासकार इस मत के विरुद्ध है। इसकी छंदयोजना के साथ पद्यों की टेक भी जुड़ी हुई है, अर्थात् प्रत्येक छंद के सभी पद्यों का अंत एक ही प्रकार होता है।

मलयाळम के प्राचीन काव्यों में रामायण-कथा पर आधारित भिन्न-भिन्न ग्रंथों में 'रामायणम् इरुपत्तिनालुवृत्तम्' प्रचार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

रामराजा बहादुर *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1918-1920 ई०]

यह सी० वी० रामन् पिळ्ळा (दे०) का ऐतिहासिक उपन्यास है। इस में धर्मराजा के नाम से विख्यात त्रावनकोर-नरेश रामवर्मा महाराजा के शासन-काल का इतिहास वर्णित है। मंत्री राजा केशवदास की राजभक्ति और कार्य-कुशलता कथा-वस्तु की मुख्य धारा है और दो भागों में दो मुख्य प्रणय-कथाओं का भी उन्मीलन हुआ है। पृष्ठभूमि टीपू सुलतान के साथ त्रावनकोर की लड़ाई की है और उस सिलसिले में भिन्न-भिन्न देशभक्तों और देशद्रोहियों के कार्यकलापों की कहानी भी अनावृत होती जाती है। 'मार्त्तांडवर्मा' (दे०) और 'धर्मराजा' (दे०) शीर्षक दो पिछले उपन्यासों के सिलसिले में यह तीसरा है।

ऐतिहासिक पात्रों के चरित्र-विकास में रामराजा बहादुर में प्रकट होने वाला पाटव अद्भुत है। उपन्यास के सापेक्षतः कम महत्व के पात्रों के चरित्र के विकास में लेखक को अत्यधिक सफलता मिली है। प्रत्येक पात्र के संभाषण की शैली का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न है और इस कारण से उपन्यास आकर्षक बना है।

रामिरेड्डी, दुव्वूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1897; मृत्यु—1947 ई०]

ये आंध्र के नेल्लूर जिले के रहने वाले थे।

बचपन से ही रचना मे इनकी रुचि थी। भावुकता, ग्रामीण जीवन के प्रति सहज अनुराग, वैज्ञानिक अनुसधान की जिज्ञासा आदि विशेषताओ ने इनकी रचना को रमणीय, हृदयहारी और ज्ञानवर्द्धक बनाया था। इनकी सबसे पहली रचना 'अग्नि प्रवेश' इनकी बीस साल की अवस्था मे प्रकाशित हुई। इसके बाद 'बनकुमारी' (1928 ई०) इनकी पुरस्कृत रचना थी। इनकी मौलिक रचनाओ मे 'कृषीवलुडु' (1919 ई०) अर्थात् 'किसान' बहुचर्चित काव्य है। इसमे ग्राम्य जीवन का सजग और सहज चित्र प्रस्तुत हुआ है। फारसी भाषा और साहित्य के साथ इनका प्रगाढ परिचय था। उमरखय्याम की रुबाइयो का इन्होने 'पानशाला' (दे०) के नाम से तलुगु-रूपान्तर प्रस्तुत किया था। इस अनुवाद की भूमिका इनकी भावयित्री प्रतिभा की परिचायक है। समय समय पर प्रकाशित साहित्य-समीक्षा सबधी इनके लेख 'सारस्वत व्यासमुलु' के नाम से 1935 ई० मे प्रकाशित हुए। अतिम दिनो मे 'पलितकेशमु', 'गुलाबि तोटा', कडपटि वीडकोलु' (आखिरी विदाई) जैसे काव्यो के अतिरिक्त रामिरेड्डि ने कुछ नाटक भी लिखे।

रामैया, वी० एस० *(त० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

तमिलनाडु के मदुरै जिले के वत्तलक्कुडु मे जन्म बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार। साहित्यिक कृतियो के साथ साथ अनेक ज्ञानवर्द्धक कृतियो की रचना की है। इन्होने 1920 ई० के आसपास कहानीकार के रूप म अपना साहित्यिक जीवन प्रारभ किया। शीघ्र ही इनकी गणना पुदुमैप्पित्तन (दे०), कु० पा० राजगोपालन (दे०) आदि प्रसिद्ध कहानीकारो के साथ होने लगी। रामैया ने कई उपन्यास और नाटक भी लिखे है। इन क्षेत्रो मे भी इन्हे अपूर्व सफलता मिली है। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ है—'मलरुम मणमुम', 'ज्ञानोदयम', 'पुवुम पोन्नुम', 'कुकुमप्पोट्टु कुमारस्वामी' (कहानी), 'नदा विळक्कु', 'प्रेमहारम' (उपन्यास), 'प्रेसिडेंट पजाट्शरम', 'तरोट्टि महन', 'पुविलगु मल्लियम मगलम', 'पोलीसरकान महल', 'पदच्चोरु' (नाटक) आदि। इन्होने कुछ सुदर रेडियो नाटको की रचना भी की है। इन्होने भारती (दे०) के प्रसिद्ध प्रबध-काव्य 'पाचाली शपदम' (दे०) को रगमचीय नाटक के रूप मे प्रस्तुत किया है।

इनकी अधिकाश कहानियाँ भाव-प्रधान हैं, पारिवारिक एव सामाजिक विषयो मे सबद्ध हैं। सभी कहानियो मे चरम सीमा की स्थिति की सुदर नियोजना है। करुण रस प्रधान इनकी कहानियो को पढकर पाठक अपने आँसुओ को रोक नही पाता है। कहानियो मे नाटकीयता भी है। 'कुकुमप्पोट्टु कुमारस्वामी' शीर्षक कहानी माला की कहानियो मे एक आदर्श पुलिस वाले के चरित्र और क्रियाकलाप का अत्यत सरस-सजीव चित्रण प्राप्त होता है। इन कहानियो मे आचलिकता का पुट भी है। इनके नाटक नाटकोचित सभी तत्त्वो से युक्त है। कथाविन्यास और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अत्यत सफल हैं। इन्होने ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, हास्य-व्यग्य-प्रधान सभी प्रकार के नाटको की रचना की है। उपन्यासो मे प्राय सामाजिक घटनाओ को आधार बनाया गया है।

तमिल साहित्य मे इनका सर्वाधिक योगदान कहानी और नाटक के क्षेत्र मे है। 'मणिक्कोडि' पत्रिका के सपादक के रूप मे इन्होने स्वय कहानी-रचना कर और विभिन्न लेखको का कहानी रचने की प्रेरणा देकर कहानी-साहित्य को, और स्वतत्रता-परवर्ती युग म विभिन्न विषयो को लेकर सफल अभिनेय नाटको की रचना कर तमिल नाटक साहित्य को समृद्ध किया।

राय, अन्नदाशंकर *(बँ० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

अन्नदाशकर राय उन अति-आधुनिक उपन्यासकारो मे हैं जिन्होने अपने उपन्यासो मे आधुनिक मानव-मन को आच्छन्न करने वाली पृथ्वीव्यापी जटिल चितनधारा एव समस्याओ की आलोचना करते हुए व्यक्ति-जीवन का विश्लेषण किया है। इनकी मननशक्ति अत्यत तीक्ष्ण एव सक्रिय है—कदाचित् इसीलिए ये उपन्यासकार की अपेक्षा चितनशील विचारक अधिक प्रतीत होते हैं। इनके प्रारभिक उपन्यासो म 'असमापिका' (1930), 'आगुन निये खेला' (1930), 'पुतुल निय खेला' (1933) मे निषिद्ध प्रेम तथा लेखक के विलायत के अनुभव लघु व्यग्य-प्रहसनात्मक ढग से व्यक्त हुए हैं जिनमे जीवन की गहरी आलोचना नही है।

'सत्यासत्य' (1932-42) इनका छह खडो म रचित वृहत् उपन्यास है जिसम आधुनिक युग की समस्त जटिल समस्याएँ, विभिन्न राजनीतिक एव अर्थनीतिक मतवाद एव मानव-कल्याण के परस्पर विरोधी आदर्शों की अत्यत सूक्ष्म एव कुशलता से आलोचना हुई है। इस उपन्यास मे लेखक ने अपने चितन को चरित्रो का रूप प्रदान किया

है। यह महाकाव्यात्मक उपन्यास अन्नदाशंकर की प्रतिभा का श्रेष्ठ निदर्शन है। 'सत्यासत्य' के उपरांत ये और भी अधिक दार्शनिक भावापन्न हो उठे है। पाँचवें दशक में लिखित 'कन्या' उपन्यास में इन्होंने अपने दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति की है। अप्राप्य को पाने की साधना ही मनुष्य की चिरंतन साधना है—इसमें व्यर्थ होने पर भी मनुष्य का अनुसंधान खत्म नहीं होता। उपन्यास का यही वक्तव्य है। लेखक के दूसरे उपन्यास भी वक्तव्य-प्रधान है। साप्रतिक काल में लिखे गए दो उपन्यास 'विशल्यकरणी' एवं 'तृष्णार जल' में मूल विषय प्रेम-तत्त्व है। बँगला साहित्य में अन्नदाशंकर राय तत्त्व-जिज्ञासु उपन्यासकार है। इनकी इस सार्थकता में ही इनकी दुर्बलता छिपी हुई है। नाना प्रकार की मनस्तात्त्विक, जटिलता, मानसिक गूढ़ैषणा एवं विशुद्ध चिंतनशील चेतना की अभिव्यंजना से इनके उपन्यासों में अतिकथन का दोष आ गया है।

रायकृष्णदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

ये वाराणसी में उत्पन्न हुए और इनका उपनाम 'नेही' है। प्रेमचंद (दे०) के समकालीन कहानीकार एवं गद्यगीतकार माने जाते हैं एवं प्रसाद (दे०) जी के अंतरंग मित्रों में इनकी गणना की जाती है। अब चित्रकला, मूर्तिकला एवं पुरातत्त्व में विशेष रुचि है तथा ललित कला अकादमी के सदस्य है। ये साहित्य-प्रकाशन संस्था, भारती भंडार के संस्थापक हैं और भारतीय कला-भवन की स्थापना भी इन्हीं के सदप्रयत्नों का परिणाम है।

भावुकता इनके गद्यगीतों का प्राण है। 'प्रवास' में इनके गद्यगीत संगृहीत हैं। 'साधना', 'आख्यान', 'सुधांशु' इनके कहानी-संग्रह है। इनकी कहानियों में भारतीय जीवन के सामाजिक व्यंग्य एवं सरसता दोनों विद्यमान है। 'भारतीय चित्रकला' और 'भारतीय मूर्ति-कला' इनके खोजपरक अनथक परिश्रम व्यक्त करने वाले ग्रंथ हैं, यों तो पाश्चात्य विद्वानों ने इन विषयों पर काफी लिखा है, परंतु हिंदी में विस्तृत विश्लेषण के साथ इन विषयों पर इन्होंने पहली बार लिखा है। हिंदी के गद्य-गीतकारों में माखनलाल चतुर्वेदी (दे०) एवं राबी के साथ इनका भी नाम लिया जाता है।

रायचौधुरी, अंबिकागिरि *(अ०ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1967 ई०]

जन्मस्थान : कामरूप का बरपेटा गाँव।

इन्होंने बंगभंग आंदोलन के समय एनार्किस्ट सेवादल का गठन किया था। 1904 ई० में इनका नाटक 'बंदिनी भारत' ज़ब्त कर लिया गया था। 1918 ई० में इन्होंने प्रेस की स्थापना की थी। 1921 ई० के असहयोग आंदोलन में जब ये जेल चले गये थे तो किसी ने प्रेस में आग लगा दी थी जिससे सारी पुस्तकें नष्ट हो गई थी। 1923 ई० में इन्होंने पुनः प्रेस की व्यवस्था की थी। ये कई संस्थाओं के जन्मदाता तथा पत्रिकाओं के संपादक थे।

प्रकाशित रचनाएँ—**काव्य**: 'तुमि' (दे०) (1915 ई०), 'बीण' (1916 ई०), 'अनुभूति' (1954 ई०), 'वंदो कि छंदेरे' (1958 ई०), 'स्थापन कर' (1958 ई०), 'वेदनार उल्का' (साहित्य अकादमी पुरस्कार 1967 ई०)। **निबंध-संग्रह**: 'जगतर शेष आदर्श' (1916 ई०), 'डेका डेकरीर वेद' (1942 ई०), 'आहुति' (1953 ई०)।

इनकी प्रसिद्धि ज्वालामयी कविताओं के कारण है। इन्होंने जनता में कविताओं द्वारा क्रांति का प्रचार किया है। इनकी दो पुस्तकें अंग्रेज सरकार द्वारा जब्त की गई थी। 'तुमि' किसी प्रिया को संबोधित कर लिखा गया है। 'बीण' में भी प्रेम का वर्णन है किंतु यह प्रेम इंद्रियातीत अनुभूति से युक्त है। अन्य कविताओं में इनका विद्रोही स्वर मिलता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् इन्होंने भ्रष्टाचार, अनाचार और शोषण के विरोध में लेखनी उठाई थी। बँगला-मंच का प्रभाव कम करने के लिए नाटक लिखे थे। इन्होंने पूर्ण शैली में उग्र राष्ट्रीय भावना के निबंध लिखे है।

रायचौधुरी, उपेंद्रकिशोर *(बँ० ले०)* [जन्म—1863 ई० मृत्यु 1915 ई०]

भारतवर्ष में हाफ़टोन-ब्लाक शिल्प के प्रवर्तक चित्रशिल्पी उपेंद्रकिशोर रायचौधुरी बँगला साहित्य के प्रधान उन्नायक है। इन्होंने एवं इनके परिवार के कतिपय सदस्यों ने शिशु-साहित्य के निर्माण की दिशा में जो कुछ भी काम किया है वह अतुलनीय है। उपेंद्र बाबू ने बच्चों के लिए 'संदेश' (1913) पत्रिका निकालकर शिशु-

साहित्य के स्वर्ण-युग की सूचना दी थी। इन्होंने 'छेलेदेर रामायण' (1896) एवं छेलेदेर महाभारत' की भी रचना की थी जिसका आकर्षण आज भी कम नहीं हुआ है। आज तक इसके अनेक संस्करण निकल चुके हैं। बँगला देश में प्रचलित शिशु-कविताओं को गद्य-रूप देते हुए इन्होंने 'टुनटुनिर बई' (1910) प्रकाशित की थी। शिशुओं के लिए यह एक उल्लेखनीय कहानी-संग्रह है। चित्र-समेत यह कहानी-संग्रह चिरंतन है एवं इसकी वाचन-भंगी अत्यंत आकर्षक।

उपेंद्रकिशोर रायचौधुरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनकी शिशु-पुस्तकें कैशोर के विमृत अपराह्न में या प्रौढ़ता के विरल अवसर में समान रूप से आनंददायी हैं।

रायचौधुरी, सरोजकुमार (बँ० ले०) [जन्म—1902 ई०]

सरोजकुमार रायचौधुरी के उपन्यासों की विषयवस्तु एवं अभिव्यक्ति शैली लगभग ताराशंकर वंद्योपाध्याय (दे०) के अनुरूप होने के कारण इन्हें जन-प्रियता अधिक नहीं मिल पायी। तारा बाबू के उपन्यासों की आंचलिकता का आधार वीरभूम है, तो इनका पश्चिम मुर्शिदाबाद—यद्यपि सरोज बाबू के उपन्यासों में आंच-लिकता का तत्त्व तारा बाबू की अपेक्षा कम ही है।

सरोज बाबू के उल्लेखनीय उपन्यास है 'बंधनी' (1931), 'शृंखल' (1932), आकाश ओ मृत्तिका' (1933) 'पाथनिवास' (1935), 'मयुराक्षी, 'गृहकपोती' 'सोमलता' (1938), 'हंसबलाका' (1937), 'कालो घोड़ा' (1944) आदि। कहानियों की पुस्तका में है 'देह यमुना' (1936), 'मनेर गहने' (1936), 'क्षुधा (1944) आदि।

वैष्णव जीवन के यथार्थ चित्रांकन की दृष्टि से इनके तीन खंडों में संपूर्ण उपन्यास मयूराक्षी', 'गृह-कपोती' एवं 'सोमलता' उल्लेखनीय हैं। चरित्र-चित्रण एवं अपने वक्तव्य के प्रसार में ये कभी भी संयम नहीं खोते। इनका परिमिति बोध ही इनका सर्वप्रधान गुण है। गल्प-विन्यास, चरित्र-सृष्टि एवं जीवन-तत्त्व की गंभीरता इनके उपन्यासों की प्रशंसनीय विशेषताएँ हैं।

राय, द्विजेंद्रलाल (बँ० ले०) [जन्म—1863 ई०, मृत्यु—1913 ई०]

इनके नाट्य-साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है: (i) **प्रहसन**—'समाज विभ्राट ओ कल्कि अवतार' 1895), 'विरह' (1897), 'एह्य वा सुखी परिवार' (1900), 'प्रायश्चित्त' (1902), 'पुनर्जन्म' (1911), 'आनंद विदाय' (1912), (ii) **पौराणिक नाटक** 'पापाणी' (1900), 'सीता' (1908), 'भीष्म' (1914), (iii) **ऐतिहासिक नाटक**—'ताराबाई' (1903), 'प्रतापसिंह' (1905), 'दुर्गादास' (1906), 'नूरजहाँ' (1908), 'मेवाड़-पतन' (1908), 'शाजाहन' (दे०) (1909), 'चंद्रगुप्त' (दे०) (1911), 'सिंहल-विजय' (1915), (iv) **सामाजिक नाटक** 'परपारे' (1912), बंगनारी' (1916)। राय की नाट्य-प्रतिभा में वैविध्य है। इन्होंने हास्य-व्यंग्यपूर्वक लघु नाटक, ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामाजिक नाटक लिखे हैं। नाट्य-शिल्प की दृष्टि से इन्होंने प्रहसन, पाँच अंकीय नाटक तथा गीति-नाटक—सभी क्षेत्रों में सफल प्रयोग किए हैं।

राय की नाट्य-चेतना का उदय स्वदेशी आंदो-लन के विकास से जुड़ा हुआ है। स्वदेशी भावनाओं से अनुप्रेरित होकर ही राय ने इतिहास की युगानुरूप व्याख्या की है। राय की राष्ट्रीयता के तीन सोपान हैं। पहला है—जातीय उत्थान। राणा प्रताप, दुर्गादास, गोविंदसिंह जैसे आदर्श पात्रों के द्वारा वे हिंदू-संस्कृति के उज्ज्वल-उदात्त स्वरूप को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। दूसरा सोपान है अंतर्जातीय अथवा सांप्रदायिक एकता। सांप्रदा-यिक वैमनस्य का विरोध 'प्रताप सिंह' की मेहरुन्निमा तथा 'दुर्गादास' दिलेर खाँ के प्रयत्नों में मिलता है। तीसरा सोपान है विश्व-बंधुत्व। 'चंद्रगुप्त' की हेलेन पूर्व-पश्चिम के स्नेह-बंधन को बनाने के लिए चंद्रगुप्त से विवाह करती है। इस प्रकार लेखक के लिए इतिहास युग-धर्म तथा युग-चेतना का व्याख्यान है।

राय के साहित्य में नारी के प्रति नवीन स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण मिलता है। इनके नाटकों में नारी के दो चित्र उभरते हैं। एक में वह सरल, सुकुमार, संवेदनशील तथा भावुकता की मूर्ति है। मेहरुन्निमा, दौलत उन्निसा, रजिया, मानसी, लैला, खदीजा, पियारा, छाया भावप्राण रोमानी पात्र हैं। कहीं-कहीं नारी पुरुष-पात्र के लिए प्रेरणा-स्रोत भी है। जैसे इरा, मेहर तथा मन्व-वती। दूसरे चित्र में नारी सौंदर्य एवं यौवन के गर्व तथा मादक प्रभाव से अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ पूर्ण करना चाहती है। नूरजहाँ तथा गुलजार जहाँगीर और औरंगजेब के हृदय तथा साम्राज्य पर एकच्छत्र अधिकार कर लेती है।

राय ने बँगला में नवीन नाट्य-शिल्प का सूत्रपात किया है। इन पर पश्चिमी नाटककारों—विशेषतया शेक्सपियर—का गहरा प्रभाव पड़ा है। ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों की जिस परंपरा का उन्मेष उन्नीसवीं शती में हुआ था, उसको चरम उत्कर्ष पर पहुँचाने का श्रेय श्री राय को ही है। ये अपनी धारा के सर्वाधिक सशक्त एवं प्रभावशाली नाटककार हैं और इनके नाटक अपने युग या प्रदेश के ही नहीं, अपितु भारतीय नाट्य साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि हैं।

राय, दीनेंद्रकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1869; मृत्यु—1943 ई०]

दीनेंद्रकुमार राय उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण के कहानी एवं रेखाचित्रकार थे। इन्होंने कविताएँ भी लिखीं और अँग्रेज़ी जासूसी उपन्यासों के अनुवाद भी किये तथा उनके अनुकरण पर उपन्यास लिखे भी। दीनेंद्रकुमार की प्रसिद्धि का सबसे बड़ा कारण इनके द्वारा रचित ग्रामीण रेखाचित्र है। इनका 'पल्लीचित्र' (1904) बँगला साहित्य की स्थायी संपत्ति है। 'पल्ली-वैचित्र्य', 'पल्ली-चरित्र' एवं 'पल्लीकथा' भी विशेष आनंददायक रचनाएँ हैं।

रायबहादुर शेषाद्रि *(म० पा०)*

यह प्र० के० अत्रे (दे०) के 'साष्टांग नमस्कार' प्रहसन का नायक है। इसका यह विश्वास है कि जीवन में सफलता प्राप्त करने का एकमात्र अमोघ अस्त्र है साष्टांग नमस्कार। इसी से यह अपने संपर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को साष्टांग नमस्कार करने का सद्परामर्श देता है। इसकी यह दृढ़ धारणा है कि प्रत्येक रोग की एकमात्र रामबाण औषधि साष्टांग नमस्कार ही है। यह अपने इस साष्टांग नमस्कार के महद् अनुष्ठान प्रवासकाल में रेलगाड़ी के डिब्बे में ही करने लगता है और स्थानाभाव की विकट परिस्थितियों में मन-ही-मन साष्टांग नमस्कार की प्रक्रिया को दोहराता है। वस्तुतः रायबहादुर की इस प्रवृत्ति के मूल में महाराष्ट्र की मिरज रियासत के महाराज की 'साष्टांग नमस्कार' की आज्ञा पर कटाक्ष है। रायबहादुर अपने चारित्रिक वैशिष्ट्य के कारण दर्शकों को भी दूर तक प्रभावित अवश्य करता है, परंतु उसमें सूक्ष्म निरूपण-शक्ति का सर्वथा अभाव है। रायबहादुर शेषाद्रि के अतिरंजित चरित्र के माध्यम से हास्य के विधान द्वारा कतिपय सामाजिक दोषों की विडंबना दिखाकर उनको दूर करने का स्तुत्य प्रयास किया गया है।

राय, राजकिशोर *(उ० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

छतावर, पुरी इनका जन्म-स्थान है। कई वर्षों तक इन्होंने उड़ीसा के शिक्षा-विभाग में काम किया है। ये सुदक्ष कलाकार और सजग शिल्पी हैं। इनका शिल्पी मन एक विदग्ध नागरिक का मन है। स्वतंत्रता-पूर्व की उड़िया कहानी और उपन्यास-साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान है। आरंभ में इनकी रचनाओं में कला और दर्शन का सुंदर समन्वय मिलता है किंतु बाद में क्रमशः अधिक विचार-बोझिल होती गई हैं। उनमें विविध सामाजिक, राजनीतिक, विश्व आर्थिक, वैयक्तिक तथा जीवन-समस्याओं का विवेचन किया गया है और आज के परिकल्पित जीवन पर एक गंभीर व्यंग्य मिलता है। यद्यपि अपनी कहानियों में इन्होंने कलापक्ष-संबंधी अनेक प्रयोग किये हैं, फिर भी वे क्रमशः आत्मकेंद्रित और दार्शनिकता से दुर्वह होती गई हैं। भाषा-शैली साहित्यिक गरिमा से युक्त है। 'एहि कि देवायतन' (क०), 'शोणित काव्य' (क०), 'नील लहरी' (क०), 'जीवन-संगीत' (क०) (दे०); 'जयश्री' (उप०), 'मन्नर मृणाल' (उप०), 'विकच शतदल' (उप०), 'अशोक चक्र' (उप०), 'जयशंख' (उप०), 'कलिंग शिल्पी (एकांकी नाटक); 'साहित्य' और साहित्यर तत्त्व' (समालोचना) आदि इनकी रचनाएँ हैं।

राय, राधानाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1948 ई०; मृत्यु—1908 ई०]

युगप्रवर्तक राधानाथ पूर्वी और पश्चिमी संस्कृति के समन्वय के प्रतीक थे। कला व विषयवस्तु दोनों की दृष्टि से उनका साहित्य असाधारण एवं नवीन है। राधानाथ-मधुसूदन की सम्मिलित रचना, 'कवितावली' (दे०) से ही आधुनिक युग प्रारंभ होता है। प्रकृति के उपासक तथा भाषा के संस्कारक राधानाथ-जैसी रचनात्मक प्रतिभा, ललित सौंदर्य-बोध और उर्वर कल्पना उस युग की समृद्ध अन्य भारतीय भाषाओं में पाना दुर्लभ है। अँग्रेज़ी कवि स्कॉट की तरह इन्होंने उड़ीसा की रीति-नीति, किंवदंतियों तथा कहानियों को अमर बना दिया है।

राधानाथ का जन्म बालेश्वर मे हुआ था। इनकी शिक्षा केवल एफ० ए० तक थी, किंतु इनका अध्ययन व्यापक था। राधानाथ का अँग्रेज़ी, ग्रीक, बँगला, हिंदी, सस्कृत तथा मध्ययुगीन उडीसा पर अधिकार था। शिक्षा विभाग मे काम करत हुए इन्होन सपूर्ण उडीसा का भ्रमण किया था। जीवन की इस जीवत अनुभूति व विशाल पर्यवेक्षण का व्यापक प्रभाव इनके साहित्य म दिखाई पडता है। उडीसा की मनोरम प्रकृति अपनी नैसर्गिक श्री-सुषमा के साथ इनके काव्य मे उतर आयी है।

कलाकार एव शिल्प निपुण राधानाथ ने ग्रीक व अँग्रेजी कथावस्तु का इतना सफल आरोपण यहाँ के परिवेश, यहाँ के जीवन व कथावस्तु पर किया है कि इनके विदेशीपन का आभास ही नही होता। इनकी छ काव्य-कृतियो—'केदार गौरी', 'नदिकेश्वरी', 'उषा', 'पार्वती', 'ययाति-केशरी तथा महायात्रा (दे०) पर ग्रीक व अँग्रेज़ी साहित्य की विषयवस्तु का प्रभाव है। 'चिलिका' इनकी सर्वोत्तम रचना है। इसमे प्रकृति का मानवीकरण हुआ है। इनके प्रबध-काव्य परपरागत प्रबध-काव्य से बहुत भिन्न है, और इसी व्यतिक्रम म राधानाथ की प्रतिभा का अक्षय सौंदर्य अतर्निहित है। इनकी सस्कृत-रचना 'भारत वदना' भारत के प्रारभिक राष्ट्रीय गीतो मे से है। 'इतालीय युवा और 'विवेकी इनकी सशक्त गद्य-रचनाएँ हैं।

राय, रामशकर *(उ० ले०)* [समय—1858 ई०]

आधुनिक उडिया-नाट्य-साहित्य के प्रवर्तक श्री जगन्मोहन लाला (दे०) और उनकी नाट्य कृति, 'बाबा जी' (दे०) के बाद (जो आधुनिक उडिया-साहित्य का प्रथम नाटक है), नाटक एव उपन्यास दोनो ही क्षेत्रो मे, अग्रदूत मे श्री रामशकर राय का आगमन हुआ है। यद्यपि नाटककार के रूप म य अधिक प्रसिद्ध हैं, फिर भी इनका 'विवासिनी उपन्यास, जो अपनी सस्कृतगर्भित भाषा-शैली के कारण उतना लोकप्रिय नही हो सका, उडिया-साहित्य मे आधुनिक शैली पर रचित प्रथम सफल उपन्यास है। 'प्रेमतरी' इनकी काव्य-रचना है।

किंवदती पर आधारित 'काची कावेरी' (दे०) नाटक इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिस जातीयता, भक्ति-भाव, आधुनिक सुरुचिबोध तथा मानसिक द्वद्व ने अनुपम रमणीयता प्रदान की है। इसम विषयवस्तु की परिकल्पना तथा शिल्प अत्यत परिमार्जित है। दक्षिण की राजकुमारी पद्मावती के प्रति गजपति महाराज पुरुपोत्तम देव का अगाध प्रेम, पद्मावती के पिता द्वारा अपमानित राजसी हृदय का आहत अह, क्षत्रिय की अमोघ प्रतिज्ञा और उससे प्रेरित हृदय के सकल्प विकल्प के माध्यम से पुरुपोत्तम देव का अत सौंदर्य और नाटक का कलावैभव निखर उठा है।

आधुनिक अभिरुचि उत्पन्न करने म इनके नाटको व प्रहसनो का विशेष महत्व है। इन्होने अपन नाटको म भारतीय नाट्य-तत्त्वो का पूर्णत पालन किया है। हिंदी की अनेक राग-रागिनियाँ भी इनकी नाटकीय सगीत योजना मे अतर्मुक्त है। नाट्य रचना-शैली पर सस्कृत व प्राचीन जात्रा साहित्य का प्रभाव स्पष्ट है। पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक एव समस्यामूलक अनेक नाटको की रचना कर इन्होने उडिया-नाट्य-साहित्य को परिपुष्ट व उन्नत बनाया है।

रायवाचकमु *(ते० कृ०)*

यह एक चारित्रिक गद्य-काव्य है। इसमे कृष्णरायलु के जीवन-चरित का वर्णन सरल व्यावहारिक भाषा मे किया गया है। इसमे यह लिखा गया है कि यह विश्वनाथ नायकुडु के पास किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा भेजा गया एक निवेदन है। विश्वास किया जाता है कि विश्वनाथ नायकुडु मधुरा राज्य का सस्थापक नही है और वह दूसरे कृष्णप्पा (1595-1601 ई०) का छोटा भाई था। इस गद्य-काव्य म विजयनगर का वृत्तात, कृष्णरायलु की विजय-यात्राएँ आदि विषय वस्तु के रूप म प्रस्तुत हुई हैं। बीच-बीच मे फारसी शब्दा का प्रयोग भी इसमे मिलता है। कई स्थानो पर इसके वाक्य बहुत लबे हो गये हैं। फिर भी भाषा सरल, सशक्त एव सार्थक है।

राय, शशिभूषण *(उ० ले०)* [जन्म—1876 ई०, मृत्यु—1953 ई०]

लेखक के रूप मे शशिभूषण अपने पिता राधानाथ राय (दे०) के सच्चे उत्तराधिकारी हैं। शशि-भूषण की गद्य-सृष्टि राधानाथ की काव्य-सृष्टि की परि-पूरक है। इनका काव्यात्मक गद्य अपनी चित्रमय वर्णन-शैली के कारण विशेष रूप मे आकर्षक बन गया है। व्यापक

भ्रमण के कारण उड़ीसा की प्रकृति, उसकी संस्कृति, उसके जीवन के विविध रूपों के साथ शशिभूषण का पिता के समान घनिष्ठ एवं प्रत्यक्ष परिचय था और प्रकृति के साथ तो इनका रागात्मक संबंध था। शहरी जीवन से दूर महानदी के वक्ष पर प्रसारित शांत, श्यामल, मनोरम द्वीप धवलेश्वर में ये अपना अधिकाश समय बिताते थे। 'उत्कल प्रकृति' इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। उत्कल-ऋतु-चित्र इनकी दूसरी उच्च कोटि की रचना है। 'कनिका' दर्शन' यात्रा-साहित्य संबंधी है।

राय, सुकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1887 ई०; मृत्यु—1923 ई०]

उपेंद्रकिशोर रायचौधुरी (दे०) के पुत्र एवं सत्यजित राय के पिता सुकुमार राय (चौधुरी) बँगला शिशु-साहित्य के एक अविस्मरणीय लेखक हैं। आठ वर्ष की अवस्था में ही इनकी कविता उस समय की विख्यात शिशु-पत्रिका 'मुकुल' में प्रकाशित हुई थी। बाद में अपने पिता के द्वारा प्रकाशित 'संदेश' (1913) में इनकी शिशु-कविताएँ प्रकाशित होने लगी थीं। सुकुमार राय के कतिपय श्रेष्ठ ग्रंथ 'संदेश' के माध्यम से प्रकाशित हुए थे जिनमें 'आबोल-ताबोल' (दे०) की आश्चर्यजनक कविताएँ 'हयबरल', 'पागलादाश' की मजेदार कहानियाँ एवं 'लक्ष्मणेर शक्ति शेल' तथा 'अबाक जलपान' नाटक उल्लेखनीय हैं।

सुकुमार राय की 'आबोल-ताबोल' काव्य-पुस्तक ने बँगला-साहित्य को एक नया काव्य-रूप प्रदान किया है। बच्चों के मनोविनोद के लिए 'बँगला छड़ा' (दे० सरकार, योगेंद्र नाथ) के अनुरूप 'आबोल-ताबोल' की रचना की जाती है। अंतर केवल इतना ही है कि छड़ा में जहाँ तर्क-बुद्धि का योग रहता है वहाँ आबोल-ताबोल असंबद्ध भाव एवं बुद्धिहीनता के आधार पर रचे गये अंत्यानुप्रास-युक्त ऐसे गीत होते है जिनकी एक विशेष लहजे में हास्यकारक आवृत्ति की जाती है। सुकुमार राय ने इस प्रकार की कविताओं की रचना कर शिशुओं के लिए ऐसे अपरूप स्वप्नलोक की सृष्टि की है जहाँ गीत में फूल 'ठास ठास द्रुम द्राम' जैसे पटाखे की आवाज मे खिलते है और उसकी खुशबू तीर की तरह सनसन करती हुई भागती चलती है। इस प्रकार की असंभाव्य कल्पनाश्रित कविताओं की रचना कर इन्होंने शिशु के समान अकृत्रिम अर्थहीन हँसी बिखराई है।

राय, हेमेंद्रकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1888 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

कहानी-उपन्यास एवं कविताओं के रचयिता हेमेंद्रकुमार राय की प्रसिद्धि का बहुत बड़ा कारण इनके द्वारा रची गई बच्चों की रहस्य-रोमांचकारी कहानियाँ एवं उपन्यास हैं। इनकी कविताओं की पुस्तक 'यौवनेर गान' में सत्येंद्रनाथ दत्त का प्रभाव स्पष्ट है। कहानी-संग्रहों में 'पसरा' (1915), 'मधुपर्क' (1917), 'पद्म-काँटा' (1932), 'वेनोजल' (1924) आदि प्रसिद्ध हैं। उपन्यासों में 'जलेर आल्पना' (1919), 'कालवैशाखी' (1921), 'पद्मकाँटा' (1924) आदि उल्लेखनीय हैं। कथा-साहित्य की रचना मे भावुकता का आतिशय्य स्पष्ट है। यथार्थ घटनाओं के आश्रय मे ही इन्होंने 'झड़ेर यात्री' आदि उपन्यासों की रचना की है।

बच्चो के लिए रहस्य-रोमांचकारी उपन्यासों की रचना कर उन्होंने अपार जनप्रियता प्राप्त की थी। इन उपन्यासों के पात्र जयंत एवं मानिक हर बच्चे के लिए सर्वाधिक प्रिय पात्र हैं। लेखक बंगाल की बहुत-सी विख्यात पत्र-पत्रिकाओं के साथ संबंधित रहे थे एवं इनमें इनकी असंख्य कहानियाँ और कविताएँ आदि प्रकाशित होती रही थीं। शिशिर भादुड़ी द्वारा अभिनीत कालजयी 'सीता' नाटक के कुछ मनोरम गीतों की भी रचना इन्होंने की थी।

रायमंगल *(बँ० कृ०)*

दक्षिण राय का अर्थ है व्याघ्र देवता। दक्षिण बंगाल अर्थात् सुदरबन के आस-पास के इलाके में ही व्याघ्रदेवता दक्षिणराय की पूजा का सर्वाधिक प्रचलन है। मोहेंजोदारो की सीलमोहर पर भी व्याघ्रचिह्न मिलता है। भारतवर्ष की कई-एक जातियों मे व्याघ्र-पूजा का प्रचलन है। दक्षिण राय को बहुत-से विद्वान् ऐतिहासिक पुरुष मानते हैं। भाटि अंचल के राजा मुकुटमणि राय के सेनापति के रूप में दक्षिणराय का उल्लेख किया गया है।

रायमंगल कथा के दो अंश है। पूर्वार्द्ध मे मुकुंदराम के अनुसरण पर वणिक पुष्पदत्त की आख्यायिका है एवं अंत मे बड़े गाज़ी खाँ की कहानी है। हिंदू-मुसलमानों का विरोध, मुसलमानों का औद्धत्य एवं हिंदू-देवता तथा मुसलमान पीर को एकत्र करने का प्रयत्न इस काव्य मे विद्यमान है। रायमंगल के श्रेष्ठतम कवि कृष्णराम दास (दे०) है। कवि कृष्णराम का यह तीसरा ग्रंथ है।

रचना-काल है 1686 ई०। 'रायमगल' काव्य मे कुभीर देवता कालुराय एव बडे गाजी का माहात्म्य वर्णित हुआ है। अन्यान्य रायमगल काव्यकारो मे रुद्रदेव एव हरिदेव के काव्य उल्लेखनीय है।

रावण *(स० पा०)*

यह लका का राक्षस राजा था इसके पिता का नाम विश्रवस था और पितामह का नाम पुलस्त्य। इसके दस मुख थे, अत इसे दशानन, दशशीष दशग्रीव आदि कहा जाता है। इसका शरीर सुदीर्घ और बलिष्ठ था। एक अत्याचारी राजा के रूप मे इसने अनक ऋषियो, यक्षो तथा गधर्वों का वध किया। इसकी पत्नी का नाम मदोदरी था। राम (दे०) द्वारा शूर्पणखा के विरूपित किय जाने के बाद शूर्पणखा ने सीता (दे०) के सौंदर्य का वणन रावण से किया, तो उसने मारीच की सहायता से सीता का हरण कर लिया। राम और लक्ष्मण (दे०) न हनुमान (दे०) की सहायता से लका पर विजय पायी और रावण तथा उसके सबधियो का वध कर सीता का उद्धार किया। रावण को वेदो और शास्त्रो का महापडित माना जाता है। इसके नाम पर अनक ग्रथ मान जात हैं—'ऋग्वेदभाष्य कुमारतत्र प्राकृतलकेश्वर' आदि। वाल्मीकि (दे०) से लेकर इस युग तक रामायण-लेखको ने राम के साथ-साथ रावण को भी स्थान देकर मानो पुण्य की पाप पर धर्म की अधर्म पर विजय का हर्षघोष किया है।

रावण कावियम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—1946 ई०]

रावण कावियम्' पुलवर कुलद-कृत एक महा काव्य है। इसम 5 काण्ड, 56 पडलम् (अध्याय) और 2828 पद हैं। यह रूप-विधान की दृष्टि स 'कंबरामायणम' (दे०) के समान ही है। इसकी मूल विशेषता यह है कि इसमे रावण को खलनायक नही अपितु असफल नायक के रूप म चित्रित किया गया है। इसम विभीषण देशद्रोही, परिवार-द्रोही के रूप मे तथा सुग्रीव और अगद राजद्रोही के रूप म चित्रित हैं। कवि न राम और लक्ष्मण को राजनीति और युद्धकला प्रवीण सामान्य मानवो के रूप म अकित किया है। यह महाकाव्योचित नगर वर्णन आदि स युक्त है। सपूर्ण कृति विरुत्तम्' छद म रचित है। दक्षिण भारत म 1920 ई० के आसपास हुए आत्मगौरव-आदोलन के फलस्वरूप इसकी रचना हुई थी। आदोलनकर्त्ताओ ने इस बात का प्रचार किया था कि रामायण मे दक्षिण भारतीयो की निंदा है। मूलत प्रचार-काव्य होत हुए भी यह महाकाव्य अपने काव्य सौंदर्य, चरित्र चित्रण और विविध वर्णनो के लिए प्रसिद्ध है। कलात्मक सौंदर्य-युक्त इस विशालकाय महाकाव्य का तमिल साहित्य म विशिष्ट स्थान है।

रावबहादुर ठोसर *(म० पा०)*

माधव जूलियन (दे०) रचित 'सुधारक' नामक सामाजिक खडकाव्य का एक पात्र है। 'सुधारक' की रचना 1928 ई० म हुई थी। इस खडकाव्य म प्रमुख रूप से विधवा-समस्या को लिया गया है। इसम विधवा-समस्या का चित्रण ही नही किया गया, वरन समाधान भी प्रस्तुत किया गया है।

रावबहादुर ठोसर के व्यक्तित्व के माध्यम स कवि ने काँग्रेस के नरम दल क समर्थक व्यक्तियो का उपहास किया है। रावबहादुर ठोसर अत्यत गरीबी म बाल्यकाल बिताता है, बाद म पट लिखकर वह वकील बन जाता है। वकील के रूप म इसकी शोधक बुद्धि, भेदक दृष्टि, सच को झूठ तथा झूठ को सच करन की अपूर्व रसमयी वाक्शक्ति है। यह अपन आशीला क खर्च स विलायत भ्रमण करता है। यहाँ इसकी वेशभूषा अत्यत व्यवस्थित रहती है। कभी-कभी रात को मद्यपान कर लेता है। लेखक ने एक ओर इस धोय चावल-सा साफ तथा उज्ज्वल कहा है तथा दूसरी ओर बगुले जैसा दागी। एक ओर यह हरिनाम का जप, गीता का पाठ और भूपाली गायन करता है तो दूसरी ओर कलब म मद्यपान तथा स्वच्छद आचरण।

चरित्र म अनक परस्पर विरोधी विशेषताएँ होने पर यद्यपि ठोसर सदैव विद्यार्थी की मदद करता है, सार्वजनिक सस्थाओ को दान दता है तथा उसक घर पर उत्तम ग्रथो का सग्रह रहता है तथापि किसी ग्रथ का अध्ययन इसन नही किया। इस पुस्तक पढन का शौक नही है पर दिखावे के लिए उन्ह एकत्र अवश्य करता है।

राजनीति क क्षेत्र म असफल रहन पर भी यह पहल दर्जे का समाजसुधारक है, कुशल एव सफल वक्ता भी है। सरकार की ओर स रावबहादुरी प्राप्त करन की आशा स सरकार का कभी विरोध नहीं करता।

रावळ, अनंतराय *(गु० ले०)*

दे० अनंतराय रावळ ।

राशिद-उल-ख़ैरी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1868 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

जन्म-स्थान—दिल्ली। उर्दू गद्य-लेखकों में मौलाना राशिद-उल-ख़ैरी का अपना विशिष्ट स्थान है। करुण रस की गद्यात्मक अभिव्यक्ति इनके द्वारा अत्यंत मार्मिक और हृदयस्पर्शी हुई है। इनकी इस विशेषता के कारण इन्हें 'मुसव्विर-ए-ग़म' (अर्थात् 'करुण रस के चित्रकार') कहा जाता है। इनकी अनेक कृतियाँ उर्दू-साहित्य की अमूल्य निधि हैं, जिनमें 'सुबह-ए-ज़िंदगी', 'शाम-ए-ज़िंदगी' और 'शब-ए-ज़िंदगी' महत्वपूर्ण हैं। इन कृतियों में प्राचीन और नवीन दिल्ली के समाज का सजीव चित्रण किया गया है। नारी-भावना की सशक्त अभिव्यंजना में ये बेजोड़ हैं। बेगमों की भाषा पर इन्हें अद्भुत अधिकार प्राप्त है और अपनी इस विशेषता के माध्यम से वे नारी जाति के सुधार तथा उसकी शिक्षा के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे।

राष्ट्रगानमु *(ते० कृ०)*

'राष्ट्रगानमु' श्री तुम्मिल सीतारामभूर्ति चौधरी (दे०) की राष्ट्रीय कविताओं का प्रसिद्ध संकलन है। इन कविताओं में देश के प्रति कवि का अनन्य अनुराग, उसकी वर्तमान स्थिति पर तीव्र क्षोभ एवं भविष्य की उन्नति के लिए कार्यरत होने एवं बलिदान करने का आवाहन आदि का परिचय मिलता है। तेलुगु की राष्ट्रीय कविताओं मे इन कविताओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता *(हिं० प्र०)*

इस काव्य-प्रवृत्ति की 'मूल भावना है देशभक्ति।' देशभक्ति में प्राधान्य तो निस्संदेह 'उत्साह' का ही है परंतु उसमें राग का आधार भी वर्तमान रहता है। 'इस प्रवृत्ति का प्रारंभ भारतेंदु-युग से ही माना जाता है। क्योंकि उसके पहले वीरगाथा-काल का उत्साह व्यक्तिकेंद्रित था और रीतिकालीन वीरकाव्य में राष्ट्र की अपेक्षा धर्म ही राग का अधिक शक्तिशाली आलंबन था। भारतेंदु-युग में राजनीतिक निराशा के कारण राष्ट्रीयता का स्वर प्रखर नहीं हो सका। कवियों ने या तो राष्ट्रभक्ति के साथ राजभक्ति का मिश्रण किया या प्राचीन गौरव, विदेशी सभ्यता से घृणा और वर्तमान अधःपतन के माध्यम से अपनी राष्ट्रभक्ति को परोक्षतः ध्वनित किया। गांधी के नेतृत्व ने उदात्त और प्रखर राष्ट्रीयता के द्वार खोल दिए। फलतः छायावादी (दे० छायावाद) कवियों की संयत और नवीन (दे०), माखनलाल चतुर्वेदी (दे०), दिनकर (दे०) आदि की उग्र राष्ट्रभक्तिपूर्ण कविताएँ प्रकाश में आईं। पराधीनता और दमन के विरुद्ध अपने असंतोष को इन कवियों ने अहिंसात्मक उत्साह द्वारा व्यक्त किया है। इस उत्साह में बलिदान की भावना भी है और भविष्य की कल्पना भी। राष्ट्र के साथ रागात्मक स्वरूप की व्यंजना के लिए मातृभूमि का मानवीकरण और प्राचीन गौरव का चित्रण किया गया है। 1947 ई० के पश्चात् स्वतंत्रता के अभिनंदन और विश्वशांति के जयगान में कविताएँ लिखी गईं। चीन और पाकिस्तान के आक्रमणों ने भी कवियों के शौर्य को उद्‌बुद्ध किया और फलतः 'परशुराम की प्रतीक्षा' जैसी रचनाओं का एक दौर फिर चला। राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य की रचनाएँ समसामयिक आंदोलन की उत्तेजना से उत्पन्न हुई हैं। उनमें आत्मा की गहन अनुभूति प्रायः दुर्लभ रहने से काव्यतत्त्व की मात्रा कम मिलती है। परंतु अपने उत्कर्ष में यह काव्य-प्रवृत्ति हिंदी-साहित्य में विशेष गौरव की अधिकारिणी है।

रास *(पं० पारि०)*

यह पंजाब का एक अतिप्रिय लोक-नाट्य है। औपचारिक रूप से पंजाब में साहित्यिक नाटक की परंपरा के अभाव के कारण शतियों तक यह लोक-नाट्य ही जनता की नाट्य-रुचि को परितृप्त करता रहा। रास में प्रायः कृष्ण-चरित को ही पेश किया जाता है। इस प्रकार यह जनता की धार्मिक रुचि को भी तृप्त करती रही है।

रासपंचाध्यायी *(हिं० कृ०)*

'भागवत (दे०) पुराण' के अंतर्गत उन्नीसवें अध्याय से तैंतीसवें अध्याय तक पांच अध्याय 'रासपंचाध्यायी' कहलाते हैं। शरद-पूर्णिमा में ज्योत्स्ना-धवलित स्निग्ध वातावरण में कृष्ण गोपियों के साथ मिलकर

मडलाकार रास रचाते है, यही इन अध्यायो का मुख्य प्रतिपाद्य है। वैष्णव भक्तो ने इस रासलीला को ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति-मार्ग की सरणि माना है। इस लीला का मुख्य अभिप्रेत काम विजय रूप फल-प्राप्ति है।

'भागवत पुराण' के इन पाँच अध्यायो के आधार पर हिंदी के अनेक कवियो ने 'रासपचाध्यायी' काव्य लिखे है। इन कवियो मे सूरदास (दे०), नददास (दे०), रहीम (दे०), हरिराम व्यास, नवलसिह आदि प्रसिद्ध हैं। सूरदास ने इस प्रसग का बहुत विस्तारपूर्वक मौलिक वर्णन किया है। हरिराम व्यास-कृत 'रासपचाध्यायी' 'त्रिपदी' छद म ग्रथित है, रहीम की पचाध्यायी अप्राप्य है एव नददास की पचाध्यायी रोला छद म है तथा इसकी भाषा व्रज है। रस और गुण की सृष्टि बडी सुदरता के साथ हो गई है। करुण रस, माधुर्य गुण, पद-योजना तथा भावो की अभिव्यजना की दृष्टि से नददास की 'रास-पचाध्यायी' अद्वितीय है। इस प्रकार के काव्य-ग्रथो मे नददास कृत 'रासपचाध्यायी' अद्वितीय है। इस प्रकार के काव्य ग्रथो मे नददास कृत 'रासपचाध्यायी' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

राससहस्रपदी *(गु० कृ०)*

नरसिंह महेता की यह रचना पद्रहवी शती मे लिखी गई थी। इस रचना का नाम सहस्रपदी है पर उसमे केवल 113 पद हैं। 'श्रीमद्भागवत' की 'रासपचाध्यायी' (दे०) के आधार पर इस कृति की रचना हुई है। श्रीकृष्ण का वशी-नाद सुनकर गोपियाँ अपने अस्तित्व को भूल जाती हैं और अपने गृहकार्य छोडकर श्रीकृष्ण के पास पहुँच जाती हैं। श्रीकृष्ण उनके साथ रासलीला करते है। गोपियो मे अभिमान आ जाता है और उनका गर्व-खडन करने के लिए श्रीकृष्ण अतर्धान हो जात हैं। गोपियाँ विलाप और पश्चात्ताप करती है—तब श्रीकृष्ण पुन प्रकट होकर उनके साथ रास रचात है। इस काव्य मे रासलीला के समय नरसिंह महेता (दे०) प्रत्यक्ष उपस्थित हो अपनी नजरो से रासलीला दखत हैं। इस प्रकार रासलीला का वर्णन किया गया है। इस काव्य म नरसिंह ने कुछ नये तत्व जोडे हैं। 'राससहस्रपदी' म जब शृगार का वर्णन आता है तब नरसिंह की काव्यकला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। गोपियो के मनोभावो का भी रोचक चित्र खीचा गया है।

रासा *(प० प्र०)*

रासा श्रीकृष्ण एव गोपियो के स्वाँग धारण करके कृष्णलीला करने की विधि है। पजाब के गाँवो मे रासधारी मडलियाँ घूमती थी। इन रासो म राधा का रूप भी बालक ही धारण करते थे। रास का धार्मिक एवं पौराणिक महत्व है। रास मे शृगार-भावना को महत्व प्राप्त था। गुरु नानक देव (दे०) ने 'आसा दी वार' मे अपने समय के रासधारियो का विरोध किया है।

पजाब मे प्रचलित 'रास' का सबध हिंदी-साहित्य मे प्रचलित रासो-साहित्य म कदाचित् नही है।

रासेलस *(म० कृ०)* [रचना-काल—1867 ई०]

डा० जॉनसन के इसी नाम के प्रसिद्ध अँग्रेजी उपदेश प्रधान रोमास का कृष्णशास्त्री चिपळूणकर (दे०) द्वारा अनुवाद पुस्तकाकार प्रकाशन से पाँच वर्ष पूर्व 'शाळापत्रक' नामक पत्रिका मे प्रकाशित हुआ था। उपन्यास समझकर पढने वालो को इसस निराशा होगी क्योकि इसम काल्पनिक कथा जैसे चमत्कारपूर्ण प्रसग न होकर कथा के माध्यम से जीवन का मार्मिक विवेचन है, जगत् की विविध स्थितियो के गुण-दोषो का प्रतिपादन है। अबीसीनिया का राजकुमार ऐश्वर्यपूर्ण जीवन से ऊबकर बहिन नेक्या तथा दार्शनिक इमलक के साथ मिस्र देश को भाग जाता है और वहाँ जीवन की विविध अवस्थाओ का अध्ययन कर पुन अबीसीनिया लौट आता है। उसे पता चलता है कि सुख कही किसी को नही है—न दार्शनिक को, न सन्यासी को और न धनवान को, केवल सद्गुणो से ही आत्मा को शाति मिलती है। पुस्तक का आकर्षण प्रसगो एव प्रबधो म निहित मानवता, ज्ञान एव विषाद म है। चिपळूणकर की इस कृति का महत्व दो दृष्टियो से है—प्रथम, यह अनुवाद पाठको का मनोरजन मात्र करन के लिए नही किया गया जैसाकि उस समय प्रचलन था, दूसरे, मराठी पाठको की अभिरुचि परिष्कृत करने और अँग्रेजी पुस्तको क विचारो को मराठी म रूपातरित करन के लिए भी इसका ऐतिहासिक महत्व है।

राही, रहमान *(कश्० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

इन्होंने फारसी और अँग्रेजी मे उच्च शिक्षा

प्राप्त की। लड़कपन से ही ये होनहार और मेधावी छात्र थे। 1947 ई० के बाद ही इनकी कवित्व-प्रतिभा मुखरित हुई। सामाजिक कुरीतियों और राजनीतिक परिस्थितियों के अंतर्मन की सुप्त भावनाओं को वाणी प्रदान की। इनके कविता-संग्रह 'नवरोज सबा' (नववर्ष के प्रथम दिवस का समीर) पर इन्हें 1960 में साहित्य अकादमी-पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त इनके दो अन्य संग्रह 'सनःवग्य साज' (मनमोहक संगीत) और 'सुबहुक सोदा' (प्रभात का आह्लाद) प्रकाशित हुए हैं। श्री गुलाम नबी फ़िराक के साथ मिलकर इन्होंने 'यिम सॉन्य आलव' (यह हमारी गुहार) नाम का संग्रह भी प्रकाशित किया है। इन्होंने तुकांत एवं अतुकांत छंदों में रचना की है। क्रमबद्ध गीत भी लिखे हैं और स्फुट छंद भी। एकालाप (Monologues) और संबोध-गीति (Odes) की भी रचना की है। इनकी भाषा फ़ारसी-मिश्रित है, और उर्दू छंदःशास्त्र की बहरों की तर्ज पर इन्होंने कश्मीरी छंदों की रचना की है। इनकी शैली बोझिल मालूम पड़ती है यद्यपि इनकी रचनाओं में भावों की गंभीरता है।

रिजवी, शाह इनायत अल्लाह (*सिं० सं०*) [जन्म—1626 ई०; मृत्यु—1713 ई० के आसपास]

शाह इनायत अल्लाह रिजवी का जन्म सिंध के नसरपुर नामक गाँव में रहने वाले रिजवी खानदान के सैयदों के घर में हुआ था। इनके शिष्य आदर और श्रद्धा से इन्हें 'मियाँ शाह इनात' भी कहते है। ये बचपन से ही स्वतंत्र विचारों वाले व्यक्ति थे और मजहबी पाबंदियों का पालन करने की इन्हें चिंता न थी। लगभग चालीस वर्ष की उम्र में इनका झुकाव आत्मिक मार्ग की ओर हुआ था और ये सक्खर (सिंध) के सूफ़ी दरवेश सैयद खैरुद्दीन के शिष्य बन गये थे। इन पर हिंदू संन्यासियों और नाथपंथी योगियों का भी प्रभाव पड़ा है।

सिंध यूनिवर्सिटी के प्राध्यापक डा० नबी बख्श खान बलोच (दे०) ने इनके कलाम का संग्रह कर और आलोचनात्मक ढंग से उसका संपादन कर 1963 ई० में 'मियाँ शाह इनात जो कलाम' नाम से उसे प्रकाशित कराया है। ये सिंध के पहले सूफ़ी संत कवि है जिनके काव्य में चारण-काव्य और सूफी-संत-काव्य की शैलियों का सुंदर संगम दृष्टिगत होता है। इस काव्य की प्राप्ति से शाह अब्दुल करीम (दे०) से लेकर शाह अब्दुल लतीफ़ (दे०) तक सिंधी-कविता के विकास की एक मुख्य कड़ी प्रकाश में आ गई है। ठेठ सिंधी शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग, अर्थ की गंभीरता, वर्णन में प्रवाह, अलंकारों का यथास्थान उचित प्रयोग, काव्य में संगीतात्मकता—ये शाह इनायत अल्लाह की कृति की मुख्य विशेषताएँ है।

रिट्ठणेमि चरिउ (*अप० कृ०*)

स्वयंभू (दे०)-रचित यह ग्रंथ 'महाभारत' (दे०) और कृष्ण-कथा से संबद्ध है। इसमें चार कांड हैं—यादवकांड, कुरुकांड, युद्धकांड और उत्तरकांड। यह पौराणिक शैली में लिखा हुआ महाकाव्य है। कृतिकार ने इसे 'हरिवंसकहा' और 'हरिवंसपुराण' कहा है।

यादवकांड में 13, कुरुकांड में 19, युद्धकांड 60 और उत्तर कांड में 20 संधियाँ हैं। इनमें से आदि की 92 संधियाँ स्वयंभू द्वारा रचित है। 93 से 99 तक की संधियाँ भी संभवतः स्वयंभू ने ही रची थी। शेष संधियाँ उनके पुत्र त्रिभुवन स्वयंभू द्वारा रचित हैं। अंत की कुछ संधियों में मुनि जसकित्ति का भी हाथ है।

कृतिकार ने यादवकांड में कृष्ण के जन्म, उनकी बाल-लीला, उनके विवाह, प्रद्युम्न आदि की कथाएँ एवं नेमि की जन्म-कथा का वर्णन किया है। कुरुकांड की 19 संधियों में कौरव-पांडवों के जन्म, उनके बाल्यकाल, शिक्षा आदि, उनके पारस्परिक वैमनस्य, युधिष्ठिर के जुए में सब कुछ हारने एवं पांडवों के वनवास की कथा दी है। युद्धकांड में कौरव-पांडवों के युद्ध और कौरवों के पराभव की कथा प्रस्तुत की गई है। उत्तर कांड में जय-पराजय का विश्लेषण करते हुए कुछ आध्यात्मिक निष्कर्ष निकाले गये हैं।

जिस प्रकार स्वयंभू ने अपने 'पउमचरिउ' (दे०) में *राम-कथा का जैनीकृत रूप अपनाया है* उसी प्रकार 'रिट्ठणेमि चरिउ' में भी कृष्ण-कथा का जनमत-सम्मत रूप वर्णित है। जैन-मतानुसार राम और कृष्ण दोनों महामानव हैं। मानव के सद्गुण और उनकी दुर्बलताएँ उनमें भी दिखाई गई है। राम, लक्ष्मण और रावण 63 शलाका पुरुषों में से क्रमशः आठवें बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव माने गये है। कृष्ण और बलराम क्रमशः नवें बलदेव और वासुदेव हैं। जैन-कृष्ण-कथा का हिंदू-कृष्ण-कथा से पार्थक्य सूचित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण अंश नेमिचरित है। हिंदू-कथानुसार कृष्ण

सर्वोपरि हैं, जैनकथा मे जिनेंद्र नेमि सर्वोच्च हैं।

इस कृति मे वर्ण्य-विषय का विस्तार है अत-एव वर्णन की बहुलता स्वाभाविक है, किंतु वर्णन शुष्क इतिवृत्तात्मक नही अपितु काव्यानुकूल सरसता से सयुक्त है।

इस कृति मे कवि की काव्य-प्रतिभा एव कल्पना-चमत्कार को प्रदर्शित करने वाले अनेक स्थल हैं। स्वयभू ने 'पउमचरिउ', 'रिट्ठणेमि चरिउ' दोनो ग्रथो मे कथा-प्रवाह के अतर्गत आये मार्मिक प्रसगो के विस्तृत वर्णन किये है। स्थान-स्थान पर रूप-वर्णन, प्रकृति-वर्णन और वस्तु-वर्णन सरस और चित्ताकर्षक बन पडे हैं। रूप-वर्णन के अतर्गत कवि ने नारी के अग-प्रत्यग का ही अधिकाश मे वर्णन करते हुए प्राय परपरागत उपमानो का प्रयोग किया है। इतना होते हुए भी स्थान-स्थान पर मौलिक उद्भावनाएँ भी दृष्टिगत होती है।

प्रकृति-वर्णन के प्रसग मे अनेक ऋतुओ के वर्णन मिलते हैं। ऋतुवर्णन के अतिरिक्त प्रकृति के अन्य अगो जैसे स्वर, नदी, वन, पर्वत, समुद्र, सध्या सूर्योदय, चद्रोदय आदि के महाकाव्योचित वर्णन भी उपलब्ध होते हैं। कही-कही नामपरिगणन-शैली के भी दर्शन हो जाते है।

स्वयभू ने जैन होते हुए भी युद्धो के वर्णनो मे रुचि प्रकट की है, यही कारण है कि ये बडे सजीव हो गये है।

'पउमचरिउ' की तरह इस कृति मे भी, वीर, शृगार, और शात रस की ही प्रमुखता है। वीर और शृगार दोनो का पर्यवसान शात रस मे होता है।

इस कृति की भाषा परिनिष्ठित अपभ्रश है। यत्र-तत्र सस्कृत-पदावली प्रयुक्त हुई है। भाषा का भावानुकूल प्रयोग किया गया है। मुहावरो और लोकोक्तियो से यह सजीव हो उठी है। स्थान-स्थान पर सूक्तियो के प्रयोग से भाषा बलवती और भाव-प्रकाशन म सक्षम हो गई है।

कडवको के मुख्य भाग मे पद्धडिया, वदनर और पारणक प्रधान रूप से प्रयुक्त हुए हैं। कडवको के आरभ और अत मे प्रसगानुकूल विविध छद प्रयुक्त हुए हैं।

रिपोर्ताज (पारि०)

रिपोर्ताज आधुनिक भारतीय भाषाओ की बहु-प्रचलित विधा नही है। फ्रेंच मूल के इस शब्द का अर्थ अंग्रेजी के 'रिपोर्ट' जैसा ही है, जिसका अर्थ है किसी विशिष्ट घटना या गतिविधि का व्यक्तिपरक सूचनाकन। यह निश्चय ही पत्रकारिता के सवाद-प्रेषण तथा तथ्यो की जाँच के पश्चात् दिए जाने वाले प्रतिवेदन से भिन्न होता है। लेखक की व्यक्ति-चेतना से निष्पन्न होने पर भी रिपोर्ताज की विषयवस्तु तथ्यपरक ही होती है। समाचार-पत्र के सवादो और साहित्यिक रिपोर्ताज मे मूल अतर यही है कि पहले मे तथ्य का निरूपण नितात वस्तु-परक शैली मे होता है, दूसरे मे रचनाकार की निजी दृष्टि का वैशिष्ट्य उसे सर्जनात्मक रूप देता है।

'रियाज़', खैराबादी (उर्दू० ले०) [जन्म 1854 ई०; मृत्यु—1934 ई०]

नाम—रियाज़ अहमद, उपनाम—'रियाज़', जन्म-स्थान—खैराबाद (जिला सीतापुर)। अमीर मीनाई' (दे०) के श्रेष्ठ शिष्यो म इनकी गणना होती है। ये समर्थ एव कुशल कवि थे। इनका काव्य 'खमरियात-ए-रियाज़' के नाम से प्रसिद्ध हो गया है जिसका कारण है मस्ती और मादकता का सजीव चित्रण। इन्होंने हाला-वादी भावना से ओतप्रोत यथेष्ट सशक्त कविताओ का प्रणयन किया है। कही-कही इनकी मदविह्वलता सीमोल्लघन कर धृष्टता और अश्लीलता का स्पर्श करने लगती है। इनका प्रेम-व्यापार का चित्रण भी सचमुच अद्भुत है। इनकी भाषा शुद्ध-स्वच्छ तथा शैली सरल मुहावरेदार और भावानुकूल है।

रिसवूड, ना० स० (म० ले०)

ये ऐसे रम्याद्भुत उपन्यासकार हैं जिन पर एक ओर सस्कृत तथा दूसरी ओर अरबी-फारसी के कथा-साहित्य का प्रभाव रहा है। इन्होंने तीन उपन्यास लिखे . (1) 'मजुघोषा' (1866), (2) 'विश्वासराव' (1870) और (3) 'वसतकोकिला' (1876)। तीसरा उपन्यास अपूर्ण था जिसे उनके भाई के० म० रिसवूड ने पूरा किया। 'विश्वासराव' को सामाजिक उपन्यास समझा गया पर वह है वस्तुत अद्भुतरम्य उपन्यास ही। उनके उपन्यासो म अद्भुत तत्त्वो का समावेश है—जैसे नायिका की खिडकी पर उतरनेवाला वायुयान, भूचाल, तूफान, बाढ आदि। सयोग के प्रयोग से घटना को सुगत बनाया गया है—समुद्र मे बहता बालक अपने शुभचिंतक के पास सुरक्षित पहुँच जाता है। नीत्युपदेश के लिए ये उपन्यास लिखे गए

हैं—शक्ति से बाहर काम नहीं करना चाहिए, सन्मार्ग पर चलने से अंततः सुख मिलता है। प्रकृति-चित्रण में संस्कृतावलंबी पंडित कवि की कृत्रिम, अनुप्रासमयी, श्लेषगर्भित शैली है, तो शृंगारवर्णन में फ़ारसी का भड़कीलापन और चटकीलापन। बीच-बीच में पद्यों का प्रयोग है। अन्य भारतीय भाषाओं के प्रारंभिक उपन्यासकारों के समान इनके उपन्यास भी मनोरंजन और उपदेश के उद्देश्य से ही लिखे गये हैं।

रीति *(पारि०)*

भारतीय काव्यशास्त्र का एक मौलिक काव्य-*सिद्धांत है—रीतिवाद। रीति-संप्रदाय की विधिवत्* स्थापना नवीं शती में आचार्य वामन (दे०) ने की। उनके अनुसार काव्य-सौंदर्य का निर्माण करने वाले शब्द और अर्थ के धर्मों से युक्त विशेष प्रकार की पद-रचना का नाम रीति है। यह रीति उनके मत में काव्य का प्राणतत्व है—('विशिष्टा पद-रचना रीतिः + + 'विशेषोगुणात्मा'। + + 'काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्माः गुणाः।' —काव्यालंकार-सूत्रवृत्ति, 1|2|7; 1|2|8; 3|1|1।)

वामन से पूर्व रीति-विवेचन के इतिहास का आरंभ 'नाट्यशास्त्र' (दे०) से माना जा सकता है। भरत (दे०) ने 'रीति' अभिधान का प्रयोग तो नहीं किया, किंतु 'प्रवृत्ति' के चार प्रभेदों की चर्चा की है (ना०शा० 13|37-वृत्ति), जो स्वरूपतः रीति से भिन्न नहीं है। अग्निपुराणकार ने भी भरत-निरूपित प्रवृत्ति-भेदों को किंचित् भिन्न नाम से रीति के भेदों के रूप में स्वीकार किया है (अग्निपुराण 340|1)। वामन से पूर्व भामह (दे०) ने रीति के अर्थ में वैदर्भ और गौड़—काव्य के दो भेदों का उल्लेख किया है (काव्यालंकार 1|31-1|35)। दंडी (दे०) ने रीति के लिए 'मार्ग' शब्द का प्रयोग करते हुए उसे वैदर्भ मार्ग से सीमित कर दस गुणों को उसका प्राण माना है (काव्यादर्श 1|42)। वामन के परवर्ती आचार्यों ने रीति को काव्यात्मा के रूप में तो मान्यता नहीं दी, किंतु काव्य के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में उसका विवेचन किया। आनंदवर्द्धन (दे०) ने उसे पद-संघटना का अभिधान देते हुए रसाभिव्यक्ति का साधन माना है (ध्वन्यालोक 3|6)। राजशेखर (दे०) ने वचनों के विन्यासक्रम के रूप में रीति का निरूपण किया है। कुंतक (दे०) ने रीति के अर्थ में 'मार्ग' शब्द का प्रयोग किया तथा रीतियों के भौगोलिक वर्गीकरण को अमान्य सिद्ध करते हुए रीति को 'कवि-प्रस्थान-हेतु' की संज्ञा देकर कवि के वैयक्तिक दृष्टिकोण को रीति का आधार स्वीकार किया (वक्रोक्तिजीवित 1|24)। विश्वनाथ (दे०) रीति को 'पद-संघटना' मानते हुए उसे रस की उपकर्त्री से अधिक महत्व नहीं देते। सामान्यतः रीति को भारतीय काव्यशास्त्र में काव्यशिल्प के एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में ही मान्यता प्राप्त हुई है।

रीति-काव्य *(हिं० प्र०)*

रीतिकाव्य से तात्पर्य है रीतिकाल में निर्मित काव्य, क्योंकि इसी काल में ही अधिकांशतः रीतिकाव्य *का प्रणयन हुआ था। इसकी भाषा ब्रजभाषा है।* इसके प्रणेता मूलतः कवि थे, जो कि अधिकतर राज्याश्रित थे, क्योंकि उन्होंने शृंगार रस को बहुविध रूपों में प्रस्तुत करने के उद्देश्य से, और कदाचित् परिषदों और राजपुत्रों को 'कविशिक्षा'-विषयक ग्रंथ उपलब्ध कराने के उद्देश्य से भी संस्कृत-काव्यशास्त्र के विभिन्न प्रकरणों—विशेषतः नायक-नायिका-भेद और अलंकार-विषयक प्रकरणों—के आधार पर, उन्होंने लगभग दो सौ वर्षों में शत-शत रीति-ग्रंथ लिखे, जो प्रमुखतः रीतिबद्ध और रीतिमुक्त (दे० रीतिमुक्त काव्य) इन दो वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं। रीतिबद्ध ग्रंथ—जैसे चिंतामणि (दे०) का 'कविकुलकल्पतरु', 'बिहारी-सतसई' (दे०) आदि। रीति-मुक्त ग्रंथ—जैसे घनानंद (दे०) के मुक्तक पद, आदि। इन ग्रंथों का लक्षण-पक्ष तो निस्संदेह शिथिल है, कहीं-कहीं अपूर्ण, अस्पष्ट और अव्यवस्थित भी हैं, पर इनका लक्ष्यपक्ष (उदाहरण पक्ष) काव्यत्वपूर्ण है, जिसमें शृंगार रस के अनेक पक्ष अत्यंत मनोरम रूप में चित्रित हुए हैं। प्रिया और प्रियतम का प्रणय ही इसका प्रमुख, अपितु एकमात्र विषय है। दर्शन, मिलन की उत्सुकता, मिलन के उपाय, सखी और दूती, मिलन-प्रसंग, विरह, प्रतीक्षा, भूल, मन की गाँठ, कोप, आवेग, पश्चात्ताप, चिरौरियाँ, मनुहार, पुनर्मिलन, साज-सज्जा—आदि इस प्रकार के प्रसंगों से रीति-काव्य ओतप्रोत हैं। इनमें कवि-कल्पना का अद्भुत निदर्शन देखने को मिलता है, प्रणय-संबंध की अनेक रंगीनियाँ और अठखेलियाँ पाठक को लुभाती है, और साथ ही, इस प्रणय-संबंध के माध्यम से तत्कालीन पारिवारिक और सामाजिक दशा पर भी प्रकारांतर से प्रकाश पड़ता है। यह काव्य तत्कालीन हिंदू राजाओं की विलासिता का परिचायक है कि वे किस

प्रकार से मुसलमान विलासी शासको के समान अथवा उसके आतक से घबराकर अलग-अलग अपने छोटे-छोटे राज्यो मे बटे बहुविध कलावतो के साथ, जिनमे कवि भी सम्मिलित थे एक प्रकार का 'क्लब-जीवन' व्यतीत कर रहे थे। यदि ये कविजन भूषण (दे०) कवि के समान रीति-काव्य लिखते हुए भी साथ-ही-साथ वीररस विषयक सामग्री भी प्रस्तुत करते चलते तो देश का महान उपकार करते। अस्तु ! रीतिकाल के उपरात भी इसी पद्धति पर रीतिकाव्य का निर्माण होता रहा है, किंतु वह सख्या मे बहुत ही कम है।

रीतिमुक्त काव्य *(हिं० प्र०)*

रीतिकाल मे प्रमुख वर्ग उन कवियो का है जिन्होने रस, अलकार, नायिकाभेद, शब्दशक्ति, वृत्ति आदि काव्यागो के भेदोपभेदो के लक्षण-उदाहरण रूप मे काव्य की सर्जना की थी, परतु इसी युग मे ऐसे भी कवि हुए है जिन्होने स्वय को रीति के प्रभावो से मुक्त रखकर काव्य की सच्ची आराधना की है। इस काव्यधारा के अतर्गत लाल (दे०), सूदन, महाराज विश्वनाथ सबलसिंह, जोधराज (दे०), गिरिधरदास आदि कथात्मक प्रबधकार, श्रीधर, नागरीदास, हसराज, हितवृदावनदास (दे०) आदि वर्णनात्मक प्रबधकार, वृद (दे०), वैताल, गिरिधरदास (दे० गिरिधर कविराय), दीनदयाल गिरि (दे० आदि नीति काव्यकार, भगवत रसिक, गोपालदास आदि पुरानी परपरा के भक्त कवि, आलम (दे०) घनानद (दे०), बोधा (दे०), ठाकुर (दे०) आदि प्रेम-पद्धति का निरूपण करने वाले स्वच्छद प्रेमोन्मत्त कवि के रूप मे जाने जाते हैं। रीति के प्रभाव से मुक्त इन कवियो का काव्य किसी भी दृष्टि से नगण्य नही कहा जा सकता। कारण यही है कि ये कवि मन की सूझ-बूझ के कवि थे। मन मे जब जो भाव तरगायित होता था उसे सच्ची अनुभूति के 'जामे' मे बिना किसी लाग-लपेट के व्यक्त कर देना ही इनका मुख्य अभिप्रेत था। इसके विपरीत जिन कवियो ने रीतिग्रथ लिखे है उन्होने काव्यागो के लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत करने मे स्वतत्रता से काम न लेने के कारण मन की उमग का पूरा तिरस्कार किया है। 'रीतिमुक्त काव्य' के अतर्गत प्रेम का स्वच्छद निरूपण करने वाले आलम, बोधा, ठाकुर एव घनानद शृगार के सघन एव रगीन चित्रण एव भाषा के सजीव प्रयोग के लिए हिंदी साहित्य मे काफी ख्यात हैं।

रुक्मागदचरित्रमु *(त० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवी शती ई०]

इसके लेखक का नाम चेदलुवाड मल्लना (दे०) है। इन्होने 'विप्रनारायणचरित्रमु' नामक पाँच आश्वासो का एक शृगार-काव्य भी लिखा है। 'रुक्मागद-चरित्रमु' 'द्विपद' नामक देशी छद मे लिखा गया है। यह ग्रथ अब अनुपलब्ध है। तेलुगु मे द्विपद-साहित्य अधिक पाया जाता है। पद्यबद्ध कथा द्विपदबद्ध दोनो प्रकार के काव्य लिखने मे मल्लना की प्रतिभा समान ही है। यह रचना मनोरजक है।

रुक्मिणी *(म० पा०)*

ग०त्र्य० माडखोलकर (दे०)-कृत 'रुक्मिणी' उपन्यास की सबसे प्रभावशाली नारी-पात्र रुक्मिणी नारी मे अपेक्षित सभी गुणो की प्रतिमूर्ति है। नागपुर के एक समृद्ध एव कुलीन राजघराने की सबसे बडी रानी, ममता, उदारता, पातिव्रत्य एव सदाशयता आदि गुणो से परिपूर्ण सहिष्णुता, सात्विकता एव धर्म-निष्ठा की साकार प्रतिमा है। आभिजात्य सस्कारो वाली यह तेजस्वी, स्थितप्रज्ञ और गभीर स्त्री यदि अपने पति के लिए सद्गृहिणी, मत्री और सखा है तो अपनी प्रजा एव सेवक-वर्ग के लिए ममतामयी माँ के समान आश्रयदात्री। सपत्नी को भी अपनी सगी बेटी के समान स्नेह करने वाली इस स्त्री के जीवन की दो ही आकाक्षाएँ हैं—सुहाग एव वश-वृद्धि। इसीलिए सारे दुर्गुणो के भडार पति को अपने सद्परामर्श से वह सकटो से बचाती है और वश वृद्धि के लिए अपने पति के न केवल तीन-तीन विवाह रचाती है अपितु सबसे छोटी रानी के गर्भ पर सकट के समय उसके उपचार मे तत्परता से काम ही नही करती है, नर्मदा की कठिन यात्रा करने का व्रत भी लेती है। ममता और निग्रह, निष्ठा और समर्पण-भाव की साकार मूर्ति होती हुई भी वह पातिव्रत्य को पति का दासत्व नहीं मानती। अपने पूर्वजो और घराने की प्रतिष्ठा के प्रति जागरूक यह तेजस्वी नारी अपना स्वातत्र्य नहीं गवाती, आत्मसम्मान की रक्षा करती है और निस्सकोच अपना निर्णय देती है। उसमे ऐसा अहकार है जो केवल महान् विभूतियो मे मिलता है और जिसके कारण उनका व्यक्तित्व और अधिक प्रभावशाली हो उठता है। कुल मिलाकर वह तेजस्वी सन्नारी है।

रुक्मिणीनाथ शास्त्री, जलसूत्रमु *(तें० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

इनका जन्म मछलीपट्टम में हुआ था। 1937 ई० में उभय-भाषाप्रवीण की परीक्षा पास करके ये कृष्णा जिले के तेलप्रोलु की प्रसिद्ध शिक्षण संस्था 'उदयभारती' में आंध्र भाषा के अध्यापक बने। 1940-46 ई० के बीच वे *'आंध्र पत्रिका'* (साप्ताहिक) में सहायक संपादक रहे। उसके बाद मृत्यु-पर्यंत आकाशवाणी मे रहे। 1946 ई० में ये 'आंध्र राष्ट्र (प्रदेश) अभ्युदय (प्रगतिवादी) रचयितल संघ' के मंत्री रहे। ये पैरोडी-रचना मे सिद्धहस्त थे। 'जरूक' के नाम से लिखते थे। इन्होंने लगभग 500 रेडियो नाटकों की रचना की है। प्रकाशित रचनाओं में 'अक्षितलु' (पैरोडी कविता-संग्रह); 'एर्रटिचीकटि' (लाल अंधकार); (कहानी-संग्रह), 'शवरी' (नाटक); 'देवठ्या आत्मकथा' (उपन्यास); 'तनलो तानु' (स्वगत) (स्केच) उल्लेखनीय हैं।

रुक्मिणीपरिणय *(सं० कृ०)* [समय—सोलहवीं शती का पूर्वार्द्ध]

'रुक्मिणीपरिणय' संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार वत्सराज (दे०) की प्रयोगवादी प्रवृत्ति का एक अन्य निदर्शन है। यह संस्कृत का एक मात्र उपलब्ध ईहामृग है। तीन अंक के इस रूपक में कृष्ण के साथ शिशुपाल तथा रुक्मिणी का वर्णन है। यह रूपक काव्य की दृष्टि से अत्यंत सुंदर है तथा इसकी भाषा प्रांजल एवं सुबोध है।

रुक्मिणीस्वयंवर *(म० कृ०)*

इस ग्रंथ का रचना-काल 1292 ई० है। इसमें बाईस प्रकरण है और विषयवस्तु 'भागवत' (दे०) के दशम स्कंध तथा पद्मपुराण से गृहीत हैं। चरित्र-चित्रण तथा प्रकृति-चित्रण का सौदर्य दर्शनीय है और रुक्मिणी की विरहावस्था का वर्णन मार्मिक है। कवि को संगीतकला और वास्तुकला की अच्छी जानकारी थी। संपूर्ण काव्य कल्पना-वैभव, रसोत्कर्ष और रमणीय अलंकृति-योजना से सुशोभित है। राजा रामदेव राव यादव के दरबार में इस काव्य का पाठ हुआ था। मराठी के प्रबंध-काव्यों की शृंखला में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

रुक्मिणीहरण *(म० कृ०)*

सामराज (दे०)-कृत यह काव्य संस्कृत के महाकाव्य की शैली पर रचित है। इसमे आठ सर्ग हैं, धीरोदात्त नायक है, शृंगार और वीररस प्रमुख हैं, प्रकृति-चित्रण है, अंत में नायक-नायिका का मिलन और विवाह वर्णित है। कहीं-कहीं समसामयिक परिस्थितियों का भी उल्लेख है। कुल श्लोक संख्या 1140 हैं। भाषा मे प्रौढ़ता तथा शैली में रमणीयता है। संक्षेप मे महाकाव्य के परंपरित गुणों की इसमें सफल अवतारणा है।

रुक्मिणीहरण-नाट *(अ० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती]

शंकरदेव (दे०) के छहों अंकीयानाटों मे यह सबसे बड़ा है। इसकी कथा, 'भागवत पुराण' (दे०) और 'हरिवंश पुराण' से ली गई है। अनेक परिवर्तन भी किए गए है। लेखक द्वारा प्रवर्तित भक्तिपंथ ही नाटक का मूल उद्देश्य है। घटना-वर्णन और चरित्र गौण हो गए है। श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मिणी का प्रेम-भाव उपास्य के प्रति उपासक का भाव है। इसमे पूर्वराग का भी थोड़ा वर्णन है; किंतु नाटक शृंगार-रसमूलक नहीं है। चरित्रों मे नायिका का चरित्र ही अधिक आकर्षक है। रुक्मिणी धैर्यशीला, बुद्धिमती और गंभीर प्रेमिका है।

रुद्रट *(सं० ले०)* [समय—लगभग 900 ई०]

काश्मीर-निवासी रुद्रट के व्यक्तिगत जीवन के विषय मे कुछ ज्ञात नहीं है। इनका समय 900 ई० के लगभग है। ये संस्कृत-साहित्यशास्त्र के अन्यतम आचार्य हैं। इनकी एकमात्र कृति का नाम 'काव्यालंकार' (दे०) है।

विवेच्य विषय की दृष्टि से 'काव्यालंकार' काव्यशास्त्र के प्राय: समस्त सिद्धांतों की विस्तृत समीक्षा करता है। 734 आर्या छंदों को सोलह अध्यायों में विभक्त कर उनमें काव्य के प्राय: सभी तत्त्वों का विवेचन मौलिक रूप से हुआ है। नमिसाधु (दे०) ने इस पर टीका की है जो अत्युत्तम है।

आचार्य रुद्रट अलंकार-संप्रदाय के ही अनुयायी है। अलंकारों का विवेचन इन्होंने अपने इस ग्रंथ मे वैज्ञानिक रूप में किया है। वास्तव, औपम्य, अतिशय

एव श्लेष को सभी अलकारो का मूल बताकर इसी आधार पर अलकारो का वर्गीकरण इनकी अपनी मौलिकता है।

रुद्रट भारत (दे०) के रस-सिद्धात से पूर्ण परिचित प्रतीत होते है और काव्य मे भी उसकी अवस्थिति अनिवार्य मानते है—*'तस्मात्तत्कर्त्तव्य यत्नेन महीयसा रसैर्युक्तम्।'* 1212, पर ये रीति को बहुत महत्व नही देना चाहते। रुद्रट की देन है—(क) अलकारो का वैज्ञानिक वर्गीकरण, (ख) प्रेयस् नामक दशम रस की कल्पना, (ग) गुणो का बहिष्कार, (घ) भाव अलकार के द्वारा व्यग्य के सिद्धात का स्पर्श।

रुद्रदत्त *(गु० पा०)*

रुद्रदत्त स्वर्गीय रमणलाल देसाई (दे०) के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'भारेलो अग्नि' का भव्य पात्र है। इस उपन्यास की कथावस्तु 1857 की क्राति पर आधृत है।

रुद्रदत्त एक महायोद्धा तथा कुशल राजनीतिज्ञ के साथ-साथ विद्वत्ता का भी धनी है। यह पेशवा सरकार की पुन स्थापना तथा कपनी सरकार के निष्कासन के लिए अनवरत प्रयत्नशील रहता है। इसी निमित्त यह विदेश-यात्रा पर भी जाता है। अपने कुशल नेतृत्व मे यह अनेक योद्धा एव अफगानिस्तान रूस, चीन, भारत आदि स्थलो मे अनेक शस्त्रागार तैयार कराता है। युद्ध म अपने पुत्र के वीरगति को प्राप्त होन पर इसके मन म शत्रु की सतान के प्रति हिंसा की भावना जागती है किंतु अपने ही शिष्य के एक वाक्य द्वारा इसका हृदय-परिवर्तन होता है और अहिंसोन्मुख हो जाता है। परिणामत गुजरात तथा बिहार गाँव मे आश्रम स्थापित करता है तथा अपने शिष्यो को शास्त्राध्ययन कराने लगता है। अपनी तप-पूतता, ज्ञाति, जाति, वर्ण, धर्म आदि भेदो से परे शुद्ध मानवीय दृष्टि तथा तदनुकूल व्यवहार आदि के कारण यह अत्यत सम्मानित होता है। 1857 ई० के क्रातिकारी—तात्या टोपे, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई मगल पाडे इत्यादि—भी इसका सम्मान करते है। झाँसी की रानी के कहने से जब यह नि शस्त्र क्राति का नेतृत्व करने जाता है तब मार्ग मे मालवा मे अँग्रेज पादरी तथा उसकी पत्नी को बचाने के प्रयत्न मे अपने भूतपूर्व शिष्य के हाथो मारा जाता है। अतिम इच्छा है कि जो व्यक्ति आजीवन शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा ले वही मेरा अग्नि-सस्कार करे। इस प्रकार जाते-जाते भी यह व्यक्ति जैसे तत्कालीन विद्वान को अहिंसा की शिक्षा देता है।

समग्रतया प्राचीन ऋषिपात्र के आदर्श-रूप रुद्रदत्त के मन मे दो भावनाएँ प्रमुख है—एक अहिंसा की और दूसरी प्रजाशासन की।

आलोच्य ग्रथ का प्रकाशन 1935 ई० मे उस *समय हुआ था जब गाधीयुग का मध्याह्न चल रहा था।* सहृदय तथा आलोचक वर्ग को रुद्रदत्त मे गाधी जी की प्रतिच्छवि दिखाई दी थी। इसकी उपर्युक्त दोनो भाव*नाओ को यद्यपि आधुनिक माना गया है तथापि सबने यह* स्वीकार किया है कि प्राचीनता तथा अर्वाचीनता का सगम-स्थल, विश्वव्यापी प्रताप से युक्त इस जैसा भव्य पात्र लेखक की लेखनी का गौरव-गान है।

रुद्रभट्ट *(क० ले०)*

रुद्रभट्ट नाम से ही स्पष्ट है कि वे ब्राह्मण थे। बारहवी शती के कवियो मे इनका नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। इनके ग्रथ 'जगन्नाथ-विजय' (दे०) से ज्ञात होता है कि वीरबल (1173-1220 ई०) के *मत्री चद्रमौली से य सम्मानित हुए थे। सभवत चद्रमौली* इनके आश्रयदाता थे। इनको 'कृतिशारदाभ्रचद्रातप' और 'कविराज' की उपाधियाँ प्राप्त थी। इनकी दो रचनाएँ है—'जगन्नाथ-विजय' और 'रसकलिका', जिनमे दूसरी रचना अप्राप्य है।

'जगन्नाथ विजय' अठारह आश्वासो का बडा काव्य है। इसमे श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर श्रीकृष्ण-बाणासुर-युद्ध तक की कथा का वर्णन है। इस कथा का आधार विष्णुपुराण है। *महाकाव्य के लक्षणों से सपन्न* इस काव्य की यह विशेषता है कि इसमे श्रीकृष्ण के 'एकोनरगन कृत्यो' का वर्णन है जो श्रीकृष्ण के लौकिक और अलौकिक रूपो को स्पष्ट करता है। काव्य के प्रारभ मे कवि ने 'भू-भारच्छेददक्ष' कृष्ण हमको आनद-सदोह प्रदान करें कहकर अपने काव्य-नायक की स्तुति की है। तत्पश्चात् इन्होने ब्रह्म, रुद्र सूर्य, गणपति और सरस्वती की स्तुति की है। स्मार्त ब्राह्मण होने के कारण इनम शिव-विष्णु का भेद नहीं है। इन्होंने वाल्मीकि और कालिदास सरीखे सस्कृत कवियो की बडी प्रशसा की है।

रुद्रभट्ट न कथा मात्र कहने के उद्देश्य स नहीं, भक्ति से प्रेरित होकर काव्य की रचना की थी। इनका उद्देश्य इस वाक्य से स्पष्ट है—'काव्य-समाधि मे परज्योति मुकुद मेरे हृदय मे प्रतिष्ठित होकर

निर्मल तत्त्व का बोध हो, इस इच्छा से मैं यह प्रबंध कहने लगा हूँ।' ये प्रतिभाशाली कवि हैं, अतएव इनका काव्य 'पुराण' नहीं है, वह 'सहृदय-हृदय-विजय' है। उसमें वर्णित अनेक प्रसंग अत्यंत आकर्षक और मर्मस्पर्शी हैं। बालकृष्ण की लीलाओं का इन्होंने मनोहारी वर्णन किया है। इस संदर्भ में भक्तिरस की धारा बही है। यह कवि की परिपक्व प्रतिभा का निदर्शन है। प्रकृति-चित्रण, युद्ध-वर्णन और कवि-समय के अनुसार वर्णन करने में ये सिद्धहस्त हैं। इनके वर्णनों में सजीवता है और संभाषणों में रसप्रवणता। इनका उपनिषद्-दर्शन और भक्तिरस का सुंदर संगम बन गया है। पंडित-कवि होने के कारण इनको संस्कृत शब्दों के प्रति अधिक प्रेम है, परंतु इस कारण ये अनौचित्य को स्थान नहीं देते। अलंकारों में इनको अनुप्रास अधिक प्रिय है। इनकी भाषा में प्रवाह और चुलबुलापन है, छंदों में लालित्य है।

रुद्रमदेवी *(तें० ले०)* [रचना-काल—1950 ई०]

इस उपन्यास के लेखक 'कवि-सम्राट' नौरि नरसिंहशास्त्री (दे०) हैं। आंध्र के प्रख्यात राजवंशों के बीच काकतीयों का नाम भी गौरव और गर्व के साथ लिया जा सकता है। ओरुगल्लु (एकशिला नगर) को राजधानी बनाकर इन्होंने प्रधानतः ईसा की बारहवीं तथा तेरहवीं शतियों में आंध्र प्रांत पर शासन किया था। इनमें गणपति देव की पुत्री रुद्रमदेवी का शासन-काल 1262 ई० से लेकर 1296 ई० तक रहा। धार्मिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों से संबद्ध अनेक संघर्षों और अस्थिरताओं के बीच असाधारण सामर्थ्य के साथ रुद्रम-देवी ने राजकार्य का संचालन किया। इसी का विशद चित्रण इस उपन्यास में है। नेल्लूर के राजा मनुमसिद्धि के सभाकवि तिक्कना (दे०) का भी इस उपन्यास के कथानक से घनिष्ठ संबंध है।

नरसिंहशास्त्री ने 'महाभारत' (दे०) के तेलुगु अनुवादकर्ता तीनों महाकवियों—नन्नय भट्टु (दे०) तिक्कना तथा एर्रना (दे० एर्राप्रगड) से संबद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। उनमें तिक्कना से संबंध रखने वाला उपन्यास ही 'रुद्रमदेवी' है। ऐतिहासिक तथ्यों को लेकर एक सरस उपन्यास लिखने की कला में नरसिंह-शास्त्री सिद्धहस्त हैं। समकालिक विभिन्न परिस्थितियों का सजीव चित्र प्रस्तुत करने के अतिरिक्त इसमें रुद्रमदेवी के वीर चरित्र का भी मार्मिक चित्रण है।

तेलुगु के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में नरसिंह-शास्त्री का तथा ऐतिहासिक उपन्यासों के अंतर्गत 'रुद्रम-देवी' का विशिष्ट स्थान है। केंद्रीय साहित्य अकादमी ने इसे सभी भारतीय भाषाओं में अनूदित कराने का निश्चय किया है।

रुद्रमदेवी *(तें० पा०)* [समय—तेरहवीं शती ई०]

ये आंध्र के काकतीय वंश के सम्राट् गणपति-देव की एकमात्र संतान थी। अतः बचपन से पुरुष-वेश में रहकर राजनीति तथा युद्धनीति में इन्होंने प्रवीणता प्राप्त की थी। ये अल्पायु में ही विधवा हो गई थीं और पिता की मृत्यु के उपरांत 'रुद्रमदेव महाराज' नाम से असामान्य वीरता एवं साहस से काकतीयों के विशाल साम्राज्य का शासन करने लगी थीं। इस कार्य में इनको चोल, पल्लव आदि अनेक शत्रु राज्यों के आक्रमणों तथा एक स्त्री के अधीन रहने को अपने पुरुषत्व का अपमान समझने वाले अनेक सामंतों के विद्रोह का सामना करना पड़ा था। अपने साम्राज्य की सुरक्षा के लिए ही नहीं, अपनी जनता की सुविधा के लिए भी इन्होंने अनेक कार्य किए थे।

इनके जीवनवृत्त को लेकर तेलुगु के विख्यात ऐतिहासिक उपन्यासकार नौरि नरसिंहशास्त्री (दे०) ने 'रुद्रमदेवी' (दे०) नामक एक उपन्यास की रचना की है जो तेलुगु के उपन्यास-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

रुद्रसुधानिधि *(उ० कृ०)*

नारायण नंद अवधूत स्वामी (दे०)-कृत प्राचीन साहित्य में 'रुद्रसुधानिधि' एक महत्वपूर्ण गद्य-रचना है। इसमें शैवधर्म की महिमा वर्णित है। केवल प्राचीनता के कारण नहीं साहित्यिक गुणों—शिल्प, कल्पना, लेखक की स्वतंत्र एवं अभिनव दृष्टिभंगी, आदि के कारण भी इसका अत्यंत महत्व है। यद्यपि नारायण नंद अवधूत संन्यासी थे, किंतु आत्मिक दृष्टि से वे युगधर्मी कवि थे—बाह्य दृष्टि से सर्वत्यागी थे; किंतु भीतर से सौंदर्य-पिपासु प्रणयी थे। इस ग्रंथ में परस्पर विरोधी तत्त्वों—संयम एवं प्रणय, त्याग एवं भोग, शास्त्रीय शिष्टता एवं युगीन स्वाधीनता का सुंदर समावेश है। इसकी विशेषता यह है कि विभिन्न परिस्थितियों के चित्रण में लेखक का युगबोध प्रकट होता जाता है।

इसमे गद्य एव पद्य का आत्मिक सम्मिश्रण हुआ है। काव्य की दृष्टि से यह जैसे सिद्धियुक्त गद्य ग्रथ है, उसी प्रकार गद्य ग्रथ के रूप मे भी यह असाधारण रूप से प्रकाशनशील है। इसकी आलकारिक पद्यात्मक शैली अत्यत प्रवाहमयी है। वर्णन चातुरी, कल्पना विलास पद्य-माधुरी, रचना-कौशल आदि की दृष्टि से यह एक अभिनव कृति है।

इसकी कथा सक्षेप मे इस प्रकार है। राजा अनग पद्माकर सतानहीन हैं। उनकी प्रार्थना पर सतुष्ट होकर शिवजी अपने गणा मे से एक को उनकी सतान बनाकर भेजने का विचार करत है। फलत सुदरी कन्या त्रैलोक्य मोहिनी की सृष्टि होती है। अभिनव चैतन्य नामक एक गण उस पर मुग्ध होता है। शिव उन्हे धरती पर अवतीर्ण होने की आज्ञा देत है। कारण, आकर्षण यौगिक पूर्णता की कमी का सूचक है। अभिनव चैतन्य अनुतप्त होते है तथा मनुष्य जीवन न देने की प्रार्थना करते है। शिव उन्हे समझाते हैं तथा धरा पर उत्तम राजा के रूप मे जीवन-यापन कर कैवल्य धाम को लौट आने की बात कहते है।

रुबाई *(उर्दू॰ पा॰)*

'रुबाई' अरबी भाषा के 'रुबअ' शब्द से व्युत्पन्न है। 'रुबअ' का अर्थ किसी पदार्थ का चौथा भाग है और रुबाई का अर्थ— चार वाला' है। अत चार पक्तियो की कविता को उर्दू म रुबाई कहत हैं। यह 'कतअ' से सर्वथा भिन्न काव्य विधा है। इसे 24 प्रकार के विशिष्ट छदो की परिसीमा मे ही पद्यवद्ध किया जा सकता है। इसकी प्रथम दो पक्तिया का परस्पर तुकात होना अनिवार्य है। आरभ मे रुबाई की चारा पक्तियो मे अत्यानुप्रास हुआ करता था परतु कालातर म प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ पक्ति को परस्पर तुकात रखा गया और तृतीय पक्ति को अतुकात रहने दिया गया। आजकल रुबाई का यही रूप प्रचलित है। इसकी रचना अत्यत श्रम और अभ्यास-साध्य है। रुबाई-लेखन म समर्थ कवि ही सफल होत हैं।

रुय्यक (स॰ ले॰) [समय—1150 ई॰]

सस्कृत-साहित्यशास्त्र के कश्मीरी प्रवक्ताओ म आचार्य रुय्यक का अपना विशिष्ट स्थान इसलिए है क्योकि अलकारो के विषय मे जो कुछ भी अपेक्षित था उसका विवेचन इन्होने अपनी कृति 'अलकारसर्वस्व' (दे॰) म कर दिया है।

रुय्यक का दूसरा नाम रुचक है जो तत्कालीन साहित्यकारो मे अधिक प्रचलित प्रतीत होता है। ये कश्मीर नरेश जयसिंह के समय मे साधिविग्रहिक भी थे। अत इनका समय निश्चितप्राय बारहवी शती का मध्य भाग है। इनके पिता का नाम तिलक एव गुरु का नाम मखक (दे॰) था। इनके कुल को भी कश्मीर की प्रसिद्ध उपाधि राजानक प्राप्त थी।

रुय्यक की अति प्रसिद्ध कृति 'अलकारसर्वस्व' है। पर इसके अतिरिक्त भी उनकी अनेक कृतियाँ उपलब्ध होती हैं। 'साहित्यशास्त्र पर भी सहृदयलीला' एव 'साहित्य-मीमासा आदि कृतियाँ है जो प्रकाशित भी हैं। 'नाटक-मीमासा नामक कृति नाटको का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करती है। अलकारो पर ही 'अलकारानुसारिणी', 'अलकार-मजरी', 'अलकारवार्तिक' एव 'अलकारसर्वस्व' नामक चार कृतियाँ हैं जिनम केवल 'सर्वस्व' ही प्रकाशित है। 'श्रीकठस्तव' नामक एक काव्य भी इनके द्वारा रचित है। इन्होने 'काव्यप्रकाश (दे॰) पर सकेत' तथा 'व्यक्तिविवेक' (द॰) पर 'व्याख्यान' नाम की टीकाएँ भी की हैं।

आचार्य रुय्यक अपने समय क उद्भट विद्वान थे। इन्हाने अलकारा की दार्शनिक भित्ति का निरूपण कर उनके पीछे व्यक्ति या समाज की मनोवृत्ति को परखने का द्वार खोल दिया है। अलकारा का सूत्रात्मक लक्षण कर उनके यथार्थ स्वरूप का भी इन्हाने 'अलकारसर्वस्व' म परिनिष्ठित किया है। य अपन को ध्वनिवादी आचार्य कहत हैं। 'व्यक्तिविवेक' पर लिखी अपनी व्याख्या नामक टीका म महिमभट्ट (दे॰) के अनुमिति पक्ष का इन्हाने खडन किया है।

रुसवा *(उर्दू॰ ले॰)*

नाम—मिर्जा मुहम्मद हादी, उपनाम—रुसवा। मिर्जा 'औज' इनके काव्य-गुरु थे। सर्वप्रथम य गालिब की शैली म काव्य-सृजन करत रह थे परतु बाद म सरस शैली की ओर प्रवृत्त हो गय थ। इनम कवित्व-प्रतिभा भरपूर थी परतु इनकी ख्याति का कारण इनका एक उपन्यास 'उमराव जान अदा' (दे॰) है। इस अमर कृति म इन्हान तत्कालीन समाज के रहन-सहन, सभ्यता और सस्कृति का यथार्थ चित्रण प्रभावशाली ढग से किया

है। इस उपन्यास के अतिरिक्त 'मसनवी नौबहार', 'सुबह्-ए-अमीद', 'जात शरीफ़' (उपन्यास) और 'मुरक्का-ए-लैला-मजनूं' (नाटक) मिर्जा साहब की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। उच्च कोटि के गद्य-लेखकों में इनकी गणना की जाती है।

रूपक *(पारि०)*

भारतीय दृष्टि से नाट्य के दो भेदों में से प्रमुख। संस्कृत-आचार्यों ने दृश्य-काव्य के दो भेद निरूपित किए हैं : रूपक (दे०) और उपरूपक। रूपक में अवस्था के अनुकरण के साथ ही रूप का आरोप भी आवश्यक होता है। ('रूपारोपात्तु रूपकम्'।—साहित्य-दर्पण 611)। शास्त्र में रूपक के दस भेद किए गए हैं—'नाटक' (दे०), 'प्रकरण', 'भाण' (दे०), 'व्यायोग', 'समवकार', 'डिम', 'ईहामृग', 'अंक', 'वीथी', 'प्रहसन' (दे०)। इनमें 'नाटक' सर्वप्रमुख है।

रूपक (अलंकार) *(पारि०)*

यह एक महत्वपूर्ण सादृश्यमूलक अर्थालंकार है। सादृश्य के आधार पर प्रस्तुत में अप्रस्तुत का आरोप कर अभेद की स्थापना द्वारा रूपक काव्यसौंदर्य का उत्कर्ष करता है। दंडी (दे०) ने रूपक को उपमा (दे०) से इसी अर्थ में पृथक् किया है कि उसके द्वारा उपस्थित सादृश्य में उपमान और उपमेय का पारस्परिक भेद विलुप्त हो जाता है (काव्यादर्श : 2।14,66)। वामन (दे०) (काव्यलंकारसूत्रवृत्ति 4।3।6) और मम्मट (दे०) (काव्यप्रकाश 10।93) ने भी उपमान और उपमेय के अभेद को रूपक माना है। रुद्रट (दे०) ने गुणों के साम्य से उपमान और उपमेय के अविवक्षित सामान्य भेद को रूपक कहा है (काव्यालंकार 8।38)। रूपक के तीन प्रमुख भेद माने जाते हैं : परंपरित, सांग और निरंग।

रूपकथा *(बँ० प्र०)*

बँगला लोक-साहित्य के अंतर्गत रूपकथा' का महत्वपूर्ण स्थान है। रूप-कथा से तात्पर्य है बच्चों के मन बहलाने के लिए रचित राजा-रानी, राजकुमार-राजकुमारी, राक्षस-डाइन-पक्षीराज घोड़ा एवं इंद्रजाल, जादू-टोना तथा विभिन्न जानवरों की कहानी जो इस दुनिया की कहानी न होकर एक और ही दुनिया की कहानी होती है।

लोक-समाज में प्रचलित नाना प्रकार की रूप-कथाओं को लाल विहारी दे ने 'फोक टेल्स ऑफ बेंगाल' के नाम से संकलित किया है। इसके अतिरिक्त दक्षिणा-रंजन मित्र मजुमदार (दे०) के द्वारा संकलित 'ठाकुर-दादार झुलि' एवं 'ठाकुरमार झुलि' रूप कथा के सुष्ठु दृष्टांत हैं। इन पुस्तकों में रूपकथा के अंतर्गत गीतों का प्रयोग हुआ है। ऐसे भी रूपकथा का गद्य व्यावहारिक गद्य न होकर काव्यधर्मी गद्य होता है।

बँगला रूपकथा शिशु-मन का रोमांस है—यही इनके स्थायी आकर्षण का कारण है। रूपकथा में राजा-रानियों के अतिरिक्त पशु-पक्षी की चरित्रमूलक कहानियों का भी स्थान है। ये कहानियाँ अधिकतर नीतिमूलक होती हैं। कतिपय पशु-पक्षियों की कहानियाँ हास्यरसोद्दीपन के लिए प्रस्तुत की गई हैं। बँगला रूप-कथा-साहित्य बहुत ही समृद्ध है।

रूपगोस्वामी *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1600 ई०]

रूपगोस्वामी का एक नाम दविर खास था। कहते हैं कि ये मुसलमान हो गए थे और मुसलमान होने पर ही इनका नाम दविर खास रखा गया था। किंतु मुसलमान होने पर जब इन्होंने रामकेली में चैतन्य महाप्रभु के दर्शन किए तो ये हिंदू हो गए और फिर रूप-गोस्वामी के नाम से प्रख्यात हुए। वैसे, जन्मना ये ब्राह्मण ही थे। इनके बड़े भाई का नाम सनातन था। रूपगोस्वामी-रचित ग्रंथों में 'ललितमाधव', 'विदग्धमाधव', 'उज्ज्वल-नीलमणि' (दे०), 'उत्कलिकावल्लरी', 'उद्धवदूत', 'उप-देशामृतकार्पण्यपुंजिका', 'गंगाष्टक', 'गोविंदविरुदावलि', 'गौरांगकल्पतरु' तथा संक्षेप 'भागवतामृत' आदि ग्रंथ प्रमुख हैं।

रूपगोस्वामी कृष्ण के परम भक्त थे। इस-लिए इनके लेखन का विषय भी विशेषकर भक्ति-संबंधी विचारधारा ही है। रूपगोस्वामी ने भक्ति की छः विशेषताएँ बतलाई हैं। इन विशेषताओं के अनुसार भक्ति पापनाशिनी तथा पापमूल अज्ञान की विनाशिका है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि यह-भक्ति शुभदा है। इस भक्ति की तीसरी विशेषता यह है कि भक्त को भक्ति के आनंद की तुलना में मोक्ष भी हीन प्रतीत होता है। चौथी विशेषता यह है कि इस भक्ति को मनुष्य ईश्वर-

कृपा के बिना प्राप्त नही कर सकता। पांचवी विशेषता यह है कि यह भक्ति ब्रह्म ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण है। इस भक्ति की यह छठी विशेषता है कि इसम भगवान स्वय भक्त की सेवा के लिए उपस्थित हो जाते हैं। रूप गोस्वामी की रचनाओ की सस्कृत सरल एव सरस है।

रूप ज्योति *(अ० क्र०)* [रचना काल—1945 ई०]

अट्ठाईस वर्ष की अल्पायु मे मृत्यु कवलित हो जाने वाले गणेश गर्ग (दे०) का यह तृतीय एव अतिम कविता सग्रह है। लेखक को एक उत्कृष्ट प्रेमी कवि माना जाता हे। उसकी कविता मे वेदना और रोदन है। रूप-ज्योति की कविताओ मे एक नया सुर उपलब्ध होता है। इसमे उसकी उच्चस्तर की राष्ट्रीय कविताओ का सकलन है।

रूपदर्शी *(अ० क्र०)*

श्री के० वी० अय्यर (दे०) कन्नड के विख्यात उपन्यासकार हैं। 'शातला (दे०) उनका प्रतिनिधि ऐतिहासिक उपन्यास है तो रूपदर्शी को हम एक प्रकार का ऐतिहासिक मिथ कह सकते है। इसमे विश्वविख्यात चित्रकार माइकेल एजेलो के जीवन स सबधित एक मार्मिक कथा है। इटली का महान शिल्पी माइकेल एजेलो बाल ईसा के चित्रण के लिए एक माडल ढूंढता रहता है। अत मे उसे पीसा म एक सुदर बालक मिलता है जिसे बिठाकर वह ईसा का सुदर चित्र बनाता है। यही बालक अर्नेस्ट इस उपन्यास का नायक है। देवदूत जैसा सुदर एव सुशील वही लडका आगे चल कर जीवन के उतार-चढावो के कारण गैरिबाल्डी नामक नीच व्यक्ति बनता है जो जूदा के चित्र के लिए मॉडल (रूपदर्शी) बनता है। एक ही व्यक्ति परिस्थिति विशेष के कारण देव या दानव बन जाता है—यही इसका प्रतिपाद्य है। उपन्यास म इटली के सास्कृतिक जीवन का इतना सूक्ष्म एव व्यापक चित्रण है कि ऐसा चित्र अंग्रेजी म भी नही मिलता है। शिल्पी तथा उसका रूपदर्शी सिर्फ य ही दो चरित्र मूल हैं। प्रमुख चरित्र की रेखाओ का उभारने के लिए लेखक न बहुत से नये चरित्रो का निर्माण किया है। महात्मा ईसा के अतिम दिन ईसाई सस्कृति आदि के वर्णन मे लेखक ने कमाल कर दिया है। इसकी भाषा प्रसादगुण-युक्त तथा बहुत प्रभावशाली है। ईसाई समाज के प्रति एक गैर-ईसाई की यह सहानुभूति लेखक के व्यक्तित्व को और भी उन्नत भूमि पर स्थापित कर उसके गौरव की वृद्धि करती है। यह कन्नड के गौरव-ग्रथो मे एक है।

रूप-बसत *(प० क्र०)* [रचना-काल—1903 ई०]

किस्सा-काव्य के अतर्गत हिंदू कथाओ को प्रतिष्ठा दिलाने वाले कवि दौलतराम (दे०) की दशाधिक कृतियो मे 'रूपबसत' को विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई है। इस प्रबध-काव्य मे राजा खड्गसेन के पुत्र, रूप और बसत के सदाचरण की' अलौकिक चमत्कारो से युक्त कथा है। बसत के सौदर्य पर मोहित, असफल-मनोरथ, विमाता चद्रावती ने पुत्र को निर्वासित करवा दिया। दोनो भाई दीर्घकाल तक अनेक दैवी-दानवी प्रकोप से जूझकर अपने धैर्य एव सदाचरण के परिणामस्वरूप पुन पिता से आ मिलते है। विमाता चद्रावती ग्लानि से आत्महत्या कर लेती है और पिता विरक्त होकर सन्यास ग्रहण कर वन को चले जाते है। कवि ने विविध कथानक-रूढियो के प्रयोग से कथा को अनेक चमत्कारपूर्ण मोड दिए हैं। जगह-जगह नारी के लौकिक प्रेम, क्रोध, मोह आदि की निंदा तथा तप, त्याग, धर्म और योग की महिमा का वर्णन किया है। इस कृति का मुख्य स्वर वैराग्य का है परतु अन्य मानव सुलभ भावो की भी सुदर व्यजना है। विविध छदो और अलकारो म समृद्ध इस कृति मे बारह-मासे, सतवारे (दे०), और सीहरफिया (दे०) का भी प्रयोग कर लेखक ने एक नयी रचना-पद्धति अपनाई है। अपने विशाल, कथा-चमत्कार एव छद-वैविध्य के अति-रिक्त नैतिक स्वर के कारण भी यह कृति विशेष प्रसिद्ध हुई है।

रूपराम *(बॅं० ले०)*

वर्द्धमान जिले के दक्षिण मे काइनि श्रीरामपुर म इनका जन्म हुआ था। इनके जन्म-काल के सबध म निश्चित रूप से कुछ नही कहा जा सकता। इनके पिता का नाम अभिराम था।

इनकी कृति धर्ममगल-काव्य' है। अनुमान म इस कृति का रचना-काल 1649-50 ई० क आसपास है। इन्होने लाक प्रचलित अमरद्ध गाथा-गीत (बैलेड) ही को वीररसात्मक आख्यान-काव्य का रूप दिया जिसम

धर्माचरण और भक्ति-रस की अपेक्षा दुःसाहसिक घटना और वीरत्व-व्यंजक कहानी को प्रधानता मिली है। इन्होंने देव-महिमा को आच्छन्न न कर मनुष्य के महत्व को काव्य-रूप दिया है। इन्हें धर्मठाकुर की महिमा का आदि प्रवर्तक कहा जाता है। कवित्व-कौशल, चरित्र-सृष्टि, स्वच्छंद वर्णन, सहज आलंकारिकता तथा परिहास-सृष्टि में रूपराम अत्यंत कुशल है। सत्रहवीं शती के 'धर्मंमंगल'-काव्यों में रूपराम की कृति का महत्वपूर्ण स्थान है।

रूपविज्ञान *(भाषा॰ पारि॰)*

भाषाविज्ञान की इस शाखा में रूप-रचना का अध्ययन होता है। सामान्यतः रूपविज्ञान में शब्द-रचना को भी समाहित कर लिया जाता है, किंतु वैज्ञानिक दृष्टि से रूप और शब्द एक नहीं हैं; अतः रूप-रचना का अध्ययन रूपविज्ञान में होना चाहिए और शब्द-रचना का शब्दविज्ञान है। रूप या पद भाषा की वह इकाई है जिसमें अर्थ-तत्व और संबंध-तत्व (सुप्तिङन्तं पदम्) दोनों होते हैं, जबकि शब्द में केवल अर्थ-तत्व होता है। शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से वाक्य में रूप या पद का ही प्रयोग होता है, और शब्द शब्दकोश में होते हैं। रूप या पदविज्ञान में इस बात का अध्ययन होता है कि मूल शब्द से रूपों या पदों की रचना कैसे होती है, दूसरे शब्दों में वचन, लिंग, कारक, क्रिया के विभिन्न रूप मूल शब्द या धातु से कैसे बनते हैं। विश्व की विभिन्न भाषाओं में रूपों की रचना मोटे रूप से पूर्वसर्ग (prefix) मध्यसर्ग (infix), अंत्यसर्ग (suffix), शून्य रूपग्राम (zero morpheme), शब्दक्रम (word order), ध्वनि-प्रतिस्थानयन (replacing), ध्वनि-द्विरावृत्ति (reduplication), ध्वनि-वियोजन (subtracting), बलाघात (stress), सुर (tone), तथा स्वतंत्र शब्दों के प्रयोग से होती है। रूप-रचना का अध्ययन वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक तीनों प्रकार का हो सकता है; साथ ही यह सैद्धांतिक भी हो सकता है और प्रायोगिक भी। संरचनात्मक भाषाविज्ञान ने रूपविज्ञान की रूपग्राम-विज्ञान (morphenics) नामक एक शाखा का विकास किया है, जिसमें रूप-रचना के घटकों के वितरण का अध्ययन किया जाता है।

रूपावती *(त॰ कृ॰)* [रचना-काल—1957 ई॰]

शूरिय नारायण शास्त्री (दे॰)-कृत इस नाटक में रूपावती और उसके प्रेमी सुंदरानंदन की कथा वर्णित है। इस नाटक के पात्र काल्पनिक हैं परंतु वातावरण ऐतिहासिक है। कथानक सरल है, चरित्र-चित्रण सुंदर और सफल है। सुंदरानंदन के कुछ स्वगत-कथन अत्यंत प्रभावशाली हैं। संपूर्ण नाटक सरस और सरल शैली में रचित है। इसमें सरसता और उपदेशात्मकता का समन्वय हुआ है। तिरुवळ्ळुवर (दे॰) के समान नाटककार कहता है कि उचित रीति से व्यतीत किया गया गृहस्थ जीवन संन्यासी-जीवन से बढ़कर है।

रूपचंद-कुंवर-रास *(गु॰ कृ॰)*

मध्ययुगीन गुजराती के जैन कवि नयसुंदर-रचित 'रूपचंद-कुंवर-रास' सांसारिक प्रेम का निरूपण करने वाली विस्तृत पद्य-वार्ता है।

इस पद्य-वार्ता में उज्जयिनी के वणिक्-पुत्र रूपचंद और उज्जयिनी में ही रहने वाले (किंतु कन्नौज-राज के अधीन) गुणसेन की पुत्री सोहाग के प्रेम का वर्णन है। पहेलियों व समस्याओं को हल करने के चातुर्य के कारण नायक रूपचंद को सोहाग के अलावा विक्रम राजा की कन्या भी प्राप्त होती है।

रचयिता जैन कवि होने से कथा के अंत में नायक को जैन-साधु से दीक्षित कराया व राजा विक्रम को भी जैन बताया गया है। संस्कृत-काव्य-परंपरा का निर्वाह, आलंकारिक शैली, शब्द-वैभव, वर्णन-माधुर्य, वर्णन-प्रचुरता आदि विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं।

मध्ययुगीन लौकिक पद्यवार्ता के रूप में रचना ध्यान देने योग्य है।

रुहे-इक़बाल *(उर्दू॰ कृ॰)* [प्रकाशन-वर्ष—1942 ई॰]

उर्दू के महान कवि डा॰ सर मुहम्मद इक़बाल (दे॰) के व्यक्तित्व, जीवन-दर्शन एवं कृतित्व पर प्रकाश डालने वाली यह एक सुंदर कृति है। इसके रचयिता डा॰ यूसुफ़ हुसैन ख़ाँ हैं। इसमें डा॰ इक़बाल के जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालने के लिए उनके काव्य में से ही उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। डा॰ इक़बाल के विचारों के अध्ययन की दृष्टि से यह कृति तीन भागों में विभक्त

है · (1) कवि कला, (2) कवि की सभ्यता (3) कवि धर्म। इन तीनो शीर्षको के अंतर्गत इस कृति मे उन सभी समस्याओ का उल्लेख है जिनका विवेचन कवि ने अपने काव्य मे किया है। इसके लिए लेखक ने कवि के काव्य मे से उदाहरण प्रस्तुत कर अपनी बात प्रमाणित करने का प्रयास किया है। डा० इकबाल के जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालने वाली तथा कवि और उसके काव्य-विषयक ज्ञान मे अभिवृद्धि करने वाली यह एक प्रामाणिक रचना है।

और निस्सदेह उसे 'रुहे इकबाल (इकबाल की आत्मा) की सज्ञा दी जा सकती है। भाषा सुबोध तथा विद्वत्तापूर्ण है। स्थान-स्थान पर कविवर इकबाल की उर्दू तथा फारसी कविताओ के उदाहरण पुस्तक को सरस एव पठनीय बना देत है।

रेखता *(प० पारि०)*

मध्ययुगीन पजाब मे दोहे जैसे छद म प्रचलित एक काव्य रूप विशेष जिसमे उर्दू-फारसी के शब्द भी प्रयुक्त होते है 'रेखता' कहलाया। गुरुग्रथ साहिब मे पाँचवें गुरु के कुछ रेखते सगृहीत है। पजाबी मे भगत बलीराम के रेखते भी प्रसिद्ध है।

रेखाचित्र *(हि० पारि०)*

अँग्रेजी के 'स्कैच' का समानार्थी रेखाचित्र गद्य की एक आधुनिक विधा है जिसमे क्रॉस के अनुसार वास्तविक जीवन का यथार्थवादी विधि स अकन किया जाता है। जिस प्रकार चित्रकार चित्र मे आडी-तिरछी पर अजीब रेखाओ का प्रयोग करता है, उसी प्रकार रेखा-विलक्षण व्यक्तित्व वाले अथवा सवेदना जगाने वाली विशेषताओ से युक्त, किसी व्यक्ति का ऐसा अजीब चित्र उपस्थित करता है कि वह व्यक्ति, स्थान, वातावरण या प्रसग साकार ही उठता है। वह अपन मन म सकलित स्मृति-रेखाओ को कला (दे०) की तूलिका से स्वानुभूति के रग मे रँगकर अजीब बना देता है। शब्द-चित्र छोट और जीवत होत हैं, अत उनकी तुलना स्नैप-शॉट स की गई है। सफल रेखाचित्र के लिए अपेक्षित गुण हैं—हृदय की सवेदनशीलता, कल्पना की समाहार-शक्ति, सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति, चित्रोपम भाषा, चरित्र-व्यजक वार्तालाप, विराम चिह्नो का कुशल प्रयोग। इसमे मूर्त रूप और रग नही होते, केवल रेखाएँ होती हैं, तथ्यो का सयोजन नही केवल उद्घाटन होता है। इसमे व्यक्ति या प्रसग के केवल एक पक्ष पर तीव्र प्रकाश डाला जाता है जिसमे यह सिनेमा के क्लोज़-अप की तरह भास्वर हो उठता है।

रेगे, पुरुषोत्तम शिवराम *(म० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

ये बबई के एलफिंस्टन महाविद्यालय मे प्राचार्य हैं। काव्य-रचना के प्रारभिक चरण मे ये 'मुहुच्चपा' उपनाम स लेखन करते थे।

रेगे किसी काव्य-प्रवाह के अनुयायी न होकर स्वतत्र व्यक्तिवादी कवि है।

इनके काव्य सग्रह है 'साधना आणि इतर कविता' (1931), 'फुलोरा' (1937), 'हिमसक' (1943), 'दोला' (1950) आदि।

इनम प्रेम-गीता का प्राधान्य है जिसम अल्लड, चचल प्रेम की अभिव्यक्ति है, जो कहीं-कहीं मासलता का स्पर्श भी करती है।

इनकी कविता लघु कविता है, जो मुक्तछद (दे०) मे लिखी गई है। कवि ने सूक्ष्म सवेदन की अभिव्यक्ति के लिए परिचित प्रतीको तथा शब्दो का सामान्य सदर्भ से भिन्न, नवीन रूप मे प्रयोग किया है।

रेणु, फणीश्वरनाथ *(हि० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

इनका जन्म बिहार प्रात के पूर्णिया जिले के एक छोटे-से गाँव म मध्यवर्गीय किसान परिवार में हुआ। हिंदी के आचलिक उपन्यासकारो म इनका अन्यतम स्थान है तथा 'मैला आंचल' (दे०), 'परती परिकथा' (दे०) इनकी उल्लेखनीय औपन्यासिक कृतियाँ हैं। अचल-विशेष के समूचे जीवन—भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि—को डाक्युमट्री, चलचित्र, रिपोर्ताज आदि विविध शैलियो के माध्यम म शब्दबद्ध कर देने म इन्हे कमाल हासिल है। आचलिक चित्रण के प्रति विशेष आग्रह होने के कारण अनक बार कथासूत्र बिखर गए हैं तथा चरित्रो का पूर्ण विकास लक्षित नही होता। लेकिन इसके लिए लेखक को दोषी नही ठहराया जा सकता क्योंकि उसका अभीष्ट सुगठित कथावस्तु अथवा सपूर्ण चारित्रिक विकास न होकर अचल-विशेष

का यथार्थ चित्रण करना रहा है, और इस दिशा में उसे पूरी सफलता मिली है। फणीश्वरनाथ रेणु हिंदी-उपन्यास-साहित्य में एक नयी दिशा के प्रवर्तक हैं।

रेलवाणी, जयंत *(सिं० ले०)*

ये राजकोट में रहते हैं और रेल-विभाग में कार्य करते हैं। ये 'सिंधू भारती' नामक एक मासिक पत्रिका का संपादन भी करते हैं। सिंधी के साथ-साथ गुजराती और हिंदी के भी ये अच्छे विद्वान हैं। इन्होंने सिंधी की कई उत्तम रचनाओं को इन भाषाओं में अनूदित कर सिंधी-साहित्य को अन्य भाषा-भाषियों तक पहुँचाया है। सिंधी-साहित्य में इनकी कहानियाँ महत्व-पूर्ण स्थान रखती हैं। इनकी प्रमुख रचनाओं के नाम हैं : 'आल्यूं पलकूं उदास नेण', 'बंधननि जा पिंजरा' (दोनों कहानी-संग्रह); 'सफ़ेद-सफेद ऊँदहिं' (उपन्यास), 'सिंधु अने गोदावरी' नामक सिंधी-कहानियों के गुजराती अनुवाद पर इनको शिक्षा-मंत्रालय, दिल्ली से पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

'रेह', वासुदेव *(कश्० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

जन्मांध होने के कारण ये औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके किंतु प्रकृति ने विलक्षण स्मरण-शक्ति का वरदान दिया जिसके फलस्वरूप फ़ारसी और संस्कृत के कई काव्य इन्हें कंठस्थ हो गये। ये बहुत भावुक एवं संवेदनशील कलाकार हैं। सांसारिक परिवेश के प्रति इनका दृष्टिकोण क्रांतिकारी का-सा है। मौलिक और श्रेष्ठ कविता के कारण कश्मीर-भर में सुप्रसिद्ध हैं। 'शबगर्द' इनका सुप्रसिद्ध कविता-संग्रह है। ये शब्दचित्र, पदलालित्य और भावगांभीर्य गुणों से युक्त ओजस्वी कविता रचते हैं। इनकी भावी संभावनाएँ पूर्णतः प्रति-फलित हुईं तो निश्चय ही ये एक दिन महान् कवि के रूप में प्रतिष्ठित होंगे।

रैणा, शंकर *(कश्० ले०)* [जन्म—1939 ई०]

डा० शंकर रैणा शैशव से ही विचारशील थे और सामाजिक कुसंस्कारों-कुरीतियों के प्रति इनके मन में सहज आक्रोश रहा है। डाक्टरी शिक्षा प्राप्त की है और व्यवसाय से चिकित्सक हैं। मानव-शरीर की आधि-व्याधियों के ताने-बाने से इन्होंने अपनी कहानियों को सँवारा है। इनकी कहानियाँ और उनमें के चरित्र प्रायः औषधालयों और चिकित्सालयों के ही गिर्द घूमते हैं। जरा-जरा सी और छोटी-छोटी बातों को गहराई से देखने और उन पर बड़े-बड़े प्रयोग करने में डा० शंकर बड़े सिद्धहस्त हैं। इन्होंने ठेठ कश्मीरी भाषा का प्रयोग किया है और शैली मार्मिक है। 1964 ई० में 'ज़ितिनि ज़ूल' (चिनगारियों की रोशनी) नाम का इनका पहला कहानी-संग्रह प्रकाशित हुआ है।

रैस, बी० एल० *(क० ले०)* [जन्म—1848 ई०; मृत्यु—1928 ई०]

जिन पाश्चात्य पंडितों ने कन्नड सीखकर कन्नड भाषा और साहित्य की सेवा की, उनमें स्व० बी० एल० रैस का नाम आदर के साथ लिया जाता है। ये मैसूर सरकार के शिक्षा विभाग के प्रधान अधिकार और शासन-विभाग के प्रधान अधिकारी के रूप में कार्य कर चुके थे। कन्नड सीखने वाले बालकों तथा पंडितों के उप-योगार्थ इन्होंने कतिपय ग्रंथों का प्रकाशन कराया था जिनकी भूमिकाएँ अच्छी और सुंदर हैं। इनके प्रकाशित ग्रंथों के नाम हैं—'अमरकोश', 'पद्यसार', 'कर्णाटक भाषा-भूषण', 'पंपरामायण', 'पंपभारत' और 'कर्णाटक शब्दानु-शासन'। कन्नड भाषा और साहित्य के प्रति इन्होंने जो प्रेम दिखाया था, वह कभी विस्मरण करने योग्य नहीं है। लगभग नब्बे वर्ष की दीर्घायु व्यतीत करने के बाद जुलाई 1928 में इनका स्वर्गवास हुआ।

रोग-शैयाय *(बँ० कृ०)*

अक्तूबर, नवंबर, दिसंबर, 1940 ई० में लिखित रवींद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) की 40 कवि-ताओं का संग्रह है। कवि ने रोग की यंत्रणा में कातरता न प्रकट कर अपने निकट सेवा-कार्य में नियुक्त लोगों का चित्त-विनोद, विभिन्न हास-परिहास निज की उपेक्षा करके किया था।

रोग की वेदना और यातना को वे व्यक्ति-सत्ता से अलग अनादि काल से सृष्टि के रहस्यों के मध्य अनुभव करते हैं। दारुण रोग-यंत्रणा को जय कर के अत्यंत गंभीर और अविचलित विश्वास से आत्मा की जय-घोषणा कर रहे हैं।

इन कविताओ मे कल्पना, भाषा एव छद का स्थान ले लिया है। उनके वक्तव्य की महिमा, उपलब्धि की आतरिकता एव दृष्टि की स्वच्छदता ने। रोग-कक्ष मे विषाद का वातावरण न उत्पन्न हो —अत वे बीच-बीच मे 'छडा' (ग्राम्य कविता) कहकर सबको आनदित रखने की चेष्टा करते थे। पार्श्व के सेवक-सेविकाएँ इन कविताओ को लिपिबद्ध कर लेते थे।

रोडग बक्सि *(उ० पा०)*

रोडग बक्सि अथवा बक्सि जगबधु उडीसा के अनन्य स्वतत्रता-सेनानी है। श्री चक्रधर महापात्र ने सर्वप्रथम इस ऐतिहासिक पात्र का सर्वागपूर्ण जीवन-चित्र अपने उपन्यास 'रोडग बक्सि' म दिया है।

खोर्धा भूमि के क्षत्रियो के वीरत्व से उत्कलीय इतिहास गौरवान्वित है। 1903 ई० म उडीसा अँग्रेजो के अधिकार म आ गया था। और उसके साथ ही सूत्रपात हुआ था स्वेच्छाचारी शासन का। उडीसा के वीर क्षत्रिय कब तक इस अत्याचार को सहन करते? शताब्दियो से खड्ग का जवाब खड्ग से देते आये हैं। अँग्रेजो के अत्याचार के विरुद्ध उत्कल सेनापति बक्सि जगबधु विद्याधर ने तलवार उठा ली थी। घर का मोह त्यागकर, कन्या व पत्नी को भूलकर बक्सि न देशमातृका की सेवा म जीवन का विसर्जन कर दिया था। रोडग बक्सि की उत्सर्ग-कहानी से उस तिमिराच्छन्न युग की सीमाएँ आलोकित हो उठी थी।

रोमाचक पजाबी कवि *(प० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष — 1938 ई०]

यह डा० गोपालसिह (दे०)-कृत आलोचनात्मक कृति है। इस रचना मे आधुनिक काल की पजाबी रोमाचक कविता पर विस्तार म विचार हुआ है। इसम आरभ मे कविता, कविता की परख, रोमाचवाद, पजाबी कविता मे रोमाचकता पर विचार करने के उपरात पूर्णसिह भाई वीरसिह (दे०), प्रो० मोहन सिह (दे०), धनीराम चातरिक (दे०), किरपासागर (दे० कृपासागर) की कविता के रोमाचक तत्त्वो पर विचार किया गया है। डा० गोपाल सिह की यह आलोचना मूलत अँग्रेजी की रोमाचक कविता की समीक्षा पर आधारित है।

रोला *(हि० परि०)*

रोला छद के प्रत्येक चरण मे चौबीस मात्राएं होती है। इनमे 11 और 13 मात्राओ पर विराम होना है। उदाहरण

> नव उज्ज्वल जलधार, हार हीरक-सी सोहति,
> बिच-बिच छहरति बूंद, मध्य मुक्ता-मनि पोहति।
> लोल लहर लहि पवन, एक पै इक इमि आवत,
> जिमि नर गन मन विविध, मनोरथ करत मिटावत॥
> (भारतेंदु हरिश्चद्र 'सत्यहरिश्चद्र')

प्राय वीररस और वर्णनात्मक काव्य मे इसका प्रयोग अधिक प्रभावी होता है।

रोहल *(सि० ले०)* [जन्म - 1734 ई० के आसपास, मृत्यु — 1804 ई० के आसपास]

रोहल शाह फकीर के पुत्र थ और थरपारकर जिले के अमरकोट नामक नगर के समीप एक गाँव मे रहते थे। यौवनकाल मे य सिध के हाकिम गुलाम शाह कल्होडा और उनके पुत्र सरफराज खान कल्होडा के दरबार म अच्छे पद पर थे, परतु राजनीतिक छल-कपट को देखकर ये त्यागपत्र देकर अपने गाँव चले गये थे। तत्पश्चात् इन्होने अपने जीवन का काफी समय देशाटन म व्यतीत किया था। राजस्थान के जोधपुर, बीकानेर आदि प्रदेशो का भी इन्होने भ्रमण किया था। इन्होने जीवन का बाकी समय उत्तरी सिध के रोहिडी नामक तालुका मे एक वीरान भूभाग को आबाद कर वही बिताया था। यह स्थान बाद मे 'कडिडी' नाम म प्रसिद्ध हो गया।

इनका काव्य सिधी और फारसी भाषाओ मे मिलता है। सिधी मे इनका काव्य फुटकर पदो के रूप मे है। हिंदी मे इस सत कवि के काव्य-ग्रथ 'मन-प्रबोध', 'अद्भुत ग्रथ', 'सर्वज्ञान' और 'अगमवार्ता' नामो से प्रसिद्ध है। सिध के सूफी मत कवियो मे इनका निराला स्थान है, क्योकि इनकी रचनाओं म हिंदी के सत-काव्य और सिधी के सूफी-काव्य का अनोखा सगम है।

रोहिनी *(बँ० पा०)*

रोहिनी (कृष्णकातेर उइल—दे०) बकिमचद्र (दे०) की सर्वाधिक आलोचित स्त्री पात्र है। इस भाग्य-

वंचिता प्रौढ़ा विधवा का जिस प्रकार अपने रूप के अहं-कार पर कोई आवरण नहीं है उसी प्रकार मिलन-लिप्सा में उसकी मुखरता तथा चटुलता पाठक को बार-बार चौंका देती है एवं आहत भी करती है। वासनादीप्त इस रमणी की रूप-वह्नि में हरलाल, गोविंदलाल, निशाकर पतंगों की तरह जलने के लिए आ उपस्थित हुए है। परंतु भोगतृष्णा की दुर्निवार आकांक्षा के स्वरूप का यह महिला अनुधावन नही कर सकी है। इसीलिए गोविंदलाल को उसने प्यार किया है, यह बात उसे बार-बार याद आयी है।

रूपगर्विता, विलास-प्रिय, आसंग-लिप्सु रोहिनी को गोविंदलाल से विश्वासघात नहीं करने पर भी गोविंदलाल के पास से ही मृत्युदंड मिला है। यों इस पात्र में विश्वासहंत्री नहीं होने का दृढ़ संकल्प नहीं है, इसलिए उसकी मृत्यु से शिल्पपक्ष को कोई हानि नहीं पहुँची है। वस्तुतः इससे शिल्प एवं नीति का समन्वय सुदृढ़ हुआ है।

लक्कणदंडेश *(क० ले०)* [समय—पंद्रहवी शती का पूर्वार्द्ध]

विजयनगर के राजा प्रौढ़देवराय के महामात्य, महाशूर लक्कण दंडेश ने 'शिवतत्त्वचितामणि' नामक वीरशैव-सिद्धांत-प्रतिपादक ग्रंथ लिखा है। इनका ग्रंथ-रचना-काल 1924 ई० माना जाता है। इनका ग्रंथ बृहदा-कार है। ग्रंथारंभ में ग्रंथकार ने बताया है—"वितत वेदागम पुरातनोक्तियों (प्राचीन वचनकारों की वाणियों) के सम्मत सार रूप 'शिवतत्त्वचितामणि' कृति की रचना करूँगा।"

इस ग्रंथ में 55 संधियाँ अथवा अंतर्भाग तथा दो हज़ार से भी अधिक पद्य है। इसमें वार्धक षट्पदी का प्रयोग हुआ है। यह वीरशैव धर्म-संबंधी एक विश्वकोश है। इसका 'शिवतत्त्वचितामणि' नाम भी सार्थक है क्योंकि इसमें नित्यानित्यवस्तुविवरण, सकल-निष्कल-विचार, भुवनकोश, शिवलीलाओं तथा शिवलोक वर्णन, शिव-नंदी-संवाद, बसवचरित, गण-प्रशंसा, धर्माधर्म-विवरण आदि के साथ-साथ लिंग-धारण, षट्स्थल आदि का भी वर्णन मिलता है। 'शिवतत्त्व' का समग्र निरूपण होने के कारण यह 'चितामणि' है। इसकी प्रतिपादन-शैली अच्छी है जो ग्रंथकार के गंभीर अध्ययन, चितन और प्रतिभा की निदर्शिका है।

लक्षणसारसंग्रहमु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

इसके लेखक चित्रकवि पेद्दन्ना (दे०) हैं। इसमें कवि ने अपने को 'चित्रकाव्यघन' कहा है। हनुमान की स्तुति के रूप में इन्होंने मुक्तक-रचना (शतक) भी की थी। 'लक्षणसारसंग्रहमु' काव्य-लक्षण बताने वाला अलंकार-ग्रंथ है। इसमें तीन आश्वास है। साधारणत. लक्षणग्रंथों के लेखक उदाहरणों के रूप मे अन्य कवियों की रचनाओं से उद्धरण देते है। किंतु इसमें लेखक ने अपने ही लिखे उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। लक्षणग्रंथ के अंतर्गत दिए गए इन उदाहरणों से विदित होता है कि पेद्दन्ना एक अच्छे चित्रकवि थे।

लक्षणा *(पारि०)*

'लक्षणा' वैयाकरणों तथा काव्यशास्त्रियों द्वारा समान रूप से मान्य शब्द की प्रमुख शक्ति है। शब्द के जिस विशिष्ट व्यापार द्वारा रूढ़ि अथवा प्रयोजन के आधार पर शब्द के मुख्यार्थ से भिन्न, किंतु प्रकारांतर से या किसी-न-किसी रूप में उसी से संबद्ध अर्थ का बोध हो उसे 'लक्षणा'-शक्ति कहते है—('मुख्यार्थबाधे—तद्योगे रूढितो ऽथ प्रयोजनात्। अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणा रोपिता क्रिया।'—मम्मट, काव्यप्रकाश, 2।9)। इस प्रकार लक्षणा-व्यापार की तीन अनिवार्य स्थितियाँ हैं: मुख्यार्थ की बाधा, व्यक्त अर्थ का मुख्यार्थ से किसी प्रकार का संबंध तथा रूढ़ि अथवा प्रयोजन। रूढ़ि अथवा प्रयो-जन की दृष्टि से लक्षणा के दो प्रमुख भेद किए गए हैं—'रूढ़ि लक्षणा' और 'प्रयोजनवती लक्षणा'। गुण-साम्य तथा सादृश्येतर संबंधों के आधार पर 'प्रयोजनवती लक्षणा' के भी क्रमशः 'गौणी' और 'शुद्धा'—दो उपभेद माने गये है। इनमें से 'गौणी-लक्षणा' के 'सारोपा' और 'साध्यवसाना' तथा 'शुद्धा' के 'उपादान लक्षणा' और 'लक्षण-लक्षणा'—ये दो-दो प्रभेद सामान्य रूप से स्वीकृत हैं। परवर्ती आचार्यों ने उक्त भेदों का ही किंचित परि-वर्तन एवं परिवर्द्धन के साथ विस्तार किया है जिसके कारण लक्षणा के अनेक भेदोपभेद हो गये हैं। शब्द की तीन शक्तियों मे से 'लक्षणा'-शक्ति द्वारा काव्य में सजीवता, मूर्तिमत्ता तथा समृद्धि का समावेश होता है; अतः साहित्य मे इसका विशेष महत्व है।

लक्ष्मण (*हिं०, स० पा०*)

अयोध्यापति राजा दशरथ (दे०) के चार पुत्रों में से यह दूसरा पुत्र था। इसकी माता का नाम सुमित्रा तथा पत्नी का नाम उर्मिला था। सीता (दे०)-स्वयंवर में राम (दे०) द्वारा धनुष-भंग किये जाने पर परशुराम के साथ लक्ष्मण ने वाग्युद्ध किया था, जिससे इसके ओजस्वी तथा विनोदी स्वभाव का परिचय मिलता है। यह अपने भाई राम का अति भक्त था। विश्वामित्र के यज्ञ-रक्षार्थ राक्षसों का नाश करने के लिए इसने राम का साथ दिया था तथा राम को वनवास के समय अपनी पत्नी को घर पर छोड़कर चौदह वर्ष के लिए उसके साथ चल दिया था। सीता को बीच में रख कर राम आगे और लक्ष्मण पीछे वन वन भटकते रहे। राम की आज्ञा से इसने शूर्पणखा की नाक और कान काटे थे। स्वर्ण-मृग की माया के कारण जब राम मृग का पीछा करने चले गये थे तो लक्ष्मण को भी सीता को छोड़कर उनके पीछे जाना पड़ा था किंतु साथ ही लक्ष्मण रेखा से आगे न बढ़ने का आदेश दे गया था। सीता-हरण के बाद सीता के आभूषणों को पहचानने के लिए जब इससे पूछा गया तो इसका उत्तर था कि मैं तो केवल सीता-माता के पाद-भूषणों को ही जानता हूँ उसके भुज-बंध और कुंडलों को नहीं जानता—इससे इसकी सच्चरित्रता का प्रमाण मिलता है। लंका में इसने रावण (दे०) के पुत्र मेघनाद (दे०) (इंद्रजित) के साथ छह बार युद्ध किया तथा अंतिम युद्ध में इसने उसका वध किया। रावण द्वारा फेंकी गई अमोघ शक्ति के छाती में लगने पर यह मूर्छित हो गया था तथा हनुमान (दे०) द्वारा लाई गई संजीवनी बूटी से इसकी मूर्च्छा टूट गयी थी। राज्याभिषेक के बाद राम द्वारा सीता का परित्याग करने के लिए यह सीता को रथ पर वाल्मीकि (दे०) के आश्रम तक छोड़ कर आया था। लक्ष्मण भ्रातृ-भक्ति का एक उज्ज्वल उदाहरण है।

लक्ष्मण कवि एनुगु (*तें० ले०*) [समय—अठारहवीं शती ई०]

'सुभाषित रत्नावली' के यशस्वी लेखक एनुगु-लक्ष्मण कवि संस्कृत और तेलुगु के प्रौढ़ कवि थे। संस्कृत में इस कवि ने 'सूर्यशतक' की रचना की थी। तेलुगु में 'रामेश्वर माहात्म्यमु', 'गंगा महात्म्यमु', 'सुभाषित रत्नावली', 'विश्वेश्वरोदाहरणमु', 'नसिंह दंडकमु' और 'रामविलासमु' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है। 'रामविलासमु' रामायण के इतिवृत्त पर आधारित पाँच सर्गों (आश्वासों) का प्रबंध-काव्य है। 'सुभाषित रत्नावली' में भर्तृहरि (दे०) के सुभाषितों का सरस, सुंदर और सुबोध अनुवाद है।

लक्ष्मण कवि पैडियारि (*तें० ले०*) [समय—अनुमानतः सत्रहवीं शती]

आंध्र के कोशकारों हमें में लक्ष्मण कवि का नाम महत्वपूर्ण है। 'आंध्रनामसंग्रह' नामक इनकी पद्यबद्ध रचना में तेलुगु के देशज शब्दों (संस्कृत से भिन्न) का वर्गीकृत संग्रह है। 'अमरकोश' की तरह इस रचना में भी देव वर्ग, मानव वर्ग, स्थावर वर्ग, तिर्यग्वर्ग आदि विभिन्न वर्गों में शब्दों का विभाजन मिलता है। इस शब्द-संग्रह के अतिरिक्त एक ही शब्द के विभिन्न अर्थों का संग्रह भी नानार्थक शब्द-सूची में दिया गया है। इसके संग्रह में जो शब्द छूट गए थे, उनका संग्रह बाद में अडिदमु सूरकवि नामक कोषकार ने अठारहवीं शती में 'आंध्रनामशेषमु' नाम से प्रस्तुत किया था।

लक्ष्मणराव कोमराजु (*तें० ले०*) [जन्म—1877 ई०, मृत्यु—1923 ई०]

आंध्र में आधुनिक विज्ञान, स्वातंत्र्याकांक्षा, इतिहास, आदि अनेक विषयों से संबंधित ज्ञान का व्यापक प्रसार करने के लिए इन्होंने 1906 ई० में 'विज्ञान चंद्रिका ग्रंथमाला' की स्थापना की थी। इस ग्रंथमाला के अंतर्गत इन्होंने विज्ञान, साहित्य, कला आदि विषयों से संबद्ध अनेक ग्रंथों की रचना की थी। इसके उपरांत विश्व की संपूर्ण ज्ञान-राशि को तेलुगु में उपलब्ध कराने के उद्देश्य से ये 'आंध्रविज्ञानसर्वस्वमु' (दे०) (विश्वकोश) के निर्माण की ओर प्रवृत्त हुए थे। ऐतिहासिक अनुसंधान, कला, साहित्य आदि विषयों पर रचित इनके अनेक निबंध अत्यंत लोकप्रिय हुए हैं। इस प्रकार आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के संचय एवं प्रचार-प्रसार की दिशा में इनका कार्य स्तुत्य रहा है।

लक्ष्मण सिंह (*हिं० ले०*) [जन्म—1826 ई०, मृत्यु—1896 ई०]

इनका जन्म आगरा के वजीरपुरा नामक

स्थान में हुआ था। सरकारी सेवक होते हुए भी ये साहित्यानुरागी व्यक्ति थे। भारतेंदु-पूर्व हिंदी-गद्यकारों में इनका ऐतिहासिक महत्व है। ये विशुद्ध हिंदी के समर्थक थे तथा अरबी-फ़ारसी के सहज स्वीकृत शब्दों को भी ग्राह्य नहीं मानते थे। 1861 ई० में इन्होंने आगरे से 'प्रजा हितैषी' पत्र निकाला था। इसके माध्यम से इन्होंने हिंदी के आदर्श रूप का नमूना लोगों के सामने रखा था। कालिदास (दे०)-कृत 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' (दे०) के अनुवाद से इन्हें पर्याप्त प्रसिद्धि मिली थी। हिंदी-प्रेमी पाश्चात्य विद्वान फ़्रेडरिक पिनकॉट ने इसे इंग्लैंड से प्रकाशित कराया था। इंडियन सिविल सर्विस की आई० सी० एस० की परीक्षा में इसे पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकृत किया गया था।

लक्ष्मीकांतमा, ऊटुकूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

ये तेलुगु-लेखिकाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। 'आंध्रकवयित्रलु' नामक ग्रंथ पर इनको पुरस्कार भी मिला है। ये आंध्र साहित्य अकादमी की सदस्या भी है।

लक्ष्मीकांत कवि, बलिजेपल्लि *(ते० ले०)* [जन्म—1881; मृत्यु—1953 ई०]

इनका जन्म बापट्ला तालुके के इटिकंपाडु में हुआ था। इनके पिता का नाम नरसिंह शास्त्री तथा माता का आदिलक्ष्मम्मा था। मामा और बुआ के पास रहकर इन्होंने प्राचीन काव्य-साहित्य का अध्ययन किया। बचपन से ही संगीत-साहित्य में अभिरुचि थी। आरंभ में वे कर्नूल के सब रजिस्ट्रार के दफ़्तर में हेड गुमाश्ता रहे; उसके बाद गुंटूर के हिंदू कॉलेज में तेलुगु-विभाग के प्रधान। 'अवधान'-प्रक्रिया के पीछे पड़ने के कारण इन्होंने नौकरी छोड़ दी और कुछ समय तक अवधान-विद्या का प्रदर्शन करते रहे। स्वराज्य-आंदोलन में भी इन्होंने भाग लिया और नमक-सत्याग्रह के संदर्भ में दो वर्ष तक जेल में रहे। चल्लपल्लि के जमींदार की सहायता से गुंटूर में 1926 ई० में इन्होंने चंद्रिका मुद्रणालय (प्रेस) की स्थापना की जो बाद में विख्यात बना। 1930 ई० रंगून (बर्मा) में भाषण देने तथा नाटकों को प्रदर्शित करने के कारण इन्हें 'कविता-कलानिधि' की उपाधि से समलंकृत किया गया।

तेलुगु-नाटक तथा रंगमंच के क्षेत्र में इनकी पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। जेल में रहते समय इन्होंने 'सत्य हरिश्चंद्रीयमु' नाटक (1912 ई०) की रचना की जो अति प्रसिद्ध हुआ। पद्य-रचना की विशिष्ट शैली के कारण यह नाटक 40-50 वर्ष तक निरंतर अभिनीत होता रहा। इन्होंने भी 1926 ई० में 'फस्ट कंपनी' के नाम से नाटक-मंडली की स्थापना की और कई नाटकों को अभिनीत कराया।

सुप्रसिद्ध सिनेमा-निदेशक सी० पुल्लय्या के प्रोत्साहन से इन्होंने सिनेमा-क्षेत्र में प्रवेश किया और कथा, संवाद, गीत आदि की रचना कर नाम कमाया। 1942 ई० में इस क्षेत्र भी 'पुंभाव-सरस्वती' के विरुद्ध से सम्मानित हुए। 'उत्तरराघवमु', 'बुद्धिमतीविलासमु', 'सात्राजितीयमु' (नाटक); 'ब्रह्मरथमु', 'मणिमंजूषा' (उपन्यास); 'शिवानंदलहरीशतकमु' (शंकराचार्य की कृति का अनुवाद), 'स्वराज्यसमस्या' (पद्यकृति) आदि इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं। इन्हें 'सत्यहरिश्चंद्रीयमु' नाटक के कारण अपार यश प्राप्त हुआ है।

लक्ष्मी देवी *(पं० कृ०)*

यह श्री किरपासागर-रचित महाकाव्य है। इसका आधार वाल्टर स्काट की प्रसिद्ध प्रति लेडी आफ द लेक' को माना जाता है। लक्ष्मी देवी महाराजा रणजीत सिंह के राज्य से निर्वासित एक सरदार बलवीर सिंह की कन्या है। सारा वृतांत इसी रमणी के चरित्र से संबद्ध है। लक्ष्मी देवी वन में महाराजा रणजीत सिंह की सहायता करती है। युद्ध में पकड़ गए सरदार जैमलसिंह और अपने पिता को लाहौर पहुँच कर महाराजा से मिल कर जेल से छुड़वा लेती है। इसका कथानक अधिकांशतः काल्पनिक है। इसे पंजाबी साहित्य का गौरवपूर्ण महाकाव्य माना जाता है। इसमें भारतीय और पाश्चात्य महाकाव्य के लक्षणों का निर्वाह किया गया है। इसके युद्ध-वर्णन सजीव है और प्रकृति-चित्रण मोहक है। शृंगार-वीर-रौद्र आदि रसो की चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। काव्य-भाषा खड़ी बोली के शब्दों से अलंकृत पंजाबी का प्रयोग भी कवि ने किया है। यह महाकाव्य पंजाबी-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखता है।

लक्ष्मीधर *(म० पा०)*

यह प्र० खाडिलकर (दे०) के 'संगीत मानाप-

मान' नाटक का प्रतिनायक है । लक्ष्मी की कृपा-दृष्टि के कारण ही इसे अपनी धन-संपत्ति का अत्यधिक अभिमान है । यह धनवान है, परतु निर्बुद्धि होने के कारण ही सभी पात्रों के उपहास का कारण बनता है । धन के बल पर ही यह नायिका भामिनी के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करने के नानाविध उपाय करता है । नाना प्रकार के रत्न-आभूषणों को पहनकर अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करता घूमता है । रह-रहकर इसे ईश्वर की सृष्टि पर क्षोभ होता है कि उसने शरीर में और अधिक अग-प्रत्यग क्यों न बनाए जिससे यह और अधिक आभूषण पहन सकता । इसी से यह आभूषणों का सदूक अपने साथ रखता है । प्रणय-निवेदन के अवसर पर बढ-चढकर बोलता है, परतु चोरों को सामने देखकर ही इसके देवता कूच कर जाते है । यह अपनी जान बचाने के लिए गिडगिडाकर प्राणों की भीख माँगते हुए कहता है कि मेरे सारे आभूषण जो मैंने पहने हुए है और जो मेरे सदूक में है ले लो और मेरी जान बख्श दो । भामिनी का धैर्यधर के प्रति आकर्षण जानकर ही भामिनी को अपनी उपपत्नी (रखैल) होने का प्रवाद प्रचारित कर धैर्यधर को अपने मार्ग से हटाना चाहता है । किंतु अपने क्रियाकलापों से नाटकीय प्रभावान्विति में निरतर हास्य को बनाए रखता है । मराठी के हास्य-चरित्रों का यह अमर पात्र है ।

लक्ष्मीनर्रासहमु, चिलकर्माति (*तें० ले०*) [जन्म—1867, मृत्यु—1946 ई० ।]

ये राजमहेंद्रवरमु के रहने वाले थे । अध्यापन इनका मुख्य कार्य रहा है । ये अच्छे सुधारक तथा महान् साहित्यकार भी थे । इन्होंने समसामयिक महापुरुष कंदुकूरि वीरेशलिंगमु का अनुसरण किया और उनके समाज-सेवा तथा साहित्य-सेवा से सबद्ध मार्ग को पुष्ट किया । इनके ग्रथ ये है—'कीचकवध', 'द्रौपदीपरिणयमु', 'गयोपाख्यानमु' (द०) आदि नाटक, भास के नाटकों के तेलुगु अनुवाद, 'रामचंद्रविजयमु' (द०), 'अहल्याबाई', 'कर्पूरमजरी', 'सौंदर्यतिलका', 'गणपति' आदि उपन्यास, 'राजस्थान-कथावली' जैसी कथा-रचनाएँ, 'महापुरुषलु जीवितचरित्रलु' (जीवनियाँ) आदि । ये अच्छे प्रहसन-लेखक थे । इनके प्रहसनों की संख्या अस्सी से अधिक है । इन्होंने आत्मकथा लिखी तथा 'मनोरमा', 'देशमाता' और 'सरस्वती' नामक पत्रिकाओं का सपादन भी किया । रगमचीय नाटक लिखने में इन्हें पूर्ण सफलता मिली और प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों के लेखक के रूप में आध्र-स्कॉट' के नाम से विख्यात हुए । समकालीन जीवन-परिस्थितियों को साहित्य के अतर्गत प्रतिबिंबित करने में तथा सरस भावों को ललित शब्दों के द्वारा हास्यमय ढग से अभिव्यक्त करने में इनकी क्षमता अद्वितीय है ।

आध्र-साहित्य के इतिहास में आधुनिक युग के प्रवर्तक महानुभावों में लक्ष्मीनर्रासहमु का भी प्रमुख स्थान है । 1943 ई० में इनको आध्र विश्वविद्यालय ने 'कला-प्रपूर्ण' की उपाधि से सम्मानित किया था ।

लक्ष्मीनर्रासहरावु, पानुगंटि (*तें० ले०*) [जन्म—1865 ई०, मृत्यु—1940 ई०]

ये आध्र के राजमहेंद्रवरमु नामक शहर के रहने वाले थे । ये तेलुगु तथा संस्कृत के विद्वान् थे और अँग्रेजी-साहित्य से भी अच्छी तरह परिचित थे । ये निडर तथा हँसमुख स्वभाव के थे और प्राचीन संस्कृति तथा परंपरा के प्रति गौरवपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने वाले थे । इन्होंने एक सुधारक के रूप में अनेक रचनाएँ की थीं । अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण इन्होंने आनेगोदि, उलाम् जैसी कुछ रियासतों में मंत्रि-पद का भी भार सँभाल लिया था । प्रधानत इनको पिठापुरम् के राजाओं की ओर से अधिक प्रोत्साहन मिला था । इनकी रचनाएँ है 'साक्षी' (दे०) (निबध-सग्रह— 6 भाग), 'कल्याणराघवम', 'पुट्टमगराघवमु', 'वनवासराघवमु' तथा 'विजयराघवमु' (ये चारों नाटक रामायण से सबद्ध है), 'राधाकृष्णुलु', 'विप्रनारायणा' जैसे पौराणिक नाटक, 'वृद्धविवाहमु', 'कंठाभरणमु' आदि कल्पित नाटक । इन्होंने भगवान बुद्ध से सबद्ध 'बुद्धबोधसुधा' नामक नाटक भी लिखा था । इनकी आत्मकथा अपूर्ण ही रह गई ।

लक्ष्मीनर्रासहरावु प्रधानत नाटककार और निबधकार थे । इनके नाटक रंगमंच पर अत्यत सफलता-पूर्वक प्रदर्शित किए गए थे । इनके नाटकों के कथानक में वैविध्य है । रामायण की कथा ने इनकी लेखनी से नाटकों का रूप धारण कर लिया था । अनेक पौराणिक नाटकों के अतिरिक्त इन्होंने 'प्रचड-चाणक्य'-जैसे कुछ ऐतिहासिक नाटक भी लिखे थे । इनके 'राधा-कृष्ण' तथा 'कंठाभरण' नामक नाटक आध्र-जनता के बीच अत्यत प्रचलित हुए हैं ।

सफलतम नाटक-रचना के अतिरिक्त इनके यश का कारण 'साक्षी' नामक निबध-सग्रह भी है ।

अँग्रेज़ी में एडिसन तथा स्टील के द्वारा लिखे गए 'स्पेक्टेटर' के अनुसरण पर इन्होंने इन निबंधों की रचना की थी। सरस हास्य से युक्त सुधारात्मक दृष्टि इनके निबंधों के अंतर्गत पग-पग पर परिलक्षित होती है। इनके विचारों की अभिव्यक्ति में निर्भीकता, स्पष्टता तथा प्रभावोत्पादकता है। इनके निबंधों में विचारों की अभिव्यक्ति के साथ-साथ उपयुक्त शब्दों का चयन और संयोजन भी मार्मिक है। वीरेशलिंगम् की तरह इन्होंने भी अपनी रचनाओं को समाज-सुधार के साधन बना दिया था।

सफल नाटककार तथा सफलतम निबंधकार के रूप में लक्ष्मीनरसिंहराव् का नाम तेलुगु-साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा।

लक्ष्मीनारायण, उंनव *(तें० ले०)* [जन्म—1873 ई०; मृत्यु--1958 ई०]

लक्ष्मीनारायण जी ने सत्तेनपल्लि तहसील में स्थित वेमुलुरुपाडु नामक ग्राम में जन्म लिया। इन्होंने एफ० ए० तक गुंटूर के क्रिश्चियन कॉलिज में विद्याध्ययन किया। 1913 ई० में ये डबलिन गये। वहाँ बारिस्टरी की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। उस समय प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ डिवेलरा से परिचय प्राप्त किया। स्वदेश लौटने के अनंतर ये कुछ समय तक मद्रास और गुंटूर नगरों में वकालत का पेशा करते रहे।

गांधी जी के आदेशानुसार 1920 ई० में इन्होंने अपने पेशे को तिलांजलि दे दी। स्वतंत्रता आंदोलन के एक प्रमुख नेता के रूप में ये जनता में आदर पाने लगे। राजनीतिक आंदोलनों में भाग लेने के साथ ये समाज-सुधार के कार्यों में भी काफी तत्पर रहते थे। 1920 ई० में विधवाओं के लिए इन्होंने एक सेवाश्रम की स्थापना की तथा 1922 ई० में स्त्री-शिक्षा के हित 'शारदा-निकेतनमु' नामक विद्यालय खोला जहाँ स्त्रियों को गांधी जी के सिद्धांतों के अनुसार सिलाई आदि औद्योगिक कलाओं का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। यह संस्था आजकल भी समाज-सेवा में तत्पर है।

लक्ष्मीनारायण जी का साहित्यिक व्यक्तित्व भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। प्राचीन कवियों में तिक्कना (दे०) इनका सर्वाधिक प्रेमपात्र कवि था। ये अपने युग के सफल उपन्यासकार थे। इनका उपन्यास 'मालपल्लि' (दे०) गांधीवाद से प्रभावित तेलुगु का उच्चकोटि का उपन्यास है। इसमें अभिव्यक्त विद्रोही भावों से भयभीत होकर तत्कालीन प्रशासन ने इसका निषेध किया। इनकी अन्य कृतियों में 'नायकुरालु' उल्लेखनीय है।

लक्ष्मीबाई *(हिं० पा०)*

यह वृंदावनलाल वर्मा (दे०) के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'झाँसी की रानी' (दे०) की नायिका है। प्रथम भारतीय स्वाधीनता-संग्राम की अमर सेनानी लक्ष्मीबाई का शौर्य-पराक्रम से मंडित चरित्र भारतीय अध्येताओं के लिए सर्वथा अपरिचित नहीं है किंतु उपन्यासकार ने ज्ञातव्य सामग्री तथा अपनी कल्पना के रंग से एक ऐसी जीवंत चरित्र-सृष्टि की है जिसे हिंदी-साहित्य के लिए एक मूल्यवान निधि माना जा सकता है। उन्होंने अत्यंत पुष्ट ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह स्थापना की है कि रानी लक्ष्मीबाई का शौर्य परिस्थितिजन्य न होकर जन्मजात था और वह स्वराज्य के लिए लड़ी थी। लेखक ने रानी को पत्नीत्व तथा मातृत्व के सभी कोमल गुणों से मंडित दिखाकर एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है।

लक्ष्मीरंजनमु, खंडवल्लि *(ते० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

ये ऐतिहासिक अनुसंधानकर्ता, समालोचक तथा निबंधकार हैं। आंध्र जनता के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास से संबंधित 'आंध्रुलचरित्र-संस्कृति' नामक इनकी रचना को विशेष ख्याति मिली है। इनका 'आंध्र-साहित्यचरित्र' तेलुगु-साहित्य के इतिहास पर रचा गया ग्रंथ है। 'तेलुगु दुक्कि' इनके निबंधों का संकलन है। 'आंध्रविज्ञानसर्वस्वमु' नाम से प्रकाशित तेलुगु-विश्वकोश का संपादन-कार्य भी इन्होंने किया है।

लक्ष्मीश *(क० ले०)*

'जैमिनि-भारत' (दे०) के कवि लक्ष्मीश कन्नड श्रेष्ठ कवियों में गिने जाते हैं। इनका रचना-काल सोलहवीं शती (1550 ई०) माना जाता है। इनकी जीवनी के बारे में विशेष बातें ज्ञात नहीं हैं। इनका निवास-स्थान देवनूरु या सुरपुर कहा जाता है। वहाँ भगवान् लक्ष्मीरमण का मंदिर है। लक्ष्मीश के इष्टदेव ये ही लक्ष्मीरमण हैं जिनका उल्लेख इनके काव्य में उपलब्ध होता है। लक्ष्मीश की जाति के विषय में पर्याप्त

चर्चा हुई है। विद्वानो ने इनको भागवत-सप्रदायी माना है। इनके ग्रथ मे भक्ति की पावन गगा वही है।

'कन्नड-जैमिनि-भारत (दे०) सस्कृत-जैमिनी भारत का सक्षिप्त अनुवाद है, परतु वह स्वतत्र कृति के गुणो से भी परिपूर्ण है। इसमे कथा सक्षेप मे कही गयी है, पर उससे प्रभाव किसी प्रकार घटा नही है। लक्ष्मीश ने कन्नड कवियो की परपरा के अनुसार मूल ग्रथ का अनुसरण करते हुए भी अपनी स्वतत्र प्रतिभा को प्रकाशित किया है। मूल के कुछ अनावश्यक वर्णन और उपदेश इन्होने छोड दिये हैं नवीन प्रसग और वर्णन जोड दिय हैं। इन्होने भक्ति, शृगार और वीर रस के वडे मनमोहक चित्र प्रस्तुत किये है। इनके कथा नक का शिल्प काव्य शिल्प है, पुराण शिल्प नही है। कथानक मे इन्होने विशेष परिवर्तन नही किया है, तथापि उसमे महान् आकर्षण है। इसका कारण यह है कि उन्होने अत्यत तन्मयता के साथ कथानक का वर्णन किया है। सुधन्वा, वभ्रुवाहन, लव कुश तथा चद्रहास की कथाओ मे इनका कला-नैपुण्य देखते ही वनता है। 'सीतापरित्याग' वाले प्रसग मे कारुण्य की अदभुत सृष्टि है तो 'सुधन्वा' और वभ्रुवाहन' जैसे कथा प्रसगो मे ओज का जादू है। 'चद्रहास की कथा इनकी सर्वश्रेष्ठ सरस रचना है। लक्ष्मीश ने अपने काव्य को 'श्रीकृष्णचरितामृत' कहा है। अनेक कथा-प्रसगो के द्वारा इन्होने श्रीकृष्ण की महिमा का ही वर्णन किया है। इनकी दृष्टि मे श्रीकृष्ण ही कथा के नायक है। वे समस्त कार्य व्यापार के सूत्रधार है। उनके विना तृण भी नही चल सकता।

श्रीकृष्ण पर कवि का ध्यान केंद्रीभूत होते हुए भी अन्य पात्रो के चरित्र चित्रण मे वडा कौशल दर्शाया गया है। अर्जुन, वभ्रुवाहन, सुधन्वा यौवनाश्व, मयूरध्वज आदि पुरुष पात्र तथा सीता, प्रभावती, ज्वाला, चडी, विपया आदि स्त्री पात्र इनके काव्य मदिर की सजीव प्रतिमाएँ है।

लक्ष्मीश न 'वार्धक पटपदी छद म काव्य लिखकर 'देसि (दे०) और मार्ग (दे०) का सुदर समन्वय किया है। इनकी कविता म स्वाभाविकता है, सगीतात्मकता है तथा भाषा प्रौढ और प्रभविष्णु है। वे पडित और भक्त दोनो ही हैं।

लखिंदर *(बं० पा०)*

चद्रधर (दे०) एव सनका के पुत्र लखिंदर की सर्पदश से मृत्यु एव पुनर्जीवन-प्राप्ति की कहानी ही 'मनसा मगल, (दे०) काव्य-परपरा की विषय-वस्तु है। चद्रधर के साथ मनसा के विरोध के फलस्वरूप ही लखिंदर का जीवन-नाश होता है। चद्रधर के छह पुत्रो का जीवन नाश भी इसी एक कारण से हुआ था। वेहुला (दे०) के साथ लखिंदर के विवाह की रात्रि मे ही सर्पदश से लखिंदर की मृत्यु होती है। वेहुला की अश्रुधार की तरगो पर बहती हुई लखिंदर की जीवन-नौका अमर्त्यलोक के द्वार पर पहुँचती है एव वेहुला के जीवन-मथित कारुण्य के दिव्य आलोक के माध्यम से दैवी करुणा की धारा उतर आती है। मनसा की कृपा से लखिंदर पुनर्जीवन प्राप्त करता है। उसके वाद अपने भवन मे उसका पुनरागमन होता है और तव कवियो ने चद्रधर के द्वारा मनसा पूजा का उल्लेख किया है। दैवी रोष का कारण लखिंदर फिर दैवी महिमा का आश्रय भी है। लखिंदर के चरित्र के विकास की सभावना अत्यत सीमित है। वस्तुत कहानी के लिए ही लखिंदर का चारित्रिक विकास नही हो पाया है।

लघुशब्देंदुशेखर *(स० कृ०)* [रचना-काल—स० 1787-1867 ई० के मध्य]

इस ग्रथ के प्रणेता व्याकरणशास्त्र के उद्भट विद्वान् नागेश (दे०) हैं। लघुशब्देंदुशेखर सिद्धातकौमुदी' (दे०) का व्याख्या-रूप ग्रथ है। इस ग्रथ मे सिद्धात कौमुदीस्थ फिट्सूत्र-वृत्ति पर विशिष्ट व्याख्या वर्तमान है।

यह ग्रथ व्याकरणशास्त्र का महनीय ग्रथ है। स्वय नागेश ने इसे पुत्र तथा 'मजूपा' को कन्या कहा है—'शब्देंदुशेखर पुत्रो मजूषा चैव कन्यका। स्वमतौ सम्यगुत्पाद्य शिवयोरर्पितौ मया॥'

व्याकरणशास्त्र के गहन शास्त्रीय पक्ष की दृष्टि मे यह ग्रथ विशिष्ट रूप मे उपादेय है।

लटकमेलक *(स० कृ०)* [समय—वारहवीं शती]

'लटकमेलक' सस्कृत का अत्यत लोकप्रिय तथा प्रख्यात प्रहसन है। इसकी रचना कान्यकुब्जाधीश गोविंदचद्र के सभाकवि शखधर ने की थी।

'लटकमेलक' का अभिप्राय है धूर्तसम्मेलन। इसका कथानक वडा मनोरजक है। दो अको के इस

प्रहसन का कथानक शाक्त तथा जैन-साधुओं की प्रेम-कहानी से संबंधित है। कौलमहाव्रलंबी सभासलि की पत्नी का नाम कलहप्रिया था। सभासलिजी मदनमंजरी नामक वेश्या के घर जाया करते थे। वहाँ एक दिगंबर सूरिजी भी आते थे। पर उनका प्रेम, वेश्या की अंग-रक्षिका कुटनी 'दंतुरा' से हो गया। 'सभासलि जटाक्षुर' की दंतुरा से शादी करा देते है और स्वयं मदनमंजरी के साथ मस्त रहते हैं। इस प्रधान वृत्त के साथ धूर्त वैद्यों, बौद्ध भिक्षु, रूखे पंडित आदि को जोड़कर कथानक को और भी रोचक बना दिया गया है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण तो एक-दो पद्यों में अत्यंत कुशलता से किया गया है पर दर्शकों के मन पर उसकी अमिट छाप पड़ती है।

लता *(गु० पा०)*

लता श्री गुलाबदास ब्रोकर की प्रख्यात कहानी 'लता शुं बोले ?' की स्त्री-पात्र है। इस परिणीता नारी को अपने विज्ञान-रसिक पति सुरेश के प्रति प्रेम और निष्ठा है। परंतु पति के साहित्य-प्रेमी मित्र निरंजन के प्रति यह अधिक आत्मीय भाव की अनुभूति करती है। यही भाव आगे चलकर स्त्री और पुरुष के सनातन आकर्षण का रूप धारण कर लेता है। दोनों अपने को संयमित रखने की भरसक चेष्टा करते हैं किंतु एकांत प्राप्त होते ही आकर्षण के अधीन हो जाते हैं।

आधुनिक युग में समान शील-व्यसन भी किस प्रकार पारस्परिक आकर्षण का कारण बनता है, इसी की कथामय अभिव्यक्ति लेखक ने लता के माध्यम से की है। इस कहानी का गुजरात में इतना प्रबल आकर्षण हुआ है कि बाद के गुजराती के अनेकानेक मूर्धन्य साहित्यकारों ने इसे आगे बढाया है।

लभिता *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1948 ई०]

ज्योतिप्रसाद आगरवाला (दे०) के इस नाटक में द्वितीय महायुद्ध के समय गाँवों पर मिलिटरी के अत्याचारों का वर्णन है। लभिता आदर्शवादी नारी नहीं है, किंतु साधारण ग्रामकन्या का प्रतिरूप भी नहीं है। जापानी आक्रमण के समय उसके पिता आदि मारे जाते हैं। वह ताल्लुकेदार के घर आश्रय लेकर अनेक अत्याचार सहती है; कुछ दिन वह एक बूढ़े मुसलमान के आश्रय में भी रहती है। वह नर्स बनकर अंग्रेज़ी सेना के साथ कोहिमा जाती है, वहाँ बंदी होकर वह आज़ाद हिंद फ़ौज में भर्ती होती है। वह अँग्रेज़ी सेना से युद्ध करती हुई मारी जाती है। नाटक के चरित्र, घटना और संवाद यथार्थवादी हैं। प्रभाव की दृष्टि से इसे ट्रेजेडी कहा जा सकता है, किंतु ट्रेजेडी का सार्वभौम आवेदन इसमें नहीं है।

लय *(पारि०)*

'लय' छंदोबद्ध भाषा का एक अनिवार्य तत्त्व है। यह मूलतः संगीत का तत्त्व है और साहित्य के जिन रूपों में संगीतात्मकता अथवा गेयता का संस्पर्श रहता है वहाँ इसका अस्तित्व अनिवार्य है। इसका रूप हृदय की धड़कन, श्वास-प्रश्वास, ऋतु-परिवर्तन, ज्वार-भाटा, नदी-प्रवाह, पक्षियों के पंख फड़फड़ाने, वर्षा आदि प्रकृति के सभी रूपों में देखा जा सकता है : 'परमाणु के मिलन में एक सम है, प्रत्येक हरी-हरी पत्ती के हिलने में लय है'···(जयशंकर 'प्रसाद' : 'स्कंदगुप्त')। प्रकृति से सीधे उद्भूत और प्रभावित होने के कारण संगीत में इसका स्थान सर्वप्रमुख है और काव्य के संगीत से संपृक्त होने के कारण उसमें भी इसकी स्थिति अनिवार्य है। यह अपने आप में एक इंद्रिय-संवेद्य और अमूर्त तत्त्व है कला (दे०) में इसकी भूमिका दोहरी है : संरचनात्मक दृष्टि से विविध अंतर्तत्त्वों में संश्लेषण और समंजन तथा तात्त्विक रूप से भावोद्बोधन के द्वारा रागदीप्ति। साहित्य में एक स्थान केवल कविता में ही नहीं है, गद्य में भी है। पद्य में इसकी स्थिति नियत और गद्य में अनियत मानी गई। अतुकांत और मुक्त छंदों की छांदसिकता लय के कारण ही है।

ललितललाम *(हि० कृ०)* [रचना-काल—1659-1688 ई० के बीच]

मतिराम-प्रणीत यह एक अलंकार-विषयक ग्रंथ है। इसमें केवल अर्थालंकारों का प्रतिपादन किया गया है। जयदेव और अप्पय दीक्षित (दे०) के अतिरिक्त कहीं-कहीं मम्मट (दे०) तथा विश्वनाथ (दे०) के ग्रंथों से भी सहायता ली गई है। उदाहरणों को अलग से कवित्त-सवैया-दोहा छंदों में भी प्रस्तुत किया गया है, जो प्रायः सरस, मनोहर एवं ललित हैं। कुल मिलाकर यह रीतिकाल का प्रसिद्ध अलंकार-ग्रंथ है।

ललिता *(गु० पा०)*

गुजराती-नाट्य के जनक रणछोड भाई उदयराम (दे०)-रचित 'ललिता दुख दर्शक' (दे०) नामक नाटक की प्रधान स्त्री पात्र ललिता, शराबी, व्यभिचारी व दुश्शील पति की पतिपरायणा, महनशीला और पीडिता पत्नी है। उस युग मे प्रचलित अनमेल विवाह की समस्या का वह प्रतिनिधित्व करती है।

गुजराती की प्रथम सामाजिक त्रासदीय नाट्य कृति के रूप मे 'ललितादुखदर्शक' का अपना महत्व है। तडक भडक वाले पारसी रगमचीय नाटको की तुलना मे यह नाटक अत्यत सरल है। 'ललिता' के अपार कष्टो को देखकर उस युग के दर्शको पर बडा गहरा प्रभाव पडा। समाज सुधार की मूल वृत्ति पर आधृत यह नाट्य कृति गुजराती नाट्य-साहित्य के उप काल की एक उल्लेखनीय रचना है।

ललिता *(मल० पा०)*

'पूतनामोक्षम्' नामक कथकळि काव्य-ग्रथो की नायिका पूतना का एक रूप यह है। पहले वह एक सुदरी तरुणी के वेश मे रगमच पर आती है। यही ललिता है। तदनतर वही पूतना के रूप मे प्रत्यक्ष होती है।

ललितादुखदर्शक नाटक *(गु० कृ०)* [प्रकाशन वर्ष—1877 ई०]

रणछोडभाई उदयराम (दे०) के इस नाटक का विषय है अनमेल विवाह। ललिता (दे०) नाटक की नायिका है और बचपन मे उसका विवाह चरित्रहीन नदकुमार से होता है जो सर्वदुर्गुण-सपन्न है। यह गुजराती का पहला करुणात नाटक है और इस पर पश्चिम के त्रासदी-नाटको का प्रभाव है। लेखक ने स्वय ही एक एक नाट्य मडल की रचना की थी और उसके द्वारा नाटक प्रस्तुत होता था।

लल्लूलाल *(हि० ले०)* [जन्म—1763 ई०, मृत्यु—1835 ई०]

इनका जन्म आगरा मे हुआ था। ये फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता मे हिंदी-गद्य मे ग्रथ-रचना के लिए नियुक्त किए गए थे। 'सिंहासन बत्तीसी', 'बैताल पच्चीसी', 'प्रेम सागर', 'राजनीति' आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ है। आनुप्रासिक किंतु आडबरपूर्ण भाषा-प्रयोग तथा उर्दू के शब्दो का यथाशक्ति बहिष्कार इनके लेखन की प्रमुख विशेषताएँ हैं। हिंदी-गद्य के उन्नायको मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

लल्लेश्वरी (ललद्यद) *(कश० ले०)* [जन्म—अनुमानत 1335-1340 ई०]

इनका जन्म श्रीनगर से पाच मील दूर दक्षिण की ओर पाद्रेठन नाम के गाँव मे हुआ था। परिपक्व वृद्धावस्था म समाधिस्थ होने का समय अज्ञात। अल्पायु म विवाह। ससुराल म इनका नाम पद्मावती रखा गया था। सास और पति के द्वारा इन्हे तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं। ये सुल्तान अलाउद्दीन एव शेख नूरुद्दीन वली (नुद ऋषि) की समकालीन थी। शैवमत और तसव्वुफ के जिस ससर्ग ने कश्मीर मे ऋषिमत या ऋषि-परपरा को जन्म दिया, ललद्यद या लल आरिफा उसी ऋषि परपरा की प्रतीक-प्रवर्तिका हैं। श्रुति और स्मृति का मथन करके योग और निर्गुण भक्ति मार्ग के सम्मिश्रण से, विशेषत 'नाद-बिंदु साधना' द्वारा जीवन की सफलता एव मोक्ष-प्राप्ति का सदेश देने वाली आदि-कवयित्री ललद्यद ने प्रथम बार जनसाधारण की भाषा कश्मीरी मे अध्यात्मवाद और दैनिक जीवन के अनुभवो को 'वाखो' के ताने बाने म सँवारा। इन्हे सिद्ध मोल से दीक्षा प्राप्त हुई थी। 'लल' का अर्थ है 'लटकता मास'। कदाचित लटकते पेट के कारण 'लल' नाम पडा और शिरोधार्या होने के फलस्वरूप 'ललद्यद' कहलाईं। गागर म सागर भरने वाले इनके 'वाखो' की प्रामाणिक सख्या लगभग 171 है। अपने विचारो की गहनता एव प्रौढता कश्मीरी भाषा को प्रौढता और परिपक्वता प्रदान करने का श्रेय ललद्यद को ही प्राप्त है। कश्मीरी भाषा एव साहित्य में इनका वही स्थान है जो हिंदी मे चदबरदाई (दे०) का और अँग्रेजी म चॉसर का।

लहना *(बँ० पा०)*

ग्रामीण लोक-कथाओ के राज्य म व्रतकथाओ का मार्ग अतिक्रमण कर 'चडीमडल' (दे०) की लहना मध्ययुग के कविचित्त म आ उपस्थित हुई है। वह धन-

पति की प्रथम स्त्री है। खुल्लना के रूप से मुग्ध धनपति ने लहना को यह समझाया है कि अपनी सेवा-टहल के लिए उसने खुल्लना से शादी की है। मंगल-काव्य की लहना सरल है। उसने धनपति की चतुरता को स्वीकार किया है। शादी के उपरांत उसने खुल्ला को अपने स्नेह के अजस्र दाक्षिण्य से भर देना चाहा। मंथरा की तरह दुर्बल स्त्री ने उसे हिंसा का मंत्र पढ़ाया।. धनपति के वाणिज्य-यात्रा पर चले जाने पर वह यथार्थ सौत के रूप में दिखाई दी है। ग्रामीण लोक-कथाओं की वह उस समय 'दुओरानी' है। धनपति के वापस आने पर धनपति को अपना बनाने के प्रयत्न मे उसे यह समझने में देर नहीं लगी है कि गहना नहीं यौवन ही वास्तविक धन है और वह धन उसके पास नहीं है। लहना को कवि ने कहानी के प्रयोजन के अनुसार जहाँ प्रतिष्ठित किया है वहाँ जितनी कठोरता की आवश्यकता है उसके चरित्र मे वह है; फिर भी गृहिणी के रूप में, आत्म-समीक्षा की चेष्टा एवं हताशा के अश्रु-निर्झर ने इस चरित्र को पाठक का ममत्व प्रदान किया है। समकालीन समाज-जीवन से इस चरित्र की प्रतिष्ठा हुई है। इसीलिए लहना का दुःख-आनंद, द्विधाद्वंद्व, गंभीर हताशा अथवा निष्फल आक्रोश पाठक को उदासीन नहीं बनाते वरन् उसका मन सहानुभूति-विह्वल हो उठता है।

लहर *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1933 ई०]

जयशंकर प्रसाद (दे०) की उत्कर्षकालीन गीतियों और अतुकांत लंबी कविताओं का संग्रह इस कृति में हुआ है। गीतियों के विषय आत्मकथा, पूर्व-स्मृति प्रेम-व्यापार, प्रकृति, रहस्यानुभूति, सांस्कृतिक गौरव आदि हैं। लंबी कविताओं मे प्रायः सांस्कृतिक पराजय के महत् क्षणों का दीप्त राग व्यंजित है। 'उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर', 'ले चल मुझे भुलावा देकर', 'बीती विभावरी जाग री' जैसी भाव-सघन गीतियों और 'प्रलय की छाया' जैसी नाट्यगुण-संपन्न कविता इस संग्रह में विद्यमान है। इन रचनाओं का शब्द-चयन और प्रतीक-विधान प्रसाद के प्रौढ़ सांस्कृतिक व्यक्तित्व की गहरी छाप लिए हुए हैं।

लहू-मिट्टी *(पं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1949 ई०]

संतसिंह सेखों (दे०) की एकमात्र उपन्यास-कृति है जिसमें पंजाब के कृषक-गृहस्थ का यथार्थवादी चित्र उपस्थित किया गया है। अर्थहीनता के जीवन में पिसते किसान को अपना घर-गृहस्थ छोड़ना पड़ता है। अपनी आशाओं-आकांक्षाओं और स्वप्नों को मिट्टी मे मिलते देखना पड़ता है। लेखक ने इस त्रासदी को सहानुभूति और सूझ-बूझ के साथ चित्रित किया है। उपन्यास के मुख्य पात्र बिजे सिंह और दयाकौर है। इनके माध्यम से पंजाब के ग्रामीण जीवन के आर्थिक संकट को वास्तविक रूप में उपस्थित किया गया है।

कई आलोचकों का विचार है कि इस उपन्यास में सेखों ने अपने परिवार की कहानी प्रस्तुत की है। पंजाबी की उत्तम कथा-कृतियों में होने पर भी अपनी विलक्षणता के कारण यह रचना अधिक लोकप्रिय नहीं हो सकी।

लाउसेन *(बँ० पा०)*

लाउसेन 'धर्ममंगल' (दे०) काव्य का नायक है। धर्ममंगल के कथानक में प्रच्छन्न रूप से कृष्ण-लीला का संकेत है। लाउसेन को कृष्ण की तरह विचित्रकर्मा चरित्र के रूप में चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है।

धर्ममंगल काव्य-परंपरा को मध्ययुग के काव्य-साहित्य में महाकाव्य के लक्षणों से युक्त काव्य के रूप में अभिहित किया जाता है। नायक लाउसेन के चरित्र में संस्कृत आलंकारिकों के द्वारा वर्णित नायक चरित्र का सारा वैशिष्ट्य उपलब्ध है। वे धीर एवं उदात्त-गुण-संपन्न हैं।

कर्तव्य-कर्म में उन्होंने कभी अवहेलना नहीं की है। यह सच है कि दैवानुग्रह से उनका जीवन नियंत्रित है फिर भी व्यक्तिगत संयम, उदारता, आत्मशक्ति में आस्था, माता-पिता के प्रति अविचल श्रद्धा एवं मानवीय गुणों ने इस चरित्र को नवीन महत्व प्रदान किया है। जीवन के क्षेत्र एवं साधना के क्षेत्र में भी एकाग्रता एवं सत्यनिष्ठा ने लाउसेन को आदर्श चरित्र के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

लाउसेन के जीवन-दर्शन में 'असंभव' शब्द अर्थहीन है। समसामयिक दुर्बल, नीतिहीन, समाज-व्यवस्था के ऊपर लाउसेन एक स्वस्थ आदर्श मौलिक रूपक मात्र है। लाउसेन बँगला मंगलकाव्य के इतिहास में अद्वितीय चरित्र है।

लाखू-लक्खण (लक्ष्मण) *(अप० ले०)* [रचना-काल—1218-1256 ई०]

लक्खण की दो कृतियाँ प्राप्त हुई है—'जिणदत्त चरिउ' (जिनदत्त-चरित) (दे०), और 'अणु वय रमणपईउ' (अणुव्रत रत्न-प्रदीप)। दूसरी कृति की रचना कवि ने 38 वर्ष बाद की थी। सभवत इस बीच कवि ने अन्य रचनाएँ भी की हो जो अद्यावधि प्रकाश मे नही आ सकी। प्रथम कृति मे जिनदत्त का चरित्र अकित किया गया है और दूसरी मे श्रावको के पालन करने योग्य व्रतो और गृहस्थो के धर्मो का उल्लेख है।

लक्खण के पिता का नाम साहुल और माता का नाम जइना था। ये जायस वश मे उत्पन्न हुए थे। ये श्रीधर और अभयपाल के मत्री कृष्णादित्य के आश्रम मे रहे थे। ये पहले समृद्धिशाली त्रिभुवन गिरि नामक नगर मे रहते थे किंतु कालातर मे विदेशी आक्रमण एव राजनीतिक उथल-पुथल के कारण वहाँ से एटा जिले के अतर्गत बिलरामपुर मे जा बसे थे।

कवि की शैली अलकृत और प्रसादगुण-युक्त है। कथात्मक प्रसगो मे विषय के अनुरूप शैली सरल है। जहाँ-तहाँ सामान्य जीवन के चित्र पर्याप्त आकर्षक है।

लाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1658 ई०]

लाल कवि का पूरा नाम गोरे लाल। इनका जन्म बुदेलखड मे हुआ था। इनके आश्रयदाता छत्रसाल थे, जिनकी स्तुति म इन्होने 'छत्रप्रकाश' की रचना की थी। इसमे दोहे और चौपाइयो मे छत्रसाल के जीवन की वीरतापूर्ण घटनाएँ वर्णित हैं। इनकी अन्य रचनाएँ भी छत्रसाल के जीवन से सबधित है—'छत्रसाल शतक', 'छत्रकीर्ति', 'छत्रछद' आदि। इन सब का वर्ण्य-विषय वीर रस है। इनकी शैली ओज-प्रधान है। रीतिकाल के उस शृगार-प्रधान युग मे भूषण (दे०) के समान लाल ने भी वीररस की रचनाओ के द्वारा राष्ट्र की एक महान् आवश्यकता की पूर्ति की थी।

लालन वैरागीण *(म० कृ०)* [रचना-काल—1895 ई०]

भाऊसाहबाची बखर के आधार पर लिखा गया यह ऐतिहासिक उपन्यास पानीपत के युद्ध की पृष्ठ-भूमि पर लिखा गया है। इसके लेखक हैं दिनकर गोविद वझे (1848-1908 ई०)। अपने समय मे यह उपन्यास अत्यत लोकप्रिय हुआ और 1895 से 1909 ई० तक इसके तीन सस्करण निकले।

लालसिंह 'कमला अकाली' *(प० ले०)*

लालसिंह 'कमला अकाली' की गणना पजाबी के विशिष्ट गद्य-लेखको मे की जाती है। इन्हे विशेष प्रसिद्धि अपने यात्रा-वर्णनो के कारण मिली है। इस प्रकार के यात्रा-लेखो का पहला सग्रह 'मेरा विलैती सफरनामा' (दे०) पजाबी मे विशेष समादृत हुआ। 'कमला अकाली' ने विदेशो की काफी यात्रा की है और वहाँ के जीवन, आचार-व्यवहार को बडी सूक्ष्म दृष्टि से देखा-समझा है। इसलिए उनके यात्रा-प्रसगो पर लिखे गए निबध पजाबी मे अपना मौलिक रग लिए हुए हैं। भाषा की सरलता और स्पष्टता के कारण इनके निबधो म कहानी की-सी रोचकता आ गई है।

'कमला अकाली' की हास्य-कहानियाँ, और निबध भी बडे लोकप्रिय है। 'सरब लोह दी वहुटी' और 'मौत राणी या घुड' नामक सग्रहो मे उनकी हास्य-व्यग्य से भरी रचनाएँ सगृहीत हैं।

नित्य-प्रति जीवन के सामान्य विषयो पर लिखे गए इनके निबधो का सग्रह है 'जीवन नीति'। इस सग्रह मे दैनिक जीवन की छोटी-छोटी बातो पर सरल ढग के हल्के-फुल्के लेख लिखे गये हैं जो जीवन को अधिक सुसस्कृत और सुदर बनाने की प्रेरणा देते हैं।

'कमला अकाली' की एक नयी पुस्तक 'देश-भगत सैलानी' शीर्षक से प्रकाशित हुई है। यह रचना भी लेखक द्वारा बर्मा, स्याम आदि देशो की यात्राओ से प्राप्त अनुभवो के आधार पर लिखी गई है, परतु इसे उपन्यास का रूप दे दिया गया है।

लाला गणपतराय *(म० पा०)*

डा० श्री० व्य० केतकर (दे०) के अमेरिका मे बसे हिंदुओ पर लिखे उपन्यास 'परागदा' का यह पात्र उन व्यक्तियो का प्रतिनिधि है जो अमेरिका जाकर भी वहाँ के जीवन से प्रभावित न होकर विशुद्ध भारतीय बने रहे। ऐसे पात्रो को विरोध मे रखकर लेखक ने अमेरिका के जीवन से प्रभावित भारतीयो का चित्र अधिक स्पष्ट करने मे सफलता प्राप्त की है। इस पात्र की रचना का

आधार थे पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय। लेखक ने जहाँ एक ओर प्रस्तुत पात्र में लाला लाजपतराय के अनेक गुणों—पवित्र आचरण, हिंदू-निष्ठा, राष्ट्रीय भावना आदि का समावेश किया है वहाँ उनके कतिपय दोषों—अमरीकी जीवन एवं विचारधारा से अनभिज्ञता, वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव, पंजाब के प्रति अतिरिक्त अभिमान-भाव का भी उद्घाटन किया है। लाला लाजपतराय के प्रति लेखक की दृष्टि संतुलित है, पूर्वाग्रह-युक्त नहीं। अतः उनके प्रति उस प्रकार का अन्याय नहीं हो पाया है जिस प्रकार का श्री विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे (दे०) के साथ हुआ है। इस पात्र के माध्यम से लेखक ने कतिपय समाजशास्त्रीय विचारों को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है।

लाला, जगन्मोहन *(उ०ले०)* [जन्म—1838 ई०; मृत्यु—1913 ई०]

स्वर्गीय जगन्मोहन लाला उड़ीसा के आदि नाट्यकार हैं। ये माहंगा, कटक के निवासी थे। एंट्रेंस पास करने के बाद ही इन्होंने सरकारी नौकरी कर ली थी और अवकाश लेते समय ये डेपुटी कलेक्टर थे।

तत्कालीन समाज में फैली विकृतियों, धर्म के नाम पर फैले अनाचार, अंधविश्वास आदि के विरोध में विभक्त इस नाटक ने उड़िया-नाट्य-साहित्य का मार्ग-निर्देशन किया है।

इसमें चरित्र-चित्रण की निपुणता, स्वाभाविक पात्रानुकूल कथोपकथन, नाटकीय औत्सुक्य आदि गुण मिलते हैं। गीतों की संख्या कुल तीन है, तीनों ही भजन हैं। इसमें संस्कृत-नाट्य-रीति का अनुकरण नहीं हुआ है, फलतः सूत्रधार, नट, नटी आदि की व्यवस्था नहीं है। कथावस्तु की उपस्थापना से ही नाटक का आरंभ हुआ है। ढोंगी साधु, पाखंडी महंतों का दोष-प्रकाशन, डायन, भूत, प्रेत-मंत्र आदि के संबंध में व्याप्त भ्रम तथा कुसंस्कारों का निराकरण इस नाटक का मुख्य उद्देश्य है। 20 मई 1876 को प्रथम बार इसका अभिनय हुआ था। स्वयं लाला एक कुशल अभिनेता थे। इनके अन्य नाटक हैं—'सती', 'वृद्ध विवाह' आदि।

लाहिड़ी, तुलसी *(बँ० ले०)* [जन्म—1897 ई०; मृत्यु—1957 ई०]

नव्य नाट्य-आंदोलन के सूत्रधारों में प्रधान तुलसी लाहिड़ी नाट्यकार होने के साथ-साथ एक मँजे हुए अभिनेता भी थे। नव्य-नाट्य-आंदोलन के युग में मार्क्सवादी दृष्टिकोण की सहायता से जो नाटक लिखे गए उन्हें व्यावसायिक रंगमंच पर अभिनय करना लगभग नामुमकिन ही था। परंतु इस गतिरोध को तोड़कर तुलसी लाहिड़ी ने अपने नाटक 'दुःखीर इमान' (1947) को मंचस्थ किया। साधारण रंगमंच पर अभिनीत नये युग का यही सर्वप्रथम नाटक था।

इनके दूसरे नाटक निम्नलिखित हैं: 'मायेर दाबी' (1941), 'छेंड़ा तार' (1950), 'पथिक' (1951)। इन नाटकों में लेखक ने मार्क्सवादी सिद्धांतों के प्रतिपादन में स्पष्टतः उद्देश्यमूलक मनोभाव की अभिव्यक्ति की है। परिणामतः नाट्यकार की अपेक्षा इनका जन-कल्याणमूलक उपदेशक का रूप ही अधिक उभर आया है। 'छेंड़ा तार' नाटक इनसे थोड़ा भिन्न है। इस नाटक में उपदेश के स्थान पर मानव-जीवन की दुःखभरी कहानी की तटस्थ विवृत्ति मात्र है। मानवीय कौतूहल को वहाँ भी एक क्षण के लिए भी शिथिल नहीं होने दिया गया है। यह नाटक निस्संदेह बँगला नाट्य-साहित्य की एक अमूल्य कीर्ति है।

इनका अंतिम नाटक 'लक्ष्मीप्रियार संसार' 1957 ई० में प्रकाशित हुआ था और इसी में इन्होंने अपने जीवन का अंतिम अभिनय भी किया था। अपने नाटकों में ये उद्देश्यमूलक ही अधिक दिखाई पड़ते हैं; फिर भी समस्या-कंटकित जीवन में मनुष्यत्व की महिमा के संधान में ये बिल्कुल व्यर्थ नहीं हुए हैं।

लिगण्णा, सिपि *(क० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

सिपि लिगण्णा वर्तमान युग के प्रसिद्ध कन्नड लेखक हैं। इनकी चालीस से अधिक पुस्तकें प्रकाश में आई हैं। 'मुगिल जेनु' (आकाश की मधुमक्खी) में इनकी कविताएँ संगृहीत हैं। 'श्रीअरविंदर' इनकी जीवन-चरित्र-संबंधी रचना है। 'सप्तपदी' इनका नाटक है। 'देशभक्तियकथेगळु' (देशभक्ति संबंधी कहानियाँ) जैसी पुस्तकों में इनकी कहानियाँ हैं। इन्होंने हिंदी में मिलन काव्य का अनुवाद किया है। इस प्रकार ये बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न कलाकार हैं। इनकी लेखन-शैली आकर्षक और मनोहर होती है।

लितिकाइ *(अ० कृ०)* [रचना काल — 1896 ई०]

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (दे०) रचित यह जोनाकी-युग का प्रहसन है। बेजबरुवा को हास्य नाटकों की अपेक्षा अन्य नाटकों में अधिक सफलता मिली है, किंतु उनके हास्य-नाटकों में यह उल्लेख योग्य है।

लिपिविज्ञान *(भाषा० पारि०)*

जैसा कि नाम से स्पष्ट है भाषाविज्ञान की इस शाखा में लिपियों का अध्ययन किया जाता है। इसके अंतर्गत विश्व में लिपियों के विकास के सामान्य सिद्धांत, उनके विकासक्रम, आदर्श लिपि की कसौटी, लिपि की कमियों का विश्लेषण उन्हें दूर करने के उपाय, किसी भाषा के लिए नयी लिपि बनाने की पद्धति आदि का अध्ययन आता है। लिपि का अध्ययन वर्णनात्मक, तुलनात्मक तथा ऐतिहासिक तीनों प्रकार का हो सकता है। ऐतिहासिक में लिपि या लिपियों का इतिहास देखते हैं तो तुलनात्मक में दो या अधिक लिपियों की तुलना की जाती है। वर्णनात्मक अध्ययन के लिए लिपिविज्ञान की एक शाखा लिपिग्रामविज्ञान (Graphemics) का विकास हुआ है, जिसमें एक लिपिग्राम (जैसे नागरी लिपि में र) की विभिन्न सलिपियों (जैसे र की सलिपियाँ ꣴ, ्र, ̑, र) के वितरण का अध्ययन किया जाता है। लिपिविज्ञान में आशुलिपि का अध्ययन भी समाहित है।

लिमये, गो० ग० *(म० ले०)* [जन्म—1891 ई०]

लिमये का जन्म पूना के एक संपन्न परिवार में हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा वेनगाँव में और उच्च शिक्षा पूना में हुई। मेडिकल कॉलेज से एम० बी० बी० एस० करने के बाद 1917 ई० में इन्हें सेना में कमिशन मिला और इनकी नियुक्ति पूर्व अफ्रीका में हुई। 1921 ई० में इस पद से त्यागपत्र देकर इन्होंने पूना में अपना निजी अस्पताल खोला और स्वतंत्र लेखन भी आरंभ किया। इनकी मुख्य रचनाएँ हैं—'जुना बाजार', विनोद-सागर' तथा 'हलकावे'। यद्यपि अंतिम कृति करुण कथाओं का संग्रह है तथापि ये प्रधान रूप से विनोद-लेखक हैं। क्रीडागण, कलागण और रणागण, इन तीनों क्षेत्रों में इन्होंने कीर्ति प्राप्त की है—ये क्रिकेट के अच्छे खिलाड़ी, कुशल सारंगी-वादक, अभिनेता तथा शल्य चिकित्सक रहे हैं।

बंबई के जीवन, डॉक्टरी व्यवसाय और सैनिक वातावरण में प्राप्त अनुभवों का उपयोग इन्होंने अपने विनोदपूर्ण लेखों में खूब किया है। इनका विनोद निर्मल और प्रसंगनिष्ठ है, साथ ही इन्होंने यथावसर समाज की स्थिति —स्त्री-परतंत्रता, वकीलों के कुतर्क एवं अधिकारी वर्ग की गफलत—पर भी प्रहार किया है। लोगों की स्वभावगत दुर्बलताएँ— मिथ्या अभिमान, विस्मृति, मूर्खता, व्यसन और सनक भी इनके विनोदपूर्ण लेखों के विषय बने हैं। विनोद-सृष्टि के लिए इन्होंने विरोधाभास, अतिशयोक्ति, श्लेष, शब्द-क्रीडा आदि युक्तियों का आश्रय लिया है। लघुता, विषय वैविध्य और स्वाभाविकता इनके लेखों के प्रधान गुण हैं।

लिरिक *(गु० कृ०)*

इसमें श्री बलवंतराय ठाकोर (दे० ठाकोर) ने पश्चिमी काव्यविधा 'लिरिक' का सांगोपांग विवेचन किया है। पश्चिमी संपर्क के परिणामस्वरूप गुजराती-साहित्य में जिन नवीन काव्यविधाओं का जन्म हुआ है लिरिक (प्रगीत) भी उनमें से एक है। इस संबंध में सुप्रसिद्ध कवि तथा लेखक नरसिंहराव दिवेटिया (दे० दिवेटिया) ने 'वसंत मासिक' में एक लेखमाला लिखी थी तथा इस काव्य विधा (लिरिक—हिं० प्रगीत) को 'संगीत काव्य' की संज्ञा दी थी। इसके विरोध में श्री ठाकोर ने 'कौमुदी त्रैमासिक' लिरिक नाम से जो लेखमाला लिखी थी, उसी का संग्रह-रूप यह पुस्तक है।

लेखक ने पश्चिमी तथा गुजराती साहित्यकारों की रचनाओं के परिप्रेक्ष्य में इस मत की स्थापना की है कि अपनी प्रारंभिक स्थिति में लिरिक 'लायर' नामक वाद्ययंत्र से अनिवार्य रूप से संबद्ध था किंतु उसके वर्तमान रूप का गेयता अथवा संगीत से बिल्कुल संबंध नहीं है। लिरिक का संबंध feeling (जिसे वह 'ऊर्मि' की संज्ञा देते हैं) के साथ जोड़कर उन्होंने इसे 'ऊर्मिकाव्य' की संज्ञा दी है तथा पश्चिमी और गुजराती प्रगीतों के संदर्भ में इसके स्वरूप की विवेचना की है। इस संबंध में विभिन्न आलोचकों के मतों का उन्होंने तार्किक परीक्षण किया है।

गुजराती में किसी काव्य विधा का सर्वांगीण विवेचन करने वाली यह प्रथम स्वतंत्र रचना है। अतः इस

दृष्टि से इस ग्रंथ का ऐतिहासिक महत्व भी है।

लीला *(म० पा०)*

लीला रामगणेश गडकरी (दे०) के नाटक 'प्रेम संन्यास' की मुख्य पात्र है। यह बाल्यावस्था में जयंत से प्रेम करती है, परंतु वैवाहिक बंधन में दोनों सूत्रबद्ध नहीं हो पाते। वैधव्य की मार इसके सुखमय वैवाहिक जीवन पर करकाघन सदृश बरस जाती है। वैधव्य के असह्य दुःख मे यह पुनः जयंत के प्रति आकृष्ट होती है, परंतु वह चाहकर भी अपनी पत्नी के भय के कारण इसके प्रति उपेक्षाभाव बनाये रखता है। कमलाकर इसकी असह्य अवस्था का लाभ उठाकर इससे विवाह-प्रस्ताव करता है और तिरस्कृत होकर वह जयंत से प्रतिशोध लेने का अवसर खोजता है। जयंत की पत्नी मनोरमा के मन में संदेह का बीज बोकर वह अपनी योजना को कार्यान्वित करता है। मनोरमा पति का त्याग कर कमलाकर के साथ अपने पिता के घर जाती है, परंतु कमलाकर द्वारा अपने सतीत्व की रक्षार्थ वह चलती गाड़ी से कूदकर आत्मघात कर लेती है। मनोरमा की हत्या के दोष मे जयंत को मृत्यु-दंड मिलता है, परंतु विद्याधर के सद्प्रयत्नों से वह अभियोग-मुक्त होता है। कमलाकर से जयंत की मृत्यु का असत्य समाचार जानकर लीला विष-पान कर आत्महत्या कर लेती है। लीला की मृत्यु से संतप्त जयंत की हत्या डाकू कर देते है।

लीला-जयंत के प्रणय-प्रसंगों पर आलोच्य नाटक की कथा आधारित है। लीला का चारित्रिक संघर्ष मर्मस्पर्शी एवं प्रभावोत्पादक है। दुःखों के झंझावात मे डगमगाती तरणी को लीला प्रेम और विश्वास के सहारे किनारे लगा देना चाहती है, परंतु अपने प्यार की असमय मृत्यु से वह पूर्णतः टूट गई है, इसी से आत्मघात कर दर्शकों के मन पर दुःख की रेखा अंकित कर जाती है।

लीला *(सिं० पा०)*

सिंधी-साहित्य मे लीला-चनेसर की प्रेमगाथा प्रसिद्ध है। लीला सिंध के प्रसिद्ध राजा चनेसर की रानी थी। दोनों का आपस मे बहुत प्रेम था। कौंरू नामक एक राजकुमारी चनेसर के सौंदर्य पर आसक्त हो गई। विवाह का प्रस्ताव चनेसर को भेजा गया, परंतु वह उसे स्वीकृत न हुआ। दूसरा कोई चारा न देखकर कौंरू दासी के वेश में लीला के पास काम करने लगी। उसने लीला की आभूषणप्रियता का लाभ उठाकर उसे एक अतिसुंदर नौलखा हार दिया और उसके बदले मे चनेसर के साथ एक रात बिताने की अनुमति माँगी। लीला को यह सौदा बहुत सस्ता लगा क्योंकि उसे अभिमान था कि चनेसर उसके वश मे है। रात के समय जब चनेसर नशे मे बेसुध था तब लीला ने कौंरू को अपने पति के पास भेज दिया। सुबह जब चनेसर होश में आया तब सारी बात जानने पर उसके मन में लीला के प्रति ग्लानि हो गई। कौंरू के अगाध प्रेम को देखकर चनेसर ने उसे अपना लिया और लीला को अपने महल से निकाल दिया। लीला अपने किए पर बहुत पछताने लगी और कोई चारा न देखकर वह अपने मायके चली गई। कई दिनों के पश्चात् और दुःखमय जीवन बिताने के बाद वह अपने पति को पाने में सफल हुई। सूफ़ी-संत कवियों ने लीला को सांसारिक वस्तुओं के मोह में फँसकर साधना के पथ पर भ्रष्ट आत्मा के रूप मे चित्रित किया है। ऐसी दिग्भ्रांत आत्मा पश्चात्ताप के बाद फिर ठीक मार्ग पर चलकर प्रियतम को पा सकती है।

लीलाचरित्र *(म० कृ०)*

इसके रचयिता है श्री महीम भट्ट। इसमें महानुभाव पंथ के प्रवर्तक श्री चक्रधर जी की लीलाओं का वर्णन है। चक्रधर जी के स्वर्गवास के उपरांत पाँच वर्ष के अंदर ही 1278 ई० मे इसकी रचना हुई थी। महीम भट्ट लीला-चरित्र लिखने के उद्देश्य से गाँव-गाँव भ्रमण करते रहे। इसमें चक्रधर जी की कुल 1109 लीलाओं का संकलन है और इसे मराठी का आद्य गद्य-चरित्र-ग्रंथ होने का गौरव प्राप्त है। इसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है क्योंकि चरित्र-लेखक को चक्रधर जी का सान्निध्य प्राप्त था। इससे मराठी भाषा के प्राचीन गद्य के स्वरूप का अच्छा परिचय मिलता है। चरित्रनायक की सजीव मूर्ति आँखों के सामने दिखाई देने लगती है और तत्कालीन सामाजिक जीवन की प्रामाणिक झाँकी भी सहज ही प्राप्त हो जाती है। लेखक की शैली अत्यंत रोचक है—भाषा में सरलता और प्रवाह है। एक आस्थावान लेखक किस प्रकार चरित्र से संबद्ध गद्य-ग्रंथ में भी अनोखी सरसता और सजीवता उत्पन्न कर सकता है इसका ज्वलंत प्रमाण है 'लीलाचरित्र'।

लीलातिलकम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानत चौदहवी शती का अंतिम चरण]

रचनाकार—अज्ञात, किंतु अनुमानत दक्षिण केरल के कोई आचार्य ।

यह मणिप्रवाळ मलयाळम का सस्कृत-निबद्ध सूत्रवृत्त्यात्मक शास्त्र-ग्रथ है। इसका प्रथम पूर्ण अनुवाद श्री आट्टूर कृष्णप्पिषारटि (दे०) ने प्रस्तुत किया। इस ग्रथ का अनुवाद-टिप्पण रचने वालो मे महाकवि उळ्ळूर (दे०), शूरनाड कुञ्ञनपिळ्ळा इलकुळम् कुञ्ञनपिळ्ळा (दे०) आदि प्रमुख हैं। आठ शिल्पो की इस रचना का प्रथम शिल्प 'मणिप्रवाळ (दे०) और 'पाट्टु' (दे०) की व्याख्या करता है। अगले दो शिल्पो मे व्याकरणिक चर्चा है। आगे दोष, गुण अलकार एव रस का विधान भी वर्णित है। लीलातिलकम् की सबसे बडी देन 'मणिप्रवाळम्' और 'पाट्टु' की व्याख्या है। 'भाषासस्कृतयोगोमणिप्रवाळम्' तथा 'द्रमिडसघाताक्षर-निबद्ध मेतुका मोनावृत्तविशेषवद्ध पाट्टु'—इसके दो प्राणभूत सूत्र है। 'सस्कृत शब्द का मतलब विभक्तयत तत्सम पदो से है और 'योग' शब्द का अर्थ है सहृदय हृदयाह्लादकत्वेनसन्निवेश। पाट्टु के लक्षण मे एतुका और 'मोना' (दे०) दो द्राविडी अनुप्रास विशेष हैं। इस ग्रथ के रचयिता बडे निर्भीक विचारक और सरस रहे है। 'लीलातिलकम्' के बाद उसकी टक्कर का दूसरा काव्य-शास्त्रीय सूत्रवृत्त्यात्मक ग्रथ मलयाळम मे नहीं लिखा गया।

लीलावती *(क० कृ०)*

'सारस्वतपार' नेमिचद्र (दे०) (समय—1970 ई० के आसपास) की रचना 'लीलावती' रट्टराजा लक्ष्मणदेव के आश्रय मे रची गई। नेमिचद्र प्रकाड पडित और शृगारप्रिय कवि है। लीलावती प्रबध सभवत उनकी प्रथम रचना है। यह चौदह आश्वासो का चपू काव्य है। मगरस (दे०) ने उसे 'शृगार-काव्य' माना है। कवि ने भी उसमे कहा है 'यह शृगार को काव्य-बध मे निबद्ध करने वाला शृगार-कारागृह है (1-81) एक वर्ष मे कवि ने उसे पूरा किया। उसका कथानक कुछ इस प्रकार है—कदब-राजधानी जयतीपुर अथवा वनवासि मे चूडामणि नामक राजा था। उसकी रानी पद्मावती थी और पुत्र कदर्पदव। मत्री गुणगध का पुत्र मकरद राजकुमार का मित्र था। युवराज बनने के बाद एक दिन रात मे कदर्प ने एक रमणी को देखा। दूसरे दिन सवेरे मकरद के साथ उस रमणी की खोज मे निकल पडा। कुसुमपुर के राजा शृगार शेखर की पुत्री लीलावती को ही उसने स्वप्न मे देखा था। उसने भी स्वप्न मे राजकुमार को देखकर उसकी तलाश करने के लिए लोगो को भेजा। अत मे दोनो का विवाह हुआ। लीलावती को साथ लेकर कदर्प, अपनी राजधानी मे आया और सुख से राज्य करने लगा।' हिंदी के सूफी-काव्यो मे भी इसी प्रकार की कथाएँ है। नेमिचद्र सुबधु की 'वासवदत्ता' से प्रभावित हुए थे, यह उनके काव्य को पढने से स्पष्ट होता है। उनके वर्णनो मे श्लेष, विरोधाभासादि अलकारो का प्राचुर्य है, कल्पना-विलास मे सुबधु का अनुकरण है। यह ध्यान देने की बात है कि उन्होने कथा मे जैन निष्ठा के लिए स्थान छोड रखा है। चारु वर्णन तथा सुदर रस चित्रण मे उनको विशेष सफलता मिली है। उनका काव्य अनुवाद अथवा अनुकरण न होकर स्वतत्र काव्य बन गया है। कल्पना-चमत्कार तथा शब्द-सपत्ति की दृष्टि से वे गणनीय कवि है। उनके काव्य का प्रतिपाद्य यही है कि 'स्त्री रूप ही रूप है और शृगार ही रस है।' (12-8)

लीलूडी धरती *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1958 ई०]

श्री चुनीलाल मडिया (दे०) ने सौराष्ट्र के जन-जीवन से सबधित जो उपन्यास लिखे हैं 'लीलूडी धरती' का उसमे प्रमुख स्थान है। कृषक-जीवन से सबधित यह उपन्यास दो भागो मे विभक्त है जिसमे ग्राम-जीवन की खट-पट, षड्यत्र तथा मानव-हृदय की सूक्ष्म सवेदनाओ का चित्रण अचल विशेष की भाषा मे किया गया है। इसके साथ ही सयुक्त सत नामक पति-निष्ठ स्त्री की करुण कहानी उपन्यास का प्रबल आकर्षण है। इस उपन्यास का फिल्मीकरण भी हो चुका है।

आचलिक गुणो से समृद्ध यह उपन्यास अपनी रोचक शैली, औपन्यासिक सघर्ष, प्रबल आवेग, सशक्त पात्र चित्रण तथा सघर्षजन्य जीवतता के कारण गुजराती के आचलिक उपन्यासो मे अग्रिम स्थान का अधिकारी है।

लुब्धावधानुलु *(तें० पा०)*

यह गुरजाडा अप्पाराव (दे०) के 'कन्या-शुल्कमु' (दे०) नामक नाटक का प्रसिद्ध पात्र है। अतिवृद्ध होने पर भी पैसे देकर कन्या खरीदकर विवाह

करना चाहता है। अपनी पुत्री का भी इसी प्रकार विवाह कर देता है और वह थोड़े ही समय के बाद विधवा एवं दुश्चरित्रा हो जाती है। यह अग्निहोत्रावधानी की कन्या के लिए शुल्क के अधिक होने के कारण पहले इनकार कर देता है। पर जब अग्निहोत्रावधानी पत्र द्वारा अपनी कन्या देने में इनकार करता है तो आगबबूला हो जाता है। अन्य दो पात्रों के षड्यंत्र से स्त्रीवेशधारिणी पुरुष से विवाह कर, धोखा खाकर, यह पश्चात्ताप करता है। इसके द्वारा ही अप्पाराव 'कन्याशुल्क' की कुप्रथा की बुराइयों को उजागर कर सके हैं।

लूणां *(पं० कृ०)*

पंजाबी कवि शिवकुमार की यह प्रसिद्ध काव्यकृति 1965 ई० में प्रकाशित हुई। शिवकुमार ने इसे महाकाव्य कहा है परंतु पंजाबी के आलोचक-वर्ग ने इसे काव्य-नाटक के रूप में स्वीकार किया है। कथानक का आधार पंजाब की सुप्रसिद्ध लोक-कथा 'पूर्णभक्त' (दे० पूरन भगत) है परंतु शिवकुमार की रचना में कथा का मुख्य केंद्र पूर्ण नहीं उसकी यौवनमत्त विमाता 'लूणां' है। इसी कारण अपने से पूर्व के अनेक किस्सा-लेखक कवियों की रचनाओं की अपेक्षा शिवकुमार की रचना में अद्भुत नवीनता और उद्देश्य की विलक्षणता आ गई है। वृद्ध सालवाहन से विवाहित लूणां किसी भी प्रकार उससे मानसिक समझौता नहीं कर सकती और स्वाभाविक रूप से अपने नौजवान सौतेले पुत्र पूर्ण की ओर आकृष्ट होती है परंतु पूर्ण उसके जाल में नहीं फंसता। इसी कारण लूणां का 'प्रमदाता' जागृत होता है और वह पूर्ण से अपने अपमान का बदला लेने की ठानती है। इस प्रकार यह समस्या लूणां के माध्यम से 'नारी' की महत्वपूर्ण समस्या बन जाती है। शिवकुमार ने 'असंतुष्ट' नारी के साथ सहानुभूतिपूर्वक उसके अंतर्मन के उतार-चढ़ाव को बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। उन्हें इस काव्यकृति पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

लेंभेयांची कविता *(म० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1924 ई०]

इस काव्य-संग्रह के लेखक श्री विट्ठल भगवंत लेंभे हैं।

लेंभे जी ने मैट्रिक तक अँग्रेजी भाषा एवं साहित्य का अध्ययन किया था, पर उनका साहित्य संस्कृतकाव्य से प्रभावित है। आधुनिक काल के कवि होते हुए भी ये प्रवृत्ति की दृष्टि से प्राचीन काव्य-परंपरा के कवि हैं। इन्होंने अपनी कविताओं में आधुनिक काव्य-दृष्टि के अनुकूल प्राचीन पौराणिक विषयों के स्थान पर लौकिक विषयों को अपनाया है।

'लेंभेयांची कविता' इनका काव्य-संग्रह है। मुक्तक की अपेक्षा खंडकाव्य की रचना में इनका प्रतिभा-विलास दृष्टिगोचर होता है। 'मित्र दर्शन', 'विष्णुनिधन', 'कृतांतवैभव' तथा 'शोकावर्त' खंडकाव्य हैं। इनकी विलापिकाएँ अतिशय प्रसिद्ध हैं। ये मराठी-साहित्य में विलापिका काव्य-रूप के जनक माने जाते हैं।

साहित्य में इनका महत्व उनकी प्रलोभनीय लेखन-शैली के कारण है। इनकी कविताएँ सुबोध, प्रसन्न शैली में रचित हैं एवं रसार्द्र हैं। इनके समकालीन कवियों में इनकी जैसी सरस रचना करने वाला कोई अन्य कवि नहीं है। मराठी के सुप्रसिद्ध कवि चंद्रशेखर ने इन्हें लक्ष्य कर एक कविता लिखी थी जिसमें इनके काव्य के पद-लालित्य और अपूर्व भाषा-सौष्ठव की प्रशंसा है।

लेखन कल्पतरु *(म० कृ०)*

यह पंडित हेमाद्रि की रचना है। बारहवीं शती में यादव वंश के शासन में हेमाद्रि एक उच्चाधिकारी थे। इस ग्रंथ में लिखने की अनेक पद्धतियों का सोदाहरण निरूपण है और पत्र-लेखन की शुद्ध, सात्विक तथा ह्रस्व—ये तीन पद्धतियां निरूपित हैं। यह ग्रंथ पद्य-गद्य मिश्रित है। पत्र-लेखन भी एक कला है, इसमें सौंदर्य की अभिवृद्धि कैसे की जा सकती है, इसकी जानकारी प्रस्तुत ग्रंथ से मिल जाती है।

लेखा ओ लेखक *(उ० ले०)*

'लेखा ओ लेखक' गौरीकुमार ब्रह्मा (दे०) की समीक्षात्मक निबंध-पुस्तक है। इसमें राधानाथ (दे०), मधुसूदन (दे०), गगाधर, गोपबंधु (दे०), उपेंद्र भंज (दे०), अभिमन्यु, दीन-कृष्ण (दे०) तथा 'मथुरा-मंगल' का विवेचन हुआ है। विवेचन सर्वांगीण एवं तुलनात्मक तथा शैली विश्लेषणात्मक है। लेखक एवं कृतियों के ऐतिहासिक महत्व का मूल्यांकन युगीन पृष्ठभूमि पर किया गया है। लेखक की दृष्टि तलस्पर्शी है। उच्चस्तरीय अध्ययन की दृष्टि से यह एक उपयोगी पुस्तक है।

लेचारी *(अ० पारि०)*

यह असमीया वर्णिक छद 10-10 14 वर्णों की यति का होता है। इसमे दो चरण होते हैं। उदाहरण

द्रुपद नदिनी मने गुणि, स्वामी सकलर वाक्य शुनि, राजहस गति-चलि जात धीरे-धीरे।

लैला *(उर्दू० पा०)*

'लैला' काज़ी अब्दुल गफ्फार (दे०) की कृति 'लैला के खतूत' (दे०) की नायिका है। यह 22 वर्षीया सजग तथा सुदर नारी हे। इसे भद्र परिवार की लडकियो के अनुरूप शिक्षा मिली है। किंतु एक कामुक पुरुष द्वारा शील-भग होने पर यह वेश्या बन जाती है। समाज के सभी वर्गों के पुरुष अपनी वासना की तृप्ति के लिए इसके पास आते हैं और इसकी चिरौरियाँ करते है। वेश्या बनने के बाद इसका लक्ष्य किसी पुरुष विशेष से प्रेम करने का नही रहता बल्कि उनसे धन ऐंठने का रहता है। इस के हृदय म समाज के प्रति घृणा तथा प्रतिशोध की भावना मचलती है। इसकी हँसी खून का फव्वारा बन जाता है, इसकी वाक्पटुता एक कराह और हास्य करुण पुकार। इसकी चपलताओ मे इसके हृदय के घाव निहित रहते है। इसका जीवन दशन उतना घृणाजनक नही रहता जितना करुणाजनक। इसे इसी बात का दुख है कि जीवन म इसका कोई सगी नही जबकि शैया मे इसके अनेक सगी है। यह एक समझदार, मेधावी तथा चतुर नारी है जिसे पुरुष ने कीचड मे डाल दिया है।

लैला के खुतूत *(उर्दू० कृ०)*

यह काज़ी अब्दुल गफ्फार (दे० अब्दुल ग़फ्फार 'काज़ी') की एक व्यग्य-रचना है जिसम उन्होंने पश्चिम की नीति और पूव की नैतिकता पर चोट की है। 'लैला के खुतूत' मे उन्होने लैला नामी एक ऐसी तवायफ (वेश्या) की तसवीर खीची है जिसम माँ, बहन तथा पत्नी बनन की पूरी क्षमता है। वह हम 'यामा द पिट' की जैनी स की पूरी क्षमता है। वह हम 'यामा द पिट' की जैनी से अधिक विचारशील लगती है किंतु आचार की कसौटी पर फीकी उतरती है। 'लैला के खुतूत म लेखक के सम्मुख कोई सीमित सास्कृतिक और आर्थिक हद नही। इसम व्यग्य तथा राजनीति है और व अपन हैं जो गैरो से भी गए-गुजरे है। काज़ी साहब के व्यग्य म प्रचार कम और प्रेरणा अधिक है। व्यग्य-लेखन की दृष्टि से इनका स्थान अब्दुल माजिद और मौलाना ज़फर अली खाँ से ऊँचा है।

'लैला के खुतूत' मे वह सज्जाद अंसारी (दे०) और मेहदी इफादी (दे०) के साथी बन जाते हैं। इस मे वह नवीन प्रतिभा और चुभती हुई शैली का परिचय देत है, तथा सौंदर्यप्रिय एव नफासतपसद दीखते हैं। इन्हे धम, विद्या, ज्ञान और धन के अभिमान स घृणा है। इस कृति मे उन्होने पाश्चात्य तथा प्राच्य सभ्यता के मिलाप की कामना की है।

लैला-मजनूँ *(उर्दू० कृ०)*

क़िस्सा लैला-मजनूँ सैयद हैदर बख्श 'हैदरी' (दे०) द्वारा अनूदित कृति है। यह अमीर खुसरो (दे०) की फारसी-मसनवी लैला-ओ मजनूँ' का उर्दू अनुवाद है। यह अनुवाद 1800 ई० मे सपन्न हुआ था। इस समय यह अप्राप्य है।

लोक-रहस्य *(बँ० कृ०)* [रचना-काल —1874 ई०]

बगदशन' म प्रकाशित हास्य-कौतुकपूण निबध 'लोक-रहस्य' म सकलित है।

'लोक-रहस्य' का धरातल तत्कालीन बँगला समाज है। कही नये पढे-लिखे युवको द्वारा अँग्रेज़ी रहन-सहन, व शिष्टाचार-वेशभूषा की भौंडी नकल पर कडी चोट की गई है, और कही भारतीयता की ओट म कुसस्कार, अशिक्षा, कूपमडक वृत्ति पर प्रहार किया गया है। अँग्रेज स्तोत्र, गर्दभ, बाबू गोरे-काले आदि म नये और बडे कहलाने की झूठी शान का उपहास किया गया है। रूढिवादी दृष्टिकोण पर चोट तो स्थान-स्थान पर की गई है। इन निबधो मे बकिम (दे० चट्टोपाध्याय) न सामान्य रूप से पौराणिक प्रसगो की पृष्ठभूमि म हास्य-व्यग्य किया है। इसमे प्रहार तीखा और पैना हो गया है परतु कही भी उसम ग्राम्यता नहीं आई।

इन निबधो मे प्रसगानुसार जिन शैलियो का सफल प्रयोग मिला है वे हैं नाटकीय, स्तोत्र, आलोच-नात्मक, विवरणात्मक। वाग्विदग्धता और चुटीली चुटकियो के कारण निबधो म ताज़गी है। भाषा पर तो बकिम का पूर्ण अधिकार है ही। इन निबधो का लक्ष्य पश्चिम के नये प्रकाश म भारतीय सस्कृति को समझना

तथा बदलना है। वास्तव में 'लोक-रहस्य' ने बँगला गद्य को नयी गरिमा प्रदान की।

लोक-साहित्य *(पारि०)*

लोक-साहित्य सामान्य जीवन के सामूहिक रूप की छाया मे अंकुरित होता है, अतः उसके अध्ययन द्वारा हम लोक-चेतना को पहचान सकते है। भूखंड-विशेष की संस्कृति, यहाँ के निवासियो के मनोविज्ञान, लोक-चेतना, और चिंताधारा का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। अतः उसका अध्ययन कई दृष्टियों--मानव-विज्ञान, सांस्कृतिक दृष्टि, ऐतिहासिक दृष्टि, साहित्यिक दृष्टि—से किया जा सकता है। लोक-साहित्य मे आडंबरहीन, प्रकृत शैली के कारण सामूहिक प्रभाव डालने की प्रभूत शक्ति होती है। लोक-साहित्य के प्रमुख अंग हैं—लोक-नाट्य, लोक-गीत और लोक-गाथा। लोक-नाटक समूहगत अभिनय, आडंबरहीन रंगमंच, गतिमान, कथा-प्रवाह द्वारा लोक-रंजन करते है। 'भारत मे इसके अनेक रूप है—हिंदी-प्रदेश में नौटंकी, रामलीला और रासलीला, गुजरात में भवई, बगाल मे यात्रा, महाराष्ट्र मे तमाशा आदि। लोक-गीतों के प्रमुख विषय है— शिकार, प्रेम, ऋतु-उत्सव, सांस्कृतिक पर्व। इनकी भाषा जन-जीवन के निकट और भाव सरल होते है, अत इनमे सहज-प्रकृत मार्मिक सौदर्य प्रभूत मात्रा मे होता है। लोक-कथा के दो प्रकार है: पौराणिक और लौकिक। इनका तुलनात्मक अध्ययन एक ओर मानव की मूलभूत एकता और दूसरी ओर भौगोलिक, सांस्कृतिक विशेषताओं पर प्रकाश डालता है। लोक-साहित्य के इसी महत्व को देखकर उसके संकलन के प्रयत्न हुए। यूरोप मे सर्वप्रथम प्रयत्न था पर्सी द्वारा 1865 ई० में लोक-कविता का संकलन 'रेलिक्स ऑफ़ ऐंशियेंट इंग्लिश पोएट्री'। इसके बाद यूरोप, अमरीका और भारत मे इस दिशा मे अनेक प्रयत्न हुए है।

लोक साहित्य नु समालोचन *(गु० कृ०)*

बंबई विश्वविद्यालय की टक्कर वसनजी माधवजी व्याख्यान-माला के अंतर्गत 1941-42 ई० में स्व० झवेरचंद जी मेघाणी (दे०) द्वारा दिये गये लोक-साहित्य-संबंधी पाँच व्याख्यान इस ग्रंथ मे संकलित है जो बाद मे 1946 ई० में ग्रंथ-रूप में प्रकाशित हुए।

प्रथम व्याख्यान में लोक-साहित्य का सीमा-क्षेत्र निर्धारित किया गया है। प्रत्येक युग मे शिष्ट-साहित्य-भाषा के समानांतर जनपदीय वाणी फूलती-फलती है और उसमें लोक-मन की अभिव्यक्तियाँ होती रहती हैं। ये जनपदीय वाणी-युक्त अभिव्यक्तियाँ ही लोक-साहित्य हैं। वैदिक संस्कृत से लेकर आज तक उसके सुशृंखलित रूप का मेघाणी जी ने इस व्याख्यान में परिचय दिया है। शिष्ट-साहित्य से उसकी भिन्नता व महत्व प्रतिपादित किए हैं। दूसरे व्याख्यान में लोक-साहित्य के निर्मायक संस्कार-तत्वों की विवेचना की गई है। गुजराती लोक-साहित्य को गति देने वाले तत्वों की चर्चा भी की गई है। नागरिक-ग्रामीण जीवन के भेद की अस्वीकृति, वर्णांतर विवाह, प्रेम-विवाह, रूढियों की अवज्ञा, धार्मिक उदारता, सांप्रदायिक भेद-भाव का तिरस्कार, सोरठी वीरत्व व संस्कार, संतों का आदर, नारी के मातृत्व एवं गतिमान सौंदर्य की अभ्यर्थना आदि का लोक-साहित्य के प्रेरक तत्त्वों के रूप में मेघाणी जी ने विस्तृत विवेचन किया है। तीसरे व्याख्यान में गुजरात के लोक-साहित्य का अध्ययन करने वालों का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। अनेक विद्वानों द्वारा इस क्षेत्र में किये गये उद्योगों व प्रयत्नों का महत्व इस अध्याय में निरूपित है।

चौथे व्याख्यान मे लोक-साहित्य के स्वतंत्र व जीवंत स्रोतो की चर्चा की गई है तथा लोक-साहित्य की अनुभूति व तत्सदृश अनुभूति पर रचित गीति-काव्यों की कवि-विशिष्ट अनुभूति का अंतर बताया गया है। काल्पनिक आरोपों या ग्रामीण शब्द-प्रयोगों के बल पर ही कोई कृति लोक-साहित्य नहीं बन जाती। प्रेमानंद, नर्मद, दलपतराम की ऐसी रचनाओं से लोक-साहित्य का भेद भी निर्दिष्ट किया गया है। इसी प्रकार कवि-परंपरागत विरह व शृंगार-निरूपण तथा लोक-साहित्य मे निरूपित विरह एवं शृंगार तात्त्विक भेद भी निरूपित किया गया है। पाँचवें व्याख्यान में लोक-साहित्य के प्रमुख लक्षण—सर्वतोमुखी समुल्लास—का विस्तृत व सोदाहरण विवेचन है। लोक-साहित्य की सफलता व लोकप्रियता के कारणों मे— रसोल्लास, अभिव्यक्ति में सहज अलंकृति, लोकोक्तियों का प्रयोग, भड्डरी वाक्य, पहेलियाँ व मुकरियाँ आदि का उल्लेख किया गया है। संस्कार के गीत, दोहद के गीत, लोरियाँ, व्रतादि के गीत, आदि की सोदाहरण चर्चा के उपरांत भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं के लोकगीतों की भावभूमि पर तुलना कर यह प्रतिपादित किया गया है कि समुद्र के जल की भाँति संसार में सर्वत्र मानव-अनुभूति समान है, लोक-साहित्य के लिए देश-काल

की सीमाओ के बधन नही होते है ।

स्व० झवेरचद मेघाणी लोक-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान थे । उनके ये व्याख्यान लोक साहित्य, विशेषत गुजरात के लोक-साहित्य के विषय मे अत्यत महत्वपूर्ण व्याख्यान है । लोक-साहित्य के रसिको व शोधको के लिए यह एक अपूर्व पुस्तक है ।

लोकहितवादी *(म० ले०)* [जन्म—1823 ई०, मृत्यु—1892 ई०]

इनका पूरा नाम रावबहादुर सरदार गोपाळ हरिदेशमुख था । ये स्मॉल कॉज कोर्ट के जज थे । इन्होने सेवानिवृत्त होने पर देशहिताय अपने को अर्पित कर दिया था । इन्होने छोटे-बडे सभी मिलाकर लगभग 32 ग्रथ लिखे थे । 'जाति-भेद', 'गीतातत्त्व', 'स्वाध्याय', 'आगम-निगमप्रकाश', 'राजस्थान चा इतिहास', पानिपत ची लडाई', 'शतपत्रें' (दे०) आदि इनकी प्रमुख महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं । लोकहितवादी जी का ज्ञान विस्तृत था तथा ज्ञानप्रसार करने की इनमे उत्कट अभिलाषा थी । ये विज्ञापन कर ज्ञानसपादनेच्छु बधुओ को अपने ग्रथ मुफ्त बाँटा करते थे ।

भारतीय दर्शन तथा इतिहास पर इनका अधिकार था । समाजोद्धार के लिए जहाँ-तहाँ जाते थे, वही लोकहितकारी सस्था की स्थापना कर आते थे । इसी कारण लोग इन्हे लोकहितवादी नाम से अभिहित करते थे । विद्यमान सामाजिक समस्याओ पर लिखे इनके निबध 'प्रभाकर' म प्रकाशित हुए थे । इन्होने विधवा-विवाह का समर्थन किया था तथा 'विधवा-विवाह-मडळ' की स्थापना की थी ।

'शतपत्रें' इनके लघु निबधो का सग्रह है । य निबध पत्रात्मक शैली म लिखित निबधो का आदर्श प्रस्तुत करते हैं । इसमे इन्होने भारतीयो से पश्चिमी यात्रिक सभ्यता स्वीकार कर सनातनी विचार त्यागने का आग्रह किया है । निबधो की भाषा कहीं-कहीं अत्यत कठोर है । इनकी निंदा चिपळूणकर ने अपने निबध म की थी ।

मराठी-गद्य के आदि निर्माताओ मे इनकी गणना की जाती है ।

लोकायतन *(हि० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1964 ई०]

कवि सुमित्रानदन पत (दे०) की परिष्कृत सास्कृतिक चेतना उत्तरोत्तर लोकोन्मुख होती गई थी । युगीन विभीषिकाओ के पूर्ण समाधान खोजने की व्याकुलता म उन्होंने 'पल्लव' (दे०) मे लेकर जो अहिरतर यात्राएँ की है, उनका महालेख ही 'लोकायतन' है । युग-जीवन की इस 'भागवत-कथा' मे किसी महान् व्यक्ति, चरित्र या व्यक्तित्व की स्थापना इसलिए नही मिलती है कि यह एक सर्वांगीण चेतना का काव्य है । स्वभावत ऐसी रचना से रूढ काव्य-दृष्टि का परितोष नही हो सकता । उसका मूल्याकन करने के लिए चेतना की उन भूमियो का स्पर्श आवश्यक है जिन पर कवि की उदार आत्मा सचरण करती रही है । रूढ धारणाओ का त्याग किए बिना न तो कवि के स्वानुभूत सत्य से दीप्त सूक्ष्म सास्कृतिक बिंबो का मर्म उद्घाटित हो सकता है और न उसके सवेद्य का गाभीर्य ही परखा जा सकता है । फिर भी ग्रामधरा के अचल की प्राकृतिक सपदा और सक्राति-कालीन जीवन की झाँकी तो निर्विवाद रूप से सभी काव्य-प्रेमियो के लिए आस्वाद्य हो सकती है ।

लोकोक्ति *(हि० पारि०)*

ऐतिहासिक, पौराणिक या लोककल्पित कथाओ, प्राकृतिक नियमों, प्रतीकों या अनुभवो आदि पर आधारित ऐसी सूत्रात्मक सारगर्भित लोक-प्रचलित उक्तियाँ, वाक्य मे प्रयोग के बाद भी पानी मे तेल की बूँद की तरह जिन की स्वतत्र सत्ता रहती है, लोकोक्ति कहलाती हैं । कभी-कभी लोकप्रिय कवियो के छदाश भी लोकोक्ति बन जाते है । हिंदी मे तुलसी के अनेक छदाश इस स्थिति को पहुँच चुके है । लोकोक्तियाँ प्राय अत्यानुप्रास (माई का जी गाई जैसा, पूत का जी कसाई जैसा), विरोधाभास (मेहरी जस बैरी न मेहरी जस मीत), विषम (कहाँ राजा भोज कहाँ गगू तेली) सम (जैसा देव तैसी पूजा) आदि अलकारो से युक्त होती है । 'लोकोक्ति' शब्द पुराना है । इसका प्राचीन प्रयोग एक अलकार के रूप म अप्पय दीक्षित (दे०) न कुवलयानद (दे०) मे किया है 'लोकप्रवादानुकृतिलोकोक्तिरिति' ।

लोकोपकार *(क० कृ०)*

'लोकोपकार' चावुडराय (समय—1150 ई० के लगभग) का ग्रथ है । ग्रथ के आदिभाग-गद्य मे ज्ञान होता है कि ये 'रविकीर्तिराम' नाम के कवि के पुत्र थे ।

वस्तुतः उसमें श्रीमत्कविलासतनूजं' है जिसके संबंध में स्व० आर० नरसिंहाचार्य (दे०) ने लिखा है कि 'कविता-विलास' के बदले 'कविलास' लिखा गया होगा। आश्वासांत गद्य में 'हरवरप्रसादोत्पन्न वाग्विलासम्' कहने से प्रतीत होता है कि चावुंडराय ब्राह्मण थे।

'लोकोपकार' की प्रति पूर्ण रूप मे प्राप्त नहीं हुई है। उसके पंचम और षष्ठ आश्वास मात्र प्राप्त है। पंचम आश्वास में उदकार्गल-वर्णन है तो षष्ठ में स्त्री-पुरुष के सामुद्रिक लक्षण बताये गये है। इन आश्वासों के आधार पर यह बताया जा सकता है कि यह एक शास्त्र-ग्रंथ है। इसमे वर्णित पद्यों मे माधुर्य है।

लोचनदास *(बँ० ले०)* [जन्म—1523 ई०; मृत्यु—1598 ई०]

लोचनदास का जन्म वर्द्धमान के निकट कोग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम कमलाकरदास एवं माता का सदानंदी था। ये वैद्य वंश में (ब्राह्मण वंश मे) उत्पन्न हुए थे। इनकी प्रमुख कृति 'चैतन्य-मंगल' (दे०) है जिसकी रचना इन्होंने अपने गुरु नरहरि सरकार के आदेश से की थी। मुरारिगुप्त के संस्कृत 'कड़छा' का इस ग्रंथ मे अवलंबन किया गया है। लोचनदास ने अपने ग्रंथ में वृंदावनदास (दे०) का उल्लेख किया है अतः 'चैतन्य-मंगल' 'चैतन्य-भागवत' (दे०) (वृंदावनदास) की परवर्ती रचना है।

जीवनी की दृष्टि से नवीनता न होने पर भी काव्य की दृष्टि से 'चैतन्य-मंगल' अत्यंत उपादेय ग्रंथ है। काव्य मे परिच्छेद नहीं है। मंगलाचरण में देवी-देवताओं की स्तुति है। पांचाली-गान के रूप मे विशेष उपयोगी होने के कारण 'चैतन्य-मंगल' निरंतर आदर पाता चला आया है। वैष्णव संप्रदाय मे लोचनदास के 'चैतन्य-मंगल' का स्थान 'चैतन्य-भागवत' एवं 'चैतन्य-चरितामृत' (दे०) के बाद आता है। इसका साहित्यिक मूल्य अनुपेक्षणीय है।

लोल्लट *(सं० ले०)*

नाट्यशास्त्र (दे०) के टीकाकारों मे भट्ट लोल्लट प्राचीनतम माने जाते है। ये कश्मीर देश के वासी थे।

भट्ट लोल्लट की एकमात्र कृति 'नाट्यशास्त्र' की टीका अब उपलब्ध नहीं है। आचार्य अभिनवगुप्त (दे०) की टीका में इनके मत से कुछ अंश उद्धृत किया गया है। रस-सूत्र की व्याख्या में ये कृतिवादी कहे जाते हैं। इनका अभिमत है कि विभावादि रस के कारण हैं तथा रस उनका कार्य। रस की उत्पत्ति तो मुख्यतः अनुकार्य अर्थात् दुष्यंत-शकुंतला (दे०) प्रभृति मूल पात्रों में ही होती है अभिनय के बल से वह अनुकर्ता में भी उपचरित होती है। उसी का अनुभव सामाजिक करता है। इस प्रकार रस की उत्पत्ति का आश्रय अनुकार्य, प्रतीति का आश्रय अनुकर्ता तथा अनुभूति का आश्रय सहृदय सामाजिक होता है। रस चूंकि एक अपूर्ण वस्तु है जिसका भोग होता है अतः इन्हें मीमांसा कहा जाता है। मीमांसा के अपूर्व के सिद्धांत के आधार पर ही इन्होंने रस की कृतिपरक व्याख्या की है। भट्ट लोल्लट के इस मत का श्री शंकुक (दे०) प्रभृति सभी टीकाकारों ने खंडन किया है, पर व्याख्या की प्रक्रिया सबने यही अपनायी है।

लोहगढ़ *(पं० कृ०)*

लोहगढ़ हरनामदास सहराई का ऐतिहासिक उपन्यास है। यह लेखक की सर्वप्रथम औपन्यासिक रचना है। इसमें पंजाब के शौर्य का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। मध्यकालीन पंजाब के एक क्रांतिकारी संग्राम को बंदासिंह बहादुर की जीवन-कथा के प्रसंग से सफलता-पूर्वक चित्रित किया गया है।

इस उपन्यास मे लेखक ने इतिहास तथा गल्प का बड़े सजीव रूप में समन्वय किया है। पात्र सजीव तथा गतिशील हैं। पंजाबी गल्प-साहित्य में इस उपन्यास का विशेष स्थान है।

लोहाकुट्ट *(पं० कृ०)* [रचना-काल—1944 ई०]

बलवंत गार्गी (दे० गार्गी) का पहला नाटक है और पंजाबी-साहित्य में इसके प्रकाशन का पर्याप्त स्वागत हुआ था। इस नाटक में प्रेम और विवाह की समस्या को लेखक ने आधुनिक दृष्टिकोण से चित्रित किया है। नारी अपने विवाहित जीवन मे केवल भौतिक संतोष ही नही चाहती, वह प्रेम चाहती है। प्रेम की अतृप्ति, अन्य सभी सांसारिक सुविधाओं के होते हुए भी, उसे वर्षों के विवाहित जीवन में अशांत बनाए रखती है।

नाटक की नायिका संती का विवाह काकू

लोहार से हो जाता है। परतु वह गजन को चाहती थी। बीस वर्ष पश्चात सती की युवा लडकी नैनो अपने पिता की इच्छा के विरुद्ध सूबेदार के लडके के साथ विवाह कर लेती है। इस घटना से सती का गुप्त प्रेम पुन जाग्रत हो जाता है और वह भी काकू को छोडकर गजन के साथ जा बसती है। सती के मन की गहराइयो मे अतृप्त प्रेम की भावना सुप्त पडी हुई थी। काकू ने उसे समझने का कभी प्रयास नही किया। वह हर समय अपने काम मे लगा रहता है या दोस्तो से गपशप करता रहता है। सती की भावना को समझने मे वह असमर्थ रहता है। पत्नी को दो समय का अच्छा भोजन प्राप्त करा देने मे ही वह अपने पति-कर्म की इतिश्री समझता है। फलत उनके बीच एक दरार रहती है और अवसर आते ही वह एक चौडी खाई का रूप ले लेती है।

वचिप्पाट्टु (*मल० पारि०*)

वचि– नौका, पाट्टु=गीत, अर्थात् अर्थ है नौका-गीत। केरल मे कई झीलें, सरोवर तथा नदियाँ हैं। 'ओणम्' जैसे देशीय उत्सवो मे लोग नौकाओ और किश्तियो पर बैठकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते है। तब मनोरजन के लिए जो गीत गाये जाते है उन्ह 'वचिप्पाट्' कहते है। सुदामा के चरित्र पर रची रचना प्रस्तुत गान-शैली मे है। मलयाळम भाषा के साहित्य म 'वचिप्पाट्' का स्थान महत्वपूर्ण है। 'किरातम्', 'नल-चरितम्', 'व्यासोत्पत्ति' आदि कथाएँ इस गान-शैली म लिखी गयी हैं।

वजि (*त० पारि०*)

यह 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ्) नामक काव्य-भेद का उप-भेद है और इसका स्थान 'वेट्चि' (दे०) क पश्चात् है। इसका उपभेद का मुख्य विषय किसी राजा द्वारा राज्य-विस्तार की महदाकाक्षा से शत्रु राजा पर पर हमला और युद्ध करना है। इस विषय म सबधित तेरह प्रकरण तोल्काप्पियम' (दे०) म बताये गये हैं। इनमे से ये उल्लेखनीय हैं—युद्ध छेडने के उपलक्ष्य म दोनो सेनाओ का तुमुलनाद, शत्रु-भूमिया पर आग लगाना, बार-बार की गयी मुठभेडा के बाद शत्रु-पक्ष के प्रधान वीरो का पतन बाढ-सी आने वाली शत्रु-सेना के आघाता को पर्वत के समान दृढता के साथ अकेले ही विफल बना देने का साहसिक कृत्य, राजाओ द्वारा अपने वीर योद्धाओ के लिए आयुध-दान, पदवी-दान, प्रीति-भोज, मिलन एव सम्मान के समारोह इत्यादि कराना, तथा विजयी राजा द्वारा एव युद्ध वीर के पश्चाताप के रूप मे पराजित पक्ष के शौर्य का गान करना। स्पष्ट है कि ये प्रकरण अशत तमिल सभ्यता की प्राचीन युद्ध-नीतियो के परिचायक हैं।

वशभास्कर (*हिं० कृ०*) [रचना-काल—1840 ई०]

कविराजा सूर्यमल्ल (दे०) द्वारा रचित यह विशाल ग्रथ राजस्थानी हिंदी का 'महाभारत' (दे०) माना जाता है। प्रस्तुत ग्रथ मे मूलत बूंदी राज्य का वर्णन है। इसकी रचना गद्य-पद्यात्मक चपू शैली मे हुई है। इसकी काव्य शैली अत्यत गूढ तथा क्लिष्ट है और तदनुसार भाषा भी प्रौढ और क्लिष्ट है, जिसमे कई भाषाओ के शब्दो का मिश्रण है। ऐसे शब्द भी हैं, जो कवि ने स्वय ही गढ लिये है। जीवन के विविध पक्षो का विस्तृत वर्णन होने के कारण यह ग्रथ केवल ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दृष्टियो मे ही महत्वपूर्ण नही है, सास्कृतिक दृष्टि से भी इसका विशेष महत्व है।

वशवृक्ष (*क० कृ०*)

यह श्री एस० एल० भैरप्पा (दे०) के श्रेष्ठ उपन्यासो मे से है। इसका अनुवाद हिंदी म डा० वासु बी० पुत्रन ने किया है। नवीन विचारो की जागृति और शिल्प की दृष्टि से यह पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है। इसम प्राचीन सस्कारो का विश्लेषण आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य मे करने का प्रयत्न किया गया है। इसम चित्रित श्रीनिवास श्रोत्रिय और कात्यायनी के चरित्र लेखक के विचारो को समझने के प्रमुख माध्यम हैं। पाठक का कौतूहल अत तक बना रहता है। प्राचीन मान्यताओ और आधुनिक जीवन की जटिलताओं के सघर्ष स प्रगति कथा निरतर पाठक की उत्सुकता को जगाये रखती है। श्रीनिवास श्रोत्रिय के स्थितप्रज्ञ व्यक्तित्व की परिणति नियति-चक्र के कारण बडी दयनीय-सी बनकर रह गई है। कहीं-कहीं लगता है, लेखक ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त मानो अपने पात्रा—श्रोत्रिय और कात्यायनी— की बलि द दी है।

वक्रतुंड *(म० ना०)*

शं० प० जोशी ने अपने 'खंडाप्टक' नाटक में हास्य-प्रसंगों के संयोजनार्थ वक्रतुंड के चरित्र की संयोजना की है। यह नायिका गौरी का घरेलू कर्मचारी है जो अपनी स्वामिनी की उदारता का अनुचित लाभ उठाता है। गौरी की माँ के पारिवारिक कार्यों के प्रति उदासीनता के कारण ही यह नित्यप्रति खर्च के लिए दिए गए पैसा बचा लेता है। पैसों के हिसाब में गड़बड़ कर यह स्वयं ठाठ से रहता है। प्रारंभ में यह नौकरानी गरगशा के प्रति आकृष्ट होकर उससे विवाह-संबंध स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील रहता है परंतु शीघ्र ही नायिका गौरी से प्रणय-निवेदन कर विवाह का प्रत्याशी हो जाता है। रूढ़ संस्कृत-शब्दों से युक्त संवाद एवं क्रियाकलापों से नाटक में हास्य-प्रसंगों का निर्माण करता है। मराठी-प्रहसनों की अमर चरित्र-सृष्टि में वक्रतुंड का अनूठा स्थान है।

वक्रोक्ति *(पारि०)*

(1) वक्रोक्ति-सिद्धांत के प्रवर्तक कुंतक (दे०) के अनुसार 'वक्रोक्ति' से अभिप्राय है 'वैदग्ध्य-भंगीभणिति', अर्थात् कवि-कर्म-कौशल से उत्पन्न वैचित्र्यपूर्ण कथन। इसे इन्होंने 'विचित्रा अभिधा' भी कहा है जो कि प्रसिद्धार्थ (वाच्यार्थ) से अतिरिक्त अर्थ की द्योतक है। कुंतक ने इस सिद्धांत का प्रवर्तन आनंदवर्धन (दे०) के ध्वनि (दे०)-सिद्धांत की तुलना में प्रस्तुत किया था और उन्हीं के अनुरूप समस्त काव्य-सौंदर्य को ध्वनि में समाविष्ट करने के स्थान पर वक्रोक्ति में करने के उद्देश्य से वक्रोक्ति के पहले छह भेद प्रस्तुत किये और फिर उनके कुल 41 उपभेद। छह भेद ये है—वर्ण-विन्यास-वक्रता, पद-पूर्वार्द्ध (प्रातिपदिक)-वक्रता, पदपरार्द्ध (प्रत्यय)-वक्रता, वाक्य-वक्रता, प्रकरण-वक्रता और प्रबंध-वक्रता। वक्रोक्ति-सिद्धांत का आगे अनुकरण नहीं हुआ, विश्वनाथ (दे०) ने साहित्य-दर्पण (दे०) में और महिमभट्ट (दे०) 'व्यक्तिविवेक' में इसका खंडन प्रस्तुत किया। (2) वक्रोक्ति को वामन (दे०) ने एक अर्थालंकार के रूप में स्वीकार किया था—सादृश्य पर आधारित (गौणी) लक्षणा को वक्रोक्ति अलंकार कहते हैं—'सादृश्यालक्षणा वक्रोक्तिः।' आनंदवर्धन ने भी इसे अर्थालंकार माना किंतु रुद्रट (दे०) ने इसे सर्वप्रथम शब्दालंकार माना और इसके दो भेद प्रस्तुत किये—श्लेष वक्रोक्ति और काकुवक्रोक्ति। जहाँ वक्ता के एक विशिष्ट अभिप्राय से कहे हुए वचन को (सुनकर) उत्तरदाता जान-बूझकर उस वचन के पदों को भंग करके अन्य रूप में उत्तर देता है वहाँ श्लेष-वक्रोक्ति अलंकार होता है, और जहाँ अत्यंत स्पष्ट रूप से किये गये उच्चारण से नितांत सरल रूप में अन्य अर्थ की प्रतीति हो जाती है, वहाँ 'काकु वक्रोक्ति' अलंकार होता है। वक्रोक्ति को इसी रूप में मम्मट (दे०) और विश्वनाथ आदि ने भी स्वीकृत किया।

वक्रोक्तिजीवित *(सं० कृ०)* [समय—सोलहवीं-ग्यारहवीं शती]

संस्कृत-साहित्यशास्त्र के इतिहास में कुंतक (दे०) कृत 'वक्रोक्तिजीवितम्' का अपना विशिष्ट महत्व है। इस ग्रंथ के तीन अंश हैं—कारिका, वृत्ति और उदाहरण। चार उन्मेषों में विभाजित उक्त रचना 'ध्वनि' (दे०) के स्थान पर 'वक्रोक्ति' (दे०) नामक तत्त्व को एक महनीय सिद्धांत के रूप में स्थापित करती है। कुंतक ने 'वक्रोक्ति' को ही काव्य के 'जीवित' के रूप में प्रतिष्ठित किया है। यही नहीं, अलंकारादि काव्य के अन्य अंगों का विवेचन भी उसी के आधार पर हुआ है।

यह ग्रंथ इस तथ्य का प्रतिपादन करता है कि काव्य का वैशिष्ट्य उसके विवेच्य विषय में नहीं अपितु वैदग्ध्य-भंगीभणितिप्रद अभिव्यक्ति के प्रकार में है और वह प्रकार ही 'वक्रोक्ति' है। उसी से काव्य में अलौकिक चमत्कार (वैचित्र्य) की सृष्टि होती है। इस प्रकार इस ग्रंथ में जिस 'वक्रोक्ति' का विवेचन हुआ है, वह काव्य का एक ऐसा विलक्षण तत्त्व है जिसका निरूपण कुंतक-पूर्ववर्ती या परवर्ती कोई भी आचार्य नहीं कर सका था।

अभिनवगुप्त (दे०) के समसामयिक होने के कारण इनका समय भी दसवीं शती का अंत अथवा ग्यारहवीं शती का आरंभ मानना उचित है।

वगदे पाणी *(पं० कृ०)*

'वगदे पाणी' डाक्टर दीवानसिंह कालेपाणी (दे०) की कविताओं का संग्रह है। डाक्टर दीवानसिंह की कविताओं में प्रगतिवादी और क्रांतिकारी विचारधारा का प्राधान्य है। विचारों की क्रांति के साथ-साथ लेखक ने

छदोबध मे भी क्राति का श्रीगणेश किया और परपरावादी छद-नियमो अथवा काव्य-बधनो का परित्याग कर स्वच्छंद कविता का आरभ किया। इनकी कविताओ का स्वर अत्यत प्रभावशाली था। इसीलिए अँग्रेजी सरकार ने इन्हे जनता से दूर काला पानी द्वीप-समूह (अडमान-निकोबार) मे रहने के लिए बाध्य किया। 'हनेरी' (आँधी) इस सग्रह की महत्वपूर्ण कविता है। इसमे शीघ्र ही आ रहे इनकलाब का सदेश है जो स्थापित मूल्यो और सामाजिक रीति-नीतियो को नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। धर्म, सदाचार, परपरागत जीवन व्यवहार आदि विषयो पर इस रचना मे कठोर व्यग्यात्मक प्रहार है।

वचनभारत *(क० कृ०)*

प्रो० ए० आर० कृष्णशास्त्री (दे०) जी की कृति 'वचनभारत' कन्नड का महर्षि व्यास (दे०) के आधार पर लिखित गद्यकाव्य है।

इस ग्रथ के प्रारभ मे लेखक ने जो भूमिका लिखी है, वह उसके मूल्य को और बढाने मे समर्थ है। इस भूमिका को पढने से कोई भी की लेखक की गभीर विद्वत्ता और अध्ययनशीलता का प्रमाण पा सकता है। इसमे सस्कृत और कन्नड महाभारत ग्रथो, महाभारत की अनुक्रमणिका, पर्व-सग्रह, पौष्य पर्व, पौलोम पर्व आदि 12 अध्यायो का सार, महाभारत की रचना और उसके विकास, समय, कवि, इतिहास-पुराण-स्वरूप, उसम प्रतिपादित धर्म-नीति, उसके काव्यगुण, उसमे प्रतिपादित तत्त्व का दर्शन एव आज के युग के लिए उससे मिलने वाले सदेश पर विचार किया गया है। लेखक ने महाभारत के सदेश को कितने सुदर रूप मे प्रकट किया है, इसके लिए निम्नाकित पक्तियाँ उदाहरण हो सकती है—'कुछ लोग बता रहे है कि ससार को शाति मिल सकती है तो नैतिक-धार्मिक मार्ग से ही, भारतवर्ष मे ही यह शातिमार्ग दिखाई देना चाहिए। कह रहे हैं कि उसकी सस्कृति ही सबल हो सकती है। पचम वेद, दो हजार वर्ष से प्राचीन 'भारत' सदा हाथ उठाकर इसी शाति की पुकार कर रहा है—पर उसको कौन सुनेंगे, मालूम नही —'धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सव्यते'। दुर्योधन अधार्मिक हुआ, उसने न्याय को नही माना, शाति को नही माना, सधि को नही स्वीकारा, युद्ध अनिवार्य हो गया। वह विनष्ट हुआ, सहस्रो राजाओ की, अठारह अक्षौहिणी सेना की उसने बलि दी, ससार म सर्वत्र स्त्रियो, बालको और अनाथो का हाहाकार व रुदन भर गया। उसे और पाडवो को वीरस्वर्ग मिल गया, पर जिन लोगो ने उन पर विश्वास किया था उनको नरक ही मिला।'

'वचन भारत' को इस महाभारत का निचोड कह सकते हैं। महाभारत के अठारह पर्वो की कथा का वर्णन सरल, सुदर, आधुनिक गद्य-शैली मे यहाँ उपलब्ध होता है। इसकी भाषा-शैली मानो जादू है, पाठक पढना शुरु कर देता है तो पूरा पढे बिना नही छोडता।

वचन साहित्य *(क० पारि०)*

'वचन' शब्द सस्कृत 'वच्' (बोलना) धातु से बना है। 'वचन' कन्नड की एक विशिष्ट साहित्य-विधा है। अन्य भाषाओ मे शायद ही इसका रूप दृष्टिगत हो। गीतिकाव्य के लक्षणो से सपन्न अनुभूतिजन्य गद्य ही 'वचन' के नाम से प्रसिद्ध है। मध्यकाल मे इस विधा का जो वैभव दिखाई पडा, वह कन्नड-साहित्य की एक अत्यत स्मरणीय घटना है।

वचनो की विशेषताओ का निर्देश इस प्रकार किया जा सकता है (1) वचनो मे अनुभूति की प्रधानता होती है। उनमे स्वाभाविक सरलता और रमणीयता होती है। (2) उनकी भाषा क्लिष्ट नही होती। उनम उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलकारो का ऐसा सहज प्रयोग देखा जाता है कि सब लोग उन्हे समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ, बसवेश्वर के एक वचन की यह पक्ति देखिए—'केसरिनल्लिबिद्द पशुविनंते देस देमेंगे बायि बिड्तित्हेनेय्या', अर्थात् कीचड मे फँस पशु की भाँति मैं हाय-हाय करता रहा। (3) वचनो म वचनकार के इष्टदेव के नाम की छाप रहती है। (4) उनमे उपदेश की रीति मनोहर होती है। लौकिक जीवन से सबधित दृष्टात देकर परमार्थ तक पहुँचने का मार्ग प्रस्तुत किया जाता है। (5) उनमे स्वाभाविक माधुर्य होना है। जहाँ वचनकार समाज की आलोचना करता है वहाँ उसकी वाणी मे कटुता दिखाई पडती है। (6) मध्यकालीन कन्नड-भाषा के स्वरूप के (जिस नडुगन्नड कहते हैं) अध्ययन मे वचन अत्यत सहायक होते हैं।

वचनो को दो वर्गो मे रख सकते हैं (1) वीरशैव-धर्म से सबधित, (2) आध्यात्मिक तत्त्वो को सरल-सुबोध शैली मे प्रतिपादित करने वाले वचन। प्रथम प्रकार के वचनो मे शक्तिविशिष्टाद्वैत के सिद्धात और

आचार पक्ष का वर्णन होता है। साधक के लिए पट्-स्थल—भक्तस्थल, महेशस्थल, प्रसादस्थल, प्राणलिंगस्थल, शरणस्थल तथा ऐक्यस्थल कहे गये है। इन स्थलों को क्रमशः प्राप्त करना पड़ता है। पाँच आचार भी साधक के लिए आवश्यक बताये गये है, वे हैं: सदाचार, गणाचार, नित्याचार, शिवाचार और लिंगाचार।

द्वितीय प्रकार के वचनों मे भक्ति, ज्ञान, धर्म, कर्म, ध्यान आदि सभी विषय आ जाते है।

शिवाद्वैत अथवा शिवसर्वोत्तमत्व ही वचनों का मुख्य प्रयोजन है। वचनकार प्रायः वीरशैव धर्म के ही अनुयायी है। आधुनिक काल मे अन्य धर्म के लेखकों ने भी वचनों की रचना की है। ऐसे लेखकों में डा० एस० बी० रंगण्णा (दे०) जी का नाम लिया जा सकता है जिसकी रचना 'रंगविन्नप' (दे०) (रंग की विनय) साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत है। मध्यकालीन वचनकारों में जेडरदासिमय्या, शंकरदासिमय्या, मेरेमिडय्या, सकलेश मादरस, प्रभुदेव, बसवेश्वर (दे०), अक्कमहादेवी (दे० महादेवियक्का), चेन्नबसव (दे०) और सिद्धराम (दे०) के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं।

वचनिका *(हिं० पारि०)*

वचनिका गद्य-पद्य मिश्रित रचना को कहते हैं। इसमें प्रत्येक वचन या वाक्य तुकांत होता है, इसलिए इस रचना-शैली को 'वचनिका' कहा जाता है। डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) के रीति-ग्रंथ 'रघुनाथ रूपक गीता रो' में वचनिका के 'पद्यबंध' और 'गद्यबंध' नामक दो भेद बताए गए है। गद्यबंध मे कई जोटे या युग्म वचनिका रूप में जोड़े जाते हैं। वचनिका शैली के कई ग्रंथ राजस्थानी में लिखे गए हैं। 'पृथ्वीराजरासो' में भी 'वचनिका' शैली का प्रयोग मिलता है।

वछाहरण *(म० कृ०)* [रचना-काल—1278 ई०]

इसके रचयिता श्री रामोदर कवि महानुभाव-पंथ में दीक्षित थे। कृष्ण-भक्तिपरक इस काव्य में ब्रह्म द्वारा अपहृत बछड़ों को पुनः गोपालों को दिलाने मे किए गए कृष्ण के पराक्रमों का वर्णन है। इसमे अघासुरवध का भी सरस वर्णन है। यह मराठी का पहला प्रबंध-काव्य है वत्सहरण-प्रसंग पर लिखा गया यह एकमात्र उपलब्ध काव्य है। इसमें प्रकृति-वर्णन भी सरस-सजीव है।

वजही *(उर्दू० ले०)*

वजही इब्राहीम कुतबशाह के समय में पैदा हुए थे। कुतबशाह का राज्य काल 1535 से 1565 ई० तक है। बाल्यावस्था में ही इन्होंने काव्य-रचना आरंभ कर दी थी और एक सफल कवि माने जाने लगे थे। इन्होंने किसी को अपना गुरु नही बनाया।

वजही की दो रचनाएँ 'कुतब मुशतरी' और 'सबरस' (दे०) प्रसिद्ध है। 'कुतब मुशतरी' एक मसनवी (दे०) है जिसमें बादशाह कुतब की प्रशंसा की गई है तथा उनकी प्रेम-गाथा का सुंदर वर्णन है। यह मसनवी 1603 ई० में लिखी गई थी। 'अंजुमन-ए-तरक्की-ए-उर्दू' ने इसे प्रकाशित किया है। चूँकि इस में बादशाह कुतुब की प्रेम-गाथा का वर्णन है, इसलिए इसका ऐतिहासिक महत्व है। इससे तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों और सभ्यता पर प्रकाश पड़ा है। इस मसनवी मे दो हज़ार पद हैं। इसके अतिरिक्त वजही ने 'ग़ज़ल' और 'रुबाई' आदि काव्य-रूपों का भी अभ्यास किया है।

'सबरस' वजही की दूसरी महत्वपूर्ण पुस्तक है। इसमें सूफ़ी मत के सिद्धांतों का हृदयग्राही प्रतिपादन एक सुंदर कथा के माध्यम से हुआ है। उर्दू काव्य में इस प्रकार का यह एकमात्र ग्रंथ है। इसमें मानवीय भावों के अंतर्द्वंद्व का बड़ा सफल चित्रण हुआ है।

वजीद *(पं० ले०)* [समय—सोलहवीं शती का मध्यभाग]

ये पंजाबी में समस्या-पूर्ति-काव्य के रचयिता और अपने ढंग के अनोखे कवि हुए है। इनका जन्म-समय और स्थान निश्चित रूप से ज्ञात नहीं। भाई काहनसिंह ने 'गुरु-शब्द-रत्नाकर-कोश' में इन्हें सोलहवीं शती के मध्य विद्यमान बतलाया है। पहले ये इस्लाम के कट्टर अनुयायी थे, बाद मे वेदांतियों की संगति के प्रभाव से उदार सूफ़ी-संत बन गए। इनके शिष्य 'रोशनी' कहलाते हैं। पंजाबी में इनके द्वारा रचित अनेक पद्य मिलते हैं जिनमे ईश्वर-लीला का गुणानुवाद व्याजस्तुति के माध्यम से हुआ है। प्रत्येक पद्य इस पंक्ति से समाप्त होता है—'वजीदा! कौन साहब नूं आखे, ऐं नहीं इउं कर?' (ईश्वर से कौन कहे—ऐसे नहीं, ऐसे करो?) उदाहरण:

मूरखनू असवारी हाथी घोड़यां,
पंडित पीर प्यादे, पाटे जोड़यां

करदे सुघड मजूरी मूरख दे जाय घर,
वजीदा कौण साहिब नू आखे, ऐं नही इउ कर।

वज्रयान *(पा० पारि०)*

यह 'महायान' शाखा (दे०) का एक विकृत रूप है। मध्यकाल मे 'महायान' शाखा दो भागो मे विभाजित हो गई थी—'मत्रयान' और 'वज्रयान'। इस शाखा का जन्म कब हुआ यह तो निश्चित नही है किंतु इसकी प्रारभिक सत्ता आसाम मे पाई जाती है तथा बिहार से लेकर असम तक इसका प्रसार था। वही से काश्मीर, मध्य एशिया, तिब्बत तथा दूसरे राज्यो मे इसका प्रवर्तन हुआ।

'वज्र' शब्द के अनेक अर्थ है—रत्न, इद्रायुध, विरोधी शक्तियो के लडने के लिए बौद्ध भिक्षुओ का आयुध इत्यादि। 'शून्यता' और 'विज्ञान' भी जो माध्यमिक तथा योगाचार के सिद्धात है, अविनश्वर होने के कारण 'वज्र' शब्द से अभिहित किए गए हैं। इन सबके अतिरिक्त जिस प्रकार 'पद्म' शब्द स्त्री-योनि का वाचक है उसी प्रकार 'वज्र' शब्द पुरुष-लिंग का वाचक है। निर्वाण (दे०)-प्राप्ति के लिए अबाध स्त्री-सेवन अनिवार्य माना जाता है इसीलिए इस शाखा का नाम 'वज्रयान' पडा है। यह तात्रिको का एक सप्रदाय है जिसमे बुद्ध की त्रिकाल कल्पना के अतिरिक्त शाक्तो द्वारा परिकल्पित सुखकाय को भी मान्यता दी गई है जिसके द्वारा नित्य बुद्ध अपनी महाशक्ति तारा के सभोग का महासुख प्राप्त करते है। बौद्ध शाक्तबुद्ध की उसी क्रिया का अनुसरण कर महासुख की प्राप्ति करते है। इसके लिए चक्र बनाये जाते है और अनेक प्रकार की दूसरी विधियो का सपादन किया जाता है।

स्त्री-सेवन के साथ-साथ इसमे मछली, मास, मद्य इत्यादि का भी पूरा विधान है और उसका भी अबाध सेवन निर्वाण-साधना का एक अनिवार्य अग माना जाता है। इसमे उच्च जाति की स्त्रियो के अतिरिक्त डोमिनी, रजकी इत्यादि निम्न कोटि की स्त्रियो का सेवन भी विहित है तथा इस यान का समर्थन किया गया है कि अबाध स्त्री-सेवन के अभाव मे मोक्ष मिल ही नही सकता। इसमे युगनद्ध (बुद्ध और शक्ति का आलिंगनबद्ध रूप) उपास्य है। यह शाखा बौद्ध-दर्शन तत्रविद्या शृगार-भावना और कुछ-कुछ बुद्ध-विचारो का अद्भुत सम्मिश्रण है।

वटक्कन पाट्टुकल् *(मल० पारि०)*

यह उत्तर केरल के कई वीर पुरुषो और वीरागनाओ को प्रकीर्तित करने वाले लोकगीतो का व्यापक नाम है। इनकी रचना सोलहवी शती ई० मे अथवा बाद मे हुई मानी जाती है। ये लोकगीत यद्यपि श्रेष्ठ साहित्यिक गुणो से विभूषित नही हैं तो भी सहज-सरल जन-भाषाओ मे लिखे गए। ये गीत सीधे हृदय मे प्रवेश पाते है और वीररस की निष्पत्ति करके श्रोताओ को पुलकित कर देते है। आरोमल् चेक्वर, आरोमुण्णि, तच्चोळि ओतेनन्, तच्चोळि चतु आदि वीरो और उण्णियार्चा जैसी वीरागनाओ के नाम इन गीतो द्वारा अमर हुए हैं। तत्कालीन सामाजिक स्थिति के बारे मे जितनी सूचना इन गीतो मे प्राप्त है उतनी अन्यत्र सुलभ नही है। हमारे साहित्य मे जहाँ पुराण और इतिहास की कथाओ को ही भिन्न-भिन्न रूपो मे आवर्तित करने की परपरा को ही मान्यता मिलती आई है, इस प्रकार के लोकगीतो का स्थान अत्यत महत्वपूर्ण है।

वडवानल *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1962 ई०]

धीरुबहन पटेल (दे०) का यह मनोवैज्ञानिक उपन्यास डायरी शैली मे लिखा गया है। नायिका रेखा माता पिता के अनमेल विवाह की सतान है। पिता उससे प्रेम करता है, उसके प्रतिकार मे माँ उसके प्रति तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करती है। इस व्यवहार के परिणाम-स्वरूप रेखा गुनहगार बनती है। यहाँ रेखा के मानस-चित्रण द्वारा लेखिका ने सतान के प्रति माँ-बाप के व्यवहार के कारण सतान की की प्रतिक्रिया भली भाँति दिखाई है।

वड्डाराधने *(क० कृ०)*

'वड्डाराधने' रूप 'वृद्धाराधना' से सिद्ध होता है जिसका अर्थ है 'बडी आराधना'। जैन लोगो मे प्रचलित सल्लेखन व्रत अथवा समाधिमरण से इस आराधना का सबध है। जैन सन्यासी ज्ञान, दर्शन, चरित्र तथा तप के द्वारा जो साधना करते हैं, उसे आराधना कहते हैं। धर्म-सबधी चर्चाओ अथवा धार्मिक कथाओ को भी 'आराधना' ही कहा जाता है।

'वड्डाराधने' कन्नड मे उपलब्ध दूसरा प्राचीन

ग्रंथ है। प्रथम ग्रंथ 'कविराजमार्ग' (दे०) शास्त्र-विषयक ग्रंथ है और यह कथाओं का संग्रह है। इस कारण इसे प्रथम गद्य-ग्रंथ होने का गौरव प्राप्त है। इसके लेखक तथा रचना-काल के संबंध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। इसके लेखक शिवकोट्याचार्य हैं अथवा रेवाकोट्याचार्य—इस संबंध में पर्याप्त चर्चा हुई है। एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति में शिवकोट्याचार्य का नाम स्पष्टतया विद्यमान होने के कारण कई विद्वान् शिवकोट्याचार्य को ही ग्रंथ-लेखक स्वीकार करते हैं। 'कन्नड-कवि-चरिते' (दे०) के लेखक स्व० आर० नरसिंहाचार्य (दे०) जी ने रेवाकोट्याचार्य को इस ग्रंथ का लेखक बताया है। इसके रचना-काल के संबंध में तीन मत प्रकट हैं—(1) इसकी भाषा-शैली में अत्यंत प्राचीन रूप दर्शित होते हैं, अतः यह छठी शती की रचना स्वीकार की गई है। (2) 'अवतरणिका' में विद्यमान पद्यों के आधार पर यह नवीं शती की रचना मानी गई जिसका लिपिकाल ग्यारहवीं शती कहा गया। (2) ग्यारहवीं शती से पूर्व ही इसकी रचना हुई थी। प्रायः 920 ई० के आसपास इसकी रचना हुई होगी। अधिकतर विद्वान् तीसरे मत को समीचीन कहते हैं।

'वड्डाराधने' में उन्नीस धार्मिक कथाएँ हैं। संस्कृत और प्राकृत में 'आराधना'-विषयक ग्रंथ हैं। कन्नड का यह ग्रंथ प्राकृत के एक मूल ग्रंथ के आधार पर बनाया गया प्रतीत होता है। हरिषेण के संस्कृत में रचित 'कथाकोश' के साथ 'वड्डाराधने' की तुलना की गई है और बताया गया है कि इन दोनों का मूल कोई प्राकृत ग्रंथ होगा। 'वड्डाराधने' में 'कथाकोश' की अपेक्षा कथाएँ प्रायः लंबी हैं और उनमें विवरण भी अधिक है। इसकी गद्य-शैली अत्यंत सुंदर और अपूर्व है। इसकी कथाओं में सांप्रदायिकता, नीति तथा वैराग्य का वर्णन मिलता है, परंतु सरसता, सुंदर वातावरण-निर्माण, आकर्षक संभाषण इत्यादि गुणों के कारण ये कथाएँ पाठक के मन को मोल लेती हैं। इन कथाओं में मानवता का सुंदर निरूपण हुआ है।

वणप्पु *(त० पारि०)*

तमिल व्याकरण-परंपरा के शीर्षस्थानीय ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' (दे०) के 'चेय्युळियल्' (छंद-परिच्छेद) के प्रथम सूत्र में सामूहिक रूप से तमिल पद्यों के चौंतीस लक्षणों का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ के व्याख्याताओं का कहना है कि प्रथमतः उल्लिखित छब्बीस लक्षण स्फुट गीतों के हैं तथा शेष आठ लक्षण शृंखलाबद्ध रचनाओं के हैं। ये आठ लक्षण 'वणप्पु' के सामूहिक नाम के अंतर्गत रखे जाते हैं। स्मरण रखने की बात यह है कि उपलब्ध 'संगम्' साहित्य मुख्य रूप से स्फुट गीतों का है तथा तमिल भाषा के प्राचीनतम काल में शृंखलाबद्ध रचनाओं का प्रचलन 'वणप्पु' से संबंधित 'तोल्काप्पियम्' के सूत्र द्वारा ही प्रमाणित किया जा सकता है।

'वणप्पु' के आठ भेदों में 'अम्मै' का संबंध ऐसे नीति-प्रतिपादक पद्य से है, जो लक्षण एवं लक्ष्य के रूप में सँजोये हुए हों और अधिक-से-अधिक छह पादों में युक्त छंद में प्रस्तुत हों। 'अऴकु' ऐसी रचनाओं का नाम है जिनमें कविता-परंपरा के अनुरूप सुग्राह्य शब्दों का उपयोग सुंदरता बढ़ाने वाला हो। 'तोन्मै' से पुराने इतिवृत्त पर आधारित और संस्कृत 'चंपू'-काव्य के समान गद्यांशों से युक्त रचना सूचित है। 'तोल्' भी ऐसा पुराना इतिवृत्तकथन है जो विषय और अभिव्यक्ति दोनों में उदात्तता एवं विस्तार से युक्त हो। 'विरुंदु' (दे०) का अर्थ ऐसी पद्य-रचना है जो विषय एवं छंद में नये क्षेत्र का स्पर्श करने वाली हो। 'इयैबु' ऐसी रचना है जो अनुनासिक व्यंजनों से अथवा य् र् ल् व् ऴ् ळ्—इन अंतस्थ व्यंजनों से अवसान करने वाली हो। 'पुलन्' एक ऐसी पद्य-नाटक-विधा है जिसमें साधारण बोलचाल का प्रयोग हो और सुलभ बोधगम्यता हो। 'इऴैबु' तमिल संगीत के अनुकूल निबद्ध ऐसी रचना है जिसमें परुष व्यंजनों का वर्णन हो तथा चरणों की संख्या दो से पाँच तक हो।

स्पष्ट है कि 'वणप्पु' के उपर्युक्त भेदों में प्रथम सात ही कविता से संबद्ध हैं। इन भेदों के उदाहरण के रूप में कतिपय ग्रंथों के नाम 'नच्चिनार्क्किनियर' आदि टीकाकारों द्वारा उल्लिखित हैं पर ये आजकल अप्राप्य हैं अथवा उनमें से केवल आंशिक उद्धरण कहीं-कहीं मिलते हैं।

वत्सभट्टि *(सं० ले०)* [समय—पाँचवीं शती]

वत्सभट्टि द्वारा लिखित 472 ई० का एक संस्कृत-शिलालेख प्राप्त होता है। उसमें वत्सभट्टि ने जिस पद्य की रचना की है उस पर कालिदास (दे०) का प्रभाव परिलक्षित होता है। अतः कालिदास के काल-निर्णय के प्रसंग में प्रायः वत्सभट्टि की चर्चा की जाती है। वत्सभट्टि द्वारा रचित मंदसौर की प्रशस्ति वैदर्भी रीति में

आबद्ध एक उच्चकोटि के कवि की कृति प्रतीत होती है। इस प्रशस्ति मे 44 पद्य है। दशपुर का वर्णन अत्यत कवित्वपूर्ण है और काव्यकला के विकास का परिचायक है। मैक्समूलर (दे०) ईसा की पाँच शतियो को सस्कृत-काव्य रचना का ह्रास-काल माना था। पर वत्सभट्टि की यह रचना इस बात को निर्मूल सिद्ध कर देती है।

वत्सराज *(स० ले०) [समय—बारहवी शती का उत्तरार्द्ध व तेरहवी का पूर्वार्द्ध]*

वत्सराज कालिजर के राजा 'परमर्दिदेव' के अमात्य थे तथा उनके पुत्र त्रैलोक्यवर्मदेव के समय मे भी उसी पद्य पर विद्यमान रहे। इनके जीवन-वृत्त के विषय मे हमे विशेष ज्ञान नही।

इनके 6 रूपक उपलब्ध होते है। इनका 'रूपकषट्क' गायकवाड ओरियटल सिरीज मे 1918 ई० मे प्रकाशित हुआ। इनके रूपको के नाम हैं—(1) 'कर्पूरचरित' (भाण), (2) 'हास्यचूडामणि' (दे०) (प्रहसन), (3) 'त्रिपुरदाह' (दे०) (डिम), (4) 'किरातार्जुनीय' (व्यायोग), (5) 'समुद्रमथन' (दे०) (समवकार) तथा (6) 'रुक्मिणीपरिणय' (दे०) (ईहामृग)।

इन रूपको को देखने से पता चलता है कि भास (दे०) के अनतर वत्सराज ही एक ऐसे नाटककार हुए हैं जिन्होने विविध प्रकार के रूपको की रचना की है। उनकी शैली सरल, सशक्त और ललित है। उसमे दीर्घ समासो तथा दुरूह वाक्य-विन्यास का प्रयोग नही किया गया है। उनके छोटे छोटे रूपको मे नाटकीय क्रियाशीलता, रोचकता तथा घटनाओ की प्रधानता देखने को मिलती है।

वरदराजन, मु० *(त० ले०) [जन्म—1912 ई०]*

इनकी ख्याति उपन्यासकार, निबधकार, साहित्यान्वेषी आदि नाना रूपो मे है। इनकी प्रबुद्ध विवेचन-शक्ति के कारण कुछ लोगो ने इन्हे 'तमिलनाडु के बर्नार्ड शा' कहा है। ये मद्रास विश्वविद्यालय से सबद्ध 'पच्चैयप्पन्' कालेज मे लबे अरसे तक तमिल के प्रोफेसर रहे थे और उसी विश्वविद्यालय के विभागीय तमिल प्रोफेसर भी हो गये थे। सप्रति ये 'मदुरै' विश्वविद्यालय के कुलपति पद्य पर प्रतिष्ठित हैं।

साहित्यानुशीलन एव अन्वेषण के क्षेत्र म इनकी मुख्य रचनाएँ ये है—'चड्क इलक्कियत्तिलु इयर्कै' ('सगम' साहित्य मे प्रकृति का स्वरूप—'डाक्टर' उपाधि के निमित्त निबध), 'ओवच्चेय्ति', 'नेट्टुन्तोकै विळक्कम्', 'कुरुन्तोक विळक्कम्' (तीनो 'सगम' कविताओ की व्याख्याएँ), इलक्किय तिरन्' (साहित्य-समीक्षा के सिद्धात) इत्यादि। इनके बीसो उपन्यास निकल चुके हैं। अधिकाश उपन्यासो मे इनकी व्यतिरेकी पात्र-सृष्टि तथा कथावस्तु-योजना की मूल प्रेरणा एक आडबरविहीन और उन्नत लक्ष्यो से सचालित जीवन के मूल्य एव मान्यताओ का प्रतिपादन करना है। 'अकल् विळक्कु' (छोटा दिया) 1961 ई० मे साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास है जो आडबररहित लक्ष्यनिष्ठ जीवन की वाछनीयता की भावभूमि पर आधारित है। 'करित्तुट्' (कोयले का टुकडा), 'नेंचिल् ओरमुल्' (हृदय का काँटा), 'पेर्र मनम्' (मातृ-हृदय), 'चेंतामरै' (प्रेमी नारी का जीवन) इनके कुछ प्रसिद्ध उपन्यासो के नाम हैं। इनका 'डाक्टर अल्लि' नामक उपन्यास नाटक मे रूपातरित करके रगमच पर खेला गया है। 'पेर्र मनम्' उपन्यास फिल्माया गया है।

इनके अतिरिक्त अन्य विविध क्षेत्रो मे तथा विषयो पर इन्होने अपनी सशक्त लेखनी चलायी है। इनकी शैली ठेठ तमिल की है जिसमे सस्कृत शब्दो के लिए स्थान अत्यल्प है। वस्तुत इतने विपुल और बहुमुखी साहित्य की रचना का गौरव विरले ही लेखको को प्राप्त है।

वरदाचार्युलु, वानमामलै *(ते० ले०)[जन्म—1918 ई०]*

हैदराबाद-स्थित 'मडिकाड' इनका जन्म-स्थान है। ये वृत्ति से अध्यापक हैं और अच्छे कवि तथा विद्वान भी हैं। ग्रामीण जीवन मे इनकी अधिक रुचि है। सगीत तथा नृत्यकला मे भी इनकी गति है। इनके ग्रथ हैं—'मणिमाला' (खडकाव्य-सग्रह), 'आह्वान', 'विप्रलब्धा' (प्रगीत), 'वैशालिनी' (नाटक), 'पोतनचरितमु' (दे०) (महाकाव्य) और अन्य कई नाटक, एकाकी आदि। इनकी प्रतिभा बहुमुखी है। मार्मिक प्रगीत म इन्हे जैसी सफलता मिली है वैसी ही महाकाव्य-रचना म भी मिली है। 'पोतनचरित्र' के लेखक के रूप मे आधुनिक कवियो मे इन्होंने विशेष ख्याति अर्जित की है।

वरलक्ष्मंमा, कनुर्पति *(ते० ले०)*

ये आधुनिक कहानी-लेखिकाओं में से हैं। मानव हृदय का सहज-स्वाभाविक चित्रण इनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता है। 'वसुमति' नामक एक उपन्यास की भी रचना इन्होंने की है जिसको पर्याप्ति समादर प्राप्त हुआ है। 'पिछनु पुच्छुकुंन मर्नाड्' इनकी प्रसिद्ध कहानी है।

वरविक्रयमु *(ते० कृ०)*

यह काळ्ळकूरि नारायणराव् (दे०) का लोकप्रिय सामाजिक नाटक है। वरशुल्क (दहेज) की कुप्रथा के विरोध मे लिखा गया यह नाटक अत्यंत सशक्त है। मुख्य कथा के सुखांत होने पर भी पहली कन्या के बलिदान के कारण इस नाटक में त्रासदी का भाव भी प्रभावशाली बन पड़ा है। कथा-निर्माण, चरित्र-चित्रण, संवाद आदि की दृष्टि से यह सफल तथा अभिनय-योग्य नाटक है। इसके पद्य भी अत्यंत लोकप्रिय हुए है। सामयिक सामाजिक कुप्रथाओं, व्यक्तियों तथा संस्थाओं पर नाटकीय शैली में कटुव्यंग्य करने वाले नाटकों में 'वरविक्रयमु' विशिष्ट रचना है।

वराहमिहिर *(सं० ले०)* [समय—500 ई०]

ज्योतिष के विद्वान् वराहमिहिर आर्यभट (ज्योतिष के विद्वान्) के समकालीन थे।

वराहमिहिर-रचित ग्रंथों में 'पंचसिद्धांतिका', 'बृहत्संहिता', 'बृहज्जातक' तथा 'लघुजातक' प्रमुख हैं।

'पंचसिद्धांतिका' के अंतर्गत वराहमिहिर ने पूर्ववर्ती तथा समकालीन ज्योतिष की पद्धतियों तथा प्रवृत्तियों का विवेचन किया है। यह ग्रंथ प्रमुख रूप से सिद्धांत-ग्रंथ नहीं है, अपितु इसमें यत्रतत्र ही सिद्धांतों का समावेश है। वराहमिहिर ने पंचसिद्धांतों के अंतर्गत पैतामह, वासिष्ठ, रोमक, पौलिश और सौर-सिद्धांत का वर्णन किया है। वराहमिहिर का सौर-सिद्धांत ही सूर्य-सिद्धांत के नाम से प्रख्यात है। सूर्य-सिद्धांत का दसवीं शती तक बहुत कुछ परिवर्तन तथा परिवर्द्धन हो चुका था। परिवर्द्धित सूर्य-सिद्धांत के 14 अधिक्रम अथवा अध्याय है। ये अध्याय—मध्यम, स्पष्ट, त्रिप्रश्न, चंद्रग्रहण, सूर्यग्रहण, परिलेख, ग्रहपति, नक्षत्रग्रहयुति, उदयास्त, शृंगोन्नति, पात, भूगोल, ज्योतिषोपनिषद् तथा मान हैं। सूर्यसिद्धांत के अनुसार विषुव की वार्षिक गति 54 विकला है। यह गणता वास्तविक अयन से केवल 4 विकला भिन्न है। परंतु ग्रीक-ज्योतिषियों का अयन 18 विकला भिन्न है।

वराहमिहिर के ज्योतिष-संबंधी साहित्य से भारतीय गणित की सूक्ष्मता सिद्ध होती है। वर्तमान में भी अनेक ज्योतिष विद्या के जिज्ञासु वराहमिहिर की पद्धति का अनुशीलन कर रहे हैं।

वरूधिनी *(तें० पा०)*

यह तेलुगु के महान कवि अल्लसानि पेद्दन्ना (दे०) द्वारा रचित 'मनुचरित्रमु' (दे०) नामक विख्यात प्रबंध-काव्य की नायिका है। वरूधिनी कवि की एक अमर सृष्टि है। वह एक परम सुंदरी, मुग्धा अप्सरा है। तड़ित या स्वर्ण-केतकी-कुसुम के समान उसकी देहयष्टि की दीप्ति है। वह हिमालय में रहती है और नृत्य, संगीत, साहित्य, वाक्चातुरी एवं प्रणय-रहस्यों में उसकी अच्छी गति है। संयम को वह जानती ही नहीं। अतः हिमालय में रास्ता भूलकर भटकने वाले, नयनाभिराम सौंदर्य से उद्दीप्त प्रवरुड् (दे०) नामक युवक को देखकर वह तत्काल उसके प्रति दुर्वार प्रेम एवं कामना से विह्वल हो जाती है तथा निस्संकोच भाव से अपनी मनोगत भावनाओं एवं अपने विरह-ताप को उसके सम्मुख व्यक्त कर देती है।

संयमी एवं धर्मनिरत प्रवरुड् जब उसके प्रस्ताव को बार-बार अस्वीकार कर देता है तब वह नाना प्रकार के तर्कों द्वारा जीवन में कामोपयोग के महत्व को अनुनयपूर्वक समझाने का प्रयत्न करती है। वह परम काम्य स्वर्गीय सुख उसको पृथ्वी पर अनायास ही मिल रहा है। अतः उसे ठुकराना उचित नहीं। अंत में वह भाव-विमूढ़ एवं कामोत्कंठिता होकर प्रवरुड् को अपने प्रगाढ आलिंगन में बाँधने का प्रयत्न करती है। परंतु प्रवरुड् उसको शोकातुर एवं अपमानित स्थिति में ही छोड़कर चला जाता है।

वरूधिनी आंध्र-जनता के लिए अविस्मरणीय चरित्र है। उसने अपनी संभाषण-पटुता, प्रेम की विह्वलता, कमनीय सौंदर्य तथा तीव्र वेदना से सभी के हृदयों में घर कर लिया है।

वर्कि, पोन्कुन्नम् *(मल० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

ये मलयाळम के कहानी-साहित्य को नवीन रूप मे प्रतिष्ठित करने वालो मे प्रमुख हैं। अपने प्रगतिशील विचारो के फलस्वरूप इनको अध्यापक की नौकरी छोडनी पडी थी और राष्ट्रीय आदोलन मे भाग लेकर जेल-वास भी करना पडा था। अपने अन्य सहयोगियो के साथ मिलकर साहित्यकारो के एक सहकारी सघ 'साहित्य प्रवर्तक सहकरण सघम्' की स्थापना करने मे इनको सफलता मिली है।

इनके 18 कहानी-सग्रह प्रकाशित हुए हैं और इन्ही कहानियो से सर्वश्रेष्ठ कृतियो का चयन करके दो बृहत सग्रह और प्रकाशित हुए हैं। 'तिरुमुल्काप च' और 'नीरावि' गद्य-कविताओ के सग्रह है। इनके 14 नाटको मे 'जेताक्कळ्', 'पूजा', 'विशरिक्कुकाट्टुवेंटा' आदि प्रमुख है। इन्होने अपनी आत्मकथा और एक रेखाचित्र-सग्रह भी लिखा है।

इन्होने अपनी कहानियो मे अत्याचार-पीडित किसानो और मजदूरो के वेदनापूर्ण जीवन का मार्मिक चित्रण किया है। पुरोहित वर्ग—विशेषकर कैथलिक पौरोहित्य के धृष्टतापूर्ण व्यवहारो का इन्होने डटकर मुकाबला किया है। नाटक के विकास मे भी इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

वर्णक *(क० पारि०)*

'वर्णक' सस्कृत शब्द है। कन्नड काव्यशास्त्र मे यह पारिभाषिक शब्द के रूप मे गृहीत हुआ है। कन्नड के आचार्यों ने काव्य के दो भेद बताये हैं— वस्तुक (दे०) और वर्णक। वस्तुक को 'मार्ग' अथवा चपू काव्य भी कहते है। वर्णक को देसिकाव्य अथवा पाडुगब्बा कहते हैं। किसी विशेष काव्य-लक्षण को मानना अथवा सस्कृत के लक्षणो के अनुसार काव्य-रचना न करना इस काव्य-भेद का वैशिष्ट्य है। यह स्वभावत गेयगुण से युक्त होता है, अत इसे पाडुगब्बा' कहते हैं।

वर्तक, श्री० वि० *(म० ले०)*

मराठी नाट्य-तत्र को शेक्सपियर तथा मौलियर के जडीभूत प्रभाव से मुक्त कर इब्सन की यथार्थवादी शैली के निकट लाने का श्रेय वर्तक को नाट्य-रचनाओ को प्राप्त होता है। 'आधळ्याची शाळा', 'लपडाव' और 'तक्षशिला' इनकी नाट्य कृतियाँ हैं। इनमे 'तक्षशिला' इब्सन की नाट्य कृति का अनुवाद है तो 'आधळ्याची शाळा' नार्वेजियन नाटककार ब्यर्नसन के 'ए गाटलेट' की कथा पर आधारित नाटक है। 'लपडाव' मे अपनी प्रिया को अप्राप्य जान दिग्भ्रमित हो अन्य युवती से प्रणय-सबध की प्रत्याशा करने वाले युवक का चित्रण है जिसे बाद मे अपनी भूल पर पश्चात्ताप होता है। नाट्य-शिल्प की दृष्टि से इनकी नाट्य कथाएँ सुसगठित हैं। प्रधान कथा के साथ जिन अन्यान्य घटना-प्रसगो की सयोजना हुई है वे मूल कथा के विकास मे सहायक हैं। पात्रो का चरित्र-निरूपण सहज स्वाभाविक रूप मे हुआ है। सक्षिप्त किंतु मार्मिक सवादो की भाषा सरल एव प्रवाहपूर्ण है।

वर्तमानप्पुस्तकम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1787 ई०]

यह कैथोलिक पुरोहित पारेम्माक्कल् तोमा कत्तनार्-रचित बृहद् यात्रा-वृत्त ग्रथ है। इसमे ग्रथकार द्वारा आशा अतरीप के रास्ते ब्राज़ील पुर्तगाल आदि का भ्रमण करके रोम पहुँचने और वापस आने का वर्णन-विवरण है।

'वर्तमानप्पुस्तकम्' शायद किसी भी भारतीय भाषा का प्रथम यात्रा-विवरण ग्रथ है। इसमे यूरोप के तत्कालीन जन-जीवन का सरस और ज्ञानवर्द्धक वर्णन है। इसका गद्य पाश्चात्य लेखन-शैली पर आधारित था और मलयाळम के आने वाले गद्य-लेखको के लिए पथ-प्रदर्शक था। गद्य-साहित्य के विकास मे नये मोड का प्रतिनिधित्व करने वाले इस ग्रथ का स्थान साहित्य-जगत म बहुत महत्वपूर्ण है।

वर्धमानपुराण *(क० कृ०)*

'वर्धमानपुराण' के कवि आचण्णा (समय—लगभग 1195 ई०) जैन धर्मानुयायी थे। वे भारद्वाज गोत्र के थे। उनके पिता केशवराज और गुरु नदयोगीश्वर थे। 'वसुधैकबाधव' उपाधिधारी रेचणचप की इच्छानुसार आचण्णा के पिता और नित्रकणवाण न 'वर्धमानपुराण' लिखना शुरू किया था, परतु दैवयोग से जब वह कार्य सपन्न नही हुआ तो आचण्णा ने उसे सपन्न किया। उन

को 'वाणीवल्लभ' और 'पंचपरमगुरुपदविनत' उपाधियाँ प्राप्त थीं।

'वर्धमानपुराण' में चौबीसवें तीर्थंकर वर्धमान अथवा महावीर का चरित वर्णित है। कथा सोलह आश्वासों में व्याप्त है। काव्य की उत्कृष्टता का प्रमाण यह है कि वह सदलंकारों का आगार, वाणी का भूषण, वर शब्दार्थ-युत मृदु संदर्भपूर्ण तथा सहृदयों के अंतःकरण को सौख्यामृतसार प्रदान करने वाला है। उसमें अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों का अच्छा प्रयोग हुआ है। नवरसों में शांत रस की प्रधानता है। पांडित्यपूर्ण काव्य होने के कारण विद्वानों ने उसकी खूब प्रशंसा की है। उसके कवि की विदग्धता सहृदयों के हृदय को सदा आनंद प्रदान करने वाली है।

वर्मा, ए० आर०, राजराज *(म० ले०)* [जन्म—1863 ई०; मृत्यु—1918 ई०]

केरलपाणिनि की उपाधि से विभूषित ये मलयाळम के कवि, समालोचक और भाषाविद् हैं। ये प्रसिद्ध कवि केरल वर्मा वलिय कोयित्तंपुरान (दे०) के भानजे और शिष्य थे। इन्होंने त्रावनकोर सरकार के अधीन अनेक शैक्षिक संस्थाओं में उच्च पदों पर कार्य किया है।

'केरलपाणिनीयम्' (दे०), 'मणिदीपिका' और 'शब्दशोधनी' इनके व्याकरण-ग्रंथों में मुख्य है। 'भाषाभूषणम्', 'वृत्तमंजरी' (दे०) और 'साहित्यसाह्यम्' इनके काव्यशास्त्रीय ग्रंथ है। इन्होंने 'मेघदूत' (दे०), 'कुमारसंभव' (दे०), 'शाकुंतल' (दे०), 'स्वप्नवासवदत्तम्' (दे०)और 'चारुदत्त' (दे०) का अनुवाद मलयाळम में किया है। 'मलयविलासम्' (दे०) और 'प्रसादमाला' इनके मौलिक काव्य हैं। 'नलचरितम्', 'मयूरसंदेशम्', आदि की व्याख्याएँ भी इन्होंने लिखी हैं। संस्कृत मे भी इन्होने बीसियों पुस्तकें लिखी हैं जिनमे 'आंग्लसाम्राज्यम्' मुख्य है।

राजराज वर्मा की बहुमुखी प्रतिभा ने मलयाळम भाषा आर साहित्य के विकास के प्रत्येक चरण में योगदान दिया है। 'केरलपाणिनीयम्' आज भी मलयाळम का सबसे प्रामाणिक व्याकरण-ग्रंथ है। छंदःशास्त्र में 'वृत्तमंजरी' के और काव्यशास्त्र में 'भाषाभूषणम्' के स्थान की भी यही स्थिति है। मलयाळम के कुछ कवियों द्वारा अनिवार्य माने गए 'द्वितीयाक्षर-प्रास नियम' को सभी कवियों पर थोपने के ये विरोधी थे। इस पर एक तीव्र वाद-विवाद का भी इन्होंने नेतृत्व किया था। के० सी० केशव पिळ्ळा (दे०), कुमारन् आशान् (दे०) आदि कवियों को उन्होंने प्रोत्साहित किया था। अपने काव्य 'मलयविलासम्' में इन्होंने स्वच्छंदतावाद की नींव रखी थी जो आगे चलकर कवित्रय (दे०) द्वारा परिपुष्ट किया गया था।

इस प्रकार मलयाळम के लिए इस महापुरुष का योगदान अनन्य साधारण है। भाषा-प्रेमियों द्वारा इन को दी गई उपाधि सार्थक है।

वर्मा, के० गोद *(मल० ले०)* [जन्म—1902 ई०; मृत्यु—1952 ई०]

ये प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक और मलयाळम के शोधकर्ता हैं। ये मलयाळम भाषा के संबंध में शोध करके पी-एच० डी० लेने वालों में प्रथम हैं। त्रावनकोर विश्वविद्यालय के अधीन कॉलेजों में ये मलयाळम के आचार्य रहे हैं।

गोदवर्मा की मुख्य कृति 'केरल भाषावैज्ञानीयम्' (दे०) है। मलयाळम के विकास और तमिल भाषा से उसके संबंध पर इन्होंने अपना नूतन मत स्थापित किया है। इन्होंने इस पूर्व-प्रचलित मत का खंडन किया है कि मलयाळम की उत्पत्ति तमिल से हुई है। इन्होंने स्थापित किया है कि तमिल और मलयाळम दोनों आदि द्राविड़ भाषा से स्वतंत्र रूप से विकसित हुई थीं। आजकल इसी मत पर अधिकतर विद्वानों की आस्था है।

वर्मा, धीरेंद्र *(हिं० ले०)*

डा० वर्मा मूलतः संस्कृत के विद्वान् थे किंतु इनका कार्यक्षेत्र हिंदी में भाषाविज्ञान रहा। प्रसिद्ध यूरोपीय भाषाशास्त्री जूल ब्लाख के ये शिष्य थे। उन्हीं के निर्देशन में फ्रांसीसी भाषा मे लिखित 'ला लांग ब्रज' पर इन्हें पेरिस से डी० लिट्० की उपाधि मिली थी। डा० वर्मा के मुख्य ग्रंथ है: 'ब्रजभाषा व्याकरण', 'ब्रजभाषा' (फ्रांसीसी मे लिखित थीसिस का हिंदी रूपांतर), 'हिंदी भाषा का इतिहास', 'ग्रामीण हिंदी', 'हिंदी साहित्य कोश' (संपादित), हिंदी भाषा का विकास' (संपादित)। इस तरह डा० वर्मा का मुख्य क्षेत्र व्यावहारिक भाषाविज्ञान था। वर्मा जी के लगभग दो दर्जन बहुत महत्वपूर्ण शोध-

लेख भी प्रकाशित हुए थे जिनमे मुख्य 'हिंदी मे नई ध्वनियाँ और उनके लिए नये चिह्न' 'अवध के ज़िलो के नाम' तथा 'सयुक्त प्रात के हिंदू पुरुषो के नाम' है। हिंदी प्रदेश मे भाषावैज्ञानिक अध्ययन को सबसे पहले व्यवस्थित रूप देने का श्रेय डा० वर्मा को है। आपने 'हिंदी साहित्य' नाम से हिंदी साहित्य का एक इतिहास भी सपादित किया है। इस ग्रथ की सबसे बडी विशेषता यह है कि भाषाशास्त्रीय दृष्टि से हिंदी उर्दू दक्खिनी आदि सभी शैलियो का साहित्य भी इसमे समाहित कर लिया गया है।

वर्मा जी काफी दिनो तक प्रयाग विश्वविद्यालय मे हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे। बाद मे नागरी प्रचारिणी सभा मे 'हिंदी विश्वकोश' के सपादक, जबलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति आदि कई पदो पर भी रहे।

वर्मा, पी० के०, राजराज *(मल० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

इस प्रसिद्ध हास्य-लेखक ने भारत और बर्मा मे अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण पदो पर कार्य किया है। इनका कृतित्व विपुल है। 'पचुमेनवनुम् कुचियम्मयुम्' (पाँच भाग), 'प्रसिडट कुचि', 'कुचियम्मयुटे चितकळ', 'कपटिसहारी', 'गुरुत्वक्केटु' आदि इनकी हास्य-कथाओ और उपन्यासो मे मुख्य हैं।

राजराजवर्मा के पात्र पचुमेनन (दे०) और कुचियम्मा (दे०) मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले दपति है जिनके जीवन के विचित्र सदर्भों के सरस हास्य-चित्रण इनकी अनेक कृतियो मे यत्र-तत्र बिखरे पडे हैं। इस माध्यम से उन्होने जो हास्य-साहित्य प्रस्तुत किया है वह शुद्ध विनोद की सामग्री ही प्रस्तुत नही करता अपितु अपने आप मे विचारोत्तेजक भी है। इन्होने 'शुप्पु' जैसे अन्य पात्रो की भी सृष्टि की है। साहित्य-समालोचक प्राय इनकी तुलना पी० जी० वुडहाउस से करते है।

वर्मा, भगवतीचरण *(हिं० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

इनकी गणना हिंदी के मूर्धन्य उपन्यासकारो मे होती है। यद्यपि यह सत्य है कि इन्होंने अपना साहित्यिक जीवन छायावादी (दे० छायावाद) काव्य-रचना से प्रारभ किया था और तदनतर 'भैंसागाडी' सदृश कविताओ मे प्रगतिवादी (दे० प्रगतिवाद) कविता का मूल स्वर मानववाद भी उभर कर आया है किंतु इनकी प्रसिद्धि मुख्यत उपन्यास-क्षेत्र मे ही है। 'चित्रलेखा' (दे०), 'टेढे-मेढे रास्ते', 'भूले-बिसरे चित्र' (दे०), 'सामर्थ्य और सीमा' तथा 'सबहि नचावत राम गुसाईं' इनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। 'चित्रलेखा' इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति है तथा 'भूले-बिसरे चित्र' साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत रचना है। इनके विचारानुसार मनुष्य न पाप करता है, न पुण्य। वह तो परिस्थितियो का दास है और ये उस पर इतनी हावी रहती हैं कि उससे चाहे जो करवा लेती हैं। वर्मा जी की धारणा है कि नैतिकता केवल छल है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग करते हुए चुस्त तथा सजीव सवादो एव वर्णनात्मक शैली द्वारा भारतीय समाज के मध्यवर्गीय जीवन के खोखलेपन, टूटती हुई आस्थाओ, सामाजिक विकृतियो एव विषमताओ का यथार्थ चित्रण इनके लेखक की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। चरित्राकन उनके उपन्यासकार की सबसे बडी शक्ति है। समग्रत भगवतीचरण वर्मा हिंदी-उपन्यास-साहित्य के मूल्यवान हस्ताक्षर हैं।

वर्मा, महादेवी *(हिं० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

इनका जन्मस्थान फर्रुखाबाद (उ० प्र०) है। इनका शैशव इदौर मे बीता। पिता कॉलिज के प्राध्यापक थे। प्रयाग विश्वविद्यालय से इन्होने सस्कृत मे एम० ए० किया। प्रारभ मे इन्होंने कुछ समय तक 'चाँद' का सपादन किया। आजकल ये प्रयाग के महिला विद्यापीठ की उप-कुलपति हैं। इन्होने दर्शनशास्त्र का गभीर अध्ययन किया है। चित्रकला मे इनकी विशेष रुचि है। इनके कविता-सग्रह प्राय चित्रो की रम्य पीठिका के साथ छपे हैं।

'यामा' (दे०) और 'दीपशिखा' (दे०) इनके प्रसिद्ध कविता सग्रह हैं। यामा मे 'नीहार', 'नीरजा', 'रश्मि' और 'साध्यगीत' नामक छायावाद (दे०)-कालीन रचनाओ का एकत्र सग्रयन है। 'दीपशिखा' का प्रकाशन प्रगतिवाद (दे०) के प्रारभ होने के पश्चात् 1942 ई० मे हुआ। इसलिए लेखिका ने भूमिका म छायावादी भावभूमि के समर्थन मे सशक्त विचार देते हुए यथार्थवाद की आलोचना की है। इस रचना के गीता म आत्मविश्वास से उद्भूत दृढता का स्वर सर्वत्र सुनाई देता है।

इनके गद्य-साहित्य का साहित्यिक महत्त्व निर्विवाद रूप मे स्थापित हो चुका है। इनके निबधो मे

विचारों का गांभीर्य, शैली की कसावट और भाषा की चित्रात्मकता उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। इनके संस्मरणात्मक रेखाचित्र हिंदी-साहित्य में अद्वितीय स्थान के अधिकारी हैं। इन रेखाचित्रों में महापुरुषों, साधारण व्यक्तियों और पशुओं के शील-स्वभाव का कलात्मक अंकन हुआ है। चित्रात्मक कल्पना के साथ काव्यात्मक भाषा का गुंफन इनका प्रमुख गुण है।

इनके काव्य में आत्म-निवेदन का स्वर प्रधान है। रहस्य के छायालोक में चरण रखकर निरंतर अग्रसर होने का दृढ संकल्प इनके गीतों में ही व्यंजित हुआ है। उनमें प्राकृतिक दृश्यावलियों का अंकन रागात्मक सहानुभूति के साथ किया गया है। और विरह की पीड़ा तथा मिलन के सपनों की अनेक मार्मिक अनुभूतियां इनके कलात्मक संयम के साथ व्यक्त हुई है। भाव-लोक की सीमा के कारण इनके अप्रस्तुत-विधान में वैचित्र्य कम मिलता है परंतु इस अभाव की पूर्ति ये चिर नवीन संयोजनाओं से करती है। महादेवी का साहित्यिक व्यक्तित्व मंदिर के उस पवित्र दीपक की भाँति है जो प्रिय का पथ आलोकित करने के लिए नीरव परंतु निष्कंप जलता रहा है।

वर्मा, रामकुमार *(हिं० ले०)* [जन्म—1905 ई०]

इनका जन्म मध्यप्रदेश के सागर ज़िले में हुआ। इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिंदी) और नागपुर विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त कीं। प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी-भाषा में अध्यक्ष पद पर रहकर ये सेवा-निवृत्त हुए। काव्य, एकांकी आलोचना के क्षेत्र में इनका विशेष योगदान है। कवि के रूप में इन्होंने द्विवेदी (दे० द्विवेदी, महावीरप्रसाद) युगीन इतिवृत्तात्मकता से आरंभ कर छायावादी (दे० छायावाद) सौंदर्य-लोक में प्रवेश किया। 'अभिशाप', 'चित्ररेखा', 'चंद्रकिरण', 'आकाश-गंगा' आदि रचनाओं प्रगीतों में दुःखवाद, रहस्यवाद प्रकृति-चित्रण, लाक्ष...ता, कोमल पदावली आदि छायावादी प्रचुर तत्त्व मात्रा में है।

इनकी काव्य-प्रतिभा का उत्कर्ष गीतिकाव्य की दृष्टि से 'चित्ररेखा' में और प्रबंधकाव्य की दृष्टि से 'एकलव्य' में हुआ है। इनका 'हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' साहित्यिक अध्ययन के क्षेत्र में एक में लोकप्रिय संदर्भ-ग्रंथ है।

वर्मा, वटक्कम्कूर, राजराज *(मल० ले०)* [समय—1822 से 1970 ई०]

मध्य केरल में 'वटक्कम्कूर' राजघराने में पैदा होने के कारण 'वटक्कम्कूर' नाम से ये सुख्यात हैं। सरस्वती देवी की पूजा करने वाले आधुनिक काल के साहित्यकारों में राजराजवर्मा का स्थान अन्यतम माना जाता है।

'कन्याकुमारीस्तवम्' नामक संस्कृत-रचना इनके पांडित्य और पद्य-रचना-कौशल का प्रमाण है। राघवाभ्युदयम्', 'रघुवीर विजयम', इन दोनों महाकाव्यों के अतिरिक्त इनका लिखा 'उत्तर भारतम्' काव्य-ग्रंथ केरली भाषा के महाकाव्यों में सबसे वृहत् कृति मानी जाती है।

'द्रौणी प्रभावम्' 'महाभारत' (दे०) के सौप्तिक पर्व के आधार पर इनका खंड-काव्य है। आध्यात्मिक कार्यों की महत्ता पर इन्होंने खंडकाव्य 'वैराग्य दर्पण' की रचना की। 'शैली प्रदीपम्', 'साहिती सर्वस्वम्' आदि इनके गद्य-ग्रंथ है। उण्णिनीली संदेशम्, (दे०), तुंचत्त् एषुत्तच्छन् (दे०) की कृतियाँ, चंपू-ग्रंथ कृष्ण-गाथा आदि का गहरा अध्ययन करके उन पर आलोचनात्मक कृतियाँ भी इनकी है। 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' इनका एक अन्य उल्लेखनीय ग्रंथ है। उळ्ळूर (दे०) पर लिखा हुआ इनका 'साहित्यकार का चरित्र' ग्रंथ केरली की विशिष्ट रचनाओं में से है। इनकी 'भारत प्रवेशिका' पढ़ने के बाद यदि मूल-भारतम् का अध्ययन किया जाय तो उस ग्रंथ की महिमा का पता कुछ-कुछ लग सकता है। इनका जीवन एक अनंत-अनवरत साहित्य-साधना थी। इनका दृढ़ विश्वास था कि आर्ष-संस्कृति से ही केरल की उन्नति हो सकती है। अतः सारे केरलीयों के लिए संस्कृत का अध्ययन करना अनिवार्य है।

वर्मा, वयलार, राम *(म० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

मलयाळम के प्रसिद्ध कवि-रूप के साथ फ़िल्मी गीतों के रचयिता के रूप में भी ये लोकप्रिय है। विविध राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में कार्य करने के बाद आजकल इन्होंने फिल्म उद्योग से अपना संबंध जोड़ा हुआ है। इनके मुख्य खंडकाव्य और कविता-संग्रह 'आयिषा', 'कत्रीना', 'कोंतयुम् पूणूलुम्', 'मुळंकाटु', 'सर्गसंगीतम्' आदि है। इनके चित्रपट-गीतों के भी अनेक

सग्रह प्रकाशित है।

'रामवर्मा प्रगतिवादी कवि हैं। कृषको और मजदूरो का अभिशप्त दुखी जीवन और उन पर होने वाला अत्याचार, विज्ञान और अधश्रद्धा का परस्पर सघर्ष आदि इनके काव्य के स्वीकृत विषय हैं। चडडपुषा के तुरत बाद के मलयाळम कवियो मे वयलार रामवर्मा का स्थान प्रमुख है।

वर्मा, वृंदावनलाल *(हिं० ले०)* [जन्म—1889 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के झाँसी जिले के मऊरानीपुर गाँव मे हुआ था। लेखन की प्रवृत्ति इनमे विद्यार्थी-जीवन से ही थी। जब ये नवी कक्षा के विद्यार्थी थे तभी इन्होंने तीन छोटे छोटे नाटक इडियन प्रेस, इलाहाबाद को भेज दिये थ जिन पर इन्हे पुरस्कारस्वरूप 50 रुपए भी मिले थे। तदनतर इन्होने एक मौलिक ग्रथ 'महात्मा बुद्ध का जीवन-चरित' लिखा था तथा शेक्सपियर की नाट्य-कृति 'टॅपेस्ट' का हिंदी-अनुवाद किया था। 1909 ई० मे इनके नाटक 'सेनापति ऊदल' का प्रकाशन हुआ था जिसे तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था। फिर ये कहानियो तथा निबधो की रचना तथा स्कॉट के उपन्यासो के अध्ययन-अनुशीलन मे प्रवृत्त रहे जिसके फलस्वरूप इनके मन मे ऐतिहासिक उपन्यासो के प्रणयन की प्रवृत्ति जन्मी। 1927 ई० मे इनका प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ कुडार' प्रकाशित हुआ और इसके बाद इन्होने 'झाँसी की रानी' (दे०), 'कचनार', 'मृगनयनी' (दे०), 'टूटे काँटे', 'अहल्याबाई', 'भुवन-विक्रम' आदि अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास हिंदी-संसार को भेंट किए थे। इनमे 'मृगनयनी' इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। ऐतिहासिक उपन्यासो के अतिरिक्त ये 'लगन', 'सगम', 'अचल मेरा कोई', 'अमरबेल' आदि सामाजिक उपन्यास 'झाँसी की रानी', 'हस मयूर', 'पूर्व की ओर' आदि ऐतिहासिक तथा 'धीरे-धीरे, 'राखी की लाज', 'पीले हाथ' आदि सामाजिक नाटक लिखते रहे। इसके अतिरिक्त इनके सात कहानी-सग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं जिनम 'शरणागत' तथा 'कलाकार का दड' मुख्य हैं। किंतु यह निर्विवाद है कि ऐतिहासिक उपन्यासो के क्षेत्र मे इनका कृतित्व विरोषरूपेण स्मरणीय है। बुदेलखड के जीवन को आधार बनाकर सामाजिक कुरीतियो की ओर सकेत करते हुए राष्ट्र का पुनर्निर्माण इनके उपन्यासो का मूल लक्ष्य है। इनकी दृष्टि म प्रेम का मानव-जीवन म अत्यत महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक प्रकार की साधना है जिसकी सहायता से मनुष्य का ऊर्ध्वमुखी विकास होता है। स्वय तटस्थ रहकर घटनाओ के घात-प्रतिघात, कथोपकन आदि के द्वारा चरित्र-सृष्टि, बुदेलखडी का पुट देते हुए पात्रानुकूल भाषा तथा उपमा प्रधान, धाराप्रवाह और रोचक शैली का प्रयोग इनके लेखन की अन्य विशेषताएँ हैं। समग्रत ये हिंदी-साहित्य के अत्यत मूल्यवान हस्ताक्षर हैं।

बलाका *(बँ० कृ०)*

यह रवीद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) की 1914-16 ई० मे लिखित 46 कविताओ का सग्रह है। 1916 ई० मे यह प्रकाशित हुआ था। इसकी कविताओ मे चित्रित ससार प्रकृति और मानव-सत्य के गभीर रहस्य और उनके रूप-रस के प्रकृत तत्वानुभूति के जगत का—विशेषकर काव्य-दर्शन के जगत् का—चित्रण है। सृष्टि ने कवि-हृदय मे जो चिंतन दिया है और उस चिंतन से उसमे जो आलोडन-मथन हुआ वह इसकी कविताओ मे मिलता है।

इसके कवि की कल्पना, भाव, अनुभूति ने पूर्वनिर्दिष्ट मार्ग छोड नवीन पथ ग्रहण किया है। कवि ने समालोचक और दार्शनिक के दृष्टिकोण से ससार को देखा है। मानव शक्ति के प्रति अटूट विश्वास एव मानवता म अखड आस्था ही इसका मूल स्वर है। समस्त विश्व म अविराम गतिवेग की अनुभूति तथा गति के प्रतीक यौवन का जयगान एव लीला रहस्य की अनुभूति इन कविताओ मे मिलती है। यौवन का अभिनदन है, शक्ति है, वासना नही।

रवीद्र काव्य मे इससे नवीन युग का सूत्रपात हुआ है। कवि ने नवीन दृष्टि-भंगिमा से ससार, प्रकृति एव परमेश्वर को देखा है। इसी का चित्रण इस सग्रह की कविताओ का विषय है।

वली *(उर्दू०ले०)* [जन्म—1668 ई०, मृत्यु—1744 ई०]

वली का उर्दू साहित्य मे वही स्थान है जो अँग्रेज़ी साहित्य में 'चॉसर' का है। उर्दू कविता की नींव रखने वाले वली ही समझे जाते हैं। मीर तकी 'मीर' (दे०) के 'नुकात-उल-शोअरा' के अनुसार वली का जन्म औरंगाबाद मे हुआ, और बीस वर्ष तक ये यहीं रहे। बाद मे अहमदाबाद चले गए जो उस समय विद्या तथा

कला का केंद्र था। इन्होंने शाह वजीहुद्दीन के विद्यालय में कुछ समय तक शिक्षा पाई, फिर स्वदेश लौट कर ये काव्य-रचना में रत हो गए।

इनके काव्य में ग़ज़ल (दे०), मसनवी (दे०), क़सीदा (दे०), रुबाई (दे०) आदि सभी रूप मिलते हैं। कहा जाता है कि वली का एक हिंदी काव्य-ग्रंथ भी है। मौलाना आज़ाद (दे० आज़ाद, अबुलकलाम) तथा 'गुल-ए-रअ़ना' के रचयिता के अनुसार वली के सूफ़ी काव्य में एक रिसाला 'नूर-उल-मअ़र्फ़त' भी सम्मिलित है जो अब उपलब्ध नहीं है।

वली सूफ़ी थे। इन्हें किसी संप्रदाय-विशेष से द्वेष अथवा राग नहीं था। ये साधु स्वभाव थे। इनकी रचनाएँ भाषा की दृष्टि से बहुत रोचक हैं। भाषा सरल तथा सुबोध है। इन्हीं की काव्य-साधना से उत्तरी भारत में कविता की नींव सुदृढ़ हुई। सरलता, स्वाभाविकता तथा संगीतात्मकता इनके काव्य के विशेष गुण हैं। काव्य-शैली में प्रवाह तथा नैसर्गिकता पाई जाती है। यहाँ अलंकारों की भी भरमार नहीं है।

वळ्ळत्तोळ् *(मल० ले०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1958 ई०]

पूरा नाम वळ्ळत्तोळ् नारायण मेनन।

केरल प्रांत की वळ्ळुवनाट् नामक तहसील में इनका जन्म हुआ था। इन्होंने संस्कृत का गहरा ज्ञान अर्जित करके भक्ति-गीतों और स्तुतियों से अपना कवि-जीवन आरंभ किया था। बाल्यकाल की रचनाओं में 'किरातशतकम्', 'व्यासावतारम्', 'ऋतुविलासम्', 'पंचतंत्रम्', 'तपती-संवरणम्', 'बधिर-विलापम्' आदि प्रमुख मानी जाती हैं।

1920 ई० में भीषण सर्दी के प्रकोप से ये एकदम बहरे हो गये। इससे ये अत्यंत निराश हुए। किंतु इन्होंने अपने काव्य-स्वरों को नैराश्य की भावना से आक्रांत नहीं होने दिया। 'बधिर-विलापम्' (दे०) में अपने इस अभिशाप को काव्य की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तियों में ढालकर एक अमर कृति से मलयाळम-साहित्य को गौरवान्वित किया।

'दंडकारण्यम्' उनका एक प्रसिद्ध खंड-काव्य है। महाकाव्यों में 'चित्रयोगम्' का स्थान महत्वपूर्ण है। 'गणपति' 'विकासलतिका', 'बंधनस्थानाय अनिरुद्धन्' (दे०) 'एक पत्र अथवा रुक्म का पश्चात्ताप', 'शिष्य और पुत्र', 'मग्दलन् मरियम्' (मगदल की मरियम), कोच्चु सीता', 'साहित्य मंजरी' (दे०) (नौ भाग) पिता और पुत्री (अच्छनुम् मकळुम) (दे०) आदि उत्कृष्ट कृतियों का योग देकर इन्होंने मलयाळम-साहित्य और भाषा की अभिव्यंजना-शक्ति की श्रीवृद्धि की। इन ग्रंथों के अतिरिक्त 'भारत-मंजरी', 'उन्मत्तराघव', 'रामायण (दे०) 'मार्कंडेय पुराण', 'अभिषेक नाटक', 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' (दे०) आदि का रूपांतर भी कवि ने मलयाळम में किया है। सतत प्रयत्न के फलस्वरूप ये ऋग्वेद (दे० संहिता) का भी सुंदर अनुवाद करने में सफल हुए। इस पर इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। केरली कथकलि-साहित्य को देश-देशांतर में प्रचलित करने में कवि का प्रयत्न स्तुत्य रहा है। वळ्ळत्तोळ् के समान सर्वतोमुखी प्रतिभा-संपन्न स्रष्टा और भारतमाता के सच्चे पुत्र बहुत कम हुए हैं।

वल्लभ मेवाड़ो *(गु० ले०)* [समय—1700 ई० के आसपास]

ये प्रसिद्ध देवी-भक्त थे और अहमदाबाद के निवासी थे। इन्होंने गुजराती-साहित्य को अपनी अनेक 'गरबा' रचनाओं से समृद्ध किया है। इनके लिखे 'गरबे' बड़े लोकप्रिय हुए। इनके गरबों में 'आनंद नो गरबो', 'महाकाली नो गरबो', 'आरासुर नो गरबो', 'शणगार नो गरबो', 'कलिकाल नो गरबो', 'कजोडां नो गरबो', 'व्रज वियोग नो गरबो', 'धनुषधारी नो गरबो', 'सत्यभामा ना रुसणा नो गरबो' आदि उल्लेखनीय हैं। ('गरबा' शब्द 'गर्भदीप' से व्युत्पन्न माना जाता है।) यह गुजरात का एक विशेष लोक-नृत्य है, जिसमें बीच में घड़े के अंदर दीप रखकर चारों तरफ घूम-घूम कर नृत्य व गान किया जाता है।

इन गरबों के विषय धार्मिक, पौराणिक व सामाजिक हुआ करते हैं। 'आनंद नो गरबो' में बहुचराजी (शक्ति का एक रूप) की स्तुति की गई है। 'आरासुर नो गरबो' में अंबाजी (आबू पहाड़ पर जिनका स्थान है) की स्तुति की गई है। 'महाकाली नो गरबो' में पावागढ़ के राजपूत राजा के दुर्व्यवहार की कथा अंकित है। 'कलिकाल नो गरबो' में कलियुग के प्रभाव का वर्णन है। 'कजोडां नो गरबो' में अनमेल विवाह की समस्या निरूपित है। 'शणगार नो गरबो' उनकी श्रेष्ठ रचना है जिसमें माता जी (शक्ति) के सर्वांग की शोभा, आभूषण, वस्त्र-

परिधान आदि का विस्तृत व सूक्ष्म निरूपण है।

गुजराती गरबा साहित्य मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है। एक देवीभक्त व समाज-सुधारक के रूप मे भी ये अपना विशिष्ट स्थान रखते है।

वल्लभरायडु, विनुकोंड *(तं०लें०)* [समय—अनुमानत 1380-1430 ई०]

कवि सार्वभौम श्रीनाथुडु (दे०) के मित्र होने के नाते और 'क्रीडाभिराममु' (दे०) नामक प्रसिद्ध काव्य के प्रणेता माने जाने के कारण विनुकोंड वल्लभरायडु का नाम तेलुगु-साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है। कुछ लोगो का विचार है कि 'क्रीडाभिराममु' की रचना श्रीनाथुडु ने ही करके उसे अपने मित्र वल्लभरायडु के नाम से प्रसिद्ध कर दिया था। काव्य की रचना-शैली से भी इसी बात की पुष्टि हो जाती है। फिर भी वल्लभरायडु का इस काव्य से सबध बताया जाता है। हो सकता है कि इस काव्य की रचना मे वल्लभरायडु को श्रीनाथुडु का सहयोग प्रचुर मात्रा मे मिल गया हो। ये विनुकोंड के निवासी बताये जाते हैं और चौदहवी शती के अतिम चरण या पद्रहवी शती के आरभ मे विद्यमान रहे होगे।

वल्लभाख्यान *(गु० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवी शती]

कवि गोपालदास-रचित 'वल्लभाख्यान' वल्लभाचार्य की पद्य-जीवनी है। इसमे विट्ठलनाथ जी का चरित्र भी गाया गया है। 'भक्ति-पीयूष' इनकी अन्य रचना है। वल्लभाख्यान मे गेय राग-रागिनियो का प्रयोग किया गया है। मुख्य राग है—केदारो, रामकली, धनाश्री, बिलावल, भूप, कल्याण, आदि।

ये कृष्णोपासक कवि थे और इनका 'वल्लभाख्यान' पुष्टिमार्गियो मे समादृत रचना है।

वल्लभाचार्य *(स० लें०)* [समय—1481-1533 ई०]

वल्लभाचार्य का जन्म दक्षिण भारत के कमकर मल्ह ग्राम के एक तेलुगु ब्राह्मण-परिवार म हुआ था। इनके पिता का नाम लक्ष्मण भट्ट तथा माता का नाम जल्लमगरु था। दक्षिण मे विद्यानगर के राजा के दरबार मे सगुण ब्रह्म-सबधी विवाद सुनकर वल्लभाचार्य भागवत (दे०) पुराण और शालग्राम को लेकर वहाँ गए तथा सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन करके इन्होने विजय प्राप्त की। इन्होने बनारस के देवनभट्ट की पुत्री से विवाह किया। किंतु कुछ दिनो बाद ये सन्यासी हो गए। 1533 ई० मे ये परलोकवासी हो गए थे। कहते है, वल्लभाचार्य के 84 प्रमुख शिष्य थे।

'अणुभाष्य', 'भागवतपुराण' (द० भागवत) की टीका 'सुबोधिनी', 'तत्त्वदीप' की 'प्रकाश टीका' तथा 'पुष्टिप्रवाह-मर्यादाभेद' वल्लभाचार्य की प्रमुख कृतियाँ हैं।

वल्लभाचार्य का दार्शनिक सिद्धात 'शुद्धाद्वैत-वाद' है। 'शुद्धाद्वैतवाद' के अनुसार ब्रह्मगाथा से अलिप्त है। इसीलिए इस सिद्धात का नाम 'शुद्धाद्वैतवाद' पडा है। वल्लभ दर्शन के अनुसार ब्रह्म निर्गुण तथा सगुण दोनो है। शुद्ध अद्वैत तत्त्व के रूप मे ब्रह्म निर्गुण है और वही अनत ऐश्वर्य-गुणो से युक्त होने के कारण सगुण है। निर्गुण एव सगुण ब्रह्म का प्रतिपादन आचार्य ने अहिकुडल दृष्टात के आधार पर किया है। वल्लभ दर्शन के अनुसार ब्रह्म एव जगत् मे भेद है। जीव अणु है तथा ईश्वर का अश है। वैसे, जीवो के शुद्ध, ससारी तथा मुक्त ये तीन भेद हैं। वल्लभाचार्य भक्ति को मुक्ति का साधन मानते है। इनका भक्तिमार्ग 'पुष्टिमार्ग' के नाम से प्रसिद्ध है। पुष्टि का अर्थ है—भगवान् का अनुग्रह (पोषण तदनुग्रह, श्रीमद्भागवत 2।10) इस प्रकार भगवदनुग्रह ही भक्ति का प्रधान कारण है।

ब्रह्म एव जगत् म अभेद मानकर इस वैष्णव आचार्य ने जगत् की सत्यता का प्रतिपादन किया है। वल्लभाचार्य का दर्शन जीव, जगत् एवं ब्रह्म की दृष्टि से एक समन्वयात्मक दर्शन है।

वळ्ळलार *(त० लें०)* [जन्म—1823 ई०, मृत्यु—1884 ई०]

तमिल समाज मे वळ्ळलार नाम मे विख्यात रामलिंगस्वामी एक महान सत और कवि थे। इनका जन्म दक्षिणी आर्काट मे स्थित मरुदूर मे हुआ था। अल्पायु मे ही इन्होने विविध शास्त्रो का अध्ययन कर तत्त्वज्ञान का उपदेश देना आरभ कर दिया था। इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं—'तिरुअरुट्पा, जिवनेश वेण्बा', 'महादेवमालै', 'इगिदमालै' आदि। ये अरुळ (दया) और अहिंसा को

मनुष्य का सर्वोपरि धर्म मानते थे। इनकी दयालुता को देखते हुए जनता ने इन्हें वळ्ळलार (दयालु) कहना आरंभ कर दिया था। वळ्ळलार प्रभु को अरुट्पेरुंजोति—तनिप्पेरुंकरुणै अर्थात् विश्वप्रेम की महान ज्योति, विश्वकरुणा का परम रूप कहते थे। इन्होंने शिव और सुब्रह्मण्य के भक्त के रूप मे जीवनारंभ किया था। कालांतर में इन मतों को त्याग कर इन्होंने 'समरस-शुद्ध-सन्मार्गम्' नामक नवीन पंथ का प्रवर्त्तन किया। इसमें इन्होंने 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना पर बल दिया है। 'मनुमुरैकंड वाचगम्' और 'जीवकारुण्य ओळुक्कम्' इनकी प्रसिद्ध गद्य-कृतियाँ है। प्रथम मे 'पेरिय पुराणम्' (दे०) के एक प्रसंग के आधार पर चोल राजा मनुनीति का जीवन-वृत्त दिया गया है। द्वितीय में अहिंसा और समरस सन्मार्गनम् के सिद्धांतों का विवेचन है। ये दोनों कृतियाँ संक्षिप्तता और शैली की सरलता एवं स्पष्टता के लिए प्रसिद्ध है। वळ्ळलार के भक्तिमय पद—विशेषकर तिरुअरुट्पा मे संगृहीत पद—तमिल प्रांत में अत्यंत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने अपने पदों मे सरस-सरल शैली में अपने भावों की निश्छल अभिव्यक्ति की है। वळ्ळलार प्रथम तमिल कवि हैं जिन्होंने अपनी काव्य-कृतियों मे ऐसी सरल शैली का प्रयोग किया जो कि लोगों की बोलचाल की भाषा के अति निकट थी। भाषा की सरलता-विषयक इस क्रांति का चरम विकास भारती (दे०) के गीतों में दीख पड़ता है। रामलिंगस्वामी को तमिल के संत कवियों में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

वल्लिक्कण्णन *(त० ले०)* [जन्म—1920 ई०]

मूल नाम रा० सु० कृष्णस्वामी। तमिलनाडु के तिरुनेलवेली जिले के राजवल्लिपुरम नामक स्थान में जन्म। विविध रचनाएँ—'मुत्तुक्कुळिप्पु' (निबंध); 'वसंदम मलंदेदु', 'शकुतला', 'विडि वेळ्ळि', 'अन्नक्किळि' (उपन्यास); 'अणिशिगम' (कहानी) आदि। इन्होंने टालस्टाय तथा गोर्की की कहानियों एवं निबंधों को तमिल मे अनूदित किया है तथा अनेक साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादक रहे है।

वल्लिक्कण्णन तमिल के उन गिने-चुने साहित्यकारों मे हैं जिन्होने प्रेम-संबंधी एवं भावनात्मक विषयों को अपनी रचनाओं का आधार नही बनाया। इनकी रचनाओं मे एक प्रकार की रूक्षता एवं नीरसता है। उनमें उत्तेजक विचार एवं गंभीरता पर्याप्त मात्रा में है। कहानी एवं उपन्यासों में विषयवस्तु के प्रतिपादन मे तथा पात्रों के चरित्र-चित्रण में निजी स्वतंत्र शैली का प्रयोग किया है। इनके चरित्र प्रायः दार्शनिक के रूप में दीख पड़ते हैं। चरित्रों एवं घटनाओं को दार्शनिक रूप दिये जाने के कारण इनके उपन्यास गद्यवत् नीरस लगते हैं। इसे इनकी रचना का दोष न कहकर इनका वैयक्तिक गुण कहना अधिक उपयुक्त होगा। वल्लिक्कण्णन अपनी चरित्र-प्रधान कहानियों के लिए तमिल-साहित्य मे विख्यात हैं।

वळ्ळियप्पा, अल *(त० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

तमिलनाडु के तिरुच्चिरापळ्ळि के रायवरम नामक स्थान में जन्म। तमिल के बाल-साहित्यकारों मे अग्रगण्य। 1950 ई० में बाल-साहित्यकारों की एक सभा की स्थापना की। तमिल मे बाल-साहित्य का प्रकाशन करने वाली नाना संस्थाओं से संबद्ध। पूंच्चोलै नामक बाल पत्रिका का संपादन भी किया है।

वळ्ळियप्पा मूलतः कवि हैं। इनकी काव्य-कृतियाँ तमिलनाडु सरकार और केंद्रीय सरकार द्वारा पुरस्कृत हुई हैं। इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं—'मलरुम उळ्ळम' (2 भाग), 'पाट्टिले गांधी कदै', 'कदैप्पाडलहळ्' (कथाकाव्य—2 भाग), 'वेडिक्कै पाडलहळ्' (हास्य-कविताएँ), 'चिन्नं शिरु पाडलहळ्', 'पाप्पावुक्कुप्पाट्टु' आदि। इन्होंने ईसाब के कथा-काव्यों का तमिल मे अनुवाद किया है। वळ्ळियप्पा ने भिन्न-भिन्न आयु वाले बच्चों की रुचि एवं बुद्धि का ध्यान रखते हुए कविताओं की रचना की है। इन्होंने कुछ कहानियों एवं उपन्यासो की भी रचना की है, जैसे—'मणिक्कुमणि' (उपन्यास); 'एंगळ् पाट्टि', 'वेट्टै नाय', 'निमिष कदैहळ्' (कहानियाँ), 'कदै शोन्नवर कदै' (3 भाग), 'पेरियोर बालविले' (2 भाग), पिळ्ळै परुवत्तिल', 'चिन्नं शिरुवयदिल' आदि इनके प्रसिद्ध निबंध-संग्रह है जिनमें इन्होने महापुरुषों के जीवन से संबंधित प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया है। तमिल साहित्य-जगत् मे वळ्ळियप्पा 'कुलंदैक्कविज्ञर' (बाल-कवि) के रूप मे विख्यात हैं। इनकी कविताएँ बाल-जगत मे अत्यंत लोकप्रिय है।

वसंत, तीर्थ बेढ़ोमल *(सि० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

इनका जन्म-स्थान खैरपुर मीरस (सिंध) है।

व्यावहारिक जीवन की अनुभूतियाँ, विभिन्न देशो का भ्रमण और भिन्न-भिन्न भाषाओ के अध्ययन इनकी ज्ञान-प्राप्ति के मुख्य साधन रहे है। इनकी ज्ञान गरिमा और विचारो की गभीरता का प्रतिबिंब इनकी रचनाओ मे स्पष्टत दिखाई देता है। आधुनिक सिंधी के गद्य लेखको मे इनका प्रमुख स्थान है। इन्होने गद्य की विभिन्न विधाओ मे रचनाएँ की है। परतु इन्हे विशेष ख्याति सफल निबधकार और आलोचक के रूप मे ही प्राप्त हुई है। इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'चिणिगू' (निबध), 'जवाहर जीवनी' (जीवन-चरित्र), 'कँवर' (जीवन-चरित्र) (दे०), 'साहित्य सार', 'वसत वर्खा', 'कल्चर प्रगति', 'जीवन जोति' (सभी निबध है)। 'कँवर' पुस्तक मे इन्होने सिंध के प्रसिद्ध भक्त सत कँवर का जीवन-चरित्र बहुत सुदर ढग से लिखा है, जिस पर इन्हे साहित्य अकादमी से 1959 ई० मे पाँच हजार रुपयो का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। सिंधी-गद्य के विकास म इनका योगदान अविस्मरणीय है।

वसतराव वेंकटराव *(ते० ले०)*

इन्होने मुख्य रूप से आधुनिक विज्ञान-सबधी रचनाएँ की है। आध्र म आधुनिक विज्ञान को सुबोध तथा लोकप्रिय बनाने के लिए इन्होने सरल तथा रोचक पद्धति का अनुसरण करके रचनाएँ की हैं। विज्ञान-सबधी रचनाओ के अतिरिक्त इन्होने कई कविताएँ भी लिखी हैं।

वसतविलास *(गु० कृ०)*

यह प्राचीन गुजराती भाषा का एक सुदर ऋतु-काव्य और शृगारकाव्य है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। इसमे मध्यकालीन 'फागुकाव्य' के सभी लक्षण विद्यमान है। केवल जैन फागुओ के अत का उपदेश' इसम नही है। इस जैनेतर फागु-काव्य की यह विशेपता मानी जाती है कि इसके नायक-नायिका देवी-देवता नही हैं, लौकिक जन हैं, जिनका नामोल्लेख कवि ने नही किया है। उनके प्रसन्न, मुक्त, वसतविहार का चित्रण कवि ने अलकृत भाषा म उल्लासपूर्वक किया है। आम्र-मजरी, मलय-समीर, अलिगुजन, कोकिल गान, हरित लता-कुज, पुष्पावली आदि के साथ वसत ऋतु की श्री और समृद्धि का जो हृदयहारी वर्णन 'वसतविलास' मे पाया जाता है वह वास्तव मे अद्भुत है। इसी प्रकृति-वर्णन के कारण यह ग्रथ 'ऋतु-काव्य' कहा जाता है। वसतागमन से रसिको और प्रणयाकाक्षिणी ललनाओ के मन प्रदेश पर जो मादकता छा जाती है, सयोग-वियोग के जो शृगारी भाव उभरते-डूबते हैं और मदनदेव की लीलाएँ कामाहतो को जो पीडा देती है, उस सबका आलकारिक वर्णन इस कृति मे हुआ है। शृगार के सागोपाग निरूपण के कारण 'वसतविलास' उत्तम शृगार-प्रधान फागुकाव्य है।

इसकी भाषा मधुर और भावप्रवण है। पदावली कोमल कात है। 'रग सागर नेमिफागु' की भाँति इस फागु म सस्कृत और प्राकृत श्लोको का भी प्रयोग हुआ है। 'वसतविलास' का हृदयराग, पदलालित्य, सब कुछ मनोहर है।

वसतसेना *(स० पा०)*

'वसतसेना' मूलत भास (दे०) की कृति 'चारुदत्त' (दे०) की प्रधान नायिका है। 'मृच्छकटिक' (दे०) मे वह और भी निखर कर आई है।

वसतसेना उज्जयिनी की एक नवयौवना गणिका है जो अपने व्यवसाय के प्रतिकूल एक ऐसे ब्राह्मण युवा से प्रेम करती है जो पहले सपन्न था पर अब धनहीन हो चुका है, परतु फिर भी मानवीय गुणो से ओतप्रोत है। इस कारण वह अनेक राजकीय पुरुषो के प्रणय प्रस्ताव को ठुकरा देती है। परिणामत उसे राजकीय श्याल शकार (दे०) के कोप का भाजन बनना पडता है। लेकिन अपने प्रणय के प्रति उसमे एक विलक्षण निष्ठा है जो उसका मार्ग-दर्शन करती है और अत म वह उस पाकर ही रहती है।

वसतसेना स्त्री-सुलभ सभी क्षुद्रताओ स बहुत ऊपर उठी हुई महिला है जिसे अपन कृत्याकृत्य के सत् या असत् होन का सम्यक् विवक है। वह चारुदत्त की परवशताओ स भली भाँति परिचित है, इसीलिए यथावसर वह अभिसार भी करती है। उसे चारुदत्त के पुत्र म अत्यधिक प्यार तथा उसकी पत्नी म बेहद सहानुभूति है। वह अपनी सीमाओ को भी पहचानती है तथा चारुदत्त के जीवन मे ही केवल आने को आतुर है, घर म दखल न देना उचित नही समझती। पर विधि की विडबना क्या किसी के टलने की बात है। वह चारुदत्त मे मिलने एक उद्यान मे जाती हुई सवारी के परिवर्तन के कारण उसी दुष्ट शकार के हाथ लग जाती है जो इसको पाने के लिए

सब कुछ करने को तैयार है पर जिससे वह घृणा करती है। उसके लिए प्राणों से हाथ धोने की नौबत आ जाती है। पर एक बौद्ध-भिक्षु के द्वारा प्राण-रक्षा होने पर जब वह अपने प्रियतम चारुदत्त से मिलने के लिए उतावली होकर चलती है तो सुनती है कि उसे तो वसंतसेना की हत्या करने के अभियोग मे फाँसी की सज़ा हो गई है और वह वध्य-शिला पर भी पहुँच चुका है। जिस किसी प्रकार रोते-रोते वहाँ पहुँचती है तो पाती है कि जिस सर्वलिक को उसने अपनी दासी मदनिका को उससे प्रेम करने के कारण दे दिया था उसी के मित्र गपेपालक ने वर्तमान राजा का निग्रह कर शासन अपने हाथ में ले लिया है और चारुदत्त को छोड़कर वह शकार पकड़ लिया गया है जिसने उसकी हत्या का प्रयास किया था। अंत में सभी उसे स्वीकार कर लेते हैं और वह चारुदत्त की द्वितीय पत्नी हो जाती है।

वसंतसेना एक उच्च कोटि की प्रणयिनी नायिका है जो अपने प्रणय पर निष्ठापूर्वक सर्वस्व न्योछावर कर देती है।

वसुंधरा नी बीजी वातो *(गु० ले०)* [प्रकाशन-वर्ष—1940]

यह गुलाबदास ब्रोकर का कहानी-संग्रह है। गुजराती मे इन कहानियों के द्वारा प्रथम बार 'नीलीनु भूत' जैसी मनोवैज्ञानिक कहानियाँ सामने आई। विषय और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से कहानी-साहित्य को इन कहानियो के द्वारा एक नया मोड़ दिया गया है। इन कहानियों के द्वारा गुजराती कहानीकार के रूप मे ब्रोकर को निश्चित प्रतिष्ठा मिली।

वसुंधरा, मल्लादि *(ते० ले०)* [जन्म—1930 ई० के लगभग]

ये विजयवाड़ा की रहने वाली हैं और ऐतिहासिक उपन्यासों की प्रसिद्ध लेखिका है। 'तंजावूरपतन' तथा 'सप्तपर्णी' इनके प्रसिद्ध पुरस्कृत उपन्यास है। 'तंजावूर-पतन' दक्षिण की तंजोर रियासत के राजा विजयराघव-नायक के शासन-काल से संबद्ध है। दूसरा उपन्यास 'सप्तपर्णी' ओरुगल्लु के काकतीय नरेशों के शासन-काल से संबद्ध है। इनका 'रामप्पगुडि' नामक उपन्यास वरंगल ज़िले के प्रसिद्ध रामप्प मंदिर से संबद्ध है जिसमें उक्त मंदिर के उच्चकोटि के शिल्प-सौंदर्य का रोचक आलेख है। तेलुगु में ऐतिहासिक उपन्यास-लेखिकाओं में वसुंधरा का स्थान सर्वोपरि है।

वसुचरित्रमुः *(ते० कृ०)*

संभवतः सोलहवीं शती की यह रचना तेलुगु के पाँच सर्वोत्तम प्रबंधकाव्यों में से एक है। इसके प्रणेता रामराजभूषणुडु (दे०) कवि थे। यह छह आश्वासों मे निबद्ध अत्यंत प्रौढ़ प्रबंध-काव्य है। काव्य के आरंभिक छंदों से स्पष्ट है कि रामराजभूषणुडु न केवल कुशल काव्यशिल्पि थे अपितु 'संगीतकला-रहस्य-निधि' भी थे। इनके इष्ट देव श्रीरामचंद्र थे और ये अपनी काव्य-शक्ति का सारा श्रेय हनुमानजी को समर्पित करते थे।

'वसुचरित्रमु' की मूलकथा 'महाभारत' (दे०) में मिलती है। चेदि देश पर राजा वसु राज करता था। एक बार विरक्त होकर वह तप करने लगा। उसकी तपस्या से संतुष्ट होकर इंद्र ने राजा को विमान आदि पुरस्कार में दिये जिस पर बैठकर वह उपरिलोकों का परिभ्रमण किया करता था। अतः उसका नाम उपरिचरवसु पड़ा। उसके राज्य में शुक्तिमती नामक नदी बहती थी। उसके प्रवाह-मार्ग में कोलाहल नामक पर्वत ने गतिरोध उत्पन्न किया। राजा ने उस पहाड़ को अपनी चरणांगुलि के नख से हटाया। शुक्तिमती ने प्रत्युपकार की भावना से राजा को वसुपद नामक पुत्र तथा गिरिका नामक कन्या भेंट में दी। राजा ने गिरिका से विवाह किया तथा वसुपद को अपना सेनानी बनाया। जब राजा दूसरी बार शिकार पर गया तो गिरिका-विरह में उसे रेतस्खलन हुआ था। उस रेत को उसने एक श्येन के द्वारा गिरिका के पास भेजा। मार्ग में एक दूसरा श्येन उससे लड़ा। तब रेत की संपुटि नदी में गिरी। उसे एक मछली ने निगल लिया। परिणाम में मत्स्यगंधा का जन्म हुआ जिसने कालांतर मे महर्षि व्यास को जन्म दिया।

इस कथा में से राम राजभूषणुडु ने केवल गिरिका-मंगल तक की कथा ली और लगभग 800 छंदों मे चंपूशैली में अपने प्रबंध का निर्माण किया।

रामराजभूषणुडु की काव्यशैली निरुपम है। यदि प्रतिभा, व्युत्पत्ति तथा अभ्यास के सम्यक् परिपाक का स्वाद लेना हो तो तेलुगु का 'वसुचरित्रमु' पढ़ना चाहिए। तेलुगु साहित्य के इतिहास में रायलु-युग स्वर्णयुग माना जाता है। इस युग के अंत में प्रज्वलित रत्नदीपिका है

'वसुचरित्रमु' काव्य 'वसुचरित्रमु' म सगीतकला के अनेक रहस्य काव्यात्मक ढग से निक्षिप्त हैं।

कालातर मे इसकी देखादेखी अनेक काव्यो का निर्माण हुआ और इन्हे 'पिल्ल वसुचरित्रमु' नाम दिया गया। 'पिल्ल वसुचरित्रमु' का अर्थ है 'मिनि वसुचरित्र'।

वसुदेव हिंडी *(प्रा० कृ०)*

यह महाराष्ट्री प्राकृत का गद्य-ग्रथ है जिसमे बीच-बीच मे गद्यो का समावेश है। इसमे वसुदेव के हिडन (*भ्रमण*) के प्रसग म *वृष्णिवश और कौरव पाडवो* की कथा के साथ अनेक अवातर कथाएँ कही गई हैं। *100 लभको मे विभक्त इस विशाल ग्रथ के दो भाग हैं।* प्रथम खड की रचना सघदास गणि ने ईसा की पाँचवी शती मे की थी। इसमे वसुदेव भ्रमण आत्मकथा रूप है। दूसरे खड की रचना धर्मसेन गणि ने की थी। इसमे नरवाहनदत्त की *शृगार प्रधान कथा है।* *कथा-भाग* के साथ जैन धर्म-तत्त्व यथेष्ट मात्रा मे इसमे आ गय है।

वसुधा *(गु० कृ०)*

गुजरात के अर्वाचीन कवियो मे सुदरम् (दे०) (त्रिभुवनदास लुहार) का स्थान शीर्षस्थ कवियो मे हैं। 'काव्य मगला' (1933) के पश्चात् सुदरम् का यह कविता-सग्रह 'वसुधा *1949* ई० मे प्रकाशित हुआ। इसम कवि की रचना शक्ति की प्रौढता के दर्शन होते हैं। इसकी *प्रणय-कविताएँ ऊँचे स्तर की और गभीर है।* सयोग और वियोग-शृगार के जो मधुर चित्र चित्रित है *उनम प्रेम की उत्कटता, हृदय की अकुलाहट, विरह* और मिलन की अनुभूतियो की तीव्रता पाई जाती है। 'त रम्य रात्र', 'कोकिल अने डाळो', 'जावा पूर्वे', 'साजन समे', 'सळग सळिया परे' इत्यादि रचनाएँ इस सदर्भ म *विशेष उल्लेखनीय है।* 'सळग सळिया परे' म तो उत्तम कविता के सभी गुण विद्यमान है। इसम सुदरम् की कला-प्रकर्ष दृष्टिगोचर होता है। 'वसुधा' क प्रणय-काव्यो मे सयम, स्वस्थता, उदात्तता आदि गुण पाय जाते है। शैली शिल्प की दृष्टि से भी वे उत्कृष्ट हैं।

इस सकलन का दूसरा भाग यथार्थवादी कविताओ का है। 'फूटपाथ अ तडाक', 'पूनमा याभ-लाओ', 'ईटाळा', 'धनयुगनो म्यिनप्रज', '13-7नी लोकल' आदि कविताएँ मानव-जीवन की विवशता और विरूपता से सबद्ध है। इनमे दोनो और दलितो के प्रति सहानुभूति, सामाजिक अन्याय के प्रति आक्रोश और समता-सस्थापन की आकाक्षा प्रकट हुई है। '13 7नी लोकल' मे वर्ग-भेद का वेदनाजन्य निरूपण विशेष मर्मस्पर्शी है। 'द्रौपदी' और 'कर्ण' *महाभारत के सुप्रसिद्ध उपाख्यानो* पर आधृत कविताएँ है। इनमे कवि ने पुनरुत्थान की भावना और आधुनिक *जीवन को आदर्शोन्मुख बनाने की* कल्पना शब्दबद्ध की है। 'वसुधा' की कुछ कविताएँ *भगवद्भक्ति से भी सबधित है। सार-रूप मे यह कहा* जा सकता है कि 'वसुधा' कथ्य और शिल्प दोनो दृष्टियो से सफल कृति है।

वसुबधु *(स० ले०)* [स्थिति काल—400 ई०]

वसवधु असग के छोटे भाई थे। इन्होने अयोध्या के किसी सघाराम मे महायान' (दे०) धर्म स्वीकार *किया था। वसुबधु का प्रधान ग्रथ वैभाषिक-नय पर है,* किंतु 'महायान'-धर्म स्वीकार करने के पश्चात् इन्होने *विज्ञानवाद पर कई ग्रथ लिखे थे।* वसुबधु के प्रमुख ग्रथो म विंशतिका' तथा 'त्रिशिका' है। 'विंशतिका' पर वसुबधु ने *ही भाष्य भी लिखा है।* 'विंशतिका' को सिल्वाँ लेवी ने 1925 ई० म प्रकाशित *किया था।* पुसें ने *1912* ई० मे फ्रेंच भाषा मे इसका अनुवाद प्रकाशित किया था।

विज्ञानवादी के रूप मे वसुबधु बाह्यार्थ का अपलाप करते है। समस्त बाह्य अर्थो का मूल वसुबधु की दृष्टि म विज्ञप्ति मात्र है। वसुबधु का विचार है कि असद् रूप बाह्यार्थो का दर्शन उसी प्रकार सभव है जिस *प्रकार कि तिमिर का रोगी असत् रूप केशचद्रादि का* दर्शन करता है। अत बाह्य अर्थो की सत्ता अवास्तविक है। *अपने दृष्टिकोण के समर्थन म वसुबधु का तर्क है कि* अर्थ क अभाव म भी स्वाप्निक वस्तुओ के विषय मे देशादि नियम-सिद्ध है। *स्वप्न म अर्थ के बिना ही* किसी देश विशेष म आराम, स्त्री-पुरुषादि दर्शन होते हैं। इसम यह सिद्ध हो जाता है कि अर्थ क अभाव मे भी देश-काल का नियम सम्भाव्य होता है। आत्मा के सबध म वसुबधु का कथन है कि *आत्मा का अस्तित्व नहीं है।* आत्मा तो केवल सद्हेतुक धर्म है। वसुबधु नागार्जुन (दे०) क धर्म नैरात्म्यवाद मे विज्ञानवाद का प्रतिपादन करते हैं। वसुबधु न विज्ञानवाद का प्रतिपादन बडे मौलिक एव वैज्ञानिक ढग म किया है।

वस्तु (कथावस्तु) *(पारि०)*

'वस्तु' भारतीय नाट्यशास्त्र में निरूपित रूपक (दे०) के तीन अंततंत्वों में से प्रथम है। अन्य दो तत्व हैं नेता (दे०) और रस (दे०) : 'वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः'। 'वस्तु' वस्तुतः नाटक का मेरुदंड है। प्रकृत्या यह तीन प्रकार की — प्रख्यात, उत्पाद्य (कल्पित) और मिश्र तथा संरचनात्मक दृष्टि से आधिकारिक और प्रासंगिक दो प्रकार की होती है। आचार्यों ने नाटक में फल को मूल उद्दिष्ट मानकर उसके आधार पर 'वस्तु' की अंतःरचना के कई अंतर्वर्ती बिंदु स्थिर किए हैं। फलप्राप्ति के उद्देश्य से किए जाने वाले कार्यों की शृंखला को पाँच अवस्थाओं में विभाजित किया गया है : आरंभ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम (दे०) कार्यावस्थाएँ। फल की सिद्धि के हेतुओं को पाँच अर्थप्रकृतियों में विभाजित किया गया है : बीज, बिंदु, पताका, प्रकरी और कार्य (दे० अर्थप्रकृतियाँ)। नाटक के कथाविकास की आवश्यकताओं के अनुरूप इन कार्यावस्थाओं और अर्थप्रकृतियों के योजक तत्त्वों को 'संधि' का अभिधान दिया गया है। ये संधियाँ इस प्रकार हैं : मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण (दे० नाट्य-संधियाँ)। ये क्रमशः आरंभ और बीज, प्रयत्न और बिंदु, प्राप्त्याशा और पताका-नियताप्ति और प्रकरी तथा फलागम और कार्य को परस्पर संपृक्त करती हैं।

रूपक की कथावस्तु को उसके प्रकारों के अनुरूप विभिन्न अंकों में विभाजित किया गया है। दो प्रमुख रूपकों 'नाटक' और 'प्रकरण' में पाँच से दस तक अंक होते हैं। 'भाण' (दे०), 'प्रहसन' (दे०), 'वीथी', 'अंक' और 'व्यायोग' रूपकों में एक ही अंक होता है। 'समवकार' तीन अंकों का रूपक है। 'डिम' और 'ईहामृग' में चार अंक होते हैं। उपरूपकों के दस भेदों में एकमात्र उल्लेखनीय 'नाटिका' (दे०) में चार अंक होते हैं। कथा-स्रोतों की प्रकृति की दृष्टि से प्रख्यात कथानकों पर आधृत रूपक हैं—'नाटक', 'डिम', 'समवकार', 'व्यायोग' और 'अंक'। 'प्रकरण', 'भाण', 'प्रहसन' और 'वीथी' उत्पाद्य कथानकों पर रचित होते हैं। 'ईहामृग' रूपक और 'नाटिका' उपरूपक मिश्र कथानकों की नाट्य रचनाएँ हैं।

वस्तु-विषयक उपर्युक्त विवेचन अतिशास्त्रीय एवं अतियांत्रिक होने के कारण केवल इतिहास की वस्तु होकर रह गया है। आधुनिक नाटककारों की सर्जनात्मक प्रतिभा युग और विषय के अनुरूप नये-से-नये वस्तु-तंत्र का स्वतंत्र आविष्कार करने लगी है।

वस्तुक *(क० पारि०)*

कन्नड के आचार्यों ने काव्य के भेदों का उल्लेख करते हुए उसके 'वस्तुक' और 'वर्णक' भेद बताये हैं। यद्यपि ये दोनों शब्द संस्कृत के हैं तथापि संस्कृत के किसी आचार्य ने इन भेदों का उल्लेख नहीं किया है। साधारणतया प्रचलित परिभाषा के अनुसार 'वस्तुक' को 'मार्ग-काव्य' कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में संस्कृत का गद्य-पद्यात्मक चंपू शैली में लिखित काव्य 'वस्तुक' कहलाता है। प्राचीन कवियों ने जिन विशेष लक्षणों के अनुसार काव्य-रचना की थी, उनको मानते हुए लिखे गये काव्य 'वस्तुक'-काव्य का अभिधान पाते हैं।

वही जतो पाछल रयघोवा *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1965 ई०]

पिछले दशक के प्रतिष्ठित गुजराती कवि लाभशंकर (दे० ठाकर, लाभशंकर) की यह कृति उनकी परंपरागत तथा आधुनिक काव्य-प्रवृत्ति का अच्छा दिग्दर्शन कराती है।

संग्रह की 'चांदरणु', 'रवि', 'स्मृति', 'चक्रव्य' 'लीलो-लीलो डूंगर' प्रभृति सुंदर परंपराश्रित रचनाएँ हैं। शैशव के अनुभव का माधुर्य, कोमल-मधुर शब्दावली, छंदोसिद्धि तथा प्रतीकात्मकता इनकी विशेषताएँ हैं।

कृति के उत्तरार्ध में संगृहीत रचनाएँ लाभशंकर को आधुनिक कवि के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं। 'तडको-1' तथा 'तडको-2' तथा 'जन्माष्टमी' प्रभृति कविताएँ अनुभूति तथा पदावली दोनों दृष्टियों से परंपरा से दूर हटने का एक सचेष्ट प्रयत्न है।

वह्नि रंहर *(क० पा०)*

महाकवि कुवेंपु (दे०) की महाकाव्य कृति 'श्री रामायणदर्शनम्' (दे०) के गौण चरित्रों में 'वह्नि' तथा 'रहं' नामक दो वानरवीर अविस्मरणीय हैं। वे रणव्रती हैं। राम वानर-सेना के साथ सागर तीर पर आये हैं जहाँ वे सेनानी नील के साथ मंत्रणा कर रहे हैं। वहाँ दो सामान्य सैनिक आते और कहते हैं कि नील उनको

बुलाते हैं। दोनों आकर राम तथा अपने सेनानी को नमस्कार करते हैं। राम ने पूछा कि किसकी सेना के वीर हैं। दोनों में एक नाटा था, दूसरा लम्बा। राम का प्रश्न सुनकर नाटे ने लंबे का चेहरा देखा। लंबे ने यों उत्तर दिया, 'देव, हम कपिकुलोत्तम दधिमुख के वीर दल के हैं।" राम ने पूछा "तुम्हारा नाम ?" 'यह मेरा दोस्त रहु है, मुझे वह्नि कहते हैं।'' राम ने पूछा कि वे किस युद्ध में प्रवीण हैं ? तब वह्नि कहता है, 'यह मेरा मित्र मल्लयुद्ध में प्रवीण है। परसों यहाँ आते समय एक जंगली पशु के दोनों सींगों को इसने ऐसा उखाड़ा कि उसका कुंभस्थल ही फट गया।' इस तरह वह दूसरों के पराक्रम का वर्णन करने में पटु है। किंतु अपना वर्णन करने में लज्जित होता है। राम पूछते हैं कि उसका पराक्रम कैसा है। किंतु आजानुबाहु वह्नि अपने पराक्रम-वर्णन में हिचकिचाता है। रहु सरलहृदय है रूक्षजिह्व है। किंतु उसका उत्साह अदम्य है, वह कहता है—'प्रभु, गगन गमन में इसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता, यह महामायावी है, इच्छा रूपधारी है। यदि यह चट्टानों को उठाकर फेंके तो कोई भी दुर्ग चूर-चूर हो जायगा। खड्ग-कला में यह निस्सीम है। गदा-युद्ध में यह भैरव भयंकर है।"

तब वह्नि से नहीं रहा गया। उसने रहु को रोककर कहा, "राजेंद्र, इस उत्साही की बातों पर विश्वास न करो।" 'किंतु तुमको देखने पर लगता है कि उस ने जो कुछ कहा सो थोड़ा ही है, "राम ने कहा तब वह्नि सिर झुकाकर कहता है कि 'दधिमुख की सेना में वह सचमुच अलग है। ऐसे महान योद्धाओं को पाने वाला दधिमुख सचमुच धन्य है परस्पर स्नेह में ही नहीं, शौर्य में भी ये दोनों महान हैं।" राम पूछते हैं कि क्या वह्नि को सहधर्मिणी का संग प्राप्त है। वह कहता है कि वह तब था जब वह गाँव में था। तब राम दुःखी होकर कहते हैं कि उनके कारण उसे वियोग-दुःख सहना पड़ा। वे पूछते हैं कि उसका कोई बच्चा भी है। 'एक है किंतु वह छोटा है। इसलिए आपकी सेवा करने के सौभाग्य से वंचित रह गया।" तब राम ने कहा कि रण में मरण ध्रुव है। तब वह्नि ने कहा कि जिस धर्म के पीछे व मृत्यु का भी स्वागत कर रहे हैं वही धर्म लोक की रक्षा करता है। हम अपनी सेना सहित सुरक्षित लौटेंगे, पर यदि विधि की इच्छा दूसरी है तो मरण ही वरेण्य है। रावण ने सिर्फ एक सीता का हरण नहीं किया है, वरन् सतीत्व का ही अपहरण किया है। जब तक पुरुष जाति रहती है तब तक स्त्रीत्व की रक्षा करती है। रघुवर राम इन महान वीरों की वीरता, संस्कृति, सरलता आदि देख कर दंग रह जाते हैं।

इस प्रकार सेना के दो मामूली वीरों का परिचय देकर उनके गुणों द्वारा पुट्टप्प ने वानर-संस्कृति की महानता एवं उदात्तता पर प्रकाश डाला है। क्षणभर ही वे यहाँ हमारे सामने प्रकट होते हैं किंतु वे अपनी मधुर एवं चिरंतन स्मृति छोड़कर जाते हैं।

वासनो अंकुर *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1967 ई०]

यह धीरु बहन पटेल (दे०) लघु उपन्यास है। लखपति रमणीकलाल बड़े अनुशासन में विश्वास करता है और प्रत्येक व्यक्ति उसके आदेश के अनुसार व्यवहार करे—यह अपेक्षा करता है। उसकी लड़की का एक मध्यवित्त व्यक्ति से विवाह होता है और लड़की का केशव नाम का लड़का है। लड़की की मृत्यु के बाद रमणीकलाल केशव को अपने पास रखता है और उसे पिता से भी मिलने नहीं देता। रमणीकलाल केशव को अपनी इच्छानुसार पालना-पोलना चाहता है लेकिन केशव मन से नाना का विरोध करता है। इस प्रकार नयी पीढ़ी का पुरानी पीढ़ी के प्रति विद्रोह इस लघु उपन्यास का विषय है।

वाईकर भटजी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1898 ई०]

रामचंद्र विनायक टिकेकर उर्फ धनुर्धारी के इस सामाजिक उपन्यास का विषय है—उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध के महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार के रहन सहन, सामाजिक रीति रिवाज, पिता-पुत्र सास-बहू आदि के परस्पर संबंधों, विचारधारा आदि का चित्र प्रस्तुत करना। आत्मकथात्मक शैली में लिखे गये इस उपन्यास में वाई गाँव का एक ब्राह्मण आपबीती के माध्यम से उस समय के रीति रिवाज—आतिथ्य-सत्कार दान-दक्षिणा विवाह-संबंध निश्चित करने की पद्धति, गाँव के लोगों के परस्पर व्यवहार, दिखावे ढोंग, स्त्रियों के आभूषण प्रेम बाल विवाह, वृद्ध विवाह आदि पर प्रकाश डालता है। लेखक इस बात के लिए विशेष प्रयत्नशील है कि लोगों में अपने धर्म के प्रति निष्ठा हो अतः उसने ईसाई धर्म ग्रहण करने वाले नवयुवक का करुण प्रसंग देकर पाठकों में 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' के प्रति आस्था उत्पन्न की है। नयी पीढ़ी में धीरे-धीरे होने वाली जागृति का भी संकेत दिया गया है। बीच-बीच में सुख-दुःख,

ऋण, दाम्पत्य-जीवन आदि पर भी तात्विक विचार प्रकट किये गये हैं । भाषा साधारण है, संस्कृत एवं हिंदी कहावतों के प्रयोग ने शैली को प्रभावशाली बनाने में सहायता की है ।

वाक्य *(पारि०)*

ऐसा पद-समूह जो पूर्ण अर्थ का वाचक है वाक्य कहाता है : पदसमूहों वाक्यमर्थसमाप्तौ । (मंजूषा, नागेश भट्ट, पृष्ठ 1) । सार्थक पद-समूह में तीन क्षमताएँ अनिवार्य हैं, तभी वह वाक्य कहाता है, अन्यथा नहीं । ये हैं—आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति (सन्निधि) । परस्पर अन्विति को आकांक्षा कहते हैं । 'वह पुस्तक गृह' —यह पद-समूह तो है, पर साकांक्ष नहीं है । योग्यता बौद्धिक अथवा संभव संगति को कहते हैं । 'वह आग से सींचता है'—इस सार्थक पद-समूह में योग्यता का अभाव है । आसत्ति (सन्निधि) काल-व्यवधान के अभाव को कहते हैं । 'मैं······अपने······घर······गया' इस प्रकार प्रत्येक पद में काल का व्यवधान हो तो इसे भी वाक्य नहीं कहेंगे । निष्कर्षतः उस सार्थक पद-समूह को वाक्य कहते हैं जो आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति—इन तीन क्षमताओं से युक्त हो—वाक्यं स्याद् योग्यता कांक्षासत्ति पदोच्चयः । (सा० द० 2 य पारि०) ।

वाक्यपदीय *(ग्रं० कृ०)* [रचना-काल—लगभग 650 ई०]

बौद्ध-दर्शन के अनुयायी चीनी यात्री इत्सिंग का, जिसने भारत की यात्रा सातवीं शती में की थी, कथन है कि लगभग 40 वर्ष पहले भारतवर्ष में भर्तृहरि नाम के एक महान् वैयाकरण की मृत्यु हुई थी । मैक्स-मुलर का भी यही मत है ।

'वाक्यपदीय' शब्द ब्रह्मवाद का प्रतिपादक ग्रंथ है । 'वाक्यपदीय' का प्रमुख सिद्धांत शब्दाद्वयवाद है । किसी-किसी आचार्य का यह मत भी है कि शब्दाद्वयवाद का आधार ग्रहण करके ही मंडन मिश्र (दे०) ने 'ब्रह्म-सिद्धि' नामक ग्रंथ की रचना की है । शब्दब्रह्मवाद के अनुसार भर्तृहरि 'पश्यंती' वाक् को ही शब्दब्रह्म-रूप मानते थे । इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात होता है कि इस मत में 'पश्यंती' वाक् ही परा वाक् के रूप में व्यवहृत होती थी ।

यदि विचार कर देखा जाए तो यह कथन अनुचित न होगा कि शब्दब्रह्मवाद के आधार पर भर्तृहरि भी अद्वैतवादी ही हैं । जिस प्रकार शांकर (दे० शंकराचार्य) अद्वैत के अनुसार अविद्या के कारण जगत् की अनेकरूपता है, उसी शब्दब्रह्मवाद के अनुसार भी परा-वाक् ब्रह्म-रूप है और वही परावाक् अविद्या के कारण अनेकरूपता को प्राप्त होती है । इस प्रकार 'वाक्यपदीय' का दार्शनिक दृष्टिकोण भी अद्वैतवाद का ही पोषक है । निष्कर्ष-रूप में यह कहा जा सकता है कि 'वाक्यपदीय' व्याकरण-दर्शन का मूल ग्रंथ है । अतः कतिपय विद्वानों का यह विचार सर्वथा असंगत प्रतीत होता है कि भर्तृहरि बौद्ध थे ।

वाक्यविज्ञान *(हि० पारि०)*

भाषाविज्ञान की वह शाखा जिसमें वाक्यों का अध्ययन किया जाता है । परंपरागत भाषाशास्त्री वाक्य-विज्ञान में वाक्यों का अध्ययन, पदक्रम, अन्वय, लोप, रचना के आधार पर वाक्य-भेद—साधारण वाक्य, संयुक्त वाक्य, मिश्रित वाक्य, प्रधान वाक्य, उपवाक्य (संज्ञा उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य, क्रियाविशेषण उपवाक्य); अर्थ के आधार पर वाक्य भेद—सामान्य वाक्य, प्रश्नसूचक, आश्चर्यसूचक वाक्य—आदि आधारों पर करते रहे हैं । संरचनात्मक भाषाविज्ञान ने निकटतम अवयव (Immediate Constituent), अंतःकेंद्रिक (endocentric), बहिष्केंद्रिक (exocentric), आदि कुछ नये आधारों पर भी भाषा के वाक्यों तथा उनके खंडों का अध्ययन प्रारंभ किया है । इधर बंधिमविज्ञान (tagmemics), व्यवस्था-परक व्याकरण (Systematic Grammar), रूपांतरक व्युत्पादक व्याकरण (Transformational Generative Grammar) तथा कारकीय व्याकरण (Case Grammar) अपने-अपने नये ढंगों से वाक्य का अध्ययन कर रहे हैं ।

इनमें रूपांतरक व्युत्पादक पद्धति सबसे प्रमुख है जिसमें एक प्रकार के वाक्य का दूसरे प्रकार के वाक्य में परिवर्तन, कई वाक्यों से एक वाक्य तथा एक वाक्य से कई वाक्यों की रचना तथा विभिन्न घटकों से किसी भाषा के प्रयुक्त और संभाव्य वाक्यों की रचना के नियम निकालने पर बल दिया जाता है । वाक्य का अध्ययन वर्णनात्मक, ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक तीनों प्रकार का हो सकता है; साथ ही वह सैद्धांतिक भी हो सकता है और प्रायोगिक भी ।

वागीश्वरीना कर्णफूलो *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1963 ई०]

यह प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री मनुभाई राजाराम पचोली 'दर्शक' (द० दर्शक) का आलोचना संग्रह है। संग्रह म संकलित 'युद्ध अने शांति' (टालस्टाय), मीरा नी साधना', 'घरे बाहरे' (टैगोर—दे० ठाकुर), गुजराती के तीन महान उपन्यास', 'डेलफीनी देवदर्शिनी' (ग्रीक), 'आरण्य' (बँगला), 'डा० जिवागो' (रूसी) आदि म उनके सर्जक का चिंतक रूप देखा जा सकता है। 'दर्शक' म जो विश्वव्यापी रुचि रखने वाला सहृदय भावक है वह यहाँ रसिक, मर्मज्ञ आलोचक के रूप मे प्रकट हुआ है।

वाग्भटालकार *(स० कृ०)*

बारहवी शती के पूर्वार्ध मे वाग्भट प्रथम द्वारा रचित वाग्भटालकार' आकार म लघु होते हुए भी संस्कृत-साहित्यशास्त्र का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रथ है। पाँच परिच्छेदो के इस ग्रथ मे काव्योपयोगी विविध विषयो का संक्षेप म विवेचन किया गया है। प्रस्तुत ग्रथ म काव्य के प्रयोजन तथा काव्यहेतु—प्रतिभा, व्युत्पत्ति एव आभास काव्य-भेद, काव्य-गुण, अलकार-रीति तथा रस अर्थात् *काव्य के सभी आवश्यक अगो पर विचार किया गया है। अत यह केवल अलकार-ग्रथ नही अपितु काव्यशास्त्र का* एक पूर्ण प्रामाणिक ग्रथ है।

उक्त ग्रथ पर लिखी गई पाँच टीकाएँ प्रसिद्ध हैं क्षेमहसगणि-कृत टीका, जिन वर्धनसूरि-प्रणीत टीका, सिंहदेवगणि-प्रणीत टीका, अनतभट्टसुतगणेश-प्रणीत टीका, राजहसोपाध्याय-प्रणीत टीका। इन टीकाओं से वाग्भटालकार के *समसामयिक प्रचलन का स्वत बोध हो जाता* है।

'वाड्मय विमर्श' *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1963 ई०]

'वाड्मय विमर्श' रामप्रसाद बक्षी (दे०) के *साहित्य-तत्त्व की मीमांसा करने वाले लेखों का प्रथम* संग्रह है। इस संग्रह के सभी लेख तीन भागों मे बँटे हुए हैं। प्रथम विभाग मे काव्य-तत्त्व की चर्चा करने वाले 18 लेख, दूसरे और तीसरे विभागो मे क्रमश. रस और अलकार पर तथा फुटकर निबंध संगृहीत हैं जिनकी संख्या 9 और 17 है। इस प्रकार इसमे कुल 44 लेख संकलित हैं और इनकी व्याप्ति 419 पृष्ठो मे है। प्रथम विभाग मे 'काव्य के स्वरूप', 'काव्य मे अलकार और छद', 'आधुनिक काव्य और रससिद्धांत', 'काव्य का प्रयोजन' 'काव्य मे प्रतिभा', 'प्रतीक अर्थात् शब्दार्थ की चर्चा', 'कवि की निरकुशता' आदि विषयो पर विचार किया गया है। रस और अलकार वाले प्रकरण म 'काव्य-नाटक मे रसनिष्पत्ति, 'हास्य रस' 'अलकार' और काव्यालकार की विशिष्टता' आदि चर्चा के विषय रहे है। तीसरे विभाग मे संस्कृत एकाकी का स्वरूप, अभिनेता का मन, नाटक का मूल तत्त्व, नाट्य-प्रयोगो म लय-संवाद, नाटक मे परकीयकरण—तादात्म्यनिवारण, नाट्यकृति के मुख्य तत्त्व, नाटक मे सामाजिक तत्त्व, रस और नाट्य, लघु कहानी का स्वरूप आदि पर लेखक ने गभीरता से विचार किया है। बक्षी जी ने अपने इस ग्रथ मे स्वतंत्र भाव-सत्ता को प्रतिष्ठित करने का उपक्रम किया है काव्य-निर्माण म भाव-महत्वपूर्ण है, *उत्तम काव्य मे भी भाव की सत्ता रहती है,* वास्तविक कवित्व वही है जो गीतस्वर की अनुपस्थिति मे भी रमणीय व भाव-समर्पक बना रहे, काव्य मे भाव-व्यंजक काव्य-कोटि के अतिरिक्त भी अन्य कोटियाँ हो सकती है पर वे होती निम्न स्तर की ही है। काव्यानद उत्पन्न करना काव्य का सबसे बडा प्रयोजन है। व्युत्पत्ति *अथवा बहुज्ञता किसी स्तर पर आवश्यक होते हुए भी प्रतिभा ही काव्य का कारण-तत्त्व है। इसी प्रकार प्रतीक'* पर चर्चा करते हुए बक्षी जी कहते है कि 'प्रतीक' शब्द के प्रयोग मात्र से आलोचक का दायित्व पूरा नही हो जाता पर उसे कवि-मन के व्यापार को विवेचित करना चाहिए इनकी दृष्टि म संगीत से भी साहित्य-कला उच्च है, लय काव्य के लिए अनिवार्य तो नहीं है पर कवि उसका प्रयोग के लिए प्रेरित अवश्य होते हुए देखे जाते हैं। इन सब पर दृष्टिपात करने से यह प्रतीति हुए बिना नही रहती कि बक्षी जी के य निबंध उनका भाववादी आलोचक होना सिद्ध करते हैं। इनके लेख वैचारिकता लिए हुए हैं—सभी स्थानो पर बातें प्रमाणपुष्ट हैं। इनकी भाषा समर्थ है। ये लेख बक्षी जी को आधुनिक युग के समर्थ रसवादी आलोचकों मे स्थान दिलाने की पर्याप्त क्षमता रखते हैं।

वाचस्पति मिश्र *(स० ले०)* [स्थिति काल—840 ई०]

वाचस्पति मिश्र के सबध म यह प्रसिद्ध है कि

इन्होंने अपनी पत्नी मामती के नाम के आधार पर ही ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य की टीका का नाम 'मामती' रखा था।

वाचस्पति मिश्र-रचित ग्रंथों में मामती, 'ब्रह्मतत्त्वसमीक्षा', 'तत्त्वकौमुदी', 'तत्त्ववैशारदी', 'न्याय-वार्तिकतात्पर्य', 'न्यायसूचीनिबंध', 'तत्त्वबिंदु' तथा 'न्याय-कारिका' प्रमुख हैं।

वाचस्पति मिश्र की कृतियों की भाषा प्रायः क्लिष्ट है, परंतु अभिव्यक्ति की कुशलता सर्वत्र वर्तमान है। वाचस्पति मिश्र का प्रमुख दार्शनिक सिद्धांत 'अवच्छेदवाद' है। अवच्छेदवाद के अनुसार असीम एवं अनवच्छिन्न ब्रह्म भी ससीम एवं अवच्छिन्न हो जाता है। इन्होंने जीव एवं अविद्या में आश्रयाश्रयिभाव एवं ईश्वर तथा अविद्या में विषय-विषयिभाव माना है। वाचस्पति मिश्र ने ही सर्वप्रथम अविद्या एवं माया के मौलिक भेद को स्पष्ट किया था। इन्होंने सांख्य योग, न्याय एवं वेदांत पर टीका-ग्रंथ लिखकर अपनी बहु-मुखी प्रतिभा का परिचय दिया था।

वाजपेयी, किशोरीदास *(हि० ले०)*

वाजपेयी जी मूलतः संस्कृत के विद्वान् हैं किंतु आपका कार्य-क्षेत्र भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा रहा है। हिंदी व्याकरण, हिंदी वर्तनी, हिंदी की शैली तथा हिंदी प्रयोग-संबंधी विभिन्न प्रकार की समस्याओं पर आपने मौलिक ढंग से चिंतन किया है। आपकी मुख्य कृतियाँ हैं : 'ब्रजभाषा का व्याकरण', 'हिंदी निरुक्त', 'अच्छी हिंदी', 'हिंदी शब्दानुशासन', 'भारतीय भाषाविज्ञान', 'हिंदी वर्तनी' तथा 'शब्द-विश्लेषण'।

वाजपेयी, नंददुलारे *(हि० ले०)* [जन्म—1906 ई०; मृत्यु—1968 ई०]

इनका जन्म उन्नाव जिले के मगरैल गाँव में हुआ था। ये हिंदी आलोचना के आधार-स्तंभों में से एक हैं। इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का आरंभ छाया-वादी (दे० छायावाद) काव्य के समर्थ समीक्षक के रूप में किया था। ये पहले आलोचक थे जिन्होंने छायावाद के अंतःसौंदर्य को उद्घाटित करते हुए उसकी उप-लब्धियों तथा संभावनाओं का निरूपण किया। 'प्रेमचंद' को छोड़ कर इन्होंने कोई स्वतंत्र आलोचना-ग्रंथ नहीं लिखा। इनकी कृतियाँ—'हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', 'जयशंकर प्रसाद', 'आधुनिक साहित्य', 'नया साहित्य : नये प्रश्न' आदि समय-समय पर लिखे गए निबंधों के संकलन हैं। वाजपेयी जी की यह मान्यता है कि साहित्यकार को—चाहे वह स्रष्टा साहित्यकार हो या फिर आलोचक—वादमुक्त रहकर साहित्य-सृजन करना चाहिए। इनकी एक अन्य मान्यता यह है कि युग-चेतना के अभाव में श्रेष्ठ साहित्य का सृजन संभव नहीं है। तत्समप्रधान किंतु स्पष्ट एवं बोधगम्य भाषा-प्रयोग तथा तीखेपन की सीमा तक निःसंकोच भावाभिव्यक्ति इनकी शैलीगत विशेषताएँ हैं। समग्रतः ये हिंदी के मूर्धन्य आलोचक हैं।

वाजपेयी, भगवतीप्रसाद *(हि० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

इनका जन्म कानपुर जिले के मंगलपुर गाँव में हुआ था। 1920 ई० के आसपास काव्य-रचना से अपना साहित्यिक जीवन आरंभ करने के बाद कहानी, उपन्यास, नाटक आदि विविध विधाओं में लिखना शुरू किया था तथा कथा-साहित्य के क्षेत्र में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। अब तक इनके ग्यारह कहानी-संग्रह तथा दो दर्जन से अधिक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। 'दो बहनें', 'चलते-चलते', 'विश्वास का बल' आदि इनके लोकप्रिय उपन्यास हैं तथा 'मधुपर्क', 'हिलोर', 'खाली बोतल' आदि प्रतिनिधि कहानी-संग्रह प्रसंगगर्भित, प्रवाह-पूर्ण तथा चित्रात्मक भाषा-शैली के माध्यम से मध्यवर्गीय व्यक्ति के अंतर्मन का व्यावहारिक मनोविश्लेषण इनके लेखन की ऐसी प्रमुख विशेषताएँ हैं जिनके लिए ये हिंदी कथा-साहित्य में स्मरण किए जाते हैं।

वाजिद अली शाह 'अख्तर' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1827 ई०; मृत्यु—1888 ई०]

नाम—वाजिद अली, उपनाम—'अख्तर', लक़ब—'जान आलम' और 'सुलतान आलम'। ये अवध के अंतिम नरेश थे। बड़े रसिक और सहृदय थे। अन्य ललित कलाओं की अपेक्षा काव्य-कला से इन्हें अत्यधिक प्रेम था। इनकी काव्य-कृतियों की संख्या 28 बताई जाती है, जिनमें से केवल दो-एक ही उपलब्ध हैं। मसनवी 'हिज्र-ए-अख्तर' में इन्होंने लखनऊ से कलकत्ता तक की यात्रा का वर्णन कलात्मक रीति से किया है। इनका

काव्य अत्यधिक विलासिता-व्यंजक और इतिवृत्तात्मक है। भाषा-माधुर्य, प्रसाद गुण और प्रवाह इनकी रचनाओं की विशेषता है।

वाडिवाशल *(त० कृ०)* [रचना-काल—1959 ई०]

सी० सु० चेल्लप्पा कृत एक आंचलिक उपन्यास। इसमें मदुरै ज़िले की मरुर जाति के लोगों के जीवन का एक पक्ष चित्रित है। *संपूर्ण उपन्यास सांकेतिक शैली में* रचित है। उपन्यास में वर्णित मूल कथा का संबंध वाडिवाशल में होने वाले 'जल्लिक्कट्टु (साँडों की भिडंत) से है। इसके माध्यम से उपन्यासकार ने तत्कालीन सामंतीय व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। उपन्यास में जमींदार साम*ंतीय समाज का प्रतिनिधि है।* वह खेल को अपनी प्रतिष्ठा *का आधार मानता है। किसी भी परिस्थिति में अपनी* पराजय स्वीकार करना अपनी मर्यादा के विरुद्ध समझता है। 'जल्लिक्कट्टु' में जब उसका साँड हार जाता है तो उसकी मर्यादा को गहरा आघात पहुँचता है और वह उसे जीवित जला देता है। संपूर्ण उपन्यास सरल, व्यावहारिक शैली में रचित है। स्थानीय भाषा के प्रयोग से *उपन्यास अधिक सजीव एवं प्रभावशाली हो गया है।* वाडिवाशल' का तमिल के आंचलिक उपन्यासों में विशिष्ट स्थान है।

वाणीदासन *(त० ले०)* [जन्म—1915 ई०]

वाणीदासन उपनाम से प्रसिद्ध अरंगसामी का *जन्म विल्लियनूर में हुआ। कवि वाणीदासन की प्रमुख* काव्य-कृतियाँ हैं—'एलिलोवियम्' 'कोडि मुल्लै', 'तमिलच्चि 'तोडु वानम्' आदि। प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण और गेयता इनकी कविताओं की मूल विशेषता है। इनकी कुछ कविताएँ अँग्रेज़ी, रूसी तथा विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं। वाणीदासन का आधुनिक तमिल कवियों में विशिष्ट स्थान है।

वात्तियार वडिवेलू *(त० पा०)*

यह ति० जानकीरामन (दे०) के प्रसिद्ध नाटक 'वात्तियार वडिवेलू' का नायक है। यह मानवतावाद में अत्यधिक विश्वास रखने वाले आदर्श व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। इस पात्र का संबंध स्वतंत्रता परवर्ती उस युग से है जबकि प्रत्येक क्षेत्र में—विशेषकर राजनीतिक क्षेत्र में—अनेक परिवर्तन हो रहे थे। पुराने *सामाजिक मूल्य टूट चुके थे परंतु नये मूल्यों की स्थापना* नहीं हुई थी। उस समय राजनीतिक क्रियाकलाप सामाजिक क्रियाकलाप की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण हो उठे थे। राजनीतिक नेताओं की नीति में कोई आस्था नहीं थी। ऐसा ही एक राजनीतिक नेता वडिवेलू जैसे आदर्श अध्यापक को दबाने का यत्न करता है परंतु वे उस नेता और उसके *साथियों द्वारा दिये गये कष्टों को चुपचाप* सह लेते हैं। वे अंतत यह सिद्ध कर देते हैं कि दृढ़संकल्प व्यक्ति ही समाज को अनीतिपूर्ण चरित्रहीन व्यक्तियों के हाथों विनष्ट होने से बचा सकते हैं।

वडिवेलू आदर्श अध्यापक थे। उनके छात्रों में अनेक ऐसे थे जो कि उनके लिए लड़ने-झगड़ने और *आत्म-बलिदान करने के लिए तैयार थे। नाटक का खल* पात्र, स्कूल के हेड मास्टर वडिवेलू को सताता है, उनके प्रति निर्दयता का व्यवहार करता है। इतने पर भी आदर्श अध्यापक होने के नाते वे अपने छात्रों को अपनी सहायता के लिए नहीं बुलाते। वे बड़े धैर्य के साथ सभी कष्टों को सहते चलते हैं और अंत में यह सिद्ध कर देते हैं *कि सज्जनों को अपनी महानता सिद्ध करने के लिए किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती।*

इस पात्र के माध्यम से नाटककार ने जहाँ अध्यापक की आतरिक (आत्मिक) शक्ति का परिचय दिया है वहाँ इसे तमिलनाडु के तंजाऊर ज़िले के दीन किंतु अत्यंत महान अध्यापक का प्रतिनिधि बनाया है। उसके आचरण, स्वभाव, भाषा आदि से पाठक जान *जाता है कि उसका संबंध तंजाऊर ज़िले से है। वात्तियार* वडिवेलू जानकीरामन *की अमर सृष्टि है।*

वात्स्यायन *(सं० ले०)* [समय—अनुमानत 300 ई०]

वात्स्यायन के स्थिति-काल के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान इनका स्थिति-काल 300 ई०, *कतिपय विद्वान् 400 ई० तथा कतिपय अन्य विद्वान् ई० पू० प्रथम शती मानते हैं। इन मतों में 300 ई०* वाला यह मत ही अधिक संगत प्रतीत होता है। वात्स्यायन-रचित दो प्रमुख ग्रंथ हैं—(1) न्यायभाष्य, (2) 'कामसूत्र'। गौतम (दे०) के 'न्यायसूत्र' पर वात्स्यायन का प्रथम प्रामाणिक भाष्य है। वात्स्यायन ने 'न्यायभाष्य' के अंतर्गत न्याय-दर्शन के सिद्धांतों का

विश्लेषण वैज्ञानिक एवं सरल पद्धति से किया है। तार्किक शैली ने 'न्यायभाष्य' को और भी रोचक बना दिया है। वात्स्यायन का दूसरा प्रमुख ग्रंथ 'कामसूत्र' है। कामसूत्र पर यशोधर ने 'जयमंगला' नामक टीका लिखी है। इसके अतिरिक्त ज्योतिरीश्वर, कोक्कन तथा जयदेव ने 'कामसूत्र' के आधार पर स्वतंत्र कृतियों का निर्माण किया था। वात्स्यायन ने कामसूत्र के अंतर्गत काम, धर्म एवं अर्थ को जीवन का प्रमुख साध्य माना है। इन तीनों के समन्वित रूप को ही 'कामसूत्र' में उत्कृष्टतम सुख कहा गया है। उक्त त्रिवर्ग में से किसी एक की भी न्यूनता वात्स्यायन को अभीष्ट नहीं है। परंतु इस 'त्रिवर्ग' में भी वात्स्यायन की दृष्टि से 'अर्थ' का प्रथम स्थान है, 'काम' का दूसरा तथा 'धर्म' का तीसरा। वात्स्यायन का कथन है कि विषम परिस्थिति होने पर उक्त क्रम के आधार पर ही प्राथमिकता देनी चाहिए। वात्स्यायन द्वारा किया गया चौंसठ कलाओं का निरूपण भी मानव-समाज के लिए एक महत्वपूर्ण देन है। 'कामसूत्र' के अंतर्गत वात्स्यायन की भाषा तथा शैली रोचक एवं सरल है।

वामन *(सं० ले०)*

संस्कृत-साहित्यशास्त्र के अन्यतम आचार्य वामन कश्मीर नरेश जयापीड के मंत्री थे। इनका समय 800 ई० के लगभग निश्चितप्राय है।

वामन के नाम से एकमात्र 'काव्यालंकारसूत्र-वृत्ति' नामक ग्रंथ ही उपलब्ध होता है। इनके पाँच परिच्छेदों के 319 सूत्रों में काव्यशास्त्र के दोष-गुण, अलंकार, रीति एवं पद-प्रयोग प्रभृति तत्त्वों का विवेचन हुआ है। वामन के इस ग्रंथ में रीति-सिद्धांत को सबसे अधिक महत्व मिला है। रीति को ही काव्य की आत्मा तक कहा गया है। वामन ने रीति की आत्मा के रूप में भी गुणों का निरूपण विशेष रूप से किया है। शब्द और अर्थ के अलग-अलग दस-दस गुणों का अलंकारों से पृथक् रूप में निरूपण कर इन्हें ही काव्य-सौंदर्य का कर्ता तथा काव्य का स्वरूपाधायक तत्त्व माना है। अलंकारों को उत्कर्षाधायक मात्र कहकर काव्य में उनकी महत्ता को कम कर दिया गया है। गुण-अवलित रीति का सिद्धांत वामन की देन है। इसके अतिरिक्त गुण और अलंकार का भेद, वक्रोक्ति का विशिष्ट लक्षण तथा सभी अलंकारों को उपमा का ही प्रपंच मानना आदि वामन के अपने मत हैं जिनकी मीमांसा काव्य के आचार्यों ने विशेष रूप से की है।

वामन पंडित *(म० ले०)* [जन्म—1608 ई०; मृत्यु—1695 ई०]

इनका जन्म दक्षिण भारत के बिजापुर प्रदेश में, विद्याध्ययन काशी में हुआ और आयु का उत्तरार्द्ध महाराष्ट्र में बीता। इन्होंने संस्कृत के काव्यों और दर्शनों का गहन अध्ययन किया, और आत्मज्ञानोपलब्धि के लिए मलय पर्वत पर तपस्या की। श्री सच्चिदानंद स्वामी से उपदेश ग्रहण कर वामन पंडित ने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य की भावना का प्रसार करने के लिए मराठी में काव्य-रचना आरंभ की। इनकी चालीस हज़ार कविताओं में से आधे से अधिक वेदांतपरक हैं—शेष का आधार 'रामायण' (दे०), 'महाभारत' (दे०), तथा 'भागवत' (दे०), (दशम स्कंध) है। रामजन्म, अहल्योद्धार, सीता-स्वयंवर, भरतभाव आदि प्रकरण 'रामायण' पर तथा वनसुधा, वेणुसुधा, रासक्रीडा, कात्यायनीव्रत, राधा-विलास, द्वारका-विजय, मृत्तिकाभक्षण, ऊखलबंधन, गोर-सहरण आदि 'भागवत' पर आधारित हैं। कृष्ण ही वामन पंडित के उपास्य देवता है। इन्हीं की लीलाओं के गान से इनका काव्य सरस हो उठा है जिससे भक्ति, वात्सल्य, शृंगार, हास्य आदि कोमल रसों की परिपुष्टि हुई है। ज्ञानयुक्त भक्ति ही इनका प्रतिपाद्य है, अतः आख्यान-काव्यों में प्रसंगानुसार आध्यात्मिक रूपकों का सुंदर समावेश भी हुआ है। वामन के वास्तविक पांडित्य का दर्शन 'यथार्थ दीपिका' (दे०) में होता है। यह 22 हज़ार ओवी छंदों में लिखित 'गीता' (दे०) की टीका है। इसमें काव्य-गुण नहीं है। किंतु इससे कवि की तार्किक दृष्टि, निर्भीक प्रतिपादन-शक्ति, दृढ़ आत्मविश्वास, स्मृति-पुराण-दर्शनों के गंभीर अध्ययन का परिचय मिलता है।

वायु रे वालत्तु *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ्) नामक काव्य-भेद के 'पाटाण्' नामक उपभेद के वीस प्रकरणों में से एक है। 'पाटाण्' (दे०) नामक उपभेद विशेष रूप से दानी राजा एवं प्रभुओं की प्रशंसा से संबंधित है। दानी प्रभुओं की प्रशंसा के साथ लोभियों की निंदा भी वर्जित नहीं थी। किसी प्रभु की अनिच्छा पर भी उनके समक्ष कटु सत्यों को हितैषी कवि-गण अपने गीतों में रखा करते थे। प्रथमतः कविगण प्रभु की मंगलकामना करते थे और तत्पश्चात् अपने औषध रूपी कटु पर शुभाकांक्षी शब्द

रखते थे। यह प्रकरण 'वायु रै वाल्तु''''' अर्थात् 'स्थायी शुभदायक' कहलाता है और 'पु रनानूरु' नामक गीत-संग्रह में इसके पर्याप्त उदाहरण मिलते है।

वार *(पं० पारि०)*

पंजाबी-काव्य में 'वार' शब्द दो रूपों में प्रचलित है। एक—प्रशस्ति काव्य के रूप में, जैसे—वार श्री भगौती की वार श्री गोविंदसिंह जी की, वार नादिरशाह (दे०) आदि। इस काव्य के अंतर्गत किसी के शौर्य, महिमा, यश आदि का वर्णन रहता है। (दे० वारकाव्य)। दूसरे, वार' शब्द का प्रयोग 'पौड़ी' (दे०) छंद के पर्याय के रूप में भी हुआ है क्योंकि पंजाबी काव्य में योद्धाओं के शौर्य का वर्णन अधिकतर इसी छंद में हुआ है। 'गुरु ग्रंथ साहब' के अंतर्गत 'आसा दी वार' शीर्षक का आधार 'वार'—अर्थात् 'पौड़ी' छंद ही है। (दे० 'पौड़ी')

वार-काव्य *(पं० प्र०)*

यह 'वीर काव्य' का पंजाबी में प्रचलित एक रूप है। 'वार' से अभिप्राय ऐसे काव्य का है जिसमें शौर्यपूर्ण वीरगाथा अंकित हो जैसे—गुरु गोविंदसिंह-कृत (दे०) वार श्री भगौती जी की'। अधिकांश कवियों द्वारा विभिन्न योद्धाओं और महापुरुषों की वीरता का वर्णन। पौड़ी (दे०) छंद में होने के कारण, इसके छंद का नाम भी 'वार' छंद ही पड़ गया है। उदाहरण के लिए— आसा दी वार' का प्रारंभिक पाठ है—'वारसलोका नालिठ। यहाँ 'वार' का अभिप्राय पौड़ी छंद से ही है।

'वार काव्य' के अंतर्गत केवल युद्ध-वीरों का ही गुण-गान नहीं हुआ, वरन् अन्य महापुरुषों और ईश्वर की महिमा में भी वार-काव्य की रचना हुई है। 'आदिग्रंथ (दे०) में प्रभु-महिमा में मुक्त वाणी 'वार' नाम से प्रसिद्ध है।

युद्ध-वीरता पर आधारित वार-काव्यों में 'वार श्री भगौती जी की', 'वार नादरशाह' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

वारधि *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1967 ई०]

इसकी लेखिका द्विवेदुला विशालाक्षी (दे०) हैं। इन्होंने अनेक उपन्यास तथा कहानियाँ लिखी हैं। 'वारधि' एक सामाजिक उपन्यास है। मानवता की दृष्टि में सब के एक होते हुए भी वास्तविकता की दृष्टि से स्पष्ट होता है कि समाज में धनवानों और निर्धनों के दो वर्ग हैं। किसी-न-किसी प्रकार दोनों को मिलाने के लिए कोई पुल बाँध भी दे तो वह अधिक समय तक टिकेगा नहीं। एक सामान्य परिवार का सदस्य वरदराजु एक अमीर की पुत्री के साथ शादी करता है। परंतु ससुराल के अत्यंत संपन्न तथा अपने परिवार के अत्यंत निर्धन होने के कारण वरदराजु की स्थिति बहुत दुःखद हो जाती है। एक दिन पत्नी के बिगड़ते हुए स्वास्थ्य का समाचार पाकर रात ही रात वह अपने गाँव से अपनी ससुराल के शहर में जाने के लिए निकलता है। बीच में एक नदी पड़ती है जिसमें ज़ोरों की बाढ़ आई है। अतः वरदराजु को रुक जाना पड़ता है। इसी बीच में उसकी पत्नी का देहांत हो जाता है। इसके अनंतर वरदराजु के गाँव तथा उसकी ससुराल के शहर के बीच का पुल भी टूट जाता है और उन दोनों अमीर और गरीब परिवारों का संबंध भी विच्छिन्न हो जाता है। संक्षेप में यही इसकी कथा है। कथानक रोचक है। इसमें एक सामाजिक सत्य को मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है।

वार नादरशाह *(पं० कृ०)*

कवि नजाबत (दे०)-कृत यह युद्ध-काव्य पंजाबी 'वार-काव्य' परंपरा की एक उत्कृष्ट रचना है। इसमें नादिरशाह और मुगल-सम्राट मुहम्मदशाह रंगीले के उस युद्ध का वर्णन है जो 1739 ई० में करनाल के मैदान में हुआ था। कवि ने युद्ध के राजनीतिक कारणों का विश्लेषण नहीं किया वरन् उसका सूत्रपात एक नितांत कल्पित रोचक घटना से कराया है। 'नारद' और 'कन' (काली) नामक पति-पत्नी एक-दूसरे से असंतुष्ट हैं। उनका पारस्परिक कलह ही बढ़कर नादिरशाह और मुहम्मदशाह के युद्ध का रूप ले लेता है। स्पष्टतः कवि का उद्देश्य युद्ध-वर्णन मात्र है, उसके कारणों और परिणामों की व्याख्या करना नहीं, और 'वर्णन-कला' में वह पूर्णतः संपन्न रहा है। समर-यात्रा, सेना-अभियान, शस्त्र-संचालन एवं द्वंद्व-युद्ध आदि का इस 'वार' में बहुत ही सजीव वर्णन हुआ है। वीर, रौद्र, भयानक एवं वीभत्स रस की अभिव्यंजना में कवि की लेखनी पूर्णतः समर्थ है।

प्रसंगतः कहीं कहीं हास्य और देशभक्ति का

पुट भी मिल जाता है। विषयानुकूल ओजगुण-प्रधानता इस रचना की भाषा की प्रमुख विशेषता है। 'वार नादर-शाह' में ऐतिहासिक तथ्यों की दृष्टि से अनेक दोष भी हैं जैसे काबुल को ईरान का प्रांत बताना। किंतु इससे शुद्ध वीरकाव्य के रूप में इस कृति का महत्व कम नहीं होता।

वारियर, उण्णायि *(मल० ले०)* [जीवन-काल—अठारहवीं शती ई० का आरंभ]

आट्टक्कथाकारों में इनका नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। ये कुंचन नंपियार (दे०) के समसामयिक और त्रावनकोर राज्य के स्थापक मार्तांड वर्मा के दरबार में राजकवि माने जाते है। उण्णायि वारियर की अमर कृति 'नलचरितम् आट्टक्कथा' (दे०) है। यह साहित्य-जगत् में विवाद का विषय है कि 'गिरिजाकल्याणम्' गीत-प्रबंध के रचयिता उण्णायि वारियर हैं अथवा नहीं।

वारियर ने कथकलि को साहित्य में शाश्वत प्रतिष्ठा प्रदान की थी। आट्टक्कथाओं में 'नलचरितम्' का स्थान सर्वप्रमुख है। इस काव्य के प्रणयन के बाद आज तक कथकलि के अभिनेता और दर्शक उसी को सर्वश्रेष्ठ मानते आए है। वारियर नाटक-शिल्प एवं संगीत-विद्या के मर्मज्ञ थे। उनके काव्य के प्रत्येक पात्र का व्यक्तित्व उज्ज्वल है। वारियर की काव्य-भाषा वैचित्र्यपूर्ण है। उनके पद-प्रयोग-स्वातंत्र्य को ध्यान में रखकर कुछ विद्वान् उनको निरंकुश कवि कहते हैं।

उण्णायि वारियर ने न केवल कथकलि-साहित्य को चिरप्रतिष्ठा प्रदान की है, अपितु मलयाळम को एक अत्युत्तम दृश्य-काव्य भी प्रदान किया है।

वारियर, एन० वी० कृष्ण *(मल० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

मलयाळम के कवि, समालोचक और पत्रकार श्री कृष्ण वारियर (दे०) संस्कृत और हिंदी के विद्वान तथा करल भाषा-संस्थान के निदेशक रहे हैं। 'नीटर्कवितकळ्' (दे०) 'कुरेक्कूटि नीटकवितकळ्', 'कोच्चुतोम्मन्' आदि उनके कविता-संग्रह है। 'परिप्रेक्ष्यम्', 'कलोत्सवम्' आदि समालोचना-ग्रंथ हैं और 'उणरुन्न उत्तरेंत्या' यात्रा-वृत्त।

श्री वारियर ने मलयाळम-कविता को नये परीक्षणों का विषय बनाया। उनकी लंबी कविताओं में प्रगीत-शैली की अपेक्षा कथा-कथन की रीति अधिक अपनाई गई है। वारियर अच्छे व्यंग्यकार भी हैं। उनकी कविता 'मोहनदास गांधी और नाथूराम गोडसे' इस तथ्य का उदाहरण है।

चङ्ङंपुषा (दे०) के बाद मलयाळम-कविता में अतिभावुकता और एकस्वरता का जो गाढ़ा पुट समन्वित हो गया था उसका निवारण ही वारियर का सबसे महत्वपूर्ण योगदान हैं।

वारियर, कैक्कुलङ्ङरा, राम *(मल० ले०)* [समय—1933 से 1958 ई०]

केरल के तलप्पिळ्ळ तहसील के कटङ्ङोट्टु में इनका जन्म हुआ। इनका घर का नाम है कैक्कुलङ्ङरा। ये संस्कृत के बड़े पंडित थे। 'अष्टांग हृदय' का अनुवाद कैरली में करके इन्होंने विद्वानों की बड़ी सहायता की। इन्होंने 'अमरकोशम्' (दे०), 'सिद्धरूपम्', 'श्री रामोदतम्' आदि पर सुंदर टीकाएँ और टिप्पणियाँ लिखीं। चालीस के लगभग ग्रंथ इनके रचे हुए हैं।

वारियर, पि० वि०, कृष्ण *(मल० ले०)*

'कवनकौमुदि' नामक पद्य-मासिक में संपादक के रूप में इन्होंने कैरली की महत्वपूर्ण सेवा की है। युवा-कवियों को इनसे निरंतर बहुत प्रोत्साहन मिलता रहा है। कुञ्ञिक्कुट्टन् (दे०) तंपुरान्, वि० सि० बालकृष्ण पणिक्कर (दे०) जैसे महान व्यक्तियों की कविताओं का संग्रह करके लोगों का ध्यान भाषा की ओर आकृष्ट करने में श्री वारियर ने बड़ा यत्न किया और सफल भी हुए। 1919 ई० से लेकर ये साहित्य-नभोमंडल में ध्रुवतारे के समान चमक रहे है। 'कवनकौमुदि' का विशेषांक सुंदर ढंग से निकालकर इन्होंने 'भाषा-विलासम्' शीर्षक पर नौ उत्तम कृतियों का प्रकाशन किया। सबसे पहले इन्होंने ही कैरली में विशेषांक निकाला है। 'कवि केसरि' में इनकी रचनाएँ संगृहीत है।

वारियर, रामपुरत्तु *(मल० ले०)* [जीवन-काल—अठारहवीं शती ई०]

ये मलयाळम के प्रसिद्ध कवि है। किंवदंती है

कि ये सुदामा की तरह दरिद्र थे। त्रावनकोर के महाराजा मार्तांड वर्मा की नौका-यात्रा के दौरान इन्होंने उनको 'कुचेलवृत्तम् वचिप्पाट्टु' (दे०) (नौका गीत) की रचना करके सुनाया था और महाराजा ने सुदामा की तरह अनजाने ही कवि को ऐश्वर्यदान दिया था।

इनकी सर्वप्रमुख कृति 'कुचेलवृत्तम्' है। *भाषाष्टपदी, व्यासोत्पत्ति आदि भी इनकी रचनाएँ है।*

इनकी कविता अनुभूति की गहनता के कारण हृदयस्पर्शी है। काव्य की तकनीकों को ध्यान में रखकर पद्य-रचना करने के बजाय ये जो मन में आया, कहते गए। रोमांटिक युग के उदय के पहले इनके अलावा और किसी ने इस प्रकार की काव्य-सरणि को नहीं अपनाया था। वचिप्पाट्टु (दे०) शैली के मुख्य कवि के रूप में भी इनका महत्त्व है।

वारिसशाह *(प० ले०)* [जन्म- लगभग 1720-25 ई०, मृत्यु—1798 99 ई०]

प्रामाणिक सामग्री के अभाव में पंजाबी किस्सा-काव्य के इस मूर्द्धन्य लेखक की जीवन संबंधी अनेक मान्यताएँ अनुमान पर ही आधारित हैं। इनका जन्म जंडियाला शेरखाँ (जिला शेखूपुरा, पाकिस्तान) में सैयद गुलशेर शाह अथवा कुतबशाह के घर हुआ। प्रारंभिक शिक्षा के अनंतर इन्होंने पाकपटन में बाबा फरीदशकरगंज की दरगाह में दीक्षा ग्रहण की। कुछ समय पश्चात् वहाँ से थोड़ी दूर एक अन्य गाँव मल्काहास (जिला मिंटगुमरी) में रहने लगे और वहीं पर अपने प्रसिद्ध प्रेम-काव्य 'हीर' की रचना की। भागभरी नामक एक हिंदू महिला से इनके प्रेम-संबंध की कथा भी प्रसिद्ध है। इनकी मृत्यु *अपने गाँव में ही हुई। आज भी वहाँ वारिस की कब्र पर* श्रद्धालु लोग फूल चढ़ाते हैं। प्रसिद्ध पंजाबी आलोचक मौलाबख्श कुश्ता (दे० मौलाबख्श) ने 'हीर' के अतिरिक्त वारिस द्वारा रचित कुछ अन्य रचनाओं का भी उल्लेख किया है परंतु उनका यह मत अन्य इतिहासकारों को स्वीकार्य नहीं है। प्रस्तुत कवि भाषा की सरलता, वातावरण की स्वाभाविकता, पात्रों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, संवादों की नाटकीयता और अद्भुत वर्णन-विस्तार के लिए प्रसिद्ध है। गुलज़िल शब्द-प्रयोग, अद्भुत संगीत और अपूर्व प्रवाह के सन्निवेश में 'बैंत' (दे०) को पंजाबी का प्रसिद्ध और लोकप्रिय छंद बनाने का श्रेय भी वारिस को ही है। इनमें संकीर्णता नाम मात्र को भी नहीं है। 'हीर वारिस' (दे०) में हिंदू मुस्लिम संस्कृति के संश्लिष्ट स्वरूप को उभार कर इन्होंने पंजाब के ग्रामीण जीवन को पृष्ठभूमि के रूप में अंकित किया है। पंजाब के अनेक कवियों ने हीर-राँझा की कथा को काव्य का विषय बनाकर इनकी अपेक्षा अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का यत्न किया है परंतु इस क्षेत्र में आज तक वारिस अप्रतिम माने जाते हैं।

वार्ता विमर्श *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1961 ई०]

प्रस्तुत कृति में श्री चुनीलाल मडिया (दे०) के कहानी-शिल्प तथा गुजराती एवं पश्चिमी कहानी-विषयक विविध समीक्षात्मक लेख संगृहीत हैं। कहानी श्री मडिया की प्रिय साहित्य-विधा थी तथा इस विधा में उन्हें असाधारण सिद्धहस्तता प्राप्त थी। इससे कहानी-विषयक उनकी मर्मज्ञता का अनुमान सहज ही हो जाता है।

आलोच्य संग्रह में उन्होंने 'टूकी वार्ता तथा 'घाट अने घडतर' नामक लेख में एडगर एलन पो, नैथेलियन और रूसी कहानीकार गोगोल से लेकर अर्नेस्ट हेमिंग्वे और सारोयन तक के विदेशी, तथा 'गुजराती वार्तानी गयी काल' शीर्षक के अंतर्गत धूमकेतु (दे०) से लेकर पुष्कर चंदरवाकर तक के कहानीकारों की तथा 'गुजराती टूकी वार्ता, कालनी अने आजनी' में अधुनातन गुजराती कहानियों की मौलिक समीक्षा की है।

संग्रह के 'कहानी और प्रगीत', *'कहानी और टेलीविज़न', 'कहानी और एकांकी', 'कहानी और उपन्यास', 'कहानी और सिनेमा की कला' प्रभृति लेखों में उन्होंने कहानी-कला का वैशिष्ट्य स्पष्ट किया है।*

बालक्कं अलकिरदु *(त० कृ०)* [रचना-काल —1957 ई०]

यह डी० जयकांतन् (दे०) का प्रथम उपन्यास है। इसमें कथा की अपेक्षा पात्रों के चरित्र-चित्रण को अधिक महत्व दिया गया है। यद्यपि उपन्यास के सभी पात्र काल्पनिक हैं परंतु उनमें सजीवता है। इनमें कुछ पात्र ऐसे हैं जिनसे हमारा घनिष्ठ संबंध है, कुछ ऐसे हैं जिन्हें हम अपने से दूर रखने का यत्न करते हैं और कुछ ऐसे हैं जिनसे हम दूर रहना चाहते हैं। परंतु प्रत्येक का अपना एक जीवन है। *उपन्यास का नायक राजा तरह-तरह के काम करता है—जैसे चावल, दाल तौलना, कपड़ा नापना, बर्तन बीनना आदि, परंतु किसी में उसका मन*

नहीं लगता। सर्वत्र उसे बेईमानी दीख पड़ती है। आदर्शवादी राजा को देखकर लोग घोषित कर देते हैं कि उसे जीना नहीं आता और न वह जी ही सकता है। निरुद्देश्य भटकते हुए राजा के ऊपर तंगम् की मान-रक्षा का उत्तरदायित्व आ पड़ता है। वह उपन्यास की नायिका तंगम् को सारंगन् आदि गुंडों के चंगुल से मुक्त करता है, उसका जीना सार्थक हो जाता है। 'वालवकै अलकिरदु' में लेखक ने यही बताना चाहा है कि यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक मनुष्य किसी विशिष्ट लक्ष्य को लेकर चले। समाज के अभिन्न अंग के रूप में रहते हुए स्वयमेव उसके एक जीवन का निर्माण हो जाता है।

वालक्कै-क्-कुरिप्पुकळ *(त० कृ०)* [रचना-काल—1944 ई०]

इसके रचयिता वी० कल्याणसुंदर मुदलियार (1883 ई०-1953 ई०) हैं। इनका जन्म अत्यंत सामान्य परिवार में हुआ था। अपने जीवन-काल में इन्हें विविध क्षेत्रों में कार्य करने का अवसर मिला। ये डायरी लिखने के आदी नहीं थे। इन्होंने अपनी स्मरण-शक्ति के बल पर और 'देशभक्तन', 'नव शक्ति' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित अपने लेखों के आधार पर लगभग एक सहस्र पृष्ठों में अपनी जीवनी लिखी और उसे 'वालक्कै-क्-कुरिप्पुकळ' शीर्षक से दो भागों में प्रकाशित किया। यह कृति लेखक की तीक्ष्ण स्मरण-शक्ति की परिचायक है। इसके माध्यम से वस्तुतः तिरु वी० क० ने तमिलनाडु के चालीस वर्षों का इतिहास प्रस्तुत किया है, तमिलनाडु की धार्मिक-राजनीतिक परिस्थितियों का, मजदूर संगठनों की गतिविधियों का, सजीव रूप से अंकन किया है।

तिरु वी० क० धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनके मत में मानव-जीवन स्वयं अपने लिए एवं समाज के लिए उपयोगी होना चाहिए। वे कहते हैं कि 'समाज की सेवा के लिए मैं बारंबार इस संसार में जन्म लेना चाहता हूं।' तिरु वी० के० की दृष्टि अत्यंत व्यापक थी। वे कहते थे कि 'मैं सर्वप्रथम विश्व का प्राणी हूँ, फिर भारतीय और अंत में तमिल नागरिक हूँ।' उनका जीवन गांधीवाद और मार्क्सवादी दर्शनों पर आधृत एक प्रयोग था। उनका विश्वास था कि इन दोनों दर्शनों के समन्वय से ही एक नवीन जीवन-दर्शन का उदय होगा। इस कृति के अध्ययन से स्पष्ट है कि वैचारिक धरातल पर इनके अनेक विरोधी थे परंतु सामाजिक धरातल पर इनका कोई शत्रु नहीं था।

संपूर्ण कृति अत्यंत सरल, प्रवाहपूर्ण शैली में रचित है। इसका रूप बहुत-कुछ गांधी जी के 'सत्य के प्रयोग' के समान ही है। इसका तमिल के जीवनी-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इस कृति का साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों से महत्व है।

वालक्या *(म० पा०)*

यह रामगणेश गडकरी (दे०) के 'वेड्याचा बाजार' (पागलों का बाजार) अपूर्ण प्रहसन का पात्र है जो नाटकों के प्रति अत्यधिक आकृष्ट है। नाटकों के प्रति इसकी आसक्ति पागलपन के छोरों तक पहुँच गई है और यही कारण है कि अभिनय का 'क ख ग' न जानते हुए भी यह मंच पर अभिनय के लिए अत्यधिक उत्सुक है। नाटकों में यह स्त्री-भूमिकाओं को ही अभिनीत करना चाहता है, परंतु अभिनय-कला का इसमें सर्वथा अभाव है। प्रसिद्ध नाट्य-वृत्तियों के उद्धरण यह समय-कुसमय बोलता रहता है। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध नाट्य-गीतों की 'पैरोडी' बनाकर गाने में भी यह सिद्धहस्त है परंतु संगीत-ज्ञान से सर्वथा अनभिज्ञ होने के कारण अपने क्रिया-कलापों से जनता के उपहास का पात्र बनता है किंतु इसको उसे कोई चिंता नहीं। अपने धन-बल से ही नाट्य-मंडली के सदस्यों को एकत्र किए रहता है जिनकी दृष्टि केवल इसकी धन-संपत्ति पर केंद्रित है। अपने असंगत व्यवहार तथा संवादों के द्वारा हास्य की मनोहारी स्थिति उत्पन्न करने में यह पूर्णरूपेण सक्षम रहा है।

वाळिंबे, रा० शं० *(म० ले०)*

ये आधुनिक काल के सुप्रसिद्ध आलोचक हैं। इन्होंने भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का विस्तृत अध्ययन किया है। इन्होंने 1925-1950 ई० तक पश्चिम में प्रचलित विभिन्न साहित्य-धाराओं का विस्तृत परिचय अँग्रेजी उद्धरणों के साथ कराया है। 'साहित्यचा ध्रुवतारा', 'वाङ्मयीन टीका-शास्त्र आणि पद्धति', 'साहित्यांतील संप्रदाय' आदि आलोचनात्मक ग्रंथों में पाश्चात्य साहित्य-मूल्यों के आधार पर आधुनिक मराठी-काव्य का परीक्षण कैसे किया जाए, यह बताया गया है। इनका मत है कि मराठी का अपना काव्यशास्त्र नहीं है, अतः स्वभावतः

वह संस्कृत अथवा अँग्रेज़ी काव्यशास्त्र पर निर्भर करता है। चूँकि आधुनिक साहित्य पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव है अतः आधुनिक मराठी-साहित्य का परीक्षण पश्चिमी साहित्य के मानदंडों के आधार पर करना समीचीन होगा।

'बालकवि' नामक इनके आलोचनात्मक ग्रंथ का साहित्य जगत में स्वागत हुआ है। ये कविता में कवि के व्यक्तित्व का शोध करते है, फिर कवि के व्यक्तित्व के प्रकाश में उसके काव्य-सौंदर्य का उद्‌घाटन करते हैं। इनके अनुसार स्वानुभूतिपरक कविता का मर्म जानने में रचनाकार के निजी जीवन का परिचय प्राप्त करने से लाभ होगा।

ये 'कला जीवन के लिए' सिद्धांत के समर्थक है। अँग्रेज़ी-साहित्य के कई पारिभाषिक शब्दों के मराठी-पर्याय भी इन्होंने सुझाये हैं।

वाल्मीकि *(सं० ले०)* [समय—500 ई० पू०]

'रामायण' (दे०) हमारा आदि काव्य है और वाल्मीकि आदिकवि। 'मा निषाद प्रतिष्ठा त्वम्' के द्वारा ही भारतीय काव्य का उदय माना जाता है। वाल्मीकि तथा रामायण' के रचना काल के विषय में विद्वानों में बहुत विवाद है। कुछ लोग उसका रचना-काल 'महाभारत (दे०) के बाद बताते है। कुछ के अनुसार यह पाणिनि' (दे०) के बाद लिखी गई। याकोबी के अनुसार रामायण' की रचना ईसा से 800-600 वर्ष पूर्व हुई होगी। भारतीय परंपरा के अनुसार वाल्मीकि राम के समकालीन थे तथा उसी समय 'रामायण' की रचना हुई।

क्रौंच पक्षी के जोड़े में से बहेलिये द्वारा नर का वध वाल्मीकि न देख सके और उसके कारण उत्पन्न शोक से श्लोक का जन्म हो गया। वाल्मीकि का हृदय स्वतः राम के पावन चरित्र की ओर आकृष्ट हुआ और उन्होंने इसे ही अपने काव्य का उपजीव्य बनाया। उनके वर्णन में सहज प्रवाह है तथा भाषा में सरलता। अलंकारों का इन्होंने जहाँ कहीं प्रयोग किया है वहाँ रस की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। वे अलंकारों का प्रयोग बड़ी चतुराई से करते है। मूर्त पदार्थ के लिए अमूर्त वस्तु का उपमान प्रस्तुत करने में वाल्मीकि बड़े निपुण है। बाह्य प्रकृति का वर्णन 'रामायण' में बहुत सुंदर बन पड़ा है। उनके प्राकृतिक वर्णन में सर्वत्र बिंब-ग्रहण का प्राधान्य है।

वाल्मीकि ने 'रामायण' में कुछ ऐसी मर्यादाएँ एवं आदर्श प्रस्तुत किये हैं जो समाज के लिए सदा अनुकरणीय हैं। राम का चरित्र उसका स्वयं एक निदर्शन है। अन्य चरित्र भी हमारे सामने कोई-न-कोई आदर्श लेकर आते हैं।

वाल्मीकि समूचे कवि-समाज के लिए उपजीव्य हैं। कालिदास (दे०) तथा भवभूति (दे०) पर तो इनका इतना अधिक प्रभाव है कि इनको हम तभी समझ सकते हैं जब वाल्मीकि को भली भाँति समझ लें। काव्य के अतिरिक्त वाल्मीकि ने हमको रामकथा का विषय दिया जो भारत के कोने-कोने में फैल गया। इस कथा ने भारतीय समाज को जीने का संबल दिया है।

वासवदत्ता *(सं० पा०)*

भास (दे०) के भास्वर पात्रों में एक विशिष्ट पात्र वासवदत्ता भी है जिसके चरित्र के अनेक चित्रण उपलब्ध होते हैं। भास के 'प्रतिज्ञा-यौगंधरायण एवं स्वप्न-वासवदत्तम्' में वासवदत्ता साक्षात् या परोक्ष रूप से चित्रित हुई है। श्रीहर्ष की 'रत्नावली' तथा सोमदेव सूरि के कथा-सरित्सागर में भी यही वासवदत्ता चित्रित है।

वासवदत्ता अवंती के प्रचंड राजा प्रद्योत की पुत्री थी। रूप एवं गुणों में अद्वितीय वह कुमारी के रूप में अनिंद्य सुंदरी है। पिता के कारागार में अवस्थित वत्सराज उदयन (दे०) से वीणा सीखने जाती है और उनके रूप एवं गुणों पर मुग्ध होकर उससे प्रेम करने लगती है। अतः वह उन्हें कारागार से छुड़ाने में सहायक होती है और स्वयं भी उसकी पत्नी बनकर चली जाती है।

बाद में वासवदत्ता के प्रेम की परीक्षा का अवसर आता है। उदयन का दूसरा विवाह हो जाने पर भी वह विचलित नहीं होती, अपने को सँभाल लेती है। कालिदास (दे०) की उक्ति 'प्रियसखीवृत्ति सपत्नीजने' (अभिज्ञानशाकुंतलम्) की चरितार्थता वासवदत्ता में पूर्ण रूप में हुई है। अतः में प्रद्योत एवं उसकी माता उसके प्रेम विवाह को मान्यता दे देते हैं। वासवदत्ता एक प्रिय पुत्री, परम प्रेमिका, विश्वसनीय मित्र तथा आदर्श पतिपरायणा पत्नी है।

वासिष्ठ रामायणम् *(तं० कृ०)* [रचना-काल —पंद्रहवीं शती ई०]

इसके लेखक मंडिकि सिंगना हैं। उनके अन्य

ग्रंथ है—'पद्मपुराणमु','भागवत दशमस्कंधमु' और 'सकल-नीतिसम्मतमु'। एक बार रामचंद्र संसार को अनित्य तथा सुखरहित मानकर बहुत उदास हुए। उस समय गुरु वशिष्ठ ने उन्हें तत्त्व का उपदेश दिया। यही कथा संस्कृत में 'वासिष्ठ रामायणमु' के नाम से प्रसिद्ध है। सिंगना ने पाँच आश्वासों के इस ग्रंथ में इसका तेलुगु-अनुवाद प्रस्तुत किया है। कहीं-कहीं अनुवाद संक्षिप्त है। तत्त्व-संबंधी नीरस विषय भी इस रचना में सरस ढंग से प्रतिपादित किया गया है। लेखक का कहना है कि छोटे-से झरने में हाथी के प्रतिबिंब की तरह इस छोटे-से ग्रंथ में सभी शास्त्रों का सार देखा जा सकता है।

वासुदेवन् नायर, एम० टी० *(मल० ले०)* [जन्म—1933 ई०]

नयी पीढ़ी के मूर्धन्य उपन्यासकार आजकल मलयाळम के लोकप्रिय साप्ताहिक 'मातृभूमि' के संपादक हैं। इनका उपन्यास 'कालम्' केंद्रीय साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत हो चुका है। 'नालुकेट्टु' (दे०), 'असुर-वित्तु' (दे०), 'मंजु' आदि अन्य प्रसिद्ध उपन्यास हैं और 'अरबिप्पोन्नु' (दे०) लेखक और एन० पी० मुहम्मद का संयुक्त प्रयास है। 'ओळवुम् तीरवुम्', 'कुट्येट्टत्ती' 'इरुट्टिंटे आत्मावु' आदि कहानी-संग्रह हैं। दो साहित्यिक निबंध-संग्रह और दो यात्रा-विवरण भी प्रकाशित हुए हैं। इनकी विभिन्न कहानियों और उपन्यासों का फिल्मीकरण हुआ है। इन फ़िल्मों को विभिन्न पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं। इनमें 'निर्माल्यम्' को राष्ट्रपति-स्वर्णपदक प्राप्त है।

वासुदेवन् नायर के सामाजिक उपन्यासों में आर्थिक और सांस्कृतिक अधःपतन से श्लथ-विश्लथ परिवारों की दारुण कथा है। इनकी कृतियाँ सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं में गहरी उतरती हैं। 'इरुट्टिंटे आत्मावु' जैसी कहानियाँ इनके मनोवैज्ञानिक अंतर्दर्शन के प्रमाण हैं। पात्र-सृष्टि में और आख्यान-शिल्प में वासुदेवन् नायर की कुशलता सर्वतोस्वीकृत है। मलयाळम कथा-साहित्य के उत्कर्ष में जिन लेखकों का योगदान है उनमें एम० टी० वासुदेवन् नायर प्रमुख हैं।

वास्वाणी, थांवरदास लीलाराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1879 ई०; मृत्यु—1966 ई०]

ये साधु वास्वाणी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म हैदराबाद (सिंध) में हुआ था। बचपन से ही इनकी विलक्षण प्रतिभा और असाधारण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होने लगी थी। कॉलेज में अध्यापन कार्य के साथ-साथ इन्होंने समाज-सेवा को भी अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था। 1933 ई० में इन्होंने हैदराबाद (सिंध) में 'सेंट मीरा हाईस्कूल' का आरंभ किया था जो विभाजन के पश्चात् पूना में चल रहा है। पूना में इनकी संस्था के द्वारा सेंट मीरा कॉलेज का भी आरंभ किया गया है। धार्मिक तथा दार्शनिक विषयों पर सिंधी में इनकी लगभग 300 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'नूरी ग्रंथ' नाम से इनकी पद्यात्मक रचनाओं का बृहत् संकलन भी प्रकाशित हो चुका है। गद्य तथा पद्य में इनकी शैली निराली है।

वास्वाणी, हरीश *(सिं० ले०)*

हरीश वास्वाणी आदिपुर (कच्छ) में तोलाणी कॉलेज में प्राध्यापक हैं। इन्होंने लगभग 1960 ई० में सिंधी-साहित्य में प्रवेश किया है, परंतु शीघ्र ही इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योग देने में सफल हुए हैं। इन्होंने लगभग बीस कहानियाँ और सौ से अधिक कविताएँ लिखी हैं, जो विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। सिंधी-साहित्य की भिन्न-भिन्न रचनाओं पर इनके आलोचनात्मक निबंध सिंधी-साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन्होंने नयी कहानी और नयी कविता के क्षेत्र में भी सफल रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। आधुनिक सिंधी-साहित्य में इन्होंने कवि, कहानीकार और आलोचक के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त की है।

वाहै *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ्) नामक काव्य-विभाग का वह उपविभाग है, जो 'तुंबै' के पश्चात् आता है। इसका समानांतर 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ्) उपभेद 'पालै' है। राजाओं द्वारा रणक्षेत्र से शत्रु-निरसन करना तथा विजय के उपलक्ष्य में 'वाहै' फूल पहनना इस उपभेद का एक महत्वपूर्ण प्रकरण है। केवल रणक्षेत्र ही में नहीं बल्कि कर्तव्य-पालन में भी विजय-प्राप्ति की विलक्षण व्यवस्था 'तोलकाप्पियम्' (दे०) में द्रष्टव्य है। समाज के विभिन्न वर्गों तथा योगी एवं तपस्वी लोगों द्वारा अपने-अपने धर्म का कुशल पालन भी 'विजय' की कोटि में रखा

गया है। 'तोलकाप्पियम्' के 'पुरत्तिणै इयल्' नामक परिच्छेद के 15 एव 16 सख्यक सूत्रो मे ब्राह्मण, राजा, वणिक एव कृषक योगी, तपस्वी, नर्तक गायक, तथा शेष सकर जातियाँ— इन सात भेदो के लोगो की अपनी-अपनी 'विजय' के अनुसार 'वाट्टै' के सात किये गय हैं और फिर इन सातो भागो से सबधित अट्ठारह सामान्य प्रकरणो की सूची दी गई है। इनमे से दो प्रसिद्ध प्रकरण 'पाच रै' (युद्ध शिविर) तथा 'कळवऴि' (युद्ध क्षेत्र पर प्राप्त शत्रु-सपत्तियो के वितरण पर विजयी राजा का यशोगान) है। इनसे सबधित दो बृहत गीत 'नेटुनल वाटै' तथा कळवऴि नार्पतु हैं।

विंटरनिट्ज *(स० लें०)*

एम० विंटरनिट्ज 'जर्मन यूनिवर्सिटी ऑफ प्राग' (चैकोस्लोवाकिया) मे प्राच्यविद्या और नृवशविज्ञान विभाग मे प्रोफेसर पद पर कार्य करते रहे। इन्होने तीन खडो मे सस्कृत साहित्य का इतिहास' जर्मन भाषा मे लिखा था, जिसका अँग्रेजी मे अनुवाद भडारकर रिसर्च इस्टीच्यूट, पूना मे मराठी-विश्वकोश के सपादक डॉ० एस० वी० केनकर की धर्मपत्नी (जिनकी मातृभाषा जर्मन थी) ने किया था। इस वृहद् इतिहास मे निम्नोक्त विषयो का विवेचन है—प्रथम भाग मे वैदिक साहित्य और 'रामायण', 'महाभारत' तथा 'पुराण' का, द्वितीय भाग मे जैन धर्म और बौद्ध धर्म का तथा तृतीय भाग मे अलकृत काव्य का।

विंदन *(त० लें०)* [जन्म—1916 ई०]

इनका मूल नाम वी० गोविंदन है। इनका जन्म तमिलनाडु की राजधानी मद्रास मे हुआ। स्वतत्रता के बाद तमिल-साहित्य को समृद्ध करने वाले साहित्यकारो मे विंदन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये तमिल के प्रसिद्ध कथाकारो मे से हैं। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं— 'मुल्लक्कोडियाळ्', 'ओरेउरिमै', 'विंदन कदैहळ्', 'समुदाय विरोधीहळ्' (कहानी), पालुम पार्वैयुम' (दे०), 'कण् तिरक्कुमा' (उपन्यास)।

विंदन ने तमिल की लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'कल्कि' के उपसपादक के रूप मे अपने साहित्यिक जीवन का प्रारभ किया। वहाँ से निकलकर इन्होने 'मनिदन' नामक साहित्यिक मासिक पत्रिका का सपादन किया। कुछ समय तक तमिल-चलचित्रो से सबद्ध रहे। इन्होंने चलचित्रो के लिए सवाद और गीत लिखे है। विंदन सामाजिक विषयो को लेकर कहानी लिखने वालो मे प्रमुख हैं। इनकी रचनाओ मे निम्नमध्य वर्ग और निम्न वर्ग के लोगो के जीवन का सजीव चित्रण है। ये लोग *समाज मे क्राति लाना चाहते है परतु ऐसा नही कर पाते।* उनकी दयनीय स्थिति पाठको के हृदय मे उनके प्रति सहानुभूति जगाती है।

विंदन ने अपनी कहानियो मे मार्क्सवादी सिद्धातो का सफल प्रतिपादन किया है। अर्थ को ही सभी समस्याओ का मूल मानते हुए आर्थिक वैषम्य के दुष्परिणामो पर प्रकाश डाला है। विंदन ने प्राय चरित्र-प्रधान कहानियाँ लिखी है। इन चरित्रो का युगीन समाज से घनिष्ठ सबध है। *कथ्य की सत्यता इनकी रचनाओ की शक्ति है।* विंदन स्वय श्रमिको एव निर्धनो के मध्य रहे, अत उनके जीवन का चित्रण करने मे इन्हे विशेष सफलता मिली। इनकी रचनाओ मे आधुनिक समाज का यथार्थ चित्र प्राप्त होता है। अपनी रचनाओ द्वारा विंदन न मनुष्य के सोये हुए आत्म गौरव को जगाने का सफल प्रयास किया है। इनमे खोखली सभ्यता और झूठे प्रेम का उपहास किया गया है। उपन्यासो एव कहानियो मे शिष्ट हास्य एव *तीक्ष्ण व्यग्य की प्रधानता है।* इनकी कहानियो म निंदा-स्तुति अलकार का प्रचुर प्रयोग हुआ है। इनमे कलात्मकता कम है किंतु चरित्रो की सजीवता, प्रभावशालिता, विचारो की गभीरता के कारण इनका तमिल कहानी-साहित्य म विशिष्ट स्थान है।

तमिल के सामाजिक कथाकारा म विंदन का विशिष्ट स्थान है। ये तमिल के उन गिने चुने साहित्यकारो मे से हैं जिन्होंने साम्यवादी दल से सबध न रखते हुए भी अपनी रचनाओ म मार्क्सवादी सिद्धातो का प्रतिपादन सफलतापूर्वक किया है।

विकारविलसित *(म० कृ०)*

यह रचना प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर के 'हैम्लेट' का मराठी भाषातर है। भाषातरकार हैं— गोपाल गणेश आगरकर (दे०)। मराठी के युग-प्रवर्तक साहित्यकार आगरकर ने इसकी उद्बोधक प्रस्तावना भी लिखी है, जिसमे अनुवाद की कठिनाइयो की चर्चा है। इनके मत मे नाटक मे 'पात्रो के अनुरूप उत्कृष्ट-निकृष्ट भाषा का प्रयोग लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक करता है। इस प्रस्तावना के उत्तरार्द्ध मे मूल 'हैम्लेट' नाटक के

गुण-दोषों का भी विस्तार से विवेचन किया गया है। इस अनूदित नाटक में भाषागत लालित्य और सौंदर्य का अभाव है, फिर भी शेक्सपियर की मूलभूत कल्पनाओं की मराठी भाषा में अवतारणा करने में यह सफल हुआ है।

विक्रमांकदेवचरितम् *(सं० कृ०)* [समय—1085 ई० के आसपास]

विल्हण (दे०)-कृत 'विक्रमांकदेवचरितम्' संस्कृत-साहित्य की प्रसिद्ध काव्यकृति है। इसकी रचना विल्हण ने चालुक्यवंशी राजा विक्रमादित्य षष्ठ के राज्य-काल में उन्हीं की महिमा का बखान करने के लिए दक्षिण के कल्याण नामक नगर में की।

18 सर्गों के इस महाकाव्य में आदवमल्ल की मृत्यु, राजकुमारी, चंद्रलेखा के साथ विक्रमादित्य का परिणय, चोलों की पराजय तथा विक्रमादित्य के जीवन की अन्य घटनाओं का विस्तृत वर्णन है। इस ग्रंथ की प्रायः सभी घटनाओं की पुष्टि चालुक्य राजाओं के शिलालेखों से हो जाती है, पर ऐतिहासिक घटनाओं को काव्योचित बनाने के लिए विल्हण इसमें पद-स्थान-परिवर्तन कर लेते हैं।

इस काव्य में बिल्हण ने दक्षिण भारत की राजनीतिक स्थिति तथा तत्कालीन भारतीय समाज का बड़ा ही सुंदर चित्रण किया है। विल्हण यायावर थे। इसका परिचय उनके काव्य में पदे-पदे मिलता है। कवित्व की दृष्टि से भी यह अत्यंत प्रौढ़ रचना है। यद्यपि वीर इसका प्रधान रस है परंतु शृंगार तथा करुण का पुट भी कम मनोरंजक नहीं है। बिल्हण के काव्य में कुछ विलक्षण प्रौढ़ि है जिससे विदग्ध हृदय सदा से इनकी कविता पर रीझता आया है। 'राजतरंगिणीकार' कल्हण (दे०) इस काव्य से पर्याप्त प्रभावित प्रतीत होते हैं।

विक्रमार्कचरित्रमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—चौदहवीं-पंद्रहवीं शती ई०]

इसके लेखक जक्कना (दे०) हैं। ये उत्तम कवि तथा विद्वान् थे और 'अवधान विद्या' में भी निपुण थे। राजा विक्रमार्क के शौर्य, औदार्य आदि से संबद्ध अत्यंत लोकप्रिय कहानियों को इन्होंने उक्त काव्य में निबद्ध किया है। यह आठ आश्वासों में लिखा गया है। वर्णन-पद्धति रोचक है। इसमें दक्षिण के श्रीशैल तथा कुछ अन्य क्षेत्रों के वर्णन भी हैं। शैली प्रौढ़ तथा आलंकारिक है।

विक्रमार्जुनविजय अथवा पंपभारत *(क० कृ०)* [रचना-काल—941 ई०]

कन्नड के आदि महाकवि पंप (दे०) की रचना 'विक्रमार्जुनविजय' कन्नड का एक कृतिरत्न है। महर्षि व्यास (दे०) के 'महाभारत' (दे०) के आधार पर लौकिक काव्य के रूप में पंप ने अपने आश्रयदाता नरेश अरिकेसरी की कथा का संगुंफन करते हुए इस काव्य की रचना की है। पंप द्वारा रचित 'महाभारत' होने के कारण यह 'पंपभारत' भी कहलाता है। पंप जैन थे; उनका उद्देश्य महर्षि व्यास के उद्देश्यों से भिन्न था। तदनुसार उन्होंने कथानक में जो मुख्य परिवर्तन किये हैं, वे इस प्रकार हैं—(1) उन्होंने पांडव तथा कौरवों की कथा का आद्योपांत वर्णन किया है, 'श्रीमद्भगवद्गीता' जैसे प्रसंग इसमें नहीं हैं। (2) द्रौपदी पाँचों पांडवों की पत्नी नहीं है, अर्जुन की धर्मपत्नी है। (3) अर्जुन संन्यासी-वेश में सुभद्रा का अपहरण नहीं करता। अर्जुन-सुभद्रा परस्पर अनुराग में बद्ध रहते हैं, श्रीकृष्ण की सहायता से इंद्रप्रस्थ चले जाते हैं। बलराम को यह ज्ञात नहीं होता। (4) शिशुपाल का वध श्रीकृष्ण को अर्घ्य में दी गई थाली से होता है, चक्र से नहीं। (5) भीष्म से जल-मंत्रोपदेश ग्रहण कर दुर्योधन के वैशंपायन सरोवर में छिपने का वर्णन है। (6) अंत में युधिष्ठिर और द्रौपदी का राज्याभिषेक नहीं होता, अर्जुन और सुभद्रा का राज्याभिषेक होता है। इस प्रकार के परिवर्तनों के कारण कथानक में जहाँ नवीनता का प्रकाश दिखाई पड़ता है वहीं कवि की कठिनाई भी स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने जान-बूझकर ही ऐसा परिवर्तन किया है। वे हित-मित-वचन-रचना-चतुर हैं। "कथा के प्रवाह में कोई बाधा न पहुँचाकर समस्त 'भारत' की कथा को संक्षेप में कहना" उनका उद्देश्य था। इस उद्देश्य में उन्हें सफलता मिली है। यह ध्यान देने की बात है कि 'समस्त भारत' का अर्थ अट्ठारह पर्वों का भारत नहीं है, उन्होंने कथानायक अर्जुन के राज्याभिषेक तक की कथा को ही 'समस्त भारत' माना।

'पंपभारत' की यह विशेषता है कि उसमें नायक अर्जुन (दे०) के चरित्र का जितना उत्कर्ष दिखाया गया है उतना ही उत्कर्ष प्रतिनायक कर्ण (दे०) का भी दिखाया

गया है। पप के कर्ण के कारण ही 'भारत', 'कर्णरसायन' हो गया है। कर्ण की सचाई, कर्ण का त्याग और कर्ण की धीरता अन्यत्र कहाँ ? (12-217) दुर्योधन के पात्र-चित्रण मे भी पप ने उदार हृदय का परिचय दिया है।

पपभारत' की भाषा-शैली अत्यत प्रौढ तथा परिमार्जित है। उसके कवि मे बिंदु मे सिंधु भरने की शक्ति है। जागरूक पाठक कवि के वाग्वैदग्ध्य को देखकर मत्रमुग्ध हो जाता है।

विक्रमोर्वशीयम् *(स० कृ०)* [समय—अनुमानत प्रथम शती ई० पू०]

यह कालिदास (दे०) का दूसरा नाटक है। इस समय तक कवि की प्रतिभा काफी विकसित हो चुकी थी और उसके व्यक्तित्व मे प्रौढता आ चुकी थी। अत इसमे उसके रचना कौशल तथा नाट्यकला का निखरा हुआ स्वरूप दृष्टिगत होता है।

इसमे कवि ने 'ऋग्वेद' (दे० वेद सहिता) तथा 'शतपथ ब्राह्मण' (दे० ब्राह्मण) मे निर्दिष्ट पुरूरवा और उर्वशी के प्रेमाख्यान को बडी सफलतापूर्वक निबद्ध किया है। पुरूरवा नितात उपकारपरायण राजा है। वह राक्षस से उर्वशी का उद्धार कराता है। उर्वशी उसके शौर्य तथा गुणो पर रीझ कर कुछ शर्तों के साथ उसकी रानी बनना स्वीकार कर लेती है। बाद मे उर्वशी के वियोग मे पुरूरवा पागलो जैसा जगल मे मारा-मारा फिरता है। इसमे कवि ने पुरूरवा के उद्दाम प्रेम का चित्रण बडी मार्मिकता से किया है। इसकी भाषा प्रसाद-गुण-युक्त और अलकृत है तथा सभोग तथा विप्रलभ दोनो शृगारो का बडा सफल परिपोष हुआ है। इस नाटक मे कालिदास की नाट्यप्रतिभा की अपेक्षा उनकी काव्य-प्रतिभा अधिक प्रधान रही है।

विगडविक्रमराय *(क० पा०)*

'मस' कवि के विगडविक्रमराय' नाटक का प्रधान पात्र है विगडविक्रमराय। 'विगड' 'विकृत' शब्द का रूपातर है। मानवता के मार्दव स रहित होने और स्वामिद्रोही होने के कारण यह विगड अर्थात् विकृत पात्र है। विक्रमराय मैसूर के महाराजा द्वितीय राजओडेयर का महाप्रधान है। उसमे अधिकार-दर्प है वह चाहता है कि सब लोग उसकी आज्ञा के अनुसार चलें। उसमे विरोधी गुणो की प्रतिष्ठा कर लेखक ने बडी मार्मिकता के साथ उसकी चित्तवृत्ति का विश्लेषण किया है। उसके जीवन मे भयकर काले बादल मँडराते हैं जिनके बीच मे क्षण भर के लिए चमकने वाली बिजली दानवता मे उसकी मानवता की साक्षी है। उसकी असहनशीलता का पर्यवसान महारोष मे—हत्या मे—ही होता है। उसके सामने कोई भी बाधा उपस्थित हो जाये, वह उसे हटाने का दृढ निश्चय कर लेता है, यह उसका स्वभाव है। उसके निष्ठुर हृदय और आत्मकाठिन्य के चित्रण म लेखक को पूरी सफलता मिली है। नाटक मे उसके प्राधान्य को देखकर यह भ्रम हो सकता है कि वही नाटक का नायक है—उद्धत नायक। परतु, विचार करने पर स्पष्ट होगा कि वह नायक नही है, प्रतिनायक है। प्रतिनायक के नाम से ही नाटक का नामकरण हुआ है।

विजयदास *(क० ले०)*

भक्तश्रेष्ठ पुरदरदास (दे०) जी की परपरा मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इनका जन्म रायचूर जिले मे चीकल परवि ग्राम मे शक वर्ष 1604 रुधिरोद्गारी सवत्सर मे हुआ था। दरिद्र परिवार मे उत्पन्न होने के कारण इन्होने जीवन मे बहुत दु ख सहे। परतु भगवान की कृपा से विद्यापारगत ही नही, साधक और भक्त हुए। इन्होने तीन बार काशी की यात्रा की थी। दूसरी बार की यात्रा के समय स्वप्न म इन्हें पुरदरदास जी के दर्शन हुए थे और उनसे दीक्षित होकर दासकूट अर्थात् भक्तो की मडली म सम्मिलित हुए थे। इन्होने अपने इष्टदेव विट्ठल की महिमा और महानता का प्रचार करते हुए भारत मे सर्वत्र भक्ति की तरगें तरगायित की थी। इन्होने पदो के अतिरिक्त 'सुळादि' छद म भी रचना की है। कन्नड-साहित्य मे इनके 'सुळादि' का निश्चित रूप मे विशिष्ट स्थान है। इनके पदो म 'विजय विट्ठल' की छाप मिलती है। ज्ञान, भक्ति और वैराग्य का प्रतिपादन इनके पदो की विशेषता है।

विजयन्, ओ० वी० *(मल० ले०)* [जन्म—1931 ई०]

श्री विजयन् मलयाळम के प्रतिभाशाली उपन्यासकार और कहानीकार हैं। वे राजधानी के सुप्रसिद्ध व्यग्य-चित्रकार और पत्रकार भी हैं।

इनका बहुचर्चित उपन्यास 'खसाकिन्टे इति-

हामम्' कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत है। इसमें उत्तर केरल के एक गाँव के स्त्री-पुरुषों की बहुरंगी कहानी और उस जीवन में घुल-मिल जाने वाले एक पुरुष-नागरिक का सुंदर चित्रण है। इसकी आख्यान-शैली नूतन है और पात्रों के चरित्रों का विकास स्वाभाविक। विजयन की कहानियाँ परंपरागत कथाकथन-शैली के लिए चुनौती हैं।

आधुनिक कथा-साहित्य में एक नवीन धारा के प्रवर्तक के रूप में विजयन् का स्थान महत्वपूर्ण है।

विजयपाल रासो *(हि० ले०)*

इस प्रबंधकाव्य का रचयिता नल्हसिंह भाट है। विजयपाल 1050 ई० के आसपास विजयगढ़ (करौली) के यदुवंशी शासक थे। नल्हसिंह इन्हीं के आश्रित कवि थे। उक्त रचना पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं है, उसके केवल 42 छंद प्राप्त हैं जिनमें विजयपाल के युद्धों का ओजस्वी भाषा में वर्णन किया गया है। काव्यत्व की दृष्टि से यह साधारण कोटि की रचना है। मिश्रबंधुओं (दे०) ने इसका रचना-काल 1298 ई० बताया है, किंतु डा० माताप्रसाद के कथनानुसार भाषा की दृष्टि से यह रचना सोलहवीं-सत्रहवीं शती ई० से पूर्व की नहीं हो सकती।

वैद्य विजयराय *(गु० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

विजयराय कल्याणराय वैद्य सौराष्ट्र के नागर हैं। बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् ये बंबई जाकर कन्हैयालाल मुंशी (दे०) की साहित्य-संसद् में सम्मिलित हुए और 'गुजरात' के संपादक-मंडल के सदस्य बने। फिर क्रमशः 'कौमुदी' और 'मानसी' के संपादक बने। ये त्रैमासिक पत्रिकाएँ गुजराती की उत्कृष्ट कोटि की साहित्यिक पत्रिकाएँ रही हैं। विजयराज के जीवन का अधिकांश समय सूरत के एम० टी० बी० कालेज में गुजराती अध्यापन में बीता। पिछले कुछ वर्षों से निवृत्त होकर ये भावनगर में विवेचनात्मक एवं चिंतनात्मक साहित्य के अनुशीलन-प्रणयन में संलग्न हैं।

विजयराय समीक्षक और इतिहास-लेखक हैं। अत्यंत गहन-गंभीर अध्ययन के पश्चात् उन्होंने 'गुजराती साहित्यनी रूपरेखा' नामक विद्वत्तापूर्ण इतिहास लिखा है जो साहित्य के उत्कृष्ट इतिहास के रूप में सर्वमान्य है। 'साहित्य-दर्शन' और 'जूई अने केतकी' समीक्षा-ग्रंथ हैं। विजयराय गुजराती के चोटी के आलोचकों में हैं जिनके पास विस्तृत अध्ययन, सुरुचि, सूक्ष्म चिंतन और रसलक्षी दृष्टि है। ये निर्भीक, स्पष्टवादी और तटस्थ विचारक हैं। 'लीला मूकांपान', 'शुक्र तारक', 'ऋग्वेद कालनी संस्कृति' वगैरह पुस्तकों में विजयराय की अनुसंधान-अनुशीलन की शक्ति का परिचय प्राप्त होता है।

विजयविलासमु *(ते० कृ०)*

यह चेमकूर वेंकटकवि (दे०) की रचना है। वेंकटकवि 1600 ई० से 1633 ई० तक तंजौर पर शासन करने वाले रघुनाथ नायक की सभा में थे।

चमत्कार से युक्त प्रत्येक पद्य वाले इस काव्य में प्रतिज्ञापालन के लिए देश-भ्रमण करने वाले विजय (अर्जुन) का उलूची, चित्रांगदा और सुभद्रा के साथ विवाह वर्णित है। तीनों नायिकाओं के प्रसंग में कवि ने अद्भुत चातुरी का प्रदर्शन किया है। पाताल-लोक की कन्या, देवलोक की कन्या और मर्त्यलोक की कन्या के शृंगार के वर्णन में कवि ने अद्वितीय कौशल दरसाया है।

वेंकटकवि उपमा, श्लेष और लोकोक्तियों के प्रयोग-कौशल में अतिप्रतिभा-संपन्न कवि थे। अर्थगौरव के साथ रस-योजना में भी कुशल थे। कथा-संयोजन, वर्णन-कौशल तथा शब्द-चमत्कार के कारण दक्षिणांध्र-युग में (रीतिकाल के समकक्ष) वेंकटकवि का विशिष्ट स्थान है।

विज्ञानभिक्षु *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1600 ई०]

अनेक विद्वानों का कथन है कि वर्तमान 'सांख्य-सूत्र' और 'सांख्यप्रवचन-भाष्य'— ये दोनों विज्ञान-भिक्षु द्वारा रचित हैं। इसके अतिरिक्त 'योगवार्तिक', 'ब्रह्मसूत्र' (दे०) पर विज्ञानामृतभाष्य', 'सांख्यसार' एवं 'योगसार' आदि इनके अनेक ग्रंथ हैं।

विज्ञानभिक्षु एक स्वतंत्र मत के विद्वान् थे। इन्होंने अपनी दार्शनिक प्रतिभा से सांख्य एवं वेदांत का समन्वय स्थापित किया था। इसीलिए इनके सिद्धांतों में सांख्य एवं वेदांत के सिद्धांतों का मिश्रण मिलता है। विज्ञानभिक्षु मुक्तावस्था में दुःख का अंत न मानकर दुःखानुभूति का अंत मानते थे। मुक्तावस्था की आनंद-रूपता के विषय में इनका कहना था कि आनंद दुःख-निवृत्ति का ही नाम है। विज्ञानभिक्षु के मतानुसार ब्रह्म, जिसमें मूलरूप से पुरुष एवं प्रकृति अद्वैत भाव से वर्तमान है, जगत् का कारण है। इस प्रकार विज्ञानभिक्षु के

मतानुसार ब्रह्म उपादान कारण एव अधिष्ठान दोनो हैं।

समन्वयवादिता की दृष्टि से विज्ञानभिक्षु का दार्शनिक सिद्धात अत्यत महत्त्वपूर्ण है। इन्होने ब्रह्म मे पुरुष एव प्रकृति की शक्ति को मानकर कार्यकारणवाद का सरल एव मनोवैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

विज्ञानेश्वरीयमु (ते० कृ०) [रचना काल—बारहवी शती ई०]

इसके लेखक मूलघटिक केतना (दे०) है। ये तिक्कना के समसामयिक थे। यह धर्मशास्त्र से सबद्ध ग्रथ है। याज्ञवल्क्य ने आचार-काड प्रायश्चित-काड तथा व्यवहार-काड मे विभक्त एक स्मृति ग्रथ लिखा था जिसकी विज्ञानेश्वर ने मिताक्षरी नामक व्याख्या की थी। उक्त ग्रथ का व्याख्या-सहित तेलुगु-अनुवाद ही 'विज्ञानेश्वरीयमु' है। यह तेलुगु म अनूदित धर्मशास्त्र सबधी पहली रचना है।

विट्ठल (म० ले०) [जन्म—1628 ई०, मृत्यु—1960 ई०]

'बीड' के निकटस्थ गौरीपुर ग्राम के निवासी इस कवि का पूरा नाम था विट्ठल अनत क्षीरसागर। पढरपुर के 'विट्ठल' इनके कुल-देवता थे। इन्होने सस्कृत-काव्यशास्त्र का गहरा अध्ययन किया था। इनकी रचनाएँ हैं—'रुक्मिणीविलास', 'सीतास्वयवर', 'विद्वज्जीवन', 'पाचाली-स्तवन', 'द्रौपदीवस्त्रहरण', 'रसमजरी' और 'बिल्हणचरित्र'। 'सौंदर्यलहरी' और 'रसमजरी' इनके भाषातरित काव्य है। चित्रकाव्य रचना-चातुर्य छद शास्त्र-नैपुण्य का इनकी रचनाओ म सम्यक् प्रदर्शन है।

विडबन (पैरोडी) (पारि०)

ऐसी नवीन रचना को विडबन (पैरोडी) कहा जाता है जो शैली, भाव अथवा चरित्राकन शैली आदि के यथावत् अनुकरण द्वारा हास्य-व्यग्य की सृष्टि अथवा इनके माध्यम से गभीरतर मर्म-व्यजन के उद्देश्य से लिखी गई हो। इसका मूल उद्देश्य सर्वत्र आलोचना अथवा टीका-टिप्पणी करना ही होता है जिसमे उसके रचयिता की कल्पना और सृजन-शक्ति का निश्चय ही योग रहता है।

'पैरोडी' के रूप और माध्यम के क्षेत्र अनत हैं। वह एक छोटी कविता से लेकर सपूर्ण महाकाव्य और उपन्यास तक की, मूल लेखक की रचना शैली से लेकर उसके जीवन-दर्शन तक की तथा इससे भी अधिक व्यापक आयाम मे पूरे-के-पूरे युगीन परिदृश्य की हो सकती है। इस प्रकार 'पैरोडी' मूल कृति के बाह्य रूपाकार के प्रति निष्ठावान रहते हुए उसके अतर्तत्त्व के साथ खिलवाड करती है, जिससे छिछले व्यक्तिगत हास्य से लेकर गभीरतम विद्रूप की निष्पत्ति हो सकती है।

'पैरोडी' मूलत पाश्चात्य साहित्य-विधा है जिसके इतिहास का आरभ विद्वानो न होमर और अरिस्तोफेलेस से माना है। यो अरस्तू के अनुसार हैगमन ('बैटल ऑफ द जायन्ट्स'—पाचवी शती ई० पू०) प्रथम पैरोडीकार है। पश्चिम के अन्य अत्यत उल्लेखनीय पैरोडी-लेखको मे वर्किघम, फीर्ल्डिग, ए० सी० हिल्टन, जेम्स ऑस्टिन, एड्रयू लैग का नाम लिया जाता है। आधुनिक भारतीय भाषाओ म भी 'पैरोडी' की विधा अत्यत लोकप्रिय है।

विदूषक (स० पारि०)

यह नायक का सहायक होता है। इसका नाम किसी फूल अथवा वसत आदि पर होता है, और यह अपनी क्रिया, देह, वेश, भाषा आदि मे हँसाने वाला होता है। यह दूसरो को लडाने मे प्रसन्न रहता है और अपने खाने-पीने की बात को कभी नही भूलता।

विदेशी (शब्द) (हि० पारि०)

इतिहास के आधार पर भारतीय भाषाओं के शब्दो को चार वर्गों मे बाँटा जाता है तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशज। 'विदेशी' का अर्थ है वे शब्द जो देश के बाहर की भाषाओं स आए हो। जैसे हिंदी म फारसी, तुर्की, फारसी, पुर्तगाली, अँग्रेजी आदि भाषाओ स शब्द आए हैं। अब 'विदेशी' शब्द का अर्थ 'दूसरे देश का शब्द' न लेकर भाषाशास्त्री प्राय किसी भी अन्य भाषा स आया हुआ शब्द लेने लगे हैं। अर्थात् वह अँग्रेजी 'फॉरेन' का समानार्थी है। इसीलिए कुछ लोग 'विदेशी' शब्द के स्थान पर ऐसे शब्दो को 'आगत शब्द' या 'गृहीत शब्द' कहना अधिक उचित समझते हैं। इस दृष्टि से हिंदी मे लिए गए सस्कृत शब्द भी उतने ही विदेशी है, जितने तुर्की या अँग्रेजी आदि।

विद्या, चक्रवर्ती *(सं० ले०)* [समय—अनुमानतः 1300-1350 ई०]

श्री विद्या, चक्रवर्ती दक्षिण भारतीय लेखक थे। ये शैव-संप्रदाय के थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ये वीर वल्लाल तृतीय (होयसल) के दरबार में थे। इनका समय चौदहवीं शती ई० का पूर्वार्ध है।

विद्याचक्रवर्ती ने मम्मट (दे०) के 'काव्यप्रकाश' (दे०) पर 'संप्रदायप्रकाशिनी' नामक एक टीका लिखी जिसे 'बृहती टीका' भी कहते हैं। इससे पूर्व इन्होंने 'काव्य-प्रकाश' पर एक लघु टीका भी लिखी थी। इन्होंने रुय्यक (दे०) के 'अलंकारसर्वस्व' (दे०) पर भी 'संजीवनी' या 'अलंकार-संजीवनी' नामक एक टीका लिखी है। ये 'रस-मीमांसा' और 'भरतसंग्रह' के भी लेखक बताए जाते हैं।

विद्याधर *(सं० ले०)*

इनका समय तेरहवीं शती है। इन्होंने 'एकावली' (दे०) नामक एक काव्यशास्त्रीय ग्रंथ मम्मट (दे०) के 'काव्यप्रकाश' (दे०) के आधार पर लिखा। इस ग्रंथ के उदाहरण लेखक ने उत्कल के राजा नरसिंह की प्रशस्ति में लिखे है। इस ग्रंथ की टीका मल्लिनाथ (दे०) ने 'तरल' नाम से लिखी।

विद्यापति *(हिं० ले०)* [जन्म—1368 ई०; मृत्यु—1475 ई०]

विद्यापति कृष्णकाव्य के प्रारंभिक कवि हैं। ये संस्कृत के महान पंडित थे। इन्होंने अपनी अधिकांश रचनाएँ संस्कृत में ही लिखी है। इनके पदों का रूपांतर बँगला में भी पाया जाता है। विद्यापति शैव थे, अतः शिव-संबंधी जितने भी पद मिलते है वे भक्ति से ओतप्रोत है किंतु राधा-कृष्ण-संबंधी पद वासनापरक है। इस रूप में जयदेव (दे०) का इन पर प्रत्यक्ष प्रभाव है।

विद्यापति का काव्य गीति-काव्य है। इनकी कविता में व्यक्तिगत विचार, भावोन्माद, आशा-निराशा अबाध रूप से बहे है। इनके काव्य में शृंगार रस की प्रचुरता है। इनकी 'पदावली' (दे० विद्यापति की पदावली) में भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का दिग्दर्शन सुंदर रीति से हुआ है। अब तक पदावली के तीन महत्वपूर्ण संस्करण प्रकाशित हुए है। बंगाल में श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा विद्यापति के पदों का अत्यधिक प्रचार हुआ था। इन्होंने संस्कृत के साथ-साथ अवहट्ट में भी ग्रंथ और अनेक पद लिखे हैं। 'कीर्तिलता' (दे०) और कीर्तिपताका इनके अवहट्ट के ग्रंथ हैं।

विद्यापति अपने समय के बहुत बड़े कवि एवं बहुज्ञ व्यक्ति थे। ये श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, प्रमाण विद्या, समय विद्या और राज्य-सिद्धांत-त्रयी के विशेषज्ञ थे। कामशास्त्र और सामुद्रिक विद्या का भी इन्हें व्यापक ज्ञान था। निश्चय ही ये सौंदर्य के स्रष्टा थे और उसके उपभोक्ता भी। इस रूप में सौंदर्य इनका दर्शन है और वही इनकी जीवन-दृष्टि है। रूप के चित्रण में कहीं-कहीं ये अधिक स्थूल हो गये हैं। उपमा के प्रयोग में ये बे-मिसाल हैं और कालिदास (दे०) के बाद इनके नाम का परिगणन इस रूप में किसी भी दृष्टि से अत्युक्तिपरक नहीं है।

विद्यापति की पदावली *(हिं० ले०)* [रचना-काल—1410-1414 ई० के बीच]

'पदावली' में संगृहीत पदों की प्रामाणिकता, संख्या तथा पाठ के बारे में काफ़ी विवाद है। विद्यापति (दे०) के पदों को संगृहीत करने का कार्य सर्वप्रथम शारदाचरण मित्र ने किया था और बाद में 1881-82 ई० में जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन (दे०) ने लोगों से सुनकर उनके 82 पद एकत्र किए थे। इस तरह बीसवीं शती से पूर्व कवि के समस्त पदों को एकत्र उपस्थित करने वाला कोई संग्रह या संकलन-ग्रंथ नहीं था। यह आश्चर्य की बात है कि चौदहवीं शती में जन्मे और सोलहवीं शती तक पूर्ण ख्याति-प्राप्त कवि को लेकर वे हिंदी-कवि हैं अथवा बंगाली, वे भक्त हैं अथवा शृंगारिक, वे शैव हैं या वैष्णव आदि अटकलें तो लगती रहीं, पर उन पर कोई ठोस कार्य आधुनिक युग के पहले न हो सका। विद्यापति के पदों का संग्रह करने वालों में नगेंद्रनाथ गुप्त, अमूल्य विद्याभूषण, खगेंद्रनाथ मित्र, रामवृक्ष बेनीपुरी (दे०), विमान विहारी मजूमदार प्रभृति विद्वानों का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है।

विषय की दृष्टि से 'पदावली' के अंतर्गत राधा-कृष्ण के प्रेम का पसारा देखने को मिलता है। इस तरह के पदों में राधा का नख-शिख-वर्णन, रूपमाधुरी का चित्रण, आकर्षण और कृष्ण के हृदय में प्रेम-वैचित्र्य का उदय दिखाया गया है। रूपमाधुरी का यह अपरूप स्रष्टा

रूपसी राधा के रूप को यद्यपि 'जनम-जनम' निहारता रहा था, तो भी 'नयन न तिरिपित भेल' की रट लगाता रहा था। क्या किया जाय, सौंदर्य ही कवि की जीवन दृष्टि है और सौंदर्य ही उसका जीवन दर्शन है, सौंदर्य का ही वह अव्याज चारण है। सौंदर्य का उपासक यह कवि युगधर्म मे इतना बँधा है कि रूप-चित्रण मे नख शिख-वर्णन की परिपाटी का त्याग नही कर सका है।

विद्यापति के गीत अपनी रागात्मकता और मार्मिकता के लिए काफी प्रसिद्ध हैं। लोकचेतना से सपृक्त मात्रिक छद लिखने वालो मे विद्यापति का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता रहेगा। पदावली की भाषा ब्रजभाषा के प्रभाव से युक्त प्राचीन मैथिली है। इसे हम शिथिल रूप मे 'ब्रजबुलि' का प्राचीन रूप ही कह सकते हैं।

विद्यापरिणयन *(स० कृ०)* [समय —अठारहवी शती का पूर्वार्ध]

यह नाटक आनदराय मखी (दे०) द्वारा रचित प्रतीक नाटक है। इसम सात अक हैं जिनमे वेदात के साथ शृगार रस के सामजस्य का निरूपण किया गया है। नाटककार यह दिखलाना चाहता है कि मोक्ष की प्राप्ति मात्र शिवभक्ति द्वारा होती है। जैन-मत, सोम-सिद्धात, चार्वाक, सौगत आदि पात्रो का समावेश ठीक 'प्रबोधचद्रोदय' (दे०) की शैली पर किया गया है। नाटक की भाषा सरल तथा सुबोध है और यह अभिनय के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

विधवा कुमारी *(म० कृ०)* [रचना-काल —1928 ई०]

यह हरिनारायण आपटे (दे०) के सामाजिक उपन्यासो की परपरा मे लिखा गया प्रसिद्ध उपन्यास है जिसके प्रतिपाद्य और शिल्प दोनो पर आपटे की छाप दिखाई पडती है और जिसे पढते हुए उनके 'पण लक्षात कोण घेतो (दे०) का सहज ही स्मरण हो आता है। एक दरिद्र भिक्षुक की बाल-विधवा पुत्री किस प्रकार दृढ-निश्चय, कर्मठता और तजस्विता म अपन जीवन को सफल बनाती है यह इस उपन्यास का विषय है। साथ ही लेखक न गाँव के लोगो—विशेषत स्त्रियों की रूढि-वादी विचारधारा, सकुचित दृष्टिकोण और नवीन प्रति-क्रियावादी विचारों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया का बडा प्रभावशाली चित्रण किया है। प्रसगा के चित्रण मे ही नही, नायिका के उत्कट भावा से तादात्म्य स्थापित कर अपने सिद्धातो के प्रचार मे भी लेखक को अदभुत सफलता मिली है। परतु लेखक के अन्य उपन्यासा के समान इस उपन्यास का भी उत्तरार्ध विश्रृखलित हो गया है और पात्रो के चरित्राकन म अतिरजना तथा अस्वाभाविकता आ गई है। लघुलिपि म लिखा गया प्रथम मराठी उप-न्यास होने का श्रेय भी इस उपन्यास को है।

विनयचद्र *(गु०ले०)* [समय—1269 ई० के आसपास]

प्राचीन गुजराती के जैन कवि विनयचद्र को कही-कही विनयसुदर के नाम से भी परिचित कराया गया है।

'नेमिनाथ चतुष्पादिका' (दे०) तथा 'उएम-मालकहाणय छप्पय' इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है।

'नेमिनाथ चतुष्पादिका' गुजराती का प्रथम बारहमासा काव्य है। (दे०) इनकी दूसरी रचना भी उपदेश-प्रधान है तथा छप्पय' छद मे रची गई है।

प्रकृति-वर्णन, बारहमासा, वियोग-शृगार व अत मे निर्वेदात्मक परिणति आदि के विचार से 'नेमिनाथ चतुष्पादिका' गुजराती की महत्वपूर्ण कृति है और विनय-चद्र महत्वपूर्ण कृतिकार हैं।

विनयचद्र (मुनि) *(अप० ले०)* [रचना-काल—1150-1196 ई०]

भट्टारक विनयचद्र मुनि माथुर सघीय भट्टारक बालचद्र के शिष्य थे। इनकी तीन कृतिया का उल्लेख मिलता है—'चूनडी' (दे०), 'कल्याणक रासु' और णिज्झर पचमी विहाण कहा'। 'चूनडी' मे धार्मिक भावनाओं और आचरणो से रँगी चूनडी पहनने का उप-देश दिया गया है। 'णिज्झर पचमी विहाण कहा' म निर्झर पचमी के पुण्य-विधान की कथा का वर्णन है। इनमें काव्य-चमत्कार का अभाव है।

विनयपत्रिका *(हि० कृ०)*

यह रामभक्तिपरक अनुपम कृति 279 गीता-त्मक पदो का सग्रह है, जिस गोस्वामी तुलसीदास (दे०) ने अनुमानत 1579 स 1581 ई० के मध्य रचा होगा।

यह एक आवेदन-पत्र है जिसे काशी की कुछ जनता से उत्पीड़ित तुलसी ने भगवान् राम के सम्मुख उपस्थित किया। राम जगन्नियंता हैं, उनके दरबार में सीधी पहुँच दुष्कर है; अतएव गणेश, सूर्य, शिव, देवी, गंगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान्, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, श्रीरंग, नरनारायण, बिंदुमाधव, सीता और राम की अनेक स्तुतियाँ हैं। अर्जी पेश करने के लिए कवि ने भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और हनुमान् से सहायता के लिए तथा भगवती सीता से पुरुषकारिता के लिए प्रार्थना की है। लक्ष्मण जी भरत और हनुमान् की रुचि और संकेत पाकर तथा अन्य दरबारियों का रुख देखकर अर्जी को पेश करते हैं, जिसे राम स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ में खंडकाव्य का आभास मिलता है; किंतु प्रथम त्रेसठ एवं अंतिम पदों के अतिरिक्त शेष में कोई क्रम लक्षित नहीं होता, अतएव इसे प्रगीत-काव्य ही मानना ठीक होगा। पदों में तुलसी की अनुभूति निजी एवं हार्दिक है। इनमें संसार को असार एवं असत् बताया गया है तथा दैन्य, पश्चात्ताप, वैराग्य एवं सारल्य की अभिव्यक्ति हुई है।

इसकी भाषा प्रांजल ब्रज है, यद्यपि कहीं-कहीं अवधि, बुंदेलखंडी तथा राजस्थानी के रूप भी लक्षित होते हैं। इसके लगभग प्रथम साठ पदों में संस्कृतनिष्ठ भाषा एवं समास-संकुल पदावली का प्रयोग है, फिर भी तद्भव शब्दों की संख्या कहीं अधिक है। संस्कृतनिष्ठ पदावली की अपेक्षा, सरल पदावली में प्रसादगुण अधिक है। भाषा मुहावरेदार और लोकोक्तियों तथा छेकोक्तियों से पूर्ण है। तेईस रागों में पद लिखे गये हैं। अलंकारों, भावों और रसों का अभाव नहीं। 22, 23, 58, 59, 102, 108, 111, 125, 189वें पदों के सागरूपक विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। कुछ पद तुलसी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हैं।

इस ग्रंथ की अनेक टीकाएँ हैं, जिनमें श्री अंजनीशरण तथा श्री वियोगी (दे०) हरि की टीकाएँ उत्तम हैं। ऑलशिन ने इसका अँग्रेज़ी में अनुवाद किया है।

विनयपिटक *(पा० कृ०)*

यह 'त्रिपिटक' (दे०) का एक (संभवतः प्रथम और सर्वप्राचीन) भाग है जिसका सार है 'पातिमोक्ख' (दे०) अर्थात् बौद्ध भिक्षुओं द्वारा अनिवार्यतः पालनीय आचार-संहिता। यह तीन भागों में विभाजित है—सुत्तविभंग, खंधक और परिवार। सुत्तविभंग के दो उपविभाग हैं—महाविभंग और भिक्खुनीविभंग। खंधक के भी दो उपविभाग हैं—महावग्ग और चुल्लवग्ग। 'पातिमोक्ख' भगवान बुद्ध का सच्चा उत्तराधिकारी कहा जाता है। भगवान् के परिनिर्वाण के बाद बौद्ध भिक्षु उसी से निर्देश लेने के लिए बाध्य था। सर्वप्रथम 'पातिमोक्ख' में 152 नियमों का संग्रह था, किंतु 'त्रिपिटिक' के संकलन के अवसर पर उसमें 227 नियम हो गये। 'पातिमोक्ख' की व्याख्या (विभंग) में नियम-व्यतिक्रम-जन्य पापों तथा उनके प्रायश्चित्तों का वर्णन है। प्रत्येक सुत्त की शब्दशः व्याख्या के अतिरिक्त इसमें यह बतलाया गया है कि भगवान् ने किस अवसर पर अमुक आदेश दिया था।

'महाविभंग' में 8 अध्याय हैं। प्रत्येक में भिक्षुओं के एक अपराध का वर्णन है। इसी के आधार पर भिक्षुणियों के निमित्त पृथक् आचार-संहिता तैयार की गई जो 'भिक्खुनीविभंग' कहलाई। 'खंधक' उन्हीं का परिशिष्ट है जिसके प्रथम भाग 'महावग्ग' में भिक्षुओं के रहन-सहन के सामान्य निर्देश हैं। दूसरे भाग 'चुल्लवग्ग' में 12 अध्याय हैं। प्रथम 9 अध्यायों में छोटे अपराध और उनके दंड या प्रायश्चित्त दिए गए हैं। 10वें अध्याय में भिक्षुणियों के कर्त्तव्य बतलाए गए हैं। ग्यारहवें और बारहवें अध्यायों में राजगृह और वैसाली की संगीतियों का वर्णन है जो स्पष्टतः बाद की रचना है। 'परिवार' में छोटे-छोटे 19 खंड हैं जो प्रश्नोत्तर अनुक्रमणी, परिशिष्ट इत्यादि रूप में हैं। पाण्मासिक उपोसथ व्रत में इन नियमों को पढ़ा जाता था। 'विनयपिटक' में कुछ काल्पनिक और कुछ ऐतिहासिक कहानियों का समावेश नियमों की रक्षता को भंग करने के लिए किया गया है।

विनायकाची कविता *(म० कृ०)* [जन्म—1872 ई०; मृत्यु—1909 ई०]

आधुनिक काल के प्रथमोत्थान (1885-1905 ई०) के कवि श्री विनायक जनार्दन करंदीकर का काव्य-संग्रह है 'विनायकांची कविता'। कवि की मृत्यु के पश्चात् 1920 ई० में इसका प्रकाशन हुआ था।

विनायक जनार्दन करंदीकर समसामयिक राष्ट्रीय जीवन के प्रतिनिधि कवि हैं। 1905-1909 ई० में भारत में राजनीतिक दृष्टि से अशांत वातावरण था। स्वराज्य, स्वदेश का नारा लगाने वाले देशद्रोही कहलाते

थे। क्रांतिकारियो के साथ अमानुपिक व्यवहार किया जा रहा था। ऐसे समय मे उद्‌बोधक काव्य की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति विनायक ने की। विनायक की राष्ट्रीय कविताएँ सामयिक राजनीतिक आदोलनो पर ही हैं। तिलक की हुई कैद, चाफेकर को फाँसी, शिवाजी तथा गणेशोत्सव जैसे राष्ट्रीय पर्व रूस-जापान-युद्ध आदि घटनाओ का चलता-फिरता इतिहास है। इनकी 'शिव-राजदर्शन' 'हृतभागिनी' आदि अन्य रचनाओ मे मुखर रूप से परतत्रता का विरोध है। नप्ट पूर्ववैभव का स्मरण तथा परतत्रता के कारण हुई भारत की अवनत अवस्था पर शोक इन कविताओ मे प्रकट हुआ है। इसी कारण इनमे कही कही निराशा की छाया है। इनका काव्य राजनीतिक स्वातत्र्य की माँग करता है।

अशिक्षित स्त्री वर्ग को प्राचीन इतिहास से परिचित कराने के लिए इन्होने एतिहासिक स्त्री-चरित्रो पर गीत लिखे हैं। 'पन्ना', 'पद्मिनी', 'दुर्गावती', 'सयोगिता' नामक दीर्घ कविताओ मे स्त्री चरित्रो का गौरव-गान है।

इनके काव्य मे भाव का प्राधान्य है और कला गौण है। फिर भी 'वीरमति', 'गणिकोद्धार', मोहानतर' आदि कविताओ मे इनके कलाकार रूप के दर्शन होते हैं।

विनोद-रस-मजरी (त० कृ०) [रचना-काल—1876 ई०]

रचयिता—वीरासामि चेट्टियार (दे०)।

'विनोद-रस-मजरी' एक गद्य-कृति है। इसमे कुछ निबध और कहानियाँ सगृहीत हैं। निबध विविध विषयो से सबद्ध है। कहानियो म कुछ सत्य हैं, कुछ काल्पनिक। इनसे किसी विषय के अनुशीलन की रीति का ज्ञान होता है। तमिल की अधिकाश श्रेष्ठ कृतियाँ पद्यबद्ध है, अत कुछ व्यक्ति ही उनका अध्ययन कर पाते हैं। यह जानकर तथा सामान्य जनता को उन कृतियो से परिचित करान की दृष्टि से वीरासामि चेट्टियार ने इस कृति की रचना की थी। इस कृति मे प्राप्त विभिन्न प्रसिद्ध निबधो एव कहानियो के शीर्षक तथा उनके वर्ण्य-विषय इस प्रकार हैं 'दैवकोट्टै' मे लेखक ने ईश्वर-विषयक अपने विचारो की अभिव्यक्ति की है, 'कर्पुविलैमै' म नारी शिक्षा के महत्त्व तथा नारी के दायित्वो का, 'गीतवातिय विनोदम्' मे वाद्य-वृद का, 'वट्टु अषिदु ओतुरल' मे अच्छी शिक्षा के स्वरूप तथा उसके अनुरूप आचरण की रीति का, 'पयनिल उलवु' अँग्रेजी शासन म कृपको की दीन दशा का, 'कालपेदवियल मे अँग्रेजो के आगमन के पूर्व देश के कष्टो का तथा अँग्रेजो द्वारा उनको दूर किए जाने का वर्णन है तथा 'नन्रि मरवामै' मे लेखक ने पाठको को उपदेश दिया है कि उन्हे ईश्वर तथा सासारिक पूज्य व्यक्तियो द्वारा किए गए उपकार को कभी भी नही भूलना चाहिए। कबर (दे०), ओट्टकूत्तर (दे०), पुहलेंदि (दे०), काळमेळम (दे०), औवैयार आदि कवियो से सबधित निबधो मे लेखक ने इन कवियो का जीवन वृत्त प्रस्तुत करने के साथ-साथ इनके कुछ पदो की व्याख्या भी प्रस्तुत की है। इन कवियो के पदो का आश्रय लेते हुए लेखक ने काव्य-रचना के नियमो की ओर सकेत किया है। इस कृति मे प्राप्त विभिन्न निबध मूलत 'दिनवर्तमानी' नामक साप्ताहिक पत्रिका मे प्रकाशित हुए थे। इनमे निबध के लिए आवश्यक सभी तत्त्व हैं। निबध सरस, मधुर, शैली मे रचित है। स्थान-स्थान पर कहावतो का प्रयोग है। 'विनोद-रस-मजरी' मनोरजक एव ज्ञान-वर्धक कृति है। इनका तमिल-गद्य-साहित्य मे भी महत्त्व-पूर्ण स्थान है।

विपीन (गु० पा०)

श्री ज्योतीद्र दवे (दे० दवे) और धनसुखलाल महेता (दे० महेता) रचित अभेवधा' (दे०) उपन्यास का नायक। विपीन व्यक्ति नही है, शती के आरभ म जन्मे व्यक्ति के रूप म सूरत शहर के जीवन का प्रतीक है। विपीन अपने जन्म के पूर्व से लेकर अपने विवाह तक की बातें आत्मकथन के रूप म कहता है। उसके विवरण वर्णन मे अनायास सूरत शहर का सामाजिक मुखरित हो उठा है।

विपुलानदर (त० ले०) [जन्म—1892 ई०, मृत्यु—1949 ई०]

ये मूलत लका-निवासी थे और इनका निजी नाम 'मयिलवाकनन्' था। रामकृष्ण मिशन म शामिल होकर इन्होने 'विपुलानद' के नाम से विरक्त जीवन बिताया था। सन्यासाश्रम पालन करते हुए ये लका और अण्णामलै विश्वविद्यालयो म कुछ वर्ष तमिल के आचार्य रहे थे। रामकृष्ण मिशन के अँग्रेजी मुख-पत्र 'प्रबुद्ध भारत' के सपादक के रूप म भी इन्होंने कुछ समय काम किया था।

इनका महत् कार्य तमिल संगीत के नष्ट 'याल्' नामक वीणा के समकक्ष उपकरण के स्वरूपों एवं लक्षणों का साहित्य एवं अन्य साक्ष्य के आधार पर निरूपण है। इनकी एक और कृति 'मतंग चूळामणि' नाटक है जो पाश्चात्य एवं संस्कृत नाटक-परंपराओं के प्रभाव के साथ तमिल नाटक के अभ्युत्थान की दिशा दिखाती है।

विप्रदास पिप्लाइ *(बँ० ले०)*

कलकत्ता के निकट बादुड़ा के पास वटग्राम-निवासी विप्रदास के पिता का नाम मुकुंद पंडित था। ये सामवेदी ब्राह्मण थे। 'मनसा-विजय' अथवा 'मनसा-मंगल' (दे०) इनकी कृति है। इसका रचना-काल 1495 ई० है।

इनके द्वारा पयार छंद में लिखित 'मनसा-विजय' में कितना अंश प्रक्षिप्त है—यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। चरित्रों एवं घटनाओं में परिवर्तन हुआ है—इसके अनेक प्रमाण है। इनका कवित्व-कौशल अद्भुत था। इनका छंद प्राणवान है। ये पश्चिम वंग के लोकप्रिय कवि थे।

विप्रनारायणुडु *(ते० पा०)*

ये वैष्णव ब्रह्मचारी थे जो आलवारों में तोंडरिप्पोडि आलवार (भक्ताङ्घ्रिरेणु) नाम से भी जाने जाते हैं। इस भक्त-श्रेष्ठ की कथा को तेलुगु में सारंगु तम्मय्या ने 'वैजयंतीविलासमु' (दे०) नाम से तथा चेदलुवाड मल्लना (दे०) ने 'विप्रनारायण चरित्रमु' नाम से मधुर काव्य-रूप दिया है। ये निष्ठावान् ब्रह्मचारी कावेरी के किनारे श्रीरंगमु में तुलसी-मालाओं से नित्य विष्णु की अर्चना करते हुए जीवन व्यतीत करते थे। देवदेवी नामक एक वेश्या इनके ब्रह्मचर्य का मंत्र करके अपने सौंदर्य की सम्मोहक शक्ति को प्रमाणित करने तथा अपनी सखी मधुरवाणी से शर्त जीतने के लिए विप्रनारायणुडु की शिष्या बनती है और अपनी शृंगारिक चेष्टाओं से उसे डिगा देती है। बहुत समय तक यह देवदेवी का दास बना रहता है और अंत में विष्णु की कृपा से मोह-जाल से मुक्ति पाकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

विभंग *(पा० कृ०)*

यह 'अभिधम्मपिटक' (दे०) का दूसरा खंड है। प्रथम खंड 'धम्मसंगनी' में धर्म का वर्गीकरण और परिभाषाएँ दी गई हैं। उसी परंपरा को इस खंड में भी जारी रखा गया है। यह खंड इस बात को मानकर चलता है कि प्रथम खंड के अध्ययन के बाद ही पाठक इसमें प्रवृत्त होगा। प्रथम खंड के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्त्व भी इसमें जोड़ दिये गये है। इसमें चार उपखंड हैं—प्रथम में बौद्ध धर्म के मूलभूत सिद्धांतों और सच्चाइयों का विवेचन किया गया है; दूसरे में इंद्रिय-जन्य ज्ञान से लेकर बुद्ध-दशा तक के ज्ञान का वर्णन है, तीसरे में ज्ञान के विरोधी तत्त्वों का कथन किया गया है और चौथे में जड़-चेतन, मानव-अमानव जगत् की विभिन्न दशाओं का विवेचन है। इस उपखंड में पौराणिक तत्त्व अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। यह व्याख्यापरक ग्रंथ है जो धर्म के गूढ़ रहस्य को समझाने में महत्वपूर्ण योगदान करता है। इस पर बुद्धघोष (दे०) की 'सम्मोहविनोदिनी' टीका भी है।

विभाव *(पारि०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र में आश्रयगत स्थायी भाव (दे०) के उद्बोधक कारणों को 'विभाव' कहा गया है। ('रत्याद्युद्बोधकाः लेके विभावाः काव्यनाट्ययोः'—विश्वनाथ : साहित्यदर्पण, 3।29)। आश्रयस्थित भाव को उद्बुद्ध कर उद्दीप्त करना भी विभाव का ही कार्य है, अतः दृष्टि से विभाव दो प्रकार के होते है : आलंबन और उद्दीपन। संक्षेप में विभाव काव्य तथा नाटक आदि में रसाभिव्यक्ति के मूलभूत कारण माने गए हैं। इनके अभाव में रस-प्रतीति संभव नहीं है। संस्कृत से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं के काव्यशास्त्र तक विभाव के स्वरूप में कोई परिवर्तन उपस्थित नहीं हुआ। ये अब तक अपने उसी परंपरागत अर्थ में ही ग्रहण किए जाते है।

विभीषण *(सं० पा०)*

यह लंका के राजा रावण (दे०) का छोटा भाई था। इसने ब्रह्मा की घोर तपस्या करने के बाद धर्म-बुद्धि होने का वर माँगा था। अपने दुराग्रही भाई रावण से स्वभाव-विरोध के कारण इनकी आपस में खटपट रहती थी। इसने उसे सीता (दे०) को वापिस करने

का भी बार-बार उपदेश दिया था। दूत-रूप मे आये हनुमान (दे०) का वध नही करना चाहिए, यह उपदेश भी इसने उसे दिया था। राम (दे०) के लका मे प्रवेश करने पर इसने उसकी शरण ली और रावण की युद्ध-व्यवस्था का पूरा परिचय उसे दे दिया। राम-रावण-युद्ध मे स्वय इसने अनेक राक्षसो का वध किया। इस प्रकार इसने राम की विजय मे पर्याप्त सहायता की।

विमलसूरी *(प्रा० ले०)*

ये प्राकृत-साहित्य के प्रसिद्ध रामचरितकार हैं। इन्होने स्वय अपना समय महावीर-निर्वाण के 530 वर्ष पश्चात् बतलाया है। इससे ईसा की प्रथम शती मे इनका होना सिद्ध होता है। *ये नागिलवशीय* राहु के प्रशिष्य थे। इनका 'पउमचरिउ' (दे०) काव्य जैन महाराष्ट्री प्राकृत मे आर्याछद मे लिखा है। रामचरित के अतिरिक्त इसमे सृष्टि-वर्णन इत्यादि पुराण-शैली की विशेषताएँ पाई जाती है।

'वियोगी', मोहनलाल महतो *(हिं० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

इनका जन्म-स्थान उपरिडीह (गया) है। शैशव मे मातृहीन होकर ये वात्सल्यमयी और विदुषी विमाता के हाथो मे पले। काव्य-सृजन की प्रेरणा इन्हे 'रत्नाकर' (दे०) जी के सपर्क और व्यक्तिगत जीवन के किसी आघात से मिली। 'निर्माल्य', 'एकतारा' आदि कविता-सग्रह और 'आर्यावर्त' शीर्षक महाकाव्य इनकी ख्याति के आधार हैं। काव्य के अतिरिक्त इन्होने गद्य-काव्य, सस्मरण, निबध, कहानी, उपन्यास और विवेचनात्मक प्रबध भी लिखे है। इनकी काव्यचेतना छायावादी (दे० छायावाद) है। इनके गीत प्रेम, प्रकृति, रहस्य, राष्ट्र-भक्ति और दलितोद्धार की अनुभूतियो से अनुप्राणित हैं। इनकी प्रेमानुभूति मार्मिक है और प्रकृति-चित्र मनोरम हैं। इनके महाकाव्यो म राष्ट्रीय-सास्कृतिक गौरव को व्यक्त करने की प्रेरणा मिलती है। कवि की राष्ट्रीय भावना युगानुकूल उदार है, अत विदेशी-विधर्मी आक्राताओ का चित्रण भी पूरी सहानुभूति के साथ किया गया है। इनकी शैली मे सहजता और वक्रता का तथा पद-योजना मे परिष्कार और प्रवाह का दुर्लभ योग है। पृथ्वीराज जैसे चरित्रो की सृष्टि इनकी असाधारण प्रबध-प्रतिभा की प्रतीक है।

वियोगी हरि *(हिं० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

इनका जन्म छतरपुर राज्य के ब्राह्मण परिवार म हुआ था। प्रारभ मे ये अद्वैतवादी थे परतु छतरपुर राज्य की महारानी कमलाकुमारी 'युगलप्रिया' के सपर्क से द्वैतवादी कृष्णभक्त हो गय। ये टडन जी के सपर्क से साहित्यिक और गाधी जी के सपर्क से समाज-सुधारक बने। हरिजन-सेवक-सघ से इनका घनिष्ठ सबध रहा है। इनकी सपादित, सकलित और मौलिक रचनाओ की सख्या 50 के लगभग है जिनमे से 'वीर सतसई' का व्रजभाषा-काव्य मे महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी-गद्यकाव्य के विकास मे भी वियोगी जी ने विशेष योगदान दिया है। इनकी भाषा हृदय की माधुरी मे पगी स्निग्ध और सरस है।

विराट टपकु *(गु० कृ०)*

'विराट टपकु' सरोज पाठक (दे० पाठक, सरोज) की कहानियो का सग्रह है। इस सग्रह मे लेखिका की 22 कहानियाँ सगृहीत हैं जिनमे 'विराट टपकु', 'स्वयवर', 'नायक-नायिका', 'सजीवनी', 'अनएक्सपेक्टेड', 'न कौंसमा, न कौंस बहार', 'ए क्षण' तथा 'सन्मान' कहानियाँ सुदर कही जा सकती हैं। शेष साधारण कोटि की हैं। कहानियो म जिस घटना-लोप की चर्चा आजकल चल रही है उसका स्वरूप इन कहानियो म दृष्टिगत होता है। 'विराट टपकु' एक ओर तो घटनाविहीन है और दूसरी ओर चेतना-प्रवाह शैली का उत्तम उदाहरण भी। शेष उक्त कहानियाँ मानसिक सवेदना को बडे ही सूक्ष्म स्तर पर पकडने की क्षमता रखती हैं। 'न कौंसमा, न कौंस बहार' कहानी शैली की दृष्टि से उल्लेखनीय है एक ही साथ चेतना के दोनो धरातल स्पर्श करती चलती है। अतिवास्तविकता के स्तर-बिंदु कहानियो मे अनक स्थलो पर आते-आते रह गए हैं, या यो कहे कि लेखिका ने बडे ही साकेतिक भाव मे उन्हें व्यक्त कर दिया है और स्थूलता से मुक्ति पा ली है। इस प्रकार निराकारिता स पूर्ण किंतु सवेदनामयी कहानियाँ गुजराती मे कम ही मिलती हैं। यदि भूमिका-लेखक जयत खत्री क शब्दो मे कहे तो सरोज पाठक की कहानियाँ अपने समय से आगे की हैं—भावी कहानी के लक्षण प्रस्तुत करती हैं।

विराटा की पद्मिनी *(हि० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष —1936 ई०]

वृंदावनलाल वर्मा का यह उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास न होकर एक ऐतिहासिक रोमांस है जिसमें लेखक ने विभिन्न कालों में घटित घटनाओं को एक सूत्र में पिरो दिया है। उपन्यास के पात्रों के नाम भी काल्पनिक हैं; किंतु लेखक ने जिस युग को आधार बनाया है उसके साथ कथानक और पात्रों की संगति पूर्णतः बनी रहती है। दुर्गावतार के रूप में चित्रित अनिंद्य सुंदरी कुमुद इस उपन्यास की धुरी है जिसके माध्यम से उपन्यासकार ने सामंती राजाओं की स्वेच्छाचारिता, दरबारियों की चालबाजी तथा राजपूत रमणियों के उत्सर्ग को साकार किया है। मुगल-साम्राज्य की निर्बलता तथा नवाबों की लोलुपता भी यथास्थान पूरी तरह उभर कर आई है। कुमुद तथा कुंजरसिंह का आदर्श प्रेम तथा उसका करुण अंत इस उपन्यास का मुख्य आकर्षण है। कुमुद की रक्षा के लिए कुंजर अपना सर्वस्व होम देता है और कुमुद भी कुंजर के लिए स्वयं को बेतवा में विलीन कर देती है। क्षणभर में ही रुष्ट तथा क्षणभर में ही प्रसन्न हो उठने वाला राजा नायकसिंह, कुटिल राजनीतिज्ञ मंत्री जनार्दन शर्मा, अपनी आन पर प्राणोत्सर्ग करने वाला तथा उतावले स्वभाव का सेनापति लोचन सिंह, अवसरवादी तथा कपटी नौकर रामदयाल, वीर, चतुर किंतु निःसहाय छोटी रानी आदि अन्य अनेक पात्र भी अपने वैशिष्ट्यों के कारण पाठक के स्मृति-पटल पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाते हैं। शैली-शिल्प की दृष्टि से इसमें वर्णनात्मकता के प्रति ही अधिक आग्रह रहा है; केवल प्रेम-संबंधी प्रसंगों में ही भावात्मकता परिलक्षित होती है। आंचलिक शब्दों का प्रयोग करते हुए बुंदेलखंडी जीवन की समूची विशेषताओं को सहज रीति से रूपायित करना वर्मा जी की लेखन-शैली की निजी विशेषता है और प्रस्तुत उपन्यास भी इसका अपवाद नहीं है।

विराम-चिह्न *(हि० पारि०)*

विराम-चिह्न पूर्णविराम, अर्द्धविराम, अल्पविराम आदि उन चिह्नों को कहते हैं जिनका लिखने में प्रयोग किया जाता है। विराम-चिह्न नाम से यह स्पष्ट है कि इनका मुख्य काम है किसी लिखित सामग्री के पाठक को यह बताना कि उस सामग्री को पढ़ने में वह कहाँ-कहाँ रुके, और कितनी देर तक रुके। उदाहरण के लिए जहाँ पूर्णविराम हो वहाँ पाठक अधिक देर तक रुकता है, जहाँ अर्धविराम हो, उसमें कम देर तक रुकता है और जहाँ अल्पविराम हो, वहाँ और भी कम देर तक। किंतु वस्तुतः विराम-चिह्नों का कार्य मात्र यही नहीं है। विराम-चिह्न समवेततः निम्नांकित कार्य करते हैं: (क) पढ़ने या बोलने में रुकने का संकेत, (ख) रुकने के लिए अपेक्षित समय का संकेत, (ग) पढ़ने में सुरलहर (intonation) का संकेत। उदाहरण के लिए पूर्णविराम तीन प्रकार का होता है: सामान्य पूर्णविराम, प्रश्नवाचक पूर्णविराम, आश्चर्यसूचक पूर्णविराम। कहना न होगा कि मूलतः तीनों ही पूर्णविराम हैं। तीनों का अंतर यह है कि एक संकेत करता है कि कथन सामान्य है, अतः वाक्य की सुरलहर सामान्य होगी, दूसरा प्रश्नवाचक है अतः सुरलहर प्रश्नवाचक होगी और तीसरा आश्चर्यसूचक है अतः सुरलहर आश्चर्यात्मक होगी। (घ) 'क' और 'ग' का घनिष्ठ संबंध अर्थ से है, अतः विराम-चिह्नों से अर्थ का भी स्पष्टीकरण होता है। 'जाओ मत रुको' का कोई अर्थ नहीं है। यदि 'जाओ' के बाद विराम-चिह्न है तो एक अर्थ होगा और 'मत' के बाद है तो दूसरा। इसी तरह 'सुंदर लड़के और लड़कियाँ' का एक अर्थ है और 'सुंदर लड़के' और 'लड़कियाँ' का दूसरा। वाक्य में अर्थ-वर्ग को अलगाने का काम भी विराम-चिह्न करते हैं। प्रत्यक्ष (Direct) कथन में उद्धरण-चिह्न का मुख्य काम यही होता है। (ङ) कभी-कभी केवल स्पष्टता के लिए भी विराम-चिह्नों का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए जब किसी एक शब्द के दोनों ओर इकहरा या दुहरा उद्धरण-चिह्न लगाते हैं तो यही उद्देश्य होता है। उदाहरणार्थः 'अ' स्वर का प्रयोग हिंदी में 'ए' स्वर की तुलना में अधिक होता है। एक पंक्ति के अंत में आने वाले शब्द को जब तोड़ा जाता है तो योजक-चिह्न का प्रयोग भी स्पष्टता के लिए ही होता है ताकि पाठक समझ जाये कि उसका शेषांश भी है, और वह दूसरी पंक्ति के प्रारंभ में है।

विरुतन् शंकु *(मल० पा०)*

कारोट् अच्युत मेनन द्वारा रचित इसी नाम के उपन्यास का यह प्रमुख पात्र है। अपने परिवार के बुजुर्गों के दुर्व्यवहार से तंग आकर घर छोड़ने वाला विक्रमन विरुतन् शंकु के नाम से डाकुओं का सरदार बन जाता है और अनेक चमत्कारपूर्ण कार्य करने के बाद दुबारा अपने

सघ के सदस्यो सहित दस्यु वृत्ति छोडकर अच्छा नागरिक बनता है।

इसके चरित्र का विकास लेखक ने पाठको के कुतूहल को विकसित करने और आश्चर्य की भावना को बढाने की दृष्टि से ही किया है। तीन दिन की अवधि मे यह चालाकी और होशियारी से कई लोगो को धोखा देता है। इन घटनाओ का वर्णन इतनी सरसता के साथ किया गया है कि मलयालम भाषा म विरुतन् शकु एक मुहावरा बन गया है जो किसी भी चालाक व्यक्ति को सबोधित करने के लिए प्रयुक्त होता है।

विरेचन *(पारि०)*

यह अरस्तू द्वारा निरूपित यूनानी काव्यशास्त्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्धात है। इसने देश और काल के बृहद् आयामो मे सपूर्ण पाश्चात्य साहित्य चिंतन को प्रभावित किया है। चिकित्साशास्त्र से गृहीत 'कथार्सिस (विरेचन) शब्द का प्रयोग अरस्तू ने अपने काव्यशास्त्र मे 'त्रासदी' (दे०) के विवेचन के सदर्भ मे इस प्रकार किया है '+ + त्रासदी किसी गभीर स्वत पूर्ण तथा निश्चित आयाम से युक्त कार्य की अनुकृति का नाम है + + + जिसमे करुणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा इन मनोविकारो का उचित विरेचन किया जाता है। यूनानी चिकित्साशास्त्र मे उदर विकारो क उपचार के लिए रेचक औषधियो का प्रयोग बहुत प्रचलित था। इसी के आधार पर साहित्य के सदर्भ मे विरेचन का लाक्षणिक अर्थ है कि त्रासदी के प्रेक्षण से प्रेक्षक के अत सस्कारो मे स्थित कटु, गर्हित एव दु खद मनोविकार उद्रिक्त और उत्तेजित होकर निराकृत हो जाते हैं। विरेचन की अतिम प्रक्रिया म उद्वेगो के शमन द्वारा प्रेक्षक की चेतना शुद्ध और शात हो जाती है। इस प्रकार विरेचन के इस रूपक मे 'त्रासदी' का अर्थ है—रेचक औषधि 'रेचन-प्रक्रिया' का अर्थ है—त्रास और 'करुणा के उद्रेक' द्वारा मनोविकारो के उत्तेजन और उद्वेगो के शमन द्वारा मानसिक वैशद्य की प्राप्ति। साहित्य म त्रासद और कारुणिक स्थितियो के चित्रण से निष्पन्न कलास्वाद अथवा काव्यानद किस प्रकार सभव होता है, पश्चिम म उसका प्रतिनिधि समाधान 'विरेचन-सिद्धात ही है। इसी सिद्धात के आधार पर पाश्चात्य काव्यशास्त्र के समर्थ आधुनिक आलोचक आई० ए० रिचर्ड्स न 'प्रवृत्तियो के समजन' का अपना प्रसिद्ध सिद्धात प्रतिपादित किया।

विरोधाभास *(पारि०)*

अलकारशास्त्र मे निरूपित एक प्रमुख वैषम्य-मूलक अर्थालकार है 'विरोधाभास'। विरोधाभास' का द्रव्य क्रिया, गुण, जाति आदि विषयक यह विरोध जैसाकि इसके शाब्दिक अर्थ से स्वत स्पष्ट है वास्तविक विरोध न होकर केवल प्रतीयमान विरोध होता है। मम्मट (दे०) ने विरोध की सत्ता न होने पर भी विरोध की प्रतीति हो, ऐसी उक्ति मे विरोधाभास की स्थिति स्वीकार की है (काव्यप्रकाश 10।110)। आचार्य विश्वनाथ (दे०) और अप्पयदीक्षित (दे०) के अभिमत को स्वीकार करत हुए हिंदी के रीतिकालीन और आधुनिक आचार्यो ने विरोधाभास' और विरोध' को अभिन्न माना है। विश्व के काव्य म इस वैषम्यमूलक अलकार के अनेक सुदर और मार्मिक प्रयोग प्राप्य है।

विर्क, कुलवतसिह *(प० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

कुलवतसिह विर्क पजाबी के प्रथम पक्ति के कथाकारो मे से हैं। विर्क न पजाब के ग्रामीण जीवन के क्रूर यथार्थ को बडी कुशलता से प्रस्तुत किया है। इन्हे नागरिक जीवन की विषमताओ और विसगतियो का भी गहरा परिचय है और मध्यवर्गीय समाज की यौन-कुठाओ पर इन्होने बडी सफल कहानियाँ लिखी हैं।

कुलवतसिह विर्क को अपने कहानी-सग्रह के लिए साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

प्रमुख रचनाएँ — छाह वेला','धरती ते आकाश', 'तूडी दी पड' (दे०), 'एक्स के हम बारह', 'दुध दा छप्पड' (कहानी-सग्रह)।

विलासवती-कथा *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1066 ई०]

विलासवती-कथा के रचयिता श्वेताबर सप्रदाय के मुनि सिद्धसेन सूरि हैं। उनका जन्म-स्थान गुजरात मे अहमदाबाद के समीप धधुका नगर था। वे यशोदेव सूरि के शिष्य थे।

यह कृति ग्यारह सधियो की रचना है। कथा सक्षेप मे इस प्रकार है। श्वेताभी नामक नगरी मे यशोवर्मा नामक राजा का पुत्र सनत्कुमार अत्यत सुदर और गुणवान् था। कोतवाल के चारो को छुडवाने के कारण राजा के उस पर क्रुद्ध होने के कारण वह रूठ कर अपन

मित्र वसुभूति के साथ राजा ईशानचंद्र की नगरी ताम्रलिप्ति में चला गया। वहाँ राजकुमारी विलासवती पर अनुरक्त हो गया। वसुभूति को विलासवती की सेविका अनंगसुंदरी से ज्ञात हुआ कि राजकुमारी भी सनत्कुमार के वियोग में व्याकुल रहती है। इसी बीच राजकन्या की माता राजरानी अनंगवती ने सनत्कुमार पर मुग्ध हो उसमें काम प्रस्ताव रखा। कुमार के अस्वीकार करने पर अनंगवती ने उस पर दोषारोपण किया जिसमें राजा ने क्रुद्ध हो उसके वध का आदेश दिया। किंतु कोतवाल विनयंधर की सहायता से जहाज़ पर सवार हो वसुभूति के साथ स्वर्णभूमि में पहुँच गया। वहाँ उसकी भेंट बाल्यमित्र मनोरथदत्त से हुई। कुमार ने अपने मामा के पास सिंहलद्वीप जाना चाहा। मनोहरदत्त ने विदाई के समय कुमार को नयनमोहन नामक ऐसी रत्न-जटित चादर भेंट की जिसे ओढ़ने वाला सबको देख सकता था किंतु उसे कोई नहीं देख सकता था। मार्ग में तूफ़ान तथा ज्वार-भाटे से जहाज़ छिन्न-भिन्न हो गया। तीन दिन-रात समुद्र में बिताकर एक काष्ठफलक की सहायता से वह समुद्र-तट पर जा लगा। वहीं मदनमंजरी नामक तापसी विद्याधरी से कुमार को विलासवती का पता चला और दोनों का विवाह हो गया।

कुछ दिनों के बाद सानुदेव सार्थवाह के पुत्र ने विलासवती के रूप के लोभ से सनत्कुमार को समुद्र में धकेल दिया। भाग्य से सनत्कुमार और विलासवती का मिलन हो गया किंतु फिर दोनों वियुक्त हो गये। विद्याधरों की सहायता से सनत्कुमार ने पुनः विलासवती को प्राप्त कर लिया। विद्याधरपति से सनत्कुमार ने अजितबला नाम की महाविद्या प्राप्त की। तापस वेशधारी मित्र वसुभूति से उसका मिलन हुआ। इस विद्या के बल से उसने अनंगरति नामक विद्याधर द्वारा विलासवती के अपहरण कर लिये जाने का पता लगा लिया। वह अनंगरति को युद्ध में पराजित करके राजा बन गया। कुछ दिनों के बाद सनत्कुमार विलासवती और विद्याधरों के साथ अपने माता-पिता से मिलने गया। वापिस आने पर उन दोनों के अजितबल नामक एक पुत्र हुआ। पुत्र के युवा होने पर युवराज पद पर उसका अभिषेक किया गया। इसी बीच विद्याधर श्रमण से पूर्वभवों का वृत्तांत सुनकर सनत्कुमार को विरक्ति हुई और घर-बार छोड़कर कठोर तपस्या द्वारा निर्वाण प्राप्त करने चला गया।

इस कृति के कथानक में धार्मिक वातावरण की प्रधानता न होकर लोक-जीवन की भी सत्ता है। कथानक सुगठित और सरल है। इसमें प्रवाह और गतिशीलता है। बीच-बीच में नाना वस्तुओं के सरस वर्णनों से रोचकता और काव्यात्मक सौंदर्य उत्पन्न हो गया है। वस्तु-वर्णन अलंकृत शैली में न होकर लोक-प्रचलित शैली में है। अन्य अपभ्रंश-काव्यों के समान दैव-संयोग और आकस्मिक घटनाओं की योजना से कथा में कुतूहल और उत्सुकता का समावेश किया गया है।

रूप-वर्णन रीतिशास्त्र से प्रभावित न होकर स्वतंत्र रूप से छवियों का अंकन है; वस्तु का यथार्थ संश्लिष्ट वर्णन है।

विभिन्न परिस्थितियों में मानव-मन में उत्पन्न विविध भावों का वर्णन स्वाभाविक है।

यह कृति विप्रलंभ-प्रधान प्रेम-काव्य है। यथावसर शृंगार, वीर, वीभत्स, भयानक, रौद्र रसों की व्यंजना हुई है। समाप्ति शांत रस में होने पर भी प्रधानता विप्रलंभ शृंगार की ही है।

इस कृति में स्थान-स्थान पर प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र अंकित हुए हैं।

इसकी भाषा अपभ्रंश है किंतु संस्कृत और प्राकृत-पदावली से प्रभावित है। बीच-बीच में लोकोक्ति, मुहावरे, सूक्ति और नाना अलंकारों से अलंकृत है।

विलासिनी *(मल० ले०)* [जन्म—1928 ई०]

प्रतिभा-संपन्न उपन्यासकार एम० के० मेनन 'विलासिनी' के छद्म नाम से साहित्य-रचना करते हैं। विदेशों में अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर कार्य करने के बाद आजकल अंतर्राष्ट्रीय समाचार-संस्था ए० एफ० पी० में दक्षिण-पूर्व एशिया के निदेशक हैं। इनके उपन्यास 'इणङ्ङत्ति कण्णिकळ्', 'निरमुळ्ळ निप्लुकळ्', 'ऊञ्ञाल्' और 'चुंटेली' हैं। एक कविता-संग्रह 'कैत्तिर' भी प्रकाशित हुआ है।

विश्व की साहित्यिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक धाराओं से पूर्णतः अभिज्ञ 'विलासिनी' के उपन्यासों में अपने इस विपुल-व्यापक ज्ञान का प्रभावपूर्ण प्रयोग दर्शनीय है। 'इणङ्ङत्ति कण्णिकळ्' मलयाळम का प्रथम दार्शनिक उपन्यास है।

थोड़े ही समय में इन्होंने उपन्यासकारों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। मलयाळम-साहित्य को इनसे अभी बहुत-कुछ प्रत्याशाएँ हैं।

विलोम *(हि० पारि०)*

विलोम, विलोमार्थी या विपर्याय शब्द उन्हे कहते हैं जिनके अर्थ आपस मे उल्टे हो, जैसे अच्छा-बुरा, बडा-छोटा, ऊपर-नीचे, भारी-हलका। बहुत से ऐसे शब्द हैं जिन्हे सामान्यत 'विलोम' समझा जाता है, किंतु जो वास्तविक रूप मे विलोम होते नही। उदाहरण के लिए 'फूल' का विलोम यदि 'काँटा' है तो 'पत्ती' क्यो नही है, या 'जल' का विलोम 'थल है तो 'आकाश' क्यो नही है। वस्तुत ऐसे विलोम सीमित दृष्टि से ही विलोम कहलाने के अधिकारी हैं। इस प्रकार देखें तो एक शब्द के एकाधिक विलोम भी हो सकते हैं लबा-गोल (उसका मुंह लबा है किंतु उसका गोल है), लबा-नाटा (राम लबा है किंतु मोहन नाटा है), राजा-रक, राजा प्रजा। यह आवश्यक नही कि भाषा के सभी शब्दो के विलोम हो ही। उदाहरण के लिए गमला, तीमरा, अँगूठी, बिजली, पक्षी आदि के विलोम नही।

विल्लिभारतम् *(त० कृ०)* [समय—ई० चौदहवी शती]

इसकी गणना तमिल के उत्कृष्ट महाकाव्यो म होती है। यह 'विल्लिपुत्तुराळ्वार्' नामक परम वैष्णव भक्तकवि द्वारा रचित महाभारत इतिहास का तमिल रूप है। महर्षि व्यास (दे० वेदव्यास) प्रणीत 'महाभारत' (दे०) पर आधारित होने पर भी यह कृति-तमिल प्रदेश की अपनी वस्तु है और इसके विभिन्न कथा-भाग तमिल भूमि की परपरा एव सस्कृति के रगो से रँगे मिलत हैं। उदाहरण के लिए अर्जुन (दे०) की तीर्थ-यात्रा का वर्णन तमिल भू-खड के प्रसिद्ध मदिरो को समेटे हुए चलता है।

इस काव्य म मूल महाभारत के प्रथम दस पर्व तक की कथा का निर्वाह हुआ है। शेप पर्वो को छोड दने का कारण यह कहा जाता है कि कृष्ण और पाडवो की जीवन-समाप्ति तक कथा ले जाना काव्य-प्रणेता को अप्रिय था। उपलब्ध पद्यो की सख्या (मतुरै तमिल 'सङ्कम्' सस्करण के अनुसार) 4330 है। इस वृहत् पद्यराशि-निबद्ध महाकाव्य की विशेपताएँ है—विविध चययुक्त 'विरुत्तम्' छदो का प्रयोग, सस्कृत तत्सम एव तदभव शब्दावली का सुरुचिपूर्ण मिश्रण, उदात्त शैली, सजीव पात्र-सृष्टि एव कथोपकथन तथा कथा-प्रसगो का नाटकीकरण। रचनाकार का उद्देश्य केवल कथा-निर्वाह नही वरन् कथा के प्रस्तुतीकरण मे स्फूर्ति एव नाटकोचित आस्वाद लाना है। अत उन्होने इस काव्य का श्रीगणेश करने वाले देश, राजधानी आदि के परपरागत वर्णनो को छोड दिया है तथा बीच से कथा का आरभ कर दिया है जिससे पाठक को पूर्वापर सबध जोडने म कष्ट होता है। पात्र चित्रण विलक्षण प्रभाव से युक्त है, कर्ण (दे०), दुर्योधन तथा सहदेव—ये तीनो पात्र अविस्मरणीय रूप स उभर कर आये हैं। कर्ण की मृत्यु के प्रसग का प्रस्तुतीकरण इस महाकाव्य म विशिष्ट कथोपकथन एव तदनुकूल छद-निर्वाह के लिए प्रसिद्ध है। हृदय-भेदी तीर निकालकर, बहते हुए रक्त म कर्ण अपने सचित पुण्य फल का दान विप्रवेशधारी कृष्ण को करता है और उस विप्र से बस यही वर माँगता है कि जन्मजन्मातर म भी दानार्थियो से कभी 'नास्ति' कहन का मन उनका न हो। प्रस्तुत रचना पर 'चङ्कम्' पद्य-सग्रह, 'कुरळ्', आळ्वार सतो के गीत 'कवरामायणम्' (दे०) इत्यादि पूर्ववर्ती साहित्य का प्रभाव द्रष्टव्य है। कवर (दे०) के समान अनन्य विष्णुभक्त होने से रचनाकार ने इसमे भी यत्र-तत्र विष्णु भगवान के प्रति अतिशय भक्ति प्रकट की है पर साथ ही अन्य देवताओ के प्रति भी उचित आस्था दर्शायी है।

विल्लिपुत्तूरर् *(त० ले०)* [समय—चौदहवी शती]

ये रामानुज सप्रदाय के वैष्णव ब्राह्मण थे। इनका जन्मस्थान तमिल प्रदेश के मध्यवर्ती भू-भाग म स्थित 'सनियूर' है और इनके आश्रयदाता 'वरपतियाट् कोटान्' नामक प्रभु मान जाते हैं। तमिल पद्यबद्ध 'महाभारत' की रचना न इन्हे अमर यश प्रदान कर दिया है। अपनी इस वृहत् काव्य-कृति म इन्होने मूल ग्रथ के प्रथम दस पर्वो तक की कथा का निर्वाह किया है फिर भी कुल 4339 पद्यो स युक्त होकर यह काव्य विपुलाकार बन गया है। महाकाव्योचित सरस वर्णन, लयबद्ध छद-योजना, भाव-वैविध्य, नाटक-दृश्यो के समान कथा-प्रसगो का सगठन—य इस काव्य को विलक्षण बनान वाले हैं। (दे० 'विल्लि पारतम्')। तमिल भाषा म दो और पद्यात्मक 'महाभारत' रचनाएँ उपलब्ध हैं पर य 'विल्लिपुत्तुरर्' की कृति की-सी लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सकीं।

विल्हण *(स० ले०)* [समय—ग्यारहवीं शती का उत्तरार्ध]

कश्मीर की समृद्ध साहित्य-परपरा म विल्हण

भी प्रमुख स्थान के अधिकारी हैं। इनके पिता का नाम ज्येष्ठकलश तथा माता का नाम नागदेवी था। इष्टराय तथा आनंद इनके दो भाई थे। बिल्हण पर्यटनशील स्वभाव के थे। कश्मीर से निकलकर घूमते-घूमते मथुरा, कन्नौज, प्रयाग, काशी, होते हुए ये दक्षिण भारत के कल्याण नगर जा पहुँचे। वहाँ के चालुक्यवंशीय राजा विक्रमादित्य षष्ठ (1076-1127 ई०) ने इनका बड़ा स्वागत किया। इन्हीं के यश एवं गुणों से प्रभावित होकर इन्होंने 'विक्रमांकदेवचरितम्' (दे०) नामक महाकाव्य की रचना की।

उक्त काव्य के आधार पर ही बिल्हण संस्कृत-साहित्य में अमर हैं। इसमें इन्होंने अपने आश्रयदाता नरेश विक्रमादित्य षष्ठ तथा उनके वंश का विशद विवरण प्रस्तुत किया है। ऐतिहासिक घटनाओं के निर्देश करने में कवि ने इतनी तत्परता दिखाई है कि यह काव्य कल्याण के चालुक्यवंशी नरेशों का इतिहास जानने के लिए परम उपयोगी बन गया है। वैदर्भी रीति में निबद्ध इस काव्य में माधुर्य तथा प्रसाद का पर्याप्त पुट है। वीर रसप्रधान इस काव्य की सूक्तियाँ विदग्धों की जिह्वा पर नाचा करती है और वे इनकी कविता पर रीझ उठते हैं।

ये राजदरबार में कविजनों के रखने तथा प्रतिष्ठा देने के प्रबल पक्षधर हैं। ये कहते हैं कि राम का यश फैलाने तथा रावण के यश के संकुचित होने के एक-मात्र कारण वाल्मीकि (दे०) हैं।

विवेक अने साधना *(गु० कृ०)*

स्वामी केदारनाथ जी द्वारा रचित तथा श्री किशोरलाल मशरूवाला (दे०) एवं श्री रमणीकलाल मोदी द्वारा अनूदित तथा संपादित 'विवेक अने साधना' नामक ग्रंथ आध्यात्मिक चिंतन-मनन व अनुभव का ग्रंथ है।

ग्रंथकार ने 1904 ई० में इक्कीस वर्ष की आयु में संसार से विरक्त होकर गृहत्याग किया और पैदल यात्रा कर देश-दर्शन भ्रमण किया। इन्होंने हिमालय में कई वर्ष बिताये व योग-साधना भी की। मानव-सेवा का व्रत लेकर संसार के बीच वैरागी बनकर रहना तथा देश-सेवा करना इनका संकल्प था। 'नाथजी' के संक्षिप्त संबोधन से परिचित इनके शिष्य व भक्तों का एक छोटा समुदाय था। गांधीजी से भी इनकी घनिष्ठता थी। सिद्ध योगी व ब्रह्मनिष्ठ पुरुष के रूप में ख्यात 'नाथजी' को युवावस्था में व्यायाम का शौक था। तब ये बड़े क्रांतिकारी थे।

ग्रंथ का प्रथम खंड विवेक दर्शन से संबद्ध है। सामूहिक ध्येय, मानवता का गौरव, स्तुति की सामर्थ्य, भक्ति, तत्त्वज्ञान, साध्य-साधन विवेक, व्यक्त-अव्यक्त विचार, सामुदायिक कर्म, कर्मफल, संतों का उपकार आदि विषयों पर इस खंड में विचार किया गया है। साधना-विषयक दूसरे खंड में प्रथम भाग में विवेक, निद्रा-त्याग, निश्चय-शक्ति, समय का सदुपयोग, दृढ़ शरीर और पवित्र मन की आवश्यकता, आदि गुणों का महत्व व उनकी प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। दूसरे भाग में धर्म्य-व्यवहार, विद्यार्थी अवस्था, ब्रह्मचर्य पालन, गृहस्थाश्रम की दीक्षा, प्रजावृद्धि की मर्यादा, प्राकृतिक प्रेरणा व संयम, परिश्रम सुख के विषय में धर्म्य विचार आदि का चिंतन किया गया है। तीसरा विभाग चित्त के अभ्यास से संबद्ध है। इसमें ध्यान, लय, चित्तशोधन, संकल्प, ज्ञानमय जाग्रत अवस्था, आदि योग संबंधी विषयों का अनुचिंतन किया गया है। 386 पृष्ठों का यह ग्रंथ पहली बार नवजीवन प्रकाशन से 1951 ई० में प्रकाशित हुआ था।

अनुवाद की भाषा बड़ी सरल है। अनुवादक-द्वय विषय के भी ज्ञाता हैं। गुजराती में धार्मिक-आध्यात्मिक विषयों पर रचित ग्रंथों में इस अनूदित ग्रंथ का अपना विशिष्ट महत्व है। चिंतन की प्रक्रिया सुलझी हुई और विषय-निरूपण भी बड़ा सरल है। गंभीरता का बोझ कहीं प्रतीत नहीं होता।

विवेकचिंतामणि *(क० कृ०)*

निजगुणशिवयोगी (दे०) समय लगभग 1500 ई०) एक पहुँचे हुए साधक, लेखक और ज्ञानी थे। इस वीरशैव-लेखक ने 'विवेकचिंतामणि' के अतिरिक्त और छह ग्रंथ लिखे हैं जिनका प्रतिपाद्य भी दार्शनिक तत्व है। इनके ग्रंथों में 'विवेकचिंतामणि' का निश्चय ही शीर्ष-स्थान है। यह ज्ञान का भंडार है जो कन्नड-जनता को एक ज्ञानी की अनुपम देन है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें तत्कालीन दार्शनिक, भौगोलिक और साहित्यिक ज्ञान का संग्रह है। इसमें दस प्रकरण और 765 विषय हैं। यद्यपि कवि ने प्रारंभ में यह बताया है कि 'यह महाकविता-प्रबंध है' तथापि यह महाकाव्य की कोटि में

नही आता। यह सच है कि इसमे 'वेद-पुराण-शास्त्रो के विश्व-विषय' आ गये है। शास्त्रविषयक ग्रथ होने के कारण इसमे संस्कृत-पद-प्रयोग आवश्यक हो गया है, परतु इस कारण ग्रथ दुरूह नहीं है, सर्वजनवेद्य है। दार्शनिक विषय मे आसक्ति रखने वालो के लिए यह एक विश्व-कोश है। 'तत्त्व' का प्रतिपादन करने मे इसके लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। इसकी शैली मे रम्यता और प्राजलता है। कन्नड के ज्ञानियो और कवियो मे इसके लेखक का अन्यतम स्थान है।

विवेकसिधु *(म० कृ०)*

यह मराठी के आद्य कवि मुकुदराज (दे०) की कृति है। इसकी रचना 1190 ई० मे राजा सारगधर को आध्यात्मिक उपदेश देने के लिए की गई थी। इसकी शैली गुरु-शिष्य-सवादात्मक है और छद है—ओवी। यहाँ कवि ने शकराचार्य (दे०) के मायावाद का विवेचन किया है, और दृष्टातो के माध्यम से अपना मतव्य स्पष्ट किया है। इस ग्रथ के पूर्वार्ध मे सात और उत्तरार्ध म ग्यारह प्रकरण हैं। सासारिक जीवन बिताते हुए आध्यात्मिक साधना मे रत रहना राजयोग है। सगुणोपासना का महत्व भी इसमे प्रतिपादित है। ग्रथ मे जीव, ब्रह्म, माया, पचमहाभूत, सूक्ष्म शरीर, उसके 25 सूक्ष्म तत्त्व, सगुण, निर्गुण आदि अनेक आध्यात्मिक तत्त्वो की मीमासा की गई है।

विवेकानद *(बँ० ले०)* [जन्म—1863 ई०, मृत्यु—1902 ई०]

बँगला गद्य-साहित्य के निर्माण-युग मे स्वामी विवेकानद ने धर्म साधना, देशप्रेम, भक्ति, आवेग, मनन तथा भावुकता से युक्त असख्य प्रबधो की रचना कर बँगला गद्य को शिल्प-सौंदर्य से विभूषित किया। अपनी रचनाओ के द्वारा उन्होंने वदात धर्म और स्वदेश प्रेम के प्रति लोगो का उत्साह बढाने मे विशेष सफलता प्राप्त की थी। 'भक्ति-योग', 'ज्ञान-योग', 'कर्म-योग' इनकी प्रसिद्ध पुस्तको मे अन्यतम हैं। 'वीरवाणी' के नाम से उनकी कविताओ का एक सकलन भी प्रकाशित हुआ है।

विशालाक्षी, द्विवेदुला *(तें० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

विशाखापट्टणमु जिले मे विजयनगर नामक शहर इनका जन्मस्थान है। आजकल ये मद्रास मे रहती हैं। 1956 ई० से इन्होने अपना लेखन-कार्य आरभ किया। प्रधानत ये उपन्यास-लेखिका है। 'आध्र प्रभा' नामक तेलुगु-साप्ताहिक की ओर से 1956 ई० म आयोजित उपन्यास-प्रतियोगिता मे इनकी 'वैकुठपाली' नामक उपन्यास पुरस्कृत हुआ था। 'मारिन विलुवलु', 'वारधि' (दे०), 'आमे कोरिका', 'गोधूलि', 'वोन्दोत्ति आदि इनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। इनके उपन्यासो की पृष्ठभूमि प्राय सामाजिक होती है और कथानक तथा शैली मे सहज रोचकता रहती है।

विशेषण *(हि० पारि०)*

व्याकरण मे विशेषण' उस शब्द को कहते हैं जो किसी सज्ञा की कोई विशेषता बतलाता है। जैसे 'अच्छा लडका' और 'छोटा मकान' मे 'अच्छा' और 'छोटा'। व्यक्तिवाचक सज्ञा को छोड दें तो विशेषण शब्द *सज्ञा की व्याप्ति मर्यादित करता है। 'लडका' की व्याप्ति* अधिक है किंतु 'अच्छा लडका' या 'छोटा लडका' या 'काला लडका' मे 'अच्छा' या 'छोटा' या 'काला' के कारण 'लडका' की व्याप्ति मर्यादित हो गई है। व्यक्तिवाचक को अलग इसलिए रखा गया है कि 'दयालु अशोक' *या 'आततायी रावण' मे 'अशोक' और 'रावण' की व्याप्ति* मर्यादित नहीं हो रही है। विशेषण तीन प्रकार के होते हैं गुणवाचक, परिमाणवाचक, सख्यावाचक। विशेषण जिस सज्ञा की विशेषता बतलाता है, उसे विशेष्य कहते हैं।

विशेषण-विपर्यय *(पारि०)*

यह अंग्रेजी के प्रसिद्ध काव्यालकार 'ट्रासफर्ड एपिथॅट' का हिंदी-पर्याय है। विशेष्य से उसके विशेषण को हटाकर उसी (विशेष्य) से सबद्ध किसी अन्य सज्ञा से सयुक्त कर देना विशेषण-विपर्यय है। मूलत कवि-कल्पना से उद्भूत विशेषणो के विपर्यस्त विन्यास से अर्थ-गाभीर्य मे सवृद्धि तथा अभिव्यजना मे वैशिष्ट्य का समावेश होता है। कुछ पाश्चात्य आलोचक 'ट्रासफर्ड एपिथॅट' को भाषा-दोष मे परिगणित 'कॅटॅक्रेसिस' का एक प्रकार मानते हैं, जिसका अर्थ है किसी निश्चित सदर्भ मे गलत या असबद्ध शब्द का प्रयोग करना। भारतीय काव्यशास्त्र मे विशेषण के इस चमत्कारपूर्ण प्रयोग का निरूपण कहीं

ने 'विशेषण-वक्रता' के अंतर्गत किया है। विशेषण-विपर्यय के कुछ उदाहरण : (1) 'निज अपलक डर के स्वप्नों से' (2) जग के निभृत स्वप्न सजनि ! (सुमित्रानंदन पंत)।

विशिष्टाद्वैत *(हिं० पा०)*

रामानुजाचार्य के अनुसार तीन पदार्थ नित्य एवं स्वतंत्र है : (1) ईश्वर (ब्रह्म अथवा परमात्मा) सत्, चित्, आनंद, अपाप, सुंदर, तथा ज्ञान है, जो चिदचित् का आधार है। (2) जीव चित्, नित्य, अणु, निरवयव, और ज्ञानाश्रय है। (3) अचित् अर्थात् जड़ प्रकृति ज्ञान-रहित, किंतु त्रिविध है : (क) शुद्धसत्व (नित्य-विभूति); मुक्तावस्था मे जीव-देह इसी तत्त्व का होता है। (ख) मिश्रसत्व रजोगुण और तमोगुण से युक्त होने के कारण जगत् का उपादान है, जिसे माया अथवा अविद्या भी कहते है। निष्काम कर्म, भक्ति अथवा मर्कट-मार्जारी प्रपत्ति के द्वारा सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य अथवा सायुज्य मोक्ष प्राप्य है। किंतु मुक्तावस्था में भी ईश्वर से जीव की भिन्नता रहती है; क्योंकि जीव ईश्वर की सृष्टि का कर्त्ता-नियंता नहीं हो सकता। ईश्वर का ध्यान लक्ष्मी-नारायण, व्यूह, विभव, अंतर्यामी तथा मूर्ति—इन पाँच रूपों में से प्रत्येक मे हो सकता है।

विश्वनाथ *(स० ले०)* [समय—अनुमानतः 1350 ई० के आसपास]

उत्कलवासी कवि चंद्रशेखर के पुत्र विश्वनाथ संस्कृत-साहित्यशास्त्र के मूर्धन्य आचार्य है। तत्कालीन उत्कल-सम्राट् के सांधिविग्रहिक आचार्य विश्वनाथ कवि एवं आलोचक दोनों थे। 'साहित्यदर्पण' (दे०) में उद्धृत एक श्लोक के अनुसार ये अलाउद्दीन खिलजी के परवर्ती ही ठहरते हैं। इस प्रकार इनका समय चौदहवीं शती का मध्य मानना ही उचित है।

विश्वनाथ कविराज अलंकारशास्त्र के आचार्य हैं। इनकी कृतियों में 'साहित्यदर्पण' स्वतंत्र ग्रंथ है तथा 'काव्यप्रकाश' (दे०) के ऊपर इनके द्वारा कृत एक टीका है जिसका नाम भी 'दर्पण' ही है। 'साहित्यदर्पण' मम्मट के 'काव्यप्रकाश' की सरणि पर रचित एक ऐसा ग्रंथ है जिसे सर्वथा मौलिक तो नहीं कहा जा सकता परंतु जिसमे अनेक मौलिक उद्भावनाएँ हुई है। रस को काव्य का असाधारण धर्म एवं उसकी प्रवृत्ति का निमित्त मानना विश्वनाथ कविराज को विशेष रूप से अभीष्ट है। ये चित्र को काव्य की कोटि में नहीं रखते। रस के विषय में इनका दृढ मत है कि यह मात्र सुखात्मक ही होता है क्योंकि वह विषयीगत अनुभव है, वर्ण्य विषय का नहीं। दोष, गुण एवं अलंकारों के विषय में इन्होंने पूर्वाचार्यों के वर्णनों का पिष्टपेषण ही किया है।

विश्वनाथ कविराजु *(ते० ले०)*

श्री विश्वनाथ कविराजु ने अनेक हास्यरस-प्रधान एकांकियों की रचना की है। हास्यजनक संवादों एवं प्रसंगों की सृष्टि में ये सिद्धहस्त हैं। 'दोंगाटकमु', 'किरं-गानुगा', 'डोंकलो परावु' आदि इनके एकांकी है।

विश्वनाथ शास्त्री, राचकोंडा *(ते० ले०)*

ये तेलुगु के प्रसिद्ध कथाकार एवं उपन्यासकार हैं। इनकी रचनाओं में मनोवैज्ञानिक अध्ययन को प्रमुख स्थान मिलता रहा है। मनुष्य के अवचेतन मन की गह-राइयों में प्रवेश करके, उसमें उत्पन्न होने वाली नाना प्रकार की भाव-तरंगों एवं उसके बाह्य आचरण पर उनके प्रभाव का यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण इनकी रचनाओं मे प्रायः सर्वत्र मिलता है। मानव-मस्तिष्क के चेतन-प्रवाह के चित्रण की इनकी पद्धति अनूठी है।

'अल्पजीवि' (दे०) इनका प्रमुख उपन्यास है। इसमें सदा अकारण ही भयग्रस्त रहने वाले एक भीरु प्रकृति के व्यक्ति का प्रभोत्पादक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। वह सभी से, यहाँ तक कि अपनी पत्नी से भी डरता रहता है और अंत तक सभी के द्वारा ठुकराये जाने पर भी उसमें किसी प्रकार के आत्म-सम्मान की भावना या संघर्ष करने का साहस उत्पन्न नहीं होता। मनोवैज्ञा-निक उपन्यासकारों तथा कथाकारों में इनका स्थान पर्याप्त ऊँचा है।'

विश्वनाथ सत्यनारायण *(ते० ले०)* [जन्म—1895 ई०]

कविसम्राट विश्वनाथ सत्यनारायण बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार हैं। इन्होंने कविता, उपन्यास, नाटक, गेय कविता, कहानी, समालोचना आदि सभी साहि-त्यिक विधाओं को अपनी लेखनी से समृद्ध करते हुए अब तक सौ से अधिक रचनाएँ दी है। इनकी बहुचर्चित रच-

नाओं में 'रामायण कल्पवृक्षमु' (दे०) 1971 ई० में भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा पुरस्कृत) 'विश्वनाथ मध्याक्करलु, 'मा बाबु' (ग्रामीण वातावरण में एक अनाथ बालक की कहानी), 'वेयिपडगलु' (दे०) पुरानी एवं नयी पीढ़ियों के बीच संघर्ष, पुरातन जीवन-प्रणाली की श्रेष्ठता का निरूपण), 'चेलियलिकट्टा' (दे०) (भारतीय एवं पाश्चात्य विचारधाराओं में संघर्ष),'एक्वीरा'(दे०), 'किन्नेरिसानि पाट्लु' (दे०) (प्रगीत काव्य), 'ऋतु सहारमु' (दे०), 'काव्यहरिश्चंद्र' (दे०) (रेडियो-नाटक), 'वेनराजु' (दे०) (नाटक), 'बद्देन्ना सेनानी' (दे०), 'हा हा हू हू' (दे०) (उपन्यास), आदि प्रमुख हैं। ये मुख्य रूप से परंपरावादी एवं ऐतिहासिक सांस्कृतिक दृष्टिकोण के साहित्यकार हैं। भारतीय धर्म, दर्शन, इतिहास एवं साहित्य का इन पर गहरा प्रभाव है। इनका गद्य साहित्य भी परिमाण में विशाल अवश्य है पर ये मूलतः कवि हैं और इनका यह गुण इनके संपूर्ण साहित्य में स्पष्टतः लक्षित होता है।

श्री विश्वनाथ सत्यनारायण अपने विचारों एवं विश्वासों में अडिग हैं और किसी प्रकार का समझौता नहीं करना चाहते। आधुनिक जीवन की विषमताओं एवं विकारों से वे खिन्न रहते हैं तथा एक जागरूक एवं दायित्वपूर्ण साहित्यकार के नाते उनके निवारण के लिए लेखनी उठाते हैं। इनकी प्रतिभा एवं पांडित्य अपार है तथा जिस क्षेत्र में भी इन्होंने पदार्पण किया है उसमें इनको पूरी सफलता मिली है।

इनकी काव्य-शैली संस्कृत-बहुल और कहीं कहीं क्लिष्ट और दुरूह है। अतः भाव-पक्ष कई स्थानों पर कुंठित हो जाता है। इनका गद्य भी सहज-सरल न होकर जटिल होता है। इस कारण साधारण जनता में इनके साहित्य का प्रचार-प्रसार नहीं हो सका।

विश्वनाथसिंह, महाराज *(हिं० ले०)* [जन्म— 1789 ई०, मृत्यु—1856 ई०]

इनका जन्म रीवाँ के साहित्यानुरागी राजपरिवार में हुआ था। इनके पिता महाराजा जयसिंह न केवल साहित्य-प्रेमी थे अपितु एक अच्छे कवि भी थे। रसिक भाव से राम की भक्ति करने वालों में इनका प्रमुख स्थान है। ये 46 ग्रंथों के रचयिता माने जाते हैं—यद्यपि कतिपय विद्वानों का विचार है कि कुछ ग्रंथ दरबारी कवियों द्वारा इनके नाम से लिखे गए प्रतीत होते हैं। 'रामगीता टीका', 'विनयपत्रिका टीका', 'विश्वनाथ प्रकाश', 'आनंद रघुनंदन नाटक' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। भारतेंदु (दे०) हरिश्चंद्र ने 'आनंद रघुनंदन नाटक' को हिंदी का पहला दृश्य-काव्य माना है। 'कबीर-बीजक' पर लिखी गई 'पाखंड खंडिनी' टीका से इनके पांडित्य का परिचय प्राप्त होता है जिसमें इन्होंने निर्गुण वाणी को सगुण पर घटा दिया है।

विश्वरूपम् *(मल० कृ०)* [समय—1889-1914 ई०]

इसके रचनाकार वी० सी० बालकृष्ण पणिक्कर (दे०) हैं। श्री बालकृष्ण पणिक्कर आधुनिक मलयाळम काव्य-नभ के ज्योतिर्मय पुंज थे, जो एकाएक उदित हुए, ज्योति फैलाई और अचानक विदा हो गए। अल्पायु में ही मलयाळम-काव्य, संस्कृत-काव्य एवं शास्त्र तथा अंग्रेज़ी का यत्किंचित अध्ययन कर इन्होंने तीन-तीन पत्रिकाओं का संपादन-कार्य सँभाला। अवकाश के समय ये गद्य-लेख व कविताएँ भी लिखते रहे। इनकी रचनाओं में हर प्रकार से 'उत्तम विश्वरूपम्' है। अरबसागर के तट पर खड़ा कवि सूर्यास्त के समय से लेकर चंद्रोदय, चंद्र-विकास और पूरी रात की शोभा के बाद सूर्यास्त तक के नभ का पट-परिवर्तन चित्रित करता है। इस वर्णन के विविध चित्र वर्णोज्ज्वल हैं तथा भावपूर्ण भी। संस्कृत, वृत्त में रचे 54 श्लोकों का संग्रह 'विश्वरूपम्' मलयाळम के स्वच्छंदतावादी काव्य का सर्वप्रथम उदाहरण माना जाता है।

विश्वेश्वर, आचार्य *(सं० ले०)*

इनका जन्म मकनुल नामक ग्राम (जिला पीलीभीत, उ० प्र०) में हुआ। इन्होंने गुरुकुल वृंदावन में शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की तथा इन्हें विद्यामार्तंड की उपाधि से विभूषित किया गया। इन्होंने उक्त गुरुकुल के आचार्य-रूप में अनेक वर्षों तक कार्य किया। इन्होंने निम्नोक्त काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की हिंदी-व्याख्या अति सरल किंतु विद्वत्तापूर्ण रूप में प्रस्तुत की—'अभिनव भारती' (1, 6, 7 अध्याय), 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति' (दे०), 'ध्वन्यालोक' (दे०), 'वक्रोक्तिजीवित' (दे०), 'काव्यप्रकाश' (दे०), 'नाट्यदर्पण' (दे०) और 'भक्तिरसामृतसिंधु' (दे०)। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'तर्कभाषा', 'न्यायकुसुमांजलि' (दे०) तथा 'निरुक्त' (दे०) का भी भाष्य प्रस्तुत किया। इनके द्वारा रचित ग्रंथ

है : 'दर्शनमीमांसा', 'नीतिशास्त्रम्', 'मनोविज्ञानमीमांसा', 'पाश्चात्य तर्कशास्त्र', 'साहित्यमीमांसा' और 'वैदिक-साहित्य-कौमुदी'। इनका निधन 1962 ई० में हुआ था।

विश्वेसर रावु, मल्लवरपु *(ते० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

ये सरल मधुर प्रगीतों के कवि एवं उपन्यासकार हैं। भाव-तीव्रता इनका प्रमुख गुण है और भावों की उत्तप्तता ने ही इन्हें कवि बना दिया है।

'मधुकील' और 'कल्याणकिंकिणी' इनके कविता-संकलन है। इन्होंने रवींद्रनाथ (दे०) की कविताओं का अनुवाद भी किया है। 'कोल्लायि गट्टितेनेमि' इनका प्रसिद्ध उपन्यास है जिसमें 1920 ई० के स्वतंत्रता-आंदोलन के समय में आंध्र में पाई जाने वाली राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है। इसमें आंचलिकता की छाया भी देखने को मिलती है।

विषवृक्ष *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1873 ई०]

समसामयिक बंगीय समाज को आधार बनाकर बंकिम (दे० चट्टोपाध्याय, बंकिमचंद्र) 'विषवृक्ष' तथा 'कृष्णकांतेर उइल' (दे०)। नाव-दुर्घटना में नगेंद्र का परिचय कुंदनंदिनी से हुआ। कुंदनंदिनी विधवा है पर उसके प्रति नगेंद्र का आकर्षण कम नहीं। सूर्यमुखी अपने पति के प्रति संपूर्ण निष्ठा रखते हुए यह अन्याय और अपमान कैसे सह सकती है। नगेंद्र ने कलकत्ता जाकर नंदिनी से विवाह किया। कुछ देर बाद मोह भंग हुआ। उसे स्पष्ट पता लग गया कि नंदिनी के प्रति उसका केवल भौतिक आकर्षण भी रूप की पूजा थी। स्नेह-समर्पण से युक्त आत्मिक प्रेम सूर्यमुखी में ही था। आकस्मिकता और रोमांच के साथ कथा-रस उत्पन्न करने में बंकिम सिद्धहस्त हैं।

'विषवृक्ष' नाम से लेखक अपने मंतव्य को प्रकट कर रहा है। परनारी के रूप मोह में पड़ना 'विषवृक्ष' बोना है। इसका फल नगेंद्र को भोगना पड़ा, सूर्यमुखी को भी पातिव्रत का मूल्य चुकाना पड़ा। अंत में सती नारी का त्याग विष समाप्त कर सका।

वास्तव में यह एक रोमांटिक उपन्यास है—घटना बहुल तथा रस-वैचित्र्य से पूर्ण। इसका नैतिक और सामाजिक पहलू गौण है।

विष्णुदास *(गु० ले०)* [समय—1620 ई० के आसपास]

विष्णुदास खंभात के नागर ब्राह्मण थे। 'मामेरु' 'हुंडी' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। कहते हैं इन्होंने 39 कृतियों की रचना की थी; जिनमें अधिकांश आख्यान-काव्य थे किंतु आज केवल तीन-चार रचनाएँ ही उपलब्ध हैं।

ये प्राचीन युग के इतने महत्वपूर्ण कवि थे कि इनके नाम से विष्णुदास-युग भी चल सकता था। नरसिंह-युग (दे० नरसिंह मेहता) के बाद के ये दूसरे महत्वपूर्ण कवि हैं।

भालण (दे०) के पुत्र विष्णुदास से ये भिन्न प्रतीत होते हैं।

विष्णुदास आचार्य *(बँ० ले०)*

विष्णुदास आचार्य कुलियाग्रामवासी माधवेंद्र आचार्य के पुत्र और अद्वैताचार्य की पत्नी सीतादेवी के शिष्य थे।

'सीतागुण कदंब' काव्य का इन्होंने प्रणयन किया था। अनुमान है कि 1521-22 ई० में यह ग्रंथ लिखा गया था। यह एक सामान्य जीवनी-काव्य है। इसमें अद्वैताचार्य एवं सीतादेवी के संबंध में उद्घाटित तथ्य अधिक विश्वसनीय है। लोचनदास और कृष्णदास कविराज का प्रभाव इस ग्रंथ में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

विष्णुदासनामा *(म० ले०)*

ये भक्तकवि थे। इनकी रचना 'शुकाख्यान' में दी गई तिथि के अनुसार 1595 ई० इनका जीवन-काल प्रमाणित होता है। 'महाभारत' (दे०) पर आधारित 'आदिपर्व' इनकी प्रसिद्ध रचना है। इसके अतिरिक्त 'उपमन्युआख्यान', 'एकादशी माहात्म्य', 'हरिश्चंद्रआख्यान', 'लवकुशकथा' आदि अनेक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। इनके आधार ग्रंथ हैं—'भागवत' (दे०), 'देवीभागवत', 'भविष्योत्तर पुराण', 'गणेशपुराण', 'आनंदरामायण' आदि। इनकी मराठी पर संस्कृत का पर्याप्त प्रभाव है। चरित्र-चित्रणों में मौलिकता है।

विष्णुपुराण *(क० कृ०)*

यह मैसूर-नरेश चिक्कदेवराज (शासन-काल—

1672-1705 ई०) के मत्री चिक्कुपाध्याय (दे०) की रचना है। छह भागो और 32 सर्गों के इस ग्रथ मे 6255 पद्य हैं। इसके प्रारभ मे भगवान रगनाथ की स्तुति है। रगनायकि, भूदेवी, नीलादेवी, अनत, गरुड, रामानुज, शख, चक्र, नदक, शाङ्र्ग, गदा, सरस्वती तथा पराशर की स्तुति भी उसमे क्रमश मिल जाती है। सर्ग अथवा आश्वास के अत मे पुष्पिका इस प्रकार है—

"नारायण पदसारसमरद नित्याभिषिक्त — चिक्कदेव महाराज करुणाकटाक्ष रुचिसाद्रचद्रिकालोलध-कोर सचिवतिलक श्रीचिक्कुपाध्याय विरचित श्रीविष्णु-पुराणाख्य महाप्रबध" इससे स्पष्ट है कि कवि ने अपने काव्य को महाकाव्य माना है। प्रकृति के चित्रण मे कवि ने पर्याप्त कौशल दिखाया है। भाषा-शैली सुदर और प्रवाहपूर्ण है। इसमे विष्णु की महिमा का अच्छा उद्घाटन किया गया है।

इसके लेखक ने चपूकाव्य के अतिरिक्त गद्य काव्य भी इस विषय पर लिखा है।

विष्णुशास्त्री चिपळूणकर याचे चरित्र (म० कृ०) [रचना काल—1884 ई०]

इसकी रचना श्री विष्णुशास्त्री चिपळूणकर (दे०) के अनुज लक्ष्मण कृष्ण चिपळूणकर ने की थी। इस ग्रथ से पूर्व चिपळूणकर के जीवन पर तीन लेखको ने लिखा था। इनमे से दो जीवन-परिचय तो पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुए थे एव तीसरा पुस्तक के रूप मे। इस तीसर चरित्र के लेखक श्री रा० केळकरे थे। लक्ष्मणशास्त्री चिप-ळूणकर के द्वारा लिखा चरित्र इसकी तुलना म अधिक मनोहर है। चिपळूणकर की विश्वसनीय, विस्तृत जीवनी लिखने तथा उनके द्वारा की गई महाराष्ट्र-निवासियो की सेवा एव मराठी भाषा के उन्नयन का मूल्याकन करन के लिए यह चरित्र लिखा गया था।

इस ग्रथ मे नौ प्रकरण हैं। पहले सात मे चिपळूणकर जी के जीवन के बत्तीस वर्षों का जीवन-वृत्त है। आठवें भाग मे शेष महीनों का विवरण है तथा नवें मे साहित्य-जगत तथा समाज मे उनके महत्वपूर्ण स्थान का निर्धारण है। पहले सात भागो मे चिपळूणकर के बाल्यकाल, डेक्कन कॉलेज मे शिक्षा, अध्यापन, निबध-माला' (दे०) पत्रिका का प्रारभ, रत्नगिरी मे स्थानान्तरण, न्यू इग्लिश स्कूल की स्थापना, भाषासेवा, देशसेवा, विचार-स्वातत्र्य आदि के आधार पर उनके स्वभाव तथा जीवन का यथार्थ रेखाकन किया गया है।

इसमे लेखक का दृष्टिकोण विभूतिपूजक का नही रहा, वरन् चरित्र-नायक के गुणावगुणो का सतुलित विवेचन करने का रहा है। यथार्थ एव प्रभावकारी चित्रण की दृष्टि से इस चरित्र का महत्व है। चिपळूणकर जी के कटु आलोचक बा० ना० देव ने भी इस ग्रथ की मुक्त-कठ से प्रशसा की है—"इस जीवनी का मराठी के चरित्र-ग्रथो मे ऊँचा स्थान है। व्यक्ति-चित्रण की दृष्टि से इसकी बराबरी करने वाला ग्रथ अभी तक उपलब्ध नही है।"

विसर्जन (बँ० कृ०)

हिंसा और बलि के जिस विरोध का सूत्रपात 'वाल्मीकि-प्रतिभा' से हुआ, उसका सपूर्ण विकास 'विसर्जन' म मिला है। गोविंद माणिक्य का ध्रुवराय के प्रति सहज स्नेह-वात्सल्य है परतु उसकी पुत्रहीना पत्नी गुणवती पुत्र-प्राप्ति के लिए इतनी उत्तेजित है कि बलि के औचित्य एव चुनाव मे सारा विवेक भूलकर अबोध ध्रुवराम और अपर्णा को लक्ष्य बनाती है। उसकी प्रेरणा का स्रोत है पुरोहित रघुपति जो शास्त्र-सस्कार पोषित धर्माचार का प्रतीक है। गोविंद पत्नी के प्रति सहृदय अवश्य है परतु वह इस अतर-सघर्ष मे विचलित नही होता। वास्तव मे दो शक्तियो मे तीव्र द्वद्व है, रघुपति अपने रुद्र तेज तथा प्रभुत्वपूर्ण वक्रता से गुणवती, जयसिंह आदि को धर्म के नाम पर लक्ष्यभ्रष्ट करना चाहता है। गोविंद अचल, तथा मनोबल से सभी आघातो को सहता है। रघुपति का प्रिय शिष्य ऐसी मोहावस्था मे अपने जीवन की बलि देता है। भाग्य का यह क्रूर प्रहार रघुपति को इस कुप्रथा की वास्तविकता का ज्ञान कराता है। जयसिंह के 'विसर्जन' मे ही रघुपति म हिंसा-वृत्ति का 'विसर्जन' होता है। नाटक का वस्तु-सगठन कौशलपूर्ण तथा चरित्र-चित्रण पर्याप्त सजीव एव रगमच की दृष्टि मे प्रभावशाली है। लेखक की उपलब्धि तीव्र सघर्ष को निभाए रखने म है। यह रवींद्र (दे० ठाकुर) की सफल एव लोकप्रिय रचना है।

विसुद्धिमग्ग (पा० कृ०)

यह बुद्धघोष (दे०) की रचना है। इन्होंने लका मे अनुराधापुर के महाविहार मे सुरक्षित 'अट्ठकथा' (दे०) के अनुवाद का अधिकार प्राप्त करने के लिए

परीक्षा के रूप में इस पुस्तक की रचना की थी। इसमें प्रथम बार 'त्रिपिटक' (दे०) के साथ शतियों में विकसित बौद्ध विचारधारा को व्यवस्थित रूप देने की सफल चेष्टा की गई है। बुद्धघोष के गहन अध्ययन का यह प्रथम फल है। स्वयं ग्रंथकार के मत में 'विसुद्धि' का अर्थ है ऐसी पूर्ण पवित्रीकृत निर्वाण-पदवी जिसमें किसी भी दोष का अवसर न हो। उस निर्वाण-पदवी तक ले जाने वाले मार्ग का इस रचना में विवेचन किया गया है। 'सुमंगल-विलासिनी' में बुद्धघोष ने स्वयं इस रचना की विषय-वस्तु का भी निर्देश किया है। इसमें शील का विवेचन है, कर्म के स्थान तथा चर्या के विधान बतलाए गए हैं; ज्ञान का विवेचन है, समापत्ति के समस्त विस्तार का निरूपण है, अभिधम्म, पञ्ञा (प्रज्ञा), खंड (स्कंध), धातु, आयतन, चार आर्यसत्य, शुद्ध तथा पूर्णनय, इंद्रियगण इत्यादि के विषय में इसमें विस्तृत विवेचन किया गया है। इसमें बौद्ध धर्म का दार्शनिक तथा पदार्थवाद की दृष्टि से परिपूर्ण निरूपण किया गया है। यह ग्रंथ इतना महत्वपूर्ण बन पड़ा है कि यह बौद्धों में प्रमाण-पदवी पर आरूढ़ माना जाता है। बौद्ध धर्म का कोई अकेला ही ग्रंथ इतना महत्वपूर्ण नहीं है जो सभी तत्त्वों की एकसाथ जानकारी दे सके। ज्ञात होता है कि इस रचना में ये अपनी भविष्य में लिखी जाने वाली टीकाओं की भूमिका तैयार कर रहे थे, क्योंकि उन टीकाओं में इन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि जिन विषयों का समावेश 'विसुद्धिमग्ग' में हो चुका है उन पर प्रकाश नहीं डाला जायेगा। ब्रह्मा के बौद्धों में यह रचना युग-प्रवर्तक के रूप में स्वीकार की जाती है।

इस ग्रंथ की शैली बहुत ही स्पष्ट तथा प्रसाद-गुणपूर्ण है। धर्म तथा दर्शन जैसे शुष्क विषय को लेखक ने बीच-बीच में कथाओं का समावेश कर अत्यंत सरस बना दिया है। इसके कथा-साहित्य में बुद्ध के समय से लेकर उस समय तक के तत्त्व सम्मिलित हैं जब 'महायान' (दे०) के समान 'हीनयान' (दे०) में भी बौद्ध पूजा के पात्र बन गए थे।

विसू राजे *(म० पा०)*

श्री ना० पेंडसे (दे०) के उपन्यास 'हद्दपार' का नायक विश्वनाथ उर्फ़ विसू परंपरा-विरोधी, क्रांतिकारी विचारों का गाँव का आदर्श अध्यापक है। आरंभ से ही उसके विचार क्रांतिकारी है। वह उस शस्त्र को, जिसके द्वारा उसके पूर्वजों ने बाघ मारा था, कुएँ में फेंक देता है, मिश्र विवाह करता है। लेखक ने इस पात्र के अंतरंग में प्रवेश कर उसके सामाजिक महत्व पर प्रकाश डाला है, इसीलिए इसकी चरित्ररेखा शुद्ध और सूक्ष्म बन सकी है। यह सत्य है कि ग्राम जीवन, विद्यार्थियों की शिक्षा, व्यवसाय के प्रति निष्ठा आदि के संबंध में विसू के विचार सर्वसामान्य नहीं हैं, परंतु उसके चरित्र में नये जीवन-मूल्यों, मानवता की प्रतिष्ठा कर उसे निष्ठावान, परिश्रमी श्रम की पूजा करने वाला तथा ईमानदार चित्रित कर लेखक ने एक ऐसे ग्रामीण आदर्श अध्यापक की मूर्ति प्रस्तुत की है जो अन्य मराठी उपन्यासों—'उल्का', 'वैष्णव' आदि में भी उपलब्ध होती है। पेंडसे के अन्य पात्रों के समान विसू की चरित्ररेखा भी अत्यंत प्रत्ययकारी और यथार्थ है। उसके अंतर्जीवन के चित्रण में अनुभूति की सचाई है। कुल मिलाकर यह आदर्शोन्मुख यथार्थ पात्र है।

वी *(त० कृ०)* [रचना-काल—1966 ई०]

'वी' एस० पोन्नुदुर (दे०) की 13 कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों में प्रसिद्ध हैं—'वी', 'तेर्', 'ईरा', 'वेली', 'मरु' और 'मुळ्'। 'वी' शीर्षक कहानी में आत्मकथात्मक अंशों की अधिकता है। 'तेर' इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इस कहानी में अभिव्यक्त विचार ही शेष कहानियों में व्यक्त किए गए हैं। यह कहानी एक वृद्ध के अतीत स्मरण के रूप में रचित है। वह अपने परिवार को मंदिर का रथ (तेर्) मानता है जिसमें सौंदर्य भी है और गंभीरता भी। वृद्ध के परिवार के अन्य सभी सदस्य जहाँ प्राचीन रीति-रिवाजों को अपना लेते हैं वहाँ उनका एक पुत्र उनका विरोध करता है। अंत में वह अपने सद्व्यवहार द्वारा संपूर्ण परिवार को बदल देता है। उस पात्र के माध्यम से लेखक यह बताना चाहता है कि प्राचीन सामाजिक संगठन में ही नवीन विचारों और विचारधाराओं का उदय हो रहा है। हमें उदारतापूर्वक उन्हें स्वीकार करना चाहिए। यह कहानी चेतना-प्रवाह शैली में रचित है। इन कहानियों की मूल विशेषता यह है कि इनमें लेखक की यथार्थवादी विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। अधिकांश कहानियाँ चरित्र-प्रधान हैं। कहानियों के पात्र विभिन्न वर्ग, संप्रदाय एवं धर्म से संबंधित हैं। लेखक ने अपने पात्रों को भावाभिव्यक्ति का, विचाराभिव्यक्ति का अवसर दिया है। उन्होंने अपने विचारों की अभिव्यक्ति पात्रों के माध्यम से की है। अपने पात्रों में प्राण-प्रतिष्ठा कर एस०

पोन्नुदुरै ने तमिल कहानी के क्षेत्र मे नयी टेकनीक को जन्म दिया है। 'वी' नामक कहानी सग्रह की कहानियो म लेखक ने समाज की उन रूढियो और प्रथाओ की ओर सकेत किया है जो कि समाज की उन्नति मे बाधक है। अपनी इन कहानियों द्वारा वह इन रूढियो को समाप्त करना चाहता है।

वीण पूवु *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1909 ई०]

यह कुमारन् आशान् (दे०) की कविता है। इसमे मुरझाकर गिरे हुए पुष्प के प्रति कवि का आत्म-निवेदन प्रस्तुत किया गया है। पुष्प सभी सौभाग्यो के साथ विकसित हुआ और चद ही क्षणो के मोहक विलास के बाद लता से अलग होकर गिर गया तथा शीघ्र ही मिट्टी मे मिलने वाला है। आसपास के सभी चराचर इस दुर्गति पर दु खित हो रहे हैं। इस विधि विपर्यय के रहस्य का अन्वेषण कवि करते हैं परतु उनका केवल यही समाधान है कि अपने जन्म-कृत्य को साधित करके क्षणभर मे विलुप्त हो जाना ही दीर्घ जीवन की अपक्षा अभिकाम्य है।

आशान् की इस कविता के साथ मलयाळम-साहित्य के स्वच्छदतावादी आदोलन ने अपना विकसित रूप प्राप्त कर लिया था। इससे प्रेरणा ग्रहण करके ही कवियो ने उक्ति-वैचित्र्यपूर्ण रचना-कौशल के स्थान पर मानसिक उद्गारो के प्रकाशन को काव्य-वस्तु बनाना आरभ किया था। आशान् द्वारा पुष्ट किए गए मार्ग पर वळ्ळत्तोळ (दे०) और उळ्ळूर (दे०) की रोमाटिक रचनाओ का भी उदय हुआ और साहित्य की काव्य-शाखा परिपुष्ट हुई। इन परिवर्तनो के मार्गदर्शक के रूप मे 'वीण पूवु' का स्थान मलयाळम मे अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

वीथिनाटक *(ते० पारि०)*

यह आध्र प्रात की नाटक-रचना का प्राचीन रूप है। उत्पत्ति म सस्कृत-नाटक से कोई सबध न रखने वाला एक देशी रूपक ही 'वीथिनाटक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आरभ मे यह अभिनय-प्रधान ही रहा। किंतु यह देशी रूपक क्रमश गीतों तथा कथोपकथन से युक्त होकर परिवर्तित रूप और नाम क साथ राजदरबारों म भी प्रतिष्ठित हो गया। तजौर म अत्यत प्रचलित 'यक्षगानमु' (दे०) इसी वर्ग के हैं। 'वीथि' शब्द का अर्थ है—मार्ग। सुव्यवस्थित रगमच तथा नाटकशाला के बिना मार्ग पर ही यह प्रदर्शित होने योग्य है। इसीलिए यह 'वीथिनाटक' के नाम से प्रचलित हुआ। सस्कृत के दस प्रकार के रूपको के अतर्गत 'वीथी' (दे०) भी एक है। किंतु तेलुगु—'वीथिनाटक' का उससे कोई सबध नही है। अलकृत रगमच के अभाव के कारण 'वीथिनाटक' अधिकाशत नाचना-गाना और सरस तथा हास्यपूर्ण सभाषण आदि पर ही अपनी सफलता के लिए निर्भर रहता है। इसम भाषा लोकव्यवहार के निकट की होती है तथा पात्रो की सख्या भी सीमित रहती है। आरभ मे 'वीथिनाटक' का लक्ष्य लिखित साहित्यिक रचना के रूप मे अवतरित होना था, बल्कि आम जनता के बीच प्रदर्शित होकर उसे आनदित करना ही था। क्रमश इसके स्वरूप तथा प्रयोजन—दोनो म परिवर्तन आया। आधुनिक नाटक साहित्य को पुष्ट करने मे योग न देने पर भी तेलुगु-नाटक-साहित्य के इतिहास मे 'वीथिनाटक' का स्थान कम महत्व का नही है।

वीर *(अप० ले०)* [रचना काल—ग्यारहवी शती ई०]

कवि वीर का जन्म मालवा देश के गुलखेड नामक ग्राम मे हुआ था। इसके पिता का नाम देवदत्त और माता का नाम श्री सतुवा था। वीर का गोत्र लाडवर्ग था। इनके पिता स्वय एक अच्छे कवि थे। वीर न अपन पिता को कवि स्वयभू और पुष्पदत के पश्चात् तीसरा स्थान दिया है। वीर के तीन छोटे भाई और चार पत्नियाँ थी। यद्यपि वीर सस्कृत-काव्य-रचना म निपुण थे किंतु पिता के मित्रो की प्रेरणा एव आग्रह से ये सर्वजन-प्रिय अपभ्रश मे 'जबू सामि चरिउ' (दे०) की रचना मे प्रवृत्त हुए थे। इस काव्य की रचना इन्होंने 1019 ई० मे की थी। अनेक राजकार्य, धर्म, अर्थ, काम गोष्ठियो म समय विभक्त करते हुए इनको इस काव्य की रचना म एक वर्ष लगा। इन्होंने अपने मे पूर्ववर्ती स्वयभू, त्रिभुवन, पुष्पदत प्रभृति कई कवियो का उल्लेख किया है।

कवि द्वारा उल्लिखित सदर्भो म प्रतीत होता है कि वह शब्दशास्त्र, छद शास्त्र, निघटु, तर्कशास्त्र तथा प्राकृत-काव्य 'सेतुबध' (दे०) इन सब का गहन रूप मे अध्ययन करने के उपरात काव्य-रचना मे उद्यत हुआ था। जैन-साहित्य के चारो अनुयोगो का उसे गभीर ज्ञान था। जैन-पुराण (दे०), हिंदू पुराण (दे०), रामायण (दे०) महाभारत (दे०), कालिदास (दे०) और बाण (दे०) के काव्य-ग्रथ, भरत-'नाट्यशास्त्र' (दे०) आदि से भी

वह पूर्णरूपेण परिचित था। शास्त्रीय ज्ञान के अतिरिक्त वह लौकिक शिक्षा में भी निष्णात था।

वीर कवि केवल अपभ्रंश-रचना में ही सिद्ध-हस्त नहीं थे, संस्कृत एवं प्राकृत में भी इनकी निर्बाध गति थी। तत्कालीन अपभ्रंश कवियों में इनका प्रमुख स्थान था।

वीर (आल्हा) *(हिं० छं०)*

वीर छंद के प्रत्येक चरण में इकतीस मात्राएँ होती है तथा सोलह और पंद्रह पर विराम होता है। प्रत्येक चरण के अंत में गुरु, लघु का होना आवश्यक है। उदाहरण :

उस असीम नीले अंचल में, देख किसी की मृदु मुस्कान,
मानो हँसी हिमालय की है, फूट चली करती कलगान।
शिला संधियों से टकराकर, पवन भर रहा था गुंजार,
उस दुर्भेद्य अचल दृढ़ता का, करता चारण सदृश प्रचार॥
(प्रसाद : कामायनी)

वीरकाव्य *(हिं० प्र०)*

'वीरकाव्य' से आशय है हिंदी-साहित्य के आदिकाल मे रचित वीरकाव्य से है इसे चारण-काव्य भी कहते हैं, क्योंकि इसके सभी प्रणेता दरबारी चारण अथवा भाट थे। वीरकाव्यों में से केवल चार ग्रंथ उपलब्ध हैं--'खुमाणरासो' (दे०), 'बीसलदेवरासो' (दे०), 'पृथ्वीराजरासो' (दे०), और 'परमाल रासो', किंतु ये भी सभी पूर्णतः अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं हैं। इनमें जिन चरित-नायकों का वर्णन किया गया है वह अधि-कांशतः कल्पना पर आधारित है। अतः इन काव्यों से इतिहास के जिज्ञासुओं को कोई विशेष सहायता नहीं मिलती। फिर भी, इनका काव्यत्व की दृष्टि से निजी महत्व है। इनमें वीर रस का प्रौढ़ परिपाक हुआ है। चतुरंगिणी सेना की साज-सज्जा, दोनों एक-समान प्रबल दलों का घमासान युद्ध एवं दर्पपूर्ण शब्दावली, सेना-प्रस्थान, असि-प्रहार एवं शस्त्रों की झंकार, और शत्रुपक्ष के पलायन का प्रभावपूर्ण चित्रण आदि इस काव्य की प्रमुख विशिष्टता है। इसका सजीव शब्द-गुंफ ओज गुण और गौड़ी रीति का पोषक है। वीर रस के साथ-साथ इस काव्य में गौण रूप से रौद्र, बीभत्स तथा भयानक रसों का भी स्वाभाविक समावेश है। इन ग्रंथों का कथानक शृंगार रस की पृष्ठभूमि पर आधारित है, अतः इस रस के वर्णन के द्वारा भी ये काव्य-ग्रंथ अति मनोमोहक बन पड़े हैं। यह वीर-काव्य दो रूपों में उपलब्ध है—प्रबंध-काव्य के साहित्यिक रूप में—जैसे, पृथ्वीराजरासो, और वीर गीतों के रूप में—जैसे, बीसलदेवरासो। इसकी इसकी भाषा को विद्वानों ने डिंगल (दे०) कहा है, अर्थात् साहित्यिक राजस्थानी मिश्रित पुरानी हिंदी। वीरकाव्य की यह परंपरा आदिकाल के बाद भी चलती रही। भक्तिकाल में पृथ्वीराज, दुरसा जी, बाँकीदास (दे०), सूर्यमल्ल (दे०) आदि ने तथा रीतिकाल में भूषण (दे०), लाल (दे०), सूदन (दे०) आदि ने वीर काव्य लिखे थे। इधर आधुनिक काल में मैथिलीशरण गुप्त (दे०) और रामधारीसिंह 'दिनकर' (दे०) ने भी अनेक वीरकाव्य लिखे हैं।

वीरब्रह्मयोगी *(ते० ले०)* [समय—सत्रहवीं शती ई०]

इनका पूरा नाम पोतुलूरि वीरब्रह्मम् है। ये प्रतिभावान् सिद्धपुरुष थे। बचपन में ही माता से वियुक्त वीरब्रह्मम् कुछ साल बाद देशाटन करने लगे थे। ये *बनगानअल्ले नामक स्थान* पर एक पहाड़ की गुफा के अंदर अक्सर एकांत में बैठते थे तथा वहीं उपनिषदों के भाष्य के रूप में 'कालज्ञानवचनों' की रचना करते थे। अत्यंत सरल पद्धति के द्वारा साधारण जनता के लिए जीवनोपयोगी धर्मपथ दिखाना ही इनका प्रमुख लक्ष्य था। 'कंद' तथा 'कंदार्ध' जैसे देशी छंदों में इनका उपदेश अभिव्यक्त हुआ है। इनके द्वारा प्रतिपादित धर्म 'अचल-धर्म' या 'शिवाद्वैत धर्म' कहा जाता है। इनके अनुसार लोगों का अपना-अपना आचरण ही उनकी जाति का निर्णायक होता है, न कि जन्म। हिंदुओं और मुसलमानों तथा समाज के विविध वर्गों के बीच समरसता स्थापित करने के लिए अपने उपदेशों के द्वारा वीरब्रह्मयोगी ने जो कुछ किया वह एक महान् कार्य कहा जा सकता है। तेलुगु में धर्म तथा दर्शन से संबद्ध गीतों या पदों का जो साहित्य उपलब्ध होता है उसमें इनके 'कालज्ञान-वचन' अत्यंत प्रचलित तथा प्रभावशाली है।

वीर मामुनिवर *(त० ले०)* [जन्म—1680 ई०; मृत्यु—1747 ई०]

तमिल-साहित्य की श्रीवृद्धि करने वाले यूरो-

पीय विद्वानो मे 'वीर मामुनि' अथवा 'वीर महामुनि' अग्रगण्य है। इनका जन्म इटली के वेनिस प्रात मे हुआ था। अठारह वर्ष की आयु तक फ्रेंच, ग्रीक, हीब्रू, पोर्चगीस आदि भाषाओ का पर्याप्त अध्ययन करके इन्होने ईसाई धर्म-प्रचारक की दीक्षा ली थी। यूरोप मे जहाँ-तहाँ ईसाई धर्म-प्रचार का कुछ कार्य करने के पश्चात् 1710 ई० मे ये भारत आये थे। गोवा, कोचिन, अवलक्काडु आदि प्रातो मे धर्म-प्रचार करते हुए ये तमिलनाडु के मदुरै प्रात के 'कामनायक्कन् पट्टि' नामक गाँव मे आ बसे थे। फिर अतिम समय तक ये वही रहे। इस ग्राम को अपना मुख्य केंद्र बनाकर दक्षिण के विभिन्न स्थानो मे, विशेषकर तमिलनाडु मे, ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए इन्होने अनेक उपाय किए थे। यहाँ उन्होने सस्कृत और तमिल सीखने के साथ भारतीय दर्शन-ग्रथो का भी अध्ययन किया। यहाँ के अनेक विद्वानो से शास्त्रार्थ भी किया। हिंदू-धर्मावलबियो के मन मे अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कराने के लिए ये स्वय काषायवस्त्र, खडाऊँ, कमडल, कानो मे (रुद्राक्षमणि के स्थान पर) क्रूस-चिह्न आदि धारण करते थे, तथा अन्न-पान की आदतें भी इन्होने भारत की जैसी अपना ली थी। इस प्रकार के कार्यों मे कभी-कभी इन्हे रोमन-कैथलिक सप्रदाय के नेतागण का कोप-भाजन बनना पडा था। किंतु बाद मे इन लोगो को भी इनके साहस, धैर्य तथा दूरदर्शिता को स्वीकार करना पडा। ऐसे साहसपूर्ण कार्यो के कारण ही ये 'वीर महामुनि' नाम से विख्यात हुए। इनका वास्तविक नाम कान्स्टेंटाइन जोसेफ बेस्ची था।

भारत मे आने के पश्चात् इन्होने सस्कृत, हिंदी, तेलुगु, कन्नड और तमिल भाषाएँ सीखी। 'पलनि' नामक स्थान मे स्थित 'सुप्पिरतीप-क्-कविराय' से इन्होने तमिल के लक्षण-लक्ष्य ग्रथो का विधिवत् अध्ययन किया। तमिल मे शैव और वैष्णव-भक्तिपरक रसमय काव्य-ग्रथो, 'रामायण' (दे०) जैसे महाकाव्यो को देखकर इन्होने ईसाई धर्म से सबद्ध वैसी ही सुदर कृतियो का निर्माण करने का सफल यत्न किया था। तमिल काव्य 'कलबकम्' (दे०) 'अदादि' (दे०) लघु-प्रबध विधाओ का सफल प्रयोग इन्होने किया है। 'तिरु-क्-कावलूर कलबकम्', 'अडैक्कल-नायकि वेण्-कलिप्पा', 'अडैक्कलमालै' 'अन्नै अळुङ्गल् अदादि' 'करुणाकर-प्-पदिकम्', 'दत्तेरियम्मन अम्मानै', इत्यादि कृतियाँ उत्तम कोटि के साहित्यिक नमूने हैं। 'तेमपावणि' (दे०) नामक प्रबध-काव्य इनके पद्य-ग्रथो मे सर्वोत्कृष्ट है। इसकी रचना 'कवरामायणम्' (दे०) 'पेरियपुराण' (दे०) आदि प्राचीन महाकाव्यो की पद्धति पर हुई है। इसमे तीन काड और उनमे कुल 36 'पटल' या सर्ग है। इसका इतिवृत्त मातामेरी तथा ईसा के जन्म-वृत्त से सबद्ध है। कहते है कि 'पोर्चुगीस' भाषा म विख्यात एक काव्य की कथावस्तु पर यह इतिवृत्त आधारित है। इस काव्य मे वर्णित देश-काल की परिस्थितियाँ, जन-जीवन की झाँकी इत्यादि भारतीय वातावरण को प्रतिबिंबित करती हैं। इसमे भारतीय पुराण-इतिहासो की तथा काव्य-परपरा की बहुत-सी बातें यत्र-तत्र उल्लिखित है। 'तेमपावणि' अपनी काव्यगरिमा के कारण तमिल-वाङ्मय मे अमर स्थान प्राप्त कर चुकी है।

ये अच्छे गद्यकार भी थे। तमिल मे इनकी विरचित अनेक कहानियाँ, निबध, दर्शन-ग्रथ आदि प्रसिद्ध हैं। 'परमार्थ गुरु' अथवा 'परमानद गुरु और उनके शिष्य' नामक कहानियाँ तो भारत के अन्य भाषा-प्रदेशो मे भी लोककथावत् प्रचारित हो गई हैं। 'वेद-विवेचन', 'वैदिक मार्ग', 'ज्ञान-बोधन' इत्यादि ईसाई धर्म-विवेचन-विषयक हैं। 1732 ई० मे 'चतुरकरादि' नाम मे इन्होने तमिल का प्रथम शब्दकोश प्रकाशित किया था। यह तमिल, लेटिन और पोर्चुगीज भाषाओ का कोश है। 'तोन्नूल विलक्कम्' इनका तमिल-व्याकरण है।

इन्होने तमिल लिपि मे कुछ सुधार किए थे जो अब प्रचलित हो गए हैं। गद्य-शैली को भी इन्होने आधुनिक रूप दिया था तथा तमिल मे अनेक नये शब्द प्रचारित किए थे। ईसाई धर्म का प्रतिपादन करते हुए, वेद-उपनिषदो की शैली मे इन्होने अनेक शब्दो का नये सदर्भों मे प्रयोग स्थिर कर दिया था।

इनसे प्रेरणा प्राप्त करके तमिल प्रदेश के अनेक विद्वानो ने ईसाई धर्म की दीक्षा ग्रहण कर तत्सबधी साहित्य का निर्माण किया था।

वीरासामि चेट्टियार *(त० ले०)* [समय—ईसा की उन्नीसवी शती]

इनका जन्म उन्नीसवी शती के आरभ म मद्रास मे हुआ। इन्होंने तमिल के लिए सर्वथा नवीन शैली मे निबधो की रचना की जिनका प्रकाशन 'दिनवर्त्तमानी' नामक साप्ताहिक मे हुआ। इन्होने प्रगीतो की भी रचना की है। अपने साहित्यिक रचनाओ के लिए य प्रसिद्ध हैं। कोश-सपादन का कार्य भी किया है। 1876 ई० मे प्रकाशित 'विनोद-रस-मजरी' (दे०) मे सगृहीत इनके निबधो

का तमिल निबंध का तमिल निबंध-साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

वीर राघवाचार्य *(सं० ले०)*

इसका समय चौदहवीं शती ई० है। इसने श्रीमद्भागवत् (दे० भागवत) पुराण की टीका 'भागवत-चंद्र चंद्रिका' नाम से लिखी। यह वैष्णवों में आदरणीय स्थान रखती है।

वीरशैवामृतपुराण *(क० कृ०)*

गुब्बि मल्लणार्य की रचना 'वीरशैवामृतपुराण' वीरशैव-सिद्धांत को प्रतिपादित करने वाली शास्त्रकृति है। परंतु, वह लक्कण्ण (दे०) की 'शिवतत्त्वचिंतामणि' के समान पूर्णतः सैद्धांतिक ग्रंथ नहीं है। उसमें अनेक विषय, गाथाएँ, शिव की पच्चीस लीलाएँ, पुरातन तथा नूतन शरणों (भक्तों) की कथाएँ तथा वेदागम के वाक्य वर्णित हैं। संभवतः इसलिए उसे 'पुराण' कहा गया है। वह 'वीरशैव-कोश' बन गया है। उसमें 136 संधियों अथवा सर्गों में लगभग सात हज़ार वार्धक षट्पदी छंद हैं। आकार में वह काफ़ी बड़ा ग्रंथ है और प्रकार में भी महत्वपूर्ण है। मल्लणार्य को 'कियासार' (ब्रह्मसूत्र की व्याख्या जो संस्कृत मे है) के कर्त्ता नीलकंठ शिवाचार्य से अधिक प्रेरणा मिली है। दार्शनिक विचारों के प्रतिपादन में उनका प्रभाव स्पष्टतः देखा जा सकता है। शिवलीलाओं और भक्तों की कथाओं मे मल्लणार्य ने भक्ति की वेगपूर्ण धारा बहाई है। उनकी कवित्व-शक्ति और भाषा-शैली उनको एक श्रेष्ठ कवि घोषित करती है। 'वीरशैवामृत-पुराण' कन्नड़ वीर-शैव-साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

वीरसिंह, भाई *(पं० ले०)*

भाई वीरसिंह आधुनिक पंजाबी-साहित्य के प्रमुख स्तंभों में माने जाते हैं। इनका जन्म 1872 ई० में पंजाबी के महान् साहित्यकार डा० चरणसिंह (दे०) के घर, अमृतसर में हुआ। इनके नाना ज्ञानी हजारासिंह धार्मिक वृत्ति के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। नाना और पिता के धार्मिक और साहित्यिक जीवन का वीरसिंह जी के व्यक्तित्व पर पूरा प्रभाव पड़ा। ये कुशाग्र-बुद्धि, अध्यवसायी, धर्म-प्रेमी और साहित्य-साधक होने के साथ-साथ कुशल पत्रकार और कर्मठ जाति-संगठक भी थे। 1892 ई० में इन्होंने भाई वज़ीर सिंह के साथ मिलकर 'वज़ीर हिंद प्रेस' खोली, 1894 ई० में 'खालसा-ट्रैक्ट सोसाइटी' की स्थापना की और पाँच वर्ष पश्चात् 'खालसा-समाचार' नामक पंजाबी साप्ताहिक पत्र प्रारंभ किया। इन्होंने 'खालसा ट्रैक्ट सोसाइटी' के निमित्त अनेक छोटी-बड़ी पुस्तिकाएँ लिखने के अतिरिक्त पंजाबी-साहित्य को कई महत्वपूर्ण ग्रंथ भेंट किए हैं। उल्लेखनीय नाम है—काव्य : 'राणा सूरतसिंह' (दे०), 'लहरां दे हार', 'मटक हुलारे' (दे०), 'बिजलियां दे हार', 'कंबदी कलाई', 'प्रीत वीणा', 'मेरे साइआं जीउ' (दे०)। उपन्यास : 'सुंदरी' (दे०), 'बिजैसिंघ', 'सतवंत कौर', 'बाबा नौधसिंघ'। नाटक : 'राजा लखदाता सिंह'। धार्मिक और ऐतिहासिक : 'गुरु नानक चमत्कार' (दे०), 'कलगीधर चमत्कार', 'पुरातन जनमसाखी', 'श्री गुरु ग्रंथ कोश', 'सूरजप्रकाश', 'संत-गाथा' आदि।

इनकी साहित्य-सेवा के उपलक्ष्य में 1949 ई० पंजाब विश्वविद्यालय ने इन्हें 'डॉक्टरेट' की सम्मानार्थ उपाधि प्रदान की। 1955 ई० में साहित्य अकादेमी की ओर से इनकी रचना 'मेरे साईआं जीउ' पर पुरस्कार दिया गया। पंथ-दृष्टि उदार मानवतावाद और उदात्त जीवन-मूल्यों से संपृक्त है।

वीरेशचरिते *(क० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती का उत्तरार्ध]

राघवांक (दे०) का 'वीरेशचरिते' उद्दंड षट्पदी में रचित एक छोटा काव्य है जिसमें दो संधियाँ (अथवा सर्ग) और 127 पद्य हैं। दक्ष-यज्ञ का कथानक इसमें वर्णित हुआ है। शिवजी के क्रोध से वीरभद्र का जन्म होता है और दक्ष के यज्ञ का नाश होता है। वीरभद्र की कथा प्रधान रूप से वर्णित होने के कारण इस काव्य का नाम 'वीरेशचरिते' रखा गया है। इसका अंगी रस 'रौद्र' है। दक्ष, दधीचि, शिव और पार्वती इन सबका क्रोध रौद्र रस को पुष्ट करता है। राघवांक के पूर्व उनके गुरु और मामा हरिहर (दे०) ने 'वीरभद्र देवर रगळे' की रचना की थी। राघवांक के काव्य पर इसका प्रभाव पड़ा है, परंतु इस कारण उसकी मौलिकता नष्ट नहीं हुई है। राघवांक ने औचित्य के अनुसार कथानक में परिवर्तन भी किए हैं। रौद्र रस की तीव्रगामिता के लिए इस तरह कथानक पोषक होता है। कवि की छंद-योजना और ओज-

पूर्ण शैली भी इसमे सहायक होती हैं। आलोचको ने बताया है कि राघवाक के इस काव्य मे चित्रित वातावरण भव्य है, पात्र भव्य है, उनकी वाणी भव्य है, उनकी गति भव्य है और कवि की शैली भी भव्य है। ऐसी भव्यता के कारण पाठको को पूर्ण रसानद प्राप्त होता है। यह काव्य की श्रेष्ठता का प्रमाण है। इसमे सदेह नही कि यह एक उत्कृष्ट खडकाव्य है।

वीरेशलिंगमु पतुलु, कदुकूरि *(त० ले०)* [जन्म—1948 ई०, मृत्यु—1818 ई०]

ये आध्र के राजमहेद्रवरमु नामक शहर के रहने वाले थे। ये वडे समाज-सुधारक तथा महान साहित्य-सुधारक थे। ये तेलुगु मस्कृत तथा अँग्रेजी के विद्वान थे। वृत्ति से ये अध्यापक थे और अच्छे वक्ता, लेखक तथा पत्रकार भी। ये ब्राह्मधर्म के सिद्धातो से प्रभावित थे। समाज-सेवा और साहित्य-सेवा मे इन्होने अपना तन, मन, धन सब कुछ अर्पित कर दिया था। इनकी रचनाएँ हैं 'शुद्धाध्रनिरोष्ठ्यनिर्वचन नैपधमु' (स्वच्छ-तेलुगु म लिखा गया पद्य-काव्य), 'सधि विग्रहमु' [पचतत्र (दे०) के आधार पर लिखा गया गद्य-काव्य], 'रत्नावली' (दे०), 'प्रबोधचद्रोदय' (दे०) आदि सस्कृत से अनूदित नाटक, 'प्रह्लाद', 'हरिश्चद्र' जैसे मौलिक नाटक, 'वलात्कार गान-विनोद' और 'ब्राह्मविनोद जैसे प्रहसन, 'राजशेखरचरित्र' (दे०) (अँग्रेजी उपन्यास का अनुसरण), 'नीतिकथलु', 'सत्यराजा पूर्वदेशयात्रलु' आदि कथात्मक रचनाएँ, 'विक्टो रिया महाराज्ञि-चरित्र', 'जीसस चरित्र' आदि जीवनी-रचनाएँ, स्वदेश सस्थानाधीशुलु' (ऐतिहासिक), कवि-जीवनियाँ, 'आत्मकथा', 'जतुशास्त्र', 'वृक्षशास्त्र' जैसी ज्ञान-विज्ञान-सबधी रचनाएँ, पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित 'देशाभिमानमु', 'देशभापलु', 'आध्र भापाभिवृद्धि', 'स्त्री-विद्या' आदि सैकडो लेख तथा निवध, 'विवेकवर्धिनी', 'हास्यसजीवनी', 'सती हितवोधिनी', 'चितामणि' (पत्र-पत्रिकाएँ)। 1900 ई० तक 10 खडो मे प्रकाशित इनकी रचनाओ मे विस्तार और वैविध्य दोनो हैं। इन्होने आत्म-कथा मे लिखा है कि तेलुगु साहित्य के गद्य-क्षत्र के अत-र्गत उपर्युक्त कई विधाओ का इन्हान ही श्रीगणेश किया था। इनकी रचनाओ म साहित्यिक तथा ज्ञान विज्ञान-सबधी दोनो प्रकार के ग्रथ पाए जाते हैं। अँग्रेजी-साहित्य के अनुवाद, अनुकरण तथा अनुसरण भी इनम पर्याप्त मात्रा म देखने को मिलत हैं। भापा तथा शैली की सुगमता और गद्यबद्धता इनकी रचनाओ की कुछ विशेषताए हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण वात यह है कि इनमे तत्कालीन समाज का स्पष्ट तथा वहुमुखी चित्र पाया जाता है।

इन्होने तेलुगु-साहित्य-क्षेत्र म पद्य के साथ गद्य को भी समान तथा सुस्थिर स्थान प्रदान किया, सरल तथा स्वस्थ गद्य-शैली का आदर्श प्रस्तुत किया और अँग्रेजी-साहित्य के परिचय से विविध गद्य विधाओ का आरभ किया। गद्यक्षेत्र मे अपनी प्रतिभा के कारण इन्होने 'गद्य-तिक्कन' की उपाधि प्राप्त की है। इनको दक्षिण का विद्यासागर कहा जाता है। हिंदी-साहित्य के इतिहास म भारतेंदु (दे०) हरिश्चद्र की तरह तलुगु मे कदुकूरि वीरेश-लिंगमु आधुनिक युग के प्रवर्तक माने जाते है।

वीरविनोद *(हिं० कृ०)* [रचना काल—1871 ई० से 1892 ई० तक]

इसके रचयिता कविराजा श्यामलदास थे। 'वीरविनोद' नाम से राजस्थान मे कई रचनाएँ मिलती हैं, जिनमे वाँकीदास (दे०) का 'वीरविनोद' भी प्रसिद्ध है। किंतु, सबसे अधिक प्रसिद्ध 'वीरविनोद' श्यामलदास की यह कृति ही है। यह एक वृहत् इतिहास-ग्रथ है, जो 2700 पृष्ठो मे पूर्ण हुआ है। इसमे मेवाड के राजाओ का प्रामाणिक इतिहास विस्तार से वर्णित है तथा प्रासगिक रूप मे राजस्थान के अन्य राज्यो का भी इतिहास आया है। इसकी भापा अरवी-फारसी-मिश्रित खडी वोली हिंदी है।

वी० वी० *(मल० ले०)*

वळ्ळत्तोळ् वासुदेव मेनन वळ्ळत्तोळ् परिवार के सदस्य और प्रसिद्ध कवि कुट्टिप्पुरत्तु केशवन् नायर (दे०) के सुपुत्र थे। वी० वी० के नाम से प्रकाशित पुस्तकों मे रेखाचित्रों का सग्रह 'माराल् कूट्टुकारम्' और कहानी सग्रह 'सध्या' प्रमुख है। महाकवि जी० शकर कुरुप्प (दे०) की कुछ कविताओं का इन्होंने अँग्रेजी म अनुवाद भी किया है।

वी० वी० का सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान इनके रेखाचित्र ही हैं। कुट्टिकृष्ण मारार् (दे०), जी० शकर कुरुप्प आदि साहित्यकारों और अनेक अन्य महापुरुषों के व्यक्तित्व का सही मूल्याकन करने मे इन्हें सफलता मिली है।

बीसलदेवरासो *(हि० कृ०)* [रचना-काल—संभवत: 1215 ई०]

इस ग्रंथ के कर्ता नरपति (दे०) नाल्ह हैं। इसका चरितनायक विग्रहराज तृतीय अथवा चतुर्थ है। अधिक संभावना यही है कि विग्रहराज तृतीय (शासन-काल 973-999 ई०) ही इसका चरित-नायक है, किंतु स्वयं नरपति नाल्ह विग्रहराज चतुर्थ के समकालीन एवं सभा-कवि थे।

यह ग्रंथ अपूर्ण रूप में प्राप्त है। इसका कथानक प्रमुखत: बीसलदेव की नवोढ़ा प्रोषितपतिका की विरह-व्यंजना पर आधारित है जो चार भागों में विभाजित है। इस प्रकार यह ग्रंथ वीर रस का नहीं है, अपितु इसमें एक वीर पुरुष की शृंगारिक चर्चा है। कहीं-कहीं काव्य-सौंदर्य मोहक तथा अनूठा है। यह काव्य-गीत के रूप में लिखा गया है, क्योंकि इसकी वर्णन-शैली घटनात्मक नहीं है, वर्णनात्मक है।

यह ग्रंथ भाषा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसकी भाषा को उस युग की भाषा का संधिस्थल कह सकते हैं, क्योंकि इसकी भाषा में एक ओर अपभ्रंश का प्रभाव मिलता है. और दूसरी ओर हिंदी-रूपों का समावेश है। इस स्थिति में ऐसा आभासित होता है कि शिष्ट काव्य-भाषा में ब्रज और खड़ीबोली के प्राचीन रूप का ही राजस्थान में भी व्यवहार होता था। साहित्य की सामान्य भाषा हिंदी ही थी जो 'पिंगल' (दे० डिंगल-पिंगल) भाषा कहलाती थी। 'बीसलदेवरासो' में बीच-बीच में बराबर इस साहित्यिक भाषा (हिंदी) को मिलाने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है।

वृंद *(हि० ले०)* [जन्म—1643 ई०]

वृंद कवि का जन्म 'मेड़ता' (राजस्थान) में हुआ था। ये जोधपुर के महाराज जसवंतसिंह (दे०) के दरबारी कवि थे। इनके बनाये अनेक ग्रंथ कहे जाते हैं—'वृंद सतसई', 'शृंगार-शिक्षा', 'भाव-पंचाशिका', 'रूपक-पचनिका', 'अलंकार-सतसई' और 'हितोपदेशाष्टक'। इनकी ख्याति 'वृंदसतसई' के कारण है। इसमें दृष्टांत, उदाहरण, अर्थांतरन्यास, अप्रस्तुतप्रशंसा आदि अलंकारों के सुंदर उदाहरण हैं। इनका यह ग्रंथ लोकनीति का सुंदर संग्रह है। रीतिकालीन सूक्तिकार कवियों में वृंद का विशिष्ट स्थान है।

वृंदावनदास *(बं० ले०)*

अनुमान है कि सोलहवीं शती के प्रथम दशक के अंत में अथवा द्वितीय दशक के आरंभ में इनका जन्म हुआ और सोलहवीं शती के आठवें दशक में इनका देहांत हुआ था। इनकी माता का नाम नारायणी था। पिता के नाम का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इनके जन्म-स्थान के संबंध में भी निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

ये नित्यानंद प्रभु के शिष्य थे। उन्हीं के आदेश से ये महाप्रभु चैतन्य की जीवनी लिखने में प्रवृत्त हुए। उन्हीं से इन्होंने महाप्रभु का जीवन-वृत्त प्राप्त किया था। इनका प्रमुख ग्रंथ 'श्री चैतन्य भागवत' (दे०) है। अनुमानत: यह ग्रंथ 1541-45 ई० के आसपास पूर्ण हुआ था। 'श्री चैतन्य भागवत' आदि, मध्य तथा अंत तीन खंडों में विभक्त है। इसमें महाप्रभु को नारायण-रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। चैतन्य देव के लोकोत्तर चरित्र ने इनको अत्यंत जनप्रियता दिलाई। ग्रंथ की समाप्ति आकस्मिक रूप से हुई है, अत: कुछ विद्वानों का कहना है कि यह वृद्धावस्था में लिखा गया था और इसके पूर्ण होने से पूर्व ही इनकी मृत्यु हो गई थी।

'श्री चैतन्य भागवत' अत्यंत ललित भाषा में लिखा गया ग्रंथ है। इसमें भाषा को अलंकृत करने का प्रयास नहीं है। भक्ति-रस का यह सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। 'श्री चैतन्य भागवत' में इतिहास के तत्त्व हैं। पंद्रहवीं शती के अंत एवं सोलहवीं शती के प्रारंभ के पश्चिम बंग के सामाजिक जीवन के संबंध में इस ग्रंथ से अत्यंत मूल्यवान सामग्री मिलती है।

'श्री चैतन्य भागवत' स्वत:स्फूर्त कृति है। इसमें अपरिसीम माधुर्य एवं स्वत:उत्सारित अजस्र भक्ति रस ने काव्य को श्रेष्ठ स्थान दिलाया है। चैतन्य की बाल और युवावस्था की लीलाओं का सहज और सरल भाषा में चित्ताकर्षक भाव से इसमें वर्णन हुआ है। अनेक राग-रागिनियों का उल्लेख भी इसमें मिलता है। यह पयार छंद में है। दो-एक स्थानों पर त्रिपदी का व्यवहार भी है।

इस समय भी इस ग्रंथ का गौरव एवं जनप्रियता अक्षुण्ण है।

वृत्तमंजरी *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1911 ई०]

यह ए० आर० राजराजवर्मा (दे०) का छंद-

शास्त्र-ग्रंथ है। इसमे संस्कृत और मलयाळम के छंद लक्षण-उदाहरण सहित स्पष्ट किए गए हैं। पुस्तक विद्यार्थियो के लिए उपयोगी भाषा मे लिखी गई है।

'वृत्तमजरी' मलयाळम का प्रामाणिक छद-शास्त्र-ग्रथ है। इसमे संस्कृत की परपरा के अनुसार संस्कृत-छदो के लक्षण उसी छद के पद्य-भागो मे दिए गए है। साथ ही गद्य म व्याख्या भी है। कई द्राविड छदो को ग्रथकार ने नये नाम दिए हैं और उनको साहित्य मे प्रतिष्ठित किया है। आज भी 'वृत्तमजरी' जैसी कृति इस क्षेत्र मे नही है। 'केरलपाणिनीयम' (दे०) और 'भाषा-भूषणम्' की तरह 'वृत्तमजरी' भी ए० आर० राजराज-वर्मा की अमर कृति है।

वृत्तशिल्पम् (मल० कृ०) [रचना-काल—1952 ई०]

यह छद शास्त्र पर कुट्टिकृष्ण मारार (दे०) का शोधपूर्ण ग्रथ है। इस ग्रथ मे लेखक ने अपने इस मत का समर्थन किया है कि छदो का आधार ताल है और ताल पर आधारित मात्रा-गणो के समूह के रूप मे प्रत्येक छद का विश्लेषण किया जा सकता है। उन्होने दिखाया है कि अक्षर-गणो पर आधारित संस्कृत छदो को भी इस विश्लेषण के अधीन लाया जा सकता है। छद शास्त्र पर मलयाळम मे उपस्थित पुस्तको मे 'वृत्तशिल्पम्' का स्थान अग्रगण्य है।

वृत्ति (नाट्यवृत्ति) (पारि०)

'वृत्ति' शब्द का प्रयोग काव्यशास्त्र मे उप-नागरिका (वैदर्भी) आदि रीतियो (दे० रीति), अभिधा आदि शब्दशक्तियो तथा भारती आदि वृत्तियो (नाट्य-वृत्तियो) के अर्थ मे हुआ है। नाटक मे विभिन्न पात्र जो एक-दूसरे के प्रति, अथवा किसी उद्देश्य-प्राप्ति के लिए विभिन्न व्यापार (व्यवहार) करते हैं उसे 'वृत्ति' (नाट्य-वृत्ति) कहते हैं। अभिनय करते समय पात्र तीन प्रकार की चेष्टाएँ करता है—वाचिक, आगिक और मानसिक। इन्ही चेष्टाओ का वैचित्र्यपूर्ण सगम 'वृत्ति कहाता है—कायवाड्मनसा चेष्टा एव सह वैचित्र्येण वृत्तय। राजशेखर (दे०) ने 'विलास-विन्यास-क्रम' को वृत्ति कहा है और इसकी तुलना मे वेश-विन्यास क्रम' को प्रवृत्ति। 'विलास' से अभिप्राय है—पात्र द्वारा बोले गए वचन और की गई चेष्टा का भगिमायुक्त व्यापार। भोज (दे०) के अनुसार वृत्ति उस व्यापार (व्यवहार) को कहते है जो किसी पात्र द्वारा चित्त की निम्नोक्त अवस्थाओ मे किया जाता है—विकास, विक्षेप, सकोच और विस्तार। वृत्ति को भरत (दे०) ने 'नाट्यमाता' अर्थात् अभिनेय (दृश्य) काव्य की जननी कहा है। वृत्ति (नाट्यवृत्ति) के चार भेद हैं—(1) 'भारती', अर्थात् पात्रो का वाग्व्यापार भारती वाग्वृत्ति, पाठ्यप्रधानो भारती।--अभिनव गुप्त। (2) 'आरभटी' अर्थात् उत्साहपूर्ण तथा उद्धत वचन और युद्ध तथा रौद्र प्रदर्शक चेष्टाएँ। यह अरो (भरो) की वृत्ति मानी गई है—इयर्ति इति अरा भरा सोत्साहा अनलसा, तेषामियम् आरभटी।—अभिनव गुप्त (दे०)। इसके चार अग माने गए है—सक्षिप्तका सफेट, वस्तू-त्थापन और अवपातन। —दशरूपक 2 57-59। (3) 'सात्वती' अर्थात् सत्य अथवा मन से सबध रखने वाली वृत्ति—मनोव्यापाररूपता सात्त्वकी सात्विती। इसके भी चार अग हैं—सलाप उत्थापक, साघात्य और परि-वर्तक (दशरूपक 2 53) (4) 'कैशिकी'—केशो के समान कोमलवृत्ति जिसका प्रयोग नारी-पात्र करते है। लालित्य और सौकुमार्य के प्रयोग को 'कैशिकी' वृत्ति कहते हैं। इसके चार अग हैं—नर्म नर्मस्फिज, नर्मस्फोट और नर्म-गर्भ। —दशरूपक 2 47।

वृषभेंद्रविजय (क० कृ०)

'वृषभेंद्रविजय' के कवि षडक्षरदेव (दे०) (रचना-काल 1655-77 ई०) मध्यकाल के अत्यत प्रसिद्ध वीरशैव कवि है। उन्होने तीन चपू-काव्य लिखकर अपार यश प्राप्त किया है जिनमे एक 'वृषभेंद्रविजय' है। वह बसवेश्वर के चरित को प्रकाशित करने वाला एक बृहद् काव्य है। उसमे 42 आश्वास अथवा सर्ग तथा लगभग चार हजार पद्य हैं। चपू-काव्य होने के कारण गद्य का प्रयोग भी उसमे हुआ है, परतु वे दीर्घ नही हैं और अधिक भी नही हैं। कन्नड मे बसवेश्वर के चरित को महाकवि हरिहर (दे०) ने काव्य का विषय बनाया था जिसका प्रभाव कई वीरशैव-कवियो पर पडा। उनमे षडक्षरदेव भी एक हैं। उन्होंने कहा है—'मैंने हरिहर के मार्ग का अनुसरण किया है।' यह उनकी साम्प्रदायिक निष्ठा का ही द्योतक है।

चरित-काव्यों मे कथावस्तु के परिवर्तन के लिए विशेष स्थान नही रहता क्योंकि, ऐसे परिवर्तनो मे चरित-नायक के चरित्र-चित्रण मे अस्वाभाविक अश समाविष्ट

हो जाने की संभावना रहती है। अतएव, प्रतिभावान् कवि जहाँ कथा में परिवर्तन करना संभव होता है, वहाँ इस प्रकार परिवर्तन लाता है कि औचित्य-भंग न हो। पडक्षरदेव ने वैसा ही किया है। उनके औचित्य-ज्ञान का सबसे बड़ा निदर्शन यही है कि उनके वर्णनों में परिमितता है और उनका बाहुल्य भी नहीं है। रसपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करने तथा रमणीय भाषा और प्रवाहपूर्ण शैली में कल्पना की शालीनता दिखाने में उनको अद्भुत सफलता मिली है। उनका 'वृषभेंद्रविजय' महाकाव्य है, कन्नड़ की श्रेष्ठ कृतियों की पंक्ति मे निश्चित रूप से उसका स्थान है।

वृषभेश्वरशतकम् *(ते० कृ०)* [रचना-काल--तेरहवीं-चौदहवी शती]

तेलुगु के वीरशैव कवियो में पाल्कुरिकि सोमनाथुडु (दे०) सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इनकी रचनाएँ तेलुगु, संस्कृत और कन्नड़ तीनों भाषाओं में मिलती है।

अब तक तेलुगु मे उपलब्ध मुकुट, संख्या आदि नियमो से युक्त शतकों में यह सर्वप्रथम शतक है। 'बसवा बसवा वृषाधिपा' इस मुकुट से इसकी रचना की गई है। यह शतक परम भक्ति से पूर्ण है। बसवेश्वर की लीलाओं के साथ-साथ अन्य शिवभक्तों के चरितों का वर्णन तथा उनकी स्तुति इस काव्य में की गई है। 'अष्टभाषा विशारद' सोमनाथुडु ने बीच-बीच में तमिल, कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं मे भी कुछ छंद इस शतक मे लिखे है। इससे उनका बहु-भाषा-ज्ञान प्रकट होता है।

वृहत्कथा *(सं० कृ०)*

इसका लेखक गुणाढ्य है, जिसका समय ईसा की प्रथम शती (78 ई०) माना गया है। जनश्रुति है कि पैशाची भाषा मे लिखे गए इस ग्रंथ मे 7 लाख श्लोक थे, जिसे कथाकार ने तत्कालीन सातवाहन राजा हाल (दे०) [गाहासत्तसई (दे०) के लेखक] के पास भेजा था, किंतु उसके द्वारा इसे अस्वीकार किए जाने पर गुणाढ्य ने रो-रोकर पढ़ते हुए इसका एक-एक पन्ना अग्नि-कुंड में जलाते-जलाते इसके 6 लाख पन्ने जला दिए। शेष एक लाख श्लोकों में नरवाहनदत्त के चरित वाली कथा बच रही है जिसमें इसके पराक्रमों का वर्णन है। यह कौशांबी के राजा उदयन का पुत्र था। एक बार यह अपने मित्र गोमुख के साथ वन में गया। वहाँ उसने विद्याधर-राजकुमारी मदनमंजुका (मदनमंचुका) से विवाह कर लिया, किंतु उसे एक विद्याधर मानसवेग उड़ा ले गया। मानसवेग की बहिन वेगवती ने मदनमंजुका का पता लगाने में नरवाहनदत्त की सहायता की। अंततः वह सफल हुआ और विद्याधरों का राजा बन गया।

उक्त मूलकृति पद्यबद्ध थी अथवा गद्यबद्ध, इसमे मतभेद है। कश्मीर की जनश्रुति के अनुसार यह पद्यबद्ध थी, किंतु दंडी (दे०) ने 'काव्यादर्श' (दे०) में इसे गद्यबद्ध कहा है। जो हो, पैशाची भाषा में लिखित मूल ग्रंथ अब उपलब्ध नही है। अब इसके तीन संक्षिप्त संस्कृत-रूपांतर मात्र मिलते हैं। अपनी सरसता तथा रोचक वर्णन-शैली के कारण लोक-कथाओं मे वृहत्कथा का उस प्रकार सर्वोपरि स्थान है, जिस प्रकार 'पंचतंत्र' (दे०) का स्थान नीति-कथाओं में सर्वोपरि है। तीन संस्कृत-रूपांतर इस प्रकार हैं—(1) नेपाल के बुद्धस्वामी-कृत 'वृहत्कथाश्लोक-संग्रह' (समय आठवीं या नवी शती)। (2) क्षेमेंद्र (दे०) द्वारा रचित 'वृहत्कथामंजरी' (दे०), तथा (3) सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर'। इन दोनों का समय 1037 ई० है। वृहत्कथा के दो तमिल-संस्करण भी पाये जाते है।

वृहत्कथामंजरी *(सं० कृ०)*

'वृहत्कथामंजरी' पैशाची भाषा में रचित वृहत्कथा का संस्कृत-पद्य-रूपांतर है। विविध प्रतिभा के धनी क्षेमेंद्र (दे०) की सशक्त लेखनी से प्रसूत यह कथा संस्कृत-साहित्य की अनुपम निधि है।

अट्ठारह लंबकों (अध्यायों) के इस कथाकाव्य में प्रधान कथा के साथ अनेक अवांतर कथाएँ भी कही गई हैं। मुख्य कथा का नायक वत्सराज उदयन (दे०) का पुत्र नरवाहनदत्त है जो गंधर्वों का चक्रवर्तित्व प्राप्त करता है। वह अनेक गंधर्व-सुंदरियों से प्रणय एवं परिणय करता है। उनमें से मदनमंचुका उसकी पटरानी बनती है।

इस ग्रंथ में क्षेमेंद्र ने देवी-देवताओं की भव्य स्तुतियों के साथ ही प्रकृति के रम्य दृश्य उपस्थित किए है। क्षेमेंद्र की कथा-प्रणाली में अनेक वैशिष्ट्य विद्यमान है। इनमें कुछ तो मूलकथा की विशेषता के कारण हैं और कुछ कवि की निजी उद्भावनाएँ हैं। इसमें प्रधान कथा में से अवांतर कथाएँ स्वतः निकलती रहती है। बाण (दे०) तथा दंडी (दे०) ने इन कथाओं की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। यह संस्कृत के कथा-साहित्य में

भारतीय जीवन-दर्शन को अभिव्यक्त करने वाला एक नितात रोचक, सरस तथा उपदेशप्रद काव्य है।

बृहस्पति (स० ले०) [समय—अनुमानत 200-400 ई० के बीच]

'महाभारत' (दे०) मे बृहस्पति को देवगुरु कहा गया है। बृहस्पति-रचित महत्वपूर्ण ग्रथ 'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' के नाम से प्रसिद्ध है। इस ग्रथ का प्रकाशन एफ० डब्ल्यु टॉमस ने 1921 ई० मे किया था। 'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र' मे 6 अध्याय हैं।

बृहस्पति का अर्थशास्त्र कौटिल्य (दे०) के 'अर्थशास्त्र' (दे०) का प्रमुख आधार कहा जा सकता है। कौटिल्य ने जिन पाँच अर्थशास्त्रीय सप्रदायो का उल्लेख किया है, उनमे बार्हस्पत्य प्रमुख है। वात्स्यायन (दे०) ने 'कामसूत्र' मे 'बृहस्पतिरर्थाधिकारिकम' कहकर बृहस्पति के अर्थशास्त्री होने का उल्लेख किया है।

बृहस्पति ने युवा जन को मत्री-पद के लिए अयोग्य बतलाया है। राजा के कर्तव्यो का उल्लेख करते हुए बृहस्पति ने कहा है कि राजा को पथिको के लिए धर्मशाला निर्माण, मदिर निर्माण आदि कार्य करवाना चाहिए। इसके अतिरिक्त राजा को प्रजा के चारित्रिक विकास के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

निश्चय ही, 'बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र प्राचीन भारतीय राजनीति का एक अदभुत प्रामाणिक ग्रथ है।

वेंकट अप्पाराव, बसवराजु (ते० ले०) [जन्म—1894 ई०, मृत्यु—1933 ई०]

अप्पाराव जी का जन्म विजयवाडा के समीप 'पटमटा' नामक ग्राम म हुआ। बचपन मे ही इनकी माता स्वर्ग सिधार गई थी। अत इनका पालन-पोषण इनके मामा के यहाँ हुआ। 1912 ई० म य हाईस्कूल परीक्षा म उत्तीर्ण हुए। 1916 ई० म बी० ए० तथा 1936 ई० म वकालत की परीक्षा इन्हान मद्रास से पास की।

अप्पाराव जी प्रतिभा-सपन्न व्यक्ति थे। इनकी गति साहित्य तथा सगीत दोना म समान रूप स थी। कविता के क्षेत्र म य सब से अधिक गुरजाडा अप्पाराव (दे०) जी की कविता-शैली से प्रभावित हुए। अत इनकी वाणी लोक-जीवन के निकट तथा सुबोध थी। यद्यपि इन पर कुछ कविताओ म स्वच्छदतावाद की वैयक्तिक अनुभूतियो के उद्गार मिलते हैं तथापि कुल मिलाकर यही कहना पडता है कि इन्होने अपने जीवन को तथा विचारधाराओ एव अभिव्यक्ति शैलियो को समाज और देश की समष्टिगत समस्याओ का सक्षम माध्यम बना दिया। फलत अपने व्यक्तिगत जीवन मे इन्हे बहुत कुछ त्याग और बलिदान करना पडा। गाधीवाद का प्रभाव भी इन पर बहुत था।

इनकी कृतियो मे उल्लेखनीय हैं: (1) 'सेलयेटिगानमु', (2) 'बसवराजु अप्पाराबु गीतमुलु', (3) 'आध्रकवित्वचरित्रमु' आदि।

गीतकार कवि के रूप म इनका यश चिरस्थायी है।

वेंकटपति, शेष (ते० ले०) [समय—अठारहवी शती ई० का पूर्वार्ध]

वेंकटपति कवि मदुरै पर प्रशासन करने वाले विजयरगचोक्कनाथ के समकालीन थे। इनके मित्रा म समुख वेंकटकृष्णप्पनायक तथा बगल शीनय्या उल्लेखनीय थे। कृष्णप्पनायक तथा शीनय्या, दोनो तत्कालीन राजा चोक्कनाथ को प्रभावित करते थे। अत उनके मित्र होने के कारण कवि वेंकटपति सुखमय जीवन बिताते थे।

वेंकटपति रचित कृतियो म आजकल एकमात्र कृति 'शशाकविजयमु' उपलब्ध हुई है। 'शशाकविजयमु' की प्रशस्ति तेलुगु-साहित्य के गिने चुने शृगार-काव्या म की जाती है। यह पाँच आश्वासा म निबद्ध काव्य है जिसम तारा एव चद्र की प्रणयगाथा अभिवर्णित है। चद्र गुरुकुल वास का क्लेश उठाते हुए बृहस्पति के यहाँ शिक्षा ग्रहण करते थे। सुदर यौवन स भूषित चद्र को गुरु-पत्नी तारा प्रेम करन लगी। एक बार बृहस्पति को किसी यज्ञ म भाग लेन के लिए इद्र से निमत्रण मिला। तारा की सहायता के लिए शिष्य चद्र का आदिष्ट किया। वसत के आगमन स सारी प्रकृति पुलकित थी। मौके स न चूकने वाली तारा ने इस अवसर म पूरा लाभ उठाया। चद्र सहज ही आरभ म गुरुद्रोह के लिए प्रस्तुत नहीं था। मनोविज्ञान के आधार पर दोनो म तर्क वितर्क बहुत दूर चला। इस प्रसग म कवि ने अपनी नाटकीय प्रतिभा का परिचय दिया। अत म तारा जीत गई और उसकी मनोकामना की सिद्धि हुई। याग स निवृत्त बृहस्पति को इस घटना का पता चला। दपती म वाद विवाद चला। अत म गुरु ने शिष्य चद्र को निरादर दिया।

वेंकट-पार्वतीश्वर कवुलु *(ते० ले०)* [वेंकटराव : जन्म—1880 ई० तथा पार्वतीशमु : जन्म—1882 ई०]

दोनों ने मिलकर इस नाम से संयुक्त रचनाएँ की है। आधुनिक युग के प्रवर्तक साहित्यकारों मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है। बीसवीं शती के आरंभ में तेलुगु-साहित्य को नयी दिशा, नयी प्रेरणा एवं नयी शक्ति प्रदान करके इन्होंने उसके भंडार को और अधिक संपन्न किया है। 'काव्यकुसुमावली', 'वृंदावनमु', 'एकांतसेवा' (दे०), आदि इनके काव्य-ग्रंथ हैं और 'ताराशशांकमु' इनका नाटक। इसके अतिरिक्त बंगला एवं अंग्रेज़ी से अनेक ग्रंथों का अनुवाद करके इन्होंने तत्कालीन तेलुगु-साहित्य की आवश्यकताओं की पूर्ति की है।

आधुनिक तेलुगु-कविता मे प्रगीत-शैली का आरंभ इनकी 'एकांतसेवा' एवं 'काव्यकुसुमावली' से ही आरंभ हुआ था। इनकी रचनाओं में सहज स्वाभाविक भाषा तथा नूतन एवं विलक्षण गति दर्शनीय होती है। कविता में शब्दों की 'पुनरावृत्ति इन को प्रिय लगती है। तेलुगु के शब्द-गुंफ को इतनी मृदुता, स्वच्छंदता एवं माधुर्य के साथ किसी ने भी प्रयुक्त नहीं किया है। इनकी भाषा अत्यंत सरल है किंतु भाव अति गंभीर।

वेंकटरत्नमु पंतुलु, कोक्कोंड *(ते० ले०)* [जन्म—1842 ई०; मृत्यु—1915 ई०]

श्री वेंकटरत्नम् पंतुलु आधुनिक तेलुगु-साहित्य के प्रवर्त्तक कंदुकूरि वीरेशलिंगमु पंतुलु (दे०) के पथ-प्रदर्शकों में माने जाते है। साहित्य, समाज और धर्म—तीनों क्षेत्रों में इनका प्रवेश था। इनको तेलुगु का 'जॉनसन' कहा जाता है। संस्कृत की 'कादंबरी' (दे०) पर आधारित इनके 'महाश्वेता' नामक उपन्यास का तेलुगु के प्रारंभिक उपन्यासों मे प्रमुख स्थान है। संस्कृत से 'नरकासुर विजय व्यायोगमु' का तेलुगु में रूपांतर कर पंतुलु ने नाटक-रचना की एक नयी दिशा का उद्घाटन किया।

कई तीर्थस्थलों के माहात्म्य का वर्णन करने वाली इनकी कई काव्यकृतियाँ मिलती है। अध्यापन श्री पंतुलु का व्यवसाय रहा और पत्रकारिता में भी इनको काफ़ी सफलता प्राप्त हुई। 'गीतगोविंद' (दे०) के अनुकरण पर इन्होने संस्कृत में 'गीतमहानटनमु' की रचना की।

वेंकट रमणय्या, नेलटूरि *(ते० ले०)*

सुब्बय्या और पापम्मा के पुत्र वेंकटरमणय्या का जन्म नेल्लूरू जिले के नेलटूर ग्राम में हुआ। 1919 ई० में मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज से बी० ए० ऑनर्स (इतिहास) करने के बाद ये बंगलूर, मद्रास आदि नगरों में इतिहास तथा तेलुगु का अध्यापन कार्य करते रहे। 1928-29 ई० में इन्होंने 'दक्षिण भारत के मंदिरों के स्रोत' शीर्षक विषय पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। 1930 से 1946 ई० तक मद्रास विश्वविद्यालय के इतिहास तथा पुरातत्त्व विभाग में ये रीडर के पद पर रहे और वहाँ से अवकाश ग्रहण करने के बाद 'स्वतंत्रता-आंदोलन के इतिहास' की रचना में मद्रास तथा आंध्र में शोध-अधिकारी के रूप में काम किया। स्टेट गज़ेटीयर कार्यालय (आंध्र) में भी इन्होंने उच्च अधिकारी के पद को सुशोभित किया। 1964 से 1971 ई० तक पुरातत्व-विभाग में एपिग्राफ़ी शाखा के असिस्टेंट डायरेक्टर के कार्यभार को सँभालने के बाद, आजकल ये घर पर ही लेखन कार्य कर रहे हैं।

दक्षिण भारत के और विशेषकर आंध्र प्रदेश के इतिहास के जाने-माने विद्वान् हैं। दक्षिण के अनेक राजवंशों के इतिहास को प्रकाश में लाने वालों में इनका विशिष्ट स्थान है। इन्होंने दक्षिण भारत के इतिहास से संबद्ध लगभग दस महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना अंग्रेज़ी में की है। 'ए कांप्रेहेंसिव हिस्टरी ऑफ़ इंडिया' की रचना में इन्होंने प्रो० नीलकंठ शास्त्री को सहयोग प्रदान किया था। इन्होने 'एपिग्राफ़ी आंध्रिका' (भाग 1 और 2) का संपादन किया तथा रुद्रशिव और विष्णु कुंडिन राजाओं के इतिहास पर मद्रास विश्वविद्यालय में 'एक्सटेंशन' भाषण दिए हैं। इनके इतिहास से संबंधित सौ से अधिक लेख प्रकाशित हुए है।

इन्होंने दक्षिण भारत से संबद्ध 6-7 पुस्तकें तेलुगु भाषा में भी लिखी हैं। तंजौर और मदुरै के नायक राजाओं के समय के तेलुगु-साहित्य पर इन्होंने पर्याप्त शोध किया है और एक आधिकारिक पुस्तक लिखी है।

ये अच्छे कहानीकार भी हैं। इनका 'मधुमावती और अन्य कहानियाँ' नाम से कहानियों का संकलन प्रकाशित हुआ है। श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) के अंतिम दिनों के इतिहास को लेकर लिखी गई इनकी 'पश्चातापमु' नामक कहानी अत्यंत प्रसिद्ध है।

इन्होंने विजयनगर के इतिहास की पृष्ठभूमि पर, अँग्रेज़ी में भी चार श्रेष्ठ कहानियाँ लिखी हैं।

वेंकटरमणय्या, बुलुसु (*तें० ले०*) [जन्म—1907 ई०]

वेंकटरमणय्या जी 'उभयभाषाप्रवीण' तथा 'साहित्यविद्याप्रवीण' हैं। मद्रास की टिल्नेट पाठशाला मे अध्यापक का कार्य कर, इन्होने अवकाश ग्रहण किया है। काशी विश्वविद्यालय मे कुछ वर्षों तक अलकारशास्त्र (दे०) पर भी इन्होने शोधकार्य किया है। 'विजयविलासमु' (दे०), 'मनुचरित्र' (दे०), 'पाडुरगमहात्म्यमु' (दे०), 'आध्रमहाभागवतमु' (दे० 'महाभागवतमु'), 'प्रौढ व्याकरणमु', 'नरसभूपालीयमु', 'बालव्याकरणमु' आदि ग्रथो पर इनकी छोटी टीकाएँ पर्याप्त लोकप्रिय है। इनके अतिरिक्त इन्होने 'निर्मलानदम्' (नाटक), 'पदहार रात्रुलु' (सोलह रातें) (कहानी सग्रह), 'चित्तूरदुर्गमु' (उपन्यास), 'इनुपमेडलु', 'पोगडदडा', 'कलिगदेशमु', 'मायालोकमु' 'वुजरयूथमु' आदि गवेषणापूर्ण लेख भी लिखे हैं। सप्रति मद्रास मे 'आध्र-पत्रिका' (साप्ताहिक) मे 'धर्मपथमु' नामक स्तभ के लिए लिख रहे है।

वेंकटरामैया, के० (*के० ले०*)

ये कन्नड अंग्रेजी, सस्कृत और तेलुगु के अच्छे विद्वान है। ये मैसूर विश्वविद्यालय मे कन्नड प्राध्यापक थे। आप बडे अच्छे वक्ता हैं। इन्होने 'कन्नड भागवत' का सपादन किया है जिसका दशम स्कध ही प्रकाशित हुआ है। इनकी 'कन्नड साहित्य' नामक कृशकाय रचना अत्यत उपयोगी है। गत वर्ष इनकी पुस्तक 'पप-नन्नय—ओदु समीक्षे' (पप और नन्नय —एक समीक्षा) प्रकाश मे आए हैं जो कन्नड और तेलुगु भाषाओ पर इनके समान अधिकार की परिचायक है। इसमे कन्नड और तेलुगु के आदि महाकवियो के काव्यो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। 'पपभारत समीक्षे' और 'काव्यमथन' इनकी अन्य आलोचनात्मक कृतियाँ हैं।

वेंकटरामैया, सी० के० (*क० ले०*)

ये आधुनिक कन्नड-साहित्य मे उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार और आलोचक के रूप मे पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके है। छात्र-जीवन मे ही इन्होंने मिसेज हेनरी वुड के उपन्यासो के आधार पर 'हरियाणाक्षी' और 'विनयचद्र' नाम से दो उपन्यास लिखे थे। इनका 'अर्गलकुमारी' नामक उपन्यास मैसूर विश्वविद्यालय से पुरस्कृत हुआ था, किंतु उसकी हस्तलिखित प्रति खो जाने से प्रकाश मे न आ सका। इनके 'सयुक्तापहरण' नामक उपन्यास का थोडा अंश प्रबुद्ध कर्णाटक मे धारावाहिक रूप से प्रकट हुआ था। कहानियो मे इनकी 'नीने मुद्दुरण्ण' बहुत लोकप्रिय हुई है। इनके नाटको मे 'मडोदरी', 'ब्रह्मवादिनी' और 'तेनालि रामकृष्ण' प्रसिद्ध हैं। 'नम्म समाज' (हमारा समाज) और 'सुदरी' इनके सामाजिक नाटक हैं। हल्लिय कथेगलु' और 'तुराय' इनके कथा-सग्रह है। 'पैगबर महम्मद', 'बुद्ध', 'हर्षवर्धन', 'एब्रहाम लिंकन' और 'गुरुदेव' इनके द्वारा रचे गए जीवनचरित-ग्रथ हैं। इनके आलोचनात्मक लेखो की सख्या भी कम नही है। 'भास' पर इन्होंने सुदीर्घ अध्ययन के बाद एक बृहदाकार, सुदर और महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है।

वेंकटराय शास्त्री, वेद (*तें० ले०*) [जन्म—1853 ई०, मृत्यु—1929 ई०]

उन्नीसवी शती के अतिम चरण मे तेलुगु-साहित्य मे नाटककार, समालोचक, भाषामर्मज्ञ और दार्शनिक के रूप मे प्रसिद्ध श्री वेंकटराय शास्त्री का जन्म मद्रास मे हुआ। प्राचीन परपरा के पारगत विद्वान् होते हुए भी आधुनिक विचारधारा से अनुप्राणित इनकी साहित्य-साधना ने इनको महामहोपाध्याय, सर्वतत्र स्वतत्र, कलाप्रपूर्ण आदि विरुदावलियो से विभूषित किया था। इनका 'प्रतापरुद्रीयमु' (दे०) (1897 ई०) नामक नाटक तेलुगु का पहला मौलिक नाटक माना जाता है। पात्रोचित भाषा का प्रयोग, पात्र-सृष्टि मे सजीवता, कथाविधान मे रस-दृष्टि आदि कई विशेषताओ के कारण इस नाटक का काफी प्रचार और प्रदर्शन हुआ। 'उषा-परिणयमु' (1901 ई०) और 'बोब्बिलि युद्धमु' (1916 ई०) भी इनके मौलिक नाटक हैं। शास्त्री जी ने 'नागानद' (दे०), 'अभिज्ञानशाकुतलम्' (दे०), 'प्रियदर्शिका' (दे०), 'मालविकाग्निमित्रम्' (दे०), 'उत्तररामचरितम्' (दे०), 'रत्नावली' (दे०), विक्रमोर्वशीयम्' (दे०) आदि कई सस्कृत-नाटको के सुदर तेलुगु-रूपातर प्रस्तुत किए। शास्त्री जी केवल नाटककार के रूप मे ही नही, नाटको के प्रयोक्ता के रूप मे भी प्रसिद्ध हुए। शास्त्री जी उच्च कोटि के समालोचक थे। 'मेघसदेश', 'नैषध' (दे०), 'आमुक्त माल्यदा' (दे०) आदि काव्यो की इन्होंने सुदर व्याख्याएँ लिखीं। तेलुगु भाषा के समयोचित प्रयोग मे भी इनका काफी योगदान है। साहित्यिक और व्यावहारिक

भाषा के बीच में जो असंगति और अंतर विद्यमान था उसमें सामंजस्य स्थापित करने के लिए इन्होंने 'विसंधि-विवेकं' जैसी पुस्तकें लिखीं। शास्त्री जी व्यावहारिक भाषा के समर्थक नहीं थे, फिर भी उनकी धारणा थी कि गद्य और पद्य की भाषा अलग-अलग होनी चाहिए।

वेंकट शेषशास्त्री, गड्डियारमु *(तें० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

नरसंमावा और रामय्य के पुत्र श्री शेषशास्त्री का जन्म कडपा जिले के 'नेमलिदिन्ने' में हुआ था। प्रोद्दुटूर में इनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। 1920 से 1926 ई० के बीच इन्होंने श्री दर्भाक राजशेखर कवि के साथ कई बार अष्टावधान और शतावधान कर, 'अवधानि-पंचानन' का विरुद प्राप्त किया। इस अवधि में दोनों ने मिलकर 'वीर-मती चरित्रमु' (काव्य), 'सीतापहरणमु', 'कीचक वध' (नाटक) की रचना की थी। तत्पश्चात् दोनों अलग हो गए। [राजशेखर दर्भाक (दे०) का 'राणा प्रतापसिंह चरित्र' (दे०) भी प्रसिद्ध महाकाव्य है।] ये 1932 ई० से प्रोद्दुटूर के म्युनिसिपल हाई स्कूल में तेलुगु-पंडित के पद पर रहे। यहाँ से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् आजकल वहीं काव्य-चर्चा में निरत हैं। ये आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के उपाध्यक्ष भी रहे हैं।

शास्त्री जी की प्रकाशित रचनाओं में 'शिव-भारतमु' (दे०) सर्वप्रसिद्ध है। आठ आश्वासों के इस महाकाव्य में शिवजी के जीवनवृत्त को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस काव्य में स्वतंत्रताप्रिय शिवजी, जिजियाबाई, समर्थ रामदास आदि का चरित्र-चित्रण तथा शिवाजी, नाना जी आदि के साहस-कृत्यों का मनोहारी चित्रण किया गया है। इस काव्य की शैली प्रौढ़, प्रवाहयुक्त एवं सरस है। कुछ विद्वान् कवित्रय के 'महाभारत' (दे० आंध्र महाभारत) से 'शिवभारत' की तुलना करते हैं। अकेले इसी काव्य से ये तेलुगु-साहित्य-क्षेत्र में लब्धप्रतिष्ठ हुए हैं।

'शिवभारतमु' के अतिरिक्त इन्होंने 'मुरारी', 'पुष्पबाणविलासमु', 'मल्लिकामारुतमु', 'वाल्मीकि', 'श्री-कृष्णदेवरायचरित्रमु' की रचना भी की है।

वेंकट सीतापति गिडुगु *(तें० ले०)* [जन्म—1885 ई०]

तेलुगु बाल-साहित्य में इनका योगदान महत्व-पूर्ण है। बाल-साहित्य की रचना के अतिरिक्त इन्होंने 1948 ई० में तेलुगु भाषा समिति की ओर से प्रकाशित होने वाले 'तेलुगु विज्ञान सर्वस्वमु' (विश्वकोश) के प्रधान संपादक के रूप में भी कार्य किया है। भाषाविज्ञान के क्षेत्र में भी इन्होंने महत्वपूर्ण अनुसंधान किया है। 'भारती-शतकमु', 'बालानंदमु', 'कुवलयावली' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

वेंकट सुब्बाराव् कोशलि *(तें० ले०)* [जन्म—1904 ई०; मृत्यु—1932 ई०]

देश के अतीत-वैभव के वर्णन में इनकी बड़ी रुचि थी। इनकी रचनाएँ हैं—'हंपी क्षेत्र' और 'गुरु दक्षिणा'। राजा श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) ने विजयनगर राज्य का विस्तार किया तथा ललित कलाओं को आश्रय दिया। उनके शासन-काल (1509-1530 ई०) में 'हंपी' नामक क्षेत्र में मंदिरों, मंडपों तथा मूर्तियों के रूप में शिल्प-कला का आश्चर्यजनक विकास-विस्तार हुआ। दुर्भाग्य-वश कृष्णदेवरायलु के अस्तंगत होते ही उसका सारा वैभव मुसलमानी आक्रमण से ध्वस्त हो गया। हंपी की इस दय-नीय स्थिति पर, क्षुब्धहृदय कवि ने उसके प्राचीन वैभव का जो गुणगान किया वही 'हंपीक्षेत्र' नामक काव्य-रचना में उपलब्ध है। इनकी शैली सरस तथा प्रभावोत्पादक है। अपनी अद्भुत वर्णन-शक्ति के द्वारा अतीत-वैभव को जगा-कर उसे पाठक की दृष्टि के सम्मुख मूर्त कर देने में इनकी प्रतिभा अद्वितीय है।

वेंकटाचलमु, गुडिपाटि *(तें० ले०)*

श्री वेंकटाचलम् प्राचीन रूढ़ियों, परंपराओं एवं मर्यादाओं के कट्टर विरोधी गद्यकार हैं। इन पर आधुनिक पाश्चात्य एवं विचारधारा का गहरा प्रभाव पड़ा है। स्त्री और पुरुष के पारस्परिक संबंधों के विषय में इनके विचार क्रांतिकारी हैं। इन्होंने स्त्री को, पुरानी रूढ़ियों तथा मर्यादाओं से मुक्त करके, पुरुष के समान ही निर्बाध एवं स्वच्छंद रीति से लैंगिक उपभोग एवं आत्म-तुष्टि प्राप्त करने के अधिकार दिलाने के लिए अपने साहित्य द्वारा एक तीव्र आंदोलन चलाया और इस विचारधारा के अनेक लेखकों के नेता एवं मार्गदर्शक बने रहे। इन्होंने 'जीवितादर्शमु', 'प्रमलेखलु', 'म्यूजिंग्स', 'मैदानमु', 'स्त्री' आदि उपन्यासों के अतिरिक्त, 'शशिरेखा', 'चित्रांगि',

'भानुमति' आदि नाटको की भी रचना की है।

श्री वेंकटाचलम् ने पुराणो के प्रसिद्ध प्रसगो को ग्रहण करके उत्तम पात्रो की सृष्टि भी की है। अपने 'भानुमती' नामक नाटक मे इन्होने दुर्योधन की पत्नी भानुमती को एक महान् साम्राज्ञी और द्रौपदी से अधिक उदात्त चरित्र वाली नारी के रूप मे प्रस्तुत किया है। सशक्त भाषा, अपूर्व वातावरण की सृष्टि, उग्र एव आक्रामक विचारधारा, विशिष्ट चरित्रो का निर्माण, सूक्ष्म मानसिक स्थितियो के अनावरण मे दक्षता, इनके प्रमुख गुण है। आजकल ये तिरुवन्नामलै के रमणाश्रम मे आध्यात्मिक जीवन व्यतीत कर रहे है।

वेंकटाचार, बी० *(क० ले०)* [जन्म—1845 ई०, मृत्यु—1914 ई०]

वेंकटाचार के पूर्वज चित्रदुर्ग मे आकर बस गये थे। वेंकटाचार जी की प्रारभिक शिक्षा घर पर ही हुई थी। तत्पश्चात् इन्होने तुमकूर के स्कूल मे अंग्रेजी का अध्ययन किया था। छोटी आयु म ही ये सरकारी कर्मचारी हो गये थे। एकाउटेंट, हेड मुशी, अदालत मे 'शिरस्तेदार' और 'पब्लिक प्रॉसिक्यूटर की हैसियत से इन्होने सरकार की सेवा की थी। बँगाल के ईश्वरचद्र विद्यासागर (दे०) के साथ इनकी मैत्री थी। इन्होने बँगला-साहित्य का अध्ययन किया था। बगला से इन्होने ईश्वरचद्र विद्यासागर के 'भ्रातिविलास' उपन्यास का कन्नड म अनुवाद किया था। स्वामी विवेकानद (दे०) जब दक्षिण भारत आये थे तब ये स्वामी जी से मिले थे। इन्होने ही यहाँ की जनता को स्वामी जी का परिचय कराया था। स्वामी जी बँगला भाषा और साहित्य के प्रति इनके विशेष प्रेम को देखकर बहुत चकित हुए थे।

वेंकटाचार जी की रचनाएँ विशेषत बँगला से अनूदित है। 'आनदमठ' (दे०), अमृतपुलिन, 'उन्मादिनी', 'इदिरा', 'कपालकुडला' (दे०), कमलाकात (दे०), आदि इसी प्रकार की रचनाएँ है। उनकी दुर्गेशनदिनी', 'देवीचौधुरानी', 'भ्रातिविला, 'मृण्मयी', 'मृणालिनी', 'माधवीलता' जैसी रचनाएँ अत्यत लोकप्रिय हुई है। इनकी अन्य रचनाओ म 'स्त्रीशिक्षेय रहस्य' (स्त्री-शिक्षा का रहस्य), 'सुनिक्षित सभ्यराद हिंदुग (सुशिक्षित सभ्य हिंदू), 'गीतोक्त धर्म' और शारदास्तोत्रकदबक' प्रसिद्ध हैं। इनके 56 से अधिक ग्रथ इनकी सुदीर्घ साहित्य-सेवा के प्रमाण है।

कन्नड साहित्य मे वेंकटाचार जी 'कन्नड-उपन्यासो के पितामह' के रूप मे सदा स्मरणीय रहेगे। इन्होने ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना कर जन-मन को अनुरजित ही नही किया अपितु अपनी सरल शैली के द्वारा कन्नड उपन्यासो की पक्की नीव भी डाली। ये सफल पत्रिका सपादक भी थे। बेंगलूर से 'अवकाश तोपिणी' नाम की जो पत्रिका निकलती थी, उसके ये सपादक भी रहे थे।

वेंकटाचार्युलु, माडभूषि *(ते० ले०)* [जन्म—1835 ई०, मृत्यु—1895 ई०]

इनका जन्म-स्थान नूजिवीडु था। प्रसिद्ध विद्वान् नरसिंहाचार्य इनके पिता थे। नूजिवीडु के राजा शोभनाद्रि अप्पाराव के ये आस्थान के विद्वत्कवि रहे।

इनकी बौद्धिक प्रतिभा अनन्य सामान्य थी। ये एकसधाग्रहण के लिए बहुत ही विश्रुत थे। सस्कृत तथा तेलुगु के पारगत विद्वान एव कवि थे। दूसरी भाषाओ के छद भी एक बार सुनकर स्वय उनको निर्दुष्ट रूप से सुनाते थे। आशुकविता एव अवधानकविता के लिए भी ये विख्यात हुए। इनकी निपुणता-सबधी कई जनश्रुतियाँ जनता मे प्रचलित है।

इनकी कृतियो मे मुख्य हैं—(1) 'भरताभ्युदयमु', (2) 'वामन नाटकमु', (3) 'पुष्पवाणविलासमु', (4) 'रामावधूटी नक्षत्रमाला', (5) हससदेशमु' आदि। इनमे आज केवल 'भरताभ्युदयमु' प्राप्त हो हो रहा है। यह विद्वत्तापूर्ण महाकाव्य है। 'पुष्पवाणविलासमु सस्कृत काव्य का अनुवाद है। कहा जाता है कि राजा के आदेशानुसार कवि ने इसकी रचना धारावाही रूप मे आशुकविता के आधार पर की थी। इन कृतियो के अतिरिक्त इनकी कई आशुकविताएँ पडितो मे प्रचलित है। य अपने समय म अभिनवपडितराज माने जाते थे। 'रामावधूटी' पर रचे गये इनके प्रामाणिक छदो से इनकी शृगारी मनोवृत्ति का सुखद परिचय मिलता है।

विशेषत वेंकटाचार्य के आगमन से तेलुगु-साहित्य के इतिहास म एक नवीन विधा के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। यद्यपि आशुकविता तथा अवधानकविता को साहित्यिक क्षेत्र मे इनसे पहले ही प्रवेश मिल चुका था। इन विधाओ को अपनी कुशलता के आधार पर सम्यक् प्रचार करने का श्रेय उन्ही को मिलना चाहिए।

इन दोनो विधाओ का पूर्ण विकास परवर्ती

काल में तिरुपति कविद्वय के द्वारा हुआ था। इस प्रकार इन विधाओं को पल्लवित करने में आचार्य जी का बड़ा योगदान रहा।

वेंकटावधानी, दिवाकर्ल *(ते० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

ये उस्मानिया विश्वविद्यालय के तेलुगु-विभाग के अध्यक्ष एवं आंध्र साहित्य अकादेमी के सदस्य हैं। ये पुरानी पीढ़ी के कवि तथा समालोचक हैं। तेलुगु-साहित्य के आदिकाल के संबंध में इनका अध्ययन अत्यंत व्यापक है। 'आंध्र वाङ्मय चरित्र' तेलुगु-साहित्य के इतिहास से संबंधित इनकी प्रसिद्ध रचना है। 'परिवर्तनमु' इनका काव्य-संग्रह है। इनके अतिरिक्त इन्होंने तेलुगु-साहित्य से संबंधित अनेक समालोचनात्मक निबंधों की रचना की है।

वेंकटेश्वर राव, नार्ल *(ते० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

ये तेलुगु के प्रमुख निबंधकार, नाटककार एवं पत्रकार हैं। इन्होंने 'आंध्र प्रभा' नामक दैनिक समाचार-पत्र का संपादन अनेक वर्षों तक बड़ी सफलता के साथ किया था। आजकल ये 'आंध्र ज्योति' नामक दैनिक पत्र के संपादक हैं। 'कोतगड्ड' (ग्रामीण जीवन से संबद्ध एकांकियों का संकलन) 'नार्लवारिमाटा' (नीति एवं व्यंग्यात्मक मुक्तकों का संग्रह), 'रष्यन् कथलु' (रूसी कहानियों का अनुवाद), 'माटामंती' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। इन्होंने अँग्रेज़ी में भी रचना की है।

ग्रामीण जीवन के चित्रण में ये सिद्धहस्त हैं। ग्रामीण जनता की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों, उनके जीवन की आशा-आकांक्षाओं, विवशताओं-यातनाओं तथा नाना प्रकार की अनुभूतियों का चित्रण इनकी रचनाओं में सहज-स्वाभाविक रूप में हुआ है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग भी इनकी एक विशेषता है। 'नार्लवारि-माटा' में इनकी सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक अनुभूति तथा सुधार के प्रति इनका उत्कट आग्रह प्रकट हुआ है।

वेंकण्णैया, टी० एस० *(क० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

इनका जन्म चित्रदुर्ग ज़िले के लळुकु ग्राम में हुआ था। ये सन् 1914 में एम० ए० करके मैसूर विश्वविद्यालय में कन्नड के प्राध्यापक हो गये थे। यद्यपि इन्होंने कम लिखा है, तथापि कन्नड के विकास के लिए बहुत ही स्तुत्य कार्य किए हैं। इनके ग्रंथों में 'कन्नड कैपिडि' (कन्नड का व्याकरण और भाषा का इतिहास), 'श्रीरामकृष्ण परमहंसचरित्रे', 'श्रीरामकृष्णलीला प्रसंग' (अनूदित) और 'प्राचीन साहित्य' (रवींद्र की कृति का अनुवाद) प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'कादंबरी संग्रह', 'बसवराजदेवररगळे' (दे०), 'हरिश्चंद्रकाव्य-संग्रह' और 'सिद्धरामपुराण' (दे०) का संपादन किया है। इन ग्रंथों की भूमिकाएँ इनकी विद्वत्ता की साक्षी हैं।

वेट्चि *(त० पारि०)*

यह 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ्) काव्य-विभाग के अंतर्गत प्रथमतः उल्लेख किया जाने वाला उपविभाग है। 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ्) काव्य-विभाग का प्रथम उपविभाग 'कुरिंजि' (दे०) इसका समानांतर विभाजन माना जाता है। 'वेट्चि' की विषय-वस्तु किसी राजा के सेनापति द्वारा शत्रु-देश के गाय-समूहों का अपहरण कर अपने में लाकर सुरक्षित रखना है। यह गाय-चोरी युद्धारंभसूचक घटना मानी जाती है। इससे संबंधित चौदह 'तुरै' (प्रकरण) तमिल भाषा के अतिप्राचीन व्याकरण 'तोल्काप्पियम्' (दे०) में उल्लिखित हैं। इन प्रकरणों में से कुछ ये हैं—गायों के अपहरण के प्रतिकार के लिए जाने वाली सेना द्वारा प्रस्थान के पहले शुभशकुन-रूपी अशरीरी उक्तियाँ सुनना, गुप्तचरों द्वारा शत्रु की गाय-मंडलियों के ठिकानों का पता लगाना, आक्रामक पक्ष द्वारा शत्रु के विशेष गोरक्षक सैनिक एवं अन्य प्रतिद्वंद्वियों को मारकर गायें ले जाना तथा अपहृत गायों का अपने लोगों के बीच वितरण करना। 'महाभारत' (दे०) का प्रसिद्ध कथा-प्रसंग जिसमें विराट् के देश की गायों का अपहरण युद्ध का कारण है, स्पष्टतः तमिल प्रदेश के युद्ध-आचरणों का प्रभाव दर्शाता है।

'तोल्काप्पियम्' में उक्त चौदह 'तुरै' आक्रमणकारी तथा आत्मरक्षाकारी, दोनों पक्षों पर लागू माने गए हैं। एक परवर्ती व्याकरण-ग्रंथ 'पुरप्पोरुळ् वेण्पामालै' ने आत्म-रक्षाकारी पक्ष-संबंधी प्रकरणों को 'करंदै' (दे०) नामक पृथक् उप-विभाग में समाविष्ट किया है।

वेट्टत्तु राजा *(मल० पा०)*

यह टी० रामन् नपीशन्-रचित ऐतिहासिक उपन्यास 'केरलेश्वरन्' का मुख्य पात्र है। केरल के एक छोटे राज्य के इस शासक ने अठारहवी सती के अपने प्रबल पडोसी राजा सामूतिरि के आक्रमण को अपने सफल शासन-तत्र और युद्धनीति से विफल कर दिया था। उपन्यास मे अपनी प्रेमिका से विवाह न करके दूसरे विवाह-सबध से राज्य की सुरक्षा को बढाने और अनक वर्षों के बाद केरलेश्वर' के स्थान पर अभिषिक्त होने के बाद दूसरा विवाह उस प्रेमिका से विधिवत् करने की कथा भी उपन्यास मे सग्रथित है।

इसके चरित्र चित्रण मे तत्कालीन राजनीति मे अपेक्षित सभी शासकीय गुणो का समावेश है— यथा वीरता, शासनकुशलता, न्याय-दीक्षा, सहानुभूति, कर्तव्य-बोध आदि। इसकी प्रणय कथा भी इसकी महानता को ही प्रकट करती है। मलयाळम के ऐतिहासिक कथापात्रो मे मार्त्ताड वर्मा (दे० कृ०), धर्मराजा (दे० कृ०) आदि के साथ इसका भी प्रमुख स्थान है।

वेणीसहार *(स० ले०)* [समय—सातवी शती का उत्तरार्ध]

'वेणीसहार' भट्ट (दे०) नारायण की प्रसिद्ध नाट्यकृति है।

इसका कथानक 'महाभारत' के (दे०) के द्रौपदी-अपमान-प्रसग से लिया गया है। जुए म हारने पर दु शासन द्वारा द्रौपदी का भरी सभा मे अपमान और उसका वेणी न बांधना तथा भीमसेन की दुर्योधन को मारकर उसके रक्त मे स्नान करके द्रौपदी की वेणी का सहार करने की प्रतिज्ञा और उसकी पूर्ति इस नाटक का प्रतिपाद्य है।

'वेणीसहार' एक आदर्श एव शास्त्रीय गुण सपन्न नाटक है। सस्कृत-नाट्यशास्त्र के अनेक ग्रथो म इसके पद्य उद्धृत किए गए हैं।

इस नाटक मे भट्टनारायण को वस्तुविन्यास मे पर्याप्त सफलता मिली है। इसम 'महाभारत' का समग्र चित्र अपने असली रूप मे हमारे सामने उपस्थित होता है। चरित्र-चित्रण मे भी नाटककार खूब सफल हुआ है। यह वीर रस-प्रधान नाटक है, साथ ही इसमे अद्भुत तथा करुण रस की बडी मार्मिक व्यजना हुई है। प्रमादपूर्ण शैली मे उपनिबद्ध इस नाटक मे ओज एव गरिमा है। द्रौपदी की वेणी के सहार की मार्मिक घटना के आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है। रस के परिपाक की दृष्टि से यह एक उत्कृष्ट नाटक है।

वेणुगोपाल स्वामी, कूर्मा *(तं० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

वेणुगोपाल स्वामी का जन्म राजमहेद्रवरमु मे हुआ। इनके पिता सर कूर्मावेंकट रेड्डि नायुडु थे जो अपने विधिज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे। वे कुछ वर्ष तक मद्रास के गवर्नर भी रहे। वेणगोपाल की आरभिक शिक्षा एलूरू मे तथा उच्च शिक्षा मद्रास, पेरिस तथा लदन मे सपन्न हुई। शैक्षिक योग्यता इनकी एम० ए० (आक्सन) तथा बार एट लॉ थी। इन्होने कई पदो को सँभाला और एक प्रकार से इनका अभिन्न सबध आध्र-विश्वविद्यालय के साथ है। 1942 से 1963 ई० तक ये आध्र वि० वि० के कुलसचिव रहे। साथ ही न्यायशाखा के अध्यक्ष रहे। इनके काल मे आध्र वि० वि० ने अभूत-पूर्व उन्नति की।

वेणुगोपाल की अभिरुचि बचपन से ही नाट्य-कला की ओर थी। केवल अभिरुचि नही अपितु इस कला के सैद्धातिक पक्ष तथा प्रयोगपक्ष के मर्मो को ये भली भाँति जानते थे। इन्होने अँग्रेजी तथा तेलुगु दोनो मे रचना-व्यापार किया। कई पुरस्कार भी प्राप्त किए। अँग्रेजी मे इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ 'तेलुगु ड्रामा', 'इब्सन ए सेंटिनरी एस्टिमेट' आदि उल्लेखनीय हैं। तेलुगु मे इन्होने दक्षिण भाषा पुस्तक-सस्था के लिए 'प्रसिद्ध नाटिकलु' का सपादन किया। इनके अलावा अपनी श्रीमती शेषुबाई के सहयोग म कई लघुकथाओ को तथा नाटिकाओ को तलुगु के प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित किया।

सार्वजनीन सस्थाओं मे और उनके कार्यकलापो मे ये बडी दिलचस्पी लेते हैं। आध्रप्रदेश साहित्य अकादमी, आध्रप्रदेश सगीत नाटक अकादमी, आदि के सदस्य हैं। आध्र नाटक-कला-परिषद के सदस्य 1951 ई० मे रह चुके हैं। 'दि लिटिल थियटर' की स्थापना भी इन्होने की। आध्र वि० वि० प्रयोगात्मक रगमच के उद्भावक य ही थे। इनके अथक परिश्रम के कारण ही तलुगु के नव-युवको मे नाटक प्रदर्शनिया के प्रति रुचि जागृत हुई। फलत आज भी कई युवक कलाकार एमेच्योर सस्थाओ के द्वारा कई जगहो म नाटको का अभिनय करके जनता मे नाटकीय अभिरुचि म परिष्कार आदि लाते रहते हैं।

आंध्र वि० वि० के कुलसचिव पद से निवृत्त होने पर भी इनका संबंध आंध्र वि० वि० से अद्यावधि बना हुआ है। वेणुगोपाल विश्व० वि० के रंगमंच कला-निकाय के सम्मानार्थ आचार्य है।

आजकल वेणुगोपाल हैदराबाद में नाट्य-विद्यालत के अध्यक्ष है, और वहाँ की विविध कलात्मक सस्थाओं से इनका गहरा संबंध है।

वेण्मणि, अच्छन नंपूतिरिप्पाड् *(मल० ले०)* [जन्म—1817 ई०; मृत्यु—1891 ई०]

इनका जन्म आलुवा के पास के एक गांव मे हुआ। वेण्मणि इनके परिवार का नाम है और अब सिर्फ़ वेण्मणि शब्द ही इनका उल्लेख करने के लिए पर्याप्त होता है। वैसे इनका असली नाम परमेश्वरन् है। ये बहुश्रुत थे, शास्त्रज्ञ नहीं। मलयाळम में मधुर कविता रचने मे ये अद्वितीय आचार्य प्रमाणित हुए। कोटुङ्ङल्लूर् राज-महल की विद्वत्सभा मे ये विशेष सम्मानित आचार्य थे। ये 74 वर्ष तक जीवित रहे। इनके थोडे से शृंगारिक छंद ही अब उपलब्ध है।

इनके पुत्र वेण्मणि महन् नंपूतिरिप्पाड् इनसे भी अधिक कुशल और रसिक कवि थे। इनका जन्म 1844 ई० में हुआ तथा स्वर्गवास 1893 ई० में। मलया-ळम-साहित्य में वेण्मणि नंपूतिरिप्पाड् शब्द दोनों के संयुक्त योगदान की चर्चा के लिए ही व्यवहृत होता है। श्री महन् नंपूतिरिप्पाड् की कई विधाओं की रचनाएँ प्राप्त हैं। तथापि इनकी शृंगार रसपूर्ण कविताएँ ही विशेष प्रसिद्ध हो सकी है। 'पूरप्रबंधम्' (दे०), 'अंबोपदेशम्' और 'कामतिलकम्' मे इसी श्रेणी की रचनाएँ है। श्री महन् का युग संस्कृत भाषा के अतिशय प्रभाव का युग था। पर इस प्रवृत्ति का तिरस्कार कर इन्होंने प्रकृत द्रविड़ शब्दावली का मधुर प्रयोग किया। ये इस धारा के प्रवर्तक तक कहलाये हैं। मधुर नर्म वचन वेण्मणियों की देन है परंतु इनकी कविताओं के अतिरिक्त शृंगाराभि-व्यक्ति का उत्कट रूप भी प्रस्तुत हुआ है।

वेंणिक्कुळम् *(मल० ले०)* [जन्म—1902 ई०]

मलयाळम के इस प्रख्यात कवि का पूरा नाम वेणिक्कुळम् गोपाल कुरुप्प है। ये कुशल अध्यापक थे। सेवानिवृत्ति से पहले पांडुलिपि ग्रंथालय और कोशनिर्माण-विभाग में भी इन्होंने कार्य किया।

इनकी कविताएँ 'सौंदर्यपूजा', 'पुष्पवृष्टि', माणिक्यवीणा' आदि एक दर्जन से अधिक पुस्तकों मे संगृहीत है। 'रामचरितमानस' (दे०) का मलयाळम अनुवाद साहित्य की अनमोल संपत्ति है। सुब्रह्मण्य भारती (दे०) की कविताओं और 'तिरुक्कुरल्' (दे०) का भी इन्होंने अनुवाद किया है।

इनकी कविता में मानवीय संबंधों के शांत-सुंदर पक्षों का चित्रण मुख्यतः हुआ है। इनकी काव्य-शैली प्रसन्न एवं सुस्पष्ट है। महाकवि वळ्ळत्तोळ (दे०) द्वारा स्थापित काव्य-सरणी को संपुष्ट करने वालों मे ये सर्वप्रमुख है। 'रामचरितमानस' के अनुवादक के रूप मे भी इनका योगदान महत्वपूर्ण है।

वेतालपंचविंशतिका *(सं० कृ०)* [समय—बारहवीं शती]

इस कथा-संग्रह के लेखक का ठीक पता नही चलता। इसके कई संस्करण उपलब्ध हैं। उनमें बारहवीं शती का संस्करण शिवदास द्वारा लिखित है।

इनकी कहानियाँ बड़ी रोचक एवं लोकप्रिय है। इन कहानियों का वक्ता वेताल तथा श्रोता राजा त्रिविक्रम सेन है। कोई सिद्धराजा त्रिविक्रम सेन को रत्नगर्भित फल लाकर देता है। उसकी सिद्धि के सहायतार्थ राजा एक वृक्ष पर लटकते हुए शव को लाना चाहता है। शव पहले से ही किसी वेताल के आधिपत्य में है। वह राजा के चुप रहने पर ही उस शव को देना चाहता है, परंतु साथ ही इतनी विचित्र कहानियाँ सुनाता है कि राजा को मौन भंग करना ही पड़ता है।

कहानियाँ बड़ी हृदयावर्जक एवं कौतूहलजनक है। राजा का उत्तर भी बड़ा ही सुंदर होता है। इसकी भाषा सरल, स्वच्छ एवं आकर्षक तथा शैली सुबोध है। यह संग्रह गद्य-प्रधान है जिसमें पद्य उद्धृत किए गए हैं। इसका एक संस्करण जंभलदत्त का भी है, किंतु यह बिलकुल गद्यात्मक है। शिवदास का संस्करण साहित्यिक दृष्टि से सुंदर, रोचक एवं आकर्षक है। बीच-बीच में अनुप्रास *की मनोहर छटा से युक्त नीति-पद्य हैं* जो रचना को मनोहर बना देते है।

वैत्तिप्पट्टर *(मल० पा०)*

ओय्यारत्तु चंतु मेनन (दे०) के उपन्यास

'शारदा' (दे०) का पात्र । 'काली स्याही का रग, पकी छोटी-सी चोटी, बदसूरत चेहरा, बुढापे के कारण पोपले मुँह से बाहर की तरफ हमेशा झाँकने वाले बचे हुए दो-चार दाँत, आँखें भीतर धँसी और धुंधली—किंतु बीच-बीच मे सर्पदृष्टि डालने वाली, शरीर कमजोर और भीतर की ओर झुका हुआ—जली लकडी का कुदा-सा—कुल मिलाकर पिशाच-सा, यही वैत्तिप्पट्टर का चित्र है। धन कमाना उसके जीवन का व्रत है और उसकी यह प्यास कभी नही बुझती। पैसे के लिए वह कोई भी शैतानी करने को तैयार रहता है। छोटा-सा कपडो का व्यापार छोड-कर वह कल्याणि अम्मा के साथ परदेश गया तो इसी आशा से कि कल्याणि के पास खजाना होगा। पर उसके हाथ कुछ नही लगा। रामेश्वरम् मे रामन् मेनन के रहने की सूचना मिलने से उसका धन-लाभ फिर से जाग उठा। उसने मेनन और पुत्री शारदा के दु ख पर अपने दु खी होने का अभिनय किया। उसने उन्हे अपने घर म ठहराकर शारदा की माँ कल्याणि अम्मा के प्रतिष्ठित घरवालो से पत्र-व्यवहार शुरू कराया। दोनो तरफ से कमाने की आशा थी। सब उसका छल-कपट पहचान गये। फिर भी वैत्ति ने यथासभव दोनो से धन ऐंठा। पर रामन् मेनन के कुशल शिष्य शकरन् की होशियारी के कारण वे अधिक नही लुटे। कल्याणि के मामा मे कुछ रुपये पाने के लालच मे शारदा को पठान लडकी और रामन् मेनन को ढको-सलाबाज घोषित करने मे भी सकोच नही किया। यह खलपात्र अँग्रेजी उपन्यासो के खलपात्रो के ढाँचे मे ढला है परतु व्यक्तित्व और केरलीय वातावरण इसमे सुरक्षित है।

वेद *(स० कृ०)* [रचना-काल—मैक्समुलर के मतानुसार 1200 ई० पू० से 1000 ई० पूर्व तक]

भारतीयो का एक वर्ग वेदो को अपौरुषेय भी मानता है। वेद शब्द का अर्थ ऋषियो द्वारा साक्षात्कृत ज्ञान है। वेद चार है—'ऋग्वेद', 'सामवेद', 'यजुर्वेद' तथा 'अथर्ववेद'।

'ऋग्वेद' ऋचाओ अर्थात् मत्रो का सग्रह है। 'ऋग्वेद' के वर्ण्य के अतर्गत काव्यात्मक गीत, यज्ञीय स्तोत्र, दार्शनिक सूक्त, ऐंद्रजालिक मत्र, धर्मनिरपेक्ष सूक्त, दान-स्तुतियाँ एव ब्रह्मोद्य सूक्त प्रधान है। 'ऋग्वेद' मे सर्वोच्च-देववाद एव सर्वेश्वरवाद की दार्शनिक विचारधाराएँ भी वर्तमान है। 'सामवेद' के मत्र गेय है। सामो का प्रयोग सोमयज्ञ के अवसर पर किया जाता था। यह प्रयोग उद्-गाता ऋत्विक् द्वारा सपन्न होता था। 'यजुर्वेद' अध्वर्यु के लिए स्तोतो या प्रार्थनाओ का सग्रह है। 'यजुर्वेद' के 'कृष्ण-यजुर्वेद' और 'शुक्लयजुर्वेद' दो रूप हैं। 'यजुर्वेद' का प्रमुख विषय यज्ञ है। अथर्ववेद के मत्र रोग-निवारण, प्रायश्चित्त, विवाह, शाति-स्थापना एव विविध इद्रजाल से सबधित हैं।

वेदो की भाषा लौकिक सस्कृत की अपेक्षा स्वभावत क्लिष्ट है। परतु वेदो की साहित्यिकता निस्सदेह सिद्ध है। 'ऋग्वेद' के धार्मिक गीतो मे कवित्व का चमत्कार स्पष्टत वर्तमान है। 'ऋग्वेद' के कवि की इच्छा उन मनोभावो को अभिव्यक्त करने की है, जो उसकी आत्मा मे किसी देवता न उद्बुद्ध किए है। इस प्रकार वैदिक कवि का हृदय कवित्वमय था और उद्देश्य यज्ञपरक। प्रकृति का मानवीकरण, देवो मे मानवीयता का आरोप एव देव वर्णन-शैली आदि भी वैदिक कवित्व के परिचायक है। ऋग्वेद के सवादात्मक सूक्तो मे नाटकीयता का स्पष्ट आधार मिलता है। 'अथर्ववेद' के वर्णन भी स्पष्ट ही काव्यमय हैं—'रसानाथर्वणादपि'।

भारतीय वाङ्मय को वेदो की देन अमर एव अप्रतिम है। धार्मिक, दार्शनिक एव साहित्यिक दृष्टि से वेदो का महत्व ससार भर मे विदित है।

वेदहरिश्चंद्रुडु *(ते० पा०)*

ये श्री विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) के 'काव्य हरिश्चद्रमु' (दे०) नामक नाटक के नायक है। सामान्य रूप से काव्यो म वर्णित हरिश्चद्र से ये भिन्न है। वेदो की कथा के अनुसार इस पात्र की सृष्टि की गई है।

हरिश्चद्रुडु अगति की स्थिति से बचने के लिए वरुण से पुत्र-प्राप्ति का वरदान माँगते है और यह वचन देते हैं कि ये अपने पुत्र को यज्ञ मे बलि-पशु के रूप मे वरुण को ही समर्पित कर देंगे। वरुण के वरदान म पुत्र पाने के बाद जब भी वरुण वादा पूरा करने को कहते तब पुत्र-मोह के कारण हरिश्चद्रुडु कोई-न-कोई बहाना करके टाल देते हैं। कभी कहते है कि पुत्र का नाम या आकार अभी स्थिर नही हुआ है। कभी कहते हैं कि यज्ञोपवीत धारण किए बिना वह किसी यज्ञ के लिए योग्य पात्र नही होता, किसी अन्य अवसर पर कहते हैं कि पुत्र की सम्मति ले लेना अनिवार्य है क्योंकि उसकी सम्मति के बिना बलि-पशु सार्थक नही होता। हरिश्चद्रुडु का पुत्र यह सब जानकर घर से भाग जाता है और शुनश्शेप नामक गरीब ब्राह्मण बालक को उसके स्थान पर पशु-बलि बनने के

लिए तैयार कर लेता है। शुनश्शेप यज्ञ में विश्वामित्र द्वारा प्राप्त करुण-मंत्र से वरुण देव को संतुष्ट करके स्वयं मुक्त हो जाता है। अंत मे हरिश्चंद्र यज्ञ का फल पाता है और असत्य-दोष से मुक्त हो जाता है।

वेदांत ग्रंथ *(बँ० कृ०)*

वेदात-प्रतिपाद्य परब्रह्म की उपासना की प्रतिष्ठा ही 'वेदात ग्रंथ' (1815 ई०) का मूल वक्तव्य है। राममोहनराय के धर्म-संबंधी मतवाद की सुस्पष्ट व्याख्या इस ग्रंथ मे की गई है। इस ग्रंथ से पहले उनका 'वेदांतसार' ग्रंथ (1815 ई०) प्रकाशित हुआ था। 'वेदातसार' एवं 'वेदात ग्रंथ' का हिंदी मे अनुवाद कर राममोहन ने निःशुल्क वितरण किया था। 'वेदांत ग्रंथ' 1816 ई० में अँग्रेजी मे एवं 1817 ई० मे जर्मन भाषा मे अनूदित हुआ था।

वेदांतदेशिक *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—1300 ई०]

इनके अन्य नाम वेंकटनाथ, वेदांताचार्य तथा कवि तार्किक सिंह है। वेदांतदेशिक के पिता का नाम अनंतसूरि तथा पितामह का नाम पुडरीकाक्ष था। यह परिवार कांजीवरम् मे रहता था। इनकी माता का नाम तोतारंबा था। वेदांत देशिक ने अनेक ग्रंथो की रचना की थी। इनमे 'तत्त्वटीका', 'यादवाभ्युदय', 'हंससंदेश', 'सुभाषितनीवी', 'संकल्पसूर्योदय', 'यज्ञोपवीत-प्रतिष्ठा', 'आराधनाक्रम', 'वैश्वदेवकारिका', 'श्रीपंचरात्ररक्षा', 'वादित्रय-खंडन' तथा 'मुक्ताकलाप' आदि अत्यंत प्रख्यात है। वेदांतदेशिक विशिष्टाद्वैतवाद के समर्थक आचार्य थे। 'तत्त्वटीका' में इन्होंने विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किया है। प्रपत्ति का अर्थ वेदांतदेशिक के अनुसार भक्त का सर्वात्मना भगवान् के चरणों में आत्म-समर्पण है। आत्म-समर्पण के भी इन्होंने फल-समर्पण, भार-समर्पण तथा स्वरूप-समर्पण, ये तीन भेद किए है। फल-समर्पण भक्त के फलत्याग, भार-समर्पण से अपनी रक्षा के भारत्याग तथा स्वरूप-समर्पण से भक्त के अपने स्वरूप-त्याग का आशय है।

वेदांतदेशिक के द्वारा विशिष्टाद्वैत मत के सिद्धांतों का विवेचन सरल पद्धति में किया गया है। इस दार्शनिक विद्वान् की काव्यमयी शैली अतिशय मोहक है।

वेदांतसार *(सं० कृ०)* [रचना-काल—1600 ई०]

सदानंद-विरचित 'वेदांतसार' अद्वैत वेदांत का लघुकाय ग्रंथ है। 'वेदांतसार' पर 'विद्वन्मनोरंजनी' आदि अनेक टीकाएँ मिलती हैं। 'वेदांतसार' के अंतर्गत अनुबंध-चतुष्टयविवेक, ईश्वरप्राज्ञविवेक, समष्टि एवं व्यष्टिरूप अज्ञान के भेद-द्वय, ईश्वर तथा प्राज्ञ के स्वात्मानंदानुभव, तुरीय चैतन्य, अज्ञान की आवरण एवं विक्षेप शक्तियों, आत्मा की संसारकारणता, सृष्टि के क्रम, सूक्ष्म शरीर की उत्पत्ति, सूक्ष्म प्रपंच के निरूपण, पंचीकरण स्थूल प्रपंचोत्पत्ति, महाप्रपंचनिरूपण, अपवाद, तत्त्वमसि, अहंब्रह्मास्मि तथा जीवन्मुक्ति एव विदेहमुक्ति के संबंध मे अत्यंत स्पष्ट निरूपण प्रस्तुत किया गया है।

यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि शांकर (दे० शंकराचार्य) वेदांत पर आधारित होने पर भी 'वेदांतसार' का विषय-विवेचन मौलिक एवं नवीन उद्भावनाओं से समन्वित है। माया का आवरण तथा विक्षेप शक्तियो का विवेचन भी सदानंद का अद्वितीय प्रयत्न है। 'वेदांतसार' के अनुसार जगत् ब्रह्म का विवर्त है, परिणाम नही। इसके अतिरिक्त ब्रह्म जगत का अधिष्ठान है एवं जगत अध्यास। अध्यास का अर्थ अविद्या है। जहाँ तक अज्ञान के स्वरूप का प्रश्न है, 'वेदांतसार' में उसे अभावरूप न मानकर, भावरूप तथा यत्किंचित् रूप से स्वीकार किया गया है। ईश्वर की जगत्कारणता के संबंध मे 'वेदांतसार' मे ईश्वर को उपादान कारण एवं निमित्त कारण दोनो ही स्वीकार किया गया है। ईश्वर मायाशक्ति के कारण उपादान कारण है तथा ईश्वरता के कारण निमित्त कारण।

विषय की क्रमबद्धता एवं संक्षिप्तता की दृष्टि से 'वेदांतसार' का योगदान अनुपम है। इस लघु पुस्तिका के द्वारा वेदांत के सिद्धांतो को सरलता से हृदयंगम किया जा सकता है।

वेदी, डा० सोहिन्दरसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1925 ई०[

डा० वेदी का जन्म 29 नवंबर, 1925 स्यालकोट (अब पाकिस्तान) में हुआ। 1959 ई० में पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ से पंजाबी में एम० ए०। 'पंजाबी लोकोक्तियों का आलोचनात्मक अध्ययन' विषय पर 1965 ई० में पी-एच० डी० उपाधि प्राप्त की। आजीविका-उपार्जन बैंक कर्मचारी के रूप मे 1946 ई० में

रावलपिंडी मे आरभ किया। 'प्रीतम' पजाबी मासिक पत्रिका तथा 'फतेह' पजाबी साप्ताहिक का सपादन 1949-1953 ई० तक किया। पजाब विश्वविद्यालय (कैंप) कालेज मे 1959 ई० मे अध्यापन आरभ। तदनतर 1959 ई० मे ही दयाल सिंह कालेज, नयी दिल्ली मे पजाबी विभागाध्यक्ष पद पर नियुक्त।

1943 ई० मे 'खुशबूआ' पुस्तक प्रकाशित हुई। अन्य प्रकाशित रचनाएँ हैं—(1) 'पजाब दीयां लोककहानियाँ' (1955 ई०), (2) 'पजाब दीया जनौर कहानियां' (1956 ई०), (3) 'लोक आखदे हन (1957 ई०), (4) 'इक घुट रस दा' (1966 ई०), (5) 'पजाब दा लोक साहित्य' (1968 ई०), (6) 'फोकलोर ऑफ पजाब' (अँग्रेज़ी, 1971 ई०)। **कविता-सग्रह**—(1) 'खुशबूआ', (2) 'कमल पत्तिया', (3) 'पानी अदर लीक'। विशेष रुचि कहानी एव पजाबी मे लोक-वार्ता-साहित्य का पठन-लेखन।

वेदोक्त धर्मप्रकाश *(म० कृ०)*

ईसाई तथा मुसलमानो ने हिंदू धर्म पर समय-समय पर जो आक्षेप किए थे उन आक्षेपो के निराकरण तथा 'वेदोक्त' हिंदू धर्म के स्वरूप स्पष्टीकरण के लिए विष्णुबुवा ब्रह्मचारी ने यह ग्रथ 1859 ई० मे लिखा था। यह ग्रथ गभीर, विचारोत्तेजक एव समाज-सुधार का समर्थक है। इस ग्रथ को देखते हुए कहना पडता है कि लेखक जिस युग मे रहता था, उस युग की दृष्टि से वह विचारो मे अतिशय प्रगतिशील है। लेखक मुसलमान एव ईसाइयो को वेदोक्त धर्म मे लेने मे कोई आपत्ति नही समझता। उसने विधवा के पुनर्विवाह का समर्थन किया है और वर्णभेद का आधार जन्म न मानकर व्यक्ति के गुण एव कर्म को माना है।

इस ग्रथ के पचीसवे अध्याय मे लेखक ने पाँच-छ: पृष्ठों मे अपनी आत्मकथा का विवेदन किया है। यह निवेदन आधुनिक आत्मचरित्र की तरह नही, वरन् प्राचीन सतो के आत्माविष्कार की पद्धति पर है।

सनातनी विचारो के प्रचलन के युग मे प्रगतिशील विचारो के निवेदन एव वेदविहित हिंदू धर्म के स्वरूप के निरूपण के कारण ही इस ग्रथ का महत्व है।

वेनराजु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1926 ई०]

'वेनराजु' विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का दस अको का विलक्षण नाटक है। इसमे अगराज के पुत्र वेन के धरती पर शासन करने की कथा है। इसके अत मे वेन की मृत्यु और भूदेवी के पृथु को वरण करने की घटना भी वर्णित है। इस नाटक मे सनातन और आधुनिक विचारधारा का सघर्ष मुख्य है। गौतम प्रथम पक्ष का प्रतिनिधि है, वेन द्वितीय पक्ष का। नाटक के अत मे वेन के साथ नूतन धर्म तथा सिद्धात नष्ट हो जाते है और सनातन धर्म तथा सिद्धातो को विजय प्राप्त होती है। इस नाटक मे करुणरस मिश्रित वीर प्रधान है। 1934 ई० मे जब यह नाटक पहली बार अभिनीत हुआ तो दर्शको मे काफी हलचल मची थी कि यह वैदिक धर्म का समर्थन करने वाला नाटक है।

वेमना *(ते० ले०)* [समय—सोलहवी-सत्रहवी शती ई०]

ये आध्र के रेड्डी राजाओ के वशज थे। इनके समय तथा जन्मस्थान के सबध मे विद्वान एकमत नही है। कहा जाता है कि ये आरभ मे अत्यत विषयी थे तथा बाद मे विरक्त होकर ज्ञानी बन गए। इनकी यह सूक्ति अत्यत प्रसिद्ध है कि 'कामी' हुए बिना मोक्षकामी कोई हो नही सकता।' इन्होने सहस्रो छदो मे नीति, दर्शन, समाज-सुधार आदि का उपदेश दिया है, जिनमे से केवल 4000 छद ही उपलब्ध हुए है। तेलुगु के शतक वाड्मय को पहली बार साहित्यिक प्रतिष्ठा इन्ही से प्राप्त हुई। ये ही तेलुगु के सर्वश्रेष्ठ ज्ञानमार्गी सत कवि हैं। इन्होने समस्त कुरीतियो का खडन ऋजुता, स्पष्टता तथा तीव्रता से स्वच्छ तेलुगु म किया है। इसमे कोमल और निर्मल हास्य का उपयोग मनोरम है।

विभिन्न समयो म तथा विभिन्न परिस्थितियो मे इनके मुँह से निकलने वाले छदो को इनके शिष्यो ने लिपिबद्ध किया है। अत भावो की पुनरावृत्ति तथा विरोधी भावो की अभिव्यक्ति इनकी रचना मे कही-कही दिखाई पडती है। यह प्रक्षेपो के कारण भी हो सकती है। इनकी रचना शिक्षित तथा अशिक्षित दोनो वर्गो को प्रभावित करती है। इनके विचार उपनिषदो के अद्वैतवाद के अनुरूप हैं।

यह एक विचित्र सयोग है कि अनुरक्त तथा विरक्त दोनो अवस्थाओ म इनका मन 'आटवलदि' [(1) वेश्या, (2) तेलुगु का एव छद विशेष] मे ही रमता रहा। प्राय इनकी सपूर्ण रचना इसी छद मे की गई है। मकुट के रूप मे 'वेमा' या 'विश्वदाभिराम' विनुर-

वेमा' का प्रयोग किया गया है। छंदों के नियमों के पालन का आग्रह या पांडित्य-प्रदर्शन इनकी रचना में नहीं मिलता। अपने जीवन के समान ही अपनी कविता में भी इन्होंने अंतरंग को वाह्याकार से कहीं अधिक महत्व दिया है। तेलुगु-साहित्य में इनका अपना विशिष्ट स्थान है तथा समस्त आंध्र में इनकी सूक्तियाँ सर्वाधिक लोकप्रिय हुई हैं।

वेयिपडगलु (सहस्रफण) *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

'वेयिपडगलु' (आंध्र विश्वविद्यालय द्वारा पुरस्कृत) विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का सामाजिक-सांस्कृतिक उपन्यास है। तेलुगु के उपन्यास-साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है। "अतीत ही महान् है, आर्ष-विज्ञान ही विश्व का शिरोभूषण है, हिंदुओं की वर्णाश्रम-व्यवस्था विश्व की एक अद्भुत वस्तु है। प्राचीन भारतीय संस्कृति ही विश्व-कल्याण के लिए, विशेषकर, भारतीयों के आत्मोद्धार के लिए एकमात्र साधन हैं"—अपने इन्हीं विचारों को श्री सत्यनारायण ने इस कृति में प्रतिपादित किया है। वर्णाश्रम-व्यवस्था, राजत्व, जमींदारी-प्रथा, देवदासी-प्रथा, आदि प्राचीन व्यवस्थाओं को ये भारतीय संस्कृति के जीवन-स्रोत के रूप में मानते हैं। अतः इस रचना में उन्होंने यही संदेश दिया है कि आज के समाज-सुधारक पथभ्रष्ट हो गए हैं और हमारे उद्धार के लिए उस प्राचीन सामाजिक व्यवस्था को पुनः स्थापित करने के अलावा और कोई रास्ता नहीं है।

इस विशालकाय उपन्यास की कहानी उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध की भूमिका पर आधारित है। इसकी कहानी मूलतः अन्यापदेशी और प्राचीन हिंदू-जीवन-पद्धति का समर्थन करती है। इसमें तीन पीढ़ियों की कहानी है और तत्कालीन आंध्र देश के जीवन में स्पंदित होने वाले आर्थिक, नैतिक, बौद्धिक वैज्ञानिक एवं कला-संबंधी विषयों का विस्तार से चित्रण किया गया है। इस कारण इसकी कथा-वस्तु में एकसूत्रता की कमी हो गई है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर किसी समालोचक ने कहा था, "इसमें सहस्र फण ही है। साँप कहीं नहीं है।" इस उपन्यास का हिंदी-अनुवाद 'सहस्रफण' नाम से प्रकाशित हो चुका है।

वेरियाट्टू *(त० पारि०)*

तमिल की 'अहम्' (दे० अहप्पोरुळ्) काव्य-परंपरा में नायक-नायिका का प्रेमी जीवन गुप्त मिलन से आरंभ होकर तब तक रहस्य बना रहता है जब तक प्रियतम से अनिवार्य विच्छेद के कारण नायिका अपनी व्याकुलता को छिपाये रखने में समर्थ रहती है। परंतु शीघ्र ही उसका शरीर कृश हो जाता है और उसके गुरुजन इस विकार का कारण जानने के लिए 'मुरुग देव' (सुब्रह्मण्य) के पुजारी का सहारा लेते हैं। पुजारी अपने उपास्य 'मुरुगदेव' के समक्ष बलि चढ़ाकर दैवी आवेश-नृत्य करते हुए नायिका की रोग-समस्या का अपना हल प्रस्तुत करता है। इस भविष्यवाणी-सहित आवेश-नृत्य का नाम 'वेरियाट्टु' है। मुरुगदेव के पुजारी लोगों के अतिरिक्त 'कुरिंजि' (दे०) (पर्वत-प्रांत) की स्त्रियाँ भी आंशिक रूप से इस प्रकार के नृत्य की अधिकारिणी थीं। नृत्य से संबद्ध भविष्यवाणी करने की प्रथा कुछ गुटके फैलाकर उनमें से संकेत निकालना था।

'अहम्' के उपर्युक्त प्रकरण के अलावा 'पुरम्' (दे० पुरप्पोरुळ्) विभाग में भी युद्ध के विविध संदर्भों में इस 'वेरियाट्टु' द्वारा ज्योतिषी की वाणी का सहारा लिया जाता था।

विरुंदु *(त० पारि०)*

तमिल के अत्यंत प्राचीन लक्षण-ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' (दे०) 'चेय्युलियल्' (छंद-परिच्छेद) में पद्य-लक्षण विस्तार से प्रस्तुत किए गए हैं। छंद-विधान के सत्ताईस लक्षणों के साथ आठ लक्षणों का उल्लेख है। ये अतिरिक्त लक्षण कविता की शैली, उद्देश्य आदि बहिरंग अंशों का विवरण देते हैं और 'तोल्काप्पियम्' के व्याख्याताओं ने शृंखलाबद्ध पद्य-रचना से इनका संबंध माना है। इनका सामूहिक नाम 'वणप्पु' (दे०) है।

आठ अतिरिक्त लक्षणों में से एक 'विरुंदु' है जो परंपरा से हटकर नये ढंग से रचित कविता होती है। 'तोल्काप्पियम्' के टीकाकारों ने 'विरुंदु' के उदाहरणस्वरूप 'अंदादि' (दे०), 'कलंबकम्' (दे०) नामक नयी छंद-विधाओं का उल्लेख किया है। ये विधाएँ 'संगम्' साहित्य के परवर्ती काल में प्रचलित हो गई थीं पर 'संगम्' काल में उपयोग किए गए छंदों से ही इनका विकास हुआ।

वेलाना वछूद्या *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1967 ई०]

गुजरात राज्य और गुजराती साहित्य परिषद्

द्वारा पुरस्कृत महमद माकड (दे०) का मनोवैज्ञानिक उपन्यास। उपन्यास के नायक डा० वोरा के दो पुत्र हैं। बड़े बेटे सुधीर के प्रति उसका बहुत प्रेम है। पत्नी की मृत्यु के बाद नौकर के द्वारा उसकी पत्नी को लिखे गए प्रेमपत्रो का बक्सा उसे मिलता है जिन्हे पढने से उसको मालूम होता है कि सुधीर उसका नही, उसके नौकर शांति का पुत्र है। तब उसके मन पर जो प्रतिक्रिया होती है उसका मर्मस्पर्शी चित्रण लेखक ने किया है। वह सुधीर की दवाई म जहर मिलाकर उसकी हत्या करता है पर पुलिस केस नही होता। डा० वोरा की मनोव्यथा और बढ जाती है। उसका दूसरा जो पुत्र है वह आत्महत्या करता है। सारे उपन्यास मे नायक की मानसिक व्यथा का कुशल चित्रण हुआ है।

वेलि किसन रुक्मणी री *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1580 ई०]

इसके रचयिता पृथ्वीराज राठौड (दे०) थे। यह डिंगल (दे० डिंगल पिंगल) की एक अत्यत प्रसिद्ध तथा उत्कृष्ट कृति है जिसकी रचना वेलियो गीत मे हुई है। इसमे श्रीकृष्ण रुक्मिणी के विवाह की कथा का वर्णन श्रीमद्भागवत (दे० भागवत) के दशम स्कध के आधार पर किया गया है। कवि ने वर्णन मे पूर्णत मौलिकता का नियोजन किया है। इसमे प्राय सभी रसो की सुदर व्यजना मिलती है, किंतु प्रधानता शृगार रस की ही है। भाषा सरल, अलकृत तथा बिंब-प्रधान है। डिंगल के 'वैण सगाई' (दे०) नामक शब्दालकार का प्रयोग इसकी विशेषता है।

वेलैयन् *(त० पा०)*

वेलैयन् डा० मु० वरदराजन् (दे०)-कृत 'अगल् विळक्कु' (दे०) नामक सामाजिक उपन्यास के प्रमुख पात्रो मे से है। इस चरित्र-प्रधान उपन्यास म लेखक ने वेलैयन् को आदर्श पात्र के रूप मे चित्रित किया है। निर्धन एव अल्पशिक्षित होने पर भी यह अपने सद्गुणो के कारण सभी को मोह लेता है। यह यथाशक्ति सभी की सहायता करता है। उपन्यास का शीर्षक 'अगल् विलक्कु' (मिट्टी का दीया) उसी की ओर सकेत करता है। 'मिट्टी का दीया' सदा जलते रहने पर भी निष्कलक बना रहता है। इसी प्रकार यद्यपि वेलैयन् सदा दूसरो की सेवा करता रहता है तथापि इसके मन मे कपट-भावनाओ का जन्म कभी नही होता।

वेळि्ळ पादचरम् *(त० कृ०)* [रचना काल—1962 ई०]

'वळि्ळ पादचरम्' लका के प्रसिद्ध तमिल कहानीकार इलगैयरकोन की कहानियो का सग्रह है। इस सग्रह की सोलह कहानियो म प्रसिद्ध हैं—'वेळि्ळ पादचरम्', अनुला', अनार्द', 'मनिद कुरगु', 'अमीना', 'मरिया मदलेना' 'ताय' और 'शिकरिया'। 'वेळि्ळ पादचरम्' इस सग्रह की सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इसमे लेखक ने नल्लमा और शेल्लैया की कहानी के माध्यम से पति-पत्नी के पारस्परिक सबध की चर्चा करते हुए पारिवारिक जीवन के रहस्य का उद्घाटन किया है। 'अनूला' म एक कामुक रानी के नीच कर्मों का विवरण है। 'अनार्द' मे वृद्धा और नवयुवती की कथा के माध्यम मे लेखक ने बताया है कि प्रेम की शक्ति न्याय की शक्ति से बढकर है। मनिद कुरगु' मे कदसामी नामक नादान व्यक्ति का जीवन अकित है। 'अमीना' शीर्षक कहानी मे अमीना नामक सुदर नवयुवती की कथा कही गई है। इसम लेखक ने पुरुषो की आसुरी वृत्ति और नारियो की दीन दशा पर प्रकाश डाला है। 'मरिया मदलेना' मे एक वेश्या का जीवन अकित है जो ईसा के करुणा भरे शब्दो को सुनकर पूर्णत परिवर्तित हो गई थी। 'ताय' कहानी मे ईसा के सूली पर चढाये जाने पर उनकी माँ की प्रतिक्रिया वर्णित है। 'शिकरिया' मे मुकालन और काशप्पन नामक राजाओ की कथा कहते हुए लेखक ने लका के प्राकृतिक सौंदर्य और वहाँ के कुछ प्रसिद्ध स्थानो का वर्णन किया है। इन सभी कहानियो म लेखक ने मानव-मन मे उठने वाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावो का विश्लेषण करते हुए मानव-जीवन और मानव-व्यवहार का सजीव चित्रण किया है। विभिन्न कहानियो म इलगैयरकोन् ने प्राचीन इतिहास और साहित्य मे प्राप्त विवरणो को आकर्षक ढग से प्रस्तुत किया है। इनमे मानव-जीवन एव प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन है। ये कहानियाँ लका मे प्रचलित तमिल भाषा मे रचित हैं। तमिल कहानी-साहित्य म इलगैयरकोन् की कहानियो का अपना महत्व है।

वेळि्ळवीदि *(त० पा०)*

वेळि्ळवीदि मध्यकालीन तमिल कवयित्रियो म

से हैं। ये एक ऐतिहासिक पात्र है। तमिल के प्रसिद्ध व्याकरण ग्रंथ 'तोल्काप्पियम्' (दे०) के व्याख्याकार नच्चिनार किनियर् (दे०) ने वेळ्ळिवीदि को आदिमंदियार् नामक अन्य संघकालीन कवयित्री का समकालीन बताया है। अव्वैयार् (संघकाल) (दे०) के पदों में वेळ्ळिवीदि से संबंधित विवरणों को देखते हुए विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि ये अव्वैयार् की समकालीन अथवा उनसे तनिक पूर्वकाल में स्थित कवयित्रियों में से है। इनके आठ पद 'कुरुंतोगै' (दे०), दो पद 'अकनानूरु' (दे०) तीन पद 'नट्रिणै' (दे०) और एक पद 'तिरुवळ्ळुवमालै' नामक कृतियों मे सगृहीत है। वेळ्ळिवीदि ने अपने पदों मे आत्मानुभवों की अभिव्यक्ति की है। प्रसिद्ध है कि इन्होंने युवावस्था में किसी युवक से प्रेम किया था। उसे ढूँढ़ते हुए ये वनों और जंगलों में एवं विभिन्न नगरों में भटकती फिरी परंतु पति-रूप मे उसे न पा सकी। यही कारण है कि इनके पदों में वेदना का स्वर प्रधान हो गया है। इन्होंने अपने विभिन्न पदों में युवती कन्या की मनोदशा का सजीव चित्रण किया है। इनके पदों से तथा इनसे संबंधित अन्य कवयित्रियों के पदों से तत्कालीन समाज मे नारी की दशा तथा नारी की विचारधारा का तथा युगीन तमिल परंपराओं का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होता है। इनके पदों से स्पष्ट है कि उस युग की कन्याएँ किसी एक व्यक्ति के प्रति प्रेम के उदय के पश्चात् दूसरे व्यक्ति से विवाह करना अनुचित समझती थी। कन्याएँ सामाजिक मर्यादाओं के बंधन को स्वीकार करती थी। परतु प्रेम-मार्ग की बाधक सामाजिक मर्यादाओं के त्याग को अनुचित नही समझती थी। परिवार के वयोवृद्ध व्यक्ति मिलकर लड़के या लड़की का विवाह तय करते थे। मांगलिक अवसरों पर पुरुष पगड़ी धारण किया करते थे आदि। वेळ्ळिवीदि के पदों में भाव-सौदर्य के साथ-साथ कला-सौदर्य भी दृष्टिगत होता है। इनका और इनके पदों का तमिल साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

वैजनाथ शास्त्री *(म० पा०)*

डा० श्री० व्यं० केतकर (दे०) के उपन्यास 'गोंडवनांतील प्रियंवदा' के इस अद्भुत पात्र का चरित्रांकन सर्वांगपूर्ण और उत्कृष्ट है। एक ओर लेखक उसकी वेशभूषा, भाषा और उसके व्यवहार की कतिपय विशिष्टताओं—बड़े-बड़े लोगो को अबे-तबे कहकर नाम लेने, बोलते-बोलते बीच-बीच में बीड़ी पीने तथा सोचते समय आँखें बंद कर लेने का चित्रण कर उसे पाठक की कल्पना के सम्मुख मूर्तिमान कर देता है, तो दूसरी ओर उसके स्वभाव, जीवनक्रम और विचारों का परिचय दे इस पात्र को सजीव बना देता है। उसके संशोधक, चिंतक, प्रगतिशील विचारों वाले व्यक्तित्व एवं 'ज्वलन्निव वह्निमयेन तेजसा' जैसे स्वभाव को सम्मुख रख लेखक ने वस्तुत: उसके चरित्र को अमर बना दिया है। जगत् को तुच्छ मानने वाले अहंभाव से युक्त इस व्यक्ति के विचार भी इतने विलक्षण है कि यह पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ जाता है। कुछ लोगों का अनुमान है कि सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े (दे०) के सनातनी विचारों का मजाक उड़ाने तथा लेखक के समाजशास्त्रीय विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए इस पात्र की सृष्टि की गई थी।

वैजयंतीविलासमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवी शती ई०]

इसके लेखक सारंगु तम्मय्या है। 'वैजयंतीविलासमु' चार आश्वासों का काव्य है। तमिल-साहित्य मे प्रसिद्ध बारह विष्णुभक्तों में से एक की कथा इसमें वर्णित है। अपनी बहन के साथ उपवन मे विहार करती हुई देवदेवी नामक वेश्या भक्तप्रवर विप्रनारायण (दे०) को देखती है। मधुरवाणी अपनी बहन देवदेवी से कहती है कि विप्रनारायण एक महान भक्त है, वह प्रेम-प्रपंच मे नही फँस सकता। पर देवदेवी मधुरवाणी के साथ बाजी लगाकर अंत मे विप्रनारायण को अपने वश मे कर लेती है। तब भूल से विपत में फँसे हुए भक्त को भगवान विष्णु बचा लेते हैं। यही कथा इस काव्य में वर्णित है। इसमें भक्ति के साथ शृंगार का भी प्रचुर वर्णन है। कहीं-कहीं औचित्य का उल्लंघन भी हुआ है। इनकी शैली तथा चरित्र-चित्रण दोनों ही आकर्षक है।

वैण सगाई *(हिं० पारि०)*

'वैण सगाई' डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) का एक विशेष शब्दालंकार है। इस अलंकार में चरण के प्रथम शब्द का प्रथम अक्षर उसके अंतिम शब्द के प्रारंभिक अक्षर के साथ मिलता है। डिंगल के कवियों की ऐसी मान्यता है कि जब अक्षरों की 'वैण सगाई' मिल जाती है, तब दग्धाक्षरों, अशुभ गणों तथा अशुभ द्विगणो

का दोष नही रहता। डिंगल के कुछ कवि केवल प्रथम अक्षरो मे ही नही, मध्य एव अत के अक्षरो मे भी 'वैण सगाई' अलकार मानते हैं।

वैताल पच्चीसी *(गु० कृ०)*

'वैताल पच्चीसी (शामळ ग्रथावली, भाग 2) कवि व वार्ताकार शामळ (दे०)-रचित व अबालाल स० पटेल-सपादित पद्य-कथाएँ है, जिन्हे भारतीय विद्याभवन, बबई ने 1962 ई० मे डा० हरिवल्ल भायाणी के प्रधान सपादकत्व मे प्रकाशित किया है। रचना के मूल उपजीव्य ग्रथ है—क्षेमेंद्र (दे०) की सस्कृत पद्य मे रचित सपादित 'बृहत्कथामजरी' तथा सोमदेव की 'कथासरित्सागर (दे०)। एक भिक्षु राजा त्रिविक्रमसेन को प्रतिदिन एक फल दे देता था। राजा वह फल कोषाध्यक्ष को देता था। एक बार राजा ने बदर को वह फल दिया। भीतर से मोती टपक पडा। सारे फलो से बहुत से मोती भडार मे भर गए। राजा ने भिक्षु से पूछा। भिक्षु ने उत्तर दिया कि मत्र-साधना मे तुम्हारे जैसे वीर की सहायता मैं चाहता हूँ। काली चादस (नरक चतुर्दशी) की रात्रि को राजा भिक्षुक से मिला। उसकी सूचना के मुताबिक दूर-दूर दक्षिण दिशा मे एक पेड से लटकते शव को राजा ने नीचे गिराया। शव हँसने लगा। राजा शव को कधे पर उठाकर चलने लगा। शव मे पैठे वैताळ ने रास्ता काटने के लिए एक-एक कर कथा कहना शुरू किया। उसने पच्चीस कथाएँ कही। ये कथाएँ ही 'वैताल पच्चीसी' कहलाई।

शामळ की 'वैताल पचीसी' की कहानियो म विषय, शीर्षक, क्रम, वस्तु आदि वैसे ही है जैसे मूल 'बृहत्कथा' व 'कथा सरित्सागर' म हैं। प्रारभ मे भूमिका, फिर पचीस कथाएँ पश्चात् पाठातर व अत मे शब्द-कोश देकर पुस्तक को उपयोगी बनाया गया है। प्रणय, पराक्रम व अद्भुत-चमत्कारपूर्ण घटनाओ के निरूपण स कथाएँ बहुत लोकप्रिय बनी हैं। कथानक-रूढियाँ, जन मानस-निरूपण, जनमन-रजन से कृति सपन्न है। भाषा सीधी-सरल किंतु लोकोक्तियो व मुहावरो से समृद्ध है।

मध्यकालीन पद्य-वार्ताओ म 'वैताल पचीसी' बहुत प्रसिद्ध, महत्वपूर्ण व लोकप्रिय कृति है।

वैदेही वनवास *(हि० कृ०)*

अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' (दे०)-कृत अठारह सर्गो की यह रचना यदि महाकाव्य नही तो खडी बोली का उत्तम प्रबधकाव्य अवश्य है। यह 18 दिसबर 1937 ई० को प्रारभ होकर 14 जनवरी, 1939 ई० को समाप्त तथा 5 फरवरी 1940 ई० को प्रकाशित हुआ। इसके मुख्य आधार हैं वाल्मीकि-'रामायण' (दे०), 'अध्यात्म रामायण' (दे०), 'रघुवश' (दे०) और 'उत्तर-रामचरित' (दे०)। इसके अनेक प्रसगो मे मौलिकता है। किंतु उससे ऐतिहासिकता मे विशेष परिवर्तन नही हुआ। प्रकृति चित्रण अपेक्षा से अधिक है, किंतु राम और सीता के चरित्र मे मनोवैज्ञानिक अतर्द्वंद्व का चित्रण सुदर है। इस काव्य मे आदर्शवाद' (दे०), 'छायावाद' (दे०) और 'प्रगतिवाद (दे०) का समन्वित आभास है।

वैभाषिक *(पा० पारि०)*

यह 'हीनयान (दे०) के अनुयायी सर्वास्तिवादियो की एक शाखा है। ईसा पूर्व पहली या दूसरी शती मे कात्यायनीपुत्र न ज्ञान प्रस्थान' लिखा था जिसका सार 'अभिधम कोश' के रूप म सामने आया। इस पर कनिष्क की अध्यक्षता मे एक परिषद् म 'महाविभाषा' नाम की एक टीका लिखी गई। लेखको का नेतृत्व वसुमित्र ने किया। इस टीका मे विरोधी मतावलवियो का खडन किया गया है, इसीलिए इसका नामकरण विभाषा' (विरोधियो की बिगडी हुई भाषा) रखा गया। इस टीका को धर्म-ग्रथ के रूप म मानकर चलने वाले वैभाषिक कहलाय।

वैभाषिक मतानुयायी पदार्थो की बाह्य सत्ता सत्य मानकर चलते हैं, उनके मत मे यदि पदार्थों की बाह्य सत्ता स्वीकार की जाय तो ससार का कोई भी क्रियाकलाप सपन्न नही हो सकता। हमारा अनुभव प्रत्यक्ष रूप मे बाह्य सत्ता को प्रमाणित करता है। यदि इस प्रकार की सत्ता न हो तो अनुमान भी नही लगाया जा सकता। धुएँ को देखकर आग की प्रतीति इसलिए होती है कि पहले कभी आग और धुएँ के साहचर्य को प्रत्यक्ष कर दोनो के साहचर्य के आधार पर व्याप्ति ग्रहण किया जा चुका है। इस प्रकार इस मत म प्रत्यक्ष जगत् और अनुमित जगत् दोनो की सत्ता है, साथ ही भौतिक और मानसिक जगत को भी ये लोग सत्य ही मानते है। बाह्य सत्ता क चार तत्त्व हैं—पृथ्वी, जल, तेज और वायु। इनकी रचना परमाणुओ से होती है। परमाणु पृथक्-ग इद्रियगोचर नही हो सकते। इनका सामूहिक रूप ही प्रत्यक्ष होता है।

मूलतत्त्व का विनाश कभी नहीं होता। विश्व के पदार्थ मध्यवर्ती स्थिति-रूप हैं जिसमे अणुओं के संघात एवं विघटन से उत्पत्ति, स्थिति, क्षण और मृत्यु—ये चार स्थितियाँ आती रहती हैं। विनाश के बाद परमाणु-रूप मे मूलतः तत्त्व बना रहता है। इन पदार्थों के अतिरिक्त न तो आकाश की सत्ता है और न प्रद्गल (जीव) की ही सत्ता स्वीकार की जा सकती है। पाँच स्कंधों—रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार—से भिन्न कोई आत्मा नहीं है। पदार्थों का प्रत्यक्ष इंद्रियार्थ सन्निकर्ष से होता है। पृथ्वी इत्यादि परमाणु वर्ण, गंध, स्वाद और स्पर्श-गुण-युक्त हैं जिनमे परस्पर भेद नहीं।

वैयापुरिप्पिळ्ळै, एस० *(त० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1956 ई०]

तमिल भाषा के कोशकार तथा प्राचीन ग्रंथों के संपादक, एवं अन्वेषक के रूप में एस० वैयापुरिप्पिळ्ळै का नाम अमर है। प्रारंभिक जीवन मे वकील के व्यवसाय मे संलग्न होने पर भी इनकी प्रवृत्ति साहित्यिक चर्चा, आस्वादन और खोज की ओर रही थी। 1926 ई० से मद्रास विश्वविद्यालय के तमिल 'लेक्सिकन्' (तमिल बृहत् कोश) का संपादक-पद इन्हें मिलने के बाद इनकी साहित्यिक सेवाएँ व्यापक एवं तीव्र बन गई थी। 1936 से 1947 ई० तक ये मद्रास विश्वविद्यालय के तमिल अनुसंधान-विभागाध्यक्ष रहे थे। 1950 से 1954 ई० तक ये मु० राकवैयंकार् के पश्चात् 'तिरुवनंतपुरम्' स्थित विश्वविद्यालय मे तमिल प्रोफेसर के पद पर रहे।

कोश-संपादक के रूप मे इनकी महान् उपलब्धि 'तमिल लेक्सिकन' के कार्य को समाप्ति तक ले जाना था जिसमें इन्हें तदर्थ नियुक्त विद्वत्मंडली की सहायता पूरी मात्रा मे मिली थी। इन्होंने इस कोश के मूलाधार प्राचीन तमिल 'निघंटुओं' और अन्य स्रोत-ग्रंथों का संपादन एवं प्रकाशन भी किया था। ऐसे ग्रंथों मे 'अरुंपोरुळ् निगंटु', 'नामतीपनिगंटु' तथा 'नानार्थ दीपिकै' उल्लेखनीय हैं। समस्त संगमकालीन पद्य-रचनाओं का एक संस्करण इन्होंने निकाला था जो पाठ-शोध का उत्तम कार्य है। ये तमिल के श्रेष्ठतम महाकाव्य 'कंबरामायणम्' (दे०) के पुजारी थे और वैज्ञानिक पाठ-शोध के अनुकूल उसका एक संस्करण निकालने के लिए इन्होंने सारी सामग्री इकट्ठी भी की थी पर अपने जीवन मे इसे पूर्ण नहीं कर पाये थे। 'पुरत्तिरट्टु', 'कळवियरकारिकै', 'पोरुळ्त्तिकारम् इळंपूरणर्उरै' इत्यादि अनेक प्राचीन ग्रंथ मूल ताड़-पत्रों के परिश्रमपूर्वक शोध के पश्चात् इनके द्वारा संपादित और प्रकाशित हुए हैं। ये संस्कृत भाषा के भी अच्छे ज्ञाता थे। निष्पक्ष तथा सर्वांगीण स्वतंत्र चिंतन इनके अन्वेषणात्मक एवं विविध विषयक निबंधों की विशेषता है। इनके गद्य-लेखन के कुछ उदाहरण हैं—'कंबन-कावियम्' (कंबन का काव्य), 'तमिलच्चुडरमणिकल्' (तमिल के प्रकाशमान रत्न-जीवनियाँ और परिचय), 'तमिलर् पणाटु' (तमिल लोगों का संस्कार), 'काविय कालम्' (तमिल साहित्य के काव्य-काल' का खोज और इतिहास), 'चिरुकतै मंजरि' (लघु-कथाएँ), 'इलक्किय उतयम्' (विभिन्न देशों में साहित्य का उदय) इत्यादि।

वैराग्य सार *(अप० कृ०)*

'वैराग्य सार' 77 पद्यों की लघुकाय कृति है। इसके रचयिता सुप्रभाचार्य (दे०) हैं। कवि की विचारधारा, शैली और भाषा की दृष्टि से यह कृति बारहवीं-तेरहवीं शती के बीच की रचना प्रतीत होती है।

इस ग्रंथ के नाम से ही इसके विषय का आभास मिल जाता है। कवि ने सांसारिक विषयों की अस्थिरता तथा संसार मे दुःखबहुलता का इस ग्रंथ के अनेक दोहों में उल्लेख किया है: पुण्य-संचय, परोपकार, दान, इंद्रिय-निग्रह और मन को वश मे करने का उपदेश दिया है। कवि ने अनेक पद्यो मे धन-वैभव की क्षणिकता, विषयों की निंदा, मानव-देह की नश्वरता और सांसारिक संबंधों के मिथ्यात्व का उल्लेख किया है और बताया है कि माया-निशा मे मन-चोर से आत्म-रक्षा करने वाला साधक निर्मल ज्ञान-प्रभात के दर्शन करता है।

'वैराग्य सार' मे सुप्रभाचार्य ने सरल और सुबोध भाषा मे मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति की है। इस ग्रंथ के 77 पद्यों मे से 72 दोहा छंद में हैं। भाषा में यत्र-तत्र अनेक सुभाषित मिलते हैं। कवि ने प्रत्येक पद्य मे अपने नाम का प्रयोग किया है।

वैशाली की नगरवधू *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1948 ई०]

यह आचार्य चतुरसेन (दे०) शास्त्री का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका कथानक बौद्धकाल से संबंधित है तथा लेखक ने तद्युगीन लिच्छवी संघ की

राजधानी वैशाली की गणिका 'आम्रपाली' को केंद्रबिंदु बनाकर उस परपरा का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है जिसके अनुसार उस युग मे नगरवधू को पूरे गण मे सम्मानित किया जाता था और समाज की सर्वाधिक सम्मानित एव ऐश्वर्यशालिनी महिला होती थी। घटनाप्रधान इस उपन्यास मे आम्रपाली के चरित्र को अत्यत कुशलतापूर्वक उरेहा गया है। आम्रपाली नगरवधू बन जाने तथा विलास-प्रिय नवयुवको की कामवासना को उत्तेजित करने पर भी अपने शरीर को सर्वथा अछूता रखती है तथा वैशाली की इस परपरा की घोर निंदा करती है। पुराकालीन शब्दो का प्रयोग करते हुए वेश-विन्यास, रीति-नीति तथा विभिन्न स्थानो के चित्रोपम प्रत्यकन द्वारा लेखक ने न केवल ऐतिहासिक वातावरण की सफल सृष्टि की है अपितु इसे अत्यत रोचक भी बना दिया है।

वैशिकतंत्रम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानत ग्यारहवी शती के पूर्व]

कोई अनुभवी वेश्या अपनी पुत्री को वेश्यावृत्ति के सारे मर्म सिखाती है। यह ग्रथ शायद इसी भाव की किसी सस्कृत-रचना का अनुवाद है। जिस गभीरता एव आत्मीयता से माता पुत्री को वेश्यावृत्ति का उपदेश देती है वह दर्शनीय है—'बेटी! यौवन युवतियो का कामास्त्र है और वह इद्रधनुष-सा क्षणिक है। यौवन म अर्जित सपत्ति से ही वार्धक्य का विशाल सागर पार करना पडता है। इस काव्य की भाषा मे मधुर मलयाळम तथा ललित सस्कृत का मणिप्रवाल-प्रयोग है।

वैष्णवचरित्रकाव्य *(बँ० प्र०)*

श्री चैतन्य महाप्रभु (दे०) के आविर्भाव के पूर्व से ही वडुचडीदास (दे०), मालाधर वसु (दे०) आदि वैष्णव कवि राधाकृष्ण के प्रेम-वर्णन और वैष्णव भक्ति के प्रसार मे सलग्न थे। मालाधर वसु का 'श्रीकृष्ण विजय' (दे०) प्राक्चैतन्य युग का प्रथम उत्कृष्ट चरितकाव्य समझा जाता है। इसमे भागवत पुराण के दशम स्कध का भावानुवाद किया गया है। यह कहा जाता है कि चैतन्यदेव ने इस पुस्तक मे अभिव्यजित कृष्णलीला के लिए ग्रथकार की मुक्त कठ से प्रशसा की थी और स्वय इससे प्रभावित भी हुए थे। चरितकाव्य की वास्तविक परपरा श्री चैतन्यदेव के आविर्भाव एव तिरोभाव के उपरात शुरू हुई। वस्तुत मध्य युग मे चैतन्यदेव के जीवन के आधार पर ही चरितकाव्य की रचना की प्रथा प्रारभ हुई थी। चैतन्यप्रभु की लोकोत्तर जीवन-कथा के आधार पर गोविंददास (दे०) ने 'कडचा', जयानद (दे०) ने 'चैतन्य मगल' (दे०), वृदावनदास (दे०) ने 'चैतन्य भागवत' (दे०) एव कविराज गोस्वामी ने 'चैतन्य चरितामृत' (दे०) की रचना कर मध्ययुगीन बँगला-साहित्य की अपूर्व श्रीवृद्धि की। इन चरित-काव्यो मे चैतन्य की जीवन-महिमा के साथ ही गौडीय वैष्णव भक्ति और उसकी दार्शनिकता की सुदर अभिव्यक्ति हुई है। इन ग्रथो म 'चैतन्य चरितामृत' को सर्वश्रेष्ठ स्वीकार किया जाता है। पाडित्य, भक्ति और काव्य-कुशलता का अपूर्व परिचय देते हुए कविराज गोस्वामी ने अपने इस काव्य को चैतन्य के वाड्मय-विग्रह का रूप दिया है।

वैष्णव पदावली साहित्य *(बँ० प्र०)*

जयदेव (दे०) के 'गीत गोविंद' (दे०) तथा वडु चडीदास (चौदहवी शती) के 'श्रीकृष्ण कीर्तन (दे०) एव मैथिली कवि विद्यापति (दे०) की पदावली के प्रभाव-स्वरूप मध्ययुगीन बगला साहित्य मे राधा कृष्ण की प्रेम-लीला और वैष्णव भक्ति-भावना का अत्यधिक प्रसार हुआ। विशेषकर विद्यापति की पदावली से सपूर्ण बगाल इतना अधिक प्रभावित हुआ था कि मैथिली और अवहट्ट के साथ बँगला भाषा का सम्मिश्रण कर वैष्णव गीति-कविता के माध्यम के रूप मे बगाली कवि-मानस मे 'ब्रजबुलि' के नाम से एक नवीन भाषा की सृष्टि कर डाली और गेय पदावली मे वैष्णव रस-धारा की उत्कृष्ट अभिव्यजना शुरू की। पद्रहवी शती मे श्री चैतन्य महाप्रभु (दे०) के आविर्भाव के उपरात कृष्ण-लीला की भूमिका के रूप मे कवियो ने चैतन्य लीला के पदो की भी रचना प्रारभ की। इन पदो को गौरचद्रिका' नाम दिया गया। इस वैष्णव पदावली मे प्रकृति का समस्त सौंदर्य, मानवीय प्रेम के सारे सुकुमार भाव-विलास एव अतींद्रिय रस की अलौकिकता लौकिक रूप म प्रकट हुई। इन पदावलियो मे कविता सुगभीर, स्वत स्फूर्त अनुभूति की सहज रसधारा म प्रभावित हुई है। पदावली साहित्य बगाल का अन्यतम काव्यकृतित्व है। यह बगाली जीवन की विशुद्धतम काव्यमय अभिव्यक्ति है। बंगाल की समस्त मधुर और कोमल अनुभूति, उसकी भावमुग्धता, जीवन-दर्शन, प्रेमाभक्ति की कोमलता सब कुछ इन पदो की सीमित परिधि मे प्रकट

हुआ है। गोविंददास (दे०), ज्ञानदास (दे०) और चंडीदास (दे०) पदावली साहित्य में सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। गोविंददास के पदों में गंभीर भावावेग के साथ युक्ति-शृंखला का अनुवर्तन हुआ है और अलंकार-बहुल, झंकार-प्रधान, मर्यादापूर्ण भाषा का प्रयोग हुआ है। वैष्णव पदावली का बंगाल के जन-मानस पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा था कि अनंतदास, बलरामदास, वासुदेव घोष आदि हिंदू पदकर्त्ताओं के अतिरिक्त दौलत-काज़ी (दे०), सैयद आलाओल (दे०) जैसे मुसलमान रचयिताओं ने भी अपनी वैष्णव भावानुभूति को काव्यरूप दिया है।

व्यंग्य (व्यंग्यार्थ) *(पारि०)*

व्यंजना (दे०) के शब्दशक्ति द्वारा जिस अर्थ की प्रतीति होती है उसे व्यंग्यार्थ कहते है। यह अर्थ वाच्यार्थ (मुख्यार्थ, अभिधेयार्थ) से नितांत भिन्न होता है। यह भिन्नता निम्नोक्त नौ तत्त्वों पर आधारित है—निमित्त कारण, आश्रय, कार्य, काल, बोद्धा, संख्या, विषय, प्रतीति और स्वरूप (सा० द० 5.2)। व्यंग्यार्थ को प्रतीतार्थ, प्रतीयमानार्थ, ध्वन्यर्थ (अथवा ध्वनि (दे०) आदि भी कहते हैं। 'व्यंग्यार्थ' की प्रतीति शब्द और अर्थ के शासन (व्याकरण-संगत शब्दज्ञान और मीमांसा-संगत अर्थ-ज्ञान) से नहीं हो जाती, अपितु यह तो काव्य के मर्मज्ञ सहृदयों को ही होती है। (ध्वन्या० 1.7) व्यंग्यार्थ (ध्वनि) के ही तारतम्य के आधार पर समस्त काव्य तीन प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया गया है—ध्वनि-काव्य, गुणीभूतव्यंग्य (दे०) काव्य और चित्रकाव्य (दे०)। इन तीनों में वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ (ध्वनि, ध्वन्यर्थ) क्रमशः प्रधान, गौण और अस्फुट से रहता है।

व्यंजना *(पारि०)*

संस्कृत-काव्यशास्त्र एवं व्याकरण में निरूपित शब्दशक्तियों—अभिधा (दे०), लक्षणा (दे०) और व्यंजना में से अंतिम, किंतु सर्वाधिक सशक्त। अभिधा और लक्षणा का बाध होने पर शब्द की जिस शक्ति के द्वारा किसी शब्द अथवा वाक्य के किसी अन्य विशिष्ट अर्थ का अवबोध होता है वही शक्ति व्यंजना है। अभिधा शब्द के संकेतार्थ का वाचन करती है, लक्षणा मुख्यार्थ के बाधित होने पर उसी से संबंधित किसी अन्य अर्थ का बोध कराती है, किंतु व्यंजना से प्राप्त अर्थ इन दोनों शक्तियों के पूर्णतया असमर्थ होने पर ही प्राप्त होता है जो अनिवार्यतः अधिक गूढ़, कमनीय अद्भुत और मार्मिक होता है। व्यंजना की इस अर्थावबोधन-प्रक्रिया को शास्त्र में 'व्यनन' कहा गया है।

व्यंजना-शक्ति के दो भेद किए गए हैं: 'शाब्दी व्यंजना' और 'आर्थी व्यंजना।'। 'शाब्दी व्यंजना' अभिधा-मूला और लक्षणामूला दो प्रकार की होती है। 'आर्थी व्यंजना के वक्तृ, बोधव्य, काकु, वाक्य, वाच्य, अन्य-सन्निधि, प्रस्ताव, देश, काल तथा चेष्टा के आधार पर दस भेद माने गए हैं।

व्यक्तिविवेक *(सं० कृ०)* [समय—ग्यारहवीं शती का मध्यकाल]

ग्यारहवीं शती के मध्यकाल में रचित 'व्यक्ति-विवेक' ही संस्कृत-साहित्य की एक ऐसी उल्लेख्य कृति है जिसने अनंदवर्धन (दे०) के ध्वनिसिद्धांत का प्रबल विरोध किया। इस ग्रंथ के रचनाकार महिमभट्ट (दे०) स्वयं कहते हैं कि उनकी कृति की रचना का एकमात्र कारण 'ध्वनि' का सांगोपांग खंडन कर उसका अनुमान में अंतर्भाव करना है। इसलिए वे अनुमान की प्रक्रिया के आधार पर ध्वनि को उसके भेदोपभेदों सहित अनुमानगम्य सिद्ध करते हैं। इस ग्रंथ में काव्य के दोष, गुण, अलंकार एवं रसादि तत्त्वों की मीमांसा दर्शन और व्याकरण की पृष्ठभूमि में हुई है। यह भी इस ग्रंथ का एक वैशिष्ट्य है।

इस ग्रंथ के विवेचन की प्रणाली प्रायः इस प्रकार रही है—वृत्ति, उदाहरण तथा अंत में कारिकाएँ। 'व्यक्तिविवेक' की अब तक कुल दो टीकाएँ उपलब्ध हुई हैं—रुय्यक (दे०)-कृत 'व्यक्तिविवेक-व्याख्यान तथा 'मधुसूदन-विवृति'।

व्यभिचारिभाव *(पारि०)*

भरत (दे०) के निम्नोक्त सूत्र में 'व्यभिचारी' शब्द का प्रयोग मिलता है—'विभावानुभाव-व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' (ना० शा० षष्ठ अध्याय)। 'व्यभिचारी' को ही व्यभिचारिभाव' तथा 'संचारिभाव' कहा जाता है। 'व्यभिचारिभाव' इसलिए कि ये भाव प्रत्येक स्थायिभाव के साथ विशेष रूप से अभिमुख होकर—उसके अनुकूल (सहायक) बनकर—चलते हैं: विशेषादाभिमुख्येन चरणाद् व्यभिचारिणः (सा० द० 3.140)।

सचारिभाव इसलिए कि ये भाव स्थायिभावो को रसावस्था तक ले चलते हुए भी स्वय बीच मे जलतरगवत् आविर्भूत और तिरोभूत होते रहते है—स्थायिन्युन्मग्न-निर्मग्ना। (सा० द० 3 140)। ये तेतीस माने गए हैं—निर्वेद, ग्लानि, शका असूया, मद, श्रम, आलस्य, दीनता, चिंता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीडा चापल्य, हर्ष, आवेग, जडता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा अपस्मार, स्वप्न, विबोध, अवमर्ष, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क। किंतु 33 सख्या तो कम-से-कम सख्या की ही द्योतक है, सचारीभाव तो अनत हो सकते हैं—'त्रयस्त्रिशदिति न्यूनसख्याया व्यवच्छेदक न त्वधिन्सरयाया।' इनके अतिरिक्त अनियत रस मे—उस रस मे जिसकी स्थिति अत तक न बनी रह सके—स्थायिभाव' भी 'सचारिभाव' बन जात हैं।

व्यर्थतार दान (अ० कृ०) [रचना काल—1938 ई०]

यह यौन समस्याओ को लेकर लक्ष्मीधर शर्मा (दे०) द्वारा लिखी गई कहानियो का सग्रह है। इसमे यौन-प्रवृत्ति की प्रचडता और मादकता का वर्णन है। किसी किसी कहानी मे नग्न वर्णन हो गए है किंतु उन्हे कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। कहानियो मे कही-कही आदर्शवादी स्पर्श भी हैं।

व्याकरण (हिं० पारि०)

व्याकरण शब्द 'वि+आ+कृ+ल्युट्' से बना है और इसका अर्थ है 'विश्लेषण करने की क्रिया' या 'वह जो विश्लेषण का साधन हो'। भाषा के प्रसग मे व्याकरण वह शास्त्र है जो भाषा का विश्लेषण करता है तथा शुद्ध और अशुद्ध प्रयोगो का ज्ञान कराता है। परपरागत व्याकरण सभी देशो मे निर्देशात्मक (prescriptive) रह हैं जो प्रयोग-अप्रयोग का निर्देश करते रहे है। अब ऐसे व्याकरण अच्छे नही माने जात। नए व्याकरण मुख्यत निम्नाकित प्रकार के लिखे जा रहे हैं वर्णनात्मक (descriptive), ऐतिहासिक (historical), तुलनात्मक (comparative), व्यवस्थापरक (systematic), रूपान्तरक-व्युत्पादक (transformational generative) तथा स्तरीकृत (stratificational)। आजकल सबसे अधिक प्रचार रूपातरक व्युत्पादक व्याकरण का है, जिसके आदि व्याख्याता 'चोम्स्की हैं तथा जिसमे न केवल उसका विवेचन-विश्लेषण होता है जो किसी भाषा मे प्रयुक्त हो रहा है, अपितु उसका भी विवेचन विश्लेषण करने का प्रयास किया जाता है, जो प्रयुक्त हो सकता है। इधर फिल्मोर ने व्याकरण का एक नया रूप कारकीय व्याकरण (case grammar) नाम से विकसित किया है।

व्यायाम-ज्ञान कोश (म० कृ०)

यह कोश 1940 ई० मे बडौदा से प्रकाशित हुआ था। इसके मुख्य सपादक श्री द० चि० मजुमदार हैं। इसके उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए भूमिका मे कहा गया है कि बौद्धिक ज्ञान-सवर्धन पर बल देने के कारण आधुनिक काल मे शारीरिक शिक्षण प्रायः उपेक्षित रहा है। अत यह कोश सपूर्ण महाराष्ट्र को आरोग्य-सपन्न बनाने के उद्देश्य से तैयार किया गया है।

यह एक अनूठी कृति है। इसके पाँच भाग है, जिनम प्राचीन तथा नवीन व्यायामो का सग्रह है। वैदिक काल से आधुनिक काल तक के ऐसे अनेक व्यायाम हैं जिनमे अधिक साधनो की आवश्यकता नही। कोश म उनका सचित्र एव शास्त्रयुक्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमे खेल ही नही खेल खेलने की विधियाँ भी बताई गई है। इस प्रकार यह व्यायाम-सबधी विश्वकोश है।

व्यापवट्टस्मरणक्ळ् (मल० कृ०)

मलयाळम-साहित्य की आत्मकथा-धारा के प्रारभिक एव प्रमुख ग्रथो मे स्व० बी० कल्याणि अम्मा द्वारा लिखित इस ग्रथ का नाम उल्लेखनीय है। मलयाळम म व्यापवट्टम् शब्द का अर्थ है 'द्वादशवर्षीय युग'। श्रीमती कल्याणि अम्मा न अपन प्रिय पति स्वदेशाभिमानी रामकृष्ण पिळ्ळा के साथ बिताय बारह वर्षो की मीठी-तीखी स्मृतियाँ परम आत्मीयता से इस ग्रथ मे शब्दबद्ध की हैं।

इनके पति रामकृष्ण पिळ्ळा त्रावनकोर रियासत के सजग पत्रकार और सशक्त साहित्यकार थे। समाज के प्रति न्याय-दृष्टि का निर्वाह उनका लक्ष्य था। एक तरफ य सरकारी अफसरो की रिश्वतखोरी और अन्य अत्याचारो की खबरें नि सकोच छापने मे प्रसिद्ध हुए तो दूसरी तरफ त्रावनकोर-नरेश के क्रोध-पात्र बने। फलत रियासत से निर्वासित कर दिए गए। श्रीमती कल्याणि अम्मा न इसके भीतर स्पष्ट शब्दो म उनके सघर्षमय जीवन का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है। अपने

विवाह के पहले पिळ्ळा से वार्तालाप तथा पिळ्ळा के अंतिम दिनों के दृश्य आदि अत्यंत हृदयहारी चित्रण के उदाहरण है। यह ग्रंथ समसामयिक राजनीति पर प्रकाश डालता है और अतिरंजना से दूर है।

व्यास, कांतिलाल बलदेवराम *(गु० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

श्री कांतिलाल व्यास का जन्म ध्रांगध्रा तहसील के हामपुर गाँव मे हुआ था। ये मूलत. विरमगाम के निवासी थे। सूरत के एम० टी० बी० कॉलेज से इन्होंने एम० ए० की परीक्षा पास की। इनका विद्यार्थी जीवन भी बडा तेजस्वी रहा है। बंबई विश्वविद्यालय तथा भारतीय विद्याभवन ने इसकी शोधपरक रचनाओं पर इन्हें स्वर्णपदक प्रदान किए थे। ये पहले गुजराती थे जिन्हें रायल एशियाटिक सोसाइटी के फेलो होने का सम्मान प्राप्त हुआ था। इनकी रचनाएँ है: 'निबंधगुच्छ', 'गुजराती भाषानुं व्याकरण अने शुद्ध लेखन', 'गुजराती भाषाशास्त्रना विकासनी रूपरेखा', 'आपणा भारतनो सरल इतिहास', 'वसंतविलास : एन ओल्ड गुजराती फागु', 'वसंतविलास : ए फर्दर स्टडी', 'द विक्रमादित्य प्रोब्लम : ए फ्रेश स्टडी', 'दशावतारचित्र : गुजराती पेंटिंग इन द सेविंटीथ सेंचुरी'। 'कान्हड़दे प्रबंधम्' (दे०) का इन्होंने संपादन भी कर रखा है। श्री कांतिलाल व्यास की प्रसिद्धि अपने भाषाशास्त्र के गंभीर ज्ञान और उसके पुरानी कृतियों पर समायोग के कारण हुई है। ये सर्जनात्मक साहित्य कम और शास्त्रीय पुस्तकें अधिक रुचि के साथ पढते है जिसकी छाया उनकी रचनाओ पर भी मिलती है।

व्यास, बादरायण *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—200 ई०]

बादरायण एवं वेदव्यास अभिन्न है। बदरिकाश्रम में रहने के कारण इनका नाम बादरायण पड़ गया था। अपांतरतमा एवं कृष्ण द्वैपायन इनके अपर नामधेय है। इनका प्रधान ग्रंथ 'ब्रह्मसूत्र' (दे०) है। ज्ञानसूत्र को ही 'वेदांतसूत्र', 'शारीरिकसूत्र' एवं 'भिक्षासूत्र' भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त इन्होने अपने शिष्यो—पैक्त, वैशंपायन, जैमिनि एवं सुमंतु के सहयोग से वैदिक संहिताओं का संपादन किया था। 'महाभारत' (दे०) श्रीमद्भागवत (दे० भागवत) एवं अन्य पुराणों की रचना भी इन्हीं के द्वारा की गई थी।

भारतीय धर्म, दर्शन एवं संस्कृति के क्षेत्र मे व्यास की देन सर्वथा अक्षुण्ण रहेगी। ये प्रत्येक युग के महापुरुष के रूप में सदा श्रद्धेय रहेंगे। जहाँ इन्होंने वेदो के संपादन द्वारा एक विस्तृत एवं सर्वांगीण दिशा दी है, वहाँ ब्रह्मसूत्र की रचना के द्वारा औपनिषद दर्शन का दृढ़ एवं शाश्वत शिलान्यास किया है। इसी प्रकार पुराणों की रचना के द्वारा व्यास ने भारतीय धर्म एवं संस्कृति का जो ऐतिहासिक काव्यमय विश्लेषण किया है, वह उनकी अनुपम देन कही जाएगी।

व्युत्पत्ति *(काव्य०/भाषा पारि०)*

1. 'व्युत्पत्ति' काव्य-रचना के तीन हेतुओ में से दूसरा हेतु है। इसका नाम 'निपुणता' भी है। लोक, काव्य, काव्यशास्त्र आदि के अवेक्षण द्वारा (प्राप्त ज्ञान) 'व्युत्पत्ति' अथवा 'निपुणता' कहाता है—'निपुणता लोककाव्यशास्त्राद्यवेक्षणात्' (का० प्र० 1.3)। दंडी (दे०) ने इसे अति निर्मल श्रुत (शास्त्र-ज्ञान) कहा है। काव्य को रचना के लिए मम्मट (दे०) के अनुसार 'शक्ति' (प्रतिभा), 'निपुणता' (व्युत्पत्ति) और 'अभ्यास' ये तीनों समन्वित रूप से अभीष्ट है; किंतु इनसे पूर्व दंडी के अनुसार यद्यपि काव्य-रचना के लिए 'प्रतिभा' (दे०) अपेक्षित है, तथापि 'प्रतिभा' के अभाव में श्रुत (व्युत्पत्ति (दे०) और यत्न (अभ्यास) के बल पर किसी-किसी व्यक्ति पर वाग्देवी कृपा कर ही देती है, अर्थात् 'व्युत्पत्ति' और 'अभ्यास' द्वारा भी कोई-कोई व्यक्ति काव्य-रचना करने में समर्थ हो जाते हैं (का० आ० 1.104)। किंतु आनंदवर्धन (दे०) 'प्रतिभा' का विवेचन प्रकारांतर से नहीं करते (देखिए ध्वन्या० 3.6 वृत्ति) हेमचंद्र (दे०) के अनुसार काव्य-रचना का एकमात्र हेतु है—'प्रतिभा'; और 'व्युत्पत्ति' तथा 'अभ्यास' इसके परिष्कारक हेतु हैं—'प्रतिभाऽस्यहेतुः व्युत्पत्यभ्यासाभ्यां संस्कार्या' (का० अनु० पृष्ठ 6)।

व्युत्पत्ति

2. यह शब्द 'वि+उत्पत्ति' से बना है। भाषाविज्ञान में किसी शब्द के मूल रूप से उसके संबंध का द्योतन 'व्युत्पत्ति' कहलाता है। संस्कृत शब्दों की व्युत्पत्ति में उनका प्रकृति-प्रत्यय विश्लेषण करते है जैसे व्याकरण=वि+आ+कृ+ल्युट्। हिंदी शब्दों की व्युत्पत्ति में मूल

शब्द से उसका सबध-द्योतन करते है। जैसे कि घोडा व्युत्पत्ति सस्कृत घोटक से, तथा ओझा की संस्कृत उपाध्याय से है। व्युत्पत्ति का एक रूप भ्रामक व्युत्पत्ति या लौकिक व्युत्पत्ति कहलाता है। कभी-कभी भ्रमवश लोग एक शब्द का सबध किसी दूसरे शब्द से मान बैठते हैं, जबकि वास्तविक रूप मे उनका सबध होता नही। उदाहरण के लिए कुछ सस्कृतज्ञ अफगानिस्तान का सबध 'आवागमन-स्थान' से जोडते है। यह भ्रामक व्युत्पत्ति है। वस्तुत अफगानिस्तान 'अफगान+ह+स्तान' से है। इसी तरह एक अग्रेज कोशकार ने 'बनर्जी' को 'बानरजी से जोडा है, किंतु वस्तुत यह 'वद्योपाध्याय' से सबद्ध है।

ब्रजलाल शास्त्री *(प० ले०)* [जन्म—1894 ई०]

इसका जन्म बडापिड लोपटया, जिला गुरुदासपुर मे 14 नवबर, 1894 ई० को हुआ। 1919 ई० मे सस्कृत मे एम० ए० परीक्षा मे सफलता प्राप्त की। कई वर्ष तक पजाब बुक सोसाइटी लाहौर मे पुस्तक-सपादक के पद पर कार्य करते रहे। तदनतर पजाब सरकार के शिक्षाविभाग मे प्राध्यापक नियुक्त हुए। पश्चिमी पाकिस्तान के झग नगर के गवर्नमेंट कालेज मे प्राध्यापक पद पर कार्य करते रहे। विभाजन के उपरात पजाब के सरकारी शिक्षा विभाग से 1952 ई० मे सेवा-निवृत्त हुए। आरभ मे गद्य रचनाएँ लिखी। 'सावित्री-सुकन्या', 'प्रतिज्ञा' और 'वासवदत्ता' नाटको की रचना की। 1933 ई० मे कविताएँ लिखना आरभ किया। 1937-38 ई० मे 'कुणाल' और 'सच्चा सगीत' काव्य सग्रह प्रकाशित हुए। 1952 ई० मे राम-कथा गद्य मे छपी। परतु आपकी कोरडा छद मे लिखी 'रामकथा' (दे०) पजाबी साहित्य मे अधिक प्रसिद्ध हुई है। साहित्यिक कार्यो के फलस्वरूप पजाबी भाषा-विभाग ने आपको 'पजाबी-रत्न' उपाधि से विभूषित किया है।

शंकरदास स्वामिगळ *(त० ले०)* [जन्म—1867 ई०, मृत्यु—1922 ई०]

जन्म तमिलनाडु के तूतिकोरन नामक स्थान मे हुआ। शिक्षित परिवार मे उत्पन्न होने के कारण उच्च शिक्षा का अच्छा अवसर मिला। इन्होने आजीवन ब्रह्मचारी रहकर तमिल नाटक-साहित्य की प्राणपण से सेवा की। 25 वर्ष की आयु मे ये नाटक की ओर आकृष्ट हुए। पहले ये मात्र अभिनेता रहे, बाद मे नाटक-लेखन और निर्देशन का कार्य भी करने लगे।

इन्होंने सस्कृत के 'मृच्छकटिक' (दे०) और शेक्सपियर के 'रोमियो एड जूलियट' और 'सिबलिन' का तमिल मे अनुवाद करने के साथ-साथ लगभग 40 मौलिक नाटको की रचना की जिनमे प्रसिद्ध हैं—'पवळक्कोडि', 'प्रह्लादन', 'सत्यवान-सावित्री', 'अभिमन्यु सुदरी', 'सती सुलोचना', 'सती अनुसूया', 'सीमदनी' आदि। इनमे अतिम चार प्रकाशित हैं।

तमिलनाडु मे रहते हुए इन्होने 'समरस सन्मार्ग नाटक-सभा' की स्थापना की। 1900 ई० मे ये लका गये। वहाँ की 'वर्ण्ण इदु विनोद सभा' के लेखक और सलाहकार के रूप मे इन्होने दो नाटक लिखे। इनके नाटक लोकप्रिय, ऐतिहासिक, पौराणिक कथाओ पर आधृत है। शकरदास स्वामिगळ पहले तमिल नाटककार है जिन्होने गद्य मे कथोपकथनो की रचना की। नाटको मे अनेक गीत हैं जो विभिन्न राग-रागिनियो मे निबद्ध हैं। ये गीत भावानुकूल एवं प्रसगानुकूल है। नाटको मे समसामयिक रीति-रिवाजो का वर्णन है। इनकी शैली अत्यत समृद्ध और प्रभावशाली है। इन्होने सस्कृत शब्दो का खुलकर प्रयोग किया है। जीवन-मूल्यो की दृष्टि से ये परपरावादी है। इन पर सस्कृत, अंग्रेजी और कुछ सीमा तक पारसी रगमच का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इन्होने तमिल नाटक एव रगमच तथा कविता के क्षेत्र मे मौलिकता का समावेश किया। नाटक एव रगमच के क्षेत्र मे इनका सबसे बडा योगदान यह है कि इन्होने ही प्रथम बार नाटक मे कथा की सुसगत योजना की।

शंकरदिग्विजय *(स० कृ०)* [रचना-काल—1400 ई०]

'शकरदिग्विजय' के लेखक माधवाचार्य प्रसिद्ध वेदभाष्यकार सायण के ज्येष्ठ भ्राता थे। माधवाचार्य के सन्यास-आश्रम का नाम थेय विद्यारण्य है।

'शकरदिग्विजय' मे शकराचार्य (दे०) का जीवन-चरित वर्णित है। 'शकरदिग्विजय' 16 सर्गो मे विभक्त है। इस ग्रथ मे शकराचार्य के शास्त्रार्थो एव दार्शनिक सिद्धातो का वर्णन बडे रोचक ढग से किया गया है। 'शकरदिग्विजय' की शैली सरल हृदयग्राहिणी है। इस ग्रथ का कवित्व अत्यत सरस एव प्रौढ है। 'शकरदिग्विजय' के अनुसार शकराचार्य का शास्त्रार्थ श्रीहर्ष (दे०), अभिनवगुप्त (दे०), बाण (दे०), मयूर (दे०)

आदि के साथ दिखाया गया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता। कुल मिलाकर, 'शंकर-दिग्विजय' शंकराचार्य की विभिन्न यात्राओं एवं दार्शनिक सिद्धांतों के संबंध में एक सरल दिग्विजय प्रस्तुत करता है।

शंकरदेव *(अ० ले०)* [जन्म—1449 ई०; मृत्यु—1568 ई०]

जन्म-स्थान—नौगांव का आलिपुखुरी नामक स्थान।

शैशव मे ही इनके माता-पिता का देहांत हो गया था, नानी ने इन्हें पाला-पोसा था। इन्होंने 13 वर्ष की आयु मे अध्ययन आरंभ किया था और अत्यल्प काल में ही व्याकरण, पुराण, रामायण आदि का अध्ययन कर डाला था। एक-एक कर इनके दो विवाह हुए थे, परंतु दोनों ही पत्नियो की मृत्यु हो गई थी। इन्हें पिता बनने का सौभाग्य मिला था। इन्होने अनेक तीर्थों की यात्रा की थी। इनके समय मे विकृत बौद्ध धर्म और शाक्तों की उपासना का प्रचार था। इन्होने वैष्णव धर्म का प्रचार कर चांडाल मे लेकर ब्राह्मणों तक का संगठन किया था। कई मुसलमान और पर्वतीय जन इनके शिष्य बन गए थे। अहिंसा, अस्पृश्यता, मादक द्रव्य-वर्जन और प्राणिमात्र पर दया आदि इनके धर्म की मूल नीति थी। इनकी उपासना मे राधा-तत्त्व की उपेक्षा है। शंकरदेव असमीया-साहित्य-जगत के सूर्य है। असम के धर्म, ललित कला और साहित्य के क्षेत्र में इनका दान अतुलनीय है। ये कवि, समाज-सुधारक, धर्म-प्रवर्तक, नाट्यकार, अभिनेता, संगीतज्ञ और भक्त एक-साथ थे। ये जाति के कायस्थ थे।

रचनाएँ : काव्य : 'रुक्मिणीहरण', 'उद्धवसंवाद', 'पाषंडमर्दन', 'कुरुक्षेत्र', 'वलिछलन', 'अजामिल उपाख्यान', 'भक्ति-प्रदीप', 'अनादिपातन', 'निमिनवसिष्ठ संवाद', 'गुण-माला', 'कीर्तन' (दे०), 'उत्तरकांड रामायण', 'वरगीत', 'भटिमा'। **नाटक :** 'चिह्नयात्रा', 'पत्नीप्रसाद' (दे०), 'कालियदमन', 'केलिगोपाल', 'रुक्मिणीहरणनाट' (दे०), 'पारिजात-हरण', 'रामविजयनाट (दे०)। इनका सबसे उत्तम ग्रंथ 'कीर्तन' है। असम के जन-जीवन मे इसका प्रचार गोस्वामी (दे० तुलसीदास) जी के 'मानस' (दे० रामचरितमानस) के समान है। यह ग्रंथ कृष्ण-विषयक 27 काव्यों का एक महाकाव्य है। वरगीतों (दे०) में इनके स्फुट गीतों का संकलन है। इसकी भाषा ब्रजबुलि नामक कृत्रिम भाषा है। शंकरदेव भारतीय आधुनिक भाषाओं के प्रथम नाट्यकार हैं। इन्होंने संस्कृत-नाट्य-परंपरा और स्थानीय लोक-शैली ओजापाली (दे०) का मिश्रण कर अंकीयानाटों (दे०) की रचना की थी। नाटकों की भाषा भी ब्रजबुलि थी। इन्होंने भागवत (दे०) के कुछ स्कंधों का अनुवाद किया था। श्री शंकरदेव असमीया और समाज के महान् व्यक्ति थे।

शंकर, नाथूराम शर्मा *(हिं० ले०)* [जन्म—1859 ई०; मृत्यु—1935 ई०]

इनका जन्म हरदुआगंज (जिला अलीगढ़) में हुआ। इन्होंने हिंदी, उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत का अध्ययन किया। जीविका के लिए इन्होने पहले नक्शानवीसी की और फिर आयुर्वेद का काम सीखा। ये पहले उर्दू मे लिखते थे, आर्यसमाज के प्रभाव और पं० प्रतापनारायण मिश्र (दे०) के संपर्क से हिंदी में आये। 'शंकर-सर्वस्व' (मुक्तक) और 'गर्भरंडारहस्य' (प्रबंध) इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ है।

परंपरागत काव्य-शैली पर इन्हें अनुपम अधिकार प्राप्त था। खड़ीबोली मे ब्रजभाषा के कवित्त-सवैया की लय बहुत समय तक इन्हीं की प्रेरणा में गूँजती रही। समस्या-पूर्ति करने और फ़बतियाँ कसने में ये सिद्धहस्त थे। सुधारवादी दृष्टि से सामाजिक विषयों पर लिखी गई रचनाओ में इनकी शब्दावली परुष और ओजपूर्ण है परंतु अन्यत्र 'उक्तियाँ बड़ी मनोहर भाषा में हैं।' मंक्रांति-युग का यह कवि पुराने शंख मे समय की साँस फूंकने के लिए सदैव आदरपूर्वक स्मरण किया जायेगा।

शंकर मामंजी *(म० पा०)*

हरिनारायण आपटे (दे०) के सामाजिक उपन्यास 'पक्ष लक्षांत कोण घेतो' (दे०) (ध्यान कौन देता है) का यह खल पात्र तिलक-छापा लगाने वाले ढोंगी, स्वार्थी, दंभी, कठोरहृदय, स्वाभिमानशून्य प्राचीन पीढ़ी के पुरुषों का प्रतिनिधि है जो ऊपर से धर्म के ठेकेदार बने रहते थे, पर छिपकर मादक द्रव्यों का सेवन ही नहीं, वेश्या-गमन तक से संकोच नहीं करते थे। पत्नी को गाली देना, मारना-पीटना और मतलब पड़ने पर उसके पैरों पर लोटना, धन के लिए छल-कपट और विश्वासघात करना, पुत्रवधू को अंध रूढ़ि की बलि चढ़ाने में तनिक भी संकोच न करना आदि चारित्रिक दोषों के कारण मराठी

उपन्यासो का यह अमर खल पात्र चिरस्मरणीय बन गया है।

शकराचार्य *(स० ले०)* [समय—788 से 820 ई०]

शकराचार्य का जन्म केरल के कालरी ग्राम म हुआ था। इनकी माता का नाम सती तथा पिता का नाम शिवगुरु था। तीन वर्ष की अवस्था म ही इनके पिता का देहात हो गया था। 8 वर्ष की अवस्था मे ये वेद-वेदाग मे पारगत हो गए थे और 32 वर्ष की अवस्था मे ही परलोक सिधार गए।

शकराचार्य के ग्रथ चार प्रकार के है—(1) भाष्य-ग्रथ, (2) स्तोत्र-ग्रथ, (3) प्रकरण ग्रथ और (4) तत्र-ग्रथ। भाष्य-ग्रथो मे 'ब्रह्मसूत्र-भाष्य', 'दशोपनिषद्भाष्य', 'विष्णुसहस्रनामभाष्य' आदि है। स्तोत्रो की सख्या 240 है। शकराचार्य-रचित 39 प्रकरण ग्रथ हैं। तत्र-ग्रथो मे 'सौदर्यलहरी' (दे०) तथा 'प्रपचसार' प्रमुख हैं।

शकराचार्य के ग्रथो की भाषा प्राय सरल एव प्राजल है। इनका दार्शनिक सिद्धात केवलाद्वैतवाद है। शकराचार्य ने केवलाद्वैतवाद का प्रतिपादन मायावाद के आधार पर किया है। माया मिथ्या होने के कारण अनिर्वचनीय है। माया के सत् तथा असत् से विलक्षण होने के कारण मायिक जगत भी सर्वथा असत् न होकर, सत् तथा असत मे विलक्षण है। जगत् पारमार्थिक दृष्टि स असत् परतु व्यावहारिक दृष्टि से सत् है। इसीलिए शकराचार्य ने पारमार्थिक व्यावहारिक एव प्रातिभासिक—इन तीन सत्ताओ को स्वीकार किया है।

दार्शनिक सामाजिक एव साहित्यिक दृष्टि से शकराचार्य का योगदान बहुमूल्य है। अद्वैतमत का प्रतिपादन, बौद्धमत का निराकरण एव आचार-सबधी महत्व की स्थापना ही इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

शगुदेवन् *(त० पा०)*

शगुदेवन् पुदुमैप्पित्तन् (दे०)-कृत 'शगुदेवनिन् धर्मम्' नामक कहानी का नायक है। शगुदेवन् राह चलत व्यक्तियो को लूटकर जीविका चलाता है। एक दिन इसकी भेंट एक अनजान बुढ़िया से होती है। बुढ़िया की इकलौती बेटी के विवाह की इच्छा और उसके आर्थिक सकट के विषय मे जानकर शगुदेवन् झटपट अपनी रुपयो की पोटली उसे पकडा देता है। 'शगुदेवनिन् धर्मम' एक चरित्र-प्रधान कहानी है। इस कहानी म लेखक ने शगुदेवन् नामक पात्र के माध्यम मे यह बताना चाहा है कि क्रूर से क्रूर कर्म करने वाले व्यक्ति के हृदय म भी कोमल भावनाओ का निवास होता है। मनुष्य मे बाह्य रूपाकार, स्वभाव विरोधी गुण हो सकते है। नीच से नीच व्यक्ति भी सद्गुणो से पूर्णत. रहित नही होता है।

शकार *(स० पा०)*

अवती के राजा का साला शकार भी भास (दे०) की प्रतिभा की उपज है। उनके 'चारुदत्त' नाटक मे तथा शूद्रक-कृत मृच्छकटिक' (दे०) म शकार वसतसेना (दे०) नामक गणिका का पीछा करते हुए प्रवेश करता है। चारुदत्त (दे०) के वयस्क मैत्रेय (दे०) के द्वारा डाटने-डपटने पर धमकाकर जाता है कि इसका बदला लूँगा। दुर्भाग्यवश प्रवहण-परिवर्तन से वसतसेना उसके हाथ लग जाती है और वह अपनी वासना की तृप्ति का अवसर न पाकर उसका गला ही घोट देता है तथा उसकी हत्या का भी अभियोग चारुदत्त पर लगाता है। न्यायालय मे भी कोई व्यक्ति उस पसद नही करता फिर भी धमकी देकर वह सबको विश्वास के अनुरूप करा लेता है। वह चारुदत्त का अत देखने के लिए कटिबद्ध है पर इसी बीच राज्य विद्रोह हो जाता है। उसके बहनोई स राजगद्दी छिन जाती है और वह पकड लिया जाता है।

यह श' का उच्चारण बहुत अधिक करता है। इसलिए उसे शकार कहा गया है। भारतीय इतिहास से अनभिज्ञ वह दु शासन के द्वारा सीता के हरण की बात करता है एव वासुदेव को कुती-सुत कहता है। विलासी राजा को अपनी बहिन देकर उसके राज्य म मनमानी करने वालो मे शकार का स्थान सर्वोपरि है।

शकुतला *(प० कृ०)*

विश्वविख्यात कवि कालिदास के नाटक 'अभिज्ञान शाकुतलम्' का प्रथम पजाबी अनुवाद 1900 ई० मे भाई वीरसिंह (दे०) के पिता डा० चरणसिंह ने 'शकुतला' नाम से किया।

नाटक के प्रति सिख-धर्म म विशेष आदरणीय स्थान न होने के कारण अपने आपमे यह उनका विशेष साहसिक कार्य था और पजाबी भाषाविदो को विश्व-

विख्यात रचना से परिचित कराने की दृष्टि से भी महत्व-पूर्ण कार्य था। लेखक ने स्वाभाविक सरल भाषा को अपनाकर उसमें मौलिक रचना के भाव एवं प्रवृत्ति को अक्षुण्ण बनाए रखने का श्लाघनीय यत्न किया है। भाव-परिवर्तन के लिए विभिन्न छंदों का उपयोग किया गया है। मूल नाटक के समान ही रसपरिपाक के प्रति पंजाबी कवि भी यत्नवान् रहा है।

शकुंतला *(सं० पा०)*

शकुंतला कालिदास (दे०) की सर्वोत्कृष्ट नाट्य-कृति 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' (दे०) की नायिका है।

शकुंतला मूलतः व्यास (दे० व्यास, बादरायण) की लेखनी की सृष्टि है। पर 'महाभारत' (दे०) की शकु-तला जहाँ एक मानवीय दुर्बलता का शिकार होकर जिस किसी प्रकार उसे व्यवस्थित कर पाती है वहाँ कालिदास की शकुंतला हृदय की कोमलता एवं चरित्र की ऊर्जस्विता का साक्षात् निदर्शन है।

प्रखर तपस्वी विश्वामित्र की यत्किंचित् अव-शिष्ट वासना की आविर्भूति शकुंतला में सामाजिक विधानों के प्रति सहज आस्था है किंतु फिर भी वह दुष्यंत (दे०) के प्रणय का शिकार हो जाती है। इसका रहस्य कवि-कुल गुरु ने नियति का नियम ही माना है, न कि राज-रानी बनकर अमित सुख भोगने की इच्छा। सौभाग्य एवं दुर्भाग्य दोनों ही उसके जीवन में अनाहूत और लगभग एकसाथ ही आते हैं। सौभाग्य का प्रतीक अँगूठी है तो दुर्भाग्य का दुर्वासा का शाप। दुर्भाग्य की प्रबलता सौभाग्य का विलोप कर लेती है और शकुंतला कहीं की नहीं रहती। पर अप्सरा-पुत्री होते हुए भी वह मानुषी की तरह अपने व्रत पर दृढ़ रहती है और विरहिणी नायिका का जीवन व्यतीत करती है। उसके चरित्र की इसी निष्ठा में असंभव को संभव कर देने की शक्ति है। अँगूठी मिल जाती है और शकुंतला का सौभाग्य प्रबल हो उठता है। उसका प्रेमी अनायास ही उसके पास पहुँच जाता है और वह मानविगलित होकर आत्मविभोर हो उठती है।

शकुंतला में मानवीय मूल्य बहुत उच्चकोटि के है। वह अपनी परवशता को भूल मानकर पछताती नहीं। वह जानती है कि ऐसी बातें अनायास नहीं होतीं। हमें अपने प्रारब्ध को भी तो भोगना होता। प्रणय और परि-णय तो उसके निमित्त मात्र हैं। सुख और दुःख में जो एकरूप बना रहता है संसार उसी के गुण गाकर अपनी जीवन-नौका चलाता रहता है।

शडंगु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1966 ई०]

शडंगु से० गणेशलिंगन (दे०)-कृत एक सामा-जिक उपन्यास है। इसमें लेखक ने लंका के ग्रामों में रहने वाले मध्यवर्गीय व्यक्तियों के जीवन का चित्रण करने के साथ-साथ उनकी विभिन्न समस्याओं का अंकन किया है। लेखक के मत में मध्यवर्गीय व्यक्ति सांप्रदायिक और जाति-गत बंधनों में बँधे हुए हैं। शिक्षा के प्रचार के कारण आज इस वर्ग के लोगों की स्थिति में कुछ परिवर्तन अवश्य आ गया है परंतु वे अपने बंधनों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाये हैं—उदाहरणतया वे विवाह को नर-नारी के मध्य का पावन संबंध-सूत्र न मानकर एक सामाजिक परंपरा मात्र मानते हैं। उपन्यास की नायिका पद्मा बहुत चाहते हुए भी अपने प्रेमी राजरत्नम् से विवाह नहीं कर पाती है और उसके भाई परमनादन् को अपनी बहिन पद्मा की भलाई के लिए उसके पति की बहिन ईश्वरी से विवाह करना पड़ता है। लेखक पर मार्क्सवादी विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वह आर्थिक वैषम्य को समाज की सभी समस्याओं का कारण मानता है। तमिल के सामा-जिक उपन्यासों में 'शडंगु' का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

शतकमु *(ते० पारि०)*

'शतकमु' तेलुगु की अत्यंत प्रचलित साहित्यिक विधाओं में से एक है। प्रायः सभी श्रेणियों के तेलुगु-कवियों ने शतक-रचना में अपनी रुचि प्रकट की है। 'सतसई' की तरह 'शतक' भी मुक्तकों का संग्रह है। इसमें प्रायः एक सौ आठ छंद रहते हैं। रुद्राक्षमाला की तरह इसमें छंदों की संख्या विष्णुस्तुति की नामावली से संबद्ध मानी जा सकती है। शतक-रचना अधिकांशतः आत्मनिष्ठ या आत्माश्रयी (सब्जैक्टिव) होती है। अनेक तेलुगु-शतक भक्ति अथवा नीत्युपदेश से संबद्ध हैं। बहुत से तेलुगु-शतक दर्शन, लोकरीति तथा श्रृंगार आदि से भी संबद्ध हैं। 'सुमतीशतकमु', 'भास्कर-शतकमु', 'वेमनशतकमु', 'दाश-रथी शतकमु' और 'कृष्ण-शतकमु' आदि शतक विशेष प्रसिद्ध हैं। संस्कृत की अपेक्षा तेलुगु में शतक-रचना अधिक हुई है और आज करीब 500 से अधिक तेलुगु शतक उप-लब्ध हैं।

शतक साहित्य *(क० प्र०)*

कन्नड और तेलुगु मे सस्कृत जैसे शतक ग्रथो की रचना हुई है और एक स्वतत्र साहित्य-विधा के रूप मे इसका विकास हुआ है। शतको की यह विशेषता है कि उनमे प्राय एक सौ पद्य होते हैं और कभी-कभी एक सौ आठ भी होते हैं। उनमे कवि के इष्टदेव की छाप होती है। नीति, भक्ति, वैराग्य, दर्शन आदि बातो का प्रतिपादन उनमे भली भाँति हो सकता है। मुक्तक रचना होने के कारण उनमे अच्छी अभिव्यजना हो सकती है। पाठक प्रत्येक छद को आसानी से याद रख सकता है।

कन्नड के शतको मे सर्वप्रथम नागवर्माचार्य (दे० नागवर्मा द्वितीय) का 'चद्रचूडामणिशतक' उल्लेखनीय है। उसमे वैराग्य का अच्छा प्रतिपादन हुआ है। नागवर्माचार्य चालुक्य भुवनैकमल्ल (1069-76) के समकालीन थे। महाकवि हरिहर (दे०) (1200 ई० के आसपास) के दो शतक प्राप्त हुए है—पपाशतक और रक्षाशतक। हरिहर हपे के विरूपाक्ष के बडे भक्त थे। उनके शतका मे उनकी भक्ति का आवेग और एकात निष्ठा प्रकट हुई है। इन शतको ने कन्नड वीरशैव साहित्य को नयी दिशा प्रदान की है। पाल्कुरिके सोमनाथ (दे०) (1200 ई० के लगभग) के नाम से प्रचलित 'सोमेश्वर शतक' (दे०) सभवत उनकी रचना नहीं है। पुलिगेरे सोमनाथ इसके कवि होगे। इसमे 'हरहरा श्री चेन्न सोमेश्वरा' की छाप मिलती है। बारहवी शती के ही कवि, 'शृगाररत्नाकर' नामक काव्यशास्त्रीय ग्रथ के प्रणेता कविकाम ने 'स्तनशतक' की रचना की है। मगिय-मायिदेव (1430 ई०) के 'शतकत्रय' और चद्रकवि के गुरुमूर्ति शकर शतक' वृत्तो मे रचित हैं। रत्नाकरवर्णि (दे०) (1560 ई०) के 'त्रिलोकशतक' और 'अपराजितेश्वरशतक' तथा तिरुमलार्य (1700 ई०) का 'चिक्कदेवराजशतक' कन्नड-शतक-साहित्य के उल्लेखनीय ग्रथ है।

शतपत्रें *(म० कृ०)*

यह लोकहितवादी (दे०) के पत्र-शैली मे रचित निबंधो का सग्रह है। 1848 ई० से 1850 ई० तक की दो वर्षों की अवधि मे ये पत्र 'प्रभाकर' पत्रिका मे प्रकाशित हुए थे। युवावस्था मे लिखित होने के कारण ये अत्यत आवेगपूर्ण, कटु तथा उग्र हैं।

लोकहितवादी ने लोकहिताय अपना जीवन अर्पित किया था। अत समाज मे व्याप्त बाह्याडबर तथा भ्रष्टाचार को देख इनका जी तिलमिला उठता था। सभी सभी वर्णों मे सर्वश्रेष्ठ समझे जाने वाले ब्राह्मण वर्ग के नीच, निर्दयी कृत्य इनका खून खौलाते थे। ढोगी नेताओ के नेतृत्व मे पिसती दीन-हीन जनता के प्रति हार्दिक सहानुभूति थी। यही आक्रोश तथा सहानुभूति 'शतपत्रें' मे व्यक्त हुई है। ये स्त्री को समानाधिकार देने के पक्षपाती स्त्री-शिक्षा के समर्थक तथा विधवा-विवाह के पुरस्कर्ता सुधारक रहे हैं।

'शतपत्रें' मे विषय-विवेचन अत्यत आत्मीयता से हुआ है। इसे पढकर हृदय भर आता है। इसमे विशिष्ट आचार-विचारो की इष्टता या अनिष्टता का निर्धारण बुद्धि के आधार पर किया गया है। इनके राजनीतिक तथा आर्थिक विचार अत्यत प्रगतिशील है। गदर होने से आठ वर्ष पूर्व लिखे इन निबधो मे स्वदेशी, स्वराज्य तथा विदेशी-बहिष्कार का उल्लेख हुआ है।

लोकहितवादी ने लोकशिक्षक की भूमिका मे यद्यपि ये निबध लिखे हैं तथापि सहानुभूतिपूर्ण होने के बदले इनमे उग्रता अधिक है। यही इन पर आक्षेप किया जाता है। 'शतपत्रें' मे साहित्यिक गुणो का अभाव खटकता है। इसमे समाज का आदर करने की व्याकुलता तो है, परतु प्रतिभा को रम्य विलास का अवकाश नहीं। फिर भी, पाठक के हृदय को दहलाकर उसे कर्तव्योन्मुख बनाने की दृष्टि से ये निबध सशक्त है।

शतपथी, नदिनी (उ० ले०) [जन्म—1931 ई०]

श्रीमती नदिनी शतपथी उडीसा की मुख्यमत्री रही हैं तथा सुप्रसिद्ध साहित्यिक श्री कालिंदी चरण पाणिग्राही (दे०) की सुयोग्य पुत्री है। क्रातिकारी चाचा भगवतीचरण पाणिग्राही का इनके जीवन पर गहरा प्रभाव पडा है। इन्होने पिता से साहित्यिक अभिरुचि पाई तो चाचा से सजग राजनीतिक चेतना। अत मूल रूप से इनके साहित्यिक व्यक्तित्व मे बौद्धिकता, प्रगतिशील दृष्टिकोण, समुन्नत साहित्यिक अवबोध एव नारी-सुलभ मानवीय सवेदना का सम्मिश्रण मिलता है। इनकी भाषा और शैली परिष्कृत एव सुरुचिसपन्न हैं। आधुनिक जीवन की बहुविध समस्याएँ इनकी रचनाओ म उभरी है, किंतु प्रधानता आधुनिक नारी की समस्याओ को ही मिली है। 'पेतोटि कथा' (दे०) इनका प्रसिद्ध कहानी-सग्रह है।

शतपथी, नित्यानंद *(उ० ले०)* [जन्म—1937 ई०]

श्री नित्यानंद शतपथी ने अपना साहित्यिक जीवन कवि के रूप में प्रारंभ किया था। किंतु बाद में इन्होंने अपनी दिशा बदल ली और गद्य-लेखन की ओर अधिकाधिक झुकते चले गये। इनकी गद्य-शैली सरस, तथ्यपूर्ण एवं प्रभावात्मक है। उत्कलमणि गोपबंधु (दे०) पर रचित इनकी रचना 'हे साथी, हे सारथी' (दे०) एक महत्वपूर्ण कृति है। 'युगे-युगे ओडिआ साहित्य' में इनके विवेचनात्मक निबंधों का संकलन है। संप्रति उड़िया-साहित्य के अध्यापक हैं। इनका जन्म गराइ शासन, कटक में हुआ था।

शतवर्ष *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1879 ई०]

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय (दे०) के अनुरोध पर रमेशचंद्र दत्त (दे०) ने इस ऐतिहासिक उपन्यास की रचना प्रारंभ की। रमेशचंद्र का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'वंगविजेता' (1874) अकबरी युग की पटभूमिका में रचित उपन्यास है। कहानी की अतिरिक्त जटिलता के कारण उपन्यास की गति धीमी हो गई है। दूसरा उपन्यास 'जीवन-प्रभात' (1876) है। यह औरंगज़ेब के समय की ऐतिहासिक कहानी है। स्वदेश प्रीति की महिमा की अभिव्यक्ति के फलस्वरूप ग्रंथ को एक स्वतंत्र मर्यादा प्राप्त हुई है। रमेशचंद्र ने इसके उपरांत शाहजहाँ के युग को केंद्र बनाकर 'माधवी-कंकण' (दे०) (1877) की रचना की। यह कवि टेनीसन के 'एनकार्डेन' के भावानुसार रचित एक प्रणयमूलक उपन्यास है। चौथा उपन्यास 'जीवन-संध्या' (1879) है। जहाँगीर के युग की आधार-भूमि इसमें ग्रहण की गई है। उपर्युक्त चारों उपन्यासों का संकलन ही 'शतवर्ष' है जो 1879 ई० में प्रकाशित हुआ। इसी संकलन में रमेशचंद्र के ऐतिहासिक उपन्यासों का संपूर्ण संभार विद्यमान है। इसी ग्रंथ में उनकी औपन्यासिक प्रतिभा के एक अंश-विशेष का प्रस्फुटन हुआ है।

शतिकंठ *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानतः 1200-1210 ई०; मृत्युकाल—अज्ञात]

इनके जीवन के संबंध में कोई विशेष सामग्री उपलब्ध नहीं। शैव दर्शन के संबंध में 'महानय प्रकाश' नाम की एकमात्र रचना उपलब्ध है जिससे इनके पांडित्य पर प्रकाश पड़ता है। भारत-आर्य कुल में भारत-ईरानी उपकुल की दर्द भाषा-परिवार की पैशाचिक भाषाओं में प्रमुख कश्मीरी भाषा में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं फ़ारसी का अद्भुत सम्मिश्रण होते हुए भी एक मौलिकता है, और इसी भाषा के आदि-कवि हैं शतिकंठ। महायान-बौद्ध धर्म और उपनिषद्-दर्शन के अद्भुत संगम की झलक शतिकंठ की रचना में देखने को मिलती है और छंदोबद्ध करने की शैली भी मौलिक है। इनके काव्य का ऐतिहासिक महत्व है।

शब्द *(पं० पारि०)*

'शब्द', शब्द का रूपांतर है। सिख धर्म में इसका व्यवहार दैवी शब्द, ईश्वर से प्राप्त शब्द के अर्थ में होता है। गुरवाणी में यह शब्द आध्यात्मिक शब्दावली के रूप में संतवाणी अथवा नाथवाणी की परंपरा से ग्रहण किया गया है। नाथवाणी में इसका प्रयोग 'अनहत' या 'अनहद' के साथ जोड़कर किया गया है जिसे 'नीरव नाद' भी कहा जाता है। कबीर (दे०) के अनुसार 'शब्द' से अभिप्राय गुरु-मुख से निकले शब्द हैं। परंतु गुरु नानक (दे०) ने इसके मूल रूप को पहचानने पर बल दिया है। इसके माध्यम से दैवी संदेश का प्रकाश होता है। शब्द को धारण कर इसके संयम में अपने आपको डालकर मनुष्य ईश्वर के सामीप्य को प्राप्त होता है। शब्द के अभाव में मनुष्य अनंत काल तक भटकता रहता है।

शववाहक माने *(उ० कृ०)*

'शववाहक माने' विजयकुमार मिश्र (दे०) का नाटक है। इसे उद्भट नाटक (एब्सर्ड ड्रामा) की संज्ञा दी गई है। इसमें विश्व की प्रहेलिका, कर्कशता और निस्संग-बोध रूपायित हैं। यह नाटक आज के शत्रुमनोभावापन्न विश्व के वास्तव-नैराश्य, भय, एकाकीपन और स्वार्थ का जीवंत चित्र है। अपने-अपने स्वार्थ, दर्शन और द्वेष के भीतर मनुष्य अकेला है। मनुष्य की अशांत दौड़, अशांत लोभ तथा अनिर्वाचित स्वार्थ और अनिश्चित जीवनादर्श ने इस नाटक की कथावस्तु की संरचना की है। शव और किसी का नहीं हम सबों का है। छल, कपट, अविश्वास से रुद्धश्वास हो हम आज की यांत्रिक सभ्यता की इस भागदौड़ में पहुँच गए हैं—एक ऐसी कब्र के पास,

जहाँ हमने अपने आपको, अपने ही हाथो से दफना दिया है। जैसे अतीत दफना दिया गया है वैसे ही भविष्य को हम दफना देंगे।

यह सूचना धर्मी नाटक परंपरागत नाट्य-रीति से सर्वथा भिन्न है। 1968 ई० मे संगीत नाटक अकादेमी द्वारा यह राज्य के सर्वश्रेष्ठ नाटक के रूप मे पुरस्कृत हुआ था।

शबरशंकरविलास *(क० कृ०)*

सत्रहवी शती के प्रसिद्ध वीरशैव कवि षडक्षर-देव (दे०) (रचना-काल 1655 77 ई०) की रचना 'शबरशंकरविलास' पाँच आश्वासो का एक चपू काव्य है। उसे एक सफल खंडकाव्य कह सकते हैं। उसमे महाभारत (दे०) म वर्णित अर्जुन (दे०) के पाशुपतास्त्रलाभ अथवा 'किरातार्जुनीय' (दे०) की कथा का वर्णन है। कन्नड मे इस कथा का षडक्षरदेव के पूर्व पप (दे०), कुमारव्यास (दे०) और विरूपाक्ष पंडित ने अपने-अपने काव्यो मे प्रसगत वर्णन किया था। शायद षडक्षरदेव ने उन ग्रथो को देखा हो, परंतु उन्होने शैव सप्रदाय के आकर से विशेष प्रभाव ग्रहण किया है। तदनुसार उनके काव्य मे अर्जुन की अपेक्षा शकर जी का ही प्राधान्य है जो काव्य के शीर्षक 'शबरशंकरविलास' से ही स्पष्ट है। इस दृष्टिकोण के कारण उनका काव्य मुख्यत शिव-लीलाओ को चित्रित करने वाला काव्य बन गया है। 'कुमारव्यास भारत' (दे०) मे वर्णित उक्त प्रसग से षडक्षरदेव के काव्य की तुलना कर सकते है। बाह्यदृष्टि से दोनो मे समानताएँ भी दृष्टिगोचर होती है, परंतु यह स्पष्ट है कि दोनो की भाषा-शैली और उद्देश्य मे अंतर है। दोनो के काव्यमार्ग भी भिन्न हैं। दोनो ने अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार संस्कृत का सौंदर्य कन्नड मे करने का प्रयत्न किया है।

'शबरशंकरविलास' वर्णन प्रधान काव्य है। उसमे कवि का कल्पना-विलास तथा वर्णन-नैपुण्य देखने योग्य है। उसमे शब्द-श्लेष और संस्कृतनिष्ठ पद-प्रयोग का बाहुल्य है। पात्रो के चरित्र-चित्रण की अपेक्षा उसमे संवाद-कौशल और वीर रस की अभिव्यंजना का विशेष महत्व है। उसमे ऐसे अनेक वर्णन मिलेंगे जो एक कुशल चित्रकार की तूली से रमणीय चित्र के रूप प्राप्त कर सकते हैं। उसकी भाषा शैली उसको एक उत्तम काव्य घोषित करती है।

शब्द *(हिं० पारि०)*

अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई 'शब्द' है। इस परिभाषा मे निम्नांकित बातें ध्यान मे देने की है (क) शब्द भाषा की एक इकाई है। (ख) यह इकाई अर्थ के स्तर पर होती है। हर शब्द का अर्थ होता है। (ग) यह इकाई स्वतंत्र होती है अर्थात् शब्द स्वतंत्र होता है। वाक्य मे अन्य शब्दो से संबद्ध होने पर भी उसकी स्वतंत्र सत्ता होती है तथा वाक्य मे प्रयुक्त न होने पर भी एक भाषिक इकाई के रूप मे वह स्वतंत्र रहता है। उपसर्ग या प्रत्यय भी भाषिक इकाइयाँ हैं, उनका भी अर्थ होता है किंतु वे स्वतंत्र नही होते। किसी शब्द के आदि या अंत मे जुडकर ही वे भाषा म आ सकते हैं। (घ) शब्द, अर्थ के स्तर पर, भाषा की लघुतम इकाई है। अर्थ के स्तर पर उससे छोटी इकाई कोई नही है। उपसर्ग, प्रत्यय उससे छोटे हो सकते है किंतु वे स्वतंत्र नही होते। वाक्य, उपवाक्य पदबंध आदि भी अर्थ के स्तर पर स्वतंत्र इकाई हो सकते है, किंतु वे लघुतम नहीं होते। उन्हे और भी छोटी सार्थक इकाइयो म तोडा जा सकता है। इस तरह अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतंत्र इकाई 'शब्द' ही है, और कुछ नही। शब्द के कई भेद हो सकते है जैसे रचना के आधार पर रूढ (दे०), यौगिक (दे०), योगरूढ (दे०) प्रयोग के आधार पर सामान्य, अर्धपारिभाषिक पारिभाषिक अथवा आधारभूत तथा इतिहास के आधार पर तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी।

शब्दमणिदर्पण *(क० कृ०)*

कन्नड के व्याकरणकारो मे सर्वप्रथम 'कविराजमार्ग' (दे०) के लेखक का नाम लिया जाता है। परंतु 'कविराजमार्ग' मे व्याकरण की अपेक्षा अलंकारो का विवरण ही अधिक है। 'शब्दस्मृति' और 'कर्णाटक भाषा भूषण' (दे०) के लेखक नागवर्मा (दे०) दूसरे व्याकरण ग्रंथकार हैं जिन्होने प्राचीन कन्नड का व्याकरण संस्कृत-सूत्रो मे निबद्ध किया है। नागवर्मा के बाद केशिराज (दे०) का नाम लिया जाता है जिनका व्याकरण-ग्रंथ 'शब्दमणिदर्पण' एक अनूठा ग्रंथ है। उसमें कन्नड-व्याकरणशास्त्र का सविस्तर वर्णन है। केशिराज के संबंध मे इतिहासकारो ने लिखा है कि वे जैन थे, 'सूक्तिसुधार्णव' (दे०) (भिन्न-भिन्न कवियो की कविताओ का संग्रह)

के संपादक मल्लिकार्जुन उनके पिता थे। उनका समय 1260 ई० के आसपास माना जाता है।

केशिराज ने अपने पूर्व के कन्नड़-व्याकरण-ग्रंथों का अवलोकन किया था। अतएव उनका 'शब्दमणिदर्पण' एक 'समग्र ग्रंथ' बन पड़ा है। कन्नड के व्याकरण-ग्रंथों में निश्चय ही उसका सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रंथ की 'पीठिका' में दस 'कंद' पद्य हैं जिनमें लेखक ने अपना नाम, वंश-परिचय तथा व्याकरण की उपयोगिता का उल्लेख किया है। आठ अध्यायों मे ग्रंथ का विस्तार है। शास्त्र-ग्रंथ होने पर भी 'शब्दमणिदर्पण' नीरस नहीं है, उसमे केशिराज की सरस कविता शैली के उदाहरण मिल जाते है। कहने की आवश्यकता नही कि उसमे विषय का अच्छा प्रतिपादन हुआ है और व्याकरण को हृदयग्राही बनाने का प्रयास किया है। उसके लेखक ने सूत्रों का प्रस्तुतीकरण 'कंद' छंद में किया गया है और उनकी वृत्ति गद्य में लिखी है। यह संस्कृत के शास्त्र-ग्रंथों की पद्धति का ही अनुकरण है।

शब्द, योगरूढ़ *(हि० पारि०)*

ऐसे शब्द जो रचना की दृष्टि से यौगिक होते है, किंतु अर्थ की दृष्टि से रूढ होते हैं। जैसे जलज। रचना की दृष्टि से यह जल+ज है, किंतु इसका रूढ अर्थ है 'कमल'। जल में जन्मी अन्य चीजें या जीव आदि इसके अर्थ नही हैं। हाथी, पंकज, पक्षी आदि भी ऐसे ही शब्द है। हाथी किसी भी हाथयुक्त जीव का नाम नहीं है, न पंक में जनमी हर चीज पंकज है और न हर पक्षयुक्त पक्षी ही है।

शब्द, यौगिक *(हि० पारि०)*

ऐसे शब्द जिनमे एक से अधिक सार्थक इकाइयाँ हों, अर्थात् जिनके सार्थक खंड हो सकें। जैसे डाकखाना (डाक+खाना), मानवता (मानव+ता), प्रवल (प्र+बल)। यौगिक तीन प्रकार के होते हैं : **समस्त-पद**—जो एकाधिक शब्दों को समास द्वारा एक मे मिलाकर बने हों। जैसे घुड़दौड़, रसोईघर, जेलखाना। **प्रत्यययुक्त**—जिसकी रचना प्रत्यय के योग से हुई हो। जैसे जापानी (जापान+ई), सुदरता (सुदर+ता), चालू (चाल्+ऊ)। **उपसर्गयुक्त**—जिसकी रचना उपसर्ग के योग से हुई हो। जैसे प्रयत्न (प्र+यत्न), अनुमति (अनु+मति), सपूत (स+पूत)। कुछ यौगिक शब्द ऐसे भी होते है जिनमें कई भाषिक इकाइयों का योग होता है। जैसे अनबोलता (अन्+बोल+त्+आ)।

शब्दरसायन *(हि० कृ०)*

इस ग्रंथ के कर्त्ता रीतिकाव्र के प्रसिद्ध आचार्य देव (दे०) कवि हैं। इस ग्रंथ मे निम्नोक्त काव्यांगों का निरूपण किया गया है—काव्यस्वरूप, पदार्थनिर्णय (शब्द-शक्ति), नौ रस, नायक-नायिका-भेद, रस, रीति (गुण), वृत्ति, अलंकार, दोष तथा पिंसल। इन काव्यांगों का निरूपण संस्कृत के प्रख्यात ग्रंथों 'काव्यप्रकाश' (दे०), 'साहित्यदर्पण' (दे०), 'रसतरंगिणी' (दे०) और 'रसमंजरी' (दे०) के आधार पर हुआ है। कुछ-एक नवीन प्रसंग भी इधर-उधर लक्षित हो जाते हैं, जिनमें से कुछ मान्य हैं और कुछ अमान्य। कुछ धारणाएँ परस्पर विरोधी है। उदाहरणार्थ एक स्थान पर छंद को काव्य का तन, रस को जीव तथा अलंकार को भूषण कहा गया है, तो अन्यत्र शब्द को जीव, अर्थ को मन तथा रसमय सौंदर्य को काव्य का शरीर माना है—

(क) अलंकार भूषण सुरस जीव छंद तन भाख।
(ख) सब्द जीव तिहि अरथ मन रसमय सुजस सरीर।
चलत वहै जुग छंद अति गति अलंकार गंभीर॥

इस ग्रंथ का उदाहरण-पक्ष शृंगार की ऐसी अनेक मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुत करता है, जो कवि की अभिनव कल्पना-शक्ति और सजीव अभिव्यक्ति-कला की परिचायक हैं। कहीं-कहीं व्याकरण और काव्य-विषयक दोष भी इस ग्रंथ में हैं, किंतु काव्य-वैभव को देखते हुए वे नगण्य एवं क्षम्य है।

शब्द, रूढ़ *(हि० पारि०)*

ऐसे शब्द, जिनमें एक से अधिक सार्थक भाषिक इकाइयाँ न हों, अर्थात् जिनके सार्थक खंड न हो सकें। जल, मेज़, पहाड़, सड़क, आदि ऐसे ही शब्द हैं। ये शब्द एकाधिक शब्दों, उपसर्ग या प्रत्यय के योग से नही बने है। जल के 'ज' तथा 'ल' या 'मेज़' के 'मे', 'ज़' आदि खंड करें भी, तो अर्थ के स्तर पर इन खंडों का जल या मेज़ से कोई संबंध नही है। इस तरह रूढ़ शब्द भाषा के मूल-भूत या अखंड शब्द होते है।

शब्दविज्ञान *(हिं० पारि०)*

भाषाविज्ञान के परंपरागत प्रथा म भाषा के अध्ययन को प्राय चार ही शाखाओ मे बाँटा गया है ध्वनिविज्ञान (दे०) (Phonetics), रूपविज्ञान (दे०) (Morphology) वाक्यविज्ञान (दे०) (Syntax) तथा अर्थविज्ञान (दे०) (Semantics)। किंतु वास्तविकता यह है कि शब्दो के अध्ययन को सुविधापूर्वक इन चारो मे किसी मे भी नही रखा जा सकता। इसी कारण शब्द-विज्ञान को भाषा के अध्ययन की एक नयी शाखा मानना उचित प्रतीत होता है। इसके अतर्गत शब्द विषयक सारा अध्ययन आता है जिसे दो वर्गों मे बाँटा जा सकता है सैद्धातिक प्रायोगिक। सैद्धातिक शब्दविज्ञान मे सामान्य रूप से शब्द-रचना (रूप-रचना से अलग) के नियम तथा भाषाओ के शब्द-समूह के अध्ययन के सामान्य सिद्धांत आते हैं। प्रायोगिक मे इन सिद्धातो के आधार पर किसी एक भाषा के शब्दो का, या एकाधिक भाषाओ के शब्दो का, तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। शब्द-रचना मे दो बातें आती हैं मूल शब्द कैसे बनते है तथा मूल शब्दो के आधार पर यौगिक शब्दो की रचना किस प्रकार से उपसर्ग (prefix), मध्यसर्ग (infix), अत्यसर्ग या प्रत्यय (suffix) जोडकर, कुछ ध्वनि-परिवर्तन करके या एकाधिक शब्द जोडकर या मिश्रित रूप से की जाती है। ये अध्ययन वर्णनात्मक, ऐतिहासिक या तुलनात्मक तीनो प्रकार के हो सकते है। शब्द समूह का अध्ययन भी इन तीनो ही प्रकारो (वर्णन, इतिहास, तुलना) का हो सकता है। वर्णनात्मक मे किसी भाषा के शब्द-समूह का वर्णन वर्गीकरण (आधारभूत शब्दावली, माध्यमिक शब्दावली, उच्च शब्दावली, सामान्य शब्दावली, अर्द्धपारिभाषिक शब्दावली, पारिभाषिक शब्दावली), विभिन्न प्रकार के शब्दो की आवृत्ति एव उनका अनुपात, तत्कालीन शब्द-समूह की आवश्यकताएँ आदि आती हैं तो ऐतिहासिक म किसी भाषा के शब्द-समूह का विकास (पुराने शब्दो का लोप नये शब्दो का आगम), तथा उसके कारण आदि पर विचार किया जाता है। इनम किसी भी बात को लेकर एक या अधिक भाषाओ की तुलना भी की जा सकती है।

शरत्चद्र (चट्टोपाध्याय) *(बँ० ले०)* [जन्म—1876 ई०, मृत्यु—1938 ई०]

शरत् का जीवन आरभ से ही विस्मय एव वैचित्र्य से भरा पडा है। पहले वे बर्मा मे नौकरी करते थे। साहित्यिक जीवन मे उदय के साथ ही उनका कलकत्ता-वास शुरू हुआ। शरत् ने लगभग एक दर्जन उपन्यास तथा इतनी ही लबी कहानियाँ लिखी परतु उनकी ख्याति का श्रेय 'चरित्रहीन' (दे०), 'गृहदाह' (दे०), श्रीकात' (दे०), 'शेष-प्रश्न', 'पथ के दावेदार' को है। इन उपन्यासो का आधार है नारी जिसके परिप्रेक्ष्य में पारिवारिक, सामाजिक एव नैतिक समस्यासो की असगति एव निरर्थकता दिखाई गई है। समाज-सम्मत तथा समाज-निषिद्ध प्रेम की लक्ष्मण रेखाओ से टकराती-सम्हलती उपेक्षिता नारी (जो सामान्य रूप से विधवा है) के चित्राकन मे शरत् ने अद्वितीय कौशल एव प्रतिभा का परिचय दिया है। सावित्री राजलक्ष्मी मे त्याग भी निष्ठा है परतु अचला, किरणमयी (दे०), कमल जैसे पात्र मुखर एव प्रखर हैं। शरत् के सभी उपन्यासो मे पापी के प्रति करुणा का भाव जगाया गया है। पतिता नारी पात्र मानवीय दृष्टि से उदात्त पात्र हैं। शरत् के नायक आत्मलीन, गभीर तथा नैतिक दृष्टि से कम साहसी हैं। शरत् के उपन्यास भावनिष्ठ एव यथार्थवादी हैं परतु आश्चर्य है कि अतत परपरागत मूल्यो की प्रतिष्ठा की गई है। रवींद्र (दे०) की कविधर्मी प्रवृत्ति ने कथा-साहित्य की परिधि सीमित कर दी थी, शरत् ने सबसे पहले बँगला कथा-साहित्य को बँगला जीवन से जोडा और इस तरह उसे नयी गरिमा प्रदान की।

'शरर' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1860 ई०, मृत्यु—1926 ई०]

जन्म-स्थान लखनऊ, नाम मौलवी अब्दुल हलीम, उपनाम 'शरर'। उर्दू म ऐतिहासिक उपन्यास-लेखन का श्रेय सबसे पहले इन्हे प्राप्त है। इन्होने अशिष्ट, अनगढ और भदेस शब्दो से असपृक्त रखते हुए शिष्ट, सभ्य और गभीर भाषा-शैली मे अपने उपन्यास प्रस्तुत किये। इनका पहला प्रकाशित उपन्यास 'दिलचस्प' था जो उर्दू मे अपने ढग की निराली चीज थी। इन्होने इसक दो वर्ष पश्चात् बकिमचद्र चटर्जी (दे० चट्टोपाध्याय) के 'दुर्गेशनदिनी' (दे०) का उर्दू अनुवाद किया था। 1918 ई० मे निजाम दकन के आदेशानुसार इन्होने तारीख़-ए-इस्लाम' (इस्लाम का इतिहास) लिखना प्रारभ किया जो तीन भागो मे पूरा हुआ। इनकी कृतियो की सख्या देखकर इनकी लेखन-क्षमता पर विस्मय होता है।

इन्होंने अट्ठाईस ऐतिहासिक उपन्यास, चौदह इतर उपन्यास, इक्कीस जीवन-चरित पंद्रह ऐतिहासिक पुस्तकें, छ: नाटक और अन्य अठारह विविध कृतियों का प्रणयन किया। इनकी समस्त कृतियों की संख्या एक सौ आठ है। और विभिन्न विषयों पर अगणित स्वतंत्र लेख इसके अतिरिक्त हैं। इन्होंने अपने जीवन-काल में नौ साप्ताहिक पत्रिकाएँ निकाली थी। इनकी भाषा लखनऊ की टकसाली भाषा है। पं० ब्रजनारायण चकवस्त (दे० चकवस्त) के साथ इनका मसनवी 'गुलजार-ए-नसीम' (दे०) से संबद्ध साहित्यिक शास्त्रार्थ बड़ा रोचक और उल्लेखनीय है।

शरीफ़ज़ादा *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1968 ई०]

यह पुस्तक एक शरीफ़जादे का जीवनवृत्त है जिसे लेखक ने एक उपन्यास का रूप दे दिया है। शरीफ़ज़ादा मिर्ज़ा आबिद अली हैं और उनके पिता मिर्ज़ा बाक़र हुसैन हजरत अब्बास की दरगाह के पास कहीं रहते थे। लेखक मिर्ज़ा रुसवा (दे०) ने शरीफज़ादा के जीवन को एक आदर्श जीवन माना है और इस उपन्यास के द्वारा यह बताने का प्रयास किया है कि उनके अनुसार एक आदर्श जीवन क्या हो सकता है। शरीफजादे के जीवन में जीवन में जो कठिनाइयाँ आईं और जिनका सामना शरीफ़जादे ने साहस और वीरता से किया, उन सबका चित्रण ही लेखक का एकमात्र उद्देश्य है। उपन्यास रोचक है। शरीफजादे के जीवन के उतार-चढ़ाव इसकी रोचकता को बढ़ाने मे सहायक हुए है। भाषा मधुर, टकसाली तथा प्रवाहमयी है।

पुस्तक के अंत मे कुछ पत्र दिए गए है जो उपन्यास के नायक शरीफ़ज़ादा अर्थात् मिर्ज़ा आबिद हुसैन के चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

शर्मा, उमाकांत (अ० ले०) [जन्म—1918 ई०]

ये असमीया के नये कथाकारों में से एक है। प्रकाशित रचनाएँ—कहानी : 'घूरणीया पृथिवीर बेंका पथ' (दे०); आलोचना : 'काव्यभूमि' (1948)।

शर्मा जी की कहानियों की गठन में शिथिलता है। कहीं-कहीं कहानियों की परिणति दुर्बल हो जाती है। रचनाओं में दार्शनिकता की छाप रहती है। इनके नारी-पात्रों पर भी दार्शनिकता का प्रभाव दिखाई पड़ता है। विशेषता यह है कि भाव-विश्लेषण एवं भाषा-प्रयोग में संयम दृष्टिगत होता है। 'काव्यभूमि' रस-विचार और साहित्य का मौलिक विवेचनात्मक ग्रंथ है। इसमें कला के दार्शनिक आधार और पृष्ठभूमि का अध्ययन हैं।

कहानी के क्षेत्र में अभी शर्मा जी से बहुत संभावनाएँ है।

शर्मा, ए० डी०, हरि *(मल० ले०)* [जन्म—1893 ई०]

जन्म-स्थान—चेर्त्तला के पास पळ्ळिप्पुरम् गाँव। मामूली स्तर के आर्थिक जीवन में अपने पुरुषार्थ से उन्नति करते-करते इन्होंने पर्याप्त यशोपार्जन किया। इन्होंने मामूली संस्कृत-अध्यापक के तौर पर सेवा प्रारंभ की। परीक्षाएँ पास करने और पदोन्नति करते-करते अंत में ये सेंट अलबर्ट्स कॉलेज मे प्राध्यापक बने और उसी पद से सेवानिवृत्त हुए। केरल-साहित्य परिषद् के प्राणाधार सेवकों में शर्मा जी अन्यतम थे। परिषद् के कार्य-कलाप मे—विशेषतः पत्रिका के संचालन में—ये तन-मन से संलग्न रहे।

हरि शर्मा जी एक प्रकार से मसिजीवी ही रहे है। इनकी लिखी छात्रोपयोगी जीवनियाँ सरल है। मगर यशस्वी साहित्यकारों की जो जीवनियाँ इन्होंने लिखी वे प्रौढ़, ज्ञानवर्धक और साहित्यिक तत्त्वों से ओतप्रोत हैं। 'रंडु साहित्य नायकन्मार्', 'के० सी० केशवपिळ्ळा' (दे०) आदि इसी कोटि की जीवनियाँ हैं। साहित्य-समीक्षा के क्षेत्र मे इन्होंने कई परिचयात्मक एवं छात्रोपयोगी ग्रंथ लिखे। पाठानुसंधान और प्राचीन काव्य की विशद व्याख्या इनके प्रिय विषय है। शर्मा जी शैलीकार अथवा सिद्धांत-वाद के संस्थापक तो नहीं, तो भी पंडितों मे उनके ग्रंथ सम्मानित है। कोंकणी भाषा-भाषी शर्मा जी मलयाळम-साहित्य के उच्चतम पद पर जो पहुँच सके वह उनकी दुर्लभ प्रतिभा व परिश्रम का ही प्रमाण है।

शर्मा, देवदत्त कुंदाराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1900 ई०; मृत्यु—1970 ई०]

ये सिंध मे राष्ट्रभाषा हिंदी के अध्यापक और मुख्य प्रचारक थे। इन्होंने गांधी जी के सिद्धांतों से प्रेरित होकर भारत के स्वातंत्र्यांदोलन में सक्रिय भाग लिया था। विभाजन के पश्चात् इन्होंने अजमेर को अपना स्थायी निवास-स्थान बना लिया था और वहाँ भी ये हिंदी का अध्यापन तथा प्रचार करते रहे थे। इनके हिंदी-प्रचार के

कार्य को देखकर राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा ने इन्हे 'राष्ट्रभाषा गौरव' की उपाधि प्रदान की थी । ये सिंधी, हिंदी और सस्कृत के अच्छे विद्वान थे। पुस्तक रूप मे इनकी मौलिक रचनाएँ है—काव्य 'देव दोहावली'। 'उद्रोलाल साहिब', 'हेमूं शतक', 'गाधी दाडी मार्च, शतक'। **सस्मरण** 'बापूअ जा प्रसग'। आलोचना के क्षेत्र मे शाह लतीफ (दे०) और सत कबीर (दे०) पर इनके लिखे हुए तुलनात्मक निबध बहुत प्रसिद्ध हैं। देहात से कुछ समय पूर्व इन्होने कालिदास (दे०) की प्रसिद्ध रचना 'मेघदूत' (दे०) का सिंधी मे कुडली छद मे अनुवाद किया था जिसका सिंधी-कविता के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण स्थान है।

शर्मा, द्वारकाप्रसाद रोचीराम *(सिं० ले०)* [जन्म—1898 ई०, मृत्यु—1966 ई०]

इनका जन्म स्थान दादू (सिंध) है। ये युवावस्था मे ही भारत के स्वातत्र्यादोलन मे सक्रिय भाग लेने लगे थे और अपनी लेखनी से सिंधी-साहित्य मे देशभक्ति तथा राष्ट्रीय भावनाओ से ओतप्रोत रचनाओ की सृष्टि करने लगे थे। इन्होने लगभग तीस पुस्तकें लिखी है जिनमे से कुछ कृतियो के नाम हैं—'राजपूती तलवार', 'वीर कुमारी' 'सिंधी तलवार', 'वीर अभिमन्यु', 'शरणार्थी'। सिंध के इतिहास पर इन्होने अनुसधान कर सिंधी-साहित्य को अमर कृतियाँ दी है, जिनके नाम हैं—'सिंध जो प्राचीन इतिहास (तीन भागो मे) और 'प्राचीन सिंधु सभ्यता'। इनकी रचनाएँ भारतीय सस्कृति और सभ्यता के प्रति अटूट श्रद्धा और प्रेम से ओतप्रोत हैं। इनकी रचनाओ की भाषा सरल और स्वाभाविक है। सिंधी-गद्य-लेखको मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

शर्मा, नरेंद्र *(हिं० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

इनका जन्मस्थान जहाँगीरपुर, ज़िला बुलदशहर है। इलाहाबाद मे उच्च शिक्षा प्राप्त करके ये कुछ दिन फिल्मो से सबद्ध रहे और फिर आकाशवाणी मे विविध भारती कार्यक्रम के प्रधान हो गए। इनका काव्य-सृजन छायावादी (दे० छायावाद) सस्कारो मे प्रारभ हुआ इसलिए भाषा-शैली म छायावादी रग है। अभिव्यक्ति (द० प्रगतिवाद) की प्रत्यक्षता इन्ह उत्तर छायावादी गीतकारो के निकट ले गई है। इनके प्रगतियुगीन गीतो मे सामाजिक चेतना का प्रभाव होने पर भी आत्मनिष्ठ रूमानी प्रवृत्ति लुप्त नही हुई। वस्तुत इनकी रचनाएँ व्यक्ति और समाज, भाव और बुद्धि, ज्ञात और अज्ञात के अत सघर्ष मे लिखी जाती रही है और उन्हे किसी एक श्रेणी मे बाँध सकना कठिन है। इनकी प्रतिभा मूलत गीतात्मक है, इसीलिए 'द्रौपदी' और 'उत्तरजय' मे प्रबध-विधान उतना सफल नही हो सका। उत्तरछाया वादी कवियो मे इनका विशेष स्थान है।

शर्मा, निगम *(ते० पा०)*

यह महाकवि तेनालिरामकृष्ण (दे०) (1500-1570 ई०) द्वारा रचित प्रौढ प्रबध-काव्य 'पाडुरग-महात्म्यमु' (दे०) के अतर्गत प्राप्य 'निगमशर्मोपाख्यानमु' का प्रधान पात्र है। इस प्रबध काव्य मे अनेक भक्तो एव पवित्र तीर्थों की महिमा का वर्णन हुआ है।

निगम शर्मा एक सदाचारी एव निष्ठावान ब्राह्मण का पुत्र था। अनेक दुर्व्यसनो मे पडकर वह स्वेच्छाचारी हो गया है। एक दिन रात को घर से सोने आदि की चोरी करके, माता-पिता, पत्नी आदि सबको छोडकर वह जगल के मार्ग से भागा। रास्ते मे चोरो ने उसको पीटकर उसका सारा धन छीन लिया। एक किसान न दयावश उसकी चिकित्सा करके उसे अपने घर मे रख लिया। कुछ समय पश्चात् उस स्त्री की मृत्यु हो जाने पर एक चडाल स्त्री से विवाह करके उसने सतान प्राप्त की। एक दिन उसका घर जल गया और उसमे उसकी पत्नी तथा बच्चे नष्ट हो गए। तदुपरात दु ख से वह मतिभ्रष्ट होकर भटकता हुआ पुडरीक क्षेत्र मे आया और नृसिह का दर्शन करके उसन मोक्ष की प्राप्ति की।

निगम शर्मा दुराचारी होकर भी भगवत् कृपा से मुक्ति पानेवाले भाग्यशाली व्यक्तियो मे से है। उसका चरित परमात्मा की महती कृपा एव नृसिह-क्षेत्र की महिमा प्रकट करता है।

शर्मा, नीलिमा *(अ० ले०)* [जन्म—1938 ई०]

ये असम की लोकप्रिय कहानी लेखिका हैं। सप्रति गौहाटी विश्वविद्यालय मे दर्शन की प्राध्यापिका के रूप मे कार्य कर रही हैं।

प्रकाशित रचना—'येन डालिमर गुटि' तथा 'अन्य मूर्ति' (काव्य-सग्रह)।

शर्मा, पद्मसिंह *(हिं० ले०)* [जन्म—1876 ई०; मृत्यु—1932 ई०]

इनका मुख्य प्रदेय हिंदी-आलोचना तथा निबंध-साहित्य के क्षेत्र में है। हिंदी में तुलनात्मक समीक्षा का श्रीगणेश करने वालों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। 'बिहारी-सतसई' (दे०) के भाष्य की भूमिका के रूप में लिखी गई 'बिहारी की सतसई' इनकी एतद्विषयक सर्वश्रेष्ठ रचना है जिसमें 'गाथा सप्तसती', 'आर्या सप्तशती', 'अमरुक शतक' (दे०) आदि ग्रंथो के उन स्थलों का बिहारी के दोहों के साथ तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है जिन पर विद्वानों ने भावापहरण का आरोप लगाया है और इस प्रकार बिहारी की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है। निबंधों के क्षेत्र मे इनके दो संग्रह 'पद्म-पराग' तथा 'प्रबंध-मंजरी' उल्लेखनीय है जिनमे भावात्मक, संस्मरणात्मक, विचारात्मक, आलोचनात्मक आदि विविध प्रकार के निबंध संकलित है। इन्होने 'साहित्य', 'भारतोदय', 'समालोचक' आदि पत्रों का संपादन भी किया था। हिंदी-गद्य के क्षेत्र मे ये शब्द तथा अर्थगत बारीकियों की अचूक पकड़ तथा हास्य-व्यंग्य से भरपूर मुहावरेदार एवं प्रवाहपूर्ण शैली के लिए भी विख्यात है।

शर्मा, फणी *(अ० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

ये लेखक होने के साथ-साथ सफल अभिनेता भी हैं। प्रकाशित रचनाएँ—**नाटक**: 'भोगजरा' (1957), 'किय' (1960)।

'भोगजरा' ऐतिहासिक नाटक मे लेखक ने श्री सूर्यकुमार भुञा (दे०) के 'कुंवर विद्रोह' से प्रेरणा ली है। इसमें आहोम राजवंश के संघर्ष-संग्राम और हत्या आदि का चित्रण है।

अभी असमीया नाट्य-जगत को श्री शर्मा से अनेक अपेक्षाएँ हैं।

शर्मा, वेणुधर *(अ० ले०)* [जन्म—1896 ई०]

जन्म-स्थान—शिवसागर।

प्रकाशित रचनाएँ—**निबंध**: 'दूरबीण' (1961), 'सत्तावन साल', 'दूणरि', 'फुलचंदन', 'चताइ परेवत', 'कांग्रेछर', 'कोंचियलि रदं' (1959 ई०)। **जीवनी**: 'गंगा गोविंद फुकन' (1948), 'मणिराम देवान' (1950)।

ये जीवित निबंधकारों में सर्वश्रेष्ठ है। असमीया जाति, संस्कृति और इतिहास पर इन्होंने रमणीय भाषा में निबंध लिखे है। इनकी भाषा मुहावरेदार है। 'दूरबीण' मे ऐतिहासिक खोजपूर्ण निबंध हैं। 'मणिराम देवान' में जीवनी नही, मानो एक युग अथवा क्रांति का इतिहास प्रस्तुत कर दिया गया है। ये जीवनी-साहित्य मे नवीनता के प्रवर्तक तथा ऐतिहासिक निबंधकार हैं।

शर्मा, रामविलास *(हिं० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

हिंदी की प्रगतिवादी आलोचना के उन्नायकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। प्रगतिवाद के सैद्धांतिक निरूपण तथा हिंदी के समूचे साहित्य का मार्क्सवादी दृष्टिकोण से परीक्षण एवं मूल्यांकन करने में इन्होंने अपनी अपूर्व मेधा का परिचय दिया है। इनके विवेचन में गांभीर्य के साथ-साथ प्रचार का स्वर भी मिश्रित है। उर्दू के लोकप्रिय शब्दों से आपूर्ण किंतु जनसाधारण द्वारा ग्राह्य विषयानुरूप भाषा के साथ-साथ व्यंग्य-शैली का प्रयोग इनकी शैलीगत विशेषताएँ है। 'संस्कृति और साहित्य', 'स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य', 'प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ', 'भाषा, साहित्य और संस्कृति', 'भाषा और समय', 'निराला की साहित्य-साधना' आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ है। 'निराला की साहित्य-साधना' पर इन्हे साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिल चुका है।

शर्मा, लक्ष्मीधर *(अ० ले०)* [जन्म—1898 ई०; मृत्यु—1935 ई०]

ये गांधीवादी समाजवादी नेता थे। ये अधिक दिन जीवित न रह सके। प्रकाशित रचनाएँ—'व्यर्थतारदान' (दे०) (कहानी-संग्रह) (1938 ई०), 'निर्मला' (नाटक) (रचना-काल—1926, प्रकाशन बहुत बाद में हुआ)। 'प्रजापतिर भूल' (एकांकी-संग्रह)।

इनकी अनेक कहानियाँ पत्रिकाओं में छपी हैं, किन्तु वे संकलित होकर पुस्तकाकार नहीं छप सकीं। 'सिराज' कहानी मे सांप्रदायिक सद्भाव का चित्रण है। 'निर्मला' नाटक में विधवा की आत्महत्या दिखाई गई है। इसमे रक्षणशील ब्राह्मणों पर चोट है। 'प्रजापतिर भूल' एकांकी नाटकों का प्रथम पथ-प्रदर्शक बताया जाता है। ये गांधीवादी थे, किंतु पाश्चात्य समाज-दर्शन—विशेषतः हॉब्स और लॉके से प्रभावित थे। मोपासाँ से इन्होंने शिल्प

की प्रेरणा ली थी किंतु कही भी इनकी कहानियो मे अश्लीलता नही आने पायी। ये एक ऐसे कहानीकार थे जिन्हे विकास का पूर्ण अवसर नही मिल पाया।

शर्मा, विन् उयिल् *(त० उ०)*

यह तमिल के विख्यात कथाकार श्री क० ना० सुब्रमणियम् विरचित उपन्यास है। इसमे इसी शती के चौथे दशक मे स्थित एक मध्यवर्ग परिवार का चित्रण है। सारी घटनाएँ 'सामिमल' नामक गाँव को केंद्र बनाकर घटती है, वैसे मद्रास और कलकत्ते की कुछ घटनाएँ भी है। सारे परिवार का आधार-स्तभ है बूढी दादी। उसके तीन बेटो मे से बडा 'पट्टाभिरामन्' सामिमलै मे है जहाँ उसकी विधवा बहन की बेटियाँ भी रहती है। इनमे से एक बाल विधवा भवानी है जो मद्रास मे कालेज की शिक्षा प्राप्त कर रही है और जिसे कहानी लिखने की रुचि है। पट्टाभि के दो भाई है कृष्णास्वामिशर्मा—जिसके नाम पर उपन्यास का नाम दिया है दूसरे हैं वेंकटरामन्। शर्मा और वेंकटरामन् कलकत्ते मे नौकरी कर रहे है। शर्मा देश-विदेश मे भ्रमण कर चुका है, वह पुत्रहीन विधुर है, कला-रसिक उदार, चिंतनशील ईमानदार तथा मिलनसार। पट्टाभि का इकलौता बेटा है शिवराम जो शिक्षित नवयुवक है। वह नौकरी छोड देता है और कथाकार बनने का यत्न करता है। अपनी पत्नी राजम के साथ मद्रास मे रहकर साहित्य-सर्जन का असफल यत्न करता है, कमाई कम, खर्च ज्यादा—घर से पैसा मँगवाकर खर्च करने की नौबत आ जाती है। राजम आधुनिक जीवन के आनद का अनुभव करने की इच्छुक है, पति के साहित्यिक आदर्शो को समझ नही पाती है, राजम और शिवराम के जीवन मे अतृप्ति तथा असामजस्य-सा आ जाता है। शिवराम की फूफी बेटी भवानी शिवराम के यहाँ आती-जाती रहती है। वह शिवराम की मनोवृत्ति तथा आदर्शों के प्रति सचेत है और शिवराम के परिवार म शांति लाने का यत्न करती है। घटनाओ का चक्र घूमता ह। शर्मा का देहावसान हो जाता है, देहावसान के पूर्व वह एक वसीयतनामा लिखकर भवानी के पास इस निर्देश के साथ भेज देता है कि उसके मरन के ठीक एक वर्ष बाद उसे खोला जाए और तब तक उस वसीयतनामे की बात गुप्त रखी जाए। इधर दादी का देहान होता है। सामिमलै मे परिवार के विभिन्न व्यक्तियो का आगमन होता है। उसी समय शर्मा का वसीयतनामा प्रकट कर दिया जाता है। उसके अनुसार शिवराम भवानी को अपनी दूसरी पत्नी स्वीकार करता है और शर्मा की जायदाद का स्वामी बनता है। इस घटना मे शिवराम की प्रथम पत्नी राजम भी योग देती है।

उपन्यास के घटना-चक्र मे 'सस्पेंस' है। तत्कालीन तमिल-समाज की परिस्थितियो का मार्मिक सकेत इसमे प्राप्त होता है। कहानी रोचक ढग से कही गई ह।

शर्मा, सत्येन्द्रनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

जन्म स्थान—जोरहाट।

इनकी शिक्षा एम० ए०, डी० फिल० तक हुई थी। आजकल गौहाटी विश्वविद्यालय मे असमीया के रीडर पद पर है।

प्रकाशित रचनाएँ—**आलोचना** 'असमीया साहित्यर इतिवृत्त' (1959), 'असमीया नाट्य साहित्य' (1962), 'असमीया उपन्यास साहित्यत भुमुकि', 'साहित्यर आभास' (1963)। **सपादन** 'कथारामायण' (1950), 'उषापरिणय' (1951), 'गीतगोविंद' (1955), 'मधुमालती' (1958)।

'असमीया साहित्यर इतिवृत्त' मे इन्होने साहित्य के इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या की है। 'असमीया नाट्य साहित्य' मे अकीयानाट (दे०) तथा पौराणिक, ऐतिहासिक और सामाजिक नाटको का विवेचन कर प्रसिद्ध कृतियो की समीक्षाएँ भी की है। इन्होने पुरानी पोथियो का सपादन दक्षतापूर्वक किया है। गद्य-लेखको मे इनका स्थान महत्वपूर्ण है।

शलोक *(प० पारि०)*

'शलोक' पजाबी के मध्यकालीन काव्य म एक बहुप्रयुक्त छद है जो सस्कृत के 'श्लोक' (अनुष्टुप् छद) के ही समानातर है। गुरु ग्रथ साहब मे 'सलोक' शीर्षक के अतर्गत असख्य पद्य सगृहीत हैं जिनम छद-विधान की दृष्टि से बहुत वैविध्य है। 'गुरुछद-दिवाकर' मे 'शलोक' नामान्तर्गत प्रयुक्त इन विविध छदो का विस्तार से विवेचन किया गया है।

सस्कृत म श्लोक अनुष्टुप् एक अष्टाक्षर छद है (पिंगल सूत्र 3 23) जो 16 वर्णो के द्विपाद छद के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है। गुरु ग्रथ साहब म सकलित बाबा फरीद (दे० शेख फरीद) के अधिकाश 'सलोक'

स्थूलतः विधान के अनुकूल है। उदाहरणतः 'टकना आटा अगला, इकना नाही लउणु। अगै गए सिजापसनि, चोटां खासी कउणु ॥44॥' दूसरी ओर ये 'शलोक' दोहा छंद के भी स्थूल विधान का अनुसरण करते हैं। उक्त उदाहरण के दोनों चरणों में 13, 11 की यति पर 24-24 मात्राएँ हैं। किंतु इन 'शलोकों' में आदि, मध्य अथवा अंत-संबंधी छंदःशास्त्रीय नियमों का सम्यक् परिपालन नहीं मिलता। इन शलोकों में कहीं-कहीं रचयिता का नाम अधिक रूप से जुड़ जाने के कारण भी छंद के नियमों में व्यवधान पड़ गया है। इसके अतिरिक्त 15, 17, 18 या इससे भी अधिक वर्णों के 'शलोक' भी गुरु ग्रंथ साहब में हैं। अतः 'श्लोक' के छंदःशास्त्रीय बहिरंग रूप का पर्याय मानना संभव नहीं।

'श्लोक' का अंतरंग स्वरूप उसके अभिधार्थ—'प्रशंसा', 'स्तुति', 'यशगान' आदि द्वारा समझा जा सकता है। गुरु ग्रंथ साहब में संकलित 'शलोक' इस दृष्टि से सर्वथा सार्थक हैं। 'सुखमनी' (दे०) की उक्ति 'उत्तम शलोक साध के वचन' इस बात की द्योतक है कि गुरु ग्रंथ साहब में विभिन्न पद्यों का 'शलोक' शीर्षक उनके शैलीगत स्वरूप के साथ-साथ वस्तुगत स्वरूप की ओर भी इंगित करता है।

'शलोक'-फ़रीद *(पं० कृ०)*

गुरु ग्रंथ साहब में संकलित बाबा फ़रीद (दे० शेख फ़रीद) की वाणी का अधिकांश भाग 'शलोकों' के रूप में है। इन शलोकों की संख्या 112 है। ये 'शलोक' पंजाबी-मुक्तक काव्य का प्राचीनतम एवं प्रौढ़ नमूना हैं जिनमें कवि के जीवन-संबंधी अनुभव सिद्ध विचार व्यक्त हुए हैं। इन 'शलोकों' का प्रमुख प्रतिपाद्य निस्संदेह अलौकिक आध्यात्मिक प्रेम है, यह प्रेम जिसमें संयोग की मादक और उत्तेजक क्रीड़ाओं की अपेक्षा वियोग की मार्मिक, करुणात्मक अनुभूति की अभिव्यंजना हुई है। प्रेम के अतिरिक्त कवि ने लोक-नीति, सदाचार, मानव-प्रेम, स्वावलंबन, क्षमाशीलता आदि भावों का प्रतिपादन भी बड़ी सजग दृष्टि से किया है। पूरी एक शती की जीवन-यात्रा के उसके विविध अनुभव उसकी बुद्धि की छलनी से छन-छन कर लोकवाणी में आकर समा गए हैं। जीवनगत मूल्यों का इन शलोकों में सम्यक् संरक्षण होने के कारण ही ये सूक्तियों के रूप में प्रसिद्ध हैं।

फ़रीद-कृत शलोकों की भाषा लोक-व्यवहार के इतनी निकट है और उसकी अभिव्यंजना-शैली इतनी सुकर और सुबोध है कि उसमें कला के ऊँचे आदर्शों की खोज करना ही व्यर्थ है। जन-जीवन की यथार्थ भावनाओं का जन-वाणी में ही सजीव चित्रण फरीद-कृत शलोकों का सार-तत्त्व है।

शबरस्वामी *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—400 ई० के आसपास]

विद्वानों का एक वर्ग मीमांसक शबरस्वामी का स्थिति-काल 200 ई० भी मानता है। इसके अतिरिक्त विद्वानों की एक परंपरा शबर का संबंध सम्राट् विक्रमादित्य के साथ भी जोड़ती है, किंतु यह असंगत है। शबरस्वामी का वास्तविक नाम आदित्य देव था। जैन-साधुओं से डरकर शबरस्वामी जंगल में चले गए थे और वहाँ जाकर इन्होंने अपना नाम शबर रख लिया था। शबरस्वामी ने 'मीमांसासूत्र' पर महत्वपूर्ण भाष्य की रचना की थी, जो 'शाबरभाष्य' के नाम से प्रख्यात है। यह भाष्य मीमांसा-दर्शन का प्रमुख ग्रंथ माना जाता है।

'शाबरभाष्य' की व्याख्या करते हुए कुमारिल-भट्ट (दे०), प्रभाकर (दे०), मिश्र तथा मुरारि मिश्र ने भाट्टमत, प्रभाकर-मत तथा गुरुमत की प्रतिष्ठा की थी। शबरस्वामी ने 'शाबरभाष्य' में मीमांसा के विभिन्न पक्षों के संबंध में अत्यंत मूल्यवान विवेचन प्रस्तुत किया है। शबरस्वामी ने यज्ञमीमांसा एवं विविध धार्मिक कृत्यों के संबंध में तो अपनी दृष्टि दी ही है, साथ ही अनुमान आदि दार्शनिक सिद्धांतों के संबंध में भी अपना मौलिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। 'शाबरभाष्य' की शैली भी रोचक एवं परिमार्जित है।

शशांकविजयमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती ई०]

इसके लेखक का नाम शेषं वेंकटपति (दे०) है। ये दक्षिण की मधुरा नामक रियासत के शासक विजय-रंग चोक्कनाथ (शासन-काल—1794-1731 ई०) के सभाकवि थे। यह पाँच आश्वासों का एक शृंगार-काव्य है। गुरुपत्नी तारा के साथ चंद्र का प्रणय इसमें वर्णित है। यहाँ शृंगार रस के वर्णन में औचित्य की सीमा का उल्लंघन किया गया है। पर इसकी शैली मधुरिमा अनुपम है। शुद्ध काव्य की दृष्टि से साहित्य-क्षेत्र में इसका विशेष स्थान है।

शशि (बँ० पा०)

'पुतुलनाचेर इतिकथा' (दे०) मानिक बद्योपाध्याय (दे०) की विचित्र यथार्थवादी अभिज्ञता को अन्यतम सृष्टि है। इस उपन्यास का नायक है शशि। लेखक का अपना दृष्टिकोण फ्रायडीय मतवाद से प्रभावित है। क्षुधा एव यौनविकृति को इनकी रचना म प्राधान्य मिला है। शशि के चरित्र मे भी यह समस्या ही प्रधान समस्या है। अपने जीवन की सर्वाधिक रिक्तता के चरम मुहूर्त मे उसने प्रतिवेशी की स्त्री कुसुम के प्रति दुर्वह आकर्षण का अनुभव किया है। पूर्वजीवन की वेदनाविक्षुब्ध स्मृति-तरग की ताडना के फलस्वरूप उसने गहत्यागी होना चाहा परतु पारिपार्श्विकता के प्रभावस्वरूप ऐसा सभव नही हो सका। अतर्दहन की निविडता मानवीय आवेदन की प्रगाढता एव जीवन-यौवन के दाह ने शशि के चरित्र मे व्यर्थता-वचना-रिक्तता के अतिरिक्त और कुछ नही छोडा। लाछित-पराजित इस चरित्र का अत मे सामाजिक अनुशासन के अश्रुतीर्थ मे निर्वासन दिखाया गया है। जीवन की निभृत-नीरव अवलुप्ति मे शशि का अतिम चित्र यौन वेदनामय है। शशि जीवन-यौवन के प्रचड सग्राम की पराजय का प्रतीक है। उसके जीवन-सग्राम का विचित्र इतिहास लेखक के विशेष जीवनदर्शन के आलोक से जुडा है।

शशिसेना (म० कृ०)

इस काव्य की रचना सत्रहवी शती के अत मे प० जगन्नाथ कवि ने की थी। यह एक विशाल कथा-नक-काव्य है। इसम कुल 581 श्लोक हैं। कथावस्तु सर्वथा मौलिक—कवि कल्पना से निर्मित है। अमरावती नगरी के प्रधानमत्री का पुत्र था —अहिमाणिक, राजकन्या थी —शशिसेना। दोनो का विद्याभ्यास एक ही गुरु के सान्निध्य मे हुआ। सहपाठियो का प्रेम दापत्य-प्रेम का रूप लेना चाहता था परतु माता-पिता ने विरोध किया। शशि-सेना ने पुरुष-वेश धारण कर लिया और प्रेमी-युगल अपनी नगरी त्याग कर भटकने लगे। अनेक विपत्तियो का सामना करते हुए अत मे अपने पराक्रम से दोनो ने अनक सकटो पर विजय प्राप्त की और सुखमय दापत्य-सूत्र मे बँध गए। यह शृगार रस-प्रधान काव्य है जिसमे प्रेम की सयोगा-वस्था तथा वियोगावस्थाओ का मार्मिक चित्रण हुआ है। छद पूर्ति के लिए शब्दो की तोड-मरोड हुई है अत कुल मिलाकर यह अधिक प्रौढ रचना नही है। फिर भी, कल्पना-वैभव स्वाभाविक प्रसग-वर्णन, और सुगम शैली के कारण इसका अपना विशिष्ट स्थान है।

शहर-आशोब (उर्दू पारि०)

'शहर-आशोब' उर्दू कविता की वह व्यग्य-प्रधान विधा है जिसमे किसी नगर, प्रदेश अथवा देश के उजडने, सामाजिक तथा राजनीतिक विप्लवो आदि का मार्मिक वर्णन किया जाता है। 'कमतरीन', 'शाकिर नाजी' (दे०) 'मीर तकी 'मीर' (दे०) और 'सौदा' (दे०) की शहर-आशोबो का उर्दू साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान है। 'मीर' और 'सौदा' के पश्चात् इस विधा मे जो कुछ लिखा गया वह अनुकृति मात्र है। इन दोनो शायरो ने अपने युग के राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक सकट को अपने काव्य-व्यग्य का विषय बनाया है।

शहीद एस० एस० चरणसिह (प० ले०) [जन्म—1891 ई०]

शहीद के साहित्य का मुख्य स्तर समाज-सुधार है। अन्य समाज-सुधारको से इनकी विलक्षणता इस बात मे है कि ये अपनी बात को हास्य-व्यग्य के माध्यम से अभिव्यक्त करते है। इसीलिए पजाबी के पाठक इन्हें हास्य-व्यग्य-शैली का आचार्य मानते है। कविता एव गद्य दोनो के माध्यम से इन्होने अपने विचारो की अभिव्यक्ति की है। काव्य एव गद्य के क्षेत्र मे हास्य-व्यग्य स भरपूर अनेक कृतियो के अतिरिक्त 'बाबा वरयामा' नाम का पात्र इनकी विशेष देन है। 'बाबा वरयामा' पजाबी जीवन एव सभ्यता का अग बन गया है। सामाजिक कुरीतियो के ऊपर व्यग्य करने म लेखक प्राय उसी की सहायता लेता है, इसलिए वह पाठक का भी जाना-पहचाना पात्र बन गया है। 'मौजी' नाम से इन्होने एक पत्र भी आरभ किया था। इसमे व्यग्यात्मक पद्धति स सामाजिक कुरी-तियो पर प्रहार कर सामाजिक चेतना उद्बुद्ध करने का प्रयत्न रहता था।

पजाबी कवि-सम्मेलनो के आदोलन को भी गति देने मे 'शहीद' महोदय ने विशेष योग दिया। प्रसिद्ध रचनाएँ—कविता . 'बादशाहिया अरशी किगरे', 'इश्क मुश्क', 'राजसी हुलारे'। कहानी-सग्रह 'हमदे हभू'।

शांडिल्यन् *(त० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

आधुनिक उपन्यासकारों मे शांडिल्यन् का एक विशिष्ट स्थान है। कहा जाता है कि वर्तमान तमिल-कथाकारों मे इनकी पुस्तकों की खपत सर्वाधिक है और एक लेखक के रूप मे इनकी आय अन्य लेखकों की अपेक्षा अधिक है। तंजौर के 'तिरुइंदळूर' के ये निवासी है; वैसे अब मद्रास में ही रहते हैं। इन्होंने कालेज की शिक्षा तो प्राप्तकी थी किंतु असहयोग आंदोलन के कारण बीच में ही शिक्षा छोड़ दी थी। 'दिराविडन्', 'सुदेशमित्तिरन्', 'आनंद विकटन्' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं के ये संपादक रह चुके हैं। लगभग 21 वर्ष पर्यंत इस प्रकार कार्य करने के पश्चात् अब ये स्वतंत्र लेखन में संलग्न हैं। अब तक इनके 23 उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। इनके ऐतिहासिक उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हैं। अपनी रचना में इन्होंने अनेक शिलालेखों, शोध-ग्रंथों तथा अन्य ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग किया है जिससे उनमें काफ़ी सजीवता तथा स्वाभाविक वातावरण का निर्माण दिखाई पड़ता है। इनके उपन्यासों मे से 'कडलपुरा' (समुद्री कपोत) वृहदाकार है और बहुत विख्यात हुआ है। इसके अतिरिक्त 'नाग-दीप', 'वल्लवतिलक', 'राजमुद्रिका', 'राणी का स्वप्न', 'बाँस का किला', 'कन्या-अंतःपुर', 'यवनरानी', 'उदयभानु' आदि उपन्यासों की भी एक लंबी सूची है। इनकी शैली आलंकारिक होती है, चित्रण बिंबात्मक, घटना-वर्णन कुतूहल-वर्धक तथा वातावरण की सृष्टि स्वाभाविक एवं प्रभावशाली। आधुनिक कथा-साहित्य पर इनका अक्षुण्ण प्रभाव है।

शांतकबि *(क० ले०)*

कन्नड साहित्य के प्रथम उत्थान-काल (1900-1920 ई० तक) के कवियों में इनका नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। ये आधुनिक कविता को रूप प्रदान करने वालों मे से हैं। उत्तर कर्नाटक मे इनकी कविताओं ने उस समय लोगों को अत्यधिक प्रभावित किया था। इनकी कविताओं मे 'भवगीते' अर्थात् गीति-काव्य का रूप दृष्टिगत होता है। इनकी 'कन्नड दासय्या' (कन्नड का भिखारी) और 'रक्षिसु कर्नाटक' (रक्षा करो कर्नाटक की) कविताएँ अत्यंत प्रसिद्ध है। उनका वास्तविक नाम बाळाचार्य सक्करी था। इन्होंने लगमग सत्तर ग्रंथ लिखे है जिनमें इनकी कविताएँ और यक्षगान विशेष प्रसिद्ध है।

शांतरक्षित *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—लगभग 740-840 ई०]

शांतरक्षित ने नालंदा से तिब्बत जाकर सामये नामक संघाराम की स्थापना 749 ई० में की थी। शांतरक्षित की मृत्यु तिब्बत में हुई थी। शांतरक्षित का महत्वपूर्ण ग्रंथ 'तत्त्वसंग्रह' है। 'तत्त्वसंग्रह' कमलशील की टीका के साथ बड़ौदा से प्रकाशित हुआ है।

'तत्त्वसंग्रह' के अंतर्गत शांतरक्षित ने योगाचार विज्ञानवाद का प्रतिपादन किया है। जगत् के वाह्य विषयों की सत्ता न मानकर शांतरक्षित समस्त जागतिक वस्तुओं के ज्ञान को स्वसंवेदन-रूप मानते हैं। शांतरक्षित न आत्मवाद को स्वीकार करते है और न बाह्य विषयवाद को। ये केवल विज्ञान की सत्यता को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार इनके मत में नील एवं पीत का ज्ञान वाह्य विषयों से संबंधित न होकर स्वसंवेदन-रूप ही है। विज्ञान का वाह्य विषयों से कोई संबंध नहीं है। विज्ञान तो केवल चित्तगत है।

शांतरक्षित ने अनेक बौद्ध-सिद्धांतों एवं अन्य मतवादों का खंडन करके स्वतंत्र रूप से योगाचार विज्ञानवाद की स्थापना की है।

शांतला *(क० कृ० पा०)*

'शांतला' के० वी० अय्यर (दे०) के अमर ऐतिहासिक उपन्यास 'शांतला' की नायिका है। यह चालुक्य सम्राट् विष्णुवर्धन की पत्नी है और विष्णुवर्धन के सेनापति की पुत्री। सर्वधर्म-समन्वय की प्रवृत्ति तो इसे विरासत मे मिली है। इसके पिता शैव है, माता जैन और पति वैष्णव। इन सभी धर्मों के संस्कारों ने इसके हृदय को अत्यंत मधुर बनाया है। बचपन से ही यह वीणा-वादन-पटु है। नृत्य में भी यह निष्णात है। नाट्यसरस्वती इसका विरुद है। उसी के नाट्य को देखकर इसकी प्रेरणा से शिल्पियों ने वेलूर के विख्यात मंदिर के मदनिका विग्रहों का निर्माण किया है। इसकी कोई संतान नही है। इसकी सौत लक्ष्मी, जो इसकी बाल सहचरी है, संतानवती बनती है। यह एक सफल शासिका भी है। उसने अपनी सौतों के आपसी झगड़े तथा षड्यंत्रों को सफलता के साथ रोका और शांत किया है। धार्मिक झगड़ों से निबटने में भी इसने अपने पति की सहायता की है। कलाप्रेम, धार्मिकता एवं सात्विकता के कारण इसका नाम कर्नाटक के इति-

हास मे अजर-अमर रहेगा। श्री के० वी० अय्यर ने इसके चरित्र को अत्यत गभीर दृष्टि से देखा है।

शांतिनिकेतन (*बं० कृ०*)

'शातिनिकेतन' छोटी छोटी 17 पुस्तिकाओ मे प्रकाशित रवीद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) के सक्षिप्त भाषणो का सकलन है। शातिनिकेतन मे मदिर मे उपासना के समय रविबाबू ने ये सारे भाषण दिये थे। पहली आठ पुस्तिकाएँ 1909 ई० मे प्रकाशित हुई थी। उसके उपरान 1910 ई० म नवम से एकादश खड तक, 1911 ई० मे द्वादश से त्रयोदश तक एव 1916 ई० तक शेष पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई। 1935 ई० मे इन सत्रह खडो को दो खडो मे सयोजित कर प्रकाशित कराया गया।

रवीद्रनाथ के धर्म चिंतन से सबधित इन उपदेशमालाओ का विशेष महत्व है। इन निबधो मे महर्षि देवेंद्रनाथ (दे० ठाकुर) की सूक्ष्म अनुभूति तथा आवेगधर्मी विश्लेषण का प्रभाव सुस्पष्ट है परतु रवीद्रनाथ की कवि प्रकृति एव प्रगाढ अध्यात्म-अनुभव के फलस्वरूप इनमे साहित्य का पूर्ण आस्वाद प्राप्त होता है। केवल धर्म ही नही जीवन और नैतिकता, सत्यबोध और मानवता, नीति नियम, बधन मुक्ति, विश्वबोध, जीवन और प्रकृति, मृत्यु और अमृत, सृष्टि और आत्मबोध आदि विषयो को अपनी अतर्दृष्टि तथा काव्य-सौंदर्यमय प्रकाश-रीति के द्वारा अभिव्यक्त कर उन्होने पाठको के मन को जीत लिया है। विशेष रूप से लक्षणीय है इसकी भाषा। इन स्वगत चितनमय छोटे-छोटे निबधो म कथ्यभाषा का प्रयोग कर उन्होंने बँगला-गद्य के क्षेत्र म एक नयी प्रकाश-रीति के प्रवर्तन म विशेष सफलता प्राप्त की है।

शांति पा (*अप० ले०*) [रचना-काल—1000 ई० के लगभग]

चौरासी सिद्धो मे शाति पा एक प्रसिद्ध सिद्ध थे। इनका जन्म ब्राह्मण कुल मे हुआ था। विद्वान् सिद्धो म इनकी भी गणना की जाती है। ज्ञान प्राप्ति के लिए इन्होंने विक्रमशिला, मालवा सिंहल आदि स्थानो के विहारो का भ्रमण किया था। ज्ञानार्जन के साथ-साथ य धर्म-प्रचार भी किया करते थे। ये तत्कालीन गौड राज के राजगुरु और विक्रमशिला के प्रधान थे।

अन्य सिद्धो की तरह इन्होंने भी वज्रयान, सहजयान की प्रशसा की है। ससार की अविद्या से मुक्त होकर अपने ही अदर रहने वाले सहजानद की प्राप्ति को अन्य सिद्धो के समान इन्होने भी सर्वश्रेष्ठ बताया है। सहजानद या सहज सुख की प्राप्ति का मार्ग कठिन है। इसलिए मार्गदर्शन के लिए गुरु का होना अत्यावश्यक है। अन्य सिद्धो की तरह ये भी मानते है कि मानव का परम उद्देश्य महासुख परमानद की प्राप्ति है। यह सुख अनिर्वचनीय है। इस आनद की प्राप्ति से ससार का भय, जन्म मरण आदि सब विस्मृत हो जाते हैं। इस सहज सुख की प्राप्ति के लिए मत्र, तत्र, आगमादि शास्त्र-ज्ञान की आवश्यकता नही है।

हिंदी साहित्य की सत-विचारधारा को समझने के लिए शाति पा प्रभृति सिद्धो की विचारधारा का समझना अत्यावश्यक है।

शांतिपुराण (*क० कृ०*)

'कन्नड रत्नत्रय' मे प्रसिद्ध कविवर पोन्न (दे०) की कृति 'शातिपुराण' सोलहवें तीर्थंकर शातिनाथ के चरित का वर्णन करने वाला जैन-पुराण-काव्य है। कवि के कथनानुसार वह 'पुराण चूडामणि' है। कवि ने गर्व के साथ इस बात का उल्लेख कई बार किया है। उनको 'कविचक्रवर्ती' उपाधि प्राप्त थी। 'कविचक्रवर्ती' द्वारा लिखित जैन-पुराण के समस्त लक्षणो से युक्त 'शातिपुराण जैन-पुराणो मे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुका है अतएव उसे निस्सदेह 'पुराण चूडामणि' मान सकते है। उसमे कवि-कर्म और धार्मिक दृष्टिकोण का समन्वय हुआ है, परतु कविकर्म की अपेक्षा धार्मिक दृष्टि का ही प्राधान्य है।

'शातिपुराण' बारह आश्वासो का चपू काव्य है। प्रथम नौ आश्वासो म शातिनाथ के ग्यारह पूर्वजन्मो की कथा का तथा शेष तीन आश्वासो म उनके वर्तमान जन्म के चरित का वर्णन है। जैन-पुराणो म भवावलि (पूर्वजन्म) के वर्णन का महत्व रहता है, यह वैशिष्ट्य 'शातिपुराण' म भी द्रष्टव्य है। भवावली का वर्णन छठे भव (जन्म) से प्रारभ कर शेष का तदनुसार वर्णन करने मे कवि ने कौशल प्रदर्शित किया है और आकर्षक वातावरण निर्माण तथा घटनाओ के वर्णन मे विशेष सफलता प्राप्त की है। परतु 'रसनिष्पत्ति' की दृष्टि से उनको 'आदिपुराण' (दे०) के कवि पप (दे०) के समान सफलता नही मिली है। उदाहरणार्थ, शातिनाथ के वीतरागी होने के प्रसग का वर्णन अधिक आकर्षक और हृदयस्पर्शी नहीं

बन पड़ा है। पर शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन करने पर कवि की दृष्टि असफल नहीं कही जा सकती क्योंकि अलंकार, छंद, नवरस-वर्णन तथा उत्तम भाषा-शैली के कारण वह एक प्रौढ़ काव्य सिद्ध होता है। कल्पनाशीलता, मृदु-बंध तथा प्रांजलता के कारण पोन्न की रचना महाकाव्य की कोटि में आती है।

शांतीश्वर पुराण *(क० कृ०)*

यह कमलभव नामक जैन कवि का चंपू-ग्रंथ है। कमलभव का समय 1225 ई० के करीब माना जाता है। इसमें सोलहवें तीर्थंकर शांतिनाथ की कथा वर्णित है। इसी विषय-वस्तु को लेकर पोन्न (दे०) ने 'शांतिपुराण' (दे०) लिखा था। इसमें 16 आश्वास है। इसका विस्तार उससे अधिक है और यह पोन्न के ग्रंथ से सचमुच श्रेष्ठ है। यहां आनेवाली अश्वग्रीव तथा त्रिविष्ट की कहानी अत्यंत सरस एवं रोचक है। यही कहानी पोन्न में भी है किंतु नीरस। 'शांतीश्वर पुराण' पुराणकाव्य के सभी लक्षणों से अभिमंडित है। उसमें पांडित्य है, कवि-समय है, सुंदर कल्पना है, उक्ति-वैचित्र्य है किंतु मुगळि जी (दे०) के अनुसार रस-परिपाक नहीं है।

शाइकीया, चंद्रप्रसाद *(अ० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

प्रकाशित रचनाएँ—उपन्यास : 'मंदाक्रांता' (दे०) (1960), 'मेघमल्लार' (1963)। कहानी : 'माया-मृग'।

इन्होंने नागरिक मध्यवर्ग पर कहानियाँ लिखी हैं। कहानी के पात्रों में चरित्र की दृढ़ता है, नारी-पात्र सुंदर और स्नेहशील हैं। कहानी की सरल वाक्य-रीति में भी ध्वनि रहती है। 'मंदाक्रांता' नामक रोमांसवादी और आदर्शवादी उपन्यास में नागरिक-जीवन का चित्रण है। इनका द्वितीय उपन्यास अधिक अच्छा है।

असमीया कथा-क्षेत्र में इनका अपना स्थान बनता जा रहा है।

शाइकीया, भबेंद्रनाथ *(अ० ले०)* [जन्म—1932 ई०]

जन्म-स्थान : फौजदारी पट्टी। इन्होंने गौहाटी और कलकत्ता विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी।

प्रकाशित रचनाएँ—'आर्तंकर शेषत' (जासूसी-उपन्यास) (1948)। प्रहरी' (कहानी-संग्रह) (1963 ई०)।

ये शब्दों के आडंबर की सृष्टि न कर अभिनव रूपायन द्वारा पाठक के अंतर में करुण प्रभाव की सृष्टि कर सकने में सक्षम हैं। एकांकी नाटक के क्षेत्र में भी इनसे प्रभूत संभावनाएँ हैं। इनके 'भगा हेउकार आँरत', 'तिनिबंधु', 'अलंकार' आदि एकांकी महत्वपूर्ण हैं।

शाइर *(सि० कृ०)*

'शाइर' (कवि) उपन्यास 1941 ई० में आशा साहित मंडल, कराची से प्रकाशित हुआ था। इसके लेखक सिंधी के प्रसिद्ध लेखक आसानंद मामतोरा हैं। ये विभाजन के पश्चात् बंबई में रहते हैं और एक सिंधी स्कूल के मुख्याध्यापक हैं। मामतोरा जी ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से पूर्ण कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं जो सिंधी-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। 'शाइर' उपन्यास में लेखक ने कश्मीर के वातावरण में एक हिंदू नवयुवक और मुसलमान कुमारी के पवित्र प्रेम का प्रभावपूर्ण चित्रण किया है। उन्होंने बहुत ही सूक्ष्म ढंग से नायक-नायिका के मनोभावों का विश्लेषण किया है। सिंधी-साहित्य में यह पहला उपन्यास है जिसमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को प्रधानता दी गई है। सिंधी-उपन्यासों के विकास में 'शाइर' का महत्वपूर्ण स्थान है।

शाकिर 'नाजी' *(उर्दू० ले०)*

नाम—सैयद मुहम्मद शाकिर, उपनाम—'नाजी'। ये मुहम्मद शाह के एक सचिव के नौकर थे। कलम के भी धनी थे और तलवार के भी। नादिरशाह ने जब भारत पर आक्रमण किया था तो इन्होंने सेना की सामरिक गतिविधियों में सक्रिय योग दिया था। इन्होंने अपने काव्य में तत्कालीन शोचनीय राजनीतिक परिस्थितियों का यथार्थवादी चित्रण किया है। इनके काव्य में ओज गुण का प्राधान्य है। मीर तक़ी 'मीर' (दे०) के अनुसार ये हास्य रस के भी समर्थ कवि थे। इनकी जो कविताएँ आज उपलब्ध हैं उनमें शब्दालंकारों के प्रति इनका अत्यधिक मोह परिलक्षित होता है।

शाक्त पदावली *(बँ० प्र०)*

मध्ययुग की सत्रहवीं शती में वैष्णव पदावली

की धारा के क्षीण हो जाने पर कालीदेवी के स्तुति-गान के लिए शाक्त पदावली की रचना शुरू हुई। आख्यान-मूलक मंगलकाव्य के रचनाक्रम की समाप्ति पर वैष्णव गीति-कविता के द्वारा परिपुष्ट शाक्त गीतिकाव्य में राधा-कृष्ण अर्थात् नायक नायिका की प्रेमलीला के स्थान पर माता और पुत्र के स्नेह प्रेम अर्थात् मातृप्रधान भक्ति-भावना का प्रचार शुरू हुआ। मातृनिर्भर इस अध्यात्म-साधना में कालीमूर्ति के भयावह रूप को प्रधानता मिली है। कदाचित् इस भयावह रूप की आराधना से पीछे उस युग की यथार्थ समाज-चेतना, देश की दुरवस्था एवं विपदसंकुल अवस्था क्रियाशील थी। रामप्रसाद सेन (दे०) 'शाक्त पदावली' के प्रतिष्ठाता हैं। रामप्रसाद के द्वारा प्रवर्तित शाक्त गीता या श्यामा संगीत का प्रचार आज भी अक्षुण्ण है। रामप्रसाद के अतिरिक्त कमलाकांत आदि नाना कवियों ने श्यामा संगीत की रचना की है।

शाद अज़ीमाबादी *(उर्दू० ले०)*

'शाद' का जन्म 1846 ई० में पटना में हुआ। इन्हें भाषा की शिक्षा सर सैयद अहमद खां (दे०) से मिली थी। इनकी भाषा इतनी लोचदार है कि ये अपने समय के 'मीर' (दे० मीर तकी 'मीर') समझे जाते हैं। इन्होंने उर्दू के अतिरिक्त अरबी, फारसी तथा अंग्रेज़ी का भी थोड़ा बहुत ज्ञान अर्जित किया था। इन्होंने इस्लामी शास्त्र के अतिरिक्त ईसाइयों की बाइबिल, पारसियों की ज़ेंदअवेस्ता और हिंदुओं की रामायण, गीता आदि का भी अध्ययन किया था। साहित्य सेवा के कारण सरकार ने 1891 ई० में इन्हें 'खान बहादुर' की उपाधि दी थी। सरकार की ओर से इनको जीवन भर 1000 रु० वज़ीफा मिलता रहा।

भाषा की सादगी, सफाई और सरसता इनके काव्य की विशेषता है। इनके काव्य में नीति, आचार, दर्शन, एकेश्वरवाद संबंधी विषय प्राय मिलते हैं। इनके कलाम में प्रौढ़ता तथा परिपक्वता के दर्शन होते हैं। मर्सिये (दे०) और गज़ल (दे०) के क्षेत्र में शाद ने विशेष जौहर दिखाए हैं। मर्सिया लिखने में 'शाद' ने मीर अनीस (दे० अनीस) का अनुकरण किया है। 'नग्म-ए-इल्हाम' के नाम से इनका दीवान प्रकाशित हो चुका है। दीवान तैयार करते समय सब अच्छा-बुरा कलाम एक-साथ संकलित कर दिया गया है जिससे कुल मिलाकर असर उतना अच्छा नहीं पड़ता जितना कि एक अच्छे चुनाव का पड़ सकता था।

शामराय, त० सु० *(क० ले०)* [जन्म—1906 ई०]

वर्तमान समय के बुजुर्ग साहित्यकारों में इनका नाम लिया जाता है। इनके पूर्वज चिनदुर्ग ज़िले के तलुकु के निवासी थे। ये कन्नड के प्रसिद्ध विद्वान् तलुकिन वेंकण्णय्या (दे०) के छोटे भाई हैं। ये मैसूर विश्वविद्यालय में कन्नड के प्राध्यापक रहे थे। ये श्रेष्ठ गद्य लेखक और आलोचक हैं। इनकी रचनाओं में 'कन्नड नाटक' अत्यंत प्रसिद्ध है। 'जनप्रिय कन्नड साहित्य-चरित्रे' इनकी अन्य प्रसिद्ध कृति है। हाल ही में इनकी 'कन्नड साहित्य-समीक्षे' नामक रचना भी प्रकाश में आई है। 'वचन भागवत' और *'श्रीकृष्णन कडेय संदेश' (श्रीकृष्ण का आखिरी संदेश)* इनकी गद्यशैली का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करते हैं। इनकी 'जनप्रिय रामायण' वयस्क नौसिखियों के लिए लिखी गई है। इन्होंने वीरशैव-साहित्य-संबंधी कोश का निर्माण भी किया है।

शामळ *(गु० ले०)* [समय—1636-1714 ई०]

मध्ययुगीन वार्ताकारों में अति प्रसिद्ध कवि शामळ मूलत अहमदाबाद के निवासी थे। वार्ता कहने की इनकी रोचक शैली से आकृष्ट होकर खेडा के सिंहुज ग्राम के ज़मींदार रखीदास ने इन्हें अपने यहाँ बुलाकर बसाया था। चालीस वर्ष तक ये सिंहुज में रहे और इन्होंने जनता को वार्ता रस का पान कराया।

शामळ की कृतियाँ इस प्रकार हैं— पद्मावती नी वार्ता', 'सिंहासन बत्रिसी', 'नंद बत्रिसी', 'वैताल पच्चीसी' (दे०), 'मदन मोहना', विनेचर नी वार्ता, 'रखीदास चरित्र', 'शिवपुराण खंड', 'अंगद विष्टि', 'रावण-मंदोदरी-संवाद' तथा 'सूडा बहोतेरी'।

इनकी रचनाओं में गुजरात का लोक-जीवन अपनी पूर्ण यथार्थता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। भक्ति की रूढ परंपरा से हटाकर काव्य को ये लोक-जीवन की प्राणवान् धरती पर उतार लाए। अपनी प्राय सभी रचनाओं का केंद्रीय विषय इन्होंने सामाजिक जीवन को ही रखा। संस्कृत, हिंदी (ब्रजभाषा) का इन्हें पर्याप्त ज्ञान था।

एक वार्ता से दूसरी वार्ता में सरक जाने की कला, निरंतर कुतूहल जगाए रखने की क्षमता, सजीव

पात्र-सृष्टि, बहुविध प्रतिभापूर्ण चरित्रों का निर्माण— ये इनकी रचनागत विशेषताएँ हैं। कहीं-कहीं इनमें श्रृंगारातिरेक भी पाया जाता है। इनका कवित्व सहज था, उपार्जित नहीं।

मध्ययुगीन गुजराती साहित्य में वार्ताकार के रूप मे शामळ अविस्मरणीय रहेंगे।

शारदा *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1892 ई०]

यह ओय्यारत्तु चंतुमेनन (दे०) की अधूरी कृति है।

अनमेल विवाह से दुःखी कल्याणि अम्मा अपने प्रतिष्ठित परिवार पूचोलक्करा इटम् से किसी को सूचित किए बिना दो सेवकों को साथ लेकर भाग गई। उस वक्त उसकी अवस्था सिर्फ पद्रह वर्ष की थी। इस यात्रा में काशी मे उसकी भेंट एक अच्छे केरलीय चित्रकार और सुशील सुंदर युवक रामन् मेनन से हुई। वे प्रेम में बँधे, और फिर विवाह-सूत्र मे बँधे। वर्षो तक आनंदमय जीवन के बाद दुर्भाग्य के मारे हुए मेनन जी की दृष्टि अत्यंत क्षीण हो गई। केरल की यात्रा मे रामेश्वरम् पर पत्नी कल्याणि का स्वर्गवास हो गया। प्यारी इकलौती बेटी शारदा, प्रिय शिष्य शंकरन् और सेवक कृष्णन् उनके साथ थे। श्री मेनन ने शारदा को उसके प्रतिष्ठित परिवार मे पहुँचाकर उसका भविष्य सुखी बनाने का प्रयत्न किया। कल्याणि अम्मा के साथ चलकर कुछ धन ऐंठने मे असफलता के कारण लौटे हुए धूर्त 'वेत्तिपट्टर' (दे०) ने श्री मेनन को सहायता देना प्रारंभ किया। यह महाधनी मेनन की संपत्ति लूटने पर तुला था।

केरल पहुँचने और अपना प्रयत्न जारी रखने पर मेनन को शारदा के परिवार का अनुकूल उत्तर नहीं मिला। पर उसी गाँव के दूसरे गृहस्थ ने उनका सेवा-सत्कार किया। शारदा के हक की बाद अदालत तक पहुँच गई। यहीं आकर अपूर्ण कृति का सूत्र विच्छिन्न हो जाता है।

शारदा *(त० ले०)* [समय—बीसवीं शती ई०]

इनका वास्तविक नाम नटराजन है और मातृ-भाषा तमिल। इनका जीवन बड़ी कठिनाइयों में से गुजरा और अल्पायु में ही इनका निधन हो गया। तेनालि शहर के एक होटल में ये कार्य करते थे। ग़रीबी में एक स्वाभिमानी व्यक्ति की कैसी दयनीय स्थिति होती है, इसका इन्होंने अच्छी तरह अनुभव किया था। इनके उपन्यासों मे ऐसे पात्रों का चित्रण है जो कुलीन होते हुए भी आर्थिक दुरवस्था मे पड़कर निकृष्ट जीवन बिताते हैं। ऐसे व्यक्तियों की विभिन्न स्थितियों और मानसिक दशाओं का इन्होंने मार्मिक चित्रण किया है। इनके उपन्यास हैं— 'मंचिचेडु', 'अपस्वरालु', 'एदिसत्यं'। पत्रिकाओं में प्रकाशित इन थोड़े-से उपन्यासों से ही लेखक ने पर्याप्त यशोपार्जन किया—यह इनकी उत्कृष्ट प्रतिभा का प्रमाण है।

शारिपुत्रप्रकरण *(सं० कृ०)* [समय—प्रथम शती ई० का पूर्वार्ध]

'शारिपुत्रप्रकरण' बौद्ध कवि अश्वघोष (दे०) की नाट्यकृति मानी जाती है। इसकी एक खंडित प्रति प्रो० ल्यूडर्स को तुर्फान में तालपत्रों पर अंकित मिली है। इससे पता चलता है कि यह नव अंकों का प्रकरण था।

प्रकरण में मध्यवर्गीय जीवन के साथ चोर, शराबी, जुआरी, वेश्या आदि चरित्रों का समावेश किया गया है। इस प्रकरण में बुद्ध के द्वारा मौद्गल्यायन तथा शारिपुत्र के शिष्य बनाये जाने की कथा वर्णित है। इस प्रकरण की कथा शृंगार से शांत रस की ओर बहती बताई गई है। इसकी प्राकृत साहित्यिक प्राकृत से प्राचीन मानी गई है। शैली की दृष्टि से 'शारिपुत्रप्रकरण' तथा 'बुद्धचरित' एवं 'सौंदरनंद' (दे०) में पर्याप्त साम्य है। अतः इन तीनों को एक ही व्यक्ति की कृति मानने में मदद मिलती है।

शार्दूलविक्रीडित *(सं० हि० छं०)*

शार्दूलविक्रीडित उन्नीस वर्णों का वृत्त होता है और बारह और सात वर्णो पर यति होती है। इसके अंतर्गत क्रमशः मगण, सगण, जगण, दो तगण के बाद एक गुरु होता है। उदाहरण—

> जंबू अंब कदंब निंब फलसा जंबीर औ आँवला,
> लीची दाड़िम नारिकेल इमली और शिंशपा इंगुदी।
> नारंगी अमरूद बिल्व बदरी सागौन शालादि भी,
> श्रेणीबद्ध तमाल ताल कदली औ शाल्मली थे खड़े।
> (हरिऔध : प्रियप्रवास)

शालीनुड् *(ते० पा०)*

यह पिंगळि सूरना (दे०) (सोलहवी शती) के प्रसिद्ध *प्रबध-काव्य कलापूर्णोदयमु'* (दे०) का एक महत्वपूर्ण पात्र है। वह ससुराल म घर जँवाई के रूप मे रहकर भी आदर पाता है। यह प्रकृति का महान् प्रेमी और सहज सौंदर्य का उपासक है। उपवन मे अपने साथ कठिन परिश्रम करते समय श्राति एव अस्तव्यस्त वेशभूषा के कारण रक्तिम हो उठने वाली पत्नी की देह के सहज सौंदर्य के प्रति तीव्रता से आकृष्ट होकर यह अपनी पुरानी विरक्ति को भूलकर पत्नी के साथ सुख भोगता है। यह इसके हृदय की कोमलता है। किंतु साथ ही यह एसा क्रोधी भी है कि इसकी सम्मति के बिना ही सरस्वती से वरदान प्राप्त करने के कारण सुगात्री (दे०) पर क्रोध करके जल मे डूब जाता है।

शालै इळतिरैयन *(त० ल०)* [जन्म—1930 ई०]

इनका वास्तविक नाम महालिंगम है। इनके अन्य उपनाम है—शालै कार्जि तलैवन आदि। इनका जन्म नेल्लै ज़िले के शालैनयिनार पळ्ळिवासल मे हुआ। शालै मुख्य रूप से कवि है परतु साहित्य के अन्य क्षेत्रो मे भी इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 'इळ दिरैयन कवि-दैहळ्', पुत्तदु मानुडम आदि इनके कविता-सग्रह है। शिलबिन शिरुनहै और 'कोट्टियुम आवलुम', 'नैयदलुम पोलवे' क्रमश शिलप्पदिकारम् (दे०) और रामायण के *प्रसगो पर आधृत खडकाव्य है। 'कालनदि तीरत्तिलै'* कथाकाव्य है। इनकी अन्य कृतियाँ है—'पुरट्शिक्कविलर कविदै वळम्', 'तमिलिल शिरुकदै', 'पुदिय तमिल कविदै' आदि आलोचनात्मक ग्रथ। निबध तमिल म अपेक्षाकृत नवीन साहित्य विधा है। डा० महालिंगम ने 'उल्हम् ओरु कुडुबळम्' (दे०), 'तमिलुक्काह', 'चिदनैक्कु' आदि निबध-सग्रहो की रचना कर तमिल निबधो की समृद्धि मे विशेष योग दिया है। इनका दृष्टिकोण बौद्धिक अधिक है। इनकी मानवतावादी विचारधारा पर मार्क्सवाद का प्रभाव है। शालै आजकल दिल्ली *विश्वविद्यालय मे तमिल भाषा* और साहित्य का अध्यापन करत हैं।

शास्ति *(उ० कृ०)*

'शास्ति कान्हूचरण महाति (दे०) का उपन्यास है। यह एक प्रकार से उडीसा के दुर्भिक्षोत्तर समय का इतिहास है। इसका नायक—अकाल पीडित सनिआ (दे०) साम्यवादी बन जाता है और शोषण, उत्पीडन, धूर्त्तता आदि से समाज को मुक्त कर उसकी पुन प्रतिष्ठा करना चाहता है। वह अधविश्वास, अधपरपरा एव सर्व-ग्रासी नीति से दूर एक नवीन समाज की कल्पना करता है। किंतु उसका यह विद्रोह निष्फल जाता है। क्योकि अकाल के बाद भी जमीदार, महाजन, पाखडी एव वशाभिजात्य आदि शोषक शक्तियाँ समाज की नियामिका रहती हैं। व्यभिचारी समाज के नैतिक, धार्मिक एव न्यायिक जीवन के ठेकेदार होते है। समाज मे चारो ओर विकृतियाँ एव दूषण व्याप्त है, सवेदनशील व्यक्ति के लिए स्थान नही है। सनेइ विश्वजातीय एव जाति धर्म-निरपेक्ष समाज-गठन का पक्षपाती है, फलत उसे मिलता है दड 'शास्ति'।

खरसुओ नई के दोनो ओर दो गाव हैं—विष्णु-पुर एव दुर्गापुर। विष्णुपुर के बनेइ परिडा का लडका सनेइ परिडा चितेइ सोई की लडकी धोबी स प्रेम करता है, किंतु उसके पिता द्वारा चितेइ द्वारा प्रस्तावित विवाह-प्रस्ताव इसलिए ठुकरा दिया जाता है कि *धोबी के* परि-वार मे किसी ने कभी गुलाम की लडकी से विवाह किया था। धोबी का विवाह दुर्गापुर निवासी चितेइ नायक के पुत्र नितेर नायक से हो जाता है।

अकाल पडता है। बनेइ परिडा का परिवार छिन्न भिन्न हो जाता है। चितेइ और धनी हो जाता है। दुर्भिक्ष के साथ हैज़ा फैलता है। जितेइ और नितेई समाज-*सेवा का कार्य करते हैं, किंतु दोनो की मृत्यु हो जाती है।* धोबी विधवा के रूप म पितृगृह वापस आ जाती है। सनेइ कवाल लेकर गाँव वापस आता है, किंतु वह जाति-च्युत अथवा समाज-बहिष्कृत है। अनुष्ठान पूरा किए बिना पुन समाज-प्रवेश निषिद्ध है। धोबी गुप्त रूप स उसकी रक्षा करती है। इस कार्य मे चाचा निधेइ नोइ की सहा-यता उस मिलती है। इनकी सहायता से सामाजिक अनु-ष्ठान पूरा कर वह पुन समाज मे प्रवेश करता है और अपने अकथ परिश्रम से वह समृद्ध हो जाता है।

चितेइ धोबी *की श्वसुराल की सारी* सपत्ति हडप लेता है। धोबी विधवा का जीवन बितानी है। धोबी की माँ और चाचा सनेइ के साथ उसका पुनर्विवाह चाहते हैं, किंतु चितइ को यह मजूर नही। सनइ स्वय धोबी से आग्रह करता है। किंतु सामाजिक बधना म जकडी धोबी अपने को विवश पाती है। सनेइ पगली बुइ

से विवाह कर लेता है और विजातियों को साग्रह अपनाकर खेती करता है। सनेइ की बहन पुनी, अछूत मधु मोइ के घर में पत्नी के रूप में रहती है क्योंकि हैज़े से उसने पुनी की रक्षा की थी। सनेइ समाज-तिरस्कृत अपनी बहन को पुनः अपना लेता है। धोबी की माँ की अंतिम इच्छा की पूर्ति के लिए चितेइ सनेइ के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर पहुँचता है। किंतु सनेइ कुइँ को छोड़ नहीं सकता। इसी अंतर्द्वंद्व में घर व गाँव छोड़कर वह चला जाता है। वह घर के दरवाज़े पर लिख जाता है—'यह घर, यह संपत्ति धोबी के धन से निर्मित है।'

कथा का आरंभ एवं अंत दोनों ही नाटकीय एवं करुण हैं। कंगाल सनेइ एवं विधवा धोबी से उपन्यास का प्रारंभ होता है। अनेक उत्थान-पतन के बाद पुनः कंगाल सनेइ एवं विधवा धोबी पाठक से विदाई लेते हैं। चरित्र-चित्रण स्वाभाविक एवं जीवंत है। सूक्ष्म मनोवृत्तियों एवं उनकी क्रिया-प्रतिक्रियाओं को अंकित करने का प्रयास किया गया है। नाम भी अत्यंत व्यंजनात्मक है। सनेइ प्रेम व सामाजिक विद्रोह में असफल होकर पाता है 'शास्ति'। पारस्परिक रीति-नीति को सर्वस्व मानने वाली धोबी भी दंडित होती है। अंत में वह बनती है पाषाणी, मूक, बधिर। धन-लोलुप चितेइ भी रिक्त, शून्यहस्त दिखाई पड़ता है। आत्मा का सौदा वह कर नहीं पाता। बनेइ परिड़ा वंशाभाजित्य के लिए दंडित होता है। यह उपन्यास अपने नाटकीय संलाप, सुस्पष्ट, स्वाभाविक वर्णन, सहज-सरल भाषा की दृष्टि से एकांत उपभोग्य बन गया है।

शास्त्रीय मराठी व्याकरण (*म० कृ०*) [रचना-काल—1900 ई०]

यह मराठी व्याकरण-ग्रंथों में अतिशय प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण व्याकरण है। इसके लेखक श्री मो० के० दामले है। यह व्यापक, विस्तृत एवं सांगोपांग विवेचन करने वाला व्याकरण-ग्रंथ है। इसमें दामले जी ने अपने पूर्ववर्ती व्याकरण-ग्रंथों से भी समस्त सामग्री का संकलन कर यथास्थान खंडन-मंडनात्मक शैली का आश्रय लेते हुए अपने निर्णय दिए हैं। पूर्वकालीन व्याकरणों को दृष्टि में रखकर, पूर्ववर्ती ग्रंथों के दोषों से अछूते रहकर लिखा गया यह बृहद् व्याकरण है।

लेखक की न्यायशास्त्र में विशेष गति होने के कारण इसकी विवेचना-शैली संतुलित, तटस्थ एवं तर्कपूर्ण है। शब्दों के प्रकार, नाम-प्रकार, सर्वनाम, धातु-वर्गीकरण, सामान्य लिंग, नाम-विभक्ति, कारक-चिह्न तथा संयुक्त क्रियाओं आदि के लेखन में उसके भाषाधिकार का परिचय तथा विज्ञाननिष्ठ विवेचन-शैली का परिचय मिलता है।

मराठी भाषा का शास्त्रीय व्याकरण होते हुए भी यह ग्रंथ मराठी भाषा की प्राक्‌दशा से आधुनिक काल तक भाषा-विकास में आए परिवर्तनों का दिग्दर्शन नहीं कराता है; भाषा के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन प्रस्तुत नहीं करता—केवल सुसंस्कृत, परिष्कृत वर्तमान मराठी भाषा के स्वरूप को प्रस्तुत करता है। इसकी अपनी सीमाएँ भी हैं; परंतु फिर भी यह एक उच्च-कोटि का मराठी भाषा के अध्ययन-संबंधी अमूल्य ग्रंथ है।

शाह अब्दुल करीम (*सि० ले०*) [जन्म—1537 ई०; मृत्यु—1626 ई०]

शाह अब्दुल करीम बुलड़ी नामक गाँव के निवासी थे और वहीं इनकी दरगाह भी है। ये जब छोटे थे तब इनके पिता का देहांत हो गया था अतः इनका पालन-पोषण इनके बड़े भाई जलाल शाह ने किया था। बचपन से ही अब्दुल करीम का संबंध सूफ़ी दरवेशों से हो गया था। घर-गृहस्थी, खेती-बारी आदि का भार सँभालते रहने पर भी ये हमेशा परमात्मा के ध्यान में मग्न रहते थे।

शाह अब्दुल करीम के केवल 93 बैंत प्राप्त हो सके है जो इनकी मृत्यु के छह वर्ष पश्चात् इनके प्रिय शिष्य मियाँ मुहम्मद रज़ा ने 'बयान-अल्-आरिफीन् व तंबीह-अल्-गाफ़िलीन' नामक फ़ारसी किताब में दिए हैं। इस किताब में इनका जीवन-चरित्र और इनके प्रवचन भी दिए गए हैं। इनके बैंत तसव्वुफ़ के गहन सिद्धांतों से ओतप्रोत है। इन पर फ़ारसी के प्रसिद्ध सूफ़ी शायर रूमी की मसनवी का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। कुछ बैंतों में इन्होंने सिंध की प्रसिद्ध प्रेम-गाथाओं की ओर संकेत कर उनके आधार पर अपने दार्शनिक विचारों को प्रकट किया है। इनके बैंतों की कई पंक्तियाँ जीवन की अनुभूतियों से पूर्ण होने के कारण सिंधी-जनता में कहावतों की तरह प्रसिद्ध हो चुकी हैं। भावपक्ष तथा कलापक्ष की दृष्टि से इनकी रचना का सिंध के परवर्ती सूफ़ी-कवियों पर पर्याप्त मात्रा में प्रभाव पड़ा है।

शाह अब्दुल लतीफ *(सिं० ले०)* [जन्म—1689 ई०, मृत्यु—1752 ई०]

शाह अब्दुल लतीफ सिंध के सूफी सत कवियो के शिरोमणि है। इनका जन्म हैदराबाद जिले के हाला हवेली नामक गाँव मे हुआ था। विद्वाना का मत है कि इन्होने किसी मकतब मे नियमपूर्वक जाकर शिक्षा प्राप्त नही की थी।

इन्होने सूफी दरवेशो, साधु-सन्यासियो और योगी-महात्माओ के सग से आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त किया था। सिंध और उसके निकटवर्ती प्रदेशो के भ्रमण से भी इन्हे काफी अनुभूति प्राप्त हुई थी जिसका वर्णन इनके काव्य मे मिलता है। पिता की मृत्यु के पश्चात् जीवन के अतिम वर्षा मे ये कुटुब और शिष्यो के साथ एक 'भिट' (टीले) पर निवास-स्थान बनाकर रहने लगे थे और वही इनकी मृत्यु हुई थी। इनकी दरगाह उसी भिट पर बनी हुई है जहाँ हर साल मेला लगता है। भिट पर जाकर रहने के कारण इस सूफी सत कवि को 'शाह लतीफ भिटाई' भी कहते हैं।

इनका कलाम जिस ग्रथ मे सग्रह किया गया है, उसे 'शाह जो रिसालो' (दे०) कहते हैं। सपूण काव्य अलग-अलग अध्यायो मे विभाजित है जिसे 'सुर' कहा गया है। इनके काव्य के कई सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इस कवि पर जितने आलोचनात्मक ग्रथ मिलते हैं उतने और किसी भी सिंधी-कवि अथवा लेखक पर नही मिलते।

इन्होने अपनी कृति मे प्राय सिंध की प्रसिद्ध प्रेमगाथाओ से पात्रो और घटनाओ को चुनकर उनके आधार पर आध्यात्मिक रहस्यो की ओर सकेत किया है। इस काव्य-ग्रथ मे पात्रो का मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण, प्रादेशिक दृश्यो और रीति-रिवाजो का यथार्थ और प्रभावपूर्ण चित्रण, सिंध-देश के लिए प्रेम की अभिव्यक्ति, दलित और पीडित मनुष्यो के साथ सहानुभूति, विश्व-कल्याण के उद्गार आदि भी यथास्थान सुदर ढग से अभिव्यक्त किए गए है। इनकी भाषा और काव्यशैली का परवर्ती सिंधी साहित्य पर बहुत अधिक प्रभाव पडा है। न केवल पढे लिखे और विद्वान् लोग इनमे प्रभावित हैं, अपितु ग्रामीण और अशिक्षित लोग भी इनकी काव्य-कृति से प्रभावित हैं। 'शाह जो रिसालो' सिंधी-साहित्य की सर्वोतम कृति मानी गई है।

शाह, चुन्नीलाल वर्धमान *(गु० ले०)* [जन्म—1887, मृत्यु—1966 ई०]

ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासकार के रूप मे ख्यातिप्राप्त क० मा० मुशी (दे०) के समवयस्क चुन्नीलाल शाह ने अपने जीवन का अधिकाश भाग (लगभग 35 वर्ष) 'प्रजाबधु' का सपादन करते हुए बिताया। 'प्रजाबधु' के बद होने पर ही ये 1955 ई० मे सेवा-निवृत्त हुए। गुजराती पत्रकारिता के इतिहास मे ये सर्वप्रथम व्यक्ति थे जिन्होने 'साहित्यप्रिय' उपनाम धारण कर वर्षों तक ग्रथ विवेचन और साहित्य-चर्चाएँ प्रस्तुत की। गुजराती पत्रकारिता के क्षेत्र मे तो वस्तुत साहित्य-चर्चा के ये ही आदि सस्थापक थे। साहित्य सृजन के क्षेत्र मे भी एक लबे अर्से तक अनवरत रूप से क्रियाशील रह कर इन्होने अनेक उपन्यास लिखे। ऐतिहासिक उपन्यासो मे 'कर्मयोगी', 'नीलकठनू बाण' तथा 'रूपमती' अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। 'विषचक्र', 'तपोवन' व 'कटक छायो पथ' इनके प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है। इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध व पठित उपन्यास 'जिगर अने अमी' है जिसमे इन्होने बडी चतुराई से प्रेतविद्या की चमत्कारपूर्ण अर्द्ध-आध्यात्मिकता और अर्द्ध-वास्तविकता को सग्रथित किया है। स्व० चुन्नीलाल शाह की भाषा-शैली सरल, स्वस्थ व रोचक है। इनके ऐतिहासिक उपन्यासो मे पात्र-कल्पना और वातावरण सृजन सदा यथार्थ के निकट रहे है। इनके आदर्शवादी उपन्यासो मे वस्तु-सगठन शिथिल होने पर भी शैली की प्रवाहात्मकता व सरलता विशेष आकर्षण का विषय रही है।

शाह जो रिसालो *(सिं० कृ०)*

यह सिंधु के प्रसिद्ध सूफी कवि शाह अब्दुल लतीफ (दे०) (1689-1752 ई०) का काव्य है। इसके कई सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। पाकिस्तान के प्रसिद्ध सिंधी-कवि शेख अयाज (दे०) ने इस काव्य का अनुवाद उर्दू पद्य मे किया है। इसके अतिरिक्त अँग्रेज़ी और हिंदी मे भी इस ग्रथ के चुने हुए अशो के अनुवाद उपलब्ध हैं। शाह अब्दुल लतीफ ने इस काव्यकृति मे प्राय सिंधु प्रदेश की प्रेमगाथाओ से पात्रो को चुनकर उनका चरित्र चित्रण करते हुए सूफीमत के अनुसार आध्यात्मिक रहस्यो की व्याख्या की है। प्रासगिक रूप से सिंधु-प्रदेश के विभिन्न स्थानो का प्रकृति-चित्रण और साधारण जनता के जीवन

का आभास भी इस काव्य में द्रष्टव्य है। वर्ण्यविषय को विभिन्न सुरों में विभाजित किया गया है। 'शाह जो रिसालो' सिंधी-साहित्य की अमूल्य निधि है। परवर्ती सिंधी-काव्य पर इस कृति की छाप स्पष्टतः दृष्टिगत होती है। सिंधु के पढ़े-लिखे व अनपढ लोग इस पीयूषवाणी से हमेशा प्रेरणा पाते रहे है।

शाह बहराम हुस्नबानो *(पं० कृ०)*

लेखक—इमामबख्श। यह रचना फ़िरदौसी के 'शाहनामा' की एक कथा पर आधारित कवि इमामबख्श (दे०) के यश का मूलाधार है। इसमें इराक के राजकुमार बहराम जोर, उसकी प्रेमिका हुस्नबानो और सफ़ेद देव तथा उसके मित्र-देवों की चमत्कारपूर्ण कथा है। वातावरण अत्यंत समृद्ध है। देव, दानव और मानव-पात्रों से युक्त इस कथा में अनेक अलौकिक और असंभव घटनाएँ है जिनके कारण औत्सुक्य उत्तरोत्तर वढ़ता जाता है। रचना मे भाव अथवा विचार-पक्ष का अभाव है, केवल घटना-वैविध्य की ही योजना प्रमुख है। 'दवैया' छंद में निबद्ध यह रचना शिल्प और भाव की दृष्टि से सर्वथा सामान्य स्तर की है। लेखक का उद्देश्य जनमनरंजन द्वारा लोक-ख्याति प्राप्त करना है और उसमे वह निश्चय ही सफल हुआ है।

शाह मुहम्मद *(पं० ले०)* [जन्म—1782 ई०; मृत्यु—1862 ई०]

पंजाबी शौर्य के अमर गायक शाह मुहम्मद का जन्म जिला अमृतसर के वडाला नामक स्थान पर हुआ था। ये जाति के कुरेशी थे। काव्य-रचना की प्रवृत्ति इन्हें पैतृक परंपरा से प्राप्त हुई थी। इनके पुत्र हाशम शाह (दे०) भी अच्छे कवि हुए है। इनके अनेक संबंधी महाराजा रणजीत सिंह के दरबारी और सैनिक थे। ये महाराजा की उदार नीतियों के प्रशंसक और स्वयं बड़े उदार-हृदय एवं सहज मानव-प्रेमी व्यक्ति थे। ये मातृभूमि-भक्ति, नीतिज्ञ और व्यवहार-कुशल थे। इनके इस बहुमुखी व्यक्तित्व की झलक इनकी कविता मे स्पष्ट मिल जाती है।

शाह मुहम्मद की प्रसिद्ध रचना 'जंगनामा सिंघा ते फिरंगियां दा' (दे०) है जो पंजाबी-साहित्य में 'किस्सा शाह मुहम्मद' के नाम से भी विख्यात है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा रचित किस्सा 'सस्सी-पुन्नू' एवं कुछ स्फुट पद्य भी मिलते हैं किंतु इनकी ख्याति का मुख्य आधार उपर्युक्त वीर-काव्य ही है।

शाह, राजेंद्र *(गु० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

राजेंद्र शाह मूलतः खेड़ा जिले के कपडवंज नामक स्थान के निवासी है और आजकल बंबई में रह कर एक प्रिंटरी चला रहे हैं। व्यवसाय के विभिन्न क्षेत्रों मे ये घूम आए हैं। कभी शिक्षक हुए, ज्योतिसंघ मे नौकरी की और कभी छोटा-मोटा व्यापार किया; अब मुद्रक बन गए है। देशभक्ति, संवेदनशीलता और साहसिकता इनके चरित्र के प्रमुख लक्षण हैं। विविध व्यावसायिक स्रोतों का अनुभव लेते हुए भी कवि-कर्म से कभी भी विरत नही हुए। अब तक इनके चार कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं: 'ध्वनि' (दे०), 'आंदोलन', 'श्रुति' और 'शांत कोलाहल'। 'ध्वनि' नामक संग्रह में प्रकृति, प्रणय और आत्मसंवेदना से युक्त कविताएँ दृष्टिगत होती है। यों तो कवि संसार की भाँति ही कविता मे भी निरुद्देश्य भ्रमण को स्वीकार करता है पर इसके द्वारा 'मैं' की अभिव्यक्ति कर 'मैं' को प्राप्त करने की क्रिया मे लीन हो जाता है। इसका पारमार्थिक संदर्भ महत्वपूर्ण है। इनकी कविता मे मनोहर भावप्रतीक प्रेम का कोमल स्पंदन प्रस्तुत करते हैं। राजेंद्र की शैली ऐंद्रियता का स्पर्श करती चलती है। 'शांत कोलाहल' मे नाजुकख्याली और गतिशील चित्र प्रस्तुत करने की कवि-क्षमता का अद्भुत परिचय मिलता है। राजेंद्र शाह की कविता का सबसे आकर्षक बिंदु है उनके गीत। कहा जाता है कि न्हानालाल (दे०) और कांत की 'लयहिल्लोल' वाली शैली नवीन अवतार धारण कर राजेन्द्र के गीतों में उतर आई है। इनमे मौलिक कल्पना और उच्चकोटि की भाषा के दर्शन होते हैं। इन्होंने भजनों की शैली में भी गीत-रचना की है; इनकी भाषा में बँगला, मराठी, हिंदी और उसकी बोलियों व उपभाषाओं के अनेक प्रयोग दर्शनीय हैं। इनका 'छलनिर्मल' भावोष्म और परंपरित संवादशैली मे लिखा गया प्रणयकाव्य है। 'शांत कोलाहल' में आकर इनकी शैली काफ़ी परिपक्व और प्रौढ़ हो गई है। नवीनतर गुजराती कवियों में राजेंद्र शाह का अपना एक अनूठा स्थान है।

शाह, श्रीकांत *(गु० ले०)* [जन्म—1936 ई०]

इनका जन्म वाँटवा (सौराष्ट्र) में हुआ तथा

प्राथमिक शिक्षा-दीक्षा भी वहीं पर हुई थी। इसके बाद एम० ए० तक इन्होंने अध्ययन किया था। सप्रति ये विवेकानद आर्ट्स कालेज मे मनोविज्ञान के प्राध्यापक है। साहित्य-जगत् मे इनका प्रवेश 'अस्ती' नामक उपन्यास से हुआ था। 'श्रीकात शाह' (काव्य-सग्रह), 'त्रिजोमाणस' (उपन्यास) तथा 'तिराड अने एकाकिओ' इनकी अन्य साहित्यिक कृतियाँ है जिनस इन्होंने क्रमश कवि, उपन्यासकार तथा नाटककार के रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त की है। साहित्य के अतिरिक्त चित्रकला, फिल्म तथा शिल्प-स्थापत्य म भी इनकी रुचि है।

ये बुद्धिवादी है किंतु बौद्धिकता के प्रति अनन्य आस्था होने पर भी इन्होंने भावना का विरोध नहीं किया। हाँ, एकातिक भावनावाद अथवा बुद्धिवाद की स्थिति इन्हे स्वीकार्य नहीं है।

शाह, साबित अली *(सि० ले०)* [जन्म—1740 ई, मृत्यु—1810 ई०]

सैयद साबित अली शाह मूलत मुलतान के निवासी थे। बाद मे ये सिंध के सेव्हण नामक नगर मे आकर रहे थे। ये सिंधी, उर्दू, अरबी और फारसी के अच्छे विद्वान् थे। इन्हे बचपन से ही मदाहे कसीदे आदि रचकर गाने का शौक था। उर्दू और फारसी-शायरो के लिखे हुए मरसिये पढने के पश्चात् ये सिंधी मे मरसिये लिखने लगे थे। इन्होंने सिंधी उर्दू और फारसी भाषाओ मे काव्य-रचना की है जो 'कुलयात' या 'गज' नाम से प्रसिद्ध है। इनके काव्य की भाषा बोलचाल वाली, मुहावरेदार और प्रभावपूर्ण है। य पहले सिंधी कवि है जिन्होंने फारसी छदों के आधार पर सिंधी में मरसिये और कसीदे लिखे है। अपने समकालीन कुछ सिंधी कवियो और विद्वानो पर व्यग्यपूर्ण कविताएँ लिखन वाले भी ये प्रथम कवि है। इनकी इस प्रकार की कविताएँ 'चिणिग' (चिनगारी) नाम से सग्रह की गई हैं। सिंधी-काव्य-जगत् मे ये प्रभावपूर्ण मरसिये लिखने के कारण ही प्रसिद्ध है। इनके मरसिये आज भी अनेक सिंधी मुसलमानों को कठस्थ हैं।

शाह हुसैन *(प० ले०)* [समय—1539-1599 ई०]

ये लाहौर के प्रसिद्ध सूफी सत थे। इनके पिता का नाम शेख उसमान था जो जुलाहे का कार्य करते थे। आरभ मे शाह हुसैन इस्लाम धर्म के कट्टर अनुयायी थे किंतु बाद मे इनका झुकाव सूफी-मत की ओर हो गया। पहले इन्होंने शाह अबूबकर को अपना धर्मगुरु बनाया किंतु कालातर मे सूफी-सत बहलोल के शिष्य हो गए। एक प्रचलित किंवदती के अनुसार इन्हे माधोलाल नामक एक हिंदू बालक से बहुत प्रेम था अत इनका नाम 'माधोलाल हुसैन' प्रसिद्ध हो गया। किंतु डॉ० मोहनसिंह ने 'हिस्टरी आफ दि सिख लिट्रेचर' मे इसका खडन किया है। कुछ विद्वानो के मतानुसार ये सदा लाल वस्त्र धारण करते थे, इसी कारण लोग इन्हे लाल हुसैन कहा करते थे।

पजाबी मे शाह हुसैन द्वारा रचित काफियाँ, राग, सबद तथा दोहे प्रसिद्ध है। विशेषत 'काफियाँ' ही इनकी ख्याति का प्रमुख आधार हैं। इनके काव्य का एकमात्र विषय अलौकिक प्रेम है। भावावेश मे आकर जब ये प्रभु-प्रेम का गान करते थे तो इनकी चेतना आनद-लोक मे विलीन हो जाती थी। इनकी कविता रागात्मक लालित्य के अतिरिक्त भाषागत माधुर्य एव सगीतात्मक गुणो से भी युक्त है। उदाहरण—

मन अटकिआ बेपरवाह दे नाल।
उस दीन दुनी दे शाह दे नाल॥
काजी मुआ मत्तो देंदे, खरे सिआने राह दसेंदे।
इश्क नू की लग्गे राह दे नाल। मन अटकिआ…

शाहाणी, दयाराम गिदूमल *(सि० ले०)* [जन्म—1857 ई०, मृत्यु—1927 ई०]

दयाराम का जन्म सिंध के एक धनाढ्य जमींदार वश मे हुआ था। ये बचपन से ही असाधारण प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। विद्यार्थी-जीवन मे ही इन्होंने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय दिया था। बबई विश्वविद्यालय से बी० ए०, एल-एल० बी० की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करने के पश्चात् ये न्याय-विभाग मे कार्य करने लगे थे और 1911 ई० मे न्यायाधीश के पद से निवृत्त हुए थे। ये अपने समय के महान् समाज-सुधारक थे। इन्होंने सामाजिक कुरीतियों को नष्ट करन तथा स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए कमर कस ली थी। साहित्य के क्षेत्र म ये सिंधी के आरभिक गद्य-लेखको मे मे एक हैं। इनकी अधिकाश रचनाएँ आध्यात्मिक विषयो पर हैं। 'मन लाइ चाबुक सें रिहाण' दयाराम जी की आत्मिक भावो मे पूर्ण पद्यात्मक गद्य म लिखित प्रसिद्ध कृति है। इसक अतिरिक्त इन्होंने श्रीमद्भगवतगीता (टि० गीता), 'जप जी साहिब', 'सुखमणी साहिब' और 'पतजलि-योग-दर्शन' पर भी सुदर

व्याख्यात्मक ग्रंथ लिखे हैं, जो प्रांजलता और गंभीरता से पूर्ण गद्य-शैली के सुंदर उदाहरण हैं। दयाराम की भाषा मँजी हुई और प्रसादगुण से पूर्ण है जिसमें मुहावरों का यथोचित प्रयोग मिलता है।

शिखरिणी *(हिं० छं०)*

शिखरिणी छंद में सत्रह वर्ण होते हैं। इनमें 6 और 11 वर्णों पर यति होती है। वर्णों का विन्यास यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, लघु और गुरु के क्रम से होता है। उदाहरण—

अनूठी आभा से, सरस सुषमा से सुरस से,
बना जो देती थी, वह गुणमयी भू विपिन को।
निराले फूलों की, विविध दलवाली अनुपमा,
जड़ी बूटी हो हो, बहु फलवती थी विलसती।
(हरिऔध : प्रियप्रवास)

शिट्रिलक्कियम *(त० पारि०)*

शिट्रिलक्कियम तमिल साहित्य की एक विधा है। इसमें प्रबंध काव्य तथा प्रगीत-काव्य के कुछ तत्त्व होते हैं। इसका आकार प्रगीत से विस्तृत होता है। इसमें धारावाहिक कथा नहीं होती है। इसे वर्णनात्मक काव्य का एक रूप कहा जा सकता है। इस प्रकार की कृतियों में किसी व्यक्ति, स्थान या घटना का वर्णन होता है। उदाहरणतया 'किळिप्पत्तु' नामक कृति के दस पदों में तोते के बाह्य सौंदर्य और उसके जीवन का वर्णन है। तमिल में शिट्रिलक्कियम के अनेक रूप प्राप्त होते हैं जैसे—उला, मडल, भरणी, पळ्ळु, कुरवंजि (दे०), पिळ्ळैत्तमिल (दे०), मेयकीर्त्ति, अरलाट्ट, वंजि, किलिक्कण्णी, नोंडि नाटकम् (दे०) आदि।

शितू *(म० पा०)*

गो० नी० दांडेकर (दे०) के उपन्यास और उन्हीं के नाटक 'शितू' की नायिका का वास्तविक नाम है सीता। इस अनाथ मातृविहीन आदिवासी लड़की को, जो अपने घरवालों से बिछुड़ जाती है। समुद्र के किनारे से नायक विश्वनाथ का पिता अप्पा उठा लाता है, उसका पालन-पोषण करता है। यहाँ आने से पूर्व ही वह अकाल विधवा हो जाती है क्योंकि उसकी वय के सातवें वर्ष में ही उसका पति मर जाता है। इस घर में वह दासी के समान अथक परिश्रम करती है, सबकी सेवा करती है। नायक के साथ रहने और समवयस्क होने के कारण दोनों का परस्पर प्रेम हो जाता है पर वह जानती है कि सामाजिक रूढ़ियों, जातिभेद एवं विधवा होने के कारण उनका विवाह नहीं हो सकेगा। दोनों के पिता भी इस विवाह के विरुद्ध हैं, अतः प्रेमी को अपमान से बचाने, सामाजिक मर्यादा का पालन करने के लिए वह स्वयं आत्मघात कर लेती है और विश्वनाथ इस आघात को न सह सकने के कारण पागल हो जाता है। यह युवती प्रेमी के लिए सर्वस्व बलिदान करने वाली आदर्श युवतियों की परंपरा में आती है।

शिथिल वल्गा *(उ० कृ०)*

'शिथिल वल्गा' रबिसिंह (दे०) का कविता-संग्रह है। इसमें विप्लवी का विद्रोही स्वर मिलता है। इसमें 'युद्धं देहि' का आह्वान नहीं; वरन् कहीं-कहीं एक प्रकार का क्रंदन सुनाई पड़ता है। इसके आक्रोश के तार-तार में अभिमान है, किंतु अपने अतिरिक्त किसी के ध्वंस की कामना नहीं है। दारुण दुःख का चित्रण इसमें है, किंतु समाधान नहीं है। इसकी शिथिलता चिरंतन न होकर नूतन साहस और शक्ति-संचय के लिए है।

इस रचना में आधुनिक कविता की दुर्बोधता नहीं है और न नवीन प्रयोग के नाम पर अनर्गलता ही है। स्वाभाविक छंदोमयता से प्रत्येक कविता परिपुष्ट है। इन कविताओं का रंग कल्पना-प्रसूत नहीं, जीवन की प्रत्यक्षानुभूति से उद्भूत है। भाषा नितांत स्वाभाविक है। इसमें भाव और अभिव्यक्ति एक है।

शिबली *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1857 ई०; मृत्यु—1914 ई०]

मौलाना शिबली निअमानी आज़मगढ़ में पैदा हुए। आरंभिक शिक्षा समाप्त कर इन्होंने मौलवी फ़ारूक़ से साहित्य तथा दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया। इन्होंने कुछ समय वकालत की और उसके बाद अलीगढ़ में प्राध्यापक रहे। यहाँ पर इन्होंने फ्रेंच भाषा का अध्ययन किया। बाद में इन्होंने टर्की, मिस्र, शाम आदि देशों की यात्रा की। सरकार ने इन्हें 'शम्सुलउलमा' की उपाधि प्रदान की। कुछ समय तक हैदराबाद में निवास करने बाद ये लखनऊ

आए और यहाँ 'दारुल-अलूम' की दशा सुधारने मे लग गए। अपनी आयु के अतिम भाग मे इन्होने 'सीरत-उल-नबी' (दे०) के सकलन का दायित्व स्वीकार किया किंतु उसके समाप्त होने से पूर्व ही इनका देहात हो गया।

इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'शरुल अज्मू', 'इल्मुल-कलाम', 'अल्मामून', 'अल्फारूक', अल्फजाली', 'स्वानिअ उम्री', 'मौलाना रूम' और 'रसायिल-ए-शिबली'। इनकी ख्याति अधिकतर दार्शनिक आलोचना तथा शोध-कार्य के कारण है। भाषा मे प्रसाद गुण और अर्थगाभीर्य दोनो विद्यमान है। शैली मे कवित्व कूट-कूट कर भरा है। 'मुवाजनए-अनीस ओ दबीर' इनकी वास्तविक रुचि का परिचायक है। इन्होने उर्दू, फारसी दोनो भाषाओ मे काव्य रचना की है। भाषा शैली सजल, आकर्षक तथा काव्य गुण से परिपूर्ण है।

शिरस्तेदार *(म० कृ०)* [रचना काल —1881 ई०]

विनायक कोण्डदेव ओक के इस लघु सामाजिक उपन्यास का विषय है उन्नीसवी शती के उत्तरार्ध मे महाराष्ट्र के कर्मचारी वर्ग मे फैली हुई रिश्वतखोरी। पुस्तक का विषय सीमित है। यदि लेखक ने आधारभूमि तनिक विस्तृत बनाई होती तो तत्कालीन समाज का यथार्थ चित्र अधिक प्रत्ययकारी हो सकता था। फिर भी रिश्वतखोरी के दुष्परिणामो पर प्रकाश डालने मे उपन्यासकार सफल रहा है। भाषा और शिल्प की दृष्टि से यह रचना सामान्य है।

शिरुकाप्पियम् *(त० पारि०)*

'शिरुकाप्पियम्' का शाब्दिक अर्थ है लघु महाकाव्य। महाकाव्य की तुलना मे शिरुकाप्पियम् का वर्ण्य विषय अपूर्ण प्रतीत होता है। महाकाव्य मे पुरुषार्थ चतुष्टय का वर्णन होता है जबकि इसमे दो या तीन पुरुषार्थो का वर्णन किया जाता है। आकार की लघुता एव विषय के सीमित होने के कारण इसमे महाकाव्य के समान विविध वस्तु-वर्णन के विस्तार का अवकाश नही रहता। यद्यपि इसमे महाकाव्य के अनेक तत्त्व प्राप्त होते हैं तथापि वह महाकाव्य का लघु रूप नही है, एक स्वतत्र काव्य विधा है। इसका रूप बहुत कुछ वर्तमान कथा-काव्यो का-सा है। इस विधा म रचित कृतियो मे एक सहस्र से अधिक पद भी हो सकते है। ईसा की पाँचवी से आठवी शती तक इस विधा को पर्याप्त प्रसिद्धि मिली थी। अनेक उच्चकोटि के कवियो ने शिरुकाप्पियम् की रचना की थी। आज इस विधा मे काव्य-रचना करने वाले कवि बहुत कम है। वर्तमान समय मे इसका स्थान कथाकाव्यो ने ले लिया है।

शिरूरकर, विभावरी, *(म० ले०)* [जन्म —1906 ई०]

विभावरी शिरूरकर नाम से साहित्य की रचना करने वाली श्रीमती मालतीबाई बेडेकर का जन्म बुलाबा जिले के आवास नामक गाँव मे एक साधारण परिवार म हुआ था। सुधारक पिता एव कर्मठ माता की पुत्री ने 1923 ई० मे बी० ए० तथा 1928 ई० मे एम० ए० कर कुछ समय तक पूना मे अध्यापन किया और फिर सोलापुर के क्रिमिनल सेंटलमेट (अपराधी जाति की बस्ती) के निरीक्षक रूप मे कार्य किया। भारत-सेवक समाज की सदस्या बन कर इन्होने यह कार्य बडी लगन से किया। तीन कथा-सग्रह, दो नाटक और चित्रपट-कथाओ के अतिरिक्त इन्होने अब तक पाँच उपन्यास लिखे है। सामाजिक क्राति की विचारधारा को कलापूर्ण शैली मे निर्भीकतापूर्वक व्यक्त करने, यथार्थवाद से गदगी और अश्लीलता को अलग रखने, मानव-जीवन का मार्मिक तथा सहानुभूतिपूर्ण अवलोकन करने बाह्य सघर्ष के स्थान पर मानसिक द्वद्व का चित्रण करने, स्त्री हृदय की आशा-आकाक्षा, पीडा आदि को आत्मीयतापूर्वक चित्रित करने के लिए इनका कथा-साहित्य विख्यात है। इनकी भाषा-शैली सुकुमार, मधुर और रसभीनी है। कला का पूर्ण विकास होते हुए भी इनकी कृतियाँ पलायनवादी नही है। मुख्य रचनाएँ हैं—'हिंदोळ्यावर' (झूले पर), 'विरलेलें स्वप्न' (नष्ट स्वप्न), 'बळी', 'जाई', 'दोघाचें विश्व' (दोनो का ससार), 'कळ्याचे नि श्वास' (कलियो के नि श्वास)।

शिलप्पदिकारम् *(त० कृ०)* [रचना-काल—अनुमानत ईसा की दूसरी तीसरी शती]

'शिलप्पदिकारम्' तमिल का प्रथम महाकाव्य है और इसके रचयिता हैं इळगोवडिहळ। तमिल 'शिलबु' का अर्थ है 'नूपुर'। इस महाकाव्य की सपूर्ण कथा नूपुर के चारो ओर घूमती है, अत इसे 'शिलप्पदिकारम्' (नूपुर-कथा) कहा गया। इस महाकाव्य के नायक-नायिका हैं कोवलन और कण्णकि। कुछ विद्वान कोवलन-कण्णकि की कथा को तत्कालीन समाज मे प्रचलित लोक-कथाओ से

गृहीत मानते हैं तो कुछ उसे कवि-कल्पना-प्रसूत मानते है। यह महाकाव्य 'पुहारक्कांडम', 'मदुरैक्कांडम', वंजिक्कांडम' नामक तीन कांडों मे विभाजित है जिनमे क्रमशः चोल, पांड्य और चेर राज्यों का वर्णन है। इसमे कवि ने तत्कालीन तमिल समाज का सजीव चित्र प्रस्तुत करने के साथ-साथ समाज मे प्रचलित नृत्यों, व्यवसायों आदि का परिचय भी दिया है। नृत्य एवं संगीत की चर्चा करते समय कवि ने रंगमंच औरु राग-रागिनियों का सूक्ष्म विवेचन किया है। इस महाकाव्य के विभिन्न कांडों में क्रमशः शृंगार, करुण और वीर रस की अभिव्यंजना है। तमिल विद्वानो द्वारा मान्य साहित्य के तीन अंग 'इयल' (काव्य), 'इशै' (संगीत) और 'नाडहम्' (नाटक-नृत्य) इस महाकाव्य मे प्राप्त हो जाते है। संघ-साहित्य मे उल्लिखित पाँच भू-भागों का वर्णन भी इस महाकाव्य मे मिल जाता है। संघकाल मे प्रगीत-काव्यों की प्रचुरता रही। परवर्ती काल मे वर्णनात्मक काव्य लिखे जाने लगे। 'शिलप्पदिकारम् मूलतः वर्णनात्मक काव्य है परंतु इसके कुछ अंश प्रगीत-काव्य के समान प्रतीत होते है। इस महाकाव्य की भाषा अत्यंत सरस, सरल और परिष्कृत है। शैली प्रवाहमयी है। कही-कही कवि ने लोकगीतों की शैली का प्रयोग किया है। इस कृति पर अनेकानेक टीकाएँ लिखी चा चुकी है।

शिला तीर्थ (उ० कृ०)

'शिलातीर्थ' चित्तरंजनदास (दे०) की यात्रा-संबंधी रचना है। लेखक ने हिमालय के सान्निध्य मे जो कुछ अनुभव किया है वही इसमे शब्दबद्ध है। इसमे तीर्थ-दर्शन नही, हिमालय-दर्शन प्रमुख है। केदारनाथ तुगनाथ एवं बदरीनाथ इन तीन तीर्थो का इसमे वर्णन है। केवल प्रकृति-वर्णन या तीर्थ-वर्णन रचनाकार को अभीष्ट नहीं अतः सुख-दुःख से परिपूर्ण, मलिनता व उज्ज्वलता के छाया-प्रकाश से आकर्षक इस धरती के जीवन की झाँकियाँ भी दिखाई गई हैं। हिमालय की गोद मे अवस्थित छोटे-छोटे रमणीय गाँवो की अबाध जीवनधारा इसमे रूपायित है। चल-अचल, प्रकृत सौंदर्य की अपेक्षा अनंत जीवन-धारा का चिर सौंदर्य लेखक को अधिक मुग्ध करता है। सर्वत्र वैचारिक, गांभीर्य की व्याप्ति इसमे मिलती है।

विषयवस्तु के अनुरूप भाषा व शैली सशक्त है। उसमे विचारो के भार-वहन की शक्ति के साथ दृश्याकन की चित्र-विधायिनी शक्ति भी है। प्रत्यक्षानुभूति के कारण इसमें एक भास्वरता है। संक्षेप में यह एक सशक्त रचना है।

शिल्पतीर्थ (उ० कृ०)

'शिल्पतीर्थ' सौंदर्य-आराधक, कलाप्राण चित्रकार विनोद राउतराय (दे०) के तीर्थाटन का स्मारक है। इस भ्रमण-साहित्य में शिल्पी विनोद राउतराय के दस यात्रा संस्मरण संकलित है। शांतिनिकेतन में पढ़ते समय कलाकार ने इन सास्कृतिक कलात्मक गौरवस्थलों की यात्रा की थी जो चित्रकार के लिए तीर्थाटन सदृश पुण्यावह है। कवि हत-गौरव उन अवशेषों में पहुँचकर अतीत की न जाने किन उजली-धुँधली वीथियों में खो जाता है। वर्तमान का कठोर यथार्थ आत्महारा शिल्पी को झकझोर देता है—किंतु फिर भी जैसे शिल्पी की विकल चेतना कहीं कुछ पा लेना चाहती हो। वह उज्ज्वल अतीत, मलिन, वर्तमान, अज्ञात भविष्य की उलझी रेखाओं में स्वयं उलझ जाता है। अनजाने में लेखक ने अनेक प्रश्न उठाये है—सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सांस्कृतिक आदि सभी पक्षों पर। चित्रकार की सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति तथा कला-संबंधी गंभीर अवबोध, सर्वत्र स्पष्ट है। भाषा अपनी रमणीयता, मूर्ति-विधायिनी शक्ति एवं उड़िया सुषमा से प्राणवंत है। इन स्मृति-चिह्नों के अंकन में कवि की आवेगमयी भावनाएँ तरल होकर काव्यमयी हो गई है; फलतः अंतिम तीन कविताओं की सृष्टि हुई है। वस्तुतः अपने ढंग की यह अनूठी रचना है।

शिव (रुद्र) (सं० पा०)

शिव (रुद्र) को सृष्टि-संहार का देवता माना गया है। इसका निवास-स्थान मूजवत् (मुँजवान्) पर्वत अथवा मेरुपर्वत बताया गया है और इसका प्रिय निवास-स्थान काशी मे स्थित श्मशान कहा जाता है। इसका वाहन नंदिकेश्वर नामक वृषभ है। प्रमुख अस्त्र विद्युन् (विद्युत्-शर) है। वेदों में इसे हिंसक पशु के रूप में वर्णित किया गया है तथा इसे व्याधियों का उपशामक एवं प्राणियों का रक्षक भी कहा गया है। जटा और पशु-चर्म धारण करता है। यह निषाद आदि वन्य श्रेणियों का गणपति है। रुद्र के विविध रूप प्रतीत होते हैं—ईशान, भव, शर्व, पशुपति, उग्र, रुद्र और महादेव। 'महाभारत' (दे०) के अनुसार इसकी पत्नी के ये नाम हैं—उमा,

पार्वती (दे०), दुर्गा, कराली आदि। रुद्र के सबध मे अनेक चमत्कारपूर्ण बाते प्रसिद्ध है। इसने गधमादन पर्वत पर अवतीर्ण होने वाली गगा को अपनी जटाओ मे धारण कर लिया। ब्रह्मा का पाँचवाँ सिर इसने अपने दाहिने अँगूठे के नाखून से काट डाला। इसने समुद्र-मथन से निकला हलाहल (विष)-प्राशन किया जिससे इसकी ग्रीवा नीली हो गई। समुद्र मथन से निकला चद्र इसने अपनी जटाओ मे धारण कर लिया। एक दैत्य जो हाथी का रूप धारण कर काशी नगरी मे ब्राह्मणो का विनाश करने मे प्रविष्ट हो गया था, इसने उसका वध किया और उसके चर्म का वस्त्र बनाया। इसने दक्ष के यज्ञ का विध्वस किया तथा त्रिपुरासुर का वध किया। इसे भूत पिशाचो का अधिपति माना जाता है। इसने भक्तो की रक्षा और शत्रुओ के सहार के लिए विभिन्न कल्पो मे विभिन्न अवतार लिए। शिवलिंग की उपासना का निर्देश श्वेताश्वेतर उपनिषद्' तथा महाभारत' (दे०) से मिलता है। मोहन-जोदडो तथा हडप्पा मे शिव की अत्यधिक प्राचीन मूर्तियाँ मिली है।

शिव की उपासना के निम्नोक्त तीन प्रमुख सप्रदाय माने जाते है—कापालिक, पाशुपत और शैव। शिव (रुद्र) भारतीय सस्कृति का अनेक दृष्टियो से एक महत्त्वपूर्ण प्रतीक माना जाता है।

शिवकामियिन शपदम् *(त० कृ०)*

'शिवकामियिन शपदम्' कृष्णमूर्ति 'कल्कि' (दे०) के ऐतिहासिक उपन्यासो म सर्वश्रेष्ठ है। पल्लव सम्राट् महेंद्रवर्मन् और उसके पुत्र नरसिंहवर्मन् के शासन-काल से सबधित कुछ घटनाओ, कुछ ऐतिहासिक तथा विभिन्न काल्पनिक पात्रो की सहायता से लेखक ने इस उपन्यास की रचना की है। इस उपन्नास मे घटनाओ के वर्णन की अपेक्षा पात्रो के चरित्र-चित्रण को अधिक महत्व दिया गया है। काल्पनिक पात्रो मे प्रमुख है आयन शिर्पी, शिव कामी और नाहनदी। ऐतिहासिक पात्रो मे प्रमुख हैं महेंद्र-वर्मन् और नरसिंहवर्मन्। इसमे इतिहास के काल विशेप मे कलाओ और धर्मों की स्थिति का अकन बडे मनोयोग-पूर्वक किया गया है। अपने ऐतिहासिक उपन्यासो द्वारा 'कल्कि' ने तमिल मे ऐतिहासिक उपन्यासो का मार्ग प्रशस्त किया है। यह उनके ऐतिहासिक उपन्यासो मे सर्वश्रेष्ठ है।

शिवक्कोषुदु, देसिहर *(त० ले०)* [समय—उन्नीसवी शती के पूर्व भाग तक]

तजौर शहर के मराठा शासको मे सुप्रसिद्ध राजा शरफोजी इस कवि के आश्रयदाता थे। इनके सम्मान मे इन्होने 'चरपेंतिरप्पाल कुरवजि' (शरभेंद्र भूपालक पर एक विशिष्ट छदोवद्ध रचना) नामक गेय पद्य-कृति की रचना की थी। ये निपुण वैद्य भी थे।

इनकी काव्यकृति उपर्युक्त 'कुरवजि' (दे०) की पद्य विधा एक विशिष्ट परपरा से सवधित है। प्रेम विह्वल नायिका के गुरुजन उसकी पीडा-निवारण के लिए एक भविष्यवक्ता पहाडिन को घर म बुला लेते है जो अपना परिचय, नायिका की पीडा का अनुमानित कारण तथा उसके परिहार के तरीके इत्यादि बातें उन्हे समझा देती है। पहाडिन की यह भविष्यवाणी 'कुरवजि' की आधारभूत कथा-वस्तु है। प्रस्तुत कृति मे पहाडिन द्वारा नायिका के प्रेम के आलबन रूप राजा शरभेंद्र का वहुमुखी गौरव-गान प्रकट किया गया है। एक विशेपता और है कि इसके पद्य तमिल सगीत के रागो के अनुकूल गाने योग्य लयवद्ध रूप से रचित हुए है।

लेखक की अन्य रचनाएँ 'कोटीच्चुरक्कोवै' तथा पेरुयुटैयारउला' जो मदिरो की शिवमूर्तियो पर परपरा-बद्ध स्तुति-गीत हैं। 'चिक्कनैरिप्पिकाचम्' नामक शैव सिद्धात प्रतिपादक ग्रथ भी इनके द्वारा रचा हुआ माना जाता है।

शिवगणप्रसादि महादेवय्या *(क० ले०)*

दे० महादेवय्या।

शिवतत्त्वसारमु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—बारहवी शती ई०]

इसके लेखक मल्लिकार्जुन पडिताराध्य (दे०) है। ये शैवधर्म की एक शाखा के प्रवर्त्तक थे। शिवतत्त्व-सारमु' एक शतक है। इसमे शिवदीक्षा तथा पाशुपत शैव-सबधी सिद्धातो का विवरण है। वीरशैव धर्म के अनु-यायियो के लिए यह रचना आचार-सहिता के समान है। शिवभक्ति की गरिमा के प्रतिपादन के साथ-साथ अन्य धर्मों का तिरस्कार भी इसमे पाया जाता है। एक सौ आठ मुक्तकों की रचना को तेलुगु मे 'शतक' कहा जाना

है। पर 'शिवतत्वसार' में शिवा, अजा, रुद्रा आदि संबोधनों के साथ समाप्त होने वाले 'कंद' नामक देशी छंद करीब पाँच सौ तक पाए जाते हैं। तेलुगु में उपलब्ध 'शतक' (दे० शतकमु) रचनाओं में यही प्रथम माना जाता है।

शिवतांडवमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1946 ई०]

'शिवतांडवमु' पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु (दे०) की प्रसिद्ध गेय रचना है। इसमें संगीत, साहित्य एवं नाट्य के सभी संकेतों का सरस सम्मिश्रण करके शिव के तांडवनृत्य का वर्णन किया गया है। इस सम्मिश्रण एवं शब्दार्थों की गंभीरता एवं प्रौढ़ता के कारण इस रचना को सुनते समय ऐसा अनुभव होने लगता है मानो साक्षात् शिव के नृत्य को हम देख रहे हों। नृत्य की मंद एवं त्वरित गतियाँ, लय, ताल तथा नाद सभी का आभास इस रचना के पाठक को हो जाता है। अर्थ की गंभीरता, संस्कृत-निष्ठा एवं सशक्त शैली तथा उदात्त भावना के कारण यह कृति नटराज शिव का मानसिक साक्षात्कार कराने में समर्थ हो जाती है। इसमें एक गेयवृत्ति ने नाटक का रूप धारण कर लिया है।

शिवनाथ शास्त्री *(बँ० ले०)* [जन्म—1847 ई०; मृत्यु—1919 ई०]

बंकिमचंद्र (दे० चट्टोपाध्याय) के परवर्ती प्रबंधकारों में सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं शिवनाथ शास्त्री। तत्कालीन बँगला देश के प्राण-स्पंदन का यदि अनुभव करना हो तो शिवनाथ शास्त्री के हृदय-देश के यथार्थ अनुसंधान मे प्रवृत्त होना होगा। इनकी 'रामतनु लाहिड़ी ओ तत्कालीन बंग समाज' (दे०), 'आत्मचरित', 'महान् पुरुषदेर सान्निध्ये' आदि रचनाओं मे उस युग की सामाजिक, राष्ट्रीय, धार्मिक एवं साहित्यिक चिंतनधारा का परिचय मिलता है। केवल प्रबंधकार के रूप में ही नहीं, कवि तथा उपन्यासकार के रूप में इन्हें प्रतिष्ठा मिली थी। इनका पहला काव्य है 'निर्वासितेक आत्मविलास' (1881 ई०), दूसरा काव्य 'पुष्पमाला' (1975 ई०) एक सौ कविताओं का संकलन है। 'पुष्पांजलि' (1888 ई०) एवं 'छायामयी परिणय' (1889 ई०) उस युग में विशेष समादृत हुई थी। 'मेजबौ' (1980 ई०) इनका पहला उपन्यास है। 'युगांतर' (1895 ई०), 'नयनतारा' (1899 ई०) से इन्हें विशेष औपन्यासिक ख्याति मिली थी।

शिवपादसुंदरम्, सो० *(त० ले०)* [जन्म—1912 ई०]

इनका जन्म लंका में हुआ। अँग्रेजी, संस्कृत, लातीनी और सिंहली भाषा का भी इन्हें अच्छा ज्ञान है। 'कुडि इयल', 'ओलिपरप्पु कलै', 'माणिक्कवाशगर अडिच्चुवट्टिल', 'गौतम बुद्धर अडिच्चुवट्टिल' इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ है। ओलिपरप्पुकलै प्रसारण-कला-संबंधी साहित्यिक कृति है जिस पर इन्हें मद्रास सरकार का पुरस्कार मिला। अंतिम दो कृतियों में उन स्थानों का वर्णन है जहाँ क्रमशः माणिक्कवाशगर (दे०) और गौतम बुद्ध हो गए थे। ये वर्णन अत्यंत सजीव है क्योंकि लेखक ने स्वयं संबद्ध स्थानों का भ्रमण करके इन कृतियों की रचना की थी। शिवपादसुंदरम् लंका-निवासी तमिल साहित्यकारों में विशेष उल्लेखनीय है।

शिवप्रसाद सितारेहिंद *(हिं० ले०)* [जन्म—1823 ई०; मृत्यु—1895 ई०]

इनका जन्म काशी में हुआ था। ये बहुभाषाविज्ञ थे तथा इन्हें हिंदी, उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत, बँगला, अँग्रेजी आदि कई भाषाओं का समुचित ज्ञान था। प्रारंभ मे ये हिंदी के सच्चे हितैषी थे और इसी निमित्त इन्होंने 1845 ई० में काशी से 'बनारस अखबार' निकाला था। सरकारी शिक्षा-विभाग में इंस्पेक्टर नियुक्त होने पर इन्होंने न केवल स्वयं विभिन्न विषयों पर सरल तथा परिष्कृत हिंदी में अनेक पाठ्य पुस्तकें लिखी थीं अपितु अन्य व्यक्तियों से भी हिंदी में पाठ्य पुस्तकें तैयार कराई थीं। लेकिन सरकारी नौकर होने के कारण इन्हें अपने अधिकारियों की मर्जी का ध्यान रखना पड़ा था और परिणामतः उर्दू या उर्दू-मिश्रित हिंदी की ओर इनका इतना अधिक झुकाव हो गया था कि ये हिंदी के नाम पर देवनागरी लिपि में उर्दू ही लिखने लगे थे। 'मानव धर्मसार', 'भूगोल हस्तामलक', 'इतिहास तिमिरनाशक', 'राजा भोज का सपना' आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं।

शिवभारतमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—1943 ई०]

इसके लेखक का नाम गडियारमु वेंकटशेषशास्त्री (दे०) है। 'शिवभारतमु' आठ अध्यायों का वीर-

काव्य है। मुसलमानी आक्रमण तथा अत्याचारो के विरुद्ध अपने देश तथा धर्म की रक्षा के लिए राजपूत लोगो ने बहुत कुछ प्रयास किया था। उनके बाद इस महान कार्य के लिए महाराष्ट्र के वीर पुरुष कटिबद्ध होकर खडे हो गए थे। इनमे शिवाजी का नाम सबसे आगे है। 'महाभारत' (दे०) की लडाई मे अर्जुन की तरह मुसलमानी शासको के विरुद्ध लडने मे शिवाजी ने भी अनुपम साहस तथा पराक्रम दिखाया था। इसीलिए इस काव्य का नाम 'शिवभारतमु' रखा गया है। इस काव्य मे शिवाजी के जन्म से लेकर मुसलमानी शासन पर उनकी विजय प्राप्ति तक की कहानी वर्णित है। इसमे उस समय की धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियो का विशद चित्रण पाया जाता है। इन ऐतिहासिक परिस्थितियो के विवरण को सरस काव्य-रूप देने मे लेखक ने अनुपम प्रतिभा दिखाई है। यह केवल काव्य ही नही है बल्कि काव्य-रूपी इतिहास है। उस समय की नाना प्रकार की विषम परिस्थितियो को प्रतिबिंबित करना तथा उक्त परिस्थितियो मे देश और धर्म की रक्षा करने म शिवाजी की निष्ठा और विजय की रूपरेखा प्रस्तुत करना ही 'शिवभारत का लक्ष्य है। इस काव्य के अतर्गत इन सभी बातो का बहुत ही मार्मिक ढग से वर्णन किया गया है। इस तरह यह अष्टादश वर्णन वाले काव्य से भिन्न है। इसकी भाषा प्रौढ है और शैली प्रवाहयुक्त है।

शिवाजी केवल वीर ही नही बल्कि एक महान् देशभक्त भी थे। उनमे वीरता के साथ-साथ परम शात स्वभाव भी विद्यमान था। अत शिवाजी की जीवनी वीरता, देशभक्ति तथा शात स्वभाव की त्रिवेणी कही जा सकती है। इसका सरस, सशक्त तथा विशद वर्णन प्रस्तुत करने मे इस काव्य ने पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

तेलुगु साहित्य के अतर्गत वीरकाव्य और ऐतिहासिक काव्य बहुत कम पाए जाते है। एक सफल ऐतिहासिक वीर-काव्य के रूप म इस कमी को पूरा करने म 'शिवभारतमु' का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

शिवमूर्ति शास्त्री (क० ले०)

पद्मश्री, पडितरत्न श्री वी० शिवमूर्ति शास्त्री जी वर्तमान कर्नाटक के प्रसिद्ध पुरुषो मे हैं। कन्नड के प्रचार प्रसार-कार्य मे एव कर्नाटक के एकीकरण के आदोलन मे इन्होने सक्रिय सहयोग प्रदान किया है। आप अच्छे वक्ता हैं। साहित्य के अतिरिक्त सगीत म भी इनकी विशेष अभिरुचि है। पत्रकारिता के क्षेत्र म इनका कार्य महत्वपूर्ण है। कन्नड के 'वीरशैव-साहित्य' का इन्होने गभीर अध्ययन किया है। आपके कई ग्रथ प्रकाशित हुए है। पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित लेखो की सख्या भी कम नही है। 'राघवाकन काल' (राघवाक समय), 'राघवाकन गुरु-परपरे' (राघवाक की गुरुपरपरा), 'राघवाक काव्यगळु' (राघवाक के काव्य), 'निजगुण शिवयोगी', 'महाकवि षडक्षरदेव', 'सर्वज्ञ कवि', 'साहित्यदल्लि नाटकद स्थान' (साहित्य मे नाटक का स्थान) आदि इनके लेख प्रसिद्ध हैं।

शिवराजभूषण (हि० कृ०)

इस ग्रथ के कर्ता भूषण (दे०) कवि हैं। इस ग्रथ मे काव्य-भूषण अर्थात अलकारो का निरूपण किया गया है और उदाहरण शिवराज (भूषण के आश्रयदाता शिवाजी की स्तुति म रचे गए है। ग्रथ म कुल 384 पद्य है। अलकारो के लक्षण दोहा, छद मे और उदाहरण प्राय वीररस के अनुकूल सवैया और कवित्त छदो म है। इसम एक सौ अर्थालकार, चार शब्दालकार और एक उभयालकार का वर्णन है। भूषण ने दो नये अलकार भी माने है सामान्य-विशेष और भाविक छवि, तथा विरोध और विरोधाभास को इन्होने परस्पर भिन्न अलकार माना उदाहरणो के माध्यम से कवि ने शिवाजी के सवत् 1713-1730 वि० के बीच के जीवन की राजनीतिक तथा सामरिक घटनाओ को प्रस्तुत किया है। इनमे उसने विजयोल्लास, आतक, प्रभुत्व, यश तथा दान की अमर गाथा ओजपूर्ण और फडकती हुई सशक्त वाणी म गाई है। निस्सदेह ये सभी घटनाएँ कवि कल्पना और अतिशयोक्ति के कारण ऐतिहासिक महत्व की नही हैं, फिर भी व्यक्तियो, नगरो और दुर्गो के नाम अवश्य ऐतिहासिक और सत्य हैं, जिनसे इतिहास-लेखको को सहायता मिल सकती है। इनके द्वारा तत्कालीन आतकित जनता को नवीन स्फूर्ति और उल्लास का सदेश मिला होगा, इसम तनिक सदेह नही है। रीतिकाल जैसे शृगाररस-प्रधान युग म वीररस की सफल अभिव्यक्ति के कारण भूषण की गणना राष्ट्र-कवियो म होती है।

शिवराजविजय (स० कृ०) [समय—उन्नीसवी शती का उत्तरार्ध]

सस्कृत के अर्वाचीन गद्य-लेखको म श्री अबिका-

दत्त व्यास का विशेष महत्व है। इनका 'शिवराजविजय' आधुनिक संस्कृत-गद्य-साहित्य की अमूल्य निधि है। व्यास जी का समय 1858 से 1900 ई० तक माना जाता है। 'शिवराज विजय' का प्रकाशन 1901 ई० में काशी में हुआ।

'शिवराजविजय' ऐतिहासिक उपन्यास है। इसकी कथावस्तु तीन विरामों में विभक्त है और प्रत्येक विराम चार विश्वासों में। इसमें छत्रपति शिवाजी के उत्कर्ष एवं मुगलों से संघर्ष का वर्णन है। इसमें शिवाजी का कथानक आधिकारिक है तथा रघुवीरसिंह, गौरसिंह, वीरेंद्रसिंह आदि की प्रासंगिक कथाएँ उसे पुष्ट करती हैं।

रोचकता की दृष्टि से 'शिवराजविजय' आधुनिक उपन्यासों से किसी भी मात्रा में कम नहीं है। उसमें विशद वर्णनों के साथ घटनाओं में तीव्रता भी है। उनकी शैली प्रौढ़ तथा प्रसाद गुण से युक्त है। उसमें दंडी (दे०) तथा बाण (दे०) की शैलियों का प्रभाव पदे-पदे दृष्टिगोचर होता है। उनकी भाषा भावों के अनुकूल तथा कहीं-कहीं बड़े-बड़े समासों से युक्त है। अनुप्रासों के प्रयोग ने भाषा को मधुर बना दिया है। वीररस प्रधान होते हुए भी इसमें शृंगारादि अन्य रसों का अंग-रूप में प्रयोग हुआ है। इसके संवाद भी बड़े सबल तथा मार्मिक हैं। पात्रों का चरित्रचित्रण व्यास जी ने बड़े स्वाभाविक ढंग से किया है। उनके भाव एवं विचार उनके मानसिक स्तर के अनुरूप हैं। इस ग्रंथ में तत्कालीन भौगोलिक, राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति का बड़ा यथार्थ चित्रण हुआ है। सब कुछ मिलाकर यह एक सफल उपन्यास है।

शिवरात्रि महात्म्यमु *(ते० कृ०)*

यह कविसार्वभौम श्रीनाथुडु (दे०) की रचना है। इस काव्य का इतिवृत्त 'स्कंद पुराण' की 'ईशान-संहिता से लिया गया है। 'ईशानसंहिता' की संक्षिप्त कथा को महाकवि श्रीनाथ ने पाँच आश्वासों के रमणीय प्रबंध-काव्य का रूप दिया है। यह शिवपारम्य को प्रतिपादित करने वाला काव्य है। प्रथम आश्वास में ब्रह्मा और विष्णु की अपेक्षा शिव के उत्कृष्ट माहात्म्य के वर्णन के बाद स्वयं शिवजी शिवरात्रि के माहात्म्य का वर्णन करते हैं। शेष चार आश्वासों में रत्नपुरी के महामंत्री यज्ञदत्त के पुत्र सुकुमार की कथा है। उसके जन्म, विद्याभ्यास, दुष्ट आचरण, चांडालकन्या से विवाह, संतानोत्पत्ति, अनेक दुष्ट कार्य करने के बाद सुकमार का नागेश्वरालय पहुँच शिवरात्रि के दिन भगवान के दर्शन कर, कुछ समय के बाद मर जाना, उसकी आत्मा को यमकिंकरों के हाथ से बचाकर शिवकिंकरों का शिवलोक ले जाना, शिव का यम को शिवरात्रि-माहात्म्य का वर्णन करना आदि विषय हैं। इस काव्य का प्रधान पात्र सुकुमार है अतः इसका दूसरा नाम 'सुकुमार चरित्रमु' भी है। श्रीनाथुडु ने सुकुमार की कथा को प्रबंध-काव्य के अनुरूप वर्णनों से युक्त कर, शिवरात्रि के माहात्म्य की काव्योचित रूप में स्थापना की है।

शिवरामशास्त्री, वेलूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1892 ई०; मृत्यु—1968 ई०]

जन्म-स्थान : चिरिवाडा, जिला कृष्णा। इनके पिता वेंकटेश्वरावधानी थे। शिवरामशास्त्री बाल्यकाल से ही बड़े प्रतिभावान रहे। संस्कृत-व्याकरण का आद्योपांत अध्ययन इन्होंने प्रसिद्ध वैयाकरण जयंति भगीरथशास्त्री के चरणों में किया। तेलुगु-कविता के गुरु तिरुपति कविद्वय रहे। उन्नीस वर्ष की वय में इन्होंने शतावधान जैसे दुष्कर कविकर्म का प्रदर्शन बड़ी सफलता के साथ किया। आशु तथा अवधानकविताओं (दे०) के अतिरिक्त इनकी रुचि अधिकाधिक भाषाओं का अध्ययन करने की ओर थी। फलतः इन्होंने अँग्रेजी, फ्रेंच, बँगला आदि भाषाओं का गहरा अध्ययन था। यौवन में 'मणिमेखला' नामक एक मौलिक काव्य के साथ 'रसगंगाधर' (दे०), 'ध्वन्यालोक' (दे०), 'साहित्य-दर्पण' (दे०) आदि संस्कृत-लक्षण-ग्रंथों का अनुवाद कर चुके थे। परंतु दुर्भाग्य की बात थी कि एक बार पांडुलिपियों से भरी इनकी पेटी को चोर धन की अपेक्षा से चुरा ले गए। दूसरी बार 'पद्मपुराण' आदि इनकी अन्य रचनाएँ इनके आवास में आग लगने से अग्नि-समर्पित हो गईं। इस प्रकार अक्षय साहित्यिक संपदा का नाश हो गया। अनंतर काल में यदा-कदा शास्त्री जी साहित्यिक सर्जना करते रहे। फलतः इनकी उपलब्ध कृतियों में शरच्चंद्र (दे०) के बँगला उपन्यासों का अनुवाद, रवींद्रनाथ (दे०) की 'कथा' का तेलुगु अनुवाद तथा महात्मा गांधी की आत्मकथा का अनुवाद उल्लेखनीय है। इनकी निजी कृति 'एकावली' में सुंदर मौलिक कविता का स्वाद मिलता है।

प्राचीन परंपरा के उद्भट विद्वान होते हुए भी हृदय इनका आधुनिक विचारों को आत्मसात् करने वाला था।

शिवरुद्रप्पा, जी० एस० *(क० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

नयी पीढी के समर्थ आलोचको मे इनका नाम गिना जाता है। सप्रति ये बेंगलूर विश्वविद्यालय मे कन्नड प्रोफेसर के पद पर विराजमान है। ये कवि भी हैं। इनके कविता-सग्रहो मे 'सामगान', 'चेलुवु ओलवु' (सौदय प्रेम), 'सजे दारि' (साँझ की राह) और देवशिल्प' के नाम उल्लेखनीय है। इन्होने प्रकृति के सौदर्य और स्वरूप का विशद वर्णन किया है। इनकी कल्पना मे नवीनता और सूक्ष्मता विद्यमान है। 'विमर्शेय पूर्व पश्चिम' और 'सौदर्य-समीक्षे' जैसी रचनाओ म इनकी भावयित्री प्रतिभा का विकास हुआ है। 'कर्मयोगी' आपका उपन्यास है। 'शवर-शकरविलास' (दे०) जैसे काव्यो का सक्षिप्त सग्रह भी इन्होने प्रकाशित कराया है। कन्नड की साहित्यिक पत्रिकाओ मे इनके लेख बराबर प्रकाशित होत रहते है।

शिवशंकर स्वामी *(ते० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

ये अनेक भाषाओ के पडित एव प्रणय के भाव-प्रवण कवि है। तेलुगु मे रसमय गीति-नाटयो को प्रचार मे लाने का श्रेय मुख्यत इन्ही को दिया जाता है। इन्होने 'पद्मावती चरण चारण चक्रवर्ती' (दे०), दीक्षित दुहिता' जैसे उत्तम गीति-नाट्यो एव एकाकियो की रचना की है। कहानीकार के रूप मे इन्होने 'मुगारि कथलु' मे आध्र के बाल जीवन के सहज-स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किए है। तेलुगु के कथा-साहित्य मे उत्तम-पुरुष का विधान भी पहली बार इन्हीं की रचनाओ मे प्रकट हुआ है। 'भाव-कविता' (दे०) के लेखक के रूप मे इनकी ख्याति का आधार हृदयेश्वरी नामक कविता सकलन है। इन्होने अनेक बँगला उपन्यासो का अनुवाद भी किया है। सर्वत्र इनकी रचना सरल एव स्वच्छ है। आजकल के भाव-कवियो मे य वरिष्ठ है। इन्होने 'साहिती समिति', 'नव्य-साहित्य-परिपद्' आदि सस्थाओ की स्थापना करके भी तलुगु-माहित्य के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान किया है। प्राचीनता का परित्याग न करके, नवीनता का स्वागत कर, दोनो के सुदर समन्वय को इन्होने अपनी रचनाओ मे प्रस्तुत किया है। राजनीति मे सक्रिय रहने के कारण ये जेल भी गए थे। सदा नवकवियो की रचनाओ का परिमार्जन करके उनको प्रोत्साहित करते रहने के कारण इनको लोग प्रेम से 'धोभीघाट' भी कहा करते हैं।

शिवशभु के चिट्ठे *(हिं० कृ०)*

बाबू बालमुकुद गुप्त (दे०) के इस निबध-सग्रह मे लार्ड कर्जन के निरकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध शिवशभु शर्मा उपनाम से व्यग्यात्मक शैली मे लिखे गए उन आठ खुले चिट्ठो का सकलन है जो 'भारत-मित्र' तथा 'जमाना' पत्र-पत्रिकाओ मे 1904 से 1905 ई० तक धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए थे। ये चिट्ठे अपने समय मे कितने लोकप्रिय थे इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जब इनके मित्र ज्योतीद्रनाथ बैनर्जी ने इन्हे अँग्रेज़ी मे अनूदित करके प्रकाशित किया तो पूरा सस्करण हाथोहाथ बिक गया। ये रचनाएँ तद्-युगीन राजनीतिक चेतना से अवगत कराने के साथ साथ हिंदी भाषा की व्यजनाशक्ति एव सप्रेषणीयता का भी अत्यत पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती है। व्यग्य विनोद मिश्रित नितात वैयक्तिक शैली मे तथ्यात्मक विश्लेपण तथा कल्पना की ऊँची उडान इस निबध-सग्रह की उल्लेखनीय विशेषताएँ है। समग्रत यह निबध सग्रह लेखक के निर्भीक व्यक्तित्व तथा चुस्त एव चुटीले अभिव्यजना शिल्प के कारण सदैव स्मरणीय रहेगा।

शिवाबावनी *(हिं० कृ०)*

भूपण (दे०)-प्रणीत यह ग्रथ कोई स्वतत्र ग्रथ न होकर 52 स्फुट पद्यो का सग्रह है। ये पद्य भूपण के प्रसिद्ध आश्रयदाता शिवाजी के शौर्य से सबधित हैं, जिनमे उनके आतक, पराक्रम, विजय के गौरव गान के अतिरिक्त शत्रुआ की दुर्दशा का भी चित्रण है। वीर रस एव ओज-पूर्ण शैली म लिखा यह ग्रथ शिवाजी को राष्ट्र और धर्म का उन्नायक सिद्ध करता है। तत्कालीन पराधीन हिंदुओं को इसमे अवश्य नवस्फूर्ति प्राप्त हुई होगी। इस ग्रथ मे ऐतिहासिक घटनाओ का यत्र-तत्र उल्लेख अवश्य है, पर वे इतिहास की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण एव प्रामाणिक नही है।

शिशु *(बँ० कृ०)*

'शिशु' रवीद्रनाथ ठाकुर (दे०) की इकसठ कविताओ का सग्रह है। इसम म प्रारभ की इकत्तीस कविताएँ 1903 मे अल्मोडा मे लिखी गई थी, शेप कवि के अन्य काव्य-सग्रहो से ली गई हैं। जैसाकि नाम मे

प्रकट है इस संग्रह में कवि ने शिशु-मन के भावों को अभिव्यक्त किया है और उसके रहस्यों को खोला है। पृथ्वी, आकाश सबसे शिशु का परिचय है। प्रकृति के आह्वान से उसके प्राण स्पंदित होते हैं किंतु माँ से विलग होने पर उसके निकट कुछ भी सत्य नहीं। शिशु माँ की निर्मित मूर्ति है। माँ ही शिशु के लिए विश्व है। शिशु की समस्त आंतरिक सहानुभूति माँ के प्रति है।

शिशु-हृदय में प्रवेश कर उनके हृदय की अभिव्यक्ति का प्रयास वर्तमान में किसी कवि ने नहीं किया। शिशु-मन की विचित्रता को विभिन्न स्तरों पर विविध रूपों में सहज छंदों में कवि ने चित्रित किया है। विश्व-साहित्य में ये कविताएँ बेजोड़ हैं। इस संग्रह की 'नदी' कविता विद्वानों की सम्मति में रवींद्रनाथ की श्रेष्ठ कविताओं में से है।

शिशुपाल-वध *(म० कृ०)*

इस ग्रंथ का रचना-काल 1306 ई० है। भास्करभट्ट (दे०) ने संस्कृत-कवि माघ (दे०) की छाया ग्रहण कर मराठी में इस प्रबंध-काव्य की रचना की है। 'नारदागमन', 'द्वारकावर्णन', 'ऋतु-वर्णन', 'जल-क्रीड़ा-वर्णन', 'युद्ध-वर्णन' आदि प्रसंग माघ के 'शिशुपाल-वध' के अनुकरण पर हैं। कवि की मौलिकता चरित्र-चित्रण में दर्शनीय है। नारद-उद्भव-विनोद, श्रीकृष्ण-रुक्मिणी का प्रेम-कलह, गोपियों की मार्मिक विरहावस्था आदि के वर्णनों में कवि ने अपनी कवित्व शक्ति का सुंदर प्रमाण दिया है। यह काव्य भावों की मार्मिकता की दृष्टि से उत्कृष्ट है और कलात्मकता तथा अलंकृति-सौष्ठव के क्षेत्र में भी अद्वितीय है।

शिशुपाल-वध *(सं० कृ०)* [समय—सातवीं शती का उत्तरार्ध]

माघ (दे०) का 'शिशुपाल-वध' वृहत्त्रयी में सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। माघ का जन्म एक प्रतिष्ठित तथा प्रबुद्ध ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनके पितामह सुप्रभदेव गुजरात के किसी भूभाग के राजा वर्मलात के मंत्री थे। इनके पिता दत्तक बड़े विद्वान् तथा दानी थे।

'शिशुपाल-वध' माघ की एकमात्र रचना है। बीस सर्ग के इस महाकाव्य में कृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदि-नरेश शिशुपाल के वध की महाभारतीय कथा को शब्दबद्ध किया गया है।

यों तो माघ कालिदास (दे०) से कम प्रभावित नहीं किंतु भारवि (दे०) इनके मूल प्रेरणा-स्रोत रहे हैं। यही कारण है कि 'किरात' तथा 'शिशुपाल-वध' में बहुत समानता है। कहीं-कहीं माघ भारवि से कुछ आगे भी बढ़ गए हैं। 'शिशुपाल-वध' में उपमा, अर्थगौरव तथा पद-लालित्य तीनों गुणों का एकसाथ दर्शन होता है जो अन्यत्र दुर्लभ है। माघ अलंकृत-शैली के प्रमुख आचार्य हैं। इनका 'शिशुपाल-वध' इस शैली की सर्वोत्कृष्ट कृति है। माघ में व्युत्पत्ति तथा शक्ति समान रूप से विद्यमान है अतः जहाँ उन्होंने इस काव्य में अपनी कलात्मक दृष्टि का परिचय दिया है वहीं अपार वैदुष्य का भी। 'नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते'—इससे इनके शब्द-वैभव का अनुमान लगाया जा सकता है। इस महाकाव्य में चरित्रों का बड़ा सजीव चित्रण किया गया है। महर्षि नारद के रूपचित्रण में कवि जितना सफल हुआ है उतना ही उनके संदेश-कथन में भी। माघ-वर्णित कृष्ण का रूप तथा उनका सहिष्णु चरित्र बड़ा ही सुंदर है। 'शिशुपाल-वध' के प्रकृति-वर्णन भी बड़े ही मनोहारी हैं। कवि नितांत परिचित वस्तुओं में भी नवीनता पैदा कर देता है। भाषा, भाव, शब्द-चमत्कार—सभी दृष्टियों से 'शिशुपाल-वध' अत्यंत उच्चकोटि का महाकाव्य है।

शिशुवेद *(उ० कृ०)*

'शिशुवेद' गोरखनाथ (दे०) की रचना है तथा उड़िया भाषा का आदि गद्य-ग्रंथ कहा जाता है। 'सारळा-महाभारत' (दे०) तथा 'पंच सखा' (दे०)-साहित्य में इसका उल्लेख मिलता है। 'शिशुवेद' पूर्वगामी बौद्ध-कवितावली तथा परवर्ती मार्कंडदास (दे०) की कोइलि (दे०) एवं सारळादास (दे०) की रचनाओं के बीच एक मूल्यवान योगसूत्र के रूप में विराजमान है। इसमें अपभ्रंश की अंतिम प्रतिध्वनि मिलती है। ई० पू० प्रथम शती में खारवेल की शिलालिपियों में भाषा का जो स्वरूप उपलब्ध होता है, उसका क्रमिक एवं स्वाभाविक विवर्तन आधुनिक उड़िया में किस प्रकार हुआ, उसे समझने में आज यह ग्रंथ अत्यंत सहायक सिद्ध हो रहा है।

'शिशुवेद' में गूढ़ तांत्रिक तत्वों का प्रतिपादन हुआ है। इसमें टीका में प्रयुक्त गद्य प्राचीनता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

शीतकन् तुळ्ळल् (मल० पारि०)

यह कुचन (दे०) नपियार की तुळ्ळल् (दे०)-कथाओं के तीन प्रकारों में एक है। 'कल्याणसौगंधिकम्' कथा जो नपियार की प्रथम तुळ्ळल्-कथा मानी गई है, इसी विधा में रचित है। इसमें प्रयुक्त छंद कुसमध्या, काकली, कलकाची और पर्यस्तकाची है। इसका आख्याता नर्तक मुख पर श्याम वर्णसज्जा करता है और नारियल के पत्तों से वेश सज्जा करता है। साहित्येतिहासकार महाकवि उळ्ळूर् (दे०) अनुमान करते हैं कि 'शीतकन्' शब्द का मूल 'चेतुकन्' होगा और इसका संबंध देशिंगनाड-प्रदेश के किसी नाट्याचार्य से होगा।

शीराप्पुराणम् (त० कृ०) [समय —अठारहवीं शती ई०]

इस्लाम से संबद्ध तमिल-कृतियों में यह ग्रंथ अग्रगण्य है। यह एक प्रबंध-काव्य है। इसमें इस्लाम धर्म के प्रवर्तक पैगंबर मुहम्मद की जीवनी का काव्यात्मक चित्रण किया गया है। मुहम्मद का जन्म, विवाह, विविध कार्य, धर्म प्रचार इत्यादि घटनाएँ विस्तार से चित्रित हैं। अरबी भाषा का शब्द है 'शीरत्' जिसका अर्थ है इतिहास। उसी का तमिल रूप 'शीरा' है। तमिल काव्य परंपरा के अनुसार, 'पुराण' एक प्रकार का प्रबंध-काव्य होता है। 'शीराप्पुराणम्' वैसा ही एक काव्य है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन 'पुरुषार्थों' को लक्ष्य बनाकर यह रचा गया है। काव्य के अन्य सभी लक्षण इसमें है। इसमें तीन कांड है जिन्हें क्रमश 'विलादत् कांड', 'नुबुव्वत् कांड' और 'हिजरत् कांड' का नाम दिया गया है। प्रथम कांड में जन्म तथा बाल्य, द्वितीय में मुहम्मद को जिब्रील द्वारा धर्म-तत्त्व का ज्ञान, तृतीय में मुहम्मद साहब का मक्का छोड़कर मदीना जा पहुँचना—मुख्य रूप से वर्णित है। पूरे काव्य में 5026 वृत्त हैं। तृतीय कांड में ही ढाई हज़ार से अधिक वृत्त है जिनमें 'पदुर', 'उहुदु' नामक स्थानों में हुए युद्धों का वर्णन भी है। मुहम्मद साहब की पत्नी तथा उनकी पुत्री 'फातिमा' आदि पात्रों का चित्रण अत्यंत प्रभावशाली है। अरब के जन-जीवन के चित्रण में तमिल-प्रदेश की झाँकी आ गई है।

कवि ने कहा है कि अरब के विविध कर्म करने वाले (पेशेवर) लोग अपना अपना कार्य आरंभ करने के पूर्व सूर्य की वंदना करते थे। वे अपने-अपने कुलदेवों की पूजा करते थे। कुछ विद्वानों ने इन बातों पर यह कहकर कि ये इस्लाम के अनुकूल नहीं हैं, आपत्ति उठाई है। किंतु कवि ने मुहम्मद साहब की उपासना के वर्णन के प्रसंग में एक देवोपासना का तथा इस्लाम के प्रधान सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। इसमें यद्यपि अरबी के अनेक शब्द प्रयुक्त है तथापि कवि ने तमिल प्रबंध काव्य की परंपरा का पालन करके तमिल भाषा और छंद के उत्तम रूप प्रस्तुत किए है। यह तमिल प्रबंधों में एक उत्कृष्ट कृति मानी जाती है।

शील (पा० पारि०)

बौद्ध धर्म में प्रत्येक व्यक्ति को पाँच शीलों के पालन का व्रत लेना पड़ता है—(1) प्राणिहिंसा से दूर रहना, (2) न दी हुई वस्तु को लेने से विरत रहना, (3) निषिद्ध विषयों के उपभोग से दूर रहना, (4) झूठ न बोलना और (5) सुरा इत्यादि से पृथक् रहना। उपोसथ व्रत में पंचशील के स्थान पर अष्टशील हो जाते है। अतिरिक्त 3 ये हैं—(6) असमय भोजन न करना, (7) नृत्य तथा माला इत्यादि से दूर रहना और (8) ऊँचे स्थान पर न बैठना। श्रमणों के लिए दस शील होते है—सातवें के दो भाग और सोना चाँदी न लेने का व्रत। इन शीलों में कुछ का पालन कुछ समय के लिए भी किया जा सकता है।

शीलवती रास (गु० कृ०) [रचना-काल—1694 ई०]

जैन कवि नेमिविजय-प्रणीत 'शीलवती रास' अंत में धर्माभिनिवश में उपशमित व परिणत होने वाली एक ऐसी रसात्मक सांसारिक कथा है जिसमें धर्म से अधिक कला निरूपण पाया जाता है। इस कथा-काव्य में चंद्रगुप्त व शीलवती का प्रेम-वृत्तांत निरूपित है। अब तक की रास-कथाएँ धार्मिक अधिक थीं, परंतु यह लौकिक अधिक है। 'शीलवती रास' में करुण एवं अद्भुत रसों की सुंदर योजना है।

नायक चंद्रगुप्त व नायिका शीलवती दोनों वणिक् कुल के हैं। नायिका शीलवती को पतिवियोग का कष्ट झेलना पड़ता है। आकस्मिक रूप से एक रात्रि के लिए पति-मिलन का सुख मिलता है। पश्चात् वह सगर्भा होती है और व्यभिचारिणी के रूप में कलंकित भी होती है। एक वेश्या के जाल में फँसती है, पुत्र भी खोती है। अंत में पुत्र व पति दोनों से मिलन होता है। दोनों पति-

पत्नी जैन-दीक्षा ग्रहण करते है।

संयम, शील, सत्य व भूत दया के गुणों का निरूपण इस कृति में हुआ है। बीच-बीच में भूत, पिशाच व हिंस्र पशुओं के वर्णन से कथा में रोचकता, अद्भुतता की भी वृद्धि हुई है। सत्रहवीं शती की भाषा का स्वरूप ठीक-ठीक समझने में इससे पर्याप्त सहायता मिलती है। भाषा पर प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी का मिश्रित प्रभाव है। परवर्ती वार्ताकार शामळ (दे०) भट्ट की 'भद्रा भामिनी नी वात' पर इस रचना का पर्याप्त प्रभाव है। मध्ययुगीन पद्यवार्ता-साहित्य मे इस कृति का अपना विशेष स्थान है।

शीला वीर्राजुन (ते० ले०) [जन्म—1939 ई०]

सूर्यनारायण और वीरभद्रम्मा के पुत्र वीर्राजुन का जन्म राजमहेंद्री में हुआ था। बी० ए० करने के बाद इन्होंने कुछ दिनों के लिए 'कृष्णपत्रिका' में सहसंपादक का काम किया। आजकल ये आंध्र प्रदेश-सरकार के सूचना और जनसंपर्क-विभाग में सहअनुवादक के रूप में कार्यरत हैं। बचपन से ही इनकी लेखन में रुचि थी। जब ये इंटर में थे तब 'वेलुगु रेखलु' (प्रकाश की किरणें) शीर्षक उपन्यास 'प्रजामत' में तथा जब बी० ए० मे थे तब 'सहृदयुलु' शीर्षक उपन्यास 'आंध्रप्रभा' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए। अब तक इनकी पंद्रह पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके उपन्यासों में 'मैना', 'कर्णिचनि देवता' उल्लेखनीय है। 'मैना' को आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी की ओर से श्रेष्ठ उपन्यास का पुरस्कार (1969 ई० में) मिला था। इनके अतिरिक्त इनके कहानी-संग्रह भी प्रकाशित है। इन संग्रहों में 'मुब्बुतेरलु' (बादलों की परतें या परदे), 'समाधि', 'वीर्राजुन की कहानियाँ', 'ह्लादिनी', 'रंगुटद्दालु' (रंगीन शीशे), 'वाल्लमध्य वंतेना' (उनके बीच पुल), 'मनसुलोनिकुंचे' (मन की कूंची', 'पगा मैनस द्वेपमु' (प्रतीकार मैनस द्वेप) आदि उल्लेखनीय है।

इन्होंने यद्यपि, प्रारंभ में कुछ प्रेम-प्रधान कहानियाँ लिखी थीं तथापि ये प्रधान रूप से प्रयोगवादी ही है। विषय की अपेक्षा ये शैली और शिल्प को अधिक महत्व देते हैं।

'वचन' कविता में भी इन्होंने नये प्रयोग किए हैं। 'कोडिगट्टिन सूर्युडु', 'हृदयं दोरिकिंदि' (हृदय मिल गया) में क्रमशः तीन-तीन कहानियाँ लिखी है। 'मळ्ळी वेलुगु' (पुनः प्रकाश) नामक गद्य-काव्य में उपःकाल से लेकर आधी रात तक के नगर-जीवन का प्रभावशाली चित्रण किया गया है। इस ध्वनि-प्रधान काव्य में एक-एक समय को एक-एक सामाजिक अवस्था का प्रतीक मानकर, द्वंद्वपूर्ण नगर-जीवन का वर्णन कर, कवि ने आशावाद प्रकट किया है।

ये सफल चित्रकार भी हैं। दामेर्ल रामाराव आर्ट गैलरी में इन्होंने चित्रकला का अभ्यास किया है। हैदराबाद में दो बार और बैंगलूर में एक बार इनके चित्रों की प्रदर्शनी का आयोजन किया जा चुका है। पश्चिम जर्मनी में भी इनके 'लेपाक्षी चित्रों को प्रदर्शित किया जा चुका है। आधुनिक चित्रकला के क्षेत्र में इनके प्रयोगवादी चित्रों (पेंटिंग्स) का विशिष्ट स्थान है।

'स्वाति' नामक मासिक पत्रिका का संपादन भी इन्होंने सफलता के साथ किया है।

वचन-कविता मे इतिवृत्तात्मक कथाएँ लिखने का प्रारंभ इन्होंने ही किया और इस विधा को सफल तथा अनुकरणीय बनाया। उपन्यास हो, कहानी हो अथवा काव्य—सभी विधाओं में प्रयोग करना इन्हें प्रिय है। इस दृष्टि से आधुनिक तेलुगु-साहित्य में इनका विशिष्ट स्थान है।

शुकनास (सं० पा०)

शुकनास बाण (दे०) भट्ट की कल्पना-सृष्टि है जो उसकी सुप्रसिद्ध कृति 'कादंबरी' (दे०) का एक पात्र है। शुकनास उज्जयिनी के राजा तारापीड का मुख्य अमात्य है। वह चंद्रापीड के राजकुमार के पद पर अभिषिक्त होने पर उसे कुछ उपदेश देता है जो राजपरिवार के ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यंत उपयोगी है। इन आदेशों के माध्यम मे बाणभट्ट ने भारतीय सांस्कृतिक निधि का निरूपण किया है। इसकी अभिव्यक्ति के उचित लिए पात्र की आवश्यकता थी, अतः शुकनास की रचना हुई।

शुकनास का व्यक्तित्व बड़ा भव्य है। वह केवल नीति-निपुण मंत्री ही नहीं है अपितु एक ऐसा महापुरुष है जिसने अपनी इंद्रियों का पूर्ण-रूप से निग्रह कर लिया है। सभी शास्त्रों का मर्म उसे हस्तामलकवत् है। शासन के संचालन तथा लोकप्रिय होने की कुंजी वह जितेंद्रियता को मानता है। उसका कहना है : यौवन, धन-संपत्ति और प्रभुता भी अनर्थ के उतने ही बड़े कारण हैं जितना मूर्खता। जो व्यक्ति इन दुर्बलताओं से ऊपर उठ सकता है, वही

कुछ अच्छा कर पाता है। शुकनास भारतीय परपरा मे अमात्य का सच्चा प्रतीक है।

शुक सप्तति *(स० कृ०)* [समय—बारहवी शती से पूर्व]

'शुकसप्तति' कहानियो का सग्रह है। इसकी दो वाचनिकाओ का पता चलता है। एक तो विस्तृत तथा दूसरी सक्षिप्त। विस्तृत वाचनिका के लेखक कोई चिंतामणि हैं जिन्होने पूर्णभद्र के 'पचतत्र' (दे०) का उपयोग इस ग्रथ मे किया है। सक्षिप्त वाचनिका का कर्ता किसी जैन लेखक को माना जाता है।

'शुकसप्तति' की कथाएँ बडी रोचक हैं जो एक तोता अपने स्वामी के परदेश चले जाने पर अन्य पुरुषो के प्रति अनुरक्त अपनी स्वामिनी को सुनाकर उसे इस ओर से विरत करने के लिए सुनाता है। ये कहानियाँ अतीव मनोरजक तथा आकर्षक हैं। इसमे स्त्रियो के चरित्र का विवेचन सरल एव रोचक शैली मे किया गया है। कहा जाता है कि यह ग्रथ मूलत प्राकृत मे लिखा गया था, बाद मे इसका सस्कृत गद्य म रूपातर हुआ पर बीच बीच मे सस्कृत-पद्यो के साथ प्राकृत पद्य भी बने रहे।

शुकि सुब्रह्मण्यन *(त० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

तमिलनाडु के तिरुनेलवेली जिले के मदवक्कुरिच्चि नामक स्थान मे जन्म। हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त कर इन्होने आकाशवाणी मे प्रवेश किया। इस समय ये आकाशवाणी के मद्रास केंद्र मे तमिल नाटको के दिग्दर्शक के रूप मे कार्यरत है। इन्होने अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा तमिल साहित्य के विविध अगो को समृद्ध किया। इनके अनेक नाटक एव कहानियाँ पुरस्कृत हो चुकी हैं। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ है— पुदुमैप्पुलवन भारती', 'आयिरम काल मडपम' [क्रमश महाकवि भारती (दे०) एव कल्कि (दे०) पुदुमैप्पित्तन (दे०), कु० पा० राजगोपालन (दे०) आदि आधुनिक साहित्यकारो के कृतित्व से सबधित अलोचनात्मक लेखो का सग्रह], 'युद्धकाल इलक्कियम (निबध), 'काट्शि कण काट्दिये' (एकाकी-सग्रह), 'उलक्कुम करगळ', 'गीदम इनिय कुयिले' (उपन्यास), 'साभर शादम', 'वर्पक कनिहळ' (कहानी) आदि।

इन्होंने प्राय उच्च-मध्य वर्ग के लिए साहित्य-रचना की है। यथार्थवाद मे विश्वास रखते हुए भी आदर्शवाद का अकन किया है। अधिकाश रचनाओ मे तिरुनेलवेली की ग्रामीण जनता के जीवन का चित्रण है। इनमे प्राय पारपरिक विचारधाराओ की अभिव्यक्ति हुई है। तमिल साहित्य मे इनकी प्रसिद्धि रेडियो-रूपको के रचयिता के रूप मे विशेष है।

शुक्तिमति *(ते० पा०)*

शुक्तिमति रामराजभूषणुडु (भट्टुमूर्ति) (दे०) के 'वसुचरित्रमु' (दे०) नामक श्लेषकाव्य की प्रधान पात्र है। यह एक नदी है। ब्रह्मा की सभा से लौटते हुए इसे देखकर, 'कोलाहल' नामक पर्वत श्रेष्ठ मोहित हो जाता है और इसे रोककर इसके साथ बलात्कार करता है। यह राजा वसु से निवेदन करती है। राजा वसु 'कोलाहल' को लात मारता है। इस पदताडन से बने रध्र से इसका निर्गमन होता है। अपनी कृतज्ञता को प्रकट करने के लिए यह उक्त बलात्कार के कारण उत्पन्न अपनी पुत्री गिरिका को राजा की पत्नी के रूप म तथा पुत्र वसुपद को सेनापति के रूप मे सौंप देती है।

शुक्र *(स० ले०)*

शुक्र का स्थिति-काल विक्रमपूर्व प्रथम शती के लगभग है। शुक्राचार्य का दूसरा नाम 'उशनस्' है। पौराणिक परपरा के अनुसार शुक्राचार्य असुरो के गुरु है। अलबेरूनी ने व्यास (दे०) के 6 स्मृतिकार शिष्यो मे शुक्र का भी सकेत किया है। बार्हस्पत्यशास्त्र के आधार पर शुक्र ने एक सहस्र अध्याय वाले 'औशनसी-नीति' नामक ग्रथ की रचना की थी। विद्वानो का विचार है कि 'शुक्रनीति' 'औशनसशास्त्र' का ही सस्करण है।

'औशनस-अर्थशास्त्र' का अर्थशास्त्र-सबधी ग्रथो म विशिष्ट स्थान है। कौटिल्य (दे०) न 'अर्थशास्त्र' (दे०) के अतर्गत 'दडनीतिरेव विद्या इतिऔशनसा' कहकर 'औशनस-अर्थशास्त्र' को एतिहासिकता एव प्रामाणिकता की पुष्टि की है। शुक्र-कृत 'शुक्रनीति' के आधार पर ही आचार्य कामदक ने 'नीतिसार' नामक ग्रथ की रचना की थी। 'शुक्रनीति' के अतर्गत अर्थशास्त्र एव नीतिशास्त्र के विविध पक्षो का स्पष्ट विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस ग्रथ की लेखन शैली सरल एव रोचक है।

शुक्ल, रामचंद्र *(हि० ले०)* [जन्म—1881 ई०; मृत्यु—1941 ई०]

इनका जन्म अगोना ग्राम (जिला बस्ती, उत्तर प्रदेश) में हुआ और जीवन के अंतिम चरण में ये काशी-विश्वविद्यालय में हिंदी-विभाग के अध्यक्ष रहे। इन्होंने निम्नोक्त बहुविध ग्रंथों का प्रणयन किया, जिनमें इनकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है—(1) 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (दे०) जो कि अपने विषय का एक बहुमूल्य ग्रंथ है। (2—4) 'जायसी-ग्रंथावली' (दे० जायसी ग्रंथावली की भूमिका), 'तुलसी-ग्रंथावली', 'भ्रमर गीत-सार'—इन तीनों ग्रंथों की भूमिकाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। (5) 'चिंतामणि' (दे०) (दो भाग) इसमें मनोविज्ञान तथा काव्यशास्त्र से संबद्ध अनुपम निबंध हैं। (6) 'रस-मीमांसा' (मृत्यु के उपरांत संपादित एवं प्रकाशित), रस-विषयक निबंध-संग्रह है। (7) 'साहित्य', 'प्राचीन भारतीयों का पहरावा' तथा अन्य फुटकर निबंध। (8) 'बुद्धचरित', 'लाइट ऑफ़ एशिया' पर आधारित ब्रजभाषा काव्य। (9) मनोहर छटा तथा प्रकृति-संबंधी कविताएँ। (10-11) 'हिंदी शब्द-सागर' (दे०) तथा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (दे०) का संपादन। (12—17) निम्नोक्त अनूदित सात ग्रंथ, जिनमें से पहला बँगला से है और शेष छः अँग्रेज़ी से। (क) 'शशांक' (उपन्यास), (ख) 'विश्वप्रपंच' (अँग्रेज़ी से), (ग) 'आदर्श जीवन', (घ) 'राज्य-प्रबंध शिक्षा', (ङ) 'मेगस्थनीज़ का भारतवर्षीय वर्णन', (च) 'कल्पना का आनंद', (छ) कतिपय स्फुट लेख। जायसी (दे०), तुलसी (दे०) और सूरदास (दे०) विषयक भूमिकाओं में कवियों की अंतःप्रवृत्तियों के उद्घाटन तथा काव्य के मार्मिक स्थलों की व्याख्या द्वारा हिंदी साहित्य में नूतन समीक्षा पद्धति का सूत्रपात किया गया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने तुलसी और जायसी तथा तुलसी और सूरदास के काव्य की तुलना द्वारा तुलनात्मक एवं निर्णयात्मक आलोचना का मानदंड भी स्थिर किया गया है। शुक्ल जी के मनोविज्ञान-विषयक निबंध हिंदी-साहित्य की ही नहीं वरन् विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि है। इनसे पूर्व हिंदी की समीक्षा-पद्धति प्रायः संस्कृत-काव्य-शास्त्र के पुराने ढर्रे पर अवलंबित रहकर अलंकार, रस, नायिक-नायिका-भेद के भेदोपभेद-चयन तक सीमित थी, पर इनके शास्त्रीय समीक्षात्मक लेखों में भारतीय के अतिरिक्त पाश्चात्य एवं मनोवैज्ञानिक समीक्षण-पद्धति का अद्भुत मिश्रण है, और इसी कारण ये लेख अपनी गुरु-गंभीर और प्रौढ़ शैली के कारण समीक्षा-क्षेत्र के आदर्श बन गए हैं। इनके निबंधों में आगमन और निगमन दोनों शैलियों का प्रयोग हुआ है तथा इनमें निबंध के दोनों प्रमुख तत्त्वों—'विषय-प्रधानता' और 'व्यक्तित्व-प्रधानता' का सुगठित एवं सुंदर सामंजस्य प्रस्तुत किया गया है। इन निबंधों में हास्य तथा तीखा व्यंग्य भी यत्र-तत्र मिलता है जो विषय का सुगम अवबोध करने में सहायक सिद्ध होता है। आचार्य शुक्ल अपनी अद्भुत समीक्षण-प्रतिभा तथा प्रौढ़ एवं विवेचनात्मक अभिव्यक्ति-कला के कारण वर्तमान काल के निबंधकारों एवं समालोचकों में मूर्धन्य स्थान रखते हैं। ये आधुनिक हिंदी-समीक्षा के प्रवर्तक हैं। इन्होंने सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों प्रकार की समीक्षा-पद्धति को नूतन पथ पर मोड़कर हिंदी को विश्व की भाषाओं में समादरणीय पद पर प्रतिष्ठित किया है।

शुद्धाद्वैत *(हि० पा०)*

वल्लभाचार्य के अनुसार वैदिक साहित्य, ब्रह्म-सूत्र (दे०), गीता (दे०) और श्रीमद् भागवत (दे०) ज्ञान के आधार हैं। ब्रह्म अद्वैत हैं, और माया-रहित होने के कारण शुद्ध तथा विरुद्ध धर्मों (गुणों) का आश्रय है। ब्रह्म से जगत् आविर्भूत होता है; किंतु ब्रह्म अविकृत ही रहता है; अतएव कार्य-कारण का अविकृत परिणाम है। जगत् का उत्पादन और नाश नहीं होता; उसका तो केवल आविर्भाव-तिरोभाव होता रहता है। जगत् और संसार में यह भेद है कि जगत् तो ब्रह्म के 'सत्' अंश से आविर्भूत होता है और संसार जीव की अविद्या से। ज्ञान-प्राप्ति से संसार का नाश होता है, जगत् का नहीं। ब्रह्म के तीन रूप है—पुरुषोत्तम (परब्रह्म अथवा परमात्मा), अंतर्यामी तथा अक्षर ब्रह्म। अक्षर ब्रह्म से अनेक जीव और जगत् निकलते हैं, जैसे अग्नि से चिनगारियाँ (स्फुलिंग)। जीव अणु, ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता तथा अनंत है। मुक्ति में जीव और ब्रह्म का ऐक्य होता है; और इसका साधन है पुष्टि अर्थात् भगवदनुग्रह जो चतुर्विद है : प्रवाह-पुष्टि, मर्यादा-पुष्टि, पुष्टि-पुष्टि और शुद्ध-पुष्टि भक्ति। शुद्ध-पुष्टि भक्ति के तीन सोपान हैं : प्रेम, आसक्ति और व्यसन। ज्ञान-कर्म मार्गों की कठिनता के कारण, भक्ति-मार्ग सुलभ है। श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं, बालकृष्ण और राधा की उपासना का विधान तथा रासलीला का महत्व है। सूरदास (दे०) और नंददास (दे०) की रचनाएँ शुद्धाद्वैत की हैं, जिसका प्रचार-प्रसार वल्लभाचार्य के विट्ठलनाथ, गोकुलनाथ आदि पुत्र-

पौत्रों के द्वारा किया गया।

शूद्रक *(स० पा०)*

संस्कृत-साहित्य मे शूद्रक नाम के राजा का उल्लेख अनेक स्थानो पर मिलता है। प्रसिद्ध सामाजिक प्रकरण 'मृच्छकटिक' (दे०) के कर्ता को शूद्रक कहा गया है। परतु पात्र के रूप मे शूद्रक की रचना बाण (दे०) भट्ट की है जिन्होने अपनी सुप्रसिद्ध कृति कादबरी (दे०) मे शूद्रक नाम के एक राजकुमार का वणन किया है। कालिदास (दे०) के पूर्ववर्ती कवि परिमल एव सोमिल ने मिलकर 'शूद्रक कथा' नामक ग्रथ का भी प्रणयन किया था। 'स्कदपुराण' के अनुसार शूद्रक राजा *विक्रमादित्य से तत्तासईस वर्ष पूर्व हो चुके थे। इस प्रकार अनेक छोटी मोटी* कृतियो मे शूद्रक का वर्णन उपलब्ध होता है पर सब जगह वे एक राजा के रूप मे ही चित्रित किए गए हैं।

'कादबरी' के शूद्रक की राजधानी विदिशा थी। वह एक राजकुमार है तथा उसकी अवस्था पच्चीस वर्ष के लगभग ही है। विदिशापति शूद्रक यद्यपि राजा है पर अभी तक उसने विवाह नही किया है। प्रमदाजनो के प्रति उनकी रुचि किसी प्राक्तन सस्कार के कारण नही है। वह मृगया का शौकीन है तथा मित्रो की गोष्ठियो से ही उसका मनोविनोद हो जाता है। वह एक आदर्श नृपति है। उसके समय मे प्रजा मे न कोई दुर्गुण है न कोई कमी। उसके शासन मे प्रतिबध नही के बराबर है।

इसी राजा शूद्रक के दरबार मे चाडाल-कन्यका वैशपायन नामक शुक को लेकर पहुँचती है जो उज्जयिनी के राजा तारापीड के पुत्र चद्रापीड और गाधर्वकन्या महाश्वेता की सखी कादबरी (दे०) के प्रेम की कहानी के व्याज से उसकी पूर्व-जन्म की कहानी सुनाता है। कहानी सुनकर शूद्रक का शरीर छूट जाता है और मृत चद्रापीड जी उठता है, तदनतर 'कादबरी' से उसका विवाह हो जाता है।

शून्यता *(पारि०)*

यह तत्त्व विषयक सिद्धात है जो 'हीनयान' (दे०) और 'महायान' (दे०) दोनो मे माना जाता है। इस सिद्धात के अनुसार न कोई आत्मा है और न पदार्थों के धर्म (तत्त्व) ही सार पदार्थ हैं। नागार्जुन और अश्वघोष ने 'महायान' की माध्यमिक शाखा के अतर्गत शून्यवाद (दे० शून्यता) को सिद्धात के रूप मे स्वीकार किया तथा ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान तीनो को शून्य के रूप मे स्वीकार किया तथा उसे अठारह वर्गो मे विभाजित किया। *किंतु इनका शून्यवाद भौतिक तथा मानसिक दृश्य-जगत तक ही सीमित है, इनके मत मे परम सत्य* अनिर्वाच्य है।

शून्य-पुराण *(बँ० कृ०)*

मध्ययुगीन धर्म-साहित्य म जहाँ धर्म-पूजापद्धति का विवरण है वहाँ धर्ममगल काव्य का समाहार भी है। लुइचद्र कहानी के सूत्रधार तथा साजात पद्धति की सृष्टि-कर्त्ता रामाइ पडित को धर्मकाव्य का पहला रचयिता स्वीकार किया जाता है। *रामाइ पडित ऐतिहासिक व्यक्ति हैं या नही—इस सबध मे अभी तक कोई निश्चित प्रमाण* नही है। फिर भी 'शून्यपुराण' के रचनाकार रामाइ पडित एव आदि धर्मकाव्य के रचयिता रामाइ पडित अभिन्न है या नही—यह कहना दुष्कर है। और फिर 'शून्यपुराण' की रचना किसी एक व्यक्ति की है या नही—यह कहना भी कठिन है। 'निरजनेरुष्मा' अश सहदेव चक्रवर्ती रचित 'अनिलपुराण' मे भी प्राप्त है। 'शून्य-पुराण' के सृष्टि-तत्त्व पर महायान बौद्ध धर्म एव नाथ-*पथियो का प्रभाव बहुत स्पष्ट है। रामाइ पडित-भाषित 'अनिलपुराण' के नाम से एक पोथी वगीय साहित्य परि*षद् के पुस्तकालय म है। इस काव्य मे केवल सहदेव चक्रवर्ती की ही नही परवर्ती युग के चडीमगल काव्यकारो के रचनाश भी विद्यमान हैं। इस काव्य म चैतन्य का प्रभाव दिखाई पडता है। 'शून्यपुराण' एव 'अनिलपुराण' यदि एक ही कवि के काव्य हैं तो निस्सदेह य कवि सप्तदश शतक के अतिम भाग के कवि है। भाषाविचार की दृष्टि से भी यही प्रमाणित होता है। 'अनिलपुराण' के कवि की कथा के अनुसार कवि उडीसा के जाजपुर के निवासी थे। जाजपुर के साथ धर्म-साहित्य का काफी पुराना सबध है। जाजपुर मे रामाइ पडित के निवास-स्थान का कोई चिह्न नही है परतु वैतरणी नदी एव उसकी तटवर्ती श्मशान-भूमि एव धर्मठाकुर के मदिरादि आज भी विद्यमान हैं।

शून्य-सपादने *(क० कृ०)*

'शून्य-सपादन' वीरशैव धर्म का एक अत्यत मुख्य ग्रथ है। इसका अर्थ है 'शून्य' का 'सपादन' अर्थात्

शून्य की प्राप्ति। 'शून्य' क्या है ? 'शून्य' वीरशैव धर्म का पारिभाषिक शब्द है। उसका अर्थ है 'अष्टावतरण' का मूल्य समझकर 'षट्स्थलों' के अनुसार उपासना करके साधक को प्राप्त ब्रह्मसाक्षात्कार। इस ब्रह्मसाक्षात्कार के विधानों के संबंध में 'शून्य-संपादने' में बताया गया है, अतएव वह शास्त्र-ग्रंथ है। संप्रति प्रसिद्ध 'शून्य-संपादने' गूळूर सिद्धवीरण्णोडेय से संगृहीत है। इसके संपादन का कार्य कम-से-कम चार बार हुआ होगा, ऐसा विद्वानों का अभिमत है। अब तक प्राप्त 'शून्य-संपादने' ग्रंथों की संख्या पांच है। वे इस प्रकार हैं—(1) शिवगणप्रसादि महादेवय्या (दे० महादेवय्या) द्वारा संपादित (संगृहीत) 'शून्य-संपादने'। यह अत्यंत प्राचीन ग्रंथ है। अन्य संपादकों ने महादेवय्या का नामोल्लेख किया है, परंतु दुर्भाग्य यह है कि इनके समय तथा जीवनी के विषय में विवरण प्राप्त नहीं हुआ है। (2) गुम्माळपुर के सिद्धलिंग यति के कथनानुसार द्वितीय 'शून्य-संपादने' के संपादक कॆंचवीरण्णोडेय हैं। इनका ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। इनके नाम का उल्लेख भी अन्य लोगों ने नहीं किया है, अतएव कुछ विद्वानों का अनुमान है कि ऐसा कोई ग्रंथ नहीं रहा होगा। इसके बाद जिस ग्रंथ का उल्लेख होगा, उसके साथ ही इसका मिलान हो सकता है। (3) हलगेय देवरु (समय पंद्रहवीं शती) द्वारा संपादित ग्रंथ 'तृतीय शून्य-संपादने' है। (4) चौथा ग्रंथ गुम्मळापुर के सिद्धलिंग यति द्वारा संपादित है। स्व० एम० आर० श्रीनिवासमूर्ति (दे०) जी के कथनानुसार यति का यह ग्रंथ कॆंचवीरण्णोडेय के ग्रंथ का संक्षिप्त रूप है। यति का समय 1480-1500 ई० के बीच में माना जाता है। (5) गुळूर सिद्धवीरण्णोडेय द्वारा संपादित ग्रंथ पांचवां है। इनका समय 1500 ई० के आसपास माना जा सकता है। ये विविध संस्करण क्यों निकले, इनमें पाठभेद भी क्यों है, इसके संबंध में विद्वानों ने विचार किया है। अल्लमप्रभु (दे०) 'शून्य-संपादने' के केंद्रबिंदु हैं। वीरशैव वचनकारों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। उनके वचनों की उपलब्धि और प्रभाव के अनुसार तथा सिद्धराम (दे०) जैसे भक्त के वीरशैव-धर्म में दीक्षित होने के कारण ऐसे संस्करण निकले होंगे, ऐसा कुछ लोग अनुमान लगाते हैं।

'शून्य-संपादने' की विशेषता उसकी नाटकीयता में है। उसमें प्रभुदेव अथवा अल्लम प्रभु तथा अन्य वचनकारों के वचन संवाद-पद्धति में पिरोए गए हैं। प्लेटो के संभाषणों के समान ये संवाद महत्वपूर्ण हैं। ऊपर उल्लिखित पांच संस्करणों गुळूर में सिद्धवीरण्णोडेय के ग्रंथ को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। उसमें संपादक की प्रतिभा और नवीनता प्रकट हुई है। 'शून्य-संपादने' के सभी संस्करणों पर विचार करने से ज्ञात होगा कि उनमें प्रभुदेव के चरित के अतिरिक्त सिद्धराम और अक्कमहादेवी (दे० महादेवियक्का) के व्यक्तित्व का भी अच्छा परिचय मिलता है। कन्नड के संपादित ग्रंथों में 'शून्य-संपादने' का विशिष्ट स्थान है, वह वीरशैव-धर्म का सुंदर पाठ्यग्रंथ भी है।

सूरिय (सूर्य) नारायण शास्त्री *(त० ले०)* [जन्म—1870 ई०; मृत्यु—1903 ई०]

इनका जन्म मदुरै में हुआ था। वहीं इन्होंने आरंभिक शिक्षा प्राप्त की थी। अँग्रेजी में बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के बाद भी तमिल के प्रति इनका अटूट अनुराग बना रहा था। ये अनेक वर्षों तक तमिल प्राध्यापक के रूप में कार्य करते रहे। शुद्ध तमिल बोलने और लिखने पर विशेष बल देते थे। कालांतर में इन्होंने अपने नाम सूरियनारायण शास्त्री को भी शुद्ध तमिल में अनूदित कर डाला था। ये परिदिमाल कलैंञ्जन कहलाने लगे। सूरियनारायण शास्त्री बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न साहित्यकार थे। इनके प्रसिद्ध नाटक हैं—'रूपावती' (दे०), 'कलावती' (दे०) और 'मान विजयम्' (दे०)। पद्यबद्ध नाटक 'मानविजयम्' का आधार है संघकालीन कृति 'कळवलि' नार्पदु' और 'पुरनानूरु' (दे०) की एक कविता। इस नाटक का नायक उस कविता का रचयिता कणैक्काल इरुंपोरै है। 'पावलर विरुंदु' में नाना विषयों से संबद्ध पद हैं। 'तनिप्पशुरत्तोकै' के पद अँग्रेजी सॉनेट की शैली में रचित हैं। इस कृति को सर जी० यू० पोप ने अँग्रेजी में अनूदित किया था। 'मदिवाणन' इनका श्रेष्ठ उपन्यास है। 'नाडह इयल' में नाटक रचना संबंधी विवेचन है। 'तमिल मोलि वरलाए' में इन्होंने तमिल भाषा का इतिहास प्रस्तुत किया है। इन्होंने कुछ वर्षों तक 'ज्ञानबोधिनी' नामक दैनिक पत्र के सह-संपादक के रूप में कार्य किया था। इन्हें तमिल के प्रसिद्ध साहित्यकारों में गिना जाता है। 'तमिल मोलि वरलाए' को तमिल भाषा का प्रामाणिक इतिहास माना जाता है।

शृंगार नैषधमु *(ते० कृ०)*

यह तेलुगु महाकवि श्रीनाथुडु (दे०) की विख्यात कृति है। यह श्रीहर्ष (दे०) के 'नैषधीयचरित'

(दे०) का छायानुवाद है। इस काव्य की रचना से पहले तेलुगु मे केवल पुराणो का ही अनुवाद होता था। तेलुगु के काव्यानुवादो की परपरा म यह पहली कृति है। यह काव्य चित्र विचित्र, उदात्त एव उज्ज्वल कल्पनाओ तथा शब्दचित्रो से परिपूर्ण है। इसमे कवि ने मूल का अनुसरण करते हुए भी, इसस पूरी तरह बँधे न रहकर अनुचित लगने वाले प्रसगो का त्याग करते हुए आवश्यक नये प्रसगो का भावन करके—विभिन्न शैलियो के प्रयोग किए हैं। इसकी काव्य-शैली अत्यत प्रौढ एव गभीर है तथा 'नैषधम् विद्वदौषधम्' की सूक्ति को तेलुगु मे सार्थक करती है।

इसकी भाषा सस्कृत-शब्दो से धीर गभीर नाद-सौंदर्य से युक्त होने के कारण पाठक एव श्रोता को आनदित करती है। तेलुगु के परवर्ती काव्यानुवादको के लिए यह कृति मार्गदर्शक बनी।

शृंगारप्रकाश (स० कृ०) [समय—ग्यारहवी शती]

ग्यारहवी शती के भोजराज (दे० भोज) की दूसरी कृति 'शृंगारप्रकाश है। यह ग्रथ हस्तलिखित रूप मे सपूर्णतया प्राप्त है। परतु पूर्णरूपेण अभी तक कभी भी प्रकाशित नही हुआ। डा० राघवन ने इसके ऊपर जो थीसिस (निबध) लिखा है उसी से इस ग्रथ का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। यह ग्रथ अलकारशास्त्र के ग्रथो म सबसे बडा, विस्तृत तथा विपुलकाय है। इसमे 36 अध्याय हैं जिनमे शब्दार्थ विषयक वैयाकरण-सिद्धातो का विवेचन, गुणदोष-विवेचन किया गया है तथा महाकाव्य नाटक तथा रसादि पर भी प्रकाश डाला गया है। शृंगार को एकमात्र रस मानने के लिए ही इन्होने 'शृंगारप्रकाश' लिखा है। 'शृंगारप्रकाश' को अलकारशास्त्र का विश्वकोष कहना अनुचित न होगा क्योकि इसम प्राचीन आलकारिको के मतो के साथ नवीन मतो का समन्वय कर एक बडा ही भव्य विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

शृंगारम्मा (क० लें०)

मैसूर के राजा चिक्कदेवराज (1672 से 1704 ई० तक) के आश्रय मे जिन कवि-लेखको को प्रोत्साहन मिला था, उनमे से एक ये भी हैं। ये श्रीवैष्णव सप्रदाय को मानने वाली थी। इनके पिता चितामणि देशिकेंद्र और गुरु श्रीनिवासदेशिक थे। इन्होने 'पद्मिनी-कल्याण' नामक काव्य लिखा है। उसमे 189 सागत्य छद हैं और तिरुपति के भगवान श्रीनिवास पद्मावती के साथ विवाह का वर्णन है। इनका काव्य लालित्यपूर्ण है, उसकी भाषा शैली मे मनोहरता है, और उसमे अलकारो का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है।

शृंगारशाकुतलमु (त० कृ०)

पिल्ललमर्रि पिनवीर भद्रुडु (दे०) (समय—पद्रहवी-सोलहवी शती) का 'शृंगारशाकुतलम्' चार सर्गो का प्रबध-काव्य है। व्यास (दे०) एव कालिदास (दे०) से गृहीत मुख्य कथावस्तु म अपनी कुछ नूतन उद्भावनाएँ जोडकर इन्होन इसकी रचना की है। इस काव्य मे हस्तिनापुर के सौंदर्य-वर्णन, दुष्यत के आखेट का वर्णन, शकुतला के जन्म-वृत्तात का वर्णन आदि विषयो पर इनका विशेष ध्यान रहा है और इन अवसरो पर कवि ने अपनी साहित्यिक पटुता को निखारने का प्रयत्न किया है। परतु कथा-निर्वाह म औचित्य-भग भी पाया जाता है। जैसे—कण्व के आश्रम मे निष्ठा-पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले अबोध बटु द्वारा मेनका एव विश्वामित्र की शृंगार-चेष्टाओ का वणन किया जाना। कथा-सयोजन म कवि ने कालिदास की विप्रलभपरक उत्तरार्ध-कथा को ग्रहण न करके, व्यास के समान सयोगात्मक कथानक ही ग्रहण किया है।

शेख अयाज (सिं० लें०)

ये सिंध के प्रसिद्ध नगर सक्खर म रहते हैं। विद्यार्थी-जीवन से ही इनकी रुचि साहित्य के प्रति अधिक रही है। 1940 ई० के आसपास इन्होने सिंधी-साहित्य के क्षेत्र के प्रवेश किया था और शीघ्र ही अपनी कविताओ म साहित्यकारो का ध्यान आकृष्ट कर लिया था। विभाजन के पश्चात् सिंध म सिंधी मुसलमानो को अधिकार दिलाने के लिए इन्होने पाकिस्तान की सरकार को ललकारा और 'जीए सिंध' का नारा लगाया। इस कारण इनको कई बार जेल यात्राएँ करनी पडी। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'भँवर भिरे आकास', 'ही गीत सुनहरी सिंधुअ जा', 'जलु जलु मशाल जलु' (तीनो ही कविता-सग्रह हैं), 'जे काक ककोर्या कापिडी' (पत्र-साहित्य), 'दोद जो मौतु' (सगीत-नाटक)। भारत के प्रसिद्ध सिंधी-कवि नारायण 'श्याम' (दे०) के समान इन्होंने भी भावाभिव्यक्ति तथा कला की दृष्टि स सिंधी-कविता म नये-नये प्रयोग

किए हैं। ये प्रधानतया प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक हैं। कवि होने के साथ-साथ ये सफल गद्य-लेखक भी हैं। इनकी रचनाएँ ओजपूर्ण शैली का सुंदर उदाहरण है।

शेख फ़रीद *(पं० सं०)* [जन्म—1173 ई०; मृत्यु—1266 ई०]

शेख फरीद सूफी-मत के चिश्ती-संप्रदाय के प्रसिद्ध संत थे। ये 'शेख फरीदुद्दीन शकरगंज' के नाम से भी विख्यात है। इनका जन्म ज़िला मुलतान (पश्चिमी पंजाब) के खोतवाल नामक गाँव मे शेख जमालुद्दीन सुलेमान के घर हुआ था। शेख फ़रीद को शिक्षा-दीक्षा के लिए मुलतान के एक इस्लामी मकतब मे भेजा गया। वहाँ जब एक बार अजमेर के चिश्ती संप्रदाय के प्रसिद्ध संत ख्वाजा कुतुबद्दीन बख्तियार 'काकी' का आगमन हुआ तो शेख फ़रीद उनके शिष्य बन गए। बाद मे इन्होंने अयोधन (पाक पटन) नामक स्थान को अपनी साधना का केंद्र बनाया और अंत तक वहीं रहे।

शेख फ़रीद की गणना पंजाबी-काव्य के आदि उन्नायकों मे की जा सकती है। इनसे पहले लोक-गीतों के बिना पंजाबी की कोई रचना उपलब्ध नही है। इनकी लोकप्रियता के प्रमाण इनकी वाणी के अनेक अंश आज भी पंजाबी परिवारों मे सूक्तियों के रूप मे प्रचलित है। ये अपने समय के सच्चे लोक-कवि थे, इसी कारण गुरु अर्जुन देव ने गुरु ग्रंथ साहब मे इनकी वाणी को भी स्थान दिया।

गुरु ग्रंथ साहब मे शेख फ़रीद की रचना तीन स्थलों पर संकलित है—(1) 'राग आसा' मे (2 शबद), (2) 'राग सूही' मे (2 शबद) तथा (3) 'शलोको' मे (112 शलोक)। काव्य-क्षेत्र मे इनकी प्रतिष्ठा 'शलोकों' के कारण ही है।

शेख फ़रीद की कविता का मुख्य स्वर आध्यात्मिक प्रेम, सदाचार और लोक-नीति का है। शांत और करुण रस की अजस्र धारा इनके काव्य मे प्रवाहित है। विशेषता यह है कि इनकी वाणी फ़ारसी-रंग से सर्वथा मुक्त और भारतीय परिवेश से पूर्णतः संपृक्त है। भाव, भाषा, प्रतीक, उपमान, दृष्टांत—सभी का चयन इन्होंने यहाँ के लोक-जीवन से किया है। पंजाबी समाज मे ये 'बाबा फ़रीद' के नाम से समादृत है।

शेखर *(हि० पा०)*

'शेखर : एक जीवनी' (दे०) के नायक शेखर द्वारा अज्ञेय (दे०) अपनी इस मान्यता की पुष्टि करते प्रतीत होते हैं कि व्यक्ति निरा पुतला, निरा जीव नहीं है, वह बुद्धि-विवेक-संपन्न प्राणी है जो परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए उन्हें बनाता और बदलता चलता है। बाल-मनोविज्ञान प्रस्तुत करने वाला यह उपन्यास शिशु शेखर को अहं, भय और सेक्स की मूल वृत्तियों से परिचालित दिखाता है। शैशव और किशोरावस्था की स्थितियो से गुजरते हुए शेखर की मनःस्थितियों का अध्ययन इतने विस्तार और गहराई के साथ किया गया है कि कहीं-कहीं वह मनोविज्ञान की पाठ्य पुस्तकों का उदाहरण प्रतीत होने लगता है।

असामान्य प्रतिभा, लगन, कर्तव्यनिष्ठा और ईमानदारी से युक्त कल्पनाशील शेखर स्वातंत्र्य की खोज मे लगे विद्रोही के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रारंभ मे उसका विद्रोह स्कूली शिक्षा, परंपरागत मान्यताओं और उनके कारण दलितों के प्रति अन्याय के विरुद्ध है तो बाद मे वह सामाजिक रूढ़ियों, नैतिक मूल्यों और राजनीतिक बंधनों के विरुद्ध विद्रोह करता है, बचपन से ही अंतर्मुखी और चिंतनशील शेखर घोर स्वाभिमानी है; अपमान, चाहे वह किसी के द्वारा और किसी भी दशा में हो, उसे सह्य नहीं। दलित मानवता के प्रति सहानुभूति और उच्च वर्णों के दयनीय दंभ के विरुद्ध आक्रोश फूलां के प्रसंग से आरंभ हो मलाबार-यात्रा में अछूतों के साथ नृशंस व्यवहार तक में दृष्टिगत होता है। क्रांतिकारी होने के साथ-साथ वह सौंदर्यद्रष्टा कलाकार और लेखक भी है। अपने चेतन मन में वह समाज के प्रचलित मूल्यों को ठुकराकर संतोष पाता है पर उसके भीतर निरंतर एक उथल-पुथल मची रहती है जो उसे चैन से नहीं बैठने देती, उसके अचेतन में यौन-प्रवृत्ति तथा विवेक-बुद्धि में निरंतर संघर्ष चलता रहता है। जीवन मे होने वाली यातनापूर्ण घटनाओं ने इसे बौद्धिक सात्त्विक घृणा से भर दिया, अन्याय के विरुद्ध विद्रोह का भाव जगाया तो रागात्मक घटनाओं—सरस्वती, शारदा, शांति और विशेषतः शशि के स्नेहिल संपर्क ने उसे व्यापक प्रेम की सामर्थ्य प्रदान की और इन दोनों के योग से बना अहंवादी, घोर क्रांतिकारी पर साथ ही अंतर्मुख, आत्मचिंतक, कल्पनाप्रवण कलाद्रष्टा संवेदनशील लेखक।

'शेखर : एक जीवनी' मनोवैज्ञानिक उपन्यास

है और उसके लेखक की रुचि शेखर के मन मे पैठ उसकी गहराइयो को उद्घाटित करने मे है अत यहाँ चरित्राकन के लिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे प्रयुक्त शिल्प अपनाया गया है। पात्र मुख से एक भी शब्द कहे बिना मुख-मुद्राओ की भाषा मे भावो का आदान-प्रदान करते हैं, सहस्मृतियो के आधार पर आत्म-विश्लेषण करते है। प्रत्यावलोकन-प्रणाली, अतरालाप, चेतना-प्रवाह, उद्धरण-शैली आदि के द्वारा चरित्र का उद्घाटन और क्रमिक विकास दिखाया गया है।

शेखर निर्दोष सृष्टि नही है। अज्ञेय ने शेखर से कही-कही इतने ऊँचे स्तर का चितन कराया है घटनाओ के प्रति ऐसी प्रतिक्रिया दिखाई है जो उसकी वय को देखते हुए सगत प्रतीत नही होती। उसकी सौंदर्यानुभूति इतनी रहस्यपूर्ण और अव्याख्येय है कि उसे ज्यो का त्यो स्वीकार नही किया जा सकता कदाचित् इन्ही दोषो के कारण नददुलारे वाजपेयी (दे०) ने कहा था कि 'शेखर मनोवैज्ञानिक प्रयोगो का पुतला है, जीवन के अनुभव और आस्थाएँ वहाँ स्थान ही नही पाती।'

कुछ आलोचको का मत है कि अज्ञेय ने इस उपन्यास के कलेवर मे अपनी अधूरी जीवनी और शेखर के रूप मे स्वय को ही प्रक्षेपित किया है। अज्ञेय और शेखर के डीलडौल, अभिरुचियो, जीवन-प्रसगो विशेषत बाल्यकाल की घटनाओ मे पर्याप्त समानता है। उनके और शेखर के जीवन-दर्शन मे भी साम्य है। वस्तुत शेखर के निर्माण मे लेखक ने अपने समस्त अनुभवो, अनुभूतियो और विचार-मथन की पूँजी लगा दी है फिर भी हमे याद रखना चाहिए कि उपन्यास का पात्र कल्पना की उपज होता है। अत शेखर लेखक का प्रतिनिधि होते हुए भी अपना निजी अस्तित्व रखता है, वह अज्ञेय का छद्म नाम न होकर जीता-जागता औपन्यासिक पात्र है, हिंदी-उपन्यास के उन थोडे से पात्रो मे से है जो अमर हैं, जिन्हे हम भूल नही सकते।

शेखर एक जीवनी (हि० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—प्रथम भाग . 1944 ई०, द्वितीय भाग 1944 ई०]

दो भागो मे रचित यह उपन्यास यद्यपि अज्ञेय (दे०) की पहली औपन्यासिक कृति है किंतु अपने सर्वथा नये अभिव्यजना-शिल्प के कारण यह हिंदी की बहुचर्चित रचना रही है। भारत को अँग्रेजो की गुलामी से मुक्त करने के लिए किए गए विभिन्न आदोलनो मे से क्रातिकारी आदोलन को पृष्ठाधार के रूप मे चुनते हुए लेखक ने इस उपन्यास मे शेखर (दे०) के माध्यम से एक क्रातिकारी के व्यक्तित्व के विकास-क्रम को रूपायित किया है। उपन्यास के प्रथम भाग मे शेखर के बचपन से लेकर कॉलेज-जीवन तक के घटना-प्रसगो को रूपायित किया गया है तथा भाग दो मे शेखर की कॉलेज-कालीन स्मृतियो, जेल-जीवन तथा मौसेरी बहिन शशि से सबद्ध प्रकरणो को पिरोया गया है।

आत्मकथात्मक शैली मे निबद्ध यह एक चरित्र-प्रधान उपन्यास है जिसमे लेखक ने मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के माध्यम से विभिन्न सामाजिक मूल्यो एव मान्यताओ तथा हिंसा-अहिंसा, घृणा-प्रेम, पाप-पुण्य आदि के सबध मे बहुमूल्य विचार व्यक्त किए है। इसीलिए कतिपय आलोचको ने इसे बदलते हुए जीवन-मूल्यो का रूपाकन करने वाला उपन्यास कहा है।

यद्यपि शेखर का अभिव्यजना शिल्प अत्यत उच्च कोटि का है तथा लेखक ने फ्लैशबैक की टेकनीक का प्रश्रय लेते हुए काव्यात्मक भाषा एव लघुकथा, यात्रा-वृत्त तथा रेखाचित्रो की शैली का समन्वय करते हुए पूरे कथाक्रम को उजागर किया है किंतु फिर भी यह नि सकोच कहा जा सकता है कि इसमे शेखर तथा शशि के अतिरिक्त अन्य चरित्र पूरी तरह से उभर कर नही आ सके हैं। सच तो यह है कि पाठक को प्रत्येक चरित्र अपनी दृष्टि से नही अपितु शेखर की दृष्टि से देखना पडता है। समग्रत यह उपन्यास शेखर के माध्यम से एक असाधारण व्यक्ति के जीवन-क्रम तथा युग-सघर्ष को सशक्त अभिव्यक्ति देने वाला एक निजी किंतु महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

शेर (उर्दू० पारि०)

शब्दकोश मे 'शेर' का अर्थ 'जानना' या 'मालूम करना' है। 'शेर' पारिभाषिक दृष्टि से उस कलाम को कहते है जो छदोबद्ध हो और जिसमे तुक मौजूद हो तथा शेर कहने वाले ने इसे इच्छापूर्वक कहा हो। इसे दो चरणो मे बाँटा जा सकता है। प्रत्येक चरण को 'मिसरह' कहते है और दो मिसरे मिलकर शेर बनते है। यो तो शेर को 'बैत' भी कहा जाता है। किंतु वास्तव मे मसनवी का शेर ही बैत कहलाता है।

मौलाना शिब्ली (दे० शिब्ली) के अनुसार 'वह उक्ति जो भावनाओ को उत्तेजित करे और उन्हे

गतिशील बनाए, शेर है।' इसी प्रकार एक अन्य जगह वह कहते हैं कि 'भावनाएँ जब शब्दों का परिधान धारण कर लेती है तो शेर बन जाती हैं।'

शेर-उल-अजम *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1906-7 ई०]

'शेर-उल-अजम' अल्लामा शिबली निअमानी की रचना है। इसमें फ़ारसी काव्य और कवियों का समीक्षात्मक वृत्तांत है। इस कृति के पांच भाग हैं और इसका विस्तार ग्यारह सौ पृष्ठों में है। इसमें फ़ारसी के कवियों के अच्छे शेरों का चयन अधिक और कवियों के जीवन-वृत्त का उल्लेख कम है। अल्लामा शिबली का मुख्य लक्ष्य काव्य-समीक्षा प्रस्तुत करना था, काव्य का इतिहास नहीं।

इसके पहले तीन भागों में नौवीं से सत्रहवीं शती ई० तक 24 मुख्य कवियों का वृत्तांत है। लगभग एक पूरे भाग में फ़िरदौसी और उनके शाहनामे का वर्णन है। चौथे भाग में फ़ारसी शायरी के गुण-दोषों का विवेचन है। अंतिम भाग में प्रेम, सौंदर्य, नीति, दर्शन और स्तुति आदि की समीक्षात्मक चर्चा है।

यह फ़ारसी भाषा का समीक्षा-शास्त्र है और अपनी तरह की नूतन रचना है। यह फ़ारसी के श्रेष्ठ कवियों का समीक्षात्मक संग्रह है। इसमें 'शेख' सादी और 'हाफ़िज़' शीराज़ी जैसे ईरानी कवियों के साथ-साथ अमीर खुसरो (दे०) जैसे भारतीय कवियों का भी उल्लेख किया गया है।

शेर-उल-हिंद *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1942 ई०]

लेखक : मौलाना अब्दुस्सलाम नदवी। मआ़रिफ़ आज़मगढ़ प्रेस द्वारा प्रकाशित इस कृति में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक उर्दू काव्य के समग्र ऐतिहासिक परिवर्तनों और क्रांतियों का उल्लेख विस्तृत व्याख्या के साथ किया गया है। उर्दू साहित्य के प्रसिद्ध लेखकों, समर्थ कवियों और काव्य-गुरुओं का विशद विवेचन भी किया गया है। अनेक प्रख्यात कवियों के काव्य का पारस्परिक तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर इस कृति को लेखक द्वारा अधिकाधिक उपयोगी बनाने का स्तुत्य प्रयत्न किया गया है। इस कृति में काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भी उर्दू साहित्य का अध्ययन-विश्लेषण किया गया है। उर्दू काव्य की समस्त विधाओं—ग़ज़ल (दे०), क़सीदा (दे०), मसनवी (दे०) और मर्सिया (दे०) आदि पर साहित्यिक स्तर की आलोचना की गई है। इसके अतिरिक्त इसमें उर्दू शायरी का स्तर, उर्दू साहित्य के प्राचीन संरक्षक काव्य-गुण उर्दू शायरी के साथ हिंदुओं का संबंध और उर्दू साहित्य में राष्ट्रीयता आदि विषयों पर भी खोजपूर्ण लेख सम्मिलित हैं। अनेक भागों में लिखित यह कृति उर्दू साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

शेळके, उ० ज० *(म० लें०)* [जन्म—1931 ई०]

अमरावती के रहने वाले श्री शेळके पहले मुद्रण-व्यवसाय में थे। वहाँ से त्यागपत्र देने के उपरांत अब स्वतंत्र लेखन-कार्य में संलग्न हैं। पत्र-पत्रिकाओं में लिखने के अतिरिक्त अब तक इनके सौ के लगभग कथा-संग्रह और उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें से दो उपन्यासों और एक कहानी-संग्रह को महाराष्ट्र-शासन का पुरस्कार भी मिल चुका है।

शेळके, शांता *(म० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

ये आधुनिक काल की प्रथितयश उपन्यास-लेखिका एवं कवयित्री हैं। इन्होंने 'नवयुग' साप्ताहिक पत्र की संपादिका होने पर गद्य-लेखन प्रारंभ किया था। इनके ग्यारह उपन्यास प्रकाशित है, जिनमें प्रमुख हैं—'भूवरील स्वर्ग', 'सुखाची सीमा', 'भायेचा पाझर', 'विझती ज्योत' आदि। इनमें स्त्री-पुरुषों के संबंधों का सूक्ष्म चित्रण किया गया है।

इनका काव्य-संग्रह 'वर्षा' नाम से प्रकाशित है। इनके काव्य के प्रसंग मुख्यतः प्रेम, प्रकृति तथा ईश्वर हैं। इनमें कवि की आकांक्षाओं एवं अनुभूतियों की प्रामाणिक अभिव्यक्ति मिलती है। काव्य में सर्वत्र स्वप्निल वातावरण है। ये विरह को जीवन का चिरंतन सत्य और मिलने को क्षणिक सुख मानती हैं। इसी कारण इनको प्रेमभाव की अभिव्यक्ति में एकाकीपन मिलता है।

शांता शेळके का काव्य छंद-प्रयोग की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण है। भाषा सहज है, कहीं भी उसमें अतिशयोक्ति या ऊहा नहीं है।

शेवकाणी, हीरो *(सि० ले०)*

ये उल्लासनगर (महाराष्ट्र) के तलरेजा कॉलेज

मे सिंधी विभाग के अध्यक्ष और प्राध्यापक है। सिंधी-साहित्य के क्षेत्र मे इन्होने पिछले दस-बारह वर्षों मे काफी ख्याति प्राप्त कर ली है। इन्होंने सिंधी-साहित्य को सफल और प्रभावशाली कहानियाँ दी है। ये कहानीकार की अपेक्षा सफल आलोचक के रूप मे सिंधी साहित्य जगत् मे अधिक प्रसिद्ध हो चुके हैं। सिंधी की विभिन्न साहित्यिक कृतियो पर इनके आलोचनात्मक निबध पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते हैं। इन्होने अपनी विशेष शैली के कारण सिंधी-आलोचना को एक नया मोड दिया है।

शेवालि (*अ० कृ०*) [रचना-काल—1932 ई०]

रत्नकात बरकाकती (दे०) की इस रचना की कविताओ का मूल स्वर प्रेम और सौदर्य है। कवि ने प्रेमिका के पूर्वराग, मिलन और विरह का वर्णन किया है। इसमे लौकिक प्रेम अलौकिकता मे परिणत होता हुआ दिखाया गया है। इस सग्रह की 'सुदर' और 'मोर पूजा' नामक कविताओ मे दार्शनिकता का आभास मिलता है। रवीद्रनाथ (दे०) ठाकुर से प्रभावित होकर कवि ने 'ताजमहल' कविता लिखी थी। उसकी कविता का प्रधान आकर्षण इसकी ओजपूर्ण भाषा और श्वासाघात-प्रधान छद है। उसने कुछ छद अपने और अपनी कविता के ऊपर भी लिखे है।

शेषय्या, चागटि (*ते० ले०*)

साहित्यिक इतिहासकार एव अनुवादक के रूप मे इनको विशेष ख्याति मिली है। तेलुगु के शतशत कवियो मे इनका शोध-कार्य इसका प्रमाण है। 'आध्र कवि तरगणि' नामक विशालकाय रचना मे तेलुगु-साहित्य एव साहित्यकारो पर इतने विस्तार से पहली बार इन्होने ही लिखा था। अत परवर्ती साहित्यिक अनुसधानकर्त्ताओ के लिए यह ग्रथ मार्गदर्शक सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त इन्होने 'दुर्गेशनदिनी' आदि अनेक उपन्यासो का अनुवाद करके तेलुगु के उपन्यास-साहित्य की श्रीवृद्धि की है।

शेष सप्तक (*बँ० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1935 ई०]

यह रवीद्रनाथ ठाकुर (दे०) की कविताओ का सग्रह है तथा उनके चौहत्तरवें जन्मदिन पर 1935 ई० मे प्रकाशित हुआ था। ये कविताएँ दो मास मे लिखित है।

समस्त अहकार, नाम एव ख्याति त्याग निर्मल-निरासक्त चित्त से कवि आत्म चिंतन मे मग्न होना चाहता है। सृष्टि, ध्वस जन्म, मृत्यु के अतराल मे जहाँ महा-काल निरासक्त अवस्था मे अविचलित आनद मे विराज रहा है वहाँ कवि आश्रय पाना चाहता है। यही इन कविताओ का विषय है।

यह गद्य छद मे नूतन रूप म प्रस्तुत है। इसको गद्य-काव्य की सज्ञा दी जाती है। इससे कवि के भाव-जीवन मे उपनिषद् युग का प्रारभ माना जाता है। इसकी भाषा अत्यत कलापूर्ण है। इन कविताओ म अत्यत गभीर चिंतन को सहज एव स्वाभाविक रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

शेषेर कविता (*बँ० कृ०*) [रचना-काल—1930 ई०]

यह रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) का अन्य प्रसिद्ध लघु उपन्यास है। बैरिस्टर अमित अभिजात वर्ग की अति आधुनिक युवतियो के व्यक्तित्वहीन आचरण से ऊब कर शिलाग मे शाति एव एकात पाने के लिए जाता है। यहाँ एक दुर्घटना मे उसका परिचय लावण्य से होता है जो उसके जीवन की सबसे मधुर घटना बन जाती है। प्रकृति के मोहक वातावरण मे दोनो की प्रेम-भावना इद्र-धनुषी रगो मे खिलने लगती है। दोनो एक-दूसरे के समीप आते हैं दूर होने के लिए। उपन्यास का केंद्र बिंदु है नूतनता का प्रेमी, कल्पनाशील, रोमानी अमित। एक सजग युवती और सहज नारी होने के नाते अमित लावण्य के विशिष्ट व्यक्तित्व पर मुग्ध ही नही होता, उसे जीवन-साथी बनाने के लिए व्यग्र भी है। अमित अपने भावलोक की नयी सृष्टि स प्रसन्न एव मुखर है परतु लावण्य को सुरक्षा की आशका है। केटी-प्रसग मे वह समझ जाती है कि इस व्यक्ति को विवाह के नीड मे बाँध रखना असभव है। ऐसी विवश स्थिति मे दोनो का अपने-अपने किशोर साथी से विवाह करना स्वाभाविक है। प्रेम और विवाह की चिरतन समस्या के परिप्रेक्ष्य म रवींद्र ने नर-नारी की मूल प्रकृति का विश्लेषण किया है। पुरुष भाव-प्राण एव स्वच्छद वृत्ति का हो सकता है, पर नारी सुरक्षाबोध मे बच नही सकती। काव्यात्मकता और रोमानिकता मे व्याप्त यह उपन्यास रवींद्र की श्रेष्ठ उपलब्धि है।

शैवालिनी *(वँ पा०)*

(चंद्रशेखर में) शैवालिनी की नियति वंकिम-चंद्र (दे० चट्टोपाध्याय) के सामाजिक अनुशासन में वँधी पड़ी है। नीतिविद् बंकिम ने शैवालिनी के नारी-हृदय की आशा-आकांक्षा को समाज की नीति-शृंखला में बाँधना चाहा था एवं वहीं तथाकथित नीति के साथ हृदय का द्वंद्व स्पष्ट हो उठा है। प्रेम की पहली परीक्षा में प्रताप की जहाँ जीत हुई है शैवालिनी वहाँ पराजिता है। इस पराजय की ग्लानि से प्रेरित शैवालिनी की अग्निशुद्ध मूर्ति ने प्रताप को अपना वनाना चाहा है परंतु तव तक वह चंद्रशेखर की परिणीता हो चुकी है। इसीलिए प्रेम के जगत् ने वहाँ अभिशाप का रूप धारण किया है एवं प्रायश्चित्त की लीक वाले रास्ते से पति के साथ मिलन होता है परंतु वहाँ भी शंका बिलकुल समाप्त नहीं हुई है। इसीलिए प्रताप की आत्माहुति के माध्यम से उपन्यास की परि-समाप्ति हुई है। शैवालिनी की नियति विजयी हुई है परंतु पराजय के ग्लानिभार से वह नतशिर है। शैवालिनी चतुर एवं साहसी है। प्रत्युत्पन्नमतित्व में उसकी तुलना नहीं है। प्रणय-तृष्णा उसके अंतर की गहराई में दुर्निवार है। शैवालिनी का अहंकार उसके लिए गौरव का विषय है, प्रणय उसकी प्राण-तरंग है। इसीलिए शैवालिनी निंदिता होते हुए भी हृदय-राज्य में निस्संदेह अनिंदिता, अपरूपा है।

शैली *(पारि०)*

'शैली' पाश्चात्य साहित्यालोचन में विवेचित 'स्टाइल' का हिंदी-पर्याय है। 'स्टाइल' शब्द लेटिन 'स्टाइ-लस्' से निष्पन्न है। 'स्टाइलस्' एक प्रकार की धातु-निर्मित लेखनी होती थी जिससे मोम की पट्टियों पर शब्द अंकित किए जाते थे। इस शब्द का प्रयोग क्रमशः लेखन-कार्य के कौशल और नैपुण्य के अर्थ में होने लगा। पाश्चात्य साहित्यालोचन में प्लेटो-अरस्तू-युग से ही 'स्टाइल' को दो भिन्न अर्थों में गृहीत किए जाने की पर-परा रही है। प्लेटोवादी विवेचकों के अनुसार प्रत्येक उक्ति में 'शैली'-तत्त्व की स्थिति अनिवार्य नहीं है, जबकि अरस्तूवादियों की दृष्टि में 'शैली' अभिव्यक्ति मात्र का अनिवार्य अंग है; यह और बात है कि वह सबल या दुर्बल अथवा अच्छी या बुरी किसी भी प्रकार की हो।

'शैली' का शब्दार्थ है किसी भी कार्य के संपादन का ढंग, प्रकार, प्रणाली, तरीका, रीति अथवा पद्धति। जब कार्य-संपादन में कोई वैशिष्ट्य हो तो उसे कौशल कहा जाता है। इससे एक ओर तो कर्त्ता के निजी व्यक्तित्व की पृथक्ता प्रकट होती है तथा दूसरी ओर उसमें प्रभविष्णुता के गुण का संवर्द्धन होता है। प्रभविष्णुता के संवर्द्धन के और भी अनेक कारण हो सकते हैं; जैसे—युग, स्थान, वंश, भाषा, छंद आदि की विशेषता। साहित्य के संदर्भ में शैली का अर्थ हुआ अभिव्यक्ति का वह धर्म जो उसे सौंदर्य और प्रभविष्णुता का वैशिष्ट्य प्रदान करता है। शैली का गुण मात्र अभिव्यंजना-शिल्प में निहित नहीं रहता; उसकी उद्भूति में विषय-वस्तु की प्रेरणा का अनिवार्य योग होता है। उत्कृष्ट शैली का मूल आधार है कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए सर्वोपयुक्त, एकमात्र, अपरिहार्य एवं अद्वितीय शब्दों का चयन।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के समय-समय पर शैली के अनेक गुणों का विवेचन हुआ है जिनमें प्रमुख हैं प्रांज-लता, औचित्य, औदात्य, शक्तिमत्ता, मार्मिकता और अलं-करण। शैली के दोषों में शब्दाडंबर, अनावश्यक वाग्विस्तार, पुनरावृत्ति, अत्युक्ति, अनुपयुक्त, शब्द-प्रयोग, दूरारूढ़ रूपक-योजना और शिथिल पदावली आदि का प्रमुख रूप से उल्लेख किया गया है। पश्चिम में विभिन्न दृष्टियों से शैली के अनेक भेदों का निरूपण भी किया गया है, जैसे प्रसिद्ध यूनानी आलंकारिक डिमैट्रियस के अनुसार उत्कृष्ट शैलियाँ हैं : उदात्त, सहज और ओजस्वी। इन्होंने निकृष्ट शैलियों के भी चार प्रकार माने हैं : शिथिल, कृत्रिम, नीरस और सामंजस्यहीन। किंतु इस प्रकार का वर्गीकरण और भेद-निरूपण सार्थक नहीं हो सकता, क्योंकि शैली वस्तुतः रचना और रचनाकार के वैशिष्ट्य से इतने घनिष्ठ रूप में संपृक्त होती है कि प्रत्येक रचना की अपनी अलग शैली होती है, यहाँ तक कि एक ही लेखक की एक ही विधा में रचित विभिन्न कृतियों की शैलियाँ भी अलग-अलग होती हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में शैली का विवे-चन 'रीति' (दे०) के अंतर्गत हुआ है। किंतु 'रीति' को तत्त्वतः शैली का पर्याय नहीं माना जा सकता, क्योंकि रीति-मीमांसा केवल पदरचनागत वैशिष्ट्य तक ही सीमित है : अभिव्यंजना-पद्धति के अन्य तत्त्व इसमें समाविष्ट नहीं है।

शैलीविज्ञान *(हिं० पारि०)*

हर व्यक्ति की, चाहे वह कवि हो या लेखक

या ऐसा जो कुछ न लिखता हो, अपनी शैली होती है। यदि किसी व्यक्ति ने प्रसाद, प्रेमचद और अज्ञेय को अच्छी तरह पढा हो, और उसे बिना बताए तीन पैराग्राफ दें तो वह प्राय जान जाएगा कि अमुक पैरा प्रसाद का है, अमुक प्रेमचद का और अमुक अज्ञेय का। प्रश्न उठता है कि वह कैसे जान जाता है ? इसका एकमात्र उत्तर है शैली के आधार पर। हर भाषा मे सामान्य अभिव्यक्ति का ढग होता है। व्यक्ति अपनी शैली के अनुसार उस सामान्य ढग से अलग हटता है। सामान्य से अलगाव ही व्यक्ति की शैली होती है। जो व्यक्ति सामान्य ढग से जितना अधिक अलग हटता है, वह उतना ही बडा शैलीकार होता है। इस तरह, भाषा मे व्यक्ति की शैली उसके कथन के ढग के उस अश को कहते हैं जो सामान्य ढग मे अलग होती है। किंतु इसका अर्थ यह नही कि शैली का सबध मात्र अभिव्यक्ति से है। उसका बहुत-कुछ सबध कथ्य से भी होता है, क्योकि एक सीमा तक दोनो ही एक दूसरे के साथ अनुस्यूत होते हैं अत एक को क्षति पहुँचाए बिना दूसरे को अलगाया नही जा सकता। शैलीविज्ञान इस शैली का ही अध्ययन है। अपनी परपरा मे इसके लिए पुराना शब्द 'रीति' था। इसी आधार पर कुछ लोग इसे 'रीतिविज्ञान' भी कहते है। यह विज्ञान भाषाविज्ञान और काव्यशास्त्र दोनो की सहायता से शैली का विवेचन करता है। किसी कवि या लेखक की कृति के शैलीवैज्ञानिक विवेचन मे भाषाविज्ञान और काव्यशास्त्र दोनो की सहायता लेते हुए ध्वनिविज्ञान, शब्दविज्ञान, रूपविज्ञान, वाक्यविज्ञान, अर्थविज्ञान, अलकारशास्त्र, शब्द शक्ति, गुण, रीति, ध्वनि, दोष तथा छद शास्त्र आदि की दृष्टि से विश्लेषण करके निष्कर्ष-स्वरूप उसकी रचना की वैयक्तिकता का पता लगाने का प्रयास करते है। सामान्य भाषा मे शैलीय अलगाव की गुजाइश जितनी ही कम होती है, काव्यभाषा मे उतनी ही अधिक होती है। इसीलिए ऐसी रचना, जिसमे काव्य-भाषा का प्रयोग हो, शैलीवैज्ञानिक अध्ययन के लिए अधिक उपयुक्त है।

शोकगीति (एलेजी) *(पारि०)*

अँग्रेजी के 'एलेजी' शब्द का विकास यद्यपि यूनानी भाषा के 'इलीजिया' से हुआ है तथापि किसी आत्मीय के मृत्युजन्य विषाद की अपेक्षा युद्ध और प्रेम-विषयक इन यूनानी शोकगीतियो का अँग्रेजी 'एलेजी' के आधुनिक रूप से कोई सीधा सबध नही है। वस्तुत यह शब्द किसी भाव, अनुभूति अथवा किसी अन्य प्रकार के वर्ण्य-विषय का व्यजक न होकर छद-विशेष का द्योतक है। सामान्य रूप से 'एलिजिआक' छद मे विरचित सभी प्रकार की प्रगीतात्मक रचनाएँ 'एलेजी' के नाम से अभिहित की जाती थी। इस छद की रचना षट्पदी (हैक्सामीटर) और पचपदी (पैंटामीटर) के मिश्रण से की जाती थी, किंतु सोलहवी शती के आरभ से ही अँग्रेजी-साहित्य मे 'एलेजी' शब्द का सबध इस विशिष्ट छद से विछिन्न हो गया और इस शब्द का प्रयोग अत्येष्टि गीत अथवा मृत्युजन्य शोकोद्गार को व्यक्त करने वाली प्रगीत-रचना के लिए किया जाने लगा। पाश्चात्य आलोचना-शास्त्र म सक्षिप्त आकार, सयत भाववेगपूर्ण चिंतनप्रधान शैली, कारुणिकथा, गाभीर्य तथा सहज एव निश्छल अभिव्यक्ति शोकगीति के प्रमुख शिल्प-उपकरण माने गए है।

शोणित कुँवरी *(अ० कृ०)* [रचना काल—1925 ई०]

नाट्यकार ज्योतिप्रसाद आगरवाला (दे०) मे कवित्वशक्ति के साथ-साथ सूक्ष्म नाट्य-बोध भी है, इसका पता इस कृति मे लगता है। इस पौराणिक नाटक मे उषा-अनिरुद्ध के प्रेम पर अधिक जोर दिया गया है, बाण-युद्ध पर नही। प्रेमिका के हावभाव, मानसिक अवस्था आदि का अधिक चित्रण है। अल्पवयस म रचना करने से इस कृति मे भावो की गभीरता नही है, पर कल्पना का विलास अवश्य है। चरित्रो का अतर्द्वंद्व नही है किंतु सरल माधुर्य है। कहीं-कहीं हास्य की भी सृष्टि है। इस नाटक की विशेषता यह है कि इसम लेखक ने प्रत्येक दृश्य के लिए रगमचीय निर्देश दिए हैं—असमीया नाटको म पहले नाटकीय साज-सज्जा के प्रति ध्यान नही दिया जाता था। नाटक की दूसरी विशेषता यह है कि इसम असमीया सगीत का समावेश कर इसका अभिनय को अधिक आकर्षक बनाया गया है।

शोला एन्तूर (उर्दू० कृ०)

'जिगर' मुरादाबादी (दे०) ने इस काव्य-कृति मे 'दाग' देहलवी (दे०) की शैली का अनुकरण कर शृगार रस की अपनी ग़ज़लो को सगृहीत किया है। लौकिक सौंदर्य और लौकिक प्रेम की अनुभूतियो

को इस कृति में सर्वत्र स्वर दिया गया है। प्रेम, सौंदर्य, यौवन और शृंगार के कवि 'जिगर' मुरादाबादी की ग़ज़लों के इस संकलन में मादकता ही मादकता उमड़ी पड़ती है। कवि को प्रेम से अत्यधिक प्रेम है। इस प्रेम-सुरा में वह इतना खो जाता है कि कभी-कभी स्वयं को प्रेमी के स्थान पर प्रेमिका समझने लगता है। कहीं-कहीं वह अपनी प्रेमिका को व्यंग्यपूर्ण शैली में संबोधन कर उसे छेड़ने में भी आनंद का अनुभव करता हुआ देखा जा सकता है। ग़ज़ल का यह कवि इस कृति में अपनी प्रबल भावुकता और आत्मविभोरता के साथ दिखाई देता है। इस काव्य की मुख्य विशेषता सरलता और तरलता है। दुर्बोध और क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है। मुहावरों का प्रयोग बड़ी कलात्मकता के साथ किया गया है। शब्दालंकारों से भी यथेष्ट लाभ उठाया गया है परंतु इनकी अतिशयता कहीं-कहीं अखरने भी लगती है। 'दाग़-ए-जिगर' के बाद लिखित कवि का यह दूसरा काव्य-संग्रह अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़, गंभीर और प्रभावशाली है। इसमें गहन विषयों की खोज में भरसक प्रयास किए गए हैं किंतु किन्हीं-किन्हीं स्थानों पर कवि की भाषा भावानुकूल नहीं है। इस कृति की रचनाओं का वर्गीकरण चार शीर्षकों के अंतर्गत किया गया है। ये शीर्षक हैं—'वारदात-ए-जिगर', 'जज़्बात-ए-जिगर', 'तख़य्युलात-ए-जिगर' और 'नग़मात-ए-जिगर'। 'लमआते-नूर' शीर्षक के अंतर्गत नज़्में भी संकलित की गई हैं और अंत में 'बादा-ए-शीराज़' शीर्षक से रचयिता की फ़ारसी-ग़ज़लों का संग्रह भी प्रस्तुत किया गया है। इस कृति का मुख्य विषय शृंगार ही है।

शोला-ओ-शबनम *(उर्दू० कृ०)*

'जोश' मलीहाबादी (दे०) की इस काव्य कृति में उल्लिखित कविताएँ तीन अध्यायों में विभक्त हैं। प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्यायों को क्रमशः 'आतिशकदा', 'रंग-ओ-बू', तथा 'इस्लामियात' शीर्षकों से सज्जित किया गया है। 'आतिशकदा' में राष्ट्रीय चेतना, प्रगतिवादी दृष्टिकोण, क्रांतिकारी विचारधारा और दासता की शृंखलाओं को काट फेंकने की प्रेरणा-दायक कविताओं का संग्रह है। 'रंग-ओ-बू' में कवि की शृंगारिक कविताएँ हैं और 'इस्लामियात' के अंतर्गत धार्मिक और इस्लाम-संबंधी कविताओं का नियोजन किया गया है। कृति के अंत में जदीद 'रंग-ए-तग़ज़्ज़ुल' और 'क़दीम रंग-ए-तग़ज़्ज़ुल' शीर्षकों के अंतर्गत कवि ने अपनी नयी और पुरानी प्रतिनिधि ग़ज़लों का संग्रह प्रस्तुत किया है। संपूर्ण कृति उत्कृष्ट काव्य का सजीव उदाहरण है। भावानुकूल भाषा तथा भाव और शैली का औदात्य इसमें सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। 'जोश' साहब का कल्पना-जगत भी बड़ा भव्य और मनोमुग्धकारी है। कवित्व से भरपूर उनकी यह कृति उर्दू साहित्य की अमूल्य निधि है। 1920 ई० से 1926 ई० तक की श्रेष्ठ कविताओं और ग़ज़लों का संकलन इसमें हुआ है।

'शौक़' क़िदवाई *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1853 ई०; मृत्यु—1928 ई०]

नाम—शेख़ अहमदअली,' उपनाम—शौक़; जन्म-स्थान—क़सबा जगौर (जि० बाराबंकी)। ये 'असीर' (दे०) लखनवी के शिष्य थे। मसनवी-लेखन तथा नाटक-रचना में इनकी विशेष रुचि थी। 'क़ासिम-ओ-ज़ोहरा' नाटक तथा मसनवी 'तराना-ए-शौक़' इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। अनुभूतियों की सजीव अभिव्यंजना इनकी कला की विशेषता है। नारी-मनोभाव के सफल चित्रण इनकी रचनाओं में विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। इस संदर्भ में इनकी एक कविता — आलम-ए-ख़याल' बहुत प्रसिद्ध है। इनकी मसनवियों में सर्वत्र यथार्थ चित्रण के तत्त्व मिलते हैं। इनकी भाषा सरल, सरस, स्पष्ट और मुहावरे-दार है।

शौकत थानवी *(उर्दू० ले०)*

'शौकत' साहब की गणना उर्दू के प्रसिद्ध हास्य तथा व्यंग्य-लेखकों में होती है। इनके द्वारा लिखित उपन्यासों में कथानक की पेचदगियाँ नहीं हैं। प्रसाद गुण-संपन्न शैली में दैनिक जीवन और उसकी सामान्य घटनाओं का असामान्य तथा असाधारण निरूपण इनकी सशक्त कला की मुख्य विशेषता है। सजीव बिंब-विधान के बल पर ये हास्य का वातावरण जुटाने में सर्वत्र सफल रहे हैं। उपन्यास-संबंधी अनेक दोषों के रहते हुए भी इनकी कृति 'स्वदेशी रेल' को आशातीत लोकप्रियता प्राप्त हुई। इनकी अन्य पाँच कृतियाँ—'दुनिया-ए-तबस्सुम', 'मौज-ए-तबस्सुम', 'बहर-ए-तबस्सुम', 'सैलाब-ए-तबस्सुम' और 'तूफ़ान-ए-तबस्सुम' भी बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। एक अन्य कृति 'शीशमहल' में इन्होंने अपने विशिष्ट

परिचितो एवं मित्रो का दोष-गुण-निरूपण अत्यत सजीव एव कलात्मक ढंग स किया है। हास्य-चित्रण के रूप मे इनका साहित्य चिरस्मरणीय बना रहेगा। उपर्युक्त कृतियो के अतिरिक्त दस-पद्रह अन्य कृतियाँ भी हैं जिनके लेखन का गौरव इन्हे प्राप्त है।

श्मशान-कुरुक्षेत्र (क० कृ०)

यह कुवेंपु (दे०) (डा० के० वी० पुट्टप्पा) का 'महाभारत' (दे०) की कथा पर आधृत नाटक है। नाटककार ने अपने उद्देश्य की सफलता के लिए कल्पना का सुदर प्रयोग किया है। गीर्वाण, नीलाक्ष द चाणूर दुर्योधन के निष्ठावान स्वामिभक्त सेवक है। श्मशान के एक भाग मे हम उनका दर्शन करते है। दूसरे भाग मे पति को ढूंढती हुई अपने वच्चे के साथ आने वाली अभागिन माता का दर्शन करते हैं। अंतिम समय मे अनजाने ही पाडवो के हाथ का पानी पीने से संतप्त और 'कौरव प्रभु के प्रति अपराध हो गया, अंतिम समय मे पाडवो के हाथ का पानी पानी से'। क्षमा करो प्रभो ! क्षमा करो। क्षमा करो।' कहकर प्राण त्यागने वाले योद्धा का दर्शन अन्यत्र होता है। कुती (दे०) भी उस श्मशान मे सहदेव के साथ आती है, कर्ण के शरीर को ढूंढने के लिए। भीम (दे०), द्रौपदी (दे०) और धर्मराज को भी वहाँ देख सकते हैं। स्थितप्रज्ञ धर्मराज की बातें उदात्त और मनोहर हैं। श्रीकृष्ण-कौरव-भेंट का संदर्भ-चित्रण नाटक का मर्मस्पर्शी स्थल है। दुर्योधन अपने प्रति किए गए अन्यायो का स्मरण कर सुख का नाश करने वाले श्रीकृष्ण को *तिरस्कारसूचक शब्दो से ज्यो ही पुकारता है त्यो ही वे* वहाँ दर्शन देते हैं। वे दुर्योधन (दे०) को मुक्तिश्री प्रदान करते है। तब वह समझता है कि भगवान के लीला-नाटक का वह एक पात्र है। परतु, उस समय भी वह कर्ण को नही भूलता। यह दुर्योधन-कर्ण के लोकोत्तर स्नेह का निदर्शक है। इस नाटक मे दुर्योधन और श्रीकृष्ण के चरित्र की सृष्टि कलात्मक ढंग से की गई है। वेदात के तत्त्वो का प्रतिपादन श्रीकृष्ण के द्वारा कराके अथवा तत्त्वो के रूप मे ही श्रीकृष्ण के चरित्र का नाटककार ने अद्भुत संदेश दिया है।

'श्याम', नारायण नागवाणी *(सि० ले०)* [जन्म—1929 ई०]

नारायण 'श्याम' ने कॉलेज मे शिक्षा प्राप्त करते समय सिंधी-साहित्य के क्षेत्र मे प्रवेश किया था। 'सिंधु' और 'कहाणी' नामक पत्रिकाओ मे प्रकाशित इनकी कविताओ ने सिंधी-साहित्यकारो का ध्यान आकृष्ट किया था। 1947 ई० से कुछ समय पूर्व इनकी कविताओ के एक हस्तलिखित संग्रह पर इन्हें सिंध के शिक्षा-विभाग से पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। देश-बिभाजन के पश्चात् ये दिल्ली मे स्थायी रूप से रहने लगे थे और आजकल वही एक सरकारी विभाग मे कार्य कर रहे हैं। विभाजन के पश्चात् इनके छ कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके है—'माकफुडा' (हरी दिलगीर की कविताओ के सग्रह के साथ) 'पखुड्यू', 'रंगरतीलहर', 'रोशन छांवरो', 'माकभिना रावेल', 'वारीभ भर्यो पलांदु'। इनकी आरंभिक कविताएँ प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित हैं। बाद मे इन पर हिंदी के छायावादी (दे० छायावाद) कवियो का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। इन्होने जीवन मे प्राप्त अनुभूतियो को यथार्थ रूप मे अपनी कविताओं मे प्रस्तुत किया है। कला की दृष्टि से इन्होंने भाषा-शैली और छंदो के नये-नये प्रयोग अपनी रचनाओ मे किए हैं। इसके साथ-साथ इन्होने सिंधी-काव्य के प्राचीन छंदो को भी अपनी रचनाओ के द्वारा पुनर्जीवित किया है। स्वातत्र्योत्तर सिंधी-कविता के विकास मे इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

श्यामलिक *(सं० ले०)* [समय—800-900 ई०]

श्यामलिक की चर्चा अभिनवगुप्त (दे०) ने की है। क्षेमेंद्र (दे०) ने भी अपने 'औचित्य-विचार चर्चा' (दे०) मे इनका एक पद्य उद्धृत किया है। इनके जीवन-वृत्त के विषय मे विशेष *जानकारी नही*, पर इन्होंने अपने को उदीच्य लिखा है। अत सभवत इनका जन्म काश्मीर मे हुआ था। कुछ लोग इनको महिमभट्ट (दे०) का गुरु मानते है।

इनके द्वारा रचित केवल 'पादताडितक' नामक भाण का नामोल्लेख मिलता है। पर यह कृति आज तक प्राप्त नही हो सकी।

श्यामसुंदरदास *(हि० ले०)* [जन्म—1885 ई०; मृत्यु—1945 ई०]

ये हिंदी के अनन्य भक्त थे तथा इन्होंने अपने विद्यार्थी-जीवन मे ही दो मित्रो—रामनारायण मिश्र तथा ठाकुर शिवकुमार सिंह—के सहयोग मे नागरी (दे०)

प्रचारिणी सभा की स्थापना कर डाली थी। ये जीवन-पर्यंत कोश, इतिहास, काव्यशास्त्र, भाषा-विज्ञान, शोध-कार्य पाठ्य-पुस्तकों के लेखन-संपादन द्वारा पूरी निष्ठा के साथ हिंदी के अभावों को दृष्टिपथ में रखकर उसे समर्थ बनाने का अनवरत प्रयत्न करते रहे थे। इनकी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग तथा काशी हिंदू विश्वविद्यालय ने क्रमशः 'साहित्य-वाचस्पति' एवं डी० लिट्० की मानार्थ उपाधियाँ देकर इन्हें सम्मानित किया था। 'हिंदी-हस्तलिखित ग्रंथों का वार्षिक खोज विवरण', 'हिंदी भाषा और साहित्य', 'गोस्वामी तुलसी-दास', 'रूपक-रहस्य', 'भाषा-रहस्य', 'भाषा-विज्ञान', 'साहित्यालोचन' आदि इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं।

श्रद्धा *(हिं०पा०)*

श्रद्धा जयशंकर प्रसाद (दे०) के महाकाव्य 'कामायनी' (दे०) की नायिका है। उसका चित्रण तीन रूपों में हुआ है—ऐतिहासिक रूप में, आदर्श नारी के रूप में और प्रतीक रूप में। ऐतिहासिक रूप में वह कामगोत्रजा, मनु (दे०)-पत्नी और मानव-जननी है। इस ऐतिहासिक सूत्र को ग्रहण कर प्रसाद ने उसके आदर्श मानवी रूप का निर्माण किया है। इस निर्माण में थोड़ा-बहुत कल्पना से भी काम लेने का अधिकार वे नहीं छोड़ सके हैं। बौद्ध-करुणा से चिरपरिचित होने के कारण उनकी कल्पना ने वैदिक 'कामायनी' को भी तद्नुरूप चित्रित कर दिया है। उसकी परदुःखकातरता, विश्वमैत्री और कर्मप्रेरणा आदि विशेषताएँ इस तथ्य की पोषक हैं। श्रद्धा की इन विशेष-ताओं ने उसे पूर्ण नारी रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है।

श्रद्धा का मानवी रूप मानो उसके आंतरिक गुणों की ही बाह्य आकृति है। उसका स्निग्ध दर्शन शांति-दायक है। प्रथम दर्शन में ही वह मनु को आकृष्ट कर लेती है और सृष्टि के विकास की प्रेरणा देती है। गर्भ-वती होने पर उसमें मातृभाव का उदय होता है। जीव-मात्र के प्रति वात्सल्य-भाव के उद्रेक से वह मनु को हिंसा-वृत्ति छोड़ने का उपदेश देती है। ईर्ष्यालु पति द्वारा परि-त्यक्त होकर भी वह उसके ध्यान में मग्न रहती है। उसकी निर्मल आत्मा को पति के संकट का पूर्वाभास स्वप्न में मिल जाता है और वह उसकी खोज में निकल पड़ती है। पति को आहत पाकर भी उसकी कारण-रूप इड़ा (दे०) को क्षमा कर देती है। इतना ही नहीं, पुनः मनु की खोज में निकलने पर इड़ा की कल्याण-कामना से अपना पुत्र भी उसे सौंप देती है। अंत में, श्रद्धा की प्रेरणा से ही मनु को सामरस्य-लाभ होता है। इस प्रकार प्रेम, वात्सल्य, दया, क्षमा और त्याग जैसे उत्तम गुणों को आत्मसात् कर लेने के कारण उसका व्यक्तित्व प्रसाद के नारी-पात्रों में ही नहीं, हिंदी-काव्य के नारी-पात्रों में काफ़ी प्रभावशाली बन गया है।

उसका महिमामय चरित्र प्रतीक-रूप में प्रसाद की आनंदमयी आस्था को सफलता के साथ व्यंजित करता है। मनु या मन को सामरस्य की स्थिति में पहुँचने के लिए श्रद्धा या आस्तिक भावना की अंगुलि पकड़कर चलना चाहिए। इड़ा या विवेकवाद भी उसी के अनुशासन में रहकर कल्याणकारी हो सकता है।

श्रीकंठैया, ती० नं० *(क० ले०)* [जन्म—1906 ई०; मृत्यु—1966 ई०]

वर्तमान युग के कन्नड के ख्याततामा विद्वान् श्रीकंठैया जी का जन्म तुमकूर ज़िले के तीर्थपुरा ग्राम में हुआ था। बचपन से ही इनमें ज्ञान की पिपासा थी। परीक्षाओं में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त करने के कारण इनको अनेक पुरस्कार और स्वर्णपदक प्राप्त हुए थे। उन दिनों मैसूर सिविल सर्विस परीक्षा पास करना बहुत कठिन माना जाता था। कन्नड और अँग्रेज़ी दो विषयों में एम० ए० पास करने के बाद उसमें सफलता प्राप्त कर ये मैसूर सरकार के वित्त-विभाग में अमलदार हुए थे। परंतु, कुछ ही दिनों में उस पद को छोड़कर ये मैसूर के महाराजा कालेज में कन्नड के प्राध्यापक हो गए थे। ये बी० एम० श्रीकंठैया (दे०) जी के शिष्य थे जिनके आकर्षण ने इनको कन्नड-साहित्य-क्षेत्र में आकृष्ट किया था।

आचार्य श्रीकंठैया जी ती० नं० श्री० के नाम से साहित्य-क्षेत्र में अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ गए हैं। ये एक सफल अध्यापक, अच्छे वक्ता, सहृदय कवि, यशस्वी आलोचक, प्रतिभासंपन्न भाषा-विज्ञानी और मिलनसार व्यक्ति थे। इन्होंने कविताएँ बहुत कम लिखीं, पर जो लिखीं, वे सुंदर और उत्तम हैं। 'किरिय काणिके' (छोटा उपहार) और 'तलिस' (नवपल्लव) में इनकी प्रारंभिक कविताएँ संगृहीत हैं। 'ओलुमे' में पवित्र दांपत्य और जीवन के ललित-मधुर शृंगार का चित्रण है। मर्यादापूर्ण शृंगार को सरल भाषा-शैली में अभिव्यंजित करने में इन्हें अपूर्व सफलता मिली है। ती० नं० श्री० संस्कृत, कन्नड और अँग्रेज़ी के प्रकांड पंडित थे। इन्होंने कतिपय अँग्रेज़ी

और संस्कृत कविताओं का अच्छा अनुवाद किया है। इनकी कविताओं में 'पारिजात', 'दतद बाचणिगे' (हाथी-दाँत की कंघी), 'हालकायुन चदुर' (खेत का चतुर रक्षक) जैसी कविताएँ अधिक प्रसिद्ध हुई हैं। इनकी कविताओं में यथार्थ और कल्पना का सुंदर सामंजस्य है।

कवि से बढ़कर आलोचक के रूप में तीं० नं० श्री० को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। इनका ग्रंथ 'भारतीय काव्य मीमांसे' (भारतीय साहित्यशास्त्र) कन्नड का उत्कृष्ट कोटि का सैद्धांतिक आलोचना-ग्रंथ है। संस्कृत और कन्नड के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का गंभीर अध्ययन कर यह लिखा गया है। 'पप' (दे०) 'काव्य-समीक्षे' (काव्य-समीक्षा) और 'समालोचन' जैसे ग्रंथों में इनकी व्यावहारिक आलोचना का दर्शन किया जा सकता है। उनको 'कवि हृदय के आलोचक' और 'आलोचक मनवाले कवि' कहा गया है। कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा का ऐसा मिलन कम लोगों में देखा जाता है।

तीं० नं० श्री० प्रख्यात भाषाविज्ञानी भी थे। मैसूर विश्वविद्यालय में भाषाविज्ञान के अध्ययन का बीजारोपण इन्होंने ही किया था। भाषाविज्ञान संबंधी इनके प्रकाशित लेखों को देखने से ज्ञात हो सकता है कि ये कितने गंभीर चिंतक थे। इनका एकमात्र नाटक 'राक्षसन मुद्रिके' (राक्षस की मुद्रिका), जो विशाखदत्त के नाटक पर आधृत है, कन्नड का एक लोकप्रिय नाटक है। इन्होंने रन्न (दे०) के 'गदायुद्ध' (दे०) और हरिहर (दे०) के 'नवियण्णनरगळे' का संपादन कर पाठानुसंधान का महत्वपूर्ण कार्य किया है। कन्नड-कन्नड-कोश की संपादक-समिति के अध्यक्ष के पद पर रहकर भी इन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया था।

श्रीकंठैया, बी० एम० *(क० ले०)* [जन्म—1884 ई०; मृत्यु—1946 ई०]

जिन महापुरुषों ने आधुनिक कन्नड साहित्य में जागृति का शंखनाद किया था, उनमें आचार्य श्रीकंठैया जी अग्रगण्य थे। ये बेळूर के रहने वाले थे। मैसूर के महाराजा कालेज तथा बंगलोर सेंट्रल कालेज में इन्होंने शिक्षा पाई थी। 1906 ई० में बी० एल० तथा 1909 ई० में एम० ए० उपाधि प्राप्त की थी। 1926-30 ई० तक ये मैसूर विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार के पद पर रहे। 1927 ई० में ये कन्नड के मानसेवी प्रोफेसर हुए थे। 1942 ई० में विश्वविद्यालय की सेवा से निवृत्त होने के बाद के० ई० बोर्ड आर्ट्स कालेज के ये प्रिंसिपल रहे। इनको 'राजसेवासक्त' विरुद प्राप्त था। ये कन्नड, तमिल, संस्कृत, अँग्रेजी और ग्रीक के प्रकांड विद्वान् थे। कर्नाटक के एकीकरण के लिए इन्होंने अग्रणी रहकर अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया था। ये पंडित और रसज्ञ ही नहीं, अच्छे वक्ता भी थे। 1938 ई० से '42 ई० तक ये कन्नड-साहित्य-परिषद् के उपाध्यक्ष थे।

'श्री' उपनाम से कर्नाटक में सर्वत्र इनकी ख्याति है। इनकी कुछ रचनाएँ ये हैं—(1) 'अश्वत्थामन्' (नाटक), (2) 'इंग्लिष गीतग' (अँग्रेजी गीत) (काव्य), (3) 'इस्ला संस्कृति', (4) 'कन्नड मातु तलेयेत्तुन बगे (कन्नड भाषा के विकास का विधान), (5) 'कन्नड-कैपिडि', (6) 'पारशिकरु' और (7) 'होंगनसुग' (सुनहरे सपने)। इनके अतिरिक्त इनके द्वारा संपादित 'कन्नड बावुट' (कन्नड ध्वज) अत्यंत प्रसिद्ध काव्य-संग्रह है जिसमें प्राचीन तथा आधुनिक काल के अनेक गण्यमान्य कवियों की ऐसी कविताएँ संगृहीत हैं जिनसे भाषा-प्रेम और देश-प्रेम जागृत होता है। 'श्री' जी ने रन्न (दे०) के 'गदा-युद्ध' (दे०) का भी नाटक-रूप में परिवर्तन किया था। यह कई बार कर्नाटक के रंगमंचों पर खेला जा चुका है।

'श्री' जी की रचनाओं में 'इंग्लिष गीतग' का सर्वाधिक महत्व है। उसमें तीन मौलिक कविताएँ और साठ अनूदित कविताएँ हैं। अँग्रेजी-साहित्य में प्रसिद्ध वर्ड्सवर्थ, शेली, बर्न्स, ब्राउनिंग प्रभृति रोमांटिक कवियों की कविताओं का इन्होंने इस प्रकार अनुवाद किया है कि वे स्वतंत्र रचना-सी प्रतीत होती हैं। इन्होंने नवकवियों को नवीन काव्य-निर्माण के लिए प्रेरणा दी थी, नये छंदों का रूप और माधुर्य प्रदर्शित किया था, नयी शैली का प्रांजल रूप सामने रखा था। इस प्रकार इन्होंने कन्नड के नवोदय की पक्की नींव डाली थी। अतएव ये आधुनिक कन्नड के आचार्यों में थे। इनकी कृति 'होंगनसुग' में इनकी स्वतंत्र कविताएँ हैं जिनमें कन्नड-दर्शन' के साथ-साथ भारत-भक्ति भी प्रकट हुई है। इनकी 'कन्नड-बावुट' (कन्नड-ध्वज) और 'कन्नड ताय नोट' (कन्नड माता का दर्शन) जैसी उत्तम कविताएँ अत्यंत लोकप्रिय हुई हैं।

श्रीकंठ शास्त्री, नजनगुडु *(क० ले०)* [जन्म—1884 ई०; मृत्यु—1958 ई०]

ये कन्नड के नाटककार और कथाकार के रूप में विख्यात हैं। ये प्रकांड पंडित थे और मैसूर के महा-

राजा द्वारा सम्मानित हुए थे। इनके बड़े भाई अनंत-नारायण शास्त्री जी भी प्रसिद्ध साहित्यकार थे। इन्होंने अनेक अँग्रेजों को कन्नड भाषा सिखाई थी। 'निरुपमा', 'ध्रुव विजय', 'विष्णुलीला' और 'सीता-परिणय' नाटक बहुत ही लोकप्रिय हुए हैं जिनकी रचना इन्होंने अभिनय-विशारद वरदाचार्य की नाटक-मंडली में खेले जाने के लिए की थी। इन्होंने लगभग सत्तर कृतियाँ कन्नड साहित्य को प्रदान की हैं। इनकी रचनाओं में वैविध्य और गहराई दोनों हैं।

श्रीकांत *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—प्रथम पर्व : 1917 ई०; द्वितीय पर्व : 1918 ई०; तृतीय पर्व : 1927 ई०; चतुर्थ पर्व : 1933 ई०]

'श्रीकांत' के बारे में कुछ विद्वानों का विश्वास है कि इस उपन्यास की आधार-भूमि शरत् का अपना जीवन है। चारों पर्वों की अंतर्व्याप्त एकसूत्रता का केंद्र है श्रीकांत जिसकी बाल्यावस्था से लेकर शेष जीवन का इतिहास इन पर्वों में लिपिबद्ध है। प्रथम पर्व में इंद्रनाथ का अनुराग, कर्तव्यनिष्ठा, तथा दुःसाहसपूर्ण सबल व्यक्तित्व अविस्मरणीय प्रभाव छोड़ जाता है परंतु श्रीकांत की वास्तविक जीवन-गाथा अन्नदा, अभया, कमललता और विशेष रूप से राजलक्ष्मी (दे०) के परि-प्रेक्ष्य में उभरती है। आत्मलीन, निर्लिप्त, उदार तथा सहृय श्रीकांत के जीवन में ये पात्र आते हैं और अपनी-अपनी प्रकृति और स्वभाव की सीमा में अपने व्यक्तित्व को उद्घाटित करते हैं। अन्नदा मूक एवं सहनशील है, अभया मुखर एवं स्वच्छंद प्रकृति की है, कमललता संस्कारों में बँधी तथा राजलक्ष्मी बालसहचरी होते हुए भी कई कड़वे-मीठे अनुभवों के मानसिक संघर्ष में बह रही है। इसी संदर्भ में शरत् ने नारी के धार्मिक एवं नैतिक संस्कार, समाज का अन्यायपूर्ण कठोर आचरण तथा मुक्तिकामना के लिए व्याकुल नारी की समस्याओं को उठाया है। इन्हीं विशेषताओं के कारण 'श्रीकांत' को सर्वश्रेष्ठ उपन्यास होने का गौरव प्राप्त है।

श्रीकांत *(बँ० पा०)*

शरत्चंद्र (दे०) का श्रीकांत ('श्रीकांत' उप-न्यास का प्रमुख पात्र—दे०) एवं इंद्रनाथ (दे०) हमारे ही हृदय के दो रूप हैं। हमारा जो मन सुप्त है उसी मन का क्षेत्र है श्रीकांत की जीवनभूमि। और जाग्रत मन का प्रतिरूप है इंद्रनाथ। इसीलिए इंद्रनाथ की दृप्त चेतना के रश्मिपात से श्रीकांत का सुप्त मन धीरे-धीरे जग उठा है। समाज-संस्कार का वास्तविक रूप श्रीकांत के अंतरपट पर प्रस्फुटित हुआ है। समाज के अनुशासन से निपीड़ित मानवात्मा की क्रंदन-ध्वनि ने उसे व्यथित किया है। श्रीकांत के हृदय के साथ पाठक-हृदय का इसलिए सहज ही तादात्म्य संभव हुआ है। शरत्चंद्र का जीवन-दर्शन ही श्रीकांत का जीवन-दर्शन है। प्रत्येक घटना, प्रत्येक मनुष्य को हृदय की कसौटी में कसकर उसको सही मूल्य प्रदान करने का प्रयत्न ही श्रीकांत का प्रयत्न रहा है। श्रीकांत की दृष्टि में इसीलिए अन्नदा दीदी महिमामयी *तथा अग्निशिखा-रूपिणी है। राजलक्ष्मी* (दे०) *प्रेम की* मणिदीप है और कमललता है परिपूर्ण माधुर्य एवं प्रशांति-मय संध्यातारा। समाज की दृष्टि में इनमें से कोई भी मर्यादा के आसन में प्रतिष्ठित नहीं हो सका है परंतु हृदय के सत्य-बोध के आलोक में ये चिरउज्ज्वल है। श्रीकात की जीवनदृष्टि अखंड जीवन के सत्यबोध पर आश्रित मर्म-संचारी चिरसुंदर स्वरूप-दर्शन का ही नामांतर है। इसी-लिए महत् प्रेम उसे बाँधता नही, दूर ले जाता है। अश्रु-समुद्र के अनंत रसतीर्थ में जीवन-जाह्नवी का यह अविराम प्रवाहित होने का मंत्र श्रीकांत की प्राणतरंग का महिमामय नित्य-स्पंदन है।

श्रीकृष्ण कीर्तन *(बँ० कृ०)*

1908 ई० में पंडित बसंतरंजन राय ने आद्यंत खंडित एक पांडुलिपि का संग्रह किया। 1915 ई० मे बंगीय साहित्य परिषद् ने 'श्रीकृष्ण कीर्तन' के नाम से इस पांडुलिपि को प्रकाशित किया। प्रकाशित होते ही यह ग्रंथ आदि-मध्य युग की बँगला भाषा एवं साहित्य के निदर्शन रूप में अभिनंदित हुआ यद्यपि संदेह आज भी बना हुआ है। इस ग्रंथ की पुष्पिका में सर्वत्र 'बडुचंडीदास' अथवा 'अनंत बडुचंडीदास' का नाम मिलता है। विशाल पदावली साहित्य में चंडीदास (दे०) प्राक्-चैतन्य युग के अन्यतम श्रेष्ठ कवि के रूप में विख्यात थे किंतु उनके पदसमुद्र में कहीं भी इस प्रकार का नामोल्लेख नहीं हुआ है। 'द्विज', 'दीन' आदि नामों का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ। इतना ही नहीं, श्रीकृष्ण कीर्तन की भाषा को आदि-मध्ययुग की बँगला भाषा के रूप में ग्रहण करने के पक्ष मे बहुत-से प्रमाण मिल जाते हैं। दूसरी ओर पदावली की भाषा के

साथ श्रीकृष्ण कीर्तन की भाषा का पार्थक्य अत्यत स्पष्ट है। फिर, पदावली के क्षेत्र मे चडीदास के सूक्ष्म-अतीद्रिय प्रेम का जो अपरूप साक्षात्कार होता है, वह श्रीकृष्ण-कीर्तन की आदि रसात्मक स्थूल वर्णना मे नही मिलता है। परिणामस्वरूप पडितगण चडीदास के बारे मे सशयी हैं। पाडुलिपि के लिपि विचार के आधार पर इतिहासज्ञ राखालदास बद्योपाध्याय इसे 1350 ई० का पूर्ववर्ती मानते है। दूसरी ओर लिपि कागज एव स्याही की वैज्ञानिक परीक्षा के आधार पर आचार्य सुकुमार सेन (दे०) इसे अष्टादशशती से पहले का ग्रथ मानने के लिए तैयार नही हैं।

इस पाडुलिपि के सपादक ने इसका नाम दिया है 'श्रीकृष्ण कीर्तन' परतु पाडुलिपि मे वर्णित दूसरे सूत्रो के आधार पर इस काव्य को 'श्रीकृष्ण सदर्भ' कहना अधिक सगत प्रतीत होता है।

'श्रीकृष्ण-कीर्तन' की कहानी मे एक सपूर्णता स्पष्ट है। जन्म खड, ताबूल खड, दान, नौका, भार, छत्र, वृदावन, यमुना, बाण, वशी एव विरह खड मे वर्णित इस कहानी की धारा पदावली की स्वर मूर्च्छना से निश्चय ही भिन्न है। चरित्र केवल तीन है—श्रीकृष्ण, श्रीराधिका एव बडाइ बुडि। मधुर के स्थान पर ऐश्वर्य रस ही यहाँ प्रधान है। कहानी की गति मे ये तीनो चरित्र ही नाटकीय उत्कर्ष की अभिव्यक्ति मे सहायक हुए हैं। गीतिनाट्य के ऐश्वर्य से यह अनुप्राणित है। जीवन रस ही इस काव्य की यथार्थ प्राण-तरग है।

श्रीकृष्णचरितम् मणिप्रवालम् *(मल० कृ०)*

मलयाळम के प्रसिद्ध काव्यो मे इसका प्रमुख स्थान है। इसका रचना-काल अठारहवी शती है। बारह सर्गों के इस काव्य मे श्रीकृष्ण-अवतार का वर्णन पहले सर्ग मे, पूतना-मोक्ष की कथा हास्यरसात्मक शैली मे दूसरे सर्ग मे, नलकूबर आदि की कथा तथा कृष्ण-बाल-लीलाओ का वर्णन तीसरे सर्ग मे हुआ है। वन वर्णन और कालिय नाग के अहकार का दमन चौथे सर्ग मे चित्रित है। पचम और षष्ठ सर्ग का विषय रास-क्रीडा है। कस-कथा, रुक्मिणी-परिणय, जाबवान के साथ युद्ध करके विजयी होना, उनकी पुत्री को पत्नी के रूप मे स्वीकार करना कौरव-पाडव-युद्ध और सतान-गोपलम आदि कथाएँ शेष सर्गों म कवि ने मजुल शैली म लिखी है।

श्रीकृष्ण-मगल *(बँ० कृ०)*

'माधव' नाम की ओट मे कृष्ण-मगल काव्य के एकाधिक कवि आत्मगोपन किए हुए हैं। 'गौर गणोद्देश-दीपिका' एव 'चैतन्यचरितामृत' (दे०) काव्य के अनुसार माधवाचार्य नित्यानद प्रभु के जामाता थे। 'प्रेमविलास' ग्रथ के अनुसार कालिदास मिश्र के पुत्र एव देवी विष्णु-प्रिया के भ्रातुष्पुत्र तथा अद्वैताचार्य के शिष्य माधव आचार्य या माधव मिश्र ने ही 'श्रीकृष्ण-मगल' काव्य की रचना की है। 'श्रीकृष्ण-मगल'-काव्यकार चैतन्य (दे०) के किसी परिचर के शिष्य थे, यह सकेत इस ग्रथ से मिलता है।

'श्रीकृष्ण-मगल' काव्य मे भागवत के अतिम तीन स्कधो का भावानुवाद हुआ है। भागवत बहिर्भूत कई कहानियो का इस ग्रथ मे वर्णन हुआ है। विष्णुपुराण', 'हरिवश आदि' कवि ने उपकरणो का सग्रह किया है। बँगला देश मे बहुप्रचलित दान-लीला एव नौका-लीला का कवि ने साग्रह वर्णन किया है यद्यपि पुराणो मे इसका उल्लेख नही है। इस ग्रथ मे श्रीराधिका, बडाइ एव चद्रावली का उल्लेख है परतु ललिता-विशाखा अनुपस्थित हैं। दूसरे जिन माधव के 'श्रीकृष्ण मगल' का उल्लेख मिलता है वे 'चडीमगल' या 'गगामगल' के रचयिता माधव भी हो सकते हैं।

श्रीकृष्ण-विजय *(बँ० कृ०)*

महाप्रभु श्री चैतन्य (दे०)-प्रशसित मालाधर वसु का श्रीकृष्ण विजय' काव्य 'भागवत पुराण' अनुवाद-धारा का अतिविशिष्ट ग्रथ है। कवि को 'गुणराजखाँ' की उपाधि मिली हुई थी एव यह ग्रथ 'गोविंद विजय' 'गोविंद-मगल' अथवा 'श्रीकृष्ण विक्रम' के नाम स भी परिचित था। इस ग्रथ को मूल का भावानुवाद कहना ही श्रेयस्कर है। कवि ने भागवत के दशम तथा एकादश स्कधो का ही अनुवाद किया था। तुर्की आक्रमण से विध्वस्त विदेशी शासन के युग मे बगाली समाज मे भगवान श्रीकृष्ण के पुरुषोत्तम रूप की प्रतिष्ठा के लिए अन्यान्य स्कधो से भी उपादान का सग्रह कर उन्हान काव्य को सपूर्णता प्रदान की है। भागवत-बहिर्भूत श्रीराधिका का उल्लेख इस ग्रथ मे है। प्राक्-चैतन्य वैष्णव धर्म का परिचय भी इस ग्रथ म विद्यमान हैं।

काव्यकार मालाधर बसु (दे० वसु) न इस

ग्रंथ में ग्रंथारंभ तथा ग्रंथ-समाप्ति का समय क्रमशः 1473 ई० तथा 1480 ई० बताया है। गौड़ाधिप रुकनुद्दिन युसुफ़शाह (1460-1474 ई०) के राज्यकाल में उन्होंने ग्रंथारंभ किया था एवं शामसुद्दिन युसुफ शाह (1474-1481 ई०) के राज्य-काल में यह समाप्त हुआ था। इन दोनों राजाओं में से किसी एक ने उन्हें 'गुणराज खाँ' की उपाधि से विभूषित किया था।

भागवत् के दूसरे अनुवादकारों में रघुनाथ पंडित भागवताचार्य के 'श्रीकृष्ण-प्रेमतरंगिणी' काव्य में भागवत् के प्रथम नौ स्कंधों का सारानुवाद एवं अंतिम तीन स्कंधों का अक्षरशः अनुवाद किया गया है। बराह-नगर-निवासी कवि ने कदाचित् सोलहवीं शती के अंतिम भाग में इस काव्य की रचना की थी।

श्रीधर *(गु० ले०)* [समय—पंद्रहवीं शती]

प्राचीन गुजराती के जैनेतर कवियों में श्रीधर का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका पूरा नाम श्रीधर व्यास था। ये जाति के ब्राह्मण थे।

'रणमल्ल छंद' (द०), 'ईश्वरीछंद', 'सप्तशती' ये तीन इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'भागवत-दशम स्कंध' नामक एक अन्य रचना भी इनके नाम पाई जाती है।

'रणमल्ल छंद' ऐतिहासिक वीरकाव्य है। इनकी एक कृति 'कवित्त भागवत' भी है।

'सप्तशती' में संस्कृत सप्तशती की कथा का गुजराती में छंदोबद्ध निरूपण है।

श्रीधर *(म० ले०)* [जन्म—1658 ई०; मृत्यु—1729 ई०]

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध तीर्थस्थान पंढरपुर के समीपस्थ ग्राम 'नाझरे' में इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम ब्रह्माजी पंत और माता का सावित्री था। भगवत्भक्त और विद्वत्कुल में जन्म लेने के कारण विद्या-भ्यास का इन्हें अनुकूल वातावरण मिला था। संस्कृत के व्याकरण, न्याय, धर्म, ज्योतिष, वेदांत, योग, इतिहास-पुराण, काव्य-नाटक, काव्य-नाटक, काव्य शास्त्र-कला इत्यादि विषयों से इनका सम्यक् परिचय हो गया था। काव्य-रचना की प्रेरणा इन्हें अपने विद्वान् पिता से मिली थी। श्रीधर का अधिकांश जीवन अध्ययन-मनन, ग्रंथ-रचना, ईश्वरोपासना, कीर्तन, सत्संगति और विद्वानों से शास्त्रकाव्य-चर्चा में ही अत्यंत सुखपूर्वक व्यतीत हुआ था। इनका ग्रंथ-रचना-काल 15-16 वर्षों का ही है, परंतु छंदों की संख्या साठ हज़ार के आसपास है। स्फुट प्रकरण ही लगभग सौ हैं। 'रामचंद्रध्यानम्', 'राघवाष्टकम्', 'महावाक्यविवरणम्' आदि नौ प्रकरण संस्कृत में तथा शेष मराठी पद्यों में लिखे गए हैं। श्रीधर की कीर्ति और लोकप्रियता के आधार-ग्रंथ हैं—'हरिविजय', 'रामविजय', 'पांडव-प्रताप' (दे०), 'जैमिनी-अश्वमेध', और शिवलीला-मृत'। 'हरिविजय' में 36 अध्याय हैं, इनमें अनेक दैत्यों का संहार कर कृष्ण द्वारा प्राप्त विजयों का वर्णन है। 'राम-विजय' में 40 अध्याय हैं। 'रामायण' के सातों कांडों की कथा इसमें अंतर्भूत है। 'पांडव-प्रताप' में 64 अध्याय हैं। 'महाभारत' पर यह आधारित है, परंतु संपूर्ण' महाभारत' इसमें अंतर्भूत करने का प्रयत्न नहीं है। जैमिनी-कृत 'अश्वमेध कथा' का आधार ही 'जैमिनी-अश्वमेध' है; इसमें पांडवों द्वारा किए गए 'अश्वमेध' का वर्णन है। संस्कृत के 'स्कंद-पुराण—ब्रह्मोत्तर खंड' के आधार पर 'शिवलीलामृत' लिखा गया है।

श्रीधराणी, कृष्णलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1911 ई०; मृत्यु—1959 ई०]

कृष्णलाल श्रीधराणी का जन्म सौराष्ट्र में हुआ था और शिक्षा-दीक्षा दक्षिणामूर्ति, भावनगर और गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद में हुई थी। बचपन से ही इनमें काव्य-सर्जन की शक्ति प्रकट हुई थी। पंद्रह वर्ष की अवस्था में इन्होंने 'अभिलाष' कविता की रचना की थी। इनकी प्रारंभिक कविताओं में गांधी जी की भावनाएँ पाई जाती हैं और कतिपय रचनाएँ समाजवादी विचारधारा से प्रभावित हैं।

श्रीधराणी कुछ वर्ष शांतिनिकेतन में गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर (दे०) के सान्निध्य में रहे थे। उनके महान् व्यक्तित्व और कृतित्व से ये बहुत प्रभावित हुए थे। इसी के फलस्वरूप इस काल की इनकी कविता में रवींद्रनाथ की बँगला कविता का लालित्य, माधुर्य और लय उपलब्ध है। श्रीधराणी की इन रचनाओं में रहस्यो-न्मुखता, भावना एवं कल्पना की प्रचुरता और रमणीयता पाई जाती है। इनमें इनका जीवन-दर्शन स्वस्थ, प्रसन्न, विस्तृत और ऊर्ध्वलक्षी है। 'कोडियाँ' (दे०), (कविता-संग्रह) और 'पीयलो दंडा' (नाटक) इनकी उल्लेखनीय कृतियाँ है। श्रीधराणी ने सॉनेट भी रचे हैं, पर उनमें

इन्हे विशेष सफलता नही मिली।

पत्रकार के रूप मे श्रीधराणी बारह वर्ष तक अमरीका रहे। वहाँ इन्होने काफी कीर्ति और समृद्धि अर्जित की। पत्रकार के रूप मे वे भारत लौटे। दिल्ली मे स्थायी निवास करने के पश्चात् पुन श्रीधराणी की कवि-प्रतिभा प्रकाश मे आई। 'पुनरपि' काव्य-सग्रह की सभी कविताएँ इसी अवधि की है। इन कविताओ मे यथार्थ-बोध है और अभिव्यक्ति मे रुक्षता एव वक्रता पाई जाती है। 'पुनरपि' का कथ्य और रूप नवीन होते हुए भी 'कोडियाँ' की तुलना मे साधारण है।

श्रीनाथुडु *(ते० ले०)* [समय—चौदहवी-पद्रहवी शती ई०]

तेलुगु साहित्य मे 1400 ई० से लेकर 1500 ई० तक का समय श्रीनाथ-युग के नाम से प्रसिद्ध है। नन्नयभट्ट (दे०), तिक्कना सोमयाजी (दे०) और एर्रा-प्रगड (दे०) के द्वारा प्रतिष्ठित तेलुगु साहित्य का सवर्द्धन कवि सार्वभौम श्रीनाथुडु के हाथो सपन्न हुआ। यही कारण है कि श्रीनाथुडु को आध्रजगत् का श्रीनाथ (पालनहार—भगवान विष्णु) माना जाता है। मारय्या और भीमाबा के पुत्र श्रीनाथुडु जन्म से ही प्रतिभाशील थे और वाणी का वरदान उनको सहज ही प्राप्त हुआ था। सस्कृत, तेलुगु और कन्नड के प्रकाड विद्वान होने के नाते इनकी रचना मे प्रौढता, प्राजलता और पटुता दिखाई देती है। बचपन से ही इन्होने काव्यरचना आरभ की। इनके द्वारा रचित 'मरुत्तराट्-चरित्रमु', 'शालिवाहन-सप्तशती', 'शृगारनैषधमु' (दे०), 'हरविलासमु' (दे०), 'भीमेश्वर पुराणमु, 'काशीखडमु' (दे०), 'पलनाटिवीर-चरित्र' (दे०), 'क्रीडाभिराममु' (दे०), 'शिवरात्रि-महात्म्यमु' (दे०), 'पडिताराध्यचरित्र' आदि कई ग्रथो के नाम मिलते हैं। इनमे कुछ अप्राप्य हैं। उपलब्ध रच-नाओ मे 'शृगारनैषधमु' श्रीहर्ष (दे०) के 'नैषधीयचरित्र' (दे०) का स्वच्छद अनुवाद है। 'हरविलासमु' कालिदास (दे०) के 'कुमारसभव' (दे०) और भारवि (दे०) के 'किरातार्जुनीय' (दे०) पर आधारित रचना है। 'काशी-खडमु', 'भीमेश्वर पुराण' और 'शिवरात्रिमहात्म्यमु' पौराणिक रचना-शैली के नमूने हैं। 'पलनाटिवीरचरित्र' वीरगाथा से सबधित मौलिक रचना है। श्रीनाथुडु स्वतत्र चेता कवि थे। कोडवीडु के नरेश के दरबार मे इन्हे विद्याधिकारी का पद मिला था और स्वर्णमुद्राओ से इनका अभिषेक किया गया था। परतु जीवन के अतिम भाग मे इन्हे दुर्दशा का सामना करना पडा। तेलुगु-साहित्य मे अगर श्रीनाथुडु जैसे कवि पैदा न होते तो बाद मे कृष्ण-देवरायलु (दे०) का दरबार सूना ही पडा रहता। सच्चे अर्थो मे श्रीनाथुडु तेलुगु-साहित्य के उन्नायक राष्ट्रकवि माने जा सकते है।

श्रीनिवास *(क० ले०)*

दे० मास्ति वेंकटेश आय्यगार।

श्रीनिवासदास *(हि० ले०)* [जन्म—1850 ई०, मृत्यु 1887 ई०]

हिंदी गद्य के प्रारभिक लेखको मे इनका महत्त्व-पूर्ण स्थान है। इन्होने अपने अल्पकालीन जीवन मे 'प्रह्लाद-चरित्र', 'तप्ता सवण', रणधीर प्रेममोहिनी', 'सयोगिता स्वयवर' नामक चार नाटको तथा 'परीक्षा गुरु' (दे०) उपन्यास की रचना की थी। हिंदी के अनेक आलोचको ने 'परीक्षा गुरु' को हिंदी का पहला उपन्यास माना है। इनके समय तक खडी बोली का कोई निश्चित रूप निर्मित नही हो पाया था तथा भिन्न भिन्न लेखक इसमे स्थानीय प्रयोग मिश्रित कर रहे थे। लेकिन इन्होने अपनी भाषा मे स्था-नीय प्रयोगो को यथाशक्ति बचाकर खडी बोली का मानक रूप तैयार करने मे सहायता दी थी।

श्रीनिवासन, टी० के० *(त० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

तिरुच्चिरापल्लि मे जन्म। दक्षिण रेलवे के कार्यालय मे कार्य करते हुए राजनीति की ओर उन्मुख हुए। राज्यसभा के सदस्य भी रहे। इन्होने लगभग पचास कहानियो, तीन उपन्यासो और अनेक निबधो की रचना की है। अपनी एक कृति मे स्वर्गीय अण्णादुरै (दे०) के जीवन का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। कई पत्रो का सपादन भी किया है। इन्होने प्राय रूपक शैली मे रचना की है। इनका प्रसिद्ध उपन्यास 'आडुम माडुम' इसी शैली मे रचित है। कहानियो एव उपन्यासो मे इनका आशावादी दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। उनमे व्यग्य की प्रधानता है।

तमिल साहित्य जगत मे टी० के० श्रीवामन तत्त्वज्ञानी के रूप मे विख्यात हैं।

श्रीनिवासमूर्ति, एम०आर० *(क०ले०)* [जन्म—1892ई०; मृत्यु—1953 ई०]

ये कन्नड के उच्चकोटि के विद्वानों में से है। अध्यापक, स्कूल इंस्पेक्टर आदि कई पदों पर रहकर इन्होंने सेवा-कार्य किया था। मैसूर स्कॉट संघ की मासिक पत्रिका के संपादक, 'प्रबुद्ध कर्णाटक' के संपादक-मंडल के सदस्य तथा मैसूर विश्वविद्यालय से प्रकाशित अँग्रेज़ी-कन्नड-कोश के सहसंपादक और संपादक के रूप में इनकी सेवाएँ अमूल्य हैं। इनके ग्रंथों में 'नागरिक' गीतनाटक की विशेष ख्याति है। 'कविय सोलु' (कवि की हार) इनका काव्य-संग्रह है। 'धर्मदुरंत', 'कंठीरवविजय' और 'रूल्स मेष्ट्र' (रूल्स मास्टर) इनके नाटक है। 'वचनधर्मसार' इनकी सुंदर आलोचनात्मक कृति है। 'यदुविजय' और 'वीरशैव-साहित्य' इनके दो और ग्रंथ हैं जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुए।

श्रीनिवासरावु, कोलाचलं *(तं० ले०)* [जन्म—1854 ई०; मृत्यु—1919 ई०]

ये वर्तमान मैसूर-राज्य के बल्लारि नामक शहर के रहने वाले थे और व्यवसाय से वकील थे। ये एकसाथ कवि, आलोचक तथा नाटककार थे और तेलुगु के अतिरिक्त संस्कृत तथा अँग्रेज़ी के भी अच्छे विद्वान थे। इन्होंने 1894 ई० से नाटक लिखना आरंभ किया। इनके सभी नाटक प्रदर्शन करने के उद्देश्य से ही लिखे गए थे। बल्लारि मे 'सुमनोरमा सभा' नाटक समाज की स्थापना की गई थी और उसके द्वारा इनके नाटक प्रदर्शित होते थे। 1902 ई० में ये इस समाज के अध्यक्ष भी बन गए। इनकी रचनाएँ हैं—'रामराजु', 'मैसूरुराज्यमु', 'प्रतापाकबरीयमु', 'सुल्ताना चाँदबीबी' आदि ऐतिहासिक नाटक; 'गिरिजा-कल्याणमु', 'सत्यहरिश्चंद्रीयमु', 'प्रह्लाद-नाटकमु' आदि पौराणिक नाटक; 'द्रौपदीवस्त्रापहरणमु', 'बभ्रुवाहनुडु', 'कीचकवध' जैसे महाभारत (दे०) से संबद्ध नाटक; 'सीताकल्याणमु', 'पादुकापट्टाभिषेकमु', 'लंकादहनमु' आदि रामकथा-संबंधी नाटक; 'युवतीविवाहमु', मानवपिशाचमु' जैसे सामाजिक नाटक; 'अन्याय धर्मपुरीमहिमा' जैसे कुछ प्रहसन; 'अगस्त्य भारत' का तेलुगु-पद्यानुवाद तथा इसके अतिरिक्त अनेक अलोचनात्मक लेख। इन्होंने अँग्रेजी में संसार भर के नाटक-साहित्य का इतिहास भी लिखा।

इनके सभी नाटक मौलिक तथा प्रदर्शन-योग्य हैं। इनके ऐतिहासिक नाटकों में 'रामराजु' बहुत प्रसिद्ध है। इनके नाटकों में अनेक गीतों तथा छंदों का समावेश, अंकों का दृश्यों में विभाजन, संस्कृत-नाटकों के अनेक नियमों का उल्लंघन तथा अँग्रेज़ी नाटक-नियमों का अनुसरण ये सभी बातें पाई जाती है। अँग्रेज़ी-नाटकों के 'एपिलॉग' की तरह ये भी अपने नाटकों के अंत में 'उत्तरंग' के नाम से कुछ छंद लिखते थे। इनमें कई बातों में इन्होंने धर्मवरं रामकृष्णमाचार्युलु (दे०) का अनुसरण किया।

बहुमुखी प्रतिभा से युक्त होते हुए भी श्रीनिवासरावु प्रधानतः श्रेष्ठ रंगमंचीय नाटकों के लेखक के रूप में ही प्रसिद्ध हुए हैं। इनमें भी इनके ऐतिहासिक नाटकों का विशेष महत्त्व है। इसीलिए इनको 'आंध्रचारित्रिक (ऐतिहासिक) नाटक पितामह' कहा जाता है। आंध्र-प्रांत के अंतर्गत रंगशालाओं तथा रंगमंचीय नाटकों की व्याप्ति के संबंध में धर्मवरं रामकृष्णमाचार्युलु के साथ श्रीनिवासरावु का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

श्री नेमिनाथ फागु *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1313 ई०]

श्री नेमिनाथ फागु राजशेखर सूरि द्वारा रचित एक सरस कृति है। इसमें नेमिनाथ और राजमती की कथा वर्णित है। यह कथा जैन-कवियों की प्रिय कथा रही है। इस कथा को लेकर जैन-कवियों ने 'नेमिनाथचरित', 'नेमिरास', 'नेमिनाथ फागु' की रचना की है। प्रस्तुत फाग मे राजमती या राजुल का विवाह तीर्थंकर नेमिनाथ से निश्चित हुआ था किंतु वे उस अवसर पर अनेक बलि पशुओं को देखकर दयार्द्र हो वधू-गृह के तोरण द्वार से ही लौट गए और गिरिनार पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे। इस कृति में राजमती के नख-शिख का सुंदरता से वर्णन किया गया है। नेमिनाथ की विरक्ति के कारण इसमें राजमती का वियोग-वर्णन और नेमिनाथ की चारित्रिक दृढ़ता प्रदर्शित की गई है।

श्रीपादरायरु *(क० ले०)*

इनका समय अनुमानत: 1500 ई० ठहरता है। ये कोलार ज़िले के 'मुळबागिलु' में स्थित माध्व मठ के पीठाधिपति थे। विजयनगर-सम्राट साल्वनरसिंह इनके शिष्य थे। संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होने पर भी देश भाषा में धार्मिक साहित्य-रचना की उत्कट अभिलाषा उनमें थी।

यह उन दिनो सचमुच क्रांतिकारी घटना थी। अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए इन्होने भागवतो की एक मडली ही सघटित की और उनसे अपने मठ मे 'देवरनाम' या भक्ति-पूर्ण गेय पद गवाते थे। 'रगविट्ठल' अकित उपनाम से इन्होने स्वय गेय पदो की रचना की है। संस्कृत मे इन्होने 'वाग्वज्र' नामक ग्रथ की रचना की है तो कन्नड मे 'भ्रमरगीत', 'वेणुगीते', 'गोपीगीते' आदि छोटे-छोटे ग्रथो की रचना की है। इनके गीत राग रागिनियो मे ताल-बद्ध हैं। 'भ्रमरगीत' इनकी एक सुदर रचना है जिसमे चौबीस गेय पद है। इन गीतो मे गेयता है, प्रास एव अनुप्रास की छटा है। पदलालित्य, अलकार-प्रौढि के साथ भक्ति एव माधुर्यरस-निरूपण है। उपलब्ध कृतियो मे श्रीपादरायरु जी की व्यक्तिगत महिमा की विशिष्ट छाप है। कीर्तनो के प्रारभिक बोल बहुत ही मनोज्ञ हैं। हरि-दास साहित्य मे श्रीपादरायरु जी के कीर्तनो का विशेष महत्व है।

श्रीमत (बॅ० पा०)

'चडीमगल काव्य' (दे० चडीमगल) के धन-पति सौदागर उपाख्यान का अन्यतम चरित्र श्रीमत है। वह धनपति सौदागर का पुत्र है। धनपति उसके जन्म से पहले ही व्यापार के लिए समुद्र-यात्रा मे निकल चुका था और उसके उपरात पुत्र के साथ सिहल मे उसका परिचय हुआ। श्रीमत का बाल्य-जीवन खुल्लना (दे०) के स्नेहा-चल मे बीता है। इसके उपरात पितृ-अन्वेषण ने श्रीमत को उद्यमशील, साहसी युवक की भूमिका मे ला प्रतिष्ठित किया है। श्रीमत ही चडीमगल काव्य मे वणिक् समाज का पहला व्यक्ति है जिसने चडी को सहज स्वीकार किया एव पूजा की। इस चरित्र मे द्विधा-द्वद्व के लिए अवकाश नही है। श्रीमत का चरित्र कहानी के उद्देश्य के अनुसार विकसित हुआ है। मातृस्नेह एव दैवी शक्ति से वह परि-चालित है एव इसके साथ वह मानवीय आवेदन से भी युक्त है। सिहल मे ठीक मृत्यु के समय देवी चडी के स्मरणमात्र से उसे विपत्ति से मुक्ति मिली है एव राजा का अनुग्रह प्राप्त हुआ है। यह सब कुछ दैवी कृपा से सभव है। स्वदेश मे वह अपनी स्त्री एव पिता को लेकर महासमारोह मे प्रत्यावर्तन करता है। दैवी सत्ता का खिलौना होने पर भी कवि ने श्रीमत मे स्वाभाविक मनुष्यत्व के उपादानो को उभारा है, और वही इस चरित्र की सार्थकता है।

श्रीरंग आद्य, रंगाचार (क० ले०)

विलक्षण प्रतिभा-सपन्न नाटककार आद्य रगा-चार, उपनाम 'श्रीरग', वर्तमान समय के अग्रगण्य साहित्य-कार हैं। संप्रति ये मैसूर प्रदेश साहित्य अकादमी के अध्यक्ष हैं। इनके नाटको का विषय प्राय सामाजिक है। सामा-जिक नाटक-रचना के द्वारा इन्होने समाज की कटु आलो-चना की है। 'हास्य' और 'व्यग्य' इनके नाटको का प्रधान गुण है। कन्नड मे हास्यरस-प्रधान नाटको की रचना करने वालो मे कैलासम् (दे०) के बाद श्रीरग जी का ही नाम आता है। कैलासम् जी ने अपने नाटको मे हास्य रस का सचार कर समाज के खोखलेपन का दिग्दर्शन कराया था। श्रीरग जी ने भी यही किया है, परतु इनकी आलोचना कैलासम् जी की आलोचना से अधिक तीव्र होती है। दाभिक समाज के प्रति इनकी व्यग्यपूर्ण कठोर उक्तियो का प्रहार अत्यत परिणामकारी होता है।

श्रीरग जी ने एक दर्जन से भी अधिक सामा-जिक नाटक लिखे हैं। स्वतत्रता-प्राप्ति के पूर्व प्रकाशित इनके सामाजिक नाटको मे 'उदरवैराग्य', 'वैद्यराज', 'दरिद्रनारायण', 'हरिजन्वार', 'मुक्कण्ण विराट पुरुष', 'सध्याकाल', 'प्रपच-पाणिपत्तु' और 'नरकदल्लि नरसिंह', के नाम उल्लेखनीय हैं। इन नाटको मे इन्होने समाज पर जहाँ तीखे व्यग्य-बाण छोडे हैं, वही सामाजिक समस्या को नाटक के पात्रो द्वारा हल करने का प्रयत्न भी किया है। तीखा व्यग्य, कल्पना-चमत्कार, सवाद-चातुर्य तथा प्रवाहमयी भाषा-शैली का वैलक्षण्य इनके सभी नाटको के गुण हैं। 'हरिजन्वार' नामक नाटक मे ये गुण बहुत ही सुदर रूप मे दिखाई पडते हैं। 'हरिजन्वार' शीर्षक ही अत्यत चमत्कारपूर्ण है। यहाँ श्लेष से काम लिया गया है। इसका अर्थ होता है 'हरिजन वार' अथवा 'हरि यज्ञो-पवीत। इसमे चित्रित दोड्डराय, जो पारिवारिक तथा सामाजिक कीर्ति की लालसा से मन मे कुछ रखकर बाहर एक प्रकार मे व्यवहार करने वाला है, और उसकी पत्नी वेणक्का, जो पुराने विचारो की है, हमारे ध्यान को सहसा आकृष्ट करती है। दोड्डराय चुनाव मे हार जाता है तो यह कहकर शोर मचाता है कि वेणक्का इसका कारण है, क्योकि उसने नाली मे गिरे हुए अछूत बालक को अपने हाथ से छूकर उठा दिया था। इस प्रकार के वातावरण-निर्माण मे श्रीरग जी बडे सिद्धहस्त हैं।

श्रीरग जी के स्वातत्र्योत्तर सामाजिक नाटको मे 'जरासधि', 'शोकचक्र', 'कर्त्तारन कम्मट' (कर्त्ता की

टकसाल) तथा 'जीवन-जोकालि' (जीवन का झूला) के नाम विशेष रूप से ग्राह्य हैं। 'जीवन-जोकालि' में आधुनिक नाटकों की टेकनीक अपनाई गई है जहाँ एक ही दृश्य में दो संदर्भों का निरूपण है।

श्रीरंगजी ने सामाजिक नाटकों के अतिरिक्त कुछ ऐतिहासिक नाटक तथा अनेक एकांकी नाटक भी लिखे हैं। पौराणिक पात्रों को वर्तमान युग के अनुकूल प्रस्तुत कर चमत्कार उत्पन्न करने की कला श्रीरंग जी को मालूम है। 'यमन सोलु' (यम की हार), 'अश्वमेध' आदि इसके उदाहरण हैं। 'संपुष्ट रामायण' में व्यंग्य की प्रधानता है तो 'निराहार' में वातावरण और पात्रों का मार्मिक चित्रण है। श्रीरंग जी के विषय मे यह कहा जा सकता है कि ये अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए पात्रों का निर्माण करते हैं। यथार्थ निरूपण इनका प्रधान उद्देश्य होते हुए भी कहीं-कहीं मात्र चमत्कार के लिए पात्र निर्मित हुए-से दिखाई पड़ते हैं। फिर भी, यह सच है कि ये सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक चित्र सफलतापूर्वक उपस्थित कर सकते है। इनके नाटकों में जैसे मार्मिक संभाषण है वैसे अन्यत्र दुर्लभ है। निश्चित रूप से ये कन्नड के प्रबुद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ नाटककार है।

श्रीराधार क्रमविकास *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1954 ई०]

आधुनिक बँगला आलोचना-साहित्य के प्रख्यात लेखक शशिभूषण दासगुप्त ने भारतीय दर्शन और साहित्य के संदर्भ मे 'श्री राधा के क्रम-विकास' के विवेचन के लिए 'श्रीराधार क्रमविकास' पुस्तक की रचना की है। राधावाद के भीतर हमारे जातीय मनन-वैशिष्ट्य का जो परिचय मिलता है—वह वैशिष्ट्य केवल राधावाद में ही नहीं है, वही वैशिष्ट्य व्यापक रूप से भारतीय शक्तिवाद में भी है। लेखक ने इसी दृष्टि से इस ग्रंथ में भारतीय वैष्णव-शास्त्र और आनुषंगिक शैव-शाक्त-शास्त्र का नए रूप मे अध्ययन किया है।

ग्रंथ मे लेखक महोदय ने प्राचीन भारतीय शक्ति-तत्त्व के आश्रय से राधातत्त्व का विवेचन किया है एवं श्रीराधा के आविर्भाव का ऐतिहासिक विवेचन प्रस्तुत किया है। धर्म एवं दर्शन में राधा के स्थान का उल्लेख करते हुए 'चैतन्य-चरितामृत' (दे०) में वर्णित राधातत्त्व एवं वैष्णव-सहजिया मत मे राधा-तत्त्व की तुलना की गई है। अंत मे राधावल्लभ एवं वल्लभ-संप्रदाय के हिंदी साहित्यकारों की राधा का विश्लेषण है। शशि बाबू ने राधा को 'कमलिनी' कहा है और यह स्पष्ट किया है कि जिस प्रकार अनेक स्तरों के भीतर कमलिनी के क्रम-विकास का एक इतिहास है, उसी प्रकार भारतीय दर्शन और साहित्य के विभिन्न स्तरों में व्याप्त श्रीराधा के क्रम-विकास के इतिहास की धारा विद्यमान है। ग्रंथ में लेखक की तत्त्वाभिनिवेषी मेधा का सुंदर परिचय मिलता है। लेखक का भारतीय धर्मशास्त्र एवं दर्शन का गहन अध्ययन है एवं उनकी बुद्धि सूक्ष्म विश्लेषणात्मक है।

श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत *(बँ० कृ०)*

श्रीयुत महेंद्र मास्टर युगदेवता श्री श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव के पदपंकज के लुब्ध एवं मुग्ध मधुकर थे जिन्हें ठाकुर रामकृष्ण मास्टर नाम से ही पुकारा करते थे। उन्होंने रामकृष्ण जी से जो कुछ सुना था एवं परमहंसदेव के अंतरंग पार्षदों के निकट सान्निध्य से जो कुछ संग्रह किया था तथा भक्तजन परमहंसदेव जी से जो कुछ सुनते-जानते थे उन सबका संग्रह कर अपनी डायरी में लिख लिया था। इस डायरी के कुछ अंश स्वयं रामकृष्ण जी ने सुने थे। श्री श्री माँ सारदामणि ने मास्टर साहब के निकट संरक्षित इस कथामृत को परमहंसदेव जी का संपद् कहकर अभिहित किया है। इस डायरी का ही 'श्री श्रीरामकृष्णकथामृत' के नाम से पाँच खंडों में प्रकाशन हुआ है। पहला खंड 1902 ई० में प्रकाशित हुआ था। श्री श्रीरामकृष्ण देव के दिव्य जीवन का जहाँ अंतरंग परिचय इस ग्रंथ में मिलता है वहीं श्रीरामकृष्ण-दर्शन का प्रकृत भाष्य भी इस ग्रंथ में अत्यंत सहज एवं सुंदर रूप में वर्णित हुआ है। 'चैतन्य-चरितामृत' (दे०) जिस प्रकार वैष्णव साहित्य एवं दर्शन के इतिहास का दिक्-निदेशक उत्स-ग्रंथ है, उसी प्रकार 'श्री श्रीरामकृष्ण-कथामृत' रामकृष्ण-जीवन-दर्शन का स्रोत-ग्रंथ है।

श्रीराममूर्ति धूलिपाळ्ळ *(ते० ले०)*

धूलिपाळ्ळ श्रीराममूर्ति 'भुवनविजयमु' और 'गृहराजुमेडा' नामक अपने उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध हैं। अच्छे ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना के लिए आंध्र विश्वविद्यालय की ओर से प्रतिवर्ष जो पुरस्कार दिया जाता है उससे इनके उपर्युक्त दोनों उपन्यास सम्मानित हो चुके है। 'भुवनविजयमु' नामक उपन्यास में विजयनगर

के शासक श्रीकृष्ण देवरायलु (दे०) की विजययात्रा तथा 'भुवनविजयमु' (दे०) नामक साहित्य-सभा की स्थापना की कथा है। इन्होंने 'सौंदरनंद' (दे०) (काव्य) का गद्यानुवाद भी प्रस्तुत किया और पोतन नामक विख्यात तेलुगु-कवि पर शोध-प्रबंध लिखकर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। इनमें एक सफल ऐतिहासिक उपन्यासकार की क्षमता विद्यमान है—यह इनके उक्त दोनों उपन्यासों से स्पष्ट है।

श्रीरामायणदर्शनम् *(क० कृ०)*

वर्तमान कर्नाटक के लब्धप्रतिष्ठ कवि कुवेंपु (दे०) (डा० के० वी० पुट्टप्पा) की कृति 'श्रीरामायणदर्शनम्' उनकी ऋषि-प्रज्ञा का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। आधुनिक युग में, जबकि यह कहा जाता है कि महाकाव्यों का समय समाप्त हो गया, यह महाकाव्य एक चुनौती के रूप में साहित्यलोक में अवतरित हुआ। इस महाकाव्य का भव्य शिल्प महाकवि कुवेंपु की सुदीर्घ काव्य साधना अथवा तपस्या का फल है।

पचास सर्गों (प्रत्येक सर्ग के नाम हैं), चार भागों (जिन्हें संपुट कहा गया है, यथा अयोध्या संपुट, किष्किंधा संपुट, लंकासंपुट और श्रीसंपुट) तथा लगभग तेईस सहस्र पंक्तियों का यह विशालकाय महाकाव्य बहिर्घटना को प्रतिबिंबित करने वाला लौकिक चरित्र नहीं है, अलौकिक नित्य सत्यों को प्रतिबिंबित करने वाला 'सत्यस्य सत्य कथन' है। महाकवि की दार्शनिक दृष्टि के उद्घाटन के लिए श्रीरामचरित वैसा ही बाह्य आवरण है जैसाकि आत्म के लिए शरीर का आवरण होता है। 'श्रीरामायणदर्शनम्' शीर्षक से यह दार्शनिक दृष्टि स्पष्ट हो जाती है। वेदांत में पंचकोशों द्वारा आत्मा के विकास की परिपूर्ण स्थिति का वर्णन किया जाता है। इसी के आधार पर इस काव्य में प्रतीक-योजना के द्वारा दार्शनिक विचार प्रतिपादित हुए हैं। अयोध्या संपुट मनोमय कोश का, किष्किंधा संपुट प्राणमय कोश का, लंकासंपुट अन्नमयकोश का तथा श्री संपुट विज्ञानमय एवं आनंदमय कोशों का प्रतीक है। कहने की आवश्यकता नहीं कि दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार ही इसके पात्रों के रूप भी स्पष्ट होते हैं। साधक-वरेण्य परम पुरुषोत्तम राम विविध कोशों में विचरण करते हुए अन्नमयकोश में स्थित अविद्या-रूपी रावण के पास बंधन में पड़ी निष्कला सीता को मुक्त करता है। मृच्छक्ति पर चिच्छक्ति की विजय अथवा मर्त्य प्रज्ञा पर दैवी प्रज्ञा का प्रसार एक महत्वपूर्ण विषय है। इसमें चित्रित तपस्विनी उर्मिला, भरत-माता कैकेयी, ममता की भँवर मंथरा, कनकलंकाधिपति रावण, रणव्रती वह्नि-रह आदि पात्र कवि-प्रतिभा के सुंदर निदर्शन हैं। अंत में यह कहा जा सकता है कि इस काव्य में प्राचीनता का मणिकांचन संयोग हुआ है। भारतीय साहित्य में इसका अन्यतम स्थान है।

श्रीरामाश्वमेध *(क० कृ०)*

नंदळिके लक्ष्मीनारायणप्पा, उपनाम मुद्दण (दे०) (समय—1870-1901 ई०) की कृति 'श्रीरामाश्वमेध' प्राचीन और नवीन साहसिक प्रवृत्तियों का सुंदर संगम है। अपने तीस वर्ष के संघर्षमय जीवनकाल में मुद्दण ने साहित्यदेवी की जो आराधना की और 'अद्भुत-रामायण', 'रामपट्टाभिषेक' तथा रामाश्वमेध' सरीखे जो उत्कृष्ट काव्य रचे, उनको निस्संदेह साहित्य-जगत की अद्भुत घटना कह सकते हैं।

'श्रीरामाश्वमेध' मुद्दण की अंतिम और परिपक्व रचना है। 'अद्भुत रामायण' चारु और निर्मल प्राचीन कन्नड गद्य शैली के लिए उदाहरण है तो 'रामपट्टाभिषेक' अच्छा पद्यकाव्य है। 'श्रीरामाश्वमेध' में मुद्दण की प्रतिभा का पूर्ण विकास हुआ है, इसकी गद्य शैली इतनी सुंदर और व्यवस्थित है कि पाठक सहज ही इसकी ओर खिंच जाता है। इसकी कथावस्तु का आधार पद्मपुराणांतर्गत 'शेष रामायण' है। परंतु इस कारण से इसकी मौलिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता। इसकी कथन-शैली और वर्णन वैचित्र्य इसे 'शेष रामायण' से सर्वथा पृथक् कर देते हैं। साहित्यलोक में मुद्दण-मनोरमा जैसे दंपति की सृष्टि कर लेखक शाश्वत यश का अधिकारी हो गया है।

'रामाश्वमेध' की कथा 16 आश्वासों में परिव्याप्त है, जो इस प्रकार है—कथामुख, अगस्त्यागमन, यज्ञोपदेश, गर्भधारण, सीता-परित्याग वाल्मीकि-दर्शन, विजययात्रा, कामाक्षी-दर्शन, च्यवनाश्रमवर्णन, नीलाचलदर्शन, सुबाहु-युद्ध, तेज पुरवर्णन, अरण्यकमुनिदर्शन, देवपुरवर्णन, हनूमत्पराजय तथा कथा का उपसंहार। काव्य का प्रारंभ मंगलाचरण गुरुस्तुति आदि से नहीं होता वालयुग्म—वर्षा—के वर्णन में होता है जो स्पष्ट रूप से प्राचीन परंपरा के प्रति विद्रोह का स्वर मुखरित करता है। नवरसपूर्ण यह काव्य उत्तम गद्य-शैली का ही नहीं, अपितु मनो-

हारी वर्णन, उक्ति-वैचित्र्य और रमणीय पात्र-निर्मिति का भी निलयण है। इस कृति ने मुद्दण को अमर कर दिया है।

श्रीवत्स चिंता *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1927 ई०]

इंद्रेश्वर वरठाकुर (दे०) द्वारा रचित पाँच अंक के इस बृहत् नाटक में दृश्य और गर्भांक इतने अधिक हैं कि यह रंगमंच के अनुपयुक्त है। इसमें संस्कृत-शैली के अनुसार काव्य-गुण और नाट्य-गुण का मणिकांचन संयोग है। पाश्चात्य नाट्य-कला का भी इस पर प्रभाव है। इसमें विदूषक, कंचुकी आदि पात्रों की अवतारणा है। उच्च श्रेणी के पात्रों से छंदोबद्ध परिमार्जित संवाद एवं निम्न श्रेणी के पात्रों से कथित भाषा के संवाद कराए गए हैं। इसमें देव-मानव-संघात का चित्रण है। राजा श्रीवत्स ने लक्ष्मी और शनि के झगड़े में लक्ष्मी को श्रेष्ठ बताया था। शनि तामसिकता की प्रतिमूर्ति है और लक्ष्मी श्री-शांति-आनंद की। लेखक ने श्रीवत्स का अत्यंत उज्ज्वल चरित्र अंकित किया है।

श्रीवास्तव *(ते० ले०)*

कविता, नाटक एवं समालोचना के क्षेत्रों में इनका योगदान है। 'उपःकिरणालु' इनका समालोचनात्मक ग्रंथ है। 'तीरनिकोरिकलु' इनका प्रमुख नाटक है जिसमें अपने दैनिक जीवन में अनेक सपने देखते हुए सभी प्रकार की यातनाओं एवं विशेषताओं के लिए अभ्यस्त होकर कारुणिक जीवन व्यतीत करने वाले मध्यवर्ग का चित्रण किया गया है। तेलुगु-साहित्य की वार्षिक प्रगति का मूल्यांकन ये हर वर्ष प्रकाशित करते रहे हैं। समालोचना के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

श्रीवास्तव, जी० पी० *(हिं० ले०)* [जन्म—1890 ई०]

इनका पूरा नाम गंगाप्रसाद श्रीवास्तव है। ये बिहार प्रांत के सारन जिले के छपरा नामक स्थान में पैदा हुए थे। हिंदी-समाज में इनकी प्रतिष्ठा हास्य-व्यंग्य-प्रधान रचनाओं के कारण है। यद्यपि इनकी यह प्रतिभा कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि सभी विधाओं में समानरूपेण व्यक्त हुई है किंतु इनका मुख्य प्रदेय नाट्य-रचना के क्षेत्र में है। 'दुमदार आदमी', 'उलट-फेर', 'मर्दानी औरत', 'गड़बड़झाला', 'साहित्य का सपूत' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

श्री शंकुक *(सं० ले०)* [समय—लगभग 800 ई०]

भरत-'नाट्यशास्त्र (दे०) के अन्यतम टीकाकार श्री शंकुक के व्यक्तिगत जीवन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इनका समय अभिनव गुप्त (दे०) एवं आनंदवर्धन (दे०) से पूर्व लगभग 800 ई० है।

श्री शंकुक की कृतियों के विषय में कोई विशेष जानकारी नहीं है। 'अभिनव भारती' के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि 'नाट्यशास्त्र' के ऊपर इनकी भी एक टीका थी। मम्मट (दे०) तथा हेमचंद्र (दे०) प्रभृति परवर्ती आचार्यों की कृतियों में भी इनकी टीका के उद्धरण मिलते हैं।

श्री शंकुक ने रस की अनुमितिपरक व्याख्या की है। इन्होंने लोल्लट (दे०) के कृतिवाद का खंडन कर रस को अनुमेय कहा है। इनके अनुसार जैसे कुहरा-व्याप्त प्रदेश में अवास्तविक धूम्र से वहाँ अविद्यमान भी वह्नि का अनुमान हो जाता है इसी प्रकार नट-रूपी पक्ष में उसके द्वारा प्रकाशित विभावादि को देखकर उसके अविद्यमान भी रत्यादि स्थायी भावों का सामाजिक को अनुमान के द्वारा आस्वाद होने लगता है। वर्ण्य-वस्तु की यह विशेषता है जिसका आस्वाद सामाजिकों की वासना से होता है। रस अन्य अनुमीयमान पदार्थों से विलक्षण होता है।

कुछ लोग श्री शंकुक को बौद्ध-मतानुयायी भी कहने लगे हैं। इनकी व्याख्या का आधार न्यायदर्शन माना जाता है।

श्री श्री (श्रीरंगम् श्रीनिवासराव) *(ते० ले०)* [जन्म—1910 ई०]

ये तेलुगु की प्रगतिवादी काव्यधारा के वैतालिक तथा उसके आधारस्तंभ माने जाते हैं। तेलुगु की 'भावकविता' (दे०) की आत्मरति, कुंठा, विषाद एवं स्वप्नप्रियता को विध्वस्त करते हुए, ये आधुनिक तेलुगु-कविता के प्रांगण में क्रांति एवं विप्लव का शंखनाद करते हुए अवतरित हुए थे। इन्होंने अतीत को भुलाकर और वर्तमान के प्रति जागरूक होकर उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने का उद्बोधन किया। इनकी दृष्टि में मानव

के समस्त इतिहास मे परपीडन पराणयता तथा वर्ग सघर्ष के अतिरिक्त कुछ भी नही है। उसमे गर्व का कोई कारण उनको दिखाई नही देता। इस महाक्राति के नादिपाठ के रूप मे इनका 'महाप्रस्थानमु' (दे०) प्रकाशित हुआ। यही इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना भी है। इसमे तीक्ष्ण स्फूर्ति तथा पौरुष-प्रधान भाव तेलुगु भाषा के अतिनव्य परिधान मे प्रकट हुए थे।

इस रचना के अतिरिक्त श्री श्री ने 'प्रभवा', 'धारवार', 'खड्गसृष्टि', 'मारुस्रोतल' आदि काव्य-ग्रथो, कई कहानियो, नाटको तथा समालोचनात्मक निबधो की रचना भी की है। इन्होने साहित्य को क्राति का साधन माना और केले के छिलके, दियासलाई और आरती के थाल को भी काव्य-विषय बनाकर अपने क्राति-सदेश के वाहक के रूप मे प्रस्तुत किया। इनकी नव्यता केवल वस्तु-चयन मे ही नही, भाव, भाषा छद सभी मे प्रकट होती है। 1940 ई० के बाद ये अतिवास्तविकतावाद की ओर आकृष्ट हुए और इस क्षेत्र मे भी इनकी प्रतिभा ने इनको सफलता प्रदान की है। कथाकार के रूप मे भी कई यथार्थ चरित्रो की सृष्टि करके इन्होने तेलुगु-कथा-साहित्य की श्रीवृद्धि की है। ये रेडियो-नाटककार तथा चलचित्रो मे गीत एव सवाद-लेखक के रूप मे भी विख्यात है।

श्रीहर्ष *(स० ले०)* [स्थिति काल—1075 ई० के लगभग]

सस्कृत-साहित्य मे श्रीहर्ष नाम के एकाधिक विद्वान् मिलते है। उदाहरण के लिए 'रत्नावली', 'नागानद' (दे०) तथा 'प्रियदर्शिका' के लेखक श्रीहर्ष, श्रीहर्षदेव एव हर्ष के नाम से प्रचलित हैं। प्रस्तुत श्रीहर्ष 'नैषधीय चरित' (दे०), 'खडनखडखाद्य', 'शिवशक्तिसिद्धि', 'स्थैर्यविचारण', 'नवसाहसाकचरित', 'अर्णव-वर्णन', 'गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति', 'श्रीविजयप्रशस्ति' तथा 'छिद-प्रशस्ति' नामक ग्रथो के प्रणेता हैं।

श्रीहर्ष का निवास-स्थान विद्वानो ने कन्नौज प्रात निश्चित किया है। श्रीहर्ष की माता का नाम मामल्लदेवी तथा पिता का नाम श्रीहरि था। श्रीहर्ष के सम्मान मे कान्यकुब्जेश्वर से दो ताबूल तथा आसन प्राप्त किया करते थे। ये भगवती वागीश्वरी के उपासक थे तथा इन्हे चितामणि-मन्त्र सिद्ध था। चितामणि-मन्त्र की उपासना के फलस्वरूप ही इन्होने 'नैषधीय चरित' की रचना की थी, जो इनका अत्यत प्रख्यात काव्य-ग्रथ है।

श्रीहर्ष की समस्त रचनाओ मे 'नैषधीय चरित' एव 'खडनखडखाद्य' सर्वाधिक प्रख्यात एव महत्वपूर्ण हैं। 'नैषध' को तो विद्वानो की औषधि ही कहा गया है—'नैषधविद्वदौषधम'। 'नैषध' नल (दे०)-दमयती (दे०) के प्रधान कथानक पर आधारित 22 सर्गों का महाकाव्य है। वस्तुत 'नैषधीय चरित' के अतर्गत उत्प्रेक्षा एव श्लेष आदि अलकारो तथा शृगार एव करुण आदि रसो का जैसा सुदर सुयोग दिखाई पडता है, वह अन्यत्र दुर्लभ ही है। इसलिए कहा गया है—'उदिते नैषधे काव्ये क्व माघ क्व च भारवि'। 'नैषधीय चरित' की यह अद्वितीय विशेषता है कि उसमे काव्यात्मकता के साथ-साथ दार्शनिकता का भी समुचित पुट मिलता है। 'खडनखडखाद्य' अद्वैत-वेदात का प्रतिपादक ग्रथ है। इस ग्रथ के अतर्गत श्रीहर्ष ने अद्वैत-विरोधी मत-मताधरो का निराकरण करके अद्वैत-मत का सबल तर्कों के आधार पर प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि श्रीहर्ष कवि एव दार्शनिक दोनो थे। इसीलिए उनकी कृतियो मे जो गाभीर्य एव सौंदर्य मिलता है वह बेजोड है। विषयोपयुक्त शैली ने श्रीहर्ष के काव्यत्व को और चमत्कारक कर दिया है, यह कथन भी असमीचीन न होगा।

श्रेयार्थी नी साधना *(गु० कृ०)*

श्री नरहरिभाई द्वारकादास परीख-रचित 'श्रेयार्थी नी साधना' स्व० किशोरीलाल घनश्यामदास मशरूवाला (दे०) की जीवनी है। इस जीवनी मे स्व० किशोरीलाल मशरूवाला जी के जन्म, बचपन, शिक्षा-काल, अध्यापन कार्य व गाधी जी के अतेवासी के रूप म जीवन भर जो कुछ सेवा-कार्य उन्होने किया, उसका प्रामाणिक, नपा-तुला, अनतिरजित निरूपण है। एक शिक्षा-शास्त्री, गाधीवादी चितक, राष्ट्रीय सेवक दृढ-चरित्र व्यक्ति के रूप म जीवनी-नायक का व्यक्तित्व ठीक-ठीक उभर कर आया है। लेखक ने जगह-जगह किशोरीलाल जी की लेखनी से स्वय निरूपित वृत्तातो, आत्मकथनो को उद्धृत कर इसे यथासभव प्रामाणिक बनाया है। किशोरीलाल जी के मित्रो, परिवार-जनो व अन्य व्यक्तियो द्वारा अकित सस्मरणो व लेखो से भी पर्याप्त उद्धरण दिए गए हैं।

346 पृष्ठो की सीमा मे जीवनी-लेखक ने जीवनी-नायक के चरित्र को पूरी ईमानदारी तथा निष्ठा के साथ अकित किया है। इसका आमुख स्वामी आनद

(दे०) ने लिखा है। धर्म-चिंतक, सत्य के उपासक, गांधी-वादी विचारक तेजस्वी छात्र, पितृभक्त पुत्र, सफल व सहिष्णु अध्यापक, अनुकूल व समझदार गृह-स्वामी, परिश्रमी वकील, सार्वजनिक कार्यों में रसपूर्वक भाग लेने वाले, परिश्रमी सेवक, कुशल महाभाव, दृढ़ आंदोलनकारी, 'हरिजन' पत्र के संपादक, दमे के रोग से ग्रस्त किंतु प्रखर आत्मबल-संपन्न किशोरीलाल जी मशरुवाला के जीवन के विविध पहलुओं का स्वच्छ-सहज दर्शन उनके इस जीवन-चरित्र में दिखाई देता है।

अगस्त 1953 ई० में इस जीवनी का प्रथम संस्करण नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद से निकला था। गुजराती के जीवनी-साहित्य में इस कृति का महत्वपूर्ण स्थान है।

श्रेष्ठ कुलां दी चाल *(पं० कृ०)*

भाई मोहनसिंह वेद (दे०) द्वारा लिखित अच्छे वंशों की रीति-नीति एवं आचार-विचार से संबंधित पुस्तक। सदाचार की शिक्षा एवं लोक-व्यवहार के लिए उपयोगी, उपदेशपूर्ण रचना है। भाषा ठेठ पंजाबी है। इस कृति को अमृतसर क्षेत्र की पंजाबी भाषा का उत्कृष्ट उदाहरण माना जाता है।

श्लेष *(पारि०)*

उक्ति में चमत्कार की सृष्टि करने वाला एक प्रमुख अलंकार (दे०) है 'श्लेष'। जैसाकि श्लेष शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ (चिपकना, सम्मिलन, संभोग आदि) से स्वत: व्यक्त है, यह अलंकार अभिधा (दे०) आश्रय से शब्द के एकाधिक अर्थों का बोध कराता है। अर्थात् केवल एक ही बार प्रयुक्त शब्द के प्रसंगानुरूप अर्थ विभिन्न होते हैं, उदाहरणार्थ—'चरन धरत चिंता करत, चितवत चारहुँ ओर। सुबरन को ढूँढ़त फिरत कवि, व्यभिचारी, चोर ॥' इस दोहे में प्रयुक्त 'चरन' और 'सुबरन' शब्द श्लिष्ट हैं जिनके कवि, व्यभिचारी तथा चोर के संदर्भ में भिन्न-भिन्न अर्थ हैं। कवि के प्रसंग में 'चरन' शब्द कविता का चरण तथा व्यभिचारी और चोर के प्रसंग में पैर के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार 'सुबरन' शब्द का अर्थ कवि के लिए सुंदर वर्ण, व्यभिचारी के लिए सुंदर वर्ण वाली स्त्री तथा चोर के लिए सोना है। संस्कृत के आचार्य श्लेष के भेदों के विषय में एकमत नहीं हैं। श्लेष के प्रचलित भेद-विभाजन 'शब्दश्लेष' और अर्थश्लेष' के अतिरिक्त श्लिष्ट पदों के भंग होने या न होने की दृष्टि से 'सभंगश्लेष' और 'अभंगश्लेष'—शब्दश्लेष के ये दो भेद और किए गए हैं। चमत्कृतिप्रधान अलंकार होने के कारण ऐसे कवियों को यह अधिक प्रिय रहा है जिनकी प्रवृत्ति चमत्कारप्रदर्शन की ओर है। आधुनिक काव्य में भी श्लेष के कुछ अत्यंत सुंदर और मार्मिक प्रयोग मिलते हैं। दंडी (दे०) ने इसे अलंकार-योजना का मूल तत्त्व माना है—श्लेष: पुष्णाति सर्वासु प्राय: वक्रोक्तिषु श्रियम्।

श्लोकवार्तिक *(सं० कृ०)* [रचना-काल—600-700 ई०]

इस ग्रंथ के लेखक कुमारिलभट्ट (दे०) हैं। कुमारिल आस्तिक एवं नास्तिक दोनों ही दर्शन-पद्धतियों के अपने समय के विशिष्ट विद्वान् थे।

'श्लोकवार्तिक' के ऊपर 'बृहद्वार्तिक' ग्रंथ है। इस ग्रंथ में दार्शनिक सिद्धांतों का विश्लेषण सूक्ष्मधिया किया गया है। इस ग्रंथ की यह महनीय देन है कि इसमें नास्तिकवाद से बचने का सफल प्रयास वर्तमान है।

श्वेतपद्मा *(उ० कृ०)*

'श्वेतपद्मा' मूल रूप में कहानी है, बाद में प्राण वंधुकर (दे०) ने ही उसे एकांकी का रूप दिया है। इसमें नारी के रहस्यमय अंतर को समझ लेने का प्रयास है। श्वेतपद्मा अपने स्वामी हेमकांत के दुर्बल स्वास्थ्य के प्रति भयभीत एवं चिंतित रहती है तथा सजग प्रहरी के समान उनकी देखरेख करती है। इसके अतिरिक्त आर्थिक बोझ को उठाने के लिए अनेक प्रकार का कष्ट उठाती एवं त्याग करती है। किंतु स्वामी उसकी इस अतिरिक्त सतर्कता से विरक्त हो उठते हैं तथा इसे उसकी आत्महीनता की प्रतिक्रिया मानते हैं। धीरे-धीरे संबंध में तनाव आता जाता है, नाना प्रकार की शंकाएँ जन्म लेती हैं। श्वेता चुपचाप पति का हर आघात सहती जाती है। एक दिन विवश हो पति की भ्रांति दूर करने के लिए श्वेता को बताना ही पड़ता है कि 'सुहागरात के दिन उसने अपनी सहेलियों को यह कहते हुए सुना था कि यदि श्वेता अपने पति के दुर्बल स्वास्थ्य की ओर अत्यधिक सावधानी नहीं बरतेगी, तो इस कमज़ोर आदमी को टी० बी० हो जाने की अधिक संभावना है'। पत्नी के भयभीत नारी-हृदय

ना सजल परिचय पाकर हेमकात स्तब्ध रह जाते हैं। अभिनय की दृष्टि से यह एक सफल एकाकी है।

पटिक्काचुप्पुलवर् *(ता० ले०)* [जन्म—1686 ई०, मृत्यु—1723 ई०]

ये 'तोंण्है महण्लम' नामक तमिल प्रात के उत्तरी भाग के रहनेवाले थे। इसी भू-भाग मे इन्होने कवि और आश्रयदाता—दोनो पर प्रचलित लोक-वार्ताओ को 'तोंण्हैमण्हल चतकम्' नामक 'शतक' पद्य-रचना मे प्रस्तुत किया है। सौ पद्यो वाला यह ग्रथ तत्कालीन स्थितियो की जानकारी के लिए अधिक उपयोगी है। इनके अपने आश्रयदाताओ मे 'माट्टूर् कत्तूरिमुत्तलियार्' रामनातपुरम् के सेतुपति राजा तथा इस्लामी प्रभु 'चीतक्काति' थे। इनके बारे मे इन्होने अनेक स्फुट पद्य रचे है। विशेष रूप से 'चीतक्काति' के देहावसान पर इनकी शोकाकुल उक्ति कि 'मरकर स्वर्ग पर शासन करने वाले चीतक्काति के लौटे बिना कविगण जीवन चलाने मे असमर्थ होगे' प्रसिद्ध है। इनकी पद्य रचना की विशेषता 'छदम्' की योजना है यानी प्रास और गेयता-युक्त लय के विशिष्ट विधान की उपलब्धि है। इनका एक प्रचलित नीतिग्रथ 'तण्टलैयार् चतकम्' है जिसके सौ पद्य नीतिपरक तथ्यो का अनुभव के सदर्भ मे काव्योचित ढग से प्रस्तुत करते है।

षट्खडणम *(प्रा० कृ०)*

दिगबर सप्रदाय मे जैन-आगम (दे०) पूर्ण प्रामाणिक नही माने जाते। इनके अनुसार गोयम इदभूति नामक गणधर ने महावीर से उपदेश ग्रहण कर जिस द्वादशाग की रचना की थी वह काल-क्रम से महावीर निर्वाण के 683 वर्ष बाद लुप्त हो गया। इसका ज्ञान गिरनार के धर्मसेन को था जिन्होने पुष्पदत और भूतबलि नामक दो शिष्यो को दृष्टिवाद नामक बारहवें अग के अतर्गत पूर्वो और वियाहपन्नहि की शिक्षा दी। उसके आधार पर इन दोनो शिष्यो न 'महाकर्म प्रकृति' नामक पाहुड का भी आश्रय लेकर 'षट्खडागम' की रचना की जो दिगबर-सप्रदाय का प्रामाणिक ग्रथ माना जाता है। इसके 6 खड ये हैं—(1) जीवट्ठाण, जिसम गुणस्थानो और मार्गणाओं का वर्णन है। इसमे 8 अनुयोग द्वार और 9 चूलिकाएँ हैं। (2) खुद्दकबध (क्षुद्रकबध)—इसमे 11 अधिकारो मे कर्मबध के भेदो और उसमे प्रवृत्त जीवो का वर्णन है। (3) बध स्वामित्व—इसमे कर्मबध के विषयो का वर्णन किया गया है। (4) वेदना—इसमे वेदना का कथन किया गया है। (5) वर्गणा—इसमे बधनीय तत्त्वो का विवेचन किया गया है और (6) महाबध—इसमे 30000 श्लोक हैं और इस महाग्रथ मे बहुत विस्तार से प्रकृति, स्थिति, प्रदेश-बध इत्यादि का वर्णन किया गया है। इस पर समय-समय पर अनेक टीकाएँ भी लिखी जाती रही। दिगबर सप्रदाय के मान्य ग्रथो को भी 'षट्खडागम' नाम से अभिहित कर दिया जाता है। इन समस्त ग्रथो के चार खड हैं—(1) प्रथमानुयोग—इसमे पद्य, हरिवश, त्रियष्टिलक्षण, महा और उत्तर ये सब पुराण आ जाते हैं। (2) करणानुयोग—इसमे सूर्यप्रज्ञप्ति, चद्रप्रज्ञप्ति और जयधवला का समावेश है। इन सब ग्रथो का विषय भूगोल-खगोल है। (3) द्रव्यानुयोग—यह खड दर्शनपरक है। इसमे कुडकुड (दे० कुदकुद) की रचनाएँ, उमास्वाति का 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' समतभद्र की 'आप्तमीमासा तथा कतिपय टीकाएँ सम्मिलित हैं और (4) चरणानुयोग—जिसमे वट्टकेर का मूलाचार और त्रिवर्णाचार तथा समतभद्र का 'रत्नकण्डश्रावकाचार' ये आचरण सबधी ग्रथ आते हैं। 'षट्खडागम' को अतिरिक्त आगम कहा जा सकता है।

षट्पदी *(क० पारि०)*

छह पाद अथवा चरणो के कन्नड वृत्त का नाम षट्पदी है। इसके प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ और पचम चरण समान होते है तो तृतीय और और षष्ठ चरण अन्य चरणो से डेढ गुना अधिक मात्रा वाले होते हैं। उनके अत मे 'गुरु' का होना आवश्यक है। षट्पदी के छह प्रकार हैं—शर, कुसुम, भोग, भामिनी, परिवर्धिनी और वार्धक। कन्नड-साहित्य म षट्पदी मे ही काव्य-रचना करने वाले कई कवि हुए हैं, इस कारण काव्य शैली के रूप म इसको विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। इस शैली मे काव्य-रचना करने वालो मे सर्वप्रथम राघवाक (दे०) (1225 ई०) का नाम लिया जाता है। उनके 'हरिश्चद्रकाव्य' (दे०) और 'सिद्धरामपुराण' (दे०) वार्धक षट्पदी मे हैं। कहा जाता है कि राघवाक षट्पदी के जनक हैं। उनके पूर्व कन्नड-साहित्य मे षट्पदी का प्रयोग नही दीखता। 'कविचरिते' मे कहा गया है कि उन्होने शर-षट्पदी मे भी रचना की थी। उनकी 'वीरेशचरिते' (दे०), 'शरभचारित्र' और 'हरिहर-महत्व' जैसी कृतियो मे उद्दड षट्

पदी का प्रयोग हुआ है। नागवर्मा (990 ई०) (दे०) ने अपनी 'छंदोंबुधि' (दे०) में षट्पदी का जो लक्षण बताया है, उससे विदित होता है कि उनके समय में षट्पदी का एक ही भेद—शर-षट्पदी—था। राघवांक ने अपनी प्रतिभा से कुछ भेदों को जन्म दिया होगा। 'हरिश्चंद्र काव्य' के काव्यात्मक सौंदर्य का एक कारण उसका सफल छंद-प्रयोग भी है। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि राघवांक को षट्पदी के प्रयोग में, विशेषत: 'वार्धक' में अपूर्व सफलता मिली है। यह कहना आवश्यक है कि कन्नड के कन्नडपन को दिखाने में षट्पदी का विशेष महत्व रहा है।

पंड़गी, उदयनाथ *(उ० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

आधुनिक उड़िया बाल-साहित्य के संवर्धन में उदयनाथ पंड़गी का प्रदेय महत्वपूर्ण है। प्रकृति, पशु-पक्षी, जलचर—सभी पर इन्होंने शिशु-साहित्य की रचना की है। इनका 'अंकिल टाम्स केबिन' का अनुवाद 'टम-ककांक कुटीर' एक सफल कृति है जो मौलिक रचना-सी जान पड़ती है। इनकी बाल-कविता और बाल-कहानियाँ जितनी ज्ञानवर्धिनी हैं, उतनी ही सहज और आनंदप्रद भी। शैली रोचक और सरल है। निस्संदेह इस क्षेत्र के ये एक समर्थ कलाकार हैं।

'पिलांक जीवनी ग्रंथमाळा', 'जातक गळ्प', 'इसप कथा', 'आदिवासी कथा', 'वण जंगलर जीवजंतु', 'बौद्धजातक', 'चकाचका भऊँरी', 'आमग्रह उपग्रह', 'विचित्र जळजीव', 'उपनिषद कथा', 'अरण्यकहानी', 'टुउकू मूषि' आदि इनकी रचनाएँ है। संप्रति ये उड़िया की प्रमुख दैनिक पत्रिका 'समाज' के मुद्रक हैं।

षडक्षरदेव, षडक्षरी *(क० ले०)*

षडक्षरी अथवा षडक्षरदेव वीरशैव कवि थे। इनका रचना-काल 1650-1677 ई० के मध्य माना जाता है। षडक्षरदेव मठाधिपति यति थे। बाल्यावस्था से ही कविता-रचना की ओर इनकी अभिरुचि थी। इनको जीवन का मार्मिक अनुभव हुआ था, इस कारण इनकी रचनाओं में इनके जीवन-दर्शन का सुंदर वर्णन प्राप्त होता है। संस्कृत और कन्नड दोनों भाषाओं पर अधिकार होने के कारण इन्होंने दोनों भाषाओं में काव्य-रचना की है।

चंपू-काव्य-परंपरा में षडक्षरदेव के काव्यों का विशेष महत्व है। इनकी चार रचनाएँ हैं—(1) राजशेखर-विलास (दे०), (2) शबरशंकरविलास (दे०), (3) बसवराजविजय अथवा वृषभेंद्रविजय (दे०) तथा (4) वीरभद्रदंडक।

'राजशेखरविलास' में एक शिवभक्त की कथा का वर्णन है जिसके माध्यम से 'पंचाक्षरी' मंत्रशक्ति का प्रभाव स्पष्ट किया गया है। वह एक सरस काव्य है। उसमें निमित वर्णनों का लतामंडप अत्यंत मनोहारी है। उसमें चौदह आश्वास हैं। तेरहवें आश्वास तक की कथा मंथर गति से चलती है। चौदहवें आश्वास में 'तिरुको विनाची' का कथा-प्रसंग अत्यंत रसपूर्ण है। उसमें करुण-रस की धारा बही है। अन्य आश्वासों में शिव की महिमा का वर्णन है। काव्य में वर्जित उत्प्रेक्षालंकार, शृंगार, करुण और भक्ति के चित्र भव्य और हृदयस्पर्शी हैं। उसमें कवि की कमनीय कल्पना के भी अच्छे उदाहरण हैं और उसके पांडित्य की स्पष्ट छाप है। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि 'राजशेखरविलास' कन्नड का एक श्रेष्ठ चंपूकाव्य है। षडक्षरी ने काव्य के प्रारंभ में कहा है कि मैंने हरिहर (दे०) का मार्गानुसरण किया है। इसका अर्थ यह है कि इन्होंने हरिहर के समान ही विषय का चुनाव किया है।

पाँच आश्वासों का 'शबरशंकरविलास' एक छोटा काव्य है। 'राजशेखरविलास' में महाकाव्यत्व है तो 'शबरशंकरविलास' में खंडकाव्यत्व है। इसमें शिवजी से अर्जुन को पाशुपतास्त्र-लाभ की कथा का वर्णन है। शैव कवि होने के कारण षडक्षरी ने शंकर जी को विशेष महत्व दिया है। इसमें वर्णित शिव और अर्जुन के संवाद और संग्राम पर्याप्त मनोहारी और सरस हैं।

'बसवराजविजय' या 'वृषभेंद्रविजय' एक बड़ा चंपूकाव्य है जिसमें बसवेश्वर के चरित का वर्णन है।

षडक्षरी कन्नड के प्रतिभासंपन्न और पंडित कवियों की पंक्ति में अन्यतम स्थान रखते हैं।

षड्ऋतु वर्णन *(म० कृ०)*

यह पांडुरंग गोविंद शास्त्री पारखी की विशुद्ध प्रकृति-वर्णन-संबंधी रचना है।

दक्षिण प्राईझ कमेटी के प्रोत्साहन से इस वस्तु-निष्ठ प्रकृति-वर्णनात्मक दीर्घ काव्य की रचना हुई थी। यह कमेटी लेखकों को स्वयं विषय सुझाती थी तथा तदुपरांत लेखक काव्य-लेखन करते थे। कालिदास (दे०) के

प्रकृति वर्णनात्मक काव्य 'ऋतुसहार (दे०) के आदर्श को सामने रख पारखी ने इस काव्य की रचना की। यह काव्य वास्तव तथा विस्तृत है। इसमे पूरे साल म आने वाली छ ऋतुओ मे आने वाले प्रकृति-सौंदर्य का आलेखन हुआ। वर्णनात्मक होने के कारण इसम प्रकृति का भावपूर्ण चित्रण होने पर भी किसी रस का आस्वादन नही हो पाता है।

पारखी सक्राति-काल के कवि हैं। इस ग्रथ की रचना करने मे यद्यपि इन्होने सस्कृत-काव्य के आदर्श को सामने रखा है तथापि इनकी लेखन-शैली पडित कवियो की नही रही। वह सरल, ऋजु एव धाराप्रवाही है।

षण्मुख सुदरम्, आर० *(त० ले०)* [जन्म—1918 ई०]

इन्होने पद्रह से अधिक उपन्यास लिखकर ख्याति प्राप्त की है। प्रसिद्ध उपन्यासो मे 'नाकम्माळ्' (1941), 'पुवुम् पिञ्चुम्' (1944), 'चट्टि चुट्टतु' (1965), 'तनिवळि' (1967) इत्यादि हैं। इनमे इन्होने अपने जिले के प्रातीय वातावरण तथा बोली विशेष का अच्छा उपयोग किया है। तमिल उपन्यासो मे आचलिकता के सफल उपयोग मे पुदुमैप्पित्तन् (दे०) के बाद इनका नबर आ सकता है। इनकी 'चट्टि चुट्टतु' (मटका गरम हुआ) मे ग्राम-जीवन मे व्याप्त दरिद्रता तथा भोले कृषक लोगो के शोषण का प्रभावशाली चित्रण मिलता है। इस उपन्यास के नायक 'चामिक् कवुटर्' का मानवतापूर्ण चरित्र, जो स्वार्थी शक्तियो का शिकार बनता है, कुछ अशो मे प्रेमचद (दे०) के प्रसिद्ध पात्र होरी' (दे०) का स्मरण दिला सकता है। ग्रामो मे पले सीधे लोग शहरी जीवन मे आकर किन किन प्रकारो से परिवर्तित या प्रतिबधित होते हैं—इसका सुदर प्रस्तुतीकरण इनकी 'तनिवळि' (पृथक मार्ग) मे द्रष्टव्य है। इन्होंने बँगला के कतिपय उपन्यासो के तमिल अनुवाद भी प्रस्तुत किए हैं।

षोडषा *(उ० पारि०)*

यह चउतिशा (दे०)-वर्ग की रचना-शैली है। इसमे व्यजनवर्णो के स्थान पर स्वर, वर्ण, अनुस्वार और विसर्ग (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ए, ऐ, ओ औ, ,ॅ,) का प्रयोग होता है। उपेंद्र भज (दे०) ने इसे 'षोडपेंदु' नाम से अभिहित किया है। यह रीति चउतिशा के समान लोकप्रिय नही है। 'षोडषा' एव चउतिशा के समन्वय से पचास वर्णो की एक नवीन रचना-पद्धति अभिमन्यु सामतसिंहार (दे०) की रचना 'विदग्ध चिंतामणि' (दे०) के प्रथम छद मे प्रयुक्त हुई है।

सकलन-त्रय *(हिं० पारि०)*

पश्चिम मे कला कृति मे आगिक अन्विति (आर्गेनिक यूनिटी) को प्रारभ से ही महत्व दिया जाता रहा है। प्लेटो, अरस्तू, होरेस और लोजाइनस सभी ने उस पर बल दिया है। अरस्तू ने त्रासदी (दे०) के लिए कार्य को स्वत पूर्ण तथा अन्विति से युक्त होना आवश्यक बताया है, त्रासदी के कथानक की धुरी ऐसा कार्य-व्यापार होना चाहिए जिसके विभिन्न अग परस्पर सबद्ध होने के साथ-साथ मूल कार्य से भी सबद्ध हो, जिसमे इतनी सुसबद्धता हो कि एक अग को भी इधर-उधर करने से सर्वांग छिन्न-भिन्न हो जाय। उद्देश्य और प्रभाव की समता की दृष्टि से कृति पूर्ण होनी चाहिए।' अरस्तू ने कालगत अन्विति का भी सकेत किया है—'त्रासदी को यथासभव सूर्य की एक परिक्रमा या इससे कुछ अधिक समय तक सीमित रखने का प्रयत्न किया जाता है। 'स्थानगत अन्विति का प्रत्यक्ष उल्लेख उसने कही नही किया है। केवल महाकाव्य (दे०) और त्रासदी की तुलना करते समय उसके निम्न कथन से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह स्थान की अन्विति के पक्ष मे था "सीमित परिधि मे ही कला (दे०) यहाँ अपनी सिद्धि कर लेती है।' स्पष्ट है कि अरस्तू ने कार्य की अन्विति पर ही बल दिया था, अन्य दो अन्वितियो का उल्लेख केवल ऐतिहासिक तथ्य के रूप मे हुआ है—अनिवार्य नियम के रूप मे नही। पर पुनर्जागरण युग मे कास्तेलवेत्तो तथा अन्य इतालवी और फ्रासीसी विद्वानो ने कहा कि अरस्तू ने तीनो अन्वितियो का प्रयोग आवश्यक बताया था। इसका परिणाम यह हुआ कि फ्रास मे नाट्य-रचना मे अन्वितियो का पालन नियम बना दिया गया और 250 वर्ष तक नाटककार उसका पालन करते रहे। डा० जॉनसन ने इसका विरोध किया। आज के नाटककार तीनो अन्वितियो के पालन की चिंता नहीं करते, केवल प्रभावान्विति का ध्यान रखते हैं।

सकल्पसूर्योदय *(स० कृ०)* [समय—तेरहवी शती ई०]

'सकल्पसूर्योदय' प्रसिद्ध विशिष्टाद्वैतवादा

वेदांतदेशिक (दे०) द्वारा रचित प्रतीक नाटक है।

इस नाटक मे मोह की पराजय तथा विवेक के उदय को विषय बनाया गया है। वेदांतदेशिक के विचार में शांत रस ही चित्त के खेद का अपनयन करने वाला, वास्तविक आनंद देने वाला एकमात्र रस है। श्रृंगार रस तो असभ्य की कोटि में आता है। वीर रस भी एक-दूसरे के अपमान तथा अवहेलना के लिए प्रेरित करता है। अद्‌भुत रस की गति स्वभावत: विरुद्ध है। अत: शांत रस ही नि:संदिग्ध वास्तविक रस है।

वेदांतदेशिक प्रथम कोटि के विद्वान् थे अत: 'संकल्पसूर्योदय' की कविता मे पांडित्य का महान् प्रकर्ष आ गया है।

संक्रमण *(म० कृ०)*

यह ल० ग० देव (दे०) का नाटक है। इसमें राजनीतिक अवस्थाओं के संक्रमण की कथा को उरेहा गया है। मुख्यत: तीन जीवन दृष्टियों को अभिव्यक्त करने वाले इस नाटक के प्रथम अंक मे उपनिवेशवादी सरकारी तंत्र तथा कांग्रेस के सिद्धांतादर्शों के संघर्ष का चित्रण हुआ है। इसमें अँग्रेज़ सरकार की सेवा में रत पिता उच्चपदाधिकारी आई० सी० एस० है किंतु उसका पुत्र कांग्रेस का सक्रिय सदस्य है। प्रथम अंक का यह कांग्रेसी पुत्र द्वितीय अंक में मंत्री के उच्च पद को सुशोभित करता है परंतु साम्यवादी विचारों के प्रबल समर्थक अपने ही पुत्र से उसका तीव्र मतभेद होता है। कालचक्र की प्रबलता से तृतीय अंक में साम्यवादी सरकार की संस्थापना की नाटककार द्वारा परिकल्पना की गई है। इस अंक में साम्यवादी सरकार में मंत्री पद को सुशोभित करने वाला द्वितीय अंक का यह मंत्री स्वयं अपने पिता के विरुद्ध न्यायिक जाँच का आदेश देकर कर्त्तव्य की महत्ता का प्रतिपादन करता है। विभिन्न राजनीतिक विचार-परंपराओं के संवहन के कारण पात्र नाटककार के द्वारा ही दौड़ाए-भगाए गए हैं। उनमें निजी व्यक्तित्व का अभाव है। भाषा पात्र एवं प्रसंगानुकूल हैं। सिद्धांत-निरूपण की दृष्टि से नाटक स्तुत्य है।

संगीत एकच प्याला *(म०कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1917 ई०]

यह मद्य-निषेध पर आधारित राम गणेश गडकरी (दे०) का दु:खांत सामाजिक नाटक है। सुप्रसिद्ध वकील सुधाकर न्यायालय में अपने मान-भंग के दु:ख को भुलाने के लिए तुळीराम (दे०) कलर्क के परामर्शानुसार शराब की शरण लेता है। धीरे-धीरे पूर्णत: वासनाधीन होने पर वह न केवल अपनी साध्वी पत्नी सिंधु एवं एकमात्र पुत्र की उपेक्षा करता है, बल्कि अपनी धन-संपत्ति एवं प्रतिष्ठा से भी हाथ धो बैठता है। क्रोधाभिभूत सुधाकर के हाथों अपने पुत्र की हत्या का दोष सिंधु पति की सुरक्षा हेतु अपने ऊपर ले लेती है। अंत में सिंधु के दु:खद निधन के साथ नाटक की परिसमाप्ति हुई है। तुळीराम और आर्य-मदिरा-मंडल के प्रासंगिक हास्य-प्रसंग कथा की एकरसता को भंग करने के लिए संयोजित किए गए हैं, परंतु वे मूलकथा से एकात्म नहीं हो सके है। रसवादी परंपरा में ढले प्रमुख चरित्र सुधाकर, सिंधु, रामलाल, भगीरथ, शरद, गीता, तुळीराम, आदि आत्म-विश्लेषणात्मक पद्धति के कारण सहज, स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं। कथा-विकास पाश्चात्य नाट्य-तंत्र के अनुरूप संघर्ष के माध्यम से हुआ है। अंत: एवं बाह्य द्वंद्व के अनेकानेक भव्य चित्र सिंधु एवं सुधाकर के संवादों में परिलक्षित होते हैं। पात्रानुकूल काव्यमयी भाषा से युक्त संवाद प्रभावान्विति की दृष्टि से सजीव एवं सटीक हैं।

मराठी के दु:खांत नाटकों की समृद्ध परंपरा में 'एकच प्याला' कथ्य एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से मानक कृति कही जाती है।

संगीत सौभद्र *(म० कृ०)*

मराठी के पौराणिक नाटकों में अन्ना साहब किर्लोस्कर के 'संगीत सौभद्र' का अद्वितीय स्थान है। सुभद्राहरण के ख्यात वृत्त पर आधारित इस रचना में पौराणिक पात्रों को मानवीय रूप से प्रस्तुत किया गया है। 'महाभारत' (दे०) में वर्णित सुभद्राहरण की कथा के परिवर्तित प्रारूप को स्वीकार करने के कारण ही कथा में यादव-पांडव-संघर्ष को सर्वथा छोड़ दिया गया है। इस नाटक के रचना-तंत्र पर संस्कृत-नाटक-शिल्प का प्रभूत प्रभाव है। पौराणिक चरित्रों को मानवीय रूप में चित्रित करने के कारण पारिवारिक जीवन की अनेक भव्य झाँकियों का सहज समावेश इस नाटक में हो गया है। सफल संगीतात्मक प्रहसन के रूप मे मराठी नाटक-साहित्य की यह अद्वितीय कृति है। आज भी रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण के अवसर पर दर्शकों की अपार भीड़ इसके स्वागतार्थ सहर्ष प्रस्तुत रहती है।

सग्राम *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1954 ई०]

दीननाथ शर्मा के इस उपन्यास पर नार्वेजियन लेखक हैमसन के 'हगर' नाम्क उपन्यास का प्रभाव स्पष्ट है। इसका नायक बुधिनाथ आदर्शवादी है। वह कई नौकरियाँ करता है किंतु आदर्शवाद और आत्मसम्मान की रक्षा न हो सकने से छोड देता है। वर्तमान युग मे सफलता के लिए जो विवेकहीनता, निर्दय स्वार्थपरता और आत्मसम्मान-हीनता चाहिए वह बुधिनाथ मे नही है। इसमे परपरागत शैली नही है, कहानी मे ऐसी घटनाएँ रखने का प्रयास न्ही है जो पाठको के हृदय को आलोडित करें।

सघरक्षित *(पा० ले०)*

ये बारहवी शती मे श्रीलका के पराक्रमबाहु प्रथम तथा विजयवाहु तृतीय के शासन-काल मे सारिपुत्र के शिष्य और बौद्ध-विहार उदुबरगिरि के सघमहाथेरा थे। कुछ लोग इन्हे मोग्गलाना और मेघकर से अभिन्न मानते है। इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है—'सुबोधालकार', 'वुत्तोदय', 'सबर्धचिता', 'मुसद्दसिद्धि', 'योगविनिचय' और 'खुद्दकसिक्खा' की टीका। इनमे 'सुबोधालकार' सर्वाधिक प्रसिद्ध है जिसमे 371 कारिकाओ और 5 परिच्छेदो मे काव्यलक्षण, दोप, गुण, अलकार आदि दिए हुए हैं। अन्य ग्रथो मे छद शास्त्र, व्याकरण और बौद्ध धर्म आदि विपय आए है।

सजयन् *(मल० ले०)* [जन्म—1903 ई०, मृत्यु—1944 ई०]

जन्म स्थान—तलश्शेरी। सजयन् इनका उपनाम है और असली नाम है एम० रामुण्णि नायर, जिसका सक्षिप्त रूप है एम० आर० नायर। अँग्रेज़ी मे इन्होने एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। सस्कृत साहित्य पर इनका प्रवल अधिकार था तथा फ्रेंच एव जर्मन के व्यावहारिक ज्ञान से भी सपन्न थे। प्रारभ मे ये सरकारी नौकर रहे, बाद मे क्रिश्चियन कॉलेज मे अध्यापक हो गए। शारीरिक अस्वस्थता के कारण ये केवल आठ वर्ष तक ठोस साहित्य-सेवा कर सके। इनका वैयक्तिक जीवन अत्यत सघर्षमय रहा किंतु दु खरूपी हलाहल को ये शिव के सदृश पी गए।

श्री सजयन ने अपना मौलिक साहित्य-सृजन पद्य रचना से प्रारभ किया। केरल पत्रिका, 'सजयन्' तथा 'विश्वरूपम्' के लेखो के ज़रिये सजयन् यशस्वी हुए। सजयन् जी इन पत्रिकाओ मे भिन्न-भिन्न उपनामो से चुटीले व्यग्यपूर्ण लघुलेख, सपादक के नाम व्यग्यपूर्ण पत्र आदि लिखते थे। 'एमरिगीता', 'मोहितन', 'हास्याजलि', (दे०) आदि हास्यभरी रचनाएँ तथा शेक्सपीयर के 'ओथेल्लो' नाटक का सरस अनुवाद इनकी देन है। इनकी विनोद प्रियता इसमे भी प्रकट है कि इन्होने 'पी० एस०' उर्फ 'पारप्पुरत्तु सजयन्' (दे०) उपनाम स्वीकार किया। पारप्पुरत्तु का अर्थ है चट्टान का। मलयाळम साहित्य मे सजयन् का यश अमिट है।

सज्ञा *(हिं० पारि०)*

'सज्ञा' शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'ज्ञा' धातु से बना है अर्थात् सज्ञा वह है जिससे किसी का सम्यक् ज्ञान हो। व्याकरण मे सज्ञा उस विकारी शब्द को कहते हैं जिससे प्रकृत अथवा कल्पित सृष्टि की किसी भी वस्तु या क्रिया का ज्ञान हो या उसका नाम सूचित हो। सज्ञा शब्दो का वर्गीकरण कई आधारो पर किया जा सकता है गणनीय सज्ञा जैसे आदमी, अगणनीय सज्ञा जैसे पानी, जातिवाचक सज्ञा जैसे मनुष्य, नगर, पर्वत; व्यक्तिवाचक सज्ञा जैसे राम, दिल्ली, हिमालय; भाववाचक सज्ञा जैसे वीरता, सुख, मैत्री आदि। सज्ञा शब्दो से विशेषण (भारत-भारतीय, हवा-हवाई), क्रिया (शर्म-शर्माना, खर्च-खर्चना) क्रियाविशेषण (राम किनारे बैठा है) तथा विस्मयादिबोधक (राम ! राम ! यह क्या किया) शब्द आदि भी बन जाते हैं।

सत, इदिरा *(म० ले०)* [जन्म—1914 ई०]

ये बेळगाँव प्रशिक्षण महाविद्यालय की प्राचार्या हैं।

इनकी रचनाएँ हैं—काव्य-सग्रह 'सहवास', 'शेला', 'मेदी' तथा 'मृगजळ'।

कथा-सग्रह—'श्यामली' और 'कदली'।

आधुनिक मराठी कवयित्रियो मे इदिरा सत का अपना स्थान है। पति की अकाल मृत्यु के कारण इनके जीवन मे जो शून्यता आ गई थी, उसी का कारुणिक अकन इनकी कविताएँ हैं। इनका सपूर्ण काव्य प्रेमभाव से पूरित

है। यह प्रेमभाव द्विविधा रूपा है—पति-प्रेम और अपत्य-प्रेम। अतीत काल के गह्वर में निहित वासंती रात्रि एवं स्वर्णिम दिवस की स्मृति में डूबे मन की उदासीन और कुछ-कुछ शून्य मनःस्थिति का अंकन करने वाली कविताएँ अत्यंत भाव-तरल हैं।

अधिकांश गीतों के लिए इन्होंने आठ अक्षर-गण वाले गेय ओवी छंद का प्रयोग किया है।

संतकाव्य *(हिं० प्र०)*

संतकाव्य का विभाजन तीन गुणों मे हो सकता सकता है – (1) आदि युग, ईसा की बारहवी से सोलहवी शती तक; (2) मध्ययुग, ईसा की सोलहवीं से अठारहवी शती तक; और (3) आधुनिक युग, ईसा की उन्नीसवीं शती से। संत-परंपरा के सर्वप्रथम पथ-प्रदर्शक भक्तकवि जयदेव ने कुछ ऐसे पदों की रचना की जो 'आदिग्रंथ' में संगृहीत हैं। संत काव्य भाव-प्रधान है, क्योंकि इसमें भाव-सौंदर्य की अपेक्षा शब्द-शैली के चमत्कार की ओर कम ध्यान दिया गया है। भाषा मुहावरेदार सर्वसाधारण की है, किंतु विचार उच्चातिउच्च, गंभीरतम हैं। इसका वर्ण्यविषय धार्मिक एवं दार्शनिक है; क्योंकि इसमें निर्गुण के प्रति भक्ति, प्रेम तथा स्वानुभूति की अभिव्यक्ति है; और व्यापक जीवन की ओर संकेत है। उलटबाँसियाँ रहस्यात्मक उक्तियों से ओत-प्रोत हैं, और साखियाँ तथा शब्द (गेय-पद) भी उनसे परिपूर्ण है। दोहा, सोरठा, तार, हरिपद, चौपाई, छप्पय के दर्शन कतिपय संतों की रमैनियों मे उपलब्ध हैं। रमैनियों में विवरण है किंतु प्रबंध-रचना का प्रयास नहीं; क्योंकि उनमें, दो-चार को छोड़कर प्रेमगाथा का निर्माण नहीं हुआ—बानी अथवा शब्द गेय-पद हैं जिनका प्रयोग सभी प्रकार की रचना के लिए हुआ है, जबकि पदों और साखियों की रचना प्रायः फुटकर पदों के रूप में हुई है। कुछ संतकाव्य ऐसे भी हैं जो लोक-गीतों का महत्वपूर्ण अवशेष हैं, यथा: चाँचर, वसंत, फाग, हिंडोला, बेलि, ककहरा, वणजारा, व्याहलो, विरहुली। 'ग्रंथ बावनी' में नागरी लिपि के बावन अक्षरों से क्रमशः आरंभ है। नामदेव (दे०), कबीर (दे०), रैदास, सधना, वेणी, त्रिलोचन, सोना ताई, पीपा, कमाल, धन्ना भगत आदि अनेक संत उल्लेखनीय है। किंतु कबीर की रचना का बृहत् अंश ऐसा है जिसकी गणना श्रेष्ठ काव्य में हो सकती है।

संतरेण *(पं० ले०)* [समय—1741-1871 ई०]

उदासी संप्रदाय के संत कवि संतरेण जा जन्म श्रीनगर, कश्मीर प्रदेश में हुआ था। इनके पिता का नाम हरिवल्लभ एवं माता का सावित्री देवी था और ये गौड़ ब्राह्मण थे। इन्होंने लाहौर एवं अमृतसर में रहने के बाद बालापुर पी०, मद्रास, नेपाल, सिंध, बलोचिस्तान आदि प्रदेशों का भ्रमण किया और पंजाब के मलेरकोटला नगर के भूदत स्थान में अपना एक आश्रम स्थापित किया जो अभी तक विद्यमान है। 1871 ई० में भूदत मे इनका देहांत हुआ। साहिब दास उदासी संत की शिष्य-परंपरा को इन्होंने विधिवत् चलाया। इनकी रचनाएँ हैं—'मनःप्रबोध', 'नानक-विजय' (दे०), 'नानक-बोध', 'वचन-संग्रह' एवं 'उदासी बोध'। इन कृतियों में 'नानक-विजय' एक विशाल ग्रंथ है। इस रचना में धार्मिक एवं सांस्कृतिक तत्त्व की अपेक्षा काव्य-गौरव अधिक है। भाषा पर ब्रज एवं खड़ी बोली का प्रभाव भी है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भी यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है। संत कवि संतरेण इतने प्रभावशाली थे कि आसपास के क्षेत्र के लोग उन्हें ज्योतिष, आयुर्वेद एवं अन्य विद्याओं का पहुँचा हुआ संत मानते थे। इस विद्या-वैचक्षण्य के साथ ही संतरेण की काव्य-प्रतिभा अद्भुत थी। संत कवि के रूप में साहित्य-क्षेत्र में इनका उत्कृष्ट स्थान है। ये पंजाबी तथा हिंदी (ब्रजभाषा)-साहित्य में समान रूप से मान्य हैं।

संतसिंह सेखों *(पं० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

संतसिंह सेखों पंजाबी में प्रगतिवादी विचार-धारा के अग्रणी लेखकों में हैं। समाजवादी यथार्थवाद से प्रेरित सेखों ने पंजाबी में आलोचना, नाटक, उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं और आज इनकी गणना पंजाबी के शीर्षस्थ साहित्यकारों में की जाती है।

आलोचना के क्षेत्र मे सेखों की दो पुस्तकें विशेष महत्वपूर्ण हैं—'प्रसिद्ध पंजाबी कवि' और साहित्तार्थ (दे०)। 'प्रसिद्ध पंजाबी कवि' में पंजाबी के प्राचीन कवियों की रचनाओं का आकलन किया गया है। 'साहित्तार्थ' इनके विशिष्ट साहित्यिक निबंधों का संग्रह है। सेखों का नाटक 'कलाकार' जैसे उनकी साहित्यिक मान्यताओं का घोषणापत्र है। लेखक का अपना मत भी है कि इस नाटक मे अभिव्यक्त विचार साहित्य और कला के संबंध में समाजवादी विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कहानीकार के रूप मे सेखो की सफलता कदाचित् अन्य विधाओ से अधिक है। पश्चिमी कहानी का कलात्मक सस्पर्श सेखों की कहानियो के माध्यम से पजाबी मे विशेष रूप से आया। विषय की दृष्टि से भी सेखो की कहानियो मे व्यापकता है। इनकी अधिकाश कहानियाँ सामतवादी और पूँजीवादी समाज के खोखलेपन को चित्रित करती है अथवा स्त्री-पुरुष के यौन सबधो की स्वच्छदता का समर्थन करती है।

सेखो की रचनाएँ अपने विशिष्ट बौद्धिक स्तर के कारण भी उल्लेखनीय है। समाजवादी विचारधारा होते हुए भी इनकी कृतियो का बौद्धिक स्तर और कलात्मक सूझ बूझ इन्हे अपनी पूर्व पीढी [गुरबख्शसिह (दे०)-नानकसिह (दे०) युग] से पूरी तरह अलग कर देती है। अन्य कृतियाँ—'लहू मिट्टी' (दे०) (उपन्यास), 'समाचार' (दे०), 'कामे ते योधे', अधीवार', 'बारादरी', 'तीजा पहिर' (कहानी सग्रह), 'बाबा बोहड', 'मोइआ सार न काई' (नाटक), छे घर'(दे०) (एकाकी-सग्रह)।

सतू *(गु० पा०)*

चुनीलाल मडिया (दे०) के 'लीलूडी धरती' (दे०) नामक उपन्यास की नायिका 'सतू' गुदासर गाँव के टीकावागडिया की सतान है। न बहुत गोरी और न बहुत काली। गाँव मे वह 'सतू रगीली' के नाम से प्रसिद्ध है। पतले सोटे-सी सरल और सिंहिनी जैसी पतली कमर वाली इस सोलह वर्षीय लडकी पर शादूलभा की आँखें टिक जाती हैं और माडण उससे विवाह करने के स्वप्न देखता है। गोबर के साथ उसका विवाह होता है। सगर्भा सतू अपने गर्भ के विषय मे केवल गोबर को ही बताती है और गोबर के दुर्घटना मे मर जाने पर यह रहस्य कोई नही जान पाता। परिणामत सतू को सभी दुराचारिणी मान बैठते हैं। उसका श्वसुर इसमे अपवाद है। गाँव म अकाल पडता है। पाखडी ओभा 'सतू' को ही इसका कारण बताता है। गाँववाले सतू को गाँव से निकाल देने पर तुले हैं और सतू यह सोचकर कि 'मुझे जीना तो कम है फिर यह सब वैर क्यो बाँधा जाय', आत्महत्या करने निकल पडती है पर इस भय से कि सभी सतू को अतिम रूप से पापी मान बैठेंगे, वह मर भी नही पाती। स्वभाव से निर्भीक, आग्रही और परिश्रमी होने के कारण तथा अपनी सतीत्व-रक्षा के लिए वह खौलते तेल म अपने हाथ जला बैठती है। इससे एक लाभ अवश्य होता है कि गाँव का युवक-वर्ग और अन्य सहृदयी लोग सतू के पक्ष मे हो जाते हैं। नियति उसकी रक्षा करती है, उसके मृत सतान पैदा होती है और माँ के कथित कलक से वच जाती है। मृत सतान भी सतू को एक आघात दे जाती है। उसे लगता है कि उसकी सतान को कही छिपा दिया गया है। वह पागल हो जाती है। इसी के चरित्र को ध्यान मे रखकर रघु कहता है, 'स्त्री का अवतार तो हरी-भरी धरती जैसा है इस पर पाला पडे, भले ही चौमासे के सभी बादल वरस जायें, भले ही भयकर ग्रीष्म की जला देने वाली धूप तपे और देखने वाले की आँखो मे लहू उतर आए पर अत मे तो यह धरती पुन हरी-भरी हो लहरा उठती है। 'मलेलाजीव' (दे०) की प्रेम दिवानी 'जीवी' से भी आगे बढकर सतू जीवन की वास्तविकताओ व कटुताओ को भोगती हुई अधविश्वासो से टकराती हुई अपने सतीत्व व पवित्रता की रक्षा और उसके सम्मान के लिए सभी कुछ सहन करती है—साहस से करती है। लेखक को इस प्रकार के चरित्र सृजन की प्रेरणा स्वरचित 'ककुना थापा' नामक एकाकी से मिली है।

सतोख सिंह धीर *(प० ले०)* [जन्म —1920 ई०]

सतोख सिंह धीर नयी पीढी के कवि एव कथाकार दोनो रूपो मे प्रतिष्ठित हैं। पजाब का ग्रामीण जीवन इनके सर्जनात्मक अनुभव का क्षेत्र है और प्रगतिशील विचारधारा से इनका गहरा सबध है।

सतोखसिह धीर की रचनाओ मे सामतवादी व्यवस्था मे टूट हुए पजाबी ग्रामीण जन की बेवसी मुखर हो उठी है। आधुनिक युग के यत्रीकरण ने समाज के कितने ही वर्गों को उनकी परपरागत जीविका स वचित कर दिया है—इसका मार्मिक चित्रण भी धीर की कहानियो मे उपलब्ध है।

प्रमुख रचनाएँ— सिट्टियाँ दी छा, 'सवेर होण तक' (कहानी-सग्रह), 'गुडीआ पटोले', 'मगदी मीह वे', 'विरछडे' (कविता-सग्रह)।

सदिकै, कृष्णकात *(अ० ले०)* [जन्म—1895 ई०]

महान् प्राच्यविद् श्री सदिकै सस्कृत और अँग्रेजी के धुरधर विद्वान् हैं। इन्होने अनेक साहित्यिक

संस्थाओं को दान दिया है। इन्होंने आज तक कोई पुस्तक नहीं लिखी, किंतु कुछ पांडित्यपूर्ण निबंध लिखकर इन्होंने असमीया समालोचना-साहित्य को समृद्ध किया है। इनके ये निबंध उल्लेख योग्य हैं—'बाँही' में प्रकाशित 'रुच अभिनय'; 'चेतना' में प्रकाशित 'अनुवादर कथा', 'यूरोपर भाषा आरु साहित्य'; 'आवाहन' में प्रकाशित 'स्पेनिश साहित्यिर रमिओ जूलियेट', 'जाम्मनि साहित्यर सपोन नाटक', 'ग्रीक नाटकर गान'; 'असम साहित्य सभा पत्रिका' में 'सक्रेटिसर मतेकविर प्रकृति' और असम-साहित्य-सभा का अभिभाषण। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'नैषध' (दे०) का टीका-सहित अँग्रेजी अनुवाद किया है।

गहन पांडित्यपूर्ण, संयत सुंदर गद्य-शैली के लिए संदिकै जी की विशेष ख्याति है।

संदिग्ध मृगया *(उ० कृ०)*

यह प्रतिष्ठित आधुनिक कवि श्री रमाकांत रथ (दे०) का तृतीय कविता-संकलन है। कवि ने नूतन धर्मी इन कविताओं में स्व-प्रज्ञा का परिचय दिया। कविताएँ विशेष रूप से आधुनिक समाज एवं जीवन की पृष्ठभूमि पर लिखी गई हैं। इस संकलन की बहु प्रशंसित दो कविताएँ हैं—'अनंतशयन' एवं 'अतिथि सत्कार'।

संदीलो, अब्दुल करीम *(सिं० ले०)* [जन्म—1923 ई०]

ये लाड़काणा (सिंध) के गवर्नमेंट कॉलेज में सिंधी-विभाग के अध्यक्ष एवं प्राध्यापक हैं। इन्होंने सिंधी के साथ-साथ हिंदी और संस्कृत का भी अच्छा अध्ययन किया है। इनकी रुचि सिंधी भाषा और लोक-साहित्य के अनुसंधान में अधिक है। सिंधी-लोक-साहित्य के क्षेत्र में इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'सिंध जो सींगार', 'बीभाए' और 'दहसनामो'। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'तहकीक लुगात सिंधी' नाम से सिंधी भाषा का व्युत्पत्ति-कोश भी तैयार कर प्रकाशित कराया है। इनका सिंधी-लोक-साहित्य के अन्वेषण और सिंधी-भाषाविज्ञान में योगदान हमेशा याद रहेगा।

संदेश-काव्य *(पारि०)*

वियोगियों के संदेश के रूप में विरह-भावना की अभिव्यक्ति उसी समय से आरंभ होने लगी थी जिस समय से मानव में प्रेम की उत्पत्ति हुई थी। संस्कृत-साहित्य में इस अभिव्यंजना-प्रणाली का आरंभ कालिदास (दे०) के 'मेघदूत' (दे०) से होता है। इसमें कुबेर के शाप द्वारा अलकापुरी से निर्वासित एक यक्ष मेघ द्वारा अपनी प्रेयसी के पास अपना प्रणय-संदेश भेजता है।

'मेघदूत' में विरह की गहन अनुभूति और मार्मिक अभिव्यक्ति से प्रभावित होकर इसके अनुकरण पर अनेक काव्य लिखे गए। किसी ने स्वतंत्र दूत-काव्य लिखा और किसी ने 'मेघदूत' के छंदों के किसी चरण को आधार बनाकर काव्य-रचना की, जैसे 'पवन दूत', 'हंस दूत' इत्यादि। ऐसे काव्यों में संदेश किसी माध्यम द्वारा या दूत द्वारा दिया जाता है, इसलिए ऐसे संदेश-काव्य को दूत-काव्य भी कहते हैं।

दूत-काव्यों में विप्रलंभ शृंगार की प्रधानता रहती है। संस्कृत-साहित्य के कवियों को इस प्रकार के काव्यों की रचना की प्रेरणा संभवतः प्रचलित लोक-गीतों से मिली होगी। इनमें उड़कर या बहकर या चलकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचने वाले हंस, शुक, कोकिल, चातक, पपीहा, कौआ आदि पक्षियों द्वारा, निःश्वास, पवन, मेघ, नदी आदि प्रवाहशील वस्तुओं द्वारा या गतिशील मानव द्वारा संदेश भिजवाया जाता है।

अपभ्रंश-साहित्य में अद्दहमाण (दे०) द्वारा रचित 'संदेशरासक' (दे०) इसी प्रकार का संदेश-काव्य है। इसमें एक विरहिणी एक पथिक के द्वारा अपने प्रियतम को संदेश भेजती है।

राम-कथा-संबंधी काव्यों में राम हनुमान् द्वारा सीता के पास संदेश भेजते हैं। कृष्ण-कथा-संबंधी काव्यों में कृष्ण उद्धव द्वारा विरहिणी गोपियों के पास संदेश भिजवाते हैं। इस प्रसंग को लेकर रचे काव्यों में सूर का 'भ्रमरगीत' (दे०) अत्यंत प्रसिद्ध है। नंददास-विरचित 'भँवरगीत' (दे०) भी इसी परंपरा का संदेश-काव्य है।

आधुनिक काल की एतद् विषयक रचनाओं में जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (दे०) का ब्रजभाषा में रचित 'उद्धव शतक' (दे०), सत्यनारायण 'कविरत्न' (दे०) का 'भ्रमरदूत' (दे०) प्रसिद्ध हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (दे०) ने अपने खड़ी बोली के प्रसिद्ध काव्य 'प्रिय प्रवास' (दे०) में पवन को दूती बनाकर संदेश भिजवाया है। आधुनिक काल में संदेश-काव्य की प्रवृत्ति 'पत्रकाव्य' या 'पत्रगीति' रूप में व्यक्त हुई है।

सदेशरासक (*अप० क्र०*) [रचना-काल—बारहवी शती ई० के लगभग]

'सदेशरासक' अपभ्रश भाषा का 223 पद्यो का एक प्रसिद्ध खडकाव्य है। इसके रचयिता अद्दहमाण (अब्दुल रहमान) (दे०) हैं। अद्यावधि उपलब्ध अपभ्रश-काव्यो मे से यही एक काव्य है जो मुसलमान कवि द्वारा रचित है। धर्मनिरपेक्ष लौकिक प्रेम भावना की अभिव्यक्ति इस काव्य की विशेषता है।

'सदेशरासक' एक सदेश काव्य है। इसकी कथा अन्य अपभ्रश काव्यो की तरह सधियो मे विभक्त न होकर तीन भागो—प्रक्रमो—मे विभक्त है। प्रथम प्रक्रम प्रस्तावना रूप मे है जिसमे कवि अपनी रचना का औचित्य प्रदर्शित करता है। द्वितीय प्रक्रम से मुख्य कथा आरभ होती है—विजयनगर की एक विरहिणी नायिका एक पथिक द्वारा जो सामोस मूलस्थान (मुलतान) से आया था और खभात जा रहा था, अपने पति को सदेश भेजना चाहती है। खभात मे ही उस नायिका का पति रहता था, अत उस नगर का नाम सुनते ही वह भावविह्वल हो उठती है और पथिक को अपना करुण सदेश देना चाहती है। विरहिणी कभी एक छद मे, कभी दूसरे छद मे, कभी तीसरे छद मे कुछ सदेश देती है। किंतु अपने भावो को व्यक्त करने मे असमर्थ पाकर वह पथिक से अपनी दशा का वर्णन करने को कहती है। इसी प्रसग मे (तीसरे प्रक्रम मे) कवि ने षड्ऋतु वर्णन प्रस्तुत किया है। अत मे जब अवसरानुकूल प्रिय सदेश देने की प्रार्थना करती हुई पथिक को आशीर्वाद देकर विदा करती है, उसी समय वह दक्षिण दिशा से अपने पति को आते हुए देखती है। वह हर्षविह्वल हो उठती है। पाठको की मगलकामना करते हुए कि नायिका की अकस्मात् कार्य-सिद्धि के समान वे भी सफलता प्राप्त करें, कवि अपनी कृति को समाप्त करता है।

'सदेशरासक' के खडकाव्य होने के कारण इसमे विस्तृत वस्तु-वर्णन की अपेक्षा विरहिणी नायिका के हृदय की व्यथा का चित्रण अधिक है। इस काव्य मे विप्रलभ शृगार की मुख्य रूप से व्यजना हुई है। कवि का विरह-वर्णन सवेदनात्मक है। विरहिणी नायिका 'कुसुम सराउह रूवणिहि' (कुसुम शरायुध रूपनिधि) है। उसके अग-वर्णनो मे प्रयुक्त उपमान प्राय परपरागत हैं। ऋतु-वर्णन उद्दीपन-रूप म प्रयुक्त होता हुआ भी स्वाभाविक और आकर्षक है। परपरागत ऋतु-वर्णन की शैली से भिन्न इस वर्णन मे कही अधिक सरसता और साहित्यिकता है। प्रकृति-चित्रण मे जीवन से सबध रखने वाले व्यापारो का भी उल्लेख है।

इस काव्य की भाषा मे भावानुकूल शब्द-योजना हुई है। यत्र-तत्र ध्वन्यात्मक शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। भाषा मे शब्दचित्र अकित करने की क्षमता है। स्थान-स्थान पर लोकोक्ति और मुहावरे के प्रयोग से भाषा सजीव हो गई है।

इस कृति मे नाना छदो का प्रयोग मिलता है, किंतु 'रासा' छद की बहुलता है। अधिकाश छद मात्रिक हैं।

सदेशरासक (*गु० कृ०*) [रचना-काल—1420 ई०]

'सदेशरासक' अथवा 'सदेशक रास' पद्रहवी शती के मुसलमान कवि अद्दहमाण अर्थात् अब्दुर्रहमान (दे०)-रचित दूत-काव्य है, जो अपने वर्ण्य विषय—गहरी विरह-वेदना की अभिव्यक्ति—के कारण अत्यत लोकप्रिय है। प्राचीन गुजराती का यह एक उत्तम विप्रलभ-काव्य है।

कवि अब्दुर्रहमान सभवत मुलतान के निवासी थे। इस कृति मे विजयनगर स्थित नायिका खभात स्थित नायक को एक पथिक के हाथो सदेश भेजती है।

भाषा की जटिलता होते हुए भी नगर-वर्णन, ऋतु-वर्णन, समसामयिक जीवन का यथार्थ निरूपण एव विरह की समुचित अभिव्यक्ति के कारण गुजराती साहित्य मे इस कृति का विशेष आदर है।

मुनि जिनविजय जी तथा डा० हरिवल्लभ (चुनीलाल) भायाणी (दे०) ने इसे सपादित किया है। हिंदी मे प० हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०) ने इसका सपादन किया है।

पद्रहवी शती के गुजराती भाषा के स्वरूप के अध्ययन की दृष्टि से यह कृति विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। भाषा मे अवहट्ट की ओर झुकाव पाया जाता है।

सधानी (*उ० कृ०*) [रचना-काल—1953 ई०]

इस सग्रह की कविताओ मे कवि नीलमणि फुकन (दे०) ने सत्य और सौंदर्य की खोज का प्रयास करते हुए जीवन के अनेक प्रश्नो पर भी विचार किया है।

संधि *(हि० पारि०)*

'संधि' शब्द का अर्थ है 'मिलना'। व्याकरण में दो शब्दों तथा ध्वनियों के मिलने को, और मिलने पर हुए ध्वन्यात्मक परिवर्तनों को, संधि कहते हैं। उदाहरण के लिए राम+अवतार=रामावतार। संस्कृत में संधियाँ तीन प्रकार की मानी गई हैं: (क) **स्वर-संधि**—जिसमें दो स्वरों की संधि हो, जैसे—अति+अंत=अत्यंत, जिला+अधीश=जिलाधीश; (ख) **व्यंजन संधि**—दो व्यंजनों अथवा एक व्यंजन और एक स्वर की संधि व्यंजन-संधि है; जैसे जगत्+जननी=जगज्जननी, वाक्+ईश=वागीश; (ग) **विसर्ग-संधि**—जिसमें विसर्ग की स्वर या व्यंजन के साथ संधि हो, जैसे अंतः+गत=अंतर्गत; अंतः+साक्ष्य=अंतस्साक्ष्य। दो शब्दों या भाषिक इकाइयों के मिलने पर कभी तो उनकी संधि पर ध्वन्यात्मक परिवर्तन होते हैं, और कभी शब्दों के भीतर। संधि पर हुए ध्वन्यात्मक परिवर्तनों को **बाह्य संधि** तथा भीतर हुए ध्वन्यात्मक परिवर्तनों को **आंतरिक संधि** कह सकते हैं। उपर्युक्त उदाहरण बाह्य संधियों के थे। रात+जगा=रतजगा में 'रात' का 'रत' हो गया है अतः यह आंतरिक संधि (आ का अ) है। कुछ शब्दों में ये दोनों संधियाँ साथ-साथ मिलती हैं, जैसे: घोड़ा+दौड़=घुड़दौड़ (ओ=उ; ड़ा=ड़), पानी+घाट=पनघट (पा=प; नी=न)।

संध्याकरनंदी *(सं० ले०)* [समय—1084-1130 ई०]

इनका जन्म उत्तरी बंगाल में पुंड्रवर्द्धन नामक स्थान पर हुआ था। इनके पिता का नाम प्रजापति नंदी तथा पितामह का नाम पिनाकनंदी था।

इनकी दो काव्यकृतियाँ उपलब्ध हैं—'रामपालचरित' तथा 'रामचरित'। 'रामपालचरित' पाल वंशीय नरेश रामपाल की जीवनी श्लिष्ट पद्यों द्वारा प्रस्तुत करता है; किंतु ऐतिहासिक घटनाओं की विशेष जानकारी के अभाव में हम उन घटनाओं का सही मूल्यांकन नहीं कर सकते। 'रामचरित' के पालनरेश रामपाल तथा रामचंद्र का वर्णन श्लेष के माध्यम से किया गया है। इसमें पाँच सर्ग तथा दो सौ आर्याएँ हैं। लेकिन तत्कालीन इतिहास की जानकारी न होने के कारण इनका समझना बड़ा कठिन है।

संध्या-नाटक *(मल० कृ०)*

यह श्री जी० शंकर कुरुप्प् (दे०) की एक प्रतीकवादी नाट्यकृति है जिसमें प्रतीकों के माध्यम से जीवन-सत्यों को उभारने का प्रयत्न किया गया है।

संध्याराग *(क० कृ०)*

यह अ० न० कृ० (कृष्णराय) (दे०) का उपन्यास है। यद्यपि यह उपन्यास उनकी प्रारंभिक रचनाओं में है तथापि यह उपन्यास-कला की दृष्टि से उनके श्रेष्ठ उपन्यासों में गिना जाता है। इसमें वातावरण, संभाषण और पात्रों का निर्माण उत्तम रूप से हुआ है। इसका नायक लक्ष्मण असाधारण प्रतिभा-संपन्न संगीतकार है जो अपना जीवन ही उसके लिए न्योछावर कर देता है। वह जीवन में नाना कष्ट भोगता है, फिर भी अपनी कला-प्रज्ञा का विकास करता है। इसमें चित्रित स्त्री पात्रों में मीनम्मा का चरित्र बड़ा ही आकर्षक है। वह प्राचीन आदर्श और सद्गुणों की प्रतिमा है।

संबंद मुदलियार, पम्मल *(त० ले०)* [जन्म—1873 ई०; मृत्यु—1964 ई०]

संबंद मुदलियार तमिल में नाडह ताता (नाटकों के पितामह) कहे जाते हैं। शिक्षा समाप्त करने के बाद इन्होंने वकालत करना आरंभ कर दिया था। 1891 ई० में श्री कृष्णमाचारलु की 'सरस विनोदिनी सभा' द्वारा प्रस्तुत तेलुगु नाटकों को देखकर इन्हें नाट्य मंडली स्थापित करने की प्रेरणा मिली थी और इन्होंने अपने मित्रों और छात्रों के सहयोग से 'सुगुणविलास' नामक नाट्य सभा की स्थापना भी की थी। अभिनयोचित सुंदर नाटकों के न मिलने पर इन्होंने स्वयं नाटकों की रचना की। इनके नाटकों की संख्या 100 के लगभग है जिनमें कुछ एकांकी और रेडियो नाटक भी हैं। इनके कुछ नाटक चलचित्र के रूप में प्रदर्शित किए जा चुके हैं। इनकी प्रमुख नाट्य-कृतियाँ है—'मनोहरन्', 'वेदाल उलगम्', 'संगीत पयित्तियम्', 'अमलादित्यन्', 'सभापति नाडहंगळ्' आदि। इन्होंने कुछ निबंधों की भी रचना की है। 'नाडह तमिल' में इनके नाटक संबंधी भाषण संगृहीत है। 'नाडह मेड निनैवुहळ्' और 'यान् कंड पुलवर-कळ्' संस्मरणात्मक कृतियाँ है। इन्होंने 'यन् सुयचरिदै'

शीर्षक से आत्मकथा लिखी है । 1959 ई० मे भारत सरकार ने इन्हें पद्मभूषण की उपाधि प्रदान की थी। यद्यपि इन्हे सभी क्षेत्रो मे अपार सफलता मिली है, तथापि तमिल-नाटक और तमिल रगमच की समृद्धि मे उनका योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

सबदर (त० ले०) [समय—ईसा की सातवी शती]

सबदर का दक्षिण के शैव सतो मे महत्वपूर्ण स्थान है । प्रसिद्ध है कि तीन वर्ष की अल्पायु मे ही इन्हे दिव्य ज्ञान की प्राप्ति हो गई थी और ये भक्तिरसपूर्ण पद गाने लगे थे । इनकी भक्ति वात्सल्य भाव की थी । सोलह वर्ष की आयु मे इनका विवाह हुआ था और ये अपनी पत्नी सहित प्रभु मे लीन हो गए थे । अपने अल्पकालिक जीवन मे ही इन्होने लगभग 200 शिव-मदिरो का भ्रमण कर लिया था । इनके 384 पद 'देवारम' (दे०) मे सगृहीत हैं। इन पदो मे प्रकृति के अनेक सुदर चित्र है । इनके पदो से तत्कालीन समाज म प्रचलित शिवोपासना का परिचय मिलता है । इन्होने शैव दशन के मूल सिद्धातो का विवेचन किया है परतु इनके पदो मे दर्शन की वह गभीरता नही है जो कि अन्य शैव-सतो के पदो मे है। इन्हे अपने पाडित्य पर गर्व था इसी से ये अपने को 'वेदियन-ज्ञान सबदन' (वेदज्ञ ज्ञान सबदन्), 'नल् तमिल ज्ञान सबदन्' (उत्तम तमिल कवि-ज्ञान-सबदन) 'नान् मरै वळ्ळ ज्ञान-सबदन्' (चार वेदो का ज्ञाता ज्ञान-सबदन्) कहते हैं ।

सबोध गीति (ओड) (पारि०)

अँग्रेजी का 'ओड' शब्द यूनानी 'ओदे' का वशज है । मूल रूप मे इस शब्द का व्यवहार यूनान मे वाद्य-यत्र के साथ गाई जाने वाली छदोवद्ध रचनाओ के लिए किया जाता था । यूनानी भाषा के ये प्रारभिक गीत कालातर मे दो विपरीत धाराओ म प्रवाहित हुए थे—प्रगीत तथा नाट्य रचना म व्यवहृत वृदगान की एव विशिष्ट पद्धति । 'ओड' दूसरी धारा का विकसित रूप है । अँग्रेजी की शेली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, टेनीसन, स्विन्बर्न आदि रोमानी कवियो की सबोध गीतियो से प्राचीन यूनानी 'ओड' का कथ्य और शिल्प दोनो दृष्टियो म स्पष्ट पार्थक्य है । इन कवियो की सबोधगीतिया के विपय केवल भगवद्-स्तुति तक ही सीमित नही है । इनकी रचना सभी प्रकार के चिंतन, विचार एव तर्कप्रधान विषयो को लेकर हुई है । इस प्रकार स्पष्ट ही 'ओड' का विषय सामान्य सहज एव अत स्फूर्त प्रगीत की अपेक्षा गभीर एव प्रकृत्या चिंतन प्रधान होता है । शिल्प और रूपाकार की दृष्टि से विशदाकार सवध गीति अनिवार्यत सबोधनात्मक शैली मे रचित होती है। इसकी शैली भव्य उत्कृष्ट तथा गरिमापूर्ण होती है, किंतु छदविधान प्राय जटिल—कही-कही अत्यत जटिल तथा अनियत होता है । यो सामान्यत छद प्राय अत्यानुप्रासयुक्त ही होता है, फिर भी अँग्रेजी-काव्य मे भिन्नतुकात और अतमुक्त सबोध गीतियाँ भी उपलब्ध हैं। सगीततत्त्व आज की सबोध-गीति के लिए अनिवार्य नही समझा जाता । वर्तमान युग मे लिखित सबोध-गीतियो मे आकार के परिसीमन पर बहुत अधिक आग्रह है । वह केवल 50 और 200 पक्तियो के बीच ही समाप्त हो जाना चाहिए। पाश्चात्य काव्यशास्त्र मे सबोध-गीति का विभाजन दो दृष्टियो से किया गया है : छद-रचना और सबोधन की शैली । छद की दृष्टि से इसके दो रूप हैं—नियमित और अनियमित । इसके अतिरिक्त इस विधा के प्रसिद्ध रचनाकारो पिंडार और होरेस के नामो पर इसके दो उपवर्ग किए गए पिंडारक, होरेशियन । वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स और वायरन आदि रोमानी कवियो की शैली के आधार पर आधुनिक नियमित 'सबोध-गीति' (मॉडर्न रैग्यूलर ओड) नामक इसका एक तीसरा उपसर्ग भी माना गया है।

सयममजरी (अप० कृ०)

सयममजरी महेश्वर (दे०) सूरि द्वारा रचित 35 दोहो की एक छोटी सी कृति है। जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट होता है, इसम सयम से रहने का उपदेश दिया गया है । सयम ही सर्वोत्तम साधना है । इसी के द्वारा मोक्ष प्राप्त हो सकता है, ऐसी कवि की बद्धमूल धारणा थी । कृति मे सयम के 17 प्रकारो का निर्देश करते हुए कुकर्म-त्याग और इद्रिय निग्रह पर वल दिया है। जीव हिंसा, असत्य, अदत्तदान (चोरी), मैथुन और परिग्रह ये पाँच पाप वताए हैं । मनोदड, वागदड या जिह्वादड और कायदड इन तीनो दडो से वचन का आदेश दिया है । कृतिकार न इस छोटी-सी कृति म प्रतिपाद्य विषय का क्रमवद्ध विवेचन किया है और इसे शास्त्रीय शुष्कता स बचाने का प्रयत्न किया है । भाषा उपदेशानुकूल सरल लोकप्रिय शौरसेनी अपभ्रश है ।

संवर (सि०)

जिन कर्मों के प्रभाव से क्रोध, मान इत्यादि के कारण पुद्गलों (दे०) का पुंजीभाव होता है उन्हें रोक देना 'संवर' कहलाता है। कर्मों के प्रभाव से बंधन उत्पन्न होते हैं। अतः कैवल्य-पद प्राप्त करने के लिए उन बंधनों का संचय रोकना पहली आवश्यकता है। यह संचय दो प्रकार से रोका जा सकता है—नवीन संचय को रोकना 'संवर' कहलाता है और पुराने संचित कर्मों को क्षय करना 'निर्जरा' कहलाता है जिससे कैवल्य-पद प्राप्त होता है।

संस (क० लें०) [जन्म—1898 ई०; मृत्यु—1939 ई०]

कन्नड के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार संस का वास्तविक नाम ए० एन० सामि वेंकटाद्रि अय्यर था। ये अपना नाम 'ए० एन० सामि', 'वेंकटाद्रि', 'वेंकटाद्रि पंडित' व 'सामि वेंकटाद्रि अय्यर'—इस प्रकार लिखा करते थे। 'संस' इनका उपनाम था। 'संस' का क्या अर्थ है, यह तो स्पष्ट नहीं है और यह भी ज्ञात नहीं है कि उन्होंने 'संस' उपनाम क्यों स्वीकार किया। कुछ विद्वान् अनुमान करते हैं कि कन्नड के आदिकवि 'पंप' (दे०) के नाम का अनुकरण इसमें विद्यमान है। 'पंप' के नाम के समान ही 'संस' नाम को भी उलटाकर पढ़ने से अक्षरों की स्थिति में कोई भिन्नता नहीं आती।

संस का जन्मस्थान मैसूर जिले में अगरंग्राम है। पंडित और विद्वानों के कुल में इनका जन्म हुआ था। इनके पूर्वज आयुर्वेद विद्या के लिए प्रसिद्ध थे। संस मैसूर के मरिमल्लप्पा हाईस्कूल के विद्यार्थी रहे थे। ये घुमक्कड़ थे। इन्होंने मैसूर के राजवंश के इतिहास का गंभीर अध्ययन किया था जिसके आधार पर इन्होंने ऐतिहासिक नाटक लिखे थे। भारत में सर्वत्र भ्रमण कर 1936 ई० में मैसूर पुलिस के व्यवहार से असंतुष्ट होकर, अधिक विप-पान करके, इन्होंने आत्महत्या कर ली थी।

संस नाटककार ही नहीं, कवि और कहानी-कार भी थे। इनके काव्य 'श्रीमंतोद्यानवर्णनम्' और 'संस-पद्य' तथा कहानी 'कौशल' का प्रकाशन हुआ है। इनके ही एक विवरण के अनुसार इनके ऐतिहासिक नाटकों की संख्या 23 है। परंतु आज इनके केवल छह नाटक प्राप्त होते हैं। ये है—(1) सुगुणगंभीर, (2) विरुदंतेंबर गंड, (3) बेट्टद अरसु (पहाड़ी राजा), (4) विगड-विक्रमराय (दे०) (5) मंत्रशक्ति और (6) विजय नारसिंह। विनष्ट नाटकों में 'महाप्रभु', 'शरणागत परि-पालक', 'रत्नसिंहासनारोहण', 'मुक्ति मुगति' (मोती का नथ), 'अमंग याप' और 'मुस्ताफविजय' नामक नाटकों तथा 'दृष्टिदान' और 'जगजट्टि' नामक एकांकियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके विनष्ट नाटकों के संबंध में कहा जाता है कि कुछ नाटक उनके जीवन-काल में ही खो गए थे और कुछ नाटकों को इन्होंने ही किसी या किन्हीं व्यक्तियों से मनोमालिन्य होने के कारण आक्रोश में आकर जला दिया था।

उन्होंने ऐतिहासिक ग्रंथों और शिलालेखों के गंभीर अध्ययन के आधार पर कल्पना का पुट देकर अपने नाटकों का निर्माण किया है। रंगमंच की दृष्टि से ये नाटक अत्यंत सफल हैं। वीर रस उनके नाटकों का अंगी-रस है, शेष रस संदर्भोचित रूप में ही आए हैं। इन नाटकों में जैसी ओजपूर्ण भाषा देखी जाती है, वैसी अन्यत्र बहुत कम देखने को मिलती है। 'विगडविक्रमराय' इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध नाटक है।

संस्कृत (भाषा० पारि०)

भारोपीय परिवार की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाषा जो भारत में मोटे रूप से 1500 ई० पूर्व से 500 ई० पूर्व तक बोली जाती रही है। संस्कृत के दो रूप मिलते हैं : वैदिक संस्कृत या वैदिकी तथा लौकिक संस्कृत। वैदिक संस्कृत में वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा प्राचीन उपनिषदों की रचना हुई है तो लौकिक मे महाभारत, रामायण, पुराण तथा कालिदास, अश्वघोष, माघ, श्रीहर्ष, भास, शूद्रक, भवभूति, आदि संस्कृत के कृती साहित्यकारों की रचनाएँ हैं। कुछ लोगों की धारणा है कि संस्कृत कभी बोलचाल की भाषा नहीं थी किंतु ऐसी धारणा निराधार है। संस्कृत बोलचाल की भाषा थी, किंतु हर भाषा की तरह उसके भी बोलचाल के तथा साहित्यिक रूप में अंतर था। 'संस्कृत' शब्द का अर्थ है 'संस्कार किया हुआ'। इससे स्पष्ट है कि सामान्य, असंस्कृत या प्राकृत भाषा की तुलना में भाषा के परिष्कृत रूप को ही संस्कृत की संज्ञा दी गई होगी। संस्कृत को मानक रूप देने का श्रेय पाणिनि को है। समृद्ध वाङ्मय तथा भाषा की अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टि से विश्व की बहुत कम प्राचीन भाषाएँ संस्कृत के समकक्ष खड़ी हो सकती हैं। बोलचाल की भाषा के रूप में संस्कृत का क्षेत्र मुख्यतः

उत्तरी भारत ही रहा है, किंतु दक्षिणी भारत की द्रविड परिवार की भाषाओ पर भी शब्द-भाडार के क्षेत्र मे इस का पर्याप्त प्रभाव पडा है। सस्कृत ने भारत के बाहर की भी अनेक भाषाओ को प्रभावित किया है। पालि, प्राकृत, अपभ्रश होते हुए हिंदी, मराठी, गुजराती, बँगला आदि आधुनिक आर्य-भाषाओ का विकास सस्कृत से ही हुआ है, भारत, पाकिस्तान तथा बाँगला देश के बाहर की नेपाली सिंहली, जिप्सी आदि भाषाएँ इसी से सबद्ध हैं।

सस्मरण *(हिं० पारि०)*

भावुक कलाकार जब अतीत की अनत स्मृतियो मे से कुछ को अपनी कोमल कल्पना से अनुरजित कर व्यजनामूलक सकेत-शैली मे रोचक ढग से यथार्थ रूप मे व्यक्त करता है, तब उसे सस्मरण कहते हैं। उसमे अनुभूति और लेखक के व्यक्तित्व की विशेषता समाविष्ट रहती हैं। इसके दो प्रकार हैं—जब लेखक अपने विषय मे लिखता है तो उसे 'रेमिनिसेंस' कहते हैं और यदि दूसरो के बारे मे लिखे तो वह 'मेयोयर' कहलाता है। सस्मरण प्राय किसी प्रसिद्ध व्यक्ति द्वारा लिखे जाते है, उसमे रेखाचित्र (दे०) की अपेक्षा विवरणात्मकता अधिक होती है क्योकि वह घटना से सबद्ध होता है, यद्यपि घटना चरित्र की परिचायक होती है। उसमे कल्पना का पुट कम तथा इतिहास तत्त्व अधिक होता है, उसका लेखक उन्ही बातो को प्रस्तुत करता है जिनका उसे अनुभव हो चुका होता है। साथ ही वह इतिहासकार के समान विवरण देकर सतुष्ट नही हो जाता, अपितु पाठक पर एक छाप छोडना चाहता है।

सहिता *(उ० पारि०)*

सहिता का अर्थ है सग्रथन। इसमे वैदिक सूक्तो का धारावाहिक रूप से सकलन रहता है। भारत की विभिन्न भाषाओ मे मनु, गर्ग, पराशर आदि की सहिताओ का अनुवाद मिलता है, किंतु उडीसा म मौलिक सहिताओ की रचना हुई है। इन सहिताओ म लेखको ने जहाँ विभिन्न मतवादो का सकलन, खडन एव मडन किया है वहाँ वैयक्तिक धर्म-दर्शन के मौलिक नीति-नियमो का प्रतिपादन भी किया है। अच्युतानददास (दे०) ने 36 सहिताओ की रचना की है। इनकी 'शून्यसहिता', 'शब्द-ब्रह्मसहिता', 'अणाकारसहिता' उडिया-वैष्णव धर्म के प्रामाणिक ग्रथ माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे वैष्णव कवियो ने भी सहिताओ की रचना की है।

सहिता *(स० पारि०)* [रचना-काल—2500 ई० पूर्व]

सहितावर्ती मत्रो के द्रष्टा विभिन्न ऋषि है—'ऋषियो मत्रद्रष्टार'। विद्वानो का एक वर्ग सहिता-साहित्य को अपौरुषेय मानता है। व्यास (दे० व्यास बादरायण) ने सहिताओ का सपादन किया था। इसीलिए वे वेदव्यास कहलाए हैं। 'सहिता' शब्द का अर्थ सग्रह है। सहिताएँ चार हैं— ऋग्वेदसहिता' (दे० वेद, सहिता) 'यजुर्वेदसहिता' (दे० वेद, सहिता), 'सामवेदसहिता' (दे० वेद, सहिता) तथा 'अथर्वसहिता' (दे० वेद सहिता)। 'ऋग्वेदसहिता' मे प्रमुख रूप से स्तुतियो, यजुर्वेदसहिता मे याज्ञिक विषय सामवेदसहिता' मे सगीत तथा अथर्वसहिता' मे जादू-टोना आदि का भव्य स्वरूप उपलब्ध होता है।

भारतीय धर्म, दर्शन एव सस्कृति की दृष्टि से वैदिक सहिताओ का योगदान अक्षुण्ण है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि केवल भारतवर्ष ही नही, अपितु विश्व मे सहिताओ को बडे सम्मान एव श्रद्धा के साथ देखा-पढा जाता है।

सकलकथासग्रहमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवी शती ई०]

इस काव्य के लेखक अय्यलराजु रामभद्रुडु (दे०) हैं। ये कृष्णदेवरायलु (दे०) के 'अष्टदिग्गज' (दे०) नाम से विख्यात आठ सभाकवियो मे से एक हैं। कृष्णदेवरायलु के इसी नाम से लिखे गए एक सस्कृत-काव्य का उल्लेख मिलता है। किंतु वह अनुपलब्ध है। 'सकल-कथासारसग्रहमु' मे हरिश्चद्र तथा नल आदि प्रसिद्ध पुराने राजाओ की कथाएँ वर्णित हैं। कृष्णदेवरायलु की कामना थी कि भक्ति-सपन्न कुछ प्रसिद्ध पुराने राजाओ की कथाएँ निबद्ध कर एक सरस काव्य का निर्माण हो। इसी के अनुसार इस काव्य की रचना हुई।

सक्सेना, बाबूराम *(हिं० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

डा० सक्सेना मूलत सस्कृत के विद्वान हैं किंतु इनका कार्यक्षेत्र मुख्यत हिंदी भाषाविज्ञान रहा है। य

काफ़ी दिनों तक प्रयाग विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष रहे। बाद में सागर विश्वविद्यालय में भाषा-विज्ञान-विभाग के अध्यक्ष, रविशंकर विश्वविद्यालय रायपुर के कुलपति, पारिभाषिक शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय, के अध्यक्ष, प्रयाग, विश्वविद्यालय के कुलपति आदि कई पदों पर रहे। आपका शोध प्रबंध अँग्रेज़ी में लिखित 'अवधी का विकास' (Evolution of Avadhi) हिंदी से संबद्ध पहला शोध-ग्रंथ माना जाता है। हिंदी साहित्य सम्मेलन, लिंग्विस्टिक सोसायटी आफ़ इंडिया आदि कई संस्थाओं से आपका घनिष्ठ संबंध रहा है। आपकी प्रमुख कृतियाँ हैं 'अर्थविज्ञान', 'सामान्य भाषाविज्ञान', 'दक्खिनी हिंदी', 'कीर्तिलता' (संपादित), 'अवधी का विकास', 'संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका'। डा० सक्सेना के क्षेत्र भाषाविज्ञान के सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों रहे हैं।

सकल विधिविधान-काव्य *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1043 ई० के लगभग]

इस कृति के रचयिता नयनंदी (दे०) हैं। इसमें 58 संधियाँ हैं। इसमें अनेक विधि-विधानों और आराधनाओं का उल्लेख एवं विवेचन होते हुए भी इसकी पुष्पिकाओं में इसे काव्य कहा गया है।

ग्रंथकार ने इसमें अपनी धार्मिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने के लिए प्राचीन कथाओं और उपाख्यानों का आश्रय लिया है। इसमें 'रामायण' (दे०) और महाभारत (दे०) के युद्धों का वर्णन भी इसी उद्देश्य से किया गया है कि स्त्री में आसक्ति से अनिष्ट की उत्पत्ति होती है।

इसकी भाषा सरस अनुप्रासमयी है एवं भावानुरूप है। अपने भाव को स्पष्ट करने के लिए इसमें स्थान-स्थान पर अनुरणनात्मक शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। ग्रंथकार ने 'सुदंसण चरिउ' (दे०) के समान इसमें भी अनेक वर्णिक और मात्रिक छंदों का प्रयोग किया है। स्थान-स्थान पर छंद का नामोल्लेख भी कर दिया है—कहीं-कहीं तो छंद-विशेष के दूसरे नाम का भी उल्लेख है।

सक्करवार *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1952 ई०]

'सक्करवार' नामक उपन्यास गुणवंत आचार्य की सामुद्रिक व साहसिक कथाओं की परंपरा में सर्वप्रथम लिखित उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1952 ई० में हुआ था। ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल में मानव के क्रय-विक्रय का जो व्यापार चलता था उसी पर इसकी कथा आधारित है जिसमें ऐसी असहाय भारतीय ललनाओं को बचाने के लिए अमुलख देसाई (कथानायक सक्करवार) अपनी कुशलता, चतुराई और ग़रीबों की अर्जित सहानुभूति के बल पर समुद्रों की तूफ़ानी गति की चुनौती देता हुआ भयंकर युद्ध करता है; ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन में फलने-फूलने वाले विषधर व्यापारियों की नींद हराम कर देता है और अंत में विजयी होता है। भाषा सरल व प्रवाहमयी है। कहीं-कहीं लंबे विवरण ऊब पैदा करते हैं। यों समस्त उपन्यास घटना-प्रधान व रोचक है और सागरीय साहसिकता की दृष्टि से तो संभवतः यह गुजराती का प्रथम उपन्यास ही है।

सखीसंप्रदाय *(हिं० प्र०)*

सखीसंप्रदाय निंबार्क-मत की एक अवांतर शाखा है। इस संप्रदाय के संस्थापक स्वामी हरिदास थे। हरिदास जी पहले निंबार्क मत के अनुयायी थे पर बाद में भगवद्-भक्ति में गोपी-भाव को उन्नत करने के लिए उन्होंने पृथक् रूप से इस संप्रदाय की स्थापना की। कृष्ण की सखी-भावना से उपासना करना ही इस संप्रदाय के अनुवर्तियों का एकमात्र ध्येय और लक्ष्य है। सखी-संप्रदाय में प्रेम की गंभीरता और निर्मलता दर्शनीय है। हरिदास की विहार-विषयक पदावली 'केलिमाला' के नाम से प्रसिद्ध है, भगवतरसिक की 'अनन्यरसिकाभरण', 'श्री नित्यविहारी युगलधाम', 'अनन्य निश्चयात्मक', 'निश्चयात्मक ग्रंथ उत्तरार्ध' तथा 'निर्बोधमनरंजन' ग्रंथ प्रसिद्ध हैं। सहचरिशरण और ललिशरण के 'ललितप्रकाश' और 'सरसमजावली' सिद्धांत-प्रतिपादक ग्रंथ हैं। संप्रदाय के अन्य कवियों में विट्ठल विपुल, विहारनिदेव, सरसदेव, नरहरिदेव, रसिकदेव, ललिताकिशोरी जी, ललितमोहिनी जी, चतुरदास, ठाकुरदास, राधिकादास, राधाप्रसाद, भगवानदास, वख्शी हंसराज आदि प्रमुख हैं।

सगुणभक्तिकाव्य *(हिं० प्र०)*

मध्ययुग की संपूर्ण काव्यधारा सगुण और निर्गुण नाम से दो मुख्य भागों में विभाजित हो गई है। राम और कृष्ण को काव्य का आलंबन बनाकर अनेकानेक

कवियो ने जिस लोकोन्मुखी काव्यधारा का निर्माण किया है उसे 'सगुण भक्तिकाव्य' नाम से अभिहित किया जाता है। राम-काव्य का सघटित प्रचार रामानद के श्री वैष्णव सप्रदाय द्वारा किया गया था। इसके अनुवर्ती कवियो मे गोस्वामी तुलसीदास (दे०) के साथ-साथ स्वामी अग्रदास, नाभादास (दे०), प्राणचद चौहान, हृदयराम, रसिक रामचरणदास, रीवाँनरेश महाराज रघुराजसिंह, आचार्य कृपानिवास, हरिऔध (दे०), बलदेवप्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त (दे०) आदि कवि प्रमुख हैं। कृष्ण-भक्ति के सप्रदायो मे निबार्क, माध्व के सनकादि और ब्रह्म नामक प्राचीन सप्रदायो के अतिरिक्त 'पुष्टिमार्ग' (दे०) या वल्लभ-सप्रदाय, राधावल्लभ सप्रदाय (दे०), 'सखी-सप्रदाय' (दे०), गौडीय सप्रदाय और हरिदासी-सप्रदाय प्रमुख हैं। सूरदास (दे०) एवं अष्टछाप (दे०) के अन्य कवि, हित-हरिवश (दे०), ध्रुवदास (दे०), विद्यापति (दे०), गदाधर भट्ट, स्वामी हरिदास, मीरा (दे० मीराबाई), रसखान (दे०), चाचा हितवृदावनदास (दे०), हरिऔध, सत्यनारायण कविरत्न (दे०), भारतेंदु (दे०), रत्नाकर (दे०) आदि कृष्णभक्ति काव्य के उल्लेखनीय कवि हैं।

इन सभी कवियो ने भक्ति के रसावेश मे जिस काव्य की सर्जना की है उसी के परिणाम-रूप मे राम-चरितमानस' (दे०) और 'सूरसागर' (दे०) जैसे प्रबध काव्य हिंदी साहित्य को उपलब्ध हुए। रामभक्ति-शाखा की अपेक्षा कही अधिक कृष्णभक्ति-शाखा के अनेकानेक कवियो ने ब्रज, ब्रजभाषा और ब्रज-सस्कृति के त्रिकोणात्मक सगम मे कृष्ण के माध्यम से जिस लोक सस्कृति की अबाध धारा बहाई है उसका स्रोत कभी सूखने न पाएगा। इन कवियो ने कृष्ण के गोपाल रूप का इस चातुर्य से वर्णन किया है कि वे सदैव के लिए जनता के मध्य मे आकर बस गए हैं, शक्ति और सौंदर्य से समन्वित इस आदर्श ने चिर-काल से जनता को अपन मगल विधायक रूप के माध्यम से अन्याय के ऊपर न्याय की विजय के लिए प्रोत्साहित किया है। यही आदर्श 'रामचरितमानस' का है। हिंदू जनता चिरकाल से आदर्श और मर्यादा के प्रस्थापक इस चरित-काव्य मे अपने जीवन की सारी सभावनाएँ खोजती है और भविष्य के लिए सँजोती रही है एक सुनहली आशा। रावण पर राम की विजय हमारे सपूर्ण आदर्शो की विजय है और इसी ने सभवत 'अलख' की आवाज लगाने वाले एव गृहत्याग की दिक्षा देने वाले निर्गुणिये साधुओ का स्वर सदैव के लिए बद कर दिया काव्य था। और सस्कृति को सगुण-काव्य की देन अविस्मरणीय है।

सचल सरमस्त *(सिं० ले०)* [जन्म—1739 ई०, मृत्यु—1829 ई०]

सचल का पूरा नाम अब्दुलवहाव है। सचल इनका उपनाम है जिसका अर्थ है 'सत्य का जिज्ञासु'। इनके श्रद्धालु इन्हे 'सचल सरमस्त' भी कहा करते है क्योकि ये प्राय खुदाई मस्ती की स्थिति मे रहते थे। इनका जन्म खैरपुर रियासत के 'दराज' नामक गाँव मे हुआ था और इसी गाँव मे इनकी दरगाह भी है। इनके शिष्य इस गाँव के नाम की व्युत्पत्ति 'दर-राज' बताते है जिसका अर्थ है 'रहस्य का द्वार'।

इनका काव्य सिंधी, उर्दू, फ़ारसी और सिराइ की भाषाओ मे है। इनके काव्य के 10-12 अलग-अलग सस्करण मिलते हैं जिनमे सिंधी अदबी बोर्ड, हैदराबाद (सिंध) द्वारा प्रकाशित 'सचल जो कलामु' अधिक विस्तृत और प्रामाणिक है। इन्होने वहदत और अनलहक की आवाज़ जिस प्रकार प्रभावपूर्ण और ओजस्विनी भाषा मे अभिव्यक्त की है उस प्रकार सिंध के और किसी सूफी सत-कवि ने नही की है। इनका शरियत के बधनो मे विश्वास नही है। इन्होने खुले आम मुल्ला और मौल-वियो के पाखडपूर्ण व्यवहार की निंदा की है, इसलिए ये कट्टर इस्लाम पथियो की नजर मे हमेशा खटकते रहे है। इनका अधिकतर काव्य गजल और काफियो के रूप मे है। इनके काव्य की दो मुख्य विशेषताएँ हैं—ओजस्विनी और माधुर्यपूर्ण भाषा मे मजहबी पाबदियो की निंदा और स्पष्ट शब्दो मे हक (सत्य) की अनुभूति की अभिव्यक्ति।

सज्जाद असारी *(उर्दू० ले०)*

सज्जाद असारी एक प्रभाववादी उर्दू समीक्षक हैं। इनकी पुस्तक 'महशरे ख्याल' को प्रभाववादी समीक्षा (तासराती तनकीद) की दृष्टि से समकालीन महत्व मिला। इन्होने काव्य के सबध मे कई लेख लिखे जिनमे पाश्चात्य प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है।

सज्जाद हुसैन *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1856 ई०, मृत्यु—1915 ई०]

जन्म-स्थान—काकोरी। पिता का नाम—मुशी मसूर अली। उर्दू की सुप्रसिद्ध प्राचीन पत्रिका—'अवध

पंच' के संचालन का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। यह पत्रिका 1877 ई० में निकाली गई थी। इसके लिए तत्कालीन समर्थ लेखकों—मुंशी ज्वाला प्रसाद 'बर्क़', सैयद अकबर हुसैन 'अकबर', मुंशी अहमद अली 'शौक', मिर्जा मच्छू-बेग सितमजरीफ़, पं० त्रिभुवननाथ 'हिज्र' और नवाब सैयद मुहम्मद 'खाँ आजाद' आदि का सहयोग प्राप्त करने में ये सफल हुए थे। उर्दू उपन्यास-लेखन की कला को इन्होंने उत्कर्ष पर पहुँचाने का सक्रिय प्रयत्न किया था। चरित्र-चित्रण, कथोपकथन तथा भाषा-शैली को स्वाभाविक बनाने की दिशा में इन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया था। 'हाजी बग़लोल' (दे०) नामक प्रसिद्ध उपन्यास इनका कीर्ति-स्तंभ है। रतननाथ 'सरशार' (दे०) के 'फ़साना-ए-आज़ाद' (दे०) की तरह यह उपन्यास भी बड़ा लोकप्रिय सिद्ध हुआ था। 'अवधपंच' के द्वारा उर्दू के प्रचार और प्रसार का जो स्तुत्य कार्य इन्होंने किया वह ऐतिहासिक महत्व का है। इनके लेखों में स्वतंत्र चिंतन और निर्भीकता के स्वर अत्यंत मुखर हैं। अपने विचारों की अभिव्यक्ति में इन्होंने कहीं भी अश्लीलत्व दोष नहीं आने दिया। भाषा और भाव का औदात्त्य इनकी रचनाओं में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। ये 1887 ई० में कांग्रेस में शामिल हुए थे और आजीवन इसके समर्थक रहे। अपने राजनीतिक और साहित्यिक क्षेत्र में इन्होंने किसी प्रकार के सांप्रदायिक भावों की छाया नहीं पड़ने दी।

सज्जाद हैदर पलदरम *(उर्दू० ले०)*

तुर्की, अँग्रेज़ी तथा अन्य विदेशी भाषाओं के प्रसिद्ध उपन्यासों को सशक्त उर्दू-अनुवाद के रूप में प्रस्तुत करने वालों में सज्जाद हैदर पलदरम का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। वैसे मौलिक उपन्यासों की ओर भी इन्होंने यथेष्ट ध्यान दिया था। इनके उपन्यासों का संग्रह—'ख्यालिस्तान' (दे०) उर्दू साहित्य में पर्याप्त लोकप्रिय रहा है। इस संग्रह का एक उपन्यास—'जोहरा' लेखक की कलात्मकता, विद्वत्ता और प्रतिभा का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह एक तुर्की उपन्यास का अविकल अनुवाद है, परंतु मौलिक-सा जान पड़ता है। तुर्की कल्पना को उर्दू शैली में साकार करने का लेखक ने सफल प्रयास किया है। इनकी शृंगार-भावना पर भी तुर्की उपन्यासों का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इनके मौलिक उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों का सहज समावेश हुआ है और इनमें दार्शनिकों के दक्ष एवं नीरस वाद-विवादों का वितंडावाद कहीं नहीं है। मानव-स्वभाव को हास्य-व्यंग्यात्मक यथार्थवादी शैली में अभिव्यक्त करने में ये सफल हुए हैं। भावानुकूल भाषा और यथातथ्यता की दृष्टि से इनके सभी अनुवाद उर्दू साहित्य की अमूल्य निधि हैं।

सण्ण कतेगळु (लघु कथाएँ) *(क० कृ०)*

यह मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे०) (उपनाम 'श्रीनिवास') की लघुकथाओं का संग्रह है। यह छह भागों में है। इसमें साठ से अधिक कहानियाँ हैं। मास्ति जी जीवन-द्रष्टा कलाकार हैं। उनकी कहानियों में उनकी पैनी दृष्टि और जीवन के अनुभवों की मार्मिक अभिव्यंजना है। लोक-कथाओं के प्रति उनमें तीव्र कौतूहल है और कर्नाटक संस्कृति के प्रति आदर है। परंतु भारतीय साहित्य और संस्कृति के प्रति उनका दृष्टिकोण सीमित नहीं है।

1920-21 ई० में उनकी दस कहानियाँ 'केलवु सण्ण कतेगुलु' (कतिपय लघु कथाएँ) नाम से प्रकाश में आईं। तब से उनके कहानी-संग्रह बराबर प्रकाशित हो रहे हैं और इनके कई संस्करण भी निकल चुके हैं जो इनकी लोकप्रियता के प्रमाण हैं। उनकी कहानियाँ छोटी हैं और लंबी भी।

सतवारा *(पं० पारि०)*

सतवारा या अठवारा पंजाबी की प्रसिद्ध लोक-काव्य-शैली है जिसमें विषय का निरूपण बहुत-कुछ बारहमासा-पद्धति के अनुरूप होता है। इनमें सप्ताह के सात वारों के आधार पर वियोग अथवा प्रियतम से मिलन की आकांक्षा का वर्णन किया जाता है। अठवारा में रविवार, आरंभ और अंत में, दो बार आता है। अनेक भक्त, सूफी और शृंगारी कवियों ने इनकी रचना की है। 'आदि ग्रंथ' में कबीर (दे०) और गुरु रामदास के आध्यात्मिक सतवारे संकलित हैं। वर्ण्य की मार्मिकता के लिए बुल्लेशाह-कृत 'सतवारा' विशेष उल्लेखनीय हैं। इस काव्य-विधा की लोकप्रियता को देखकर दौलतराम (दे०), कालिदास आदि आधुनिक कवियों ने इसे अपनी किस्सा-कृतियों में अंग-रूप में प्रयुक्त किया है।

सती (उ० पा०)

उपेंद्र किशोर दास (दे०) के उपन्यास 'मला जन्ह' (दे०) की नायिका है सती। सरल ग्राम्य परिवेश मे यह ब्राह्मण कन्या सामाजिक अनुष्ठान कुसस्कार और अपने पिता के स्वार्थ की शिकार होती है।

सती का विवाह अल्पायु मे एक वृद्ध के साथ हो जाता है। कारण, वह ज़मीदार है। सती का युवा-हृदय रो उठता है, किंतु प्रतिवाद असभव है। वह तो नारी नही है, केवल एक तुच्छ वस्तु है। यह स्थिति आज भी ग्राम्याचल मे दिखाई पडती है।

काल की अप्रतिहत गति मे अचानक सती का परिवार निश्चिह्न हो जाता है। घटनाचक्र मे सती भी होती है श्वसुराल से बहिष्कृता। पृथ्वी पर अब उसका एकमात्र आश्रय है नाथनना। किंतु समाज की लोलुप दृष्टि के समक्ष सती का उपाय भी क्या है ? नाथनना कौन से तर्क, किस साहस से सती को समाज मे जीने की शक्ति दे सकेगा ? खडे होने की शक्ति कहाँ है सती मे ? वह विवाहिता है। साथ ही है सामाजिक अनुष्ठान का अविच्छेद्य अग। क्या वह इस बधन से अपने को मुक्त कर सकेगी ? किंतु सती पूर्णरूपेण केवल इसी समाज की है, ऐसा तो नही है। उसका यदि विद्रोही स्वर नही होता तो इतनी दुर्दशा ही क्यो होती ? नारी-जागरण मे अपने व्यक्तित्व को पहचानने का प्रथम पदक्षेप इसी का है।

सत्य ना प्रयोगो (गु० कृ०) [रचना काल—1927 ई०]

महात्मा गाधी (दे०) जी की आत्मकथा सत्यना प्रयोगो' गुजराती मे 1927 ई० मे नवजीवन प्रकाशन से प्रकाशित हुई। जयरामदास (दे० जयरामदास दौलतराम), स्वामी आनद (दे०) वगैरह के अनुरोध पर बापू जी ने इसे लिखने का सकल्प किया और दो भागो मे लिखा।

बापू ने जीवन मे सत्य की प्राप्ति के लिए निरतर 30 वर्ष तक जो प्रयत्न व आत्म निरीक्षण किया, आत्मकथा उसका लिपिवद्ध स्वरूप है। 'सत्य ना प्रयोगो' न केवल भारतीय साहित्य मे अपितु विश्व-साहित्य मे 'आत्मकथा' का एक आदर्श मानदड प्रस्तुत करता है।

बापू का जीवन खुली किताब की तरह खुला और सबके लिए सहजगम्य बन चुका था। अत बापू के ये प्रयोग भी व्यक्तिगत या गोपनीय न रहकर सार्वजनिक हो गए थे। बापू ने 'सत्य' को ही ईश्वर का स्वरूप माना है। जीवन भर इसी सत्य की उपासना वे करते रहे। जिन जिन रूपो मे 'सत्य'—'आत्मदर्शन'—उन्हें प्राप्त हुआ उसे उसी रूप मे भाषा मे प्रकट कर दिया। अपनी सीमाओ का स्मरण वे पद पद पर करते रहे और जीवन के लिए निरतर उस मार्ग को खोजते रहे जो सबको सुख दे सके।

502 पृष्ठो मे मुद्रित दोनो भागो की सामग्री मे बापू के जन्म, बाल्यकाल, विवाह आदि से प्रारभ कर ठेठ नागपुर सत्याग्रह तक की घटनाएँ निरूपित हैं। अपनी पहाड जैसी भूलो की भी स्पष्ट स्वीकृति वे कर लेते हैं। इस प्रकार 1869 से 1920 ई० तक की घटनाएँ इन दो भागो मे निरूपित हुई हैं। भाषा अत्यत सरल, सीधी-सादी किंतु प्रभावी व सटीक है। निरूपण मे व्यक्तित्व का अह कही भी मुखर नही है। 'मैं' को सदैव दूर बचाकर ही वे चले हैं।

गुजराती आत्मकथा-साहित्य मे तथा विश्व मे अपनी साफ़गोई के कारण, यह एक अमर कृति के रूप मे विख्यात व चिरस्थायी है।

सत्यनारायण, वेदुल (ते० ले०) [जन्म—1900 ई०]

आध्र के मुद्राचलम् नामक क्षेत्र मे इनका जन्म हुआ था। ये तेलुगु और सस्कृत के वडे विद्वान हैं। इन्होने कन्नड तथा बँगला भाषाओ का भी अध्ययन किया है। वृत्ति से ये अध्यापक हैं। इनकी सरस कविता से मुग्ध होकर आध्र की जनता ने इनको महाकवि, गौतमी कोकिल आदि उपाधियो से विभूषित किया है। ये शतावधानी भी है। इनकी रचनाएँ ये हैं—'दीपावली' (सग्रह), 'विमुक्ति', 'आराधना' 'मुक्तावली' आदि कविताएँ, 'राणाप्रताप', 'कॉलेजगर्ल' आदि नाटक, 'अपराधिनी', 'धर्मपाल' आदि उपन्यास, 'वेसवि मब्बुलु' जैसी कथा-रचनाएँ तथा कुछ निवध। इन्होने भास (दे०) के नाटको के तेलुगु-अनुवाद प्रस्तुत किए हैं तथा बँगला से भी कुछ अनुवाद किए हैं। इनकी कविता मे शब्द नाद-सौंदर्य स तथा भाव रस-सौंदर्य से भरे रहते हैं। इनकी रचनाओ म परपरा का आदर तथा नवीनता के प्रति सहानुभूति—दोनो अभिव्यक्त होते हैं। विविध साहित्यिक विधाओ म अपनी लेखनी सफलतापूर्वक चलाते हुए भी सत्यनारायण ने सरस खडकाव्यो के निर्माता के रूप मे अनुपम प्रशस्ति पाई है।

सत्यनारायणशास्त्री, मधुनापंतुल *(तें० ले०)*

म० सत्यनारायणशास्त्री जी का जन्म पूर्वी गोदावरी जनपद के पल्लिपालेमु नामक ग्राम में वैदिकाचार-संपन्न ब्राह्मण-परिवार मे हुआ। लक्ष्मीदेवी एवं सत्यनारायण, इनके माता-पिता है। शास्त्री जी की शिक्षा-दीक्षा कुशल शास्त्रविद् पंडितों के सान्निध्य में संपन्न हुई। इन गुरुओं मे महेंद्रवाड़ सुब्बरावु शास्त्री का नाम उल्लेखनीय है। शास्त्री जी के कविता-गुरु स्वनामधन्य ओलेटिवेंकटरामशास्त्री थे। 1946 ई० से ये श्री वीरेशलिंगम् हाईस्कूल राजमहेंद्रवरमु मे प्रधान आंध्राध्यापक पद पर काम कर रहे हैं।

श्री शास्त्री जी के साहित्यिक व्यक्तित्व को आधुनिक तेलुगु-साहित्य के इतिहास में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त है। 'आंध्रि' नामक साहित्यिक मासिक का संपादन इन्होने बड़ी कुशलता के साथ किया। इसके माध्यम से आधुनिक तेलुगु-साहित्य के मूर्धन्य स्रष्टाओं का वर्णन बडी रोचक शैली में करते आए जो परवर्तीकाल में 'आंध्ररचयितलु' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हो गया। यह एक प्रामाणिक ग्रंथ है जो न केवल साहित्यिक इतिहास की रूपरेखा के लिए, अपितु तेलुगु-गद्य की अपनी अनुपम शैली के लिए भी प्रसिद्ध है। शास्त्री केवल सफल संपादक तथा गद्य-लेखक ही नही, कुशल कवि भी है। इनके द्वारा प्रणीत ऐतिहासिक काव्य 'आंध्रपुराणमु' (दे०) बहुत ही यशोलब्ध गौरवग्रंथ है। इस पर शास्त्री जी को आंध्रप्रदेश साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। अनूदित साहित्य का योगदान भी इनका अनुपम है। ये कुछ समय तक 'सूर्यरायांध्रनिघंटु' का संपादन भी करते रहे।

सत्यभामास्वांतनमु *(तें० कृ०)* [रचना-काल—सत्रहवीं शती ई०]

इसके लेखक लिंगनमखि कामेश्वर कवि हैं जो मधुरा रियासत के राजा मुद्दलगिरि के सभाकवि थे। 'सत्यभामास्वांतनमु' चार आश्वासों का एक श्रृंगार-काव्य है। 'महाभागवत' (दे०) से नरकासुरसंहार की कथा ग्रहण कर कुछ परिवर्तनों के साथ इन्होंने इस काव्य की रचना की थी। नरकासुर के वध के लिए कृष्ण जाते है। इसमें कुछ समय बीत जाता है और उनकी पत्नी सत्यभामा विरहदग्ध होने लगती है। सत्यभामा के इस विरहदुःख का कवि ने विस्तारपूर्वक मार्मिक वर्णन किया है। नरक के संहार के बाद उसके बंदीगृह से मुक्त सोलह हजार स्त्रियों के साथ कृष्ण अपना विवाह कर लेते हैं। उससे उनकी पत्नी सत्यभामा अत्यंत क्रुद्ध होती है। कृष्ण अनुनय-विनयपूर्वक उसे मनाते है। यही कथा इस काव्य में वर्णित है। इसकी सर्वोपरि विशेषता सत्यभामा का मार्मिक विरह-वर्णन है।

सत्यवादी साहित्य *(उ० पारि०)*

'सत्यवादी साहित्य' उड़िया भाषा का जातीयतावादी साहित्य है। उन्नीसवीं शती के अंतिम तीन दशकों में इस काव्यधारा के प्रारंभिक सूत्र मिलते हैं और स्वाधीनता-प्राप्ति तक इसकी निरवच्छिन्न व्याप्ति दिखाई पड़ती है।

उत्कल सम्मिलनी (1903 ई०) की स्थापना, बंग-विच्छेद-आंदोलन (1905 ई०), विहार-उड़ीसा-प्रदेश-गठन (1912 ई०) आदि की घटनाओं ने बीसवीं शती के प्रथम चरण में उड़िया शिक्षित नवयुवकों में नवोत्साह और सशक्त जातीय भाव का संचार किया। यद्यपि उत्कल-सम्मिलनी के संस्थापक श्री मधुसूदन दास इस नवजागरण के जन्मदाता है, फिर भी उसमें प्राण-प्रतिष्ठा का श्रेय उत्कलमणि गोपबंधु (दे०) को है। गोपबंधु ने पुरी से 11 मील दूर उत्तर की ओर साक्षी गोपाल के बकुल वन मे एक विहार की स्थापना की। यह हाईस्कूल संपूर्ण उड़िया जाति का सांस्कृतिक केंद्र था। सत्यवादी-पत्रिका का सर्वप्रथम प्रकाशन साक्षी-गोपाल से हुआ था। उड़िया-गद्य के विकास में इस पत्रिका का योगदान महत्वपूर्ण है।

समाज-सुधार, देशभक्ति तथा जनसेवा, उनकी कार्य-विधि और साहित्य के लक्ष्य थे। गोपबंधु इन तीन महत् उद्देश्यों के प्राण-केंद्र थे। सत्यवादी स्कूल के कार्यकर्ता, नीलकंठ दास (दे०), गोदावरीश मिश्र (दे०), कृपासिंधु, लिंगराज तथा हरिहर ने जातीय चेतना के जागरण के लिए प्रबंध, नाटक, निबंध, कविता आदि के रूप में विपुल साहित्य की सृष्टि की है। गांधी-आंदोलन से सत्यवादी स्कूल निष्प्रभ हो गया। उधर गोपबंधु की भी अकाल मृत्यु हो गई, किंतु इस अल्पावधि मे निर्मित यह 'सत्यवादी साहित्य' उड़िया जातीय जीवन में अमर रहेगा।

सत्य हरिश्चद्र *(हि॰ कृ॰)*

भारतेंदु (दे॰) हरिश्चद्र-विरचित इस नाटक मे सत्यवादी राजा हरिश्चद्र की लोकप्रिय कथा को कथ्य के रूप मे ग्रहण किया गया है। यद्यपि इसके कथानक पर क्षेमेश्वर कृत 'चडकौशिक' का प्रभाव देखा जा सकता है किंतु रचना-विधान की दृष्टि से यह एक सर्वथा मौलिक कृति ठहरती है। चार अको मे विभक्त इस नाटक का अगी रस वीर है और इसमे रूपक के सभी तत्वो का समुचित निर्वाह हुआ है।

सत्यार्थी, देवेंद्र *(प॰/हि॰ ले॰)* [जन्म—1908 ई॰]

लोकगीतो के सग्रहकर्ता के रूप मे श्री देवेंद्र सत्यार्थी की प्रतिष्ठा पजाब और पजाबी की सीमाओ से अधिक व्यापक है। इन्होने भारत की लगभग 40 भाषाओ-विभाषाओ के तीन लाख से अधिक लोक-गीतो का सग्रह किया है और इस सबध म इनकी पजाबी, हिंदी, उर्दू और अँग्रेजी मे अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

सत्यार्थी की मातृभाषा पजाबी है परतु हिंदी और उर्दू पर भी इनका समान अधिकार है। सत्यार्थी बहुमुखी प्रतिभा से सपन्न स्रष्टा कलाकार हैं। कविता, कहानी, उपन्यास और ललित निबध विधाओ मे इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। वातावरण-प्रधान कहानियो और उपन्यासो मे भारत के विभिन्न प्रातो मे निरतर भ्रमण से प्राप्त अनुभव की व्याप्ति है और उनमे अनेक प्रकार के पात्रो से भरे हुए कथानको को अपनी रचनाओ का आधार बनाया गया है। स्थानीय रग और लोक-जीवन की गहरी पहचान इनकी रचनाओ म सर्वत्र व्याप्त है।

सत्यार्थी के पजाबी मे चार कविता-सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं— धरती-दीआ वाजा', 'मुडका ते कणके', 'बुड्ढी नही धरती' और लक टुणूटुणू। सत्यार्थी की कविता म जहाँ एक ओर प्राचीन भारतीय काव्य का रग है वही दूसरी ओर उसमे आधुनिक जीवनदृष्टि का आग्रह है।

अन्य प्रमुख रचनाएँ— गिद्धा' (दे॰), 'दीवा वले सारी रात' (लोक-गीत), 'कुग पोश', 'सोना गाची', पेरिस दा आदमी' (कहानी-सग्रह), 'घोडा बादशाह' (उपन्यास)।

हिंदी म— धरती गाती है', धीरे वहो गगा', 'बेला फूले आधी रात' (लोक गीत), 'वदनवार' (कविता-सग्रह), 'चट्टान से पहले' (कहानी सग्रह), एक युग, एक प्रतीक', रेखाएँ बोल उठी' (निबध सग्रह) 'ब्रह्मपुत्र', 'दूध गाछ', रथ के पहिए' (उपन्यास)।

उर्दू म— मैं हूँ खानाबदोश', 'गाये जा हिंदुस्तान' (लोक गीत), 'नये देवता', 'बाँसुरी बजती रही' (कहानी सग्रह)।

सदल मिश्र *(हि॰ ले॰)*

इनका जन्म बिहार प्रात के शाहबाद ज़िले के ध्रुवडीहा गाँव मे हुआ था। ये फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता मे हिंदुस्तानी के अध्यापक थे। नासिकेतो पाख्यान' (दे॰) या चद्रावती' तथा 'रामचरित' इनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। इनकी भाषा पर ब्रजभाषा पूरबी बोली और बँगला का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। अनेक स्थलो पर व्याकरणिक त्रुटियाँ भी अत्यत स्पष्ट हैं, लेकिन इन दुर्बलताओ के होते हुए भी खडी बोली-गद्य के विकास मे इनके योग को भुलाया नही जा सकता।

सदासुखलाल *(हि॰ ले॰)* [जन्म—1746 ई॰, मृत्यु—1824 ई॰]

हिंदी गद्य के विकास म महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले लेखको म इनका स्थान उल्लेखनीय है। फारसी तथा उर्दू के अच्छे लेखक और शायर होते हुए भी इन्होने हिंदी-गद्य का उर्दू स स्वतत्र, निजी रूप प्रस्तुत किया था। 'सुखसागर' इनकी प्रसिद्ध कृति है जिसम विष्णुपुराण के कतिपय नैतिक एव उपदेशात्मक प्रसगो को आधार-रूप मे ग्रहण किया गया है। इनकी भाषा मे सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रचुर प्रयोग मिलता है।

सदुक्ति कर्णामृत *(स॰ कृ॰)* [समय—तेरहवी शती ई॰ का प्रारभ]

सुभाषित-सग्रह की परपरा सस्कृत म अत्यत पुरानी है। 'सदुक्ति कर्णामृत' इस परपरा का एक प्रमुख ग्रथ है। इसका सकलन बगाल के प्रसिद्ध राजा लक्ष्मणसेन के धर्माध्यक्ष वटुदास के पुत्र श्रीधरदास न 1205 ई॰ म किया था। इसमे उस समय के पूर्वाचलीय प्रदेश क ज्ञात तथा अज्ञात कवियो की उक्तियो का सग्रह है।

इसमें 485 कवि तथा काव्यों के 2370 पद्य संगृहीत है। इसको पांच प्रवाहों में विभक्त किया गया है—देव, शृंगार, चाटु, अपदेश तथा उच्चविच। इस संकलन को देखकर पता चलता है कि संग्रहकर्ता की प्रवृत्ति वैष्णव धर्म की ओर है।

सद्द *(पं० पारि०)*

यह एक विशेष सुर में गाए जाने वाला लोक-गीत-प्रकार है। इसमें प्रायः अति गंभीर हृदयवेधी विचार को अभिव्यक्त किया जाता है। इसे गाते समय गायक कान पर हाथ रख कर लंबा सुर निकालता है। 'गुरु ग्रंथ साहिब' में भक्त कवि सुंदर-रचित मृत्यु-संबंधी सद्द मिलती है। उदाहरण :

मिरजा चलिआ नानकिऔं, कच्छे मार कुरान।
ना तुसीं मेरे नानके, ना मैं दुहतर बान।
मैंनू गिर्ल्लीं करवीं ना साड़िओ मैं मिरजा मुसलमान।
मैंनू कवरां विच न दब्बिओ, मेरा देहुरे विच मकान।
मेरे कोल खल्हालिओ साहिबां, मेरी सौखी निकले जान।

सधवार एकादशी *(बं० कृ०)* [रचना-काल—1866 ई०]

दीनबंधु (दे०) के प्रहसनों में 'सधवार एका-दशी' सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रभावशाली रचना है। उन्नीसवी शती के मध्य मे नयी शिक्षा-दीक्षा के माध्यम से पश्चिमी सभ्यता से संपर्क हो गया था और एक ऐसा युवक-वर्ग उभर रहा था जो नवीनता और आधुनिकता के नाम पर पश्चिम की भद्दी नकल कर रहा था। सदाचार और सुनीति की एकांत उपेक्षा कर वह मद्यपान, वेश्या-गमन तथा नारी के प्रति असंयत व्यवहार कर अपने आपको ऊँचा दिखाने का पाखंड कर रहा था। इन्ही परिस्थितियों में ब्रह्मसमाज का उदय हुआ। 'सधवार एकादशी' की यही सामाजिक एवं नैतिक पृष्ठभूमि है। इसमे पाश्चात्य सभ्यता के समस्त दोष दिखाए गए हैं। इस नाटक का केंद्रबिंदु है निमचाँद (ये०) का प्रबल व्यक्तित्व। वह सभी कुकर्म करता है परंतु उनसे निर्लिप्त होकर उन पर व्यंग्य-कटाक्ष करता है; यही उसके सशक्त व्यक्तित्व का प्रमाण है। इसके विपरीत कुछ विद्वानों का मत है कि निमचाँद का व्यक्तित्व-निर्माण माइकेल मधु-सूदन दत्त (दे०) के आचार-विचार को ध्यान में रखकर किया गया है। दीनबंधु का हास्य-व्यंग्य कहीं-कहीं असंयत एवं अश्लील हो गया है। कुछ पात्रों के संवाद अशिष्ट लगते हैं। रंगमंच की दृष्टि से यह प्रहसन अपने युग का बहुत लोकप्रिय एवं ख्याति-प्राप्त प्रहसन है। इसमें हास-परिहास का आधार है व्यंग्य-श्लेषपूर्ण संवाद। यहाँ कथा-निर्वाह तथा पात्र-चरित्रांकन में नाटककार विशेष रूप से विफल रहा है। तीन-अंकीय इस प्रहसन की दृश्य-योजना में न असंगति है और न अस्वाभाविकता।

सधरा जेसंग *(गु० पा०)*

चुनीलाल मडिया (दे०) (1922-1965 ई०] के 'सधरा जेसंग नो शालो' (दे०) उपन्यास का नायक है। वह सब्जी बेचने वाला एक अनपढ़ गँवार है। चुनाव में अनुसूचित जाति का कोई उम्मीदवार नहीं मिलता, इस-लिए सधरा को टिकट दिया जाता है और वह विजयी होता है। उसे मंत्री-पद भी दिया जाता है मंत्री बनने पर अपने सब रिश्तेदारों की सहायता करता है और इस तरह भ्रष्टाचार का साम्राज्य फैलता है। सधरा जेसंग राज-नीतिक भ्रष्टाचार का प्रतीक बन गया है। सारा उपन्यास हास्य और व्यंग्य-प्रधान होने के कारण सधरा जेसंग हास्य के उपादान के रूप में स्थायी बन गया है।

सधरा जेसंगनो शालो *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1965 ई०]

यह चुनीलाल मडिया (दे०) का राजनीतिक उपन्यास है। समसामयिक राजनीति में जो भ्रष्टाचार अनैतिकता है, काला बाजार और रिश्वतखोरी है—उसका यथार्थ चित्रण व्यंग्यात्मक शैली में किया गया है। पूरा उपन्यास हास्य और व्यंग्यात्मक शैली में लिखा गया है। सधरा जेसंग, जो सब्जी बेचने वाला है, उसे राजनीतिक दृष्टि से टिकट दिया जाता है क्योंकि अनुसूचित जाति का कोई उम्मीदवार मिलता नहीं। वह चुनाव जीत जाता है और मंत्री भी बनता है। उसका साला उसके मंत्री-पद का लाभ उठाता है और अंत में दोनों में टकराव होता है। साला दलबदल करता है और दूसरे चुनाव में बहनोई के विरुद्ध खड़ा होकर उसे हराता है। मंत्री और उसके साले के भ्रष्टाचार का रोचक वर्णन उपन्यास में है। गुजराती हास्य उपन्यासों में इसका विशिष्ट स्थान है।

सनत्कुमारचरित *(अप० कृ०)* [*रचना काल—1159 ई०*]

हरिभद्र(दे०) रचित 'नेमिनाथचरित' का 443 से 785 तक का पद्यात्मक अश 'सनत्कुमारचरित' है। दूसरी कृति का अग होते हुए भी यह एक स्वतत्र कृति सा प्रतीत होता है। इसमे सनत्कुमार का जन्मकाल से लेकर स्वर्ग-प्राप्ति तक का चरित अलकृत शैली मे वर्णित है। अप भ्रश के अन्य चरित-काव्यो की कथा के समान इसमे भी नायक के शौर्य और सौदर्य पर अनेक युवतियाँ मुग्ध हो जाती हैं। युवावस्था मे वह भोगमय जीवन व्यतीत कर समस्त पृथ्वी को जीतकर चक्रवर्ति-पद प्राप्त करता है। इद्रादि देवता उसका अभिषेक करते हैं। अत मे वह विरक्त होकर चिरकाल तक तपस्या करता हुआ स्वर्ग को प्राप्त करता है।

इस कृति का कथानक अपभ्रश के अन्य चरित-काव्यो के समान वीर और शृगार के वर्णनो से युक्त है। दोनो का पर्यवसान शात रस मे होता है। इस कृति मे अन्य चरित-काव्यो की अपेक्षा प्रेम-तत्त्व कुछ अधिक प्रस्फुरित हुआ है। प्रेम के शृगार-पक्ष के अतिरिक्त वियोग का भी वर्णन मिलता है। कृति के काव्यमय अलकृत वर्णना मे विभिन्न ऋतुओ के वर्णन विशेष आकर्षक हैं।

समस्त कृति मे रड्डा छद प्रयुक्त हुआ है। इसकी भाषा प्राचीन गुजराती के चिह्नो से युक्त गुर्जर अपभ्रश (पश्चिमी शौरसेनी) है।

सनातन शर्मा *(त० पा०)*

सनातन शर्मा सी० एन् अण्णादुरै (दे०) की प्रसिद्ध कहानी उण्णाव्रतम् ओरु दडनै' का नायक है। इस कहानी म कुल तीन पात्र है—सनातन शर्मा, उसकी पत्नी और उसका मित्र कुप्पुशास्त्री। तीनो का निजी व्यक्तित्व है। लेखक कहानी के पात्रो के चरित्र चित्रण मे पूर्ण सफल हुआ है। अवसरानुकूल उसने पात्रो के गुण-दोषो को स्पष्ट किया है। सक्षेप मे कहानी इस प्रकार है—केंद्रीय सरकार द्वारा यह बिल पास किया जाता है कि पिता की सपत्ति पर पुत्र के साथ-साथ पुत्री का भी अधिकार होना चाहिए। इस बिल के प्रति अपना विरोध प्रकट करने के लिए सनातन शर्मा और कुप्पुशास्त्री भूख हडताल करने का निश्चय करते है। कुछ समय के बाद कुप्पुशास्त्री चुपचाप भोजन कर लेता है परतु शर्मा भूखा पडा रहता है। जब इसे यह ज्ञात होता है कि शास्त्री ने अपना प्रण तोड दिया है तो अत्यत कुपित हो उठता है। इसके विचारो मे आमूल परिवर्तन आ जाता है। शर्मा डरपोक होने के साथ साथ सदाचारी भी है। यह परपरा-प्रेमी है, प्राचीन सप्रदायो एव प्रथाओ की रक्षा के लिए भूख हडताल करता है। पत्नी द्वारा बारबार भोजन करने की प्रार्थना किए जाने पर कुपित हो उठता है। शास्त्री द्वारा धोखा दिए जाने पर यह कुपित नही होता अपितु उसका अपमान करने की धमकी देता है। इससे इसकी सज्जनता व्यक्त होती है। शर्मा अबोध है। लोगो द्वारा भडकाये जाने पर भूख हडताल करता है। अत मे अपनी पत्नी के कहने से अपना हठ छोड देता है। सनातन शर्मा एक वर्ग-पात्र है। यह ऐसे व्यक्तियो का प्रतीक है जो सामाजिक परपराओ, रूढियो की रक्षा के लिए, किसी सदुद्देश्य से प्रेरित होकर घोर त्याग करने के लिए तैयार हो जाते हैं परतु ऐसा करते समय अन्य व्यक्तियो द्वारा धोखा दिए जाने पर उनकी विचारधारा में आमूल परिवर्तन आ जाता है। सनातन शर्मा अण्णादुरै की अमर कल्पना-सृष्टि है।

सनिआ *(उ० पा०)*

'सनिआ' श्री कान्हुचरण महाति (दे०) क उपन्यास 'शास्ति' (दे०) का धमभीरु पात्र है। सामाजिक व्यवस्था पर इसकी पूर्ण आस्था है। उसका हर विधान इसके लिए शिरोधार्य है। परतु अपने व्यक्तित्व की समाज द्वारा निर्मम उपेक्षा इसे सहन नही है। जीवन मे एक मोड ऐसा भी आता है, जब इसके विश्वास की नीव हिल जाती है, और समाज के शोषण-उत्पीडन की सगठित शक्ति इसे प्रतीत होती है। इसका यह विद्रोह कर उठता है। समाज के न्याय-विधान के प्रति विद्रोह हो जाता है। किंतु समाज की सामूहिक शक्ति यह सहन नही कर पाती। फलत समाज का दमन-चक्र चल पडता है। व्यक्ति-चेतना सामूहिक चेतना के समक्ष मिट तो सकती है, किंतु झुक नहीं सकती। सनिआ का जीवन इसका ज्वलत प्रमाण है।

अकाल के विकराल मुख से बचकर अस्थि-ककाल हुआ जब सनिआ अपने गाँव लौटता है तो धोरी उसे पुनर्जीवन देती है। सनिआ और धोरी परस्पर प्रेम करने लगते हैं। पहले कभी सनिआ के पिता ने धोरी से उसके विवाह का प्रस्ताव इसलिए ठुकरा दिया था क्योंकि

धोबी के यहाँ कभी किसी ने नीच जाति की स्त्री से विवाह किया था। आज जब यह अपने बारे में निर्णय लेने को स्वतंत्र है तब धोबी गाँव के सबसे बड़े धनी की कन्या है और यह कंगाल।

धोबी का विवाह एक ज़मींदार से हो जाता है, किंतु स्वामी, सास, श्वसुर की मृत्यु के बाद वह नितांत अकेली रह जाती है। इसी बीच सनिआ कठिन परिश्रम से अपनी आर्थिक स्थिति सुधारता है, धोबी से विवाह प्रस्ताव करता है। किंतु धोबी अपने को नाना प्रकार के धार्मिक व सामाजिक बंधनों में जकड़ी पाती है।

निश्छल व एकनिष्ठ प्रेम के इस तिरस्कार से सनिआ का निष्कपट मन तिक्तता से भर उठता है और समस्त सामाजिक परंपराओं को तिलांजलि देकर असामाजिक कार्य करने लगता है। विजातीय लोगों को अपने घर में स्थान देता है। *निम्नजाति के व्यक्ति से विवाह करने के* कारण जिस बहिन का इसने त्याग कर दिया था उसे पुनः अपनाता है और अंत में पगली से विवाह कर लेता है।

समाज इसके समाज-विरोधी कार्यों के प्रतिकार के लिए कटिबद्ध हो जाता है। धोबी के पिता इसे अपने वश में कर धोबी से इसका विवाह करना चाहते हैं किंतु अब इसे यह मंजूर नहीं है। असामाजिक जीवन ही इसे प्रिय हो जाता है। यह घर-ज़मीन इसलिए छोड़ देता है क्योंकि उस संपत्ति में धोबी का योगदान ही है। आज यह पूर्ण मुक्त है।

'सनेही', गयाप्रसाद शुक्ल *(हि०ले०)* (जन्म—1883 ई०]

इनका जन्म हड़हा (जिला उन्नाव) मे हुआ था। 16 वर्ष की अल्पायु में ही ये अध्यापक हो गए। 1918 से 1950 ई० तक इन्होंने 'सुकवि' का संपादन किया। 'त्रिशुल' उपनाम से भी इन्होंने राष्ट्रभक्तिपूर्ण कविताएँ लिखी हैं। ब्रजभाषा, खड़ी बोली और उर्दू में इन्होंने अनुमानतः बीस सहस्र से ऊपर छंद लिखे हैं, जिनमें से कुछ 'प्रेमपचीसी', 'कृषक-क्रंदन', 'त्रिशूल-तरंग', करुणाकादंबिनी आदि में संगृहीत हैं। कवि-सम्मेलनों में इनकी धूम रही है और 'सुकवि' के संपादक-रूप मे इन्होंने अनेक नये कवियो को दीक्षा देकर आचार्यत्व का पद प्राप्त किया है।

सन् १८५७ *(म० कृ०)*—[रचना-काल—1930 ई०]

प्रो० नारायण केशव बेहरे की यह कृति प्रथम भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम पर लिखी गई एक प्रामाणिक रचना है। लेखक का उद्देश्य था अँग्रेज़ी इतिहासकारों द्वारा इस घटना के संबंध में फैलाए भ्रमजाल को दूर कर पाठकों को वस्तुस्थिति से अवगत कराना। पुस्तक को प्रामाणिक बनाने के लिए लेखक ने अनेक अँग्रेज़ी, मराठी, बँगला एवं हिंदी-ग्रंथों, पत्र-व्यवहार, जीवन-चरित्र बखरी-साहित्य तथा उस समय के जीवित व्यक्तियों से भेंट-वार्ता का आश्रय लिया है। मेयर इव्हांसबेल, टॉरेंस, लडलो, वूलविच लॉर्ड रॉबर्ट्स, फॉरेस्ट आदि इतिहासकारों तथा तत्कालीन अधिकारियों का हवाला देकर उसने अपने वक्तव्य को पुष्ट किया है। उसने अँग्रेज़ी राज्य-विस्तार के लिए कंपनी के डायरेक्टरों को उत्तरदायी न मानकर भारत-स्थित अधिकारियों को उत्तरदायी बताते हुए उनकी कूटनीति (गोद न लेने देना, तैनाती सेना, भेद की नीति) *एवं विचक्षण बुद्धि की सराहना की है।* लेखक ने निष्पक्ष होकर विद्रोह के कारणों—राजाओं, ज़मींदारों, साधारण जनता एवं सिपाहियों के असंतोष, ग्राम-पंचायतों के अधिकार-वंचित किए जाने तथा झूठी अफवाहों और ज्योतिषियों की भविष्यवाणी—पर प्रकाश डाला है। उसने विद्रोह की असफलता के कारणों की भी निष्पक्ष जाँच की है और बताया है कि विद्रोहियों का दिल्ली में जमाव, देश के अन्य भागों में विदेशी सत्ता का बने रहना, दिल्ली के मुसलमान बादशाह के प्रति सिक्खों, मराठों एवं राजपूतों का द्वेष-भाव, सामान्य जनता की सहानुभूति की कमी, योग्य नेता का अभाव, लूट-मार की प्रवृत्ति, राजनीतिक ध्येय न होने के कारण विद्रोह सफल नहीं हुआ। कृति की सबसे बड़ी विशेषता है निष्पक्षता—लेखक ने लॉर्ड कैनिंग की शांत प्रकृति एवं दूरदर्शिता, फौजी अधिकारियों के शौर्य तथा कैप्टेन डैली, ह्यूवेट जैसे कतिपय अँग्रेज़ों की न्यायप्रियता, उदारता की प्रशंसा की है। कुल मिलाकर 1957 ई० के विद्रोह पर यह मराठी में लिखी गई एक प्रामाणिक पुस्तक है।

सपारण *(गु० पा०)*

स्व० झवेरचंद मेघाणी (दे०)-रचित 'सोरठ तारां वहेतां पाणी' (दे०) की एक मुख्य स्त्री पात्र 'सपारण' है के वास्तविक जीवन-तत्व का इसमें दर्शन होता। सोरठ की खुमारी, सोरठ का सत्व, सोरठ की ओजस्विता इसमें साकार हुई है। सोरठी जीवन की हूबहू प्रतिच्छवि इसमें देखी जा सकती है।

बरडा प्रदेश की 'ढेली' मेर जाति मे उत्पन्न कन्या है जिसके माता-पिता ने एक सत्वहीन व्यक्ति मे विवाह करने का विचार किया है। कन्या घर छोडकर भाग जाती है और सपारण का वेश (मुसलमान स्त्री) धारण कर घूमने लगती है। इफेर जाति के एक झगडे मे फँसने पर देवकीगढ का बहादुर वणिक रूखड सेठ उसे बचाता है। तब से यह रूखड को अपना प्राणप्रिय मान लेती है और उसकी विवाहिता की तरह उसके साथ रहने लगी। किसी झगडे मे रूखड सठ को फाँसी हो जाती है। तब यह रूखड की विधवा के रूप मे जीवन बिताना शुरू करती है। रूखड की सपत्ति के विषय मे झगडा होता है। यह गाँव छोडकर चली जाती है और डाकू बन जाती है। घेलुवा के रूप मे पुरुष वेश मे रहती है, डाका डालती एव गरीब जनता की सहायता करती है। एक बार वह साथियो सहित पकडी जाती है। अदालत मे मुकदमा चलता है। उसे सात वर्ष की सख्त कैद की सजा होती है।

सोरठी लोक-जीवन मे शक्ति के अवतार सदृश आदर प्राप्त ढेला-सपारण पतिव्रता, वीर, साहसी, रोमाचक, नारी है। वह मर्दानी औरत है। इस वीरागना को परम वीर व्यक्ति की खोज है। वैसा व्यक्ति प्राप्त कर उसने अपना नारीत्व, पत्नीत्व, रूखड सेठ म कृतार्थ किया है।

मेघाणी का यह अति ओजस्वी नारी पात्र वर्षो तक मानवता सतीत्व व चरित्रशीलता की प्रेरणा देता रहेगा।

सपोनर सुर *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1943 ई०]

यह नलिनीबालादेवी (दे०) की कविताओ का सग्रह है। इन कविताओ मे जीवन के दु ख सघर्ष से पीडित हृदय की गभीर अनुभूति है। कवयित्री प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व मे सौंदर्य खोजती है। यह सौदर्य विश्व-स्रष्टा का है। अनेक कविताओ मे आत्मा और विश्वात्मा के मिलन का भी वर्णन है। कविताओ मे निराशावाद न होकर मानव के असीम भविष्य के प्रति आस्था है। लेखिका ने शैशव से ही अनेक आघात सह थे। ये आघात उन्हे उच्च स्तर की कवयित्री बना गए हैं।

सप्तस्वरी *(उ० कृ०)*

यह सुरेन महाति (दे०) द्वारा रचित सात एकाकियो का सग्रह है। इन एकाकियो म समाज की विभिन्न समस्याओ का विवेचन हुआ है, फलत एक बौद्धिक परिवेश मिलता है। वैचारिक गुरुता, विवेचन की सुस्पष्टता, सशक्त शैली, बोलचाल की भाषा का अत्यत सफल प्रयोग आदि विशेषताएँ इन एकाकियो मे मिलती हैं।

'सफीर', प्रीतम सिंह *(प० ले०)* [जन्म—1916 ई०]

प्रीतम सिंह 'सफीर' पजाबी के कुछेक चुने हुए कवियो म से है जिन्होने पजाबी कविता को नयी युग-चेतना और बौद्धिकता से सयुक्त किया है।

'सफीर' की प्रारभिक कविताओ का कोई सग्रह उपलब्ध नही है। इनकी वास्तविक काव्य-यात्रा 1938 ई० से ही शुरू होती है। तब से लेकर अब तक इनके पाँच काव्य-सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। ये हैं 'राग रशमा', 'रक्त बूदा', 'पाप दे सोहिले', 'कत्तक कूजा' और आदि जुगादि' (दे०)। 'कत्तक कूजा' कवि का एक महत्वपूर्ण कविता-सग्रह है। इसकी 'कत्तक कूजा' 'नील', 'हीरोशीमा नागासाकी', प्रगतिशील और क्रातिकारी कविताएँ हैं। 'कत्तक्कूजा' कविता मे कवि ने 'कत्तक कूजा' को समय का प्रतीक बना कर क्राति का सदेश दिया है। 'इक मिट्टी की मुट्ठ वरगीआ' जैसी श्रेष्ठ कविताओ मे व्यग्य का तेवर बडी सफलतापूर्वक व्यक्त हुआ है।

'सफीर' की कविता म अनुभव की तीव्रता है, वैयक्तिकता है, क्रातिकारी विचारधारा है, राष्ट्रीय चेतना है और व्यग्य की पैनी धार है। इन्होने पजाबी कविता म एक नए काव्य-मुहावरे का सूत्रपात किया है।

'सफी' लखनवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1862 ई०, मृत्यु—1950 ई०]

नाम अली नकी, उपनाम 'सफी', जन्म-स्थान लखनऊ।

इनकी गणना उन इने गिने साहित्यसेवियो मे की जाती है जिन्होने लखनऊ स्कूल की शायरी को अपयश और अपकीर्ति के कलक से मुक्ति दिलाई और उसे शुद्ध और पवित्र रूप देकर प्रस्तुत किया। उर्दू ग़ज़ल-लेखन म इन्होने अपनी अप्रतिम प्रतिभा का परिचय दिया है। इनकी गजलो म प्रेम-तत्त्व का निरूपण अत्यत मार्मिक और कलात्मक शैली मे हुआ है। सगीतात्मकता के साथ-साथ सरसता और सूक्ष्मता का गुण भी इनके काव्य मे

यथेष्ट मिलता है। भाषा की शुद्धता और अभिव्यक्ति की प्रभविष्णुता के प्रति ये सर्वत्र जागरूक दिखाई देते हैं। शब्दाडंबर और अतिशयोक्ति से इन्होंने अपनी गजलों को सदा अछूता रखा है। अश्लीलत्व दोष से इनकी कला कभी दूषित नहीं होने पाई।

ग़ज़लों के अतिरिक्त इन्होंने नज़्में भी कही हैं, जो कवित्व-गुण-संपन्न और औदात्य-तत्त्व-संवलित हैं। इनकी उपमाओं में नवीनता और अभिव्यक्ति में सजीवता तथा सरलता देखते ही बनती है। इनकी अधिकतर कविताएँ शीआ कान्फ्रेंस के वार्षिकोत्सव के लिए लिखी गई हैं जिनका संकलन 'लख़्त-ए-जिगर' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। इनकी ग़ज़लों का एक चयन 'सहीफ़ातुल ग़ज़ल' के नाम से भी प्रकाशित हो चुका है। परंतु इनके काव्य का समग्र संकलन अभी तक प्रकाशित नहीं हो पाया है।

सबरस *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1635 ई०]

'सबरस' के लेखक मुल्ला वजही (दे० वजही) हैं जो अब्दुल्लाह कुतुब शाह के शासनकाल में विद्यमान थे। इसमें इश्क-ओ-अ़मल और हुस्न-ओ-दिल के वृत्तांत गल्प-कथा के रूप मे लिखे गए है। इस कथा का दूसरा नाम 'किस्सा हुस्न-ओ-दिल' भी है। इस काल्पनिक कथा के पात्रों के नाम मिह्र, वफ़ा, नाज़, गमज़ा, नामूस, ज़ुह्‌द, तौबा आदि सब प्रतीकात्मक हैं। इन भावनाओं तथा चेष्टाओं का इसमें मानवीकरण किया गया है।

'सबरस' आकार एवं विस्तार की दृष्टि से दकन की प्राचीन उर्दू पुस्तकों मे सबसे बड़ी है। 'वजही' ने यह कथा फ़ारसी कवि 'फत्ताही' के अनुकरण पर लिखी है। मुहम्मद हसन कादरी साहब लिखते हैं—'अगरचे वजही ने कहीं इस अम्र (तथ्य) का इजहार नहीं किया लेकिन···अस्ल किस्सा उसके दिमाग का नतीजा नहीं है बल्कि सबसे पहले 'फ़त्ताही' नेशापुरी (1448 ई०) ने फारसी नज़्म मे 'दस्तूर-ए-उश्शाक' के नाम से लिखा था। 'फ़त्ताही' ने इस किस्से को मुख्तसर तौर पर फारसी नस्र (गद्य) मे भी लिखा था और उसका नाम 'हुस्न-ओ-दिल' रखा था।

वजही' ने संभवतः इसी 'हुस्न-ओ-दिल' को थोड़े से फेर-बदल के साथ उर्दू मे लिखा। 'हुस्न-ओ-दिल' और 'सबरस' दोनों 'मुक़फ़्फ़ा-नस्न' (तुकांत गद्य शैली) में लिखी गई है।

सबुजपत्र *(बँ० प्र०)*

वर्तमान शतक में बंगाल की एक साहित्यिक पत्रिका 'सबुजपत्र' (1914-18) को केंद्र बनाकर एक प्रगतिशील साहित्य-आंदोलन का सूत्रपात हुआ था। सबुजपत्र-मंडल के लेखकों ने साहित्य में तारुण्य एवं नवीनता का प्रवर्तन किया एवं रवींद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) ने इस मंडल को अपना नेतृत्व प्रदान किया। 1914 ई० में प्रमथ चौधुरी के संपादन मे 'सबुजपत्र' का प्रकाशन शुरू हुआ। 'सबुजपत्र' की पहले अंक में प्रमथ चौधरी के द्वारा रचित 'सबुजपत्र' एवं 'सबुजपत्रेर मुखपत्र' नामक दो निबंधों मे लेखक ने सबुजपत्र-मंडल के मन की बात प्रकट की है। यूरोपीय नवीन प्राण को स्वीकार कर उसकी स्वधर्म व्याख्या को ही संपादक ने 'सबुजपत्र' का मूल उद्देश्य कहा है। रवींद्रनाथ के द्वारा रचित बँगला *काव्य की प्रारंभिक कविताएँ इसी पत्रिका में प्रकाशित* हुई थीं।

'सबुजपत्र' केवल 4 वर्ष तक प्रकाशित हुई परंतु इतने अल्प समय में ही इस पत्रिका ने साहित्य के विचार-क्षेत्र में नवीन युग को प्रतिष्ठित कर दिया। 'सबुजपत्र' में प्रकाशित रवींद्रनाथ के उपन्यास 'घरे बाइरे' मे नारी-स्वातंत्र्य एवं संस्कारांधता की व्यर्थता का उल्लेख किया गया है। गद्य-चर्चा के क्षेत्र में भी सबुजपत्र की देन कम महत्वपूर्ण नहीं है। साहित्य-क्षेत्र में 'साधु गद्य-रीति' के स्थान पर 'चलित भाषा' का प्रयोग इसी पत्रिका से शुरू हुआ था। बँगला साहित्य-क्षेत्र में आधुनिक काल के उदय का सर्वप्रथम प्रमाण 'सबुजपत्र' है।

सबुज साहित्य *(उ० पारि०)*

'सबुज साहित्य' उड़िया स्वच्छंदतावादी साहित्य का अर्थबोधक है। यद्यपि सबुज गोष्ठी के साहित्यकारों पर बंग-साहित्य का व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ता है, फिर भी इसे ऐकांतिक रूप से बंग-देश से गृहीत साहित्य-धारा मानना उचित नहीं होगा। इन लेखकों से पूर्व उड़िया-साहित्य में स्वच्छंदतावादी काव्य का प्रारंभ हो चुका था।

सबुज हरे रंग, नूतन स्पंदन एवं सशक्त जीवन का द्योतक है। सबुज दल का सबुज नाम प्रमथ चौधुरी (बँगला) की 'सबुज पत्रिका' से गृहीत है। जातीय मानसिक जड़ता की नवोत्साह में परिणति के प्रतीक के रूप

मे बंगाल मे 'सबुज' शब्द का प्रयोग हुआ था।

1920 ई० के बाद भारतीय साहित्यिक रवींद्र (दे० रवींद्रनाथ ठाकुर) साहित्य विशेषकर 'गीतांजली' (दे०) के साहित्यिक गौरव तथा 'रहस्यवाद' (दे०) की ओर आकृष्ट हुए। उडिया के कई कॉलेज छात्रो ने भी इसी समय रवींद्र साहित्य से अनुप्राणित होकर एक स्वतंत्र साहित्यिक धारा का सूत्रपात किया, जिनमे श्री अन्नदाशकर राय अग्रगण्य है। इनके अतिरिक्त सबुज गोष्ठी के अन्य लेखक हैं कालिंदीचरण पाणिग्राही (दे०), बैकुंठनाथ पटनायक (दे०), हरिहर महापात्र तथा शरत्चंद्र (दे०) मुखर्जी। इनकी कविताओ का सकलन सर्वप्रथम 1931 ई० मे सबुज कविता' के नाम से प्रकाशित हुआ था।

सबुज गोष्ठी के लेखको ने जिस नूतन वातावरण रूढिहीन चितन और जिस बौद्धिक परिवेश की सृष्टि की तथा अपनी नूतन अनुभूति को जिस नवीन रीति से वाणी दी, उससे अवश्य ही काव्य को एक नयी दिशा मिली। ये प्रकृति और मनुष्य दोनो के प्रति समान रूप से आग्रहशील थे। इनकी रचनाओ मे सामाजिक सस्था के प्रति विद्रोह की घोषणा, ज्ञानमूलक एव सौंदर्यमूलक प्रेम के प्रति निष्ठा, पार्थिव जगत् से दूर जाने की लालसा, छदवैचित्र्य, अभिव्यक्ति की नवीन भगिमा, विभिन्न साहित्यिक रूपो के प्रति एक स्वच्छद-नवीन दृष्टिकोण आदि विशेषताएँ मिलती हैं। इन लोगो ने साहित्य के सभी रूपो का स्पर्श किया है। 1921 से 1935 ई० के बीच 'सबुज साहित्य'-समिति ने कतिपय काव्य, नाटक, उपन्यास कहानी आदि का प्रकाशन किया था जिनमे 'वासती', 'मुक्तागढरक्षुधा' अमर चिता', 'द्वादशी', 'सौम्या 'मुक्ति पथे, 'पुजारिणी', 'पूर्णिमा', 'देशर डाक' आदि रचनाएँ उल्लेखनीय हैं।

सब्ज़परी (उर्दू० पा०)

सब्ज़परी 'अमानत' (दे०) की इदर-सभा (दे०) की एक प्रमुख पात्र है। यह काफपर्वत की परियो की नायिका है। इद्र के अखाडे की परियो म इसका सर्वोच्च स्थान है और यह राजा की विशेष कृपा पात्र है। यह सिहलद्वीप-नरेश इद्र की सभा म पहुच अपने मादक रूप-लावण्य तथा मोहक नृत्य-सगीत स उसका मन बहलाती है।

एक बार काफ से इद्र-सभा मे आती हुई यह मार्ग मे हिंद के एक सुदर राजकुमार (शहज़ादा) गुलफाम को अख्तर नगर मे लाल महल की छत पर सोया देख उस पर आसक्त हो जाती है और अपने तख्त से उतर कर उसे हरे नगो का एक छल्ला निशानी के रूप मे देती है। इद्र (दे० इद्र, राजा) के अखाडे मे पहुँचने पर इसे प्रियतम की याद सताती है। यह काले देव द्वारा उसे उठवा लेती है। गुलफाम अपरिचित स्थान पर पहुँचकर घबराता है तो सब्ज़परी इसे सात्वना देती है। गुलफाम के अनुरोध पर यह उसे इद्र की सभा मे ले जाकर परियो का नाच दिखाती है। मानव के इद्र सभा मे पहुँचने का रहस्योद्घाटन होने पर गुलफाम को दड दिया जाता है और सब्ज़परी को सभा से निष्कासित कर दिया जाता है। अत मे यह अपने संगीत के जादू से गुलफाम को क्षमादान दिलाती है।

सभापति (त० पा०)

सभापति सबद मुदलियार् (दे०) *'सभापति'* शीर्षक हास्य-प्रधान नाटको मे विदूषक के रूप मे आता है। यह अपनी हास्य-प्रधान बातो और कर्मों से दर्शको का मनोरजन करता है। बीसवी शती मे वडवूर दुरैसामी अय्यगार्, आरणी कुप्पुस्वामी मुदलियार् आदि तमिल उपन्यासकारो ने पाश्चात्य साहित्य मे प्राप्त आर्थर कौनेन डायल कृत 'शेरलाक होम्स', इयान् फ्लेमिंग-कृत 'जेम्स बाड', आदि धारावाहिक जासूसी उपन्यासो के अनुकरण पर अनेक हास्य व्यग्य-प्रधान उपन्यासो की सर्जना की है। इन उपन्यासकारो ने हास्य-व्यग्य की सृष्टि के लिए अपने उपन्यासा मे एक ही पात्र को अपनाया है। ठीक इसी प्रकार सबद मुदलियार् ने 'सभापति' नामक पात्र की सहायता से हास्य के विभिन्न पक्षो को स्पष्ट करने के लिए सभापति शीर्षक अनेक नाटकों की रचना की है। इस पात्र के माध्यम से शिष्ट हास्य की अभिव्यक्ति मे सबद मुदलियार् पूर्ण सफल हुए हैं।

सभासदी बखर (म० कृ०) [रचना-काल—1697 ई०]

इसके लेखक का नाम है कृष्णा जी अनत सभासद। इसमे शिवाजी के जीवन चरित्र से सबद्ध घटनाओ का वर्णन है। आरभ मे शिवाजी के पूर्वजो का परिचय है। तदनतर शिवाजी के जीवन मे घटित 71 प्रसगों का प्रामाणिक वर्णन है। इसमे ऐतिहासिक दृष्टि से

शिवाजी का संपूर्ण चरित्र-वर्णन नहीं आ पाया है, फिर भी इनके जीवन से संबद्ध अधिकांश महत्वपूर्ण घटनाएँ अंतर्भूत हो गई हैं। जिन प्रसंगों का विस्तार से निरूपण है, वे है—अफ़जलखान का वध, शिवाजी का दिल्ली की ओर प्रयाण, राज्याभिषेक, शिवाजी का भागानगर पहुँचना, शिवाजी-व्यंकोजी भेंट आदि। शिवाजी के राज्याभिषेक और मृत्यु की तिथियों का मात्र उल्लेख है, अन्यत्र काल-निर्देश नही है। व्यक्ति-निर्देश और स्थल-निर्देश प्रचुर मात्रा मे है जिससे इसके प्रसंग-वर्णनों की प्रामाणिकता असंदिग्ध है। शिवाजी की मृत्यु के 12-14 वर्षो के बाद ही इस बखर की रचना हुई थी, अतः ऐतिहासिक दृष्टि से भी इसका विशेष महत्व है। प्रसंग-वर्णन की पटुता, प्रवाहमयी भाषा-शैली, चरित्र-चित्रण का कौशल आदि गुणों के कारण प्रस्तुत रचना मराठी-साहित्य के इतिहास मे भी अपना सुदृढ़ स्थान रखती है।

समय परीक्षे *(क० कृ०)* [समय—लगभग 1150 ई०]

इसके रचयिता ब्रह्मशिव नामक एक जैन कवि हैं जिनका समय 1150 ई० के करीब स्थिर किया गया है। यह ग्रंथ कंद एवं वृत्तों मे लिखा 15 अधिकारों वाला एक काव्य है। बारहवीं शती के कर्णाटक के धार्मिक जीवन का परिचय प्राप्त करने के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण कृति है। अन्य मतों, तथा उनके पुराणों व लोकाचारों के दोष दिखाकर जैनमत को ही यहाँ सर्वश्रेष्ठ साबित किया गया है। ग्रंथ में कथानक नहीं है, पात्र-सृष्टि नहीं है, नव-रसों का निरूपण भी नहीं, अष्टादश वर्णन भी नहीं है। कथा जैनमत की है, जनसामान्य ही इसके पात्र हैं, विडंबन ही इसका रस है, अपहास्य ही इसका स्थायी है। अन्य मतों के अंधविश्वासों का वर्णन ही इसके अष्टादश वर्णन हैं। इस प्रकार यह कन्नड साहित्य में ही एक अपूर्व तात्त्विक विडंबक काव्य है। इसकी विषयानुक्रमणिका यों है—परमात्म-स्वरूप, अनाद्यनिधनजिन धर्म-वर्णन, पर-मागम वर्णन, सम्यक्त्व निरूपण, परमहित व्रत-व्यावर्णन, शौचव्रत-वर्णन, तपोधनस्वरूप-वर्णन, आप्तस्वरूप-वर्णन, देवतामूढस्वरूप, आगमस्वरूपवर्णन, वैदिक विडंबन, लोक-मूढस्वरूप, कुदृष्टि लक्षण कुलांगचारित्र-निरूपण तथा जैन-धर्म-व्यावर्णन। यहाँ की विडंबना अत्यंत कटु बनी है, मतीय पक्षपात तथा परधर्म-असहिष्णुता इसमें बहुत अधिक है। किंतु जहाँ कहीं हास्य का लघु-लेपन है, वहाँ सुंदर बन पड़ा है। अंत मे, कवि प्रतिपादन करता है कि जहाँ उत्तम चारित्र्य है, वहीं धर्म है। कन्नड में प्रत्यक्ष लोक-जीवन का चित्रण करने वाले काव्य बहुत ही कम है, और यह उनमें से एक है।

समरतरंग *(उ० कृ०)*

रीतिकालीन अनैसर्गिक काव्य-व्यापार एवं गतानुगतिकता के बीच कवि जगन्नाथ बड़जेना (दे०) ने 'समरतरंग' के द्वारा उड़िया-साहित्य में नवीन चेतना तरंगायित कर दी थी। समसामयिक घटना को लेकर साहित्य-निर्माण करने का वह प्रथम प्रयास था। यह जातीय उद्बोधन से परिपूर्ण समर-काव्य है जो कवि के जागरूक यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचायक है। 'समर-तरंग' में कवि ने रणभेरी बजाई है। इसमें ढेंकानाल-नरेश त्रिलोचन महेंद्रबहादुर के मुख से उत्कलीय सेना को जो जागृति-संदेश दिया गया है, वह हमारी जातीयता के प्रति ब्रजनाथ की चेतावनी है।

'समरतरंग' में 1781 ई० में मरहठा एवं ढेंकानाल की सेनाओं के बीच हुए 18 दिन के तुमुल युद्ध का वर्णन हुआ है। कवि स्वयं उस समय ढेंकानाल में थे। प्रत्यक्षदर्शी होने के कारण उन्होंने हर छोटी-बड़ी बात का वर्णन किया है। अतः उनके युद्धवर्णन में, सामरिक साज-सज्जा के चित्रण में, लोगों के उत्साह-उत्तेजना, आशा-निराशा के चित्रण में जीवंत अनुभूति की मर्मस्पर्शिता है। उनके आह्वान में युग-युग तक शिथिल रक्त में उष्णता का संचार करने की शक्ति है; उत्साहहीन प्राणों मे उन्माद उत्पन्न करने की क्षमता हैं। यह उत्कलीय जातीयता का युगांतरकारी अध्याय है।

'समरतरंग' की भाषा ओजपूर्ण, फड़कती हुई, सुललित एवं उत्तेजक है। देशज एवं विदेशी शब्दों के प्रयोग से उसमे स्वाभाविकता आ गई है। भाषा में स्वच्छंद प्रवाह मिलता है। भाषाविन्यास, अलंकार-प्रयोग, वर्णन-शैली मे रीतियुग की क्रमिकता की रक्षा करते हुए प्रतिपाद्य की सत्यता एवं उत्कर्ष की अक्षुण्णता का चित्रण इस प्रकार किया गया है कि ऐसा प्रतीत होता है मानो 'समरतरंग' के आह्वान की अभिव्यक्ति की ही एकमात्र पद्धति है, इसके बिना उस आह्वान का प्रतिपादन नही हो सकता।

चरित्र-चित्रण में यथार्थवादी दृष्टिकोण मिलता है। गुणों के साथ दोषों का भी निरूपण हुआ है। त्रिलो-चन-बहादुर व चिमना भोंसला दो ही प्रधान पात्र हैं।

त्रिलोचन महेंद्र बहादुर वीर, कुशल, शासक, धैर्यवान, सफल सेनानी एव देशभक्त है। उनके देदीप्यमान व्यक्तित्व एव ज्वालामयी वाणी मे निष्प्राण मे प्राण फूंकने की शक्ति है। चिमना जी युवक हैं फिर भी कुशल योद्धा हैं। उनमे अद्‌भुत सगठन-शक्ति, साहस व धैर्य हैं।

इसमे बडजेना अपनी प्रत्यक्ष अनुभूति को सजीव एव साकार कर गए है। तत्कालीन सामाजिक एव राजनीतिक स्थिति का भी परिचय मिल जाता है। इस प्रकार 'समरतरग' एक ऐतिहासिक, समसामयिक, घटना के प्रत्यक्षदर्शी का कवित्वपूर्ण विवरण होने के कारण उडिया-साहित्य मे विशिष्ट गौरव का अधिकारी है।

समरसवे जीवन *(क० कृ०)*

'समरसवे जीवन' (समरस ही जीवन है) डा० वि० कृ० गोकाक (दे०) का उपन्यास है। इसमे काव्य की मनोहरता, अत प्रज्ञा और जीवन का मार्मिक विश्लेषण मिलता है। राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक समस्याओ के सबध मे भी इसमे विचार किया गया है। उत्तर कर्नाटक के जन-जीवन के सर्वतोमुखी विकास का निरूपण करने वाला यह उपन्यास शिल्प, वातावरण, पात्र-सृष्टि और भाषा-शैली की दृष्टि से नवीनता लिए हुए है। इसमे पूर्व और पश्चिम की सस्कृतियो का रमणीय स्वरूप-विश्लेषण है। इसकी कथा चार पीढियो के जीवन चित्र उपस्थित करती है। कथा का प्रारभ मोगगावि गाँव से होता है। उसका विस्तार देश के अन्य भागो से होता हुआ विदेश तक होता है। तिरुकाचार्य और हृग्रीवाचार्य प्रथम पीढी के, गोविंदराय, सुवर्णाचार्य, मोडक, केशवराय, जानकीबाई, रमाबाई, सरस्वतीबाई, रमातायि, रगासानि और वेंकम्मा जैसे पात्र दूसरी पीढी के, नरहरि, कुसुमा, शीनू, पद्मावती, केशव, मेनकि, कुडचि, तिप्पा, भीमू, कुमारी बर्वे, एलिस आदि तीसरी पीढी के एव अरुण, उषा, आदि नवीन पीढी के प्रतिनिधि है। स्वामिदास यद्यपि दूसरी पीढी के ही हैं तथापि उनके व्यक्तित्व का प्रभाव अन्य पीढियो मे स्पष्टत. लक्षित होता है। यहाँ का प्रधान पात्र नरहरि आदर्श जीवन का स्वप्नद्रष्टा है। नरहरि का मित्र शीनू आदर्श और सुसस्कृत जीवन का पक्षपाती होकर भी पाश्चात्य सस्कृति की ओर झुक जाता है। नरहरि-कुसुमा, शीनू-सुशीला, और विष्णु-प्रमीला की जोडी प्रेमसूत्र मे बद्ध होती है। कुसुमा को पाने की तीव्रेच्छा रखने वाला शीनू पहले दैववादी हो जाता है, पीछे बदल जाता है। चित्रागदा प्रमीला नरहरि को पति के रूप मे नही पा सकती, वह विष्णु की आराधिका बन जाती है। शीनू स्व-निर्मित स्वप्न को 'प्रेम' कहता है। समुद्रयात्रा को जीवन-यात्रा के रूप मे दिखाकर अतर्राष्ट्रीय जीवन का सूक्ष्म दर्शन इस उपन्यास मे प्रस्तुत किया गया है। राष्ट्रीय आदोलन, पाश्चात्य सस्कृति के गुण-दोष तथा धर्म और जीवन के नाना रूपो का वर्णन भी इसमे आकर्षक बन पडा है। भौतिक जीवन और कामलालसा से जीवन का कैसे अध पतन होता है, इसका अच्छा निरूपण यहाँ किया गया है। स्वामिदास सरीखे पात्र की सृष्टि कर लेखक ने ऊर्ध्वगामी सामाजिक कल्पना को मूर्त रूप प्रदान किया है। लेखक ने भिन्न-भिन्न परिस्थितियो के अनुकूल नाना पात्रो की सृष्टि कर अपने उद्देश्य और दर्शन का सुदर प्रतिपादन इस उपन्यास मे किया है। युग-सस्कृति को दिखाने वाला यह उपन्यास साहित्य की मगल-सिद्धि है।

समराइच्चकहा *(प्रा० कृ०)*

यह जैन-महाराष्ट्री प्राकृत का एक गद्य कथा काव्य है जिसकी रचना चित्तौड के हरिभद्रसूरि (दे०) ने सातवी-आठवी शती मे की थी। इसमे उज्जैन के राजा समरादित्य और शत्रु अग्निशर्मा के नौ जन्मो के विरोधो का वर्णन है। अग्निशर्मा अपने पूर्वजन्म के विरोध का बदला बार-बार जन्म-धारण करके लेता है। इसम अवा-तर कथाएँ बहुत हैं। जैन-महाराष्ट्री मे यह उच्चकोटि की गद्य-रचना है जिसमे बीच-बीच मे पद्य (विशेषत) आर्या छद मिले हुए हैं। इसकी रचना 'कादबरी' (दे०) जैसी लगती है। लेखक काव्यशास्त्र तथा दूसरे शास्त्रो मे निष्णात है।

समस्या-नाटक *(हिं० पारि०)*

विक्टोरियन युग के अत मे इग्लैंड मे जो बौद्धिक क्राति हुई थी उसके कारण परपरागत मूल्य और मान्यताएँ ढहने लगी थी, सेक्स, अर्थ, दापत्य-जीवन, कानून की पवित्रता, देशभक्ति, प्रेम, गरीबी आदि के सबध मे नयी विचारधारा ने जन्म लिया था जिसमे तत्कालीन नाटक-कार अलिप्त न रह सके थे और एक नये प्रकार के नाटक का जन्म हुआ था जिसे समस्या-नाटक (प्रोबलम-प्ले)

कहते है। एलवर्ट ग्वार्ड ने इसकी परिभाषा यों की है—समस्या-नाटक मे समसामयिक प्रश्नों को यथार्थवादी (दे०) शिल्प में प्रस्तुत किया जाता है। यथार्थवादी आंदोलन से प्रभावित समस्या-नाटककारों—इब्सन, शॉ, गॉल्सवर्दी आदि—ने अपनी रचनाओं में जीवन और समाज के कठोर सत्यों का चित्रण किया। सामाजिक क्रूरता और दंभ का विरोध किया, झूठे आदर्शों को चुनौती दी। इसीलिए उसे मोह-भंग का नाटक कहा गया। आरंभ में इसे 'संवाद-शृंखला', 'समाजशास्त्रीय निबंध', 'पुलपिट का व्याख्यान' कहकर इसका उपहास किया गया, इसके पात्रों को कठपुतली या लेखक के प्रवक्ता कहा गया। पर विवाद की धूल बैठ जाने पर इसका स्वरूप स्वच्छ हो गया। समसामयिक समस्याओं को विषय बनाने और मध्यवर्गीय पात्रों के अतिरिक्त उसमें शिल्प-संबंधी नये प्रयोग—विश्वसनीय कथानक, संवाद-दृश्य, पात्रों के अंतर्द्वंद्व, उनकी साधारण भंगिमा से उनके मनोभावों का अंकन, दैनंदिन की बोलचाल की भाषा—भी किए गए हैं। संक्षेप में 'समस्य-नाटक' सामाजिक परिवेश में सामयिक समस्याओं का चित्रण करने वाले (न कि उनका समाधान देने वाले) नाटक है।

समाचार *(पं० क०)* [प्रकाशन-वर्ष—1942 ई०]

'समाचार' संतसिंह सेखों (दे०) की पंद्रह कहानियों का प्रथम संग्रह है। पंजाबी कथा-साहित्य के प्रारंभिक काल में इन कहानियों का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना थी। पंजाबी कहानी के कई रूप—जैसे कि फ्रायड से प्रभावित मनोवैज्ञानिक कहानी, समाजवादी चिंतन से प्रभावित प्रगतिवादी कहानी—सुचिंतित रूप से प्रथम बार इसी संग्रह मे सामने आए। 'समाचार' की कहानियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि कलात्मक पंजाबी कहानी ने अपने प्रारंभिक काल से ही उस शिल्प को पहचानना आरंभ कर दिया था जिस पर उसे पश्चिम के गल्प-लेखकों ने विकसित करने का उपक्रम किया था। यद्यपि कुछ कहानियों में सेखों पत्रकारिता के स्तर पर आ जाते हैं परंतु इनमे से अधिकतर यथार्थवादी कहानी का सुंदर उदाहरण है। सेखों की कुछ श्रेष्ठ कहानियाँ 'आस दा जन्म', पाताल दा बंदा', 'अनोखसिंह दी वहुटी', 'पेमी दे नि आणे', 'मुड़ विधवा' इसी संग्रह में है।

समाज-चित्रे *(म० क०)*

यह एक कहानी-संग्रह है जिसकी लेखिका हैं श्रीमती गिरिजाबाई केळकर।

सामाजिक समस्याओं का कलात्मक विवेचन करना ही इन कहानियों का प्रतिपाद्य है। लेखिका स्वयं भारतीय संस्कृति पर अभिमान करने वाली एवं सर्वांशतः आदर्श भारतीय महिला हैं। वे पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण की कट्टर विरोधी हैं, अतः उन्होंने शिक्षित महिलाओं की विचित्र वेशभूषा तथा गार्हस्थ्य-धर्म की उपेक्षा की कड़ी निंदा की है। आदर्शवादी भारतीय नारी होने के कारण इन्हें पश्चिम का स्वच्छंद आचरण बिल्कुल नापसंद है।

इनकी कहानियों में व्यंग्य एवं उपदेश का मनोहर संगम मिलता है। कला-दृष्टि से ये कहानियाँ सामान्य हैं।

समास *(हिं० पारि०)*

'सम्+अस्+घञ्' से बने इस शब्द का अर्थ है 'समीप फेंकना' या 'दो अथवा अधिक शब्दों को समीप फेंकना। ऐसा करने से भिन्नार्थी शब्दों का अर्थ एक में मिल जाता है। 'पृथगर्थानामेकार्थीभावः समासः'। समास मूलतः संक्षेप के लिए होता है। इसमे संबंधसूचक शब्दों या प्रत्ययों आदि का लोप करके बड़ी अभिव्यक्ति को छोटी कर लेते हैं। जैसे 'रसोई के लिए घर'=रसोईघर या 'सभा का पति' सभापति। दो या अधिक शब्द मिलकर जब एक शब्द बन जाते हैं तो उसकी संज्ञा सामासिक पद या समस्त पद होती है। समस्त पद को तोड़कर उसके पूरे रूप (जैसे रसोईघर=रसोई के लिए घर) को दिखाना विग्रह कहलाता है। सामासिक पद बनाने की परंपरा तो अनेक भाषाओं में है किंतु समास का सबसे गंभीर विवेचन संस्कृत में ही हुआ है। संस्कृत में एक या दोनों शब्दों की प्रधानता के आधार पर समास के मुख्यतः चार भेद (अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वंद्व, बहुव्रीहि) माने गए है। कर्मधारय तत्पुरुष का ही एक भेद है तथा द्विगु कर्मधारय का। यों समास का कदाचित् अधिक उपयोगी विवेचन इस आधार पर हो सकता है कि किन-किन शब्द-भेदों (संज्ञा, विशेषण आदि) से ये बनते हैं तथा इनका प्रयोग किन-किन शब्द-भेदों के रूप में होता है।

समीरकुमारविजयमु (ते० क्र०) [रचना काल —अठारहवी शती ई०]

इसके लेखक का नाम पुष्पगिरि तिम्मना (दे०) है। ये हनुमान के भक्त थे। कहा जाता है कि इन्होंने स्वप्न मे प्राप्त रामचद्र की आज्ञा से 'समीरकुमार-विजयमु' की रचना की तथा रामचद्र ही को उसे समर्पित भी किया था। हनुमान की भक्ति तथा शक्ति को प्रकट करने वाला यह ग्रथ सात आश्वासो का एक काव्य है। इसकी भाषा प्रौढ है।

समुद्रबध (स० ल०) [समय —तेरहवी-चौदहवी शती]

'समुद्रबध' रुय्यक (दे०) के प्रसिद्ध ग्रथ 'अलकारसर्वस्व' (दे०) के टीकाकार है। ये केरल-देश के राजा रविवर्मा के राज्यकाल मे विद्यमान थे। इस राजा का जन्म तेरहवी शती का अत या चौदहवी का आरभ-काल है। जयरथ की टीका के समान पाडित्यपूर्ण न होने पर भी यह व्याख्या मूल को समझने के लिए बहुत उपयोगी है। समुद्रबध साहित्यशास्त्र के मान्य आचार्यो स पूर्णपरि-चित थे। यह बात उनके उद्धरणो से स्पष्ट है।

समुद्रमथन (स० क्र०) [समय—तेरहवी शती]

यह रूपक प्रयोगप्रवण वत्सराज (दे०) द्वारा रचित समवकार है। तीन अक के इस रूपक मे वत्सराज ने समुद्रमथन का वृत्तात बडे विस्तार के साथ दिया है। भरत (दे०) ने समुद्रमथन को समवकार का आदर्श माना है। यही सकेत लेकर वत्सराज ने इस रूपक का निर्माण किया है। यह सस्कृत साहित्य की एकमात्र समवकार-रचना है।

समूची क्रांति (गु० क्र०) [प्रकाशन-वर्ष—1948 ई०]

गाधीवादी विचारक किशोरीलाल घ० मशरू-वाला (दे०) द्वारा 1947 म लिखी गई। 141 पृष्ठीय यह पुस्तक धर्म और समाज, आर्थिक क्राति से सबद्ध प्रश्न, राजनीतिक क्राति और शिक्षा आदि पर लेखक के विचार प्रस्तुत करती है। इस ग्रथ म कुल मिला कर उनतीस अध्याय हैं। लेखक जातिवाद की स्वीकृति अथवा उसका विनाश—इस प्रकार के दो विकल्पो के साथ अपने विचारो को प्रस्तुत करना आरभ करता है। उसका निश्चित मत है कि धर्म आज की समस्याओ का समाधान नही है अत वह पाँच सूत्र पाठक को देता चलता है—(1) एक ही ईश्वर मे विश्वास रखा जाय, (2) सभी ईश्वर वाणियो को अस्वीकृत कर दिया जाय, (3) मनुष्य को ईश्वर या देवदूत मानने की प्रथा का चलन बद कर दिया जाय, (4) मनुष्य निरालसी और सयमी हो और (5) ईश्वर का आश्रय (विश्वास), धर्म का आश्रय (सेवन) और सदाचार का आश्रय (आधार-प्रमाण) लिया जाना चाहिए। सामान्यत लेखक यह स्वीकार कर चला है कि प्रचलित सभी धर्मों मे परमेश्वर की भक्ति, सत्य, अहिंसा, दया, क्षमा तथा सयम आदि पर समान रूप से भार दिया गया है। पर कुछ ऐसे भी तत्त्व हैं (यथा—परलोक पर आस्था, आदि) जो मनुष्य को समाज धर्म की अवगणना करना सिखाते हैं। भाषाओ को माध्यम बनाकर प्राचीनता के पुनरुद्धार करने के उपक्रम का लेखक विरोधी है। लेखक ने राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नो को चरित्रकेंद्री बनाकर उन पर विचार किया है। सभी वादो से मुक्त होकर खेती करने वाले श्रमिको को सबसे अधिक मजदूरी देने की सस्तुति भी इस ग्रथ मे की गई है। लेखक की यह स्पष्ट घोषणा है कि फुर्सत मे सस्कृति का विकास नही होता। लेखक सुराज्य का प्रबल समर्थक है। शिक्षा पर चर्चा करते हुए लेखक ने कुछ विचार इस प्रकार प्रकट किए है शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे ममता का क्षेत्र विस्तृत हो और उसकी पकड शिथिल हो जाय, भूतकाल का पुनरुद्धार न किया जाय, पुरुषार्थ को उत्ते-जन दिया जाय, पुस्तकीय ज्ञान और अनुभूत ज्ञान के अतर को समझने लायक आदमी को बनाया जाय, वक्ता की भाषा श्रोता के अनुकूल होनी चाहिए और पुस्तको की भाषा-व्याकरण शुद्ध होना चाहिए, शिक्षा की भाषा प्रातीय होनी चाहिए और अपवाद रूप मे हिंदुस्तानी का प्रयोग किया जाना चाहिए, अतर्राष्ट्रीय कार्यो के लिए अग्रेजी का प्रयोग होना चाहिए, प्रातीय भाषाओ को रोमन और प्रातीय लिपियो म लिखा जाना चाहिए तथा हिंदुस्तानी देवनागरी और उर्दू म लिखी जानी चाहिए। शिक्षा मे इतिहास का ज्ञान कल्पनाओ और दतकथाओ के समान ही महत्वपूर्ण माना जाना चाहिए। 'समूची क्राति' मे भाषा सरल और विचार अनाविल रूप से व्यक्त किए गए है। सभी स्थानो पर गाधीवादी विचारधारा ही प्रकट हुई है। युग के बदलते परिप्रेक्ष्य मे मशरूवाला जी की सभी बातो से सहमत होना कठिन है। फिर भी इतना

तो कहना ही पड़ेगा कि गुजराती साहित्य में इस प्रकार के समाज-सुधार से संबंधित साहित्य के लिखने वालों में मशरूवाला महत्वपूर्ण लेखक हैं जिन्होंने गांधी जी की धारणाओं को वाणी देने का सफल प्रयास किया है।

सम्यक्त्व कौमुदी *(क० कृ०)*

'सम्यक्त्वकौमुदी' मंगराज तृतीय (समय—1510 ई०) की रचना है। सोलहवीं शती के जिन कवियों ने कन्नड-साहित्य को संपन्न किया, उनमें जैन कवि मंगराज का विशिष्ट स्थान है। ये कल्लहल्लि के राजा थे, इसका राजवंश मैसूर राजवंश से संबंधित होकर वर्तमान समय तक विद्यमान रहा है। 'सम्यक्त्वकौमुदी' वार्धक षट्पदी में रचित एक उत्तम काव्य है। इसमें जैन धर्म से संबंधित कथाओं का संग्रह है, जो संस्कृत से कन्नड में लाई गई हैं। इसमें राजा उदितोदय के वैराग्य का वर्णन है। राजा उदितोदय अर्हद्दास नामक वैश्य की पत्नियों के मुँह से 'सम्यक्त्व' की कथाएँ सुनकर वीतराग हो जैन-दीक्षा ग्रहण करता है और स्वर्गलोक में अहमिंद्र बनता है। इस कथानक का वर्णन कवि ने संस्कृत और कन्नड के शब्दों से युक्त सुंदर सामरस्यपूर्ण शैली में, मृदु-मधुर पाक में किया है। कवि की कल्पना की कमनीयता तथा वार्धक षट्पदी की रम्यता इस काव्य में प्रकट हुई हैं।

सरकार, उमेशचंद्र *(उ० ले०)* [जन्म—1857 ई०; मृत्यु—1914 ई०]

उड़ीसा के प्रथम उपन्यासकार के रूप में उमेशचंद्र सरकार स्वतंत्र स्थान के अधिकारी हैं। कुछ विद्वान यह सम्मान रामशंकर राय (दे०) को देने के पक्षपाती हैं, उमेशचंद्र का आधुनिक शैली में लिखित 'पद्ममाळी' (दे०) (1888 ई०) सर्वप्रथम पूर्णांग उड़िया उपन्यास है। इससे पूर्व रामशंकर राय का उपन्यास 'सौदामिनी' धारावाहिक रूप में 'उत्कल मधुप' में कुछ समय तक प्रकाशित हुआ था; किंतु पत्रिका बंद हो जाने के कारण वह अधूरा रह गया।

'पद्ममाळी' ऐतिहासिक घटना-प्रधान उपन्यास है। इसकी कथावस्तु 1835 ई० में नीलगिरि में घटित एक सत्य घटना पर आधारित है जिसमें कल्पना का अत्यल्प प्रयोग हुआ है। अँग्रेजी और बँगला-उपन्यास-साहित्य से अनुप्रेरित होते हुए भी 'पद्ममाळी' में कुछ ऐसी मौलिक विशेषताएँ हैं जो एकांत रूप से उत्कलीय परंपरा और परिवेश से उद्भूत हैं। प्रारंभिक कृति की सीमाएँ इसमें स्पष्ट हैं, फिर भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यह उमेशचंद्र का एक अत्यंत सफल प्रयास है।

जब ये दो वर्ष के थे, तभी इनके पिता श्री ईश्वरचंद्र की मृत्यु हो गई थी। कटक में संबंधियों की सहायता से इन्होंने बी० ए० किया और कई राज्यों एवं जमींदारियों में मैनेजर रहे। 'यतो धर्मस्ततो जयः' (नाटक), 'केंदुझर विद्रोह' (अधूरा उपन्यास) आदि इनकी अन्य रचनाएँ हैं।

सरकार, बादल *(बँ० ले०)*

अत्याधुनिक बँगला नाट्यकारों में सर्वाधिक प्रतिष्ठित बादल सरकार ने नव-नाट्य-आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेकर बँगला नाटकों को नया आयाम प्रदान किया है। अ-नाटक के इस युग में, यंत्रणा, पीड़ा, विघटन और विशृंखलता में, लेखक की आस्था का स्वर धूमिल होता दिखाई नहीं पड़ता—यही लेखक की सबसे बड़ी विशेषता है। 'एवं इंद्रजित', 'बाकी इतिहास', 'वल्लभगढ़ेर रूपकथा', 'पागला घोड़ा' आदि लेखक की उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हैं। 'एवं इंद्रजित' में लेखक ने नायक की निदारुण व्यर्थता का निरूपण किया है जिसके परिणामस्वरूप नायक का नायकत्व नष्ट हो जाता है और वह भी अपार भीड़ का अंग बन जाता है। 'बाकी इतिहास' में राजनीतिक वक्तव्य के एक हल्के संकेत के पीछे एक अध्यापक की चेतना के विविधस्तरीय मनोभावों को नाट्यरूप प्रदान किया गया है। 'पागला घोड़ा' में पुरुष एवं नारी की व्यर्थता की यंत्रणा को निष्ठा के साथ प्रस्तुत किया गया है जिसमें सामाजिक निवृत्ति की कोई चेष्टा नहीं की गई है।

बादल सरकार ने नाटक की रूप-कला को लेकर नाना प्रकार के सफल परीक्षण किए हैं। नाटक के संवादों में काव्य-संवादों की संयोजना एवं एक ही पात्र को नाना रूपों में प्रस्तुत करने की कला निश्चय ही अभिनव एवं प्रशंसनीय है। अभिनय-कला की दृष्टि से इनके नाटक बहुत ही सफल हैं। रंगसज्जा एवं आलोक-छाया का निर्देश लेखक की रंगमंचीय ज्ञान-बुद्धि का सुंदर परिचय देते हैं। बादल सरकार के नाटकों में हास्य और व्यंग्य का स्वर मुखरित है परंतु इस स्वर के पीछे आज की दुनिया की हताशा के करुण स्वर की गूँज है और इन्हीं स्वरों में

गुजरित है जीवन के प्रति लेखक की आस्था एव विश्वास। *नाट्य-वस्तु की सफल अभिव्यक्ति एव रगमचीय व्याप्ति के* प्रभावस्वरूप बादल सरकार के नाटक आज अखिल भारतीय स्तर पर प्रसिद्धि पा रहे हैं।

सरकार, योगींद्रनाथ *(बं० ले०)* [जन्म—1866 ई०, मृत्यु 1937 ई०]

शिशुओ के मन बहलाने के लिए जो तुकबदी की जाती है उसे बँगला म छडा' (दे०) कहते है और इस प्रकार की छडा कविताओ की रचना कर योगींद्रनाथ सरकार ने बच्चो के मन मे हमेशा के लिए स्थान बना लिया है। इनकी 'हासिखुसि' (1897), 'खुकुमणिर छडा' (1899), खेलार साथी (1898) आदि शिशु-पुस्तको की कविताएँ इतनी अधिक चित्रात्मक हैं कि पढते ही स्वप्न के समान हमारी आँखो के सामने दृश्य पर दृश्य खिचते चले जाते है। 'हासिखुसि' की कौतुक स्निग्ध चिरस्मरणीय कविताएँ केवल शिशुओ को ही नही, परिणति-*यौवन बगाली मात्र को ही कठस्थ है।*

योगींद्रनाथ सरकार ने मौलिक एव सपादित कुल मिलाकर 44 शिशु-पुस्तको की रचना की है। इनमे से लगभग प्रत्येक का प्रचार समान रूप से चला आ रहा है। इतनी अधिसख्यक पुस्तको की सुदीर्घ काल से इस प्रकार की अविच्छिन्न जनप्रियता कदाचित् ही विश्व के और किसी शिशु-साहित्यिक को मिली हो। इनकी कविताओ मे एक आदि सुकुमारता विद्यमान है जो न तीव्र है, न प्रगाढ ही प्रत्युत अत्यत स्निग्ध, सरस एव युक्ति-सगतिहीन हैं। पाँच या दस साल के बच्चो के लिए शिशु *साहित्य की सृष्टि मे योगींद्रनाथ आज भी अप्रतिम हैं।*

सरदार जाफरी, अली *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

अली सरदार जाफरी बलरामपुर, जिला गोंडा मे पैदा हुए थे। इनकी शिक्षा अधिकतर लखनऊ मे हुई। इसी विश्वविद्यालय से इन्होने एम० ए० पास किया। य प्रगतिशील लेखको म विशेष प्रतिष्ठित है। उर्दू साहित्य के अतिरिक्त अँग्रेजी साहित्य की गहरी जानकारी रखते हैं तथा उसके गुणो से प्रभावित हैं। भाव, कल्पना तथा शैली की न्यूनता इनके काव्य के गुण हैं। 'परवाज' के नाम से इनका पहला सग्रह छपा है। जीवन के बारे म मार्क्सवादी दृष्टिकोण को जिस सुदरता स इन्होने अपन काव्य मे व्यक्त किया है उस तरह सभवत उर्दू के किसी *अन्य कवि ने नही किया।* ये जिस तरह सोचते हैं उसी तरह जीवन बिताने का भी प्रयत्न करते हैं। येही कारण है कि इनके काव्य मे असीम प्रभावशक्ति है। जिस बेलाग साहस तथा ओज के साथ ये अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं उसमे विशेष मोहकता होती है।

'परवाज' के अतिरिक्त 'खून की लकीर', 'नयी दुनिया को सलाम', 'अम्न का सितारा', 'एशिया जाग उठा', और 'पत्थर की दीवार' नाम से इनके *अन्य* सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

सरदेइ *(उ० पा०)*

सरदेइ श्री सुरेंद्र महाति (दे०) के उपन्यास 'नीलशैल' (दे०) की एक सामान्य नारी पात्र है, जिसके अभिशप्त जीवन की सजल कहानी इस उपन्यास के करुण स्वर को और भी मार्मिक, और भी गभीर बना देती है। भाग्यहीन उडीसा की विडबनाओ ने ही 'सरदेइ' मे रूप *पाया है। सरदेइ के समान उडीसा भी आज निराश्रित* एव अनुरक्षित है। सभी की लोलुप दृष्टि इस पर केंद्रित है, फिर इसके धर्म की रक्षा कौन करे? यवन सैनिक सरदेइ को ही हताहत नही करते, वरन् उडीसा को क्षत-विक्षत कर उसका सर्वस्व लूट लेना चाहते है। सरदेइ के साथ उडीसा का करुण अस्तित्व हमारी समस्त धार्मिक, नैतिक, सामाजिक व्यवस्था पर एक बहुत बडा प्रश्नचिह्न है।

सरदेइ से हमारा सर्वप्रथम परिचय होता है अनुपम सुदरी होते हुए भी काले मुँह वाली डायन बहू के रूप मे। *विवाह के बाद पति, श्वसुर, जेठ, देवर, जिठानी* देवरानी सभी की एक-एक करके मृत्यु होती जाती है। इस प्रकार यह सास के समस्त क्रोध व घृणा का केंद्र बनती है। इसका मादक सौंदर्य इसके वैधव्य को और भी दुर्भाग्यपूर्ण बनाता है। इसकी नीरव आँखो म वेदना-विह्वलता और असहायता की छाया तैरती रहती है।

महाराज रामचद्र देव भटकते हुए अपनी तृष्णा बुझाने इसी सरदेइ के घर पहुँचते हैं। तृष्णा मिट जाती है, किंतु उसी समय मुगल सैनिक उन्हें घेर कर बदी बना लेते हैं। उनकी रक्षा के प्रयास मे सरदेइ का रक्त-स्नात शरीर धराशायी हो जाता है। परतु इसकी मृत्यु नही होती। चतुर्थ परिच्छेद म यह जीवन पथ पर बहुत आगे बढी हुई दृष्टिगत होती है। क्षत्रिय-कुलवधू का

जीवन इससे छूट चुका है। आज यह छोटे से 'चटी घर' की स्वामिनी है। यही इसकी आजीविका का एकमात्र अवलंब है। इसका बंधु जगुनि इसका रक्षक है जिसने इसे बड़ी बहिन का सम्मान दिया है। किंतु गृहविहीना इस असहाय के जीवन को जगुनि नहीं बचा पाता। इसका सर्वस्व समाज की लंपटता के हाथों छीन लिया जाता है। यह आत्मग्लानि इसे जीवन भर दग्ध करती रहती है।

जीवन की साध्य-वेला में, अर्धचेतनावस्था में इसे प्रतीत होता है कि पतिता के उद्धार के लिए स्वयं पतित-पावन जगन्नाथ इसकी कुटिया में पधारे हैं। तब दिव्यानंद में पूर्ण तृप्त, पतित-पावन की प्रतीक्षारत इसकी व्याकुल आँखें कभी न खुलने के लिए मुँद जाती हैं।

सरना, महेंद्रसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1925 ई०]

महेंद्रसिंह सरना पंजाबी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार तथा कथाकार है। इन्होंने अपनी कहानियों में निम्न मध्यवर्ग की मनोवैज्ञानिक कुंठाओं को विशेष रूप से चित्रित किया है। सरना की कहानियों की भाषा काव्यमयी है जो इन्हें पंजाबी के अधिकांश कथाकारों से अलग कर देती है जिनकी पृष्ठभूमि पंजाब का ग्रामीण जीवन है और भाषा उसी के अनुरूप अनगढ़।

प्रमुख रचनाएँ—'पीड़ा मल्ले राह', 'कांगा ते कंढे' (उपन्यास), 'पत्थर दे आदमी', 'शगनां भरी सवेर', 'सुपनिआं दी सीमा' (कहानी संग्रह)।

सरमाय-ए-ज़ुबान-ए-उर्दू *(उर्दू० ले०)*

हकीम सैय्यद जामिन अली 'जलाल' लखनवी के 416 पृष्ठों के इस संक्षिप्त उर्दू-शब्दकोश में शब्दों के अतिरिक्त वाक्यांशों, मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों की भी व्याख्या की गई है। अठारहवीं शती में लिखित इस कोश में ऐसी शब्दावलियों का वर्णन भी किया गया है, जो अब प्रयोग में नहीं आतीं अथवा जिनका विषय में तत्कालीन विद्वानों में मतभेद था। भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा शब्दों के भिन्न-भिन्न उच्चारण अपनाए जाने के संकेत भी यथावसर इसमें दिए गए हैं। पारिभाषिक शब्दों और लोकोक्तियों के अर्थ-लेखक के साथ-साथ उन्हें सटीक और प्रामाणिक पंक्तियों में प्रयुक्त करके भी दिखाया गया है। इस संदर्भ में प्राचीन विख्यात कवियों और साहित्यकारों के कृतित्व का प्रश्रय किया गया है। मुहावरों और प्रतीकों के पर्यायवाची कहीं-कहीं फ़ारसी और अरबी में भी उनके प्रयोग सहित दे दिए गए हैं। महिलाओं में प्रयुक्त शब्दों और मुहावरों की दृष्टि से भी इस कृति का अपना एक ऐतिहासिक महत्व है।

सरलादेवी *(म० कृ०)*

वा० वा० भोळे का नाटक 'सरलादेवी' समसामयिक जीवन की 'कटुतिक्त' कुंठाओं को यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करता है। नायिका सरला के वैयक्तिक जीवन की आशा-आकांक्षाओं का राग-विराग, सुख-दुःख एवं पाप-पुण्य का मनोहारी निरूपण इस नाटक में हुआ है। कुमारी सरला के अविवाहित मातृत्व की की पीठिका पर नाटककार ने समाज के भीतर व्याप्त नासूर के रहस्य का उद्घाटन किया है। अपने कौमार्य-मातृत्व के कारण ही सरला हीन-भावना से ग्रस्त है। सभीत सरला के मनोवेगों को नाटककार ने अत्यधिक सशक्त-रूप में प्रस्तुत किया है। नायक सत्यपति का चरित्र-निरूपण मनोवैज्ञानिक आधार पर हुआ है। पाश्चात्य समस्या-प्रधान नाटकों की पद्धति पर आधारित इस नाटक के विषय में स्वयं नाटककार का यह कथन है कि 'सरलादेवी का नाट्य-शिल्प इब्सन के समस्या-नाटकों के समान है परंतु नाटक लिखते हुए इब्सन-पद्धति से मेरा परिचय नहीं था। इसका नाट्य-शिल्प कुछ परिस्थितिवश तथा कुछ मेरी मनःस्थिति का ही परिणाम है।' यद्यपि इस नाटक का शिल्प-विधान पूर्णरूपेण इब्सन के समस्या-नाटकों का-सा नहीं है तथापि कथा-विकास पर उक्ति-प्रभाव न्यूनाधिक रूप में अवश्य उपस्थित हुआ है। व्यक्ति वैचित्र्यवादी सिद्धांतादर्शों के अनुरूप विकसित चरित्रों में जहाँ विविधता एवं विदग्धता है वहाँ कथा-विकास संघर्ष के द्वारा हुआ है। अंतः एवं बाह्य द्वंद्व के अनेक मनोहारी घटना प्रसंगों की संयोजना इसमें हुई है।

'सरशार', रतननाथ *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1847 ई०; मृत्यु—1920 ई०]

जन्म-स्थान—लखनऊ। 'फ़साना-ए-आज़ाद' (दे०) नामक सुप्रसिद्ध उपन्यास इनका कीर्तिस्तंभ है। इसमें तत्कालीन सामाजिक वातावरण और राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति तथा परंपराओं का यथार्थवादी चित्रण बड़ी सफलता के साथ किया गया है। लखनऊ के समाज

का चित्रण इसमे समग्र रूप से हुआ है। प्राचीन रग-ढग के नवाबो, रईसो और उनके मित्रमडल के रीति रिवाज, प्रकृति और स्वभाव का सप्राण चित्रण यथार्थ के धरातल पर जितना इन्होने किया है उतना अन्य कोई उर्दू-लेखक नही कर सका। इन्हे विभिन्न व्यवसायियो के विशिष्ट पारिभाषिक शब्दो बेगमो और उनकी मुगलानियो तथा मामाओ की विशिष्ट बोलियो, ग्रामीण रीति रिवाजो अफीमचियो चडूबाजो, भटियारिनो, चोर उचक्को बनियो और ठाकुरो की विशिष्ट अभिव्यजना-शैली पर अद्भुत अधिकार प्राप्त था। फसाना-ए-आज़ाद' मे प्राचीन लख नवी जीवन का प्रत्येक पहलू उजागर हो जाता है। उपन्यास की भाषा ऐसी अनूठी, यथार्थ, मनोरजक और टक साली है कि लेखक की प्रतिभा से अभिभूत हुए बिना नही रहा जा सकता। अन्य कृतियो म सैर ए-कुहसार', 'जाम ए सरशार' कामिनी और खुदाई फौजदार' उल्लेखनीय है। खुदाई फौजदार एक अंग्रेजी उपन्यास का उर्दू अनुवाद है। 'सरशार साहब काव्य रचना भी करते थे। 'अमीर (दे०) लखनवी इनके काव्यगुरु थे। ये बडे प्रसन्न स्वभाव और स्वतत्र विचारधारा के व्यक्ति थे तथा साप्रदायिकता से कोसो दूर थे।

सरसगीता *(गु० कृ०)*

अठारहवी शती के अत मे इसकी रचना हुई। प्रीतमदास (दे०) कृष्णभक्त कवि थे और 'सरसगीता' भागवत के कथानक पर आधारित भ्रमरकाव्य है। मथुरा आने के बाद कृष्ण उद्धव का गर्व खडन करने के लिए उन्हे गोपियो और नद यशोदा के पास भेजते हैं—ज्ञान देकर उन्हे समझाने के लिए। उद्धव जब जाकर गोपियो से योग की बातें करते हैं तब गोपियाँ उद्धव को अपनी कृष्णभक्ति का परिचय देती हैं जिससे उद्धव का अभिमान गल जाता है और वे ब्रजभूमि की धूल अपने सिर पर चढाते हैं। कोमल भावो का निरूपण, माधुर्य, पात्र के स्वभाव को यथार्थ रूप मे व्यक्त करने वाली उक्ति—इन सब दृष्टियो से यह गुजराती का उत्तम भ्रमर-काव्य माना गया है।

सरस्वतियम्मा, के० *(मल० ल०) [जन्म—1919 ई०]*

मलयाळम की इस सिद्धहस्त कथालेखिका का जन्म एक रुढिवादी नायर परिवार हुआ शिक्षा के बाद दा वर्ष वे अध्यापिका रही और बाद म केरल सरकार के लेखा परीक्षा-विभाग मे इनकी नियुक्ति हुई जहाँ वे अब भी कार्य कर रही है। 'स्त्रीजन्मम्', पोन्नुमकुटम्', 'कीप-जीवनक्कारी' आदि इनके कहानी सग्रह हैं। इनका एक लघु उपन्यास, एक नाटक और एक निबध-सग्रह भी प्रकाशित हुए हैं।

सरस्वतियम्मा मलयाळम कहानी के नवोत्थान काल की प्रमुख लेखिका हैं। वर्तमान समाज मे नारी की भावनाआ एव कष्टो की करुण कथा इनकी कहानियो की मुख्य विषय-वस्तु है। मलयाळम की प्रमुख कथाकत्रियो मे ललिताबिका अतर्जनम् (दे०) के बाद सरस्वतिमम्मा का ही नाम लिया जाता है।

सरस्वती *(हिं० पत्रिका)*

हिंदी-पत्रकारिता का दुर्भाग्य है कि उसके पत्र पत्रिकाएँ दीर्घ-जीवी नही रहे। दो एक पत्रिकाओ जैसे 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (दे०), 'सरस्वती' आदि को ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि वे अपने प्रकाशन से आज तक जीवित हैं और उनकी कीर्ति भी उत्तरोत्तर बढी है। 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का प्रकाशन 1900 ई० को प्रयाग से आरभ हुआ। उस समय वह क्राउन आकार के 32 पृष्ठो की थी और उसका मूल्य था चार आना। सौभाग्य से आरभ मे ही उसे काशी के हिंदी-हितैषियो का सहयोग और इडियन प्रेस के सस्थापक, हिंदी-पुस्तको के प्रकाशक और हिंदी के उन्नायक श्री चितामणि घोष का सरक्षण प्राप्त हो गया है। बाबू रामानद चटर्जी के परामर्श से उन्होंने इसके सपादन का कार्यभार काशी नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) पर डाला। सभा ने पाँच व्यक्तियो का सपादन मडल बनाया। ये थे—सर्वश्री राधाकृष्ण दास, कार्तिकप्रसाद खत्री, जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (दे०) किशोरीलाल गोस्वामी और श्यामसुदर दास (दे०)। ये सब काशी निवासी थे अत 'सरस्वती' का सपादन-कार्य होता था काशी मे और वह मुद्रित तथा प्रकाशित होती थी प्रयाग मे। आरभ स ही वह पत्रिका थी और अपने रूप तथा गुण दोनो से पाठको को आकर्षित करने मे सफल रही। उसके प्रकाशन के मुख्य उद्देश्य बताते हुए कहा गया था, हिंदी रसिको को मनोरजन, सरस्वती के भडार की अग-पुष्टि और सुलेखको को प्रोत्साहन।'

इस सपादन मडल के अधीन यह पत्रिका केवल एक वर्ष तक चली। इस बीच इसम सबम अधिक लेखक

और कविताएँ लिखने का श्रेय पं० किशोरीलाल गोस्वामी को है। संयुक्त प्रांत की (वर्तमान उत्तर प्रदेश) की कचहरियों मे नागरी लिपि को स्थान मिलने पर 'सरस्वती' में जो संपादकीय लेख प्रकाशित हुआ उसके लेखक भी किशोरीलाल गोस्वामी थे। एक वर्ष बाद संपादक बने बाबू श्यामसुंदरदास, पर वे भी दिसंबर 1902 ई० तक ही उस कार्य को सँभाल सके। जनवरी 1903 ई० में उसका संपादन-कार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) ने सँभाला। द्विवेदी जी अपनी रेलवे-नौकरी के सिलसिले में उस समय झाँसी रहते थे। अतः पहले उसका संपादन झाँसी से और तदनंतर जूही (कानपुर) से होता रहा। द्विवेदी जी अँग्रेज़ी-कवि वर्ड्स्वर्थ के समान मानते थे कि गद्य और पद्य की भी भाषा एक ही हो। वह भाषा को शुद्ध और व्याकरण-सम्मत बनाने पर भी बहुत बल देते थे। अतः भाषा की अनस्थिरता को लेकर पहले उनका विवाद बाबू बालमुकुंद गुप्त (दे०) से हुआ और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'खोज रिपोर्ट' की आलोचना करने के कारण सभा से मतभेद हुआ। फलतः 'सरस्वती' के मुखपृष्ठ से 'सभा द्वारा अनुमोदित' शब्द हटा दिए गए। द्विवेदी जी ने, जिनके जीवन का ध्रुवतारा था 'न्याय-पथ विचलित न होना', इस विरोध की चिंता न कर अपने कठिन परिश्रम और अध्यवसाय से तीन वर्ष में ही 'सरस्वती' को प्रतिष्ठित पद पर आसीन कर दिया। भय और प्रलोभन दोनों से ऊपर उठकर केवल पाठकों का हित और रुचि ध्यान में रखते हुए वे 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा करते रहे। वे 'सरस्वती' के लिए स्वयं लेख लिखते, उसमें प्रकाशित होने योग्य प्रत्येक रचना को पढ़ते, उसका व्याकरण और भाषा की दृष्टि से संशोधन करते। संपादन के रूप में उनका सबसे बड़ा कृतित्व है—विविध विषयों के विशेषज्ञ लेखकों का मंडल बनाना और साहित्यकारों को प्रोत्साहन देकर उन्हें साहित्य के प्रांगण मे उतारना। इन साहित्यकारों में उल्लेखनीय है—मैथिलीशरण गुप्त (दे०), देवीप्रसाद 'पूर्ण' (दे०), लक्ष्मीधर वाजपेयी, स्वामी सत्यदेव, आचार्य रामचंद्र शुक्ल (दे०), विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', रूपनारायण पांडे (दे०), प्रेमचंद (दे०), चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' (दे०), वृंदावनलाल वर्मा (दे०) और सियारामशरण गुप्त (दे०)।

इस प्रकार द्विवेदी जी के संपादन-काल में 'सरस्वती' ने भाषा के परिष्कार और भाषा की एकरूपता, खड़ी बोली की कविता को प्रतिष्ठित करने, नियमित रूप संपादकीय टिप्पणियाँ लिखने की परंपरा डालने, 'विविध विषय' के अंतर्गत इधर-उधर की जानकारी पाठकों को सुलभ करने तथा संस्कृत, द्विवेदी और अन्य भाषाओं के साहित्य का परिचय देने के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान किया। हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी 'दुलाईवाली' के प्रकाशन का श्रेय भी उसी को है। 1903 से 1920 ई० तक द्विवेदी जी बड़ी दक्षता और निष्ठा से उसका संपादन करते रहे। द्विवेदी-युग का पूरा लेखा-जोखा जानने के लिए सबसे सरल और उत्तम साधन 'सरस्वती' के अंक ही है।

द्विवेदी जी के बाद 'सरस्वती' के संपादक-क्रम में रहे—पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी (दे०) (1921-1925), देवीदत्त शुक्ल (1926), बख्शी (1927-29), शुक्ल जी (1929-46), उमेशचंद्र मिश्र, देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' (जून 1955 अंक), श्रीनारायण चतुर्वेदी।

'सरस्वती' में साहित्यिक लेखों के अतिरिक्त सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर भी लेख लिखे जाते रहे हैं। 1934-35 ई० में भाई परमानंद और जवाहरलाल नेहरू आदि प्रसिद्ध राजनीतिक नेताओं के लेख प्रकाशित हुए। दिसंबर 1961 ई० मे इसने हीरक-जयंती-समारोह मनाया। हिंदी-प्रेमी भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद के सौजन्य से यह समारोह राष्ट्रपति भवन (दिल्ली) मे मनाया गया और उस अवसर पर इसका बृहद् हीरक-जयंती-अंक उन्हें भेंट किया गया।

सरस्वतीकंठाभरण (सं० कृ०) [रचना-काल—ग्यारहवीं शती का आरंभ]

भोजराज (दे० भोज) द्वारा विरचित 'सरस्वतीकंठाभरण' अलंकारशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ में पाँच परिच्छेद एवं 643 कारिकाएँ हैं जिनमें मुख्यतः काव्यदोष, काव्यगुण, अलंकार, रस, भाव, संधि-चतुष्टय आदि का प्राचीन आलंकारिकों के मतों-सहित युक्तियुक्त पूर्णतः नवीन विधान प्रस्तुत किया गया है।

भोज ने अपने 'सरस्वतीकंठाभरण' में प्राचीन ग्रंथकारों के लगभग 1500 श्लोक उद्धृत किए है। अतः ग्रंथ में आए उद्धरणों की सहायता से अनेक कवियों का समय-निरूपण सरलता से किया जा सकता है। 'सरस्वतीकंठाभरण' रत्नेश्वर की टीका के साथ काव्यमाला मे प्रकाशित हुआ है।

सरस्वतीचंद्र *(गु० कृ०/पा०)*

गोवर्द्धनराम त्रिपाठी द्वारा प्रणीत 'सरस्वती-चद्र' उपन्यास का मुख्य पात्र 'सरस्वतीचद्र' ही है। लेखक ने समकालीन राजनीतिक और सामाजिक परिवेश मे इस नायक की जीवन-यात्रा अकित की है। सरस्वतीचद्र धीरोदात्त, धीर-गभीर और धीर-ललित पात्र है जो आदर्शानुरागी है। बबई के धनपति लक्ष्मीनदन सेठ का वह मातृहीन पुत्र है। विद्याप्रेमी होने के कारण वह एम० ए० की परीक्षा उच्च श्रेणी मे उत्तीर्ण कर पारितोषिक और पदक जीतता है। विद्वत्ता के साथ सरस्वतीचद्र मे सर्जनशीलता भी है। वह काव्य-रचना करता है। उसमे सुरुचि है। रसिकता और सहृदयता के गुण विशेष मात्रा मे विद्यमान है। रत्ननगरी के प्रधान विद्याचतुर की सुदर और सुशील पुत्री कुमुदसुदरी के साथ सरस्वतीचद्र का विवाह होना तय हुआ है। गोवर्द्धनराम न 'सरस्वतीचद्र' उपन्यास मे इस प्रणयी युगल की प्रणय-चेष्टाओ का बडा ही रोचक तथा सरल वर्णन किया है। इनका प्रेम विमाता गुमान की ईर्ष्या और रोष का कारण बनता है। वह दुर्व्यवहार करती है। इससे सत्रस्त सरस्वतीचद्र गृहत्याग कर अभावो का जीवन जीने लगता है, अपनी प्रियतमा कुमुद का परित्याग करता है और अभिन्न चद्रकात की अवहेलना करता है। उसमे विवेक बुद्धि और व्याव-हारिक अनुभव का अभाव है। उसी के कारण सर्वगुण सपन्न कुमुदसुदरी को प्रमादधन से विवाह करना पडता है जो मदबुद्धि शराबी वेश्यागामी और प्रमादी है। कुमुद के दुखमय जीवन का पूरा दायित्व सरस्वतीचद्र की विवेकहीनता और आदर्शवाद पर है। वह स्वय भी गृह-त्याग के पश्चात अपमान, उपेक्षा और असह्य पीडाओ से घिरा हुआ जीवन जीता है। परतु सरस्वतीचद्र के पात्र म हृदय की निश्छलता और उदारता है। वह शुद्ध बुद्धि आतरिक शुभ्रता और निर्मल चरित्र का नवयुवक है और उसके ये गुण ही सबको आकर्षित करते हैं। इसीलिए वह सबका प्रीतिभाजन और प्रशसापात्र बना रहता है। लेखक ने आदर्श-साधक सरस्वतीचद्र को उपन्यास के उत्तरार्ध मे सुदर गिरि पर आदर्श सवक के रूप मे प्रस्तुत किया है जो कुमुदसुदरी से विवाह कर 'कल्याण ग्राम' की रचना का सकल्प करता है। इस अतिम अक को छोडकर उप-न्यास के शेष भाग मे गोवर्द्धनराम ने सरस्वतीचद्र का बहुत सुदर और स्वाभाविक चरित्र-चित्रण किया है। गुजराती उपन्यास साहित्य म सरस्वतीचद्र का चरित्र अविस्मरणीय और बेजोड है। वह जितना भव्य है, उतना ही दिव्य है। गोवर्द्धनराम त्रिपाठी की वह अमर सृष्टि है।

सरहपा *(अप० ले०)*

चौरासी सिद्धो मे सर्वप्रथम सरह का नाम है। सिद्धो के नाम के पीछे लगा 'पा' 'पाद' का विकृत रूप है। 'पाद' शब्द सम्मान का द्योतक है। सरहपा के अन्य नाम राहुल भद्र और सरोजवज्र भी हैं। ये जन्म से ब्राह्मण थे, पीछे स भिक्षु हो गए थे। ये सस्कृत के भी अच्छे विद्वान् थे। जब इनका ध्यान मत्र-तत्र की ओर आकृष्ट हुआ तब ये एक बाण (=शर/सर) बनाने वाले की कन्या को महामुद्रा बना कर अरण्य म रहने लगे। वहाँ ये स्वय भी बाण बनाने लगे। इसी कारण इनका सरह नाम पडा। शबर पाद इनके प्रधान शिष्य थे। विद्वानो न सिद्धो का समय 633 ई० से 1200 ई० तक भिन्न-भिन्न कालो मे माना है।

इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—'कायाकोश', 'अमृत-वज्रगीति', 'चित्रकोष', 'अज-वज्रगीति', 'डाकिनी-गुह्य-वज्रगीति', 'दोहाकोश उपदेशगीति, 'दोहाकोष', 'तत्त्वोप-देश शिखर-दोहाकोश', 'वसनातिलक दोहाकोश', 'चर्या-गीति दोहाकोश', 'सरहपादगीतिका' इत्यादि। ये ग्रथ 'वज्रयान' के विवेचन से सबधित है।

इनकी कविता के विषय हैं—रहस्यवाद (दे०), पाखड-खडन, मत्र देवतादि की व्यर्थता, सहज मार्ग, योग से निर्वाण-प्राप्ति, गुरु की महत्ता का गान आदि। सरह न काया को ही सर्वोत्तम तीर्थ माना है और इसी मे परम सुख-प्राप्ति का निर्देश किया है।

इन्होंने चित्त शुद्धि और चित्त स मुक्ति को निर्वाण-प्राप्ति का साधन माना है। मन को स्थिर करने का भी उपदेश दिया है।

इनके 'चर्या गीतो' की भाषा पूर्वी अपभ्रश है और 'दोहा-कोश' के पद्यो की भाषा पश्चिमी अपभ्रश (शौरसनी) है।

सरिसृप *(उ० कृ०)*

1970 ई० मे साहित्य अकादेमी पुरस्कार-प्राप्त इस कविता-सकलन के कवि हैं विनोदचद्र नायक (दे०)। इस शती के चतुर्थ दशक म सच्चिदानद राउतराय (दे०)

ने जिस नूतन कविता की परंपरा उड़िया साहित्य को दी थी, उसी परंपरा में दीक्षित इस कवि की कविता की नूतनता, सतेजता सुस्पष्ट है। भाषा-प्रयोग में वैसा कुछ वैशिष्ट्य न होते हुए भी बिंब एवं परिवेश में कवि का निजत्व प्रकट हुआ है। उड़ीसा के ग्राम्यांचल एवं ग्राम्य-जीवन को त्याग कर आधुनिक कवि होने का प्रयास उन्होंने नहीं किया है।

'सरूर' *(उर्दू० ले०)*

दे० आले अहमद 'सरूर'।

सरूर *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1873 ई०; मृत्यु—1910 ई०]

इनका पूरा नाम मुंशी दुर्गा सहाय, उपनाम 'सरूर', पिता का नाम हकीम प्यारेलाल, जन्म-स्थान जहानाबाद है। इनकी गणना उर्दू के समर्थ कवियों में होती है। शुद्ध भारतीय तत्वों से ओत-प्रोत इनका काव्य भाव और कला दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि का है। पद्मिनी, सीता की गिरिया-ओ-ज़ारी, सती, बुलबुल-ओ-परवाना, वीरबहूटी, कोयल, मुर्गाबी, गंगा, यमुना, तथा लाजपतराय विषयक इनकी कविताएँ बड़े मार्के की हैं। कल्पना का औदार्य, अनुभूति की तीव्रता तथा अभिव्यंजना की उत्कृष्टता इनके काव्य के विशेष गुण हैं। उर्दू काव्य में हिंदी शब्दों के प्रयोग की प्रवृत्ति को इनके द्वारा बड़ा बल मिला। इनके दो काव्य-संग्रह हैं—'खुमखाना-ए-सरूर' और 'जाम-ए-सरूर' जो मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुए।

'सरूर', रजब अली बेग *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1823 ई०; मृत्यु—1860 ई०]

नाम—मिर्ज़ा रजब अली; उपनाम—'सरूर'। जन्म-स्थान—लखनऊ। पिता का नाम—मिर्ज़ा असग़र अली। मिर्ज़ा ग़ालिब इनके मित्रों में से थे। इनकी दो कृतियों की भूमिका भी मिर्ज़ा ग़ालिब ने लिखी है। 'फ़साना-ए-अजायब' (दे०) इनकी प्रसिद्ध कृति है। 'सरूरखानी' (शमशीरखानी का अनुवाद) और 'गुलज़ार-ए-सरूर' (हदायक—'उल उश्शाक' का अनुवाद) के अतिरिक्त 'इंशा-ए-सरूर' और 'शगूफ़ा-ए-मुहब्बत' का प्रणयन भी इन्होंने किया था। 'फ़साना-ए-अजायब (दे०) इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। यह प्रेमाख्यान है। इसकी भाषा शब्दाडंबर और वाक्याडंबर से ओतप्रोत है। इस प्रकार की शैली के लेखक के लिए वस्तुतः अद्भुत विद्वत्ता और भाषा पर अपूर्व 'अधिकार' अपेक्षित है। इस कसौटी पर सरूर साहब पूरे उतरते हैं। इनकी इस कृति के अध्ययन से पाठक पर यह वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है कि एक अच्छा गद्य-लेखक साधारण से कथानक को भी कितना भावमय, रोचक और कौतूहलपूर्ण बना सकता है।

सरोज *(पं० कृ०)*

सरोज नानकसिंह के उपन्यास 'अधखिड़िया फुल्ल' की नायिका है। इसके माध्यम से बाल-विधवा की अतृप्त भावनाओं एवं अभावग्रस्त जीवन का यथार्थ निरूपण किया गया है। कुलदीप के प्रति असफल प्रेम की प्रतिक्रियास्वरूप यह वरियामसिंह के सहयोग से समाज-सेवा में प्रवृत्त हो जाती है। परंतु मानसिक अस्थिरता के कारण विक्षिप्तावस्था में काल-कवलित होती है। लेखक ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चरित्र-चित्रण करते हुए नारी-संबंधी परंपरावादी दृष्टिकोण का प्रभावशाली ढंग से अंकन किया है। सरोज का प्रेम शारीरिक न होकर आंतरिक है, जिस पर 'प्रीत आदर्शों' की छाप है।

सर्वहरा *(उ० कृ०)*

'सर्वहरा' श्री लक्ष्मीधर नायक (दे०) का सामाजिक-मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। जहाँ इसमें प्रेम, आर्थिक विषमता, सामाजिक व्यवस्था-संबंधी अनेक सामाजिक प्रश्न उठाए गए हैं, वहाँ सुरमा (दे०) के माध्यम से नारी के अंतर को उद्घाटित करने का प्रयास भी मिलता है। नारी कर्तव्य की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व निछावर कर सकती है, यहाँ तक कि अपने को भी, किंतु केवल एक वस्तु को छोड़कर···और वह है प्रेम। इसकी उपेक्षा वह नहीं कर सकती। यही कारण है कि कर्तव्य की भावना के वशीभूत होकर सुरमा प्रार्थी किशोर को द्वार से रिक्तहस्त लौटा देती है, किंतु क्या वह सचमुच किशोर की प्रार्थना ठुकरा सकती है? नहीं! नहीं!! कर्तव्य के नाम पर यदि प्रेम निछावर है तो प्रेम की पावन वेदी पर स्वयं उसका जीवन उत्सर्गित है। वह आत्महत्या कर लेती है। न जाने यह उसकी हार है या जीत, किंतु जो कुछ

भी है वह अनुपम है, श्री-मंडित है—नारीत्व का गौरव है।

सर्वज्ञ (क० ले०)

जनकवि सर्वज्ञ का आविर्भाव सोलहवी सत्रहवी शती के मध्य मे हुआ था। इनको 'राष्ट्रकवि' कह सकते हैं। हिंदी-साहित्य मे महात्मा कबीर (दे०) को जो स्थान प्राप्त हुआ है, कन्नड-साहित्य मे सर्वज्ञ को वही स्थान मिला है। विशाल जीवन दृष्टि और निर्भीकता सर्वज्ञ की प्रमुख विशेषताएँ हैं। सर्वज्ञ के माता पिता और देश-काल के सबध मे निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता है। इनकी रचना को कन्नड मे 'सर्वज्ञन वचनगळु' (सर्वज्ञ की वाणी) कहते हैं। इन्होने अपने विचार व्यक्त करने के लिए त्रिपदी छद को चुना जो कन्नड का अपना छद है और जिसमे महत्तर विषयो को भी सुबोध शैली मे व्यक्त करने की शक्ति है।

सर्वज्ञ के वचनो मे यह कहा गया है कि शिवजी के गण पुष्पदत्त के अवतार हैं। जिन वचनो मे इनके माता-पिता के सबध मे कहा गया है उनकी प्रामाणिकता सदिग्ध है। सर्वज्ञ का जन्मस्थान धारवाड जिले का अबलूर है। कहा जाता है कि इनके पिता आराध्य ब्राह्मण मल्लरस थे और माता कुम्हारिन थी। सर्वज्ञ के विषय मे अनेक दतकथाएँ प्रचलित हैं जिनमे सत्याश कितना है, यह कहना कठिन है।

'सर्वज्ञ' नाम के विषय मे भी निश्चित रूप से कुछ कहा नही जा सकता। 'सर्वज्ञ' सभवत कवि की उपाधि थी। यह उपाधि इन्हे कैसे प्राप्त हुई, यह ज्ञात नही है। कुछ विद्वानो के अनुसार सर्वज्ञ इनके इष्टदेव का नाम है। ससार मे कोई सर्वज्ञ नही है, भगवान ही सर्वज्ञ है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि सतत अभ्यास के द्वारा और बहुश्रुत होने कारण कवि सर्वज्ञ हुए थे। इन का एक त्रिपदी छद है जिसका अभिप्राय है कि सर्वज्ञ नाम का व्यक्ति क्या गर्व के कारण वैसा हुआ है ? सभी लोगो से एक एक बात सीखकर (वह) विद्या का ही पर्वत बन गया'। इससे स्पष्ट है कि इनमे अहकार नही था, अपनी सारग्राही बुद्धि के कारण मे सर्वज्ञ कहलाए। इन्होंने 'परदेव' के रूप मे शिवजी स्तुति मनोहर शब्दो मे की है। परतु, ध्यान रखना चाहिए कि इनके शिव कैलासाधिपति शकर नही हैं, वे निराकार, निर्गुण, निरजन हैं। वे सृष्टिकर्त्ता अनादि और अनत हैं। वे सभी प्राणियो मे भी व्याप्त है। उनके समान श्रेष्ठ कलाकार या चित्रकार कोई दूसरा नही है।

कवि, भक्त और समाज-सुधारक के रूप मे सर्वज्ञ के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जा सकता है। इनकी कविता मे ओज है, तेज है। भाषा पर इनका असाधारण अधिकार है। भावो के पीछे भाषा दौडती हुई-सी प्रतीत होती है। इनकी वाणी का कर्नाटक मे इतना अधिक प्रभाव हुआ है कि पडित पामर सबकी जिह्वा पर वह विद्यमान रहती है। इनके छद प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति के रूप मे सर्वत्र प्रचलित हैं।

क्रातिकारी के रूप मे सर्वज्ञ के व्यक्तित्व पर विचार करने पर ज्ञात होगा कि इन्होने सर्वत्र 'सत्' का मडन और 'असत' का खडन किया है। ये मानव धर्म के उपासक थे, इन्होने सभी मानवो को अपना ही समझा था।

सर्वदर्शनसग्रह (स० कृ०) [रचना-काल—1400 ई०]

इसके रचयिता माधवाचार्य हैं। ये माधवाचार्य 'शकरदिग्विजय' (दे०) के लेखक ही है। किंतु आर० नृसिहाचार्य आदि कतिपय विद्वानो का विचार है कि 'सर्वदर्शनसग्रह' के रचयिता सायणमाधव अर्थात् सायण (दे०) के पुत्र माधव हैं, सायण के भाई माधव नही। दक्षिण की परपरा के अनुसार पहले पिता का नाम ग्रहण किया जाता है और फिर पुत्र का। इसी तर्क के आधार पर 'सर्वदर्शनसग्रह' के रचयिता माधव सायण के पुत्र बतलाए जाते हैं।

'सर्वदर्शनसग्रह' के अतर्गत माधवाचार्य की दृष्टि प्रमुख दर्शन-पद्धतियो के सग्रहात्मक वर्णन की रही है। फलत इस ग्रथ मे चार्वाक, बौद्ध, आर्हत, रामानुज, पूर्णप्रज्ञ (माध्व), नकुलीशपाशुपत शैव, रसेश्वर, औलूक्य, अक्षपाद, जैमिनि, पाणिनि, साख्य, पातजल और शकर-दर्शन के सबध म विचार किया गया है। इन दार्शनिक सिद्धातो का विश्लेषण 'सर्वदर्शनसग्रह' मे प्रामाणिक ढग स प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार सग्रह एव सक्षेप की दृष्टि मे यह ग्रथ अत्यत उपादेय है।

सर्वनाम (हि० पारि०)

'सर्वनाम' व्याकरण म उस विकारी शब्द को कहते हैं जो किसी सज्ञा शब्द के स्थान पर (पूर्वापर सबध

से) आता है। 'सर्वनाम' शब्द में भी यही संकेत है कि जो सभी (सर्व) संज्ञाओं (नाम) के स्थान पर आ सके। निरुक्त (दे०) या अथर्ववेद प्रातिशाख्य आदि संस्कृत के ग्रंथों में भी 'सर्वनाम' शब्द इसी अर्थ में मिलता है, किंतु पाणिनि (दे०) ने अपनी अष्टाध्यायी (दे०) में 'सर्वादीनि सर्वनामानि' सूत्र से सर्व, विश्व, उभ, उभय, एक, द्वि आदि 35 शब्दों को ही सर्वनाम माना है अर्थात् पाणिनि में सर्वनाम कोई सामान्य शब्द न होकर इन 35 शब्दों के वर्ग का नाम मात्र है। सर्वनाम के भेद सभी भाषाओं में पूर्णतः समान नहीं होते। हिंदी में पुरुषवाचक, निश्चयवाचक, अनिश्चयवाचक, निजवाचक, प्रश्नवाचक, संबंधवाचक, नित्यसंबंधी आदि मुख्य भेद हैं।

सर्वास्तिवाद *(पा० पारि०)*

इस वाद को यथार्थवाद और हेतुवाद भी कहा जा सकता है। इसमें अयथार्थवाद तथा क्षणिकता के प्रतिकूल बाह्य पदार्थों की सत्ता भी स्वीकार की जाती है। इसीलिए इसे सर्व+अस्ति+वाद (सभी कुछ विद्यमान है) का सिद्धांत कहा जाता है। दूसरे शब्दों में हम इसे द्वैतवाद की संज्ञा भी दे सकते हैं।

भगवान् बुद्ध ने ईश्वर आदि ऐसे 10 विषयों पर बात करने का निषेध किया था जिनका निश्चयात्मक उत्तर इस विश्व में नहीं मिल सकता। किंतु इन्होंने धर्म को स्वानुभूति और तर्क पर आधारित मानकर वैमत्य को अवसर दे दिया था। फलतः उन्हीं विषयों पर चर्चा चल दी जिनका निषेध भगवान् पहले ही कर चुके थे। भगवान् के निषेध की संगति भी जैसे-तैसे लगा ली गई। परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म संप्रदायों में विभाजित होने लगा। सबसे पहले वैशाली की महासंगीति में महासांघिक मूल थेरवादी (दे० थेरवाद) धारा से पृथक् हो गए और उन्होंने अपनी महासभा की योजना पृथक् रूप में की। बाद में महासांघिक भी अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं में विभक्त हो गए जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण शाखा सर्वास्तिवाद है। यह विचारधारा अशोक के समय से ही चल रही थी; किंतु कनिष्क के समय में इसने व्यवस्थित रूप धारण कर लिया। वैसे इस वाद के अनुयायी इस वाद को 'हीनयान' में ही अंतर्भुक्त करते हैं। किंतु इनके 'त्रिपिटक' (दे०) कुछ भिन्न हैं और पाली की कथावत्थु में इनकी भी आलोचना की गई है। इसके अनुयायी पहले काश्मीर और गंधार में थे तथा वहाँ से मध्य एशिया, तिब्बत और चीन में फैले।

सर्वास्तिवादियों के मत में यह सारा विश्व तथा उसके विभिन्न पदार्थ यथार्थ हैं और देश-काल से नियंत्रित हैं। किंतु जो तत्व संस्कृत हैं उनमें संस्कार धर्म-विपरिवर्तनशील है; अतः शाश्वत नहीं हो सकते। संस्कृत-धर्म चार प्रकार के होते हैं—उत्पाद, स्थिति, व्यय, एवं निरोध। इन धर्मों के कारण वस्तु में परिवर्तन होते रहते हैं किंतु मूलवस्तु सर्वदा बनी रहती है। भूत, भविष्य और वर्तमान का भेद वस्तु-भेद नहीं है, केवल भावभेद है। कटक, कुंडल इत्यादि में संस्थान-भेद है, वस्तु-भेद नहीं। इस प्रकार इन लोगों के मत में समस्त अतीत अनागत तथा वर्तमान तत्व द्रव्यसत् हैं, यही इस मत का सार है। इसके दो महत्वपूर्ण उपविभाग हैं: वैभाषिक (दे०) और सौत्रांतिक (दे०)।

सवाई माधवराव *(म० पा०)*

यह कृ० प्र० खाडिलकर (दे०)-कृत 'सवाई माधवरावचा मृत्यु' ऐतिहासिक नाटक का नायक है। इसका चरित्र-निरूपण पूर्णतः इतिहासानुमोदित तथ्यों पर हुआ है। केसवशास्त्री के षड्यंत्रों से अनभिज्ञ सरलहृदय माधवराव शिवनेरी के किले में नाना द्वारा कैद किए हुए रघुनाथराव और आनंदीबाई के परिवार-जन से पत्र-व्यवहार करता है। नाना की सेवाओं के प्रति कृतज्ञ होते हुए भी उसके कठोर नियंत्रण के प्रति कभी-कभी उसका मौन आक्रोश फूटता तो है, परंतु नाना के समक्ष कुछ कहने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। यही कारण है कि नाना के पद-त्याग के विचारों से अवगत होने पर वस्त हो वह कह उठता है—'नाना मैं कभी आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ कर सकता हूँ!' केसवशास्त्री की बातों पर सहज विश्वास कर लेने के कारण ही वह अपनी माँ, पत्नी और सास के चरित्र पर संदेह करने लगता है—'मेरी माँ व्यभिचारिणी और सास छिनाल है', अथवा 'बाई, विवाह से पूर्व क्या नाना तेरे घर आते थे?' संदेह के इस विष-वृक्ष के कारण ही मानसिक विक्षिप्तता के उन्माद में वह महल की छत से गिर कर मृत्यु को प्राप्त होता है।

सवाई माधवराव का चरित्र-विकास पंत-प्रधान नाना के कठोर नियंत्रण एवं संशयग्रस्त प्रवृत्ति का परिणाम है। नाना के जड़ीभूत प्रभाव के कारण ही उसके चरित्र का यथेष्ट विकास नहीं हो सका है। फलतः वह सदा ही परमुखापेक्षी बना रहता है। दूसरे शब्दों में

माधवराव का चरित्र नाटककार द्वारा ही परिचालित है। उसमे अपना कहने जैसी कोई चीज नही है। मानसिक दौर्बल्य, नाना का कठोर नियत्रण एव स्वय की शकालुता उसकी चरित्र-विधायक प्रवृत्तियाँ रही हैं।

सवेर सार *(स० कृ०)*

'सवेर सार' करतार सिंह दुग्गल (दे०) की कहानियो का प्रथम सग्रह है। इनमे पोठोहार (रावलपिडी और आसपास) के जीवन का बडे विस्तार से प्रभावशाली निरूपण किया गया है। 'सवेर सार' नामक कहानी मे सूर्योदय के साथ जीवन मे आने वाली ताजगी तथा नये सिरे से कार्यरत होने की लग्न का अत्यत प्रभावशाली चित्र अकित हुआ है। दिन निकलते ही एक व्यक्ति के मन मे किस प्रकार विभिन्न भावो की फिल्म चलने लगती है—इसका बडा ही सुदर वर्णन है। इसी कहानी के आधार पर 'सग्रह' का नामकरण हुआ है।

'त्रेल तुपके', *'कुदरत दा कानून'*, *'पजगीटडा'* इस सग्रह की अन्य प्रसिद्ध कहानियाँ है। आधुनिक कहानी-शिल्प की दृष्टि से इस सग्रह मे कई नये प्रयोग किए गए हैं। 'सवेर सार' शीर्षक कहानी चेतना-प्रवाह की शैली मे लिखी गई है। आधे से अधिक कहानियो मे रुचि का केंद्रबिंदु घटना-विकास नही अपितु भावो का सूक्ष्म तथा अर्थपूर्ण चित्रण है।

सवैया *(प० पारि०)*

सवैया एक छद है जो वार्णिक भी होता है और मात्रिक भी। वार्णिक सवैया चार चरणो का होता है। प्रत्येक चरण का प्रथमार्द्ध 12 वर्णों का होता है और दूसरे मे कभी ग्यारह और कभी बारह वर्ण होते हैं। उदाहरणत —

उस सावल बाझ उदास होई,
अखिआ विच नीद न आए सखी।
कडिआ वागर फुल सेज चुभे
वेले जिउ महल उराए सखी।
दिन रैण सुदैणा दे हाल फिरा,
मैनू खाण त पीण ना भाए सखी।
नी मैं घोल घता जिदडी उस तो,
जेडा राभण नाल मिलाए सखी।

(मोहनसिंह—दे०)

मात्रिक सवैया भी चार चरणो का होता है। परतु पजाबी के कवियो ने चार से अधिक चरणो के सवैये भी लिखे हैं। इसमे प्रत्येक चरण मे 31 मात्राएँ होती है और 16 तथा 15 मात्राओ पर यति होती है।

सवैया *(हिं० पारि०)*

बाईस से लेकर छब्बीस वर्णों तक के वृत्त 'सवैया' कहलाते है। इस छद के मुख्य भेद मदिरा, चकोर, मतगयद, अरसात, किरीट, दुर्मिल, सुदरी आदि होते हैं। ये सवैया छद प्राय सात या आठ गणो से बनते है। यहाँ पर दुर्मिल सवैया का उदाहरण दिया जा रहा है, जिसके प्रत्येक चरण मे आठ सगण होते हैं। इसका दूसरा नाम 'चद्रकला' भी है। उदाहरण इस प्रकार है—

तडपै तड़िता चहुँ ओरन ते, छिति छाइ समीरन की लहरैं,
मदमाते महागिरि-शृगन पैं, गन मजु मयूरन के कहरैं।
इनकी करनी बरनी न परै, मगरूर गुमानन सो गहरैं,
घन ये नभ मडल मे छहरैं घहरैं कहुँ जाय कहूँ ठहरैं।।

ससुई-पुन्हूँ *(सि० पा०)*

ससुई और पुन्हूँ एक प्रसिद्ध सिंधी-प्रेमगाथा के पात्र है। ससुई का जन्म एक ब्राह्मण के घर मे हुआ था, परतु भाग्य-चक्र के कारण उसका पालन-पोषण भँभोर के मुहम्मद नामक एक धोबी के यहाँ हुआ। यौवनावस्था मे पदार्पण करने पर ससुई के सौदर्य की प्रशसा चारो ओर होने लगी। कच-मकरान (बलोचिस्तान) का शाहजादा पुन्हूँ भी सुदरता मे अद्वितीय था। भाग्य ने ससुई और पुन्हूँ को मिलाया, दोनो का विवाह हुआ। परतु पुन्हूँ के पिता को यह स्वीकृत न था कि उसका पुत्र एक धोबिन के प्रेमपाश मे फँस कर उसके पास ही रहने लगे। इसके फलस्वरूप पुन्हूँ के भाई एक रात पुन्हूँ को भँभोर से भगाकर उसे अपने देश वापिस ले गए। ससुई अपने प्रियतम के वियोग मे विह्वल होकर उसे पाने के लिए घर को त्याग कर निकल पडी और पहाडो और जगलो मे भटकते-भटकते मर गई। इसी बीच पुन्हूँ भी ससुई से मिलने के लिए अपने पिता की कैद से भाग निकला। रास्ते मे जहाँ ससुई की मृत्यु हुई थी वहाँ पहुँचने पर जब उसे अपनी प्रियतमा के देहावसान की जानकारी हुई तो उसके प्राण-पखेरू एकदम उड गए। सूफी-मत कवियो ने ससुई को भक्त, और पुन्हूँ को परमात्मा के रूप मे वर्णित किया

है। सिंधी-साहित्य में कई स्थानों पर इन अमर प्रेमियों के संदर्भ मिलते हैं।

सस्सी-पुन्नूँ *(पं० कृ०)* [रचना-काल—उन्नीसवीं शती का पूर्वार्ध]

प्रसिद्ध सूफ़ी कवि हाशम (दे०) की चार क़िस्सा-कृतियों में 'सस्सी-पुन्नूँ' को विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। अट्ठाईस मात्राओं वाले चार-चार चरणों के केवल 126 छंदों की इस लघु रचना मे आदम जान की पुत्री सस्सी और अली होत के पुत्र पुन्नूँ के प्रेम की दुःखांत कथा है। अनिष्ट घडी मे जन्म लेने के कारण सस्सी को अपार धन-राशि सहित एक संदूक़ में बंद कर नदी मे प्रवाहित कर दिया गया। वह निःसंतान धोबी अत्ता के हाथ लगी जिसने बड़े लाड़-प्यार से उसका लालन-पालन किया। स्वच्छंद विहारिणी सस्सी-पुन्नूँ की एक प्रस्तर-प्रतिमा पर मुग्ध हो गई और परिवार तथा समाज के विरोध की उपेक्षा कर अपने प्रेमी से विवाह कर लिया। नायक के परिवार को यह बुरा लगा और वे लोग विवाह के दूसरे ही दिन छलपूर्वक पुन्नूँ को लौटा ले गए। वियोग संतप्ता सस्सी प्रियतम की खोज में घर से निकल पड़ी और तप्त मरुस्थल मे भटकते-भटकते मर गई। उसे खोजता हुआ पुन्नूँ भी उसी मरुस्थल में खो गया। इस संपूर्ण रचना पर नायिका का चरित्र छाया हुआ है। नायक सहित अन्य सभी पात्र मौन दर्शक मात्र प्रतीत होते हैं। सरल एवं प्रचलित फ़ारसी शब्दों से मिश्रित केंद्रीय पंजाबी में लिखित इस रचना में भारतीय परंपरा का उपमान-विधान है। हाशम की रचना मे वारिसशाह (दे०) जैसा विस्तार नहीं है परंतु अपनी कसी हुई संहित शैली के द्वारा पाठक के हृदय में उनकी पैठ कहीं अधिक गहरी है।

सहजानुभूति *(पारि०)*

सहजानुभूति (इंट्यूशन) को, जिसके लिए *हिंदी में 'प्रातिभज्ञान' और 'स्वप्रकाशज्ञान' शब्दों का भी* प्रयोग हुआ है, सृजनात्मक शक्ति मानने वालों में बर्गसाँ, क्रोचे और ज्याक मारितें प्रमुख है। बुद्धि और ऐंद्रिय बोध से भिन्न इसे प्रत्यक्ष अंतर्दृष्टि कहा गया है जिसके द्वारा कलाकार अपने अंतर्मन में वस्तु का पूर्ण प्रत्यक्षीकरण कर लेता है। क्रोचे ने इसे आंतरिक अभिव्यंजना माना है जो बिंब (दे०) रूप होती है तथा सौंदर्य-तत्त्व को जन्म देती है। इसी पर इसका प्रसिद्ध समीकरण स्थित है : कला (दे०) = सहजानुभूति (दे०) = अभिव्यंजना = सौंदर्य। पर सहजानुभूति को ही कला मानना संगत नहीं, क्योंकि कला मूलतः कृतित्व है जिसमें सहजानुभूति को कला-कृति के रूप में रूपायित किया जाता है। संस्कृत-काव्य-शास्त्र में निरूपित 'प्रतिभा' और सहजानुभूति में पर्याप्त साम्य है—दोनों बुद्धि एवं ऐंद्रिय संवेदनों से परे हैं, दोनों का संबंध प्रत्यक्ष अंतर्दृष्टि से है, जो कवि-मानस में सहसा त्वरित वेग से काव्य-विषय को प्रकाशित कर देती है।

सहरुलबयान, मसनवी *(उर्दू० कृ०)*

दे० मसनवी सहरुलबयान।

सहस्रबुद्धे, पु० ग० *(म० ले०)*

ये वैज्ञानिक दृष्टि वाले निबंधकार एवं आलोचक हैं। इन्होंने नवीन मानव-मूल्यों की युक्तिसंगत विवेचना 'विज्ञानप्रणीत समाज-रचना' नामक निबंध-संग्रह में की है। बहुतों को बहुत सुख मिले इस व्यापक मानवीय मूल्य के ये समर्थक हैं। कतिपय निबंधों में इन्होंने प्रायोगिकता, बुद्धिवाद, समता, व्यक्ति-स्वातंत्र्य आदि आधुनिक सांस्कृतिक मूल्यों का विवेचन किया है। आध्यात्मिक, मानसिकता और शारीरिक सुख की श्रेष्ठता का क्रम इन्हें मान्य नहीं है। इनके अनुसार आध्यात्मिक सुख हीन कोटि का है; मानसिकसुख शारीरिक सुख से अवश्य ही श्रेष्ठ है। 'स्वभावलेखन' शीर्षक शोध-प्रबंध पर इन्हें पी-एच० डी० की उपाधि मिली थी। 'साहित्यातीत जीवनभाष्य' इनका साहित्यशास्त्र-संबंधी ग्रंथ है जिसमें ऑर्नल्ड द्वारा दी गई साहित्य की परिभाषा 'काव्य-जीवन की आलोचना है' के समर्थन के लिए अनेक उदाहरण दिए गए है।

इन्होंने 'सत्याचे वाली' नामक नाटक तथा कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं। कहानियों में सामाजिकता का तत्त्व उभरा है। *'पतिहत्या', 'लपलेले खडक'* आदि कहानियाँ इसी प्रकार की हैं।

सह्याद्रि वर्णन *(म० कृ०)* [रचना-काल—1332 ई०]

इस काव्य के रचयिता हैं श्री रवलोव्यास।

परमेश्वर के पाँच अवतारों में 'दत्तात्रेय' की गणना है। महानुभाव पंथ के मान्य अवतार श्री दत्तात्रेय का यह 'लीलाचरित्र' है। 'सह्याद्रि' इनका लीलास्थान है। भक्ति-भावना से प्रेरित होकर इस काव्य की रचना की गई है।

साङ्कृत्यायन, राहुल (हिं० ले०) [जन्म—1893 ई०, मृत्यु—1963 ई०]

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ ज़िले के पनदहा ग्राम में हुआ। ये श्री गोवर्द्धन पांडेय की संतान थे जिन्होंने इनका नाम केदारनाथ रखा था। राहुल नाम तो 1920 ई० में उस समय पड़ा जब इन्होंने बौद्ध धर्म अपनाया। इससे पूर्व ये रामोदर स्वामी के नाम से भी जाने जाते थे। साङ्कृत्य गोत्री होने के कारण ये साङ्कृत्यायन कहलाए। ये बहुभाषाविद और महापंडित थे। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, तिब्बती, चीनी, जापानी, सिंहली, रूसी, अँग्रेजी हिंदी आदि विविध भाषाओं पर इन्हें अद्भुत अधिकार था। इतिहास, भूगोल, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, धर्म, साहित्य आदि विविध विषयों पर 150 से अधिक पांडित्यपूर्ण ग्रंथों की रचना करके इन्होंने हिंदी भाषा तथा साहित्य की श्रीवृद्धि करने के साथ-साथ अपनी अपूर्व मेधा का भी परिचय दिया है। 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' (उपन्यास), 'वोल्गा से गंगा' (कहानी-संग्रह), 'घुमक्कड़शास्त्र' तथा 'एशिया के दुर्गम भूखंडों' में (यात्रा-साहित्य), पाँच भागों में निबद्ध 'मेरी जीवन यात्रा' (आत्मकथा साहित्य), 'दर्शन दिग्दर्शन' (धर्म तथा दर्शन), 'मध्य एशिया का इतिहास' (इतिहास), 'तिब्बती व्याकरण' (व्याकरण), आदि इनकी कतिपय उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। लेखों, निबंधों तथा वक्तृताओं की संख्या तो हज़ारों तक पहुँचती है। राहुल जी का साहित्य उनके व्यापक एवं गंभीर अध्ययन, विस्तृत जीवन-अनुभव तथा तीक्ष्ण बुद्धि का फल है। प्राचीन इतिहास तथा वर्तमान जीवन के अछूते प्रसंगों का मर्मस्पर्शी उद्घाटन, असाधारण के स्थान पर साधारण को प्रश्रय तथा विषयानुकूल सीधी, सरल एवं अनलंकृत भाषाशैली का प्रयोग इनके लेखन की कतिपय उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

सांख्यकारिका (सं० कृ०) [रचना-काल—200 ई० पू०]

'सांख्यकारिका' के लेखक ईश्वर कृष्ण हैं। 'सांख्यकारिका' में 73 कारिकाएँ हैं। 'सांख्यकारिका' पर अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं, जिनमें 'माठरवृत्ति', 'गौडपादभाष्य', 'जयमंगला', 'चंद्रिका', 'तत्त्वकौमुदी', 'युक्तिदीपिका' तथा 'सुवर्णसप्ततिशास्त्र' प्रमुख हैं।

'सांख्यकारिका' के अंतर्गत मूलतया तीन तत्त्व स्वीकार किए गए हैं। ये तत्त्व—'व्यक्त', 'अव्यक्त' एवं 'ज्ञ' हैं। इनमें 'ज्ञ' चेतन, 'अव्यक्त' मूला प्रकृति एवं 'व्यक्त' प्रकृति का व्यक्त रूप है। व्यक्त प्रकृति के महत्, अहंकार, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा, गंधतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, शब्दतन्मात्रा, पृथिव्यादि पंचमहाभूत, पंचज्ञानेंद्रियाँ, पंच कर्मेंद्रियाँ तथा मन आदि 23 रूप हैं। इस प्रकार सांख्य में उक्त 23 तत्त्वों के साथ अव्यक्त प्रकृति एवं 'ज्ञ' को मिला कर 25 तत्त्व स्वीकार किए गए हैं।

सांख्यदर्शन में आत्मा के स्थान पर 'पुरुष' को स्वीकार किया गया है। सांख्यदर्शन वेदांत दर्शन की तरह एकात्मवादी न होकर पुरुषबहुलवाद सिद्धांत का प्रतिपादक है। इसमें पुरुषबहुलवाद के अनुसार अनेकविध विषयों के भोक्ता पुरुषों की अनेकता स्वीकार की गई है। कार्य-कारणवाद की दृष्टि से सांख्य सत्कार्यवाद का समर्थक है। सत्कार्यवाद के अनुसार कार्यरूप जगत् कारणरूप प्रधान (प्रकृति) में अव्यक्त रूप से वर्तमान रहता है। यह भी उल्लेखनीय है कि सांख्य में प्रकृति वेदांत की तरह मिथ्या न होकर सद्रूपा है। इसीलिए सांख्य यथार्थवादी दर्शन कहा जाता है।

यदि विचार कर देखा जाए तो 'सांख्यकारिका' समस्त सांख्य दर्शन का अनुपम ग्रंथ है। इस लघुकाय ग्रंथ के अंतर्गत सांख्य दर्शन के सिद्धांतों का विश्लेषण वैज्ञानिक पद्धति से किया गया है।

सागत्य (क० पारि०)

सागत्य कन्नड का एक प्रसिद्ध वृत्त है। इसके बहुल प्रयोग तथा व्याप्ति को दृष्टि में रखकर इसे 'लोकछंद' भी कहा जा सकता है। इसके प्रथम और तृतीय चरणों में चार विष्णु गण होते हैं एवं द्वितीय और चतुर्थ चरणों में दो विष्णु गण तथा अंत में एक ब्रह्म गण होना है। विष्णु गण के बदले यत्र-तत्र ब्रह्म गण भी हो सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि सागत्य छंद में लिखित काव्यों में स्वाभाविक माधुर्य और गीतात्मकता होती है। कवियों ने इसके प्रयोग में 'नैपुण्य' और वैविध्य का प्रदर्शन किया है।

देवराज (1600 ई०) के 'सोवगिन सोवे' में सागत्य छंद सर्वप्रथम प्रयोग दिखाई पड़ता है। स्व०आर० नरसिंहाचार्य (दे०) जी ने शिशुमायण को इसका प्रथम प्रयोगकर्ता बताया था और कहा था कि शिशुमायण का समय 1223 ई० है। परंतु आज के विद्वान् उनको बाद का कवि मानते हैं, अतः देवराज का काव्य ही इस छंद मे लिखित प्रथम काव्य प्रतीत होता है। इसके बाद कन्नड के अनेक कवियों ने सांगत्य छंद का प्रयोग किया है। इनमें तेरकणांबिबोम्मरस, शिशुमायण, निजगुणशिवयोगी (दे०), कनकदास (दे०), रत्नाकरवर्णि (दे०), वादिराज, हेलवनकट्टेगिरियम्मा (दे०), होनम्मा (दे०), का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

'सांगी', अब्दुल हुसैन खान *(सिं० ले०)* [जन्म—1851 ई०; मृत्यु—1924 ई०]

ये सिंध के अंतिम मीर अथवा टालपुर हाकिमों के वंशज थे। इनके पिता मीर अब्बास अली खान और दादा मुहम्मद नसीर खान को अँग्रेज़ो ने सिंध पर विजय पाने के पश्चात् क़ैद कर कलकत्ता भेज दिया था और वहीं इनका जन्म हुआ था। 1862 ई० में ये सिंध लौटे थे और वहाँ अपने चाचा की निगरानी में ही इनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी। ये बाद मे फर्स्ट क्लास मैजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त किए गए थे। अब्दुल हुसैन खान का काव्य 'दीवान सांगी' नाम से दो भागो में प्रकाशित हुआ है। उसमें सिंध के प्राकृतिक और सामाजिक चित्रों के साथ-साथ कवि के जीवन की घटनाओ के भी कई चित्र मिलते है। सांगी साहिब के काव्य मे शृंगार रस की अधिकता है। इन्होंने कई-नयी उपमाएँ और रूपक अपने काव्य में प्रयुक्त किए है जो कवि के दैनिक जीवन की अनुभूतियों पर आधारित हैं। कहीं-कही ये अलंकारों के मोह मे इतने फँस जाते है कि भाव की दृष्टि से इनकी कविता निर्जीव-सी बन जाती है। सागी की कविताओं मे फ़ारसी-शब्दों का अधिक प्रयोग मिलता है, जो भाषा की स्वाभाविकता को नष्ट कर देता है।

सांडेसरा भोगीलाल *(गु० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

डा० सांडेसरा बड़ौदा के महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय में गुजराती विभाग के अध्यक्ष है। इनकी रुचि अनुसंधान के प्रति रही है और इन्होंने अनेक प्राचीन और मध्यकालीन ग्रंथों का संपादन किया है। नरसिंह (दे० नरसिंह मेहता) से पूर्व के साहित्य की खोज करके उन्होंने उस युग के साहित्य पर प्रकाश डाला है। इनकी प्राचीन साहित्य की 30 संपादित पुस्तकें हैं और अनुसंधान-विषयक लेखों की चार। इनकी शोध-पुस्तकें हैं: 'इतिहासनी केडी', 'वस्तुपालनु विद्यामंडल अने बीजा लेखो', 'संशोधनी केडी' और 'इतिहास अने साहित्य'। गुजरात के शोध साहित्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा है।

सांबशिव राबु, पोतुकूचि *(ते० ले०)* [जन्म—1938 ई०]

श्री सांबशिव राबु समसामयिक जीवन के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को प्रस्तुत करने वाले उपन्यासकार एव कथाकार है।

'उदयकिरणालु', 'अन्वेषणा', 'एडुरोजुल मजिली' आदि इनके उपन्यास हैं। इनकी रचनाओं में मध्यवर्ग के सामान्य परिवारों से संबंधित अनेक समस्याओं का चित्रण मिलता है। मध्यवर्ग के आर्थिक पतन, पुराने आचार-विचारों तथा मर्यादाओं के बंधनो मे पिसकर अपने आपको समय के अनुकूल ढालने में असमर्थ घुट-घुट कर नष्ट होने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग न पाने की विवशता आदि का मार्मिक चित्रण इनकी रचनाओं में मिलता है।

सांवता माली *(म० ले०)* [जन्म—1250 ई०; मृत्यु—1295 ई०]

इनका निवासस्थान था—अरणभेंडी और ये माली का व्यवसाय करते थे। भक्ति-भावना से ओतप्रोत इनके अनेक अभंग मिलते हैं। कहा जाता है कि संत ज्ञानेश्वर (दे०) भी इनसे मिलने गए थे। इन्होंने अपने जीवन में भक्ति और कर्मयोग का अद्भुत समन्वय किया था।

साकेत *(हि० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1932 ई०]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (दे०) ने 'साकेत' को अपना कवि-धन स्वीकार किया है। खड़ी बोली के निर्माता कवि का प्रौढ़ कौशल रस महाकाव्य में प्रकट हुआ है। फलतः उसमें काव्यत्व का पूरा विकास दिखाई पड़ता है। उसके सृजन की मूल प्रेरणा तो है रामकाव्य

की उपेक्षिता उर्मिला (दे०) का उद्धार परतु प्रबुद्ध कवि की पद्रह सोलह वर्षों की अविचल साधना के कारण' 'साकेत' भारतीय जीवन का भव्य चित्र बन गया है।

द्वादश सर्गात्मक इस महाकाव्य का मूल आधार 'रामायण' (दे०) की प्रख्यात कथा है परतु 'कवि ने उपेक्षित स्थलो म भावना का रग भर कर अप्राकृतिक घटनाओ की वैज्ञानिक व्याख्या करके और अस्वाभाविक प्रसगो के मनोवैज्ञानिक कारण उपस्थित कर कथा के कलेवर को ही बदल दिया है। 'उर्मिला विरह 'कैकेयी-पश्चाताप' आदि मार्मिक स्थलो मे उसकी असाधारण कारयित्री प्रतिभा के दर्शन किए जा सकते हैं।

'साकेत' का अगी रस विप्रलभ शृगार है परतु जीवन की विविधता का समावेश होने से अन्य रस भी अग रूप म विद्यमान हैं। लकायुद्ध का वर्णन वीर रस का श्रेष्ठ उदाहरण है। अश्रु-हासमय गार्हस्थ्य जीवन के विविध पक्षो का चित्रण करने मे तो कवि को अपूर्व सफलता मिली है। वैचारिक धरातल पर उसका सास्कृतिक पक्ष अत्यत प्रबल है। उसम जीवन का जो आदर्श चित्रित हुआ है वह त्यागमय भोग का चिरतन भारतीय आदर्श है। धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन के चित्रण मे सारग्राहिणी कवि दृष्टि ने भारतीय सस्कृति के मूल तत्त्वों की प्रतिष्ठा के साथ ही स्वस्थ विदेशी प्रभावो का भी समन्वय किया है।

'साकेत का कला-पक्ष भी अपने ढग स काफी आकर्षक है। कथा वर्णन म रोचकता नाटकीयता और मनोविज्ञानिकता का समावेश है और रूप विधान मे कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। सवाद रोचक और प्रभावशाली है और भाषा समृद्ध एव प्रौढ है। सक्षप म साकेत भारतीय जीवन के चिरतन आदर्शों का प्रतिनिधि महाकाव्य है। उसकी कथा प्रख्यात होते हुए भी मौलिक उद्‌भावनाओ से मडित है। उद्‌देश्य महत् और शैली गरिमामयी है। सास्कृतिक आदर्श और काव्य-वैभव के इस दुर्लभ समन्वय ने मैथिलीशरण गुप्त को तुलसी (दे० तुलसीदास) और प्रसाद (दे०) जैसे मनस्वी कवियो की श्रेणी म प्रतिष्ठित कर दिया है।

साक्षी (*ते० कृ०*) [रचना-काल—1913-1930 ई० के लगभग]

इसके लेखक का नाम पानुगटि लक्ष्मी नरसिंहराव (दे०) है। ये प्रधानत एक सफल नाटककार तथा निबधकार के रूप मे प्रसिद्ध है। इनके निबध-सग्रह साक्षी' के नाम से 6 भागो मे प्रकाशित हुए हैं। समय-समय पर लिखित इन निबधो की रचना का आरभ 1913 ई० मे हुआ था। उस समय के निबध 'सुवर्णलेखा' नामक पत्रिका म प्रकाशित होते थे। बीच म कुछ समय तक इनकी रचना रुक गई थी। फिर 1920 ई० से आरभ होकर आध्र पत्रिका' म इनका प्रकाशन होने लगा था। बाद मे स्वतत्र रूप से इनके सग्रह प्रकाशित हुए।

अँग्रेजी म एडिसन और स्टील न 'स्पेक्टेटर' के नाम स इसी प्रकार के निबध लिखकर प्रकाशित कराए थे। तत्कालीन समाज की कुरीतियो की हास्य-व्यग्यपूर्वक आलोचना करना ही इनका लक्ष्य था। निबध सग्रह का नाम, निबधो का विषय, इनके अतर्गत विषय-प्रतिपादन की पद्धति तथा इनका लक्ष्य— सभी दृष्टियो स साक्षी मे 'स्पेक्टेटर' का अनुसरण पाया जाता है। लेखक ने एक समाज की कल्पना की है जिसमे 'साक्षी' के अतिरिक्त जघाल शास्त्री, वाणीदास और बोर्रय्य सेट्टि नामक तीन अन्य सदस्य हैं। उक्त समाज के माध्यम से साक्षी' के द्वारा दिए गए भाषणो के रूप मे इन निबधो की रचना की गई है। निबधो का विषय किसी एक क्षेत्र म सीमित नही है। इनम धार्मिक, राजनीतिक सामाजिक आदि सभी क्षत्रो स सबद्ध विषयो को ग्रहण किया गया है। लेखक का कहना है कि समाज के अतर्गत पाए जाने वाले सभी प्रकार के अपराध केवल सरकारी कानून के अनुसार दी जाने वाली सजा के द्वारा ठीक नही किए जा सकते। ऐसे अपराधो के स्वरूप-स्वभाव आदि का विश्लेषण करना, उनस उत्पन्न होने वाले अनर्थों को स्पष्ट करना तथा उनके प्रति समाज म घृणा पैदा करना ही इन निबधो का लक्ष्य रहा है। कुरीतियो की आलोचना के अतिरिक्त कविता जैसी कलाएँ, स्वास्थ्य, राजभक्ति आदि अन्य विषय भी इन निबधो की परिधि के अतर्गत सगृहीत हैं। इनकी आलोचना-पद्धति तथा व्यग्य तीक्ष्ण हैं पर कटु नही है, हास्य की मात्रा अधिक है पर सयमरहित नही है, शैली प्रौढ है पर दुर्बोध नही है।

तेलुगु के निबध-साहित्य तथा गद्य-शैली के विकास म लक्ष्मीनरसिंहराबु-कृत 'साक्षी' का योगदान किसी भी दृष्टि स कम महत्त्व का नही कहा जा सकता।

सागर देखिछा (*अ० कृ*) [रचना काल—1945 ई०]

देवकात बरुवा (दे०) के सागर देखिछा'

नामक इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ द्वितीय महायुद्ध के पूर्व ही लिखी जा चुकी थीं। कविताओं मे मानव के शौर्य और प्रकृति पर उसकी जय का वर्णन है। जीवन की नश्वरता और असहायता तथा संग्राम के काले बादल को चीर कर प्रेम की जो क्षणिक प्रभा जीवन को उज्ज्वल कर देती है उसी को स्थायी करने का प्रयास देवकांत जी की कविताओं में देखा जाता है। रौबर्ट ब्राउनिंग की तरह इनकी कविताएँ नाटकीय मोनोलॉग की तरह किसी काल्पनिक व्यक्ति को संबोधित कर कही गई हैं।

साजाहान *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1909 ई०]

द्विजेंद्रलाल राय (दे०) के 'साजाहान' की कथावस्तु मे विस्तार भी है और वैविध्य भी। नाटक का नामकरण अवश्य शाहजहाँ पर है परंतु वह तेज़ी से बदल रही परिस्थितियों एवं परिवर्तनों का निरुपाय द्रष्टा मात्र है। घटनाओ के नियमन का केंद्रबिंदु औरंगजेब है। नाटककार नाटक के गठन-कौशल में अवश्य सफल रहा है परंतु उसकी नाट्य-प्रतिभा परिचय-पात्र के चरित्रांकन मे व्यक्त हुई है। 'साजाहान' का सशक्त रेखांकन इसका प्रमाण है। पिता के नाते वह अपने बिना माँ के बेटों के प्रति इतना स्नेहातुर एवं द्रवणशील है कि बादशाह शाहजहाँ का न्याय और दंड निष्क्रिय हो जाता है। इसके विपरीत कूटनीति एवं कुटिलता मे सिद्धहस्त औरंगजेब बारी-बारी सबको परास्त कर देता है। भाइयों को निष्क्रिय करने के बाद अपने पुत्र तक पर भरोसा नहीं करता। वह हृदयहीन, कठोर एवं निष्ठुर है परंतु अंत मे उसके मानसिक संघर्ष एवं करुण निवेदन मे मानवीय पक्ष उभारने का प्रयास किया गया है। दारा की रुचि एवं निष्ठा जीवन के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक मूल्यों पर रही है, इसीलिए वह दुःख-दुर्भाग्य में उलझा रहा है। दिलदार जीवंत पात्र है। वह ऊपर से अनजान-मूर्ख सा लगता है परंतु उसकी तात्त्विक एवं सच्ची बातें उसकी सूक्ष्म बुद्धि की परिचायक हैं। नारी पात्रों मे जहाँनारा में पिता के प्रति त्याग एवं स्नेह है। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि औरंगजेब के छद्म-छल को पकड़ने एवं समझने मे तेज रही है। पियारा एक कोमल-भावुक स्त्री है जो जीवन को किसी पूर्वग्रह-द्वेष से नहीं बिगाड़ना चाहती।

नाट्य-शिल्प की दृष्टि से 'साजाहान' एक दुःखांत नाटक है। भावातिरेक का होना स्वाभाविक है। है। इस पर शेक्सपियर के 'किंगलीअर' का प्रभाव पड़ा है। यह नाटक राय की सर्वोत्कृष्ट रचना ही नहीं, विशिष्ट उपलब्धि भी है।

साजाहान *(बँ० पा०)*

द्विजेंद्रलाल राय (दे०)का 'साजाहान'(दे०—बँ० कृ०) अदृष्ट विडंबित मानव-जीवन का मर्मंतुद प्रतिवेदन है। मुग़ल सम्राट शाहजहाँ, शिल्पी शाहजहाँ के जीवन के कष्ट-कंटकित अंतिम कतिपय वर्षों को लेकर यह नाटक रचा गया है। शाहजहाँ के पितृहृदय के अपार ममत्वबोध एवं असीम क्षमा-भाव ने उसे चरम लांछना के आवर्त में निक्षेपित किया है। इस लांछना एवं निर्वासन के बीच जो महती सांत्वना की शांत दीपशिखा शाहजहाँ के हृदय में प्रोज्ज्वलित है, वही उसकी सार्थकता है। हृदय के राज्य मे अश्रु के संगीत में यह चरित्र नित्य-अभिनंदित है। बहिर्द्वंद्व एवं अंतर्द्वंद्व की अपरूप अभिव्यक्तिमय यह नायक चरित्र प्रतिमुहूर्त जिस करुण रंगीन-पथ का अतिक्रमण करता है वह जीवन को महाजीवन की पूर्णता प्रदान करता है।

सात्त्विक भाव *(सं० पारि०)*

रस (दे०) के चार अंग माने गए हैं—विभाव (दे०), अनुभाव (दे०), व्यभिचारिभाव (दे०) और स्थायिभाव (दे०)। इनमे से अनुभाव के चार रूप माने गए हैं—आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक। सत्व के योग से उत्पन्न कायिक चेष्टाएँ 'सात्त्विक अनुभाव' कहाती हैं—इन्हें 'सात्त्विक भाव' भी कहते है। सत्व कहते है रजोगुण और तमोगुण से अस्पृष्ट मन को, और ऐसे मन में उत्पन्न विकारों से स्वतः अर्थात् आयास के बिना-प्रादुर्भूत कायिक प्रक्रिया को 'सात्त्विक अनुभाव' कहते हैं। ये आठ माने गए हैं—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु, विवर्णता, अश्रु और प्रलय। यहाँ यह उल्लेख्य है कि स्तंभ और प्रलय की स्थितियों में आश्रय चेष्टाशून्य हो जाता है, किंतु दोनों मे अंतर यह है कि स्तंभ की स्थिति में उसे चेष्टा न कर सकने का ज्ञान बना रहता है, और प्रलय की स्थिति मे उसे यह ज्ञान नहीं रहता।

साधना *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1928 ई०]

दंडिनाथ कलिता (दे०) का यह द्वितीय किंतु

सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है। धूर्त प्रतिक्रियावादी और स्वार्थी लोगो के साथ सच्चरित्र आदर्शवादियो का सघर्ष इसमे दिखाया गया है। आदर्शवादी युवक दीनबधु निर्भीक और निष्ठावान् है। उसके द्वारा स्थापित स्कूल की अध्यापिका प्रभा उसके गुणो पर मुग्ध है। धूर्त लोग दीनबधु को प्रबध-समिति से हटाकर प्रभा को वशीभूत करना चाहते हैं। प्रभा प्रलोभनो मे नही फँसती तो उसकी कुत्सा प्रचारित की जाती है। दीनबधु साहस के साथ षड्यत्र विफल करता है। उषा नामक एक अन्य लडकी भी दीनबधु पर गुणासक्त है। माता-पिता द्वारा निश्चित विवाह ठुकरा कर उषा दीनबधु के पथ का अनुसरण करती है। प्रभा स्वय चेष्टा कर दीनबधु का विवाह उषा से कराके स्वय चिरकुमारी-व्रत धारण कर दीनबधु के आदर्शो को पूरा करने मे लग जाती है। कथा की यह परिणति कुछ कृत्रिम रह गई है। एक अन्य स्त्री पात्र रभा के द्वारा यह बताने की चेष्टा की गई है कि आधुनिक शिक्षा और अबाध स्त्री-स्वतत्रता हमारे समाज के अनुकूल नही है। दीनबधु को छोड अन्य सभी पुरुष-पात्र लपट दिखाए गए है। इस उपन्यास पर गाधीवाद का पूरा प्रभाव है। प्रेमचद (दे०) के 'प्रेमाश्रम' से इसकी तुलना की जा सकती है। यह तत्कालीन असमीया-साहित्य का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास है।

साधारणीकरण *(पारि०)*

भारतीय काव्यशास्त्र मे विवेचित काव्यस्वरूप की प्रक्रिया से सबद्ध अत्यत महत्वपूर्ण सिद्धात। 'साधारणीकरण' का सामान्य अर्थ है साधारण बनाना। काव्य के सदर्भ मे इसका अर्थ हुआ —काव्य मे वर्णित पात्रो तथा काव्य-निबद्ध कवि-भाव का अपना वैशिष्टय खोकर देश-काल-व्यक्ति, आदि की चेतना से मुक्त सहृदय मात्र के स्तर पर सामान्यीकृत होना। यह एक प्रकार से कवि-भाव के प्रमाता की चेतना तक सप्रेषण की प्रक्रिया है जिसमें एक ओर कवि द्वारा भाषा के विशिष्ट प्रयोग तथा दूसरी ओर प्रमाता की अपनी सास्कृतिक ग्राहिका शक्ति द्वारा सभी प्रकार की परिबद्धताएँ और विशिष्टताएँ नष्ट होकर प्रमाता के लिए उसके अपने साधारण स्तर पर आस्वाद का विषय बन जाती हैं।

सिद्धात-रूप मे 'साधारणीकरण' के प्रवर्तन का श्रेय भट्टनायक (दे०) *को दिया जाता है* जिन्होने रस-निष्पत्ति की प्रक्रिया के विवेचन के क्रम म अपनी मौलिक प्रकल्पना –'भावकत्व'-व्यापार की स्थापना के साथ ही *प्रथम बार 'साधारणीकरण' शब्द का प्रयोग किया।* उनके अनुसार 'विभावादि का साधारणीकरण' होता है, यह वस्तुत 'भावकत्व'-व्यापार ही है जिसके द्वारा रस (दे०) के विभिन्न अग अपनी विशिष्टता खोकर आस्वाद का विषय बन जाते है। अभिनवगुप्त (दे०) ने विभावादि से आगे बढकर 'स्थायिभाव' (दे०) के 'साधारणीकरण' को रेखाकित किया। उनके अनुसार 'विभाव आदि के साधारणीकरण' के *फलस्वरूप स्थायिभाव देशकाल के बधनो* और व्यक्ति ससर्गो से मुक्त हो जाता है। यह प्रक्रिया, अभिनवगुप्त के अनुसार, काव्य की व्यजना-शक्ति द्वारा सपन्न होती है। कविराज विश्वनाथ (दे०) का मत उपर्युक्त दो मतो से कुछ भिन्न है। उन्होने यो तो सभी रसागो—विभावादि और स्थायी का साधारणीकरण माना है, किंतु वे इस सपूर्ण प्रक्रिया मे आश्रय के साथ *प्रमाता के तादात्म्य को अनिवार्य मानते है। सस्कृत-काव्य*-शास्त्र के अतिम समर्थ आचार्य जगन्नाथ (दे०) ने 'साधारणीकरण'-सिद्धात को तो यद्यपि यथावत् स्वीकृति प्रदान नही की, तथापि उन्होने दार्शनिक शब्दावली म एक प्रकार के 'भ्रम' अथवा 'भावना के दोष के कारण प्रमाता द्वारा काव्य मे वर्णित आश्रय के साथ तादात्म्य स्थापित किए जाने का उल्लेख अवश्य किया है। इस प्रकार सस्कृत-काव्यशास्त्र मे स्थूलत तीन प्रकार के मत उपलब्ध होते हैं 'विभावादि का साधारणीकरण', 'स्थायिभाव का साधारणीकरण' और 'प्रमाता द्वारा आश्रय के साथ तादात्म्य'। इसके अतिरिक्त भट्टतौत का मत भी उल्लेख्य है 'नायकस्य कवे श्रोतु समानोऽनुभवस्तत', अर्थात् *'कवि, नायक और प्रमाता—तीनो के भावतादात्म्य* द्वारा साधारणीकरण।' हिंदी मे आचार्य रामचद्र शुक्ल (दे०) के 'साधारणीकरण-सिद्धात' मे भट्टतौत के उपर्युक्त मत की छाया स्पष्टत विद्यमान है। शुक्ल जी ने 'आलबन अथवा आलबनत्व-धर्म के साधारणीकरण को स्वीकार किया है। उनके अनुसार कवि द्वारा आलबन के वर्णन की विशिष्ट रीति उसके रूप की विशिष्टता को अक्षुण्ण रखते हुए भी शीलचारित्र्य आदि की उत्कृष्टता के कारण प्रमाता के मन म भी वैसा ही भाव उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार शुक्ल जी न नैतिकतावादी अपने विशिष्ट जीवन-दर्शन के अनुरूप आश्रय से आगे बढकर *आलबन और उससे भी आगे 'आलबनत्व-धर्म के साधारणीकरण' की प्रकल्पना की जो काव्य के क्षेत्र को अत्यत* सीमित कर देती है। आलबन के व्यक्तित्व के अक्षुण्ण रहते 'साधारणीकरण' सभव ही नही है, दूसरे लाक-प्रच-

लित अथवा धर्मादर्श में स्थापित आश्रय-आलंबन से भिन्न 'चरित्र का साधारणीकरण' भी प्रमाता के विशिष्ट संस्कारों के कारण नहीं हो सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि या तो कवि की निजी दृष्टि पात्रों के स्वरूप में मौलिक उद्भावना नहीं कर सकती, या यदि वह ऐसा करती है तो वह साधारणीकरण शक्ति से संपन्न कवि ही नहीं है।

डा० नगेंद्र (दे०) ने शुक्ल जी के सिद्धांत की इन सीमाओं का उल्लेख करते हुए केवल 'विभावादि के साधारणीकरण' को अमान्य ठहराया है। उनके अनुसार 'कवि की अपनी अनुभूति का साधारणीकरण' होता है। इस मत के अंतर्गत विभावादि के विशिष्ट आदर्श अथवा पारंपरिक रूप के होने या न होने से 'साधारणीकरण' की प्रक्रिया में कोई भी व्याघात उपस्थित नहीं होता। डा० नगेंद्र के अनुसार 'साधारणीकरण' का आधार है 'भाषा का भावमय प्रयोग'। इस प्रकार की भाषा का प्रयोक्ता संवेदनशील कवि 'मानव-सुलभ सहानुभूति' के द्वारा प्रमाता मात्र में अपने काव्य में अभिव्यक्त अनुभूति को पुनः उद्बुद्ध कर सकता है।

साधुकथा *(अ० पारि०)*

असमीया में लोककथा को 'साधुकथा' कहते है। आधुनिक कहानी से पार्थक्य यह है कि ये कथाएँ सदा ही यथार्थवादी नहीं होतीं, इनमें कहीं-कहीं अलौकिकता रहती है। कल्पना की मात्रा भी यथेष्ट हो जाती है। इसकी मुख्य विशेषता है मानव का सरल विश्वास और अनुभूति का प्रकाश। 'तेजीमला', 'तुला आरु तेजा', 'पाणेशै' और 'चंपावती' करुण साधुकथाएँ हैं। 'बूढ़ा आरु बूढ़ी', 'वामुन आरु लिटिकाइ', 'रजा (अर्थात् राजा जो कि सर्वदा विक्रमादित्य होता है) आरु मंत्री' आदि साधारण साधु-कथाएँ है। किसी-किसी में भूत-प्रेतों का वर्णन होता है, किसी-किसी में पशु-पक्षी मानववत आचरण करते हुए दिखाए जाते है। कोई-कोई साधु-कथा प्राकृतिक दृश्यों का कारण बताने का प्रयास करती है। जैसे कि आकाश ऊँचा क्यों है? किसी कथा का प्रेरणा-स्रोत पुराण हैं, किसी का जन-जाति का आख्यान। ऐसी भी कथाएँ हैं जो दूर-दूर देशों में प्रचलित कथाओं से साम्य रखती हैं।

साधु, प्रो० श्यामलाल *(कश्० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

मेधावी छात्र, अँग्रेज़ी में एम० ए० पास किया। अँग्रेज़ी पत्रकार-संपादक भी रहे। कालेजों में अँग्रेज़ी के प्राचार्य रहे और अब प्रधानाचार्य हैं। इनकी अँग्रेज़ी की पुस्तक 'फ़ोक टेल्ज़ फ़्रॉम कश्मीर' पर इन्हें 1965 में राज्य की अकादमी से पुरस्कार प्राप्त हुआ। कश्मीरी में इनका 'वीरबल' नाम का नाटक और 'वुच्छ प्रंग' नाम की विज्ञान-संबंधी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन दोनों प्रकाशनों पर इन्हें क्रमशः राज्य के कल्चरल विभाग तथा यूनेस्को से पुरस्कार प्राप्त हुए। इनकी कश्मीरी कहानियों का 'क़सास' नाम का संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। इनकी भाषा ठेठ कश्मीरी है, और शैली ऋजु। इनकी कहानियों में जहाँ मनोवैज्ञानिक अध्ययन की झलक मिलती है वहीं उनमें मनुष्य-स्वभाव की बारीकियों का विश्लेपण भी मौजूद है।

साने, गीता *(म० ले०)* [जन्म—1907 ई०]

मराठी उपन्यास को सामाजिकता की ओर मोडने के लिए प्रसिद्ध श्रीमती साने की रचनाओं में विभावरी शिरूरकर (दे०) की रचनाओं के समान न तो भावोत्कटता है और न उनका कला-पक्ष ही समृद्ध है, परंतु विचार-पक्ष निश्चय ही अधिक प्रगतिशील है। स्त्री की समस्याओं एवं करुण स्थिति का मार्मिक चित्रण करने के साथ इन्होंने स्त्री-स्वातंत्र्य पर बल दिया है। स्त्री-जीवन से संबद्ध इनके उपन्यास राजनीति और आर्थिक विश्लेषण की ओर मुड़ जाते है। कहीं कामुक पुरुष द्वारा स्त्री पर किए गए अत्याचार का चित्रण है तो कहीं प्रेमी और पति के बीच मानसिक द्वंद्व में झूलती युवती का अंकन और मनोविश्लेषण है। 'धुकें' उपन्यास में इन्होंने स्पष्ट कहा है कि अछूतों का उद्धार आर्थिक स्वतंत्रता के बिना नहीं हो सकता, केवल मानवतावादी दृष्टिकोण से इस समस्या का हल नहीं हो पाएगा। इस प्रकार इनके उपन्यासों में पारिवारिक जीवन पर राजनीतिक और सामाजिक स्थिति के प्रभाव का चित्रण प्रमुख है।

प्रसिद्ध रचनाएँ—'निखळलेली हिरकणी' (निखरी हीरकणी), 'वठलेला वृक्ष' (सूखा वृक्ष), 'लतिका' 'दीपस्तंभ'।

साने गुरुजी *(म०ले०)* [जन्म—1899; मृत्यु—1950 ई०]

त्याग, सेवा, श्रद्धा, परोपकार आदि के लिए

संपूर्ण जीवन अर्पित करने के कारण 'आधुनिक संत' कहे जानेवाले पांडुरंग सदाशिव साने का जीवन माता की छत्र-छाया में बीता और घोर दारिद्र्य में भी माँ के शिक्षा-बल ने उन्हें लड़खड़ाने नहीं दिया। 1930 ई० के राज-नीतिक आंदोलन में ही नहीं बाद के सभी आंदोलनों में भाग लेने के कारण इन्हें कई बार कारावास की यंत्रणाएँ सहनी पड़ी, वहीं इन्होंने अनेक पुस्तकें भी लिखीं और गांधी के समान उपवास भी किए। बच्चों के लिए कथाएँ और उपन्यास लिखने के अतिरिक्त इन्होंने भारतीय संस्कृति समाजवाद आदि पर पुस्तकें लिखी और कई दैनिक तथा साप्ताहिक पत्रों का संपादन किया। अनेक अँग्रेजी ग्रंथों का अनुवाद करने का भी श्रेय इन्हें प्राप्त है। कुल मिला कर इन्होंने 80 पुस्तकें लिखी हैं जिनमें 20 अनुवाद हैं।

इनके उपन्यासों की विशेषताएँ हैं—सात्त्विक वातावरण, उदात्त विचार, संस्कृति के रम्य चित्र करुण रस का उत्कर्ष, कला का अकृत्रिम सौंदर्य, गद्य काव्य जैसी शैली, राष्ट्रीय एकता का संदेश समाज की रूढ़ियों का विरोध। कला के सौंदर्य पर इनकी दृष्टि नहीं है अतः उपदेशमयता-जन्य शुष्कता पुनरुक्ति, अतिशयोक्ति, अनावश्यक विस्तार भाव विविधता एवं गंभीरता का अभाव, व्याख्यान देने की प्रवृत्ति और लंबे-लंबे संवाद सुभाषितों की लड़ी आदि अनेक दोष आ गए हैं। उप-न्यासों के अतिरिक्त इन्होंने कविताएँ तथा जीवनी ग्रंथ भी लिखे हैं।

'श्यामची आई' 'श्याम' आस्तिक, रामाचा शेला', 'संध्या' इनके प्रमुख उपन्यास हैं।

सॉनेट (बँ० प्र०)

सॉनेट या चतुर्दशपदी गीत की रचना सर्व प्रथम भारत में बँगला भाषा में हुई। चौदह पंक्तियों में लिखा जाना ही सॉनेट की एकमात्र विशेषता नहीं है। चरण-संख्या की तरह उसका छंद भी सुनिर्दिष्ट है जिसमें तुक का बंधन अर्थात अंत्यानुप्रास की एक विशेष विधि है जो इस प्रकार है कखखक कखखक गघङ, गघङ। अंतिम छह पंक्तियों में कभी-कभी गघग घगघ या गघगघ अथवा गघघगघ या गघङ उघङ—यह तुक-बंधन भी ग्रहण किया जाता है। बँगला में चतुर्दशपदी के प्रव-र्तन का उल्लेख करते हुए प्रमथ बाबू ने कहा है कि कलि-युग के धर्म की तरह अर्थात बगुले की तरह कविता एक चरण में खड़ी नहीं हो सकती, उसे द्विपदी, त्रिपदी या चतुष्पदी बनना पड़ता है। सामान्यतः कविता की यह तीन प्रचलित मूर्तियाँ हैं और इन तीन मूर्तियों के समन्वय से एक स्वतंत्र मूर्ति के निर्माण के लिए ही सॉनेट की सृष्टि हुई है। इसीलिए सॉनेट की आकृति में समग्रता, एकाग्रता तथा संपूर्णता है। त्रिपदी के साथ चतुष्पदी के योग से सप्त-पद प्राप्त होते हैं एवं सप्तपद का द्विगुणित रूप ही सॉनेट है। गीत में जिस भाव की अवतारणा की जाती है उस पर आठ पदों के उपरांत एक विराम पड़ता है एवं यहाँ से कवि दूसरे भाव को जो प्रथम भाव से संश्लिष्ट होता है, प्रकट करने लगता है। इस तरह सात-सात के स्थान पर आठ छह पद को ही ग्रहण किया जाता है। अँग्रेजी सॉनेट-रचयिताओं ने इसके विपरीत बारह के उपरांत विराम दिया है और अंतिम दो पदों में भाव परिवर्तित हो गये हैं तो किसी ने चार-चार दो पद का आधार लिया है यद्यपि यह सब कविता को समग्रता प्रदान करने के लिए ही किया जाता रहा है। बँगला में माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) ने इसका प्रवर्तन किया और उन्होंने अँग्रेज़ी कवियों की प्रणाली को ही स्वीकार किया है।

सान्याल, प्रबोधकुमार (बँ० ले०) [जन्म—1907 ई०]

प्रबोधकुमार सान्याल बंगाल के उन आधुनिक गिने-चुने उपन्यासकारों में से हैं जिन्होंने कहानी उपन्यास के अतिरिक्त भ्रमण कथा लिखकर अभूतपूर्व जनप्रियता प्राप्त की है। इनकी दृष्टि पथिकों की दृष्टि रही है। दुर्गम हिमालय-भ्रमण के अनुभवों को रोमानी विरह का रूप देकर इन्होंने 'महाप्रस्थानेर पथे' (1937) की रचना की थी और यही इनकी सर्वाधिक जनप्रिय कृति है। इनकी दूसरी प्रसिद्ध भ्रमण-कहानी है 'देवतात्मा हिमालय'। पथिक की दृष्टि रहने के कारण इन्होंने अपने उपन्यासों में पात्रों के सर्वांगीण चित्रण की अपेक्षा वह चरित्र के क्षणिक निरूपण एवं घात प्रतिघात की वर्णना में ही दक्षता का परिचय दिया है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास निम्नलिखित हैं 'प्रियबांधवी' (1933) 'आलोआर आगुन' (1937), 'नद ओ नदी' (1940), 'वनहंसी', 'पुष्पधनु', 'बंदी विहंग', 'हासुबानु' आदि।

इनके प्रारंभिक उपन्यासों में रोमानी प्रेम के अनुकूल परिवेश की रचना की गई है। परिणति में समझौतावाद के आधार पर यथार्थ के स्थान पर आदर्श की स्थापना है। 'कलरव', 'नवीन युवक' आदि उपन्यासों में इन्होंने विशिष्ट मनोभंगी की सहायता से सामाजिक नीति

की अंतःसार-शून्यता का उद्घाटन किया है। इनके उपन्यासों में सबसे प्रसिद्ध है 'हासुबानु' 1947 ई० के देश-विभाजन एवं सांप्रदायिक दंगों की पटभूमिका में इन्होंने हिंदू-मुसलमान के पारस्परिक मतभेद को महत्वहीन करार देते हुए मानवतावाद की जयघोषणा की है—इनके इस सिद्धांत की अभिव्यक्ति नहीं, व्यंजना ही हुई है। 'हासुबानु' का चरित्र बँगला उपन्यास की स्थायी संपदा है।

इनके कहानी-संग्रहों में 'चेना ओजाना' (1931), 'निशिपद्य' (1933), 'अविकल' (1933), 'कयेक घंटा मात्र' आदि प्रसिद्ध हैं। कहानियों में प्रबोधबाबू ने व्यंग्यात्मक मनोभाव एवं शिल्पोत्कर्ष का सुंदर परिचय दिया है। भाषा पर इनका असामान्य अधिकार है और अपनी प्रत्येक कृति में इन्होंने अपने इस अधिकार का सदुपयोग किया है।

सापना भारा *(गु० कृ०)*

गुजराती एकांकी का कलात्मक रूप कवि उमाशंकर जोशी (दे०) के यथार्थवादी एकांकी संग्रह 'सापना भारा' (1932) में दृष्टिगोचर होता है। इसमें ग्रामीण सामाजिक जीवन की विकृतियों और विरूपताओं के सर्वथा वास्तविक चित्र हैं। 'सापना भारा', 'वारणे टकोरा', 'खेतरने खोले', 'केडलां' इत्यादि एकांकियों में जोशी जी की पैनी दृष्टि, वैयक्तिक अनुभूति, मौलिक चिंतन एवं उत्कृष्ट सर्जन-शक्ति के दर्शन होते हैं। लेखक ने प्रसंगों और पात्रों को पूरे समभाव और सहानुभूति से प्रस्तुत किया है तथा देहातों, समाज की कमजोरियों को बड़ी ईमानदारी से उजागर किया है। इस एकांकी-संग्रह के सभी एकांकियों में सुश्लिष्ट वस्तु-विन्यास, सूक्ष्म, द्वंद्वयुक्त चरित्रांकन, विषयानुकूल वातावरण, भाषा-शैली, और संवादयोजना है। नाट्योचित संघर्ष और काव्य-व्यापार का भी इसमें अभाव नहीं है। ग्राम-जीवन के वास्तविक करुण चित्र अंकित करने में लेखक ने ग्रामीण बोली का सहज-स्वाभाविक प्रयोग किया है। गुजराती एकांकी साहित्य में ग्रामीण समाज और उसकी जनपदीय बोली का यह सर्वप्रथम सफल और स्वाभाविक प्रयोग है। इस दृष्टि से यह कृति गुजराती एकांकी-साहित्य में एक सीमा-चिह्न है।

साप्ताहिक हिंदुस्तान *(हिं० पत्र)*

यद्यपि हिंदुस्तान टाइम्स प्रेस के व्यवस्थापक 1936 ई० में ही एक साप्ताहिक हिंदी-पत्र निकालना चाहते थे पर उस समय गलती से उन्हें दैनिक पत्र निकालने की आज्ञा मिली और 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' का जन्म 2 अक्टूबर 1950 ई० तक टल गया। इसके प्रथम संपादक थे मुकुट बिहारी वर्मा; तीन वर्ष बाद उसका संपादन-भार बाँकेबिहारी भटनागर को सौंपा गया जिन्होंने 15 वर्षों तक अपनी सूझबूझ एवं पत्रकारिता-कौशल से इसका संपादन किया। विचारपूर्ण लेख, कविता, कहानी, धारावाहिक उपन्यास और सामयिक लेखों के साथ-साथ चित्रमय समाचार देकर पाठकों का ज्ञानवर्धन और मनोरंजन करना इसका लक्ष्य रहा है। 'धर्मयुग' (दे०) से इसकी स्पर्धा रही है क्योंकि यह परंपरागत मूल्यों, सुधारवादी नैतिक-सामाजिक दृष्टि का अधिक समर्थक रहा है। बीच में यह कुछ 'डल' हो गया था पर रामानंद दोषी तथा मनोहरश्याम जोशी के प्रयत्नों से अब इसमें पुनः ताजगी आई है। कुछ-कुछ 'धर्मयुग' के अनुकरण की प्रवृत्ति होने पर भी इसकी अपनी छाप है। महत्वपूर्ण रिपोर्ताज प्रकाशित कर रिपोर्ताज को नये आयाम देने तथा प्रश्नोत्तर-रूप में भेंट-वार्ताओं का संयोजन करने के कारण पत्र-साहित्य के विकास में भी इसका योगदान उल्लेखनीय है।

सावत, डा० कुंतळा कुमारी *(उ० ले०)* [जन्म—1900 ई०; मृत्यु—1935 ई०]

उत्कल-भारती कुंतळा कुमारी सावत के प्रखर व्यक्तित्व, महिमामय नारीत्व, अद्भुत प्रतिभा एवं नैसर्गिक कवित्व से आज भी उत्कल-साहित्य स्पंदित है। गोपबंधु (दे०) के आग्नेय व्यक्तित्व से अनुप्राणित कुंतळा शक्ति और ज्वाला की कवयित्री है। डाक्टरी व्यवसाय एवं कवित्वमय अंतर लिये दो भिन्न दिशाओं में परिचालित अपने जीवन की अल्पावधि में इन्होंने जो साहित्यिक प्रतिष्ठा प्राप्त की है, वह स्वयं में एक महान उपलब्धि है। इनकी उमड़ती हुई देशभक्ति और आवेगमयी अभिव्यक्ति में तरुणों के लिए आह्वान है, नारी-जागरण का संदेश है।

पिता जी की नौकरी के कारण कुंतळा कुमारी का शैशव बर्मा में बीता। कटक में डॉक्टरी की शिक्षा पूरी कर इन्होंने अपना व्यावसायिक जीवन दिल्ली में प्रारंभ किया। 28 वर्ष की आयु में ही ये उड़िया-साहित्य में एक सुलेखिका के रूप में प्रतिष्ठित हो गई थीं।

35 वर्ष की अल्पायु लेकर कुतळा कुमारी पृथ्वी पर आई थी फिर भी, इनकी अम्लान प्रतिभा ने उडिया-साहित्य की अभूतपूर्व श्रीवृद्धि की है।

कुतळा कुमारी मुख्यत गीति कवयित्री हैं। यद्यपि इनकी गीति-कविताओ की अपनी परिसीमा है तथापि सरल आवेगमयी अनुभूति की निर्व्याज अभिव्यक्ति की दृष्टि से इनके गीत अत्यत सुदर हैं। गीति काव्य के क्षेत्र मे कुतळा कुमारी का स्थान नदकिशोर बळ (दे०) और गोदावरीश मिश्र (दे०) के बाद आता है। इनके गीतो मे अनुभूति की गहराई, भक्ति की सरलता, भावो की व्यापकता देशभक्ति का उत्साह, पीडितो के प्रति करुणा, उन्नत मन की उदात्त भावनाएँ तथा सर्वोपरि एक निर्मल आत्मा की उज्ज्वल अनुभूति है। 'स्फुलिंग', 'अजळी', 'अर्चना' 'प्रेम चिंतामणि' इनकी गीति रचनाएँ हैं। *उपन्यास के क्षेत्र मे मध्यम वर्ग का चित्रण कर* इन्होने फकीर मोहन सेनापति (दे०) की परपरा निभाई है। 'नअतुडी', 'भ्राति', 'रघु अरक्षित (दे०) '*काळी बोहू*' इनके उपन्यास है।

सामत सिहार अभिमन्यु *(उ० ल०)* [समय—1757 1806 ई०]

इद्रजित के पुत्र अभिमन्यु का जन्म कटक जिले के बाळिआ ग्राम म, एक क्षत्रिय परिवार मे हुआ था। सदानद कविसूर्य ब्रह्मा इनके शिक्षा व दीक्षा गुरु थे। नौ वर्ष की आयु से ही इन्होने काव्य-रचना प्रारभ कर दी थी और प्रारभिक रचनाओ ने ही इनके उज्ज्वल भविष्य की सभावना को स्पष्ट कर दिया था। वेद, दशन पुराण इतिहास, व काव्य-शास्त्र का इन्हे गहन अध्ययन था। सदानद व उपेंद्र के काव्यादश से य अनुप्राणित थे।

मध्ययुगीन उडिया-काव्य साहित्य को जिन कतिपय साहित्य महारथियो ने समृद्ध किया है, उनमे विदग्ध कवि अभिमन्यु अन्यतम है। इनका काव्य 'विदग्ध चिंतामणि' (दे०) इनके *असामान्य पाडित्य, अपूव प्रतिभा* व बहुशास्त्रदर्शिता का परिचायक है। अनक विशेषताओ मे यह गौरवान्वित है। यद्यपि यह काव्य अपूण है, फिर भी अपनी रसात्मकता व काव्य वैभव म यह सस्कृत ग्रथ *'ललित माधव' व 'विदग्ध माधव' की समकक्षता कर* सकता है। इसम कृष्ण व राधा के स्वर्गिक प्रेम का चित्रण हुआ है। यह ग्रथ अपने वैष्णवीय भाव-तारल्य, छदो के कमनीय सगीत व व्यापक पाडित्य के कारण रीतिकालीन साहित्य म विशिष्ट स्थान का अधिकारी है।

काल्पनिक कथाओ पर आधारित इनकी अन्य रचनाएँ हैं— सुलक्षणा', 'रसवती', 'प्रेमकळा' व रस-कळा'। प्रथम कवि-जीवन का भावोच्छवास इनमे मिलता है।

सामताणी, गुनो *(सि० ले०)*

गुनो सामताणी बबई मे रहते हैं। इनकी लगभग तीस कहानियाँ विभिन्न पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुकी हैं। इनकी कहानियो के दो सग्रह 'अभिमान' और और 'अपराजिता' नाम से प्रकाशित हुए हैं। 'वापस' नाम से इन्होने एक उपन्यास भी लिखा है। इनकी आरभिक कहानियाँ प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित हैं। कुछ *समय से रोमानवाद की ओर झुक गए हैं। इनकी कई* कहानियो मे मनुष्य के सूक्ष्म मनोभावो का बहुत ही सुदर *ढग से चित्रण* मिलता है। आधुनिक सिंधी-कहानीकारो मे इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

सामराज *(म० ले०)* [जन्म—1613 ई०, मृत्यु—1700 ई०]

शिवाजी और उनके पुत्र राजाराम का इन्हे आश्रय प्राप्त था। इन्होने दो प्रमुख काव्य रचे हैं— 'रुक्मिणीहरण' (दे०) और 'मुद्गलाख्यान'। प्रथम रचना मे 1140 श्लोक हैं तो दूसरी मे 261। इनकी शैली सस्कृत महाकाव्यो की सर्गात्मक शैली है और भाषा म सस्कृत की प्रचुरता है। काव्यो म शृगार, वीर, भक्ति तथा शात की धारा प्रवाहित और सरसता के साथ प्रौढता *का भी समावेश है।*

सामल, प्राणकृष्ण *(उ० ले०)* [जन्म—1913 ई०]

प्राणकृष्ण सामल बहुमुखी *प्रतिभासपन्न* साहित्यकार हैं। काव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी सभी म इनकी एक सी क्षमता प्रकट हुई है। प्रणय के द्वारा सामाजिक, आर्थिक समस्याओ एव मानसिक घात प्रति-घात *तथा अतर्द्वंद्व का चित्रण कर य व्यक्ति और समाज* के बीच एक सतुलन लाने की चेष्टा करते हैं। इनके उपन्यास एव कहानियो म चरित्र और परिवेश चित्रण प्रमुख होता है। काव्य-नाटिका के क्षेत्र म इनका योगदान

महत्वपूर्ण है। 'हाती का दाँत', 'सहयात्रिणी', 'नीलकमल' (दे०) आदि (उप०); 'सात दीप' (काव्य); आदि इनकी रचनाएँ है।

सामिनाथ शर्मा, वे० *(त० ले०)*

इनका नाम संस्कृत तत्सम शैली में स्वामिनाथ शर्मा तथा ठेठ तमिल में चामिनात चर्मा है। तमिल भाषा की पत्रकारिता, गद्य-लेखन तथा सृजनात्मक साहित्य-रचना इन सभी क्षेत्रों मे इस वयोवृद्ध लेखक ने पर्याप्त यश प्राप्त किया है। प्रारंभिक जीवन में ये 'नवचक्ति' (नव शक्ति), 'तेचपक्तन्' (देशभक्त) आदि बीसवीं शती के प्रथम चरण की नामी राष्ट्रवादी पत्रिकाओं में उपसंपादक रहे थे और बाद मे समुद्रपार 'रंगून' चले गए थे जहाँ फिर इनके सिद्धहस्त संपादकत्व मे 'जोति' नामक तमिल पत्रिका फूली-फली थी। द्वितीय महायुद्ध के दौरान ये स्वदेश लौटे थे और स्वतंत्र लेखक के रूप मे प्रतिष्ठित हो गए थे।

राजनीति, इतिहास, तथा इनसे संबंधित दार्शनिक विचारों को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने वाले लेखक के रूप में इनका विशेष नाम है। इस क़िस्म की इनकी रचनाओं मे 'चीनाविन् वरलारु' (चीन का इतिहास), 'कांतियार्' (गांधी जी) तथा 'रूसो', 'प्लेटो', 'इङ्गर् साल्' आदि प्रौढ़ विचारकों की 'सोशल कंट्रैक्ट', 'रिपब्लिक' आदि अमर कृतियों के प्रवाहमयी शैली में तमिल रूपांतरों का उल्लेख किया जा सकता है। इनकी मौलिक कृतियो में 'अभिमन्यु' (नाटक) 'ओरङ्क नाटकङ्कल्' (एकांकी), 'कौरिमणि' (लघु कथाएँ) 'अवल् पिरिवु' (जीवनी) इत्यादि है।

सामिनाद अय्यर, उ० वे० *(त०ले०)* [जन्म—1855 ई०; मृत्यु—1942 ई०]

कुंभकोणम के समीप स्थित उत्तमदानपुरम में जन्म। बचपन से ही इनके हृदय में अपनी मातृभाषा तमिल के प्रति अटूट अनुराग था। इन्होंने तमिल प्राध्यापक के रूप में अपनी जीविका प्रारंभ की। तमिल साहित्य के प्रकांड पंडित महाविद्वान मीनाक्षिसुंदरम पिळ्ळै (दे० मीनाक्षि) के शिष्य के रूप में इनका तमिल प्रेम निरंतर विकसित होता रहा और इन्होने विविध प्रकार से तमिल भाषा और साहित्य की सेवा की।

'पुदियदुम पलैयदुम', 'नल्लुरैक्कोवै', 'निनैवु-मंजरी', 'संघ तमिलुमपिर्काल तमिलुम' आदि गद्य-कृतियों की रचना के साथ-साथ सामिनाद अय्यर ने 'पत्तुप्पाट्टु (दे०), 'ऐंकुरुनूरु' (दे०), 'कुरुंतोगै' (दे०), 'परिपाडल' (दे०), 'पदिट्टुप्पत्तु' (दे०), 'पुरनानूरू' (दे०) आदि संघकालीन कृतियों का संपादन और प्रकाशन किया। तमिल के पंच महाकाव्यों में 'शिलप्पदिकारम्' (दे०), 'मणिमेखलै' (दे०), और 'जीवकचिंतामणि' (दे०) का तथा पंच लघु काव्यों में उपलब्ध तीन—'शूलमणि', 'नील केशी' और 'यशोधर कावियम' का संपादन और प्रकाशन किया। अन्य अनेक साहित्यिक कृतियों, व्याकरण-ग्रंथों एवं पुराणों का संपादन कर उनके प्रकाशन की व्यवस्था की। हस्तलिपियों के रूप मे प्राप्त नाना कृतियों का संपादन-प्रकाशन कर जहाँ उन्होंने कृतियों को नष्ट होने से बचाया वहाँ उन्हें जनता तक पहुँचाने का प्रशंसनीय कार्य भी किया है।

सामिनाद अय्यर ने संघकालीन कृति 'कुरुंतोगै' पर सुंदर टीका लिखी है। इनके द्वारा रचित त्यागराज चेट्टियार, कवि गोपालकृष्ण भारती और इनके गुरु महाविद्वान मीनाक्षिसुंदरम पिल्लै की जीवनी का तमिल के जीवनी-साहित्य मे विशिष्ट स्थान है। इन्होंने अपने गुरु की जीवनी अत्यंत विस्तार से और विद्वत्तापूर्ण शैली में लिखी है। यह जीवनी दो भागों में क्रमशः 1933 और 1934 ई० में प्रकाशित हुई। इन्होंने 'एन्-चरित्तिरम' (दे०) शीर्षक से आत्मचरित लिखना प्रारंभ किया जो कि तमिल के लोकप्रिय साप्ताहिक 'आनंद विकटन' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होता रहा। आकस्मिक मृत्यु के कारण इनका यह आत्मचरित अधूरा रह गया। इसमें उन्होंने अपने 87 वर्ष के जीवन-काल में से आरंभिक 44 वर्षों का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है। उस समय तमिल में आत्मचरितों का अभाव था, अतः अपूर्ण होते हुए भी इसका तमिल के आत्मचरित-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इनकी तमिल साहित्य-विषयक सेवाओं से प्रभावित होकर तत्कालीन अँग्रेजी सरकार ने इन्हें 'महामहोपाध्याय' और 'दाक्षिणात्य कलानिधि' की उपाधियों से विभूषित किया।

सामी (सि० ले०) [जन्म—1743 ई०; मृत्यु—1850 ई०]

सामी का पूरा नाम भाई चैनराइ बचोमल लुंड है। उनका जन्म उत्तर सिंध के प्रसिद्ध नगर

शिकारपुर मे हुआ था। कुछ विद्वानों ने सामी का जन्म काल 1730 ई० को माना है। भाई चैनराइ ने अपने गुरु स्वामी मेघराज के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए अपने रचित श्लोको मे सामी (स्वामी) उपनाम का प्रयोग किया है। 'सामीअ जा सलोक' (सामी के श्लोक) नाम से इस सत कवि के श्लोको के कई सग्रह प्रकाशित हो चुके है। उपलब्ध श्लोकों की सख्या लगभग 3500 है। भाई चैनराइ के श्लोको पर शकराचार्य के वेदात-दर्शन का प्रभाव अधिक दृष्टिगत होता है। सरल सिंधी भाषा मे रचित ये श्लोक माधुर्य गुण से ओतप्रोत हैं। सामी सिंधी भक्तिकाव्य मे वेदात-धारा के प्रवर्तक है। मध्यकालीन महान् सिंधी-भक्तकवियो मे शाह (दे० शाह अब्दुल करीम), सचल (दे० सचल सरमस्त) और सामी की त्रिमूर्ति प्रसिद्ध है।

सामीअ जा सलोक *(सिं० कृ०)*

सिंध के प्रसिद्ध सत कवि सामी (दे०) (1743-1850 ई०) के श्लोको के 10-12 सस्करण सिंधी मे मिलते हैं। ये श्लोक कवि ने गुरुमुखी लिपि मे लिखे थे जिन्हे पहले-पहले कौडीमल चदनमल खिलनाणी (दे०) ने अरबी-सिंधी अक्षरो मे 1885-1890 ई० मे चार भागो मे प्रकाशित कराया था। इसके पश्चात् इन श्लोको के और भी सस्करण निकले हैं। 1947 ई० मे शाती शहाणी ने सामी के चुने हुए श्लोको को अँग्रेजी मे अनूदित कर उन्हे 'साग ऑफ दी स्प्रिट' नाम से प्रकाशित किया था। विभाजन के पश्चात् परसराम पारुमल ने देवनागरी लिपि मे सामी के श्लोक तीन भागो मे प्रकाशित किए थे। इन श्लोको का आलोचनात्मक और अधिक प्रामाणिक सस्करण बबई के प्राध्यापक भोजराज होतचद नागराणी ने तीन भागो मे प्रकाशित किया। उन्होंने अपन सस्करण मे लगभग तीन हजार श्लोक विषय के अनुसार विभाजित कर दिए है।

साम्य *(बँ० कृ०)*

बकिमचद्र चट्टोपाध्याय (दे०) ने जब अपनी पत्रिका 'बगदर्शन' का प्रकाशन शुरू किया तब बगाल के अंग्रेजी-शिक्षित समाज मे मिल के हितवाद एव काट के मानवतावाद का बडा प्रभाव था तब उसी के फलस्वरूप बकिम बाबू ने अपनी पत्रिका मे 'साम्य' (1873-75) नामक एक दीर्घ निबध की रचना की थी। इस निबध मे लेखक ने साम्य की प्रयोजनीयता पर अपना मत दिया है। प्राचीन भारत मे वर्ण-वैषम्य के फलस्वरूप सामाजिक वैषम्य का जन्म हुआ था। जातिगत वैषम्य से लेखक का तात्पर्य है जेता एव विजेता के बीच का वैषम्य। जो जाति राजा (अँग्रेज) है एव जो प्रजा है उनमे अधिकारगत वैषम्य है। उपसहार मे बकिम बाबू ने साम्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि साम्य-नीति से तात्पर्य यह है कि मनुष्य को समानावस्थापन्न होना चाहिए क्योकि मनुष्यो की आपसी बुद्धि, मानसिक शक्ति शिक्षा, बल आदि मे सदा भेद बना रहेगा, और फलस्वरूप उनकी अवस्थाओ के तारतम्य को कोई रोक नही सकेगा। लेखक का कहना है कि आवश्यकता अधिकारगत साम्य की है। किसी मे शक्ति है मगर अधिकार नही है, इसीलिए वह कुछ कर नही सका, ऐसा नही होना चाहिए। हरेक की उन्नति का पथ मुक्त और प्रशस्त रहना चाहिए।

सायण *(स० ले०)* [जन्म—1315 ई०, मृत्यु—1387 ई०]

सायण का उक्त स्थिति-काल डॉक्टर आफेक्ट के मतानुसार है। सायण की माता का नाम श्रीमती तथा पिता का नाम मायण मिलता है। सायण का कर्मक्षेत्र विजयनगर तथा उससे सबधित प्रदेश है। सायण के तीन गुरु थे विद्यातीर्थ, भारतीतीर्थ तथा श्रीकठाचार्य। सायण की प्रमुख रचना वेद(दे०)भाष्य है। इसके अतिरिक्त 'सुभाषित-सुधानिधि', 'प्रायश्चित्त-सुधानिधि' 'आयुर्वेदसुधानिधि', 'अलकारसुधानिधि', 'धातुवृत्ति', 'पुरुषार्थसुधानिधि' तथा 'यज्ञतत्रसुधानिधि' भी सायण द्वारा रचित हैं। सायण का वेदभाष्य समस्त वैदिक साहित्य के अनुशीलन की कुजिका है। सायण की पद्धति वैज्ञानिक एव सरल है। सायण के वेदभाष्य की यह विशेषता है कि उन्होने महत्वपूर्ण शब्दो के एक से अधिक सभव अर्थ देने का प्रयत्न किया है। इससे वेद के अध्येता को वे स्वतत्र दृष्टि से विचार करने का अवसर प्रदान करते हैं। किंतु कतिपय सकीर्ण दृष्टि वाले समालोचको ने सायण की उपर्युक्त पद्धति को सदिग्धतापूर्ण कह कर दोषयुक्त माना है। वस्तुत ऐसा नही है। सायण भाष्य के बिना वेदो का तात्पर्यबोध कठिन ही नहीं प्रत्युत असभव है। धर्मशास्त्र एव अलकारशास्त्र आदि की दृष्टि से सायण के वेदभाष्येतर ग्रथ भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

सारंगधरचरित्रमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—सत्रहवीं शती ई०]

इसके लेखक चेमकूर वेंकटकवि (दे०) हैं। ये तंजौर के राजा रघुनायक के सभाकवि थे। इनका काव्य 'विजयविलास' तेलुगु में अत्यंत प्रसिद्ध है। इनका 'सारंगधरचरित्रमु' तीन आश्वासों का एक श्रृंगार-प्रबंध है। कथा इस प्रकार है—सारंगधरुडु (दे०) महाराज नरेंद्रुडु का पुत्र है। उसका विवाह चित्रांगी (दे०) के साथ होने को है पर परिस्थितिवश चित्रांगी राजराजनरेंद्रुडु की पत्नी बन जाती है। फिर भी उसका प्रेम सारंगधरुडु से बना रहता है। इस प्रकार के अनुचित प्रेम तथा चरित्रवान् सारंगधरुडु की करुणामय स्थिति का वर्णन ही प्रस्तुत काव्य का उद्देश्य है। तेलुगु के रंगमंचीय नाटक-साहित्य में, कुछ परिवर्तनों के साथ, यह कहानी अत्यंत प्रचलित है।

सारंगधरुडु *(ते० पा०)*

तेलुगु के 'नवनाथचरित्रमु' नामक द्विपद काव्य में सर्वप्रथम चौरंगी नामक सिद्ध की कथा अभिवर्णित है जिसमें राजनरेंद्रुडु नामक राजा मालव राज्य पर शासन करता था। उनका पुत्र चौरंगी था। वही आगे चलकर ते० सा० में सारंगधर नामक व्यक्ति के रूप में विकसित हुआ है। सारंगधरुडु इस प्रकार एक निजंधरी व्यक्ति है। राजराजनरेंद्रुडु पूर्वी चालुक्य नरेशों में अत्यंत प्रसिद्ध हुए। इन्होंने राजमहेंद्रवरमु को राजधानी बनाकर वेंगी देश पर राज किया था। कोनेरुनाथकवि, काकुनूरि अप्पकवि (दे० अप्पकवीयमु), चेमकूर वेंकट कवि (दे०), आदि प्राचीन कवियों के द्वारा राजनरेंद्रुडु सारंगधरुडु तथा चित्रांगीवाली त्रिकोणात्मक कथा प्रचार हो चला। लोक-साहित्य में भी यक्षगान आदि में इस कथा का प्रचलन हुआ। आधुनिक काल में सारंगधर तथा चित्रांगी (दे०) के विषम श्रृंगार का अच्छा वर्णन कृष्णमाचार्य-कृत 'विषादसारंगधर' नामक प्रथम तेलुगु-दुःखांत नाटक में किया गया है।

इस प्रकार की कथाएँ अन्य प्रदेशों में भी प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ अशोक, तिष्यरक्षिता तथा कुणाल से संबंधित कथा एवं पूरन भगत की कथा आदि। सारंगधरुडु अपनी विमाता चित्रांगी के अनुचित प्रेमजाल में नहीं फँसा। शील के निभाने में इसने कड़ी यातनाएँ भोगी। राजा ने अपनी विमाता के विरुद्ध एक शब्द तक नहीं बोला। अपने चरित्रबल के लिए वे अत्यंत विश्रुत हुए।

सारदामंगल *(बँ० ले०)* [रचना-काल—1879 ई०]

सारदामंगल गीतिकाव्यकार बिहारीलाल चक्रवर्ती (दे० चक्रवर्ती) की अन्यतम रचना है। अंतरवासिनी काव्यश्री के प्रति कवि के भावोद्गार की अभिव्यक्ति हुई है इस काव्य में। पाँच सर्गों में बद्ध इस काव्य के पहले सर्ग में काव्य-सरस्वती के आविर्भाव का उल्लेख है। दूसरे सर्ग में खोई हुई काव्य-सरस्वती के लिए कविचित्त का अभिसार वर्णित है। तृतीय सर्ग में कविचित्त का संशय एवं चौथे सर्ग में हिमालय की उदार प्रशांति में कविचित्त का आश्वास-अन्वेषण है। पंचम सर्ग में उसी पुण्य-भूमि में अभिलक्षित आनंदोपलब्धि है। इस प्रकार बिहारीलाल ने इस काव्य में काव्य-सरस्वती के माहात्म्य का गान किया है। बिहारीलाल की सरस्वती सौंदर्यमयी हैं एवं सौंदर्यजगत् में विराजमान हैं। सरस्वती का चित्र कभी देवी तो कभी जननी तो कभी प्रेयसी या फिर कल्याणी के रूप में अंकित किया गया है। अपने मानसलोक में एक आदर्श सौंदर्यजगत् की सृष्टि करते हुए कवि ने अपनी सौंदर्य-लक्ष्मी की पूजा की है। प्राचीन बँगला काव्य-रीति का अनुसरण करते हुए कवि ने इस काव्य का नाम 'सारदामंगल' रखा है और गीत-बहुल एवं गीत-अनुप्राणित होने के कारण यह आधुनिक संदर्भ में गीतिकाव्य है।

'सारदामंगल' में प्रेम की व्याकुलता, अभिमान, विरह, आनंद, वेदना, भर्त्सना आदि विभिन्न अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है। इन्हीं के माध्यम से काव्य के मूल तत्त्वों—सौंदर्य-पिपासा एवं भाव-विभोरता की अभिव्यंजना हुई है। बिहारीलाल ने अपने सौंदर्यध्यान में यथार्थ जगत् एवं जीवन को स्वीकार कर आधुनिक बँगला साहित्य में सर्वप्रथम गीतिकाव्य-रचना की एक रीति का सफलतापूर्वक प्रवर्तन किया।

सारळादास *(उ० ले०)* [समय—अनुमानतः पंद्रहवीं शती ई०]

शूद्रमुनि सारळादास कटक जिले के झंकड़ ग्राम के निवासी थे। इनका पहला नाम सिद्धेश्वर माना

जाता है। देवी 'सारला' के उपासक होने के कारण जन-साधारण मे वे सारळादास के नाम से परिचित हुए। ऐसा माना जाता है कि सारळादास सूर्यवंशी राजा कपिलेंद्र देव (पद्रहवी शती ई०) के समकालीन थे।

उडीसा के व्यास (दे०) आदिकवि के सारळादास का उडिया-साहित्य मे वही स्थान है, जो स्थान ग्रीक साहित्य मे होमर तथा अँग्रेज़ी-साहित्य में चौसर का है। सारळादास से उडिया-साहित्य का विराट् युग प्रारभ होता है। इनकी रचना का मौलिक प्रभाव उन्नीसवी शती तक देखा जा सकता है। सस्कृत-ग्रथो तक सीमित पुराण को सर्वजन सुलभ बनाने, उडीसा के जातीय जीवन को अमिट बना देने तथा उडिया भाषा को बृहद् प्रबधकाव्य के अनुरूप अभिव्यजना शक्ति प्रदान करने का श्रेय सारळादास को है। जिस समय सारळादास ने उडिया मे 'महाभारत' (दे०) लिखा था उस समय भारतीय भाषाओ मे 'महाभारत' की रचना नही हुई थी।

इन्होंने उडिया मे 'महाभारत' (दे० सारळा महाभारत) के अतिरिक्त बिलका-रामायण' एव 'चडी-पुराण' भी लिखा है। महाभारत' वीररस पूर्ण प्रबध-काव्य तथा जातीय सस्कृति का एव परिपूर्ण विराट् इति-हास है। कथावस्तु मूल 'महाभारत' पर आधारित होते हुए भी यह एक स्वतंत्र रचना है। इसमे ऐसे अनेक चरित्रो एव किवदतियो की सृष्टि हुई है, जो मूल 'महा-भारत' मे नही है। तत्कालीन उडिया जन-जीवन को ध्यान मे रखते हुए इन्होने 'महाभारत' के चरित्रो का चित्रण किया है। 'बिलका रामायण' मे वीर नारी की प्रच्छन्न शक्ति को पुरुष की कर्कश शक्ति स श्रेष्ठ बताया गया है। 'चडीपुराण मे शाक्त-धर्म का प्रतिपादन हुआ है।

सारळा-महाभारत *(उ० कृ०)*

सरळादास (दे०)-विरचित सारळा-महाभारत का रचना-काल अनुमानत चौदहवी-पद्रहवी शती है। इससे पूर्व उडिया-साहित्य के उन्मेष के परिचय के रूप मे बौद्ध-चर्यापद (दे० चर्या) की कतिपय गीति-कविताएँ ही मिलती हैं किंतु इसके परवर्ती युग मे साहित्य की विकास-धारा के प्रमाणस्वरूप वच्छादास (दे०)-कृत सक्षिप्त रचना 'कळसा चउतिसा' (दे०) के अतिरिक्त अन्य कोई प्रामा-णिक उपादान आज उपलब्ध नही है। फिर भी 'सारळा-महाभारत' के पूर्व उडिया-साहित्य मे काव्य-सृजन हो रहा था, यह सुनिश्चित है, अन्यथा एकाएक, 'महाभारत' जैसे विराट् प्रबधकाव्य की रचना सभव नही होती।

'सारळा-महाभारत' सस्कृत-'महाभारत' (दे०) का अनुवाद नही है, यहाँ तक कि उसका अनुकरण भी नही है। 'सस्कृत-'महाभारत' सभ्यता एव सस्कृति की एक अत्यत विकसित स्थिति की परिणति है, जबकि 'सारळा-महाभारत' एक ग्रामीण उन्नत सस्कृत साहित्य से अनभिज्ञ, जन-लेखक की जातीय-सास्कृतिक चेतना का परिणाम है। अत. दोनो मे मूलभूत पार्थक्य स्वयसिद्ध है। सस्कृत महाभारत मे अर्जुन अथवा कर्ण को यदि मुख्य चरित्र के रूप मे स्वीकार करें तो 'सारळा-महाभारत' का नायक भीम है। सस्कृत-'महाभारत' मे 'गीता' (दे०) के प्रवक्ता योगेश्वर कृष्ण का एक महत्वपूर्ण स्थान है, वे युग नायक हैं, महानायक हैं, किंतु 'सारळा-महाभारत' मे कृष्ण का स्थान नगण्य है। 'सारळा महाभारत' के पर्वो का नामकरण भी सस्कृत-'महाभारत' के पर्वों के अनुसार नही हुआ है। इसकी मौलिकता असदिग्ध है। 'सारळा-महाभारत' का एक अन्य वैशिष्ट्य यह है कि चौदहवी और पद्रहवी शती तक अन्य भारतीय भाषाओ मे पूर्णांग (18 खड) 'महाभारत' की रचना नही हुई थी।

'सारळा-महाभारत' के पात्र उडिया-नर-नारियो के आधार पर परिकल्पित हैं। महाभारत' की सामाजिक साज सज्जा के मिस कवि ने तत्कालीन उडिया की साम-रिक स्थिति का चित्रण किया है। उडिया-जीवन की एक अक्षुण्ण प्रतिच्छवि इसमे मिलती है। भाषा की दृष्टि से यह एक गभीर एव महत्वपूर्ण रचना है। इस कृति मे अनेक प्राचीन उडिया शब्दो का प्रयोग हुआ है जो आज-कल लुप्त हो चुका है। यह दाडीवृत्त (दे०) मे विरचित है।

यह एक गुरु-गंभीर रचना है तथा उडिया साहित्य के समुन्नत रूप की स्थापना करती है और एक विकासमान साहित्य की परिणति प्रतीत होती है।

साल्व *(क० ले०)*

इनका समय अनुमानत 1550 ई० माना गया है। यह साल्व मल्ल नामक राजा के आश्रित थे। 'भारत', 'रस-रत्नाकर', 'शारदाविलास' आदि इनकी कृतियाँ हैं। इनका 'भारत' जैन सप्रदाय का महाभारत है जो षट्पदी छद मे है। 'रस-रत्नाकर', 'शृगार प्रपच विवरण', 'नव-रस-प्रपच विवरण', 'नायक-नायिका-विवरण', 'अभि-

चारि-भाव-विवरण' शीर्षक से चार प्रकरण है। सभी रसों का निरूपण करने पर भी शृंगार को विशेष महत्व दिया गया है। शृंगार के आलंबन गुण, चेष्टा, अलंकार तटस्थ इस प्रकार के उद्दीपन-चतुष्टय का ब्योरेवार वर्णन है। मान, ईर्ष्या आदि विप्रलंभ प्रकार भी दिए गए हैं। रस-निष्पत्ति, स्थायी, व्यभिचारि, विवेक आदि की सम्यक् विवेचना भी यहां है। यहां इन्होंने हेमचंद्र, विश्वनाथ, अमृतानंदि, रुद्रभट्ट (दे०) आदि का अनुसरण किया है। लक्ष्यपद्यों को स्वयं न लिखकर प्राचीन कवियों से लिया है।

'शारदाविलास' का केवल एक ही प्रकरण 'ध्वनिव्यंग्य-प्रकरण' अब उपलब्ध है। कन्नड में ध्वनि-प्रतिपादन करनेवालों में साल्व ही सर्वप्रथम हैं। 'ध्वनि-व्यंग्य-प्रकरण' में लेखक ने उत्तम, मध्यम एवं अधम—इस तरह काव्यों का वर्गीकरण कर वाच्य, लक्ष्य एवं व्यंग्यार्थ का निरूपण कर शब्द शक्तियों की चर्चा की है। व्यंजना के शब्दमूला, अर्थमूला, अर्थांतर-संक्रमित वाच्य, अत्यंत तिरस्कृत वाच्य आदि प्रकारों का विवरण भी है। साथ ही वाच्य-व्यंग्य-विवेक, वाच्य एवं लक्ष्य से व्यंग्य की प्रतीति, व्यंग्य से व्यंग्य की प्रतीति, वस्तु-व्यंग्य, अलंकार-व्यंग्य आदि का ब्योरेवार वर्णन है। 'रस-ध्वनि' की चर्चा इस प्रकरण में नहीं है। साल्व कन्नड में शास्त्र-कवि के रूप में विख्यात हैं। वह कन्नड के श्रेष्ठ गीतिकारों में हैं।

सावयधम्म दोहा *(अप० कृ०)* [रचना-काल—933 ई०]

'सावयधम्म दोहा' के रचयिता देवसेन (दे०) हैं। इस कृति में किसी एक निश्चित विषय का प्रतिपादन नहीं है। इसमें लेखक ने श्रावकों-गृहस्थों के योग्य कर्त्तव्यों का उपदेश दिया है। श्रावक-धर्म के भेद बताते हुए सम्यक्त्व प्राप्ति के साधनों का निर्देश किया गया है। नाना दोषों का परित्याग, रात्रि-भोजन-निषेध, अहिंसा-व्रत-पालन आदि का विधान किया गया है। दान की महत्ता समझाते हुए धर्म-पालन, इंद्रिय-निग्रह, मन-वचन और शरीर की शुद्धि का आदेश दिया गया है। उपवास-व्रतादि-पालन करते हुए पाप-पुण्य के बंधन से छुटकारा पाकर कर्म-नाश द्वारा सुख प्राप्त करने की चर्चा की गई है। लेखक ने एक आदर्श-चरित्र गृहस्थ के लिए सभी करणीय, सामाजिक, धार्मिक कर्मों का पालन आवश्यक बताया है।

लेखक ने सरल और चलती हुई भाषा में हृदयस्पर्शी दृष्टांतों द्वारा भाव को व्यक्त किया है। विषय को स्पष्ट करने के लिए, बैल, कुआं, वृक्ष, दीपक, पतंग इत्यादि दैनिक जीवन से संबद्ध पदार्थों का अप्रस्तुत-विधान के लिए प्रयोग किया है।

सावरकर चरित्र *(म० कृ०)* [रचना-काल—1947 ई०]

वीर सावरकर पर रचित चरित्र-ग्रंथों में सर्वाधिक रसोत्कर्षक चरित्र श्री शि० ल० करंदीकर-रचित है। यह परिश्रमपूर्वक लिखा गया चरित्र है। इसमें सावरकर की जीवन-संबंधी सामग्री विपुल है तथा उसकी प्राप्ति के अनेक स्रोत रहे हैं। करंदीकर जी ने समस्त उपलब्ध सामग्री का मंथन कर उसमें से कुछ का विवेकपूर्ण कौशलयुक्त चयन कर उसकी कलात्मक नियोजना की है। यह ग्रंथ आकार में विशाल है।

लेखक ने प्रस्तावना में इसे साधन-ग्रंथ कहते हुए लिखा है कि यह ग्रंथ प्रचारात्मक नहीं है। एक स्थान पर इन्होंने सत्यनिष्ठ कांग्रेस-अनुयायियों की आलोचना की थी। यह अंश बाद में सावरकर जी के अनुरोध पर निकाल दिया गया था। इससे स्पष्ट है कि लेखक तटस्थ वृत्ति का हामी होते हुए भी किन्हीं बातों में सावरकर जी का पक्षपाती है।

इस चरित्र-ग्रंथ से सावरकर के जाज्वल्यमान, कर्तव्यनिष्ठ त्यागमय-जीवन की आकृति साकार हो जाती है। सावरकर के जीवन के विभिन्न प्रसंगों का उल्लेख करते हुए, उनकी पुष्टि में उनके द्वारा रचित कविताओं को उद्धृत कर इसमें कवि सावरकर के भी दर्शन कराए गए हैं। यह इस चरित्र का एक अन्य वैशिष्ट्यपूर्ण पक्ष है।

सावरकर, विनायक दामोदर *(म० ले०)* [जन्म—1883 ई०]

सावरकर वृत्ति से कवि एवं कलाकार थे परंतु परिस्थितिवश उन्हें राजनीति में भाग लेना पड़ा था। इनके व्यक्तित्व में असामान्य कवित्व एवं अनन्य देशभक्ति का मनोज्ञ संगम देखने को मिलता है।

इन्होंने विपुल एवं विविध साहित्य-रचना की है। 'सावरकरांची स्फुट कविता', 'रानफुलें' इनकी स्फुट कविताओं के संग्रह हैं। 'सप्तर्षि' और 'गोमांतक' इनके खंडकाव्य हैं। पानीपत की लड़ाई पर इन्होंने जिस ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना प्रारंभ की थी उसके 'कमला' तथा 'विरहोच्छ्वास' नामक दो सर्ग आज खंडकाव्य के

रूप मे उपलब्ध है। 1910 ई० मे अँग्रेज सरकार द्वारा राजद्रोही घोषित किए जाने पर इन्हे काले पानी की सजा हुई थी और अडमान द्वीप जाना पडा था। वही कमला' और 'विरहोच्छ्वास' की रचना की थी।

राष्ट्रीयता इनके काव्य की आत्मा है। इनकी राष्ट्रीयता मानवता की पर्याय है। पतित, विधवा, दलित, अस्पृश्य देशी अथवा विदेशी बधु किसी पर भी होते अन्याय का प्रतिकार करने को सावरकर कटिबद्ध हैं। इनकी रचनाओ मे महाकाव्योचित उदात्तता, भव्यता एव ओजस्विता है। इसी कारण आधुनिक मराठी-आलोचक इन्हे महाकाव्य की रचना करने वाला महाकवि कहते है। इन्हे हिंदू होने पर अभिमान है। इनकी देश भक्ति की कविताएँ प्रत्यक्षानुभूत हैं, जिनमे प्रखरता एव तेजस्विता है। विदेशी शासको द्वारा किए गए अत्याचारो को सहते हुए भी इनके उद्‌गार अदम्य निष्ठा से युक्त हैं—'मैं अनादि हूँ, अनत हूँ, अवध्य हूँ।' भारत को उन्नत बनाने के लिए ये शास्त्रीय अनुसधान पर बल देने को कहते है।

अँग्रेज़ी (ब्लैंक वर्स) मुक्तछदो (दे०) का मराठी रूपातर कर इन्होने उसे 'वैनायकवृत्त' नाम दिया था।

'विज्ञाननिष्ठ निबधसग्रह भाग 1, 2 तथा 'जात्युच्छेदक निबध सग्रह' मे इनके निबध हैं। 'उ शाप', 'सन्यस्त खग', 'उत्तरक्रिया' इनके नाटक है, जिनमे लोक-जागरण की दृष्टि प्रतिफलित हुई है। 'काळेपाणी' इनका लिखा उपन्यास है। 'माँझिनीचें चरित्र' (दे०) नामक चरित्र ग्रथ है जिसकी महत्ता उसकी दीर्घ विचारोत्तेजक प्रस्तावना के कारण है।

'माँझी जन्मठेप' (दे०) और 'माँझ्या आठवणी' आत्मचरित्र वर्णनात्मक ग्रथ है, जो मराठी-साहित्य के लिए बहुमूल्य है।

टकण-लेखन की दृष्टि से भी मराठी लिपि सुधार तथा भाषा-शुद्धि के कारण इनका महत्त्व है। इन्होने साहित्य-रचना मे भाषा शुद्धि पर बल दिया था और यथासभव विदेशी शब्द विरहित शुद्ध मराठी भाषा का प्रयोग किया था। कवि, आत्मचरित्र लेखक एव निबधकार, तीनो दृष्टियो स य श्रेष्ठ साहित्यकार हैं।

सावळया (म० पा०)

हरिनारायण आपटे (दे०) के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'उष काल' (दे०) का यह पात्र अत्यत चतुर, जिज्ञासुवृत्ति और तुरतबुद्धि का किशोर है। राष्ट्रवादी भावनाओ से युक्त यह किशोर अनेक रूपो मे शिवाजी की सहायता करता है। उपन्यास मे इसका महत्त्व इसलिए है कि एक ओर यह हास्यरस का परिपोष करने मे सहायक है तो दूसरी ओर अपने भोलेपन, जिज्ञासु वृत्ति, बालकोचित आचरण द्वारा पाठक के हृदय मे वात्सल्य-भाव की सृष्टि करता है। हरिनारायण आपटे के अगले उपन्यासो मे यही किशोर बडा होकर, पराक्रमी, वीर सेनानी बन जाता है पर पाठक को जितना अभिभूत करने की शक्ति किशोर सावळया मे है उतनी युवक सेनापति मे नही। इसका एक कारण यह भी है कि आपटे बाल मन तथा किशोरो के चित्रण मे अत्यत पटु थे।

सावे पत्तर (प० कृ०)

यह मोहनसिंह का प्रथम कविता-सग्रह है जिसमे तेतालीस कविताएँ है। इसे कवि के काव्य विकास का प्रथम चरण कह सकते हैं। ये कविताएँ कथ्य और सरचना की दृष्टि से परपरावादी ही हैं। इसमे अधिकतर रोमानी या रोमानी रगत वाली आदर्शवादी कविताएँ है। इस सग्रह की कुछेक कविताएँ सामाजिक वर्ग-भेद की ओर भी सकेत करती हैं। 'मैं नही रहना तेरे गिरा' ऐसी ही एक कविता है। इस तरह की कविताएँ धारणा के स्तर पर ही रह गई है इनमे अनुभूति का ताप नही है। इस सग्रह की एक कविता है—'देश प्यार' जो बैलेड की गीति शैली मे लिखी गई है। यह कविता लेखक की तत्कालीन दृष्टि का काफी हद तक प्रतिनिधित्व करती है।

इस सग्रह की कविताएँ कवि के हृदय के किशोर प्रेम-गीत हैं। कवि की प्रेम-सबधी आकाक्षा है—

रबा प्यार मेरे दी मजिल
पूरी कदे न होवे

ये पक्तियाँ कवि के छायावादी अहम् को उजागर करती हैं।

साहनी, बलराज (प० ले०) [जन्म—1913 ई०]

भारतीय रजतपट के लोकप्रिय अभिनेता होने के साथ ही साथ श्री बलराज साहनी पजाबी के प्रतिष्ठित लेखक भी थे। श्री साहनी अपनी मातृभाषा के उन प्रेमियों मे थे जिन्होंने उसे और उसके साहित्य को

सांप्रदायिकता के संकुचित घेरे से निकालने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

श्री साहनी ने पंजाबी में कहानियाँ, कविताएँ और यात्रा-विवरण मुख्य रूप से लिखे हैं। उन्हें अपनी कृति 'मेरा रूसी सफ़रनामा' पर 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' प्राप्त हो चुका है। अभी कुछ वर्ष पूर्व उनका स्वर्गवास हो गया।

साहसभीमविजय अथवा गदायुद्ध (क० कृ०) [रचना-काल—982 ई०]

'साहसभीमविजय' अथवा 'गदायुद्ध' के कवि रन्न (दे०) 'रत्नत्रय' में तीसरे हैं। (अन्य दो कवि हैं पंप (दे०) तथा पोन्न (दे०)। उनकी आत्मस्तुति—'रन्न की कृति और फणिपति के फन में विद्यमान रत्न की परीक्षा करने की सामर्थ्य किसमें है?'—निस्सार नहीं है। 'गदायुद्ध' उनकी श्रेष्ठ रचना है। उसे देखने से उन की आत्मस्तुति का सार्थक्य ज्ञात हो जाता।

'महाभारत' (दे०) के गदा पर्व और सौप्तिक पर्व का कथानक 'गदायुद्ध' की वस्तु है। वस्तुतः रन्न को व्यास-कृत महाभारत से सीधे प्रेरणा नहीं मिली है, पंप-भारत के तेरहवें आश्वास को पढ़कर उसके आधार पर उन्होंने एक स्वतंत्र काव्य की रचना की है। पंप की शैली का अनुकरण इस बात का साक्षी है। परंतु, उनकी प्रतिभा कहीं भी मंद नहीं पड़ी है। भास (दे०) के 'उरुभंग' (दे०) तथा भट्ट नारायण (दे०) के 'वेणीसंहार' से भी प्रेरणा प्राप्त करके उन्होंने अपनी कृति को श्रव्य काव्य के ही नहीं, दृश्य काव्य के गुणों से भी विभूषित कर दिया है।

बाह्यरूप से देखने पर 'गदायुद्ध' की कथा महाभारत के दो पर्वों तक सीमित है, पर आंतरिक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होगा कि सिंहावलोकन-क्रम से उसमें संपूर्ण महाभारत की कथा कही गई है, एक घटना को लेकर एक अपूर्व 'रसार्णव' प्रस्तुत किया गया है।

'गदायुद्ध' की सबसे बड़ी विशेषता उसकी नाटकीयता है। आचार्य बी० एम० श्रीकंठैया (दे०) जी का अनुमान था कि वह पहले नाटक के रूप में लिखा गया था, बाद मे उसको चंपू-काव्य का जामा पहनाया गया। उन्होंने किंचित् परिवर्तन के साथ 'गदायुद्ध' को नाटक का रूप दिया है जिसमें दस दृश्य हैं। उन्होंने रन्न को महाकवि ही नहीं, वर-कवि और चिर-कवि भी माना जिसका हेतु 'गदायुद्ध' ही है।

जैन होने कारण रन्न की दृष्टि में उनका 'गदायुद्ध' लौकिक काव्य ही है। पंप ने जिस प्रकार अपने काव्य में कथानायक अर्जुन (दे०) एवं अपने आश्रयदाता अरिकेसरी में अभेद स्थापित किया है, उसी प्रकार रन्न ने भी अपने काव्य के नायक भीम (दे०) और अपने आश्रयदाता सत्याश्रय में अभेद स्थापित किया है।

'गदायुद्ध' के नायक और अंगी रस के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग दुर्योधन (दे०) को नायक और 'वीर' को अंगी रस मानते हैं तो अन्य लोग भीम को नायक और 'रौद्र' को अंगी रस मानते हैं। दूसरा मत ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। दुर्योधन प्रतिनायक है जिसके चित्रण में कवि ने पूर्ण सहानुभूति दिखाई है, उसको 'महानुभाव' बनाया है। उन्होंने भीम का महत्व दिखाया है, पर दुर्योधन का महत्व घटाया नहीं है।

आकार में 'गदायुद्ध' 'पंपभारत' (दे०) से छोटा है, पर प्रकार में नहीं। रस-निरूपण, चरित्र-चित्रण, औचित्यपूर्ण वर्णन, भाषा-शैली आदि सभी दृष्टियों से 'गदायुद्ध' अद्वितीय काव्य है, कन्नड-साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

साहित्तारथ (पं० कृ०)

संतसिंह सेखों (दे०) की यह कृति पंजाबी आलोचना के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें साहित्यिक आलोचना को पहली बार संयत एवं नियमबद्ध रीति से प्रस्तुत करने का यत्न हुआ है। इससे पूर्व पंजाबी आलोचक इस क्षेत्र में इच्छानुसार इतिहास, समाज, प्रकृति, संस्कृति और व्यक्तिगत रुचि का आरोप कर आलोचना के स्वरूप को गडमड करते रहे और वैसी कृतियाँ एक अनुशासनहीन अध्ययन का ही आभास देती थीं। अतः उसे एक निश्चित अनुशासन में आबद्ध करने का यह प्रथम प्रयास था। इस रचना से पंजाबी में समाजवादी आलोचना-प्रणाली का श्रीगणेश हुआ। साहित्य को समाज के अधीन रखकर परखना इस दृष्टिकोण की अनिवार्यता है। क्रमबद्ध एवं तर्कपूर्ण आलोचना-शैली के रूप मे प्रस्तुत होने वाली इस प्रथम रचना ने पंजाबी अध्ययन-अध्यापन को बहुत प्रभावित किया, और इसी के प्रभावस्वरूप काफ़ी समय तक उस क्षेत्र में समाजवादी आलोचना हावी रही।

साहित्य *(बँ० कृ०)* [रचना काल —1907 ई०]

'साहित्य' (1907) मे भारती', 'साधना', तथा 'बगदर्शन' पत्रिकाओ मे प्रकाशित रवीद्रनाथ ठाकुर (दे० ठाकुर) के साहित्य विषयक नाना निबधो का सकलन है। इसमे साहित्य तत्त्व, रसविचार तथा समालोचना एवं सौर्दयतत्व की आलोचना की गई है। रवींद्रनाथ का कहना है कि साहित्य का अच्छा लगना या खराब लगना ही साहित्य की अतिम बात है परतु साथ मे यह भी स्वीकार किया है कि साहित्य विवेचन की भी आवश्यकता है। उनके अनुसार साहित्य-विवेचन मे दो बातो पर ध्यान देना आवश्यक है—(1) विश्व पर साहित्यकार के हृदय का अधिकार कितना है ? और (2) स्थायी रूप मे वह व्यक्त कितना हुआ है ? हर समय इन दोनो मे सामजस्य नही रहता—जहाँ रहता है वहाँ सोने मे सुहागा होता है। रवींद्र के अनुसार 'साहित्य' शब्द की उत्पत्ति 'सहित' शब्द से हुई है। धातुगत अर्थ के आधार पर इस मे मिलन का सकेत मिल जाता है यह केवल भाव से भाव का, भाषा से भाषा का या ग्रथ स ग्रथ का मिलन नही, वल्कि मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूरी के साथ निकटता का अत्यत अतरग योग-मिलन है जो साहित्य के अतिरिक्त और कही भी सभव नही है। रवींद्रनाथ ने सौंदर्यवाद तथा रसवाद के अतिरिक्त औपनिषदिक अथवा वेदातिक ब्रह्मवाद की सहायता से साहित्य-तत्त्व का विवेचन प्रस्तुत किया है। इस प्रकार उन्होंने रस, सौदर्य और बृहत् जीवनदर्शन—इन तीन मानदडो की सहायता से अपनी काव्यशास्त्रीय विचार धारा को प्रकट किया है। आधुनिक युग की वास्तविकता तथा समाजशास्त्रीय भावधारा उन्हे प्रभावित नही कर सकी थी और इसीलिए उन्हे जीवन म विद्वानो का विरोध सहना पडा था परतु इससे उनके स्थायी साहित्यिक मानदडो के मूल्य की अवमानना नही हुई। यह सत्य है कि साहित्य-तत्त्व-विषयक उन्होने कोई अभिनव मतवाद अथवा सप्रदाय की प्रतिष्ठा नही की परतु यह निश्चित है कि उन्ही के कारण बँगला काव्यशास्त्र तत्त्व, व्याख्या तथा विश्लेषण की दृष्टि स सुदृढ भित्ति पर प्रतिष्ठित हो सका।

साहित्य *(पारि०)*

साहित्यस्य भाव साहित्यम्, अर्थात् शब्द और अर्थ के सहित-भाव (परस्पर सान्निध्य) को 'साहित्य' कहते हैं। अथवा इसमे शब्द और अर्थ दो सुहृदो के समान एक दूसरे की शोभा को बढाते हुए एक-दूसरे के हित मे लगे रहते हैं—किसी अर्थ के वाचक अनेक पर्याय-शब्दो मे से कवि अपने विवेक से जिस शब्द का चयन करता है वही शब्द युग-युगातर तक कवि के अभीष्ट अर्थ का वाचक होता है और सहृदय की आह्लाद-प्राप्ति मे सहायक बनता है (वक्रोक्तिजीवित 1 8, 9) काव्यशास्त्र मे 'साहित्य' शब्द काव्य का पर्याय है, इसी कारण काव्यशास्त्र को 'साहित्य विद्या', साहित्य-मीमासा' कहा जाता रहा है किंतु आज यह शब्द अँग्रेजी के 'लिट्रेचर' शब्द का पर्याय बन गया है जैसे कानून का साहित्य, चिकित्सा का साहित्य, आदि।

साहित्यकौतुकम् *(मल० कृ०)*

महाकवि जी० शकर कुरुप्प (दे०) की आरभिक कविताओ का सकलन 'साहित्यकौतुकम्' नाम से प्रकाशित हुआ। इसके चार भाग हैं। 1928 ई० मे इसका प्रथम प्रकाशन हुआ। इसकी अधिकाश कविताएँ प्रकृति-प्रेम तथा देश-भक्ति से ओतप्रोत हैं।

साहित्यदर्पण *(स० कृ०)* [समय—चौदहवी शती का मध्य]

चौदहवी शती के लेखक विश्वनाथ (दे०) कविराज के 'साहित्यदर्पण' का अलकारशास्त्र मे प्रमुख स्थान है। दश परिच्छेदो के इस ग्रथ मे विश्वनाथ ने 'काव्यप्रकाश' (दे०) तथा ध्वन्यालोक (दे०) का विशेष अनुसरण किया है यद्यपि काव्यलक्षण आदि अनेक स्थलों पर 'काव्य प्रकाश' की कटु आलोचना भी की गई है। इस ग्रथ के विवेच्य विषय काव्यप्रयोजन, काव्यस्वरूप, शब्दार्थ-निर्णय, रस, भाव, काव्यभेद, ध्वनि, गुणीभूतव्यग्य, व्यजनावृत्ति, नाट्य, दोष, गुण, रीति तथा अलकार क्रमश हैं। इस ग्रथ की विशेषता यह है कि इसम ग्रथकार ने काव्य के दोनो भेदो—श्रव्य तथा दृश्य—का वर्णन कर इसे पूर्ण ग्रथ बना दिया है। व्यजना-वृत्ति को न मानने वाले विद्वानो के मतो का खडन कर इन्होंने व्यजना की पुन स्थापना की है।

'साहित्यदर्पण' पर चार टीकाएँ लिखी गई हैं जिनमे मथुरानाथ शुक्ल-कृत 'टिप्पण' तथा गोपीनाथ-

कृत 'प्रभा' अभी तक अप्रकाशित है। इसकी प्राचीनतम टीका 'लोचन' को इनके सुपुत्र अनंतदास ने लिखा है। किंतु रामायण तर्कवागीश-कृत 'विवृति' नामक टीका ही अत्यंत लोकप्रिय एवं उपादेय है।

साहित्य निकषम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—1935 ई०]

यह प्रसिद्ध हास्य-लेखक और समालोचक एम० आर० नायर (दे० संजयन्) के साहित्यिक निबंधों का संग्रह है। इस संग्रह के निबंधों में साहित्यिक कृतियों का आस्वादनात्मक विवेचन किया गया है। इन आस्वादनों की एक विशेषता यह है कि इनमें अन्य कृतियों के महत्व और लघुत्व से निरपेक्ष होकर शुद्ध समालोचना की गई है। 'संजयन्' (दे०) के नाम से इस प्रतिभाशाली व्यंग्यकार द्वारा लिखे गए तीक्ष्ण व्यंग्य की तुलना में इन निबंधों का संयम और संतुलन दर्शनीय है। साहित्य-समालोचना के क्षेत्र में एक मार्गदर्शक कृति के रूप में इस ग्रंथ का योगदान महत्वपूर्ण है।

साहित्य वीख्या *(उ० कृ०)*

'साहित्य वीख्या' डा० देवीप्रसन्न पटनायक (दे०) के समीक्षात्मक निबंधों का संग्रह है। लेखक के विशाल अध्ययन की स्पष्ट झलक इन पांडित्यपूर्ण साहित्यिक निबंधों में देखी जा सकती है। इसमें भाव और विचारों की गूढ़ एवं गुम्फित परंपरा मिलती है। लेखक के चिंतन में खुलापन और विवेचना में उन्मुक्तता है। उसकी दृष्टि प्राचीन, नवीन, पूर्व, पश्चिमी सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त है। लेखक में समस्या के अंतर में पैठने की पैनी तलस्पर्शी अंतर्दृष्टि है, फलतः विवेचना में तार्किकता, सूक्ष्मता और सटीकता मिलती हैं। भाषा में विचारों और विश्लेषण का भार वहन करने की क्षमता एवं प्रचंड अभिव्यंजना-शक्ति है। शैली विश्लेषणात्मक और गंभीर है। इसमें कहीं भी दुर्बोधता नहीं है।

साहित्यभारती *(क० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1971 ई०]

यह श्रीमान् अनंतरंगाचार्य की बृहदाकार रचना है जिसमें भारत की समस्त प्रमुख भाषाओं का साहित्येतिहास दिया गया है। मैसूर विश्वविद्यालय की त्रैमासिक साहित्य-पत्रिका 'प्रबुद्ध कर्णाटक' में उन्होंने पहले प्रत्येक भाषा के साहित्य का परिचय कराया था। उन लेखों का संशोधन और परिवर्धन कर उन्होंने 1971 में इस ग्रंथ का प्रकाशन कराया था। इसमें संस्कृत (आधुनिक संस्कृत साहित्य को भी मिलाकर), कन्नड, तेलुगु, तमिल, हिंदी आदि भाषाओं के साहित्य का सुंदर परिचय उपलब्ध होता है। कन्नड में तो इस विषय का यह सर्वप्रथम और अद्वितीय ग्रंथ है।

साहित्यमंजरी *(मल० क०)*

इसके लेखक श्री वळ्ळत्तोळ् (दे०) अनेक खंडकाव्यों तथा एक महाकाव्य के यशस्वी रचयिता हैं। उन्होंने कितनी ही स्फुट कविताएँ भी रची हैं। इन मुक्तकों का संकलन 'साहित्य-मंजरी' शीर्षक के ग्यारह खंडों में किया गया है। सबसे प्रथम कविता का रचना-काल 1903 ई० और सबसे अंतिम कविता का रचना-काल 1957 ई० है। 50 वर्ष की अवधि तक अथक सृजनरत इनकी कलम ने अनेक भावपूर्ण मुक्तक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनमें कुछ देशप्रेम से संबंधित हैं, कुछ प्रकृति-वर्णन से। पुराण, इतिहास आदि में प्रसिद्ध थोड़ी-सी घटनाएँ भी कुछ स्फुट रचनाओं का विषय हैं। छोटे-छोटे विषयों और छोटी-छोटी घटनाओं ने इनके कवि-मानस को तरंगित किया है।

'साहित्यमंजरी' की राष्ट्रीय कविताओं में 'एंटेगुरुनाथन्', 'एंटे भाषा', 'नम्मुटे मरुपटि' आदि विशेष प्रसिद्ध है। पौराणिक विषय-वस्तु वाली रचनाओं में 'अंपाटियिल् चेन्न अक्रूरन्', 'किलिक्कोंचल', 'पुराणङ्ङळ्' आदि सफल हैं। लघु विषय की रचनाओं में 'कोंपि' और विनोद-प्रधान दुर्लभ कविताओं में 'कुल्लुम् सम्मानम्' कवि की प्रतिभा का विशेष परिचय देती हैं। दार्शनिकता के पुट से युक्त प्रकृतिवर्णनपरक रचनाओं में 'सत्यगाथा' 'प्रभातकीर्तनम्' आदि भावपूर्णता के लिए प्रसिद्ध है। वळ्ळत्तोळ् की कविता में शिल्पगत विशेषता, सहज शब्द-गठन, प्रवाह और रोमांटिक भाव के लायक लय-युक्त छंदों का व्यवहार है।

साहित्यलहरी *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1550 ई० से 1743 ई० तक के बीच]

इसकी प्रामाणिकता के बारे में विद्वानों को

पूर्ण सदेह है। बनारस लाइट प्रेस, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर लहेरिया सराय पुस्तक भडार से इसका मुद्रण क्रमश 1869, 1890 1892 तथा 1939 ई० मे हुआ था। इस ग्रथ पर काशी नरेश के आश्रित कवि सरदार, भारतेंदु (दे०) बाबू और डा० मनमोहन गौतम की टीकाएँ मिलती हैं। इसमे सूर, सूरदास और सूरज आदि प्रयुक्त कवि छापें इसे सूरदास (दे०) की कृति घोषित करती हैं। परन्तु कुछ विद्वान् इसके वर्ण्य-विषय, दृष्टिकोण और भाषा शैली के आधार पर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह रचना किसी अन्य सूर कवि की है, जिसका अस्तित्व अठारहवी शती के पहले नही माना जा सकता।

'साहित्यलहरी' का मुख्य प्रतिपाद्य नायिका-भेद (दे०), अलकार (दे०) अथवा किसी न किसी काव्याग का लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत करना है। अत यह रचना भक्तिपरक न होकर पूर्णत साहित्यिक रचना है। परतु फिर भी लक्षण और उदाहरण भाषाशैली और काव्य-कला की अप्रकृष्टता के कारण रीति और अलकार-ग्रथो मे इसे विशेष स्थान नही मिला है। इसमे 'सूरसागर के दृष्टिकूट पदो की शैली का अनुकरण किया गया है परतु 'सूरसागर' के दृष्टिकूट पदो की उच्च भावात्मकता और उत्कृष्ट काव्य-कला इसके पदो को छू भी नही गई है—सारी विषयवस्तु एक भाव या विचार की बार बार की पुनरावृत्ति से बोझिल हो गई है। महात्मा सूरदास से सबधित से सबधित यह रचना अभी शोध का विषय बननी चाहिए। इस पर प्रामाणिक सस्करण की आवश्यकता भी निरतर बनी हुई है।

साहित्य-सग्रह (म० कृ०)

'काल' पत्रिका मे तजस्वी प्रखर निबध लिखने वाले शिवराम महादेव पराजपे (1864 1929 ई०) के 'साहित्य-सग्रह' मे साहित्य विषयक विविध प्रकार के निबध सकलित हैं। 'साहित्य सग्रह दो भागो म है।

इस सग्रह के निबधो स पराजपे जी के सस्कृत साहित्य के गहन, मूलग्राही अध्ययन का परिचय मिलता है। 'भासाची भवितव्यता' निबध प्रतीकात्मक शैली म रचित उत्कृष्ट गद्यकाव्य का नमूना है। किंवदती है कि भास (दे०) के नाटक अग्नि म डाल जलाए गए थ। पराजपे जी के भी निबध जब्त किए गए तो उन्ह मर्मान्तक पीडा पहुँची थी। अत भास एव स्वय को सम दोकात जान इसम स्वानुभूत व्यथा की करुण अभिव्यक्ति की गई है।

'मेघदूतावरून कालिदासाविषयी' निबध परिचयात्मक है, इससे इनकी शोध बुद्धि का पता चलता है। इसमे 'मेघदूत' (दे०) के आधार पर कालिदास (दे०) के स्थान का निधारण तथा 'मालविकाग्निमित्रम्' (दे०) के आधार पर काल निर्धारण कर दोनो निष्कर्षों की असगति को सामने रखा गया है। 'चारुदत्त आणि मृच्छकटिक', 'भगवद्गीतेंतील एक शकास्थान', 'शाकुतल नाटकाचा चौथा अक', विष्णुसहस्रनाम' आदि इनके गवेषणात्मक निबध है। सूर्याच्या गैरसोयी' कवित्वपूर्ण निबध है। इसमे अमावस्या के दिन सूर्य की चद्र स हुई भेंट का वणन है तथा तदुपरात चद्र द्वारा निवेदित उसकी करुण जीवन कथा है। 'मनाची मीमासा', 'श्रद्धा', 'कर्म', माया', पूर्वजन्म' और पुनर्जन्म' जैसे सूक्ष्म गभीर विषयो पर भी पूरे अधिकार के साथ लिखा गया है।

श्री पराजपे ने निबध-लेखन के अनक रूपो को अपनाकर मराठी निबध का क्षेत्र व्यापक ही नहीं बनाया, मराठी साहित्य को सपन्न भी किया है। इनकी निबध-शैली लाक्षणिक एव प्रतीकात्मक है। भाषा सस्कृत-प्रचुर, परिष्कृत तथा प्रवाहमयी है। आधुनिक मराठी साहित्य मे कलात्मक कवित्वपूर्ण रचनात्मक आलोचना का नमूना प्रस्तुत करने की दृष्टि से इनके निबध अनूठे हैं।

साहित्यालोचन (हिं० कृ०) [रचना काल— 1927 ई०]

इस ग्रथ के लेखक डा० श्यामसुदरदास (दे०) हैं। इसम सात अध्याय हैं जिनम निम्नोक्त विषयो का विवेचन किया गया है—(1) कला (2) साहित्य, (3) काव्य, (4) कविता, (5) गद्यकाव्य, (6) रसशैली, (7) साहित्य की आलोचना। हिंदी म लिखित काव्य-शास्त्रीय ग्रथो म सभवत यह प्रथम ग्रथ है जिसम पाश्चात्य आलोचना-पद्धति पर आधारित मान्यताओ को भी यथावत स्थान मिला है। कहीं-कहीं दोनो दिशाओ क सिद्धाता एव उपसिद्धाता का तर्कसगत रूप म तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र के प्रभाव-स्वरूप इन्होंने अनेक धारणाएँ प्रस्तुत की गई हैं। उदाहरणार्थ—साहित्य (काव्य) को कला क अतगत परिगणित करना (न कि भारतीय दृष्टि क अनुसार 'विद्या' क अतर्गत), काव्य म नैतिकता' को एक आवश्यक तत्त्व क रूप म स्वीकार न करना, कला कला के

लिए' सिद्धांत मानने वालों के साथ सहमति, आदि। इधर 'साधारणीकरण' (दे०) सिद्धांत में इन्होंने पंडित केशवप्रसाद मिश्र-सम्मत 'मधुमती-भूमिका' को उद्धृत करके इस विषय को दर्शन की भावभूमि पर अवस्थित कर दिया है। ग्रंथ की भाषा एवं शैली सुगम तथा स्वच्छ है। लेखक में जटिल विषयों को सरल-सुबोध एवं स्पष्ट बनाने की अद्‌भुत क्षमता है।

साहिर लुधियानवी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1921 ई०; मृत्यु—1980 ई०]

जन्म-स्थान : लुधियाना। पिता का नाम : चौधरी फज़ल मुहम्मद। इन्होंने दयालसिंह कालेज लुधियाना से बी० ए० किया, सन् 1940 ई० में इनका कवि-रूप सामने आया था और शीघ्र ही इस क्षेत्र में उन्नति प्राप्त कर ये उर्दू-काव्य-जगत में अपना विशिष्ट स्थान बना लेने में सफल हो गए। लाहौर में इन्होंने उर्दू साहित्य की मासिक पत्रिकाओं—'सवेरा' और 'अदब-ए-लतीफ़' का संपादन काफ़ी समय तक किया था। तदुपरांत दिल्ली की उर्दू मासिक पत्रिकाओं—'शाहराह' और 'प्रीतलड़ी' के संपादक के रूप में भी ये कार्य करते रहे थे। इनकी दो काव्य-कृतियाँ—'परछाइयाँ' और 'तलखियाँ' छप कर यथेष्ट लोकप्रिय हो चुकी है। गद्य-लेखक के रूप में भी इन्होंने कुछ कार्य किया है। 'कार्ल-मार्क्स' और 'साम्राज्य' इनकी गद्य कृतियाँ हैं। विचारों और मान्यताओं की दृष्टि से ये प्रगतिवादी थे। इनका कवि-रूप ही इनके व्यक्तित्व का प्राण है। अनुभूति की तीव्रता, कल्पना का औदात्य, भाषा का लालित्य, भावुकता की प्रभविष्णुता और कला की प्रौढता इनकी काव्य-कृतियों की विशेषता है। बंबई में रहकर ये चित्रपट के लिए इन्होंने वर्षों तक लोकप्रिय गीत लिखे।

साहेब बिबि गुलाम *(बँ० कृ०)*

बिमल मित्र (दे०)-विरचित अन्यतम औपन्यासिक कृति 'साहेब बिबि गुलाम' में कलकत्ते के उन्नीसवी शती के एक संभ्रांत परिवार की जीवन-यात्रा एवं जीवन-दर्शन के तिरोभाव की कहानी है। कहानी के मूल अंश में छोटी बहूरानी अपने लंपट शराबी पति को वापिस लाने की कोशिश करती है एवं कहानी के वक्ता के साथ जबा का विशुद्ध रोमांस इस कथा का गौण अंश है। छोटी-छोटी कतिपय विच्छिन्न घटनाओं के माध्यम से ढहती हुई जमींदारी-प्रथा के अहंकार, गंदगी एवं कामुकता को इसमें यथार्थ ढंग से प्रकट किया गया है। इसी के साथ उन्नीसवीं शती के पहले चरण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतर का इतिहास कथा के रूप में रचित हुआ है और वस्तुतः इसी की पटभूमिका में नायक, नायिकाओं एवं नौकरों के चरित्र-चित्रण के द्वारा एक संपूर्ण युग को उपन्यास में रूपांतरित किया गया है। इस उपन्यास में गिरते हुए जमींदार महल का चित्र है। इसमें पति-परित्यक्ता छोटी बहू के जीवन की सबसे बड़ी समस्या की करुण गाथा है; जमींदार-तंत्र के क्रमावसान एवं पूँजीवाद के क्रम-प्रसार के माध्यम से सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का रूपांतरण है एवं जबा तथा भूतनाथ के जीवन में आवेग-प्रधान रोमांस की सृष्टि है।

इस उपन्यास में मनुष्य कोई महत् आदर्श प्राप्त नहीं करता परंतु उसे प्रतिकूल अवस्था में कतिपय भावावेगों एवं मूल्य-बोध के लिए सतत संग्राम करता हुआ दिखाया गया है। पाठकों के लिए इस संग्राम की निस्सारता तीव्र वेदनामय है। एक समग्र जीवन-यात्रा एवं जीवन-दर्शन का तिरोभाव हमारे मन में एक अव्यक्त शून्यताबोध एवं वेदना का उद्रेक करता है।

सिंगरार्य *(क० ले०)*

सिंगरार्य (समय—1700 ई० के लगभग) मैसूर के राजा चिक्कदेवराज (दे०) के आश्रय में रहते थे। ये तिरुमलार्य के छोटे भाई थे। इनका एकमात्र उपलब्ध ग्रंथ 'मित्रविंदा गोविंद' (दे०) नामक नाटक है। कन्नड के उपलब्ध नाटकों में इसी का नाम सर्वप्रथम उल्लेख्य है। यह श्रीहर्ष (दे०) के 'रत्नावली' नाटक की छाया अथवा अनुकृति है क्योंकि यहाँ के पात्रों के नाम बदल लिए गए है। 'रत्नावली' का नायक शृंगार-नायक है तो इसका नायक 'पुरुषोत्तम' है। श्रीकृष्ण ही इसके नायक है। इससे स्पष्ट है कि सिंगरार्य का दृष्टिकोण 'रत्नावलीकार' के दृष्टिकोण से भिन्न है। इसकी भाषा-शैली में प्राचीन कन्नड का गांभीर्य और तेज है।

सिंदूर की होली *(हिं० कृ०)*

यह लक्ष्मीनारायण मिश्र (दे०) का अत्यंत प्रसिद्ध समस्या नाटक है जिसमें लेखक ने बुद्धिवादी दृष्टि-

कोण को अपनाते हुए भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों तथा स्त्री-पुरुष की समस्याओ का अत्यत जीवत चित्र प्रस्तुत किया है। मनोरमा, चद्रकला, मुरारीलाल, मनोजशकर इसके प्रमुख पात्र हैं जिनके माध्यम से नाटककार ने बाल-विवाह, विधवा विवाह, घूसखोरी, स्वच्छद प्रेम आदि का अत्यत मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। चद्रकला आधुनिक युग की उन नारियो के प्रतीक-रूप मे चित्रित हुई है जो शारीरिक स्वाधीनता के साथ साथ मानसिक स्वाधीनता भी चाहती है। मुरारीलाल घूस के सहारे जीवन व्यतीत करने वाले अफसर-वर्ग का प्रतीक है तो मनोजशकर आधुनिक युग का प्रतिनिधित्व करने वाला ऐसा युवक है जो स्वच्छद प्रेम मे विश्वास रखता है। शिल्प-विधान की दृष्टि से नाटककार ने विषयानुरूप भाषा का प्रयोग करते हुए दृश्य परिवर्तन के बिना अकों का ऐसा विभाजन किया है कि अभिनेयता मे किसी प्रकार की कठिनाई न पडे। कुल मिलाकर यह हिंदी की एक अत्यत सफल एव प्रभावपूर्ण नाट्यकृति है।

सिंधी नसुर जी तारीख *(सिं० कृ०)*

'सिंधी नसुर जी तारीख' (सिंधी गद्य का इतिहास) के लेखक मघाराम उधाराम मल्काणी (दे०) है। यह पुस्तक 1968 ई० मे कूंज पब्लिकेशन बबई से प्रकाशित हुई है। मल्काणी जी को इस पुस्तक पर साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली से पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। मल्काणी जी ने इस पुस्तक मे आरभिक सिंधी-गद्य की रचनाओ का वर्णन करके उसके पश्चात् अलग-अलग अध्यायो मे सिंधी-कहानी, उपन्यास, नाटक, एकाकी, निबध और आलोचना के विकास का इतिहास प्रस्तुत किया है। लेखक ने यद्यपि गद्य की विभिन्न प्रवृत्तियो का सूक्ष्म विश्लेषण इस पुस्तक मे नही किया है, फिर भी इस विषय पर उन्होने अधिक से अधिक सामग्री एक स्थान पर इकट्ठी कर देने का प्रशसनीय किया है। सिंधी मे यह प्रथम रचना है जिसमे सिंधी-गद्य के विकास का आरभ से लेकर 1947 ई० तक विस्तार से विवेचन किया गया है।

सिंधी बोलीअ जी तारीख *(सिं० कृ०)*

इस पुस्तक के लेखक भेरूमल महिरचद आडवाणी (दे०) हैं। यह 1941 ई० म कराची में प्रकाशित हुई थी। विभाजन के पश्चात् 1962 ई० मे दिल्ली विश्वविद्यालय से इसका देवनागरी लिपि मे सस्करण भी प्रकाशित हुआ था। सिंधी मे यह पहली पुस्तक है जिसमे सिंधी भाषा के इतिहास का विस्तार से वर्णन किया गया है। लेखक ने इसमे सिंध के इतिहास और सिंधी साहित्य का भी सक्षेप मे वर्णन किया है। सिंधी की मुख्य उपभाषाओ की विशेषताएँ भी इस पुस्तक मे दी हुई है। लेखक ने अपनी मुहावरेदार और रोचक शैली से इस शुष्क विषय को काफी मनोरजक बना दिया है। जब तक सिंधी भाषा के विकास पर आधुनिक भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से कोई और पुस्तक लिखी जाए तब तक यह कृति सिंधी साहित्य मे इस कमी को पूरा करने के लिए अशत पर्याप्त है।

सिंधी-लोक-साहित्य *(सिं० कृ०)*

सिंधी अदबी बोर्ड हैदराबाद की ओर से 1957 ई० मे सिंधी लोक-साहित्य का सग्रह कर उसे प्रकाशित कराने की योजना का आरभ किया गया था, जिसके अतर्गत लगभग 25 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। सिंधी-लोक-कथाओ को सात भागो मे प्रकाशित किया गया है। इसके अतिरिक्त सिंधी-पहेलियाँ, लोकगीत, विवाहगीत, किस्से, मदाहू (दे०), मुनाजातू (दे०), मालूद (दे०), मुनाकिबा (दे०), मुअजज़ा (दे०), मुनाज़िरा (दे०), टीह-अखियूं (दे०), हफ्ना-दीह रात्यू महीना (दे०) शीर्षकों से भी सिंधी-लोक साहित्य के विभिन्न अगो का सग्रह कर उन्हे प्रकाशित किया गया है। इस योजना के निर्देशक और निरीक्षक सिंधी यूनिवर्सिटी के प्राध्यापक डा० नबी बख्श खान बलोच (दे०) हैं। कुछ साहित्यकार व्यक्तिगत रूप से भी लोक-साहित्य के क्षेत्र म कार्य कर रहे हैं। लाडकाणो (सिंध) के गवर्नमेंट कालेज के सिंधी विभाग के अध्यक्ष और प्राध्यापक अब्दुलकरीम सदीलो तथा भारत मे उल्हासनगर (महाराष्ट्र) के साहित्यकार नारायण 'भारती' (दे०) ने इस क्षेत्र मे अनुसधान कर प्रशसनीय पुस्तकें प्रकाशित की हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के सिंधी विभाग के अध्यक्ष मुरलीधर जैतली (दे०) ने सिंधी कहावतो का वृहत् कोश तैयार किया है जिसम लगभग पाँच हजार कहावतें हिंदी-अर्थ सहित दी गई हैं। सिंधी-लोक-साहित्य बहुत समृद्ध है। भारत मे उसके सग्रह और सरक्षण का कार्य भी शीघ्रातिशीघ्र सरकार की ओर से होना चाहिए, नहीं तो

कुछ वर्षों में पुरानी पीढ़ी के चल बसने के पश्चात उसका अधिक भाग लुप्त हो जाने की संभावना है।

सिंधी साहित्य जो इतिहास *(सिं० कृ०)*

इस पुस्तक के लेखक मुरलीधर कृष्णचंद्र जैतली (दे०) हैं। 1972 ई० में सिंधु समाज, नयी दिल्ली ने इसे प्रकाशित किया है। सिंधी में यह पहली पुस्तक है जिसमें आठवीं ई० शती से 1970 ई० तक विभिन्न प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर सिंधी-साहित्य के विकास का संक्षेप मे विवेचन किया गया है और साहित्यक प्रवृत्तियों के आधार पर सिंधी-साहित्य के काल-विभाजन का भी निर्णय किया गया है। लेखक ने इसमे पहले सिंधी भाषा के विकास का संक्षेप मे विवेचन कर उसके पश्चात् आदि और मध्यकालीन सिंधी-काव्य की धाराओं का विश्लेषण किया है तथा प्रतिनिधि कवियों और उनकी रचनाओं का भी संक्षेप में परिचय दिया है। आधुनिक काल के अंतर्गत सिंधी भाषा की लिपि का संक्षिप्त इतिहास देने के पश्चात् सिंधी-कविता तथा गद्य के विकास का विश्लेषण किया गया है। गद्य के अंतर्गत कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध और आलोचना के विकास का विवेचन किया गया है। सिंधी-साहित्य के इतिहास पर इसके पूर्व जो भी पुस्तकें मिलती हैं, उन सब से यह निराले ढंग की कृति है।

सिंह, जी० बी० *(पं० ले०)* [जन्म—1877 ई०; मृत्यु 1950 ई०]

आप परंपरा-प्राप्त रचनाओं को पैनी आलोचनात्मक दृष्टि से देखने वाले विद्वान लेखक हैं। 'प्राचीन बीड़ा बारें' आपकी प्रसिद्ध कृति है। इस रचना के कारण आप पंजाबी के विद्वानों और सिखधर्म के अग्रणी विद्वानों मे भी बहुत प्रसिद्ध हो गए। इसके अतिरिक्त आपकी दूसरी प्रमुख कृति 'गुरुमुखी लिपि बारें' है। इस विषय पर आज भी इस कृति की प्रामाणिकता निर्विवाद है।

सिंहल द्वीप *(अप० पारि०)*

प्रभूत धन-संपत्ति अर्जित करने के लिए नायक के सिंहल द्वीप की यात्रा से संबद्ध कथानक का उपयोग अनेक कवियों ने अपने काव्यों में किया है। अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए सिंहल द्वीप पहुँचने में नायक की वीरता प्रदर्शित करने का भी कवि को समुचित अवसर मिल जाता है। वहाँ से लौटते हुए समुद्र में नायक-नायिका की नौका या जहाज़ के ध्वस्त हो जाने पर दोनों वियुक्त हो जाते है और फिर संयोग से या किसी अदृश्य शक्ति की सहायता से दोनों का मिलन हो जाता है। इस कथानक रूढ़ि का प्रयोग अनेक अपभ्रंश-कवियों ने किया है। धनपाल की 'भविसयत्त कहा' (दे०), कनकामर के 'करकंडुचरिउ' (दे०), लाखू के 'जिणदत्त चरिउ' (दे०), नरसेन-कृत 'श्रीपाल-चरित्त' आदि अपभ्रंश-ग्रंथों में इस कथानक का रूप स्पष्ट परिलक्षित होता है। सिंहल द्वीप के स्थान पर कहीं कंचनद्वीप, कहीं रत्नद्वीप, कहीं हंस-द्वीप का उल्लेख है।

संस्कृत और प्राकृत-ग्रंथों में भी सिंहल द्वीप के वर्णन मिलते हैं। हर्ष (सातवीं शती ई०) ने अपनी संस्कृत कृति 'रत्नावली' नाटिका' (दे०) में कौतूहल (1000 ई० के पूर्व) ने अपनी प्राकृत कृति 'लीलावती कथा' (दे०) में भी सिंहल द्वीप के संकेत दिए हैं।

उत्तर काल में जायसी के 'पद्मावत' (दे०) में रत्नसेन (दे०) पद्मावती (दे०) की प्राप्ति के लिए सिंहल द्वीप की यात्रा करता है। जायसी के पहले तथा समकालीन और पीछे के समस्त प्रेमकथा-लेखकों ने किसी-न-किसी रूप में इसी प्रकार सिंहल-संबंधी कथा को अपनाया है।

इस प्रकार हर्ष के समय (सातवीं शती ई०) से लेकर सोलहवीं शती तक संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश-कवियों ने विविध रूपों में सिंहल को अपनी कृतियों का विषय बनाया है। सिंहल-संबंधी इस कथानक रूढ़ि का प्रयोग बाद में हिंदी-कवियों ने भी अपने काव्यों में किया। इस प्रकार की कथा का मूल संभवतः लोक-साहित्य हो सकता है।

सिंह सभा आंदोलन *(पं० प्र०)*

पंजाब में कूका आंदोलन दबा दिए जाने के पश्चात् सिंह-सभा-आंदोलन का जन्म हुआ। उन्नीसवीं शती के अंत और बीसवीं के प्रारंभ में देश के सभी भागों मे पुनर्जागरणवादी आंदोलन उभरे। सिंह-सभा-आंदोलन पंजाब में सिखों का इसी प्रकार का आंदोलन था, जिसका उद्देश्य सिख-समाज मे व्याप्त धार्मिक-सामाजिक कुरीतियों को दूर कर उनमें नवजागरण की भावना उत्पन्न करना

था। 1973 ई० मे सरदार ठाकुर सिंह व सिंधालिए के प्रयत्नो से सिंह-सभा की स्थापना हुई थी। धीरे-धीरे इस प्रकार की सभाएँ पजाब के सभी भागो मे स्थापित हो गईं। इसी आदोलन के फलस्वरूप 1877 ई० मे ओरिएटल कालेज, लाहौर मे पजाबी भाषा की पढाई शुरु हुई और 1892 ई० मे खालसा कालेज, अमृतसर की स्थापना हुई तो आगे चलकर पजाबी साहित्य की सभी प्रकार की गतिविधियो का सर्वप्रमुख केंद्र बना।

सिट्ठणी *(पं० पारि०)*

विवाह के समय दूल्हा वर्ग और उसके परिवार को लक्ष्य कर की जाने वाली छेड़छाड़, नोक झोक को 'सिट्ठणी' की सज्ञा दी गई है। जिस समय कन्या ससुराल जाती है तब उस वर्ग के लोग कन्या-पक्ष से जो नोक झोक करते हैं उसे भी 'सिट्ठणी' ही कहते है। शहरी जीवन के विकास के साथ-साथ यह रिवाज दिन-प्रतिदिन कम होता जा रहा है।

सिठ *(पं० पारि०)*

पजाबी जनजीवन मे हास्य-व्यग्य नोक-झोक के लिए स्वीकृत विधि को 'सिठ' कहते हैं। इसके माध्यम मे जीवन पर चढते खोट और मुलम्मे को उतारने का यत्न किया जाता है। सिठ और व्यग्य पजाबी जन-जीवन मे विशेष महत्व रखते हैं।

सिद्ध गोष्ठी *(प० कृ०)*

गुरु नानक देव (दे०) द्वारा विरचित इस कृति मे गुरु नानक एव सिद्धो-योगियो के मध्य विचार-विमर्श के फलस्वरूप रचा गया दार्शनिक साहित्य 'सिद्ध गोष्ठी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह रचना गुरु नानक देव के जीवन के अतिम दिनो मे लिखी गई थी। सिद्ध गोष्ठी साहित्य मे गुरमत और योगमत का अतर भी स्पष्ट किया गया है। गुरु नानक प्रभु-भक्ति पर बल देते थे जबकि योगी त्याग साधना एव रहस्यवाद पर। यही इस कृति का मूल विषय है। फलत इसमे नाथ-सिद्धो की मान्यताओ का खडन किया गया है। ग्रथ का विवेच्य विषय सूक्ष्म-गभीर दार्शनिक चितन से समन्वित है। भाषा मे ब्रज शब्दो की बहुलता है।

सिद्ध-साहित्य

सिद्ध-साहित्य अपभ्रश दोहो तथा चर्यापदो के रूप मे उपलब्ध है और जिसमे बौद्ध यात्रिक सिद्धातो को मान्यता दी गई है। बौद्ध सिद्धाचार्यों की रचनाएँ प्रमुखत दो काव्य रूपो मे उपलब्ध हैं—'दोहा कोष' तथा 'चर्या पद' (दे० चर्या)। 'दोहा कोष' (दे०) दोहो से युक्त चतुष्पदियो की कडवक शैली (दे०) मे मिलते हैं। कुछ दोहे टीकाओ मे उद्धृत है और कुछ दोहा-गीतियाँ बौद्ध तत्रो और साधनाओ मे मिली हैं। चर्यापद बौद्ध-तात्रिक चर्या के समय लिखे गए है, किंतु एकसाथ सगृहीत कर दिए गए हैं।

सिद्धातकौमुदी *(स० कृ०)* [रचना-काल—1600 ई०]

'सिद्धातकौमुदी' के लेखक भट्टोजिदीक्षित (दे०) व्याकरण के विशिष्ट विद्वान् थे। 'सिद्धातकौमुदी व्याकरण का अद्भुत ग्रथ है। इसकी रचना रामचद्र की 'प्रक्रियाकौमुदी' के आधार पर की गई है। व्याकरण के क्षेत्र मे 'सिद्धातकौमुदी' का महत्व मौलिकता एव उपयोगिता की दृष्टि से विशिष्ट है। 'सिद्धातकौमुदी' पर भट्टोजिदीक्षित ने 'प्रौढ मनोरमा' नामक प्रसिद्ध टीका लिखी थी। आफ्रेक्ट के सूची-पत्र मे 'सिद्धातकौमुदी' की 'रत्नाकर' नाम की टीका का उल्लेख किया गया है। इस टीका के रचयिता शिवरामद्र सरस्वती बतलाए जाते हैं। भट्टोजिदीक्षित के शिष्य वरदराज ने 'सिद्धातकौमुदी' के सक्षिप्त सस्करणो के रूप मे 'मध्यसिद्धातकौमुदी' तथा 'लघुसिद्धातकौमुदी' की रचना की थी।

'सिद्धातकौमुदी' के अतर्गत पाणिनीय (दे० पाणिनि) व्याकरण के नियमो का विस्तृत विवेचन किया गया है। इस ग्रथ मे स्थल-स्थल पर व्याकरण के नियमो से सबधित गूढ ग्रथियाँ वर्तमान हैं जो शास्त्रार्थ-पद्धति मे व्याख्यात हुई हैं।

सिद्धात-सार *(गु० कृ०)*

आधुनिक गुजराती के प्रारभकालीन प्रवर समीक्षक एव पडित तथा 'सुदर्शन', 'प्रियवदा' मासिक पत्रो के सपादक मणिलाल नभुभाई द्विवेदी (दे०) के 'सिद्धातसार' मे वेदात की परिपाटी के आधार पर हिंदू धर्म व आर्य-सस्कृति के प्रमुख सिद्धातो का तर्कशुद्ध शैली मे निरूपण किया गया

है तथा हिंदू धर्म और आर्य-संस्कृति की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गई है। लगभग 200 पृष्ठों के इस ग्रंथ में 'भारतीय दर्शन' का विकास तथा विश्व के सभी धर्मों में श्रेष्ठ आर्य धर्म का गौरव निरूपित किया गया है।

विषय गांभीर्य के कारण विषय-निरूपण में भाषा की गरिमा, किंचित् क्लिष्ट होने पर भी बनी रही है। लेखक अपने दार्शनिक गहन अध्ययन-चिंतन-मनन के कारण यूरोप, अमरीका में भी प्रसिद्ध हुए थे।

सिद्धय्या पुराणिक *(क० ले०)*

'काव्यानंद' उपनामधारी श्री सिद्धय्या पुराणिक नयी पीढ़ी के कवियों में गिने जाते हैं। 'कर्नाटक राज्य' के अवतरण के पूर्व ये हैदराबाद में रहते थे। संप्रति अवर सचिव के पद पर मैसूर सरकार की सेवा कर रहे हैं। ये कन्नड और अँग्रेज़ी के अच्छे विद्वान हैं और अच्छे वक्ता भी हैं। इनकी कविताओं का प्रथम संग्रह 'जलपोत' कन्नड के सुप्रसिद्ध कवि बेंद्रेजी (दे०) की भूमिका के साथ 1953 ई० में प्रकाश मे आया था। उसमें संगृहीत कविताओं में सामयिक परिस्थितियों का प्रभाव इनके मन पर क्या पड़ा है—यह स्पष्ट हो जाता है। 'मानवसमाज', 'बरुत्तिदे बडवर युग' [आ रहा है गरीबों का युग], 'सौंदर्य-प्रेम' और 'राजा-रानी' जैसी कविताएँ काफ़ी सुंदर बन पड़ी हैं। 'काश्मीरदल्लि कागलि' [काश्मीर में वर्षाकाल] और 'करुणाश्रावण' जैसी कविताओं में इनका ध्येयवाद तथा सौंदर्य-दृष्टि प्रकट हुई है।

यह राघवांक (दे०)-कृत 'सिद्धरामचरिते' (दे०) नामक चरितकाव्य का नायक है। यह कर्णाटक के वीरशैव संत-पंचक में एक है। इसके जीवन के निरूपण में कवि को अद्वितीय सफलता मिली है। इसका जन्म बारहवी शती के तृतीय चरण में वर्तमान शोलापुर में सुगव्वे तथा मुद्दुगौड नामक सात्विक वृद्ध दंपतियों के घर में हुआ था। बालपन में इसमें मुग्धता की प्रधानता थी। कवि ने इसे एक कारण-पुरुष कर्मयोगी के रूप में चित्रित किया है। इसका जन्म ही सिद्ध-कृपा से होता है। बाद में यह तड़ाग-निर्माण, मंदिर-निर्माण आदि लोकसेवा-कार्यों में लगा रहता है। प्रभुदेव आकर इसे समझाते हैं कि कर्मयोग की अपेक्षा ज्ञानयोग बड़ा है। शुरू-शुरू में यह उसे नहीं मानता है और दोनों में संघर्ष होता है। अंत में प्रभुदेव की कृपा से यह ज्ञानयोगी बनकर तत्कालीन संत-भूमि कल्याण पहुँचता है। वहाँ के अनुभव-मंडप की विचार-गोष्ठी में यह भाग लेता है। इसके नाथकौल आदि मतानुयायियों का संघर्ष इसकी मुग्ध-भक्ति, लोकानुकंपा आदि का अतीव मनोहर वर्णन राघवांक ने किया है। पोवाड़ों व अतिरंजनाओं से युक्त होने हुए भी सिद्धराम का मानवीय रूप धूमिल नहीं बना है।

सिद्धरामपुराण, सिद्धरामचारित्र्य *(क० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती का उत्तरार्ध]

'सिद्धरामपुराण' को 'सिद्धरामचारित्र्य' भी कहते हैं। इसके कवि राघवांक (समय—1165 ई०) कन्नड के एक श्रेष्ठ कवि हैं। 'सिद्धरामपुराण' एक कड़ा काव्य है जिसमें नौ संधियां (सर्ग) और 549 पद्य हैं। इसमें सोन्नलिगे अथवा सोन्नलापुर के प्रसिद्ध शिवभक्त सिद्धराम के चरित का वर्णन किया गया है। प्रथम संधि में कवि ने उनके संबंध में बताया है—'जगत के गुरु सिद्धरामनाथ मनुष्य नहीं हैं, कारण रुद्र (अर्थात् रुद्र के अवतार) हैं।' (1-7) वे जितेंद्रिय और शिवज्ञानी हैं। (1-26) उनके जन्म, बाल्यकाल, सिद्धि और महान् व्यक्तित्व का वर्णन कवि ने किया है। 'वसुधैव कुटुंबकम्' को मानने वाले सिद्धराम के द्वारा अनेकों कार्य संपन्न होते हैं, जैसे—बावड़ी, तड़ाक आदि का निर्माण; पतितों, दीनों आदि का उद्धार। इन सबके कारण वे अवतार पुरुष सिद्ध होते हैं। वे विश्वप्रेमी और कर्मयोगी हैं। उनके चरित्र क उद्घाटन में कवि ने पूर्ण कौशल दिखाया है। उन्होंने रसपूर्ण चित्रण प्रस्तुत करते हुए इस 'पुण्य-काव्य की कथा-रस से तरंगायित किया है। इसमें कल्पना की कमनीयता भी यत्र-तत्र असाधारण रूप में प्रकट हुई है। यह 'मानवता के मंदार कुसुम को प्रफुल्लित करने वाला महाकाव्य' है। वस्तु, रूप और गुण सभी दृष्टियों से यह एक स्वतंत्र काव्य है जो कन्नड-साहित्य में उन्नत स्थान पाने के योग्य है। राघवांक की काव्य-सिद्धि का यह एक ज्वलंत प्रमाण है।

सियेन नदीर ढो *(अ० कृ०)*

उमा बरुवा के इस उपन्यास की पृष्ठभूमि फ्रांस है। अतएव उस देश की समाज-व्यवस्था का भी वर्णन मिल जाता है। इसमें रोमांस के चित्रण के साथ-साथ मानव की संवेदनशील अनुभूति का भी वर्णन है।

सिरखंडी *(प० पारि०)*

यह प्रतिचरण उन्नीस से तेईस मात्राओ का सममात्रिक अतुकात छद है जिसमे 12 अथवा 14 मात्राओ पर यति का विधान है। श्रवण-सुख के लिए चरणो मे मध्य तुकात की योजना आवश्यक मानी जाती है। 'आदि ग्रथ' मे सकलित अनेक वारो के अतिरिक्त गुरु गोविंद सिंह (दे०)-कृत 'चडी दी वार' (दे०), 'कल्कि-अवतार' आदि मे तथा कवि नजाबत (दे०)-रचित सुप्रसिद्ध 'नादिरशाह दी वार' (दे०) मे इसी छद का प्रयोग हुआ है।

'सिराज' औरंगाबादी *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1714 ई०, मृत्यु—1764 ई०]

जन्मस्थान औरगाबाद (दक्षिण भारत)। पूरा नाम शाह सिराजुद्दीन, उपनाम 'सिराज', पिता का नाम · सैयद दुरवेश। इन्हे बचपन से ही वैराग्य हो गया था। इनकी आध्यात्मिक मादकता और भक्ति-भावना की यह स्थिति थी कि प्राय नग्नावस्था मे जगलो मे फिरा करते थे और ऐसी परिस्थितियो मे बडी मार्मिक कविताओ का सृजन कर उन्हें गुनगुनाते रहते थे। इनका काव्य उर्दू मे शात रस का सुदर उदाहरण है। परम सत्ता के प्रति दृढ विश्वास, प्रेम भावना, श्रद्धा, अनुराग और विरह-वेदना का वर्णन इनके काव्य की विशेषता है। अनुभूति की तीव्रता देखते ही बनती है। कलात्मक प्रौढता के कारण इन्हे अनेक उर्दू कवियो के काव्य-गुरु होने का श्रेय भी प्राप्त था। इनकी मसनवियों गजलों, फारसी-काव्य और फारसी-पत्रो का एक सकलन प्रकाशित हो चुका है। इनके मुर्शिद अब्दुलरहमान ने इनकी आध्यात्मिकता के प्रति अत्यधिक रुचि देखकर इन्हे काव्य-सृजन के त्याग का आदेश दे दिया था। परिणामस्वरूप, इन्होने अपने जीवन का शेष भाग सूफी और सन्यासी के रूप मे ईश्वरोपासना मे व्यतीत किया।

सिरि थूलि भद्द फागु *(अप०/गु० कृ०)* [रचना-काल—चौदहवी शती]

'सिरि थूलि भद्द फागु' जैनाचार्य जिनपद्म सूरि-रचित एक ऋतु काव्य है। 'फागु' काव्यो मे इसकी बडी प्रसिद्धि है। यद्यपि कवि ने इसे 'चैत' म गाने के लिए लिखा है किंतु इसका वर्ण्य विषय वसत न होकर वर्षा है।

साधु स्थूलि भद्र गुरु की आज्ञा पाकर अपनी पूर्वाश्रम की प्रेयसी कोषा के घर वर्षा के चार मास बिताने आते हैं। गणिका कोषा इन्हे आकृष्ट करने के लिए अनेक प्रयत्न करती है, किंतु स्थूलि भद्र विचलित नही होते। आलबन के रूप मे गणिका कोषा का एव उद्दीपन के रूप मे वर्षा का वर्णन सुदर बन पडा है। इस कृति मे कवि का भाषा-प्रभुत्व, रसिकता, अलकार-योजना, सौंदर्य-वर्णन की क्षमता आदि द्रष्टव्य हैं। गुजराती के प्राचीनतम 'फागु' काव्य के रूप मे इस कृति का विशेष महत्व है।

सिरियालुडु *(ते० पा०)*

सिरियालुडु का काव्यात्मक वर्णन हमे कवि सार्वभौम श्रीनाथुडु (दे०)-कृत 'हरिविलासमु' (दे०) नामक काव्य के द्वितीय आश्वास मे पाया जाता है। अपनी काव्यकुशलता के द्वारा कवि ने सिरियालुडु की शिवभक्ति का उज्ज्वल वर्णन किया है।

सिरियालुडु चिरुतोंडडु नामक वैश्य का पुत्र था। माता तिरुवेंगनाचि थी। माता-पिता परम शैवाचार सपन्न थे। पार्वती तथा परमेश्वर एक बार इन दपत्तियो की परीक्षा लेना चाहते थे। वृद्ध अतिथियो के रूप मे आकर दपतियो से पुत्रमास की कामना की। उधर दूसरी ओर सिरियालुडु को बुहना के रूप मे ही भेंट कर उसे अपने माता-पिता की बात न सुनने का अनुरोध किया। परतु बहुत ही तर्कपूर्ण उक्तियो से बालक ने अपने माता-पिता का वचन न टालने की अपनी प्रतिज्ञा सुनाई। *अतिथि की इच्छानुसार कदलीपत्र मे मास परोसा गया। तब कुहना अतिथि-ईश्वर ने कहा कि जब तक आप और आपका पुत्र भी हमारे साथ भोजन नही करते तब तक* हम भी भोजन नही करेंगे। तब ईश्वर का ध्यान करके पिता ने जोरो से बालक को पुकारा। अवढर दानी आशुतोष शकर भगवान की कृपा से बालक सजीव हो उठा। गौरीशकर दोनो अपने भक्तो की अनुपम भक्ति से आनद-विभोर हुए तथा अनेकानेक वर दिए और अतत कैलास-वास का आश्वासन भी दिया।

'हरविलासमु' काव्य का रचना-काल 1430 ई० के आसपास था। इस पात्र की विशेषता इस बात मे है कि सिरियालुडु ने श्रीनाथुडु कवि के द्वारा, वैष्णव-साहित्य म उपलब्ध ध्रुव का समानातर स्थान तेलुगु के शैव-साहित्य मे प्राप्त किया।

सीता *(सं० पा०)*

यह विदेहराज जनक की कन्या थी। इसे अत्यंत रूपवती चित्रित किया गया है। इसके जन्म की अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। इसे अग्निजा, रक्तजा और जनकात्मजा कहा गया है। जनक द्वारा आयोजित स्वयंवर में धनुषभंग की शर्त जीत जाने पर सीता का विवाह इक्ष्वाकुवंशी राजा दशरथ के पुत्र श्री रामचंद्र (राम—दे०) से हुआ था। राम को वनवास दिए जाने पर सीता ने भी उनके साथ जाकर पति-भक्ति का प्रमाण दिया। रावण (दे०) द्वारा धोखे से इसका हरण किए जाने पर मार्ग मे इसने ऋष्यमूक पर्वत पर अपने अलंकार फेंक दिए थे, जिससे इसे ढूंढने में राम-लक्ष्मण (दे०) को पर्याप्त सहायता मिली। पर-स्त्री पर पाप-दृष्टि रखने के लिए रावण जैसे महाबली व्यक्ति की अत्यंत भर्त्सना करके इसने अपने साहस, धैर्य और सच्चरित्रता का अद्भुत परिचय दिया। राम द्वारा लंका-विजय के बाद अग्नि-परीक्षा में सफलता भी इसकी सच्चरित्रता और सतीत्व का चमत्कारपूर्ण प्रमाण बनी। राम के राज्यासन ग्रहण करने पर सीता ने 'राज्ञी-पद' को सुशोभित किया, किंतु कुछ समय बाद लोकापवाद के कारण राम को गर्भवती सीता को वन में छोड़ आने का आयोजन करना पड़ा। वाल्मीकि (दे०) के आश्रम में इसने लव-कुश नामक पुत्र-युगल को इकट्ठे जन्म दिया। राम द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञ में राम की भेंट कुश-लव से हुई तथा उन्होंने सीता को इन दोनो के साथ अयोध्या बुला भेजा। कुछ कथाकारों के अनुसार अयोध्या पहुँचकर सीता पृथ्वी में समा गई। सीता पतिव्रता, सती, सच्चरित्रवती भारतीय नारी का प्रतीक है। वाल्मीकि से लेकर इस युग तक सैकड़ों लेखकों ने 'रामायण' (दे०)-कथा के माध्यम से राम-महिमा के साथ-साथ सीता का भी गौरवगान किया है।

सीतार बनवास *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1860 ई०]

संस्कृत साहित्य के अनुवाद के प्रसंग में विद्यासागर (दे० ईश्वरचंद्र विद्यासागर) की 'शकुंतला' (1854 ई०) तथा 'सीतार बनवास' (1860 ई०) सर्वाधिक उल्लेखनीय ग्रंथ है। 'सीतार बनवास' में 'उत्तररामचरित' से जिन अंशों का अनुवाद किया गया है उनमे दीर्घ समासबद्ध पदों का प्रयोग नहीं है। विद्यासागर ने अपनी भाषा के माध्यम से छंद-स्पंदन तथा संगीतमयता का संचार कर भाषा को शिल्प-गुणान्वित किया है। इस ग्रंथ में विषयानुरूप भाषा का प्रयोग हुआ है।

सीताराम *(हि० ले०)* [जन्म—1855 ई०; मृत्यु—1937 ई०]

इनका जन्म अयोध्या में हुआ था। संस्कृत तथा अँग्रेज़ी-साहित्य के अनेक अनमोल ग्रंथों का हिंदी में प्रामाणिक अनुवाद करने वालों में इनका उल्लेखनीय स्थान है। इन्होंने अँग्रेज़ी से शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद किए तथा संस्कृत से कालिदास (दे०) की रचनाओं के अतिरिक्त 'मृच्छकटिक' (दे०), 'उत्तररामचरित' (दे०), 'मालती-माधव' (दे०), 'नागानंद' (दे०) आदि के। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) ने 'हिंदी-कालिदास की आलोचना' शीर्षक लेख में इनके कालिदास-विषयक अनुवाद-कार्य की अत्यंत कटु आलोचना की है। किंतु फिर भी यह निर्विवाद है कि इन्होंने विभिन्न भाषाओं की उत्कृष्ट रचनाओं के हिंदी-अनुवाद द्वारा परवर्ती लेखकों को भी वैसा ही श्रेष्ठ रचनाओं के प्रणयन की प्रेरणा देने का अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया था।

सीतारामन् *(मल० ले०)* [जन्म—1904 ई०]

'सीतारामन्' प्रसिद्ध हास्य-साहित्यकार पी० श्रीधरन पिळ्ळा का उपनाम है। 'हास्यलहरी', 'कार्ट्टिटे चोल्लु', 'एतानुम् कथकळ्', 'कळियुम् कार्यवुम्', 'हास्यरेखकळ्' आदि इनकी प्रमुख हास्य-रचनाएँ हैं।

सीतारामन् की विशेषता है मलयाळम के किसी भी कवि की शैली का हास्यानुकरण कर प्रभावशाली व्यंग्य की सर्जना करना। उळ्ळूर वळ्ळत्तोळ् (दे०) आदि कवियों की कुछ प्रसिद्ध रचनाओं पर इन्होंने विडंबन-कविताएँ (पैरोडी) लिखी हैं। इस क्षेत्र में सीतारामन् निश्चय ही बेजोड़ हैं।

सीताराममूर्ति चौधरी, तुम्मल *(ते० ले०)* [जन्म—1901 ई०]

श्री चौधरी तेलुगु के प्रमुख राष्ट्रवादी कवि हैं। इन्होंने स्वतंत्रता-आंदोलन में भाग लिया था तथा इनकी अनेक रचनाओं में राष्ट्र-प्रेम एवं आंध्रत्व के प्रति अनुराग व्यक्त होता है। ये जनता को ही अपना धर्म मानते हैं।

'राष्ट्रगानमु' (दे०), 'उदयगानमु', 'बापूजी आत्मकथा' (दे०), 'परिगपटा' आदि इनकी रचनाएँ हैं। देश की जनता मे कर्मठता के प्रति उत्साह एव निष्ठा जागृत करने के लिए इन्होने कविता को साधन बनाया। प्राचीनता का समुचित आदर करते हुए, अपनी धर्मनिष्ठा के अनुरूप इतिवृत्तो को ग्रहण करके इन्होने सरल एव सुदर रचनाएँ की हैं। 'राष्ट्रगानमु' इनकी राष्ट्रीय चेतना को प्रखर रूप मे व्यक्त करने वाली कृति है। इनकी बापूजी आत्मकथा' गाधी जी की आत्मकथा का पद्यानुवाद है। इस कृति की सफलता एव लोकप्रियता के कारण ही इनको 'गाधी के दरबारी कवि' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त चरखा, अस्पृश्यता, भारत-माता भारत का ग्रामीण जीवन आदि अनेक विषयो पर इन्होने रचनाएँ की हैं।

इनमे आध्रत्व के प्रति प्रेम भी घनीभूत रूप मे पाया जाता है। अत इनकी भाषा एव भाव दोनो मे आध्रत्व का प्रतिफलन हुआ है। ये अपने आपको 'तेलुगु लेंका' (तेलुगु का सेवक) कहते हैं। गभीर भावो को सहज सरल भाषा मे अभिव्यक्त करने मे ये सिद्धहस्त हैं।

सीतारामचार्युलु बहुजनपल्लि *(त० ले०)* [जन्म—1827 ई०, मृत्यु—1891 ई०]

इनका जन्म-स्थान मद्रास के निकट नागपट्टन था। इनका वास स्थान मद्रास था। तेलुगु के वैयाकरणो मे आचार्य जी का स्थान द्वितीय था। प्रथम स्थान इनके गुरुकल्प परवस्तु चिन्नय्यसूरि (दे०) का था। चिन्नय्यसूरि के सपर्क मे रहकर आचार्य जी अत्यत लाभान्वित हुए। वैसे साहित्यिक जीवन के आरभ-काल मे इन्होने कविता लिखी परतु इनकी सहज रुचि लक्ष्यलक्षण सबधी व्याकरण की ओर अधिक थी। मद्रास म प्रशिक्षण पाठशाला के तेलुगु-पडित के रूप मे इन्होने अपनी जीविका व्यतीत की। इसी समय तत्कालीन तत्रस्थ पडितपुराणम् हयग्रीव शास्त्री, चदलवाड सीताराम शास्त्री, कोक्कोड वेंकटरत्नमु पतुलु (द०) आदि महानुभावो की मैत्री इनको प्राप्त हुई।

इनके द्वारा प्रणीत व्याकरण की कृतियां हैं—'बालचद्रोदयमु', अलघुकौमुदि' आदि। ये कृतियाँ छात्रोपयोगी हैं। इनके अतिरिक्त इनकी व्याकृति ग्रथ त्रिलिंगलक्षण शेषमु' अत्यत प्रसिद्ध है। यह चिन्नय्यसूरि-कृत 'बालव्याकरणमु' का परिशिष्ट ग्रथ माना जाता है। इसकी प्रशस्ति विद्वानो मे अद्यावधि बनी हुई है। इसकी विशेषता यह है कि इसमे सूरि के व्याकरण मे प्रश्रय न पाने वाले सैकडो लक्ष्यो को सूत्रबद्ध किया गया है।

आचार्य जी के कीर्तिसौध का दूसरा आधार-स्तभ है इनकी कृति 'शब्दरत्नाकरमु'। यह तेलुगु की कोश-परपरा मे सर्वप्रथम सफल कोश-ग्रथ है। इसमे न केवल तत्सम और तद्भव शब्दो का सकलन देशजो के साथ हुआ है अपितु प्रामाणिक ग्रथो से विभिन्न प्रयोगो के उदाहरण भी दिए गए हैं। इसके सकलन मे इन्हें तेईस वर्ष लगे थे। आज भी पडितो की दृष्टि मे यही सर्वाधिक प्रामाणिक कोश-ग्रथ है। इसका प्रकाशन 1855 ई० मे हुआ था। अनतर काल मे इसके कई सस्करण निकले। प्रसिद्ध विद्वान श्री निडदवोलु वेंकटराव् ने इसका सवर्धन किया है।

सीतारामाराव्, द्रोणराजु *(त० ले०)*

ये तेलुगु भाषा के प्रसिद्ध नाटककार हैं। इन्होने बदर (मछलीपट्टणम) की नाटक मडली तथा राजमहेद्री के गुन्नेश्वरराव की नाटक मडली के लिए 1913 ई० के आसपास तीस नाटको की रचना की थी। 'रामायण' (दे०) की कथावस्तु को ग्रहण कर, इन्होंने 'श्रीरामजननमु', 'श्रीरामप्रवासमु' (1914), 'श्रीरामोद्योगमु', 'श्रीरामविजयमु', 'श्रीरामेश्वमेधमु' नामक पाँच नाटको की रचना की है। इनके अतिरिक्त इनके 'विजय वोब्बिलि' (1912), 'पीश्वा नारायणराववध' (1912), 'चतुर चद्रहासमु', 'सारगधरा' नामक नाटक विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके नाटक उन दिनो के व्यावसायिक रगमच के लिए लिखे गए थे। अत इन नाटको का अभिनय बडी सफलता के साथ किया गया था।

सीतारामैया, एम० वी *(क० ल०)*

वर्तमान समय के उपन्यासकार तथा गद्यलेखको मे इसका अन्यतम स्थान है। ये अच्छे आलोचक भी हैं। 'कुमारव्यसन वर्णन' [कुमारव्यास (द०) का वर्णन], 'श्री पुरदरदासर परिचय' (श्री पुरदरदास (द०) का परिचय) आदि इनके आलोचनात्मक लेख पत्र-पत्रिकाओ म प्रकाशित हुए हैं। समाज की विविध समस्याओ पर प्रकाश डालन और उन्ह सुलझान के उद्देश्य से इन्होंने उपन्यासो का निर्माण किया है। इनके उपन्यासो की भाषा शैली म प्रसाद गुण की प्रधानता है। इनके द्वारा

संपादित ग्रंथों में बेंगलूर कन्नड साहित्य परिषद् से प्रकाशित 'परिषत्' के स्वर्ण जयंती विशेषांक 'चिन्नद बेळसु' (सोने की फसल) का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सीतारामैया, वि० *(क० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

आधुनिक कन्नड-कविता के जन्मदाता स्व० बी० एस० श्रीकंठैया (दे०) के शिष्यों में वि० सीतारामैया जी भी एक है। संस्कृत-प्रेम, अनुभूति की तीव्रता, तात्त्विक अतृप्ति तथा वैचारिकता-इनकी शैली की विशेषताएँ हैं। 'गीतगळु', 'नेळलु बेळकु' (धूप-छाँह), 'द्राक्षिदाळिबे' आदि इनके प्रसिद्ध कविता-संकलन हैं। देव-भक्ति तथा शरणागति इनके स्थायी भाव हैं तो कभी-कभी नास्तिकता संचारी के रूप में आ धमकती है। अचल जीवननिष्ठा, श्रद्धा तथा अंतस्सत्त्व इनकी कविता के विशेष गुण है। 'कस्मै देवाय', 'अनदी, शतंजीवेमशरद शतं', 'गडिदाटु' आदि अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से उच्चकोटि की कविताएँ है। 'कस्मै देवाय' में हमारे असंख्य देवताओं के विकास की कहानी तथा वर्तमान की निरीश्वरवादिता का चित्रण हैं। 'भनेतुंबिसुबुदु' इनकी अत्यंत लोकप्रिय कविता है जिसमें नवपरिणीता वधू को पिता विदा देते हुए आँसू बहाता है, 'मृगालयसिंह' मे पराधीन भारत का अन्योक्ति द्वारा चित्रण है। ये एक सफल नाटककार, निबंधकार तथा आलोचक भी हैं। 'सोह्लावरुस्तमु' 'आग्रह' तथा 'श्रीशैल' इनके सुंदर नाटक हैं। 'आग्रह' में अश्वत्थामा के दुराग्रह का चित्रण है। 'पंपायात्रे' इनका सर्वश्रेष्ठ प्रवास-साहित्य है। 'बेळदिगळु' इनके सुंदर निबंधों का संकलन है। 'विमर्शेय मोलगळु', 'कादंबरी', 'अश्वत्थामन्' आदि में इनके सैद्धांतिक तथा आलोचनात्मक निबंध हैं।

सीतारामशास्त्री, वीरकेसरी *(क० ले०)*

मैसूर राज्य के पुराने राष्ट्रसेवियों में स्व० वीरकेसरी सीतारामशास्त्री जी का नाम उल्लेखनीय है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व इन्होंने राष्ट्र के उत्थान के कार्यों सक्रिय भाग लिया था। उन दिनों में राष्ट्रहित को दृष्टि में रखकर इन्होंने 'वीरकेसरी' पत्रिका चलाई थी, उसी नाम से ये प्रख्यात भी हुए हैं। ये कन्नड, संस्कृत, अँग्रेज़ी आदि भाषाओं के विद्वान् थे। इन्होंने 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) जैसे ग्रंथों पर काम किया था। वृद्धावस्था में यद्यपि इन्हें आँखों से नहीं दिखाई देता था तथापि इन्होंने लेखन-कार्य छोड़ा नहीं था। इन्होंने ऐतिहासिक परिवेश को लेकर उपन्यास लिखे हैं। 'दौलत' इनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है जिसमें मैसूर का इतिहास सुंदर रूप में प्रकट हुआ है।

सीतास्वयंवर *(म० कृ०)*

यह कवयित्री वेणाबाई की रचना है। हिंदी की मीरां (दे० मीरांबाई) ने जैसे अपने जीवन को समर्पित किया था वैसे ही मराठी की वेणाबाई ने अपने को रामर्पित कर दिया था। यह ओवी छंद में रचित है और इसमें कुल 14 'समास' (अध्याय) हैं। इस काव्य का सौंदर्य कवयित्री की निजी भावाभिव्यक्ति के कारण एकदम निराला रूप धारण लेता है। स्वयंवर के अवसर पर विवाह-पद्धति में प्रचलित समकालीन अनेक विधियों का आकर्षक वर्णन मिलता है। रामभक्ति की उत्कृष्ट भावना ने काव्य मे अद्भुत सरसता उत्पन्न कर दी है और भाव और शैली दोनों में कवयित्री का निजी व्यक्तित्व प्रतिबिंबित हुआ है।

सीताहरण काव्य *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1902 ई०]

भोलानाथ दास (दे०) द्वारा अतुकांत छंदों में लिखा यह असमीया का प्रथम महाकाव्य है। इस पर माइकेल मधुसूदन दत्त (दे०) का प्रभाव है। लेखक ने संस्कृत शब्दावली के साथ-साथ मध्यकालीन असमीया-शब्दों का भी प्रयोग किया है। शूर्पणखा का वर्णन करते हुए सामान्यतः नारी की आलोचना की गई है।

सीरत-उल-नबी *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1906-1912 ई०]

'सीरत-उल-नबी' अल्लामा शिबली (दे० शिबली निअ्मानी) की रचना है। इसका प्रकाशन 1918 ई० में हुआ था। इसमें इस्लाम के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद का जीवन-चरित लिखा गया है। यह गंभीर चिंतन-अनुसंधान का परिणाम है। कहा जाता है कि ऐसी सर्वांगीण एवं संपूर्ण जीवनी संसार की किसी भी भाषा में विद्यमान नहीं है। 'सीरत-उल-नबी' के पाँच भाग किए गए हैं जिनमें से पहले दो भाग तो अल्लामा शिबली ने स्वयं

लिखे थे और शेष तीन भाग उनके निधन के पश्चात् अल्लामा सैयद सुलेमान नदवी ने पूरे किए थे। पहले दो भागो मे मक्का पर विजय, मदीना को हिजरत, निधन, स्वभाव और वैवाहिक जीवन के वृत्तात हैं। शेष तीन भागो में उनके चमत्कारो का, धर्म-प्रवर्तन और भक्ति-साधना का वर्णन है।

अल्लामा ने हज़रत मुहम्मद के जीवन की विवादास्पद घटनाओ पर शोधपूर्ण विवेचन और निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं। जीवनी-लेखन तथा धार्मिक दृष्टि से ग्रह अत्यत महत्वपूर्ण कृति है। अल्लामा शिबली की अतिम किंतु श्रेष्ठ देन है।

सीहरफी (प० पारि०)

पजाबी की एक प्रसिद्ध काव्य रूप है। इसमे अरबी फारसी वर्णमाला के तीस शब्दों मे से प्रत्येक से आरभ कर छद लिखे जाते हैं। 'सी' का अर्थ तीस है। इस प्रकार प्रत्येक 'सीहरफी' तीस-तीस छदो की होती है। इस काव्य-रूप की परपरा पुरानी है। पजाबी मे बावन अखरी, पैंती अखरी पटटी इसके अन्य रूपातर हैं। यदि देवनागरी लिपि की वर्णमाला से आधार हर लिखा जाए तो 'बावन अखरी', यदि गुरमुखी वर्णमाला को आधार बनाया जाय तो पैंतीस अक्षर होने के कारण उसे पैंती अखरी' कहते हैं। पजाबी भाषा इन तीनो ही लिपियो मे लिखी जाती है, अत इनके आधार पर छद लिखने की परपरा प्रचलित है। गुरु नानक (दे०) की एक वाणी का नाम 'पट्टी' है जिसमे गुरुमुखी वर्णमाला को आधार बनाया गया है। इस काव्य का विषय प्राय विप्रलभ शृगार है। परतु नैतिक शिक्षा-दीक्षा, आध्यात्मिक विचारो के अतिरिक्त कुछ कवियो ने इस काव्य रूप म कुछ कथाएँ भी हैं। इनमे नादरयार की सीहरफी पूरन भगत' (दे०) अत्यत प्रसिद्ध है। उदाहरण

अलिफ आसखी सिआल कोट अदर।
पूरन भगत सलवान दे जाइआ ऐ।
जदो जमिआ राजे नू खबर होई।
सद पडिता भेद पढाइया ई।

सुकापुर (क० ले०)

डा० एम० एस० सुकापुर कर्नाटक विश्व-विद्यालय, धारवाड मे कन्नड के प्राध्यापक हैं। इनका शोध-ग्रथ 'कन्नड साहित्यदल्लि हास्य' (कन्नड साहित्य मे हास्य) अत्यत लोकप्रिय हुआ है। उसमे इन्होंने अपनी शोध-प्रज्ञा का अच्छा परिचय दिया है। पाठानुसधान के क्षेत्र मे भी इन्होने स्तुत्य कार्य किया है। 'जीवन जोकालि', 'वैराग्यदलरु' (डा० नदिमल के साथ सपादित), 'सोमनाथचरिते', 'शातलिगदेशिकर भैरवेश्वर काव्यद कथा-मणिसूत्ररत्नाकर', 'राजशेखरविलास', 'समरदुदुभि' (ये सब ग्रथ ना० आर० सी० हिरेमठ (दे०) के साथ सपादित) और 'हम्मीर काव्य' इस बात के प्रमाण हैं। ईनका 'नम्म नाटकगळु' (हमारे नाटक) भी सुदर ग्रथ हैं।

सुदर (बँ० पा०)

बिल्हण (दे०) के 'चौरपचाशिका' (दे०) वररुचि के 'विद्यासुदरम्' आदि सस्कृत काव्य के आधार पर बँगला मे 'विद्यासुदर' की रचना हुई है। कृष्णराम (दे०), भरतचद्र, रामप्रसाद, राधाकात आदि कवियो ने विद्यासुदर-काव्य की रचना की है एव प्रत्येक के काव्य मे चरित्र-चित्रण की धारा लगभग एक जैसी है। सुदर के चरित्र मे भी इनका कोई व्यतिक्रम नही है। सुदर को कवियों ने निर्भीक, योद्धा, प्रेमी, भक्त आदि बहुगुणान्वित चरित्र के रूप मे चित्रित किया है यद्यपि चरित्र को कृत्रिमता से मुक्त नही कर पाए हैं। परिणामस्वरूप एक ओर यह चरित्र सजीव नही बन पाया है और दूसरी ओर लेखक के हाथो की कठपुतली बनकर उनके उद्देश्यो का अनुसरण करता है यद्यपि चरित्र मे कही भी दबदबा या प्रदर्शन की कमी नही है। सुदर समकालीन युगरुचि का पोषक मात्र है और वही उसकी सार्थकता एव व्यर्थता दोनो ही समरूप मे प्रकट हुई हैं।

सुदरजी बेटाई (गु० ले०) [जन्म—1904 ई०]

ये सुप्रसिद्ध कवि नरसिंह राव के शिष्य और नाथीबाई टाकरसी विद्यापीठ म आजीवन गुजराती के प्राध्यापक रहे। इनके 'ज्योतिरेखा', 'इद्रधनु', तुलसी दल', विशेषाजलि', 'स्वर्गस्थ चद्रमौनाने' प्रभृति काव्य-सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। खडकाव्यो के प्रणयन मे इन्हें विशेष सफलता मिली है।

'स्वर्णमेघ' नाम से इनका आलोचनात्मक सग्रह भी प्रकाशित हुआ है। आलोच्य कृति के लेखो मे

इनकी अध्ययनशीलता और कलात्मक दृष्टि का परिचय मिलता है।

सुंदरत्तण्णि *(त० पा०)*

यह उन्नीसवीं शती में वेदनायकम् पिळ्ळै (दे०) द्वारा लिखित तमिल के प्रथम उपन्यास प्रताप-मुदलियार चरित्तिरम् (दे०) का एक स्त्री पात्र है। यह कथानायक 'प्रताप' की माँ है। इस उपन्यास के आदर्श स्त्री पात्रों मे 'ज्ञानांबाल' (दे०) के बाद इसका स्थान है। इस पात्र का बहुत कम विवरण उपन्यास में आया है किंतु उससे इसकी विनयशीलता, ज्ञानवत्ता, व्यवहारकुशलता तथा अन्य आदर्श स्त्री गुणों का परिचय मिलता है। प्रताप, यह सोचकर कि धनी व्यक्ति को पढ़-लिखकर नौकरी नही करनी है, पढ़ाई से मन मोड़ लेता है, उसकी दादी का भी ऐसा ही विचार है। किंतु यह उसे पढ़ने को विवश कर देती है। दादी के कथनानुसार अध्यापक प्रताप की ग़लती पर उसे दंड न देकर उसके बदले अपने ही पुत्र को दंड देता रहता है, जिसे देखकर प्रताप अपनी ग़लती को महसूस करे। इसे जब यह बात विदित होती है तब यह प्रताप तथा उसके सहपाठी 'कनकसमै' को एक साथ भोजन देते समय कनकसमै को ही सारा भोजन परोस देती है और प्रताप से कहती है कि इसे खाते हुए देखो और खुश हो जाओ। इस प्रकार यह अध्यापक की दंड-नीति में परिवर्तन लाती है। इसके प्रति इसकी सास (प्रताप की दादी) ने मन में अत्यंत प्रेम तथा आदर है। यह बड़े गर्व के साथ अपनी बहू के बचपन के बारे में बच्चों को सुनाती है। इसके साथ विवाह करने की इच्छा के धोखे से इसे हरण कर ले जाने से यह बच निकलती है। इस घटना से इसके धैर्य तथा साहस का पता लगता है।

सुंदरदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1596 ई०; मृत्यु—1689 ई०]

सुंदरदास का आविर्भाव जयपुर के धौसा नगर में हुआ था। ये बहुत सुंदर थे अतएव इनके गुरु दादूदयाल ने इनका नाम सुंदरदास रख दिया। ये खंडेलवाल वैश्य थे और हिंदी, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत तथा फ़ारसी पर इनका अच्छा अधिकार था। गुरु की मृत्यु के पश्चात् ये डीडवाणे; और वहाँ से काशी चले गए, जहाँ इन्हें विद्या और सत्संग का लाभ हुआ। शेखावटी लौटकर इन्होंने योगाभ्यास किया।

इनकी कुल रचनाएँ 42 हैं, जिनमें उल्लेखनीय हैं: 'ज्ञानसमुद्र', 'सुंदर-विलास', 'सर्वांगयोगप्रदीपिका', 'पंचेंद्रियचरित्र', 'सुख-समाधि', 'अद्भुत उपदेश', 'स्वप्न-प्रबोध', 'वेदविचार', 'पंचप्रभाव', 'ज्ञानझूलना'। इनकी रचनाएँ काव्यशास्त्र और व्याकरण-सम्मत तथा छंद, अलंकार और रस-निरूपण से पूर्ण हैं। इनका चित्रकाव्य भी है। इनके ग्रंथ मुख्यतः संतकाव्य की शास्त्रीय व्याख्या के लिए उपयोगी हैं, जो नारी और शृंगार के विरुद्ध, किंतु अद्वैतवाद और आत्मानुभव पर आधृत हैं।

सुंदरम् *(गु० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

त्रिभुवनभाई पुरुषोत्तम 'सुंदरम्' के उपनाम से विशेष प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म भरूच जिले के मातर नामक गाँव में हुआ था। प्राथमिक शिक्षा का श्रीगणेश भरूच की राष्ट्रीय शाला में हुआ और यहाँ से विनीत होकर सुंदरम् गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद, में उच्च शिक्षा के लिए प्रविष्ट हुए। 'भाषाविशारद' की पदवी प्राप्त करते-करते इनमें अध्यापक रामनारायण वि० पाठक (दे०) के श्रम और उनकी सत्कृपा के परिणामस्वरूप गुजराती कविता के उत्तम संस्कार गहराई तक उतर गए और इन्हें गुजराती पिंगल का पूर्णज्ञान प्राप्त हो गया। गांधी जी की आत्मकथा में उल्लिखित 'बालसुंदरम्' गिरमीटिया के नाम के आधार पर इन्होंने अपना नाम 'सुंदरम्' रख लिया। स्नातक होने के बाद इन्होंने सर्वप्रथम अध्यापन-कार्य किया। इसके पश्चात् कुछ समय तक ज्योतिसंघ, अहमदाबाद, को अपनी सेवाएँ प्रदान कर पिछले दो-एक दशकों से अरविंद आश्रम में रहते हुए 'दक्षिणा' का संपादन-कार्य सँभाले हुए हैं।

राष्ट्रीय पुनरुत्थान काल में सुंदरम् का निर्माण हुआ था। इनके साहित्य का मुख्य स्वर गुलामी, ग़रीबी, अज्ञानता और व्याप्त विषमता को दूर करने के लिए प्रजा में जागृति लाने के हेतु मुखरित हुआ था। 'कोया भगतनी कडवी वाणी अने गरीबोनां गीतो' में यथार्थ-चित्रण, 'काव्यमंगला' में प्रभुश्रद्धा, देश के प्रति बलि देने की भावना, दार्शनिक चिंतन, मानव-सेवा, आदि, 'वसुधा' (दे०) में प्रणय का उत्कृष्ट आवेग और 'यात्रा' (दे०) में अध्यात्म (अरविंद-दर्शन से प्रभावित) के दर्शन होते हैं। 'रंगमंच बादलिया' की सभी रचनाएँ बाल-साहित्य को समृद्ध करती हैं। कविता-संग्रहों के अतिरिक्त सुंदरम् के

कहानी सग्रह है— खोलकी अने नागरिका', 'हीराकणी अने बीजी वातो', 'पियासी' और 'उन्नयन' (दे०)। 'दक्षिणायन' इनका दक्षिण की यात्रा से सबधित यात्रा-साहित्य है। आलोचना के क्षेत्र मे 'अर्वाचीन कविता' (दे०), अनुवादो म सस्कृत के नाटक 'मृच्छकटिकम्' (दे०) और 'भगवदज्जुकीयम्' तथा अँग्रेज़ी के 'ट्रास्फीग्यूरेशन' नामक नाटक से 'कायापलट' नामक अनुवाद विशेष उल्लेखनीय हैं।

सक्षेप मे, 'सुदरम्' सुकवि यथार्थ के चितेरे, निर्भीक आलोचक, देशभक्त और अब अध्यात्म के क्षेत्र मे विचरण करने वाले साहित्यकार के रूप मे गुजराती साहित्य मे प्रसिद्ध हैं।

सुदरम् पिळ्ळै, पी० *(त० ले०)* [समय—1855 ई० से 1897 ई० तक]

ठेठ तमिल मे इनका नाम है चुतरम् पिळ्ळै। केवल 42 साल जीवित रहने पर भी, दशन, साहित्य एव इतिहास तीनो क्षेत्रो पर इनका प्रभाव अमिट है। ये 'तिरुवनतपुरम्' के आर्ट्स कालेज मे रहे थे। अपनी मातृभाषा तमिल के लिए इनकी विशिष्ट देन 'मनोन्मणीयम्' (दे०) नामक नाटक-कृति है। तमिल नाटक की प्राचीन परपरा बहुत पहले नष्ट हो गई थी और कई शतियो से नाटक के क्षेत्र मे शून्यावस्था चल रही थी। अँग्रेज़ी पद्य-नाटको का अनुकरण करते हुए इन्होने एक अपूर्व कलाकृति प्रस्तुत की जो आधुनिक बोध दार्शनिक चर्चा, आकर्षक अभिव्यक्ति, सजीव कथोपकथन इत्यादि से सपन्न होकर तमिल नाटक-विधा के लिए मागदर्शक सिद्ध हुई। ये तमिल के अत्यत प्राचीन व इतिहास के सफल खोजकर्त्ता थे। इन्होने ही तिरुवनतपुरम् मे शिलालेखो की खोज एव अनुसधान का एक पृथक् विभाग खुलवाया था। इनकी पुस्तक 'तमिल साहित्येतिहास की कुछ मार्गशिलाएँ' शैव सतो के समय का तर्कपूर्वक निणय प्रस्तुत करती है। 'नूररोकै विळक्कम्' ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रो का विश्लेपणात्मक परिचय दने वाले व्याख्यानो का सग्रह है।

सुदरर् *(त० ले०)* [समय—ईसा की सातवी शती का अतिम चरण]

सुदरर् तमिल प्रात के प्रसिद्ध शैव सतो म से हैं। ये ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न हुए थे। इनकी दो पत्नियाँ थी शगिनी और परवै। इनका पारिवारिक जीवन बहुत सुखद था। सोलह वर्ष की आयु मे ये शिव क परम भक्त बन गए थे। इनकी भक्ति सखा-भाव की थी। भक्त होते हुए भी इनके मन मे लौकिक सुखो के प्रति प्रबल आकर्षण था। इनके भक्तिमय पद 'देवारम' (दे०) नामक कृति मे सगृहीत हैं। इनके पदो मे प्रकृति के अनेक सुदर चित्र प्राप्त होते हैं। प्रसिद्ध है कि इनके 'तिरुत्तोडत्तोगै' के आधार पर ही परवर्ती काल मे शेक्किलार ने 'पेरियपुराणम्' (दे०) की रचना की थी जिसमे तमिल प्रात मे आविर्भूत 63 शैव सतो की जीवनियाँ दी गई हैं।

सुदरिक्ळुम् सुदरन्मारुम् *(मल० उ०)* [रचना-काल—1956 ई०]

यह उरूब (दे०) का साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास है। इस बृहत् उपन्यास मे मलाबार के ग्रामीण और नगरीय जीवन के विविध स्तरो के अतर्गत जनता की दो पीढियो तक की कथा बताई गई है। उपन्यास के प्रथम भाग की पृष्ठभूमि ग्रामीण है। उत्तरार्ध मे सारे पात्र नगर के कर्मक्षेत्र मे आ जाते हैं और स्वतत्रता-सग्राम की पृष्ठभूमि मे उनके चरित्र का विकास दिखाया गया है। घटनाओ के विकास क्रम मे प्रणय-कथाएँ भी अतर्ग्रथित हैं।

उरूब के इस उपन्यास मे अनेक पात्रो के भिन्न भिन्न चरित्रो का चित्रण कुशलतापूर्वक किया गया है। इन सभी पात्रो के रग बिरगे जीवन के रूप म केरलीय जन-जीवन का चित्र समुज्ज्वल और भास्वर हुआ है। उपन्यास की भाषा काव्यात्मक और प्रभावशाली है। मलयाळम के उपन्यासो मे 'सुदरिक्ळुम् सुदरन्मारुम्' का प्रमुख स्थान है।

सुदरी *(प० पा०)*

सुदरी नानकसिंह (दे०) के सर्वप्रसिद्ध उपन्यास 'चिट्टालहू' (दे०) की नायिका है। अवैध सतान के रूप मे जन्मी, रोडू कलदर द्वारा पालित-पोषित एव समाजसुधारक बचनसिंह क सहयोग म शिक्षित होकर समाज-सेवा तथा सुधार-कार्यो म प्रवृत्त होती है। नाम के अनुरूप सुदर तथा स्वभाव स कोमल सुदरी अपने निर्दोष पति को दड दिलाने वाले व्यक्तियो से तथा अपनी माँ पर

हुए अत्याचारों का प्रतिशोध लेती हुई समस्त दुष्ट पात्रों को मार कर आत्महत्या कर लेती है। यह नानकसिंह का आदर्शवादी चरित्र है जो कि नारी-संबंधी सुधारवादी दृष्टिकोण का परिचायक है।

सुंदरी *(पं० कृ०)*

'सुदरी' भाई वीरसिंह (दे०) का एक ऐतिहासिक उपन्यास है जिसकी प्रेरणा उन्हें एक लोकगीत से मिली। लोकगीत में मुग़लों के अत्याचारों से त्रस्त पंजाबी नारी की अंतर्व्यथा थी। महाराज रणजीतसिंह द्वारा खालसा-दरबार की स्थापना से पूर्व पंजाब में सिख मुगलों की कोपाग्नि से बचने के लिए जंगलों और बेहड़ों में छिपकर छापामार-युद्ध के लिए सन्नद्ध रहते थे। उनके परिवारों, विशेषतः स्त्रियों, को घोर कष्ट सहन करने पड़ते थे। उस संकट काल में भी पजाबी नारियों ने सतीत्व, मर्यादा, और आदर्श जीवन-मूल्यों की रक्षा किस साहस से की, सुदरी मे इसी का चित्रण है। सुदरी का पूर्वनाम 'सरस्वती' है। वह शामदास की पुत्री और बलवंतसिंह की बहन है। गौने के दिन उसे लुटेरे अपहृत कर शासक के पास ले जाते हैं। शासक पिता, भाई, पति की फ़रियाद ठुकरा देता है। सरस्वती जल मरने का प्रयास करती हुई भाई द्वारा बचा ली जाती है जो उसे वन मे ले जाता है क्योंकि शासकों के भय से परिवार वाले उसकी निंदा करते हैं। सरस्वती वहाँ सिख-मत स्वीकार कर सुंदरी नाम से वीर योद्धाओं की सेवा में लग जाती है। यहाँ वह अपने दयाभाव के कारण कई बार शासकीय प्रतिनिधियों के चंगुल में फंसती है किंतु बिजला सिंह नामक युवक की नीति-कुशलता से बार-बार मुक्त करा ली जाती है। अंत में आततायियो के साथ सिखों के संघर्ष में घायल होकर, 'गुरु ग्रंथ साहब' का पाठ सुनते-सुनते, प्राण त्याग देती है। 'सुदरी' उपन्यास का कथानक पर्याप्त रोचक और नाटकीयता-समन्वित है। इसके प्रेरणाप्रद संदेश ने एक समय पंजाबी-पाठकों को बेहद प्रभावित किया था।

सुक्खा सिंह *(पं० ले०)*

इनके माता-पिता का बाल्यावस्था मे ही देहांत हो गया था। ये चार भाई थे। इन्हें अग्रज ने पाला-पोसा एवं शिक्षित किया। इनकी कृतियों में 'गुर विलास छठी पातशाही दा' तथा 'गुर विलास दशम पातशाही दा' प्रसिद्ध हैं। इनमें भी 'गुरविलास छठी पातशाही दा' इनके द्वारा संपादित ग्रंथ माना जाता है। दूसरा 'गुर विलास दशम पातशाही दा' ग्रंथ इनका स्वलिखित है। इस ग्रंथ का पौराणिक महत्व है। कवि रूप में सुक्खा सिंह सफल हैं। गुर विलास में चरितनायक गुरु गोविंद सिंह के अनुरूप वीर रस की अभिव्यक्ति हुई है। युद्ध के वर्णनों में रौद्र एवं भयानक रस का परिपाक भी हुआ है। प्रकृति-चित्रण मे भी कवि सुक्खासिंह की प्रतिभा सफल रही है। कवित एवं सवैया के प्रयोग में कवि-प्रतिभा का कौशल प्रखर है। काव्य में ब्रजभाषा के प्रचलित शब्दों का बहुलता से प्रयोग किया गया है। खड़ी बोली के व्यावहारिक शब्द भी इनकी इस कृति में मिलते हैं। इसकी 'बारा मांह' नाम की एक काव्य-रचना भी प्राप्त है। इस रचना मे बारहमासा वर्णित है। सिक्ख मत के गुरु द्वारा केसरगढ़ साहिब के ग्रंथी कवि सुक्खा सिंह ने साहित्यिक के रूप में 'गुरविलास दशम पातशाही दा' कृति का निर्माण कर पंजाबी काव्य में उत्कृष्ट प्रबंधकाव्य-परंपरा की स्थापना की है। इसी लिए आज तक यह ग्रंथ अपना ऐतिहासिक-पौराणिक एवं साहित्यिक महत्व स्थिर रखे हुए है।

सुख़नदान-ए-फ़ार्स *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1872 ई० के लगभग]

'सुख़नदान-ए-फ़ार्स' मौलवी मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' (दे०) के निबंधों का संग्रह है। इसके प्रथम भाग में फारसी-भाषा की उत्पत्ति एवं विकास का विवेचन द्वितीय भाग में वे बारह निबंध है जो कालेज के विद्यार्थियों के सम्मुख पढ़े जाने के लिए लिखे गए थे और जिनमें पहला निबंध 9 फरवरी, 1972 को प्रस्तुत किया गया था। इस दूसरे भाग में ईरान की प्राचीन भाषा, उसमें होने वाले परिवर्तन, उस पर समाज एवं संस्कृति का प्रभाव, राजनीतिक परिवर्तनों का फ़ारसी साहित्य पर प्रभाव, लेखकों, कवियों और उनकी रचनाओं का तथा भारत में फारसी भाषा एवं साहित्य का स्थान आदि विभिन्न विषयों पर ज्ञानवर्धक विचार प्रस्तुत किए गए हैं।

भाषाविज्ञान की दृष्टि से इस पुस्तक का बहुत महत्व है। इससे पहले इस विषय पर उर्दू में तो क्या फ़ारसी में भी कोई रचना नहीं थी। मौलाना आज़ाद की विख्यात गद्य शैली की छवि इस पुस्तक में भी विद्यमान है।

सुखबीर *(प० ले०)* [जन्म—1927 ई०]

पजाबी साहित्य मे आधुनिक और महानगरीय यांत्रिक जीवन बोध को जिन थोडे से कलाकारो ने अपनी रचनाओ के माध्यम से रूपायित किया है उनमे सुखबीर का नाम सबसे पहले आता है। बबई जैसे महानगर मे स्थायी निवास के कारण सुखबीर को उस जटिल और तनावपूर्ण जीवन का गहरा अनुभव है जो आधुनिक बोध की पृष्ठभूमि है। सुखबीर पजाबी के नये कवियो मे *अग्रगण्य हैं। उपन्यासकार और कहानीकार के रूप मे भी* प्रतिष्ठित हैं।

प्रमुख रचनाएँ—'पैंडा' (कविता-सग्रह), 'डुबदा चढदा सूरज' (कहानी सग्रह), 'पाणी ते पुल', *'सडका ते कमरे' (उपन्यास)।*

सुखमनी *(प० प्र०)*

सुखमनी का एक अर्थ है मन को सुख प्रदान करने वाली वाणी। यह गौडी राग मे गुरु अर्जुनदेव द्वारा रचित है। इसमे 24 अष्टपदियाँ हैं। उदाहरण—

जन्म मरण ताका दुख निवारै,
दुलभ देह ततकाल उधारै,
दुख रोग बिनसे भै भरम,
साफ नाम निरमल ता के करम,
सम ते ऊँच ताकी सोभा बनी,
नानक इह गुणि नामु सुखमनी।
(सुखमनी)

सुखमनी का दूसरा अर्थ है—सुषुम्णा नाडी, योगियो द्वारा परिकल्पित एक नाडी जो नासिका-मूल से लेकर मस्तिष्क तक पहुँचती है। इसके दाहिनी ओर पिंगल और बाईं ओर इडा नाडियाँ हैं। यह नाडी चद्र, सूर्य और अग्नि-रूपा है। साधक सतत आभास द्वारा जब अपने प्राणो की गति इसमे सीमित कर लेता है तो उसे अनहद शब्द सुनाई देता है और अलौकिक आनद की प्राप्ति होती है। इसे *ब्रह्ममार्ग अथवा महापथ भी कहा गया है।*

सुखलाल जी सघजी सघवी, *(गु० ले०)* [जन्म—1880 ई०]

पडित सुखलाल जी का जन्म वढवाण के पास लीमली (सौराष्ट्र) नामक छोटे से गाँव मे हुआ था। केवल वर्नाक्यूलर की सातवीं कक्षा तक पढे हुए श्री सुखलालजी सोलह वर्ष की आयु मे शीतला के रोग से ग्रस्त हुए और *अपनी दोनो आँखें खो बैठे। प्रज्ञाचक्षु बन जाने पर* इन्होने सस्कृत साहित्य और दर्शन मे अपनी रुचि जाग्रत की। परिणामस्वरूप ये काशी और मिथिला गए जहाँ इन्होने न्यायशास्त्र वेदात आदि का गहन अध्ययन किया। पडितजी के लेखन का कार्य आगरा से आरभ हुआ। गाधी जी के द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ मे ये दर्शन-शास्त्र के अध्यापक के रूप मे नियुक्त होकर आए। *तत्पश्चात जैन-दर्शन के अध्यापक के रूप मे इन्होने अपनी* सेवाएँ काशी हिंदू विश्वविद्यालय को अर्पित की। इनकी रचनाएँ हैं 'योगदर्शन' (हिंदी), 'चारकर्मपथ', 'पचप्रतिक्रमण', 'दडक', 'प्रमाणमीमासा', 'जैनतर्कभाषा', 'ज्ञानबिंदु', 'तत्त्वोप्लव', *'न्यायावतार', 'सन्मतिलक'*—छह भाग, 'वेदवादद्वात्रिंशिका', 'हेतुबिंदु' (सभी अनुवाद अथवा सपादन), 'जैन दृष्टिए ब्रह्मचर्य विचार', 'तत्त्वा*याधिगम' तथा दर्शन और चिंतन'* (मौलिक कृतियाँ)। इन कृतियो को देखने से पडित जी के वैविध्यपूर्ण ज्ञान की सहज ही प्रतीति हो जाती है। फिर भी पडित जी की रुचि जहाँ पर सर्वाधिक रमी है वे जैन और बौद्ध दर्शन हैं। इसके अलावा इनके लेखन के *विषय साहित्य और* समाज भी रहे है। पडित जी का सबध बबई (भारतीय विद्याभवन), अहमदाबाद (गुजरात विद्यासभा) तथा आगरा (आत्मानद जैन पुस्तक प्रचारक मडल) की सस्थाओ के साथ प्रगाढ रूप से है। सभी रचनाओ मे पडित जी का अभिगम सतुलित व असाप्रदायिक है। दर्शनो की पारस्परिक तुलना के द्वारा इन्होंने तत्त्व को *ग्रहण करने-कराने का प्रयत्न किया है। हृदय और बुद्धि* से सतुलित, सुसस्कृत, चिंतनशील प्रतिभायुक्त पडित जी के व्यक्तित्व की झलक इनकी प्रत्येक रचना मे मिल जाती है। हिंदी और गुजराती के क्षेत्र मे पडित जी के समान विद्वान् और विनयी कम ही देखने को मिलेंगे।

सुगतकुमारी *(मल० ल०)* [जन्म—1934 ई०]

मलयाळम की यह प्रतिभाशाली कवयित्री प्रसिद्ध कवि बोधेश्वरन् की पुत्री है। 'मुत्तुच्चिप्पि', 'स्वप्नभूमि', 'पातिराप्पूक्कळ्' और *'पावम् मानवहृदयम्'* मे उनकी कविताएँ सगृहीत हैं।

सुगतकुमारी की कविता रोमानी काव्य-धारा और अत्याधुनिक कविता के बीच की एक कडी है।

रोमांटिक कवियों के रचना-सौष्ठव के साथ उन्होंने वैज्ञानिक नागरिकता के युग की कुंठाओं और संघर्षों को स्वर दिया है। नयी पीढ़ी के कवियों में सुगतकुमारी का नाम अग्रणी है।

सुगात्री *(ते० पा०)*

यह पिंगळि सूरना (दे०) (सोलहवीं शती) के विख्यात प्रबंध-काव्य 'कलापूर्णोदयमु' (दे०) की एक महत्वपूर्ण पात्र है। यह काश्मीर के शारदा पीठ के पुजारी की प्रिय पुत्री है। शालीनुडु (दे०) नामक एक कला-प्रेमी युवक के साथ उसका विवाह होता है और वह घर जँवाई के रूप में वहीं रह उठता है। सहज सौंदर्य का उपासक होने के कारण शालीन अनेक आभरणों से लदी हुई पत्नी के प्रति सदा विरक्त रहता है। फिर भी पति की विरक्ति का कारण न जानने वाली सुगात्री पति के प्रति अनुराग एवं अपनी सेवा-भावना में कोई अंतर नहीं आने देती। श्रम-जल-बिंदुओं से विभूषित एवं श्रांति से रक्तिम देह-वाली होकर सुगात्री पति के अनुराग को पाने के लिए उसके साथ उपवन में कठोर परिश्रम करती है। इस प्रकार यह क्षमा, निश्चल अनुराग एवं सेवा-भावना में पति के प्रेम को पाने में सफल होने वाली साध्वी है। यह सदा पति की कुशलता एवं सुख को ही लक्ष्य करके अपना जीवन व्यतीत करती है। आंध्र में यह एक पतिपरायण सती-साध्वी के उदाहरण के रूप में जानी जाती है।

सुजानचरित *(हिं० कृ०)* रचना-काल—1753 ई० के आसपास]

वीररस के प्रसिद्ध कवि सूदन (दे०) ने अपने आश्रयदाता सूरजमल की प्रशंसा में इस ग्रंथ का निर्माण किया था। यह ग्रंथ राधाकृष्णदास के संपादकत्व में 1923 ई० में काशी नागरी (दे०) प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हो चुका है।

सूफ़ी-कवियों की भाँति सूदन ने भी ग्रंथ के प्रारंभ में लगभग 175 कवियों का नामोल्लेख किया है। सूरजमल द्वारा लड़ी गई सात लड़ाइयों एवं उनके वंश का गौरव कवि ने बड़े मनोयोग से वर्णित किया है। ग्रंथ में राजा का समग्र जीवन बखूबी चित्रित किया गया है। वीररस के साथ शृंगार और वीभत्स का प्रतिपादन भी किया गया है। ग्रंथ में 103 प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है और इस तरह कवि ने पल-पल में छंद बदल कर अपने पांडित्य का प्रदर्शन किया है। नाम और विविध वस्तुओं के परिगणन में नीरसता आ गई है। सूदन की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है, इसमें पूर्वी, बैस-वाड़ी, मारवाड़ी, पंजाबी, फ़ारसी, आदि के शब्दों का भी समावेश पाया जाता है। वीर-काव्य में भूषण (दे०) और लाल (दे०) के बाद सूदन का ही नाम आता है। साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दोनों दृष्टियों से यह ग्रंथ महत्वपूर्ण है।

सुजानसिंह *(पं० ले०)* [जन्म—1909 ई०]

सुजानसिंह की गणना पंजाबी के शीर्षस्थ लेखकों में की जाती है। इनकी प्रारंभिक कहानियाँ सुधारवादी और रोमांटिक यथार्थतावादी दृष्टि से प्रभावित रहीं परंतु धीरे-धीरे उनकी दृष्टि सामाजिक यथार्थवाद की ओर उन्मुख हुई और बाद में पंजाबी के प्रगतिशील आंदोलन से इनका गहरा संबंध स्थापित हुआ।

कथ्य के साथ ही शिल्प की दृष्टि से भी सुजानसिंह ने पंजाबी कहानी को बहुत समृद्ध किया है। लेखक के अनेक कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें प्रमुख हैं—'दुख सुख', 'दुख सुख तो पिच्छों', 'सभ रंग', 'पशु ते आदमी' तथा 'नवां रंग'।

सुजानहित *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती का उत्तरार्ध]

अठारहवीं शती में घनानंद (दे०) सम्राट मुहम्मदशाह रँगीले के मुंशी थे। एक दिन षड्यंत्रकारियों ने बादशाह को बताया कि मुंशी जी बहुत अच्छा गाते हैं। बादशाह के बार-बार आग्रह करने पर ये गाना सुनाएँगे। हुआ भी यही। सुजान के कहने पर मुंशी जी ने बहुत अच्छा गाया। किंतु इस बेअदबी के कारण इन्हें बादशाह का कोप भाजन बनना पड़ा और राज्य से निष्कासन का दंड मिला) सुजान ने इनका साथ देने से मना कर दिया और अंत में ये वृंदावन चले गए, पर 'सुजान' शब्द का अंत तक त्याग न कर सके। यहाँ तक कि इन्होंने अपनी रचनाओं में भी राधा के लिए 'सुजान' शब्द का प्रयोग किया है।

'सुजानहित', 'आनंदघनजू के कवित्त', 'सुजानहित-प्रबंध', 'कृपाकंद', 'वियोगवेलि', 'इश्कलता', 'जमुनाजस', 'प्रीतिपावस', 'सुजानविनोद', 'रसकेलिवल्ली',

'वृंदावनसत', आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'सुजान-हित' या 'सुजानहित प्रबध' कोई स्वतत्र ग्रथ न होकर कवि के 500 छदो का सग्रह ग्रथ है। 'घनानद कवित्त' को 'सुजानसागर' नाम से भी जाना जाता है। 'सुजानविनोद' परवर्ती रचना है जिसके कुछ पद 'सुजानहित' से भिन्न हैं, अधिकाश पद 'सुजानहित' के अनुरूप है।

'सुजानहित' मे सुजान के स्थूल और सूक्ष्म सौंदर्य का चित्रण किया गया है। 'सुजान' के रूप-सौंदर्य, नृत्य और नाटय की भगिमाओ, उसके वीणा बजाने, साँवली साडी मे उसके नयनाभिराम सौदर्य, घनानद को निशानी का छल्ला देने, उसके मेहदी लगाने, कटाक्षपात आदि का चित्रण किया गया है। सुजान स्वय भी कविता करती थी। 'सुजानहित' मे ब्रजभाषा के अतिरिक्त पूरबी, पजाब और राजस्थानी के शब्द भी पाए जाते हैं। ग्रथ की भाषा मे शृगार रस के आधिक्य के कारण सर्वत्र एक प्रकार की मसृणता पाई जाती है। भाषा का लचीलापन दर्शनीय है—

तेरी निकाई निहारि छके छविबहू को
अनूपम रूप कढ्यौ है॥
ईठि ह्वै दीठि पै नीठि कटाछनि
आय मनोज को चोज पढ्यौ है।

निश्चय ही हिंदी-साहित्य मे स्थूल और सूक्ष्म शृगार के समवाय तथा नायिका के विविध हाव-भावो के चित्रण की दृष्टि से 'सुजानहित' अपूर्व रचना है और इसके प्रणेता घनानद भक्ति और शृगार की समन्वित धारा के निर्व्याज चारण कवि माने जाते रहेगे।

सुत्तनिपात (पा० कृ०)

यह 'सुत्तपिटक (दे०) के अतर्गत 'खुद्दक-निकाय' का एक भाग है। निपात' शब्द की कई रूपो मे व्याख्या की गई है। कुछ लोग इसका अर्थ करते हैं सार-सग्रह, दूसरे लोगो के मत मे इसका अर्थ है विशाल सग्रह का छोटा—सा भाग, न्यूमैन ने इसका अर्थ किया है खड और ओल्डेनबर्ग ने इसका अर्थ किया है—सामयिक वक्तव्य का पृथक्कृत भाग। वस्तुत इस सकलन मे आई हुई अनेक गाथाएँ तथा अनेक अश सुत्त 'त्रिपिटक' (दे०) के अन्य भागो मे आए है जिससे प्रमाणित होता है कि इसम अनेक तत्त्व विभिन्न भागो से लेकर सकलित किए गए हैं। एक बात समस्त 'त्रिपिटक' के विषय मे कही जा सकती है कि इसमे नवीन रचनाओ के साथ प्राचीन तत्त्व सम्मिलित अवश्य हैं, किंतु यह बात 'सुत्तनिपात' के विषय मे विशेष रूप से लागू होती है। इसकी वस्तु और भाषा की परीक्षा से यह बात असदिग्ध रूप मे प्रमाणित हो जाती है कि इस खड मे बौद्ध धर्म के आदोलन के प्रारभिक चरण के भी तत्त्व मौजूद है और उनमे कुछ तो ऐसे हैं जो बुद्ध के परिनिर्वाण के तत्काल बाद के लिखे हुए ज्ञात होते है।

'सुत्तनिपात' 5 वर्गो मे विभाजित किया गया है —उरगवग्ग, चुल्लवग्ग, महावग्ग, अट्ठकवग्ग और पारायण। इनमे प्रारभिक 4 वर्गो मे 54 छोटी-छोटी धार्मिक कविताएँ है, किंतु पाँचवाँ खड 'पारायण' स्वतत्र रचना-जैसा ज्ञात होता है जिसके 16 छोटे छोटे खड हैं। इनम अट्ठक-वग्ग और पारायण का नाम दूसरी रचनाओ मे भी आता है और उसक उद्धरण भी दिए गए है। इन दोनो की व्याख्या निद्देस' नाम से 'त्रिपिटक' मे सन्निविष्ट की गई है।

'धम्मपद' के बाद इस खड का सर्वाधिक महत्व है और बौद्ध धर्म के प्राचीन रूप को समझने के लिए तो इसकी महत्ता स्वीकार ही की जाती है। कवित्व की दृष्टि से भी इसकी महत्ता निर्विवाद है। पद्यात्मक सुत्त अधिक हैं किंतु गद्य सुत्त या मिश्रित सुत्त भी पर्याप्त हैं। बौद्ध धर्म के अतिरिक्त इसमे कही-कही ब्राह्मण धर्म के तत्त्व भी हैं।

सुत्तपिटक (पा० कृ०)

यह 'त्रिपिटक' (दे०) का वह भाग है जिसम बौद्ध धर्म का विवेचन किया गया है। जब बुद्ध अपन किसी उत्तराधिकारी को नियुक्त किए बिना महानिर्वाण पदवी पर आरूढ हुए तब आनद क निर्देश पर बुद्ध-वचनो को ही बुद्ध का उत्तराधिकारी माना गया और उनका प्रथम सकलन राजगृह की प्रथम सगीति म किया गया। उस समय उस सकलन के दो भाग थे—सघ के आचार-व्यवहार की शिक्षा के लिए 'विनयपिटक' (दे०) और धर्मनिरूपण के लिए 'सुत्तपिटक'। प्रथम का निर्देशन उपालि ने किया और द्वितीय का आनद न। बाद म वैशाली की द्वितीय सगीति और पाटलिपुत्र की तीसरी सगीति मे उनका सशोधित और परिवर्धित रूप सामने आया। आज का 'सुत्तपिटक' तृतीय सगीति का सकलित रूप ही है जिससे यह निर्णय करना कठिन है कि उसका कितना भाग बुद्ध कृत है और कितना परवर्ती मिश्रण।

इसमें गद्य, पद्य, संवाद, गीत इत्यादि सभी साहित्यिक तत्त्व विद्यमान है। अधिकांश भाग गद्य में है किंतु उसमें भी बीच में गाथाएँ आ जाती हैं।

'सुत्त' शब्द सूत्र या सूक्त का पालि रूप है। संभवतः 'ऋग्वेद' के सूक्तों के अनुकरण पर यह नामकरण हुआ है। इसको सूक्तों के विस्तार के आधार पर 5 निकायों में विभाजित किया गया है: (1) दीघनिकाय—इसमें 34 दीर्घ सुत्तों का संग्रह है; (2) मज्झिम-निकाय—इसमें विभिन्न विषयों के 252 सुत्तों का संग्रह है; (3) संजुत्तनिकाय—यह 56 वर्गों में सुत्तों का संग्रह है जिसमें प्रत्येक में कई-कई सुत्त हैं; (4) अंगुत्तर-निकाय—यह 11 निपातों में 2308 सुत्तों का संग्रह है जिसमें संख्या के आधार पर धर्मोपदेश दिया गया है और (5) खुद्दक निकाय—जिसमें छोटे-छोटे सुत्तों वाले 15 ग्रंथों का समावेश है—'खुद्दकपाठ', 'धम्मपद', 'उदान', 'इतिवुत्तक', 'सुत्तनिपात', 'विमानवत्थु', 'पेतवत्थु', 'थेरगाथा', 'जातक', 'निद्देस', 'पतिसंभिदामग्ग', 'अपदान', 'बुद्धवंश' और 'चरियापिटक'।

'सुत्तपिटक' केवल बौद्ध धर्म के अध्ययन के लिए ही नहीं, समस्त धर्म-संप्रदायों का परिचय देने के लिए उपयोगी ग्रंथ है। विरोधी के रूप में वैदिक धर्म पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है और तत्कालीन रीति-नीति के अध्ययन का भी उत्तम साधन है।

सुथरा *(पं०लें०)* [जन्म—1615 ई०; मृत्यु—1755 ई०]

सुथरा पंजाबी के हास्य और नीति-कवि के रूप में विख्यात हैं। इनका जन्म अडियाला गाँव (जिला पटियाला) में हुआ था। कहते है, जन्म से ही इनके मुखमें पूरे बत्तीस दाँत थे। यह अशुभ लक्षण देखकर माता-पिता ने इन्हें वन में फेंक दिया जहाँ संयोगवश कुछ समय पश्चात सिख-पंथ के छठे गुरु श्री हरगोविंद जी आए और इन्हें साथ ले गए। इन्हें दसवें गुरु तक अर्थात् पाँच पीढ़ियों तक गुरु-सेवा में रहने का अवसर मिला। इनके अनुयायी 'सुथरापंथी' या 'सुथरेशाही' कहलाते है।

ये बड़े हँसमुख और विनोदी स्वभाव के थे। इनकी बातें सटीक व्यंग्यपूर्ण और अनायास हँसा देनेवाली होती थीं। इनकी कविता में व्यंग्योक्तियों की बहुलता है और उसमें विवाह, संतति-मोह, विलासिता, मिथ्याचार और बाह्याडंबरों के प्रति बड़ी सरल किंतु चुटीली भाषा में छींटाकशी एवं व्यंग्य-प्रहार किए गए है।

सुदंसण चरिउ *(अप० कृ०)* [रचना-काल—1043 ई०]

नयनंदी (दि०) ने इस काव्य की रचना की थी। इसमें 12 संधियाँ हैं। अर्हत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय एवं साधुजनों के नमस्कार—पंच नमस्कार—के माहात्म्य-स्वरूप एक गोप सेठ सुदर्शन नाम से जन्म लेकर किस प्रकार मोक्ष प्राप्त करता है, उसी के चरित्र का इस काव्य में वर्णन किया गया है।

इसका नायक शास्त्रीय परंपरा के विपरीत एक श्रेष्ठी-पुत्र है। प्रबंध-काव्यों की परंपरा के अनुरूप इसमें कवि ने नाना नर, नारी, भौगोलिक प्रदेश, प्राकृतिक दृश्य आदि का अलंकृत भाषा में वर्णन दिया है।

इसका कथानक प्रबंधात्मकता की दृष्टि से सुगठित नहीं। कतिपय घटनाओं का अनावश्यक विस्तार किया गया है। स्त्री-प्रकृति-वर्णन में कवि ने विशेष रुचि प्रदर्शित की है—विशेष इंगित, वर्ग, प्रांत इत्यादि के आधार पर स्त्रियों का वर्गीकरण किया है। इस प्रकार इस कृति में नायिका-भेद, नख-शिख-वर्णन, उद्दीपन-रूप में प्रकृति-वर्णन, षड्ऋतु-वर्णन आदि को देखते हुए कुछ विद्वानों ने इस रचना में रीतिकाल की प्रवृत्तियों के बीज की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। अपभ्रंश के अन्य प्रबंध-काव्यों की भाँति इस काव्य में भी शृंगार, वीर और शांत रस की व्यंजना दृष्टिगत होती है। किंतु सब रसों का पर्यवसान शांत रस रस में किया गया है।

नाना वर्णनों में संस्कृत के साहित्यिक ग्रंथों की झलक दृष्टिगत होती है। अलंकार-योजना में उपमान परंपरागत प्रयुक्त होने पर भी नवीनता लिये हुए हैं।

इस काव्य की भाषा भावों के अनुकूल, सजीव एवं सप्राण है। बीच-बीच में मुहावरों, लोकोक्तियों एवं सुभाषितों के प्रयोग से वह गतिशील एवं प्रवाहमय हो गई है। पात्रों के चरित्र का मनोवैज्ञानिक चित्रण इस काव्य की विशेषता है।

प्रस्तुत रचना में छंदों की विपुलता एवं विविधता दृष्टिगत होती है। कवि ने इसे 'पद्धड़िया बंध' कहा है। किंतु प्रतीत होता है कि उसने अपना छंद-कौशल प्रकट करने का प्रयत्न किया है। अनेक अपरिचित छंदों का कहीं-कहीं नामोल्लेख भी मिलता है; कहीं-कहीं तो छंदों के लक्षण भी दिए हैं। छंदों एवं अलंकारों की प्रचुरता के कारण काव्य को छंद और अलंकार-प्रधान कहा जा सकता है। अपभ्रंश-कवियों में संभवतः नयनंदी ने सबसे अधिक छंदों का प्रयोग किया है।

सुदर्शन (हिं० ले०) [जन्म—1896 ई०]

इनका वास्तविक नाम बदरीनाथ था तथा ये पजाब के सियालकोट नामक स्थान मे (अब पाकिस्तान) पैदा हुए थे। इन्होने अपने साहित्यिक जीवन का आरभ उर्दू-लेखन से किया था तथा बाद मे हिंदी मे आए थे। ये हिंदी के प्रसिद्ध कहानीकार हैं, यद्यपि इन्होने नाटक तथा उपन्यास के क्षेत्र को भी अछूता नही छोडा है। 'पुष्पलता', 'सुप्रभात', 'तीर्थयात्रा', 'पनघट', 'अँगूठी का मुकदमा' आदि इनके प्रसिद्ध कहानी-सग्रह हैं तथा 'हार की जीत', 'न्याय मत्री', 'एथेंस का सत्यार्थी' आदि इनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। घटनाओ के उत्सुकतापूर्ण नियोजन, परिमार्जित और प्रवाहपूर्ण भाषा, सरल वाक्य विन्यास एव लोकोक्तियो और मुहावरो के प्रयोग से पाठक के मन पर अपनी अमिट छाप छोड देने मे इन्हे कमाल हासिल है।

सुदामा, पाडूतात्या और बडूनाना (म० पा०)

श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर (दे०) की विनोद पुस्तक 'सुदाम्याचे पोहे' (दे०) के इन तीन पात्रो के चारो ओर विनोदी लेखो के ताने-बाने बुन गए हैं। इनमे सुदामा प्रमुख हैं और बडूनाना तथा पाडूतात्या उसके साथी। सुदामा प्रच्छन्न सुधारक है और लेखक ने स्वय पुरानी पीढी के आक्रोश से बचने के लिए इस मानसपुत्र की सृष्टि की है। सुदामा की नकली मूर्खता की आड मे लेखक ने सनातनी रूढियो पर व्यग्य किया है। धार्मिक रूढियो और सामाजिक कुरीतियो पर व्यग्य करने के अतिरिक्त साहित्यकारो के दभ, व्यसन आदि पर भी इन पात्रो के माध्यम से प्रहार किया गया है। सुदामा का काव्य-यत्र जिसमे कोश के शब्द डालने और फिर डडा फेरने से कविता बन जाती थी, इसका उदाहरण है। सगीत, चित्र-कला, टेनिस, शतरज, खटमल आदि से सबद्ध लेखो मे ये पात्र निर्मल हास्य की सृष्टि करते हैं, मानव-स्वभाव की दुर्बलताओ पर प्रकाश डालते हैं—'खर्राटे की आवाज के कारण आस-पास के लोगों की नीद नही आती थी, उसमे घडियाल के गजर की आवाज, कुत्तो के भौंकने की आवाज सभी लुप्त हो जाती थी।' खटमलो से तग आकर यदि सुदामा परिवार सहित काशी की यात्रा करता है तो बडूनाना आत्महत्या की सोचता है पर डूबने से पूर्व पानी मे हाथ डालने पर उसके शीत से डर कर आत्महत्या का सकल्प स्थगित कर देता है। बडूनाना द्वारा बच्चो की होली के त्योहार के लिए कवायद कराते दिखाकर लेखक ने होली मनाए जाने की पद्धति पर व्यग्य किया है। अछूतो को दिए ऋण का हिसाब-किताब रखने के लिए बडूनाना द्वारा अलग से दवात कलम रखने की बात कहकर सनातनी अस्पृश्यता का पालन करने वालो का उपहास भी किया है। इन तीनो पात्रो को परलोक जाते और वहाँ चित्रगुप्त के खाते मे जप-तप, उत्सव व्रत आदि धार्मिक कृत्यो का कोई महत्त्व न दिखाकर और अनाथाश्रम आदि के दान को पुण्य दिखा कर लेखक ने सद्धर्म की व्याख्या की है। तीनो किस प्रकार साहित्यकार बनते हैं इसका भी विवरण बडा मजेदार है, साथ ही प्रतिभाहीन व्यक्तियो के लेखक बनने की चेष्टा पर व्यग्य किया गया है। सुदामा ने एक अँग्रेज़ी उपन्यास का अनुवाद किया और उसे मौलिक रचना कहकर प्रकाशित किया, बडूनाना ने विदेशी भाषा के ग्रथ को उल्टा सुल्टा छपवाकर और उसमे शुद्धिपत्र जोडकर मौलिक रचनाकार का नाम पाया तो पाडूतात्या पुराने साल की डायरी छपवाकर ग्रथकार बन गए। इस प्रकार कोल्हटकर ने इस त्रिकूट के माध्यम से एक ओर तत्कालीन समाज के दोषो और कुरीतियो पर व्यग्य किया है तो दूसरी ओर निर्मल हास्य की सृष्टि भी की है।

सुदाम्याचे पोहे (म० कृ०)

यह श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर (दे०) का लेख-सग्रह है—जिसमे उनके 1902 से 1922 ई० तक लिखे बत्तीस विनोदी लेख हैं। इन्हें तीन वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—शुद्ध हास्यमय लेख, समाज की कुरीतियो पर व्यग्य करने वाले लेख और गभीर लेख। इन सभी मे सुदामा (दे०), पाडुतात्या (दे० सुदामा) और बडूनाना (दे० सुदामा) की ऊटपटाग, मूर्खतापूर्ण, भोंडी और सीधी-सादी लीलाओ के वर्णन द्वारा हास्य उत्पन्न किया गया है। साथ ही विनोद द्वारा समाज सुधार करने का प्रयत्न है। इन्हे पढते समय एक ओर पाठक हँसी से लोट-पोट हो जाता है तो दूसरी ओर सामाजिक दोष व धार्मिक कुरीतियों—शवयात्रा-शकुन, जादू-टोना, वशीकरण, सत्यनारायण की कथा, नजर आदि के प्रति उसका आक्रोश भी उमडता है, और इन रूढियो के शिकार प्राणियो के प्रति वह द्रवित भी होता है। अपने धर्म मे कौन-सी बातें बुद्धिग्राह्य हैं और कौन सी मूर्खतापूर्ण इसका सहानुभूतिपूर्वक विचार न करने के फलस्वरूप कुछ

लेखों में कटुता आ गई है। हास्य उत्पन्न करने के लिए उन्होंने प्रमुखतः शब्द-क्रीड़ा, वक्रोक्ति, श्लेष, व्याजस्तुति विरोधाभास आदि का आश्रय लिया है यद्यपि प्रसंगनिष्ठ और स्वभावनिष्ठ विनोद का भी अभाव नहीं है। अतिशयोक्ति और अपेक्षाभंग उनके अन्य दो साधन हैं। 'पांडुतात्या ने सुपारी समझ कर एक हाथी मुंह मे डाल लिया और वह दाँतों से नहीं टूटा, अतः दूसरा हाथी सरौते से काटकर डाल लिया ।' कोल्हटकर की भाषा विनोद-सृष्टि के अनुरूप सहज सुंदर और प्रसन्न न होकर आलंकारिक—अतः क्लिष्ट है और कहीं-कहीं तात्त्विक चर्चा के कारण भी उनके लेख रुक्ष हो गए हैं। अनेक लेखों — जैसे 'चोरों का सम्मेलन' या 'साहित्य परिषद् की तैयारी' मे विनोद का निर्मल रूप भी मिलता है। कोल्हटकर को 'मराठी का विनोदाचार्य' कहा गया है। उनके लेखों को पढ़कर पहले भले ही क्रोध उत्पन्न हो पर बाद में पाठक को स्वीकार करना पड़ता है कि लेखक हमारा हितैषी है जो हँसाकर हमारा मार्गदर्शन करता है।

सुधांशु, लक्ष्मीनारायण *(हि० ले०)* [जन्म—1908 ई०]

इनका जन्म बिहार प्रांत के पूर्णिया ज़िले के रूपसपुर नामक गाँव में हुआ था। इनका मुख्य प्रदेय हिंदी-आलोचना के क्षेत्र में है, यद्यपि इनके दो कहानी-संग्रह, एक निबंध-संग्रह एवं एक उपन्यास भी प्रकाशित हो चुके हैं। 'काव्य में अभिव्यंजनावाद', 'जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत' इनके प्रतिनिधि समीक्षा-ग्रंथ है। मनोविज्ञान, सौंदर्यशास्त्र तथा प्राचीन भारतीय काव्यशास्त्र को आधार बनाकर समीक्षा-संबंधी प्रतिमानों को प्रस्तुत करना इनकी सर्वप्रमुख विशेषता है। 'काव्य में अभिव्यंजनावाद' ग्रंथ मे इन्होंने 'अभिव्यंजनावाद' शब्द की ऐतिहासिक रूपरेखा देते हुए वक्रोक्तिवाद (दे० वक्रोक्ति) से उसके पार्थक्य को स्पष्ट करके शुक्ल (दे० शुक्ल, रामचंद्र) जी के इस मत का सप्रमाण खंडन किया है कि यह भारतीय वक्रोक्तिवाद का ही विलायती उत्थान है। 'जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत' नामक ग्रंथ मे काव्य-सिद्धांतों को मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण से परखा गया है।

'अवंतिका' पत्रिका के संपादक तथा बिहार-विधान-परिषद् के अध्यक्ष के रूप मे इन्होंने क्रमशः पत्रकारिता एवं राजनीति के क्षेत्र मे भी अपनी सक्रियता का परिचय दिया है।

सुनीता *(हि० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1935 ई०]

यह जैनेंद्रकुमार (दे०) का अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं प्रतिनिधि उपन्यास है जिसमें सुनीता (दे०), श्रीकांत तथा हरिप्रसन्न नामक पात्र-पात्रियों को आधार बनाकर समूचे उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। सुनीता तथा श्रीकांत पति-पत्नी हैं तथा राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता हरिप्रसन्न श्रीकांत के मित्र हैं। एक दिन सहसा हरिप्रसन्न की भेंट श्रीकांत से हो जाती है और वह उसके जीवन को संयमित करने के लिए उसे अपने घर ले जाता है। सुनीता भी उसे समझाने का प्रयत्न करती है। धीरे-धीरे हरिप्रसन्न सुनीता की ओर न केवल आकर्षित होने लगता है अपितु उसका यह आकर्षण आसक्ति में बदल जाता है। श्रीकांत हरिप्रसन्न को बाँधकर रखना चाहता है और इसी निमित्त एक बार वह इन दोनों को अकेला छोड़कर चला जाता है। श्रीकांत की अनुपस्थिति में हरिप्रसन्न सुनीता से क्रांतिकारी दल का नेतृत्व करने का निवेदन करता है और एक दिन इसी निमित्त वह उसे आधी रात के समय निर्जन जंगल में ले जाता है। वहाँ पहुँचकर यह पता चलता है कि पुलिस को सूचना मिल जाने के कारण क्रांतिकारी दल की बैठक नहीं होगी। इस वातावरण में हरिप्रसन्न की कामुकता भड़क उठती है और वह सुनीता को समूची पा लेना चाहता है। सुनीता सर्वथा निर्वस्त्र हो जाती है। ऐसी स्थिति मे हरिप्रसन्न लज्जित हो उठता है और वह सुनीता को घर लौटाकर सदैव के लिए चला जाता है। इन दोनों के रात्रि-प्रवास की बात श्रीकांत को भी मालूम पड़ जाती है। सुनीता उसे हरिप्रसन्न की दुविधाग्रस्त मनःस्थिति से परिचित करती है। इस घटना के बाद श्रीकांत तथा सुनीता एक-दूसरे के और निकट आ जाते हैं। यह उपन्यास अपने कथानक के लिए प्रसिद्ध न होकर असाधारण पात्रों की सृष्टि के लिए प्रसिद्ध है। हरिप्रसन्न शिल्पी, कलाकार, दार्शनिक तथा क्रांतिकारी होने के साथ-साथ एक ऐसा रहस्यमय व्यक्तित्व लिये हुए है कि पूरा उपन्यास पढ़ने के बाद भी हम उसके वास्तविक रूप को नहीं जान पाते। श्रीकांत एक ऐसा विचित्र पात्र है जो अपने मित्र के जीवन को व्यवस्थित करने के लिए अपनी पत्नी को ही माध्यम बनाता है। इसी प्रकार सुनीता भी असाधारण व्यक्तित्व वाली ऐसी रहस्यमयी पात्रा है जो हमें भुलावा देने में पूर्णतः समर्थ है। वस्तुतः इस उपन्यास में ऐसे पात्रों की सृष्टि की गई है जो इस लोक में नहीं मिलते। उपन्यासकार ने इस कृति में यथास्थान दार्श-

निकता का पुट भी दे दिया है, लेकिन इससे औपन्यासिकता को क्षति नही पहुँची है। यही जैनेंद्र की उपन्यास कला की विशेषता है। कुल मिलाकर यह हिंदी का एक अत्यत महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यास है।

सुनीता (*हि० पा०*)

यह जैनेंद्रकुमार (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'सुनीता' (दे०) की नायिका एव प्रमुख स्त्री-पात्र है। उच्च शिक्षा तथा क्लात्मक अभिरुचि से सपन्न, घर के सभी काम-काज अपने हाथ से करने वाली अनिंद्य यौवना सुनीता एक ऐसी नारी है जो रूढिवादी सस्कारो मे पली होने पर भी अपने व्यक्तित्व को घर की चारदीवारी तक सीमित नही रख पाती तथा क्रातिकारी हरिप्रसन्न की प्रेरणा के फलस्वरूप घर से बाहर निकल कर राजनीति के क्षेत्र मे पदार्पण करने के लिए सहमत हो जाती है। उपन्यासकार ने इसके माध्यम से नर-नारी के सहज आकर्षण का भी अत्यत मनोवैज्ञानिक निरूपण किया है। अपने रूढिवादी सस्कारो के फलस्वरूप यद्यपि वह प्रारभ मे यह स्वीकार करना नही चाहती कि एक की पत्नी होते हुए वह किसी अन्य पुरुष के प्रति आकृष्ट है किंतु वस्तु स्थिति के दबाव के फलस्वरूप पति एव प्रेमी को लेकर उसके मन मे एक भीषण द्वद्व छिड जाता है। वह जहाँ एक ओर अपने पति के साथ निश्छल व्यवहार करती है वहाँ दूसरी ओर अपने प्रेमी के व्यक्तित्व के समुचित विकास के निमित्त उसकी काम-बुभुक्षा मिटाने के लिए सर्वथा निरावृत तक हो जाती है। अपने प्रेमी द्वारा इस रूप के स्वीकार न किए जाने तथा उसके अत्यत लज्जित हो उठने पर वह अपने पति को सब कुछ बतला देती है। अपने प्रेमी के समक्ष सर्वथा अनावृत होने के प्रसग को लेकर अनेक आलोचको ने जैनेंद्रकुमार पर अश्लीलता का आरोप लगाया है, लेकिन ज्ञातव्य है कि लेखक ने ऐसी परिस्थिति की अवतारणा सामाजिक मर्यादा का उल्लघन करने के लिए न करके अहिंसा द्वारा वासना पर विजय पाने का मार्ग बतलाने के लिए की है और इस दिशा मे उसे पूर्ण सफलता मिली है।

सुनेहडे (*प० कृ०*) [प्रकाशन-वर्ष—1955 ई०]

अमृता प्रीतम (दे०) का यह काव्य-सग्रह 1955 ई० मे प्रकाशित हुआ था। इसे कवयित्री की काव्य-चेतना के विकास का चौथा सोपान कहा जा सकता है। इस सग्रह की कविताएँ कवयित्री की अतर्मुखी प्रवृत्ति की द्योतक है। उन्होने अपनी कविताओ के माध्यम से स्त्री जाति की पीडा ही नही, मनुष्य मात्र की पीडा को वाणी दी है। इस सग्रह की एक कविता 'इक खत' मे उन्होने लिखा है

> बहुत उच्चिया हन दीवारा
> रोशनी दिसदी नही

इस सग्रह की कविताओ मे कवयित्री ने जटिल अनुभवो को भी सफलतापूर्वक अभिव्यक्त किया है। प्रेम के अनुभव की भी अत्यत मार्मिक अभिव्यक्ति उनकी कविता 'सुनेहडे' मे हुई है।

इस सग्रह मे आकर कवयित्री एक बार फिर छद-सरचना की ओर मुडी है। भाषा, शैली और शिल्प की दृष्टि से भी ये कविताएँ श्रेष्ठ और विशिष्ट हैं। इस कविता सग्रह पर इन्हे साहित्य अकादेमी का पुरस्कार मिल चुका है।

सुप्पिरदीप कविरायर् (*त० ले०*) [समय—अठारहवी शती]

तमिल प्रदेश के एक वैष्णव स्वर्णकार परिवार मे इनका जन्म हुआ था पर ये प्रसिद्ध ईसाई पादरी एव तमिल कवि 'बेस्की' ['वीरमा मुनिवर' (दे०) इनका तमिल उपनाम था] के प्रभाव मे आकर ईसाई हो गए थे। इनकी दो पद्य रचनाएँ मिलती हैं—एक, विरलिविदुत्तु' (एक वेश्या के प्रेम-व्यापारो का वृत्तात), दूसरा, 'कूळप्पनायक्कन् कातल्' (सामतीय व्यवस्था के एक प्रभु के श्रृगार प्रसगो का वर्णन)। दोनो चमत्कारपूर्ण उक्तियो तथा रूढिगत वर्णनो से युक्त उत्तरकालीन तमिल काव्य-रूपो के नमूने हैं।

सुप्रभ (*अप० ले०*)

सुप्रभाचार्य ने 'वैराग्यसार' (दे०) नामक ग्रथ की रचना की थी। ये दिगबर जैन थे। इनके काल और देश के विषय मे कोई निश्चित प्रमाण नही मिलता। ये उदार हृदय साधक थे। जैन धर्मावलबी होते हुए भी इनका सप्रदाय-विशेष के प्रति पक्षपात न था। इन्होंने परोपकार, सदाचरण, दान, विरक्ति, आत्मज्ञान आदि धर्म के सामान्य तत्त्वो का ही 'वैराग्यसार' मे व्याख्यान

किया है। भाषा-शैली और विचारधारा की दृष्टि से कवि का रचना-काल तेरहवीं शती के लगभग माना जा सकता है।

सुबंधु *(सं० ले०)* [समय—सातवीं शती]

गद्यकाव्य-लेखकों में सुबधु का नाम सर्वप्रथम आता है। इनके समय के बारे में कुछ निश्चित तथ्य अब तक प्राप्त नही हो सका। अपने ग्रंथ के उपोद्घात मे इन्होने किसी विक्रमादित्य के कीर्तिशेष होने की चर्चा की है पर वह विक्रमादित्य कौन थे इस विषय में कुछ भी कहना कठिन है। 'न्यायवार्तिक'कार उद्योतकर से सुबंधु परिचित हैं। उद्योतकर का समय छठी शती माना जाता है। अतः सुबंधु का समय हम सातवीं शती मान सकते हैं।

सुबंधु द्वारा रचित एकमात्र कृति 'वासवदत्ता' उनकी कल्पना की देन है। यह पूर्वप्रचलित उदयन (दे०) तथा वासवदत्ता (दे०) के आख्यान से पूर्णतः भिन्न है। इसमे राजा चिंतामणि के पुत्र राजकुमार कंदर्पकेतु और शृंगार शेखर की पुत्री राजकुमारी वासवदत्ता की प्रणय-कथा वर्णित है। अनेक लोककथा रूढ़ियों से संयुक्त अत्यंत लघु कथानक वाली यह रचना प्रकृति-वर्णन, सौंदर्य-चित्रण तथा पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति से विपुलतर होती गई है। श्लेषों के आधिक्य ने इसे बड़ा बोझिल बना दिया है।

अलंकारों के बाहुल्य के बावजूद सुबंधु के समासों मे माधुर्य तथा अनुप्रासों में संगीत है। उनकी शैली बड़ी रोचक है तथा सहृदयों का पर्याप्त मनोरंजन करती है।

सुबाला *(अ० कृ०)*

प्रसिद्ध कहानीकार श्री होमेन बरगोहाञि (दे०) की यह अमर कृति है। सुबाला इस उपन्यास की नायिका है। यह भद्र महिला परिस्थितियों से बाध्य होकर वेश्या बनती है। पुस्तक का अंत अत्यंत मार्मिक है। प्राचीन कथावस्तु लेकर लिखा गया यह सफल उपन्यास है।

सुबोध रामराव *(क० ले०)* [समय —1890-1970 ई०]

कन्नड के हरिदास साहित्य के मर्मज्ञ रामराव जी का जन्म चिक्कमगलूर में एक संभ्रांत माधव-ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बेंगलूर में उन्होंने अपनी हाई स्कूल शिक्षा समाप्त की, सरकारी नौकरी से ऊबकर अध्यापक बने और अंत में साहित्य-सर्जना में लग गए। उन्होंने 1915 ई० में सुबोध ग्रंथमाला का आरंभ कर उसके अंतर्गत जन-सामान्य के लिए बोधगम्य भाषा में विश्व के महापुरुषों की स्फूर्तिदायक जीवनियाँ लिखीं। ये एक सौ चालीस हैं। ये ग्रंथ इतने सरल व सुंदर हैं कि युवा-मन के निर्माण में इनका अपूर्व योगदान है। दूसरी माला में उन्होंने कन्नड के वैष्णव भक्त हरिदासों के गेयपदों का संपादन कर प्रकाशन किया। कर्नाटक-हरिदास-कीर्तन-तरंगिणी के अंतर्गत पुरंदरदास (दे०), कनकदास (दे०) आदि के कीर्तनों के प्रामाणिक संस्करण तैयार किए गए। 'हरि-कथामृतसार', 'हनुमद्विलास', 'कुचेलोपाख्यान' आदि काव्यों का संपादन भी उन्होंने किया। तीसरी माला में राजस्थान कथावली के अंतर्गत टॉड के ग्रंथ की मदद से राजस्थान के वीरों के गौरवमय चित्र प्रस्तुत किए। 'रामायण' (दे०), 'महाभारत' (दे०) तथा 'भागवत' (दे०)—इन तीनों का सरल तथा सुंदर गद्यानुवाद भी आपने प्रस्तुत किया। इनकी शैली सरल व प्रभावी है। 'जीवनक्के बेलकु' में अनेक महापुरुषों के जीवन की महद घटनाओं व सूक्तियों का संग्रह है। आपने 1925 में कर्नाटक संस्कृति के पुनरुज्जीवन के उद्देश्य से 'सुबोध' नामक एक साहित्यिक मासिक पत्र चलाया जो आज भी जीवित है।

सुव्वण्णा *(क० कृ०/पा०)*

यह डा० मास्ति वेंकटेश अय्यंगार (दे०) के उपन्यास 'सुव्वण्णा' का प्रधान पात्र है। यह मैसूर के महाराजा कृष्णराज ओडेयर तृतीय के राजपंडित नारायण शास्त्री का बेटा था। शास्त्री जी के समान यदि यह पुराण-निपुण और कथावाचक बनता तो सुव्वण्णा कहलाने के बदले सुब्रह्मण्य शास्त्री कहला सकता था। परंतु ऐसा नहीं हुआ। एक बार जब यह अपने पिता के साथ महाराजा के दरबार में गया तो उनके सामने इसने एक पद गाया। पद को सुनकर महाराज ने इससे कहा था कि तुम इस विद्या के निष्णात बन जाओ तो हम तुमको पुरस्कार और बिरद प्रदान करेंगे। परंतु जब यह संगीत में निष्णात हुआ तब वे न रहे। प्राचीन आचार-विचारों को मानने वाले नारायण शास्त्री जी अपने पुत्र को संगीतज्ञ होना नहीं देना चाहते थे। कहाँ पुराणवाचकों

का वश, कहाँ सगीतज्ञो की परपरा । इस कारण इसको स्वच्छा स सगीत सीखने का मौका नही मिला । यह माता-पिता से छिपकर नीलसानी वेश्या के यहाँ सगीत का अभ्यास करने लगा । यदि यह बडा सगीतज्ञ हुआ तो उसका श्रेय नीलसानी को मिलना चाहिए । यह इस बात को जानता है । अपनी पत्नी के साथ जब यह उत्तर भारत चला जाता है तब नीलसानी के नाम से कुछ पैसे भेजता है जो कृतज्ञता के सूचक है । पर, नीलसानी इससे मन मे बहुत खिन्न होती है क्योकि उसने प्रत्युपकार की तुलना मे इसके साथ अच्छा व्यवहार नही किया था ।

छुटपन मे ही इसका विवाह हो गया था । उसकी पत्नी ललिता सुशीला नारी थी । जब इसे मालूम हुआ कि यह और एक बच्चे का पिता बनने वाला है तब माता पिता से कहे बिना आधी रात मे पत्नी को साथ लेकर घर से निकल गया । किसी प्रकार यह उत्तर भारत पहुँचा । सगीत सिखाकर आजीविका कमाता था । एक दिन इसकी बच्ची गगा मे बह गई । इसकी पत्नी भी इस शोक से सतप्त होकर चल बसी । उन्मन होकर यह अपने गाँव लौटा । तब तक इसके माता-पिता स्वर्गवासी हो चुके थे अतएव माया मोह से दूर रहने लगा । फिर भी लोग उसको नही छोड सके । विद्यादान कर इसने जीवन के कटु अनुभव प्राप्त किए थे । यह अपनी पत्नी को बहुत चाहता था, पर पारिवारिक झझट के कारण कभी-कभी रूखा व्यवहार भी करता था । माता पिता का यह आदर करता था, पर अपने मनोबल को त्याग नही सकता था । इसकी साधना, इसकी तपस्या और इसका दुरत-दु खात जीवन मानव-जीवन के रहस्य के अनुरूप ही हैं ।

सुब्बरायडु, वड्डादि *(त० ले०)* [जन्म—1855 ई०, मृत्यु—1938 ई०]

गोदावरी जिले मे राजमहेद्री नामक स्थान से अध्यापक, कवि और नाटककार के रूप म प्रसिद्ध श्री वड्डादि सुब्बरायडु तेलुगु और सस्कृत के प्रकाड विद्वान थे । इनके जीवन मे पाँच बार पत्नी वियोग हुआ और पचास साल की अवस्था मे इन्होने इकलौते पुत्र को भी खो दिया । वेदनामय जीवन ने कवि मे वैराग्य की भावना जगाई । और 'भक्तजनचिंतामणि', 'सुतस्मृति', 'सूक्ति-वसुप्रकाशमु' जैसी अनर्घ रचनाओ का सूत्रपात किया । इन स्वतत्र रचनाओ के अतिरिक्त कवि ने शाकुतल (दे० अभिज्ञानशाकुतलम्), 'मल्लिकामारत', 'चडकौशिक' (दे०), 'प्रबोधचद्रोदय' (दे०), 'कुदमाला', 'मेघसदेश', 'भामिनीविलास' (दे०), 'सूर्यशतक' (दे०) 'वेणीसहार' (दे०) आदि कई सस्कृत-ग्रथो का अनुवाद भी किया । नाटक लिखने के अलावा ये इनमे विविध भूमिकाओ का भी सफल निर्वाह करते थे ।

सुब्बाराव, त० रा० *(क० ले०)*

त० रा० सु० (त० रा० सुब्बाराव) कन्नड के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार है । ये मैसूर मे रहते है । कन्नड-कथा-साहित्य के लिए इनकी देन अनुपम है । इन्होने ऐति-हासिक तथा सामाजिक उपन्यास लिखे है । इनके ऐति-हासिक उपन्यासो मे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो का बडा रम्य चित्रण प्राप्त होता है । मैसूर राज्य के चित्रदुर्ग के छोटे-छोटे सामत राजाओ की अत कलह का इन्होने अपने 'कबनियकुयिलु' (आँसुओ की फसल), 'तिरुगु बाण' (प्रतिक्रिया बाण) और 'रक्तरात्रि' उपन्यासो मे अच्छा वर्णन किया है । कन्नड साहित्य मे प्रसिद्ध राष्ट्रकूट नरेश नृपतुग पर इन्होने चित्ताकर्षक उपन्यास लिखा है । इनके ऐतिहासिक उपन्यासो मे वातावरण निर्माण और सभाषण-सरसता की विशेषता होती है । उनमे चित्रित पात्र हमारे मन को अपनी ओर खीच लेते हैं । 'हसगीते' इनका सुदर उपन्यास है जिसमे वेंकटसुब्बय्या नाम के एक प्रतिभावान और आत्माभिमान रखने वाले सगीतज्ञ का हृदयस्पर्शी चित्रण है । वह राजा के लिए गीत नही गाता, भगवान के सामने गीत गाकर अत मे अपने ही हाथ से अपनी जीभ काट लेता है । 'पुरुषावतार' इनका सामा-जिक उपन्यास है । 'विडुगडेय बेडि' (मुक्ति की बेडी), 'चदवल्लिय लोट' (चदवल्लि का बाग), 'परडु हेण्णु, ओदु गडु' (दो स्त्रियाँ, एक पुरुष), 'नागर हावु' (नाग साँप), 'सर्पमत्सर' आदि इनके लोकप्रिय सामाजिक उपन्यास हैं । इनके कुछ उपन्यासो पर फिल्मे भी बनी हैं । 'गिरिमल्लि-गेय नदनदल्लि' इनकी कहानियो का सग्रह है । इनके उपन्यासो की भाषा प्रसाद गुण सपन्न है ।

सुब्बाराव, नड्डूरि *(ते० ले०)* [जन्म—1884 ई०, मृत्यु—1957 ई०]

व्यवसाय से ये वकील थे । किंतु साहित्य मे इनकी गहरी रुचि थी । ये आधुनिक तेलुगु-साहित्य म एक क्राति को जन्म देने वाले कवि थे । उन दिनो साहित्य-

क्षेत्र में सम्मानित पांडित्य-प्रदर्शन, अष्टावधान, शतावधान, आदि ऐंद्रजालिक प्रक्रियाओं को छोड़कर अपने लिए इन्होंने एक सर्वथा नूतन मार्ग का अन्वेषण कर लिया था। शिष्ट साहित्य के लिए अनिवार्य मानी जाने वाली ऐतिहासिक-पौराणिक कथाओं, संस्कृतनिष्ठ भाषा, छंदों के नियम आदि का पूर्णतः परित्याग करके, इन्होंने अत्यंत स्निग्ध और रमणीय लोकगीतों की रचना की है। लोक-साहित्य को शिष्ट साहित्य के समान आदर दिलाने का इनका महान् कार्य असाधारण प्रतिभा एवं साहस का प्रतीक है। अशिक्षित और श्रमजीवी ग्रामीण जनता में भी निष्कलंक शृंगार और उत्तम नायक-नायिकाओं का दर्शन करने तथा कराने में समर्थ यह कवि एक युगांतरकारी माना जाता है। अपने एकमात्र 'एंकिपाटलु' (दे०) द्वारा इन्होंने समस्त तेलुगु-साहित्य को एक नूतन तेज एवं प्रतिष्ठा प्रदान की है। इनके गीतों की नायिका 'एंकि' (दे०) सरल, अबोध और प्रेमैकमयी है। इसका मर्मस्पर्शी व्यक्तित्व पाठक के मन को अनायास अभिभूत कर लेता है। 'एंकि' आंध्र के सभी गाँवों के स्त्रीत्व का प्रतिनिधित्व करती है। नंडूरि सुब्बाराव् ने 'एंकि' की अमर सृष्टि की और उसके द्वारा वे स्वयं भी अमर हो गए। सुब्बाराव् का रसमय हृदय अंत तक मात्र एंकि के व्यक्तित्व से भरा रहा। इनकी भाषा भी विषय के अनुकूल सहज-सुबोध ग्रामीण है। लोकगीतों की शैली में रचना करने वालों में इनका कोई प्रतिद्वंद्वी तेलुगु-साहित्य में नहीं है। सुब्बाराव् ने अपनी इस रचना द्वारा सरल और सहज तेलुगु को साहित्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

सुब्बाराव्, नायनि *(तें० ले०)* [जन्म—1899 ई०]

आंध्र के नेल्लूर जिले में इनका जन्म हुआ। अध्यापन इनकी मुख्य वृत्ति रही है। इन्होंने अँग्रेजी-साहित्य का भी अध्ययन किया और उसका प्रभाव इनकी रचनाओं पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। ये आंध्र प्रदेश साहित्य अकादमी के सम्मानित सदस्य हैं। इनकी रचनाएँ ये हैं—'सौभद्रुनिप्रणययात्रा' (दे०), 'फलश्रुति', 'मातृगीतालु', 'वेदनावासुदेवमु' आदि कविताएँ; कुछ जीवनियाँ तथा इतिहास-संबंधी पुस्तकें। इन्होंने कुछ उपन्यास भी अँग्रेजी से अनूदित किए हैं। इनकी कविता अधिकतर आत्मपरक (सब्जैक्टिव) है। अपनी ही जीवनानुभूतियों को कमनीय कविता-रूप देने की कला में ये सिद्धहस्त हैं। सरसता तथा स्पष्टता इनकी रचना की विशेषताएँ हैं। इनके मातृगीत देशभक्ति से ओत-प्रोत हैं। इनकी 'सौभद्रुनिप्रणययात्रा' आदर्श प्रेम के मार्मिक चित्रण का ज्वलंत उदाहरण है तथा लेखक की ही जीवनानुभूतियों का काव्यरूप है। अँग्रेजी साहित्य की 'रोमांटिक' कविता के प्रभाव से तेलुगु में जिस 'भावकविता' (दे०) का अवतरण हुआ, उसके विख्यात लेखकों में सुब्बाराव् एक हैं। अखिल भारतीय तेलुगु-लेखकों के प्रथम अधिवेशन (1961) में ये सम्मानित किए गए थे।

सुब्बाराव्, रायप्रोलु *(तें० ले०)* [जन्म—1892 ई०]

श्री सुब्बाराव् हैदराबाद के निवासी हैं। इनके मातुल स्व० अब्बारि सुब्रह्मण्य शास्त्री संस्कृत तथा तेलुगु दोनों भाषाओं के उद्भट विद्वान थे। वे आशुकविता तथा अवधानकविता में निपुण थे। श्री सुब्बाराव् पर अपने मातुल के साहित्यिक व्यक्तित्व का प्रभाव जीवन के आरंभ में ही पड़ा। दोनों मिलकर आशुकविता किया करते थे। कुछ दिन बाद सुब्बाराव् का मन आशु तथा अवधान-कविता-शैलियों से पूर्णतः हट गया क्योंकि उस समय तक वे जान गए थे कि कविता का भव्य एवं उपादेय रूप आशु आदि कविता शैलियों में उपलब्ध नहीं हो सकता। "सकलार्थ शून्य मगु नी वेगातिवेगोदित दुर्व्यसनवेटिकि त्रिपुमिक जननी ! रम्याक्षर क्षोणिकिन्।" (काव्य के कला-विलसित अर्थों से वंचित, केवल वेगप्रधान इस आशुकविता रूपी दुर्व्यसन से हटाकर मेरे मन को रम्याक्षर-वाणी की दिशा में प्रवृत्त करो, हे अम्बे!) तेलुगु आदि कवि नन्नय भट्टु (दे०) अक्षररम्यता के कायल थे तथा संस्कृत के अंतिम महान् लाक्षणिक आचार्य पंडितराज जगन्नाथ (दे०) रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द के पक्षधर थे। सुब्बाराव् पर इन्हीं विचार-परंपराओं का प्रभाव पड़ा है।

श्री सुब्बाराव् ने शांतिनिकेतन के आम्रकुंजों की छायाओं में रवींद्रनाथ (दे०) के चरणों में बैठे-बैठे अपनी कविता के आयामों को विस्तृत कर विश्वव्यापी एवं मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया। वे कई वर्ष हैदराबाद में उस्मानिया विश्वविद्यालय के तेलुगु-विभाग के अध्यक्षपीठ पर भी रहे। इनका साहित्यिक व्यक्तित्व अत्यंत महत्वपूर्ण है। इनकी मान्यता तेलुगु की आधुनिक कविता के आद्यप्रवर्तक के रूप में है। इनकी कविता पर पश्चिम की स्वच्छंदतावादी धारा, रवींद्र के विश्वमानवतापरक आध्यात्मिक रहस्यवाद तथा गांधीवाद से अनु-

प्राणित राष्ट्रीयता की रम्य भावना का प्रचुर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इनके अतिरिक्त इनकी कविता की अपनी भी एक अनुपम मौलिक विशेषता है—काव्यों मे अमलिन शृगार की प्रतिष्ठा। इन्होने शृगार को शारीरिक परिवेश और परिधि से उठाकर उसे अमलिन और उदात्त स्वरूप दिया है। इनके स्वच्छदतावादी प्रेमप्रधान काव्यो मे उल्लेखनीय हैं—(1) 'तृणककणमु', (2) 'ललिता', (3) 'स्नेहलतादेवि', (4) 'स्वप्नकुमारमु', (5) 'जडकुच्चलु' (कविता सग्रह) (दे०) इत्यादि।

राष्ट्रीय भावना की कृतिया है—(1) 'आध्रावलि', (2) 'तेलुगु तोटा' आदि।

इनके अनुवाद काव्यो मे मुख्य है (1) 'मधुकलशमु' (उमर ख़ैयाम का), (2) 'मिश्रमजरी (कवि इकबाल (दे०) का)। मिश्रमजरी पर कवि को केरल साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

सुब्बाराव, वगूरि *(तं० ले०)* [जन्म—1886 ई०, मृत्यु—1923 ई०]

इन्होने बीस साल से भी कम उम्र मे साबुन तथा मोमबत्तियो के निर्माता एव व्यापारी के रूप मे अपना जीवन आरभ किया था परतु आगे चलकर साहित्य-क्षेत्र मे आए और 'बसुधरा' नामक पत्रिका के सचालन तथा तेलुगु के पुराने ग्रथो को प्रकाश मे लाने के कार्य मे यत्नशील रहे। इनका तेलुगु-साहित्य के इतिहास मे सबधित अध्ययन अत्यत व्यापक एव गभीर है। 'आध्र वाड्मय चरित्र', 'शतककवुलु चरित्र', 'प्रभातमु', रायल राजनीति', 'वेमन जीवित चरित्र' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

सुब्बाराव, वाविलिकोलनु *(त० ले०)* [जन्म—1863 ई०, मृत्यु—1939 ई०]

'आध्र-वाल्मीकि' के रूप मे ख्याति प्राप्त वाविकोलनु सुब्बाराव पहले मालगुजारी विभाग म काम करते थे और बाद मे मद्रास के किसी कालिज मे अध्यापन-कार्य मे लगे रहे। 'श्रीकुमाराभ्युदयमु' शीर्षक के प्रबध-काव्य ने इनको पहली बार तेलुगु साहित्य म आदरणीय पद पर प्रतिष्ठित किया। इस काव्य की व्याख्या भी इन्ही के समय मे निकली। सपूर्ण वाल्मीकि 'रामायण' (दे०) का तेलुगु-रूपांतर सुब्बाराव जी की प्रतिष्ठा का प्रमुख आधार है। कवि के जीवन-काल मे ही इस विशालकाय रचना के चार सस्करण निकल चुके थे। बाद मे कवि ने स्वय 'मथर' के नाम से इसकी व्याख्या भी लिखी। सुब्बाराव जी प्रकृत्या राम के भक्त थे। इनके काव्य का पडितो मे जितना आदर हुआ उससे भी अधिक लोकप्रियता उन्हे भक्तो की मडली मे मिली। 'भक्तिसजीवनी' नाम की पत्रिका का इन्होने सपादन भी किया था। 'आर्यकथानिधि' और 'कृष्णावतारमु' इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। 'कौशल्यापरिणयमु' नामक खडकाव्य और 'सुभद्राविजयमु' नाटक भी प्रसिद्ध हैं।

सुब्बाशास्त्री, नजनगूडु *(क० ले०)* [जन्म—1834 ई०, मृत्यु—1906 ई०]

सस्कृत तथा कन्नड भाषा के प्रकाड पडित के रूप मे ये अधिक प्रसिद्ध हैं। तत्कालीन मैसूर-राजकुमारी के ये विद्या गुरु थे। ये मैसूर के महाराजा तथा शृगेरी के जगद्गुरु शकराचार्य द्वारा सम्मानित हुए थे। इन्होने सस्कृत मे 'विद्वच्चकोरचद्रिका' और 'शारदाष्टक स्तोत्र' जैसे ग्रथ रचे हैं। कन्नड मे इनके 'उत्तरसीताचरित्रे' और 'सीताचरित्रे' काव्य एव 'मृच्छकटिके' और 'मालविकाग्निमित्र' नाटक प्रसिद्ध हैं।

सुब्बिशेट्टि *(तं० पा०)*

यह काळ्ळकूरि नारायणराव (दे०) के 'चिंतामणि' (दे०) नाटक का प्रसिद्ध हास्यपात्र है। यह जन्म से वैश्य है। इसका हास्य शरीर की बनावट, हाव भाव तथा वाक् सबधी है। बोलचाल की (ग्राम्य) भाषा का प्रयोग करते हुए, उसी भाषा शैली मे पद्य भी पढता है। कोयला जैसा रग, बडी तोंद, गधे जैसा कठस्वर लेकर, यह पात्र दर्शको को लोटपोट कर देता था।

पानुगटि लक्ष्मीनरसिंहाराव (दे०) (1865-1940) के 'कठाभरणमु' (1917) नामक व्यग्यप्रधान सामाजिक नाटक म भी इसी नाम का एक अन्य हास्य पात्र है। यह नाटक सामाजिक दुराचारो की निंदा करने वाला कमेडी ऑफ मैनर्स है। सुब्बिशेट्टि लुब्धप्रेमर वैश्य है। उसकी षष्टिपूर्ति का दृश्य इस नाटक की परम हास्यप्रद घटना है। उसके मन मे वेश्या के प्रति व्यामोह का हास्यप्रद चित्रण किया गया है।

तेलुगु-रगमंच के क्षेत्र म सुब्बिशेट्टि अद्वितीय हास्यजनक पात्र है।

सुब्रह्मण्य शास्त्री, मोदगानहळ्ळि (क० ले०)

'गुहा' उपनामधारी मोदगानहळ्ळि सुब्रह्मण्य शास्त्री कन्नड और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। इनके 'संस्कृत नाटक कथेगलु' तथा 'मालविकाग्निमित्र नाटक' (कालिदास का अनुवाद) ग्रंथ इनकी गंभीर विद्वत्ता तथा अध्ययनशीलता के प्रमाण हैं। कन्नड में कई महानुभावों ने कालिदास के ग्रंथों का अनुवाद किया है। इनका अनुवाद उनमें विशिष्टता रखता है। इस अनुवाद की भाषा मे प्रवाहशीलता और शैली में तेज है।

सुब्रह्मण्य शास्त्री, श्रीपाद (ते० ले०) [जन्म—1891 ई०; मृत्यु—1961 ई०]

ये आंध्र के गोदावरी जिले के अंतर्गत राजमहेंद्रवरमु के रहने वाले थे। इन्होंने संस्कृत-साहित्य का गहरा अध्ययन किया था इसीलिए इनकी रचनाएँ प्रायः उसी साहित्य से प्रभावित है। देश की प्राचीन संस्कृति पर आस्था दिखाते हुए सुब्रह्मण्य शास्त्री चाहते थे कि अपनी रचनाओं के द्वारा समाज का ध्यान भी उस ओर आकृष्ट किया जाय। इन्होंने 1916 ई० में 'कलाभिवर्द्धनी नाटक समाज' की स्थापना की। कभी-कभी रंगमंच पर अभिनय भी करते थे। ये प्रधानतः कहानीकार तथा उपन्यासकार थे। 1921 ई० से ये 'प्रबुद्धांध्र' नामक पत्र के संपादक भी रहे। इनकी रचनाएँ ये है—'मिथुनानुरागमु', 'श्मशानवाटिका', 'अनाथबालिका', 'रक्षाबंधमु', 'धर्मचक्रमु', आदि उपन्यास; 'वड्ल गिंजलु', 'मार्गदर्शी' आदि कहानियाँ; 'प्रेमपाशमु', 'निगलबंधमु', 'राजराजु' आदि नाटक; 'अलंकृति', 'अभिसारिका' आदि खंडकाव्य; 'पाणिगृहीताश्रवणानंद-शृंखला' जैसे कुछ आलोचनात्मक लेख। इनकी भाषा सरल तथा चरित्र-चित्रण सजीव हैं। सुब्रह्मण्य शास्त्री जीवन के अत्यंत निकट की घटनाओं को लेकर कहानी तथा उपन्यास लिखने की कला मे सिद्धहस्त हैं। प्रधानतः तेलुगु-कहानीकारों मे इनका विशिष्ट स्थान है। इसी विशिष्टता के कारण इनको स्वर्णाभिषेक का सम्मान भी प्राप्त हुआ था।

सुभद्रा (पं० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1928 ई०]

नाट्य-लेखक ईश्वरचंद्र नंदा (दे०) का यह प्रथम पूर्ण नाटक है। इसमें दो पीढ़ियों के टकराव के संदर्भ से विधवा-विवाह की समस्या को प्रस्तुत किया गया है। इस नाटक के रचना-काल के समय पंजाब में समाज-सुधार का आंदोलन तेज़ी से चल रहा था और इस कृति ने उस आंदोलन में योग दिया। वैसे इसका वातावरण अधिकतर घरेलू ही रहा है और समाज की विस्तृत पृष्ठभूमि प्रदान करने में लेखक को पूर्ण सफलता नहीं मिली। लेखक ने इसके प्रणयन में शेक्सपियर की कामदी जैसी रूप-विधि अपनाई है। प्रायः करुणा और वेदना के प्रत्येक दृश्य के अनंतर कोई (कॉमिक रिलीफ़) 'कामद घटना' आ जाती है जिससे दर्शक का मन कुछ हल्का हो जाता है। इसमें पंजाबी लोक-जीवन के आचार-विचार, रीति-रिवाज का सुंदर उपयोग हुआ है। नाटक की सशक्त संवाद-योजना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लेखक की प्रारंभिक रचनाओं मे अपनी सशक्त संरचना तथा प्रभावपूर्ण संवादों के कारण यह नाट्यकृति विशेष प्रसिद्ध हुई थी।

सुभद्रा (मल० पा०)

ऐतिहासिक उपन्यास 'मार्त्तडवर्मा' (दे०) की एक नारी-पात्र है सुभद्रा। आलोचकों की राय है 'मार्तंडवर्मा' में लेखक एक काल्पनिक प्रेम-कथा की नायिका सुभद्रा का चित्रण करके उपन्यास को रसपूर्ण बनाने में सफल हुआ है। सुभद्रा की कथा शोकपूर्ण होते हुए भी मधुर है।

सुभद्रा धनंजय (सं० कृ०) [समय—दसवीं शती ई०]

'सुभद्रा धनंजय' कुलशेखर वर्मा की नाट्यकृति है। यह ट्रावनकोर रियासत के महोदय नामक राज्य के राजा थे।

यह पाँच अंकों का नाटक है। इसमें 'महाभारत' (दे०) के प्रसिद्ध उपाख्यान सुभद्राहरण को बड़े सुंदर ढंग से नाट्यायित किया गया है। इसका अंगीरस वीर है।

सुरंग कवि (क० ले०) [जन्म—1500 ई० के लगभग विद्यमान]

ये वीरशैव धर्म के अनुयायी थे। इनका एकमात्र प्राप्त ग्रंथ—'त्रिषष्टिपुरातन चरित्रे' है। यह चंपू शैली में लिखा गया है। शैव भक्त-कवियों में तिरेसठ

भक्तो के नाम प्रसिद्ध है। तमिल मे इनसे सबधित साहित्य मिलता है। बारहवी शती मे महाकवि हरिहर (दे०) ने उन भक्तो पर कविता 'रगळे' लिखे थे। हरिहर के बाद इस विषय पर लिखने वालो मे इन्ही का नाम लिया जाता है। इनका चपू ग्रथ बृहदाकार है। उसे महाकाव्य कह सकते हैं। वस्तु, चरित्र-चित्रण, भाषा शैली आदि दृष्टियो से यह एक उत्तम काव्य माना जाता है। उसमे कवि की निर्मल भक्ति प्रकट हुई है।

सुरजीत हास (प० ले०)

पजाबी के आधुनिकतम लेखको मे सुरजीत हास का नाम उभर रहा है। यद्यपि उन्होने परिमाण की दृष्टि से अधिक नही लिखा परतु जो कुछ भी लिखा है वह रूपात्मक नवीनता एव दृष्टिकोण की ताजगी की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उनका एकमात्र उपन्यास 'मिट्टी की ढेरी' आज के जीवन की समस्याओ को नवीन मानवीय परिप्रेक्ष्य मे देखने का सुदर प्रयास है। उनका काव्य-नाटक 'पुश्ता' भी इस सदर्भ मे देखा जा सकता है।

आजकल हास गुरु नानक विश्वविद्यालय अमृतसर मे गुरुनानक अध्ययन विभाग मे प्राध्यापक हैं।

सुरदा (त० ले०) [जन्म—1919 ई०]

'सुरदा' उपनाम से प्रसिद्ध श्री राजगोपाल का जन्म तजौर मे हुआ। इन्होने साधारण अध्यापक के रूप मे अपनी जीविका आरभ की। पाडिचेरी मे भारतीदासन (दे०) के सपर्क म आने पर उनकी 'कुयिल' पत्रिका मे कुछ समय कार्य करने के उपरात चलचित्र के लिए सवाद एव गीत लिखने मद्रास आ गए। इन्होने कुछ समय के लिए 'इलक्कियम्' नामक काव्य-पत्रिका का सपादन भी किया और स्वमर्यादा-आदोलन एव द्रविड कषगम के कार्यकलापो मे सोत्साह भाग लिया। आरभ म इन्होने समाज सुधार विषयक मुक्तको की रचना की। 'पट्टत्त अरशि', 'उदट्टिल उदडु' आदि रचनाओ द्वारा वे कवि-रूप मे विख्यात हुए। उनकी 'तेनमलै' (कविता-सग्रह) को तमिलवर्द्धिनी सभा ने पुरस्कृत किया। परवर्ती काल मे सुरदा समाज-सुधार और साम्यवादी विचारधाराओ स मुक्त एक विशिष्ट प्रकार की अलकार-प्रधान कविताएँ लिखने लगे। आजकल वे 'मुरदा' नामक कविता-पत्रिका का सपादन कर रहे हैं।

सुरमा (उ० पा०)

लक्ष्मीधर नायक (दे०) के उपन्यास 'सर्वहरा' (दे०) का नारी-चरित्र है 'सुरमा'। यह एक सर्वहरा शिल्पी की कन्या है—तन्वी, रूपसी एव उपन्यास की विदग्ध नायिका। यह किशोर को प्यार करती है—मन, प्राण और जीवन देकर। यही प्यार विघटन का कारण बनता है। परिस्थितियाँ इसे लखपती की बेटी मजु से विवाह करने को बाध्य करती हैं। वह विरोध करता है, किंतु समाज की उपेक्षा करने की शक्ति उसमे नही है। रात के निबिड अधकार मे किशोर सुरमा को बाध्य करता है घर छोडकर चले जाने के लिए। सुरमा का द्वद्व है—एक ओर निस्सहाय वृद्ध पिता तथा दूसरी ओर प्रेम तथा पलायन। कर्तव्य इसके लिए अधिक महत्वपूर्ण है। सामाजिक निंदा व अपमान सहने को यह प्रस्तुत है। किशोर लौट जाता है। 'किंतु क्या कर्तव्य के नाम पर सुरमा अपना प्यार त्याग पाती है ? नही' 'उसके दूसरे ही क्षण सुरमा अपनी विचारबुद्धि का सतुलन खोकर आत्महत्या कर लेती है।

सुरीली बाँसुरी (उर्दू० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1961 ई०]

यूनाइटिड इडिया प्रेस, लखनऊ द्वारा प्रकाशित यह काव्य-कृति आरज़ू लखनवी की उर्दू शायरी की एक श्रेष्ठ रचना है। इसमे 'आरज़ू' लखनवी की 126 गजलें, 5 कतआत और दो रुबाइया सगृहीत हैं। 'कछार की लड़ाई' शीर्षक से 8 पृष्ठो की एक लबी नज़्म भी इस कृति मे सम्मिलित है। इसी के अत मे लेखक की दो सक्षिप्त कहानियाँ—'एक कठिन रात' और 'सुहागिन सती'—भी जोड दी गई हैं जो करुण भाव म परिपूर्ण हैं। सगृहीत गजलो की भाषा-शैली हिंदुस्तानी है – फारसी और अरबी के शब्दो के प्रयोग का प्राय अभाव ही है। काव्य मे भावात्मकता, सूक्ष्मता और वैयक्तिकता के सर्वत्र दर्शन होते हैं। कहीं-कहीं सगीतात्मकता भी भरपूर है। माधुर्य गुण और प्रसाद गुण-सपन्न शैली मे लिखित यह कृति पाठक को आत्मविभोर करने म पूर्णत समर्थ है।

सुरीले बोल (उर्दू० कृ०)

'सुरीले बोल' जनाब मुहम्मद अजमतुल्लाह खाँ का काव्य-सग्रह है। 1940 ई० म हैदराबाद दकन मे इस

संग्रह का प्रकाशन हुआ था। इस पुस्तक में पहले एक भूमिका तथा कवि का जीवन-परिचय दिया गया है। इसके पश्चात् पुस्तक के दो भाग हैं—पहला गद्य-भाग तथा दूसरा पद्य-भाग। गद्य-भाग में उर्दू-काव्य तथा काव्य-कला-संबंधी एक महत्वपूर्ण सारगर्भित लेख है और पद्य-भाग में सैंतीस कविताएँ संगृहीत है।

'सुरीले बोल की कविताएँ इस नाम को सार्थक सिद्ध करती हैं। सरल, सुबोध भाषा में हल्की-फुल्की पदावली से युक्त कविताओं एवं गीतों का यह एक सुंदर संग्रह है। पहली कविता 'कोयल' वर्ड्सवर्थ की 'टु द कक्कू' का भावानुवाद है। इसी तरह 'यूनान के जज़ीरे' बायरन की कविता 'आइल्स ऑफ ग्रीस' का अनुवाद है। 'मूँछ औ चोटी दो भागों में लिखित एक काव्य-नाटक है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि 'सुरीले बोल' एक महत्वपूर्ण कृति है।

सुरेंद्रन्, के० *(मल० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

ये मलयाळम के लोकप्रिय उपन्यासकार हैं। ये पहले डाक-तार विभाग में सेवा करते थे; बाद में पूर्ण-कालिक साहित्य-सेवा करने के लिए इन्होंने नौकरी छोड़ दी थी।

सुरेंद्रन् ने गद्य की सभी शाखाओं में महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की है। 'बलि' समस्या-नाटक है। 'ताळम्' (दे०), 'माया', काट्टुकुरङ्ङु' (दे०), 'शक्ति', 'मरणम् दुर्बलम्' आदि इनके उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय हैं। 'नॉवल् स्वरूपङ्ङळ्, तूवलम् चङ्ङलयुम' आदि समालोचनात्मक ग्रंथ और कुमारन् आशान् (दे०) और टॉल्स्टाय की जीवनियाँ भी इन्होंने लिखी है। इनके अनेक उपन्यासों का फ़िल्मीकरण भी हुआ है।

सुरेंद्रन ने समालोचक के रूप में लब्ध-प्रतिष्ठ होने के बाद उपन्यास-जगत में पदार्पण किया था जहाँ इन्हें अभूतपूर्व यश प्राप्त हुआ। इनके उपन्यासों में मानवीय संबंधों, विशेषकर पारिवारिक संबंधों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कुशलतापूर्वक हुआ है। नाटककारों में भी इनका स्थान समुन्नत है। आधुनिक गद्य-साहित्य मे सुरेंद्रन् का योगदान महत्वपूर्ण है।

सुश्रुत *(सं० ले०)* [स्थिति-काल—300 ई० के लगभग]

'महाभारत' (दे०) के अनुसार सुश्रुत विश्वामित्र के पुत्र हैं। सुश्रुत-रचित 'सुश्रुत-संहिता' आयुर्वेद का अत्यंत प्रामाणिक ग्रंथ है। डा० दासगुप्त के मतानुसार नागार्जुन (दे०) ने सुश्रुत का संस्करण किया था। सुश्रुत में 6 भाग है—(1) निदान-स्थान, (2) सूत्रस्थान, (3) शरीरस्थान, (4) चिकित्सास्थान, (5) कल्पस्थान तथा उत्तरतंत्र है।

सुश्रुत ने 'सुश्रुतसंहिता' के अंतर्गत शल्य-चिकित्सा एवं शरीर-विज्ञान का महत्वपूर्ण विवेचन किया है। सुश्रुत शल्यचिकित्सा का सर्वोच्च उपयोग युद्धभूमि में मानते थे। सुश्रुत ने 'सुश्रुतसंहिता' (सु० सं० 34, 12, 13) के अंतर्गत युद्धभूमि मे वैद्यों के महत्वपूर्ण कार्य का वर्णन किया है। सुश्रुत के संबंध मे यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि वे शास्त्रज्ञान और कार्यकुशलता दोनों को ही महत्वपूर्ण मानते थे। सुश्रुत के अनुसार शिष्य को कार्यकुशल बनाने के लिए उसे अभ्यास-संबंधी शिक्षा दी जाती थी।

सुहरा *(मल० पा०)*

यह मुहम्मद (दे०) बशीर वैकम के लघु उपन्यास 'बाल्यकालसखी' (दे०) की नायिका है। यह अपने अत्याचारी पति को छोड़कर अपने बचपन के साथी मजीद (दे०) के भग्न जीवन मे नवचेतना जगाने की कोशिश करती है। मजीद दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है और राजयक्ष्मा से इसका भी अंत हो जाता है।

यह दुःख-संकुल नारी-जीवन का प्रतीक है। मजीद से इसका प्रेम प्रबल है और अनेक शारीरिक मानसिक और आर्थिक कष्टों के मध्य भी यह अपने प्रेमी के जीवन को सार्थकता प्रदान करती रहती है। यह जीवन की वास्तविकताओं की ओर होने वाले कथाकारों के आकर्षण का भी प्रतिनिधित्व करती है।

सुहाग के नूपुर *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1960 ई०]

तमिल कवि इलंगोवन् के प्रसिद्ध महाकाव्य 'सिलप्पदिकारम्' के कथानक पर आधृत अमृतलाल नागर (दे०) के इस उपन्यास में वेश्या-समस्या को आधार बना कर युग-युगांतर से उत्पीड़ित एवं भोग्या समझी जाने वाली नारी की अंतर्वेदना तथा पुरुष की उच्छृंखल वृत्ति को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत किया गया है। सती-साध्वी आदर्श पत्नी कन्नगी के मूक समर्पण तथा सामा-

जिक परपराओ से टकराने के लिए व्याकुल माधवी के मादक तथा मायावी प्रेम के मध्य भटकते कथानायक कोवलन के दुविधाग्रस्त मन का अत्यत मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हुए लेखक ने सुहाग के नूपुरो तथा नर्तकी के घुँघरुओ के चिर प्राचीन सघर्ष को अपनी मौलिक प्रतिभा के माध्यम से अत्यत कलात्मक शैली मे प्रस्तुत किया है। मन, वचन तथा कर्म से कन्नरी के ही समान कोवलन के प्रति पूरी तरह समर्पित माधवी सुहाग के नूपुर पहनने के लिए आजीवन वेश्या-पुत्री होने के कारण ही क्यो तरसती रहे—यह एक ऐसा प्रश्न है जो हमे समाज के नैतिक मूल्यो के सबध मे पुनर्विचार करने के लिए बाध्य करता है। समग्रत कथ्य तथा शिल्प दोनो ही दृष्टियो से यह एक महत्वपूर्ण रचना है।

सुहिणी *(सिं० पा०)*

सुहिणी-मेहार की प्रेमगाथा सिंध मे प्रसिद्ध है। कुछ परिवर्तन के साथ यह कथा 'सोहनी मेहवाल' नाम से पजाब मे भी प्रचलित है। सुहणी इसी प्रेमगाथा की नायिका है। सिंधी प्रेमगाथा के अनुसार सुहिणी तुला कुम्हार की वेटी थी और अनुपम सुदरी थी। इसका प्रेम एक नवयुवक से हो गया था जो इसके पिता के पास गाय-भैंस चराया करता था। कहा जाता है कि वह वास्तव मे वोखारा का शाहजादा इज्जत बेग था जो इसे पाने के लिए इसके पिता के पास नौकरी करने लगा था। तुला को जब यह रहस्य मालूम हुआ तब उसने बदनामी के भय से इज्जत बेग को नौकरी से हटा दिया और अपनी वेटी की शादी 'दम' नामक अपनी जाति के एक नवयुवक से कर दी। इज्जत बेग सिंधू नदी के पार किनारे पर झोपडी बनाकर रहने लगा। विवाह हो जाने के पश्चात् भी इसके हृदय म अपने प्रियतम के लिए प्रेम कम नही हुआ। यह हर रात चुपके से घडे क सहारे सिंधू नदी पार कर प्रियतम से मिलने लगी। एक रात इसकी ननद ने यह रहस्य जान लिया और पक्का घडा उठा कर उसके स्थान पर कच्चा घडा रख दिया। अँधेरी रात मे वह घडा उठाकर जब प्रियतम से मिलने चली तो मँझधार म घडे के गल जाने पर डूबने लगी और जोर-जोर म प्रियतम को पुकारने लगी। इज्जत बेग प्रेयसी की पुकार सुनकर नदी मे कूद पडा और जाकर उससे मिला परतु नदी के तीव्र प्रवाह से दोनो बच न सके और हमेशा के लिए सिंधू की गोद मे समा गए। सूफी सत-कवियो ने सुहिणी का साधक के रूप मे वर्णन किया है, जो परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल है। सुहिणी का उल्लेख सिंधी-साहित्य मे कई स्थानो पर मिलता है।

सूक्तिसुधार्णव *(क० कु०)*

यह मल्लिकार्जुन नामक कवि का सकलन ग्रथ है। कवि ने इसे होयसळ राजा वीरसोमेश्वर के विनोद के लिए लिखा था, अत इस कवि का समय 1245 ई० के लगभग माना जाता है। इस ग्रथ का दूसरा नाम 'काव्यसार' भी है। महाकाव्य मे अष्टादश वर्णन हो, यह लाक्षणिक नियम है। कद तथा वृत्त छदो के इस ग्रथ मे प्रत्येक वर्णन के लिए एक-एक आश्वास नियोजित है। कवि ने प्रत्येक वर्णन के लिए प्राचीन काव्यो से सामग्री चुनी है। पीठिका सधि को मिलाकर इसमे 19 आश्वास है। अब केवल 17 आश्वास प्राप्त हैं। मल्लिकार्जुन की अभिरुचि उतनी उत्कृष्ट तो नही पर फिर भी उसके चुने हुए पद्यो मे किसी न किसी प्रकार का सौंदर्य है। कभी वे शब्दालकारो पर रीझते है तो कभी अर्थालकार उन्हे भाते है। अच्छे भाव-रस-युक्त पद्य उन्हे अत्यत प्रिय हैं। साहित्य के इतिहास के निर्माण मे इस ग्रथ का विशेष महत्व है। करीब ढाई हजार पद्य इसमे मिलते हैं। इससे कन्नड साहित्य की समृद्धि का पता चलता है। किंतु इनमे से केवल आधे भाग के आकार ग्रथ मिले हैं, बाकी का पता अभी नहीं लगा है।

सूत्रधार *(पारि०)*

भारतीय नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक की मच-प्रस्तुति के प्राय सभी सूत्रो का सचालन एव नाट्य-प्रदर्शन का प्रबधक-नियामक। भरतमुनि (दे०) ने वास्तविक नाट्यरग से पूर्व के पूर्वरग का सविस्तर विवेचन किया है। सूत्रधार पूर्वरग की समस्त विधियो का सचालक और प्रस्तुतिकर्ता होता है। वादको द्वारा नेपथ्य (दे०) मे प्रस्तुत किए जाने वाले सगीत के स्वरो के साथ श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पो म सज्जित सूत्रधार अपने दो सहयोगियो—पारिपार्श्विक और विदूषक के साथ मच पर प्रस्तुत होकर मुख्यतया नादी पाठ एव अन्य पूर्वरग की विधियो को सपादित करता है। ये विधियाँ हैं उत्थापना, परिवर्तन, नादी, शुष्कावकृष्टा, रगद्वार, चारी और महाचारी। पारिपार्श्विक और विदूषक के साथ किए

गए सूत्रधार के वार्त्तालाप को 'त्रिगत' कहा जाता है। नाटक के पूर्व की प्रस्तावना के अंतर्गत वीथी (दे०) के तेरह अंगों उद्घात्यक, अवगलित, प्रपंच, त्रिगत, छल, वाक्केलि, अधिबल, गंड, अवस्यंदित, नालिका, असत्प्रलाप, व्यवहार और मृख की प्रस्तुति भी सूत्रधार ही का कर्तव्य-कर्म है। नाट्यशास्त्र मे सूत्रधार से भिन्न 'स्थापक' का उल्लेख भी है जो मुख्य नाटक के बीज एवं मुख्य पात्र आदि की सूचना द्वारा नाटक का आस्थापन करता है। उसके अभाव में 'प्ररोचना' का यह कार्य भी सूत्रधार ही संपन्न करता है। आधुनिक भारतीय नाटक मे सूत्रधार जैसे नट की भूमिका प्राय: समाप्त हो गई है।

सूदन *(हि० ले०)*

सूदन कवि संभवत: मथुरा-निवासी थे और *भरतपुर के प्रसिद्ध जाट-नरेश सूरजमल (सुजानसिंह)* के आश्रय में रहे थे। इनकी एक प्रसिद्ध रचना है 'सुजान-चरित्र' (दे०) अथवा 'सुजानविलास'। इसमें सुजानसिंह का वीरचरित्र वर्णित है। घटनाएँ प्राय: सत्य पर आधारित हैं। ग्रंथ की शैली वीररसोचित है। रीतिकाल के उस शृंगार-प्रधान युग मे इन्होंने भूषण (दे०) और लाल (दे०) के समान वीर-रस-प्रधान ग्रंथ लिखकर राष्ट्र की एक महान् आवश्यकता की पूर्ति की थी।

सूफ़ी काव्य *(पं० प्र०)*

सूफ़ी काव्य पंजाबी साहित्य की प्राचीनतम धारा है। इसके प्रथम ज्ञात कवि फ़रीद शंकरगंज (1173-1266 ई०) के चार 'शब्द' और एक सौ बारह 'श्लोक' आदि ग्रंथ में संकलित हैं। परंतु यह काव्य-धारा अविच्छिन्न रूप से इसके चार सौ वर्ष पश्चात् शाह हुसैन (1539-1593 ई०) से प्रवाहित होती है। इन कवियों को दो वर्गों मे बाँटा जा सकता है—शरीयत के पाबंद रहकर ईश्वरीय प्रेम का गान करने वाले तथा बंधनों की उपेक्षा कर, जीव मात्र की एकता को स्वीकार करते हुए आध्यात्मिक उल्लास में काव्य-सर्जना करने वाले। फ़रीद (दे०), अलीहैदर, सुल्तान बाहू, शाहशरफ, मौ० गुलाम रसूल, मियाँ मुहम्मद बख्श (दे०) प्रभृति पहले खेमे के सूफी हैं और शाह हुसैन, बुल्लेशाह (दे०), हाशम (दे०), ख्वाजा गुलाम फ़रीद दूसरी कोटि के। आरंभ मे ही शेख़ फ़रीद ने इस धारा को विदेशी तत्वों से मुक्त कर ग्रामीण बिंबों के प्रयोग से उसे लोक-ग्राह्य रूप दिया और इस प्रकार उसे एक विशिष्ट दिशा दी जिसे स्वीकार करते हुए परवर्ती कवियों ने अपनी रचनाओं में शुद्ध आचरण, अहं-त्याग, जीव और ब्रह्म के अभेद, पीड़ा में संतोष आदि के साथ-साथ 'इश्क' की श्रेष्ठता, विरह की वरेण्यता को अभिव्यक्ति का विषय बनाया। दूसरे वर्ग के कवियों ने समाज, धर्म और राज-सत्ता पर भी तीक्ष्ण प्रहार किए। पंजाबी सूफ़ी-काव्य में पंजाब की लोक-प्रसिद्ध कथाएँ, पर्व और आचार-विचार अनुस्यूत हैं, सुरा और साकी यहाँ कदाचित् ही मिलते है। ये रचनाएँ अधिकांशत: मुक्तक शैली में हैं। जीव और ब्रह्म के मिलन और विरह को अभिव्यक्त करने के लिए कवियों ने भारतीय परंपरा के अनुसार अपने-आप को नारी और ब्रह्म को पुरुष मानकर अनेक बारहमासा तथा सतवारा लिखे हैं। कई कृतियों में सीहरफी शैली भी अपनाई गई है। इस काव्यधारा में *शांत और शृंगार के भाव विस्तार और तीव्रता से अभि-व्यंजित* हुए हैं। इस काव्य की भाषा प्राय: सरल है, लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग के कारण उसमें अद्भुत प्रवाह दिखाई देता है। अपने उदात्त वर्ण्य और सहज काव्य-माधुर्य के अति परिमाण की दृष्टि से भी यह काव्य-प्रवृत्ति महत्वपूर्ण है।

सूफ़ीकाव्य *(हि० प्र०)*

सूफ़ीकाव्य में पत्नी-रूप परमात्मा को पाने के लिए पति-रूप साधक प्रेम का आश्रय ग्रहण करता है। सूफी कवि आत्मा-परमात्मा से मधुर संबंध की अभि-व्यक्ति आत्मविभोर होकर करता है। इस परंपरा के समग्र कवि अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए जाग-तिक शब्दावली को निरर्थक समझते हुए भी लौकिक प्रेम-कहानियों का सहारा लेते हैं। तभी तो सूफ़ी-साधक अपने प्रेम की तीव्रता, हृदय की बेचैनी और आतुरता को अभि-व्यक्त करने के लिए लौकिक प्रेम की अनेकानेक मनो-दशाओं का वर्णन करता है।

फ़ारसी के सूफ़ी कवियों ने मसनवी, रुबाई तथा ग़ज़ल जैसे भिन्न-भिन्न काव्य-रूपों को अपनाया है। मसनवी में पहले तो धार्मिक और आध्यात्मिक चर्चा होती थी, पर धीरे-धीरे प्रेमाख्यानों ने उसमें प्रवेश पा लिया। मसनवी-शैली के अंतर्गत ईश्वर, पैगंबर तथा 'मीराज' की स्तुति, शाहेवक्त की प्रशंसा, काव्य-सृजन की प्रेरणा का उल्लेख, कथा का खंडों में विभाजन एवं बीच-बीच में

नायक द्वारा गज़लें गाने का रिवाज पाया जाता है। हिंदी के सूफी कवियो ने मसनवी-शैली की बहुत-सी बातो को ज्यो-का-त्यो ग्रहण कर लिया है। हिंदी-सूफी कवियो मे कुतबन (दे०), मझन (दे०), जायसी (दे०), उसमान (दे०), शेख नबी, कासिमशाह, नूरमुहम्मद (दे०) आदि इस शाखा के प्रमुख कवि हैं। इन कवियो ने हिंदुओ की चर्चित प्रेम-कहानियो को उन्ही की भाषा मे लिखकर अपने सिद्धातो का प्रतिपादन जिस ढग से किया है वह सर्वथा स्तुत्य है। सूफी कवियो ने अपनी उदारवादी नीति को लेकर भारतीय-अभारतीय वैचारिक स्थिति मे एव शैली की दृष्टि से ईरानी एव फारसी शिल्प मे सुदर समन्वय प्रस्थापित किया है।

सूरकवि, अड्डिदमु *(तं० ले०)* [समय—1720 1785 ई०]

अड्डिदमु सूरकवि का जन्म खड्ग और कलम दोनो को समान चातुरी से धारण करने वाले वश मे हुआ था। इनके पूर्वज 23 पीढियो से कविता करते आए थे। 'कविजनरजनमु' (दे०), कविसशय विच्छेदमु', 'चद्रालोकमु', 'रामलिगेश्वर शतकमु' आदि इनकी रचनाएँ हैं। कविजनरजनमु मे हरिश्चद्र तथा चद्रमती के विवाह की कथा वर्णित है। 'रामलिगेश्वरशतकमु' मे इस समय के राजाओ के दुराचरणो का वर्णन किया गया है। अन्य ग्रथ साहित्य-शास्त्र से सबधित है।

इन काव्यो के अतिरिक्त इन्होने अनेक दूषणात्मक पद्य लिखे हैं जो बहुत प्रसिद्ध है। इनके सबध मे कहा जाता है कि 'सूरकवि की गाली और लोहार की थपेड एक से हैं।' इनकी शैली लाक्षणिक तथा समासगर्भित है और मुख्य रूप से लक्षण-ग्रथ लेखक के रूप मे ही इनकी ख्याति है।

सूरदास *(हिं० ले०)* [जन्म—1478 ई०, मृत्यु—1583 ई०]

इनका जन्म दिल्ली के निकट सीही ग्राम के एक ब्राह्मण-कुल मे हुआ था। बाद मे ये मथुरा-आगरा मार्ग पर स्थित गऊघाट नामक स्थान पर आकर बस गए थे। पुष्टिमार्ग (दे०) के प्रवर्तक वल्लभाचार्य से जब इनकी भेंट हुई थी तब इन्होने विनय और दीनता के पद गाए थे, जिन्हे सुनकर महाप्रभु इस अध कवि के हाथो बिक से गए थे और प्यार भरे शब्दो मे कहने लगे थे— 'सूर ह्वै कै ऐसो घिघयात काहे को है कछु भगवत लीला बरनन कर।' तभी से कृष्ण की विविध लीलाओ का गान करना सूर का मुख्य अभिप्रेत बन गया था।

इनकी 'सूरसागर' (दे०), 'सूरसारावली' और 'साहित्यलहरी' (दे०) नामक तीन प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। 'सूरसारावली' सूरसागर की विषय-सूची-सी है और साहित्यलहरी' 'सूरसागर' के रस-रीति के दृष्टकूट पदो का सग्रह मात्र है। नागरी (दे०) प्रचारिणी सभा द्वारा मुद्रित 'सूरसागर' मे 12 स्कध हैं और प्रत्येक मे किसी-न किसी देवता के अवतार की कथा वर्णित है। दशम स्कध मे कृष्ण-कथा का सविस्तर उल्लेख किया गया है।

सूर का वास्तविक परिचय उनके काव्य मे ही है। सूर रूप या सौंदर्य के कवि हैं। इनके सयोग के चित्र बडे कोमल और प्रभावक हैं, परतु विरह की जैसी तीव्र अभिव्यजना इन्होने की है वैसी किसी अन्य के द्वारा सभव नही हुई। वात्सल्य का तो कवि कोना-कोना झाँक आया है। बालक के मन की कोई भी ऐसी मूक अतर्दशा एव तोतली भावना शेष नही रही जिसका अध्ययन इस गृह-विहीन कवि ने न किया हो। ब्रजभाषा को साहित्यिक गौरव प्रदान करने का बहुत कुछ श्रेय सूर को ही है। 'सूरसागर' मे इन्होंने जीवन की पूर्णता को समेटने की चेष्टा की है। इन्होने ब्रज के सभी सस्कारो का, तात्कालिक सभी विश्वासो का, रहन-सहन का, अनेक व्यवसायो का, परपरागत रूढियो का, पर्वों और उत्सवो का, सम्मोहन, जादू टोना, तावीज़, भाग्य एव डिठौना आदि का आकलन जिस पटुता से किया है वह सर्वथा स्तुत्य है। सपूर्ण हिंदी-साहित्य म तुलसीदास (दे०) ही इनके समकक्ष बैठते हैं।

सूरदास *(हिं० पा०)*

यह प्रेमचद (दे०) के प्रसिद्ध उपन्यास 'रगभूमि' (दे०) का प्रसिद्ध पात्र एव नायक है। इसम नेत्र-विहीन भारतीय भिक्षुओ की सभी विशेषताएँ—यथा गायन-वादन म रुचि, अध्यात्म तथा भक्ति की ओर झुकाव, बाह्य दृष्टि के बद होने हुए भी आन्तरिक दृष्टि का खुला होना आदि पाई जाती हैं। यद्यपि इसके चरित्र म मानवोचित दुर्बलताओ का सर्वथा अभाव नहीं है फिर भी यह सच्चे अर्थो मे वैरागी है। दीन-दुखियो की सहायता, शत्रु व मित्र के साथ एक समान व्यवहार, शरणागत की रक्षा आदि गुण इसमे कूट-कूटकर भर हुए हैं।

निरक्षर होते हुए भी अत्यंत दूरदर्शी तथा निष्कपट हृदय वाला यह पात्र गीता के निष्काम-कर्म का साक्षात् व्यावहारिक रूप है। यह अनीति और अन्याय का विरोधी, अत्यंत निर्भीक एवं धुन का पक्का है। गांधीवादी विचारधारा तथा आदर्शों का प्रतिनिधित्व करने वाले इस पात्र के चरित्र में सत्य, अहिंसा, त्याग, धर्म, क्षमा आदि गुणों का विलक्षण समन्वय पाया जाता है। इसमें शोषण करने वाले पूँजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष करने की अद्भुत नैतिक शक्ति है। यह न किसी के प्रति वैमनस्य रखता है और न विरोध की भावना। यद्यपि यह एक सामान्य प्राणी है किंतु इसके व्यक्तित्व के समक्ष राजा-महाराजाओं, ठाकुर-जमींदारों तथा पूँजीपतियों का व्यक्तित्व भी अत्यंत नगण्य ठहरता है। इसके विरोधी भी इसकी महानता के कायल एवं प्रशंसक है। जिलाधीश मि० क्लार्क, म्यूनिसिपल कमेटी के प्रधान राजा महेंद्रसिंह, मिल-मालिक जान सेवक, पड़ोसी नायकराम, बजरंगी, जगधर, भैरों, आदि सभी इसके प्रति वैर-भाव रखते हुए भी यथावसर इसके चारित्रिक गुणों की प्रशंसा करते हैं। समग्रतः प्रेमचंद का यह पात्र भिक्षुक होते हुए भी एक सच्चे मनुष्य के रूप में हमारे सामने आता है। इसका चरित्र एक मानव का चरित्र न होकर किसी देवता का चरित्र प्रतीत होता है।

सूरना पिंगळि *(ते० ले०)* [समय—सोलहवीं शती का उत्तरार्ध]

लक्ष्मी तथा सरस्वती के आगार कवियों के वंश में इनका जन्म हुआ था। विजयनगर के श्रीकृष्णदेवरायलु (दे०) के आश्रित होकर 'अष्टदिग्गज' (दे०) नाम से विख्यात कवियों में इनकी गणना की जाती है। ये अत्यंत प्रतिभावान् तथा विद्वान् कलाकार थे। नव्यता का उन्मेष इनकी रचनाओं का महत्वपूर्ण गुण है। प्राप्त रचनाएँ—(1) 'कलापूर्णोदयमु' (दे०), (2) 'प्रभावती-प्रद्युम्नमु' (दे०) और (3) 'राघव पांडवीयमु' (दे०)। कथा-निर्माण तथा रसपोषण में इनकी जैसी प्रतिभा विरल है। प्रौढ़ रचना, मृदु-मधुर पदावली, लोकोक्तियों तथा प्रवाहमयता के कारण सुंदर संवादों, पात्रों के अंतरंग चित्रण तथा श्लेष-रचना के कारण इनकी कविता को असाधारण लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

'कलापूर्णोदयमु' इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसमें अत्यंत मनोरम काल्पनिक कथा के आधार पर शृंगार रस के विभिन्न रूपों का उद्‌घाटन किया गया है। इसकी रचना आधुनिक उपन्यास के समान कार्य-कारण-संबंध के निर्वाह को दृष्टि में रखकर की गई है। 'प्रभावती-प्रद्युम्नमु' दृश्य-काव्य की पद्धति से 'हरिवंश' की कथा के आधार पर लिखा गया है। 'राघवपांडवीयमु' एक ही साथ 'रामायण' (दे०) और 'महाभारत' (दे०) की कथाओं का वर्णन करने वाले द्वि-अर्थी काव्य हैं तथा अब तक उपलब्ध तेलुगु श्लेष-काव्यों में सर्वप्रथम हैं।

सूरना में जितनी प्रतिभा कथा-निर्माण में पाई जाती है, उतनी ही प्रतिभा उसके प्रस्तुतीकरण में भी दृष्टिगत होती है। भाषा पर इनका अधिकार अपरिमित है। निस्संदेह ये तेलुगु-साहित्य के सर्वोत्कृष्ट कवियों में से एक हैं।

सूरसागर *(हि० कृ०)*

'सूरसागर' श्रीनाथ के मंदिर में कीर्तन के समय सूरदास (दे०) द्वारा गाए गए पदों का संग्रह-काव्य है। 'सूरसागर' की अनेक प्रतियाँ उपलब्ध हैं, परंतु काशी नागरी (दे०) प्रचारिणी सभा द्वारा मुद्रित दो खंडों में प्राप्य द्वादश स्कंधात्मक प्रति सर्वाधिक प्रामाणिक है। प्रथम स्कंध में विनय और दीनता के पद हैं, द्वितीय से अष्टम स्कंध तक अनेक देवताओं के अवतार की कथा है, नवम स्कंध में रामकथा, दशम स्कंध में कृष्ण-जन्म से लेकर विविध संस्कारों, शैशवोचित क्रीड़ाओं, अनेक लीलाओं, सामाजिक रीति-रिवाजों, लौकिक विश्वासों, कंस द्वारा भेजे गए विविध राक्षसों का विनाश मथुरा-द्वारिकागमन एवं कुरुक्षेत्र-आगमन का वर्णन है। एकादश एवं द्वादश स्कंध में पुनः देवी-देवताओं के अवतारों की कथा है। कुछ विद्वान 'सूरसागर' को 'भागवत' (दे०) का उल्था मात्र मानते हैं, परंतु सूर के कथन में आत्मानुभूति की जो गहराई, परमाराध्य के प्रति प्रेम की सांद्रता, कल्पना की सशक्त उड़ान, भक्ति के परिवेश में भावनाओं की निश्छल अभिव्यक्ति एवं विस्तृति देखने को मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

आत्माभिव्यंजन के रूप में लिखा गया 'सूरसागर' अद्वितीय ग्रंथ है। इसे देखकर ऐसा लगता है कि सूर एक बहुज्ञ, चिंतनशील एवं अनुभूति-वैभव से संपन्न कवि थे। कवि ने समाज के बीच कृष्ण के स्वरूप का विकास करके जिस लोकोन्मुखी काव्यधारा का निर्माण किया है उसका स्रोत कभी सूखने न पाएगा। यह ग्रंथ सचमुच ही ब्रज-जीवन की संपूर्ण विशेषताओं को लेकर

काल के पट पर एक अमिट चिह्न बन गया है ।

'सूरसागर' सूर की समग्र भाव-राशि का सकलन है । विनय के पदो मे उपदेश, दैन्य, वैराग्य और लोक-चित्त को मूर्त रूप दिया गया है, रामकथा-सबधी अधिकाश पदो मे राम-वन-गमन, सीता-हरण और राम-विलाप, लक्ष्मण के शक्ति लगने पर राम-विलाप एव वानरो की खिन्नता, रावण-वध, मदोदरी विलाप, सीता की अग्नि-परीक्षा आदि दृश्यो मे मार्मिकता की सघन समाहृति उल्लेखनीय है एव दशम स्कध की सहारपरक लीलाओ मे कृष्ण-चरित्र की अतिलौकिकता तथा प्रेम-लीलाओ मे कृष्ण के शुद्ध परमानद-रूप की अभिव्यक्ति हुई है । कृष्ण की प्रेम-लीलाओ के प्रति नद, यशोदा तथा व्रज के अन्य वयस्क नर-नारियो के हृदय मे अनुकपारति, सखाओ के हृदय मे प्रेम-रति एव व्रज की कुमारी, किशोरी तथा नवोढा गोपियो के मन मे मधुर अथवा काता-रति का उदय जहाँ एक ओर सूर की उच्च भक्ति भावना को प्रमाणित करता है, वहाँ दूसरी ओर उनके उत्कृष्ट काव्य-कौशल का भी परिज्ञान कराता है । सूर ने सयोग मे क्रीडा-विनोद और वियोग मे दारुण दुःख की की अभिव्यजना करने के साथ-साथ अनेक मौलिक प्रसगो की उद्भावना करके मानव-मन मे उदित होने वाले अगणित मनोरागो का विवात्मक चित्रण प्रस्तुत करके अपनी सृजनात्मक शक्ति का परिचय दिया है । अगर महाकाव्य के स्थूल लक्षणो पर ध्यान न दिया जाय तो नायक, नायिका प्रतिनायक, सखा, सखी आदि अनेक पात्रो, प्रमुख एव प्रासगिक कथाओ, कथा की एकसूत्रता, कथा-विकास की आदि, मध्य, अत तीनो स्थितियो तथा समाज की विशद अभिव्यक्ति के कारण यह गीति-प्रधान रचना सहज ही महाकाव्यो की कोटि मे परिगणित की जा सकती है । इस ग्रथ की सबसे बडी विशेषता यही है कि इसके विभिन्न कथानक पृथक् अस्तित्व रखते हुए भी एक-दूसरे के पूरक हैं—एक-दूसरे के साथ गुँथे हुए । दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि 'सूरसागर' एकसाथ ही गीति-तत्त्वो और प्रबध-तत्त्वो का अद्भुत मिलन-स्थल है ।

सूरजमुखीर स्वप्न *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1960 ई०]

अब्दुलमालिक (दे०) के इस उपन्यास मे धनश्री के तट के मुस्लिम गाँव की परिवार-कथा है । नदी और मनुष्य मे चिरतन सघर्ष चलता रहता है । मानव-पराजय मे भी आशा नही छोडता है । इसमे रोमासवादी कहानी भी है । एक युवक तारा नामक युवती से प्रेम करता है, तारा की माँ कपाही धोखा देकर स्वय युवक से विवाह कर लेती है । प्रेम की कथा मे डूबी तारा सूर्यमुखी के फूल-सी है । लेखक का यह सफल उपन्यास है ।

सूर्यकरण *(हिं० ले०)* [जन्म—1902 ई०, मृत्यु—1939 ई०]

इनका जन्म पारीक ब्राह्मण-परिवार मे हुआ था । ये हिंदी के विद्वान् थे, किंतु राजस्थानी के भी प्रबल समर्थक थे । इन्होने राजस्थानी भाषा की मान्यता के लिए जीवन-भर कार्य किया । एतदर्थ इन्होने 'ढोला मारूरादूहा' (दे०), 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' (दे०), 'छद राव जैतसी री', 'राजस्थानी वार्ता', 'राजस्थान के लोक-गीत' आदि कई ग्रथो का सपादन किया तथा कतिपय मौलिक ग्रथ भी लिखे, जिनमे 'बोलवण', 'मेघमाला' आदि महत्त्वपूर्ण है । ये सहृदय साहित्यकार और गभीर समीक्षक थे ।

सूर्यनारायण शास्त्री, सन्निधानमु *(तं० ले०)* [जन्म—1897 ई०]

ये प्राचीन परपरा के श्रेष्ठ विद्वान्, समालोचक एव कवि हैं । इन्होने व्याकरण एव अलकारशास्त्र के क्षेत्रो म भी विशेष कार्य किया है ।

'नडुमत्रपुसिरि', 'वासवदत्ता', विवेकानदमु', 'तत्समचद्रिका' आदि इनकी रचनाएँ हैं । गोवर्धनाचार्य (दे०) की 'सप्तशती' को इन्होने प्राजल एव शिष्ट भाषा मे अनूदित किया है । इनकी कविता मृदु मधुर होती है ।

सूर्यमल्ल *(हिं० ले०)* [जन्म—1815 ई०, मृत्यु—1863 ई०]

इनका जन्म बूँदी मे हुआ था । इनके पिता का नाम चडीदान था । ये बहुत स्पष्टभाषी तथा स्वतत्रता-प्रिय व्यक्ति थे । इन्हे छह भाषाओं तथा व्याकरण, न्याय, इतिहास, काव्यशास्त्र आदि का अच्छा ज्ञान था । इन्होने 'वशभास्कर' (दे०), 'वीरसतसई' (अपूर्ण), 'बलवत-विलास' एव छदोमयूख' नामक चार ग्रथो तथा अनेक फुटकर कविताओं की रचना की थी । ये डिगल (दे० डिगल पिगल) तथा पिगल (दे० डिगल-पिगल) दोनो

शैलियों में काव्य-रचना करते थे। भाषा पर इनका असाधारण अधिकार था। राजस्थान मे आधुनिक काल की प्रमुख चेतना—राष्ट्रीयता—का सूत्रपात इनकी वीररसपूर्ण कविताओं से होता है। इनका पांडित्य अद्भुत तथा वर्णन-शक्ति असाधारण थी। राजस्थान में अभी तक इनकी टक्कर का कवि उत्पन्न नहीं हुआ।

सूर्यमुखी *(बं० पा०)*

सूर्य की अनुक्षण वंदना मे ही सूर्यमुखी (विष-वृक्ष—दे०) के उत्सर्जित प्राणचित्र की सारी सार्थकता है। 'विषवृक्ष' की सूर्यमुखी ने भी अपने पति नगेंद्रनाथ के प्रति सब कुछ उत्सर्ग कर दिया है, पति की वंदना ही उसकी नित्य-तपस्या है। इसीलिए सूर्य-दहन की तरह उसके जीवन में भी प्रेम का अंतर्दहन अलक्षित नहीं रह सका है। कामनाहीन चिरयुवती कुंदनंदिनी के प्रति नगेंद्र-नाथ मुग्ध है। सूर्यमुखी हृदय-वंचना के खरताप से दग्ध हुई है किंतु पति के सुख की आशा से कुंदनंदिनी के साथ पति का विवाह रचाया है। पति का सुख ही उसका सुख है। यह सुख समुद्र की लोल छोटी तरंगों की तरह ही हास्य-चंचल है परंतु वेदना का जो विपुल आलोड़न उस मन की गहराई में विद्यमान है उसका पता लगाना लगभग दुष्कर ही है। बंकिमचंद्र (दे० चट्टोपाध्याय) की सुगंभीर सहानुभूति की धारा में सूर्यमुखी नित्य-अभिसिंचित है। यह अभिसिंचन केवल लेखक का ही नही पाठक के हृदय-देश से भी यह नित्य-उत्साहित है एवं वही सूर्यमुखी के साथ लेखक की सहानुभूति की सार्थकता प्रतिष्ठित हुई है।

सूळे *(क० पा०)*

कन्नड शब्द 'सूळे' का अर्थ है 'वेश्या'। कन्नड के प्रख्यात नाटककार कैलासम् (दे०) जी ने अपने नाटक 'सूळे' मे एक वेश्या के जीवन का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। सामाजिक धर्म के नाम पर वेश्यावृत्ति नाम की जो बुरी पद्धति प्रचलित हुई है, उसने स्त्रीत्व के गौरव पर बड़ा भारी आघात किया है। समाज के क्रूरयों से यह मुग्धा बाला वेश्या बन कर यद्यपि नारकीय वेदना की पात्र बन जाती है। तथापि अपनी स्त्री-सुलभ कोमलता को नहीं छोड़ती। स्वयं मरने के पूर्व अपनी बेटी को विष देकर उसे नारकीय जीवन का कीड़ा होने से बचा देती है। इसका यह व्यवहार समाज के प्रति इसके आक्रोश, समाज के अत्याचार और पुत्री के प्रति अपने प्रेम का निदर्शन है।

सूसम्मा *(मल० पा०)*

पारप्पुरत्तु (दे०) के उपन्यास 'अन्वेषिच्चु कंटेत्तियिल्ला' की मुख्य स्त्री-पात्र। सूसम्मा बाल्यकाल और कौमार्य में अनेक कष्ट सहने के बाद नर्स का समर्पित जीवन अपना लेती है। सैनिक अस्पताल मे क्षत-विक्षत सैनिकों को शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करने में वह सफल होती है। परंतु सेवा-निवृत्त होकर अपने घर वापस आने पर सूसम्मा देखती है कि भूतपूर्व नर्स होने के नाते वह समाज में अवज्ञा की पात्र है। जब अपने भूतकाल को गुप्त रखने की शर्त पर एक युवक उससे विवाह करने का प्रस्ताव रखता है तो उस प्रस्ताव को ठुकराकर वह अपने पवित्र व्यवसाय की महत्ता को आँच नहीं आने देती।

सूसम्मा पारप्पुरत्तु की सर्वप्रमुख स्त्री-पात्र है। नर्सों के संबंध मे समाज में फैली हुई धारणाओं के लिए उसका चरित्र एक प्रभावशाली प्रत्युत्तर है। सूसम्मा के सामने ऐसे कई संदर्भ उपस्थित होते हैं जो उसके चारि-त्रिक अधःपतन के कारण हो सकते हैं। पर उन सबसे बचने का मनोबल उसके चरित्र की विशेषता है। इतना सब होने पर भी समाज ने उसका तिरस्कार ही किया। इस पर वह विचलित नहीं हुई। परंतु जब अपने भूतकाल की गोपनीयता को विवाह के लिए शर्त के रूप मे रखा गया तब वह उस स्थिति को सहन न कर सकी। यही कथा-संदर्भ उसके चरित्र-विकास की चरम सीमा है।

केरल की हजारों युवतियाँ संसार के प्रत्येक कोने में नर्स का काम करती हैं। उनके कंटकाकीर्ण और कर्तव्यरत जीवन को आलोकित करने वाले इस पात्र की सृष्टि में लेखक को पूर्ण सफलता मिली है।

सेंगर, शिवसिंह *(हिं० लें०)* [जन्म—1833 ई०; मृत्यु—1878 ई०]

ये काँथा-निवासी थे और इन्हें साहित्य के प्रथम इतिहास-लेखक के रूप में स्मरण किया जाता है। इनकी कृति 'सरोज' में लगभग एक हज़ार कवियों के वृत्त विद्यमान हैं। रामचंद्र शुक्ल (दे०) ने इसकी निर्मिति 1883 ई०, डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने 1877 ई०

तथा डा० माताप्रसाद गुप्त ने 1878 ई० में मानी है। नलिन विलोचन शर्मा के मतानुसार इनका 'सरोज' न तो सर्व-वृत्तसंग्रह है और न साहित्यिक इतिहास, क्योंकि इसमें कवियों के जन्म-काल तथा अन्य विवरण अनुमान पर आश्रित हैं, लेकिन फिर भी ग्रियर्सन (दे०) के 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑव नार्दर्न हिंदुस्तान' तथा मिश्र-बंधुओं (दे० मिश्रबंधु) के 'विनोद' के लिए यह ग्रंथ एक तरह से आधार-ग्रंथ रहा है। कुल मिलाकर 'सरोज' की प्राचीनता और इसके तात्कालिक महत्व को किसी भी दृष्टि से नहीं नकारा जा सकता।

सेउजी पातर काहिनी *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1958 ई०]

बिरिंचिकुमार बरुवा (दे०) के इस उपन्यास में परंपरागत शिल्प नहीं है, इसमें त्रिभुजाकार अथवा चतुर्भुजाकार रेखांकन नहीं है। एक कल्पित चाय-बगीचे को आधार मानकर उसके जीवन की विविध भंगिमाओं एवं मानवीय प्रवृत्तियों की सरल और तिर्यक अभिव्यक्ति इसमें हुई है। नरेश्वर नामक युवक घर से भागकर एक चाय-बगीचे में नौकरी करता है। यहाँ वह विभिन्न स्तरों के नर-नारियों के संपर्क में आकर उनके आचार-विचार दुःख-सुख से परिचित होता है। नरेश्वर-सोनिया की कहानी के साथ-साथ कई छोटी-बड़ी कहानियों की शाखा-प्रशाखाएँ चलती हैं। चाय-बगीचे के चित्र सामने आते जाते हैं। कहानी धीमी गति से आगे बढ़ती है, इसे आवश्यकता से अधिक विस्तार दिया गया है। इसके पुरुष-पात्रों की अपेक्षा नारी-पात्र अधिक चटुल, विनोदी एवं हास्यमुखर हैं। उनके यौन जीवन में शिथिलता है।

सेठ बाँकेमल *(हिं० पा०)*

यह अमृतलाल नागर (दे०) के प्रसिद्ध हास्यरसात्मक उपन्यास 'सेठ बाँकेमल' के प्रमुख पात्र तथा नायक हैं। बेफिक्र, जिंदादिल, व्यापारिक दाँव-पेंचों से परिपूर्ण तथा कुल-मर्यादा और बीते हुए युग की दुहाई देने वाले इस पात्र के माध्यम से लेखक ने जर्जर सामाजिक रूढ़ियों तथा मोहग्रस्त परंपरा-प्रेम पर चुटीला व्यंग्य किया है। सेठ बाँकेमल अपनी जवानी के दिनों की मस्ती तथा जिंदादिली की कहानियों को ऐसे लोच तथा लहजे से सुनाते हैं कि पाठक के मन में अनायास ही गुदगुदी होने लगती है, वह हँसी से लोटपोट हो जाता है और फिर उन्हें आजीवन विस्मृत नहीं कर पाता।

सेतु *(उ० कृ०)*

'सेतु' विभूतिभूषण त्रिपाठी (दे०) की कतिपय श्रेष्ठ कहानियों का संकलन है। इन कहानियों में यौन-चित्रण प्रायः नहीं है। 'मिथ्यार सत्य' या 'सतु' आदि कहानियों में नर-नारी-संबंध जितना सूचित होना यथेष्ट होगा, केवल उतना ही संकेतित है। लेखक की मानवीय संवेदना का द्वार सबके लिए उन्मुक्त है—'बड़ा साहब' और 'छोटे कर्मचारी' दोनों के लिए समान रूप से। लेखक ने 'भस्मसाथी', 'मिशणार भूल' आदि में साम्प्रतिक युग के भाग्य-नियंता बड़े साहब पर उसके प्रतारणापूर्ण व्यवहार के लिए, करारा आघात किया है। सर्वोपरि 'हेडमास्टर' एवं 'राय' कहानियों की मानवीय मर्यादा, सदाचार, निर्विकार चित्त की कर्तव्य-परायणता अविस्मरणीय है।

सेतु-पिळ्ळै, रा० पी० *(त० ले०)* [जन्म—1896 ई०, मृत्यु—1961 ई०]

जिला तिरुनेलवेली में इनका जन्म हुआ था। पालयकोट्टै, तिरुनेलवेली और मद्रास में इन्होंने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की थी। यहीं पर इन्होंने कानून में बी० एल० की उपाधि प्राप्त की। कुछ समय तक ये मद्रास की पच्चैयप्पन कालेज में तमिल प्राध्यापक रहे थे, फिर तिरुनेलवेली में जाकर वकालत करते रहे। ये इस नगर की नगरपालिका के अध्यक्ष भी रहे थे। तमिल-साहित्य में अभिरुचि के कारण ये पुनः शोध तथा अध्यापन के क्षेत्र में आ गए थे। अण्णामलै विश्वविद्यालय में ये छह वर्ष तक और मद्रास विश्वविद्यालय में पच्चीस वर्ष पर्यंत तमिल विभाग के अध्यक्ष-आचार्य के रूप में रहे। मद्रास-विश्वविद्यालय में ये ही प्रथम तमिल-प्राचार्य थे। ये अच्छे वक्ता भी थे। इनकी भाषण-शैली सरल किंतु काव्यात्मक, साथ ही एक विलक्षण अनुप्रास-अलंकृत होती थी। प्राचीन परंपराओं के ज्ञाता होने के साथ ही ये भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में नवीनता लाने के पक्ष में थे। इन्होंने भाषा तथा साहित्य—दोनों से संबद्ध अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं। इनके लगभग पच्चीस ग्रंथ प्रकाशित हैं।

इन्हें 'तमिल-माधुर्य' पर साहित्य अकादमी का और 'गान और नाम' पर मद्रास सरकार का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। मद्रास विश्वविद्यालय के शताब्दी-समारोह के अवसर पर इनको डी० लिट्० उपाधि दी गई थी। ये यद्यपि शैव भक्त थे किंतु सर्व-धर्म-समन्वय की भावना रखते थे। 'कंबरामायण',-(दे०), 'शिलप्पदिकारम्' (दे०) और 'तिरुक्कुरळ' (दे०) के ये बड़े प्रेमी थे।

सेतुबंध *(प्रा० कृ०)*

यह पाँचवी शती के श्री प्रवर सेन द्वारा लिखित महाराष्ट्री-प्राकृत का एक सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य है। इसमें 15 आश्वास हैं जिनमें वाल्मीकि-'रामायण' (दे०) के युद्धकांड का आश्रय लेकर राम के लंका-प्रस्थान, सेतु-बंधन, युद्ध, सीता की निर्मुक्ति, राम के अयोध्यागमन और सिंहासनासीन होने का वर्णन किया गया है। इसकी भाषा अलंकार-गर्भित है और समास तथा श्लेष का प्रयोग इसे तत्कालीन संस्कृत-महाकाव्य की परंपरा में ला देता है। 'शिशुपालवध' (दे०) जैसे महाकाव्यों पर भी इसका प्रभाव पड़ा है।

सेतुबंध *(सं० कृ०)* [समय—छठी शती. ई०]

संस्कृत-महाकाव्यों की शैली पर प्राकृत में भी समय-समय पर महाकाव्यों की रचना हुई है। प्रवरसेन-कृत 'सेतुबंध' इस प्रवृत्ति की प्रतिनिधि कृति है। प्रवरसेन किसी प्रदेश के राजा थे। किंतु ये काश्मीर *के राजा थे या वाकाटकवंशीय, इस बारे में अभी विवाद* है।

'सेतु' 15 आश्वासों में विभक्त है। इसमें सेतुबंध से आरंभ कर राम-कथा का सुंदर चमत्कारपूर्ण वर्णन है। प्रसादगुण इस काव्य में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। नितांत नवीन अर्थों की कल्पना तो यहाँ नहीं मिलती, पर जो कुछ है वह सरस भाषा में निबद्ध है।

'सेतुबंध' का दूसरा नाम 'रावणवध' या 'दशमुखवध' है। महाराष्ट्री-प्राकृत में लिखित इस महाकाव्य को दंडी (दे०) ने 'सुक्तिरत्नों का सागर' कहा है। बाण (दे०) भट्ट ने भी इस महाकाव्य की सराहना की है। अपने विषय-संयोजन, भाषा तथा अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह अत्यंत सफल काव्यकृति है।

सेन, क्षितिमोहन *(बँ० ले०)*

दे० क्षितिमोहन सेन।

सेनगुप्त, अचिंत्यकुमार *(बँ० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

अचिंत्यकुमार सेनगुप्त बँगला उपन्यास के क्षेत्र में आधुनिकता के प्रवर्तकों में से हैं। इनकी प्रारंभिक रचनाओं में 'वेदे' (1928) में पाठकों को लेखक की प्रतिभा का पहला परिचय मिला था। इनके उपन्यास 'बियाहेर चेये बड़' (1931) पर अश्लीलता के कारण प्रतिबंध लगा तो इनकी ख्याति चारों ओर फैल गई थी। इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में 'ऊर्णनाभ' (1933), 'आसमुद्र' (1934), 'प्रच्छदपट' (1934), 'काकज्योत्स्ना', 'प्राचीर ओ प्रांतर, 'नवनीता', 'रूपसी रात्रि' (1959) आदि उल्लेखनीय हैं।

अचिंत्य बाबू के उपन्यासों में रोमानी गीति-काव्यमयता के साथ यथार्थ का मणि-कांचन योग है। रोमांटिक उल्लास के साथ-साथ देह-संपर्क की निस्संकोच अभिव्यक्ति इनकी अपनी विशेषता है। इनके उपन्यासों में गतानुगतिकतामुक्त बंधनहीन जीवन-यात्रा के प्रति तीव्र आग्रह है, यद्यपि प्रारंभिक उपन्यासों में जीवन के कुत्सित, वीभत्स, पापयुक्त रूप के प्रति लेखक की रुग्ण प्रवणता दिखाई पड़ती है। जीवन की विचित्र अभिज्ञताओं से इनके उपन्यास इतने प्राणवंत नहीं हो पाए हैं जितना कि इनकी कहानियों के अभिनव वैचित्र्य का औज्ज्वल्य मन को बरबस आकर्षित कर लेता है। अचिंत्य बाबू की *कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उनमें कथा* की एक पूर्णता विद्यमान रहती है। परवर्ती युग में लेखक ने श्रीरामकृष्ण परमहंस की चरितकथा के आश्रय से एक प्रकार की अभिनव भागवत् कथा की रचना कर जीवन में ज्योतिर्मय लोक का संधान दिया है। अचिंत्यकुमार के सांप्रतिक युग के उपन्यासों में पूर्व-बंग एवं ब्रह्म-सीमांत के निम्न श्रेणी के मनुष्यों की जीवन-यात्रा के चित्र अंकित हैं।

भाषा एवं शैली से संबंधित नाना परीक्षणों में लेखक के कृतित्व का विशेष परिचय मिलता है। विभिन्न उपमानों एवं अलंकारादि के प्रयोग के द्वारा भाषा को अर्थमय बनाने की दिशा में लेखक के प्रयास स्तुत्य हैं—यद्यपि अधिकतर विद्वानों ने इसका विरोध किया है।

सेनगुप्त, यतींद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1881 ई०; मृत्यु—1954 ई०]

रवींद्र (दे० ठाकुर) के समसामयिक कवि यतींद्रनाथ सेनगुप्त अपरिसीम विस्मय के आधार हैं। पेशे से इंजीनियर सेनगुप्त ने बँगला काव्य में जिस प्रकार के नये गीतों का स्वर अनुगुंजित किया था वह और जो कुछ भी हो पुरातन का अनुसरण नहीं था, उसमें संपूर्ण नये भाव एवं विचारों की प्रतिध्वनि थी। बँगला देश की प्रकृति नवरूप के अनुसंधान में ही वे दत्तचित्त रहे। केवल इतना ही नहीं, बंगभूमि के नायक और साधारण मानव की मर्मवेदना ही इनके काव्य की भाव एवं भाषा हैं। इनके काव्यग्रंथ हैं—'मरीचिका' (1923), 'मरुशिखा' (1927), मरुमाया' (1930) 'सायम्' (1940) 'त्रियामा' (1948), 'गांधी वाणी कणिका (1948)। इनके अतिरिक्त 'कुमार संभव', 'गीता (1928) तथा 'मैकवेथ', 'हैमलेट और 'ऑथेलो' का काव्यानुवाद (रथी और सारथि 1950) तथा काव्य परिमिति (1939) इनके काव्य-विचार-विषयक ग्रंथ है। निर्वाचित कविता का संकलन 'अनुपूर्वा (1947) एवं मृत्यु के उपरांत प्रकाशित 'निशांतिका (1957) उल्लेख योग्य काव्य ग्रंथ हैं।

यतींद्रनाथ के वेदनाविक्षुब्ध कवि हृदय ने जगत् और जीवन के जिस रूप की वंदना की है उसके साथ बंगाली पाठक का इससे पूर्व कोई परिचय नहीं था। यतींद्रनाथ मूलतः स्वच्छंदतावाद के उपासक रहे हैं। फिर भी, काव्य के क्षेत्र में इन्होंने अपनी विप्लवात्मक चेतना प्रकट की है। प्रकृति, जीवन एवं जगत—सभी वेदना-विक्षुब्ध कवि की तीक्ष्ण दृष्टि के सम्मुख नतशिर दिखाई पड़ते हैं। दुःखवादी वैरागी का रूप इनकी कविता में सर्वत्र प्रस्फुटित है।

सेन, जलधर *(बँ० ले०)*

दे० जलधर सेन।

सेन, दीनेशचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1866 ई०, मृत्यु—1929 ई०]

आधुनिक बँगला साहित्य की इतिहास-रचना के क्षेत्र में आचार्य दीनेशचंद्र एक नवयुग के स्रष्टा हैं। यह सच है कि प्राग्-दीनेशचंद्र युग में बँगला-साहित्य के इतिहास की रचना हुई थी परंतु प्राचीन एवं मध्ययुगीन बँगला साहित्य का प्रामाणिक एवं पूर्णांग विश्लेषणात्मक इतिहास रचने का गौरव सर्वप्रथम दीनेशचंद्र को ही प्राप्त है।

दीनेशचंद्र का पहला परिचय यही है कि ये कवि हैं। परंतु इनका प्रधान परिचय यह है कि ये बँगला-साहित्य के सार्थक इतिहासकार हैं। इनका औपन्यासिक परिचय प्रायः अप्रत्यक्ष ही रह गया है। 1892 ई० में पीस एसोसियशन' ने 'बँगला भाषा की उत्पत्ति एवं क्रम-विकास' विषय पर निबंध प्रतियोगिता का आयोजन किया था। इस प्रतियोगिता में दीनेशचंद्र ने भाग लेकर प्रथम पुरस्कार 'विद्यासागर पदक' प्राप्त किया था। 1896 ई० में इनके ग्रंथ 'बंगभाषा ओ साहित्य' का पहला भाग प्रकाशित हुआ था। 1901 ई० में ग्रंथ संपूर्ण आकार में प्रकाशित हुआ था। अँग्रेजी में 'हिस्ट्री आफ बँगाली लैंग्वेज एंड लिट्रेचर' ग्रंथ रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर) को नोबेल पुरस्कार-प्राप्ति से पहले 1911 ई० में प्रकाशित हुआ था। नोबेल कमेटी रवींद्रनाथ को पुरस्कृत करने से पहले इस ग्रंथ के माध्यम से बँगला भाषा और साहित्य के बारे में परिचित हुई थी। दीनेशचंद्र ने लगभग 50 ग्रंथों की रचना की एवं बहुत-से ग्रंथों का संपादन भी। इनके प्राचीन 'बंगला साहित्य' मुसलमानेर अवदान' (1940), 'द वैष्णव लिट्रेचर आफ मिडियेवल बँगाल' (1917), 'द फोक लिट्रेचर आफ बँगाल' (1920), बँगाली प्रोज स्टाइल' (1921) आदि स्वरचित एवं मयमनसिंह-गीतिका', (दे०) गोपीचंदेर गान' (दे०), 'गोविंददासेर कड़चा' आदि संपादित ग्रंथों का इस प्रसंग में उल्लेख किया जा सकता है। इनका उपन्यास 'श्यामल ओ कज्जल' (1938) भी समादृत हुआ था। इनका पहला काव्य ग्रंथ है 'कुमार भूपेंद्रसिंह' (1890)। दीनेशचंद्र की साहित्य साधना तथा जीवन-साधना बँगाल के सांस्कृतिक इतिहास में अन्तहीन गौरव की समुन्नत महिमा में स्वप्रतिष्ठित है।

सेन, देवेंद्रनाथ *(बँ० ले०)* [जन्म—1854 ई०]

इनका जन्म गाजीपुर (उत्तरप्रदेश) में हुआ था। इनके पिता लक्ष्मीनारायण सेन हुगली जिला, वलागढ़ ग्राम के मजुमदार वैद्य थे किंतु इन्होंने बाद में सेन उपाधि ग्रहण कर ली थी। देवेंद्रनाथ सेन ने इलाहाबाद में वकालत की और फिर शेष जीवन देहरादून में बिताते

हुए वहीं शरीर त्यागा।

इनके काव्य-संग्रह है 'अशोक गुच्छई' पारिजात गुच्छ', 'शेफाली गुच्छ', 'अपूर्व व्रजांगना', 'अपूर्व वीरांगना'। आधुनिक गीतकारों मे देवेंद्रनाथ सेन का ऊँचा स्थान है। इनके गीत अमिट रूप-पिपासा से ओत-प्रोत है। भाषा, भाव एवं छंद सभी की दृष्टि से इनके गीत अत्यंत प्राणवान् हैं।

सेन, नवीनचंद्र *(बँ० ले०)* [जन्म—1847; मृत्यु—1909 ई०]

चटगाँव जिला के नगापाड़ा ग्राम में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम गोपीमोहन एवं माता का राजराजेश्वरी था। ये जाति के वैद्य थे। इन्होने बी० ए० करके, डिप्टी मजिस्ट्रेट के रूप मे जीवन प्रारंभ किया था।

इनके रचे ग्रंथ हैं: 'अवकाश रंजिनी' भाग 1, 2, 'रंगमती', 'खृष्ट', 'अमिताभ', 'पलाशी युद्ध', 'भानुमति', (उपन्यास); 'अमृतराय', 'कुरुक्षेत्र', 'रैवतक', प्रभास' आदि। इनमे 'पलाशी युद्ध' की रचना देश-प्रेम की प्रेरणा से हुई है। इसके कवित्व एवं नूतन भंगिमा ने सभी को मुग्ध किया था। 'कुरुक्षेत्र', 'रैवतक' एवं 'प्रभास' मे इनके कवित्व का पूर्ण विकास हुआ है। विराट् कवि-कल्पना के साथ दार्शनिकता एवं नैपुण्य का अपूर्व समन्वय विस्मयकर है। इनकी कविता के दो मूल स्वर है: स्वदेश-प्रेम एवं आध्यात्मिकता। पराधीनता की वेदना को इन्होंने अनुभव किया था।

अनेक कविताओं में इन्होंने देश की दुर्दशा पर आँसू बहाये हैं। इनके हृदय में गंभीर देश-प्रेम था। एक समय इनकी कविता ने शिक्षित बंगालियों के हृदय मे देश-प्रेम जगाया था। इसीलिए ये सदैव स्मरण किए जाएँगे। नवीन युग के कवियों में ये अन्यतम है। इनके काव्य में भावोच्छ्वास प्रांजल भाषा, छंद-माधुर्य एवं गांभीर्य का सुंदर समन्वय है।

सेन, रामप्रसाद *(बँ० ले०)*

अनुमानतः इनका नाम अठारहवीं शती के तीसरे दशक में एवं मृत्यु आठवें दशक में हुई। इनके पिता का नाम रायराम (अथवा रामदुलाल) था। ये कुमारहट्ट ग्राम में पैदा हुए थे और वैद्य जाति के थे।

रामप्रसाद सेन की कृतियाँ हैं: 'विद्यासुंदर' (किन्हीं के मतानुसार मूल नाम 'कालिका मंगल कीर्तन' (दे०) एवं 'कृष्ण-कीर्तन'। 'विद्यासुंदर' के चरित्र-चित्रण सुंदर एवं स्वाभाविक है। इनकी उक्तियाँ कहीं-कहीं अत्यंत हृदयग्राही है; छंदवैचित्र्य प्रदर्शन भी यत्रतत्र मिलता है परंतु संपूर्ण ग्रंथ सरस नहीं है। 'काली-कीर्तन' सामान्य कृति है। 'कृष्ण-कीर्तन' के दो-एक पद ही मिलते हैं। रामप्रसाद सेन की प्रसिद्धि का मूल कारण है 'श्याम संगीत' अर्थात् इनके आध्यात्मिक पद। ये साधक कवि हैं और शाक्त-पद-रचयिताओं में अप्रतिम हैं। इनके गीत अत्यंत सरस मधुर, लोकप्रिय एवं चित्ताकर्षक हैं और उनमें हृदय के सच्चे उद्गार व्यक्त हुए हैं। कहा जाता है कि इन्हें सिद्धि प्राप्त थी, अतः मातृमंत्र के प्रथम उद्-गाता न होकर भी ये श्रेष्ठ पुजारी हैं।

ये बंगाल के अत्यंत लोकप्रिय कवि हैं और अनेक गीत इनके नाम से प्रचलित हैं। यह कहना कठिन है कि इनमें कितने गीतों का मिश्रण हुआ है क्योंकि इनके गीतों का कोई संकलन नहीं। 'रामप्रसादी गान' नाम से इनके गीतों की प्रसिद्धि है।

सेन, समर *(बँ० ले०)* [जन्म—1926 ई०]

समर सेन स्वल्पवाक् कवि हैं। इन्होंने अपनी कविता में बारबार नगर-जीवन की क्लांति, विकार तथा विक्षोभ का उल्लेख किया है। इन्होंने अपनी कविता में सामाजिक विरोध एवं श्रेणी-संघर्ष के समय प्रकृति के शांत परिवेश के माधुर्य को भी प्रकट किया।

इनके द्वारा रचित तनुकाय कविता-ग्रंथों में 'कयेकटि कविता' (1937), 'ग्रहण ओ अन्याय कविता' (1940), 'नाना कथा' (1942), तथा 'तिन पुरुष (1944) उल्लेखनीय हैं।

इन्होंने विदेशी शासकों के शोषण पर तीव्र कशाघात किया है। मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद में आस्थावान इनका कवि मुक्ति की आशा में आगामी दिनों की प्रतीक्षा कर रहा है। वैसे यह ध्वंस के आह्वान को स्वीकार नहीं कर पाता है इसीलिए अतीत के प्रति एक विषण्ण व्यथा को व्यक्त कर गया है।

सेन, सुकुमार *(बँ० ले०)*

बाँगला साहित्य के इतिहासकारों में श्री

सुकुमार सेन का नाम विशेष आदर के साथ लिया जाता है। साहित्य के इतिहासकार के लिए आवश्यक वस्तु-निष्ठता, पैनी तथा तलस्पर्शी दृष्टि, तथ्यो के शोध की अपूर्व क्षमता तथा बौद्धिक निस्सगता के कारण इतिहास कार के रूप मे उन्हे भरपूर सफलता मिली है। दे० 'बाँगला साहित्येर इतिहास।

सेनावरैयर् *(त० ले०)* [समय—तेरहवी शती ई०]

तमिल-लक्षण ग्रथ 'तोलकाप्पियम' (दे०) के व्याख्याकारो मे 'सेनावरैयर्' भी एक है, किंतु इनके द्वारा रचित पूरी व्याख्या उपलब्ध नही है, केवल 'तोल्काप्पियम्' के द्वितीय भाग 'शब्द-लक्षण' की व्याख्या पूरी मिली है। तमिल वाड्मय मे इस लेखक का नाम अमर करने के लिए यह व्याख्या ही पर्याप्त हैं। इस व्याख्या से लेखक की अनुपम विद्वत्ता, सस्कृत व्याकरण-परिचय तथा तर्क शक्ति प्रकट होती है। इस व्याख्या की भाषा शैली तमिल मे शास्त्रीय विवेचन करने के लिए उपयुक्त शैली सिद्ध हुई है। कारण कार्य या हेतु-साध्य का सकेत करते हुए पूर्वपक्ष और समाधान या खडन के साथ सक्षिप्त किंतु सारगर्भित ढग से प्रतिपादन करने का यह अच्छा आदर्श हैं। सस्कृत के न्याय-व्याकरण शास्त्रो के अनेक पारिभाषिक शब्दो के समकक्ष शुद्ध तमिल शब्दो का प्रयोग इस मे हुआ है। किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि सेनावरैयर्' के पश्चात् ऐसी शैली मे विषय प्रतिपादन करने वाले लेखक विरले ही हुए हैं।

सेनापति *(हिं० ले०)*

सेनापति का जन्म-स्थान अनूपशहर था। य कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका प्रसिद्ध ग्रथ 'कवित्तरत्नाकर' (दे०) है, जिसका रचना-काल 1649 ई० है। ग्रथ म पाँच तरगें है। इनमे श्लेष, शृगार रस, ऋतु वर्णन और शब्दालकारो का प्रतिपादन है। ग्रथ मे उपलब्ध श्लेप-वर्णन इनके शब्द-कौशल का प्रमाण है। शृगार-वर्णन के अतर्गत इन्होने नखशिख-सौंदर्य उद्दीपनविभाव और वय-सधि का निरूपण किया है। यमक, श्लेष, अनुप्रास और चित्र नामक शब्दालकारो के माध्यम से इन्होने रामचरित के कतिपय प्रसगो का वर्णन भी किया हैं। इस ग्रथ का ऋतु-वर्णन अत्यत मनोरम है। इस वर्णन की प्रधान विशेषता है—मानव-मन से उठने वाले भावो का विभिन्न ऋतुओ से सहज-सबध का स्थापन। सेनापति मध्ययुग के प्रसिद्ध कवि हैं।

सेयकुतंबि पावलर *(त० ले०)* [जन्म—1872 ई०, मृत्यु—1950 ई०]

ये 'कन्याकुमारि' जिले के इसलामी तमिल विद्वान थे। इनके नाम का प्रथमाश, 'शेख' का तमिल रूप है। 'तपि और 'पावला' के अर्थ 'छोटा भाई' एव 'कवि' है। ये 'शतावधानी' (अर्थात् एकसाथ सौ कार्यों को सफलतापूर्वक निभा सकने के अद्भुत सामर्थ्य वाले) थे। इनकी प्रसिद्धि भाषणकर्ता, लेखक एव कवि के रूप मे है। मुहम्मद नबी के वृत्तात को नायकमान्मियम्परि' नामक इनकी पद्य रचना प्रस्तुत करती है। उमरुप्पुलवर्-कृत मुहम्मद नबी की जीवनी-सबधी महाकाव्य 'श्रीराप्पुराणम्' की एक सुबोध टीका इनके द्वारा रची गई है। इनकी अन्य रचनाएँ 'पम्चुत्ताचीन् कोवै', 'कल्वत्तुनायकम् इन्निचैप्पामालै', 'तिरुनाकुर्त्तिरवताति', तथा 'तिरुक्को टटारुप् पतिरुप्पत्तताति' हैं जो तमिल साहित्य मे प्रचलित उत्तरकालीन काव्य-विधाओ के अतर्गत आती है।

सेरमान् पेरुमाळ् *(त० ले०)* [समय—नवी शती ई०]

ये चेरदेश (आजकल के केरल का एक भाग) के राजा थे तथा 'तिरुवजिक्कुलय' को राजधानी बनाकर राज्य करते थे। ये शैव भक्त सत थे। कहा जाता है कि ये प्रतिदिन भगवान का ध्यान तब तक करते थे जब तक नटराज के नूपुरो की ध्वनि ध्यान म न सुनाई दे। किसी वक्ता के कथन का एक अश सुनने मात्र स उसके सारे मतव्य को झट समझने की शक्ति इनमे थी; अतएव तमिल म ये 'कलिरटरु-अरिवार' (कथन-वेदी) नाम से विख्यात हैं। इनका वास्तविक नाम पेरुमाळ्-कोदैयार था। इनके जीवन की अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ प्रामाणिक रूप से ज्ञात हुई है। पाड्यदेश की मदुरै नगरी के 'बाणभद्र' नामक शैव भक्त गायक जब इनके दरबार मे पहुँचा और शिवजी का आदेश कहकर उसने इन्ह सूक्ति सुनाई; तो इन्होने अपना सारा राज्य उस दान मे दे दिया। किंतु वह भक्त अपना अपेक्षित कुछ द्रव्य लेकर लौट गया। इनकी तीन ही रचनाएँ अब उपलब्ध हैं और ये तीनो शैव भक्ति के प्रतिपादक सुदर काव्य हैं।

सेल्व केशवराय मुदलियार *(त० ले०)* [जन्म—1864 ई०; मृत्यु—1921 ई०]

इनका जन्म मद्रास के समीप तिरुमणम् नामक स्थान में हुआ था। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उपरांत इन्होंने अँग्रेज़ी के प्राध्यापक के रूप में जीविका आरंभ की थी। तमिल के प्रति अटूट प्रेम होने के कारण इन्होंने स्वयं तमिल साहित्य की सेवा करने के साथ-साथ जनता के मध्य तमिल साहित्य के प्रचार-प्रसार का कार्य भी किया था। तमिल गद्य के विकास में इनका योगदान उल्लेखनीय है। इनकी प्रसिद्ध गद्य-रचनाएँ हैं—कवनाड्र, 'तमिल व्यासगल्', 'तिरुवल्लुवर' आदि। इन्होंने 'आचारक्कोवै', 'पलमोलि' 'मृदुमोलिक्काजि', 'अरिच्चंदिर-पुराणम्' (दे०) आदि प्राचीन तमिल कृतियों का गहन अध्ययन कर उनके महत्व को स्पष्ट करने के साथ-साथ उनके प्रामाणिक रूपों का प्रकाशन भी किया है। इन्होंने काव्य, गद्य, साहित्यिक शैली आदि के स्वरूप का वर्णन किया है और कुछ महत्वपूर्ण साहित्यिक सिद्धातों की स्थापना भी की है। अँग्रेज़ी एवं तमिल में प्राप्त समान मुहावरों की चर्चा की है। तमिल साहित्य विशेषकर आलोचना के विकास के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सेल्व केशवराय आधुनिक तमिल आलोचना के जन्मदाता कहे जाते हैं।

सेवाराम, भाई *(पं० ले०)*

इनका जन्म सिंध प्रदेश के एक धार्मिक परिवार में हुआ था। ये अठारहवीं शती ई० में विद्यमान थे। इन्होंने बारह वर्ष की आयु में गृह त्याग दिया था। पहले एक पाखंडी साधु से भेंट हुई, पर शीघ्र ही उसे छोड़कर ये गुरु तेगबहादुर के दीक्षित शिष्य भाई कन्हैया से मिले। भाई सेवाराम का प्रमुख कार्य था मरु-प्रदेश में कुएँ खुदवाना। सेवामार्ग पर चलते हुए इनकी अड्डणशाह (दे०) से भेंट हुई और ये अड्डणशाह के दीक्षा-गुरु बने। इसके पश्चात् महात्मा भाई सेवाराम के जीवन से संबंधित अनेक सेवा-कथाएँ प्रचलित हो गईं। 'परिचर्या सेवाराम' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में भाई कन्हैया, भाई सेवाराम का तथा भाई अड्डणशाह के जीवन से संबंधित कथाएँ संकलित है। कवि सहजरास ने भाई सेवाराम के संबंध में लिखा है—

नीके मनि नीके वचन नीके सब गुण अंग।
संत अउतार अउतार प्रभु जनमु लियो सरबंग॥

स्वयं भाई सेवाराम भी 'परिचर्या' के रचनाकार है। 'परिचर्या' की भाषा ब्रज है।

सेवासदन *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष – 1916 ई०]

यह प्रेमचंद (दे०) का प्रसिद्ध सुधारवादी उपन्यास है जिसमें लेखक का मूल लक्ष्य दारोगा कृष्णचंद्र के परिवार की कहानी के माध्यम से दहेजप्रथा, अनमेल विवाह तथा वेश्यागमन की बुराइयों का चित्रण करना रहा है। इनके साथ-साथ लेखक ने पुलिस की घूसखोरी, हिंदू-मुस्लिम-सांप्रदायिकता, हिंदू-समाज के दोहरे मानदंडों तथा भारतीय नारी की निःसहाय स्थिति का भी अत्यंत सशक्त चित्रण किया है। इस उपन्यास में महंतों-मठाधीशों, समाज-सुधारकों, नेताओं की भी अच्छी पोल खोली गई है। यह उपन्यास तत्कालीन भारतीय समाज का अत्यंत जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करता है।

सैफ़-ओ-सबू *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1935 ई०]

कुतुबखाना ताज आफ़िस, मुहम्मद अली-रोड, बंबई मे प्रकाशित यह 'जोश' मलीहाबादी (दे०) की एक काव्य-कृति है। इस कृति में कवि द्वारा रचित पूर्व की सभी कृतियों की प्रतिनिधि कविताओं का संग्रह प्रस्तुत किया गया है। इसमें संगृहीत अनेक कविताओं को नौ शीर्षकों के अंतर्गत भिन्न-भिन्न रूप से प्रस्तुत किया गया है। ये शीर्षक हैं—आतिशकदा, अफ़कार, रंग-ओ-बू, मुतालिआ-ए-नजर, तास्सुरात, निगारखाना, वारदातें, वादा-ए-सरजोश, और रुबाइयात। इस संकलन की कविताएँ श्रृंगार रस और वीर रस के अत्यंत सुंदर उदाहरण है। कहीं-कहीं सुधारवादी स्वर भी प्रतिध्वनित हुए हैं। अछूती और निराली उपमाएँ तथा उत्कृष्ट शब्द-विन्यास इस कृति की प्रमुख विशेषताएँ है। 'जोश' साहब की नज़्मों (कविताओं) की आशातीत सफलता के कारण इन्हें आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ नज्म-लेखक ही नहीं समझा जाता है अपितु इन्हें 'नज्म का बादशाह' भी कहा जाता है।

सैफ़ुल मुलुक *(पं० कृ०)* [रचना-काल— 1864 ई०]

सैफ़ुल और बदीउलजमाल की सुखांत प्रेमकथा पर आधारित मियाँ मुहम्मद बख्श की यह कृति पंजाबी

की बृहत्तम प्रबध काव्य-रचना है । इसमे मानव जीवन के विविध पक्षो के अतिरिक्त देवो और परियो के चमत्कार-पूर्ण अलौकिक कृत्यो का भी वर्णन है । इसस पूर्व हिंदी मे कवि जान, दक्खनी मे गव्वासी तथा पजाबी मे मौ० लुत्फअली ने भी इस कथा को काव्यबद्ध किया था परतु इसमे विस्तार मे कोई नही गया । यह विस्ताराधिक्य प्राय अस्वाभाविक है और अनेक स्थलो पर प्रबध कल्पना की दृष्टि से भी कृति सदोष प्रतीक होती है । इस कृति मे कवि की दृष्टि तसव्वुफ के विवेचन पर है । शृगार अगी रस है और अन्य सभी रस गौण रूप मे अभिव्यजित हुई हैं । फारसी मसनवी-पद्धति के अनुकरण पर लिखी गई इस रचना की भाषा मे फारसी शब्दावली का मिश्रण खलता नही । पोठोहार के क्षेत्र मे यह रचना बहुत प्रसिद्ध थी । भाषा विभाग, पटियाला ने इसको गुरुमुखी लिपि मे प्रकाशित किया है ।

सैफुल मुलुक-ओ-बदी-उज्जमाल (उर्दू० कृ०) [रचना-काल—1624 ई०]

इसका लेखक है गव्वासी, कुतुबशाही युग का एक प्रमुख कवि, जिसका जीवनवृत्त उपलब्ध नही है । केवल इतना ज्ञात है कि प्रारभिक जीवन कठिनाई मे बीता किंतु राजदरबार से सबध होने के बाद उसकी मान-प्रतिष्ठा बढ गई और वह अपने युग का सबसे बडा कवि माना जाने लगा । 1624 ई० मे लिखा गया यह एक प्रेमाख्यान है जो 'अलिफ लैला' पर आधारित है । इसमे मिस्र राजकपाट सैफुल मुलुक और चीन की राजकुमारी बदीय चयाल' ने प्रेम का वर्णन है । कवि ने मनसवी मे आत्मश्लाघा की है जो अनुचित नही । उसकी कविता सरस एव भावप्राण है । भाषा मे फारसी-अरबी के शब्द कम हैं, शैली सरल और प्रभावपूर्ण है ।

सैयद अहमद-खां, सर (उर्दू ले०) [जन्म—1817 ई०, मृत्यु—1898 ई०]

इनका पूरा नाम सैयद अहमद खाँ था । इन के पूर्वज शाहजहाँ के समय मे हरात से भारत आए थे। इनके पिता मीर मुत्तकी को अकबर शाह सानी ने मत्री-पद पेश किया था किंतु उन्होने उसे स्वीकार नही किया था। इनका जन्म दिल्ली मे हुआ था और अपनी माँ की देखभाल मे ये बडे हुए ।

1838 ई० मे ये दिल्ली म सरिश्तेदार नियुक्त हुए और फिर सब जज भी बने । 1846 से 1854 ई० तक ये दिल्ली के सद्रे-अमीन रहे । इन्ही दिनो इन्होने 'आसारुल सनादीद' नामक पुस्तक लिखी जिसमे दिल्ली के प्रसिद्ध स्थानो, पुरातन भवनो, कवियो तथा विद्वानो का वर्णन है । इसके अतिरिक्त इन्होने 'जला-उल-कलूब', 'तुहफा-ए-हुस्न', 'फवायदुल-अफकार', 'कौले-मतीन', 'कलमातुल हक', 'राहे सुन्नत' आदि पुस्तकें भी लिखी । एक अन्य पुस्तक 'सिलसिला-ए-मलूके-हिंद' मे महाराज युधिष्ठिर के समय से लेकर बाद के सभी राजाओ का वृत्तात है । इन पुस्तको के अतिरिक्त 'वफादार-मुसलमानाने हिंद' और 'तीरेखे-फिरोजशाही' नामक पुस्तको मे सशोधन किया तथा बाइबिल तथा कुरान की व्याख्या करने के लिए पुस्तकें लिखी ।

इन्होने 'तहज़ीबुल इखलाक़' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी आरभ किया । मुसलमानो मे जागृति उत्पन्न करने मे सर सैयद का बहुत बडा हाथ है । शिक्षा के क्षेत्र मे इनका कार्य प्रशसनीय है । अलीगढ विश्व-विद्यालय इन्ही के प्रयत्नो का स्मारक है । सर सैयद कवि भी थे । उर्दू गद्य-लेखन मे इनका विशेष स्थान है । इनकी गद्य-शैली सादा तथा गभीर है ।

सैयद सुलतान (बँ० ले०) [जन्म—अनुमानत सत्रहवी शती का आरभ, मृत्यु—लगभग 1666 ई०]

मध्ययुगीन बगाली मुसलमान कवियो मे सैयद सुलतान का नाम काफी प्रसिद्ध है । उनके जन्म या मृत्यु की सन्-तारीख का ठीक पता नही लगता परतु उनके काव्य ग्रथ 'नबीवश' (1658-55) के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि उनका जन्म ईसा की सत्रहवी शती के प्रारभ मे और मृत्यु 1660 ई० के आस-पास हुई थी ।

सैयद सुलतान ने राधाकृष्ण प्रेमात्मक लोक-सगीत की रचना के अतिरिक्त 'ज्ञान प्रदीप' अथवा 'ज्ञान चातिशा' नामक एक तत्र-योग-विषयक ग्रथ की रचना की । सस्कृत के 'हरिवश' नाम के अनुकरण पर मुम्हमद खान की पुस्तक 'मुम्ताल हुसैन' मे निबद्ध अरबी करबला युद्ध का अनुवाद 'नबीवश' के नाम से प्रस्तुत किया । इस ग्रथ मे मुसलमान शास्त्र-मतानुसार सृष्टि-तत्व एव नबियो के आविर्भाव का वर्णन है । हिंदू शास्त्र से प्रभावित लेखक की उदार दृष्टि ने ब्रह्मा-विष्णु-शिव-कृष्ण को भी नबी स्वीकार किया है ।

सुलतान का यथार्थ कवि-परिचय एवं सूफियों की आध्यात्मिक व्याकुलता उनके द्वारा रचित राधाकृष्ण विषयक पदावलियों में उपलब्ध है। वास्तव में वे राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक प्रेम-रूपक के ही कवि थे।

सैरंध्री *(म० पा०)*

यह कृ० प्र० खाडिलकर (दे०) के नाटक 'कीचक-वध' की स्त्री-पात्र है। समसामयिक परिस्थितियों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति सैरंध्री के चरित्र के माध्यम से हुई है। कीचक (लॉर्ड कर्जन) के अत्याचारों से त्रस्त होकर यह महाराज विराट् (ब्रिटिश-साम्राज्य) के समक्ष दुहाई देती है, परंतु इसकी दुहाई नक्कार-खाने में तूती की आवाज बनकर रह जाती है। दुःखों की लंबायमान छाया को धैर्यपूर्वक सहने संबंधी कंक (दे०) भट्ट के उपदेश इसके संयम को हिला देने को पर्याप्त हैं। रह-रहकर इसका आहत नारी-स्वाभिमान कंक भट्ट की कायरता को कोसने लगता है। अभेद्य नैराश्य के विकट क्षणों में बल्लभ (दे०) (भीम) के सांत्वना भरे शब्द इसके थके-हारे मन का किनारा बनते है। विराट द्वारा अपनी असमर्थता प्रकट करने पर इसका नारी-हृदय कराह उठता है। नीरव-निर्जन देवालय में कीचक द्वारा बल-प्रयोग के क्षणों में इसके मन की दुविधा-मयी स्थिति इसके चरित्र को द्विगुणित कर देती है। संक्षेप में, सैरंध्री की दैन्य असमर्थता उस युग के व्यक्तित्व की ही असमर्थता जान पड़ती है। दूसरे शब्दो मे, हम इसे राजनीतिक प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं।

सैरु कोहिस्तान *(सिं० कृ०)* [रचना-काल—1942 ई०]

इस पुस्तक के लेखक हैं अल्लाह-बचायो यार-मुहम्मद समों। प्रकाशन 1942 ई० मे 'सिंधी अदब लाइ मर्कज़ी सलाहकार बोर्ड' कराची ने किया था। यह एक यात्रा-संस्मरण है जिसमें लेखक ने बलोचिस्तान के एक भाग कोहिस्तान में की हुई अपनी यात्रा का वर्णन किया है। उस प्रदेश के लोगों के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज आदि का लेखक ने अति रोचक ढंग से मुहावरेदार भाषा में वर्णन किया है। लेखक ने प्रादेशिक उपभाषा के शब्दों और मुहावरों का भी सुंदर ढंग से प्रयोग किया है। सिंधी मे यात्रा-वर्णन पर जो भी पुस्तकें प्रकाशित हुई है, उन सबमें भाषा और शैली की दृष्टि से यह उत्तम पुस्तक है। सिंध-सरकार से इस पर लेखक को पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है।

सैलानी छंद *(पं० पारि०)*

अतुकांत द्वंद्वमुक्त कविता (ब्लैंक वर्स) के लिए इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अध्यापक पूर्णसिंह (दे०) ने किया था। यद्यपि गुरु अर्जुनदेव की रचनाओं में भी कहीं-कही यह प्रवृत्ति लक्षित होती है, फिर भी आधुनिक पंजाबी काव्य में इसे प्रतिष्ठित करने का श्रेय पूर्णसिंह को ही है। छंद-बंध के प्रति आधुनिक कवियों की उपेक्षा के कारण इस प्रवृत्ति का प्रचार क्रमशः बढ़ता गया और वर्तमान पंजाबी काव्य में इसी का साम्राज्य है परंतु पूर्णसिंह के छंदों का नैपुण्य किसी अन्य पंजाबी कवि में नहीं मिलता।

सोणर सोलेड *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1956 ई०]

पार्वती प्रसाद बरुवा (दे०) द्वारा लिखित इस प्रतीकात्मक गीति-नाट्य में कई सुरीले प्रतीकात्मक गीतों का समावेश है। 'सोणर सोलेड' का भावार्थ है शाश्वत आनंद। नाटक का मुख्य पात्र बीन बरागी शाश्वत आनंद की खोज मे व्यस्त रहता है, कोई उसकी जिज्ञासा का समाधान नही करता। अंत में उसे उपलब्धि होती है कि शाश्वत आनंद बाहर से नहीं जीवन के भीतर से प्राप्त होता है। मेटर लिंक के 'ब्लू बर्ड' के समान यह नाटक प्रतीकात्मक है। इसके गीत असमीया-साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। असमीया के प्रतीकात्मक नाटकों में इसका विशेष स्थान है।

सोनार तरी *(बँ० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1893 ई०]

यह रवीन्द्रनाथ ठाकुर (दे०) की 1891-93 ई० के मध्य लिखी 43 कविताओं का संग्रह है। पुस्तक का नाम इस ग्रंथ की प्रथम कविता के आधार पर रखा गया है। 1893 ई० में इसका प्रकाशन हुआ था। जिस विस्मित भाव से रवि ठाकुर ने प्रकृति और मानव के रूप तथा रस का पान किया है, वही इन कविताओं में प्रस्फुटित हुआ है। सीमा के साथ असीम की मिलन-कथा, प्रकृति-प्रेम, प्रकृति के साथ आत्मा का अविच्छिन्न संबंध आदि इन कविताओं का विषय है। इसमें कवि-प्रतिभा का पूर्ण

उन्मेष है। उसने इस काव्य के साथ नयी दिशा ग्रहण की है। इन कविताओ मे प्रकृति के साथ गभीर आत्मीयता का परिचय पाया जाता है।

भाषा का ऐश्वर्य एवं छद-वैचित्र्य इसका वैशिष्ट्य है। इसमे दो भाव-धाराएँ मिलती है—(अ) जीवन के प्रति लगाव, और सुख-दुःख, विरह-मिलन के प्रति अनुराग, तथा, (आ) सौंदर्य के प्रति निरुद्देश्य यात्रा। इसी आदर्श सौंदर्य की आकाक्षा के कारण जगत एवं जीवन मे कवि ने सौंदर्य की प्रतिष्ठा करनी चाही है।

सोनेरी चांद रूपेरी सूरज *(गु० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1967 ई०]

विद्याविहार, अहमदाबाद, द्वारा 1967 ई० मे प्रकाशित 'सोनेरी चांद रूपेरी सूरज', 'झीणाभाई देसाई', 'स्नेहरश्मि' (दे०) का सबसे पहला हाइकू-सग्रह है। इस पुस्तक मे कवि ने आरभ मे 'थोडुक अगत' कह कर अपनी उस भावभूमि को स्पष्ट किया है जिसने हाइकू नामक काव्य-रूप ग्रहण करने की तत्परता जानी और इस प्रकार इसमे संकलित हाइकुओ मे नए भाव-बोध के साथ नया काव्य-रूप-बोध भी समाविष्ट हो गया है। इसमे 365 हाइकू संगृहीत हैं जिसमे 260-61, 267-68 और 270-71 ताका की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। अंत मे परिशिष्ट के रूप मे काका कालेलकर जी के दो पत्र, हाइकू के रूप-विधान, उसकी लाक्षणिकताओ आदि की चर्चा तथा ग्रथसूची प्रस्तुत है। हाइकू 17 वर्णवाला जापानी काव्यरूप है। इसमे 5-7-5 के वर्णक्रमानुसार तीन पंक्तियाँ होती हैं। 'स्नेहरश्मि' ने सर्वत्र ईसी क्रम का आग्रह रखा है। यद्यपि यह ठीक है कि हाइकू के चित्र कवि-मन मे उभरते हुए बिबो की ही अभिव्यक्ति है तथापि इन चित्रो मे कवि मौन और चित्र मुखर रहते हैं। इनमे प्राण-तत्त्व-रूप स्थित व्यंग्य ही प्रमुख होता है। प्रस्तुत सग्रह मे कवि द्वारा अनुभूत आकाश की अनिर्वचनीय सुदरता, धरती की अनवद्य सुषमा तथा प्रकृति की रहस्यमयी अनिद्य सौंदर्य-युक्त मुखरता के भिन्न-भिन्न मनोहारी चित्र वर्तमान हैं। कवि ने स्वयं हाइकू की चर्चा करते समय जिन ऊर्ध्वधर, समतल और विकर्ण चित्रो की बात उठाई है, उसके नमूने भी इन्ही रचनाओ मे उपलब्ध होते हैं। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इन रचनाओ मे वादो की सी विचार-गंभीरता नही है; भाव भी प्रकृति के अनुपम चित्रों मे अंगरूप स्थित हैं। उनका पृथक् अस्तित्व नही है। 'स्नेहरश्मि' के इस संग्रह से दो बातो की सिद्धि हुई है : (1) गुजराती साहित्य मे एक काव्य-रूप निश्चित हुआ है, (2) हाइकू के सफल समायोग के लिए मार्ग उन्मुक्त हुआ है। जापानी भाषा की चित्रात्मकता और शब्द-प्रयोग के कारण अनेकार्थता को देखते हुए भारतीय भाषाओ मे हाइकू का प्रयोग जितना कठिन लगता था, 'स्नेहरश्मि' के इन प्रयोगो के बाद वह कठिनता तो दूर हुई ही है, साथ ही, नए काव्य-रूप के लिए—जो शुद्ध कला के अधिक निकट है—पथ प्रशस्त हुआ है। यही इस संग्रह की सबसे बडी उपलब्धि है।

सोन्याच्या कळस *(म० कृ०)*

यह औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न वर्ग-भेद की विषम समस्या पर मामा वरेरकर (दे०) का समस्या नाटक है। धन के बल से बडी-बडी मिलो की स्थापना के उपरात पूँजीपति वर्ग श्रमिको का मनचाहा शोषण करते हैं। नाटककार का अभिमत है कि मिलो के स्थायित्व पर श्रमिको का भी अधिकार होना चाहिए। यदि ऐसा संभव हो सके तो महाराष्ट्र की श्रमिक-शक्ति तथा पूँजी-पति—गुजराती समुदाय के सतत सहयोग के बल पर मिलो पर सोने के कलश निश्चित रूप से संस्थापित हो सकेंगे। आलोच्य नाटक के कथा-विधान मे नाटककार ने अतिशय कल्पना का अवलंब लिया है। धनाढ्य नायक के सामान्य मजदूर की तरह मिल मे कार्य करने संबंधी परिकल्पना द्वारा वर्गभेद की गहरी खाई को पाटने का नाटककार का प्रयास स्तुत्य है। संक्षिप्त पात्र एवं प्रसंगानुकूल भाषा से युक्त संवाद कथा-विकास मे सहायक हैं। बाबा शिगवण तथा बिजली के चरित्र का अंकन मनोहारी हैं। साम्यवादी महद् विचारो के प्रचार-प्रसार की दृष्टि को लेकर लिखे इस नाटक मे प्रभावान्विति की दृष्टि से एक वैचारिक बोझिलता है जिसके कारण संवादो मे अभिनयोचित चाचल्य का अभाव है। हाँ! समसामयिक वैचारिक आंदोलनो के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से इस नाटक का महत्व असंदिग्ध है।

सोपानम् *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1929 ई०]

साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत यशस्वी कवयित्री बालामणिअम्मा के तीन दशकों के साहित्यिक प्रयासो मे से चयन करके प्रस्तुत बृहत् कविता-सग्रह प्रका-

शित किया गया है। इस ग्रंथ को तीन भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग में मातृप्रेम पर आधारित मधुर पारिवारिक संबंधों के शुद्ध भावों को स्वर देने वाली कविताएँ संगृहीत हैं। दूसरे भाग की कविताओं में इन्हीं भावों की दार्शनिक अंतर्दृष्टि प्रकट है। तीसरे भाग की कविताएँ दार्शनिक रहस्यवाद की हैं और कवयित्री की अंतः प्रवृत्ति को सूचित करती हैं।

'सोपानम्' बालामणिअम्मा के काव्य-जीवन का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है। मातृ-पुत्र-संबंध के ईश्वरीय महत्व का उसके दार्शनिक मूल्यों के प्रकाशन और विश्लेषण करने में इस कवयित्री का काव्य-कौशल अनन्य है। इनकी कविता में कला और दर्शन-शास्त्र का समुचित सम्मिलन है। उनकी इन सभी साहित्यिक विशेषताओं के दर्पण के रूप में 'सोपानम्' की कविताओं का साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

सोबगिन सोने *(क० कृ०)*

यह बुक्कराय के पौत्र देपराज नामक कवि का काव्य है। इसमें सात कथाओं का संग्रह है। यह कन्नड के लोक छंद 'सांगत्य' (दे०) में रचा गया है। इसका कवि काव्य के अष्टादश वर्णन के व्यामोह से मुक्त नहीं है। इसका कारण यह है कि कवि अपने काव्य को परंपरागत काव्यबंध में रखना चाहता है। इसमें अलंकारों का, विशेषतः शब्दश्लेष का, अच्छा प्रयोग हुआ है। इसकी शैली में सरसता है और भाषा प्राचीन कन्नड़ है। इसके पद्यों में यत्र-तत्र लय ठीक नहीं है, पर इतने मात्र से कवि की कल्पनाशक्ति अनभिव्यक्त नहीं है।

सोमनाथ *(हिं० ले०)*

सोमनाथ माथुर भरतपुर के महाराज बदनसिंह के कनिष्ठ पुत्र प्रतापसिंह के आश्रय में रहते थे। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—'रसपीयुपनिधि', (रचना-काल 1737 ई०), शृंगारविलास', 'कृष्णलीलावती', 'पंचाध्यायी', 'सुजानविलास' और 'माधव-विनोद'। प्रथम दो ग्रंथ काव्यशास्त्र से संबद्ध हैं। 'मानव-विनोद' एक पद्यात्मक नाटक है जिसमें भवभूति (दे०) 'मालती-माधव' नाटक को रूपांतरित करने का असफल प्रयास है। 'रसपीयुपनिधि' में काव्य के विविध अंगों का निरूपण 22 तरंगों में किया गया है। निरूपण के आधार-ग्रंथ संस्कृत के 'काव्यप्रकाश' (दे०), 'साहित्यदर्पण' (दे०) और 'रसतरंगिणी' (दे०) के अतिरिक्त हिंदी के रस-रहस्य (कुलपति—दे०) और 'भाषाभूषण' (दे०) (जसवंतसिंह) आदि ग्रंथ भी हैं। यह ग्रंथ अति सरल, सुबोध और संक्षिप्त शैली में रचित है। शास्त्रीय प्रसंगों के निर्वाचन में भी ग्रंथकार ने सरल मार्ग का अवलंबन किया है। यही कारण है कि दुरूह प्रसंगों को इस ग्रंथ में स्थान नहीं मिला। 'शृंगारविलास' वस्तुतः स्वतंत्र ग्रंथ नहीं है। 'रसपीयूषनिधि' में निरूपित शृंगार रस और उसके अंतर्गत नायक-नायिका-भेद-विषयक सामग्री को नाममात्र के परिवर्तन के साथ प्रस्तुत कर ग्रंथ को स्वतंत्र नाम दे दिया गया है। उक्त दोनों ग्रंथों में प्रस्तुत उदाहरणों में कवि का कवित्व-कौशल और कल्पना-वैभव मोहक है, शब्दावली सरल और ऋजु है।

सोमनाथचरिते *(क० कृ०)* [रचना-काल—बारहवीं शती का उत्तरार्ध]

महाकवि राघवांक (दे०) की रचनाओं में 'सोमनाथचरिते' (सोमनाथ-चरित) का विशेष महत्व है। सौराष्ट्र में आदय्या नाम के एक शिव-भक्त थे। उन्होंने पुलिगेरे में आकर सौराष्ट्र-सोमनाथ की स्थापना की और अनेक जैनों को शिवभक्त (वीरशैव) बनाया। उनके इस चरित का वर्णन 'सोमनाथचरिते' में है। वार्धक षट्पदी में रचित इस काव्य में पाँच आश्वास या सर्ग तथा 500 पद्य हैं। हरिहर के 'आदय्यन रगळे' से प्रेरणा ग्रहण कर राघवांक (दे०) ने इस काव्य का प्रणयन किया है, तथापि इसमें प्रतिभा के अच्छे निदर्शन मिलते हैं। 'हरिश्चंद्रकाव्य' (दे०) जैसा प्रौढ़ काव्य लिखने के बाद इसकी रचना होने के कारण इसमें कवि की प्रतिभा और कल्पना का पूर्ण विकास दृष्टिगत होता है। कथारंभ से ही कई अद्भुत सन्निवेश इस काव्य में देखे जा सकते हैं। इसमें कवि ने अष्टादश-वर्णन का व्यामोह त्यागा नहीं है, अतएव कतिपय आलोचकों के कथनानुसार कथानक के साथ इनका समन्वय नहीं हुआ, औचित्य का भंग हुआ है। परंतु, इनका सत्य है कि आदय्या के चरित्र-चित्रण में कवि ने निष्ठा दिखाई है। आदय्या अनजान में जैन धर्म को मानने वाली पद्मावती के प्रणय-बंधन में पड़ जाता है। उसकी शिव-भक्ति, ऐकांतिकता और कष्टसहनशीलता का कवि ने अच्छा चित्रण किया है। काव्य के वर्णनों में सांप्रदायिकता और शैली में विषमता होते हुए भी अपनी नाटकीयता के कारण

वह रम्य और आस्वाद्य हो गया है। वर्णनों में कवि की कल्पनाशक्ति प्रकट हुई है।

सोमनाथविजयमु *(त० कृ०)* [रचना-काल—1924 ई०]

इसके लेखक कविसम्राट नोरि नरसिंहशास्त्री (दे०) हैं। यह छः दृश्यों का एक छोटा ऐतिहासिक नाटक है। महमूद गज़नवी के द्वारा प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर के नष्ट किए जाने की ऐतिहासिक घटना ही इस नाटक के कथानक का आधार है। उक्त ऐतिहासिक तथ्य को लेते हुए भी लेखक ने उसमें कुछ परिवर्तन किया है। इस घटना का व्याख्यात्मक चित्रण करते हुए शास्त्री जी ने अपनी यह राय प्रतिपादित की है कि उस विध्वंस का कारण मंदिर के रक्षकों की दुर्बलता अथवा गज़नवी की शक्ति नहीं है, बल्कि आकाशलिंग के रूप में अपने को बंदी बना देने से असंतुष्ट भगवान का क्रोध ही है। प्रस्तुत व्याख्या समाज के बदलते हुए मूल्यों के अनुसार ही है। इसमें घटनाओं का सप्रयोजन-क्रम कथोपकथन की सरलता तथा पात्रों की सजीवता आदि अनेक गुण देखने को मिलते हैं। इस नाटक में अंक विभाजन नहीं है। एक ऐतिहासिक घटना का विवरण मात्र देने की अपेक्षा उसके द्वारा अपना ही एक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना लेखक का ध्येय है। तेलुगु के ऐतिहासिक नाटकों में 'सोमनाथविजयमु' कुछ अपनी ही विशेषता रखने वाली सफल रचना है।

सोमनाथुडु, पाल्कुरिकि [समय—तेरहवीं-चौदहवीं शती ई०]

ये द्वितीय प्रतापरुद्र के समकालीन कवि थे। जन्म से ब्राह्मण होने पर भी वीरशैव संप्रदाय में दीक्षित होने के उपरांत इन्होंने ब्राह्मणत्व का त्याग कर दिया। इनकी रचनाएँ संस्कृत, तेलुगु तथा कन्नड तीनों भाषाओं में प्राप्त होती हैं। अतः आंध्र एवं कर्नाटक दोनों प्रांतों में इन्हें विशेष ख्याति मिली। इन्होंने तेलुगु में 'बसव पुराणमु' (दे०), 'पंडिताराध्यचरित्रमु' (दे०) 'वृषभेश्वर शतकमु' (दे०), 'येन्नमल्लु सीसमुलु' आदि की रचना की है। ये सभी रचनाएँ शैवमत-प्रतिपादक होकर भी, उदात्त काव्य-गुण से युक्त हैं।

इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है 'बसव-पुराणमु', जो शैवों का वेद माना जाता है। इसमें वीरशैव संप्रदाय' के प्रवर्तक बसव का जीवन चरित्र वर्णित है। बसव का बचपन से ही पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण भक्त बन जाना, यज्ञोपवीत आदि श्रेष्ठता के बाह्य चिह्नों व वर्णव्यवस्था का परित्याग, कठोर तपस्या, शिव-साक्षात्कार ज्ञान प्राप्ति के उपरांत भक्ति प्रधान, वर्ण-व्यवस्थाहीन तथा सर्वजनसुलभ नूतन शैवसंप्रदाय का प्रचार आदि घटनाएँ इसमें वर्णित हैं। बसव के जीवन चरित्र के साथ साथ इस काव्य में इनके शिष्यों की जीवन-गाथाएँ भी सम्मिलित की गई हैं। कवि ने वेद, स्मृति, आगम आदि अनेक आर्ष-ग्रंथों से शिव के स्वरूप के संबंध में प्रमाण एकत्र कर, उनके विराट् स्वरूप का चित्रण किया है। शैव इन्हें अपना गुरु, तथा 'भृंगि' का अवतार मानते हैं। तेलुगु का अधिकांश वीरशैव-वाङ्मय इनसे प्रभावित है। इनका 'वृषाधिपशतकमु' तेलुगु का प्रथम शतक माना जाता है और 'पंडिताराध्यचरित्रमु' मल्लिकार्जुन पंडिता-राध्य के जीवन चरित पर आधारित है।

इस कवि ने साहित्य-रचना में स्वतंत्र मार्ग का अनुसरण किया है। इनकी भाषा सामान्यतः शिष्ट व्यावहारिक तथा सशक्त चेतना एवं व्यंजनापूर्ण लोकोक्तियों से परिपूर्ण है। किंतु भक्ति के आवेग के कारण कहीं कहीं संस्कृत-गर्भित क्लिष्ट पदावली का भी प्रयोग मिलता है। इन्होंने 'द्विपद' नामक तेलुगु छंद को काव्य में प्रतिष्ठित किया, आगे चलकर द्विपद शैली के कवियों ने इन्हीं का अनुसरण किया है।

इनकी समस्त रचनाओं में एकमात्र शिव के स्वरूप का ही विस्तार होने के कारण इस कवि को प्रतिभा के अनुरूप ख्याति नहीं मिल सकी।

सोमन्ना, नाचन [समय—तेरहवीं-चौदहवीं शती ई०]

ये अष्टभाषा विशारद तथा सभी आर्ष-ग्रंथों के पंडित थे। 'साहित्य रसपोषकुडु', 'सविधान चक्रवर्ती', सर्वज्ञुडु, सकल भाषा भूषणुडु, नवीन गुण सनाथुडु', आदि इनकी उपाधियाँ थीं। इनका 'उत्तरहरिवंशमु', (दे०) काव्य लघु होकर भी इनकी व्यापक ख्याति का कारण बना है। संस्कृत-मूल के केवल कुछ प्रमुख अंशों के आधार पर स्वतंत्र शैली से इसकी रचना की गई है। इसमें नरकासुर-वध, कृष्ण द्वारा ब्राह्मण-पुत्र का पुनर्जीवित होना, बाणासुर की कथा आदि प्रमुख प्रसंग हैं। इसमें कवि ने यह प्रमाणित करने का यत्न किया है कि कृष्ण साक्षात् विष्णु हैं तथा विष्णु ही परम देव हैं। समस्त ब्रह्मांड के अधिनायक के रूप में कृष्ण का परमोत्कृष्ट स्वरूप इसमें प्रकट किया गया है।

उर्वशी-नरकासुर-संवाद तथा उषा-अनिरुद्ध की कथा शृंगार-रस-पोषण में इनकी प्रतिभा के उत्तम उदाहरण है। कथा-सृष्टि तथा वस्तु-वर्णन में पुराण-पद्धति का अनुसरण न करके, इन्होंने प्रबंध-पद्धति का ही अनुसरण किया है। शब्दालंकारों तथा दीर्घ समासों की अतिशयता के होने पर भी इनकी कविता प्रवाहमयी है तथा ओजगुण के आदर्श के रूप में ग्राह्य हो सकती है। कुछ स्थानों पर तेलुगु लोकोक्तियों का सुंदर प्रयोग भी मिलता है। कहीं-कहीं अत्यधिक दीर्घ समासों तथा यमक, अनुप्रास आदि अलंकारों के कारण इनकी कविता में क्लिष्टता आ गई है तथा भावावेश के असंयम के कारण औचित्य-भंग भी पाया जाता है।

सोमप्रभाचार्य *(अप० ले०)* [रचना-काल—1184 ई०]

सोमप्रभाचार्य अपभ्रंश, प्राकृत और संस्कृत के प्रकांड पंडित थे। इनका जन्म प्राग्वाट-कुल के वैश्य परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम सर्वदेव था। इन्होंने कुमारावस्था में ही जिन-दीक्षा ले ली। ये तर्क-शास्त्र, काव्य-शास्त्रादि के पंडित और कुशल धर्मोपदेष्टा थे।

इन्होंने 'सुमतिनाथ चरित्र' और 'कुमार पाल प्रतिबोह' नामक प्राकृत ग्रंथ लिखे थे। 'कुमारवालप्रतिबोह' (दे०) के अंतर्गत कई प्रकरण अपभ्रंश में भी लिखे गए हैं। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'सूक्तिमुक्तावली', 'शतार्थ काव्य' इत्यादि ग्रंथ संस्कृत में भी लिखे थे। 'शतार्थ काव्य' में एक संस्कृत छंद की सौ प्रकार से व्याख्या की गई है। इससे इनकी अगाध विद्वत्ता का आभास मिलता है। इसी ग्रंथ के कारण इनका नाम शतार्थिक भी पड़ गया था।

सोमयाजी, गंटिजोगि *(ते० ले०)* [जन्म—1900 ई०]

ये आंध्र एवं मद्रास विश्वविद्यालयों में दीर्घ काल तक अध्यापन-कार्य के उपरांत केंद्रीय वैज्ञानिक शब्द निर्माण-समिति के सदस्य के रूप में कार्य कर रहे हैं। कविता, भाषाविज्ञान एवं समालोचना के क्षेत्रों में इनकी कई महत्वपूर्ण रचनाएँ है। आंध्र भाषा के इतिहास से संबंधित इनका गवेषणात्मक ग्रंथ इस विषय पर अत्यंत उत्तम माना जाता है। इनकी 'द्राविड भाषलु' नामक रचना द्राविड भाषाओं के उद्भव एवं विकास से संबंधित है। 'रामचंद्रुनि हंपीयात्रा' इनकी काव्य रचनाओं में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसमें विजयनगर के पुरातन वैभव का वर्णन करके, उसके पतन पर कवि ने तीव्र क्षोभ व्यक्त किया है।' 'आंध्रभाषाविकासमु' (दे०) नामक इनकी अन्य पुस्तक भी अत्यंत प्रसिद्ध है।

सोमले *(त० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

वास्तविक नाम इलक्कुमण चेट्टियार। जन्म तमिलनाडु के रामनादपुरम ज़िले के नेर्कुप्पै नामक स्थान में हुआ। आयात-निर्यात-व्यापार के सिलसिले में कुछ वर्ष बर्मा में व्यतीत किए। अन्नामलै विश्वविद्यालय मे संपर्क-अधिकारी के रूप में रहे। सोमले स्वतंत्र लेखक हैं। प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'आस्ट्रेलियाविल ओरु मादम', 'अमेरिकावै पार' (यात्रा-साहित्य), 'वळरुम तमिल' (तमिल गद्य-साहित्य का इतिहास), 'नेयवेली' (व्यवसाय-संबंधी), 'पंडित मणी' (जीवनी), 'चेट्टि नाडुम तमिलुम, (भाषा-विषयक शोध) आदि। 'मावट्ट वरिशै' शीर्षक से प्रकाशित तमिलनाडु के विभिन्न भूभागों से संबंधित इनकी पुस्तकों में उस भूभाग के जीवन का सांगोपांग चित्र प्राप्त होता है। सोमले को सूचना-प्रधान साहित्य एवं यात्रा-साहित्य की रचना में विशेष सफलता मिली है। यात्रा-कृतियों में भी सूचना का आधिक्य दीख पड़ता है।

सोमशेखर शर्मा, मल्लंपल्लि *(ते० ले०)* [जन्म—1891 ई०; मृत्यु—1963 ई०]

इनका जन्म मिनुमिचुलपाडु अग्रहार में हुआ था। बचपन में इन्होंने संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया था। मैट्रिक परीक्षा पास कर ये मद्रास पहुँचे और डा० चिलुकूरि वीरभद्रराव के संपर्क मे आए तथा कॅनिमर्रा पुस्तकालय में हस्तलिखित प्रतियों के लिपिक (कौपीइस्ट) के पद पर नियुक्त हुए। श्री कोमर्राजुलक्ष्मणराव को विज्ञानसर्वस्व (विश्वकोश) के निर्माण में इन्होंने सहयोग प्रदान किया।

1914 से 1918 ई० तक इन्होंने चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहमु (दे०) के 'देशमाता' नामक पत्र का संपादन किया; 'आंध्राभ्युदय-ग्रंथमाला' की स्थापना की तथा कई पुस्तकें प्रकाशित की। 1923 ई० के बाद ये आंध्र विश्वविद्यालय मे इतिहास-विभाग के शोध-विभाग के अधिकारी बने। प्राचीन दक्षिण भारत का इतिहास, दक्षिण

मे बौद्ध युग, आध्र रेड्डी युग आदि विषयो के ये अधिकारी विद्वान् थे। प्रारभ से शोध-कार्य ही इनके जीवन का लक्ष्य रहा। शिलालेख, ताम्रपत्र आदि की लिपियो के ये अच्छे ज्ञाता थे।

'ए फौरगौटन चैप्टर ऑफ आध्रा हिस्ट्री' और 'ए हिस्ट्री ऑफ द रेड्डी किंगडम' जैसी रचनाएँ शर्मा जी की प्रकाड विद्वत्ता के प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। इनके अतिरिक्त 'आध्र वीरुलु', 'अमरावती स्तूपमु' 'चरित्र लेखलु (सकलन), 'आध्र-देश चरित्र-सर्वस्वमु', 'रोहिणी चद्रगुप्तमु' (उपन्यास) इनकी अन्य उल्लेखनीय रचनाएँ है। इन्होने इतिहास से सवद्ध सैकडो लेख लिखे हैं।

आध्र-देश के इतिहास के इने-गिने विद्वानो मे शर्मा जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सोमसुंदर पुलवर *(त० ले०)* [जन्म—1876 ई०, मृत्यु—1953 ई०]

इनका जन्म श्रीलका मे हुआ। इन्होन तमिल अध्यापक के रूप मे अपनी जीविका आरभ की। 1930 ई० से 1950 ई० तक साहित्य-सेवा मे लगे रहे। इन्होने मुख्य रूप से बच्चो के लिए कविताएँ लिखी। इनकी 'आडिपिरप्पु' और 'कत्तरिवरुळि' से इस क्षेत्र मे नये युग का सूत्रपात हुआ। 'इलगे वळमुम् ताल विलासमुम्' (यात्रा विवरण-पद्य मे) दक्षिणी लका की उपजाऊ भूमि और उत्तरी लका के तालवन के सौंदर्य का वर्णन है। इस कृति की विभिन्न कविताओ मे रामायण, महाभारत और पुराण के प्रसग भरे पडे हैं। इनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'नामळ् पुहळ्मालै', 'उयिर इळ ग कुमरन्', 'तदैयार पदिट्रुप्पत्तु' आदि। 'तदैयार पदिट्रुप्पत्तु' कवि की आत्मचरितात्मक कृति है। इसमे इन्होने पिता की दयालुता, कर्तव्यपरायणता आदि गुणो का वर्णन किया है। इसे इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना कहा जा सकता है। सोमसुदर पुलवर के प्रगीत भी अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। ये श्रीलका के तमिल कवियो मे पर्याप्त प्रसिद्ध हैं।

सोमसुदर भारती *(त० ले०)*

बीसवी शती मे तमिलनाडु म तमिल राष्ट्रीयता का प्रचार करने वालो मे सोमसदर भारती का विशिष्ट स्थान है। इन्होने अपने जीवन का आरभ वकील के रूप मे किया। इन्हे अपने समय के विभिन्न तमिल विद्वानो से तमिल साहित्य के अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। साहित्यिक विषयो पर इनके व्याख्यान अत्यत प्रभावशाली हुआ करते थे। इन्होने कुछ समय के लिए अन्नामलै विश्वविद्यालय मे तमिल आचार्य के रूप मे भी कार्य किया। सोमसुदर भारती की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे कवि, आलोचक, निबधकार और टीकाकार थे। तमिल एव अँग्रेजी के अच्छे विद्वान थे।

'मारिवायिल' (मेघदूत) और 'मगल कुरिच्चिपोगल निकलच्चि' इनकी प्रसिद्ध काव्य-कृतियाँ हैं। 'मारिवायिल' मे पाड्य राजकुमारी चित्रागदा द्वारा स्वय को और अपने पुत्र बभ्रुवाहन को छोड इद्रपुरी गए हुए पति अर्जुन के पास मेघ को दूत बनाकर भेजे जाने का वर्णन है। इस बीसवी शती मे रचित तमिल-दूत काव्यो मे सर्वश्रेष्ठ माना गया है। 'मगल कुरिच्चिपोगल निकलच्चि' एक सामाजिक कथाकाव्य है। इसम तमिल लोगो के प्रधान त्यौहार पोगल की पृष्ठभूमि मे उच्च-मध्यवर्गीय लोगो के जीवनोद्देश्य और भावनाओ का विश्लेषण किया गया है। तमिल के प्राचीनतम व्याकरण ग्रथ 'तोलकाप्पियम' (दे०) के पोरुळदिकारम' खड पर इनकी टीका पर्याप्त प्रसिद्ध है। 'दशरथन निरैवुम कैकेयी कुरैवुम' मे दशरथ और कैकेयी के चरित्र का विश्लेषण नूतन दृष्टिकोण से किया गया है। 'चेरर् ताय मुरै', 'तिरुवळ्ळुवर', 'पलैत्तमिलनाडु' आदि इनकी अन्य प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। अँग्रेजी म भी इन्होने कुछ कृतियो की रचना की है। इन्हाने अपनी कृतियो मे प्राय क्लिष्ट एव पाडित्यपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। बीसवी शती के तमिल साहित्यकारो मे इनका विशिष्ट स्थान है।

सोमसुदरम, मी० प० *(त० ले०)* [जन्म—1921 ई०]

इनका जन्म तिरुनेलवेली जिले के मीनाक्षीपुरम् नामक स्थान म हुआ। इनका उपनाम है सोमु। इनकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—'इळवेनिल' (कविता-सग्रह), 'वेळाद गानम' (कहानी सग्रह), 'रविचद्रिका' (सामाजिक उपन्यास), 'कडल कड कनवु' (ऐतिहासिक उपन्यास); 'अक्करै शीमैयिल' (यात्रा-साहित्य) आदि। इनकी 'इळवेनिल' और 'वेळाद गानम' मद्रास सरकार मे पुरस्कृत हुई हैं। 1963 ई० म इन्हे अपनी अक्करै शीमैयिल' नामक कृति पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला। इन्होने राजा जी (दे० चक्रवर्ती राजगोपालाचारी) के साथ मिल कर 'तिरुमूलर तवमाति' और

'मृदल मूवर तोहुप्पु' नामक कृतियों की रचना की। श्री सोमु पिछले तीस वर्षों से प्रसारण-संबंधी कार्यों में लगे हुए हैं। वे आजकल आकाशवाणी के दक्षिणी क्षेत्र के प्रमुख प्रोग्राम संयोजक के रूप में कार्य कर रहे हैं।

सोमानंद *(सं० ले०)* [समय—नवीं शती]

सोमानंद प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के जनक हैं। इनके पिता का नाम आनंद तथा पितामह का नाम अरुणादित्य था। अपनी 'शिवदृष्टि' के अंतिम भाग में सोमनाथ ने सिद्धों की एक परंपरा का उल्लेख किया है। वस्तुतः इन्हीं सिद्धों द्वारा ही लुप्तप्राय शैवागमशास्त्र का पुनरुद्धार हुआ।

सोमानंद के इन तीन ग्रंथों की चर्चा की जाती है—(1) 'शिवदृष्टि', (2) 'विवृति', (3) 'परात्रिंशिका' विवृति। इनमें से अंतिम दो के उद्धरण मात्र प्राप्त होते हैं।

'शिवदृष्टि' प्रत्यभिज्ञाशास्त्र का आदि ग्रंथ है। इसमें 700 श्लोक हैं। वास्तव में सर्वप्रथम इसी ग्रंथ में यह शास्त्र दर्शन की भूमि पर प्रतिष्ठापित हुआ। आगे चलकर उत्पलदेव (दे० उत्पल) ने इसका विकास किया। उत्पल ने 'शिवदृष्टि' पर एक टीका भी लिखी थी जो अब प्राप्त नहीं है। सोमानंद एक बहुज्ञ आचार्य थे। उन्होंने सभी दर्शनों की प्रायः सभी शाखाओं का सम्यक् अध्ययन कर रखा था। वे 'शब्दब्रह्मवाद' तथा 'सत्कार्य-वाद' के कटु आलोचक हैं। वे 'अद्वैतवाद' के प्रबल समर्थक हैं तथा इसके लिए वेदों तथा उपनिषदों का सहारा भी लेते हैं।

सोमेश्वर शतक (क० कृ०) [रचना-काल—1299 ई०]

इसके रचयिता पालकुरिके सोमनाथ (दे०) माने जाते थे किंतु अब यह सिद्ध हुआ है कि इसके रचयिता पुलिगेरे के सोमनाथ हैं। ये वीरशैव कवि थे। इस ग्रंथ का रचना-काल 1299 ई० माना जाता है। कन्नड में शतकों की एक विशिष्ट परंपरा है। इसमें 'सोमेश्वर-शतक का विशिष्ट स्थान है। नीति की इसमें प्रधानता है। इसमें 107 मत्तेभविक्रीडित वृत्त हैं। प्रत्येक पद के अंत में 'हरराश्री चेन्नसोमेश्वर' का मुकुट है। कवि ने घोषणा की है कि नीति ही सकल लोक का साधन है। अतः उसने उसका निरूपण यहाँ किया है। इसकी भाषा काफ़ी अशुद्ध है, कई व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग मिलते हैं। काव्य-गुण इसमें हैं। इसमें लोक-जीवन की अनेक घटनाओं के वर्णन के द्वारा नीति का प्रतिपादन अत्यंत सरल किंतु प्रभावी शैली में हुआ है। कर्नाटक में यह कृति लोकप्रिय है और प्रायः लोग इसे उद्धृत भी करते हैं।

सोरठ, तारा वहेतां पाणी *(गु० कृ०)*

झवेरचंद मेघाणी (दे०) का यह उपन्यास सोरठी जीवन की जन-कथा है। इसमें न कोई नायक है, न नायिका। न इसमें किसी तरह का प्रणय-त्रिकोण ही है। इसमें तो समस्त सौराष्ट्र की जनता की उन घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है जिनका प्रत्यक्ष संबंध जीवन में होता है। इसमें लोक-जीवन का तरल प्रवाह दृष्टिगत होता है, व्यक्ति-विशेष की जीवनलीला नहीं। 'सोरठ तारां वहेतां पाणी' एक ऐसा यथार्थवादी उपन्यास है जिसमें सारे जनसमूह को नेतृत्व प्रदान किया गया है। इसीलिए स्वयं मेघाणी ने इसे अपने कथा-साहित्य में विशिष्ट प्रकार का निराला निरूपण' माना है। इस उपन्यास की विषय-वस्तु 1895 से 1919 ई० तक की कालावधि को समेटे हुए है और प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व के दो दशकों की सौराष्ट्री शौर्य-गाथाएँ इसमें रूपायित हैं। सौराष्ट्र की पुलिस के सिपाही, जमादार, फ़ौजदार, बहादुर काठी, अहीर इत्यादि के पराक्रमों के साथ-साथ उपन्यासकार ने काठियावाड़ी वीरांगनाओं के साहसिक प्रसंगों को भी इसमें अनुस्यूत किया है। डकैती, हिंसा, आतंक और अत्याचारों के लिए मशहूर सोरठी डाकुओं की मानवता से अनुप्राणित शौर्य-गाथाओं का बड़ी ही कुशलता और ममता से कृतिकार ने निरूपण किया है जो वस्तुतः मर्म-स्पर्शी है। इसमें व्यक्तियों का इतिहास है भी और नहीं भी है; पर यह समष्टि का इतिहास, महीपत, रूखड सेठ, सुरेंद्रदेव, सघारण देहलवा इत्यादि की वीरता और उत्सर्ग के प्रसंगों को युगीन वातावरण के संदर्भ में प्रस्तुत करने से कृति विशेष सफल बनी है। 'वहेतां पाणी' की औपन्यासिक शिल्प-विधि शिथिल और वस्तु-संकलना विशृंखलित है। कार्यान्विति का इसमें अभाव है। किंतु गद्य-शैली बहुत ही प्रभावोत्पादक और अभिव्यक्ति सशक्त होने के कारण कृति के ये दोष अखरते नहीं। मधुर सोरठी भाषा, प्रचलित मुहावरे और कहावतें, विशिष्ट शब्द-प्रयोग, गद्य की लय, इत्यादि के कारण 'वहेतां पाणी' गुजराती की विशिष्ट कृति मानी गई है।

सोहणी-महींवाल (प० कृ०) [रचना-काल—1849 ई०]

फजल शाह (दे०) की सर्वाधिक लोकप्रिय किस्सा कृति 'सोहणी-महींवाल' इसी कथा पर आधारित लगभग सत्तर पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाओ मे सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसमे तुल्ला कुम्हार की सुदर कन्या सोहणी और बलख के युवक व्यापारी इज्जत बेग के प्रेम की दु खात कथा है। सौदय-मुग्ध इज्जत बेग का सवस्व त्याग, चरवाहे के रूप म नायिका की चाकरी, प्रेमियो का गुप्त मिलन, नायिका की तुष्टि के लिए रान का मास अर्पण करना तथा मिलन के लिए कृतनिश्चय सोहणी का कच्चे घडे के सहारे नदी पार जाने के प्रयत्न मे प्राण त्याग कथा की मुख्य घटनाएँ हैं। सोहणी के विलाप एव मृत्यु से सबधित अतिम दृश्य म करुण रस की हृदयद्रावक व्यजना है। अपनी मार्मिकता तथा कल्पना-वैभव के लिए यह दृश्य सपूर्ण पजाबी काव्य मे अनुपम माना जाता है। छदो म चरणाशो की आवृत्ति के द्वारा कवि ने अद्‌भुत माधुर्य और तारल्य का सन्निवेश कर दिया है। इनमे बार-बार यमक और अनुप्रास का प्रयोग भी ध्यान आकृष्ट करता है।

सोहिला (प० पारि०)

'सोहिला का एक अर्थ है—आनद का गीत अथवा मगली गीत। उदा० मगल गावहु ता प्रभु भावहु सोहिलडा जुग चारे। (गु० ग्र० सा० सूही छद, म०1) तथा 'कहै नाटक सबद सोहिला सतगुरु सुनाइआ। (अनदु)।

'सोहिला का दूसरा अथ है—सु (उत्तम), 'हला' (खेल) जिसमे—ऐसा काव्य अर्थात् श्रेष्ठ विचारो से समन्वित काव्य।

गुरु ग्रथसाहब' म सोहिला शीर्षक के अतर्गत कतिपय विशेष पद्य सकलित हैं जिन्हे शयन समय म गान का विधान है। यथा—'तितु घर गावहु सोहिला।

सौंदरनद (स० कृ०) [समय—प्रथम शती ई० का पूर्वार्ध]

'सौंदरनद' अश्वघोष (दे०)-कृत महाकाव्य है। अठारह सर्गों के इस महाकाव्य म यौवन-सुलभ उद्दाम काम तथा धर्म के प्रति जागरित प्रेम के सघर्ष का वर्णन किया गया है। इस काव्य की कथा बुद्ध के सौतेले भाई, सौंदर्य की पूर्ण प्रतिमा सुदरनद के गृह त्याग, अपनी प्रियतमा सुदरी के मोह मग तथा प्रव्रज्याग्रहण से सबधित है।

'सौंदरनद' अश्वघोष के दूसरे महाकाव्य 'बुद्ध-चरित' की अपेक्षा अधिक सरस तथा सफल काव्य है। इसमे भोग मे लीन नद को बुद्ध द्वारा उससे विरत करने के प्रयास तथा उसके हृदय के द्वद्व एव सघर्ष की सफल अभिव्यक्ति की गई है। नद तथा सुदरी की मूक-वेदना के चित्रण म अश्वघोष को जितनी सफलता मिली है उतनी ही बौद्ध धम के उपदेशो को अकित करने मे भी मिली है। सौंदरनद' मे अश्वघोष का काव्य-कौशल सर्वथा सराहनीय है। यह अश्वघोष की सर्वश्रेष्ठ कृति है।

सौंदरनदमु (ते० कृ०) [रचना-काल—1930 ई०]

यह 'सौंदरनद' बुद्ध के सौतेले भाई नद तथा उनकी युवा पत्नी सुदरी द्वारा ससार के सुखो को त्याग करके भिक्षुक-वृत्ति अगीकार करने के वृत्तात को कथावस्तु के रूप मे ग्रहण करके पिगळि-काटूरि (दे०) द्वारा रचा गया एक सुदर प्रबध-काव्य है। बौद्ध धर्म की लोकोपकारक दृष्टि अहिंसा एव विश्व करुणा के पावन सिद्धात आदि के सम्यक् निरूपण के साथ साथ इस कृति मे पत्थर के हृदय को भी विदीर्ण करने वाले विश्व-दैन्य का निवारण करने तथा दु खातो का पाप कूपो से उद्धार करके, उनके अश्रु पोछने उनके दुख दूर करने, उनकी भ्राति को मिटाने तथा पीठ थपथपाने के लिए आवाहन भी इन कवियो ने किया है। इस सदेश मे स्वतत्रता-आदोलन के समाजोद्धार एव देशोद्धार व उदबोधन की छाया भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। प्राचीन एव नवीन के समन्वय तथा रस परिपाक की दृष्टि से भी यह काव्य अत्यत सफल है।

सौंदर्यलहरी (स० कृ०) [रचना-काल—800 ई० का उत्तरार्ध]

'सौंदर्यलहरी' शकराचाय (दे०) रचित स्तोत्र-ग्रथ है। इसमे महाशक्ति की स्तुति की गई है। यह ग्रथ श्रीविद्या का अत्यत मूल्यवान ग्रथ है। 'सौंदर्यलहरी' के अतर्गत 103 श्लोक मिलते हैं। इन श्लोको की रचना शिखरिणी छद म की गई है।

'सौंदर्यलहरी' में शिव तथा शक्ति के योग एवं मिलन का वर्णन तांत्रिक पद्धति से किया गया है। शक्ति के स्वरूप एवं महत्ता के संबंध में 'सौंदर्यलहरी' में कहा गया है कि 'शिव' शब्द में (इ) शक्ति की सूचक है, जिस के अभाव मे शिव शव मात्र शेष रह जाता है। अतः शिव तथा शक्ति मे अविभाव संबंध है।

'सौंदर्यलहरी' की भाषा तथा शैली सरल, सरस एवं साहित्यिक है। यह कथन अनुचित न होगा कि दार्शनिक, तांत्रिक, एवं साहित्यिक दृष्टि से 'सौंदर्यलहरी' एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है। शंकराचार्य की कवित्वपूर्ण लेखनी ने इस ग्रंथ को अद्भुत सौंदर्य प्रदान किया है।

सौंदर्यशास्त्र *(पारि०)*

'सौंदर्यशास्त्र' पाश्चात्य दर्शन और साहित्यालोचन की बहुप्रयुक्त अध्ययन-प्रणाली 'एस्थैटिक्स' के हिंदी-पर्याय के रूप में प्रचलित है। इस शास्त्र का उपयोग पश्चिम में अब मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी होने लगा है। यद्यपि सौंदर्य के शास्त्रीय विवेचन की परंपरा पश्चिम में ईसा से चौथी शती पूर्व से चली रही है, तथापि एक सुव्यवस्थित, क्रमबद्ध, स्वतंत्र, पूर्ण एवं सांगोपांग शास्त्र के रूप में इसका विकास अठारहवीं शती मे ही हुआ। 'एस्थैटिक्स' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग जर्मन लेखक अलेक्जेंडर बाऊम गार्टन (1714-1962 ई०) ने किया इस के कुछ ही पश्चात् बर्क (1729-1797 ई०) ने कलानुभूति, ऐंद्रिय बोध, कल्पना (दे०) और मन की निर्णायिका शक्ति आदि का विवेचन किया जिसका उपयोग उस युग के साहित्य-लोचन मे भी किया जाने लगा। 1790 ई० में कांट की प्रसिद्ध पुस्तक 'क्रिटीक ऑफ जजमेंट' प्रकाशित हुई जिसके प्रभावस्वरूप कलात्मक मूल्यांकन—बाद में साहित्यिक मूल्यांकन में भी सौंदर्यानुभूति की व्यक्तिनिष्ठता और वस्तुनिष्ठता को लेकर काफ़ी चर्चा होने लगी। इस के पश्चात् शेलिंग और हीगेल के विवेचन से वस्तुनिष्ट आदर्शवाद की भूमि सुदृढ़ हुई। इनके समसामयिक श्लेगल ने 1808 ई० मे प्रकाशित अपनी पुस्तक 'नाट्कला' तथा 'साहित्यिक भाषण' में प्रत्यक्ष रूप से साहित्यिक संदर्भ मे आभिजात्यवाद (दे०) के विरुद्ध स्वच्छंदतावाद (दे०) का समर्थन किया। बीसवीं शती भ सौंदर्यशास्त्र के क्षेत्र म प्रत्यक्ष रूप से 'कलावाद' ने प्रत्ययवाद और 'अनुभाववाद' जैसे विशुद्ध दार्शनिक मतों का स्थान ले लिया जिसके प्रमुग प्रवक्ता क्रोचे ने सहजानुभूति (दे०) और अभिव्यंजना के महत्व की प्रतिष्ठा की। सौंदर्यशास्त्र निश्चय ही पश्चिम की देन है, किंतु अब वहाँ टॉमस मुनरो आदि उसके अंतर्राष्ट्रीय रूप की चर्चा करने लगे हैं।

सौंदर्यशास्त्र समस्त जीवनानुभूति को सौंदर्य मे केंद्रित मानकर उसके स्वरूप और तत्वों का विधिपूर्वक अध्ययन करता है। यह वस्तुतः कला (दे०) का संपूर्ण शास्त्र है जिसमें उसके सृजन की प्रक्रिया तथा मूल्यों की गंभीर मीमांसा की जाती है। इसे 'एस्थैटिक्स' का अभिधान देने वाले आचार्य बाऊम गार्टन के अनुसार सौंदर्यशास्त्र प्रकृति और कला के सौंदर्य, उसके स्वरूप एवं अवस्थाओं तथा उसकी नियमानुरूपता का अध्ययन है। रस (दे०)-सिद्धांत भारतीय काव्यशास्त्र का प्रसिद्ध कला-सिद्धांत है। आधुनिक भारतीय साहित्यालोचन में अब रसानुभूति के लिए कहीं-कहीं 'सौंदर्यानुभूति' शब्द का प्रयोग होने लगा है, किंतु सौंदर्यानुभूति कलास्वाद के केवल एक ही पक्ष—सौंदर्य-संवेदन अथवा प्रसादन तक सीमित है, इससे रसानुभूति की आत्मविश्रांतिमयी स्थिति का द्योतन नहीं होता।

सौत्रांतिक *(पा० पारि०)*

यह 'हीनयान' का एक दार्शनिक पक्ष है जो वैभाषिक (दे०) के समान सर्वास्तिवाद के अंतर्गत आता है। इस संप्रदाय के मानने वाले सूत्र या सूत्रपिटक को अंतिम लक्ष्य मानते हैं; शेष दो पिटकों को उतना महत्व नहीं देते। इसीलिए इन्हें सौत्रांतिक कहा जाता है। इस विचारधारा का प्रवर्तन दूसरी शती में 'कल्पनामंडतिका'-कार कुमारलब्ध ने किया था। धर्मोत्तर और यशोमित्र इसके अन्यतम उन्नायक हैं। इस मत में बाह्य जगत् की सत्ता स्वीकार की जाती है; किंतु उसकी प्रतीति प्रत्यक्ष रूप में न होकर अंतर्जगत् को हेतु मान कर अनुमिति-होती है; इसीलिए इन्हें बाह्यार्थानुमेयवादी भी कहा जाता है।

यह मत 'महायान' (दे०) संप्रदाय के इस मत का प्रतिषेध करता है कि बाह्यजगत् भ्रममात्र तथा स्वप्नवत् मिथ्या है। बाह्य जगत् की सत्ता के लिए इनके तर्क हैं– मानसबिंब का निर्माण बाह्यसत्ता के अभाव में नहीं हो सकता। चेतनागत पदार्थ की प्रतीति बाह्य रूप मे तब तक नहीं हो सकती जब तक बाहर भी काफ़ी सत्ता न हो। चेतना सर्वत्र एकसमान है। अतः यदि पदार्थ केवल चेतनागत ही होते तो सभी पदार्थों की प्रतीति

एक रूप मे ही होती। पदार्थो मे जो पारस्परिक भेद है उसकी प्रतीति नही हो सकती। चेतना निष्ठ होने के कारण घडा और कपडा इत्यादि पदार्थों को भी भेद-प्रतीति नही हो सकती। यदि बाह्य पदार्थ विद्यमान होते तो कोई भी पदार्थ कही भी देख लिया जाता, कोई पदार्थ दुख-दायक और सुखदायक सिद्ध न होता।

सौत्रातिक सप्रदाय के लोग आणविक विश्व मे विश्वास करते हैं। इनकी दृष्टि मे सभी पदार्थ क्षणिक हैं, प्रतिक्षण बदलने वाले पदार्थों की निरतरता का प्रतिभास फिल्म-जगत् के चित्रो की निरतरता के समान होता है। ये लोग ईश्वर को जगत का एकमात्र कारण नही मानते किंतु कारण-शृखला स्वीकार करते है। पदार्थ-प्रतीति या उसके अनुमान के लिए ये लोग चार उपबध स्वीकार करते है—पदार्थ, प्राक्तन समवर्ती अनुभाव, प्रकाश आदि माध्यम और इद्रिय। ये ही प्रतीति के साधन हैं।

सौदा (उर्दू० ले०) [जन्म—1710 ई०, मृत्यु—1781 ई०]

इनका पूरा नाम मिर्ज़ा मुहम्मद रफी था, 'सौदा' इनका उपनाम था। इनके पिता का नाम मिर्ज़ा मुहम्मद शफी था। वे व्यापार करने भारत आए थे और फिर यही के निवासी बन गए। इनकी शिक्षा दिल्ली मे हुई। पिता के मरने के बाद ये आर्थिक कठिनाइयो के कारण सेना मे भरती हो गए। आरभ म फारसी मे काव्य-रचना की और इसमे दक्षता प्राप्त की। कुछ समय बाद इन्हे दिल्ली त्यागनी पडी। ये कुछ दिन फैज़ाबाद मे भी रहे और शेष आयु लखनऊ मे बिताई।

उर्दू के सभी काव्य रूपो मे इन्होने काव्य-रचना की किंतु कसीदे (दे०) और हिज्व' (दे०) लिखने मे तो इन्होने नाम पैदा किया। गजल मे इनका अपना विशेष रग है। य शब्दो का ऐसा औचित्यपूण प्रयोग करत हैं कि उनमे एक भी इधर से उधर हो जाए तो पद्य की सरसता जाती रहती है। गजल के लिए प्रभावोत्पादकता और प्रसाद गुण की जो अनिवार्यता स्वीकार की गई है, वह सौदा को प्रथम कोटि का कवि होन का अधिकारी बना देती है। इनके काव्य मे भारतीय रीतियो तथा वातावरण का विशेष वर्णन मिलता है।

सौदा के मर्सिये (दे०) भी उल्लेखनीय हैं। इस काव्य-कला मे भी इनका एक विशिष्ट स्थान है। इनको सौदा ने केवल धार्मिक महापुरुषो की मृत्यु पर विलाप करने तक ही सीमित नही रखा अपितु इनमे प्राकृतिक दृश्यो तथा भाव-चित्रण का समावेश कर इन्हे साहित्य की अमूल्य निधि बना दिया है। मुसद्दस के रूप मे मर्सिये लिखने का गौरव सबसे पहले इन्ह ही प्राप्त हुआ।

इनके काव्य-ग्रथो मे उर्दू काव्य का एक दीवान, चौबीस मसनवियाँ सलाम तथा मर्सिये सम्मिलित हैं।

सौदामिनी (मल० पा०)

सौदामिनी के० सुरेंद्रन (दे०) के दो उपन्यासो ताळम' (दे०) और 'काट्टुकुरङ्ङु' (दे०) की मुख्य स्त्री-पात्र है। सौदामिनी के भावी प्रति प्रभाकरन् का मूक प्रणय उसे सतुष्ट नही करता और वह चक्रपाणि की ओर आकृष्ट होती है। चक्रपाणि से धोखा खाकर वह फिर प्रभाकरन् के आश्रय मे आ जाती है। दापत्य-जीवन के अनेक सघर्षों के अत मे वह आत्महत्या के समीप पहुँच जाती है, परतु प्रभाकरन् अपने अन्य आकर्षणो से मुक्त होकर यथासमय उसके पास पहुँच जाता है और उनका जीवन सही रास्त पर आ जाता है।

सौदामिनी साधारण परिस्थितियो म पली एक युवती और गृहिणी का प्रतिनिधित्व करती है। कौमार्य-जन्य चचलताओ से मुक्ति पाकर विवाह के बधन म नया जीवन प्रारभ करने की इच्छा से गृहस्थ जीवन म प्रवश करने पर फिर उसे नए सघर्षो का सामना करना पडता है। पति की विवाहेतर कामुकता को वह सहन नही कर पाती। इस प्रकार की मानसिक स्थिति के चित्रण म सुरेंद्रन् सफल हुए हैं। सौदामिनी उनके पात्रो मे प्रमुख है।

सौभद्रुनि प्रणययात्रा (तें० कृ०) [रचना-काल—सोलही शती ई० का द्वितीय चरण]

'सौभद्रुनि प्रणययात्रा' के लेखक का नाम नायनि सुब्बाराव (दे०) है। यह शृगारपरक खडकाव्य है। इसका कथानक इस प्रकार है—सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु अपने मामा की पुत्री शशिरेखा म प्रेम करता है। किंतु बलराम यह नही चाहता कि अपनी लडकी [illegible] म भटकन वाले पाडवो के परिवार म दी जाय। वह चाहता है कि अपनी पुत्री की शादी राजा दुर्योधन के पुत्र से हो। इन कठिनाइयो के रहन हुए भी [illegible]

तथा शशिरेखा का प्रेम सफल होता है और वे पति-पत्नी बन जाते है। इस छोटे से काव्य में स्वच्छ प्रेम का क्रमिक विकास तथा शुभ परिणाम अच्छे ढंग से चित्रित किया गया है। इस काव्य में वर्णित शृंगार में पवित्रता तथा पूर्णता है। लेखक के जीवन से इसके कथानक तथा प्रेम-चित्रण का घनिष्ट संबंध है। लेखक ने भी अपने मामा की लड़की से प्रेम किया था पर मामा सहमत नहीं हुए थे। अंत में इन दोनों का विवाह संपन्न हुआ था।

तेलुगु 'रोमांटिक' कविता की शृंगारपरक रचनाओं के अंतर्गत 'सौभद्रुनि प्रणययात्रा' का प्रमुख स्थान है।

स्कंदगुप्त *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1928 ई०]

जयशंकर प्रसाद (दे०) के इस नाटक की कथा-वस्तु का निर्माण गुप्तवंश की ह्रासोन्मुखी स्थिति में हूणों के लूटपाट-संबंधी आक्रमणों की छाया में किया गया है। अनंतदेवी राज्य की आंतरिक कलह की धुरी है और वह स्वयं महेंद्रादित्य की मृत्यु सपत्नी देवकी को बंदी बना ने स्कंदगुप्त (दे०) की जगह अपने बेटे पुरगुप्त को युवराज बनवाने में कारण बनती है। भटार्क के और प्रपंचबुद्धि उस के विकास-गगन की सीढ़ियाँ है। बंधुवर्मा और भीमवर्मा पताका नायक के रूप में स्कंदगुप्त को योग देते हुए अपना राज्य एक महान राष्ट्र की निर्मिति के उत्सर्ग कर देते हैं। इस नये राष्ट्र की जिम्मेदारी कुमार गोविंदगुप्त, पर्णदत्त, मातृगुप्त आदि स्कंदगुप्त नेतृत्व में सँभालते है। हूणों के बर्बर आक्रमणों को रोकना और प्रबल राष्ट्र की प्रस्थापना इस नये राष्ट्र के दो मुख्य उद्देश्य हैं। प्रसाद जी राष्ट्रवादी विचारधारा के नाटककार होने के कारण अनंतदेवी, पुरगुप्त, भटार्क, प्रपंचबुद्धि, विजया आदि पात्रों के अराष्ट्रवादी स्वर और कार्यो की तीव्र भर्त्सना करते है। सभी छोटे-बड़े राजा हूणों को प्रताड़ित करने के लिए स्कंदगुप्त के नेतृत्व मे सम्मिलित होते है। भटार्क मगध की सेना का संचालन करता है, हूणों का सेनापति रत्नों की मंजूषा अनंददेवी को देकर भटार्क से कुभा का बाँध तुड़वा कर स्कंद को उसकी चंचल लहरों मे प्रवाहित करवा देता है, सारा आयोजन निष्फल हो जाता है, देश पर पुनः हूणों का आतंक छा जाता है। पर्णदत्त और देवसेना (दे०) गाकर और भीख माँगकर राष्ट्र के बचे रत्नों की रक्षा मे लगते है। इसी बीच भटार्क का हृदय-परिवर्तन होता है, वह अपनी पत्नी विजया की रत्न-मंजूषाओं से स्कंदगुप्त के लिए सेना एकत्र करता है और स्कंद हूण-सेनापति खिंगिल को पराजित करके सिंधु के इस पार न आने को कहकर उसे मुक्त कर देता है।

'स्कंदगुप्त' की रचना में प्रसाद जी के दो मुख्य उद्देश्य स्पष्ट हैं—एक उनकी राष्ट्रवादी विचारधारा और दूसरी उनकी सांस्कृतिक विजय। शक एवं हूणों पर स्कंद की विजय भारतीयता की विजय है, एक तरह से यह सांस्कृतिक विजय है। आर्यावर्त्त की स्थापना में पतनोन्मुख हिंदू जाति के उत्थान की कामना उनके राष्ट्रप्रेम की परिचायक है। देवसेना और स्कंदगुप्त के चरित्र की निर्मित मे जहाँ एक ओर पात्र प्रसाद जी की विचारधारा का भार वहन करते हैं, वहाँ दूसरी ओर अपने विशिष्ट व्यक्तित्व का संरक्षण भी करते हैं। अंतर्द्वंद्व सारे नाटक मे विद्यमान है। देवसेना में संगीत और कवित्व की प्रधानता प्रसाद जी के अपने व्यक्तित्व की छाप हैं। इस नाटक में घटना-व्यापार बड़ी तेजी से बढ़ता है, राजनीतिक अंधड़ और उथल-पुथल सारे नाटक को अस्थिर रखता है। इस नाटक का अंत सुख और दुःख के मिश्रित प्रभाव मे हुआ है। प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटकों में इस नाटक का स्थान काफ़ी महत्वपूर्ण है।

स्कंदगुप्त *(हिं० पा०)*

यह जयशंकर प्रसाद (दे०) के नाटक 'स्कंदगुप्त' (दे०) का नायक है। इसका काल अतीत भारत का स्वर्णिम काल माना गया है। गुप्तकाल (275 ई०-540 ई०) में आर्य-साम्राज्य मध्य एशिया से जावा-सुमात्रा तक फैला हुआ था। स्कंदगुप्त इसी गुप्तवंश का देदीप्यमान नक्षत्र था। नाटककार ने इसका निर्माण इतिहास और कल्पना के योग से किया है।

स्कंदगुप्त नाटक का सबसे अधिक प्रभावशाली चरित्र है। नाटक की प्रत्येक घटना स्कंदगुप्त के साथ अनुस्यूत है; वही प्रत्येक घटना का केंद्रबिंदु है। नाटक के आरंभ मे राज-सुख को सारहीन और मुकुट को श्रमजीवी की टोकरी से तुच्छ बतलाकर वह मन के अंतर्द्वंद्व को प्रकट करता है। राजकुमार होते हुए भी उदासीनता के वृत्त में मन के पराजय की बात पर्णदत्त को कहता है और बूढ़ा पर्णदत्त उसे उसके अधिकारों के प्रति जागरूक रहने का सत्परामर्श देता है। तभी तो मालव-दूत से स्कंदगुप्त जैसे ही यह कहता है कि 'दूत संधि के नियमों में ही हम नहीं बँधे है, शरणागत की रक्षा करना भी

हमारा धर्म है। जाओ ! निर्भय निद्रा का सुख लो, स्कद के रहते मालव का कुछ न बिगड सकेगा,' वैसे ही पर्णदत्त कहता है कि 'तात ! आज यह वृद्ध तुष्ट हुआ।' इस तरह स्कद और पर्णदत्त या स्कद और गोविंदगुप्त का सबध बहुत कुछ देशाभिमान और राष्ट्र-प्रेम की भावना से बँधा है, स्कद पर देश को अभिमान है और पर्णदत्त तथा गोविंदगुप्त दोनो ही स्कदगुप्त के विनीत भाव एव शिष्टाचार के कायल है। स्कदगुप्त का अनासक्त कर्मठ व्यक्तित्व सपूर्ण उपन्यास का मुख्याधार है। नाटककार ने अतर्द्वंद्व और व्यक्ति वैचित्र्य पश्चिम की और बडो के प्रति सम्मान, छोटो के प्रति दया एव कातर के प्रति करुणा पूर्व की विचारधारा के अनुरूप उसके व्यक्तित्व मे समाहित किए हैं।

'कदगुप्त कोरा आदर्शवादी ही नही है प्रत्युत विजया के प्रति सहज आकर्षण, देवसेना (दे०) के प्रति कोरे कर्तव्य का भाव एव अपने कहे जाने वाले लोगो के ममत्व ये सभी गुण उसके व्यक्तित्व मे यथार्थ की अन्विति सिद्ध करते है। तभी तो विजया द्वारा भटार्क के वरण पर क्षुब्ध होकर वह कह उठता है –'परतु विजया तुमने यह क्या किया ?' नाटक के अत मे जब वह देवसेना को दोबारा मिलता है और कहता है कि उसे राज्य नही चाहिए और वह देवसेना के साथ कही भी अपने दिन काट लेगा, पुन उसके व्यक्तित्व म उदासीनता के वातायन से एक प्रकार की दुर्बलता झाँकने लगती है। मातृगुप्त उसे प्रवीर, उदार हृदय रामा उसे रमणियो का रक्षक, गोविंद गुप्त उसे गुप्तकुल का तिलक, यहाँ तक कि विरोधी भटार्क उसे देवत्व पद पर अधिष्ठित करके उसके महान व्यक्तित्व को अभिव्यजित करते है।

समग्रत देश प्रेम के निर्भीक म नाटककार ने स्वय से विरक्त और प्रत्येक सामाजिक की जटिलता से सपृक्त जिस चरित्र का निर्माण किया है वह उनके नाट्य-जगत मे स्कदगुप्त के नाम से जाना जाता है और इस प्रकार के चरित्र की अवधारणा उन्होने बहुत ही मनोयोग से की है।

स्तुतिकुसुमाजलि *(स० कृ०)* [समय—चौदहवी शती ई०]

स्तुतिकुसुमाजलि' का शैव-स्तोत्रो म महत्व-पूर्ण स्थान है। इसके प्रणेता श्री जगद्धर भट्ट के पिता रत्नधर काश्मीर-निवासी तथा शैव कवि थ। इन्ही से इनको यह रिक्थ प्राप्त हुआ था।

'स्तुयिकुसुमाजलि' मे 38 स्तोत्र तथा 1425 श्लोक हैं। जगद्धर अपने पिता की भाँति भगवान शकर के अनन्य भक्त थे। बाल्यकाल से इनका हृदय भगवान भूतभावन की ओर अनुरक्त हो गया। अत शमुस्तवन को छोडकर अन्य ग्रथ लिखने की इनकी प्रवृत्ति ही नही हुई। इसमे कवि ने ऐसे आकर्षक तथा हृदयस्पर्शी ढग से आत्मनिवेदन किया है कि कठोरहृदय व्यक्ति का हृदय भी भक्ति-भावना से ओत-प्रोत हो जाता है। इस काव्य मे भावपक्ष तथा कलापक्ष का समुचित सामजस्य उपस्थित हुआ है। जगद्धर ने त्रिकदर्शन के सिद्धातो का वर्णन बडी मार्मिकता से किया है, परतु वह 'शिवस्तोत्रावली' की समता नही प्राप्त कर सकता।

स्तुतिचिंतामणि *(उ० कृ०)*

'स्तुतिचिंतामणि' भीमा (दे०) भोई की प्रधान रचना है। भक्त-हृदय की उच्छल तरगें ही कविता मे ही परिणत हो गई है, अत तन्मय अतर की आवेगमयी पुष्कल भावनाएँ जन मानस को रस सिक्त एव उर्वर बना देती है। उडीसा की जनवाणी इन भजनो को गाकर सार्थक हो जाती है। 'स्तुतिचिंतामणि' के भीतर सर्वजन-बोध्य भाषा मे निराकार ब्रह्म की उपासना प्रतिपादित है। इसमे सहजात शक्ति है, किंतु शिल्प नही। व्यावहारिक भाषा मे कही-कही शाब्दिक विशृखलता मिलती है, किंतु कवि की आत्मोपलब्धि असाधारणा रूप से सकीर्णता-मुक्त एव मानवीय है। ससार की निष्ठुरता के प्रतिपादन मे साधु अतर की असीम करुणा उमड पडी है—'मेरा जीवन भले ही नरक मे पडा रहे, किंतु जगत् का उद्धार हो।'

'स्तुतिचिंतामणि' मे महिमाधर्म की व्याख्या मिलती है। कवि का आत्म-दर्शन भी अभिव्यक्त हुआ है। महिमा गुसाईं एव निराकार ब्रह्म एकाकार होकर कही-कही अस्पष्टता की सृष्टि करते हैं। महिमाधर्मावलबियो का यह प्रिय ग्रथ है।

नृतत्व, धर्म एव सस्कृति के अनुसधाताओं के लिए ऐतिहासिक उडीसा-राज्य एक आदर्श क्षेत्र है। यहाँ वे परस्पर विरोधी सामाजिक शक्तियो की ऐसी सुसाम-जस्यपूर्ण अवस्थिति पाएँगे। जो अन्यत्र चिर-वर्तमान शत्रुता मे या पारस्परिक वर्जना म परिणत हुई है। भारत-वर्ष मे, उडीसा के अतिरिक्त, ऐसा कोई राज्य नही जहाँ आदिवासी जीवनधारा इस प्रकार मिलकर जातीय जीवन

तथा शशिरेखा का प्रेम सफल होता है और वे पति-पत्नी बन जाते हैं। इस छोटे से काव्य में स्वच्छ प्रेम का क्रमिक विकास तथा शुभ परिणाम अच्छे ढंग से चित्रित किया गया है। इस काव्य में वर्णित शृंगार में पवित्रता तथा पूर्णता है। लेखक के जीवन से इसके कथानक तथा प्रेम-चित्रण का घनिष्ठ संबंध है। लेखक ने भी अपने मामा की लड़की से प्रेम किया था पर मामा सहमत नहीं हुए थे। अंत में इन दोनों का विवाह संपन्न हुआ था।

तेलुगु 'रोमांटिक' कविता की शृंगारपरक रचनाओं के अंतर्गत 'सौभद्रुनि प्रणययात्रा' का प्रमुख स्थान है।

स्कंदगुप्त *(हिं० कृ०)* [रचना-काल—1928 ई०]

जयशंकर प्रसाद (दे०) के इस नाटक की कथा-वस्तु का निर्माण गुप्तवंश की ह्रासोन्मुखी स्थिति में हूणों के लूटपाट-संबंधी आक्रमणों की छाया में किया गया है। अनंतदेवी राज्य की आंतरिक कलह की धुरी है और वह स्वयं महेंद्रादित्य की मृत्यु सपत्नी देवकी को बंदी बना के स्कंदगुप्त (दे०) की जगह अपने बेटे पुरगुप्त को युवराज बनवाने में कारण बनती है। भटार्क के और प्रपंचबुद्धि उस के विकास-गगन की सीढ़ियाँ हैं। बंधुवर्मा और भीमवर्मा पताका नायक के रूप में स्कंदगुप्त को योग देते हुए अपना राज्य एक महान राष्ट्र की निर्मिति के उत्सर्ग कर देते है। इस नये राष्ट्र की जिम्मेदारी कुमार गोविंदगुप्त, पर्णदत्त, मातृगुप्त आदि स्कंदगुप्त नेतृत्व में सँभालते है। हूणों के बर्बर आक्रमणों को रोकना और प्रबल राष्ट्र की प्रस्थापना इस नये राष्ट्र के दो मुख्य उद्देश्य है। प्रसाद जी राष्ट्रवादी विचारधारा के नाटककार होने के कारण अनंतदेवी, पुर-गुप्त, भटार्क, प्रपंचबुद्धि, विजया आदि पात्रों के अराष्ट्र-वादी स्वर और कार्यों की तीव्र भर्त्सना करते है। सभी छोटे-बड़े राजा हूणों को प्रताड़ित करने के लिए स्कंद-गुप्त के नेतृत्व में सम्मिलित होते है। भटार्क मगध की सेना का संचालन करता है, हूणों का सेनापति रत्नों की मंजूषा अनंतदेवी को देकर भटार्क से कुभा का बाँध तुड़-वाकर स्कंद को उसकी चंचल लहरों में प्रवाहित करवा देता है, सारा आयोजन निष्फल हो जाता है, देश पर पुनः हूणों का आतंक छा जाता है। पर्णदत्त और देवसेना (दे०) माकर और भीख माँगकर राष्ट्र के बचे रत्नों की रक्षा में लगते है। इसी बीच भटार्क का हृदय-परिवर्तन होता है, वह अपनी पत्नी विजया की रत्न-मंजूषाओं से स्कंदगुप्त के लिए सेना एकत्र करता है और स्कंद हूण-सेनापति खिंगिल को पराजित करके सिंधु के इस पार न आने को कहकर उसे मुक्त कर देता है।

'स्कंदगुप्त' की रचना में प्रसाद जी के दो मुख्य उद्देश्य स्पष्ट है—एक उनकी राष्ट्रवादी विचार-धारा और दूसरी उनकी सांस्कृतिक विजय। शक एवं हूणों पर स्कंद की विजय भारतीयता की विजय है, एक तरह से यह सांस्कृतिक विजय है। आर्यावर्त्त की स्थापना में पतनोन्मुख हिंदू जाति के उत्थान की कामना उनके राष्ट्रप्रेम की परिचायक है। देवसेना और स्कंदगुप्त के चरित्र की निर्मिति में जहाँ एक ओर पात्र प्रसाद जी की विचारधारा का भार वहन करते है, वहाँ दूसरी ओर अपने विशिष्ट व्यक्तित्व का संरक्षण भी करते हैं। अंतर्द्वंद्व सारे नाटक में विद्यमान है। देवसेना में संगीत और कवित्व की प्रधानता प्रसाद जी के अपने व्यक्तित्व की छाप हैं। इस नाटक में घटना-व्यापार बड़ी तेजी से बढ़ता है, राज-नीतिक अंधड़ और उथल-पुथल सारे नाटक को अस्थिर रखता है। इस नाटक का अंत सुख और दुःख के मिश्रित प्रभाव में हुआ है। प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटकों में इस नाटक का स्थान काफ़ी महत्वपूर्ण है।

स्कंदगुप्त *(हिं० पा०)*

यह जयशंकर प्रसाद (दे०) के नाटक 'स्कंद-गुप्त' (दे०) का नायक है। इसका काल अतीत भारत का स्वर्णिम काल माना गया है। गुप्तकाल (275 ई०-540 ई०) में आर्य-साम्राज्य मध्य एशिया से जावा-सुमात्रा तक फैला हुआ था। स्कंदगुप्त इसी गुप्तवंश का देदीप्यमान नक्षत्र था। नाटककार ने इसका निर्माण इति-हास और कल्पना के योग से किया है।

स्कंदगुप्त नाटक का सबसे अधिक प्रभावशाली चरित्र है। नाटक की प्रत्येक घटना स्कंदगुप्त के साथ अनुस्यूत है; वही प्रत्येक घटना का केंद्रबिंदु है। नाटक के आरंभ में राज-सुख को सारहीन और मुकुट को श्रम-जीवी की टोकरी से तुच्छ बतलाकर वह मन के अंतर्द्वंद्व को प्रकट करता है। राजकुमार होते हुए भी उदासीनता के वृत्त में मन के पराजय की बात पर्णदत्त को कहता है और बूढ़ा पर्णदत्त उसे उसके अधिकारों के प्रति जागरूक रहने का सत्परामर्श देता है। तभी तो मालव-दूत से स्कंदगुप्त जैसे ही यह कहता है कि 'दूत संधि के नियमों में ही हम नहीं बँधे है, शरणागत की रक्षा करना भी

हमारा धर्म है। जाओ! निर्भय निद्रा का सुख लो, स्कद के रहते मालव का कुछ न बिगड सकेगा,' वैसे ही पर्णदत्त कहता है कि 'तात! आज यह वृद्ध तुष्ट हुआ।' इस तरह स्कद और पर्णदत्त या स्कद और गोविंदगुप्त का सबध बहुत कुछ देशाभिमान और राष्ट्र-प्रेम की भावना से बँधा है, स्कद पर देश को अभिमान है और पर्णदत्त तथा गोविंदगुप्त दोनो ही स्कदगुप्त के विनीत भाव एव शिष्टाचार के कायल है। स्कदगुप्त का अना सक्त कर्मठ व्यक्तित्व सपूर्ण उपन्यास का मुख्याधार है। नाटककार ने अतर्द्वद्व और व्यक्ति-वैचित्र्य पश्चिम की ओर बडो के प्रति सम्मान, छोटो के प्रति दया एव कातर के प्रति करुणा पूर्व की विचारधारा के अनुरूप उसके व्यक्तित्व मे समाहित किए है।

'कदगुप्त कोरा आदर्शवादी ही नही है प्रत्युत विजया के प्रति सहज आकर्षण, देवसेना (दे०) के प्रति कोरे कर्त्तव्य का भाव एव अपने कहे जाने वाले लोगो के ममत्व ये सभी गुण उसके व्यक्तित्व मे यथार्थ की अन्विति सिद्ध करते है। तभी तो विजया द्वारा भटार्क के वरण पर क्षुब्ध होकर वह कह उठता है--'परतु विजया तुमने यह क्या किया?' नाटक के अत मे जब वह देवसेना को दोबारा मिलता है और कहता है कि उसे राज्य नही चाहिए और वह देवसेना के साथ कही भी अपने दिन काट लेगा, पुन उसके व्यक्तित्व म उदासीनता के वातायन से एक प्रकार की दुर्बलता झाँकने लगती है। मातृगुप्त उसे प्रवीर, उदार-हृदय रामा उसे रमणियो का रक्षक, गोविंद गुप्त उसे गुप्तकुल का तिलक, यहाँ तक कि विरोधी भटार्क उसे देवत्व पद पर अधिष्ठित करके उसके महान व्यक्तित्व को अभिव्यजित करते है।

समग्रत देश-प्रेम के निर्भीक मे नाटककार ने स्वय से विरक्त और प्रत्येक सामाजिक की जटिलता से सपृक्त जिस चरित्र का निर्माण किया है वह उनके नाट्य-जगत मे स्कदगुप्त के नाम से जाना जाता है और इस प्रकार के चरित्र की अवधारणा उन्होने बहुत ही मनोयोग से की है।

स्तुतिकुसुमाजलि (स० कृ०) [समय—चौदहवी शती ई०]

स्तुतिकुसुमाजलि' का शैव-स्तोत्रो मे महत्व-पूर्ण स्थान है। इसके प्रणेता श्री जगद्धर भट्ट के पिता रत्नधर काश्मीर निवासी तथा शैव कवि थे। इन्ही से इनको यह रिक्थ प्राप्त हुआ था।

'स्तुयिकुसुमाजलि' मे 38 स्तोत्र तथा 1425 श्लोक है। जगद्धर अपने पिता की भाँति भगवान शकर के अनन्य भक्त थे। बाल्यकाल से इनका हृदय भगवान भूतभावन की ओर अनुरक्त हो गया। अत शभुस्तवन को छोडकर अन्य ग्रथ लिखने की इनकी प्रवृत्ति ही नही हुई। इसमे कवि ने ऐसे आकर्षक तथा हृदयस्पर्शी ढग से आत्मनिवेदन किया है कि कठोरहृदय व्यक्ति का हृदय भी भक्ति-भावना से ओत-प्रोत हो जाता है। इस काव्य मे भावपक्ष तथा कलापक्ष का समुचित सामजस्य उपस्थित हुआ है। जगद्धर ने त्रिकदर्शन के सिद्धातो का वर्णन बडी मार्मिकता से किया है, परतु वह 'शिवस्त्रोत्रावली' की समता नही प्राप्त कर सकता।

स्तुतिचिंतामणि (उ० कृ०)

'स्तुतिचिंतामणि' भीमा (दे०) भोई की प्रधान रचना है। भक्त हृदय की उच्छल तरगें ही कविता मे ही परिणत हो गई है, अत तन्मय अतर की आवेगमयी पुष्कल भावनाएँ जन मानस को रस सिक्त एव उर्वर बना देती है। उडीसा की जनवाणी इन भजनो को गाकर सार्थक हो जाती है। 'स्तुतिचिंतामणि' के भीतर सर्वजन-बोध्य भाषा मे निराकार ब्रह्म की उपासना प्रतिपादित है। इसमे सहजात शक्ति है, किंतु शिल्प नही। व्यावहारिक भाषा मे कही-कही शाब्दिक विशृखलता मिलती है, किंतु कवि की आत्मोपलब्धि असाधारणा रूप से सकीर्णता-मुक्त एव मानवीय है। ससार की निष्ठुरता के प्रतिपादन मे साधु अतर की असीम करुणा उमड पडी है—'मेरा जीवन भले ही नरक मे पडा रहे, किंतु जगत् का उद्धार हो।'

'स्तुतिचिंतामणि' मे महिमाधर्म की व्याख्या मिलती है। कवि का आत्म-दर्शन भी अभिव्यक्त हुआ है। महिमा गुसाईं एव निराकार ब्रह्म एकाकार होकर कही-कही अस्पष्टता की सृष्टि करते है। महिमाधर्मावलबियो का यह प्रिय ग्रथ है।

नृतत्व, धर्म एव सस्कृति के अनुसधाताओ के लिए ऐतिहासिक उडीसा राज्य एक आदर्श क्षेत्र है। यहाँ वे परस्पर विरोधी सामाजिक शक्तियो की ऐसी सुसाम-जस्यपूर्ण अवस्थिति पाएँगे। जो अन्यत्र चिर-वर्तमान शत्रुता मे या पारस्परिक वर्जना मे परिणत हुई है। भारत-वर्ष मे, उडीसा के अतिरिक्त, ऐसा कोई राज्य नहीं जहाँ आदिवासी जीवनधारा इस प्रकार मिलकर जातीय जीवन

का अंश हो उठी हो। उड़ीसा के इष्टदेव जगन्नाथ आदिवासी देवता हैं। धर्म ही नहीं साहित्य में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान है। उड़ीसा ने भारतीय संस्कृति को गणदेवता के साथ गण-साहित्य भी दिया है। भीमा भोई उड़ीसा के प्रमुख आदिवासी कवि हैं।

स्थल-पुराणम् *(त० पारि०)*

मंदिरों एवं विभिन्न देवी-देवताओं से संबद्ध स्थानों की महिमा का गान करने वाली कृतियाँ 'स्थल-पुराणम्' कहलाती हैं। कुछ प्रसिद्ध स्थल पुराणम् हैं—'चिदंबर पुराणम्', 'सेतु पुराणम्', 'तिरुक्कलुकुनर पुराणम्' 'अरणाचल पुराणम्', आदि। 'स्थलपुराणम्' के रचयिताओं में मीनाक्षिसुंदरम् पिळ्ळै (दे०) सर्वप्रसिद्ध हैं। इनके द्वारा रचित 22 स्थल पुराणों में सर्वप्रसिद्ध हैं 'तिरुनाई कारोण पुराणम्'। इन स्थल-पुराणों के प्रभावस्वरूप परवर्ती काल में लोगों ने अपने ग्राम को महत्वपूर्ण सिद्ध करने के लिए अनेक कपोल कथाओं और प्रचलित धार्मिक मान्यताओं के विरुद्ध विचारों को जन्म दिया। तमिल में स्थल-पुराणों की रचना मुख्य रूप से सत्रहवीं, अठारहवीं और उन्नीसवीं शती में हुई थी।

स्थानपोथी *(म० कृ०)*

मुनि व्यास ने 1353 ई० के आसपास इसकी रचना की थी। महानुभाव-पंथ के पूज्य श्री चक्रधर ने जिन-जिन गाँवों में भ्रमण कर मत-प्रचार किया था उन दो-ढाई सौ स्थानों का इसमें वर्णन है। स्थान-निर्देश के साथ-साथ इसमें चक्रधर की लीला-प्रसंगों का भी विवरण है। तत्कालीन महाराष्ट्र की सांस्कृतिक परिस्थितियों की सही-सही झलक भी इसमें मिल जाती है।

स्थायी भाव *(सं० पारि०)*

सहृदय के अंतःकरण में जो मनोविकार वासना-रूप से सदा विद्यमान रहते हैं तथा जिन्हें अन्य कोई भी अविरुद्ध अथवा विरुद्ध भाव दबा नहीं सकता, उन्हें स्थायी भाव कहते हैं। यही 'स्थायी भाव' रस-रूप आस्वादाकु का अंकुर-कंद अर्थात् मूलभूत है—

अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।
आस्वादांकुरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति सम्मतः॥

'स्थायी भावों' की संख्या सामान्यतः नौ मानी जाती है—रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और निर्वेद। ये क्रमशः निम्नोक्त रसों के रूप में निष्पन्न (अभिव्यक्त) होते हैं—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत। कुछ आचार्य वत्सल रस भी मानते हैं, जिसका 'स्थायिभाव' वात्सल्य है।

स्थावर *(बं० कृ०)* [रचना-काल—1951 ई०]

'स्थावर' महाकाव्य की विशाल पटभूमिका में रचित बनफुल (दे०) का यह एक आश्चर्यजनक परीक्षा-मूलक उपन्यास है। आदि मानव की पशु-सुलभ जीवन-यात्रा से शुरू करके नैतिक बोध-संपन्न मनुष्य के विवर्तन के इतिहास के प्रत्येक स्तर की कहानी इसमें लिपिबद्ध है। मानव-समाज की क्रमोन्नति के साथ-साथ उसके जीवन में जटिलता का जो विस्तार है उसी के साथ मानव के अध्यात्म-बोध की नाना विकृतियों की अभिव्यक्ति हुई है। नाना रहस्यमय क्रियाकलापों के बीच ये मनुष्य दैव-शक्ति से परिचित होने का प्रयत्न करता है। क्रमशः विभिन्न मानव-गोष्ठियों में परस्पर शत्रुता एवं मित्रता बढ़ने लगी है और इस प्रकार आपसी युद्ध शुरू हो जाता है। नाना कौतूहलपूर्ण कहानियों को सूत्रबद्ध करके कल्पना के सार्थक प्रयोग के द्वारा आदिम मनुष्य के विवर्तन के इतिहास में लेखक ने उपन्यास का रस भर दिया है अंधकारमय आदिम युग की जीवन-यात्रा पर उसने आधुनिक उपन्यास-रीति एवं तथ्यानुयायी विशेषण-कुशलता का विस्मयकर प्रयोग किया है। उस युग में भाषा का प्रयोग बहुत ही सीमित था इसीलिए संलापों का कम-से-कम प्रयोग हुआ है। प्रारंभ में ये केवल संकेतों के द्वारा कहानी कही गई है। विवरणात्मक होने पर भी औपन्यासिक उत्कंठा एवं नाटकीयता की सृष्टि में बनफुल ने अद्भुत क्षमता का परिचय दिया है। कहानी उत्तम पुरुष में लिखी गई है: 'मैं कोई विशेष मानव नहीं, मानव जाति हूँ', आदि।

स्नेह देवी *(अ० लं०)*

ये असम की वयोवृद्ध कहानी-लेखिका हैं। इनके लेखन में ईमानदारी और सादगी है। इनकी अनेक कहानियाँ असमीया-पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। प्रकाशित रचना—'कृष्ण द्वितीयार जोन' (कहानी-संग्रह)।

स्नेहरश्मि *(गु० ले०)* [जन्म—1903 ई०]

गाधी युग के अग्रगण्य कवियो मे 'स्नेहरश्मि' का स्थान महत्वपूर्ण है। इनका पूरा नाम है भीणाभाई रतनजी देसाई। ये गुजरात विद्यापीठ के स्नातक है और अहमदाबाद की सुप्रसिद्ध शिक्षा-सस्था चिमनलाल नगीनदास विद्याविहार के आचार्य हैं। स्नेहरश्मि कवि, उपन्यासकार और कहानीकार है। इन्होने प्रगीतकाव्य गीतो, 'हाइकू' कविता की सृष्टि की है। इनके गीतो और कविताओ पर बँगला कविता की लय और मधुरता का प्रभाव पाया जाता है। 'एकोऽह बहुस्याम' इस कवि की श्रेष्ठ छदोबद्ध रचना है। प्रेम और सौंदर्य-विषयक कविताओ के अतिरिक्त स्नेहरश्मि ने कतिपय चितनात्मक रचनाएँ भी की है। 'पनघट' और 'अर्घ्य' इनके प्रसिद्ध कविता-सग्रह है जिनका भाव-माधुर्य और लयात्मक सौंदर्य द्रष्टव्य है।

जापानी कविता-विधा 'हाइकू' का गुजराती मे सर्वप्रथम सफल प्रयोग स्नेहरश्मि ने किया है। उसे कवि-प्रिय बनाने का श्रेय इन्हे ही है। 'सोनेरी चाँदरूपेरी सूरज' (दे०) शीर्षक इनके हाइकू-सग्रह मे चद्र, सूरज, पतगा, मकडी, मक्खी, सरोवर इत्यादि कई विषयो पर तीन पक्तियो के गभीर विचारमूलक हाइकू सगृहीत हैं। इनके हाइकू मे प्रतीको और बिबो का बडा प्रयोग होता है। 'तूटेला तार', 'गाता आसोपालव', 'स्वर्ण अने पृथ्वी', 'हीराना लटकणिया' इनके उल्लेखनीय कहानी-सग्रह है। 'अतरपट' (दे०) सुप्रसिद्ध उपन्यास है। इसमे 1930 ई० के राजनीतिक एव सामाजिक जीवन का चित्रण हुआ है।

स्पदकारिका *(स० कृ०)* [समय—नवी शती ई०]

'स्पदकारिका' त्रिकशास्त्र का एक प्रमुख ग्रथ है। इसका कर्तृत्व विवादास्पद है। उत्पल वैष्णव इसे कल्लट की कृति मानते है। कल्लट त्रिकशास्त्र के प्रथम आचार्य वसुगुप्त के शिष्य थे। पर क्षेमराज इसे स्वय वसुगुप्त की रचना बताते है। क्षेमराज की धारणा अधिक समीचीन प्रतीत होती है। महेश्वरानद ने अपनी 'महार्थ मजरी' की टीका मे इसी मत का समर्थन किया है।

स्पदकारिका' मे शिवसूत्रो मे प्राप्त, शैव मत का विस्तार किया गया है। इसे 'स्पदसूत्र' भी कहा जाता था। किंतु इस कृति को 'स्पदसूत्र' से अलग मानना पडेगा क्योकि डा० ह्वूलर ने इस पद का प्रयोग शिवसूत्रो के लिए किया है। इनके अनुसार यह विश्व की स्वतत्र इच्छा या 'स्पद' अर्थात् स्फुरण है। इस ग्रथ का मुख्य प्रतिपाद्य हैं—दैवी शक्ति को प्राप्त करने के तीन उपाय। वे उपाय हैं—शाभव, शाक्त, तथा आणव। इन्ही उपायो द्वारा ही पशु (जीवात्मा) शिवत्व प्राप्त करता है।

स्मर गरल *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1936 ई०]

मोहितलाल मजुमदार (दे० मजुमदार) ने कवि एव साहित्य-समालोचक दोनो ही रूपो मे विशिष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त की है। उनका काव्य ग्रथ 'स्मर गरल' (1936) उनकी प्रारभिक कविताओ का सकलन है। लेखक ने अपने सपूर्ण जीवन मे बहुत अधिक कविताएँ नही लिखी परतु जो लिखी हैं उनमे मनन की गभीरता सर्वत्र परिलक्षित होती है। 'स्मर गरल' काव्य-ग्रथ की भूमिका मे कवि ने ने लिखा है कि 'स्मर गरल' की कविताओ मे जो स्वर सर्वाधिक ध्वनित हुआ है वह स्वर बगाल के पानी या मिट्टी मे निहित है—यह स्वर वैष्णव नही है, अपर साधना का स्वर है। इस अपर साधना से तात्पर्य है—शाक्त-साधना।

शक्ति-साधना सबल स्वस्थ देहधर्म से अनुप्राणित है। देह के बिना प्रेम या जीवन का योग सभव नही। देह के माध्यम से ही जीवन का आस्वादन सभव है। कवि देहवादी है और इसी देहवाद मे निहित है कवि का जीवन दर्शन या जीवनासक्ति का उदात्त स्वर। करोडो प्राणियो से कल्लोलित व्यथा-वेदना से परिपूर्ण इस पृथ्वी के प्रति कवि के मन मे अपार ममता है। मोहित बाबू के अनुसार प्रवृत्तिमार्ग ही वास्तविक मार्ग है और देहेंद्रिय ही एकमात्र सत्य है परतु इसका अर्थ यह नही कि वे इद्रिय-सर्वस्व के कवि हैं। देह के भीतर देहातीत की उपलब्धि की कामना से ही 'स्मर गरल' की कविताओ की रचना हुई है। देह से हटकर रवीद्रनाथ (दे० ठाकुर) ने जिस अतीद्रिय प्रेम-सौंदर्य की साधना की थी, मोहित बाबू ने उसकी दुर्बलता को प्रकट करते हुए देहाश्रयी प्रेम-सौंदर्य को एक नवरूप प्रदान किया है। 'स्मर गरल' की कविताओ के अभिव्यजना-पक्ष मे आभिजात्यवादी भगिमा स्पष्ट है। शब्द-प्रयोग के बारे मे कवि अत्यत सयत एव सचेतन है। उनकी अभिव्यजना बलिष्ठ भी है और सुललित भी।

स्मरणसंहिता (गु० कृ०)

'स्मरणसंहिता : एक करुणप्रशस्ति' नरसिंहराव भोलानाथ दिवेटिया (दे०) द्वारा रचित शोकगीति है। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन 1925 ई० ई० में हुआ था। प्रस्तुत काव्य तीन खंडों मे बँटा हुआ है। इन तीन खंडों में क्रमश: 64, 40 और 59 छंद हैं जो मुख्यत: खंड हरगीत में रचित हैं; कुछ वसंततिलका, उपजाति वसंततिलका मे और एक-एक भैरवी रागिनी और गरबी की धुन पर रचित हैं। प्रो० आनंदशंकर बापुभाई ध्रुव (दे०) ने इसका उपोद्घात और अंत मे एक विस्तृत 33 पृष्ठीय टीका दी है। हाजी महमद अलारखिया शिवजी ने इसमे निहित दस चित्रों का दिग्दर्शन करवाया है। पुत्र के मरण पर लिखे इस शोकपरक काव्य में केवल करुण रस ही उभर कर नहीं आया है, बल्कि इसमें तत्त्वचिंता, परमात्मा की सर्वसत्ताधारी के रूप मे स्वीकृति तथा उसकी क्रियाओं में कल्याण-भावना का दृष्टि-स्वीकार, अवयवों की एकान्वित संघटना, भक्ति का अद्भुत परिपाक, संस्कृतनिष्ठ भाषा तथा बीच-बीच मे आख्यान देकर काव्य की एकरूपता को नष्ट करने के प्रयत्न आदि के भी दर्शन होते हैं। स्वयं कवि ने इसे खंडकाव्य के रूप में प्रस्तुत किया है। गुजराती में लिखित शोकपरक काव्यों में इस 'स्मरणसंहिता' का पर्याप्त महत्व है।

स्मृतिचित्रें (म० कृ०)

यह लक्ष्मीबाई टिळक-रचित चार खंडों मे प्रकाशित बृहद् आत्मकथा है। आलोचकों के मतानुसार यह एक बेजोड़ कलाकृति है। इस आत्मकथा के चारों खंडों का प्रकाशन 1934-1936 ई० के बीच हुआ था।

यह आत्मचरित अत्यंत परिष्कृत भाषा-शैली में लिखा गया है। यह अपूर्व कांति से मंडित है। इसे पढ़ते हुए पाठक इसकी भाषा-शैली के सामर्थ्य तथा निवेदन की पटुता के कारण मंत्रमुग्ध हो जाता है। आत्मचरित्र पढ़ते हुए श्री ना० वा० टिळक तथा लक्ष्मीबाई टिळक का व्यक्तित्व तथा जीवन-चित्र नेत्रों के सामने साकार हो जाता है। लेखिका ने कौटुंबिक जीवन का चित्रण अत्यंत तटस्थ दृष्टि से किया है। कहीं भी मोहाविष्ट हो अतिशयोक्तिपूर्ण कथन नहीं किया है। अपने पति ना० वा० टिळक के दोषों का उद्घाटन विनोदपूर्ण पद्धति से किया है। कहीं-कहीं लगता है कि इस आत्मचरित्र-लेखन का उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना है।

नासिक में श्री स० रा० गांगारकर के सभापतित्व में हुए विराट् समारोह में लक्ष्मीबाई टिळक को 'साहित्यलक्ष्मी' की उपाधि से विभूषित कर उनका अभिनंदन किया गया था।

स्याद्वाद (सि०)

उदार दृष्टिकोण का परिचायक यह सिद्धांत जैन-मतावलंबियों का अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्धांत है। इसका सार यह है—संसार के प्रत्येक तत्त्व की हज़ारों-लाखों विशेषताएँ होती हैं और प्रत्येक दृष्टिकोण के हज़ारों पक्ष हो सकते हैं। उन समस्त विशेषताओं और पक्षों को समझना और जानना केवली (दे० केवलज्ञान) का ही काम है। सामान्य व्यक्ति किसी तत्व की केवल एक विशेषता को और किसी सिद्धांत के किसी एक पक्ष को समझ सकते हैं। शेष तत्त्व उसकी आँखों से ओझल रहते हैं। इस एकदेशीय ज्ञान को 'नय' की संज्ञा दी जाती है। सभी दार्शनिक, धार्मिक इत्यादि मतमतांतर इसी 'नय' का अंग हैं। इस तत्त्व को न समझने के कारण ही मतमतांतरों के झगड़े होते हैं। इस दिशा मे छ: अंधों द्वारा किसी हाथी को देखे जाने की कथा बहुत प्रसिद्ध है। पूंछ को स्पर्श करने वाला अंधा उसे रस्सी के समान, टाँग को स्पर्श करने वाला खंभे के समान समझता है और अपने ही ज्ञान को सत्य तथा दूसरे के ज्ञान को असत्य कहकर झगड़ने लगता है। उसी प्रकार का झगड़ा सभी मतमतांतरों में हुआ करता है। इसके लिए इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक मान्यता के साथ 'स्यात्' जोड़ दिया जाना चाहिए; अर्थात् यह कहना चाहिए कि कोई बात किसी विशेष दृष्टिकोण से ही सही है। उदाहरण के लिए 'कमरे में घड़ा है' इस वाक्य को विषय में समझा जाना चाहिए कि यह बात विशेष दृष्टिकोण से ही (समय-विशेष के लिए ही) सही है। स्याद्वाद' में सात प्रकार से स्यात् का प्रयोग किया जाता है, इसलिए इसे 'सप्तभंगीन्याय' कहा जाता है। वे सात वाक्य ये हैं—(1) किसी विशेष दृष्टिकोण से अमुक बात है (स्यादस्ति), (2) एक दृष्टिकोण से नहीं है (स्यान्नास्ति), (3) एक दृष्टिकोण से है भी और नहीं भी है। (स्यादस्ति च नास्ति च), (4) एक दृष्टिकोण से अवर्णनीय है (स्यात् अवक्तव्यम्), (5) एक दृष्टिकोण से है भी और अवर्णनीय भी है (स्यादस्तित्व च अवक्तव्यं च), (6) एक दृष्टिकोण से नहीं है और

अवर्णनीय है (स्यान्नास्ति च अवक्तव्य च) (7) एक दृष्टिकोण से ऐसा है भी, नही भी है और अवर्णनीय भी है (स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्य च)। विरोधियो के प्रति इतना उदार और इतना समझौतापूर्ण दृष्टिकोण सभवत और कही नही मिलता।

स्वच्छंदतावाद *(पारि०)*

स्वच्छदतावाद अठारहवी शती के अत और उन्नीसवी शती के प्रारभ मे पश्चिम मे प्रादुर्भूत प्रसिद्ध साहित्यिक, *कलात्मक एव दार्शनिक* वाद और 'रोमाटिसिज्म' नामक आदोलन का हिंदी-पर्याय है। 'रोमाटिसिज्म' का मूल शब्द 'रोमाटिक' पुरानी फ्रेच भाषा के 'रोमाज' से निष्पन्न है *जिसका प्रयोग उस समय लेटिन से इतर* 'देसी' भाषाओं के घटियापन को उभारने के लिए किया जाता था—*यद्यपि शास्त्रीय औपचारिकता की जकडबदी* से मुक्त स्वच्छदता का भाव उसमे निश्चय ही विद्यमान था। बाद मे कोमलता, कल्पनाशीलता, भावुकता और वायवीयता आदि के लिए फ्रेंच मे 'रोमाटिक' शब्द का शब्द का व्यवहार होने लगा। अठारहवी शती के मध्य तक योरोप की प्राय प्रत्येक भाषा मे कुछ परिवर्तन के साथ यह शब्द व्यापक रूप से प्रचलित हो चुका था। साहित्यिक विवेचना के क्षेत्र मे आभिजात्यवाद (दे०) की विरोधी प्रवृत्ति के रूप मे इसका सर्वप्रथम सार्थक प्रयोग जर्मन-साहित्यकार फ्रीडरिक श्लेगल ने 1798 ई० मे किया। फ्रास मे इसके प्रचार का श्रेय मुख्य रूप से मैडम दि स्ताल को है। एक साहित्यिक आदोलन के रूप मे स्वच्छदतावाद का प्रमुख केंद्र इग्लैड बना।

स्वच्छदतावाद वस्तुत एक जीवन दर्शन है जिसमे साहित्यिक, कलात्मक और सामाजिक रूढिवाद, जड शास्त्रीयता और समष्टिगत वस्तुनिष्ठता के विरुद्ध कल्पना-वैभव, वैयक्तिकता और अभिनव भावोन्मेष के विद्रोह के तत्त्व प्रमुख है। इसका जन्म ऐतिहासिक दृष्टि से 'नव्य शास्त्रवाद' के तुरत पश्चात् उसकी प्रतिक्रिया के रूप मे हुआ था। अतएव उससे सबद्ध प्राचीन आदर्शों और पारपरिक जीवन दृष्टि से भिन्न स्वच्छदता के मुक्त आयामो मे उच्छ्वासपूर्ण भावुकता, रहस्योन्मुख सौदर्यप्रियता, भावनात्मक आदर्शवाद, अतिशय सवेदनशीलता, अवसाद-पूर्ण मन स्थिति, प्रकृति-मोह, अतीत-मोह, अतर्मुखी दृष्टि आदि का उन्मेष इसके लिए स्वाभाविक ही था। इसमे 'मुक्ति' पर इतना जोर था कि उसकी कोई सुनिश्चित परिभाषा देना *सभव नही है*। फिर भी लेसिलस एवरक्राबी के ये शब्द इसकी मूल प्रकृति का अच्छा विश्लेषण करते है 'स्वच्छदतावाद बाह्य अनुभूतियो से पलायन है, जिससे आतरिक अनुभूतियो मे रमा जा सके।' ल्यूकस के अनुसार 'स्वच्छद साहित्य जीवन का वह स्वप्न चित्र है जो *समाज अथवा यथार्थ परिस्थितियो द्वारा* दमित इच्छाओ को प्रश्रय और परितोष प्रदान करता है।

इग्लैंड मे स्वच्छदतावाद की काव्यात्मक अभिव्यक्ति मुख्यत वर्ड्सवर्थ, शैले, कीट्स, बायरन, कॉलरिज और ब्लेक आदि के द्वारा हुई। वर्ड्सवर्थ ने अपने काव्य-*भाषा-विषयक* सिद्धात और कॉलरिज ने कल्पना सिद्धात के प्रतिपादन द्वारा साहित्यिक मीमासा के क्षेत्र मे स्वच्छदतावादी मूल्यो की प्रतिष्ठा की। वॉल्टर पेटर और *ब्रैडले ने स्वच्छदतावाद की कला दृष्टि प्रस्तुत की*। फ्रास मे स्वच्छदतावाद का प्रवर्तन रूसो ने और व्यापक आदोलनात्मक प्रचार मैडम दि स्ताल ने किया। विक्टर ह्यूगो के *काव्य एव नाटको तथा वाल्टर स्कॉट* से प्रभावित कुछ ऐतिहासिक उपन्यासो द्वारा भी फ्रासीसी स्वच्छदतावाद का सवर्द्धन हुआ। जर्मनी मे स्वच्छदतावाद सर्जनात्मक साहित्य की अपेक्षा विवेचनात्मक साहित्य, मुख्यत दर्शन के क्षेत्र मे अधिक मुखर हुआ। साहित्यिक विवेचन की दृष्टि से फ्रीडरिक श्लेगल और ए० डब्ल्यू० श्लेगल का योगदान प्रमुख है। दर्शन के क्षेत्र मे जर्मन स्वच्छदतावाद की उपलब्धि अत्यत महत्वपूर्ण है। काट और हीगेल के नाम इस सदर्भ मे सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं, यो नीत्शे का चितन भी स्वच्छदतावाद से निश्चय ही प्रभावित था। थॉमसन, परसी, गेटे और और शिलर ने सर्जनात्मक साहित्य को समृद्ध किया। इटली और स्पेन भी इस आदोलन से अछूते न रहे।

स्वच्छदतावाद ने अनेक परवर्ती कलात्मक और *साहित्यिक प्रवृत्तियो को प्रभावित किया जिनमे* प्रतीकवाद (दे०), अतियथार्थवाद, प्रकृतवाद (दे०) और अस्तित्ववाद (दे०) प्रमुख है। बर्गसाँ आदि चितको पर भी स्वच्छदतावाद का प्रभाव असदिग्ध है। बीसवी शती के प्रारभ के कुछ दशको मे आधुनिक भारतीय भाषाओ के साहित्य पर *भी स्वच्छदतावाद का व्यापक* प्रभाव पडा जिसमे हिंदी की छायावादी (दे० छायावाद) कविता और बँगला के रवीद्रनाथ (दे०) ठाकुर एव उनके सहयोगी कवियो की रचनाएँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। कथा-साहित्य के क्षेत्र मे बँगला उपन्यासकार शरच्चद्र (दे०) चट्टोपाध्याय, स्वच्छदतावाद के *अग्रदूत बन गए*। उनका प्रसिद्ध पात्र

'देवदास' (दे०) रोमानी भावुकता का प्रतीक बन गया। शरच्चंद्र से प्रभावित साहित्य की एक पूरी पीढ़ी ने उच्छ्वासपूर्ण भावुकता और आत्मक्षयी अवसाद को अतिरंजित रूप में अपने साहित्य में व्यक्त किया। भारतीय साहित्यकारों की वर्तमान पीढ़ी ने इस 'शरच्चंद्री' दृष्टि के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

स्वदेशी कविता (अग्नि युग) (बं०प्र०)

बंगाल में आधुनिक युग के सूत्रपात से ही राष्ट्रवादी साहित्य-रचना की दिशा में साहित्यकारों ने विशेष उत्साह दिखाया। स्वदेशी आंदोलन के साथ-साथ राष्ट्रीय जागरण और ऐक्य के लिए साहित्यकारों की रचनाएँ आग फैलाने लगीं। बँगला साहित्य के इतिहास में इसे 'अग्नि-युग' कहा गया। इस भावधारा का सूत्रपात करने वाले थे राममोहन राय (दे०)। राममोहन राय के उपरांत 'यंग बेंगाल' युग में तरुण अंग्रेजी शिक्षक डेविड हेयर, डिरोजी एवं उनके छात्रों ने भारत की दुर्दशा एवं राष्ट्रीय एकता के संबंध में सक्रिय होकर काम किया। 1857 ई० के सिपाही-विद्रोह एवं बंगाल के नील-विद्रोह के फलस्वरूप भारतवासियों के हृदय में जातीय बोध की भावना क्रमशः संघबद्ध रूप धारण करती गई और 1867 ई० में बंगाल में 'हिंदूमेला' की प्रतिष्ठा से इस भावना को विशेष बल प्राप्त हुआ। इस मेले का लक्ष्य था भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता एवं सर्व-भारतीय ऐक्य-प्रतिष्ठा। इस मेले के साथ उस समय के साहित्यिक राजनारायण वसु (दे०), नवगोपाल मित्र, मनमोहन वसु (दे०), *सत्येंद्रनाथ ठाकुर सक्रिय रूप से जुड़े थे।*

हिंदूमेला' के तत्त्वावधान में ज्योतिरिंद्रनाथ ने 1876 ई० में 'जातीय संगीत' के नाम से एक पुस्तक का संपादन किया जिसमें द्विजेंद्रलाल (दे०), सत्येंद्रनाथ, ज्योतिरिंद्रनाथ, गोविंदचंद्र राय की स्वदेशी कविताएँ संकलित हुईं। इस भावधारा से प्रभावित नवीनचंद्र (दे० सेन), हेमचंद्र, बंकिमचंद्र (दे० चट्टोपाध्याय), रमेशचंद्र (दे० दत्त) ने अपनी रचनाओं में तीव्र स्वदेश-प्रेम और जातीयतावादी भावधारा की अभिव्यक्ति की। 1905 ई० में 'बंगभंग' बिल पास हो जाने पर बंगाली जन-मानस में तीव्र विद्रोह की भावना जाग उठी और 'स्वदेशी आंदोलन' का सूत्रपात हुआ जिसे वाणी मिली उस समय की साप्ताहिक पत्रिका 'युगांतर' में। बंग-भंग के विरुद्ध अग्निविप्लव-दाह से उस समय का सारा बँगला-साहित्य भरा पड़ा है जिनमें भूदेव मुखोपाध्याय, शरत्चंद्र (दे०), रवींद्रनाथ (दे० ठाकुर), नजरुल इसलाम (दे०) उल्लेखनीय हैं।

स्वप्नदीप (उ० कृ०)

श्रीमती विद्युत्प्रभादेवी (दे०) की यह उल्लेखनीय काव्य-कृति है।

नारी-हृदय न जाने कितनी जानी-अनजानी स्वप्निल भावनाओं, अधखुली, अधमुँदी इच्छाओं की क्रीड़ा-भूमि है; यही जीवनदायिनी कामनाओं का स्नेह-नीड़ है। इस काव्य में नारी-जीवन की मधुर-मदिर सजल-कथा अपनी सरलता व तरलता में हमें मुग्ध कर लेती है। चंचल बालिका से विरह-विदग्धा मुग्धा-वधू तक अनेक मनोरम-करुण छवियाँ तरंगायित दिखाई पड़ती हैं। ललित-मधुर भाषा, भावभीनी-सरस-शैली, मृदुमंथर छंद ने इन तरल रेखा-चित्रों में एक सजल कांति ला दी है। छोटा-सा यह जीवन दुकूल इन्हीं नन्हे सुख-दुःख के हीरे-मोती से जगमगा रहा है—कितना प्राण-भरा, कितना सार्थक। ममता की हल्की हिलोर से जब यह नीलगगन के नीचे लहरा उठता है, तब किसके प्राण झूम नहीं उठते? उड़िया जातीय जीवन, उड़िया संस्कृति का यह अक्षुण्ण शब्दचित्र है।

शैशव की चंचलता और भोलापन, विवाह-बेला की व्यथा, संशय, भय, वधू-जीवन की सुकुमार अभिलाषाएँ, प्रवासी-जीवन की विवश आहें, सभी इस काव्य के अलंकरण हैं।

स्वप्न-प्रयाण (गु० कृ०) [प्रकाशन-वर्ष—1957 ई०]

हरिश्चंद्र भट्ट (समय—1906 से 1950 ई०)-विरचित इस काव्य-संग्रह के माध्यम से गुजराती काव्य में पहली बार पश्चिम के कवि और काव्यविचारकों—जैसे टी० एस० इलियट, वालेरी, एजरा पाउंड इत्यादि—का प्रभाव दृष्टिगोचर हुआ और काव्य की एक नयी धारा प्रवाहित हुई।

स्वप्न-भंग (अ० कृ०) [रचना-काल—1934 ई०]

यह गणेश गगै (दे०) का द्वितीय कविता-संग्रह है। किसी नारी ने इनके प्रेम को अस्वीकार कर

दिया। अतएव पीडा ने इन्हे उच्चस्तर का प्रेमी कवि बना दिया था। इनकी कविताओ मे प्रेम की गहन व्यथा है।

स्वप्नवासवदत्तम् *(स० क०)* [समय—ईसा की तीसरी शती]

भास (दे०) की नाटयकला की पूर्ण अभिव्यक्ति 'स्वप्नवासवदत्तम्' मे होती है। यह उनके शिल्प-कौशल का चूडात निदर्शन है।

इस नाटक मे 'प्रतिज्ञायौगधरायण' (दे०) के वृत्त का उत्तरार्ध भाग प्रदर्शित किया गया है। राजा उदयन (दे०) विरोधियो को परास्त करना चाहता है। उसके लिए मगध के राजा दर्शक की सहायता लेना आवश्यक है। अत यौगधरायण (दे०) वासवदत्ता (दे०) के जल मरने की बात फैलाकर वासवदत्ता को अवतिका के रूप मे दर्शक की बहन पद्मावती के पास धरोहर रख देता है। बाद मे उदयन और पदमावती का विवाह हो जाता है। समुद्रगृह मे पद्मावती के बिस्तर पर सोता हुआ उदयन वासवदत्ता को स्वप्न मे देखता है और उससे मिलने के लिए आतुर हो उठता है। अत मे वत्स विजय के अनतर वासवदत्ता उदयन के सामने लाई जाती है और दोनो का पुर्नमिलन होता है।

'स्वप्नवासवदत्तम्' भास की नाटयकला के विकास की चरम परणति है। इसमे महाकवि की लेखनी अपने प्रौढ रूप मे हमारे सामने आती है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से तो यह नाटक बेजोड है। प्रेम का इतना शुद्ध एव निष्कपट स्वरूप इस नाटक मे प्रदर्शित किया गया है जो अन्यत्र दुलभ है। भाषा तथा भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से भी यह नाटक अत्यत उच्चकोटि का ठहरता है। नाटकीय सविधान तथा मचीय गुणो की दृष्टि से यह नाटक परवर्ती नाटककारो के लिए आदर्श बन गया है।

स्वयभू *(अप० ले०)* [रचना काल —आठवी नौवी शती ई०]

स्वयभू अद्यावधि ज्ञात अपभ्रश-कवियो मे से सबसे प्राचीन हैं। इनके पिता का नाम मारुतदेव और माता का नाम पदिमनी था। इनके पिता कवि थे और पुत्र त्रिभुवन भी। इनकी दो पत्नियाँ थी और कुछ विद्वान तीसरी पत्नी का भी अनुमान करत है।

इनका शरीर सुदर नही था, नाक चपटी और दाँत विरल-विरल थे। अपने विषय मे ऐसी सूचना देने से प्रतीत होता है कि ये स्पष्टवादी थे।

इनकी तीन कृतियाँ उपलब्ध है—'पउमचरिउ' (दे०) 'रिट्ठणेमिचरिउ' (दे०) और 'स्वयभूछदस'। अनुमान है कि इन्होने तीन और रचनाएँ लिखी थी—'सुद्धयचरिउ', 'पचमीचरिउ' और स्वयभूव्याकरण'। ये तीनो ग्रथ अप्राप्य है। स्वयभू ने अपने समय और जन्म-स्थान के विषय मे कोई सूचना नही दी। विद्वानो का अनुमान है कि कर्नाटक इनकी काव्य साधना की स्थली थी। उत्तर भारत मे जन्म लेकर ये दक्षिण मे जा बसे थे।

त्रिभुवन ने स्वयभू को 'छदचूडामणि' 'कविराज', 'चक्रवर्ती', आदि उपाधियो से सबोधित किया है। स्वयभू के ग्रथो और इनकी ख्याति से सिद्ध होता है कि ये विद्वान् कवि थे। अपनी प्रतिभा और कवित्व शक्ति के कारण इन्हाने उपरिनिर्दिष्ट उपाधियाँ प्राप्त की थी। 'रिटठणमि चरिउ'(1 2) म उल्लिखित कवियो एव आलकारिको के निर्देशो मे ज्ञात होता है कि ये छद शास्त्र, अलकारशास्त्र नाटयशास्त्र सगीत व्याकरण काव्य, नाटकादि स पूण अभिज्ञ थे। अपने स्वयभूछदस मे इन्होने लगभग 60 प्राकृत और अपभ्रश के उद्धरण दिए है जिससे सिद्ध होता है कि वे इन दोनो भाषाओ के पडित थे। यही कारण है कि इनके परवर्ती कवियो ने इनका अति आदर के साथ स्मरण किया है। नम्रतावश स्वयभू ने अपने को कालिदास (दे०) और बाण (दे०) प्रभृति सस्कृत-कवियो से अनभिज्ञ कहा हो किंतु कवि निस्सदेह सस्कृत की काव्य-परपरा से प्रभावित है। 'सस्कृत की जलविहार, वन वर्णन, सूर्योदय सूर्यास्त नदी आदि के वर्णन की रूढिगत शैली का स्पष्ट प्रतिबिंब स्वयभू म मिलता है।'

स्वर्णकिरण *(हि० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1947 ई०]

सुमित्रानदन पत (दे०) के इस काव्य सग्रह म भी 'स्वर्णधूलि' के समान आत्मवाद और भूतवाद के समन्वय का स्वर प्रधान है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इस सग्रह की रचनाएँ दार्शनिक, प्रकृतिपरक, प्रशस्तिमूलक तथा व्यग्यात्मक है। दार्शनिक रचनाओ मे 'श्रीअरविंद-दर्शन' और प्रकृतिपरक रचनाओ मे 'हिमाद्रि' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रशस्तिमूलक रचनाओ म गाधी नहरू जैसे राष्ट्र-नेताओ का स्तवन है। 'कौवे के प्रति' शीर्षक रचना व्यग्यात्मक है। स्वरूप की दृष्टि से स्वर्णोदय' शीर्षक

रचना अपनी गुरुता के कारण पृथक् स्थान रखती है। मानव की जीवन-यात्रा के गंभीर विवेचन ने उसे महाकाव्य-गरिमा प्रदान की है। इसके अतिरिक्त 'अशोकवन', 'हिमाद्रि' आदि रचनाएँ भी गरिमामयी शैली में मंडित हैं। इन रचनाओं में पंतजी की विकासशील कला अपनी चरम प्रौढ़ि पर पहुँच गई है। अप्रस्तुत-सामग्री की समृद्धि, प्रयोग-कौशल की सूक्ष्मता और अभिव्यक्ति की परिपक्वता में इस प्रौढ़ि के दर्शन किए जा सकते हैं।

स्वर्णकुमारी देवी *(बँ० ले०)*

प्रथम प्रसिद्ध महिला-उपन्यासकार के रूप में स्वर्णकुमारी देवी ने मुख्य रूप से ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। इस दिशा में वे रमेशचंद्र दत्त (दे०) से अनुप्रेरित हैं। 'दीप निर्वाण' (दे०) प्रारंभिक रचना है परंतु 'मिबार राजविद्रोह' उनकी सफल एवं सशक्त रचना है। यहाँ लेखिका ने ऐतिहासिक प्रसंगों की पृष्ठभूमि में मानव-हृदय का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। स्वर्णकुमारी देवी के सामाजिक एवं पारिवारिक उपन्यासों में 'काहाके' नारी-जीवन के संघर्ष का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। विचारों की दृष्टि से लेखिका का मत परंपरागत विधि-निषेधों का समर्थक तथा प्राचीन आदर्शों का पोषक है। यह मताग्रह सभी उपन्यासों में है।

स्वर्णधूलि *(हि० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1947 ई०]

वैयक्तिक धरातल पर रुग्णता और वैश्विक धरातल पर महायुद्ध की विभीषिका ने सुमित्रानंदन पंत (दे०) को भौतिकवाद के प्रति अनाश्वस्त कर दिया। फलतः वे 'स्वर्णधूलि' में भूतवाद और आत्मवाद के समन्वय की तीव्र आकांक्षा से प्रेरित दिखाई देते हैं। विषय चाहे प्राकृतिक हो या सामाजिक-राजनीतिक, उनकी परिष्कृत आध्यात्मिक चेतना सर्वत्र अनुस्यूत है। इस चेतना के विकास में श्रीअरविंद के दर्शन का प्रभाव अत्यंत स्पष्ट है। कहीं आर्षवाणी के उद्धरण या अनुवाद है, कहीं लक्ष्मण जैसे पात्र के प्रति ममत्व का भाव है और कहीं सांस्कृतिक उपमानों को ग्रहण किया गया है। कलात्मक दृष्टि से इस संग्रह की अनेक कविताएँ शुद्ध गीतिकाव्य के सुंदर उदाहरण हैं। परिष्कृत आत्मा के सहज द्रवण से ओतप्रोत इन गीतियों में एक शांत स्निग्धता मिलती है।

स्वर्णलता *(बँ० कृ०)* [रचना-काल—1874 ई०]

बंकिम (दे०) बाबू के समसामयिक तारकनाथ गंगोपाध्याय (दे०) ने पारिवारिक उपन्यासों में मध्यवित्त का चित्रांकन कर उस युग में ख्याति अर्जित की थी। अनाडंबर आंतरिकता के आश्रय से उन्होंने 'स्वर्णलता' की रचना कर सामाजिक उपन्यास को एक नयी दिशा दी। चरित्र को किसी एक व्यावहारिक लक्षण के द्वारा चिह्नित कर चरित्र-सृष्टि करने में तारकनाथ की दक्षता उल्लेखनीय है।

'स्वर्णलता' में संयुक्त परिवार की विभिन्न समस्याओं का गंभीर चित्रण हुआ है। किस प्रकार तुच्छ कारणों से भाइयों में लड़ाई हो जाती है एवं इसके पीछे स्त्रियों की क्या भूमिका रहती है—लेखक ने इसका उल्लेख करते हुए गोपाल एवं स्वर्णलता के प्रेम और विवाह को कथारूप प्रदान किया है। उपन्यास के दो पात्रों—गदाधर एवं नीलकमल—ने कथा में हास्यरस का संचार किया है। कथावस्तु के मूलरूप से तीन अंग हैं: नीलकमल का जीवन, शशिभूषण-विधुभूषण का द्वंद्व एवं स्वर्णलता का विवाह। नीलकमल का जीवन बंगाली-मन की पथिकवृत्ति का परिचायक है। शशि एवं विधु का द्वंद्व यथार्थ के धरातल पर चित्रित है एवं स्वर्णलता का विवाह रोमांसमूलक मनोभाव का प्रभाव है। उन्नीसवीं शती के अंतिम चरण में बंगाली मानस में यथार्थ दुःखोपलब्धि एवं दैवनिर्भरता का जो वैपरीत्य विद्यमान था, स्वर्णलता' उसी का सार्थक प्रतिफलन है।

स्वाति तिरुनाल, महाराजा *(मल० ले०)* [जन्म—1813 ई०; मृत्यु—1947 ई०]

ये देशी राज्य त्रावनकोर राजा थे। त्रावनकोर राज्य के शासकों में काव्य-नायक सर्वकला-संपन्न, प्रतिभाशाली कई भाषाओं के प्रकांड पंडित, संगीत और साहित्य के सच्चे उपासक आदि के रूप में सुख्यात है। वे कवियों तथा शिल्पियों के उदार आश्रयदाता थे। वे कलाविज्ञ गुणी भी थे और गुणग्राहक भी। 'राघव चरितम् काव्यम्','कुमारसंभवम् चंपु','मुद्राराक्षस छाया' आदि उनके उत्कृष्ट ग्रंथ हैं। हिंदी में उन्होंने कृष्ण पर कई गीत रचे है जो मीरा (दे०) और सूरदास (दे०) के प्रसिद्ध पदों की परिपाटी में आते हैं।

स्वामी *(म० कृ०)* [रचना-काल—1962 ई०]

रणजित रामचद्र देसाई (दे०)-कृत यह उपन्यास उनका पहला ऐतिहासिक उपन्यास है जो थोरले (बड़े) माधवराव पेशवा के जीवन पर आधारित है तथा जिसके प्रणयन के लिए लेखक ने अनेक ऐतिहासिक ग्रथ तथा बखरी-साहित्य का अध्ययन किया। अत मराठी उपन्यास-साहित्य मे यह इतिहास से सर्वाधिक प्रामाणिक कहा जाने वाला ऐतिहासिक उपन्यास माना जाता है। माधवाराव पेशवा केवल 11 वर्ष तक पेशवा रहे; 28 वर्ष मे उनकी राजयक्ष्मा से अकाल मृत्यु हो गई। परतु इस अल्पकाल मे भी उन्होने राज्य-निष्ठा, प्रजा-वत्सलता, शौर्य, पराक्रम, अनुशासन-प्रियता, न्याय-दृष्टि और परिश्रम से मराठा-इतिहास मे अपना नाम अमर कर लिया। उपन्यासकार ने उनके इन्ही चारित्रिक गुणो पर प्रकाश डालते हुए उनके जीवन-काल की अनेक घटनाओ —राघोबा दादा तथा भोसले से सघर्ष, हैदर, निजाम तथा कर्नाटक के युद्ध, अँग्रेजी दूत मार्टिन से भेंट आदि को उपन्यास के कथानक म कलापूर्ण ढग से गुफित किया है। माधवराव का कृतित्व—टीपू का पराभव, निजाम से मित्रता, दिल्लीपति को सिहासन पर बैठाने म सहायता, उत्तर म विजय पाकर पानीपत की पराजय का कलक धोना आदि—उपन्यास का केंद्रबिंदु है। इन राजनीतिक घटनाओ के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक एव पारिवारिक स्थिति का चित्रण कर लेखक ने उस युग को साकार कर दिया है। ऐतिहासिक उपन्यासकार की सफलता का रहस्य है युग-विशेष के वातावरण को इस तन्मयता एव निष्ठा से प्रस्तुत करना कि पाठक उस युग से तादात्म्य स्थापित कर सके, उससे एकरस हो सके। इस दृष्टि से भी यह उपन्यास पूर्ण सफल है। पेशवा और निजाम के दरबार, महलो की व्यवस्था, मदिरो मे होने वाली पूजा-अर्चना, बाजार-हाट, वेशभूषा, युद्ध, सगीत-सभा, प्रीति-भोज, सती प्रथा आदि के चित्र उस युग को पाठक के सम्मुख साकार कर देते हैं। काव्यमय प्रकृति-चित्रो, सजीव सवादो एव प्रसगानुरूप भाषा-शैली ने उपन्यास को कलात्मक दृष्टि से भी महान् रचना बना दिया है।

स्वामी *(म० पा०)*

डा० श्री० व्य० केतकर (दे०) के उपन्यास 'आशावादी' के इस पात्र का वास्तविक नाम है देवीदास पत जो विदेश से अपनी पत्नी की मृत्यु का झूठा समाचार सुनकर सन्यास धारण कर लेता है और अपना नाम बदलकर स्वामी ब्रह्मगिरि रख लेता है। भारतवासियो मे आशा की किरण उत्पन्न करने के लिए वह पुन भारत आता है और अपने भाषणो से लोगो को उत्कर्ष की प्रेरणा देता है। उसके समाजशास्त्रीय विचार डॉ० केतकर के अन्य पात्रो के समान ही क्रातिकारी है। वस्तुत यह पात्र मराठी उपन्यासो मे पाय जाने वाले उन स्वामियो की परपरा मे है जो हरिनारायण आपटे (दे०) के श्रीधर स्वामी से आरम्भ होती है। ये स्वामी एक ओर हिंदुओ के सामाजिक सगठन मे प्रवृत्त होते हैं और दूसरी ओर देशवासियो मे राजनीतिक चेतना जागृत करने का प्रयास करते हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह पात्र-रचना सफल नही है। लेखक ने उसे केवल आशावाद की तरगो मे मग्न, काम-भावना से पीडित होते हुए भी पाप के गढे मे गिरने से बचते हुए दिखाया है। उसके अद्भुत सनकी विचारो और भटकते मन का भी परिचय दिया गया है। पर कुल मिलाकर ब्रह्मगिरि का चित्र अपूर्ण लगता है।

हस *(हिं० पत्र०)*

अकबर इलाहाबादी की मजाक म कही बात 'जब तोप मुकाबिल हो अखबार निकालो' को गभीरता से लेकर मुशी प्रेमचद (दे०) ने फरवरी 1980 ई० मे 'हस' नामक हिंदी रिसाला निकालने का विचार किया और गाधी जी की डाडी-यात्रा से पद्रह दिन पूर्व ही 'हस' का मार्च अक लेकर राजनीतिक युद्धक्षेत्र मे आ डटे। उन का उद्देश्य था 64 पृष्ठो का एक ऐसा पत्र निकालना जिसका ज्यादातर अफसानो से ताल्लुक' हो। 'हस' की नीति की घोषणा करते हुए कहा गया था—'आजादी की जग मे योग देने चला है।' पत्र निकालना उन दिनो दर्दे-सर और हानि का काम था, यह जानते हुए भी मुशी प्रेमचद्र ने यह 'हिमाक्त की'। वस्तुत जीवन भर 'प्रेस' की तरह 'हस' भी उनके लिए सिर-दर्द बना रहा। पाँचवाँ अक भी न निकला था कि प्रेस' से जमानत माँगी गई और प्रेमचद को पत्र वद करने के विषय म सोचना पडा पर उनकी निष्ठा के कारण वह चलता रहा। 1932 -ई० मे स्वय 'हस' से जमानत माँगी गई, कई हजार का घाटा उठाते हुए, बार बार जमानत भरते हुए

बीच-बीच में बंद करते हुए भी प्रेमचंद उसे निकालते रहे, भयंकर में रुग्णावस्था मे भी उसके लिए संपादकीय लेख लिखते रहे। गांधी जी के परामर्श से उन्होंने उसे कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (दे०) को सौंपने का विचार किया और 'हंस' भारतीय साहित्य-परिषद् के मुखपत्र के रूप मे निकलने लगा है।

प्रेमचंद के समय मे 'हंस' मे राजनीतिक विषयों—सरकारी दमन, सरकार की विच्छेद-नीति, साम्राज्यवादी शक्तियो द्वारा जनपद पर प्रहार, चीन पर जापानी साम्राज्यवाद का आक्रमण, हिंदू-मुसलमान-मैत्री आदि पर लेख और टिप्पणियाँ निकलती रहीं। आरंभ से ही 'हंस' को 'प्रसाद' (दे०) जैसे महान कवि, उषादेवी मित्रा जैसी बँगला-भाषी लेखिका आदि का सहयोग मिला, तो जैनेंद्रकुमार (दे०) जैसे उदीयमान लेखकों को प्रोत्साहन देने का श्रेय भी उसे है। 'हंस' के आत्मकथांक मे महापुरुषों के स्थान पर साधारण जनो साहित्यकारो और समाज-सेवकों की आत्मकथाएँ देकर उन्होंने अपार साहस और जन-प्रेम का परिचय दिया। हिंदी-उर्दू को पास लाने की दिशा मे भी 'हंस' कार्य करता रहा, पत्रकारिता के क्षेत्र मे भी उसका योगदान महत्त्वपूर्ण है—एक ओर उसने उन संपादकों की आलोचना की जो कला के नाम पर अर्धनग्न चित्र देकर, भंडाफोड की धमकी देकर, चौंकाने वाली चीजें छापकर रकम कमाते थे और दूसरी ओर पत्र-पत्रिकाओं के मालिकों की निंदा कर संपादकों के प्रति सहानुभूति जगाई। दिसंबर 1934 ई० के 'हंस' मे लेखक संघ पर टिप्पणी भी उनकी साहित्यिक गतिविधियों मे रुचि की परिचायक है। हिंदी की प्रगति मे 'हंस' का योगदान महत्वपूर्ण है। 1933 ई० में विशेषांकों की जो परंपरा 'काशी विशेषांक' से आरंभ हुई, उसे बाद के विशेषांकों—प्रेमचंद-स्मृति-अंक, एकांकी-नाटक-विशेषांक, रेखाचित्र-विशेषांक, कहानी-विशेषांक, प्रगति-विशेषांक, शांति-विशेषांक, आदि ने समृद्ध बनाया। प्रेमचंद की मृत्यु के बाद उसके संपादन का भार जैनेंद्र एवं शिवरानी देवी ने सँभाला। उनके उपरांत शिवदानसिंह चौहान (दे०), श्रीपत राय, अमृतराय, नरोत्तम नागर उसके संपादक हुए।

'हंस' के इतिहास मे उसका 1959 ई० का बृहत् संकलन उल्लेखनीय है जिसमें बालकृष्णराव और अमृतराय के संपादकत्व मे आधुनिक साहित्य और उससे संबंधित नवीन मूल्यों पर विचार किया गया। -

हंसदमयंति *(क० कृ०)*

कर्नाटक के अत्यंत ख्याति-प्राप्त आधुनिक कवि पु० ति० न० (डा० पु० ति० नरसिंहाचार्य—दे०) की कृति 'हंसदमयंति मत्तु इतर रूपकगळु' (हंसदमयंती तथा अन्य रूपक) 1966 ई० में साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत कन्नड की एक श्रेष्ठ रचना है। पु० ति० न० चिंतक, दार्शनिक, गीतिकार एवं भावुक कवि है। वे प्राचीन वस्तु को नवीन रीति मे अपने चिंतन के रसलेप के साथ प्रस्तुत करने मे सर्वथा समर्थ है। प्रस्तुत रचना 'हंसदमयंति मत्तु इतर रूपकगळु' मे उन्होंने ऐसा प्रयोग किया है कि साहित्यकार तथा संगीतकार दोनों की दृष्टि सहसा उस पर स्थिर हो जाती है। उसमे संगीत और साहित्य का मणिकांचन संयोग हुआ है। उनकी कृति में गीतों के लिए जो स्वर-संयोजना दी गई है एवं कागड़ा, बेगड़े, तोड़ी आदि राग-रागिनियों की जो स्वतंत्र कल्पना की गई है, वह संगीत मे उनकी विशेष अभिरुचि और परिणति का ही प्रमाण है।

'हंसदमयंति' मे आठ रूपकों का संकलन है। उनमे 'हंसदमयंति' और 'हरिणाभिसरण' को छोड़कर शेष रूपक आकार की दृष्टि से छोटे हैं। 'हंसदमयंति' में दमयंती के पूर्व-राग का बडा भव्य और मृदुल चित्र प्राप्त होता है। कवि की कोमल भावनाओं का वह आधान है। 'रामोदयम्' और 'सीता-परिणयम्' रूपक 'रामायण' (दे०) की कथा पर ही आधृत है। 'वसंत-चंदन', 'वर्ष-हर्ष' और 'शरद्विलास' कवि के प्रकृति-प्रेम के सूचक हैं। वे ऋतु-गीतरूपक है जिनमें कवि का राष्ट्र-प्रेम दिव्य रूप में प्रकट हुआ है। 'दीपावली' के उल्लास-पूर्ण वातावरण का चित्रण 'दीपलक्ष्मी' रूपक में प्राप्त होता है। उक्त रूपकों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि कवि में पाठकों (अथवा दर्शकों) को मंत्रमुग्ध करने की शक्ति है। उनकी शैली में माधुर्य, कोमलता और प्रभावशीलता के गुण विद्यमान हैं। •

हकीकतराय दी वार *(पं० कृ०)* [रचना-काल—1792 ई०]

अगरा कवि द्वारा रची गई इस पद्यबद्ध रचना मे हकीकतराय के बलिदान की कथा कही गई है। इसमें कुल 213 पद हैं। प्रत्येक पद चार पंक्तियों का है। वीर रस के चार भेदों में से धर्मवीर

का निर्वाह इस कृति मे सुदर ढग से हुआ है। ऐतिहासिक घटना को 'वार' (दे०) नामक काव्य-रूप मे बाँधा गया है। रचना हकीकत के हृदय की दृढता के वर्णन मे इतनी प्रभावशालिनी है कि पाठक अनायास प्रभावित हो जाता है। भाषा मे पजाबी शब्दो का प्रयोग प्रधान है। खडी बोली—और उर्दू के शब्दो का भी—प्रयोग कदाचित् ही किया गया है। इसे पजाबी साहित्य मे ठेठ पजाबी की कृति माना जाता है। वार साहित्य मे यह प्रथम कृति मानी जाती है। सगीतात्मकता इसका प्रधान गुण है।

हुज्व *(उर्दू० पारि०)*

'हुज्व' 'कसीदा' का विलोम शब्द है। 'कसीदा' (दे०) मे तो किसी शासक या आश्रयदाता की प्रशसा की जाती है किंतु हुज्व मे किसी व्यक्ति, शासन-पद्धति, परिस्थिति विशेष अथवा वस्तु-विशेष की निंदा रहती है। मीर तक़ी 'मीर' (दे०) ने अपने घर की हुज्व बहुत अच्छी कही है। 'मसहफ़ी' ने खटमलो की हुज्व बहुत खूब कही है।

हडप, वि० वा० *(म० ल०)* [जन्म—1900 ई०, मृत्यु—1959 ई०]

सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक *उपन्यास लेखक हडप का कृतित्व विपुल भी है और* वैविध्य-पूर्ण भी। ऐतिहासिक उपन्यासमाला तथा अनेक सामाजिक उपन्यासो से इनके विस्तारपूर्ण लेखन-कार्य का सहज ही अनुमान होता है। पर सख्या की दृष्टि से विपुल होते हुए भी स्तर की दृष्टि से इनका कृतित्व महान नही है। *स्वधर्माभिमान एव स्वदेशाभिमान जागृत करने के उद्देश्य* स रचित ऐतिहासिक उपन्यासो को यदि काल विसगति, अस्वाभाविक कल्पना, कृत्रिम भाषण, अद्भुत रोमाचकारी प्रसगो की योजना ने विकृत बना दिया है, तो सामाजिक उपन्यास समाज के कुकृत्यो—पतित विधवा, प्रवचिता युवती, *लपट पुरुष के व्यभिचार-विलास आदि का वर्णन* कर सनातन मूल्यो की रक्षा पर बल देने के कारण कलात्मक स्तर से गिर गए हैं। उनमे जीवन-विषयक जिज्ञासा की अपेक्षा मनोविनोद पर दृष्टि अधिक है। इधर के राजनीतिक उपन्यासो मे लेखक ने साम्यवादी दृष्टि अपनाते हुए *वर्गसघर्ष और अर्थ के समविभाजन की बात* कही है और साहूकारो के अत्याचार और किसानो की सहनशीलता का द्रावक वर्णन किया है। उपन्यास-कला *की दृष्टि से ये रचनाएँ भी* दोषपूर्ण है—उनका कथानक वर्णनात्मक और इतिवृत्तात्मक है तथा सवाद राजनीतिक चर्चा से बोझिल हैं। भाषा भी स्वाभाविक न होकर अलकृत है। इनको केवल एक बात का श्रेय दिया जा सकता है और वह यह कि इन्होने मराठी कथा-साहित्य मे यथार्थवादिता और सामाजिक प्रवृत्ति का उन्मेष किया है। प्रमुख रचनाएँ—'भाकली मूठ', 'वहकलेली तरुणी', 'इष्काचा प्याला', 'मस्तरीण काकू', 'विभावरी', 'दुलारी' आदि सामा*जिक उपन्यास, 'आजचा प्रश्न', 'गोदाराणी' आदि साम्यवादी* विचारधारा मे प्रभावित उपन्यास, तथा 'भारतमाते ऊठ' और 'भारतमातेची हाक' नामक ऐतिहासिक उपन्यास।

हदिबदेय धर्म *(क० कृ०)*

'हदिबदेय धर्म' (पतिव्रत धर्म) की कवयित्री होन्नम्मा (दे०) का कन्नड कवयित्रियो मे विशिष्ट स्थान है। उन्होने 'हदिबदेय धर्म' जैसे काव्य का प्रणयन कर कन्नड-साहित्य को नया विषय दिया है। उनके काव्य मे *कथा नही, नीति का प्राधान्य है। रामायण* (दे०), महाभारत (दे०), मनुस्मृति आदि ग्रथो मे कथित पातिव्रत-धर्म का प्रतिपादन करना ही इस ग्रथ का मुख्य उद्देश्य है। इसमे कई छोटी-छोटी कथाएँ विषय-प्रतिपादन के सदर्भ मे बताई गई हैं। उनमे सरसता है, आकर्षण है। *उनकी अभिव्यक्ति मे मार्मिकता है और शैली स्तुत्य प्रभाव* है। स्त्री के विषय मे उनका कथन बडा सत्य और मार्मिक है। उदाहरणार्थ, 'हम लोगो को जन्म देने वाली माँ क्या स्त्री नही है? स्त्री न ही सबका पालन पोषण नही किया है? 'स्त्री', 'स्त्री' ऐसा कहकर स्त्री को नीची दृष्टि से *क्यो देखते हैं? आँखो के होते हुए भी ये अधे है!"* यह कितना कठोर सत्य है। ठेठ कन्नड की काव्यमय शैली मे सागत्य (दे०) छद म लिखित उनके ग्रथ मे अनुप्रासादि अलकारो का सहज रूप प्रयोग हुआ है। उनका ग्रथ निश्चय ही एक सत्काव्य है।

हनुमान नाटक *(प० कृ०)* [रचना-काल—1623 ई०]

यह हृदयराम भल्ला (दे०) द्वारा विरचित पजाबी साहित्य का प्रसिद्ध नाटक है। इसका आधार-ग्रथ सस्कृत भाषा का 'हनुमन्नाटक' है। पजाबी की इस कृति का वास्तविक नाम 'राम गीत' है। ग्रथकार की यह उक्ति

प्रमाण है—

संवत विक्रम नृपति सहस षट सात असीह पर ।
चैत्र - चाँदनी दूज छत्र जहाँगीर सुभट पर ॥

कृति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कहीं-कहीं संस्कृत 'हनुमन्नाटक' के कई पदों का अविकल अनुवाद किया गया है, कहीं छायानुवाद है और कहीं-कहीं एक श्लोक के लिए चार-पाँच कवित्त-सवैयों का प्रयोग किया गया है। कथावस्तु, छंद, रस एवं अलंकारादि की दृष्टि से कवि-प्रतिभा का कौशल यहाँ द्रष्टव्य है। पुत्रस्नेही राजा दशरथ, वीर रसमय राम-लक्ष्मण एवं मेघनाद तथा उद्धत रावण का चरित्र-चित्रण सुंदर है। कृति की भाषा संस्कृत एवं तद्भव शब्दों से युक्त ब्रज है। पंजाबी भाषा के शब्द कम ही प्रयुक्त हुए हैं।

हनुमंतरावु, धनिकोंडा (*ते० ले०*)

ये तेलुगु के सफल कहानीकारों में से हैं। इनकी कहानियों में यथार्थवाद एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की प्रधानता पाई जाती है। अतः स्त्री एवं पुरुष के यौन-संबंधों का स्वच्छंद एवं मुक्त वर्णन इन्होंने अपनी कहानियों में किया है। समाज में व्याप्त यौन-संबंधी रहस्यात्मकता और हेय भावना को हटाकर उसके संबंध में स्वस्थ दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की दिशा में ये यत्नशील रहे है।

हनुमच्छास्त्री, इंद्रकंटि (*ते० ले०*) [जन्म— 1911 ई०]

इंद्रकंटि हनुमच्छास्त्री का जन्म विशाखपट्टनम् जिले के माड्गुल नामक ग्राम में हुआ। आंध्र विश्वविद्यालय से उभयभाषाप्रवीण नामक प्राच्य परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। कई वर्ष रामचंद्रपुरमु हाईस्कूल में आंध्रभाषा के अध्यापक रहे। आजकल नेल्लूर जिले के कावलि नामक नगर में जवाहर भारती नामक विद्यालय में तेलुगु के प्राध्यापक है। तेलुगु तथा संस्कृत के जाने-माने पंडितों में से हैं।

इनकी प्रतिभा द्विमुखी है। स्वयं कुशल कवि के रूप में ये विख्यात हैं। आधुनिक कविता तथा संस्कृत-काव्यों के मर्मज्ञ समालोचक के रूप में इन्हें ख्याति प्राप्त है। इनकी काव्यकृतियों में 'दक्षाराममु' तथा 'तेलुगु-वीणा' उल्लेखनीय हैं। 'दक्षाराममु' की विशेषता यह है कि आधुनिक काव्यशैली में दक्षाराम की प्राचीन यशोगरिमा का अभिवर्णन हुआ है। इनका स्थान कहानीकारों में भी है। 'हनुमच्छास्त्रीकथलु' एक अच्छा कहानी-संग्रह है।

हनुमन्नाटक (*सं० कृ०*)

'हनुमन्नाटक' या 'महानाटक' संस्कृत-नाट्य-साहित्य की एक विशिष्ट रचना है। इसके लेखक के बारे में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग इसे हनुमान की कृति मानते हैं। डॉ० सुशीलकुमार डे इसके निर्माता की आवश्यकता नहीं समझते क्योंकि यह केवल वर्णनात्मक है तथा अनेक पूर्ववर्ती नाटककारों के पद्यों का संग्रह मात्र है।

इसके दो पाठ उपलब्ध हैं—पहला पश्चिम भारतीय पाठ जिसका संकलन दामोदर मिश्र ने किया है और दूसरा पूर्वभारतीय या बंगाली पाठ जिसके संकलन-कर्ता मधुसूदन मिश्र हैं। पहले का शीर्षक 'हनुमन्नाटक' है जिसमें चौदह अंक तथा पाँच सौ अड़तालीस पद्य हैं; दूसरे का 'महानाटक', जिसमें नौ अंक तथा सात सौ बीस पद्य हैं। कुछ भी हो, दोनों का कथानक एक है। दोनों में रामकथा अपने समग्र रूप में वर्णित है।

इस नाटक में अधिकांशतः पद्यों का प्रयोग हुआ है। गद्य का प्रयोग बहुत कम हुआ है। इसका विषय तथा पद्य अनेक ज्ञात तथा अज्ञात कवियों से लिए गए हैं। संवादों का प्रयोग भी इसमें बहुत कम हुआ है। अतः यह कृति नाट्य होने की अपेक्षा काव्य अधिक है और अनेक विद्वानों में से किसी ने इसे नाट्य-कृति माना है, किसी ने काव्यकृति। काव्य की दृष्टि से इस नाटक का अनेक संदर्भों में बड़ा महत्व है। आनंदवर्धन (दे०) ने अपने 'ध्वन्यालोक' (दे०) में इसमें से पद्य उद्धृत किए हैं।

हनुमन्नाटक (*हिं० कृ०*)

संस्कृत में इस नाम के दो नाटक मिलते हैं। एक है दामोदर मिश्र का जो ईसा की ग्यारहवीं शती में लिखा गया और जिसमें चौदह अंक है। दूसरा है मधुसूदनदास का, जिसमें नौ अंक है। हिंदी में तीन 'हनुमन्नाटक' उपलब्ध है। प्रथम है पंजाबी हृदयराम भल्ला-कृत 'भाषा हनुमन्नाटक' जिसकी रचना 1626 ई० में हुई और जो संस्कृत-नाटक का छायानुवाद मात्र है। द्वितीय है ओरछा के पंडित काशीनाथ के पुत्र एवं महाकवि केशवदास (दे०) के बड़े भाई बलभद्र मिश्र-कृत 'हनुमन्नाटक'

जो 1543 ई० के लगभग लिखा गया। तृतीय है रीतिकालीन किन्ही रामकवि की 'हनुमान नाटक' नाम की रचना। सूर (दे०) और तुलसी (दे० तुलसीदास) का कुछ काव्याश सस्कृत के 'हनुमन्नाटक' से प्रभावित है।

हनुमान *(स० पा०)*

यह किष्किधा के वानरराज सुग्रीव का अमात्य तथा सुमेरु के केसरिन् नामक वानर राजा का पुत्र था। इसकी माता का नाम अजना था। इसके जन्म के सबध मे अनेक चमत्कारपूर्ण कथाएँ कही जाती है। इसे वज्राग, वायुपुत्र, मारुति आदि भी कहते हैं। यह ब्रह्मचारी, महाबली और पराक्रमी था। सूर्य द्वारा इसे व्याकरण का ज्ञान मिला। सीता (दे०) को खोजते-खोजते राम (दे०) सुग्रीव के यहाँ पहुँचे तो हनुमान ने वानर दल के प्रमुख के रूप मे उनकी हर प्रकार से सहायता की। लका जाने से पूर्व इसने समुद्र का लघन छलाँग मारकर किया तथा लका पहुँचकर अपनी पूँछ मे आग लगाकर लका दहन किया। रावण (दे०) की अमाघ शक्ति से मूर्च्छित लक्ष्मण (दे०) के लिए यह हिमालय के वृष शिखर पर स सजीवनी बूटी लाने गया तो बूटी को पहचान न सकने पर अपने बाये हाथ मे सारा शिखर ही ले आया। यह राम का अनन्य भक्त था। अत राम के भक्तगण इसकी भी भक्ति अत्यत श्रद्धा एव निष्ठा से करत है।

'हफीज' जालधरी *(उर्दू० ले०)*

जन्म-स्थान—जालधर। 1901 ई० मे जन्म। इन्होने आरभिक शिक्षा घर पर ही प्राप्त की थी। अंग्रेजी शिक्षा की प्राप्ति के लिए इन्हे स्कूल म प्रविष्ट कराया गया था। परतु इस प्रकार की शिक्षा मे अरुचि के कारण ये सातवी कक्षा से आगे न बढ सके। कवित्व-प्रतिभा के बल पर समग्र देश मे इन्हे आशातीत लोकप्रियता और यश की प्राप्ति हुई। फिरदौसी के 'शाहनामा-ए-ईरान' की शैली मे लिखित 'शाहनामा-ए-इस्लाम' इनका कीर्तिस्तभ कहा जा सकता है। इस पद्यात्मक ऐतिहासिक ग्रथ के चार भाग प्रकाशित हो चुके है। इस वर्णनात्मक काव्य मे कलात्मकता का निर्वाह बडी सफलता के साथ हुआ है। इसमे प्राचीन इस्लामी इतिहास का गौरवगान वीर रस से ओतप्रोत शैली मे बडे मार्मिक रूप मे हुआ है। 'शाहनामा-ए-इस्लाम' के अतिरिक्त इनकी अन्य कृतियो मे 'नग्मा ए जार' और 'सोज-ओ-साज' अत्यत महत्वपूर्ण कृतिया है। इनमे कवि की प्रतिनिधि गजलें, नज्मे और गीत सगृहीत है। गीतो के क्षेत्र मे इनका योगदान उर्दू साहित्य मे चिरस्मरणीय रहेगा। सरल हिंदुस्तानी भाषा मे लिखित इनके गीत अत्यत सजीव, सरस और सुमधुर बन पडे हैं। इनके पढने की शैली भी इतनी माधुर्यपूर्ण और चित्ताकर्षक है कि श्रोतागण मत्रमुग्ध हो जाते है। इस शैली के कारण भी इनकी लोकप्रियता म अभिवृद्धि हुई।

हफ्ता-दीह-रात्यू-महीना *(सि० पारि०)*

भारतीय शृगार-काव्य मे जिस प्रकार नायक अथवा नायिका की वियोगावस्था को अभिव्यक्त करने के लिए षड् ऋतुओ अथवा बारह महीनो का वर्णन किया जाता है, उसी प्रकार सिंधी मे हफ्ता (सप्ताह), दीह (दिन), रात्यू (रातें) और महीना (महीने) शीर्षक से कविताओ मे नायक अथवा नायिका के विप्रलभ शृगार का वर्णन किया जाता है। 'हफ्ता' नामक कविता मे सप्ताह के सात दिनो म से एक-एक दिन को लेकर वियोग-दशा का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। दीह (दिन) कविता म प्राय छह, सात, चौदह अथवा तीस दिन होते है और रात्यू (रातें) कविता के भीतर बहुधा नौ, दस, ग्यारह, पद्रह अथवा तीस रातो का वर्णन होता है। 'महीना' (महीने) के भीतर छह अथवा बारह महीनो को लेकर प्रत्येक मास म नायक अथवा नायिका के वियोग का चित्रण किया जाता है। इस प्रकार की सिंधी-कविताओ पर भारतीय शृगार-काव्य का प्रभाव स्पष्टत दृष्टिगत होता है। इसके साथ साथ इन रचनाओ मे सिंध-प्रदेश की विशेषताओ का भी सुदर चित्र मिलता है। ये कविताएँ सिंधी-शृगार-काव्य की अमूल्य निधि है।

हब्बा खातून *(कश्० ले०)* [जन्म—अनुमानत 1550-1951 ई०]

श्रीनगर से 8 मील दक्षिण की ओर 'चदहार' नाम के गाँव म एक किसान परिवार म इनका जन्म हुआ। मृत्यु-काल अज्ञात है किंतु बहिर्साक्ष्य क आधार पर 1597-1603 ई० के बीच रहा होगा। इनके पिता का नाम अब्दुल राथर था। य अद्भुत सौंदर्य, प्रखर बुद्धि और तीव्र स्मरण शक्ति की स्वामिनी थी। मक्तब म

इन्हें कुरान-ए-शरीफ की शिक्षा मिली और घर पर इन्होंने पिता से शेख सादी की गुलिस्तान, बोस्तान, करीमा आदि का अध्ययन किया। शैशव से ही ये भावुक थीं। अल्पायु में एक अपढ़ किसान युवक से विवाह हुआ और ससुराल की यातनाएँ और तरह-तरह के बंधन सहे। इनका व्यक्तित्व विलक्षण प्रतिभा-संपन्न था। इनकी अंतरात्मा की पुकार प्रेम और भावुकता से अभिसिक्त गीतों की रचना में व्यक्त हुई। प्रसिद्ध सूफी फ़कीर ख्वाजा मसूद की शरण में गई। उन्होंने इनका नाम 'जूनी' (चंद्रमा) रखा और रानी बनने की भविष्यवाणी की। अंततः यूसुफ़ शाह तक से विवाह हुआ और यह भविष्यवाणी चरितार्थ हुई। इनकी स्वच्छंद स्वरलहरी मुखरित हो उठी। कश्मीरी साहित्य में पहली बार लोल-प्रगीतों या लोल-गीतिकाव्य की रचना की। हब्बा उच्च कोटि की संगीतकार भी थी। इन्होंने नये-नये राग-रागिनियों को जन्म दिया और कश्मीरी-ईरानी संगीत के सम्मिश्रण से 'रस्त' राग का आविष्कार किया। कश्मीरी काव्य में प्रेम और प्रेम में अप्राप्य लालसा और ललक का प्रथम और अद्वितीय नमूना हब्बा खातून का गीतिकाव्य ही है। इस प्रतिभा-संपन्न कवयित्री के कष्टमय जीवन का अंत श्रीनगर से साढ़े तीन मील दूर दक्षिण की ओर 'पांतछोग' नाम के गाँव में हुआ। प्रेम-सुधि परंपरा (लोल काल) की इस प्रवर्तिका के गीतों-ग़ज़लों में टीस, कसक, प्रेमोन्माद और दीवानगी है। शैली अनुपम, और शब्दचयन, भाव-गांभीर्य, और भाषा-सौष्ठव अद्वितीय।

हम्मीर रासो *(हि० कृ०)*

इस प्रबंधकाव्य का रचयिता शार्ङ्गधर कवि माना जाता है, यद्यपि राहुल सांकृत्यायन (दे०) ने इसका रचयिता जज्जल को माना है। किंतु जज्जल संभवतः हम्मीर का मंत्री था, जिसका उल्लेख ग्रंथ के उपलब्ध भाग में कई बार हुआ है। अतः परंपरा-ख्यात शार्ङ्गधर को ही इस ग्रंथ का रचयिता मानना चाहिए। साहित्य के इतिहासों में यद्यपि इस ग्रंथ का उल्लेख मिलता है, किंतु यह रचना उपलब्ध नहीं है। केवल 'प्राकृतपैंगलम्' में हम्मीर-विषयक आठ पद्य मिलते हैं जो किसी एक काव्यग्रंथ से लिये गए प्रतीत होते हैं। यह तत्कालीन देशी भाषा में रचित कोई वीरगाथात्मक महाकाव्य रहा होगा। ये पद्य आठ भिन्न छंदों में है। अतः अनुमानतः मूल 'हम्मीर-रासो' में अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ होगा। इन उपलब्ध अंशों की वर्ण्य-सामग्री और भाषा को देखते हुए तथा 'प्राकृतपैंगलम्' के संकलन-काल को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त हम्मीर-विषयक छंदों की रचना 1368 ई० के बाद नहीं होनी चाहिए। उपलब्ध पद्यों की भाषा उत्तरकालीन साहित्यिक अपभ्रंश है। वर्ण्य-विषय युद्ध है और भाषा में उसी के अनुरूप शब्द-प्रवाह एवं ओज है।

हयात-ए-जावेद *(उर्दू० कृ०)* [रचना-काल—1901 ई०]

'हयात-ए-जावेद' मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' (दे०) द्वारा लिखित सर सैयद अहमद खां (दे०) की जीवनी है। इसकी भूमिका में मौलाना 'हाली' लिखते हैं—'अभी वह वक्त नहीं आया कि किसी की बायोग्राफ़ी 'क्रिटीकल' तरीके से लिखी जाए, उसकी खूबियों के साथ कमजोरियाँ भी दिखाई जाएँ और उसके आली खयालात के साथ उसकी लाग़ज़र्शें (स्खलन) भी जाहिर की जाएँ··· वह हममें पहला शख्स है जिसने मजहबी लिट्रेचर (धार्मिक साहित्य) में नुक्ताचीनी की बुनियाद (नींव) डाली है, इसलिए मुनासिब है कि सबसे पहले उसी की 'लाइफ़' में उसकी पैरवी (अनुकरण) की जाए।'

इस पुस्तक में मौलाना 'हाली' ने सर सैयद के प्रत्येक कार्य पर आलोचनात्मक दृष्टि डाली है। मौलाना की राय में सर सैयद की तमाम मुल्की-ओ-क़ौमी ख़िदमतों (देश एवं समाज की सेवाओं) का मुहर्रक (प्रेरक) मजहब (धर्म) है और दूसरा कोई तत्त्व नहीं।

इस ग्रंथ के प्रथम भाग में सर सैयद के जीवन का वृत्तांत और दूसरे भाग में उनकी देश एवं समाज-सेवा का वर्णन है। इसमें सर सैयद की सच्चाई और नैतिक बल पर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक की भाषा सरल एवं सुबोध है। कहीं-कहीं अँग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। उर्दू के जीवनी-साहित्य में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

हरचरण सिंह *(पं० ले०)*

डा० हरचरण सिंह पंजाबी के प्रतिष्ठित नाटककार है। इन्होंने अनेक ऐतिहासिक और सामाजिक नाटक लिखे है। हरचरण सिंह मूलतः सुधारवादी लेखक है और अपने नाटकों के माध्यम से वे सामाजिक रूढ़ियों और समाज में व्याप्त अनेक प्रकार की कुरीतियों का यथार्थ चित्रण करते है।

हरचरण सिंह के नाटक रगमच की दृष्टि से बहुत सफल है। इनके नाटको म चित्रित पात्र सामान्य जनता की सामान्य भावनाओ और सामान्य समस्याओ का चित्रण करते हे, इसलिए रगमच पर प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से वे बहुत उपयोगी हे। विषय की दृष्टि से इनके अधिकाश नाटक सामाजिक सुखात नाटक हैं, जिनमे कोई गहरा जीवन-दर्शन तो व्याप्त नही हे, परतु दर्शको को प्रभावित करने की शक्ति पूरी तरह विद्यमान है। पजाबी नाटक को लोकप्रिय बनाने म हरचरण सिंह के नाटको का विशेष योगदान है।

हरचरण सिंह के नाटक सोद्देश्य नाटक हे। 'राजा पोरस', 'पुनिआ दा चन्न' और साझा राज' जैसे ऐतिहासिक नाटक पोरस, गुरु नानक (दे०) और महाराजा रणजीत सिंह के समय की समस्याओ को उभारते है तो 'अनजोड' जैसे नाटक पाखडी साधुओ का पर्दाफाश करते है। 'दूर दुराडे शहिरो' नाटक मे गाँवो की अनेक सामाजिक समस्याओ को उभारा गया है। इनके अनेक एकाकी सग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं।

हरप्रसाद शास्त्री *(बँ० ले०)* [जन्म—1852 ई०, मृत्यु—1932 ई०]

पडित हरप्रसाद शास्त्री का परिचय केवल एक विशेष परिचय मे निर्दिष्ट नही किया जा सकता। ये पडित, अन्वेषक, ऐतिहासिक, साहित्य-समालोचक एव औपन्यासिक थे। अतीत के बगाल तथा समग्र भारतवर्ष के ऐतिह्य के प्रति इनके हृदय मे अकृत्रिम श्रद्धा एव अनुराग था। बँगला साहित्य का प्राचीनतम निदर्शन, 'चर्यापद' के 'समूह के आविष्कर्ता का गौरव इन्हे प्राप्त हुआ था। इनकी 'भारत-महिला' (1878 ई०), 'वाल्मीकि-जय' (1879 ई०), 'मेघदूत' एव काचन-माला' (1912 ई०) तथा 'बनेर मेये' (1917 ई०) रचनाएँ उस युग म विशेष समादृत हुई थी। बौद्ध धर्म के प्रति इनका अनुराग इनके बहुत-से निबधो मे ऐतिहासिक निष्ठा, पाडित्य एव मनीषा की अनन्य साधारण दीप्ति से चिर-भास्वर है।

हरविलासमु *(त० कृ०)*

यह महाकवि श्रीनाथुडु (दे०) का उत्कृष्ट प्रबध-काव्य है। यह शिव-लीलाओ का विस्तृत वर्णन करने वाली काव्य-कृति है। इसमे पार्वती का विवाह, चिरुतोडनबि (दे०) की कहानी, दारुकावन का प्रसग, शिव द्वारा हालाहल-पान, 'किरातार्जुनीय' (दे०) की कथा आदि कथावस्तु के रूप मे वर्णित है। इन कथा-प्रसगो मे 'चिरुतोडनबि' की कथा तेलुगु के विख्यात वीरशैव कवि पाल्कुरिकि सोमनाथुडु (दे०) के 'बसवपुराणमु' (दे०) से तथा शिव पार्वती-विवाह के प्रसग को कालिदास (दे०) के 'कुमार-सभवम्' (दे०) से ग्रहण की गई है। आशुतोप शिव के विराट् स्वरूप एव इनके माहात्म्य से प्रभावित होने के कारण श्रीनाथुडु ने अपने कई काव्यो मे शिव-सबधी इतिवृत्तो को ग्रहण किया है। कवि की कवित्व-सामर्थ्य तथा शैली-सौष्ठव आदि इस कृति मे दर्शनीय हैं।

'हरिऔध', अयोध्यासिंह उपाध्याय *(हि० ले०)* [जन्म—1865 ई०, मृत्यु—1947 ई०]

इन्होने महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०) स काव्यसृजन की प्रेरणा प्राप्त की थी और जीवन काल मे ही इन्हे काफी ख्याति मिल चुकी थी। 1924 ई० मे इन्होने हिंदी साहित्य-सम्मेलन' (दे०) के प्रधान-पद को सुशोभित किया। इनकी सेवाओ स प्रभावित होकर काशी हिंदू विश्वविद्यालय ने इन्हे अवैतनिक प्राध्यापक रूप मे नियुक्त किया। एक अमरीकी विद्वान ने 'एनसाइक्लोपीडिया' मे इनका परिचय प्रकाशित कर इन्हे विश्व के साहित्यकारो की श्रेणी मे परिगणित किया है।

इनका कार्यक्षेत्र अधिकाशत काव्य ही रहा है। 'प्रियप्रवास' (दे०), 'रसकलश' (दे०), 'वैदेही बनवास' (दे०), 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे', 'कर्मवीर', 'काव्योपवन', 'उद्बोधन', प्रेमाप्रपच', 'प्रेमाम्बुप्रस्रवण' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ है। 'ठेठ हिंदी का ठाठ' एव 'अधखिला फूल' भाषा-सबधी प्रयोगो से सपृक्त इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'कबीर-वचनावली सपादित कृति है। 'हिंदी भाषा और साहित्य का विकास' इनके पाडित्य और आलोचना-शैली को उद्घाटित करने वाली श्रेष्ठ पुस्तक है।

इन्हे सर्वाधिक ख्याति 'प्रियप्रवास' के कारण मिली हे। कवि ने राधा-कृष्ण के व्यक्तित्व का अकन मध्ययुगीन रेखाओ के अनुकूल प्रेमी युगल के रूप मे न करके क्रमश: समाजसेविका एव देशोद्धारक के रूप मे किया है। कवि ने पौराणिक आख्यान को सर्वत्र नये ढग से प्रस्तुत किया है। गोपियो के विरहोद्गारो की मार्मिक अभिव्यजना मे इन्हे अभूतपूर्व सफलता मिली है। निश्चय

ही संस्कृत की समस्त तथा कोमलकांत पदावली से अलंकृत एवं संस्कृत-वर्णवृत्तों में लिखित इस अतुकांत रचना के कारण 'हरिऔध' का खड़ी बोली के उन्नायकों में अग्रणी स्थान है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने कवि-कर्म का शुभारंभ 'रसकलश' नामक ब्रजभाषा की रचना से किया, परंतु शीघ्र ही समय की गति को परखकर इन्होंने खड़ी बोली का परिमार्जन और संस्कार करके उसमें काव्य-रचना प्रारंभ कर दी। 'प्रिय प्रवास' के रूप में इन्होंने संस्कृत-गर्भित कोमलकांत पदावली-युक्त भाषा का अभिजात रूप प्रस्तुत किया एवं 'चोखे-चौपदे' तथा 'चुभते-चौपदे' द्वारा खड़ी बोली के मुहावरा-सौंदर्य एवं उसके लौकिक स्वरूप की झाँकी दी। इन्होंने 'प्रियप्रवास' में श्रीकृष्ण के मानवीय रूप की झाँकी प्रस्तुत करके स्वयं को मानववादी के रूप में प्रस्थापित किया है। यदि 'प्रिय-प्रवास' खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है तो 'हरिऔध' जी खड़ी बोली के प्रथम महाकवि हैं।

हरिकथा *(तं० पारि०)*

यह आंध्र में बहुत प्रचलित पौराणिक कथा-कथन का कार्यक्रम होता है। कथा सुनाने वाले को 'हरिदासु' कहा जाता है। यह कथा-प्रसंग के अनुरूप अभिनय करता हुआ, हाथ में किसी एक संगीत-उपकरण को लेकर अत्यंत रोचक पद्धति से किसी एक पौराणिक कथा को सुनाता है। यह कार्यक्रम रात में कई घंटों तक चलता रहता है। विषय को एकरसता से बचाने के लिए हरिदासु बीच-बीच में छोटी-छोटी हास्य कथाएँ तथा चुटकुले सुनाता रहता है। कई लोग कथा सुनाते समय उसके अनुरूप नृत्य भी करते हैं। इस कला में अत्यधिक ख्याति श्री आदि भट्ल नारायणदासु तथा बालाजीदासु को प्राप्त हुई है। इसमें एक ही व्यक्ति नृत्य, संगीत अभिनय एवं व्याख्या द्वारा परिचित कथा को जन-सामान्य के सम्मुख अत्यंत रोचक रीति से प्रस्तुत करता है।

हरिचरणदास *(बं० ले०)*

इनके जन्म स्थान, समय आदि के संबंध में विशेष ज्ञात नहीं। ये अद्वैताचार्य के पुत्र एवं अच्युतानंद के शिष्य थे। इन्होंने 'अद्वैत मंगल ग्रंथ' का प्रणयन किया था। अनुमान है कि यह ग्रंथ 'चैतन्य-चंद्रोदय' (दे०) (रचना-काल 1568 ई०) के बाद में लिखा गया था। हरिचरण दास ने सीतादेवी एवं अच्युतानंद से अद्वैताचार्य के जीवन की कहानियाँ सुनी थीं। बाल्यावस्था की कथाएँ विजयपुरी से ज्ञात की थीं। इसमें अद्वैत के बाल जीवन के संबंध में नूतन तथ्य मिलते हैं। यह ग्रंथ 5 अवस्थाओं एवं 23 अध्यायों में विभक्त है। इसकी भाषा अत्यंत नीरस वैशिष्ट्य-रहित है। छंद और अलंकार-योजना में कोई कौशल परिलक्षित नहीं होता।

हरिनामकीर्तनम् *(मल० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

यह मलयाळम का एक कीर्तन-ग्रंथ है। परंपरा में यह तुंचत्त् एषुत्तच्छन् (दे०)-रचित माना जाता है; परंतु अधिकतर विद्वान इस मत को नहीं मानते। अक्षर-माला के प्रत्येक अक्षर से से आरंभ होने वाले कीर्तन अकारादि-क्रम में नियोजित हैं और प्रत्येक पद्य 'नारायणाय नमः' में समाप्त होता है।

'हरिनामकीर्तनम्' में उच्च कोटि के आध्यात्मिक विचार प्रकट किए गए हैं और भक्ति-रस को उजागर किया गया है। केरल के हिंदू परिवारों में प्रतिदिन पढ़े जाने वाले संकीर्तनों में इसका प्रमुख स्थान है। एषुत्तच्छन् की कृति हो या न हो, 'हरिनामकीर्तनम्' मलयाळम के कीर्तन-ग्रंथों में अद्वितीय है।

हरिपंचानन योगीश्वरन् *(मल० पा०)*

'धर्मराजा' (दे०) और 'रामराज बहद्दूर' (दे०) दोनों उपन्यासों में प्रस्तुत कथा-पात्र राजकुल के मूलोच्छेदन का प्रयत्न करता दृष्टिगोचर होता है। कई षड्यंत्र रचे गए। राजा 'धर्मराजा' के प्रधान दीवान केशव पिळ्ळा के अथक और सजग प्रयत्न तथा कौशल से हरिपंचानन के सारे यत्न विफल हो जाते हैं। इन दोनों उपन्यासों के रचयिता सि० वि० रामन् पिळ्ळा (दे०) हैं। इन ऐतिहासिक उपन्यासों में हरिपंचानन का चित्रण बड़ा सजीव हो उठा है।

हरिभद्र *(अप० ले०)* [रचना-काल—1159 ई०]

हरिभद्र श्वेतांबर थे। ये जिनचंद्रसूरि के शिष्य श्रीचंद्र के शिष्य थे। इन्होंने 'नेमिनाथ-चरित' की

रचना चालुक्यवशी राजा सिद्धराज और कुमारपाल के अमात्य पृथ्वीपाल के आश्रय मे रह कर की थी । इन्होने प्राकृत मे 'मल्लिनाथ-चरित' की रचना की थी। इन कृतियो के अतिरिक्त इनकी 'चद्रप्रभा-चरित' नामक एक अन्य कृति का भी उल्लेख मिलता है ।

हरिभद्रसूरि *(प्रा० ले०)*

आठवी शती मे प्राकृत-साहित्य के अत्यत प्रतिष्ठित तथा परपरा-प्रवर्तक आचार्य कवि हरिभद्र चित्तौड मे ब्राह्मण वश म उत्पन्न हुए थे और विद्याधर कुल के जिनभद्र के शिष्य थे। कहा जाता है कि ये ज्ञान के कारण पेट फट जाने के भय से पेट के ऊपर स्वर्णपत्र लपेटे रहते थे । एक पद्य का अर्थ न कर सकने से अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ये याकिनी के शिष्य बन गए थे और उन्ही के निर्देश पर जिनभद्र से शिक्षा लेने गए थे। इसलिए ये अपने को याकिनी-पुत्र (मानसपुत्र) कहा करते थे । इनका कार्य क्षेत्र गुजरात और राजस्थान ही रहा। परपरा-प्रसिद्धि के अनुसार इन्होने 1444 से अधिक पुस्तके लिखी थी । किंतु अब इनम केवल 88 प्राप्त होती हैं जिनम 20 के ऊपर प्रकाशित हो चुकी है । इन पुस्तको मे अधिकाश आगम ग्रथो (दे० जैन-आगम) की टीकाएँ है । जैन धर्म से सबद्ध अनेक परपराओ और कथानको को सरक्षित रखने का इन्हे गौरव प्राप्त है । प्राकृत ग्रथो की सस्कृत टीकाएँ लिखने की परपरा इन्ही ने डाली थी। इनकी कुछ रचनाएँ मौलिक भी है और उनमे लौकिक तत्त्व को भी स्थान दिया गया है । किंतु इनकी कीर्ति का आधार-स्तभ 'समराइच्चकहा' (दे०) ही है ।

हरिलीला षोडश कला *(गु० कृ०)*

'हरिलीला षोडश कला' मध्ययुगीन गुजराती का एक भक्ति काव्य है। इसके रचयिता है कवि विष्णुदास भीम । रचना के उपजीव्य ग्रथ है, 'श्रीमद्-भागवत' तथा श्री बोपदेव रचित 'हरिलीला' । इस ग्रथ का सपादन श्री अबालाल बुलाखीराम जानी ने किया है तथा उसे प्रकाशित किया है—गुजरात वर्नाक्यूलर सोसायटी ने ।

'हरिलीला षोडश कला' श्रीकृष्ण के सपूर्ण चरित्र की सोलहो कला की स्तुति करने वाला पद्यबद्ध है। विष्णुदास भीम (दे०) सोलहवी शती मे हुए जैनेतर भक्तकवि थे ।

ग्रथ चार पाद (पाये) और सोलह कलाओ मे रचित है। चार पाये (पाद) हैं—(1) भक्ति, (2) विराग, (3) विवेक, (4) विचार । भक्ति के अतर्गत चार कलाएँ है । भागवत के तृतीय स्कध की कथा इसमे अतर्भुक्त है । 5 से 8 तक की कलाएँ दूसरे पाद के अतर्गत है । विराग' मे सप्तम स्कध की कथा समाविष्ट है । तीसरे पाद 'विवेक' मे नौ से बारहवी कला तक का समावेश है। इसमे दशम स्कध के 42वे अध्याय तक की कथा है। चौथे पाद 'विचार' म 13 से 16 तक की कलाएँ है जिनके अतर्गत द्वादश स्कध तक की कथा समाविष्ट है ।

मध्ययुगीन गुजराती वैष्णव भक्ति-साहित्य मे इस कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।

हरिवशमु *(ते० ले०)* [रचना-काल—चौदहवी शती ई०]

इसके लेखक एर्रन है जिन्हे एर्राप्रगड (दे०) भी कहते है । इन्होने इसके अतिरिक्त 'रामायणमु' और 'नृसिहपुराणमु' की रचना भी की थी । नन्नय भट्टु (दे०) तथा तिक्कना (दे०) के द्वारा तेलुगु मे अनूदित (दे० आध्रमहाभारतमु) मे अरण्यपर्व का एक अश अनूदित न होने से रह गया था । एर्रन ने उसे पूरा करने की इच्छा अरण्य पर्व के शेषाश को अनूदित कर दिया । पर 'हरिवश' के भी अनुवाद के बिना महाभारत' (दे०) का अनुवाद सपूर्ण नही था । क्योकि 'हरिवश' 'भारत' का उत्तर भाग माना जाता है । कहा जाता है कि अठारह पर्वों तक का अश 'भारत' है और वह 'हरिवश' के साथ 'महाभारत' है । अत एर्रन ने 'महाभारत' के तेलुगु-अनुवाद को पूरा करने के लिए 'हरिवश' को भी अनूदित किया था ।

'हरिवश' मे यदुवश की कथा वर्णित है । 'भारत' (कुरुवश) की कथा सुनने के बाद जनमजय से प्रार्थित होकर वैशपायन ने यदुवश की कथा भी उन्हे सुनाई थी । भारत-कथा से कृष्ण का घनिष्ठ सबध है और कृष्ण यदुवश के है । अत 'हरिवश' को भारत का पराश मानना समीचीन ही है ।

हरिवश दो भागो म विभक्त है । पूर्वभाग म नौ आश्वास तथा उत्तर भारत मे दस आश्वास हैं । 'महाभारत' तथा हरिवश की शैली वस्तुत पौराणिक है। तिक्कन ने 'महाभारत' के अपने अनुवाद मे अधिकतर काव्यशैली अपनाई थी । एर्रन ने 'हरिवश' के अनुवाद मे पौराणिक शैली अपनाने पर भी उसमे काव्योचित वर्णनो

को भी प्रमुख स्थान दिया है। वर्णनों की दृष्टि से तेलुगु के अनुवाद-साहित्य को पौराणिक शैली से काव्योचित शैली की ओर ले जाने का प्रथम गौरव एर्रन को प्राप्त होता है। हरिवंशानुवाद की भाषा में प्रसन्नता है और भाव में माधुर्य है। इसमें मुहावरों तथा कहावतों का प्रचुर तथा मार्मिक प्रयोग किया गया है।

तेलुगु में भारतानुवाद को पूरा करने वाली उत्तम रचना के रूप में तथा आंध्र-साहित्य के विकास-क्रम में पौराणिक और काव्यशैलियों के बीच की कड़ी के रूप में एर्रन-कृत 'हरिवंश' अपना विशेष स्थान रखता है।

हरिवरदा *(म० कृ०)*

यह कवि कृष्णदयार्णव (दे०) की रचना है। प्रस्तुत रचना के समय कवि का शरीर भयंकर व्याधि से जर्जरित हो गया था। इसमें प्रयुक्त ओवी छंदों की संख्या है 42,000। ग्रंथ के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भाग हैं। महामहोपाध्याय भीमाचार्य झलकीकर के मत से यह यह ग्रंथ श्रीमत् शंकराचार्य (दे०) के मायावाद के सिद्धांत का अनुसरण करता है और रचना की दृष्टि से बहुत उत्कृष्ट है। उत्तरार्ध के चार अध्यायों की रचना इनके शिष्य 'उत्तमश्लोक' ने की है। गुरु-शिष्य मिलकर इस ग्रंथ-रचना में सोलह वर्ष तक लगे रहे। इसके चरित-नायक हैं श्रीकृष्ण और आधार-ग्रंथ हैं—'भागवत' (दे०) आध्यात्मिक भावों तथा काव्यता दोनों की दृष्टि से इस ग्रंथ का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

हरिश्चंद्रकाव्य *(क० कृ०)*

'हरिश्चंद्रकाव्य' महाकवि राघवांक (दे०) (जिनका समय 1165-1280 ई० के बीच में माना जाता है) की कवि-प्रतिभा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। उसमें राघवांक की काव्य-साधना पूर्णरूपेण सफल हुई है। काव्य के प्रारंभ में उन्होंने कहा है कि 'यह कृति अद्वितीय है।' काव्य पढ़ने के बाद उनकी यह उक्ति असत्य प्रतीत नहीं होती। वीर-शैव कवि की रचना होने पर भी 'हरिश्चंद्र-काव्य' सांप्रदायिकता से दूर है।

हरिश्चंद्र की कथा हमारे प्राचीन साहित्य में भिन्न-भिन्न रूपों में उपलब्ध होती है। राघवांक ने प्राचीन कथाबीज को लेकर नवीन काव्यवृक्ष का निर्माण किया है, और यह नवीनता इस बात में है कि उन्होंने अपूर्व रीति से कथा का निरूपण किया है। सत्य के लिए हरिश्चंद्र का राज्य-त्याग और तत्कारण उत्पन्न हुई उनकी दुर्दशा का अत्यंत स्वाभाविकता के साथ वर्णन कर राघवांक ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'सत्य ही हर है, हर ही सत्य है'—इस चिरंतन संदेश के द्वारा काव्य को अमर बना दिया है। विश्वामित्र ने इंद्र के दरबार में हरिश्चंद्र की सत्यनिष्ठा की परीक्षा करने की प्रतिज्ञा की, केवल इसी लिए कि इंद्र की सभा में सर्वप्रथम वसिष्ठ ने सत्यवादी नरेश हरिश्चंद्र का नाम ले लिया था! विश्वामित्र की कठोर से कठोर परीक्षा से भी वह उत्तीर्ण हो गया, उसने कष्ट-परंपरा और दुःख के पहाड़ों का ख्याल नहीं किया। उसकी और उसके परिवार की धीर वृत्ति का मार्मिक चित्रांकन कर कवि ने कमाल कर दिया। कथानक, वाता-वरण-निर्माण, चरित्र-चित्रण, रस-पोषण और संभाषण-सौंदर्य की दृष्टि से 'हरिश्चंद्रकाव्य' एक अत्यंत श्रेष्ठ महाकाव्य है। उसकी सर्वाधिक विशेषता उसकी नाट-कीयता में निहित है। उसमें कवि की नाट्य-प्रतिभा स्थान-स्थान पर प्रकट होती है। इस गुण के कारण वह कन्नड़ के ग्रंथ-रत्नों में विशेष रूप से आदरणीय हो गया है।

हरिश्चंद्रनलोपाख्यानमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती ई०]

इसके लेखक भट्टुमूर्ति हैं जो रामराजभूषणुडु (दे०) के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। यहाँ हरिश्चंद्र तथा नल की कथाओं को जोड़कर लिखा गया द्व्यर्थि-काव्य है। इन से पहले ही उसी शती के अंतर्गत पिंगलि सूरना (दे०) ने 'रामायण' (दे०) तथा 'महाभारत' (दे०) की कथाओं को जोड़कर 'राघवपांडवीयमु' (दे०) नामक सर्वप्रथम तेलुगु-द्व्यर्थि-काव्य की रचना कर दी थी। उनके बाद उक्त दिशा में भट्टुमूर्ति का प्रयास उल्लेखनीय है। हरिश्चंद्र तथा नल—दोनों की कथाएँ अत्यंत प्रचलित हैं। पर इन दोनों को जोड़कर आदि से लेकर अंत तक श्लिष्ट रचना के द्वारा एक ही काव्य के रूप में प्रस्तुत करना इसकी विशेषता है। घटनाओं के बीच बिलकुल समानता न रखने वाली भिन्न कथाएँ लेकर द्व्यर्थि-काव्य लिखना दुस्साध्य है। कुछ घटनाओं के बीच समानता रखते हुए भी एक से अधिक स्वतंत्र कथाओं को आदि से अंत तक साथ-साथ ले जाना अवश्य ही कठिन है। काव्यों के अंतर्गत

कहीं-कहीं अलकार के रूप म श्लेष का दर्शन मिल जाता है। पर विशेष-शैलीगत। निबध के रूप मे उसे आद्यत निभाया द्वयर्थि-काव्य मे अपेक्षित है। इस प्रकार के काव्य के निर्माण के लिए आवश्यक पाडित्य, प्रतिभा, घटनाओ के चयन तथा सयोजन की निपुणता आदि सभी गुण 'हरिश्चद्रनलोपाख्यानमु' के लेखक मे पूर्ण रूप से विद्यमान हैं।

कथागति, भावोन्मीलन, रस-पोषण और चरित्र-चित्रण आदि प्रमुख विषयो मे साधारण काव्य की तुलना मे द्वयर्थि काव्य की रचना अत्यत सकुचित तथा बधनयुक्त रहती है। पर लेखक ने अपनी अनुपम प्रतिभा पाडित्य और सहज कविता शक्ति के द्वारा उक्त काव्य की रचना मे कृत्रिमता अथवा त्रुटि आने नही दी। इस काव्य मे मुनियो तथा जलपक्षियो और माया कुरग तथा हस को जोडकर किए गए वर्णन अत्यत सहज तथा मार्मिक हैं। इसके बाद अनेक द्वयर्थि और त्र्यर्थि काव्यो का निर्मित होना, तथा इन सबके लिए नमूने के रूप म इसी का अनुकृत होना भी हरिश्चद्रनलोपाख्यानमु की विशेषता के द्योतक है।

हरिश्चद्रोपाख्यानमु *(ते० कृ०)* [रचना-काल—पद्रहवी शती ई०]

इसके लेखक गौरना (दे०) है। 'हरिश्चद्रोपाख्यानमु' द्विपदा नामक देशी छद मे लिखा गया है। इसे 'हरिश्चद्र' भी कहा जाता हे। सपूर्ण काव्य दो भागो म विभक्त हुआ है जिसके पूवार्ध मे द्विपदा की 2448 पक्तियाँ हैं और उत्तरार्ध मे 3024 हैं। हरिश्चद्र की कथा ऋग्वेद, *'देवीभागवत', 'स्कद-पुराण' तथा 'मार्कंडेय-पुराण' मे पाई* जाती जाती है।

गौरना ने 'मार्कंडेय-पुराण' की कथा के आधार पर ही *अपना काव्य लिखा है। आधार-ग्रथ का* अनुसरण करते समय कही कही कुछ परिवर्तन भी किए गए है। इसका कथानक प्रसिद्ध है। सरस भावो तथा कोमल शब्दो से युक्त प्रस्तुत रचना अत्यत लोकप्रिय बन गई है। इस काव्य के पात्र सजीव है तथा इसकी भाषा मे प्रवाह है। हरिश्चद्र की कथा से सबद्ध तेलुगु-रचनाओ म गौरन की कृति प्रशस्त हे। इनकी इस रचना के कारण तेलुगु मे द्विपदा-छद की तथा द्विपदा-साहित्य की भी प्रतिष्ठा मे पर्याप्त वृद्धि हुई हे।

हरिषेण *(स० ले०)* [समय—350 ई० पू०]

हरिषेण का परिचय हमे प्रयाग के समुद्रगुप्त के विजयस्तभ की प्रशस्ति से होता है। इनके जीवनवृत्त के सबध मे कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नही है।

'प्रयाग-प्रशस्ति' म हरिषेण ने पद्य तथा गद्य दोनो का प्रयोग किया है। वाक्य इतने लबे-लबे हैं कि कभी-कभी गद्य तथा पद्य दोनो मे एक ही वाक्य चलता रहता है। गद्य प्रौढ, समास बहुल तथा उदात्त है। इसमे चार छदो का प्रयोग किया गया हैं स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, मदाक्राता तथा पृथ्वी। पूरी प्रशस्ति मे वैदर्भी रीति का प्रयोग हुआ है समुद्रगुप्त की कीर्ति का वर्णन करने के लिए रूपको का खूब प्रयोग हुआ है। शब्दालकारो मे अनुप्रास प्रधान है। प्रशस्ति की विशेषता यह हैं कि इसे समझने मे कही भी कठिनाई नहीहो ती।

हरिहर *(क० ले०)* [समय—1200 ई० के लगभग]

हरिहर के जीवन के विषय मे बहुत कम तथ्य उपलब्ध है। इनके नाम से प्रतीत होता है कि ये आरभ म ब्राह्मण रहे होगे, बाद मे वीरशैव बने होगे। कहा जाता है कि ये होयसल-नरेश नरसिह के यहाँ लेखक थे। *किंतु वहाँ से विरक्त होकर चले गए थे। अपना शेष जीवन* इन्होंने भक्ति मे बिता दिया था। पपाक्षेत्र के विरूपाक्ष इनके आराध्य थे।

शिवकवि, भक्तकवि आदि नामो से विख्यात हरिहर कन्नड के महाकवियो मे से हैं। इनके ग्रथ ये है—पपाशतक, रक्षाशतक, मुडिगेय अष्टक, गिरिजाकल्याण (दे०) तथा *रगळे छद मे लिखी शिवभक्तो की जीवनियाँ।* ये क्रातिकारी कवि थे। इन्होने कन्नड साहित्य म एक नवीन सप्रदाय की स्थापना कर नया काव्यादर्श प्रस्तुत *किया है। पपाशतक मे इन्होंने घोषणा की है कि हर तथा* उसकी शरण को छोडकर अन्य मर्त्य मानवो का गुणगान करना महान् पाप है। आगे चलकर सभी वीरशैव कवियो ने मानो प्रतिज्ञा ही कर ली थी कि वे किसी राजा या मर्त्य की स्तुति नही करेंगे। हरिहर ने प्राकृत के रघटा (रगळे) छद का पुनरुज्जीवन कर उसमे वीरशैव तथा शैवसतो की काव्यात्मक जीवनियाँ लिखी थी।

इनके दोनो शतक तुलसी (दे०) की 'विनय पत्रिका' (दे०) की भाँति इनकी आत्मगीताजलियाँ हैं। *भक्ति की अनन्य तन्मयता, दैन्य,* मनोराज्य आदि की

बहुत ही मार्मिक व्यंजना इन शतकों मे है। ये मुक्तक विभिन्न संस्कृत वृत्तों में हैं। 'गिरिजाकल्याण' इनका चंपूकाव्य है जिसमें पार्वती-विवाह की कथा है। पार्वती के जन्म से लेकर विवाह तक की कथा इसमें है। वर्णन-प्रिय इस कवि ने इसमें तारकासुर का प्रताप, कामकोलाहल, शिव वैराग्य, पार्वती का दृढ संकल्प आदि का प्रभावी चित्रण प्रस्तुत किया है। वर्णनों के पीछे पड़ने के कारण कहीं-कहीं असंगतियां आ गई हैं। फिर भी, यह सफल काव्य है। शिवभक्तों पर लिखी इनकी काव्यात्मक जीवनियां इनकी व्यक्तित्व सिद्धि की पताका है। एक सौ दो पुरातन तथा नूतन शिवभक्तों की इन जीवनियों मे कवि की प्रतिभा खुलकर खेली है। 'बसवराजदेवरगळे' (दे०) नंबियण्णनरगळे','अक्कमहादेविरगळे','पुष्परगळे', 'प्रभुदेवरगळे' आदि इनमे प्रमुख हैं। भक्ति की भावतल्लीनता इनका मूल स्वर है। समकालीन भक्तो की जीवनियां तो स्वानुभूति से परमोज्ज्वल बन गई हैं। गद्य-पद्य दोनों मे कवि सव्यसाची है। 'हरिहरमार्ग' नामक नवीन मार्ग के प्रवर्तक हरिहर कन्नड के युग-प्रवर्तक कवि हैं।

हरिहरन वसवण्णा (हरिहर के० वसवण्णा) (क० पा०)

महाकवि हरिहर (दे०) (समय 1200 ई० के आसपास) ने एक सौ से भी अधिक 'रगळों' की रचना की है जिनमें शिवभक्त कवियों के चरितों का वर्णन हुआ है। ऐसे चरितों मे 'बसवराजदेवर रगळे' (दे०) भी एक है। उसमें हरिहर ने भक्तश्रेष्ठ वसवण्णा का सुंदर चरित-गान किया है। उनके द्वारा चित्रित वसवण्णा एक अनुपम पात्र है। यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि उस युग में ही शिवभक्त-समाज ने वसवण्णा को अवतार-पुरुष माना था। उनके महान् व्यक्तित्व का ही प्रभाव समझिए कि कई कवियों ने उनके चरित का वर्णन चरितकाव्यों के रूप में किया। हरिहर ने उनके बाह्य तथा आंतरिक जीवन का बड़ा मार्मिक विश्लेषण किया है। कुछ आलोचकों के कथनानुसार उन्होने अपने व्यक्तित्व को ही उसमें स्थापित किया है। यद्यपि उन्होंने वसवण्णा के अलौकिक जीवन का अधिक वर्णन किया है, तथापि उनके आंतरिक व्यक्तित्व के विश्लेषण मे उन्हें कम सफलता नहीं मिली है।

स्पष्ट है कि हरिहर के वसवण्णा अवतार पुरुष हैं। उनके अवतार का कारण प्रथम (सर्ग) मे बताया गया है। बागेवाडी अग्रहार में शिव ब्राह्मण मादिराज और उनकी पत्नी मादांबा के पुत्र के रूप मे अवतरित वसवण्णा बालपन में ही माता-पिता को खो देते हैं। शिवभक्ति-रूपिणी दादी उनका पालन-पोषण करती है। सोलहवें वर्ष की यौवनागम वेला में उनका मन पूर्णत: शिवभक्ति मे लग जाता है। वीतरागी हो वे कूडल संगम में पहुँचकर शिव की आराधना में तल्लीन रहते हैं। यह उनके क्रांतिकारी व्यक्तित्व का परिचायक है। कुछ दिन उस पुण्यक्षेत्र में रहने के बाद भगवान् की प्रेरणा से वे बिज्जल की राजधानी मंगलवाड़ा में जाते हैं, सिद्दंडाधिप उनसे प्रभावित होते हैं, उन्हें आश्रय देते हैं, उनकी बुद्धिमत्ता से आकर्षित होकर बिज्जल उन्हें उन्नत पद पर आसीन करते हैं। उनका प्रभाव देखकर असूया के प्राचीन संप्रदायवादी उनका विरोध करते हैं। परंतु उनके अलौकिक माहात्म्य के सामने वे सब पराजित हो जाते हैं। बिज्जल उनके 'भक्तिभंडारी' रूप की पहचान कर उनके शरणागत होते है।

वसवण्णा के मानव-हृदय और भक्त-हृदय का उद्घाटन करने मे कवि को अद्भुत सफलता मिली है। वसवण्णा ऊँच-नीच का भेद नहीं मानते। भक्ति के क्षेत्र मे हृदय की पवित्रता ही सब कुछ है। उनकी दृढ़ भक्ति से शिवजी प्रसन्न होते हैं और परीक्षा में विफल होकर अन्तर्धान हो जाते हैं। इस प्रकार हरिहर ने एक आदर्श भक्त के रूप मे वसवण्णा का चित्रण कर अपने भक्त-हृदय का ही परिचय दिया है।

हरिहरन रगळेगळु (हरिहर के रगळे) (क० कृ०)

'रगळे' कन्नड के एक छंद का नाम है। मध्य-काल के कन्नड कवि हरिहर (दे०) (तेरहवीं शती का पूर्वार्ध) 'रगळे' छंद में पर्याप्त मात्रा में कविता करने के कारण कन्नड साहित्य में 'रगळेय हरिहर' नाम से प्रख्यात हुए हैं। कन्नड में 'रगळे' शब्द 'झंझट', 'झगड़ा' और 'रोना' के अर्थ मे भी प्रयुक्त होने के कारण 'रगळेय हरिहर' कथन परिहास का भी सूचक है। इस संबंध में दंत-कथा यह है कि हरिहर ने रगळे छंद में शिवभक्तों के चरित लिखे तो लोगों ने 'रगळे हरिहर' कहकर उनका परिहास किया, तब उन्होने 'गिरिजाकल्याण' (दे०) नामक चंपूकाव्य का प्रणयन किया। यह ध्यान देने की बात है कि 'रगळेय हरिहर' कहकर परिहास करना जितना सहज है, 'रगळे' में कविता लिखना, प्रबंध का निर्वाह करना उतना सहज नहीं है। प्रतिभा-संपन्न कवि ही ऐसा कर सकता है।

हरिहर ने कितने शिवभक्तो के चरित 'रगळे' ो लिखे है—यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। कुछ लोग इनकी सख्या एक सौ एक बताते है, कुछ अन्य गोग एक सौ बीस। उपलब्ध रगळो की सख्या लगभग एक सौ है। शिवभक्तो के चरितो के वर्णन मे 'रगळे' उद को जैसे उन्होने उपयुक्त पाया, वैसे ही उन्होने औचित्य के अनुसार गद्य का प्रयोग भी आवश्यक माना। इस कारण उनके चरित काव्यो मे प्रवाहशीलता और रम णीयता पग-पग पर दिखाई पडती है। उक्त चरितकाव्यों के लिए उन्होने वस्तु कहाँ से चुनी यह कहना कठिन है। यह कहा जा सकता है कि उनको तमिल के 'पेरियपरा णम' (दे०) का परिचय रहा होगा जिसमे तिरेसठ शिव-भक्तो के चरितो का वर्णन है। उन्होने सस्कृत के ग्रथो की अपेक्षा तमिल के ग्रथो से अधिक सामग्री ग्रहण की होगी।

हरिहर भक्तकवि हैं। भक्तो के चरितो का वर्णन करते समय उन्होने बडी तन्मयता दिखाई है, भक्ति का प्रवाह ला दिया है। सख्यभाव, वात्सल्यभाव, सेव्य-सेवक भाव, पशुपतिभाव आदि नाना रूपो मे भक्ति का वर्णन कर उन्होने अपने भक्त-हृदय का ही परिचय दिया है। उनकी दृष्टि मे दर्शन, स्पर्श, क्षेत्र सेवा (तीर्थ यात्रा), धूप-दीप-नैवेद्य, नृत्य-गान-अभिनय, कीर्तन, जप, अभिषेक, देवालय निर्माण आदि शारीरिक तथा मानसिक सेवा-क्रियाएँ भगवान् की अनुकपा प्राप्त करने मे सहायक सिद्ध होती है। उनके रगळो मे 'तिरुनीलकठर रगळे', 'नबियण्णन रगळे', 'बसवराजदेवर रगळे' (दे०) और 'गुडय्यन रगळे' बहुत प्रसिद्ध है।

हरी घास पर क्षण भर *(हिं० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष —1949 ई०]

यह कृति अज्ञेय (दे०) की प्रयोगवादी (दे०) रचनाओ का प्रथम सकलन है। समाजोन्मुख व्यक्तिवाद और बौद्धिक ठडापन सभी रचनाओ मे व्याप्त है। प्रेमानुभूतियाँ आवेगरहित हैं और प्रकृति चित्रण तटस्थता के आग्रह से अनुशासित है। 1943 ई० के प्रयोगी का हाथ इसमे आकर काफी सध गया है। साकेतिक और बिबात्मक चित्रण, नये शब्दो के सर्जनात्मक प्रयोग और सूक्ष्म बौद्धिक व्यग्य के अनेक उदाहरण इस कृति मे अनायास मिल जाते हैं। नवबोध से सपन्न और परपरा से सपृक्त कवि की सर्जनात्मक सभावनाओ का आभास इस कृति मे स्थान-स्थान पर मिलता है।

हर्फ़-ओ-हिकायत *(उर्दू० कृ०)*

लेखक—'जोश' मलीहाबादी (दे०)। इस काव्य-कृति मे रचयिता की एक सौ छियालीस कविताएँ सगृहीत है। इन कविताओ की अभिव्यजना-शैली मे नवीनता सजीवता और सरसता के गुण प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है। उपमाओ की दृष्टि से यह अत्यत समृद्ध है। कल्पना की भव्यता और कला का औदात्य पाठक को प्रत्येक स्थल पर भावविभोर कर देता है। नवजागरण और नवचेतना का सदेश इसकी अनेक कविताओ मे बडी तेजस्विता के साथ मुखर है। भारत माता की दासता की शृखलाओ को तोड देने की प्रेरणा और यौवन के स्वाभिमान का स्वर पग-पग पर रस-सचार करता हुआ चलता है। प्रगतिवादी विचारधारा को कलात्मक शैली मे अभिव्यक्त कर उसे अधिकाधिक प्रभावशाली रूप देकर प्रस्तुत किया गया है। किन्ही कविताओ मे प्रकृति चित्रण भी अत्यत सशक्त और सजीव हुआ है। अनुभूति प्रवण कवि की लेखनी इस कृति मे कवित्व के चमत्कार दिखाती हुई प्रतीत होती है। स्पष्टवादिता और अभिव्यक्ति की प्रबलता इसके प्राण है। 1925 ई० से 1941 ई० तक की काव्य साधना के इस सग्रह मे 'जोश' साहब सर्वत्र जीवन की आलोचना करते हुए दिखाई देते है। उनकी ऐसी कविताएँ अत्यत आकर्षक और मनोमुग्धकारी हैं, जिनमे सौंदर्य और प्रेम की अनुभूतियो को स्वर दिया गया है। उनमे निरूपित यथार्थवादी तत्त्व यथेष्ट मनोरम एव हृदयस्पर्शी हैं। आशावादिता, साहस, स्वावलबन, स्वाभिमान, देशभक्ति और स्वतत्र चिंतन की पोषक और अनेक कविताएँ इस कृति मे सगृहीत है।

हसरत मोहानी, फज़लुल हसन *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1875 ई०, मृत्यु—1951 ई०]

ये मोहान, जिला उन्नाव के रहने वाले थे। अलीगढ से बी० ए० पास किया और भारत के स्वातत्र्य-सग्राम मे सम्मिलित हो गए। प्रारभ मे साहित्य मे रुचि रही, बाद मे राजनीति मे जाकर साहित्य से दूर हट गए किंतु गजल कहना जारी रहा। अनेक बार जेल गए और अधिकतर कविताएँ जेल मे ही लिखी। ये आलोचक भी थे और इनकी गालिब के काव्य की टीका विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

आधुनिक गजल की नीरसता दूर करके उसे

निखारने और सुधारने में हसरत का योगदान स्मरणीय है। प्रेम-सौंदर्य तथा मानवीय भावनाओं का चित्रण इन्होंने बड़े सुंदर ढंग से किया है। शब्द-प्रयोग में संयम, विचारों में औदात्य और प्रभावशीलता इनकी विशेषताएँ हैं। इनके काव्य में न केवल निराशा और विषाद है और न मात्र सुख की अभिव्यक्ति ही। भाषा प्रवाहमयी है किंतु बोल-चाल के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। इन्होंने ग़ज़ल को केवल प्रेम-प्रणय के विषयों तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि ऐसे हर विषय को जिसने उनके मन को प्रभावित किया है, ग़ज़ल में स्थान दिया गया है। इनकी सबसे प्रमुख विशेषता यह थी राजनीतिक क्षेत्र में रहते हुए भी अपने काव्य को उससे प्रभावित नहीं होने दिया। इनका शब्द-संग्रह 'कुलियात-ए-हसरत' के नाम से भी प्रकाशित हो चुका है और तेरह छोटे-छोटे भागों में अलग से छप चुका है।

हर्षचरित (सं० कृ०) [समय—सातवीं शती का पूर्वार्ध]

यह महाकवि बाण (दे०) द्वारा रचित आख्यायिका है। यह 'कादंबरी' (दे०) से पूर्व की रचना है। इसमें आठ उच्छ्वास हैं। प्रथम उच्छ्वास के आरंभ में 21 श्लोकों में कवि ने अनेक ग्रंथों एवं ग्रंथकारों की वंदना है। तीन उच्छ्वासों में बाण ने अपनी संक्षिप्त वंशावली प्रस्तुत की है। चतुर्थ उच्छ्वास में प्रभाकरवर्धन का वंशपरिचय तथा महारानी यशोवती का वर्णन है। तदनंतर राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन और राज्यश्री के जन्म का वर्णन है। पाँचवें उच्छ्वास में राजकुमारों की विजय-गाथा प्रभाकरवर्धन की अस्वस्थता तदनंतर मृत्यु, और रानी यशोवती का सती होना आदि वर्णित है। छठे उच्छ्वास में राज्यवर्धन द्वारा हर्षवर्धन को राज्य सौंपना, राज्यश्री के पति ग्रहवर्मा की मृत्यु, राज्यश्री का बंदिनी बनाया जाना, राज्यवर्धन की शशांक द्वारा हत्या, हर्ष का उससे बदला लेने की प्रतिज्ञा आदि का समावेश है। सातवें उच्छ्वास में हर्ष की दिग्विजय तथा आठवें उच्छ्वास में एक शबर युवक की सहायता से राज्यश्री को खोजने का प्रयास, अंत में उसको आत्मदाह से बचाना, आश्वासन आदि बातें वर्णित है। 'हर्षचरित' बाण की प्रथम रचना है। ऐतिहासिक काव्य की दृष्टि से इसमें अनेक विशेषताएँ हैं। बाण की अलौकिक वर्णना-शक्ति का परिचय यहीं से होने लगता है। हर्ष के जन्म-काल का वर्णन आनंद तथा उल्लास से भरा हुआ है। प्रभाकरवर्धन के अंतिम क्षणों का दृश्य करुणा तथा विषाद से परिपूर्ण है। हर्ष एक ओजस्वी प्रजापालक तथा वदान्य नरपति के रूप में वर्णित हैं। बाणभट्ट द्वारा आयोजित घटनाओं की सत्यता इधर उपलब्ध होने वाले ऐतिहासिक ग्रंथों तथा शिलालेखों के द्वारा उद्घोषित की जा रही है।

हलकट्टी, फ० गुरुवसप्पा (क० ले०) [समय—1880-1964 ई०]

स्व० रायबहादुर फकीरप्पा हलकट्टी जी वीरशैव वचन-साहित्य (दे०) के क्षेत्र में की गई अपनी विशिष्ट सेवाओं के कारण 'वचन-पितामह' के नाम से विख्यात थे। इनका जन्म एक प्रसिद्ध वीरशैव परिवार में हुआ। बी० ए० एल०-एल० बी० पास कर वकालत चलाने के लिए वे बिजापुर चले आए। कन्नड, संस्कृत एवं मराठी के वे बहुत बड़े पंडित थे। इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। किंतु कन्नड साहित्य में इनका इस बात के लिए सदैव आदर रहेगा कि इन्होंने वीरशैव संतों की वानियों को काल का ग्रास बनने से बचाया और उनका उचित मूल्यांकन किया। आप ही के परिश्रम से आज विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि वचन-साहित्य विश्वसाहित्य के लिए कन्नड की विशिष्ट देन है। वचन कन्नड के उपनिषद् हैं, वचनकार कर्नाटक के रस-ऋषि हैं। बसवेश्वर (दे०) आदि संतों ने बारहवीं शती में कर्नाटक में एक बहुत बड़ी क्रांति की थी। उन्होंने अपनी वानी को सरल व सुंदर वचन में अभिव्यक्त किया। इन वचनों को हम गद्य-काव्य भी कह सकते हैं। ऐसे वचनकारों की संख्या तीन सौ से भी अधिक है। गाँव-गाँव घूमकर इन्होंने पांडुलिपि-संग्रह किया जिनके अन्यथा दीमक का आहार बन जाने की पूरी संभावना थी, उनका प्रगाढ़ अध्ययन किया और शास्त्रीय रीति से उनका वर्गीकरण तथा प्रकाशन किया। इनके साथ ही पुराने शिलालेखों का भी उद्धार किया। ऐसे ग्रंथों की संख्या अब शताधिक है। 'शिवानुभव' नाम से इन्होंने एक त्रैमासिक पत्रिका की स्थापना और प्रकाशन भी किया जो उन्हीं के उद्देश्यों के प्रति समर्पित थी। और अपने उद्देश्यों में श्री हलकट्टी को अभूतपूर्व सफलता मिली। 'शिवानुभव शब्द-कोश' वीरशैव मत के अध्ययन के लिए इनकी एक अनुपम देन है। इनके अतिरिक्त आपने बसव प्रभुदेव आदि संतों के जीवन की आधारभूत सामग्री भी प्रकाशित की।

(1928 ई० मे शिवानुभव के साथ साथ उन्होने 'नवकर्नाटक' नामक' साप्ताहिक भी निकाला । 1956 ई० मे कर्नाटक विश्वविद्यालय ने आपको डी० लिट० पदवी देकर सम्मानित किया । 1964 मे आपका देहावसान हुआ। अपनी सारस्वत तपस्या से आपने कन्नड साहित्य की श्रीवृद्धि मे अभूतपूर्व कार्य किया था ।

हळवें, भिग *(म० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1951 ई०]

यह श्री य० द० भावे की नव कविता का *सकलन है। 'आदर्श' के पश्चात् प्रकाशित यह इनका* दूसरा काव्य सग्रह है । इसमे 47 कविताएँ समाविष्ट हैं। कवि ने निवेदन मे कहा है कि अतिसस्कारक्षम मन पर *अकित बाह्य ससार के विविध चित्र 'हळवें भिग मे अकित* हैं ।

इस काव्य सकलन के प्रारभ मे कवि ने नव कविता का स्वरूप विवेचन किया है। दीर्घ रचना एव आकार की अनियमितता इस सग्रह की कविताओ का वैशिष्ट्य है । इनमे क्लर्क, चपरासी मिल मे काम करने वाली स्त्री के कारुण्य को कवि ने साकार किया है, राशन के लिए पक्ति मे खडे लोगो के दु खोदगारो की अभिव्यक्ति प्रचड शब्दो मे की है। परतु आज के मानव की हीन दशा पर कवि को सहानुभूति नही है, वरन् वह वितृष्णा से भर उठा है। इसी कारण उसने विक्षुब्ध विचारो के चित्र भयकरता से खीचे हैं। आर्थिक विषमता तथा यात्रिक सभ्यता के कारण होने वाले मानव के शोषण पर कवि ने गभीरता से विचार किया है । कवि का दृष्टिकोण सर्वत्र निराशावादी नही है वरन् निराशा के मेघ से उसे आशा की धूमिल किरण फूटती दिखाई देती है। स्वरूपत इनकी कविता रौद्र एव बीभत्स है ।

इनकी काव्य-रचना पर बा० सी० मर्ढेकर (दे०) का प्रभाव स्पष्ट है। मर्ढेकर की तरह अति यथार्थता उपमानो तथा सम्मिश्र प्रतीको के प्रयोग के कारण इनकी कविता अर्थबोध की दृष्टि से दुर्बोध हो गई है । इन्होने *नवीन प्रतिमानो तथा बिबो का प्रयोग किया* है। 'जसात्कूसावर' बहुचर्चित कविता है । इस कविता मे तथा विजेच्या चापल्याने' जैसी कविता मे रसायनशास्त्र का निर्देश किया गया है। इनकी कुछ कविता मुक्त छदात्मक है तो कुछ गद्यात्मक । ये काव्य रचना के लिए छद तथा तुक का बधन नही मानते । इनके अनुसार अत - सगीत ही कविता का प्राण है । जब गद्यात्मक भाव भावावेश की स्थिति मे व्यक्त होते हैं तो उनकी अभिव्यक्ति निस्सदेह लयात्मक ही होती है ।

हळवे, लक्ष्मण शास्त्री *(म० ले०)* [जन्म—1831 ई०, मृत्यु—1905 ई०]

'अव्वल इग्रजी-काल' के प्रतिनिधि कथा-लेखक । महाराजा गायकवाड ने इनके साहित्यिक कृतित्व पर प्रसन्न होकर इन्हें राज्याश्रय प्रदान किया था—जिसके *अतर्गत इन्हे वर्षासन मिलता था।* पहले 'इदुप्रकाश पत्रिका से इनका सबध रहा और बाद मे 'चद्रिका' नामक पत्रिका के सपादक रहे । ये 'परमहस सभा' के सदस्य थे ।

ग्रथ—*'मुक्तामाला'* (दे०) *(1861 ई०)* 'रत्नप्रभा' (1878 ई०) (दोनो उपन्यास) ।

मराठी मे मनोरजक कथा साहित्य के प्रवर्तको मे इनका स्थान अमर है । इनके उपन्यास घटनाप्रधान और रम्याद्भुत तत्त्वो से युक्त है जिनमे विचित्र घटनाएँ घटित होती हैं और सयोग का प्रयोग कृति को अत मे सुखात बना देता है । मनोरजन के साथ-साथ नीत्युपदेश देना भी इनका लक्ष्य था अत इनमे सर्वत्र काव्य-न्याय के सिद्धात का पालन किया गया है और प्रत्येक परिच्छेद के आरभ मे एक सुभाषित भी दे दिया गया है । सस्कृत की शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करने के कारण प्रकृति का वर्णन प्राय पारपरिक वर्णन है, पात्रो का नामकरण उनके गुण दोषो पर आधारित है और वे स्थिर हैं, भाषा सस्कृत-निष्ठ है, वाक्य रचना सुदर है, पद-रचना मे माधुर्य है और वह कृत्रिम या बोझिल नही हो पाई है । अरबी फारसी का प्रभाव शृगार चित्रो तथा पात्रा के वेश-परिवर्तन मे परिलक्षित होता है ।

मराठी उपन्यास-साहित्य को इनकी विशेष देन है। इन्होने यथार्थ, इतिहास-समस्त वातावरण की सृष्टि कर, अपने समय के समाज की समस्याओ—विधवा की दयनीय स्थिति, पुनर्विवाह, आदि—का समावेश करने का प्रयत्न किया है । इनके स्त्री पात्र बडे सजीव हैं जो प्रौढ पाठक के मन मे करुणा भाव एव सहानुभूति उत्पन्न करने मे पूर्णत सफल हैं । मराठी भाषा के प्रति प्रेम जगाने का श्रेय भी इनके उपन्यासो को है और उधर विचारो तथा भावो का चित्ताकर्षक वर्णन पहली बार इनके ही उपन्यासो मे मिलता है । अत इनका कृतित्व निश्चय ही ऐतिहासिक माना जाएगा ।

हलीम, संभुनाथभट्ट (कश्० ले०) [जन्म—1921 ई०]

औपचारिक रूप से कश्मीर और लाहौर में शिक्षा प्राप्त की। अच्छे वक्ता के रूप में लोगों के सामने आए; फिर जीवन का आरंभ अध्यापन से किया। संप्रति आकाशवाणी के दिल्ली केंद्र के कश्मीरी यूनिट में हैं। इनके कई लेख और कविताएँ श्रीनगर से प्रकाशित 'क्वंग पोश', 'गुलरेज', 'वतन', 'बीसवीं सदी' और 'सोन अदब' में तथा दिल्ली से 1956-58 ई० में प्रकाशित होने वाले 'पंपोश' में प्रकाशित होती रहीं, और अब 1969 ई० से कश्मीरी समिति, दिल्ली के मासिक पत्र 'कासुर समाचार' में इनकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। हलीम साहब बुद्धिवादी हैं और ठेठ कश्मीरी भाषा का प्रयोग किया करते हैं। इनकी भाषा में ग्रामीण मुहावरे का पुट रहता है। इनकी कविताओं का क्षेत्र विशाल है—गीत, गजल से लेकर संबोध-गीति तक। आशावादी और प्रगतिवादी पृष्ठभूमि में इनकी ग़ज़लें प्रभावोत्पादक और विचारोत्तेजक रही हैं। इनकी कहानियों में जहाँ गंभीरता है वहाँ उनमें एक सुप्त व्यंग्य भी है जो उन्हें आकर्षक बनाता है।

हसन (त० ले०) [जन्म—1918 ई०]

एम० सैयद मुहम्मद 'हसन' का जन्म तंजौर ज़िले के नागपट्टिनम नामक स्थान में हुआ। हसन तमिल, अँग्रेज़ी, हिंदी, उर्दू, अरबी, फारसी आदि भाषाओं के ज्ञाता थे। 'महजबीन' और 'सिंधु नदीक्करैयिनिले' इनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'महजबीन में पालिस्टन में मुसलमानों और ईसाइयों के बीच हुए धर्म-युद्ध का और 'सिंधु नदीक्करैयिनिले' में मुसलमानो के भारत-आगमन का वर्णन है। इनके उपन्यासों का तमिल उपन्यास-साहित्य में विशिष्ट स्थान है।

हाँसुलि बाँकेर उपकथा (बँ० कृ०)

ताराशंकर बंद्योपाध्याय (दे० बंद्योपाध्याय) की यह दूसरी युगांतरकारी रचना है। कथापटल का आधार है कहार जाति के सामंतयुगीन रहन-सहन, आचार-विचार, संस्कार-विश्वास पर यंत्र सभ्यता के संघात उत्पन्न परिवर्तन एवं विघटन का इतिहास। इस सुगठित उपन्यास का प्रारंभ जितना तरल एवं भावपूर्ण है, इसका अंत उतना ही विषाद-मिश्रित करुणा से आप्लावित है। कहार-कुल के रीति-नीति का प्रतीक है बनोयारि जिसमें जातिगत निष्ठा तथा परंपरागत मूल्यों पर श्रद्धा है। उसमें अध्यात्म-बोध है, व्यष्टि और समष्टि का एकात्म भाव है। इधर महायुद्ध तथा यांत्रिक सभ्यता ने आर्थिक परिस्थितियों तथा जीविका के साधनों में परिवर्तन ला दिया। आगामी युग की संभावनाओं का प्रतीक है कराली जिसमें यंत्र-युग की चेतना, निर्भीकता, स्वेच्छाचारिता और कौशल है। वह प्रयोजन के कर्म-पथ पर बढ़ रहा है और ऐश्वर्य की नयी लीला-भूमि की तलाश कर रहा है। इस प्रकार संचित संस्कारों से पोषित बनोयारि की पराजय से लेखक इस कुल में नए युग के सूत्रपात की सूचना देता है। उपन्यास के अन्य जीवंत पहलू हैं निम्न वर्ग में प्रेम-भावना की आदिम, अनगढ़ परंतु सशक्त अभिव्यक्ति तथा उच्च एवं निम्न वर्ग का संघर्ष। कुछ विद्वान तो ताराशंकर के इस महाकाव्योचित उपन्यास को उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानते हैं।

हाजरिका, अतुल (अ० ले०) [जन्म—1906 ई०]

जन्म-स्थान—कानपुर।

इन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से असमीया एम० ए० (प्रायवेट) की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। इन्होंने कई संस्थाओं – काटन कॉलेज, गौहाटी विश्वविद्यालय आदि में अध्यापन कार्य किया था। ये 1953-56 ई० तक असम साहित्य सभा के संपादक रहे थे। इन्होंने दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं।

प्रकाशित रचनाएँ—काव्य : 'दीपाली' (1940), 'मुकुतामाला' (1941) 'मणिमाला' (1941-42) 'पाचजन्य', 'माणिकी मधुरी', 'रुणुक जुनुक' (1953), 'रक्तजवा' और 'तपोवन'—(1955)।

पौराणिक नाटक—'नंददुलाल' (दे०) (1930), 'कुरुक्षेत्र' (1936), 'बेउला' (1933), 'नरकासुर' (1928), 'चंपावती' (1930), 'श्रीरामचंद्र' (1938), 'निर्यातिता' (1952)। ऐतिहासिक नाटक : 'कनौजकुँवरी' (1933), 'छत्रपति शिवाजी' (1947), 'आहुति' (1952)। अनूदित : 'बनिजकोंवर' (मर्चेंट ऑफ़ वेनिस) (1950), 'अश्रुतीर्थ' (किंग लियर) (1950), 'शकुंतला' (1940)। इनकी कविताओं में प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण वर्ड्सवर्थ जैसा है। देशभक्ति-पूर्ण कविताओं का सृजन इन्होंने अधिक किया है। ये मुख्यतः नाटककार हैं। इन्होंने मंचोपयोगी नाटक लिखकर

बँगला का प्रभाव कम किया है। 'नरकासुर' और शिवाजी इनके श्रेष्ठ नाटक है। 'कनौजकुँवरी' मच पर अधिक समादृत हुआ।

ऐतिहासिक और पौराणिक नाटककार के रूप मे इनकी ख्याति है।

हाजरिका, मफिजुद्दिन आहमद *(अ० ले०)* [जन्म—18 0 ई०, मृत्यु— 1958 ई०]

इन्होने डिब्रूगढ से ही शिक्षा प्राप्त कर वहाँ की कचहरी मे पेशकार और सिरस्तेदार के रूप म कार्य किया था। 1929 ई० मे ये असम-साहित्य-सभा के सभापति निर्वाचित हुए थे। इन्हे सरकारी साहित्य-पेशन भी मिली थी।

प्रकाशित रचनाएँ—'ज्ञानमालिनी' (मुक्तक काव्य) (897 ई०), अप्रकाशित रचनाएँ—'मालिनीर बीण' और 'तत्वपराजित'।

डॉ० महेश्वर नेओगे (दे०) के शब्दो मे श्री हाजरिका की कविता का उत्स प्राण न होकर ज्ञान है। इन्होने कविताओ मे नैतिक आदर्श को स्थान दिया है। इनकी 'दिनकणा' कविता प्राणवत एव स्थायी महत्व की है। कविता की भाषा सरस और प्रांजल है, नित्य व्यवहार के शब्दो का प्रयोग हुआ है। कविता के छद परिष्कृत हैं। श्री हाजरिका ने लिखा कम है किंतु ख्याति अधिक पाई है।

'हाजिनी', गुलाम मुहीउद्दीन *(कश्० ले०)* [जन्म—1917 ई०]

जन्म-स्थान– कश्मीर स्थित हाजिन गाँव। उर्दू, अरबी, फारसी और अँग्रेज़ी के विद्वान्। उच्च शिक्षा प्राप्त करके अध्यापन-कार्य आरभ किया। इस समय प्राचार्य हैं और बुद्धिवादी मडल मे इनका श्रेष्ठ स्थान है। अपनी कट्टर विचारधारा तथा शासन-विरोधी उद्गारो के कारण 1966 ई० मे इन्हे कई महीने नजरबद रहना पडा। 'काशिरि नसरचि 'किताब' (कश्मीरी गद्य की पुस्तक) पर इन्हे 1961 मे कल्चरल अकादमी-पुरस्कार मिला। इसके अतिरिक्त इन्होने 'काशिर' शायिरी (कश्मीरी काव्य-रचना) नाम की पुस्तक का सकलन-सपादन भी किया है। इन्होने 'मुसद्दस हाली' (दे०) का कश्मीरी मे पद्यानुवाद तथा 'अलिफ लैला' का भी अनुवाद किया है। 'गामव मजु फीरि-भीरि' (गाँवो मे घूम-घूमकर) नाम की पुस्तक भी प्रकाशित हुई है। प्रोफेसर हाजिनी कश्मीरी भाषा के एक प्रसिद्ध लेखक एव आलोचक है। इनकी शैली मौलिक होते हुए भी बहुत बोझिल है और इन्होने जी खोलकर फारसी शब्दो का प्रयोग किया है। कश्मीरी गद्य मे इनकी रचनाएँ बहुत उच्च कोटि की हैं और हाजिनी साहब की विद्वत्ता एव पैनी शोधक दृष्टि का प्रमाण हैं।

हाजी बगलोल *(उर्दू० कृ०)*

सामाजिक कुरीतियो पर सज्जाद हुसैन द्वारा रचित यह एक व्यग्य रचना है। इसका नायक हाजी बगलोल एक काल्पनिक पात्र है जो है तो मूर्ख किंतु अपने आपको समझता बुद्धिमान है। उसकी मूर्खतापूर्ण बातो मे भी काम की बातें निहित हैं।

यह पुस्तक राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक बुराइयो पर एक तीखा व्यग्य है। इसमे कई कटु तथ्य अनावृत हुए हैं।

यह चार्ल्स डिकेंस के 'पिकविक पेपर्स' का रूपातर मात्र है। डिकेंस की परिधि विस्तृत है किंतु सज्जाद हुसैन सीमित परिधि मे रहते है। 'डिकेंस' का हर छोटे से छोटा पात्र सजीव और स्पष्ट है किंतु यह बात सज्जाद हुसैन के सबध मे नही कही जा सकती। फिर भी इसमे खिलखिलाती हँसी अवश्य है। वह मुहावरों से हँसी पैदा कर देते हैं जो घटनाओ और विचारो से भी पैदा नही हो सकती। इनकी स्वाभाविक प्रसन्नता व्यग्य मे वह निखार तथा नवीनता उत्पन्न कर देती है मानो धूप मे बूँदें पडने लगें।

'हातिम' *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1708 ई०, मृत्यु—1792 ई०]

नाम जहूरुद्दीन, उपनाम 'हातिम'। ये मूलत फारसी के कवि थे। 1730 ई० मे जब 'वली' के काव्य-सग्रह से दिल्ली परिचित हुई थी तो इन्होने अपनी तीव्रानुभूतियो की अभिव्यक्ति का माध्यम उर्दू को बना लिया था। इनका सपूर्ण काव्य-सग्रह दिल्ली पर नादिर-शाही आक्रमण के फलस्वरूप नष्ट हो गया था। बाद का सग्रह 'दीवानजादा' के नाम से प्रकाशित हुआ था। इन्हे भाषा और भाव पर अद्भुत अधिकार प्राप्त था। अपने

समसामयिक साहित्यिक विद्वानों में इनका स्थान बहुत ऊँचा था। मियाँ रंसी मुहम्मद अमान 'निसार', अकबर अली अकबर और लाला मुकंदलाल 'फ़ारिग' के अतिरिक्त मिर्ज़ा सौदा (दे०) जैसे समर्थ कवियों को इनके शिष्यत्व का गौरव प्राप्त था। उर्दू भाषा के मानकीकरण में इन्होंने जो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी वह ऐतिहासिक महत्त्व की है। दक्नी उर्दू में प्रयुक्त होने वाले अनेक प्राचीन शब्दों को निष्कासित कर इन्होंने, परिनिष्ठित, सुसंस्कृत और परिमार्जित भाषा का प्रचार तथा प्रसार किया था। बाद में 'सौदा', 'ज़ौक' (दे०) तथा 'नासिख' (दे०) जैसे उच्च कोटि के कवियों ने इनकी भाषा-शैली का अनुकरण किया था।

हाफ़िज बरखुरदार *(पं० ले०)* [समय—अनुमानतः 1625 और 1700 ई० के मध्य]

क़ुरान के मर्मज्ञ हाफ़िज बरखुरदार के जीवन का अधिक भाग लाहौर और सियालकोट में व्यतीत हुआ। ये आजीवन क़ुरान का अध्ययन-अध्यापन करते रहे। 'मिरज़ा साहिबाँ' (दे०), 'सस्सी-पुन्नूं' (दे०) और 'यूसफ जुलेखा' इनकी मुख्य रचना हैं। इनके अतिरिक्त कुछ धार्मिक रचनाएँ भी इन्होंने की हैं। हाफ़िज अरबी-फ़ारसी के विद्वान थे इन्होंने लोक-परंपरा में उभरते पंजाबी क़िस्सा-साहित्य को फ़ारसी की मसनवियों की ओर मोड़ने का उपक्रम किया।

हाफ़िज़र सुर *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1933 ई०]

फ़ारस के सूफी कवि हाफ़िज की कविता का अनुवाद कर श्री आनंद बरुवा (दे०) ने काव्य-जगत में प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इन्होंने अपनी काव्य-प्रतिभा से इसे और भी सौंदर्य-मंडित कर दिया है।

हामद शाह *(पं० ले०)* [जन्म—1748 ई०; मृत्यु-तिथि—अज्ञात]

अब्बासी सैयद हामद शाह, जिला गुरदासपुर के निवासी थे। इनकी छह कृतियाँ उपलब्ध है, परंतु साहित्यिक दृष्टि से 'जंगहामद' और 'हीरहामद' ही उल्लेखनीय हैं 'जंगहामद' (र० का० 1776 ई०) में करबला की घटनाओं का करुण वर्णन है। हीर-राँझा की कथा पर आधारित 'हीरहामद' (1805 ई०) में कवि ने स्वीकार किया है कि यह रचना मुकबल (दे०) अहमद (दे० अहमदशाह गुज्जर) और गुरदास (दे०) के अनुकरण पर लिखी गई है। क़िस्सा-काव्य की फ़ारसी-प्रधान प्रकृति के विरुद्ध इस कृति में हिंदी के शब्दों का प्रयोग उल्लेखनीय है।

हार्नले *(भाषा० ले०)* [जन्म—1841 ई०]

पूरा नाम ऑगुस्टस फ़्रेडरिक रुडल्फ़ हार्नले। राष्ट्रीयता जर्मन। जन्म भारत (सिकंदरा, आगरा) में। पिता यहाँ जर्मन पादरी थे। शिक्षा जर्मनी तथा इंग्लैंड में हुई। 1865 ई० में जयनारायण मिशनरी कालेज, बनारस में प्राध्यापक, नियुक्त हुए; 1873 ई० में इंग्लैंड चले गए तथा अपना गाडियन व्याकरण लिखते रहे, 1878 से 1881 तक कैथेड्रल मिशन कालिज, कलकत्ता के प्रिंसिपल; फिर भारतीय शिक्षा सेवा में, फिर प्रेसिडेंसी कालिज, मद्रास में अध्यापक तथा बाद में प्रिंसिपल रहे। 1892 ई० में सरकार ने आपको चौथी-पाँचवी शती की एक पांडुलिपि (औषधि, पिशाचविद्या तथा ज्योतिष की) पर काम करने के लिए नियुक्त किया। 1898 ई० में आपने रॉयल एशियाटिक सोसायटी के अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया। ये रॉयल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल के संपादक भी रहे। 1872-73 ई० में इनका प्रथम भाषावैज्ञानिक निबंध (लगभग 100 पृष्ठों का), जो गौड़ीय भाषा-समुदाय से संबद्ध था, एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल के जर्नल में प्रकाशित हुआ। 1880 ई० में इन का प्रसिद्ध ग्रंथ 'ए कंपेरेटिव ग्रामर ऑफ़ गाडियन लंग्वेजिज' प्रकाशित हुआ जिसमें भोजपुरी का विस्तृत व्याकरण देने के साथ आधुनिक आर्य-भाषाओं की काफ़ी तुलनात्मक सामग्री दी गई है। इसमें हिंदी क्रिया-रूपों में लिंग-परिवर्तन, प्राकृत से हिंदी में ध्वनि-परिवर्तन के नियम, विभिन्न रूपों का विकास, भाषायी मानचित्र तथा लिपियों के विकास के चित्र आदि भी है। 1880 ई० में ही उपर्युक्त जर्नल में इनका हिंदी धातुओं पर एक विस्तृत निबंध प्रकाशित हुआ जिसमें हिंदी धातुओं का संग्रह, इतिहास तथा वर्गीकरण आदि हैं। ग्रियर्सन (दे०) के साथ इन्होंने बिहारी भाषाओं का तुलनात्मक कोष तथा बीम्स (दे०) के साथ पृथ्वीराज रासो के आदि पर्व का संपादन किया। प्राचीन लिपियों के विकास पर भी आपने काम किया था।

हाल *(प्रा० ले०)*

प्राकृत भाषा के मूर्धन्य लेखको मे इनकी गणना की जाती है। इनकी गाहासत्तसई' (दे०) के आधार पर ही यह प्रवाह चल पडा कि श्रृगार रस की मनोरम कविता प्राकृत के अतिरिक्त सस्कृत मे सभव ही नही है। हाल का समय ईसा की प्रथम शती है। 'गाथासप्तशती' के अनुसार आध्र नरेश शातवाहन अथवा शालिवाहन ने लगभग 1 करोड गाथाओ से छाँट कर 700 गाथाओ का हाल के नाम से सकलन किया था। किंतु ग्रथ की अनक गाथाओ मे शातवाहन की प्रशस्ति गाई गई है जिसस सिद्ध होता है कि स्वय शातवाहन ने इन गाथाओ का सकलन नही किया होगा अपितु इनके दरबारी किसी कवि ने यह कार्य किया होगा। वैसे तो ये गाथाएँ सकलित है किंतु सभावना यह भी है कि इनम कुछ गाथाएँ स्वय हाल कवि की लिखी हुई हो। राजा शातवाहन की लिखी भी कुछ गाथाएँ हो सकती हैं। प्राकृत भाषा के आश्रय-दाताओ मे शातवाहन का नाम सर्वाग्रणी है। गुणाढ्य (दे०) जैसे कवियो के आश्रयदाता होने के अतिरिक्त इन्होने अपन अत पुर को प्राकृतमय बना रखा था।

हाल मुरीदा दा *(प० कृ०)*

करतार सिंह दुग्गल (दे०) की इस बृहद् औपन्यासिक रचना का पजाबी साहित्य मे प्रमुख स्थान है। इस उपन्यास के तीन भाग है—'दिल दरिया', 'इक दिल विकाऊ है', 'मेरा दिल मोड दे'। ये तीनो भाग अपने मे सपूर्ण लघु उपन्यास भी है और सयुक्त रूप से एक उपन्यास-श्रृखला की रचना भी करते है। तीनो भाग उपन्यास के नायक कँवलजीत के बचपन और युवावस्था का चित्रण होने के साथ ही साथ दोनो महायुद्धो और भारत विभाजन के साथ आई स्वतत्रता का अनेक हिंदू, मुसलमान, सिख पात्रो के माध्यम से कलात्मक चित्रण करत हैं।

प्रथम भाग 'दिल दरिया' की कहानी कँवल-जीत के जन्म से भी पहले पश्चिमी पजाब के पोठोहार अचल के सलेटी गाँव मे शुरू होती है। लेखक ने कँवल-जीत के सवेदनशील व्यक्तित्व उसके बचपन के खट्टे-मीठे अनुभवो और किशोरावस्था का बडा सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। 'इक दिल बिकाऊ है' भाग मे मुख्य रूप से नायिका मलिका और उसकी बेटी सुबीरा की कहानी वर्णित है और यह अश देश के विभाजन तक को अपने मे समाहित करता है। तीसरे भाग 'मेरा दिल मोड दे' मे आज़ादी के बाद कँवलजीत के विवाहित जीवन की तस्वीर है। कँवलजीत की शादी मुस्लिम डाक्टर हुस्ना से होती है। परतु देश के विभाजन के दिनो मे साप्रदायिक विद्वेष अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया था। साप्रदायिकता का विद्वेष कँवलजीत और हुस्ना की ज़िंदगी मे अनेक समस्याएँ पैदा कर देता है।

दुग्गल का यह उपन्यास पजाब के जीवन का उसकी परपराओ और उसकी धरती की धडकन का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

हालाँ झालाँ रा कुडलियाँ *(हि० कृ०)* [रचना काल—1600 ई० के लगभग]

इसकी रचना ईसरदास (दे०) ने की थी। वीर रस के इस अत्यत उत्कृष्ट ग्रथ को 'सूरसतसई' भी कहते है, किंतु इसमे केवल 42 कुडलिया छद ही हैं। कुछ विद्वान इस ग्रथ का रचयिता 'काका आशानद को मानते है। यह काव्य डिंगल (दे० डिंगल-पिंगल) मे लिखा गया है और 'हालाँ झालाँ' क्षत्रियो के बीच युद्ध का वीर रस-पूर्ण वर्णन इसका मुख्य वर्ण्य-विषय है।

हाली *(उर्दू० ले०)* [जन्म—1837 ई, मृत्यु—1914 ई०]

पूरा नाम अल्ताफ हुसैन, उपनाम 'हाली'। इनका जन्म पानीपत मे हुआ। शैशव काल मे ही इनके पिता का देहावसान हो गया था। इन्होने दिल्ली जाकर गालिब का शिष्यत्व ग्रहण किया। फिर कुछ समय लाहौर मे पजाब बुक डिपो मे अँग्रेज़ी से उर्दू मे अनुवाद-कार्य किया और इस तरह पाश्चात्य साहित्य के सपर्क मे आए। हाली ने सर सैयद अहमद खाँ (दे०)के आदेश पर 'मद्दो-जज़र ए-इसलाम' नामक पुस्तक लिखी। गद्य साहित्य मे भी इनका अपना स्थान है। 'यादगार-ए गालिब' (दे०), 'हयात-ए-सादी' जीवनी-साहित्य के अच्छे नमूने है। उर्दू मे ये इस गद्य विधा के प्रवर्तक मान जाते है।

इनकी कविता म सर्वत्र सहज सरलता पाई जाती है। हाली न नए-नए शीर्षको के अतर्गत जैसे 'उम्मीद से खिताब', 'बरखा रुत' तथा 'हुब्ब-ए वतन' आदि कविताएँ लिख कर उर्दू कविता मे सुधारवाद का

प्रचलन किया और आलोचना में नए मानदंड स्थापित किए। 'मुक़द्दमा-ए-शेर-ओ-शायरी' (दे०) इनकी अमूल्य कृति है जिसकी भाषा दिल्ली की टकसाली भाषा है। विचारों की स्वच्छता, गंभीरता तथा सरलता इनके विशेष गुण हैं। ये सदा अतिशयोक्ति से बचने का प्रयास करते है और प्रकृति के पुजारी हैं। कुल मिलाकर, हाली उर्दू साहित्य के निर्माताओं में से हैं।

हाशम शाह *(पं० ले०)* [समय—अनुमानतः 1753-1843 ई०]

अपने समय के समादृत संत, प्रसिद्ध हकीम और लोकप्रिय कवि हाशम शाह, जगदेवकलां (जिला अमृतसर)। निवासी हाजी मुहम्मद शरीफ़ कुरेशी के पुत्र थे। बढ़ईगीरी, वैद्यक और सूफ़ी-विचार इन्हें पैतृक संस्कारों के रूप मे प्राप्त हुए थे। इन्होंने तीन विवाह किए जिनमे से एक किसी ब्राह्मण महिला के साथ बताया जाता है, इसके फलस्वरूप इनको राजकोप भी सहना पड़ा। पंजाबी के अतिरिक्त हिंदी और फ़ारसी मे भी इन की अच्छी गति थी। पंजाबी मे 'सोहणी-महीवाल', 'सस्सी-पुन्नूं', 'शीरीं-फ़रहाद' और 'हीर-राँझे दी बिरती' नामक प्रेम-प्रबंधों के अतिरिक्त सूफ़ी विचारों पर आधारित 'गंजे असरार', 'मादने फ़ैज़', 'दरियाए हक़ीक़त' तथा कुछ फुटकर दोहे, ड्योढ़े और सीहरफियां भी उपलब्ध होती है। हिंदी रचनाओं में 'ज्ञान प्रकाश', 'चिताहर', 'राज-नीति' आदि तथा फ़ारसी मे 'दीवान हाशम', 'मसनवी हाशम', 'चहार बहार हाशम' उल्लेखनीय कृतियां है। हाशम का काव्य धार्मिक संकीर्णताओं से मुक्त है और उसमे विद्वत्ता की अपेक्षा विवेक की सुगंध है। इनके काव्य पर मुग्ध होकर महाराजा रणजीत सिंह ने अनेक अवसरों पर जागीरें प्रदान कर इन्हें सम्मानित किया। मुक्तक रचनाओं में विचारों को लोकगृहीत दृष्टांतों से पुष्ट कर अपने वर्ण्य को अधिक ग्राह्य बनाने मे कवि को अद्भुत सफलता मिली है। उनमें विरह की तीव्रता, इश्क की महत्ता और आचरण की शुद्धता का प्रतिपादन है। लौकिक प्रेम को भी अलौकिक गरिमा से समन्वित कर प्रस्तुत करने वाले ये एकमात्र क़िस्सा-लेखक है। इनके प्रेमाख्यानों मे चित्रित प्रेम आकर्षक परंतु वासनामुक्त है, उसका आदर्श भोग नहीं त्याग है। कथावर्णन अति संक्षिप्त परंतु रोचक और प्रवाहपूर्ण है और उसके माध्यम से वियोग शृंगार की मार्मिक व्यंजना हुई है। कला-पक्ष की दृष्टि से भी इनकी रचनाएँ उत्कृष्ट हैं। उनमें भाषा की सहज ग्राह्यता, अलंकारों की सहजता और संगीत की मधुरता है।

हास्यचूडामणि *(सं० कृ०)* [समय—तेरहवीं शती]

वत्सराज (दे०) संस्कृत के प्रयोगवादी नाटक-कार हैं। इन्होंने लगभग सभी प्रकार के रूपों की रचना की है। प्रस्तुत रूपक इनका प्रसिद्ध प्रहसन है।

इस प्रहसन में एक अंक है। इसमें एक आचार्य 'ज्ञानराशि' का खूब मज़ाक उड़ाया गया है। इस आचार्य को केवलीविद्या आती थी जिसकी मदद से वह गड़े हुए धन तथा भूली हुई वस्तुओं का पता लगा दिया करता था। इस रूपक की रचना धार्मिक कृत्य को छोड़कर लौकिक कार्यों की अनुरक्ति को लक्ष्य कर की गई। इस में नाटककार काफ़ी सफल रहा है।

हास्यविनोदमीमांसा *(म० कृ०)* [रचना-काल—1937 ई०]

श्री नं० चिं० केळकर (दे०) ने 1908 ई० में 'सुभाषित आणि विनोद' नामक एक पुस्तक लिखी थी, उसी को संवर्द्धित करके उन्होंने 1937 ई० में 'हास्य-विनोद-मीमांसा' की रचना की गई है। यहाँ संस्कृत-काव्य-शास्त्र की परंपरा से भिन्न नयी दृष्टि से हास्य रस के महत्व-वैशिष्ट्य पर चिंतन किया गया है। रचनाकार ने शृंगार को रसराज मानने की अपेक्षा हास्य को ही रसराज मानने पर बल दिया है और अपनी मान्यता की पुष्टि मे अनेक तर्क-प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। हास्य का स्वरूप, भेदोपभेद तथा साहित्य में वर्णित उसकी विशेष-ताओं का व्यापक रूप में मूल्यांकन किया गया है और संस्कृत, मराठी तथा अँग्रेजी के काव्य-नाटकों से उदाहरण दिए गए हैं। विद्वान लेखक ने जीवन और साहित्य का अभिन्न संबंध दर्शाकर हास्य रस की महत्व-मीमांसा की है। मराठी-काव्यशास्त्र के विकास में इस रचना का योगदान असंदिग्ध है।

हास्यांजली *(मल० कृ०)* [प्रकाशन-वर्ष—1945 ई०]

'हास्यांजली' संजयन् (दे०) के नाम से प्रसिद्ध एम० आर० नायर के व्यंग्य-लेखों का संग्रह है। समय-

समय पर प्रकाशित इन लेखो के सग्रह को लेखक की मृत्यु के बाद पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया था। इसके लेखो मे लेखक ने अपनी दृष्टि मे आई हुई बुराइयो की तीक्ष्ण व्यग्यात्मक आलोचना की है। उनकी आलोचना का विषय कभी किसी दुष्कवि की रचना है तो कभी कालिकट नगरपालिका है। कोई भी समसामयिक विषय उनसे बच नही पाया है।

सजयन के हास्य की एक विशेषता यह है कि वे किसी के हृदय को दु ख पहुँचाने के उद्देश्य से नही लिखते। जिस प्रकार टैगोर ने गीतो की अजलि से भगवान की पूजा की थी उसी प्रकार यह 'हास्याजली' भी भगवान के प्रति समर्पित थी। वे हँसी को परिहास-रूपी गुलाब के पौधे का पुष्प और भर्त्सना को उसका काटा समझते थे। समाज-सुधार उनका एकमात्र लक्ष्य था और उन्होने व्यक्तियो पर कभी कीचड नही उछाली है। सतुलित व्यग्य की यह कृति मलयाळम की एक अमूल्य निधि है।

हा हा हू हू *(तें० कृ०)* [रचना-काल—1932 ई०]

'हा हा हू हू' श्री विश्वनाथ सत्यनारायण (दे०) का एक सास्कृतिक उपन्यास है। श्री सत्यनारायण आधुनिक शिक्षा विज्ञान, विचारधारा एव जीवन-पद्धतियो के विरोधी तथा प्राचीन भारतीय जीवन की सहजता एव सरलता के पक्षपाती हैं। उनका विचार है कि मनुष्य कृत्रिम ज्ञान की वृद्धि से नष्ट हो रहा है। इन्ही विचारो को इस ऊहात्मक अन्यापदेशी के लघु उपन्यास मे उपन्यासकार ने व्यक्त किया है। लदन के ट्राफलगार स्क्वेयर मे एक अश्वमुख गधर्व के उतरने के बाद से इसकी कहानी आरभ होती है। भाषा एव राजनीतिक परिस्थितियो पर भी इसमे व्यग्य है।

हिंद स्वराज्य *(गु० कृ०)*

महात्मा गाधी (दे०) द्वारा 1908 ई० मे रचित तथा नवजीवन प्रकाशन द्वारा 1922 ई० मे प्रथम बार प्रकाशित 'हिंद स्वराज्य' गाधी जी की रचनाओ मे महत्व पूर्ण है।

भारत के स्वराज्य की बापू ने उन दिनो जो कल्पना की थी, उसका इस मे पूर्ण चित्र है। बापू स्वतत्र भारत को जिस रूप मे सुखी, समृद्ध व स्वावलबी देखना चाहते थे, इस रचना मे वह कल्पना ठीक-ठीक प्रस्तुत है। यही कारण है कि उन दिनो बापू ने यत्रो से असहयोग करने का विचार प्रकट किया था तथा तथाकथित सुधारवादियो, वकीलो, डाक्टरो, वैज्ञानिक साधनो—रेलगाडी आदि—के प्रति तिरस्कार दिखाया था। भारत को परावलबी बनाने वाली प्रत्येक वस्तु से बापू घृणा करते थे। 110 पृष्ठो की इस लघु कृति मे अधिपति तथा वाचक के सवाद (प्रश्नोत्तर) के माध्यम से भारत, भारत की परतत्रता, भारत की आर्थिक समस्याओ आदि पर चर्चा है।

इस पुस्तक न उन दिनो देशी-विदेशी विद्वानो, अर्थशास्त्रियो, चितको को खूब प्रभावित किया था। इस के अँग्रेज़ी सस्करण ने विश्व के सभी देशो के विद्वानो को भारत की स्वतत्रता के विषय मे सोचने को विवश किया था।

इसके वर्ण्य विषय हैं काग्रेस, उसके कर्णधार, बग-भग, अशाति और असतोष, स्वराज्य क्या है ? इगलैड की स्थिति, सुधार का चितन हिंदुस्तान की दशा, वास्तविक सुधार, हिंद कैसे मुक्त हो ? इटली और भारत, बारूद, सत्याग्रह, आत्मबल, शिक्षा, यत्र-काम-मुक्ति आदि।

यत्रो के विरोध मे गाधी जी का विचार है कि भारत जैसे देश मे यत्र उपकारक नही, अपकारक है। यत्र श्रम की बचत का नही, धन-लोभ का प्रतीक बन गया है। इसी प्रकार ऐसी सुधारवादिता भी उन्हे अग्राह्य है जो हमारे आदरणीयो का अनादर करे। वकीलो ने मनुष्य को झगडे मे डालकर नष्ट किया है और रेल ने मनुष्य की शक्ति क्षीण कर डाली है। डाक्टरो ने उसे अस्वस्थ कर दिया है।

हिंदी *(भाषा० पारि०)*

भारोपीय परिवार की एक महत्वपूर्ण भाषा जो राजस्थान, हरियाणा, पजाब के कुछ भाग, हिमाचल, प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार मे बोली जाती है तथा जो भारतीय गणराज्य की राजभाषा है। बोलने वालो की सख्या की दृष्टि से इसका स्थान विश्व मे तीसरा है। केवल चीनी और अँग्रेज़ी बोलने वाले इससे अधिक है। हिंदी के अतर्गत राजस्थानी (दे०) पश्चिमी हिंदी (दे०), पूर्वी हिंदी (दे०) पहाडी तथा बिहारी (दे०) पाँच उपभाषाएँ हैं जिनकी मुख्य बोलियाँ मारवाडी, जयपुरी, मेवाती, मालवी, बाँग्वी, हरियाणी,

कन्नौजी ब्रज, बुंदेली, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, कुमायूँनी गढ़वाली, भोजपुरी, मगही तथा मैथिली है। आज हिंदी का जो मानक रूप है उसे हिंदी या खड़ी बोली (दे०) हिंदी कहते हैं। उर्दू हिंदी की ही एक शैली है जिसका व्याकरण प्रायः हिंदी के समान है। अंतर केवल शब्द-समूह का है। उर्दू में अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्दों की संख्या काफ़ी है जबकि हिंदी में ऐसे शब्दों के स्थान पर संस्कृत शब्द प्रयुक्त होते हैं। हिंदी की एक शैली हिंदुस्तानी (दे०) भी है जिसमें संस्कृत या अरबी-फ़ारसी आदि के कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं होता। यह बोलचाल की भाषा है। हिंदी क्षेत्र में दैनिक जीवन में इसी का प्रयोग होता है। हिंदी भाषा का उद्भव अपभ्रंश से 1000 ई० के आस-पास हुआ। 1000 ई० से 1500 ई० तक की आदिकालीन हिंदी में अपभ्रंश के व्याकरणिक रूप भी मिलते हैं। 1500 से 1800 ई० तक मध्यकालीन हिंदी है। इस काल में हिंदी में मुगल साम्राज्य की स्थापना के परिणाम-स्वरूप लगभग छह हज़ार अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्द आए। 1800 ई० से हिंदी भाषा के आधुनिक काल का प्रारंभ होता है। आधुनिक काल में यूरोप के संपर्क के कारण हिंदी में अँग्रेजी तथा कुछ अन्य यूरोपीय देशों की भाषाओं से शब्द आए हैं। व्याकरण के क्षेत्र में भी इस काल में भी हिंदी-अँग्रेजी से—मुख्यतः वाक्य-रचना तथा मुहावरे-दार प्रयोगों में—काफ़ी प्रभावित हुई है। स्वतंत्रता के बाद हिंदी का शब्द-भंडार पारिभाषिक शब्दों की दृष्टि से काफ़ी संपन्न हुआ है और दिनों-दिन होता जा रहा है। इस तरह हिंदी भाषा अब सभी दृष्टियों से आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप समर्थ होती जा रही है।

हिंदी, पश्चिमी *(हि० भाषा०)*

ग्रियर्सन (दे०) ने हरियाणी, खड़ी बोली या कौरवी, ब्रज, कन्नौजी, बुंदेली, अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी-भाषी प्रदेश को ही भाषा-शास्त्रीय दृष्टि से हिंदी प्रदेश कहा था इस क्षेत्र को उन्होंने पश्चिमी तथा पूर्वी दो उपक्षेत्रों में विभाजित करके उन्हें क्रमशः पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी (दे० हिंदी, पूर्वी) नाम दिया था। पश्चिमी हिंदी में पाँच बोलियाँ आती हैं : ब्रज, खड़ी बोली, हरियाणी, बुंदेली, कन्नौजी। इसी रूप में पाँच बोलियों के वर्ग को पश्चिमी हिंदी कहा जाता है। इस तरह हिंदी भाषा की पाँच उपभाषाओं में एक पश्चिमी हिंदी है (अन्य हैं : पूर्वी हिंदी—दे०), राजस्थानी (दे०), पहाड़ी, बिहारी (दे०) जिसमें पाँच बोलियाँ हैं। यह ध्यान देने की बात है कि पश्चिमी हिंदी हिंदी का कोई एक निश्चित रूप न होकर पाँच बोलियों का सामूहिक नाम है। कुछ लोग पश्चिमी हिंदी में इन पाँच के अति-रिक्त कुछ अन्य बोलियाँ भी मानते हैं। पश्चिमी हिंदी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है।

हिंदी, पूर्वी *(हि० भाषा०)*

ऐतिहासिक और भौगोलिक आधार पर ग्रियर्सन (दे०) ने हिंदी भाषा के पश्चिमी हिंदी (दे०) और पूर्वी हिंदी दो भेद किए थे। पूर्वी हिंदी में उन्होंने अवधी, बघेली तथा छत्तीसगढ़ी—इन तीन बोलियों को रखा था। इस तरह इन तीन बोलियों के वर्ग का ही नाम पूर्वी हिंदी है। यह ध्यान देने की बात है कि पूर्वी हिंदी, हिंदी भाषा का कोई एक निश्चित रूप नहीं है, बल्कि यह इन तीन बोलियों का सामूहिक नाम मात्र है। कुछ लोग बघेली को अवधी का एक क्षेत्रीय भेद मानकर पूर्वी हिंदी में केवल दो ही बोलियाँ—अवधी और छत्तीसगढ़ी—मानते हैं। पूर्वी हिंदी का उद्भव किस अपभ्रंश से हुआ है, यह विवाद का विषय है। ग्रियर्सन ने इसका संबंध अर्धमागधी से माना था, किंतु अर्धमागधी नाम से जो भाषा जैन धर्म के साहित्य में प्राप्त हुई है, उसे इससे पूरी तरह नहीं जोड़ा जा सकता। डा० सक्सेना (दे० सक्सेना बाबूराम) के अनुसार पूर्वी हिंदी तथा पालि में काफ़ी बातें समान हैं। वस्तुतः पूर्वी हिंदी या अवधी का संबंध किस अपभ्रंश और प्राकृत से है, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। सामान्य प्रयोग में पूर्वी हिंदी या पूर्वी का प्रयोग कभी-कभी भोजपुरी या मगही-मैथिली के लिए भी होता है। वस्तुतः अपने क्षेत्र से पूरब की भाषा के लिए 'पूरबी' नाम का प्रयोग प्रायः होता रहा है। इस रूप में ब्रज-भाषियों के लिए अवधी पूरबी है तो अवधी वालों के लिए भोजपुरी और भोजपुरी वालों के लिए मगही-मैथिली।

हिंदी साहित्य का इतिहास *(हि० कृ०)* [रचना-काल—1929 ई०]

नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) द्वारा प्रकाशित 'हिंदी-शब्दसागर' की भूमिका आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी-साहित्य का विकास' नाम से लिखी थी जो जनवरी 1929 ई० में प्रकाशित हुई थी। पुनः इसी भूमिका को

पुस्तकाकार रूप मे 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नाम से बहुविध परिवर्धनो के साथ प्रकाशित कराया गया। फिर इस ग्रंथ का सशोधित और परिवर्धित सस्करण लगभग 11 वर्ष पश्चात् 1940 ई० मे प्रकाशित हुआ, तत्पश्चात् लेखक के मरणोपरात 1942 ई० मे इसमे कतिपय नये कवियो का सक्षिप्त विवेचन जोड दिया गया, जो कि स्वय लेखक ने इस ग्रथ के 'पजाब-सस्करण' के लिए लिखा था।

इस इतिहास-ग्रथ से पूर्व ठाकुर शिवसिह सेंगर (दे०) ने हिंदी-कवियो का एक वृत्त-सग्रह 1883 ई० मे प्रस्तुत किया था, और डा० ग्रियर्सन (दे०) ने 'ए माडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ नार्दर्न हिंदुस्तान' नाम से 1889 ई० मे एक वैसा ही कवि-वृत्त-संग्रह निकाला था। इसके उपरात नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की आठ खोज रिपोर्टों (1900-1911 ई०) के आधार पर मिश्र बधुओ (दे०) द्वारा तैयार किया एक बडा भारी कवि-वृत्त 'मिश्रबधु-विनोद' नाम से तीन भागो मे 1913 ई० मे प्रकाशित हुआ। आचार्य शुक्ल का यह इतिहास' उक्त तीन कवि वृत्त-सग्रहो की अपेक्षा इस दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि इसमे विवेच्य काल और कवि तथा कवि और उसकी कृति की पारस्परिक सगति किसी विशिष्ट प्रवृत्ति के आधार पर स्थिर की गई है, जो कि इस दिशा मे एक मौलिक एव सफल प्रयास था। आचार्य शुक्ल ने इस ग्रथ की रचना मे उक्त खोज रिपोर्टों, कविवृत्त-सग्रहो के अतिरिक्त एतद्विषयक निम्नोक्त ग्रथो से भी सहायता ली है—'हिंदी कोविद-रत्नमाला' (श्यामसुदर दास),'कविता-कौमुदी' (रामनरेश त्रिपाठी—दे०), 'ब्रज-माधुरी-सार' (वियोगी हरि (दे०)।

यह इतिहास चार कालो मे विभक्त है—वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल (अथवा गद्यकाल), और इनके नामकरण का आधार है—एक काल-खड के भीतर किसी विशेष ढग की रचनाओ की प्रचुरता तथा उस काल मे उपलब्ध ग्रथो की प्रसिद्धि। इसी आधार पर विषय-विशेष से सबधित उपलब्ध कृतियो के रचयिताओ तथा उनकी कृतियो का समीक्षात्मक परिचय देने के उपरात उस काल के उन कवियो और अनेक उनकी कृतियो का परिचय 'फुटकल रचनाएँ' शीर्षक के अतर्गत दिया गया है, जिन्होने उस विषय से इतर विषयो से सबद्ध ग्रथो की रचना की है। यो, उ होने ग्रथ को आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल नाम से भी साथ-ही-साथ विभक्त किया है। मध्यकाल पुन दो कालखडो मे विभाजित है—पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल। आदिकाल (वीरगाथ काल लगभग 1000-1300 ई०) चार प्रकरणो मे विभक्त है—(1) सामान्य परिचय (2) अपभ्रशकाल (3) देशभाषा काव्य और (4) फुटकल रचनाएँ मध्यकाल (भक्तिकाल लगभग 1300-1650 ई०) मे छह प्रकरण है – (1) सामान्य परिचय (2) निर्गुणधारा . ज्ञानाश्रयी शाखा, (3) निर्गुण धारा प्रेममार्गी (सूफी शाखा), (4) सगुण धारा रामभक्ति-शाखा (5) सगुण धारा, कृष्णभक्ति-शाखा, (6) भक्तिकाल की फुटकल रचनाएँ। उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल लगभग 1650-1850 ई०) मे तीन प्रकरण है—(1) सामान्य परिचय, (2) रीतिग्रथकार कवि-परिचय, (3) रीतिकाल के अन्य कवि। आधुनिक काल (लगभग 1850-1925 ई०) दो खडो मे विभाजित है—गद्यखड और काव्यखड। गद्य-खड मे तीन प्रकरण है—(1) गद्य का विकास, (2) गद्य-साहित्य का आविर्भाव तथा आधुनिक गद्य-साहित्य-परपरा का प्रवर्तन, (3) गद्य-साहित्य का प्रसार सामान्य परिचय तथा गद्य-साहित्य की वर्तमान गति। इन तीनो प्रकरणो मे आचार्य शुक्ल ने धार्मिक ग्रथो, काव्यो की पुरानी प्रणाली की टीकाओ, धार्मिक आदोलनो और इन से सबद्ध पुस्तको तथा समाचारपत्रो से बहुविध उद्धरण प्रस्तुत किए है, तथा साथ ही प्रचार-सभाओ एव भाषा-सुधारक आचार्यो के प्रयासो पर भी प्रकाश डाला है। इस सब प्रकार की सामग्री से हिंदी-गद्य-साहित्य के उद्भव और विकास की गाथा प्रस्तुत करने के उपरात गद्य-साहित्य के निम्नोक्त काव्यरूपो का भी आचार्य शुक्ल ने यथेष्ट विवेचन किया है—निबध, नाटक, उपन्यास, कहानी और समालोचना। काव्यखड मे दो प्रकरण है—(क) पुरानी धारा और (ख) नयी धारा। नयी धारा को पुन पच्चीस-पच्चीस वर्ष के कालखडो के आधार पर तीन उत्थानो मे विभाजित किया गया है।

इस इतिहास-ग्रथ के बहुमूल्य स्थल है—चारो कालो के 'सामान्य परिचय'। इनमे देश की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियो का परिचय इस उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है कि इन्ही के आधार पर ही तत्का-लीन प्रमुख एव विशिष्ट रचनाएँ प्रकाश मे आ सकी हैं, तथा साथ ही उन्होने यत्र-तत्र इस तथ्य पर भी सकेत दिए है कि हिंदी की रचनाओ पर भारतीय एव विदेशी भाषाओ के किस प्रकार के साहित्य का प्रभाव कितना और कैसा पडा है। इस प्रकार की विवेचना-शैली हिंदी-साहित्य इतिहास-लेखन मे एक अभूतपूर्व घटना थी।

इस इतिहास-ग्रंथ की अनुक्रमणिका (1) ग्रंथकार और (2) ग्रंथ से ज्ञात होता है कि इसमें लगभग 800 ग्रंथकारों और लगभग 1600 ग्रंथों का नामोल्लेख अथवा परिचय प्रस्तुत किया गया है। आचार्य शुक्ल ने निम्नोक्त लेखकों पर विशिष्ट प्रकाश डाला है और वस्तुतः यही लेखक ही अपने विशिष्ट कालखंड की किसी प्रमुख प्रवृत्ति और अभिव्यक्ति-कला का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व करते हैं—सरहपा, हेमचंद (दे०) चंदबरदाई (दे०), विद्यापति (दे०), कबीर (दे०), मलिक मुहम्मद जायसी (दे०), तुलसीदास (दे०), वल्लभाचार्य, सूरदास (दे०), केशव दास (दे०), चिंतामणि (दे०), बिहारी (दे०), भूषण (दे०), दास (दे०), देव (दे०), घनानंद (दे०) लल्लूलाल (दे०), भारतेंदु (दे०), हरिश्चंद्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी (दे०), देवकीनंदन खत्री (दे०), प्रेमचंद (दे०), अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'(दे०), सुमित्रानंदन पंत (दे०), जयशंकर प्रसाद(दे०), सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' (दे०), और महादेवी वर्मा (दे०)।

लेखकों के परिचय में आचार्य शुक्ल ने सर्वप्रथम उनका यथासंभव प्रामाणिक जीवन-चरित प्रस्तुत किया है—आधुनिक लेखकों का जीवन-चरित नहीं दिया गया। फिर उनके ग्रंथ की सूची एवं आलोचनात्मक समीक्षा के उपरांत यथावश्यक रूप में विषय से संबद्ध ग्रंथकारों के साथ तुलना प्रस्तुत की गई है और अंत में उनकी विषय-सामग्री तथा प्रतिपादन-शैली के आधार पर उनका मूल्यांकन किया गया है। आचार्य शुक्ल की इस दिशा में उल्लेख्य विशेषता है कि इन्होंने प्रायः प्रत्येक लेखक अथवा ग्रंथ के विषय में एक ऐसा सार-वाक्य कह दिया है जो कि व्यावर्तक धर्म बन गया है और यही सार-वाक्य लगभग पिछले चालीस वर्षों से परवर्ती लेखकों के आदर्श बन गए हैं—यद्यपि ऐसे किन्हीं वाक्यों से समय-समय पर असहमति भी प्रकट की जाती रही है। निष्कर्षतः यह इतिहास-ग्रंथ अपने समय का तो सर्वाधिक शोधपूर्ण, प्रांजल समर्थ एवं प्रामाणिक ग्रंथ था ही, आज भी इसका महत्त्व हर दृष्टि से अक्षुण्ण बना हुआ है तथा सभी इतिहासकारों ने इसका यथावत् अनुकरण किया है।

हिंदी-साहित्य का बृहद् इतिहास (*हि० कु०*)

काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा (दे०) द्वारा 1953 ई० में 'हिंदी-साहित्य का बृहद्-इतिहास' सोलह भागों में प्रकाशित करने की योजना स्वीकृत हुई थी, जिसमें हिंदी-साहित्य के व्यापक तथा सर्वांगीण इतिहास को प्रस्तुत करने का ध्येय निश्चित हुआ था। इन भागों के नाम इस प्रकार हैं—(1) हिंदी-साहित्य की पीठिका : संपादक डा० राजबली पांडेय, (2) हिंदी भाषा का विकास : सं० डा० धीरेंद्र वर्मा (दे०), (3) हिंदी-साहित्य का उदय और विकास (1400 वि० तक) : सं० करुणापति त्रिपाठी, डा० शिवप्रसादसिंह, (4) भक्तिकाल 1400-1700 वि० : सं०—डा० दीनदयालु गुप्त, डा० देवेंद्रनाथ शर्मा, डा० विजयेंद्र स्नातक, (6) शृंगारकाल (रीतिबद्ध) 1700-1900 वि० : सं०—डा० नगेंद्र (दे०), (7) शृंगारकाल (रीतिमुक्त) 1700-1900 वि० : सं० डा० भगीरथ मिश्र, (8) हिंदी-साहित्य का अभ्युत्थान (भारतेंदुकाल) 1900-1950 वि० : सं०—श्री विनयमोहन शर्मा, (9) हिंदी-साहित्य का परिष्कार (द्विवेदी काल) 1950-75 वि० : सं०—पं० कमलापति त्रिपाठी, पं० सुधाकर पांडेय (10) हिंदी-साहित्य का उत्कर्ष-काल (काव्य) 1975-95 वि० : सं०—डा० नगेंद्र, डा० रामेश्वर शुक्ल अंचल (दे०), पं० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' काशिकेय (11) हिंदी-साहित्य का उत्कर्ष-काल (नाटक) 1975-90 वि० : सं० डा० सावित्री सिन्हा, डा० दशरथ ओझा, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, (12) हिंदी साहित्य का उत्कर्षकाल (उपन्यास, कथा, आख्यायिका) 1975-95 वि० : सं० डा० कल्याणमल लोढ़ा, श्री अमृतलाल नागर (दे०), (13) हिंदी-साहित्य का उत्कर्ष काल : निबंध, पत्रकारिता, आलोचना, 1975-95 : सं० श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' (दे०), (14) हिंदी-साहित्य का अद्यतनकाल 1995-2010 : सं० डा० हरवंशलाल शर्मा, डा० कैलाशचंद्र भाटिया, (15) हिंदी में शास्त्र तथा विज्ञान : सं० श्री रामधारीसिंह दिनकर (दे०), श्री गोपालनारायण शर्मा, (16) हिंदी का लोक-साहित्य : सं० पं० राहुल सांकृत्यायन (दे०)। इस योजना के अंतर्गत दस भाग अब तक (दिसंबर 1974 तक) प्रकाशित हो चुके हैं, और शेष निर्माणाधीन हैं। देश भर के दो सौ से अधिक अधिकारी विद्वानों को इस इतिहास-लेखन का सहयोग प्राप्त हुआ है अथवा मिल रहा है। इतिहास-लेखन में निम्नोक्त प्रमुख नियमों के परिपालन का यथासंभव प्रयत्न किया गया है—(1) विभिन्न कालों का विभाजन युग की मुख्य सामाजिक और साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया जाए। (2) साहित्य के उदय और विकास, उत्कर्ष और अपकर्ष का वर्णन और विवेचन करते समय ऐतिहासिक दृष्टिकोण का पूरा ध्यान रखा जाए। (3) साहित्य के सभी पक्षों

पर सतुलित तथा प्रामाणिक रूप से विचार किया जाए। (4) विभिन्न कृतियो का मूल्याकन विशेषत साहित्य शास्त्रीय आधार पर और सामान्यत दार्शनिक, सास्कृतिक, समाजशास्त्रीय तथा मानववादी आधारो पर किया जाए। (5) भाषा और शैली सुबोध एव सुरुचिपूर्ण हो।

हिंदी-साहित्य की भूमिका *(हिं० कृ०)* [रचना काल—1940 ई०]

इस ग्रथ के लेखक है डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (दे०)। ग्रथ मे दस अध्याय है—(1-2) हिंदी साहित्य भारतीय चिंता का स्वाभाविक विकास, (3) सतमत, (4) भक्तो की परपरा, (5) योग-मार्ग और सत-मत, (6) सगुण-मतवाद, (7) मध्ययुग के सतो का सामान्य विश्वास, (8) भक्तिकाल के प्रमुख कवियो का व्यक्तित्व, (9) रीतिकाव्य, (10) उपसहार। इनके अतिरिक्त 'उपसहार' के अतर्गत सस्कृत-साहित्य का सक्षिप्त परिचय, 'महाभारत' (दे०) क्या है, 'रामायण' (दे०) और 'पुराण', बौद्ध-साहित्य, बौद्ध-सस्कृत साहित्य जैन साहित्य, कवि-प्रसिद्धियाँ और स्त्रीरूप—इन विषयो पर भी सम्यक् प्रकाश डाला गया है। जैसा कि ग्रथ के नाम और उपर्युक्त शीर्षको से स्पष्ट है, ग्रथकार को हिंदी-साहित्य के निर्माण से पूर्व की ऐसी सामग्री का विवेचन एव सकलन करना अभीष्ट है, जिससे यह प्रमाणित किया जा सके कि इस सामग्री की अजस्र धारा के प्रवाह-रूप मे हिंदी-साहित्य का विकास हुआ है। इस प्रकार ग्रथकार भारतीय सस्कृति एव विचारधारा की शाश्वतता मे विश्वास रखते है। यह ग्रथ लेखक की विद्वत्ता, बहुज्ञता एव पाडित्य के अतिरिक्त उसकी विश्लेषणात्मक, गभीर, प्रौढ एव सशक्त शैली का परिचायक है। हिंदी-साहित्य के आधार-स्रोतो के अध्येता के लिए यह एक सदर्भ-ग्रथ का काम करता है।

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन

नागरी प्रचारिणी सभा (दे०) की प्रेरणा से इस सस्था की स्थापना प्रयाग मे 1910 ई० मे हुई। इस के उद्देश्य और कार्य थे—हिंदी-साहित्य के विभिन्न अगो की सृष्टि और उनका विकास करना, देशव्यापी कार्यो एव व्यवहार को सुलभ बनाने के लिए राष्ट्रभाषा के रूप म हिंदी भाषा तथा राष्ट्रलिपि के रूप मे देवनागरी लिपि का प्रचार करना, उसे अतर्प्रांतीय भाषा बनाने, सरकारी कार्यालयो, कचहरियो और सरकारी कामो मे उसका प्रवेश कराने की दिशा मे सतत प्रयास करना। विश्वविद्यालयो मे उच्च शिक्षा का माध्यम हिंदी हो इसके लिए आदोलन करने के आदोलन करने के साथ साथ उसने हिंदी की उच्च परीक्षाओ की जगह-जगह व्यवस्था की और उन्हे विश्वविद्यालयो एव शिक्षा-बोर्डो से मान्यता प्राप्त कराई हिंदी साहित्य के विकास और उदीयमान हिंदी लेखको को प्रोत्साहन देने के लिए विभिन्न पुरस्कार और पदक देने की व्यवस्था करने का श्रेय भी इसे है। नागरी प्रचारिणी सभा के साथ इसने भी प्राचीन हस्तलिखित ग्रथो की खोज और प्रकाशन के कार्य मे सक्रिय सहयोग दिया। इसके मुख्य विभाग हैं—परीक्षा विभाग, प्रचार-विभाग, पुस्तकालय विभाग और प्रकाशन-विभाग। इसके सग्रहालय भवन मे एकत्र साहित्यकारो के एलबम तथा मल्लो के चित्र इसकी एक अन्य विशेषता है। इसके अधिवेशनो का सभापतित्व महात्मा गाधी जैसे महापुरुषो द्वारा किया गया और राजर्षि पुरुषोत्तमदास टडन जैसे कर्मठ व्यक्तियो की प्रेरणा इसे मिली। आज भी यह हिंदी भाषा और साहित्य की प्रगति मे सक्रिय कार्य कर रहा है। इसकी प्रमुख पत्रिका है सम्मेलन पत्रिका'।

हिंदुस्तानी *(हिं० भाषा)*

'हिंदुस्तानी' शब्द का सबध तो स्पष्ट ही पूरे 'हिंदुस्तान से है किंतु भाषा के अर्थ मे इसका अर्थ काफी सीमित है। कभी हिंदुस्तानी शब्द का प्रयोग हिंदी-उर्दू के सम्मिलित रूप के लिए होता था। उर्दू के पर्याय के रूप मे भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है। आजकल हिंदुस्तानी' उस बोलचाल की हिंदी को कहते हैं जिसमे न तो सस्कृत के वे कठिन शब्द हैं जो साहित्यिक हिंदी मे प्रयुक्त होते है, और न अरबी फारसी-तुर्की के वे मुश्किल अलफाज हैं जो उर्दू मे इस्तेमाल होते है। इस तरह हिंदुस्तानी वह आधार-भाषा है जो एक तरफ अरबी फारसी तुर्की के कठिन शब्दो को ग्रहण करके 'उर्दू' नाम की अधिकारिणी बन जाती है तो दूसरी तरफ सस्कृत के कठिन शब्दो को ग्रहण करके साहित्यिक हिंदी कहलाने लगती है। गाधीजी ने इसी अर्थ मे 'हिंदुस्तानी' नाम का प्रयोग किया है।

हिड़माटी *(उ० कृ०)*

'हिड़माटी' नित्यानंद महापात्र (दे०) का उपन्यास है। इसमें ग्रामीण समाज का चित्रण अकृत्रिम रूप से हुआ है। शीर्षक के अनुरूप आर्थिक समस्या इसका मुख्य प्रतिपाद्य है, यद्यपि सामाजिक जीवन के सर्वांगीण चित्रण के कारण अन्य गौण समस्याएँ भी स्वतः उभर कर आ गई है। वैचारिक गांभीर्य इसमें आद्यंत मिलता है। वर्ग-संघर्ष का चित्रण अवश्य हुआ है, किंतु लेखक ने इसका समाधान गांधीवाद में देखा है। उपन्यास के अंतिम भाग में लेखक ने गांव के किसान, मजदूर एवं हिड़माटी का प्राधान्य दिखाया है और उसी के माध्यम से भारत जैसे निर्धन, कृषि-प्रधान, अधिक जनसंख्या वाले विकासशील राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था का स्वरूप कैसे हो, इसका संकेत किया है।

'हिड़माटी' एक पूर्णांग उपन्यास नहीं है। यह 'कालनेमि' नामक वृहत् उपन्यास का प्रथम खंड है। उसके दूसरे भाग का नाम 'भंगाहाड़' है और तृतीय भाग का 'घर दिअ'। अतः 'हिड़माटी' के चरित्रों का पूरा विकास नहीं हो पाया है। इसमें एक निर्धन कृषक अपनी युवती स्त्री और शिशु पुत्र को गांव में छोड़कर कलकत्ता जाता है। और यहीं से शहरीकरण, औद्योगीकरण, पूंजीवाद, टूटती परंपरागत अर्थव्यवस्था, बिखरता सामाजिक जीवन आदि बातें एक साथ उद्भावित हो उठती हैं।

इस प्रकार यह एक समस्यामूलक गंभीर कृति है।

हिततरंगिणी *(हि० कृ०)* [रचना-काल– 1541 ई०]

इस ग्रंथ के प्रणेता कृपाराम (दे०) है। इसमें नायिकाभेद का निरूपण भानुमिश्र-रचित 'रसमंजरी' (दे०) के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। विषय का प्रतिपादन दोहा (दे०) जैसे छोटे छंदों में किया गया है। भक्तिकाल में रचित नायिका-भेद-विषयक जो चार ग्रंथ उपलब्ध होते है, कालक्रमानुसार 'हिततरंगिणी' उनमें से प्रथम है। शेष तीन ग्रंथ है सूरदास (दे०)-कृत 'साहित्य लहरी' (दे०), नंददास (दे०)-कृत 'रसमंजरी' और रहीम (दे०)-कृत 'बरवै नायिका' भेद। ग्रंथ-विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से 'हिततरंगिणी' यद्यपि अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, फिर भी इसका ऐतिहासिक महत्व अवश्य है—परवर्ती रीतिकालीन, रीतिग्रंथों, विशेषतः नायिका-भेद-विषयक ग्रंथों, की परंपरा का प्रारंभ एक दृष्टि से इसी से माना जा सकता है।

हितवृंदावनदास *(हि० ले०)* [जन्म—1695-1710; मृत्यु—1793 ई०]

कृष्णगढ के राजा बहादुरसिंह से घनिष्ठता होने के कारण कुछ लोग पुष्कर को इनकी जन्मभूमि मानते हैं, पर काव्य में ब्रज-जीवन का सांगोपांग विवेचन इन्हें ब्रजवासी सिद्ध करता है। तत्कालीन गोस्वामी जी के गुरुभ्राता होने के कारण ये चाचा जी कहलाए। 'लाड़सागर', 'ब्रजप्रेमानंदसागर', 'वृंदावनजसप्रकाशवेली', 'विवेकपत्रिकावेली', 'कृपाअभिलाष-वेली' 'रसिकपथ-चंद्रिका', 'जुगलसनेहपत्रिका', 'हरिवंशसहस्रनाम' आदि इनकी प्रकाशित रचनाएँ हैं। छतरपुर, भरतपुर, कृष्णगढ़ और वृंदावन में इनके लगभग 80 हस्तलिखित ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। 'भक्तमाल' (दे०) की तरह इन्होंने 'हरिवंशसहस्रनाम' में राधावल्लभीय (दे० राधावल्लभ-संप्रदाय) भक्तों का परिचय प्रस्तुत किया है। ब्रजभाषा-साहित्य को व्यापकता प्रदान करने की दृष्टि से इन्हें ब्रजभाषा का व्यास (दे० व्यास, बादरायण) कहना असंगत न होगा।

हितहरिवंश *(हि० ले०)* [जन्म—1502 ई०; मृत्यु—1552 ई०]

ये 'राधावल्लभ-संप्रदाय' (दे०) के प्रवर्तक एवं राधा के अनन्य उपासक थे। सांप्रदायिक दृष्टि से इन्हें कृष्ण की वंशी का अवतार कहा जाता है। सोलह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह रुक्मिणी देवी से हुआ; ब्रज-यात्रा करते हुए कृष्णदासी और मनोहरदासी नामक दो ब्राह्मण-कन्याओं से इन्होंने और विवाह किया। इनके विचारानुसार दांपत्य-जीवन के अनुभवों को प्रेम की कसौटी बना कर, उसमें पूर्ण पवित्रता का आरोप करके प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति भगवत्-प्रेम की प्राप्ति कर सकता है। इनके द्वारा प्रवर्तित संप्रदाय में शृंगार का प्राधान्य है, वियोग का नहीं। कृष्ण राधा से अलग नहीं रह सकते, नित्य उनके साथ विहार करते है। राधा की उपासना और प्रसन्नता के द्वारा ही कृष्णभक्ति का आनंद प्राप्त किया जा सकता है—यही इनकी विज्ञप्ति है। इन्होंने 'राधासुधानिधि' तथा 'यमुनाष्टक' दो संस्कृत

के एव 'हितचौरासी' और 'स्फुट वाणी' दो हिंदी के ग्रंथ लिखे। 'हितचौरासी' मे ब्रजभाषा के चौरासी पद है जिनमे भाषा का अपूर्व मार्दव और माधुर्य है। 'स्फुट वाणी' सिद्धात ग्रथ है एव 'राधासुधानिधि मे नित्य उपास्या राधा के सौंदर्य का समाकलन किया गया है। सब मिलाकर कृष्ण-भक्ति-काव्य मे हितहरिवश जी का स्थान काफी ऊँचा और महत्वपूर्ण है।

हितोपदेश *(स० कृ०)* [समय—*1300* ई० के आसपास]

नीतिकथाओ मे 'पचतत्र' (दे०) के बाद 'हितोपदेश' का स्थान है। इसके रचयिता नारायण पडित बगाल के राजा धवलचद्र के दरबार मे थे।

'हितोपदेश' का मूलस्रोत 'पचतत्र' है। इसकी 43 कथाओ मे से 25 'पचतत्र' से ली गई है। यह ग्रथ चार परिच्छेदो मे विभक्त है—मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सधि। प्रथम दो परिच्छेदो की कथाएँ 'पचतत्र' से ली गई है। किंतु नारायण पडित ने इनमे कुछ और पद्य जोड दिए है। इसमे कुल 679 नीतिपरक पद्य है जो स्मृतियो तथा पुराणो से लिये गए है। इसकी कहानिया पशुओं के बीच चलती है।

'हितोपदेश' के पद्य उपदेशपूर्ण होने के साथ साथ मार्मिक भी है। इसकी रचना-शैली अत्यत सरल तथा रोचक है। इस ग्रथ की रचना का उद्देश्य बालको को सरल तथा सुबोध सस्कृत मे नीति के उपदेश देना है।

'हितोपदेश', 'पचतत्र' सस्कृत-नीति कथा के प्रतिनिधि ग्रथ है। 'हितोपदेश' 'पचतत्र' के पुनर्निर्माण का दूसरा प्रयत्न है। इसमे 'पचतत्र' की कहानियो के साथ ही नये विषय एव वृत्त भी सम्मिलित कर दिए गए हैं। इनको आधार बनाकर बौद्ध तथा जैनो ने कुछ नीति ग्रथो की रचना की जिनमे बहुत से बाद मे नष्ट हो गए।

हिमंबिदु *(ते० क०)* [रचना-काल—*1922* ई०]

'हिमंबिदु' अडवि बापिराजु (दे०) का श्रेष्ठतम ऐतिहासिक उपन्यास है जिसकी रचना उन्होने सत्याग्रही के रूप मे कारागार मे रहते समय की थी। इस उपन्यास मे आध्र शातवाहनो के समय मे पाए जाने वाले ब्राह्मण बौद्ध-धर्मों के सघर्ष, शातवाहनो के साम्राज्य की व्याप्ति, तत्कालीन आचार विचार, खान-पान, युद्धनीति, अर्थनीति, वाणिज्य भाषा एव सास्कृतिक परिस्थितियो की गभीर तथा मनोमुग्धकारी भूमिका के आधार पर तीन प्रणय-कथाओ का वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह ईस ऐतिहासिक भूमिका पर कल्पित कथा के आधार पर रचा गया उपन्यास है। उपन्यासकार चित्रो, शिल्पो और सगीत की राग रागिनियो का वर्णन करते समय परवश हो जाता है। इन सभी कलाओ मे इनकी प्रौढ अभिज्ञता एव अनुराग ही ईसका कारण है। धर्म-सबधी विषयो के वर्णन मे धर्मविद्, युद्ध-वर्णन मे समरशास्त्र-पारगत, प्रेमियो के सलापो के अकन मे शृगार रस-रूप होकर उपन्यासकार इसमे अपने व्यक्तित्व को प्रकट करता रहा है। उसकी बहुलता के कारण यह उपन्यास एक अनुपम कृति बन गया है और ईसके सभी पात्र जीवत हो उठे है। सभी बाधाओ का अतिक्रमण कर अत मे विजयी होने वाला पवित्र प्रेम इसकी तीनो प्रणय-गाथाओ के द्वारा चित्रित किया गया है।

'विषकन्या' की चर्चा 'मुद्राराक्षस' (दे०) नाटक आदि मे की गयी है। किंतु उसके निर्माण के सबध मे कोई सूचना नही मिलती। 'हिमंबिदु' मे बापिराजु ने विषकन्या के निर्माण की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करके उसको यथार्थ धरातल पर अवतरित किया है। 'विषकन्या' इनकी एक विलक्षण सृष्टि है।

हिमालयनो प्रवास *(गु० क०)*

'हिमालयनो प्रवास' दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर (काका कालेलकर—दे०) की हिमालय-यात्रा का लिपिबद्ध इतिहास है। अपनी भूमिका मे लेखक जीवन को जगम मानकर उसकी ताजगी बनाए रखने के लिए भाषा के महत्व को स्वीकार करता है। अतीत मे वानप्रस्थ, परिव्राजकावस्था आदि को सामाजिक व्यवस्था और वणिग्वृत्ति तथा धर्मप्रचार आदि की आवश्यकता ने मनुष्य से यात्राएँ कराई। जब मनुष्य अज्ञान से भय नही खाता और उसे विस्मय की दृष्टि से देखता है तो प्रकृति के निमत्रण को ठुकरा नही सकता और यात्राओ के माध्यम से उसे जानने का उपक्रम करता है। लेखक ने अन्य स्थानो की यात्रा के साथ हिमालय की यात्रा का भी निश्चय किया। वाराणसी गया, बोधिगया आदि होते हुए अल्मोडा, भीमताल, देवप्रयाग, गगोत्री आदि की यात्राएँ लेखक ने सपन्न की। लखी बाबा जैसे साधुओ का स्वभाव, अँग्रेजी बोलने वाले साधुओ की प्रतिष्ठा,

श्रद्धा-भक्ति के अनुभव, टेहरी के लोगों की गंगा-यमुना के प्रति विचित्र श्रद्धा आदि का लेखक ने सुंदर निरूपण किया है। अपने वर्णनों में लेखक प्रकृति के अनुपम सौंदर्य को पूर्णतः उद्‌घाटित करने में सफल हुआ है। भाषा सरल किंतु प्रवाहमयी है। इतना निर्व्याज प्रकृति-सान्निध्य और उसका इतना सशक्त वर्णन आज भी बहुत अधिक नहीं मिलता। यात्रा-साहित्य की यह अनुपम कृति है।

हिरण्मयीदेवी *(अ० ले०)*

ये स्वातंत्र्योत्तर काल की नवोदित लेखिका हैं। प्रकाशित रचनाएँ—उपन्यास : 'जीवन संग्राम', 'युगर यात्री'। कहानी : 'नियर् टोपाल' (1958)।

इनके उपन्यासों में गतानुगतिक समाज का चित्रण मिलता है। कहानी के क्षेत्र में इनसे बहुत अपेक्षाएँ हैं।

हिरेमठ, आर० सी० *(क० ले०)* [जन्म—1922 ई०]

ये प्रसिद्ध साहित्यकार तथा भाषाविज्ञानी हैं तथा कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ में कन्नड-अध्ययन-संस्था के निदेशक के पद पर विराजमान हैं। इनकी भाषा-शास्त्र विषयक पुस्तक 'स्ट्रक्चर ऑफ़ कन्नड' कन्नड भाषा-शास्त्र को एक महत्त्वपूर्ण देन है। पाठानुसंधान के क्षेत्र में इन्होंने अच्छा कार्य किया है। इनके द्वारा संपादित पुस्तकों की संख्या कम नहीं है। सुरंग (दे०), राघवांक (दे०) आदि कवियों के काव्यों का संपादन कार्य इन्होंने बड़ी सफलता से किया है। इनकी विस्तृत आलोचनात्मक भूमिकाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। कन्नड के वीरशैव साहित्य का विशेष अध्ययन करने के कारण ये उसके अधिकारी विद्वान माने जाते हैं। 'महाकवि राघवांक' (दे० राघवांक) इनकी सुप्रसिद्ध आलोचनात्मक कृति है। 'सुमनांजलि' इनकी कविताओं का संग्रह है। 'हरिश्चंद्र नाटकम्' इनका नाटक है। इनके 'साहित्य-संबंधी' लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

हिस्ट्री ऑफ़ पंजाबी लिट्रेचर *(पं० कृ०)*

यह पंजाबी साहित्य के संबंध में डा० मोहन-सिंह (दे०) द्वारा लिखा गया शोध-प्रबंध है। इसमें पंजाबी साहित्य के आरंभ से लेकर 1932 ई० तक के साहित्य का विवेचन है। कुल पृष्ठ-संख्या 139 है। 107 पृष्ठ तक शोध-विषय का विवेचन है। 108 से 136 तक पुरानी पंजाबी कविता के पद्यबद्ध उदाहरण हैं। 137 से 139 पृष्ठ तक पंजाबी कवियों एवं अन्य लेखकों की नाम-ग्रंथ सूची दी गई है। शोध-प्रबंध के अध्याय-क्रम में (1) पंजाब-पंजाबी-संस्कृति, (2) पूर्व-गुरु नानक काल, (4) गुरु नानक-काल, (5) उत्तर मुग़ल-काल, (6) रणजीत-सिंह काल, एवं (7) अंग्रेज़ी काल का वर्गीकरण दिया गया है। विवेचन प्रौढ़ एवं संक्षिप्त है। यह ऐतिहासिक गौरव की कृति है।

हीरदमोदर *(पं० कृ०)* [रचना-काल—सोलहवीं शती का उत्तरार्ध]

पंजाबी क़िस्सा-काव्य की यह प्रथम ज्ञात रचना पंजाबी का आदि प्रबंध-काव्य भी है। ग्रंथ के अंत में कवि ने अकबर के शासन की समृद्धि की कामना की है, इस आधार पर यह अकबरकालीन रचना मानी जाती है। इसमें सियाल की पुत्री हीर और हज़ारा-निवासी मौजू चौधरी के पुत्र राँझा के प्रेम की सुखांत कथा का वर्णन है। दवैया छंद (28 मात्राएँ, 16-12 पर यति) में लिखित इस कृति की भाषा अति साधारण, अनगढ़ और साहित्यिक सौष्ठव से रहित है। इसका मूल स्वर लहँदा (पश्चिमी पंजाबी) का है। कृति में यद्यपि रस-व्यंजना की अपेक्षा आक्रोश तथा द्वंद्व मुख्य हो गए हैं तथापि कुछ अंश निश्चय ही आकर्षक बन पड़े हैं। समग्रतः अभिव्यक्ति की मार्मिकता की अपेक्षा घटना-वर्णन की ओर कवि का झुकाव अधिक है; कथा में अति प्राकृतिक तत्त्वों का समावेश भी किया गया है। इसमें समकालीन ग्रामीण रहन-सहन, विवाह-संबंधी रीति-रिवाज का विस्तार से अंकन हुआ है। परवर्ती मुसलमान कवियों ने कहानी की दमोदर (दे०) द्वारा निर्धारित रूपरेखा स्वीकार नहीं की, उन्होंने कुछ नाम भी बदल दिए हैं। पंजाबी में एक नयी विधा की प्रवर्तक होने के कारण ही मुख्यतः 'हीरदमोदर' को प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इस रचना के अनेक मुद्रित संस्करण उपलब्ध हैं।

हीर-राँझा *(पं० कृ०)* [रचना-काल—अठारहवीं शती का मध्य भाग]

'हीर-राँझा' की लोकप्रसिद्ध प्रेमकथा को मुक़बल ने चार-चार पंक्तियों के चार सौ तेतीस बैंतों

मे काव्यबद्ध किया है। अहमदशाह गुज्जर (दे०) द्वारा निर्धारित रूपरेखा स्वीकारते हुए कवि ने रचना को सुखात बनाया हैं परतु सपूर्ण कृति मे विप्रलभ का भाव मुख्य है। फारसी की सरल शब्दावली से युक्त मध्य पजाबी मे निबद्ध मुकबल के छदो मे सरलता, आकर्षण और अद्भुत प्रभाव है। दैनिक जीवन से गृहीत उपमानो, मुहावरो और सूक्तियो के प्रयोग से काव्य के कलागत सौंदर्य मे वृद्धि हुई है। इस कृति के अनेक मुद्रित सस्करण उपलब्ध हैं।

हीर-रांझा *(प०कृ०)* [रचना-काल—अनुमानत 1878 ई०]

'कवीश्वर' भगवानसिंह (दे०) के यश की अभिवृद्धि करने वाली इस रचना मे 531 कवित्तो मे हीर रांझा की सुप्रसिद्ध कथा कही गई है। यद्यपि इनसे पूर्व जोगसिंह और लालसिंह ने भी कवित्तो मे हीर की कथा लिखी परतु लोकप्रियता इन्ही को मिली। यह रचना 1886 ई० मे पहली बार निरंकारी छापाखाना, लुधियाना से छपी। अत अनुमान है कि छपने से सात-आठ वर्ष पूर्व लिखी गई होगी। भगवानसिंह के अनेक छदो के भाव और शब्द मुकबल (दे०) और वारिस (दे०) की रचनाओ से मिलते है। कवि ने कई स्थानो पर धन, नारी, गुरु, योग, ससार की नश्वरता के सबध मे लोक-प्रचलित मध्यकालीन विचारो की अभिव्यक्ति की है। रचना मे काव्य-कला की सूक्ष्मता या विचार-प्राजलता का अभाव है। अन्य किस्सा कृतियो के ही समान अपने सरल वर्णन, सपाट कथा तथा जनरजक व्यग्योक्तियो के कारण यह कृति भी प्रसिद्ध है। वियोग शृगार की दृष्टि से हीर का 'बारहमासा' अवश्य उल्लेखनीय है। पूर्वी पजाब मे इसे वारिस की 'हीर' जैसी ही ख्याति प्राप्त हुई।

हीर वारिस *(प० कृ०)* [रचना-काल—1766 ई०]

हीर और रांझा की प्रेमकथा के आधार पर पजाबी मे पचास से भी अधिक रचनाएँ लिखी गई हैं परतु 'हीर वारिस' जैसी लोकप्रियता अन्य किसी कृति को प्राप्त नही हो सकी। फारसी मसनवियो जैसी एकछदात्मकता होते हुए भी इस प्रेम काव्य मे उनकी रचना-पद्धति का अनुसरण नही किया गया। इसमे न लबे चौडे स्तुतिखड हैं, न शाहेवक्त की प्रशसा है। आरभ की केवल ी स पक्तियो मे खुदा, रसूल चार यार, पीर और फकीर शकरगज की स्तुति है। 'हीर-वारिस' मे आभिजात्य के सरक्षक सामती समाज, शासन और धर्म के प्रति तीव्र आक्रोश और विगर्हणा व्यक्त हुई है, अनेक स्थलो पर अश्लीलतापूर्ण सकेत है और अत मे इसे आध्यात्मिक रूपक घोषित किया गया है। आध्यात्मिकता का यह क्षीणतर स्वर अत्यत आरोपित अथवा प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। अत अधिकाश विद्वान इसे लौकिक प्रेम प्रधान काव्य मानने के पक्ष मे हैं। किसी प्रकार की आध्यात्मिकता की अपेक्षा, यह कृति पजाब के ग्रामीण जीवन की सजीव पृष्ठभूमि पर स्वच्छद प्रेम और विद्रोह के स्वर को मुखरित करने के कारण ही साहित्य मे प्रसिद्ध है। इसमे फारसी शब्दावली का उन्मुक्त प्रयोग हुआ है, परतु उनके तद्भव और लोक-प्रचलित रूप ही स्वीकृत हुए है। सपूर्ण काव्य मुहावरो लोकोक्तियो और सूक्तियो से समृद्ध है।

हीरा *(मल० पा०)*

महाकवि उळ्ळूर (दे०) परमेश्वरय्यर के मुक्तक-सग्रह 'किरणावली' मे 'हीरा' शीर्षक की एक लबी कविता है। इस कविता का विषय है इसी नाम की स्त्री के बलिदान की कथा। 'हीरा' कहानी राजस्थान के इतिहास से ली हुई है। यह हीरा वस्तुत मेवाड की धाय पन्ना है।

हीरा के भाग्य मे सुहाग नही बदा था और वह अपनी नन्ही सतान के लिए रानी की सेवा करती थी। उसकी स्वामिनी विधवा राजमाता भी अपने प्यारे लाल के लिए जी रही थी। हीरा रानी के लिए दासी ही नही, बहुत कुछ थी। उस अमावस्या की भीषण रात्रि के समय रानी के मुखमडल पर भयाकुलता देखकर हीरा चिंतित हो गई। रानी ने अपनी विश्वासपात्र हीरा को समझा दिया कि सत्ता-लोभी देवर उनकी प्यारी सतान और राज्य के भावी अधिपति के प्राण हरने के लिए आया ही चाहते हैं। हीरा जिस सतान को पाल पोसकर राजा की सेवा मे समर्पित कर देना चाहती थी, वह राजा के प्राणो की रक्षा के लिए उसका तत्काल समर्पण करने का महान् सकल्प कर लेती है। हीरा अपना वचन पालती है। कवि ने इस प्रसग के वर्णन मे बडे ही भावपूर्ण शब्दो का प्रयोग किया है—ससार का स्वर्णमय मगल दीपक, त्याग-साम्राज्य की सम्राज्ञी, भूगर्भ के पूर्व-पुण्य की शुक्तिका-मुक्तामणि आदि। रानी को उनकी अमानत सौंप दने के बाद हीरा अपने पुत्र से पुन तादात्म्य करने के लिए

अपना भी उत्सर्ग कर देती है। इस प्रकार उळ्ळूर इस काव्य के माध्यम से केरल-साहित्य को उसकी भौगोलिक सीमाओं के पार ले गए हैं और उसे व्यापकता दी है।

हीरामालिनी *(बँ० पा०)*

हीरामालिनी (दे० विद्यासुंदर) के ठाटबाट की ओर सहज ही दृष्टि आकृष्ट होती है किंतु आँखें चौंधिया नहीं जातीं। वस्तुतः एक उच्छल कौतुक के सरस प्रवाह से यह चरित्र यथार्थ एवं सजीव हो उठा है। विद्यासुंदर के अधिकांश चरित्र ही कवि के हाथ के खिलौने हैं किंतु हीरा उनसे अलग है। हीरा के शब्दों में हीरा की तेज धार की तरह उसमें औज्ज्वल्य है। इस वृद्धा कुट्टनी के ठाठ भी कम नहीं। वह दूसरे के धन तक को छीन लेती है। बाज़ार में व्यापारी उसे देखकर घबरा जाते हैं। खोटे सिक्के के बदले एवं नाज-नखरे, बातचीत, हँसी-कौतुक तथा रसालाप के द्वारा वह लगभग बिना मूल्य सौदा करती है। कवि ने जनजीवन के साथ हीरा के स्वच्छंद मिलन को सहज रूप में चित्रित किया है। मुकुंदराम (दे० चक्रवर्ती) की दुर्बला एवं कृष्णराम (दे०) की बिमला को हीरा-मालिनी की अग्रवर्तिनी कहा जा सकता है परंतु हीरा की परिणति अंकुर में पल्लवित तरु की तरह ही सार्थक है।

हुकम *(पं० प्र०)*

'हुकम' शब्द मूलतः फ़ारसी भाषा का है जिसका अर्थ है 'आदेश'। गुरु नानक (दे०) ने इस शब्द को आध्यात्मिक रूप में प्रयुक्त किया है। इस नानारूप सृष्टि के सभी कर्म एवं व्यापार किसी नियंता के हुकम से नियंत्रित हैं। इस सिद्धांत ने मानव को सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया। यह निर्धनता के लिए महामंत्र या औषध है। मानव तो केवल हुकम का बंदा है।

> हुकमी होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई।
> हुकमी होवनि जीअ हुकमी मिलै वडिआई।
> इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि।
> हुकमै अंदरि सभ को बाहरि न हुकम न कोइ।
> नानक हुकमै जो बुझै त हउमै कहै न कोइ।

गुरु नानक देव ने 'हुकम रजाई कर्म' की चर्चा की है। इसका अर्थ परमात्मा की प्रेरणा से होने वाले कर्म हैं। ये कर्म सिद्धावस्था में शुद्ध अंतःकरण से ही संभव हैं। गुरु अर्जुनदेव ने भी 'हुकम' शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त किया है। उनकी उक्ति है—

'जो जो हुकमु भइ ओ साहिब का सो माथै लै मानिओ'

हुतोम प्यांचार नक्शा *(बँ० कृ०)*

कालीप्रसन्नसिंह (दे०) ने बँगला भाषा में अष्टादश पर्व महाभारत का गद्य अनुवाद किया है। इस अनन्यसाधारण कार्य के लिए उन्हें बंगाली-समाज से सकृतज्ञ श्रद्धा मिली है। अपने युग के कलकत्ते के सामाजिक जीवन का उन्होंने बहुत ही सुंदर व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करते हुए कथ्य भाषा में 'हुतोम प्यांचार नक्शा' (1862 ई०) की रचना की। इस रचना को बँगला-प्रहसन का अग्रदूत स्वीकार किया जा सकता है। आजकल के बहुत से विद्वानों ने 'हुतोम प्यांचार नक्शा' को *कालीप्रसन्नसिंह के आश्रित भुवनचंद्र मुखोपाध्याय की* रचना के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है। परंतु निश्चित प्रमाण के अभाव में इसे अनुमान-मात्र ही कहा जाएगा।

हुसैन, जे० एम० *(त० ले०)* [जन्म—1928 ई०; मृत्यु 1968 ई०]

इनका जन्म तंजौर जिले के इरवाचिरी नामक स्थान में हुआ था। 1950 ई० से इन्होंने कहानियों और निबंधों की रचना आरंभ की थी। इनकी प्रथम कृति है 'इक़बाल यार'। इसमें महाकवि इक़बाल के व्यक्तित्व और कृतित्व का विवेचन है। 'इसलामिय कदैहळ' नाम से संगृहीत इनकी कहानियों में तमिलनाडु के मुसलमानों के जीवन का सजीव चित्रण है। इन्होंने रेडियो मलेशिया से कुछ वार्ताओं और एकांकियों का भी प्रसारण किया था। इन्होंने लगभग 50 सुंदर कहानियों की रचना करके तमिल कहानियों के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान पा लिया है।

हुस्न-आरा *(उर्दू० पा०)*

'हुस्न-आरा' पं० रतन नाथ 'सरशार' (दे०) की सुप्रसिद्ध कृति 'फ़साना-ए-आज़ाद' (दे०) की नायिका है। यथा नाम तथा गुण—हुस्न आरा हद दर्जे की हसीन है। यह प्रगतिशील विचारों की एक सुशिक्षिता नारी है। इस प्रगतिशीलता के कारण यह अपने युग की साधारण नारी से बहुत भिन्न प्रतीत होती है। यह समाज की प्रत्येक

रूढि के विरुद्ध विद्रोह करती है। आत्मविश्वास इसके चरित्र का विशेष गुण है। प्रेम के विषय मे यह उदात्त भावना से युक्त है। प्रगतिशील होते हुए भी यह प्रेम के विषय मे पाश्चात्य दृष्टिकोण नही अपनाती। प्रेम की परीक्षा यह अपने प्यारे 'आजाद' को युद्ध मे भेजकर करती है। आज़ाद इस कठिन परीक्षा मे खरा उतर कर इसका प्रेम जीत लेता है। सादा जीवन, उच्च विचार इसके जीवन का आदर्श है। यह नारी को घर की चारदीवारी से बाहर निकाल समाज की गतिविधियो से परिचित कराना चाहती है ताकि भावी सतानें जागरूक एव सुसभ्य बन सके।

हृदयराम *(हिं० ले०)*

हृदयराम भल्ला पजाब के थे। ये कृष्णदास के पुत्र थे। 1623 ई० मे इन्होने 'भाषा हनुमन्नाटक' कवित्त-सवैयो मे लिखा। इनकी दो कृतियाँ और हैं — 'सुदामा-चरित' और 'रुक्मिणी-मगल'। इनका उपनाम था—राम। इनका उक्त नाटक सस्कृत के 'हनुमन्नाटक' (दे०) पर आधृत है, किंतु वह छायानुवाद मात्र है क्योकि दोनो मे साम्य कम, वैषम्य अधिक है। इसमे नाट्य-तत्त्वो का अभाव है, यद्यपि प्रौढ और प्राजल भाषा मे नाटकीय शैली को अपनाया गया है।

हृदयराम भल्ला *(प० ले०)*

जहाँगीर के युग मे विद्यमान् प्रसिद्ध कवि। इनके पिता का नाम कृष्णदास था। प्रमाण के लिए इनकी यह उक्ति ही प्रसिद्ध है—'कृष्णदास तनुकुल प्रकाश जस दीपक रच्छन'। इनकी कृति का मूल नाम 'रामगीत' है परतु वह 'हनुमन्नाटक' (दे०) के नाम से प्रसिद्ध हो गई है। इसका कारण कवि हृदयराम भल्ला का हनुमान-भक्त होना ही लगता है। 'रामगीत' की रचना कवि ने जेल मे की थी जबकि उस मुगल बादशाह जहाँगीर ने खुसरो का पक्षपाती होन के कारण पकड लिया था। जहाँगीर ने इस कृति को फारसी लिपि मे लिखवा कर अपने पोथीखाने मे रखवा लिया था। कृति की समाप्ति का काल कवि ने स्वय दिया है। 'सवत विक्रम नृपति सहसषट सत असीह पर' (सवत 1680—1737 ई०) 'चैत्र चाँदनी दूज छत्र जहाँगीर सुभट वीर' ॥ 'शुभ लच्छन सुदस कविराय विचच्छन। कृस्नदास तनुकुल प्रकाश जस दीप रच्छन'। भक्ति भाव से परिपूर्ण हृदय वाले इस कवि ने अपनी कृति मे 'शृगार हास्य' शात आदि रसो का उत्कृष्ट रूप से निर्वाह किया है। विषय-वस्तु, भक्ति-भाव, काव्यरूप और भाषा छद आदि के कारण इनका यह ग्रथ उत्कृष्ट है। पजाबी भाषा की राम काव्य परपरा मे हृदयराम भल्ला का अन्यतम स्थान है।

हेमचद्र *(स०प्रा०, अप० ले०)* [जन्म—1089 ई०, मृत्यु—1173 ई०]

हेमचद्र का जन्म गुजरात के धधका ग्राम मे एक वैश्य परिवार मे हुआ था। इनका जन्म का नाम चागा था। आठ वर्ष की अवस्था मे ही इस बालक की भक्त माता ने देवचद्र नामक विद्वान जैन-साधु को सौंप दिया था। साधु-रूप मे दीक्षा लेने पर इनका नाम सोमचद्र रखा गया। 21 वर्ष की अवस्था मे ये गुरु की गद्दी पर बैठे और इन्होने सूरि आचार्य की उपाधि प्राप्त की। तदनतर ये हेमचद्र सूरि नाम से प्रख्यात हुए।

जयसिंह सिद्धराज एव महान् शूरवीर योद्धा ही नही थे, कला प्रेमी और विद्वानो के आश्रयदाता भी थे। हेमचद्र पहले इनके आश्रय मे रहे और फिर कुमारपाल के। इनके राज्य-काल मे गुजरात राजनीतिक, कलात्मक, सास्कृतिक और साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध हुआ। गुर्जर भूमि की साहित्यिक समृद्धि का श्रेय हेमचद्र को है। ये सस्कृत प्राकृत और अपभ्रश — तीनो भाषाओ के प्रकाड पडित थे। पाटण इनके समय विद्या का केंद्र था। ये सिद्धराज के सभा-कवि थे।

हेमचद्र ने अनेक विषयो पर रचनाएँ की थी। जयसिंह सिद्धराज की प्रेरणा से इन्होने सस्कृत-प्राकृत अपभ्रश का व्याकरण लिखा था। यह कृति सिद्धराज के नाम से 'सिद्धहेम अथवा सिद्ध हेम शब्दानुशासन कहलाती है। इनकी अन्य कृतियो का निम्नलिखित रूप से वर्गीकरण किया जा सकता है

कोश — 'अभिधान चिंतामणि' (अपूर्ण)
'अनेकार्थ-सग्रह' —अनेकार्थ - सूचक शब्दो का कोश (अपूर्ण)
'निघटुशिक्षा' —वनस्पति विज्ञान-सबधी शब्दो का कोश
'देशी नाममाला'—(प्राकृत)
छन्द शास्त्र— छदोनुशासन—सस्कृत, प्राकृत और अभ्रश छदो का विवचन
काव्यशास्त्र—'काव्यानुशासन' (दे०)
तर्कशास्त्र —'प्रमाण मीमासा'

काव्य — 'द्याश्रय महाकाव्य', 'कुमारपालचरित' (दे०)।
प्रारंभ के 20 सर्ग संस्कृत में, अंतिम 8 प्राकृत और अपभ्रंश में
पौराणिक चरित—'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित','परिशिष्ट-पर्वन्', 'महावीरचरित'
विविध — 'योगशास्त्र', 'स्तोत्र'

इस प्रकार हम देखते हैं कि हेमचंद्र (दे०) ने विविध विषयों पर ग्रंथ रचना की थी। अपनी प्रतिभा और पांडित्य के प्रभाव से इन्होंने जैन धर्म को गुजरात में राजधर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया था। जैन-संप्रदाय में इन्हें 'कलिकालसर्वज्ञ' उपाधि से विभूषित किया गया है।

प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में शोधकर्त्ताओं के लिए हेमचंद के प्राकृत-ग्रंथ तथा अपभ्रंश-व्याकरण एवं छंदों का विवेचन अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार उत्तर भारत की आधुनिक भाषाओं और प्राचीन भारतीय भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले भाषाविज्ञान के छात्र के लिए हेमचंद्र के 'देशी नाममाला' में संकलित देशी शब्द और इनके कोश अत्यंत उपादेय हैं।

हेमसरस्वती *(अ० ले०)* [जन्म—तेरहवीं शती का अंत अथवा चौदहवीं का आरंभिक काल]

इन्होंने कमलानगर के राजा दुर्लभ नारायण के आश्रय में राजधानी गड़ियानगर में रहकर रचना की थी।

रचनाएँ—'प्रह्लादचरित', 'हरगौरीसंवाद'।

'प्रह्लादचरित' असमीया भाषा का प्रथम काव्य है। इस काव्य की रचना 'वामन पुराण' के आधार पर हुई है। इसमें नवरसों का प्रयोग है, भाषा संस्कृत-प्रधान है, प्राकृत भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। इस ग्रंथ में सामाजिक वैषम्य की ओर भी संकेत है। कवि का कथन है कि यदि नारायण सभी शरीरों में विद्यमान है तो कोई हाथी पर चढ़ता और सुख से सोता है जबकि किसी अन्य को तिनका तक नहीं मिलता। यदि सचमुच भगवान् सब में है तो एक का दुःख सभी का और एक का सुख सभी का सुख होना चाहिए। 'हरगौरीसंवाद' अधिक अच्छा ग्रंथ है। इसमें 899 पद हैं। प्रथम अध्याय में 'नृसिंह पुराण' से हिरण्यकश्यपु-वध की कथा ली गई है। शेष छह अध्यायों में हर-गौरी-संवाद है, इसमें शिव-परिवार की कथा है। इस पर 'कालिका-पुराण' और 'कुमार-संभव' (दे०) का प्रभाव पड़ा है। अंतिम अध्याय में योग-साधना का भी वर्णन है।

हेमसरस्वती असमीया-साहित्य के प्रथम कवि हैं। कोई-कोई इन्हें प्रथम वैष्णव-कवि भी मानता है, किंतु यह निश्चय करना कठिन है कि ये शैव-शाक्त अधिक हैं अथवा वैष्णव।

हेरोया स्वर्ग *(अ० कृ०)* [रचना-काल—1935 ई०]

मुहम्मद पियार (दे०) के इस उपन्यास में मुस्लिम समाज के दोषों का चित्रण है। चरित्र निर्भीक मानव हैं; इनमें अंतर्द्वंद्व नहीं है। पियार साहब ने राज-नीतिक दुराग्रह से हटकर लिखा, अतः कृति में पूर्वग्रह एवं विद्वेष की भावना नहीं है। भाषा चित्रात्मक है।

हेलवनकट्टे गिरियम्मा *(क० ले०)* [समय—अनुमानतः 1750 ई०]

बल्लारी जिले के हेलवनकट्टे नामक ग्राम में एक सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार में इनका जन्म हुआ था और आरंभ से ही ये कृष्ण-प्रेम की भावना से अभिभूत थी। उन्होंने कृष्ण को बाल-रूप में देखा है। उनकी वाणी में वात्सल्य रस मानो छलकता है। बालपन से ही वह मीरा की भाँति दिव्योन्माद में थी। उनका विवाह हुआ था किंतु प्रथम रात्रि को शय्यागार में एक साँप देख कर पति डरकर चला गया। इस प्रकार गिरियम्मा विवा-हित होने पर भी विरक्त हो गईं। उनका जीवन भक्ति के प्रति समर्पित जीवन था। उनके ग्रंथ ये हैं—'चंद्रहासनकथे', 'सीताकल्याण', 'उद्दालककथे', तथा कुछ भक्ति-गीत। 'ब्रह्मकोरवंथि' नाम की एक और कृति उन्हीं की मानी जाती है। 'चंद्रहासनकथे' में प्रसिद्ध वैष्णव भक्त चंद्रहास की कथा सांगत्य-शैली में है, 'सीताकल्याण' में सीता-राम के विवाह का सुंदर वर्णन है। उनकी भाषा शुद्ध देसी भाषा है—प्रसादगुण-परिपूर्ण, निर्व्याज भावना, शक्ति से ओतप्रोत।

हे साथी हे सारथी *(उ० कृ०)*

नित्यानंद शतपथी (दे०)-कृत 'हे साथी हे सारथी' में उत्कलमणि दीनबंधु गोपबंधु (दे०) का जीवन-चरित है। उत्कलमणि गोपबंधु उड़िया जाति के नमस्य है; उड़ीसा की एक विपुल पौराणिक संपत्ति हैं। उनका जीवन इस जाति का जीवंत इतिहास है। जन्मभूमि की

संस्कृति पर गोपबधु मुग्ध थे। जन्मभूमि की दुर्दशा ने उन्हे क्षुब्ध कर दिया था। इस दुर्दशा का मोचन ही उनका पुण्यव्रत था। लोकसेवा ही उनका एकनिष्ठ धर्म था।

उडिया मे गोपबधु पर इससे विस्तृत रचना नही है। उनके जीवन की अनेक घटनाओ पर लेखक ने प्रकाश डाला है। गोपबधु ने अपनी आत्मजीवनी नही लिखी है, किंतु यह प्राणस्पर्शी रचना किसी सीमा तक उस कमी की पूर्ति कर देती है।

हैदरी *(उर्दू० ले०)*

इनका नाम सैयद हैदर बख्श तथा तखल्लुस 'हैदरी' था। ये दिल्ली मे सैयद हैदर बख्श के यहाँ पैदा हुए थे। इनके पूर्वज अरब से आए थे। हैदरी ने शिक्षा बनारस मे पाई थी। हैदरी ने फोर्ट विलियम कालेज मे डा० गिलक्राइस्ट के अधीन सराहनीय कार्य किया था। 'किस्सा लैला-मजनूँ', 'तोता कहानी', 'आराइशे महफिल', 'तारीखें नादरी', 'गुले-मगफरत', 'गुल्जारे दानिश', 'किस्स-ए-महरो-माह', 'गुलदस्त-ए-हैदरी' तथा 'गुलशने-हिंदी' इनकी विभिन्न पुस्तकें है। इनमे फारसी पुस्तको के अनुवाद भी हैं तथा मौलिक रचनाएँ भी। 'गुलशने-हिंद' उर्दू के कवियो का इतिहास है।

हैना कैथरिन म्यालेंस *(बँ० ले०)*

मसीही धर्मावलबी विदेशी महिला हैना कैथरिन म्यालेंस के जन्मादि की सन्-तारीख का ठीक पता नही लगता है। इन्होने 1852 ई० मे 'करुणा ओ फुलमणि विवरण' उपन्यास की रचना की और यही इनकी प्रसिद्धि का सबसे बडा कारण है क्योकि बँगला साहित्य के इतिहास मे इसे ही सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास होने का श्रेय प्रदान किया जाता है।

ईसाई धर्म की श्रेष्ठता के प्रतिपादन के उद्देश्य से इस उपन्यास मे कतिपय 'धर्मांतरित बगाली परिवारो की जीवनयात्रा की कहानी लिपिबद्ध की गई है। आख्यानसूत्र मे धारावाहिकता का अभाव है, और चरित्र-चित्रण प्राय निर्जीव तथा निष्प्राण है। यह अवश्य है कि बँगला साहित्य मे यह पहला उपन्यास है। जीवन की समस्या, पारिवारिक जीवन की सुख शाति को लेकर कहानी लिखी गई है परतु सामाजिक दुर्नीति तथा अनाचार को दूर करने के लिए ईसाई धर्म को ही एकमात्र उपचार मानने के कारण लेखिका अपने साहित्यिक गौरव को अक्षुण्ण नही रख सकी।

होनाजी बाळा *(म० ले०)*

'होनाजी बाळा' का समय निश्चित नही है। इनकी रचनाओ मे प्राप्त सकेतो के अनुसार ये सवाई माधवराव तथा बाजीराव पेशवा द्वितीय के काल मे विद्यमान थे। अत इनका जीवन-काल उन्नीसवी शती के प्रथम चार दशको के बीच का समय कहा जा सकता है।

ये जाति से ग्वाले थे। इनका उपनाम 'शेलार-खने' था। मराठी-साहित्य के ये ख्यातनाम शाहीर कवि है।

कृष्णाख्यान के विविध प्रसगो पर होनाजी बाला ने लावणियाँ लिखी है। 'घनश्याम सुदरा श्रीधरा, अरुणोदय झाला' नामक भूपाली तो इनकी अजरामर कीर्ति का आधार-स्तभ है। यह एक जागरण-गीत है, जिसमे प्रसन्न-ललित-मधुर शैली मे प्रात कालीन सुषमा का रूपाकन है।

होनाजी बाला ने पाँच वीरगाथात्मक ऐतिहासिक पोवाडे भी लिखे है, जिनमें से तीन बाजीराव पेशवा, द्वितीय पर हैं। इससे प्रमाणित होता है कि इनकी बाजीराव के प्रति अटूट श्रद्धा थी।

इन्होने सस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है। इनके काव्य मे भाव-वैचित्र्य के साथ वर्णन-विलास, प्रसादत्व और अर्थगाभीर्य का अपूर्व योग है।

होन्नम्मा *(क० ले०)* [समय—1680 ई० के आसपास]

होन्नम्मा मैसूर-नरेश चिक्कदेवराज ओडेयर के अत पुर मे एक दासी थी। सिंगराय (दे०) की शिष्या थी, राजा की प्रेरणा से उसने सिंगरार्य से शिक्षा ग्रहण की और 'काव्यदेवी' का पद पाया। 'हरिबदेय धर्म' (दे०) (पातिव्रत धर्म) इसका प्रसिद्ध नीति-काव्य है। सागत्य छद मे लिखे इस ग्रथ मे पातिव्रत धर्म का अत्यत सरस निरूपण है। इसकी बातो मे अद्भुत शक्ति है। नारी के अधिकारो के लिए यदि उसने कही-कही समाज को चुनौती दी है तो साथ ही साथ आदर्श गृहिणी के कर्त्तव्यो पर सुदर ढग से प्रकाश डाला है। नारी जीवन के गरिमामय पक्ष को मडित करने मे यह ग्रथ अत्यत सफल है।

□□